शब्द-वेदः

शब्द-वेदः

(चतुर्णां वेदानामेकादशसंहितानां सङ्कलनम्)

सञ्चयनकर्ता प्रस्तोता च

कर्पूरचन्द्रकुलिशः

संस्थापकसम्पादकः, राजस्थानपत्रिका

सम्पादकः

कैलाशचतुर्वेदी

पूर्वनिदेशकः संस्कृत-शिक्षा-विभागः, राजस्थानम्

पत्रिका प्रकाशनम्

शब्द-वेदः

(चतुर्ण्णां वेदानामेकादशसंहितानां सङ्कलनम्)

सञ्चयनकर्ता प्रस्तोता च

कर्पूरचन्द्रकुलिशः

संस्थापकसम्पादकः, राजस्थानपत्रिका

सम्पादकः

कैलाशचतुर्वेदी

पूर्वनिदेशकः संस्कृत-शिक्षा-विभागः, राजस्थानम्

पत्रिका प्रकाशनम्

शब्द-वेद

कर्पूरचन्द कुलिश

ISBN : 978-93-80271-88-0

प्रकाशक : पत्रिका प्रकाशन
(राजस्थान पत्रिका प्रा.लि. की एक इकाई)
409, लक्ष्मी कॉम्प्लेक्स, एम. आई. रोड,
जयपुर - 302 001 (भारत)
फोन : 0141-3005974

e-mail : patrikapublication@epatrika.com

website : www.patrika.com

प्रधान कार्यालय : केसरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
जयपुर - 302 004 (भारत)
फोन : +91-141-39404142 , फैक्स : 91-141-2566011

e-mail : info@rajasthanpatrika.com

website : www.patrika.com

संस्करण (प्रथम) : जुलाई, 2000

संस्करण (द्वितीय) : जुलाई, 2010

मूल्य : रु. 6500/-

यू.एस. डॉलर : $ 400/-

मुद्रक : जयपुर प्रिंटर्स प्रा. लि., जयपुर (भारत)

ŚABDA-VEDA : By KARPOOR CHANDRA KULISH — Price : Rs. 6500/-

Subject of Book : A collection of rare recensions(sākhā) of Vedic Samhitās.

ŚABDA-VEDA

(A collection of rare recensions (śākhā) of Vedic Samhitas)

Compiled & Presented by

K.C.Kulish

Founder-Editor, Rajasthan Patrika

Editor

Kailash Chaturvedi

Ex-Director, Sanskrit Education, Rajasthan

PATRIKA PUBLICATION

ŚABDA-VEDA
K.C. Kulish

ISBN : 978-93-80271-88-0
Published by : **Patrika Publication**
(A Unit of Rajasthan Patrika Pvt. Ltd.)
409, Laxmi Complex, M.I. Road,
Jaipur- 302001 (INDIA)
Ph.: 0141-3005974
e-mail : *patrikapublication@epatrika.com*
website : *www.patrika.com*
Head Office : Kesargarh Jawaharlal Nehru Marg,
Jaipur-302 004 (INDIA)
Ph. : +91-141-39404142, Fax: 91-141-2566011
e-mail : *info@rajasthanpatrika.com*
website : *www.patrika.com*

First Edition : July, 2000
Second Edition : July, 2010
Price : **Rs. 6500/-**
U.S. Dollar : **$ 400**
Printed by : Jaipur Printers Pvt. Ltd., Jaipur (INDIA)

ŚABDA-VEDA : By KARPOOR CHANDRA KULISH **Price : Rs. 6500/-**

Subject of Book : A collection of rare recensions(śākhā)of Vedic Samhitās.

प्ररोचना

'शब्द वेदः' प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। ग्यारह वेद-संहिताओं के संकलन का यह नाम पढ़कर पाठकों को कुछ अनूठा लगेगा, परन्तु यह नाम मुझे वेद विज्ञान के विशारद स्व. स्वामी सुरजनदासजी महाराज ने दिया था। लगभग दस वर्ष पूर्व वेद संहिताओं के संकलन और प्रकाशन का काम मैंने हाथ में लिया था। अनेक बाधाओं के कारण प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब हो गया, परन्तु मैंने अपना संकल्प नहीं छोड़ा। यह भी हुआ कि यह ग्रन्थ आधा छपकर पड़ा रहा। बीच में कई व्यवधान आए, परन्तु चि. गुलाब कोठारी का सहारा मिलने पर नये सिरे से काम शुरु किया और वह सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया।

'शब्द वेदः' का नामकरण करने के साथ ही स्वामीजी महाराज इसकी भूमिका भी लिख गये, जो अपने आपमें विलक्षण है। यह भूमिका संस्कृत मासिक भारती (जयपुर) में प्रकाशित हो चुकी है। भूमिका वाले भारती के अंक डॉ. प्रभाकर शास्त्री एवं भारती के सम्पादक श्री गिरिराज किशोरजी के सहयोग से प्राप्त हुए हैं।

स्वामी सुरजनदास जी ने पग-पग पर वेद कार्य में सदैव मार्ग दर्शन किया और शब्द वेदः के प्रकाशन में वे प्रेरणा स्रोत रहे। उन्होंने पं. मधुसूदन ओझा का शिष्यत्व ग्रहण किया था।

वेद को सृष्टि का निर्माता कहा गया है और वेद को अपौरुषेय भी माना जाता है। हमें मानना होगा कि वेद-ग्रन्थों से सृष्टि नहीं रची जा सकती। हमें यह भी मानना होगा कि जिस भाषा और लिपि में वेद संहितायें लिखी गई हैं, वह ईश्वरीय नहीं हो सकती। वैदिक भाषा और देवनागरी लिपि मानव की ही रची हुई है। जिस मुख से वेद मन्त्रों का उच्चारण होता है, वह मानव मुख ही है। जिस लिपि में वेद मन्त्र लिखे गये हैं, वे मानवीय हाथों से ही लिखे गये हैं। यह भी स्पष्ट है कि वेद संहिताओं का संकलन वेदव्यास ने किया और हम जिन मन्त्रों का उच्चारण करते हैं, वे वेदव्यास की ही देन है। उन्होंने संहिता-बद्ध करके मन्त्रों को हमारे कल्याण के लिए शिष्य-प्रशिष्यों के माध्यम से शाखाओं में उपलब्ध कराया।

वेद का जो ईश्वरीय स्वरूप है, वह तत्त्व रूप में है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है:-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः
सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत् ।
सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत्
सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् ॥

अर्थात् जितने भी मूर्त पदार्थ, बिम्ब, प्रतिमाएं हैं, सब ऋग्वेद से बनती हैं और इस ऋक्-तत्त्व का ज्ञान देने वाला शास्त्र ऋग्वेद है। विश्व में जितना भी गति तत्त्व, हलचल, कम्पन, स्पन्दन, क्रियादि है, सब यजुर्वेद से निर्मित है और यजुर्वेद ही यत् और जू भागों में बंटकर गति और स्थिति की रचना करता है। यत् का अर्थ गति और जू का अर्थ स्थिति अथवा आकाश है। आकाश के स्थिर आधार पर वायु अपनी गति करता है। प्रत्येक गति के लिये आगत्यात्मक आधार होना आवश्यक है। हमारे पांवों के नीचे ठोस धरती न हो तो हम चल नहीं सकते। वेद में ब्रह्म को अकर्म एवं जगत् को कर्म कहा गया है। यजुर्वेद हमें क्रिया अथवा गति तत्त्व का ज्ञान देता है। यत् और जू के संयोग से ही सृष्टि का प्रारम्भ है, यही यजुर्वेद है। सृष्टि में जितना भी तेज तत्त्व है, वह सामवेद से उत्पन्न है। तेज ही सामवेद है। सामवेद को वितान वेद, विभूति वेद, महिमा वेद इत्यादि नामों से जाना जाता है। इसी के लिये गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। सामतत्व का ज्ञान देने वाला शास्त्र ही सामवेद है। अथर्व को सोम, अन्न, अथर्वा, सुब्रह्म इत्यादि नाम से जाना जाता है। सोम अथवा अन्न से ही संसार चलता है। ऋग्, यजु और सामवेद तीनों अग्नि वेद हैं और सोम ही अथर्ववेद है। अग्नि और सोम का मेल ही जगत का कारण है जिसके लिये कहा गया है ''अग्निषोमात्मकं जगत्''।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्व रूप में जो वेद है वही शब्द रूप में वेद शास्त्र है। तत्त्व रूप में वेद अग्नि और सोम है और इन्हीं तत्त्वों का शब्द रूप में ज्ञान देने वाले वेद शास्त्र रूप में प्रस्तुत है। शब्द रूप में ईश्वरीय तत्त्वों का ज्ञान देने वाले वेद शास्त्र भी ईश्वरीय है क्योंकि यह ज्ञान अन्यत्र दुर्लभ है।

यदा कदा कुछ लोग वेद पर विचार करने पर इसीलिये आपत्ति करते हैं कि ईश्वरीय वाणी पर विचार करना पाप है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रत्येक शास्त्र मनुष्य के लिये, जीव के लिये रचे गये हैं। इनमें वेद शास्त्र भी है। ईश्वर ने अपने लिये वेदों की रचना नहीं की है बल्कि जीव के लिये की है। ईश्वर पूर्ण है, जीव अपूर्ण है। अतः उसको पूर्णता की ओर ले जाने के लिये शास्त्रों की रचना की गई है, इस दृष्टि से वेद को भी विचारणीय मानना चाहिये। विचार के बिना शास्त्र नहीं समझा जा सकता। शास्त्र का मर्म ही विचार है और विचार ही मानव की पहचान है।

प्रस्तुत संहिता संकलन का नाम "शब्द वेदः" इसीलिये रखा गया है ताकि वेद के विषय में भ्रान्तियाँ दूर हो सकें। तत्त्व रूपी वेद और शब्द-रूपी वेद दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा। जो लोग वेद को केवल पूजा की वस्तु समझ कर विचार नहीं करना चाहते हैं उन्हें समझ लेना होगा कि शब्द-वेद स्वाध्याय और विचार करने का शास्त्र हैं परन्तु वह भी ईश्वरीय वाणी ही है क्योंकि वह ईश्वरीय तत्त्वों का ज्ञान करवाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ, उपलब्ध ग्यारह वेद संहिताओं का संकलन है। वर्तमान में कुल 11 ही संहितायें प्रकाशित उपलब्ध हैं जिनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को सब कोई जानते हैं परन्तु इनकी विभिन्न शाखाएं भी बड़ी कठिनाई से जुटाई गई हैं। किसी समय चारों वेदों की कुल 1131 संहिताएं थी। सभी वेदों के साथ ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् थे। इस प्रसंग में एक प्रश्न, वेदों और उनकी शाखाओं के सम्बन्ध में उपस्थित होता है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भी वेदों की ही शाखायें हैं और वेदों के समान ही प्रामाणिक है। सभी वेदों की अपनी-अपनी शाखायें हैं। ब्राह्मणों में मन्त्र-संहिता वेद का क्रियात्मक रूप है, आरण्यकों में वेदों का उपासना पक्ष है और उपनिषदों में वेदों का ज्ञान पक्ष है। कर्म, उपासना और ज्ञान मिलाकर ही वेद शास्त्र का सम्पूर्ण रूप विकसित होता है। ऐसी अवस्था में मन्त्र वेद और अन्य शाखाओं की रचना भिन्न-भिन्न काल में मानना कहाँ तक उचित है? मन्त्र रूपी वेद की व्याख्या ही कर्मकाण्ड के रूप में ब्राह्मण है। उसे उपासना पद्धति से जानना ही आरण्यक है और ज्ञान द्वारा जानने का प्रयास ही उपनिषद् है। वेद शास्त्र की सांगोपांग पद्धति से तो ऐसा ही लगता है कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों की रचना भी संहिता वेद के साथ ही हुई होगी। जो भी हो, इस प्रश्न पर विचार होना आवश्यक है। कालान्तर में अधिकांश का लोप हो गया। केवल 11 संहितायें रह गई है, जिन्हें संकलित करने का यह प्रयास इसलिए किया गया है कि बची हुई संहितायें, एकत्र उपलब्ध हो जाये।

ऐसा ही प्रश्न संहिताओं के विषय में है। ऋक्, यजु, साम तीनों अग्नि वेदों में अविनाभाव माना जाता है और अग्नि-सोम (अथर्व) में भी अविनाभाव है। तब भिन्न-भिन्न वेदों के रचनाकाल को भिन्न-भिन्न क्यों कर माना जाता है। वेद संहिताओं का निर्माण वेद-व्यास ने किया है। वेदों के अविनाभाव को वेदव्यास अवश्य ही जानते होंगे। उनके द्वारा निर्मित संहिताओं में निरन्तरता होनी स्वाभाविक मान कर चलना होगा। ऋग्वेद का काल और अन्य वेदों का काल अलग-अलग क्यों कर मानना चाहिए? भारतीय मेधा-मनीषा के सामने यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर मौलिक विचार अत्यावश्यक है।

महाभाष्य के अनुसार ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 9 शाखायें मिलाकर इन वेदों की कुल संख्या 1131 हैं और प्रत्येक शाखा के साथ ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भी रचे गये हैं। इस प्रकार मन्त्रवेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों की कुल संख्या- 4524 हो जाती है। यदि इस संख्या में वेदाङ्गभूत श्रौत-कल्प-गृह्यसूत्र-शिक्षा-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्यौतिष वाङ्मय का परिगणन कर लिया जावे तो वैदिक वाङ्मय की विशालता एवं समृद्धता का स्वरूप सामने आ जाता है, किन्तु वेद-विद्या का लोप होते होते अब लोक-व्यवहार में कुल चार ही वेद रह गये। अन्य संहितायें सामान्य जानकारी में नहीं है और लगभग लुप्त प्रायः है। कतिपय विद्वान् केवल संहिताओं को ही वेद मानते हैं और ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों को वेद की श्रेणी नहीं देते परन्तु यह दृष्टि वैदिक दृष्टि से मेल नहीं खाती क्योंकि ब्राह्मण वेद का परीक्षात्मक कर्म काण्ड पक्ष है, आरण्यक उपासना काण्ड है और उपनिषद् ज्ञान काण्ड है। सभी के बीच अविनाभाव है, अतः इन्हें वेद की श्रेणी में मानना ही उचित है।

विद्वज्जन ऐसा मानते हैं कि महाभारत तक वेद विद्या का प्रभाव था। जनमेजय के नागयज्ञ के उपरान्त वेद का लोप होता गया। एक-एक कर संहिताएं, और अन्य वैदिक वाङ्मय भी तिरोहित हो गया। वैदिक ज्ञान के व्याख्याता ब्राह्मणों का प्रयोग शिथिल हो गया, कालान्तर में ब्राह्मण ग्रन्थ तो वेद-शिक्षण से बाहर ही हो गये। ब्राह्मणों के अभाव में वेद स्वयं लुप्त हो गये। ग्रन्थ रूप में शेष जो वेद रह गये वे पूजा के पात्र बन गये। ज्ञान-विज्ञान के मूल वेद का सर्वविद्या-निधानत्व ही समाप्त हो गया। पूजा के लिए वेद बच गये, वे भी केवल चार ही रह गये। वेद का ज्ञान लुप्त हो जाने पर शब्द मात्र रह गये और अज्ञान के कारण ग्रन्थ ही पूजे जाने लगे। वर्तमान जिस वेद को हम जानते हैं वह शब्द-वेद ही है, तत्त्व वेद नहीं।

कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि शब्द-वेद का कोई महत्त्व नहीं। शब्द का ऐतिहासिक महत्त्व तो अवश्य ही है। वेद-मन्त्रों का उच्चारण आज भी वैसे ही होता है जैसा कि श्रुति के प्रादुर्भाव के समय होता था। संसार में एक ही शास्त्र ऐसा है जिसकी उच्चारण विधि में और पाठ में अन्तर नहीं हुआ है। उच्चारण और पाठ में जहाँ अन्तर है वह भी उसी रूप में मान्य है। शब्द रूपी वेद का दूसरा बड़ा महत्त्व कर्मकाण्ड में है। आज भी देश भर में जो कर्मकाण्ड होता है वह वेद मन्त्रों के ही सहारे होता है। कर्मकाण्ड की इस विधा से देश की संस्कृति एवं जीवनशैली और पहिचान बनी हुई है।

वेद के विषय में यह मान्यता है कि वेद स्वयं अपना उद्धारक है। इस मान्यता में यह निहित है कि यदि वेद कलेवर अथवा मन्त्रोच्चार विद्यमान है तो उसके सूत्र पकड़ कर वेद का तात्त्विक पक्ष भी खोजा जा सकता है। स्व. पं. मधुसूदन ओझा को श्रेय देना होगा कि उन्होंने वेद के पारिभाषिक शब्दों के मर्म को खोजा और उन शब्दों के भीतर ही उनके रहस्य को खोला। उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों की महत्ता स्थापित की। उनके शिष्य स्व. पं. मोतीलाल शास्त्री ने शतपथ ब्राह्मण का पूरा भाष्य ही कर डाला और उसे विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। इसे वेद के उद्धार की भूमिका अथवा प्रक्रिया ही कहा जाएगा। यह कार्य निरन्तर गति पकड़ रहा है। आज देश में एकाधिक विद्वान् वेद के तात्त्विक पक्ष को जानने लगे हैं और उसके आधार पर ग्रन्थों की रचना कर रहे हैं। वरिष्ठ वैज्ञानिक डाक्टर ए.एस. रामनाथन ने अंग्रेजी में भी कतिपय ग्रन्थों का प्रणयन किया है- जिसे राजस्थान पत्रिका ने प्रकाशित किया है। "वेद में आत्मा की परिकल्पना", "वेद क्या है?", "भगवद्गीता का सार" जैसे वृहत् ग्रन्थ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं। वरिष्ठ- वेद-विद्वान डॉ. दयानन्द भार्गव सरल भाषा और शैली में हिन्दी में विभिन्न ग्रन्थों की रचना कर रहे हैं। वर्तमान में वे गीता पर एक लेख माला चला रहे हैं जो 'राजस्थान पत्रिका' में प्रति शनिवार को "विज्ञान वार्ता" स्तम्भ में प्रकाशित हो रही है। राजस्थान पत्रिका ने अब तक वेद विषयक लगभग 75 ग्रन्थों का प्रकाशन कर दिया है। इन ग्रन्थों के प्रकाशन में पं. मोतीलाल शास्त्री के पौत्र स्व. प्रद्युम्न शास्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका रही। पं. मोतीलालजी स्वयं 20 हजार पृष्ठ प्रकाशित कर गये थे और उनकी कितनी ही पाण्डुलिपियां अप्रकाशित पड़ी है जिन्हें उनके पुत्र श्री कृष्णचन्द्र शर्मा सुरक्षित रखे हुए हैं और राजस्थान पत्रिका द्वारा उनके प्रकाशन का प्रयास जारी है।

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर में राज्य सरकार द्वारा मधुसुदन ओझा शोध प्रतिष्ठान स्थापित किया गया है, जो ओझाजी के ग्रन्थोंका निरन्तर प्रकाशन कर रहा है। स्व. स्वामी सुरजनदास के शिष्य डॉ. गणेशीलाल सुथार इसके निदेशक हैं। प्रतिष्ठान ने अब तक वेदधर्मव्याख्यानाम्, इन्द्रविजयः, वर्णसमीक्षा, पितृसमीक्षा, अपरवादः, व्योमवादः, आवरणवादः ग्रन्थों का प्रकाशन कर दिया है। इसी विश्वविद्यालय में कई अन्य विद्वान वेद विज्ञान के स्वाध्याय में रत हैं। जोधपुर में ''वाक्'' नामक संस्था वेद- विज्ञान सम्बन्धी गतिविधियाँ चला रही है। इसके अध्यक्ष वेदनिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. अचलदास बोहरा हैं। उन्हें देश के विख्यात एवं वयोवृद्ध विद्वान डॉ. फतेहसिंह का मार्गदर्शन उपलब्ध है। ब्यावर के श्री अनन्त शर्मा निरन्तर स्वाध्यायरत हैं। उन्होंने अपरवाद, व्योमवाद, अत्रिख्याति आवरणवादि कतिपय ग्रन्थों का सटिप्पण अनुवाद भी किया है। ओझाजी के ये ग्रन्थ पूर्व-पक्ष से सम्बन्धित हैं। महामहोपाध्याय पं. गिरधरशर्मा चतुर्वेदी ने ओझाजी के सान्निध्य में रहकर समीक्षात्मक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'ब्रह्मसमीक्षा' की संस्कृत व्याख्या विशेष उल्लेखनीय है। उनके सुपुत्र पं. देवीदत्त चतुर्वेदी ने भी 'भगवद्गीता', 'देवीसूक्त रहस्य', 'रात्रिसूक्त रहस्य' आदि रचनाओं द्वारा वैदिक साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान किया है। होशियारपुर के वैदिक विद्वान् पं. ब्रजबिहारी चौबे ने 'गृह्यसूत्रों' पर विशेष अनुसंधान कार्य प्रकाशित किया है।

मै स्वयं उपयुक्त सभी गतिविधियों में निरन्तर सहयोग करता रहता हूं। लगभग 10 वर्षों तक देश और विदेशों में व्याख्यान-मालायें करता रहा हूं। मुझे प्रसन्नता है कि विदेशी श्रोताओं ने मेरे व्याख्यानों में गहरी रूचि दिखाई। जयपुर के दीप-माध्वाश्रम के संचालक स्वामी महेश्वरानन्द ने इन व्याख्यानों का आयोजन किया। वाइस आफ जर्मन, बी. बी. सी., वायस आफ अमरीका, जयपुर दूरदर्शन के माध्यम से भी मेरी वार्तायें प्रसारित हुई हैं।

ओझा जी की दृष्टि से मार्ग दर्शन पाकर महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, स्वामी सुरजनदास जी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, आद्यादत्त जी ठाकुर प्रभृति विद्वानों ने भी कतिपय ग्रन्थों की रचना की। स्वामी सुरजनदास जी ने राजस्थान पत्रिका द्वारा प्रकाशित शतपथ-ब्राह्मण के कतिपय भागों की काण्डिकाओं का भाष्य भी किया।

इसी वर्ष एक अंग्रेजी प्रकाशन ने वेद वाङ्मय की शृंखला में एक नई कड़ी जोड़ दी। देश के मूर्धन्य पत्रकार श्री ऋषि कुमार मिश्र ने पं. मोतीलाल शास्त्री की कृतियों के आधार पर उन्हीं की अन्तिम इच्छा के अनुसरण में एक वृहत् ग्रन्थ की रचना की है, जिसका नाम ''बिफोर द बिगनिंग एण्ड आफ्टर द एण्ड'' (अनादि-अनन्त) रखा है। श्री ऋषि कुमार मिश्र ने पं. मोतीलाल जी का शिष्यत्व ही ग्रहण कर रखा था और जयपुर में ही रहते हुए वे सुदीर्घ काल तक मानवाश्रम में ही शास्त्रीजी के सानिध्य में रहते थे। इस पुस्तक के प्रकाशन पर मुझे विशेष प्रसन्नता है क्योंकि मैं भी विगत पन्द्रह वर्षों से शास्त्रीजी की पाण्डुलिपियों के प्रकाशन में रत हूँ। मैं पंडितजी के सानिध्य में तो नहीं रहा, उनकी दृष्टि में अवश्य रहा। उनका व्यक्तित्व सामने आने के बाद इस आशा और आस्था से कार्यरत हूँ कि आज नहीं तो कल उनका स्मरण देश को होगा। दिसम्बर, 1956 में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद महाभाग ने राष्ट्रपति भवन में पं. मोतीलाल शास्त्री के पाँच व्याख्यानों का आयोजन किया था, जिसे सुनकर उन्होंने एक पत्र लिखकर शास्त्रीजी को भेंट किया और यह उद्गार प्रकट किये कि शास्त्री जी के मौलिक विचारों का प्रसार होना चाहिये, सरकार को भी इस कार्य में पहल करनी चाहिये। शास्त्री जी द्वारा स्थापित वैदिक-तत्व-शोध संस्थान के संरक्षक भी राष्ट्रपति स्वयं बने। शास्त्रीजी का आग्रह अंग्रेजी माध्यम पर था और ठीक ही था, अतः उस दिशा में भी सक्रिय हूँ।

प्रस्तुत संकलन में प्रयास किया गया है कि उपलब्ध सभी ग्यारह वेद संहिताओं को मिला लिया जाय ताकि भविष्य में इनका लोप न हो। इस प्रयास को सरल बनाने के लिए हमने कतिपय प्रकाशित संहिताओं की फोटो प्रति करवा ली है और जहाँ अशुद्धि सामने आई उसे ठीक कर दिया गया। जो संहिता प्रकाशित नहीं थी, उसे नये सिरे से कम्पोज करवाया गया परन्तु पुस्तक के सामान्य पृष्ठों के साथ उसी रूप में प्रकाशित कर दिया गया।

संकलन को अशुद्धियों से बचाने के लिए उपलब्ध पुस्तकों की फोटो स्टेट कापी बनाकर एक बड़े आकार में कई पृष्ठों का समावेश कर दिया गया है। ताकि आकार अत्यधिक बड़ा न हो। मूल्य अधिक न बढ़े अतः कम्पोज का उपयोग कम कर दिया गया। प्रयोजन केवल इतना ही है कि सभी संहितायें एक साथ उपलब्ध हों। ग्रन्थ का आकार बड़ा हो जाने के कारण अलबत्ता कागज मोटा लगाना पड़ा जिससे कम्पोज की बचत का लाभ लुप्त हो गया। फिर भी ग्यारह संहिताओं को सम्मिलित रूप में प्रकाशित करने का अपने आप में उपयोग है और महत्त्व भी। यह एक अभिनव प्रयोग है।

वेदवाचस्पति पं. मोतीलाल शास्त्री के जामता और राजस्थान संस्कृत शिक्षा निदेशालय के पूर्व-निदेशक श्री कैलाश चतुर्वेदी ने इस कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व स्वयं संभाला है। यह कार्य शास्त्रीजी के पौत्र प्रद्युम्नकुमार शास्त्री ने आज से 8 वर्ष पूर्व हाथ में लिया था, परन्तु पूरा नहीं कर पाये एवं उनका असमय-स्वर्गवास हो गया। चतुर्वेदीजी ने न केवल सम्पादन-प्रकाशन का दायित्व निभाया है बल्कि दुर्लभ संहिताओं का संकलन भी किया है।

हमारा प्रयास केवल उपलब्ध संहिताओं का रक्षण करना ही है। चार वेदों का एक संकलन तो पहिले भी उपलब्ध है और पृथक्-पृथक् वेदों का प्रकाशन भी एकाधिक बार हुआ है, परन्तु एक विशाल ग्रन्थ में ग्यारह संहिताओं का एक साथ प्रकाशन अपने आप में एक उपलब्धि है।

इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वेद के मौलिक पक्ष पर निरन्तर कार्य होता रहा और निरन्तर बढ़ रहा है। वेद अब शब्द मात्र न रहकर तत्त्व रूप में प्रकट हो रहा है। वेद का तात्त्विक रूप विस्तार पा रहा है। मैं आशा करता हूं कि सहृदय विद्वज्जन वेद विज्ञान की ओर उन्मुख होंगे। इसी प्रयोजन से ''शब्द वेदः'' का प्रकाशन किया गया है। राजस्थान पत्रिका प्रकाशन की यह बहुमूल्य कड़ी है, एक ऐतिहासिक घटना है और वेद-निष्ठजनों को समर्पित है।

कर्पूरचन्द्र कुलिश

गुरुपूर्णिमा, सम्वत् २०५७
१६, जुलाई, २०००
'स्वस्ति'
११ हॉस्पिटल रोड, जयपुर

आदर्श-ग्रन्थाः

अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशने निम्नाङ्किताः प्रकाशिताः संहिताः आदर्शरूपत्वेनास्माभिः संगृहीताः—

१.	ऋग्वेद-संहिता	(श्रीपाददामोदर सातवलेकरेण सम्पादिता)	१९३६ संस्करणम्
२.	यजुर्वेद-संहिता	" "	१९४६ संस्करणम्
३.	काण्व-संहिता	" "	१९४० संस्करणम्
४.	तैत्तिरीय-संहिता	" "	१९४३ संस्करणम्
५.	काठक-संहिता	" "	१९४२ संस्करणम्
६.	मैत्रायणी-संहिता	" "	१९४२ संस्करणम्
७.	सामवेद-संहिता	" "	१९३९ संस्करणम्
८.	अथर्ववेद-संहिता	" "	१९४३ संस्करणम्
९.	कपिष्ठलकठ-संहिता	(डॉ. रघुवीरेण सम्पादिता)	१९३२ संस्करणम्
१०.	जैमिनीय-संहिता	" "	१९३८ संस्करणम्
११.	पैप्पलाद-संहिता	" "	१९४६ संस्करणम्

एतान् प्रति सादरं कृतज्ञता-ज्ञापनं पुण्यस्मरणञ्चैषां क्रियते।

प्रकाशकः

सर्वं वेदात् प्रसिध्यति

आर्याणां विश्ववारा[1] संस्कृतिः अभ्युदयनिःश्रेयसहेतुर्भारतीयो धर्मश्च वेदैकमूलाविति निर्विवादम्। अत एव 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुः 2 / 61) 'वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ' (मनु 2 / 10) 'वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः' (या. स्मृ. 1 / 40) इत्यादिवचनानि प्रथन्ते।

विदितवेदितव्यैः अधिगतयाथातथ्यैः साक्षात्कृतधर्मभिस्तत्रभवद्भिर्महर्षिभिः प्रातिभेनालौकिकेन चक्षुषा साक्षात्कृतानामाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानां तत्त्वानां समुद्घाटनपरो विमलो वचनराशिरेव वेदशास्त्रम्। अत एवेदं पितृदेवमनुष्याणां सनातनं चक्षुः, सर्वभूतानां विधारकं वर्णाश्रमादीनां च सर्वेषां तत्त्वानां प्रकाशकं च प्रोच्यते। यथोक्तं भगवता मनुना-

'पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥'
(मनु. 11 / 94)

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥
(मनु. 12 / 97)

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥
(मनु. 12 / 98)

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥
(मनु. 12 / 99)

भारतीयमितरत्सर्वं वाङ्मयमेव-वेदाङ्गत्वेन वा, वेदमूलकत्वेन वा वेदव्याख्यानत्वेन वा, वेदोपजीवित्वेन वा स्वकीयं सार्थक्यं भजते नान्यथा। छन्दःशास्त्रादीनां तु स्पष्टमेव वेदाङ्गत्वमुक्तम् यथा-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

नानाविधस्य ब्राह्मणारण्यकोपनिषत्साहित्यस्य तु 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप. परि. 31) इत्यापस्तम्बादिवचनाद् वेदत्वं सुसमर्थितमेव। आश्वलायनादिप्रणीतानां नानाविधानां श्रौतकल्पगृह्यधर्मसूत्रग्रन्थानां, मन्वादिप्रणीतानां स्मृतीनां, बौधायनादिनिर्मितानां धर्मशास्त्राणां च वेदोपकरणत्वेन वेदमूलत्वं सुप्रसिद्धमेव।'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।' (म.भा. 1 / 1 / 267) इति वचनात् इतिहासपुराणशास्त्रयोरपि वेदोपबृंहकत्वेन वेदमूलकत्वं निश्चप्रचमेव। सर्वेषां दर्शनानाम् अर्वाचीनस्य च सर्वविधस्य वाङ्मयस्य वेदोपजीवित्वं स्वीक्रियत एव सर्वैरिति नास्ति कस्यचित् प्रमाणोपन्यासस्यावश्यकता विपश्चितां कृते। एवं भारतीयं सर्वं वाङ्मयं वेदोपजीवित्वाद् वेदमूलकत्वाच्चाप्रधानत्वापरपर्यायमङ्गत्वमेव भजते न प्रधानत्वापरपर्यायमङ्गित्वम्। प्रधाने च कृतः

1. 'सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववारा'- यजुःसंहिता 7/14

प्रयत्नः फलवान् भवतीति तदध्ययन एव प्रयतितव्यं प्राधान्येन भारतीयैर्द्विजातिभिः। अत एव 'तस्माद् ब्राह्मणेन निष्कारणं धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' (पात. म. भा. पस्पशाह्निक) 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' (तै.आ. 2 / 15)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

(मनु. 2 / 16 म.)

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

(मनु. 4 / 147 म.)

इत्यादिश्रौतस्मार्तवचनानि द्विजातीनां कृते वेदस्यावश्याध्येयतां प्रतिपादयन्ति वेदानां महत्त्वं च बोधयन्ति।

'धर्मब्रह्मणी वेदैकवेद्ये' इति पुरुषार्थानुशासनसूत्रात् 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति जैमिनिसूत्रे 'चोदनैव धर्मे प्रमाणम्।' इत्युक्त्या धर्मस्य, 'शास्त्रयोनित्वात्' इति व्यासोक्त्या ब्रह्मसूत्रे च ब्रह्मणश्च शास्त्रैकविषयत्वस्य प्रतिपादनात् 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इति श्रुतेश्च धर्मब्रह्मणोर्वेदैकबोध्यत्वेन तद्बोधकत्वेनापि अस्ति वेदानां महत्त्वम्।

अपि च प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणानामविषयभूतस्य स्वर्गापूर्वादेरर्थस्य, भूतस्य भाविनः सूक्ष्मस्य विप्रकृष्टस्य चार्थस्य बोधने वेदस्यैवाप्रतिहता गतिर्नान्यस्योपायस्येति तदर्थमस्ति वेदानामतीवोपयोगित्वमित्येतदपि बोधयति वेदानां निरतिशायि महत्त्वम्। तदुक्तम्-

प्रत्यक्षेणानुमानेन यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥ इति॥

अत एव च सम्प्रदायविदोऽप्यकुण्ठितां शक्तिं वेदस्य दर्शयन्ति। यथा- 'चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहित विप्रकृष्टमित्येवंजातीयमर्थं शक्नोति बोधयितुम्' (शाबर भा. 1।2) इति। मनुनाऽपि 'भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति' इत्युक्त्या एतदेव बोधितम्।

कथमीदृशं सामर्थ्यं वेदस्येति नाशङ्कनीयम्-यतो हि वेदः अलौकिकप्रतिभाजुषां विदितवेदितव्यानामधिगतयाथातथ्यानां साक्षात्कृतधर्मणां महर्षीणां वचनरूपो राशिरिति तस्य प्रत्यक्षकल्पत्वेन सर्वातिशायि प्रामाण्यम्। एतादृशा महर्षयश्चातीतानागतानसंवेद्यान् पदार्थानपि आर्षेण चक्षुषाऽध्यक्षयन्ति। तदुक्तं भर्तृहरिणा वाक्यपदीये-

आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ॥

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावा वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥

(वाक्य. ब्र. का. 37, 38)

मनुरपि 'देवपितृमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्' इत्युक्त्या तस्य निर्भ्रान्तं प्रत्यक्षत्वमेव बोधयति।

अत एव श्रुतिस्मृत्योर्वचनत्वेन साम्येऽपि श्रुतेः प्रत्यक्षद्रष्टृमहर्षिवचनत्वेन प्रत्यक्षरूपत्वात् स्मृतेश्च श्रोतुर्वचनरूपत्वेनानुमानरूपत्वात् अनुमानापेक्षया च प्रत्यक्षस्य बलवत्त्वात् श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे श्रुतेः प्रामाण्यमङ्गीक्रियते न स्मृतेः।

ननु श्रुतेः प्रत्यक्षरूपत्वेन प्रामाण्यस्वीकारे कथं प्रत्यक्षापेक्षयाऽपि तस्य प्राबल्यमङ्गीक्रियते इति चेत्, न, सांव्यवहारिकस्य प्रत्यक्षस्य इन्द्रियापाटवभ्रमप्रमादविप्रलिप्सा-दोषजन्यत्वेन क्वचिदप्रामाण्यसम्भवेऽपि उपर्युक्तदोषरहितानां प्रातिभया दृष्ट्याऽसंवेद्यानामर्थानां साक्षात्कर्तृणां महर्षीणां प्रत्यक्षे तादृशदोषाशङ्काया अप्यसम्भवेन तत्र सर्वातिशायिप्रामाण्यस्य लौकिकसांव्यवहारिकप्रत्ययापेक्षया बलवत्त्वस्य च स्वतः सिद्धत्वात्। एतदर्थमेव भर्तृहरिणा आविर्भूतप्रकाशानामनुपप्लुतचेतसामिति विशेषणद्वयं समुपात्तम्। अत ईदृशस्य सर्वार्थबोधनक्षमस्य परमपुरुषार्थरूपनिःश्रेयससाधकस्य वेदस्य महत्त्वं निर्विवादमेव सिध्यति।

ऋग्वेदः

यद्यपि 'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्, एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः नवधाऽऽथर्वणो वेदः' इति महाभाष्योक्त्या वैदिकं संहितासाहित्यमेव एकत्रिंशदुत्तरसहस्रशाखात्मकत्वेनातितरां विशालं समृद्धं च, तद्व्याख्यानभूतानां ब्राह्मणानामारण्यकानामुपनिषदां तथा तदङ्गभूतस्य श्रौतकल्पगृह्यसूत्रशिक्षाव्याकरणनिरुक्त छन्दोज्यौतिषादिवाङ्मयस्य गणनायां तु का कथा तस्याः समृद्धतायाः विशालतायाश्च। तथापि दैवदुर्विपाकाद्वा कालप्रभावाद्वा विलुप्तास्वपि भूयसीषु संहिताशाखासु कथाशेषतामुपयातेषु भूयःसु तद्व्याख्यानभूतेषु ब्राह्मणादिग्रन्थेषु

नाममात्रावशेषासु गाथासु कुम्व्यासु च त्किञ्चिदवशिष्टं साहित्यं तदपि पर्याप्तं तत्र भवतां भारतीयानां महर्षीणां लोकोत्तरां प्रतिभां, क्रान्तदर्शितां, विदितवेदितव्यतामधिगतयाथातथ्यतां च निदर्शयितुम्। तत्र, 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप. परि. 31) इत्यापस्तम्बोक्त्या मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदत्वेन तयोरेव समासतः परिचयोऽत्र उपन्यस्यते। परमत्रापस्तम्बसूत्रे मन्त्रशब्देन 'ब्रह्म वै मन्त्रः' (शत. 7 / 1 / 1 / 5) इति श्रुत्या मन्त्रात्मकवेदसंहितायाः, ब्राह्मणशब्देन च वेदव्याख्यानभूतानां ब्राह्मणारण्यकोपनिषदां ग्रहणम्, 'ब्रह्मवेदस्तद्व्याख्यानं ब्राह्मणमितिव्युत्पत्तेः।'

वेदाश्च 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि, यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं च' (छा. 7 / 1 / 2) 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणः।' (मु. 1 / 1 / 5) 'ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः' (नृ. ता उ. 1 / 1 / 2) 'तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः' (मु. 1 / 1) इत्यादिश्रुतिवचनैः ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चत्त्वारः इति निर्विवादम्।

तत्र 'एकविंशतिधा वाह्वृच्यम्।' इति पतञ्जल्युक्त्या एकविंशतिशाखाभेदभिन्नस्यापि ऋग्वेदस्य साम्प्रतं पञ्चैव शाखाः प्रामुख्यं भजन्ते-आश्वलायनी, शाङ्खायनी, शाकला, बाष्कला, माण्डूकेया चेति। आस्वपि शाखासु ऋग्वेदेऽद्यत्वे शाकलसंहितैव प्रचलिताऽस्ति, नान्यासां शाखानां संहिताः समुपलभ्यन्ते। यद्यपि शाकलशाखासंहितानुसार- मृगवेदस्यान्तिमो मन्त्रः 'समानी व आकूतिः' (ऋ. सं. 10 / 191 / 4) इति वर्तते। वाष्कलशाखासंहितानुसारं च 'तच्छंयोरावृणीमहे' इति वर्तते। अर्थाद् वाष्कलशाखासंहितायां पञ्चदशर्चात्मकं संज्ञानसूत्रमधिकं वर्तते। अस्य भेदस्य सत्त्वे प्रमाणमाश्वालायनसूत्रम् पञ्चानामपि शाखानां पारायणे ऋग्वेदस्य समाप्तिः 'तच्छंयोरावृणीमहे' इत्यत्रैव बोध्या। तदुक्तं महिदासेन- 'पञ्चशाखानां पारायणे तच्छंयोरावृणीमहे' इत्यत्र समाप्तिरेकवेदत्वात्।' तदुक्तं च-

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः ।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम् ॥

सांख्याश्वलायनौ चैव माण्डूका बाष्कलास्तथा ।
बह्वृचा ऋषयः सर्वे पञ्चैते ह्येकवेदिनः ॥ इति।

(चौखंबा संस्करण पृष्ठ 23-24)

अस्मिंश्च ऋग्वेदे वाष्कलसंहितायाम् अष्टकविभागानुसारं अष्टौ (8) अष्टकानि, चतुःषष्टिः (64) अध्यायाः षडुत्तरे द्वे सहस्रे (2006) वर्गाः, संज्ञानसूक्तस्य चतुर्णां वर्गाणां गणने तु दशोत्तरे द्वे सहस्रे (2010) वर्गाः, सपादाशीत्यधिकपञ्चशतानि दशसहस्राणि (105801$^{1/4}$) ऋचश्च सन्ति। द्वात्रिंशदधिकशतद्वयाधिकमेकविंशतिसहस्रमर्धर्चाः पादश्चैकः (21232$^{1/4}$) षड्विंशत्यधिकाष्टशतयुक्त-पञ्चाशत्सहस्राधिकलक्षं (153826) पदानि द्वात्रिंशत्सहस्राधिक चतुर्लक्षम् (432000) अक्षराणि च सन्ति।

मण्डलविभागे तु मण्डलानि दश (10) सूक्तानि सप्तदशाधिकं सहस्रम् (1017) पदानि च एकलक्षद्विपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशत-चतुर्दशानि (152514) वासिष्ठानाम्। तेषां 'इन्द्रो' इति एकसप्ततिपदात्मको वर्गो-नास्ति। इतरगोत्रीयाणां तु 'इन्द्रोतिभिः' (अ. 3 अ. 3 वर्ग 23) इति तृतीयाष्टकतृतीयाध्यायस्य त्रयोविंशतिवर्गस्य एकसप्तति (71) पदानां मेलनेन पदानि-एकलक्षद्विपञ्चाशत्-सहस्रपञ्चाशीतिः (152585) भवन्ति। तदुक्तं चरणव्यूहभाष्ये-

'अध्यायाश्च चतुःषष्टिर्मण्डलानि दशैव तु ।
वर्गाणां परिसंख्यातं द्वे सहस्रे षडुत्तरे ॥

सहस्रमेतत् सूक्तानां निश्चितं खैलिकैर्विना ।
दशसप्त च पठ्यन्ते, संख्यात वै पदक्रमम् ॥

ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्तितम् ॥

अर्धर्चानां सहस्राणामेकविंशतिकं तथा ।
शतद्वयं तु द्वात्रिंशत्सपादं मुनिभिः पुरा ॥'

एकं च शतसहस्रं दश च सहस्राणि सप्तशतानि (110704) चर्चापदानि ज्ञेयानि पदानि चान्यानि चत्वारि। चत्वारि वाव शतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि (432000) (कात्या. सर्वानु. पृ. 52-53)= वर्गसंख्यायाः स्पष्टीकरणं शौनकेनानुवाकानुक्रमण्यां कृतम्। तदुक्तं शौनकेनानुवाकानुक्रमण्याम्-

एकर्च एकवर्गः (1) स्यादेकर्चः (1) नवकस्तथा ।
द्वौ (2) वर्गौ तु द्व्यृचौ ज्ञेयौ त्र्यूनं तृचशतं (97) स्मृतम् ॥

चतुष्कं शतमेकं च चत्वारः सप्ततिस्तथा (175) ।
पञ्चानां च सहस्रं तु द्वे च सप्तोत्तरे शते (1207) ॥

त्रीणि शतानि षट्कानां चत्वाशिंच्च षट्मताः (346) ।
सप्तर्चानां शतं तूनविंशतिश्चाधिका स्मृता (119) ॥

अष्टर्चानां तु पञ्चाशद् एकोनदशकं (59) तथा ॥

एकर्चादिवर्गाणां तत्रत्यानामृचां च तालिकाऽधस्तात् प्रदर्श्यंते सौकर्येण बौधाय-

ऋक्संख्यानुसारं		वर्गनाम	वर्ग संख्या	समस्ता	ऋक्संख्या
एकर्च:	1	ऋक्	1	=	1
द्वृचः	2	ऋचौ	2	=	4
तृचः	3	ऋचः	97	=	291
चतुष्कः	4	ऋचः	174	–	696
पञ्चकः	5	ऋचः	1207	=	6035
षट्कः	6	ऋचः	346	=	2076
सप्तकः	7	ऋचः	119	=	833
अष्टकः	8	ऋचः	59	=	472
नवकः	9	ऋचः	1	=	9
			2006		10417

इदं त्ववधेयम् यदेकर्चादिवर्गानुसारिणी या ऋक्संख्योपरि निर्दिष्टा सा शाकलशैशिरीयशाखानुसारं न तूपलभ्यमानशाकलसंहितानुसारम्। अत- एवोक्तमनुवाकानुक्रमण्यां शौनकेन 'तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः' (अनु. वाकानुक्रमणी 36 श्लोकः) एषाऽपि च बालखिल्यसूक्तवर्जम्। अत एव 'न खिलेषु इत्युक्तम्।'

'ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।' ऋचामशीति पादश्च पारणं सम्प्रकीर्तितम्।' इत्यत्र पारणे या 10580$^{1/4}$ ऋक्संख्या प्रोक्ता साऽपि न विशुद्धशाकलसंहिताया अपि तु ऋग्वेदीयसर्वशाखानामिति बोध्यम्। पं. श्रीभगवद्दत्तमहोदयैः 'वैदिकवाङ्मयस्य इतिहास' नाम्नि पुस्तके प्रथमभागे 134 पृष्ठे उद्धृताभ्यां लौगाक्षिस्मृति- श्लोकाभ्यामेतत् स्पष्टं प्रतीयते। तद् यथा-

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च ।
ऋचामशीति पादश्च पारायणविधौ खलु ॥

पूर्वोक्तसंख्या या साऽपि सर्वशाखोक्तसूक्तगाः ।
मन्त्राश्चेति मिलित्वैव कथितेति पुनः पुनः ॥

चरणव्यूहभाष्यकृता महिदासेन ऋग्वेदस्य वर्गाणामृचां च संख्यायाः प्रदर्शकाः केचित् श्लोकाः उद्धृताः। तद् यथा-

एकर्च एकवर्गश्च एकर्चो नवकस्तथा ।
द्वौ वर्गौ तु द्वृचौ ज्ञेयौ ऋक्त्रयस्य शतं स्मृतम् ॥

चतुर्ऋचां पञ्चसप्तत्यधिकं च शतं तथा ।
पञ्चर्चतुं द्विशतकं सहस्रं रुद्रसंयुतम् ॥

पञ्चचत्वारिंशत्तथा षड्ऋचाँ तु शतत्रयम् ।
सप्तर्चानां शतं ज्ञेयं विंशतिश्चाधिकाः स्मृताः ॥

अष्टर्चानां तु पञ्चाशत् पञ्च चैवाधिकास्तथा ।
द्व सहस्रे दशवर्गाः पञ्च शाखासु निश्चिताः ॥

वर्गाः संज्ञानसूक्तस्य चत्वारश्चात्र मिश्रिताः ।
एवं पारायणे प्रोक्ता ऋचां संख्या न न्यूनतः ॥

उपर्युक्तश्लोकानुसारिणी वर्गाणामृचां च संख्याऽधस्तात् तालिकया ज्ञेया-

ऋक्संख्यानुसारं वर्गनाम	वर्गसंख्या	ऋक्संख्या
एकर्चः-वर्गः एका ऋक्	1	1
द्वृचः-द्वे ऋचौ	2	4
तृचः-तिस्रः ऋचः	100	300
चतुष्कः-चतस्रः ऋचः	175	700

ऋक्संख्यानुसारं वर्गनाम	वर्गसंख्या	ऋक्संख्या
पञ्चर्चः-पञ्च ऋचः	1211	6055
षड् ऋचः-षड् ऋचः	345	2070
सप्तर्चः-सप्त ऋचः	120	840
अष्टर्चः-अष्ट ऋचः	55	440
नवर्चः-नव ऋचः	1	9
	2010	10419

इयं वर्गसंख्या च शाकलचरणीयपञ्चशाखानाम्। अत्र च संज्ञानसूक्तस्य चत्वारो वर्गा अपि वर्गसंख्यायां, तदीयाः पञ्चदशर्चश्च ऋक्संख्यायां सम्मिलिताः। संज्ञानसूक्तस्य पञ्चदशर्चानाम् अपरिगणने तु 10404 ऋक्संख्या जायते। अस्यामृक्संख्यायां पूर्वोक्तायां 10402 ऋक्संख्यायां च संख्याद्वयस्य भेदो वर्तते। परमयं भेदः शाखान्तरत्वेन जात इति प्रतीयते।

अत्र युधिष्ठिरमीमांसकमहोदयैः 'ऋग्वेद की ऋक् संख्या' इति पुस्तके लिखितं यत्- 'महिदासः बालखिल्यसहितानां मन्त्राणां संख्यां 10552 बालखिल्यरहितानां तु 10472 मनुते' इति। परमेतन्न समीचीनम्। यतो हि महिदासेन यैषा संख्या चरणव्यूहभाष्ये प्रदर्शिता सा सर्वानुक्रमण्या वर्तते न महिदासस्य। तेन स्पष्टमेवोक्तम्- 'बालखिल्यसहिता सर्वानुक्रमणीमन्त्ररूपा ऋक्संख्योच्यते-द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतदशसहस्राणि' (10472) इति (च. व्यू. भा. पृ. 17)।

बाष्कलशाखायामष्टौ सूक्तान्यधिकानि वर्तन्ते। तदुक्तमनुवाकानुक्रमण्यां शौनकेन-'एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि' इति। अपि चानुवाकानुक्रमण्यामेकविंशश्लोके शाकलशाखातो बाष्कलशाखाया भेदान्तरमपि दर्शितम्। तथा हि शाकलसंहितायां रहूगण-गौतमस्य चतुःसप्ततितमसूक्तात् त्रिनवतितमसूक्तपर्यन्तानां विंशतिसूक्तानामनन्तरं कुत्सस्य सूक्तानि सन्ति। परं बाष्कलसंहितायामतो भिन्न एव क्रमः। तत्र गौतमदृष्ट-सूक्तानामनन्तरमौशिजस्य कक्षीवतः एकादश (11) सूक्तानि परुच्छेपस्य च त्रयोदश (13) सूक्तानि वर्तन्ते। ततः कुत्सदृष्टानि सूक्तानि, तदनन्तरं च दीर्घतमोदृष्टानि 25 सूक्तानि। अर्थात् कुत्सदृष्टानां सूक्तानां संनिवेशक्रम उभयोः संहितयोर्विभिन्नो वर्तते। तदुक्तमनुवाकानानुक्रमण्याम्-

इत्याद्ये मण्डले दृष्टाश्चत्वारो विंशतिस्तथा।
गौतमादौशिजः कुत्सः [illegible]रुच्छेपादृषे परः ।
कुत्साद्दीर्घतमा इत्येषः तु बाष्कलकः क्रमः ॥

उपरितन्येषा ऋग्वेदीयवर्गादिसंख्या बालखिल्यसूक्तवर्जं विद्यते। यतो हि बालखिल्यानि सूक्तानि पारायणे न सन्ति। श्रौतस्मार्तसर्वकर्मानुष्ठाने बालखिल्यप्रसिद्धावपि वेदपरायणे बालखिल्यवर्जमेव परिगण्यते।

पारायणे ऋचामुपरितनी $10580^{1/4}$ संख्या तु चरणव्यूहभाष्यकृता महिदासेन स्पष्टीकृता। तद्यथा- 'अथाध्ययने ऋक्संख्योच्यते-षण्णवत्यधिकचतुःशतदशसहस्राणि' (10496) इति। ततो नैमित्तिकद्विपदासहिताः षट्षष्ट्युत्तरपञ्चशतदशसहस्राणि (10566) इति। 'संज्ञानमुशनावदत्' सूक्तस्य पञ्चदशर्चैकीकृत्य 10581 इति-एवं पारायणे ऋक्संख्या 'ऋचां दशसहस्राणि। इति वचनस्य परिपूर्णा भवति इत्यर्थः। एका (ऋक्) उर्वरिता सा। भद्रन्नो अपि वाताय मनः''(10 / 201) इति पादाधिक्यमनुक्रमणिकावृत्तावप्युक्तेः।' (चरणव्यूह पृ. 21-22)

अत्रापि ऋचां 10496 संख्यायाः प्रकार एवं वर्तते-यत् ऋग्वेदे सामान्यत ऋचां संख्या बालखिल्यसूक्तवर्जं 10402 वर्तते। एषा च संख्या ऋग्वेदस्य कस्याश्चित् शाखायाः एकादशश्लोकात्मके छन्दःसंख्यासंज्ञके प्राचीने परिशिष्टे उपलभ्यते। तत्र हि आद्येषु दशसु श्लोकेषु गायत्र्यादिच्छन्दोऽनुसारमृक्संख्याया उल्लेखः कृतः। अन्तिमे चैकादशे पद्ये सङ्कलय्य ऋक्संख्यानिर्देशः कृतः। तद्यथा-

एकपञ्चाशद् ऋग्वेदे गायत्र्यः शाकलेयके ।
सहस्रद्वितयं चैव चत्वार्येव शतानि तु ॥1॥
त्रीणि शतानि सैकानि चत्वारिंशत्तथोष्णिहः ।
अनुष्टुभां शतान्यष्टौ पञ्चाशद् पञ्चसंयुता ॥2॥
बृहतीनां शतं ज्ञेयमेकाशीत्यधिकं बुधैः ।
शतानि त्रीणि पङ्क्तीनां द्वादशाभ्यधिकानि तु ॥3॥
पञ्चाशत् त्रिष्टुभः प्रोक्तास्तिस्रश्चैव ततोऽधिकाः ।
सहस्राण्येव चत्वारि विज्ञेयं तु शतद्वयम् ॥4॥
चत्वारिंशत्तथाष्टौ च तथा चापि शतत्रयम् ।
जगतीनामियं संख्या सहस्रं तु प्रकीर्तितम् ॥5॥

अत्र तैत्तिरीयसंहितायां प्रचलिते सारस्वतपाठे संहिताब्राह्मणारण्यकेषु मन्त्रब्राह्मणयोः प्राचुर्येण सांकर्यं दृश्यते। तथाहि-केचन मन्त्राः संहितायां यस्मिन् प्रपाठके आम्नातास्तस्मिन्नेव प्रपाठके तदग्रे तदीयं ब्राह्मणमाम्नातम्। यथा-सम्पश्यामि प्रजा अहमिह प्रजासो मानवीः इति संहितामन्त्रः। एतस्यैव ब्राह्मणं संहितायामेव तदग्रे एव सम्पश्यामि। प्रजाऽअहमित्याह यावन्त एवेति। ब्राह्मणमिति। (च. व्यू. भा. 1.41) क्वचिदेकत्र प्रपाठके मन्त्राः, अपरत्र च तदीयं ब्राह्मणम्। यथा संहितायां प्रथमे काण्डे षष्ठे प्रपाठके दर्शपौर्णमासिका मन्त्राः पठ्यन्ते, सप्तमे प्रपाठके च तेषां मन्त्राणां ब्राह्मणं पठितम्। क्वचिदेकस्मिन् काण्डे मन्त्राः, अपरस्मिंश्च काण्डे तदीयं ब्राह्मणम्। यथा संहितायां चतुर्थ काण्डे अग्निचयनमन्त्राः, पञ्चमे काण्डे च तदीय ब्राह्मणमाम्नातम्।

एषा च मन्त्रब्राह्मणयोः संकीर्णता न केवलमस्याः शाखायाः संहितायामपितु तदीये ब्राह्मणेऽपि। यथा तैत्तिरीयब्राह्मणस्य प्रथमाष्टके प्रथमे प्रपाठके आधान ब्राह्मणम्, तत्रैव द्वितीयस्मिन् प्रपाठके आधानमन्त्राः। एवं केचनाश्वमेधिकाः पदार्थाः (मन्त्रा ब्राह्मणानि च) संहिताभागे, केचन च ब्राह्मणभागे निरूप्यन्ते राजसूयविधयः केचन संहितायां प्रथमकाण्डे अष्टमे प्रपाठके निरूपिताः, केचन ब्राह्मणभागे प्रथमाष्टके सप्तमाष्टमप्रपाठकयोर्निरूपिताः। तैत्तिरीयसंहितायां ब्राह्मणे चारण्यकेषु मन्त्राः, संहितायां च मन्त्राणां व्याख्यानमिति संमिश्रणम्। क्वचिन्मन्त्राः ब्राह्मणानि च सह पठितानि। तद् यथा षष्ठे प्रपाठके याजमानाः मन्त्रास्तद्ब्राह्मणानि च सन्ति।

पुनराधानवर्णने प्रथमकाण्डस्य पञ्चमे प्रपाठके आरम्भे अनुवाकद्वये ब्राह्मणानि तृतीयेऽनुवाके मन्त्राः चतुर्थेऽनुवाके च पुनर्ब्राह्मणम् इति ब्राह्मणसम्पुटिताः मन्त्राः सन्ति। प्रथमकाण्डस्यैव पञ्चमषष्ठयोरनुवाकयोः उपस्थानमन्त्राः सप्तमाष्टमनवमानुवाकेषु ब्राह्मणानि, दशमेऽनुवाके च पुनरुपस्थानमन्त्राः इति मन्त्रसम्पुटितानि ब्राह्मणानि। प्रथमकाण्डस्याष्टमे प्रपाठके राजसूयसम्बन्धिनो विंशतिरनुवाकाः। तेषु द्वितीयाष्टमानुवाकवर्जं प्रारंभिकेषु दशसु अनुवाकेषु (अष्टस्वनुवाकेषु) मन्त्राः ब्राह्मणानि चेति उभयं विद्यते। एकादशात् षोडशपर्यन्तं षडनुवाका विशुद्धमन्त्रात्मकाः। द्वितीयाष्टमसप्तदशाष्टादशोनविंशविंशानुवाकाश्च विशुद्धब्राह्मणात्मकाः।

तत्र तेषामध्ययनमष्टादशयजुः सहस्राणि अधीत्य शाखापारो भवति तान्येव द्विगुणान्यधीत्य पदपारो भवति, तान्येव त्रिगुणान्यधीत्य क्रमपारो भवति। (च. व्यू. पृ. 33) इति चरणव्यूहपरिभाषासूत्रे प्रदर्शितं मन्त्राणं परिमाणं ऋग्यजुरात्मकोभयसमुदायस्य समग्रस्यैव यजुर्वेदस्य न केवलानामृचां न वा केवलानां यजुषाम्। ऋग्यजुःसामान्येन अष्टादशसहस्राणि यजूंषि यजुर्वेदमन्त्राः भवन्तीत्यर्थः इति सातवलेकरः। एषा च संहिता काण्डप्रपाठकानुवकेषु विभक्ता। तत्र काण्डानि सप्त (7) प्रपाठकाः प्रश्ना वा चतुश्चत्वारिंशत् (44), अनुवाकाश्च एकपञ्चाशदुत्तरषट् शतानि (651)। सप्तसु काणेडषु क्रमशः 8, 6, 5, 7, 7, 6, 5 प्रपाठकाः समुच्चिताश्च 44 प्रपाठका भवन्ति।

प्रतिकाण्डं प्रतिप्रपाठकमनुवाकसंख्याऽधस्तात्प्रदीयते-तत्र प्रथमे काण्डे अष्टसु प्रपाठकेषु क्रमशः- 14, 14, 14, 46, 11, 12, 13, 22 अनुवाकाः सम्भूय च 146 अनुवाकाः सन्ति।

द्वितीये काण्डे षट्सु प्रापठकेषु क्रमशः- 11, 12, 14, 14, 12, 12 अनुवाकाः समुच्चिताश्च 75 अनुवाकाः सन्ति। तृतीये काण्डे तु पञ्चसु प्रपाठकेषु क्रमशः 11, 11, 11, 11, 11 अनुवाकाः सम्भूय च 55 अनुवाकाः सन्ति।

चतुर्थे काण्डे सप्तसु प्रपाठकेषु क्रमशः- 11, 11, 13, 12, 11, 9, 15 अनुवाकाः संभूय च 82 अनुवाकाः सन्ति।

पञ्चमे काण्डे सप्तसु प्रपाठकेषु क्रमशः- 11, 12, 12, 12, 24, 23, 26 अनुवाकाः संभूय 120 अनुवाकाः सन्ति।

षष्ठे काण्डे षट्सु प्रपाठकेषु क्रमशः- 11, 11, 11, 11, 11, 11 अनुवाकाः संभूय च 66 अनुवाकाः सन्ति।

सप्तमे काण्डे पञ्चसु प्रपाठकेषु क्रमशः- 20, 20, 20, 22, 25 अनुवाकाः समुच्चिताश्च 107 अनुवाकाः सन्ति। संभूय च सप्तसु काण्डेषु चतुश्चत्वारिंशत्प्रपाठकेषु अनुवाकसंख्या 651 जायते। तत्र पञ्चाशती 2198, पदानि 19290 अक्षराणि च 253868 इत्यपि प्रपञ्चितं चरणव्यूहभाष्यकृता महिदासेन। यथा-

काण्डास्तु सप्त विज्ञेयाः प्रश्नाश्चाधिक्यकाश्चतु ।
श्चत्वारिंशत्तु विज्ञेयाः अनुवाकाः शतानि षट् ॥1॥

एकपञ्चाशदधिकाः संख्याः पञ्चाशदुच्यते।
द्विसहस्रञ्चैक- शतमष्टानवतिश्चाधिका ॥2॥

लक्षैकं तु द्विनवति-सहस्राणि प्रकीर्तितम्।
पदानि नवतिश्चैव तथैवाक्षरमुच्यते ॥3॥

लक्षद्वयं त्रिपञ्चाशत्-सहस्राणि शतःष्टकम्।
अष्टषट्यधिकञ्चैव यजुर्वेदप्रमाणकम् ॥4॥ (पृष्ठ- 40)

एवं वाक्यसंख्यापि परिगणिता- 19488 वाक्यानीति। तदुक्तम्-

शाखावाक्यान्ययुतानि सहस्राणि नवैव च।
चतुःशतान्यशीतिश्च अष्टौ वाक्यानि गण्यते ॥
(च. व्यू. भाष्य पृष्ठ- 40)

परमेषा वाक्यसंख्या ब्राह्मणग्रन्थस्य न तु संहिताग्रन्थस्य 'इति ब्राह्मणे वाक्यसंख्या 19488' (च. व्यू. भाष्य) इति चरणव्यूहभाष्योक्तेः, संहितायां मन्त्रेषु वाक्यगणनाया असंभवाच्च।

आर्षेयपाठस्तु अस्यास्तैत्तिरीयशाखासंहिताया अनुष्ठानोपयोगित्वात् सत्याषाढापस्तम्बबौधायनादिभिराचार्यैः स्वस्वगृह्यसूत्रे स्पष्टतरमुल्लिखितत्वाच्चोपयुक्ततरः प्रतिभाति। तत्र संहिता ब्राह्मणं च पृथक् पृथग् वर्तेते न तु संकीर्णे। अस्मिन् पाठे संहितायां पञ्च काण्डानि प्राजापत्यं, सौम्यं, आग्नेयं, वैश्वदेवं, स्वायम्भुवं चेति। काण्डानामेताः समाख्याः तत्तत्काण्डद्रष्टृन् महर्षीन् अवलम्ब्य सम्प्रवृत्ता इति ज्ञायते। तत्र प्राजापत्ये प्रथमकाण्डे नव प्रपाठकाः। तथा चोक्तं काण्डानुक्रमण्याम्-

शाखादिं याजमानं च होतृन् हौत्रं च दार्शिकम्।
तद्विधीन् पितृमेधं च नवाहुः कस्य तद्विदः ।इति॥

अस्यायमर्थः- शाखादिः (पौरोडाशिकं) याजमानं, होतारः, दार्शिकंहौत्रं चेति चत्वारि, तेषां ब्राह्मणान्यपि चत्वारि, पितृमेधश्चेति नव प्रकरणानि प्राजापत्यानि। बौधायनोऽप्याह- 'पौरोडाशिकं याजमानं, होतारः, हौत्रं पितृमेध इति सब्राह्मणानि सानुब्राह्मणानि प्राजापत्यानि' (बौ.गृ.सू.प्र. 3 / 3) प्राजापत्यानि- प्राजापत्य काण्ड विषयाः प्रपाठकगताः।

द्वितीये सौम्ये काण्डेऽपि-अध्वरः, ग्रहाः दाक्षिणानीति त्रीणि तद् ब्राह्मणानि च त्रीणि, वाजपेयः तद्ब्राह्मणम्, सवाः, शुक्रिये द्वे (प्रवर्ग्यः, तद् ब्राह्मणञ्च) इति नव प्रपाठकाः। तदुक्तम्-

अध्वर प्रभृतित्रीणि तद्विधिर्वाजपेयके।
सवाः शुक्रियकाण्डे च नवेन्दोरिति धारणा ॥ (काण्डानु.)

अत्र दाक्षिणानीत्यनेन दक्षिणाद्रव्याणि समिष्टयजूंषि, अवभृथयजूंषि च गृह्यन्ते। यथाऽऽह बौधायनः- अध्वर्यवं, ग्रहाः, दाक्षिणानि समिष्टयजूंषि अवभृथ-यजूंषि, वाजपेयः शुक्रियाणि, सवा इति सब्राह्मणानि सानुब्राह्मणानि वा सौम्यानि। इति।

तृतीये आग्नेये काण्डे-अग्न्याधेयपुनराधेयाऽग्न्युपस्थानानीति त्रीणि, अग्निः (अग्निचयनं) अग्न्याधेयादित्रिकस्य ब्राह्मणम्, अग्निचयनस्य ब्राह्मणमिति द्वयम्, अग्निहोत्रब्राह्मणं चेत्येवं सप्त प्रकरणानि सन्ति। तदुक्तं काण्डानुक्रमण्याम्-

त्रिष्वग्न्याधेयपूर्वेषु ह्यग्नौ च सविधिद्वये।
विधौ चैवाग्निहोत्रस्य सप्तस्वग्निमृषिं विदुः॥

काठकोक्तानां सावित्रनाचिकेतचातुर्होत्रीयवैश्वसृजारुणकेतुकाभिधानां पञ्चानां प्रकरणानामप्यत्रैव परिग्रहः। अग्न्याधेयमग्निहोत्र-मग्न्युपस्थानमग्निचयनं सावित्रं नाचिकेतं, चातुर्होत्रीयं वैश्वसृजमारुणम् इति सब्राह्मणानि सानुब्राह्मणान्याग्नेयानि इति बौधायनसूत्रात्।

चतुर्थे वैश्वदेवकाण्डे-राजसूयः, तद्ब्राह्मणम्, पशुबन्धः, काम्येष्टयः, उपानुवाक्यम् याज्याः, अश्वमेधः, तद्ब्राह्मणम्, सात्रायणम्, उपहोमाः, सूक्तानि, नक्षत्रेष्टयः, सौत्रामणी, अच्छिद्राणि, पशुहौत्रं पुरुषमेधश्चेति षोडश प्रकरणानि। तदुक्त काण्डानुक्रमण्याम्-

अवशिष्टानि यानि स्युः काण्डान्यन्यानि षोडश ।
विश्वान् देवानृषींस्तेषु विदुर्वेदविदो जनाः ॥
सब्राह्मणो राजसूयः पशुबन्धः सहेष्टिभिः ।
उपानुवाक्यं याज्याश्च अश्वमेधः सब्राह्मणः॥
सात्रायणं चोपहोमाः सूक्तानि च सहेष्टिभिः ।
सौत्रामणी सहाच्छिद्रैर्हौत्रं मेधश्च षोडश॥

काठकोक्तानां दिवश्येन्यपाधनामिकानामिष्टीनामुपनिदाञ्चात्रैव परिगणनं बौधायनसूत्रे तथैव परिगणनात्। तदाह बौधायनः-

राजसूयः, पशुबन्धः, इष्टयो नक्षत्रेष्टो दिवश्येनयोऽपाधाः सात्रायणमुपहोमाः कौलिकीसूक्तानि औपानुवाक्यं याज्याः अश्वमेधः पुरुषमेधः सौत्रामणी अच्छिद्राणि पशुहौत्रमुपनिषदः इति सब्राह्मणानि सानुब्राह्मणानि वैश्वदेवानि।इति॥

पञ्चमं स्वायम्भुवं काण्डञ्चैकविधमेव ब्रह्माम्नायविध्यात्मकम्।

तदुक्तम्-

ऋषिं स्वायम्भुवं प्राहुर्ब्रह्माम्नायविधावपि ।
स्वाध्यायब्राह्मणमिति सह वै प्रश्न उच्यते॥

अत्रोपरितनेषु बौधायनसूत्रेषु ब्राह्मणशब्देन मन्त्राणां कर्मणि विनियोजकं विधिरूपं वाक्यजातम्, अनुब्राह्मणशब्देन च विधिमनूद्य अर्थवादसहितं क्वचित् मन्त्रार्थोपवर्णनयुक्तं वाक्यजातं गृह्यते। तदुक्तम्-

ब्राह्मणं मन्त्रकाण्डस्थविधिजातमितीरितम् ।
अनुब्राह्मणमन्यत्तु कथितं सार्थवादकम् ॥

(तै. सं. भाष्य. 1 / 8 / 1)

एषु पञ्चसु काण्डेषु च संहितायां 625 अनुवाका: ब्राह्मणे च 640 अनुवाका: सम्भूय च संहिताब्राह्मणयो: 1265 अनुवाका: सन्ति। प्रतिकाण्डमनुवाकानुतालिका तु निम्नाङ्किता-

काण्डे	संहितायाम् अनुवाका:	ब्राह्मणे अनुवाका:	योग:
प्राजापत्यकाण्डे	58	77	135
सौम्यकाण्डे	129	106	235
आग्नेयकाण्डे	118	123	241
वैश्वदेवकाण्डे	314	320	634
स्वायम्भुवे काण्डे	6	14	20
	625	640	1265

अस्या: संहिताया एकमेव ब्राह्मणमुपलभ्यते तैत्तिरीयाभिधम्। तत्र काण्डानि त्रीणि (3), प्रपाठका: अष्टाविंशति: (28)। तत्रापि प्रथमे-द्वितीये च काण्डे अष्टौ अष्टौ प्रपाठका: तृतीये च द्वादश। प्रपाठकश्चानुवाकेषु विभक्ता:। अनुवाकाश्च अष्टात्रिंशदुत्तरत्रिशतानि (338) सन्ति। तत्र प्रथमे काण्डे 78, द्वितीये 96, तृतीये च 164 अनुवाका इति सम्भूय 338 अनुवाका भवन्ति काण्डत्रये।

अस्यां तैत्तिरीयशाखायां दशप्रपाठात्मक आरण्यकग्रन्थोऽपि वर्तते य: तैत्तिरीयारण्यकनाम्ना प्रसिद्ध:। एषु दशसु प्रपाठकेषु काठकाभिधेयं प्रपाठकत्रयमपि विद्यते। दशसु प्रपाठकेषु क्रमश: 32, 20, 21, 42, 12, 12, 12, 9, 10, 64 अनुवाका इति सम्भूय 234 अनुवाका: सन्ति। दशमे प्रपाठके मतान्तरेण 80 अनुवाका: सन्ति। एवं च अनुवाकसंख्या 250 भवति। एषा अनुवाकसंख्या आन्ध्रमतेन। तामिलमतेन 67, मैसूर (कर्नाटक) मतेन च 76 वर्तते। सायणेनैतत् प्रकरणं खिलनाम्नाऽऽख्यातम्। एतदेव प्रकरणं 'नारायणोपनिषद्' वर्तते। सप्तमात् प्रपाठकादारभ्य नवमप्रपाठकपर्यन्तं तैत्तिरीयारण्यकमेव शिक्षावल्ली आनन्दवल्ली भृगुवल्लीति वल्लीत्रयात्मकं तैत्तिरीयोपनिषन्नाम्ना प्रसिद्धम्।

द्वितीयस्यां मैत्रायणीशाखायां संहिताग्रन्थ एवोपलभ्यते न तु ब्राह्मणग्रन्थ:। इयं संहिता गद्य-पद्यात्मिका, अत्रापि तैत्तिरीयसंहितावत्-मन्त्रा ब्राह्मणानि च सङ्कीर्णान्येवोपलभ्यन्ते। तत्र च काण्डानि चत्वारि (4) प्रपाठकाश्च चतु:पञ्चाशत् (54) सन्ति। तत्र प्रथमे काण्डे एकादश (11) द्वितीये त्रयोदश (13) तृतीये च षोडश (16) खिलकाण्डनाम्ना विश्रुते चतुर्थे च चतुर्दश (14) प्रपाठका: सन्ति। प्रथमे काण्डे क्रमश: दर्शपूर्णमासाध्वराधानपुनराधानचातुर्मास्यवाजपेयानां निरूपणं द्वितीये काण्डे त्रयोदशसु प्रपाठकेषु काम्येष्टिराजसूयाग्निचितीनां विस्तृतं निरूपणम्, तृतीये काण्डे अग्निचिति अध्वरविधिसौत्रायणो प्रतिपादनानन्तरमश्वमेधस्य विस्तृतं द्वादशादाषोडशप्रपाठकेषु चतुर्थे च काण्डे पूर्वनिरूपित-राजसूयादिविषयकान्यसामग्रीसंकलनं विद्यते। मैत्रायणीयमारण्यकमुपनिषद्वा संहिताया अन्ते एव मुद्रितम्। तत्र सप्त प्रपाठका: सन्ति। येषु क्रमश: 4, 7, 5, 6, 2, 38, 11 खण्डा: सन्ति।

तृतीयस्यां कठशाखायामपि कठसंहितैवोपलभ्यते न पुथक् ब्राह्मणमारण्यकञ्च। यद्यपि तैत्तिरीयब्राह्मणस्य तृतीयाष्टकस्यान्ते दशमैकादशद्वादशप्रपाठात्मको भाग: काठकपदाभिधेय उपलभ्यते, किन्तु स न कठशाखावलम्बी ब्राह्मणभाग:, अपितु तैत्तिरीयब्राह्मणान्तर्गतस्तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गतो वा। अत एव तैत्तिरीयशाखाध्येतार: सर्वेऽपि नियमेन प्रपाठकत्रयात्मकमिमपि भागमधीयते। वस्तुतोऽयं प्रपाठकत्रयात्मको भागो न तैत्तिरीयब्राह्मणान्तर्गत: अपि तु तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गत एव मन्तव्य:। अत एवाध्येतारोऽध्यापयन्ति च।

अत्रापि संहिताभागे मन्त्रा ब्राह्मणानि च संकीर्णान्येवोपलभ्यन्ते। एषा कठसंहिता च पञ्चसु खण्डेषु विभक्ता। तत्राद्याश्चत्वार: खण्डा: क्रमश: इठिमिका, मध्यमिका, ओरिमिका याज्यानुवाक्याभिधानानि काण्डान्युच्यन्ते। अन्तिमं पञ्चमं काण्डं तु अश्वमेधीयानुवचननाम्ना प्रसिद्धम्। आद्यानि चत्वारि काण्डानि स्थानकेषु विभक्तानि। तत्र इठिमिकाकाण्डे 18, मध्यमिकाकाण्डे 12, ओरिमिकाकाण्डे च 10 स्थानकानि सङ्कलनया च चत्वारिंशत् स्थानकानि आद्येषु चतुर्षु काण्डेषु सन्ति। याज्यानुवाक्याकाण्डस्य च ओरिमिकाकाण्डेऽन्तर्भूतत्वात्र तत्र पृथक् स्थानकानि। अन्त्यमश्वमेधीयानुवचनकाण्डं तु अनुवचनेषु विभक्तम्। तत्र च त्रयोदश अनुवचनानि सन्ति।

अस्या: शाखाया: काठकाभिधस्य ब्राह्मणस्य कतिपयेंऽशा इदानीमुपलब्धा:। तेषां संग्रह: 'काठकब्राह्मणसंकलनम्' इति नाम्ना डा. सूर्यकान्तमहोदयेन प्रकाशित: अस्या: शाखाया उपनिषत् कठोपनिषन्नाम्ना प्रसिद्धोपलभ्यते च। अस्यां द्वावध्यायौ। प्रत्यध्यायं च तिस्र: वल्लय: सन्ति। षट्सु वल्लीसु क्रमश:- 24, 17, 15, 15, 18 मन्त्रा: सन्ति, संभूय च 89 मन्त्रा:।

कृष्णयजुर्वेदस्य 'कपिष्ठलकठनाम्नी एकाऽपरापि शाखा वर्तते। यस्या: संहिता-ग्रन्थो लवपुरे 1932 खिष्टाब्दे मुद्रित: अस्या मूलसंहिता काठक-संहितासमानैव पर स्वराङ्कनपद्धतिर्ऋग्वेदतुल्या। ऋग्वेदवदेव एषा अष्टकेषु अध्यायेषु च विभक्ता। अत्र अष्टौ अष्टकानि सन्ति। प्रत्यष्टकं चाष्टौ अध्याया वर्तन्ते। एषाऽप्यपूर्णा विद्यते। प्रथमोऽष्टक: पूर्ण उपलभ्यते। द्वितीयतृतीयाष्टके त्रुटिते उपलभ्येते। चतुर्थस्याष्टकस्य पञ्चविंशात् एकत्रिंशपर्यन्तमध्याया उपलभ्यन्ते। केवल द्वात्रिंशोऽध्यायो नोपलभ्यते। पञ्चममष्टकमपि त्रयस्त्रिंशाध्यायवर्जमुपलभ्यते। षष्ठमष्टकं अपि 43 अध्यायवर्जमुपलभ्यते। अतोऽग्रे सप्तमाष्टमाष्टकद्वयं सर्वथा नोपलभ्यते।'

शुक्लयजुर्वेदः

शुक्लयजुर्वेदसंहिता तु वाजसनेयी संहिता प्रोच्यते वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यातत्वात् वाजिरूपधरेण सूर्येण देवरातसुताय याज्ञवल्क्याय शुक्लयजुषामुपदिष्टत्वाच्च। तदाह सायणः- 'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्त' इति।'[1] आदित्येनाध्यापितत्वादादित्यान्युच्यन्ते। 'वाज इत्यन्नस्य नामधेयम्। ''अन्नं वै वाजः'' इति श्रुतेः। वाजस्य सनिः दानं यस्य महर्षेरस्ति सोऽयं वाजसनिः। तस्य पुत्रो वाजसनेयः, तस्य याज्ञवल्क्य इति नामधेयम्।' तेन याज्ञवल्क्येनैतानि शुक्लयजूंषि महर्षिभ्यः पञ्चदशभ्य आख्यायन्ते इति। वाजिरूपधरेण सूर्येण शुक्लयजुषामुपदिष्टत्वादेव तदध्यायिनः काण्वमाध्यन्दिनादयो वाजिन उच्यन्ते। वाजिनां च पञ्चदश शाखाः। तच्छाखाध्येतारश्चरणव्यूहे- 'जाबालाः, बौधायनाः, काण्वाः, माध्यन्दिनाः शाफेया (शापेयाः), तापनीयाः (तापायनीयाः) कापालाः, पौण्ड्रवत्साः, आर्वाटिदकाः, परमावटिकाः, पाराशाराः (पाराशर्या) वैणेयाः (वैनेयाः) वैधेयाः, औधेयाः गालवाः इति संज्ञाभिरभिहिताः। क्वचित् जाबालानां बौधायनानां च स्थाने वैजवाः कात्यायनीयाः इति पठ्यन्ते।' (च. व्यू. भा. पृ. 39) तदेतदभिसन्धायोक्तम्-

एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान् रविः ।
अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः ॥

यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रैर्द्विजोत्तम ।
वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्याश्वः सोऽभवद् यतः ॥

शाखाभेदास्तु तेषां वै दश पञ्च चवाजिनाम् ।
काण्वादयस्तु महाभागा याज्ञवल्क्यप्रवर्तिताः॥

शुक्लयजुर्वेदे- ऋग्यजुर्विभागेन मन्त्राणां परिमाणं दर्शितं चरणव्यूहे। तत् यथा-

द्वे सहस्रे शते न्यूने मन्त्रे वाजसनेयके ।
ऋग्गणः परिसंख्यातस्ततोन्यानि यजूंषि च॥

'अष्टौ शतानि सहस्राणि चाष्टविंशतिरन्यान्यधिकश्च पादमेतत् प्रमाणं यजुषां हि केवलं सवालखिल्यं सशुक्रियं ब्राह्मणं च चतुर्गुणम्' इति (च. व्यू. पृ. 31) वाजसनेयके वेदे नवशताधिकसहस्रमन्त्रा इत्यर्थः। एतत् सकलं सशुक्रियमन्त्रं 'ऋचं वाचम्' इति षट्त्रिंशदध्यायोक्त-चतुर्विंशत्यृचात्मकसहितम्। .... ऋक्संख्या पञ्चविंशत्युत्तरंकोनविंशतिशतम् (1925) यजुःसंख्या अष्टाविंशत्युत्तराष्टशतान्यष्टौ सहस्राणि। 'ब्राह्मणं च चतुर्गुणम्' वेदचतुर्गुणं शतपथब्राह्मणमित्यर्थः। (च. व्यू. भा. पृ. 40)

'यजुर्वेदतरोरासन् शाखा एकोत्तरं शतम्।
तत्रापि च शिवाः शाखाः दश पञ्च च वाजिनाम्॥

इति वचनेन 'वाजसनेयानां पञ्चदश भेदा भवन्ति' इतिचरणव्यूहोक्त्या च वाजसनेयिनाम्ना प्रसिद्धासु शुक्लयजुर्वेदीयासु पञ्चदशाशाखासु इदानीं काण्वामाध्यन्दिनशाखे एवोपलभ्येते। उभयोरपि शाखयोः संहिता चत्वारिंशदध्यायात्मिका। अस्या अन्तिमश्चत्वारिंशोऽध्यायः ईशोपनिषन्नाम्ना प्रसिद्धः।

भगवान् सूर्यो वाजिरूपं धृत्वा मध्याह्ने शुक्लानि अयातयामानि यजुंषि देवरातसुताय याज्ञवल्क्यायोपदिष्टवानत एवैषा शाखा माध्यन्दिनी उच्यते। यदाह महिदासश्चरणव्यूहभाष्ये- 'मध्याह्ने शुक्लवर्णेन सूर्येण दत्ता' इति।

अस्याः शाखायाः संहिता चत्वारिंशदध्यायात्मिकेति पूर्वमुक्तम्। तत्र 303 अनुवाकाः, 1975 कण्डिकाश्च सन्ति। प्रतीकोक्त गणितमन्त्राश्च ऊनपञ्चाशत् (49) वर्तन्ते। 29625, शब्दाः, 55575 अक्षराणि च तत्र सन्ति। तत्राद्येषु पञ्चविंशत्यध्यायेषु मन्त्राणां संग्रहः। अन्त्याः पञ्चदशाध्यायाश्च खिलनाम्ना प्रसिद्धाः।

अस्याः शाखायाः ब्राह्मणं शतपथं चतुर्दशकाण्डात्मकम्। तत्र च प्रपाठकाः अष्टषष्टिः (68)। एतदीयानि काण्डनामानि तु '1- हविर्यज्ञकाण्डम् । 2- एकपात्काण्डम् । 3- अध्वरकाण्डम् । 4- ग्रहकाण्डम् । 5- सवकाण्डम् । 6- उखासम्भरणकाण्डम् । 7- हस्तिघटकाण्डम् । 8- चितिकाण्डम्। 9- संचितिकाण्डम् । 10- अग्निरहस्यकाण्डम् । 11- अष्टाध्यायीकाण्डम् । 12- मध्यमकाण्डम्। 13- अश्वमेधकाण्डम् । 14- बृहदारण्यककाण्डम्' इति।

अत्र च 24000 श्लोकाः 768000 अक्षराणि च सन्ति। अत्र 12000, ऋचां, 8000, यजुषां 4000 साम्नां च सङ्ग्रहः।

---

1. वस्तुतः याज्ञवल्क्यस्यैव शतपथब्राह्मणस्थमन्तिमं वाक्यम् (14.6.4.33), सायणस्तु काण्वसंहिता भाष्योपक्रमे क्वाचिदुद्धरतीदम् व्याख्याति च नाम, वाजइत्यन्नस्य नाम...... नामधेयम् । इति।

माध्यन्दिनशतपथस्य पूर्ण विवरणं निम्नतालिकया ज्ञातुं शक्यते-

काण्ड संख्या-काण्डसंज्ञा	अध्याया:	प्रपाठका:	ब्राह्मणानि	काण्डिका:
1. हविर्यज्ञकाण्डम्	9	7	37	837
2. एकपदिकाकाण्डम्	6	5	24	549
3. अध्वरकाण्डम्	9	7	38	849
4. ग्रहकाण्डम्	6	5	39	648
5. सवकाण्डम्	5	4	25	471
6. उषासंभरणकाण्डम्	8	5	27	530
7. हस्तिघटकाण्डम्	5	4	12	398
8. चितिकाण्डम्	7	4	27	437
9. संचितिकाण्डम्	5	4	15	402
10. अग्निरहस्यकाण्डम्	6	4	31	369
11. अष्टाध्यायीकाण्डम्	8	4	42	437
12. मध्यमकाण्डम्	9	4	29	459
13. अश्वमेधकाण्डम्	8	4	43	432
14. बृहदारण्यककाण्डम्	9	7	50	796
योग: 14	100	68	438	7624

अस्मिन् माध्यन्दिनीये शतपथे नवमकाण्डं यावत् संहिताक्रमेणैव ब्राह्मणक्रमो वर्तते पिण्डपितृयज्ञवर्जम्। पिण्डपितृयागे तु संहिताब्राह्मणयो: क्रमभेदो वर्तते। तथा हि पिण्डपितृयागसम्बन्धिनो मन्त्रा: संहितायां दर्शपूर्णमासयागमन्त्रानन्तरं पठिता:। ब्राह्मणे त्वाधानानन्तरं तद्विधि: (पिण्डपितृयागविधि:) प्रतिपादित:।

शतपथब्राह्मणस्य चतुर्थाध्यायतो नवमाध्याय पर्यन्तं षडध्यायात्मकं चतुर्दशं काण्डमेव बृहदारण्यकमित्याख्यायते। अस्मिन् आद्येषु त्रिष्वध्यायेषु प्रवर्ग्ययागनिरूपणाम्। शेषाश्च षडध्याया: बृहदारण्यकोपनिषन्नाम्नाख्यायन्ते।

कण्वशाखा तु कण्वमहर्षिणा प्रचारिता। अत्रापि च संहितायाम् अन्तिमश्चत्वारिशोऽध्याय: 'ईशोपनिषन्नाम्नैव व्यपदिश्यते। अस्या: शाखाया: संहितायां 228 अनुवाका:, 2086 मन्त्राश्च सन्ति। अस्या: संहिताया अध्यायानुवाकमन्त्रतालिका निम्नांकिता-

अध्याय संख्या	अनुवाकसंख्या	मन्त्रसंख्या	अध्याय संख्या	अनुवाकसंख्या	मन्त्रसंख्या
1	10	50	21	7	106
2	7	60	22	8	72
3	9	76	23	6	60
4	10	49	24	21	47
5	10	55	25	10	67
6	8	50	26	8	44
7	22	340	27	15	45
8	22	32	28	12	14
9	7	46	29	6	50
10	6	43	30	4	46
11	10	47	31	7	51
12	7	85	32	6	84
13	7	116	33	2	46
14	7	65	34	4	22
15	9	35	35	4	55
16	7	85	36	1	24
17	8	65	37	3	20
18	7	86	38	7	27
19	9	43	39	9	12
20	5	46	40	1	18
	187	1474	40	141	910

अस्याः शाखाया ब्राह्मणमपि शतपथाभिधमेव। किन्त्वत्र सप्तदश काण्डानि वर्तन्ते। तत्र च डा. कालाण्डमतानुसारं 104 अध्यायाः 446 ब्राह्मणानि 5865 कण्डिकाश्च सन्ति। अस्याध्यायब्राह्मणकण्डिकासंख्याबोधार्थं निम्नतालिका द्रष्टव्याः-

काण्ड संख्या	काण्ड नाम	अध्याय संख्या	ब्राह्मण संख्या	कण्डिका संख्या
1	एकपात्काण्डम्	6	22	376
2	हविर्यज्ञकाण्डम्	8	32	532
3	उद्धारिकाण्डम्	2	22	124
4	अध्वरकाण्डम्	9	36	649
5	ग्रहकाण्डम्	8	38	904
6	वाजपेयकाण्डम्	2	7	700
7	राजसूयकाण्डम्	5	19	289
8	उपासम्भरणकाण्डम्	8	27	511
9	हस्तिघटकाण्डम्	5	16	257
10	चितिकाण्डम्	5	20	243
11	साग्निचितिकाण्डम्	7	20	437
12	अग्निरहस्यकाण्डम्	6	28	286
13	अष्टाध्यायीकाण्डम्	8	31	241
14	मध्यमकाण्डम्	9	28	392
15	अश्वमेधकाण्डम्	8	44	308
16	प्रवार्यकाण्डम्	2	8	192
17	वृहदारण्यककाण्डम्	6	47	295
योगः 17		104	445	6806

काण्वशाखीयस्य शतपथब्राह्मणस्य क्रमो न संहिताक्रममनुसरति। तथा हि- अत्र दर्शपूर्णमासेष्ट्या निरूपणं द्वितीये काण्डे वर्तते। तदीया मन्त्राश्च संहितायां प्रथममेव पठिताः। यतो हि काण्वशाखीयं शतपथं न दर्शपूर्णमासेष्ट्याः प्रारभ्यते अपि तु आधानतः। अपि च ये तावद्विषया माध्यन्दिनीये शतपथे द्वितीये काण्डे समाम्नाताः, ते सर्वेऽपि अत्र प्रथमकाण्ड एव समाम्नाताः। एवमुभयशाखीययोः शतपथयोर्भूयान् विषयविपर्यासो दृश्यते, परमत्र विस्तरभयात्र प्रदर्श्यते। अस्य ब्राह्मणस्य षोडश काण्डमध्यायद्वयात्मकम्, तत्र च प्रवर्ग्ययागस्य निरूपणम्। षडध्यायात्मकं सप्तदशं च काण्डं बृहदारण्यकनाम्ना वृहदारण्यकोपनिषन्नाम्ना वा प्रसिद्धम्। अस्य च सप्तदशस्य काण्डस्य षट्सु अध्यायेषु क्रमशः 6, 6, 9, 15, 5 ब्राह्मणानि इति सम्भूय 47 ब्राह्मणानि सन्ति। प्रतिब्राह्मणं च खण्डेषु कण्डिकासु वा विभक्तम्।

सामवेदः

यद्यपि सामशब्दः ''गीतिषु समाख्या'' (जै. सू. 2 / 1 / 36) इति जैमिन्युक्त्या 'का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच। (छा. उ. 1 / 8 / 4) इति छान्दोग्यश्रुत्या।' तस्य हैतस्य साम्नो यः स्वं वेद, भवति हास्य स्वं 'तस्य स्वर एव स्वम्' (बृ.उ. 1 / 3 / 25) इति बृहदारण्यकश्रुत्या 'तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद, भवति हास्य सुवर्णं, तस्य वै स्वर एव सुवर्णम्, (साम वि. ब्रा. 1 प्रया. 1 ख) इत्युक्त्या ऋच्यध्यूढं साम गीयते' (छा. उ. 1/6/1) इत्युक्त्या च नानालापस्तोमयुक्तायां स्वरात्मिकायां गीतावेव प्रसिद्धस्तथाप्ययं सामवेदरूपो ग्रन्थो न गीत्यात्मकः, अपितु तदुपयोगिनीनामृचां संग्रहो मन्त्रमयः। 'या ऋक् तत्साम' (छा. उ. 1 / 3 / 4) इति छान्दोग्य श्रुतिरेतमेवार्थमुपोद्वलयति। न हि सामवेदे मन्त्रसमूहरूपे विद्यते एकमपि गानम्। अपि तु सामगानस्य योनिमन्त्रा एवात्र वर्तन्ते। एतान् मन्त्रानाश्रित्यैव सहस्रशः प्रदर्शितानि गानानि महर्षिभिः तत्र तत्र। तानि च गानानि सर्वाणि ग्रामगेयारण्योहोह्यभेदेन चतुर्विधानीत्यग्रे वक्ष्यते। 'ऋच्यध्यूढं साम गीयते' इति छान्दोग्यवचनमपि सामगानानां योनिभूतर्गाश्रितत्वमेव प्रतिपादयति। अतः सामवेदः सामगानोपयोगियोनिभूतर्क्-तदुत्तरर्क्-संग्रहात्मक एवेति निश्चप्रचम्।

वस्तुतस्तु सामवेदसंहितायां भागद्वयमस्ति-आर्चिकः गानं चेति। आर्चिकोऽपि द्विविधः छन्द आर्चिकः (पूर्वार्चिकः) उत्तरार्चिकश्चेति) द्वयोरपि केवलमृचामेव पाठः। पूर्वार्चिको योनिग्रन्थः, तत्राग्रे गीयमानानां साम्नामाधारभूतानामृचामेव पाठात्। उत्तरग्रन्थरूप उत्तरार्चिके तु क्रतुषु गीयमानानां साम्नामाधारभूता ऋच एव क्रमेण सूक्तात्मना पठिताः। सूक्तं हि नामर्चां समुदायः उत्तरग्रन्थे च योनिभूता या

ऋचस्तदुत्तरं तदाधारेण तया सह गीयमानयोर्द्वयोः ऋचोरपि पाठात् ऋक्समुदायत्वेन सूक्तता संजायते। 'तृचं साम' इति हि प्रसिद्धिः। अस्यायमेवाभिप्रायः यत् एकस्य साम्न एकाऽऽधारभूता ऋक्। तस्यामेव सामोत्पद्यते। अर्थात् तयाऽऽधारभूतया ऋचा सह उत्तरे द्वे ऋचे मिलित्वा एकस्य साम्न आवृत्त्या गानं भवति। तत्र छन्दआर्चिकमध्ये एकैकस्य साम्न उत्पत्त्याधारभूता ऋच एकैकशः एवाम्नायन्ते न तु सूक्तरूपेण। उत्तरार्चिके तु उत्पत्त्याधारभूतया ऋचा सह उत्तरे द्वे ऋचे संमेल्य ऋक्समुदायसूक्तरूपेण ऋच आम्नायन्ते। तत्र यः क्रमः छन्दआर्चिकपठितायाः योनिभूताया ऋचो भवति एव स एव योनिभूतर्क् संयुक्तानामुत्तरार्चिकपठितानामृचां गाने भवति। 'यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति' इति वचनात्।

सहस्रवर्त्मा सामवेदः' इति पस्पशाह्निके पतञ्जल्युक्त्या 'सामवेदस्य किल सहस्रभेदा आसन्' इति चरणव्यूहोक्त्या च सामवेदस्य सहस्रं शाखा आसन् इति स्फुटं प्रतीयते। किन्तु तासां शाखानामध्येतारोऽनध्यायेष्वधीयाना आसन्। अतस्ते शतक्रतुना वज्रेणाभिहताः प्रणष्टा इति केचिदेव षोडश शाखापाठकाः अवशिष्टाः। तेषां च गणनं चरणव्यूहे 'आसुरायणीया इत्यत आरभ्य जैमिनीयाश्चेत्यन्तेन सन्दर्भेण कृतम्। तत्र अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश। अष्टौ शतानि' इति चरणव्यूहोक्त्या 8814 सामसंख्या कौथुमादिशाखायां वर्तते। आरण्यकसूर्यसूक्तसुपर्णप्रेक्षबालखिल्यानां सम्भूय संख्या नवतिदशत्यात्मिका (900) वर्तते। तदुक्तं चरणव्यूहे- 'नवतिदशतिर्बालखिल्यकम्। सरहस्यं ससुपर्णप्रेक्षं वै बालखिल्यके। सारण्यकानि सौर्याणि ह्येतत्सामगणं स्मृतम्' इति। किन्तु सम्प्रति उपर्युक्तानां षोडशशाखानां मध्ये तिस्रः शाखा एव समुपलभ्यन्ते। ताश्च कौथुमी, जैमिनीया, राणायनीया चेति। तासु कौथुमी गुर्जरप्रदेशे जैमिनीया कर्णाटके राणायनीया च महाराष्ट्रदेशे प्रसिद्धाः।

कौथुमी सामसंहिता पूर्वार्चिकोत्तरार्चिकभेदेन भागद्वये विभक्ता। तत्र पूर्वार्चिके षट्प्रपाठकाः। प्रतिप्रपाठकं च द्वावर्धप्रपाठकौ। प्रतिप्रपाठकं च दशदशतयो भवन्ति सामान्यतः। किन्तु षष्ठे प्रपाठके नवदशतयः। यद्यपि सामान्यतो दशर्चानामेका दशतिर्भवति, तथापि तत्र न्यूनाधिकभावोऽपि समुपलभ्यते। एवं च पूर्वार्चिके षट् प्रपाठकाः, द्वादशार्धप्रपाठकाः, ऊनषष्टिर्दशतयः, 585 मन्त्राश्च सन्ति। तत्र प्रथमे प्रपाठके 96, द्वितीये- 97, तृतीये- 99, चतुर्थे-98, पञ्चमे-96, षष्ठे च 99 इति, समुच्चिता संख्या च 585 जायते।

प्रपाठकादीनां विवरणम्

प्रपाठकः	अर्धप्रपा.	दशति	विवरणम्
1	2	10	प्रथमार्धस्य तृतीयदशत्याम् 14 ऋचः द्वितीयार्धस्य प्रथमायां तृतीयस्यां च दशत्यां 8-8 ऋचः पञ्चमदाशत्यां च 6, शिष्टासु षट्सुदशतिषु प्रतिदशति दशेति कृत्वा 10 × 6 = 60 ऋचः संभूय च 96 ऋचः।
2	2	10	प्रथमार्धस्य द्वितीयदशत्याम् 8, द्वितीयार्धस्य पञ्चमदशत्यां 9, शिष्टास्वष्टसु दशतिषु प्रतिदशति दशेति कृत्वा 10 × 8 = 60, संभूय च 97 ऋचः।
3	2	10	प्रथमार्धस्य तृतीयदशत्यां 9, शिष्टासु नवसु दशतिषु प्रतिदशति दशेति कृत्वा 10 × 9= 90, संभूय च 99 ऋचः।
4	2	10	प्रथमार्धस्य चतुर्दशत्यां 9, द्वितीयार्धस्य द्वितीयदशत्यां 8, तस्यैव चतुर्थदशत्यां च 11, शिष्टासु, सप्तदशतिषु प्रतिदशति दशेति कृत्वा 10 × 7= 70 संभूय च 98 ऋचः।
5	2	10	प्रथमार्धस्य प्रथमदशत्यां 8, प्रथमार्धस्य चतुर्थ दशत्यां च 8, शिष्टास्वष्टसु दशतिषु प्रतिदशति दशेति कृत्वा 10 × 8= 80, संभूय च 96 ऋचः।
6	2	9	प्रथमार्धस्य द्वितीयदशत्यां 14, तस्यैव तृतीयस्यां पञ्चम्यां च दशत्यां क्रमशः- 12, 12, द्वितीयार्धस्य प्रथमदशत्यां 9, तस्यैव द्वितीयदशत्यां 12, तृतीयदशत्यां 12, चतुर्थदशत्यां च 8, शिष्टयोर्द्वयोर्दशत्योः 10-10 इति सम्भूय 99 ऋचः।

6 प्रपाठकाः 12 अर्धप्रपाठकाः 59 दशतयः, 585 ऋचः

सामसंहितायां पूर्वार्चिके ऋग्वेदस्य विभिन्नेषु मण्डलेषु विभिन्नर्षिदृष्टानामेकदेवताकत्वेन सङ्ग्रहः कृतः। तद्देवतानाम्नैव तेषां पर्वणां वा संज्ञानिर्देशो विहितः। एवं च पूर्वार्चिकस्य प्रथमात् प्रपाठकादारभ्य द्वितीयप्रपाठके प्रथमार्धप्रपाठकस्य द्वितीयदशतिपर्यन्ताना-मृचामग्निदेवताकत्वेन तावान् ऋक्समुदायः आग्नेयं पर्व कथ्यते। द्वितीयप्रपाठके प्रथमार्धप्रपाठकस्य तृतीयदशतिमारभ्य पञ्चमप्रपाठकपर्यन्तो भागस्तत्रत्यानामृचामिन्द्रदेवताकत्वेन ऐन्द्रंपर्व इति व्यपदिश्यते। षष्ठः प्रपाठकः पवमानदेवतर्क्समुदायरूपत्वात् पावमानं पर्व समाम्नायते। प्रपाठकस्थाने अध्यायविभागः सायणेन कृतः। एते षट् प्रपाठकाः पञ्चसु अध्यायेषु सायणेन विभक्ताः। अतोऽनन्तरमारण्यकं पर्व। अत्र च पञ्च दशतयः पञ्च पञ्चाशत् मन्त्राश्च। तदनन्तरं च महानाम्नीनामृचां संग्रहः। ताश्च केवलं संख्यायां दश सन्ति।

उत्तरार्चिके तु नव प्रपाठकाः। तत्राद्येषु पञ्चसु प्रपाठकेषु द्वौ द्वावर्धप्रापठकौ। शिष्टेषु तु चतुर्षु प्रपाठकेषु प्रत्येकं त्रयस्त्रयोऽर्धप्रपाठकाः। केचित् उत्तरार्चिकमेकादशप्रपाठकात्मकं स्वीकुर्वते। प्रतिप्रपाठकं चार्धप्रपाठकद्वयमूरीकुर्वन्ति। उभयत्रापि मते द्वाविंशतिरर्धप्रपाठका जायन्ते इति न किमपि वैषम्यं परिणामे। अर्धप्रपाठकानां च खण्डेषु विभागः। किन्तु तेषु खण्डसंख्या न नियता। एवमत्रोत्तरार्चिके सम्भूय मतभेदेन नव एकादश वा प्रपाठकाः द्वाविंशतिरर्धप्रपाठकाः, 119 खण्डाः, 400 सूक्तानि, 1225 मन्त्राश्च।

एषां तालिकाऽधस्तात्प्रदीयते:-

प्रपाठकः	अर्ध प्र.	खण्डसंख्या	सूक्तसंख्या	ऋक्संख्या
1	प्रथम:	6	23	62
	द्वितीय:	6	22	62
2	प्रथम:	6	19	55
	द्वितीय:	6	19	56
3	प्रथम:	7	22	69
	द्वितीय:	7	23	76
4	प्रथम:	6	24	83
	द्वितीय:	7	14	59
5	प्रथम:	9	20	80
	द्वितीय:	12	23	94
6	प्रथम:	3	11	32
	द्वितीय:	6	20	56
	तृतीय:	6	18	54
7	प्रथम:	4	16	46
	द्वितीय:	4	14	38
	तृतीय:	4	21	44
8	प्रथम:	4	14	40
	द्वितीय:	4	19	54
	तृतीय:	5	18	54
9	प्रथम:	4	18	51
	द्वितीय:	2	13	33
	तृतीय:	1	9	27
9 प्रपाठका:	22 अर्धप्र.	119 सू.	400 ऋच:	1225

अत्र च 400 सूक्तेषु एकर्चानि त्रयोदश (13) द्व्यृचानि षट्षष्टि: (66) तृचानि सप्ताशीत्युत्तरं शतद्वयम् (287) चतुर्ऋचानि नव (9) पञ्चर्चानि चत्वारि (4) षड्ऋचानि दश (10) सप्तर्चे सूक्ते द्वे (2) अष्टर्चमेकम् (1) नवर्चानि त्रीणि (3) दशर्चानि त्रीणि (3) द्वादशर्चे द्वे (2) एवमुत्तरार्चिके नवप्रपाठात्मके एकादशप्रकाराणां सूक्तानां समुदिता संख्या चतु:शती। सामवेदस्य द्वितीयोपलभ्यमाना शाखा राणायनीया। राणायनीयानां सामसंहितापि कौथुमसंहितासमानैव। **कौथुमानां राणायनीयानां च सामसंहितायां न कोऽपि मन्त्रभेद:।** उच्चारणे क्वचित् क्वचिद् भेद: समुपलभ्यते। तथाहि- कौथुमीया: सामगानसमये 'हा उ:' 'रा इ' इत्युच्चारयन्ति।

सामवेदे गानभागश्चतुर्विध:— प्रकृति:, आरण्यकम्, ऊहो रहस्यं चेति। अत्र प्रकृतिरेव ग्रामे गेयगानशब्देन, रहस्यं चोह्यशब्देन व्यपदिश्यते। तत्र प्रकृतिभागे एकैकस्यामृचि एकैकं साम समुत्पद्यते। अत्रत्या ऋच: प्रायेण पूर्वार्चिकाम्नाता एव। तास्वेव रथन्तरादीनि सामानि गीयन्ते। अत्र च गाने न त्रैस्वर्यमात्रं न वा चातु:स्वर्यमात्रमपेक्षितम् अपितु निषादर्षभगांधारादिस्वरसप्तकं नियतम्। अर्थात् निषादादिसप्त स्वरा: सामगानस्य निदानभूता:। लोकेऽपि गान्धर्वविद्यापरपर्याया: संगीतविद्याया इमे एव सप्त स्वरा: निदानभूता इति गन्धर्ववेदोऽपि सामवेदोपवेदत्वेन परिगण्यते। एवं निषादादिविजातीयस्वरसमाहारस्यैव सामशब्दवाच्यत्वं रथन्तरादिशब्दवाच्यत्वं च बोध्यम्। एतादृशानि प्रर:शतानि सामानि प्रकृतिग्रन्थे पूर्वार्चिके पठितानि।

आरण्यकग्रन्थेऽपि प्रकृतिवदेव सामानि पठितानि। वस्तुतोऽयमारण्यकभाग: प्रकृतिग्रन्थस्यैवांशभूत: न तत: पृथक्। परं त्वत्र पठितानां साम्नामरण्यमात्रगेयत्वप्रतिपादनात् अस्य ग्रन्थस्यारण्यकत्वव्यवहार: सम्प्रवृत्त:। अर्थात् प्रकृतेरेव पूर्वभागस्य ग्रामगेयत्वेन उत्तरभागस्य चारण्यगेयत्वेन ग्राम्यारण्यभेदेन द्विविधो व्यवहार: प्रवृत्त:।

ऊहग्रन्थे तु 'एकं साम तृचं क्रियते स्तोत्रीयम्' इति विधिमनुसृत्य तत्तत्क्रतुषु तृचे कर्तव्यानां स्तोत्राणां सम्पत्तये तृचात्मके ऋक्समुदाये साम्नां पाठ:। एतत्त्रित्वसम्पादनमपि 'यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति' इति वचनात् योनिभूतामृचमादायैव कर्तव्यम्। एतदर्थमेवोत्तरार्चिके योनिभूतानामृचां पाठ:। तत्र येन क्रमेण योनिग्रन्थे ऋच: पठितास्तेनैव क्रमेणोहग्रन्थे पठ्यन्ते क्रतुकाले च गीयन्ते। नात्र प्रकृतिग्रन्थवत् एकैकस्यामृचि एकैकं सामोत्पद्यते- अपि तु तृचे उत्पद्यते। तृचगानस्यैव तत्र कर्तव्यताविधानात्। तादृशं तृचगानं तु तत्काले ऊहित्वा कर्तव्यम्। नैष ऊहो मन्दबुद्धिभिरस्माभिर्याथातथ्येन कर्तुं शक्यमिति ऋषय क्रान्तदर्शिनस्तथोहं कृत्वा तं ग्रन्थरूपेण विन्यस्यारक्षन्। सोऽयमूहग्रन्थ:।

अत्र च प्रकृतिग्रन्थदृष्टक्रमापेक्षयाऽन्यादृश एव क्रमो द्वादशान्तर्गतदशरात्रमारभ्यानुष्ठेयेषु क्रतुषु कर्तव्यानां स्तोत्राणां क्रममनुसृत्याश्रीयते। एवञ्चोहग्रन्थो ब्राह्मणक्रममेवोपादत्ते।

रहस्यग्रन्थोऽप्यरण्यगेयसामभिरेव दशरात्रादिक्रतूपयोगिभिस्तृचगीतैः संग्रथितः। अत्रा प्यूहग्रन्थक्रमानुसारमेव क्रम आश्रितः। एवं च प्रकृतिग्रन्थमूलक ऊहग्रन्थः, आरण्यकग्रन्थमूलकश्च रहस्यग्रन्थः।

तत्र प्रकृतिग्रन्थे (1) आग्नेयम् (2) ऐन्द्रम् (3) पावमानम् इति पर्वत्रयं पूर्वं प्रतिपादितम्। ऐन्द्रे पर्वणि बहुसामप्रभृतयः पञ्चावान्तरभेदाः। आरण्यके च (1) अर्कपर्व (2) द्वन्द्वपर्व (3) वाचोव्रतपर्व (4) शुक्रियपर्व (5) महानाम्नी पर्व इति पञ्चपर्वाणि। ऊहे (1) दशरात्रम् (2) संवत्सरम् (3) एकाहः (4) अहीनः (5) सत्रम् (6)प्रायश्चितत्तम् (7) क्षुद्रम् इति सप्त विभागाः। इमे सप्त विभागा एव रहस्येऽपि अनेनैव क्रमेण बोध्याः इति सर्वं प्रतिपादितं ताण्ड्यमहाब्राह्मणोपोद्घाते श्रीचिन्नस्वामिभिः।

उपर्युक्तेन प्रघट्टकेनेदं प्रतीयते 'यत् सामगानं ग्रामगेयारण्यगेयोहोह्यभेदेन चतुर्धा। तत्र ग्रामे गेयं गानं पूर्वार्चिकस्य मन्त्रेषु गीयते अर्थात् प्रकृतिग्रन्थस्य पूर्वभागस्य मन्त्रेषु गीयते। अरण्ये गेयं गानं चारण्यककाण्डस्य अर्थात् प्रकृतिग्रन्थस्योत्तरभागस्य मन्त्रेषु गीयते। ऊहगानमूह्यगानं च उत्तरार्चिकस्य (उत्तराग्रन्थस्य) मन्त्रेषु (तृचे) मुख्यतया गीयेते इति प्रत्येतव्यम्। तत्रापि ग्रामगानमारण्यगानं चोत्तरयोरूहोह्यगानयोः क्रमशः प्रकृती योनी वा मन्येते। अर्थात् ग्रामगेयगानस्वरादीनाश्रित्य ऊह्यगानस्य अरण्ये गेयगानस्वरादीनाश्रित्य च ऊहगानस्य रचना भवति।

ग्रामगेयगानादिभेदभिन्नचतुर्विधगानानां च संख्या प्रतिशाखं भिन्ना। तत्र सर्वाधिकानि गानानि जैमिनीयशाखायां समुपलभ्यन्ते। अधस्तात् कौथुमजैमिनीयशाखानुसारं गानसंख्योल्लिख्यते:-

	कौथुमीयशाखा	जैमिनीयशाखा
ग्रामगेयगानसंख्या	1197	1232
अरण्ये गेयगानसंख्या	294	291
ऊहगानसंख्या	1026	1802
ऊह्यगानसंख्या	205	356
योगः	2722	3681

गानसमये मन्त्राणां स्वरूपपरिवर्तनं जायते। तत्राष्टौ कारणानि विकारः, विश्लेषः, विकर्षणम्, विरामः, अभ्यासः, लोपः, आगमः, स्तोभश्चेति। विद्यमानस्य वर्णस्य स्थाने वर्णान्तरोच्चारणं विकारः। सन्धिविच्छेदो विश्लेषः। ह्रस्वस्थाने दीर्घस्य, दीर्घस्थाने च प्लुतस्योच्चारणं विकर्षणम्। विश्रामो विरामः। द्विस्त्रिरुच्चारणमभ्यासः। वर्णस्यानुच्चारणं लोपः। अधिकवर्णस्योच्चारणमागमः। व्यर्थस्यानन्वितस्य शब्दस्योच्चारणं स्तोभः। "ऋचो यदधिकं किञ्चित् द्विरुक्तं वापि दृश्यते। स्तोभत्वं तस्य मन्यन्ते क्रमशः शास्त्रचिन्तकाः"। स्तोभानुसंहारपरि, 1/16" इत्युक्तेः।

स्तोभश्च वर्ण-पद-वाक्यभेदेन त्रिविधः। तत्र वर्णस्तोभः इकारादिः, पदस्तोभो हाई, हाऊ आदिः। वाक्यस्तोभश्च प्रशस्तिस्तुतिसंख्यानादि—भेदेन नवविधः। उक्तैः कारणैः परिवर्तितो मन्त्रसमुदायो मानम्। इति सर्वं समासतः प्रतिपादितं कात्यायनश्रौतसूत्रस्योपोद्घाते श्रीविद्याधरशर्मभिः।

एतदुभयशाखासम्बन्धीनि ब्राह्मणानि चाष्टावुपलभ्यन्ते ताण्ड्यम्, षड्विंशम्, मन्त्रः, सामविधानम्, दैवतम् आर्षेयम्, संहितोपनिषद् वंशश्चेति। तत्रान्यब्राह्मणापेक्षया ताण्ड्यब्राह्मणस्य महत्त्वात् ताण्ड्यब्राह्मणमेव ताण्ड्यमहाब्राह्मणमिति निर्दिशन्ति। प्रौढब्राह्मणम्, पञ्चविंशब्राह्मणमित्यपरनामनी तस्य। अपरे तु ताण्ड्यब्राह्मणम्, षड्विंशब्राह्मणम्, मन्त्रब्राह्मणं चेति त्रयं सम्भूय ताण्ड्यमहाब्राह्मणमुच्यते। तत्र ताण्ड्यब्राह्मणे पञ्चविंशतिः प्रपाठकाः, सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतत्रयं (347) खण्डाश्च वर्तन्ते। षड्विंशे पञ्चप्रपाठकाः। पञ्चसु च प्रपाठकेषु क्रमशः 7, 10, 12, 7, 10 खण्डाः, सम्भूय च 46 खण्डाः सन्ति। मन्त्रब्राह्मणे द्वौ प्रपाठकौ प्रतिप्रपाठकं च खण्डद्वयम्। छान्दोग्योपनिषच्च अष्टप्रपाठात्मिकेति सम्भूय ताण्ड्यादिषु त्रिषु ब्राह्मणेषु छान्दोग्योपनिषदि च क्रमशः 25, 5, 2, 8 इति चत्वारिंशत् प्रपाठका भवन्ति। सायणस्तु प्रपाठकस्थाने अध्यायशब्दं प्रयुङ्क्ते। तन्मते षडविंशं ब्राह्मणमध्यायेषु विभक्तम्। तदनुसारं षडविंशब्राह्मणं षडध्यायात्मकम्, यतो हि स तृतीयं प्रपाठकमध्यायद्वये विभजति। अस्य पञ्चमः प्रपाठकोऽद्भुतब्राह्मणसंज्ञयाऽपि व्यपदिश्यते। एतच्च षड्विंशब्राह्मणं ताण्ड्यस्यैवांशभूतम्। अत एव तस्य "ताण्ड्यशेषः" इत्यपरं नाम। भाष्यकारोऽपि "अथास्मिन् ताण्ड्यशेषब्राह्मणे, इत्येव भाष्यमवतारयति। ताण्ड्योक्तानामेव केषाञ्चित् कर्मणां भेदादिकमनुक्तानां चाल्पीयसां कर्मणां स्वरूपं चेत्येषामेवात्र प्रतिपादनात्। अत्र ताण्ड्येऽविहिताः अपूर्वतया विहिताः यागाः पञ्चैव येषां नामान्यधस्तादुल्लिख्यन्ते—श्येनयागः, इषुः, सन्दंशः, वज्रः, वैश्वदेवाख्यं त्रयोदशरात्रं सत्रं च।"

मन्त्रब्राह्मणे प्रपाठकद्वयम् इति पूर्वमुक्तम्। परं केचित् दशाध्यायात्मकं मन्त्रब्राह्मणं संगिरन्ते। तत्राद्ययोर्द्वयोः। अध्याययोः (प्रपाठकयोः) गृह्यकर्मणि विनियुक्तानां मन्त्राणां संग्रहः। अष्टौ अध्यायाश्च (प्रपाठकाश्च) छान्दोग्योपनिषद्रूपाः।

अपरे तु अध्यायद्वयात्मकं मन्त्रब्राह्मणम्। अष्टाध्यायात्मिका छान्दोग्योपनिषच्च स्वतन्त्रेति आचक्षते।

सामविधानब्राह्मणे त्रय: प्रपाठका:। प्रथमे द्वितीये च प्रपाठके च अष्टौ अष्टौ तृतीये च नव खण्डा इति कृत्वा पञ्चविंशति: खण्डा अत्र विद्यन्ते। कृच्छ्रचान्द्रायणादीनां प्रायश्चित्तकर्मणां तदङ्गतयां क्वचिद् विहितानां होमादीनां च तत्र निरूपणम्।

आर्षेयब्राह्मणमपि प्रपाठकत्रयपरिमितम्। प्रथमे प्रपाठके अष्टाविंशति:, द्वितीये पञ्चविंशति:, तृतीये उनत्रिंशदिति संभूय द्व्यशीति: खण्डास्तत्र सन्ति। संहिताग्रन्थोक्तानां सामगानानामृष्यादिकं तत्र वैशिष्ट्येन प्रतिपादितम्। दैवतब्राह्मणं खण्डत्रयात्मकम्। प्रथमे खण्डे षड्विंशति:, द्वितीये एकादश तृतीये च पञ्चविंशति: कण्डिका इति कृत्वा तत्र द्विषष्टि: कण्डिका: सन्ति। अत्र निधनानां देवता:, छन्दांसि, तेषां वर्णसंख्या, तेषां देवता: तन्नामानिर्वचनं चेति प्रतिपाद्यन्ते।

संहितोपनिषद्ब्राह्मणे पञ्चखण्डात्मकं एक: प्रपाठको विद्यते। अत्र सामवेदस्य आरण्यगानग्रामगेयगानयोरुल्लेख:। कतिपयानां प्राचीनानां ब्राह्मणवाक्यानां श्लोकादीनां चात्र संग्रह:। ''विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम'' इत्यादयोऽध्ययनप्रशसादिपरा: श्लोका: अत्रैवोपलभ्यन्ते। सामवेदस्य प्रतिशाख्यसूत्रस्य सामतन्त्रस्य फुल्लसूत्रादेश्च मूलमत्रैवोपलभ्यते।

वंशब्राह्मणे त्रय: खण्डा:। अत्र सामसम्प्रदायप्रवर्तकानामाचार्याणां परम्पराया: अनुकीर्तनम्। सेयं परम्परा विद्यापरम्परा न जन्मपरम्परा। विद्यया जन्मना च वंशस्य द्वैविध्यात्।

अस्या: शाखाया: उपनिषद् अष्टप्रपाठात्मिका अष्टाध्यायात्मिका वा ताण्ड्यमहाब्राह्मणान्तर्गतस्य मन्त्रब्राह्मणस्यान्तर्गता इति निरूपितं पूर्वमेव।

तृतीया जैमिनीया शाखा पूर्णोपलभ्यते। अस्या: शाखाया: संहिता ब्राह्मणमुपनिषच्चेति त्रयमप्युपलभ्यते। अस्या विशेषत: प्रचार: कर्णाटके वर्तते। कालेण्डमतानुसारमस्या मन्त्रसंख्या 1687 वर्तते। तत्र पूर्वार्चिके आरण्यके च खण्डे समुच्चिता मन्त्रा: 646, उत्तरार्चिके च 1041 मन्त्रा: सन्ति।

अस्या: शाखाया ब्राह्मणं जैमिनीयं महाब्राह्मणम्। एतत् जैमिनीयब्राह्मणम्, जैमिनीयार्षेयब्राह्मणम्, जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मणञ्चेति त्रिधा विभक्तम्। तत्र जैमिनीयब्राह्मणे त्रयोऽध्याया:, जैमिनीयार्षेयब्राह्मणे एकोऽध्याय:, जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मणे च चत्वारोऽध्याया इति कृत्वा अष्टौ अध्याया वर्तन्ते तत्र। जैमिनीयब्राह्मणे अग्निहोत्र (महाब्राह्मण) द्वादशाहमहाव्रतैकाहाहीनसत्राणांनिरूपणम्। तत्रापि अग्निहोत्रब्राह्मणे 360 खण्डा:, एकाहे 153 खण्डा:, अहीने 99 खण्डा: सत्रे च 37 खण्डा इति समुच्चित्य 1189 खण्डा: सन्ति इति। एष विभाग: बड़ोदाप्रकाशितस्य सूचीपत्रस्य प्रथमे भागे 105 पृष्ठे प्रत्त:। केचित्तु जैमिनीयब्राह्मणं त्रिधा विभज्य प्रथमे भागे 360 खण्डा:, द्वितीये 437, तृतीये च 385 इति समुच्चित्य 1182 खण्डा जैमिनीयब्राह्मणे सन्तीतिमन्यन्ते। उभयोरपि विभागयोर्न खण्डसंख्यायां भूयान् भेदस्तथापि प्रथमो विभाग एव साधीयान् प्रतीयते तस्य वर्णनीययज्ञादिविषयानुसारित्वात्।

जैमिनीयार्षेयब्राह्मणे 84 खण्डा: सन्ति। इदं तलवकारशाखीया: ऋष्यनुक्रमणीरूपम्। जैमिनीया शाखैव तलवकारशाखानाम्नाऽपि व्यपदिश्यते। अत एव जैमिनीयमहाब्राह्मणस्य तलवकारब्राह्मणमित्यपरं नामधेयम्। अत एव च अस्या: शाखाया उपनिषत् (केनोपनिषत्) तलवकारब्राह्मणान्तर्गतत्वात् तलवकारोपनिषन्नाम्ना प्रसिद्धा वर्तते। आर्षेयब्राह्मणे आग्नेयादिसामपर्वणां ग्रामगेयगानारण्यगानर्षीनां निरूपणम्। एतज्जैमिनीयार्षेयब्राह्मणं कौथुमशाखीयार्षेयब्राह्मणाद्, विभिन्नम्, अनयो: पाठे पर्याप्तवैषम्यस्योपलम्भात्। कौथुमशाखीयार्षेयब्राह्मणे एकैकस्य मन्त्रस्य द्वे ऋषी ततोऽप्यधिका वा ऋषयो वर्तन्ते, परमत्र जैमिनीयार्षेयब्राह्मणे प्राय: एक एव ऋषि: पठित:।

जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणे चत्वारोऽध्याया: 154 खण्डाश्च सन्ति। इदं ब्राह्मणमारण्यकं श्रीभगवद्दत्तो मनुते। श्रीविश्वबन्धुमहोदयास्तु ब्राह्मणमेवैतदिति स्वीकुर्वन्ति। एतदारण्यकमस्तु ब्राह्मणं वा परमेतदध्यायचतुष्टयात्मकम्। अस्य चतुर्थोऽध्यायो द्वादशानुवाकात्मक:। तत्र नवानामनुवाकानामेको विभाग:, अनुवाकत्रयस्य चापर:। दशमोऽनुवाक: केनोपनिषन्नाम्ना प्रसिद्ध:। भगवन्त आद्यशंकराचार्यास्तु केनोपनिषद्भाष्यमारभमाणा: केनेषितमित्याद्योपनिषत् परब्रह्मविषया वक्तव्येति नवमाध्यायस्यारम्भ:। प्रागेतस्मात् कर्माण्यशेषत: परिसमापितानि। समस्तकर्माश्रयभूतस्य च प्राणस्योपासनान्युक्तानि कर्माङ्गसामविषयाणि च। अनन्तरं गायत्रसामविषयं वंशान्तमुक्तम् इति कथयन्ति। एतेनेदं प्रतिभाति यत् तैर्यत् जैमिनीयोपनिषत्ब्राह्मणस्य संस्करणमुपलब्धं तत्र द्वादशानुवाकात्मकश्चतुर्थोऽध्याय: खण्डद्वये विभक्त आसीत्। नवानामनुवाकानां चतुर्थाध्यायसंज्ञाऽऽसीत्। अन्त्यञ्चानुवाकत्रयं पञ्चमाध्यायनाम्ना व्यपदिष्टमासीत्। अतस्तद्रीत्या केनोपनिषद: प्रारम्भे ''अथ नवमाध्यायस्यारम्भ:'' इति कथनं साधु सङ्गच्छते। तिरुपतिप्रकाशिते जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणे नवानुवाकात्मक एव चतुर्थोऽध्याय: प्रकाशित:। अत्र एतेनापि इदं स्पष्टं ज्ञायते यत् द्वादशानुवाकात्मकश्चतुर्थोऽध्याय: चतुर्थाऽध्यायपञ्चमाध्याययोर्विभक्त आसीत्। जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मणस्य चतुर्ष्वध्यायेषु अष्टाविंशति: खण्डा वर्तन्ते। प्रथमात् आसप्तदशखण्डं नवानुवाका: तत: 18, 19, 20, 21 इति खण्डचतुष्टयात्मको दशमोऽनुवाक: 22, 23, 24 खण्डात्मक एकादशोऽनुवाक: 25, 26, 27, 28 खण्डात्मको द्वादशोऽनुवाकश्च।

अथर्ववेद:

ननु-

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादअजायत ॥

(ऋ. 10 / 90) इति, त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायो:, सामवेद: आदित्यात् (ऐ. ब्रा. 5 / 32)

इति 'वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः' (तै. ब्रा. 3 /- 12 / 9 / 11) इति, 'यमृषयस्त्रयीविदो विदुः' ऋचः सामानि यजूंषि (तै. ब्रा. 1 / 2 / 1 / 26) इति 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति' (शत. ब्रा. 1/5/2/2) इत्यादिश्रुतिभिः—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञासिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥

(मनु. 1 / 23)

इत्यादिस्मृतिभिश्च ऋग्यजुःसाम्नामेव वेदत्वं नाथर्वण इति प्रतिभाति। अथोच्येत 'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुण्वान् गायत्रं त्वो शायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः (ऋ. 10 / 71 / 11) इति श्रुतौ यज्ञनिष्पत्त्यर्थं प्रतिपादितेषु होत्रादि-ऋत्विजां हौत्रादिकर्मसु ऋग्वेदेन हौत्रमेव प्रतिपाद्यते, यजुषाऽऽध्वर्यवम्, साम्ना औद्मात्रमिति वेदत्रय्याः प्रतिनियतप्रयोगप्रतिपादनपरत्वात् अवशिष्टब्रह्मकर्तव्यताप्रतिपादनपरस्य चतुर्थस्याथर्ववेदस्यास्त्यावश्यकतेति। तन्न। 'यद् ऋचैव हौत्रं क्रियते, यजुषाऽऽध्वर्यवम्, साम्ना औद्गात्रमिति आरब्धव्या त्रयी विद्या भवति। अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्येति ब्रूयात्' (ऐ. ब्रा. 5 / 33) इत्यैतरेयः ब्राह्मणश्रुत्या क्रत्वपेक्षितस्य ब्रह्मकर्तव्यस्यापि त्रय्या विद्ययैव सिद्धिप्रतिपादनात्। अतो नास्ति चतुर्थोऽथर्ववेदः न च तस्य काऽपि आवश्यकता इति चेत्, न।

'ऋग्वेदं भगवोध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चेति' (छा. उ. 7 / 1 / 2) 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वणः' (मु. 1 / 1 / 5) 'ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः' (वृ. उ. 1 / 1 / 2) 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः' (बृ. उ. 4 / 4 / 10) 'ऋग्यजुसामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सशाखाश्चत्वारः पादाः' (नृ. ता. उ. 1 / 1 / 2) इत्यादिश्रुतिवचनैरथर्वणोऽपि वेदत्वस्य स्पष्टं सिद्धेः। अस्ति चाथर्ववेदस्य यज्ञनिष्पत्त्यर्थमावश्यकताऽपि। तथा हि यज्ञस्य द्वौ पक्षौ वाक् च मनश्च। तयोरन्यतरो वाक्पक्षस्त्रय्या विद्यया होत्रादिभिस्त्रिभिः ऋत्विग्भिः संस्क्रियते द्वितीयश्च मनःपक्षो ब्रह्मणाऽथर्वाङ्गिरोभिः संस्क्रियते। अत एवोक्तं गोपथे- 'प्रजापतिर्यज्ञमतनुत। स ऋचैव हौत्रमकरोत्, यजुषाऽऽध्वर्यवं, साम्नाऔद्गात्रम्, अथर्वाङ्गिरोभिर्ब्रह्मत्वम्' इति प्रक्रम्य 'स वा यत्र त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते। मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति' (पूर्वभाग 2/24) इति। ऐतरेयब्राह्मणोऽपि 'अयं वै यज्ञो योऽयं पवते। तस्य वाक् च मनश्च वर्तन्यौ। वाचा च हि मनसा च यज्ञोऽवर्तत। इयं वै वाक्। अदो मनः। तद् वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति। मनसैव ब्रह्मा (अपरं पक्षं) संस्करोति।' (ऐ. ब्रा. 5 / 33) इति श्रुत्या एकस्यैव पक्षस्य त्रयीसंस्कार्यत्वमुक्तम्, अपरस्य तु ब्रह्मसंस्कार्यत्वमेव प्रतिपादितम्। ब्रह्माचाथर्वाङ्गिरोविदेव भवति। अत एव गोपथे 'ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व यजुर्वेदमध्वर्युम्, सामविदमुद्गातारम्, अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्। तथा हास्य यज्ञश्चतुष्पात् प्रतितिष्ठति' (गोपथ पूर्वभाग 2 / 24) इति श्रुतौ ब्रह्मणोऽथर्वाङ्गिरोवित्त्वमुक्तम्। उपपद्यते चैतदेव। तथाहि- आग्नेयसौम्यभेदेन वेदो द्विविधः। तत्र ऋग्यजुःसामानि आग्नेयवेदः, अथर्वाङ्गिरसां वेदश्च सौम्यवेदः। यज्ञस्य च वाङ्मनसरूपपक्षद्वये वाचः संस्कार ऋगादिवेदत्रय्या। 'तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' (शत. ब्रा. 10 / 3 / 5 / 1) इति शतपथश्रुत्या। 'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्' (ऐ. उ. 2 / 4) इत्यैतरेयोपनिषच्छ्रुत्या च वाचः अग्निरूपत्वेन साजात्यात् अग्निरूपायाः वाचः संस्कारः आग्नेय्या वेदत्रय्या जायते। यतो हि एक एवाग्निर्घनतरलविरलभेदैः त्रिधा विभक्तः सन् अग्निवाय्वादित्यशब्दैर्व्यपदिश्यते। एवमग्नेस्त्रैविध्यात् त्रिविधेनाग्निना उत्पादितस्य आग्नेयवेदस्यापि त्रैविध्यं स्वतः सिद्धम्। अत एव मनुना-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥

(मनु. 1 / 23)

इत्युक्तम्। शतपथेऽपि 'सा वा एषा वाक् त्रेधा विहिता ऋचो यजूंषि सामानि, तेनाग्निस्त्रेधा विहितः ऋचो यजूंषि सामानि तेनाग्निस्त्रिधा विहितः' (शत. 10 / 3 / 5 / 2) एभिस्त्रिभिरपि वेदैरग्निरूपाया वाच एव संस्कारः संभवति नान्यस्य सौम्यस्य मनसः। मनसस्तु अथर्वाङ्गिरोभिरेव संस्कारः संभवति। तथा हि- 'चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्' (ऐ.उ. 2 / 4) 'चन्द्रमा वै मनः' इत्यादिश्रुतिभिर्मनसः सौम्यत्वम्। अथर्ववेदस्यापि 'अन्तरा हि भृग्वङ्गिरसो वेदानुदुह्य भृग्वङ्गिरसः सोमपानं मन्यन्ते। सोमात्मको ह्ययं वेदः' (गोपथ ब्रा. पूर्व 2 / 9) ऋचामग्निर्दैवतं पृथ्वी स्थानम्। यजुषां वायुर्दैवतमन्तरिक्षं स्थानम्। साम्नामादित्यो दैवतं द्यौः स्थानम्। अथर्वणां चन्द्रमा दैवतमाप स्थानम्' (गो. ब्रा. 1 / 29) इति गोपथश्रुत्या अस्ति सौम्यत्वम्। अतः सौम्यस्य मनसः संस्कारः साजात्यात् सौम्यवेदेनाथर्वणैव संभवति। अत एव मनः संस्कारकस्य ब्रह्मणोऽथर्वाङ्गिरोवित्त्वं प्रतिपादितम् 'अथर्वाङ्गिरोविदमेवब्रह्माणम्' (गो. ब्रा. 2 / 24) इति गोपथश्रुत्या। न हि- अथर्वाङ्गिरसां ज्ञानमन्तरा मनसः संस्कार उपपद्यते।

उपर्युक्तानि त्रय्या एव वेदत्वबोधकानि श्रुतिवचनानि तु आग्नेयवेदपराणीति न कोऽपि विरोधः। सूर्यस्याग्नित्वेन आग्नेयस्य च वेदस्य त्रिविधत्वेन सैषा त्रय्येव विद्या तपति 'वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः' (ते. ब्रा. 3 / 12 / 9 / 11) 'ऋग्भिः पूर्वाह्ने' (तै. ब्रा. 3 / 12 / 9 / 1) इत्यादिश्रुतीनामपि स्वरसतः समन्वयः संगच्छते। अतएव त्रय्या विद्यया त्रिविष्टपादिप्राप्ति अथर्वाङ्गिरोरूपब्रह्मवेदेन च ब्रह्मलोकप्राप्तिमुपदिशन्ती श्रुतिः स्पष्टमेव त्रयी विद्याभिन्नमथर्वाङ्गिरसां वेदं समाचष्टे:-

'त्रिविष्टपं त्रिदिवं नाकमुत्तमं तमेतया त्रय्या विद्ययैति ।
अत उत्तरे ब्रह्मलोका महान्तोऽथर्वणामङ्गिरसां च सा गतिः ॥'

(गो. पू. 5 / 25)

अयं च वेदः अथर्ववेदः, ब्रह्मवेदः, अङ्गिरो वेदः अथर्वाङ्गिरसां वेदः भृग्वङ्गिरोवेदः सौभेषजं वेदः इत्यादिसंज्ञाभिर्व्यपदिश्यते तत्र तत्र। 'तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यो यान् मन्त्रानपश्यन्स आथर्वणो वेदोऽभवत्' (गो. ब्रा. 1 / 1 / 5) इति 'भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः येऽङ्गिरसः स रसः। येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्' (गो. ब्रा 1 / 34) इति 'चन्द्रेण देवेन दिशां लोकेन लोकानां, ब्रह्मवेदेन वेदानां, तेन त्वा शमयाम्यसौ स्वाहा' (शा. गृ. सू. 1 / 16 / 3) इति, 'ऋग्वेद एव भर्गो यजुर्वेद एव महः सामवेद एव यशो ब्रह्मवेद एव सर्वम्' (गो. ब्रा. पूर्व 5 / 15) इति, तद् यथा- 'चत्वारो वा इमे वेदाः ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति' (गो. ब्रा. 1 / 2 / 16) इति, एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः' (शत. ब्रा. 14 / 4 / 10) इति, 'यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजु र्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।' (अथर्व. 1) / 7 / 20) इति, 'तस्य यजुरेव शिरः, ऋग्दक्षिणः पक्षः, सामोत्तरः पक्षः, आदेश आत्मा, अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा' (तै. उ. ब्रा. 3 अनु.) इति च।

उपर्युक्ताभिर्ब्रह्मवेदादिसंज्ञाभिरथर्ववेदो व्यपदिश्यते इत्यस्योपपत्तिस्तु निम्नाङ्किता—

तथाहि स्वयम्भूर्वै प्रजापतिः वाक्प्राणोभयात्मकस्य वाय्वाकाशोभयात्मकस्य वा यजुषः वाग्रूपेण जूभागेन अप उत्पाद्य 'तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्' इति श्रुतेः ऋग्यजुःसाममय्या त्रय्या विद्यया सहासु अप्सु प्रविष्टो भवति। तदुक्तं शतपथे षष्ठे काण्डे सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत-भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति। सोऽश्राम्यत्, स तपोऽतप्यत, स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रयीमेव विद्याम्। सैवास्या प्रतिष्ठाऽभवत्। तस्मादाहुः-ब्रह्माऽस्य सर्वस्य प्रतिष्ठेति। तस्मादनूच्य प्रतितिष्ठति। प्रतिष्ठा हैषा यद् ब्रह्म। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतितिष्ठतोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेवास्य साऽसृजत। सेदं सर्वमाप्नोत् यदिदं किञ्च। यदाप्नोत् तस्मादापः, यदवृणोत् तस्माद्वाः। सोऽकामयतआभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेयेति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्'' (शत. 6 / 1 / 1 / 8-10) एता एवापः परमे स्थाने (सूर्यादप्युपरितने स्थाने) तिष्ठन्तीति व्युत्पत्त्या पारमेष्ठ्य उच्यन्ते। तदुक्तं शतपथे एकादशे काण्डे- 'आपो वा इदं सर्वम्, ता यत् परमे स्थाने तिष्ठन्ति, योहीहाभिखनेदप एवाभिविन्देत्। परमाद्वा एतत्स्थानाद् वर्षति यद्दिवस्तस्मात् परमेष्ठी नाम' (शत. 11 / 1 / 6 / 16)।

अत एव कौषीतकिब्राह्मणेऽप्युक्तम्—'अस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपः। ता यत् परमे स्थाने तिष्ठन्ति तस्मात् पारमेष्ठ्य उच्यन्ते' (कौ. 18 / 2) अप्तत्त्वमेवेदमहृदयत्वादशरीरत्वाच्च ऋतमुच्यते। तदुक्तम्—

ऋतमेव परमेष्ठि ऋतं नात्येति किञ्चन ।
ऋते भूमिरियं श्रिता ऋते समुद्र आहितः ।इति॥

(तै. ब्रा. काण्ड)

स एष आपोमयः परमेष्ठी स्नेहतेजोगुणकः। तत्र स्नेहप्रधानं तत्त्वं भृगुः, तेजः प्रधानं तत्त्वं चाङ्गिराः। उभयोः समन्वितावस्था चाऽऽपः। आसु अप्सु प्रविष्टः ऋग्यजुःसाममयः स्वयम्भूर्ब्रह्मा। स च तत्राप्सु प्रविश्य ता अपः समतपत् ताभ्यः सन्तप्ताभ्योऽद्भ्यः तापपरिपाकाद् भृगोरुत्पत्तिरभवत्। तदुक्तं गोपथश्रुतौ अथेतरा पेयाः स्वाद्व्यः शान्ताः (आपः) तत्रैवाश्राम्यत् अभ्यपतत्, समतपत्। ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्यो यद्रेत आसीत् तदभृज्ज्यत। यदभृज्ज्यत तस्माद् भृगुः समभवत्ः तद्भृगोर्भृगुत्वम्। (गो. ब्रा. पू. 1 / 3) भृगुरेव च घनतरलविरलावस्थाभेदेन अब्वायुसोमभेदतस्त्रिधा व्यभज्यत। तदुक्तम्—'आपो वायुः सोमः' इत्येते भृगवः (गो. ब्रा. पू. 2 / 8 / 9) ततः पुनः प्रजापतेस्तपोरूपव्यापारेण स भृगुः अङ्गिरो रूपे पर्यणमत्। तदुक्तम्—'तं वरुणं मृत्युं' (वरुणमयं भृगुं) अभ्यश्राम्यत्, अभ्यतपत् समतपत्। तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य सन्तप्तस्य सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत्। सोऽङ्गरसोऽभवत्। तं वा एतमङ्गरसं सन्तं (अङ्गिरा) इत्याचक्षते। (गो. ब्रा. पू. 1 / 7)

स आपोमयः परमेष्ठी प्रजापतिः भृगुं सृष्ट्वा केन्द्र एव प्रतितिष्ठति यत्र त्रयीमयः स्वयम्भूर्ब्रह्मा प्रतिष्ठितः। परमेष्ठिप्रजापतेरापः शरीरम्। तदन्तः प्रविष्ट आप्यप्राणश्च तासामात्मा प्रजापतिः। आपोमयपरमेष्ठिप्रजापतिना सृष्टो भृगुश्च परमेष्ठिप्रजापतेरभिन्नः। यतो हि परमेष्ठी प्रजापतिरापोमयः। भृग्वङ्गिरसोर्भृगुरपि स्नेहप्राधान्यादप्प्रधानः। अत उभयोरम्मयत्वात् अप्प्राधान्याच्च विवेकः कर्तुं न शक्यते इत्येतदेव भृगुसर्जनानन्तरमापोमयपरमेष्ठिनोऽन्तर्धानमुच्यते यद् गोपथे श्रूयते।[1] स च भृगुरन्तर्हितं तं परमेष्ठिप्रजापतिमन्वेष्टुमैच्छत्, परं नाशकत्तथा कर्त्तुमात्मना सह तस्याविवेकात्। अथाशरीरिण्या वाचा 'वात वातेति' तमब्रवीत् अन्वविन्दामहे इति 'अथार्वागेनमेतास्वप्सु अन्विच्छ' इत्येवं प्रेरितो भृगुरेनमापोमयं प्रजापतिप्राणं (परमेष्ठिनम्) अर्वाक् (केन्द्रे) एतासु शरीररूपासु अप्सु एवाविन्दत। अथ अर्वागप्सु सत्त्वादेवायं प्रजाप्रतिः 'अथार्वाक्' इति व्युत्पत्त्या अथर्वा समभवत्। यतो हि अथ अर्वागेव परोक्षभाषया अथर्वा जातः देवानां 'परोक्षप्रिया हि देवाः' इति वचनेन परोक्षप्रियत्वात्। एषः अथर्वा अपां केन्द्रे स्थितः आपोमयः प्रजापतिप्राण एव। अर्थात् ऋग्यजुःसामरूपवेदत्रयी-गर्भितमापोमयं वेदतत्वमेव अथर्वा परमेष्ठी प्रजापतिर्वा।

तस्मात्सिद्धमेतदुपरितनेन प्रघट्टकेन यत् अथर्वा ब्रह्मा, अपां केन्द्रस्थः परमेष्ठी प्रजापतिः, भृगुः अङ्गिराश्च सर्वाण्यपि तत्त्वानि आपोमयानि। अपां वेद एव चाथर्ववेदः। अप्तत्वस्य घनतरलविरलभेदैः 'आपो वायुः सोमः—इति त्रिधा विभक्तत्वात् अयमपां वेदोऽथर्ववेदः सौम्यवेदनाम्नाऽपि व्यपदिश्यते। एवं चास्य वेदस्य अथर्ववेदः, ब्रह्मवेदः, भृग्वङ्गिरसां वेदः, अथर्वाङ्गिरसां वेदः, आथर्वणो वेदः इति सर्वा अपि संज्ञा एकार्थबोधिका एव। भृग्वङ्गिरोऽथर्वब्रह्मादीनां सर्वेषामपि तत्वानां अप्सम्बन्धित्वेनाप्त्वात्।'

ऋग्यजुःसाममयः स्वयम्भूप्रजापतिः अप उत्पाद्य एतास्वप्सु एव 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इति तैत्तिरीयकश्रुत्या प्रविष्टो भूत्वा

1. गोपथ पूर्व भाग 1 / 4 प्रघट्टकस्य भावः

प्रथमजब्रह्मरूपेण अर्थात् गायत्रीमात्रिकसौरवेदरूपेण प्रादुर्भवति। तदुक्तं शतपथे षष्ठे काण्डे 'सोऽकामयत, आभ्योद्भ्योऽधिप्रजायेयेति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सहाप प्राविशत्। तत अण्डं समवर्तत। तदभ्यमृशत् अस्त्विति, अस्तु भूयोऽस्तु इत्येव तदब्रवीत्। ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या। तस्मादाहुः-ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजम् इति (शत. 6 / 1 / 1 / 10) एतदेवाभिसन्धायोक्तम्-

आपोभृग्वङ्गिरोरूपमापो भृग्विङ्गरोमयम्।
सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयम् ।
अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनाङ्गिरसः श्रिताः ॥
(गो. ब्रा. पू. 2 / 39) इति

अर्थात् भृग्वङ्गिरोरूपासु अप्सु ऋग्यजुःसाममयस्य स्वयम्भूप्रजापतेः प्रवेशात् ऋग्यजुःसामरूपत्रयीवेदमयस्य प्रथमजस्य ब्रह्मणः (गायत्रीमात्रिकस्य सौरवेदस्य) प्रादुर्भावो जायते इति। अलमनया प्रासंगिकचर्चया, प्रकृतमनुसराम॥

(नवधाऽऽथर्वणो वेदः) इति महाभाष्योक्त्या 'अथर्ववेदस्य नव भेदा भवन्ति' इति चरणव्यूहोक्त्या च अथर्ववेदस्य नवशाखा आसन् इति स्पष्टं प्रतीयते। प्रपञ्चहृदये चरणव्यूहे सामवेदसायणभाष्यभूमिकायामपि च नवैव शाखाः प्रतिपादिताः। परं तासां नामसु महान् विसंवादः। तथापि साम्प्रतं बहुभिर्विद्वद्भिः पैप्पलाद-तौद-मौद-शौनकीय-जाबाल-जलद-ब्रह्मवद-देवदर्श-चारणवैद्याभिधाभिस्ता व्यपदिश्यन्ते। तासु शाखास्वद्यत्वे पैप्पलादा शौनकीया चेति शाखाद्वयमेवोपलभ्यते अन्यास्तु विलुप्ता एव। तासामस्तित्वं तु पातञ्जलमहाभाष्यचरणव्यूहशाबरभाष्याथर्वपरिशिष्टादिभिः स्फुटमनुमीयते।

पैप्पलादशाखाया पुरा विशेषख्यातिरासीत्। प्रपञ्चहृदयानुसारं पैप्पलादशाखा विंशतिकाण्डात्मिकास्ति। तस्या ब्राह्मणानि चाष्टाध्यायात्मकानि। अस्याः संहिताया एकैव प्रतिः शारदालिप्यां काश्मीरेषूपलब्धा। सा च काश्मीरनरेशेन डॉ. राथमहोदयाय प्रत्ता 1875 खिृष्टाब्दे।

शौनकसंहिताऽपि मुद्रिता वर्तते। अस्याः शाखायाः संहिता विंशतिकाण्डात्मिका। तत्र च 111 अनुवाकाः 736 सूक्तानि, 5987 मन्त्राश्च सन्ति। अथर्ववेदस्य पञ्चदशे अष्टादश (18) पर्यायमन्त्राः षोडशे च नव (9)। किन्वितोऽतिरिक्ता अपि पर्यायमन्त्राः काण्डेषु वर्तन्ते। तानि यथा- अष्टमस्य काण्डस्य दशमे सूक्ते षट्, नवमकाण्डस्य षष्ठे सूक्ते षट् नवमकाण्डस्य सप्तमे सूक्ते एकः, एकादशस्य काण्डस्य, तृतीयसूक्ते त्रयः, द्वादशाध्यायस्य पञ्चमे सूक्ते सप्त, त्रयोदशाध्यायस्य चतुर्थे सूक्ते षट् इति संकलनया ऊनत्रिंशत् पर्यायमन्त्राः दशमकाण्डवर्जम् अष्टमात् काण्डादारभ्य आत्रयोदशं काण्ड पञ्चसु काण्डेषु सन्तीति ज्ञेयम्। एषां पर्यायाणां सूक्तेषु गणना न जायते इति सूक्तसंख्यायां न कोऽपि भेदः। अथर्ववेदस्य काण्डानुवाकादिसंख्यातालिकाऽधस्तात् प्रदीयते स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थम्:-

काण्ड संख्या	अनुवाक् संख्या	सूक्त संख्या	ऋक् संख्या
प्रथमे	6	35	153
द्वितीये	6	36	207
तृतीये	6	31	230
चतुर्थे	8	40	324
पञ्चमे	6	31	376
षष्ठे	13	142	454
सप्तमे	10	123	286
अष्टमे	5	10	293
नवमे	5	10	313
दशमे	5	10	350
एकादशे	5	10	313
द्वादशे	5	5	304
त्रयोदशे	4	4	188
चतुर्दशे	2	2	139
पञ्चदशे	2	पर्यायाः- 18	220
षोडशे	2	पर्यायाः- 9	103
सप्तदशे	1	1	30
अष्टादशे	4	4	283
एकोनविंशे	7	72	453
विंशे	9	143	958
योग: 20	111	736	5977

केचिदेषा संहिता अष्टादशकाण्डात्मिका एव अवशिष्टं काण्डद्वयं तु प्रक्षिप्तं परिशिष्ट वेति मन्यन्ते। पञ्चपटलिकायां अष्टादशकाण्डानामेव विवरणदर्शनात्। अन्ये तु वैदिकाः ऊनविंशतिकाण्डात्मकोऽथर्ववेदः। विंशं काण्डं तु खिलवर्जं ऋग्वेदादेवोद्धृतमिति तस्य परिशिष्टत्वमेवेति कथयन्ति।

अतर्ववेदस्य सर्वानुक्रमण्यामूनविंशकाण्डपर्यन्तमेव ऋष्यादेः संकलनदर्शनात्, एकोनविंशकाण्डस्यान्ते 'भृग्वङ्गिरसां ब्रह्मेति भृग्वङ्गिरसां ब्रह्मेति द्विरुक्तेरेतद्ग्रन्थपर्यवसानसूचकत्वात्, विंशस्य काण्डस्य आरम्भ एव ऋषिदैवतच्छन्दांस्याश्वलायनक्रमानुसारेण अनुक्रमिष्यामः' इति वचनाच्च विंशस्य काण्डस्य परिशिष्टत्वमेवेति सातवलेकरमहोदयानामप्यभिमतम्।

अन्ये तु सुधियो विंशतिकाण्डात्मक एवथर्ववेद इति स्वीकुर्वते। 'ब्रह्मणो विंशतिऋषय संबभूवुर्विंशतिः काण्डानि दृष्टानि' इति गोपथे वर्णनात्। केवलर्ग्वेदान्मन्त्राणां संकलनेनैव विंशं काण्डं नाथर्ववेदीयमिति मन्तुं शक्यते। अन्यथा त्वस्य वेदस्य प्रथमेऽष्टमे दशमे काण्डे ऋग्वेदस्य बहूनां मन्त्राणामुपलब्ध्या तेषामप्यथर्ववेदीयत्वं न स्यात्।

अथर्ववेदीयं ब्राह्मणं गोपथम्। इदं पूर्वोत्तरभागयोर्विभक्तम्। पूर्वभागे पञ्च प्रपाठकाः, उत्तरभागे च षट्। आथर्वणचरणव्यूहानुसारमिदं शतप्रपाठकात्मकमासीत्पूर्वमिति प्रतीयते तथा ह्युक्तं चरणव्यूहे- तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति।

अथर्ववेदस्य शौनकशाखेव पिप्लाद शाखाऽपि विशतिकाण्डात्मिका। एषा च अनुवाकेषु सूक्तेषु च विभक्ता। पैप्लादशाखाया आद्यो मन्त्रः 'शन्नो देवी' इति वर्तते। शौनकीयशाखायास्तु ये त्रिषप्ताः इति। शौनकीयाथर्ववेदस्य प्रथमात् काण्डात् सप्तमकाण्डपर्यन्तो भागः पैप्पलादशाखीयाथर्ववेदेऽपि भूयसा समुपलभ्यते। अष्टमात् काण्डात् चतुर्दशकाण्डपर्यन्तो भागस्तु तत्र पैप्पलादीयेऽथर्ववेदेऽपि पूर्णतयोपलभ्यते। पञ्चदशस्य काण्डस्य प्रारम्भिकोंऽशः षोडशसप्तदशकाण्डे चाधिक्येनोभयोः संहितयोः समानानि, पितृमेधाख्यं अष्टादशं काण्डं पैप्पलादीयेऽथर्ववेदे नोपलभ्यते। कुन्तापसूक्तसहितं विंशं काण्डमपि तत्र नोपलभ्यते। शौनकसंहिताया ऊनविंशकाण्डस्य द्वासप्ततिसूक्तेषु द्वादश सूक्तानि विहाय सर्वं काण्डं पैप्पलादशाखायां विप्रकीर्णरूपेण विद्यते। शाखाद्वयस्याध्ययनेनेदं स्पष्टं प्रतिभाति यत् शौनकशाखाया आद्यानि पञ्चकाण्डानि पैप्पलादशाखायां आद्यनवकाण्डात्मकतया परिणतानि। दशमात् चतुर्दशकाण्डपर्यन्तं पञ्चकाण्डानि पैप्पलादशाखायां सर्वथाऽभिनवानि। शौनकशाखाथर्ववेदस्य षष्ठं सप्तमं काण्डं च पैप्पलादाथर्ववेदस्य ऊनविंशे च काण्डे समुपलभ्येते। शौनकशाखाया अष्टमादि-एकादशपर्यन्तकाण्डानां पैप्पलादाथर्ववेदस्य षोडशे काण्डे, द्वादशं काण्डं सप्तदशे काण्डे, त्रोयदशचतुर्दशषोडशसप्तदशानि काण्डानि च अष्टादशे काण्डे उपलभ्यन्ते। उभयोः शाखयोरथर्ववेदे कतिपयैः पाठभेदैः सह पूर्णतया विभिन्नार्थकः पाठो बाहुल्येनोपलभ्यते। उभयोः शाखयोः समानेषु सूक्तेषु मन्त्रेषु च पाठस्य समानता स्वल्पमातायामेव दृश्यते। पैप्लादशाखीयस्याथर्ववेदस्य अष्टमांशो नवमांशो वा मौलिकः। यतो हि एषोंऽशो न शौनकशाखीयेऽथर्ववेदे न वा अन्यत्रोपलभ्यभाने मन्त्रसंग्रहे विद्यते।

वेदानां पारायणम्

''स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'' (तै. आ. 2 / 15) इत्यादिविधिवाक्यैः वेदानामध्ययनं पारायणं वाऽऽवश्यकम्। तच्चाध्ययनं न काम्यं कर्म किन्तु नित्यम्। नित्यस्य च कमर्णोऽकरणे प्रत्यवायपातः। अत एव पुरुषार्थनुशासने 'वेदस्याध्ययनं नित्यमनध्ययने पातात्' इति सूत्रेण वेदाध्ययनस्य नित्यत्वं प्रतिपादितम्। तदनध्ययने पातित्यं च अपहतपाप्मा स्वाध्यायो देवपवित्रं वा एतत् तयोऽनुत्सृजत्यभागो वाचि भवत्यभागो नाके. (तै. आ. 2 / 15) इति श्रुत्याम्नातम्। एतमेवार्थमृगप्यभिवदति-

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति ।
यदीं शृणोत्यलीकं शृणोति न हि वेदं सुकृतस्य पन्थाम् ॥

(ऋ. 10 / 71 / 6)

अस्या अयमर्थः- सचिविद्-वेदः यतो हि सोऽध्येतारं पुरुषं तदीयप्रयासाभिज्ञानेन सखिवत् पालयतीति। पालनं चात्र बहुद्रव्यप्रयाससाध्यक्रतु-फलस्याध्ययनमात्रेण सम्पादनम्। ईदृशं सचिविदं वेदरूपं सखायं यः पुमान् अध्ययनमकृत्वा त्यजति तस्य वाच्यपि भाग्यं नास्ति, फले भाग्यं नास्तीति किमु वक्तव्यम्। सकलदेवतानां धर्मस्य परब्रह्मतत्त्वस्य च प्रतिपादकं वेदमनुच्चार्य परनिन्दानृतकलहादिहेतुं लौकिकीं 'वार्तां सर्वत्रोच्चारयतः स्पष्ट एव वाचि भाग्याभावः।' अतः एवाम्नायते- 'नानुध्यायाद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्।' (सत. ब्रा. 4 / 7 / 2 / 23)। यद्यप्यसौ काव्यनाटकं शृणोति तथापि निरर्थकमेव तच्छ्रवणं तेन सुकृतमर्मज्ञानाभावात्। अत एवोक्तम्-यदि 'शृणोत्यलीकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्' इति। एवं च वेदानामनध्ययने प्रत्यवायपातात् वेदाध्ययनस्य नित्यकर्मत्वेन तदनुष्ठानस्यावश्यकर्तव्यत्वाद् वेदानामध्ययनं पारायणं वाऽऽवश्यकमत एव नित्यं कर्म। किञ्च 'यद् ऋचोऽधीते पय आहुतिभिरेव तद्देवतास्तर्पयति, यद् यजूंषि घृताहुतिभिः, यत्सामानि मध्वाहुतिभिर्यदथर्वाजिरसः सोमाहुतिभिः, यद् ब्राह्मणानि, कल्पान् गाथा:नाराशंसीरितिहासपुराणानीत्यमृताहुतिभिः, यद् ऋचोऽधीते पयसः कूल्या अस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति' (आश्वा. गृ. सू. 3।3) इति ब्रह्मयज्ञ- खण्डे आश्वलायनगृह्यसूत्रोक्त्या, 'यद् ऋचोऽधीते पयसः कूल्या अस्य पितॄन् स्वधा अभिवहन्ति, यद् यजूंषि घृतस्य कूल्या, यत्सामानि सोम एभ्यः पवते यदथर्वाङ्गिरसो मधोः कूल्या' (तै. आ. 20 / 10) इक्युक्त्या 'यस्तान् ऋग्विद् ऋचैवाधीते स नाकपृष्ठं भजते ह वा शाश्वत्' (च. व्यू. भा. पृ. 26) इतिवचनेन, 'ततो वेदमारभ्य सन्ततमधीयीत, इति बौधायनवचनेन च वेदानां नित्याभ्यासरूपो ब्रह्मयज्ञः, पारायणं च कर्तव्यं द्विजातिभिः- इत्यवश्यकर्तव्यता सिध्यति वेदपारायणस्य।'

अत एव चरणव्यूहभाष्ये तस्माद् ब्रह्मयज्ञार्थे पारायणार्थे च ऋग्वेदस्याध्ययनं कर्तव्यम् (च. व्यू. भा. पृ. 6) इत्युक्तम्। तच्च पारायणं क्रमपाः क्रमपदः (क्रमरथः) क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम् (च. व्यू. पृ. 6) इत्युक्त्या चतुर्विधम्। तत्रापि आद्ये द्वे प्रकृतिपारायणे, अन्त्ये च द्वे विकृतिरूपे पारायणे। अस्य व्याख्यां विदधन्महिदासः स्पष्टमाह- (अध्ययने संहितापारायणम् 1. पदपारायणम् 2. जटापारायणम् 3. क्रमदण्डपारायणञ्चेति, एतत् पारायणचतुष्टयमित्यर्थः इति (च. व्यू. भा. पृ. 13) तथापि चतुर्णां वेदानां पारायणं प्रकारान्तरेण द्वैविध्यं भजते-उपेन्द्रपारायणं विश्वरूपपारायणञ्च। उपेन्द्रस्य वामनत्वेन केवलमृगादीनां चतसृणां संहितानां पारायणं स्वल्पत्वात् (वामनत्त्वात्) उपेन्द्रपारायणमिति संज्ञयेह व्यपदिश्यते। ब्राह्मणादिसहितानां संहितानां पारायणं तु बृहत्त्वात् विश्वरूपपारायणभिति समाम्नायते विश्वरूपस्य बृहत्त्वात्। तत्रेदानीमल्पायुर्भिर्व्यस्तजीवनैरल्पमतिभिः प्राणिभि-विश्वरूपपारायणं कर्तुं न सुशकमिति हृदि निध्यायास्माभिरुपेन्द्रपारायणार्थं चतसृणां संहितानां एकादशशाखानामेव प्रकाशनमत्र ग्रन्थे विहितम्। येन तदेव पारायणं कृत्वा पुरुषाः पारायणफलमाप्नुयुः वेदानां च प्रचारोऽपि सुस्थिरः स्यात्।

यथा पुरा ब्रह्मयज्ञरूपस्य स्वाध्यायस्योपादेयतासीत्तथेदानीमप्यस्ति तस्यावश्यकता ब्रह्मलोकप्राप्त्यर्थं प्रत्यवायपरिहारद्वारा पतित्यनिवारणार्थञ्च। अपि चेदानीन्तने काले वेदप्रचारस्य विलुप्तप्रायत्वात्तदुद्धारार्थं वेदपारायणस्य विशेषतः आवश्यकता।

वेदप्रचारः

सनकसनन्दसनत्कुमाराद्युपक्रमस्योदासीनसम्प्रदायस्य तु उपक्रमत एव लोके वेदानामुपदेशस्तत्प्रचार एव च परममुद्देश्यम्। अस्य सम्प्रदायस्याद्याचार्येण भगवता सनत्कुमारेण वेदैकप्रतिपाद्यस्य ब्रह्मण उपदेशः शोकस्य पारमप्राप्ताय नारदाय प्रति इति छान्दोग्योपनिषदि भूमविद्यायां स्पष्टं प्रतिपादितमेव। तदनन्तरमपि अस्मिन् सम्प्रदाये समये समये प्रादुर्भूतास्तादृशा मुनयो यैर्वेदानां प्रचाराय विहितो भूयान् प्रयासोऽनेकविधः। तेषु बाभ्रव्यदाल्भ्य पद्मश्रुतिसिद्धमुनयो विशेषतो गणनामर्हन्ति। बाभ्रव्यो हि महामुनिः सर्वतः प्रथमं वेदानां क्रमसंहितां लोके प्रचारयामास। यथोक्तम्- 'इति बाभ्रव्य उवाच च क्रमम्।' (ऋ: प्रा. 11)। महाभारतेऽपि। पाञ्चालेन क्रमः प्राप्तस्तस्माद् भूतात् सनातनाद्। बाभ्रव्यगोत्रः स बभौ प्रथमं वेदपारगः। (म.भा.शा.अध्या. 342 / 100) एतत्पद्यमुपर्युक्तमेवार्थं परिपोषयति।

दाल्भ्यो हि मुनिः 'मधुबभ्रुवोर्ब्राह्मणकौशिकयोः, इति सूत्रेण निरूपितस्य कुशिकगोत्रीयस्य बाभ्रव्यस्य शिष्य आसीत्। अनेन हि मुनिना अन्नाविष्कारिण्या विद्याया आविष्कारः मुख्यप्राणरूपसामगानाद्विहितः' इति स्पष्टमुपलभ्यते छान्दोग्योपनिषदि प्रथमप्रपाठके द्वादशखण्डे। तद् यथा-

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥1॥

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव, तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायतु अशनायाम वा इति ॥2॥

तान् होवाच हैव मा प्रातरुपसमायातेति। तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार ॥3॥

ते ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः संरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुः ते ह समुपविश्य हिञ्चक्रु ॥4॥

ओ 3 मदा 3 मों 3 पिबा 3 मों 3 देवी वरुणः प्रजापतिः सविता उन्नमिहाहरदन्नपतेरऽन्नमिहाहराऽऽहरोउमिति ॥5॥

पद्ममुनिना चार्वाकद्वारा प्रचारितस्य वेदविरोधिनो लौकायतिकधर्मस्य लोकरुचिरत्वेन तत्र प्रवृत्तायाः वेद- पथाद् भ्रष्टाया अत एव निरन्तरमवनतिपथं प्राप्ताया जनताया उद्धाराय लोके वेदाध्ययनं प्रचारितम्। तदर्थमेव च वैदिकव्याकरणस्यापि निर्माणाय पाणिनिर्महामुनिः प्रेरितः।

(स्व.) सुरजनदास स्वामी
संस्कृत-विभागाध्यक्षचरः
जयनारायण-व्यास-विश्वविद्यालयः,
जोधपुरम्

विषय-प्रवेश

वेद भारतीय संस्कृति का तो प्रथम ग्रन्थ है ही, मानव जाति के इतिहास का भी यह प्रथम लिखित दस्तावेज है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने इसे विश्व धरोहर (विरासत) में से एक माना है। ईसा से लगभग 150 वर्ष पूर्व ऋग्वेद की 9 शाखाएं, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 30 शाखाएं उपलब्ध थीं। उनमें से आज जो उपलब्ध हैं, उनको श्रद्धेय पिताजी कर्पूरचन्द्र कुलिश ने देश भर से एकत्र करवाकर संग्रह रूप दिया। चारों वेदों की ऐसी ग्यारह शाखाओं को इस ग्रन्थ में शामिल किया गया है। उच्चारण की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखने की दृष्टि से पाठ को स्वराङ्कित रूप में ही मुद्रित किया गया है। यह विश्व का सबसे बड़ा आश्चर्य है कि हजारों वर्षों बाद भी पाठ में कोई मात्रा-अनुस्वार की गलती नहीं हो पाई। ऐसा कहीं अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

इस शब्दवेद ग्रन्थ में चारों वेदों का पाठ संग्रहित है। इसे अक्षरशः याद करने में हजारों लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी अपना जीवन लगा दिया। एक ही मंत्र को भिन्न-भिन्न क्रम में बोलकर विकृति पाठ द्वारा भी। आज भी हमारे देश में प्रकृति, जीवन, धर्म जैसे मूल विषयों को समझने के लिए वेद ही एक सहारा है। अकेले उषा की स्तुति में सैंकड़ों सूक्त हैं, नायिका रूप में। वेदों में जीवन के प्रति समग्र दृष्टि उपलब्ध है। पर्यावरण के प्रति पूर्ण सचेत, नाचती-गाती प्रकृति का विवरण है। ऋग्वेद में विश्वामित्र का नदी से संवाद इसका ही प्रमाण है। ऐसे में व्यक्ति अत्याचार कैसे कर सकता है, प्रकृति पर?

वेदों में शब्द ब्रह्म का रहस्य छिपा है। शब्द वेद भी तत्त्व वेद की शब्दमयी प्रतिमा है। अतः हमेशा से पूज्य रही है। वेद के विषय में कहा जाता है कि इसके एक लाख मंत्रों में से एक भी सही तरह समझ में आ जाए तथा उसका सम्यक् प्रयोग किया जाये तो इस लोक तथा परलोक की सभी कामनाओं की पूर्ति कर देता है। वेद शब्द ज्ञानसूचक है। शब्द और ध्वनि का चोली-दामन का नाता है। शब्द शरीर है, ध्वनि उसका सूक्ष्म शरीर है तथा स्पंदन ही शब्द की आत्मा है। शब्द सृष्टि के संग्रह के कारण इस ग्रन्थ को शब्द वेद कहना ही उचित समझा गया। इसका अध्ययन करते समय शब्द, अर्थ, प्रत्यय, ध्वनि, स्पंदन आदि का प्रत्यक्ष होगा। व्यक्ति किस धरातल पर मनन करता है, उसका प्रभाव भी परिलक्षित होता रहेगा। वैखरी, मध्यमा अथवा पश्यन्ती के धरातल पर शब्द शक्ति का भी अनुभव हो जाएगा। बीज मंत्रों की महत्ता का ज्ञान हो जाएगा। यह सारी देव शक्ति ही ब्रह्म रूप है।

वेद में प्राणों को देव कहा गया है। सूर्य संस्थान को प्राणों अथवा देवों का लोक कहते हैं। प्राणों को भी यहां देव प्राण कहते हैं। सूर्य को देवराज इन्द्र कहते हैं। इसके आगे पितृ प्राण संस्था है और अन्त में ऋषि प्राण का लोक है। सम्पूर्ण सृष्टि के मूल में ये तीन प्राण रहते हैं, जिनको भारत में तीन ऋणों (ऋषि ऋण, पितृ ऋण, देव ऋण) के नाम से ही जाना जाता है। इन्हीं के आधार पर हमारी तीन संस्थाएं बनती हैं- आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तथा कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर। सूक्ष्म शरीर प्राणों का शरीर है। आधिदैविक है। यही कारण है सम्पूर्ण अध्यात्म जगत् का। जगत् सारा कार्य रूप है। वेद सम्पूर्ण जगत् के कार्य कारण भाव को स्पष्ट करने वाला ग्रन्थ भी है और कारण के आलम्बन की व्याख्या भी करता है। यही वेद की वैज्ञानिकता है। यह दृष्टि कभी सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित थी। यूनान, मिश्र, मय, रोमन आदि संस्कृतियां इसके उदाहरण रही हैं। आज वैश्वीकरण के दौर में ये सब लुप्त प्रायः हो गई। इनके कार्य कारण भाव समझाने वाले नहीं रहे। हमें गर्व है कि हम इस पुरातन ज्ञान को संग्रहित करके विश्व संस्कृति को समर्पित कर रहे हैं। शब्द वेद का प्रतिपाद्य तत्त्वेद है। अतः शब्द वेद के उपोद्घात के रूप में यहां तत्त्वेद की संक्षेप में चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा।

वेद का आधार है प्रजापति अथवा ब्रह्म। पूरा विश्व इसी का विस्तार है-विवर्त है। इस विस्तार की क्रिया ही वेद रूप है। ऋक्, यजु, साम ही विस्तार का स्वरूप बनता है। ऋक् केन्द्र है, साम उसका स्वरूप (मूर्ति) तथा यजु बीच का गतिशील भाग। सृष्टि में जो कुछ दिखाई देता है वह प्रत्येक अपने आप में एक प्रजापित ही है। ऋक्-यजु-साम को सृष्टि में मन-प्राण-वाक् रूप देखा जा सकता है। मन केन्द्र, वाक् मूर्ति रूप साम तथा यजु बीच का प्राण भाग।

प्रजापति के दो भेद होते हैं-निरुक्त तथा अनिरुक्त। जिसका पदार्थ रूप दिग्, देश, काल आदि से ग्रहण किया जा सके वही निरुक्त है। इसके पूर्व की ऋत संस्था को अनिरुक्त कहते हैं। वह निष्कल, निर्धर्मक, अखण्ड पदार्थ है, बिना स्वरूप के। हम जो कुछ देखते हैं सभी में भेद और संख्या होने से निरुक्त हैं। ये सारे अनिरुक्त से ही उत्पन्न हुए हैं। क्योंकि यह निरुक्त रूप सदा परिवर्तनीय है, अतः इनका आधार कोई मूल तत्त्व अवश्य होता है, जिस पर यह परिवर्तन नित्य रूप से जारी रहता है। उस निरुक्त में मन-प्राण-वाक् अभेद रूप रहते हैं। उसी से निरुक्त रूप प्रकट हुआ। मन-प्राण-वाक् ही आगे चलकर पदार्थ का नाभि-मूर्ति-महिमा कहलाता है। तीनों के मिलने से एक ही प्रजापति का रूप सिद्ध होता है, व्यवहार में इनको तीन प्रजापति भी कहा जाता है- नभ्य, व्याकृत, सर्व। नभ्य+मूर्ति=व्याकृत। तीनों को सर्व कहा गया है। व्याकृत प्रजापति में नभ्य प्रजापति के

साथ मूर्ति प्रजापति मिलकर व्याकृत भाव बनाता है। इसी व्याकृत रूप से चारों ओर गौ (किरणें) फैलती हैं। इन्हीं के साथ सूर्य की किरणें भी मिलती हैं। व्याकृत की किरणों के वेद, यज्ञ और रस तीन भेद होते हैं। सूर्य किरणों के मेल से वेद ही मूर्ति का रूप बनता है। इस व्याकृत प्रजापति के चारों ओर एक अदृष्ट मंडल बनता है-वेद, यज्ञ, रस से, जिसे महिमा कहते हैं। व्याकृत प्रजापति के साथ महिमा मिलकर सर्व प्रजापति कहलाता है।

प्रथम प्रजापति को अनन्त और असीम कहा है, क्योंकि जिन मन-प्राण-वाक् के कारण उसका स्वरूप बनता है, उनमें एक भी प्रजापति के शरीर से पृथक् नहीं है। न उनका परिमाण किसी प्रमाण से सिद्ध हो सकता। जगत के अनन्त होने से धातु रूप तीनों को भी अनन्त माना है। पं. मधुसूदन ओझा ने ब्रह्म विज्ञान में लिखा है कि इन तीनों को ही क्रमशः रस, बल और अभ्व कहते हैं। रस आदि रूप है, बल कारण रूप तथा वाक् का प्रथम स्वरूप अभ्व है। ऋक्, यजु, साम भी आगे चलकर तीन-तीन प्रकार के हो जाते हैं- रस, छन्द और वितान।

रस वेद के तीन विभाग-महोक्थ, महाव्रत, अग्नि ही ऋक्-यजु-साम कहलाते हैं। वस्तु के मूर्ति भाग से जो प्राण रूप अंश बाहर निकला वह महोक्थ है। जो भाग बाहर से आकर इस क्षति की पूर्ति करता है वह महाव्रत है। जिस कारण चिनाई के द्वारा वस्तु की स्वरूप बनता है-वह अग्नि है-यजु है। इसका एक रूप चित्य तथा दूसरा चितेनिधेय अग्नि कहलाता है। महोक्थ ऋचाओं का, महाव्रत साम का तथा अग्नि यजु का समुद्र है। वेद सृष्टि क्रिया-प्रक्रिया का विज्ञान रूप है। वेद अन्तरिक्ष में होने वाली क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं की सैद्धान्तिक प्रक्रिया है। इसी को शब्दों में प्रस्तुत करना शब्द वेद कहा जा सकता है; किन्तु मूलतः वेद मंत्र सूक्तात्मक है। इनकी सृष्टि रचना के अनुरूप करनी पड़ती है। वेद के शब्दों की रचना इतनी वैज्ञानिक है कि हर शब्द का सार, अर्थ, प्रत्यय शब्द में ही निहित है। इन शब्दों का अनुवाद नहीं हो सकता। उच्चारण में भी इतना ही सूक्ष्म ध्वनि का स्वरूप दिखाई देता है। अतः प्रत्येक मन्त्र अपने आप में सिद्ध मंत्र है। इसी शब्द को छन्द रूप में, एकाक्षर बीज रूप में प्रयोग करके भिन्न-भिन्न देवताओं की शक्तियों के अर्जन का माध्यम बनाया है।

चूंकि शब्द ब्रह्म भी उसी सृष्टि सिद्धान्त पर कार्य करता है, अतः सरस्वती के रूप को समझ कर लक्ष्मी (अर्थ वाक्) के स्वरूप को समझा जा सकता है। शब्द वेद आज देश में चारों संहिताओं की उपलब्ध ग्यारह शाखाओं का संग्रह है। इनमें से कई के पाठ करने वाले भी आज दुर्लभ हैं। किन्तु; उनका समावेश भी इस ग्रन्थ में कर लिया गया है। तत्त्व रूप वेदों का शब्द रूप यहां प्रस्तुत है। अतः यह शब्द वेद है।

हर देश का अपना इतिहास होता है, भूगोल होता है, साहित्य होता है। भाषा, लोकभाषाएं तथा वहां की अपनी संस्कृति होती है। अपनी-अपनी विकास की कहानी होती है। देश का परम्परागत ज्ञान मौखिक रूप में कथा, गीत अथवा गाथाओं के रूप में आगे से आगे बढ़ता जाता है। भारत भी इस दृष्टि से कोई अपवाद नहीं है। भारत की एक विशेषता यह भी रही है कि यह ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रही है। विश्व के जैन, बौद्ध, सिख जैसे धर्मों की जन्मभूमि रही है। सम्प्रदायों की दृष्टि से यह देश समृद्ध रहा है। जहां पश्चिम के देश विज्ञान आधारित भौतिक जगत् के प्रयोगों से जुड़े, वहीं भारत आध्यात्मिक दृष्टि के प्रयोगों में अग्रणी रहा। यही कारण है कि आज भी, सारी आधुनिक विलासिता के बीच रहकर भी पश्चिम का समाज भारत की ओर ललचाई आंखों से देखता है। हमारे दर्शन के प्रति उनकी ललक बढ़ती ही जा रही है।

प्रकृति एक नियत सिद्धान्त पर काम करती है। हर एक प्राणी, जड-चेतन, स्थिर-गतिमान आदि सभी एक से सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। विज्ञान कहता है संसार में दो ही तत्त्व हैं- पदार्थ (मैटर) और ऊर्जा (एनर्जी)। ये कभी नष्ट नहीं होते। एक दूसरे में बदलते रहते हैं। वेद जो भारतीय वाङ्मय का मूल आधार है, हजारों वर्ष पुरातन हैं, उनका भी आधार यही मत है। भाषा भेद से हम उनको रस और बल, ब्रह्म और माया आदि नामों से जानते हैं। पानी का बर्फ बनना या वाष्प बनना परिवर्तन नहीं विवर्त कहलाता है। अर्थात् बर्फ और वाष्प से फिर पानी बन सकता है। दही की तरह परिवर्तन नहीं होता कि फिर से दूध नहीं बन सके।

प्रकृति में काल को भी एक बड़ा आधार माना है। किन्तु इस काल को हमारे काल भेद से मिलाकर नहीं देखा जा सकता। प्रकृति में यह तय है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जिसकी मृत्यु होती है, उसका पुनर्जन्म निश्चित है। और जन्म तथा मृत्यु के बीच में वह कर्म करता है और कर्म के फल भी भोगता है। पुनर्जन्म भी इसी आधार पर होता है।

प्रकृति में सूक्ष्म तत्त्व भी है और स्थूल तत्त्व भी। स्थूल जो दिखाई देता है, उसके मूल में सूक्ष्म तत्त्व है। सूक्ष्म तत्त्व का भी 'कारण' तत्त्व होता है। सृष्टि तो सदा कारण से ही चलती है। कारण का भी आधार अथवा आलम्बन होता है। सृष्टि विस्तार आलम्बन से स्थूल अवस्था पर्यन्त जिन सिद्धान्तों पर आधारित रहकर आगे बढ़ता है, उनको वेद कहा जाता है। तत्त्व वेद कहा जाता है। उनका शब्दों में जो विवरण है, उसे शब्द वेद कहा जाता है। शब्द-वेद से तत्त्व वेद के क्रिया-कलापों की जानकारी मिलती है। प्रकाशन सुविधाओं

के अभाव में हमारा सारा पुरातन साहित्य मौखिक परम्परा में याद कराया जाता था। तभी हजारों साल टिका रहा और आज हमें उपलब्ध है। इतना ही नहीं, शब्दों के साथ-साथ शब्दों का उच्चारण भी अपनी पूर्ण शुद्धता लिए बना रहा। हजारों वर्ष पुराना साहित्य और इतना वृहद् स्वरूप, फिर भी शुद्धता के साथ मौजूद है, कम आश्चर्यजनक नहीं है। इसके बाद के अनेक ग्रन्थ समय की मार खा चुके हैं। मौखिक परम्परा के कारण वेद शास्त्रों में शब्दों के साथ-साथ ध्वनि पर भी नियंत्रण हो गया, शुद्धता भी निश्चित हो गई। इसी का मंत्र रूप विश्व के सामने आया। मंत्रोच्चार के द्वारा शब्द वाक् के माध्यम से, ऋषियों ने अर्थवाक् को प्रकट करके दिखाया। इतिहास में अनेक घटनाएं मिलती हैं कि यज्ञ के द्वारा ऋषियों ने क्या नहीं उत्पन्न किया। चाहे त्रेता युग में दशरथ के चारों पुत्र थे, रावण और मेघनाद के मायावी शस्त्र अथवा द्वापर में द्रौपदी का प्राकट्य। ऊर्जा के पदार्थ रूप में प्रकटीकरण के आश्चर्यजनक प्रयोग थे। वेद किसी एक विषय का शास्त्र नहीं है, बल्कि सृष्टि क्रम का विज्ञान है। सृष्टि की सम्पूर्ण विशालता इसमें समाहित है। प्रश्न है शोध का। आज जो भी अध्ययन हो रहे हैं, वे एकाकी दृष्टिगोचर होते हैं। कोई पुरुष भाव का अध्ययन कर रहा तो कोई प्रकृति का अध्ययन कर रहा है। कोई शब्द ब्रह्म का। शैक्षणिक रूप में तो गलत कुछ भी नहीं है; किन्तु व्यवहार में कहीं पहुंच नहीं पाते। इसके लिए पदार्थ और ऊर्जा के साथ-साथ अन्य उपादान कारणों को भी जानना आवश्यक है।

हमारे शास्त्रों को केवल रटा और रटाया जाता है। इसी कारण न वेद समझ पाए हैं, न वेद का ज्ञान व्यवस्थित रूप से हमको पढ़ने को मिलता है। सब भ्रमित लगते हैं। अपने-अपने अनुमान से अर्थ लगाते रहते हैं। एक ही बात दर्जनों स्वरूपों में सुनाई देती है। समझता कोई कुछ नहीं। यही कारण है कि वेद केवल पढ़ने-पढ़ाने के विषय बनकर रह गए और जीवन में उनकी भूमिका खो गई। हमारे अनेक वेद मंत्र और अध्याय नित्य क्रम से जुड़े तो दिखाई देते हैं; किन्तु एक परम्परा की तरह। अनेक परिभाषाएं, पुराण कथाएं सुनी जाती हैं। केवल कहानियों की तरह। उनमें मर्म क्या छिपा हुआ है, कोई बताने वाला नहीं। यहां तक कि देवी-देवताओं के अस्त्र-शस्त्र, वाहन, स्वरूप जीवन के किन सिद्धान्तों से जुड़े हैं, नहीं मालूम।

वेदों को समझने के लिए भाषा का अध्ययन, शब्द, अर्थ, प्रत्यय की जानकारी, ध्वनि और स्पंदन का स्वयं का अनुभव होना आवश्यक है। वेद के अनेक विषय न देखे जा सकते, न उनको प्रयोग के जरिए प्रयोगशालाओं में कहीं समझा जा सकता है। हां, जिनको 'निदान' विद्या आती है, वे भूत पदार्थों के माध्यम से सृष्टि के सिद्धान्त समझ सकते हैं। वे कमल का (पद्म) अध्ययन करके ब्रह्मा प्राण को अथवा मूषक का अध्ययन करके

गणपति प्राण को समझ सकते हैं। वेद की भाषा भी छन्दोबद्ध है। सृष्टि का निर्माण भी छन्दों से ही हुआ है और छन्द ही उसके नियामक भी हैं। सूर्य को समझने के लिए बृहती छन्द को अथवा पृथ्वी को समझने के लिए अनुष्टुप् को समझना पड़ेगा। अर्थ और शब्द वाक् के सिद्धान्त एक ही हैं। एक दूसरे के सहारे इनको समझा जा सकता है। व्यवहार में इस प्रकार का कोई प्रयास दिखाई नहीं पड़ता और वेद शब्द बनकर रह जाते हैं।

एक छोटा-सा उदाहरण : -

जब कुछ नहीं था, आकाश था। उसकी तन्मात्रा नाद थी। हवा थी, उसकी तन्मात्रा स्पर्श थी। प्राण थे - ऋषि प्राण (आग्नेय) थे। जल मात्रा (सोम) प्रबल थी, अग्नि दुर्बल थी, अत: स्वरूप कोई नहीं था। परन्तु स्पंदन थे। ये स्पंदन ही माया कहलाते हैं। इनका स्वरूप ही संकोच और विकास है। आकाश में फैला सारा पदार्थ ब्रह्म है और उसकी शक्ति स्पंदन रूप माया है। स्पंदन से ही ब्रह्म का अंश बिन्दु भाव में आता है। बिन्दु का केन्द्र ऋक् है, परिधि साम है, बीच का क्षेत्र यजु है। यही वेद है। बिन्दु ही प्राणों द्वारा की गई प्रथम वाक् सृष्टि है। इस स्वयंभू लोक से बिन्दु नीचे बढ़ता है, परमेष्ठी लोक में। यहां सोम रूप पितर प्राण हैं। भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: और सत्यम् सात लोक हैं। स्वयंभू को सत्यम् कहा है। परमेष्ठी को जन:। दोनों के मध्य में तप: लोक है। अन्तरिक्ष है। चन्द्रमा पृथ्वी के चक्कर लगाता है, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है और सूर्य परमेष्ठी का उपग्रह है। तप:लोक में परिक्रमा करता है।

जहां सूर्य है, वहीं उसके उपग्रह भी हैं। वे भी सूर्य के साथ परमेष्ठी मण्डल के चक्कर लगाते हैं। तब भू:, भुव:, स्व: और मह चारों लोकों की क्या स्थिति बनी? आकाश में क्या दिखाई पड़ रहा है? ऊपर सत्यम् (स्वयंभू) बीच में तप:(अन्तरिक्ष) और नीचे परमेष्ठी (जन:) लोक। दोनों लोकों के मध्य का अन्तरिक्ष भी इन लोकों से भिन्न दिखाई नहीं पड़ता। वेद वाक्य है कि सूर्य तप: लोक में तपता है।

अब एक और सिद्धान्त भी है कि परमेष्ठी मण्डल भी स्वयंभू लोक की परिक्रमा करता है। इसका अर्थ हुआ कि परमेष्ठी लोक को स्वयंभू लोक के बाहर होना चाहिए। तब यह सिद्ध हुआ कि भीतर का लोक सत्यम् और बाहर जन:। बीच में तप: लोक। तब जाकर केन्द्र से शुरू होकर अमृत सृष्टि सूर्य में पहुंचेगी और फिर सूर्य के द्वारा मर्त्य सृष्टि केन्द्र से दूर-दूर होती चली जाएगी। एक ही अंतरिक्ष भिन्न-भिन्न लोकों के मध्य भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाएगा।

स्वयंभू का ब्रह्म तप: लोक में ही अपना स्वरूप ग्रहण करता हुआ परमेष्ठी तक पहुंचता है। यह बिन्दु यहां अव्यय पुरुष कहलाता है। स्पंदनों से ही इसका निर्माण हुआ है। यही

बिन्दु इन्हीं स्पंदनों के द्वारा स्वरूप बदलता हुआ आगे बढ़ता जाता है। यही अक्षर, क्षर और स्थूल (महाभूत) भाव तक पहुंचता है। स्पंदनों के कारण ही प्राण भी स्वरूप बदलकर ऋषि से पितर, देव, गन्धर्व, पशु आदि बनते हैं। परमेष्ठी में ही भृगु-अंगिरा का स्थान है। यही गो (विद्युत) लोक भी कहलाता है। इसी को शेषशायी विष्णु का क्षीर सागर भी कहते हैं।

स्पंदन का मूल स्वरूप नहीं बदलता। इसके कारण अन्य सारे स्वरूप बनते हैं और लीन भी हो जाते हैं। सातों लोकों को एक साथ देखें तो एक आकाश दिखाई पड़ता है और एक ही सूर्य। वेद की सारी व्याख्याओं को अलग-अलग धरातल पर समझने पर इन्हीं में सातों लोक स्पष्ट हो जाते हैं। इसी सिद्धान्त पर आत्मा और शरीर को देखा और समझा जा सकता है। इस तरह के सभी विषयों को समझना पड़ेगा। किसी एक ग्रन्थ में सारी जानकारियां नहीं मिलतीं। अनेक ग्रन्थ देखने पड़ेंगे। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

पुरुष सृष्टि में प्रथम वाक् रूप अव्यय पुरुष बनता है। विष्णु की नाभि से सर्व प्रथम ब्रह्मा पैदा हुए। ये प्राण रूप थे। अति सूक्ष्म तत्त्व के रूप में पैदा हुए थे। इन्हीं के मन में इच्छा पैदा हुई-एकोऽहं बहुस्याम्। जिस प्रकार ब्रह्म की सर्वज्ञता, पूर्णता आदि विशेषताएं अव्यय में सीमित हुईं, वैसे ही माया की शक्तियां भी यहां आकर सीमित हो जाती हैं। माया यहां पर कला, विद्या, राग, नियति और काल तत्त्व रूप में परिणत हो जाती है। यही ब्रह्म के मूल स्वरूप का प्रथम आवरण कहा जाता है। कला से सीमित आदान-प्रदान, विद्या से कर्म की विवेचना, राग से आसक्ति, काल से समय गणना और नियति से कार्य कारण भाव की सुदृढ़ता तय होती है।

षोडशी पुरुष की व्याख्या परा विद्या में विस्तार से मिलती है। यहां अव्यय, अक्षर और क्षर पुरुष की पांच-पांच कलाएं-आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण, वाक् : ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सोम तथा प्राण, आप:, वाक्, अन्न, अन्नाद के साथ परात्पर मिलकर षोडशी पुरुष रूप आत्मा बनता है। अपरा विद्या अथवा शब्द ब्रह्म में अव्यय, अक्षर और क्षर पुरुष को ही स्फोट, अक्षर और वर्ण कहा है। अक्षर और वर्ण ही स्वर और व्यंजन हैं। शैव शास्त्रों में जहां स्पंदन रूप माया का विस्तार मिलता है, वहां माया, महामाया और प्रकृति रूप स्पंदन ही अव्यय, अक्षर और क्षर पुरुष का शक्ति रूप विवेचन है। चूंकि सृष्टि का विकास मूलत: दो धाराओं में होता है-एक अर्थ सृष्टि, दूसरी शब्द सृष्टि अत: किसी एक धारा के ज्ञान से दूसरी का ज्ञान सहजता से हो जाता है। अर्थ सृष्टि तो लक्ष्मी का क्षेत्र है। अर्थ का निर्माण सोम की आहुति से ही होता है। विष्णु ही सोम अथवा परमेष्ठी लोक के अधिपति हैं। शब्द वाक् की अधिष्ठात्री सरस्वती है। परमेष्ठी लोक का ही दूसरा नाम सरस्वान् समुद्र है। दोनों ही प्रकार की सृष्टियां यहीं से शुरू होती हैं। यहां वाक् का स्वरूप परावाक् होता है।

लोक व्यवहार में देखा जाता है कि शब्द वाक् ही अर्थवाक् में परिवर्तित होता है। हमारा सारा जीवन व्यवहार शब्दों के अर्थ पर ही टिका होता है। जो विश्व हमें दिखाई देता है, वह भी अर्थ सृष्टि ही है। अर्थ धन का ही पर्यायवाची नहीं है। प्राण रूप, स्थुल सूक्ष्म सृष्टि का वाचक भी है। हमारी उपासना अनुष्ठान सभी शब्द वाक् पर आधारित है। मंत्रों के उच्चारण पर टिके हैं। सारे यज्ञ मंत्रों के माध्यम से पूर्ण होते हैं। फल रूप हम किसी न किसी अर्थ की कामना करते हैं। कोई धन मांगता है, कोई संतान। कोई सान्निध्य चाहता है। सरस्वती ही लक्ष्मी रूप में बदलती है। सम्पूर्ण वाक् षोडशी रूप है। अत: देवियां सदा षोडशी रूप कहलाती हैं। सच तो यह है कि सम्पूर्ण सृष्टि, जिसमें ऋषि, पितर और देव कारक बनते हैं, षोडशी स्वरूपा ही रहती है। हर देवी स्वयं में स्वतंत्र न होकर किसी न किसी देव की शक्ति ही तो है। बिना विष्णु के लक्ष्मी कहां रह सकती है। अर्थ रूपता के कारण विष्णु ही इस सृष्टि के निर्माता और पोषक हैं। ब्रह्म है तो माया है। ब्रह्मा है तो सरस्वती है। हम केवल देवियों को पूजते हैं। उनके पति कभी साथ नहीं होते। इस तरह भी पूजा में सामान्य लोक व्यवहार भी दिखाई नहीं पड़ता।

षोडशी पुरुष में अव्यय की पांच कलाओं से हमारे पांच कोश बनते हैं। इसी से हमारा कारण शरीर और मन बनता है। अक्षर पुरुष हमारा सूक्ष्म शरीर और प्राण रूप आवरण बनता है। यह अव्यय पुरुष या कारण शरीर के साथ चिपका होता है। क्षर सृष्टि हमारा स्थूल शरीर है। स्थूल अन्तकरण और पंच महाभूत है। स्थूल पुर्यष्टक कहलाता है। यही मन-प्राण-वाक् का स्वरूप है। यही अव्यय-अक्षर-क्षर है। इसी में स्फोट, अक्षर-वर्ण का रूप समाहित रहता है। हमें षोडशी पुरुष का स्वरूप समझकर कारण शरीर के आवरणों से मुक्त होना है। अत: इसका ज्ञान हमारी प्रथम आवश्यकता है। क्योंकि हम सभी षोडशी हैं।

षोडशी हमारे देश में पौराणिक देवियों को षोडशी माना जाता है। कहा जाता है कि इनकी आयु सदा सोलह साल की ही रहती है। इस प्रकार की चर्चा देवताओं के बारे में कहीं सुनने को नहीं मिलती। वास्तविकता यह है कि षोडशी शब्द के साथ ब्रह्म के विस्तार में 'पुरुष' शब्द का अनिवार्य प्रयोग होता है। सोलह कलाओं से युक्त पुरुष भाव को षोडशी पुरुष कहा जाता है। उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण स्थूल और सूक्ष्म सृष्टि समाहित रहती है। इसमें ब्रह्म और माया, दोनों की कलाएं साथ-साथ रहती हैं। ब्रह्म अकेला तो कहीं होता ही नहीं है। माया स्वयं बल रूप में ब्रह्म की शक्ति होती है। ब्रह्म के साथ एकाकार रहती है। जब ब्रह्म षोडशी है, तब माया भी निश्चित ही षोडशी है।

सृष्टि के आरंभ में केवल आकाश है। जो कुछ पदार्थ आकाश (व्योम) में व्याप्त है, वही ब्रह्म है। चारों ओर अंधकार है। कोई गतिविधि नहीं दिखाई पड़ती। ब्रह्म की शक्ति सुप्त

अवस्था में है। ब्रह्म की स्वतंत्रता ही उसका आनन्द भाव है। ऋषि प्राण वहां ज्ञान अग्नि रूप हैं। ब्रह्म को सृष्टि का बीज कहते हैं। उसमें सृष्टि का पूरा नक्शा रहता है। जैसे किसी बीज में पेड़, पत्ते, फल-फूल आदि रहते हैं। यह ज्ञान ही इच्छा पैदा करता है। बिना ज्ञान के कर्म नहीं होता। ज्ञान के विकास को हम कर्म कहते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म के ज्ञान का कर्म रूप विकास है, विवर्त है। पुन: अपने मूल स्वरूप में लौटने की क्षमता रखता है। यह इच्छा ब्रह्म की शक्ति के जागरण से पैदा होती है। यह शक्ति 'स्पंदन शक्ति' के नाम से शैव साहित्य में कही गई है। वेद में इसे 'बल' कहा गया है। इच्छा में क्रिया नहीं होती। इच्छापूर्ति की दिशा में बल या स्पंदन शक्ति की क्रिया शुरू होती है। जिस बल से क्रिया शुरू होती है, उसे माया कहते हैं। इच्छा को ही मन रूप या मन का बीज कहा जाता है। मन पर क्रिया रूप में प्राणों की क्रिया होती है, तब कर्म होता है। इसी को वाक् कहते हैं। इस वाक् में प्राण, मन, ज्ञान (विज्ञान रूप) और आनन्द समाहित रहते हैं। यह मन अव्यय मन होता है। चूंकि स्पंदन शक्ति पूर्ण स्वतंत्र चेतना शक्ति है, वह अपने सामर्थ्य से अपने को ही स्थूल क्रिया में विकसित कर लेती है। प्रत्येक क्रिया का मूल इच्छा रूप स्पंदन ही है। जब तक इच्छा मन में रहती है, कोई क्रिया नहीं होती। जैसे ही स्थूल क्रिया से जुड़ती है, इस पर देश-काल का प्रभाव चढ़ जाता है।

षोडशी अथवा स्वीट सिक्सटीन की अवधारणा इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि जन्म के बाद प्रतिवर्ष एक-एक कला का पूर्ण विकास होता है। सोलह वर्ष में सभी सोलह कलाएं पूर्ण विकास को प्राप्त कर लेती हैं। एक और तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इस षोडशी पुरुष में तीन पुरुष रहते हैं- अव्यय, अक्षर और क्षर। इसमें अव्यय आलम्बन है, किसी कार्य-कारण भाव में नहीं आता। अक्षर निमित्त कारण है। अक्षर पुरुष स्वयं समष्टि रूप है। उसमें से व्यष्टि भाव में जीव और जड प्रादुर्भूत होते हैं। अत: अक्षर पुरुष ईश्वर कहलाता है। स्वयं अव्यक्त है, अदृश्य रहता है। ये अतिसूक्ष्म तत्त्व जब घनभाव में आता है तब यही व्यक्त होकर क्षर पुरुष कहलाता है। विश्व क्षर रूप है। इसको ये अक्षर गतिमान रखता है। क्षर पदार्थ के स्वरू प से जुड़ा हुआ समवायी कारण है।

जगत् की सत्तारूप प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाता ब्रह्मा हैं। यज्ञाधिष्ठाता विष्णु हैं। अग्नि स्थानीय ईंधन इन्द्र है। अग्नि का कार्य वस्तु को पैना करके उसके अवयवों को तोड़कर तीखा बना देना है। सोम पदार्थ को स्निग्ध करता है। विरल अवयवों को संकोचन करके घन बनाता है। अव्यय की पांच कलाएं आनन्द-विज्ञान-मन-प्राण और वाक् -आमोद, प्रमोद, ज्ञान, विज्ञान, चेतना, शक्ति, प्राणों एवं वाणी के नियामक पंचकोश के रूप में स्थित रहती हैं।

पिप्पलाद ऋषि ने आत्मा को षोडशी कहा है यानी यह सोलह कलाओं वाला है। ये

कलाएं हैं- प्राण, श्रद्धा, पृथ्वी, आप:, अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्रिय, मन, अन्न, अन्न से उत्पन्न वीर्य, तप, मंत्र, लोक, नाम और कर्म। जैसे रथ के चक्र की नाभि में चारों ओर अरे जुड़ी रहती हैं वैसे ही इस पुरुष में ये 16 कलाएं चारों ओर ठहरी हुई हैं। ये कलाएं आत्मा में उत्पन्न होकर उसी के चारों ओर फैली हुई, उसी आत्मा में लीन हो जाती हैं। जैसे कई नदियां समुद्र में लीन होकर अपना नाम-रूप खो देती हैं वैसे ही पुरुष में लीन होने पर इन सोलह कलाओं के नाम-रूप भी नष्ट हो जाते हैं। केवल यह शुद्ध आत्मा ही रह जाता है।

आधुनिक पश्चिमी वैज्ञानिक भी मानते हैं कि शरीर में भी प्रमुखत: सोलह तत्त्व हैं- आक्सीजन, हाइड्रोजन (यद्वुजन यानी बहती हुई), नाइट्रोजन (नक्तद्वुजन या स्याही), कार्बन (अंगार या कोयला), सल्फर (गंधक), फास्फोरस (पस्पर्श), सोडियम, पोटेशियम, कैलशियम, मैग्नीशियम, लीथियम, फ्लोरीन, क्लोरीन, आयोडीन, सिलीकॉन (शिलाकण) और आयरन यानी लौह तत्त्व। शरीर में अस्थि, मांस, मज्जा, रक्त, त्वचा, वसा, शुक्र आदि पदार्थ इन्हीं 16 तत्त्वों के आवाप (कुछ मिलाना) और उद्वाप (कुछ निकालना) से बनते हैं।

आत्मा के दो भेद हैं- ईश्वर प्रजापति रूप और जीव प्रजापति रूप। षोडश कला युक्त जीव प्रजापति रूप आत्मा में 18 व्यावहारिक आत्मा होती हैं। इनमें तीन वर्ग अमृतात्मा, ब्रह्मात्मा और शुक्रात्मा हैं। अमृत वर्ग की चार, ब्रह्म वर्ग की पांच और शुक्रवर्ग की 9 आत्मा समझनी चाहिए। अमृतात्मा में परात्पर विवर्त का भाव अभयात्मा कहलाता है। अव्यय का आलम्बनात्मा, अक्षर का नियन्तात्मा और क्षर का भाव परिणाम्यात्मा कहलाता है। ये पुरुष आत्मा अमृतमय हैं।

इसके आगे ब्रह्म के विकास में आत्मा का विवर्त प्राण, आप, वाक्, अन्न और अन्नाद के रूप में होता है। आत्मा के भावप्राण का शांतात्मा, आप: का महानात्मा, वाक् का विज्ञानात्मा, अन्न का प्रज्ञानात्मा और अन्नाद का आत्मभाव प्राणात्मा कहलाता है।

तीसरे वर्ग शुक्रात्मा में शरीरात्मा साधारण अग्नि रूप में है। हंसात्मा वायुरूप में है। दिव्यात्मा इन्द्र है जो वैश्वानर कहलाता है, अग्नि है। चौथा दिव्यात्मा ही, इन्द्र ही तैजसात्मा वायुरूप में है। पांचवां प्राज्ञ इन्द्र कर्मात्मा के रूप में है। छठा चिदाभास ज्योतिर्मय है। सातवां चिदात्मा साक्षात है। यही इष्टदेव कहलाता है। यह चेतना ज्ञानमय तत्त्व है, उसी को विभूति कहते हैं, ब्रह्म भाव में है। फिर आठ और नवां शुक्रात्मा है- श्री और उर्क् यानी ऊर्जा। श्री विड् भाव में और ऊर्जा क्षत्र भाव है। कर्मरूप आत्मा वासनामय है। इस 16 कलाओं वाले कर्म पुरुष के 16 गुण सुश्रुत शारीरक में बताए गए हैं। ये सोलह गुण हैं-सुख, दु:ख, इच्छा, द्वेष, प्राण, अपान, उन्मेष, निमेष, बुद्धि, मन, संकल्प, विचारणा, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय और विषय की उपलब्धि।

एक ही तत्त्व का 16 स्वरूप में बदलने का कार्य माया के द्वारा निष्पन्न होता है। माया का यह योग तीन प्रकार का होता है। इन्हें योग, बन्ध और विभूति कहते हैं। जहां भी रस (ब्रह्म) अथवा अमृत की प्रधानता होती है, उसे विभूति संसर्ग कहते हैं। कर्म की प्रधानता होने पर यह बन्ध माना जाता है। विभूति और बन्ध की समता को योग कहते हैं। जहां दो के संयोग से तीसरा नया पैदा होता है और दोनों पुराने नहीं रहते, इसी का नाम बन्ध है। जल और वायु के संयोग होने पर न जल रहता है, न ही वायु। फेन बन जाता है।

तृण रूप घास खाने से गाय के शरीर में दूध बनता है। तृण दूध के भाव में बन्ध जाते हैं। गाय के शरीर की जठराग्नि ने उन तृणों को दूध रूप में परिणत कर दिया। यह अग्नि का विभूति संबंध है। इसी प्रकार आत्मा भिन्न-भिन्न विधाओं में भोक्ता बनता है। जो भोग्य पदार्थ आत्मा के लिए उपलब्ध होते हैं, वे वृत्तिता संसर्ग से होते हैं। ये भी अमृत एवं मृत्यु रूप तीन प्रकार के आसक्ति, उदार और समवाय रूप होते हैं। ये एक-दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। परिवर्तन भी स्वाभाविक ही होता है। ब्रह्म के साथ जुड़ते ही बल/माया में असाधारणता आ जाती है। वायु की भिन्न-भिन्न गतिभाव के बाद भी आकाश तो निर्लेप ही रहता है। तीनों वृत्तिता संसर्ग कर्म सम्बद्ध आत्मा में कर्म रूप माया बल के कारण प्रवृत्त होते हैं।

अपने निज रूपेण रस रूप आत्मा और बल रूप शक्ति का एक रूप ही है। उन दोनों में भेद व्यवहार, रस के विभूति, बंध, योग संबंध से तथा बल के उदार, समवाय, आसक्ति संसर्ग से होता है। इसी कारण समस्त पदार्थों में भेद पैदा होता है। यह कैसे पैदा होता है और अन्त में कहां चला जाता है, यह नहीं जाना जा सकता। जो दिखाई पड़े और जाना न जा सके उसी को संसार में माया कहते हैं। कार्य रूप में अचानक दिखाई पड़े और उसका कारण समझ में नहीं आए। माया भी माया, महामाया और योगमाया रूप में कार्य करती है।

रस और बल के परस्पर संबंध में जहां रस की प्रधानता हो, वहां तीन पुरुष (अव्यय, अक्षर, क्षर) का प्रादुर्भाव होता है। जहां बल या शक्ति की प्रधानता हो, वहां प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है। पुरुष में मन-प्राण-वाक् मुख्य तत्त्व होते हैं। शक्ति स्वरूप में सत्त्व-रज-तम मुख्य तत्त्व रहते हैं। इनसे ही महत्, अहंकार और तन्मात्राएं पैदा होती हैं। इनमें एक-एक पुरुष का एक-एक शक्ति से संबंध रहता है। रस के व्यापक धर्म ज्योति, विधृति (धारण करना), और प्रतिष्ठा हैं। बल प्रधान शक्ति के तीन रूप हैं-अशनाया (भूख), विक्षेप और आवरण। प्रवाह रूप बल जब स्थिर-सा बन जाए, तब वह आवरण हो जाता है।

शैव शास्त्रों में जो माया का वर्णन है वह भी समान संकेत ही करता है। परमेश्वर की शक्ति को यहां स्वातंत्र्य शक्ति कहा है। इसके स्पंदन पांच रूपों में होते रहते हैं। चित्,

आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। ये ही परम ईश्वर के सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व, और व्यापकत्व कहलाते हैं।

परमेश्वर (अनुत्तर तत्त्व) इसी शक्ति पंचक के सहारे सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह रूप कार्य हर क्षण करता रहता है। यही शक्ति पंचक आगे चलकर विद्या, कला, राग, काल और नियति रूप में बदल जाता है। माय तत्त्व के साथ मिलकर आत्मा का षट् कंचुक रूप आन्तरिक आवरण बनाता है। मोक्ष होने तक यह भी जन्म-जन्मान्तरों में आत्मा का अंग बना ही रहता है। देह, प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियों को बहिरंग आवरण या स्थूल शरीर कहते हैं। इस शरीर की आकृति, प्रकृति और अहंकृति षोडशी पुरुष के स्वरूप पर निर्भर करती है। सम्पूर्ण जगत यूं तो षोडशी है; किन्तु कर्म भेद के कारण भिन्नता लिए रहता है।

सोम वेद के अनुसार यह जगत् अग्नि-सोम के योग से बनता है। दोनों ही सूक्ष्म तत्त्व हैं। अक्षर प्राण रूप हैं। इनका क्षरण नहीं हो सकता। अविनाभाव हैं। एक-दूसरे के बिना नहीं रहते। सोम शीतल, मृदु और स्नेहन रूप होने से अन्न बनता है। जिन व्यक्तियों में ये गुण होते हैं, उन्हें भी सौम्य कहा जाता है। सोम का लोक है परमेष्ठी। यही सोम सूर्य में आहूत होकर उसे प्रतिष्ठित रखता है।

हमको परमेष्ठी सोम चन्द्रमा से भी प्राप्त होता है। वह हमारा पितृ लोक भी कहा जाता है। सोम सदा उत्तर से दक्षिण की ओर बहता है। अग्नि दक्षिण से उत्तर की ओर। इन दोनों के मिश्रण से संवत्सर बनता है, ऋतुएं बनती हैं। हमारे शरीर बनते हैं। हमारा हृदय अक्षर पुरुष की प्रथम तीन कलाओं-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र से बनता है। ब्रह्मा आत्मा की प्रतिष्ठा बनता है। विष्णु बाहर से अन्न लाता है। इन्द्र विसर्जन करता है। अग्नि रूप है। ये प्राण जिन अग्नि-सोम पर कार्य करते हैं, वे भृगु-अंगिरा हैं। सूत्रात्मा अथवा पृष्ठ प्राण कहलाते हैं। भृगु-अंगिरा ही अक्षर सृष्टि के अग्नि-सोम कहलाते हैं। यह अग्नि-सोम क्षर पुरुष की कला रूप पांच प्रकार का होकर आगे सृष्टि का निर्माण करते हैं।

सूर्य से ऊपर के अग्नि-सोम अमृत रूप कहलाते हैं। यम और आप: मृत्यु के पर्याय हैं। यम भी अग्नि है; किन्तु मृत्यु धर्मा है। आप् भी सोम है; किन्तु यह भी मृत्यु धर्मा है। अग्नि इस प्रकार दो भांति दिखाई पड़ता है। एक तो सोम ग्रहण करके यज्ञ का रूप बनता है। दूसरा, अग्नि आती हुई सोम की आहुति को रोकता है। उसे यम कहते हैं। अग्नि और सोम के योग से यौगिक अग्नि उत्पन्न होता है। स्थूल और रूपवान् होने के कारण उसी को भौतिक अग्नि कहते हैं। जबकि यम के द्वारा अग्नि और सोम का वियोग हो जाता है तब यह अग्नि बिना सोम के बुझ जाता है। इसी प्रकार जो सोम अग्नि के संयोग से जलकर

यौगिक अग्नि बनाता है, उसे ही सोम कहते हैं। जो अग्नि से जलता नहीं और दुर्बल होने पर अग्नि संयोग से उड़कर चला जाता है; किन्तु प्रबल होने पर अग्नि को बुझा देता है, इस सोम को आप् कहते हैं। इनमें यम (मृत्यु) का लोक सूर्य है। अग्नि का लोक पृथिवी है। सोम का लोक चन्द्रमा और आप् का लोक चारों ओर फैला हुआ अन्तरिक्ष समुद्र है। अंगिरा धारा से शब्द सृष्टि (सरस्वती) और भृगु धारा से अर्थ सृष्टि (लक्ष्मी) होती है। ऋक्, यजु, साम रूप अग्नि-वायु-आदित्य को प्राणाग्नि कहते हैं। अथर्व या सोम ही प्राण सोम कहलाता है। इन तीनों अग्नि प्राणों से वैश्वानर नामक ताप धर्मा अग्नि पैदा होता है। इसी में भूतसोम (भूतान्न रूप) की आहुति होती रहती है। इसी के आधार पर पंच महाभूत वाला संवत्सर यज्ञ होता है। ऋत् अग्नि में ऋत् सोम की आहुति होने से जो नया भाव पैदा होता है, उसे ऋतु कहते हैं। अग्नि प्रधान होने पर ग्रीष्म की ओर अग्रसर एवं सोम प्रधान होने पर शीत की ओर यह ऋतु चक्र अग्रसर होने लगता है। वसन्त से अग्नि का जन्म, शरत् से सोम का जन्म। वर्षा पर अग्नि की समाप्ति, शिशिर में सोम की समाप्ति। अग्नि की चरम विकासावस्था की ही सोम में परिणति, सोम की चरम संकोचावस्था की ही अग्नि में परिणति। ऋतुओं से ही संवत्सर यज्ञ चलता है। और इसी से अग्नि-सोमात्मक जगत् (सृष्टि) का निर्माण होता है।

यदि आप सूर्य की ओर (पूर्व) मुंह करके खड़े हों, तो आपका दक्षिण (दायां) भाग दक्षिण दिशा की ओर तथा वाम (बायां) भाग उत्तर दिशा की ओर रहेगा। दायां भाग दक्षिण से उत्तर को आने वाली ऋताग्नि के कारण अग्नि प्रधान रहेगा। वाम भाग उत्तर से दक्षिण को आने वाले ऋतसोम से सोम प्रधान रहेगा। एक ही शरीर में अग्नि और सोम दोनों का भोग होगा। अग्नि पुरुष भाव है। सोम स्त्री भाव है। अत: अग्नि प्रधान दक्षिणांग पुरुष भाव तथा सोम प्रधान वाम भाग स्त्री भाव प्रधान माना गया है। यही अर्द्धनारीश्वर अथवा शिव-शक्ति की प्रतिष्ठा है। दाम्पत्य रूप में सोम रूप शुक्र का स्त्री के आग्नेय शोणित के साथ यजन से अग्नि-सोमात्मक प्रजा की उत्पत्ति होती है। यह पुरुष सौम्य एवं स्त्री आग्नेय रूप होते हैं।

सोम ही अन्न है। इसी से हमारा सौम्य रूप मन बनता है। भोजन करने के पश्चात इस अन्न का रस बनता है। इस रस की शक्ति से शरीर के प्राणों को बल मिलता है। जो प्राण भूख के कारण निर्बल हो जाते हैं-उनको अन्न के प्राप्त होते ही प्राण जाग्रत हो जाते हैं। हम कह सकते हैं कि खाया हुआ अन्न ही रस बनकर प्राण रूप ऊर्जा में बदल गया। इसी ऊर्जा की प्रेरणा से इन्द्रियों का व्यापार शुरू हो गया, शरीर के जीवनीय शक्ति रूप कर्म शुरू हो गए, अध्यवसाय पूर्वक प्रेरणा बल का प्रवर्तक बन गया। अर्थात प्राण ही हमें कर्म में प्रेरित

करता है। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि अन्न से रस बनने की जो प्रक्रिया है, उसमें अन्त:स्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले रसायनों की भी महती भूमिका है। ये रसायन हमारे भावों द्वारा नियंत्रित होते हैं। इसी से हमारे शरीर की आकृति नियंत्रित होती है। भावों (प्रकृति) में परिवर्तन ही सोम की भूमिका है। भाव भी हमारा अन्न बनते हैं।

प्राणों की क्षमता भी सीमित होती है। हर तरह के कार्यों में कुछ प्राण अवश्य ही खर्च होते हैं। ज्यों-ज्यों हमारे प्राण निर्बल होने लगते हैं, त्यो-त्यों हमारी कार्य क्षमता भी शिथिल होती जाती है। फिर प्राणों को अन्न की जरूरत (अशनाया अथवा भूख लगना) महसूस होने लगती है। फिर जठराग्नि में अन्न की आहुति, पुन: रस निर्माण और शक्ति का पुनर्भरण। पूरा चक्र चल पड़ता है। यही अग्नि-सोम रूप अध्यात्म यज्ञ है। इसी में रस के द्वारा आगे की धातुओं का भी निर्माण होता है। रस से रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र का क्रमिक निर्माण होता है। फिर ओज (मन रूप) तथा चान्द्र प्रदत्त सौम्यता व्यक्ति को शिव तत्त्व की ओर अग्रसर करती है।

विश्व का आधार अग्नि या गति है। यही स्पन्द या ऊर्जा है। यही ऋक्, यजु, साम रूप अग्नियां हैं। सोम पदार्थ रूप (मैटर) है। यह अग्नि के साथ जुड़कर नया निर्माण करता है। जो कुछ निर्माण दिखाई देता है, यह सारा जो विश्व रूप है, अग्नि रूप है। सोम सारा ही यज्ञ रूप में नया पदार्थ बन जाता है। अग्नि बनकर अग्नि पर अग्नि की चिनाई करता है। विज्ञान भी इस तथ्य से सहमत है कि ऊर्जा और पदार्थ एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। नष्ट नहीं हो सकते।

आकाश जिसका कण-कण प्रकाशित हो, पूर्ण प्रकाशित हो वही आकाश। न कोई स्वरूप, न कोई आकार, बस चारों ओर विस्तार ही विस्तार। सम्पूर्ण सृष्टि इसी में व्याप्त है। कमरे में जो खाली स्थान है, वह भी आकाश; शरीर में खाली स्थान भी दहराकाश। कोई स्थान नहीं, जहां आकाश नहीं। आकाश में दो तत्त्व तो निरन्तर जान पड़ते हैं-एक तो वायु और दूसरा आकाश। वायु की गति आकाश की स्थिति पर निर्भर करती है। गति और स्थिति के संयोजन का नाम यजु है। यजु=यत्+जू=गति+स्थिति। जब कुछ नहीं था, तब केवल आकाश था। उस समय कौन-कौन से तत्त्व आकाश में थे, इसका चित्रण हमको शेषशायी विष्णु के चित्र में मिलता है। जो भी तत्त्व वहां थे, वे सभी सृष्टि के कारक तत्त्व हैं। विष्णु सृष्टि के मूल में हैं। विष्णु की नाभि से ही प्रथम सृष्टि के रूप में ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। विष्णु भी प्राण हैं और ब्रह्मा भी प्राण हैं। ब्रह्मा स्थिति के अधिष्ठाता हैं, विष्णु गति से जुड़े हैं। क्योंकि परमेष्ठी लोक स्वयंभू लोक की परिक्रमा करता है। अर्थात् गतिमान लोक है। आकाश में जल है, जल में अग्नि है। जल का एक नाम नार है। आयण का अर्थ

है आवास। जल में जिसका निवास, वही नारायण और जो जल से भरा हुआ, वही बादल अथवा नारद। नारद कभी एक स्थान पर टिक नहीं सकता। वह क्षीर सागर से लेकर पृथ्वी लोक तक भ्रमणशील रहता है। ब्रह्मा जिस स्वयंभू लोक के स्वामी हैं, वह ऋषि प्राणों का लोक है। सप्त ऋषि अथवा सप्त मूल प्राण वहां रहते हैं। क्षीर सागर सोम लोक है। वहां पितृ प्राण कार्य करते हैं। ऋषि और पितृ प्राण के योग से ही देव प्राण (अक्षर सृष्टि) का विकास होता है। ये तीव्र गति रूप प्राण हैं। इनका अधिपति इन्द्र प्राण हैं। इन्द्र प्राण गति का तथा विष्णु प्राण आगति का रूप है। प्रतिस्पर्द्धी भी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र का सम्मिलित रूप सूर्य है। तीन अक्षर प्राणों के कारण त्रिनेत्र अथवा महेश्वर कहा जाता है। सूर्य स्वयंभू तथा परमेष्ठी के मध्य- तप: लोक में- परमेष्ठी लोक की परिक्रमा करता है। सूर्य के एक परिक्रमा काल में चन्द्रमा पृथ्वी की पच्चीस हजार परिक्रमा कर लेता है।

विष्णु शयन कर रहे हैं; किन्तु लक्ष्मी सदा जाग्रत अवस्था में रहती है। माया के स्पंदन-प्रसार और संकोच के बने ही रहते हैं। शेषनाग बलों की सुप्तावस्था का ही सूचक है। पदार्थ रूप में ब्रह्म तो सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त है। ब्रह्म को ही रस और माया को बल कहते हैं। स्वयंभू में जहां ऋषि प्राण हैं, वहीं पर क्षीर सागर अनन्त बलों का क्षेत्र है। सृष्टि के प्रथम अव्यय पुरुष का निर्माण यहीं होता है। अग्नि और सोम प्राणों के योग से। यह वही अव्यय पुरुष है, जिसको गीता में कृष्ण ने अपना पर्याय बताया है। इसी से आगे की सम्पूर्ण सृष्टि विकसित होती है और इसी पर टिकी रहती है। ब्रह्मा ही वह प्रथम उत्पन्न अव्यय है।

सृष्टि में जब आकाश के अतिरिक्त कुछ था ही नहीं, तब यह निश्चित ही है कि सारी सृष्टि का उद्भव आकाश से ही हुआ है। हमारे पांच महाभूतों में प्रथम महाभूत आकाश ही है। और दूसरा महाभूत वायु है। माया के स्पंदन ही गति का कारक बनते हैं। गति के संघर्षण से अग्नि पैदा होता है। अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। हमारे शरीर में नीचे के पांच चक्र इन्हीं पांच महाभूतों से संबंध रखते हैं। शरीर में इन्हीं तत्त्वों के संतुलन का कार्य करते हैं। विशुद्धि चक्र (कण्ठ) आकाश का स्थान है और मूलाधार पृथ्वी तत्त्व का। सम्पूर्ण आकाश की परमेष्ठी लोक है। सोम या आद्रता का लोक है। यह सोम जब ब्रह्मणस्पति के साथ योग करता है तब मन का स्वरूप बनता है। सूर्य के साथ-साथ परमेष्ठी के पांच अन्य ग्रह भी परमेष्ठी की परिक्रमा करते हैं। ये हैं- वरुण, सविता, ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति और शनि। ये सौर मण्डल के ग्रहों से भिन्न हैं। भृगु अंगिरा भी इसी आकाश में कार्य करते हैं। विष्णु सोम लाकर सूर्य की अग्नि में डालता है, उसे प्रज्वलित रखता है। इससे उत्पन्न ऊर्जा को इन्द्र बाहर की ओर फैलाता है। पूरे अन्तरिक्ष में सारी गतिविधियां इसी पर निर्भर करती हैं।

समझने की बात यह है कि जब सूर्य तप: लोक में परिक्रमा करता है और सौरमण्डल के ग्रह भी सूर्य की परिक्रमा इसी लोक में कर रहे हैं, तब जो आकाश पृथ्वी के चारों ओर है, वह कौन-सा है? या तो तप: लोक या फिर परमेष्ठी लोक का। पृथ्वी सूर्य से अधिक दूर नहीं है अत: अधिकांशत: तप: लोक में ही रहती है। शनि, बृहस्पति आदि ग्रह सूर्य से दूर होने के कारण इनका परिक्रमा पथ स्वयंभू लोक अथवा परमेष्ठी से भी गुजरता होगा। तभी इनका स्वरूप भी बदलता है। जो भी सौरमण्डल का ग्रह सूर्य के नीचे अथवा पृथ्वी की ओर रहता है, उसका प्रभाव उष्ण होगा। तथा जो सूर्य से ऊपर होगा, वह शुद्ध सौम्य होगा। हमारे चारों तरफ जो आकाश है, वह अत्यन्त गतिमान है। ऋषि/ पितृ प्राणों की सम्पूर्ण सृष्टि इसी आकाश में होती है। इसी में पंच तन्मात्राएं, पंच महाभूत रहते हैं। नाद स्वयं आकाश की तन्मात्रा होने से स्थूल सृष्टि का मूल बनता है। आकाश के गर्भ में ही सम्पूर्ण सृष्टि कार्य कर रही है। सूर्य रूपी देवराज ने इसी आकाश को दो भागों में बांट रखा है। सूर्य के ऊपर स्वर्ग या देवलोक तथा नीचे मर्त्य लोक। चूंकि सूर्य स्वयं गतिमान है, अत: ये लोक भी स्थान बदलते रहते हैं। उसी के अनुरूप पृथ्वी के चारों ओर आकाश भी बदलता रहता है।

हृदय हृदय शरीर के एक खास अवयव का नाम है। जीवन में यद्यपि धड़कन रूप गति वायु की ही होती है तथापि वह शरीर में जिस स्थान पर हो रही है वह केन्द्र रूप हृदय ही है। धड़कन के रूप में जिसकी अनुभूति होती है उसी हृदय में जीवन है, मृत्यु है। हृदय आत्मा की प्रधान पीठ है। पिछले जन्म के अनुभवों को समझने का राजमार्ग है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक क्रियाकलापों की प्रयोगशाला है। यहां से जीवन के सारे अनुभव, चाहे वे शारीरिक हों, बौद्धिक हों अथवा मानसिक, गुजरते हैं, मिश्रित होते हैं और अलग-अलग धरातलों पर वितरित किए जाते हैं।

यह तो सब जानते हैं कि हृदय हमारा रक्त-शोधक कारखाना है। शरीर में रक्त का संचार करता है; किन्तु कोई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाता कि हृदय की गति रुकने से मृत्यु क्यों आ जाती है? क्या हृदय एक स्थूल अवयव मात्र है, जिसको ऑपरेशन करवाकर ठीक किया जा सकता है? आज विश्व भर में इस विषय पर कार्य हो रहा है। हमारा वैदिक चिन्तन इस पर बहुत गहन प्रकाश डालता है।

हृदय शब्द में तीन अक्षर हैं- 'हृ' का अर्थ हरति से हरण करने वाला, 'द' का अर्थ द्यति से खंडन करने वाला और 'य' का अर्थ यच्छति से देने वाला बताया गया है। ये हृदय के कार्य हैं। मन के कार्यों को गति, अगति और स्थिति के रूप में समझा जा सकता है, जिसे इच्छा या कामना कहते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक वस्तु का एक केन्द्र होता है, एक

परिधि होती है, उसी प्रकार हृदय भी शरीर का केन्द्र है, शरीर परिधि है। हृदय का भी एक केन्द्र है और हृदय परिधि है। केन्द्र में उफान रूप ब्रह्म-प्राण का कार्य, आगति में विष्णु-प्राण और गति में इन्द्र-प्राण का कार्य प्रमुख होता है। हृदय का कार्यक्षेत्र जटिल है। यह शरीर का प्रमुख चैतन्य केन्द्र है जो शरीर के सभी अवयवों का पोषण करने वाला है। स्थूल शरीर के अलावा सूक्ष्म और कारण शरीर से भी जुड़ा रहता है। बुद्धि और मन से भी जुड़ा होता है। बाहरी वातावरण में भी इसका संयोग रहता है। दृश्य एवं अदृश्य जगत की अनेक गतिविधियों से हृदय का संबंध होता है। हृदय ऊर्जा का प्रमुख केन्द्र है, जहां अनाहत नामक चक्र स्थित है तथा जहां भौतिक, शरीरातीत एवं स्वर्गीय स्तर के अनुभव किए जा सकते हैं। इस हृदय का अधिस्वरण (इन्द्र या ईश्वर) स्वभाव से निगेटिव होता है अर्थात् बाहर से ऊर्जा ग्रहण करने का कार्य करता है तथा उसको शरीर में विसर्जित करता है। हृदय स्वाधिष्ठान और आज्ञा चक्र से विशेष रूप से जुड़ा है। अनाहत चक्र की ऊर्जा ही थायमस ग्रंथि को प्रभावित करती है और उसके बाद कण्ठ में स्थित विशुद्धि केन्द्र में प्रवेश करती है जहां थायराइड ग्रंथि की स्थिति है। वॉयस बॉक्स भी यही है।

व्यक्ति का चित्त उसके कार्यों के दौरान भिन्न-भिन्न धरातलों पर आता-जाता रहता है। कभी केवल शारीरिक धरातल पर तो कभी बौद्धिक, मानसिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि धरातलों पर। हर स्तर पर ऊर्जा का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न रहता है। यदि हर धरातल पर उसी के अनुरूप ऊर्जा मिले, आवश्यकता के अनुरूप कम या अधिक होती रहे तथा कार्य समाप्ति के साथ ऊर्जा भी बदल जाए तो यह प्रक्रिया दुर्लभ हो जाती है। ऊर्जा के इस परिवर्तन और वितरण का मुख्य केन्द्र हृदय होता है। यह सारा परिवर्तन भावनाओं की गति से होता है। यदि एक ही प्रकार के भाव अथवा विचार लम्बे समय तक रहते हैं तो ऊर्जा का स्वरूप बदल जाता है। इसी प्रकार लम्बी बीमारी में भी उसी प्रकार का प्रभाव देखा जा सकता है। आवेग और आवेश भी इस ऊर्जा को प्रभावित करते रहते हैं। दीर्घ काल तक टिकने वाला अनुशोचन (शोक) चाहे भावमय हो अथवा वासनामय, वह हृदयकमल का शोषक होता है-हृदय कमल या चक्र क्रमश: धीरे-धीरे सिकुड़ता हुआ सर्वथा बन्द हो जाता है अथवा तीव्र आघात से तत्काल बिखर जाता है। भाव-भूति कहते हैं-'हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घ शोक:।'

जब भी भावनात्मक आवेग का दौर आता है तो हृदय स्थित अनाहत चक्र पर दबाव पड़ता है। वह सूर्य-चक्र (Solar Plexus) से ऊर्जा खींचता है और उसका परिणाम होता है पाचन शक्ति का ह्रास। जब भी क्रोध आता है अथवा ईर्ष्या जागृत होती है तब ऐसा ही होता है। व्यक्ति निढ़ाल हो जाता है। हालांकि ये आवेश लम्बे समय तक ठहरते नहीं हैं।

(Anxiety) और (Depression) जैसे आवेग लम्बी अवधि तक कार्य करते हैं। ये धीमी गति वाले हैं और शरीर पर इनका प्रभाव भी देर तक बना रहता है। इनका प्रभाव एड्रिनल ग्रंथि पर होता है। हृदय जीवन और चेतना का केन्द्र है, अत: इसका रक्षात्मक स्वभाव भी मजबूत होता है।

हृदय स्नेह का सूचक है। दया, करुणा का केन्द्र है। भावपूर्ण अवसर आते ही ऊर्जा बिखेरता है। निस्स्वार्थ प्रेम की पहली सीढ़ी है। यहीं से ऊपर के चक्रों का विकास शुरू होता है। यह नकारात्मक भावों से भी प्रभावित होता है और थायमस ग्रंथि के माध्यम से रक्षारूप ऊर्जाभाव को शरीर में कम कर देता है। सकारात्मक भाव ही शरीर-मन-बुद्धि का सामंजस्य बना सकते हैं। सकारात्मक विचार भी यहीं से आते हैं। भ्रू-मध्य का आज्ञा-चक्र इसमें सृजनशीलता जोड़ता है। यह नए विचारों और दृष्टिकोणों की जन्मभूमि है। व्यक्ति की स्वयं की अभिव्यक्ति भी इन दोनों के समन्वित योग से ही होती है।

स्नेह की तरह ही सौन्दर्य का भी हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा कलात्मक रूप का। इससे हृदय की सकारात्मक ऊर्जा का विकास होता है, चेतना का जागरण होता है। मूर्ति या चित्र में जो कलात्मक भाव अंकित होते हैं, वे क्रमश: लम्बे समय तक जुड़े रहने पर स्थूल से हटाते हुए साधक को सूक्ष्म तथा मूल कारण तक ले जाते हैं। प्रथम दृष्टि तो स्थूल पर ही रहेगी, क्योंकि साधक स्वयं सात बालिश्त का स्थूल आकार है-वह सीधा सूक्ष्म में नहीं जा सकता। गायत्री में प्रथम व्याहृति 'भू:' भी यही संकेत दे रही है कि धरातल से ही सब का आरम्भ होता है, धरातल का उल्लंघन कभी नहीं किया जा सकता।

क्रमिक साधना के अनन्तर यदि वह स्थूल धरातल प्रकृतिवश स्वत: छूट रहा हो तो वह आगे की बात है, आरम्भ तो स्थूल से ही होगा। प्रथमत: मूर्ति अथवा चित्र में आकर्षण कला का ही प्रभाव है-फिर उसमें ज्योति का भास होना साधना का फल है। क्रमश: ज्योति गायब होकर यदि शुद्ध आनन्द- धारा बहने लगे तो वह तुरीयावस्था है-इस अवस्था को ही समाधि कहा जाता है। समाधि में यह हृदय की धड़कन अन्तर्मुखी होकर अमृत भाव से जुड़ जाती है-इसकी बाहरी गति रुक जाती है। इस प्रकार हृदय की धड़कन रुकने पर मृत्यु हो जाती है; किन्तु समाधि में अमृत भाव से जुड़े रहने के कारण मृत्यु भाव से विलग रहते हुए हृदय फिर जाग जाता है और अपूर्व बुद्धिबल (विज्ञान) का स्वामित्व प्राप्त करता है। यही बात 'दासोऽहम्', 'सोऽहम्' और 'अहम्' के क्रम में समझाई गई है। साधना के आरम्भ में स्थूल भाव दासता का ही होगा-फिर स्नेह भाव जुड़ जाने पर दूसरे शब्दों में ज्योति भाव के उदित होने पर 'जो वो है वो मैं हूं' इस 'सोऽहम्' भाव का उदय होता है।

यह श्रद्धामय विश्वास के आधिक्य पर होता है। व्यवहार में भी सेठ के परम विश्वस्त सेवक को आया देखकर, 'देखो वो सेठ जी तो आ गया' कहा जाता है-यह सोऽहम् की ही तो महिमा है। समाधि की तुरीय अवस्था में कारण रूप केवल आनन्द भाव में स्थिति पा जाने पर वह 'सोऽहम्' भी हट कर केवल 'अहम्' ही पूर्ण रूप में रहता है। इस तरह हृदय की स्थूल गति अन्तर्मुखी होने पर दुर्लभ मानव जीवन को परिपूर्ण भी कर सकती है।

हृदय के बारे में भारतीय दर्शन में अनेक अवधारणाएं हैं। वैदिक दर्शन में भी हृदय का वैज्ञानिक विवेचन उपलब्ध है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि ईश्वर को बाहर कहीं ढूंढ़ने का प्रयास मत करो, वह तो हृदय में ही है। जीव आत्मा की स्थिति भी हृदय में ही दीप-कलिका के रूप में वर्णित की गई है। हृदय में 'ह' आकाश तत्त्व का बोधक है और 'य' वायु तत्त्व का। दोनों ही कभी मरते नहीं हैं। 'द' मृत्यु सूचक अनित्य कहा गया है। दोनों ओर से अमृत से ढंके होने के कारण यह भी अमृतमय ही भासित होता है। जब तक व्यक्ति जीवित है, यही सोचता है कि वह कभी नहीं मरेगा। यदि वह मृत्यु को निश्चित मानकर जीने लगे तो कुछ गलत करेगा ही नहीं। सर्वत्र शान्ति छा जाएगी, जो कि माया-भाव के विपरीत है।

इसी प्रकार हृदय के 'ह' को मन का सूचक माना गया है। 'द' को वाक् अथवा सृष्टि (अन्तिम) का सूचक कहा गया है और 'य' को प्राण का प्रतिनिधि कहा जाता है। मन-प्राण-वाक् सदा साथ ही रहते हैं। प्राण सृष्टि में गति सूचक इन्द्र-प्राण की मुख्यता रहती है। यह प्राणों का अधिपति है जो स्थिति (ब्रह्मा) और आगति (विष्णु) के कार्य संचालन में प्रेरणा रूप भूमिका निभाता है। मुख्य प्राण इन्द्र की भोग साधक होने से ही दस इन्द्रियों को इन्द्र के नाम से इन्द्रिय कहा जाता है। एकमात्र इन्द्र ही ऐसा प्राण है जो हृदय को विज्ञानात्मा से जोड़ सकता है। इसका अर्थ है-इन्द्रियों की चेष्टा को बुद्धि तक पहुंचाना। विज्ञान बुद्धि को कहते हैं। बुद्धि का अर्थ है-अवगम-आत्मा द्वारा स्वीकार किया जाना। हमारी क्रिया में पहले इन्द्रियों का स्पर्श (अवग्रह), फिर चेष्टा (ईहा) और अन्त में अवगम। यही हृदय के मूल स्वभाव और कार्य को स्पष्ट करता है।

यहां एक बात समझने की है कि गति का जो स्थूल रूप हमें दिखाई देता है और समझ में आता है वह रूप हृदय में नहीं होता। वहां अति सूक्ष्म रूप होता है। आत्मा अथवा ब्रह्म स्वयं में यद्यपि वायुजनित गति से गतिमान नहीं है; किन्तु कर्म की गति से ही इसका आभास हो सकता है। जिस प्रकार विचारों की गति होती है, सृष्टिविस्तार की गति होती है, वैसी ही हृदय की गति भी होती है। हृदय में गति का प्रवर्तक सूत्र 'सूत्रात्मा' नाम का वायु होता है। प्राण, अपान, समान आदि में से व्यान प्राण ही हृदय की गतिविधियों से जुड़ा

होता है। इसकी पहुंच शरीर के बाहर तक होती है, अत: यह हृदय शरीर में वायु का नियमन भी करता है। व्यान की खुराक जल होती है, जो जीवन का सूचक है। बिना जल (अमृत) के व्यक्ति का मृत होना निश्चित ही है।

आयुर्वेद में एक श्लोक है-

पित्त:पंगु, कफ:पंगु, पंगवङ्ग मलधातव:।

वायुना यत्र नीयन्ते, तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

व्यवहार में मन और हृदय एक लगते हैं। 'सहृदय' एवं 'हार्दिक' जैसे शब्द भी मनवाचक होते हैं। पर, दोनों में थोड़ा भेद है। मन तत्त्व रूप है जो प्राण, वाक् के साथ रहता है, मरता नहीं है। हृदय का 'द' मृत्युसूचक है। वह मन का हेतु नहीं होता। मन में संस्कारों की छाप ही उसे बार-बार विषय की ओर लाती है। कोई परम योगी ही मन को देख सकता है। हमारे यहां कहते हैं-माया मरी न मन मरे, मर-मर गए शरीर।

व्यवहार में मन और हृदय एक सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते हैं। बाहरी अथवा सृष्टिगत स्वरूप को हृदय कहा जा सकता है और भीतरी या अध्यात्म रूप में, ऊर्ध्वगामी रूप में मन हो जाता है। व्यक्ति शान्ति चाहता है; किन्तु अशान्त संसार में ही जीता है। अत:, बाहर क्षुब्ध रहते हुए भी भीतर से शान्त बना रहे, यह सीख गीता में कृष्ण दे रहे हैं। विषाद और अवसाद के मध्य अन्त:शान्त मन ही रह सकता है-हृदय नहीं। हृदय का राजा इन्द्र-प्राण ही मन के द्वारा विज्ञानात्मा तक पहुंचता है। मन सदा भावप्रधान होता है-वहां वासना नहीं होती। वासना के आवरण हो सकते हैं। तब त्रिगुणयुक्त (सत्त्व, रज, तम) मन ही स्थूल हृदय की तरह भासित होता है। हम हृदय को ही मन मान बैठते हैं। डॉक्टर जिसको हृदय कहते हैं, वह तो स्थूल अवयव है, भौतिक रूप में पिण्ड मात्र है। वह पुराने रक्त को ग्रहण करता है और शोधन करके वितरित करता है। उसकी धड़कन का संचालन व्यान वायु करता है। ये ही हरति, द्यति और यच्छति भावरूप हैं।

◆◆◆

वाक्

शब्द ब्रह्म कहते हैं लक्ष्मी और सरस्वती दो बहिनें हैं। यह भी कहते हैं कि दोनों प्रायः साथ नहीं रहतीं। वस्तुतः, दोनों की पहचान के मूल में वाक् है। लक्ष्मी अर्थ-वाक् की और सरस्वती शब्द-वाक् की अधिष्ठात्री है। दोनों के ससुराल अलग-अलग हैं, अतः सदा एक साथ नहीं रहतीं। लक्ष्मी के प्रादुर्भाव का कारण क्षीरसागर का मंथन है। नादमयी सरस्वती सर्वाधार आकाश रूप मौलिक तत्त्व से समुद्भूत है। शब्द गुण आकाश का परिचायक है। ये शब्द की आदिभूत नाद अवस्था ऋतु-भाव में सर्वत्र व्याप्त है-यही सर्जन का मूल है।

लक्ष्मी और सरस्वती के संसार में दो रूप प्रभावित होते हैं- लक्ष्मी और श्री। 'लक्ष्म' चिह्न को कहते हैं। चांदी, सोना, नोट, मुद्रा, अन्न, वाहन, धाम आदि सब लक्ष्मी के स्वरूप हैं। 'श्री' शोभा को कहते हैं। यह आवश्यक नहीं कि दोनों साथ रहें। कहीं भरपूर लक्ष्मी होने पर शारीरिक छवि नाम की शोभा श्री रूप में नहीं होती तो कहीं सीमांत सौन्दर्य श्री रहती है, पर दरिद्रता का घेरा बना रहता है। दोनों की एकत्र स्थिति कहीं-कहीं ही उपलब्ध होती है।

इसी समीक्षण से देखने पर सरस्वती का प्रसार भी दो रूपों में हो रहा है-शब्द तथा नाद। नाद का क्षेत्र मानस है। यह मध्यमा वाक् है, इससे ही शब्दमयी स्थूल वाक् का प्रादुर्भाव होता है। शब्द की गति पर्याप्त-व्यापक व्यक्त भाव में होने पर भी सीमित ही रहती है, जबकि अव्यक्तनाद की गति सतत् रहती है। मानस विचारधारा को नियमित करना तो अभ्याससाध्य ही हो पाता है, नैसर्गिक नहीं। यदि शब्द, मन, ध्याता और ध्येय एक हो जाएं तो वहां लक्ष्मी और सरस्वती दोनों को साथ-साथ देखा जा सकता है।

शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहां शब्द से सृष्टि उत्पन्न होती रही है। वहां मंत्रोच्चार से, यज्ञों से अनेक वस्तुओं का, शक्तियों का, यहां तक कि मानव शरीर का प्रकटीकरण हुआ है। एक को दूसरे में परिवर्तित भी किया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो भी स्पष्ट होगा कि शब्द में तरंगें होती हैं। इन्हीं तरंगों के आधार पर रेडियो से आवाज सुन पाते हैं, टेलीफोन पर वार्तालाप हो पाती है। इसी प्रकार हर तरंग की एक निश्चित लम्बाई (वेव-लेंथ) होती है। हर तरंग का अपना एक रंग होता है। उसका अपना प्रभाव होता है। हमारे यहां जप द्वारा इच्छित प्रभाव को पैदा किया जाता है। एक ही रंग

की तरंग का सघनतम स्वरूप पैदा किया जाता है जो हमारे आभा-मंडल को पार करता हुआ शरीर को प्रभावित करता है। शब्द के साथ जब मन जुड़ जाता है, ध्येय जुड़ जाता है, तो सब एक हो जाते हैं। यही तप, जप और ध्यान के स्वरूप बनते हैं। इसी से ध्याता स्वयं ध्येय बनता है। इसीलिए कहा गया है कि ज्ञानपूर्वक किया गया कार्य, पूर्ण मनोयोग से किया गया कार्य ही ऐश्वर्य का मूल है। इसी स्थिति में लक्ष्मी और सरस्वती को हम एक साथ देख सकते हैं।

शब्द प्राणवान् होते हैं, गतिमान् होते हैं। प्राणों का कार्य ही गति प्रदान करना होता है। सक्रियता, चंचलता प्राणों का ही कार्य है। प्राण-शक्ति का निर्माण होता रहे, हम गतिमान् बने रहें, इस हेतु जप किया जाता है। इच्छा-शक्ति और मनोबल के सहारे ही हम इस यात्रा को तय कर सकते हैं। किन्तु; प्राण-शक्ति भी स्वयं में कुछ नहीं है। यह तो साधन मात्र है। इसकी ऊर्ध्वगति और अधोगति हमारे ध्येय पर निर्भर है इसलिए चित्तवृत्तियों का निरोध जरूरी होता है। चित्तवृत्ति निरोध से एकाग्रता बढ़ती है, चंचलता कम होती है, ध्येय स्पष्ट होता है। शब्द का बाहरी स्वरूप ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अवस्थाओं में धीरे-धीरे अन्तर में प्रवेश करता है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतम होता जाता है और क्रमशः मौन में परिवर्तित होता जाता है।

वाणी के संयम को मौन कहते हैं। व्यवहार में यह मौन कई प्रकार का होता है। घर में कोई आदमी कुढ़कर किसी से नहीं बोलता, यह भी मौन है; किन्तु यह साधक न होकर बाधक मौन है। आत्मचिंतन निमित्त जो मौन होता है, उसमें देवभाव की प्रधानता रहती है। वह अभ्यास साध्य है। यह स्मरण रहे कि मुंह से बोला गया शब्द ही शब्द नहीं होता, शरीर का कोई संकेत, कोई खास प्रकार की चेष्टा, खास प्रकार से नेत्र के निमिष-उन्मेष-ये भी शब्द का काम करते हैं। वास्तविक मौन में इन सबका निरोध भी किया जाता है। महाकवि कालिदास ने 'सत्यायमितभाषिणाम्' लिखा है-रघुवंशी सत्य बोलने के लिए थोड़ा बोलते थे। यह सत्य है कि सत्य बोलने वाले को अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह स्वभावतः मितभाषी होता है। यह साधना भी मौन साधना ही मानी जाती है। गहरे साधक इस मौन को केवल शब्दपरक नहीं रखते, वे प्रत्येक इन्द्रिय को मौन भाव में ले जाते हैं। किसी भी इन्द्रिय को अपने विषय में प्रवृत्त नहीं होने देना ही तो मौन है।

उपासना में मौन का अपना विशेष महत्त्व है। मौन में शब्द की स्थिति तो है, सम्प्रेषण भी हो रहा है, केवल उच्चारण नहीं होता है। मौन का अभ्यास चित्तवृत्ति निरोध में प्रमुख भूमिका निभाता है। मौन के बिना चिन्तन सम्भव नहीं है। बोलने से व्यक्ति की शक्तियों का ह्रास होता है, उसकी चिन्तन क्षमता घटती है। चंचलता बढ़ती है, मन एकाग्र नहीं हो पाता। बोलना स्वयं में ही चंचलता है। मन को बिना चंचल किए शब्द नहीं फूट सकता।

बोलना अपने आप में चंचलता है, क्योंकि बोलने के बाद प्रतिक्रियास्वरूप चंचलता का लम्बा काल बना रहता है। चिन्तन का मार्ग बंद रहता है। मन का भटकाव बना रहता है, एकाग्रता टूट जाती है, ध्येय विस्मृत हो जाता है।

शब्द की शक्ति का परिचय ही मौन कराता है, अर्थात्-लम्बे काल के मौन के बाद, जो प्रथम शब्द निकलते हैं वे सत्य होते हैं। ऐसा प्रत्यक्ष देखा गया है। सबसे पहले तो मौन करते ही मन का अहंकार गलित हो जाता है। व्यक्ति को स्वयं के बारे में कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रह जाती जिससे अहंकार का पोषण हो। वाद-विवाद और प्रतिक्रियाओं का जाल भी छिन्न-भिन्न होता जाता है। इन्द्रियों के अनुभव केवल चिन्तन के विषय बनकर रह जाते हैं। मन शान्त व एकाग्र हो जाता है। शब्द का सूक्ष्म नाद में प्रवेश ही निर्विकार होने का प्रथम सोपान है। यही चित्तवृत्तियों के निरोध की प्रारम्भिक अवस्था है। यही निर्विकार होने का मार्ग है। यह धर्म-ज्ञान-वैराग्य ही व्यक्ति को ऐश्वर्य से साक्षात् कराता है। मौन ही आत्मा की आत्मा से बात कराता है, प्राण शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाए रखने का वातावरण बनाता है। लक्ष्यपूर्वक किया गया अन्तर्वाचिक ध्यान ही ध्येय से एकाकार कराता है।

शब्द और वर्ण भाषा जीवन को वैज्ञानिक स्तर प्रदान करती है। भाषा जीवन की दिशा तय करती है। भावनाओं का एक वातावरण मन में तैयार करती है। यह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। बाहर भी कार्य करती है और भीतर भी। शब्दों के योग से तैयार होती है। शब्द अक्षरों के योग से बनते हैं। अक्षर बिना व्यंजन और स्वर के बन नहीं सकते। कोई भी क्रिया प्राणों के योग के बिना पूर्ण नहीं होती। शब्द के साथ अर्थ जुड़ा होता है। अर्थ के साथ ज्ञान बंधा रहता है। ज्ञान ही प्राणों की सहायता से कर्म रूप में बदलता है। ज्ञान और कर्म का संतुलन ही जीवन की सुखद अवस्था है। ज्ञान ब्रह्म का स्थूल रूप है और कर्म प्रकृति का। दोनों ही सर्वत्र व्याप्त हैं। शब्द के साथ ध्वनि जुड़ी है। ध्वनि के साथ प्रकम्पन होता है। प्राण इसको गति प्रदान करते हैं। गतिमान तत्त्व रजोगुणप्रधान होता है। ज्ञान सत्त्वप्रधान। प्रलयकाल में माया सुप्त अवस्था में रहने से सर्वत्र ब्रह्म का ही विस्तार रहता है, सम्पूर्ण आकाश में। इसमें नाद की भी अति सूक्ष्म अवस्था रहती है। नाद ही तो आकाश की तन्मात्रा है। ऋषि प्राण रहते हैं। ये मूल प्राण कहे गए हैं। इनके सूक्ष्म गतियुक्त कार्य चलते रहते हैं। कालान्तर में, माया के जाग्रत होने पर, यही नाद प्राणों के सहयोग से बिन्दु भाव में आता है। इसी से अव्यय और अक्षर संस्था का निर्माण होता है। ब्रह्म और प्रकृति (माया) का संयोग नित्य होता है। अतः शब्द नित्य है। ध्वनि और अर्थयुक्त है। इसका क्षरण नहीं होता; अतः अक्षर है। इसे वर्ण भी कहते हैं।

जब कुछ नहीं था, तब आकाश था। निश्चित है, सृष्टि का मूल आधार आकाश ही है। इसकी तन्मात्रा नाद है। अतः ध्वनि इसमें सदा व्याप्त रहती है। दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। ध्वनि की गति प्राणों से होती है। उत्पत्ति और गति दोनों के लिए स्थान, आकाश या अवकाश की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए हमारे शरीर में भी आकाश की स्थिति रहती है। ज्ञानेन्द्रियों के कार्य सूक्ष्म होते हैं, कर्मेन्द्रियों के अपेक्षाकृत स्थूल। फिर भी आकाश तो दोनों को ही चाहिए। आकाश से वायु की उत्पत्ति है और वायु से अग्नि की। अग्नि से जल और जल से पृथ्वी। ये पांचों महाभूत, स्थूल रूप में हमारे शरीर का निर्माण करते हैं। आत्मा आगे चलकर इनसे जुड़ता है।

ज्ञानेन्द्रियों का संचालन शिरोगुहा से होता है। इसका नियंत्रण केन्द्र भ्रू-मध्य होता है। किन्तु यहां भी सूक्ष्म गतियां ब्रह्मरंध्र से संचालित होती हैं। यहां आकाश-नाद-प्राण आदि सभी सूक्ष्म स्तर के होते हैं। पांचों कर्मेन्द्रियों एवं शरीर के अन्य अवयवों का संचालन विभिन्न गुहाएं करती हैं। यथा-उरो गुहा, उदर गुहा एवं वस्ति गुहा। यहां की गतिविधियां अपेक्षाकृत स्थूल होती हैं। पृथ्वी तत्त्व की स्थिति मूलाधार पर मानी जाती है। स्वाधिष्ठान जल का, मणिपूर अग्नि का, अनाहत वायु का और विशुद्धि चक्र आकाश का केन्द्र है।

अतः, ध्वनि का शब्द-रूप प्राकट्य भी गले से ही होता है। अक्षरों का निर्माण गले से ऊपर की ओर, व्यंजनों की पृष्ठ-भूमि गले के नीचे रहती है। नाभि को विसर्ग का स्थान कहा गया है। कण्ठ को 'अ' का। नाभिस्तर से विसर्ग-रूप उठकर व्यंजन-रूप ध्वनि कण्ठ में 'अ' से मिलते ही वर्ण/अक्षर बन जाते हैं। अतः विसर्ग और 'अ' स्वभाव में विरोधाभासी हैं। इसलिए जो भी अक्षर 'अ' से बनते हैं, वे अपना एक अर्थ रखते हैं। इनमें विसर्ग या 'ह' (पूर्ण विसर्ग) मिलते ही विरोधी अर्थ वाले बन जाते हैं। इस दृष्टि से हमारी वर्णमाला पूर्ण रूप से वैज्ञानिक भाव लिए हुए है। इसके बाहर यदि कोई अक्षर स्वतंत्र है तो वह अनुस्वार है। अनुस्वार की ध्वनि नाक से निकलती है। सभी वर्ण गले में एक क्रम से आगे बढ़ते हैं। कोई भी दो वर्ण एक स्थान से नहीं निकलते। कुछ तो आगे-पीछे होते ही हैं। इसी तरह गले से होंठ तक क्रम बनता है।

वर्णमाला के सभी व्यंजन योनि रूप माने गए हैं। स्वरों की सहायता से शब्द-सृष्टि होती है। वर्णमाला की हर लाइन में 5-5 अक्षर होते हैं पांचों अक्षर एक क्रम में आगे बढ़ते हैं। अन्तिम (5 वां) अक्षर 'नहीं' का बोध कराने वाला होता है।

श, स, ष क्रमशः 'ह' के स्वरूप का उत्तरोत्तर बोध कराते हैं। य, र, ल, और व स्वर का 'अ' के साथ योग होने से बनते हैं। अ+इ=ए, इ+अ=य, ऋ+अ=र, अ+ए=ऊ, ए+अ=व, लृ+अ=ल। यह उदाहरण बताता है कि वर्ण के पहले या बाद में 'अ' लगने से अर्थ विरोधाभासी हो जाते हैं। बिना वर्णमाला की उत्पत्ति का अध्ययन किए हम शब्दों के

अर्थ और ज्ञान तक नहीं पहुंच सकते। यही कारण है कि आज हमारी अधिकांश शब्दावली के अर्थ पर हमारी आंख पड़ती ही नहीं है। एक से अधिक जानने की परम्परा लुप्तप्राय होने लगी है। फिर शास्त्रों के ज्ञान तक कैसे पहुंच पाएंगे? उदाहरण के लिए बकरी में शब्द हैं- ब+क+र+ई। ब=प्रवेश, क=शक्ति, र=देना, ई=गति। शक्ति के बढ़ाने में गति प्रदान करने वाली। भाषा-भ+आ+ष+आ। भ=प्रकट करना, आ=पूर्ण रूप में, ष=प्रकाश, आ=पूर्ण रूप में। भाषा का अर्थ पूर्ण रूप में प्रकाश प्रकट करना। वर्ण शब्द का अर्थ-व+र+ण। व=पूर्णतया भिन्न, र=रंजित करना, देना, ण= ध्वनि। शब्द को पूर्णतया भिन्न स्वरूप में प्रकट करना।

सभी व्यंजन अकार के सहयोग से ही वर्ण बनते हैं। अत: अकार पूर्णता का सूचक है। 'अकारो वासुदेव:' कहा गया है। सृष्टि का पालक है। जब भी कोई व्यंजन नाभि से उठकर गले तक आता है, तब 'अ' से जुड़ता है। विसर्ग पुन: नाभि की ओर धकेल दिया जाता है। ध्वनि तरंगों की इस वैज्ञानिकता के कारण ही हमारे यहां मंत्रों की रचना हुई। मंत्र शास्त्रों का निर्माण हुआ और शरीर में होने वाले सूक्ष्म स्पंदनों का आकलन हुआ। वाक् सृष्टि के बीच तारतम्य पर इतना कार्य संभव हो पाया। यह किसी भी उपकरण की सहायता से संभव नहीं था।

हमारे जीवन का सारा यथार्थ स्पंदन में निहित है। हर शब्द का स्पंदन होता है। स्थूल का भी और सूक्ष्म का भी। स्थूल ही सूक्ष्म बनकर भीतर प्रवेश करता है। हमारा मन भी सूक्ष्म है। उसके आगे बुद्धि भी सूक्ष्म है। आत्मा और भी सूक्ष्म है। इन सबका अपना-अपना आकाश है। इनके स्पंदन इन्हीं आकाशों में प्रवाहित होते हैं। सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म प्राण ही सूक्ष्म गति का कारण बनते हैं। जहां केवल आकाश है, वहां शब्द और प्राण भी पकड़ में नहीं आते, सूक्ष्मता के कारण। एक अन्य तत्त्व भी इन सारी गतिविधियों को प्रभावित करता है। वह प्रकृति है- सत्त्व, रज और तम। शब्द के साथ आकाश और प्राण प्रकृति के आधार पर ही योग करते हैं। व्यक्ति किसी मंत्र का जाप करता है, तब स्पंदन पैदा होते हैं। वाचिक (बोलकर), उपांशु (गुनगुनाकर) या मानस (मौन) जप करता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है। शब्दों का स्वरूप एवं उनके बीच का आकाश घटता जाता है। यह तरंगें आकाश को तरंगित करती हैं। आकाश ही ब्रह्म का पर्याय भी है। ब्रह्म में स्पंदन होते हैं। ये मन तक पहुंचते हैं। मन इनको बुद्धि के पास भेजता है। बुद्धि निर्णय करती है और फिर मन को लौटाती है। स्पंदन पूरे आकाश में छा जाते हैं। सब ब्रह्ममय होता जान पड़ता है। यहीं से शब्द के अर्थों में ब्रह्मज्ञान प्रकट होने लगता है। प्रज्ञा-ऋतंभरा जाग्रत होने लगती है। शब्द स्वयं ब्रह्म में लीन हो जाता है। यानी शब्द ब्रह्म हो जाता है। सब तरफ आनन्द ही आनन्द। केवल प्रकाश रूप, जिसका रंग व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है।

शब्द-शक्ति हमारे जीवन-व्यवहार का अभिन्न अंग है-शब्द। इसके बिना जीवन-व्यवहार का आदान-प्रदान बहुत सीमित हो जाता है। प्रश्न उठता है क्या शब्द की महत्ता केवल सम्प्रेषण ही है, क्या व्यवहार बनाए रखने तक ही है? आचार्यों ने जितना महत्त्व शब्द का बताया है, उससे कहीं बड़ा मौन का महत्त्व भी बताया है। क्या मौन में शब्द लुप्त हो जाते हैं? हर देश की अपनी भाषा और हर भाषा की अपनी वर्णमाला होती है। क्या वर्णमाला का उद्देश्य मात्र भाषा का स्वरूप तय करना ही होता है? जीवन में शब्द को ही मंत्र के रूप में पूजा जाता है। इनके पीछे कौन-सा सिद्धान्त है?

हमारी सृष्टि वाक्-सृष्टि है। अव्यय वाक् से यह सृष्टि पैदा होती है। अव्यय गो-लोक के अधिष्ठाता श्रीकृष्ण हैं। अव्यय का मन अथवा श्वोवसीयस मन इसके केन्द्र में है जो सब में है। स्मरण रहे कि वेद में मन शब्द का संकेत केवल अव्यय पुरुष की पांच कलाओं में ही आया है, अक्षर या क्षर पुरुष की कलाओं में मन का नाम नहीं है। इन दोनों पुरुष भावों में अव्यय पुरुष का मन ही प्रतिबिम्बित होता है। मन, प्राण, वाक् एक साथ रहते हैं। वाक् के दो रूप होते हैं-एक अर्थवाक्, जिसकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी और दूसरा शब्दवाक्, जिसकी अधिष्ठात्री महासरस्वती हैं। वैदिक मंत्रों की सहायता से यज्ञ द्वारा इच्छित वस्तुएं प्राप्त करना हमारे पुराणों में बार-बार स्पष्ट किया गया है। आज भी इच्छापूर्ति के लिए मंत्र सिद्धि का प्रचलन उतना ही बड़ा है। चारों ओर इसे देखा जा सकता है। एक से दूसरे की प्राप्ति अथवा एक या दूसरे में रूपान्तरण हो सकता है। मूल में दोनों एक ही हैं।

सृष्टि की आदि में शब्द का मूल आधार नाद को माना गया है। वही ब्रह्म के रूप में स्थापित है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चारों वाक् की स्थितियाँ अथवा स्वरूप हैं। हमारी भाषा, बोलचाल की भाषा वैखरी कहलाती है। वैखरी शब्द का स्थूल स्वरूप है जो लौकिक व्यवहार का कारण बनता है। स्थूल शब्द के भेदों को अनेक श्रेणियों में बांटा गया है। उदात्त, अनुदात्त और त्वरित भेदों से शब्द के उच्चारण को सात स्वरों में बांटा गया है।

शुद्ध सात्त्विक भाव का शब्द मंत्र कहलाता है। मनन करने से त्राण अथवा रक्षा करने वाले शब्द को मंत्र कहते हैं। मंत्र के अभ्यास से मलिनता से होने वाले दोषों से मुक्ति मिलती है और सात्त्विक भाव पैदा होते हैं। मंत्र के जप को उच्चारण के अनुसार वाचिक, उपांशु और मानस की तीन श्रेणियों में बांटा गया है। जिस जप में शब्द स्पष्ट उच्चारणपूर्वक ध्वनि के साथ सुनाई दे, उसे वाचिक कहते हैं। जिसमें शब्द तो सुनाई नहीं देता; किन्तु होठ हिलते हुए नजर आते हैं, उसे उपांशु कहते हैं और अर्थज्ञानपूर्वक मन से ही किया जाने वाला जप मानस जप कहलाता है।

जो कुछ सृष्टि में है वह सब हमारे शरीर में भी वैसा ही है। इसके अनुसार वाक् के चारों रूप-परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हमारे शरीर के भीतर भी हैं। परा वाक् का स्थान मूलाधार है। हमारी सभी अभिव्यक्तियां मूलाधार से ही उठती हैं। सारे अनुभव हमारी स्मृति में मूलाधार से होकर अंकित होते हैं। शब्द की उत्पत्ति वर्णों से होती है। कुछ लोग वर्णों की संख्या तिरसठ मानते हैं, कुछ चौंसठ; वर्ण की उत्पत्ति नाद से है। नाद अव्यक्त होता है जबकि वर्ण व्यक्त होता है। नाद ही प्रकाश पैदा करता है। इसी का नाम स्फोट है। आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को लेकर मन के साथ बोलने की इच्छा से युक्त होती है (परा वाक्)। मन शरीर की अग्नि में आघात करता है। यह आघात वायु को प्रेरित करता है (पश्यन्ती), इससे वक्षस्थल में स्वर की उत्पत्ति होती है (मध्यमा) और कण्ठ से वैखरी नामक शब्द प्रकट होता है।

इसी को विपरीत क्रम में देखें तो वाचिक, उपांशु और मानस जप कण्ठ से वक्षस्थल और वक्षस्थल से नाभि की ओर जाते प्रतीत होते हैं। यही अभ्यास क्रमश: व्यक्ति को मूलाधार में प्रवेश कराता है, जहां परावाक् का आसन है। इसी को कुण्डलिनी कहते हैं। ज्ञान, भक्ति, जप आदि किसी भी मार्ग से अभ्यास के द्वारा इस प्रकाश तक पहुंचा जा सकता है। शब्द सबसे सरल मार्ग प्रतीत होता है। मंत्र के अनुसार इसे साधा जा सकता है। उसे विशेष ज्ञान के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता नहीं होती। केवल आस्था चाहिए। व्यक्ति मंत्रों द्वारा परावाक् का विकास करता है। जैसे-जैसे वाक् की सूक्ष्म अवस्था आती है, उसे नाद कहते हैं। यही नाद आगे स्थूल होकर शब्द बन जाता है। इसी क्रम में परावाक् भी आवृत होती चली जाती है। माया अथवा अज्ञान का तारतम्य बढ़ता जाता है।

जिस प्रकार घट, कलश और कुम्भ के अर्थ समान होते हैं, उसी प्रकार देवता, मंत्र और गुरु भी एक ही होते हैं। ये अभेद भी कहे गए हैं और नित्य भी। मंत्रों के उच्चारण से पूर्व ऋषि, छंद और मंत्र का देवता विनियोग में याद किया जाता है। अशुद्धि के कारण अनर्थ होना भी स्वाभाविक माना गया है। इसी प्रकार केवल सात्त्विक मंत्र ही साधना की सृष्टि से अथवा जीवन विकास के लिए उपयुक्त माने गए हैं। विशेष इच्छापूर्ति के लिए राजस और तामस मंत्रों का उपयोग परिस्थिति के अनुरूप किया तो जाता है; किन्तु उसको उचित नहीं माना जाता। ऐसे मंत्रों के उपयोग के साथ-साथ प्रायश्चित का भी विधान है।

शब्द कितना महत्त्वपूर्ण है यह मंत्र-शास्त्र से बहुत अच्छी तरह जाना जा सकता है। इसी से मितभाषी होने का प्रभाव भी समझ में आ जाता है। मितभाषण ही सत्य बोलने का आधार बनता है। शब्द के माध्यम से अनन्त ऊर्जाओं का क्षरण भी होता है। इस क्षरण को मितभाषण से बचाया जा सकता है। मंत्र में मूल रूप से छ: बातें देखने को मिलती हैं- मंत्र के उच्चारण की रीति छन्द से, मंत्र के आविष्कर्ता का परिचय ऋषि से तथा इष्ट फल

देने वाले देवता का ज्ञान मंत्र एवं ध्यान से प्राप्त होता है। मंत्र का मूल तत्त्व संक्षिप्त रूप से बीज में होता है। विरोधी प्रभावों को रोकने के लिए कीलक का प्रयोग होता है। अत: छन्द, ऋषि, देवता, बीज, कीलक और शक्ति मंत्रों के साथ होते हैं। चैतन्य शक्ति होकर ही मंत्र देवता का साक्षात्कार करवाता है।

शब्द-शक्ति का ज्ञान ही शब्द की शक्ति का सहचर है। ज्ञान का व्यञ्जक माना है-शब्द को। शब्द का अर्थ से संबंध है, अर्थ का ज्ञान से। ज्ञान से इच्छा और इच्छा से प्राण और प्राण की क्रिया शक्ति के द्वारा वाग्रूप आनन्द-भाव प्रकट करता है। इसीलिए हमारी वर्णमाला सृष्टि के साथ पूर्ण समन्वय रखने वाली, पूर्ण वैज्ञानिक वर्णमाला है। नाद से अक्षर, शब्द व मंत्र और मंत्र से नाद तथा नाद से लय तक शब्द ही कार्य करता है।

ध्वनि श्रवण हमारी अतीव शक्तिशाली इन्द्रिय है। सुनी हुई बात यदि मन में घर कर जाती है तो बरसों तक हमारे कान में गूंजती रहती है। सुनी हुई बात की प्रतिक्रियाएं भी लम्बे समय तक हमारे मानस में चलती रहती हैं। हम चलते-फिरते भी अपने वातावरण से कई प्रकार की ध्वनियां, शब्द अथवा नाद ग्रहण कर लेते हैं।

संगीत का आधार भी ध्वनि है और शब्द का आधार भी ध्वनि ही है। सच पूछो तो सृष्टि का आधार भी ध्वनि या नाद ही है। इसका रहस्य हमारी वर्णमाला में छुपा हुआ है। हमारी वर्णमाला एक विशेष सिद्धान्त पर आधारित है। इसीलिए हमारे मंत्रों का भी महत्त्व है। मंत्रों का महत्त्व शब्दों के गठन से नहीं है, भाषा से नहीं है, अपितु उनके उच्चारण से होने वाले 'नाद' से है। यह नाद ही प्रभावशाली तत्त्व है। हमारे शरीर में अनेक प्रकार के नाद सुनाई पड़ते हैं। एक नाद होता है जो दो या अधिक चीजों के टकराने से होता है। आमतौर पर इसी को ध्वनि की संज्ञा दी जाती है। एक नाद स्वत: ही होता है, जिसे 'अनाहत' नाद के रूप में जाना जाता है।

नाद आकाश का गुण होता है। नाद वाक्-संसार का उत्पादक कहलाता है। इसीलिए वाक्देवी सरस्वती इसकी अधिष्ठात्री है। वाक् में तो अर्थवाक् भी आता है, जो यह सिद्ध करता है कि शब्द से ही अर्थ की उत्पत्ति होती है। दोनों एक ही हैं, केवल स्वरूप की भिन्नता है। हमारे शरीर में अनेक चक्र हैं या शक्ति के केन्द्र हैं, जो वातावरण से ऊर्जा ग्रहण करते हैं और हमारे शरीर, मन और बुद्धि को चलाते हैं, हमारा संबंध सृष्टि से बनाए रखते हैं। इनको भी वर्णमाला के अक्षरों में ही विभाजित किया गया है।

सभी ध्यान और साधना पद्धतियों के मूल ध्वनि, नाद और बिन्दु हैं। नाद ब्रह्म को कहा जाता है, बिन्दु माया को। व्यक्ति आत्मा की खोज में बिन्दु के माध्यम से इसी नाद-ब्रह्म में लीन हो जाता है। ध्वनि के साथ ही शरीर में स्पंदन शुरू होता है। यह स्पंदन ही

अपना प्रभाव मन पर डालता है। मन इन्द्रियों का राजा है। हर इन्द्रिय अपने प्रभाव को प्राणों के द्वारा मन तक ले जाती है। अच्छा-बुरा लगना तो मन का स्वभाव है। मन की इच्छा शक्ति ही स्मृति का आधार भी बनती है। यही स्मृति उसकी कल्पना का आधार होती है। यदि आपकी स्मृति में कोई ज्ञान नहीं है तो मन में इच्छा कैसे उठेगी? इच्छा ही मन के लिए बीज का कार्य करती है। स्पंदन को समझने के लिए ध्वनि को समझना होगा। स्पंदन हमारे नित्य परिवर्तन का कारण बनते हैं, अत: इनका कौन-सा स्वरूप ग्रहण करने योग्य है और कौन-सा ग्रहण नहीं किया जाए, इसका चिन्तन करना हितकर होगा। आज हम रेडियो, टेलीविजन अथवा टेप से कुछ भी सुन लेते हैं। जाने-अनजाने ही ये स्पंदन हमारा व्यक्तित्व बदल डालते हैं।

हम प्रकम्पनों का जीवन जी रहे हैं। शरीर के भीतर प्रकम्पन ही तो भरे हैं। शरीर की तरंगें, श्वास की तरंगें, विचारों की तरंगें, ध्वनि की तरंगें। हम तरंगों का ठीक उपयोग करें। उनकी शक्ति का, अर्थात्-ध्वनि की शक्ति का उपयोग सीखें। जब ध्वनि की तरंगें मन के साथ जुड़ जाती हैं, श्वास और संकल्प इन तरंगों के साथ जुड़ जाते हैं, तब ध्वनि एक बड़ी शक्ति के रूप में दिखाई देती है। शब्द की सिद्धि आस्था की शुद्धि से होती है। आस्थाहीन शब्द शक्ति-शून्य होते हैं। शक्तिमान क्या नहीं कर सकते?

आज तो पाश्चात्य विद्वानों ने संगीत को अनेक श्रेणियों में बांट दिया है। इसके विविध रूप हमारे सामने रख दिए; किन्तु क्या ये रूप हमारे लिए हितकर हैं? यही हाल हमारे सिनेमा के संगीत का भी है। हम एक ही गाने को सालों तक गाते रहते हैं। कालान्तर में वह गायन लुप्त हो जाता है; किन्तु चिरकाल से चले आ रहे भारतीय संगीत के नादमय आकर्षण आज भी सभा को स्तब्ध करने में समर्थ हैं। संगीत का प्रभाव शरीर के अलग-अलग चक्रों को उत्तेजित करता है। इसी के अनुरूप हमारे शरीर में ऊर्जा पैदा होती है और हमारे विचारों का मार्ग प्रशस्त करती है। आज तो कुछ संगीत ऐसे भी आ गए हैं जो मूलाधार से सहस्रार तक के सभी चक्रों को क्रमश: उत्प्रेरित करते हैं। ये साधकों के लिए विशेष उपयोगी हैं। किन्तु; अधिकांश संगीत हमारे शरीर-तंत्र को ही प्रभावित करता है। मन तक उसकी पहुंच नहीं होती। मंत्र का नित्य जाप भी इसी क्रम में देखा जाना चाहिए। ध्वनि या शब्द का ज्ञान हमारे ज्ञान की अनेक खिड़कियों को खोलता है।

◆◆◆

स्पंदन

माया भाव को समझने की दृष्टि से कश्मीर में बहुत कार्य हुआ है। शैव और शाक्त परम्पराएं इस विषय का गहन चित्रण प्रस्तुत करती हैं। स्पन्दकारिका, प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, शिवसूत्र विमर्श, तंत्रालोक अनेक सिद्धान्त ग्रन्थ विश्व को दिए हैं। इसमें माया का अच्छा विवेचन मिलता है।

जैसा कि ब्रह्म का विवेचन ब्रह्मविज्ञान और ब्रह्मसिद्धान्त में मिलता है। दोनों की वैज्ञानिकता स्पष्ट झलकती है। जिस प्रकार ब्रह्म को पुरुष रूप में पांच-पांच कलाओं का बताया है, माया को यहां भी पांच-पांच कलाओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है। पं. मधुसूदन ओझा जी ने अक्षर (वर्ण) को भी पथ्यास्वस्ति में पांच-पांच कलाओं के रूप में ही प्रतिपादित किया है। इसके बिना विज्ञान भाव की पुष्टि कर पाना कठिन होता। ब्रह्म और माया की इन व्याख्याओं को संक्षेप में जान लेना उचित होगा।

ब्रह्म को पदार्थ कहें, तो उसकी स्वातंत्र्य शक्ति को ऊर्जा कहेंगे। यह ब्रह्म से अलग नहीं है। ब्रह्म का क्रियात्मक पहलू ही है। माया का यह रूप भी पंचमुखा है। चित्त, निवृत्ति, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। अव्यय पुरुष की पांच कलाओं में आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् हैं।

शब्द भेद के भीतर दोनों एक रूप दिखते हैं। माया के द्वारा ही आगे फिर पांच कलाओं का विकास होता है-कला, विद्या, राग, काल और नियति। पुरुष भाव में अव्यय के आगे अक्षर पुरुष की पांच कलाएं- ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम होती हैं। हमें यह समझ में आ जाना चाहिए दोनों साथ-साथ रहते हैं।

कला का कार्य स्वातंत्र्य शक्ति को संकुचित करना, कर्तृत्व को सीमित कर देना है। विद्या बुद्धि को सीमित करती है। कर्म जाल की विवेचना का सीमित अधिकार देती है। राग में राग और द्वेष (आसक्ति), काल से समय गणना और नियति से कार्य- कारण भाव सुदृढ़ता तय होती है। वास्तव में तो यही विज्ञान भाव है।

आधुनिक विज्ञान भी तो कार्य-कारण भाव पर ही टिका है। माया आगे चलकर पंच तत्त्वों के साथ जुड़कर छ: कंचुकों का अन्तरंग आवरण आत्मा का बनाती है। देह-प्राण-इन्द्रियां मिलकर बहिरंग आवरण बनाती हैं। यही आत्मा के पुर्यष्टक भी कहे जाते हैं। तब वहां इनको मन-बुद्धि-अहंकार के साथ देखा जाता है। यह आवरित आत्मा ही पुरुष है।

ज्ञान, क्रिया रूप है-प्रमाता है। इसी में त्रिगुण के कारण संकल्प-विकल्प उठते हैं।

जब तक नहीं थमता प्रवाह तब तक नदी है। तब तक समुद्र में लीन हो जाने की संभावना है। पीछे छूटा हुआ घाट फिर नहीं आता लौटकर, अतीत की तरह। न अतीत में स्पंदन है, न ही अनागत में। स्पंदन यदि है, तो बस वर्तमान में। स्पंदन जीवन को वर्तमान में बनाए रखता है। वर्तमान से ही हमारा भविष्य निकलता है। जिस प्रकार अतीत से वर्तमान बना है।

स्पंदन में प्रसार और संकोच दोनों हैं। इसी को ब्रह्म और माया का रूप कहते हैं। प्रसार रूप ब्रह्म है और माया संकुचन भाव का प्रतीक। अर्द्धनारीश्वर भी यही है। इसी में पुरुष एवं प्रकृति का स्वरूप अन्तर्निहित है। पुरुष और प्रकृति का तारतम्य भी स्पंदन से ही है। जीवन की प्रत्येक क्रिया का आधार स्पंदन है।

विश्व के सारे निर्माण और संहार स्पंदन से होते हैं। जब कुछ नहीं था तो आकाश तो था ही। आकाश की तन्मात्र नाद, नाद का स्पंदन तो थे ही। इन स्पंदनों को जीवन में देखते जाना, इनसे एकाकार होते जाना ही जीवन को समझने का मार्ग है। जीवन के द्वैत से गुजरते हुए अद्वैत की ओर अग्रसर होते रहना ही मूल में विकास है। इस बारे में अनेक ग्रन्थों में अनेक धाराओं और धारणाओं का प्रतिपादन मिलता है। सम्प्रदायवाद के प्रभाव से गुरु निर्दिष्ट मत ही चर्चा में रहता है।

प्रस्तुत लेखन में किसी भी मत का समावेश नहीं है। जैसा मुझे गुरुदेव ने पढ़ाया, जैसा मैं समझ पाया और याद रख पाया, वही अपनी भाषा में पाठकों के समक्ष रख दिया। आने वाली पीढ़ियां हो सकता है वेद-पुराण-गीता न पढ़ें। इस देश की मातृ भाषा तो पढ़ेगी ही। सारा ज्ञान यदि उसको उसी की भाषा में मिल जाता है एवं बिना ऋचाओं और सूत्रों में उलझे यदि सारांश समझ में आ जाता है, तो भी वह सुख से अपना जीवन यापन कर लेगा। हर पहलू का व्यावहारिक पक्ष उसके सामने होगा। उसकी अपनी क्षमता सामने होगी। या तो परिस्थितियों को बदलने का प्रयास करेगा, या उनको स्वीकार कर लेगा। 'मानस' के अनुभवों में से ही स्पंदन प्रकट हुआ। बीज तो गुरु स्वयं बो कर गए थे।

ब्रह्म स्वयं में स्वतंत्र है। इस स्वतंत्रता को ही शक्ति या चेतना कहा जाता है। यह स्पन्द रूप में, अहं-विमर्श रूप में, प्रसार संकोच रूप में जानी जाती है। स्पन्द का अर्थ किंचित चलन अथवा अति सूक्ष्म गति होता है। यह गति भीतर-बाहर दोनों ओर बनी रहती है। सृष्टि काल में ब्रह्म की शक्ति की ओर संकल्प रूप उन्मुखता कही है। इसी को तंत्र में उन्मेष निमेष कहते हैं; किन्तु शक्ति तो नित्य जाग्रत है। इसका उदय और अस्त भाव नहीं होता। संकल्प के कारण इसका स्वरूप उच्छलनात्मक है। ज्ञान और क्रिया को ब्रह्म के दो धातु माना है। ज्ञान को प्रकाश तथा विश्वरूप को विमर्श संज्ञा है। बोध गगन को शिव तथा

उसके हृदय को शक्ति का रूप माना जाता है। शाक्त परम्परा मानती है कि ब्रह्म के भीतर जो विश्व का स्वरूप है, वही शक्ति है। विश्व के भीतर जो अहं रूपता है, वह भी शक्ति है। विश्व के सारे पदार्थ शक्ति के ही रूप हैं। इस शक्ति की पांच कलाएं हैं-चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। अव्यय पुरुष का मन, प्राण, वाक् ही इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूप विमर्श भाव है। जैसे-जैसे ब्रह्म का जीव भाव बनता है, शक्ति भी अन्त:करण, बाह्य इन्द्रियां, प्राण आदि रूप लेती जाती है।

ब्रह्म की स्वतंत्र शक्ति को ही उसकी आनन्द घनता कहते हैं। आनन्द से इच्छा शक्ति; प्रकाश रूपता ही चित् शक्ति, विमर्शमयता ज्ञानशक्ति तथा तभी प्रकार के रूप, आकार पैदा करने की क्षमता उसकी क्रिया शक्ति है। प्राणी जो कुछ चाहता है, वह जानता भी है और करता भी है। संकल्परूप गतिमयता ही इच्छा है जो शिव का नित्य स्वभाव है। विश्व से ब्रह्म की ओर उन्मुखता ही उन्मेष है, अनुग्रह है। सृष्टि निर्माण की ओर उन्मुख होने पर निमेष अथवा तिरोधान कहते हैं। ज्ञान शक्ति रूप वाचक वर्ण, पद, मंत्र आदि बाह्य रूप में तथा क्रिया शक्ति कला, तत्त्व, भुवन रूप वाच्य विश्व रूप में कार्य करती है। (स्पन्द कारिका से)। मातृका रूप जो आठ वर्ग हैं उनकी अधिष्ठात्री-माहेश्वरी, ब्राह्मणी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, याम्या, चामुण्डा और योगिशी रूप हैं। इनके साथ खेचरी, भूचरी, दिक्चरी, गोचरी रूप में अन्त/बहि: कारणों से जुड़ती हैं। अपने-अपने मानसिक विस्तार के अनुपात से जिस मनुष्य का जितना विमर्श होता है, उतना ही उसके संसार का विस्तार है।

मन की अवस्थाएं जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति भिन्न लगते हैं, होते नहीं है। जिस प्रकार बीज के गुण अंकुर, मूल, पत्र, फल, पुष्प आदि सब में एक से रहते हैं।

जाग्रत-जिस में अन्तकरण और ज्ञानेन्द्रियां किसी ऐसे विषय को ग्रहण करने के लिए स्पन्दायमान होती हैं, जो साधारण एवं स्थिर हो जिनको दूसरे भी ग्रहण कर सकते हैं। विषय तो रहते ही हैं-ग्रहण करे- न करे। निश्चय, अभिमान, संकल्प (अन्त:करण) और पांच तन्मात्रा रूप ज्ञान को 'जाग्रत' अवस्था कहते हैं। सत्त्वगुण प्रधान है।

स्वप्न-जिसमें इन्द्रिय वर्ग का बाह्य प्रवाह रुक जाता है। सारी वृत्तियां मानसिक संकल्प/ विकल्प रूप केन्द्रीभूत। सारा जाग्रत जैसा अनुभव मानसिक रूप में। इसमें यह पदार्थ वर्ग क्षण पर्यवसायी होता है। अन्य व्यक्ति इनको ग्रहण नहीं कर सकता। रजोगुण प्रधान है।

सुषुप्ति-तमोगुण प्रधान। इसमें इन्द्रियां ज्ञान और ज्ञेय रूप में कार्य नहीं कर पाती। केवल आन्तरिक चेतना (माया) अथवा चित के द्वारा अनुभव करता है। अत्यधिक तमोगुण के कारण याद नहीं रहता।

एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न अवस्था का अनुभव करता है। अवस्था शब्द से एक ही

वस्तु की भिन्न-भिन्न देश-काल-आकार अनुरूप दशा और अभिप्राय माना जाता है। सारी अवस्थाएं एक ही चेतन की स्वयं अंगीकृत अवस्थाएं हैं। इससे चेतन सत्ता को अनुभव करने वाले स्वभाव में कोई अन्तर नहीं है। एक ही चेतन सत्ता की भिन्न-भिन्न अवस्था मात्र हैं। यही स्पंदन रूप स्वभाव सुख-दुख में भी अनुस्यूत है।

शाश्वत स्पन्दमयी बहिर्मुख-विश्वरूप-उन्मुखता में सर्वप्रथम सूक्ष्म/प्राण/ सामान्य प्राणना भूमिका में आती है। फिर त्रिगुणात्मक अन्त:करणों का रूप धारण करती है। इसका रूप ही (अन्त:करणों का) सुख-दु:ख और मोह (मूढ़ता) है।

ज्ञान सत्ता के बिना किसी भी विषय की कोई सत्ता नहीं होती। चित् तत्त्व का स्वरूप अहं-विमर्शात्मक विश्व है।

विशुद्ध चित् तत्त्व माया के द्वारा अपनी ही अभिन्न ज्ञान-क्रिया-माया शक्ति को संकोच में डालकर क्रमश: सत-रज-तम (बुद्धि, मन, अहंकार) के समष्टि रूप चित्त को धारण कर लेता है।

करण-वह अपेक्षित साधन जिसके बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं हो सकती। ज्ञान प्रधानता में-संकल्प, निश्चय, अभिमान और पंचतन्मात्राएं तथा क्रिया प्रधानता में चलना-उठना-बोलना-मल त्याग-आनन्द अनुभूति ये 13 तत्त्व हैं। पहले तीन अन्त:करण के। पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां-पाद-हस्त-जिह्वा, वायु-उपस्थ। सारे करण अचेतन हैं। विशेष स्पंदनों से चैतन्य।

आन्तर चक्र-स्पन्द शक्ति ही अनन्त धाराओं में बहकर विश्व के अणु-अणु का रूप लेती है। इन धाराओं को आन्तरचक्र/करणेश्वरी चक्र कहा है। इनसे ही अन्त:करण, बहिष्करण और प्रमेय भावों में स्फुरण होता है। इनके चार विभाग-खेचरी, गोचरी, दिक्चरी, भूचरी। स्पंदन शक्ति बाह्य प्रसार में वामेश्वरी। विश्व का वमन अहं रूप से इदं रूप में। वाम=उलटा। आचरण। पशुभाव में पड़े शिवभाव को मोह में डालकर, उसकी बुद्धि में संसारी हेय पदार्थों के प्रति अहं अभिनिवेश का दुराग्रह पैदा करती है। इससे उसे अपनी असीमता का ज्ञान नहीं रहता।

1.खेचरी-ज्ञान के अनन्त आकाश में विचरण करने वाली शक्तियां। चिद् गगनचरी। जब परमेश्वर की सर्वकर्तृता आदि पांच शक्तियां (असंकुचित और असीम) संकोच में पड़कर कला-विद्या आदि पांच कंचुकों का रूप लेती हैं। तब पशु भूमिका पर इनका खेचरी चक्र पड़ता है। ज्ञान क्षेत्र पर संकोच का आवरण डाल स्वयं को छिपा लेती है।

2.गोचरी-परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी और अन्त:करण के क्षेत्र में विचरण करने वाली शक्तियां। पशु प्रमाता के हृदय को भेद व्याप्ति में डालना। संकल्प-विकल्पों का शिकार। पति प्रमाता के हृदय में पूर्ण अभेद-व्याप्ति रूप में स्फुरणशील रहना।

खेचरी रूप में पांचों असीम शक्तियों में स्पन्दित होती हुई परमेश्वर के हृदय का विकास करती हैं।

3.दिक्चरी-दसों इन्द्रियों में विचरण। बाह्य प्रवाहमान करके विषयों का भेद रूप में ग्रहण। पति प्रमाता को अन्तर्मुखी एवं अतीन्द्रिय संवेदन के द्वारा पदार्थ का अभेद अहं रूप में ग्रहण कराता है।

4.भूचरी-तन्मात्रा रूप पांच प्रमेय में विचरण। अनन्त प्रमेय जालों के गोरखधन्धे में फंसाना। पति प्रमाता को अपने ही अंगों के समान विशुद्ध चिन्मात्र रूप में अनुभव कराना।

सारा आन्तर शक्ति चक्र स्पन्दमयी संवित के साथ अभिन्न है। सतत स्पन्दमय/ नित्य चेतन है। सभी वर्गों में चेतना का संचार करके उन्हें चेतन के समान धर्मा बनाता है। इसी से चेतन अपनी-अपनी परिधि में उसी प्रकार की सृष्टि, स्थिति, संहार कार्य करता है।

सृष्टि (प्रवृत्ति)-अपने-अपने ग्राह्य विषयों (शब्द रूप-) को ग्रहण करने के अवसरों पर इन्द्रियों की, उनकी ओर उन्मुख होने की अवस्था को प्रवृत्ति कहते हैं।

स्थिति-विषयों को ग्रहण करके, कुछ काल उनके साथ विश्राम करने की अवस्था।

संहार-कार्य समाप्ति पर ग्राह्य विषय से हटकर, निवृत्त होने की अवस्था।

सत्ता विभु होने से सर्व व्यापक, नित्य होने से आदि और अन्त रहित, विश्वाकृति के कारण स्वयं ही चैतन्य, और जड रूप और विश्व के भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारों का अवभासन करने वाली।

स्वातंत्र्य-चैतन्य का पर्यायवाची-भाववाचक। ज्ञान और क्रिया का स्वतंत्र कर्तृत्व। अर्थात्-विश्वात्मक रूप में सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह (पांच दुर्घट कृत्य) के जानने और करने में अन्य किसी सत्ता का आश्रय नहीं।

इस स्वतंत्र आत्मनिर्भरता की स्वरूप भूता पूर्ण ज्ञातृता और पूर्ण कर्तृत्वता की अहं विमर्शमयी विश्वात्मक स्फुरणा को ही स्वातंत्र्य, चैतन्य, आत्मा कहा गया। विश्व में प्रत्येक वस्तु के देश-काल-आकार की सीमाओं से अबाधित रूप, जानने और करने की क्रिया का स्वतंत्र कर्तृत्व ज्ञातृता और कर्तृता है। जीव में एक ही समय में प्रत्येक वस्तु जानने एवं करने की स्वतंत्रता नहीं है। पर-मुखापेक्षी है।

चेतन/चेतन का मूल चिति-चेतने की क्रिया। चैतन्य का अर्थ केवल और केवल ज्ञातृता/कर्तृता रूप स्वातंत्र्य। इसी को सतत स्पन्दमयी संवित् कहा। ज्ञान/क्रिया अथवा प्रकाश/विमर्श एक ही चिति शक्ति की द्विमुखी स्पन्दात्मकता के द्योतक हैं। क्रिया ज्ञान की ही पल्लवित दशा है। ज्ञान क्रिया का ही पूर्व रूप है।

अशुद्धि-अशुद्धि, अख्याति, मल/बन्ध आदि से स्वतंत्र स्वरूप के अज्ञान का अर्थ है। अज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान का अभाव नहीं है, अपूर्ण ज्ञान से है। यही शिव का जीव भाव है।

स्वातंत्र्य शक्ति सतत उदीयमान है। पांच रूपों में स्पन्दित-सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व, नित्यत्व और व्यापकत्व रूप में। यही विश्वरूप में सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान, अनुग्रह रूप विराट कृत्य करता है। फैलना चैतन्य का स्वभाव है-आनन्द की प्रधानता से। उन्मुख होने पर 'स्वतंत्रता' से अभेद व्याप्ति छोड़कर भेद रूप लेता है।

माया-अभेद में भेद सर्जना करने का स्वातंत्र्य ही माया। शक्ति रूप से महामाया/ महाशक्ति। माया रूप में माया तत्त्व है। महामाया-अहं रूप में व्याप्त इदं रूप को अवभासित करना। इसमें संकल्पात्मक स्फुरणा या उन्मुखता मात्र होती है। यहीं से स्वातंत्र्य में मलत्रय रूप संकोच शुरू होता है। यह आन्तर विमर्श में भेद दशा लाने का सूक्ष्म सूत्रपात है। मायाशक्ति में सम्पूर्ण विश्व अन्तर्निहित रहता है। सेवफली में बीज। 'जो अपूर्णता की अनुभूति को पैदा करके स्वरूप की हिंसा करती है। इसका कार्य क्षेत्र शिव से विद्या (शुद्ध) तत्त्व के प्रमातृ मण्डल तक होता है। यहां तक जीव की बहिरंग अवभासन की प्रक्रिया विकासमान अवस्था होती है; किन्तु अहं का पूरा तिरोधान नहीं होता।

शुद्ध विद्या से नीचे पृथ्वी तत्त्व तक अशुद्धाध्व में माया शक्ति के कार्यरूप को माया कहते हैं। अहन्ता का पूरा तिरोधान हो जाता है। जड एवं कार्य रूप विश्वप्रमेय के स्थूल अवभासन की प्रक्रिया का आरंभ हो जाता है। इदन्ता स्थूल देह-प्राण आदि धारण कर लेता है। स्वरूप पर पूरा आवरण पड़ जाने के कारण शक्ति का रूप भी जड हो जाता है। आगे-आगे जड कार्य का कारण बनती जाती है। जडता का अर्थ है-संकुचित प्रकाशमानता। माया का संकोच भी सर्वतामुखी होता है। पहले यह संकोच पांच स्वतंत्र शक्तियों (सर्वकर्तृत्व आदि) पर प्रभावी होकर उनको क्रमश: किंचित कर्तृत्व, ज्ञात्व, अपूर्णत्व, अनित्यत्व और अव्यापकत्व में बदलता है। इसी से शिव पशु बनता है। इन पांच संकुचित शक्तियों के नाम क्रमश: कला, विद्या, राग, काल और नियति हैं। स्वतंत्र शक्तियां अब वासना तक पंच कंचुक (आवरण) बनती हैं। जीव पशुभाव में आ जाता है। जड होने से माया अंधी होती है और किसी को भी नहीं छोड़ती।

अनुत्तर तत्त्व स्वयं स्वतंत्र होकर जानता भी है, करता भी है। उदासीन/ निश्चेष्ट नहीं है। निश्चित कार्यों के निश्चित कारण समूह का संयोजन/ वियोजन करने में शिव ही कर्ता रूप है। उसका रूप संविदात्मक है और विश्वात्मक ज्ञातृता/कर्तृता की अहं विमर्श की स्फुरणा ही संवित् का यथार्थ/ अकृत्रिम स्वभाव है। संसार के अणु वर्ग में पाया जाने वाला ममत्व, संसार के कर्तव्यों के प्रति कर्तव्य का झूठा अभिमान भी शिव की ही स्फुरणा है। वह जड नहीं है। मैं देहादि का सत्ताभूत संवित् स्वरूप ही हूं और सारा विश्व मेरा ही विभव है। अत: मैं जानने और करने में सदा स्वतंत्र हूं 'इसको आत्मबल का स्पर्श कहते हैं।' विस्मय=आश्चर्य की अनिर्वचनीय एवं स्वसंवेद्य अनुभूति।

अभाव कभी भावना का विषय नहीं बन सकता। शून्य-अशून्य अर्थात चिदानन्दघन और सतत स्फुरणशील परम शिव तत्त्व ही अभिप्रेत है। शिव माया का अविषय होने के कारण, माया जनित परिणामों से शून्य है। वहां नाना-रूप विश्व का अलग भाव न होने से अभाव है। शून्य एक महान् सत्ता है जो कि पूर्ण ज्ञान क्रियात्मक स्वातंत्र्य के कारण भाव या अभाव को सत्ता प्रदान करती है।

विश्व में भी शून्य नाद, बिन्दु, भुवन, भाव आदि विश्व रूपों में, फूलों में गंध की तरह व्याप्त है। सर्व अभाव न होकर, पूर्ण वेदक/ स्वतंत्र ज्ञान-क्रिया रूप प्रमातृसत्ता का अभिव्यंजक है। कर्तृता में वेदकता-शुद्ध रूप है। कोई परिवर्तन नहीं आता। कार्यता में देश-काल-आकार के अनुरूप अन्तर बना रहता है। समाधि में कार्यता का लोप हो जाता है। कर्तृत्व ही भाव है।

क्रिया से पूर्व कर्ता की सत्ता है। प्रत्येक क्रिया को सिद्ध करने की अबाध क्षमता रखने वाले और शाश्वत रूप में स्वयं वर्तमान रहने वाले, स्वतंत्र कर्तृत्व को भाव कहा है।

कर्तृत्व में 'क्रिया' ही वर्तमानता है। कर्तृत्व का स्वरूप विमर्श शक्ति है। अहं-विमर्शात्मक स्पन्द है।

जड भावों की विश्रान्ति का स्थान चेतन है। चेतनों की प्रकाशमानता है। स्वयं प्रकाश की प्रकाशमानता का रहस्य भी विमर्श में ही निहित है। ज्ञान का मौलिक रूप स्वतंत्र इच्छा है। अत: कर्तृत्व/भाव, स्वतंत्र और अकालकलित इच्छा; ज्ञान एवं क्रिया की समरसता है। इसी को चित्-रूपता कहते हैं।

प्रकाश-विमर्शमय संघट्ट=आनन्द शक्ति। अनन्त रूपों में स्पन्दित होना इसका अकाट्य स्वभाव है। उच्छलनात्मक। शुद्ध प्रकाश रूप संवित्-सर्जन काल में, स्वयं में अवस्थित वेद्य भाग अलग करके आकाश तुल्य शून्यातिशून्य स्वरूप में अवस्थित रहती है। ससीमता की ओर यह उसका पहला कदम है। आगे स्वरूप से अलग किए वेद्य अंश को उत्तरोत्तर स्थूल रूपों में विकसित करने के लिए उन्मुख हो जाती है। विश्वप्राणना उसका प्रथम रूप है। 'प्राण-स्पन्द' है। पांच स्थूल प्राण रूप। किसी भी पंच भौतिक काया में प्रवेश करके उस जड शरीर को चेतन पिण्ड की तरह नचाते हैं। आगे सत्त्व-रज-तम (गुण), मन-बुद्धि-अहंकार (अन्त:करण), इनके द्वारा वेद्य सुखिता-दुखिता-मूढ़ता (अन्त:करण विषय), 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां, घट पट आदि वेद्य विषय आदि अनन्त भावों में प्रवाहित रहती है। इन स्पन्दों की विशेषता है कि ये सदा वास्तविक स्थिति (चिन्माया) पर आवरण डालने के लिए उतारू रहते हैं। पहले पंच कंचुक से देहादि आवरण से जीव सत्ता को भूलकर जड पदार्थों पर आत्मभिमान करता है। गुणत्रय से सुख-दु:ख-मूढ़ता (रागात्मक भाव) रूप धारण करता है। ममत्व अभिमान करने लगता है। इन्हीं भावनाओं

से उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप जीव विषयों के भोग से अभिलाषाओं को शान्त करता है। भोग से इच्छाओं की चक्र वृद्धि होती है। शुष्क बुद्धिवाद रागात्मक वासनाओं का जनक है। सरस हृदय पक्ष के अभाव में स्वरूप का स्थगित होना स्वाभाविक है। पूर्ण शिव भाव में शक्ति के चित्-निर्वृत्ति-इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूप रहते हैं। विमर्श काल में इनका कला-विद्या-राग-काल-नियति रूप बनता है। सर्वव्यापी होने से माया का प्रभाव किसी पक्ष को अछूता नहीं छोड़ता।

माया से कला तत्त्व का जन्म। माया प्रभाव से असंज्ञ जैसे अणु में संकुचित कर्तृत्व रूप चेतना का संचार करता है। सांसारिक आदान प्रदान करने की क्षमता। यह किंचित् कर्तृत्व है। इससे विद्या तत्त्व बनता है। इससे अणु को बुद्धि दर्पण में प्रतिबिम्बित सुख-दुःख, आदि प्रत्ययों, हान-आदान आदि कर्मजाल की विवेचना करने का सीमित सामर्थ्य। किंचित् ज्ञत्व। जड़ होने के कारण बुद्धि स्वयं सुख-दुःख आदि का विवेचन नहीं कर सकती। विद्या के द्वारा जीव इन्द्रियों द्वारा बुद्धि में प्रतिबिम्बित सुख-दुःख का विश्लेषण कर लेता है। विद्या से राग पैदा होकर आसक्ति पैदा करता है। भोगों के प्रति लगाव। सारे आदान-प्रदान राग-मूलक ही हैं। किसी से द्वेष इसलिए होता है कि अपने इष्ट प्राप्ति से राग है। विरक्ति इसलिए होती है कि विषय से छुटकारा पाने के प्रति आसक्ति है। अतृप्ति। राग तत्त्व से कर्तव्यों की हेयोपादेयता के निश्चय के साथ ही काल तत्त्व उद्भुत होकर तुटि, क्षण, आदि कालभेद की सीमाओं में जीव को बांध देता है। कार्यकलापों के लिए काल भी क्षणों/ प्रहरों में खो जाता है। 'अनित्यता' है। नियति तत्त्व वैचारिक क्षेत्र को '(निश्चित कारणों से ही निश्चित कार्य की उत्पत्ति)' जैसे नियमों में सीमित कर देता है।

स्वातंत्र्य शक्ति	माया
(संकोचहीन शक्ति)	(संकुचित पशुभाव देने वाली)
चित्-सर्वज्ञता	विद्या-अल्पज्ञता
निर्वृत्ति-सर्वकर्तृत्वता	कला-अल्पकर्तृता
इच्छा-पूर्णता	राग-अपूर्णता
ज्ञान-नित्यता	काल-अनित्यता
क्रिया-व्यापकता	नियति-अव्यापकता
	माया+5=षट् कंचुक

आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपने विकल्प-संस्कार का परिष्कार ही मुख्य है। प्रतिकूल दिशा में प्रवाहमान विकल्पों की दिशा बदलकर, बलपूर्वक, स्वरूप चिन्तन को अनुकूल दिशा में लगाना ही मार्ग है। सत् विमर्श के बल से बाह्य विषयों से निवृत्त करके, हृदय में (चित्प्रकाशमय संवित् धाम में) एकाग्रभाव से लगाने का निरन्तर प्रयास करना

चाहिये। विकल्प की अस्फुट, स्फुरणा के उन्मुख, स्फुट होता हुआ और पूर्ण प्रस्फुटित अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। स्फुरणा एक अविराम गतिशीलता है।

जितनी तीव्रता से भाव उभरकर आता है, उतनी ही तीव्र गति से उसका पूर्ववर्ती मनोभाव डूब जाता है। दोनों भावों के अन्त एवं आरंभ के बीच संधि क्षण में मानसिक गतिविधियां भी बहिर्मुखीन गति स्तब्ध हो जाती हैं। एक निर्विकल्प क्षण होता है। इसमें बिजली की तरह विगलित वेद्यान्तरता झलक दिखाकर शान्त हो जाती है। अभ्यास की दृढ़ता से, ऐसे ही क्षणों में, बहिर्मुखी शक्ति को कूर्मांग संकोच की युक्ति से समेट कर, अन्तर्मुख हो जाते हैं। धीरे-धीरे इस भाव पर स्थित हो जाते हैं। अटल संकल्प धारण करके, स्पन्दतत्त्व का स्वरूप ही बनी हुई अवस्था का आश्रय लेकर, स्पन्दतत्त्व पर अधिष्ठित होकर रहता है। बहिर्मुखी वृत्तियों को अलंग्रास युक्ति के द्वारा दिशा बदलकर, अन्तर्मुखीन बनना ही चित्त निरोध है। इसमें संकल्प की दृढ़ता, सद्विचार, अटल श्रद्धा और आत्म शक्ति की तीव्रता चाहिए। वर्ण शिव रूप, मंत्र शक्ति रूप है। मंत्रों में स्पन्दात्मक बल स्वभाव से ही अन्तर्निहित है। आत्मबल की विस्मृति की अवस्था में मंत्र का निर्वीर्य होना स्वभाव है। आन्तर अनुसंधान की क्षमता प्राप्त करने के लिए सबसे पहले चित्त को निर्मल करना आवश्यक है। विकल्पों का संस्कार करने से भावनाएं निर्मल। मैं स्वयं ही शक्ति केन्द्र हूं और विश्व मेरे ही स्वरूप की स्पंदना है। ऐसा तीव्र संवेदन ही उन्मना है। ऐसी तीव्र संवेदना से मंत्र, चित्त और देवता एकाकार। संवेदना में विषय- भूतात्मक (पंच महाभूत से बने) तथा भावात्मक। भाव-अभाव (बंध्या का पुत्र) रूप है। संवेदन से सभी विषयों की अनुभूति भाव रूप होती है। जिस समय, जिस विषय की संवेदनात्मक उन्मुखता हो जाती है, उस संवेद्यमानता के समय में वही विषय का शरीर बन जाता है। संवेदन उसी विषय के रूप में प्रकाशमान होने लगता है। जीवात्मा स्वतंत्र संवेदन के द्वारा उस विषय को सत्ता देकर उसकी सृष्टि करता है। अगले क्षण दूसरे विषय की ओर संवेदनात्मक उन्मुखता हो जाने पर पहले विषय का संहार और दूसरे की सृष्टि करता है। मंत्र का विमर्श करने के बाद तत्काल ही मन्त्र देवता के साथ चित्त की एकाकारता हो जाना ही साक्षात्कार है। प्रतिक्षण मन में उदित-अस्त होने वाली असंख्य चिन्ताओं के अन्तरालवर्ती संधि क्षणों में नित्योदित उन्मेष तत्त्व की व्यापकता अनुभव में आ सकती है। आन्तर-विमर्श के द्वारा उस तत्त्व के साथ नित्य युक्त रहने की आवश्यकता है। चित्त यदि किसी एक विषय की चिन्ता में एकाग्र है, उसमें जिस स्वभाव के द्वारा सहसा कोई दूसरी चिन्ता उभर आती है, तब इसका कारण उन्मेष समझना चाहिए।

बिन्दु- पृथ्वी तत्त्व की धारणा से भ्रू मध्य पर एक उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ तेज बिन्दु कहलाता है।

नाद-आकाश तत्त्व की धारणा-एक विशेष प्रकार की स्वयं उच्चारित ध्वनि-पहले तेज गति की प्रवाहमान नदी की घरघराहट धीरे-धीरे सूक्ष्म होती हुई भौंरे के समान।

रूप-तेजस तत्त्व से-प्रगाढ़ अंधकार में भी दृष्टव्य वस्तु स्पष्ट दिखाई देना।

रस-जल तत्त्व-बिना कुछ खाए भी अमृत जैसा। इसके अलावा दिव्य स्पर्श और गंध की अनुभूति भी।

देखने की तीव्र इच्छा-दि दृशा कहते हैं।

भाव-साक्षात्कार-1. इन्द्रिय और भाव के संयोग होने से प्राथमिक क्षण का विकल्पहीन आभास। 2 भाव के साथ संबंधित विशेषताओं को स्पष्ट रूप में परिलक्षित कराने वाला सविकल्प-आभास।

किसी भी ज्ञेय विषय के साक्षात्कार की तीन कोटियां-

1. बाह्य इन्द्रियों से ग्रहण के पूर्व-इच्छा रूप आदि कोटि, 2. ग्रहण काल 3. ग्रहण उपरान्त संवेदन में विश्रांति काल। आदि और अन्त कोटि पर ज्ञेय विषय अहं विमर्शात्मक प्रमातृभाव के साथ तादात्म्य रूप में अवस्थित रहता है।

मध्य कोटि-ग्रहण काल में वह माया शक्ति रूप स्वातंत्र्य के द्वारा, अहं रूपता से अलग होकर इदं के द्वारा वाच्य, स्थूल पंचभौतिक रूप में स्थिति प्राप्त कर लेता है। यही रूप परिवर्तनशील है। संसार भाव है।

अपने सद्विमर्श के द्वारा प्रत्येक ज्ञेय विषय का स्वरूप विश्लेषण करके उसके वास्तविक स्वरूप को पहचानना। प्रत्येक प्रकार की अनुभव दशा में केवल स्वरूपाभास पर ही अवस्थित रहने की क्षमता प्राप्त करना।

क से ह तक सस्वर व्यंजन समुदाय ही 'कला समूह' है। अ से क्ष तक वर्ण समूह को शब्द राशि कहा है। मातृका। मातृका शक्ति, सारी भेद पूर्ण वाचक और वाच्य रूप स्थूल शब्द राशि को अपने गर्भ में, अभेद रूप में (स्पंदनामय विमर्श रूप में) धारण करने वाली पराशक्ति है। यह पूर्ण अहंता रूप विमर्श शक्ति है। स्वतंत्र चेतना रूप होने के कारण वह स्वयं अ-ह तक के (स्थूल+सूक्ष्म) वर्ण समुदाय के रूप में प्रसृत करके (वाचक+वाच्य) विश्व को अवभासित करती है। यह कोई नहीं जानता ऐसी माता को ही मातृका कहते हैं। आठ शक्तियों का परिवार है। अ-अनुत्तर तत्त्व, ह - अनाहत शक्ति तत्त्व की संपुट दशा (प्रत्याहार दशा) ही अहंता है। उसके गर्भ में सारी शब्द राशि मोर के अण्डरस न्याय से-भेद रहित अहंरूप में ही व्यवस्थित है। परावाणी। यही सृष्टि काल में इच्छा शक्ति का रूप लेती है। फिर ज्ञान शक्ति/क्रियाशक्ति। तब यह भिन्न-भिन्न प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने वाली माया शक्ति कहलाती है।

कला समूह- अन्तर्विमर्श दशा में अ इ उ ऋ लृ मूल 5 स्वर। माहेश्वर की चित्-

निवृत्ति, इच्छा-ज्ञान-क्रिया की प्रतिनिधि हैं। बहिर्विमर्श में क च ट त प वर्ग में। कला समूह हैं-कला विद्या .. आदि मायायी तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते हैं।

शक्ति प्रसार के तीन रूप - प्रत्यय, स्वरूप आवरण, पशुवर्तिनी स्थूल क्रिया रूप है। इन्हीं को आणव-मायी-कार्म मल कहते हैं।

विकल्प ही प्रत्यय है। स्वातंत्र्य शक्ति जैसे ही माया का रूप लेती है- तब उसमें (शिव) अपनी पूर्णता/ स्वतंत्रता के प्रति शंका होती है। अपनी शक्ति को अन्य रूप में समझना ही प्रत्यय है। स्वतंत्र ज्ञात्व की (ज्ञातृता) हानि, स्वतंत्र कर्तृता का अबोध है और। यही आणव मल है। आत्मा की अवरोहण प्रक्रिया शुरू हो जाती है। शिव से पृथ्वी तक 36 तत्त्व हैं।

ये तत्त्व इस प्रकार हैं-1. परामृत-अनुत्तर, 2. रस-अहं विमर्श मयी शक्ति परामृत-3. सदाशिव, 4. ईश्वर, 5. शुद्ध विद्या यहां तक माया का उल्लास नहीं होता। प्रत्ययोद्भव-6. माया, 7. कला, 8. विद्या, 9. राग, 10. नियति, 11. काल तत्त्व। भेद रूप माया का प्रसार। 12. अस्वतंत्र - पुरुष। तन्मात्र गोचर - प्रकृति, बुद्धि, मनस्, अहंकार, 5 ज्ञानेंद्रियां, 5 कर्मेंद्रियां, 5. तन्मात्राएं पंच भूत=24।

प्रत्येक अर्थ (ज्ञेय) प्रकाश रूप है। उसका वाचक शब्द उसके अणु-अणु में व्याप्त रहने वाली विमर्शना है। शब्द ही अर्थ को ज्ञान रूप सत्ता देता है। शब्द के बिना अर्थ नहीं ठहर सकता।

क्रिया भी शिववर्तिनी और पशुवर्तिनी होती है। पशुवर्तिनी को ही कार्म मल कहते हैं। शिव में ज्ञातृता/कर्तृता है। यही उसकी स्वतंत्र इच्छा का रूप है। शिववर्तिनी क्रियाशक्ति का स्वरूप विमर्शमयी स्पंदना ही है। यही भूतिभेद से जनित देशक्रम और क्रिया भेद से जनित कालक्रम में उपलक्षित, अनन्त प्रमाताओं और उनके ज्ञेय विषयों को भेद रूप अलग-अलग प्रकाशित करती है। उसका ज्ञाता रूप में स्फुरित होना ही स्वतः क्रिया भी है। इसका कोई क्रम नहीं होता। देश कालहीन अहं रूप इच्छा स्पन्द ही है। स्वरूप की विमर्शना अथवा निज रूप की आनन्दमयता का आस्वाद ही विश्व का आमर्शण है। यहां अ से क्ष तक की ध्वनियां भी अहं विमर्श रूप ही रहती हैं-परावणी।

पराशक्ति स्वयं इच्छा से पशुभाव में आती है। अक्रम रूप से सक्रम क्रियात्मक उपराग धारण कर लेती है। पशुभाव में भी क्रिया का मूल तो इच्छात्मक स्पंदना ही है; किन्तु यह मानसिक संकल्प-विकल्पात्मक स्पंदना होती है। आन्तरिक इच्छा ही बाह्य क्रिया रूप होती है। इच्छा जब तक मन में है, कोई क्रिया नहीं होती। जैसे ही यह स्पंदना पंच भौतिक काया के द्वारा बाह्य स्थूल क्रिया रूप में उदित होती है, इस पर कालक्रम और देशक्रम का रंग चढ़ जाता है। यही सक्रम स्थूल क्रिया है। इसी क्रम में परावाणी ही पश्यन्ती, मध्यमा

से होकर वैखरी बनती है। सूक्ष्म शरीर है कारण रूप और स्थूल शरीर कार्य रूप। सूक्ष्म शरीर में तीन अन्तःकरण (मन-बुद्धि-अहंकार), इनके द्वारा संवेद्य पंच तन्मात्राओं के योग से पुर्यष्टक बनता है। शब्द आदि ज्ञेय विषयों की मूल सामान्य अवस्था को तन्मात्रा कहा है। तन्मात्र रूप में विद्यमान विषयों को स्थूल इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। विशिष्ट रूप में ही हो सकता है। सूक्ष्म पुर्यष्टक को 'वासना पिण्ड' कहते हैं।

स्थूल शरीर में त्रिगुण युक्त मन-बुद्धि-अहंकार और इनके संवेद्य विषय-अग्नि-वायु-तेज-रहते हैं। सूक्ष्म तन्मात्र ही स्थूल तन्मात्र बनते हैं। इन्हीं के कार्य स्थूल पंचमहाभूत होते हैं। तन्मात्राओं का योग आपस में एक निश्चित क्रम में होता है।

सामान्य	विशिष्ट
शब्द	शब्द गुण वाला आकाश
शब्द-स्पर्श	स्पर्श गुण वायु
शब्द-स्पर्श-रूप	रूप गुण तेज
शब्द-स्पर्श-रूप-रस	रस गुण जल
शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध	गंध गुण पृथ्वी।

स्थूल शरीर में-

1. नाड़ियों आदि के पोले भाग में आकाश/शब्द तन्मात्र रहता है।
2. पांच स्थूल प्राण, वायु के रूप में स्पर्श तन्मात्र हैं।
3. उष्णता, चमक, आकाश तेज रूप तन्मात्र।
4. खून-पसीना-तरल द्रव्य में जल तन्मात्र।
5. गंध, घन रूप अंग अस्थि-मांस आदि पृथिवी तन्मात्र।

स्थूल शरीर की आयु है। सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ रहता है, जब तक उसको स्वरूप ज्ञान प्राप्त न हो जाए।

◆◆◆

माया-प्रकृति

माया जो दिखाई पड़े और जाना नहीं जा सके, वही माया है। सर्वत्र कार्य रूप में दिखाई देती है; किन्तु कारण रूप में जानी नहीं जा सकती। माया की वैदिक संज्ञा बल है, और रस यहां ब्रह्म को कहा गया है। ब्रह्म के सारे विचित्र भाव बल के योग से ही बनते हैं। वलों के योग को भी माया ही कहा जाता है, क्योंकि योग का कारण भी पकड़ में नहीं आता।

रस की शक्ति को माया कहते हैं। वह रस से भिन्न नहीं है। सुप्त और जाग्रत उसकी अवस्थाएं हैं। उसकी सर्वत्र स्वतंत्रता रहती है।

विश्व निर्माण की ओर विलुप्त होने पर वह निजी संकल्प स्फुरणा के द्वारा स्वयं को भिन्न या भेद रूप में प्रकट करती है। यही माया है। अभेद रूप ब्रह्म में भेद सर्जन कर सकने वाली स्वतंत्र शक्ति को ही माया शक्ति कहते हैं। स्वयं ही अपना आवरण बनकर, अपने पूर्ण रूप को अपूर्ण बनाना उसका सामर्थ्य है। शिव कहते हैं-'माया शक्ति एक सर्वव्यापक, सूक्ष्म, खण्डों या भागों से हीन, समग्र संसार को अपने गर्भ में धारण करने वाली, अनादि, अनन्त, स्वातंत्र्य से परिपूर्ण और स्वयं विकार रहित है।' शक्ति रूप में यही महामाया है। तत्त्व रूप में इसे माया तत्त्व कहा जाता है।

माया शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म के मन में 'एकोऽहं बहुस्याम्' की इच्छा पैदा होती है। इसी इच्छा से भेद रूप संकुचन से आगे सृष्टि बनती है। इसी के गर्भ में स्थूल विश्व का स्वरूप रहता है। जिस प्रकार बीज के गर्भ में सम्पूर्ण वृक्ष रहता है। महामाया का स्वरूप अव्यय और अक्षर पुरुष तक व्याप्त रहता है। विकास प्रक्रिया के रहते हुए भी सृष्टि में अमृत भाव ही रहता है। इसके आगे माया तत्त्व ही जड-चेतन रूप स्थूल विश्व का निर्माण करता है। ब्रह्म और सृष्टि में भेद हो जाता है। स्वरूप आवरित हो जाता है। माया भी जड रूप होकर कार्य करती है। ब्रह्म की शक्तियों (चित्त, इच्छा, आनन्द, ज्ञान, क्रिया, पूर्ण स्वतंत्रता आदि) को संकुचित करके कला, विद्या, राग, काल और नियति में बदल देती है। यह शैव सिद्धान्त है। यहां शिव को उदासीन और निश्चेष्ट नहीं माना है। निश्चित कार्यों का निश्चित कारण समूह का संयोजन/वियोजन में शिव ही स्वतंत्रकर्ता है। देहादि के प्रति ममत्व, संसार के कर्तव्यों के प्रति कर्तृत्व का झूठा अभिमान भी उसी की स्फुरणा से होता है। सृष्टि क्रम में माया ही अविद्या के कारण जीव को आवरित करती है। सत, रज, तम

जनित सुख, दुःख और मूढ़ इन रागात्मक भावों को धारण करती है। माया की विद्या, कला आदि पांच कलाएं और माया तत्त्व मिलकर षट् कंचुक कहे गए हैं, ये जीव के मूल भीतरी आवरण हैं। सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं। स्थूल शरीर में प्राण, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, देह, पुर्यष्टक आदि आते हैं।

माया को कैसे तीन रूप में जाना जाता है।

माया, महामाया और योगमाया। माया से घिरे ब्रह्म को संस्था कहते हैं और सीमा भाव को मात्रा कहा जाता है। वेद में इसे छन्द कहा है। रस और बल (माया) की जब बन्ध संसर्ग होता है, तब वाक् सृष्टि होती है, योग संसर्ग से प्राण सृष्टि, मन विभूति क्रम में जुड़ा रहता है। माया से ढंका हुआ ब्रह्म का केन्द्र (हृदय) ही मन है। इस मन में उठने वाली रश्मियां ही कामना है। कामना ही सृष्टि का बीज बनती है। कामना ही माया भाव है। रस और बल का संयुक्त रूप है। अतः मन में भी रस की, बल की अथवा रस बल की ही कामना उठती है। इस कामना रूप माया से ही सृष्टि का प्रारंभ होता है।

ध्यान में रखने की बात यही है कि मन भी मूलतः अव्यय पुरुष का ही होता है। जो मन हमें भासित होता है, वह मूल मन का ही प्रतिबिम्ब है। जब मन में माया भाव के द्वारा संकल्प-विकल्प उठते हैं, तब उस मन को इन्द्रिय मन कहते हैं।'पंचेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि'-अथर्व संहिता। इस मन का निर्माण भास्वर पार्थिव सोम से होता है। अव्यय पुरुष के मूल मन को श्वोवसीयस् मन कहते हैं। जीव और ईश्वर दोनों ही केन्द्रस्थ अव्यय पर ही प्रतिष्ठित हैं। यह भूमा-भावात्मक होने से श्वोवसीयस् कहलाता है।

प्रत्येक जीव में सुख-दुःख रूप से दो व्यवहार दिखाई पड़ते हैं। ये व्यवहार भी इन्द्रियों के साथ जुड़े रहते हैं। किन्तु; सुख-दुःख की अनुभूति सभी इन्द्रियों में समान रहती है। जिस मन में यह अनुभूति रहती है, वह सर्वेन्द्रिय/ अनिन्द्रिय मन कहलाता है। इसी को अतीन्द्रिय मन कहा है। सर्वेन्द्रिय मन चान्द्र सोम से समन्वित रहता है। इसी का नाम प्रज्ञान ब्रह्म है। इसका बुद्धि से नित्य संबंध रहता है। भावना/वासना संसार का मूल यही मन है।

सुषुप्ति दशा में मन, बुद्धि और इन्द्रियों में कर्म ठहर जाते हैं। तब भी 'मैं हूं' का अहम् भाव बना रहता है। अहं कृति रूप महान के कार्य कलाप (श्वास-प्रश्वास, आदि धातु संचार) बने रहते हैं। ये ज्ञानमयी कामना से संभव होता है। इस मन को सत्त्व या महन्मन कहते हैं। इसी मन के प्रकाश से महान आत्मा, महात्मा, महापुरुष आदि स्वरूप बनते हैं। इसी मन की इच्छा से ही (माया) अहंकृति, प्रकृति और आकृति व्यवस्थित रहते हैं। सर्वेन्द्रिय नामक/प्रज्ञान सर्वेन्द्रिय मन की इच्छा को जीव इच्छा कहते हैं। महन्मन की इच्छा को ईश्वरीय इच्छा कहा जाता है। अव्यय मन इस सत्त्व मन में प्रतिष्ठित रहता है। सर्वेन्द्रिय मन को ऊपर का मन भी कहते हैं। महन्मन को भीतर का मन कहते हैं। ऊपर के मन से

किया गया कार्य सफल नहीं होता। हर मन में कामना रूप माया ही कार्य करती है। ईश्वरीय मन में महामाया कामना रूप है। महामाया ही क्षर सृष्टि में प्रकृति (सत्त्व, रज, तम) बन जाती है। यह माया मूलतः स्पन्द रूपा है। स्पन्द का गुण भी प्रसार-संकोच है। जैसे-जैसे सृष्टि आगे बढ़ती जाती है, माया का अपना स्वरूप भी बदलता जाता है। वह सृष्टि के अनुरूप स्वयं का स्वरूप बनाती जाती है। माया में क्रियान्वयन है। क्रिया के द्वारा चिति या चिनाई की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। चिनाई से ही स्थूल निर्माण होता है। ब्रह्म को ज्ञान स्वरूप और माया को क्रिया स्वरूप कहें तो भी दोनों एक ही दिखाई पड़ते हैं। बिना ज्ञान के क्रिया नहीं होती। ज्ञान का नया स्वरूप क्रिया ही है। इसी प्रकार ज्ञान भी क्रिया का पूर्व स्वरूप ही है। ब्रह्म को सृष्टि का बीज कह सकते हैं अथवा सृष्टि को ब्रह्म का विस्तार कहा जा सकता है। अहं रूप बीज को इदं (विश्व) रूप में प्रकट करने की अभिलाषा भी स्वरूप-स्वातंत्र्य से ही उदित होती है। जैसे-जैसे ब्रह्म की कलाएं विकसित होती है, वैसे वैसे माया भी नए-नए कला रूप ग्रहण करती जाती है। कामना रूप यही माया विश्व का प्रथम अवतार बनती है और यही प्रलय का एकमात्र कारण भी है। माया ही अविद्या रूप में हमारे जीवन को चलाती है।

प्रलय काल में सारा जगत, सारे लोक, परमेष्ठी लोक में समा जाते हैं। इसी में क्षीर सागर है। शेषशय्या पर विश्राम करते विष्णु हैं। विष्णु की शक्तियां हैं। यानी, विष्णु माया है। इसी को जगत का सृष्टा कहा गया है। विष्णु-नाभि से ही सृष्टिकाल में सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। परमेष्ठी लोक ही सोमलोक है। सोम ही मैटर है। माया ऊर्जा है। विष्णु की श्री और लक्ष्मी दो शक्तियां हैं। श्री का मूल ऊर्जा (एनर्जी) है और लक्ष्मी का अर्थ पदार्थ भाव या 'मैटर' है। अतः, जगत् के सृष्टा, पालक सब कुछ विष्णु को ही कहा गया है। विष्णु ही यज्ञ है- सृष्टि निर्माण के हेतु है।

'मैटर' सारा ब्रह्म रूप है। सृष्टि को ब्रह्म का ही विवर्त कहा गया है। विवर्त का अर्थ है- परिवर्तनशील। मैटर और एनर्जी एक-दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। ब्रह्म का प्रसार वाक् रूप में होता है। एक शब्द-वाक् (सरस्वती यानी स्वयं ब्रह्मा की शक्ति) और दूसरा अर्थ- वाक् यानी विष्णु की शक्ति (लक्ष्मी) के रूप में। शब्दवाक् परा-पश्यन्ती-मध्यमा और वैखरी रूप में आगे बढ़ती है। लक्ष्मी अव्यय-अक्षर-क्षर और पंचभूत सृष्टि रूप में दिखाई पड़ती है। दोनों ही अति सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल के रूप में जगत् का निर्माण करती हैं। शब्द और अर्थ वाक् के निर्माण सूत्र भी छन्द रूप में समान ही होते हैं।

ब्रह्म की शक्ति है माया। ब्रह्म स्वयं कुछ नहीं करता तो माया में भी क्रिया नहीं है। केवल आमुखता है। सृष्टि के लिए माया का महामाया रूप, प्रकृति स्वरूप-सत-रज-तम रूप ही कार्यलीन रहता है। महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती ही त्रिगुण स्वरूपा कही

गई हैं। माया और महामाया के साथ योगमाया सर्वव्यापी है। परिमाण भेद का सारा कार्य योगमाया के द्वारा किया जाता है।

विष्णु माया सोममयी है। अथर्वा है। मैटर है। विष्णु ज्योतिर्मय ज्ञानाग्नि है। अग्नि रूप में सोम की आहुति यज्ञ है। इसी से सृष्टि का निर्माण ऋक्-यजु-साम (अग्नि वेद) के द्वारा किया जाता है। यजु गति रूप है, ऋक् और साम स्थिति है, अत: अग्नि भी यजु का ही द्योतक है। केन्द्र को ऋक् और परिधि को साम कहते हैं। बीच में जो गतिशील, परिवर्तनशील तत्त्व है, वह यजु है। यजु में भी यत् (गति) और जू (स्थिति) है।

विष्णु माया ही चेतना रूप में जगत का प्रसार करती है। जीव का जीवत्व चेतना ही कहलाता है। कृष्ण ने गीता में जीव को अपना ही अंश बताया है-'ममैवांशो जीवलोके जीवभूत:' कहा है। महाचेतना समुद्र में से सूर्य के द्वारा ही यह चेतना-तत्त्व मृत्यु लोक में आ रहा है। चेतना ही चित-रूप में शरीर की चिनाई करता है। और, चेतना ही चितेनिधेय रूप में शरीर का संचालन करता है। 'चेतना इति अभिधीयते'-चैतन्य सदा अव्यक्त ही रहता है। तत्त्व का व्यक्तिकरण स्थूल भाव में नहीं होता, उसके द्वारा सबका संचालन अवश्य होता है। चूंकि समझ में कुछ नहीं आता तो कहते हैं-न जाने क्या माया है!

सूर्य से हमको ज्योति, आयु और गौ नामक तत्त्व मिलते हैं। ज्योति ज्ञान स्वरूप है, गौ तत्त्व विद्युत शक्ति है। यह गौ लोक से (परमेष्ठी लोक) आती है। यह चेतना ही ज्ञान रूप होकर बुद्धि ही अहंकार में बदलती है। जीव के रूप में अहंकृति, प्रकृति और आकृति साथ-साथ बनते हैं, रहते हैं।

अपने अस्तित्त्व का आभास ही अहम् कहलाता है। इसी के लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग होता है। 'मैं' हूं तभी 'तू' भी है, 'वो' भी है। गीता में कृष्ण ने अहं की सातों विभक्तियों में स्वयं का ही परिचय दिया है। मेरे अलावा कहीं कुछ नहीं है। सबको छोड़कर मेरी शरण में आ जा। अपने आत्मा की शरण में आ। जब व्यक्ति स्वयं अपने आत्मा की शरण में आएगा तो उसका 'मैं' विसर्जित हो जाएगा। बिना समर्पण भाव के शरण नहीं मिलती। अहंकार को छोड़ना पड़ेगा। जीवन शुद्ध ज्ञान रूप, शुद्ध धर्म रूप, भक्ति रूप रह जाएगा। 'निस्त्रैगुण्यो भव' फलीभूत होगा। चाहे बुद्धियोग हो, चाहे कर्मण्यवाधिकारस्ते का मंत्र हो, चाहे '**आरंभे कर्मणाम् संन्यासे कर्म संगयो**' का उपदेश, सारे के सारे जीवन में प्रकट हो जाते हैं। यही तो माया का ज्ञान रूप, विद्या रूप-स्वरूप है। देवी सूक्त में माया के बदलते स्वरूपों का विवरण है कि किस प्रकार जीवन में माया अपना कार्य करती है।

प्रकृति व्यवहार में स्वभाव को कहते हैं। स्वभाव व्यक्ति का 'स्व' का भाव होता है। स्व का अर्थ है आत्मा। प्रकृति व्यक्ति के आत्मा को प्रकट करती है। एक मूल सिद्धान्त है कि प्रकृति, अहंकृति और आकृति एक साथ उत्पन्न होते हैं। एक जैसा स्वरूप होता है,

तीनों का। आप इनमें से किसी एक को बदल सकें, तो अन्य दो में परिवर्तन आ जाएगा। व्यक्ति न तो अहंकृति को बदल सकता है, न ही आकृति को। अत: उसका प्रयास अपनी प्रकृति को ही बदलने का रहता है। भक्ति मार्ग, तपस्या, ध्यान आदि के गहन प्रयोग प्रकृति को बदलने में सहायक होते हैं। ये सारे कार्य दैवयोग से किए जाते हैं। आसुरी योग से प्रकृति का अध:पतन होता है। शास्त्र कहते हैं कि सृष्टि को पुरुष और प्रकृति मिलकर चलाते हैं। यह प्रकृति किसका स्वभाव है। हमारी प्रकृति और इस प्रकृति में क्या समानता है कि दोनों को ही एक नाम से कहा जाता है। सृष्टि में तीन गुणों के योग का नाम प्रकृति होता है। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। जब ये तीनों बराबर के योग में हैं, तब सृष्टि नहीं होती। प्रलय काल होता है। इनकी विषमता या असमानता से सृष्टि का निर्माण होता है। हम प्रकृति के मूल में ऋक्-यजु-साम को देखें, तो यजु ही गतिमान रहता है। ऋक् और साम की गति का स्रोत यजु है। अहंकृति और आकृति में गति का मूल प्रकृति है। मन-प्राण-वाक् में भी मन और वाक् की गति प्राणों से ही होती है। सभी जगह गतिमान तत्त्व यजु होता है। प्रकृति में भी। मन, प्राण, वाक् में पुरुष की प्रधानता रहती है। प्राण मन के पीछे रहता है।

सृष्टि में पुरुष का निर्माण सबसे पहले होता है। प्रलय काल में केवल आकाश है। यही ब्रह्म है। यही मैटर है। इसमें ऊर्जा माया रूप में सोई रहती है। माया के कारण ही मैटर के स्पंदन स्फुरित होते हैं। एक अति सूक्ष्म बिन्दु का निर्माण होता है। यह बिन्दु पुरुष कहलाता है। इसका एक केन्द्र होता है, एक परिधि। परिधि में रहने वाले को पुरुष कहते हैं। सृष्टि का पहला पुरुष अव्यय पुरुष कहलाता है, जिसकी गीता में विस्तार से चर्चा हुई है। कृष्ण ने स्वयं को अव्यय पुरुष बताया है। अव्यय पुरुष ही आगे अक्षर और क्षर पुरुष का निर्माण करता है। अव्यय से अक्षर (प्राण) और अक्षर से क्षर सृष्टि। माया का ऊर्जा रूप भी महामाया और प्रकृति रूप में आगे बढ़ता है। पुरुष आत्मा के रूप में आगे बढ़ता है। माया आवरण रूप में। अव्यय पुरुष को मूल आत्म रूप कहा है और प्रकृति की हर सृष्टि के मूल में रहता है। इसी में हमारा मूल मन होता है। प्रकृति रूप माया के आते ही आत्मा और जीव भाव अलग हो जाते हैं। इस जीव भाव पर प्रकृति के तीनों ही गुणों के आवरण चढ़ जाते हैं। मन और बुद्धि दोनों आवरित हो जाते हैं। जीवात्मा तथा प्रकृति के अनुरूप ही हमारी आकृति बन जाती है। वैसा ही व्यवहार हमारे मन और बुद्धि करने लगते हैं। जबकि शुरू में यह शुद्ध रूप में होते हैं। हमारे पिछले कर्म फलों का प्रकृति के निर्माण में योग रहता है।

सृष्टि में दो ही तत्त्व होते हैं-पदार्थ एवं ऊर्जा। मैटर एवं एनर्जी। सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं का विस्तार है। पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है। ऊर्जा को भी पदार्थ में बदल सकते

हैं। पदार्थ ही हमारी अर्थ सृष्टि है। माया का महालक्ष्मी रूप इसे आगे बढ़ाता है। ऊर्जा पदार्थ के स्वरूप विस्तार, संरक्षण और विघटन रूप में कार्य करती है। ऊर्जा का एक रूप शब्द वाक् भी है। महा सरस्वती रूप माया इसका संचालन करती है। शब्द वाक् (मंत्रोच्चार आदि) से अर्थ सृष्टि का निर्माण हो सकता है। ऐसे अनेक प्रकार के यज्ञों का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। प्रकृति माया रूप गतिशील तत्त्व है। हमारे शरीर में, मन और बुद्धि में भी कार्य करता है और प्राण रूप में भी। गति का मूल स्पन्द है। ऋषि प्राणों के आधार पर गति रहती है। गति के लिए स्थान आकाश देता है। वायु इसकी दिशा तय करती है। सत्त्वगुण इसे ऊर्ध्वगामी और तमोगुण अधोगामी बनाता है। जितने हमारे देवी-देवता हैं, वे प्राणों के पर्याय हैं। ये प्राण ही हमारी अधिदैविक सृष्टि है। माया ही प्रकृति रूप में हमारे शरीर में कार्य करती है। हमारा शरीर पंच महाभूतों से बना है-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। व्यवहार में हम इनको क्रमश: गंध, रस, तेज, स्पर्श और नाद रूप में पहचानते हैं। इनके लिए हमारे पास पांच ज्ञान इन्द्रियां होती हैं। नाक, जिह्वा, आंख, त्वचा और कान। ये बाहरी विषयों के सम्पर्क में आते हैं और मन तक पहुंचाते हैं। मन अपनी प्रकृति के अनुरूप इनका अर्थ लगाता है। प्रतिक्रिया करता है। स्वीकार करता है। फिर से मांगता है अथवा नकार देता है। एक ही विषय के भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले व्यक्ति भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं। धर्म को सत्त्व गुण वाला मुक्ति का कारक मानेगा। रजोगुण वाला अहंकार का। तमोगुण वाला नकार सकता है।

प्रकृति में सत्त्व गुण सबसे मूल और प्रधान तत्त्व है। सत्त्व मन को ही महन्मन कहा है। यही अहंकृति, प्रकृति और आकृति को व्यवस्थित रखता है। सत्त्वं लघु प्रकाशकम्। केवल सत्त्व गुण के सहारे ही व्यक्ति सूक्ष्म में प्रवेश कर सकता है। ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा। सत्त्वगुणी बुद्धि ही प्रज्ञा कहलाती है और ऋत् भाव को समझ सकती है। ऋत् भाव सदा परिधि और केन्द्र से मुक्त होता है-जैसे वायु, जल। हमारी सृष्टि अक्षर सृष्टि है। अक्षर पुरुष में पांच प्राण होते हैं-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम। ब्रह्मा की प्रकृति है प्राण रूप धारण करना। यह जीव आत्मा की प्रतिष्ठा बनता है। विष्णु की प्रकृति है आप रूप क्षुधा। क्षुधा, अशनाया अथवा भूख। विष्णु ही यज्ञ है। पोषक रूप में जीव को अन्न ला-लाकर देता है। इन्द्र की प्रकृति छन्द रूप है। स्थान का अवरोध करने वाली। सोम की प्रकृति पशुरूप अन्न है। यहां अग्नि की प्रकृति गतिमान लक्षण अन्नाद है। ये पांचों प्रकृति रूप हमारे जीवन को चलाते हैं। चूंकि हर एक के अनेक भेद होते हैं, अत: अनन्त सृष्टि का निर्माण होता है।

अहंकृति, प्रकृति और आकृति में चूंकि प्रकृति ही गतिमान है अत: जीवन में

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। व्यक्तित्व परिवर्तन के लिए इसी का संक्रमण किया जाता है। सत्त्व गुण बढ़ने पर आसुरी भाव घटते हैं। लम्बी बीमारी को भी व्यक्ति विकास के लिए उपयोगी बना लेता है। तमोगुणी व्यक्ति श्रेष्ठ स्थिति में भी पातक बन जाता है। भ्रष्ट और भोगी उच्चाधिकारी इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। वे विकास का मार्ग नहीं ढूंढ़ते। गिरना ही उनको विकास लगता है। जैन कर्मवाद के अनुसार आगे के जन्मों के कर्मों को भी इसी जन्म में भोग लेने की अवधारणा है। प्रज्ञा पुरुष सूक्ष्म स्तर पर इन प्रक्रियाओं का उपयोग कर सकते हैं। वे स्थित प्रज्ञ भी होते हैं। वर्तमान कर्म भी निष्काम भाव से ही करते हैं। ताकि नए बन्ध नहीं बनें। पुराने खुलते जाएं। उपासना भी प्रकृति का संक्रमण ही है। जप में स्पंदनों की जो पुनरावृत्ति होती है, उससे प्रकृति का ही संक्रमण होता है।

प्रकृति माया है। पुरुष गतिमान नहीं है। प्रकृति ही गतिमान तत्त्व है। ब्रह्मा नहीं, सरस्वती गतिमान है। विष्णु नहीं, लक्ष्मी गतिमान है। शिव नहीं योग माया गतिमान है। प्रकृति ही आवरण है। सृष्टिगत आवरणों के अलावा व्यक्ति स्वयं भी नित्य नए आवरण चढ़ा लेता है स्वयं पर। माया ही कामना है। कामना स्वयं आवरणों का जाल है। अन्तहीन कामनाओं का जाल उम्रभर व्यक्ति को घेरे ही रहता है। कामना को ही क्षुधा कहते हैं। इसी से तृप्ति और तृष्णा के भाव जाग्रत होते हैं। इसी से नित नया ग्रहण करने दौड़ता है व्यक्ति। इसी से संग्रह या परिग्रह की शुरुआत होती है। यही ईर्ष्या, मोह, राग-द्वेष का कारक भी बनती है। इसी में जीवन के सारे द्वन्द्व रहते हैं। सारी मर्यादाएं टूटने के निमित्त बनते हैं। इसमें सारा कार्य व्यक्ति की दृष्टि पर निर्भर करता है। सकारात्मक भाव अथवा सात्त्विक दृष्टि जीवन को ऊपर उठाने का कारक बनती है। नकारात्मक भाव अथवा तामसी प्रकृति नीचे गिरने का निमित्त बनती है। इस दृष्टि का निर्माण वातावरण पर बहुत निर्भर करता है। जीवन में यही सत्संग का महत्त्व है। नकारात्मक वातावरण से बचाता है। सकारात्मक भाव में प्रतिष्ठित करता है। जीवन में शुद्धता के मार्ग खोलता है। प्रकृति में सहज परिवर्तन का मार्ग है। न शिक्षा की जरूरत पड़ती है, और न ही गहन अभ्यास की। समय के साथ प्रकृति स्वयं बदलती चली जाती है और पुरुष के साथ एकाकार हो जाती है।

निद्रा हमारी दिनचर्या का आवश्यक अंग है। परम योगी ही इसके बिना जी सकता है। साधारण व्यक्ति के लिए निद्रा एक वरदान है। इसके वैज्ञानिक कारण भी हैं, तो इसका विशिष्ट उपयोग भी किया जा सकता है। कुछ चिन्तन-मनन करने वाले लोग निद्रा को भी जीते हैं। दिन के कार्यकलापों के साथ जोड़ लेते हैं। जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के समाधान निद्रा में ढूंढ़ते हैं। निद्रा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इसमें स्वप्न होते हैं। सारे स्वप्न चित्रात्मक होते हैं। इनमें शब्दों का अभाव रहता है। शरीर और मस्तिष्क

की निद्रा में विशेष भूमिका नहीं होती। अवचेतन मन इन चित्रों का आधार होता है। इन चित्रों की विश्वभर में एक-सी भाषा होती है। चित्रों के अर्थ भी हर देश में एक-से लगाए जाते हैं। यह इस बात का भी प्रमाण है कि भीतर सब एक है।

निद्रा का अर्थ है, सुप्त अवस्था। किसी अन्य शक्ति के आधीन हो जाता है व्यक्ति। यह माया की सम्मोहन शक्ति है। रात्रि स्वयं में माया भाव है, चारों ओर अंधेरा छा जाता है और व्यक्ति को कुछ भी दिखाई नहीं देता। माया ब्रह्म की शक्ति है। पितरों की शक्ति स्वधा और देवताओं की शक्ति स्वाहा। इन तीनों के आगे विभिन्न स्वरूप बनते चले जाते हैं। ये ही अनन्त प्राणों की शक्ति बनते हुए सारे विश्व के रूप में महामोहमयी रात्रि रूप में व्याप्त रहते हैं। अविद्या भी माया का ही मोहनीय भाव है। निद्रा अविद्या के कारण ही आती है, भले ही थकान दूर करने वाली है, किन्तु नई शक्ति देती है।

माया ही चेतना है। यही बुद्धि के रूप में विकसित होती है। तीनों गुणों से आवरित होती है (सत-रज-तम)। सौ वर्ष के जीवन में आधा काल रात्रि का रहता है। यही निद्रा काल है। रा धातु से रात्रि शब्द बना है: 'राति इति रात्रि:।' यह देने वाली है। अन्तरिक्ष से आने वाली सोम-शक्ति प्राणी मात्र की क्षतिपूर्ति करती है। निद्रा एक औषध रूप में कार्य करती है। निद्रा में शरीर की रक्षात्मक शक्तियां जाग्रत रहती हैं। कोई भी अप्रिय ध्वनि या आहट व्यक्ति को जाग्रत कर देती है। शर्त यही है कि व्यक्ति नशे में नहीं सोया हो। निद्रा चूंकि माया रूप है, माया की सारी शक्तियां भी हमें निद्रा के साथ उपलब्ध रहती हैं। हमें कई बार आभास होता है कि जो बात हमारे मन में सोते समय चल रही होती है, उसी बात के सपने हमें नींद में आते हैं। हमारे मन की इच्छाएं, महत्त्वाकांक्षाएं, प्रेम, घृणा आदि सभी कुछ हमारे स्वप्नों में परिलक्षित होते हैं। ऐसा लगता है कि व्यक्ति आदि काल में पहुंच गया है, जब भाषा बनी ही नहीं थी। इशारों से बात करने का युग था।

योगियों ने निद्रा का अलग तरह से उपयोग किया। सिद्धपुरुष निद्रा में शरीर छोड़ कर अन्यत्र चले जाते थे। विश्व भ्रमण कर लेते थे। निद्रा को साधना से जोड़कर देव दर्शन तक कर लेते थे। यह भी कहा गया है कि उपासना के बीच यदि निद्रा आ जाए तो जो कुछ भी दिखाई देगा वह उपासना का फलरूप होगा। देवीसूक्त में कहा है कि प्राणी मात्र के लिए भगवती का यह निद्रा के रूप में अंशावतरण जीवन शक्तिदायक है।

आज वैज्ञानिकों ने स्वप्न विज्ञान पर बहुत कार्य किया है। मनोवैज्ञानिकों ने अवचेतन मन के अनेक पहलू उजागर किए हैं। उनमें सबसे व्यावहारिक और महत्त्वपूर्ण है दिन के कार्यों से निद्रागत स्वप्नों को जोड़ लेना। रात्रिकाल हम सोने में निकाल दें, अचेत होकर बिस्तर पर पड़े रहें, उसके बजाय हम उसका अपने जीवन में वैसा ही उपयोग करें, जैसा कि दिन का करते हैं। फिर हम आधी उम्र की जगह पूरी उम्र जीने लगेंगे। हम निद्राकाल

का भी रचनात्मक उपयोग करने लगेंगे। माया भाव की शक्तियों का उपयोग करने लगेंगे।

रात को सोने से पहले कुछ समय अपने को दीजिए। दिन की गतिविधियों को याद करने की भी जरूरत है। क्या किया, क्या छूट गया? क्या नहीं होना चाहिए था, आदि-आदि। अब सोचना है कि नींद में क्या जानना चाहते हैं। कहां की यात्रा करना चाहते हैं। कौन-सी खोज करना चाहते हैं। इसके लिए मन में वातावरण बनाना है। अपने प्रश्न में खो जाएं। मन में संकल्प करना है कि मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे मिलेगा ही और सुबह उठने पर याद भी रहेगा। इसी वातावरण में डूबते हुए सो जाएं। सुबह हड़बड़ी के साथ बिस्तर नहीं छोड़ें। उठते ही फिर आंख मूंदकर लेट जाएं।

अच्छा तो यह है कि हम ब्रह्म मुहूर्त में ही उठें। उस समय के सारे स्वप्न हमारे जीवन के निकटतम होते हैं। याद भी रहते हैं। पुन: स्वप्न को याद करेंगे, अर्धनिद्रा अवस्था में, तो बहुत कुछ याद भी आ जाएगा। नहीं तो दो-चार दिन के अभ्यास से आ जाएगा। आपके मन में कोई विशेष विचार चल रहा होगा। उस पर ध्यान दे सकते हैं। कुछ समय में ही आपको इन सबका महत्त्व समझ में आने लग जाएगा। आप अपने सपनों को निश्चित दिशा दे सकेंगे। इनका दिन के कामकाज में पूरा उपयोग कर सकेंगे। उल्लेखनीय है कि स्वप्न हमारे भीतरी जीवन से जुड़े होते हैं। यह भाग व्यक्ति के भीतरी जीवन का एक अंश है, अत: इनके माध्यम से आप स्वयं को सृष्टि के किसी भी धरातल से जोड़ सकते हैं। पशुभाव से देवभाव की ओर बढ़ सकते हैं। माया के चमत्कारों से साक्षात् कर सकते हैं।

तृष्णा किसी की समझ में न आए उसी का नाम माया है। जीवन का आधार कामना है और अत्यन्त तीव्र कामना को ही तृषा या तृष्णा कहते हैं। व्यक्ति जैसे-जैसे अपनी शक्तियों का संग्रहण करता है, उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। चूंकि व्यक्ति उम्र भर बाहरी संसार में ही खोया रहता है, अत: उसकी तृष्णा भी बाहरी विषयों की ही होती है। उसके मन में शक्ति-संग्रहण का जो वातावरण बना रहता है, उसी के कारण तृष्णा का भाव बढ़ता है। धन, वस्तुएं, मकान, जमीन आदि में बढ़ोतरी करना ही उसे शक्ति-सम्पन्नता लगती है। इस तृष्णा का मूल हेतु भी माया रूप अविद्या है, अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण ही मन की चंचलता बनी रहती है। जीव को अपने अस्तित्त्व का ज्ञान ही नहीं होने देती। जितनी चंचलता होती है, उतनी ही मन को अस्थिरता बढ़ती जाती है। मन में तनावों के नित नए स्पंदन पैदा होते जाते हैं। जीवन में एक बड़ा व्यवधान चंचलता के कारण बना रहता है। चंचलता ही बुद्धि को भ्रमित रखती है। सुख की तलाश, संकल्प-विकल्प का चक्रव्यूह बना रहता है। शरीर, मन और भाव, व्यक्ति के तीनों धरातल ही तनावग्रस्त हो जाते हैं।

विचारों का क्रम टूटने का नाम ही नहीं लेता। व्यक्ति क्षमता से अधिक अर्जित करने में लगा रहता है। एक ओर वह प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए भागता है, वहीं दूसरी ओर अप्रिय से भागने का यत्न करता रहता है। जीवन में एक द्वंद्व रह जाता है। अनेक भय से व्यक्ति त्रस्त होने लगता है। कई प्रकार के रोग व्यक्ति में परिलक्षित होने लगते हैं। परिग्रह जीवन में अभिशाप बनता जान पड़ता है।

मन नित्य नया चाहता है। जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, उसके लिए भटकता है। प्राप्त होते ही उसके प्रति उदासीन भी शीघ्र ही हो जाता है और फिर नई वस्तु के प्रति दौड़ने लगता है। मन की कामना ही ईर्ष्या और अहंकार का मूल है। इसी कारण व्यक्ति मर्यादाओं का लंघन करता है। येन-केन-प्रकारेण प्राप्ति ही उसका लक्ष्य रहता है। संग्रहण और फिर उसकी सुरक्षा में लगा ही रहता है। भय की उत्पत्ति का भी यही कारण बनता है।

तृष्णा के कारण ही व्यक्ति संयम खो देता है। लोभ और ईर्ष्या की जकड़ में रहता है। असत्य और हिंसा के मूल में भी तृष्णा ही है। तृष्णा के कारण ही देश की राजनीति का स्वरूप इतना विकृत हुआ है। तृष्णा ही पूंजीवाद का मूल है। नया उपभोक्तावाद भी तृष्णा के कारण ही आया। बटोरने की लालसा हर एक के मन में बढ़ती ही जा रही है। व्यक्ति किसी भी स्थिति में संतुष्ट नजर ही नहीं आता।

इसमें सारी तृष्णा अविद्या रूप है। अज्ञान के कारण फैलती नजर आ रही है। नकारात्मक भावों की ही वृद्धि हो रही है। व्यक्ति सुख की तलाश में स्वयं को जकड़ता हुआ सुख से दूर भाग रहा है। यहां तक कि तृष्णा के कारण दूसरों का धन, भूमि, जीवन आक्रान्त करके हड़पने के प्रयास करने लगा है। अज्ञान की शिक्षा नहीं देनी पड़ती। तमोगुणी तृष्णा का प्रसार जीवन में आसानी से हो जाता है।

यही तृष्णा जब विद्या का सहारा लेकर उत्पन्न होती है तो जीवन में कल्याणकारी बन जाती है। देश का कल्याण करने वाली बन जाती है। सत्त्व गुण बढ़ने लगते हैं। ज्ञान की पिपासा बढ़ती है। भक्ति और उपासना के मार्ग खुलते हैं। यहां तृष्णा को सकारात्मक कहा है। विद्या भाव को बन्धन मुक्ति का मार्ग कहा है। विद्या युक्त तृष्णा व्यक्ति को स्वयं में स्थिति देती है, आत्मभाव में बनाए रखती है। जैन दर्शन में पंच महाव्रतों में एक है अपरिग्रह। यानी तृष्णा से मुक्ति। अज्ञान के कारण लोभ या परिग्रह की धारणा कार्य करती है। इसी से प्रमाद या आचरणहीनता का भाव पैदा होता है। व्यक्ति हिंसा का सहारा लेता है अपनी तृष्णा को शांत करने के लिए। अत:, आगे चलकर परिग्रह ही हिंसा का कारण बनता दिखाई देता है। समाज में विषमता का मुख्य कारण परिग्रह ही बनता है।

शान्ति इस पल को समझ पाना कठिन है जब शान्त मन अशान्त हो जाता है या

अशान्त मन शान्त हो जाता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दिखाई भले ही अलग-अलग देते हैं, मूल में एक ही है। शान्ति और अशान्ति मन की स्थितियां हैं। अच्छी बरसात हो जाए तो माली के मन में शान्ति या प्रसन्नता का भाव पैदा होता है। वहीं कुम्हार का मन कार्य में अवरोध के कारण अशान्त हो जाता है। मन भावनाओं का धरातल है। इच्छाएं सारी मन में पैदा होती हैं। बुद्धि और शरीर इन इच्छाओं की पूर्ति में व्यस्त रहते हैं। जब मन में कोई इच्छा न हो तो सब कुछ शान्त हो जाता है। यह भी सत्य है कि मन है तो इच्छा भी है। मन भी इच्छा के साथ नया पैदा होता है और इच्छा पूर्ति के साथ मर भी जाता है। फिर नई इच्छा, फिर नया मन। मन स्वयं भी आत्मा का साधन ही तो है। आत्मा में जिस प्रकार का वातावरण होता है, इच्छा भी उसी के अनुरूप उठती है। अत:, यह वातावरण ही जीवन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसी से जीवन में शान्ति/अशान्ति अथवा स्वर्ग/नर्क का अनुभव होता है। क्षान्ति से लज्जा और लज्जा से शान्ति का भाव पैदा होता है। निर्लज्ज व्यक्ति का मन कभी शान्त नहीं रह सकता। यह भी माया का आवरण ही है। शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसे शान्ति की तलाश न हो।

शान्ति शब्द शम धातु से बनता है। बाहरी और भीतरी दोनों ही शान्तियों का द्योतक है। बाहरी शान्ति का सूचक समृद्धि है। भीतरी आनन्द ही भीतरी शान्ति का प्रतीक है। उसमें बाहरी समृद्धि का कोई योग नहीं होता। विमुखता भी नहीं होती। केवल तटस्थता का भाव रहता है। राजा जनक की तरह सारी सुख-सुविधाओं का भोग करते हुए भी उनमें लिप्तता या आसक्ति का भाव नहीं रहता।

आज तो किसी भी समृद्धिशाली व्यक्ति से मिलें तो वह भी किसी न किसी कारण से दु:खी अथवा अशान्त दिखाई पड़ता है। लक्ष्मी चंचला है। आज के अर्थ प्रधान युग में यह बात किसी को याद नहीं रहती। सब लक्ष्मी को बांधे रखने की चिन्ता से ग्रस्त हैं। समृद्धि का अर्थ धन-धाम से ही नहीं, इसमें आठों सिद्धियां भी शामिल रहती हैं। ये साध्य तो हैं; किन्तु तपस्या से ही मिल सकती हैं। इनमें ऐश्वर्य, ईश्वर भाव होता है। कृष्ण ने गीता में कहा है- 'शान्तेन चेतसा कुरु' अर्थात् शान्त चित्त होकर कार्य करो। चित्त में यदि उद्वेलन का भाव रहता है तो कार्य की सम्पूर्णता पर प्रश्नचिह्न लग जाते हैं। यह उद्वेलन ही काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या आदि का भाव पैदा करता है। मन में आवेग या आवेश पैदा होते हैं। व्यक्ति प्रवाहपतित होने लगता है। मन में इन भावों से अनेक प्रकार के स्पंदन पैदा होते हैं। बुद्धि के आवरण अथवा फल की इच्छा ही इन स्पंदनों को गति प्रदान करते हैं। ये स्पंदन ही हमारी अन्त:स्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करते हैं। उनके रसायनों का संतुलन बिगड़ जाता है। शरीर शक्तियां खोने लगता है या फिर रोगग्रस्त हो जाता है।

आज जीवन में चारों ओर मानसिक उद्वेलन के निमित्त दिखाई पड़ते हैं। यहां तक कि टी.वी. और सिनेमा भी शान्त व्यक्ति के मन में अनेक प्रकार की हलचल मचा देते हैं। राग-लोभ-ईर्ष्या के भाव भी व्यक्ति को शान्त नहीं होने देते। कर्म के बजाय फल पर आंखें रहने के ही ये सारे परिणाम भोगने पड़ते हैं। दुष्प्रवृत्तियां भी थमने का नाम नहीं लेतीं। फिर शान्त कैसे रहें? जब दुष्प्रवृत्तियों के साथ लज्जा का भाव पैदा हो और हमें रोक सके, तभी शान्ति की ओर कदम उठ सकेगा। मन में क्षान्ति का वातावरण बनाना आवश्यक होगा। सन्तुष्टि और सहनशीलता ही शान्ति के मूल में रहते हैं। समृद्धि भी यशप्रधान बने तो व्यक्ति को शान्त करती है। समृद्धि का उपयोग भी लोककल्याण के भाव से होगा तो अपूर्व शान्ति का आभास होगा।

बुढ़ापे में जब शरीर जर्जर हो जाता है, कर्मेन्द्रियां निशक्त हो जाती हैं, तब बाहर से व्यक्ति शान्त ही नजर आता है। मजबूरी है; किन्तु भीतर भी शान्त ही होगा, यह आवश्यक नहीं है। शान्ति की सार्थकता इसी में है कि शक्तियों के रहते हुए हम शान्त रहकर कार्य करें और भविष्य में आनंद में स्थापित हों। कामनाओं पर विजय प्राप्त कर सकें। कामनाएं ही शान्ति और अशान्ति का आधार हैं। मन के वातावरण को बदलकर ही कामनाओं का मार्ग बदला जा सकता है। अशान्ति के मार्ग में तभी लज्जा हमें रोकेगी और माया भाव हमें विनम्रता के साथ शान्ति में स्थापित कर सकेगा।

वृत्ति जीवनयापन के लिए कर्म आवश्यक है। प्राकृतिक कर्म भी करने पड़ते हैं। खाना-पीना, सोना, शौच आदि प्राकृतिक कर्म कहे गए हैं। चाहे-अनचाहे इनको तो करना ही पड़ता है। सांसारिक व्यवहार में जो कर्म व्यक्ति स्वयं के लिए करता है, उनके पीछे एक प्रयोजन होता है, उद्देश्य होता है। एक कामना होती है। यह कामना ही प्रवृत्ति का कारण बनती है। कामना ही प्रवृत्ति और निवृत्ति का मूल भी बनती है। वृत्ति से ही प्रवृत्ति बनती है। वृत्ति शब्द का अर्थ जीविकोपार्जन, व्यवहार अथवा जीवन के कर्म को माना गया है। वृत्ति व्यक्ति की मनोदशा का एक सूचक है। प्रवृत्ति में कार्य भी है और कामना भी है, जीवन व्यवहार भी है। अभ्यास के साथ प्रवृत्ति ही प्रकृति बन जाती है। व्यक्ति के स्वभाव की, पहचान की सूचक बन जाती है। जीवन की अवधारणा ही प्रवृत्ति एवं प्रकृति को बनाए रखती है। अत: जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

व्यक्ति को जैसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उसके मन में कई तरह के कार्य करने की प्रवृत्तियां उठने लगती हैं। व्यक्ति के बाहरी स्वरूप में अनेक परिवर्तन, अनेक फैलाव दिखाई पड़ने लग जाते हैं। विद्या के कारण प्रसार और अविद्या के कारण संकोच की भूमिका प्रभावी रहती है। संकोच का अर्थ है व्यक्ति लक्ष्मी को बांधे रखने का प्रयास

करता है। अपने स्वार्थ के लिए उसका उपयोग करता है। उसे बचाए रखने के प्रयास में या बढ़ाने के प्रयास में जुट जाता है।

समाज में धन के अहंकार की तुष्टि के मार्ग ढूंढता रहता है। व्यसन आदि में उसका प्रवेश होने लगता है। लक्ष्मी परिश्रम से भी प्राप्त होती है और भाग्य से भी। भाग्य व्यक्ति का स्वयं का भी हो सकता है और उस पर आश्रितजनों का भी हो सकता है। एक संस्था में पांच सौ व्यक्ति कार्य करते हैं। सबके परिश्रम और सबके भाग्य से ही संस्था फलवती होती है। किसी एक व्यक्ति के भाग्य से नहीं होती।

लक्ष्मी के उपयोग या उपभोग की पहली आवश्यकता है- उसका उचित विभाजन। इसी पर धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य की अवधारणा टिकी रहती है। आई हुई लक्ष्मी का घर के सदस्यों में और समाज के सदस्यों में यदि उचित विभाजन हो रहा है तो 'श्री' या लक्ष्मी भी स्थायी रहेगी। व्यक्ति पाप का भागी कभी नहीं होगा। मूलत: इसी उचित विभाजन को वृत्ति कहा जाता है।

व्यक्ति स्वयं के नाम पर लाखों रुपए खर्च कर देता है, दूसरे की मदद के लिए सिर हिला देता है, तब उसे फलने-फूलने का आशीष कौन देगा? वृत्ति, आवृत्ति, प्रवृत्ति, निवृत्ति, विरुद्ध वृत्ति, मनोवृत्ति आदि सभी वृत्ति के स्वरूपों की विवेचना करते हैं। सत्ता या टिके रहना, अवस्था, दशा, कार्य, कार्य का कारण, गति, आचरण-व्यवहार, व्यवसाय, परिधि, शब्दों की शक्ति (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना) आदि सारे वृत्ति के ही शब्दार्थ हैं। वृत्ति सत्ता, कर्म क्षेत्र और गति से जोड़े रखती है। कर्म और ज्ञान के संतुलन का नाम ही सुखी जीवन है। वृत्ति में जब अविद्या के आवरण जुड़ जाते हैं तब व्यक्ति केवल बाहर की ओर भागता है। भीतर का सब-कुछ ढका रहता है। व्यक्ति खुद को देख नहीं पाता। हर वृत्ति के साथ मन की चंचलता बढ़ती जाती है। शरीर और इन्द्रियां स्थिर भाव में आ ही नहीं पातीं। इस कारण सूक्ष्म शरीर भी चंचल बना रहता है। अन्त: स्रावी ग्रंथियों के रसायनों का संतुलन बिगड़ता जाता है। वृत्तियों के स्पंदन एक ही दिशा में होते हैं। आदान-प्रदान (स्थूल और कारण शरीर के बीच) अचेतन रूप लेकर रह जाता है। शरीर समय से पहले थक जाता है, रोगग्रस्त हो जाता है। शैया पकड़ लेता है। तब मन में उठने वाले नए स्पंदनों का क्या होगा? नई इच्छाओं की पूर्ति कैसे होगी। शरीर की गतिविधियों का रुक जाना ही सूक्ष्म और कारण शरीर के लिए बड़ी सजा का काम करता है। भीतर उठने वाली सारी ऊर्जाएं और सारे स्पंदन व्यक्ति को भीतर ही तोड़ने लग जाते हैं। बाहर निकलने का द्वार तो बन्द हो गया। चंचलता समाप्त नहीं होती। अत: वृत्ति का संतुलन भी आवश्यक है।

वृत्ति ही ज्ञान का आश्रय लेकर निवृत्ति की ओर अग्रसर करती है। चंचलता का समाधान करती है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में एक संतुलन बनाए रखती है। व्यक्ति का ध्यान शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन और आत्मा की वृत्तियों की ओर भी जाने लगता है। चित्तवृत्ति और मनोवृत्ति का पोषण होने लगता है। अच्छे आचरण और व्यवहार की यही महत्ता है। अनेक धर्मों ने 'आचार: प्रथमो धर्म:' कहा है।

मातृभाव जननी वाचक है। एक माता जो स्थूल शरीरधारी है, हमें जन्म देने वाली है। एक सूक्ष्म जगत की माता है, जो सृष्टि भाव पैदा करने वाली है। मातृ शब्द के दो अर्थ हैं- सीमाकरण और शब्द प्रयोग। किसी भी पदार्थ का केन्द्र कायम करके जो उसका सीमाकरण किया जाता है, वहां मा धातु का प्रयोग होता है। शब्द धारा में 'अ' से 'ह' तक जो 50 मूल अक्षर हैं, उनको मातृकाएं कहा जाता है। ये मातृकाएं भी योनि रूप हैं और स्वर बीज रूप कहे गए हैं। जिस प्रकार इन स्वर और व्यंजनों से वाक् सृष्टि होती है, वह भी सीमाकरण ही है। कहा भी है-

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य: शब्दानुगमात् ऋते।।"

विश्व का कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है, जहां शब्द का प्रवेश नहीं हो। वैसे तो शब्द वाक् का वैखरी रूप ही है। सूक्ष्म स्तर पर तो परा, पश्यन्ती और मध्यमा भी वाक् के स्वरूप हैं। मातृभाव माया का ही लोककल्याणमयी स्वरूप है। इसीलिए देवी शक्ति से प्रार्थना की जाती है। मातृ भाव पुरुष में भी होता है। कम हो सकता है। जहां जीवन में तुष्टि आती है, व्यक्ति अपने ही स्वरूप को समझना शुरू कर देता है। उसे अपने ही भीतर नर-नारी के स्वरूप दिखाई देने लगते हैं। बाहर दिखाई पड़ने वाले नर-नारी उसके भीतरी स्वरूप के ही प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि ऐसे चिन्तन-मनन अथवा साधना क्रम में शरीर पीछे छूट जाता है। भीतर तो और कोई अन्तर है ही नहीं। शरीर-भेद तो छोटी संस्था का नाम है। भीतर की सारी संस्थाएं समान हैं। हर व्यक्ति भीतर की हर शक्ति को समान रूप से विकसित कर सकता है। साधना का लक्ष्य भी यही है कि जीवन की इस भेद-रेखा को समाप्त किया जाए। अहंकार के कारण ही व्यक्ति अपनी दैहिक पहचान से चिपका रहता है। इसी कारण उसके विचार बाधक बनते रहते हैं। जब दोनों स्वरूप स्पष्ट हो जाते हैं, एक-दूसरे में समा जाते हैं, तो 'अहं' भी समाप्त होता नजर आता है। मैं नहीं रहता, तो तू भी नहीं रहता। कोई और भी नहीं रहता। नए अनुभवों का उदय शुरू होता है। अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा ही इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझाने में सहायक होती है। व्यक्ति का मनन मध्यमा से होता हुआ पश्यन्ती की ओर जाता है। शब्द लुप्त हो जाते हैं। विचार पीछे छूट जाते हैं। व्यक्ति दृष्टा बनकर देखता रहता है। बाहरी ज्ञान का अर्थ समाप्त होने लग जाता

है। ऋषि, पितर और देवऋण चुकने के बाद मातृ-ऋण ही तो शेष रहता है। इसको चुका पाना साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं होती। केवल मां की कृपा से ही मुक्त हो पाता है। व्यक्ति शरीर से ऊपर उठकर चिन्तन कर सकता है। वहां न नर है, न नारी। यह विरोधाभास ही समाप्त हो जाता है।

जीवन युगल तत्त्व से चलता है। तभी तो सृष्टि यज्ञ चलता है। दो विरोधी भाव-ब्रह्म और माया, मैटर और ऊर्जा, नेगेटिव और पोजिटिव, अग्नि और सोम, नाम कोई भी हो, मिलकर ही यज्ञ के क्रम को बनाए रखते हैं। जहां दोनों शक्तियां बराबर रहती हैं, वहां सारे समीकरण ठीक या व्यवस्थित चलते हैं। जीवन में द्वन्द्व नहीं रहता। जब दोनों में से एक प्रबल या अधिक होता है, तब विसंगतियां सामने रहती हैं। व्यक्ति का चेतन मन इनसे जूझ नहीं पाता। अचेतन में बैठी विरुद्धधर्मा शक्ति उसे असमंजस की स्थिति में बनाए रहती है। व्यक्ति इसको समझ भी नहीं पाता। हमारे चेतन शरीर को अवचेतन की शक्तियां ही चलाती हैं। नर और नारी में अवचेतन भी विपरीत स्वभाव का ही कार्य करता है। पहले दोनों विरोधी ध्रुवों को बराबर धरातल पर लाने की आवश्यकता होती है। जैसे ही नर को अपना नारीभाव समझ में आता है, बाहर की नारी उसके लिए प्रतिबिम्ब रूप होते हुए भी आकर्षित नहीं कर सकती। जैसे ही नारी को अपने भीतर का नर भाव समझ में आता है, बाहरी नर उसको आकर्षित कर नहीं सकता। व्यक्ति प्राकृतिक स्वरूप में ब्रह्मचारी बन जाता है। भावों को कुचलने की जरूरत नहीं पड़ती।

धीरे-धीरे नर का नारीभाव और नारी का नरभाव प्रकट होकर मूल नर-नारी भाव से ही मिलते हैं। जैसे ही दोनों एक-दूसरे में समाहित होते हैं, यज्ञ समाप्त हो जाता है। वहां दो रहते ही नहीं हैं। इसे चाहे तो ईश्वर और जीव भाव का एक हो जाना भी कह सकते हैं जो व्यक्ति की आत्मा के दो भाग बनकर जीवन को द्वैत रूप देते हैं। मां की कृपा से यह स्वरूप अद्वैत हो जाता है। यही जीवन का उत्कर्ष है।

क्षुधा का व्यावहारिक अर्थ है-भूख। भूख का अर्थ है अन्नग्रहण की इच्छा। अन्न यद्यपि बाहर से लिया जाता है; किन्तु भीतर जाकर वह आत्मसात् हो जाता है, आत्मा से जुड़ जाता है। अत: क्षुधा का अर्थ भी अन्न से ही जुड़ गया। भूख तो किसी भी चीज की हो सकती है। कपड़ों की, मकान की, धन की, यश की, सत्ता की। अत: कोशकार ने अशनाया, इच्छा, कामना आदि को क्षुधा का पर्याय माना है। कामना ही तो भूख है। कामना ही मन का बीज है। कामना ही जीवन है, जीवन का उपादान कारण है।

इस सारी सृष्टि को ब्रह्म की कामना- 'एकोऽहं बहु स्याम्' का ही तो परिणाम कहा है। आत्मा का भूमाभाव ही कामना का मूल है। इसी से वर्तमान अवस्था में गति भी आती

है। जीव भी तो उसी ब्रह्म का अंश भाव है। इसी को पूर्णता देने के लिए कामना या क्षुधा शक्ति प्रवृत्त होती है। हमारी सारी कामनाएं बाहर से पूरी होती हैं।

व्यक्ति जीवनभर अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए भाग-दौड़ करता है। अन्य प्राणियों के जीवन का आधार भी कामना ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि मनुष्य की कामना के साथ परिणाम जुड़ा होता है। इस परिणाम-धर्मा कामना को ही धर्म कहते हैं। जब दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हो सकते तो धर्म भी हर व्यक्ति का अपना निजी स्वरूप है। उसका अपने ईश्वर से गुप्त संबंध है। उसे कोई प्रकट नहीं करता।

हमारे जीवन में दो कर्म-चक्र चलते रहते हैं। एक हमारे भाग्य अथवा प्रारब्ध कर्म का चक्र जिसको हम बदल नहीं सकते। हमें भोगना ही पड़ता है। इसमें हमारे जन्म-मरण-परण, संतान, बीमारी, दुर्घटनाएं आदि सम्मिलित होते हैं। दूसरा चक्र हमारे वर्तमान कर्म का है जो हम अपनी बुद्धि के सहारे करने का प्रयास करते हैं। इससे हमारा आगे का प्रारब्ध बनता है। ये प्रतिबिंबित मन के कर्म हैं।

आधुनिक भाषा में इनको अवचेतन और चेतन मन कहा जाता है। हमारे जीवन की सारी अवधारणाएं अवचेतन में रहती हैं। इसी के सहारे चेतन मन को समझना पड़ता है। कामना दोनों ही मनों में बीज रूप में पैदा होती है। कामना से ही नई सृष्टि करने की क्षमता आती है। वेद मंत्र कहता है :

''कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत: प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्य कवयो मनीषा।''

- सारा जगत् कामनामय है। जहां मन है, वहां कामना है। यही क्षुधा है, जगत् का आधार है।

जैसे ही व्यक्ति निद्रा से जाग्रत होता है, नई ऊर्जा लेकर उठता है। कामना तुरन्त उसको घेर लेती है। कामना का स्वरूप उसके मन का वातावरण तय करता है। मन चंचल है, नित नया मांगता है। कामना भी नित नई पैदा होती है। स्वत: पैदा होती है और हम इसकी पूर्ति में लग जाते हैं। यही माया-रूप कामना जगत् का आधार है। हमारी समझ से बाहर की बात है। केवल योगी, मनीषी ही इसको समझ सकते हैं।

ज्ञान से पूर्व अज्ञान की स्थिति रहती है। तमोगुण ही जीवन को चलाता है:

''तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रे'

सृष्टि में सबसे पहले अंधकारमय तम फैला हुआ था। अति अल्पभाव का बिन्दुमय चैतन्य चारों ओर से आवृत्त हो रहा था। इसी अज्ञान-रूप बल से अभिमान-रूप तत्त्व जागृत हुआ। यह अभिमान ही इच्छा या कामना-रूप शक्ति से जुड़ जाता है। यह माया विशिष्ट की कामना होती है। यह कभी सत्त्वगुणी, कभी रजोगुणी, कभी तमोगुणी, जहां

जिसकी प्रधानता हो, रहती है। संसार के अनेक प्रकार के भेदों का कारण यही है। इसी भेद-भाव में ईर्ष्या तत्त्व जाग्रत होता है। कामना से ईर्ष्या जुड़ जाती है। मन की गति तेज हो जाती है। इसी ईर्ष्या के नियंत्रण के लिए लिखा है:

'हेतावीर्ष्या फले न तु'

अर्थात् हेतु में ईर्ष्या करो, फल में नहीं। फल के कभी भी ईर्ष्या में प्रवृत्त होने से अभिमान तत्त्व संकुचित हो जाता है और व्यक्ति का स्वार्थभाव सर्वोपरि हो जाता है। माया का अविद्या रूप अहंकार को घेर लेता है। क्षुधा शक्ति से जीव को आवृत्त कर लेता है। माया शक्ति में ही यह सामर्थ्य है कि इस क्षुधा को अविद्या से हटाकर विद्या (धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य) में लगा दे।

क्षान्ति

'या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।।''

क्षान्ति यानी सहनशीलता। इसका अर्थ है प्रतिक्रिया का अभाव। उग्रता का अभाव। शान्त भाव में स्थिति। क्षम धातु से क्षान्ति बनता है- यानी सहन करना। इसकी पहली जरूरत है स्वभाव का लचीलापन। कहने को यह बहुत साधारण बात लगती है; किन्तु बहुत कठिन है लचीलापन बनाए रखना।

आज तो चारों ओर एक होड़-सी लगी हुई है। अहंकार के अनेक स्वरूप हमारे सामने हैं। व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होता ही जा रहा है। लोभ और ईर्ष्या सारी सीमाएं तोड़ने को तैयार बैठे रहते हैं। फिर सहन करने की बात को सुनेगा कौन?

सहन न करने का परिणाम है सत्ता के लिए संघर्ष चाहे घर में हो, व्यापार में हो या राजनीति में। सहन न करने का अर्थ है प्रतिक्रियाएं और क्रोध की अभिव्यक्ति। इस स्थिति के मूल में है भय। बिना भय के क्रोध नहीं आता। बिना भय के लोभ नहीं आता। बिना भय के प्रतिक्रिया नहीं होती।

सहन न करने का कारण है कि हम सामने वाले का सम्मान नहीं करते। हम अपनी बात को मनवाना चाहते हैं। सामने वाला भी अपनी बात पर टिका रहना चाहता है। दोनों में टकराव की स्थिति बन जाती है। मूल में सत्ता की लड़ाई ही है। अपना वर्चस्व बनाए रखने का ही संघर्ष है। जब भी सत्ता के निमित्त/ उपादान कारणों के साथ सम्मान का भाव नहीं जुड़ेगा, अहंकार ही हावी रहेगा। शायद महाभारत के मूल में भी यही रहा हो। शायद इसी के कारण आज भी घर-घर में महाभारत होता हो। महाभारत में गीता के कृष्ण ने एक और संदेश दिया जिसका दुरुपयोग भी देखा जाता है। कृष्ण ने कहा कि अत्याचारों को

सहन नहीं करना चाहिए। इसलिए युद्ध अवश्य करना चाहिए। हमें क्षमाशील व्यक्ति के सामने ही क्षमा का भाव रखना चाहिए। विरोधी इसे हमारी कमजोरी मान ले तो उसे क्षमा नहीं करना चाहिए। इसके प्रत्युत्तर में हमने हर विरोधी विचार वाले को अत्याचारी मान लिया। गीता के अनुसार यदि कर्म तो करें; किन्तु फल की इच्छा न हो तो व्यक्ति सहनशील बन जाता है। जहां दृष्टि कर्म के बजाए फल पर रहने लगे वहां संघर्ष तो रहेगा। कर्म के प्रति श्रद्धा भाव भी नहीं होगा। जब व्यक्ति स्वयं को छोटा महसूस करता है अथवा बड़े के साथ ईर्ष्या करता है तो उसका यह संघर्ष शुरू होता है। यह सारी लड़ाई बाहरी धरातल की है।

जैसे ही भीतर झांकना शुरू होता है, व्यक्ति का ध्यान स्वयं पर केन्द्रित होने लग जाता है। ज्ञान के प्रभाव से स्वयं को समझने का, जीवन को समझने का प्रयास करने लगता है। धीरे-धीरे उसके मन के भय दूर होने लगते हैं। बाहरी सत्ता के आकर्षण घटने लगते हैं। प्रतिक्रियाएं ठहराव की स्थिति में आने लगती हैं। इसी का आगे का रूप है प्रेम। व्यक्ति के मन में जैसे बच्चे की शरारतों को देखकर भी सहनशीलता बनी रहती है, माता-पिता के प्रति भी वह रोष प्रकट नहीं करता, वैसे ही अन्य व्यक्तियों के साथ भी वह एक नया संबंध स्थापित करने लगता है। उनके साथ संघर्ष का रिश्ता नहीं रहता। उनसे कोई भय नहीं रहता।

सहनशीलता या क्षान्ति भीतरी शक्तियों की परिचायक है। धीर, वीर पुरुष क्षमावान होते हैं। वे दूसरों के बजाए स्वयं के व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। जहां विद्या है, चेतना है वहां भावनात्मक संघर्ष टिक ही नहीं सकता। व्यक्ति दर्शक बन जाता है, आसक्त नहीं होता। विषय के साथ चिपकता नहीं है।

कभी-कभी तृष्णा की अधिकता भी व्यक्ति के मन में विरक्ति का भाव पैदा कर देती है। मूर्च्छा को तोड़ देती है। अनेक जैन तीर्थंकर अचानक मूर्च्छा के टूटने से ही केवली हो गए। इसी को माया के विद्या रूप का प्रभाव कहते हैं। व्यक्ति बाहरी सत्ता के बजाए भीतरी सत्ता में जीने लग जाता है। उसकी इन्द्रियां और मन, उसकी आत्मा की ओर मुड़ जाते हैं। घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ आदि सारे नकारात्मक भाव समाप्त हो जाते हैं। द्वन्द्व समाप्त होकर व्यक्ति द्वन्द्वातीत होने लगता है। जीवन व्यवहार में जिस प्रकार व्यक्तियों से, घटनाओं से और चर्चाओं से पाला पड़ता है, प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक होती हैं; किन्तु वे क्षणिक ही रह जाती हैं। व्यक्ति उदारमना हो जाता है। जैसे-जैसे भावनाओं की शुद्धि होती जाती है, प्रेम और मित्रता का वातावरण चारों ओर बनने लग जाता है। यही वातावरण जीने की नई शक्ति प्रदान करता है। जीवन से तृष्णा विदा हो जाती है।

श्रद्धा अर्थात् आस्था, निष्ठा, विश्वास, भरोसा। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का विकास करता रहता है। कर्म करता रहता है। अनुभव करता रहता है। अपने कर्म ही लौटकर उसके पास वापस भी आते हैं। विकास का क्रम ठहरता नहीं है। बात केवल इतनी-सी ही है कि हम विकास के क्रम को किन आंखों से देखते हैं। हमारी दृष्टि हमारी भावनाओं पर निर्भर करती है। हमारी मंशा पर निर्भर करती है। श्रद्धा जीवन के, सृष्टि के मूल को देखकर जीने का नाम है। शरीर के भीतर की शक्तियों पर दृष्टि रखकर जीने का नाम है। श्रद्धा जीवन की पवित्रता का सम्मान करने का नाम है। श्रद्धा जीवन को मूल्यवान बनाती है। श्रद्धा आत्मा का विषय है।

जब मन शान्त होता है तब मन भीतर की ओर मुड़ता है। भीतर की गतिविधियों को जानने लगता है। जीवन की वास्तविकता से उसका सामना होता है। वास्तविकता को बदला तो नहीं जा सकता; किन्तु उसे समझने का मार्ग बदल जाता है। व्यक्ति को अपने आत्मा की तरह ही दूसरों के आत्मा का भी आभास होने लगता है। हर आत्मा का महत्त्व दिखाई पड़ता है। जैसे एक नेता को अपने क्षेत्र का हर मतदाता महत्त्वपूर्ण दिखाई पड़ता है। सबको प्रसन्न रखने का प्रयास करता है और स्वयं अपने अस्तित्त्व के लिए उन पर निर्भर करता है। श्रद्धायुक्त व्यक्ति भी हर प्राणी को जीवन में महत्त्वपूर्ण मानने लगता है। किसी का अहित भी नहीं करता। वेद वाक्य है कि आत्मा के जिस अंश का दूसरे की आत्मा में समर्पण किया जाता है, वह वहां दूसरे की आत्मा का सहारा लेकर रहता है। वहीं रहकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। आत्मा का वह अंश श्रित कहलाता है। जिस सूत्र से वह दूसरे की आत्मा से बंधा रहता है, उसे श्रत-सूत्र कहते हैं। इसी सूत्र को श्रद्धा कहते हैं। इसी से सन्तान भी पितरों से जुड़ी रहती है। माया ही श्रद्धा-रूप सोम तत्त्व से सारे संसार का संचालन करती रहती है।

सूर्य किरणों का एक पुंज सोम तत्त्व का निर्माण करता रहता है। इस किरण समूह को भी श्रद्धा-सोम-तत्त्व कहते हैं। 'श्रद्धा वै आप:' अर्थात् जल का ही नाम आप: है। यह अम्भसू-रूप आपोमयी श्रद्धा सूर्य से निकलकर चंद्रमा में एकत्र होती रहती है। वहां से इसका संबंध मृत्युलोक से होता रहता है। जिस जल को हम काम में लेते हैं, उसमें भी सोम तत्त्व का अंश तो रहता ही है। सोम तत्त्व ही श्रद्धा-रूप विश्वास में बदलता है। इसमें स्नेह भाव होता है, मधुरता रहती है। व्यक्ति को आदर्श के साथ जोड़ देती है। 'श्रद्धा विश्वासरूपिणी' भी कहा है। इसको ईश्वरमयी बताया है। अपने इष्टदेव में, माता-पिता में, गुरु चरणों में, परम विश्वास के रूप में जब श्रद्धा तत्त्व जाग्रत होता है तो क्या नहीं मिल सकता। श्रद्धा जीवन का मार्ग दिखलाती है।

चन्द्रमा मन का स्वामी है। श्रद्धा तत्त्व का संग्रहालय भी है। अतः, मन में श्रद्धा तत्त्व का भरपूर पोषण करने वाला भी है। सोम ही मन की चंचलता का कारण भी है। मन इन्द्रियों का राजा भी कहलाता है। इन्द्रियां ही मन की चंचलता को बनाए रखती है। मन को बाहरी विश्व में अटकाए रखती हैं। यह सारा भौतिक जगत् है, यहां विश्वास को अनेक बार टूटते देखा जा सकता है। सम्मान का कोई धरातल ही नहीं होता। आज तो खरीदा भी जा सकता है।

लेकिन श्रद्धा का धरातल ऐसा नहीं है। वहां शरीर और बुद्धि के विषय गौण रहते हैं। इन्द्रियां बाहरी विषयों में लिप्त नहीं हो पातीं। बुद्धि के तर्क-वितर्क-कुतर्क कार्य नहीं कर सकते। इन्द्रियां मन के साथ सिमटकर आत्मा की ओर मुड़ जाती हैं। इस मन को साथ लेकर आत्मा ईश्वर की ओर मुड़ जाता है। शरीर गौण हो जाता है। बुद्धि गौण हो जाती है। अपना-अपना कार्य अवश्य करते हैं। कर्म के साथ व्यक्ति की चेतना सदा जाग्रत रहती है। शुद्ध ज्ञान और शुद्ध आनंद का धरातल देखकर जीवन नृत्य करने लगता है। जब मन में प्राणी मात्र के लिए सम्मान पैदा हो जाए, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा पर जीवन चल पड़े, तब वहां लोक कल्याण के सिवाय रह भी क्या जाता है। जीवन में कोई स्वार्थ ठहर ही नहीं सकता। लोभ-ईर्ष्या-द्वेष लुप्त हो जाते हैं। बाहरी विषयों और भीतरी विषयों का एक-दूसरे में समावेश हो जाता है। समग्र दृष्टि और समष्टि भाव का उदय हो जाता है। माया ही अपने आवरण हटाने को आतुर हो उठती है। जीवन ऊर्ध्वगामी हो जाता है।

स्मृति ईश्वर से हम प्रार्थना करते हैं कि वह हमें कभी भुलाये नहीं। हमारा नाम उसकी सूची में बना रहे। हम भी किसी को आश्वस्त करना चाहते हैं तो यही बात कहते हैं कि 'आपको भूल पाना संभव नहीं है। आप भले ही भूल जाना, हमें तो याद रहेंगे।' याद रखना और भूल जाना प्रतिदिन हमारे जीवन में अठखेलियां करते रहते हैं। कोई याद रखने की क्षमता से सुखी है या दुःखी है। कोई भूल जाने की लाचारी से सुखी है या दुःखी है। अतः; यह कहना कठिन है कि जीवन में याद रखना श्रेयस्कर है अथवा भूल जाना। इसमें व्यक्ति भी हो सकते हैं और विषय भी। घटनाएं अथवा जीवन के अविस्मरणीय क्षण भी हो सकते हैं। बुढ़ापे में लोग इस बात से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं कि उन्हें बहुत कुछ याद नहीं रह पाता। किसी बीमारी के कारण भी स्मृति लुप्त हो सकती है अथवा किसी सदमे से भी ऐसा हो सकता है।

स्मृति मन में अंकित घटनाओं अथवा भावों की जाग्रति का नाम है। व्यक्ति अपने आप भी स्मृतियों में खो सकता है अथवा निमित्त पाकर भी स्मृतियां मानस पटल पर उभर आती हैं। बीते हुए जीवन के अंशों का फिर से वर्तमान को घेर लेना स्मृति है। स्मृति की दूसरी

तस्वीर यह भी है कि जीवन में जो आवश्यक बातें, व्यक्ति, नाम, विषय आदि हैं, वे भी सदा याद रहें। जब जरूरत पड़े याद आ जाएं। कुछ विस्मृत न हो जाए। वरना विकास में अवरोध आ जाने का डर रहता है। स्मृति-स्मरण-अपोहन (भूलना) तीनों ही आत्मा से जुड़े रहते हैं। शरीर- बुद्धि-मन तीनों उपकरण इसमें सहायक होते हैं। आत्मा नित्य गतिशील है। 'अत सातत्य गमने' कहा गया है। इसी तरह मन को अवबोधने/अवगमने कहा है। अवग्रह, ईहा और अवगम, ये मन की क्रियाएं हैं।

मन पहले किसी विषय को देखता है (अवग्रह), चेष्टा करता है (ईहा) फिर अवगम (स्वीकारोक्ति) करता है । मन की चेष्टा में बुद्धि का भी योग होता है। समझने की बात केवल इतनी-सी है कि मन और बुद्धि दोनों ही त्रिगुण के आवरण में कार्य करते हैं। स्मृति के कारण ही निमित्त पाकर आत्मा के संस्कार प्रकट होते हैं। इसी कारण पूर्व जन्मों का ज्ञान प्रकट होता है। ये सब आत्मा के संग्रहालय में सुरक्षित रहते हैं। इसी संग्रहालय में हमारे पुराने कर्म भी रहते हैं। पुनर्जन्म का (इस जन्म का भी) आधार यही कर्म होते हैं।

प्रकृति में या तो कर्म होता है या उसका फल। इसमें अच्छा या बुरा कुछ नहीं होता। मनुष्य का जीवन छोटा है; अतः वह तुरन्त फल की कामना करता है। प्रकृति अनन्त काल रूप है। उसमें फल भी अलग-अलग काल में प्रकट होता है। यही हमारे पुनर्जन्म के सिद्धान्त का मूल आधार है। जिन कर्मों का फल अभी पाना है, वे सब स्मृति में रहते हैं।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य पुनर्जन्म के चक्र से बाहर निकल जाना है। उसके लिए आवश्यक है कि उसकी स्मृति का संग्रहालय पहले खाली हो। उनमें नई स्मृतियां नहीं भरें। व्यक्ति को अपने बीते जीवन से स्मृतियां ही तो बांधे रखती हैं। जीवन का लक्ष्य बन्धन-मुक्त होना है। स्मृतियों में खोना, खोये चले जाना, हमारे साहित्यकारों ने बहुत श्रेष्ठ माना है। कवियों ने, गीतकारों ने तरह-तरह की मालाओं में गूंथा है। पुरानी तस्वीरों को हम कमरों में सजाये रखना चाहते हैं, ताकि कुछ मधुर क्षण सदा हमारी आंखों के सामने बने रहें। आज तो हर आयोजन की स्मृतियां बटोरते हैं हम। फिल्में बनाते हैं, एलबम बनाते हैं और उनको देखने में भी घंटों लगा देते हैं। ये राग युक्त स्मृतियां होती हैं। कुछ स्मृतियों में द्वेष, घृणा और प्रतिहिंसा होती हैं। इनको विस्मृत करना तो सहज कार्य नहीं होता। ये तो हमारे व्यक्तित्व को ही परिवर्तित कर देती हैं। जीवन की ठोकरों में भी कुछ स्मृतियां ऐसी होती हैं। हमको यह भी सिखाया जाता है कि अपने तथा दूसरों के अनुभवों से हमें सीखना चाहिए। इतिहास भी हमें सिखाता है। आतंकवाद और साम्प्रदायिक तनाव भी स्मृति-जाल से बने सामाजिक चित्र होते हैं। किस देश ने हमारे साथ क्या किया, उनकी स्मृतियां हमारे नीति-निर्धारण में मार्गदर्शक बनती हैं। व्यक्तिगत जीवन में स्मृति मात्र एक

बड़ा बन्धन है। कार्यगत स्मृति दैनिक आवश्यकता है। अतीत की स्मृति बन्धक बनाती है। इसमें हमारा वर्तमान खो जाता है। बिना कुछ कर्म किए काल गुजर जाता है। पुनः लौटकर नहीं आता। कभी-कभी इन्हीं स्मृतियों के कारण व्यक्ति के जीवन की दिशा भी बदल जाती है। स्मृति कितनी पुरानी है, इस बीच कितना कुछ बदल चुका है, यह भी महत्त्वपूर्ण होता है।

स्मृतियों की आवश्यकता क्यों महसूस होती है? किस प्रकार के विषय स्मृतियों में बने रहते हैं। इनका भी व्यक्ति को आकलन करना चाहिए। वैसे तो वे ही विषय स्मृतियों में रहते हैं, जिन्हें व्यक्ति स्वयं महत्त्वपूर्ण मानता है। चाहे ज्ञानपूर्वक मानता हो, अथवा अज्ञान के कारण। मूल में तो अहंकार ही होता है। वही अच्छा और बुरा तय करता रहता है। वही प्रतिक्रियाओं का कारण है। अहंकारवश की गई भूलें भी स्मृति से नहीं जातीं। वे प्रायश्चित मांगती हैं। अहंकार प्रायश्चित नहीं करने देता। भूल स्वीकारने नहीं देता। व्यक्ति की उपासना में, भक्ति मार्ग में या एकाग्रता के क्षणों में ये स्मृतियां बहुत बाधक बनती हैं। विचारों को भी घेरे रहती हैं और भावनाओं को भी। मन को स्थिर नहीं रहने देतीं। विकास बाधित होता है। व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है। स्मृतियां पीछे खींचती हैं। व्यक्ति स्वयं का विस्तार करना चाहता है। स्मृतियां उसे संकुचित करती रहती हैं। व्यक्ति सृष्टि का अंग है। सद्‌प्रवृत्तियों का विकास करके समष्टि भाव में आना चाहता है। स्मृतियां उसे व्यष्टि भाव में बनाये रखती है। राग-द्वेष या प्रतिहिंसा के कारण उसका आसक्ति भाव गहरा होता जाता है। एक ही विषय की बार-बार स्मृति उसके जीवन की पगडण्डी बन जाती है।

संकुचित चिंतन में व्यक्ति को केवल स्वयं का हित दिखलाई पड़ता है। वह भूल जाता है कि सबके हित के बाहर उसका हित नहीं हो सकता। सम्पूर्ण से वह अलग नहीं हो सकता। इसी बन्धन को काटना है। इसी के लिए तपना पड़ता है। उपासना करनी पड़ती है। शरीर पर, विचारों पर और भावनाओं पर नियंत्रण बनाए रखने का अभ्यास करना पड़ता है। स्मृतियों के विषयों को समझना होता है। एक-एक करके उन्हें बाहर निकालना होता है। इसी क्रम में व्यक्ति को समझ आती है कि स्मृतियों में अधिकांश तो उपयोगी भी नहीं होतीं। जैसे-जैसे यह जाल हटता है, व्यक्ति वर्तमान में जाग्रत होने लग जाता है। अब तो केवल प्रमादवश ही कल्पना लोक में उसका वर्तमान क्षय हो सकता है। जीवन अनेक प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो जाता है। अधिकांश स्मृतियां हमारे बाहरी ज्ञान या बाहरी जीवन से ही जुड़ी होती हैं। भीतरी ज्ञान के जाग्रत होते ही तेजी से लुप्त होने लगती हैं। व्यक्ति का आत्मविश्वास, जीवन की दिशा, समष्टि भाव सभी गतिमान हो उठते हैं। सारी बेड़ियां टूटते ही वह भागने की स्थिति में आ जाता है। हलका-फुलका होकर।

भ्रान्ति जीवन को ज्ञान और कर्म का संतुलन कहा गया है। जहां ज्ञान धारा है वहां व्यक्ति स्वयं के स्वरूप को जानता हुआ, अपने नर-नारी स्वभाव को समझता हुआ, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। जहां ज्ञान के स्थान पर अज्ञान प्रबल हो वहां जीवन में केवल भ्रान्ति रहती है। ज्ञान और अज्ञान दोनों माया भाव ही हैं। व्यक्ति दोनों में से एक को चुनता है। जितना बड़ा ज्ञान का क्षेत्र है, उससे भी बड़ा अज्ञान का क्षेत्र है। अज्ञान को जानने की, सीखने की जरूरत नहीं पड़ती। वह तो जन्म से ही व्यक्ति के साथ-साथ रहता है। इसीलिए अविद्या को विद्या की बड़ी बहिन कहा है। जहां अविद्या है, वहां अधर्म है, अनैश्वर्य है, अवैराग्य (आसक्ति) है। इनका कारण भी असंतुष्टि है और मूल में अज्ञान है।

अज्ञान का पहला प्रभाव है- अहं की महत्ता, और दूसरा प्रभाव है- लक्ष्य का अभाव। अहंकार जीव का लक्षण है, शरीर से जुड़ा रहता है। लक्ष्य ज्ञान भाग है, बुद्धि का रूप है। दोनों के मूल में है मन और मन में उठने वाली कामनाएं। ये कामनाएं मन को चंचल बनाए रखती हैं। इन्द्रियां इस चंचलता का पोषण करती हैं। बुद्धि और शरीर इन कामनाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं। मन मरता है, नया पैदा होता है। कामनाएं भी नित नई पैदा होती हैं। इसीलिए मन को पुरानी चीज ज्यादा देर पसन्द नहीं आती। जल्दी ही मन उचाट भी हो जाता है। फिर नई वस्तु या लक्ष्य की ओर दौड़ने लग जाता है। व्यक्ति जीवन के एक चौराहे पर खड़ा रहता है। किसी एक दिशा में चलता है फिर लौटकर चौराहे पर आ जाता है। फिर किसी अन्य दिशा में चलने लगता है, लौटता रहता है। जीवन यात्रा में चलता तो रहता है; किन्तु पहुंचता कहीं भी नहीं है। उसी चौराहे पर स्वयं को पाता है। यह भ्रान्ति का ही तो परिणाम है। जीवन की सारी उपलब्धियां शान्ति और तुष्टि के स्थान पर उसे भ्रान्त ही करती हैं। भ्रान्तियां बढ़ती जाती हैं। सुख की परिकल्पना भी भ्रान्तिस्वरूप ही होती है। वह भी क्षणिक ही होता है अथवा उसका परिणाम भी आगे चलकर दुःख में ही परिणत हो जाता है।

भ्रान्ति तमोगुण की प्रबलता है। आसुरीभाव का प्रकोप है। मन और बुद्धि दोनों ही भ्रान्त रहते हैं। मोह, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार बढ़कर मानव से दानवता का व्यवहार करवाते हैं। बाहरी जीवन में ही व्यक्ति खोया रहता है। भ्रान्त व्यक्ति को कभी सही मार्ग नहीं मिल सकता। चेतना ही त्रिगुण से आवृत्त होकर बुद्धि का रूप लेती है। आगे के सारे खेल इसी माया भाव के हैं। चेतना तत्त्व में सत-रज-तम का प्रभाव नहीं होता। चेतना ही सूर्य के ज्योति तत्त्व से सन्निविष्ट होकर बुद्धि रूप में विकसित होकर आ रही है। हमारी सम्पूर्ण सृष्टि भी चूंकि त्रिगुण के योग से बनी है, अतः इस सृष्टि में बुद्धि का ही भ्रमण होता है। ज्ञान रूप जो सूर्य ज्योति आई थी, वह गुणाधीन होकर कार्य करती है। 'धियो योनः

प्रचोदयात्' के रूप में जो हम प्रार्थना करते हैं, उसमें हम मांगते हैं कि-वो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे। वो अर्थात् मूल ज्योतिर्मय ज्ञान जो सूर्य से आ रहा है, जो परम विशुद्ध है, वही हमारी बुद्धि में समाविष्ट हो, ताकि जीवन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे।

सृष्टि का एक नियम है- 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' अर्थात् सृष्टि को उत्पन्न करके उसमें ही प्रविष्ट हो जाता है। इसका अर्थ है कि माया ही हमारे शरीरों का निर्माण भी कर रही है और माया ही बुद्धि रूप में उनको संचरित भी कर रही है। शान्ति और भ्रान्ति बुद्धि के ही रूप हैं। शान्त भाव में बुद्धि मन के साथ जुड़कर कार्य करती है। मन की कामना, मन के भाव और अनुभवों का प्रभाव बुद्धि में रहता है। आगे-पीछे सोचकर निर्णय करती है। आत्मा के धरातल से जुड़ी रहती है। ज्ञान का साथ छूटता नहीं है। भ्रान्त रूप में बुद्धि स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगती है। अहंकार को प्रेरित करती रहती है। शुद्ध बुद्धिजनित सारे कार्य अहंकार की ही अभिव्यक्ति करते हैं, चाहे वैज्ञानिक आविष्कार ही हों। इसमें अहित या हित का भाव नहीं रह जाता। मन की आवाज कान में पड़ती ही नहीं है। बुद्धि सूर्य से आती है। आग्नेय है। तोड़ने का मुख्य गुण है इसका। टकराव या तर्क-वितर्क से तोड़ती रहती है। मन का कार्य जोड़ना है। वह गौण रहता है। व्यक्ति स्वयं को ही बुद्धिमान मानता हुआ अकेला ही जीता है। भ्रान्ति का साम्राज्य रहता है। संयोगवश कोई बड़ी ठोकर ही उसकी आंखें खोल सकती है।

छाया जहां प्रकाश है, वहां छाया है। प्रकाश का मूल सूर्य है। अत: छाया को सूर्य-पत्नी कहा गया है। सूर्य जगत का पिता है, अत: छाया भी जगत के साथ जुड़ी है। व्यक्ति का प्रभाव ही व्यक्ति की छाया है। यही उसके अहंकार का फैलाव है। अंधकार का साम्राज्य है। जब व्यक्ति की क्षुधापूर्ति हो जाती है, तब वह अपने अहंकार के फैलाव को ढूंढ़ता है। क्षुधा-रूप माया ही अब छाया रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह भी माया-रूप अविद्या का ही घेरा है जिसे केवल माया ही तोड़ सकती है। यह घेरा मनुष्य ही नहीं, सुर-असुर से लेकर जीव मात्र में दिखाई देता है।

क्षुधा अवस्था में व्यक्ति सामर्थ्य का अभाव अनुभव करता है। अन्न के लिए दौड़ता प्रतीत होता है। अन्न ग्रहण करने पर जैसे ही क्षुधा शान्त हुई कि उसकी एक नई छाया खड़ी हो जाती है (शक्ति)। व्यक्ति पूर्ण समर्थ लगने लगता है। व्यक्ति की दिन-रात में अनेक प्रकार की छाया बनती है। जैसा मनुष्य का स्वभाव है, वैसी ही वाणी, वैसा ही ज्ञान होता है। भिन्न-भिन्न लोगों से भिन्न-भिन्न रूपों में व्यवहार करता है। सब जगह अपनी वास्तविकता को छिपाए रहता है, उसकी छाया से ही जगत व्यवहार निभाता है। जिस वास्तविकता को वह छिपाए रखता है, उसको संज्ञा कहते हैं। संज्ञा सूर्य की मूल पत्नी कही

गई है, जिसका स्थान कथा के अनुसार छाया ने ले लिया था। कथानक के अनुसार संज्ञा की दो संतानें, यमराज और यमुना थीं। छाया की संतानों में सावर्णि, तपती और शनि हैं।

सारे जीवन पर दृष्टिपात यदि किया जाए तो कहा जा सकता है कि हम पत्नी, पुत्र, माता, स्वजन, परिजन और समाज से सारे व्यवहार एक छाया रूप में ही करते हैं। कोई भी किसी के सामने संज्ञा रूप असलियत प्रकट नहीं करना चाहता। इसी छाया-जीवन को जीता हुआ व्यक्ति जीवन की अन्तिम स्थिति में पहुंच जाता है। अविद्या- रूप छाया तमोगुण प्रधान और विद्या का संचरण होने पर सत्त्वगुण का प्रादुर्भाव छाया रूप में होता है। छाया जीवन की अनिवार्यता है। इसके बाहर कोई जीवन नहीं होता। इसकी सीमा को कोई लांघ भी नहीं सकता।

व्यक्ति स्वयं में एक प्राणी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। केवल उसका स्वरूप, आकृति मात्र है। इससे उसका जीवन व्यवहार नहीं चल सकता। अत: उसका एक संज्ञारूप होता है ताकि वह स्वरूप के साथ जुड़कर उसकी पहचान बना सके। किन्हीं दो व्यक्तियों में भेद किया जा सके। नामरूपं जगत्। सामाजिक व्यवहार का दायरा और भी बड़ा होता है। इसमें व्यक्ति किसी का पुत्र, पिता, पत्नी, माता, चाचा, मामा, दादा, दादी आदि अनेक रूप धारण करता है। सबके साथ निजी पहचान स्थापित करता है। व्यापार के संबंध होते हैं, मित्रगण होते हैं। व्यक्ति स्वयं में नहीं बदलता; किन्तु हर एक के साथ उसका व्यवहार अलग-अलग हो जाता है।

घटनाओं और परिस्थितियों के कारण भी उसका व्यवहार बदलता है तो नीतियों के कारण भी बदलता है। यही उसके छायारूप हैं। मूल में एक संज्ञारूप होते हुए भी व्यक्ति दिन भर में अनेक छायारूप में व्यवहार करता है। उसे अपनी कुशलता भी मानता है। ये ही आवरण का कार्य भी करते हैं। व्यक्ति को बाहरी जीवन में उलझाए भी रहते हैं। उसका ध्यान भीतर की ओर, संज्ञा की ओर, जाता ही नहीं है। वह अपनी मूल संज्ञा को बिना समझे ही जीवन पूर्ण कर जाता है। व्यक्ति को अपनी पहचान की भी बड़ी भूख होती है। यश कमाने की और प्रशंसा पाने की भी कामना होती है। यह क्षुधारूप ही छाया बनकर उसके जीवन को प्रेरित करती रहती है। आगे से आगे चलाती रहती है।

व्यक्ति किस दिशा में आगे बढ़ेगा, यह विद्या और अविद्या पर ही निर्भर करेगा। माया के इन दोनों स्वरूपों के आधार पर ही जीवन का विकास अथवा ह्रास होता है। वह इन छाया-रूप मुखौटों को इस जीवन के रहते ही हटा पाता है या नहीं, इसी में जीवन की सार्थकता परिलक्षित होती है। मुखौटों के हटते ही जो बचता है, वह उसका आत्मस्वरूप ही बचता है। फिर जानने को कुछ रह ही नहीं जाता। माया छू-मन्तर हो जाती है।

जाति जाति शब्द की उत्पत्ति जन् + क्तिन् शब्दों से हुई है। 'जन्' का अर्थ है- पैदा होना, उत्पन्न होना। 'क्ति' का अर्थ है- पराक्रम। वर्ग, समुदाय, वर्ण आदि रूप में। सृष्टि में जितने जड-चेतन हैं, सबको जाति शब्द से संबोधित किया गया है। मानव जाति, पशु जाति आदि। जाति को प्राणीमात्र की पहचान कहा जा सकता है। मनुष्य जाति में भी कर्म के अनुसार वर्ण बंटे हुए हैं। वर्ण और कर्म का सीधा संबंध है। वर्ण के अनुसार ही व्यक्ति के कर्म की क्षमता होती है। अत:, जाति शब्द का अर्थ जन्म से न होकर कर्म से समझना उचित होगा। एक ही परिवार के भिन्न-भिन्न व्यक्ति कर्म-विशेष की प्रधानता के अनुसार या वर्ण संस्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न कर्म करते हैं। कोई व्यापारी होता है, कोई प्रशासन में रहता है, तो कोई कलाकार बन जाता है।

आज जिस समाज व्यवस्था में हम जी रहे हैं, वहां जाति शब्द जन्म के साथ जुड़ गया है। ब्राह्मण की संतान ब्राह्मण, क्षत्रिय की क्षत्रिय कही जाने लगी है। पूरा समाज इस जातिगत व्यवस्था में बंट गया है। जबकि अनेक ब्राह्मण समुदाय आज भी मूल रूप से कृषक हैं। कृषि वाणिज्य का अंग है। वेदों में मणिजा नामक जाति का उल्लेख मिलता है। इसके चार विभाग थे- साध्य, महाराजिमं, आभा- स्वर और तुषित। आगे चलकर इनको ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाने लगा। सृष्टि-विज्ञान के अनुसार इनके आधारभूत चार विभाग हैं- ब्रह्मवीर्य, क्षत्रवीर्य और विड्वीर्य। यह जातिक्रम सम्पूर्ण सृष्टि में देखा जाता हैं। देव, गंधर्व, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि में भी यही क्रम रहता है।

ब्रह्मवीर्य में अग्नि की प्रधानता रहती है। द्यु-लोक में इसका चार प्रकार का भेद बताया गया है- ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति, सविता और सरस्वती। क्षत्रवीर्य प्रधान यम, इन्द्र, रुद्र, वायु, सोम, ईशान, मृत्यु और वरुण, ये आठ देवता माने गए हैं। वैश्य विभाग में विश्वदेव, वसु, रुद्रगण (कुछ क्षत्रि, कुछ वैश्य), आदित्यगण, मरुद्गण आदि कहे हैं। देव वर्ग में चौथा वर्ग पूषा शूद्र धर्म वाले हैं- जिनमें ब्रह्म-क्षत्र-विड्वीर्य अत्यल्प भाव में रहता है। सर्वप्रथम ये ही विज्ञानभाव में प्रवृत्त हुए। जातियों का यह वर्गीकरण स्वाभाविक और वैज्ञानिक कहा गया है। आज काल-धर्म के अनुसार ये शब्द मात्र ही रह गए। वर्ण भेद समाप्त होकर नाम भेद रह गया। आज तो कोई भी बालक का अन्नप्राशन संस्कार करके उसके वीर्य की जांच नहीं करता। इस जांच के अनुसार ही बालक की रुचि के अनुरूप उसकी शिक्षा-दीक्षा होती थी। आज हर बालक को हर प्रकार की शिक्षा के लिए उपयुक्त माना जाता है। प्रकृति और कर्म के प्रभाव गौण हो गए। वीर्य अर्थात् बीज या नया उत्पन्न करने की क्षमता भी प्रकृतिजन्य मानी गई है। आज रूढ़ि हो गई। व्यक्ति वर्षों तक गोते खाते-खाते अपनी रुचि के विषयों तक पहुंच पाता है। प्रकृतिदत्त रुचि परिवेश के कारण

नहीं बदल सकती। सफलता भी बिना रुचि के सम्भव नहीं है। प्रकृति या मायाभाव ही रुचि बनकर जीवन संचालित करता है। इसी में सत्त्व-रज-तम भी जुड़े रहते हैं। प्रकृति को ही स्वभाव भी कहा जाता है, जिसे बदल पाना मनुष्य के लिए कठिन होता है। प्रकृति ही ब्रह्मवीर्य के कारण व्यक्ति को ज्ञान से जोड़ती है, विद्याभ्यास में लगाती है। क्षत्रिय को शासन और रक्षा का भाव देती है। वैश्य को संग्रहण और वितरण का ज्ञान प्रदान करती है। जिनमें इन तीनों वीर्यों की अल्पता होती है, वे कला-कौशल से जुड़े होते हैं। आज तो अनेक नए व्यवसाय बन गए, नई जातियों की तरह इनका भी स्वरूप बना दिखाई पड़ता है। उनके समुदाय और अपने नियम-कायदे अन्य समाजों की तरह ही राष्ट्रव्यापी हो गए हैं। डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड अकाउंटेंट, एमबीए, आर्किटेक्ट आदि व्यवसायों ने जातिगत रूप ही ले लिया है। यह भी इस बात का ही प्रमाण है कि देश-काल के अनुरूप होने वाले परिवर्तनों में भी प्रकृतिजन्य वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप स्थायी भाव में ही रहता है।

जब व्यक्ति क्षान्ति में स्थिति पाता है, अपने जीवन पर दृष्टिपात करने लगता है, तब वह अपनी रुचि के अनुरूप विकसित होने लग जाता है। विद्या अर्जन करके द्विज रूप बनने लगता है। उसके बाहरी संघर्ष और भटकाव सिमट जाते हैं और एक लक्ष्य अथवा उद्देश्य के अनुरूप जीवनयापन करता है।

कान्ति यूं तो कान्ति के अनेक पर्याय हैं-मनोहरता, सौन्दर्य, शोभा, चमक, प्रभा, दीप्ति, कामना आदि। फिर भी शोभा और दीप्ति से कान्ति को भिन्न माना गया है। कान्ति देव-गुण कहलाती है। दिव धातु से देव या देवी बनते हैं। देव गुण हैं-क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति (महिमा), स्तुति, कान्ति और गति। ये सारे ही माया के स्वरूप कहे गए हैं। जब मन में श्रद्धा का भाव फूटने लगता है, तो कान्ति भी फूट पड़ती है। व्यक्ति में दिव्य गुण प्रकट होने लगते हैं। ईश्वरीय भाव जाग्रत हो उठता है। श्रद्धा आत्मा से उठकर बाहर आती है। आत्मा व्यक्ति का कारण शरीर है। इसमें जब श्रद्धा के स्पंदन होने लगते हैं, तब सूक्ष्म शरीर के प्राणों का स्वरूप, उनकी हलचल और क्रियाएं सब बदलने लगती हैं। प्रबल सकारात्मक भावों का उदय होने लगता है। तमोगुण शनै: शनै: सत्त्वगुण में परिवर्तित होने लगता है। तमोगुण का परिष्कार होने लगता है। सत्त्वगुण के कारण व्यक्ति का आभा-मण्डल चमक उठता है। प्रकाशमय होने लगता है। ऐसे व्यक्ति के पास बैठने मात्र से मन शान्त हो जाता है। माया का विद्या या ज्ञान स्वरूप फैलता जान पड़ता है। लेकिन यह पक्की बात है कि श्रद्धा के बिना कान्ति सम्भव नहीं है।

'एकोऽहं बहुस्याम्' अव्यय पुरुष की इस कामना से ही सृष्टि का विकास हुआ है। कामना शक्ति का ही इच्छा रूप प्रसार होता है। भू, भुव से लेकर सत्य लोक तक की सातों

व्याहितियां आपस में जुड़ी रहती हैं। इन्हीं में जीव का भ्रमण रहता है। इसीलिए कहा गया है कि गोलोक में अधिष्ठाता अव्यय पुरुष की कामना और जगत् की कामना भीतर जुड़ी रहती है। शिशु के अन्न ग्रहण करने के साथ ही कामना जाग्रत हो जाती है और त्रिगुण के अधीन हो जाती है। राजस और तामस भाव की प्रधानता के कारण जीव दुःखों से घिर जाता है। सत्वगुण की प्रधानता होने पर आनन्द-विज्ञानमय, शुद्ध भाव पैदा होता है। इस बात से अन्न की भूमिका समझ में आ जाती है। जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। अन्न स्थूल है, शरीर स्थूल है। प्राणों, की क्रिया से स्थूल ही सूक्ष्म रूप ग्रहण करता है। अन्न से ही रस, रक्त, मांस,मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य का क्रमशः निर्माण होता है। ये सप्त धातु भी स्थूल रूप होते हैं। आगे के क्रम में मन और ओज का निर्माण होता है। वीर्य से ऊर्जा भाव पैदा होता है। वही ओज का, पुष्ट मन का और बुद्धि का पोषक तत्त्व है। इसीलिए ब्रह्मचर्य का हमारे यहां इतना महत्त्व है। वीर्य को कान्ति का बीज कहा जा सकता है।

भोजन ऐसा हो जिससे पांचों इन्द्रियां तृप्त हों। मन भी तृप्त हो। वातावरण प्रसन्नता से भरा हो। भोजन सात्त्विक हो। प्रसाद रूप में भोजन किया जाए। भोजन के लिए प्रभु का धन्यवाद करें। अच्छा भोजन बनाने वाले और खिलाने वाले का आभार व्यक्त करें। उनके सुख को बनाए रखने में भागीदार बनें। ईश्वर से प्रार्थना करें कि बिना परिश्रम का अन्न शरीर में प्रवेश न करे। आत्मा को पुष्टि और तुष्टि प्रदान करे। आज व्यवहार में सब कुछ उलटा हो गया है। शाकाहार का प्रचार-प्रसार करने वाले भी भोजन को इतनी क्रूरता से चबाते हैं कि उनके मन में भरी हिंसा स्वतः ही प्रकट हो जाती है। शान्ति से बैठकर भोजन करने के बजाय 5-7 मिनट में ही भोजन करके चल देते हैं। इस बात का विचार भी नहीं होता कि उनके साथ और भी कोई भोजन पर बैठा है। प्रतीक्षा का समय ही नहीं होता। फिर कहां हम कान्ति के सपने देख सकते हैं? दैविक गुण बिना तपस्या के नहीं मिलता। ईश्वर को भी प्रसन्न करना पड़ेगा। तभी वह अपनी प्रिय वस्तु आपको प्रदान करेगा। कान्ति का सूत्र श्रद्धा है। समर्पण है, त्याग है। मिठास है, आह्लाद है। भक्ति है। निस्स्वार्थ भाव है। अपेक्षाओं से रहित है। अहंकार मर्दन का मार्ग है। सबके प्रति सम्मान की जीवनशैली है। तभी कान्ति का सूत्रपात होता है। जीवन में अनेक ऐश्वर्य प्रकट होने लगते हैं। अभ्यास की निरन्तरता बनी रहे तो व्यक्ति भगवान् बन जाता है। शक्ति ही शिव को मिलाने वाली है।

दया लक्ष्मी के साथ ही वृत्ति का उदय होता है। धन का उचित बंटवारा सद्बुद्धि से आता है। सद्बुद्धि ही दया का कारण बनती है। बड़प्पन का भाव पैदा करती है। अपने से कमजोर की सहायता करने की प्रेरणा देती है। सद्बुद्धि ज्ञान सूचक है। सद्बुद्धि के

अभाव में क्रोध का वर्चस्व रहता है। वहां बच्चों पर भी दया भाव नहीं आता। बच्चों को शिक्षित करने में एक बात को अनेक बार समझाना पड़ता है; किन्तु क्रोध ऐसा नहीं करने देता। बच्चों के विकास में क्रोध बड़ा शत्रु है। उसके मन में भी बड़ों के प्रति आदरभाव घट जाता है। भले ही डर के मारे बालक मुंह से कुछ कह नहीं पाए।

दया निर्मलता की द्योतक है। इसको धर्म का मूल कहा है। दूसरों को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी हो जाना, इसका मूल लक्षण है। लक्ष्मी हो और दया न हो तो क्या होगा, सोचा जा सकता है। विद्या से दया का भाव पैदा भी किया जा सकता है। शिक्षा का अर्थ ही सामर्थ्य पैदा करना है। शास्त्रों में कहा गया है :

''विद्या ददाति विनयं। विनयाद् याति पात्रताम्।

पात्रत्वात् धनमाप्नोति। धनाद्धर्मं ततः सुखम्।''

विद्या से विनय आता है। इसका अर्थ मृदुता और नम्रता नहीं है। विनय के लिए ''नयाद्विशिष्टो विनयः'' कहा है। सामान्य नीति से भी उच्चनीति, विशिष्टनीति, जिसे शास्त्र अध्ययन करके प्राप्त किया जाता है, उसे विनय कहते हैं।'वि' यानि विशिष्ट,'नय' कहते हैं नीति को। वैसा विनयी होने पर ही प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करने की पात्रता व्यक्ति में आती है। पात्र बनने पर ही धन की प्राप्ति होती है।

पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में शेष तीनों पुरुषार्थ का धर्मयुक्त होना ही बताया है। अर्थ का उपयोग भी धर्म रूप में, वृति रूप में किया जाता रहा है। धर्म में दान, तप और यज्ञ को शामिल किया है। वहां भी दान (अपनी वस्तु पर अन्य का अधिकार स्थापित कर देना) ही पहले आता है। इस रूप में धर्म को धारण करने पर ही धर्म व्यक्ति को धारण करता है। व्यक्ति की रक्षा भी करता है और उन्नति भी। धन की तीन अवस्थाएं कही गई हैं : दान, भोग और नाश। दया के बिना दान नहीं हो सकता। दान के साथ भोग करने पर अहंकार नहीं बढ़ता, विनयशीलता बनी रहती है। दया शरीर का गुण नहीं है। बुद्धि में भी दया नहीं रहती। दया का भाव मन में उठता है। जब भावनाओं का धरातल ज्ञानयुक्त होगा, तभी तो मन में दया का भाव आएगा। अपना प्रशस्ति गान सुनने के लिए जिस प्रकार सामाजिक कार्यों में धन लगाया जाता है, वहां दया रूप नहीं होता। इसी का परिणाम है कि आज धर्म भी धनवान लोगों की मुट्ठी में आ गया। धनवान लोग ही संतों को चारों ओर घेरे रहते हैं। हर धर्म में करोड़ों के ट्रस्ट बन गए हैं। धर्म को खरीदा और बेचा जा रहा है। यहां दया का नाम है ही नहीं। धन के कारण ही कट्टरवाद को अनेक धर्म और सम्प्रदायों में सींचा जा रहा है। ज्ञानयुक्त विशिष्ट नीतियों का पूर्ण अभाव रहता है।

ज्ञान के द्वारा जब व्यक्ति को पूर्व जन्मों की स्मृति हो जाती है, तब उसका दया भाव पूर्ण रूप से जाग्रत होता है। लक्ष्मी और स्मृति मिलकर जीवन का नया मार्ग खोज लेते

हैं। वैसे भी; ज्ञान सदा ही कर्म का संतुलन बनाए रखता है। यही उसका कार्य भी है। भावनात्मक धरातल के परिवर्तन भीतर प्रवेश से होते हैं। बाहरी भटकाव से नहीं होते। ज्ञान ही इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करने में सहायक होता है। वैसे, भावनात्मक धरातल का पोषण भावनाओं से ही अधिक होता है। भावपूर्ण वातावरण में जीने से होता है। मन का पोषण बुद्धि से कम होता है। मन से ही होता है। परिवार और समाज की मूल उपयोगिता इस वातावरण को बनाए रखने में ही है। सब एक-दूसरे का भावनात्मक पोषण कर सकें, इसी से सहचर भाव और दया का रूप प्रकट होता है। दया ही वसुधैव कुटुम्बकम की जननी है। यह व्यक्ति को समष्टि भाव में स्थाई करती है। उदारता, विनम्रता के मार्ग पर प्रशस्त करती है। जीवन में तुष्टि का आभास कराती है।

शक्ति व्यक्ति के जीवन में शक्ति के अनेक रूप हैं। शरीर की शक्ति, बुद्धि की शक्ति, मन की शक्ति, प्राणों की शक्ति, पोषण और संहार की शक्ति, आवेग और आवेश की शक्ति, सहयोग की शक्ति आदि। भारतीय दर्शन शक्ति शब्द से अटा पड़ा है। शक्ति की सारी परिभाषाएं व्यक्ति के जीवन में लागू होती हैं, चाहे आध्यात्मिक शक्ति हो, आधिभौतिक या फिर आधिदैविक शक्ति। माया ही शक्ति के भिन्न-भिन्न रूपों में कार्य करती दिखाई पड़ती है। शक्ति शब्द में श और क्ति रूप विभाजन करके अलग-अलग अर्थ किए हैं। वेदव्यास ने 'श' का अर्थ ऐश्वर्य किया है और 'क्ति' का अर्थ किया है- पराक्रम। जिसका स्वरूप ऐश्वर्य-पराक्रम का हो अथवा जो ऐश्वर्य-पराक्रम देने वाली हो। ऐश्वर्य (ईश्वर भाव) के आठ प्रकार माने गए हैं- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। पराक्रम के द्वारा ही ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

क्षुधा शान्ति के बाद व्यक्ति की छाया ही शक्ति का रूप लेती है। एक-एक करके कामना पूर्ति में वह आगे बढ़ता जाता है। वह धन प्राप्ति में लग जाता है और धन के सहारे अपनी शक्तियों का परिग्रह करता चला जाता है। साधनों का संचय, पद और सम्मान की शक्तियां बटोरने लग जाता है। उसको स्वयं के शक्तिमान होने का अनुभव होता जाता है। शक्ति के द्वारा ही व्यक्ति का परिचय स्थापित होता है। शक्ति की ही सब जगह प्रधानता है। आगम शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि भी शक्ति के बिना कुछ नहीं कर सकते। यही है शक्ति की महिमा। ब्रह्म स्वयं में निष्क्रिय है। उसकी माया शक्ति ही उसका विस्तार करती है, उसके भिन्न-भिन्न स्वरूप बनाती है। हमारे देश में शक्ति की उपासना करने वाले समुदाय को 'शाक्त' कहा जाता है। जैसे शिव के उपासक शैव कहे जाते हैं। शक्ति- स्वरूपिणी माया ही भूत मात्र में व्याप्त होती हुई संसार के चक्र को चला रही है।

जिस प्रकार शक्ति के बाहरी रूप दिखाई पड़ते हैं, वैसे ही शक्ति के भीतरी स्वरूप भी हैं। हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार के शरीर हैं। हर शरीर के अपने अवयव

हैं, अपने प्राण हैं। हर व्यक्ति के केन्द्र में षोडशी पुरुष अवस्थित है। हम आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक धरातलों के संयोग से उत्पन्न होते हैं। इनकी सबकी शक्तियां भिन्न-भिन्न अनुपात में हमारे भीतर कार्य करती हैं। पंच महाभूतों से हमारी देह का निर्माण होता है। ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र हमारे हृद् प्राण हैं। बाहरी शक्तियों के अनुपात में हमारे भीतर का खजाना अनन्त है।

शाक्त परम्परा में इन्हीं शक्तियों के जागरण के अनेक प्रयोग देखे जा सकते हैं। आरम्भिक अवस्था में इस शक्ति तत्त्व को बताने वाले आगम शास्त्र में योग मार्ग जुड़ा हुआ था। इसका लक्ष्य कुण्डलिनी जागरण था। आगे चलकर इसमें पंच मकार (मदिरा, मांस, मैथुन आदि) जुड़ गए। शुद्ध सिद्धान्त पक्ष विकारभाव में आ गया। दिग्नागाचार्य ने नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि विकार की चीज मौजूद रहते हुए, निमित्त के रहते हुए भी, चित्त में विकार पैदा न हो। इस आधार पर सुरा-सुंदरी भी उपासना से जुड़ गए। आज सारा वाम मार्ग पंच मकारों पर आधारित दिखाई पड़ता है। विकार- हेतु वाला लक्ष्य धरा रह गया और विकार रूप सुरा-सुन्दरी की प्रधानता हो गई। इसी में विकार रूप में शावर मंत्र का उपयोग प्रचलन में आता गया और शाक्त मार्ग बदनाम हो गया। क्षुधा शान्ति के बाद भीतरी शक्तियों के विकास को ही जीवन का लक्ष्य कहा गया है, ताकि व्यक्ति अविद्या से हटकर विद्या के क्षेत्र में प्रवेश पा सके। उसका धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का मार्ग प्रशस्त हो सके। उसके स्थान पर माया का स्थूल रूप ही व्यक्ति को घेरे रहता है। अपने ही अहंकार की तुष्टि में जीवनभर खोया रहता है। यह भी माया का ही अविद्या रूप है।

व्यवहार में भी देखा जाए तो धन प्राप्ति और सत्ता-रूप शक्ति के प्राप्त होते ही सुरा-सुन्दरी रूप माया से ही व्यक्ति घिरा रहना चाहता है। सत्ता के साथ दोनों पर्याय बने बैठे हैं। स्त्री के साथ माया भाव के सारे गुण मौजूद रहते हैं जो व्यक्ति को आवरित करने में सहायक होते हैं। अविद्या से बाहर जाने ही नहीं देते। तमोगुण की प्रधानता व्यक्ति पर हावी रहती है। इसीलिए योग मार्ग प्रशस्त हुआ है।

जैसे ही व्यक्ति का ध्यान अपनी भीतरी शक्तियों की ओर जाने लगता है, वह उनके विकास में लग जाता है। एक बार इसका अनुभव होने लगे तो व्यक्ति को जैसे नया शौक लग जाता है। इनकी अनुभूतियां और जीवन में इनका प्रभाव अलग प्रकार के आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है। व्यक्ति के विकास की नई धारा फूट पड़ती है। शक्ति ही आगे चलकर व्यक्ति को शक्तिमान बना देती है। शिव रूप प्रदान करती है।

लज्जा अविद्या से विद्या के मार्ग में जाने का द्वार है लज्जा। अज्ञान मार्ग पर प्रवृत्त होने से व्यक्ति को लज्जा ही रोकती है। कहा जाता है कि-

''कामातुराणां न भयं न लज्जा।''

''शृंगारलज्जां निरूपयति।'' ''लज्जा जीवन का आभूषण है।'' लज्जा अर्थात् शर्म, संकुचनशीलता (विनम्र भाव में)। लज्जा केवल स्त्रियों का ही गुण नहीं है। यह हर व्यक्ति के आचरण में गतिअवरोधक का काम करती है। लज्जा आत्मा का गुण है और आत्मा सब में एक जैसा है। ज्ञानयुक्त व्यवहार की सूचक है, जिसका कोई लिंगभेद संभव नहीं है। भीतर से पैदा होने वाला भाव है। समाज को मर्यादित रखने का ब्रह्मास्त्र है।

यह भी सत्य है कि आज इसकी खुलेआम धज्जियां उड़ रही हैं। जीवन में अर्थ की प्रधानता ने सबको निर्लज्ज बना दिया। रूढ़ियां कह-कहकर हर मर्यादा को धन या पद के सहारे दरकिनार किया जा रहा है। इसका ही परिणाम है कि कम उम्र में ही लोग अपराधों में प्रवृत्त होते जा रहे हैं। समाज का अंकुश छूट गया है। लज्जा का प्रादुर्भाव क्षान्ति के साथ ही होता है।

जब तक व्यक्ति में सहनशीलता नहीं आएगी, वह गलत कार्यों से लज्जित कभी नहीं होगा। माया का क्षान्ति भाव ही लज्जा में बदलता है। अज्ञान के तीव्र प्रभाव में लज्जित होना अत्यन्त दुरूह कार्य है। लज्जाशीलता की स्वाभाविकता विद्याभाव के धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य के बिना नहीं आ पाती। अविद्या व्यक्ति को भोक्ता बना देती है। कर्ता बनकर व्यक्ति फल के लिए कार्य करता है। उसका मन फल की इच्छा से चिपका रहता है। वह निमित्त नहीं बन पाता। देवभाव की पुष्टि उसके जीवन में संभव ही नहीं है। अहंकार के अधीन स्वयं को ही सब कुछ मानने वाला व्यक्ति आसुरीभाव में जीता है। उसे तो लज्जा आ ही नहीं सकती। एक सिद्धान्त पक्ष की बात है कि देवताओं का पोषण हमारे भू-भाग से होता है। मनुष्यों द्वारा होता है। उपासना-अर्चना से होता है। जब भी समाज अधर्म में प्रवृत्त होता है, तब देव भाव की पुष्टि नहीं होती। देव शक्तियां भी शिथिल होने लग जाती हैं। इन्हीं के सहारे क्षर और भूत सृष्टियां आगे चलती भी हैं। जब अक्षर- सृष्टि का पोषण नहीं होगा तो उसका सीधा प्रभाव हमारे जीवन पर ही पड़ता है। हमारी क्षमताएं क्षीण होने लग जाती हैं। देवभाव की पुष्टि केवल ज्ञानभाव से, सत्वगुण से ही हो सकती है। तम (अंधकार) कभी भी इसका पोषण नहीं करता। अंधकार में अपराध होते हैं। अपराधी को लज्जा नहीं आती। अंधकार को ही माया का आवरण कहते हैं। व्यक्ति को और कुछ दिखाई ही नहीं देता। स्वयं को भी नहीं देख सकता। ज्ञान को इसीलिए प्रकाश की संज्ञा दी गई है। दु:शासन द्रौपदी का चीरहरण कर रहा है। उसके चेहरे पर लज्जा का तनिक भी भाव नहीं दिखाई पड़ता। द्रौपदी पूरी शक्ति लगाकर वस्त्र को रोके रखने का प्रयास करती है। उसमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह इस दुर्घटना को रोक सके। अन्त में हारकर

कृष्ण को पुकारती है। कृष्ण आकर उसका चीर बढ़ाते हैं। द्रौपदी कहती है कि कृष्ण तुमने आने में इतनी देर क्यों कर दी? कृष्ण का उत्तर था कि देरी मेरे आने में नहीं हुई। तुम्हारे अहंकार ने देरी की है। जब तक तुम अपनी शक्ति से, अपने ही भरोसे जूझ रही थी, कर्ता बनकर, मुझे आने की क्या जरूरत थी। जब तुम मेरे भरोसे हो गई, मैं तुरन्त आ गया। द्रौपदी फिर लज्जा से भर गई।

इस एक उदाहरण से कर्ता, अहंकार, ज्ञान-अज्ञान, लज्जा आदि सब धर्मों को सहज ही समझा जा सकता है। घटना तो प्रतीक मात्र है। लज्जा के साथ कितने सकारात्मक भाव जुड़े हैं- प्रेम है, श्रद्धा है, समर्पण है, मिठास है। लज्जा जीवन का शृंगार है। स्त्री भी जब शृंगार करती है, तब उसमें स्नेह, माधुर्य और लज्जा समाहित रहते हैं। पति के मन में आनन्द-भाव पैदा करना ही इसका उद्देश्य होता है। आनन्द सर्वोच्च देवभाव है। इसके अलावा आत्मा को कुछ और चाहिए ही नहीं। आनन्द ही मोक्ष है।

लज्जा व्यक्ति को सभी जगह सत्त्व में प्रेरित करती है। घर में, समाज में, व्यापार अथवा कार्य क्षेत्र में। अधर्म करने से रोकती है। व्यक्ति जब सहनशील बन जाता है तो केवल देखता है। कर्ताभाव लुप्त होने लगता है। फिर भी पूर्व जन्मों के योग से कभी-कभी नकारात्मक भाव किसी निमित्त को देखकर उसके मन में उठते हैं। वही क्षान्ति भाव उसके मन में लज्जा पैदा करता है। उसका हाथ रुक जाता है। विचारों का परिष्कार हो जाता है। भाव सकारात्मक रूप ले लेते हैं। लज्जा में ही वह शक्ति है कि व्यक्ति को सदा ज्ञान मार्ग पर बनाए रखे। यह समय-समय पर व्यक्ति को जगाती रहती है, चेतावनी देने का कार्य करती है, फिर भी व्यक्ति यदि नहीं रुकता तो उसे भयंकर शर्म का आभास कराती है। ग्लानि भर देती है मन में। व्यक्ति फिर से संकल्प करता है कि भविष्य में ऐसा फिर नहीं करेगा।

लक्ष्मी जहां शान्ति, श्रद्धा और कान्ति रूप प्रकट हो जाते हैं, वहां आठों सिद्धियों के प्रवेश का मार्ग खुल जाता है। ऐश्वर्य फैलने लगता है। लक्ष्मी रूप में माया प्रकट हो जाती है। यह लक्ष्मी का स्थाई भाव दिखाई देता है। अर्थात् वह लम्बे काल तक रहती है। जीवन का यह एक अनूठा क्रम है। प्रकृति हर मोड़ पर परीक्षा लेती है। व्यक्ति को उलझाने का प्रयास भी करती रहती है, ताकि व्यक्ति के संकल्प की दृढ़ता सामने आ सके। कमजोर व्यक्ति छोटी-छोटी उपलब्धियों में अटक कर आगे बढ़ना भूल जाता है। लक्ष्मी का रूप भी एक बड़ी परीक्षा है। ऐश्वर्य पाकर व्यक्ति आसानी से खो जाता है। डूब जाता है। आसक्ति और लिप्तता का जाल बन जाता है। यदि इस सम्मोहन को व्यक्ति जीत लेता है तब ऐश्वर्य व्यक्ति के पीछे दौड़ने लगता है।

वेद मंत्रों में श्री और लक्ष्मी को विष्णु-पत्नियां कहकर उल्लेख किया है। श्री अर्थात् शोभा, और लक्ष्मी यानी समृद्धि, वैभव। लक्ष्म का अर्थ है चिह्न- यानी स्वर्ण, रजत, रत्न आदि। साथ ही यह वर्णन भी मिलता है कि लक्ष्मी की बड़ी बहिन का नाम दरिद्रा है। कामना की जाती है कि ''अलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्''- मैं अलक्ष्मी (दरिद्रा) को नष्ट करवाना चाहता हूं। ज्येष्ठा का रूप बताया गया है कि ''क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा''- ज्येष्ठा भूख और प्यास के मल से भरी हुई है। भूख अर्थात् क्षुधा- अन्न की, धन की, यश की कामना कभी पीछा नहीं छोड़ती। प्यास अर्थात् तृष्णा या तीव्र इच्छा। आगे से आगे नया पाने की, अधिक पाने की इच्छा। गीता में कृष्ण कहते हैं कि शास्त्र विधि के अनुसार चलते हुए यज्ञ, दान, तप आदि करते हुए जो जीता है, उसे धन, धाम, वाहन आदि ऋद्धि तो मिल जाती है; किन्तु क्षुधा और पिपासा से मुक्त होना मुश्किल है। ये ज्येष्ठा का ही प्रभाव है। पांच करोड़ रुपए किसी को सुख दे सकते हैं और किसी पर पांच करोड़ का कर्ज हो तो उसके जीवन को नर्क भी बना सकते हैं। यही लक्ष्मी और अलक्ष्मी का व्यावहारिक स्वरूप है। सारे अपराधों या पापों के मूल में क्षुधा और पिपासा ही तो है। इसीलिए इसको मल रूप कहा गया है।

इस दरिद्रता से, क्षुधा और पिपासा से, मुक्ति का मार्ग भी कृष्ण ने गीता में ही बताया। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन - केवल कर्म के लिए कर्म करो, फल को दृष्टि में मत रखो। फल ही पिपासा का जनक बनता है। गीता का बुद्धियोग सूत्र भी यही कहता है। परिणाम हमारे हाथ में नहीं है, केवल कर्म है। इसलिए परिणामों की चिन्ता करने का कोई लाभ नहीं। विष्णु परमेष्ठी-मण्डल के स्वामी हैं। परमेष्ठी सोमलोक है। लक्ष्मी विष्णु की शक्ति का नाम है। विश्व के सभी स्थूल और सूक्ष्म यज्ञ अग्नि और सोम से ही चलते हैं। अग्नि में सोम की आहुति होती है, सोम जल जाता है। जो बचता है, वही अग्नि रूप दिखाई देता है। सोम को ढूंढ़ पाना बहुत कठिन है। उसकी क्रियाओं को समझना भी संभव नहीं है। जो समझ में न आए वही माया कहलाती है। सोम की शक्ति लक्ष्मी जगत में अर्थवाक् की सृष्टा है। सारे प्राणियों और पदार्थों का निर्माण सोम के योग से ही होता है। यही सोम चन्द्रमा पर आ रहा है। चन्द्रमा हमारे मन को पोषित कर रहा है। सोम के द्वारा यह पोषण हो रहा है। लक्ष्मी चंचल है, अतः हमारा मन भी चंचल है। जैसे-जैसे लक्ष्मी का प्रादुर्भाव होता जाता है, लोभ, मोह, तृष्णा का साम्राज्य बढ़ता जाता है। अहंकार बढ़ता जाता है।

अग्नि की साधना से सोम पर विजय प्राप्त की जा सकती है। अग्नि मूल में तो ऋषि प्राणरूप है। यह सत्यलोक से आती है। जो अग्नि हमें प्राप्त है, उसका अधिष्ठाता सूर्य है।

इसी को देवराज इन्द्र कहते हैं। प्राणों का लोक है। सारे देवता यहां प्राण रूप हैं। अक्षर सृष्टि है यह सारी। हमारी वर्णमाला का हर अक्षर किसी न किसी देवता का ही बीजमंत्र है। अतः, बुद्धि या ज्ञान सूर्य से प्राप्त होता है। ज्ञान अग्नि प्रधान होता है। ज्ञान के द्वारा असत् शरीर में रहते हुए नित्य सत्य को पकड़ा जा सकता है। ज्ञान ही बुद्धि को प्रज्ञा में बदल सकता है। ''ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा''-ऋत् भाव को, प्राणों को, समझने की शक्ति प्रज्ञा में होती है। मूल मन तक, श्वोवसीयस मन तक, प्रज्ञा ही पहुंचाती है। फिर वहां लक्ष्मी शुद्ध विज्ञान और आनन्द भाव के कारण मन को चंचल नहीं कर सकती। जब तक अज्ञान का अंधकार रहता है, तब तक ही चंचलता का नृत्य चल सकता है।

तुष्टि शरीर पुष्ट होता है। मन तुष्ट होता है। संतुष्ट होता है। मन की संतुष्टि ही सुख का आधार है। संतुष्टि का अर्थ है- पूर्णता का अनुभव। यह भी सत्य है कि व्यक्ति स्वयं को पूर्ण मानता ही नहीं। कोई शरीर से तो कोई मन से अपूर्ण दिखाई पड़ता है। पूर्णता यहां संतुलन का पर्याय ही है। संतुलन ज्ञान और कर्म के बीच रहता है। तीसरा जीवन में कोई आधार नहीं रहता। ज्ञानहीन कर्म और कर्महीन ज्ञान, दोनों ही अपूर्णता के लक्षण हैं। इसी प्रकार, ब्रह्म के पूर्ण होते हुए भी, सत, रज और तम के आवरण भी पूर्णता की अनुभूति को कम करते हैं। इसी कारण विषयों का क्षणिक आकर्षण भी हमारी पूर्णता को खण्डित करता है। इसी से मर्यादाएं टूटती हैं। स्वच्छन्दता आती है। अपूर्णता बढ़ती है। जहां भी अपूर्णता है, वहां तुष्टि का भाव नहीं है। कामना हमारे कर्म का हेतु है। मन में प्रतिक्षण नई कामना पैदा होती है। व्यक्ति उसे पूर्ण करने के लिए दौड़ता रहता है। एक जन्म में तो सारी कामनाएं पूर्ण हो ही नहीं सकतीं। अत: व्यक्ति जीवन भर तुष्टि को पा ही नहीं सकता। तुष्टि का मार्ग है- कामनाओं पर विजय प्राप्त करना।

ब्रह्म को ज्ञान रूप कहा है। वह सदा पूर्ण है:

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।''

ब्रह्म सृष्टि अवस्था से पहले भी पूर्ण था। सृष्टि अवस्था में, सबके भीतर रहते हुए भी ब्रह्म पूर्ण है। उसी ब्रह्म से यह सृष्टि निकली, यह भी पूर्ण है। उसके बाद जो शेष बचा, वह भी पूर्ण है। इसका उदाहरण दिया है कि समुद्र भी पूर्ण है। उससे घड़ा भरकर निकाला, वह भी पूर्ण है। उसके बाद जो सागर बचा, वह भी पूर्ण है।

इसी प्रकार कर्म के बारे में भी विवेचन मिलता है। कर्म की पूर्णता फल आने तक है। व्यक्ति फल को ध्यान में रखकर ही कर्म करता है। फल देखकर ही सुखी-दु:खी होता है। कृष्ण ने गीता में कहा है- कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्- बिना फल की इच्छा

रखो, यानी कर्म की पूर्णता पर ध्यान मत दो। परिणाम आप तय नहीं कर सकते। सुख-दुःख का आभास नहीं रहेगा। अपूर्ण कर्म कभी बन्धन का कारक नहीं बन सकता। ब्रह्ममय रहता है। इतनी बातें तो विनय से जानी जा सकती हैं। असंतुष्टि जीवन में बड़े क्षोभ का कारण बनती है। मानसिक रुग्णता का कारण बनती है। इसका एक कारण है- जीवन में लक्ष्य का अभाव और दूसरा कारण है- भौतिकवाद अथवा अनावश्यक के पीछे दौड़ना। वैसे तो अनावश्यक के पीछे दौड़ने का कारण भी लक्ष्यहीनता ही है। मन का स्वभाव है कि जो सामने होता है, उसी से जुड़ जाता है। मन के पीछे ही बुद्धि और शरीर चलते हैं। इन्द्रियां भी विषय से चिपकती हैं। हित-अहित को सोचे बिना अच्छे-बुरे का आधार लेकर निर्णय होते रहते हैं। अच्छा-बुरा कुछ होता ही नहीं है। लेकिन अच्छा-बुरा मन के लिए राग-द्वेष का हेतु बन जाता है। हमारे सुख-दुःख की परिभाषा भी वहीं अटककर रह जाती है।

भौतिकवाद ने भी साधन-सुविधाओं का जीवन में बहुत महत्त्व बढ़ा दिया है। इसी अवधारणा ने जीवन में अनावश्यक तत्त्वों की भरमार कर दी। जीवन में इतने आवरण चढ़ा दिए कि व्यक्ति को अन्य कुछ दिखाई भी नहीं देता। मन की आंखें तो सदा-सदा के लिए बन्द हो गईं। एक ओर तृष्णा तथा दूसरी ओर अतृप्ति। जीवन पर व्यग्रता हावी हो गई। इस सारे संघर्ष में अच्छे व्यक्तित्व की अवधारणा ही लुप्त हो गई। जीवन की यह आवश्यकता ही नहीं रही। घर में, स्कूल-कॉलेज में, समाज में अच्छे व्यक्तित्व के उदाहरण और उनकी चर्चा समाप्त प्राय: हो गई। ज्ञान तो शिक्षा का आधार ही नहीं रह गया। जीवन कर्म प्रधान तो होता जा रहा है; किन्तु ज्ञान का अभाव उसे सुख प्राप्ति का हेतु नहीं बना पा रहा। सृष्टि चूंकि प्रलय की ओर बढ़ रही है, शायद इसीलिए अज्ञान का प्रभाव या ज्ञान का अभाव बढ़ रहा है।

◆◆◆

मन

हमारा जगत् पंच पर्वा कहलाता है। इसमें स्वयं भू और परमेष्ठी आकाशरूप लोक हैं। सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी पिण्ड स्वरूप हैं। जो इनको धारण किए है अथवा नियंत्रित रखता है, वह अव्यक्त है। भू पिण्ड का जो भाग मानव में आता है, वह शरीर कहलाता है। चन्द्रमा का अंश मानवीय मन कहलाया, सूर्य के अंश को बुद्धि रूप में जाना जाता है। अव्यक्त अंश आत्मा के नाम से जाना जाता है। इन चारों की सम्मिलित अवस्था का नाम मानव है। आत्मा जड/चेतन दोनों में रहता है। जड में इन्द्रियां नहीं रहतीं। इन्द्रियां बाहर की ओर ही देखती हैं (कार्य करती हैं।) हम भी अहंकारवश कभी-कभी इन्द्रिय ज्ञान को ही सत्य मान बैठते हैं।

जड का अर्थ है बाह्य, भौतिक शरीर भाव। चेतना का अर्थ है समनस्क इन्द्रिय भाव यानी इन्द्र प्राण का कार्य क्षेत्र। बिना मन के इन्द्रियों का कार्य संभव नहीं है। अत: मानव को समनस्क इन्द्रिय कहा जाता है। ये सभी जीव सूर्य तक पहुंच सकते हैं। आगे केवल अव्यक्त आत्मा का भाव रहता है। जिस व्यक्ति में इस आत्मभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, वह श्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है। उसी को मानव कहा जाएगा। किन्तु ; सम्पूर्ण विश्व में इस विस्तार का मूल बीज है केन्द्रस्थ काममय अव्यय मन। यह अव्यय मन ही सम्पूर्ण सृष्टि का मूल आलम्बन बना रहता है। हम जानते हैं कि अव्यय पुरुष भी पांच कलाओं में मन ही केन्द्र में है। सृष्टि विस्तार के क्रम में यह मन नीचे प्राण की ओर बहता है। ब्रह्म की पूर्ण स्वतंत्रता ही आनन्द की द्योतक है। वहीं ज्ञान के आधार पर इच्छा पैदा होना 'मन' कहलाता है। इच्छा की स्वीकृति (अवगम-ईहा-अवग्रह) के साथ ही मन प्राणरूप में कार्यरत हो जाता है। वही अव्यय मन वाक् रूप में अक्षर पुरुष बन जाता है। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र इस अक्षर पुरुष के हृदय बनते हैं। अग्नि-सोम इसके पृष्ठ प्राण या सूत्रात्मा। श्वोवसीयस मन के अलावा एक होता है इन्द्रिय मन। इसका आधार संकल्प-विकल्प रूप है। यह इन्द्रिय आधारित है। 'पंचेन्द्रियाणि मन:षष्ठानि में हृदि' इसको 'इन्द्रिय मन' नाम दिया गया। इसमें ग्रहण-परित्याग, भावात्मक द्वन्द्व, नीयत विषय की अनुगति के कारण इस (पृथ्वी के सोम द्वारा निर्मित) मन को इन्द्रिय मन कहा गया है।

इसी प्रकार मन में सुख और दुःख की अनुकूलता/प्रतिकूलता भेद से स्वरूप की प्रतीति होती है। हर इन्द्रिय के अपने-अपने कार्य नियत हैं। अत: इन्द्रिय मन के कार्यों में तो हर व्यक्ति में बहुत कुछ समानता हो सकती है। किन्तु; वेदना के क्षेत्र में जो अनुभूति होती है। वह कदापि एक सी नहीं हो सकती। इस मन को सर्वेन्द्रिय मन/ अनिन्द्रिय मन अथवा अतीन्द्रिय मन भी कहा है। सुषुप्ति अवस्था में जब सभी इन्द्रिय कार्यकलाप ठहर जाते हैं, तब चन्द्रमा के सोम से उत्पन्न सर्वेन्द्रिय मन कार्यरत रहता है। इन्द्रिय मन जहां पार्थिव सोम से अनुप्राणित है, वहीं अतीन्द्रिय मन चान्द्र सोम से समन्वित है। इसे प्रज्ञान ब्रह्म भी कहा गया है। इसका बुद्धि से नित्य संबंध माना गया है। भावना त्वासनात्मक संस्कार इसी मन पर प्रतिष्ठित रहते हैं। स्व. पंडित मोतीलाल शास्त्री ने इसका खुलासा कई जगह किया है। उनके अनुसार सुषुप्ति दशा में जब इन्द्रिय व्यापार रुक जाते हैं, तब मन और बुद्धि के कार्य भी रुक जाते हैं। उस अवस्था में 'अहं' भाव सुरक्षित रहता है। यही अहंकृति रूप महानात्मा का कार्य है। इस अवस्था में श्वास-प्रश्वास, रक्त संचार, धातु संचार आदि बने रहते हैं। जिस ज्ञान की कामना के द्वारा यह सारे अन्त:व्यापार चलते रहते हैं, उसे सत्त्वमन अथवा 'महन्मन' कहते हैं। जिसकी इच्छा से आकृति-प्रकृति-अहंकृति भाव व्यवस्थित बने रहते हैं। सर्वेन्द्रिय मन की इच्छा को जीव की इच्छा कहा जाता है। महन्मन की इच्छा को ईश्वरीय इच्छा कहते हैं। गीता के 'मम योनिर्म्महद् ब्रह्म-तस्मिन् गर्भं दधाम्यम्' अनुसार श्वोवसीयस मन के संचालक अव्ययेश्वर इस सत्त्वमन में सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। इसका आश्रय ग्रहण कर लेने के बाद व्यक्ति अपने आकृति-प्रकृति अहंकृति में भी परिवर्तन कर सकता है। बोलचाल की भाषा में सर्वेन्द्रिय मन को ऊपर का मन, और महन्मन को भीतर का मन कहते हैं। जो कार्य ऊपर के मन से किया जाता है, वह कभी पूरा नहीं होता या फिर अच्छा नहीं होता।

ये मन के जितने भी स्वरूप हैं, ये इच्छाओं के और अनुभूतियों के विभिन्न धरातल हैं। हर मन अलग-अलग धरातल पर कार्य करता दिखाई पड़ता है। मन तो फिर भी एक ही होता है। उसे अव्यय का श्वोवसीयस मन कहते हैं। शेष सारे मन के स्वरूप प्रतिबिम्बात्मक हैं। अस्थायी हैं। इच्छा के साथ पैदा होते हैं और इच्छा पूर्ति के साथ ही मर भी जाते हैं। अव्यय मेरा आत्मा है। हृदय रूप ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र है। जीवन का आलम्बन है। हमको व्यवहार में अनुभव होता है कि मन विषयों में रमता है, उनसे चिपकता है। किन्तु; मन का यह स्वभाव है कि मन पर कितने ही विषय आवें, मन उनसे चिपकता नहीं। जैसे ही दूसरे विषय की ओर मुड़ता है, पिछला विषय तुरन्त भुला देता है। मन निर्लेप होता है।

स्व. पं. मधुसूदन ओझा ने मन को निर्लेप, असंग, अक्रिय और अनविच्छिन्न कहा है। मन आकाश की तरह असंग है। आकाश में वायु-जल आदि के रहते हुए भी आकाश इनके साथ जुड़ा दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार मन में किसी प्रकार की क्रिया भी नहीं होती। मन में इच्छा होती है। इच्छा में क्रिया नहीं होती। मन में जो क्रियाएं जान पड़ती हैं, वे सारी प्राणों की क्रियाएं होती हैं। अत: मन को निष्क्रिय कहा है।

मन-प्राण-वाक् तीनों साथ-साथ रहते हैं। इनके तीन कार्य ज्ञान क्रिया अर्थ भी साथ-साथ रहते हैं। सारी क्रियाओं का ब्रह्म वाक् है। वाक् का ब्रह्म प्राण है और प्राण का ब्रह्म मन है। अर्थात प्राण सदा मन का अनुसरण करता है। इसी प्रकार मन को ब्रह्म, प्राण को क्षत्र तथा वाक् को विट् वीर्य कहा गया है। मन से सोम की, प्राण से अग्नि की और वाक् से आप् की उत्पत्ति होती है। अत: सम्पूर्ण विश्व मन-प्राण-वाक् से ही पैदा हुआ है।

मन और बुद्धि जिस व्यक्ति से भी धर्म की चर्चा की जाए, स्वाध्याय और साधना की बात करें, तो एक ही शंका उठती दिखाई पड़ती है। यदि साधना का मार्ग पकड़ लिया जाए, तो घर-गृहस्थी उजड जाती है। व्यक्ति दीन-दुनिया का नहीं रह जाता। वास्तव में ऐसा तो नहीं है। हां, अनावश्यक से वह जरूर दूर होने लग जाता है। इसीलिए वह उपासना, साधना करता है। आज विडम्बना यह है कि चारों ओर अनावश्यक का ही जाल बिछा हुआ है। जैसे-जैसे व्यक्ति अनावश्यक से दूर होता है, वह अपने आप में अकेला पड़ता जान पड़ता है। उसे लगता है वह घर-गृहस्थी से दूर हो गया। किसी के साथ बैठ कर बात करना उसके बस का नहीं, क्योंकि अनावश्यक से जुड़ पाना उसे सार्थक नहीं लगता। जीवन की सार्थकता यह जान लेना तो है ही कि आवश्यक क्या है और अनावश्यक क्या है। इसमें किसी तरह का संदेह नहीं है। परिस्थितियों के बीच स्वयं का आकलन करते रहना भी आवश्यक है। अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रहना भी आवश्यक है। यही तो सार्थकता के सूत्र हैं। सार्थकता की सूची बनाते समय सबसे महत्त्वपूर्ण विषय आता है 'मैं' और 'मेरा'। दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। जो मेरा है वह 'मैं' नहीं हो सकता। जो मेरा है, उसमें आवश्यक क्या है, अनावश्यक क्या है, जो मेरा है, उसे यदि एक-एक करके छोड़ते जाएं, तो अन्त में जो शेष बचेगा, वही 'मैं' दिखाई देगा। आज की स्थिति में दोनों कई बार एक दिखाई देते हैं। दोनों को हम एक मानकर व्यवहार करते हैं।

जो भी व्यक्ति 'मैं' की तलाश में निकलेगा, उसे 'मेरा' को समझना पड़ेगा, उसे अलग करके शेष को देखना पड़ेगा। बाह्य वस्तुओं को तो वह इस क्रम में आसानी से देख व समझ सकता है। धैर्य के साथ उनकी उपयोगिता का आकलन भी कर लेता है; किन्तु बात

जब अदृश्य जगत् की आती है तो वह भयभीत-सा हो उठता है। स्वयं को लाचार मानने लगता है। एक और बात है। व्यक्ति स्वयं को बुरा मानने को तैयार नहीं होता। स्वयं के आकलन में तो बुराइयां ही सामने आती हैं। स्वयं से कुछ ढका हुआ नहीं रहता, अतः अपनी असलियत देखकर भी व्यक्ति आकलन बन्द कर देता है। वह स्वीकार भी नहीं कर पाता कि वह इतना बुरा है।

दूसरी बात यह है कि व्यक्ति अपने जीवन में जितनी परतें अपने मन पर चढ़ाता है, वे परतें साधना में क्रमशः उतरती हैं। जिस काल की परत उतरती है, व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए फिर उसी काल में चला जाता है। सभी चीजें जीवन्त हो उठती हैं। सभी स्मृतियां लौट आती हैं। यदि व्यक्ति स्मृतियों में खो जाता है अथवा फिर से वैसी ही प्रक्रिया शुरू कर देता है, तो परत फिर से चढ़ जाती है। स्वयं की पुरानी छवि भी व्यक्ति को भयानक जान पड़ती है। डर के कारण भी वह अपने अभियान को रोक सकता है। केवल वीर और धीर पुरुष ही आगे बढ़ पाते हैं।

हमारे मोह का सबसे बड़ा जाल हमारा शरीर और हमारी इन्द्रियां हैं। हम सदा इन्हीं में अटके रहते हैं। हमारी चर्चा में, हमारे चिन्तन में इनका स्थान सर्वोपरि रहता है। अनावश्यक की तलाश में ये सब 'मेरे' रह जाते हैं। जीवन में इनका स्थान साधन से अधिक नहीं रह जाता। इनका केवल स्वस्थ रहना ही काफी है। पहला सुख निरोगी काया का अर्थ भी यही है कि इसकी रुग्णता के कारण मन की कोई इच्छा पूर्ण होने से न रह जाए। हमें इस संताप को नहीं झेलना पड़े। शरीर के स्वस्थ रहने का एक ही सूत्र है, प्राकृतिक जीवन चर्या। जैसे ही चर्या में विकृति आई, शरीर में भी विकृति आ जाएगी। इन्द्रियां भी साधन हैं। मन इनका राजा है। आंखें देखने की मशीन है, देखने वाला तो मन है, आंख नहीं। मन शुद्ध है, अच्छे भाव रखता है, तो आंखें भी वैसी ही देखेंगी। दूसरे लोग भी उसी के अनुरूप प्रतिक्रिया दिखाएंगे।

आज सबसे अधिक व्यापार बुद्धि का हो रहा है। इसी की क्षमता बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। जीवन की सारी स्पर्द्धा भी बुद्धि के धरातल पर हो रही है। जिसे हम विज्ञान कहते हैं, वह भी बुद्धि की ही अभिव्यक्ति है। बुद्धि का अहंकार भी इसी गति से हमारे जीवन को घेरे जा रहा है। व्यक्तिगत रूप से भी, सामाजिक रूप में भी और राष्ट्र के रूप में भी। सर्वत्र बुद्धि का ही माया जाल है। जीवन के चार अंग हैं। शरीर-बुद्धि-मन-आत्मा। सुखी जीवन के लिए चारों में संतुलन आवश्यक है। बुद्धि की इस बढ़ती प्राथमिकता ने शेष का संतुलन बिगाड़ दिया है। मन और आत्मा की चर्चा तो किसी कोने में दब कर

रह गई है। मन के बिना बुद्धि किसके सहारे कार्य करेगी। बुद्धि तो मन में उठने वाली इच्छाओं को पूर्ण करने का 'साधन' है। बुद्धि सदा स्पष्ट बनी रहे, विवेक साथ न छोड़े, किसी को ठेस न पहुंचाए, अपना स्वार्थ न देखे, मन के अहंकार को भी परिष्कृत करने में सहायक हो, ईश्वर की सत्ता को मन के सामने रख सके, जीवन में सुख-आनन्द का मार्ग तय कर सके, विषम परिस्थितियों में भी हमारा साधना-क्रम बना रहे आदि, ये ही तो बुद्धि के कार्य हैं। बुद्धि भी मेरी है, मैं नहीं हूं।

मन में इच्छा उठी, बुद्धि ने तय किया कि इसे पूरा करने की जरूरत है। कब, कैसे, क्यों आदि का फैसला भी बुद्धि करती है। इस निर्णय के बाद ही दिमाग शरीर को आदेश करता है, कार्य निष्पादन के लिए। बिना आदेश शरीर भी नहीं हिलता, बिना इच्छा के बुद्धि भी निष्क्रिय रहती है। केवल स्मृतियों और कल्पनाओं में व्यस्त रहती है। व्यक्ति इन दोनों में ही जीवन का मूल्यवान भाग नष्ट करता है, वह भी बुद्धि के कारण। बुद्धिमान व्यक्ति किसी को भी अपने से ज्यादा बुद्धिमान मानने को तैयार नहीं होता, बल्कि मूर्ख मानता है। कभी-कभी तो प्रतिक्रियावश मूर्ख साबित करने की कोशिश भी कर बैठता है। राज हठ, त्रिया हठ, बाल हठ आदि से भी बुद्धिमान व्यक्ति का अहंकार सर्वोपरि है। आज की शिक्षा में भी केवल बुद्धि का स्थान प्रमुख है।

जो मन हमारे व्यक्तित्व का, दर्शन का, जीवन के लक्ष्यों का प्रतीक है, ईश्वर का प्रतिबिम्ब है, उसकी कोई चर्चा ही शिक्षा में नहीं है। आखिर जीवन के सुख-दुःख, अच्छा-बुरा आदि का अनुभव तो मन ही करता है न। इसी मन की इच्छाओं को तो पूरी करने के लिए व्यक्ति संघर्ष करता है। इसी की ताकत से संघर्ष भी कर पाता है। यही मन कुछ पाने का, कुछ बनने का लक्ष्य भी बनाता है।

इस मन का मूल स्वभाव भी चंचलता है। इन्द्रियों के व्यापार के कारण, स्मृतियों और कल्पनाओं के कारण, परिवेश अथवा संगत के कारण, संस्कारों के कारण, पूर्व जन्म के कर्मों के कारण इस मन की चंचलता सदा बनी रहती है। यह कभी स्थिर दिखाई नहीं पड़ता। जिस बात के लिए व्यक्ति संकल्प करके कुछ करता है, उसी बात को वह स्वयं ही कुछ काल बाद भुला बैठता है। यह मन नित्य बदलता है, प्रतिक्षण बदलता है। किन्तु ; मूल में बात यह है कि यह भी 'मेरा' मन है। मेरे से अलग सत्ता है इसकी। मन हमारी भावनाओं का धरातल है। दया, करुणा, राग-द्वेष, सुख-दुःख, मोह-ईर्ष्या, घृणा, हिंसा आदि भावनाएं मन से जुड़ी हैं। व्यक्ति के बनने-बिगड़ने का कारण मन है। मन एक ओर तो अति चंचल है, वहीं दूसरी ओर इसकी गति विश्व में सबसे तेज भी है। हर इच्छा के

साथ मन पैदा होता है, इच्छा पूर्ति के साथ मर जाता है। नई इच्छा के साथ फिर नया मन पैदा होता है। इच्छा मन का बीज रूप है। इच्छा ही जीवन का संचालन मन के माध्यम से करती है। इच्छा को व्यक्ति पैदा नहीं कर सकता। वह नित्य सिद्ध है, सहज ज्ञान से प्रादुर्भूत है अर्थात् हम जो कुछ हैं और दिखाई पड़ते हैं, वह सब मन के धरातल से निकलता है। मन की यह अभिव्यक्ति बुद्धि और शरीर के माध्यम से होती है। मन के साथ प्राण और वाक् नित्य रहते हैं।

भावों की विकृति से हमारी अन्तःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों में असंतुलन आ जाता है। किसी स्वभाव विशेष से यह असंतुलन वर्षों बना रहे, तो यही असाध्य रोगों का हेतु बनता है। शरीर में भले ही इन रोगों को प्रकट होने में वर्षों लगे। यह मन की सांसारिक गति का मार्ग है। इसमें सृष्टि-विस्तार का क्रम बना रहता है। मन को धीर पुरुष नियंत्रित करके इसे अन्तर्गामी बना लेते हैं। तब आत्मा ईश्वर की ओर मुड़ जाता है। आनन्द और सात्त्विक ज्ञान से जुड़ जाता है।

हमारे शरीर में कुछ भी होता है, उसका तो हम पता लगा लेते हैं; किन्तु बुद्धि और मन पर जो परतें चढ़ती हैं, उसकी जानकारी हमें नहीं होती। परतें चढ़ती जाती हैं, हम बदलते जाते हैं, चलते जाते हैं। यह शिक्षा से ही संभव है कि व्यक्ति इन परतों को देखना, समझना सीखे और इनको उतार सकने की सामर्थ्य जुटा सके। अत्यन्त साहस का कार्य है इनको हटाना। इसीलिए ऐसे पुरुषों को वीर और महावीर जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। इसके बिना स्वयं को जान पाना भी संभव नहीं है। स्वयं को जान लेने के बाद व्यक्ति अकेला होते हुए भी सिंह के समान हो जाता है। पूरे जंगल की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर चलता है।

हमारे जीवन के मूल में हमारा मन केन्द्र-बिन्दु है; किन्तु शिक्षा में इसका स्थान बुद्धि ने चुरा लिया है। घरों का सांस्कृतिक माहौल लुप्त हो रहा है। टेलीविजन, सिनेमा ने शरीर को प्रधान बना दिया। साधन को साध्य बना दिया। शिक्षा ने बुद्धि को साध्य बना दिया। ऐसी स्थिति में समय के साथ मन की भूमिका जीवन में घटने लगी। यहां तक कि परिवारों में भी, जहां केवल मन ही प्रधान होना चाहिए, भावनात्मक संबंधों का वातावरण रहना चाहिए, आनन्द और सुख बरसना चाहिए, वहां भी बुद्धि का साम्राज्य होने लगा। आत्मीयता के भावों का स्थान तर्क, कलह, संघर्ष लेने लगे हैं।

मन के प्रति अनजान होने के कारण ही व्यक्ति तनावों से घिरने लगा। उसकी संघर्ष करने की क्षमता घटने लगी, प्रसन्नता का भाव लुप्त होने लगा। बुद्धि ने उसको अपने

में ही समेट कर रख दिया। उसका पारिवारिक और सामाजिक चिन्तन सिमटता जा रहा है। इण्टरनेट इसे नितान्त स्वयं में समेटकर रख देगा। वह केवल अपने बारे में ही चिन्तित रहेगा। हमारा वसुधैव कुटुम्बकम् का नारा विपरीत दिशा में चलने लग गया है। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा', 'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन' जैसी सारी कहावतें अर्थहीन होने लग गई हैं।

जिसे हम देख पा रहे हैं, उसी को समझ पा रहे हैं। जो दिखाई नहीं देता, वह हमारी समझ से परे हैं। हम दुनिया को देख सकते हैं, शरीर को देख सकते हैं। इससे क्या होने वाला है? इनका नियन्ता तो हमारा मन है।

बुद्धि और मन दोनों ही अदृश्य हैं। अतः इनको समझने के लिए विशेष शिक्षा की जरूरत है। व्यक्ति अपने-आप नहीं समझ सकता या फिर लम्बा काल निकल जाता है। अनपढ़ भी तो ठोकरें खाकर सीखता ही है।

हमारी शिक्षा पद्धति पाश्चात्य शैली पर आधारित है। हमने मैकॉले की परम्परा को अपनाया है। इसमें भी विषय तो हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप हो ही सकते हैं। हम शिक्षा को रोजगार का साधन मानने लग गए। जीवन संचालन से इसका कोई संबंध ही नहीं रह गया। आठ घंटे की नौकरी के लिए व्यक्ति बीस साल तक पढ़ता है और शेष सोलह घंटे रोज जीने के लिए कुछ भी करने की जरूरत दिखाई नहीं पड़ती। इस सामाजिक अज्ञान ने ही व्यक्ति को स्वयं में समेटकर रख दिया।

आज भी शिक्षा व्यक्ति को समाज और राष्ट्र से नहीं जोड़ सकती। बुद्धि के सहारे व्यक्ति दूसरे के लिए भी कुछ करने को तैयार नहीं होता। राष्ट्र की तो बात ही दूर की है। पश्चिमी देश इसका शिकार पूरी तरह हो चुके हैं। हम भी उसी मार्ग पर जा रहे हैं। हमें उनके जीवन-क्रम का आकलन भी करना चाहिए, ताकि यह तो पता चले कि हम कहां जाकर ठहरेंगे। क्या हम भी मात्र भोग की वस्तु बनकर रह जाएंगे? क्या इसी को हमारे दर्शन ने 'दुर्लभ मानव जीवन' कह कर लक्षित किया है?

प्रश्न यह उठता है कि सौ साल जीने का अधिकार हमें प्रकृति ने दिया है। हमें मानव जीवन दिया है। हम सौ साल जीकर क्या करना चाहते हैं, यह तो हमें तय करना है। इसी जीवन में हमें अपने लक्ष्य को भी प्राप्त करना है। कैसी भी विषम परिस्थिति हो, मरना कोई नहीं चाहता। यह भी पता नहीं कि जीकर क्या करना है। फिर इस दुर्लभ मानव जीवन का क्या अर्थ रह जाता है? शिक्षा का अर्थ क्या रह जाता है, यदि हमें अंधेरे में ही जीना पड़े। तनावों के बीच ही जीना पड़े। अपने भले-बुरे और अपने सुख-दुःख को भी हम

परिभाषित नहीं कर सकें, हमारा बुढ़ापा सुख से नहीं कट सके, हम राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जुड़ सकें। हम मरने से पहले अपने तीनों ऋण (ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण) से मुक्त न हो सके और फिर से हमें चौरासी लाख योनियों में नए सिरे से चक्कर काटना पड़े?

मन और ग्रन्थियां हमारा जीवन ग्रंथियों में बंधा हुआ चलता है, शरीर ग्रंथियों के सहारे चलता है तथा बुद्धि-मन में अनेक गांठें पड़ी होती हैं। व्यवहार भी इन्हीं के कारण उतार-चढ़ाव से गुजरते हैं। जहां-जहां गांठें खुलती जाती हैं, जीवन में सुख का आभास होने लगता है, सहजता आती है। ग्रंथियों का भी अपना एक तन्त्र-जाल होता है। हमारे शरीर में भी ग्रंथियों का जाल है और बुद्धि मन के भीतर भी। यही कारण है कि भावों का परिवर्तन मन में होता है और शरीर सक्रिय हो जाता है। शरीर की ग्रंथियां भी मन के साथ कार्य करती हैं। मन के आवेग, आवेश और मूर्च्छाएं इन ग्रंथियों को हरकत में लाते हैं। इनमें भिन्न-भिन्न मात्रा में रसायन पैदा होने लगते हैं और हमारे शरीर में अनेक प्रकार के प्रकम्प पैदा हो जाते हैं। मन और बुद्धि साथ-साथ रहते हैं। अत: मन का संकेत किया जा रहा है। वास्तव में ये सारे ग्रंथिमय ऊहापोह बुद्धि के व्यापार हैं। जीवन में ग्रंथि तन्त्र को समझ लेना ही अनेक गुत्थियों से मुक्त कर सकता है।

दिनभर अनेक लोग मिलते हैं, अनेक कार्य सम्पादित होते हैं, अनेक प्रकार की सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिनके कारण हमारी धड़कन चढ़ती-उतरती रहती है। गुस्सा भी आता है। नफरत हो सकती है, प्यार आ सकता है, किसी को मारने तक की सोच सकते हैं। क्यों होता है यह सब? क्या कभी हम इनको समझने का प्रयास करते हैं? क्या ये अपने आप ठीक हो सकते हैं? शरीर में ऐसा क्या हो जाता है कि सहसा इसका व्यवहार बदल जाता है? यहां तक कि बुद्धि भी अलग तरह से कार्य करने लग जाती है। ये सारे कार्य हमारी ग्रंथियों के हैं। शरीर विज्ञान के क्षेत्र में इस ग्रंथि तन्त्र पर अनेक कार्य हुए हैं और हो भी रहे हैं। प्रत्येक मुख्य ग्रंथि से अनेक प्रकार के रसायन शरीर में बनते रहते हैं। इनकी मात्रा का निर्धारण तो ग्रंथि करती है। रसायन की आवश्यकता का सन्देश बुद्धि से प्राप्त होता है, मस्तिष्क से प्राप्त होता है। भौतिक मस्तिष्क शरीर की भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप संदेश देता है, वहीं बुद्धि भावनात्मक धरातल पर यह कार्य करती है। इसीलिए चिन्ता और भय जैसे नकारात्मक भाव सदा इन ग्रंथियों को प्रभावित करते रहते हैं, रोग पैदा करते रहते हैं। इन ग्रंथियों को हमारी शास्त्रीय भाषा में चक्र अथवा ऊर्जा केन्द्रों के नाम से वर्णित किया गया है। हमारी भाषा में आज भी इनके कोई अन्य नाम प्रचलन में नहीं

हैं। शरीर शास्त्र के अंग्रेजी नाम ही व्यवहार में काम आते हैं। अंग्रेजी विद्वानों ने भी इन चक्रों का अध्ययन किया है और इन पर पड़ने वाले भावनात्मक प्रभावों का वर्णन सामने आया है।

सप्त धातुओं से निर्मित इस शरीर में सात बड़े प्रमुख चक्र हैं। ये सातों मूल ग्रंथियों से सम्बद्ध हैं। रीढ़ की हड्डी के नीचे 'मूलाधार' है जो एड्रिनल ग्रंथि कहलाता है और रीढ़ की हड्डी तथा गुर्दे के कार्यों से जुड़ा हुआ है। इसके ऊपर 'स्वाधिष्ठान' चक्र 'गोनाड' ग्रंथि से जुड़ा हुआ है-प्रजनन संस्थान के कार्य संचालन में इसकी भूमिका होती है। नाभि पर 'मणिपूर' चक्र पैंक्रिया कहलाता है। यह आमाशय, यकृत और स्नायु-संस्थान को प्रभावित करता है। 'अनाहत' नामक 'हृदय' चक्र को थाइमस कहते हैं। रक्त-संचार, वेगस नाड़ी के कार्यों से जुड़ा है। कण्ठ में 'विशुद्धि' चक्र है जो थायरॉयड के नाम से प्रचलित है। भ्रू-मध्य में 'आज्ञा' चक्र पिट्यूटरी और सिर पर 'सहस्रार' चक्र पीनियल ग्रंथि से जुड़े हैं, यह हमारी ज्ञानेन्द्रियों का संचालन करता है।

ध्यान योग में इन्हीं केन्द्रों पर ध्यान करने की बात सिखाई जाती है तथा इनको संतुलित रखने का अभ्यास कराया जाता है। इसका अर्थ है विभिन्न ग्रंथियों से होने वाले स्रावों का संतुलन बनाए रखना। शरीर शास्त्र में केवल उन्हीं रसायनों की बात होती है जिनका स्थूल शरीर की गतिविधियों पर प्रभाव पड़ता है। ध्यान योग में उन रसायनों अथवा प्रभावों की बात प्रमुख है, जिनका प्रभाव मन पर पड़ता है, भावनाओं पर पड़ता है और व्यक्तित्व को निर्मल बनाने में उपयोगी होता है।

चूंकि ये सभी केन्द्र हमारे आभा-मण्डल से जुड़े होते हैं, अत: इनका बाहरी वातावरण से सीधा सम्पर्क रहता है। बाहर से ऊर्जा लेकर शरीर में वितरण करना और शरीर में बची ऊर्जा के मलयुत् अवशेष को बाहर भेजना इन केन्द्रों के माध्यम से होता है। यह ऊर्जा स्थूल शरीर से गुजरती हुई सूक्ष्म शरीर अथवा प्राण शरीर में प्रवेश करती है। हमारे कारण शरीर और स्थूल शरीर के संचालन का सेतु सूक्ष्म शरीर है। कारण शरीर में भावना से लक्ष्य बनते हैं। प्राण शरीर की गतिविधियां इसी से तय होती हैं, दिशा तय होती है। परिणाम स्थूल शरीर में अभिव्यक्त होते हैं। भारतीय योग दर्शन के अनुसार सभी रोग, विशेषकर भावजन्य, हमारे कारण शरीर में उत्पन्न होते हैं, जो ग्रंथि तन्त्र को प्रभावित करते रहते हैं और कालान्तर में शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। दूषित भावनाओं का पोषण भी रोगों का निमित्त बनता है। ऐसे रोगों का उपचार इन्हीं केन्द्रों को संतुलित करके ही किया जा सकता है। भावनाओं की चिकित्सा नहीं होती। भावनाओं का मूल भी हमारा अन्न

होता है। जिस भाव से अन्न लाया जाता है और खाया जाता है तथा जिस प्रकार का अन्न शरीर में जाता है, वह हर स्तर पर हमारे ग्रंथि-तंत्र को प्रभावित करता है। अन्न से रस, रक्त आदि सप्त धातुएं बनती हैं, अन्त में मन का पोषण होता है। इस मन में अन्न के अनुरूप ही भावनाएं उत्पन्न होती हैं। वे फिर ग्रंथि-तन्त्र को प्रभावित करती हैं। क्रोध, घृणा, हिंसा, द्वेष जैसे भावों को दूषित अन्न ही जन्म देता है। इनका प्रभाव हमारी ग्रंथियों से निकलने वाले रसायनों पर होता है। रसायनों का अनुपात बदलते ही शरीर में असंतुलन दिखाई देने लग जाता है।

आज अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धतियां प्रचलन में हैं। इनमें से अधिकतर हमारे शरीर तन्त्र को संतुलित करने का कार्य करने लगी हैं। रेकी, चुम्बकीय चिकित्सा, आभामण्डलीय चिकित्सा, रंग चिकित्सा, मणि-रत्न चिकित्सा आदि सभी हमारी संतुलन की दिशा में कार्य करती हैं। यूं तो आयुर्वेद का भी मूल त्रिदोष संतुलन ही है। खेद का विषय है कि एक ओर आयुर्वेद के प्रति रुझान बढ़ रहा है, दूसरी ओर चिकित्सक स्वयं इस पर शोध करने से कतराते हैं। वे स्वयं अनुभूत योग तैयार करना ही नहीं चाहते। निदान के लिए भी आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। शरीर के अलावा अध्यात्म के शेष तीन धरातलों से उनका परिचय ही नहीं होता।

यह सृष्टि स्वयं में एक बड़ा ग्रंथि-बन्धन है। जिस प्रकार अनेक ग्रंथियों को खोलने के बाद आत्मा दिखाई पड़ती है, वैसे ही अनेक ग्रंथियों से हमारी पुनर्जन्म व्यवस्था बंधी हुई है। अनेक ग्रंथियों को हम नित्य खोलने के प्रयास में लगे होते हैं। इनसे मुक्त होने का एक मार्ग है-मर्यादा, संयम। साधारण स्तर की दिनचर्या हो, मन निर्मल बना रहे। ईश्वर के प्रति आस्था की यही उपयोगिता है। स्वर्ग कहीं नहीं है। आस्था से पैदा होने वाला समर्पण भाव हमें इन ग्रंथियों के बीच स्वर्ग का अनुभव कराता रहता है। हम सुख के साथ, निरोग रहते हुए अपना जीवनकाल पूरा कर सकते हैं।

ग्रंथि के बिना सृष्टि भी नहीं होती। क्योंकि, माया या कर्म, जो कि सृष्टि का मूल है, वह केवल चार क्षण का जीवन लेकर आता है। प्रथम क्षण में कर्म की उत्पत्ति, द्वितीय क्षण में ठहराव, तृतीय क्षण में अन्य कर्म की प्रतीक्षा-यदि सहचारी दूसरा कर्म आ गया तो प्रथम कर्म का उसके साथ ग्रंथि-बंधन हो जाएगा, यदि नहीं आया तो चतुर्थ क्षण में कर्म नष्ट हो जाएगा। उदाहरण के लिए-किसी नदी का रूप समझा जा सकता है। नदी में हम केवल प्रवाह देखते हैं, किन्तु अनेक जल-बिन्दुओं का एकत्र संगठन ही तो प्रवाह का मूल है। वहां प्रथम जलबिन्दु दूसरे जलबिन्दु से मिल जाता है, तब प्रवाह बनता है। यही विचार

सृष्टि के सब पदार्थों में किया जा सकता है। सृष्टि प्रवाह में ग्रंथि दो प्रकार की होती है-एक भावना प्रधान, एक वासना प्रधान। ज्ञान का संस्कार जो मन में पड़ता है, उसको भावना कहते हैं और कर्म का संस्कार जो मन में पड़ता है उसको वासना कहते हैं। संसार में प्राय: वासना रूप ग्रंथियों का ही बाहुल्य रहता है और वह कर्मजाल से कभी जीव को बाहर नहीं होने देतीं। भावनात्मक ग्रंथियां जीवन में कल्याणकारक होती हैं। वे क्रमश: आनन्दमयी धारा की तरफ खींच ले जाती हैं। सारा संसार सुख चाहता है; किन्तु भ्रांतिवश वासनाभाव में फंसा हुआ विषयों के सेवन रूप सुख में ही प्रवृत्त रहता है और उनको सेवन करते-करते सम्पूर्ण जीवन बिता देने पर भी पूर्ण शान्तिमय सुख को प्राप्त नहीं कर पाता। बाहरी भाव में, व्यवहार-प्रक्रिया में विवाह के समय पति-पत्नी का जो ग्रंथि-बंधन होता है वह एक व्यावहारिक रीति होते हुए भी शुद्ध भावनामय होता है। भावना के अतिरिक्त उस ग्रंथि-बंधन के विषय में और अन्य सोचा ही नहीं जा सकता।

काम का अर्थ है कामना। इसी के अन्य रूप हैं भावना, वासना, इच्छा आदि। किसी भी कर्म को करने के लिए काम अनिवार्य है। इसके अभाव में जीवन की गति कहां है। जिस कर्म पर जीवन टिका है वह भी कामना पर टिका है। अत: कर्मफल भी कामना पर ही टिका है। इसीलिए जीवन के चार पुरुषार्थ हमारे ऋषियों ने स्थापित किए, तब एक पुरुषार्थ 'काम' भी था। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को जीवन का आधार कहा है। कामना न रहे तो व्यक्ति जिए किस के लिए! हर व्यक्ति कामना पूर्ति के लिए ही तो कार्य करता है। और कामना किस पर ठहरी हुई है- ज्ञान पर। जिस विषय का ज्ञान नहीं होता, उसकी कामना मन में कहां पैदा हो सकती है। यही हमारी कामना की सीमा भी है। अत: ज्ञान के लिए बुद्धि चाहिए, इच्छा के लिए मन चाहिए और कर्म के लिए शरीर की जरूरत पड़ती है। तीनों अंग मिलकर जो कर्म करते हैं, उसका फल जनम-जनम में आत्मा को भोगना पड़ता है।

कामना के होने का एक कारण तो है शरीर का पालन पोषण। इसके लिए अर्थ (पदार्थ) की जरूरत होती है। रोटी, कपड़ा और मकान सभी अर्थ आधारित हैं। एक कामना जीवन का लक्ष्य पूरा करने के लिए भी उठती रहती है। आज वैसे जीवन को लक्षित करना किसी को सिखाया भी नहीं जाता है अत: लोग दिशाहीन यात्रा में ही व्यस्त रहते हैं। उन्हें कोई इच्छित पड़ाव भी मार्ग में नहीं मिलता। अत: दुखी रहते हैं। जीवन में कहीं पहुंच भी नहीं पाते।

एक कामना होती है अहंकारवश, अपेक्षा के कारण, ऐषणाओं से लदी हुई। इस

कामना के लिए भी व्यक्ति को अपने प्रयास लक्षित करने पड़ते हैं। इस कामना क्षेत्र में शोक-विषाद के उदाहरण अधिक होते हैं। कामना तो व्यक्ति बड़ी-बड़ी कर सकता है; किन्तु उन्हें पूरी करने की अपनी क्षमता का कभी आकलन नहीं करता। ऐषणाओं में तो प्रारब्ध भी कार्य करता है। लोकेषणा, पुत्रेषणा आदि भाग्य से ही पूरी होती हैं। इनका अभाव व्यक्ति को विचलित कर देता है। कामना बन्धन मुक्त होने की भी होती है। आत्मा अनेक प्रकार के आवरणों से ढंका रहता है, बंधा रहता है। इस कारण ही फल भोगने के लिए भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है। आज तो पूर्वजन्म का ज्ञान भी कराया जाने लगा है। मानसिक उपचार का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम उभरकर आया है। इन्हीं बन्धनों से मुक्त होने के लिए व्यक्ति को संस्कारों का सहारा लेना पड़ता है। संस्कार कर्म और प्रकृति में सामंजस्य बिठाने के मूल सूत्र होते हैं।

कामना से शरीर का पोषण भी होता है। कामना का जो स्वरूप वासना या भावना में रहता है, वही कर्म की दिशा बन जाती है। फल भी उसी अनुरूप प्राप्त होते हैं। आगे की कामनाएं भी उसी तरह बदलने लग जाएंगी। इन्द्रियों से मन तक पहुंच वाले विषय उसी तरह विषय की व्याख्या करेंगे। बुद्धि का वही रूप हो जाएगा। श्वास-प्रश्वास के स्पंदन भी पूरे शरीर में उसी प्रकार का वातावरण बनाएंगे। अन्त:स्रावी ग्रंथियों के रसायन भी वैसे ही होंगे। उसी प्रकार के शरीर की धातुओं का निर्माण होगा।

कामना का स्वरूप इस बात पर भी निर्भर करता है कि आपके मन का पोषण किस प्रकार के अन्न से होता है। कहते हैं न-जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। मन ही तो कामना है। मन ही परिणाम है। फिर नई कामना, फिर नया मन। मन कोई स्थाई अंग रूप नहीं होता। हर कामना के साथ-साथ नया पैदा होता रहता है, मरता रहता है। यही कारण है कि अनेक कामनाओं को पूरा करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मन इतना चंचल है, इतना तेजी से बदलता है कि सुबह उठी कामना शाम तक कहां खो जाती है, पता नहीं चलता। हर इन्द्रिय के साथ अलग-अलग कामना। हर व्यक्ति के साथ अलग-अलग कामना। हर वातावरण की अपनी कामना। हर पल अनेक प्रकार की कामनाएं एक साथ पैदा होती हैं। फिर स्मृति और कल्पनाओं के साथ पैदा होने वाली कामनाएं। लक्ष्य पूर्ति से जुड़ी हुई कामनाएं। पूरी तो एक बार में एक ही हो सकती है। शेष अधूरी रह जाएंगी। अथवा दबा दी जाएंगी। समय पाकर ये भी विस्फोट रूप से बाहर आएंगी। आस्था और विश्वास से जुड़ी कामनाओं में चंचलता का अभाव होता है। बुद्धि में स्थिरता होती है।

कामना पैदा नहीं की जा सकती। स्वत: फूटती रहती है। मन के वातावरण के अनुसार

ही पैदा होती है। प्रारब्ध भोगने के लिए भी प्राकृतिक रूप में उठती रहती है। व्यक्ति के आवेश, आवेग आदि से भी दिशा बदलती है। किस योग से व्यक्ति की कामना जुड़ी है, वह भी महत्त्वपूर्ण है। गीता में कृष्ण ने हर स्वभाव के व्यक्ति के लिए कोई न कोई योग का उपदेश दिया है। सारे उपक्रम मिलकर जो स्पंदन हमारे श्वास-प्रश्वास में कार्य करते हैं, उन्हीं से कामना का प्रारूप तैयार होता है। माया के प्रवेश का प्रथम द्वार कामना ही है। इसको यदि धर्म का आधार मिल जाता है, धर्म आधारित अर्थ से यदि इसका पोषण होता है, तो निश्चित है कि व्यक्ति अपनी कामनाओं को पूर्ण करता हुआ शान्ति में स्थापित हो सकेगा। यही जीवन का लक्ष्य होता है।

स्वप्न सपना हमारे मन का व्यापार है। इसमें हमारी इन्द्रियों की भूमिका भी है। हमारी स्मृतियां, अनुभव और कल्पनाएं भी होती हैं। स्वप्नों के अपने स्वरूप और भाषाएं होती हैं। यथार्थ कुछ नहीं होता। यथार्थ को हम जाग्रति कहते हैं। इसमें मन पूर्ण रूप से जाग्रत होता है। जब हम कार्यरत होते हैं, हमारी कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, अहंकार सब कुछ जाग्रत अवस्था में कार्य करते हैं। जीवन इस अवस्था में यथार्थ जान पड़ता है। जीवन व्यापार से जुड़ी गतिविधियां सभी सुचारू रूप से चलती हैं। आत्मा के विभिन्न भाग-क्षेत्रात्मा, विज्ञानात्मा, प्रज्ञानात्मा आदि- सभी प्रकृति से जुड़कर कार्य सम्पन्न करते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि (पार्थिव) से जुड़कर प्रकाश प्राप्त करके जीवन का स्वरूप निर्माण करते हैं। इस स्थिति को ही मन/प्रज्ञानात्मा की जाग्रत अवस्था कहते हैं। क्षेत्रज्ञआत्मा सूर्य से, प्रज्ञानात्मा चन्द्रमा से और अग्नि पृथ्वी से जुड़ा रहता है। इनसे अन्न और ऊर्जाएं भी प्राप्त करता रहता है।

शायद प्रकृति ने एक ही प्राणी बनाया है, जो थकता भी है। वह मनुष्य है। उसके शरीर का एक भी अवयव थकता नहीं है। जन्म से मृत्युपर्यन्त हर अवयव कार्य करता है। उसका मन जरूर प्रतिदिन थकता भी है। जैसे ही उसका मन शिथिल होता है, उसका इन्द्रिय व्यापार ठहर जाता है। इसे निद्रा अवस्था कहते हैं। उसका प्रज्ञानआत्मा और क्षेत्रज्ञआत्मा एक होकर रह जाते हैं। क्षेत्रज्ञआत्मा सूर्य से जुड़ा रहता है। वही प्राज्ञ को प्रकाशित करता है। निद्रा अवस्था में सब संकुचित होकर सिमट जाते हैं। जिसको भी क्षेत्रज्ञ का प्रकाश प्राप्त होता है, वही दिखाई देता है। अच्छे-बुरे का भेद तो व्यक्ति जाग्रत अवस्था में ही कर सकता है। जीवन का लक्ष्य भी जाग्रत अवस्था में ही बना सकता है। यह लक्ष्य भी जीवन का सपना ही कहलाता है, क्योंकि यह कल्पना मात्र होता है। यथार्थ में होता नहीं है। यह सपना धीरे-धीरे दृढ़ होता हुआ जीवन का संकल्प बनता जाता है। जीवन के कर्म इसी में से अंकुरित

होते हैं। कर्म के पीछे कामना का होना आवश्यक है। कामना के पीछे ज्ञान जरूरी है। यह ज्ञान ही इच्छा के माध्यम से अंकुरित होता है। कर्म रूपी वृक्ष निकलता जाता है। मूल में समझें तो हमारा सपना ही इच्छा बनता है, कर्म बनता है, परिणाम में बदलता है। सपने के कारण ही कर्म का स्वरूप तय होता है। क्या करना है, क्या नहीं करना है। अपने जीवन का स्वरूप तय होता जाता है। इसी को जीवन का धर्म कहते हैं। इसी से पहचान बनती है। पहचान का अर्थ ही धारण करना है।

मन सदा एक ही अवस्था में नहीं रहता। बहुत चंचल भी है। इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है। बाह्य जगत से जुड़ा रहता है। जब भी व्यक्ति थक जाता है, विश्राम करने लगता है। ईश्वर ने शरीर के किसी अवयव को थकने के लिए नहीं बनाया। केवल मन ही है, जो थकता भी है। व्यक्ति सो जाता है। कोई भी साधक-योगी रात को सोता नहीं है। उसके लिए तो रात्रिकाल दिन का कार्य करता है। साधारण मनुष्य सोता है। इसी निद्राकाल को स्वप्नावस्था कहते हैं। मन स्वप्नों में व्यस्त हो जाता है। वैसे मन की एक तीसरी अवस्था भी है जिसे 'सुषुप्ति' कहते हैं। यह गहन निद्रा की स्थिति है, जिससे जागने पर कोई स्वप्न याद नहीं आता।

प्राज्ञ आत्मा जब बाहर के विषयों का भोग करता है, इसके साथ विज्ञानात्मा, प्रज्ञानात्मा और इन्द्रियां तीनों साथ मिले रहते हैं। जब विज्ञान आत्मा भी बहिश्चर हो जाता है, उसे जाग्रत कहते हैं। विज्ञान आत्मा सूर्य, चन्द्र, अग्नि, शब्द तथा स्व:ज्योति से प्रकाशित रहता है। जब विज्ञानमय क्षेत्रज्ञ आत्मा बाहर की ज्योतियों से कटकर केवल अपनी ज्योति से ही कार्य करता है, तब स्वप्न दशा कहलाती है। विज्ञान आत्मा अपनी रश्मियों में प्रज्ञान के बने हुए पदार्थों को भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से देखा करता है। पदार्थ बाहर से कोई नहीं आता। स्वप्न के समय विज्ञान आत्मा अपनी रश्मियों को समेट कर हृदय में कर लेता है। सूर्यास्त की तरह। सारे दृश्य हृदयाकाश में। स्नायु यदि दुर्बल हों तो दस्त, पेशाब, मैथुन निर्गत होते हैं। सिंह-हाथी की गर्जना से धड़कन वास्तव में तेज हो जाती है। स्वप्न में केवल हृदय से ही काम चलता है, इन्द्रियों से नहीं। हृदय में बैठा हुआ विज्ञान आत्मा देखता है।

न जाग्रत, न स्वप्न, न सोचना, इन्द्रियां-मन किसी विषय को ग्रहण नहीं करे, तब विज्ञान आत्मा अकेला रहता है। इसी को सुषुप्ति कहते हैं। विज्ञान आत्मा-सिर की ओर जाने वाली नाड़ियों में रहता है, सब ओर रहता है- जाग्रत। जब हृदय की नाड़ियों में रहता है- स्वप्न। जब कहीं नहीं पकड़ में आता- पुरीतत नाड़ी पर सुषुप्ति। इन्द्रियों के स्नायु हृदय में गए हैं। हृदय में प्रज्ञात्मा इन्द्रियों के रसों को लेकर विज्ञान आत्मा के प्रकाश में नाना

प्रकार के दृश्यों को दिखा सकता था ; किन्तु जब ज्ञानात्मा हृदय आकाश छोड़ कर नीचे रहता है, तब अंधकार के कारण इन्द्रियों का कोई भाव प्रज्ञान में नहीं आता। अत: स्वप्न दिखते नहीं हैं। जब प्राज्ञ आत्मा सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वाक्-आत्मा इन पांच ज्योतियों से अन्न ग्रहण करता है, उसी से उसका स्वरूप बनता है। इसी को जाग्रत कहा। यह सदा विज्ञानमय क्षेत्रज्ञ आत्मा से जुड़ा रहता है, तथापि जाग्रत अवस्था में विज्ञान को साथ लिए हुए यह इन्द्रियों के द्वार पर रहता है। वहां पांचों ज्योतियों के लाए हुए अन्नों को लेकर उनके संस्कारों को विज्ञान में पहुंचाता रहता है। यह जाग्रत अवस्था है।

विज्ञानमय क्षेत्रात्मा हृदय में रहता है, इसका प्रकाश सम्पूर्ण शरीर में। इसी के साथ प्रज्ञानात्मा भी हृदय में। प्रज्ञान रश्मियां शोणित इन्द्रियों में व्याप्त रहती हैं। सूर्यास्त पर-विज्ञानात्मा (सूर्य रस से उत्पन्न) के अन्न में कमी आ जाती है, अत: थकान आ जाती है। रश्मियां संकुचित होकर हृदय तक सीमित रह जाती हैं। विज्ञान प्रज्ञान में लय हो जाता है। प्रज्ञान के जाग्रत अवस्था के संस्कार रहते हैं। शरीर में कहीं प्रकाश न रहकर हृदय में रहता है। तब प्रज्ञात्मा उपार्जित संस्कारों में वायु के आघात से जिन-जिन को प्रकाश में लाता है वही स्वरूप विज्ञान से प्रकाशित होकर स्वप्न बनता है।

उस समय पांचों इन्द्रियों के प्राण संकुचित होकर हृदय में रहते हैं। अत: इन्द्रियों के कार्य (देखना-सुनना आदि) सभी हृदय स्थान में होते हैं। इन्द्रियों के द्वार बन्द होने से बाहर की ज्योतियां (सूर्य-चन्द्रादि) भीतर नहीं आतीं। पांचवीं विज्ञानमय आत्मा की ज्योति भीतर रहती है। वह इन्द्रियों की सहायक होकर पदार्थों को दिखाती है। यही स्वप्नावस्था है।

स्वप्न में जो पदार्थ देखते हैं, वे होते नहीं हैं, प्राज्ञात्मा उनका निर्माण करता है। स्वप्न के सभी पदार्थ वैज्ञानिक होते हैं, भौतिक नहीं। आग लगने पर जलने का कष्ट तो होता है, जलते नहीं हैं। प्रज्ञान आत्मा देखे-सुने संस्कारों में प्रवेश करके उन्हें विज्ञान के प्रकाश में लाता है। हृदय में चूंकि दोनों मिले हुए हैं, अत: जिन-जिन रूपों में प्रज्ञान बदलता है, वे सब विज्ञान के प्रकाश में आते रहते हैं। यही स्वप्न दृष्टि है। स्वप्नों के नियम अलग होते हैं (स्वतंत्र), हर पदार्थ/ वाहन आदि बदलते जाते हैं। पांचों ज्ञानेन्द्रियां प्रज्ञा कहलाती हैं। इनके पांच, कर्मेन्द्रियों के पांच विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध), इनके पंच भूत-आकाश, वायु, तेज आदि-इन 25 की समष्टि को प्राज्ञ कहते हैं। ज्ञान-अज्ञान के संस्कार संचित होते रहते हैं। इन्हें काम (इच्छा) कहते हैं। इच्छा=अपेक्षा बुद्धि। जीवन में जो सुकर्म-विकर्म-अकर्म प्राणी करता है, उनके भी संस्कार संचित होते हैं। इनको शुक्र कहते हैं। काम+शुक्र जन्म-जन्मान्तर में भी आत्मा के साथ रहते हैं। विज्ञान आत्मा पर महान् आत्मा

मिला रहता है। उस आकार के महान् आत्मा पर पंच प्रज्ञा की 25 मात्रा मिली रहती है- उसे ही प्राज्ञ आत्मा कहते हैं। यह काम-शुक्र से शून्य नहीं रहता। काम-शुक्र के हटने से पंच प्रज्ञा 25 मात्राओं का रूप भी नहीं रहता। अत: प्राज्ञ का स्वरूप ही नष्ट हो जाता है। नया जन्म लेने के लिए योनि का संबंध भी टूट जाता है। तब केवल विज्ञानमय आत्मा (मुक्ति) रह जाता है। सूर्य से आया था, अत: फिर सूर्य में लीन होता है। सूर्यभेदी मुक्ति। सुषुप्ति में विज्ञान आत्मा संकुचित होकर हृदय में ही रहता है। उसकी रश्मि त्वचा तक न जाने से प्रज्ञान आत्मा का कार्य रुक जाता है। दीपक न रहने पर आंखें अंधकार में नहीं देख पातीं।

द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व जिस प्रकार क्रिया के साथ प्रतिक्रिया जुड़ी है, बिम्ब के साथ प्रतिबिम्ब जुड़ा है, ध्वनि के साथ प्रतिध्वनि का अर्थ है, ठीक उसी प्रकार द्वन्द्व के साथ प्रतिद्वन्द्व का भी अर्थ है। द्वन्द्व वैचारिक स्थिति भी है और मानसिक भी। विरोधाभासी भावों के कारण अनिर्णय की स्थिति द्वन्द्व पैदा करती है। आज के वातावरण में द्वन्द्व एक साधारण जीवन क्रम हो गया है।

द्वन्द्व शारीरिक भी होता है और व्यापारिक भी। आज जिस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा का दौर आ पहुंचा है वहां व्यापारिक संस्थाएं प्रतिद्वन्द्वी की भांति बाजार में उतरी प्रतीत होती हैं। इसी कारण Everything is fair in love and war का सिद्धान्त व्यापार का आदर्श भी बनता जा रहा है। साख और नीतियों का स्थान गौण होता जा रहा है। रातोंरात धनवान बन जाने के प्रयासों ने अनेक प्रतिद्वन्द्वियों की नींद हराम कर रखी है। द्वन्द्व कोई भी हो, किसी भी प्रकार का हो, उसकी शुरुआत तो व्यक्ति से ही होती है। व्यक्ति की परिकल्पना ही परिस्थितियों का निर्माण करती है। व्यक्ति का उद्देश्य ही उसकी नीतियों का निर्धारण करता है और उसी के अनुरूप सारे कार्य किए जाते हैं।

द्वन्द्व का मूल कारण ज्ञान की कमी होता है। दृष्टि की अस्पष्टता और अदूरदृष्टि भी इसी कारण अपना कार्य करती है। व्यक्ति का वातावरण भी इस आग में घी का कार्य करता है। आत्मविश्वास की कमी अथवा असुरक्षा का भाव भी द्वन्द्व के रूप में परिलक्षित होते हैं। बिना स्वयं के संकल्पित हुए किसी भी प्रकार के आश्वासन व्यक्ति की सहायता नहीं कर पाते।

द्वन्द्व के बाहर निकलने का एक सहज उपाय है सकारात्मक सोच। सकारात्मक विचारों की विशेषता यह है कि विचारों में द्वन्द्व पैदा ही नहीं होता। ये सकारात्मक भाव मन में पैदा होते हैं। अभ्यास से मन को इसके लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। एक बार सकारात्मक सोच का मार्ग खुल गया तो द्वन्द्व शान्त होने लग जाते हैं। सही अर्थों में द्वन्द्व

का जन्म ही नकारात्मक भावों के साथ होता है। एक बार व्यक्ति इस जाल में फंसकर चल पड़ा तो लौटने का उपाय भी नहीं बचता। एक नकारात्मक कार्य के परिणाम को ढूंढ़ने के लिए अन्य कार्य भी उसी तरह करने पड़ते हैं। व्यक्ति अपनी भूल को भी आसानी से स्वीकार नहीं करता। यही अहं भाव उसे पुन: सकारात्मक नहीं होने देता, द्वन्द्व से बाहर नहीं निकलने देता।

बाहरी और आन्तरिक दोनों ही द्वन्द्व व्यक्ति को विचलित किए रहते हैं। बाहरी द्वन्द्व दूसरों को भी प्रभावित करता है ; किन्तु भीतरी द्वन्द्व अथवा अन्तर्द्वन्द्व स्वयं को अस्थिर कर देता है। व्यक्ति स्वयं में सिमटकर इस संघर्ष में लगा रहता है। उसके जीवन से शान्ति पलायन कर जाती है। हंसी-खुशी और सुख का आभास लुप्त हो जाता है। द्वन्द्व का सही निराकरण तो सम्यक् दृष्टि से ही सम्भव है। यह बात कहने में भले ही आसान दिखती हो ; किन्तु उतनी आसान है नहीं। हमारे सभी प्रकार के शास्त्र और योग इसी सम्यक् दृष्टि का मार्ग प्रचारित करते हैं ; किन्तु व्यवहार में कितने लोग सफल दिखाई पड़ते हैं? यद्यपि यह सही है कि सकारात्मक भावों के द्वारा दृष्टि को जीवन की आवश्यकता के अनुसार सम्यक् रखा जा सकता है। इसी प्रकार प्रतिस्पर्द्धा भी जिस प्रकार प्रतिद्वन्द्विता बनती जा रही है उसका मूल कारण भी नकारात्मक भाव ही दिखाई पड़ते हैं। एक व्यक्ति कोई माल बनाता है, फिर उसको बेचने के लिए प्रयास करता है तो इसमें बुरा क्या है? किन्तु; जब व्यक्ति बेचने के प्रयासों में अपने माल की बात न करके दूसरे के माल की बुराई करता है तो उसका स्वभाव नकारात्मक हो जाता है।

व्यापारिक दृष्टि कहां है, इसे समझने की आवश्यकता है। सिद्धान्तत: तो दृष्टि स्वयं के व्यापार और ग्राहकों पर ही होनी चाहिए। ग्राहक माल की गुणवत्ता से सन्तुष्ट रहे और जुड़ा रहे। दृष्टि जब अपने माल और अपने ग्राहक से हटकर दूसरे माल पर टिक जाती है तो अपने माल का आकलन करने की आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। क्या आप बाजार से सभी प्रकार का माल हटा देने के लिए व्यापार में आए हैं? एक बाजार में अनेक प्रकार का माल रह सकता है। हर किसी को माल बनाने और बेचने की छूट है। सफल होने का अधिकार है। आप उस अधिकार के तहत एक सफल व्यापारी बनें, स्पर्द्धा का आकलन करते रहें, अपने माल की गुणवत्ता बनाए रखें, बेचने के प्रयास भी करते रहें तो कोई द्वन्द्व पैदा नहीं होगा। नकारात्मक भाव भी पैदा नहीं होंगे। किन्तु; ज्यों ही आप अन्य को बाजार से हटाने की सोचेंगे, आपका सारा कामकाज, व्यवहार, नीतियां आदि नकारात्मक हो जाएंगे। आपकी साख पर प्रश्नचिह्न भी लग सकता है। आपको सफलता

से भी हाथ धोना पड़ सकता है। जब भी ध्यान केन्द्र से हटकर परिधि पर अटकेगा, हमारे निर्णय द्वन्द्वात्मक होंगे। हमें बात के मूल में जाना होगा। सारे आवरण हटाकर वस्तुस्थिति को समझना ही द्वन्द्व से मुक्ति है।

बंधन और मोक्ष जीवन को कर्मों का बंधन कहा जाता है। हर कर्म को बंधन का कारण भी माना जाता है, चाहे सत्कर्म हो अथवा दुष्कर्म। पाप भी बंधन का कारण बनता है और पुण्य भी बंधन का कारण बनता है। दो व्यक्ति या चीजों के जुड़ने का नाम ही तो बंधन है। बंधन के रूप अनेक हो सकते है। परिणाम तो बंधन ही होगा। सामाजिक पृष्ठभूमि में सदाचार अथवा मर्यादायुक्त जुड़ाव को कहेंगे 'संबंध'। समानता का बंधन या सम्यक् बन्धन। बंधन तो फिर भी है। मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य है बंधन- मुक्त होना। मोक्ष प्राप्त करना।

जीवन में पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा का उद्देश्य भी यही है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मयुक्त आचरण को आधार बनाया गया ताकि अर्थ और काम के रहते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति हो सके। धर्म के हमारे यहां दस लक्षण दिए गए हैं। बाइबल में इन्हीं को Ten Commandments का रूप दिया गया है। ये ही आचरण के सिद्धान्त बन गए।

बंध होता क्यों है? कोई चीज या व्यक्ति अच्छे की श्रेणी में आए तो आसक्ति होने लगती है। बार-बार योग होने से यह आसक्ति गहराने लगती है। वह चाहे मूंगफली खाने की ही क्यों न हो, ठण्डा पानी पीने की हो अथवा अचार खाने की। इसी प्रकार मीठी आवाज, स्नेहयुक्त व्यवहार, स्पर्श, गंध, रूप आदि के साथ भी होता है। जो कुछ मन को अच्छा लगता है, आसक्ति का साम्राज्य बढ़ता जाता है। हर एक इन्द्रिय का अपना विशाल क्षेत्र है। बुद्धि एवं मन का क्षेत्र तो और अधिक विशाल है। शारीरिक सुख के प्रति आसक्ति तो आज की प्रधानता बन गई है।

आसक्ति का विरोधी तत्त्व है, नकारात्मक रूप है- द्वेष। आसक्ति में प्रियता का भाव है। द्वेष में घृणा एवं ईर्ष्या का। यह भाव भी जब बलवान होता है, तब इसका बंधन और भी अधिक जकड़ने वाला होता है। असुर की शक्ति देवता से ज्यादा होती है। इस प्रकार एक-एक करके व्यक्ति अपने ही बनाए जाल में घिरता चला जाता है। धर्म का उद्देश्य जीव को मुक्त करना है, ताकि इसी जन्म में पिछले कर्मों का भोग भी कर ले और नए बंधन भी पैदा न करे। नए बंधन ही पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। ऋणानुबंधन कहलाते हैं। आज धर्म के नाम पर जो कुछ हो रहा है, स्वयं धर्म के स्वरूप को विकृत कर रहा है। कट्टरवाद तो धर्म के मुंह पर कालिख पोत रहा है। ऐसा धर्म किसको मुक्त करेगा? व्यक्ति धर्म के सहारे

आगे बढ़ता है, मार्ग पकड़ता है, किन्तु मंजिल से पहले अनासक्त हो जाता है। मार्ग पीछे छूट जाता है। आज तो मरते दम तक भी धर्म का पल्ला कोई छोड़ता नहीं है। वह स्वर्ग में भले ही चला जाए; किन्तु पुनर्जन्म से नहीं छूट सकता।

प्रेम अथवा घृणा, अच्छा या बुरा का भाव मन में कहां से आता है? एक मार्ग तो हमारे संस्कार हैं। दूसरा मार्ग है हमारी शिक्षा और वातावरण। व्यक्ति अच्छे-बुरे की भाषा यहीं सीखता है। जैसे ही व्यक्ति यह निर्णय करता है; उसका प्रेम, आसक्ति, घृणा, द्वेष जैसे भावों का उदय होना शुरू हो जाता है। फिर उसकी यथार्थपरक दृष्टि लुप्त हो जाती है। उसे या तो कोई अच्छा लगता है, या बुरा। उसी के अनुकूल उसके मन में प्रतिक्रियाएं उठती हैं, जो बहुत लम्बी चलती हैं।

इसका कारण है कि व्यक्ति अपने निर्णय की क्षमता का दुरुपयोग करता है। जैसे ही वह मानता है कि यह अच्छा है, उसे अवगुण दिखाई देना बंद हो जाते हैं। फिर यदि कोई व्यक्ति अच्छा लगता है तो सारे निर्णय 'अच्छा' मानकर ही करता जाता है। भले ही बाद में वह धोखा खा जाए। इसी प्रकार 'बुरा' है इसके साथ उसकी अच्छाइयां दिखना बंद हो जाती हैं। अच्छा या बुरा, दोनों ही एकतरफा निर्णय करने को बाध्य करते हैं। मन में अच्छी या बुरी छाप बनती रहती है और व्यक्ति विषय अथवा व्यक्ति के साथ गहरे से गहरा जुड़ाव बनाता चला जाता है। वह प्रवाह में बहने लगता है।

निर्णय के इस पहलू का आधार व्यक्ति का अहंकार होता है। जब अहंकार बढ़ता है, तब विवेक ढक जाता है। अहंकार का पर्दा काले रंग का होता है। बुद्धि में इसका तामसी रूप प्रकट होने लगता है। उसे अपना निर्णय सदा सही नजर आता है। अपने कष्टों के लिए दूसरों को ही दोषी मानता है। दोनों, संस्कार और अहंकार, मिलकर कार्यों के उद्देश्यों का संचालन करने लगते हैं। संस्कार भावनाओं की दिशा को तय करते हैं और अहंकार उन्हें गति प्रदान करता है। संस्कार यदि सत्त्व-गुण-प्रधान हैं तो अहंकार स्वत: ही समर्पण कर देता है। तब वहां प्रज्ञा का विकास होता है और व्यक्ति अच्छे-बुरे के भेद को छोड़कर यथार्थ की ओर लौटता है। इसका अर्थ है कि जो जैसा है, उसे वैसा ही देखना। न अच्छा, न बुरा। काले को काला मानना, सफेद को सफेद। न सफेद अच्छा है, न काला बुरा है।

जैसे ही यथार्थवादी दृष्टिकोण का विकास हुआ कि सारी इन्द्रियों के प्रभाव बदल जाएंगे। रस, रूप, गंध, स्पर्श आदि में से अच्छा-बुरा भेद निकल जाएगा। जो जैसा है, वैसा है। यही अनासक्ति का आभास होता है। व्यक्ति परिणामों से स्वतंत्र हो जाता है। 'फल की इच्छा मत रखो' की अवधारणा कर्म को बंधन से मुक्त कर देती है। जब फल ही नहीं रहेंगे,

तो भोगने को क्या रह जाएगा? क्यों फिर नया जन्म लेना पड़ेगा? हां, इसका एक और प्रभाव पड़ेगा। हमारी स्मृति धीरे-धीरे खाली हो जाएगी। जो कुछ अनुभव हमें इतिहास से जोड़े हुए थे, एक-एक करके रवाना होने लगेंगे। आपका वर्तमान आपके हाथ में, आपके नियंत्रण में रहेगा और अतीत भी कभी नहीं कचोटेगा। इसी प्रकार से भावी कल्पनाएं भी फिर आपको नहीं घेर सकतीं। इनका अधिकांशतः सम्बंध इन्द्रिय-सुखों से ही जुड़ा होता है। अच्छे-बुरे का भेद मिटते ही सुख-दुःख की परिभाषा भी बदल जाएगी। आप हर हाल में संतुष्ट रहेंगे।

बुद्धि का भार हल्का हुआ, मन के बोझ उतर गए। शरीर में हल्कापन अपने-आप आ जाएगा। बंधन-मुक्त होने का अनुभव जीवित हो उठेगा। इसका अर्थ है कि यथार्थ दृष्टि के पैदा होते ही व्यक्ति का द्रष्टाभाव प्रकट हो जाता है। कर्त्ताभाव समाप्त हो जाता है। इसी को शायद मोक्ष कहते हों।

आनन्द जीवन में आनन्द के आगे सारी कामनाएं ठहर जाती हैं। इसके बाद कुछ रहता ही नहीं चाहने को। नन्द का अर्थ है- समृद्धि। आनन्द का अर्थ चहुंमुखी, पूर्ण समृद्धि। समृद्धि का अर्थ है-सम्+रिद्धि। रिद्धि का अर्थ है, जो निरन्तर बढ़ता जाए। सम्यक् रूप से बढ़ता जाए। यह है लौकिक आनन्द। एक और आनन्द है- पारलौकिक। इसके पर्याय हैं कृष्ण। जहां से सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार शुरू होता है। जहां जाकर सृष्टि का विस्तार ठहर जाता है। कृष्ण कहते हैं कि मैं अव्यय पुरुष हूं। उस अव्यय पुरुष की प्रथम कला ही आनन्द है। सम्पूर्ण सृष्टि इसी अव्यय पुरुष से आगे बढ़ती है। अतः यह सिद्धान्त बन गया है कि आनन्द के बिना सृष्टि नहीं हो सकती।

आनन्द चूंकि हर सृष्टि के मूल में रहता है, अतः इसके स्वरूप भी अनन्त हैं। अव्यय पुरुष की पांच कलाओं में प्रथम कला ही आनन्द है। इसके बिना तो अव्यय पुरुष ही नहीं बन सकता। एक से अनेक कैसे बनते हैं, इसी ज्ञान या जानकारियों को विज्ञान कहा जाता है। जब आनन्द और ज्ञान घनीभूत हो जाते हैं; तब इस स्वरूप का नाम मन हो जाता है। अनेक होने की इच्छा (एकोहं बहु स्याम्) से ही प्राणों में हलचल होती है और वाक् का निर्माण होता है। इस वाक् के भीतर ही आनन्द, विज्ञान, मन और प्राण रहते हैं, कार्य करते हैं। दिखाई दे या न दे, वाक् इनमें सबसे स्थूल तत्त्व होता है। इससे इस सिद्धान्त की भी पुष्टि होती है कि हर इच्छा के साथ नया मन बनता है और इच्छापूर्ति के साथ ही समाप्त भी हो जाता है। मन कोई स्थाई तत्त्व नहीं है। हां, अव्यय का मन ही हमारे हृदय-केन्द्र में रहता है और प्रकृति के आवरणों के कारण हमें त्रिगुणी मन की अनुभूति होती है। जब

भी मन में आनन्द का भाव पैदा होता है, वही सृष्टि का मूल तत्त्व दिखाई पड़ता है। कृष्ण के जीवन काल में यह आनन्द तत्त्व सदा मौजूद रहा, कभी वे आनन्द से च्युत नहीं दिखाई पड़े। अतः दशावतार में से केवल कृष्ण ही पूर्णावतार माने गए। शेष को अंशावतार ही कहा गया। हम सब भी अंशावतार ही होते हैं। हम उस अंश को विकसित नहीं कर पाते। अधिकांशतः तो उसका भान ही हमको नहीं हो पाता और हम जीवन के सौ साल पूरे कर जाते हैं।

सुख काल्पनिक है। आनन्द काल्पनिक नहीं है। सुख अस्थाई है, आनन्द स्थाई है। सुख की अवधारणा तो परिस्थितियों के अनुसार बदल जाती है। आनन्द के बाद कोई परिस्थिति बचती ही नहीं है। सुख बाहर से जुड़ा है। आनन्द भीतर का अन्तिम केन्द्र है। यह सच है कि समृद्धानन्द बाहर से जुड़ा है; किन्तु यह शान्तानन्द बनकर भीतर स्थाई भाव में आ जाता है। आनन्द के मूल में रहता है साक्षी भाव। जब व्यक्ति को ज्ञान के सहारे विज्ञानधारा समझ में आ जाती है, तब आनन्द की ओर गति होती है। साक्षी भाव प्रकट होता है। साक्षी होने का अर्थ है अनासक्तभाव। न कोई आसक्ति, न कोई विरक्ति। न कुछ अच्छा है, न ही कुछ बुरा है। जो है, बस है। साक्षी भाव के लिए पहले व्यक्ति को वर्तमान में जीना आना चाहिए। आप यदि वर्तमान में हैं ही नहीं, तब साक्षी कौन होगा। वर्तमान में जीता है मन। तभी इन्द्रियां वर्तमान का साक्ष्य कर सकती हैं। आपके सम्मुख कोई व्यक्ति खड़ा है, आपका मन कुछ और सोच में है, तो व्यक्ति कैसे आपको दिखाई देगा? आंखें भले ही खुली रहें; किन्तु दिखाई कुछ नहीं देगा। कोई भी इन्द्रिय काम नहीं करेगी। इन्द्रियां तो उपकरण हैं। मन जिसके साथ जुड़ता है, वही कार्य निष्पादन करती हैं। इन्द्रिय के साथ मन का वर्तमान में होना तो अनिवार्यता है। मन चंचल होने के कारण कभी एक विषय पर टिकता ही नहीं है। हर क्षण इच्छाएं भी बदलती हैं और मन भी बदलता रहता है। तब यह मन परिस्थितियों का आनन्द कैसे उठा सकता है। उसे परिस्थिति के साथ तो रहना ही पड़ेगा। मन के साथ अतीत के अनुभव जुड़े रहते हैं। मन अनेक भावी आशंकाओं और सपनों में अटका रहता है। उसके पास वर्तमान में जीने की फुर्सत ही नहीं है। न ही व्यक्ति का ध्यान कभी इस ओर जाता कि जो कार्य वह कर रहा है, वहां उसका मन नहीं है। मन कहीं और दिशा में चल रहा है। वह खाना खाता है, तब मन में अनेक विषय उठ रहे होते हैं। विचार कहीं चल रहे होते हैं। कहीं पहुंचने की चिन्ता होती है या कोई फोन पर बात कर रहा होता है। खाना खाने के साथ उसका मन नहीं होता। खाना कौन खा रहा है, यह ध्यान भी नहीं होता। तब वह कैसे साक्षी बन सकता है। कैसे खाने का सुख भोग

सकता है। आनन्द से तो कोसों दूर ही रहेगा। इस मन को पहले वर्तमान में लाना है। अपने ज्ञान का उपयोग, आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण करना है। अनावश्यक को छोड़ने का संकल्प लेना है। इसमें केवल भौतिक आवश्यकताएं ही नहीं हैं। वैचारिक एवं भावनात्मक धरातल को भी समझना पड़ेगा। अवचेतन मन में क्या-क्या उठता रहता है, जो हमें वर्तमान में नहीं रहने देता, कौन-कौन सी दबी हुई इच्छाएं हमें भटकाती हैं, कौन-सी स्मृतियों से हम बाहर नहीं निकल पाते। आज उनकी जीवन में क्या सार्थकता है। वह तो मेरा बीता हुआ कल है। लौटने वाला नहीं है। फिर क्यों बांध कर रखूं। मन के भय कौन-से हैं, जिनकी चिन्ता में मन डूबा रहता है। इस प्रकार एक-एक करके मन के विषयों को समझना है। मन को अनावश्यक से मुक्त करने का अभ्यास करना है। मन को समझाना कठिन कार्य होता है, क्योंकि चंचल है। स्थिरता जल्दी टूट जाती है। इस स्थिरता को ही प्राप्त करना है। तब जाकर मन विषय अथवा कार्य के साथ जुड़ेगा। हर कार्य की बारीकियों को समझ सकेगा। अनुभव कर सकेगा। सही-गलत का भेद समझ पाएगा। उपयोगिता की दृष्टि का भी विकास हो सकेगा। जैसे-जैसे मन स्थिर होने लगेगा, वैसे-वैसे उसका मोह भी भंग होता जाएगा। विषय और मन की कामनाओं की सार्थकता दिखाई देने लगेगी। मन बाहर और भीतर जीने लगेगा। एक तारतम्य पैदा होने लगेगा। इसी तारतम्य के कारण आसक्ति का भाव क्षीण होगा। राग-द्वेष क्षीण होंगे। एक नई तटस्थता पैदा होगी और इसी मार्ग से व्यक्ति साक्षी भाव में प्रवेश करेगा। प्राकृतिक ऊर्जाओं की भूमिका सामने आएगी। उनके आगे समर्पण करने का भाव जाग्रत होगा। इसी समर्पण से अ-मन की स्थिति प्राप्त होती है। मन का अ-मन हो जाना ही आनन्द से साक्षात्कार है।

जिसकी जीवन भर सबको तलाश रहती है उसी को आनंद कहते हैं। सम्पूर्ण सुख-समृद्धि का सूचक शब्द है। और सृष्टि विस्तार का मूल कारक भी है। आनन्द के बिना सृष्टि नहीं हो सकती। आनन्द प्राप्त हो जाने के बाद कुछ और पाने की कामना भी नहीं रह जाती। आनन्द और सुख एक नहीं हैं। आनन्द आत्मा का तत्त्व है, जबकि सुख-दुःख मन के विषय हैं। किसी भी दो व्यक्तियों के सुख-दुःख की परिभाषा एक नहीं हो सकती। हर व्यक्ति का मन, कामना, प्रकृति के आवरण भिन्न होते हैं। अतः हर व्यक्ति का सुख-दुःख भी अलग-अलग होता है। आनन्द स्थायी भाव है।

लोग अनेक प्रकार के स्वभाव वाले होते हैं। एक शरीर जीवी इनका सुख शरीर के आगे नहीं जाता। व्यायाम-अखाड़े से लेकर सुख भोगने तक ही सीमित रहता है। इसके आगे इनका सुख-दुःख भी नहीं है। मनोजीवी अपने मनस्तंभ में आसक्त रहता है। कहीं

किसी कला में रमा रहता है या नृत्य, गायन, वादन में। ये तो देश-काल के अनुरूप बदलते रहते हैं। हर सभ्यता की अपनी कलाएं और मन रंजन होते हैं। इनके जीवन में सांस्कृतिक गंभीरता का अभाव रहता है। इन्हीं विद्या का योग आत्मा से नहीं बन पाता। चंचलमना रह जाते हैं। प्रवाह में जीने को ही श्रेष्ठ मानते हैं। बुद्धिवादी आदतन नास्तिक बने रहना चाहते हैं। किसी न किसी दर्शन को लेकर अथवा किसी अन्य के विचारों पर उलझते ही नजर आते हैं। मनोरंजन, हंसी-मजाक से सर्वथा दूर, न शरीर को स्वस्थ रखने की चिन्ता होती है। स्वभाव से सदा रुक्ष बुद्धिमानों की कमी नहीं है। शरीर जीवियों को मन की कोमलता, अनुभूतियों का कोई अनुभव ही नहीं होता। एक वर्ग स्वयं आत्मवादी मानकर जीता है। सहज जीवन से पूर्णतया अलग होता है।

मूलतः ये चार श्रेणियां हैं, जिनमें साधारण व्यक्ति जीता है और आनन्द को खोजता रहता है। खण्ड दृष्टि से अखण्ड आनन्द किसको अनुभव हो सकेगा? आनन्द तो मूल मन (अव्यय मन) के साथ जुड़ा रहता है। भक्ति में आह्लादित होने जैसा है। आनन्द प्राप्ति की पहली शर्त यही है कि व्यक्ति समग्रता में जीना सीखे। उसके शरीर, मन, बुद्धि आत्मा के साथ जुड़े रहें। आत्मा से जुड़ा आनन्द तभी तो शरीर-मन-बुद्धि की अनुभूति में आएगा। योग का एकमात्र लक्ष्य भी यही है। इसके विपरीत सुख-दुःख मानव मन की कल्पना पर आधारित रहते हैं। इनका संबंध इन्द्रियों एवं एन्द्रिय सुख-दुःख से ही रहता है। तात्कालिक भी होता है। किसी विषय अथवा परिस्थिति के कारण पैदा होता है और उसके साथ विदा भी हो जाता है। जब भी व्यक्ति के जीवन में समग्रता टूटती है, वह तात्कालिक सुख में ही अटक जाता है। उसके लिए सुख-दुःख भी एक द्वन्द्व बनकर रह जाता है। गहनता तो होती ही नहीं है। क्योंकि वह पूर्ण मानव की तरह जीता ही नहीं है। अनेक पशु-पक्षी भी इन क्षेत्रों में मानव से आगे निकल जाते हैं। चाहे शारीरिक बल में हों अथवा बुद्धि के स्तर पर। मानव की श्रेष्ठता तो इनकी समग्रता में ही है।

जब किसी भी कार्य में शरीर-मन-बुद्धि और आत्मा एक साथ जुड़ेंगे, तभी व्यक्ति सुख-दुःख के मिथक को तोड़ सकता है। शरीर और बुद्धि को तो सुख-दुःख का अनुभव ही नहीं होता। मन को होता है, जो स्वयं आवरित होता है। बुद्धि स्वयं आवरित है। अतः जो सामने दिखाई पड़ता है, उसी के आधार पर सुख-दुःख को ग्रहण कर लेता है। इन्द्रियों की पकड़ सूक्ष्म पर होती ही नहीं। अतः मन को बार-बार स्थूल और दृश्य पर टिकाती रहती हैं। मन पर इंद्रियों द्वारा विषय आ-आकर पड़ते हैं। चंचलता के कारण मन खुद को रोक नहीं पाता और प्रवाह में बह पड़ता है। उसी को सुख मान बैठता है। ज्ञान के योग

से जैसे ही बुद्धि में विद्या का प्रवेश होने लगता है, मन का स्वरूप बदलने लगता है। मन की भूमिका, दिशा और ग्राह्यता बदलने लगती है। अब वह भीतर की ओर भी मुड़ने लगता है। प्रवाह की गति धीमी होने लगती है। अब मन इच्छाओं का आकलन करके ही स्वीकृत करने लगता है। हर इच्छा को पूरी करने नहीं भागता। मन की संवेदना जाग्रत होने लगती है। यहीं से आनन्द का मार्ग प्रशस्त होता है।

जिस प्रकार किसी पात्र में भरा जल हिलता है, वैसे ही संवेदना के कारण मन में भी रस का प्रवाह बनने लगता है। यह प्रेम प्रवाह आनन्द तक पहुंचने का मार्ग है। रसानन्द और आनन्द एक ही है। रस को ही ब्रह्म कहते हैं। संवेदना के जागरण से व्यक्ति के धर्म में परिवर्तन आता है। पाषाण-मन अब पिघलने लगता है। दया-करुणा दिखाई पड़ने लगते हैं। किसी को दु:खी देकर आंसू बहने लगते हैं। यह आंसू भी उसी आनन्द का दूसरा छोर है। अधिक प्रसन्नता भी आंसू लाती है। अत्यन्त दु:ख की घड़ी में रोते-रोते भी हंसी छूट जाती है। व्यक्ति जैसे-जैसे स्वयं को जानने लगता है, उसी क्रम में उसका बाहरी व्यवहार भी बदलता जाता है। उसके अहंकार और ममकार भी द्रवित होने लगते हैं। कल्पित सुख-दु:ख अब उसे स्पष्ट समझ में आने लगते हैं। उनके अर्थ बदल जाते हैं। मन के साथ-साथ प्राणों का व्यापार बदलता है। प्राण सदा मन के साथ रहते हैं और मन का अनुसरण करते हैं। मन की इच्छाओं का स्वरूप बदल जाता है। इनको खाना-पीना-पहनना जैसे क्षेत्रों में आसानी से देखा जा सकता है। व्यक्ति स्वचिन्तन में व्यस्त रहने लग जाता है। अब मिठास किसी अन्य स्तर पर दिखता है।

जैसे-जैसे प्राण ऊर्ध्वगामी होते हैं, चिन्तन के विषय बदलते हैं। व्यक्ति का आभा मण्डल बदलता है। आकाश से कौन-से प्राण आकर्षित होंगे, किन प्राणों का आकाश में विसर्जन होगा, यह अनायास ही सारा क्रम परिवर्तित हो जाता है। नए भावों के अनुरूप नए प्राण आते हैं। पुराने विचारों की शृंखला टूटने लगती है। व्यक्ति का मन अन्नमय और मनोमय कोश के आगे विज्ञानमय कोश में प्रवेश करने लगता है। प्रज्ञा जाग्रत होने लगती है। प्रज्ञा के सहारे व्यक्ति अपने सूक्ष्म स्तर को समझने लगता है। स्थूल की तरह सूक्ष्म का भी परिष्कार करने लगता है। प्रकृति के आवरणों का हटाता है। सत्त्व में स्वयं को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करता है। अब तक व्यक्ति का मन इतना निर्मल हो चुका होता है कि वह प्राणी मात्र के प्रति संवेदनशील होने लगता है। मुख मण्डल पर शान्ति और प्रसन्नता का भाव सहज रूप से स्थायी होने लगता है। वैखरी, मध्यम को पार करके पश्यन्ती में, मानसी धरातल पर जीने लगता है। बाहर जुड़े रहते हुए भी बेलाग हो जाता है। उसकी कामनाओं

की शृंखला भी टूट जाती है। मन मर जाता है। हृदय रूपी अक्षर प्राण-ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र का स्वरूप दिखाई देते ही एक आह्लाद प्रकट होता है। इसी के सहारे से व्यक्ति स्थायी आनन्द में प्रतिष्ठित हो जाता है।

पंचकोश एक सूत्र है-'यथा अण्डे, तथा पिण्डे', अर्थात्-जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वही शरीर में है। शरीर ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति है। शरीर के संचालन को उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार समझ लिया जाए तो ब्रह्माण्ड के बारे में अनेक तथ्य स्वत: समझ में आ जाएंगे। शरीर के साथ मन, बुद्धि और अहंकार जुड़े हुए हैं। शरीर की इस रचना को जानने का एक सूत्र है-पञ्चकोश सिद्धान्त। इसके अनुसार यह शरीर पांच कोष्ठकों में विभाजित है। इसमें जीव से ब्रह्म तक सब-कुछ प्रतिष्ठित है। बाहरी आवरण स्थूल शरीर है, जिसे अन्नमय कोश कहते हैं। केन्द्र में आनन्दमय कोश है-जहां जीव तथा ईश्वर की स्थिति बताई गई है। इन दोनों के मध्य में प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश हैं।

सबका आलम्बनभूत सहारा बनता हुआ, अव्यक्त अव्यवस्था में रहता हुआ सब से प्रथम आनन्दमय कोश है। यह सबका आलम्बन इसलिए कहा जाता है कि यदि आनन्दभाव कहीं भी रुक जाए तो आगे के कोश कोई भी काम नहीं कर पाएंगे। इसलिए यह सबका आधार है। वेद की घोषणा है, 'आनन्दादेव सर्वमेतद्भवति।' आनन्द से ही सारे विश्व की उत्पत्ति और संरचना स्थित रहती है। यदि आनन्द नामक तत्त्व न हो तो वह अवस्था 'सब सुनसान हो गया है,' कही जाएगी।

दूसरा है-विज्ञानमय कोश, जो त्रिगुण से मिलकर बुद्धि के नाम से व्यवहार में आता है। सर्वाधिक आनन्द के मूल तत्त्व को प्राप्त करने के लिए ही दुनिया की सारी उपासना, सारी योग साधना, सारे कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, बुद्धियोग अथवा थोड़े शब्दों में कहें तो सारे शास्त्र प्रवृत्त हो रहे हैं। तब भी शुद्ध आनन्द का दर्शन तो करोड़ों में किसी एक को ही होता होगा, अन्यथा 'दु:ख मिश्रित सुख' नाम का आनन्द ही सबको मिलता है। यह दु:ख-सुख मिश्रित आनन्द ही अनुभव में आता है, जबकि बिना दु:ख का शुद्ध आनन्द मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता है। अस्तु, विज्ञानमय कोश में त्रिगुण, अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण का सन्निवेश होते ही बुद्धि का प्राकट्य होता है। साधना द्वारा यदि प्रयास करके रजोगुण और तमोगुण की मात्रा को इतना दबा दिया जाए कि उसकी उपस्थिति मात्र ही रहे, वह किसी प्रकार का विकार करने में समर्थ न हो तो वह शुद्ध सत्त्व प्रधान स्थिति बनती है। उससे ही विज्ञान-आत्मा के साथ संबंध सम्भव होता है। इस प्रकार गूढ़ भाव में विज्ञान भी कोश अवस्था में आ जाता है।

इस विज्ञानमय कोश के द्वारा ही नया-नया सृजन, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप का, सम्भव होता है, जिसका साक्षी हमारा इतिहास है। विज्ञानमय कोश का सिद्धपुरुष मंत्र-तंत्र पर पूर्ण अधिकार रखने वाला, सम्पूर्ण अस्त्रों की विद्या का जानकार, नई कल्याणमय सृष्टि करने में समर्थ होता था। विश्वामित्र उसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं। सारा बुद्धि-दर्शन इस विज्ञानमय कोश पर ही अवलम्बित था। तदनुयायी आगे के दर्शनकार भी उसी मार्ग पर बढ़े थे; किन्तु बुद्धि को ही विज्ञान समझने की भ्रान्ति में उनको मौलिक आनन्द की उपलब्धि से वंचित रहना पड़ा, क्योंकि विज्ञानमय कोश तो मात्र साधन है, साध्य तो आनन्द ही है।

तीसरा मनोमय कोश है। इसके दो भेद हैं-एक-त्रिगुण भाव से मिला हुआ व्यावहारिक मन, जिसे हम नहीं पहचानते हुए भी पहचानते-से हैं और दूसरा-गूढ़तम मन जो आनन्द विज्ञान से जुड़ा हुआ है। वह गूढ़तम है, इसलिए उसे मनोमयकोश कहा जा रहा है। इस गूढ़ मन के लिए त्रिपुरुष में अव्यय पुरुष संज्ञा है। इसका ही संकेत गीता में 'ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशे' कहकर किया गया है। जहां त्रैगुण्य से जुड़ा मन कभी दु:खी और कभी सुखी होता है, वहाँ इस गूढ़तम मन का शुद्ध आनन्दभाव है, शुद्ध विज्ञानभाव है और इसी मन को यदि किसी भी अभ्यास के द्वारा पा लिया जाए तो जीवन की सर्वकृतार्थता मान ली जाती है, क्योंकि विज्ञान भाव में आनन्दरूप इस गूढ़ मन से जुड़ जाने पर इतना बल आ जाता है कि प्रेरणा पाकर प्राणों की प्रक्रिया संयत और सुदृढ़भाव में समस्त सांसारिक कार्यों का सम्पादन उचित रूप से कर पाती है। साथ ही उस विज्ञानमय मन पर दृष्टि रहने के कारण उस प्राणमयी कर्म प्रक्रिया से बन्धनमुक्ति भी बनी रहती है। मध्यगत तत्त्व होने के कारण यह मनोमय कोश अति गहन गम्भीर है।

विज्ञानमय कोश इसी मनोमय कोश के भीतर स्थित है। यहां बुद्धि का निवास है। कोशबुद्धि के साथ-साथ हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ जुड़ी हैं-कान, नाक, आँख, मन और त्वचा। यह ज्ञान का क्षेत्र है। ज्ञान से ही हमारा सूक्ष्म, स्थूल और कारण शरीर समझ में आता है। ज्ञान ही आत्मा का बोध कराता है। जब व्यक्ति अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोश के आवरण पार कर लेता है तो निश्चित है कि वह ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। यही ज्ञान उसे विज्ञानमय कोश के भीतर स्थित आनन्दमय कोश का परिचय करा देता है। यह हमारी आत्मा, जीव और ईश्वर का स्थान है। यहीं से 'मैं' निकलता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' भी यही है। सृष्टि के व्यापार का उद्गम स्थल भी यही है। आनन्द ही सृष्टि के विस्तार का मूल हेतु भी है। आनन्द में ही सृष्टि का अवस्थान और लय स्थान है।

चौथा प्राणमय कोश है। यह कोश ही शरीर का मूलाधार है; किन्तु अति सूक्ष्म और

अति स्थूल, दोनों अवस्थाओं में रहने के कारण प्राणतत्त्व अपने आप में बहुत जटिल है। प्राणों के अनन्त भेद शास्त्रों में यत्र-तत्र वर्णित हैं; किन्तु वेदविज्ञान के अनुसार सृष्टि के मूल में जो संचालक प्राण हैं, इनके नाम हैं-ऋषि, पितर, देव-असुर, गन्धर्व और मनुष्य।

इनमें पितर, देव आदि सारे प्राण ससंग कहे जाते हैं। वे बिना एक-दूसरे की संगति के अपने आप में कार्य-सम्पादन में समर्थ नहीं होते, इसलिए ससंग कहे जाते हैं। एकमात्र ऋषि प्राण, जिसको ज्ञान स्वरूप माना जाता है, असंग है। हमारे ज्ञान तन्तुओं को, अर्थात्-'हम समझ गए' या 'हमारे अनुभव में यह आ गया'-इस रूप का जो ज्ञान है, उसे किसी दूसरे की संगति की आवश्यकता नहीं होती है। वह असंग है, वह अपने आप में परिपूर्ण है; क्योंकि वह अनुभूति में आ चुका है।

ऋषि प्राण की यही अवस्था गूढ़तम है। सारे प्राण अनुभूति के द्वारा अधिकृत हो सकते हैं। यह प्राण विज्ञान गूढ़तम होता है, इसलिए इसे प्राणमय कोश कहते हैं और अति सूक्ष्म मुख्य प्राण अति गूढ़ अवस्था में छिपा रहता है, जिस पर आघात होते ही तत्काल मृत्यु अथवा अति लम्बे काल की बेहोशी सम्भव हो जाती है; किन्तु इस पर भी जो शरीर को बचाए रखता है, वह प्राणमय कोश ही है।

हमारा शरीर पञ्च महाभूतों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। इसका पोषण अन्न से होता है, अत: इसे अन्नमय कोश की संज्ञा दी गई है। अन्न से ही रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र का निर्माण होता है। इस शरीर की आकृति और प्रकृति आत्मा के अनुसार ही होती है। शरीर मन की इच्छापूर्ति का साधन भी है। अत: इसका सदा निरोग रहना आवश्यक है ताकि कोई इच्छा अपूर्ण न रह जाए; शरीर का इससे अधिक महत्त्व नहीं है। दूसरी ओर, जीवन कर्म-प्रधान होने से शरीर ही मूल साधन है-सृष्टि विस्तार का भी और आत्म-दर्शन का भी। शरीर के साथ ही परिवार, समाज एवं सृष्टि के स्थूल बन्धन जुड़े होते हैं। जब व्यक्ति सभी सृष्ट वस्तुओं अथवा प्राणियों में एक ही सत्ता को मान लेता है तो वह अन्तर्मुखी होता है। शरीर को चलाने का, विकसित करने तथा मन से जोड़ने का कार्य प्राणमय कोश करता है। शरीर में पांच मुख्य तथा पांच गौण प्राण स्थूल रूप से कार्य करते हैं। इन्हें प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय के नामों से जाना जाता है। सृष्टि के मूल प्राण-ऋषि, पितृ, देव आदि प्राणों का ही परिवर्तित रूप होते हैं। व्यक्ति ऋषि, पितृ और देव ऋण साथ लेकर जन्म लेता है और मृत्यु से पूर्व उन्हें लौटाना भी चाहता है। प्राण ही मन का पोषण करते हैं।

प्राण हमारे सूक्ष्म शरीर का बोध कराते हैं। हमारी चित्तवृत्तियों का संचालन भी प्राण ही करते हैं। यही देवासुर संग्राम है। देव प्राण एवं असुर प्राण व्यक्ति को अलग-अलग दिशाओं में खींचते हैं। सूक्ष्म शरीर अन्तःकरण में संस्कारों का बन्धन कराता है। इस प्राण शरीर के साधन के लिए ही 'प्राणायाम' का अभ्यास किया जाता है। जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपेक्षानुभूति में लिखा है-सर्वत्र ईश्वर होने की धारणा का अभ्यास करके जीवन शक्तियों पर अधिकार करने को प्राणायाम कहते हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं, की धारणा का अभ्यास पूरक है तथा संस्कार मिथ्या है, रेचक है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की स्थाई धारणा ही कुम्भक है। व्यवहार में जगत् मिथ्या नहीं है। यह तो मन का भाव है। जगत् की उपासना ही मन की उपासना है। जगत् सत्य की प्रतिष्ठा भी है।

प्राणमय कोश के सहारे हम जीवन के गूढ़तम रहस्यों को समझ सकते हैं। अपने मन को जान सकते हैं। मन के आवरण देख सकते हैं, उन्हें दूर करने का योजन कर सकते हैं। हमारा मनोमय कोश इसी प्राणमय कोश के भीतर रहता है। इसी मनोमय कोश से हमारी पांच कर्मेन्द्रियां जुड़ी हैं-हाथ, पैर, गुदा, मूत्रेन्द्रिय और मुख। मन में इच्छा-संसार है। हमारे प्रारब्ध कर्म मन में ही संचित रहते हैं। इनका क्षय भोगने से ही होता है। इसके अलावा जैसा गीता में कृष्ण कहते हैं-'ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात कुरुतेऽर्जुन' अर्थात् ज्ञानाग्नि सब कर्मों को भस्म कर देती है। प्रारब्ध को जीव रूप का अन्तिम बन्ध कहा गया है।

अन्नमय कोश पांचवां कोश है। यह जीवन का आधार है। इन्द्र ने विश्वरथ को स्वयं का स्वरूप प्राणरूप बताया है और प्राणों का परममित्र अन्न बताया है। इस मित्र तत्त्व को जान लेने के कारण ही विश्वरथ विश्वामित्र बने थे। इस अन्न के लिए ही पञ्चदशी में लिखा है-'अन्नं ब्रह्मः', अर्थात् भरण-पोषण के साथ 'भर्मन' शब्द से बना हुआ ब्रह्म 'अन्नं ब्रह्मः' कहा जाता है। जीवन में माया शक्ति के जो भाव हैं-निद्रा, क्षुधा, तृष्णा, क्षान्ति, छाया, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, भ्रान्ति, आदि सब आत्मा के ही रूप हैं।

व्यक्ति का जब इनसे परिचय हो जाता है तथा वह ईश्वरीय सत्ता को जान लेता है, तब दृढ़तापूर्वक कह पाता है कि जीव ही ब्रह्म है। बुद्धितत्त्व में अवस्थान करके स्वयं प्रकाशित विद् शक्ति को भी वह आत्मसात् करता है। सभी दृश्य पदार्थों में व्यावहारिक सत्ता की अनुभूति पा लेता है।

इच्छा वेद का एक मंत्र है-'कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमम् यदासीत'। जीवन में बिना बीज के कुछ भी नया पैदा नहीं किया जा सकता। अकेला बीज भी

परिणाम तक नहीं पहुंचा सकता। जमीन भी चाहिए, खाद-पानी-धूप-हवा सभी कुछ तो चाहिए। सब कुछ मिल भी जाए और सुरक्षा न मिले तब भी रुकावट आएगी। उसके आगे भी अदृश्य रूप में कई ऊर्जाएं, शक्तियां और प्रारब्ध भी परिणामों के कारक बनते हैं। कार्य-कारण भाव में बीज कारण है-परिणाम कार्य।

यह तो स्थूल दृष्टि की भाषा है। बीज या रेत तो विचारों के भी होते हैं। मन की भावनाओं के बीज भी होते हैं। वैसे तो उपरोक्त सूत्र का सारांश यही है कि कामना ही मन का रेत/शुक्र है। इसके बिना मन सुप्त रहता है। ज्ञान के बिना भी इच्छा नहीं उठती। आनन्द और ज्ञान कामना के कारक होते हैं। यह कामना स्वीकार होने के साथ (अवगम्) ही मन का रूप ले लेती है। क्षुधा और कामना पर्यायवाची हैं। कामना यदि वासना युक्त है तो परिणाम भी वैसे ही आएंगे और शुद्ध रूप में है तो वैसे ही परिणाम भी होंगे। ईश्वर का शुक्र पूर्णतः शुद्ध होता है। अतः स्वयंभू लोक से सूर्य लोक तक की सृष्टि अमृत सृष्टि कहलाती है। सूर्य के नीचे पृथ्वी लोक तक मर्त्य सृष्टि है। सूर्य अक्षर अथवा देव सृष्टि का स्वामी है। हमारी सृष्टि का पिता है। अतः सारे शुक्र केवल सूर्य में उत्पन्न होते हैं। अन्य किसी लोक या प्राणी में नहीं होते।

शुद्ध शुक्र के पांच लक्षण होते हैं। अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम् और अपापविदम्। सृष्टि तत्त्वों का अलग-अलग मात्राओं के तारतम्य से चयन करके जो पिण्ड बनता है, उसे काया कहते हैं। शुक्र अकाय होता है, कायारहित। काया तो महिमा, देवग्राम, भूतग्राम आदि के योग से बनती है। शुक्र में दूसरा विजातीय तत्त्व नहीं होता। अतः अस्नाविरम् कहलाता है। इसमें कोई विरोधी द्रव्य भी नहीं होता। अतः अपापविदम् है। व्याघात करके तोड़ने वाला तत्त्व भी इसमें नहीं होता। इसलिए अव्रणम् है। विरोधी द्रव्य प्रजनन की क्षमता को समाप्त कर देता है। ईश्वर संस्था में शुक्र शुद्ध तथा जीव संस्था में अशुद्ध रहता है। सृष्टि का पहला निर्माण अव्यय पुरुष कहलाता है। यद्यपि अव्यय पुरुष की पाचं कलाएं होती हैं; किन्तु इनमें क्रिया नहीं होती। ज्ञान आधारित कामना ही मन का निर्माण करती है। कामना युक्त मन ही प्राणन करता है, क्रियाशील होता है। वाक् का निर्माण होता है। यहां सब परा वाक् का क्षेत्र है। इस वाक् का 'हृदय' अक्षर पुरुष की तीन कलाएं-ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र होती हैं। ये आठों कलाएं अग्नि-सोम पर क्रिया करके क्षर पुरुष का निर्माण करती हैं। आनन्द-विज्ञान-मन रूप हृदय हमारा आत्मा बनता है। मन-प्राण-वाक् हमारा शरीर बनाते हैं। इन कलाओं के तारतम्य से ही संज्ञ, असंज्ञ और अन्तःसंज्ञ सृष्टि का निर्माण होता है।

ब्रह्मा अक्षर सृष्टि का प्रथम प्राण है। विष्णु की नाभि से पैदा होता है। प्राण रूप प्राणन से वाक् का निर्माण करता है। अतः इसके शुक्र को वाक् कहते हैं। सृष्टि वाङ्मय होती है। विष्णु प्राण परमेष्ठी लोक अथवा अपलोक में रहता है। इसी को क्षीर सागर कहते हैं। इसकी प्रकृति भी अप है और शुक्र भी आप ही कहलाता है। यही सोम रूप में सारे यज्ञों का विस्तार करता है। मूल में यह भी अग्नि (आंगिरस) प्राण ही है। इन्द्रप्राण वाक् प्रकृति का है। पंच महाभूत अग्नि इसका शुक्र है। इसी को महेश्वर कहते हैं। महेश्वर में तीनों अक्षर प्राण (ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र) साथ रहते हैं। इन्द्र वाक् या पदार्थ रूप में स्थान घेरता है। स्थान घेरने को हिरण्य कहते हैं। सोम अन्न रूप है। अग्नि का भोग्य है-पशु लक्षणा। हमारे शरीर में और अन्न में चन्द्रमा से सोम आकर पोषण करता है। चन्द्रमा में यह सोम परमेष्ठी लोक से आता है। अन्न से ही हमारा मन बनता है। पृथ्वी अग्नि रूप है। दोनों का यज्ञ निरन्तर चलता रहता है। दिन में जो ऊर्जाएं खर्च होती हैं, वे रात को सोम से पूरी होती जाती हैं। सोम स्थिर है। अग्नि में गति है-विखण्डन भी है।

अव्यय-अक्षर-क्षर पुरुष की कलाओं के तारतम्य से ही पंचपर्वा विश्व-स्वयं भू, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी का निर्माण होता है। पांचों विश्व के पांच विश्वाधिकारी ईश्वर हैं। यही ईश्वर सृष्टि पैदा करने के लिए अपने भीतर शुक्र ग्रहण करता है। ईश्वर के परिग्रह के कारण शुक्र शुद्ध रहता है। परिग्रह का अर्थ है-चारों ओर से घेर लेना। इसी को मृत्यु में अमृत का आधान कहते हैं। अमृत भाव से ही जीव पैदा होते हैं। अमृत के जाते ही मृत्यु हो जाती है। प्रकृति को ब्रह्म की योनि कहा है। तीनों हृदय प्राणों से इसका संबंध रहता है। प्रकृति में सत्त्व-रज-तम जिसकी भी प्रधानता रहती है, वैसी ही सृष्टि होती है। सूर्य से ऊपर द्यु लोक का शुक्र ईश्वर से जुड़ता है। नीचे मर्त्य लोक का शुक्र, जीव से जुड़ता है। द्यु लोक का अग्नि हृदय (ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र) में आता है। ये तीनों हृद् प्राण ब्रह्म कहलाते हैं। क्षर सृष्टि के प्राण-आप-वाक् को 'ब्रह्मा' कहते हैं। ईश्वर के अमृत शुक्र से जुड़े होने से, ब्रह्मा की वाक् से प्राणों का पोषण होता है।

अमृत वाक् से परम व्योम बनता है। ये वेदों का उत्पत्ति स्थान है। ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित स्वयंभू लोक। अमृत अप् से गोलोक की उत्पत्ति हो रही है। परमेष्ठी अधिष्ठाता विष्णु हैं। अमृत अग्नि से ज्योति रूप तत्त्व उत्पन्न होता है। सूर्य के द्वारा। इसी को महेश्वर कहते हैं। हमारे ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता। अतः स्वयंभू ब्रह्मा परम आकाश के, विष्णु महासमुद्र के और महेश्वर (इन्द्र) हमारे ब्रह्माण्ड के ईश्वर बने। सूर्य के ऊपर अमृत और नीचे मृत्यु लोक कहलाता है। तीनों ब्रह्म (ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र) अक्षर के मर्त्य भाव के शुक्र महेश्वर

के ब्रह्माण्ड में मिल जाते हैं। सूर्य के द्वारा अग्नि में, चन्द्रमा के द्वारा जल में और पृथ्वी के द्वारा वाक् अथवा पदार्थ में प्रकट होते हैं। ये अग्नि-आप-वाक् ही महेश्वर (इन्द्र या शंकर) के तीन नेत्र बने। इसीलिए महेश्वर कहलाए। शेष दोनों ईश्वर कहलाते हैं। आगे सूर्य का अग्नि ही शुक्र रूप और पृथ्वी का अग्नि अन्नाद रूप बनता है।

मर्त्य शुक्र प्रकाशित द्रव्य है। इन्द्रियों के पकड़ में आ सकता है। हृदय को प्रसन्न करने वाला है। शुक्र मर्त्याग्नि रूप होता है। दिखाई देता है, किन्तु इसमें अमृताग्नि कार्य कर रहा है। वह अदृश्य रहता है। अमृत रूप शुक्र से ज्ञान और गौ रूप विद्युत आकर मर्त्याग्नि में प्रवेश करता है। विश्व का यज्ञ स्वरूप शुक्र से ही पैदा होता है। परमेष्ठी और चन्द्रमा सोम रूप होने के कारण अन्न हैं। स्वयंभू, पृथ्वी और सूर्य अग्नि रूप। सूर्य परमेष्ठी और चन्द्रमा से सोम रूप अन्न लेकर ज्योति देता है। पृथ्वी का अन्न भी चन्द्रमा ही है।

स्वयं भू से अव्यक्त प्रकृति (वाक्) पैदा होती है।
परमेष्ठी से चेतना तत्त्व पैदा होता है।
सूर्य से बुद्धि पैदा होती है।
चन्द्रमा से मन का निर्माण होता है।
अमृत अग्नि से प्राण और इन्द्रियां,
मर्त्य अग्नि से शरीर बनता है।

इस प्रकार हमारी सारी सृष्टि का नियन्ता शुक्र ही बनता है। इसी से शरीर संगठन, मन-प्राण-बुद्धि-चेतना अलग-अलग रूप लेते हैं। प्राणियों के स्वरूप बनते हैं। हमारे ब्रह्माण्ड में सारे जीवों के शुक्र सूर्य संस्था में निर्मित होते हैं। वही हमारा महेश्वर है, पिता है। शुक्र में ही वर्ण भी होता है। ब्रह्म वीर्य, क्षत् वीर्य और विड् वीर्य के कारण सम्पूर्ण सृष्टि चार वर्णों में विभक्त रहती है। पेड़, पत्थर, पशु-पक्षी आदि सभी में यह वर्ण व्यवस्था रहती है। ये वीर्य और संस्कार मिलकर ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

◆◆◆

प्राण

गति संसार में दो ही अवस्थाएं होती हैं- गति और स्थिति। दोनों एक-दूसरे की पूरक भी हैं, अविनाभाव हैं और मूल में अलग न होकर एक ही हैं। हर गति में स्थिति भी रहती है। गति वैसे भी स्थिति के सापेक्ष तो होती ही है। स्थिति है तभी तो गति है। जहां गति है, वहां आकाश है, धक्का लगाने वाला, प्राण है। प्राण है तो स्पंदन भी है। नाद भी है। शब्द है, वाक् है। अग्नि है-सोम है। किसी भी गतिमान वस्तु अथवा व्यक्ति की गति को शून्य तक पहुंचा दें, तो स्थिति बन जाती है। तब हम कहते हैं गति ठहर गई है। इसी प्रकार जब स्थिति की मात्रा कम होती जाती है, गति की मात्रा बढ़ती जाती है। गति भी दो प्रकार की होती है। एक तो बाहर प्रसार रूप अग्नि प्रधान गति, तथा दूसरी, भीतर की ओर संकोच प्रधान सोम रूप गति। यह अग्नि-सोम रूप प्रसार-संकोच रूप गतियां ही सूत्रात्मा कहलाती हैं। हृदयरूपी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र के साथ मिलकर अक्षर सृष्टि आगे बढ़ती है। प्रसार-संकोच ही प्रकाश-विमर्श रूप स्पंदन है।

विज्ञान का एक सिद्धान्त है कि प्रकाश को गर्भ में लिए बिना अंधकार अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। इसी प्रकार अंधकार को गर्भ में लिए बिना प्रकाश भी प्रतिष्ठित नहीं रह सकता। इसी सिद्धान्त के अनुरूप ऐसी कोई भी गति नहीं, जिसके गर्भ में स्थिति न हो। और स्थिति भी बिना गति को साथ लिए स्वतंत्र रूप में नहीं ठहर सकती। गति का गतिभाव भी स्थिति के कारण ही सुरक्षित बना रहता है। यदि गति के गर्भ से इस स्थिति को पूर्णत: निकाल दिया जाए, तो यह गति स्वयं स्थिति रूप में ही परिणत हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार स्थिति के गर्भ से इस गति को निकाल दिया जाए, तब यह स्थिति गति रूप में परिणत हो जाएगी। मूल विषय है गति। स्थिति और आगति इसकी परिस्थितियां हैं। तीनों एक गति के ही विवर्त हैं। गति सूचक इन्द्र को माना गया है। हृदय में 'य' रूप ब्रह्मा स्थिति सूचक है। लाने वाली अथवा आहरण करने वाली शक्ति का नाम है- 'ह' और देने अथवा विसर्ग करने वाली शक्ति है-'द'। इस प्रकार हमारा हृदय ही स्थिति, गति और आगति का मुख्य केन्द्र है। एक ही प्राण के ये तीन स्वरूप हैं। क्रिया के लिए यह आवश्यक है कि उसे कोई निष्क्रिय धरातल अवश्य मिले। तब जाकर क्रिया संचार निर्बाध रूप से चल सकेगा। पृथ्वी हमारे लिए एक स्थिर धरातल है। तभी हम इस पर चल पाते हैं। मुख स्थिर रहता है, तभी वाणी का गतिमान

व्यापार चलता है। क्रिया को गौर से देखने पर (किसी भी क्रिया को) स्पष्ट हो जाएगा कि यह किसी न किसी स्थिति पर आश्रित है। जिस तत्त्व के आधार पर ये लेने-देने की क्रियाएं नियमित-नियंत्रित व्यवस्थित रहती हैं, उसी को नियमन कहा जाता है। यह नियामक तत्त्व 'यम्' कहलाता है। यह हमारा 'हृदय' हुआ।

जीवन के शुरू में शक्ति का आदान अधिक होता है, विसर्ग (खर्च) कम। अत: शरीर बढ़ता जाता है। गृहस्थाश्रम में आदान-विसर्ग बराबर रहता है। वानप्रस्थ में आदान कम खर्च (इन्द्र) अधिक होता है। सारी गति-आगति के बीच हमारी स्थिति बनी रहती है। 'एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरा:' एक ही तत्त्व के ये तीन रूप, तीन देवता हैं। गति के सम भाव को स्थिति कहते हैं। केन्द्र से परिधि की ओर जाने वाली गति को ही गति कहा जाता है। परिधि से केन्द्र की ओर आने वाली गति आगति कहलाती है। इन दोनों विरुद्ध गतियों का जब एक ही केन्द्र बिन्दु में समावेश होता है, तब दोनों गतियों का रुक जाना ही स्थिति कहलाता है। मूल में एक ही प्राण है। केन्द्रस्थ स्थिति में इसी को ब्रह्मा कह रहे हैं। परिधि की ओर जाते समय 'इन्द्र' या गति कहलाता है। परिधि से केन्द्र की ओर लौटते समय इसी को आगति कहा है। जीवन में गति-स्थिति के सिद्धान्त को समझ लेना भी एक महती आवश्यकता है। इसके लिए एक उदाहरण दिया जाता है।

एक ही समय पर मान लीजिए चार व्यक्ति एक ही जगह के लिए साथ-साथ रवाना होते हैं। लेकिन पहुंचते सभी अलग-अलग समय पर हैं। कारण भी सबके भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। कोई स्वयं कमजोर या बलवान हो सकता है। मार्ग में भीड़ हो सकती है। मार्ग छोटा-बड़ा भी हो सकता है। वाहन की गति भिन्न हो सकती है। सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में इनकी गति-स्थिति का अन्तर ही कहा जाएगा। जिनकी गति में स्थिति/स्थिरता कम थी वे जल्दी पहुंचे। जिनकी गति में स्थिति अधिक रही, वे देर से पहुंचे। जिन्होंने पैर जल्दी-जल्दी उठाए, स्थिति को कम करते गए, वे जल्दी पहुंचे। गति के भीतर जहां स्थिति कम थी, वे शीघ्र पहुंचे। जो सबसे जल्दी पहुंचे, उन्होंने पांवों को पूरा जमीन पर शायद टिकने भी नहीं दिया होगा। स्थिति नहीं के बराबर रही। कोई पांच मिनट में, कोई तीन मिनट में। इस तरह स्थिति को कम करते जाएं, तो गति बढ़ती जाएगी। जितनी देर में पहुंचे, उतनी स्थिति। एक मिनट में पहुंचे, तो एक मिनट स्थिति, शेष गति। एक क्षण में पहुंच गए, तो एक क्षण की स्थिति। यह क्षण भी हट जाए तो वहां क्या रह जाएगा? इसका अर्थ है जिस क्षण आप रवाना होते हैं, उसी क्षण गन्तव्य पर पहुंचे भी होते हैं। सर्वत्र उपस्थित हैं। आपकी गति पूर्ण स्थिति में बदल जाती है। यही विज्ञान का सिद्धान्त भी है कि 'यदि गति में से स्थिति निकाल दी जाती है, तो वह गति स्थिति रूप में ही परिणत

हो जाती है।' सबसे तेज गति मन की होती है। आप इस सिद्धान्त को मन पर लागू करने का अभ्यास करके देखें। गति और स्थिति का स्वरूप ऐसा अद्भुत नजर आएगा। मन की गति का स्थिति में बदल जाना ही स्थित- प्रज्ञता कहलाता है।

कर्म जिसने मनुष्य जन्म लिया है वह कर्म को तो जानता ही है। भारतवासी यह भी जानता है कि हर कर्म का फल भी होता है। मिले कभी भी। गीता जैसा शास्त्र कर्म योग बता रहा है। जीवन और कर्म एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। हर कर्म के पीछे एक इच्छा भी होती है। इच्छा के बिना कोई कर्म होता ही नहीं। हमारे यहां कर्म को अच्छा और बुरा भी कहा जाता है। यह भी एक तथ्य है कि कर्म फल भोगने के लिए ही हमको किसी न किसी शरीर में जीना पड़ता है। क्लेश, कर्म और कर्म फल जिसमें अविद्या के द्वारा आशय नियत करें, उसी को जीव कहते हैं। अविद्या के आवरण हटते ही जीव अपने आत्म स्वरूप में आ जाता है। विद्या को ब्रह्म कहा है। पं. मधुसूदन ओझा ने अविद्या और कर्म को पर्याय बताया है। संसार अविद्या का क्षेत्र है। आत्मा विद्या का।

कर्म का स्वरूप बहुत व्यापक है। जितना हम जानते और मानते हैं, उससे कई गुणा अधिक है। स्थूल शरीर के कर्म, सूक्ष्म शरीर के कर्म और कारण शरीर के कर्म। प्रकृति के सत, रज, तम से भी प्रभावित होते हैं कर्म। हमारी सृष्टि शुरू होती है अव्यय पुरुष से। गीता में कृष्ण स्वयं को अव्यय पुरुष कहते हैं। चूंकि इच्छा मन में उठती है,अत: मन की चित्त संज्ञा भी है। चुनाव करने वाला। परिभाषा के अनुसार तो मन-बुद्धि-आत्मा के समूह को चित्त कहते हैं। जीवन इच्छा के आधार पर चलता है। किस इच्छा को पूरी किया जाए, नहीं किया जाए अथवा दबा दिया जाए। इच्छा अपने आप पैदा होती है। पैदा नहीं की जा सकती। पूरी करने का निर्णय बुद्धि करती है। सारे काम का केन्द्र मन रहता है। यह मन अव्यय पुरुष का मन है, जो इच्छा पूर्ति के लिए प्राण-वाक् की ओर बढ़ता है। यह मन तो पूर्ण रूप से शुद्ध होता है। यह सृष्टि का मूल मन है और प्राणी मात्र के केन्द्र में यही मन होता है। इसी को कृष्ण अपना रूप कह रहे हैं। जो मन हमारी समझ में आ रहा है, वह इसी मन का प्रतिबिम्ब होता है। इस पर प्रकृति के आवरण चढ़ जाने से इसका मूल स्वरूप हमें दिखाई नहीं पड़ता। मन पर इच्छाएं भी एक के बाद एक आती रहती हैं। नई उठती हैं, पुरानी नीचे दब जाती हैं। मन पर इच्छाओं की चिनाई होती जाती है। जैसे भवन निर्माण में ईंटों की चिनाई होती है।

मन पर तीन प्रकार की चिनाई होती है। बीजचिति, देवचिति और भूतचिति। इच्छा के साथ ही प्राणों के द्वारा वाक् का स्वरूप बदलता जाता है। सबसे पहले अव्यय पुरुष के द्वारा अक्षर पुरुष का निर्माण होता है। वाक् अक्षर पुरुष की कलाओं-ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र

का रूप ले लेती है। इसको बीज चिति कहते हैं। क्योंकि इन्हीं तीन प्राणों से हमारी सृष्टि का निर्माण होता है। ये तीन प्राण ही हमारा हृदय बनते हैं। अव्यय पुरुष की कलाएं इनके गर्भ में रहकर कार्य करती हैं।

सारे प्राण देवता कहलाते हैं। इन देव प्राणों के योग से क्षर पुरुष का निर्माण होता है। इसको देवचिति कहते हैं। आगे की चिति से भूत सृष्टि का निर्माण प्रकृति के द्वारा होता है। इसे भूतचिति कहते हैं। ये तीनों चितियां मन पर ही होती हैं, अत: मन की भी चित्त संज्ञा होती है। चित्त को ही माया कहते हैं। बीजचिति को कारण शरीर, देवचिति को सूक्ष्म शरीर और भूतचिति को स्थूल शरीर कहते हैं। बीजचिति में मन और प्राणों का योग होने से इसका विज्ञान भाव बना रहता है। इसी को विद्या कहते हैं। भूतचिति अविद्या का क्षेत्र है। इसमें प्राण और वाक् की प्रधानता रहती है। इसी मन-प्राण-वाक् से जो रूप बनते हैं, उनको ही कर्म कहा जाता है। तीनों यदि समभाव में रहते हैं तो सत्कर्म होते हैं। जहां प्राण के साथ अल्प ज्ञान रहता है, वहां विकर्म या विरुद्ध कर्म होते हैं। जहां अज्ञान हो और वाक् भी अल्प हो उसे अकर्म कहा जाता है। ज्ञानविहीन कर्म।

बीज के स्तर पर विद्या, अविद्या और कर्म आत्मा के प्रथम आवरण बनते हैं। यही क्रमश: सत्, रज और तम रूप प्रकृति होते हैं। प्रकृति कारण को कहते हैं। जीवन के सारे ज्ञानात्मक विकार विद्या से, सारे क्रियात्मक विकार कर्म से और अर्थात्मक विकार अविद्या से उत्पन्न होते हैं। आत्मा पुरुष रूप है। तीन आवरण चढ़ने के बाद इसी की जीव संज्ञा हो जाती है। बिना आवरण के तो ईश्वर होता है। जब व्यक्ति में भूतचिति नष्ट होती है, तब मृत्यु होती है। देवचिति के हटने से ईश्वर का सामीप्य मिलता है। बीजचिति के समाप्त होने पर मुक्ति मिलती है। ईश्वर रूप प्रकट हो जाता है। जीव की एक अन्य परिभाषा भी की गई है। जिसमें अविद्या के द्वारा क्लेश, कर्म और विपाक अपना आशय नियत करे, उसे जीव कहते हैं। जीव के साथ 6 ऊर्मियां भी जुड़ी रहती हैं शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और पिपासा। जीव में प्राण की 6 प्रकार की वृत्तियां काम करती हैं-उत्पत्ति, विनाश, अगति, गति, अविद्या और विद्या। इन सबका निमित्त भी मन होता है। इसी प्रकार प्राण के द्वारा मन में भी वृत्ति भेद रहते हैं-प्रमाद, निद्रा, स्मृति, भ्रम और विकल्प। भ्रम को ही क्लेश कहते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश ये पंच क्लेश कहे गए हैं।

अविद्या तम है। मोह अस्मिता है। सुख मानकर किसी अर्थ से बंध जाना राग है। इसमें मन परतंत्र हो जाता है। दुख मानकर बंधना द्वेष है। अर्थ का तम से बंध जाना। अनिष्ट के भय से आत्मा को छिपाने का प्रयास अभिनिवेश है। राग में काम, लोभ, तृषा तथा द्वेष में क्रोध, मद, मत्सरता है। इन्हीं सब कारणों से आत्मा में कार्य-कारण भाव बना रहता है।

प्रकृति साथ रहती है। कर्म जारी रहता है। कर्म से कुछ अदृष्ट अतिशय भी आत्मा से जुड़ जाते हैं। ये नए कर्म और क्लेश को गति देते हैं। कर्म के विपाक हैं-जन्म, आयु और भोग। ज्ञान से कर्म को नष्ट कर देना विपाक मुक्ति है। मूल अव्यय कर्म का साक्षी रहता है। वही परा रूप शक्तिमान है। इसकी शक्ति ज्ञान, बल और क्रिया रूप है। इसी में भगवान् बनाने वाले 6 भग-धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश और श्री उपलब्ध रहते हैं। मनधर्मी है और अव्यय की अन्य कलाएं धर्म। वैराग्य से आसक्ति, ज्ञान से मोह, ऐश्वर्य से अस्मिता, धर्म से अभिनिवेश के आवरण हटते हैं। ईश्वर के भग रूप प्रकट हो जाते हैं। अतः कर्म ही धर्म है।

जीवन के चार आश्रम हैं-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास। समाज में चार वर्ण हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

आत्मा की दो धातु हैं-ब्रह्म और माया।

ब्रह्म-आलम्बन-माया-ज्ञानबल-क्रिया (ब्रह्मा-विष्णु-शिव-शक्ति)। मृत्यु पर अमृत की क्रीड़ा ही कर्म है। आश्रम व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था का मूल आधार। कर्म ही बन्ध है, कर्म से ही मुक्ति है। संन्यास का अर्थ भी कर्म-विहीनता नहीं है। कर्म स्वयं धर्म-स्वरूप होता है और वही मुक्ति का कारण बनता है। वही सुख और दुःख के बन्ध का कारण भी बनता है। कर्म यदि अच्छा है और सुख देने वाला है तो भी बन्ध का कारण है, अतः मूल में कर्म को धर्म माना गया है। धर्म मानकर कर्म करने से परिणाम धर्म या ईश्वर पर छोड़ दिया जाता है अर्थात् कर्म समर्पण रूप में होता है।

कर्म को लेकर हमारे यहां कई धर्मोपदेश मिलते हैं। गीता में तो कर्म योग पर पूरा अध्याय लिखा गया है। ज्ञान योग, बुद्धि योग आदि का आधार भी कर्म ही बताया गया है। यह भी कहा जाता है कि 'सकल पदारथ हैं जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं।'

यदि हम कर्म करते हैं तो उसका फल मिलना निश्चित ही है। उसकी इच्छा करने की आवश्यकता नहीं है। वह तो मिलेगा ही। प्रश्न है आसक्ति का, पुनरावृत्ति का। इसी का नाम बन्ध है। एक कार्य सम्पूर्ण हुआ और नए कार्य में लग गए। कार्य के परिणाम की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, न ही उसके प्राप्त सुख को भोगने के लिए रुके रहने की ही अपेक्षा है। इतने समय में तो एक नया कार्य आगे बढ़ जाएगा।

जीवन का लक्ष्य होता है-आनन्द की प्राप्ति। इसके बिना सृष्टि का क्रम भी नहीं चलता। यही सृष्टि का मूल है। अव्यय पुरुष रूप भगवान् श्रीकृष्ण की प्रथम कला है। आनन्द की इच्छा मन में उठती है। मूल मन अव्यय की पांच कलाओं के मध्य में विराजमान हैं। ज्ञान के सन्तुलन से शरीर कार्य करता है। मन को साधा जाता है कि इच्छाएं

नियंत्रित रहें ताकि हमारे कर्म संयत हों। आनन्द में विघ्न न पड़े। इसी के लिए व्यक्ति जीवन में प्रयास करता है, साधना करता है। 'अभ्यासेन: कौन्तेय....' कर्म अभ्यास की निरन्तरता के द्वारा ही व्यक्ति के भावों में परिवर्तन लाता है, उसका व्यक्तित्व बनाता है। भाव से ही ओज उत्पन्न होता है। बुद्धि और शरीर तो साधन मात्र हैं।

कर्म ही धर्म है। धर्म ही व्यक्ति को धारण करता है। धर्मयुक्त कर्म करके ही व्यक्ति मुक्ति पाता है। धर्म में भी आवेश रूप में फंसना अभीष्ट नहीं है। यह तो मार्ग है, लक्ष्य नहीं है। कर्ममय जीवन में समष्टि भाव होना इसकी गुणवत्ता है। कर्म के साथ-साथ सर्वमंगल की कामना मुक्ति का मार्ग है, वहां व्यक्ति स्वयं के निमित्त कुछ नहीं करता। कर्म से आत्मबल बढ़ता है, बुद्धि बढ़ती है, विकसित होती है, ज्ञान बढ़ता है, नए कर्म के लिए प्रेरणा मिलती है, सन्तुष्टि और आनंद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्म सृष्टि का आधार है।

जब सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, वायु, नदियां निरन्तर चलते रहते हैं तो मनुष्य ही क्यों किनारा ढूंढ़ता है? छाया ढूंढ़ता है? उसे भी तो धारा-प्रवाह को ही किनारा मानना चाहिए। विश्व के सभी शास्त्र व्यक्ति या मनुष्य के लिए ही बने हैं, ताकि उसे अपनी बुद्धि के चंगुल से बाहर निकालकर कर्म के क्षेत्र में गतिशील बनाए रखा जा सके। प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने तथा सबकी मंगल कामना के लिए कर्म करने से अहम् भी स्वतः ही समाप्त हो जाता है। व्यक्ति अकेला नहीं है। उसमें अनेक श्रीमद्भागवद् स्वरूप समाहित हैं।

शरीर का कर्म है- भोजन करना। उससे रस, रक्त आदि सप्त धातुओं का निर्माण करना और उच्छिष्ट का विसर्जन करना। बुद्धि का कर्म है- ज्ञान अर्जन करना और उसके माध्यम से भले और बुरे में, सही और गलत में भेद करना। मन का कर्म है प्रवृत्ति और निवृत्ति। उसी से जुड़ी आत्मा है जो त्रिगुण रूप आवरण से ढकी है। मन का कार्य इस आवरण को हटाकर उस प्रेरणात्मक शक्ति का आत्म-दर्शन करना है। गीता के अनुसार यही आत्मा ब्रह्म है, ईश्वर है। यह सब में विद्यमान है। यही दर्शन 'केवल ज्ञान' है। यही सब कर्मों का मूल है। इसलिए यह भी कहा गया है कि करने वाला भी एक ही है और भोगने वाला भी वही है, हम तो निमित्त मात्र हैं। यही मानकर सभी कर्म करना समष्टि भाव पैदा करता है। अहम् को कम करता है। प्रवृत्ति को निवृत्ति की ओर बनाए रखता है।

कर्म के बारे में भारतीय ग्रंथों में अनेक सिद्धान्त एवं अवधारणाएं निरूपित हैं। मानव जीवन को कर्म-प्रधान माना गया है। कविराज गोपीनाथ जी ने देवलोक आदि शेष भूमियों को भोगभूमि मात्र की उपाधि दी है। कर्म के बारे में अनेक मत भी हमारे यहां मौजूद हैं। गीता में कर्मप्रधान उपदेश-'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' जन-जन की जुबान

पर है। जीवन को भी कर्म की दृष्टि से चार भागों में बांटा गया है। व्यक्तिगत कर्म विन्यास की दृष्टि से चार आश्रम-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास हैं, तो सामाजिक दृष्टि से चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था सम्मिलित होकर समाज-यज्ञ का संचालन करती है। चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आधार भी कर्म ही है। कर्म ही श्रम, दान, तप और यज्ञ के रूप में स्थापित होता है जो कि वर्णव्यवस्था पर ही आधारित है। सत्त्व, रज और तम की शोधन रूप प्रतिष्ठा भी कर्म से ही होती है। कहने का अर्थ है कि जहां मानव जीवन है, वहां कर्म है। यहां तक कि संन्यास भी निवृत्ति-कर्म-प्रधान ही होता है।

आखिर कर्म में ऐसा क्या है? क्या महत्त्व है इसका जीवन में? जब जीने का हर क्षण ही कर्म है तो उसे इतनी परिभाषाओं में बांटने का अर्थ क्या है? कर्म अच्छा भी है, बुरा भी है। प्रधानतः कर्म तो बन्धक है। अच्छा कर्म भी सीमा-बन्धक है। प्रश्न उठते हैं- किसके साथ बांधता है? इससे बाहर निकलने का मार्ग क्या हो सकता है? क्या जन-साधारण के लिए कर्म को इस दृष्टि से समझने की वस्तुतः कोई आवश्यकता है? यदि वे नहीं समझें तो? इसका रहस्य श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट किया है। उन्होंने कर्म की गति को बहुत गहन बताया है, क्योंकि कर्म, अकर्म और विकर्म, इन तीन स्थितियों में से कर्म को छांटना पड़ता है। भगवान् ने कहा है कि कर्म को समझना चाहिए, विरुद्ध कर्म को समझना चाहिए और अकर्म को भी समझना चाहिए। उन सब में से कर्मांश को निकालकर उपयोग में लेना चाहिए। उदाहरण के लिए संन्यासी के लिए काष्ठ की स्त्री का स्पर्श भी वर्जित कहा गया है; किन्तु नदी किनारे बैठा हुआ संन्यासी, जो कि तैरना जानता है, उसके सामने यदि कोई स्त्री नदी में डूब रही है और रक्षा के लिए चिल्ला रही है तो क्या संन्यासी उस शास्त्रीय वचन से बद्ध होकर उस स्त्री को बचाने के लिए नदी में प्रविष्ट नहीं होगा? यदि नहीं होगा तो निश्चित रूप से ही वह पातकी माना जाएगा। उचित यह है कि इस विरुद्ध कर्म में भी स्त्री का जीवन-रक्षा रूप जो कर्म है, उसको ही प्रधानता दी जाए, स्पर्श आदि अन्य दोषों को ध्यान में नहीं लाया जाए। इस तरह से विरुद्ध कर्म में भी कर्मांश को छांटकर निकालना होगा। भगवान् ने कहा है-

"कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥"

- कर्म में जो अकर्म को देखे और अकर्म में जो कर्म को देखे, उसको बुद्धिमान कह रहे हैं भगवान्। अकर्म नाम ब्रह्म का है, कर्म नाम माया का है। ज्ञान के आधार पर माया रूप कर्म चल रहा है। यह दृष्टि ही कर्म-बन्ध से छुड़ाने वाली होती है। यहां प्रस्तुत श्लोक

ही 'कर्मण्येवाधिकारस्ते ...' का स्पष्टीकरण है जिसको ईशावास्य के मंत्र के आधार पर भगवान् ने यहां स्पष्ट किया है:

"अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥"

अर्थात् जो अविद्या रूप कर्म में ही रात-दिन लगे रहते हैं, ब्रह्म भाव और भगवान् भाव जिनके चित्त में कभी आता ही नहीं, उनके लिए कहा जा रहा है कि वे अंधकार रूप तम में डूब जाते हैं। आगे कहा गया है कि जो केवल ब्रह्म भाव रूप भगवान् भाव में ही लगे रहते हैं, कर्म का सर्वथा परित्याग कर देते हैं, वे और भी गहरे अंधकार रूप नरक में डूब जाते हैं।

भगवान् किसी भी भाव में रत रूप अनुरक्ति के सर्वथा विरुद्ध हैं। फलतः ब्रह्मभाव और कर्मभाव दोनों को जीवन में आधा-आधा बांटकर रखना पड़ेगा, तभी कर्म-बन्ध से विमुक्ति सम्भव हो पाएगी। वास्तव में यह बात सत्य है कि कर्म चाहे पुण्यमय हो अथवा पापमय, बन्धन ही करता है। शास्त्र में पुण्य रूप कर्म क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से विच्युति बताई गई है-'क्षीणे पुण्येमर्त्यलोके विशन्ति।' इसलिए पुण्यकाल भी एक सीमा में ही बंधा हुआ रहता है। पुण्य रूप कर्म से लौकिक वैभव की तो खूब वृद्धि हो जाती है; किन्तु क्षुधा व पिपासा का शमन नहीं होता। तथापि बुद्धियोग के सहारे वह हो जाता है। वास्तव में इस तथ्य का आधार हमारा पुनर्जन्म का सिद्धान्त है; क्योंकि पुनर्जन्म न मानने पर तो सर्वादि सृष्टि की मृत्यु रूप समाप्ति के आगे का सृष्टि-क्रम ही बाधित हो जाएगा।

पिछले जन्मों के कर्म व्यक्ति की आत्मा के वासना-संस्कार के रूप में जुड़े रहते हैं। नए जन्म में भी समय-समय पर और व्यक्ति विशेष के साथ जुड़े होने वाले व्यवहार का आधार ये कर्म ही बनते हैं। इस प्रक्रिया में इस जन्म के कर्म जोड़ भी सकते हैं और जुड़ने से रोक भी सकते हैं। रोकने से कर्म का खाता घटता जाएगा और एक समय आएगा, जब आपको किसी का कुछ भी नहीं चुकाना पड़ेगा। सभी कर्मों का विपाक हो चुका होगा। कर्म विपाक का यह क्रम बहुत लम्बा है।

जो भी कर्म वासना रूप में आपकी स्मृति में रह जाता है, वही तो बन्धन है। कर्म तो क्षणिक होता है, चाहे पुण्य हो चाहे पाप हो। वह क्षण भर की क्रिया है। कर्म तो समाप्त हो गया, फिर बन्धन कौन करता है? कर्म तो समाप्त हो गया; किन्तु अपना संस्कार छोड़ गया जो वासना रूप में चित्त में प्रतिष्ठित हो गया। वही आगे काम करा रहा है और वही आगे बन्धक हो रहा है। आप उस कर्म की वासना से बंधे हुए हैं। कई बार तो यह स्मृति ही हमें व्यस्त रख लेती है। कई बार यह हमारी कल्पना का रूप धारण कर लेती है। इस

प्रकार यह स्मृति अच्छी भी होती है, बुरी भी। यही स्मृति हमारे वर्तमान जीवन में व्यवहार का कारण बनती है। हमारे व्यक्तित्व निर्माण के मूल में भी यह स्मृति प्रमुख होती है। पिछले कर्म के संस्कार भी स्मृति रूप में जीवन से जुड़े रहते हैं। जो वहां से आगे चलते हुए शरीर या वाणी के माध्यम से व्यक्त होते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान भी इस बात की पुष्टि करता है कि पिछले जन्म की स्मृतियां व्यक्ति के जन्म के साथ ही उससे जुड़ी रहती हैं। उसी आधार पर वर्तमान स्वरूप (जन्म) का निर्माण होता है। व्यक्ति जीवन-व्यवहार के सभी ऋण लेता-देता है। हिसाब चुकाता है। इसी प्रकार उसका जीवन-चक्र जीवन-मृत्यु के बीच में चलता रहता है। कर्म से फल की इच्छा निकालने का अर्थ यही है कि स्वयं को फलरूप परिणाम से न जोड़ा जाए। कर्म को कर्म रूप में ही किया जाए। यही गीता का बुद्धियोग है।

कर्म दो प्रकार के होते हैं-एक प्राकृतिक कर्म और एक मनुष्यकृत कर्म। कर्म के ये जितने भी उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं, वे सब प्राकृतिक कर्म हैं। जिस प्रकार सुबह स्नान करते ही अन्य कार्य में लग जाते हैं, स्नान याद नहीं रहता। फिर खाना खाने बैठे तो पिछला कार्य भी भूल गए। किन्तु ; मनुष्यकृत कर्म में कर्म-व्यवस्था देखी जाती है। कैसे व्यवहार करना, कैसे बोलना, यह सब मनुष्यकृत कर्म में आता है। युद्ध के तरीकों को छोड़कर युद्ध करना तो उचित नहीं माना जा सकता। प्राकृतिक कर्म में भी कर्म व्यवस्था नहीं देखी जाती। आहार, निद्रा, भय, मैथुन- ये सब प्राकृतिक कर्म माने जाते हैं, जो मनुष्य और पशु में न्यूनाधिक समान रहते हैं। भीतर झांकने का जो हमारा दर्शन है वह पिछले संस्कारों को जानने तथा परिष्कृत करने के लिए है। यह हर व्यक्ति के जीवन में उपयोगी है। जीवन-चक्र से तो सभी मुक्त होना चाहते हैं; किन्तु कर्तव्य भाव से कर्म-प्रवृत्ति ही इसका एक मात्र उपाय है।

धर्म विश्वधर्म संघ के अधिवेशन में मैंने किसी को भी 'धर्म' पर चर्चा करते या व्याख्यान देते नहीं देखा। वहां धर्म के लिए एक ही शब्द काम आ रहा था-रिलीजन। शायद इसी कारण से हमारा संविधान भी 'धर्म-निरपेक्ष' हो गया। मन्तव्य तो रिलीजन (सम्प्रदाय) निरपेक्ष था। सम्प्रदाय समूह वाचक है, धर्म व्यक्ति वाचक है। किसी भी व्यक्ति का धर्म अन्य व्यक्ति से मेल नहीं खा सकता। व्यक्ति के जीवन के निजी संकल्प का नाम धर्म है। आस्तिक के लिए धर्म उसके ईश्वर के साथ व्यक्तिगत संबंध है। यही समाज में उसके आचरण का आधार भी है। धर्म की आवश्यकता हर व्यक्ति को क्यों होती है। खाने की, सोने की आवश्यकता को समझा जा सकता है। यह धर्म क्या है? दिखाई कुछ देता नहीं और जीवन की अनिवार्यता तय करता है। सभी शास्त्रों ने इसे जीवन का

आधार बताया है। विद्या बुद्धि का आधार भी धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य है। पुरुषार्थ-चतुष्टय का आधार भी धर्म को ही माना है-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

हमारे ऋषियों ने जीवन के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किए, जिनको जानने के बाद जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टि का स्वत: ही विकास होने लगता है। यहां विकास का अर्थ मात्र भौतिक विकास नहीं है। यह विकास का अर्थ पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुरूप देखा जाएगा, वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल देखा जाएगा। अविद्या और विद्या के परिप्रेक्ष्य में देखा जाएगा। प्रकृति के साथ जो व्यक्ति का तादात्म्य है, उस रूप में देखा जाएगा। उस व्यक्ति के व्यष्टि और समष्टि दृष्टिकोण के संदर्भ में देखा जाएगा। शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास तो आत्मिक विकास में सहायक बनते हैं। विकास का अर्थ प्राण ऊर्जाओं का ऊर्ध्वगामी होना है। अर्थात्-शरीर में प्रतिष्ठित आत्मा का संस्कारित होकर मानव मूल्यों को आचरण का अंग बना लेना। इसके लिए संकल्प चाहिए-दृढ़ संकल्प। स्वयं के प्रति कठोर प्रतिबद्धता का संकल्प। चाहे माता की प्रेरणा से अथवा अपने ज्ञान से यह संकल्प होता है।

इस संकल्प को भी पल्लवित, पोषित किया जाता है। इसका भी अभ्यास किया जाता है। इसकी परीक्षा भी ली जाती है। जब यह संकल्प व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन जाए, तब वह उस व्यक्ति का धर्म बन जाता है। मूल में तो मां की ही भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वही अभिमन्यु पैदा कर सकती है। वह विश्व की संस्कृति का निर्माण कर सकती है। कोई शास्त्र या सम्प्रदाय आज तक यह कार्य नहीं कर पाया। कोई धर्म सम्मेलन इन परिणामों तक नहीं पहुंच पाया। मां के लिए यह कार्य सहज होता है। उसके और संतान के बीच कोई बाधा या व्यवधान नहीं होता। दोनों की आत्माएं एकाकार रहती हैं। सारा ज्ञान नाद और ध्वनि तरंगों के माध्यम से पहुंचता है। भाव आधारित होने से सीधा मानस-पटल पर अंकित हो जाता है। मां जानती है कि जीव कौन-सा शरीर छोड़कर आया है। या फिर त्रिकालदर्शी जान पाता है। गुरु उसके ज्ञान का स्तर जान सकता है। ज्ञान ग्रहण करने की पात्रता का अनुमान कर सकता है। गुरु का ज्ञान सम्प्रदायवाची होता है। सामूहिक होता है। मां संस्कार देती है। धार्मिक बनाती है।

शिक्षा सब कुछ छीन लेती है। चेतन को जड बना देती है। व्यक्ति पूरी उम्र जड/निर्जीव (धन) के पीछे भागता रहता है। उसकी चेतना का कोई अनुसरण नहीं करता। उसकी चेतना का नेतृत्व जड पदार्थ करते हैं। आहार, निद्रा, भय और मैथुन के अतिरिक्त जीवन में कुछ रहता ही नहीं। यह तो शुद्ध पशु भाव है। जड के पीछे भागने का अर्थ है स्वयं की चेतना से समय के साथ दूर होते जाना। यथार्थ से दूर होते जाना। दूसरों को देखकर जीते

रहना। इसमें व्यक्ति का विकास तो कतई संभव नहीं है। लक्ष्यहीन जीवन का उदाहरण बन जाएगा। स्वयं के रास्ते का वही निर्माण कर पाता है, जिसका संकल्प दृढ़ होता है। उसकी अपनी मंजिलें होंगी। जो उसे मंजिल तक पहुंचाएगा, वही उसका धर्म कहलाएगा। तब तक धर्म व्यक्ति को धारण किए रहता है। पहले व्यक्ति ने संकल्प रूप धर्म को चुना, धारण किया। बाद में लक्ष्य आने तक धर्म ने व्यक्ति को धारण किया। धर्म मार्ग है। मंजिल पर पहुंचकर मार्ग भी छूट जाता है। जो मरते दम तक धर्म को नहीं छोड़ पाए तो मान लेना चाहिए कि अभी उसे मंजिल पाने के लिए और जन्म लेने पड़ेंगे।

धर्म की कोई एक शक्ल या स्वरूप नहीं है। हर व्यक्ति का और हर वस्तु का अपना एक धर्म होता है। अग्नि का धर्म उष्णता-विखण्डन है। सोम का धर्म संकुचन-स्नेहन है। इसी प्रकार व्यक्ति के स्वरूप, संबंध, पद, देश-काल के अनुरूप धर्म बदलता भी रहता है। घर में भी पुत्र धर्म, पत्नी धर्म, सम्प्रदाय, समाज, राज धर्म जैसे नाम सुनने को मिलते हैं। व्यक्ति जो कुछ भी करता है, जिस स्वरूप में भी करता है, वही उसका धर्म है। वही कर्म की परिभाषा भी है। उसी के आधार पर कर्मों के फल भी प्राप्त होते हैं। कोई कर्म बिना फल के पूर्ण नहीं होता। इसी फल के लिए तो कृष्ण कहते हैं कि इसके प्राप्त होने की प्रतीक्षा मत करो। कर्म के पीछे इच्छा रहती है। इच्छा के पीछे ज्ञान होता है। इस ज्ञान के कारण ही फल को लक्ष्य बनाकर कर्म किया जाता है। इसका उत्तर भी कृष्ण गीता में ही दे रहे हैं- आरंभे कर्माणां, संन्यासे कर्म संगयो।

कार्य की शुरुआत तो फल प्राप्ति के लिए ही होगी; किन्तु कर्म समाप्ति से पूर्व ही फल से संन्यास ले लेना चाहिए। आसक्ति मुक्त हो जाना चाहिए। कर्म किया तो फल तो मिलेगा, किन्तु प्रकृति तय करेगी कि कब मिलेगा। उसके काल की अपनी गणना का ढंग है। हो सकता है वह जब फल दे, तब तक हमारे 2-4 जन्म हो जाएं। इस जन्म की हमारी प्रतीक्षा का तो परिणाम निराशा ही होगा। इसका प्रभाव शेष जीवन के सभी कार्यों पर पड़ता जान पड़ेगा। फल की एक नई ग्रंथि भी स्मृति में जुड़ जाएगी। फिर कभी चिन्तन के क्षणों में हमारा ध्यान इस ग्रंथि की ओर जाएगा, तब धर्म आंखें खोल देगा, कि क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो। फल प्रकृति देगी-आपके प्रारब्ध और कर्म के योग से। इसी प्रकार धर्म पुरानी ग्रंथियों को भी खोलता जाता है। नई ग्रंथियां नहीं बनने देता। व्यक्ति के जीवन को धारण किए रहता है। उसे सदा एक ही दिशा में चलाता है। भटकाव से बचाता है। संतुलन और शान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्ति एक-एक करके सभी कामनाओं की पूर्ति करता हुआ कामनाओं से ऊपर उठ जाता है। कामना के बिना कर्म नहीं हो सकता। आप्तकाम जीवन ही मोक्ष का पर्याय है। धर्म का यही लक्ष्य है।

कर्म और धर्म संकुचन और प्रसार ही सृष्टि का क्रम है। इसी को बंध और मोक्ष अथवा नरक और स्वर्ग कहते हैं। यही माया के स्पंदन का कार्य भी है। यही कारण है कि शरीर में बंधा हुआ जीव स्वतंत्रता के लिए छटपटाता है। जो जहां से निकलता है, वहीं जाकर मिलना चाहता है। स्वतंत्रता का तो एक ही रूप होता है जिसे सत्य कहते हैं। बंध के तो नाना रूप होते हैं। चौरासी लाख योनियां भी इसी बंध के रूप हैं।

बंध केवल यही नहीं है। जीवन पर्यन्त हम बंध से जूझते रहते हैं। कई बार जैसे हमको पता भी नहीं चलता। एक सूत्र है कि जीवन मुक्त भाव से जीना चाहिए। हम उसे बांधने का प्रयास करते रहते हैं। बंधने से दु:खी होता है जीवन। यह तो स्वतंत्र (मुक्त) होने को छटपटाता रहता है। हमने जितनी भी अवधारणाएं पाल रखी हैं, जितने नियम-कायदों में स्वयं को बांध रखा है, दिनचर्या को जिस कठोरता से घड़ी के साथ बांध रखा है, जिस प्रकार हर इन्द्रिय के लिए अच्छे और बुरे की परिभाषा तय कर रखी है, 'यह करूंगा-यह नहीं करूंगा' जैसे संकल्प मन में पाल रखे हैं, सही और गलत के बोझ को मन में ढोते जा रहे हैं आदि-आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो हमारे बंध की सूचना देते हैं। बंधन व्यक्ति की शक्तियों का सीमितीकरण करता है।

बन्धन का जनक व्यक्ति का अहंकार ही होता है। इसी से कर्ता भाव दृढ़तर होता जाता है। व्यक्ति देखने और जानने की प्रक्रिया को छोड़ देता है। वह कर्म के साथ जुड़ जाता है। इसी के फल में आसक्ति का भाव जुड़ जाता है। यही सुख-दु:ख का जनक बन जाता है। व्यक्ति के हाथ में कर्म के सिवा कुछ भी नहीं होता। यही उसके धर्म का प्रतिबिम्ब होता है। यह उसके भविष्य का निर्माता होता है। इस कर्म के प्रति जितना गंभीर होना चाहिए, उतने गंभीर हम होते ही नहीं। जो कर्म हमको अच्छे नहीं लगते, उनको दूसरों के माथे डाल देते हैं या फिर भाग्य को दोष देते हैं। भाग्य भी तो हमारे कर्मों का ही परिणाम है। भाग्य भी तो बंधन का ही प्रमाण-पत्र है।

गीता में कर्म-योग पर इतना विवेचन है कि गीता स्वयं कर्म का पर्याय बन गई है। फिर भी देश में कर्म का चिन्तन व्यवहार में वैसा दिखाई नहीं देता। एक सूत्र है 'कर्मण्येवाधिकारस्ते....।' इसमें एक बात बहुत स्पष्ट है कि हमारे हाथ में केवल कर्म ही है। फल पर हमारा नियंत्रण नहीं है। मन्दिर में ईश्वर को हम जो कुछ चढ़ाते हैं, वो भी ईश्वर का ही दिया होता है। हमारा तो वहां भी कर्म ही होता है। कर्म यदि चढ़ाने लायक है तो स्वीकार हो जाएगा। ऐसे कर्म में क्या है? जीवन के चारों पुरुषार्थ - धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष भी तो कर्म पर ही आधारित हैं। संन्यास भी कर्म से बाहर नहीं है। इसका अर्थ है मोक्ष का आधार कर्म ही है। कर्म वैसा हो जो नए बंधन भी न पैदा करे और पुरानों को

भी न खोले। अच्छे कर्म भी बंधन का कारक बनते हैं। वे स्वर्ग में ले जाएंगे; किन्तु हमें मुक्त नहीं कर सकते। इसके लिए फिर से मानव देह लेकर पृथ्वी पर आना होगा। चौरासी लाख योनियों में एक ही योनि है जो कर्म का इस दृष्टि से उपयोग कर सकती है। बंधन मुक्त कर सकती है।

कर्मों को मूलत: तीन श्रेणियों में बांटा गया है- सत्त्व, रज, तम। तीनों ही श्रेणियां प्रकृति का ही स्वरूप हैं। तीनों साथ-साथ रहती हैं। इनका निश्चित स्वरूप ही 'प्रकृति' कहलाता है। प्रकृति को ही माया कहते हैं। यही बंधन भी कारक है। स्वयं के भीतर इसे देखना और समझना महत्त्वपूर्ण है।

हर व्यक्ति अपने साथ संस्कार लेकर पैदा होता है। उसके कर्म की और धर्म की अपनी व्याख्या होती है। किन्हीं दो व्यक्तियों का धर्म एक नहीं हो सकता। सबके मन और बुद्धि पर प्रकृति के आवरण भी होते हैं; किन्तु अनुपात भेद भी रहता है। सबका जीने का वातावरण भी भिन्न होता है, आदान-प्रदान भी भिन्न होता है। अत: व्यक्तित्व-निर्माण भी भिन्न होगा। वैसे तो कर्म अपने आप में न अच्छा होता है, न ही बुरा। प्रकृति भेद से उसका स्वरूप बदलता है। प्रकृति भी व्यक्ति के साथ-साथ समाज या देश की भिन्न होती है। इसे संस्कृति कहते हैं। व्यक्ति जो कुछ करता है, उसे यदि कर्म मानकर ही करे तो सही होगा। जैसे ही कर्म के साथ अपनी अवधारणाओं और भावों को जोड़ने का प्रयास करता है, तब कर्म उसका बन जाता है। उस कर्म की प्रतिक्रिया उसकी बुद्धि और उसके मन में होने लग जाती है। उसका कर्ता भाव बन जाता है। फल के बारे में सोचने भी लगता है और चिंतित भी हो सकता है।

गीता में कहा है 'आरंभे कर्मणाम् संन्यासे कर्म संगयो।' कर्म की शुरुआत लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही की जाएगी, किन्तु कर्म की समाप्ति के साथ फल की आसक्ति भी छूट जानी चाहिए। इसका केन्द्र होता है- मन। मन में उठने वाली इच्छा। इच्छा ही तो सब कर्मों का मूल कारण है। इसमें कोई कर्म नहीं होता। इसके साथ जब मन के भाव जुड़ते हैं, बुद्धि का आकलन जुड़ता है, तब इच्छा को पूर्ण करने या न करने का निर्णय होता है। इस निर्णय में प्रकृति कार्य करती है। यदि इसे प्रकृति की भूमिका समझी जाए तो इच्छापूर्ति की दिशा बदल सकती है। इच्छापूर्ति के साथ भी इस प्रकृति को देखते जाना पड़ेगा। तब हम तामसी और राजसी प्रवृत्तियों को न्यूनतम रखते हुए सात्त्विक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। कुछ काल बाद हमारी इच्छाएं स्वत: ही सात्त्विक रूप लेने लग जाएंगी। हमारा कर्म सत्त्व प्रधान होता चला जाएगा। इसी से भावशुद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा। इसी से भावी कर्मों के प्रति नई जागरुकता पैदा होगी।

कर्म के क्षेत्र में जो बात महत्त्वपूर्ण है, वह है- व्यक्ति का कर्ता भाव। जहां भी व्यक्ति कर्ता बन कर कर्म करता है, वहीं पर प्रकृतिजन्य परिणाम जुड़ जाते हैं और कर्म भी बंध का कारक बन जाता है। काम तो कठिन है ही। कार्य भी करो और कर्ता भाव भी न रहे। कहने में भले ही आसान लगे, आसान है नहीं। इसका कारण अहंकार होता है। वही हमारे होने का संकेत भी है और वही हमारी बुद्धि का जनक भी है। वह स्वयं को कभी भी निमित्त मानने का रास्ता नहीं देता। समर्पण तो उसके शब्द कोश में होता ही नहीं है।

अहंकार ही प्रमाद का भी कारण बनता है। व्यक्ति के वर्तमान को स्मृति और कल्पनाओं के जाल में फंसाकर लील जाता है। यदि वर्तमान बिना किसी कर्म से गुजर गया तो भविष्य भी वैसा ही होगा। वही हमारा भाग्य भी होगा जिसे हम कोसेंगे। कारण तो हम ही हैं। व्यक्ति चाहे छोटा हो या बड़ा, अमीर हो गरीब, कर्म तो करना ही है। वही तो अमीर और गरीब बनाता है। कर्म से संन्यास नहीं लिया जा सकता। संन्यासी भी यदि किसी कर्म के साथ स्वयं को बांधता है तो वह मुक्त कैसे हो सकता है? धर्म स्वयं भी बंधन का ही कारक है, यदि हम उससे बंधकर रह गए। यदि उसे मार्ग मानेंगे तो लक्ष्य पर पहुंचते ही मार्ग छूट जाएगा। यदि धर्म स्वयं लक्ष्य बन जाए तो बंधन निश्चित है। आज तो धर्मों में आसक्ति का नया भाव पैदा किया जाने लगा है। यह कट्टरवाद को निमंत्रण देना ही है। धर्म केवल पथ बनकर रहे, ताकि मानव भी मानव बनकर जी सके। तभी धर्म की सार्थकता है। बंधन में तो केवल छटपटाहट ही होती है। चाहे दैहिक हो अथवा आत्मिक। अत: जरूरी है कि हम अपने बंधनों का आकलन करें और छूट-छूटकर हल्के होते जाएं।

धर्म की जितनी व्याख्याएं हम सुनते आए हैं, सब सिद्धान्त-रूप में सुनते रहे हैं। धर्म का व्यावहारिक स्वरूप इतना व्यापक है कि इसे एक सूत्र या परिभाषा में बांधकर नहीं रखा जा सकता। आम आदमी कभी समझ भी नहीं पाएगा। हर व्यक्ति का धर्म देश-काल एवं परिस्थितियों पर ही आधारित होता है। चूंकि इस दृष्टि से कोई दो व्यक्ति समान नहीं हो सकते; अत: धर्म भी हर व्यक्ति का निजी स्वरूप लिए रहता है। मोटे रूप से देखें तो धर्म व्यक्ति और उसके भगवान् के बीच का रिश्ता है। वह भगवान्-ईश्वर को किस रूप में देखता है और मानता है, उसी के अनुरूप उसके जीवन का दर्शन बनता है। भगवान् को मैं पिता मानूं, मां कहूं, मित्र कहूं या प्रेमी कहूं तो मेरी सारी भक्ति और उपासना का क्रम ही बदल जाएगा। नास्तिक को भी नास्तिकता में आस्था होती है। उसके लिए यही धर्म का स्वरूप है। राज धर्म, गृहस्थ धर्म, देश धर्म आदि भी धर्म के सामाजिक स्वरूप हैं। इनको भी व्यक्तिगत धर्म की परिभाषा के साथ पिरोना पड़ेगा। अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार आदि भी व्यक्ति धर्म समझ कर ही करता है। ये व्यक्ति के आसुरी प्राणों का धर्म

है। इनके बिना शाश्वत धर्म का कोई महत्त्व ही नहीं है। वैसे भी धर्म तो आचरण की बात है। आचरण ही धर्म का प्रतिबिम्ब है। हमारे पुरुषार्थ चतुष्टय में सबसे पहले धर्म ही आता है। फिर अर्थ, काम और मोक्ष है। अर्थात ये तीनों ही धर्म पर आधारित होने चाहिए। धर्म हर व्यक्ति की पहली आवश्यकता है। आज हम समाज पर दृष्टिपात करें तो यह अवधारणा जीवन-शैली में दिखाई नहीं पड़ती। यह हमारा उत्तरदायित्व है कि हम इसे पुन: प्रतिष्ठित करें।

आज जो धर्म का स्वरूप दिखाई दे रहा है, वह व्यावहारिक नजर नहीं आता। या तो वह शास्त्रों के साथ बंधा हुआ दिखाई पड़ता है, या फिर संकीर्णता के जाल में फंसा जान पड़ता है। कुछ सम्प्रदायों में तो संकीर्णता भी कट्टरता की सीमाओं को छूती जान पड़ती है। धर्म का निषेधात्मक रूप भी इसी का उदाहरण है। साधु-संन्यासियों को भी देखें तो वे धर्म के साथ गुंथे हुए प्रतीत होते हैं। बन्धन पर बन्धन चढ़े हुए जान पड़ते हैं। धर्म मुक्ति के स्थान पर बन्धन कारक बना हुआ है। क्या इसे धर्म कहेंगे? इसे मार्ग समझकर छोड़ जाने वाला दिखाई नहीं पड़ता।

आज जिसको धर्म कहा जा रहा है, वह किसी न किसी महान् व्यक्ति के ही उद्गार हैं। चाहे ईसा मसीह हो, मोहम्मद साहब हो या भगवान् महावीर। इनके विचारों से सहमत हो तो आस्तिक, वरना नास्तिक। धर्म का यह स्वरूप तो इन लोगों ने भी नहीं सोचा होगा। मुझे किसी एक विचार के साथ बंधकर जीने की बाध्यता क्यों? उसी पुरानी पटरी पर चढ़ूंगा तो नए स्टेशन कहां आएंगे मेरे मार्ग में? मुझे तो ईश्वर ने जिस रूप में पैदा किया है, उसी रूप में जीना, उन्हीं संस्कारों के साथ जीना ही मेरा प्राकृतिक जीवन कहलाएगा। मैं कितना भी प्रयास कर लूं, ऐसा का ऐसा महापुरुष तो नहीं बन सकता। गीता में तो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, बुद्धियोग आदि का विवरण है। धर्मयोग की तो कहीं कोई चर्चा भी नहीं है। कर्म को ही धर्म कहा है।

कर्म को ही अलग-अलग कपड़े पहनाकर इतने धर्म पैदा कर दिए गए हैं। अस्मिता का ही संघर्ष है पूरे विश्व में। इसी में राजनीति घुस गई। धर्म पीछे से अपना काम करने लगा। इसी में धन का प्रभाव जुड़ गया। बड़े-बड़े ट्रस्ट बनने लग गए। प्रचार-प्रसार का वातावरण इतना गहराता जा रहा है कि व्यक्ति गौण हो गया। या तो धर्म गुरु रह गए या फिर उनके संस्थान। वही देश का धर्म बन जाता है। उसके आगे आंखें-कान सब बंद। अन्य धर्मों की प्रशंसा सुनना कोई नहीं चाहता। यही कट्टरता की शुरुआत है। गुरु सब कर्ता भाव में आ गए। ईश्वर उनकी जेब में चला गया। अहंकार गुरुओं पर इतना छा गया कि आपको लगता ही नहीं कोई संत है। गृहस्थ से भी खोटे।

वर्ण भी धर्म बन गया। जैन की संतान जैन। मुस्लिम की संतान मुस्लिम। यह कैसे हो सकता है? धर्म और सम्प्रदाय तो मानव सभ्यता का अंग है। कुदरत की देन नहीं है। वहां तो वर्ण व्यवस्था है। इसमें भी ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण नहीं हो सकता। शिक्षा प्रारंभ करने से पूर्व बच्चे के वर्ण का परीक्षण किया जाता है। उसी के अनुरूप शिक्षा दी जाती है। यदि वह क्षत्रिय वर्ण का है तो उसका मन शास्त्रों में नहीं लग सकता। हम यह भूल चुके हैं कि हर व्यक्ति स्वयं के संस्कार और प्रारब्ध-कर्म लेकर पैदा होता है। मां-बाप केवल निमित्त होते हैं। अधिकारी नहीं हो सकते। वह अपना मार्ग स्वयं बनाता है। अपने धर्म का निर्धारण स्वयं करता है। फिर, धर्म तो एक मार्ग है। मंजिल नहीं है। मंजिल पर पहुंच कर मार्ग को छोड़ना होता है।

आज तो धर्म साधन के बजाए साध्य हो रहा है। मरने तक उससे चिपके रहने वाला व्यक्ति मुक्त कैसे हो सकता है? यह तो आसक्ति भाव है। मुझे तो मुक्त करने वाला धर्म चाहिए। कौन-सा है? फिर नास्तिक अधर्मी कैसे हो सकता है? नास्तिकता यदि उसका संकल्प है तो वही उसका धर्म है। वह अपने इसी आत्म-प्रकाश से जीता है।

आखिर प्रश्न यही उठता है कि धर्म की उपयोगिता क्या है? धर्म की एक ही उपयोगिता है-योग। स्वयं का स्वयं से योग। चूंकि हमारे मन और बुद्धि पर प्रकृति (सत्त्व, रज, तम) के आवरण होते हैं, अत: मूल मन (आत्मा) हमें दिखाई नहीं देता। जिन कर्मों से मैं अपने आवरण हटाकर स्वयं का असली चेहरा देख सकूं, वही मेरा धर्म। ये सारी गतिविधियां भीतर की हैं। बाहर मेरा कुछ भी नहीं है। सब कुछ मेरे भीतर है। उनसे परिचय करना, उनको विकसित करना और साध्य तक पहुंच जाना ही जीवन का लक्ष्य है। जो मार्ग मुझे वहां तक ले जाए, वही मेरा पंथ, वही मेरा धर्म।

चूंकि कुदरत ने हरेक को अलग-अलग बनाया है, हरेक का अलग-अलग लक्ष्य है; अत: धर्म भी अलग-अलग होंगे। वह सब व्यक्ति के भीतर समाहित होते हैं। हर इच्छा के साथ ही बुद्धि में स्पंदन होते हैं। आगे बढ़ने से पहले यहीं पर इच्छा की दिशा और उद्देश्य समझ में आ जाने चाहिए। इच्छा बाह्य इन्द्रियों के प्रवाह से उठी है, प्रारब्ध कर्मों के उदय से उठी है अथवा मेरे अपने भावी लक्ष्यों से। उठती तो सभी इच्छाएं मन में हैं। जो इन इच्छाओं का मार्गदर्शन करता है, वही धर्म कहलाता है। वैसा ही व्यक्ति कर्म करता है। वैसी भावना उस कर्म के साथ जुड़ती है। वैसा ही भविष्य बनता है। यही धर्म धीरे-धीरे मन में एक वातावरण बनाता है। उसी अनुरूप नई इच्छाएं पैदा होती हैं। वैसा ही कार्य शरीर के द्वारा निष्पादित होता है। वही व्यक्ति की भाषा और आचरण बन जाते हैं। व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठित करते हैं, धारण करते हैं।

आत्मा का धर्म है- देखना (दर्शन) और जानना (ज्ञान)। इन्हीं से चरित्र का विकास होता है। चरित्र ही धर्म की परिणति है। धर्म तो एक मार्ग है, व्यक्ति विशेष का मार्ग। यह सामूहिक तो कभी नहीं हो सकता। कोई भी धर्म गुरु किसी भी समूह को धर्म की ये गहराइयां प्रदान नहीं कर सकता। उसे तो एक-एक व्यक्ति के संस्कारों एवं उसके वर्ण का आकलन करके, उसकी आवश्यकता के अनुरूप उसका स्वतंत्र पथ तय करना होगा और उस व्यक्ति को उस पथ पर चलते रहने की क्षमता भी देनी होगी। पथ कठिन होता है; अतः गुरु को भी शिष्य से अधिक तपना पड़ता है। वहीं देखा जा सकता है कि कालान्तर में व्यक्ति का पूर्ण रूपान्तरण होता है और वह गुरु सदृश्य हो जाता है।

धर्म के मार्ग पर किया जाने वाला कर्म कभी बन्धन का कारक नहीं होता। न बुरे कर्मों का, न ही अच्छे कर्मों का। कर्म पूरा होते ही व्यक्ति की स्मृति से निकल जाता है। वहां चूंकि फल की इच्छा नहीं है। 'संन्यासे कर्म संगयो।' कर्म और कर्म फल के साथ चिपकने की जरूरत नहीं। हमारे शास्त्र और गीता एक ही बात कहते हैं कि कर्म में अकर्म को देखो, अकर्म में कर्म को। कर्म माया को कहते हैं और अकर्म ब्रह्म को। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसके लिए एक शब्द बताया था-वीतरागता। एक ही अर्थ है।

बहुत से लोग हैं, जिनको ये सब बातें समझ में आती भी हैं। वे दूसरों को समझाते भी होंगे। फिर भी समय के साथ धर्म नहीं बढ़ रहा। अनुयायी भले ही बढ़ते हों। आज तो स्त्री-पुरुष के धर्म भी कोई एक मानने को तैयार नहीं होता। आखिर इस सारे संघर्ष की जड़ कहां है?

धर्म की जड़ आत्मा में है। बाकी सब आत्मा के साधन हैं। बदलते रहते हैं। आत्मा नहीं बदलता। उस पर चढ़ने वाले आवरण बदलते रहते हैं। पंच महाभूतों के द्वारा निर्मित शरीर बदलते रहते हैं। नाम और रूप बदलते रहते हैं। इस बदलाव में तीन शक्तियां ही प्रमुख रूप से कार्य करती हैं-ऋषि, पितर और देव प्राण। इन्हीं तीन ऋणों से हमें मुक्त होना भी पड़ता है। इनको समझकर ही हम आवरण हटाने में सफल हो सकते हैं। इन्हीं से आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक संस्थाएं बनती हैं। व्यक्ति इन्हीं के बीच में जीवन यापन करता रहता है। धर्म का कार्य है-शरीर के माध्यम से सूक्ष्म शरीर से गुजरते हुए कारण शरीर (आत्मा) तक की यात्रा तय करना। वहां जाकर धर्म ही आत्मा-स्वरूप हो जाता है। मार्ग ही मंजिल बन जाता है।

अधिभूत और अध्यात्म के बीच अधिदेव एक सेतु का कार्य करते हैं। पश्चिम के दर्शन में अधिदेव की अवधारणा ही नहीं है। इसीलिए भाषा के स्तर पर ही दर्शनों का टकराव निरन्तर रहता है। आत्मिक धरातल की शरीर में अभिव्यक्ति सूक्ष्म शरीर (प्राण) के द्वारा

होती है। इन्द्रियों द्वारा गृहीत बाह्य ज्ञान भी सूक्ष्म शरीर मन तक पहुंचाता है; अतः धर्म की प्रभावी भूमिका प्राणायाम और ध्यान के माध्यम से समझ में आ सकती है। ध्यान में भले ही भावनाएं प्रधान होती हैं; किन्तु कार्य सम्पादन तो प्राणों द्वारा ही होता है।

भाव ही इच्छा को दिशा देते हैं। इच्छा ही कर्ममूलक है। क्रिया फलकारक है। फलपर्यन्त क्रिया रहती है। फल से यदि आसक्ति मुक्त होना है तो इस भाव से कार्य करने से पहले इच्छा के साथ जोड़ना पड़ेगा। आप कार्य क्यों कर रहे हैं? फल चाहिए या आता रहेगा? आपको लोकहित के भाव इसमें भरने हैं। कर्म को पूजा समझकर पूर्ण मनोयोग से किया या नहीं किया? करने के बाद भी कर्म को ईश्वर के आगे समर्पित कर देना है। इससे कर्ता भाव भी ईश्वर का हो जाएगा। जो फल आएगा, वह भी ईश्वर को ही भोगना है। हमें जो मिलेगा, वह तो प्रसाद होगा। बिना किसी अपेक्षा भाव के। फूल हो या कांटे, प्रसाद तो प्रसाद ही है। सहर्ष हमें स्वीकार लेना है। न तो नए कर्म बंधेंगे, न कर्म युक्त कार्य होगा। प्रसाद मानने से प्रारब्ध कर्मों-ऋणानुबंध की प्रतिक्रिया नहीं होगी। उनको हम भोगकर पूर्ण कर जाएंगे। पिछले पूरे हो गए। निमित्त हमें प्रेरित कर घेर नहीं सकेंगे। नए पैदा नहीं हुए तो खाता बराबर शून्य पर आ जाएगा, हम निमित्त रह जाएंगे। यही धर्म का स्वरूप और लक्ष्य भी है। यही मुक्ति है, स्वतंत्रता है, शान्ति है। शान्तानन्द है।

कर्म और फल कर्म ही जीवन है। कर्मयोग ही सबसे बड़ा योग है। बिना कर्म के कोई परिणाम नहीं मिल सकता। कोई फल नहीं मिल सकता, अतः कर्म ही भाग्य बन जाता है। जीवन के सिद्धान्त कर्म को ध्यान में रखकर ही बने हैं और आगे भी बनते रहेंगे। कर्म अपने आप में पूर्ण होता है। कर्म की पूर्णता फल प्राप्ति में है। कर्म होगा तो फल भी मिलेगा। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म तो करो ; किन्तु फल की इच्छा मत रखो। ऐसा करने से कर्म बन्धनहीन रहेगा और ईश्वर स्वरूप बना रहेगा, अन्ततः उदार भाव रूप व्यापकता में परिणत होकर ब्रह्मरूप हो जाएगा।

एक बालक ने चौथी कक्षा की परीक्षा दी। पास हुआ और पांचवीं कक्षा में चला गया। पांचवीं कक्षा में वर्ष पर्यन्त रहकर भी उसे चौथी कक्षा की याद नहीं आई। पांचवीं पास करके छठी कक्षा में गया और पांचवीं को भूल गया। इसका साधारण अर्थ यही है कि चौथी, पांचवीं, छठी कक्षाएं उसके जीवन का ध्येय नहीं। ध्येय इनसे ऊंचा है। ये तो ध्येय तक पहुंचने की सीढ़ियां मात्र हैं। इन फलों में उसकी आसक्ति नहीं हो सकती। उसे कर्म करते चले जाना है, फल आता रहेगा। उसको पकड़कर बैठने की जरूरत नहीं है। यह क्रम लक्ष्य की पूर्णता तक चलता ही रहता है। यही कर्मयोग है। जहां आपने फल को पकड़ने की चेष्टा की, विकास रुक जाएगा। आप फल को भोगने में व्यस्त हो जाएंगे। एक कर्म

का फल दूसरे कर्म का प्रवेश-द्वार बनता है। इसी से कर्म प्रवाही बना रहता है।

निवृत्ति का अर्थ कर्महीनता नहीं है और संन्यास भी कर्मशून्यता नहीं है। कर्म से संन्यास सम्भव नहीं है। कर्म केवल कर्म के रूप में छोटा या बड़ा नहीं होता। वह केवल कर्म होता है। दर्शनशास्त्र के अनुसार कर्म बन्धन का कारण होता है, कर्म चाहे अच्छी श्रेणी का हो अथवा विपरीत। दर्शन हमें बन्धन-मुक्त होने की सलाह देता है। इसका अर्थ है कि हमें कर्म की पूर्णता का ही ध्यान रखना है, फल प्राप्ति का नहीं। लक्ष्य पर आंख रहे, कर्म फल पर नहीं। जीवन की अनेक विषमताएं इससे स्वतः समाप्त हो जाएंगी और मुक्ति का आभास इसी जीवन में होने लगेगा।

पुनर्जन्म प्राणी जन्म लेता है, मरता है। अनेक प्रकार के जन्म लेता है- कभी मनुष्य, कभी पशु, कभी पक्षी या कीट-पतंगा। आयुष्य पाकर मरता भी है। यह सृष्टि-क्रम यूं ही चलता रहता है। कुछ विद्वान् मानते हैं-ईश्वर है ही नहीं, जबकि कुछ विद्वान् पुनर्जन्म को नकारते हैं। मान्यताओं का यह क्रम भी सदियों से चल रहा है।

इसी क्रम में भारत की वैदिक विचारधारा है तथा जैन-दर्शन है जो दृढ़ता के साथ पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं और अनेक प्रकार से इन विषयों का प्रतिपादन भी करते हैं। आज विश्व के वैज्ञानिक भी इस धारणा को स्वीकार करने लगे हैं कि व्यक्ति अपने साथ पिछले जन्म के ही संस्कार लेकर आता है। जन्म के साथ ही उसका जीवन-काल भी तय होता है और आयुष्य भी। भारतीय दर्शन कर्म-प्रधान है। कर्म को ही जीवन, विकास और मुक्ति का आधार माना गया है। कर्महीनता को मृत्यु कहा गया है। कर्म में ऐसा क्या है जो व्यक्ति के जीवन-चक्र को प्रभावित करता है, पुनर्जन्म का आधार बनता है? श्रीकृष्ण की श्रीमद्भगवद्गीता का आधार भी तो कर्म ही है-'कर्मण्येवाधिकारस्ते' ......

कर्म की पहचान कैसे की जाए? क्या हमारी गतिविधियां ही 'कर्म' की श्रेणी में आती हैं? एक ओर हमें अच्छे कर्म करने का उपदेश मिलता है, तो दूसरी ओर अच्छे कर्म भी बन्धन के उतने ही बड़े कारण माने गए हैं, जितने कि बुरे कर्म।

मनुष्य जीवन का एक ही मूल लक्ष्य माना गया है कि वह कर्म के इस जंजाल से मुक्त हो, पिछले कर्मों का विपाक हो और नए कर्म नहीं जुड़ें। बड़ी विकट स्थिति है। कर्म भी करें और बन्धन भी न हों। हमारी इच्छाएं भी पूरी होती रहें। हमारा विकास भी होता रहे और हमारे राग-द्वेष, आकर्षण-विकर्षण भी चलते रहें! आखिर, व्यक्ति कहां से शुरू करे, इसको समझना?

मनुष्य का हर कार्य बन्धन का कारक नहीं बनता। उसे प्रतिदिन अनेक प्रकार के नित्य कार्य करने पड़ते हैं। जब मनुष्य किसी कार्य के साथ अपने अहम् भाव को जोड़ लेता है,

तभी कर्म व्यक्ति से जुड़ता है। कर्म को अपना घोषित करना पड़ता है। यह कार्य मुझे करना है, इस कारण से करना है। इस फल के लिए करना है। वही उसका कर्म कहा जाएगा। आप चल रहे हैं, रास्ते में कोई प्राणी, चींटी आपके पांव के नीचे आकर मर गयी; किन्तु आपका मारने का इरादा नहीं था। चींटी को उस तरह से मरना था। यदि यही कार्य आप निश्चय पूर्वक करें-आपको चींटी ने काटा और आपने गुस्से में उसे मसल दिया, तो आप उस हत्या के भागी हो गए। चींटी को तो इस तरह ही मरना था, आपके हाथ से। जीवन इसी प्रकार ऋणानुबन्ध के आधार पर चलता है। आपको किसका कौन-सा कर्ज चुकाना है, यह आपके कर्म पर निर्भर करेगा और इसी कर्ज को चुकाते रहने के लिए बार-बार नया जन्म लेना पड़ेगा।

शारीरिक कर्म का कोई महत्त्व नहीं है। बौद्धिक धरातल भी कोरा काम का नहीं है। कर्म जब अहम् से जुड़ता है-'मैं कर रहा हूं', यह विचार करके किया जाता है, तब जाकर वह आपके संस्कार का अंग बनता है।

आपका पैसा कोई लौटा नहीं पा रहा है तो मान लीजिए आपका पिछला ऋण है। वह लौटाना चाहता नहीं है तो उसके लिए नया कर्म होगा। ऋणानुबन्ध का यही क्रम हमारे जीवन-व्यवहार का अंग भी होता है। किसी बैल, मुर्गे या कुत्ते को देखें कि वह एक जीवनकाल में कितनी मादाओं के साथ सहवास करता है। कारण और परिस्थितियां भिन्न हो सकती हैं। जब ये दोनों अगले जन्म में मिलेंगे तो इनका आकर्षण अपना कार्य करेगा। नए जन्म में कौन नर या मादा बनता है, यह अन्य बात है; किन्तु जिस-जिस को जब-जब देखेगा, आकर्षण का भाव जागृत होगा ही। जैसे ही ऋणानुबन्ध समाप्त हुआ, आकर्षण स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। कर्म और ऋणानुबन्ध के सिद्धान्त घनिष्ठ रूप में साथ-साथ कार्य करते हैं। इसी के साथ व्यक्ति की इच्छा जुड़ती है कि वह किस प्रकार का भावी जीवन चाहता है। इसी से भावी कर्मचक्र तय होता है। यह सारा क्रम अहम् भाव से जुड़े हुए कर्मों का है जिसमें कामनारूप संकल्प जुड़ा रहता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने यही एक विशेष मार्ग बतलाया है कि कर्म का त्याग नहीं करते हुए, अपितु, वासनायुक्त कर्म न करके कर्म करना ही कर्तव्य है। इस विवेक के साथ कर्म करते रहने से कोई बन्धन-भाव नहीं होता। इसका नाम ही बुद्धियोग है।

तप का अर्थ तपना ही लगाया जाता है। इस तप में उष्णता है, गर्मी है, पिघलना है, निखरना है। यह तप अग्नि सूचक है। यह सृष्टि अग्नि और सोम से ही बनती और चलती है। अतः तप से अग्नि में ही वृद्धि होती है। इस वृद्धि को शान्त और नियंत्रित रखने के लिए सोम की आवश्यकता पड़ती है। उसी से अग्नि-सोम यज्ञ बनता है। नया निर्माण होता

है। नई सृष्टि उत्पन्न होती है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि तीनों वेद आकाश में तपते हैं। ऋक्, यजु, साम तीनों ही अग्नि वेद हैं। ऋक् और साम वेद केन्द्र और परिधि का निर्माण करते हैं। यजु क्रियात्मक है। दोनों के मध्य में कार्य करता है। ये वेद मन-प्राण-वाक् रूप ही हैं। मन केन्द्र है, वाक् परिधि है और प्राणों का ही तपन होता है। मन के लिए कहा है- स इच्छिते। प्राणों के लिए तप्यते और शरीर के लिए- स श्रम्यते कहा है। ईश्वर अथवा मूल वेद के तपन से जो स्वेद (पसीना) पैदा होता है, उसी का नाम सृष्टि है। हमारे शरीर में विचारों की क्रिया ही तपन है। उसी से क्रियाओं का नियंत्रण होता है। परिणाम (सृष्टि) स्वरूप ग्रहण करते हैं।

तप को अक्षर-यात्रा की दृष्टि से भी देखें। 'त' यानी तल तक, किनारे तक अथवा अन्त तक। 'प' यानी रक्षा करना, गुप्त रखना अथवा प्राप्त करना भी होता है। इस प्रकार तप का अर्थ पूर्ण रक्षा करना, पूर्ण गुप्त रखना अथवा पूर्णता प्राप्त करना भी होता है। तप की सारी क्रियाएं मन और शरीर के मध्य ही होती हैं- प्राणमय कोश में। विज्ञानमय कोश में। अव्यय पुरुष के आनन्द, विज्ञान और मन में विज्ञान ही यजु रूप है, गतिमान तत्त्व है। आकाश में सूर्य तप रहा है। यही ऋचाओं का लोक है। यही साम लोक है। जो इसके केन्द्र में प्रतिष्ठित है, वही गतिरूप यजु है। अत: कहा जाता है सूर्य के बिम्ब में तीनों वेद तप रहे हैं। तप के द्वारा ही साम का आलोक दिखाई पड़ता है। तप के द्वारा ही अज्ञान का अन्धकार नष्ट होकर ज्योतिर्मय अवस्था बनती है। तप की महिता ही कामना का पान करती है। इच्छा और तप का सीमा बन्धन करने के लिए स्वधा रूप में माया शक्ति कार्य करती है। तप का अर्थ है-प्राणन करना। भीतर के जगत का बाहर प्रकाश करना प्राणन कहलाता है। यही तप का फैलाव है। दिनभर में हम जितना भी कार्य करते हैं, वह तप रूप ही है। तप एक निश्चित दिशा में भी किया जा सकता है। सचाई यह है कि हमारी प्रत्येक गतिविधि का आधार प्राणों का स्पंदन है। यही भीतर का एकमात्र गतिमान तत्त्व है। हम चलते हैं, खाते हैं, बोलते हैं, सभी कार्य प्राणों द्वारा ही सम्पादित होते हैं। अध्ययन, उपासना, व्यवसाय सभी कुछ तप की श्रेणी में आता है। सभी कार्य ऊर्जा पर आधारित होते हैं। हर इच्छा की पूर्ति के लिए चेष्टा की जाती है। चेष्टा ही तप है।

एक ही दिशा में किया गया तप विशेष परिणाम देता है। जैसे अध्ययन करना। आगे से आगे एक ही दिशा में बढ़ते जाना। योग भी क्रमिक तप रूप है। क्रमिक तप को ही साधना कहते हैं। तप में बुद्धि और शरीर की प्रधानता होती है। इसमें बाह्य प्रकाश बढ़ता है। उपासना भी तप है। इसमें शरीर और बुद्धि गौण रहते हैं। भीतर का प्रकाश बढ़ता है। अन्तस का प्रकटीकरण होता है। उपासना का अर्थ ही नजदीक बैठ जाना है। जैसे ही

नजदीक पहुंचे, साक्षात्कार हुआ, वैसे ही प्रार्थना शुरू। संवाद स्थापित हो जाता है। अत: तप के द्वारा उपासना मार्ग प्रशस्त किया जाता है। भावों को गति प्राप्त होती है। गति नाम माया का है। माया के जागरण को तप के द्वारा विद्या रूप में परिवर्तित किया जाता है। जैसे-जैसे विभिन्न आश्रमों का काल पूरा होता है, वैसे-वैसे तप का स्वरूप बदलता जाता है। अनेक कामनाओं के पार निकलते जाते हैं। आश्रम के साथ आश्रम की कामना भी पीछे छूट जानी चाहिए। नए आश्रम का नया प्रकाश प्रकट होना चाहिए। तप से यह मर्यादा मार्ग भी प्रशस्त होता है। माया ही कामना है। तप का मूल भी माया से पार पाना ही है। ज्ञान प्राप्ति के लिए भी तपना होता है। इसी से अज्ञान पर विजय प्राप्त होती है। व्यक्ति मन के पार जा सकता है। किन्तु ; इस मन के पार मूल मन दिखाई पड़ता है। यह मन तो त्रिगुण से ढका है। पार जाने का अर्थ है, आवरणों को हटा देना। तब मूल मन दिखाई देता है। उसी के साथ आनन्द और विज्ञान जुड़े हैं। विज्ञान भाव ही सृष्टि का कारक है। एक से अनेक बनने का मार्ग खोलता है। ज्ञान के द्वारा अनेक से बाहर निकलकर व्यक्ति एक में प्रतिष्ठित होता है। इन सारे क्रिया-कलापों का हेतु तप ही होता है।

शरीर का तपन होता है। स्वेदन होता है। विचारों का तपन होता है, स्वेदन होता है। मन का तपन होता है, स्वेदन होता है। भिन्न-भिन्न स्वरूप इस स्वेदन से प्रकट होते हैं। स्वेदन सदा जल रूप (सोम) होता है। पदार्थ, स्वरूप सभी अग्नि रूप हैं। शरीर में हृदय प्राण रूप तीनों अग्नि प्राण ही तपते हैं। ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र ही ऋक्-यजु-साम रूप हैं। यजु रूप कामना ही देता है, वही लेता है। निष्काम होना भी एक कामना है। अत: तप से बाहर कुछ नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण तप से होता है। हम जिसे तप मानते हैं, वह भी इसी तप का स्थूल रूप है। उपवास करते हैं, उष्णता बढ़ती है। जठराग्नि को अन्न (सोम) नहीं मिलता। इसी से विचारों का, कामना का स्वेदन (पसीना अर्थात् परिणाम) होता है। अनेक प्रकार के त्याग किए जाते हैं। कामना का तपन होता है। तपस्या या तपश्चर्या शब्द भी तप से बना है। परिष्कार करने का मार्ग कहलाता है। भाव शुद्धि का मार्ग है। शरीर और विचारों को साधने का क्रम है। मन को पटु बनाने का कार्य होता है। भीतर के दोष बाहर निकल जाते हैं। संकल्प ही तप को मूर्त रूप देता है। विकल्पों के द्वार बन्द होने लगते हैं। अत्यन्त गुप्त संस्कार भी प्रकट होते हैं। शुभ लक्षणों की प्राप्ति भी होती है। जिस प्रकार सोने को तपाने पर नई आभा दिखाई पड़ती है, वैसे ही व्यक्ति भी तप से कान्त दिखाई पड़ता है। जीवन में नई दिशा एवं गति का संचार होता है।

तप भी दो श्रेणियों का होता है। बाह्य जीवन के लिए बाह्य तप और भीतर के लिए आन्तरिक तप। लक्ष्य दोनों का ही भीतर रहता है। किन्तु; व्यक्ति शरीर के सहारे ही भीतर

यात्रा करता है। अत: बाह्य तप में पहले शरीर को साधने का क्रम चलता है। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, निद्रा आदि अनुभवों को शान्त एवं नियंत्रित करने का, सहज करने का प्रयास किया जाता है। तभी तो भीतर के अभ्यास में शरीर अडोल रह सकता है। देखने में तो आज यह भी हठ योग जैसा दिखाई देने लग गया है। व्यक्ति तप को भी हठ के साथ करता है। महीने भर उपवास करता है, चिन्तन कुछ भी नहीं करता। कषायों का आकलन नहीं करता। पूजा, अनुष्ठानों पर लाखों रुपए खर्च कर देता है। अगले दिन तिल भर भी व्यक्तित्व में बदलाव दिखाई नहीं देता। बल्कि अहंकार कुछ बढ़ता ही है। प्रदर्शन भी इतना जुड़ गया और कट्टरता का स्वरूप भी। तप का प्रयोजन कहीं दूर पीछे छूट जाता है। धर्म और तप सभी रूढ़ियों में बदल गए। रूपान्तरण तो संभव ही नहीं है। जहां मन पर दबाव डाला जाए, वहां तप नहीं होता। मन सहज रूप से स्वीकार करता चला जाए, क्रिया के साथ एकाकार हो जाए, तब तप होता है। सच तो यह है कि मन का वातावरण यदि ग्राह्य रहता है, तो इन्द्रियां स्वत: ही भीतर चली जाती हैं। हठ करने से तो वह बाहर चिपकती हैं। हम भीतर जीते हैं, बाहर केवल दिखाई पड़ते हैं।

हमारे विचार, क्रिया-कलाप भीतर से उठते हैं। प्राणों से नियंत्रित होते हैं। तप इसी प्राण से जुड़ा है। शरीर उपकरण बना रहता है। मन में कामना होती है। उसी कामना को समझकर कषायों का, सावद्य वृत्तियों का त्याग करने का वातावरण बनाना होता है। मूल में यह चिन्तन-मनन ही तप है। अनावश्यक का बोध होना, अहित का बोध होना, जीवन के प्रति दृष्टि का बोध होना आदि इसका अंग है। सारी क्रियाएं बाहर से जुड़ी हैं। इनके माध्यम से अक्रिया में प्रवेश करना, अ-मन हो जाना ताकि हम केवल देख सकें। द्रष्टा बन जाएं। यही तो आत्मा का धर्म है। वह कर्ता नहीं है। तप का अर्थ और लक्ष्य कर्ता से अकर्ता बन जाना है। दृष्टा बन जाना है। प्राकृतिक कर्म सहज रूप से बने रहें। उनके प्रति हम असहज न हों। क्रिया और परिणाम के प्रति आसक्त न हों। तब तपन सारी शान्त हो जाएगी। शीतलता में बदल जाएगी। मन की निर्मलता में बदल जाएगी। स्वयं के बजाए 'मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे' का वातावरण तैयार हो जाएगा। यही 'स्व' का विस्तार है। यही 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा है। अन्त में तप की उष्णता से ही जीवन ताप और संताप से मुक्त होकर आनन्द भाव में स्थित होता है। समता ही आनन्द है। यह निर्ग्रन्थ अवस्था है।

ध्यान ध्यान का साधारण अर्थ है किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाना। व्यक्ति के लिए सबसे कठिन कार्य भी यही है। किसी से भी बात करके देखिये, वह यही कहेगा कि थोड़े समय के लिए भी ध्यान केन्द्रित रहना मुश्किल काम है। अनेक विषय और

विचार आते-जाते रहते हैं, ध्यान बंट जाता है। बिना एकाग्र हुए आप किसी भी कार्य को सही ढंग से, पूर्णता से, उत्कृष्टता से नहीं कर सकते। कार्य की बारीकियां आपकी समझ में नहीं आ सकतीं। आप विषय की गहराई को कभी नहीं छू सकते।

प्रश्न यह है कि मन एकाग्र क्यों नहीं होता? वह क्यों इधर-उधर भटकता रहता है? मन इन्द्रियों का राजा है। वह सदा चंचल, अस्थिर तथा भ्रमणशील रहता है। मन सदा एक अभाव अनुभव करता है। अतृप्ति का भाव उसे शान्त नहीं होने देता। मन चाहता है-शुद्ध ज्ञान और आनन्द, जो उसका मूल स्वभाव है। जब उसकी यह भूख शान्त हो जाती है तो मन की चंचलता भी शान्त हो जाती है। मन आत्मा को चाहता है। आत्मा ही मन का आनन्द है, मित्र है। सत्त्व, रज, तम के आवरण के कारण मन आत्मा को देख नहीं पाता और पूरी उम्र उसे कण-कण में खोजता रहता है। बहिर्मुखी होने के कारण ही आत्मा पास होते हुए भी नहीं दिखाई देती। ध्यान मन को अन्तर्मुखी करने का मार्ग है, ताकि वह आत्मा को देख सके, आनन्द प्राप्त कर सके।

जो मन को नहीं जानता वह मन की गति, मन की चंचलता और इससे उत्पन्न अशान्ति को कैसे जान सकता है? बिना कारण को समझे वह निवारण भी नहीं कर सकता।

मन कोई स्थाई तत्त्व नहीं है। यह चेतना का एक स्तर है, प्रवाह है। मन पैदा होता रहता है, विलीन होता रहता है। यह स्मृति, कल्पना और चिन्तन का धरातल है, अत: इसकी चंचलता भी स्वाभाविक है।

चंचलता का अर्थ है सक्रिय होना। यह उसके होने का प्रमाण भी तो है। मन को दमित करने की आवश्यकता नहीं है। इससे तो वह और अधिक चंचल होगा। उसे समझने की जरूरत है, उसके प्रवाह को नया मोड़ देने की जरूरत है। उसको समझने के लिए संकल्प की आवश्यकता है। किन्तु; संकल्प हिमालय की तरह दृढ़ होना चाहिए। मन के कार्यकलाप इन्द्रियों पर आधारित होते हैं। बाह्यजगत् के अनुभव इन्द्रियों द्वारा मन तक पहुंचते हैं। इसी कारण मन बाह्यजगत् की गतिविधियों से मुक्त नहीं हो पाता, अपितु जुड़ता चला जाता है। क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का एक सघन जाल बनता चला जाता है। आवश्यकता है इस जाल को बनने से रोकने की। अनावश्यक को रोकने की। इसके लिए कुछ समय निकालकर इन्द्रिय-निग्रह का नियमित अभ्यास किया जाता है।

आप शान्त होकर किसी भी एक आसन में बैठ जाएं। धीरे-धीरे लम्बा श्वास लें और धीरे-धीरे श्वास को छोड़ें। छोड़ने में तो अधिक समय लगना चाहिए। आपको स्वत: ही इसका परिणाम समझ में आने लगेगा। यह तो व्यायाम ही हुआ। इसमें आप प्रयास करके ध्यान को नासिकाग्र पर टिका लें। नासिकाग्र के अलावा कुछ दिखाई ही नहीं दे। शेष

इन्द्रियां भी इसी के साथ क्रियाशील होने लगेंगी। नेत्र श्वास को देखेंगे, कान भीतर की ध्वनि को सुनेंगे। नासिका श्वास की हवा का तापमान देखेगी। जब इन्द्रियों की चपलता शान्त होने लगे तब चित्त को किसी एक विषय पर केन्द्रित करें। इसको धारणा कहा जाता है। अब मन में केवल एक ही विषय चलेगा। धारणा आध्यात्मिक भी हो सकती है, आधिदैविक या आधिभौतिक भी। हमारे यहां शास्त्रों में अनेक प्रकार की मुद्राओं का वर्णन मिलता है जो धारणा को स्थायित्व देने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। धारणा ही अभ्यास के साथ-साथ ध्यान का रूप लेती है। निर्णय के प्रति एकाग्रता, निरन्तर एकाग्रता ही ध्यान कहलाती है। अन्य विषय टहरें ही नहीं। आध्यात्मिक धरातल का ध्यान स्वरूप के सहारे आगे बढ़ता है। अपने इष्टदेव का चित्र मन में बनाकर उसी पर ध्यान केन्द्रित करना, उनके शरीर के प्रत्येक अंग का ध्यान करना व्यक्ति को लम्बे समय तक ध्यान में एकाग्रता दे सकता है। इसके बाद आसानी से अमूर्त ध्यान में प्रवेश किया जा सकता है। यह क्षेत्र प्रकाश का क्षेत्र होता है। ध्यान की गहनता ही समाधि है। अन्तःकरण की शुद्धता से श्रद्धा पैदा होती है। श्रद्धा से ही साधन में तत्परता होती है। तत्परता से मन और इन्द्रियों का निग्रह होकर आत्मभाव में ध्यान हो पाता है। ध्यान की एकाग्रता का अपने आप में कोई मूल्य नहीं होता। मूल्य होता है ध्यान की विषयवस्तु का। जो एकाग्रता अपने अस्तित्त्व के प्रति जिज्ञासा पैदा करे, साधना की दृष्टि से वही बहुमूल्य है। इसी से स्वयं को पहचानने की उत्सुकता बढ़ती है। एक बार यह उत्सुकता जाग्रत हो जाए तो समझने का रास्ता मिल जाता है। उत्सुकता से मन में बेचैनी पैदा होती है, जो साधना-मार्ग के द्वार खोलती है।

आचार्य तुलसी ने लिखा है कि ध्यान की दो सबसे बड़ी बाधाएं हैं–अहंकार और ममकार। जब तक अस्मिता और ममता का ग्रंथिभेद नहीं होता, तब तक सफलता नहीं मिलती। ध्यान के लिए निर्विकल्पता का विकास आवश्यक है। व्यक्ति अहंकार और ममकार से विकल्पों का सर्जन करता है। अहंकार व्यक्ति की चेतना को आवृत करता है और ममकार उसको पर-सापेक्ष बनाता है। संस्कार के सारे संबंध अहंकार और ममकार से जुड़े हुए हैं। कषायों का विस्तार भी इन्हीं से होता है। जिस प्रकार खेती करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से कार्य करना पड़ता है, भूमि को उर्वर बनाने के लिए खाद दिया जाता है, पानी दिया जाता है, उसी प्रकार ध्यान का अभ्यास भी क्रमशः किया जाए तो परिणाम शीघ्र व सही मिलते हैं। अभ्यास के साथ चित्त की निर्मलता बढ़े, विकल्पशून्यता बढ़े। मैत्री, ऋजुता, पदार्थ-विरति, आत्मानुभूति और अमूर्च्छा के द्वारा चित्त को भावित करने से अहंकार और ममकार की ग्रंथियां खुलती हैं। कर्म-संस्कार निर्मूल होते हैं। इस प्रकार ध्यान की ठोस पृष्ठभूमि निर्मित हो जाती है।

स्वर हमारा शरीर पंच महाभूतों के सम्मिलन से बना है। प्रतिदिन इनके ग्रहण और विसर्जन से हमारा जीवन चलता है। जीवन का मूल है श्वास। श्वास-प्रश्वास का नाम ही स्वर है।

श्वास का केन्द्र है–कण्ठ और मार्ग है–नासिका। साधारण अनुभव में हम श्वास नासिका से लेते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार शब्द का उत्थान कण्ठ है।

कण्ठ विशुद्धि चक्र का स्थान है। न केवल ध्वनि यहां से निकलती है, बल्कि हमारी प्रवृत्तियां भी कण्ठ से नियंत्रित होती हैं। कण्ठ में श्वास लेना और निकालना एक अद्भुत प्रयास साबित हो सकता है। बहुत ही सरल अभ्यास है। कण्ठ पर अंगुली रखकर यह महसूस करना है कि वायु कण्ठ को छूकर भीतर-बाहर जाती है, बस। नित्य दस मिनट का अभ्यास और नित्य ही परिणाम।

हमारी नासिका शरीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। एक ओर इससे श्वास आता-जाता है, दूसरी ओर यह घ्राणेन्द्रिय का कार्य करती है। इसके अतिरिक्त इसका संबंध हमारी मूला नाड़ी से है। हमें यदि एकाग्रता का अभ्यास करना है तो नासिकाग्र पर ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास हमें तुरन्त सफलता देता है। हम धीरे-धीरे श्वास से परिचित होने लगते हैं। हमारा श्वास तीव्र से मन्द होता चला जाता है। हम शान्त हो जाते हैं। हमारे आवेग मन्द पड़ जाते हैं। आवेग बढ़ते हैं, तभी श्वास तेज होता है।

स्वर की जानकारी हमारे श्वास की ही भौतिक जानकारी है। स्वर पर किया गया ध्यान हमारी अन्तर्यात्रा का पथ प्रदर्शित करता है। स्वर एक बहुमूल्य निधि है। आप श्वास को धीरे-धीरे कम करें, उससे परिचय का अभ्यास करें, उसके साथ भीतर जाने का अभ्यास करें, बाहर आएं।

हमारे बाएं नथुने से इड़ा जुड़ी है और दाएं नथुने से पिंगला। दोनों के मध्य है सुषुम्ना। बाईं ओर से लिए गए श्वास से शरीर में शीतलता आती है, इसे चन्द्र स्वर कहते हैं। दाईं ओर के श्वास से गर्मी आती है, इसे सूर्य स्वर कहते हैं। कभी बहुत प्यास लगे तो दाएं स्वर को बन्द करके बाएं स्वर को काम में लेकर देखिए, बिना पानी कितनी सहजता से आप काम चला सकते हैं।

श्वास के साथ हमारा मन भी जुड़ा है। हम वहां तक आसानी से पहुंच सकते हैं। स्वर साधन इड़ा-पिंगला का सन्तुलन बनाता है। मन और कार्य में सन्तुलन बनाता है। हमारे स्नायु और नाड़ी तन्त्र को सन्तुलित करता है। श्वास का क्रम कभी एक नथुने से अधिक होता है, तो कभी दूसरे से। जब दाएं नथुने से श्वास अधिक आता-जाता है तो उसे सूर्य स्वर कहते हैं और बाएं नथुने के श्वास को चन्द्र स्वर। जब दोनों में समान स्वर हो, तो उसे

सुषुम्ना स्वर कहते हैं। सृष्टि का नियम है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को सूर्योदय के समय स्वस्थ मनुष्य का चन्द्र स्वर चलता है और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को सूर्य स्वर। हर पांच घड़ी बाद स्वर बदलता है। तीन दिन बाद सूर्योदय के समय का स्वर बदलता है। स्वस्थ व्यक्ति के सूर्योदय के समय दोनों स्वर नहीं चलने चाहिए। यदि आप किसी एक स्वर को चलाना चाहते हैं तो उसके दूसरी करवट सो जाएं। दायां स्वर चलाने के लिए बाईं करवट और बायां स्वर चलाने के लिए दाईं करवट लेटना चाहिए।

हमें स्वरों के प्रति जागरूकता पैदा करनी चाहिए। हम श्वास के प्रति जागरूक हों, लम्बा श्वास लेने का अभ्यास करें। एक स्वर (नथुने) से श्वास लें और दूसरे से निकालें। व्यायाम समझकर ही पांच-दस मिनट करें। हमारे शरीर में उष्णता और शीतलता का सन्तुलन बढ़ेगा। दाएं से लेकर बाएं से निकालें और बाएं से लेकर दाएं से निकालें। मन और क्रिया का सन्तुलन बढ़ेगा। श्वास लेते और छोड़ते समय श्वास को महसूस करें। बीच-बीच में विचारों का व्यवधान आएगा। विचारों को रोकें नहीं। वे आएंगे और चले जाएंगे। हम जागरूक रहकर अपना कार्य करते रहें। हम निश्चित ही स्वस्थ रहेंगे। लम्बे अभ्यास के बाद कोई बड़ी बीमारी का डर नहीं रहेगा।

इसी प्रकार हमारे स्वर पंच-तत्त्वों के द्योतक भी हैं। हर स्वर पांच घड़ी चलता है। इसमें प्रत्येक तत्त्व एक-एक घड़ी चलता है। पहली घड़ी में वायु, फिर अग्नि, पृथ्वी, जल और आकाश। वायु हर घड़ी चलता है और अन्य तत्त्व जुड़ जाते हैं। इन तत्त्वों की पहचान प्रत्येक तत्त्व के रंग से होती है। स्वाद और दिशा से होती है। आकाश तत्त्व का रंग काला, स्वाद कड़वा और श्वास नथुने के भीतर ही दिखाई पड़ता है। वायु का रंग हरा, स्वाद खट्टा, आकृति गोल और श्वास की दिशा तिरछी रहती है। अग्नि लाल रंग की, चरपरे स्वाद वाली, त्रिकोण आकृति की और ऊपर की दिशा को जाती महसूस पड़ती है। पृथ्वी पीले रंग की, मीठा स्वाद, चौकोर आकृति और सीधी दिशा में जाती महसूस होती है। इसी प्रकार जल श्वेत रंग, मीठा स्वाद, चन्द्राकार आकृति और नीचे की दिशा में जाता प्रतीत होता है। अग्नि चार अंगुल, वायु तत्त्व आठ अंगुल, पृथ्वी बारह अंगुल और जल सोलह अंगुल तक बाहर आते हैं। आकृति को समझने के लिए दर्पण पर नाक से श्वास की एक फटकार मारें तो एक आकृति-सी बनती है। आप इससे उपयुक्त तत्त्व को पहचान सकते हैं। चौबीस घंटों के दिन-रात में साठ घड़ी होती हैं। इनमें हर तत्त्व बारह बार बदलता है।

चूंकि स्वर का अधिष्ठाता चन्द्र है। अतः स्वर का संबंध वार, नक्षत्र और राशियों से भी है। हर स्वर के अपने वार, नक्षत्र और राशियां होती हैं। इसी कारण स्वर को शकुन विचार से लेकर भविष्यवाणी तक में प्रयोग किया जाता है। पुराने लोग किसी कार्य को

करने से पहले अथवा घर से बाहर जाते समय स्वर देखना नहीं भूलते। भौतिक रूप में स्वर हमारे दैनन्दिन कार्य से जुड़ा है, वहीं आध्यात्मिक दृष्टि से श्वास रूप में प्राणायाम के द्वारा हमारे मन को संकल्पित करता है। यह शरीर को स्वस्थ रखता है और योग-साधना का सूत्र बनता है।

जप भारतीय जीवन-दर्शन में उपासना का विशेष महत्त्व है। जीवन को संयमित रखने में तथा शांत और सुखी रखने में उपासना की अपनी भूमिका है। उपासना के अनेक प्रकार हैं। सर्व प्रचलित और सर्व साधारण की क्षमता योग्य उपासना के लिए सरलतम मार्ग है 'जप'। 'जप', अर्थात् किसी मंत्र का बार-बार उच्चारण। शायद ही कोई भारतीय होगा जिसने किसी को जप करते न देखा हो। जप किसी पूर्ण मंत्र का हो सकता है तो किसी बीज मंत्र का भी। किसी विशेष उद्देश्य से हो सकता है तो केवल धर्म के नाम पर भी। कई मंत्र; जैसे–गायत्री, नमस्कार आदि अपने-अपने स्थान पर लोकप्रिय भी हैं। इनमें से बीज-मंत्र गुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा के अन्तर्गत दिया जाता है जो समय के साथ अंकुरित होता हुआ कालान्तर में फल प्रदान करता है।

जप में शब्द का उच्चारण है, शब्द वायु से पैदा होता है। वायु हमारे शरीर का संचालन करता है। सृष्टि वर्ण के आधार पर बनी है। वर्णमाला वायु के आधार पर टिकी है। हम लोगों का चित्त सर्वदा नाना प्रकार के विकल्पों में फंसा रहता है, तरंगित होता रहता है। ये तरंगें भी वायु की हैं। इसी कारण चित्त में चंचलता बनी रहती है।

जप में शब्द है। शब्द में अक्षर है। अक्षर में ध्वनि है। ध्वनि में नाद है। वाक् के चार धरातल होते हैं–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। जो शब्द सुनाई देता है वह हमारी बोलचाल की भाषा वैखरी कहलाती है। जिस भाषा में जीभ नहीं हिलती, होंठ भी नहीं हिलते, मुंह से कुछ ध्वनि नहीं होती, अर्थात् केवल मन में शब्द और चित्र बनते हैं वह मध्यमा कही जाती है। जप में जब मंत्र का उच्चारण किया जाता है, तो वह वाचिक जप कहलाता है। जब केवल होंठ हिलते हैं, शब्द का उच्चारण नहीं होता तो उसे उपांशु जप कहते हैं। इसके आगे जब मन एकाग्र हो जाता है और ध्वनि या शब्द का स्थूल रूप घट जाता है, तब जप मानसिक हो जाता है।

वाचिक जप में बाहरी वायु का प्रभाव सर्वाधिक होता है। उपांशु में कुछ कम होता है, एकाग्रता कुछ बढ़ जाती है। मानस जप में बाहरी वायु का प्रभाव नहीं रहता, एकाग्रता तीव्र होने लगती है। जप की शुरुआत वाचिक से होती है; किन्तु अभ्यास बढ़ने के साथ श्वास-प्रश्वास धीमा होता जाता है और जप स्वयं उपांशु हो जाता है। जब श्वास की गति अत्यन्त मंद हो जाए, ध्वनि समाप्त हो जाए, तो उपांशु जप अपने आप मानस जप में

परिवर्तित हो जाता है। वाचिक और उपांशु जप में श्वास-प्रश्वास की क्रिया इड़ा-पिंगला के माध्यम से चलती है। जैसे-जैसे जप मानस में प्रवेश करता है, श्वास-प्रश्वास सुषुम्ना के जरिए चलने लगता है। वायु मध्यमा में कार्य करती है, अर्थात् मंत्र भीतर ही उच्चरित होता रहता है। बाह्य जप में जहां ध्वनि उच्चारण के लिए प्रयास करना पड़ता है, वहां मानस के सूक्ष्म धरातल पर उच्चारण की गति स्वतः बनने लगती है। अभ्यास और तीव्र एकाग्रता के प्रभाव से जप सिद्ध होने लगता है और क्रमशः बिना किसी प्रयास के भी जप का स्पंदन नित्य बना रहता है। इसको हमारे यहां अजपा जप कहते हैं।

वैखरी में शब्द और अर्थ अलग दिखाई पड़ते हैं। मध्यमा में शब्द नाद में परिवर्तित होता है, ध्वनि समाप्त हो जाती है, ज्योति स्वरूप दिखाई पड़ता है। मानसिक जप जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, पश्यन्ती में शब्द और अर्थ एक हो जाते हैं। चेतना का प्रकाश प्रकट होता है। मंत्र सिद्धि और ईश-दर्शन का क्षेत्र है पश्यन्ती। कालान्तर में पश्यन्ती से परा में प्रवेश होता है। यहां आकर नाद बिन्दु में लीन हो जाता है। अर्थात् बिन्दु से उत्पन्न नाद, बिन्दु में ही लीन। पंडित गोपीनाथ कविराज लिखते हैं-'वर्णात्मक स्थूल शब्द के अन्तराल में नादात्मक चेतन शब्द को पहचान लेने पर जब वर्णगत सभी दोषों का उपसंहार हो जाता है तब चैतन्य ही मुख्य होता है। एकाग्रता के यही लक्षण हैं। इस अवस्था में वक्र वायु के तरंग नहीं रहते, केवल सरल गति रहती है। यह चैतन्य शक्ति की लीला है जो महामाया का सहारा लेकर रहती है।'

एकाग्रता के दो उपाय हैं- एक उपाय है कि आप जिस इष्ट का मंत्र जाप करते हैं, उसका एक चित्र मन में बना लें और मंत्र का जाप उसी को समर्पित करते रहें, धीरे-धीरे चित्र स्वयं स्पष्ट होकर प्रकट होने लगेगा। दूसरा उपाय यह है कि आप मंत्र के शब्दों को स्वयं भी सुनें। आप चित्त को शब्दों पर टिकाएं और यह प्रयास करें कि आप प्रसन्नचित्त हैं, भाव निर्मल हैं और इष्ट के चरणों में समर्पित हो रहे हैं। अपनी अच्छी-बुरी सब प्रवृत्तियां, कार्य और परिणाम उनको समर्पित कर रहे हैं, निमित्त बन रहे हैं। कोई भी जप इस चित्त शुद्धि के बिना परिणाम नहीं ला सकता।

जैसे ही आप शब्दों पर, शब्दों के अर्थ पर ध्यान केन्द्रित करेंगे, आपकी एकाग्रता बढ़ने लगेगी। आपको पता चलता रहेगा कि आपका उच्चारण सही है। उच्चारण बदलने से प्रभाव भी बदल जाएंगे। कुछ ही समय में आपको आभास होने लगेगा कि आपके जप की ध्वनि मन्द होती जा रही है। आप शब्दों को सुनते रहिए, ध्वनि मन्द होते-होते आप उपांशु जप में प्रवेश कर लेंगे। श्वास की गति भी इसी अनुपात में मंद पड़ जाएगी। यही अभ्यास कालान्तर में, एकाग्रता के अनुपात में, मानस का मार्ग प्रशस्त करेगा। आपको सुखद

अनुभूति होगी। इस कार्य में सर्वाधिक गति एकाक्षर बीज मंत्रों से प्राप्त होती है। हर देवता का एक बीज-मंत्र है। गुरु प्रदत्त बीज-मंत्र श्रद्धा और अभ्यास से शीघ्र ही मानस-जप में परिवर्तित हो जाता है। जप उपासना का एक अति सरल क्रम है। इसमें प्रवेश के लिए अलग से किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। हर साधारण व्यक्ति के लिए उच्च स्तर तक पहुंचने का यह आसान मार्ग है। आवश्यकता है तो केवल तीव्र उत्कण्ठा की। समर्पित मनोयोग की। जप के प्रभाव को समझने के लिए यह पर्याप्त है कि जप के शब्दों के बीच का अवकाश अभ्यास के साथ कम होता जाता है। धीरे-धीरे अवकाश के साथ शब्द व ध्वनि भी लीन होते जाते हैं। नाद रह जाता है। नाद भी इसी क्रम में आगे चलकर बिन्दु में जहां से उठता है, वहीं लीन हो जाता है। व्यक्ति केवल द्रष्टा की तरह देखता रहता है। जानता रहता है। प्रकाशित हो उठता है। इसका नाम कुण्डलिनी जागरण भी है।

जप का मुख्य प्रभाव प्राण-धारा पर पड़ता है और साधक को पता भी नहीं चलता। वह केवल ध्वनि और शब्दों तक ही जान पाता है। प्राणों का स्पंदन, अर्थात् प्रकृति की लीला। शरीर में प्राण-अपान-व्यान आदि पांचों स्थूल प्राणवायु रूप में कार्य करते हैं। इड़ा-पिंगला से इनका व्यापार चलता है। जप के अभ्यास से व्यक्ति सूक्ष्म प्राणों के धरातल पर आता है। सुषुम्ना में केवल सूक्ष्म प्राण ही प्रवेश करते हैं। इड़ा-पिंगला तो स्वतः ही शिथिल हो जाती हैं। शरीर की सारी गतिविधियां भी शिथिल हो जाती हैं। व्यक्ति स्थूल देह से सूक्ष्म देह में प्रवेश कर लेता है। सुषुम्ना में तीन सूक्ष्म नाड़ियां हैं-वज्रिणी, चित्रिणी और ब्रह्म। इनमें जप से सूक्ष्म प्राणों का कार्य शुरू होते ही एकाग्रता बढ़ती जाती है, व्यक्ति अन्तर्मुखी होता जाता है। वह कारण देह की ओर अग्रसर होता है। जप साधारण व्यक्ति के लिए भी सिद्धि का मार्ग है। ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग है। सुदृढ़ भावभूमि, नियमितता और आस्था अवश्य परिणाम देती है।

व्यक्ति जीवन व्यवहार में अनेक विषमताओं से गुजरता है। अनेक प्रकार के अभावों और प्रभावों से उसका मन घिरा रहता है। मन पर एक के बाद एक आवरण चढ़ते रहते हैं। प्रवृत्ति बहुल जीवन में निवृत्ति का मार्ग भी बना रहना आवश्यक है ताकि एक सीमा तक हम जीवन को सन्तुलित बनाकर जी सकें। मन के आवरण हटाने का एक नियमित क्रम भी बना रहना चाहिए। इसके लिए हमारे ऋषियों ने मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग के सिद्धान्त प्रतिपादित किए। इनमें मंत्रयोग सुलभ भी है और सुविधाजनक भी। यह हर व्यक्ति के जीवन से जुड़ सकता है। जो मनन करने से त्राण करता है, रक्षा करता है उसे मंत्र कहते हैं। मंत्रों का मनन ही तन्त्र है और मंत्रों का निश्चित स्वरूप में प्रयोग ही यंत्र का निर्माण करता है। मंत्र सात्त्विक, शुद्ध भावों का बोध कराता है, अतः आवरण

हटाकर बुद्धि और मन को निर्मल करता है। व्यक्ति को शुद्ध आनन्द भाव में स्थापित करता है। आज अनेक धर्म, जातियां और सम्प्रदाय हैं। हम देख सकते हैं कि इन सबके अपने-अपने विशिष्ट मंत्र हैं। इन मंत्रों के प्रभाव भी इनमें परिलक्षित होते हैं। अनेक सम्प्रदाय तो विशिष्ट शक्तियों वाले मंत्रों पर ही आधारित हैं। मंत्रों का उपयोग अथवा प्रयोग सर्वत्र व्याप्त है। टोना-टोटका मंत्र आधारित हैं तो भूत-प्रेत आदि की अवधारणा भी। इनके कारण, निदान और उपचार भी मंत्र आधारित हैं। मंत्र तत्काल फल देने वाले माने जाते हैं। इसके विपरीत वैदिक मंत्र आत्मा के शुद्धिकरण के लिए उपयोगी कहे गए हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त मंत्रों में नाम और बीज मंत्रों का महत्त्व अधिक है।

मंत्र शब्दात्मक होते हैं। हर मंत्र का अपना स्वर, अर्थ, छन्द और विनियोग होता है। इसके साथ ही इसका भाव चलता है। मंत्र का जप एक ओर गति प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर, भाव से अर्थ का साक्षात्कार होता है। मंत्र के गलत उच्चारण से अनर्थ होना भी एक साधारण बात है। तीन प्रकार के जप कहे गए हैं। जब मंत्र में शब्दों का उच्चारण स्पष्ट सुनाई देता है तो उसको 'वाचिक जप' कहते हैं। जिसमें ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, केवल होंठ हिलते हैं, कण्ठ का प्रयोग होता है तो उसको 'उपांशु जप' कहते हैं। जिस जप में केवल मन से ही अर्थ का ज्ञान प्रवाह रहता है, उसको 'मानसिक जप' कहते हैं। श्रेणी के अनुसार वाचिक से उपांशु और उपांशु से मानसिक जप को श्रेष्ठ माना गया है।

तन्त्र साहित्य में बीज मंत्रों का विशिष्ट स्थान है। ईश्वर की आठ मुख्य प्रवृत्तियों के अनुरूप ही आठ प्रकार के बीज-मंत्र होते हैं। इनमें ओंकार को शब्द ब्रह्म कहा गया है। बीजों में गुरु, शक्ति, रमा, काम, योग, तेजो बीज आदि के रूप में ऐं, ह्रीं, श्रीं, क्लीं, क्रीं, द्रीं, स्त्रीं, ह्रीं बीज मंत्र प्रयुक्त होते हैं। बीजमंत्र शब्दों के अर्थ से समझ में नहीं आ सकते। ये केवल जप से ही अपना अर्थ बताते हैं। इनके लिए उच्चारण का ज्ञान (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि स्वर) और पूरक मंत्रों की सहायता उपयोगी सिद्ध होती है।

मंत्र और देवता का अभेद माना गया है। मंत्रों के स्पंदन और प्राणरूप देवता के स्पंदनों में एकरूपता मानी गई है। शब्द रूप वाणी के भी चार धरातल हैं-परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। सृष्टि का कारण भी नाद या वर्ण या शब्द माना गया है। यहां शब्द की अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था होती है। मंत्रों और बीजों का विकास भी इसी से माना गया है। जब विमर्श और प्रकाश की स्थूल अवस्था होने लगती है तब इसे नाद कहते हैं। ज्यों-ज्यों सृष्टि स्थूल रूप धारण करती है, त्यों-त्यों शब्द भी स्थूल रूप धारण करता है। परा से पश्यन्ती तथा मध्यमा से गुजरते हुए वैखरी बनता है।

महर्षि पाणिनी लिखते हैं-"तिरसठ अथवा चौंसठ (मतभिन्नता के कारण) वर्णों को

स्वयंभू ने पैदा किया है।" आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को लेकर मन के साथ बोलने की इच्छा करता है। मन शरीर की अग्नि में आघात करता है। इससे उत्पन्न प्रेरक शक्ति से वक्षःस्थल में गम्भीर स्वर की उत्पत्ति होती है। कण्ठ से वैखरी रूप शब्द प्रकट होता है। यहां शब्द को परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में समझा जा सकता है।

हमारे शास्त्रों में शब्द तत्त्व की विवेचना भी विस्तार से मिलती है। उदात्त, अनुदात्त और त्वरित के भेद से षड्ज, गांधार, मध्यम, संचय, धैवत और निषाद आदि स्वर उच्चारण में माने जाते हैं। नाद, बिन्दु और कला शब्द की अवस्था बताते हैं। मंत्र के उच्चारण की रीति छंद से तथा आविष्कर्ता का परिचय ऋषि से होता है। हर मंत्र का एक देवता होता है, उसका बीज होता है, कीलक और शक्ति होते हैं। जो शक्ति साधक के लिए अवरोध पैदा करती है, उसके निवारण के लिए कीलक का प्रयोग किया जाता है।

मंत्र द्वारा शक्ति का संचार होता है। अनेक प्रयोग इसको सिद्ध कर चुके हैं। मंत्र को अर्थ के साथ भावपूर्वक देखना, भाव में धारण करना, संकलित करना ही विकास का मार्ग खोलता है। जप में अभ्यासपूर्वक वाचिक से उपांशु और आगे मानस में प्रवेश करना तो उचित है ही, इसके साथ ही सात्त्विक भावों के साथ लक्ष्य को चित्रित करना भी आवश्यक है। मैं स्वस्थ हो रहा हूं, मैं आत्मिक स्वरूप तक पहुंच रहा हूं,आत्मिक अनुशासन बढ़ा रहा हूं आदि लक्षित भाव साथ चलने चाहिए। प्रसन्नता और निर्मलता ही आह्लाद पैदा कर पाते हैं। समर्पण भाव से क्रिया शुरू की जाए और अन्त में जप को इष्ट को ही समर्पित कर दिया जाए, यही श्रेष्ठतम तप है। यदि इसके बदले कुछ पाने की इच्छा नहीं रहे तो यह बन्धकारक नहीं होता, अपितु बन्ध को काटता है। मांगने से मिल ही जाए यह भी जरूरी नहीं। इष्ट को साधक की पात्रता मालूम है। वह बिना मांगे कुछ अधिक भी दे सकता है। मांगने की तो हमारी सीमा सदा ही बनी रहती है।

वैज्ञानिक दृष्टि से स्पंदन ही सृष्टिमूलक है। ये ही विभिन्न स्वरूपों का निर्माण करते हैं, विकास करते हैं। जप के द्वारा हम इस कार्य में इच्छानुसार स्पंदन जोड़ने का प्रयास करते हैं और इच्छित दिशा में विकास कर पाते हैं।

योग शब्द कोश में तो इसके अनेक अर्थ हैं। व्यवहार में योग का अर्थ है-मिलाना। दूसरे अर्थ जो आजकल बहुत प्रचलित हैं, वे हैं संयोग-मिश्रण-सम्पर्क-क्रिया-पद्धति-वाहन-कवच-जादू-टोना-अभिग्रहण-सम्पत्ति-विधि-नियम-पराश्रय-गंभीर चिन्तन (चित्तवृत्ति निरोधक) निर्वचन-जोड़ना (गणित)-गुप्तचर-द्रोही-आदि। योग= य+ अ+ उ+ ग। इसमें सबसे गूढ़ अर्थ दिखाई देता है। नियंत्रित रूप से, गतिपूर्वक, 'अ' अर्थात् विष्णु अथवा अन्न (भोग्य पदार्थ) को जीवन से बाहर निकालना। आवरण हटाना, ताकि

स्वयं से स्वयं मिल सके। विष्णु यज्ञ है, सोम है, सृष्टिकर्ता और पालक है। आत्मा को अन्न पहुंचाने का कार्य विष्णु का है। अन्न को पैदा भी विष्णु ही करता है। लक्ष्मी को इसी कारण अर्थ की देवी कहा जाता है। जब तक व्यक्ति बाहर से अन्न लेता रहेगा, उसका यज्ञ चालू रहेगा। यहां अन्न का अर्थ कामना है। कामना पूर्ति के लिए ग्रहण की गई सामग्री को अन्न कहते हैं। कामना पूर्ति को ही जीवन का मोक्ष कहा गया है। पुरुषार्थ का लक्ष्य भी यही है। इसकी सफलता मूलत: इन्द्रिय निग्रह पर ही टिकी होती है। इन्द्रियां कामना पैदा करने का मुख्य स्रोत हैं। इन्द्रियों के विषय ही आवरण बनते हैं। अवचेतन मन का निर्माण करते हैं। नित्य नए बन्धन पैदा करते ही चले जाते हैं। व्यक्ति बाहर के विषय में अटकता ही चला जाता है। स्वयं (आत्मा) से दूर होता जाता है। शिक्षा ने जिस प्रकार शरीर सुख और भौतिकवाद को बढ़ावा दिया है, उससे कामनाओं का व्यापक संसार खड़ा हो गया। इस घेरे को तोड़ पाना व्यक्ति के लिए कठिन हो गया। क्योंकि ये व्यक्ति की कमजोरियां बन गईं। तप करने की क्षमता का विकास नहीं होता। अत: सम्पूर्ण जीवन ही अहंकार और ममकार की भेंट चढ़ गया। समष्टि भाव का चिन्तन जीवन से निकल ही गया।

व्यक्ति यह भी भूल गया कि वह कौन है। नश्वर शरीर में आत्मा शाश्वत है। वही पूरी उम्र शरीर का भोग करता है। शरीर मनुष्य का है। मां-बाप ने दिया है। उसमें अनेक कमियां भी हैं। इसके निर्माण का कारण सत्त्व-रज-तम में असंतुलन ही तो है। यही असंतुलित वात-पित्त-कफ रूप में शरीर की आयु तय करते हैं। शरीर का उपयोग संस्कारों के अनुरूप आत्मा करता है। शरीर स्वयं जड़ है। आत्मा की उपस्थिति से ही चेतन दिखाई पड़ता है। इस चेतना का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि आत्मा कौन-सा शरीर छोड़कर इस शरीर में आया है। पेट में मां ने क्या-क्या संस्कार दिए हैं। उसी के अनुरूप तथा प्रारब्ध के अनुसार ही यह आत्मा शरीर का उपयोग करता है। भौतिकता की चकाचौंध के कारण व्यक्ति संस्कारों के परिष्कार के प्रति जागरूक नहीं रह पाता। वह प्रवाह में जीता है। अत: आकलन/नियंत्रण का समय ही नहीं रहता।

जब व्यक्ति योग की दिशा में आगे बढ़ता है, तब ये विषय एक-एक करके उसके चिन्तन में आते हैं। प्रत्येक विषय के बारे में वह दो मार्ग तय कर सकता है। एक माया भाव का, दूसरा पुरुष भाव का। एक मार्ग संसार की ओर अग्रसर करने वाला होगा, दूसरा व्यक्ति के भीतर आत्मज्ञान का, मर्यादा का प्रकाश फैलाने वाला होगा। जीवन का यही द्वैत है और इसी में से अद्वैत का मार्ग निकालना पड़ता है। मृत्यु का अर्थ क्या है? शरीर में अग्नि और सोम का योग विच्छेद हो जाना। अग्नि का निकल जाना और शुद्ध सोम का रह जाना। ब्रह्म और माया भाव में भी माया के कारण ब्रह्म भाव से विच्छेद हो जाता है। माया के सहारे

से ही ब्रह्म के साथ योग करना अथवा 'अहं ब्रह्मास्मि' रूप को प्राप्त हो जाना योग का लक्ष्य है। आज की शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान नहीं है। जीवन दर्शन से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। व्यक्ति जीवन यापन तथा इच्छा पूर्ति में ही पूरी उम्र व्यस्त रहता है। नित नई इच्छाओं का जाल फैलता जाता है। प्रचार सामग्री का जोर तथा जीवन के लक्ष्यों का अभाव व्यक्ति को प्रवाह में डालकर छोड़ देता है।

जैसे नदी में एक लकड़ी का टुकड़ा बहाव के साथ स्वच्छन्दता से बहता जाता है। किसी प्रकार का कोई भी नियंत्रण नहीं होता। प्रवाह सदा ही नीचे की ओर ले जाता है। बिना दृढ़ संकल्प के ज्ञान भी कार्य नहीं करता। तब व्यक्ति निरन्तर स्वयं से दूर होता जाता है। दूसरी ओर जो व्यक्ति शुद्ध ज्ञान के भरोसे जीता है, कर्म से भागता है, वह भी अहंकार के प्रवाह में बहता जाता है। इस प्रकार ज्ञान एवं कर्म के आवरण आत्मा पर बढ़ते जाते हैं। व्यक्ति यथार्थ से दूर हो जाता है। शिक्षा ने भी व्यक्ति को कैरियर में इतना व्यस्त कर दिया कि उसे अपने अलावा किसी की चिन्ता करने का समय नहीं मिल पाता। इस व्यष्टि भाव ने उसके जीवन को संकुचित कर दिया। वह जीवन से कुछ सीख ही नहीं सकता। घर उसके लिए पाठशाला का कार्य नहीं कर सकता। घर में अन्य लोग, संबंधी, स्वजन आदि होते ही नहीं। घर से दूर रहकर नौकरी करना उसकी अनिवार्यता हो गई है। यह भी वियोग का एक और आयाम है। इसमें आत्मा का विस्तार संभव ही नहीं है। पहले शरीर का योग होता है। उसी में से विचारों का और भावनाओं का योग निकलता है। तब एक वातावरण बनता है, जिसमें व्यक्ति समष्टि भाव में जीने लगता है। योग की यही शुरुआत है।

◆◆◆

व्यवहार

विद्या मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो ज्ञानी कहलाने पर भी अज्ञानी है। दुनिया के सारे शास्त्र केवल मनुष्य के लिए बने हैं। किन्तु, इसके बाद भी ज्ञान की धारा का प्रवाह अवरुद्ध दिखाई पड़ता है। हमारा शास्त्रीय उद्घोष-'सा विद्या या विमुक्तये' लुप्त हो गया है। यहां तक कि शिक्षा में भी विद्या का स्थान आज ज्ञान की आभासयुक्त सूचनाओं ने ही ले रखा है। ज्ञान का व्यावहारिक पक्ष सर्वथा गौण है।

अविद्या हमारा मूल पाश है जिसके कारण हम पशु श्रेणी में आते हैं। इसे सीखने की जरूरत ही नहीं है, यह तो प्रकृति का खुला माया राज्य है। इस प्रकार अविद्या का क्षेत्र विद्या से बहुत बड़ा हो जाता है। यहां साधनों की चकाचौंध है, जबकि विद्या में केवल तप है, श्रम है। अविद्या हमारे दु:खों का मूल कारण है, क्योंकि यह हमें साध्य की अपेक्षा साधनों की ओर ले जाती है। मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण ढीले करती है। अज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती है। अविद्या के रहते हम इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं कर पाते।

माया से जुड़ा हुआ ब्रह्म सृष्टिकामक है। वह शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, जबकि माया कर्मरूप अविद्या। माया ही ब्रह्म का आवरण बनती है। आवरण से मुक्त होने का मार्ग विद्या है। विद्या से पुन: प्रकाश प्रकट हो जाता है। इसके लिए ज्ञान और कर्म दोनों आवश्यक हैं। ज्ञान की परिभाषा है जो अनेक में एक को देख सके, समझ सके, वही ज्ञान है। ज्ञान पाए बिना कर्म का आरम्भ ही नहीं होता। कर्म के पूर्ण हुए बिना ज्ञान भी पूर्ण नहीं होता। यह लौकिक व्यवहार के ज्ञान की बात है, वास्तविक ज्ञान इससे भिन्न होता है, जो त्रैगुण्य से परे है। जीवन के चारों ओर बिखरे हुए सार्थक प्रवाहों का एकमुखी होना ही ऊर्ध्वमुखी होना है। यही कर्म है। जैसे कर्म के बिना ज्ञान नहीं, वैसे ही ज्ञान के बिना भक्ति नहीं। कहीं-कहीं भक्ति से भी माया का आवरण भंग होकर ज्ञान का उदय बताया गया है।

एक ओर तो ज्ञान नित्य है, वह पैदा नहीं होता। ज्ञान में प्रकाश और प्रकाश्य दोनों समाहित रहते हैं, अर्थात् विषय बदलते रहते हैं; किन्तु ज्ञान नहीं बदलता। ज्ञान और अज्ञान के बारे में एक बात यह भी है कि जब दोनों अन्तर्मुखी होते हैं तब उन्हें पौरुष कहा जाता है और जब इनकी अभिव्यक्ति बुद्धि के द्वारा बहिर्भाव में होती है तब वही बौद्ध ज्ञान और बौद्ध अज्ञान कहलाते हैं। अत: जो व्यक्ति को कामना से जुड़े कर्मजाल में बांधे रखे, दु:ख-

सुख की निमित्त बने और व्यक्ति की भेद-दृष्टि को बनाए रखे, वही अविद्या है। इसके विपरीत, जो इस अज्ञान और अविद्या से मुक्त करा सके, व्यक्ति व समाज में सुख का प्रसार करे और व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार की ओर प्रेरित करती रहे, वही विद्या है। इसका अर्थ है सकारात्मक भाव में जीना और उसका फलित है व्यक्ति अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों और अर्जित ज्ञान को समझ सके, जीवन के प्रति अपनी अवधारणाओं का आकलन कर सके, आत्मा पर छाये हुए आवरणों को एक-एक कर हटा सके और अन्त में समाज दु:खों से, कलह और उत्पीड़न से मुक्त हो सके।

विद्या किसी क्षेत्र विशेष का आंशिक कार्य नहीं है, जीवन की समग्रता का इसमें समावेश रहता है। बहिर्जगत में विचरण करते हुए अन्तर्मुखी यात्रा की निरन्तरता ही विद्या को प्रतिष्ठित करती है। व्यक्ति का नित्य अभ्यास उसको अपने मन और इन्द्रियों के कार्यकलापों को समझने का और उन पर नियंत्रण पाने का मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्ति अपनी भावनाओं की दिशा को परिवर्तित कर अपने अभाव और स्वभाव में वांछित परिवर्तन कर पाता है। वह साधनों में जीता है; किन्तु साध्य के साथ जुड़ा रहता है। कर्तव्य भाव अथवा अहंकार से नए कर्म-जाल पैदा नहीं करता। विद्या ही व्यक्ति की माया रूपी भेद-दृष्टि को सम-दृष्टि का रूप देती है, व्यक्ति को दृष्टा बनाती है। तब, व्यक्ति के लिए सुख-दु:ख समान हो जाते हैं।

वस्तुत:, विद्या तथा अविद्या दोनों ही माया शक्ति के रूप हैं। अविद्या रूपी मोह में बांधकर जगत्-चक्र को चलाते रहना तथा विद्या-विज्ञान के द्वारा भक्तों का उद्धार कर उन्हें त्रिगुण-चक्र में नहीं बांधना इस शक्ति के कार्य हैं। बन्धन टूटने को ही मुक्ति कहते हैं।

व्यक्ति की वासनाएं और संस्कार ही नए आवरण पैदा करते हैं और इन्हीं के कारण आत्म-प्रकाश कम होता जाता है। बाहर जितना प्रकाश दिखाई पड़ता है, भीतर उतना ही अंधकार देखा जा सकता है। जैसे-जैसे ज्ञान और कर्म के योग से ये आवरण हटते जाते हैं, भीतर का प्रकाश पुन: प्रकट होने लगता है। व्यक्ति को अपना स्वतंत्र स्वरूप दिखाई पड़ता है। धीरे-धीरे उसको यही स्वरूप सम्पूर्ण सृष्टि में नजर आने लगता है। उसके मन में सृष्टि के हर जड़-चेतन के प्रति सम्मान का नया भाव उदित होता है। 'विद्या ददाति विनयम्' का यही आधार है।

गुरु माता गुरु होती है। जीवन का सारा प्रारम्भिक ज्ञान माता देती है। शरीर देती है और दीक्षा भी देती रहती है। किन्तु; आज दीक्षा का क्रम समय के साथ लुप्त होता जा रहा है। माता का दीक्षा-क्रम एक ही परम्परागत मंत्र तथा एक ही देवता का रहता है जो कुल की परम्परा का ही एक मंत्र होता है। माता का ऋण भी इन्हीं कारणों से कभी चुका

पाना संभव नहीं है। माता को गुरुओं से भी बड़ा गुरु माना गया है। लेकिन, ज्ञानी गुरु का स्थान भी कोई छोटा नहीं होता है। वह माता से भी एक स्थान ऊपर होता है। माता बालक के शरीर धारण के साथ-साथ जीवन के व्यावहारिक ज्ञान की दात्री है; किन्तु गुरु जीव के पूर्वजन्म के ज्ञान को समझता है, इस जन्म की आवश्यकताओं का आकलन करता है और शिष्य के साथ जुड़कर उसकी जीवन-यात्रा में सहायक बनता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस जीवन की यात्रा ही अगले जन्म की भूमिका बनाती है। गुरु अगले जन्म को तय करने में भी बड़ी भूमिका निभाता है।

गुरु ही शिष्य को गुरु बनाता है। अपनी प्रतिकृति बना देता है। वह शिष्य को आत्मदर्शन का मार्ग दिखाता है, उस पर चलाता है और स्वयं की छवि उसमें देखता है। एक स्तर पर पहुंचकर वह शिष्य को भी गुरु रूप में मान लेता है। अर्थात् वहां न गुरु गुरु है, न शिष्य शिष्य। दोनों एक हो जाते हैं। केवल ज्ञान शेष रह जाता है।

गुरु क्रमशः शिष्य को पाप-मुक्त करता है, उसके आवरण हटाता है, उसका ताप हरण करता है। इसके लिए स्वयं भी तप करता है। ईश्वर से प्रार्थना करता है, चिन्तन-मनन करता है। शिष्य के लिए वह नित्य नवीन ज्ञान का स्वरूप तैयार करता है, शिष्य को किस रूप में ग्राह्य होगा, उसी के अनुकूल ज्ञान को प्रसवित करता है। शिष्य के स्थान पर सारी प्रक्रिया से पहले स्वयं गुजरता है।

शिष्य के लिए गुरु कठोर होता है। माता सदा निर्मल रहती है। कठोर अनुशासन के बिना न शरीर की साधना संभव है, न मन की। भावनाओं का परिष्कार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है और अत्यन्त कठिन भी। इसके अन्तर्गत व्यक्ति सत्त्व, रज और तम की मात्रा को सत्त्व में बदलने का कार्य करता है। इसके बिना लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं होती। समर्पण का भाव भी इसके बिना आगे नहीं बढ़ सकता। गुरु-शिष्य का एक ही तो संबंध है- आस्था और विश्वास का। यही समर्पण का जनक भी है। बिना शंका के गुरु के आदेश को मानने लायक बनाना तथा उसे चारों ओर से समेटकर ज्ञान-प्रवाह में केन्द्रीभूत करना वैसा ही है जैसा कि सोने को पहले तपाना, फिर नए रूप में ढालना और घड़ना।

कृष्ण ने अर्जुन को गीता का जो उपदेश दिया, वह अर्जुन की क्षमता के अनुरूप ही अवतरित किया गया था। हमारा स्तर भी जब तक अर्जुन जैसा नहीं होगा, हम गीता को उस रूप में नहीं समझ सकेंगे। गुरु इस गीता को भी शिष्य के स्तर पर उतारकर खोलता है। वेद, पुराण, दर्शन आदि को भी शिष्य की भाषा में प्रस्तुत करता है। शिष्य का पूरा जीवन ही परीक्षा काल होता है। गुरु हर संभावित स्थिति के अनुसार शिष्य को तैयार

करता है। उसके संकल्प और आत्म-विश्वास को दृढ़ करता जाता है। उसके अहंकार को कम करता जाता है।

ज्ञान का यह मार्ग अत्यन्त विकट है, भटकावों से भरा है। सूर्य का क्षेत्र है- अत्यन्त उष्ण व्यक्ति को उत्तेजित भी शीघ्र कर देता है। अतः संयम की दृष्टि से भी गुरु की आवश्यकता रहती है। भक्ति मार्ग मन का है, चन्द्रमा का है, सौम्य और आनन्द का मार्ग है। केवल आस्था से ही चलता रहता है। ज्ञान का मार्ग ऐसा नहीं है। चित्तवृत्तियों की चंचलता इसमें बड़े-बड़े अवरोध पैदा कर सकती है। विकर्षण पैदा कर सकती हैं। किए-कराए को उल्टा भी कर सकती हैं, अतः इस मार्ग में गुरु की भूमिका प्रधान होती है। अच्छे गुरु निश्चित ही दुर्लभ हैं।

ऐसे शिष्य भी दुर्लभ हैं जो गुरु बनाने से पूर्व भावी गुरु का परीक्षण करते हैं तथा संशय निवारण के बाद ही दीक्षित होते हैं। तभी तो आस्था की शुरुआत हो सकती है। गुरु में स्वयं का भविष्य दिखाई दे सकता है। शिष्य भी तभी अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकता है। गुरु अपने मार्ग से विचलित न हो, इसका भी पूरा ध्यान रखा जाता है। आज गुरु को धन-बल के सहारे बिगाड़ने तथा खरीदने के प्रयास होने लगे हैं, जो अंत में शिष्य का ही अहित करते हैं। अच्छा शिष्य गुरु के भावों का संचालन करता है और दोनों मिलकर एक हो जाने की यात्रा करते हैं।

'गुरु' अर्थात् 'बड़ा'-गुर सिखाने वाला। माँ-बाप के बाद 'आचार्य देवो भवः' का सूत्र हमारे जीवन में प्रवेश करता है। क्यों? क्या बिना गुरु के जीवन सम्भव नहीं है? क्या माता-पिता गुरु का कार्य नहीं कर सकते?

क्यों हमारे वेदों ने गुरु को इतना महत्त्व दिया है कि व्यक्ति को मृत्यु से पूर्व देवताओं और पितरों के साथ-साथ गुरु (ऋषि) के ऋण से मुक्त होना भी आवश्यक माना? यह मान लिया गया कि गुरु तो होगा ही और उसका ऋण भी चुकाना ही पड़ेगा। ऐसा हो ही नहीं सकता कि जीवन में गुरु ही नहीं हो।

ऋषि, पितर, देव और प्राण मिलकर सृष्टि की रचना करते हैं। ये हमारे जन्म में भी कारक होते हैं। जीवनकाल के चार आश्रम माने गए हैं। ब्रह्मचर्याश्रम हमारा शिक्षाकाल है। गुरु हमारे जीवन में प्रारम्भ से ही महत्त्वपूर्ण सूत्रधार होता है। वह जीवन के दर्शन को हमारे सामने रखता है। ईश्वर की सृष्टि से हमारा परिचय कराता है, हमें सृष्टि में अपना स्थान बताता है और अन्त में हमें ईश्वर को पाने का, उसके साथ एकात्मभाव स्थापित करने का मार्ग दिखाता है। ईश्वर के प्रति हमारे मन में जिज्ञासा का भाव पैदा करना, उसको पाने की उत्कण्ठा पैदा करना और हमारे मन को सही अर्थों में व्याकुल कर देने का कार्य माता-

पिता नहीं कर सकते। हमारे भीतर के गुरु के प्रति समर्पण भाव को जाग्रत करना कोई सहज कार्य नहीं है। उसके बिना जीवन की सार्थकता भी समझ में नहीं आ सकती। हो सकता है कि उसके बाद गुरु की आवश्यकता ही समाप्त हो जाए; किन्तु इस मार्ग में हमें दीक्षित करने का कार्य गुरु-मंत्रों तथा उपदेशों द्वारा करते हैं। यह बीजारोपण आगे चलकर जीवन-शक्तियों का प्रस्फुटन करता है।

व्यक्ति पूरे जीवनकाल में इन विधाओं का अभ्यास करता है, शक्तियां अर्जित करता हुआ लोककल्याण में रत रहता है। भविष्य में उसके द्वारा अर्जित ज्ञान का लोकहित में उपयोग होता रहे, ज्ञान लुप्त न हो, इसके लिए उसको भी किसी को दीक्षित करना पड़ता है। ज्ञान का सम्प्रेषण पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहे, यह आवश्यक है। नए व्यक्ति को तैयार करना ही मुक्ति है। इसी कारण देश में अनेक सम्प्रदाय और मान्यताएं पैदा हुईं जो विभिन्न गुरुओं के नामों से चल रही हैं।

युवावस्था में गृहस्थ वंश-विस्तार करके पितृ-ऋण से मुक्त होता है। वानप्रस्थ आश्रम में देवऋण चुकाने का क्रम निश्चित किया गया है। संन्यास आश्रम केवल लोकहित अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है। इस सन्दर्भ में आज के गुरु का आकलन करें तो लगता है कि उसकी दृष्टि जीविका-उपार्जन के आगे होती ही नहीं। छात्रों के भावी जीवन पर दृष्टि रखना उसकी जिम्मेदारी ही नहीं। जीवन-संघर्ष में काम आने वाली, अच्छे-बुरे का भेद करने वाली, हित-अहित का ज्ञान कराने वाली शिक्षा उनको स्वयं के लिए ही नई लगती है। आज शिक्षक गुरु से अध्यापक, अध्यापक से 'सर' और 'मेम' बनकर रह गए हैं। छात्रों को भी उनका आदर करने की अपेक्षा महसूस नहीं होती। आत्मीय भाव, वात्सल्य और दुःख-सुख का तो नाता ही नहीं है। अभिभावक भी बच्चे के परीक्षा परिणाम के नम्बर देखकर स्कूल का आकलन कर लेते हैं। गुरु तो बीच में आता ही नहीं। शायद ही कोई स्कूल आज किसी अध्यापक विशेष के कारण चलता होगा।

शिष्य अज्ञानी और गुरु ज्ञानी होता है। शिष्य के लिए गुरु की ज्ञान-परिधि बहुत लम्बी होती है।

<u>गुरुकृपा</u> 'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाय' अथवा 'आचार्य देवो भव', ये उक्तियां हमारी ज्ञानधारा की मूल हैं। आज अचानक ऐसा क्या हो गया कि गुरु की उपेक्षा होने लग गई है? क्या वास्तव में कम्प्यूटर या इंटरनेट गुरु का स्थान ले सकेंगे? क्या परीक्षा के अलावा जीवन में गुरु की कोई भूमिका ही शेष नहीं रह गई है? तब, माता-पिता के साथ गुरु को 'देवो भव' कहने की सार्थकता कहां रहेगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है कि यदि यह गौरवमयी अवधारणा समाप्त हो जाएगी तो जीवन से क्या निकल जाएगा और

क्या शेष रह जाएगा? गुरु शाला की कक्षाएं ही पास नहीं कराता, जीवन की परीक्षा भी पास करवाता है। गुरु में शिष्य की क्षमता का आकलन करने की और उसी अनुरूप उसको तैयार करने की शक्ति होती है। आवश्यकता पड़ने पर गुरु भटकने से रोकता भी है। गुरु का एकमात्र लक्ष्य शिष्य का कल्याण ही होता है।

गुरु को ज्ञानी और शिष्य को अज्ञानी कहा जाता है। गुरु ही प्रकाश के बीज बोता है तथा शिष्य की क्षमता को समय की आवश्यकता के अनुरूप बढ़ाता है। शिष्य की प्रकृति, संस्कार, रुचि तथा सामर्थ्य के अनुसार ही गुरु-ज्ञान प्रदान करता है। शिष्य स्वयं कुछ तय नहीं कर सकता। वह अपनी स्थिति एवं क्षमताओं का आकलन भी नहीं कर पाता है। इसीलिए तो गुरु की महत्ता है और निष्ठावान गुरु भी मुश्किल से या भाग्य से ही मिलता है।

गुरु जीवन में सत्त्व का बीजारोपण करता है। तम और रज को कम कर शुद्ध ज्ञान के प्रकाश का मार्ग प्रशस्त करता है। चित्त को निर्मल कर सत्त्व गुण की ओर ले जाने का कार्य करता है। एक ऐसा कार्य जो माता-पिता के लिए भी दुर्लभ है। श्रेष्ठ शिष्य उसी को कहा गया है जो गुरु के ज्ञान का सम्यक् पारायण कर सके। यहीं तक शिष्य की गति सम्भव है। ज्ञान-यात्रा में गुरु समय-समय पर नियंत्रण बनाए रखता है। भटकाव रोकने का कार्य करता है।

हर मीठी वस्तु को मधुर कहते हैं। किन्तु; शहद कितना ही मीठा हो उसे मधु ही कहते हैं, क्योंकि शहद की मधुरता को मधुमक्खियां पहले ही पचा चुकी होती हैं और इस कारण शहद सीधा शरीर में जाकर रस में मिल जाता है। अन्य चीजों को पहले पचाना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार गुरु भी ज्ञान का पहले स्वयं पाचन करता है ताकि शिष्य उसे शीघ्र पचा सके। शिष्य की पाचन-शक्ति के अनुरूप ही गुरु ज्ञान के स्तर तय करता है। पहले शिष्य के स्तर को बढ़ाने का प्रयास करता है।

ज्ञान ग्रहण करने के मूल में इच्छाशक्ति प्रमुख होती है। यह भी अज्ञान के कारण स्थिर नहीं रहती। मानव स्वभाव ही ऐसा है। संकल्प के साथ-साथ विकल्प उसे घेरे रहते हैं। इनका जाल भी बहुत विशाल होता है। संकल्प विस्मृति में जा सकते हैं या प्रमाद के कारण व्यक्ति अन्यथा व्यवहार कर लेता है। अनेक शंकाएं मन में उठती रहती हैं, जो संकल्प को स्थाई नहीं होने देतीं। गुरु इनका समाधान करता है। व्यक्ति को प्रेरित करता रहता है, उसका मनोबल बनाए रखता है। शिष्य को संकल्पवान बनाए रखता है।

एक बात अवश्य है कि गुरु का अभिमान रहित होना भी आवश्यक है। उसको ज्ञान का अभिमान नहीं होना चाहिए। जब शिष्य से समर्पण की अपेक्षा हो तो गुरु का समर्पण भाव भी उतना ही जरूरी है। इसके बिना कल्याण भाव पैदा नहीं हो सकता। शिष्य में गुरु

अपनी प्रतिष्ठा नहीं कर सकता, बीजाधान नहीं कर सकता, तब फल कहां से प्राप्त होंगे।

हमारे जितने भी शास्त्र व पुराण हैं, वे सभी परोक्ष भाषा में लिखे गए हैं। रामायण हो या फिर कृष्ण की रासलीला, या फिर ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र की कथाएं, सभी हर प्राणी पर लागू होने वाले वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं। ये कोरी कहानियां नहीं हैं। गुरु ही इनका शिष्य में प्रतिपादन करता है। विषयों को समझने में सहायता करता है। शिष्य दृष्टि का विकास करता है। इसका एकमात्र मुख्य आधार यह है कि गुरु स्वयं भी भावातीत अखण्ड से एक होकर उपदेश करता है। वही वाणी कल्याणकारी होती है जो गुरु को किसी भाव विशेष से बांध नहीं सकती। अतः, स्वतः-स्फूर्त प्रेरणा ही शब्द रूप में आती है और तभी गुरु-कृपा सही रूप में प्रकट होती है।

बिना कृपा के भी ज्ञान का लाभ नहीं मिलता। कोरी कृपा से भी काम नहीं चलता। उसे धारण करने की शक्ति भी शिष्य में होनी चाहिए। जब शिष्य को गुरु स्वीकार कर लेता है तब वह आलोक-दान के साथ-साथ आलोक-ग्राह्य-क्षमता का संचार भी करता है। गुरु की कृपा और शिष्य के प्रयत्न मिलकर ही लक्ष्य की प्राप्ति करते हैं।

जीवन संकल्प-विकल्प के बीच झूलता रहता है। विकल्पों के बाहर निकलकर ही इच्छाशक्ति अथवा संकल्प-शक्ति शिष्य का निर्माण करती है। शिष्य का समर्पण भाव ही गुरु-शक्ति से कृपा प्राप्त करने में सफल होता है, तभी व्यक्ति की प्राण शक्तियां केन्द्रीभूत हो पाती हैं तथा पाप के क्षय का मार्ग प्रशस्त हो पाता है। गुरु का ज्ञान और शिष्य का कर्म मिलकर पूर्णता तक पहुंचकर ही प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं। यही गुरु की महिमा है। बिना गुरु के जीवन में पूर्णता आना सम्भव नहीं।

गुरु-ज्ञान सृष्टि का मूल आधार ब्रह्म और माया को माना गया है। अर्थात् ज्ञान और अज्ञान के आधार पर ही सारा सृष्टि-क्रम चलता है। यह इस बात का संकेत भी है कि सारा जीवन-व्यवहार गुरु-शिष्य की अवधारणा से ही चलता है। शेष सभी संबंधों को मानव निर्मित अथवा काल्पनिक कहा गया है। जन्म के साथ ही माता ज्ञान का सूत्रपात करती है। वही प्रथम गुरु बनती है। मां को गुरु से भी बड़ा गुरु कहा गया है। अन्य गुरुओं के ऋण (ऋषि-ऋण) से मुक्त होना संभव माना गया है; किन्तु मां के ऋण से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है।

पिता भी जीवन में व्यावहारिक ज्ञान का पथ-प्रदर्शक होता है। वह भी गुरु का स्थान रखता है। बुढ़ापे में जब पिता का शरीर कृश हो जाता है, अशक्त हो जाता है, तब पुत्र उसके कार्य करता है, सहायक बन जाता है। वह गुरु की तरह कार्य करता है। पत्नी भी सलाहकार के रूप में गुरु की भूमिका निभाती है। अर्थात् जो ज्ञान दे, वही गुरु होता है।

यहां परस्पर संबंध की कोई खास भूमिका नहीं है। रास्ते में मार्ग बताने वाला भी गुरु का कार्य करता है। इसीलिए जीवन को गुरु-शिष्य की धारा कहा जाता है।

गुरु शब्द 'गृ' धातु से बनता है। गृ का अर्थ है निगल लेना, अर्थात् जो शिष्य के पापों को निगल जाए, वही गुरु है। अत्यन्त दुष्कर कार्य है गुरु का। शिष्य को जानना, उसकी भाव भूमि को समझना, उसके पूर्व जन्म के संस्कारों को समझना और उसके आगे का विस्तार क्रम तय करना, सभी गुरु के कार्य हैं।

जीवन का ज्ञान अ से ह तक सीमित होता है, जो हमारी वर्णमाला को देखकर समझा जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति ने पूर्व जन्म में प-फ तक का ज्ञान अर्जित कर लिया है तो इस जन्म में उसको आगे का ज्ञान चाहिए। बिना समझे यदि उसे वापिस अ, आ, इ से शुरू करा दिया तो अनर्थ हो जाएगा। एक तो उसका मन ही नहीं लगेगा। हो सकता है कि पिछला भी सिमटने लग जाए। इस धरातल पर गुरु की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

आज हम देखते हैं कि धनी शिष्य की जेब के अनुसार अनेक गुरु मिल जाते हैं; किन्तु उसके पूर्व जन्म के आधार और भविष्य की आवश्यकताओं को समझकर उसके आवरण हटाने का कार्य करने में सक्षम गुरु दुर्लभ ही होते हैं। शिष्य के स्वभाव के अनुकूल उसको तैयार करना पड़ता है, उसको बांधे रखना भी पड़ता है। और, इस सारी प्रक्रिया में शिष्य का कल्याण ही उसका प्रथम लक्ष्य होता है। इसीलिए गुरु का स्थान बहुत बड़ा है, ईश्वर से भी बड़ा।

गुरु के साथ नुगरा होना भयंकर पाप माना गया है। एक ओर तो आप गुरु के दान से बड़े होकर वैसे ही उऋण (अकृतज्ञ) नहीं हो सकते, ऊपर से नुगरे हो जाओ! रसातल में भी जगह नहीं मिलेगी। ऐसे व्यक्तियों के लिए अकाल मृत्यु और शस्त्राघात जैसी अनहोनी घटनाओं का विवेचन मिलता है। इसी प्रकार माता के ऋण से उऋण होने के लिए भी अधिक से अधिक प्रयास करने पड़ते हैं। पिण्डदान में भी माता के पिण्ड शेष सभी पिण्डों के योग के बराबर होते हैं। केवल माता ही स्वेच्छा से बालक को ऋण मुक्त कर सकती है।

गुरु-महिमा से हमारे शास्त्र भरे पड़े हैं। किन्तु; केवल पात्रता वाले गुरु के लिए ही ये बातें लागू होती हैं। गुरु, जो अहंकार मुक्त होकर शिष्य को तैयार करता है, वह स्वयं को ऋषि-ऋण से मुक्त करने के भाव से ज्ञान का प्रसव करता है। लोक-कल्याण के भाव से इसको तप रूप मानता है। वह पूर्ण मनोयोग से शिष्य को, अपना प्रतिबिम्ब मानकर, अपने प्रतिनिधि के रूप में तैयार करता है। भावी जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की

दृष्टि से उसको तैयार करता है। जीने की सामर्थ्य प्रदान करता है। भले-बुरे में भेद करना सिखाता है। ईश्वर में आस्था प्रतिष्ठित करता है। जीवन में शान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। ज्ञान का आलोक दान करता है।

ज्ञान के भी कई धरातल हैं। इन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान, दोनों का समावेश होना विकास के लिए आवश्यक है। इसके लिए व्यक्ति के सूक्ष्म धरातल को तैयार करना पड़ता है। उपासना का मार्ग, मंत्र दीक्षा आदि इसी क्रम को आगे बढ़ाते हैं। व्यक्ति की क्षमताओं तथा विभिन्न शक्तियों को बढ़ाते हैं। इससे व्यक्ति में नए अनुभवों का संचार होता है, स्वयं से उसका गहन परिचय होता है और नया आत्मविश्वास जागृत होता है। जीवन से रज और तम को उदारता रूप सत्त्व में परिवर्तित करने का एक अनवरत क्रम शुरू होता है। यही विकास का मार्ग है। त्रिगुण के आवरणों को पार करके। श्वोवसीयस रूप अन्तर् मन को समझना ही ज्ञान का चरम लक्ष्य है। जितना इस जन्म में संभव हो, कर लें। शेष अगले जन्म के लिए छूट जाता है। नए जन्म में पूर्व जन्म के अभ्यास का स्वतः उपयोग हो जाता है। इस प्रकार उन्नति का क्रम टूटता नहीं। इसीलिए गीता में 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' कहकर भगवान् ने स्पष्टीकरण कर दिया है।

गुरु-शिष्य गुरु जीवन-विकास की एक प्रमुख आवश्यकता है। वह दर्शन और ज्ञान दोनों का आधार तैयार करता है। आत्मा के दो ही कार्य हैं- देखना और जानना- 'यः किंचित् करोति यत्किंचित् जानाति स आत्मा'। चेतना के बिना 'करोति' बन नहीं सकता। शेष जो कुछ दिखाई देता है, वह त्रिगुण का आवरण मात्र है। इस आवरण को हटाकर स्वयं का ज्ञान कराना ही गुरु का कार्य है।

अच्छा गुरु कोई हजारों में एक मिलता है। सौभाग्य से ही गुरु प्राप्त होता है और सौभाग्य से ही अच्छा शिष्य। गुरु के लिए शिष्य पुत्रवत् होता है। उसकी परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से भी और शिक्षण की भावभूमि के अनुरूप भी। शिष्य में अनुकूल भावभूमि हो तो गुरु स्वयं चलकर उसके पास आता है। उसको यह ज्ञात रहता है कि कौन उसका शिष्य बनने योग्य है। स्वयं शिष्य न तो गुरु को आसानी से ढूंढ़ सकता है और न पहचान सकता है।

गुरु ही शिष्य की परीक्षा लेता हो, ऐसा नहीं है। शिष्य भी गुरु को स्वीकार करने से पूर्व गुरु की परीक्षा लेता है अथवा ले सकता है। गुरु उस समय तक परीक्षा लेता रहेगा, जब तक कि शिष्य का धैर्य टूट न जाए, उसका अहंकार चूर-चूर न हो जाए। शिष्य बनाने से पूर्व उसके प्रतिरोधक संस्कार को समाप्त करना अनिवार्य होता है। फूल के समान शिष्य में गुरु महक (सुगंध) भरता है। उसकी परीक्षा भी लेता रहता है। सेवा, डांट-फटकार सब

कुछ शिष्य के अहंकार को गलाने के लिए आवश्यक होते हैं। हर स्थिति में गुरु के प्रति श्रद्धा बनी रहे, क्रोध न आने पाये, यही शिष्य की सफलता का सूचक है।

गुरु के आदेश-निर्देश पर प्रश्न करना उचित नहीं समझा जाता। प्रायः शिष्य को गुरु की इच्छा और कारण का ज्ञान नहीं होता। केवल अटूट विश्वास के सहारे ही यह क्रम चल सकता है। आज के भौतिकवाद युग में व्यक्ति रातोंरात कुछ बन जाना जाता है। बीज को पेड़ बनने, फूल लगने और फल आने का समय नहीं देना चाहता। उसमें धैर्य है ही नहीं। यही नहीं, आज तो शिष्य भी गुरु को दक्षिणा देकर खरीदना चाहता है। फलतः, उसको गुरु भी ऐसे ही मिलते हैं जो भुलावे में रखते हैं, ज्ञान होता ही नहीं। अच्छा गुरु तो पहले धीरज का पाठ पढ़ाता है। ज्ञान के प्रवाह को रोक कर पहले ठोस धरातल बनाता है।

स्वयं गुरु सर्वप्रथम जीवन भर की साधना से ज्ञान का अर्जन करता है। दुरूह विषयों को समझने का प्रयास करता है। उनके उपयोग की मीमांसा करता है। जैसे किसी वस्तु को देखकर ही उसका मूल्य किया जा सकता है, उसी प्रकार शिष्य भी अपने भावी जीवन की कीमत नहीं आंक सकता, गुरु ही उसका मूल्यांकन करते हैं। अतः, उसकी भी तपने की तैयारी होनी चाहिए, सोना बनाने के लिए।

योग्य गुरु अपने ज्ञान का दंभ कभी नहीं भरता। वह स्वयं भी एक शिष्य के रूप में ज्ञान अर्जित करता रहता है। यदि वह कहता है कि उसे 'कुछ' आता है तो उसका आगे सीखने का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार वह शिष्य की गलतियों को भी तुरन्त दूर करने का प्रयास करता है, ताकि आगे चलकर शिष्य कोई बड़ी भूल न कर बैठे। जब गुरु स्वयं शिष्य के लिए तपने को तैयार हो, तो वह शिष्य से भी अपेक्षा रखता है कि वह उसका आदेश माने, सम्मान करे।

आज समय का अभाव है। शिष्य कुछ पाना चाहता है, गुरु देना भी चाहता है; किन्तु शिष्य कहता है कि मुझे तो कुछ ऐसा दो कि मुझे समय नहीं लगाना पड़े और जो चाहता हूं वह मिल भी जाए। यह कैसे संभव है? इससे स्पष्ट होता है कि शिष्य कितना संकल्पवान है, कितना जिज्ञासु है और लक्ष्य के प्रति कितना दृढ़ है? कोई भी गुरु ऐसे शिष्य को तैयार नहीं कर सकता। गुरु से ऐसे प्रश्न करने भी नहीं चाहिए।

अच्छे गुरु के तो पास बैठने से ही मन शान्त होने लगता है। विचारों का आवेग थमने लगता है। कुछ बोलने की या प्रश्न करने की आवश्यकता ही नहीं होती है। यह भी आवश्यक है कि शिष्य स्वयं भी समर्पित भाव के साथ ही गुरु के समक्ष बैठे। अच्छा गुरु मितभाषी और मित आहारी होता है। उसके आहार का बड़ा भाग सूक्ष्म ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। गुरु के मुख की आभा भी कान्ति बिखेरती रहती है। उसकी शक्ल उसके अपने

इष्टदेव की तरह दिखाई देती है, क्योंकि इष्ट भी सदा उसी के साथ जुड़ा रहता है। फिर एक क्यों न दिखाई दे?

इसी प्रकार अच्छे गुरु धन एकत्र नहीं करते, आश्रम की चिन्ता नहीं करते। ये भाव उसे गुरुत्व से दूर ले जाते हैं। गुरु का कार्य देना है, लेना नहीं है। 'तेरा तुझको अर्पण'... उसके पास जो कुछ ज्ञान है, वह 'उसी का' है, लेने वाला भी 'उसी' का है, फिर देने में कष्ट कैसा? लेने का अर्थ कि उसका मोह अभी टूटा नहीं। वह शिष्य को भी कुछ नहीं दे सकता। इसी प्रकार अर्थ साधन के मार्ग और चमत्कार का प्रदर्शन भी गुरु के कार्य नहीं हो सकते। उसको स्वयं ज्ञान के प्रति श्रद्धावान होने की जरूरत है।

गुरु मित्र होता है, परमशक्ति होता है, प्रेरक होता है। शिष्य के सामने वह अनेक चुनौतियां रखता है। गुरु-शिष्य का संबंध गहन आत्मीयता का होता है। सच तो यह है कि दोनों अलग होते हुए भी एक हो जाते हैं। भावों में सघनता आ जाती है। दोनों ही एक-दूसरे को समर्पित रहते हैं। दोनों को एक-दूसरे में अपना इष्ट नजर आने लगता है। गुरु का तो प्रतिबिम्ब शिष्य होता है। 'जानत तुमहि तुमहि होइ जाई' के अनुसार गुरु से ज्ञानमय प्रकाश ग्रहण करने के बाद शिष्य भी गुरुभाव में ही चला जाता है। इस प्रकार शिष्य और गुरु का द्वैत टूट जाता है, अद्वैत स्थिर हो जाता है।

वर्तमान जीवन दो समानान्तर धाराओं के बीच निरन्तर गतिमान रहता है। दैनिक जीवन में हमारा ध्यान इस ओर जाता ही नहीं है। इसलिए हमें जीवन इतना पेचीदा लगता है। कभी हम भाग्य को कोसते हैं, कभी पुरुषार्थ में विश्वास भी दिखाते हैं। कभी कर्म और उसके फल की चर्चा करते हैं। कभी ज्ञान के चक्कर में डूबे रहते हैं, शेखी मारते रहते हैं। कभी भी एक पल ठहरकर नहीं सोचते कि यह शरीर हमें कहां से मिला। यह भी तो हमारे पिछले कर्मों का ही फल है। अब जो कर्म हम करेंगे, उनका फल हमें भविष्य में मिलेगा।

हमारे जीवन की अनेक घटनाओं की जानकारी हमें ज्योतिष से प्राप्त हो जाती है। जीवन की अनेक प्रमुख घटनाएं हम पढ़ सकते हैं। जन्म-मृत्यु-विवाह-संतान-बीमारी-दुर्घटना-अर्थलाभ-परिजन आदि की अनेक जानकारियों पर हम चर्चा कर लेते हैं। क्या जीवन को इतना आसानी से पढ़ा जा सकता है? क्या हम अन्य प्राणियों की जन्म-कुण्डली बनाकर उनके जीवन-कर्म को भी पढ़ सकते हैं? जो कुछ जानकारियां हमें ज्योतिष से प्राप्त होती हैं, उनमें से कई गलत भी निकलती रहती हैं। क्या इसमें केवल गणना का ही दोष होता है?

ज्योतिष इस बात का प्रमाण तो है कि हमारा जीवन जितना हमारे हाथ में है, उतना ही प्रकृति के हाथ में भी है। अन्य प्राणियों के हाथ में तो कुछ होता नहीं है। उन्हें तो अपनी

भोग-योनि पूर्ण रूप से प्रकृति के सहारे ही जीनी पड़ती है। मानव की तरह वे अपना भाग्य नहीं बदल सकते। मनुष्य तो नर से नारायण भी बन सकता है। हमारे जीवन का यह संचालित अंश शुद्ध रूप से कर्म-फलों पर आधारित रहता है। इसी कलैण्डर के आधार पर जीवन के सारे संबंध और सारी घटनाएं टिकी रहती हैं। कर्म भी हो चुके, उनके फल भी तय हो चुके, अत: उनमें बड़ा अन्तर कम ही आता है। जो कर्म हम आज कर रहे हैं, उनका फल तो हमें भविष्य में प्राप्त होगा। कब होगा, यह हमें नहीं मालूम। इसीलिए हमें कर्म-फल की चिंता छोड़ देने की सलाह दी जाती है।

इस दृष्टि से हमारे जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग हमारा वर्तमान ही है। इसी में हमारे भविष्य का निर्धारण होता है। और, यह भविष्य हम स्वयं ही बनाते हैं। यदि आप कुछ भी नहीं करें तो भविष्य में भी शून्य ही पाएंगे। हम यदि चौबीस घण्टे में से तीन घण्टे डिनर करने चले जाएं, तीन घण्टे सिनेमा देखें और दो घण्टे गप्प मारते रहें; इनसे किस तरह के भविष्य का निर्माण करेंगे हम, यह सोचा जा सकता है! यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि समय की कीमत क्या है; इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और कुछ है ही नहीं।

व्यक्ति को पिछले कर्मों के भोग के लिए कर्म करना पड़ता है। किन्तु; भावी जीवन को निर्धारित करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसीलिए जीवन को ज्ञान और कर्म का संतुलन कहा गया है। ज्ञान का उपयोग यदि कर्म-फल भोगने में भी कर लिया जाए, तो अनेक झंझट समाप्त हो जाते हैं। आपसी द्वेष पैदा होने से रुक सकते हैं। परिस्थितियों का सही आकलन हो सकता है। व्यवहार में मर्यादा एवं संयम भी प्रभावी हो जाएंगे। ज्ञान-शून्य कर्म वैसे भी फलकारक नहीं हो सकता।

कुछ लोग भोग में रमण करते हैं। उनकी आंख भविष्य पर होती ही नहीं है, या फिर संकट की घड़ी में भाग्य को कोसते रहते हैं। भाग्य को तो स्वीकार करने की जरूरत होती है; किन्तु भाग्य का संबंध तो अतीत से ही होता है। यदि मेरे संबंधी अच्छे नहीं हैं, तो मुझ से उनका ऋणानुबन्ध है। वह मुझे बराबर करना है। हम यदि उनका सम्मान करेंगे तो हमारी समझ में आ जाएगा कि हमको लोग भी उनके कारण अच्छा मानते हैं। यह सकारात्मक दृष्टि पैदा हो जाए तो वर्तमान का भी सही उपयोग किया जा सकता है।

हमारा सबसे कम ध्यान वर्तमान के उपयोग की ओर जाता है। वर्तमान के साथ तो हम अपने अहंकार के कारण खिलवाड़ ही करते हैं। हमारे कार्यों में भावी दृष्टि का अभाव होता है। आज के निर्णय कल क्या फल देंगे, मेरे निजी जीवन में सुख बढ़ेगा अथवा दु:ख, यह विचार निर्णय के पहले मन में आता ही नहीं। हम क्या खाते हैं, पहनते हैं, बोलते हैं, किसी में भी गंभीरता दिखाई नहीं देती। स्पष्ट है कि हमारा भविष्य भी वैसा ही होगा।

आज शिक्षा का वातावरण तेजी से बन रहा है। उच्च और तकनीकी शिक्षा बढ़ रही है। युवक-युवतियां शिक्षा के लिए लाखों रुपये खर्च करके विदेशों में जा रहे हैं। किन्तु; उनकी भी सारी जीवनचर्या केवल कमाई करने से ही जुड़ कर रह जाती है। यह तो केवल पेट भरना हुआ। इसका भावी कर्म-फलों से; जिन्हें व्यक्ति अगले जन्म में भोगता है, बहुत कम संबंध होता है। वर्तमान का अधिकांश भाग भी व्यर्थ गंवाया जाता है– स्मृतियों और कल्पनाओं में। इनका चिंतनपरक योगदान नहीं होता। ये दिवास्वप्न जैसी होती हैं। कर्म से इनका संबंध नहीं होता। जीवन का बहुत बड़ा भाग इनके साथ जुड़ता है। दुविधा की बात यह है कि जो काल जीवन निर्माण का होता है (25 वर्ष तक) उसमें ही प्रमाद का यह रूप अधिक होता है। बाद में चिंतन का समय नहीं मिल पाता। व्यक्ति स्वयं की भूमिका के बारे में सोच ही नहीं पाता। जीविकोपार्जन करते-करते उम्र ही पूरी हो जाती है। वह बाहर ही जी पाता है। भीतर की ओर ध्यान नहीं जा पाता। यदि वर्तमान को सार्थक रूप में उपयोगी बनाना है, तो इस विषय को शिक्षा में सम्मिलित करना चाहिए। आज के मां-बाप भी इस दृष्टि से लाचार ही हैं। वे भी इसी शिक्षा-पद्धति से निकले हुए हैं, जो व्यक्ति को पेट से ही बांधती है। यही कारण है कि सारे तकनीकी विकास का उपयोग भी व्यक्ति के पेट से ही जुड़कर रह जाता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या समष्टि पैदा ही नहीं हो पाती। हमारी पहली आवश्यकता है–वर्तमान को केन्द्र में रखकर जीवन को नए स्वरूप में ढालना।

विवाह जब भी सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की बात आती है, तब व्यवहार के कुछ न कुछ नियम बनाए जाते हैं। समय के साथ इन नियमों में इतना परिवर्तन आ जाता है कि सिद्धान्त दिखाई भी नहीं पड़ते। तब हम इनको रूढ़ि मानने लग जाते हैं। व्यवहार में सिद्धान्त से ज्यादा रूढ़ियों का महत्त्व अधिक होता है। इसका सबसे ज्वलन्त उदाहरण विवाह है। विवाह में कितनी तरह के रीति-रिवाज देखे जा सकते हैं। विश्व भर में, हर समाज में विवाह एक आवश्यक सामाजिक परम्परा है। हर देश और समाज में इसके विभिन्न रूप बन गए। विवाह की परम्पराओं का महत्त्व इतना अधिक हो गया कि व्यक्ति गौण हो गया। हर लड़के-लड़की को यह मालूम है कि बड़े होकर विवाह करना है। लड़की जानती है कि उसे लड़के के साथ रहना है। यह सोच भी रूपान्तरित इतना हो गया कि विवाह का मूल भी भूल गए। सिद्धान्त पक्ष की चर्चा ही नहीं होती।

दोनों तरफ से 'अच्छा खानदान' देखा जाता है; किन्तु खानदान की परिभाषा आज केवल धन से आंकी जाती है। संस्कारों की मांग लुप्त हो गई। वैभव की चमक के आगे सब छोटा हो गया। विवाह को इतना नकारात्मक धरातल दे दिया कि व्यापारिक लेन-

देन में बदलकर रह गया। जीवन की पवित्रता का स्वरूप ही खो गया। लड़की के गुण भी महत्त्वहीन हो गए। यह भी कोई अर्थ नहीं रखता कि वह मां-बाप को छोड़कर आएगी। तलाक हो गया तो उसे ही वापिस लौटना पड़ेगा। वही इस घर को स्वरूप देगी। संतान को भी संस्कारवान बनाएगी। लड़के को पूर्णता देगी। लड़का तो उसके बिना ही स्वयं को परिपूर्ण मानकर चलता है। समर्पण नहीं चाहिए उसे।

हम कुछ पीछे चलते हैं, जब समाज व्यवस्था ही नहीं थी। तब क्या संतान पैदा नहीं होती थी? विवाह शब्द पैदा ही नहीं हुआ था। विवाह और सारे सामाजिक संबंध विकसित समाज व्यवस्था के साथ पैदा हुए। पहले केवल प्रकृति थी। नर था, नारी थी। इनके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक स्वरूप थे। केवल प्रारब्ध को भोगकर चले जाते थे। अन्य पशुओं की तरह। जीवन में जितने भी परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं, उनका मूल कारण भाषा है। शब्दावली है। सारे जीवन व्यवहार भाषा पर टिके हैं। भाषा ने ही ज्ञान का स्वरूप धारण किया। पुराने ज्ञान के आधार पर नया ज्ञान विकसित होता गया। इसी के साथ समाज व्यवस्था बदलती चली गई। इसी व्यवस्था में से विवाह संस्था का जन्म हुआ। मानव मन की चंचलता और व्यवहार की स्वच्छंदता को मर्यादित करने का सूत्रपात हुआ। सृष्टि के नियमों को मानव जीवन में लागू करने के लिए अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए। फिर भी कोई समाज प्रारब्ध को रोक पाने में समर्थ नहीं हो सका। पिछले कर्मों के फल तो हर मानव को भोगने ही पड़ते हैं। विवाह संस्था में इसके परिणाम स्वरूप अनेक व्यवधान भी बने रहते हैं। मानव तो शरीर के स्वरूप का नाम है। जीव का कोई नाम-रूप नहीं होता। समाज के नियम-कायदों को वह आसानी से नहीं समझ सकता। उसे मानव बनाने की प्रक्रिया लम्बी भी है और जटिल भी। आज की विकसित समाज व्यवस्था में, विशेषकर विकसित देशों में तो यह प्रक्रिया ही लुप्त हो गई। उनकी जीवन शैली फिर से आदि मानव की तरह स्वच्छंद हो गई है। मानव देह रह गया, भीतर जीने वाला मानव नहीं बन पाता। इने-गिने दिखाई पड़ते हैं। निजी जीवन को यदि नजदीक से देखा जाए, तो स्पष्ट चित्र दिखाई दे जाएगा। विकास, सुविधाएं और समृद्धि तो है; किन्तु निजी जीवन में सभी त्रस्त हैं। मानवीय संवेदनाएं भोग तक आकर ठहर गई हैं। सभी एक दूसरे का उपभोग करना चाहते हैं। उसके बाद साथ रहने को भी तैयार नहीं। जिस तेजी से मिलते हैं, उसी तेजी से अलग भी हो जाते हैं। साथी बदलते जाते हैं। हर बार जीवन को नए सिरे से शुरू करते हैं और आधे रास्ते चलकर बिछुड़ जाते हैं। कहीं कोई दर्द नहीं होता। न किसी को संतान की चिन्ता होती है। चिड़िया के बच्चे के पंख आते ही उड़ जाता है। मां-बाप स्वतंत्र हो जाते हैं। वहां केवल भोग संस्कृति होती है। मानव सम्पूर्ण विकास के बाद

फिर उधर ही अग्रसर हो रहा है। जब कि केवल मानव ही कर्म कर सकता है। अपना भाग्य बदलने की क्षमता रखता है। समृद्धि भाग्य या कर्म का लक्ष्य नहीं है। साधन मात्र है।

इस भोग संस्कृति को योग में बदलने और भविष्य निर्माण से जोड़ने के लिए केवल एक सूत्र चाहिए संकल्प। इस संकल्प का नाम ही विवाह पड़ गया। बिना संकल्प के विवाह का स्वरूप टिक ही नहीं सकता। संकल्प भी नर और नारी दोनों का हो। पूरक बनने के लिए हो, स्पर्द्धा करने के लिए नहीं। इस संकल्प के कारण ही नर-नारी में पति-पत्नी के भाव जाग्रत होते हैं। संकल्प टूटते ही फिर से नर और नारी बन जाते हैं। बिना संस्कार के संकल्प करना भी संभव नहीं होता। संकल्प की दिशा तो संस्कार ही तय कर सकते हैं। मात्र संतान पैदा करने के लिए संकल्प की आवश्यकता नहीं होती। समय के साथ इन संस्कारों के क्षेत्रों का विकास भी हुआ। ज्ञान का, विज्ञान का विकास भी हुआ। संस्कारों की भी विस्तार से व्याख्याएं होने लगीं। संस्कार तो सदा ज्ञान के साथ रहे। शुद्ध विज्ञान, हर काल में, हर रूप में भौतिक विश्व का अंग ही रहा। ज्ञान और विज्ञान आज पृथक न होकर विरोधाभासी बन गए। ज्ञान भीतर चलता है, विज्ञान बाहर। सृष्टि के नियम दोनों पर एक जैसे लागू होते हैं। फिर भी इतना विरोधाभास आश्चर्यजनक ही है।

भारतीय दर्शन में विवाह संस्था को सृष्टि का मूल आधार भी माना है और प्रति सृष्टि (विलय या मोक्ष) का आधार भी माना है। हमारे अध्यात्म के चारों अंगों-शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा के लिए पुरुषार्थ की व्यवस्था दी है। मोक्ष आत्मा का विषय है। कामना (काम) मन का क्षेत्र है। अर्थ शरीर चलाने की आवश्यकता है और धर्म हमारी बुद्धि को प्रज्ञा रूप देने का कार्य करता है। ये सारे कार्य भी जीवन के भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न रूपों में किए जाते हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तीनों ही आश्रम केवल गृहस्थाश्रम पर टिके रहते हैं। अत: जीवन का मूल केन्द्र भी गृहस्थाश्रम को ही माना है। उसी के अनुरूप विवाह संस्था का स्वरूप निर्माण हुआ है। हर समाज की इकाई यह गृहस्थ ही नजर आएंगे। समाज के लिए व्यक्तित्व निर्माण भी यहीं होता है। इसी से किसी भी राष्ट्र का स्वरूप बनता है।

इस दृष्टि से भारतीय दर्शन के कुछ सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। एक है कर्म और कर्मफल का सिद्धान्त। दूसरा है पुनर्जन्म का सिद्धान्त। तीसरी है मोक्ष की अवधारणा। व्यक्ति को प्रकृति का अंग और ईश्वर का अंश मानकर उसका निरूपण किया गया है। व्यक्ति को पिता, पितामह, प्रपिता आदि से जोड़कर भी देखा गया है और माता, मातामह और प्रमाता आदि से भी। सृष्टि युगल तत्त्व के सिद्धान्त पर आगे बढ़ती है, अत: इसे ही जीवन की पूर्णता का दर्जा प्राप्त है। विवाह का मूल कहा है। सम्पूर्ण पितृलोक और

देवलोक की संस्थाएं इस पर टिकी हुई हैं। ब्रह्म और माया के स्वरूप को भी विवाह संस्था के माध्यम से ही समझने का मार्ग बताया गया है। यही कामना से आप्तकाम होने का मार्ग भी है। माया ही कामना या क्षुधा रूप होकर जीवन को आगे बढ़ाने वाली शक्ति है। गृहस्थाश्रम माया के प्रवेश के साथ जुड़ता है और वानप्रस्थ के साथ इसके द्वार बन्द हो जाते हैं। भोग संस्कृति में व्यक्ति पूरी उम्र गृहस्थ रहता है। उसके पास काम-अर्थ के अतिरिक्त कोई चिंतन ही नहीं होता। वह पूरी उम्र जड शरीर से ही बंधा रहता है। चेतना की दिशा में उसकी यात्रा शुरू ही नहीं होती। जबकि जीवन का पहला सोपान ही चेतना को जाग्रत करना है। उसको संस्कारित करके मानवीय धरातल पर लाना होता है। तब आत्मा जीने लगता है-इस शरीर में।

विवाह नर-नारी के संकल्पित योग का नाम है। प्रारब्ध ही इसका निमित्त बनता है। जीवन की दिशा यह संकल्प तय करता है। दोनों का संकल्प, दोनों के सपने और पुरुषार्थ में सामंजस्य रहता है। दोनों अपने में स्वतंत्र जीव भी हैं और दोनों के प्रारब्ध भी अलग-अलग होते हैं। नए कर्म साथ-साथ किए जाते हैं। दोनों के फल साथ-साथ भोगने पड़ते हैं। ज्ञान की आवश्यकता इन परिस्थितियों को समझने में ही होती है। वैवाहिक संबंधों में प्रारब्ध भी परिलक्षित होता है और वर्तमान कर्म भी। दोनों को ही ध्यान में रखकर व्यवहार करना पड़ेगा। इसके बिना साथ रहना केवल सामाजिक लाचारी बन जाती है।

मूल रूप से विवाह के दो मुख्य पहलू होते हैं। प्रेम को पैदा करना, पल्लवित करना और इसका आगे विस्तार करना। इसी के साथ दाम्पत्य रति (स्नेह, वात्सल्य, श्रद्धा और प्रेम) का विकास इस तरह से करना कि यह देव रति में बदल सके। अर्थ और काम को धर्म से मर्यादित करते हुए, कामनाओं की पूर्ति करके, निष्काम हो सकें। गृहस्थाश्रम सृष्टि विस्तार का काल है। अच्छी, योग्य, सुसंस्कृत संतान के लिए प्रार्थना करें, ताकि उसी तरह का जीव हमारी ओर आकृष्ट हो सके। जीव के प्रवेश के बाद उसके स्वभाव को समझकर उसे मानव रूप में माता संस्कारित करे। बाद में माता-पिता और गुरु उसे व्यावहारिक और आध्यात्मिक ज्ञान में आगे बढ़ाएं। इसके अभाव में जीवन का सुरक्षा भाव छूट जाता है। तब व्यक्ति देने के स्वभाव को ग्रहण ही नहीं कर सकता। वह सदा ही लेने की सोचता रहता है। उसका विस्तार ही संभव नहीं है। उसकी मानसिकता संकुचित होकर रह जाती है।

भक्ति भाव व्यक्ति सोच समझकर पैदा करता है। पहले अपना इष्ट तय करता है। फिर धीरे-धीरे उसकी भक्ति में डूबता चला जाता है। प्रेम का भी यही स्वरूप है। यह भी होता नहीं है, किया जाता है। नित्य अभ्यास और संकल्प के द्वारा एकाकार हो जाता है। अपने आप उठने वाला प्रेम का ज्वार स्थाई भाव में टिक पाना कठिन है। वहां संकल्प उतना दृढ़

पूरी उम्र नहीं रहता। उस कामना को समझने के लिए पश्चिम के बड़े देशों की ओर देखना होगा। जहां विवाह संबंध अपेक्षाओं पर ही आधारित रहते हैं। अहंकार का टकराव नित्य रहता है। समर्पण की तो कोई सोच भी नहीं सकता। इसका कारण है वहां की जीवन शैली में अधिदैव (प्राण) की अवधारणा का अभाव। वहां शरीर है, बुद्धि है बस! शरीर जड पदार्थ है। इसका भोग भी जड पदार्थ की तरह किया जाता है। एक निश्चित ढांचे में जीवन चलता है। इसमें जीवन कहां ठहर सकता है। जीवन में तो नित नया होता रहता है। संबंधों के विच्छेद का किसी को खेद कहां होता है। वे अपने पैरों पर खड़े रहने को सक्षम होते हैं। अत: साथी के छूटने की उतनी चिन्ता क्यों करें! इसीलिए वहां पर विवाह संस्था जर्जर होती जान पड़ रही है।

पति-पत्नी दोनों बौद्धिक धरातल पर जीते हैं। पत्नी का भावनात्मक स्वरूप विच्छिन्न हो रहा है। मन में संवेदना का स्तर गिर चुका है। बच्चों के प्रति भी वैसा मोह नहीं दिखाई देता। ममता, करुणा, वात्सल्य जैसे भावों का अभाव बढ़ता जा रहा है। लड़की के शरीर में लड़के की बुद्धि कार्य करती है। दोनों का अहंकार झुकने को तैयार नहीं होता। शरीर की पकड़ छूटते ही अहंकार हावी हो जाता है और झट से अलग हो जाते हैं। अगले विवाहों में शरीर की पकड़ क्रमश: कम होती ही जाती है। वैसे भी दो लड़के एक साथ कितने साल पति-पत्नी जैसे रह सकते हैं! एक को गर्म दूसरे को नरम रहना ही पड़ेगा। सुख के साथ दुख में भी मिल बैठकर पार चलना होगा। इस माहौल में न तो पुरुषार्थ का धर्म दिखाई देता है और न ही दाम्पत्य रति का विकास। चेतना का धरातल तो शून्य प्राय: होता है। कैसे कोई स्वयं को सृष्टि का अंग मान सकता है या किसी की मर्यादा में जीना स्वीकार कर सकता है। विवाह संस्था के कारण कामना का संसार आगे बढ़ता है। दाम्पत्य रति से कामना तृप्त होती है। पितृ और देव संस्थाओं का पोषण करते हुए दोनों आप्तकाम होकर शान्तानन्द में विहार करते हैं। यही मोक्ष है। संकल्प ही मार्ग है और विवाह ही इसका निमित्त बनता है।

जीवन की पूर्णता का मूल आधार ही विवाह को माना गया है। इसके बिना पूर्ण पुरुष (ब्रह्म) से मिल पाना लगभग असंभव माना गया है। अथवा इसके लिए एक से अधिक जन्मों तक अभ्यास करना पड़ेगा। इसका कारण प्रकृति का संचालन है। हमारी उत्पत्ति भी इन्हीं नियमों के अन्तर्गत होती है। प्रकृति के नियम जड-चेतन सभी वर्गों पर समान रूप से लागू होते हैं। इनकी जानकारी होते ही जीवन की अनेक गुत्थियां हल हो जाती हैं। भारतीय दर्शन में विवाह को एक सामाजिक रिवाज नहीं माना गया। इसको सम्पूर्ण संवत्सर का अंग मानकर विवाह संस्कार का निरूपण किया गया है। नर-नारी को एक

ही सांवत्सरिक आत्मा का अंश माना गया है। भूतात्मा के रूप में इनका सहज समन्वय विवाह कहा गया है। इसको दो आत्माओं का मिलन कहा है। दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं। कहा भी है-

1. पतिरेव गुरु: स्त्रीणाम्।
2. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते।

मानव का भी एक विकास क्रम रहा है। मानव को मनु का पुत्र कहा गया है। मनु विश्व की मूल प्रतिष्ठा का नित्य तत्त्व है। सम्पूर्ण सृष्टि ही मनु की संतान होती है; किन्तु मानव में मनु स्वतंत्र केन्द्र लक्षण के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। परिपूर्णता स्पष्ट है। सृष्टि में तीन स्थूल पिण्ड हैं-सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी। चौथा भाव अव्यक्त रहता है- प्राण रूप में। चारों की समन्वित अवस्था मानव रूप लेती है। भू-पिण्ड से शरीर का निर्माण होता है। चन्द्रमा से मन का और सूर्य से बुद्धि का। अव्यक्त अंश मनु है-आत्म रूप है। जिनमें इन्द्रियों का विकास रहता है, वे चेतन कहलाते हैं। बाकी अन्य जड की श्रेणी में आते हैं।

केवल भू-पिण्ड से पत्थर आदि जड पदार्थों का निर्माण होता है। इसमें चन्द्र और सूर्य के अंश जुड़ने पर उसी मात्रा में मन और बुद्धि का विकास होता है। कृमि, कीट, पक्षी और पशुओं में। चन्द्रमा के प्रभाव के आठ सर्ग होते हैं। सूर्य के 33 सर्ग। इनके साथ-साथ जहां आत्मभाव का भी विकास हो वहां आत्मनिष्ठ मानव बनता है। जहां शरीर, मन, बुद्धि तीनों ही आत्मभाव से समन्वित रहते हैं। इन चारों के व्यवस्थित स्वरूप का नाम ही मानवता है। इस व्यवस्था के खण्डित होते ही मानव आक्रामक होने लगता है। एक वेद वाक्य है-

'न वै देवा अतिक्रामन्ति, न पितर:, न पशव:,
नासुरा:। मनुष्या एवैके अतिक्रामन्ति।'

इसका सार यह है कि मानव के अलावा कोई भी प्राणी, देव आदि प्रकृति की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता।

हमारा प्राकृतिक स्वरूप क्या है। हम पार्थिव प्राणी हैं- पशु रूप हैं। जो पंच पाश से बंधा हो, उसे पशु कहते हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ही पांच पाश हैं। हमारी पृथ्वी के मध्य में विषवत् रेखा या भूमध्य रेखा है। इसके एक ओर 24° अंश तक कर्क रेखा तथा दूसरी ओर मकर रेखा है। इन 48° अंश के परिसर का क्रान्तिवृत्त ही हमारा संवत्सर कहलाता है। इसी को यज्ञाकाश कहते हैं। इसी में सूर्य और चन्द्रमा का भ्रमण होता है। इसमें दिन वाले आधे भाग का अधिपति सूर्य और रात्रिरूपी आधे आकाश का अधिपति चन्द्रमा होता है। सूर्य के अग्नि प्रधान 24° भाग से मानव का (नर का)

स्वरूप निर्माण होता है और चन्द्रमा के सौम्य आकाश के 24° भाग से नारी के स्वरूप का विकास होता है। जिस प्रकार संवत्सर में सूर्य पति भाव और चन्द्रमा पत्नी भाव है, वही दाम्पत्य रूप-संबंध नर-नारी का होता है। एक ही प्रजापति दो सौर-चान्द्र रूपों में परिणत होते हुए प्रजा के उत्पादन में समर्थ बनें। दोनों ही अकेले अपूर्ण होते हैं। दाल की तरह एक भाग होते हैं। दोनों मिलकर सृष्टि यज्ञ के लिए पूर्णता ग्रहण करते हैं। शास्त्र कहते हैं-

'संवत्सरो वै यज्ञः, यज्ञो वै पुरुषः, पुरुषो वै यज्ञः।'

जब नर-नारी एक-दूसरे के सम्मुख खड़े होते हैं तब मेरुदण्ड ही भू-मध्य रेखा होता है। पूर्णवृत्त बन जाता है। दोनों की 24-24 पसलियां 48° अंश के संवत्सर को पूर्णता देते हैं। जीवन का लक्ष्य चूंकि पुरुषार्थ है-मोक्ष है। उसके लिए पहले सांवत्सरिक पूर्णता प्राप्त करना पहली अनिवार्यता है। इसमें तत्त्व चिन्तन निष्ठा के माध्यम से आत्मरत बने रहना मानव की परिपूर्णता है। दाम्पत्य जीवन में विश्वास, विकासात्मक अग्नि तत्त्व रूप में पुरुष से अनुगत रहता है और श्रद्धा, संकोचात्मक स्नेह तत्त्व रूप सौम्या स्त्री से अनुप्राणित रहता है। सोममयी श्रद्धा शक्ति तत्त्व है, स्त्री भाव है। अग्निमय विकास रुद्र/ शिव तत्त्व है। दोनों के सम-समन्वय से ही दोनों के स्वरूप की रक्षा संभव है। जहां भी समन्वय खण्डित हुआ, अतिक्रमण करने लगते हैं। हमारे यहां 'सहधर्म चरताम्' को आदर्श कहा है। पूर्ण मानव मर्यादाओं का अतिक्रमण नहीं करता।

इस दाम्पत्य भाव के कारण ही मन में स्नेहरूप तरल भाव रस पैदा होता है। इस रस प्रवाह वृत्ति का नाम ही प्रेम है। चूंकि सभी प्रवाह पांच रूप में गति करते हैं, अतः प्रेम के प्रवाह की भी पांच ही गतियां होती हैं। ऊपर से नीचे, बड़ों का छोटों के प्रति वात्सल्य कहलाता है। नीचे से ऊपर, बड़ों के प्रति श्रद्धा रूप होता है। बराबरी में स्नेह रूप। जड़ पदार्थों के प्रति लगाव को 'काम' कहते हैं। दाम्पत्य जीवन में इन चारों भावों का सम्मिश्रण होता है। इसको 'रति' कहा गया है। यह दाम्पत्य रति ही कालान्तर में आत्मरति का रूप लेती है। पुरुषार्थ सिद्धि करती है।

समय के साथ ये सारे ही सिद्धान्त एक-एक करके लुप्त होते जा रहे हैं। शरीर मन-बुद्धि और आत्मा के समन्वय का विखण्डन होने लगा है। किसी भी परिस्थिति में मानव स्वयं को सुखी नहीं पाता। स्त्री भाव को आत्म बुद्धि साक्षिणी कहा है। आज सहकामचारिणी बनती जा रही है। कहीं-कहीं तो विनोद का, रंजन का विषय बन गई है। तब बलिष्ठ, महिष्ठ और यशस्वी संतान कैसे पैदा होंगी? स्व. मोतीलाल शास्त्री ने लिखा है कि आज तो मर्यादाओं के अतिक्रमण को ही पौरुष मान लिया है। कल क्या होगा? इसके उत्तर में स्व. शास्त्री लिखते हैं- 'आज जैसे विधि-विधान निर्मित हो रहे हैं, इनसे कालान्तर में

नारीत्व सर्वथा ही अभिभूत (परास्त) हो जाएगा। मानव का स्वरूप भी, मानवत्व भी विस्मृत हो जाएगा।'

पृथ्वी के सभी जीवों को पशु कहा जाता है। हमारी पृथ्वी की तरह सभी लोकों को भी पृथ्वी संज्ञा दी गई है। अतः सभी लोकों में भी पशु ही रहते हैं। चाहे असंज्ञ हो, अन्तः संज्ञ हो, या फिर ससंज्ञ हो। मनुष्य की भी पशु संज्ञा है। प्रकृति के प्राणों में ऋषि, पितर, देव, गंधर्व प्राणों के बाद पशु प्राण आते हैं। ऋषि, पितर और देव प्राणों के कारण हमारे तीन ऋण बनते हैं। मानव जीवन का लक्ष्य है धर्मानुकूल अर्थ और काम के सहारे मोक्ष प्राप्ति। आप्तकाम हो जाना। मानव-रूप पशु की मोक्ष तक की यात्रा कोई साधारण घटना नहीं हो सकती। पशु को तो वैसे भी भोग योनि माना है। अज्ञानवश मनुष्य भी भोग को ही प्रधान कर्म मानकर जीने लगता है। उसके कर्म में विद्या का अंश अल्प होता है। जीवन को दो ही तत्त्व चलाते हैं-विद्या और अविद्या। धर्म-ज्ञान-वैराग्य-ऐश्वर्य विद्या कहलाते हैं। अधर्म, अस्मिता, आसक्ति, अभिनिवेश को अविद्या कहते हैं। विद्या से बुद्धि प्रभावित होती है। अविद्या मन के प्रवाह से जुड़ती है। मनमानी करती है। विद्याभाव से ही मन पर अंकुश लगाया जाता है। पशु के पास अंकुश लगाने की क्षमता नहीं होती। वह तो प्रवाह पतित हो जाता है। मानव के पास यह क्षमता होती है।

इस भू-पिण्ड पर औषधि, वनस्पति, कीट, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सभी शरीर रहते हैं। सभी का अपना-अपना जीवन स्वतंत्र भी होता है और एक दूसरे पर निर्भर भी। ये सारे शरीर भू-पिण्ड के नभ्य (नाभि या केन्द्र) के द्वारा आकृष्ट भिन्न-भिन्न प्राणों से ही बनते हैं। अतः इन्हें पार्थिव या पृथ्वी के पशु कहा जाता है। जब तक इनका पृथ्वी केन्द्र से आदान-प्रदान रहता है, तब तक ही इनका जीवन रहता है। पृथ्वी के नष्ट होने पर भी ये सारे नष्ट हो जाते हैं। पशु की एक अन्य व्याख्या यह भी है कि जो प्राणी पंच पाश से बंधा हो, वह पशु है। ये पांच पाश अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश हैं। अज्ञान को अविद्या कहते हैं। ज्ञान को विद्या कहा है। एकोज्ञानं ज्ञानम् के अनुसार जिसको यह समझ में आ जाए कि सब प्राणियों में एक ही सत्ता रहती है, उसे ज्ञानी कहा जाता है।

पृथ्वी पिण्ड का पोषण करने वाले भी पशु कहे जाते हैं। अतः सभी असंज्ञ, ससंज्ञ और अन्तः संज्ञ पशु कहलाते हैं। सभी पृथ्वी के उपकरण हैं। जैसे मन, बुद्धि और शरीर आत्मा के उपकरण हैं। जो स्थान घेरते हैं, सीमायुक्त होते हैं, वे भी पशु हैं। अतः जीवों के अतिरिक्त अन्न, जल और अग्नि भी पशु हैं। लेकिन जिस जल और अग्नि से पृथ्वी का निर्माण होता है, वह पशु नहीं हैं। उनको प्राण पद कहते हैं। सभी पशु पृथ्वी की प्राण शक्ति के आधार पर स्थिरता पाते हैं। अन्न का अर्थ है-जिसको पाकर पिण्ड अपने स्वरूप में बना

रहता है। शरीर, मन, बुद्धि जैसे उपकरणों से। सूर्य-परमेष्ठी आदि मण्डलों से जो रस पृथ्वी पर आते हैं, वे ही पशु रूप ग्रहण करते हैं। अन्त में जब पृथ्वी के मूल स्वरूप में जुड़ जाते हैं, तब इनका पशु भाव समाप्त हो जाता है। वर्षा का जल, नदी, तालाब का जल पशु रूप है। लकड़ी में छिपी हुई अग्नि पशु रूप है। पिण्ड शरीरों पर दिखाई देने वाला अग्नि भी पशु है। इसी प्रकार प्राणों के आधार हर लोक के अपने-अपने पशु होते हैं। प्राण के साथ मन और वाक् भी सदा जुड़े रहते हैं। अविनाभाव होते हैं।

ये वाक् भी चार प्रकार की होती है। पृथ्वी की वाक् कारणभूत अग्नि में और जहां तक पृथ्वी दिखाई पड़ती है, उस रथन्तर साम में रहती है। अंतरिक्ष वाक् वायुमण्डल में, वाम देव्य साम में रहती है। सूर्य की वाक् केन्द्रस्थ इन्द्र में और सूर्य के वृहत साम में रहती है। इसमें अन्य सभी वाक् समाहित रहती हैं। चौथी वाक् लोक के सभी पशुओं में रहती है। इसके दो रूप होते हैं। प्राण रूप या प्राण गर्भिता वाक् रूप। एक को चित्य और दूसरी को चितेनिधेय कहते हैं। एक मर्त्य रूप, दूसरा अमृत रूप। पिण्ड रूप मर्त्य वाक् है। पिण्ड की स्थिति को बनाए रखने वाला चितेनिधेय कहलाता है। यह केन्द्रगत प्राण ही अग्नि-सोम यज्ञ द्वारा पिण्ड को बनाता है। फिर उसी पर आरूढ़ हो जाता है। वही चारों ओर फैलता है। यह रस रूप यजुः है, पिण्ड भाग ऋक्। जहां तक पिण्ड दिखाई दे, वह साम कहा जाता है।

तीनों लोकों में अग्नि-वायु-आदित्य को अमृत कहा है। पृथ्वी अन्तरिक्ष द्यु लोक मर्त्य पिण्ड हैं। इनको लोक-मूर्ति-ऋक् भी कहते हैं। इनसे हमारी इन्द्रियों के विषय बनते हैं। रस रूप गंध आदि। साम बहिर्मण्डल कहलाते हैं। इनसे ही हमारी इन्द्रियों का संबंध बनता है। जो सदा दूसरों पर आश्रित रहते हैं, उनको भी पशु कहते हैं। इस प्रकार एक ही वाक् चार प्रकार से प्रकट होकर अन्न को प्रकट करती है। सूक्ष्म अवस्था की वाक् ही स्थूल अवस्था में अन्न कहलाती है। चौथा रूप ही स्थूल होता है। यही पशुभाव होता है। हम भी एक-दूसरे का अन्न बने रहते हैं।

पशु में भी अन्य प्राणियों की तरह वीर्य रहता है। ब्रह्म, क्षत्र या विड् वीर्य। चूंकि पशु का भी स्वतंत्र आत्मा होता है, अतः निर्वीर्य नहीं हो सकता। अल्पवीर्य कहलाता है। सूर्य-चन्द्र-पृथ्वी जैसे लोकों का आत्मा पूर्ण इन्द्र प्राण से बनता है। अतः इनकी पूर्ण संज्ञा है। पशु आत्मा अपूर्ण होता है। इनको पैदा करने वाले रस को केन्द्र प्राण एक ही दिशा में फेंकता है। अलग-अलग दिशा में अलग पशु पैदा होते हैं। आधे इन्द्र प्राण से उत्पन्न होने वाला पशु अर्धेन्द्र कहलाता है। इसमें जो रस सूर्य मण्डल की ओर फेंका जाता है, उससे आग्नेय पुरुष और जो रस चान्द्र की सौम्य दिशा में जाता है, उससे स्त्री शरीर का निर्माण

होता है। हर पशु एक भाग में बलवान रहता है। दूसरा भाग निर्बल होता है। वृक्ष ऊपर बढ़ता है, नीचे नहीं। चेतन प्राणियों का शरीर नाभि से ऊपर-नीचे (लम्बा) होता है। दोनों पक्षों में नहीं बढ़ता। स्त्री-पुरुष दोनों भाव ही अर्धेन्द्र होते हैं। अतः इनको पूर्णता की खोज रहती है।

यह भी तथ्य है कि अकेला प्राणी रमण नहीं कर सकता। ब्रह्म भी चाह रहा था-एकोऽहं बहुस्याम्। यह विनोद भाव गूढ़ में भी रहता है और अतिज्ञानी में भी (गूढ़ रूप से)। सभी पशु जीवात्मा अपूर्ण होते हैं। इच्छा का अभाव पूर्णता है। इसी प्रकार अपूर्ण कोई सृष्टि पैदा नहीं कर सकता। नया आत्मा आकृष्ट पूर्ण से ही होता है। अतः दो मिलकर पूर्ण बनते हैं। तब सृष्टि होती है। पूर्ण होने के लिए विवाह किया जाता है। बिना पत्नी के पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं होता। पूर्ण से संबंध बनाने के पहले स्वयं को पूर्ण बनना पड़ता है। यही मूल सिद्धान्त है। यज्ञ का फल भी तभी पूर्ण रूप में प्राप्त होगा। उसका आधे में समावेश नहीं हो सकता।

विवाह एक संकल्प होता है। मन को एक निश्चित स्वरूप में मर्यादित करता है। संकल्प के टूट जाने पर व्यक्ति विकल्प तलाश करने लग जाता है। जो इन्द्र प्राण पशु शरीर में रहता है, उसको 'मनु' कहते हैं। सम्पूर्ण जगत् का शासक, अणु से भी अणु, कान्तियुक्त, स्वप्न-सुषुप्ति में भी कार्य करने वाला, स्वप्न में होने वाले ज्ञान से अनुमान करने योग्य जो प्राण रूप पुरुष है, सब भूतों का जो पर तत्त्व है, वह मनु है। चार मण्डल, सप्तलोक और 14 भुवनों के अपने-अपने मनु हैं। मनु और यम को सूर्य पुत्र कहा है। मनु को इस लोक का शासक कहा जाता है। यम को परलोक का। मनु ही अर्धेन्द्र है। 'मैं हूं' इस अहं भाव को मनु ही प्रकट करता है। यही हमारा इन्द्र है। इस पशु रूप मानव जीवन को दो अर्धेन्द्र मिलकर न केवल पूर्णता देते हैं, बल्कि पशु भाव से बाहर निकलने का प्रयास भी करते हैं। दोनों ही पूर्ण होकर पूर्णाकार बन जाते हैं। अकेला तो कभी पूर्णता प्राप्त ही नहीं कर सकता। धर्म, अर्थ, काम के बाद दोनों मोक्षगामी हो जाते हैं।

भौतिक विकास के साथ-साथ जीवन भी इतना भौतिकता से चिपक गया कि शरीर भी एक उपकरण बनकर रह गया। व्यक्ति जीवन भर इसके सहारे प्रयोग करता रहता है। प्रयोग करने की दृष्टि भी भौतिक बन गई है, बाहरी ज्ञान पर आधारित हो गई। जिस प्रकार शरीर नश्वर है, उसी प्रकार बाहर का ज्ञान भी नश्वर है। पेट भरने से आगे उस ज्ञान की उपादेयता नहीं है। इसीलिए आज ज्ञान पेट भरने का साधन बनकर रह गया। जीवन के साथ इसका दूसरा कोई संबंध ही नहीं रह गया है। इसका पहला प्रभाव तो यह हुआ कि व्यक्ति का प्रकृति से सामंजस्य टूट गया। शरीर के भीतर प्रकृति भी कार्य करती है और

हम स्वयं प्रकृति द्वारा संचालित हैं, यह विचार ही जीवन से बाहर हो गया। व्यक्ति स्वयं ही कर्ता और स्वयं का नियन्ता बन गया। उसको न तो शरीर की क्रियाओं की ही जानकारी है, न ही इसके भीतर होने वाली क्रियाओं की। व्यक्ति बाहरी संसार में ही जीता है। जो कुछ उसकी इन्द्रियों की पकड़ में आता है, उतना ही उसका संसार रह गया है। उसके आगे के जीवन क्रम को समझना आज उसकी आवश्यकता ही नहीं रह गई। जो कुछ उसे अच्छा लगता है, करने लग जाता है। हेय और उपादेय का भेद उसके जीवन से सिमट ही गया है। बाहरी ज्ञान की स्थूलता के कारण सूक्ष्म ओझल हो गया है। यही दृष्टि उसके निजी जीवन को प्रभावित करती है।

मेरे देखते-देखते कितने विदेशी मित्रों की शादियां हुई, तलाक हुए, फिर शादियां हुई। आज खुश कोई नहीं है। शादियां भी लम्बे काल तक नहीं टिक पातीं। जिनको हम भारतीय लोग संस्कार कहते हैं, वहां नहीं दिखाई पड़ते। जो वहां हो रहा है, वही वहां के संस्कार हैं। जीवन शुद्ध शरीर, धन और अपेक्षाओं पर जुड़ा है। न मिलने में देर, न बिछुड़ने में।

ऐसा ही कुछ नजारा यहां भी समृद्ध परिवारों में देखने को मिलने लगा है। विवाह तो इतनी धूम-धाम से होते हैं कि इससे बड़ा झूठ जीवन में कुछ होता ही नहीं। वर-वधू के मां-बाप भी वैभव की चकाचौंध का ही बखान करते रहते हैं। परम्पराएं इतनी सख्ती से निभाई जाती हैं कि जरा कहीं चूक न हो जाए। स्वयं को तो परम्परा की याद भी नहीं होती। कोई याद दिला जाता है। वर-वधू मात्र यांत्रिक दिखाई पड़ते हैं। मां-बाप का भावनात्मक जुड़ाव भी पश्चिम जैसा ही दिखाई देता है। शादी पैसे के जोर पर होती है। आदमी कहीं नहीं होता। होटल के लोग मांगें पूरी करते रहते हैं। दोनों परिवार के लोग सज-धजकर टहलते रहते हैं। इसी का तो नाम अब विवाह पड़ गया है। उस भीड़ में कौन तो आया, खाया भी कि नहीं खाया, कौन जाने! लिफाफे खोलेंगे, तब ध्यान आएगा।

पूरी की पूरी विवाह पद्धति ही नकली बनकर रह गई। तोरण-तलवार-घोड़ी जीवन में जुड़े ही नहीं, तब विवाह में क्यों चिपके हुए हैं? फेरों का अर्थ और कारण किसी को मालूम ही नहीं, तब क्यों खा रहे हैं? फेरों का समय पंडित तय करता है। जल्दी कराने के लिए उसे भी रिश्वत दी जा रही है। मंत्रों की भी जरूरत किसी को नहीं लगती। फिर यह दिखावा क्यों? मुहूर्त निकल जाने के समय तक तो बारात ही नहीं आती। सारे घर वाले सड़क पर नाचते रहते हैं। लड़की वाले के घर पर नाचें, तब भी समझ में आता है। सज-धजकर सड़क पर? और इसी वातावरण में हम वर-वधू का मंगल भविष्य ढूंढ़ रहे हैं। अनुष्ठान के जरिए देवता का आशीर्वाद मांग रहे हैं। हम भूल जाते हैं कि जैसी प्रार्थना होगी, वैसा ही फल मिलेगा। इस विवाह का वर-वधू के आत्मीय संबंध से कोई लेना-देना ही

नहीं है। मां-बाप 'कन्यादान' भी कर गए और वहां कन्या की परिभाषा ही लागू नहीं होती। वहां तो एक लड़की है, जैविक लड़की। घर छोड़कर जा रही है, पति के साथ। क्यों जा रही है, किसी ने नहीं बताया उसे। नए जीवन को कैसे परिभाषित करना है और क्यों, नहीं मालूम। संस्कारों का अध्याय तो शायद इसको मां को भी नहीं मालूम। देखा-देखी का नाम ही संस्कार है। देखा-देखी ही विवाह का कारण है। दोनों मिलकर गृहस्थी चलाएंगे, कमाएंगे, पेट पालेंगे और बस!

संतान स्थूल अर्थों में संतान एक शरीर होती है। दो अन्य शरीरों के योग से उत्पन्न होती है। दोनों के गुण-दोष भी इस शरीर में रहते हैं। शरीर के विकास का एक क्रम भी होता है। परिवार में एक निश्चित स्वरूप भी होता है। उत्तरदायित्व, आश्रित-आश्रय का बोध, परिवार के इतिहास एवं देश के भूगोल के साथ इसका एक संबंध भी रहता है। संतान बौद्धिक भी हो सकती है और भावनात्मक रूप से ग्रहण भी होती है। जैसे बच्चों को गोद ले लेना।

संतान किसी जन्मदाता का अंश होती है और स्वयं के साथ-साथ अपने जन्मदाता का प्रतिनिधित्व भी करती है। $E=MC^2$ सिद्धान्त आज तक वैज्ञानिक आइन्सटीन का ही प्रतिनिधित्व कर रहा है। महात्मा गांधी भारत का ही संतान रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। संतान का अर्थ है-जो अपने अंशी को पूर्ण रूप से प्रकट करे अर्थात् जिसमें अंशी के सारे गुण मौजूद हों। अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ भी यही है कि मुझ में ब्रह्म के सारे गुण मौजूद हैं। इसीलिए हम सब उसी एक ईश्वर की संतान हैं। शिष्य में गुरु के सारे गुण होते हैं। अतः गुरु की संतान होता है।

संतान होने का अर्थ केवल आकृति से नहीं है। इसमें प्रकृति तथा अहंकृति भी होती है। इन सब की बाहरी अभिव्यक्तियां देश-काल के अनुरूप होती हैं। तथा इनका केन्द्रीभूत स्वरूप अथवा आत्मा अपने भिन्न स्वरूप में भी रह सकता है। इसे लागू केवल चेतन पर किया जाता है। चेतन शरीर में आत्मा संतान की तरह मां-बाप पैदा नहीं करते। वह शाश्वत होता है। वही शरीर का उपयोग करता है। यह आत्मा ही माता-पिता द्वारा शिक्षित होता है-जाने अनजाने। देखता है, सुनता है। पेट में था तब केवल सुनता था। ध्वनि आकाश का गुण है। इसी से सारी सृष्टि होती है। सारे शरीर बनते हैं। यही शिक्षा संतान का संस्कार कहलाती है। उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाती है। समय के साथ माता-पिता बदल जाते हैं; किन्तु संतान के संस्कार बने भी रह सकते हैं। कुछ संस्कार आत्मा के साथ पिछले जन्मों से भी रहते हैं-सूक्ष्म शरीर के रूप में। ये संतान के अपने होते हैं। इनके आधार पर ऋणानुबंध के संबंध होते हैं। इन्हीं संबंधों के कारण आत्मा संतान के रूप में जन्म लेता

है। किसी भी आत्मा का संतान रूप में आना पिछले जन्म के कर्मों के कारण ही होता है। वर्तमान में दिखाई तो शरीर ही देता है। घर में परिष्कृत आत्मा ही अवतरित हो इसके लिए भी उपासना-प्रार्थना की जाती है। किसी जंगली जानवर की देह त्याग कर यदि आत्मा मनुष्य शरीर में आ जाए और माता द्वारा यदि पेट में उसका परिष्कार नहीं किया जाए, तो उस परिवार का भविष्य सोचा जा सकता है। अच्छी सन्तान सौभाग्य से प्राप्त होती है। साथ ही अंश और अंशी का संबंध भी बहुत कुछ तो पूर्व निर्धारित भी होता है। वर्तमान का स्वरूप तो सदा अतीत पर टिका होता है। इसी के साथ वर्तमान जुड़कर अनागत का निर्माण करते हैं। माता-पिता की तरह संतान का भी अपना स्वतंत्र भाग्य होता है। जीवन-पथ और लक्ष्य होता है। माता-पिता और संतान सभी को मन, बुद्धि, अहंकार के सहारे जीना होता है। इसी में राग-द्वेष, अभिनिवेश होते हैं। विद्या-अविद्या और प्रारब्ध के सहारे आपसी व्यवहार चलता है।

प्रकृति में किसी का कोई भी नाम नहीं होता, पहचान नहीं होती। आकृति होती है, संबंध नहीं होता। मानव सभ्यता ने नाम, समाज, जाति, धर्म, देश आदि स्वरूप प्रदान किए। मानवता को अनेक खण्डों में बांट दिया। इसमें संतान तो माता-पिता की संपत्ति जैसी दिखाई पड़ने लग गई। पैदा किया, पालन-पोषण किया, तो अधिकार भी मान लिया। सृष्टि में कोई प्राणी संतान पर इस तरह का अधिकार नहीं जमाता। पैदा कोई नियोजित रूप से करता भी नहीं है। हो जाते हैं। जैसे अन्य प्राणियों के होते हैं, मानव के भी हो जाते हैं। अन्य प्राणियों को माता पेट में संस्कार नहीं देती, क्योंकि वे भोग योनियां हैं। आज तो मानव माता ने भी संस्कार देना बन्द करके इसे योग से बाहर कर दिया। भोग योनि के साथ जोड़कर पशु बना दिया। आज का मानव भी पशु की तरह ही आहार-निद्रा-भय-मैथुन के आगे जीता ही नहीं है।

कैसे ऐसी संतान मां-बाप के सुख का कारण बन सकती है। समाज को कुछ देने का माध्यम बन सकती है। तब कहां प्रतिनिधि बनेगी मां-बाप का? क्या अपने पितृ-गणों को मुक्त करा सकेगी? स्वयं तो मुक्त हो ही नहीं सकती। शास्त्रों में लिखा है कि विश्व में केवल भारत कर्म भूमि है, शेष विश्व भोग भूमि है। अब लगता है शीघ्र ही भारत भी भोग भूमि में बदल जाएगा। यहां भी मानव शरीरों में भीतर का पशु ही अभिव्यक्त होता है। इस जीवन शैली ने प्रमाणित भी कर दिया कि मानव भी मूल में तो पशु ही है।

नई शिक्षा प्रणाली ने भी भोग को ही बढ़ावा दिया है। पेट भरना ही लक्ष्य बन गया जीने का। अतः शिक्षा के माध्यम से मां-बाप भी बच्चों के उत्तरदायित्व से जल्दी ही मुक्त हो जाना चाहते हैं। सम्पन्न परिवारों के बच्चे कम उम्र में ही छात्रावासों में चले जाते हैं और

उच्च शिक्षा प्राप्त करके घर से दूर रहने चले जाते हैं। मां-बाप की भागीदारी बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में होती ही नहीं। न ही इनके बीच आत्मीयता का भाव पैदा हो पाता। ऐसी संतान कभी मां-बाप की प्रतिनिधि नहीं बन सकती। कभी चिड़िया का बच्चा बड़ा होकर लौटता है?

माता-पिता की गुणवत्ता का प्रमाण उनकी संतान होती है। वे स्वयं या उनका कार्य मात्र ही नहीं होता। भारतीय जीवन शैली में पुत्रेषणा का विशेष महत्त्व है। लेकिन पुत्र के सुचारू और विवेकपूर्ण जीवनयापन के लिए सुसंस्कृत पत्नी की भी आवश्यकता होती है। यह गुणवान नहीं हो तो स्वयं का जीवन तो समझो नरक बन ही गया। साथ ही संतान भी संस्कारवान नहीं हो सकती। तब यकायक जीवन अपनी सार्थकता खो बैठता है। दोष इसमें संतान का उतना नहीं होता, जितना कि माता-पिता का।

वैसे तो जीव स्वयं ही माता-पिता का चुनाव करता है-ऐसी हमारे शास्त्रों की मान्यता है। जैसे भगवान् को देखते ही कुंभकरण के मुंह से स्वतः ही इन्द्रासन की जगह निद्रासन निकल गया था, वैसे ही मां-बाप (पति-पत्नी युगल) को जब आकाश में विचरण करता हुआ जीव देखता है, तो प्रकृति उसके मन में इच्छा पैदा कर देती है कि उन्हीं की संतान बने। तब एक निश्चित कालखण्ड में वह भ्रूण में प्रवेश करके उसे गतिमान बनाता है। माता को पता चल जाता है कि जीव उसके गर्भ में प्रवेश कर गया है। माता-पिता और संतान के मध्य कई तरह के संबंध बनते हैं। माता-पिता के शरीर का अंश होने से उनके गुणों का प्रकटीकरण संतान के द्वारा होता है। माता-पिता के दिए संस्कारों की अभिव्यक्ति संतान के द्वारा होती है। माता-पिता के कुछ कर्मों का फल भी संतान को ही भोगना पड़ता है। जो लक्ष्य लेकर जीव मां-बाप से जुड़ा उसे पूरा करने हेतु भी संतान कार्य करेगी। कर्मों के फलों का भोग तथा ऋणानुबन्ध के अनुसार कार्य करने होंगे। पितृ ऋण, मातृ ऋण से मुक्त होने के कार्य। माता-पिता की तरह ही अपनी संतानों के साथ भी इसी दृष्टि से कार्य करना पड़ेगा। पति-पत्नी मिलकर एक साथ सुख-दुःख का भोग करते रहेंगे।

माता-पिता और संतान में देश-काल का अन्तर भविष्य में बहुत अधिक रहेगा। अतः पुरानी गुठली से जो नए आम आएंगे, उन पर नए खाद-पानी का प्रभाव बदला हुआ होगा, शक्ल तो पुराने आम जैसी ही होगी; किन्तु मिठास वैसा नहीं हो सकता। आज तो लगभग सारे फल और सब्जियां उन्नत बीजों से तैयार होने लगे हैं। पुरानापन तो बाजार में टिकता ही नहीं है। भले ही नयों की रोधक क्षमता बहुत कम ही हो। असल में जो गुठली जमीन में से फूटती है और खाद-बीज के साथ-साथ ही हवा-पानी के सहारे पौध का रूप लेती है, वहीं पर खाद की दूसरी बड़ी मार (उन्नत किस्म के बाद) इस पर पड़ जाती है। जो

द्रव्य गुण गुठली में थे, उन्नत होते ही आधे रह गए। खाद और दवाइयों ने 25-30 प्रतिशत नुकसान कर दिया। जो कुछ पैदा हुआ, वह खाने लायक नहीं रहा। खा भी लें, तो गुण तो नहीं कर सकता। बीमारी का मार्ग भी खुल सकता है। यह देश काल के अनुरूप संतान क्रम में भेद को इंगित करता है। अब नई फसल के आम में पुरानी गुठली के गुण कहां से प्राप्त होंगे? हर संतान का स्वरूप बीज पर ही टिका रहता है। यही अच्छे बीज के मोल का रहस्य है। जिन घरों की जीवन शैली में मर्यादा, धर्म, नैतिकता, मूल्य, लज्जा जैसे शब्द दिखाई पड़ते हैं, वहां रस बना रहता है। बिना धर्म के, अर्थ और काम के सहारे जो संतान उत्पन्न होती है, वह निर्वीर्य ही होगी। ऐसी संतान की कर्म में कभी आस्था हो ही नहीं सकती। क्योंकि कर्म भी तो वीर्य का ही पर्यायवाची है। तब कैसे वह माता-पिता, गुरु का प्रतिनिधित्व कर सकेगी?

संतान एक वाहन है। इसमें जो कुछ माता-पिता रख देते हैं, उसी को जीवन में बांटती जाती है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात संस्कारों की होती है। उसी के अनुरूप व्यक्ति ज्ञान अर्जित करता है। वैसे ही कर्म करता है। वैसे ही निर्माण करता है। प्रारब्ध भी कर्म कराते हैं। व्यक्ति अपने जीवन का कोई लक्ष्य बनाकर भी कर्म करता है। हर कर्म के पीछे एक इच्छा होती है। इच्छा का आधार भी संस्कार और वातावरण ही होते हैं। जब तक संतान स्वयं के लिए कार्य करती है, जीती है, उसका समाज के लिए कोई महत्त्व नहीं होता। उसका संकुचन ही उसके विकास की सीमा बन जाता है। जैसे ही व्यक्ति समष्टि भाव में जीने लगता है, उसके संतान स्वरूप में रूपान्तरण हो जाता है। वह पहले स्वजनों की ओर मुड़ता है। उनके जीवन में जुड़ने का प्रयास करता है। माता-पिता के साथ इस सुख को बांटकर आनन्द का अनुभव करता है। यही मिठास उसे आगे बढ़ने को प्रेरित भी करता है। परिजनों, इष्टमित्रों के साथ-साथ सामाजिक भूमिका भी बढ़ने लगती है। व्यक्ति इन सारे सुखों को भीतर अनुभव करता है। उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं। उसकी आत्मा का विस्तार होने लग जाता है। जिन-जिन के साथ उसका व्यवहार बनने लगता है, उनको अपने साथ जुड़ा हुआ भी मानने लग जाता है। लगता है सभी लोग भीतर किसी एक धागे से बंधे हुए भी हैं। यही ईश्वर की सत्ता है। उसी ईश्वर की वह भी संतान है और जो अन्य जुड़े हुए हैं, वे भी संतान हैं। अच्छी संतान का कार्य माता-पिता को प्रकट करना, उनकी शक्तियों को लोक के सामने रखना है। ईश्वर की संतान अपने कार्यों के माध्यम से उसकी सत्ता को प्रकट करती चली जाती है। मूल प्रश्न यह है कि संतान होने का बोध कैसे कराया जाए। अंश के लिए अंशी का होना आवश्यक है। देश-काल की नई यात्रा में अंशी ओझल होता जा रहा है। अंश का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेने को अंशी की तैयारी

घटती जा रही है। अब संतान को यह बताने में कठिनाई होगी कि वह किस अंशी का अंश है और उसकी विशेषता क्या है। विशेषता का लुप्त होना ही संस्कार विहीन होना है। शरीर रूपी वाहन ही अंश रूप रहेगा। उसमें सामान कुछ नहीं होगा। यह सच है कि फिर भी ईश्वर की संतान तो रहेगा।

पुरुषार्थ चतुष्टय अन्य प्राचीन धर्मों की तरह वैदिक दर्शन की भी यह मान्यता है कि प्रकृति प्राणधारा से स्पन्दित है। सम्पूर्ण चराचर जगत अर्थात् पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, आग, वायु, जल, वनस्पति और जीव-जंतु सब में दैवत्व की धारा प्रवाहित है। वैदिक दर्शन ने हमें सम्पूर्ण अस्तित्व के प्रति गहन श्रद्धा और स्नेह से जीना सिखाया। इस दृष्टि का इतना अधिक प्रभाव था कि जब प्रकृति की गोद में स्थित एक आश्रम में पली-पोसी कालिदास की 'शकुन्तला अपने पति दुष्यन्त से मिलने के लिए शहर जाने लगी तो उसकी जुदाई से वे पौधे जिन्हें उसने सींचा, फूल जिनकी उसने देखभाल की, मृग जिन्हें उसने पोषित किया आदि अत्यधिक दुखी हुए। यहां तक कि लताओं ने भी अपने पीले पत्ते झाड़कर रुदन करना शुरू कर दिया। वह ऐसा युग था जब मानव व प्रकृति के बीच पूर्ण तादात्म्य और सीधा सम्पर्क था। आवश्यकताएं सीमित थीं, मनुष्य इतना संतोषी था कि प्रकृति के शोषण की बात तो वह सपने में भी नहीं सोच सकता था। प्रकृति के साथ घनिष्ठ संबंध ही सभी धर्मों का मर्म था। समय ने करवट बदली। शहरीकरण और औद्योगीकीकरण के साथ मनुष्य का प्रकृति से सम्पर्क टूट गया। तथाकथित विकास की अंधी दौड़ में उसकी यह अनुभूति समाप्त हो गई कि प्रकृति भी एक जीवन्त शक्ति है। इस विकास का अर्थ था प्रकृति का उसके अस्तित्त्व की कीमत पर शोषण। एक तरफ जीवन की आवश्यकताओं व मन की इच्छाओं और दूसरी ओर विवेकपूर्ण आचरण की आवश्यकता के बीच संतुलन बिगड़ गया। दृश्य पदार्थ ने मानव जीवन के सूक्ष्म अदृश्य आत्मा को पराजित कर दिया।

वैदिक लोकाचार ऐसे समग्र जीवन का उल्लेख करता है, जिसमें शरीर, बुद्धि, मन और आत्मा सभी की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता हो। शरीर को आवश्यकता है रोटी, कपड़ा, मकान, चिकित्सा व अन्य सभी भौतिक सुख-सुविधाओं की। मन इच्छाओं का केन्द्र है, जो चाहता है कि इच्छाएं पूरी हों। लेकिन बुद्धि आवश्यकताओं को सीमित करने तथा इच्छाओं को नियंत्रित करने के लिए हमारा इस तरह मार्गदर्शन करती है कि प्रकृति के पुनर्चक्रीकरण की प्रक्रिया व सभ्य समाज के महीन तन्तु अस्त-व्यस्त नहीं हों। मैं आपके समक्ष जीवन के तीन बुनियादी पहलुओं को प्रस्तुत करना चाहूंगा, जो गहन पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों से प्रगाढ़ रूप से जुड़े हुए हैं।

न केवल पारिस्थितिकी और टिकाऊ जीवन के लिए अपितु जीवन के प्रति समग्र

दृष्टिकोण के लिए भी धर्म और शिक्षा की भूमिका सबसे पहले आती हैं। आज शिक्षा व्यवसायोन्मुख हो गई है, जो केवल रोजी-रोटी कमाने तक सीमित रह गई है। धर्म, परम्पराएं पीछे छूट गए हैं, जो मूल्य-परक शिक्षा के स्रोत थे। वैदिक परिप्रेक्ष्य में मैं कहना चाहूंगा कि सिक्के की तरह मानव जीवन के भी दो पहलू हैं। एक दृश्य है और दूसरा है अदृश्य, जो हमारी इंद्रियों की समझ से परे है। वह कारण और कार्य भाव की तरह काम करते हैं। अदृश्य जगत् ही दृश्य जगत् का संचालन करता है। हमारे शरीर में बुद्धि, भावनाएं और आत्मा अदृश्य हैं। भारतीय जीवन पद्धति ने सदियों से दृश्य और अदृश्य के बीच संतुलन बनाए रखा है।

मेरी समझ में आज प्राकृतिक पर्यावरण के अवकर्षण और वर्तमान कष्ट का एकमात्र कारण आधुनिक शिक्षा प्रणाली का एकान्तिक दृष्टिकोण है। यह व्यावहारिकता और यथार्थवाद से कोसों दूर है। शिक्षा का प्रारम्भ इस एकमात्र लक्ष्य को लेकर हुआ कि सामाजिक दृष्टि से अच्छे इंसान तैयार हों। किंतु; अब यह विकृत होकर ऐसी प्रणाली में बदल गई है जो शरीर और बुद्धि की बात तो करती है; किन्तु मनुष्य का आध्यात्मिक और भावनात्मक दृष्टि से स्पर्श नहीं करती। इसका ही परिणाम है कि असंतुलित व्यक्तित्व तैयार हो रहे हैं। जितनी उच्च शिक्षा, उतना ही अधिक असंतुलन। आज कोई भी आत्मा के बारे में नहीं सोचता, जो शरीर में सौ वर्षों तक रहती है-यह शरीर ही जिसका वाहक है। यह मानव जीवन के उस महत्त्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा करती है, जिसमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा और अन्य मनुष्यों के हित की चिंता निहित है। इसीलिए तथाकथित शिक्षित लोग ही पारिस्थितिकी और पर्यावरण समरसता के विनाश के लिए जिम्मेदार हैं। वे प्रकृति को जड़ वस्तु मानते हैं जो मानो मानव के उपयोग और 'शोषण के लिए ही बनी हो। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 1995 में प्रकाशित जनसंख्या व जीवन स्तर पर स्वतंत्र आयोग 'इंडिपेंडेंट कमीशन ऑन पापुलेशन एंड क्वालिटी ऑफ लाइफ' की रिपोर्ट इस तथ्य को प्रकट करती है कि 'मनुष्य के अस्तित्त्व के लिए प्राकृतिक पर्यावरण बहुत महत्त्वपूर्ण है। भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का पोषण और देखभाल आवश्यक है, जिसकी उपेक्षा की जा रही है।'

माता-पिता द्वारा सृजित इस नश्वर शरीर में आत्मा को अविनाशी कहा जाता है। आचरण या संस्कार की दृष्टि से दोनों के स्तर अलग-अलग हैं। शरीर में आत्मा दूसरे शरीर से आता है, जो आवश्यक नहीं कि मनुष्य का ही हो। वह पिछले जन्म के संस्कार भी साथ लाता है। मनुष्य की भूमिका से समरसता के लिए इन संस्कारों की पहचान और शुद्धिकरण की प्रक्रिया आवश्यक होती है। इसमें धर्म महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि वह जीवन की व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से संबंधित होता है। यह सभी मजहबों से

ऊपर है। क्योंकि धर्म आत्मा से जुड़ा है और यह व्यक्ति की मुक्ति का मार्ग है। मजहब अथवा सम्प्रदाय इसकी सामाजिक अभिव्यक्ति है। आधुनिक शिक्षा ऐसी बुद्धि से जुड़ी है, जो व्यक्ति को रोजगार दिलाने में मदद करती है। मानवीय संवेदनशीलता के बजाए उसका संबंध विषयों से ज्यादा है। यह हृदय की संस्कृति विकसित करने का प्रयास नहीं करती। भावनात्मक दृष्टि से महिला पुरुष से ज्यादा संवेदनशील मानी जाती है। वह भी समानता और महिला सशक्तीकरण के वैश्विक अभियान के लपेटे में आ गई है। वह भी मां और पत्नी की भावुक भूमिका की कीमत पर पुरुष की बौद्धिक जीवन शैली की लालसा करने लगी है।

पति-पत्नी को एक दूसरे का पूरक माना जाता है। किन्तु; व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के कारण ऐसा हो नहीं रहा है। दोनों स्वावलम्बी और प्रतिस्पर्धी बने रहकर किसी भी समय एक-दूसरे से अलग होने को तैयार रहते हैं। भारत में ऐसा नहीं है। भारत में तो पति-पत्नी के संबंध मृत्यु के बाद भी नहीं टूटते हैं। स्वाधीनता, आर्थिक स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष करने वाली महिला नारीत्व की प्राकृतिक भूमिका को अस्वीकार कर खुद प्रकृति को चुनौती दे रही है। केवल महिला ही है जो इस धरती पर हृदय की संस्कृति का निर्माण करने में सक्षम है, लेकिन हास्यास्पद है कि वह अब पुरुष का अनुकरण करने में जुटी है। कैसे वह जीवन भर पुरुष को आकर्षित करके जोड़े रख सकती है। समान ध्रुव में विकर्षण होता है। उसका अदृश्य हृदय और आत्मा उसके अहम् के साथ मेल नहीं खाते। आज शोषण भी उसी का सबसे ज्यादा हो रहा है और पूरी दुनिया इसकी कीमत चुका रही है। मां की भूमिका को दोयम दर्जे का मान लिया गया है। महिला ही बच्चों में जीवन-मूल्यों और जीवन के उद्देश्य हस्तान्तरित करने की प्रकृति प्रदत्त क्षमता रखती है। मां को ही शिशु का प्रथम गुरु माना जाता है। जब वह खुद जीवन के संघर्षों में उलझ गई तो उसके पास बच्चों को जीवन-मूल्यों के संस्कार देने के लिए समय ही नहीं बचता, जिससे बच्चों को अनुभव होने लगे कि प्रकृति और मानव अविभाज्य हैं-एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। पृथ्वी पर पारिस्थितिकी संतुलन कायम रखने के लिए हमें गहराई में इसकी जड़ों तक जाना होगा। हमें मां के रूप की सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका को फिर स्थापित करना होगा और हम सभी को उसमें श्रद्धा रखनी होगी।

बच्चों के व्यक्तित्व पर उसका रचनात्मक प्रभाव ही उन्हें संतुलित मानव बना सकता है। जो गूढ़ पारिस्थितिकी विज्ञान के सिद्धान्तों को अपना सके। जिनका उल्लेख अर्नेनैस ने अपनी पुस्तक 'द इकोलॉजी ऑफ विजडम' में किया है। इस पुस्तक में पृथ्वी पर मानवीय और गैर-मानवीय जीवन के फलने-फूलने व जीवन के विविध रूपों की

विविधता और समृद्धता पर ज़ोर दिया गया है। यह जानना दिलचस्प होगा कि वेदों में धातु, जल, वायु और पृथ्वी जैसे निर्जीव तत्त्वों में भी जीवन माना गया है। इस विविधता और समृद्धता को कम करके हम अपने विनाश की ओर ही बढ़ेंगे।

इस लक्ष्य के लिए भारत के वैदिक परिदृश्य में जीवन पुरुषार्थ चतुष्टय पर आधारित है। ये चार पुरुषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पुरुषार्थ का अर्थ है 'आत्मा के लिए', जो एक अवधि के बाद शरीर से मुक्ति चाहता है। अर्थ या सम्पत्ति इस शरीर के लिए है। काम मानस से संबंधित या इच्छाओं/ मनोभावों का केन्द्र है। अर्थ और काम पिछले जन्म के कर्मों को भी प्रकट करते हैं। ये पूरी तरह इस जन्म के प्रयासों पर आधारित नहीं होते। निश्चय ही, धर्म 'वर्तमान' का प्रकाश-स्तम्भ है। वह कर्म की दिशा और गति तय करता है, जो किसी व्यक्ति के संकल्प या जीवन के प्रति स्वयं की प्रतिबद्धता के अनुरूप होती है। मनुष्य जब गर्भ में होता है तभी से धर्म नाभि-रज्जु के जरिए उसके साथ जुड़ता है। आधुनिक भाषा में हम इस रज्जु को किसी व्यक्ति के धर्म का प्रतीक कह सकते हैं। इसके माध्यम से मां बच्चे के भविष्य का निर्धारण करती है। वह अपने शरीर व मन में हो रहे परिवर्तनों से इस आत्मा के स्वभाव को समझती है और आवश्यकता के अनुरूप कदम उठाती है। आधुनिक शिक्षित माताएं यह नींव नहीं रखतीं। जो जन्म के बाद में पढ़ाया जाता है वह 'रिलिजन' है। इस नए दौर का बच्चा धर्म के बिना, अर्थ और काम के जरिए ही पलता-बढ़ता है। उस पर सामाजिक, नैतिक या धार्मिक किसी भी तरह की बंदिशें नहीं होतीं। इसलिए वह आत्मा की मुक्ति के चरण तक नहीं पहुंच सकता।

उपसंहार

किसी भी संकल्प का प्राण शब्दों में नहीं होता, शब्दों के प्रति आस्था में होता है। श्रद्धेय पिताजी की आस्था विश्व मानव समाज के प्रति अटूट रही। तभी यह भगीरथ प्रयास संभव हो पाया। उनका कहना था कि ज्ञानी हम किसी को भी बना नहीं सकते। यह हमारा कार्य भी नहीं है। हमारा कार्य जिज्ञासा मात्र जगा देने का है। मानव मन में ज्ञान के प्रति उसी जिज्ञासा को जगाने के लिए यह ग्रन्थ अस्तित्व में आया।

आज जीवन शैली में एक विशिष्ट परिवर्तन आया है। शिक्षा प्रणाली का भी वैश्वीकरण हो गया है। शिक्षा जीवन की बात ही नहीं करती। विषयों पर टिकी है। व्यक्ति बौद्धिक स्तर पर छलांगें लगा रहा है। उसका भावनात्मक स्तर छूटता जा रहा है। अनजाने में एक बड़ा भारी-सा असंतुलन उसके जीवन का अंग बनता जा रहा है। मन का धरातल सूना पड़ गया। सारी कामनाएं मन में उठती हैं। सारी इन्द्रियां भी मन से ही जुड़ी हैं। ये मन को चंचल बनाए रखती हैं। व्यक्ति मन को समझता ही नहीं। नियंत्रण भी नहीं कर पाता। सुख से जीना भी चाहता है। लेकिन यह सब कुछ केवल विज्ञान के सहारे संभव नहीं है। एक पक्षीय ज्ञान कभी हितकारी नहीं होता। इस संतुलन के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। धर्म ही हमारे संस्कारों का आधार है। विद्या का भी आधार है- धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। पुरुषार्थ भी धर्म पर टिका है- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इस धर्म के अनेक स्वरूप हैं। हर व्यक्ति का अपना स्वभाव है, धर्म है।

धर्म के अभाव में सम्पूर्ण विश्व भौतिकवाद की ओर भाग रहा है। हिंसा, आतंकवाद, नस्लवाद के बीच जी रहा है। स्वयं के अलावा अन्य की चिन्ता करना उसके स्वभाव में होता ही नहीं जबकि वेद जीवन का सुख व्यष्टि के बजाए समष्टि भाव में मानता हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष करता है। धर्म और विज्ञान की सहचारिता से ही यह संभव है। इसके अभाव में स्वयं धर्म भी कट्टरवाद के ही पर्याय बन रहे हैं। इस दृष्टि से वेद आज पहले से अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। जरूरत है, इनके भीतर छिपी हुई वैज्ञानिकता को सूत्रों के बाहर निकालने की। वेदों में धर्म भी है और वैज्ञानिकता भी। धर्म की अनेक टिप्पणियां उपलब्ध हैं। विज्ञान भाव पर अभी तक हमारी दृष्टि में एकमात्र पं. मधुसूदन ओझा का ही कार्य आया है और उसी को आज के परिप्रेक्ष्य में पाठकों की भाषा में प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास राजस्थान पत्रिका (दैनिक हिन्दी समाचार पत्र) कर रहा है। नई पीढ़ी को ज्ञान का वैज्ञानिक आधार चाहिए। इस क्रम में राजस्थान पत्रिका ने कई ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया है। विश्व साहित्य से चूंकि अधिदेव गायब है, अत: वेदों की ऋचाओं को विश्व पटल पर रखने में एक भिन्न प्रकार की कठिनाई आती है। हमारी अधिकांश ऋचाओं में देवी-देवताओं की स्तुतियां हैं। इतने देवता विश्व को मान्य ही नहीं हैं। यदि हम वेदों का भाष्य इस दृष्टि से करें, कि देवों को प्राण रूप में प्रस्तुत कर सकें, तो विश्व हमारी बात सुन लेगा।

सही अर्थों में तो अधिदेव की व्याख्या ही वेद का योगदान माना जाना चाहिए। सम्पूर्ण स्थूल सृष्टि का कारण भाव ही अधिदेव है। कारण के बिना विज्ञान भी अधूरा है और ज्ञान

भी। क्योंकि कारण ही मूल तत्त्व एवं कार्य के बीच का सेतु है। शब्द में नाद भी है, अर्थ भी है, अक्षर भी है। किसी एक के छूट जाने पर ज्ञान की कभी पूर्णता नहीं होती। गीता में कृष्ण ने कहा है कि ज्ञान, ज्ञाता एवं ज्ञेय सदा साथ रहते हैं। यही वेदों की विशेषता है। विज्ञान (आधुनिक) में व्यक्ति शामिल नहीं होता। अत: उसका उपयोग हित में और अहित में भी हो सकता है। वेद-ज्ञान को आत्मसात् करना पड़ता है। इसके सारे प्रयोग शरीर के भीतर किए जाते हैं। व्यक्ति स्वयं करता है। अपनी जरूरत के अनुरूप करता है। अत: सीधा उसके हित से जुड़ जाता है। इस प्रयोग को वह प्रयोगशाला में नहीं दिखा सकता। अब यह उत्तरदायित्व हम भारतवासियों को वहन करना है। ज्ञान के ही मार्ग से भारत विश्व का नेतृत्व कर सकता है। अब हमें नए सिरे से इस यज्ञ में अपनी आहुतियां देनी हैं। आइए, वेद के विज्ञान भाव को हम विश्व के समक्ष प्रस्तुत करें। यह प्रमाणित कर दें कि वेद देश-काल की सीमा से परे हैं। मंगलकामना।

- गुलाब कोठारी

◆◆◆

ऋग्वेद संहिता

ॐ

ऋग्वेद-संहिता ।

अथ प्रथमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-९ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥
अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥ [१]
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥ [२] (९)

॥ २ ॥

१-९ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १-३ वायुः; ४-६ इन्द्र-वायू;
७-९ मित्रावरुणौ । गायत्री ।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ [३]
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥ (१५)

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥[४] (१८)

॥ ३ ॥

१-१२ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः;
७-९ विश्वे देवाः, १०-१२ सरस्वती । गायत्री ।

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥[५]
ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥ ७ ॥
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥
विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति॥ १२ ॥[६] (३०)

॥ ४ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम्॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥[७]
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥ (३८)

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥ [८] (४०)

॥ ५ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरंध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥ [९]
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥[१०](५०)

॥ ६ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । १-३ इन्द्रः; ४,६,८,९, मरुतः;
५,७ मरुतः इन्द्रश्च, १० इन्द्रः । गायत्री ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥ [११]
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥ [१२] (६०)

॥ ७ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥[१३]
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥[१४] (७०)

॥ ८ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥[१५]
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥[१६] (८०)

॥ ९ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥ (८२)

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥ [१७]

अस्मान्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ [१८] (९०)

॥ १० ॥

१-१२ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् । तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव । ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे । शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये । स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥ [१९]

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः । गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः । जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः । इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् । वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब । नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ [२०] (१०२)

॥ ११ ॥

१-८ जेता माधुच्छन्दसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः । यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥ (१०५)

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत । इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् । त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् । उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः । विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ८ ॥ [२१] (११०)

॥ १२ ॥

१-१२ मेधातिथिः काण्वः । अग्निः, ६ निर्मथ्याहवनीयावग्नी । गायत्री ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥ [२२]

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥ [२३] (१२२)

॥ १३ ॥

१-१२ मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं = [१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ, प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः ।] गायत्री ।

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥ (१२७)

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ [२४]

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन्यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥

स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥ [२५] (१३४)

॥ १४ ॥

१-१२ मेधातिथिः काण्वः । विश्वेदेवाः । गायत्री ।

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥ ५ ॥

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥ [२६]

तान्यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥ [२७] (१४६)

॥ १५ ॥

१-१२ मेधातिथिः काण्वः । ऋतवः [ऋतुदेवताः = १ इन्द्रः २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः] । गायत्री ।

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥ (१५०)

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ [२८]

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥ [२९] (१५८)

॥ १६ ॥

१-९ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥ [३०]

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥ [३१] (१६७)

॥ १७ ॥

१-९ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । १-३, ६-९ गायत्री, ४-५ पादनिचृत् (ह्रसीयसी वा) ।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ [३२]

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥ (१७२)

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥ [३३] (१७६)

॥ १८ ॥

१-९ मेधातिथिः काण्वः । १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः इन्द्रः सोमश्च, ५ इन्द्रः सोमः ब्रह्मणस्पतिः दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिः नराशंसो वा गायत्री ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥
यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २ ॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥ [३४]
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ [३५] (१८५)

॥ १९ ॥

१-९ मेधातिथिः काण्वः । अग्निर्मरुतश्च । गायत्री ।

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥ [३६]
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥
य ईङ्खयन्ति पर्वतान्तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥ [३७] १ *
(१९४)

२

॥ २० ॥

१-८ मेधातिथिः काण्वः । ऋभवः । गायत्री ।

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ [१]
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥
अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ [२] (२०२)

॥ २१ ॥

१-६ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥ [३] (२०८)

॥ २२ ॥

१-२१ मेधातिथिः काण्वः । १-४ अश्विनौ; ५-८ सविता; ९-१० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः; १३-१४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवो वा; १७-२१ विष्णुः । गायत्री ।

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ [४]
अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥ (२१४)

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह ॥१०॥ [५]
अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११॥
इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥१२॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥१३॥
तयोरिद्घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४॥
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५॥ [६]
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६॥
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१७॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥१८॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥२०॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥२१॥ [७] (२२९)

॥ २३ ॥

१-२४ मेधातिथिः काण्वः । १ वायुः; २-३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ इन्द्रो मरुत्वान्; १०-१२ विश्वे देवाः; १३-१५ पूषा; १६-२२ आपः; २३ आपः अग्निश्च; २४ अग्निः । १-१८ गायत्री, १९ पुरउष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा; २०, २२-२४ अनुष्टुप् ।

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ [८]
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥
विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०॥ [९] (२३९)

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥११॥
हस्कारादिद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥
आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥
पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥ [१०]
अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६॥
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८॥
अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ॥१९॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥ [११]
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि । यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥२२॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि । पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥२३॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥ [१२]
(२५३)

॥ २४ ॥

१-१५ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा । १ कः; २ अग्निः, ३-५ सविता ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः । १, २, ६, १५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री ।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ॥ ३ ॥
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ [१३]
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥ (२६०)

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निरृतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥ [१४]
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११॥
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२॥
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३॥
अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५॥ [१५](२६८)

॥ २५ ॥

१—२१ शुनःशेप आजीगर्तिः । वरुणः । गायत्री ।

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥
वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥ [१६]
तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥
वेद वातस्य वर्तनिमुरोरृष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१०॥[१७](२७८)

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ॥११॥
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२॥
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे ॥१३॥
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः ॥१४॥
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥१५॥ [१८]
परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६॥
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७॥
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥१८॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥१९॥
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥२०॥
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥२१॥ [१९](२८९)

॥ २६ ॥

१-१० शुनःशेप आजीगर्तिः । अग्निः । गायत्री ।

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥
आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥[२०]
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१०॥[२१](२९९)

॥ २७ ॥

१-१३ शुनःशेप आजीगर्तिः । १—१२ अग्निः, १३ देवाः । १—१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप् ।

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥ (३०१)

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥[२२]
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१०॥[२३]
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥११॥
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः । उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥१२॥
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १३ ॥[२४] (३१२)

॥ २८ ॥

१-९ शुनःशेप आजीगर्तिः । १—४ इन्द्रः, ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिः हरिश्चन्द्रः चर्म सोमो वा । १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री ।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥[२५]
उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् । अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥[२६] (३२१)

॥ २९ ॥

१-७ शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥ (३२२)

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥ [२७] (३२८)

॥ ३० ॥

१-२२ शुनःशेप आजीगर्तिः । १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषा । १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥[२८]
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥१०॥[२९]
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्सखीनाम् ॥११॥
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥१२॥
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१३॥ (३४१

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥[३०]
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥[३१](३५०)

॥ ३१ ॥

१-१८ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अग्निः । जगती; ८,१६,१८ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३ ॥
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ५ ॥[३२]
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७ ॥ (३५७)

३

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥[३३]
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३ ॥
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥ १४ ॥
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ १५ ॥[३४]
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥[३५](३६८)

॥ ३२ ॥

१-१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥ (३६९)

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥ ५ ॥ [३६]
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥[३७]
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥ (३८२)

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥[३८] २* (३८३)

॥ ३३ ॥

१-१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥ [१]
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥ [२]
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११॥ (३९४)

न्यविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक्चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥ [३] (३९८)

॥ ३४ ॥

१-१२ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अश्विनौ । जगती, ९,१२ त्रिष्टुप् ।

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥
समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम् ॥ ५ ॥
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥ [४]
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७ ॥
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥ (४०३)

क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥
आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥ [५] (४१०)

॥ ३५ ॥

१-११ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । १ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च ।
२-११ सविता । १,९ जगती, २-८,१०,११ त्रिष्टुप् ।

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥ [६]
वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥ (४१८)

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥ [७] (४२१)

॥ ३६ ॥

१-२० कण्वो घौरः । अग्निः, १३-१४ यूपः । प्रगाथः=(विषमा) बृहती-(समा) सतो बृहती ।

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ [८]
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्सुवीर्या ॥ ६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥ [९] (४३१)

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥ [१०]
घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥ [११] (४४१)

॥ ३७ ॥

१-१५ कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री ।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥
ये पृषतीभिरृष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥ [१२] (४४

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँइव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१०॥[१३]
त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः॥११॥
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२॥
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३॥
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४॥
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥१५॥[१४](४५६)

॥ ३८ ॥

१-१५ कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री ।

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो३ विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥
यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥[१५]
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥[१६]
मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥११॥
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥१२॥
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥१३॥
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४॥
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥[१७](४७१)

॥ ३९ ॥

१-१० कण्वो घौरः । मरुतः । प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदाइव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥[१८]
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥१०॥[१९](४८१)

॥ ४० ॥

१-८ कण्वो घौरः । ब्रह्मणस्पतिः । प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥ (४८३)

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥ [२०]
तमिद्वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ [२१] (४८९)

॥ ४१ ॥

१-९ कण्वो घौरः । १—३, ७—९ वरुणमित्रार्यमणः; ४—६ आदित्यः । गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १ ॥
यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५ ॥[२२]
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥ ८ ॥
चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥[२३](४९८)

॥ ४२ ॥

१-१० कण्वो घौरः । पूषा । गायत्री ।

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥ (५००)

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥[२४]
अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥[२५] (५०८)

॥ ४३ ॥

१-९ कण्वो घौरः । १, २, ४—६ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ, ७—९ सोमः । १—८ गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥
यः शुक्रइव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥[२६]
शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥[२७](५१७)

॥ ४४ ॥

१-१४ प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १—२ अग्निः, अश्विनौ, उषा । प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥ (५१८)

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ [२८]
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ [२९]
नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥ [३०] (५३१)

॥ ४५ ॥

१-१० प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः, १० (अर्धर्चः) देवाः । अनुष्टुप् ।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥
प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः । याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ [३१]
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः । बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥ [३२] (५४१)

॥ ४६ ॥

१-१५ प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री ।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥ [३३]
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥ [३४]
अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥
तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥ (५५३)

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छम्भू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ [३५] ३ * (५५६)

॥ ४७ ॥

१-१० प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ । प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥ [१]
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥ [२] (५६६)

॥ ४८ ॥

१-१६ प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः । प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ [३]
वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥ [४]
उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥
विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥ (५

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४॥
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५॥
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥ [५] (५८२)

॥ ४९ ॥

१-४ प्रस्कण्वः काण्वः । उषा । अनुष्टुप् ।

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि । वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१॥
सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् । तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् । तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४॥[६]
(५८६)

॥ ५० ॥

१-१३ प्रस्कण्वः काण्वः । १-१३ सूर्यः (११-१३ रोगघ्न उपनिषद्, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विषघ्नश्च) ।
१-९ गायत्री, १०-१३ अनुष्टुप् ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥ [७]
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥११॥ (५९७)

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥१२॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥१३॥ [८]
(५९९)

॥ ५१ ॥

१-१५ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । १-१३ जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥
त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥ [९]
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥ [१०]
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥ (६१०)

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥[११](६१४)

॥ ५२ ॥

१-१५ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । १-१२,१४ जगती, १३,१५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥ ५ ॥ [१२]
परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥
हृदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥ (६२२)

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥[१३]
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४॥
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥[१४](६२९)

॥ ५३ ॥

१-११ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । १-९ जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥[१५](६३४)

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥[१६](६४०)

॥ ५४ ॥

१-११ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, ६, ८, ९, ११ त्रिष्टुप ।

मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ ३ ॥
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४ ॥
नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ ॥ [१७]
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥ (६४६)

स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥ ७ ॥
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥[१८](६५१)

॥ ५५ ॥

१-८ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १ ॥
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥ २ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥ [१९]
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥ (६५८)

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥ [२०](६५९)

॥ ५६ ॥

१-६ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥
वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ ॥[२१](६६५)

॥ ५७ ॥

१-६ सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥ (६६९)

भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥[२२] (६७१)

॥ ५८ ॥

१-९ नोधा गौतमः । अग्निः । १-५ जगती, ६-९ त्रिष्टुप ।

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥ १ ॥
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥ [२३]
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥
होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥[२४](६८०)

॥ ५९ ॥

१—७ नोधा गौतमः । अग्निर्वैश्वानरः । त्रिष्टुप् ।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥ १ ॥
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥
बृहतीइव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥
दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥ [२५] (६८७)

॥ ६० ॥

१—५ नोधा गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥ (६९१)
६

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ [२६] (६९२)

॥ ६१ ॥

१—१६ नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दुर्माणम् ॥ ५ ॥ [२७]
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१०॥ [२८]
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११॥ (७०३)

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६॥ [२९] ४ *
(७०८)

॥ ६२ ॥

१—१३ नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥ [१]
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥ (७१५)

सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥
सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥ [२]
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३॥ [३] (७२१)

॥ ६३ ॥

१-९ नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥ [४]
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥ (७२८)

त्वं त्या न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ [५] (७२०)

॥ ६४ ॥

१-१५ नोधा गौतमः । मरुतः । १—१४ जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥ [६]
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिरृष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥ [७] (७४०)

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥ [८] (७४५)

॥ ६५ ॥

१-१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

(१२) पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ॥ १ ॥
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः ॥१॥ २ ॥
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ॥ ३ ॥
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥२॥ ४ ॥
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु ॥ ५ ॥
अत्यो नाज्मन्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥३॥ ६ ॥
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ॥ ७ ॥
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥४॥ ८ ॥
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन्क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ॥ ९ ॥
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥ १० ॥ [९] (७५५)

॥ ६६ ॥

१-१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ॥ १ ॥
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१॥ २ ॥
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ॥ ३ ॥ (७५८)

ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥ ४ ॥
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ॥ ५ ॥
चित्रो यदभ्राट्छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥ ६ ॥
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ॥ ७ ॥
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥ ८ ॥
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ॥ ९ ॥
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥५॥ १० ॥ [१०] (७६५)

॥ ६७ ॥

१—१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ॥ १ ॥
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१॥ २ ॥
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ॥ ३ ॥
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥ ४ ॥
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ॥ ५ ॥
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥ ६ ॥
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ॥ ७ ॥
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥४॥ ८ ॥
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ॥ ९ ॥
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥५॥ १० ॥ [११] (७७५)

॥ ६८ ॥

१-१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ॥ १ ॥
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥१॥ २ ॥
आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ॥ ३ ॥
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥२॥ ४ ॥
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ॥ ५ ॥
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥ ६ ॥ (७८१)

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ॥ ७ ॥
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥४॥ ८ ॥
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ॥ ९ ॥
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥५॥ १० ॥ [१२] (७८५)

॥ ६९ ॥

१-१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ॥ १ ॥
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१॥ २ ॥
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ॥ ३ ॥
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥२॥ ४ ॥
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ॥ ५ ॥
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥३॥ ६ ॥
नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ॥ ७ ॥
तत्तु ते दंसो यदहन्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥४॥ ८ ॥
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ॥ ९ ॥
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥५॥ १० ॥ [१३] (७९५)

॥ ७० ॥

१-११ पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ॥ १ ॥
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१॥ २ ॥
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ॥ ३ ॥
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥२॥ ४ ॥
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ॥ ५ ॥
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥ ६ ॥
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ॥ ७ ॥
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥४॥ ८ ॥
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ॥ ९ ॥ (८०४)

वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥५॥१०॥
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥६॥११॥[१४] (८०६)

॥ ७१ ॥

१—१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥
मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥ [१५]
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१०॥ [१६] (८१६)

॥ ७२ ॥

१—१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥ (८१७)

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः१ सुजाताः ॥ ३ ॥
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥ [१७]
त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥[१८] (८२६)

॥ ७३ ॥

१—१० पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥
देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २ ॥
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥ (८२९)

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥ [१९]
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥
यान्राये मर्तान्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥ [२०] (८३६)

॥ ७४ ॥

१—९ गोतमो राहूगणः । अग्निः । गायत्री ।

(१३) उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥ ३ ॥
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥
तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥ [२१]
आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७ ॥
त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥
उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥ [२२](८४५)

॥ ७५ ॥

१—५ गोतमो राहूगणः । अग्निः । गायत्री ।

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ १ ॥
अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥ [२३] (८५०)

॥ ७६ ॥

१—५ गोतमो राहूगणः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥
प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ [२४](८५५)

॥ ७७ ॥

१—५ गोतमो राहूगणः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥ (८५८)

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥ [२५] (८६०)

॥ ७८ ॥

१—५ गोतमो राहूगणः । अग्निः । गायत्री ।

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ३ ॥
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ४ ॥
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ५ ॥ [२६] (८६५)

॥ ७९ ॥

१—१२ गोतमो राहूगणः । १-३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा । ४-१२ अग्निः । १—३ त्रिष्टुप्;
४-६ उष्णिहः ७-१२ गायत्री ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २ ॥
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३ ॥
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥ [२७]
अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ९ ॥ (८७४)

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१०॥
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ॥११॥
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२॥ [२८] (८७७)

॥ ८० ॥

१-१६ गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । १६ दध्यङ् मनुः अथर्वा च । पंक्तिः ।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ [२९]
अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
हत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥ [३०]
चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यादन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥ (८८८)

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२॥
यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३॥
अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६॥[३१]५* (८९३)

॥ ८१ ॥

१-९ गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः ।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥४॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५॥ [१]
यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥ (९००)

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥९॥[२] (९०२)

॥ ८२ ॥

१-६ गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । १-५ पंक्तिः; ६ जगती ।

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२॥
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३॥
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६॥ [३] (९०८)

॥ ८३ ॥

१-६ गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥ (९११)

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥[४] (९१४)

॥ ८४ ॥

१-२० गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । १-६ अनुष्टुप्; ७-९ उष्णिक्; १०-१२ पंक्तिः;
१३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः=) १९ बृहती; २० सतो बृहती ।

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ [५]
नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥ (९२२)

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥[६]
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१३॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥ [७]
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे को जनाय ॥१७॥
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८॥
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९॥
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२०॥ [८] (९३४)

॥ ८५ ॥

१-१२ गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती; ५. १२ त्रिष्टुप् ।

(१४) प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥ (९३६)

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः॥ ६ ॥ [९]
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥
शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजानइव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः॥११॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२॥[१०] (९४६)

॥ ८६ ॥

१-१० गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥[११] (९५१)

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥१०॥[१२] (९५६)

॥ ८७ ॥

१-६ गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्राइव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वयइव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः॥ ६ ॥[१३] (९६२)

॥ ८८ ॥

१-६ गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तारपंक्तिः, ५ विराड्रूपा ।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥ (९६४)

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥
एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥ [१४] (९६८)

॥ ८९ ॥

१-१० गोतमो राहूगणः । विश्वेदेवाः । १-५, ७ जगती; ६ विराट् स्थाना, ८-१० त्रिष्टुप् ।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
देवानां भद्रा सुमतिरृजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ [१५]
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥ (९७६)

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१०॥ [१६] (९७८)

॥ ९० ॥

१-९ गोतमो राहूगणः । विश्वेदेवाः । १-८ गायत्री; ९ अनुष्टुप् ।

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥
उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥ [१७]
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥
[१८] (९८७)

॥ ९१ ॥

१-२३ गोतमो राहूगणः । सोमः । १-४, १८-२३ त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १ ॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥ (९९१)

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥ [१९]
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ८ ॥
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥१०॥ [२०]
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥११॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२॥
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥१३॥
यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥१४॥
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥१५॥ [२१]
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥१६॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७॥
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥१९॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२०॥ [२२]
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥[२३] (१०१०)

॥ ९२ ॥

१-१८ गोतमो राहूगणः । १-१५ उषा, १६-१८ अश्विनौ । १-४ जगती; ५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१८ उष्णिक् ।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥४॥
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥ [२४]
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥१०॥ [२५]
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२॥ (१०२२)

उपस्तचित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे॥१३॥
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥१४॥
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः । अथा नो विश्वा सौभगान्या वह॥१५॥ [२६]
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्॥१६॥
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः। आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम्॥१७॥
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८॥ [२७](१०२८

॥ ९३ ॥

१-१२ गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ। १-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ जगती त्रिष्टुब्वा।
९-११ गायत्री।

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥ [२८]
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥ (१०३८)
९

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्। आ यातमुप नः सचा ॥११॥
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥ [२९](१०४०)

॥ ९४ ॥

१-१६ कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः। ८ (त्रयः पादाः) देवः, १६ (उत्तरार्धः)
मित्रवरुणादितिसिन्धुपृथिवीद्यावः। १-१४ जगती; १५-१६ त्रिष्टुप्।

(१५) इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ १ ॥
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ३ ॥
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ५ ॥ [३०]
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ६ ॥
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥७ ॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ९ ॥
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१०॥ [३१](१०५०)

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११॥
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१२॥
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४॥
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५॥
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६॥ [३२] ६*
(१०५६)

॥ ९५ ॥

१-११ कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, औषसोऽग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥ [१]
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥ (१०६२)

उदंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१०॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥ [२] (१०६७)

॥ ९६ ॥

१-९ कुत्स आङ्गिरसः। अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा। त्रिष्टुप्।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५॥ [३]
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥ (१०७५)

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥[४] (१०७६)

॥ ९७ ॥

१-८ कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, शुचिरग्निर्वा । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥ [५] (१०८४)

॥ ९८ ॥

१—३ कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥
वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ [६] (१०८७)

॥ ९९ ॥

१ कश्यपो मारीचः । अग्निः, जातवेदाऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् ।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ [७] (१०८८)

॥ १०० ॥

१—१९ ऋज्राश्वाऽम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसो वार्षागिराः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिरृग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिरृभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥ [८]
स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१०॥ [९]
स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२॥ (११००)

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३॥
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४॥
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५॥ [१०]
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७॥
दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥[११](११०७)

॥ १०१ ॥

१-११ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । १-७ जगती; ८-११ त्रिष्टुप् ।

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥ (१११२)

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥ [१२]
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥ [१३](१११८)

(१०२)

१—११ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । १—१० जगती, ११ त्रिष्टुप् ।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥
तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥ [१४]
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥ (११२४)

उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१०॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥ [१५](११२९)

॥ १०३ ॥

१—८ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥ [१६]
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ [१७](११३७)

॥ १०४ ॥

१—९ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५॥ [१८]
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥ [१९](११४६)

॥ १०५ ॥

१—१९ त्रित आप्त्यः कुत्स आङ्गिरसो वा । विश्वेदेवाः । पंक्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती; १९ त्रिष्टुप् ।

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥ (११४८)

मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥ [२०]
कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥ ८ ॥
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥ [२१]
सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥
नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३॥
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४॥
ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५॥ [२२]
असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६॥ (११६२)

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७॥
अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥ [२३](११६५)

॥ १०६ ॥

१—७ कुत्स आङ्गिरसः । विश्वेदेवाः । १—६ जगती; ७ त्रिष्टुप् ।

(१६) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥ १ ॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥ २ ॥
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥ ३ ॥
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥७॥ [२४](११७२)

॥ १०७ ॥

१—३ कुत्स आङ्गिरसः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥ (११७३)

उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥
तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३॥[२५] (११७५)

॥ १०८ ॥

१-१३ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५॥ [२६]
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१०॥ (११८५)

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११॥
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥ [२७](११८८)

॥ १०९ ॥

१-८ कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२॥
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥ [२८]
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥ [२९](११९६)

॥ ११० ॥

१-९ कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥ [३०]
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६ ॥
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥[३१](१२०५)

॥ १११ ॥

१-५ कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती; ५ त्रिष्टुप् ।

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥ (१२०७)

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ [३२](१२१०)

॥ ११२ ॥

१-२५ कुत्स आङ्गिरसः । १ (आद्यः पादः) द्यावापृथिवी, १ (द्वितीयः पादः) अग्निः,
१ (उत्तरार्धः) अश्विनौ; २-२५ अश्विनौ । जगती; २४-२५ त्रिष्टुप् ।

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥ [३३]
याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥ (१२१९)

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१०॥ [३४]
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११॥
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२॥
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३॥
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१४॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१५॥ [३५]
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१६॥
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१७॥
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१८॥
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१९॥
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२०॥ [३६]
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१॥
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२२॥
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३॥ (१२३३)

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२४॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥[३७]७*(१२३५)

॥ ११३ ॥

१-२० कुत्स आङ्गिरसः । १ (उत्तरार्धः) रात्रिश्च; १-२० उषा । त्रिष्टुप् ।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ५ ॥ [१]
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७ ॥
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥
कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥१०॥ [२] (१२४५)

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२॥
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४॥
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥ [३]
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६॥
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९॥
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२०॥ [४] (१२५५)

॥ ११४ ॥

१-११ कुत्स आङ्गिरसः । रुद्रः । १-९ जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥ (१२५७)

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥ [५]
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१०॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥ [६] (१२६६)

॥ ११५ ॥

१-६ कुत्स आङ्गिरसः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥ (१२६९)

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥ [७] (१२७२)

॥ ११६ ॥

१-२५ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

(१७) नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ [८]
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥ (१२८१)

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥ [९]
तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११॥
तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२॥
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५॥ [१०]
शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७॥
यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८॥
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९॥
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२०॥ [११]
एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२॥
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३॥ (१२९५)

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥ [१२] (१२९७)

॥ ११७ ॥

१—२५ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैरृषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥
सुषुप्वांसं न निरृतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ [१३]
तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥१०॥[१४](१३०७)

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११॥
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२॥
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३॥
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुरृज्रेभिरश्वैः ॥१४॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥ [१५]
अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६॥
शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७॥
शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८॥
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९॥
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०॥ [१६]
यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२१॥
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२॥
सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३॥
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥२४॥ (१३२१

एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२५॥ [१७](१३२२)

॥ ११८ ॥

१-११ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥ [१८]
उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥११॥ [१९](१३३३)

१२

॥ ११९ ॥

१-१० कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ । जगती ।

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥ [२०]
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
युवं वन्दनं निरृतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०॥[२१] (१३४३)

॥ १२० ॥

१-१२ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ (१२ दुःस्वप्ननाशिनी) । १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्, ४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती, ८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥ (१३४४)

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य । प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥
वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा । पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥४॥
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ [२२]
श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥
युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् । ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥७॥
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः । स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥८॥
दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै । इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९॥
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥
अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१२॥[२३](१३५५)

॥ १२१ ॥

१-१५ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । विश्वेदेवा इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

(१८) कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥ [२४]
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥ (१३६२)

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ ९ ॥
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥१०॥ [२५]
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११॥
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२॥
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३॥
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान्रथ्यो३ अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥१४॥
मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥[२६] ८* (१३७०)

[इति प्रथमोऽष्टकः ।]

❁ ॥ १२२ ॥ ❁

१-१५ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । ५-६ विराड्रूपा ।

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥ (१३७४)

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ [१]
श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७ ॥
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिरृतावा ॥ ९ ॥
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥ [२]

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥ १२ ॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥ [३] (१३८५)

॥ १२३ ॥

१-१३ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । उषा । त्रिष्टुप् ।

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥ (१३८६)

पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥ [४]
उदीरतां सूनृता उत्पुरंधीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥
कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥ [५]
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥ [६] (१३९८)

॥ १२४ ॥

१-१३ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । उषा । त्रिष्टुप् ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥ (१३९९)

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥ [७]
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥ [८]
अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥ [९] (१४११)

॥ १२५ ॥

१-७ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । स्वनयस्य दानस्तुतिः । त्रिष्टुप्, ५-६ जगती ।

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥ (१४१२)

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ६ ॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥ [१०] (१४१८)

॥ १२६ ॥

(१-७) १-५ कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः, ६ भावयव्यः, ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी । १-५ भावयव्यः, ६ रोमशाः, ७ भावयव्यः । १-५ त्रिष्टुप्; ६-७ अनुष्टुप् ।

अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥ (१४२४)

उपोप मे परा मृश मा मे दुभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥ [११](१४२५

॥ १२७ ॥

१-११ परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्निः । अत्यष्टिः, ६ अतिधृतिः ।

(१९) अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥
दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥ [१२]
स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥ (१४३२)

१३

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१०॥
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११॥ [१३] (१४३६)

॥ १२८ ॥

१-८ परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्निः । अत्यष्टिः ।

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥
तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥ (१४४०)

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥ [१४]
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥
स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् । देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥८॥[१५]
(१४४४)

॥ १२९ ॥

१-११ परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः, ६ इन्दुः । अत्यष्टिः; ८-९ अतिशक्वर्यौ; ११ अष्टिः ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ [१६] (१४४९)

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१०॥
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥ [१७] (१४५५)

॥ १३० ॥

१—१० परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । १—९ अत्यष्टिः, १० त्रिष्टुप् ।

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥ (१४५७)

अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँइव वाजयतो रथाँइव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ [१८]
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥
भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥ [१९] (१४६५)

॥ १३१ ॥

१-७ परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥ (१४६६)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥[२०] (१४७२)

॥ १३२ ॥

१-६ परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । ६ (अर्धर्चः) इन्द्रापर्वतौ । अत्यष्टिः ।

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक्सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥ (१४७४)

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥
नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
सं यज्जनान्क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥[२१] (१४७८)

॥ १३३ ॥

१-७ परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । १ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥ १ ॥
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥
यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥ (१४८४)

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥ [२२] (१४८५)

॥ १३४ ॥

१-६ परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः । अत्यष्टिः, ६ अष्टिः ।

(२०) आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्रबोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ [२३] (१४९१)

॥ १३५ ॥

१-९ परुच्छेपो दैवोदासिः । १-३, ९ वायुः, ४-८ इन्द्रवायू । अत्यष्टिः, ७-८ अष्टिः ।

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥ (१४९२)

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ [२४]
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥८॥
इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ [२५] (१५००)

॥ १३६ ॥

१-७ परुच्छेपो दैवोदासिः । १-५ मित्रावरुणौ, ६-७ लिङ्गोक्ताः । १-६ अत्यष्टिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥ (१५०१)

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥
अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन्तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥ [२६] १* (१५०७)

॥ १३७ ॥

१—३ परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ । अतिशक्वरी ।

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ [१] (१५१०)

॥ १३८ ॥

१-४ परुच्छेपो दैवोदासिः । पूषा । अत्यष्टिः ।

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥ [२] (१५१४)

॥ १३९ ॥

१-११ परुच्छेपो दैवोदासिः । १ विश्वे देवाः, २ मित्रावरुणौ, ३-५ अश्विनौ, ६ इन्द्रः, ७ अग्निः, ८ मरुतः, ९ इन्द्राग्नी, १० बृहस्पतिः, ११ विश्वे देवाः । अत्यष्टिः, ५ बृहती, ११ त्रिष्टुप् ।

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः ।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥ (१५१७)

अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ [३]
वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥
ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः ।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥ [४] (१५२८)

॥ १४० ॥

१-१३ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । १-११ जगती, १० त्रिष्टुब्वा, १२-१३ त्रिष्टुप् ।

(२१) वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥ (१५२९)

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥ [५]
भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥१०॥ [६]
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥१३॥ [७] (१५३८)

॥ १४१ ॥

१-१३ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । १-११ जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥ (१५३९)

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४ ॥
आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥ [८]
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥
रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०॥
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२॥
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥१३॥ [९] (१५५१)

॥ १४२ ॥

१-१३ दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं= [१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतिः, १३ इन्द्रः ।] अनुष्टुप् ।

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥
घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति । नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥
स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः । पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥६॥[१०]
आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा । यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती । इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥१०॥
अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥११॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥१२॥
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥१३॥[११] (१५६४)

॥ १४३ ॥

१-८ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । १-७ जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदृत्वियः ॥ १ ॥
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥ (१५६७)

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥[१२] (१५७२)

॥ १४४ ॥

१-७ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । जगती ।

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥[१३] (१५७९)

॥ १४५ ॥

१–५ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । १-४ जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥
तमिद्गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥ [१४](१५८४)

॥ १४६ ॥

१–५ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥
उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥
समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥ [१५](१५८९)

॥ १४७ ॥

१–५ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥ (१५९०)

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥[१६] (१५९४)

॥ १४८ ॥

१–५ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ [१७] (१५९९)

॥ १४९ ॥

१–५ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । विराट् ।

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥ (१६०१)

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ [१८](१६०४)

॥ १५० ॥

१–३ दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः । उष्णिक् ।

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ [१९] (१६०७)

॥ १५१ ॥

१–९ दीर्घतमा औचथ्यः । १ मित्रः, २–९ मित्रावरुणौ । जगती ।

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥ [२०]
आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥ (१६१४)

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥९॥[२१](१६१६)

॥ १५२ ॥

१–७ दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥
प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥ [२२] (१६२३)

॥ १५३ ॥

१–४ दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥ (१६२५)

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥[२३](१६२७)

॥ १५४ ॥

१-६ दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥ [२४](१६३३)

॥ १५५ ॥

१-६ दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू । जगती ।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥ (१६३६)

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥[२५](१६३९)

॥ १५६ ॥

१-५ दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः । जगती ।

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥[२६](१६४४)

॥ १५७ ॥

१-६ दीर्घतमा औचथ्यः । अश्विनौ । १-४ जगती, ५-६ त्रिष्टुप् ।

(२२) अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥ (१६४६)

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६॥[२७] २* (१६५०)

॥ १५८ ॥

१-६ दीर्घतमा औचथ्यः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥[१] (१६५६)

॥ १५९ ॥

१-५ दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी । जगती ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥ (१६५७)

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥ [२](१६६१)

॥ १६० ॥

१-५ दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी । जगती ।

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ [३](१६६६)

॥ १६१ ॥

१-१४ दीर्घतमा औचथ्यः । ऋभवः । १-१३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥ (१६६८)

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥[४]

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥ [५]

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११॥

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥[६] (१६८०)

॥ १६२ ॥

१-२२ दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः । त्रिष्टुप्; ३,६ जगती ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥[७]

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥

यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥[८]

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥ (१६९२)

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥ [९]

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥२२॥ [१०] (१७०२)

॥ १६३ ॥

१-१३ दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः । त्रिष्टुप् ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥ (१७०३)

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥ [११]

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥ [१२]

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥१२॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥१३॥ [१३] (१७१५)

॥ १६४ ॥

१-५२ दीर्घतमा औचथ्यः । १-४१ विश्वेदेवाः ४२ (आद्योऽर्धर्चः) वाक्, (द्वितीयोऽर्धर्चः) समुद्रा आपोऽक्षरं ४५ वाक्; ४३ (आद्योऽर्धर्चः) शकधूमः, (द्वितीयोऽर्धर्चः) सोमः; ४४ (केशिनः=) अग्निः सूर्यो वायुश्च ४६-४७ सूर्यः ४८ संवत्सरः कालः; ४९ सरस्वती; ५० साध्याः; ५१ सूर्यः पर्जन्यः अग्निर्वा; ५२ सरस्वान् सूर्यो वा । त्रिष्टुप्; १२, १५, २३ २९, ३६, ४१ जगती; ४२ प्रस्तारपंक्तिः; ५१ अनुष्टुप् ।

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥[१४]
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥
तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१०॥[१५]
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११॥ (१७२६)

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥१५॥[१६]
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥१६॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥[१७]
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१॥
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२॥
यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४॥
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥[१८] (१७४०)

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९॥
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥[१९]
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४॥
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥[२०]
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥३६॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९॥ (१७५४)

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥[२१]
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥४२॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥ [२२]
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥[२३] (१७६७)

॥ १६५ ॥

(१-१५) १, २, ४, ६, ८, १०-१२ इन्द्रः; ३, ५, ७, ९ मरुतः; १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । मरुत्वानिन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(२३) कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १ ॥
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ३ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ ॥ [२४]
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥ [२५]
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥ (१७८०)

११०

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥[२६]३*

॥ १६६ ॥

१-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । मरुतः । १-१३ जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः॥ ५ ॥ [१]
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥१०॥ [२]

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः॥११॥
तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥ [३] (१७९७)

॥ १६७ ॥

१-११ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । १ इन्द्रः; २-११ मरुतः । त्रिष्टुप् ।

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥
जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ [४]
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥
प्र तं विविक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥ (१८०४)

पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१०॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥ [५] (१८०८)

॥ १६८ ॥

१-१० अगस्त्यो मैत्रावरुणः । मरुतः । १-७ जगती; ८-१० त्रिष्टुप् ।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ ॥ [६]
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥ (१८१६)

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥ [७] (१८१८)

॥ १६९ ॥

१-८ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा विराट् ।

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥
त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥ [८]
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैरृणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ [९] (१८२६)

॥ १७० ॥

(१-५) १, ३, ४ इन्द्रः; २, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । १ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥ (१८२७)

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥ [१०] (१८३१)

॥ १७१ ॥

१-६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । १-२ मरुतः; ३-६ मरुत्वानिन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ [११] (१८३७)

॥ १७२ ॥

१-३ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । मरुतः । गायत्री ।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ [१२] (१८४०)

॥ १७३ ॥

१-१३ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥ [१३]
प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥
विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१०॥ [१४]
यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११॥
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२॥
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नोऽववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३॥ [१५] (१८५३)

॥ १७४ ॥

१-१० अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥ [१६]
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीरृणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥ [१७] (१८६३)

॥ १७५ ॥

१-६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । १ स्कन्धोग्रीवी बृहती, २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१॥
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः । सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥२॥ (१८६५)

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् । सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥
मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥४॥
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः । वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥५॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ [१८] (१८६९)

॥ १७६ ॥

१-६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । १—५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥
आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥ [१९] (१८७५)

॥ १७७ ॥

१-५ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥ (१८७८)

१८

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ [२०] (१८८०)

॥ १७८ ॥

१-५ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ [२१] (१८८५)

॥ १७९ ॥

(१-६) १-२ लोपामुद्रा; ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणः; ५-६ अगस्त्यशिष्यः । रतिः । त्रिष्टुप्, ५ बृहती ।

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥ (१८८९)

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥ [२२] (१८९१)

॥ १८० ॥

१-१० अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

(२४) युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ [२३]
नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥ [२४] (१९०१)

॥ १८१ ॥

१-९ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥ [२५]
प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ [२६] (१९१०)

॥ १८२ ॥

१-८ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अश्विनौ । जगती, ६, ८ त्रिष्टुप् ।

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥ (१९१२)

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥ [२७]
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ [२८] (१९१८)

॥ १८३ ॥

१-६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ [२९] ४* (१९२४)

॥ १८४ ॥

१-६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ [१] (१९३०)

॥ १८५ ॥

१-११ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥ [२] (१९३५)

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ [३] (१९४१)

॥ १८६ ॥

१-११ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥ [४]
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥ (१९४७)

उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १० ॥
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ [५] (१९५२)

॥ १८७ ॥

१-११ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । अन्नं । १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्; ३, ५—७, ११ अनुष्टुप्; ११ बृहती वा।
२, ४, ८-१० गायत्री ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२॥
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः । मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो । प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥५॥ [६]
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥
यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् । अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥७॥
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ९ ॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥१०॥
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥ [७] (१९६३)

॥ १८८ ॥

१—११ अगस्त्यो मैत्रावरुणः। आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। गायत्री।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान्। अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः। दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ [८]
सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे। तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥११॥ [९] (१९७४)

॥ १८९ ॥

१-८ अगस्त्यो मैत्रावरुणः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥
मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥ ५ ॥ [१०] (१९७९)

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥
त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥
अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ [११] (१९८२)

॥ १९० ॥

१-८ अगस्त्यो मैत्रावरुणः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः॥ १ ॥
तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान्॥ ३ ॥
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥ [१२]
सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ [१३](१९९०)

॥ १९१ ॥

१-१६ अगस्त्यो मैत्रावरुणः। अप्तृणसूर्याः(विषघ्नोपनिषद्)। अनुष्टुप्;१०-१२ महापंक्तिः;१३ महाबृहती।

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥
अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ [१४]
द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥
ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥ [१५]
इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार॥११॥ (२००१)

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥ [१६] (२००६)

॥ इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ द्वितीयं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-१६ गृत्समदः शौनकः (आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवः)। अग्निः । जगती ।

(१) त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥ २ ॥
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ॥ ३ ॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥ ५ ॥[१७]
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ ६ ॥
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥ ९ ॥ (९)

त्वमग्न ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१०॥ [१८]
त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥[१९](१६)

॥ २ ॥

१-१३ गृत्समदः शौनकः । अग्निः । जगती ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ १ ॥
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥ ४ ॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥ ५ ॥[२०](२१)

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये संददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥ ६ ॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥ ७ ॥
स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥ ८ ॥
एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥ ९ ॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥
उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥[२१](२९)

॥ ३ ॥

१-११ गृत्समदः शौनकः । आप्रीसूक्तं= [१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः]। त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ १ ॥
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥
ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ ३ ॥ (३२)

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ ४ ॥
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ ५ ॥[२२]
साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥
सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥[२३] (४०)

॥ ४ ॥

१-९ सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥ (४४)

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥ ५ ॥[२४]
आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७ ॥
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥ ९ ॥[२५] (४९)

॥ ५ ॥

१-८ सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥
आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥
दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३ ॥
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ ४ ॥
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥
यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥
यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ [२६] (५७)

॥ ६ ॥

१-८ सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । गायत्री ।

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥
अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषांसि ॥ ४ ॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥ ७ ॥
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥ [२७](६५)

॥ ७ ॥

१-६ सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः । गायत्री ।

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥ ३ ॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥ ५ ॥
द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ [२८] (७१)

॥ ८ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । अग्निः । गायत्री; ६ अनुष्टुप् ।

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ॥
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् । अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६॥ [२९]५*
(७७)

॥ ९ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २ ॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥
उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ ६ ॥ [१] (८३)

॥ १० ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥ १ ॥
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ॥ ४ ॥
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ ५ ॥ (८८)

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥ ६ ॥ [२] (८९)

॥ ११ ॥

१—२१ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । विराट्स्थाना; २१ त्रिष्टुप् ।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥ [३]
स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥ [४]
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥ (१००)

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥
स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५॥ [५]
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥ [६] (११०)

॥ १२ ॥

१-१५ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(२) यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥ (११२)

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥ [७]
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥ [८]
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥ [९] (१२५)

॥ १३ ॥

१-१३ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । जगती; १३ त्रिष्टुप् ।

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥
अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ [१०]
यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥
शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥ [११]
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥
अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥ [१२] (१३८)

॥ १४ ॥

१—१२ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥ [१३]
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥ [१४] (१५०)

॥ १५ ॥

१-१० गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥
अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥
स प्रवोळ्हॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥ [१५]
सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१०॥ [१६] (१६०)

॥ १६ ॥

१-९ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥
यस्मादिन्द्राद्बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥ (१६२)

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥ [१७]
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥ ६ ॥
प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ [१८] (१६९)

॥ १७ ॥

१-९ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । जगती, ८-९ त्रिष्टुप् ।

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ १ ॥
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २ ॥
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्य१क् पृथक् ॥ ३ ॥
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥
स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥ [१९] (१७४)

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६ ॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥
भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ [२०] (१७८)

॥ १८ ॥

१-९ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥ [२१]
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ [२२] (१८७)

॥ १९ ॥

१-९ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४ ॥
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥ [२३]
स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ [२४] (१९६)

॥ २० ॥

१-९ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३ विराड्रूपा ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥ (१९८)

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ५ ॥[२५]
स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरंदरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥[२६] (२०५)

॥ २१ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । जगती; ६ त्रिष्टुप् ।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥ (२१०)

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥[२७] (२११)

॥ २२ ॥

१-४ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः । १ अष्टिः; २-३ अतिशक्वरी; ४ अष्टिः अतिशक्वरी वा ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२॥
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३॥
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥ [२८] (२१५)

॥ २३ ॥

१-१९ गृत्समदः शौनकः । १, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः; २-४, ६-८, १०, १२-१६, १८ बृहस्पतिः ।
जगती; १५, १९ त्रिष्टुप् ।

(३) गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥[२९](२२०)

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥ ६ ॥
उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥ ७ ॥
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥ ८ ॥
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१०॥ [३०]
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११॥
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥१३॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥१४॥
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१५॥ [३१]
मा न स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७॥
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९॥ [३२] ६* (२२४)

॥ २४ ॥

१-१६ गृत्समदः शौनकः । १, १० बृहस्पतिः; २-९, ११, १३-१६ ब्रह्मणस्पतिः; १२ इन्द्राब्रह्मणस्पती ।
जगती; १२, १६ त्रिष्टुप् ।

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।
यथा नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २ ॥
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥ ३ ॥
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥ [१]
अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥
स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥
विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१०॥ [२]
योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् । ॥१२॥ (२४६)

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥
ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४॥
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥[३] (२५०)

॥ २५ ॥

१-५ गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती ।

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥
वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः॥ ५ ॥[४] (२५१)

॥ २६ ॥

१-४ गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती ।

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥ १ ॥
यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥ (२५७)

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषो३ंहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥[५] (२५९)

॥ २७ ॥

१-१७ कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्यः । त्रिष्टुप् ।

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥
इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥
धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥ [६]
सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥
तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥[७] (२६९)

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२॥
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४॥
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥१५॥
या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥१६॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७॥ [८] (२७६)

॥ २८ ॥

१-११ कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । वरुणः (१० दुःस्वप्ननाशिनी) । त्रिष्टुप् ।

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १ ॥
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४ ॥
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ ॥[९] (२८१)

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥
नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ ॥ [१०] (२८७)

॥ २९ ॥

१-७ कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥ १ ॥
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥ २ ॥
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३ ॥
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥ ४ ॥
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ ५ ॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ६ ॥
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ७ ॥ [११] (२९४)

॥ ३० ॥

१-११ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः, ६ इन्द्रासोमौ, ८ (पूर्वोऽर्धर्चः) सरस्वती,
९ बृहस्पतिः, ११ मरुत् । त्रिष्टुप्; ११ जगती ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ १ ॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ ५ ॥ [१२]
प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६ ॥
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ७ ॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥ ८ ॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥[१३] (३०५)

॥ ३१ ॥

१-७ गृत्समदः शौनकः । विश्वेदेवाः । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥ ७ ॥ [१४](३१२)

॥ ३२ ॥

१-८ गृत्समदः शौनकः । १ द्यावापृथिवी, २-३ इन्द्रस्त्वष्टा वा, ४-५ राका, ६-७ सिनीवाली,
८ लिङ्गोक्ताः । जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥
मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥
अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥ (३१६)

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥ [१५] (३२०)

॥ ३३ ॥

१-१५ गृत्समदः शौनकः । रुद्रः । त्रिष्टुप् ।

(४) आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥ [१६]
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥ (३२८)

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥
अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥ [१७]
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥
कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥ [१८] (३३५)

॥ ३४ ॥

१-१५ गृत्समदः शौनकः । मरुत् । जगती; १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २ ॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४ ॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥ [१९] (३४०)

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥ ७ ॥
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१०॥[२०]
तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥
ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५॥[२१] (३५०)

॥ ३५ ॥

१—१५ गृत्समदः शौनकः । अपांनपात् । त्रिष्टुप् ।

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥ (३५२)

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥[२२]
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥
हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥ [२३]
तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११॥
अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२॥
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥
अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४॥
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥ [२४](३६५)

२१

॥ ३६ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । ऋतुदेवताः- १ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च, ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च । जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिरृष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ५ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥[२५]७* (३७१)

॥ ३७ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ, ६ अग्निः ऋतुश्च । जगती ।

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥ (३७५)

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ [१] (३७७)

॥ ३८ ॥

१-११ गृत्समदः शौनकः । सविता । त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥ [२]
समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥ (३८७)

॥ ३० ॥

१-११ गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः, ६ इन्द्रासोमौ, ८ (पूर्वोऽर्धर्चः) सरस्वती, ९ बृहस्पतिः, ११ मरुत् । त्रिष्टुप्; ११ जगती ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ १ ॥
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य साता तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ ५ ॥ [१२]
प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६ ॥
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ७ ॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥ ८ ॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥[१३] (३०५)

॥ ३१ ॥

१-७ गृत्समदः शौनकः । विश्वेदेवाः । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥ ७ ॥ [१४](३१२)

॥ ३२ ॥

१-८ गृत्समदः शौनकः । १ द्यावापृथिवी, २-३ इन्द्रस्त्वष्टा वा, ४-५ राका, ६-७ सिनीवाली, ८ लिङ्गोक्ताः । जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥
मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २ ॥
अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥ (३१६)

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥ [१५] (३२०)

॥ ३३ ॥

१-१५ गृत्समदः शौनकः । रुद्रः । त्रिष्टुप् ।

(४) आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥ [१६]
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
क्व स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥ (३२८)

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥
अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥ [१७]
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥
कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥ [१८] (३४५)

॥ ३४ ॥

१-१५ गृत्समदः शौनकः । मरुत् । जगती; १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २ ॥
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४ ॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥ [१९] (३५०)

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥ ७ ॥
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१०॥[२०]
तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥
ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५॥[२१] (३५०)

॥ ३५ ॥

१—१५ गृत्समदः शौनकः । अपांनपात् । त्रिष्टुप् ।

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥ (३५२)

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥[२२]
अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥
हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥ [२३]
तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११॥
अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२॥
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥
अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४॥
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥ [२४] (३६५)

॥ ३६ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । ऋतुदेवताः- १ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च, ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च । जगती ।

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिरृष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ५ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥[२५]७* (३७१)

॥ ३७ ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ, ६ अग्निः ऋतुश्च । जगती ।

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥ (३७५)

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ [१] (३७७)

॥ ३८ ॥

१-११ गृत्समदः शौनकः । सविता । त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥ [२]
समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां काममचरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥ (३८७)

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥ [३] (३८८)

॥ ३९ ॥

१-८ गृत्समदः शौनकः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेनेइव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षीइव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥ [४]
ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥ [५] (३९६)

॥ ४० ॥

१-६ गृत्समदः शौनकः । सोमापूषणौ, ६ (अन्त्योऽर्धर्चः) अदितिः । त्रिष्टुप् ।

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ १ ॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥ (३९८)

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥
दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४ ॥
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ ५ ॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥ [६] (४०२)

॥ ४१ ॥

१-२१ गृत्समदः शौनकः । १-२ वायुः, ३ इन्द्रवायू, ४-६ मित्रावरुणौ, ७-९ अश्विनौ, १०-१२ इन्द्रः, १३-१५ विश्वेदेवाः, १६-१८ सरस्वती, १९ (तृतीयः पादः) अग्निः, १९-२१ द्यावापृथिवी हविर्धाने वा । गायत्री; १६-१७ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥
नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥ [७]
ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥
गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥ (४०९)

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥ [८]
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ १२ ॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥
तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ [९]
अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥
त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥ [१०] (४२३)

॥ ४२ ॥

१-३ गृत्समदः शौनकः । शकुन्तः (= कपिञ्जलरूपीन्द्रः) । त्रिष्टुप् ।

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥ [११] (४२६)

॥ ४३ ॥

१-३ गृत्समदः शौनकः । शकुन्तः (=कपिञ्जलरूपीन्द्रः) । जगती; २ अतिशक्वरी अष्टिर्वा ।

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥
उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥ [१२] (४२९)

॥ इति द्वितीयं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्रसंख्या

प्रथममण्डलस्य मंत्रसंख्या	२००६
द्वितीयमण्डलस्य मंत्रसंख्या	४२९
सर्वयोगः	२४३५

अथ तृतीयं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-२३ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

(१) सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥ २ ॥
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥
अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥
शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥ ५ ॥ [१३]
वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥ ६ ॥
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥ (९)

२४

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ॥१०॥ [१४]
उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥
बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४॥
ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥ [१५]
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६॥
आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७॥
नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥
एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मंजन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥
जन्मंजन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥ [१६] (२३)

॥ २ ॥

१-१५ विश्वामित्रो गाथिनः । वैश्वानरोऽग्निः । जगती ।

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥ १ ॥
स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥ [१७]
पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥
नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीरृतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥ ८ ॥
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥ [१८]
स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥ (३६)

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥ [१९] (३८)

॥ ३ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । वैश्वानरोऽग्निः । जगती ।

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ १ ॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥ ५ ॥ [२०]
अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥ ६ ॥
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥ ७ ॥
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥ [२१] (५७)

॥ ४ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । आप्रीसूक्तं [= १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । त्रिष्टुप् ।

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥ २ ॥
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥ ४ ॥
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥ ५ ॥ [२२]
आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥ [२३] (६०)

॥ ५ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥
प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीरृतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३ ॥
मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ ५ ॥ [२४]
ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिरृष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥
उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९ ॥
उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ [२५] (७१)

॥ ६ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २ ॥
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥ [२६]
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥
दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ्नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ [२७] ८ * (८२)

इति द्वितीयोऽष्टकः ॥ २ ॥

॥ ७ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥ (८३)

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ २ ॥
आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥ ५ ॥ [१]
उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥ ९ ॥
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ [२] (९३)

॥ ८ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । यूपः, ६-१० यूपाः, ८ विश्वेदेवा वा, ११ व्रश्चनः । त्रिष्टुप्; ३, ७ अनुष्टुप् ।

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥ (९५)

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥
युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥ ५ ॥ [३]
यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥ ६ ॥
ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥
हंसाइव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९ ॥
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥
वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥[४] (१०४)

॥ ९ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । बृहती, ९ त्रिष्टुप् ।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥ (१०८)

ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥[५]
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७ ॥
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥[६] (११३)

॥ १० ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । उष्णिक् ।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥
स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥
स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥ [८] (१२२)

॥ ११ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥
स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४ ॥ (१२६)

२५

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ ॥ [९]
साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ६ ॥
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥ ७ ॥
परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥ [१०] (१३१)

॥ १२ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ ॥ [११]
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ७ ॥
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥ [१२] (१४०)

॥ १३ ॥

१-७ ऋषभो वैश्वामित्रः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

(२) प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥ (१४४)

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥[१३] (१४७)

॥ १४ ॥

१-७ ऋषभो वैश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १॥
अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २ ॥
द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥ ७ ॥ [१४] (१५४)

॥ १५ ॥

१-७ उत्कीलः कात्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १ ॥ (१५५)

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २ ॥
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३ ॥
अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥ ६ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७ ॥ [१५] (१६१)

॥ १६ ॥

१–६ उत्कीलः कात्यः । अग्निः । प्रगाथः (= १, ३, ५ बृहती; २, ४, ६ सतो बृहती)।

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ १ ॥
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥
मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥ ५ ॥
शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥[१६] (१६७)

॥ १७ ॥

१—५ कतो वैश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ १ ॥
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥
अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४ ॥
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५ ॥ [१७] (१७२)

॥ १८ ॥

१—५ कतो वैश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥
तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥
कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥[१८] (१७७)

॥ १९ ॥

१–५ गाथी कौशिकः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥ (१७८)

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ ॥ [१९] (१८२)

॥ २० ॥

१–५ गाथी कौशिकः । अग्निः; १, ५ विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १ ॥
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ ॥
अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४ ॥
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ ॥ [२०] (१८७)

॥ २१ ॥

१–५ गाथी कौशिकः । अग्निः । १, ४ त्रिष्टुप्, २–३ अनुष्टुप्, ५ विराड्रूपा, सतो बृहती वा ।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १ ॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥ (१८९)

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३ ॥
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि॥ ५ ॥ [२१] (१९२)

॥ २२ ॥

१–५ गाथी कौशिकः । अग्निः, ४ पुरीष्याग्नयः । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ १ ॥
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥[२२] (१९७)

॥ २३ ॥

१–५ देवश्रवा देववातश्च भारतौ । अग्निः । त्रिष्टुप्, ३ सतो बृहती ।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥
दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥ (२००)

नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥ [२३] (२०२)

॥ २४ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । १ अनुष्टुप्; २-५ गायत्री ।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व स नो अध्वरम् ॥ २ ॥
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४ ॥
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥ [२४] (२०७)

॥ २५ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः, ४ इन्द्राग्नी । विराट् ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥ १ ॥
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥ २ ॥
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥ ३ ॥
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥ ४ ॥
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥ ५ ॥ [२५] (२१२)

॥ २६ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः, ७ ब्रह्म । १-३ वैश्वानरोऽग्निः, ४-६ मरुतः, ७-८ आत्मा अग्निर्वा, ९ उपाध्यायः । १-६ जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥ १ ॥
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २ ॥
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ३ ॥
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥ [२६]
व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य१र्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद्द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥
शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ ॥ [२७] (२२१)

॥ २७ ॥

१-१५ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः, १ ऋतवो वा । गायत्री ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ १ ॥
ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥
समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥ (२२५)

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥ [२८]
तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६ ॥
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥ [२९]
अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११॥
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२॥
ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३॥
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥१४॥
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥ [३०] (२३६)

॥ २८ ॥

१-६ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । १-२, ६ गायत्री, ३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥ १ ॥
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥
अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥
माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ ॥[३१] (२४२)

॥ २९ ॥

१-१६ विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः, ५ ऋत्विजो वा । त्रिष्टुप्, १, ४, १०, १२ अनुष्टुप्, ६, ११, १४, १५ जगती ।

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥ (२४४)

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥
इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥
मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥[३२]
यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥ ६ ॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥
कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१०॥[३३]
तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥११॥
सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३ ॥
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥ १४ ॥
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६॥ [३४]१* (२५८)

॥ ३० ॥

१-२२ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(३) इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिरृघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥
त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥
उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥ ५ ॥ [१]
प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥
यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं सः ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद्द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९ ॥
अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥ [२]
एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥ (२७१)

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥
इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥[३]
सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥१६॥
उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥
आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥ [४] (२८०)

॥ ३१ ॥

१-२२ कुशिक ऐषीरथिः, विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥
अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥ (२८३)

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥ [५]
विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥
सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥
सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥[६]
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥
मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥
मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥
महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥ [७]
अपश्चिदेष विभ्वो दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥ (२९७)

पतिर्भव वृत्रहन्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८॥
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्सातये धाः ॥१९॥
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥ [८] (३०२)

॥ ३२ ॥

१-१७ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत्ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंदिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥
त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥
मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥[९]
त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥
यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥ (३०९)

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥
त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥ [१०]
अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११॥
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१७॥ [११] (३१९)

॥ ३३ ॥

(१-१३) १-३, ५, ७, ९, ११-१३ विश्वामित्रो गाथिनः; ४, ६, ८, १० नद्यःऋषिका । नद्यः; ४, ८, १० विश्वामित्रः; ६, ७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥ (३२१)

२७

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥
एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥ [१२]
इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥ ६ ॥
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥
एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥ [१३]
यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥
अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥
उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥ [१४] (३३२)

॥ ३४ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥ १ ॥
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥ (३३४)

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ ३ ॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥ [१५]
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥ [१६] (३४३)

॥ ३५ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥ १ ॥
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद्यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥
उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३ ॥
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ ४ ॥ (३४७)

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ ॥ [१७]
तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥
स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ८ ॥
याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥
इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥ [१८] (३५८)

॥ ३६ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः, १० घोर आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥
पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३ ॥
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु१ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥ [१९] (३६०)

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥ ६ ॥
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७ ॥
ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८ ॥
आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥ [२०] (३६५)

॥ ३७ ॥

१-११ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री, ११ अनुष्टुप् ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥ [२१]
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ८ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥ [२२] (३७६)

॥ ३८ ॥

१-१० प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा, विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥ १ ॥
इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥ २ ॥
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५ ॥ [२३]
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८ ॥
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ ९ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १० ॥ [२४] (३८६)

॥ ३९ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(४) इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥ (३८७)

दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ४ ॥
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥ ५ ॥ [२५]
इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७ ॥
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥ ८ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ९ ॥ [२६]२* (३९५)

॥ ४० ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥ [१]
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ ६ ॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ [२] (४०४)

॥ ४१ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥ [३]
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ [४] (४१३)

॥ ४२ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । गायत्री ।

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ [५]
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥ [६] (४२२)

॥ ४३ ॥

१-८ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥ (४

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २ ॥
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥ ४ ॥
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ ५ ॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥ ६ ॥
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ८ ॥ [७] (४३०)

॥ ४४ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । बृहती ।

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३ ॥
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥ [८] (४३५)

॥ ४५ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । बृहती ।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥
गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥
आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥ ४ ॥
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥ [९] (४४०)

॥ ४६ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४ ॥
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥ [१०] (४४५)

॥ ४७ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥ [११] (४५०)

॥ ४८ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १ ॥
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥ २ ॥
उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥ [१२] (४५५)

॥ ४९ ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥
धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥ [१३] (४६०)

॥ ५० ॥

१-५ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥ १ ॥
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥ २ ॥
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥ ३ ॥
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ ४ ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥ [१४] (४६५)

॥ ५१ ॥

१-१२ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्यमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥ २ ॥
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३ ॥
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥ [१५]
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्यापिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥
स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥ ८ ॥
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥ ९ ॥
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१०॥
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११॥
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे ॥१२॥ [१६] (४७७)

॥ ५२ ॥

१-८ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥ (४७९)

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥
पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥
माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥ [१७]
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७ ॥
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥ [१८] (४८७)

॥ ५३ ॥

१-२४ विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः; १ इन्द्रापर्वतौ, १५, १६ (ससर्परी) वाक्; १७-२० रथाङ्गानि; २१-२४ अभिशापः । त्रिष्टुप्; १०, १६ जगती; १३ गायत्री; १२, २०, २२ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥ [१९]
अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥ (४९१)

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥ [२०]
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११॥
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥१४॥
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५॥ [२१]
ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥
स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८॥
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥
अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२०॥ [२२] (५०५)

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥
परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४॥ [२३] (५०९)

॥ ५४ ॥

१-२२ प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

(५) इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥ २ ॥
युवोरृतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ३ ॥
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥ [२४]
कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६ ॥
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥ ७ ॥
विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥ ८ ॥ (५१७)

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥ ९ ॥
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥ [२५]
हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥
सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२॥
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरंदरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५॥ [२६]
नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥
महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥१९॥
शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१॥
स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥ [२७] (५३१)

२९

॥ ५५ ॥

१-२२ प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ ॥ [२८]
शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ८ ॥
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महाँश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ९ ॥
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०॥ [२९]
नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११॥
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥ (५४४)

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥
पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥ [३०]
आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६॥
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥
मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥
इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥ [३१] ३*
(५५३)

॥ ५६ ॥

१-८ प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १ ॥
षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥ (५५५)

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥ ३ ॥
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥ ४ ॥
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥ ५ ॥
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥ ६ ॥
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥ ७ ॥
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥ ८ ॥ [१] (५६१)

॥ ५७ ॥

१-६ विश्वामित्रो गाथिनः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ १ ॥
इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥ २ ॥
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४ ॥
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥
या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥ ६ ॥ [२] (५६७)

॥ ५८ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४ ॥
तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ ॥ [३]
पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६ ॥
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७ ॥
अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८ ॥
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ ॥ [४] (५७६)

॥ ५९ ॥

१-९ विश्वामित्रो गाथिनः । मित्रः । त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २ ॥ (५७८)

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥ [५]
मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥
अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८ ॥
मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥ [६] (५८५)

॥ ६० ॥

१-७ विश्वामित्रो गाथिनः । ऋभवः, ५-७ इन्द्र ऋभवश्च । जगती ।

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥ ४ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥ ५ ॥
इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥ ६ ॥
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥ [७] (५९२)

॥ ६१ ॥

१-७ विश्वामित्रो गाथिनः । उषा । त्रिष्टुप् ।

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥
उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥ ५ ॥
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥ [८] (५९९)

॥ ६२ ॥

१-१८ विश्वामित्रो गाथिनः, १६-१८ जमदग्निर्वा । १-३ इन्द्रावरुणौ, ४-६ बृहस्पतिः,
७-९ पूषा, १०-१२ सविता, १३—१५ सोमः, १६-१८ मित्रावरुणौ ।
१-३ त्रिष्टुप्, ४-१८ गायत्री ।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १ ॥
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३ ॥ (६०२)

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥
शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥ [९]
वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् । ॥ ६ ॥
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥ [१०]
देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११॥
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२॥
सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५॥
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७॥
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥१८॥ [११] (६१७)

॥ इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

द्वितीयमंडलस्यान्तपर्यन्तं	२४३५
तृतीय मंडलस्य	६१७
सर्व योगः-	३०५२

अथ चतुर्थं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-२० वामदेवो गौतमः । अग्निः, २-५ अग्निवरुणौ । त्रिष्टुप्, १ अष्टिः, २ अतिजगती, ३ धृतिः ।

(१) त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥
स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४ ॥
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ ॥ [१२]
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥ ७ ॥
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥ ८ ॥
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥ (९)

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥ [१३]
स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११॥
प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२॥
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३॥
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४॥
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५॥ [१४]
ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥१६॥
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥
आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९॥
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥ [१५] (२०)

॥ २ ॥

१-२० वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥ (२१)

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥ ३ ॥
अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ ४ ॥
गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ५ ॥ [१६]
यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥ ६ ॥
यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥ ७ ॥
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥ ८ ॥
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१०॥ [१७]
चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११॥
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२॥
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु श्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३॥
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥
अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥ [१८] (३५)

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६॥
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९॥
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२०॥ [१९] (४०)

॥ ३ ॥

१-१६ वामदेवो गौतमः । १ रुद्रः, २-१६ अग्निः । त्रिष्टुप् ।

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥
अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥ ३ ॥
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥ ५ ॥ [२०]
कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६ ॥
कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७ ॥ (४७)

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८ ॥
ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥ [२१]
ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११॥
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥१२॥
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोरृणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३॥
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४॥
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥ [२२] (५६)

॥ ४ ॥

१—१५ वामदेवो गौतमः । रक्षोहाऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥ ३ ॥ (५७)

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ ४ ॥
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ ५ ॥ [२३]
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६ ॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ७ ॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१०॥ [२४]
महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२॥
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥
त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४॥
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥[२५]४*(७१)

॥ ५ ॥

१-१५ वामदेवो गौतमः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ २ ॥
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३ ॥
प्र ताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥ ४ ॥
अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ५ ॥ [१]
इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥
तमिन्न्वेव समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७ ॥
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८ ॥
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९ ॥
अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१०॥ [२]
ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११॥
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥ (८२)

का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३॥
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥ [३] (८६)

॥ ६ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥ १ ॥
अमूरो होता न्यसादि विक्ष्व१ग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥ ३ ॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥
परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥ ५ ॥ [४]
भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥ ६ ॥
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥
तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥ ९ ॥ (९५)

ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥ [५] (९७)

॥ ७ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ जगती, २-६ अनुष्टुप् ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥
अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥ २ ॥
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥
तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥ ५ ॥ [६]
तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥ ६ ॥
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ ९ ॥
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१०॥ (१०७)

३१

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥ [७] (१०८)

॥ ८ ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । अग्निः । गायत्री ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥ ३ ॥
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५ ॥
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ६ ॥
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥ ७ ॥
स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥ ८ ॥ [८] (११६)

॥ ९ ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । अग्निः । गायत्री ।

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥
स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥ २ ॥
स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥
उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥
वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥
वेषीद्वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥
अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥
परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ८ ॥ [९] (१२४)

॥ १० ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । अग्निः । पदपंक्तिः, ४, ६, ७ उष्णिग्वा, ५ महापदपंक्तिः, ८ उष्णिक् ।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥ (१२६)

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥
तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः । श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् । इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥
शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे । सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥ [१०]
(१३२)

॥ ११ ॥

१-६ वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

(२) भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥
वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २ ॥
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥
त्वद्वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥ ६ ॥ [११] (१३८)

॥ १२ ॥

१-६ वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ १ ॥
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥ २ ॥ (१४०)

अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥ ३ ॥
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्वस्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ४ ॥
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ ५ ॥
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ६ ॥ [१२] (१४६)

॥ १३ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । त्रिष्टुप् ।

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २ ॥
यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥
वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४ ॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥ [१३] (१५१)

॥ १४ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । त्रिष्टुप् ।

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥ २ ॥ (१५३)

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४ ॥
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥ [१४] (१५४)

॥ १५ ॥

१-१० वामदेवो गौतमः । अग्निः, ७-८ सोमकः साहदेव्यः, ९-१० अश्विनौ । गायत्री ।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥
अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥
अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥ [१५]
तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥
बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥
उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥
एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥ [१६] (१६४)

॥ १६ ॥

१-२१ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥ (१६७)

स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥ [१७]
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०॥ [१८]
यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११॥
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके । ॥१२॥
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३॥
सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४॥
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५॥ [१९]
तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥१६॥
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७॥ (१८१)

भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥१८॥
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९॥
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥ [२०] (१८५)

॥ १७ ॥

१-२१ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १५ एकपदा विराट् ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥ १ ॥
तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥ २ ॥
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥ ३ ॥
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥ [२१]
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥
त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥ ७ ॥
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८ ॥ (१९३)

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥
अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥१०॥ [२२]
समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११॥
कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२॥
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥ [२३]
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६॥
त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७॥
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९॥
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥ [२४] (२०६)

॥ १८ ॥

(१-१३) २-३॥, ८-१३ वामदेवो गौतमः, १ इन्द्रः, ४ (उत्तरोऽर्धर्चः)-७ अदितिः ऋषिका । १ वामदेवः, २-४ (पूर्वोऽर्धर्चः), ८-१३ इन्द्रः, ४ (उत्तरोऽर्धर्चः) ७ वामदेवः । त्रिष्टुप् ।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥
नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥
किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥ [२५]
एता अर्षन्त्यललाभवन्तीरृतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०॥
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥ (२१७)

कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३॥ [२६] ५* (२१९)

॥ १९ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥ [१]
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥ ९ ॥
प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [२] (२३०)

॥ २० ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥ [३]
गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥
न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥
ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥
कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [४] (२४१)

॥ २१ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥ (२४२)

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४ ॥
उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥ [५]
धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ॥ ८ ॥
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [६] (२५२)

॥ २२ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(३) यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १ ॥
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २ ॥
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥ ३ ॥ (२५५)

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौरृष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ ॥ [७]
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्छुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [८] (२६३)

॥ २३ ॥

१—११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, ८-१० ऋतं वा । त्रिष्टुप् ।

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥
को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥ ३ ॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥ ४ ॥
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥ [९] (२६८)

किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥ ६ ॥
द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७ ॥
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥ ८ ॥
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥ ९ ॥
ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [१०] (२७४)

॥ २४ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १ ॥
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥
आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥ [११]
कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥ (२८०)

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८ ॥
भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९ ॥
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥ [१२] (२८५)

॥ २५ ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २ ॥
को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३ ॥
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५ ॥ [१३]
सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥ [१४] (२९३)

॥ २६ ॥

१-७ वामदेवो गौतमः, १-३ इन्द्रो वा । १-३ इन्द्रः, आत्मा वा, ४-७ श्येनः । त्रिष्टुप् ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥
प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥
आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरंधिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥ [१५] (३००)

॥ २७ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । श्येनः, ५ इन्द्रो वा । त्रिष्टुप्, ५ शक्वरी ।

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥
न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंधिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरंधिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥ ४ ॥ (३०४)

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५॥ [१६]
(३०५)

॥ २८ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, इन्द्रासोमौ वा । त्रिष्टुप् ।

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥
त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥ २ ॥
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यंदिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४ ॥
एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥ ५ ॥ [१७] (३१०)

॥ २९ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २ ॥
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ४ ॥
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ ५ ॥ [१८] (३१५)

३३

॥ ३० ॥

१-२४ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, ९-११ इन्द्रोषसौ । गायत्री; ८, २४ अनुष्टुप् ।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥ [१९]
यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
एतद्घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् । स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥
अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥१०॥ [२०]
एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११॥
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥१२॥
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥१३॥
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधींरिव ॥१५॥ [२१]
उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६॥
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७॥
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥१८॥
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥ [२२]
अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥
स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२॥
उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् । अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥२३॥
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा । वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४॥ [२३] (३३९)

॥ ३१ ॥

१-१५ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । गायत्री, ३ पादनिचृत् ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥
प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥ [२४]
सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥
उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥
अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः । अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१०॥ [२५]
अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११॥
अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा । अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥
अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३॥
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५॥ [२६] (३५४)

॥ ३२ ॥

१-२४ वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, २३-२४ इन्द्राश्वौ । गायत्री ।

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥
भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥ २ ॥
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥ [२७]
भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥ (३६१)

न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥
प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥१०॥ [२८]
ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११॥
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२॥
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३॥
अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४॥
अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५॥
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥१६॥ [२९]
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥
प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् । माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२॥
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३॥
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४॥ [३०] ६
(३७८)

॥ ३३ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप् ।

(४) प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥ १ ॥
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥ २ ॥
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥ (३८२)

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥ ५ ॥ [१]
सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्सवने दधात ॥ ११ ॥ [२] (३८९)

॥ ३४ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप् ।

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥ १ ॥
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरंधिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥ २ ॥
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥ ३ ॥
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥ ५ ॥ [३]
आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥ (३९५)

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥
सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥ ८ ॥
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ १० ॥
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥ ११ ॥ [४] (४००)

॥ ३५ ॥

१-९. वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप् ।

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥ [५]
यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यंदिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥ (४०७)

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥ [६] (४०९)

॥ ३६ ॥

१-९. वामदेवो गौतमः । ऋभवः । जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥
रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥
तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥
एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥ [७]
स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥ [८] (४१८)

॥ ३७ ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप्, ५-८ अनुष्टुप् ।

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वासु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥
पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥ [९]
सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥ [१०] (४२६)

॥ ३८ ॥

१-१० वामदेवो गौतमः । दधिक्रा, १ द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥
उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥ (४२९)

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥ [११]
उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥
उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥
उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥ ९ ॥
आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥ [१२] (४३६)

॥ ३९ ॥

१-६ वामदेवो गौतमः । दधिक्राः । त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।

आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥ [१३] (४४२)

॥ ४० ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । दधिक्राः, ५ सूर्यः । १ त्रिष्टुप्, २-५ जगती ।

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥
सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥
उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ५ ॥ [१४] (४४७)

॥ ४१ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ५ ॥ [१५]
तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥ (४५३)

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥
आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११॥ [१६] (४५८)

॥ ४२ ॥

१-१० त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । १-६ आत्मा, ७-१० इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥ ४ ॥
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥ [१७]
अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥ (४६५)

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥
पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०॥ [१८] (४६८)

॥ ४३ ॥

१-७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥
को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥ ३ ॥
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥ ४ ॥
उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥ ५ ॥
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥ [१९] (४७५)

॥ ४४ ॥

१-७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥ (४७६)

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥ [२०] (४८२)

॥ ४५ ॥

१-७ वामदेवो गौतमः । अश्विनौ । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥
मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥
हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥ ५ ॥
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥ ६ ॥
प्र वामवोचमश्विना धियंधा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥ ७ ॥ [२१] (४८९)

॥ ४६ ॥

१-७ वामदेवो गौतमः । १ वायुः, २-७ इन्द्रवायू । गायत्री ।

(५) अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥
शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥
आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥
रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥ ५ ॥
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ६ ॥
इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥ ७ ॥ [२२] (४९६)

॥ ४७ ॥

१-४ वामदेवो गौतमः । १ वायुः, २-४ इन्द्रवायू । अनुष्टुप् ।

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥ [२३] (५००)

॥ ४८ ॥

१-५ वामदेवो गौतमः । वायुः । अनुष्टुप् ।

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥ (५०२)

अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥
वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥ [२४] (५०५)

॥ ४९ ॥

१-६ वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती । गायत्री ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥ [२५] (५११)

॥ ५० ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः, १०-११ इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप्, १० जगती ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥ [२६] (५१६)

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥
स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥
स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥ [२७] ७* (५२२)

॥ ५१ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥
उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥
कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥
यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ॥ [१]
क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥ (५२८)

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥ ७ ॥
ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥ ८ ॥
ता इन्न्वे३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥ ९ ॥
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥ [२] (५३३)

॥ ५२ ॥

१-७ वामदेवो गौतमः । उषाः । गायत्री ।

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥
यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि ।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः ।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः ।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥
आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥ [३] (५४०)

॥ ५३ ॥

१—७ वामदेवो गौतमः । सविता । जगती ।

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥ १ ॥
दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ ३ ॥
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥ ४ ॥
त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥ ५ ॥
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥ ६ ॥
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥ ७ ॥ [४] (५४७)

॥ ५४ ॥

१—६ वामदेवो गौतमः । सविता । जगती, ६ त्रिष्टुप् ।

अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥ १ ॥
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ २ ॥
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥ ३ ॥
न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥ ४ ॥ (५५१)

१५

इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥ ५ ॥
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ ६ ॥ [५] (५५३)

॥ ५५ ॥

१-१० वामदेवो गौतमः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्, ८-१० गायत्री ।

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥ १ ॥
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥ २ ॥
प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥ ३ ॥
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥ ४ ॥
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥ ५ ॥ [६]
नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥ ७ ॥
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥
उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१०॥ [७] (५६३)

॥ ५६ ॥

१-७ वामदेवो गौतमः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, ५-७ गायत्री ।

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ १ ॥
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥
स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥ [८] (५७०)

॥ ५७ ॥

१-८ वामदेवो गौतमः । १-३ क्षेत्रपतिः, ४ शुनः, ५, ८ शुनासीरौ, ६-७ सीता ।
१, ४, ६, ७ अनुष्टुप्, ५ पुरउष्णिक्, २, ३, ८ त्रिष्टुप् ।

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥ (५७४)

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६ ॥
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥ [९] (५७८)

॥ ५८ ॥

१-११ वामदेवो गौतमः। अग्निः, सूर्यो वाऽऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा। त्रिष्टुप्, ११ जगती।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ २ ॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥ ३ ॥
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ५ ॥ [१०]
सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ७ ॥ (५८५)

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ८ ॥
कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥ ९ ॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥ [११] (५८९)

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

तृतीयमंडलस्यान्तपर्यन्तं	३०५२
चतुर्थमंडलस्य	५८९
सर्वयोगः-	३६४१

अथ पञ्चमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-१२ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ। अग्निः। त्रिष्टुप्।

(१) अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥
अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ६ ॥ [१२]
प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ ७ ॥
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥ ८ ॥
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥ (१०)

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥ [१३] (१२)

॥ २ ॥

१—१२ कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा; २, ९ वृशो जानः। अग्निः। त्रिष्टुप्, १२ शक्वरी।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥ १ ॥
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥ २ ॥
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥ ३ ॥
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥ ६ ॥ [१४]
शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ७ ॥
हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥ ८ ॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥ ९ ॥
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०॥ (२२)

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥
तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥
[१५] (२४)

॥ ३ ॥

१—१२ वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः, ३ मरुद्रुद्रविष्णवः । १ विराट्, २-१२ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १ ॥
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥ २ ॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥
तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ४ ॥
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥ ५ ॥
वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ ॥ [१६]
यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥ ९ ॥
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०॥ (३४)

३६

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११॥
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२॥ [१७] (३६)

॥ ४ ॥

१-११ वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥
हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥
जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ५ ॥ [१८]
वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽ३स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥
यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥१०॥ (४६)

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११॥ [१९] (४७)

॥ ५ ॥

१-११ वसुश्रुत आत्रेयः । आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । गायत्री ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥
नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥ [२०]
सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥ ७ ॥
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ८ ॥
शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१०॥
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११॥ [२१] (५८)

॥ ६ ॥

१-१० वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः । पङ्क्तिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ (६२)

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५ ॥ [२२]
प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ६ ॥
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८ ॥
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ९ ॥
एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥ [२३] (६८)

॥ ७ ॥

१-१० इष आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, १० पङ्क्तिः ।

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥
स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥
अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥ ५ ॥ [२४]
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥ ६ ॥ (७४)

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥ ८ ॥
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥ ९ ॥
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥ १० ॥ [२५] (७८)

॥ ८ ॥

१-७ इष आत्रेयः । अग्निः । जगती ।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥ १ ॥
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥ २ ॥
त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥ ३ ॥
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥ ४ ॥
त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥ ५ ॥
त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥ ६ ॥
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥ ७ ॥[२६]८* (८५)

इति तृतीयोऽष्टकः ॥ ३ ॥

॥ ९ ॥

१-७ गय आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्; ५, ७ पङ्क्तिः ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥
अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥ २ ॥
उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥
अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥ ५ ॥
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६ ॥
तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥ [१] (९२)

॥ १० ॥

१-७ गय आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्; ४, ७ पङ्क्तिः ।

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥
त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २ ॥
त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३ ॥
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥ ४ ॥ (९६)

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥ ५ ॥
नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ६ ॥
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥ [२] (९९)

॥ ११ ॥

१-६ सुतंभर आत्रेयः । अग्निः । जगती ।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ २ ॥
असम्मृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥ ३ ॥
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४ ॥
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५ ॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ ६ ॥ [३] (१०५)

॥ १२ ॥

१-६ सुतंभर आत्रेयः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥ १ ॥
ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥ २ ॥ (१०७)

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥ ३ ॥
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४ ॥
सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिरृजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥ ५ ॥
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥ ६ ॥ [४] (१११)

॥ १३ ॥

१-६ सुतंभर आत्रेयः । अग्निः । गायत्री ।

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥ १ ॥
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २ ॥
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६ ॥ [५] (११७)

॥ १४ ॥

१-६ सुतंभर आत्रेयः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १ ॥
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद्गा अपः स्वः ॥ ४ ॥
अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥ [६] (१२३)

॥ १५ ॥

१-५ धरुण आङ्गिरसः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

(२) प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३ ॥
मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥ [७] (१२८)

॥ १६ ॥

१—५ पूरुरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥
स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥
नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥ [८] (१३३)

३७

॥ १७ ॥

१-५ पूरुरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १ ॥
अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २ ॥
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥ [९] (१३८)

॥ १८ ॥

१-५ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥ २ ॥
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥ ५ ॥ [१०] (१४३)

॥ १९ ॥

१-५ वव्रिरात्रेयः । अग्निः । १-२ गायत्री, ३-४ अनुष्टुप्, ५ विराड्रूपा ।

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥
जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥ [११] (१४८)

॥ २० ॥

१-४ प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥
होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥ [१२] (१५२)

॥ २१ ॥

१-४ सस आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि । अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥ १ ॥
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे । स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥
त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥
देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥[१३] (१५६)

२

॥ २२ ॥

१-४ विश्वसामा आत्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥
न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥
अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥[१४] (१६०)

॥ २३ ॥

१-४ द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ पङ्क्तिः ।

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् । विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर । त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः । होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ४ ॥ [१५] (१६४)

॥ २४ ॥

१-४ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा । अग्निः । द्विपदा विराट् ।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥ १ ॥
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ १ ॥ २ ॥
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३ ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ २ ॥ ४ ॥ [१६](१६८)

॥ २५ ॥

१-९ वसूयव आत्रेयाः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥
स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥ (१७०)

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ५ ॥ [१७]
अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६ ॥
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ७ ॥
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥ [१८] (१७७)

॥ २६ ॥

१-९ वसूयव आत्रेयाः । अग्निः, ९ विश्वेदेवाः । गायत्री ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥ [१९]
समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥ [२०] (१८६)

॥ २७ ॥

१-६ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः, अश्वमेधश्च भारतः राजानः, (अत्रिर्भौम इति केचित्)। अग्निः, ६ इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप् ।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २ ॥
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३ ॥
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४ ॥
यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥
इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥ [२१] (१९२)

॥ २८ ॥

१-६ विश्ववारात्रेयी । अग्निः । १, ३ त्रिष्टुप्, २ जगती, ४ अनुष्टुप, ५-६ गायत्री ।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥ २ ॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३ ॥
समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥
समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥
आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥ [२२] (१९८)

॥ २९ ॥

१-१५ गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः, ९ (प्रथमः पादः) उशना वा । त्रिष्टुप् ।

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २ ॥
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥
आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४ ॥
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ ॥ [२३]
नव यदस्य नवतिं च भोगान्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६ ॥
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७ ॥
त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८ ॥
उशना यत्सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥ १० ॥ [२४]
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२ ॥
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३ ॥ (२११)

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४ ॥
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥ [२५] (२११)

॥ ३० ॥

१-१५ बभ्रुरात्रेयः । इन्द्रः, १२-१५ ऋणंचयेन्द्रौ । त्रिष्टुप् ।

क्व स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥ १ ॥
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥ २ ॥
प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४ ॥
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥ ५ ॥ [२६]
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥
समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥ १० ॥ [२७]
यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११ ॥ (२१२)

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥
चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥ [२८] (२२८)

॥ ३१ ॥

१-१३ अवस्युरात्रेयः । इन्द्रः, ८ (तृतीयः पादः) कुत्सो वा, (चतुर्थः पादः)
उशना वा, ९ इन्द्राकुत्सौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥
उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥ ३ ॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥ [२९]
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥ (२३६)

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥ ९ ॥
वातस्य युक्तान्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥ [३०]
सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥
ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥ [३१] (२४१)

॥ ३२ ॥

१-१२ गातुरात्रेयः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥ ३ ॥
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥ ४ ॥
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥ [३२]
उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥[३३]१*(२५३)

॥ ३३ ॥

१-१० संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(३) महि महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥ १ ॥
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥ २ ॥
न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥
पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥ ४ ॥
वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ ॥ [१]
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥
एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥ (२६०)

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८ ॥
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥ [२] (२६३)

॥ ३४ ॥

१-९ संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः । जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥
यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥ [३]
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥
समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥
सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥ ९ ॥ [४] (२७२)

॥ ३५ ॥

१-८ प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ।

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥ २ ॥
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३ ॥
वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥ [५]
त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥ [६] (२८०)

॥ ३६ ॥

१-६ प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन्गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २ ॥
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥ ३ ॥ (२८३)

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥ ५ ॥
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ ॥ [७] (२८६)

॥ ३७ ॥

१-५ अत्रिर्भौमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥
समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥ ४ ॥
पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥ ५ ॥ [८] (२९१)

॥ ३८ ॥

१-५ अत्रिर्भौमः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १ ॥
यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥ (२९४)

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥
नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥ [९] (२९६)

॥ ३९ ॥

१-५ अत्रिर्भौमः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २ ॥
यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥
अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥ [१०] (३०१)

॥ ४० ॥

१-९ अत्रिर्भौमः । १-४ इन्द्रः, ५ सूर्यः, ६-९ अत्रिः । १-३ उष्णिक्, ५, ९ अनुष्टुप्, ४, ६-८ त्रिष्टुप् ।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥
यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ ॥ [११] (३०६)

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८ ॥
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥ [१२] (३१०)

॥ ४१ ॥

१-२० अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, १६-१७ अतिजगती, २० एकपदा विराट् ।

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १ ॥
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥ २ ॥
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३ ॥
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४ ॥
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥ ५ ॥ [१३]
प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरंधीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥ ६ ॥
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ७ ॥
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतींरोषधी राय एषे ॥ ८ ॥
तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥ ९ ॥ (३१९)

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥ [१४]
कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११॥
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥
आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५॥ [१५]
कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥
अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९॥
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥ [१६] (३३०)

॥ ४२ ॥

१-१८ अत्रिर्भौमः । विश्वेदेवाः, ११ रुद्रः । त्रिष्टुप्, १७ एकपदा विराट् ।

प्र शंतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥ (३३२)

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३ ॥
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४ ॥
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंधिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ ॥ [१७]
मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥ ६ ॥
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७ ॥
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ८ ॥
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥ ९ ॥
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१०॥ [१८]
तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥
एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥
प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥ (३४६)

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८॥ [१९] (३४८)

॥ ४३ ॥

१—१७ अत्रिर्भौमः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्, १६ एकपदा विराट् ।

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २ ॥
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥
दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद्दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥
असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥ ५ ॥ [२०]
आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥ ६ ॥
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥ ७ ॥
अच्छा मही बृहती शंतमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥
प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥ ९ ॥
आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥१०॥ [२१]
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११॥ (३५९)

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२॥
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३॥
मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥
बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५॥
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥ [२२] (३६५)

॥ ४४ ॥

१-१५ अवत्सारः काश्यपः (१२ अवत्सारेण सह सदापृण-यजत-बाहुवृक्त-श्रुतवित्-तर्याः, १३ सुतंभरश्च) । विश्वेदेवाः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १ ॥
श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥ २ ॥
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३ ॥
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥ ४ ॥
संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥ ५ ॥ [२३]
यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥
वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥ ७ ॥ (३७२)

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥ ८ ॥
समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९ ॥
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥ [२४]
श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥
सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥ [२५] (३८०)

॥ ४५ ॥

१-११ सदापृण आत्रेयः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

(४) विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद्गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २ ॥
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३ ॥
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४ ॥ (३८४)

एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥ [२६]
एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६ ॥
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद्गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद्गाः ॥ ८ ॥
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद्गोषु गच्छन् ॥ ९ ॥
आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११॥ [२७] (३९१)

॥ ४६ ॥

१-८ प्रतिक्षत्र आत्रेयः । विश्वेदेवाः, ७-८ देवपत्न्यः । जगती; २,८ त्रिष्टुप् ।

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १ ॥
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ २ ॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३ ॥
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४ ॥
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥ (३९६)

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्यस्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६ ॥
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७॥
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ ॥ [२८]२* (३९९)

॥ ४७ ॥

१-७ प्रतिरथ आत्रेयः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २ ॥
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३ ॥
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४ ॥
इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥ ५ ॥
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६ ॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ ॥ [१] (४०६)

॥ ४८ ॥

१-५ प्रतिभानुरात्रेयः । विश्वेदेवाः । जगती ।

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १ ॥
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥ (४०८)

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥ ३ ॥
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥ ४ ॥
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥ ५ ॥ [२] (४११)

॥ ४९ ॥

१-५ प्रतिप्रभ आत्रेयः, (५ तृणपाणिः) । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १ ॥
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३ ॥
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥ ४ ॥
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥ [३] (४१६)

॥ ५० ॥

१-५ स्वस्त्यात्रेयः । विश्वेदेवाः । अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥
ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्यापृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २ ॥
अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥ (४१९)

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥ ५ ॥ [४] (४२१)

॥ ५१ ॥

१-१५ स्वस्त्यात्रेयः । विश्वेदेवाः; ४, ६, ७ इन्द्रवायू, ५ वायुः । १-४ गायत्री; ५-१० उष्णिक्; ११-१३ जगती त्रिष्टुब्वा, १४-१५ अनुष्टुप् ।

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥
ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥
अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥
वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ [५]
इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०॥ [६]
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥
विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥
स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४॥
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५॥[७](४३६)

४०

॥ ५२ ॥

१-१७ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । अनुष्टुप्; ६, १६, १७ पङ्क्तिः ।

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥
ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ [८]
आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६ ॥
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥
उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥
आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥ [९]
अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥
छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥ (४४९)

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४॥
नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५॥
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥ [१०] (४५३)

॥ ५३ ॥

१-१६ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । १, ५, १०, ११, १५ ककुप्; ६, ७, ९, १३, १४, १६ सतो बृहती; ८, १२ गायत्री; २ बृहती; ३ अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक् ।

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥
ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥
ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ [११]
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वाइवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥ (४६१)

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥ [१२]
शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११॥
कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥१२॥
येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३॥
अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५॥
स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥ [१३] (४६९)

॥ ५४ ॥

१-१५ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २ ॥
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥ (४७३)

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥ [१४]
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥ [१५]
अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥
तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥ [१६] (४८४)

॥ ५५ ॥

१-१० श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥ (४८६)

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३ ॥
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४ ॥
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५ ॥ [१७]
यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६ ॥
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७ ॥
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८ ॥
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९ ॥
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥ [१८] (४९४)

॥ ५६ ॥

१-९ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती; ३, ७ सतो बृहती ।

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥ (४९८)

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥ [१९]
युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ ९ ॥ [२०] (५०३)

॥ ५७ ॥

१-८ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती, ७-८ त्रिष्टुप् ।

(५) आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ १ ॥
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥
धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ ५ ॥ [२१]
ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥ [२२] (५११)

॥ ५८ ॥

१-८ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥
अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ५ ॥
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥ [२३] (५१९)

॥ ५९ ॥

१-८ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

प्र वः स्पळक्रन्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ३ ॥ (५२२)

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥ ४ ॥
अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥ [२४] (५२७)

॥ ६० ॥

१-८ श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतोऽग्नामरुतौ वा । त्रिष्टुप्, ७-८ जगती ।

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥
आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥ २ ॥
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥
वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥ ६ ॥
अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥ ७ ॥
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥ ८ ॥ [२५] (५३५)

४१

॥ ६१ ॥

१-१९ श्यावाश्व आत्रेयः । १-४, ११-१६ मरुतः; ५-८ तरन्तमहिषी शशीयसी; ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः, १० तरन्तो वैददश्विः; १७-१९ रथवीतिर्दार्भ्यः । गायत्री, ५ अनुष्टुप्, ९ सतो बृहती ।

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ॥ १ ॥
क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् । श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥ [२६]
उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥
वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥
उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥
उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥१०॥ [२७]
य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११॥
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइवोपरि ॥१२॥
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३॥
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥१४॥
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५॥ [२८]
ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६॥
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥१७॥
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥१८॥
एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥ [२९] (५५४)

॥ ६२ ॥

१-९ श्रुतविदात्रेयः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥ (५५५)

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २ ॥
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥
अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥ ५ ॥ [३०]
अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ ९ ॥ [३१] ३ (५६३)

॥ ६३ ॥

१-७ अर्चनाना आत्रेयः । मित्रावरुणौ । जगती ।

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥ १ ॥
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥ २ ॥
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥ ३ ॥
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥ (५६७)

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ५ ॥
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ ६ ॥
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥ ७ ॥ [१] (५७०)

॥ ६४ ॥

१-७ अर्चनाना आत्रेयः । मित्रावरुणौ । अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे । परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा । यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ । स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः । उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥ ७ ॥ [२] (५७७)

॥ ६५ ॥

१-६ रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा । ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा । स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥
मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते । मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥
युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥ [३] (५८३)

॥ ६६ ॥

१–६ रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ । अनुष्टुप् ।

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्यमाशाते । अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥
तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रवएष ऋषीणाम् । ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः । व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६॥ [४] (५८९)

॥ ६७ ॥

१–५ यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ । अनुष्टुप् ।

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् । वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥
आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः । धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥
विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा । व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने । सुनीथासः सुदानवोऽंहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् । तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥ [५] (५९४)

॥ ६८ ॥

१–५ यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥ [६] (५९९)

॥ ६९ ॥

१–४ उरुचक्रिरात्रेयः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥ (६००)

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २ ॥
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४ ॥ [७] (६०४)

॥ ७० ॥

१–४ उरुचक्रिरात्रेयः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥
पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥
मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥ [८] (६०७)

॥ ७१ ॥

१–३ बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ । गायत्री ।

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ [९] (६१०)

॥ ७२ ॥

१–३ बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ । उष्णिक् ।

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ [१०] (६१३)

॥ ७३ ॥

१–१० पौर आत्रेयः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

(६) यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना । यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥
इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता । वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥ (६१५)

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः । पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥
तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे । नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥
आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा । परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥ [११]
युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा । घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः । यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥
मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी । यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा । ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शंतमा । या तक्षाम रथाँइवावोचाम बृहन्नमः ॥१०॥ [१२] (६२३)

॥ ७४ ॥

१–१० पौर आत्रेयः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू । तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या । कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥
कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् । कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः । यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः । युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ ॥ [१३]
अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये । नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् । को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७ ॥
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना । पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८ ॥
शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः । अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥ [१४] (६३३)

॥ ७५ ॥

१–९ अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ । पङ्क्तिः ।

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥ (६३५)

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ [१५]
आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥
अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥ [१६] (६४२)

॥ ७६ ॥

१–५ अत्रिर्भौमः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥
उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥ [१७] (६४७)

॥ ७७ ॥

१-५ अत्रिर्भौमः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २ ॥
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३ ॥
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४ ॥
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥ [१८] (६५२)

॥ ७८ ॥

१-९ सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । अनुष्टुप्,
१-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥
अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शंतमेन ॥ ४ ॥ [१९]
वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्याइव । श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये । मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः । एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति । एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि । निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥ [२०]
(६६१)

४२

॥ ७९ ॥

१-१० सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः । पङ्क्तिः ।

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥ [२१]
ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥
उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥
एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥ [२२] (६७१)

॥ ८० ॥

१-६ सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥ (६७३)

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥
एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥ [२३] (६७७)

॥ ८१ ॥

१-५ श्यावाश्व आत्रेयः । सविता । जगती ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २ ॥
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३ ॥
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४ ॥
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥ ५ ॥ [२४] (६८२)

॥ ८२ ॥

१-९ श्यावाश्व आत्रेयः । सविता । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥
स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥ [२५]
अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥ (६८८)

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८ ॥
य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥ [२६] (६९१)

॥ ८३ ॥

१-१० अत्रिर्भौमः । पर्जन्यः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप् ।

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥
वि वृक्षान्हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३ ॥
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥
यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥ [२७]
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥
यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन्हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०॥ [२८] (७०१)

॥ ८४ ॥

१-३ अत्रिर्भौमः । पृथिवी । अनुष्टुप् ।

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि । प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥ (७०२)

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः । प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥
दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा । यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥ [२९] (७०४)

॥ ८५ ॥

१-८ अत्रिर्भौमः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥
वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २ ॥
नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥ [३०]
इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७ ॥
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ ॥ [३१] (७१२)

॥ ८६ ॥

१-६ अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी । अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा ।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् । दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या । या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥
तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः । प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे । पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा । अर्हन्ता चित्पुरो दधेंऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥ (७१७)

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ ६ ॥ [३२] (७१८)

॥ ८७ ॥

१-९ एवयामरुदात्रेयः । मरुतः । अतिजगती ।

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १ ॥
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २ ॥
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥
स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥ [३३]
अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥ [३४] (७२७)

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

चतुर्थमण्डलस्यान्तपर्यन्तं ३६४१
पञ्चममण्डलस्य ७२७
सर्वयोगः- ४३६८

अथ षष्ठं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-१३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

(१) त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥
अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥ २ ॥
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ४ ॥
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५ ॥ [३५]
सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥
तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८ ॥
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ९ ॥
अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १० ॥ (२०)

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११ ॥
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२ ॥
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ १३ ॥ [३६]४* (१३)

॥ २ ॥

१-११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । अनुष्टुप्, ११ शक्वरी ।

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते । त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥
सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते । यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते । ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥
समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् । वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ [१]
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः । सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥
अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः । परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥
त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् । समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥ [२] (२४)

॥ ३ ॥

१-८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २ ॥ (२६)

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥ ३ ॥
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ [३]
स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥ ७ ॥
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ८ ॥ [४] (३२)

॥ ४ ॥

१-८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १ ॥
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २ ॥
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ३ ॥
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४ ॥
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न हुतः पततः परिह्रुत् ॥ ५ ॥ [५]
आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥ ६ ॥ (३८)

४३

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ [६] (४०)

॥ ५ ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥ १ ॥
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥ २ ॥
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥ ३ ॥
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४ ॥
यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ५ ॥
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥ ६ ॥
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७ ॥ [७] (४७)

॥ ६ ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥ (४९)

वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥ ३ ॥
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥ ४ ॥
अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ५ ॥
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥ ६ ॥
स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥ ७ ॥ [८] (५४)

॥ ७ ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप्, ६-७ जगती ।

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ॥ ३ ॥
त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४ ॥
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५ ॥
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६ ॥
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥ ७ ॥ [९] (६१)

॥ ८ ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । वैश्वानरोऽग्निः । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥ १ ॥
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥ २ ॥
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥ ३ ॥
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुरृग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥ ४ ॥
युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥ ५ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ ६ ॥
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥ ७ ॥ [१०] (६८)

॥ ९ ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ १ ॥
नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥ ३ ॥
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥ ४ ॥ (७२)

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ५ ॥
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ६ ॥
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ ॥ [११] (७५)

॥ १० ॥

१-७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप्; ७ द्विपदा विराट् ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ १ ॥
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥ २ ॥
पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ३ ॥
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ४ ॥
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥ ५ ॥
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६ ॥
वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ ॥ [१२] (८२)

॥ ११ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥ १ ॥ (८३)

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् ॥ २ ॥
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥ ३ ॥
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥ ४ ॥
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ ५ ॥
दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥ ६ ॥ [१३] (८८)

॥ १२ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ १ ॥
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २ ॥
तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥
सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन्क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥
अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥ ५ ॥
स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥ [१४] (९४)

॥ १३ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १ ॥
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २ ॥
स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥ [१५] (१००)

॥ १४ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । अनुष्टुप्, ६ शक्वरी ।

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् । यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥ [१६] (१०६)

॥ १५ ॥

१-१९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा । अग्निः । जगती; ३, १५ शक्वरी; ६ अतिशक्वरी; १७ अनुष्टुप्; १८ बृहती; १०-१४, १६, १९ त्रिष्टुप् ।

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १ ॥
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ २ ॥
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ ५ ॥ [१७]
अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७ ॥
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ ८ ॥
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ९ ॥
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥ १० ॥ [१८]
तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११ ॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२ ॥ (११८)

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३॥
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४॥
अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥ [१९]
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६॥
इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७॥
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८॥
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९॥ [२०] (१२५)

॥ १६ ॥

१-४८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । गायत्री; १, ६ वर्धमाना;
२७, ४७-४८ अनुष्टुप्, ४६ त्रिष्टुप् ।

(२)त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३ ॥
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४ ॥
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५ ॥ [२१]
त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
तव प्र यक्षि संदृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥ (१३४)

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥ [२२]
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३॥
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरंदरम् ॥१४॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनंजयं रणेरणे ॥१५॥ [२३]
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१६॥
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥१७॥
नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥१८॥
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९॥
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना । वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२०॥ [२४]
स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥२१॥
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥
ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥
वस्वी ते अग्ने संदृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥ [२५]
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६॥
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः । तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८॥
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९॥
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥३०॥ [२६]
यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१॥
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४॥
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥ [२७]
ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६॥
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥ (१६३)

उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥३८॥
य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०॥ [२८]
प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥
आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥४२॥
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥४५॥ [२९]
वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६॥
आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि । ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् । येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥[३०]५*
(१७३)

॥ १७ ॥

१-१५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १ ॥
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥ २ ॥
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ ३ ॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥
येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ ॥ [१]
तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६ ॥ (१७९)

पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥
अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९ ॥
अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥१०॥ [२]
वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११॥
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२॥
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४॥
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥[३] (१८०)

॥ १८ ॥

१-१५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २ ॥
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥ ३ ॥
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥ (१९२)

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ ५ ॥ [४]
स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥ ६ ॥
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥ ८ ॥
उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥ [५]
आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४॥
अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥ [६] (२०३)

॥ १९ ॥

१-१३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २ ॥ (२०५)

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३ ॥
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४ ॥
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ ॥ [७]
शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६ ॥
यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७ ॥
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११॥
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२॥
वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३॥ [८] (२१६)

॥ २० ॥

१-१३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ७ विराट् ।

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥ (२१७)

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४ ॥
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥ [९]
प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥
सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीरृणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥१२॥
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥१३॥ [१०] (२२९)

॥ २१ ॥

१-१२ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः, ९, ११ विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥ (२३०)

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २ ॥
स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४ ॥
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥ [११]
तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥
इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१०॥
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥
स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२॥ [१२] (२४१)

॥ २२ ॥

१-११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥ (२४३)

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥ [१३]
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११॥ [१४] (२५२)

॥ २३ ॥

१-१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥ (२५५)

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥
अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥ [१५]
ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि राण्ड्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६ ॥
स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥
एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥१०॥ [१६] (२६२)

॥ २४ ॥

१-१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

(३) वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २ ॥
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥ [१७] (२६७)

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६ ॥
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥
न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥ ८ ॥
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९ ॥
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥ [१८] (२७२)

॥ २५ ॥

१-९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १ ॥
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २ ॥
इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३ ॥
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४ ॥
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ ॥ [१९]
स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७ ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥ (२८०)

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ ॥ [२०] (२८१)

॥ २६ ॥

१-८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १ ॥
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २ ॥
त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ ५ ॥ [२१]
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७ ॥
वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ ८ ॥ [२२] (२८९)

॥ २७ ॥

१-८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः, ८ चायमानो राजा । त्रिष्टुप् ।

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १ ॥
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २ ॥ (२९१)

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥
एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४ ॥
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ ५ ॥ [२३]
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ ६ ॥
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥
द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ ॥ [२४] (२९७)

॥ २८ ॥

१-८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । गावः; २, ८ इन्द्रो गावश्च । त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ८ अनुष्टुप् ।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १ ॥
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २ ॥
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३ ॥
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ४ ॥
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥ (३०३)

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥ [२५] ६* (३०५)

॥ २९ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥
आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २ ॥
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥
न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥ [१] (३११)

॥ ३० ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ १ ॥
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥
अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३ ॥ (३१४)

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥ ५ ॥ [२] (३१६)

॥ ३१ ॥

१-५ सुहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ४ शक्वरी ।

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २ ॥
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ ॥ [३] (३२१)

॥ ३२ ॥

१-५ सुहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १ ॥
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिरृक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥
स वह्निभिरृक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३ ॥
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥ (३२५)

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ ॥ [४] (३२६)

॥ ३३ ॥

१-५ शुनहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४ ॥
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ ॥ [५] (३३१)

॥ ३४ ॥

१-५ शुनहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३स्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३ ॥
अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४ ॥
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥ [६] (३३६)

॥ ३५ ॥

१-५ नरो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥ १ ॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २ ॥
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ ३ ॥
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ ५ ॥ [७] (३४२)

॥ ३६ ॥

१-५ नरो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १ ॥
अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २ ॥
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ ३ ॥
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥
स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ॥ [८] (३४६)

॥ ३७ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥ (३४७)

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ ॥ [९] (३५२)

॥ ३८ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३ ॥
वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥ [१०] (३५६)

॥ ३९ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥ (३५८)

अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥
अयं रोचयदरुचो रुचानोऽयं वासयद्व्यृतेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ५ ॥ [११] (३६१)

॥ ४० ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥ २ ॥
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥ ३ ॥
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥ ४ ॥
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५ ॥ [१२] (३६६)

॥ ४१ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १ ॥
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ २ ॥
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३ ॥ (३६९)

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४ ॥
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ॥ [१३] (३७१)

॥ ४२ ॥

१-४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, ४ बृहती ।

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे ॥ १ ॥
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तंतमिदेषते ॥ ३ ॥
अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् । कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४॥ [१४] (३७५)

॥ ४३ ॥

१-४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥४॥ [१५] (३७९)

॥ ४४ ॥

१-२४ शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १-६ अनुष्टुप्, ७-९ (८ वा) विराट् ।

(४) यो रयिवो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥ (३८३)

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥५॥ [१६]
तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६॥
अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१०॥ [१७]
मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११॥
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२॥
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४॥
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५॥ [१८]
इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्यादेदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्वस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥ (३९७)

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥
आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२०॥ [१९]
वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१॥
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२॥
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥
अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४॥ [२०] (४०३)

॥ ४५ ॥

१-३३ शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः, ३१-३३ बृबुस्तक्षा । गायत्री, २९ अतिनिचृत्, ३१ पादनिचृत्, ३३ अनुष्टुप् ।

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१॥
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३॥
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥४॥
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ॥५॥ [२१]
नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६॥
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥७॥
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ॥८॥
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९॥
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥१०॥ [२२]
तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥११॥ (४१४)

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२॥
अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३॥
या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥१४॥
स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५॥ [२३]
य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६॥
यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥१७॥
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८॥
प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९॥
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२०॥ [२४]
स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥२१॥
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥२२॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२३॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४॥
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५॥ [२५]
दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥२८॥
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९॥
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान्राये महे हिनु ॥३०॥
अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥
यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥ [२६] (४३६)

॥ ४६ ॥

१-१४ शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥ (४३७)

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥
बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥ [२७]
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्सुषहान्कृधि ॥६॥
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥
यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥ [२८]
अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥ [२९] (४५०)

॥ ४७ ॥

१-३१ गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः, १-५ सोमः, २० देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः, २२-२५ प्रस्तोकः, २६-२८ रथः, २९-३१ दुन्दुभिः, ३१ दुन्दुभीन्द्रौ । त्रिष्टुप्, १९ बृहती, २३ अनुष्टुप्, २४ गायत्री, २५ द्विपदा, २७ जगती ।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४ ॥
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्द्यामस्तभ्नाद्वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥ [३०]
धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८ ॥
वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥
इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १० ॥ [३१]
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥ (४६२)

४७

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ ॥ [३२]
शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६ ॥
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥
अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥ [३३]
दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१ ॥
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥
दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥
दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥
महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥ [३४]
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ २६ ॥
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २७ ॥ (४७७)

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८ ॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ३० ॥
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ ॥ [३५]७* (४८१)

॥ ४८ ॥

१-२२ शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) । १-१० अग्निः, ११-१५, २०-२१ मरुतः, १६-१९ पूषा, २२ द्यावाभूमिर्वा पृश्निर्वा । प्रगाथः= (१, ३ बृहती, २, ४ सतो बृहती, ५ बृहती, ६ महा सतो बृहती, ७ महाबृहती, ८ महा सतो बृहती, ९ बृहती, १० सतो बृहती, ११ ककुप्, १२ सतो बृहती) १३ पुरउष्णिक्, १४ बृहती, १५ अतिजगती, १६ ककुप्, १७ सतो बृहती, १८ पुरउष्णिक्, १९-२० बृहती, २१ महा बृहती यवमध्या, २२ अनुष्टुप् ।)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये । भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा । अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ५ ॥ [१]
आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥ ६ ॥
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥ ८ ॥ (४८९)

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ १० ॥ [२]
आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत । या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् । अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥
त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥
आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥ [३]
मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥
परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया । अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता । देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥
सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत । पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥ [४]
(५०३)

॥ ४९ ॥

१-१५ ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्, १५ शक्वरी ।

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥
विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥ (५०६)

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥ [५]
पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१०॥ [६]
आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥
प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥
यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥१३॥
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१श्नवाम ॥१५॥ [७] (५१८)

॥ ५० ॥

१-१५ ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप् ।

(५) हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्सवितारं भगं च ॥ १ ॥ (५१९)

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥ २ ॥
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥
आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५ ॥ [८]
अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥
ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥
आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥ [९]
ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११॥
ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२॥
उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३॥
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४॥
एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥ [१०] (५३३)

॥ ५१ ॥

१-१६ ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्, १३-१५ उष्णिक्, १६ अनुष्टुप् ।

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ १ ॥
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥
स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ३ ॥
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥ ४ ॥
द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥ ५ ॥ [११]
मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥ ८ ॥
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥ ९ ॥
ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निरृतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥ [१२]
ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥
नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२॥
अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३॥ (५४६)

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः । जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४॥
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५॥
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६॥ [१३] (५४९)

॥ ५२ ॥

१-१७ ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः । त्रिष्टुप्, ७-१२ गायत्री, १४ जगती ।

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्व१ः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥ १ ॥
अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान्ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥
अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥
विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५ ॥ [१४]
इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ६ ॥
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥
यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ ८ ॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥ ९ ॥
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०॥ [१५]
स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा । इमा हव्या जुषन्त नः ॥११॥
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२॥
विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥ (५६३)

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥ [१६](५६६)

॥ ५३ ॥

१-१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री, ८ अनुष्टुप् ।

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥ [१७]
वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे । तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥
या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत्कृणुहि वीतये ॥१०॥ [१८] (५७६)

॥ ५४ ॥

१-१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री ।

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥
यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥ [१९]
पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥ (५८२)

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥
शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥ [२०](५९६)

॥ ५५ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री ।

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥
पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ [२१] (५९२)

॥ ५६ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥
आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् । अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥[२२](५९८)

॥ ५७ ॥

१-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रापूषणौ । गायत्री ।

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥ (६०२)

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । महा इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥ [२३](६०४)

॥ ५८ ॥

१-४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा । त्रिष्टुप्, २ जगती ।

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥ [२४] (६०८)

॥ ५९ ॥

१-१० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी । बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥
बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ [२५]
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः । मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७॥ (६१५)

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः । अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा । आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता । विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये॥१०॥[२६]
(६१८)

॥ ६० ॥

१-१५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी । गायत्री; १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप् ।

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥ [२७]
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥
इन्द्राग्नी युवामिमे३भि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥ [२८]
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२॥
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४॥
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः । वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु॥१५॥[२९](६३३)

उदु अया उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥ [१५](७३४)

॥ ७२ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वर्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥
इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥ [१६](७३९)

॥ ७३ ॥

१-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान्गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥ [१७](७४२)

॥ ७४ ॥

१-४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ४ ॥ [१८] (७४६)

॥ ७५ ॥

१-१९ पायुर्भारद्वाजः । (संग्रामाशिषः) १ वर्म, २ धनुः, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधिः, ६ सारथिः,
६ रश्मयः, ७ अश्वाः, ८ रथः, ९ रथगोपाः, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-
पृथिवी-पूषणः ११-१२, १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः, १४ हस्तघ्नः,
१७ युद्धभूमि-कवच-ब्राह्मणस्पत्यादयः, १८ वर्म-सोम-वरुणाः,
१९ देवब्रह्माणि । त्रिष्टुप्; ६,१० जगती; १२,१३,१५,१६,१९
अनुष्टुप्, १७ पङ्क्तिः ।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥ (७४९)

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥ [१९]
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥
तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥
रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥ [२०]
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥
ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥ [२१] (७६१)

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८॥
यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥ [२२] (७६५)

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

पञ्चममण्डलस्यान्तपर्यन्तं	४३६८
षष्ठमण्डलस्य	७६५
सर्वयोगः-	५१३३

अथ सप्तमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप् ।

(१) अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१॥
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३॥
प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः । यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४॥
दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् । न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५॥ [२३]
उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची । उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥
विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् । प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७॥
आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक । उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥८॥
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा । उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९॥
इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः । ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०॥ [२४]
मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा । प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११॥
यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः । स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२॥
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः । त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३॥
सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः । सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४॥
सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् । सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥१५॥ [२५]
अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् । परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६॥
त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या । उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७॥
इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥१८॥
मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९॥ (१९)

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२०॥ [२६]
त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥२१॥
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥
स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥२३॥
महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥२४॥
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥ [२७]१* (२५)

॥ २ ॥

१-११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आप्री सूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥
नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥
स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥ [१]
उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥ (३१)

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥ [२] (३६)

॥ ३ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥
वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥
तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥ [३]
सुसंदृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥ (४३)

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥ [४] (४६)

॥ ४ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥
अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥
अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥
आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥ [५]
ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥
परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ९ ॥ (५५)

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥ [१५](७३४)

॥ ७२ ॥

१-५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥
इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥ [१६](७३९)

॥ ७३ ॥

१-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान्गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥ [१७](७४२)

॥ ७४ ॥

१-४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ४ ॥ [१८] (७४६)

॥ ७५ ॥

१-१९ पायुर्भारद्वाजः । (संग्रामाशिषः) १ वर्म, २ धनुः, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधिः, ६ सारथिः, ६ रश्मयः, ७ अश्वाः, ८ रथः, ९ रथगोपाः, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषणः, ११-१२, १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः, १४ हस्तघ्नः, १७ युद्धभूमि-कवच-ब्राह्मणस्पत्यादयः, १८ वर्म-सोम-वरुणाः, १९ देवब्रह्माणि । त्रिष्टुप्; ६,१० जगती; १२,१३,१५,१६,१९ अनुष्टुप्, १७ पङ्क्तिः ।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥ (७४९)

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥ [१९]
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥
तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥
रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥ [२०]
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥
ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥ [२१] (७६१)

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८॥
यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥ [२२] (७६५)

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

पञ्चममण्डलस्यान्तपर्यन्तं	४३६८
षष्ठमण्डलस्य	७६५
सर्वयोगः-	५१३३

अथ सप्तमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप् ।

(१) अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१॥
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३॥
प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः । यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४॥
दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् । न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५॥ [२३]
उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची । उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥
विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् । प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७॥
आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक । उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥८॥
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा । उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९॥
इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः । ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०॥ [२४]
मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा । प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११॥
यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः । स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२॥
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः । त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३॥
सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः । सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४॥
सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् । सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥१५॥ [२५]
अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् । परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६॥
त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या । उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७॥
इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥१८॥
मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९॥ (१९)

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२०॥ [२६]
त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥२१॥
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥
स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥२३॥
महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥२४॥
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥ [२७]१ (२५)

॥ २ ॥

१-११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आप्रीसूक्तं (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥
नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥
स्वाध्यो वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥ [१]
उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥ (३१)

विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥ [२] (३६)

॥ ३ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविरृतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥
वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥
तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥ [३]
सुसंदृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥ (४३)

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥ [४] (४६)

॥ ४ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥
अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥
अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥
आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥ [५]
ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥
परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ९ ॥ (५५)

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥ [६] (५६)

॥ ५ ॥

१-९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥
त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥
तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥ ४ ॥
त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ॥ ५ ॥ [७]
त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥ ६ ॥
स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥
तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥ [८] (६५)

॥ ६ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥ १ ॥ (६६)

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥
न्यक्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥ ३ ॥
यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥
यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥
यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥
आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥ [९] (७२)

॥ ७ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥ १ ॥
आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥
प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥
सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥
असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥ ५ ॥
एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥ ६ ॥ (७८)

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [१०] (७९)

॥ ८ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ३ ॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ४ ॥
असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥
इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [११] (८६)

॥ ९ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥
स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥ ३ ॥
ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥ ४ ॥ (९०)

अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥ ५ ॥
त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंधिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [१२] (९२)

॥ १० ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥ १ ॥
स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद्दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥ २ ॥
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥
इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥ ४ ॥
मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥ ५ ॥ [१३] (९७)

॥ ११ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥
त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥ २ ॥
त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥
अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥ (१०१)

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१४] (१०२)

॥ १२ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [१५] (१०५)

॥ १३ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥
जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [१६] (१०८)

॥ १४ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ बृहती ।

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥ १ ॥
वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥ २ ॥
आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [१७] (१११)

॥ १५ ॥

१-१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । गायत्री ।

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥
यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥
स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥
नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥
स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा । अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ [१८]
सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥
क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ८ ॥
उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥ ९ ॥
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥ [१९]
स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥
त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥
अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥ [२०] (१२६)

॥ १६ ॥

१-१२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥ ४ ॥ (१३०)

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥ ६ ॥ [२१]
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ ७ ॥
येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥
ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥ १० ॥
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥ [२२] (१३८)

॥ १७ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥ १ ॥
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ १ ॥ २ ॥
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ २ ॥ ४ ॥
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥ ५ ॥
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ३ ॥ ६ ॥
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥ ४ ॥ ७ ॥ [२३] (१४५)

॥ १८ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः, २२-२५ सुदासः पैजवनः । त्रिष्टुप् ।

(२) त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥
राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन्गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥
इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥
धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥
अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥ [२४]
पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥ ६ ॥
आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥ ७ ॥
दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥ ८ ॥
ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ ९ ॥
ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥ १० ॥ [२५]
एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ११ ॥
अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥ (१५७)

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥ [२६]
अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६॥
आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥
न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥२०॥ [२७]
प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥
द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥
यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥
इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥ [२८] (१७०)

॥१९॥

१-११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥ [२९]
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०॥
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥ [३०] २* (१८१)

॥ २० ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ १ ॥
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥ २ ॥
युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥ ४ ॥
वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥ [१]
नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥ ८ ॥
एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥ [२] (१९१)

॥ २१ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥ २ ॥ (१९२)

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ ३ ॥
भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥
न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ ५ ॥ [३]
अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥
देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥
सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके३ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९ ॥
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥ [४] (२०१)

॥ २२ ॥

१-९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥ [५] (२०६)

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योकः ॥ ६ ॥
तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥ [६] (२१०)

॥ २३ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [७] (२१६)

॥ २४ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥ (२१७)

५२

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [८] (२२२)

॥ २५ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ १ ॥
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २ ॥
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३ ॥
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ ४ ॥
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥ ५ ॥
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [९] (२२८)

॥ २६ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥ १ ॥
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥
चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥ ३ ॥
एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥
एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१०] (२३३)

॥ २७ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥
य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥
नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [११] (२३८)

॥ २८ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥ २ ॥
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ॥ ३ ॥
एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१२] (२४३)

॥ २९ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥
ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥
का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥
उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१३] (२४८)

॥ ३० ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥
अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥
वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१४] (२५३)

॥ ३१ ॥

१-१२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । गायत्री, १०-१२ विराट् ।

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ [१५]
महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥१०॥ (२६३)

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥११॥
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥१२॥ [१६] (२६५)

॥ ३२ ॥

१-२७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे), २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे) । इन्द्रः । प्रगाथः= (१ बृहती, २ सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट्, प्रगाथः=(समा बृहती, विषमा सतोबृहती) ।

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥
रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद्गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥ [१७]
स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१०॥ [१८] (२७५)

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥११॥
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥१३॥
कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४॥
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥ [१९]
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥१६॥
त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥१७॥
यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥१८॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥१९॥
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥२०॥ [२०]
न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२१॥
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥२२॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२३॥
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥२४॥ (२८९)

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२५॥
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥ [२१] (२९२)

॥ ३३ ॥

(१-१४) १-९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । १-९ वसिष्ठपुत्राः, इन्द्रो वा, १०-१४ वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
उद्द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥ [२२]
दण्डा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥
त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥ (३०१)

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥ [२३]
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२॥
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३॥
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४॥ [२४] (३०६)

॥ ३४ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः । द्विपदा विराट्, २२-२५ त्रिष्टुप् ।

(३) प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥
विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥
आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥
आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥
त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥
उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥
ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥
अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥
आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१०॥ [२५]
राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥११॥
अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥
व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥१३॥
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥
सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥१५॥ (३२१)

५३

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥१६॥
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥१७॥
उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥१८॥
तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥१९॥
आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०॥ [२६]
प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥२१॥
ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥२२॥
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥
अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४॥
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥ [२७] (३३१)

॥ ३५ ॥

१-१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥ [२८] (३३६)

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥१०॥ [२९]
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥१४॥
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥[३०]३*(३४६)

॥ ३६ ॥

१-९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥
इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥
आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद्वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥ (३४९)

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥
यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥ [१]
आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥ ६ ॥
उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥
प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ॥ ८ ॥
अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥ [२] (३५५)

॥ ३७ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥ १ ॥
यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥ २ ॥
उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४ ॥
सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ५ ॥ [३]
वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६ ॥ (३६१)

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥
आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ [४] (३६३)

॥ ३८ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १-६ सविता, ६ (उत्तरार्धः) भगो वा, ७-८ वाजिनः । त्रिष्टुप् ।

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ १ ॥
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्युर्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ २ ॥
अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्यश्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३ ॥
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥ ४ ॥
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥
अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥ [५] (३७१)

॥ ३९ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥ (३७३)

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३ ॥
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥ ४ ॥
आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥
ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैरृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [६] (३७८)

॥ ४० ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥
सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥
अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥
अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ५ ॥
मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैरृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [७] (३८५)

॥ ४१ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः, २-६ भगः, ७ उषाः । १ जगती, २-७ त्रिष्टुप् ।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [८] (३९२)

॥ ४२ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥
सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ २ ॥
समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥
यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥ ४ ॥ (३९६)

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [९] (३९८)

॥ ४३ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥ १ ॥
प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥ २ ॥
आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥ ३ ॥
ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥ ४ ॥
एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१०] (४०३)

॥ ४४ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । दधिक्रा, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्यद्यावापृथिव्यापः । १ जगती, त्रिष्टुप् ।

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥
दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥
दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥
दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥ (४०७)

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥ [११] (४०८)

॥ ४५ ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सविता । त्रिष्टुप् ।

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥ २ ॥
स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥ [१२] (४१२)

॥ ४६ ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । रुद्रः । जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥ ३ ॥
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥ [१३] (४१६)

॥ ४७ ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥ (४१७)

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥ २ ॥
शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ ३ ॥
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥ [१४] (४२०)

॥ ४८ ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप् ।

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥
ऋभुरृभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ २ ॥
ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ॥ ३ ॥
नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥ [१५] (४२४)

॥ ४९ ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आपः । त्रिष्टुप् ।

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ १ ॥
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ २ ॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ३ ॥
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ ४ ॥ [१६] (४२८)

॥ ५० ॥

१-४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः । जगती, ४ अतिजगती शक्वरी वा ।

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥ १ ॥
यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥ २ ॥
यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥ ३ ॥
याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥४॥[१७] (४३२)

॥ ५१ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १ ॥
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥ २ ॥
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [१८] (४३५)

॥ ५२ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥ ३ ॥ [१९] (४३८)

॥ ५३ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥ २ ॥
उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [२०] (४४१)

॥ ५४ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप् ।

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [२१] (४४४)

॥ ५५ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः (२-८ प्रस्वापिनी उपनिषद्) । १ गायत्री, २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५-८ अनुष्टुप् ।

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥
यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥ (४४८)

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥ [२२](४५२)

॥ ५६ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः । १-११ द्विपदा विराट्, त्रिष्टुप् ।

(४) क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥ ३ ॥
एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ ५ ॥
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥
सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥ ९ ॥
प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०॥ [२३]
स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११॥
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥१२॥
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥१३॥
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥१४॥ (४६६)

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥१५॥ [२४]
अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥१६॥
दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७॥
आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८॥
इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥
इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२०॥ [२५]
मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥२१॥
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३॥
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४॥
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥ [२६] (४७७)

॥ ५७ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥ (४७८)

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥
नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥
ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥
कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [२७] (४८४)

॥ ५८ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥ १ ॥
जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥
बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥
युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ ४ ॥
ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥
प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [२८] (४९०)

॥ ५९ ॥

१—१२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १-११ मरुतः, १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्) । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥
नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्वन्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥
आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥ [२९]
सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥
सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥१०॥
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥१२॥ [३०]४* (५०२)

॥ ६० ॥

१-१२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन्गृणन्तः ॥ १ ॥ (५०३)

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ २ ॥
अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३ ॥
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४ ॥
इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥
इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥ [१]
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥
यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥ [२] (५१४)

॥ ६१ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥ (५१५)

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥ २ ॥
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद्बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥ ३ ॥
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥
समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [३] (५२१)

॥ ६२ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १-३ सूर्यः, ४-६ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥
वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥ ३ ॥
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥ ४ ॥
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [४] (५२७)

॥ ६३ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १-४ सूर्यः, ५ सूर्य-मित्रावरुणाः, ६ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥ १ ॥
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ४ ॥
यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥ ५ ॥
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [५] (५३३)

॥ ६४ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ १ ॥
आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥ ४ ॥
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [६] (५३८)

॥ ६५ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥ १ ॥
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥ २ ॥
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ३ ॥
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [७] (५४३)

॥ ६६ ॥

१-१९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्यः, १४-१६ सूर्यः । गायत्री, १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती), १६ पुर उष्णिक् ।

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः । नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ॥ २ ॥
ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ॥ ३ ॥
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ ४ ॥
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ [८]
उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ६ ॥
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥ ७ ॥
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥ ९ ॥
बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥ [९] (५५३)

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥११॥
तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥१२॥
ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥१३॥
उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥१४॥
शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥१५॥ [१०]
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥१६॥
काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥१८॥
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ॥१९॥ [११] (५६२)

॥ ६७ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥ १ ॥
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥
अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥ ४ ॥
प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥ ५ ॥ [१२] (५६७)

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥ ९ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥ [१३] (५७२)

॥ ६८ ॥

१-९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । विराट्; ८-९ त्रिष्टुप् ।

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥
प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥
प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥
अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥
चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥
उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥ [१४] (५७९)

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥
एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥ [१५] (५८१)

॥ ६९ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥ २ ॥
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥ ३ ॥
युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥ ४ ॥
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥ ६ ॥
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ [१६] (५८९)

॥ ७० ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥ १ ॥ (५९०)

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥ २ ॥
यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥
चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [१७] (५९६)

॥ ७१ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

(५) अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥ १ ॥
उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥ ५ ॥
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [१८] (६०२)

॥ ७२ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥ २ ॥
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥ ४ ॥
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१९] (६०७)

॥ ७३ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥ २ ॥
अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [२०] (६१२)

॥ ७४ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥
अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥ ५ ॥
प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥ ६ ॥ [२१] (६१८)

॥ ७५ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥
महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥
एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥ (६२३)

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि ददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ [२२] (६२६)

॥ ७६ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥
तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥
त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥
समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥
प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥
एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [२३] (६३३)

॥ ७७ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥ (६३४)

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [२४] (६३९)

॥ ७८ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥
प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥
प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [२५] (६४४)

॥ ७९ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ १ ॥ (६४५)

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥ २ ॥
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥ ३ ॥
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥
देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [२६] (६४९)

॥ ८० ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । त्रिष्टुप् ।

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥ [२७] ५* (६५२)

॥ ८१ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः । प्रगाथः- (विषमा बृहती, समा सतो बृहती)

प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥ (६५६)

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥ [१] (६५८)

॥ ८२ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥
सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥
युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥
इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥ [२]
महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेरृतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥ [३] (६६८)

॥ ८३ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ १ ॥
यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥ २ ॥
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥
इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥ ४ ॥
इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥ ५ ॥ [४]
युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥ ६ ॥
दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥ ७ ॥
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥
वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥ ९ ॥
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेरृतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥ [५] (६७८)

॥ ८४ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥ १ ॥ (६७९)

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥ २ ॥
कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥ ३ ॥
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [६] (६८३)

॥ ८५ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥
आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥
स सुक्रतुरृतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [७] (६८८)

॥ ८६ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥
उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥ (६९०)

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ ४ ॥
अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः
अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥
अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥
अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ [८] (६९६)

॥ ८७ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीरृतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥
आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥
उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥
तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥
अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद्द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥ (७०२)

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [९] (७०३)

॥ ८८ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वरुणः, (७ पाशविमोचनी) । त्रिष्टुप् ।

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥
अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥ २ ॥
आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥
वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥ ४ ॥
क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥
य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६ ॥
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [१०] (७१०)

॥ ८९ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वरुणः । गायत्री, ५ जगती ।

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५ ॥ [११] (७१५)

॥ ९० ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १-४ वायुः, ५-७ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

(६) प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥
उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥
ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥
ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥ ६ ॥
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [१२] (७२२)

॥ ९१ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १, ३ वायुः, २, ४-७ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥
उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥ २ ॥
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥
यावत्तरस्तन्वो यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥ (७२६)

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥
या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [१३] (७२९)

॥ ९२ ॥

१-५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १, ३, ५ वायुः; २,४ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥
प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥
प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ३ ॥
ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ४ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ [१४] (७३४)

॥ ९३ ॥

१-८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥
ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥ २ ॥
उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥ (७३७)

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥
सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥ [१५]
इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥
सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥
एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ [१६] (७४२)

॥ ९४ ॥

१-१२ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी । गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥
शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥ ४ ॥
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥
ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ [१७]
इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥
मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ ९ ॥
यत्सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥
ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् । आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥ [१८]
(७५४)

॥ ९५ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सरस्वती, ३ सरस्वान् । त्रिष्टुप् ।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥
एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥
स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥
उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥
अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [१९] (७६०)

॥ ९६ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सरस्वती, ४-६ सरस्वान् । १-२ प्रगाथः- (१ बृहती, २ सतो बृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः, ४-६ गायत्री ।

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥
उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥
भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ [२०] (७६६)

॥ ९७ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । १ इन्द्रः, २, ४-८ बृहस्पतिः ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती, १० इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥
आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥ [२१]
तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥
स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥
देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥ [२२] (७७६)

॥ ९८ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥ (७७७)

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [२३] (७८३)

॥ ९९ ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णू । त्रिष्टुप् ।

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ १ ॥
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥
इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ [२४] (७९०)

॥ १०० ॥

१-७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ ४ ॥
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥
किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥ [२५]६* (७९७)

॥ १०१ ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः(वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥ २ ॥
स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥
यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥
इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥ (८०२)

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ [१] (८०३)

॥ १०२ ॥

१-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । गायत्री, २ पादनिचृत् ।

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥
यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥
तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ [२] (८०६)

॥ १०३ ॥

१-१० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥
दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥
यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥ [३]
गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥ ८ ॥
देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥
गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥१०॥ [४] (८१६)

॥ १०४ ॥

१-२५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । (राक्षोघ्नं) इन्द्रासोमौ; ८, १६, १९-२२, इन्द्रः; ९, १२-१३ सोमः; १०, १४ अग्निः, ११ देवाः, १७ ग्रावाणः, १८ मरुतः, २३ वसिष्ठाशीः (पूर्वार्धः), (उत्तरार्धः) पृथिव्यन्तरिक्षे । त्रिष्टुप्: १-६, १८, २१, २३ जगती; ७ जगती त्रिष्टुब्वा; २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥ १ ॥
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४ ॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥ [५]
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥ ६ ॥
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥ ७ ॥
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥१०॥ [६]
परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥ (८२८)

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥
यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४॥
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥ [७]
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७॥
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥ [८]
इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्सत एति रक्षसः ॥२१॥
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् । रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥ [९] (८४१)

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

षष्ठमण्डलस्यान्तपर्यन्तं	५१३३
सप्तममण्डलस्य	८४१
सर्वयोगः-	५९७४

अथाष्टमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

(१-३४) १-२ प्रगाथो घौरः काण्वः, ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, ३०-३३ आसङ्गः प्लायोगिः, ३४ शश्वती आङ्गिरसी ऋषिका । इन्द्रः, ३०-३४ आसङ्गः । १-४ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-३२ बृहती, ३३-३४ त्रिष्टुप् ।

(१) मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥ [१०]
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ७ ॥
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरंदरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥ ८ ॥
ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ९ ॥ (९)

आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ॥१०॥ [११]
यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥११॥
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२॥
मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणाइव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१३॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥१४॥
यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥ [१२]
आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥१६॥
सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥१७॥
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥१८॥
इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥१९॥
मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२०॥ [१३]
मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥२१॥
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥२२॥
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥२३॥ (२३)

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥२४॥
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥ [१४]
पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥२६॥
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥२७॥
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥२८॥
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥२९॥
स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३०॥ [१५]
आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥३१॥
य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासंगस्य स्वनद्रथः ॥३२॥
अध प्लायोगिरति दासदन्यानासंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळाइव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥
अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि ॥३४॥ [१६] (३४)

॥ २ ॥

(१-४२) १-४० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, ४१-४२ मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः, ४१-४२ विभिन्दुः । गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥
नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥ (२७)

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥
न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥ [१७]
गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥
त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ७ ॥
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥
इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥१०॥ [१८]
ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥११॥
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२॥
रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३॥
उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥१४॥
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥१५॥ [१९]
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥१६॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥१७॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥१८॥
ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यस्मान् । महाँइव युवजानिः ॥१९॥
मो ष्वद्य दुर्हणावान्त्सायं करदारे अस्मत् । अश्रीरइव जामाता ॥२०॥ [२०]
विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि ॥२१॥
आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः ॥२२॥
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिबन्नर्याय ॥२३॥
यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥२४॥
पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥२५॥ [२१]
पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥२६॥
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥२७॥
स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥२८॥
स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥२९॥ (६३)

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ॥३०॥ [२२]
एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ॥३१॥
हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥३२॥
यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च । अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥३३॥
एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ॥३४॥
प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति । इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५॥ [२३]
सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ॥३६॥
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥३७॥
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् । कण्वासो गात वाजिनम् ॥३८॥
य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९॥
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोऽभि यन्नयः ॥४०॥
शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥४१॥
उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या । जनित्वनाय मामहे ॥४२॥[२४](७८)

॥ ३ ॥

१-२४ मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः, २१-२४ पाकस्थामा कौरयाणः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती ।

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥ [२५] (८१)

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ६ ॥
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ७ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ८ ॥
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ९ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥ [२६]
शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११॥
शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥१२॥
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१३॥
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥१४॥
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥१५॥ [२७]
कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥१७॥
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥१८॥
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१९॥ (९५)

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२०॥ [२८]
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥२१॥
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद्रायो विबोधनम् ॥२२॥
यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥२३॥
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४॥ [२९](१००)

॥ ४ ॥

१-२१ देवातिथिः काण्वः । इन्द्रः, १५-१८ पूषा वा, १९-२१ कुरुङ्गः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ पुर उष्णिक् ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥ ४ ॥
प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षाइव येमिरे ॥ ५ ॥ [३०]
सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ ७ ॥ (१०७)

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ ८ ॥
अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥ ९ ॥
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥ [३१]
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥
स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२॥
रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३॥
उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥१४॥
प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥ [३२]
सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥१६॥
वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।
न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुषे पज्राय साम्ने ॥१७॥
परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥१८॥
स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९॥
धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥२०॥
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥२१॥[३३]७*(१२१)

॥ ५ ॥

१-३९ ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ, ३७ (उत्तरार्धः)-३९ कशुश्चैद्यः । गायत्री, ३७-३८ बृहती, ३९ अनुष्टुप् ।

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥
नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥
युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥
पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥
मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ [१]
ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥
आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥
येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून्परिदीयथः ॥ ८ ॥
उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥
आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥१०॥ [२]
वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥११॥
अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२॥
नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मो ष्वन्याँ उपारतम् ॥१३॥
अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥
अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥ [३]
पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१६॥
जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥
अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥
यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥१९॥
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥२०॥ [४]
उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥
कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥२२॥
युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥
ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः । यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥२४॥ (१४१)

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् । अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५॥ [५]
यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यम् । यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६॥
एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२७॥
रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥२८॥
हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥
तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥३०॥ [६]
आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥३१॥
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥३२॥
एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥३३॥
रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥३४॥
हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ॥३५॥ [७]
युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥३६॥
ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥३७॥
यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥३८॥
माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः ।
अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥३९॥[८] (१६०)

॥ ६ ॥

१-४८ वत्सः काण्वः । इन्द्रः, ४६-४८ तिरिन्दिरः पार्शव्यः । गायत्री ।

(२)महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥ [९]
वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥ (१६६)

इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥
गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥
प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥१०॥ [१०]
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥११॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुरृषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२॥
यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥१३॥
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥१४॥
न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । न विव्यचन्त भूमयः ॥१५॥ [११]
यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥१६॥
य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् । तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥१७॥
य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥१८॥
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥१९॥
या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् ॥२०॥ [१२]
त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः ॥२१॥
तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥२२॥
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् ॥२३॥
उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा । अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥२४॥
अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२५॥ [१३]
यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः । महाँ अपार ओजसा ॥२६॥
तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये । उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥२७॥
उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥२८॥
अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजति ॥२९॥
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥ [१४]
कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् । उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥३१॥
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२॥
उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३॥
अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः । इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४॥ (१९४)

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः । अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५॥ [१५]
आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् । इममिन्द्र सुतं पिब ॥३६॥
त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ॥३७॥
अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् । अनु सुवानास इन्दवः ॥३८॥
मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥३९॥
वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ॥४०॥ [१६]
ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥४१॥
अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ॥४२॥
इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३॥
इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥४४॥
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥४५॥
शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानाम् ॥४६॥
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् । ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७॥
उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् । श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८॥ [१७] (२०८)

॥ ७ ॥

१-३६ पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री ।

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥
यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥
उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् । यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥
नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे । महे शुष्माय येमिरे ॥ ५ ॥ [१८]
युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे । युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥
उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते । वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥ ७ ॥
सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ८ ॥
इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥
त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१०॥ [१९]
मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥११॥ (२१९)

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥१२॥
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३॥
अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥१४॥
एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५॥ [२०]
ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥१६॥
उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः । उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥१७॥
येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि ॥१८॥
इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥१९॥
क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥२०॥ [२१]
नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः । शर्धां ऋतस्य जिन्वथ ॥२१॥
समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥२२॥
वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः । चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥२३॥
अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥२४॥
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः । शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५॥ [२२]
उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६॥
आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन ॥२७॥
यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥
सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥२९॥
कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् । मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥३०॥ [२३]
कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन । को वः सखित्व ओहते ॥३१॥
सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥३२॥
ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चित्रवाजान् ॥३३॥
गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥३४॥
आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ॥३५॥
अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६॥ [२४] (२४४)

॥ ८ ॥

१-२३ सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥
आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥
आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥
आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥ [२५]
यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥
दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥
किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥
आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥
आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१०॥ [२६]
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥११॥
पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥१२॥
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३॥ (२५७)

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥
यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५॥ [२७]
प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६॥
आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७॥
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥
आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९॥
याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥ [२८]
याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्वस्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१॥
प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥
त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३॥ [२९] (२६७)

॥ ९ ॥

१-२१ शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप्; १,४,६,१४,१५, बृहती; २,३,२०,२१ गायत्री; ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्; ११ विराट्; १२ जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥
यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥ (२७०)

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ [३०]
यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥
यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥ [३१]
यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११॥
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३॥
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥१४॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥ [३२]
अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥ (२८४)

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१॥ [३३] (२८८)

॥ १० ॥

१-६ प्रगाथो घौरः काण्वः । अश्विनौ । १ बृहती, २ मध्येज्योतिः, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, प्रगाथः = (५ बृहती, ६ सतोबृहती)

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः ।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥
यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥ २ ॥
त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥
ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥
यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥
यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥ ६ ॥ [३४] (२९४)

॥ ११ ॥

१-१० वत्सः काण्वः । अग्निः । गायत्री, १ प्रतिष्ठा, २ वर्धमाना, १० त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २ ॥
स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ ३ ॥ (२९७)

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥ ४ ॥
मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ॥ ५ ॥ [३५]
विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥ ६ ॥
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ ७ ॥
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ९ ॥
प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१०॥ [३६]८* (३०४)

॥ इति पञ्चमोऽष्टकः ॥५॥

॥ १२ ॥

१—३३ पर्वतः काण्वः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ २ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ३ ॥
इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥
इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्रइव पिन्वते । इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥ [१]
यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥ ६ ॥
ववक्षुरस्य केतवो उत वज्रो गभस्त्योः । यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥
यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः । आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥
इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति । अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥
इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी । सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥१०॥ [२]
गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् । स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥११॥
सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये । प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥१२॥
यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः । घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥१३॥
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् । पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४॥
अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये । न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥ [३]
यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६॥
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७॥ (३२१)

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८॥
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि । अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९॥
यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् । होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२०॥ [४]
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः । इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥२२॥
महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् । अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥२३॥
न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥२४॥
यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः । आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२५॥ [५]
यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः । आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६॥
यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२७॥
यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८॥
यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९॥
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥
इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१॥
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् । नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥
सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः । होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥[६](३३७)

॥ १३ ॥

१-३३ नारदः काण्वः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

(३)इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥ १ ॥
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥
तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् । भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥
इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे । रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥ [७]
स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद्गिरः । वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् । मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥ ७ ॥
क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः । अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥
उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी । नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥ (३४६)

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा । गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥ [८]
तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः । आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११॥
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय । श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२॥
हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः । जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३॥
आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४॥
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५॥ [९]
इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः । इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६॥
तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः । इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वयाइव ॥१७॥
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८॥
स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥१९॥
तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु । मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥२०॥ [१०]
यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥२१॥
कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२॥
उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् । अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३॥
तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः । नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥२४॥
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः । धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥२५॥ [११]
इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः । ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥२६॥
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये । हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७॥
अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् । उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८॥
इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि । नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥२९॥
अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे । मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३०॥ [१२]
वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी । वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥३१॥
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥३३॥ [१३] (३७

॥ १४ ॥

१-१५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥ (३८०)

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥ [१४]
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥
व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ ७ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥१०॥ [१५]
त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥११॥
इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥१२॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥१४॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥१५॥[१६](३८५)

॥ १५ ॥

१-१३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः। उष्णिक्।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ [१७]
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥
तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ ७ ॥
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥
त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ९ ॥
त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे । सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥१०॥ [१८]
सत्रा त्वं पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे । नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥११॥ (३९६)

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये । अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥१२॥
अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥१३॥[१९](३९८)

॥ १६ ॥

१-१२ इरिम्बिठिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री।

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥
यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥ ४ ॥
तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥
तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ [२०]
इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥
स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥
तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥
प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१०॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥११॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥१२॥[२१](४१०)

॥ १७ ॥

१-१५ इरिम्बिठिः काण्वः। इन्द्रः; १४ वास्तोष्पतिर्वा। गायत्री, प्रगाथः=(१४ बृहती, १५ सतोबृहती)।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥ [२२]
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥
अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥ (४१८)

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥१०॥ [२३]
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥११॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥१२॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३॥
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥१४॥
पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥१५॥[२४](४२५)

॥ १८ ॥

१-२२ इरिम्बिठिः काण्वः। आदित्याः; ४,६,७ अदितिः; ८ अश्विनौ; ९ अग्निसूर्यानिलाः। उष्णिक्।

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥
अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥
देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥
ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे । अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ [२५]
अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥ ६ ॥
उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ॥ ७ ॥
उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना । युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥ ८ ॥
शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥ ९ ॥
अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१०॥ [२६]
युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् । ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥११॥
तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति । एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥१२॥
यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥१३॥
समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥१४॥
पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥१५॥ [२७]
आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥१६॥ (४४१)

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥१७॥
तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥१८॥
यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत । युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥१९॥
बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥२०॥
अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥२१॥
ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि । प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥२२॥[२८](४४७)

॥ १९ ॥

१-३७ सोभरिः काण्वः। अग्निः, ३४-३५ आदित्याः; ३६-३७ त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। १-२६ प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), २७ द्विपदा विराट्, २८-३३ प्रगाथः=(समा ककुप्, विषमा सतोबृहती), ३४ उष्णिक्, ३५ सतोबृहती, ३६ ककुप्; ३७ पङ्क्तिः।

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥
विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥
ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥
यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥ [२९]
तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥
स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥
प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥
सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥१०॥ [३०]
यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हव्या वा वेविषद्विषः ॥११॥ (४५८)

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२॥
यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति । गिरा वाजिरशोचिषम् ॥१३॥
समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥१४॥
तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥१५॥ [३१]
येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत्ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥१६॥
ते घेदग्ने स्वाध्यो३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् । विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥१७॥
त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥१८॥
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१९॥
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२०॥ [३२]
ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥२१॥
तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥२२॥
यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजम् ॥२३॥
यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥२४॥
यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥२५॥ [३३]
न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥२६॥
पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥२७॥
तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः ॥२८॥
तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥२९॥
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः ॥३०॥ [३४] (४७७)

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१॥
तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥३२॥
यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥३३॥
यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥
यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥
अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् । मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥
उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७॥ [३५] (४७८)

॥ २० ॥

१-२६ सोभरिः काण्वः । मरुतः । प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)।

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥
वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥
विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् । विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥
वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥
अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः । भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥ [३६]
अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥
स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः । वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ ७ ॥
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥ ८ ॥
प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् । हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥ (४९३)

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥१०॥ [३७]
समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युतत्यृष्टयः ॥११॥
त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥
येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे । वयो न पित्र्यं सहः ॥१३॥
तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४॥
सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु । यो वा नूनमुतासति ॥१५॥ [३८]
यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६॥
यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः । युवानस्तथेदसत् ॥१७॥
ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥१८॥
यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा । गाय गा इव चर्कृषत् ॥१९॥
साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान्गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२०॥ [३९]
गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥२१॥
मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥
मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः । यूयं सखायः सप्तयः ॥२३॥
याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥२४॥
यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः । यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥२५॥
विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६॥ [४०]१* (५१०)

॥ २१ ॥

१-१८ सोभरिः काण्वः । इन्द्रः, १७-१८ चित्रः । प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)।

(४) वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥
वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ [१]
अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥ ६ ॥
नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्मा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥
विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१मा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१०॥ [२]
त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्थे जनस्य गोमतः ॥११॥
जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥१२॥
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥१३॥
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥१४॥
मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः । नि षदाम सचा सुते ॥१५॥ [३]
मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥१६॥
इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु । त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१७॥ (५२७)

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्यइव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥ [४] (५२८)

॥ २२ ॥

१-१८ सोभरिः काण्वः । अश्विनौ । १-६ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती),
७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२ मध्येज्योतिः, प्रगाथः=
(९, १३, १५, १७ ककुप्, १०, १४, १६, १८ सतोबृहती)

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥
पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥
इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥
युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥
रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥ ५ ॥ [५]
दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥ ६ ॥
उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥
अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥
आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू । युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥
याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥ [६]
यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे । वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥
ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥१२॥ (५४०)

ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे । ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३॥
ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४॥
आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी । हुवे पितेव सोभरी ॥१५॥ [७]
मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥१६॥
आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७॥
सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८॥ [८] (५४६)

॥ २३ ॥

१-३० विश्वमना वैयश्वः । अग्निः । उष्णिक् ।

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥
दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा । उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥
येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे । उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥
उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम् । तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥
उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा । अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥ ५ ॥ [९]
अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् । यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् । तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥ ७ ॥
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् । मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥
ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥१०॥ [१०]
अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भाः । अश्वाइव वृषणस्तविषीयवः ॥११॥
स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् । प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥१२॥
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥१३॥
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥१४॥
न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥१५॥ [११]
व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥१६॥ (५६२)

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् । आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥१७॥
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥१८॥
इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥१९॥
तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥२०॥ [१२]
यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत् । भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥२१॥
प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥२२॥
आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥२३॥
नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥२४॥
अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥२५॥ [१३]
महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६॥
वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥२७॥
त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥
त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः । महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९॥
अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥ [१४]
(५७६)

॥ २४ ॥

१-३० विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः, २८-३० वरुः सौषाम्णिः । उष्णिक्, ३० अनुष्टुप् ।

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥
शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥
स न स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् । निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥
आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् । धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥
न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः । न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥ [१५]
आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिरृणोम्यद्रिवः । आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥
विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम । उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥
वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः । वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥
इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः । अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥
आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे । दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥१०॥ [१६]
नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥ (५८७)

नह्यङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे । राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२॥
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥
उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४॥
नह्यङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् । नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५॥ [१७]
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८॥
एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२०॥ [१८]
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१॥
स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२॥
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४॥
तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने । द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५॥ [१९]
तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे । स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६॥
य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥
यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् । व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८॥
आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः । स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥२९॥
यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते । एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३०॥ [२०]
(६०६)

॥ २५ ॥

१-२४ विश्वमना वैयश्वः । मित्रावरुणौ, १०-१२ विश्वे देवाः । उष्णिक्, २३ उष्णिग्गर्भा ।

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥
मित्रा तना न रथ्या वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥
ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिरृतावरी ॥ ३ ॥
महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥
नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥ ५ ॥ [२१]
सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥ (६१२)

अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥
ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥
अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥९॥
उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या । उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥१०॥ [२२]
ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥११॥
अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥१२॥
तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥१३॥
उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥१४॥
ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥१५॥ [२३]
अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥१६॥
अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥१७॥
परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥१८॥
उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥१९॥
वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥२०॥ [२४]
तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥२१॥
ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥२२॥
ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥२३॥
स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥२४॥[२५](६३०)

॥ २६ ॥

१-२५ विश्वमना वैयश्वः व्यश्वो वाङ्गिरसः । अश्विनौ, २०-२५ वायुः । उष्णिक्; १६-१९,२१,२५ गायत्री; २०, अनुष्टुप् ।

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥
युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥
ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥
आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥
जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥ [२६]
दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥ (६३६)

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
आ मे अस्य प्रतीव्यमिन्द्रनासत्या गतम् । देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥
अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् । नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥१०॥ [२७]
वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११॥
युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥१२॥
यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥
यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४॥
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५॥ [२८]
वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६॥
यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७॥
उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥
स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९॥
युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥२०॥ [२९]
तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥२१॥
त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे । सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥२२॥
वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् । वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥२३॥
त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे । ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥२४॥
स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥२५॥ [३०] (६५५)

॥ २७ ॥

१-२२ मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥
आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥ (६५७)

प्र सू न एत्वध्वरोऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥
विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥
आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥ ५ ॥ [३१]
अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥ ६ ॥
वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ॥ ७ ॥
आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥
वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥
अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥ [३२]
इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥११॥
उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥१२॥
देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये ।
देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥१३॥
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥१४॥
प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥१६॥ [३३] (६७१)

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥१७॥
अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥१८॥
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥१९॥
यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥२०॥
यदद्य सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥२१॥
वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहै ॥२२॥ [३४] (६७७)

॥ २८ ॥

१-५ मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः । गायत्री, ४ पुरउष्णिक् ।

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥
वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥
ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥
यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥
सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् । सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ [३५] (६८२)

॥ २९ ॥

१-१० मनुर्वैवस्वतः, कश्यपो वा मारीचः । विश्वे देवाः । द्विपदा विराट् ।

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥ १ ॥
योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥१॥ २ ॥
वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥
वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥ ४ ॥
तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥ (६८७)

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥३॥ ६ ॥
त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥
विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥४॥ ८ ॥
सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥
अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥५॥१०॥ [३६] (६९२)

॥ ३० ॥

१-४ मनुर्वैवस्वतः। विश्वे देवाः। १ गायत्री, २ पुरउष्णिक्, ३ बृहती, ४ अनुष्टुप्।

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः । विश्वे सतोमहान्त इत् ॥ १ ॥
इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च । मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥
ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥
ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥[३७] (६९६)

॥ ३१ ॥

१-१८ मनुर्वैवस्वतः। १-४ यज्ञः, यजमानश्च, ५-९ दम्पती, १०-१८ दम्पत्याशिषः। गायत्री, ९, १४ अनुष्टुप्, १० पादनिचृत्, १५-१८ पङ्क्तिः।

(५)यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥
पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् । पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥
तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥
अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥
या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः । देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ [३८]
प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते । न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥
न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः । श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः । उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥
वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् । समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः॥९॥
आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् । आ विष्णोः सचाभुवः ॥१०॥ [३९]
ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥११॥ (७०७)

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा। आदित्यानामनेह इत् ॥१२॥
यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः। सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥१३॥
अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥१४॥
मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१५॥
न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१६॥
नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१७॥
असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१८॥[४०]२*(७१४)

॥ ३२ ॥

१-३० मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः। गायत्री।

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥
यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् । वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥
न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥
प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥
स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥ [१]
यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः। त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥
उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ॥ ८ ॥
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधु कृण्वन्तमवसे ॥१०॥ [२]
यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा । जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥११॥
स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः । इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिन्द्रमभि गायत ॥१३॥ (७२७)

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् । भूरेरीशानमोजसा ॥१४॥
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् । नकिर्वक्ता न दादिति ॥१५॥ [३]
न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे ॥१६॥
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥१७॥
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥१८॥
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् ॥१९॥
पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव ॥२०॥ [४]
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब ॥२१॥
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् ॥२२॥
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः। निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२३॥
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये ॥२४॥
य उद्नः फलिगं भिनन्न्यक्सिन्धूँरवासृजत् । यो गोषु पक्वं धारयत् ॥२५॥ [५]
अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् ॥२६॥
प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७॥
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः । इन्द्रो देवेषु चेतति ॥२८॥
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२९॥
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥३०॥[६](७३४)

॥ ३३ ॥

१-१९ मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः। बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप्।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥ (७४८)

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥ ५ ॥ [७]
यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ७ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥ [८]
वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥११॥
वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥१२॥
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३॥
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥१४॥
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥१५॥ [९]
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६॥
इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् ॥१७॥
सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्। एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८॥
अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९॥ [१०] (७६३)

॥ ३४ ॥

(१-१८) १-१५ नीपातिथिः काण्वः, १६-१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री ।

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ [११]
स्मत्पुरंधिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥
आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१०॥ [१२]
आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११॥
सरूपैरा सु नो गहि सम्भृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२॥ (७७५)

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३॥
आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४॥
आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५॥
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥१६॥
य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७॥
पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥१८॥ [१३] (७८१)

॥ ३५ ॥

१-२४ श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ । उपरिष्टाज्ज्योतिः, २२, २४ पङ्क्तिः, २३ महाबृहती ।

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥
स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥
गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ [१४]
हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥
हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥ (७८९)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥
पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१०॥
जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥११॥
हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१२॥ [१५]
मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१३॥
अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१४॥
ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥१५॥
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१६॥
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१७॥
धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥ [१६]
अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥१९॥
सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२०॥
रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२१॥
अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥ (८०३)

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥
स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४॥ [१७] (८०५)

॥ ३६ ॥

१-७ श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्रः । शक्वरी, ७ महापङ्क्तिः ।

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥
प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥
ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥
जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥
अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥
श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥ [१८] (८१२)

॥ ३७ ॥

१-७ श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्रः । १ अतिजगती, २-७ महापङ्क्तिः ।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥ (८१४)

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥
क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥
क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥
श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ७ ॥ [१९] (८१९)

॥ ३८ ॥

१-१० श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी । गायत्री ।

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥
इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥
इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥
इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥ [२०]
प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥
श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ [२१] (८२९)

॥ ३९ ॥

१-१० नाभाकः काण्वः । अग्निः । महापङ्क्तिः ।

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै ।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविरन्तश्चरति दूत्यं१ नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥ (८३०)

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम् ।
न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥
तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं१ नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥ [२२]
अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥
त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥ [२३] (८३९)

॥ ४० ॥

१-१२ नाभाकः काण्वः । इन्द्राग्नी । महापङ्क्तिः, २ शक्वरी, १२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित्साहिषीमह्यग्निर्वनेव वात इन्नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥
नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥ (८४२)

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥
अपि वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ [२४]
यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥
तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् ।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥
तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥
एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥ [२५] (८५१)

॥ ४१ ॥

१-१० नाभाकः काण्वः । वरुणः । महापङ्क्तिः ।

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥
तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
स क्षपः परि षस्वजे न्यु१स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥ (८५४)

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥ [२६]
यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥
यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥ [२७] (८६१)

॥ ४२ ॥

१-६ नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । १-३ वरुणः, ४-६ अश्विनौ । १-३ त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप् ।

अस्तभ्नाद्द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १ ॥
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥ २ ॥
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥
आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥ (८६६)

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ [२८] (८८७)

॥ ४३ ॥

१-३३ विरूप आङ्गिरसः । अग्निः । गायत्री ।

(६) इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥ १ ॥
अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥
आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति ॥ ३ ॥
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥ ४ ॥
एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥ [२९]
कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥ ६ ॥
धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन्तरुणीरपि ॥ ७ ॥
जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥ ८ ॥
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ९ ॥
उदग्ने तव तद्घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निंसानं जुह्वो मुखे ॥१०॥ [३०]
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११॥
उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२॥
उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३॥
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥१४॥
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्ने वीरवतीमिषम् ॥१५॥ [३१]
अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥१६॥
उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥१७॥
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥१८॥
अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे ॥१९॥
तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् । वह्निं होतारमीळते ॥२०॥ [३२]
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥२१॥
तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् ॥२२॥
तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥२३॥ (८९०)

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥२४॥
अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् । सप्तिं न वाजयामसि ॥२५॥ [३३]
घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥२६॥
यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः ॥२७॥
यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥२८॥
तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥२९॥
ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥३०॥ [३४]
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ॥३१॥
स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥३२॥
तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ॥३३॥ [३५] (९००)

॥ ४४ ॥

१-३० विरूप आङ्गिरसः । अग्निः । गायत्री ।

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥
अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥
अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ ४ ॥
उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ ५ ॥ [३६]
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ ६ ॥
प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् । अध्वराणामभिश्रियम् ॥ ७ ॥
जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् । अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥ ८ ॥
समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥ ९ ॥
विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् । यज्ञानां केतुमीमहे ॥१०॥ [३७]
अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः । भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥११॥
अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥१२॥
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१३॥
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥१४॥
यो अग्निं तन्वो दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इद्दीदयद्वसु ॥१५॥ [३८] (९१५)

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥१६॥
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ॥१७॥
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥१८॥
त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥१९॥
अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥२०॥ [३९]
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥२१॥
उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥२२॥
यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥२३॥
वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥२४॥
अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥२५॥ [४०]
युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥२६॥
यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७॥
अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय ॥२८॥
धीरो ह्यस्यद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि ॥२९॥
पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर ॥३०॥ [४१] (९३०)

॥ ४५ ॥

१-४२ त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः, १ अग्नीन्द्रौ । गायत्री ।

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥
अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥
प्रति त्वा शवसी वदद्गिरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥ [४२]
उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद्वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥
यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥
वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥
अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥
वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥१०॥ [४३] (९४०)

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥११॥
ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते ॥१२॥
विद्मा हि त्वा धनंजयमिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम् । आदारिणं यथा गयम् ॥१३॥
ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्वा पणिं यदीमहे ॥१४॥
यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥१५॥ [४४]
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥१६॥
उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥
यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः ॥१८॥
यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥१९॥
आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते । उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥२०॥ [४५]
स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि ॥२१॥
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥२२॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥२४॥
या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५॥ [४६]
अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६॥
सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥२७॥
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥२८॥
ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२९॥
यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् । गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥३०॥ [४७]
यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तत्करिन्द्र मृळय ॥३१॥
दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विन्द्र ते मनः ॥३२॥
तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३३॥
मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४॥
बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥३५॥ [४८]
मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥३६॥
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥३७॥
एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८॥ (९६८)

आ तं एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥३९॥
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४०॥
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४१॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४२॥ [४९]३※(९७२)

॥ ४६ ॥

१-३३ वशोऽश्व्यः । इन्द्रः, २१-२४ पृथुश्रवाः कानीतः, २५-२८, ३२ वायुः । गायत्री, १ पादनिचृत्, ५ ककुप्, ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ९ सतोबृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः=(बृहती, विपरीता), १३ द्विपदा जगती, १४ बृहती पिपीलिकमध्या, १५ ककुम्न्यंकुशिरा, १६ विराट्, १७ जगती, १८ उपरिष्टाद्बृहती, १९ बृहती, २० विषमपदा बृहती, २१,२४ पङ्क्तिः, २२ संस्तारपङ्क्तिः, २५-२८ प्रगाथः=(बृहती, सतोबृहती), ३० द्विपदा विराट्, ३१ उष्णिक्, ३२ पङ्क्तिः ।

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥
त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥
आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥
दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ [१]
तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥
तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥
यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥१०॥ [२]
नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥११॥
य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥१२॥
स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता मघवा वृत्रहा भुवत् ॥१३॥ (९८५)

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥१४॥
ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥१५॥ [३]
विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः । कृपयतो नूनमत्यथ ॥१६॥
महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७॥
ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥१८॥
प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर । रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥१९॥
सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२०॥ [४]
आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१॥
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः । मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥२३॥
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥
आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥२५॥ [५]
यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥२६॥
यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥२७॥
उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥२८॥ (१०००)

अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥२९॥
गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥३०॥
अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् । अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥३१॥
शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥३२॥
अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् । अधिरुक्मा वि नीयते ॥३३॥ [६](१००१)

॥ ४७ ॥

१-१८ त्रित आप्त्यः । आदित्याः, १४-१८ आदित्योषसः (दुःस्वप्नघ्नं) । महापङ्क्तिः ।

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥
विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २ ॥
व्यस्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ३ ॥
यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ४ ॥
परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ५ ॥ [७]
परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ६ ॥
न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ७ ॥
युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्तइव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥ (१०१३)

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ९ ॥
यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१०॥ [८]
आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥११॥
नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥
यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥
यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥
निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१५॥ [९]
तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१६॥
यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१७॥
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद्दुष्ष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१८॥ [१०](१०२३)

॥ ४८ ॥

१-१५ प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति ॥ १ ॥
अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥ (१०२५)

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ४ ॥

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ५ ॥ [११]

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँइव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥ ६ ॥

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन्प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

सोम राजन्मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्याइस्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥ ९ ॥

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥१०॥ [१२]

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥१५॥ [१३] (१०३८)

अथ वालखिल्यम् ।

॥ ४९ ॥ [१]

१-१० प्रस्कण्वः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ५ ॥ [१४]

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६ ॥
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥
अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥
यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥[१५](१०४८)

॥ ५० ॥ [२]

१-१० पुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥
यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥ ३ ॥
अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥
आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥ [१६]
प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥
यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥
रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥
एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९ ॥
यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१०॥ [१७](१०५८)

॥ ५१ ॥ [३]

१-१० श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥ (१०५९)

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥
य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥ ३ ॥
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥
यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ५ ॥[१८]
यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ ६ ॥
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ९ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१०॥[१९](१०६८)

॥ ५२ ॥ [४]

१-१० आयुः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥
पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥
य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥ (१०७१)

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥
यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥ ५ ॥ [२०]
यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥
कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१०॥ [२१] (१०७८)

॥ ५३ ॥ [५]

१-८ मेध्यः काण्वः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥
आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥ ३ ॥
विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ४ ॥ [२२]
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥ (१०८३)

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥
अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥ [२३] (१०८६)

॥ ५४ ॥ [६]

१-८ मातरिश्वा काण्वः । इन्द्रः, ३-४ विश्वे देवाः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥ १ ॥
नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥
आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥
पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥ ४ ॥ [२४]
यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥
आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥
सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥ ७ ॥
वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥ ८ ॥ [२५] (१०९४)

॥ ५५ ॥ [७]

१-५ कृशः काण्वः । इन्द्रः, प्रस्कण्वश्च । गायत्री, ३,५ अनुष्टुप् ।

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥ १ ॥
शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥
शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥
सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः । अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥
आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥ ५ ॥ [२६] (१०९९)

॥ ५६ ॥ [८]

१-५ पृषध्रः काण्वः । इन्द्रः, ५ अग्निसूर्यौ । गायत्री, ५ पङ्क्तिः ।

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥
शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥ ३ ॥
तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥
अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥ ५ ॥ [२७] (११०४)

॥ ५७ ॥ [९]

१-४ मेध्यः काण्वः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥
युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ २ ॥
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥ (११०७)

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥ ४ ॥ [२८] (११०८)

॥ ५८ ॥ [१०]

१-३ मेध्यः काण्वः । विश्वे देवाः, १ ऋत्विजो वा । त्रिष्टुप् ।

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥ १ ॥
एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ २ ॥
ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥ ३ ॥ [२९] (११११)

॥ ५९ ॥ [११]

१-७ सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥ १ ॥
निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥ २ ॥
सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥
घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥ ४ ॥ [३०]
अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥ ५ ॥
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः ॥ ७ ॥ [३१] (१११८)

॥ इति वालखिल्यं समाप्तम् ॥

॥ ६० ॥

१-२० भर्गः प्रागाथः । अग्निः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

(७) अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥
अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ३ ॥
अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ [३२]
शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥
यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने संजूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥
मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥
पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥१०॥ [३३]
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥११॥
येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२॥
शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥१३॥ (११३१)

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४॥
शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥ [३४]
सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥१६॥
अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥१७॥
केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥१८॥
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥१९॥
मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२०॥ [३५](११३८)

॥ ६१ ॥

१-१८ भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥
आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिदधृष्वणिम् ॥ ३ ॥
अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥
शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥ [३६](११४३)

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥
अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥१०॥ [३७]
न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥११॥
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥१२॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१३॥
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४॥
इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५॥ [३८]
त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६॥
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७॥
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८॥ [३९] (११५६)

॥ ६२ ॥

१-१२ प्रगाथो घौरः काण्वः । इन्द्रः । पङ्क्तिः, ७-९ बृहती ।

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥
अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥
अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥
आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥
धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥ [४०]
विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥
समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥
उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०॥
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११॥
सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥ [४१] (११६८)

॥ ६३ ॥

१-१२ प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः, १२ देवाः । गायत्री; १, ४-५, ७ अनुष्टुप्; १२ त्रिष्टुप् ।

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः । शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः । श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥
इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ [४२]
यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत । अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥
इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०॥
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥११॥
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ॥१२॥ [४३] (११८०)

॥ ६४ ॥

१-१२ प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
एहि प्रेहि क्षयो दिव्याघोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥
त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥
वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥ [४४]
क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥
कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥
कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥ (११८९)
६७

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०॥
अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिन्तमः ॥११॥
तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥१२॥ [४५] (११९२)

॥ ६५ ॥

१-१२ प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥
आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥ ४ ॥
इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥ [४६]
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥
इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥ ८ ॥
विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् । मा देवा मघवा रिषत् ॥१०॥
सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥
नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत ॥१२॥ [४७] (१२०४)

॥ ६६ ॥

१-१५ कलिः प्रागाथः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १५ अनुष्टुप् ।

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥
न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥
यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥
निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥ (१२०८)

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥ [४८]
सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥ ६ ॥
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥
कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥१०॥ [४९]
वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥११॥
पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥१२॥
वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥१३॥
त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥
सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन ।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥१५॥ [५०] (१२१९)

॥ ६७ ॥

१-२१ मत्स्यः साम्मदः, मान्यो मैत्रावरुणिः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः ।
आदित्याः, १०-१२ अदितिः । गायत्री ।

। सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ १ ॥
त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे । आदित्यासो यथा विदुः ॥ २ ॥
मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा । आदित्यानामरंकृते ॥ ३ ॥ (१२२२)
तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ [५१]
यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥
अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥
मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥
मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥
उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥१०॥ [५२]
पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः । माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥११॥
अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे ॥१२॥
ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥१३॥
ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते ॥१४॥
अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥१५॥ [५३]
शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् । पुरा नूनं बुभुज्महे ॥१६॥
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः । देवाः कृणुथ जीवसे ॥१७॥
तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद्बद्धमिवादिते ॥१८॥
नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥१९॥
मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् ॥२०॥
वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् । विष्वग्वि वृहता रपः ॥२१॥ [५४] ४ (१२४०)

॥ ६८ ॥

१-१९ प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः, १४-१९ ऋक्षाश्वमेधौ । १-१२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः=
(१, ४, ७, १० अनुष्टुप्+गायत्र्यौ), १३-१९ गायत्री ।

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ४ ॥
अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः । नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥ [१]
परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥ ६ ॥
तंतमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये । यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥ (१२४७)

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥
त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥ [२]
यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥
उरु णस्तन्वे तन उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥
उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥
उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या । तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ [३]
सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ १७ ॥
ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी । स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥
न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः । अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥ [४] (१२५९)

॥ ६९ ॥

१-१८ प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः, ११ (अर्धर्चः) विश्वे देवाः, ११ (उत्तरार्धः)- १२ वरुणः ।
अनुष्टुप्, २ उष्णिक्, ४-६ गायत्र्यः, ११, १६ पङ्क्तिः, १७-१८ बृहती ।

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरंध्या विवासति ॥ १ ॥
नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ २ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥ [५]
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥ (१२६८)

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥ [६]
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ११ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥
यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् । स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥
आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १८ ॥ [७] (१२७७)

॥ ७० ॥

१-१५ पुरुहन्मा आङ्गिरसः । इन्द्रः । बृहती; प्रगाथः= (१,३,५ बृहती २,४,६ सतोबृहती),
१३ उष्णिक्, १४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिक् ।

(८) यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥
नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥ ३ ॥
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ५ ॥ [८] (१२८२)

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ ६ ॥
न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ७ ॥
तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥
उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वोर्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥ १० ॥ [९]
अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥
त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने । धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥ १२ ॥
सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य । उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्रयः ॥ १३ ॥
भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥ १४ ॥
कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् । अजां सूरिर्न धातवे ॥ १५ ॥ [१०] (१२९२)

॥ ७१ ॥

१-१५ सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । अग्निः । गायत्री,
१०-१५ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती) ।

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ १ ॥
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् ॥ २ ॥
स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥
न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥ ४ ॥
यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ [११]
त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥ ६ ॥
उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये मर्ताय ॥ ७ ॥ (१२९९)

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् ॥ ८ ॥
स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ ९ ॥
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १० ॥ [१२]
अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११ ॥
अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे ॥ १२ ॥
अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् ॥ १३ ॥
अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १४ ॥
अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्ऋषूणाम् ॥ १५ ॥ [१३] (१३०७)

॥ ७२ ॥

१-१८ हर्यतः प्रागाथः । अग्निः हवींषि वा । गायत्री ।

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥ १ ॥
नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥
अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥
जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् ॥ ४ ॥
चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥ ५ ॥ [१४]
उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥ ६ ॥
दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥ ७ ॥
आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥
परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अञ्जते ॥ ९ ॥
सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥ १० ॥ [१५]
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥ ११ ॥ (१३१८)

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१२॥
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१३॥
ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥१४॥
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥१५॥ [१६]
अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥१६॥
सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥१७॥
उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्यां जिह्वयातनत् ॥१८॥ [१७] (१३२५)

॥ ७३ ॥

१-१८ गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ । गायत्री ।

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥
निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥
उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ३ ॥
कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥
यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥ [१८]
अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ६ ॥
अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ७ ॥
वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ८ ॥
प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ९ ॥
इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१०॥ [१९]
किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥११॥
समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१२॥
यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१३॥
आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१४॥
मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१५॥
अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६॥
अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँइव । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१७॥
पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१८॥ [२०] (१३४३)

॥ ७४ ॥

१-१५ गोपवन आत्रेयः । अग्निः, १३-१५ श्रुतर्वा आर्क्ष्यः । १-१२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः= (अनुष्टुप् + गायत्र्यौ), १३-१५ अनुष्टुप् ।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥
आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥
अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ [२१]
सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥ ६ ॥
इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥
सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥
सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥ ९ ॥
अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥१०॥ [२२]
यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥११॥
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये ॥१२॥
अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥१३॥
मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥१४॥
सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५॥ [२३] (१३५८)

॥ ७५ ॥

१-१६ विरूप आङ्गिरसः । अग्निः । गायत्री ।

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥ (१३६०)

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ ३ ॥
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥ [२४]
तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ ७ ॥
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ८ ॥
मा नः समस्य दूढ्य१ः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१०॥ [२५]
कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥११॥
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥१२॥
अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥१३॥
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥१४॥
परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥१५॥
विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥१६॥ [२६] (१३७४)

॥ ७६ ॥

१-१२ कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥
अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥ ३ ॥
अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥
मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥ [२७]
मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१०॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥११॥
वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥१२॥ [२८] (१३८६)

॥ ७७ ॥

१-११ कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री, ११-१२ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती)

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ १ ॥
आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम् । ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥
समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँइव खेदया । प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥ ३ ॥
एकया प्रतिधापिबत्साकं सरांसि त्रिंशतम् । इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥
अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा । इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥ ५ ॥ [२९]
निराविध्यद्गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम् । इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥
शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥ ७ ॥
तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे । सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥ ८ ॥
एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीड्वधारयः ॥ ९ ॥
विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥१०॥
तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥११॥ [३०] (१३९७)

॥ ७८ ॥

१-१० कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री, १० बृहती ।

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनाम् ॥ १ ॥
आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् । सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥
उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥
नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥
नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ [३१]
स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते । पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥
क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः । वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥
त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा । सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥
त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥
तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥१०॥ [३२] (१४०७)

॥ ७९ ॥

१-९ कृत्नुर्भार्गवः । सोमः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥
अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम् । प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥
त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥ ४ ॥
अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् । ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥ [३३]
विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥ ६ ॥
सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥ ७ ॥
मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् । मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥
अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९ ॥[३४](१४१६)

॥ ८० ॥

१-१० एकद्यूर्नौधसः । इन्द्रः, १० देवाः । गायत्री, १० त्रिष्टुप् ।

नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥
यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥
किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित्स्विन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥
इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित्सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥ ४ ॥
हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥ [३५]
अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि । अस्मान्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥
इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् । इयं धीरृत्वियावती ॥ ७ ॥
मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् । अपावृक्ता अरत्नयः ॥ ८ ॥
तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि । आदित्पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥
अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्युर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १० ॥ [३६] (१४२६)

॥ ८१ ॥

१-९ कुसीदी काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

(९)आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥
नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥
एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् । न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥
प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम् । अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥ [३७]
आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश । इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥
उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् । अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥
इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥
सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः । वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥[३८]५*(१४३५)

॥ ८२ ॥

१-९ कुसीदी काण्वः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥ १ ॥
तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥
इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥
आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥
तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् । प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ [१]
इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥
यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥ [२] (१४४४)

॥ ८३ ॥

१-९ कुसीदी काण्वः । विश्वे देवाः । गायत्री ।

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ १ ॥
ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥
अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ॥ ३ ॥ (१४४७)

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥ ४ ॥
वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ [३]
वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥
अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥ ७ ॥
प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥ ८ ॥
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥ [४] (१४५३)

॥ ८४ ॥

१-९ उशना काव्यः । अग्निः । गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥
कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥ [५]
अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥
कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥ [६] (१४६२)

॥ ८५ ॥

१-९ कृष्ण आङ्गिरसः । अश्विनौ । गायत्री ।

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥
छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ [७]
गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥ (१४६९)

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥
नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ [८] (१४७१)

॥ ८६ ॥

१-५ कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णिः । अश्विनौ । जगती ।

उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ १ ॥
कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ २ ॥
युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ३ ॥
उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥
ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥ [९] (१४७६)

॥ ८७ ॥

१-६ कृष्ण आङ्गिरसो, द्युम्नीको वा वासिष्ठः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ ।
प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥
पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥ ४ ॥
आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥ (१४८१)

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गतम्   ॥ ६ ॥ [१०] (१४८२)

॥ ८८ ॥

१-६ नोधा गौतमः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे   ॥ १ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे   ॥ २ ॥
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते   ॥ ३ ॥
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन्   ॥ ४ ॥
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ   ॥ ५ ॥
नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये   ॥ ६ ॥ [११] (१४८८)

॥ ८९ ॥

१-७ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । इन्द्रः । १-४ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती),
५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती ।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि   ॥ १ ॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण   ॥ २ ॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा   ॥ ३ ॥
अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः   ॥ ४ ॥   (१४९२)

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम्   ॥ ५ ॥
तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम्   ॥ ६ ॥
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥   [१२] (१४९९)

॥ ९० ॥

१-६ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः   ॥ १ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः   ॥ २ ॥
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि   ॥ ३ ॥
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि   ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता   ॥ ५ ॥
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥ ६ ॥ [१३]   (१५०१)

॥ ९१ ॥

१-७ अपाला आत्रेयी । इन्द्रः । १-२ पङ्क्तिः, ३-७ अनुष्टुप् ।

कन्या वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा   ॥ १ ॥
असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥   (१५०३)

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव   ॥ ३ ॥
कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमामहै   ॥ ४ ॥
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे   ॥ ५ ॥
असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि   ॥ ६ ॥
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्   ॥ ७ ॥ [१४] (१५०८)

॥ ९२ ॥

१-३३ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । इन्द्रः । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत । विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १ ॥
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥
तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ [१५]
अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ७ ॥
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥
अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥१०॥ [१६]
अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥११॥
वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥१२॥
विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥१३॥
त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥१४॥
स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा । धियाविड्ढि पुरंध्या ॥१५॥ [१७] (१५२३)

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥१६॥
यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः । य ओजोदातमो मदः ॥१७॥
विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः । विश्वासु दस्म कृष्टिषु ॥१८॥
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥१९॥
यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥२०॥ [१८]
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥२२॥
विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥२३॥
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥२४॥
अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥२५॥
अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने ॥२६॥ [१९]
पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः । अरं गमाम ते वयम् ॥२७॥
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥२८॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥२९॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३०॥
मा न इन्द्राभ्या दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ॥३१॥
त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ॥३२॥
त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ॥३३॥ [२०] (१५४१)

॥ ९३ ॥

१-३४ सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः, ३४ इन्द्र-ऋभवश्च । गायत्री ।

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥ ५ ॥ [२१]
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥   (१५४८)

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥
दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः । त्वं च मघवन्वशः ॥१०॥ [२२]
यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् । न देवो नाध्रिगुर्जनः ॥११॥
अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी ॥१२॥
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत्पयः ॥१३॥
वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमः ॥१४॥
आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् । अजातशत्रुरस्तृतः ॥१५॥ [२३]
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आ शुषे राधसे महे ॥१६॥
अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत । यत्सोमेसोम आभवः ॥१७॥
बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥१८॥
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥१९॥
कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये ॥२०॥ [२४]
अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् । प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥२१॥
पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये । अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥२२॥
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥२३॥
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२४॥
तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥२५॥ [२५]
आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे । स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥२६॥
आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥२७॥
भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२८॥
स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥२९॥
त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३०॥ [२६]
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३१॥
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३२॥
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥३३॥
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥३४॥ [२७] (१५७५)

॥ ९४ ॥

१-१२ बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः । गायत्री ।

(१०)गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ १ ॥
यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥
तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥
उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥ [२८]
कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः । अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥
कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥
त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥
त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥
त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥ [२९] (१५८७)

॥ ९५ ॥

१-९ तिरश्चीराङ्गिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥
आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्वस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् । ॥ २ ॥
पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥
इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ [३०]
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥ (१५९३)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ९ ॥ [३१] (१५९६)

॥ ९६ ॥

१-२१ तिरश्चीराङ्गिरसो,द्युतानो वा मारुतः। इन्द्रः, १४ इन्द्रामरुतो, १५ इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप्,४ विराट् ।

अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १ ॥
अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥
इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥
मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥
आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥ [३२]
तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥
त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥
तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥
मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥१०॥ [३३] (१६०६)

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥११॥
तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२॥
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५॥ [३४]
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥१६॥
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥१७॥
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान्त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥१८॥
स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥१९॥
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत्तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥२०॥
स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥२१॥ [३५] (१६१७)

॥ ९७ ॥

१-१५ रेभः काश्यपः । इन्द्रः । बृहती, १०, १३ अतिजगती, ११-१२ उपरिष्टाद्बृहती, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥ (१६१८)

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ ॥२॥
य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥३॥
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥४॥
यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि ।
यत्पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ॥५॥ [३६]
स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।
मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥६॥
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥७॥
अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥८॥
न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥९॥
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥१०॥ [३७]
समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥११॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥१२॥
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥१३॥
त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥
तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन्दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥१५॥ [३८] ६*(१६३२)

॥९८॥

१-१२ नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः । उष्णिक्, ७, १०-११ ककुप्, ९, १२ पुरउष्णिक् ।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥१॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥२॥
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३॥
एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥४॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥५॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥६॥ [१]
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥७॥
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥८॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥९॥
त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥१०॥
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥११॥
त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥१२॥[२](१६४४)

॥९९॥

१-८ नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥
मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥२॥
श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥३॥
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥४॥
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥५॥ (१६४९)

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६॥
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥७॥
इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥८॥ [३] (१६५२)

॥१००॥

(१-१२) १-३, ६-१२ नेमो भार्गवः, ४-५ इन्द्रः । १-९, १२ इन्द्रः, (८ सुपर्णः, ९ वज्रो वा)
१०-११ वाक् । त्रिष्टुप्, ६ जगती, ७-९ अनुष्टुप् ।

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥१॥
दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥२॥
प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥३॥
अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥४॥
आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥५॥
विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६॥ [४]
प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥७॥
मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम् ।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥८॥
समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥९॥ (१६६१)

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥१०॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥११॥
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥१२॥ [५] (१६६४)

॥१०१॥

१-१६ जमदग्निर्भार्गवः । मित्रावरुणौ, ५ मित्रावरुणादित्याः, ६ आदित्याः, ७-८ अश्विनौ, ९-१० वायुः, ११-१२ सूर्यः, १३ उषाः सूर्यप्रभा वा, १४ पवमानः, १५-१६ गौः । १-२ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती), ३ गायत्री, ४ सतोबृहती, ५-१३ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १४-१६ त्रिष्टुप् ।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥१॥
वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२॥
प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदेरघुः ॥३॥
न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥४॥
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं१ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५॥ [६]
ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥६॥
आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥७॥
रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥८॥
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥९॥ (१६७३)

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अथा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥१०॥ [७]
बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥११॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥१२॥
इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्यन्तर्दशसु बाहुषु ॥१३॥
प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥१४॥
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥
वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥ [८] (१६८०)

॥ १०२ ॥

१-२२ प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रावन्यतरो वा । अग्निः । गायत्री ।

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे ।
कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥
स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा ।
चिकिद्विभानवा वह ॥ २ ॥
त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य ।
अभि ष्मो वाजसातये ॥ ३ ॥
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ४ ॥
हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ५ ॥ [९] (१६८५)

आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ६ ॥
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥
अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥
विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् ।
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥१०॥ [१०]
शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा ।
दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥११॥
तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम् ।
मित्रं न यातयज्जनम् ॥१२॥
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥१३॥
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् ।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥१४॥
पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्यइवोपदृक् ॥१५॥ [११]
अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१६॥
तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः ।
हव्यवाहममर्त्यम् ॥१७॥
प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् ।
हव्यवाहं नि षेदिरे ॥१८॥
नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति ।
अथैतादृग्भरामि ते ॥१९॥ (१६९९)

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥२०॥
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥२१॥
अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥२२॥ [१२] (१७०२)

॥ १०३ ॥

१-१४ सोभरिः काण्वः । अग्निः; १४ अग्नामरुतः । बृहती; ५ विराड्रूपा; ७, ९, ११, १३ सतोबृहती; ८, १२ ककुप्; १० हसीयसी; १४ अनुष्टुप् ।

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥
प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥ २ ॥
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥
प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥
स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ [१३]
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥
प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥
आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥ (१७११)

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् ।
अग्निं रथानां यमम् ॥१०॥ [१४]
उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥११॥
मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥१२॥
मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥१३॥
आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥ [१५] (१७१६)

॥ इत्यष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्र-संख्या

सप्तममण्डलस्यान्तपर्यन्तं ५९७४
अष्टममण्डलस्य (वालखिल्यसहिता) १७१६
" (वालखिल्यरहिता १६३६)

सर्वयोगः- ७६९०

अथ नवमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-१० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

(१)स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥ [१६]
पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥
अभीऽममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते ॥१०॥ [१७] (१०)

॥ २ ॥

१-१० मेधातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ [१८]
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥
गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥
तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ॥ ९ ॥
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥१०॥ [१९] (२०)

७१

॥ ३ ॥

१-१० शुनःशेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥
एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥ [२०]
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥१०॥ [२१] (३०)

॥ ४ ॥

१-१० हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥
सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ [२२]
तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥
अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥
त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥ [२३] (४०)

॥ ५ ॥

१-११ असितः काश्यपो देवलो वा । आप्रीसूक्तं=(१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। गायत्री, ८-११ अनुष्टुप् ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन्वृषा कनिक्रदत् ॥ १ ॥
तनूनपात्पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ २ ॥
ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥ ३ ॥
बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन्हरिः । देवेषु देव ईयते ॥ ४ ॥
उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥ [२४]
सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥
उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥
भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
इमं नो यज्ञमा गमन्तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥
त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥ ९ ॥
वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥१०॥
विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्योऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥११॥ [२५] (५१)

॥ ६ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

। अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥
मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥
अभि त्यं मद्यं मदमिन्दविन्द्र इति क्षर । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ३ ॥
अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । पुनाना इन्द्रमाशत ॥ ४ ॥
अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् । वने क्रीळन्तमत्यविम् ॥ ५ ॥ [२६]
यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश । सुतं भराय सं सृज ॥ ६ ॥ (५७)
तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये

देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ॥ ७ ॥
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति काव्यम् ॥ ८ ॥
एवा पुनान इन्द्रयुर्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥ [२७] (६०)

॥ ७ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥
प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥
प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥
परि यत्काव्या कविर्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ [२८]
अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥
स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥
आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥
अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥ [२९] (६९)

॥ ८ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥ [३०]
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥ [३१] (७८)

॥ ९ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥
प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥ २ ॥
स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान्मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः । या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥
ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥ [३२]
अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥ ६ ॥
अवा कल्पेषु नः पुमस्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥
नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥ ८ ॥
पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥ [३३] (८७)

॥ १० ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र स्वानासो रथाइवार्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥
हिन्वानासो रथाइव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ३ ॥
परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । सुता अर्षन्ति धारया ॥ ४ ॥
आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥ [३४]
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥
समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥
नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित्सूर्ये सचा । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥
अभि प्रिया दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥ [३५] (९६)

॥ ११ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥
अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ (९९)

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥ [३६]
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥ [३७] (१०

॥ १२ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥
यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥ [३८]
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥
आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥ [३९] (११

॥ १३ ॥

१-९ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥ [१]
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ॥ ६ ॥
वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ [२] (१२३)

॥ १४ ॥

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १ ॥
गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥
आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥
निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा । अत्रा सं जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥
नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥ [३]
अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या । वग्नुमियर्ति यं विदे ॥ ६ ॥
अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् । पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥ ७ ॥
परि दिव्यानि मर्मृशद्विश्वानि सोम पार्थिवा । वसूनि याह्यस्मयुः ॥ ८ ॥ [४] (१३१)

॥ १५ ॥

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥ २ ॥
एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥
एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ [५] (१३९)

॥ १६ ॥

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ते सोतार ओण्योरसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥
क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥
अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥
प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥ (१४३)

प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥
पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥
दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥
त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥ [६] (१४७)

॥ १७ ॥

१-८ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥
अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥
अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥
आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥
अति त्री सोम रोचना रोहन्न भ्राजसे दिवम् । इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन्यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥
तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥
मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥ [७] (१५५)

॥ १८ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥
तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥
आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मदेषु सर्वधा असि ॥ ४ ॥
य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते । मदेषु सर्वधा असि ॥ ५ ॥
परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति । मदेषु सर्वधा असि ॥ ६ ॥
स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मदेषु सर्वधा असि ॥ ७ ॥ [८] (१६२)

॥ १९ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥
युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥ (१६४)

वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन्योनिमासदत् ॥ ३ ॥
अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि । सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥
कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥ [९] (१६९)

॥ २० ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥
स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥
परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥
अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥
त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥
क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ [१०] (१७६)

॥ २१ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥
प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥
वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥
एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥
आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥
ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥
एत उ त्ये अवीवशन्काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥ [११] (१८३)

॥ २२ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एते सोमास आशवो रथाइव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत ॥ १ ॥
एते वाताइवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥ २ ॥ (१८५)

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानशुर्धियः ॥ ३ ॥
एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षन्तः पथो रजः ॥ ४ ॥
एते पृष्ठानि रोदसोर्विप्रयन्तो व्यानशुः । उतेदमुत्तमं रजः ॥ ५ ॥
तन्तुं तन्वानमुत्तममनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यम् ॥ ६ ॥
त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥ [१२] (१९०)

॥ २३ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥
आ पवमान नो भरार्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥
सोमो अर्षति धर्णसिर्दधान इन्द्रियं रसम् । सुवीरो अभिशस्तिपाः ॥ ५ ॥
इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः । इन्दो वाजं सिषाससि ॥ ६ ॥
अस्य पीत्वा मदानामिन्द्रो वृत्राण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ॥ ७ ॥ [१३] (१९७)

॥ २४ ॥

१-७ असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ १ ॥
अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः । पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ४ ॥
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥
पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः । देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ [१४] (२०४)

॥ २५ ॥

१-६ दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

(२) पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥
पवमान धिया हितो३भि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥ (२०६)

सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
विश्वा रूपाण्याविशन्पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥
अरुषो जनयन्गिरः सोमः पवत आयुषक् । इन्द्रं गच्छन्कविक्रतुः ॥ ५ ॥
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ [१५] (२१०)

॥ २६ ॥

१-६ इध्मवाहो दार्ढच्युतः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥
तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् । इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥
तं वेधां मेधयाह्यन्पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥
तमह्यन्भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥
तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥
तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् । इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥ [१६] (२१६)

॥ २७ ॥

१-६ नृमेध आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥
एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥
एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥
एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥
एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥
एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥ [१७] (२२२)

॥ २८ ॥

१-६ प्रियमेध आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥
एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥
एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ (२२६)

एष सूर्यमरोचयत्पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ [१८] (२२८)

॥ २९ ॥

१-६ नृमेध आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥
विश्वा वसूनि संजयन्पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥
रक्षा सु नो अररुषः स्वनात्समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥
एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥ [१९] (२३४)

॥ ३० ॥

१-६ बिन्दुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥
इन्दुर्हियानः सोतृभिर्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥
आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥
प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥
अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥ [२०] (२४०)

॥ ३१ ॥

१-६ गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासः स्वाध्य१ः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनम् ॥ १ ॥
दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः ॥ २ ॥
तुभ्यं वाता अभिप्रियस्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः । सोम वर्धन्ति ते महः ॥ ३ ॥
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ ४ ॥
तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ५ ॥
स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ६ ॥ [२१] (२४६)

॥ ३२ ॥

१-६ श्यावाश्व आत्रेयः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥
आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ३ ॥
उभे सोमावचाकशन्मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ४ ॥
अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् । अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ ५ ॥
अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥ [२२] (२५२)

॥ ३३ ॥

१-६ त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥
रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥ [२३] (२५८)

॥ ३४ ॥

१-६ त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र सुवानो धारया तनेन्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥
भुवत्त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥
समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥ [२४] (२६४)

॥ ३५ ॥

१-६ प्रभूवसुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥
इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा ॥ २ ॥ (२६६)

त्वया वीरेण वीरवोऽभि ष्याम पृतन्यतः । क्षरा णो अभि वार्यम् ॥ ३ ॥
प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन्वाजसा ऋषिः । व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥
विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥ [२५] (२७०)

॥ ३६ ॥

१-६ प्रभूवसुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥
स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥
स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥
शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥
स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥
आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥ [२६] (२७६)

॥ ३७ ॥

१-६ रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥
स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥
स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥
स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥ [२७] (२८२)

॥ ३८ ॥

१-६ रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति । गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥
एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥
एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥ [२८] (२८८)

॥ ३९ ॥

१-६ बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रवन् ॥ १ ॥
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥
सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥
अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥
आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥ [२९] (२९४)

॥ ४० ॥

१-६ बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥
आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥
नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥ [३०] (३००)

॥ ४१ ॥

१-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ये गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥
सुवितस्य मनामहेऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत्सुतः ॥ ४ ॥
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥ [३१] (३०६)

॥ ४२ ॥

१-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

जनयन्रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः ॥ २ ॥ (३०८)

वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ॥ ३ ॥
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रन्दन्देवाँ अजीजनत् ॥ ४ ॥
अभि विश्वानि वार्याभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ॥ ५ ॥
गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥ ६ ॥ [३२] (३१२)

॥ ४३ ॥

१-६ मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥
तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥
इन्दुरत्यो न वाजसृत्कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥
पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ [३३] ८* (३१८)

॥ इति षष्ठोऽष्टकः ॥ ६ ॥

॥ ४४ ॥

१-६ अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥
मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥
अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥
स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् । बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥
स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥ [१] (३२४)

॥ ४५ ॥

१-६ अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥
स नो अर्षाभि दूत्यं त्वमिन्द्राय तोशसे । देवान्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥
उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
अत्यू पवित्रमक्रमीद्वाजी धुरं न यामनि । इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥
समी सखायो अस्वरन्वने क्रीळन्तमत्यविम् । इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥
तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥ [२] (३३०)

॥ ४६ ॥

१-६ अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

असृग्रन्देववीतयेऽत्यासः कृत्व्याइव । क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥
परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥
आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥
एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥ [३] (३३६)

॥ ४७ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥ १ ॥
कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥
आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥
स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥
सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥ [४] (३४१)

॥ ४८ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् । शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥
अतस्त्वा रयिमभि राजानं सुक्रतो दिवः । सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ ३ ॥
विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् । गोपामृतस्य विर्भरत् ॥ ४ ॥
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे । अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ५ ॥ [५] (३४६)

॥ ४९ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥
तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥
स न ऊर्जे व्यव्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ [६] (३५१)

॥ ५० ॥

१—५ उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥
अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥ [७] (३५६)

॥ ५१ ॥

१-५ उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥
तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
त्वं हि सोम वर्धयन्त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन्त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥
अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥ [८] (३६१)

॥ ५२ ॥

१-५ उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥
तव प्रत्नेभिरध्वभिरव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात्तना ॥ २ ॥
चरुर्न यस्तमीङ्खयेन्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥
नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥
शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥ [९] (३६६)

॥ ५३ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥ [१०] (३७०)

॥ ५४ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥
अयं सूर्यइवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥
परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥ [११] (३७४)

॥ ५५ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥
उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ [१२] (३७८)

॥ ५६ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नत्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
यत्सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥
अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत । मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव । नृन्त्स्तोतॄन्पाह्यंहसः ॥ ४ ॥ [१३] (३८२)

॥ ५७ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥
स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥
स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥ [१४] (३८६)

॥ ५८ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ (३८८)

ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ [१५] (३९०)

॥ ५९ ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित् । प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः । पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥
त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर । कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥
पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥ [१६] (३९४)

॥ ६० ॥

१-४ अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री, ३ पुरउष्णिक् ।

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् । इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥
तं त्वा सहस्रचक्षसमथो सहस्रभर्णसम् । अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥
अति वारान्पवमानो असिष्यदत्कलशाँ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥
इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥ [१७] (३९८)

॥ ६१ ॥

१-३० अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

(३)अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥
परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥
ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥ [१८]
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥ [१९]
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥ (४०९)

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥१२॥
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१३॥
तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥१४॥
अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥१५॥ [२०]
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१६॥
पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥१७॥
पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥१८॥
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥१९॥
जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥ [२१]
सम्मिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥२१॥
स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥२२॥
सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥२३॥
त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥२४॥
अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥२५॥ [२२]
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥२६॥
न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत्पुनानो मखस्यसे ॥२७॥
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥२८॥
अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ॥२९॥
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥३०॥ [२३] (४२८)

॥ ६२ ॥

१-३० जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥
कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥
असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥ [२४]
आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥ (४३४)

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन्योना वनेष्वा ॥ ८ ॥
त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ९ ॥
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१०॥ [२५]
एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥११॥
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥१२॥
एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः ॥१३॥
सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः । इन्द्राय पवते मदः ॥१४॥
गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते । विर्योना वसताविव ॥१५॥ [२६]
पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम् ॥१६॥
तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥१७॥
तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनम् ॥१८॥
आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥१९॥
आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥२०॥ [२७]
आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥२१॥
एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥२२॥
अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥२३॥
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥२४॥
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥ [२८]
त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय ॥२६॥
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ॥२७॥
प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरम् ॥२८॥
इन्द्रायेन्दुं पुनीतनोग्रं दक्षाय साधनम् । ईशानं वीतिराधसम् ॥२९॥
पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३०॥ [२९] (४५८)

॥ ६३ ॥

१-३० निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥
इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः । चमूष्वा नि षीदसि ॥ २ ॥ (४६०)

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् । मधुमाँ अस्तु वायवे ॥ ३ ॥
एते असृग्रमाशवोऽति ह्वरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ॥ ४ ॥
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ ५ ॥ [३०]
सुता अनु स्वमा रजोऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः । इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ॥ ६ ॥
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ८ ॥
उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥
परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥१०॥ [३१]
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ॥११॥
अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । अभि वाजमुत श्रवः ॥१२॥
सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसम् ॥१३॥
एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥१४॥
सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥१५॥ [३२]
प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥१६॥
तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥१७॥
आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर ॥१८॥
परि वाजे न वाजयुमव्यो वारेषु सिञ्चत । इन्द्राय मधुमत्तमम् ॥१९॥
कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः । वृषा कनिक्रदर्षति ॥२०॥ [३३]
वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया । मती विप्राः समस्वरन् ॥२१॥
पवस्व देवायुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा ॥२२॥
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥२३॥
अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् ॥२४॥
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या ॥२५॥ [३४]
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥२६॥
पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि ॥२७॥
पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२८॥
अपघ्नन्सोम रक्षसोऽभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥२९॥
अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इन्दो विश्वानि वार्या ॥३०॥ [३५] (४८८)

॥ ६४ ॥

१-३० कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । गायत्री ।

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥
शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥ [३६]
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥
पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥
केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥
हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान्देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव ॥१०॥ [३७]
ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥११॥
स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥१२॥
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥१३॥
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥१४॥
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥१५॥ [३८]
प्र हिन्वानास इन्दवोऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत ॥१६॥
मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१७॥
परि णो याह्यस्मयुर्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥१८॥
मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत्समुद्र आहितः ॥१९॥
आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुरृतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥२०॥ [३९]
अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥२१॥
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥२२॥
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥२३॥
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥२४॥
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥२५॥ [४०] (५१३)

उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥२६॥
पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥२७॥
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥२८॥
हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥२९॥
ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ॥३०॥[४१]१*(५१८)

॥ ६५ ॥

१-३० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः । गायत्री ।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥
पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥ ४ ॥
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ५ ॥ [१]
यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥ ६ ॥
प्र सोमाय व्यश्ववत्पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥
यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥
तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥१०॥ [२]
तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥११॥
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय ॥१२॥
आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥१३॥
आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा । एन्द्रस्य पीतये विश ॥१४॥
यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः । स पवस्वाभिमातिहा ॥१५॥ [३]
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ॥१६॥
आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥१७॥
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥१८॥
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥१९॥
अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥२०॥ [४] (५३८)

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥२१॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥२२॥
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२३॥
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥२४॥
पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥ [५]
प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥२६॥
तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥२७॥
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२८॥
आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२९॥
आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥३०॥ [६] (५४८)

॥ ६६ ॥

१-३० शतं वैखानसाः । पवमानः सोमः, १९-२१ अग्निः पवमानः । गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।

पवस्व विश्वचर्षणेऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥
ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥
परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥
पवस्व जनयन्निषोऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥
तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥ [७]
तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥
प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥
समु त्वा धीभिरस्वरन्हिन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥
मृजन्ति त्वा समग्रुवोऽव्ये जीरावधि ष्वणि । रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१०॥ [८]
अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥११॥
अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥१२॥
प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥१३॥
अस्य ते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥१४॥
आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश ॥१५॥ [९] (५६३)

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्द ओजिष्ठः । युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ ॥१६॥
य उग्रेभ्यश्चिदोजीयाञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः । भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् ॥१७॥
त्वं सोम सूर एषस्तोकस्य साता तनूनाम् । वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ॥१८॥
अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१९॥
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥२०॥ [१०]
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२१॥
पवमानो अति स्रिधोऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः ॥२२॥
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान्प्रयसे हितः । इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥२३॥
पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥२४॥
पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥२५॥ [११]
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२६॥
पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥२७॥
प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥२८॥
एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥२९॥
यस्य ते द्युम्नवत्पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ॥३०॥ [१२] (५७८)

॥ ६७ ॥

(१-३२) १-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ४-६ कश्यपो मारीचः, ७-९ गोतमो राहूगणः, १०-१२ अत्रिर्भौमः, १३-१५ विश्वामित्रो गाथिनः, १६-१८ जमदग्निर्भार्गवः, १९-२१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २२-३२ पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पवमानः सोमः, १०-१२ पवमानः पूषा वा, २३-२७ पवमानोऽग्निः, २५ पवमानः सविता वा, २६ पवमानाग्निसवितारः, २७ विश्वेदेवा वा, ३१-३२ पवमानाध्येता । गायत्री, १६-१८ निचृद्द्विपदा गायत्री, ३० पुरउष्णिक्, २७, ३१, ३२, अनुष्टुप् ।

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥
त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान्मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया । हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥
इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा । वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥ [१३]
आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् । भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥
पवमानास इन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥ (५८५)

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः । आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् । अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥
अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१०॥ [१४]
अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥११॥
अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि । आ भक्षत्कन्यासु नः ॥१२॥
वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि ॥१३॥
आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥१४॥
परि प्र सोम ते रसोऽसर्जि कलशे सुतः । श्येनो न तक्तो अर्षति ॥१५॥ [१५]
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१६॥
असृग्रन्देववीतये वाजयन्तो रथाइव ॥१७॥
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥१८॥
ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥१९॥
एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥२०॥ [१६]
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जहि ॥२१॥
पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु नः ॥२२॥
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥२३॥
यत्ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥२४॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥२५॥ [१७]
त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥२७॥

प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः ॥२८॥
उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥२९॥
अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ॥३०॥

यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥३१॥
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥३२॥ [१८] (६१०)

॥ ६८ ॥

१-१० वत्सप्रिर्भालन्दनः । पवमानः सोमः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

(४) प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १ ॥
स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रददुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥२॥
वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविददभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥
स मातरा विचरन्वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥
सं दक्षेण मनसा जायते कविरृतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥ [१९]
मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत्परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥ ६ ॥
त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभिर्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥ ८ ॥
अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत्प्रियम् ॥ ९ ॥
एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१०॥ [२०] (६२०)

॥ ६९ ॥

१—१० हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥ (६२२)

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेरृतं यते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ ३ ॥
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ४ ॥
अमृक्तेन रुशता वाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ॥ ५ ॥ [२१]
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥ ६ ॥
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ७ ॥
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥ ८ ॥
एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥
इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१०॥ [२२] (६३०)

॥ ७० ॥

१-१० रेणुर्वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥
स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥
स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥ ४ ॥
स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥ ५ ॥ [२३] (६३५)

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥
रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥
पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥ ९ ॥
हितो न सप्तिरभि वाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व ।
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०॥ [२४] (६४०)

॥ ७१ ॥

१-९ ऋषभो वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्यासदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वोर्ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुवदसुर्यं वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृतमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ३ ॥
परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन्गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥ ४ ॥
समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥ [२५]
श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥
परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥ ८ ॥ (६४८)

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ९ ॥ [२६] (६४९)

॥ ७२ ॥

१-९ हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती ।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥ १ ॥
साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥ २ ॥
अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥
नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुरृत्वियः ।
पुरंधिवान्मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥
नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥ ५ ॥ [२७]
अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥ ८ ॥
आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषोऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥ ९ ॥ [२८] (६५८)

॥ ७३ ॥

१-९ पवित्र आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती ।

स्रक्के द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ १ ॥ (६५९)

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित्प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥
पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४ ॥
पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥ [२९]
प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥
सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥
ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित्तत्समिनक्षन्त आशतात्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥ [३०] (६६७)

॥ ७४ ॥

१-९ कक्षीवान्दैर्घतमसः । पवमानः सोमः । जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥
दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥ २ ॥
महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषापां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥ ३ ॥
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥ ४ ॥
अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥ [३१] (६७२)

७५

सहस्रधारेऽव ता असश्चतस्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥ ६ ॥
श्वेतं रूपं कृणुते यत्सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद्दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥ ७ ॥
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत्ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ८ ॥
अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥ ९ ॥ [३२] (६७६)

॥ ७५ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती ।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ २ ॥
अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥ ३ ॥
अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन्रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ॥ ४ ॥
परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥ ५ ॥ [३३] २* (६८१)

॥ ७६ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती ।

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥ १ ॥
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥ (६८३)

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥ ३ ॥
विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥
वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥ ५ ॥ [१] (६८६)

॥ ७७ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती ।

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ॥ १ ॥
स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत्कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥ २ ॥
ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥
अयं नो विद्वान्वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ [२] (६९१)

॥ ७८ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती ।

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥ १ ॥
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभिर्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥ २ ॥
समुद्रिया अप्सरसो मनीषिणमासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥ ३ ॥ (६९४)

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥ ४ ॥
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन्द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥ ५ ॥ [३] (६९६)

॥ ७९ ॥

१-५ कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती ।

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन्न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥ १ ॥
प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित्परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥ २ ॥
उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन्न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥ ३ ॥
दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥ ५ ॥ [४] (७०१)

॥ ८० ॥

१-५ वसुर्भारद्वाजः । पवमानः सोमः । जगती ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान्हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥ १ ॥
यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥ २ ॥
एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
प्रत्यङ्स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन्हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥ ३ ॥
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान्देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभिर्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन्दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥ ५ ॥ [५] (७०६)

॥ ८१ ॥

१-५ वसुर्भारद्वाजः । पवमानः सोमः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥ १ ॥
अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥
आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत्परा सिचः ॥ ३ ॥
आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ॥ ४ ॥
उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्वन्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ॥ ५ ॥[६] (७११)

॥ ८२ ॥

१-५ वसुर्भारद्वाजः । पवमानः सोमः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् ॥ १ ॥
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन्दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ २ ॥
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥ ३ ॥
जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥ ४ ॥
यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥ ५ ॥ [७] (७१६)

॥ ८३ ॥

१-५ पवित्र आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥ (७१७)

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥ २ ॥
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥
गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ ४ ॥
हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ ५ ॥ [८] (७२१)

॥ ८४ ॥

१-५ प्रजापतिर्वाच्यः । पवमानः सोमः । जगती ।

पवस्व देवमादनो विचर्षणिरप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमदुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥ १ ॥
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥
आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन्दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
एष स्य सोमः पवते सहस्रजिद्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभिरेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥ ४ ॥
अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥ [९] (७२६)

॥ ८५ ॥

१-१२ वेनो भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ १ ॥
अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि ॥ २ ॥ (७२८)

अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ॥ ३ ॥
सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन्क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥ ४ ॥
कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्यव्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥ ५ ॥
स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥ ६ ॥ [१०]
अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥ ७ ॥
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥ ८ ॥
अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥१०॥
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥११॥
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥१२॥ [११] (७३८)

॥ ८६ ॥

(१-४८) १-१० अकृष्टा माषाः, ११-२० सिकता निवावरी, २१-३० पृश्नयोऽजाः, ३१-४० (अकृष्टामाषादयः) त्रयः, ४१-४५ अत्रिर्भौमः, ४६-४८ गृत्समदः शौनकः । पवमानः सोमः । जगती ।

(५) प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥ १ ॥
प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥ (७४०)

अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित्कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥ ३ ॥
प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरृषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ ४ ॥
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ५ ॥ [१२]
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥
यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥
राजा समुद्रं नद्यो३ वि गाहतेऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात्सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥
दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद्द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत्सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१०॥ [१३]
अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥१२॥
अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितोऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥
द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत्प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥१४॥
सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन्यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥१५॥ [१४]
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥१६॥ (७५४)

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥१७॥
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥१८॥
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशदिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१९॥
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरदिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥२०॥ [१५]
अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥२१॥
पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रदन्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि ॥२२॥
अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥२३॥
त्वां सोम पवमानं स्वाध्योऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद्दिवस्परीन्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् ॥२४॥
अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥२५॥ [१६]
इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कविरत्यो न क्रीळन्परि वारमर्षति ॥२६॥
असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२७॥
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतसस्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥२८॥
त्वं समुद्रो असि विश्ववित्कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥२९॥
त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥ [१७] (७६८)

प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥३१॥
स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥३२॥
राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥३३॥
पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥३४॥
इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥३५॥ [१८]
सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ॥३६॥
ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३७॥
त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥३८॥
गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥३९॥
उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥४०॥ [१९]
स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥४१॥
सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥४२॥
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥४३॥
विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥४४॥ (७८२)

अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥४५॥ [२०]
असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥४६॥
प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥४७॥
पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्योऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥४८॥ [२१] (७८६)

॥ ८७ ॥

१-९ उशना काव्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥
ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४ ॥
एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥ ५ ॥ [२२]
परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥
एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ७ ॥
एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ८ ॥
उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ९ ॥ [२३] (७९५)

॥ ८८ ॥

१-८ उशना काव्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥
स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥
वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शम्भविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन्पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥
इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रिर्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥
अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दिरियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥
एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥ ६ ॥
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥ [२४] (८०३)

॥ ८९ ॥

१-७ उशना काव्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान्दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्यस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥
राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥
सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥ (८०६)

मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥
चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत्त उत्सो गृणते नियुत्वान्मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥ [२५] (८१०)

॥ ९० ॥

१-६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ १ ॥
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामाङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥ ३ ॥
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥
मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ५ ॥
एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥ [२६]३*(८१६)

॥ ९१ ॥

१-६ कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्येऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥
वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥ (८१८)

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ३ ॥
रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात्तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥
स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्तस्ताँस्ते अश्याम पुरुकृत्पुरुक्षो ॥ ५ ॥
एवा पुनानो अपः स्व१र्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ६ ॥ [१] (८२२)

॥ ९२ ॥

१-६ कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः ॥ १ ॥
अच्छा नृचक्षा असरत्पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन्होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥ २ ॥
प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्तानु जनान्यतते पञ्च धीरः ॥ ३ ॥
तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ ४ ॥
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥ ५ ॥
परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत्सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥ ६ ॥ [२] (८२८)

॥ ९३ ॥

१-५ नोधा गौतमः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥ (८३०)

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनाम् ॥ ४ ॥
नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ [३] (८३३)

॥ ९४ ॥

१-५ कण्वो घोरः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ १ ॥
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ २ ॥
परि यत्कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन्दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ॥ ३ ॥
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ॥ ४ ॥
इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५ ॥ [४] (८३८)

॥ ९५ ॥

१-५ प्रस्कण्वः काण्वः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ १ ॥
हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥ (८४१)

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥
इष्यन्वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम् ।
इन्द्रश्च यत्क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५ ॥ [५] (८४३)

॥ ९६ ॥

१-२४ प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥
समस्य हरिं हरयो मृजन्त्यश्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ ॥ २ ॥
स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन्द्यामुतेमामुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥
अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखायस्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥ [६]
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥
प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७ ॥
स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यं१शोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥
परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥ ९ ॥
स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥१०॥ [७]
त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥११॥ (८५४)

यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥
पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१३॥
वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः॥१४॥
एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥१५॥ [८]
स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥१६॥
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१७॥
ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥१८॥
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१९॥
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वोरा विवेश ॥२०॥ [९]
पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत्परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वोरा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु ॥२१॥
प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥२२॥
अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून्प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन्वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥२३॥
आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्वचिक्रदत्कलशे देवयूनाम् ॥२४॥ [१०] (८६७)

॥ ९७ ॥

(१-५८) १-३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ४-६ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः, ७-९ वृषगणो वासिष्ठः, १०-१२ मन्युर्वासिष्ठः, १३-१५ उपमन्युर्वासिष्ठः, १६-१८ व्याघ्रपाद्वासिष्ठः, १९-२१ शक्तिर्वासिष्ठः, २२-२४ कर्णश्रुद्वासिष्ठः, २५-२७ मृळीको वासिष्ठः, २८-३० वसुक्रो वासिष्ठः, ३१-४४ पराशरः शाक्त्यः, ४५-५८ कुत्स आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

(६) अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥
भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥
समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥
प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥ ४ ॥
इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥ [११]
स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥
प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥
स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥१०॥ [१२]
अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥११॥ (८७८)

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥१२॥
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥१३॥
रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥१४॥
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥१५॥ [१३]
जुष्टी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥१६॥
वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन्बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥१७॥
ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥१८॥
जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये ॥१९॥
अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ॥२०॥ [१४]
एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥२१॥
तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥२२॥
प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥२३॥
पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ॥२४॥
अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः ॥२५॥ [१५] (८९२)

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥२६॥
एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥२७॥
अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥२८॥
शतं धारा देवजाता असृग्रन्त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥२९॥
दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ॥३०॥ [१६]
प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥३१॥
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ॥३२॥
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन्धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ॥३३॥
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निरृतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥३४॥
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥३५॥ [१७]
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥३६॥
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥३७॥
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥३८॥
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥३९॥ (९०६)

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥४०॥ [१८]
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥४१॥
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥४२॥
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्तापामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन्पयः पयसाभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥४३॥
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥४४॥
सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥४५॥ [१९]
एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥४६॥
एष प्रत्नेन वयसा पुनानस्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥४७॥
नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥४८॥
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥४९॥
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥५०॥ [२०]
अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥५१॥
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित्तकवे नरं दात् ॥५२॥
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥५३॥ (९२०)

महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥५४॥
सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दातासि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ॥५५॥ [२१]
एष विश्ववित्पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन्विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ॥५६॥
इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥५७॥
त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५८॥ [२२] (९२५)

॥ ९८ ॥

१-१२ अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । पवमानः सोमः । अनुष्टुप्, ११ बृहती ।

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥
परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥
परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ २ ॥
स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥
वयं ते अस्य वृत्रहन्वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥ ५ ॥
द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥ [२३]
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥
अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद्दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥ (९३३)

स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥१०॥
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥११॥
तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥१२॥ [२४] (९३७)

॥ ९९ ॥

१-८ रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः । अनुष्टुप्, १ बृहती ।

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥ १ ॥
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥
तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥ [२५]
स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत्पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥
स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥ [२६] (९४५)

॥ १०० ॥

१-९ रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः । अनुष्टुप् ।

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ १ ॥
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥
त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥
परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥
क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥ [२७]
पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥
त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥
पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ९ ॥ [२८] ४* (९५४)

॥ १०१ ॥

(१-१६) १-३ अन्धीगुः श्यावाश्विः, ४-६ ययातिर्नाहुषः, ७-९ नहुषो मानवः, १०-१२ मनुः सांवरणः, १३-१६ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । पवमानः सोमः । अनुष्टुप्, २-३ गायत्री ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ॥ ३ ॥ (९५७)

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥ [१]

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥

सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१०॥ [२]

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥११॥

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥१२॥

प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥१३॥

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥१४॥

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥१५॥

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥१६॥ [३] (९७०)

॥ १०२ ॥

१-८ त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥
उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥
जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥
अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥ [४]
यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥ [५] (९७८)

॥ १०३ ॥

१-६ द्वित आप्त्यः । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥
परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥
परि कोशं मधुश्चुतमव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥
परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥
परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥
परि सप्तिर्न वाजयुर्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥ [६] (९८४)

॥ १०४ ॥

१-६ पर्वतनारदौ काण्वौ, शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यप्यौ वा । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

(७) सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥
स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥
सनेमि कृध्यस्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥ [७] (९९०)

॥ १०५ ॥

१-६ पर्वतनारदौ काण्वौ । पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥
स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥
सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् । साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥ [८] (९९६)

॥ १०६ ॥

(१-१४) १-३, १०-१४ अग्निश्चाक्षुषः, ४-६ चक्षुर्मानवः, ७-९ मनुराप्सवः ।
पवमानः सोमः । उष्णिक् ।

। श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः । वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् । द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव । सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥ [९]
इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥१०॥ [१०]
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो वारं वि धावति । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥११॥
धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥१२॥
असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः । अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥१३॥
पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या । रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥१४॥ [११] (१०१०)
अया पवस्व देवयुर्मधोर्धारा असृक्षत ।

॥ १०७ ॥

१-२६ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) । पवमानः सोमः, । प्रगाथः= (१, ४, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १७ बृहती; २, ५, ७, ११, १३, १५, १८ सतोबृहती,) ३, १६ द्विपदा विराट्, १९-२६ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥
परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥ [१२]
पुनानः सोम जागृविरव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥
सोमो मीढ्वान्पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥
सोम उ षुवाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ८ ॥
अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥
आ सोम सुवानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥१०॥ [१३]
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥११॥
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१२॥ (१०२९)

आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥१३॥
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥१४॥
तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥१५॥ [१४]
नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥१६॥
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१७॥
पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन्वनेष्वव्यत ॥१८॥
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि ॥१९॥
उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२०॥ [१५]
मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥२१॥
मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२२॥
पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥२३॥
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥२४॥
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥२५॥
अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥२६॥ [१६] (१०३६)

॥ १०८ ॥

(१-१६) १-२ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ३, १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठः; ४-५ ऊरुराङ्गिरसः, ६-७ ऋजिश्वा भारद्वाजः, ८-९ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १०-११ कृतयशा आङ्गिरसः, १२-१३ ऋणंचयो राजर्षिः। पवमानः सोमः। काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), १३ यवमध्या गायत्री।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥
त्वं ह्य१ङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयः ॥ ३ ॥
येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ॥ ४ ॥
एष स्य धारया सुतोऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥ [१७]
य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥
सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥
अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥१०॥ [१८]
एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥११॥
वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥१२॥
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१३॥
यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥१४॥
इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥१५॥
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥१६॥ [१९] (१०५२)

॥ १०९ ॥

१-२२ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः। पवमानः सोमः। द्विपदा विराट्।

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥१॥ २ ॥
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥२॥ ४ ॥
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥
दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥३॥ ६ ॥
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥
नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥४॥ ८ ॥
इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥५॥१०॥ [२०]
तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥११॥
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥६॥१२॥
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥१३॥
बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥७॥१४॥
पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥१५॥
प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥८॥१६॥
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥१७॥
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥९॥१८॥
असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥१९॥
अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥१०॥२०॥
देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥२१॥
इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥११॥२२॥ [२१] (१०७४)

॥ ११० ॥

१-१२ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। पवमानः सोमः। १-३ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्, ४-९ ऊर्ध्वबृहती, १०-१२ विराट्।

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ३ ॥
अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥
आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥ [२२]
त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥
दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥
अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥
सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन्पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥१०॥
एष पुनानो मधुमाँ ऋतावेन्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥११॥
स पवस्व सहमानः पृतन्यून्त्सेधन्रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् ॥१२॥ [२३] (१०८६)

॥ १११ ॥

१-३ अनानतः पारुच्छेपिः । पवमानः सोमः । अत्यष्टिः ।

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिरृक्वभिः ॥ १ ॥
त्वं त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥
पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥ [२४](१०८९)

॥ ११२ ॥

१-४ शिशुराङ्गिरसः । पवमानः सामः । पङ्क्तिः ।

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥ [२५](१०९३)

॥ ११३ ॥

१-११ कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । पङ्क्तिः ।

शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात्सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥ (१०९६)

ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥
सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥ [२६]
यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ६ ॥
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥
यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीरापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१०॥
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥ [२७](११०४)

॥ ११४ ॥

१-४ कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । पङ्क्तिः ।

य इन्दोः पवमानस्यानु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन्गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥३ ॥
यत्ते राजञ्छृतं हविस्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारीन्मो च नः किं चनाममदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥ [२८] (११०८)

॥ इति नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

मंत्रसंख्या

अष्टममण्डलस्यान्तपर्यन्तं	७६९०
नवममण्डलस्य	११०८
सर्वयोगः	८७९८

अथ दशमं मण्डलम् ।

॥ १ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

(१) अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १ ॥
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ २ ॥
विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ ३ ॥
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥ ४ ॥
होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥ ५ ॥
स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥ ६ ॥
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥ ७ ॥ [२९] (७)

॥ २ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँरृतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १ ॥
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ २ ॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥ ३ ॥ (१०)

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ४ ॥
यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥ ५ ॥
विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥ ६ ॥
यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥ ७ ॥ [३०] (१४)

॥ ३ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥ १ ॥
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥
अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥ ४ ॥
स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥ ५ ॥
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥ ६ ॥
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥ [३१] (२१)

॥ ४ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥ १ ॥ (२२)

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥ २ ॥
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥ ३ ॥
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥ ४ ॥
कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥ ५ ॥
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥ ६ ॥
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥ ७ ॥ [३२] (२८)

॥ ५ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥ १ ॥
समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥ २ ॥
ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥ ३ ॥
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ४ ॥
सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥ ५ ॥
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ६ ॥
असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥ ७ ॥ [३३] ५* (३५)

॥ ६ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिरृषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ १ ॥
यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिरृतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥ २ ॥
ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥ ३ ॥
शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥ ४ ॥
तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥ ५ ॥
सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥ ६ ॥
अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥ ७ ॥ [१] (४२)

॥ ७ ॥

१-७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥ १ ॥
इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥ २ ॥
अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥ ३ ॥
सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥ ४ ॥ (४६)

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥ ५ ॥
स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥ ६ ॥
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥ ७ ॥ [२] (४९)

॥ ८ ॥

१-९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । अग्निः, ७-९ इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ १ ॥
मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥ २ ॥
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥ ३ ॥
उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायै ॥ ४ ॥
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥ ५ ॥ [३]
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ ६ ॥
अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥ ७ ॥
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥ ८ ॥
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥ ९ ॥ [४] (५८)

॥ ९ ॥

१-९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा । आपः । गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठागायत्री, ८-९ अनुष्टुप् ।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ४ ॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥ ५ ॥
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥ ६ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ७ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ८ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ९ ॥ [५] (६७)

॥ १० ॥

१-१४ नवमीवर्ज्यानामयुजां षष्ठ्याश्च यमी वैवस्वती ऋषिका । यमः । षष्ठीवर्ज्यानां युजां नवम्याश्च यमो वैवस्वत ऋषिः । यमी । त्रिष्टुप् ।

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥ ३ ॥
न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ [६] (७२)

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ६ ॥
यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥ ९ ॥
आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥ [७]
किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११॥
न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥
अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४॥ [८] (८१)

॥ ११ ॥

१-९ हविर्धान आङ्गिः । अग्निः । जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १ ॥
रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ २ ॥
सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥ ३ ॥ (८४)

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥ ४ ॥
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं१ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥ ५ ॥ [९]
उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥ ६ ॥
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥ ७ ॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥ ८ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ ९ ॥ [१०] (९०)

॥ १२ ॥

१-९ हविर्धान आङ्गिः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥ १ ॥
देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥ २ ॥
स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥ ३ ॥
अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥ ४ ॥
किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ५ ॥ [११]
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥ (९६)

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥ ७ ॥
यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ८ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ ९ ॥ [१२] (९९)

॥ १३ ॥

१-५ हविर्धान आङ्गिः, विवस्वानादित्यो वा । हविर्धानः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ १ ॥
यमेइव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥ २ ॥
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥ ३ ॥
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं१ प्रारिरेचीत् ॥ ४ ॥
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥ ५ ॥ [१३] (१०४)

॥ १४ ॥

१-१६ यमो वैवस्वतः । यमः, ६ अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः, ७-९ लिङ्गोक्तदेवताः, पितरो वा, १०-१२ श्वानौ । त्रिष्टुप्, १३,१४,१६ अनुष्टुप्, १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥ २ ॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥ ३ ॥ (१०७)

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥ ४ ॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ ५ ॥ [१४]
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ६ ॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ ७ ॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ८ ॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥ ९ ॥
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥ [१५]
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥
यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥ [१६] (१२०)

॥१५॥

१-१४ शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ २ ॥
आहं पितॄन्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ३ ॥
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ४ ॥
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५ ॥ [१७]
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६ ॥
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ७ ॥
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ ९ ॥
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥ [१८]
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥
त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२॥
ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥ (१३३)

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥ [१९] (१३४)

॥१६॥

१-१४ दमनो यामायनः । अग्निः । त्रिष्टुप्, ११-१४ अनुष्टुप् ।

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥ १ ॥
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥ २ ॥
सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ३ ॥
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहेनं सुकृतामु लोकम् ॥ ४ ॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥ ५ ॥ [२०]
यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ ६ ॥
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाति ॥ ७ ॥
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥ ८ ॥
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ९ ॥
यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०॥ [२१]
यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥
उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२॥ (१४६)

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्वग्निं हर्षय ॥१४॥ [२२] (१४८)

॥१७॥

१-१४ देवश्रवा यामायनः । १-२ सरण्यूः, ३-६ पूषा, ७-९ सरस्वती, १०-१४ आपः, ११-१३ सोमो वा । त्रिष्टुप्, १३-१४ अनुष्टुप्, १३ पुरस्ताद्बृहती वा ।

(२) त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ २ ॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥ ३ ॥
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ४ ॥
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥ ५ ॥ [२३]
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ७ ॥
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥ ८ ॥
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥ ९ ॥
आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥ [२४] (१५८)

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥
यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२॥
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥
पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४॥ [२५] (१६२)

॥१८॥

१-१४ संकुसुको यामायनः । १-४ मृत्युः, ५ धाता, ६ त्वष्टा, ७-१४ पितृमेधाः, १४ प्रजापतिर्वा । त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपङ्क्तिः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥ १ ॥
मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ २ ॥
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ३ ॥
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ ४ ॥
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ ५ ॥ [२६]
आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥ ६ ॥
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ७ ॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥ ८ ॥ (१७०)

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥ ९ ॥
उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥१०॥ [२७]
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥
उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥
प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥ [२८]६* (१७६)

॥ १९ ॥

१-८ मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, च्यवनो भार्गवो वा । आपः, गावो वा,
१ उत्तरार्धर्चः अग्नीषोमौ । अनुष्टुप्, ६ गायत्री ।

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥ १ ॥
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥ २ ॥
पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥ ३ ॥
यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥ ४ ॥
य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥ ५ ॥
आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ॥ ६ ॥ (१८२)

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥ ७ ॥
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥ ८ ॥ [१] (१८४)

॥ २० ॥

१-१० विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । अग्निः । गायत्री, १ एकपदा विराट्
(एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), २ अनुष्टुप्, ९ विराट्, १० त्रिष्टुप् ।

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ १ ॥
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्वरेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥ २ ॥
यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ॥ ३ ॥
अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् । कविरभ्रं दीद्यानः ॥ ४ ॥
जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे । मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥ ५ ॥
स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥ ६ ॥ [२]
यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥ ७ ॥
नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥ ८ ॥
कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥ ९ ॥
एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०॥ [३] (१९४)

॥ २१ ॥

१-८ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । अग्निः । आस्तारपङ्क्तिः ।

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥ १ ॥
त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥ २ ॥
त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३॥ (१९७)

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥ ४ ॥
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥ ५ ॥ [४]
त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥ ६ ॥
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥ ७ ॥
अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥ ८ ॥ [५] (२०२)

॥ २२ ॥

१-१५ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्रः । पुरस्ताद्बृहती; ५,७,९ अनुष्टुप्, १५ त्रिष्टुप् ।

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥ १ ॥
इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥ २ ॥
महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥ ३ ॥
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥ ४ ॥
त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥ ५ ॥ [६]
अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥ ६ ॥
आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥ ७ ॥ (२०९)

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥ ८ ॥
त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥ ९ ॥
त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥ [७]
मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥ [८] (२१७)

॥ २३ ॥

१-७ विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्रः । जगती, १, ७ त्रिष्टुप्, ५ अभिसारिणी ।

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥ १ ॥
हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥ २ ॥
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ३ ॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ४ ॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ५ ॥ (२२२)

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥ ६ ॥
माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥ ७ ॥ [९] (२२४)

॥ २४ ॥

१-६ विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्रः, ४-६ अश्विनौ । आस्तारपङ्क्तिः, ४-६ अनुष्टुप् ।

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥ १ ॥
त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥ २ ॥
यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ३ ॥
युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥ ४ ॥
विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्याविब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥ ५ ॥
मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥ [१०] (२३०)

॥ २५ ॥

१-११ विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । सोमः । आस्तारपङ्क्तिः ।

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥ १ ॥
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥ २ ॥
उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥ ३ ॥ (२३३)

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँइव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँइव विवक्षसे ॥ ४ ॥
तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥ ५ ॥ [११]
पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा संपश्यन्भुवना विवक्षसे ॥ ६ ॥
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥ ७ ॥
त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥ ८ ॥
त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥ ९ ॥
अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥ १० ॥
अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥ ११ ॥ [१२] (२४१)

॥ २६ ॥

१-९ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । पूषा । अनुष्टुप्, १, ४ उष्णिक् ।

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥ १ ॥
यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥ २ ॥
स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥ ३ ॥
मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥ ४ ॥
प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥ [१३] (२४६)

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥ ६ ॥
इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥ ७ ॥
आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥ ८ ॥
अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥ ९ ॥ [१४] (२५०)

॥ २७ ॥

१-२४ वसुक्र ऐन्द्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥ १ ॥
यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥ २ ॥
नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥ ४ ॥
न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥ ५ ॥ [१५]
दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥ ६ ॥
अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड्दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥ ७ ॥
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥ ८ ॥ (२५८)

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥ ९ ॥
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥ १० ॥ [१६]
यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥ ११ ॥
कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥ १२ ॥
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥ १३ ॥
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥ १४ ॥
सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥ १५ ॥ [१७]
दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १६ ॥
पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥ १७ ॥
वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥ १८ ॥
अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥ १९ ॥
एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥ २० ॥ [१८]
अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥ २१ ॥
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥ २२ ॥ (२७२)

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥
सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥ [१९] (२७४)

॥ २८ ॥

(१-१२) १ इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी ऋषिका, २,६,८,१०,१२ इन्द्र ऋषिः, ३,४,५,७,९,११ वसुक्र ऋषिः ।
२,६,८,१०,१२ वसुक्रो देवता, १,३,४,५,७,९,११ इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् ।

विश्वो ह्य१न्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥ १ ॥
स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥ २ ॥
अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥ ३ ॥
इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥ ४ ॥
कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥ ५ ॥
एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥ ६ ॥ [२०]
एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥ ७ ॥
देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं१ दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥ ८ ॥
शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ ९ ॥
सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥ (२८४)

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥
एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्व१ः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥[२१] (२८६)

॥ २९ ॥

१-८ वसुक्र ऐन्द्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥ २ ॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥ [२२]
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥ [२३] (२९४)

॥ ३० ॥

१-१५ कवष ऐलूषः । आपः, अपांनपात् वा । त्रिष्टुप् ।

(३) प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥ १ ॥ (२९५)

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥ २ ॥
अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददद्दूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥ ३ ॥
यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥ ४ ॥
याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥ ५ ॥ [२४]
एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ६ ॥
यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥ ७ ॥
प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥ ८ ॥
तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥ ९ ॥
आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥ [२५]
हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥
प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥
एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥
आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥ [२६] (३०९)

॥ ३१ ॥

१-११ कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥ १ ॥
परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥ २ ॥
अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥ ३ ॥
नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥ ४ ॥
इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥ ५ ॥ [२७]
अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥ ६ ॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥ ७ ॥
नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥ ८ ॥
स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ९ ॥
स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥१०॥
उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११॥ [२८] (३२०)

॥ ३२ ॥

१-९ कवष ऐलूषः । इन्द्रः । जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥ १ ॥ (३२१)

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥ २ ॥
तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥ ३ ॥
तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥ ४ ॥
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥ ५ ॥ [२९]
निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥ ६ ॥
अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥ ७ ॥
अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥ ८ ॥
एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥ ९ ॥ [३०]७* (३२९)

॥ ३३ ॥

१-९ कवष ऐलूषः । १ विश्वे देवाः, २-३ इन्द्रः, ४-५ कुरुश्रवणस्त्रासदस्यवः, ६-९ उपमश्रवाः ।
१ त्रिष्टुप्, प्रगाथः= (२ बृहती, ३ सतोबृहती), ४-९ गायत्री ।

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥ १ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥ २ ॥
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥ ३ ॥
कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् । मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥ ४ ॥
यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया । स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥ ५ ॥ [१] (३३४)

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः । क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥ ६ ॥
अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि । पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥ ७ ॥
यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् । जीवेदिन्मघवा मम ॥ ८ ॥
न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति । तथा युजा वि वावृते ॥ ९ ॥ [२] (३३८)

॥ ३४ ॥

१-१४ कवष ऐलूषः, अक्षो मौजवान् वा । १, ७, ९, १२ अक्षाः; १३ कृषिः; २-६, ८, १०, ११,
१४ अक्षनिन्दा । त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥ १ ॥
न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥ २ ॥
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥ ३ ॥
अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥ ४ ॥
यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥ ५ ॥ [३]
सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥ ६ ॥
अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥ ७ ॥
त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥ ८ ॥
नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥ ९ ॥
जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥ [४] (३४८)

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥
यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥
अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥
मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥ [५] (३५२)

॥ ३५ ॥

१-१४ लुशो धानाकः । विश्वे देवाः । जगती, १३-१४ त्रिष्टुप् ।

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥ १ ॥
दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥ २ ॥
द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ३ ॥
इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ४ ॥
प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ५ ॥ [६]
अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ६ ॥
श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ७ ॥
पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ८ ॥ (३६०)

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥ ९ ॥
आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥ [७]
त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥११॥
तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४॥ [८] (३६४)

॥ ३६ ॥

१-१४ लुशो धानाकः । विश्वे देवाः । जगती, १३-१४ त्रिष्टुप् ।

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥
द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निरृतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ २ ॥
विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ३ ॥
ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निरृतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिरृक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ५ ॥ [९]
दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ६ ॥ (३७२)

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ७ ॥
अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ८ ॥
सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ ९ ॥
ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥ [१०]
महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥
महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥
ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥
सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥ [११] (३८०)

॥ ३७ ॥

१-१२ अभितपाः सौर्यः । सूर्यः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ १ ॥
सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ २ ॥
न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥ ३ ॥
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥
विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥ ५ ॥ (३८५)

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥ ६ ॥ [१२]
विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥ ७ ॥
महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥ ८ ॥
यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥ ९ ॥
शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०॥
अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११॥
यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥१२॥ [१३] (३९२)

॥ ३८ ॥

१-५ इन्द्रो मुष्कवान् । इन्द्रः । जगती ।

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥ १ ॥
स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥ २ ॥
यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम संगमे ॥ ३ ॥
यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥ ४ ॥
स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥ ५ ॥ [१४] (३९७)

॥ ३९ ॥

१-१४ घोषा काक्षीवती । अश्विनौ । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥ १ ॥
चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥ २ ॥
अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥ ३ ॥
युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥ ४ ॥
पुराणा वां वीर्या प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥ ५ ॥ [१५]
इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥ ६ ॥
युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥ ७ ॥
युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥ ८ ॥
युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥ ९ ॥
युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥ [१६]
न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥
आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥
ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिताममुञ्चतम् ॥१३॥ (४१०)

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥ [१७] (४११)

॥ ४० ॥

१-१४ घोषा काक्षीवती । अश्विनौ । जगती ।

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥ १ ॥
कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥ २ ॥
प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥ ३ ॥
युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥ ४ ॥
युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥ ५ ॥ [१८]
युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥ ६ ॥
युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥ ७ ॥
युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥ ८ ॥
जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥ ९ ॥
जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥ [१९]
न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥१२॥ (४२३)

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥
क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥ [२०] (४२५)

॥ ४१ ॥

१-३ सुहस्त्यो घौषेयः । अश्विनौ । जगती ।

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥ १ ॥
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥ २ ॥
अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥ ३ ॥ [२१] (४२८)

॥ ४२ ॥

१-११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥
किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥ [२२]
यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६ ॥ (४३४)

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥
उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥ [२३] (४३९)

॥ ४३ ॥

१-११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

(४) अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥ ५ ॥ [२४]
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥
आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥ (४४६)

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥ [२५] (४५०)

॥ ४४ ॥

१-११ कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती, १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥ [२६]
पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरीँरज्राग्रेजमानाँ अधारयद्द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥ (४५८)

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥ [२७] (४६१)

॥ ४५ ॥

१-१२ वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १ ॥
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ २ ॥
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥ ३ ॥
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ४ ॥
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥ ५ ॥
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ ६ ॥ [२८]
उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ ७ ॥
दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥ ८ ॥
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ ९ ॥ (४७०)

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११॥
अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥[२९]८*(४७३)

॥ इति सप्तमोऽष्टकः ॥

॥ ४६ ॥

१-१० वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ १ ॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥ २ ॥
इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥ ३ ॥
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥ ४ ॥
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥ ५ ॥ [१]
नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥ ६ ॥
अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥ ७ ॥
प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥ ८ ॥
द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥ ९ ॥
यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१०॥ [२] (४८३)

॥ ४७ ॥

१-८ सप्तगुरांगिरसः । इन्द्रो वैकुण्ठः । त्रिष्टुप् ।

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १ ॥
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ २ ॥
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ३ ॥
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ४ ॥
अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ५ ॥ [३]
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ६ ॥
वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ७ ॥
यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ८ ॥ [४] (४९१)

॥ ४८ ॥

१-११ इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः । जगती; ७, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥ १ ॥
अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन्दधीचे मातरिश्वने ॥ २ ॥
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥ ३ ॥ (४९४)

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४॥
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥ ५ ॥ [५]
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥ ६ ॥
अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान्प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥ ७ ॥
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥ ८ ॥
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥ ९ ॥
प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन्द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥११॥ [६] (५०२)

॥ ४९ ॥

१-११ इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः । जगती; २, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥ १ ॥
मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥ २ ॥
अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥ ३ ॥
अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥ ४ ॥ (५०६)

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥ ५ ॥ [७]
अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥ ६ ॥
अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥ ७ ॥
अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्यन्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥ ८ ॥
अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥ ९ ॥
अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०॥
एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन्प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥ [८] (५१७)

॥ ५० ॥

१-७ इन्द्रो वैकुण्ठः । इन्द्रः । जगती; ३, ४ अभिसारिणी; ५ त्रिष्टुप् ।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥ १ ॥
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥ २ ॥
के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्यमियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥ ३ ॥
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥ ४ ॥
अवा नु कं ज्यायान्यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥ ५ ॥ (५१८)

एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥ ६ ॥
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥ ७ ॥ [९] (५२०)

॥ ५१ ॥

(१-९) २, ४, ६, ८ अग्निः सौचीकः; १, ३, ५, ७, ९ देवाः । २, ४, ६, ८ देवाः,
१, ३, ५, ७, ९ अग्निः । त्रिष्टुप् ।

महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ॥ १ ॥
को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥ २ ॥
ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥ ३ ॥
होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥ ४ ॥
एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥ ५ ॥ [१०]
अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥ ६ ॥
कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥ ७ ॥
प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥ ८ ॥
तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥ ९ ॥ [११] (५२९)

॥ ५२ ॥

१-६ अग्निः सौचीकः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥ १ ॥
अहं होता न्यसीदं यजीयान्विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥ २ ॥
अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ३ ॥
मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥ ४ ॥
आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥ ५ ॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ६ ॥ [१२] (५३५)

॥ ५३ ॥

१-११ देवाः, ४-५ अग्निः सौचीकः । अग्निः, ४-५ देवाः । ६-७, ९-११ जगती, १-५,८ त्रिष्टुप् ।

यमैच्छाम मनसा सोऽयमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥ १ ॥
अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥ २ ॥
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥ ३ ॥
तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥ ४ ॥
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ ५ ॥ [१३] (५४०)

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥
अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥ ७ ॥
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥ ८ ॥
त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शंतमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥ ९ ॥
सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥ १० ॥
गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥ ११ ॥ [१४] (५४६)

॥ ५४ ॥

१-६ बृहदुक्थो वामदेव्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ १ ॥
यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥ २ ॥
क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥ ३ ॥
चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥ ४ ॥
त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥ ५ ॥
यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥ ६ ॥ [१५] (५५२)

॥ ५५ ॥

१-८ बृहदुक्थो वामदेव्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥ १ ॥
महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥ २ ॥
आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥ ३ ॥
यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ५ ॥ [१६]
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ ६ ॥
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ७ ॥
युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥ ८ ॥ [१७] (५६०)

॥ ५६ ॥

१-७ बृहदुक्थो वामदेव्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ४-६ जगती ।

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ १ ॥
तनूष्टे वाजिन्तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥ २ ॥
वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्सुवितोऽनु पत्म ॥ ३ ॥
महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥ ४ ॥ (५६४)

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥ ५ ॥
द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥ ६ ॥
नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥ ७ ॥ [१८] (५६७)

॥ ५७ ॥

१-६ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । विश्वे देवाः । गायत्री ।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥ १ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतं नशीमहि ॥ २ ॥
मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥ ३ ॥
आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ४ ॥
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥ ५ ॥
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ६ ॥ [१९] (५७३)

॥ ५८ ॥

१-१२ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । मन आवर्तनम् । अनुष्टुप् ।

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ १ ॥
यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ २ ॥
यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ३ ॥
यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ४ ॥
यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ५ ॥
यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ६ ॥ [२०]
यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ७ ॥
यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ८ ॥
यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥ ९ ॥
यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥
यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११॥
यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् । तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१२॥ [२१] (५८५)

॥ ५९ ॥

१-१० बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । १-३ निर्ऋतिः, ४ निर्ऋतिः सोमश्च, ५-६ असुनीतिः, ७ पृथिवी-द्यावन्तरिक्ष-सोम-पूष-पथ्या-स्वस्तयः, ८-९ द्यावापृथिवी, १० इन्द्र-द्यावापृथिव्यौ । त्रिष्टुप्, ८ पङ्क्तिः, ९ महापङ्क्तिः, १० पङ्क्त्युत्तरा ।

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ १ ॥
सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ २ ॥
अभी ष्वर्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ३ ॥
मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥ ४ ॥
असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥ ५ ॥ [२२]
असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥ ६ ॥
पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥ ७ ॥
शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥ ८ ॥
अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥९॥
समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥१०॥ [२३] (५९५)

॥ ६० ॥

१-१२ बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः, ६ अगस्त्यस्वसा ऋषिका । १-४, ६ असमातिः, ५ इन्द्रः, ७-११ जीवः, १२ हस्तः । अनुष्टुप्, १-५ गायत्री, ८-९ पंक्तिः ।

आ जनं त्वेषसंदृशं माहीनानामुपस्तुतम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ १ ॥
असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् । भजेरथस्य सत्पतिम् ॥ २ ॥ (५९७)

यो जनान्महिषाँइवातितस्थौ पवीरवान् । उतापवीरवान्युधा ॥ ३ ॥
यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥ ४ ॥
इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय । दिवीव सूर्यं दृशे ॥ ५ ॥
अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥ ६ ॥ [२४]
अयं माता अयं पिता अयं जीवातुरागमत् । इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥ ७ ॥
यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ ८ ॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥ ९ ॥
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०॥
यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् । जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥११॥
न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः । नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥१२॥ [२५] (६०७)
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः । अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥

॥ ६१ ॥

१-२७ नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

(५) इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥ १ ॥
स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥ २ ॥
मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥ ३ ॥
कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥ ४ ॥
प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥ ५ ॥ [२६]
मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६ ॥ (६१३)

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ७ ॥
स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥ ८ ॥
मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥ ९ ॥
मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥ [२७]
मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११॥
पश्वा यत्पश्वा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२॥
तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥
भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥
उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५॥ [२८]
अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६॥
स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८॥
इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९॥
अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥ [२९] (६२७)

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥
अध त्वमिन्द्र विद्ध्यस्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२॥
अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३॥
अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४॥
युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥
स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६॥
त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७॥[३०]१* (६३४)

॥ ६२ ॥

१-११ नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः, १-६ अङ्गिरसां स्तुतिर्वा, ८-११ सावर्णेर्दानस्तुतिः । जगती; ५, ८, ९ अनुष्टुप्; प्रगाथः = (६ बृहती, ७ सतोबृहती); १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप् ।

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ १ ॥
य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ २ ॥
य ऋतेन सूर्यमारोहयन्दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ३ ॥
अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ४ ॥
विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः । ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥ ५ ॥ [१]
ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥ ६ ॥ (६४०)

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥ ७ ॥
प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु । यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥ ८ ॥
न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥ ९ ॥
उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१०॥
सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥ [२] (६४५)

॥ ६३ ॥

१-१७ गयः प्लातः । विश्वे देवाः; १५-१६ पथ्या स्वस्तिः । जगती, १५ त्रिष्टुब्वा; १६-१७ त्रिष्टुप् ।

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥
विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥ २ ॥
येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥ ३ ॥
नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥ ४ ॥
सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥ ५ ॥ [३]
को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥ ६ ॥
येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥ ७ ॥
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ ८ ॥ (६५३)

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ ९ ॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०॥ [४]
विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥
अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥
अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥
स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥
स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥ [५] (६६२)

॥ ६४ ॥

१-१७ गयः प्लातः । विश्वे देवाः । जगती; १२,१६,१७ त्रिष्टुप् ।

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥ १ ॥
क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥ २ ॥
नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥ ३ ॥ (६६५)

कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिरृक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ॥ ४ ॥
दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥ ५ ॥ [६]
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥ ६ ॥
प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥ ७ ॥
त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ ८ ॥
सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥ ९ ॥
उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१०॥ [७]
रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥
यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२॥
कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३॥
ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥
वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥
एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥
एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥ [८] (६७९)

॥ ६५ ॥

१-१५ वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥
इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥ २ ॥
तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥ ३ ॥
स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥ ४ ॥
मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥ ५ ॥ [९]
या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥ ६ ॥
दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्यप आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः ॥ ७ ॥
परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥ ८ ॥
पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥ ९ ॥
त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१०॥ [१०]
ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११॥
भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः ॥१२॥
पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या ॥१३॥ (६९२)

विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४॥
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥ [११] (६९४)

॥ ६६ ॥

१-१५ वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥ १ ॥
इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥ २ ॥
इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३॥
अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून्रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥ ४ ॥
सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥ ५ ॥ [१२]
वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥ ६ ॥
अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥ ७ ॥
धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥ ८ ॥
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्वरा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी नि मामृजुः ॥ ९ ॥
धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०॥ [१३] (७०४)

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११॥
स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत ॥१२॥
दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः ॥१३॥
वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥
देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥ [१४] (७०९)

॥ ६७ ॥

१-१२ अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥ [१५]
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥ (७१७)

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥ [१६] (७२१)

॥ ६८ ॥

१-१२ अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दंपती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥
साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥
आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधींरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥ [१७]
बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥ (७२९)

सोषामविन्दत्स स्वः१ सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ११ ॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥ [१८] (७३३)

॥ ६९ ॥

१-१२ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १-२ जगती ।

(६) भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥ १ ॥
घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः ॥ २ ॥
यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥ ३ ॥
यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥ ४ ॥
भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥ ५ ॥
समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥ ६ ॥ [१९]
दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान्द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥ ७ ॥
त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥ ८ ॥
देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥ ९ ॥ (७४२)

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश्चित् ॥ १० ॥
शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥ ११ ॥
अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥ १२ ॥ [२०] (७४५)

॥ ७० ॥

१-११ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥ १ ॥
आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥ २ ॥
शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥ ३ ॥
वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥ ४ ॥
दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥ ५ ॥ [२१]
देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन्विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥ ७ ॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥ ८ ॥
देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥ ९ ॥ (७५४)

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥ १० ॥
आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥ [२२] (७५६)

॥ ७१ ॥

१-११ बृहस्पतिराङ्गिरसः । ज्ञानम् । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ १ ॥
सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥ २ ॥
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥ ३ ॥
उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ४ ॥
उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ५ ॥ [२३]
यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ६ ॥
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥ ७ ॥
हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥ ८ ॥
इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ ९ ॥
सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥ १० ॥
ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥ ११ ॥ [२४] २* (७६७)

॥ ७२ ॥

१-९ बृहस्पतिर्लौक्यः, बृहस्पतिराङ्गिरसो वा, अदितिर्दाक्षायणी वा । देवाः । अनुष्टुप् ।

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥ १ ॥
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥ २ ॥
देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥ ३ ॥
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥ ४ ॥
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥ ५ ॥ [१]
यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥ ६ ॥
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ ७ ॥
अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥ ८ ॥
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥ ९ ॥ [२] (७७६)

॥ ७३ ॥

१-११ गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ १ ॥
द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥ २ ॥
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥ ३ ॥ (७७९)

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥ ४ ॥
मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥ ५ ॥ [३]
सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥ ६ ॥
त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥ ७ ॥
त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥ ८ ॥
चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चछद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥
अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥ [४] (७८७)

॥ ७४ ॥

१-६ गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥ १ ॥
हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥ २ ॥
इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्यमसामि ॥ ३ ॥
आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ ४ ॥ (७९१)

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥ ५ ॥
यद्वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥ ६ ॥ [५] (७९३)

॥ ७५ ॥

१-९ सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः । नद्यः । जगती ।

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥ १ ॥
प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥ २ ॥
दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥ ३ ॥
अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥ ४ ॥
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥ ५ ॥ [६]
तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥ ६ ॥
ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥ ७ ॥
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥ ८ ॥
सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥ ९ ॥ [७] (८०२)

॥ ७६ ॥

१-८ जरत्कर्णः सर्प ऐरावतः । ग्रावाणः । जगती ।

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥ १ ॥
तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥ २ ॥
तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥ ३ ॥
अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥ ४ ॥
दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥ ५ ॥ [८]
भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥ ६ ॥
सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥ ७ ॥
एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥ ८ ॥ [९] (८१०)

॥ ७७ ॥

१-८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥ १ ॥
श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥ २ ॥
प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥ ३ ॥ (८१३)

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥ ४ ॥
यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥ ५ ॥ [१०]
प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोत ॥ ६ ॥
य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥ ७ ॥
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥ ८ ॥ [११] (८१८)

॥ ७८ ॥

१-८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप्, २, ५-७ जगती ।

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो३ न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥ १ ॥
अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥ २ ॥
वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥ ३ ॥
रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥ ४ ॥
अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥ ५ ॥ [१२]
ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥ ६ ॥
उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥ ७ ॥
सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥ ८ ॥ [१३] (८२६)

॥ ७९ ॥

१-७ अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, सप्तिर्वाजंभरो वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥ १ ॥
गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥ २ ॥
प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥ ३ ॥
तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥ ४ ॥
यो अस्मा अन्नं तृष्वादधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥ ५ ॥
किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन्क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥ ६ ॥
विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥ ७ ॥ [१४](८३३)

॥ ८० ॥

१-७ अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, सप्तिर्वाजंभरो वा । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् ॥ १ ॥
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥ २ ॥
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥ ३ ॥
अग्निर्दाद्द्रविणं वीरपेशा अग्निरृषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥ ४ ॥ (८३७)

अग्निमुक्थैरृषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥ ५ ॥
अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥ ६ ॥
अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥ ७ ॥ [१५](८४०)

॥ ८१ ॥

१-७ विश्वकर्मा भौवनः । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप्, २ विराड्रूपा ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥ १ ॥
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ २ ॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ३ ॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ४ ॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ५ ॥
विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ६ ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ ७ ॥ [१६](८४७)

॥ ८२ ॥

१-७ विश्वकर्मा भौवनः । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप् ।

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ १ ॥
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥ २ ॥ (८४९)

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ३ ॥
त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४ ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ७ ॥ [१७](८५६)

॥ ८३ ॥

१-७ मन्युस्तापसः । मन्युः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ २ ॥
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥
अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥ [१८](८६३)

॥ ८४ ॥

१-७ मन्युस्तापसः । मन्युः । जगती, १-३ त्रिष्टुप् ।

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १ ॥
अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ ३ ॥
एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥ ४ ॥
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥ ५ ॥
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ ६ ॥
संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥ ७ ॥ [१९](८७०)

॥ ८५ ॥

१-४७ सूर्या सावित्री ऋषिका । १-५ सोमः, ६-१६ सूर्याविवाहः, १७ देवाः, १८ सोमार्कौ, १९ चन्द्रमाः, २०-२८ (नृणां विवाहमन्त्रा) आशीः (प्रायः) । २९-३० वधूवासः संस्पर्शनिन्दा, ३१ यक्ष्मनाशनं, ३२-४७ सूर्या सावित्री । अनुष्टुप्; १४, १९-२१, २३-२४, २६, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप्; १८, २७, ४३ जगती; ३४ उरो बृहती ।

(७) सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥
सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ४ ॥ (८७२)

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ५ ॥ [२०]
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥ ६ ॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः । शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥ [२१]
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः । अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् । अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥
यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप । क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥ [२२]
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च । ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥
नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥
सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥ [२३]
उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥२२॥ (८९०)

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५॥ [२४]
पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०॥ [२५]
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥
मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥
तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥ [२६]
गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥ (९०४)

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥
तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥
सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥ [२७]
सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१॥
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥
अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥
इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५॥
सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥
समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥ [२८] ३* (९१५)

॥ ८६ ॥

(१-२३) १, ८, ११-१२, १४, १९-२२ इन्द्रः; ७, १३, २३ वृषाकपिरैन्द्रः;
२-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणी । इन्द्रः । पङ्क्तिः ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥ (९१६)

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥ [१]
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥ [२]
इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेरृते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥
उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥ [३] (९३०)

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥
अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥
धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एषः स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥ [४] (९३८)

॥ ८७ ॥

१-२५ पायुर्भारद्वाजः । रक्षोहाग्निः । त्रिष्टुप्, २२-२५ अनुष्टुप् ।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १ ॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥ २ ॥
उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥ ४ ॥
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥ ५ ॥ [५] (९४३)

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ६ ॥
उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७ ॥
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥ ८ ॥
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥ ९ ॥
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥ [६]
त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥
तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥१२॥
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१३॥
परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४॥
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५॥ [७]
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६॥
संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७॥
विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१८॥
सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९॥ (९५७)

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०॥ [८]
पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२१॥
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२॥
विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३॥
प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥२४॥
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥२५॥ [९] (९६३)

॥ ८८ ॥

१-१९ मूर्धन्वानाङ्गिरसो, वामदेव्यो वा । सूर्य-वैश्वानरौ । त्रिष्टुप् ।

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥ १ ॥
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥ २ ॥
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ३ ॥
यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥ ४ ॥
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥ ५ ॥ [१०]
मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥ ६ ॥
दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥ ७ ॥ (९७०)

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥ ८ ॥
यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥ ९ ॥
स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन्त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥ [११]
यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११॥
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥
वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३॥
वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४॥
द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥ [१२]
द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६॥
यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७॥
कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८॥
यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९॥ [१३] (९८२)

॥ ८९ ॥

१-१८ रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः, ५ इन्द्रासोमौ । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥ १ ॥ (९८३)

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं१ न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥ २ ॥
समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥ ३ ॥
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ४ ॥
आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥ ५ ॥ [१४]
न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥ ६ ॥
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥ ७ ॥
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥ ८ ॥
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥ ९ ॥
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०॥ [१५]
प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥११॥
प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥
अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥
कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥
शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५॥ (९९७)

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६॥
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१८॥ [१६] (१०००)

॥ ९० ॥

१-१६ नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप्, १६ त्रिष्टुप् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥
तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥ [१७]
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ ६ ॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥ [१८] (१०१०)

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥ [१९] (१०२६)

॥ ९१ ॥

१-१५ अरुणो वैतहव्यः । अग्निः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

(८) सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥ १ ॥
स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो३ विशंविशम् ॥ २ ॥
सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद्द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥ ३ ॥
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥ ४ ॥
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥ ५ ॥ [२०]
तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥ ६ ॥
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक्शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥ ७ ॥ (१०२९)

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥ ८ ॥
त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥ ९ ॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥ [२१]
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥
इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥ [२२] (१०४१)

॥ ९२ ॥

१-१५ शार्यातो मानवः । विश्वे देवाः । जगती ।

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥ १ ॥
इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥ २ ॥
बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥ ३ ॥
ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य१रमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥ ४ ॥
प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥ ५ ॥ [२३] (१०४६)

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥ ६ ॥
इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥ ७ ॥
सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥ ८ ॥
स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥ ९ ॥
ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥ [२४]
ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥
उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२॥
प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३॥
विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥
रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥ [२५] (१०४६)

॥ ९३ ॥

१-१५ तान्वः पार्थ्यः । विश्वे देवाः । प्रस्तारपङ्क्तिः; २, ३, १३ अनुष्टुप्; ९ अक्षरपङ्क्तिः, ११ न्यङ्कुसारिणी, १५ पुरस्ताद्बृहती ।

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥ १ ॥
यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति । यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥ २ ॥
विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः । विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥ ३ ॥ (१०४९)

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥ ४ ॥
उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥ ५ ॥ [२६]
उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥ ६ ॥
उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥ ७ ॥
ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥ ८ ॥
कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ॥ ९ ॥
ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ॥१०॥ [२७]
एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।
मेदतां वेदता वसो ॥११॥
एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥१२॥
वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी । नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥१३॥
प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥१४॥
अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५॥ [२८] (१०६१)

॥ ९४ ॥

१-१४ अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः । जगती; ५, ७, १४ त्रिष्टुप् ।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥ १ ॥ (१०६२)

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥ २ ॥
एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥ ३ ॥
बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥ ४ ॥
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥ ५ ॥ [२९]
उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥ ६ ॥
दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥ ७ ॥
ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥ ८ ॥
ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥ ९ ॥
वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१०॥ [३०]
तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११॥
ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२॥
तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥१३॥
सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४॥ [३१] ४* (१०७५)

॥ ९५ ॥

(१-१८) १, ३, ६, ८-१०, १२, १४, १७ पुरूरवा ऐळ ऋषिः । उर्वशी देवता । २, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८ उर्वशी ऋषिका । पुरूरवा देवता । त्रिष्टुप् ।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥ १ ॥
किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥ २ ॥
इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥ ३ ॥
सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥ ४ ॥
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥ ५ ॥ [१]
या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥ ६ ॥
समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥ ७ ॥
सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥ ८ ॥
यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥ ९ ॥
विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥ [२]
जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥
कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥ (१०८७)

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥
सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निरृतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥
पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥ [३]
यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥
अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥
इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥ [४] (१०९३)

॥ ९६ ॥

१-१३ बरुराङ्गिरसः, सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः । हरिः । जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥ ४ ॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥ [५]
ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ ६ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥ ७ ॥ (११००)

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ८ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ९ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥ [६]
आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११॥
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥ [७] (११०६)

॥ ९७ ॥

१-२३ भिषगाथर्वणः । ओषधयः । अनुष्टुप् ।

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ १ ॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ २ ॥
ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ ३ ॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥ ४ ॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ५ ॥ [८]
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ६ ॥ (१११२)

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ७ ॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८ ॥
इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ९ ॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः॥१०॥[९]
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः॥१०॥[९]
यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥११॥
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥ [१०]
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६॥
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९॥
मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥२१॥
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥२२॥
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३॥ [११] (११२९)

॥ ९८ ॥

१-१२ देवापिरार्ष्टिषेणः (वृष्टिकामः) । देवाः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्स पर्जन्यं शंतनवे वृषाय ॥ १ ॥ (११३०)

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् ॥ २ ॥
अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शंतनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥ ३ ॥
आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥ ४ ॥
आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥ ५ ॥
अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥ ६ ॥ [१२]
यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥ ७ ॥
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥ ८ ॥
त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥ ९ ॥
एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०॥
एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद्बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥ [१३] (११४१)

॥ ९९ ॥
१-१२ वम्रो वैखानसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥ १ ॥
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥ २ ॥ (११४२)

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥ ३ ॥
स यह्व्योऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ४ ॥
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥ ५ ॥
स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥ ६ ॥ [१४]
स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥ ७ ॥
सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥ ८ ॥
स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥ ९ ॥
अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीतारुं यश्चतुष्पात् ॥१०॥
अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११॥
एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१२॥ [१५] (११५३)

॥ १०० ॥

१-१२ दुवस्युर्वान्दनः । विश्वे देवाः । जगती, १२ त्रिष्टुप् ।

(९) इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ १ ॥
भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ २ ॥ (११५५)

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ३ ॥
इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ४ ॥
इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ५ ॥
इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ६ ॥ [१६]
न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ७ ॥
अपामीवां सविता साविषन्न्यग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥ ९ ॥
ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०॥
क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥
चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२॥ [१७] (११६५)

॥ १०१ ॥

१-१२ बुधः सौम्यः । विश्वे देवा, ऋत्विग् वा । त्रिष्टुप्; ४, ६ गायत्री; ५ बृहती; ९,१२ जगती ।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥ १ ॥
मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥ २ ॥ (११६७)

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ३ ॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ४ ॥
निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥ ५ ॥
इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् । उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥ ६ ॥ [१८]
प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥ ७ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ८ ॥
आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ९ ॥
आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥
उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११॥
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२॥ [१९] (११७७)

॥ १०२ ॥

१-१२ मुद्गलो भार्म्यश्वः । द्रुघण, इन्द्रो वा । त्रिष्टुप्; १, ३, १२ बृहती ।

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥ १ ॥
उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥ २ ॥
अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥ ३ ॥ (११८०)

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥ ४ ॥
न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥ ५ ॥
कककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥ ६ ॥ [२०]
उत प्रधिमुद्वहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥ ७ ॥
शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥ ८ ॥
इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥ ९ ॥
आरे अघा को न्वित्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०॥
परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥
त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥ [२१] (११८९)

॥ १०३ ॥

१-१३ अप्रतिरथ ऐन्द्रः । इन्द्रः, ४ बृहस्पतिः, १२ अप्वा देवी, १३ मरुतो वा । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥ (११९२)

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४ ॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ ५ ॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ६ ॥ [२२]
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ९ ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१३॥ [२३] (१२०२)

॥ १०४ ॥

१-११ अष्टको वैश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य ॥ १ ॥
अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ २ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ३ ॥ (१२०५)

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ४ ॥
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥ ५ ॥ [२४]
उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥ ६ ॥
सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥ ७ ॥
सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥ ८ ॥
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥ ९ ॥
वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥१०॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥ [२५] (१२१३)

॥ १०५ ॥

१-११ दुर्मित्रः (सुमित्रो वा) कौत्सः । इन्द्रः । उष्णिक्; १ गायत्री वा; २,७ पिपीलिकमध्या; ११ त्रिष्टुप् ।

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ १ ॥
हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा । उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥ २ ॥
अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् । शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥ ३ ॥
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् । नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥ ४ ॥
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै । वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥ ५ ॥ [२६]
प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा । ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥ ६ ॥
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् । अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥ ७ ॥
अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः । नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् । सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥ ९ ॥ (१२२२)

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः । यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०॥
शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११॥ [२७] ५* (१२२४)

॥ १०६ ॥

१-११ भूतांशः काश्यपः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥ १ ॥
उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥ २ ॥
साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥ ३ ॥
आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्ये ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥ ४ ॥
वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ॥ ५ ॥ [१]
सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥ ६ ॥
पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥ ७ ॥
घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥ ८ ॥
बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोऽंशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥ ९ ॥
आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥
ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥ [२] (१२३५)

॥ १०७ ॥

१-११ दिव्य आङ्गिरसः, दक्षिणा वा प्राजापत्या । दक्षिणा, दक्षिणादातारो वा ।
त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥ १ ॥
उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥ २ ॥
दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥ ३ ॥
शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥ ४ ॥
दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥ ५ ॥ [३]
तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥ ६ ॥
दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥ ७ ॥
न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥ ८ ॥
भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं१ या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥ ९ ॥
भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥१०॥
भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥११॥ [४] (१२४६)

॥ १०८ ॥

(१-११) १, ३, ५, ७, ९ पणयोऽसुराः । सरमा देवता । २, ४, ६, ८, १०-११ सरमा देवशुनी ऋषिका । पणयो देवता । त्रिष्टुप् ।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥ १ ॥
इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥ २ ॥
कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥ ३ ॥
नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥ ४ ॥
इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥ ५ ॥ [५]
असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥ ६ ॥
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥ ७ ॥
एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ ८ ॥
एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥ ९ ॥
नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥
दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीरृतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥ [६] (१२५७)

॥ १०९ ॥

१-७ जुहूर्ब्रह्मजाया, ऊर्ध्वनाभा वा ब्राह्मः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ६-७ अनुष्टुप् ।

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥ १ ॥
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥ २ ॥
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥ ३ ॥
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ४ ॥
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥ ५ ॥
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥ ६ ॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥ ७ ॥ [७] (१२६४)

॥ ११० ॥

१-११ जमदग्निर्भार्गवः, रामो वा जामदग्न्यः । आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ १ ॥
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २ ॥
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ ३ ॥
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ ४ ॥ (१२६८)

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ५ ॥ [८]
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ८ ॥
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ९ ॥
उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥ [९] (१२७५)

॥ १११ ॥

१-१० अष्टादंष्ट्रो वैरूपः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥ १ ॥
ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥ २ ॥
इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय ।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥ ३ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ॥ ४ ॥
इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद्द्यामातनोत्सूर्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥ ५ ॥ [१०]
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥ ६ ॥ (१२८१)

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥ ७ ॥
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥ ८ ॥
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥ ९ ॥
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥ [११] (१२८५)

॥ ११२ ॥

१-१० नभःप्रभेदनो वैरूपः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥ १ ॥
यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥ २ ॥
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥ ३ ॥
यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥ ४ ॥
यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरंधिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ॥ ५ ॥ [१२]
इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥ ६ ॥
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥ ७ ॥
प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥ ८ ॥ (१२९१)

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥ ९ ॥
अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥१०॥ [१३](१२९५)

॥ ११३ ॥

१-१० शतप्रभेदनो वैरूपः । इन्द्रः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

(१०) तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥ १ ॥
तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥ २ ॥
वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥ ३ ॥
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥ ४ ॥
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥ ५ ॥ [१४]
इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥ ६ ॥
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥ ७ ॥
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥ ८ ॥
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥ ९ ॥
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥१०॥ [१५](१३०५)

॥ ११४ ॥

१-१० सध्रिर्वैरूपो, घर्मो वा तापसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥ १ ॥
तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ २ ॥
चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥ ३ ॥
एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥ ४ ॥
सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥ ५ ॥ [१६]
षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ॥ ६ ॥
चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ॥ ७ ॥
सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥ ८ ॥
कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥ ९ ॥
भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥ [१७](१३१५)

॥ ११५ ॥

१-९ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः । अग्निः । जगती, ८ त्रिष्टुप्, ९ शक्वरी ।

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं१ चरन् ॥ १ ॥
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥ २ ॥ (१३१७)

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥ ३ ॥
वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥ ४ ॥
स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ॥ ५ ॥ [१८]
वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥ ६ ॥
एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् ॥७॥
ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ८ ॥
इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषड्वषळित्यूर्ध्वासो अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥ [१९](१३२४)

॥ ११६ ॥

१-९ अग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥ १ ॥
अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥ २ ॥
ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥ ३ ॥
आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥ ४ ॥
नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥ ५ ॥ [२०](१३२९)

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥ ६ ॥
इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वो३द्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥ ७ ॥
अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥
प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अया इव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥ ९ ॥ [२१](१३३२)

॥ ११७ ॥

१-९ भिक्षुराङ्गिरसः । धनान्नदानं । त्रिष्टुप्, १-२ जगती ।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥ १ ॥
य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥ २ ॥
स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥ ३ ॥
न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥ ४ ॥
पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥ ५ ॥ [२२]
मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥ ६ ॥
कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥ ७ ॥
एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥ ८ ॥ (१३४१)

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥ ९ ॥ [२३] (१३४२)

॥ ११८ ॥

१-९ उरुक्षय आमहीयवः । रक्षोहाऽग्निः । गायत्री ।

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा । स्वे क्षये शुचिव्रत ॥ १ ॥
उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥ २ ॥
स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा । स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥ ३ ॥
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः ॥ ४ ॥
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥ ५ ॥ [२४]
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् ॥ ६ ॥
अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥ ७ ॥
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥ ८ ॥
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ ९ ॥ [२५] (१३५१)

॥ ११९ ॥

१-१३ लव ऐन्द्रः । आत्मा (इन्द्रः) । गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ १ ॥
प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता अयंसत । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ २ ॥
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वाइवाशवः । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ३ ॥
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ४ ॥
अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ५ ॥
नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ६ ॥ [२६]
नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ७ ॥
अभि द्यां महिना भुवमभीमां पृथिवीं महीम् । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ८ ॥
हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ९ ॥
ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा । कुवित्सोमस्यापामिति ॥१०॥
दिवि मे अन्यः पक्षोऽधो अन्यमचीकृषम् । कुवित्सोमस्यापामिति ॥११॥ (१३६२)

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः । कुवित्सोमस्यापामिति ॥१२॥
गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः । कुवित्सोमस्यापामिति ॥१३॥ [२७] ६* (१३६४)

॥ १२० ॥

१-९ बृहद्दिव आथर्वणः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ३ ॥
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥ ४ ॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ५ ॥ [१]
स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥ ६ ॥
नि तदधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥ ७ ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ ८ ॥
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥ ९ ॥ [२] (१३७३)

॥ १२१ ॥

१-१० हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः । कः (प्रजापतिः) । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥ (१३७५)

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥ [३]
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥ [४] (१३८३)

॥ १२२ ॥

१-८ चित्रमहा वासिष्ठः । अग्निः । जगती; १,५ त्रिष्टुप् ।

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥ १ ॥
जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान्वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥ २ ॥
सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥ ३ ॥
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥ ४ ॥ (१३८७)

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ॥ ५ ॥ [५]
इषं दुहन्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिरृतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥ ६ ॥
त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥ ७ ॥
नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥ [६] (१३९१)

॥ १२३ ॥

१-८ वेनो भार्गवः । वेनः । त्रिष्टुप् ।

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ १ ॥
समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥ २ ॥
समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥ ३ ॥
जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥ ४ ॥
अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥ ५ ॥ [७]
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥ ७ ॥
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ८ ॥ [८] (१३९९)

॥ १२४ ॥

(१-९) २-४ अग्निः, १, ५-९ अग्नि-वरुण-सोमाः । १ अग्निः २-४ आत्मा, ५, ७-८ वरुणः; ६ सोमः, ९ सोमेन्द्रौ, । त्रिष्टुप्, ७ जगती ।

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः ॥ १ ॥
अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन्प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि ।
शिवं यत्सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि ॥ २ ॥
पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि ।
शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ॥ ३ ॥
बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि ।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ॥ ४ ॥
निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे ।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥ ५ ॥ [९]
इदं स्वरिदमिदास वाममयं प्रकाश उर्व१न्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥ ६ ॥
कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥ ७ ॥
ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥ ८ ॥
बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥ ९ ॥ [१०] (१४०८)

॥ १२५ ॥

१-८ वागाम्भृणिः । आत्मा । त्रिष्टुप्, २ जगती ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥ (१४१०)

९६

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥ [११]
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥ ७ ॥
अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥ [१२] (१४१८)

॥ १२६ ॥

१-८ कुल्मलबर्हिषः शैलूषिः, अंहोमुग्वा वामदेव्यः । विश्वे देवाः । उपरिष्टाद्बृहती, ८ त्रिष्टुप् ।

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥ १ ॥
तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥ २ ॥
ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ॥ ३ ॥
यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ॥ ४ ॥
आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ॥ ५ ॥
नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ॥ ६ ॥
शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥ ७ ॥ (१४२३)

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ८ ॥ [१३] (१४२४)

॥ १२७ ॥

१-८ कुशिकः सौभरः, रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिः । गायत्री ।

। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥
रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः । ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वतः । अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती । वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि । नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः । अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥
यावया वृक्यं१ वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये । उप ऋणेव यातय ॥ ७ ॥
उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥ [१४] (१४३२)
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः

॥ १२८ ॥

१-९ विहव्य आङ्गिरसः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ९ जगती ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ १ ॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥ २ ॥
मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥ ३ ॥
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥ ४ ॥
देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥ ५ ॥ [१५]
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते३मैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥ ६ ॥ (१४३८)

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥ ७ ॥
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥ ८ ॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ९ ॥ [१६] (१४४१)

॥ १२९ ॥

१-७ प्रजापतिः परमेष्ठी । भाववृत्तम् । त्रिष्टुप् ।

(११) नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १ ॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥ २ ॥
तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥
को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥ [१७] (१४४८)

॥ १३० ॥

१-७ यज्ञः प्राजापत्यः । भाववृत्तम् । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥ १ ॥ (१४४९)

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥ २ ॥
कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥ ३ ॥
अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥ ४ ॥
विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥ ५ ॥
चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥ ६ ॥
सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३ न रश्मीन् ॥ ७ ॥ [१८] (१४५५)

॥ १३१ ॥

१-७ सुकीर्तिः काक्षीवतः । इन्द्रः, ४-५ अश्विनौ । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥ १ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २ ॥
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३ ॥
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥ (१४६१)

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ७ ॥ [१९] (१४६२)

॥ १३२ ॥

१-७ शकपूतो नार्मेधः । मित्रावरुणौ, १ द्युभूम्यश्विनः । विराड्रूपा, १ न्यङ्कुसारिणी,
२, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ महासतोबृहती ।

ईजानमिद्द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि ।
ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥ १ ॥
ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥ २ ॥
अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥ ३ ॥
असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥ ४ ॥
अस्मिन्त्स्वे३तच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्वर्वा ॥ ५ ॥
युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ॥ ६ ॥
युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ॥ ७ ॥ [२०] (१४६९)

॥ १३३ ॥

१-७ सुदाः पैजवनः । इन्द्रः । शक्वरी, ४-६ महापङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥
त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥ (१४७१)

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिर्नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥
यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ५ ॥
वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ६ ॥
अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ७ ॥ [२१] (१४७६)

॥ १३४ ॥

(१-७) १-६ (पूर्वार्धः) मान्धाता यौवनाश्वः, ६ उत्तरार्धः ७ गोधा ऋषिका । इन्द्रः । महापङ्क्तिः, ७ पङ्क्तिः ।

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥
अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥
अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥
अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ४ ॥
अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मतिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ५ ॥
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ६ ॥
नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥ ७ ॥ [२२] (१४८३)

॥ १३५ ॥

१-७ कुमारो यामायनः । यमः । अनुष्टुप् ।

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥ १ ॥
पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया । असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥ २ ॥
यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः । एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥ ३ ॥
यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि । तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥ ४ ॥
कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् । कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥ ५ ॥
यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत । पुरस्ताद्बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥ ६ ॥
इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥ ७ ॥ [२३] (१४९०)

॥ १३६ ॥

(१-७) १ जूतिः, २ वातजूतिः, ३ विप्रजूतिः, ४ वृषाणकः, ५ करिक्रतः, ६ एतशः, ७ ऋष्यशृङ्गः
(एते वातरशना मुनयः) । (केशिनः=) अग्नि-सूर्य-वायवः । अनुष्टुप् ।

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥ १ ॥
मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥ २ ॥
उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥ ४ ॥
वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥ ५ ॥
अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥ ६ ॥
वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥ ७ ॥ [२४] (१४९७)

॥ १३७ ॥

(१-७) १ भरद्वाजः, २ कश्यपः, ३ गोतमः, ४ अत्रिः, ५ विश्वामित्रः, ६ जमदग्निः,
७ वसिष्ठः । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ १ ॥
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥ २ ॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥ ३ ॥
आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥ ४ ॥
त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥ ५ ॥
आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ६ ॥
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥ ७ ॥ [२५] (१५०४)

॥ १३८ ॥

१-६ अङ्ग औरवः । इन्द्रः । जगती ।

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥ १ ॥
अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥ २ ॥
वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥ ३ ॥
अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥ ४ ॥ (१५०८)

अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्युरजहादुषा अनः ॥ ५ ॥
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥ ६ ॥ [२६] (१५१०)

॥ १३९ ॥

१-६ विश्वावसुर्देवगन्धर्वः । सविता, ४-६ आत्मा । त्रिष्टुप् ।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्संपश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ १ ॥
नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ २ ॥
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः
देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ३ ॥
विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधीँरपश्यत् ॥ ४ ॥
विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥ ५ ॥
सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥ ६ ॥ [२७] (१५१६)

॥ १४० ॥

१-६ अग्निः पावकः । अग्निः । सतोबृहती, १-२ विष्टारपङ्क्तिः, ६ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ २ ॥
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ ३ ॥ (१५१९)

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ ४ ॥
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥ ५ ॥
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥ [२८] (१५२२)

॥ १४१ ॥

१-६ अग्निस्तापसः । विश्वे देवाः । अनुष्टुप् ।

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ १ ॥
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥ २ ॥
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ३ ॥
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ॥ ४ ॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ५ ॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ६ ॥ [२९] (१५२८)

॥ १४२ ॥

(१-८) १-२ जरिता, ३-४ द्रोणः, ५-६ सारिसृक्वः, ७-८ स्तम्बमित्रः (एते शार्ङ्गाः) । अग्निः ।
त्रिष्टुप्, १-२ जगती, ७-८ अनुष्टुप् ।

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य१न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥ १ ॥
प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपाइव त्मना ॥ २ ॥ (१५३०)

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥ ३ ॥
यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥ ४ ॥
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥ ५ ॥
उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥ ६ ॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥ ७ ॥
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥ ८ ॥ [३०] ७* (१५३८)

॥ १४३ ॥

१-६ अत्रिः सांख्यः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥ १ ॥
त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥ २ ॥
नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥ ३ ॥
चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥ ४ ॥
युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥ ५ ॥
आ वां सुम्नैः शंयूइव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥ ६ ॥ [१] (१५४२)

॥ १४४ ॥

१-६ सुपर्णस्तार्क्ष्यः, ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः । इन्द्रः । गायत्री, २ बृहती, ५ सतोबृहती, ६ विष्टारपङ्क्तिः ।

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥ १ ॥
अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥ २ ॥
घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहीशुवः ॥ ३ ॥
यं सं० परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् । शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः ॥ ४ ॥
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ॥ ५ ॥
एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥ ६ ॥ [२] (१५४८)

॥ १४५ ॥

१-६ इन्द्राणी । सपत्नीनाशनम् (उपनिषत्) । अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥ १ ॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥ २ ॥
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ३ ॥
नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४ ॥
अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५ ॥
उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥ ६ ॥ [३] (१५५४)

॥ १४६ ॥

१-६ देवमुनिरैरम्मदः । अरण्यानी । अनुष्टुप् ।

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीँ३ ॥ १ ॥
वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥ २ ॥
उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३ ॥
गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४ ॥
न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५ ॥
आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥ ६ ॥ [४] (१५६०)

॥ १४७ ॥

१-५ सुवेदाः शैरीषिः । इन्द्रः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥ १ ॥
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २ ॥
ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥ ३ ॥
स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥ ४ ॥
त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥ ५ ॥ [५] (१५६५)

॥ १४८ ॥

१-५ पृथुर्वैन्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥ १ ॥
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥ २ ॥
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥ ३ ॥
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४ ॥
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥ ५ ॥ [६] (१५७०)

॥ १४९ ॥

१-५ अर्चन् हैरण्यस्तूपः । सविता । त्रिष्टुप् ।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥ १ ॥
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २ ॥
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥ ३ ॥
गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥ ४ ॥
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥ ५ ॥ [७] (१५७५)

॥ १५० ॥

१-५ मृळीको वासिष्ठः । अग्निः । बृहती, ४-५ उपरिष्टाज्ज्योतिः, ४ जगती वा ।

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥ १ ॥ (१५७६)

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥ २ ॥
त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥ ३ ॥
अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥ ४ ॥
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ५ ॥ [८] (१५८०)

॥ १५१ ॥

१-५ श्रद्धा कामायनी । श्रद्धा । अनुष्टुप् ।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ १ ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥ २ ॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३ ॥
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ४ ॥
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥ [९] (१५८५)

॥ १५२ ॥

१-५ शासो भारद्वाजः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

(१२) शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ १ ॥
स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ २ ॥ (१५८७)

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ४ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥ ५ ॥ [१०] (१५९०)

॥ १५३ ॥

१-५ देवजामय इन्द्रमातरः । इन्द्रः । गायत्री ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ३ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥ ५ ॥ [११] (१५९५)

॥ १५४ ॥

१-५ यमी वैवस्वती । भाववृत्तम् । अनुष्टुप् ।

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ २ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ ३ ॥
ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितॄन्तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ ४ ॥
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ ५ ॥ [१२] (१६००)

॥ १५५ ॥

१-५ शिरिम्बिठो भारद्वाजः । १, ४ अलक्ष्मीनाशनं, २-३ ब्रह्मणस्पतिः, ५ विश्वे देवाः । अनुष्टुप् ।

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥ १ ॥
चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥ २ ॥
अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३ ॥
यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ ४ ॥
परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ ५ ॥ [१३] (१६०५)

॥ १५६ ॥

१-५ केतुराग्नेयः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पणिम् ॥ ३ ॥
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥ [१४] (१६१०)

॥ १५७ ॥

१-५ भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः । विश्वे देवाः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥१॥ २ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥ ३ ॥
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥२॥ ४ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥३॥ ५ ॥ [१५] (१६१५)

॥ १५८ ॥

१-५ चक्षुः सौर्यः । सूर्यः । गायत्री ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ १ ॥
जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥ २ ॥
चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ ३ ॥
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥ ४ ॥
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ॥ ५ ॥ [१६] (१६२०)

॥ १५९ ॥

१-६ शची पौलोमी । आत्मा । अनुष्टुप् ।

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥ १ ॥
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥ २ ॥
मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥ ३ ॥
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥ ४ ॥
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥ ५ ॥
समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥ (१७) (१६२६)

॥ १६० ॥

१-५ पूरणो वैश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥ (१६२९)

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥ [१८] (१६३१)

॥ १६१ ॥

१-५ यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः । इन्द्राग्नी, राजयक्ष्मघ्नं वा । त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ २ ॥
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ३ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥ ४ ॥
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ ५ ॥ [१९] (१६३६)

॥ १६२ ॥

१-६ रक्षोहा ब्राह्मः । रक्षोहा । अनुष्टुप् ।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ १ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ २ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥ ४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ५ ॥ (१६४१)

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ ६ ॥[२०](१६४२)

॥ १६३ ॥

१-६ विवृहा काश्यपः । यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप् ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ २ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥ ३ ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥ ४ ॥
मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥ ५ ॥
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥ ६ ॥[२१](१६४८)

॥ १६४ ॥

१-५ प्रचेता आङ्गिरसः । दुःस्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ १ ॥
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥ २ ॥
यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥ ३ ॥
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥ ४ ॥
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥ ५ ॥[२२](१६५३)

॥ १६५ ॥

१-५ कपोतो नैर्ऋतः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥ ३ ॥
यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ४ ॥
ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥ ५ ॥[२३](१६५८)

॥ १६६ ॥

१-५ ऋषभो वैराजः, ऋषभः शाक्वरो वा । सपत्ननाशनम् । अनुष्टुप्, ५ महापङ्क्तिः ।

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥
अहमस्मि सपत्नहेन्द्रइवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥ २ ॥
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥ ३ ॥
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥ ४ ॥
योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥ ५ ॥[२४](१६६३)

॥ १६७ ॥

१-४ विश्वामित्र-जमदग्नी । इन्द्रः, ३ सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-
मघवत्-धाता-विधातारः । जगती ।

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥ १ ॥ (१६६४)

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुतां उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥ २ ॥
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥ ३ ॥
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥ ४ ॥[२५](१६६७)

॥ १६८ ॥

१-४ अनिलो वातायनः । वायुः । त्रिष्टुप् ।

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥ १ ॥
सं प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ २ ॥
अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥ ३ ॥
आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥ ४ ॥[२६](१६७१)

॥ १६९ ॥

१-४ शबरः काक्षीवतः । गावः । त्रिष्टुप् ।

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥ १ ॥
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ २ ॥
या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥ ३ ॥
प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥ ४ ॥[२७](१६७५)

॥ १७० ॥

१-४ विभ्राट् सौर्यः । सूर्यः । जगती, ४ आस्तारपङ्क्तिः ।

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥ १ ॥
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥ ३ ॥
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥ ४ ॥[२८](१६७९)

॥ १७१ ॥

१-४ इटो भार्गवः । इन्द्रः । गायत्री ।-

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः । अशृणोः सोमिनो हवम् ॥ १ ॥
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः । अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥ २ ॥
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् । मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥ ३ ॥
त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि । देवानां चित्तिरो वशम् ॥ ४ ॥[२९](१६८३)

॥ १७२ ॥

१-४ संवर्त आङ्गिरसः । उषाः । द्विपदा विराट् ।

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ १ ॥
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥१॥ २ ॥
पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥ ३ ॥
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥२॥ ४ ॥[३०](१६८७)

॥ १७३ ॥

१-६ ध्रुव आङ्गिरसः । राजा । अनुष्टुप् ।

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥ १ ॥ (१६८८)

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः ।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥ २ ॥
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ ४ ॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ ५ ॥
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥ ६ ॥[३१] (१६९३)

॥ १७४ ॥

१-५ अभीवर्त आङ्गिरसः । राज्ञा । अनुष्टुप् ।

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥ १ ॥
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥ २ ॥
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥
येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥ ४ ॥
असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥ ५ ॥[३२] (१६९८)

॥ १७५ ॥

१-४ ऊर्ध्वग्रावा आर्बुदिः सर्पः । ग्रावाणः । गायत्री ।

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा । धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥ १ ॥
ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् । उस्राः कर्तन भेषजम् ॥ २ ॥ (१७००)

९६

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः । वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ॥ ३ ॥
ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा । यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥ [३३] (१७०२)

॥ १७६ ॥

१-४ सूनुरार्भवः । १ ऋभवः, २-४ अग्निः । अनुष्टुप्, २ गायत्री ।

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥ १ ॥
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ २ ॥
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ३ ॥
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥ ४ ॥ [३४] (१७०६)

॥ १७७ ॥

१-३ पतङ्गः प्राजापत्यः । मायाभेदः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥ १ ॥
पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः ।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥ २ ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३ ॥ [३५] (१७०९)

॥ १७८ ॥

१-३ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥
इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥ २ ॥ (१७११)

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥ ३ ॥[३६](१७१२)

॥ १७९ ॥

(१-३) १ शिबिरौशीनरः, २ प्रतर्दनः काशिराजः, ३ वसुमना रौहिदश्वः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १ ॥
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २ ॥
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ ॥ [३७] (१७१५)

॥ १८० ॥

१-३ जय ऐन्द्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ १ ॥
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ ३ ॥ [३८](१७१८)

॥ १८१ ॥

(१-३) १ प्रथो वासिष्ठः, २ सप्रथो भारद्वाजः, ३ घर्मः सौर्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथंतरमा जभारा वसिष्ठः ॥ १ ॥
अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥ २ ॥
तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥ ३ ॥ [३९] (१७२१)

॥ १८२ ॥

१-३ तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ १ ॥
नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ २ ॥
तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥[४०](१७२४)

॥ १८३ ॥

१-३ प्रजावान् प्राजापत्यः । १ यजमान, २ यजमानपत्नी, ३ होत्राशिषः । त्रिष्टुप् ।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥ १ ॥
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥ २ ॥
अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥ ३ ॥[४१](१७२७)

॥ १८४ ॥

१-३ त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । १ विष्णु-त्वष्टृ-प्रजापति-धातारः, २ सिनीवाली-सरस्वती-अश्विनः, ३ अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १ ॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ २ ॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ ॥ [४२] (१७३०)

॥ १८५ ॥

१-३ सत्यधृतिर्वारुणिः । आदित्यः (स्वस्त्ययनम्) । गायत्री ।

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ १ ॥ (१७३१)

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ २ ॥
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३ ॥[४३](१७३३)

॥ १८६ ॥

१-३ उलो वातायनः । वायुः । गायत्री ।

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे । प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा । स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥
यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे ॥ ३ ॥[४४](१७३६)

॥ १८७ ॥

१-५ वत्स आग्नेयः । अग्निः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः ॥ १ ॥
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः ॥ २ ॥
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ३ ॥
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४ ॥
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ५ ॥[४५](१७४१)

॥ १८८ ॥

१-३ श्येन आग्नेयः । जातवेदा अग्निः । गायत्री ।

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् । इदं नो बर्हिरासदे ॥ १ ॥
अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः । महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥
या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥ ३ ॥[४६](१७४४)

॥ १८९ ॥

१-३ सार्पराज्ञी । आत्मा, सूर्यो वा । गायत्री ।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥[४७](१७४७)

॥ १९० ॥

१-३ अघमर्षणो माधुच्छन्दसः । भाववृत्तम् । अनुष्टुप् ।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥[४८](१७५०)

॥ १९१ ॥

१-४ संवनन आङ्गिरसः । १ अग्निः, २-४ संज्ञानम् । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥[४९] (१७५४)

॥ इति दशमं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ ऋग्वेदसंहिता समाप्ता ॥

मंत्रसंख्या

नवममण्डलस्यान्तपर्यन्तं	८७९८
दशममण्डलस्य	१७५४
(वालखिल्यसहितः) सर्वयोगः	१०५५२
वालखिल्यमंत्राः	८०
(वालखिल्यरहितः) सर्वयोगः	१०४७२

यजुर्वेद संहिता

वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल

यजुर्वेद-संहिता ।

अथ प्रथमोऽध्यायः।

॥ओ३म्॥ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि ।
परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥२॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥३॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ॥४॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥५॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥६॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥७॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।
देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

वा० प० १

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥ ११ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥१२॥

युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ १३ ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ।
अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ १५ ॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ सङ्घातꣳ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह ।
ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥१७॥

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वाऽदितिर्वेत्तु ।
धिषणाऽसि पर्वती प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु दिवस्कम्भनीरसि धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥१९॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा ।
दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥२०॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन । सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥२१॥

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ २२ ॥

मा भेर्मा संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४॥

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि । सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ २७ ॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥ २८ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।
अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ २९ ॥

अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ।
अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥३१॥

[अध्यायः १, कण्डिका: ३१, मंत्र-संख्या १३७]

इति प्रथमोऽध्यायः ।

—०—

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ॥ २ ॥

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ ३ ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ४ ॥

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद । ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ६ ॥

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ।
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥७॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥९ ॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या
नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥ १० ॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे
ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ॥ ११ ॥

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ १२ ॥

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु ।
विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥ १३ ॥

एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ।
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥ १४ ॥

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदतां
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य
मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं
प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वाऽऽदित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा
वृष्ट्यावताम् । व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ
ततो नो वृष्टिमावह । चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः ।
तं त एतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ।
यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥ १९ ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या अविषं नः
पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥२०॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः ।
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥२१॥

संबर्हिरङ्क्ताꣳ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः ।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥ २२ ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।
पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे
विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां
विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मा-
दन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २६ ॥

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना
भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥२७॥

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा ।
अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः ॥ २९ ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः
पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो
गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त ॥ ३२ ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥ ३३ ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

[अ० २, कं० ३४, मं० सं० ९५]

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २ ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

उप त्वाऽग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥ ४ ॥

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥ ७ ॥

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ८ ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ १२ ॥

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥

अयं ते योनिरृत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १४ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ १७ ॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि । वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम् ।
अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन ।
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मिषीय ॥ १९ ॥

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ
रायस्पोषं वो भक्षीय ॥ २० ॥

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये । इहैव स्त मापगात ॥ २१ ॥

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन ।
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ २२ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानꣳ स्वे दमे ॥ २३ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २४ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ २५ ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

इड एह्यदित एहि काम्या एत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ २७ ॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ २८ ॥

यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

मा नः शꣳसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ३१ ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥ ३२ ॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ३३ ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याथ्ँ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्यं प्रजां मे पाहि शथ्ँस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ॥३७॥
आ गन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् । अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥३८॥
अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥३९॥
अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्धनः । अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह आ यच्छस्व ॥४०॥
गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि ।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥४१॥
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः । गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥४२॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवथ्ँ शग्मथ्ँ शंयोः शंयोः ॥४३॥
प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥४४॥
यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥४५॥
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥
अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥४७॥
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥४८॥
पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरा पत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जथ्ँ शतक्रतो ॥४९॥
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं नि हराणि ते स्वाहा ॥५०॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५१॥
सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५२॥
मनो न्वाह्वामहे नाराशथ्ँसेन स्तोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥५३॥
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥५४॥

बा० ब० १

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातथ्ँ सचेमहि ॥५५॥
वयथ्ँ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥५६॥
एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥५७॥
अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥५८॥
भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥५९॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥६०॥
एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिथ्ँसन्नः शिवोऽतीहि ॥६१॥
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥६२॥
शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिथ्ँसीः ।
नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥६३॥

[अ० ३, कं० ६३, मं० सं० ७९]

इति तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे ।
ऋक्सामाभ्याथ्ँ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम ।
इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व । स्वधिते मैनथ्ँ हिथ्ँसीः ॥१॥
आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वथ्ँ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाथ्ँ शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥ २ ॥
महीनां पयोऽसि वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।
वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥ ३ ॥
चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

आ वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे । आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥५॥
स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याथ्ँ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥६॥
आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥७॥
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥८॥
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः ।
शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हिथ्ँसीः ॥९॥
ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि । उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यथ्ँहस आस्य यज्ञस्योदृचः ॥१०॥
व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसथ्ँ सुतीर्था नो असद्वशे । ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥११॥
श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ।
ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः ॥१२॥
इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् ।
अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमा विशत पृथिव्या सम्भव ॥१३॥
अग्ने त्वथ्ँ सु जागृहि वयथ्ँ सु मन्दिषीमहि । रक्षा णो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥१४॥
पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् ।
वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥१५॥
त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ।
रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥१६॥
एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥१७॥

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥१८॥
चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ॥१९॥
अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ।
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमथ्ँ रुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥२०॥
वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिरा चके ॥२१॥
अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयथ्ँ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥२२॥
समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा ।
मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ॥२३॥
एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाथ्ँ साम्राज्यं गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्राह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥२४॥
अभि त्यं देवथ्ँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवथ्ँ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ।
प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥२५॥
शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन ।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण क्रीयसे
सहस्रपोषं पुषेयम् ॥२६॥
मित्रो न एहि सुमित्रधः इन्द्रस्योरुमा विश दक्षिणमुशन्नुशन्तथ्ँ स्योनः स्योनम् ।
स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥२७॥
परि माऽग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ अनु ॥२८॥
प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥२९॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद।
अस्तभ्नाद्द्यां वृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आऽसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥३०॥

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥३१॥

सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्। यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥३२॥

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥३३॥

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि।
मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अघायवो विदन्।
श्येनो भूत्वा परा पत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ संस्कृतम् ॥३४॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥३५॥

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि
वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमा सीद ॥३६॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥३७॥

[अ० ४, कं० ३७, मं० सं० ८९]

इति चतुर्थोऽध्यायः।

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा
श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि। गायत्रेण त्वा छन्दसा
मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥२॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥३॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा।
स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥४॥

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं
देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥५॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि।
सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥६॥

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥७॥

या ते अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा।
या ते अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा।
या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत्स्वाहा ॥८॥

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। विदेदग्निर्नभो
नामो ऽग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा
दधे विदेदग्निर्नभो नामो ऽग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि
यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामो ऽग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि
यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ॥९॥

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व
सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥१०॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः
पातु विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ॥११॥

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा
सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यस्या वह देवान् यजमानाय स्वाहा
भूतेभ्यस्त्वा ॥१२॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः
पुरीषमसि ॥१३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥१४॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥१५॥

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥१६॥

देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्।
स्वं गोष्ठमा वदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन्
पृथिव्याः ॥१७॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि।
बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥२२॥

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं
तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धु-
र्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां
किरामि ॥२३॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥२४॥

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्
रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां वलगहना उप दधामि वैष्णवी
रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥२५॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीर्
दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥२६॥

उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण
धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह
प्रजां दृꣳह ॥२७॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥२८॥

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥२९॥

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥३१॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः
सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदन
ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥३२॥

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य
द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन्पथि देवयाने भूयात् ॥३३॥

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माऽग्नयः
पिपृत माऽग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट ॥३४॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाꣳ समित्। त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु
यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥३५॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥३६॥

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३७॥

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥३८

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ।
एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२ उपागा इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण
स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥३९॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि ।
यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥४०॥

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥४१
अत्यन्याँ२ अगां नान्याँ२ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः ।
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा ।
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥४२॥

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या सम्भव ।
अयꣳ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥४३॥
[अ० ५, कं० ४३, मं० सं० १५०]

इति पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां
ग्रीवा अपि कृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै
त्वा शुन्धन्तांल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥१॥

अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु
सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥२
बा० च० ३

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमव भारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥३॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥४॥

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥५॥

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् ।
दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥६॥
उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥७॥
रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि ।
ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥८॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नि युनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता
सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥९॥

अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः ।
सं ते प्राणो वातेन गच्छताꣳ समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥
घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाꣳ रेवति यजमाने प्रियं धा आ विश ।
उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव ।
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥११॥
माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त आतानानर्वा प्रेहि । घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥१२॥
देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥१३॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि
नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥१४॥

मनस्त आ प्यायतां वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतां चक्षुस्त आ प्यायताꣳ
श्रोत्रं त आ प्यायताम् । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु
शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥१५॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्ष इदमहꣳ रक्षोऽभि तिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽव बाध इदमहꣳ
रक्षोऽधमं तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य
वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१६॥
इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥१७॥
सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा
समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या ऊष्मणो व्यथिषत् प्रयुतं द्वेषः ॥१८॥

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ।
दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥१९॥
ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे नि दीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गेअङ्गे निधीतः ।
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳ समेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥२०॥
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥२०॥
समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ
गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा
यज्ञं गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाऽग्निं वैश्वानरं गच्छ
स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनाऽऽपृण स्वाहा ॥२१
मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२२
हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ२ आ विवासति ।
हविष्मान् देवो अध्वरो हविष्माँ२ अस्तु सूर्यः ॥२३॥
अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ
विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥२५॥

सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ।
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥२६॥
देवीरापो अपां नपाद्यो व ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥२७॥
कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥२८॥
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥२९॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आ ददे रावाऽसि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् ।
उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥३०॥
मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत
प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वि तृषन् ॥३१॥
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वाऽऽदित्यवत इन्द्राय त्वाऽभिमातिघ्ने ।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥३२॥
यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥३३॥
१ श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥३४॥
मा भेर्मा सं विक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
२ पाप्मा हतो न सोमः ॥३५॥
प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश आ धावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥३६॥
त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥३७॥
[अ० ६, कं० ३७, मं० सं० ११७]

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः ।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥१॥

मधुमतीर्न इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा
स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥२॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांꣳशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता
भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥३॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य राय एषो यजस्व ॥४॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥५॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥६॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥७॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ।
उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥८॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् ।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥९॥

राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा
युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥१०॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥११॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ।
उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो
देवास्त्वा शुक्रपाः प्र णयन्त्वनाधृष्टासि ॥१२॥

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥१३॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सꣳस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१४॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाꣳस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत् ॥१५॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपाꣳ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ।
उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥१६॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः
पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्र णयन्त्वनाधृष्टासि ॥१७॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥१८॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१९॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः ।
पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥२०॥

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इष ऊर्जे
पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा
देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥२१॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै
त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२२॥

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
ग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-
बृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि ॥२३॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम
एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममव नयामि ।
अथा न इन्द्र इद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥२५॥

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते अꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥२६॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे
पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे
वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२७॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे
पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२८॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥२९॥

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वो-
पयामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वो-
पयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतो-
ऽसि सहस्याय त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वोपयाम-
गृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥३०॥

इन्द्राग्नी आ गतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥३१॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥३२॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३३॥

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ।
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥३४॥

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३५॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।
उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ॥३६॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँ२रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७॥

मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८॥

महाँ२ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥३९॥

महाँ२ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥४०॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा ॥४१॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥४२॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥४४॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा वि भजतु ।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् ।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमा विशत ॥४६॥

अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय
त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा
मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो
ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

[अ० ७, कं० ४८, मं० सं० १४०]

इति सप्तमोऽध्यायः।

अथाष्टमोऽध्यायः।

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा। विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥१॥
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥
कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥
विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥ ५ ॥
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥
उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥
उपयामगृहीतोऽसि सुशर्माऽसि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ२ ऋध्यासम्।
अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताऽभूत्।
अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा।
प्रजापतिर्वृषाऽसि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥१०॥
उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा। हर्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥११॥
यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो
भक्षयामि ॥१२॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस एनसोऽवयजनमसि।
यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥१३॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१४॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥१५॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१६॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥१७॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः।
भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥

याँ२ आवह उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥१९॥

वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह।
ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुप याहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥२१॥

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥२२॥
माहिर्भूर्मा पृदाकुः। उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।
नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥२३॥
अग्नेरनीकमप आ विवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम्।
दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥२४॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥२५॥
देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥२६॥
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि।
देवानाꣳ समिदसि ॥२७॥
एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथाऽयं वायुरेजति यथा समुद्र एजति।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥२८॥
यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥२९॥
पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः।
एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताꣳ स्वाहा ॥ ३० ॥
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥ ३१ ॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३४॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥३५॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥३६॥
इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे।
अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वं देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमू सुतम्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे।
इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३९ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय।
सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥
आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः।
पुनरूर्जा नि वर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ ४२ ॥
इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ ४३ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥४४ ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४५॥
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत्।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥४६॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥४७॥
व्रेशीनां त्वा पत्मन्ना धूनोमि कुकूननानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि
भन्दनानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि
मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि शुक्रं त्वा शुक्र आ धूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥४८॥
ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः ।
यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९॥
उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा
त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥५०॥
इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।
उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥५१॥
सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम ।
दिवं पृथिव्या अध्याऽरुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तं-तमिद्धतं वज्रेण तं-तमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳ शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ।
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ॥५३॥
परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः ।
सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥५४॥
इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः
शिपिविष्ट ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥५५॥
प्रोह्यमाणः सोम आगतो वरुण आसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्र इन्द्रो हविर्धाने
ऽथर्वोपावह्रियमाणः ॥५६॥
विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपा आप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः
सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः ॥५७॥
विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः
प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशꣳसाः ॥५८॥

सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो
ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥५९॥
देवान्दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु
पितॄन्पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥६०॥
चतुस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳ स्वधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नꣳ सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥६१॥
यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान ।
स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाꣳ रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२॥
आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥६३॥

[अ०८, कं० ६३, मं० सं० १५०]

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः ।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा ॥१॥
ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा
जुष्टतमम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते
योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसद-
मुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥२॥
अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तम-
मुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥३॥
ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभ-
मुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।
सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥४॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायं वाजꣳ सेत् ।
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥५॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः ।
देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥६॥
वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः । ते अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिञ्जवमा दधुः ॥७॥
वातरꣳहा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥८॥
जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥९॥
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहम् ।
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवस इन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहम् ॥१०॥
बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत ।
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥११॥
एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो
विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो
विमुच्यध्वम् ॥१२॥
देवस्याहꣳ सवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् ।
वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥१३॥
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥१४॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥१५॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१६॥
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥१७॥
वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१८॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ।
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥१९॥
आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये
स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय
स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥२०॥
आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता
अभूम ॥२१॥
अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः ।
नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राड्
यन्ताऽसि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥२२॥
वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा ॥२३॥
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नि यच्छतु स्वाहा ॥२४॥
वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परि याति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥२५॥
सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा ॥२६॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ॥२७॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव।
प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि स्वाहा ॥२८॥
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥
अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत्तमुज्जेषम् अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं
विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१
पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षडृतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः
सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥३२
मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषम्
इन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्ता-
मुज्जेषम् ॥ ३३ ॥
वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषꣳ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ
स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम् अदितिः
षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोम-
मुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥
एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा
यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा
मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा
सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥
ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा
विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः
स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥
अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य। दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः
स्वाहा रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥
सविता त्वा सवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो वनस्पतीनाम्।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥३९॥

बा० य० ५

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ ४० ॥

[अ० ९, कं० ४०, मं० सं० ११७]

इति नवमोऽध्यायः।

अथ दशमोऽध्यायः।

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः।
याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहाऽर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे
दत्त स्वाहाऽपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि
स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां
गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥
सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे
दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै
दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त जनभृत
स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा
राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र-
ममुष्मै दत्त। मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाः अनाधृष्टाः सीदत
सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा
सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय
स्वाहाऽꣳशाय स्वाहा भगाय स्वाहाऽर्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥
पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥ ६ ॥
सधमादो द्युम्निनीराप एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ ७ ॥
क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयाऽयं वृत्रं वधेत्। दृवाऽसि
रुजाऽसि क्षुमाऽसि। पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥८॥
आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रता-
वावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा ॥ ९ ॥
अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमा रोह गायत्री त्वाऽवतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त
ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥
दक्षिणामा रोह त्रिष्टुप् त्वाऽवतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥
प्रतीचीमा रोह जगती त्वाऽवतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥
उदीचीमा रोहानुष्टुप् त्वाऽवतु वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वामा रोह पङ्क्तिस्त्वाऽवतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू
वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥
सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥ १५ ॥
हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च।
आ रोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १६ ॥
सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभि षिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण।
क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥
इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय।
इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥१८॥

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः।
ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः।
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा।
रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥
इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१
मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम।
तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन् देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥
अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा।
पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मो अहं त्वाम् ॥ २३ ॥
हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २४ ॥
इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि ॥
इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥
स्योनाऽसि सुषदाऽसि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामा सीद सुषदामा सीद क्षत्रस्य योनिमा सीद ॥ २६ ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥
अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्माऽसि सविताऽसि सत्यप्रसवो
वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः।
बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥
अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा
स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥
सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणे-
नौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्र सर्पामि ॥ ३० ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

[अ०१०, कं० ३४, मं० सं० १३९

इति दशमोऽध्यायः ।

अथैकादशोऽध्यायः ।

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत् ॥ १ ॥
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान् ॥३॥
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥
देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ ७ ॥
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्र णय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आ ददे गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं
पुरीष्यमङ्गिरस्वदा भर त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुꣳ सधस्थ आ । जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् १०
हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरदानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

योगे-योगे तवस्तरं वाजे-वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा भराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमो
ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ॥ १७ ॥
आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो वि धूनुते । अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते ॥१८॥
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् । भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥१९॥
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्माऽन्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥ २० ॥
उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २१ ॥
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥
आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्री स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥
परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रꣳ सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवे-दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २६ ॥
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ २७ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामि ।
ज्योतिष्मन्तं त्वाऽग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम् ।
शिवं प्रजाभ्योऽहिꣳसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः ॥ २८ ॥
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥
शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽछिद्रे बहुले उभे । व्यचस्वती सं वसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥ ३० ॥
सं वसाथाꣳ स्वर्विदा समीची उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥
पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणे-रणे ॥ ३४ ॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३६ ॥
सꣳसीदस्व महाँ२ असि शोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ३७
अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ३८
सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्स्वः । वासो अग्ने विश्वरूपꣳ सं व्ययस्व विभावसो ४०
उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया । दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४१॥
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्माऽन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥४५॥
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ।
वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्न आ याहि वीतये ॥ ४६ ॥
ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ।
ओषधयः प्रति मोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः ।
व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥
ओषधयः प्रति गृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमाऽसदत् ४८
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥
मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥
रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥
सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥५५॥
सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥
उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साऽग्निं बिभर्तु गर्भ आ । मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवाऽसि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाᳫं रायस्पोषं
गौपत्यᳫं सुवीर्यᳫं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवाऽस्यन्त-
रिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳫं रायस्पोषं गौपत्यᳫं सुवीर्यᳫं सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा
कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवाऽसि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳫं रायस्पोषं गौपत्यᳫं
सुवीर्यᳫं सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्-
ध्रुवाऽसि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाᳫं रायस्पोषं गौपत्यᳫं सुवीर्यᳫं सजातान्यजमानाय ॥ ५८ ॥

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये ।
पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्व-
दादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन
छन्दसाऽङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट
देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखे
धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे
वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे
ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे
जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥ ६१ ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आ पृण ॥ ६३ ॥

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतां त उखां परि ददाम्यभित्या एषा मा भेदि ॥६४॥

वसवस्त्वाऽऽछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाऽऽछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्व-
दादित्यास्त्वाऽऽछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आछृन्दन्त्वानु-
ष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

आकूतिमग्निं प्रयुजᳫं स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजᳫं स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजᳫं स्वाहा
वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजᳫं स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥६६॥
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥६७॥
मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६८ ॥

दृᳫंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृताऽसि ।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६९ ॥
द्रन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७० ॥
परस्या अधि संवतोऽवराँ२ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ२ अव ॥ ७१ ॥
परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहा गहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥
यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥
अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥
नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥
याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेऽपि दधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥
दᳫंष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ२ उत ।
हनुभ्याᳫं स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥ ७८ ॥
ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः । निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ॥८०॥
सᳫंशितं मे ब्रह्म सᳫंशितं वीर्यं बलम् । सᳫंशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वाँ२ अहम् ॥ ८२ ॥
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र-प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

[अ० ११, कं० ८३, मं० सं० १११]

इत्येकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳫं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥ २ ॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ३ ॥
सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाᳫंस्यङ्गानि
यजूᳫंषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः ।
सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आ रोह पृथिवीमनु वि क्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आ रोहान्तरिक्षमनु वि क्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आ रोह दिवमनु वि क्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द आ रोह दिशोऽनु वि क्रमस्व ॥ ५ ॥
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ६ ॥
अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा नि वर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥
अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमा कृधि पुनर्नो रयिमा कृधि ॥ ८ ॥
पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा । पुनर्नः पाह्यᳫंहसः ॥ ९ ॥
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥
आ त्वाऽहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥११॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमᳫं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १२ ॥
अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषाऽऽगात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १३ ॥
हᳫंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ १४ ॥
सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनां तपसा माऽर्चिषाऽभि शोचीरन्तरस्याᳫं शुक्रज्योतिर्वि भाहि ॥ १५ ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्यास्त्वᳫं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥
शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१७॥
दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ १९ ॥
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाᳫंसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥ २० ॥
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥ २२ ॥
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥
उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥
दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ २८ ॥
अस्ताव्यग्निर्नराᳫं सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥
समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आऽस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥३१॥
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥
प्र-प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥
आपो देवीः प्रति गृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ३६ ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ ३७ ॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरा ऽसदः ॥३८॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याꣳ शिवतमः ॥ ३९ ॥
पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ४० ॥
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषाꣳसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥
पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥
अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ ४५ ॥
संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ।
अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥
अयꣳ सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ४९ ॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥
इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५२॥
चिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद परिचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५३॥
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ५५ ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥
समितꣳ सं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥
सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥ ५८ ॥
अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहाऽसदः ॥५९॥
भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥
मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥
असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥
नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं वि चृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥
यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय ।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाऽहं परि वेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते वि ष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥
निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभि चष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥
शुनꣳ सु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मे ॥ ६९ ॥
घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाऽभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥
लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवꣳ सोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ७१
कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥
वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥
सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः ।
सजोषसावश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥
या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥
ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ ७७ ॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥
अश्वावतीꣳ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥८१॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥
इष्कृतिर्नाम वो माताऽथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः । सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥८३॥
अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥८४ ॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत । ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥८९॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ ९० ॥
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥ ९२ ॥
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९३ ॥
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥
ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥
नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥९७॥
त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥९८॥
सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥
दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ२ अभिदासति ॥१०१॥
मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०२॥
अभ्या वर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥ १०३ ॥
अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥
इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ १०७॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥१०८॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥११०॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥१११॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥११२॥

सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥११३॥

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥११४॥

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥११५॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥११६॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको वि राजति ॥११७॥

[अ०१२, कं० ११७, मं० सं० ११९]

इति द्वादशोऽध्यायः।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः।

मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१रनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूꣳष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥१०॥

प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशꣳसो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥११॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ२ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥१२॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥१३॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ।
इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥१४॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५॥

ध्रुवाऽसि धरुणाऽऽस्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥१६॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥१७॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥१८॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
अग्निष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१९॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः-परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥२०॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥२१॥

यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥२२॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥२३॥

विराड्ज्योतिरधारयत्स्वराड्ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२४॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् २५

अषाढाऽसि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्याऽसि सा मा जिन्व ॥२६॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥२७॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२८॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥२९॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभि ताप्सीन्माऽग्निर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत्स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम् ।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥३१॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥३२॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३३॥

ध्रुवाऽसि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय । सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥३६॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ२ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥३७॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥३८॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥३९॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदा असि सहस्राय त्वा ॥४०॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परि वृङ्धि हरसा माऽभि मꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४२॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥४३॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४४॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥४५॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४७॥

इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४८॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४९॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५०॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो नि षीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५१॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥५२॥

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वाऽयने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥५३॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५४॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५५॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५६॥

इदमुत्तरात्स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविꣳश एकविꣳशाद्वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥५७॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यो लोकं ता इन्द्रम् ॥५८॥

[अ० १३, कं० ५८, मं० सं० १३१]

इति त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवं योनिमा सीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ १ ॥
कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा सं विशस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा ऽऽ यजस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६॥
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥
प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या वि भाहि श्रोत्रं मे श्लोकय ।
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥
मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो बस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द उक्षा वयः ककुप् छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥
अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्वयोऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् ॥ १० ॥
इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि बाधसे ॥ ११ ॥
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्ट्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥
राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१५॥
इषश्चोर्जश्च शारदावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
शारदावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥१६॥
आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥
मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥ १८ ॥
पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥
अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ २० ॥
मूर्धाऽसि राड् ध्रुवाऽसि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री ।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकं ता इन्द्रम् ॥ २२ ॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पंञ्चदृशो व्योमा सप्तदृशो धुरुणं एकविंᳬंशः प्रतूर्तिरष्टादृशो—
स्तपों नवदृशो ऽभीवुर्त्तः संविंᳬंशो वर्चो द्वाविंᳬंशः सम्भरंणस्त्रयोविंᳬंशो
योनिंश्चतुर्विंᳬंशो गर्भाः पञ्चविंᳬंशा ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंᳬंशः
प्रतिष्ठा त्रंयस्त्रिंᳬंशो ब्रध्नस्यं विष्टपं चतुस्त्रिंᳬंशो नाकः षट्त्रिंᳬंशो
विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंᳬंशो धूर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमं
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रᳬं स्पृतं पंञ्चदृश स्तोमों
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रᳬं स्पृतᳬं सप्तदृश स्तोमों
मित्रस्यं भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृत एकविंᳬंश स्तोमः ॥ २४ ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुंष्पात् स्पृतं चतुर्विंᳬंश स्तोमं
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पंञ्चविंᳬंश स्तोमो
ऽदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोर्ज स्पृतं त्रिणव स्तोमो
देवस्यं सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यᳬं समीचीर्दिशं स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥ २५ ॥

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिंपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिंᳬंश स्तोमं
ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतᳬं स्पृतं त्रयस्त्रिंᳬंश स्तोमः ॥ २६ ॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेंतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविंशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सींदतम् ।२७।

एकयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्
तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासी—
देकादृशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसं—
स्त्रयोदृशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्
पञ्चदृशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्
सप्तदृशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

वा० य० ८

नवदृशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तां—
मेकविंᳬंशत्यास्तुवतैकंशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्
त्रयोविंᳬंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाऽधिपतिरासीत्
पञ्चविंᳬंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्
सप्तविंᳬंशत्याऽस्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसंवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन् ।३०।

नवविंᳬंशत्याऽस्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासी—
देकत्रिंᳬंशताऽस्तुवत प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसं—
स्त्रयस्त्रिंᳬंशताऽस्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासी—
लोके तो इन्द्रम् ॥ ३१ ॥

[अ० १४, कं० ३१, मं० सं० १६५]

इति चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडँस्तव स्याम शर्मंस्त्रिवरूथ उद्भौ ॥ १ ॥

सहसा जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयᳬं स्याम प्र णुदा नः सपत्नान् ॥ २ ॥

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंᳬंश स्तोमो वर्चो द्रविणम् ।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो
व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप्छन्द—
स्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दो ऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो
विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरो भ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो
निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सᳬंस्तुप्छन्दो ऽनुष्टुप्छन्द
एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो
विशालं छन्द—श्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्द—स्तन्द्रं छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः ॥ ५ ॥

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्वा—न्वित्या दिवा दिवं जिन्व
सन्धिनाऽन्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व
विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाऽहर्जिन्वा—नुया रात्र्या रात्रीं जिन्वो—
शिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व ॥ ६ ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सᳬंसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वै—डेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वो—
त्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वा—भिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वा ऽनुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥८॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा
ऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वो—त्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वो—
त्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वा ऽधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं
श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु
दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे
लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता पञ्चदृशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं
श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु
दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे
लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदृशस्त्वा स्तोमः
पृथिव्याᳬं श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳬं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा
प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

स्वराडस्युदीची दिङ्मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंᳬंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं
श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजᳬं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा
देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे
स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंᳬंशौ त्वा
स्तोमौ पृथिव्याᳬं श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताᳬं शाक्वररैवते सामनी
प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधि-
पतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो
नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाᳬंसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाᳬं रेताᳬंसि जिन्वति ॥ २० ॥
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ २४ ॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ॥ २६ ॥
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने-वने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २८ ॥
सखायः सं वः सम्यञ्चमिषँ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ २९ ॥
सँसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ३० ॥
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥
विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥ ३३ ॥
स दुद्रवत्स्वाहुतः स दुद्रवत्स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवँ राधो जनानाम् ॥ ३४ ॥
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥
स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥
भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥
येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥ ४० ॥
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषँ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४१ ॥
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सँ सुजातासः सूरय इषँ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४२ ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषँ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४३ ॥
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रँ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४६ ॥
अग्निँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुँ सूनुँ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमँ रयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥
येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निँ स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं नि दधे नाके अग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥ ४९ ॥
तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥
आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥
अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥
सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् ।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानाऽन्वाताँसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ ५३ ॥
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५६ ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप
ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमँ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ६० ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमँ रथीनां वाजानाँ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥
आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाँ समुद्रस्य हृदये ।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृँह दिवं मा हिँसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
सूर्यस्त्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥
सहस्रस्य प्रमाऽसि सहस्रस्य प्रतिमाऽसि सहस्रस्योन्माऽसि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

[अ० १५, कं० ६५, मं० सं० १३६]

इति पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ षोडशोऽध्यायः ।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ २ ॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिँसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मँ सुमना असत् ॥ ४ ॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहीँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥ ५ ॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनँ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाँ हेड ईमहे ॥ ६ ॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥ ११ ॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥ १२ ॥
अवतत्य धनुष्ट्वँ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥
नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ १६ ॥
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः
पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो
नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥ १७ ॥
नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो
नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥
नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौ—
षधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो
नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन
आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो
नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥
नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते
तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो
नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥
नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो
नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ।२२।
नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो
नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥ २३ ॥
नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो
नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः ।२४।
नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥२५॥
नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो
नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥
नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो
नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥
नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च
पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥
नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च
नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥ २९ ॥
नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च
सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥
नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चा-
वस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

वा० य० ९

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चा-
पगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥
नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चा-
वसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥
नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चा-
शुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥
नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च
श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ ३५ ॥
नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चा-
युधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥
नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च
सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥
नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च
विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥
नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च
रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥
नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च
दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥४०॥
नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च
शिवतराय च ॥ ४१ ॥
नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च
कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥
नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च
पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥
नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च
निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चो-
लप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥
नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च
प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानां
हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥
द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किंचनाममत् ॥ ४७ ॥
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥४९॥
परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥ ५१ ॥
विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रं हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ।५२॥
सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५४॥
अस्मिन् महत्यर्णवे ऽन्तरिक्षे भवा अधि । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५५॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५६॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५७॥
ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५८॥
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५९॥
ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६०॥
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६१॥
येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६२॥
य एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६३॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश
प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश
प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश
प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

[अ० १६, कं० ६६, मं० सं० १८०]

इति षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतं पयः ।
तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः संरराणा अश्मंस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्
यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥
इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं
चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता
मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥
ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः ।
घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥
समुद्रस्य त्वाऽवकयाग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥
हिमस्य त्वा जरायुणाऽग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ५ ॥
उप ज्मन्नुप वेतसेऽव तर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरा गहि
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णं शिवं कृधि ॥ ६ ॥
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥ ७ ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ इहा वह । उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ ९ ॥
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ १० ॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ११ ॥
नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य ।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४ ॥
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ १५ ॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ आ विवेश ॥ १७ ॥
किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथाऽऽसीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ १९ ॥
किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ २१ ॥
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ २२ ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत् ॥ २४ ॥
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २५ ॥
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २६ ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥
त आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २८ ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कꣳ स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥ २९ ॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥ ३२ ॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥ ३३ ॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३४ ॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ२ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३६ ॥
बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ ३७ ॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनु सꣳ रभध्वम् ॥ ३८ ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ३९ ॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ उ देवा अवता हवेषु ॥ ४३ ॥
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते । गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व माऽमीषां कं चनोच्छिषः ॥ ४५ ॥
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथाऽसथ ॥ ४६ ॥
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसाऽपव्रतेन यथाऽमी अन्यो अन्यं न जानन् ॥ ४७ ॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥
मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥
उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳ सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ५० ॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥
यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ ५४ ॥
समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥
दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥ ५६ ॥
वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ।
ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५९ ॥
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ६० ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥
देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ आ च वक्षत् ॥ ६२ ॥
वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ अकः ॥ ६३ ॥
उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ ६५ ॥
प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमाऽरुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥ ६८ ॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ ७० ॥
अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्वᳬं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृᳬंह ॥ ७२ ॥
आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमा सीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥
ताᳬं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीᳬंषि जुहुरे समिद्धे ॥ ७५ ॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वाᳬं शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रᳬं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ७७ ॥
चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः ।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहाऽदाभ्यᳬं हविः ॥ ७८ ॥
सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च । शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यᳬंहाः ॥ ८० ॥
ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ८१ ॥
ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥
वा० य० १०

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥
ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन ।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥
स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥
इमᳬं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳬं सदनमा विशस्व ॥ ८७ ॥
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥
समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ उदारदुपाᳬंशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ८९ ॥
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ ९० ॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ आ विवेश ॥ ९१ ॥
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकᳬं सूर्य एकं जजान वेनादेकᳬं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ९२ ॥
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ९३ ॥
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ९४ ॥
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ९५ ॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥ ९७ ॥
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥
धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ ९९ ॥
[अ० १७, कं० ९९, मं० सं० १०३]

इति सप्तदशोऽध्यायः ।

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

…श्लोकश्च मे
वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे
श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥
प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे
श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥
ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे
परूᳬंषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥
ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे
वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥
सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे
जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥
ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मे
ऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥
यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे
सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे
भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥
ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे
कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥
रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे
कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥
वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे
क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥
व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे
श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥
अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च
मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥
अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे
पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥
वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥
अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे
पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥
मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥
पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे
नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥
अᳬंशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपाᳬंशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च
मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥
आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे
मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे
हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

व्रतं च म ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।२३।

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविꣳशतिश्च म एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म एकत्रिꣳशच्च म एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।२५।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । इयं ते राण्मित्राय यन्ताऽसि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाऽऽधिपत्याय ॥ २८ ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च ।
स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ३० ॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसाऽऽगमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ३१ ॥
वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥
वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ२ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥
सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥३५॥
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥
ऋताषाडृतधामाऽग्निर्गन्धर्व—स्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३८ ॥
सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्व—स्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥
सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व—स्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्व—स्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्व—स्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्व—स्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥
स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहाऽवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥
यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ ४६ ॥
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥
रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ४९ ॥
स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा
स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥
अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥
इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५२ ॥
इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ५३ ॥
दिवो मूर्धाऽसि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ५४ ॥
विश्वस्य मूर्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥
इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहा गमेः ॥ ५६ ॥
इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टꣳ हविः । स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥ ५७ ॥
यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा ।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥
एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥
प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥
यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥
यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥
ऋचो नामास्मि यजूꣳषि नामास्मि सामानि नामास्मि ।
ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि ।
तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ६७ ॥
वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वाऽऽवर्तयामसि ॥ ६८ ॥
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ२ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥
वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७४ ॥
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

[अ० १८, कं० ७७, मं० सं० ८९]

इत्यष्टादशोऽध्यायः ।

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन । मधुमतीं मधुमता सृजामि सꣳ सोमेन ।
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
दधन्वा यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वे-
न्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳ सृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् ।
एष ते योनिर्मोदाय त्वाऽऽनन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्यो-
जोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति । श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ १० ॥

बा० व० ११

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः
प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरो
ऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा ।
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँ१रनु ॥ ४० ॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१॥
यं पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः ॥ ४६ ॥

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४७ ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया ।
सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाऽश्विना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता ॥ १४ ॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परि षिच्यते । अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥ १५ ॥

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥ १७ ॥

हविर्धानं यदश्विनाऽऽग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान् वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि । सोमस्य रूपꣳ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥ २१ ॥

धानानाꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः । सक्तूनाꣳ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः । यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥ २४ ॥

अर्धऋचैरुक्थानाꣳ रूपं पदैराप्नोति निविदः । प्रणवैः शस्त्राणाꣳ रूपं पयसा सोम आप्यते ॥ २५ ॥

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् । वैश्वदेवꣳ सरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳ सवनम् ॥ २६ ॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभि स्थालीराप्नोति ॥ २७ ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः । छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः । शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

त्वꣳ सोम प्र चिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँ१रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ५३ ॥

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ५४ ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५५ ॥

आऽहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः-सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥ ५९ ॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशंसे सोमपीथं य आशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् । तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ६५ ॥

त्वमग्न ईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६६ ॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ ६७ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ ६९ ॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ७१ ॥

सोमो राजामृतं सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७३ ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हंसः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणाऽऽवृत उल्बं जहाति जन्मना ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसं शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञं सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥ ८० ॥

तदस्य रूपममृतं शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः संरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः ॥ ८१ ॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ८२ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रं सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातं सब्वं तदारात् ॥ ८४ ॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

मुखं सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ९१ ॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ९२ ॥

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥ ९३ ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपां रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

तेजः पशूनां हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९५ ॥

[अ० १९, क० ९५, मं० सं० १९०]

इत्येकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥ १ ॥
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥२॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि
षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ ३ ॥
कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥
बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः ।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥
प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु ।
प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥१०॥
त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥
प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः
सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा
आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥
लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ्म आनतिरागतिः । मांसं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥१३॥
यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १४ ॥
यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १५ ॥
यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांसि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥१६॥
यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥
अपो अद्यान्वचारिषथ्ं रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आऽगमं तं मा सथ्ं सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून् कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥ २३ ॥
अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ २४ ॥
यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह । तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ २५ ॥
यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह । तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥
अथ्ंशुना ते अथ्ंशुः पृच्यतां परुषा परुः । गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥ २७ ॥
सिञ्चति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ २९ ॥
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतथ्ं सोमं पवित्र आ नय । पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥
यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधि श्रिताः ।
य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३३ ॥
प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे । वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥
अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥
समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिथ्ंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥
नराशथ्ंसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥
ईडितो देवैर्हरिवाँ२ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

वा० य० १९

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् न इन्द्रः प्राचीनथ्ं सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानथ्ं स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥
इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताथ्ं सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥ ४० ॥
उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥
दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ४२ ॥
तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥ ४३ ॥
त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥
वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥
स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ४६ ॥
आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ ४७ ॥
आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ ४८ ॥
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ ४९ ॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रथ्ं हवे-हवे सुहवथ्ं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रथ्ं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ५० ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

तस्य वयथ्ं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ५२ ॥
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन् विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ इहि ॥ ५३ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५४ ॥
समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः । दुहे धेनुः सरस्वती सोमथ्ं शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥
तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजाथ्ंसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥
इन्द्रायेन्दुथ्ं सरस्वती नराशथ्ंसेन नग्नहुम् । अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥
आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरश्विनाविषथ्ं समूर्जथ्ं सथ्ं रयिं दधुः ॥ ५८ ॥
अश्विना नमुचेः सुतथ्ं सोमथ्ं शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमा भरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥
कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः । इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥
उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रथ्ं सायमिन्द्रियैः । सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥
पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तथ्ं सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रथ्ं सचा सुते ॥ ६२ ॥
तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥
अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती । इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियथ्ं रूपथ्ं-रूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥
ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता । कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥
गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता । समधातथ्ं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ ६६ ॥
अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥
अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६८ ॥
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् । स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६९ ॥
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥ ७० ॥
य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७१ ॥
सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७२ ॥
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रथ्ं सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ ७३ ॥
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥
युवथ्ं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दथ्ंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ७७ ॥
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥ ७८ ॥
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिथ्ं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥ ७९ ॥
अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥
गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥
न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशथ्ंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥
ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥
अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताथ्ं सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

[अ० २०, कं० ९०, मं० सं० १००]

[पू० वि० मं० सं० १५८५]

इति विंशोऽध्यायः ।

इति पूर्वविंशतिः समाप्ता ।

अथोत्तरविंशतिः।

अथैकविंशोऽध्यायः।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥१॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः॥२॥

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्॥३॥

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि॥४॥

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्॥५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥६॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्। शतारित्राꣳ स्वस्तये॥७॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू॥८॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा॥९॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥१०॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥११॥

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः। गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः॥१२॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती। उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः॥१३॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः। अनुष्टुप्छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः॥१४॥

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः। बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः॥१५॥

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड्गौर्वयो दधुः॥१६॥

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः। त्रिष्टुप्छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः॥१७॥

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा। जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान्गौर्वयो दधुः॥१८॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः। विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः॥१९॥

त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना। द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः॥२०॥

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम्। ककुप्छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः॥२१॥

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत्। अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः॥२२॥

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः। रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२३॥

ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः। बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२४॥

वर्षाभिर्ऋतुनाऽऽदित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः। वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२५॥

शारदेन ऋतुना देवा एकविꣳश ऋभवः स्तुताः। वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२६॥

हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः। बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२७॥

शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः। सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२८॥

होता यक्षत्समिधाऽग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥२९॥

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३०॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३१॥

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३२॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाऽश्विनाऽश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३३॥

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३४॥

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाऽश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३५॥

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाऽश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३६॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३७॥

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३८॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाऽश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३९॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाऽऽज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳ स्वाहाऽग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥४०॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४१॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज॥४२॥

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताꣳ हविर्होतर्यज॥४३॥

होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवꣳ सरस्वती जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४४॥

होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४५॥

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान्प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४६॥

होता यक्षदग्निꣳ स्विष्टकृतमयाडग्निरश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड्वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड्वनस्पतेः प्रिया पाथाꣳस्ययाड्देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत्स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषताꣳ हविर्होतर्यज॥४७॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४८॥
देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती।
प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥४९॥
देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती।
बलं न वाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५०॥
देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्।
श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५१॥
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजाऽवतः।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५२॥

देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना।
वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३॥
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥
देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्याꣳ सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु।
ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५६॥
देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः।
ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५७ ॥
देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳ सोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५८ ॥
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागꣳ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभꣳ सुन्वन्नश्विभ्याꣳ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥ ५९ ॥
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥
त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ सङ्गतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्स्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥
[अ० २१, कं० ६१, मं० सं० ६१

इत्येकविंशोऽध्यायः।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः।

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे ॥ १ ॥
वा० प० १३.

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या।
सा नो अस्मिन्त्सुत आ बभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥ २ ॥
अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता। स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः ॥३॥
स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम्।
तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥ ४ ॥
प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि।
यो अर्वन्तं जिघाꣳसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्तः परः श्वा ॥ ५ ॥
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा
विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥६॥
हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा
प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा
सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा
जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा
सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥
यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा
शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा
विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा
शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा
वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा
यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ९ ॥
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये। स चेत्ता देवता पदम् ॥ १० ॥
देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे। सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥ ११ ॥
सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे। प्र देवाय मतीविदे ॥ १२ ॥
रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये। आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्। धिया भगं मनामहे ॥ १४ ॥
अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्। हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥
स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥
अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ२ आ सादयादिह ॥ १७ ॥
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः। गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥
विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि। ययुर्नामाऽसि शिशुर्नामाऽस्यादित्यानां पत्वाऽन्विहि देवा आशापाला एतं
देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षतेह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥१९॥
काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाऽऽधिमाधीताय
स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहाऽदित्यै मह्यै स्वाहा
ऽदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा
सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा
पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा
विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्। विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२१॥
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥
प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा
वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥
प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा
प्रतीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहो-
र्ध्वायै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहाऽवाच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२४॥
अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा
स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहा
ऽर्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा
स्तनयते स्वाहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा
शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा
प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा
दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥२७॥
नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा
मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहाऽऽर्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा
वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा
विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा
पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥
पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा
नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा
परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥
असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा
गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा
चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥ ३० ॥
मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा
नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा
तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाऽꣳहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥
वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा
मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहाऽन्त्याय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा
भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥ ३२ ॥
आयुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
व्यानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
मनो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा
यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ स्वाहा ॥ ३३ ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्यां स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा
स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

[अ० २२, कं० ३४, मं० सं० २६७]

इति द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा ।
यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव
यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।
यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव
यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् । एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥७॥
वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽऽदित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन
छन्दसा । भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्य एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥८॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥९॥
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः । अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ १२ ॥
वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ।
एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः । सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥१४॥
स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि
पिबैता अपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं
जेष्यसि पिबैता अपः । सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको
भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥ १७ ॥

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१८॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे
निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥२०॥
उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् । य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

यकासकौ शकुन्तिकाऽऽहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥
यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति । विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥२३॥
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ २४ ॥
माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः । विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥२५॥
ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥
ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥
यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥
यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ २९ ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥
यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥ ३१ ॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूꣳषि तारिषत् ॥ ३२ ॥
गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः । मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥
नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया । देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३६॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥
कस्त्वा छ्यति कस्त्वा वि शास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥
ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु । संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥
अर्धमासाः परूꣳषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥
दैव्या अध्वर्यवस्त्वा च्छ्यन्तु वि च शासतु । गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४२॥
द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते । सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥
कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥४५॥
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥
किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः ।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशा३ ॥ ४९ ॥
अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश ।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥
केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतद्ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳ स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥ ५१ ॥
पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥
का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

का ईमरे पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला ।
क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां वि सर्पति ॥ ५५ ॥
अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५७ ॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५८ ॥

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ५९ ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ६२ ॥
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥
होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः । जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६४ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६५ ॥

[अ० २३, कं० ६५, मं० सं० ८३]

इति त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याꣳ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ २ ॥

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ३ ॥

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाꣳ रोहिता रुद्राणाꣳ श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यत एन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥

धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान्ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥ १२ ॥

पष्ठवाहो विराज उक्षाणो बृहत्या ऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान्मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणाꣳ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

उक्ताः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥ १९ ॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥ २० ॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान्मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्मित्राय मद्गून्वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान्दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून्विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान्बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

प्रजापतये पुरुषान्हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीँश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

[अ० २४, कं० ४०, मं० सं० ४०]

इति चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दꣳष्ट्राभ्याꣳ सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजꣳ हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याꣳ शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रꣳ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा सङ्क्रोशैः प्राणान् रेष्माणꣳ स्तुपेन ॥ २ ॥

मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्माञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

मरुताᳬ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः
पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳬ
स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

पूषणं वनिष्ठुनाऽन्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां
वाजिनᳬ शेपेन प्रजाᳬ रेतसा चाषान्पित्तेन प्रदरान्पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता
नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्
क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान्कुक्षिभ्याᳬ समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

विधृतिं नाभ्या घृतᳬ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा
अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳬसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा
जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रᳬ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे ॥ १४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाᳬ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १५ ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणᳬ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १८ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १९ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ २० ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ २२ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ २३ ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ २४ ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनᳬ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

होताऽध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शᳬस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनᳬ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणᳬ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधᳬ शृतपाकं पचन्तु ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ३४ ॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो माᳬसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणं माँस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

चतुस्त्रिᳬशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता-ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ ४२ ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्माऽपियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्ताऽतिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुᳬसः पुत्राँ२ उत विश्वापुषᳬ रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताᳬ हविष्मान् ॥ ४५ ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमᳬ रयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४७ ॥

[अ० २५, कं० ४७, मं० सं० ५०]

इति पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सं नमतामद
आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः ।
सप्त सᳬसदो अष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥ ३ ॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमᳬ शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

इन्द्रा याहि वृत्रहन्पिबा सोमᳬ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वै—ष ते योनि—र्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वै—ष ते योनि—र्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥
वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वै—ष ते योनि—र्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥
उपयामगृहीतोऽस्यग्—नये त्वा वर्चस एष ते योनि—रग्नये त्वा वर्चसे ॥ ९ ॥
महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि ॥
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वै—ष ते योनि—र्महेन्द्राय त्वा ॥ १० ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः । अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ११ ॥
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ १२ ॥
एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १३ ॥
ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥ १४ ॥
उपह्वरे गिरीणाᳬ संगमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ १५ ॥
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रᳬ शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥
अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदाऽनु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारᳬ सोमपीतये ॥ २० ॥
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वᳬ हि रत्नधा असि ॥ २१ ॥
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥
तवायᳬ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमᳬ सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥
वा० य० १५

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ २४ ॥
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २५ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥
[अ० २६, कं० २६, मं० सं० ६२]

इति षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ३ ॥
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ४ ॥
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सᳬ रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ५ ॥
अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यᳬ सहवीराᳬ रयिं दाः ॥ ६ ॥
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥ ७ ॥
बृहस्पते सवितर्बोधयैनᳬ सᳬशितं चित्सन्तराᳬ सᳬ शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ ८ ॥

अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ९ ॥
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥
ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीᳬष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशᳬसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥
अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निᳬ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥
दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदᳬ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥ १९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्यᳬ शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥
पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३ ॥
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ २४ ॥
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानाᳬ समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २५ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २६ ॥
प्र याभिर्यासि दाश्वाᳬसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिᳬ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ २७ ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳬ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २८ ॥
नियुत्वान्वायवा गह्ययᳬ शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥
वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥
वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥
वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२
एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विᳬशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिᳬशता नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥ ३३
तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाᳬस्या वृणीमहे ॥ ३४ ॥
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ३५ ॥
न त्वावाँ२ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥
त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वᳬ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मᳬहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४० ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥ ४१ ॥
यज्ञा-यज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे ।
प्र-प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शᳬसिषम् ॥ ४२ ॥
पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥
ऊर्जो नपातᳬ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्ववितां भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४ ॥

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् ।
प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥
[अ० २७, कं० ४५, मं० सं० ४५]

इति सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥
होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् ।
इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥
होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३ ॥
होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४ ॥
होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ५ ॥
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ६ ॥
होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥
होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ८ ॥
होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम् ।
पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ९ ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥
होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥
देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् ।
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥
देवीर्द्वार इन्द्रꣳ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन् । आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च
मीवतापार्वाणꣳ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥
देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम् । अयाव्यन्याघा द्वेषाꣳस्यान्या
वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १५ ॥
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्धताम् ।
इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती
ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥
देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम् ।
हताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १७ ॥
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् ।
अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।१८।
देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्र वर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं
वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीꣳष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम् ।
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥
होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥
होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥
होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।
अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥
होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।
बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥
होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥
होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥
होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥
होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।
विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥
होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनꣳ रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥
होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं
भगमिन्द्रं वयोधसम् । ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३३॥
होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
अतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥
देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्धयन् ।
उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥
देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३७ ॥
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥
देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम् ।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् ।
जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥
देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥
देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयत् ।
ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४४ ॥
देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवमवर्धयत् ।
अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् ।
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे ॥ ४६ ॥
[अ० २८, कं० ४६, मं० सं० ५०]

इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः ।
वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताꣳ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥ ५ ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाꣳ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

प्रथमा वाꣳ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ७ ॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ १० ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १२ ॥

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ १३ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ १५ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाꣳ सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ १८ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ १९ ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ २० ॥

ईर्मान्तासः शिलिकमध्यमासः सꣳ शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हꣳसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ २१ ॥

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २७ ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥ ३१ ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ३२ ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ३३ ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ३४ ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवीꣳषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ३८ ॥

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ४० ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यताꣳ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४१ ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्र-यत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ४३ ॥

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँ१रनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥ ४५ ॥

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ४७ ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ॥ ४८ ॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥४९॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ उप जिघ्नते । अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ ५२ ॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥ ५३ ॥

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ५४ ॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ ५५ ॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ ५६ ॥
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥
आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः
शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो
वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥
अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ
पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥ ५९ ॥
अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय
बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो
द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां
पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय
त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै
चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

[अ० २९, कं० ६०, मं० सं० ६०]

इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ १ ॥
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ३ ॥
विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं
नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुꣳश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥
नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभꣳ
हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥
तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ
हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७ ॥
नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं
प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं
पिशाचेभ्यो बिदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥
सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं
निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं
बलायोपदाम् ॥ ९ ॥
उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं
पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं
मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥
अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपाल-
मिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तध-
माध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥
भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं
देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तार-
मव ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥
ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं
बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ
स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्तारं
क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं
निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥
यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाꣳ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजाता-
मिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नी-
मृभुभ्योऽजिनसन्धꣳ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥
सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं
पाराय मार्गारमवाराय कैवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं
गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥
बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं
विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं
व्यृद्ध्या अपगल्भꣳ संशराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥
अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिन-
मास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं
क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥
प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ
शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं
वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥ १९ ॥
नर्माय पुꣳश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं
तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥
अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वꣳशनर्तिनं
दिवे खलतिꣳ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलास-
मह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षꣳ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥ २१ ॥
अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं
चातिकुल्वं चातिलोमशं च । अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ।
मागधः पुꣳश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

[अ० ३०, कं० २२, मं० सं० १७७]

इति त्रिंशोऽध्यायः ।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥ १३ ॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे ॥२१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ २२ ॥

[अ०३१, कं० २२, मं० सं० २२]

इत्येकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ १ ॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥ २ ॥
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः॥ ३ ॥
एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥
यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ ५ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
आपो ह यद्बृहती—र्यश्चिदापः+ ॥ ७ ॥
वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥

॥ 'हिरण्यगर्भः' इत्येषोऽनुवाकः । (वा. य. २५।१०-१३); 'मा मा हिंसीत्' इत्येषा ऋक् (वा. य. १२।१०२);
'यस्मान्न जातः' इत्येषोऽनुवाकः । (वा. य. ८।३६-३७)

+ 'आपो ह यद्बृहतीः'; 'यश्चिदापः' । (वा. य. २७।२५-२६)

वा० य० १७

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ ९ ॥
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥
परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनाऽऽत्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥
परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषं स्वाहा ॥ १३ ॥
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥
इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥

[अ० ३२, कं० १६, मं० सं० १६]

इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥ १ ॥
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥ २ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ२ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ४ ॥
द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्याऽन्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ ५ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ॥ ६ ॥
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ८ ॥
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ९ ॥
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥ ११ ॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ १२ ॥
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ १३ ॥
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् । १५ ॥
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥ १६ ॥
महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ १७ ॥
आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ २० ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥ तं प्रत्नथा ऽयं वेनः॥ ॥२१॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ २२ ॥
प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥ २३ ॥
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ।
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ२ अभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ २६ ॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ।
महाँ२ इन्द्रो य ओजसा कदा चन स्तरीरसि कदा चन प्र युच्छसि+ ॥ २७ ॥
आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ २८ ॥
इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ २९ ॥
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥ ३० ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ३१ ॥
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥
दैव्यावध्वर्यू आ गतं रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञं समञ्जाथे ॥
तं प्रत्नथा ऽयं वेन—श्चित्रं देवानाम्× ॥ ३३ ॥
आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ ३४ ॥

॥ तं प्रत्नथा० । अयं वेना० । (वा. य. ७।१२, १६)।
+ महाँ२ इन्द्रो य ओजसा० । (वा. य. ७।४०)। कदा चन स्तरी० ॥ कदा चन प्र युच्छसि० । (वा. य. ८।२-३)
× तं प्रत्नथा···देवानाम् । (वा. य. ७।१२, १६, ४२)

यद्द्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ३५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ३६ ॥
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ३८ ॥
बण्महाँ२ असि सूर्य बडादित्य महाँ२ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ असि ॥ ३९ ॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ२ असि सत्रा देव महाँ२ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४० ॥
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ४१ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ४२ ॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ४३ ॥
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥ ४५ ॥
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ४६ ॥
अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥
तं प्रत्नथा ऽयं वेनो ये देवास आ न इडाभि-
विश्वेभिः सोम्यं मध्वो-मासश्चर्षणीधृतः+ ॥ ४७ ॥
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ ४८ ॥

+ तं प्रत्नथा०, ऽयं वेनः०, ये देवासः०, ओमासः० । (वा. य. ७.१२, १६, १९, ३३); विश्वेभिः सोम्यं मधु० । आ न इडाभिः० । (वा. य. ३३।१०, ३४)

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥ ४९ ॥
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२ अवन्तु देवाः ॥ ५० ॥
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ५१ ॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥ ५२ ॥
विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ ५३ ॥
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ ५४ ॥
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ५६ ॥
मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥ ५७ ॥
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥
तं प्रत्नथा ऽयं वेनः× ॥ ५८ ॥
विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥
नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ ६१ ॥
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ२ इयक्षते ॥ ६२ ॥
ये त्वाऽहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ६३ ॥

× (वा. य. ७।१२, १६)

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ ६४ ॥
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ ६५ ॥
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ६६ ॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८ ॥
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ६९ ॥
प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ ७० ॥
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ७१ ॥
काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्थ आ ॥ ७२ ॥
दैव्यावध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥
तं प्रत्नथा ऽयं वेनः+ ॥ ७३ ॥
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ७४ ॥
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७५ ॥
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ७८ ॥

+ (वा. य. ७।१२, १६)

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ७९ ॥
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ ८० ॥
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ८२ ॥
अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ८३ ॥
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ८४ ॥
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयꣳ शुक्रो अयामि ते ॥ ८५ ॥
इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमना असत् ॥ ८६ ॥
ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ८८ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ८९ ॥
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ९० ॥
देवं-देवं वोऽवसे देवं-देवमभिष्टये । देवं-देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ ९१ ॥
दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् ।
क्ष्मया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥ ९२ ॥
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९३ ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ ९४॥
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥ ९५॥
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥ ९६॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।
इमा उ त्वा यस्याय मयꣳ सहस्र मूर्ध्व ऊ षु णः॥ ९७॥

[अ० ३३, कं० ९७, मं० सं० ९७]

इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ १॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ २॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ३॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४॥
यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ५॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ६॥
पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत्॥ ७॥

*इमा उ त्वा०। यस्यायं०। अय१ सहस्रम०। (वा. य. ३३।८१-८३); ऊर्ध्व ऊ षु ण०। (वा. य. ११।४२)।

वा० य० १८

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि। क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूꣳषि तारिषः॥ ८॥
अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः॥ ९॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥ १०॥
पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ ११॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥ १२॥
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते॥ १३॥
उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट॥ १४॥
इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि। जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोढवे॥ १५॥
प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १६॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यꣳ शवसानाय साम।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्॥ १७॥
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयाꣳसि।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः॥ १८॥
न ते दूरे परमा चिद्रजाꣳस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ॥ १९॥
अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम॥ २०॥
सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै॥ २१॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥ २२॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ॥ २३॥

अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥ २४॥
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति॥ २५॥
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः॥ २६॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥ २७॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥ २८॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥ २९॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥ ३०॥
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ३१॥
आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥ ३२॥
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तनयं च धामहे॥ ३३॥
प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम॥ ३४॥
प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह॥ ३५॥
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥ ३६॥
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाꣳ सुमतौ स्याम॥ ३७॥

भग एव भगवाँ२ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह॥ ३८॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु॥ ३९॥
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४०॥
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि॥ ४१॥
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं-धियꣳ सीषधाति प्र पूषा॥ ४२॥
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥ ४३॥
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ ४४॥
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा॥ ४५॥
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन्॥ ४६॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपाꣳसि मृक्षतꣳ सेधतं द्वेषो भवतꣳ सचाभुवा॥ ४७॥
एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ ४८॥
सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥ ४९॥
आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्। इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥ ५०॥
न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥ ५१॥
यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥ ५२॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५३ ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अꣳशः ॥ ५४ ॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ ५६ ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकाꣳसि चक्रिरे ॥ ५७ ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिता ऽन्नपतेऽन्नस्य नो देहि + ॥ ५८ ॥

[अ० ३४, कं० ५८, मं० सं० ५८]

इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लोकः सुतावतः।
द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २ ॥

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा। वि मुच्यन्तामुस्रियाः ॥ ३ ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४ ॥

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु। तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५ ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसौ। अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाꣳ रीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

+ य इमा विश्वा०, विश्वकर्मा० यो नः पिता०। (वा० य० १७।१७, २६-२७); अन्नपते...... देहि० (वा० य० ११।८३)

शं वातः शꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाऽभि शूशुचन् ॥ ८ ॥

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥ १० ॥

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः। अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ११ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये। स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तारणो भव ॥ १३ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ १७ ॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ आ दधर्षति ॥ १८ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ १९ ॥

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके।
मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सं नमन्ताꣳ स्वाहा ॥ २० ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २१ ॥

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ २२ ॥

[अ० ३५, कं० २२, मं० सं० २८]

इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्। कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥ १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम्।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ ११ ॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

यतो-यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम
शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

[अ०, ३६, कं० २४, मं० सं० २४]

इति षट्त्रिंशोऽध्यायः।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नारिरसि ॥ १ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ २ ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यौज स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः।
मखाय त्वा मखस्य शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ६ ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ७ ।

मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥

ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ १० ॥

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु
पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥ ११ ॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दा आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः।
विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दा विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि
मनोरश्वासि ॥ १२ ॥

स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः सꣳस्पृशस्पाहि। मधु मधु मधु ॥ १३ ॥
गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्। सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते ॥ १४ ॥
समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सꣳ सूर्येणारोचिष्ट।
स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सꣳ सूर्येणारूरुचत ॥ १५ ॥
धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्या धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः।
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

वा० य० १९

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ १७ ॥
विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते।
देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये।
मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ॥ १८ ॥
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ १९ ॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाऽहꣳ सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥
अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥ २१ ॥

[अ० ३७, कं० २१; मं० सं० ५५]

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददेऽदित्यै रास्नाऽसि ॥ १ ॥
इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि। असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥
अदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्या उष्णीषः। पूषाऽसि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥
गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि।
इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट्।
स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाऽप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा।
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥ ७ ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वाऽऽदित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाऽभिमातिघ्ने स्वाहा।
सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥
यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥
विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान् देवानयाडिह। स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥
दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः। स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥
अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः। तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ १२ ॥
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥
इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ १४ ॥
स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः।
स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ
स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥ १५ ॥
स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः।
अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ १६ ॥
अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः।
उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाँ२ असि रोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् × ॥ १७ ॥
या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याꣳ हविर्धाने।
सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे।
सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा।
या ते घर्म पृथिव्याꣳ शुग्या जगत्याꣳ सदस्या।
सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥ १८ ॥
क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥ १९ ॥

× स० सीदस्व ... दर्शतम्। (वा० य० ११। ३७)

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ २० ॥
घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥
यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥ २६ ॥
मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मस्त्रिशुग्वि राजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ २७ ॥
पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराꣳ समाम्।
त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः।
इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

[अ० ३८, कं० २८, मं० सं० ७५]

इत्यष्टात्रिंशोऽध्यायः।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहाऽग्नये स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा
वायवे स्वाहा। दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥
दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा।
नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥
वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा
श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥ ३ ॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥ ४
प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः सꣳसन्नो घर्मः प्रवृक्त-
स्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्।
मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे।
मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ ६ ॥
उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च। सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ ७ ॥
अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना।
शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना
वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥ ८ ॥
उग्रँल्लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन
साध्यान् प्रमुदा। भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ९ ॥
लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा
लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा।
माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा
ऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥
आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा ॥
शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥
तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा।
निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्त्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ १२ ॥
यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा।
ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥

[अ० ३९, कं० १३, मं० सं० ११६]

इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥
असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥ ६ ॥
यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥
अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ ९ ॥
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥
अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥ १२ ॥
अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्। ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर ॥१५
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्। योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥

[अ० ४०, कं० १७, मं० सं० १७]

इति चत्वारिंशोऽध्यायः। [उ० विं० मं० सं० १४०३]

इत्युत्तरविंशतिः समाप्ता। [सर्वे मिलित्वा ३९८८]

इति वाजसनेयि-माध्यन्दिन-शुक्ल यजुर्वेदसंहिता समाप्ता।

काण्व संहिता

अथ शुक्लयजुर्वेदीय-

काण्व-संहिता ।

अथ प्रथमो दशकः ।

अथ प्रथमोऽध्यायः ।

॥ ओ३म् ॥ इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ । देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ॥१॥ १
आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः । मा व स्तेन ईशत माघशꣳसः ॥२॥ २
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः । यजमानस्य पशून् पाहि वसोः पवित्रमसि ॥३॥ (१) ३

द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि । विश्वधाः परमेण धाम्ना ॥१॥ ४
दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥२॥ ५
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण । सुप्वा कामधुक्षः ॥३॥ ६
सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्षस्व ॥४॥ (२) ७

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥१॥ ८
कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥२॥ ९
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥३॥ १०
धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति । धूर्व तं यं वयं धूर्वामः ॥४॥ ११
देवानामसि सस्नितमं वह्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ।
अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥५॥ १२
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥६॥ १३
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि । भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषम् ॥७॥१४ [१४]
१

दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।
पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थे । अग्ने हव्यꣳ रक्षस्व ॥८॥ (३) १५

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥१॥ १६
देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवः । अग्र इममद्य यज्ञं नयत सुधातुं यज्ञपतिं देवायुवम् ॥२॥ १७
युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥३॥ १८
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै । यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥४॥(४)१९

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयः । अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ॥१॥ २०
अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः । प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥२॥ २१
अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनम् । देववीतये त्वा गृह्णामि ॥३॥ २२
बृहन् ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यः । हव्यꣳ शमीष्व सुशमि शमीष्व हविष्कृदेहि ॥४॥ २३
कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद । वयꣳ संघाते संघाते जेष्म ॥५॥ २४
वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु । परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयः ॥६॥ २५
अपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु ।
देवो वः सविता प्रतिगृह्णातु हिरण्यपाणिरच्छिद्रेण पाणिना ॥७॥ (५) २६

धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं जहि । निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह ॥१॥ २७
ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ॥
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि द्विषतो वधाय ॥२॥ २८
अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि द्विषतो वधाय ।
धर्त्रमसि दिवं दृꣳह । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि द्विषतो वधाय ॥३॥ २९
विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि द्विषतो वधाय ।
चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥४॥ (६) ३०

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयः । अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ॥१॥ ३१
धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ।
दिवस्कम्भन्यसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥२॥ ३२ [१२]

धान्यमसि धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिम् । धिनुहि मां यज्ञन्यम् ॥३॥ ३३
प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां ।
देवो वः सविता प्रतिगृह्णातु हिरण्यपाणिरच्छिद्रेण पाणिना । चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥४॥ ३४
वेदोऽसि वेद येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवः । तेन मह्यं वेदो भव ॥५॥(७) ३५

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन ।
सꣳ रेवतीर्जगतीभिः सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् । ३६
जनयत्यै त्वा सं यौमि ॥१॥
इदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा । घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् ॥२॥ ३७
अग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥३॥ ३८
अन्तरितꣳ रक्षोऽन्तरिता अरातयः ।
मा भेर्मा सं विक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् ॥
त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥४॥(८) ३९

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः ।
इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः । वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥१॥ ४०
पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषम् ॥२॥ ४१
पृथिव्यै वर्मासि पृथिवि देवयजनि । ओषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषम् ॥२॥
व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैः ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥३॥ ४२
अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद् वध्यासं ।
व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैः ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् । अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् ।
व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैः ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥४॥ ४३
गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ।
सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चासि । ऊर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥५॥ ४४
पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम् ।
यामैरयꣳश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदिश्य यजन्ते । द्विषतो वधोऽसि ॥६॥(९)४५ [४५]

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।
अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ।
प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।
अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥१॥ ४६
अदित्यै रास्नासीन्द्राण्यै संनहनम् । विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्जे त्वादब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि ॥२॥ ४७
अग्नेर्जिह्वासि सुभूर्देवेभ्यः । धाम्ने धाम्ने भव यजुषे यजुषे । सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण
पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥३॥४८
तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि । प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् ॥४॥ ४९
यस्ते प्राणः पशुषु प्रविष्टो देवानां विष्ठामनु यो वितस्थे ।
आत्मन्वान्त्सोमघृतवान्हि भूत्वाग्ने गच्छ स्वर्यजमानाय विन्द ॥ ५ ॥(१०) ५०
॥ इषे त्वा तिस्रः ॥ ३ ॥ द्यौरसि चतस्रः ॥ ४ ॥ अग्ने व्रतपतेऽष्ट ॥ ८ ॥ पवित्रे स्थ चतस्रः ॥ ४ ॥ शर्मासि सप्त ॥ ७ ॥ धृष्टिरसि चतस्रः ॥ ४ ॥ शर्मासि पुनः पञ्च ॥ ५ ॥ देवस्य त्वा चतस्रः ॥ ४ ॥ द्वितीयो देवस्य त्वा षट् ॥ ६ ॥ प्रत्युष्टं पञ्च ॥ ५ ॥ दशानुवाकेषु पञ्चाशत् ॥ ५० ॥ इषे देवस्य समाः पञ्चाशत् ॥ ५० ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि ।
बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥१॥ १
अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽसि । ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः ॥२॥ २
भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ।
गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै ॥३॥ ३
यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै ।
यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै ।
यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥४॥ ४
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥५॥ ५
समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहू स्थः ॥६॥ ६
ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः । आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥७॥ ७
घृताच्यसि जुहूर्नाम सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद । घृताच्यस्युपभृन्नाम सेदं प्रियेण
धाम्ना प्रिये सदसि सीद । घृताच्यसि ध्रुवा नाम सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ।
प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ॥८॥ ८ [५८]

ध्रुवा असदत्तस्य योनौ ता विष्णो पाहि ।
पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥९॥ (१) ९

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ।
नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ १ ॥ १०
अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्यꣳ संभ्रियासम् । अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम् ॥२॥ ११
वसुमतीमग्ने ते छायामुपस्थेषं विष्णोः स्थानमसि । इत इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वर आस्थात् ॥३॥ १२
अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम् । अवतां त्वा द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी ॥४॥ १३
स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत् स्वाहा । सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥५॥ १४
अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥६॥ १५
उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयताम् । अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥७॥ १६
उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयताम् । अग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ॥८॥ १७
मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः ।
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि ॥९॥ (२) १८

देव सवितरेतं त्वा वृणते बृहस्पतिं ब्रह्माणम् । तदहं मनसे प्रब्रवीमि ॥१॥ १९
मनो गायत्र्यै गायत्री त्रिष्टुभे त्रिष्टुब्जगत्यै जगत्यनुष्टुभे ।
अनुष्टुप्प्रजापतये प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥२॥ २०
बृहस्पतिर्देवानां ब्रह्माहं मनुष्याणाम् । भूर्भुवः स्वर्निरस्तः पाप्मेदमहं बृहस्पतेः सदसि सीदामि ॥३॥२१
मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
प्रतिगृह्णामि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थे ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥४॥ २२
आदद्देऽग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि बृहस्पतेर्मुखेन । या अप्स्वन्तर्देवतास्ता इदꣳ शमयन्तु ॥५॥ २३
स्वाहाकृतं जठरमिन्द्रस्य गच्छ । वसिनां मे मा संपृक्था ऊर्ध्वं मे नाभेः सीद ॥६॥ २४
इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि । प्रजापतेर्भागोस्यूर्जस्वान् पयस्वान् ॥७॥ २५
प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानव्यानौ मे पाहि ।
ऊर्गस्यूर्जं मयि धेह्यक्षितिरसि मा मे क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोक इह च ॥८॥ २६
पुरा ते अग्ने सुमित्या वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥९॥२७
[७७]

एतत् ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥१०॥ २८
मनोज्योतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोतु ।
अरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु विश्वे देवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ ॥११॥ (३) २९

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ।
अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ।
इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि ।
इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥१॥ ३०
वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्व. : संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् ॥२॥३१
व्यन्तु वयोक्तं रिहाणा मरुतां पृषतीं गच्छ । वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह ॥३॥३२
चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि । यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः ॥४॥ ३३
तं त एतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयातै । अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥५॥ ३४
सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ।
घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् ॥६॥ (४) ३५

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्यै ।
अविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनौ स्वाहा वाट् ॥१॥ ३६
अग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ।
उलूखले मुसले यच्च शूर्पे आशिश्लेष दृषदि यत् कपाले ॥२॥ ३७
उत्प्रुषो विप्रुषः सं जुहोमि सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ।
आप्यायतां ध्रुवा हविषा घृतेन यज्ञं यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः ॥
सूर्याया ऊधो अदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् ॥३॥ ३८
देवा गातुविदो गातुमित्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥४॥ ३९
संबर्हिरङ्क्ताꣳ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सं मरुद्भिः ।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥५॥ ४०
कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति ।
पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥६॥ ४१
वेदोऽस्युपवेदो द्विपदो ग्रीवा उपवेविद्धि । वेदो अग्ने सुभग धारयेह ॥७॥ ४२ [९१]

श्रद्धाः कर्मण्या अनपायिनो यथासन् ॥
जुहोमि त्वा सुभग सौभगाय पुरूतमं पुरुहूत श्रवस्यन् ॥८॥(५) ४३

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१॥ ४४
या उ च त उप च । शिवे मे संतिष्ठस्वारिष्टे मे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ॥२॥ ४५
दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तः । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।
अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तः । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।
पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तः ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥३॥ ४६
अगन्मादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः । सं ज्योतिषाभूम ॥४॥ ४७
स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥५॥ ४८
अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासम् ।
सुगृहपतिस्त्वं मया गृहपतिना भूयाः ॥६॥ ४९
अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः ।
तिग्मेन नस्तेजसा सꣳशिशाधि सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥७॥ ५०
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्र-प्र यज्ञपतिं तिर ॥८॥ ५१
ततोऽसि तंतुरस्यनु मा तनुहि । अस्मिन्यज्ञेऽस्याꣳ साधु कृत्यायामस्मिन्क्षेत्रेऽस्मिँल्लोके ॥९॥५२
इदं मे कर्मेदं वीर्यं पुत्रोऽनु संतनोतु । अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि ।
इदमहं य एवास्मि स एवास्मि ॥१०॥(६) ५३

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा । अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः ॥१॥ ५४
ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥२॥ ५५
अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥३॥ ५६
नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरस्तपसे ।
नमो वः पितरो यज्जीवं तस्मै नमो वः पितरो रसाय ।
नमो वः पितरो घोराय मन्यवे स्वधायै वः पितरो नमः ।
एतद्वः पितरो वासो गृहान्नः पितरो दत्त ॥ ४ ॥ ५७[१००]

उदायुषा स्वायुषोत्पर्जन्यस्य धामभिः । उदस्थाममृताँ अनु ॥५॥ ५८
आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥६॥ ५९
ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥७॥ (७) ६०

कृष्णोऽसि नव ॥ ९ ॥ अग्ने वाजजिन्नव ॥ ९ ॥ देव सवितरेकादश ॥ ११ ॥ अग्नीषोमयोः षट् ॥ ६ ॥
अग्नेऽदब्धायोऽष्ट ॥ ८ ॥ सं वर्चसा दश ॥ १० ॥ अग्नये कव्यवाहनाय सप्त ॥ ७ ॥
सप्तानुवाकेषु षष्ठि ॥ ६० ॥ कृष्ण इमं मे षष्ठि ॥ ६ ॥
इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥१॥ १
सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥ २
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥३॥ ३
उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधो मम ॥४॥ ४
भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना भूमिरिव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥५॥ ५
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥६॥ ६
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ॥७॥ ७
त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥८॥ (१) ८

अग्निर्ज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवतीम् । स्वर्ग्यꣳ स्वर्गायोपदधामि भास्वतीम् । ९
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥
सूर्यं ज्योतिषं त्वा वायुमतीं प्राणवतीम् । स्वर्ग्यꣳ स्वर्गायोपदधामि भास्वतीम् ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥२॥ १०
सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥३॥ ११
सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥ १२
इह पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधात्विह प्रजाꣳ रमयतु प्रजापतिः । अग्नये गृहपतये रयिमते पुष्टिपतये स्वाहा ।
अग्नयेऽन्नादायान्नपतये स्वाहा ॥५॥ १३
अनमित्रं मे अधरागनमित्रमुदक्कृधि । इन्द्रानमित्रं पश्चान्मेऽनमित्रं पुरस्कृधि ॥६॥ १४ [११४]

इन्द्रः पश्चादिन्द्रः पुरस्तादिन्द्रो अस्माँ३ अभिपातु विश्वतः ।
इन्द्रो जिघांसतां मनांसि विषूचीना व्यस्यतात् ॥७॥ १५
समिदसि समिद्धो मे अग्ने दीदिहि । समेद्धा ते अग्ने दीद्यासम् ॥८॥(२) १६

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥ १७
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥२॥ १८
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारा इषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥३॥ १९
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥४॥ २०
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥५॥ २१
अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥६॥ २२
तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥७॥ २३
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण । इन्धानास्त्वा शतं हिमा द्युमन्तं समिधीमहि ॥८॥ २४
वयस्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥९॥ २५
चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय । सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणां स्तुतेन ॥१०॥ २६
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मिषीय ।
अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीय ॥११॥ २७
ऊर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय ।
रेवती रमध्वमस्मिन् योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिन् क्षयेऽस्मिँल्लोके ॥१२॥ २८
इहैव स्तेतो मापगात । संहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन ॥१३॥ २९
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥१४॥ ३०
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥१५॥ ३१
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥१६॥ ३२
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥१७॥ ३३ [१४३]

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥१८॥ ३४
इळ एह्यदित एहि काम्य एहि । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥१९॥ ३५
सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२०॥ ३६
यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२१॥ ३७
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥२२॥ ३८
महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥२३॥ ३९
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥२४॥ ४०
ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥२५॥ ४१
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥२६॥ ४२
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७॥ ४३
परि ते दूळभो रथोऽस्माँ३ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥
समिद्धो मासमर्धय प्रजया च धनेन च ॥२८॥ (३) ४४

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजया भूयासम् । सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥१॥ ४५
नर्य प्रजां मे पाहि शंस्य पशून् मे पाहि । आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ॥२॥ ४६
अग्ने सम्राळभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व । अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजावान्वसुवित्तमः॥३॥ ४७
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व । गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि॥४॥४८
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ।
येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः ॥५॥ ४९
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः । उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ॥६॥ ५०
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये ।
शिवं शग्मं शंयोः शंयोः ॥७॥ (४) ५१

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ॥१॥ ५२
यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ॥२॥ ५३
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥३॥ ५४[१६४]

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥४॥ ५५
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥५॥ (५) ५६
पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥१॥ ५७
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं निहरामि ते निहारं निहरासि मे स्वाहा ॥२॥ (६) ५८

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥ ५९
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ३ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२॥ ६०
मनो न्वाहुवामहे नाराशंसेन स्तोमेन । पितॄणां च मन्मभिः ॥३॥ ६१
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४॥ ६२
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥५॥ ६३
वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥६॥ (७) ६४
एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा । एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥१॥ ६५
अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥२॥ ६६
भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुगं मेषाय मेष्यै ॥३॥ ६७
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥४॥ ६८
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥५॥ ६९
एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवः शान्तोऽतीहि ॥६॥ (८) ७०

वाजिनं वाजोऽवतु भक्षो अस्मान् रेतः सिक्तममृतं बलाय ।
विश्वे देवा अभि यत् संबभूवुस्तन्मा धिनोतु प्रजया धनेन ॥१॥ ७१
वाज्यहं वाजिनस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि । वाजे वाजी भूयासम् ॥२॥ ७२
सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूम् । दीर्घायुत्वाय वर्चसे ॥३॥ ७३ (१८३)

कश्यपस्य त्र्यायुषं जमदग्नेस्त्र्यायुषम् । यद्देवानां त्र्यायुषं तन्मे अस्तु त्र्यायुषम् ॥४॥ ७४
येन धाता बृहस्पतेरिन्द्रस्य चायुषेऽवपत् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय ॥५॥ ७५
दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे । सुप्रजास्त्वाय चासा अथो जीव शरदः शतम् ॥६॥ (९) ७६ [१८६]

समिधाग्निमष्ट ॥ ८ ॥ अग्निर्ज्योतिर्षट्त्वाष्ट ॥ ८ ॥ उपप्रयन्तोऽष्टाविंशतिः ॥ २८ ॥ भूर्भुवः स्वः सप्त ॥ ७ ॥ प्रघासिनः पञ्च ॥ ५ ॥ पूर्णा दर्वि द्वे ॥ २ ॥ अक्षन्नमीमदन्त षट् ॥ ६ ॥ एष ते च षट् ॥ ६ ॥ वाजिनं वाजश्च षट् ॥ ६ ॥ नवानुवाकेषु षट्सप्ततिः ॥ ७६ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे ।
ऋक्सामाभ्यां सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥१॥ १
इमा आपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ।
आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ॥२॥ २
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवां शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥३॥ (१) ३
महीनां पयोऽसि वर्चोदा असि वर्चो मे देहि । वृत्रस्य कनीनकासि चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि ॥१॥४
चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।
तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥२॥ ५
आ वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे । आ वो देवास आशिषो यज्ञियासो हवामहे ॥३॥ ६
स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् । स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा वातादारभे ॥४॥(२) ७

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा
दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा ।
आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥१॥ ८
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२॥(३) ९
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातम् । आस्य यज्ञस्योदृचः ॥१॥ १०
शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मे यच्छ ॥२॥ ११ [१९७]

सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्य ।
इन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि ॥३॥ १२
उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसः । आस्य यज्ञस्योदृचः ॥४॥ (४) १३

व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत व्रतं कृणुत । अग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः ॥१॥ १४
दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये । वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे ॥२॥ १५
ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवः । ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ॥३॥ १६
श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ।
ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः ॥४॥ १७
इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् ।
अꣳहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या संभव ॥५॥ १८
अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि । रक्षा णो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥६॥ १९
पुनर्मनः पुनरायुर्म आगात् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात् ।
पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगाद्वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नो पातु दुरितादवद्यात् ॥७॥ २०
त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥८॥ २१
रास्वेयत्सोमा भूयो भर । देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥९॥ (५) २२

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ । जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥१॥ २३
तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥२॥ २४
चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी ।
सा नः सुप्राची सुप्रतीची भव ॥३॥ २५
मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ।
अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः ॥४॥ २६
सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमम् । रुद्रस्त्वा वर्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥५॥ (६) २७

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥१॥ २८
अदित्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याः । इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा ॥२॥ २९
अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुः । त्वे रायो अस्मे रायः ॥३॥ ३० [२१६]

मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः । समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा।
मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरान्विदेय तव देवि संदृशि ॥४॥ (७) ३१

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतात् ।
एष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोमानानाꣳ
साम्राज्यं गच्छतादिति मे सोमाय ब्रूतात् ॥१॥ ३२
आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यः । विचितस्त्वा विचिन्वन्तु ॥२॥ ३३
अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥३॥ ३४
प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु । प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ॥४॥ (८) ३५

चन्द्रं त्वा चन्द्रेण क्रीणामि शुक्रꣳ शुक्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि॥१॥ ३६
तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः । परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥२॥ ३७
मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणम् । उशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम् ॥३॥ ३८
स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानो ।
एते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥४॥ ३९
परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ[2] अनु ॥५॥ ४०
प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥६॥(९) ४१

अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद । अस्तभ्नाद्यामृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१॥ ४२
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥२॥ ४३
सूर्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकाम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥३॥ ४४
उस्रा एतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ ।
स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ४ ॥ ४५
भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि ।
मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अघायवो विदन् ।
श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान गच्छ तन्नौ सꣳस्कृतम् ॥ ५ ॥ ४६ [२३२]

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥६॥ ४७
वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थः ।
वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥७॥ ४८
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥८॥ (१०) ४९ [२३५]

पदस्यस्य निष्कः ॥ ३ ॥ महीनां चतस्रः ॥ ४ ॥ आकूत्यै द्वे ॥ २ ॥ ऋक्सामयोश्चतस्रः ॥ ४ ॥
व्रतं कृणुत नव ॥ ९ ॥ एषा ते पञ्च ॥ ५ ॥ वस्व्यसि चतस्रः ॥ ४ ॥ एष ते चतस्रः
॥ ४ ॥ चन्द्रं त्वा षट् ॥ ६ ॥ अदित्यास्त्वगष्ट ॥ ८ ॥ दशानुवाकेष्वेकोनपञ्चाशत् ॥ ४९ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः।

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वा ।
अतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते
विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ॥१॥ १
अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थः । उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि ।
गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि
जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥२॥ २
भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥३॥ ३
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा ।
स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥४॥ (१) ४

आपतये त्वा गृह्णामि परिपतये त्वा गृह्णामि । तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्मन ओजिष्ठाय ॥१॥ ५
अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजः । अनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम् ॥२॥ ६
अञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ सुविते मा धाः । अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपाः ॥३॥ ७
या तव तनूरियꣳ सा मयि या मम तनूरेषा सा त्वयि ।
सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥४॥ ८ [२४३]

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे ।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ॥५॥ ९
आप्याययास्मान् सखीन्त्सन्या मेधया । स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामुदृचमशीय ॥६॥ १०
एष्टा रायः प्रेषे भगाय । ऋतमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्यै ॥७॥ ११
या ते अग्ने यः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीस्त्वेषं वचो अपावधीत् स्वाहा ।
या ते अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपावधीस्त्वेषं वचो अपावधीत् स्वाहा ।
या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा ।
उग्रं वचो अपावधीस्त्वेषं वचो अपावधीत् स्वाहा ॥८॥ (२) १२

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽसि । अवतान्मा व्यथितमवतान्मा नाथितम् ॥१॥ १३
विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि ।
योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे ।
विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि ।
यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे ।
विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि ।
यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे ।
अनु त्वा देववीतये सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳह्यसि
सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥२॥ (३) १४

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु ।
मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु ॥१॥ १५
इदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ।
सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा ॥२॥ १६
सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा ।
सिꣳह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ॥३॥ १७
ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳह ।
अच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥४॥ (४) १८

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥ १९ [२५४]

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥२॥ २०
इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्ण एते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥३॥ २१
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्। प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम् ॥४॥ २२
स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टम्।
अत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥५॥ २३
विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥६॥ २४
दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥७॥ २५
प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥८॥ २६
विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥९॥ (५) २७

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि।
बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद। रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम् ॥१॥ २८
इदमहं तं वलगमुद्वपामि यं नो निष्ट्यो यममात्यो निचखान।
इदमहं तं वलगमुद्वपामि यं नः समानो यमसमानो निचखान।
इदमहं तं वलगमुद्वपामि यं नः सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखान।
इदमहं तं वलगमुद्वपामि यं नः सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि ॥२॥ २९
स्वराळसि सपत्नहा सत्रराळस्यभिमातिहा। जनराळसि रक्षोहा सर्वराळस्यमित्रहा ॥३॥ ३०
रक्षोहणो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्।
रक्षोहणो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् ॥४॥ ३१
रक्षोहणौ वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी।
वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ ॥५॥ (६) ३२ [१६७]
३

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः।
दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा ॥१॥ ३३
शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि।
उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्याम् ॥२॥ ३४
द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि ॥३॥ ३५
ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह। ध्रुवासि ध्रुवोऽस्मिन्यजमान आयतने भूयात्।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥४॥ ३६
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥५॥ ३७
इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥६॥ (७) ३८

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥१॥ ३९
उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः ॥२॥ ४०
सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानः। नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनः ॥४॥ ४२
ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यः ॥३॥ ४१
समूढोऽसि विश्ववेदा ऊनातिरिक्तस्य प्रतिष्ठा।
अग्नयः सगरा सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन।
पातमाग्नयः पिपृतमाग्नयो नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट ॥५॥ (८) ४३

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाꣳ समित्। त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः।
उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा। जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥१॥ ४४
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥२॥ ४५
अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसाता अयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥३॥ ४६
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥४॥ ४७
देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्।
एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ उपागाः ॥५॥ ४८ [१८१]

इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये। अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपाः ॥६॥ ४९
या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि।
यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥७॥ (९) ५०
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥१॥ ५१
अत्यन्याँ३ अगां नान्याँ३ उपागाम्। अर्वाक्त्वा परेभ्यः परोऽवरेभ्यः ॥२॥ ५२
तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै। देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा ॥३॥ ५३
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः।
दिवं मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या संभव ॥४॥ ५४
अयꣳ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥५॥ (१०) ५५ [१९०]

अग्नेस्तनूरसि चतस्रः ॥ ४ ॥ आ पतयेऽष्ट ॥ ८ ॥ तप्तायनी द्वे ॥ २ ॥ इन्द्रघोषस्त्वा चतस्रः ॥ ४ ॥ विभूरसि
युञ्जते नव ॥ ९ ॥ देवस्य त्वा पञ्च ॥ ५ ॥ द्वितीयदेवस्य त्वा षट् ॥ ६ ॥ विभूरसि
पञ्च ॥ ५ ॥ ज्योतिरसि सप्त ॥ ७ ॥ उरु विष्णो पञ्च ॥ ५ ॥ दशानुवाकेषु
पञ्चपञ्चाशत् ॥ ५५ ॥ अग्नेस्तनूरसि। पञ्चपञ्चाशत् ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि।
यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः।
दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा। १
शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥१॥
अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः।
दिवमग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृꣳहीः ॥२॥ २
या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि भूरि ॥३॥ ३ [२२३]

ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि।
ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥४॥ ४
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥५॥ ५
तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥६॥ ६
परि वीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्। परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम्।
दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥७॥ (१) ७

उपावीरस्युप देवान् दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥१॥ ८
रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि।
ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥२॥ ९
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि।
अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः प्रोक्षाम्यनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः।
अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥३॥ १०
अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु। स्वात्तं चित्सद्देवहविः ॥४॥ ११
सं ते प्राणो वातेन गच्छताꣳ समङ्गानि यजत्रैः। सं यज्ञपतिराशिषा ॥५॥ १२
घृतेनाक्तौ पशूँस्त्रायेथाꣳ रेवति यजमाने। प्रियं धा आविश ॥६॥ १३
उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेन। अस्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव ॥७॥ १४
वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः। स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।
माहिर्भूर्मा पृदाकुः ॥८॥ (२) १५

नमस्त आतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या उप ॥१॥ १६
देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु। सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥२॥ १७
वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि।
नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राꣳस्ते शुन्धामि ॥३॥ १८
मनस्त आप्यायतां वाक्त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां
चक्षुस्त आप्यायताꣳ श्रोत्रं त आप्यायताम्।
यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां तत्ते निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः ॥४॥ १९ [२०९]

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः । रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षः ॥५॥ २०
इदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाधे । इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि ॥६॥ २१
घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्ण्वाथां वायो वे स्तोकानाम् ।
जुषाणो अग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा । स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥७॥ (३) २२

सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन् ॥१॥ २३
वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या ऊष्मणो व्यथिषत् । प्रयुतं द्वेषः ॥२॥ २४
घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबत । अन्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ॥३॥ २५
दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।
ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निधीत ऐन्द्र उदानो अङ्गेअङ्गे निदीधे ॥४॥ २६
देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु स लक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥५॥ (४) २७

समुद्रं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा ।
अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा ।
अहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा ।
द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा ।
यज्ञं गच्छ स्वाहा नभो दिव्यं गच्छ स्वाहा ।
अग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ ॥१॥ २८
दिवं ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षं ज्योतिः । पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥२॥ २९
मापो मौषधीर्हिꣳसीर्धाम्नोधाम्नो राजꣳस्ततो वरुण नो मुञ्च ।
यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ॥३॥ ३०
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥४॥ ३१
इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥५॥ (५) ३२

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माꣳ३ आविवासति ।
हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्माꣳ३ अस्तु सूर्यः ॥१॥ ३३ [३३३]

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि । इन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ ।
विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ ॥२॥ ३४
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥३॥ (६) ३५

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥१॥ ३६
सोम राजन्विश्वास्त्वं प्रजा उपावरोह । विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ॥२॥ ३७
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥३॥ ३८
देवीरापो अपां नपाद्यो व ऊर्मिर्हविष्य्यः । इन्द्रियावान्मदिन्तमः ॥४॥ ३९
तं देवेभ्यो देवत्रा दात शुक्रपेभ्यः । येषां भाग स्थ स्वाहा ॥५॥ ४०
कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि । समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥६॥ ४१
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥७॥ (७) ४२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् ।
उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तम् ।
निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥१॥ ४३
मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत ।
आत्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥२॥ ४४
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवते ।
इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥३॥ ४५
यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरा अन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥४॥ ४६
श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥५॥ ४७
मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥६॥ ४८
प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ॥७॥ ४९ [३३९]

त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥८॥ (८) ५० [३४०]

देवस्य त्वा सप्त ॥ ७ ॥ उपावीरस्यष्ट ॥ ८ ॥ नमस्ते सप्त ॥ ७ ॥ सं ते पञ्च ॥ ५ ॥ समुद्रं
पञ्च ॥ ५ ॥ हविष्मतीस्तिस्रः ॥ ३ ॥ हृदे त्वा सप्त ॥ ७ ॥ देवस्य त्वाष्ट ॥ ८ ॥
अष्टानुवाकेषु पञ्चाशत् ॥ ५० ॥ इद देवस्य समाः पञ्चाशत् ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः ।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि मधुमतीर्न इषस्कृधि ॥१॥ १
यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ।
स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि स्वाहाकृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः ॥२॥ २
मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय । देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे ॥
तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥३॥ (१) ३

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोमम् । उरुष्य राय एषो यजस्व ॥१॥ ४
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन्मादयस्व ।
स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि स्वाहाकृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः ।
मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय । देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥२॥(२)५

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥१॥ ६
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ।
उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥२॥ (३) ७

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् ।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥१॥ ८
राया वयꣳ ससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् । एष ते योनिरृतायुभ्यां त्वा ॥२॥(४)९
[३४९]

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥१॥ (५) १०

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे । उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वा ॥१॥११
एष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।
सुवीरो वीरान्प्रजनयन्परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥२॥ १२
अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सꣳस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥३॥ १३
स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाꣳस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो यास्स्विष्टा यास्सुप्रीता यत्स्वाहा ॥४॥ (६) १४

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपाꣳ संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ।
उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥१॥ १५
मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्या श्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥२॥ १६
एष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।
सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥३॥ १७
अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सꣳस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥४॥ १८
स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाꣳस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो यास्स्विष्टा यास्सुप्रीता यत्स्वाहा ॥५॥ (७) १९

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१॥ २०
उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिम् ॥२॥ २१[३६१]

विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ।
सोमः पवते सोमः पवते सोमः पवते ॥३॥ २२
अस्मै ब्रह्मणे पवतेऽस्मै क्षत्राय पवतेऽस्मै सुन्वते यजमानाय पवते ।
इष ऊर्जे पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते ब्रह्मवर्चसाय पवते।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥४॥ (८) २३

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थायुवं गृह्णामि ।
यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैषते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा ॥१॥ २४
देवेभ्यस्त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे ।
इन्द्राय त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुष इन्द्राग्निभ्यां त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे ।
इन्द्राय त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुष इन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे ।
इन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुष इन्द्राविष्णुभ्यां
त्वा देवायुवं गृह्णामि यज्ञस्यायुषे ॥२॥ (९) २५

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥ २६
उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमः ।
एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥२॥ २७
ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा न इन्द्र इद्विशो सपत्नाः समनसस्करत् ॥३॥
(१०) २८

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते अꣳशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा
वषट्कृतꣳ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥१॥ (११) २९

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वा ।
उपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वा ।
उपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वा ।
उपयामगृहीतोऽसीषे त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वा ।
उपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वा ।
उपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वा । ३० [३७०]
उपयामगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥१॥ (१२)
४

इन्द्राग्नी आगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥१॥ (१३) ३१
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥१॥ (१४) ३२
ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥१॥(१५) ३३
विश्वे देवास आगत शृणुता म इमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ।
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥१॥(१६) ३४
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१॥ (१७) ३५
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१॥ (१८) ३६
उपयामगृहीतोऽसि मरुतामोजसे त्वा ॥१॥ (१९) ३७
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूꣳरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१॥ (२०) ३८
महाँ३ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१॥ (२१) ३९
महाँ३ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ३ इव स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ।
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥१॥ (२२) ४० [३८०]

॥वस्पतये तिस्रः ॥३॥ उपयामगृहीतोऽसि द्वे ॥२॥ आ वायो द्वे ॥२॥ अयं वां द्वे ॥ २ ॥ या वामेका ॥ १ ॥
तं प्रत्नथा चतस्रः ॥ ४ ॥ अयं वेनः पञ्च ॥ ५ ॥ ये देवासश्चतस्रः ॥ ४ ॥ इन्द्राय त्वा द्वे ॥ २ ॥ मूर्धानं
तिस्रः ॥ ३ ॥ यस्त एका ॥१॥ मधव एका ॥ १ ॥ इन्द्राग्नी आगतमेका ॥ १ ॥ आ घा य एका ॥१॥
ओमासश्चर्षणीधृत एका ॥ १ ॥ विश्वे देवास एका ॥ १ ॥ इन्द्र मरुत्व एका ॥ १ ॥ मरुत्वन्तं
वृषभमेका ॥१॥ मरुतामोजस एका ॥१॥ सजोषा इन्द्र एका ॥१॥ महाँ इन्द्र एका ॥ १ ॥
महाँ इन्द्रस्येका ॥१॥ द्वाविंशत्यनुवाकेषु चत्वारिंशत् ॥४०॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः ॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥१॥ १
कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्था अमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥२॥ २
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा । ३
विवस्वाँ३ आदित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व ॥३॥ (१)

श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दंपती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥१॥ (२) ४
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥१॥ (३) ५

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनो मयि धेहि ।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय सवित्रे त्वा ॥१॥ (४) ६
उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥१॥ (५) ७

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य ते देव सोम ।
इन्द इन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ३ ऋध्यासम् ॥१॥ ८
अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पितास ।
अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥२॥ ९
अग्ने वाक्पत्नि सजूर्देवेन त्वष्ट्रा । सोमं पिब स्वाहा ॥३॥ १०
अग्ने वाक्पत्नि सजूर्देवेन त्वष्ट्रा । सोमं पिब स्वाहा ॥३॥
प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि । प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥४॥(६) ११
उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यां त्वा । १२
हर्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥१॥
यस्ते देव सोमाश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिः ।
तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥२॥ (७) १३
[३९१]

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोळशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोळशिने ॥१॥ (८)१४
आतिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोळशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोळशिने ॥१॥ (९)१५
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोळशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोळशिने ॥१॥(१०)१६

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोळशी ॥१॥ १७
इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम् ।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा॥२॥(११)१८

अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ।
अग्ने वर्चस्वन्वर्चस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि । वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥ (१२) १९

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ।
अग्ने वर्चस्वन्वर्चस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि । वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥ (१३) २०

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे ।
इन्द्रौजिस्वन्नोजस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि । ओजस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥ (१४) २१

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ३ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राज एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजे ।
सूर्य भ्राजस्वन्भ्राजस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि । भ्राजस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥ (१५) २२

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राज एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजे ।
सूर्य भ्राजस्वन्भ्राजस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि । भ्राजस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥(१६) २३
[४०१]

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राज एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजे ।
सूर्य भ्राजस्वन्भ्राजस्वाꣳस्त्वं देवेष्वसि ।
भ्राजस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥१॥ (१७) २४

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माꣳ३ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥१॥ (१८) २५

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥१॥ (१९) २६

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥१॥ (२०) २७

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥१॥ (२१) २८

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रछन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि ।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥१॥ २९
प्रेष्णीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि ।
शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥२॥ ३०
ककुहꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहत्सोमः सोमस्य पुरोगाः शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः ।
यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥३॥ ३१ [४११]

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीहि ।
अस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥४॥ (२२) ३२ [४१२]

कदाचन तिस्रः ॥ ३ ॥ अदस्मत्येका ॥ १ ॥ वाममद्येका ॥ १ ॥ सावित्र एका ॥ १ ॥ सुशर्मेत्येका ॥ १ ॥
बृहस्पतिसुतस्त्रः ॥ ४ ॥ हरिरसि द्वे ॥ २ ॥ युक्ष्वा ह्येका ॥ १ ॥ आतिष्ठैका ॥ १ ॥ इन्द्रमित्येकैका ॥ १ ॥
यस्माच्च जात इति द्वे ॥ २ ॥ अग्न आयूंष्येका ॥१॥ अग्ने पवस्वैका ॥ १ ॥ उत्तिष्ठन्नेका ॥ १ ॥
अदब्धेनेका ॥१॥ उदुत्यमेका ॥ १ ॥ चित्रमेका ॥१॥ वि न एका ॥१॥ वाचस्पतिमेका ॥१॥
विश्वकर्मन्नेका ॥ १ ॥ विश्वकर्मन्नित्येका ॥ १ ॥ अग्नये त्वा चतस्रः ॥ ४ ॥
द्वाविंशत्यनुवाकेषु द्वात्रिंशत् ॥ ३२ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ।
उदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ॥१॥ १
क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ।
चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२॥ २
आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ।
विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥३॥ ३
कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि ।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम ॥४॥ ४
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजया भूयासम् । सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥५॥ (१) ५

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥ ६
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥२॥ ७
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥३॥ ८
अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसाता अयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥४॥ ९ [४२१]

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु ।
ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणाः ॥४॥ १०
वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ।
ब्राह्मणमद्य विदेय पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् ॥५॥ ११
अस्मद्राता देवत्रा गच्छ प्रदातारमाविश ।
अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयात् ॥७॥ १२
आयुर्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ।
रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयात् । प्राणो दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ।
बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयात् । त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ।
यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयात् ।
हयो दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥८॥ १३
कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते तत्रे काम सुता हनजामहे ॥९॥ (२) १४
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाम् ॥१॥ १५
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥२॥ १६
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥३॥ १७
सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः ।
भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥४॥ १८
याꣳ३ आवह उशतो देव देवाꣳस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽसुं घर्मꣳ स्वरातिष्ठतानु ॥५॥ १९
वयꣳ हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।
ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञमुपयाहि विद्वान् ॥६॥ २०
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥७॥ २१
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥८॥ (३) २२ [४३४]

माहिर्भूर्मा पृदाकुः । उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ।
नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥१॥ २३
अग्नेरनीकमप आविवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम् ।
दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् स्वाहा ॥२॥ २४
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥३॥ २५
देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकः परि च वक्षि शं च वक्षि । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुण ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।
देवानाꣳ समिदसि ॥४॥ (४) २६

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजत्येवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥१॥ २७
यस्यास्ते यज्ञियो गर्भो यस्या योनिर्हिरण्ययी ।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥२॥ २८
पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः ।
एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताꣳ स्वाहा ॥३॥ २९
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥४॥ ३०
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥५॥ (५) ३१

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः ।
पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ॥१॥ ३२
इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥२॥ ३३
इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।
उपसृजं धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥३॥ ३४
अगन्म ज्योतिरमृता अभूम दिवं पृथिव्या अध्यारुहाम ।
अविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥४॥ ३५ [४४७]

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षदस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्शीष्ट विश्वतः ॥५॥ ३६
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजया भूयासम् । सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥६॥ (६) ३७

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः सविता सन्याम् ।
विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥१॥ ३८
इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितः । असुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतः ॥२॥ ३९
विष्णुः शिपिविष्ट ऊरा आसन्नो विष्णुर्नरन्धिषः प्रोह्यमाणः ।
सोम आगतो वरुण आसन्द्यामासन्नः ॥३॥ ४०
अग्निराग्नीध्र इन्द्रो हविर्धाने । अथर्वोपावह्रियमाणो विश्वे देवा अꣳशुषु न्युप्यमानेषु ॥४॥ ४१
विष्णुराप्रीतपा आप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणः । वायुः पूयमानः शुक्रः पूतः ५।४२
शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः । विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतः ॥६॥ ४३
रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षः पीतः पितरो नाराशꣳसाः साद्यमानः ।
सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतः । ॥७॥ ४४
ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥८॥ ४५
देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु ।
पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञः ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च
लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥९॥ (७) ४६ [४५८]

प्राणाय मे पञ्च ॥५॥ उदु त्यं न व ॥९॥ समिद्ध णोऽद्य ॥८॥ माहिश्चतस्रः ॥४॥ एजतु दशमास्य पञ्च ॥५॥
आजिघ्र षट् ॥ ६ ॥ परमेष्ठी नव ॥ ९ ॥ सप्तानुवाकेषु षट्चत्वारिंशत् ॥ ४६ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुवेमं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपाः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्नो अद्य वाजꣳ स्वदतु ॥१॥ १
ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनःसदम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥२॥ २ [४६०]
५

अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।
पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥३॥ ३
अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥४॥ ४
ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥५॥ ५
संपृचः स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त । विपृचः स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥६॥ (१) ६

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजꣳ सेत् ।
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥१॥ ७
देवीरापो अपांनपाद्यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः । ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥२॥ ८
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिभिः । अश्वा भवत वाजिनः ॥३॥ ९
वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः । ते अग्रेऽश्वमयुञ्जꣳस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥४॥ १०
वातरꣳहा भव वाजिन्युज्यमान इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥५॥ ११
जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते ।
तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्चैधि समने च पारयिष्णुः ॥६॥ १२
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तः । बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥७॥ (२) १३

देवस्य वयꣳ सवितुः सवे सत्यसवसः । बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहेमेन्द्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेम ।
देवस्य वयꣳ सवितुः सवे सत्यसवसः । बृहस्पतेरुत्तमं नाकमरुहामेन्द्रस्योत्तमं नाकमरुहाम ॥१॥ १४
बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत । बृहस्पतिं वाजं जापयत ॥२॥ १५
इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदत । इन्द्रं वाजं जापयत ॥३॥ १६
एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपत ।
आजीजपत बृहस्पतिं वाचं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥४॥ १७
देवस्य वयꣳ सवितुः सवे सत्यसवसः । बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेष्म ॥५॥ १८ [४७१]

वाजिनो वाजं जयताध्वन स्कभ्नन्तः । योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत ॥६॥ १९
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु सन्तवीत्वत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् ॥७॥ २०
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥८॥ २१
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥९॥ २२
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता इव त्मना महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥१०॥ २३
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥११॥ २४
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वाय गम्यात् ॥१२॥ २५
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसः । बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥१३॥ (३) २६

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा । वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहा ।
आह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय
भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥१॥ २७
आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् ।
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ॥२॥ २८
प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ॥३॥ २९
जाय एहि स्वो रोहाव । अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुः । अस्मे वर्चाꣳसि सन्तु वः ॥४॥ ३०
नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राड्यन्तासि यमनः ।
ध्रुवोऽसि धरुणः कृष्यै क्षेमाय रय्यै पोषाय ॥५॥ (४) ३१

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ॥१॥ ३२
वाजस्येदं प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
सनेमि राजा परियाति विद्वान् रयिं पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे ॥२॥ ३३ [४९१]

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳ सर्ववीरं नियच्छतु ॥३॥ ३४
अग्ने अच्छावदेह नः प्रति नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि ॥४॥ ३५
सोमꣳ राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥५॥ ३६
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र सरस्वती । प्र वाग्देवी ददातु नः ॥६॥ ३७
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय । वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनम् ॥७॥ ३८
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रे दधामि ।
बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चामीन्द्रस्य त्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥८॥ (५) ३९

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषम् ।
विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीनिमाँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण
चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥१॥ ४०
पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड्ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥
मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयꣳस्तानुज्जेषं
बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥२॥ ४१
मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषम् ।
इन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे
देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयꣳस्तामुज्जेषम् ॥३॥ ४२
वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषꣳ
रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेषम् ।
आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयꣳस्तमुज्जेष-
मदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।
प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥४॥ (६) ४३ [५०१]

देव सवितष्षट् ॥ ६ ॥ इन्द्रस्य वज्रः सप्त ॥ ७ ॥ देवस्य वयं त्रयोदश ॥ १३ ॥ आपये पञ्च ॥ ५ ॥
वाजस्येममष्ट ॥ ८ ॥ अग्निरेकाक्षरेण चतस्रः ॥ ४ ॥ षळनुवाकेषु त्रयश्चत्वारिंशत् ॥ ४३ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
इति प्रथमो दशकः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयो दशकः ॥ २ ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः (अथैकादशोऽध्यायः)।

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा
यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा ।
विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो
वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरसद्भ्यः स्वाहा ।
सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥१॥ १
ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ।
ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा
मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरसदस्तेभ्यः स्वाहा ।
ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥२॥ २
अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥३॥ ३
उपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा । रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽमुष्य
त्वा वधायामुमवधिष्म । जुषाणोऽध्वाज्यस्य वेतु स्वाहा ॥४॥ (१) ४

अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणा अभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥१॥ ५
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥२॥ ६ [५०७]
अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
आपः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
अपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।
अपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहापां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।
सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
सूर्यत्वच स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वच स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।

वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
शैष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शैष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ।
आपः स्वाराज्ञी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ॥३॥ ७
सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाः ।
अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥४॥ (२) ८

सविता त्वा प्रसवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳसोमो वनस्पतीनाम् ।
बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥१॥ ९
इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय ।
इममुममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशे ॥२॥ १०
एष वः कुरवो राजैष वः पञ्चाला राजा । सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥३॥ (३) ११

सोमस्य त्विषिरस्यग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा ।
पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा ॥१॥ १२
इन्द्राय स्वाहाꣳशाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा घोषाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ।
सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः ॥२॥ १३
सधमादो द्युम्निनीराप एता अनाधृष्टा अपस्यो वसानाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥३॥ १४
क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि ।
इन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि त्वयायं वृत्रं वध्यान्मित्रस्यासि वरुणस्यासि ॥४॥ १५
रुजासि द्रुवासि क्षुपासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥५॥ १६
आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा
आवित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतौ ।
आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भू आवित्तादितिरुरुशर्मा ॥६॥ (४) १७ [५१८]

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु ।
रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥१॥ १८
दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु । बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥२॥ १९
प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु । वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥३॥ २०
उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु । वैराजꣳ सामैकविꣳश स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥४॥ २१
ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु ।
शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरा ऋतू वर्चो द्रविणम् ।
प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥५॥ २२
सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोऽस्यमृतमसि ॥६॥ २३
हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभा इन्द्रा उदिथः सूर्यश्च ।
आरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च । मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥७॥ (५) २४

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा ।
इन्द्रस्येन्द्रियेण मरुतामोजसा क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून्पाहि ॥१॥ २५
इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्याय ।
इममुममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशे ॥२॥ २६
एष वः कुरवो राजैष वः पञ्चाला राजा । सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥३॥ २७
प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः ।
ता आववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमनु रीयमाणाः ।
विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥४॥ २८
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥ २९
रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम । तस्मिन्हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥६॥ ६ ३०

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि ।
अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टो अर्जुनः ।
मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥१॥ ३१
मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम ।
तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥२॥ ३२ [५२२]

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा ।
इन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा ।
पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मो अहं त्वाम् ॥३॥ ३३
हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥४॥ ३४
इयदस्यायुरस्यायुर्मे देहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मे देहि ।
ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहीन्द्रस्य वां बाहू वीर्यकृता उपावहरामि ॥५॥ (७) ३५

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि ।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥१॥ ३६
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥२॥ ३७
अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्ताम् । ब्रह्मꣳस्त्वं ब्रह्मासि ॥३॥ ३८
सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाः ।
इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः ॥४॥ ३९
प्रियंकर श्रेयस्कर भूयस्कर । इन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥५॥ ४०
अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिः । आज्यस्य हविषो वेतु स्वाहा ।
स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥६॥ (८) ४१

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा । त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे ॥१॥ ४२
बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा ।
विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥२॥ (९) ४३

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।
वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१॥ ४४
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमउक्तिं न जग्मुः ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥२॥ ४५
युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥३॥ ४६ [५३०]

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥४॥ (१०) ४७ [५४८]

एष ते चतस्रः ॥ ४ ॥ अपो देवाश्चतस्रः ॥४॥ सविता त्वा तिस्रः ॥ ३ ॥ सोमस्य त्विषि षट् ॥६॥
अवेष्टा सप्त ॥ ७ ॥ सोमस्य त्वा षट् ॥ ६ ॥ इन्द्रस्य वज्रः पञ्च ॥५॥ स्योनासि षट् ॥ ६ ॥
सवित्रा द्वे ॥ २ ॥ अश्विभ्यां चतस्रः ॥ ४ ॥ दशानुवाकेषु सप्तचत्वारिंशत् ॥४७॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥१॥ १
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२॥ २
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥३॥ ३
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥ ४
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥५॥ ५
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना ॥६॥ ६
देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥७॥ ७
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्तनि स्वाहा ॥८॥ ८
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत् पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर ।
त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥९॥ ९ [५५७]

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳ शकेम खनितुम् ।
सधस्थ आ जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥ १०
हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११॥ (१) ११

प्रतूर्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥१॥ १२
युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥२॥ १३
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥३॥ १४
प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥४॥ १५
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर ।
अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥५॥ १६
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥६॥ १७
आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते । अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥७॥ १८
आक्रम्य वाजिन्पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् । भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥८॥ १९
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः ॥९॥ २०
उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥१०॥ २१
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥११॥ २२
आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥१२॥ २३
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥१३॥ २४
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१४॥ २५ [५७३]

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रꣳ सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे भेत्तारं भङ्गुरावताम् ॥१५॥ २६
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१६॥ (२) २७

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि ।
ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतम् ।
शिवं प्रजाभ्योऽहिꣳसन्तं पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत्खनामः ॥१॥ २८
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२॥ २९
शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽछिद्रे बहुले उभे । व्यचस्वती संवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥३॥ ३०
संवसाथाꣳ स्वर्विदा समीची उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ।
पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ॥४॥ ३१
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥५॥ ३२
तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥६॥ ३३
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणेरणे ॥७॥ ३४
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८॥ ३५
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥९॥ ३६
सꣳसीदस्व महाँ२ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१०॥ (३) ३७
अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥१॥ ३८
सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥२॥ ३९
सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः । वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥३॥ ४०
उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥४॥ ४१ [५८९]

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥५॥ ४२
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥६॥ ४३
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥७॥ ४४
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥८॥ ४५
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥९॥ ४६
वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्न आयाहि वीतये ।
ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ॥१०॥ ४७
ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः ।
व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥११॥ ४८
ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥१२॥ ४९
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥१३॥ (४) ५०

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१॥ ५१
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥२॥ ५२
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥३॥ ५३
मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥४॥ ५४
रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥५॥ ५५
सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥६॥ ५६
सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥७॥ ५७
उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ ॥८॥ ५८ [६०६]

मखस्य शिरोऽसि वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि ।
धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषं गौपत्यᳬं सुवीर्यᳬं सजातान्यजमानाय ।
रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि ।
धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषं गौपत्यᳬं सुवीर्यᳬं सजातान्यजमानाय ।
आदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि द्यौरसि ।
धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषं गौपत्यᳬं सुवीर्यᳬं सजातान्यजमानाय ।
विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि ।
धारया मयि प्रजाᳬं रायस्पोषं गौपत्यᳬं सुवीर्यᳬं सजातान्यजमानाय ।
अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु ॥९॥ ५९
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥१०॥ ६०
वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।
आदित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा
धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।
इन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥११॥ (५) ६१

अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यावती । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट ॥१॥ ६२
देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखे ।
धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे ।
वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ।
ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ।
जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः । पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखे ॥२॥ ६३
मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥३॥ ६४
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या ।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण ॥४॥ ६५
उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्या एषा मा भेदि ।
वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाच्छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।
आदित्यास्त्वाच्छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा
देवा वैश्वानरा आच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥५॥ (६) ६६ [११४]

आकूतिमग्निं प्रयुजᳬं स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजᳬं स्वाहा ।
चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजᳬं स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजᳬं स्वाहा ।
प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥१॥ ६७
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥२॥ ६८
मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥३॥ ६९
दृᳬंहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि ।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥४॥ ७०
द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥५॥ ७१
परस्या अधि संवतोऽवराँ३ अभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ३ अव ॥६॥ ७२
परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥७॥ ७३
यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥८॥ ७४
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥९॥ ७५
अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥१०॥ ७६
नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥११॥ ७७
याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताᳬंस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥१२॥ ७८
दᳬंष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ३ उत ।
हनुभ्याᳬं स्तेनान् भगवस्ताᳬंस्त्वं खाद सुखादितान् ॥१३॥ ७९
ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्ताᳬंस्ते दधामि जम्भयोः ॥१४॥ ८०
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥१५॥ ८१
सᳬंशितं मे ब्रह्म सᳬंशितं वीर्यं बलम् । सᳬंशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥१६॥ ८२
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ३ अहम् ॥१७॥ ८३
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे । विश्वकर्मणे स्वाहा ॥१८॥ ८४[११९]

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥१९॥ (७) ८५ [१३३]

युञ्जान एकादश ॥ ११ ॥ प्रतूर्तं वाजिन् षोडश ॥ १६ ॥ देवस्य त्वा दश ॥ १० ॥ अपो देवीस्त्रि-
षोडश ॥ १६ ॥ मापो एकादश ॥ ११ ॥ अदितिष्ट्वा पञ्च ॥ ५ ॥ आकूतिमेकोनविंशतिः
॥ १९ ॥ सप्तानुवाकेषु पञ्चाशीतिः ॥ ८५ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥१॥ १
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥२॥ २
विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥३॥ ३
सुपर्णोऽसि गरुत्माᳬंस्त्रिवृत्ते शिरः । गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ॥४॥ ४
स्तोम आत्मा छन्दाᳬंस्यङ्गानि यजूᳬंषि नाम ।
साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः ॥५॥ ५
सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ।
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह । पृथिवीमनु विक्रमस्व ।
विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोह । अन्तरिक्षमनु विक्रमस्व ।
विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह । दिवमनु विक्रमस्व ।
विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं छन्द आरोह । दिशोऽनु विक्रमस्व ॥६॥ ६
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥७॥ ७
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मा निवर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन ।
सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥८॥ ८
अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥९॥ ९ [१४२]

पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यᳬंहसः ॥१०॥ १०
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥११॥ ११
आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥१२॥ १२
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमᳬं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१३॥ १३
अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१४॥ १४
हᳬंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥१५॥ १५
सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनां तपसा मार्चिषाभिशोचीरन्तरस्याᳬं शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१६॥ १६
अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्यास्त्वᳬं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥१७॥ १७
शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१८(१)॥ १८

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥ १९
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२॥ २०
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाᳬंसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥ २१
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥ २२
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥ २३
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥
उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो निधायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥ २५ [१५८]

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥८॥ २६
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९॥ २७
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आभज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥ २८
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥११॥ २९
अस्ताव्यग्निर्नरा॑ सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥ (२) ३०

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥१॥ ३१
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्व॑ सुप्रतीको विभावसुः ॥२॥ ३२
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिं॑सीस्तन्वा प्रजाः॥३॥ ३३
अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥ ३४
प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥५॥ ३५
आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्व॑ सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥६॥ ३६
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥७॥ ३७
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥८॥ ३८
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। स॑सृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥९॥ ३९
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्या॑ शिवतमः ॥१०॥ ४०
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्य॑हसः ॥११॥ ४१
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥१२॥ ४२
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ म॑हिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥१३॥ ४३ [६७६]

७

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषा॑सि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥१४॥ ४४
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा ॥१५॥ (३) ४५

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥१॥ ४६
संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि ।
चित स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥२॥ ४७
अय॑ सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्ति॑ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥३॥ ४८
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥४॥ ४९
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ३ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥५॥ ५०
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥६॥ ५१
इडामग्ने पुरुद॑सं॑ सनिं गोः शश्वत्तम॑ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥ ५२
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥८॥ ५३
चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद । परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥९॥ ५४
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योना असीषदन् ॥१०॥ ५५
ता अस्य सूददोहसः सोम॑ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥११॥ ५६
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतम॑ रथीनां वाजाना॑ सत्पतिं पतिम् ॥१२॥ ५७
समितं॑ संकल्पेथा॑ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ॥१३॥ ५८
सं वां मना॑सि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥१४॥ ५९
अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ३ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१५॥ ६०
भवतं नः समनसौ सचेतसा अरेपसौ ।
मा यज्ञ॑ हि॑सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥१६॥ ६१ [६९४]

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्नि॑ स्वे योना अभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥१७॥(४) ६२

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥१॥ ६३
नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधिरोहयैनम् ॥२॥ ६४
यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय ।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥३॥ ६५
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥४॥ ६६
निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥५॥ ६७
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥६॥ ६८
युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥७॥ ६९
शुन॑ सु फाला वि कृषन्तु भूमि॑ शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मे ॥८॥ ७०
घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥९॥ ७१
लाङ्गलं पवीरवत्सुशेव॑ सोमपित्सरु ।
तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥१०॥ ७२
तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहणम् ॥१०॥ ७२
कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥११॥ ७३
विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥१२॥ ७४
सजूरब्दो अयवोभिः सजूरुषा अरुणीभिः ।
सजोषसा अश्विना द॑सोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥१३॥(५) ७५
या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनै नु बभ्रूणामह॑ शतं धामानि सप्त च ॥१॥ ७६
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥ ७७
[७१०]

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३॥ ७८
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे । सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥ ७९
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५॥ ८०
यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥ ८१
अश्वावती॑ सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥ ८२
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धन॑ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥ ८३
इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूय॑ स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥ ८४
अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥१०॥ ८५
यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥ ८६
यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥ ८७
साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥ ८८
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत । ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥ ८९
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व॑हसः ॥१५॥ ९०
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६॥ ९१
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥ ९२
या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय श॑ हृदे ॥१८॥ ९३
या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम् ॥१९॥ ९४
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ॥२०॥ ९५
नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥२१॥ ९६
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपच्चतुष्पदस्माक॑ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२२॥ ९७
ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त॑ राजन् पारयामसि ॥२३॥ ९८
त्वां गन्धर्वा अखन॑स्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥२४॥ ९९
त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ३ अभिदासति ॥२५॥ (६) १०० [७१३]

मा मां हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ १०१
अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥२॥ १०२
अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥३॥ १०३
इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिरामममीवाम् ॥४॥ १०४
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥५॥ १०५
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥६॥ १०६
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥७॥ १०७
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥८॥ १०८
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥९॥ १०९
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ॥
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥१०॥ ११०
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥११॥ १११
सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥१२॥ ११२
आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥१३॥ ११३
आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् । अग्ने त्वां कामया गिरा ॥१४॥ ११४
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥१५॥ ११५
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥१६॥(७) ११६ [७४९]

दशानोऽष्टादश ॥१८॥ दिवस्परि द्वादश ॥१२॥ समिधाग्निं दुवः पञ्चदश ॥१५॥ अपेत सप्तदश ॥ १७ ॥
अप्सुन्वस्त्रं त्रयोदश ॥ १३ ॥ या ओषधीः पञ्चविंशतिः ॥ २५ ॥ मा मा षोडश ॥ १६ ॥
सप्तानुवाकेषु षोडशोत्तरं शतम् ॥ ११६ ॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम्॥१॥ १
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२॥ २
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥३॥ ३
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ ४
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥५॥ ५
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६॥ ६
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीꣳरनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥७॥ ७
ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥८॥ ८
कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥९॥ ९
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूꣳष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥१०॥ १०
प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशꣳसो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥११॥ ११
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥१२॥ १२
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥१३॥ १३
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि । अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥१४॥ १४
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५॥ (१) १५ [७६४]

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमानां पृथिवीं दृꣳह ॥१॥ १६
प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥२॥ १७
भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥३॥ १८
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥४॥ १९
काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः-परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥५॥ २०
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥६॥ २१
यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥७॥ २२
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥८॥ २३
विराड्ज्योतिरधारयत्स्वराड्ज्योतिरधारयत् ।
प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् ॥९॥ २४
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१०॥ २५
मधुश्च माधवश्च वासन्तिका ऋतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वासन्तिका ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव
देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥११॥ २६
अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥१२॥ २७
सहस्वेमा अभिमातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मानꣳ सहमानास्योषधे ॥१३॥ (२) २८
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥१॥ २९
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥२॥ ३०
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥३॥ ३१ [७८०]

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥४॥ ३२
त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम् ।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥५॥ ३३
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥६॥ ३४
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥७॥ ३५
ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८॥ ३६
इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥९॥ ३७
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥१०॥ ३८
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ२ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥११॥ (३) ३९
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥१॥ ४०
ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥२॥ ४१
अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् । सहस्रदा असि सहस्राय त्वा ॥३॥ ४२
आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृङ्धि हरसा माभिमꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४॥ ४३
वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥५॥ ४४
अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥६॥ ४५
वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥७॥ ४६
यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥८॥ ४७ [७९६]

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष२ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥९॥ (४) ४८

इमं मा हिँ२सीर्द्विपादं पशु२ सहस्राक्ष मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥ ४९
इमं मा हिँ२सीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥२॥ ५०
इम२ साहस्र२ शतधारमुत्सं व्यच्यमान२ सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिँ२सीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥३॥ ५१
इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिँ२सीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥४॥ ५२
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमाय२स्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥५॥ ५३
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄ२ पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥६॥(५) ५४ [८०३]

अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयामि ।
अपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयामि ।
अर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने सादयामि ।
अपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयामि ।
अपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयामि ।

अपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि ।
गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयामि ।
आनुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥१॥ (६) ५५
अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनः । गायत्री वासन्ती ॥१॥ ५६
गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपा२शुरुपा२शोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरम् ।
वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥२॥ ५७
अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणम् । ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी ॥३॥ ५८
त्रिष्टुभः स्वार२ स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहत् ।
भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥४॥ ५९
अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम् । वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी ॥५॥ ६०
जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपम् ।
जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥६॥ ६१
इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्र२ सौवम् । शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप्छारदी ॥७॥ ६२
अनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकवि२श एकवि२शाद्वैराजम् ।
विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥८॥ ६३
इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या । हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती ॥९॥ ६४
पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रि२शौ त्रिणवत्रयस्त्रि२शाभ्या२ शाक्वररैवते ।
विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ।
लोकं पृण ता अस्येन्द्रं विश्वाः ॥१०॥ (७) ६५ [८१४]

मयि गृह्णामि पञ्चदश ॥१५॥ ध्रुवासि त्रयोदश ॥१३॥ मधुवाता एकादश ॥११॥ सम्यक्स्रवन्ति नव ॥९॥ इमं मा षट् ॥६॥ अपान्त्वेकां ॥१॥ अयं पुरो दश ॥१०॥ सप्तानुवाकेषु पञ्चषष्टिः ॥ ६५ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥ १
कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥ २ [८१६]

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवाना२ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥ ३
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥४॥ ४
अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मा ऋतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
ग्रैष्मा ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु
तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥५॥(१) ५

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः ।
अग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैः ।
अग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः ।
अग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः ।
अग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः । ६
अग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥
प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि । चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय ॥२॥ ७
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि । दिवो वृष्टिमेरय ॥३॥ (२) ८

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दः ।
विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दः ॥१॥ ९
बस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः ।
पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः ॥२॥ १० [८२४]

सि२हो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्दः ।
उक्षा वयः ककुप्छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥३॥ ११
अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दः ।
त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः ॥४॥ १२
पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दः ।
तुर्यवाड्वयोऽनुष्टुप् छन्दो लोकं पृण ता अस्येन्द्रं विश्वाः ॥५॥(३) १३
इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां द२हतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधसे ॥१॥ १४
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीम् ।
अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं द२हान्तरिक्षं मा हिँ२सीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥२॥ १५
राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीचीदिक्
स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ।
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
नभश्च नभस्यश्च वार्षिका ऋतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
वार्षिका ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।
इषश्चोर्जश्च शारदा ऋतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
शारदा ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु
तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥३॥(४) १६

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि ।
चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥१॥ १७ [८३१]

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दो अस्त्रीवयश्छन्दः । पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दः ॥२॥ १८
बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दः । त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥३॥ १९
पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दः ।
नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दः ॥४॥ २०
मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दः । अजाछन्दोऽश्वश्छन्दः ॥५॥ २१
अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता । वसवो देवता रुद्रा देवता ।
आदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवता ।
इन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥६॥(५) २२

मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी । आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥१॥२३
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री । इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।
लोकं पृण ता अस्येद्र विश्वाः ॥२॥(६) २४

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणं एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशः ।
तपो नवदशोऽभीवर्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशः॥१॥ २५
गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः ।
नाकः षट्त्रिंशो विवर्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥२॥ (७) २६

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः ।
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्चदश स्तोमः ॥१॥ २७
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदश स्तोमः ।
मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविंश स्तोमः ॥२॥ २८
वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंश स्तोमः ।
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चविंश स्तोमः ॥३॥ २९
अदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः ।
देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥४॥३० [८४]
यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिंश स्तोमः ।
ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतं स्पृतं त्रयस्त्रिंश स्तोमः ।

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिका ऋतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
हैमन्तिका ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु
तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥५॥ (८) ३१

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्तिसृभिरस्तुवत
ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् ।
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्सप्तभिरस्तुवत
सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥१॥ ३२
नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुवत
ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसन् ।
त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्पञ्चदशभिरस्तुवत
क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् ॥२॥ ३३
सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत
शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ।
एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्
त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् ॥३॥ ३४
पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्सप्तविंशत्यास्तुवत
द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन् ।
नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीदेकत्रिंशतास्तुवत
प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन् ।
त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ।
लोकं पृण ता अस्येन्द्रं विश्वाः ॥४॥ (९) ३५ [८९]

भुवक्षितिः पञ्च ॥ ५ ॥ सजूरृतुभिस्तिस्रः ॥ ३ ॥ मूर्धा वयः पञ्च ॥ ५ ॥ इन्द्राग्नी तिस्रः ॥ ३ ॥ आयुर्मे षट् ॥ ६ ॥ मूर्धासि द्वे ॥ २ ॥ आशुश्च द्वे ॥ २ ॥ अग्नेर्भागः पञ्च ॥ ५ ॥ एकया चतस्रः ॥ ४ ॥

॥ नवानुवाकेषु पञ्चत्रिंशत् ॥ ३५ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

अग्ने जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडंस्तव स्याम शर्मंस्त्रिवरूथ उद्भौ ॥१॥ १
सहसा जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयं स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ।
षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम् ॥२॥ २
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ॥३॥ ३
एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दः। आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः॥४॥ ४
सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ।
ककुप् छन्दस्त्रिककुप् छन्दः काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दः ॥५॥ ५
अक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः।
आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दः ॥६॥ ६
बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दः ।
गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दः ॥७॥ ७
एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दः ।
विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दः । तन्द्रं छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः ॥८॥(१)८

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व ।
अन्वित्या दिवा दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व ॥१॥ ९
प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व ।
प्रवयाह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्व ॥२॥ १०
उशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिन्व ।
तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्व ॥३॥ ११
ऐडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व ।
वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥४॥ १२
प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा । सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥५॥ १३
त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा । विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा॥६॥१४[८१]

आक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा सङ्क्रमोऽसि सङ्क्रमाय त्वा ।
उत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वा ।
आधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व वेषश्रीः क्षत्राय क्षत्रं जिन्व ॥७॥ (२) १५

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयः । अग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता ॥१॥ १६
त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु ।
रथन्तरं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ॥२॥ १७
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु ।
विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥३॥ १८
विराळसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतयः । इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता ॥४॥ १९
पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु प्र उगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु।
बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ॥५॥ २०
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु ।
विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥६॥ २१
सम्राळसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयः । वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ता ॥७॥ २२
सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु ।
वैरूपं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ॥८॥ २३
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु ।
विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥९॥ २४
स्वराळस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः । सोमो हेतीनां प्रतिधर्ता ॥१०॥ २५
एकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु ।
वैराजं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ॥११॥ २६
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु ।
विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१२॥२७
आधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयः । बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता ॥१३॥ २८ [८७]

त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम् ।
शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे ॥१४॥ २९
ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु ।
विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य
पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥१५॥ (३) ३०

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिः ॥१॥ ३१
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥२॥ ३२
अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेतिः ॥३॥ ३३
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु । ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥४॥ ३४
अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिः ॥५॥ ३५
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥६॥ ३६
अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसा आपो हेतिर्वातः प्रहेतिः ॥७॥ ३७
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥८॥ ३८
अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसा अवस्फूर्जन्हेतिर्विद्युत्प्रहेतिः ॥९॥ ३९
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयतु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१०॥ (४) ४०

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥१॥ ४१
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥२॥ ४२
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३॥ ४३
[८९१]
९

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥४॥ ४४
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥५॥ ४५
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥६॥ ४६
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥७॥ ४७
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥८॥ ४८
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥९॥ ४९
सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१०॥ ५०
सꣳ समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥११॥ ५१
त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते । मन्ये त्वा जातवेदसꣳ स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१२॥ ५२
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥१३॥ ५३
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१४॥५४
विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् । स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ॥१५॥५५
स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥१६॥ ५६
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥१७॥ ५७
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥१८॥ ५८
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥१९॥ ५९
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥२०॥ ६०
भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । येना समत्सु सासहः ॥२१॥ ६१
येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२२॥ ६२
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥२३॥ ६३ [९११]

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥२४॥ ६४
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥२५॥ ६५
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥२६॥ ६६
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीरृतस्य बृहतो बभूथ ॥२७॥ ६७
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥२८॥ ६८
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥२९॥ ६९
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३०॥ (५) ७०

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निꣳ स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥१॥ ७१
तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥२॥ ७२
आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥३॥ ७३
अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्र याहि दिव्यानि धाम ॥४॥ ७४
सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् ।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५॥ ७५
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥६॥ ७६
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥७॥ ७७
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥८॥(६) ७८
[९१७]

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि ।
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ।
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे ।
शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१॥ ७९
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥२॥८०
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३॥ ८१
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥४॥ ८२
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥५॥ ८३
आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाꣳ समुद्रस्य हृदये ।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ।
परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीम् । दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥६॥ ८४
सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि । साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥७॥(७)८५[९१४]

अग्ने जातानष्ट ॥ ८ ॥ रश्मिना सत्याय सप्त ॥ ७ ॥ राश्यसि पञ्चदश ॥ १५ ॥ अयं पुरो दश ॥ १० ॥
अग्निर्मूर्धा त्रिंशत् ॥ ३० ॥ येन ऋषयोऽष्ट ॥ ८ ॥ तपश्च सप्त ॥ ७ ॥
सप्तानुवाकेषु पञ्चाशीतिः ॥ ८५ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१॥ १
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२॥ २
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥३॥ ३
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥४॥ ४
[९१८]

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥५॥ ५
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳरुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥६॥ ६
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥७॥ ७
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥८॥ ८
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥९॥ ९
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाꣳ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥ १०
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥११॥ ११
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥१२॥ १२
अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३॥ १३
नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१४॥ १४
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥ १५
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥१६॥ (१) १६

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमः ।
नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो
हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥१॥ १७
नमो बभ्लुशायाव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमः ।
नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥२॥ १८
नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमः ।
नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः॥३॥ १९
[१५३]

नमः कृत्स्नायताय धावते सत्वनां पतये नमो नमः
सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमः ।
नमः ककुभाय निषङ्गिणे स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः॥४॥ २०
नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमः ।
नमः सृकायिभ्यो जिघांꣳसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो
नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥५॥ (२) २१

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमः ।
नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥१॥ २२
नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः ।
नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥२॥ २३
नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः ।
नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः ॥३॥ २४
नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः ।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥४॥ २५
नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमः ।
नमः क्षत्तृभ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥५॥ (३) २६

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः ।
नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥१॥ २७
नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च ।
नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२॥ २८
नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च ।
नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥३॥ २९
नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च ।
नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥४॥ ३०
नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च ।
नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥५॥ (४) ३१ [१५५]

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च ।
नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥१॥ ३२
नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च ।
नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥२॥ ३३
नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च ।
नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥३॥ ३४
नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च ।
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥४॥ ३५
नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च ।
नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥५॥ (५) ३६

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च ।
नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥१॥ ३७
नमः कूप्याय चावट्याय च नम ईध्र्याय चातप्याय च ।
नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥२॥ ३८
नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च ।
नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥३॥ ३९
नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च ।
नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च ॥४॥ ४०
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।
नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय
च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥५॥(६) ४१

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च।
नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥१॥ ४२
नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च ।
नमः कपर्दिने च पुलस्तिने च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥२॥ ४३
नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च ।
नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥३॥ ४४[१५८]

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च ।
नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥४॥ ४५
नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च ।
नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः ।
नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो
नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥५॥ (७) ४६

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत् ॥१॥ ४७
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥२॥ ४८
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥३॥ ४९
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्यात् परि त्वेषस्य दुर्मतिर्महीगात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥४॥ ५०
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि ॥५॥ ५१
विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥६॥ ५२
सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥७॥ ५३
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥८॥ ५४
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥९॥ ५५
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥१०॥५६
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥११॥५७
ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१२॥ ५८
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१३॥ ५९
ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१४॥ ६०
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१५॥ ६१
येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥१६॥ ६२
य एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥१७॥६३
[१६०]

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृळयन्तु ते नोऽवन्तु ।
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥१८॥(८) ६४ [९९८]

नमस्ते षोळश ॥ १६ ॥ नमो हिरण्यबाहवे पञ्च ॥५॥ नम उष्णीषिणे पञ्च ॥५॥ नमस्तक्षभ्यः पञ्च ॥५॥ नमो ज्येष्ठाय पञ्च ॥५॥ नमः स्रुत्याय पञ्च ॥ ५ ॥ नमः पार्याय पञ्च ॥ ५ ॥ द्रापे अन्धसस्पत अष्टादश ॥ १८ ॥ अष्टानुवाकेषु चतुःषष्टिः ॥ ६४ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि संभृतं पयः ।
तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा अश्मꣳस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥ १
इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च ।
सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च ॥२॥ २
अर्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च ।
एता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥३॥ ३
ऋतवं स्थ ऋतावृधं ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः ।
घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥४॥ ४
समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥५॥ ५
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥६॥ ६ [१००४]
१०

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा ।
अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥७॥ ७
अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥८॥ ८
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥९॥ ९
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ३ इहावह । उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥१०॥ १०
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥११॥ ११
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ।
नृषदे वेळप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२॥ १२
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥ १३
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य ।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥१४॥ १४
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥१५॥ (१) १५

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनुते रयिम् ॥१॥ १६
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ३ आविवेश ॥२॥ १७
किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥३॥ १८
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥४॥ १९
किꣳस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥५॥ २०[१०१८]

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥६॥ २१
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥ २२
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥८॥ २३
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥९॥ (२) २४

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥ २५
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥ २६
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३॥ २७
त आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४॥ २८
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कꣳस्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥५॥ २९
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभा अध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६॥ ३०
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥ ३१
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥८॥ (३) ३२
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥ ३३ [१०३१]

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥ ३४
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥ ३५
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ३ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥ ३६
बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥५॥ ३७
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनु सꣳरभध्वम् ॥६॥ ३८
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥ ३९
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥ ४०
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९॥ ४१
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनाꣳसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥ ४२
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ३ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥ ४३
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥ ४४
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते । गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥१३॥ ४५
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१४॥ ४६
असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यं न जानन् ॥१५॥ ४७
यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१६॥ ४८ [१०४९]

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१७॥ (४) ४९

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सःसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१॥ ५०
इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा असत्॥२॥५१
यस्यं कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मैं देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥ ५२
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वः सुप्रतीको विभावसुः॥४॥ ५३
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥५॥ ५४
समिद्धे अग्ना अधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥६॥ ५५
दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमणाः शतपयाः ।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥७॥ ५६
वीतः हविः शमितः शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ।
ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥८॥ ५७
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ३ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्संपश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥९॥ ५८
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥१०॥ ५९
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥११॥ ६०
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमः रथीनां वाजानाः सत्पतिं पतिम् ॥१२॥६१
देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ३ आ च वक्षत् ॥१३॥ ६२
वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ३ अकः ॥१४॥ ६३
उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥१५॥ (५) ६४

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यः हस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठः स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥१॥६५[१०६३]

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यानो विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥२॥ ६६
पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥३॥ ६७
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याः रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारः सुविद्वाःसो वितेनिरे ॥४॥ ६८
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥५॥ ६९
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकः समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥६॥ ७०
अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः ।
त्वः साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥७॥ ७१
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृःह ॥८॥ ७२
आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥९॥ ७३
ताः सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाः सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥१०॥ ७४
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीःषि जुहुरे समिद्धे ॥११॥ ७५
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वाः शश्वन्त उपयन्ति वाजाः॥१२॥७६
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रः हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥१३॥ ७७
चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः ।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यः हविः ॥१४॥ ७८
सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥१५॥ (६) ७९

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माःश्च । शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यःहाः॥१॥८० [१०७८]

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च संमितश्च सभराः ॥२॥ ८१
ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥३॥ ८२
ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥४॥ ८३
ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन ।
मितासश्च संमितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥५॥ ८४
स्वतवाःश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥६॥ ८५
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥७॥ (७) ८६[१०८४]

अश्मन्नूर्जं पञ्चदश ॥१५॥ अग्निस्तिग्मेन नव ॥९॥ चक्षुषः पिता अष्ट ॥८॥ वाजः शिशानः सप्तदश॥१७॥
इदेनं पञ्चदश ॥१५॥ क्रमध्वमग्निना पञ्चदश ॥ १५ ॥ शुक्रज्योतिश्च सप्त ॥ ७॥
सप्तानुवाकेषु षडशीतिः ॥८६॥
इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

इमः स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियः सदनमाविशस्व ॥१॥ १
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥२॥ २
समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ३ उदारदुपाःशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥३॥ ३
वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥४॥ ४
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ३ आविवेश ॥५॥ ५
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकः सूर्य एकं जजान वेनादेकः स्वधया निष्टतक्षुः ॥६॥ ६[१०९०]
एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ।

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥७॥ ७
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥८॥ ८
अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९॥ ९
कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥१०॥ १०
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥११॥ ११
धामं ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥१२॥ (१) १२

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे ।
धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे ।
श्रावश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ १३
प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे । चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे ।
चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ १४
ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे । शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे ।
परूःषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ १५
ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मे ।
अमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे ।
वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥ (२) १६
सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे । विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे ।
जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ १७
वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे । सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे ।
क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ १८[११०१]

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे । विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे ।
सीरं च मे लयश्च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ १९
शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे । कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे ।
भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥ (३) २०

ऊर्क्च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे । घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे ।
कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ २१

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे ।
जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे ।
सुगं च मे शयनं च मे सूषा च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ २२
रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे । विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे ।
कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ २३
व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे । मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे ।
श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥ (४) २४

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे ।
सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे ।
सीसं च मे त्रपु च मे श्यामं च मे लोहं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ २५
अग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे ।
कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे ।
वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ २६
वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मे ।
अर्थश्च मे यामश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ (५) २७

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे ।
सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे ।
पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ २८
मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे । धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे ।
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ २९[११११]
११

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे । द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे।
नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ (६) ३०

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च मे ।
उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मे ।
आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ ३१

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे ।
ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे ।
सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ ३२
स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ।
ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे ।
वेदिश्च मे बर्हिश्च मे स्वगाकारश्च मेऽवभृथश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ ३३
अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे । प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे ।
दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥ ३४
व्रतं च म ऋतवश्च मे संवत्सरश्च मे तपश्च मे ।
अहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥ (७) ३५

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे
नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे ।
पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म
एकविꣳशतिश्च म एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे ।
पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे
नवविꣳशतिश्च म एकत्रिꣳशच्च म एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१॥ ३६
चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे
विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मे चतुर्विꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मेऽष्टाविꣳशतिश्च मे ।
द्वात्रिꣳशच्च मे द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च मे
चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे चतुश्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२॥ ३७[११२१]

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे ।
पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे ।
तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥ ३८
पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च मे ।
ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाꣳश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥ (८) ३९
वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा । वसवे स्वाहाहर्पतये स्वाहा ।
अह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिन आन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय
भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥१॥ ४०
इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमनः । ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥२॥ ४१
आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् ।
वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् ।
ब्रह्म यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पताम् ॥३॥ ४२
स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च ।
स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥३॥ (९) ४३ [११२७]

यन्ता च ॥४॥ ऊर्क्च चतस्रः ॥४॥ अश्मा च तिस्रः॥३॥
इमं स्तनं द्वादश ॥१२॥ वाजश्चतस्रः ॥४॥ सत्यं चतस्रः ॥४॥ ऊर्क्च चतस्रः ॥४॥ एका चतस्रः ॥४॥ वाजाय चतस्रः ॥४॥
द्वितीयोऽग्निश्च तिस्रः ॥३॥ अंशुः पञ्च ॥५॥
नवानुवाकेषु त्रयश्चत्वारिंशत् ॥४३॥
इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः।

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥१॥ १
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥२॥ २
वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥३॥ ३
वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाꣳ३ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥४॥ ४ [११३१]

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥५॥ ५
सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥६॥ ६
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥७॥ (१) ७

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वः । तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥१॥ ८
सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः । तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥२॥ ९
सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३॥ १०
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः । तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४॥ ११
भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः । तस्य दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥५॥ १२
प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः । तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥६॥ १३
स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥७॥ १४
समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । ॥८॥ १५
यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥९॥ १६
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥१०॥ १७ [११४४]

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥११॥ १८
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥१२॥ १९
स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा ।
स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ॥१३॥ (२) २०

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥१॥ २१
इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥२॥ २२
इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥३॥ २३
दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥४॥ २४
विश्वस्य मूर्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥५॥ २५
इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥६॥ २६
इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टꣳ हविः । स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥७॥ (३) २७

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा ।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥१॥ २८
एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥२॥ २९
एतं जानाथ परमे व्योमन्देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवथाविरस्मै ॥३॥ ३०
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥४॥ ३१ [११५८]

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥५॥ ३२
प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥६॥ ३३
यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥७॥ ३४
यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥८॥ ३५
ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥९॥(४)३६

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥१॥ ३७
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥२॥ ३८
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ३ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥३॥ ३९
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥४॥ ४०
वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥५॥ ४१
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥६॥ ४२
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७॥ ४३
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥८॥ ४४
धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥९॥ ४५
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄꣳः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥१०॥(५)४६ [११७३]

वाजस्यनु सप्त ॥७॥ ऋतावाद त्रयोदश ॥१३॥ अग्निं युनज्मि सप्त ॥७॥ यदाकूतान्नव ॥९॥ वार्त्रहत्याय दश॥१०॥
पञ्चानुवाकेषु षट्चत्वारिंशत् ॥४६॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ इति द्वितीयो दशकः ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयो दशकः ॥ ३ ॥

एकविंशोऽध्यायः ।

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन ।
मधुमतीं मधुमता सृजामि सꣳ सोमेन ।
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥१॥ १
परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
दधन्वा यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥ २
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥३॥ ३
पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥४॥ ४
ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ।
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं न जग्मुः ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ।
एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥५॥ ५
नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳ सृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥६॥ ६
उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् ।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥७॥ ७
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि
बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥८॥ ८
या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥९॥ ९
यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् ।
एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया ॥१०॥ १० [११८३]

संपृचः स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त । विपृचः स्थ वि मा पापेन पृङ्क्त ॥११॥ (१) ११

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥१॥ १२
दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥२॥ १३
आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥३॥ १४
सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते ।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या ॥४॥ १५
आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥५॥ १६
वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥६॥ १७
हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती ।
इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥७॥ १८
प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य ।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥८॥ १९
पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीꣳष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥९॥ २०
धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपꣳ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥१०॥ २१
धानानाꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाꣳ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥११॥ २२
पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि ।
सोमस्य रूपं वाजिनꣳ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥१२॥ २३
आश्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः ।
यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजामहाः ॥१३॥ २४ [११९७]

अर्धं ऋचैरुक्थानाꣳ रूपं पदैराप्नोति निविदः ।
प्रणवैः शस्त्राणाꣳ रूपं पयसा सोम आप्यते ॥१४॥ २५
अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यंदिनम् ।
वैश्वदेवꣳ सरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳ सवनम् ॥१५॥ २६
वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥१६॥ २७
यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥१७॥ २८
इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः ।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥१८॥ २९
व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥१९॥ ३०
एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥२०॥(२) ३१

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥१॥ ३२
यस्ते रसः संभृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विना इन्द्रमग्निम् ॥२॥ ३३
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥३॥ ३४
यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥४॥ ३५
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।
प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ ५ ॥ ३६
अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः । पितरः शुन्धध्वम् ॥६॥ ३७
पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।
पवित्रेण शतायुषा ॥७॥ ३८
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥८॥ ३९
[११११]
१२

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥९॥ ४०
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥१०॥४१
पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूꣳरनु ॥११॥ ४२
यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥१२॥ ४३
पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥१३॥ ४४
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥१४॥ ४५
वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥१५॥ ४६
ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषाँल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥१६॥ ४७
ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः ॥१७॥ ४८
द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१८॥ ४९
इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥१९ (३) ५०

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥ ५१
त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥२॥ ५२
त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥३॥ ५३
त्वꣳ सोमꣳ पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥ ५४
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥५॥ ५५ [११२८]

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥६॥ ५६
आहं पितॄन्त्सुविदत्राꣳ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥७॥ ५७
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥८॥ ५८
आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥९॥ ५९
ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥१०॥ ६०
अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य आशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥११॥ ६१
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिꣳसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥१२॥ ६२
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥१३॥ ६३
यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् । तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१४॥ ६४
अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः । प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥१५॥६५
यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीꣳषि ॥१६॥ ६६
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥१७॥ ६७
ये चेह पितरो ये च नेह याꣳश्च विद्म याँ२ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥१८॥ ६८
अद्या यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१९॥ ६९
उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥२०॥ ७० [११४३]

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥२१॥ (४) ७१

सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥१॥ ७२
अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।
सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।
अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥२॥ ७३
रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्बं जहाति जन्मना ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥३॥ ७४
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥४॥ ७५
वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।
दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत्पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥५॥ (५)७६

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ॥१॥ ७७
तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सꣳरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥२॥ ७८
तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥३॥ ७९
सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥४॥ ८० [११५३]

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥५॥ ८१
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥६॥ ८२
आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥७॥ ८३
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८॥ ८४
मुखꣳ सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्पं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥९॥ ८५
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥१०॥ ८६
अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥११॥ ८७
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥१२॥ ८८
आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥१३॥ ८९
अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥१४॥ ९०
सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपाꣳ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रꣳ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥१५॥ ९१
तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥१६॥ (६) ९२

क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि । मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ।
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥१॥ ९३ [१२९६]

अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामि।
इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥२॥ ९४
कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥३॥ ९५
शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥४॥ ९६
जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥५॥ ९७
बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥६॥ ९८
पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥७॥ ९९
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दा आण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः ॥८॥ १००
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ।
प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु ॥९॥ १०१
प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे ।
प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥१०॥ १०२
त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥११॥ १०३
प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन ।
सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः ॥१२॥ १०४
सामान्यृग्भिरृचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैः ।
वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥१३॥ १०५
लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म आनतिरागतिः ।
माꣳसं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥१४॥७॥ १०६ [१३०९]

स्वादीं त्वैकादश ॥११॥ देवा यज्ञं विंशतिः ॥२०॥ सुरावन्तमेकोनविंशतिः ॥१९॥ उदीरतामेकविंशतिः ॥२१॥
सोमो राजा पञ्च ॥५॥ सीसेन तन्त्रं षोडश ॥१६॥ क्षत्रस्य नाभिश्चतुर्दश ॥१४॥

॥ सप्तानुवाकेषु षडुत्तरशतम् ॥ १०६ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥१॥ १
यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥२॥ २
यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥३॥ ३
यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् ।
यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ।
अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः ।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥४॥ ४
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥५॥ ५
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥६॥ ६
अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सꣳ सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ।
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥७॥ ७
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥८॥ (१) ८
अग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥१॥ ९
यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥२॥ १०
यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥३॥ ११
अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः । गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥४॥ १२
सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥५॥ १३
[१२९१]

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥६॥ १४
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥७॥ १५
अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥८॥ (२) १६

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधि श्रिताः ।
य ईशे महतो महाꣳस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥१॥ १७
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ।
एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥२॥ १८
प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे । वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः॥३॥ १९
अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥४॥ (३) २०

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥१॥ २१
नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥२॥ २२
ईडितो देवैर्हरिवाँꣳ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥३॥ २३
जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥४॥ २४
इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥५॥ २५
उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥६॥ २६
दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होतारा इन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥७॥ २७
तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥८॥ २८ [१३००]

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥९॥ २९
वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥१०॥ ३०
स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥ (४) ३१

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥१॥ ३२
आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥२॥ ३३
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥३॥ ३४
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रँ हवेहवे सुहवँ शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥४॥ ३५
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥५॥ ३६
तस्य वयँ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥६॥ ३७
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ इहि ॥७॥ ३८
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ (५) ३९

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमँ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥१॥ ४०
तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजाँसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥२॥ ४१
इन्द्रायेन्दुँ सरस्वती नराशँसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥३॥ ४२ [१३२१]
११

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरश्विना इषँ समूर्जँ सँ रयिं दधुः ॥४॥ ४३
अश्विना नमुचेः सुतँ सोमँ शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमा भरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥५॥ ४४
कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥६॥ ४५
उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रँ सायमिन्द्रियैः । संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥७॥ ४६
पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तँ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रँ सचा सुते ॥८॥ ४७
तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥९॥ ४८
अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती । इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियँ रूपँरूपमधुः सुते ॥१०॥ ४९
ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता । कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥११॥ ५०
गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता । समधातँ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥१२॥ (६) ५१

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥१॥ ५२
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् । स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥२॥ ५३
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः ॥३॥ ५४
य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥४॥ ५५
सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥५॥ ५६
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥६॥ ५७
अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रँ सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥७॥ ५८
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥८॥ ५९
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥९॥ ६०
युवँ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥१०॥ ६१
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दँसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥११॥ ६२
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥१२॥ ६३
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिँ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१३॥ (७) ६४ [१३७१]

प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥१॥ ६५
अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥१॥ ६६
गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥२॥ ६७
न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशँसो मर्त्यो रिपुः ॥३॥ ६८
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥४॥ ६९
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥५॥ ७०
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥६॥ ७१
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥७॥ ७२
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥८॥ ७३
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥९॥ ७४
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥१०॥
अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताँ सोम्यं मधु ॥११॥ (८) ७५ [१३५४]

यो भूतानां चतस्रः ॥ ४ ॥ समिद्ध इन्द्र एकादश ॥ ११ ॥
यद्देवा अष्ट ॥ ८ ॥ अभ्यादधामीत्यष्ट ॥ ८ ॥ अयात्वष्ट ॥ ८ ॥ समिद्धो अग्निर्द्वादश ॥ १२ ॥ अश्विना हविस्त्रयोदश ॥ १३ ॥ अश्विना तेजसैकादश ॥ ११ ॥
॥ अत्रानुवाकेषु पञ्चसप्ततिः ॥ ७५ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥१॥ १
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । २
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशँस मा न आयुः प्र मोषीः ॥२॥
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळो अव यासिसीष्ठाः । ३
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । ४
अव यक्ष्व नो वरुणँ रराणो वीहि मृळीकँ सुहवो न एधि ॥४॥
महीमू षु मातरँ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम । ५ [१३५९]
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीँ सुशर्माणमदितिँ सुप्रणीतिम् ॥५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसँ सुशर्माणमदितिँ सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावँ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥६॥ ६
सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राँ स्वस्तये ॥७॥ ७
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजाँसि सुक्रतू ॥८॥ ८
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥ ९
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकँ रक्षाँसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥१०॥ १०
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता इव त्मना महो ये धनँ समिथेषु जभ्रिरे ॥११॥ ११
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥१२॥ (१) १२

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥१॥ १३
तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥२॥ १४
इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः । अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥३॥ १५
सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥४॥ १६
दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥५॥ १७
उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥५॥ १८
दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥७॥ १९
तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥८॥ २०
त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥९॥ २१
शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥१०॥ २२
स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥११॥ (२) २३ [१३७०]

वसन्तेन॑ ऋतुना॑ दे॒वा वस॑वस्त्रि॒वृता॑ स्तु॒ताः । र॒थन्त॒रेण॒ तेज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥१॥ २४
ग्रीष्मेण॑ ऋतुना॑ दे॒वा रु॒द्राः प॑ञ्चद॒शे स्तु॒ताः । बृ॒हता॑ य॒शसा॒ बलꣳ॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥२॥ २५
व॒र्षाभि॑र्ऋ॒तुना॑दि॒त्या स्तोमे॑ सप्तद॒शे स्तु॒ताः ।
वै॒रू॒पेण॑ वि॒शौज॑सा ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥३॥ २६
शा॒रदेन॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वा एक॑वि॒ꣳश ऋ॒भव॑ स्तु॒ताः ॥
वै॒रा॒जेन॑ श्रि॒या श्रियꣳ॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥४॥ २७
हे॒म॒न्तेन॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्रि॑ण॒वे म॒रुत॑ स्तु॒ताः । बले॑न॒ शक्व॑रीः सहो॑ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ दधुः ॥५॥ २८
शै॒शि॒रेण॑ ऋ॒तुना॑ दे॒वास्त्र॑यस्त्रि॒ꣳशेऽमृता॑ स्तु॒ताः ।
स॒त्येन॑ रे॒वतीः॑ क्ष॒त्रꣳ ह॒विरिन्द्रे॒ वयो॑ द॒धुः ॥६॥ (३) २९

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒ग्निमि॒डस्प॒देऽश्विनेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वतीम॒जो धू॒म्रो न गो॒धूमैः॒ कुव॑लैर्भेष॒जं मधु॑ ।
शष्पै॒र्न तेज॑ इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥१॥ ३०
होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॒त्सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑म॒ता भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्य॑म् ।
बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥२॥ ३१
होता॑ यक्ष॒न्नरा॒शꣳसं॒ न न॒ग्नहुं॒ पति॒ꣳ सुर॑या भेष॒जं मे॒षः सर॑स्वती भि॒षग्रथो॒ न च॒न्द्र्य॑श्विनो॑र्व॒पा इन्द्र॑स्य
वी॒र्य॑म् । बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥३॥ ३२
होता॑ यक्ष॒दिडे॑डि॒त आ॒जुह्वा॑नः॒ सर॑स्वती॒मिन्द्रं॒ बले॑न व॒र्धय॑न्नृष॒भेण॒ गवे॑न्द्रि॒यम॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जम् ।
यवैः॑ क॒र्कन्धु॑भि॒र्मधु॑ ला॒जैर्न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥४॥ ३३
होता॑ यक्षद्ब॒र्हिरूर्ण॑म्रदा भि॒षङ् नास॑त्या भि॒षजा॒श्विनाश्वा॒ शिशु॑मती भि॒षग्धे॒नुः सर॑स्वती भि॒षक् ।
दु॒ह इन्द्रा॑य भेष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥५॥ ३४
होता॑ यक्ष॒द्दुरो॒ दिशः॑ कव॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्यां॒ न दुरो॒ दिश॒ इन्द्रो॒ न रोद॑सी दु॒घे दु॒हे धे॒नुः
सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जम् ।
शु॒क्रं न ज्योति॑रिन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥६॥ ३५
होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जा॒ते सर॑स्वत्या॒ त्विषि॒मिन्द्रे॒ न भे॑ष॒जम् ।
श्ये॒नो न रज॑सा हृ॒दा श्रि॒या न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥७॥ ३६
होता॑ यक्ष॒द्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒श्विनेन्द्रं॒ न जागृ॑वि॒ दिवा॒ नक्तं॒ न भे॑ष॒जैः ।
शू॒षꣳ सर॑स्वती भि॒षक् सीसे॑न दु॒ह इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑
घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥८॥ ३७ [१३९१]

होता॑ यक्षत्ति॒स्रो दे॒वीर्न भे॑ष॒जं त्रय॑स्त्रि॒धात॑वो॒ऽपसो॑ रू॒पमिन्द्रे॑ हिर॒ण्यय॑म॒श्विनेडा॒ न भार॑ती ।
वा॒चा सर॑स्वती॒ मह॒ इन्द्रा॑य दु॒ह इ॒न्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑
घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥९॥ ३८
होता॑ यक्षत् सु॒रेत॑समृष॒भं नर्या॑पसं॒ त्वष्टा॑र॒मिन्द्र॑म॒श्विना॑ भि॒षजं॒
न सर॑स्वती॒मोजो॒ न जू॒तिरि॑न्द्रि॒यं वृको॒ न र॑भ॒सो भि॒षक् ।
यशः॒ सुर॑या भेष॒जꣳ श्रि॒या न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑
परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥१०॥ ३९
होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑ꣳ शमि॒तार॑ꣳ श॒तक्र॑तुं भी॒मं न म॒न्युꣳ राजा॑नं व्या॒घ्रं नम॑सा॒श्विना॑ ।
भा॒मꣳ सर॑स्वती भि॒षगिन्द्रा॑य दु॒ह इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑
परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥११॥ ४०
होता॑ यक्षद॒ग्निꣳ स्वाहाज्य॑स्य स्तो॒काना॒ꣳ स्वाहा॒ मेद॑सां॒
पृथ॒क् स्वाहा॒ छाग॑म॒श्विभ्या॒ꣳ स्वाहा॑ मे॒षꣳ सर॑स्वत्यै ।
स्वाह॑ ऋष॒भमिन्द्रा॑य सि॒ꣳहाय॒ सह॑स इन्द्रि॒यꣳ स्वाहा॒ग्निं न भे॑ष॒जꣳ स्वाहा॒ सोम॑मिन्द्रि॒यम् ।
स्वाहेन्द्र॑ꣳ सु॒त्रामा॑णꣳ सवि॒तारं॒ वरु॑णं भि॒षजां॒ पति॒ꣳ स्वाहा॒ वन॒स्पतिं॑ प्रि॒यं पाथो॒ न भे॑ष॒जम् ।
स्वाहा॑ दे॒वा आ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णो अ॒ग्निर्भे॑ष॒जं पयः॒ सोमः॑
परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑ ॥१२॥ (४) ४१

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो॒ जुषेता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो॒ जुषता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ।
होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो॒ जुषता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥१॥ ४२
होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ सर॑स्वती॒मिन्द्र॑ꣳ सु॒त्रामा॑णमि॒मे सोमाः॑
सु॒रामा॑ण॒श्छागै॒र्न मे॒षैर्ऋ॑ष॒भैः सु॒ताः ।
शष्पै॒र्न तोक्म॑भिर्ला॒जैर्मह॑स्वन्तो॒ मदा॒ मास॑रेण॒ परि॑ष्कृताः
शु॒क्राः पय॑स्वन्तो॒ऽमृताः॒ प्रस्थि॑ता वो मधु॒श्च्युत॒स्तान॒श्विना॒ सर॑स्व॒तीन्द्रः॑
सु॒त्रामा॑ वृत्र॒हा जु॒षन्ता॒ꣳ सो॒म्यं मधु॑ ।
पिब॑न्तु॒ मद॑न्तु॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑ ॥२॥ ४३ [१३९७]
होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ आत्ता॑म॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या
गृ॒भः । घस्तां॑ नू॒नं घा॒से अ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमाना॒ꣳ सु॒मत्क्ष॑राणा॒ꣳ श॒तरु॒द्रिया॑णाम॒ग्निष्वा॒त्ताना॒ं

पीवो॑पवसनानाम् । पा॒र्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्ताना॒ं कर॑त ए॒वा॒-
श्विना॑ जु॒षेता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ । होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ ह॒विष॒ आव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒
उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भः । घस॑न्नू॒नं घा॒से अ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमाना॒ꣳ
सु॒मत्क्ष॑राणा॒ꣳ श॒तरु॒द्रिया॑णाम॒ग्निष्वा॒त्ताना॒ं पीवो॑पवसनानाम् । पा॒र्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त
उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्ताना॒ं कर॑देव॒ꣳ सर॑स्वती जु॒षता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ । होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒-
भस्य॑ ह॒विष॒ आव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भः । घस॑न्नू॒नं
घा॒से अ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमाना॒ꣳ सु॒मत्क्ष॑राणा॒ꣳ श॒तरु॒द्रिया॑णाम॒ग्निष्वा॒त्ताना॒ं पीवो॑पवसनानाम् ।
पा॒र्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्ताना॒ं कर॑देव॒मिन्द्रो॑ जु॒षता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑
॥३॥ ४४

होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑म॒भि हि पि॒ष्टत॑मया॒ रभि॑ष्ठया रश॒नया॑धि॒त ।
यत्रा॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्र॒ सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑
प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्रेन्द्र॑स्य ऋष॒भस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑नि ।
यत्रा॒ग्नेः प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्र॒ सोम॑स्य प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्रेन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॑नि ।
यत्र॑ सवि॒तुः प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्र॒ वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्र॒ वन॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथा॑ꣳसि ॥
यत्र॑ दे॒वाना॑माज्य॒पानां॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यत्रा॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि ।
तत्रै॒तान्प्र॒स्तुत्ये॑वोप॒स्तुत्ये॑वो॒पाव॑स्रक्ष॒द्रभी॑यस इव कृ॒त्वी कर॑दे॒वं दे॒वो
वन॒स्पति॑र्जु॒षता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥४॥ ४५
होता॑ यक्षद॒ग्निꣳ स्वि॑ष्ट॒कृत॒मया॑ड॒ग्निर॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑ट्
सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य ऋष॒भस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑नि ।
अया॑ड॒ग्नेः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सोम॑स्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॑नि ।
अया॑ट् सवि॒तुः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड् वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड् वन॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथा॑ꣳसि ।
अया॑ड् दे॒वाना॑माज्य॒पानां॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यक्ष॑द॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि । यक्ष॒त्स्वं
म॑हि॒मान॒माय॑जता॒मेज्या॒ इषः॑ कृ॒णोतु॒ सो अ॑ध्व॒रा जा॒तवे॑दा जु॒षता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥५॥ ४६

दे॒वं ब॒र्हिः सर॑स्वती सुदे॒वमिन्द्रे॑ अ॒श्विना॑ ।
तेजो॒ न चक्षु॑र॒क्ष्योर्ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥१॥ ४७
दे॒वीर्द्वारो॑ अ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती ।
प्रा॒णं न वी॒र्यं॑ न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥२॥ ४८ [१४०२]

दे॒वी उ॒षासा॑ अ॒श्विना॑ सु॒त्रामेन्द्रे॒ सर॑स्वती ।
बलं॒ न वाच॑मा॒स्य उ॒षाभ्यां॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥३॥ ४९
दे॒वी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन् ।
श्रोत्रं॒ न कर्ण॑यो॒र्यशो॒ जोष्ट्री॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥४॥ ५०
दे॒वी ऊ॒र्जाहु॑ती दु॒घे सु॒दुघेन्द्रे॒ सर॑स्वत्य॒श्विना॑ भि॒षजा॑वतः ।
शु॒क्रं न ज्योति॒ स्तन॑यो॒राहु॑ती धत्त इन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५॥ ५१
दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒ इन्द्र॑म॒श्विना॑ वषट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषि॒ न हृद॑ये म॒तिम् ।
होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥६॥ ५२
दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती ।
शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒मिन्द्रा॑य दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥७॥ ५३
दे॒व इन्द्रो॒ नरा॒शꣳस॑स्त्रिव॒रूथः॒ सर॑स्वत्या॒श्विभ्या॑मीयते॒ रथः॑ ।
रेतो॒ न रू॒पम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒मिन्द्रा॑य॒ त्वष्टा॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥८॥ ५४
दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णो अ॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या सुपिप्प॒ल इन्द्रा॑य पच्यते॒ मधु॑ ।
ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भामं॒ वन॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥९॥ ५५
दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्ण॑म्रदाः॒ सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सदः॑ ।
ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥१०॥ ५६
दे॒वो अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान्य॑क्षद्यथाय॒थꣳ होता॑रा॒ इन्द्र॑म॒श्विना॑
वा॒चा वाच॒ꣳ सर॑स्वतीम॒ग्निꣳ सोम॒ꣳ स्वि॑ष्ट॒कृत् ।
स्वि॑ष्ट॒ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॒ स्वि॑ष्टा दे॒वा आ॑ज्य॒पाः ।
स्वि॑ष्टो अ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्यशो॒ न दध॑दिन्द्रि॒यमूर्ज॒मप॑चिति॒ꣳ स्व॒धां
व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥११॥ ५७
अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॑
पच॑न् पुरो॒डाशा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑य ऋष॒भम् ।
सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ इन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान् ॥१२॥ ५८
सू॒प॒स्था अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवद॒श्विभ्यां॒ छागे॑न॒ सर॑स्वत्यै मे॒षेणेन्द्रा॑य ऋष॒भेण॑ ।
अक्ष॒ꣳस्तान् मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भीष॒तावी॑वृधन्त पुरो॒डाशै॒रपु॑र॒श्विना॒ सर॑स्व॒तीन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑
सुरासो॒मान् ॥ १३॥ ५९ [१४१३]

त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु
वसु वार्यायक्ष्यत इति ।
ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय
प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥१४॥ (६) ६० [१४१४]

इमं मे वरुण द्वादश ॥ १२ ॥ समिद्धो अग्निरेकादश ॥ ११ ॥ वसन्तेन षट् ॥ ६ ॥ होता यक्षद्
द्वादश ॥ १२ ॥ होता यक्षदश्विनौ छागस्य पञ्च ॥ ५ ॥ देवं बर्हिश्चतुर्दश ॥ १४ ॥
॥ षडनुवाकेषु षष्टिः ॥ ६० ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा आयुर्मे पाहि ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे ॥१॥ १
इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या ।
सा नो अस्मिन्त्सुत आ बभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥२॥ २
अभिधा असि भुवनमसि यन्तासि धर्ता ।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः स्वगा त्वा देवेभ्यः ॥३॥ ३
प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्यासम् ।
तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ।
प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि ॥४॥ ४
यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्तः परः श्वा ॥५॥ (१) ५

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहा ।
इन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥१॥ (२) ६

हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहावक्रन्दाय स्वाहा ।
प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा ॥१॥ ७
निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहा ।
आसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा ॥२॥ ८ [१४११]
१०

कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा ।
सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥३॥ ९
यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा ।
शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा ॥४॥ १०
जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा ।
विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहा ॥५॥ ११
ईक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा ।
यदत्ति तस्मै स्वाहा यत्पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा
कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥६॥ (३) १२

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१॥ १३
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥२॥ १४
देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥३॥ १५
सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरीमहे । प्र देवाय मतीविदे ॥४॥ १६
रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये । आसवं देववीतये ॥५॥ १७
देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ॥६॥ १८
अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥७॥ १९
स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥८॥ २०
तं त्वा घृतस्न ईमहे चित्रभानो स्वर्विदम् । देवाँ२ आ वीतये वह ॥९॥ २१
अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ२ आ सादयादिह ॥१०॥ (४) २२

ाजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥१॥ (५) २३

ेभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि ।
ायुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि ॥१॥ २४
देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षत ।
इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥२॥ (६) २५

काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा ।
स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञाताय ॥१॥ २६ [१४४०]

अदित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृळीकायै स्वाहा ।
सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा ॥२॥ २७
पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा ।
त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा ।
विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥३॥ २८
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥४॥ (७) २९
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः । ३०
शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ॥१॥
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा ।
जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ॥२॥ ३१
निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥३॥ (८) ३२
प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ।
चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥१॥ (९) ३३
प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ।
प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ।
ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥१॥ (१०) ३४
अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा
स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा ।
कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः
स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥१॥ (११) ३५
वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहा ।
अवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा
शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा ।
प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा
ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥१॥ (१२) ३६ [१४५०]

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा ।
दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाशाभ्यः
स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥१॥(१३) ३७

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा ।
मासेभ्यः स्वाहा ऋतुभ्यः स्वाहार्तवेभ्यः स्वाहा
संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥१॥ ३८
चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा ।
रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥२॥(१४) ३९

मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा ।
पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥१॥(१५) ४०

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ।
चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ।
वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा॥१॥(१६) ४१

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा ।
गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा ॥१॥ ४२
शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा ।
मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥२॥ (१७) ४३

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा ।
नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा ।
सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाꣳहसस्पतये स्वाहा ॥१॥(१८) ४४

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा ।
स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहा ।
अन्त्याय स्वाहान्त्यायनाय स्वाहा भौवनाय स्वाहा
भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥१॥ (१९) ४५ [१४५९]

आयुर्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां प्राणो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहांपानो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां
व्यानो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां ।
उदानो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां समानो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहा
श्रोत्रं यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां ।
वाग्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहा मनो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहात्मा यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां
पृष्ठं यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां ।
ब्रह्म यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां यज्ञो यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहा
स्वर्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वाहां ॥१॥ (२०) ४६

एकंस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहां शताय स्वाहैंकशताय स्वाहां ।
व्युंष्ट्यै स्वाहां स्वर्गाय स्वाहां ॥१॥ (२१) ४७ [१४६१]

तेजोऽसि पञ्च ॥५॥ अश्वय एका ॥१॥ हिङ्काराय षट् ॥६॥ तत्सवितुर्दश ॥१०॥ अजीजनो ह्येका ॥१॥
विभूर्द्वे ॥२॥ काय चतस्रः ॥४॥ आब्रह्मंस्तिस्रः ॥३॥ प्राणायैका ॥१॥ प्राच्यायैका ॥१॥
अद्भ्य एका ॥१॥ वातायैका ॥१॥ अश्वय इत्येका ॥१॥ नक्षत्रेभ्यो द्वे ॥२॥ मूलेभ्य एका ॥१॥
पृथिव्या इत्येका ॥१॥ अस्नव द्वे ॥२॥ मधव एका ॥१॥ वाजायैका ॥१॥
आयुर्यज्ञेनैका ॥१॥ एकस्मा इत्येका ॥१॥
॥ एकविंशत्यनुवाकेषु सप्तचत्वारिंशत् ॥४७॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवायं हविषां विधेम ॥१॥ १
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा ।
यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा संबभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा संबभूवं ।
यस्ते दिवि सूर्ये महिमा संबभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहां देवेभ्यः ॥२॥ (१) २

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूवं ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवायं हविषां विधेम ॥१॥ ३ [१४६४]

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा ।
यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा संबभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा संबभूवं ।
यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा संबभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहां ॥२॥ (२) ४

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१॥ ५
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२॥ ६
यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥३॥ ७
वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा ।
आदित्यास्त्वाञ्जन्तु जागतेन छन्दसा ॥४॥ ८
भूर्भुवः स्वर्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये गव्ये ।
एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥५॥ ९
कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥६॥ १०
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥७॥ ११
का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥८॥ १२
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥९॥(३) १३

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैः । न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या ॥१॥ १४
एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन् । ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥२॥ १५
सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः ।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥३॥ १६
स्वयं वाजिꣳस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न संनशे ॥४॥ १७
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥५॥ १८ [१४७९]

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः ।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः ।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ।
सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः ।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥६॥ (४) १९

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहां व्यानाय स्वाहां । अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मां नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥१॥ २०

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे ।
निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम ॥२॥ २१
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् । ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव ।
स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥३॥ (५) २२

उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् । य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥१॥ २३
यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥२॥२४
यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति ।
विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥३॥ २५
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥४॥ २६
माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः ।
विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥५॥ २७
ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥६॥ २८
ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव ।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥७॥ २९
यदस्या अꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥८॥ ३० [१४९१]

यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुः ।
सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥९॥ ३१
यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥१०॥ ३२
यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनु मन्यते ॥११॥ ३३
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूꣳषि तारिषत् ॥१२॥ (६) ३४

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥१॥ ३५
द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥२॥ ३६
महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मेघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥३॥ ३७
नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥४॥ ३८
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥५॥ ३९
कुविदङ्ग यवमन्तो यवंश्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं न जग्मुः ॥६॥ (७) ४०

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क उ ते शमिता कविः॥१॥४१
ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥२॥ ४२
अर्धमासाः परूꣳषि ते मासा आ छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥३॥ ४३
दैव्या अध्वर्यवस्त्वा छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥४॥ ४४ [१५०५]

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥५॥ ४५
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥६॥ (८) ४६

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥१॥ ४७
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥२॥ ४८
किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः ।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥३॥ ४९
ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥४॥ ५०
पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशा३ ॥५॥ ५१
अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश ।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥६॥ ५२
केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳ स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥७॥ ५३
पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥८॥ (९) ५४

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥१॥ ५५
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥२॥ ५६
का ईमरे पिशङ्गिला का ईं कुरु पिशङ्गिला ।
क ईमा स्कन्दमर्षति क ईं पन्थां वि सर्पति ॥३॥ ५७ [१५१८]

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरु पिशङ्गिला ।
शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥४॥ ५८
कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥५॥ ५९
षळस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥६॥ ६०
को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥७॥ ६१
वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥८॥ ६२
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥९॥ ६३
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥१०॥ ६४
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥११॥ ६५
होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः ।
जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥१२॥ ६६
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥(१०) ६७ [१५१८]

हिरण्यगर्भो द्वे ॥ २ ॥ यः प्राणतो द्वे ॥ २ ॥ युञ्जन्ति नव ॥ ९ ॥ वायुष्ट्वा षट् ॥ ६ ॥ प्राणाय तिस्रः ॥ ३ ॥
द्यौस्तकथ्या द्वादश ॥१२॥ गायत्री षट् ॥६॥ कस्त्वा षट् ॥६॥ कः स्विदष्ट ॥८॥ का स्वित् त्रयोदश ॥ १३ ॥
॥ दशानुवाकेषु सप्तषष्टिः ॥ ६७ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे ।
पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोः ॥१॥ १
आश्विना अधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याꣳ सौर्ययामौ ।
श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोः ॥२॥ २
त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ।
रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः ॥३॥ ३
शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुरन्यतः
शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः । ४
पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥४॥
शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः । ५
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाः ॥५॥
अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः । पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः ॥६॥ ६
फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः । ७
प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः ॥७॥
कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः । ८
कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥८॥
शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता अदित्यै । ९
सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥९॥ (३)

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाꣳ रोहिता रुद्राणाम् । १०
श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥१॥
उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः । ११
शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥२॥
शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥२॥
एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवाः । १२
वशा मैत्रावरुण्योऽन्यत एन्यो मैत्र्यः ॥३॥
वशा मैत्रावरुण्योऽन्यत एन्यो मैत्र्यः ॥३॥
कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता अदित्यै । १३ [१५४१]
सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥४॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः ।
शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥५॥ (२) १४

धूम्रान्वसन्तायालभते श्वेतान्ग्रीष्माय कृष्णान्वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे ।
पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥१॥ १५
त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै ।
त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥२॥ १६
पष्ठवाहो विराज उक्षाणो बृहत्या ऋषभाः ककुभे ।
अनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥३॥ १७
कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः ।
पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥४॥ १८
उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः ।
कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥५॥ (३) १९

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् ।
मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान्मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥१॥ २०
उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः । प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥२॥ २१
धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणाꣳ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदाम् ।
कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥३॥ २२
उक्ताः संचरा एताः शुनासीरीयाः । श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥४॥ २३
वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिकाः ।
हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥५॥ (४) २४

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् ।
मित्राय कुलीपयान्वरुणाय नाक्रान् ॥१॥ २५
सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् ।
मित्राय मद्गून्वरुणाय चक्रवाकान् ॥२॥ २६
अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषान् ।
अश्विभ्यां मयूरान्मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥३॥ २७ [१५५५]

सोमाय लबानालंभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः ।
कुलीकां देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥४॥ २८
अह्ने पारावतानालंभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो जतूः ।
मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥५॥ (५) २९

भूम्या आखूनालंभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान् ।
दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥१॥ ३०
वसुभ्य ऋश्यानालंभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् ।
विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२॥ ३१
ईशानाय परस्वत आलंभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान् ।
बृहस्पतये गवयाःस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥३॥ ३२
प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलंभते वाचे प्लुषीन् ।
चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥४॥ ३३
प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः ।
शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः क्रिमिः समुद्राय
शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥५॥ (६) ३४

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदःशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी ।
कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥१॥ ३५
सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः ।
पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥२॥ ३६
सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविङ्भौमी ।
शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३॥ ३७
सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः ।
प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥४॥ ३८
पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हःसो वातस्य ।
नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥५॥ (७) ३९

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्यै ।
ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥१॥ ४० [१५६८]

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपः ।
रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥२॥ ४१
वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः ।
कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३॥ ४२
श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः ।
क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥४॥ ४३
खङ्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः ।
सिःहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः॥५॥(८)४४ [१५७१]

अश्वस्तूपरो नव ॥ ९ ॥ कृष्णग्रीवा पञ्च ॥ ५ ॥ धूम्रान्वसन्ताय पञ्च ॥ ५ ॥ अग्नयेऽनीकवते पञ्च ॥ ५ ॥ समुद्राय शिशुमारान् पञ्च ॥ ५ ॥ भूम्या आखून् पञ्च ॥ ५ ॥ मयुः प्राजापत्य पञ्च ॥ ५ ॥ एण्यह्न इति पञ्च ॥ ५ ॥
॥ अष्टानुवाकेषु चतुश्चत्वारिंशत् ॥ ४४ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दःष्ट्राभ्याः सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादम् ।
अवक्रन्देन तालु वाजः हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्याम् ॥१॥ १
आदित्यान् श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याम् ।
शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि
पार्या इक्षवः ॥२॥ (१) २

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण ।
प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं
कनीनकाभ्याम् ॥१॥ ३
कर्णाभ्याः श्रोत्रः श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिः ।
अदितिः शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणः स्तुपेन ॥२॥ (२) ४

मशकान्केशैरिन्द्रः स्वपसा वहेन बृहस्पतिः शकुनिसादेन कूर्मान् ।
शफैराक्रमणः स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् ॥१॥ ५ [१५७७]

जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्याम् ।
पूषणं दोर्भ्यामश्विना अःसाभ्याः रुद्रः रोराभ्याम् ॥२॥ (३) ६

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थी ।
अदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताः सप्तमी बृहस्पतेरष्टमी ।
अर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी॥१॥ (४) ७

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थी ।
निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाः सप्तमी विष्णोरष्टमः ।
पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी ।
द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥१॥ (५) ८

मरुताः स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छ-
मग्नीषोमयोर्भासदौ । क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणा अल्गाभ्यामाक्रमणः
स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥१॥ (६) ९

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्रुतं आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्याम् ।
वाजिनः शेपेन प्रजाः रेतसा चाषान्पित्तेन प्रदरान्पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥१॥ (७) १०

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसत् ।
जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता ॥१॥ ११
नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिः ।
उपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीः ।
ह्रदान्कुक्षिभ्याः समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥२॥ (८) १२
विधृतिं नाभ्या घृतः रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिः ।
ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाःसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय
स्वाहा ॥१॥ (९) १३
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ १४
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ १५ [१५८७]

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रः रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ १६
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ (१०) १७
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥ १८
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाः रातिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानाः सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२॥ १९
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणः सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥ २०
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४॥ २१
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५॥ २२
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥ २३
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥७॥ २४
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाःसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८॥ २५
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९॥ २६
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१०॥ (११) २७

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥ २८ [१६००]

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥ २९
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥ ३०
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४॥ ३१
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५॥ ३२
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनꣳ संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥ ३३
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥ ३४
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥ (१२) ३५

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१॥ ३६
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ श्रृतपाकं पचन्तु ॥२॥ ३७
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३॥ ३८
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥४॥ ३९
यन्नीक्षणं माꣳस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥५॥ ४०
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥६॥ ४१ [१६१३]

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥७॥ (१३) ४२
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१॥ (१४) ४३
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥१॥ ४४
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥२॥ (१५) ४५ [१६१७]

शादं दद्भिर्द्वे ॥२॥ वातं प्राणेन द्वे ॥२॥ मशकान्केशैरिति द्वे ॥२॥ अग्नेः पक्षतिरेका ॥१॥ इन्द्राग्न्योः
पक्षतिरेका ॥१॥ मारुताꣳ स्कन्धा एका ॥१॥ पूषणं वनिष्ठुनेत्येका ॥१॥ इन्द्रस्य क्रोडो द्वे ॥२॥
विधृतिमेका ॥१॥ हिरण्यगर्भश्चतस्रः ॥४॥ आ नो दश ॥१०॥ मा नोऽष्ट ॥८॥
यदश्वस्य सप्त ॥७॥ यदश्वायैका ॥१॥ इमा नु कं द्वे ॥२॥
पञ्चदशानुवाकेषु पञ्चचत्वारिंशत् ॥४५॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च संनते ते मे सं नमतामद
आदित्यश्च द्यौश्च संनते ते मे सं नमतामद आपश्च वरुणश्च संनते ते मे सं नमतामदः ।
सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी ॥१॥ १
सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ।
यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ॥२॥ २
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥३॥ (१) ३
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥१॥ (२) ४ [१६२१]

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥१॥ (३) ५
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (४) ६
वैश्वानरꣳ हवामह ऋतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (५) ७
वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (६) ८
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (७) ९
मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१॥ (८) १०
महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोळशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोळशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोळशिने ॥१॥ (९) ११
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥१॥ (१०) १२
अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१॥ (११) १३
आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यꣳ सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यꣳ सुमघवन् बोधि गोदाः ॥१॥ (१२) १४ [१६३१]

अग्निश्च तिस्रः ॥३॥ बृहस्पत एका ॥१॥ इन्द्र गोमन्नेका ॥१॥ ऋतावानमेका ॥१॥ वैश्वानरमेका ॥१॥
वैश्वानर एका ॥१॥ वैश्वानरस्य सुमतावेका ॥१॥ मरुत्वाँ२ इन्द्र एका ॥१॥ महाँ२ इन्द्र एका ॥१॥
अग्निर्ऋषिरेका ॥१॥ अनु वीरैरेका ॥१॥ आ नो गोत्रा इत्येका ॥१॥ द्वादशानुवाकेषु चतुर्दश ॥१४॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥ १
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥ २
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥ ३
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥४॥ ४
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳ रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥ ५
अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीरꣳ रयिं दाः ॥६॥ ६
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराळग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवाभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७॥ ७
बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्संतराꣳ सꣳ शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥ ८
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥ ९
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥ (१) १०

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥१॥ ११
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥२॥ १२
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥३॥ १३
अच्छायमेति शवसा घृतेनेळानो वह्निर्नमसा । अग्निꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥४॥ १४
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥५॥ १५ [१६४६]

सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान्गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः ।
कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥४॥ २८
अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः संधिभ्यो जतूः ।
मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥५॥ (५) २९

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्दिवे कशान् ।
दिग्भ्यो नकुलान्बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥१॥ ३०
वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् ।
विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥२॥ ३१
ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान्वरुणाय महिषान् ।
बृहस्पतये गवयाꣳस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥३॥ ३२
प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीन् ।
चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥४॥ ३३
प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः ।
शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः क्रिमिः समुद्राय
शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥५॥ (६) ३४

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी ।
कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥१॥ ३५
सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः ।
पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥२॥ ३६
सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी ।
शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥३॥ ३७
सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः ।
प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥४॥ ३८
पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य ।
नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥५॥ (७) ३९

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्यै ।
ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥१॥ ४० [१५६८]

अन्यवापोऽर्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासां कश्यपः ।
रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥२॥ ४१
वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः ।
कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥३॥ ४२
श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान्वार्ध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः ।
क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥४॥ ४३
खङ्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः ।
सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥५॥ (८) ४४ [१५७१]

अश्वस्तूपरो नव ॥ ९ ॥ कृष्णग्रीवा पञ्च ॥ ५ ॥ धूम्रान्वसन्ताय पञ्च ॥ ५ ॥ अग्नयेऽनीकवते पञ्च ॥ ५ ॥ समुद्राय शिशुमारान् पञ्च ॥ ५ ॥ भूम्या आखून् पञ्च ॥ ५ ॥ मयुः प्राजापत्य पञ्च ॥ ५ ॥ एण्यह्न इति पञ्च ॥ ५ ॥

॥ अष्टानुवाकेषु चतुश्चत्वारिंशत् ॥ ४४ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दꣳष्ट्राभ्याꣳ सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादम् ।
अवक्रन्देन तालु वाजꣳ हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्याम् ॥१॥ १
आदित्यान् श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याम् ।
शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि
पार्या इक्षवः ॥२॥ (१) २

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण ।
प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं
कनीनकाभ्याम् ॥१॥ ३
कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रꣳ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिः ।
अदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणꣳ स्तुपेन ॥२॥ (२) ४

मशकान्केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्मान् ।
शफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् ॥१॥ ५ [१५७७]

जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्याम् ।
पूषणं दोर्भ्यामश्विना अꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥२॥ (३) ६

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थी ।
अदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टमी ।
अर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥१॥ (४) ७

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थी ।
निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तमी विष्णोरष्टमी ।
पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी ।
द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥१॥ (५) ८

मरुताꣳ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छ-
मग्नीषोमयोर्भासदौ । कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणा अल्गाभ्यामाक्रमणꣳ
स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥१॥ (६) ९

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विहुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्याम् ।
वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान्पित्तेन प्रदरान्पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥१॥ (७) १०

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसत् ।
जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता ॥१॥ ११
नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिः ।
उपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान्हिराभिः स्रवन्तीः ।
ह्रदान्कुक्षिभ्याꣳ समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥२॥ (८) १२

विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिः ।
ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय
स्वाहा ॥१॥ (९) १३
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ १४
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ १५ [१५८७]

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ १६
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ (१०) १७
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥ १८
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२॥ १९
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥ २०
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४॥ २१
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५॥ २२
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥ २३
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥७॥ २४
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८॥ २५
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९॥ २६
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१०॥ (११) २७

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥ २८ [१६००]

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥ २९
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥ ३०
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४॥ ३१
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५॥ ३२
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥ ३३
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७॥ ३४
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥ (१२) ३५

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१॥ ३६
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥२॥ ३७
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३॥ ३८
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥४॥ ३९
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥५॥ ४०
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥६॥ ४१ [१६१३]

निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥७॥ (१३) ४२
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१॥ (१४) ४३
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥१॥ ४४
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥२॥ (१५) ४५ [१६१७]

शादं दद्भिर्द्वे ॥२॥ वातं प्राणेन द्वे ॥२॥ मशकान्केशैरिति द्वे ॥ २ ॥ अग्नेः पक्षतिरेका ॥१॥ इन्द्राग्न्योः
पक्षतिरेका ॥१॥ मारुतान् स्कन्धा एका ॥१॥ पूषणं वनिष्ठुनेत्येका ॥१॥ इन्द्रस्य क्रोडो द्वे ॥२॥
विधृतिमेका ॥१॥ हिरण्यगर्भश्चतस्रः ॥४॥ आ नो दश ॥१०॥ मा नोऽष्ट ॥८॥
यदश्वस्य सप्त ॥७॥ यदश्वायैका ॥१॥ इमा नु कं द्वे ॥२॥
पञ्चदशानुवाकेषु पञ्चचत्वारिंशत् ॥४५॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च संनते ते मे सं नमतामद
आदित्यश्च द्यौश्च संनते ते मे सं नमतामद आपश्च वरुणश्च संनते ते मे सं नमतामदः । १
सप्त संसदो अष्टमी भूतसाधनी ॥१॥
सकामाँ२ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना । २
यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ॥२॥
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।
प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥३॥ (१) ३
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥१॥ (२) ४ [१६११]

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमं शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥१॥ (३) ५
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (४) ६
वैश्वानरं हवामह ऋतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (५) ७
वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (६) ८
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ।
उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥१॥ (७) ९
मरुत्वाँ२ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रतिपत्सुतानाम् ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१॥ (८) १०
महाँ२ इन्द्रो वज्रहस्तः षोळशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्वेष्टि ।
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोळशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोळशिने ॥१॥ (९) ११
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥१॥ (१०) १२
अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१॥ (११) १३
आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥१॥ (१२) १४ [१६३१]

अग्निश्च तिस्रः ॥३॥ बृहस्पत एका ॥१॥ इन्द्र गोमन्नेका ॥१॥ ऋतावानमेका ॥१॥ वैश्वानरमेका ॥१॥
वैश्वानर एका ॥१॥ वैश्वानरस्य सुमतावेका ॥१॥ मरुत्वाँ२ इन्द्र एका ॥१॥ महाँ२ इन्द्र एका ॥१॥
अग्निर्ऋषिरेका ॥१॥ अनुवीरैरेका ॥१॥ आ नो गोत्रा इत्येका ॥१॥ द्वादशानुवाकेषु चतुर्दश ॥१४॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥१॥ १
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥ २
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥३॥ ३
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥४॥ ४
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः संरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥ ५
अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥६॥ ६
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराळग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवाभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥७॥ ७
बृहस्पते सवितर्बोधयैनं संशितं चित्संतरां सं शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥८॥ ८
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥९॥ ९
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥ (१) १०
ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥१॥ ११
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥२॥ १२
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥३॥ १३
अच्छायमेति शवसा घृतेनेळानो वह्निर्नमसा । अग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥४॥ १४
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥५॥ १५ [१६४६]

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥६॥ १६
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥७॥ १७
दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥८॥ १८
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ॥९॥ १९
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥१०॥ २०
वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥११॥ २१
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् ।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१२॥ (२) २२

पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥१॥ २३
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२॥ २४
वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥३॥ २५
प्र याभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥४॥ २६
वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥५॥ २७
एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥६॥ २८
नियुत्वान्वायवा गह्ययꣳ शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥७॥ २९
वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥८॥ ३०
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥ ३१
तव वाय ऋतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाꣳस्या वृणीमहे ॥१०॥ (३) ३२

हिरण्यगर्भ इत्येषः । येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥ ३३ [१६६४]

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ ३४
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानाꣳ समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ ३५
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
मा नो हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥ (४) ३६

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१॥ ३७
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥२॥ ३८
अग्निरृषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥३॥ ३९
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥४॥ ४०
न त्वावाꣳ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥५॥ ४१
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥६॥ ४२
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥७॥ ४३
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥८॥ ४४
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥९॥ ४५
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ॥१०॥ ४६
यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥११॥ ४७
ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥१२॥ (५) ४८ [१६७९]

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ।
उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते
कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम् ॥१॥ ४९
प्रेत्या एदि सं चाञ्च प्र च सारय ।
सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥२॥ (६) ५० [१६८१]

समाम्नाय दश ६ १० ॥ ऊर्ध्वा द्वादश ॥ १२ ॥ पीवो अन्नान्दश ॥ १० ॥ हिरण्यगर्भश्चतस्रः ॥ ४ ॥
अग्न आयूꣳषि द्वादश ॥ १२ ॥ संवत्सरो द्वे ॥ २ ॥ षडनुवाकेषु पञ्चाशत् ॥ ५० ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥ १
होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् ।
इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥ २
होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरंदरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥ ३
होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासददेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥ ४
होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥ ५
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥ ६
होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।
कवी देवौ प्रचेतसा इन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥ ७
होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्र पत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥ ८
होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम् ।
पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥ ९ [१६९०]

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥ १०
होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा
हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥११॥ (१) ११

देवं बर्हिरिन्द्रꣳ सुदेवं देवैर्वीरवत्स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत् ।
वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१॥ १२
देवीर्द्वार इन्द्रꣳ संघाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन् । आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ
रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥२॥ १३
देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् ।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३॥ १४
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम् । अयाव्यन्याघा द्वेषाꣳस्यान्या वक्षद्वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥४॥ १५
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्धताम् ।
इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती
ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥५॥ १६
देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्धताम् ।
हताघशꣳसा आभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥६॥ १७
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् ।
अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती
गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥७॥ १८
देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्र वर्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो
बृहस्पतिं स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥८॥ १९
देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥९॥ २०
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीꣳष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१०॥ २१ [१७०२]

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयन् ।
स्विष्टं कुर्वन् त्स्विष्टकृत्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥११॥ २२
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोळाशं बध्नन्निन्द्राय च्छागम् ।
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय च्छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोळाशेन । त्वामद्य ऋषे ॥१२॥ (२) २३

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१॥ २४
होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥२॥ २५
होता यक्षदीळेन्यमीळितं वृत्रहन्तममिळाभिरीड्य१ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।
अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥ २६
होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्य१ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।
बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥४॥ २७
होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥५॥ २८
होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गा वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥६॥ २९
होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥७॥ ३०
होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।
विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥८॥ ३१
होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धन१ रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥ ३२
होता यक्षद्वनस्पति१ शमितार१ शतक्रतु१
हिरण्यपर्णमुक्थिन१ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् ।
ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥१०॥ ३३
होता यक्षत्स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
अतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ११(३)३४ [१७१५]

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत् ।
गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१॥ ३५
देवीर्द्वारो वयोधस१ शुचिमिन्द्रमवर्धयन् ।
उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥२॥ ३६
देवी उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥३॥ ३७
देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
बृहत्या छन्दसेन्द्रिय१ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥४॥ ३८
देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम् ।
पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रिय१ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥५॥ ३९
देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम् ।
त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥६॥ ४०
देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् ।
जगत्या छन्दसेन्द्रिय१ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥७॥ ४१
देवो नराश१सो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
विराजा छन्दसेन्द्रिय१ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥८॥ ४२
देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥९॥ ४३
देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयत् ।
ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥१०॥ ४४
देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् ।
अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥११॥ ४५
अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोळाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम् ।
सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन ।
अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीदवीवृधत्पुरोळाशेन । त्वामद्य ऋषे ॥१२॥ (४) ४६ [१७२७]

होता यक्षदेकादश ॥११॥ देवं बर्हिर्द्वादश ॥१२॥ होता यक्षदेकादश ॥११॥ देवं बर्हिर्द्वादश ॥१२॥
॥ चतुरनुवाकेषु षट्चत्वारिंशत् ॥४६॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥३०॥
॥ इति तृतीयो दशकः ॥

अथ चतुर्थो दशकः ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः।

समिद्धो अञ्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥१॥ १
घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान्प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ता१ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥२॥ २
ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥ ३
स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४॥ ४
एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥ ५
अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वा१ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥ ६
प्रथमा वा१ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥ ७
आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञ१ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इळोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥८॥ ८
त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥९॥ ९
अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥ १०
प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥ (१) ११

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥१॥ १२
जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व१ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥२॥ १३ [१७४०]

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३॥ १४
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यता१ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥ १५
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रिय१ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इय१ समने पारयन्ती ॥५॥ १६
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमा१सं परि पातु विश्वतः ॥६॥ १७
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥७॥ १८
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म य१सन् ॥८॥ १९
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥९॥ २०
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥१०॥ २१
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥११॥ २२
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥१२॥ (२) २३

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१॥ २४
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२॥ २५
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३॥ २६
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४॥ २७ [१७५४]

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफाना२ सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५॥ २८
आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥६॥ २९
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७॥ ३०
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८॥ ३१
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥९॥ ३२
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः स२ शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
ह२सा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१०॥ ३३
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११॥ ३४
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥१२॥ ३५
उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वा२ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥१३॥ (३) ३६

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥ ३७
तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥ ३८
नराश२संस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥३॥ ३९
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥४॥ ४०
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥५॥ ४१ [१०६८]

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥६॥ ४२
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रिय२ शुक्रपिशं दधाने ॥७॥ ४३
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥८॥ ४४
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेद२ स्योन२ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥९॥ ४५
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपि२शद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥१०॥ ४६
उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवी२षि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥११॥ ४७
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृत२ हविरदन्तु देवाः ॥१२॥ (४) ४८

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकवि२शाभ्यां वैराजाभ्याम् । पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रि२शाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥१॥ (५) ४९

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवः । ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः स२हितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥१॥ (६) ५०

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ ।
मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥१॥ (७) ५१ [१०७८]

समिद्धो अञ्जन्नेकादश ॥११॥ केतुं कृण्वन्द्वादश ॥१२॥ यदक्रन्दस्त्रयोदश ॥१३॥ समिद्धो अद्य द्वादश ॥१२॥ अग्नये गायत्रायैका ॥१॥ आग्नेयः कृष्णग्रीव एका ॥ १ ॥ अग्नयेऽनीकवत इत्येका ॥ १ ॥

॥ सप्तानुवाकेष्वेकपञ्चाशत् ॥ ५१ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायामेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥१॥ १
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥२॥ २
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥३॥ ३
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ अश्वाँ२ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥४॥ ४
द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥५॥ ५
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥६॥ ६
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रि२शच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥७॥ ७
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कवि२ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥ ८
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥९॥ ९
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥ १०
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवान२ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥११॥ ११
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्य२ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥१२॥ १२
त्वा२ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥ १३
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥१४॥ १४
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१५॥ १५
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥ १६ [१०९४]

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१७॥ (१) १७

आपश्चित्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्व२ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥१॥ १८
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥२॥ १९
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥३॥ २०
आ सुते सिञ्चत श्रिय२ रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयत् ॥४॥ २१
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
[illegible]द्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥५॥ २२
प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमख२ सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥६॥ २३
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥७॥ २४
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ२ अभिष्टिरोजसा ॥८॥ २५
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्य२समुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥९॥ २६
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ।
महाँ२ इन्द्रो य ओजसा कदा चन स्तरीरसि कदा चन प्रयुच्छसि ॥१०॥ २७
आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां मही२ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥११॥ २८
इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥१२॥ (२) २९

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥ ३०
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥ ३१
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥३॥ ३२ [१११०]

दैव्या अध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे।
तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयच्चित्रं देवानाम् ॥४॥ ३३
आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥५॥ ३४
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥६॥ ३५
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम् ॥७॥ ३६
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥८॥ ३७
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥९॥ ३८
बण्महाँ२ असि सूर्य बळादित्य महाँ२ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ असि ॥१०॥ ३९
बट् सूर्य श्रवसा महाँ२ असि सत्रा देव महाँ२ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥११॥ ४०
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥१२॥ ४१
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥ ४२
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥१४॥ (३) ४३

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥१॥ ४४
इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान्मारुतं गणम् ॥२॥ ४५
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ॥३॥ ४६
अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना।
तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयद्धे देवास आ न इळाभिर्विश्वेभिः सोम्यं मध्वोमासश्चर्षणीधृतः ॥४॥ ४७
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥५॥ ४८ [१८१६]

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ अपः।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥६॥ ४९
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२ अवन्तु देवाः ॥७॥ ५०
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥८॥ ५१
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥९॥ ५२
विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१०॥ ५३
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥११॥ (४) ५४

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥१॥ ५५
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥२॥ ५६
मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥३॥ ५७
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातꣳ रुद्रवर्तनी।
तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयत् ॥४॥ ५८
विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥५॥ ५९
नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः।
एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥६॥ ६०
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे। ता नो मृळात ईदृशे ॥७॥ ६१
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ२ इयक्षते ॥८॥ ६२
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये ग विष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥९॥ ६३
जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१०॥ ६४ [१८४१]

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥११॥ ६५
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥१२॥ ६६
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥१३॥ ६७
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१४॥ ६८
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥१५॥ (५) ६९

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥१॥ ७०
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥१॥
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा। उभा कर्णा हिरण्यया ॥२॥ ७१
काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे। रिशादसा सधस्थ आ ॥३॥ ७२
दैव्या अध्वर्यू आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे। तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयत् ॥४॥ ७३
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥ ७४
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन्।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥६॥ ७५
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा। आङ्गूषैराविवासतः ॥७॥ ७६
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृळीका भवन्तु नः ॥८॥ ७७
ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥९॥ ७८
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥१०॥ ७९
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥११॥ ८० [१८५८]

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥१२॥ ८१
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥१३॥ ८२
अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥१४॥ ८३
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥१५॥ (६) ८४ [१८६२]

अस्याजरासः सप्तदश ॥१७॥ आपश्चिद् द्वादश ॥१२॥ विभ्राड् चतुर्दश ॥१४॥ प्रवावृज एकादश ॥११॥
प्रयायुं पञ्चदश ॥१५॥ प्रदीरयेति च पञ्चदश ॥१५॥ षडनुवाकेषु चतुरशीतिः ॥८४॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥ १
पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥२॥ २
अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूꣳषि तारिषः ॥३॥ ३
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥४॥ ४
पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥५॥ ५
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥६॥ ६
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्रते ॥७॥ ७
उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥८॥ ८
इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥९॥ ९ [१८७१]

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१०॥ १०
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यꣳ शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥११॥ ११
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयाꣳसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१२॥ १२
न ते दूरे परमा चिद्रजाꣳस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥१३॥ १३
अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥१४॥ १४
सोमो धेनुꣳ सोमो अर्वन्तमाशुꣳ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यꣳ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥१५॥ १५
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥१६॥ १६
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागꣳ सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ ॥१७॥ १७
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥१८॥ १८
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥१९॥ १९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥२०॥ २०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥२१॥ २१
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥२२॥ २२
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२३॥ २३ [१८९९]

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२४॥ २४
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥२५॥(१) २५

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥ २६
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥२॥ २७
प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३॥ २८
पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥४॥ २९
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियꣳ सीषधाति प्र पूषा ॥५॥ ३०
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥६॥ ३१
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥७॥ ३२
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥८॥ ३३
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥९॥ ३४
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपाꣳसि मृक्षतꣳ सेधतं द्वेषो भवतꣳ सचाभुवा ॥१०॥ ३५
एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११॥ ३६
सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥१२॥ ३७
आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥१३॥ ३८ [१९००]

न तद्रक्षाꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥१४॥ ३९
यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥१५॥ ४०
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१६॥ ४१
इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अꣳशः ॥१७॥ ४२
सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥१८॥ ४३
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१९॥ ४४
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकाꣳसि चक्रिरे ॥२०॥ ४५
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।
य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिताऽन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥२१॥ (२) ४६ [१९०८]

पञ्चमतः पञ्चविंशतिः ॥ २५ ॥ आगाद्देकविंशतिः ॥ २१ ॥ द्वयोरनुवाकयोः षट्चत्वारिंशत् ॥ ४६ ॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१॥ १
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२॥ २
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥३॥ ३
विभक्तारꣳ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥ ४ [१९१२]

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय
वीरहणम् । पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुꣳश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥५॥ ५
नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलम् । नर्माय रेभꣳ हसाय
कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥६॥ ६
तपसे कौलालं मायायै कर्मारꣳ रूपाय मणिकारꣳ शुभे वपꣳ शरव्याया इषुकारꣳ
हेत्यै धनुष्कारम् । कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥७॥ ७
नदीभ्यः पौञ्जिष्टमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम् ।
प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं
पिशाचेभ्यो बिदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥८॥ (१) ८

संधये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं
निष्कृत्यै पेशस्कारीꣳ संज्ञानाय स्मरकारीम् । प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं
बलायोपदाम् ॥१॥ ९

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय
भिषजम् । प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै
प्रश्नविवाकम् ॥२॥ १०

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशम् ।
कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्षायानुक्षत्तारम् ॥३॥ ११
भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ।
देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमव ऋत्यै
वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥४॥ १२
ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं
बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दम् । प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय
लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥५॥ (२) १३
मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्तारं क्षेमाय विमोक्तार-
मुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनम् । वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं
यमायासूम् ॥१॥ १४ [१९११]

यमार्य यमसूमथर्वभ्योऽवतोका२ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सराया-
तीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीम्। वत्सराय विजर्जरा२ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्ध२
साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥२॥ १५

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलम्।
पाराय मार्गारमवाराय केवर्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालम्।
स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरात२ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किंपूरुषम् ॥३॥ १६

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो
भूतेभ्यः सिध्मलम्। भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्धया अपगल्भ२
सं२शराय प्रच्छिदम् ॥४॥ १७

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय
समास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातम्। क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण
उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥५॥ (३) १८

प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूक२ शब्दायाडम्बरा-
घातम्। महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्य-
तोऽरण्याय दावपम् ॥१॥ १९

नर्माय पुं२श्चलू२ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे।
वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥२॥ २०

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय व२शनर्तिनं दिवे
खलति२ सूर्याय हर्यक्षम्। नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्ष२
रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥ ३ ॥ २१

अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिशुक्लं चातिकृष्णं चातिदीर्घं चातिह्रस्वं च।
अतिस्थूलं चातिकृशं चातिकुल्वं चातिलोमशं चाशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः।
मागधः पुं२श्चली क्लीबः कितवोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥४॥ (४) २२ [१९३०]

देव सवितरष्ट ॥ ८ ॥ संधये जारं पञ्च ॥ ५ ॥ मन्यवे पञ्च ॥ ५ ॥ प्रतिश्रुत्कायै चतस्रः ॥ ४ ॥
चतुरनुवाकेषु द्वाविंशतिः ॥२२॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि२ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥ १
पुरुष एवेद२ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥ २
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँ२श्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥ ३
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥ ४
ततो विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥ ५
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशू२स्ता२श्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥६॥ ६
तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा२सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥७॥ ७
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥ ८
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥ ९
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥१०॥ १०
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या२ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥ ११
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥ १२
नाभ्या आसीदन्तरिक्ष२ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥ १३ ॥ १३ [१९४३]

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥ १४
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥ १५
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥ (१) १६

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१॥ १७
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥२॥ १८
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥३॥ १९
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥४॥ २०
रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥५॥ २१
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥६॥ (२) २२

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापः तत्प्रजापतिः ॥१॥ २३
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत् ॥२॥ २४
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषः ॥३॥ २५
एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः। २६ [१९५६]
यस्मान्न जात इत्येषः ॥४॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीळम्।
तस्मिन्निद२ सं च वि चैति सर्व२ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥५॥ २७
प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥६॥ २८
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ २९
परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥८॥ ३०
परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥९॥ ३१
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिष२ स्वाहा ॥१०॥ ३२
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥११॥ ३३
इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥१२॥ (३) ३४

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लोकः सुतावतः ॥१॥ ३५
द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै।
सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥२॥ ३६
वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा। वि मुच्यन्तामुस्रियाः ॥३॥ ३७
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥४॥ ३८
सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु। तस्मै पृथिवि शं भव।
प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्यसौ ॥५॥ ३९
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा२ रीरिषो मोत वीरान् ॥६॥ ४०
शं वातः श२ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ७ ॥ ४१
कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्ष२ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥८॥ ४२ [१९७२]

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥९॥ ४३
अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः ।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥१०॥ ४४
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥११॥ ४५
अनड्वाहमन्वारभामहे स्वस्तये ।
स न इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः संतारणो भव ॥१२॥ ४६
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१३॥ ४७
अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१४॥ ४८
आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१५॥ ४९
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१६॥ ५०
परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२ आ दधर्षति ॥१७॥ ५१
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१८॥ ५२
वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान्पराके ।
मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्तु कामाः स्वाहा ॥१९॥ ५३
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः । अप नः शोशुचदघम् ॥२०॥ ५४
अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २१ ॥ (४) ५५ [१९८५]

सहस्रशीर्षा षोडश ॥१६॥ अद्भ्यः संभृतः षट् ॥६॥ तदेवाग्निर्द्वादश ॥१२॥
अपेतो यन्त्वेकविंशतिः ॥२१॥ चतुरनुवाकेषु पञ्चपञ्चाशत् ॥ ५५ ॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये ।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥ १
यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥२॥ २
भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥३॥ ३
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥४॥ ४
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥५॥ ५
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥६॥ ६
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥ ७
इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥८॥ ८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा । शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९॥ ९
शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥१०॥ १०
अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥११॥ ११
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१२॥ १२
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥१३॥ १३
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥१४॥ १४
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥१५॥ १५
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥१६॥ १६
द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः ॥१७॥ १७
दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१८॥ १८
दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥१९॥ १९
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥२०॥ २० [१००५]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥२१॥ २१
यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥२२॥ २२
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु ।
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥२३॥ २३
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतम् ॥२४॥ (१) [१००९] २४

ऋचं वाचमित्येकानुवाके चतुर्विंशतिः ॥२४॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नारिरसि ॥१॥ १
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥२॥ २
देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥३॥ ३
देव्यो वम्रियो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥४॥ ४
इयत्यग्र आसीर्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥५॥ ५
इन्द्रस्यौज स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥६॥ ६
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥ ७ [१०१६]

मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥८॥ ८
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥९॥ ९
ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।
मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥१०॥ (१) १०
यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्यस्य त्वा तपसे ।
देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳ स्पृशस्पाहि ।
अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥११॥ ११
अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः ।
सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दा आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः ।
विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दा विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥१२॥ १२
स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः सꣳस्पृशस्पाहि । मधु मधु मधु ॥३॥ (२) १३
गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । १४
सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते ॥१॥
समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा सꣳ सूर्येणारोचिष्ट । १५
स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सꣳ सूर्येणारूरुचत ॥२॥
धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः । १६
वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥३॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥४॥ १७ [१०२६]

विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते ।
देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवो देवान्पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये ।
मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ।
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥५॥ १८
पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेह्यरिष्टाहꣳ सह पत्या भूयासम् ॥६॥ १९
अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥७॥ (३) २० [१०१९]

देवस्य त्वा दश ॥१०॥ यमाय तिस्रः ॥३॥ गर्भो देवानां सप्त ॥७॥ त्र्यनुवाकेषु विंशतिः ॥२०॥
॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । १
आ ददेऽदित्यै रास्नासि ॥१॥ २
इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥२॥ ३
अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषासि घर्माय दीष्व ॥३॥ ४
अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व । स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥४॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥५॥ ५
गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षेणोप यच्छामि ।
इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । ६
स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥ (१)
समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा सरिराय त्वा वाताय स्वाहा ।
अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहाप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ॥ ७
अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ॥१॥
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहा ।
इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा
विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥२॥ ८ [१०३७]

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥३॥ ९
विश्वा आशा दक्षिणसत्सर्वान्देवानयाडिह ।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥४॥ १०
दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः । स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥५॥ ११
अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥६॥ १२
अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम् । इहैव रातयः सन्तु ॥७॥ १३
इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥८॥(२) १४

स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः ।
स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिभ्यो घर्मपावभ्यः स्वाहा
द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः ॥१॥ १५
स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।
अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।
मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नौ अश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥२॥ (३) १६

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः ।
उत श्रवसा पृथिवीꣳ सꣳ सीदस्व महाꣳ असि रोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥१॥ (४) १७

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याꣳ हविर्धाने । सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।
या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे । सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ।
या ते घर्म पृथिव्याꣳ शुग्या जगत्याꣳ सदस्या ।
सा त आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥१॥ १८
क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥२॥ १९
चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥३॥ २० [१०४९]

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व । २१
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥४॥ २२
अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥५॥
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । २३
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥६॥
उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥७॥(५) २४

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥१॥ २५
मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः ।
घर्मस्त्रिशुग्वि राजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥
पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराꣳ समाम् ॥२॥ (६) २६
त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः ।
इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥१॥ (७) २७ [१०५६]

देवस्य त्वा षट् ॥६॥ समुद्राय त्वाष्ट ॥८॥ स्वाहा पूष्णे द्वे ॥२॥ अभीममेका ॥१॥ या ते सप्त ॥७॥
यावती द्वे ॥२॥ त्विषःसंवृगेका ॥१॥ सप्तानुवाकेषु सप्तविंशतिः ॥२७॥
इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा
दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा । दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः १
स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥१॥ (१)

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा । २
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥१॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥२॥ (२) ३ [१०५९]

प्रजापतिः संभ्रियमाणः सम्राट् संभृतो वैश्वदेवः संसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः
पयस्यानीयमाने पूषा विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् ।
मैत्रः शरसि संताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥१॥ (३) ४
सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे
चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे ।
मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥१॥(४) ५
उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाꣳश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥१॥ (५) ६
अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना ।
शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रं
देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम् ॥१॥ (६) ७
उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान्प्रमुदा ।
भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥१॥ (७) ८
लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय
स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदसे स्वाहा मेदसे स्वाहा ।
माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा
स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा ।
रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥१॥ (८) ९
आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा ।
शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥१॥ १०
तपसे स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा ।
निर्ऋत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥२॥ ११
यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ।
ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा ॥३॥(९)१२[१०७८]

स्वाहाप्राणेभ्य एका ॥१॥ वाचे द्वे ॥२॥ प्रजापतिःसम्भ्रियमाण एका ॥१॥ सविता प्रथम एका ॥१॥
उग्रश्चैका ॥१॥ अग्निꣳ हृदयेनैका ॥१॥ उग्रंलोहितेनैका ॥१॥ लोमभ्यः स्वाहा चेत्येका ॥१॥
आयासाय तिस्रः ॥३॥ नवानुवाकेषु द्वादश ॥१२॥
इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः।

ईशा वास्यमिद२ सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥ १
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत२ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥ २
असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः॥
ता२स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥ ३
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥ ४
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥ ५
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि जुगुप्सते ॥६॥ ६
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥ ७
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर२ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥ ८
अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया२ रताः ॥९॥ ९
अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥ १०
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय२ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥११॥ ११
अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्या२ रताः ॥१२॥ १२
अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥ १३ [१०८१]

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय२ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥१४॥ १४
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥ १५
पूषन्नेक ऋषे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्त्समूह
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि।
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥१६॥ १६
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त२ शरीरम्।
ॐ३ क्रतो स्मर कृत२ स्मर क्रतो स्मर कृत२ स्मर ॥१७॥ १७
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥ (१) १८ [१०८६]

॥ ईशावास्यमित्येकानुवाके अष्टादश ॥१८॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहितायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

॥ इति शुक्लयजुःकाण्वसंहिता समाप्ता।

तैत्तिरीय संहिता

ॐ

कृष्ण-यजुर्वेदीय

तैत्तिरीय-संहिता

प्रथमं काण्डम् ।

दर्शपूर्णमासौ ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥]

वत्सापाकरणम् ॥ ४ द्विपदा विराड् गायत्री, ५ मध्येज्योतिस्त्रिष्टुप्, ६-७ एकपदा त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आ प्यायध्वमघ्निया देवभागमूर्जस्वतीः पयस्वतीः प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माऽघशंसो रुद्रस्य हेतिः परि वो वृणक्तु ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ (इषे, त्रिचत्वारिंशत्) ॥ १ ॥

बर्हिराहरणम् ॥ ३ त्रिष्टुप्, ८ एकपदा त्रिष्टुप्, १८ एकपदा गायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः ।

यज्ञस्य घोषदसि प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयः प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा त आ वहन्ति कवयः पुरस्ताद् देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासदे देवानां परिषूतमसि वर्षवृद्धमसि देवबर्हिर्मा त्वाऽन्वङ् मा तिर्यक् पर्व ते राध्यासमाच्छेत्ता ते मा रिषं देवबर्हिः शतवल्शं वि रोह सहस्रवल्शा (१) वि वयꣳ रुहेम पृथिव्याः सम्पृचः पाहि सुसम्भृता त्वा सं भराम्यदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्यै सन्नहनं पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नातु स ते माऽऽ स्थादिन्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छे बृहस्पतेर्मूर्ध्ना हराम्युर्वन्तरिक्षमन्विहि देवं गममसि ॥ (सहस्रवल्शा, अष्टात्रिंशच्च) ॥ २ ॥

रात्रिदोहः ॥ ८ गायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः ।

शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै मातरिश्वनो घर्मोऽसि द्यौरसि पृथिव्यसि विश्वधाया असि परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्वसूनां पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारꣳ हुतः स्तोको हुतो द्रप्सोऽग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ सा विश्वायुः सा विश्व-

१ (तै. ७.)

व्यचाः सा विश्वकर्मा सं पृच्यध्वमृतावरीरूर्मिणीर्मधुमत्तमा मन्द्रा धनस्य सातये सोमेन (१) त्वाऽऽ तनच्मीन्द्राय दधि विष्णो हव्यꣳ रक्षस्व ॥ (सोमेनाष्टौ च ;) ॥ ३ ॥

व्रीहिनिर्वापः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयं वेषाय त्वा प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्त्वं देवानामसि सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं वह्नितमं देवहूतममह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे मा भेर्मा सं विक्था मा त्वा (१) हिꣳसिषमुरु वाताय देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपाम्यग्नीषोमाभ्यामिदं देवानामिदमु नः सह स्फात्यै त्वा नाऽरात्यै सुवरभि वि ख्येषं वैश्वानरं ज्योतिर्दृꣳहन्तां दुर्या द्यावापृथिव्योरुर्वन्तरिक्षमन्विह्यदित्यास्त्वोपस्थे सादयाम्यग्ने हव्यꣳ रक्षस्व ॥ (त्वा षट्चत्वारिंशच्च) ॥ ४ ॥

प्रोक्षणम्, अवघातः ॥ १ गायत्री, ६, १४ एकपदा गायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः ।

देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिरापो देवीरग्रेपुवो अग्रेगुवोऽग्र इमं यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं धत्त युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिताः स्थाग्नये वो जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्याꣳ शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे देवयज्यायै अवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा (१) पृथिवी वेत्त्वधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्त्वग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णाम्यद्रिरसि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हव्यꣳ सुशमि शमिष्वेषमा वदोर्जमा वद द्युमद्वदत वयꣳ सङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयो रक्षसां भागो (२)ऽसि वायुर्वो वि विनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृह्णातु ॥ (त्वा, भागः, एकादश च) ॥ ५ ॥

व्रीहिपेषणम् ॥ १० एकपदा त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

अवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु दिवः स्कम्भनिरसि प्रति त्वाऽदित्यास्त्वग्वेत्तु धिषणाऽसि पर्वत्या प्रति त्वा दिवः स्कम्भनिर्वेत्तु धिषणाऽसि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वतिर्वेत्तु देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामधि वपामि धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वा (१)ऽपानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रति गृह्णातु ॥ (प्राणाय त्वा, पञ्चदश च) ॥ ६ ॥

कपालोपधानम् ॥ १२ अनुष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

धृष्टिरसि ब्रह्म यच्छापाग्नेऽग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधाऽऽ देवयजं वह निर्दग्धꣳ रक्षो निर्दग्धा अरातयो ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳहाऽऽयुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह सजातानस्मै यजमानाय

पर्यूह धरुणमसि पर्यूह धर्त्रमस्यन्तरिक्षं दृꣳह प्राणं दृꣳहापानं दृꣳह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह धर्मासि दिशो दृꣳह दिवं दृꣳह चक्षुः (१) दृꣳह श्रोत्रं दृꣳह सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह चितः स्थ प्रजामस्मै रयिमस्मै सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वं

यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः ।

पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू वि मुञ्चताम् ॥ (चक्षुः, द्वाचत्वारिंशच्च) ॥ ७ ॥

पुरोडाशश्रपणम् ॥ २ उपरिष्टाद्बृहती; ३-४, ११ एकपदा गायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः ।

सं वपामि समापो अद्भिरग्मत समोषधयो रसेन सꣳ रेवतीर्जगतीभिर्मधुमतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वमद्भ्यः परि प्रजाताः स्थ समद्भिः पृच्यध्वं जनयत्यै त्वा सं यौम्यग्नये त्वाऽग्नीषोमाभ्यां मखस्य शिरोऽसि घर्मोऽसि विश्वायुरुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतां त्वचं गृह्णीष्वान्तरितꣳ रक्षोऽन्तरिता अरातयो देवस्त्वा सविता (१) श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाकेऽग्निस्ते तनुवं माऽति धागग्ने हव्यꣳ रक्षस्व सं ब्रह्मणा पृच्यस्वैकताय स्वाहा द्विताय स्वाहा त्रिताय स्वाहा ॥ (सविता, द्वाविंशतिश्च) ॥ ८ ॥

वेदिकरणम् ॥ २० द्विपदा गायत्री; २४ एकपदा त्रिष्टुप्, २५ त्रिपदा त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

आ दद इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजाः पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषमपहतोऽररुः पृथिव्यै व्रजं गच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां परावति शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगपहतोऽररुः पृथिव्यै देवयजन्यै व्रजं (१) गच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां परावति शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगररुस्ते दिवं माऽस्कान् वसवस्त्वा परि गृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वा परि गृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽऽदित्यास्त्वा परि गृह्णन्तु जागतेन छन्दसा देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्ति वेधस ऋतमस्यृतसदनमस्यृतश्रीरसि धा असि स्वधा अस्युर्वी चासि वस्वी चासि पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (२) उदादाय पृथिवीं जीरदानुर्यामैरयञ्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदृश्य यजन्ते ॥ (देवयजन्यै व्रजं, तमतो मा, विरप्शिन्नेकादश च) ॥ ९ ॥

हविर्ग्रहणम् ॥ ७-८, १० अनुष्टुप्; ९ त्रिष्टुप्; २० गायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः ।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयोऽग्नेर्वस्तेजिष्ठेन तेजसा निष्टपामि गोष्ठं मा निर्मृक्षं वाजिनं त्वा सपत्नसाहꣳ सं मार्ज्मि वाचं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं प्रजां योनिं मा निर्मृक्षं वाजिनीं त्वा सपत्नसाहीꣳ सं मार्ज्म्याशासाना सौमनसं प्रजाꣳ सौभाग्यं तनूम् ।

अग्नेरनुव्रता भूत्वा सं नह्ये सुकृताय कम् ॥

सुप्रजसस्त्वा वयꣳ सुपत्नीरुप (१) सेदिम ।

अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥

इमं वि ष्यामि वरुणस्य पाशं यमबध्नीत सविता सुकेतः ।

धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं मे सह पत्या करोमि ॥

समायुषा सं प्रजया समग्ने वर्चसा पुनः ।

सं पत्नी पत्याऽहं गच्छे समात्मा तनुवा मम ॥

महीनां पयोऽस्योषधीनाꣳ रसस्तस्य तेऽक्षीयमाणस्य नि (२) र्वपामि महीनां पयोऽस्योषधीनाꣳ रसोऽदब्धेन त्वा चक्षुषाऽवेक्षे सुप्रजास्त्वाय तेजोऽसि तेजोऽनु प्रेह्यग्निस्ते तेजो मा वि नैदग्नेर्जिह्वाऽसि सुभूर्देवानां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे भव शुक्रमसि ज्योतिरसि तेजोऽसि देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रं (३) त्वा शुक्रायां धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि ज्योतिस्त्वा ज्योतिष्यर्चिस्त्वाऽर्चिषि धाम्नेधाम्ने देवेभ्यो यजुषेयजुषे गृह्णामि ॥ (उप, निः, शुक्रं, षोडश च) ॥ १० ॥

इध्माबर्हिःसंस्कारो वेद्यां हविरासादनं । १४ गायत्री; २० एकपदा त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा स्वाहा वेदिरसि बर्हिषे त्वा स्वाहा बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा स्वाहा दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा स्वधा पितृभ्य ऊर्ग्भव बर्हिषद्भ्य ऊर्जा पृथिवीं गच्छत विष्णोः स्तूपोऽस्यूर्णाम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यो गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मादीषतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः इन्द्रस्य बाहुरसि (१) दक्षिणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितो मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परि धत्तां ध्रुवेण धर्मणा यजमानस्य परिधिरिड ईडितः सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳ समिधीमह्यग्ने बृहन्तमध्वरे विशो यन्त्रे स्थो वसूनाꣳ रुद्राणामादित्यानाꣳ सदसि सीद जुहूरुपभृद् ध्रुवाऽसि घृताची नाम्ना प्रियेण नाम्ना प्रिये सदसि (२) सीदैता असदन्त्सुकृतस्य लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञनियम् ॥ (असि, सदसि, पञ्चदश च) ॥ ११ ॥

१०।४-५ ' मा निर्मृक्षं... संमार्ज्मि ' । (१०।१२) 'धाम्ने धाम्ने... गृह्णामि ' (११।१७-१८) 'असि घृताची... सीद'

आधारः ॥ १ एकपदा गायत्री, ८ द्विपदा पङ्क्ती । प्रजापतिर्ऋषिः ।

भुवनमसि वि प्रथस्वाऽग्ने यष्टरिदं नमः ।

जुह्वेह्यग्निस्त्वा ह्वयति देवयज्यायै उपभृदेहि देवस्त्वा सविता ह्वयति देवयज्यायै अग्नाविष्णू मा वामव क्रमिषं वि जिहाथां मा मा सं ताप्तं लोकं मे लोककृतौ कृणुतं विष्णोः स्थानमसी—त इन्द्रो अकृणोद् वीर्याणि समारभ्योर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृशमह्रुतो (१) यज्ञो यज्ञपतेरिन्द्रावान्त्स्वाहा बृहद्भाः पाहि माऽग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भज मखस्य शिरोऽसि सं ज्योतिषा ज्योतिरङ्क्ताम् ॥ (अह्रुत, एकविंशतिश्च) ॥१२॥

स्रुग्व्यूहनादुत्तरकर्म ॥ १-२ अनुष्टुप्, १२ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्, १४ त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीत् ।

अथा सपत्नाꣳ इन्द्रो मे निग्राभेणाधराꣳ अकः ।

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।

अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ।

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वा—ऽऽदित्येभ्यस्त्वा—ऽक्तꣳ रिहाणा वियन्तु वयः ।- प्रजां योनिं मा निर्मृक्षमा प्यायन्तामाप ओषधयो मरुतां पृषतयः स्थ दिवं (१) गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय । आयुष्पा अग्नेऽस्यायुर्मे पाहि चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ध्रुवाऽसि

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्वीयमाणः ।

तं त एतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयातै

यज्ञस्य पाथ उप समितꣳ संस्रावभागाः स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हिषदश्च (२) देवा इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्—अग्नेर्वामपन्नगृहस्य सदसि सादयामि सुम्नाय सुम्निनी सुम्ने मा धत्तं धुरि धुर्यौ पात—मग्नेऽदब्धायोऽशीततनो पाहि माऽद्य दिवः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्यै पाहि दुश्चरितादविषं नः पितुं कृणु सुषदा योनिꣳ स्वाहा देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुम् (३) इत मनसस्पत इमं नो देव देवेषु यज्ञꣳ स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः ॥ (दिवं, च, षड्विंशतिश्च) ॥ १३ ॥

काम्येष्टियाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-२, ४, ६, ८-१०, १२, १४ त्रिष्टुप्; ७ अनुष्टुप्; शिष्टा गायत्र्यः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।

उभा दाताराविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥

अश्रवꣳ हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।

अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् (१) ।

उभा हि वाꣳ सुहवा जोहवीमि ता वाजꣳ सद्य उशते धेष्ठा ॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम् ।

स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियꣳ सीषधाति प्र पूषा ॥

क्षेत्रस्य पतिना वयꣳ हितेनेव जयामसि ।

गामश्वं पोषयित्न्वा स नो (२) मृडातीदृशे ॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।

मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोढुम् ।

अग्निर्विद्वान्त्स यजात् (३) सेदु होता सो अध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।

पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ (४) मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाꣳ ऋतुभिः कल्पयाति ॥

(जुषेथां, नो, यजा,-त्रा, त्रयोविंशतिश्च) ॥ १४ ॥

[दुवे २३ । यज्ञस्य ८८ । शुन्धध्वं २८ । कर्मणे २६ । देवो १११ । अवधूतं ६५ । घृष्टिः ९८ । स-७२ ।-मार्ष्ट १६१ । प्रत्युष्टं १६६ । कृष्णो ११५ । भुवनं ७१ । वाजस्यमा १६३; २२३ । चतुर्दश । १५१०]

[इति प्रथमकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥]

अग्निष्टोमे क्रयः ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥]

यजमानस्य क्षौरस्नानानुलेपनादिसंस्काराः प्राचीनवंशप्रवेशश्च ॥ १ द्विपदा गायत्री; ६ त्रिपदा विराट्, ७ एकपदा विराट्, १२-१४ गायत्री; १६ अनुष्टुप् । सोमऋषिः ।

आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चस ओषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसी—र्देव-

शूरहानि प्र वपे स्वस्त्युत्तराण्यशीया—ऽऽपो अस्मान् मातरः शुन्धन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु विश्वमस्मत् प्र वहन्तु रिप्र—मुदाभ्यः शुचिरा पूत एमि सोमस्य तनूरसि तनुवं मे पाहि महीनां पयोऽसि वर्चोधा असि वर्चो (१) मयि धेहि वृत्रस्य कनीनिकाऽसि चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि चित्पतिस्त्वा पुनातु— वाक्पतिस्त्वा पुनातु— देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभि—स्तस्य ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कं पुने तच्छकेयमा वो देवास ईमहे सत्यधर्माणो अध्वरे यद् वो देवास आगुरे यज्ञियासो हवामहे इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी आप ओषधीः (२) त्वं दीक्षाणामधिपतिरसीह मा सन्तं पाहि ॥ (वर्चो, ओषधीरेकं च) ॥ १ ॥

यजमानस्य दीक्षा ॥ ५ त्रिपदा विराट्, ६ अनुष्टुप्; ८ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा—ऽऽपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं बृहस्पतिर्नो हविषा वृधातु स्वाहा विश्वे देवस्य नेतुर्मर्तो वृणीत सख्यं विश्वे राय इषुध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाह—र्क्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामा रभे ते मा (१) पातमाऽस्य यज्ञस्योदृचः

इमां धियꣳ शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सꣳ शिशाधि

ययाऽति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावꣳ रुहेम—

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मे यच्छ पाहि मा मा मा हिꣳसी—र्विष्णोः शर्माऽसि शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छ नक्षत्राणां माऽतीकाशात् पाही—न्द्रस्य योनिरसि (२) मा मा हिꣳसीः कृष्यै त्वा सुसस्यायै सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः सूपस्था देवो वनस्पति—रूर्ध्वो मा पाह्योदृचः स्वाहा यज्ञं मनसा स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा यज्ञं वातादा रभे ॥ (मा, योनिरसि, त्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

दैवकर्मसंस्कारः ॥ १-२ अनुष्टुप्, ४ गायत्री, ५ एकपदा त्रिष्टुप्, २१ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुपारा नो असद् वशे । ये देवा मनोजाता मनोयुजः सुदक्षा दक्षपितारस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा—ऽग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि गोपाय नः स्वस्तये प्रबुधे नः पुनर्ददः ।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं (१) यज्ञेष्वीड्यः ॥

विश्वे देवा अभि मामाऽववृत्रन् पूषा सन्या सोमो राधसा देवः सविता वसोर्वसुदावा रास्वेयत् सोमाऽऽभूयो भर मा पृणन् पूर्त्या वि राधि माऽहमायुषा चन्द्रमसि मम भोगाय भव वस्त्रमसि

मम भोगाय भवो—स्राऽसि मम भोगाय भव हयोऽसि मम भोगाय भव (२) छागोऽसि मम भोगाय भव मेषोऽसि मम भोगाय भव वायवे त्वा वरुणाय त्वा निर्ऋत्यै त्वा रुद्राय त्वा देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमस्तं वो माऽव क्रमिष—मच्छिन्नं तन्तुं पृथिव्या अनु गेषं भद्रादभि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्त्वथेमव स्य (३) वर आ पृथिव्या आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीर एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या विश्वे देवा यदजुषन्त पूर्व ऋक्सामाभ्यां यजुषा सन्तरन्तो रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥ (त्वं, भव, स्य, पञ्चविंशतिश्च) ॥ ३ ॥

सोमक्रयण्यानयनम् ॥ ५ अनुष्टुप् । सोमऋषिः ।

इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्चस्तया सं भव भ्राजं गच्छ जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे वाचो यन्त्रमशीय स्वाहा शुक्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवꣳ हविः सूर्यस्य चक्षुराऽरुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकां यदेतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता चिदसि मनाऽसि धीरसि दक्षिणा (१) ऽसि यज्ञियाऽसि क्षत्रियाऽस्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी सा नः सुप्राची सुप्रतीची सं भव मित्रस्त्वा पदि बध्नातु पूषाऽध्वनः पात्विन्द्रायाध्यक्षायानु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वाऽऽवर्तयतु मित्रस्य पथा स्वस्ति सोमसखा (२) पुनरेहि सह रय्या ॥ (दक्षिणा, सखा, पञ्च च) ॥ ४ ॥

सोमक्रयण्याः पदसंग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

वस्व्यसि रुद्राऽस्य—दितिरस्या—दित्याऽसि शुक्राऽसि चन्द्राऽसि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु रुद्रो वसुभिरा चिकेतु पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्ना जिघर्मि देवयजन इडायाः पदे घृतवति स्वाहा परिलिखितꣳ रक्षः परिलिखिता अरातय इदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इदमस्य ग्रीवा (१) अपि कृन्ताम्य—स्मे राय—स्त्वे राय—स्तोते रायः सं देवि देव्योर्वश्या पश्यस्व त्वष्टीमती ते सपेय सुरेता रेतो दधाना वीरं विदेय तव संदृशि माऽहꣳ रायस्पोषेण वि योषम् ॥ (अस्य ग्रीवा, एकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

सोमोन्मानम् ॥ २ अतिच्छन्दा (अष्टिः) । सोमऋषिः ।

अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुर्गन्धस्ते काममवतु मदाय रसो अच्युतोऽमात्योऽसि शुक्रस्ते ग्रहो—ऽभि त्यं देवꣳ सवितारमूण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवसꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिमूर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा सुवः । प्रजाभ्यस्त्वा प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा प्रजास्त्वमनु (१) प्राणिहि प्रजास्त्वामनु प्राणन्तु ॥ (अꣳशु, एकं च) ॥ ६ ॥

सोमक्रयणम् ॥ सोमऋषिः ।

सोमं ते क्रीणाम्यूर्जस्वन्तं पयस्वन्तं वीर्यावन्तमभिमातिषाहꣳ शुक्रं ते शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन सम्यत्ते गोरस्मे चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णस्तस्यास्ते सहस्रपोषं पुष्यन्त्याश्चरमेण पशुना क्रीणाम्यस्मे ते बन्धुर्मयि ते रायः श्रयन्तामस्मे ज्योतिः सोमविक्रयिणि तमो मित्रो न एहि सुमित्रधा इन्द्रस्योरु (१) मा विश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनꣳ स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ (उरुं, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

सोमस्य शकटारोपणम् ॥ १ अनुष्टुप्, २ एकपदा गायत्री, ५-६ त्रिष्टुप्, ७ गायत्री । सोमऋषिः ।

उदायुषा स्वायुषोदोषधीनाꣳ रसेनोत्पर्जन्यस्य शुष्मेणोदस्थाममृताꣳ अनु ।
उर्वन्तरिक्षमन्विह्यदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आसीदास्तभ्नाद्द्यामृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्या आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्नियासु हृत्सु (१) क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रावुदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
उस्रावेतं धूर्षाहावनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ वरुणस्य स्कम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनमसि प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशः ॥ (हृत्सु, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

सोमस्य प्राचीनवंशं प्रति गमनम् ॥ १ षट्पदाऽतिजगती, २-३ अनुष्टुप्, ४ जगती । सोमऋषिः ।

प्र च्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि मा त्वा परिपरी विदन्मा त्वा परिपन्थिनो विदन्मा त्वा वृका अघायवो मा गन्धर्वो विश्वावसुरा दघच्छ्येनो भूत्वा परा पत यजमानस्य नो गृहे देवैः सꣳस्कृतं यजमानस्य स्वस्त्ययन्यपि पन्थामगस्महि स्वस्तिगामनेहसं येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु नमो मित्रस्य (१) वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥ वरुणस्य स्कम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनमस्युन्मुक्तो वरुणस्य पाशः ॥ (मित्रस्य, त्रयोविꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

आतिथ्येष्टिः ॥ ६ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

अग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा सोमस्याऽऽतिथ्यमसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वाऽग्नये त्वा रायस्पोषदाव्ने विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञं गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यानदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आ (१) सीद वरुणोऽसि धृतव्रतो वारुणमसि शंयोर्देवानाꣳ सख्यान्मा देवानामपसश्छित्स्मह्यापतये त्वा गृह्णामि परिपतये त्वा गृह्णामि तनूनप्त्रे त्वा गृह्णामि
२ (तै० सं०)

शाक्वराय त्वा गृह्णामि शक्मन्नोजिष्ठाय त्वा गृह्णाम्यनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेऽन्यमनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिरञ्जसा सत्यमुप गेषꣳ सुविते मा (२) धाः (आ, मै,-कं च) ॥ १० ॥

उपसदः ॥ सोमऋषिः

अꣳशुरꣳशुस्ते देव सोमाऽऽप्यायतामिन्द्रायैकधनविद आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्वाऽऽप्यायय सखीन्त्सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीयेष्टा रायः प्रेषे भगायर्तमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्या अग्ने व्रतपते त्वं व्रतानां व्रतपतिरसि या मम तनूरेषा सा त्वयि (१) या तव तनूरियꣳ सा मयि सह नौ व्रतपते व्रतिनोर्व्रतानि या ते अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि तस्यास्ते स्वाहा या ते अग्नेऽयाशया-रजाशया-हराशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचो अपावधीं त्वेषं वचो अपावधीꣳ स्वाहा (त्वयि, चत्वारिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

उत्तरवेदिनिर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

वित्तायनी मेऽसि तिक्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितमवतान्मा व्यथितं विदेरग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिरो योऽस्यां पृथिव्यामस्यायुषा नाम्नेहि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वाऽऽदधेऽग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां-तृतीयस्यां पृथिव्यामस्यायुषा नाम्नेहि यत्तेऽनाधृष्टं नाम (१) यज्ञियं तेन त्वाऽऽदधे सिꣳहीरसि महिषीरस्युरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतां ध्रुवाऽसि देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्वेन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु विश्वकर्मा त्वाऽऽदित्यैरुत्तरतः पातु सिꣳहीरसि सपत्नसाही स्वाहा सिꣳहीरसि सुप्रजावनिः स्वाहा सिꣳही (२) रसि रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳहीरस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳहीरस्या वह देवान्देवयते यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा विश्वायुरसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि ॥ (नाम, सिꣳहीः, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ १२ ॥

हविर्धानमण्डपनिर्माणम् ॥ १ जगती, ३ विराड् गायत्री, ४ गायत्री, ५, ८-९ त्रिष्टुप्, ६ द्विपदा त्रिष्टुप्, ७ एकपदा विराट् । सोमऋषिः ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥
सुवाग्देव दुर्याꣳ आ वद देवश्रुतौ देवेष्वा घोषेथामा नो वीरो जायतां कर्मण्यो यꣳ सर्वेऽनुजीवाम यो बहूनामसद्वशी । इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूढमस्य (१) पाꣳसुरे
इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे यशस्ये ।
व्यस्कभ्नाद्रोदसी विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः ॥

११।९-१) तनू...वधी - स्वाहा । ६-७ या ते अग्ने -ऽ। (१२।६) विदे... नाम -* ५ -ऽ विदे... अङ्गिरो यः-* ६ पृथि... दधे ।

प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जीह्वरतमत्र रमेथां वर्ष्मन्पृथिव्या दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या महो वा विष्णवुत वाऽन्तरिक्षाद्धस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा प्र यच्छ (२) दक्षिणादोत सव्यात् ।
विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णो रराटमसि विष्णोः पृष्ठमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवमसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ (अध्व, यच्छ, - चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १३ ॥

काम्याः सामिधेन्यः पुरोऽनुवाक्या याज्याश्च ॥ १-१८ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाꣳ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूꣳष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशꣳसो (१) यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ।
उदग्ने तिष्ठ प्रत्याऽऽतनुष्व न्यमित्राꣳ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिꣳ समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥
स ते (२) जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना साऽसदिष्टिः ॥
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरता (३) मियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवाꣳसमनु द्यून् ।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवाꣳसो जनानाम् ॥
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥

महो रुजामि (४) बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्रियञ्चो निषद्याऽग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह (५) देभुः ॥
त्वया वयꣳ सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्याश्याम वाजान् ।
उभा शꣳसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमꣳ शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥
रक्षोहणं वाजिनमाऽऽजिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा (६) स रिषः पातु नक्तम् ॥
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्ररुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥ (अघशꣳसः, स ते, जरता, रुजामि, ह, दिवा, चत्वारिꣳशच्च) ॥ १४ ॥

[आयु १०८ । आङ्ग्रे १२० । देवी- १०५ । मित्रं १०५ । वरुण- ७९ । - स्कम्भ ५० । सोम- ७२ । सुत- ८५ । प्रा -७३ । - प्रे- १०१ । - इन्द्र- ९० । वित्तायनी १२५ । युञ्जते १२९ । कृणुष्व २११ । चतुर्दश ॥ १६९० ॥]

[इति प्रथमकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

अग्निष्टोमे पशुः ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

सदोमण्डपनिर्माणम् ॥ १० अनुष्टुप् । सोमऋषिः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददेऽभ्रिरसि नारिरसि परिलिखितꣳ रक्षः परिलिखिता अरातय इदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इदमस्य ग्रीवा अपि कृन्तामि दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धतां लोकः पितृषदनो यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो (१) यवयारातीः पितृणाꣳ सदनमस्युत्

दिवꣳ स्तभानाऽन्तरिक्षं पृण पृथिवीं दृꣳह द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणयोर्ध्रुवेण धर्मणा ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिꣳ सुप्रजावनिꣳ रायस्पोषवनिं पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳह प्रजां दृꣳह रायस्पोषं दृꣳह घृतेन द्यावापृथिवी आ पृणेथामिन्द्रस्य सदोऽसि विश्वजनस्य छाया परि त्वा गिर्वणो गिर इमा (२) भवन्तु विश्वतो वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टय इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवमसीन्द्रमसीन्द्राय त्वा ॥ (दिवं, इमा, अष्टादश च) ॥ १ ॥

उपरवनिर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

रक्षोहणो वलगहनो वैष्णवान् खनामीदमहं तं वलगमुद्वपामि यं नः समानो यमसमानो निचखानेदमेनमधरं करोमि यो नः समानो योऽसमानोऽरातीयति गायत्रेण छन्दसाऽवबाढो वलगः किमत्र भद्रं तन्नौ सह विराडसि सपत्नहा सम्राडसि भ्रातृव्यहा स्वराडस्यभिमातिहा विश्वाराडसि विश्वासां नाष्ट्राणाꣳ हन्ता (१) रक्षोहणो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वलगहनोऽव नयामि वैष्णवान् यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः रक्षोहणो वलगहनोऽव स्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणो वलगहनोऽभि जुहोमि वैष्णवान् रक्षोहणौ वलगहनावुप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रक्षोहणौ वलगहनौ परि स्तृणामि वैष्णवी रक्षोहणौ वलगहनौ वैष्णवी बृहन्नसि बृहद्ग्रावा बृहतीमिन्द्राय (२) वाचं वद ॥ (हन्ता,-त्राय द च) ॥ २ ॥

धिष्णियाः ॥ सोमऋषिः ।

विभूरसि प्रवाहणो - वह्निरसि हव्यवाहनः - श्वात्रोऽसि प्रचेताः - तुथोऽसि विश्ववेदाः - उशिगसि कविः - अङ्घारिरसि बम्भारिः - अवस्युरसि दुवस्वान् - शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः - सम्राडसि कृशानुः - परिषद्योऽसि पवमानः - प्रतक्वाऽसि नभस्वान् - असंमृष्टोऽसि हव्यसूदः - ऋतधामाऽसि सुवर्ज्योतिः - ब्रह्मज्योतिरसि सुवर्धामा - अजोऽस्येकपात् - अहिरसि बुध्नियो रौद्रेणानीकेन (१) पाहि माऽग्ने पिपृहि मा मा मा हिꣳसीः ॥ (अनीकशङ्गी च) ॥ ३ ॥

वैसर्जनहोमः ॥ १, ५ गायत्री, ३ त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् । सोमऋषिः ।

त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा-

ऽयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।

अयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणोऽयं वाजं जयतु वाजसातौ ॥

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नः कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥

सोमो जिगाति गातुविद् (१) देवानामेति निष्कृतमृतस्य योनिमासदम्-

(अदि-१५) त्वꣳसोम...हिꣳसीः ।

-दित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आ सीद एष वो देव सवितः सोमस्तꣳ रक्षध्वं मा वो दभदेतत्त्वꣳ सोम देवो देवानुपागा इदमहं मनुष्यो मनुष्यान्त्सह प्रजया सह रायस्पोषेण नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्य इदमहं निर्वरुणस्य पाशात्सुवरभि (२) वि ख्येषं वैश्वानरं ज्योतिरग्ने व्रतपते त्वं व्रतानां व्रतपतिरसि या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यथायथं नौ व्रतपते व्रतिनोर्व्रतानि ॥ (गातुविद्-, ख्यो,-ऽष्टात्रिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

यूपच्छेदनम् ॥ सोमऋषिः ।

अत्यन्यानगां नान्यानुपागामर्वाक्त्वा परैरविदं परोऽवरैस्तं त्वा जुषे वैष्णवं देवयज्यायै देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्त्वोषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीर्दिवमग्रेण मा लेखीरन्तरिक्षं मध्येन मा हिꣳसीः पृथिव्या सं भव

वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम यं (१) त्वाऽयꣳ स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगायाच्छिन्नो रायः सुवीरः ॥ (यं, दश च) ॥ ५ ॥

यूपस्थापनम् ॥ ११ त्रिष्टुप्, १२-१३) गायत्र्यौ । सोमऋषिः ॥

पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा शुन्धतां लोकः पितृषदनो यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः पितृणाꣳ सदनमसि स्वावेशोऽस्यग्रेगा नेतृणां वनस्पतिरधि त्वा स्थास्यति तस्य वित्ताद्देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्य उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण पृथिवीमुपरेण दृꣳह

ते ते धामान्युश्मसी (१) गमध्यै गावो यत्र भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमव भाति भूरेः ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥

ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिꣳ सुप्रजावनिꣳ रायस्पोषवनिं पर्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳह प्रजां दृꣳह रायस्पोषं (२) दृꣳह परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमꣳ रायस्पोषो यजमानं मनुष्या अन्तरिक्षस्य त्वा सानाववगूहामि ॥ (उश्मसी, पोषम्, ऊनविꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

पशोरुपाकरणम् ॥ १३ पङ्क्तिः, १४ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

इषे त्वोपवीरस्युपो देवान् दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नीरुशिजो बृहस्पते धारया वसूनि हव्या ते स्वदन्तां देव त्वष्टर्वसु रण्व रेवती रमध्वमग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा घृतेनाक्ते वृषणं दधाथां गायत्रं छन्दोऽनु प्र जायस्व त्रैष्टुभं - जागतं छन्दोऽनु प्र जायस्व

(७.११ छन्दो...यस्व ।)

भवतं (१) नः समनसौ समोकसावरेपसौ ।

मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः ।

स्वाहाकृत्य ब्रह्मणा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागधेयम् ॥

(भवतमेकत्रिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

उपाकृतस्य पशोर्नियमनम् । १२ त्रिष्टुप्, १६ अनुष्टुप् ॥ सोमऋषिः ।

आ ददे ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेनाऽऽरभे धर्षा मानुषानद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः प्रोक्षाम्यपां पेरुरसि स्वात्तं चित्सदेवꣳ हव्यमापो देवीः स्वदतैनꣳ सं ते प्राणो वायुना गच्छताꣳ सं यजत्रैरङ्गानि सं यज्ञपतिराशिषा घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथाꣳ रेवतीर्यज्ञपतिं प्रियधाऽऽ विशतोरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन (१) वातेनाऽस्य हविषस्त्मना यज सम्स्य तनुवा भव वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः पृथिव्याः सम्पृचः पाहि नमस्त आतानाऽनर्वा प्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेणाऽऽपो देवीः शुद्धायुवः शुद्धा यूयं देवाꣳ ऊढ्वꣳ शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारो वो भूयास्म ॥ (देवेन, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

महाविनष्ट पशोरङ्गोच्छेदनम् ॥ सोमऋषिः ।

वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतां चक्षुस्त आ प्यायताꣳ श्रोत्रं त आ प्यायतां या ते प्राणाञ्छुग्जगाम या चक्षुर्या श्रोत्रं यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आ प्यायतां तत्त एतेन शुन्धतां नाभिस्त आ प्यायतां पायुस्त आ प्यायताꣳ शुद्धाश्चरित्राः शमद्भ्यः (१) शमोषधीभ्यः शं पृथिव्यै शमहोभ्यामोषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसी रक्षसां भागोऽसीदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इदमेनमधमं तमो नयामीषे त्वा घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्ण्वाथामच्छिन्नो रायः सुवीर उर्वन्तरिक्षमन्विहि वायो वीहि (२) स्तोकानाꣳ स्वाहोर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥ (शमद्भ्यो, वीहि, पञ्च च) ॥ ९ ॥

वपाहोमः ॥ सोमऋषिः ।

सं ते मनसा मनः सं प्राणेन प्राणो जुष्टं देवेभ्यो हव्यं घृतवत्स्वाहैन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे नि देध्यदैन्द्रोऽपानो अङ्गेअङ्गे वि बोभुवद्देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु विषुरूपा यत्सलक्ष्माणो भवथ देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु श्रीरस्यग्निस्त्वा श्रीणात्वापः समरिणन्वातस्य (१) त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्या अपामोषधीनाꣳ रोहिष्यै घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा त्वाऽन्तरिक्षाय दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशः स्वाहा दिग्भ्यो नमो दिग्भ्यः ॥ (वातस्य, सप्तत्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

गुदकाण्डहोमः ॥ सोमऋषिः

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा नभो दिव्यं गच्छ स्वाहाऽग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहाऽद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो मनो मे हार्दि यच्छ तनूं त्वचं पुत्रं नप्तारमशीय शुगसि (१) तमभि शोच योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च यदापो अघ्निया वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च ॥ (शुगसि षड्विꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

वसतीवरीग्रहणकालामन्त्रणमुपाहरणम् ॥ अनुष्टुप् । सोमऋषिः

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान्देवो अध्वरो

हविष्माꣳ आ विवासति हविष्माꣳ अस्तु सूर्यः ॥

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि सुम्नाय सुम्निनीः सुम्ने मा धत्तेन्द्राग्नियोर्भागधेयीः स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयीः स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयीः स्थ यज्ञे जागृत ॥ (हविष्मतीश्चतुर्विꣳशत्) ॥ १२ ॥

सोमस्य शकटादुपावरोहः ॥ ३ त्रिष्टुप्, ७ गायत्री । सोमऋषिः ।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वोर्ध्वमिममध्वरं कृधि दिवि देवेषु होत्रा यच्छ सोम राजन्नेह्यव रोह मा भेर्मा सं विक्था मा त्वा हिꣳसिषं प्रजास्त्वमुपावरोह प्रजास्त्वामुपावरोहन्तु

शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।

शृणोत ग्रावाणो विदुषो नु (१) यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे ।

देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमस्तं देवेभ्यो देवत्रा धत्त शुक्रꣳ शुक्रपेभ्यो येषां भागः स्थ स्वाहा कार्षिरस्यपापां मृध्रꣳ समुद्रस्य वोक्षित्या उन्नये ।

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमावा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥

(नु सप्तचत्वारिꣳशच्च) ॥ १३ ॥

काम्ययाज्यानुवाक्याः ॥ १-३, ८, १०, १२, १७, १६-१८, २२ त्रिष्टुप्, ७, ९, १३, १५, २१, २३-२८ गायत्री; ११, १९, २० अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वꣳ शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।

त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳ सत्ययजꣳ रोदस्योः ।

अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥

अग्निर्होता नि षसादा यजीयानुपस्थे मातुः सुरभावु लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ (१) ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥
साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥
त्वे वसूनि पुर्वणीक (२) होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सꣳसौभगानि दधिरे पावके ॥
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥
अश्याम तं काममग्ने तवोत्यश्याम रयिꣳरयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥
श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर । (३) वसो पुरुस्पृहꣳरयिम् ॥
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥
आयुष्टे विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ।
पुनस्ते प्राण आयति परा यक्ष्मꣳसुवामि ते ॥
आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि (४) रक्षतादिमम् ।
तस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥
दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥
दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभि (५) र्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानꣳस्वाधियं जनयत् सूदयच्च ॥
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥

३ (तै. सं.)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा य (६) श्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥
तमग्ने पृतनासहꣳ रयिꣳ सहस्व आ भर ।
त्वꣳहि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥
अग्न आयूꣳषि (७) पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत् पोषꣳरयिं मयि ॥
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाꣳ इहा वह । उप यज्ञꣳहविश्च नः ॥
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः (८) कविः । शुचीरोचत आहुतः ॥
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीꣳष्यर्चयः ॥

(पुरुनिष्ठः, पुर्वणीक, भरा,ऽभि वयोभि,-र्य, आयूꣳषि, विप्रः शुचि,-श्चतुर्दश च) ॥ १४ ॥

[देवस्य ११८ । रक्षोहणो १०२ । विभू- ५८ । - स्व १३१ । - मतिं ६० । पृथिव्या ११६ । इष २१ । आददे ९४ । वाक् १०५ । सꣳ७८ । संमुद्रꣳ७६ । हविष्मती- ३४ । - हृदे ९७ । त्वं ४१४ । चतुर्दश ॥ १५६७ ॥

[इति प्रथमकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

सुत्यादिने कर्तव्या ग्रहाः ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

सोमाभिषवः ॥ सोमऋषिः ।

आ ददे ग्रावास्यध्वरकृद् देवेभ्यो गम्भीरमिममध्वरं कृध्युत्तमेन पविनेन्द्राय सोमꣳ सुषुत
मधुमन्तं पयस्वन्तं वृष्टिवनिमि न्द्राय त्वा वृत्रघ्न इन्द्राय त्वा वृत्रतुर इन्द्राय त्वाऽभिमातिघ्न
इन्द्राय त्वा ऽऽदित्यवत इन्द्राय त्वा विश्वदेव्यावते श्वात्राः स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य
पत्नीस्ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं धत्तोपहूताः सोमस्य पिबतोपहूतो युष्माकꣳ (१) सोमः पिबतु यत्ते
सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे तेनास्मै यजमानायोरु राया कृध्यधि दात्रे वोचो
धिषणे वीडू सती वीडयेथामूर्जं दधाथामूर्जं मे धत्तं मा वाꣳ हिꣳसिषं मा मा हिꣳसिष्टं प्राग-
पागुदगधराक्तास्त्वा दिश आ धावन्त्व म्ब नि ष्वर । यत्ते (२) सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै
ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ (युष्माक, ते, नव च) ॥ १ ॥

उपांशुग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

वाचस्पतये पवस्व वाजिन् वृषा वृष्णो अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतो देवो देवानां पवित्रमसि येषां
भागोऽसि तेभ्यस्त्वा स्वाङ्कृतोऽसि मधुमतीर्न इषस्कृधि विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थि-
वेभ्यो मनस्त्वाष्टु र्वन्तरिक्षमन्विहि स्वाहा त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य
एष ते योनिः प्राणाय त्वा (वाचः सप्तचत्वारिꣳशत्) ॥ २ ॥

अन्तर्यामग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोममुरुष्य रायः समिषो यजस्वान्तस्ते दधामि द्यावा-
पृथिवी अन्तरुर्वन्तरिक्षꣳसजोषा देवैरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व स्वाङ्कृतोऽसि मधु-
मतीर्न इषस्कृधि विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु र्वन्तरिक्षमन्विहि
स्वाहा त्वा सुभवः सूर्याय देवेभ्य (१) स्त्वा मरीचिपेभ्य एष ते योनिरपानाय त्वा ॥ (देवेभ्यः,
सप्त च) ॥ ३ ॥

ऐन्द्रवायवग्रहः ॥ १ त्रिष्टुप्, २ गायत्री । सोमऋषिः ।

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ उप प्रयोभिरा गतमिन्दवो वामुशन्ति हि ॥
उपयामगृहीतोऽसि वायवे त्वे न्द्रवायू इमे सुताः । उप प्रयोभिरा गतमिन्दवो वामुशन्ति हि ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषाभ्यां त्वा ॥ (आ त्रिचत्वारिꣳशत्) ॥ ४ ॥

मैत्रावरुणग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳ हवम् ।
उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वैष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥ (अयं विꣳशतिः) ॥ ५ ॥

आश्विनग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ।
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा (याऽष्टादश १८) ॥ ६ ॥

प्रातर्युजौ वि मुच्येथामश्विनावेह गच्छतम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥
उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिरश्विभ्यां त्वा ॥ (प्रातर्युजावेकान्नविꣳशतिः) ॥ ७ ॥

शुक्रग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपाꣳ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥
उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाहि ॥ (अयं पञ्चविꣳशतिः) ॥ ८ ॥

मन्थिग्रहः ॥ जगती । सोमऋषिः ।

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ सुवर्विदं प्रतीचीनं वृजनं दोहसे
गिराऽऽशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ।
उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वैष ते योनिः प्रजाः पाहि ॥ (तं षड्विꣳशतिः) ॥ ९ ॥

आग्रयणग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्था प्सुषदो महिनैकादश स्थ ते देवा
यज्ञमिमं जुषध्वमु पयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणो जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिमभिसवना
पाहि विष्णुस्त्वां पातु विशं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥
(ये त्रिचत्वारिꣳशत्) ॥ १० ॥

भ्रातृव्यवत आग्रयणग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

त्रिꣳशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवꣳ रुद्राः पृथिवीं च सचन्ते ।
एकादशासो अप्सुषदः सुतꣳ सोमं जुषन्ताꣳ सवनाय विश्वे ॥
उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणो जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिमभिसवना पाहि विष्णुस्त्वां
पातु विशं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ (त्रिꣳशद् द्विचत्वारिꣳशत्) ॥ ११ ॥

उक्थ्यग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थायुवे यत् त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे
त्वैष ते योनिरिन्द्राय त्वोक्थायुवे (उपयामगृहीतो द्वाविꣳशतिः) ॥ १२ ॥

ध्रुवग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृताय जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वैश्वानराय ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षि-
त्तम एष ते योनिरग्नये त्वा वैश्वानराय ॥ (मूर्धानं पञ्चत्रिꣳशत्) ॥ १३ ॥

ऋतुग्रहाः ॥ सोमऋषिः ।

मधुश्च माधवश्च शुक्रश्च शुचिश्च नभश्च नभस्यश्चे षश्चो र्जश्च सहश्च सहस्यश्च तपश्च
तपस्यश्चो पयामगृहीतोऽसि सꣳसर्पोऽस्यꣳहस्पत्याय त्वा ॥ (मधुश्चिꣳशत्) ॥ १४ ॥

ऐन्द्राग्नग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

इन्द्राग्नी आ गतꣳसुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ (इन्द्राग्नी विꣳशतिः) ॥ १५ ॥

वैश्वदेवग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् ॥
उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ (ओमासो विꣳशतिः) ॥ १६ ॥

पूर्वो मरुत्वतीयग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवेम ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ (मरुत्वन्तं षड्विꣳशतिः) ॥ १७ ॥

द्वितीयमरुत्वतीयग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ (इन्द्रैकान्नत्रिꣳशत्) ॥ १८ ॥

तृतीयमरुत्वतीयग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

मरुत्वाꣳ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ (मरुत्वानेकान्नत्रिꣳशत्) ॥ १९ ॥

माहेन्द्रग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

महाꣳ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाꣳ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ (महानेकान्नविꣳशतिः) ॥ २० ॥

माहेन्द्रग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

महाꣳ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्रियग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥
उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ (महान् षड्विꣳशतिः) ॥ २१ ॥

आदित्यग्रहः ॥ १-२ बृहती, ३ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ॥
कदा चन प्रयुच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिवि ॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वो (१) र्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥
विवस्व आदित्यैष ते सोमपीथस्तेन मन्दस्व तेन तृप्य तृप्यास्म ते वयं तर्पयितारो या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामि ॥ (वृः. सप्तविꣳशतिश्च) ॥ २२ ॥

सावित्रग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥
उपयामगृहीतोऽसि देवाय त्वा सवित्रे ॥ (वामं चतुर्विꣳशतिः) ॥ २३ ॥

सावित्रग्रहः ॥ जगती । सोमऋषिः ।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥
उपयामगृहीतोऽसि देवाय त्वा सवित्रे ॥ (अदब्धेभिस्त्रयोविꣳशतिः) ॥ २४ ॥

सावित्रग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥
उपयामगृहीतोऽसि देवाय त्वा सवित्रे ॥ (हिरण्यपाणिं चतुर्दश) ॥ २५ ॥

वैश्वदेवग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षे नम एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ (सुशर्मा द्वादश) ॥ २६ ॥

पात्नीवतग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

बृहस्पतिसुतस्य त इन्द्रो इन्द्रियावतः पत्नीवन्तं ग्रहं गृह्णाम्यग्ना३इ पत्नीवा३ः सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा ॥ (बृहस्पतिसुतस्य पञ्चदश) ॥ २७ ॥

हारियोजनग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

हरिरसि हारियोजनो हर्योः स्थाता वज्रस्य भर्ता पृश्नेः प्रेता तस्य ते देव सोमेष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य हरिवन्तं ग्रहं गृह्णामि हरीः स्थ हर्योर्धानाः सहसोमा इन्द्राय स्वाहा
(हरिः षड्विꣳशतिः) ॥ २८ ॥

आग्नेयोऽतिग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा तेजस्वत एष ते योनिरग्नये त्वा तेजस्वते ॥ (अग्ने त्रयोविꣳशतिः) ॥ २९ ॥

ऐन्द्रोऽतिग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजस्वते ॥ (उत्तिष्ठन्नेकविꣳशतिः) ॥ ३० ॥

सौर्योऽतिग्रहः ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजस्वत एष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजस्वते ॥
(तरणिर्विꣳशतिः) ॥ ३१ ॥

[illegible] ॥ गायत्री । सोमऋषिः ।

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वाभिरूतिभिः । भवा नः सप्रथस्तमः (आ भवं) ॥ ३२ ॥

[illegible] ॥ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ (ईयुष्टेकान्नविꣳशतिः) ॥ ३३ ॥

[illegible] ॥ सोमऋषिः ।

ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि ज्योतिर्विदं त्वा सादयामि भास्वतीं त्वा सादयामि ज्वलन्तीं त्वा सादयामि मल्मलाभवन्तीं त्वा सादयामि दीप्यमानां त्वा सादयामि रोचमानां त्वा सादयाम्यजस्रां त्वा सादयामि बृहज्ज्योतिषं त्वा सादयामि बोधयन्तीं त्वा सादयामि जाग्रतीं त्वा सादयामि (ज्योतिष्मतीꣳ षट्त्रिꣳशत्) ॥ ३४ ॥

स्रुवाहुतयः । विश्वेदेवा ऋषयः

प्रयासाय स्वाहाऽऽयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहा संयासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहाऽवयासाय स्वाहा शुचे स्वाहा शोकाय स्वाहा तप्यत्वै स्वाहा तपते स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा (प्रयासाय चतुर्विꣳशतिः) ॥ ३५ ॥

[illegible] । विश्वेदेवा ऋषयः ।

चित्तꣳ सन्तानेन भवं यक्ना रुद्रं तनिम्ना पशुपतिꣳ स्थूलहृदयेनाग्निꣳ हृदयेन

रुद्रं लोहितेन शर्वं मतस्नाभ्यां महादेवमन्तःपार्श्वेनौषिष्ठहनꣳ शिङ्गीनिकोश्याभ्याम्
(चित्तमष्टादश) ॥ ३६ ॥

३७-४२ षोडशिग्रहः ॥ ३७-४० अनुष्टुप् । सोमऋषिः ।

आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(आ तिष्ठ षड्विꣳशतिः) ॥ ३७ (३१) ॥

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसमृषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(इन्द्रं त्रयोविꣳशतिः) ॥ ३८ (३२) ॥

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्यं न रश्मिभिः ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(असावि सप्तविꣳशतिः) ॥ ३९ (३३) ॥

सर्वस्य प्रतिशीवरी भूमिस्त्वोपस्थ आऽधित ।
स्योनास्मै सुषदा भव यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(सर्वस्य षड्विꣳशतिः) ४० (३४) ॥

स्वराडनुष्टुप् ।

महाꣳ इन्द्रो वज्रबाहुः षोडशी शर्म यच्छतु ।
स्वस्ति नो मघवा करोतु हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(महान् षड्विꣳशतिः) ॥ ४१ (३५) ॥

त्रिष्टुप् ।

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहञ्छूर विद्वान् ।
जहि शत्रूꣳरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥
(सजोषा विꣳशत्) ॥ ४२ (३६) ॥

दक्षिणा ॥ १ गायत्री, २-३ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥
दिवं गच्छ सुवः पत रूपेण (१) वो रूपमभ्यैमि वयसा वयः ।
तुथो वो विश्ववेदा वि भजतु वर्षिष्ठे अधि नाके ॥
एतत् ते अग्ने राध ऐति सोमच्युतं तन्मित्रस्य पथा नयर्तस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा यज्ञस्य पथा
सुविता नयन्तीर्ब्राह्मणमद्य राध्यासमृषिमार्षेयं पितृमन्तं पैतृमत्यꣳ सुधातुदक्षिणं वि सुवः पश्य
व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः (२) रस्मद्दात्रा देवत्रा गच्छत मधुमतीः प्रदातारमा विशतानवहायास्मान्
देवयानेन पथेत सुकृतां लोके सीदत तन्नः सꣳस्कृतम् ॥ (रूपेण सदस्यै-रष्टादश च) ॥ ४३ (२०) ॥

समिष्टयजूꣳषि ॥ १-६ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳस्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमत्या यज्ञियानाम् ॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरिवः कृणोत्व (१) नु मार्ष्टु तनुवो यद्विलिष्टम् ॥
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।
ऋधगयाडृधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञमुपयाहि विद्वान् ॥
स्वगा वो देवाः सदनमकर्म य आजग्म सवनेदं जुषाणाः ।
जक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥
यानाऽवह उशतो देव देवान् तान् (२) प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
वहमाना भरमाणा हवीꣳषि वसुं घर्मं दिवमा तिष्ठतानु ॥
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहैष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः
सुवीरः स्वाहा देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं नो देव देवेषु यज्ञꣳ स्वाहा
वाचि स्वाहा वाते धाः ॥ (कृणोतु तान्-,द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ४४ (२८) ॥
४ (तै. सं.)

अवभृथः ॥ १-४ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गम्भीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व द्वेषो निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥
अभिष्ठितो वरुणस्य पाशोऽग्नेरनीकमप आ विवेश ।
अपांनपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यं दमेदमे (१) समिधं यक्ष्यग्ने ॥
प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्येत् समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः ।
सं त्वा विशन्त्वोषधीरुताऽऽपो यज्ञस्य त्वा यज्ञपते हविर्भिः ॥
सूक्तवाके नमोवाके विधेमावभृथ निचङ्कुण निचेरुरसि निचङ्कुणाव देवैर्देवकृतमेनोऽयाडव
मर्त्यैर्मर्त्यकृतमुरोरा नो देव रिषस्पाहि सुमित्रा न आप ओषधयः (२) सन्तु दुर्मित्रास्तस्मै
भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो देवीराप एष वो गर्भस्तं वः सुप्रीतꣳ सुभृतमकर्म देवेषु
नः सुकृतो ब्रूतात् प्रतियुतो वरुणस्य पाशः प्रत्यस्तो वरुणस्य पाश एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि
तेजोऽसि तेजो मयि धेह्यपो अन्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वाꣳ अग्न आ (३)
ऽगमं तं मा सꣳ सृज वर्चसा ॥ (दमेदम्, ओषधयः, आ, षट् च) ॥ ४५ (१९) ॥

काम्ययाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-२, ४, ८, १० त्रिष्टुप्, ३, ५, ७, ९, ११-१२ गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।

यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥
यस्मै त्वꣳ सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनꣳ स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तꣳ रयिं नशते स्वस्ति ॥
त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानꣳ (१) सुतासः ।
यदीꣳ सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥
अग्ने रसेन तेजसा जातवेदो वि रोचसे । रक्षोहाऽमीवचातनः ॥
अपो अन्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वाꣳ अग्न आऽगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा ॥
वसुर्वसुपतिर्हिकमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥
त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे (२) अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ।

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥
अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणोऽयं वाजं जयतु वाजसातौ ॥
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥
त्वꣳ ह्यग्ने (३) अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥
उदग्ने शुचयस्तव ० वि ज्योतिषा ० ॥ (मघवानं, मन्दे, ह्यग्ने, चतुर्दश च) ॥ ४६ (४०) ॥
[आ १०९ । बाध ४७ । ऐन्द्रवायवमगृहीत ५७ । आ ४३ । ऽयं २० । वा १८ । प्रातर्युजा-१९ ।-युवं २५ । तं २६ । ये ४३ । विश्व-
४२ ।-दुपयामगृहीतो २२ । मूर्धानं ३५ । मधु-३० ।-रिन्द्राग्नी २० । ओमासो २० । मरुत्वन्त २६ ।-मिन्द्रं २९ । महान्
२९ । महान् १९ । महान् २६ । कदा ७७ । वाम- २४ ।- मर्दयन्ति- २३ ।-हिरण्यपाणिꣳ १४ । सुशर्मा १२ ।
बृहस्पति-१५ ।- हरि-२६ ।- राम २३ । अग्निश्चिन्- २१ ।- तरणि- २० । -राध्वांयस्वे-९ ।-यु -१९ । -ज्योतिष्मता ।
३६ । प्रयासाय २४ । चित्रा-१८ ।- मातिष्ठ- २६ ।- अग्र- २३ ।-मसावि २७ । - सवस्य २६ । महान् २६ । सजोषा
१० । उ- ११८ ।- दातो-१४८ ।- हं १५६ ।-यः १६४ । षट्चत्वारिꣳशत् ॥ १८१० ॥]
[इति प्रथमकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

पुनराधानम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥] अग्निऋषिः ।

पुनराधानविधानम् ॥

देवासुराः संयत्ता आसन्, ते देवा विजयमुपयन्तोऽग्नौ वामं वसु सं न्यदधतेदमु नो भविष्यति यदि
नो जेष्यन्तीति, तदग्निर्न्यकामयत तेनापाक्रामत् तद्देवा विजित्यावरुरुत्समाना अन्वायन्, तदस्य सहसा-
ऽदित्सन्त, सोऽरोदीद्यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वं, यदश्र्वशीयत, त (१) द्रजतꣳ हिरण्यमभवत्, तस्माद्र-
जतꣳ हिरण्यमदक्षिण्यमश्रुजꣳ हि, यो बर्हिषि ददाति, पुराऽस्य संवत्सराद्गृहे रुदन्ति, तस्माद्बर्हिषि न
देयꣳ सोऽग्निरब्रवीद्भाग्यसान्यथ व इदमिति पुनराधेयं ते केवलमित्यब्रुवन्नृध्नवत् खलु स इत्यब्रवीद्यो
मद्देवत्यमग्निमादधाता इति तं पूषाऽऽधत्त तेन (२) पूषाऽऽर्ध्नोत् तस्मात् पौष्णाः पशव उच्यन्ते, तं मनुराऽधत्त, तेन मनुरार्ध्नोत्, तस्मा-
त् त्वाष्ट्राः पशव उच्यन्ते, तं त्वष्टाऽऽधत्त, तेन त्वष्टाऽऽर्ध्नोत् तस्मात् त्वाष्ट्राः पशव उच्यन्ते, तं धाताऽऽधत्त तेन धाताऽऽर्ध्नोत् संवत्सरो वै धाता, तस्मात् संवत्सरं प्रजाः
न्मानव्यः प्रजा उच्यन्ते, तं धाताऽऽधत्त तेन धाताऽऽर्ध्नोत् संवत्सरो वै धाता, तस्मात् संवत्सरं प्रजाः
पशवोऽनु प्र जायन्ते य एवं पुनराधेयस्यर्धिं वेद (३) र्ध्नोत्येव योऽस्यैवं बन्धुतां वेद, बन्धुमान्
भवति भागधेयं वा अग्निराहित इच्छमानः प्रजां पशून् यजमानस्योप दोद्राव्योद्वास्य पुनरा दधीत,
भागधेयेनैवैनꣳ समर्धयत्यथो शान्तिरेवास्यैषा पुनर्वस्वोरा दधीतैतद्वै पुनराधेयस्य नक्षत्रं यत्पुनर्वसू
स्वायामेवैनं देवतायामाधाय, ब्रह्मवर्चसी भवति दर्भै (४) रा दधात्ययातयामत्वाय दर्भैरादधात्यद्भ्य
एवैनमोषधीभ्योऽवरुध्याऽऽधत्ते पञ्चकपालः पुरोडाशो भवति पञ्च वा ऋतवः ऋतुभ्य एवैनमवरुध्या-
ऽऽधत्ते ॥ (अर्धयत तत्, तेन, वेद, दर्भैः, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

* ४६।१२ (तै. स. १।३।१४।२८); × ४६।१४ (१।२।१४।१०)

याज्यानुवाक्यादिविधानम् ॥ अग्निऋषिः ।

परा वा एष यज्ञं पशून् वपति योऽग्निमुद्वासयते, पञ्चकपालः पुरोडाशो भवति पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः
पशवो यज्ञमेव पशूनव रुन्धे वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते, न वा एतस्य ब्राह्मणा ऋतायवः
पुराऽन्नमक्षन्, पङ्क्त्यो याज्यानुवाक्या भवन्ति पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्तः पुरुषो, देवानेव वीरं निरवदायाग्निं
पुनरा (१) धत्ते शताक्षरा भवन्ति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठति यद्वा
अग्निराहितो नर्ध्यते ज्यायो भागधेयं निकामयमानो यदाग्नेयꣳ सर्वं भवति सैवास्यर्द्धिः सं वा एतस्य
गृहे वाक् सृज्यते योऽग्निमुद्वासयते स वाचꣳ सꣳसृष्टां यजमान ईश्वरोऽनु परा भवितोर्विभक्तयो भवन्ति
वाचो विधृत्यै यजमानस्यापराभावाय (२) विभक्तिं करोति ब्रह्मैव तदकः पाꣳसु यजति यथा वामं
वसु विविदानो गूहति तादृगेव तदग्निं प्रति स्विष्टकृतं निराह यथा वामं वसु विविदानः प्रकाशं जिग-
मिषति तादृगेव तद्विभक्तिमुक्त्वा प्रयाजेन वषट्करोत्यायतनादेव नैति यजमानो वै पुरोडाशः पशवं
एते आहुती यदभितः पुरोडाशमेते आहुती (३) जुहोति यजमानमेवोभयतः पशुभिः परि गृह्णाति
कृतयजुः संभृतसम्भार इत्याहुर्न सम्भृत्याः सम्भारा न यजुः कर्तव्यमित्यथो खलु सम्भृत्या एव
सम्भाराः कर्तव्यं यजुर्यज्ञस्य समृद्ध्यै पुनर्निष्कृतो रथो दक्षिणा पुनरुत्स्यूतं वासः पुनरुत्सृष्टोऽनड्वान्
पुनराधेयस्य समृद्ध्यै सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्यग्निहोत्रं जुहोति यत्रयत्रैवास्य न्यक्तं तत (४)
एवैनमव रुन्धे वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते तस्य वरुण एवर्णयादाग्निवारुणमेका-
दशकपालमनु निर्वपेद्यं चैव हन्ति यश्चास्यर्णयात्तौ भागधेयेन प्रीणाति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानः ॥
(आ,-ऽपराभावाय, -ऽऽहुती, ततः, षट्त्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

पुनराधानमन्त्राः ॥ १ उपरिष्टाद्बृहती, २-४, ९-१० गायत्री, ५-६ अनुष्टुप्, ७-८ त्रिष्टुप् । अग्निऋषिः ।

भूमिर्भूम्ना द्यौर्वरिणाऽन्तरिक्षं महित्वा ।
उपस्थे ते देव्यदितेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायाऽऽदधे ॥
आऽयं गौः पृश्निरक्रमीदसनन्मातरं पुनः । पितरं च प्रयन्त्सुवः ॥
त्रिꣳशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय शिश्रिये । प्रत्यस्य वह द्युभिः ॥
अस्य प्राणादपानत्यन्तश्चरति रोचना । व्यख्यन्महिषः सुवः ॥
यत् त्वा (१) क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या ।
सुकल्पमग्ने तत् तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥
यत् ते मन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनु दध्वसे । आदित्या विश्वे तद् देवा वसवश्च समाभरन् ॥
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमं दधातु ।
बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् ॥
सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त (२) र्षयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेन ॥

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा । पुनर्नः पाहि विश्वतः ॥
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्निया विश्वतस्परि ॥
लेकः सलेकः सुलेकस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु केतः सकेतः सुकेतस्ते न (२) आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु विवस्वाꣳ अदितिर्देवजूतिस्ते न आदित्या आज्यं जुषाणा वियन्तु ॥ (सह, सप्त, च- अर्ध दश च) ॥ ३ ॥

पूर्वोक्तमन्त्राणां व्याख्यानम् । अग्निर्ऋषिः ।

भूमिर्भूम्ना द्यौर्वरिणेत्याहाऽऽशिषैवैनमा धत्ते सर्पा वै जीर्यन्तोऽमन्यन्त स एतं कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत् ततो वै ते जीर्णास्तनूरपाघ्नत सर्पराज्ञिया ऋग्भिर्गार्हपत्यमा दधाति पुनर्नवमेवैनमजरं कृत्वाऽऽधत्तेऽथो पूतमेव पृथिवीमन्नाद्यं नोपानमत् (१) स एतं मन्त्रमपश्यत् ततो वै तामन्नाद्यमुपानमत् यत्सर्पराज्ञिया ऋग्भिर्गार्हपत्यमादधात्यन्नाद्यस्यावरुध्या अथो अस्यामेवैनं प्रतिष्ठितमा धत्ते यत्त्वा क्रुद्धः परोवपेत्याहापह्नुत एवास्मै तत् पुनस्त्वोद्दीपयामसीत्याह समिन्ध एवैनं यत्ते मन्युपरोप्तस्येत्याह देवताभिरेवै (२) नꣳ सं भरति वि वा एतस्य यज्ञश्छिद्यते योऽग्निमुद्वासयते बृहस्पतिवत्यर्चोप तिष्ठते ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैव यज्ञꣳ सं दधाति विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमं दधात्वित्याह सन्तत्यै विश्वे देवा इह मादयन्तामित्याह सन्तत्यैव यज्ञं देवेभ्योऽनु दिशति सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा (३) इत्याह सप्तसप्त वै सप्तधाऽग्नेः प्रियास्तनुवस्ता एवाव रुन्धे पुनरूर्जा सह रय्येत्यभितः पुरोडाशमाहुती जुहोति यजमानमेवोर्जा च रय्या चोभयतः परि गृह्णात्यादित्या वा अस्माल्लोकादमुं लोकमायन्तेऽमुष्मिं-ल्लोके व्यतृष्यन्त इमं लोकं पुनरभ्यवेत्याग्निमाधायैतान् (४) होमानजुहवुस्त आर्ध्नुवन् ते सुवर्गं लोकमायन् यः परांचीनं पुनराधेयादग्निमादधीत स एतान् होमाञ्जुहुयाद्यामेवाऽऽदित्या ऋद्धिमार्ध्नुवन् तामेवर्ध्नोति ॥ (एन-, मेव, जिह्वा, एतान्, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

गार्हपत्योपस्थानम् । १-३, ७-१२ गायत्री, ४ जगती, ५ त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥
अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या (१) उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥

अग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत्पोषꣳ रयिं (२) मयि ॥
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाꣳ इहाऽऽवह । उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतीꣳष्यर्चयः ॥
आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे (३) देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि तनूपा अग्नेऽसि तनुवं मे पाह्यग्ने यन्मे तनुवा ऊनं तन्म आ पृण चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीयेन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तः समिधीमहि वयस्वन्तो वयस्कृतं यशस्वन्तो यशस्कृतꣳ सुवीरासो अदाभ्यम् । अग्ने सपत्नदम्भनं वर्षिष्ठे अधि नाके ॥
सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसा (४) ऽगथाः समृषीणाꣳ स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना ।
त्वमग्ने सूर्यवर्चा असि सं मामायुषा वर्चसा प्रजया सृज ॥
(आहुवध्यै, रयिं, मे, वर्चसा, सप्तदश च) ॥ ५ ॥

गार्हपत्यस्य पुनराधानोत्तरकालीनोपस्थानम् । १, ५-७, १२-१३ गायत्री, ९-१० द्विपदा विराट्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

सं पश्यामि प्रजा अहमिडप्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥
अम्भः स्थाम्भो वो भक्षीय महः स्थ महो वो भक्षीय सहः स्थ सहो वो भक्षीयोर्जः स्थोर्जं वो भक्षीय रेवती रमध्वमस्मिँल्लोकेऽस्मिन् गोष्ठेऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् योनाविहैव स्तेतो माऽप गात बह्वीर्मे भूयास्त (१) सꣳहितासि विश्वरूपीरा मोर्जा विशाऽऽ गौपत्येनाऽऽ रायस्पोषेण सहस्रपोषं वः पुष्यासं मयि वो रायः श्रयन्ताम् ॥
उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानꣳ स्वे दमे ॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥
अग्ने (२) त्वं नो अन्तमः । उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः । सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥
वसुरग्निर्वसुश्रवाः । अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥
ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण मा पश्यतेडाः स्थ मधुकृतः स्योना माऽऽ विशतेरा मदः । सहस्रपोषं वः पुष्यासं (३) मयि वो रायः श्रयन्ताम् ॥
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजम् ॥
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥
परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रꣳ सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं (४) दिवेदिवे भेत्तारं भङ्गुरावतः ॥
अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः शतꣳ हिमास्तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीं तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीम् ॥
(भूयास्त, स्वस्तयेऽग्ने, पुष्यासं, धृषद्वर्ण-, मेकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

पूर्वानुवाकोक्तमन्त्राणां व्याख्यानम् ।

अयज्ञो वा एष योऽसामोपप्रयन्तो अध्वरमित्याह स्तोममेवास्मै युनक्त्युपेत्याह प्रजा वै पशव उपेमं लोकं प्रजामेव पशूनिमं लोकमुपैत्यस्य प्रत्नामनु द्युतमित्याह सुवर्गो वै लोकः प्रत्नः सुवर्गमेव लोकꣳ समारोहत्यग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्याह मूर्धानमे (१) वैनꣳ समानानां करोत्यथो देवलोकादेव मनुष्यलोके प्रति तिष्ठत्ययमिह प्रथमो धायि धातृभिरित्याह मुख्यमेवैनं करोत्युभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या इत्याहौजो बलमेवाव रुन्धेऽयं ते योनिर्ऋत्विय इत्याह पशवो वै रयिः पशूनेवाव रुन्धे षड्भिरुप तिष्ठते षड्वा (२) ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठति षड्भिरुत्तराभिरुप तिष्ठते द्वादश सं पद्यन्ते द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रति तिष्ठति यथा वै पुरुषोऽश्वो गौर्जीर्यत्येवमग्निराहितो जीर्यति संवत्सरस्य परस्तादाग्निपावमानीभिरुप तिष्ठते पुनर्नवमेवैनमजरं करोत्यथो पुनात्येवोप तिष्ठते योग एवास्यैष उप तिष्ठते (३) दम एवास्यैष उप तिष्ठते याच्ञैवास्यैषोप तिष्ठते यथा पापीयाञ्छ्रेयस आहृत्य नमस्यति तादृगेव तदायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहीत्याहाऽऽयुर्दा ह्येष वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहीत्याह वर्चोदा ह्येष तनूपा अग्नेऽसि तनुवं मे पाहीत्याह (४) तनूपा ह्येषोऽग्ने यन्मे तनुवा ऊनं तन्म आ पृणेत्याह यन्मे प्रजायै पशूनामूनं तन्म आ पूरयेति वावैतदाह चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीयेत्याह रात्रिर्वै चित्रावसुरव्युष्ट्यै वा एतस्यै पुरा ब्राह्मणा अभैषुर्व्युष्टिमेवाव रुन्ध इन्धानास्त्वा शतꣳ (५) हिमा इत्याह शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतया ह स्म वै देवा असुराणाꣳ शततर्हाꣳस्तृꣳहन्ति यदेतया समिधमादधाति वज्रमेवैतच्छतघ्नीं यजमानो भ्रातृव्याय प्र हरति स्तृत्या अच्छम्बट्कारꣳ सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसाऽगथा इत्याहैतत्त्वमसीदमहं (६) भूयासमिति वावैतदाह त्वमग्ने सूर्यवर्चा असीत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते ॥ (मूर्धानं, वै, तिष्ठत, आह, शत-, मह, चैकादश च) ॥ ७ ॥

षष्ठानुवाकोक्तमन्त्राणां व्याख्यानम् । अग्निर्ऋषिः ।

सं पश्यामि प्रजा अहमित्याह यावन्त एव ग्राम्याः पशवस्तानेवाव रुन्धेऽम्भः स्थाम्भो वो भक्षीये-त्याहाम्भो ह्येता महः स्थ महो वो भक्षीयेत्याह महो ह्येताः सहः स्थ सहो वो भक्षीयेत्याह सहो ह्येता

ऊर्जः स्थोर्जं वो भक्षीयेत्या (१) होर्जो ह्येता रेवती रमध्वमित्याह पशवो वै रेवतीः पशूनेवाऽऽत्मन् रमयत इहैव स्तेतो माऽप गातेत्याह ध्रुवा एवैना अनपगाः कुरुत इष्टकचिद्वा अन्योऽग्निः पशुचिदन्यः सꣳहितासि विश्वरूपीरिति वत्समभि मृशत्युपैवैनं धत्ते पशुचितमेनं कुरुते प्र (२) वा एषोऽस्माल्लोकाच्च्यवते य आहवनीयमुप तिष्ठते गार्हपत्यमुप तिष्ठतेऽस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठत्यथो गार्हपत्यायैव नि ह्नुते गायत्रीभिरुप तिष्ठते तेजो वै गायत्री तेज एवाऽऽत्मन् धत्तेऽथो यदेतं तृचमन्वाह सन्तत्यै गार्हपत्यं वा अनु द्विपादो वीराः प्रजायन्ते य एवं विद्वान् द्विपदाभिर्गार्हपत्यमुप तिष्ठत (३) आऽस्य वीरो जायत ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यतेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते तत्सवितुर्वरेण्यमित्याह प्रसूत्यै सोमानꣳ स्वरणमित्याह सोमपीथमेवाव रुन्धे कृणुहि ब्रह्मणस्पत इत्याह ब्रह्मवर्चसमेवाव रुन्धे कदा चन स्तरीरसीत्याह न स्तरीꣳ रात्रिं वसति (४) य एवं विद्वानग्निमुप तिष्ठते परि त्वाऽग्ने पुरं वयमित्याह परिधिमेवैतं परि दधात्यस्कन्दायाग्ने गृहपत इत्याह यथायजुरेवैतच्छतꣳ हिमा इत्याह शतं त्वा हेमन्तानिन्धिषीयेति वावैतदाह पुत्रस्य नाम गृह्णात्यन्नादमेवैनं करोति तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मती (५) मिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रोऽजातः स्यात्तेजस्व्येवास्य ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जायते तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रो जातः स्यात् तेज एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ॥
(ऊर्जो वो भक्षीयेति, प्र, गार्हपत्यमुप तिष्ठते, वसति, ज्योतिष्मती, मेकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

पूर्वोक्तोपस्थानस्याग्निहोत्राङ्गता । अग्निर्ऋषिः ।

अग्निहोत्रं जुहोति यदेव किं च यजमानस्य स्वं तस्यैव तद्रेतः सिञ्चति प्रजनने प्रजननꣳ हि वा अग्निरथौषधीरन्तगता दहति तास्ततो भूयसीः प्रजायन्ते यत्सायं जुहोति रेत एव तत्सिञ्चति प्रैव प्रातस्तनेन जनयति तद्रेतः सिक्तं न त्वष्ट्राऽविकृतं प्रजायते यावच्छो वै रेतसः सिक्तस्य (१) त्वष्टा रूपाणि विकरोति तावच्छो वै तत्प्रजायत एष वै दैव्यस्त्वष्टा यो यजते बह्वीभिरुप तिष्ठते रेतस एव सिक्तस्य बहुशो रूपाणि वि करोति स प्रैव जायते श्वःश्वो भूयान् भवति य एवं विद्वानग्निमुप तिष्ठते ऽहर्देवानामासीद्रात्रिरसुराणां तेऽसुरा यद्देवानां वित्तं वेद्यमासीत्तेन सह (२) रात्रिं प्राविशन् ते देवा हीना अमन्यन्त तेऽपश्यन्नाग्नेयी रात्रिराग्नेयाः पशव इममेवाग्निꣳ स्तवाम स नः स्तुतः पशून् पुनर्दास्यतीति तेऽग्निमस्तुवन्त्स एभ्यः स्तुतो रात्रिया अध्यहरभि पशून्निरार्जत् ते देवाः पशून् वित्त्वा कामाꣳ अकुर्वत य एवं विद्वानग्निमुप तिष्ठते पशुमान् भवत्या (३) दित्यो वा अस्माल्लोकादमुं लोकमैत् सोऽमुं लोकं गत्वा पुनरिमं लोकमभ्यध्यायत् स इमं लोकमागत्य मृत्योरबिभेन्मृत्युसंयुत इव ह्ययं लोकः सोऽमन्यतेममेवाग्निꣳ स्तवानि स मा स्तुतः सुवर्गं लोकं गमयिष्यतीति सोऽग्निमस्तौत् स एनꣳ स्तुतः सुवर्गं लोकमगमयद् (४) य एवं विद्वानग्निमुप तिष्ठते सुवर्गमेव लोकमेति सर्वमायुरेत्यभि वा एषोऽग्नी आ रोहति य एनावुप तिष्ठते यथा खलु वै श्रेयानभ्यारूढः कामयते तथा करोति नक्तमुप तिष्ठते न प्रातः सꣳ हि नक्तं व्रतानि सृज्यन्ते सह श्रेयाꣳश्च पापीयाꣳश्चाऽऽसाते ज्योतिर्वा अग्निस्तमो रात्रिर्य (५) न्नक्तमुप तिष्ठते ज्योतिषैव तमस्तरत्युपस्थेयोऽग्नी३र्नोपस्थेया३ इत्याहुर्मनुष्यायेन्न्वै योऽहरहराहृत्याथैनं याचति स

इन्द्वे तमुपाचच्छ्य को देवानहरहर्याचिष्यतीति तस्मान्नोपस्थेयो ऽथो खल्वाहुराशिषे वै कं यजमानो यजत इत्येषा खलु वा (६) आहिताग्नेराशीर्यदग्निमुप तिष्ठते तस्मादुपस्थेयः प्रजापतिः पशूनसृजत ते सृष्टा अहोरात्रे प्राविशन् ताञ्छन्दोभिरन्वविन्दद्यच्छन्दोभिरुप तिष्ठते स्वमेव तदन्विच्छति न तत्र जाम्यस्तीत्याहुर्योऽहरहरुप तिष्ठत इति यो वा अग्निं प्रत्यङ्ङुप तिष्ठते प्रत्येनमोषति यः पराङ् विष्वङ् प्रजया पशुभि (७) रेति कवातिर्यङ्ङिवोपतिष्ठेत नैनं प्रत्योषति न विष्वङ् प्रजया पशुभिरेति (सिकत्यं, सह, भवति, यो, व,-खलु वै, पशुभि-; रष्टादश च) ॥ ९ ॥

प्रवत्स्यतो यजमानस्याग्नेरुपस्थानमन्त्राः, आचमनम्, कपालानुमन्त्रणादि च । १, २, ६, ९ त्रिष्टुप्; ३ विपरीता बृहती, ४ शङ्कुमत्यनुष्टुप्; ५, ७, ११ अनुष्टुप्; १२ विराट्स्थाना; ८ द्विपदा । प्रजापतिर्ऋषिः ।)

मम नाम प्रथमं जातवेदः पिता माता च दधतुर्यदग्रे ।
त्वं बिभृहि पुनरा मदैतोस्तवाहं नाम बिभराण्यग्ने ॥
मम नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानौ ये चरावः ।
आयुषे त्वं जीवसे वयं यथायथं वि परि दधावहै पुनस्ते ॥
नमोऽग्नयेऽप्रतिविद्धाय नमोऽनाधृष्टाय नमः सम्राजे ।
अषाढो (१) ऽग्निर्बृहद्वया विश्वजित्सहन्त्यः श्रेष्ठो गन्धर्वः ॥
त्वत्पितारो अग्ने देवास्त्वामाहुतयस्त्वद्विवाचनाः ।
सं मामायुषा सं गौपत्येन सुहिते मा धाः ॥
अयमग्निः श्रेष्ठतमोऽयं भगवत्तमोऽयꣳ सहस्रसातमः । अस्मा अस्तु सुवीर्यम् ॥
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमं दधातु ।
या इष्टा उषसो निम्रुचश्च ताः सं दधामि हविषा घृतेन ॥
पयस्वतीरोषधयः (२) पयस्वद्वीरुधां पयः । अपां पयसो यत्पयस्तेन मामिन्द्र सꣳसृज ॥
अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ॥
अग्निꣳ होतारमिह तꣳ हुवे देवान् यज्ञियानिह यान् हवामहे ॥
आ यन्तु देवाः सुमनस्यमाना वियन्तु देवा हविषो मे अस्य ॥
कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तु यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति (३) वेधसः ।
पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चताम् ॥
अभिन्नो घर्मो जीरदानुर्यत आत्तस्तदगन् पुनः ।
इध्मो वेदिः परिधयश्च सर्वे यज्ञस्याऽऽयुरनु सं चरन्ति ॥
त्रयस्त्रिꣳशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञꣳ स्वधया ददन्ते तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दधामि स्वाहा घर्मो देवाꣳ अप्येतु ॥ (अषाढ, ओषधय, उपचिन्वन्ति, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

काम्या याज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-२, १३, १५, १७, २० गायत्री; ३, ७ जगती; ४-६, ८-१०, १२, १४, १६, १८-१९ त्रिष्टुप्; ११ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

वैश्वानरो न ऊत्याऽऽ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥
वैश्वानरस्य दꣳसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स (१) रिषः पातु नक्तम् ॥
जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशुं न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाꣳ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरꣳ सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनꣳ सहस्रिणं वैश्वानर (२) वाजमग्ने तवोतिभिः ॥
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥
अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेनाꣳसि शिश्रथः कृतानि ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य (३) व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ॥
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूꣳषि तारिषत् ॥
आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचाꣳसि ॥
अग्निर्मूर्धा भुवः (४।४।४)
मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न (४) उप गन्तन ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु । अदितिः पात्वꣳहसः ॥
महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माण (५) मदितिꣳ सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥
इमाꣳसु नावमाऽरुहꣳ शतारित्राꣳ शतस्फ्याम् । अच्छिद्रां पारयिष्णुम् ॥ (दिवा स, इमाꣳसु नावमाऽरुहꣳ शतारित्राꣳ शतस्फ्याम् । अच्छिद्रां पारयिष्णुम्) ॥ ११ ॥

सहस्रिणं वैश्वानरा--, ऽऽ दिव्या, तू नो, ऽनेहसꣳ सुशर्माण, -मेकाद्शꣳ शतिश्च) ॥ ११ ॥ सहस्रिणं वैश्वानरा--, ऽऽ दिव्या, तू नो, ऽनेहसꣳ सुशर्माणं, -मेकाद्शꣳ शतिश्च) ॥ ११ ॥

[देवासुराः २२४। परा २३६। भूमि--१६२। भूमि--२२४।--हत्वघ्नन्तः २१७। संवत्सरा--२२७। स्वर्गः २१९। संपस्यामीः २०५। त्वांह्यग्निदोत्रं २६६। मम नाम १९५। वैश्वानर २०९। (पञ्चदश ॥ ११ ॥ २०२०)]

[॥ इति प्रथमकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

याजमानकाण्डम् ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥] प्रजापतिर्ऋषिः ।
आज्यग्रहणानुमन्त्रणम् ॥ अनुष्टुप् ।

सं त्वा सिञ्चामि यजुषा प्रजामायुर्धनं च । बृहस्पतिप्रसूतो यजमान इह मा रिषत् ॥

आज्यमसि सत्यमसि सत्यस्याध्यक्षमसि हविरसि वैश्वानरं वैश्वदेवमुत्पूतशुष्मꣳ सत्यौजाः सहोऽसि सहमानमसि सहस्वारातीः सहस्वारातीयतः सहस्व पृतनाः सहस्व पृतन्यतः । सहस्रवीर्यमसि तन्मा जिन्वाऽऽज्यस्याऽऽज्यमसि सत्यस्य सत्यमसि सत्यायु (१) रसि सत्यशुष्ममसि सत्येन त्वाऽभि धारयामि तस्य ते भक्षीय पञ्चानां त्वा वातानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि पञ्चानां त्वर्तूनां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि पञ्चानां त्वा दिशां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि ब्रह्मणस्त्वा तेजसे यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि क्षत्रस्य त्वौजसे यन्त्राय (२) धर्त्राय गृह्णामि विशे त्वा यन्त्राय धर्त्राय गृह्णामि सुवीर्याय त्वा गृह्णामि सुप्रजास्त्वाय त्वा गृह्णामि रायस्पोषाय त्वा गृह्णामि ब्रह्मवर्चसाय त्वा गृह्णामि भूरस्माकꣳ हविर्देवानामाशिषो यजमानस्य देवानां त्वा देवताभ्यो गृह्णामि कामाय त्वा गृह्णामि (सत्यायु, तेजसेयन्त्राय, त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ १ ॥

हविरासादनानुमन्त्रणम् ॥ ४-५ द्विपदा त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्; १० विपरीतिकमध्या ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवि - द्ग्रोऽस्युग्रोऽहꣳ सजातेषु भूयासमुग्रश्चेत्ता वसुवि - दभिभूरस्यभिभूरहꣳ सजातेषु भूयासमभिभूश्चेत्ता वसुवि - द्युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायास्मै वोढवे जातवेदः ॥
इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते ॥

यन्मे अग्ने अस्य यज्ञस्य रिष्या (१) द्यद्वा स्कन्दादाज्यस्योत विष्णो ।
तेन हन्मि सपत्नं दुर्मरायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थे ।

भूर्भुवः सुव - रुच्छुष्मो अग्ने यजमानायैधि निशुष्मो अभिदासते । अग्ने देवेद्ध मन्विद्ध मन्द्रजिह्वा - मर्त्यस्य ते होतर्मूर्धन्ना जिघर्मि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाऽऽ विश वागस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी (२) वाचा मेन्द्रियेणाऽऽ विश वसन्तमृतूनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु ग्रीष्ममृतूनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु वर्षा ऋतूनां प्रीणामि ता मा प्रीताः प्रीणन्तु शरदमृतूनां प्रीणामि सा मा प्रीता प्रीणातु हेमन्तशिशिरावृतूनां प्रीणामि तौ मा प्रीतौ प्रीणीता - मग्नीषोमयोरहं देवयज्यया चक्षुष्मान् भूयास - मग्नेरहं देवयज्ययाऽन्नादो भूयासꣳ (३) दब्धिरस्यदब्धो भूयासममुं दभेय - मग्नीषोमयोरहं देवयज्यया वृत्रहा भूयास - मिन्द्राग्नियोरहं देवयज्ययेन्द्रियाव्यन्नादो भूयास - मिन्द्रस्याहं देवयज्ययेन्द्रियावी भूयासं महेन्द्रस्याहं देवयज्यया जेमानं महिमानं गमेय - मग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ (रिष्यात, सपत्नक्षयण्य,-न्नादो भूयास, त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥२॥

इडा भागानुमन्त्रणम् ॥ ५ त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः

अग्निर्मा दुरिष्टात् पातु सविताऽघशꣳसा - द्यो मेऽन्ति दूरेऽरातीयति तमेतेन जेषꣳ सुरूपवर्षवर्ण एहीमान् भद्रान् दुर्याꣳ अभ्येहि मामनुव्रता न्यु शीर्षाणि मृढ्वमिड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि रन्तिरसि रमतिरसि सूनर्यसि जुष्टे जुष्टिं तेऽशीयोपहूत उपहवं (१) तेऽशीय सा मे सत्याशीरस्य यज्ञस्य भूयादरेडता मनसा तच्छकेयं यज्ञो दिवꣳ रोहतु यज्ञो दिवं गच्छतु यो देवयानः पन्थास्तेन यज्ञो देवाꣳ अप्येत्वस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् राय उत यज्ञाः सचन्तामस्मासु सन्त्वाशिषः सा नः प्रिया सुप्रतूर्तिर्मघोनी जुष्टिरसि जुषस्व नो जुष्टा नो (२) ऽसि जुष्टिं ते गमेयं मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमं दधातु । बृहस्पतिस्तनुतामिमं नो विश्वे देवा इह मादयन्ताम् ॥

अब्धन् पिन्वस्व ददतो मे मा क्षायि कुर्वतो मे मोप दसत् प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वान् प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानव्यानौ मे पाह्यक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वा (३) मा मे क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिन् लोके ॥ (उपहवं, जुष्टा न-स्त्वा, षट् च) ॥ ३ ॥

अनुयाजानामनुमन्त्रणम् ॥ १२-१३ अनुष्टुप्; १४ पुर उष्णिक्; १८ त्रिष्टुप् । प्रजापतिर्ऋषिः ।

बर्हिषोऽहं देवयज्यया प्रजावान् भूयासं नराशꣳसस्याहं देवयज्यया पशुमान् भूयास - मग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेय - मग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेषꣳ सोमस्याहमुज्जितिमनूज्जेष - मग्नेरहमुज्जितिमनूज्जेष - मग्नीषोमयोरहमुज्जितिमनूज्जेष - मिन्द्राग्नियोरहमुज्जितिमनूज्जेष - मिन्द्रस्याहमु (१) ज्जितिमनूज्जेषं महेन्द्रस्याहमुज्जितिमनूज्जेष - मग्नेः स्विष्ट-

कृतोऽहमुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अथा सपत्नाꣳ इन्द्रो मे निग्राभेणाधराꣳ अकः ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।

अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥

एमा अग्मन्नाशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो (२) वनामहे धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥

रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्वेतशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयतु वि ते मुञ्चामि रशना वि रश्मीन् वि योक्त्रा यानि परिचर्तनानि धत्तादस्मासु द्रविणं यच्च भद्रं प्र णो ब्रूताद्भागधान् देवतासु ॥

विष्णोः शंयोरहं देवयज्यया यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयꣳ सोमस्याहं देवयज्यया (३) सुरेता रेतो धिषीय त्वष्टुरहं देवयज्यया पशूनाꣳ रूपं पुषेयं देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्यज्ञस्य मिथुनं तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्र भूयासं वेदोऽसि वित्तिरसि विदेय कर्मासि करुणमसि क्रियासꣳ सनिरसि सनितासि सनेयं घृतवन्तं कुलायिनꣳ रायस्पोषꣳ सहस्रिणं वेदो ददातु वाजिनम् (इन्द्रवन्तः,-सिन्द्रवन्त, सोमस्याहं देवयज्यया, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

ध्रुवाप्यायनादि ॥ १ विराट्स्थाना । प्रजापतिर्ऋषिः ।

आ प्यायतां ध्रुवा घृतेन यज्ञं यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः ।

सूर्याया ऊधोऽदित्या उपस्थ उरुधारा पृथिवी यज्ञे अस्मिन् ॥

प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिꣳस्त्वा दधामि सह यजमानेन सदसि सन्मे भूयाः सर्वमसि सर्वं मे भूयाः पूर्णमसि पूर्णं मे भूया अक्षितमसि मा मे क्षेष्ठाः प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तां दक्षिणायां (१) दिशि मासाः पितरो मार्जयन्तां प्रतीच्यां दिशि गृहाः पशवो मार्जयन्तामुदीच्यां दिश्याप ओषधयो वनस्पतयो मार्जयन्तामूर्ध्वायां दिशि यज्ञः संवत्सरो यज्ञपतिर्मार्जयन्तां विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा गायत्रेण छन्दसा पृथिवीमनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोऽस्यभिशस्तिहा त्रैष्टुभेन छन्दसाऽन्तरिक्षमनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः (२) क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतेन छन्दसा दिवमनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभेन छन्दसा दिशोऽनु वि क्रमे निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥ (दक्षिणायां, द्विष्मो विष्णो,-रेकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

सूर्योपस्थानादि ॥ ९-१० गायत्री; १४ अतिजगती; १५ त्रिष्टुप् ।

अगन्म सुवः सुवरगन्म संदृशस्ते मा छित्सि यत्ते तपस्तस्मै ते माऽऽवृक्षि सुभूरसि श्रेष्ठो रश्मीनामायुर्धा अस्यायुर्मे धेहि वर्चोधा असि वर्चो मयि धेहीदमहममुं भ्रातृव्यमाभ्यो दिग्भ्योऽस्यै दिवोऽस्मादन्तरिक्षादस्यै पृथिव्या अस्मादन्नाद्यान्निर्भजामि निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥ (१)

सं ज्योतिषाऽभूवमैन्द्रीमावृतमन्वावर्ते समहं प्रजया सं मया प्रजा समहꣳ रायस्पोषेण सं मया रायस्पोषः समिद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासं वसुमान् यज्ञो वसीयान् भूयासमग्न आयूꣳषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । (२) दधत् पोषꣳ रयिं मयि ।

अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः शतꣳ हिमास्तामाशिषमा शासे तन्तवे ज्योतिष्मतीं तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीं कस्त्वा युनक्ति स त्वा वि मुञ्चत्वग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि यज्ञो बभूव स आ (१) बभूव स प्र जज्ञे स वावृधे ।

स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्माꣳ अधिपतीन् करोतु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

गोमाꣳ अग्नेऽविमाꣳ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।

इडावाꣳ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥

(द्विष्मः । सुवीर्यꣳ, स आ, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

देवतापरिग्रहादिविधिः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

यथा वै समृतसोमा एवं वा एते समृतयज्ञा यद्दर्शपूर्णमासौ कस्य वाह देवा यज्ञमा गच्छन्ति कस्य वा न बहूनां यजमानानां यो वै देवताः पूर्वः परिगृह्णाति स एनाः श्वो भूते यजत एतद्वै देवानामायतनं यदाहवनीयोऽन्तराग्नी पशूनां गार्हपत्यो मनुष्याणामन्वाहार्यपचनः पितॄणामग्निं गृह्णाति स्व एवायतने देवताः परि (१) गृह्णाति ताः श्वो भूते यजते व्रतेन वै मेध्योऽग्निर्व्रतपतिर्ब्राह्मणो व्रतभृद्व्रतमुपैष्यन् ब्रूयादग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामीत्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिस्तस्मा एव प्रतिप्रोच्य व्रतमालभते बर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायामेतद्ध्येतयोरायतनमुपस्तीर्यः पूर्वश्चाग्निरपरश्चेत्याहुर्मनुष्या (२) इन्न्वा उपस्तीर्णमिच्छन्ति किमु देवा येषां नवावसानमुपास्मिञ्छ्वो यक्ष्यमाणे देवता वसन्ति य एवं विद्वानग्निमुपस्तृणाति यजमानेन ग्राम्याश्च पशवोऽवरुध्या आरण्याश्चेत्याहुर्यद्ग्राम्यानुपवसति तेन ग्राम्यानव रुन्धे यदारण्यस्याश्नाति तेनारण्यान्यदनाश्वानुपवसेत् पितृदेवत्यः स्यादारण्यस्याश्नातीन्द्रियं (३) वा आरण्यमिन्द्रियमेवाऽऽत्मन् धत्ते यदनाश्वानुपवसेत् क्षोधुकः स्याद्यदश्नीयाद्रुद्रोऽस्य पशूनभि मन्येतापोऽश्नाति तन्नेवाशितं नेवानशितं न क्षोधुको भवति नास्य रुद्रः पशूनभि मन्यते वज्रो वै यज्ञः क्षुत्खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्यो यदनाश्वानुपवसति वज्रेणैव साक्षात् (४) क्षुधं भ्रातृव्यꣳ हन्ति ॥ (परि, मनुष्या, इन्द्रियं, साक्षात्, त्रीणि च) ॥ ७ ॥

यज्ञायुधसम्भृतिः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

यो वै श्रद्धामनारभ्य यज्ञेन यजते नास्येष्टाय श्रद्दधतेऽपः प्र णयति श्रद्धा वा आपः श्रद्धामेवाऽऽरभ्य यज्ञेन यजत उभयेऽस्य देवमनुष्या इष्टाय श्रद्दधते तदाहुरति वा एता वर्त्रं नेदन्त्यति वाचं

मनो यावैता नाति नेदन्तीति मनसा प्र णयतीयं वै मनो (१) ऽनयैवैनाः प्र णयत्यस्कन्नहविर्भवति य एवं वेद यज्ञायुधानि सं भरति यज्ञो वै यज्ञायुधानि यज्ञमेव तत्सं भरति यदेकमेकꣳ संभरेत् पितृदेवत्यानि स्युर्यत्सह सर्वाणि मानुषाणि द्वेद्वे सं भरति याज्यानुवाक्ययोरेव रूपं करोत्यथो मिथुनमेव यो वै दश यज्ञायुधानि वेद मुखतोऽस्य यज्ञः कल्पते स्फ्यश्च (२) कपालानि चाग्निहोत्रहवणी च शूर्पं च कृष्णाजिनं च शम्या चोलूखलं च मुसलं च दृषच्चोपला चैतानि वै दश यज्ञायुधानि य एवं वेद मुखतोऽस्य यज्ञः कल्पते यो वै देवेभ्यः प्रतिप्रोच्य यज्ञेन यजते जुषन्तेऽस्य देवा हव्यꣳ हविर्निरुप्यमाणमभि मन्त्रयेताग्निꣳ होतारमिह तꣳ हुव इति (३) देवेभ्य एव प्रतिप्रोच्य यज्ञेन यजते जुषन्तेऽस्य देवा हव्यमेष वै यज्ञस्य ग्रहो गृहीत्वैव यज्ञेन यजते तदुदित्वा वाचं यच्छति यज्ञस्य धृत्या अथो मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञमतनुत मनसैव तद्यज्ञं तनुते रक्षसामनन्ववचाराय यो वै यज्ञं योगे आगते युनक्ति युङ्क्ते युञ्जानेषु कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्त्वि (४) त्याह प्रजापतिर्वै कः प्रजापतिनैवैनं युनक्ति युङ्क्ते युञ्जानेषु ॥ (वै मनः, स्फ्य, इति युनक्त्वि,-कादश च) ॥ ८ ॥

इष्टकाम्नानसम्पत्तिः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

प्रजापतिर्यज्ञानसृजताग्निहोत्रं चाग्निष्टोमं च पौर्णमासीं चोक्थ्यं चामावास्यां चातिरात्रं च तानुदमिमीत यावदग्निहोत्रमासीत् तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासी तावानुक्थ्यो यावत्यमावास्या तावानतिरात्रो य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति यावदग्निष्टोमेनोपाप्नोति तावदुपाऽऽप्नोति य एवं विद्वान् पौर्णमासीं यजते यावदुक्थ्येनोपाप्नोति (१) तावदुपाऽऽप्नोति य एवं विद्वानमावास्यां यजते यावदतिरात्रेणोपाप्नोति तावदुपाऽऽप्नोति परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्र आसीत् तेन स परमां काष्ठामगच्छत् तेन प्रजापतिं निरवासाययत् तेन प्रजापतिः परमां काष्ठामगच्छत् तेनेन्द्रं निरवासाययत् तेनेन्द्रः परमां काष्ठामगच्छत् तेनाग्नीषोमौ निरवासाययत् तेनाग्नीषोमौ परमां काष्ठामगच्छतां य (२) एवं विद्वान् दर्शपूर्णमासौ यजते परमामेव काष्ठां गच्छति यो वै प्रजातेन यज्ञेन यजते प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते द्वादश मासाः संवत्सरो द्वादश द्वन्द्वानि दर्शपूर्णमासयोस्तानि सम्पाद्यानीत्याहुर्वत्सं चोपावसृजत्युखां चाधि श्रयत्यव च हन्ति दृषदौ च समाहन्त्यधि च वपते कपालानि चोप दधाति पुरोडाशं (३) चाधिश्रयत्याज्यं च स्तम्बयजुश्च हरत्यभि च गृह्णाति वेदिं च परि गृह्णाति पत्नीं च सं नह्यति प्रोक्षणीश्चाऽऽसादयत्याज्यं चैतानि वै द्वादश द्वन्द्वानि दर्शपूर्णमासयोस्तानि य एवꣳ सम्पाद्य यजते प्रजातेनैव यज्ञेन यजते प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते ॥ (उक्थ्येनोपाप्नोति,-अगच्छतां य, पुरोडाशं, चत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

इतिः ॥ लवन ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासमित्याह ध्रुवानेवैनान् कुरुत उग्रोऽस्युग्रोऽहꣳ सजातेषु भूयासमित्याहाप्रतिवादिन एवैनान् कुरुतेऽभिभूरस्यभिभूरहꣳ सजातेषु भूयासमित्याह य एवैनं प्रत्युत्पिपीते तमुपास्यते युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेत्याहैष वा अग्नेर्योगस्तेन (१) एवैनं युनक्ति यज्ञस्य वै समृद्धेन देवाः सुवर्गं लोकमायन् यज्ञस्य व्यृद्धेनासुरान् पराभावयन् यन्मे अग्ने अस्य यज्ञस्य रिष्यादित्याह

यज्ञस्यैव तत्समृद्धेन यजमानः सुवर्गं लोकमेति यज्ञस्य व्यृद्धेन भ्रातृव्यान् परा भावयत्यग्निहोत्रमेताभिर्व्याहृतिभिरुप सादयेद्यज्ञमुखं वा अग्निहोत्रं ब्रह्मैता व्याहृतयो यज्ञमुख एव ब्रह्म (२) कुरुते संवत्सरे पर्यागत एताभिरेवोप सादयेद्ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परि गृह्णाति दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यान्यालभमान एताभिर्व्याहृतीभिर्हवीꣳष्यासादयेद्यज्ञमुखं वै दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि ब्रह्मैता व्याहृतयो यज्ञमुख एव ब्रह्म कुरुते संवत्सरे पर्यागत एताभिरेवाऽऽसादयेद्ब्रह्मणैवोभयतः संवत्सरं परि गृह्णाति यद्वै यज्ञस्य साम्ना क्रियते राष्ट्रं (३) यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छति यदृचा विशं यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छत्यथ ब्राह्मणोऽनाशीर्केण यज्ञेन यजते सामिधेनीरनुवक्ष्यन्नेता व्याहृतीः पुरस्ताद्दध्याद्ब्रह्मैव प्रतिपदं कुरुते तथा ब्राह्मणः साशीर्केण यज्ञेन यजते यं कामयेत यजमानं भ्रातृव्यमस्य यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तस्यैता व्याहृतीः पुरोऽनुवाक्यायां दध्याद्भ्रातृव्यदेवत्या वै पुरोऽनुवाक्या भ्रातृव्यमेवास्य यज्ञस्या (४) ऽऽशीर्गच्छति यान् कामयेत यजमानान्त्समावत्येनान् यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदिति तेषामेता व्याहृतीः पुरोऽनुवाक्याया अर्धर्च एकां दध्याद्याज्यायै पुरस्तादेकां याज्याया अर्धर्च एकां तथैनान्त्समावती यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छति यथा वै पर्जन्यः सुवृष्टं वर्षत्येवं यज्ञो यजमानाय वर्षति स्थलयोदकं परिगृह्णन्त्याशिषा यज्ञं यजमानः परि गृह्णाति मनोऽसि प्राजापत्यं (५) मनसा मा भूतेनाऽऽविशेत्याह मनो वै प्राजापत्यं प्राजापत्यो यज्ञो मन एव यज्ञमात्मन् धत्ते वागस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी वाचा मेन्द्रियेणाऽऽविशेत्याहैन्द्री वै वाग्वाचमेवैन्द्रीमात्मन् धत्ते ॥ (तेन,-व ब्रह्म, राष्ट्रं, यज्ञस्य, प्राजापत्य-, मष्टात्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

काश्रावणादिमन्त्रविधानम् ॥

यो वै सप्तदशं प्रजापतिं यज्ञमन्वायत्तं वेद प्रति यज्ञेन तिष्ठति न यज्ञाद्भ्रꣳशत आ श्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं यजेति द्व्यक्षरं ये यजामह इति पञ्चाक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कार एष वै सप्तदशः प्रजापतिर्यज्ञमन्वायत्तो य एवं वेद प्रति यज्ञेन तिष्ठति न यज्ञाद्भ्रꣳशते यो वै यज्ञस्य प्रायणं प्रतिष्ठा (१) मुदयनं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन यज्ञेन सꣳस्थां गच्छत्या श्रावयास्तु श्रौषड्यज ये यजामहे वषट्कार एतद्वै यज्ञस्य प्रायणमेषा प्रतिष्ठैतदुदयनं य एवं वेद प्रतिष्ठितेनारिष्टेन यज्ञेन सꣳस्थां गच्छति यो वै सूनृतायै दोहं वेद दुह एवैनां यज्ञो वै सूनृताऽऽश्रावयेत्येवैनामह्वदस्तु (२) श्रौषडित्युपावास्राग्जन्युदनैषीद्यजेत्युदनैषीद्ये यजामह इत्युपासदद्वषट्कारेण दोग्ध्येष वै सूनृतायै दोहो य एवं वेद दुह एवैनां देवा वै सत्रमासत तेषां दिशोऽदस्यन्त एतामार्द्रां पङ्क्तिमपश्यन्ना श्रावयेति पुरोवातमजनयन्नस्तु श्रौषडित्यभ्रꣳ समप्लावयन् यजेति विद्युतं (३) मजनयन् ये यजामह इति प्रावर्षयन्नभ्यस्तनयन् वषट्कारेण ततो वै तेभ्यो दिशः प्राप्यायन्त य एवं वेद प्रास्मै दिशः प्यायन्ते प्रजापतिं त्वो वेद प्रजापतिस्त्वं वेद यं प्रजापतिर्वेद स पुण्यो भवत्येष वै छन्दस्यः प्रजापतिरा श्रावयास्तु श्रौषड्यज ये यजामहे वषट्कारो य एवं वेद पुण्यो भवति वसन्त (४) मृतूनां प्रीणामीत्याहर्तवो वै प्रयाजा ऋतूनेव प्रीणाति तेऽस्मै प्रीता यथापूर्वं कल्पन्ते कल्पन्तेऽस्मा ऋतवो य एवं वेदाग्नीषोमयोरहं देवयज्यया चक्षुष्मान् भूयासमित्याहाग्नीषोमाभ्यां वै यज्ञश्चक्षुष्मान् ताभ्यामेव चक्षुरात्मन् धत्तेऽग्नेरहं देवयज्ययाऽन्नादो भूयास-

मित्याहाग्निर्वै देवानामन्नादस्तेनैवा (५) ऽन्नाद्यमात्मन् धत्ते दब्धिरस्यदब्धो भूयासममुं दभेयमित्याहै-
तया वै दब्ध्या देवा असुरानदभ्नुवन् तयैव भ्रातृव्यं दभ्नोत्यग्नीषोमयोरहं देवयज्ययां वृत्रहा भूयास-
मित्याहाग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहन् ताभ्यामेव भ्रातृव्यं स्तृणुत इन्द्राग्नियोरहं देवयज्ययेन्द्रियाव्य-
न्नादो भूयासमित्याहेन्द्रियाव्येवान्नादो भवतीन्द्रस्या (६) ऽहं देवयज्ययेन्द्रियावी भूयासमित्याहेन्द्रि-
याव्येव भवति महेन्द्रस्याहं देवयज्यया जेमानं महिमानं गमेयमित्याह जेमानमेव महिमानं गच्छ-
त्यग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयमित्याहायुरेवात्मन् धत्ते प्रति यज्ञेन तिष्ठति ॥
प्रतिष्ठा,-मंहुरस्तु, विष्णुं, वसन्त,-मेवे,-न्द्रस्या, ऽष्टात्रिंशच्च) ॥ ११ ॥

काम्यायाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १, ३, ७ गायत्री; २, ४, ९-११, १३-१४, १६-१९ त्रिष्टुप्; ५, ८, १२, १५ अनुष्टुप्; ६ बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु (१) क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥
आ यस्मिन्त्सप्त वासवास्तिष्ठन्ति स्वारुहो यथा ।
ऋषिर्ह दीर्घश्रुत्तम इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः ॥
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे गिरः ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥
गायन्ति त्वा गायत्रिणो (२) ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रतवुद्वꣳशमिव येमिरे ॥
अꣳहोमुचे प्र भरेमा मनीषामोषिष्ठदाव्ने सुमतिं गृणानाः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अꣳहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥
प्र सम्राजं प्रथममध्वराणा (३) मꣳहोमुचं वृषभं यज्ञियानाम् ।
अपां नपातमश्विना हयन्तमस्मिन्नर इन्द्रियं धत्तमोजः ॥
६ (तै. सं.)

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माꣳ अभिदासति ॥
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत (४) आ जगामा परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥
वि शत्रून् वि मृधो नुद वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र भामितोऽमित्रस्याभिदासतः ॥
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥
मा ते अस्याꣳ (५) सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥
वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥
(वृत्रहत्येऽनु, गायत्रिणो, ऽध्वराणां, परावतो, ऽस्या,-मष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ १२ ॥
[सं त्वा १३३ । ध्रुवो-१८६ । -स्त्वऽग्नि-१५६ । बर्हिषोऽहं १२४ । आप्यायतां- १२९ । -मर्गन्म १८५ । यथा वै २०३ । यो २११ । प्रजापति-१९० । -ध्रुवोऽसि २८६ । यो वै संप्तदश-१३८ । -मिन्द्रं वो २९८ । द्वादश ॥ २५०९]
[॥ इति प्रथमकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

याजमान-ब्राह्मणम् ।

[अथ सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥] प्रजापतिर्ऋषिः ।

इडानुमन्त्रणमन्त्रब्राह्मणम् ॥

पाकयज्ञं वा अन्वाहिताग्नेः पशव उप तिष्ठन्त इडा खलु वै पाकयज्ञः सैषान्तरा प्रयाजानूयाजान् यज-
मानस्य लोकेऽवहिता तामाह्रियमाणामभि मन्त्रयेत सुरूपवर्षवर्ण एहीति पशवो वा इडा पशूनेवोप
ह्वयते यज्ञं वै देवा अदुहन् यज्ञोऽसुराꣳ अदुहत् तेऽसुरा यज्ञदुग्धाः पराऽभवन् यो वै यज्ञस्य दोहं
विद्वान् (१) यजतेऽप्यन्यं यजमानं दुहे सा मे सत्याऽऽशीरस्य यज्ञस्य भूयादित्याहैष वै यज्ञस्य
दोहस्तेनैवैनं दुहे प्रत्ता वै गौर्दुहे प्रत्तेडा यजमानाय दुह एते वा इडायै स्तना इडोपहूतेति वायु-
र्वत्सो यर्हि होतेडामुपह्वयेत तर्हि यजमानो होतारमीक्षमाणो वायुं मनसा ध्यायेन् (२) मात्रे वत्स-

मुपावसृजति सर्वेण वै यज्ञेन देवाः सुवर्गं लोकमायन् पाकयज्ञेन मनुरश्राम्यत्सेडा मनुमुपावर्तत तां
देवासुरा व्यह्वयन्त प्रतीचीं देवाः पराचीमसुराः सा देवानुपावर्तत पशवो वै तद् देवानवृणत पशवो-
ऽसुरानजहुर्यं कामयेतापशुः स्यादिति पराचीं तस्येडामुपह्वयेतापशुरेव भवति यं (३) कामयेत
पशुमान्त्स्यादिति प्रतीचीं तस्येडामुपह्वयेत पशुमानेव भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा इडामुप-
ह्वयेत य इडामुपह्वयात्मानमिडायामुपह्वयेतेति सा नः प्रिया सुप्रतूर्तिर्मघोनीत्याहेडामेवोपहूयाऽऽ-
त्मानमिडायामुपह्वयते व्यस्तमिव वा एतद्यज्ञस्य यदिडा सामि प्राश्नन्ति (४) सामि मार्जयन्त
एतत् प्रति वा असुराणां यज्ञो व्यच्छिद्यत ब्रह्मणा देवाः समदधुर्बृहस्पतिस्तनुतामिमं न इत्याह ब्रह्म
वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैव यज्ञꣳ सं दधाति विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमं दधात्वित्याह संतत्यै विश्वे
देवा इह मादयन्तामित्याह संतत्यैव यज्ञं देवेभ्योऽनु दिशति यां वै (५) यज्ञे दक्षिणां ददाति तामस्य
पशवोऽनु संक्रामन्ति स एष ईजानोऽपशुर्भावुको यजमानेन खलु वै तत्कार्यमित्याहुर्यथा देवत्रा दत्तं
कुर्वीतात्मन् पशून् रमयेतेति ब्रध्न पिन्वस्वेत्याह यज्ञो वै ब्रध्नो यज्ञमेव तन्महयत्यथो देवत्रैव दत्तं
कुरुत आत्मन् पशून् रमयते ददतो मे (६) मा क्षायीत्याहाक्षितिमेवोपैति कुर्वतो मे मोप दस-
दित्याह भूमानमेवोपैति ॥ (विद्वान्, ध्यायेन्,-यं, प्राश्नन्ति, यां वै, मे, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

सत्रय-स्तुमिजयोः प्रश्नोत्तराभ्यामिडाप्रशंसनम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

सꣳश्रवा ह सौवर्चनसस्तुमिञ्जमौपोदितिमुवाच यत्सत्रिणाꣳ होताऽभूः कामिडामुपाह्वथा इति
तामुपाह्व इति होवाच या प्राणेन देवान् दाधार व्यानेन मनुष्यानपानेन पितॄनिति छिनत्ति सा न छिनत्ती३
इति छिनत्तीति होवाच शरीरं वा अस्यै तदुपाह्वथा इति होवाच गौर्वा (१) अस्यै शरीरं गां
वाव तौ तत्पर्यवदताम् या यज्ञे दीयते सा प्राणेन देवान् दाधार यया मनुष्या जीवन्ति सा व्यानेन
मनुष्यान् यां पितृभ्यो घ्नन्ति साऽपानेन पितॄन् य एवं वेद पशुमान् भवत्यथ वै तामुपाह्व इति होवाच
या प्रजाः प्रभवन्तीः प्रत्याभवतीत्यन्नं वा अस्यै तदु (२) पाह्वथा इति होवाचौषधयो वा
अस्या अन्नमोषधयो वै प्रजाः प्रभवन्तीः प्रत्या भवन्ति य एवं वेदान्नादो भवत्यथ वै तामुपाह्व इति
होवाच या प्रजाः पराभवन्तीरनुगृह्णाति प्रत्याभवन्तीर्गृह्णातीति प्रतिष्ठां वा अस्यै तदुपाह्वथा इति होवाचेयं
वा अस्यै प्रतिष्ठे (३) यं वै प्रजाः पराभवन्तीरनुगृह्णाति प्रत्याभवन्तीर्गृह्णाति य एवं वेद प्रत्येव
तिष्ठत्यथ वै तामुपाह्व इति होवाच यस्यै निक्रमणे घृतं प्रजाः संजीवन्तीः पिबन्तीति छिनत्ति सा
न छिनत्ती३ इति न छिनत्तीति होवाच प्र तु जनयतीत्येष वा इडामुपाह्वथा इति (४) होवाच
वृष्टिर्वा इडा वृष्ट्यै वै निक्रमणे घृतं प्रजाः संजीवन्तीः पिबन्ति य एवं वेद प्रैव जायतेऽन्नादो भवति ॥
(गौर्वा, अस्यै तदु, प्रतिष्ठा, ऽष्टाया इति चिरꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

अन्वाहार्यः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

परोक्षं वा अन्ये देवा इज्यन्ते प्रत्यक्षमन्ये यद्यजते य एव देवाः परोक्षमिज्यन्ते तानेव तद्यजति
यदन्वाहार्यमाहरत्येते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणास्तानेव तेन प्रीणात्यथो दक्षिणैवास्यैषाऽथो यज्ञस्यैव

छिद्रमपि दधाति यद्वै यज्ञस्य क्रूरं यद्विलिष्टं तदन्वाहार्येणा (१) ऽन्वाहरति तदन्वाहार्यस्यान्वाहार्यत्वं
देवदूता वा एते यदृत्विजो यदन्वाहार्यमाहरति देवदूतानेव प्रीणाति प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्या-
दिशत् स रिरिचानोऽमन्यत स एतमन्वाहार्यमभक्तमपश्यत् तमात्मन्नधत्त स वा एष प्राजापत्यो यदन्वाहार्यो
यस्यैवं विदुषोऽन्वाहार्य आह्रियते साक्षादेव प्रजापतिमृध्नोत्यपरिमितो निरुप्योऽपरिमितः प्रजापतिः
प्रजापतेरा (२) प्त्यै देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतं प्राजापत्यमन्वाहार्यमपश्यन्
तमन्वाहरन्त ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यस्यैवं विदुषोऽन्वाहार्य आह्रियते भवत्यात्मना परास्य
भ्रातृव्यो भवति यज्ञेन वा इष्टी पक्वेन पूर्ती यस्यैवं विदुषोऽन्वाहार्य आह्रियते स त्वेवेष्टापूर्ती
प्रजापतेर्भागोऽसी (३) त्याह प्रजापतिमेव भागधेयेन समर्धयत्यूर्जस्वान् पयस्वानित्याहोर्जमेवास्मिन्
पयो दधाति प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाहीत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्तेऽक्षितोऽ-
स्यक्षित्यै त्वा मा मे क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोक इत्याह क्षीयते वा अमुष्मिँल्लोकेऽन्नमितः प्रदानꣳ ह्यमुष्मिँल्लोके
(४) प्रजा उपजीवन्ति यदेवमभिमृशत्यक्षितिमेवैनद्गमयति नास्यामुष्मिँल्लोकेऽन्नं क्षीयते ॥
(अन्वाहार्येण, प्रजापते,-रसि, ह्यमुष्मिँल्लोके, पञ्चदश च) ॥ ३ ॥

देवाहुतीनामनुमन्त्रणमन्त्रव्याख्यानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

बर्हिषोऽहं देवयज्यया प्रजावान् भूयासमित्याह बर्हिषा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत तेनैव प्रजाः सृजते
नराशꣳसस्याहं देवयज्यया पशुमान् भूयासमित्याह नराशꣳसेन वै प्रजापतिः पशूनसृजत तेनैव पशून्
सृजतेऽग्नेः स्विष्टकृतोऽहं देवयज्ययाऽऽयुष्मान् यज्ञेन प्रतिष्ठां गमेयमित्याहाऽऽयुरेवात्मन् धत्ते प्रति
यज्ञेन तिष्ठति दर्शपूर्णमासयो (१) र्वै देवा उज्जितिमनूदजयन् दर्शपूर्णमासाभ्यामसुरानपानुदन्ताग्नेर-
हमुज्जितिमनूज्जेषमित्याह दर्शपूर्णमासयोरेव देवतानां यजमान उज्जितिमनूज्जयति दर्शपूर्णमासाभ्यां भ्रातृ-
व्यानप नुदते वाजवतीभ्यां व्यूहत्यन्नं वै वाजोऽन्नमेवावरुन्धे द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै यो वै यज्ञस्य द्वौ
दोहौ विद्वान् यजत उभयत (२) एव यज्ञं दुहे पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चैष वा अन्यो यज्ञस्य दोह इडायामन्यो
यर्हि होता यजमानस्य नाम गृह्णीयात् तर्हि ब्रूयादेमा अग्मन्नाशिषो दोहकामा इति सꣳस्तुता एव देवता
दुहेऽथो उभयत एव यज्ञं दुहे पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च रोहितेन त्वाऽग्निर्देवतां गमयत्वित्याहैते वै देवाश्वा
(३) यजमानः प्रस्तरो यदेतैः प्रस्तरं प्रहरति देवाश्वैरेव यजमानꣳ सुवर्गं लोकं गमयति वि ते मुञ्चामि
रशना वि रश्मीनित्याहैष वा अग्नेर्विमोकस्तेनैवैनं वि मुञ्चति विष्णोः शंयोरहं देवयज्यया यज्ञेन प्रतिष्ठां
गमेयमित्याह यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञ एवान्ततः प्रति तिष्ठति सोमस्याहं देवयज्यया सुरेता (४) रेतो धिषी-
येत्याह सोमो वै रेतोधास्तेनैव रेत आत्मन् धत्ते त्वष्टुरहं देवयज्यया पशूनाꣳ रूपं पुषेयमित्याह
त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानाꣳ रूपकृत्तेनैव पशूनाꣳ रूपमात्मन् धत्ते देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्यज्ञस्य
मिथुनं तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्र भूयासमित्याहैतस्माद्वै मिथुनात् प्रजापतिर्मिथुनेन (५) प्राजायत
तस्मादेव यजमानो मिथुनेन प्र जायते वेदोऽसि वित्तिरसि विदेयेत्याह वेदेन वै देवा असुराणां
वित्तं वेद्यमविन्दन्त तद्वेदस्य वेदत्वं यद्यदकाम्यस्याभिध्यायेत् तस्य नाम गृह्णीयात् तद्वेवास्य सर्वं

शृङ्गे घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणं वेदो ददातु वाजिनमित्याह प्र सहस्रं पशूनाप्नोत्यां (६)—स्य प्रजायां वाजी जायते य एवं वेद ॥ (दर्शपूर्णमासयोः, इत्याह, देवताः, सुरेताः, प्रजापतिर्मिथुनेन,-ऽऽप्नोत्,-द्वौ च ८) ॥ ४ ॥

आप्यायनादिमन्त्रव्याख्यानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः।

ध्रुवां वै रिच्यमानां यज्ञोऽनु रिच्यते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजा ध्रुवामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजा आ प्यायतां ध्रुवा घृतेनेत्याह ध्रुवामेवाऽऽप्याययति तामाप्यायमानां यज्ञोऽन्वा प्यायते यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजाः प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिꣳस्त्वा दधामि सह यजमानेन (१) इत्याहायं वै प्रजापतेर्विभान्नाम लोकस्तस्मिन्नेवैनं दधाति सह यजमानेन रिच्यत इव वा एतद्यजते यद्यजमानभागं प्राश्नात्यात्मानमेव प्रीणाति—एतावान्वै यज्ञो यावान्यजमानभागो यज्ञो यजमानो यद्यजमानभागं प्राश्नाति यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति—एतद्वै सूयवसꣳ सोदकं यद्बर्हिश्चाऽऽपश्च (२) एतद्यजमानस्याऽऽयतनं यद्वेदिः—यत्पूर्णपात्रमन्तर्वेदि निनयति स्व एवाऽऽयतने सूयवसꣳ सोदकं कुरुते सदसि सन्मे भूया इत्याहाऽऽपो वै यज्ञ आपोऽमृतं यज्ञमेवामृतमात्मन्धत्ते सर्वाणि वै भूतानि व्रतमुपयन्तमनूप यन्ति प्राच्यां दिशि देवा ऋत्विजो मार्जयन्तामित्याहैष वै दर्शपूर्णमासयोरवभृथो (३) यान्येवैनं भूतानि व्रतमुपयन्तमनूपयन्ति तैरेव सहावभृथमवैति विष्णुमुखा वै देवाश्छन्दोभिरिमाँल्लोकाननपजय्यमभ्यजयन् यद्विष्णुक्रमान्क्रमते विष्णुरेव भूत्वा यजमानश्छन्दोभिरिमाँल्लोकाननपजय्यमभि जयति विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहेत्याह गायत्री वै पृथिवी त्रैष्टुभमन्तरिक्षं जागती द्यौरानुष्टुभीर्दिशः (४) छन्दोभिरेवेमाँल्लोकान्यथापूर्वमभि जयति ॥ (इव, -आपश्च,-अवभृथो, दिशः, सप्त च) ॥ ५ ॥

उपस्थानादिमन्त्रव्याख्यानम् प्रजापतिर्ऋषिः।

अगन्म सुवः सुवरगन्मेत्याह सुवर्गमेव लोकमेति संदृशस्ते मा छित्सि यत्ते तपस्तस्मै ते मा वृक्षीत्याह यथायजुरेवैतत् सुभूरसि श्रेष्ठो रश्मीनामायुर्धा अस्यायुर्मे धेहीत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते प्र वा एषोऽस्माँल्लोकाच्च्यवते यो (१) विष्णुक्रमान्क्रमते सुवर्गाय हि लोकाय विष्णुक्रमाः क्रम्यन्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै विष्णुक्रमान्क्रमेत य इमाँल्लोकान्भ्रातृव्यस्य संविद्य पुनरिमं लोकं प्रत्यवरोहेदित्ये—ष वा अस्य लोकस्य प्रत्यवरोहो यदाहेदमहममुं भ्रातृव्यमाभ्यो दिग्भ्योऽस्यै दिव इतीमानेव लोकान्भ्रातृव्यस्य संविद्य पुनरिमं लोकं प्रत्यवरोहति सं (२) ज्योतिषाऽभूवमित्याहास्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठत्यै—न्द्रीमावृतमन्वावर्त इत्याहासौ वा आदित्य इन्द्रस्तस्यैवाऽऽवृतमनु पर्यावर्तते दक्षिणा पर्यावर्तते स्वमेव वीर्यमनु पर्यावर्तते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरोऽथो आदित्यस्यैवाऽऽवृतमनु पर्यावर्तते समहं प्रजया सं मया प्रजेत्याहाऽऽशिषमे (३) वैतामा शास्ते समिद्धो अग्ने मे दीदिहि समेद्धा ते अग्ने दीद्यासमित्याह यथायजुरेवैत—द्वसुमान्यज्ञो वसीयान्भूयासमित्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते बहु वै गार्हपत्यस्यान्ते मिश्रमिव चर्यत आग्निपावमानीभ्यां गार्हपत्यमुप तिष्ठते पुनात्येवाग्निं पुनीत आत्मानं द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अग्ने गृहपत इत्याह (४) यथायजुरेवैतच्छतꣳ हिमा इत्याह शतं

त्वा हेमन्तानिन्धिषीयेति वावैतदाह पुत्रस्य नाम गृह्णात्यन्नादमेवैनं करोति तामाशिषमा शास्ते तन्तवे ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रोऽजातः स्यात् तेजस्व्येवास्य ब्रह्मवर्चसी पुत्रो जायते तामाशिषमा शासेऽमुष्मै ज्योतिष्मतीमिति ब्रूयाद्यस्य पुत्रो (५) जातः स्यात् तेज एवास्मिन्ब्रह्मवर्चसं दधाति यो वै यज्ञं प्रयुज्य न विमुञ्चत्यप्रतिष्ठानो वै स भवति कस्त्वा युनक्ति स त्वा वि मुञ्चत्वित्याह प्रजापतिर्वै कः प्रजापतिनैवैनं युनक्ति प्रजापतिना वि मुञ्चति प्रतिष्ठित्या ईश्वरं वै व्रतमविसृष्टं प्रदहोऽग्ने व्रतपते व्रतमचारिषमित्याह व्रतमेव (६) वि सृजते शान्त्या अप्रदाहाय पराङ् वाव यज्ञ एति न नि वर्तते पुनर्यो वै यज्ञस्य पुनरालम्भं विद्वान्यजते तमभि नि वर्तते यज्ञो बभूव स आ बभूवेत्याहैष वै यज्ञस्य पुनरालम्भस्तेनैवैनं पुनरालभते—ऽनवरुद्धा वा एतस्य विराड् य आहिताग्निः सन्नसभः पशवः खलु वै (७) ब्राह्मणस्य सभे—ष्ट्वा प्राङुत्क्रम्य ब्रूयाद्गोमाꣳ अग्नेऽविमाꣳ अश्वी यज्ञ इत्यव सभाꣳ रुन्धे प्र सहस्रं पशूनाप्नोत्यास्य प्रजायां वाजी जायते ॥ (वः, स,-माशिषं, गृहपत इत्याह, यस्य पुत्रो, व्रतमेव, खलु वै, चतुर्विꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

वाजपेयाङ्गभूते रथसंस्कारः ॥ १ महासतोबृहती; २ द्विपदा गायत्री, ३ अतिजगती; ४ पुर उष्णिक्, ५ अनुष्टुप्; ६ उष्णिक्। सोमऋषिः।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः।
केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचमद्य स्वदाति नः ॥
इन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वध्यात् ॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥
अप्स्व (१) न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवथ वाजिनः ॥
वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः।
ते अग्रे अश्वमायुञ्जन्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥
अपां नपादाशुहेमन्य ऊर्मिः ककुद्मान्प्रतूर्तिर्वाजसातमस्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥
विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमसि विष्णोर्विक्रान्तमस्य—ङ्कौ न्यङ्का (२) वभितो रथं यौ ध्वान्तं वाताग्रमनु संचरन्तौ दूरेहेतिरिन्द्रियावान्पतत्री ते नोऽग्नयः पप्रयः पारयन्तु ॥
(अप्सु, न्यङ्कौ, पञ्चदश च) ॥ ७ ॥

रथधावनम् ॥ ४ गायत्री; ५-१० त्रिष्टुप्; ११ द्विपदा विराड्गायत्री; १२ आस्तारपङ्क्तिः, १३ विराट्; १४-१५ जगती; १६ त्रिष्टुप् ॥ सोमऋषिः।

देवस्याहꣳ सवितुः प्रसवे बृहस्पतिना वाजजिता वाजं जेषं देवस्याहꣳ सवितुः प्रसवे बृहस्पतिना वाजजिता वर्षिष्ठं नाकꣳ रुहेय—

—मिन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयतेन्द्रो वाजमजयित् ॥
अश्वाजनि वाजिनि वाजेषु वाजिनीवत्यश्वान्त्समत्सु वाजय ॥
अर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वाजिनो वाजं धावत मरुतां प्रसवे जयत वि योजना मिमीध्वमध्वनः स्कभ्नीत (१) काष्ठां गच्छत
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ॥
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनः ॥
मितद्रवः सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवः।
महो ये रत्नꣳ समिथेषु जभ्रिरे शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु ॥
देवताता मितद्रवः स्वर्काः।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन् (२) अमीवाः ॥
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु सन्तवीत्वत् पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् ॥
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादा द्यावापृथिवी विश्वशम्भू।
आ मा गन्तां पितरा (३) मातरा चाऽऽ मा सोमो अमृतत्वाय गम्यात् ॥
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो वाजं जेष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमव जिघ्रत
वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो वाजं जिगिवाꣳसो बृहस्पतेर्भागे नि मृड्ढ्व—मियं वः सा सत्या सन्धाऽभूद्यामिन्द्रेण समधद्ध्वम् अजीजिपत वनस्पतय इन्द्रं वाजं वि मुच्यध्वम् ॥ (स्कभ्नीत, युयवन्, पितरा, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

यूपारोहणम् ॥ सोमऋषिः।

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य योनिरसि जाय एहि सुवो रोहाव रोहाव हि सुवरहं नावुभयोः सुवो रोक्ष्यामि वाजश्च प्रसवश्चापिजश्च क्रतुश्च सुवश्च मूर्धा च व्यश्नियश्चाऽऽन्त्यायनश्चान्त्यश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च। आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतामपानो (१) यज्ञेन कल्पतां व्यानो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताꣳ सुवर्देवाꣳ अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम समहं प्रजया सं मया प्रजा समहꣳ

रायस्पोषेण सं मया रायस्पोषोऽन्नाय त्वाऽन्नाद्याय त्वा वाजाय (२) त्वा वाजजित्यायै त्वाऽमृतमसि पुष्टिरसि प्रजननमसि (अपानो, वाजाय, नव च) ॥ ९ ॥

अन्नहोमाः ॥ १-३ त्रिष्टुब्जगती वा, ४-७ अनुष्टुप्।

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवे अग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ॥
वाजस्येदं प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
स विराजं पर्येति प्रजानन्प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे ॥
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्।
अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन्रयिं (१) च नः सर्ववीरां नि यच्छतु ॥
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ भुवस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः।
प्र देवाः प्रोत सूनृता प्र वाग्देवी ददातु नः ॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं (२) च वाजिनम् ॥
सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे।
आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेस्त्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चामी—न्द्रस्य बृहस्पतेस्त्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चामि ॥ (रयिꣳ, सवितारꣳ, षट्त्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

उज्जितिः ॥ सोमऋषिः।

अग्निरेकाक्षरेण वाचमुदजय—दश्विनौ द्व्यक्षरेण प्राणापानावुदजयतां विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीन् लोकानुदजयत् सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत् पूषा पञ्चाक्षरेण पङ्क्तिमुदजयद्धाता षडक्षरेण षडृतूनुदजय—न्मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तपदाꣳ शक्वरीमुदजयन् बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजय—न्मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् (१) वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजय—दिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयद् विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयन् वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयन् रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजय—न्नादित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजय—न्नदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत् प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत् (अजयत्, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

अतिग्राह्या: ॥ ७ पङ्क्तिः, ९ अनुष्टुप्, ११ त्रिष्टुप् । सोमऋषिः ।

उपयामगृहीतोऽसि नृषदं त्वा द्रुषदं भुवनसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्ये॑ष ते योनिरिन्द्राय त्वो॑प-यामगृहीतोऽस्यप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णा॑म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वो॑प-यामगृहीतोऽसि पृथिविषदं त्वाऽन्तरिक्षसदं नाकसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णा॑म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥

ये ग्रहाः पञ्चजनीना येषां तिस्रः परमजाः ।
दैव्यः कोशः (१) समुब्जितः ।
तेषां विशिप्रियाणामिषमूर्ज॑ समग्रभी॑—
—मेष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥
अपा॑ रसमुद्वयस॑ सूर्यरश्मि॑ समाभृतम् ।
अपा॑ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमं—
—मेष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥
अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद्धरुणो मध्वो अग्र॑ स्वायां यत् तनुवां (२) तनूमैरयत ।
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये॑ष ते योनिः प्रजापतये त्वा ॥ (कोशं,-स्तनुवां, त्रयोदश च) ॥ १२ ॥

काम्यायाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-२, ५-८, १०-१२ त्रिष्टुप्, ३-४ अनुष्टुप्, ९ आस्तारपङ्क्तिः, १३ गायत्री, १४ साम्नी । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्र॑ रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥
इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नीमहमश्रवम् ।
न ह्यस्या अपरं चन जरसा (१) मरते पतिः ॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्य॑ हविः प्रियं देवेषु गच्छति ॥
यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥
आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते (२) मनो विष्वद्रियग्विचारीत् ॥
७ (तै. सं.)

मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत् ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥
आ तू भर माकिरेतत् परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व (३) प्र यन्धि ॥
प्रदातार॑ हवामह इन्द्रमा हविषा वयम् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाऽऽ प्र यच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥
प्रदाता वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्याथा भव यजमानाय शं योः ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववा॑ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य (४) पतयः स्याम ॥
तस्य वय॑ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववा॑ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषाम् ।
ज्याका अधि (५) धन्वसु ॥ (जरसा, मा ते, हर्यश्व, सुवीर्यस्याष्टे,-कं च) ॥ १३ ॥

[पाकयज्ञ॑ ११९ । स॑ध्रुवाः २२० । पुरोक्षं २१५ । बर्हिषो ३०८ । ध्रुवा-२०० ।-मग्नम् ३०४ । देवं सवित-११५ ।-देवस्य १९२ । क्षत्रस्य १०९ । वाजस्या १३६ । ऽग्नि-९६ ।-उपयामगृहीतो ११३ । नु २५१ । त्रयोदश ॥ २६५५ ॥]

[इति प्रथमकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

राजसूयः ।

[अथाष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥]
अनुमत्यादियागाः नैर्ऋतमन्त्राश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अनुमत्यै पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति धेनुर्दक्षिणा ये प्रत्यञ्चः शम्याया अवशीयन्ते तं नैर्ऋतमे-ककपालं कृष्णं वासः कृष्णतूषं दक्षिणा
वीहि स्वाहाऽऽहुतिं जुषाणै एष ते निर्ऋते भागो भूते हविष्मत्यसि मुञ्चेमम॑हसः स्वाहा नमो य इदं चकार॑—

—ऽऽदित्यं चरुं निर्वपति वरो दक्षिणा ऽऽग्नावैष्णवमेकादशकपालं वामनो वही दक्षिणा ऽग्नी-षोमीयमे (१) कादशकपाल॑ हिरण्यं दक्षिणै—न्द्रमेकादशकपालमृषभो वही दक्षिणा ऽऽग्नेय-मष्टाकपालमैन्द्रं दध्यृषभो वही दक्षिणै—न्द्राग्नं द्वादशकपालं वैश्वदेवं चरुं प्रथमजो वत्सो दक्षिणा सौम्य॑ श्यामाकं चरुं वासो दक्षिणा सरस्वत्यै चरु॑ सरस्वते चरुं मिथुनौ गावौ दक्षिणा
(अग्नीषोमीयं, चतुस्त्रिंशच्च) ॥ १ ॥

चातुर्मास्येषु प्रथमं वैश्वदेवपर्व ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।
आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरु॑ सावित्रं द्वादशकपाल॑ सारस्वतं चरुं पौष्णं चरुं मारुत॑ सप्तकपालं वैश्वदेवीमामिक्षां द्यावापृथिव्यमेककपालम् ॥ (आग्नेयम्,-द्वादश) ॥ २ ॥

द्वितीयं वरुणप्रघासपर्व ॥ २ गायत्री, ३ विराट्स्थाना, ४ महापङ्क्तिः, ५ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।
ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं मारुतीमामिक्षां वारुणीमामिक्षां कायमेककपालम्
प्रघास्यान् हवामहे मरुतो यज्ञवाहसः करम्भेण सजोषसः ॥
मो षू ण इन्द्र पृत्सु देवास्तु स्म ते शुष्मिन्नवया ।
मही ह्यस्य मीढुषो यव्या । हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥
यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्य एनश्चकृमा वयम् ।
यदे (१) कस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि स्वाहा ॥
अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयो भुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेत सुदानवः ॥
(वयं यद्, विंशतिश्च) ॥ ३ ॥

तृतीयं साकमेधपर्व ॥ २-३ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।
अग्नयेऽनीकवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति साक॑ सूर्येणोद्यता मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यो मध्यंदिने चरुं मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यः सर्वासां दुग्धे सायं चरुम्
पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव वि क्रीणावहा इषमूर्ज॑ शतक्रतो ॥
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारमिन्नि मे हरा निहारं (१) नि हरामि ते ॥
मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः पुरोडाश॑ सप्तकपालं निर्वपति साक॑ सूर्येणोद्यताग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरु॑ सावित्रं द्वादशकपाल॑ सारस्वतं चरुं पौष्णं चरुमैन्द्राग्नमेकादशकपालमैन्द्रं चरुं वैश्वकर्मणमेक-कपालम् ॥ (हरा निहारं, त्रिंशच्च) ॥ ४ ॥

महापितृयज्ञः ॥ ६-७ पङ्क्तिः, ९ आस्तारपङ्क्तिः, १०-१२ गायत्री, १३ शक्वरी । विश्वेदेवा ऋषयः ।
सोमाय पितृमते पुरोडाश॑ षट्कपालं निर्वपति पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यो धानाः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यो-ऽभिवान्यायै दुग्धे मन्थ—मेतत् ते तत ये च त्वाम—न्वेतत् ते पितामह प्रपितामह ये च त्वामन्व॑—त्र पितरो यथाभागं मन्दध्व॑

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् मन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो यासि वशा॑ अनु । योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ (१)
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती । योजा न्विन्द्र ते हरी ॥
अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरः ॥
परेत पितरः सोम्या गम्भीरैः पथिभिः पूर्व्यैः ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्रा॑ अपीत यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥
मनो न्वा हुवामहे नाराश॑सेन स्तोमेन पितॄणां च मन्मभिः ॥
आ (२) न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रात॑ सचेमहि ॥
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहि॑सिम ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु दुरिता यानि चकृम करोतु मामनेनसम् ॥
(हरी, मन्मभिरा, चतुश्चत्वारिंशच्च) ॥ ५ ॥

त्र्यंबक पुरोडाशाः । ९ महापङ्क्तिः, १० अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।
प्रतिपूरुषमेककपालान्निर्वपत्येकमतिरिक्तं यावन्तो गृह्याः स्मस्तेभ्यः कमकरं पशूना॑ शर्मासि शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छै—क एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थ आखुस्ते रुद्र पशुस्तं जुषस्वै—ष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषज—मथो अस्मभ्यं भेषज॑ सुभेषजं (१) यथाऽसति । सुगं मेषाय मेष्यै
अवाम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।
यथा नः श्रेयसः करद्यथा नो वस्यसः करद्यथा नः पशुमतः करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥
एष ते रुद्र भागस्तं जुषस्व तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि—(२)—अवततधन्वा पिनाकहस्तः कृत्तिवासाः (सुभेषज,-मिहि, त्रीणि च) ॥ ६ ॥

शुनासीर्यम्, इन्द्रतुरीयम्, पञ्चेध्मीयमन्त्राः, अपामार्गहोममन्त्राश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।
ऐन्द्राग्नं द्वादशकपालं वैश्वदेवं चरुमिन्द्राय शुनासीराय पुरोडाशं द्वादशकपालं वायव्यं पयः सौर्यमे-ककपालं द्वादशगव॑ सीरं दक्षिणा ऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति रौद्रं गावीधुकं चरुमैन्द्रं दधि वारुणं यवमयं चरुं वहिनी धेनुर्दक्षिणा,

ये देवाः पुरःसदोऽग्निनेत्राः*--*दक्षिणसदो यमनेत्राः*--*पश्चात्सदः सवितृनेत्राः*--*उत्तरसदो वरुणनेत्राः*--*उपरिषदो बृहस्पतिनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो (१) नमस्तेभ्यः स्वाहा समूढꣳ रक्षः संदग्धꣳ रक्ष इदमहꣳ रक्षोऽभि सं दहाम्यग्नये रक्षोघ्ने स्वाहा यमाय*- सवित्रे*- वरुणाय*- बृहस्पतये दुवस्वते रक्षोघ्ने स्वाहा प्रष्टिवाही रथो दक्षिणा,
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ
रक्षसो वधं जुहोमि हतꣳ रक्षोऽवधिष्म रक्षो यद्वस्ते तद्दक्षिणा ॥ (तेभ्यः, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

देविकादि कर्माष्टकम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

धात्रे पुरोडाशं द्वादशकपालं निर्वपत्यनुमत्यै चरुꣳ राकायै चरुꣳ सिनीवाल्यै चरुं कुह्वै चरुं मिथुनौ गावौ दक्षिणाऽऽग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपत्यैन्द्रावैष्णवमेकादशकपालं वैष्णवं त्रिकपालं वामनो वही दक्षिणाऽग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपतीन्द्रासोमीयमेकादशकपालꣳ सौम्यं चरुं बभ्रुर्दक्षिणा सोमापौष्णं चरुं निर्वपत्यैन्द्रापौष्णं चरुं पौष्णं चरुꣳ श्यामो दक्षिणा वैश्वानरं द्वादशकपालं नि (१) र्वपति हिरण्यं दक्षिणा वारुणं यवमयं चरुमश्वो दक्षिणा (नि,-र्वही च) ॥ ८ ॥

रत्निनां हवींषि, अभिषेचनीयस्य दीक्षणीया च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपति ब्रह्मणो गृहे शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्रमेकादशकपालꣳ राजन्यस्य गृह ऋषभो दक्षिणाऽऽदित्यं चरुं महिष्यै गृहे धेनुर्दक्षिणा नैर्ऋतं चरुं परिवृक्त्यै गृहे कृष्णानां व्रीहीणां नखनिर्भिन्नं कृष्णा कूटा दक्षिणाऽऽग्नेयमष्टाकपालꣳ सेनान्यो गृहे हिरण्यं दक्षिणा वारुणं दशकपालꣳ सूतस्य गृहे महानिरष्टो दक्षिणा मारुतꣳ सप्तकपालं ग्रामण्यो गृहे पृश्निर्दक्षिणा सावित्रं द्वादशकपालं (१) क्षत्तुर्गृह उपध्वस्तो दक्षिणाऽऽश्विनं द्विकपालꣳ संग्रहीतुर्गृहे सवात्यौ दक्षिणा पौष्णं चरुं भागदुघस्य गृहे श्यामो दक्षिणा रौद्रं गावीधुकं चरुमक्षावापस्य गृहे शबल उद्वारो दक्षिणेन्द्राय सुत्राम्णे पुरोडाशमेकादशकपालं प्रति निर्वपतीन्द्रायाꣳहोमुचेऽयं नो राजा भूत्वा वृत्रं वध्यान्मैत्राबार्हस्पत्यं भवति श्वेतायै श्वेतवत्सायै दुग्धे स्वयंमूर्ते स्वयंमथित आज्य आश्वत्थे (२) पात्रे चतुःस्रक्तौ स्वयमवपन्नायै शाखायै कर्णाꣳश्चाकर्णाꣳश्च तण्डुलान्वि चिनुयाद्ये कर्णाः स पयसि बार्हस्पत्यो येऽकर्णाः स आज्ये मैत्रः स्वयंकृता वेदिर्भवति स्वयंदिनं बर्हिः स्वयंकृत इध्मः सैव श्वेता श्वेतवत्सा दक्षिणा (सावित्रं द्वादशकपाल,-माश्वत्थे, अष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

देवसुवां हवींषि ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये गृहपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपति कृष्णानां व्रीहीणाꣳ सोमाय वनस्पतये श्यामाकं चरुꣳ सवित्रे सत्यप्रसवाय पुरोडाशं द्वादशकपालमाशूनां व्रीहीणाꣳ रुद्राय पशुपतये गावीधुकं चरुं बृहस्पतये वाचस्पतये नैवारं चरुमिन्द्राय ज्येष्ठाय पुरोडाशमेकादशकपालं महाव्रीहीणां मित्राय सत्यायाऽऽम्बानां चरुं वरुणाय धर्मपतये यवमयं चरुꣳ

(७।३-६) रक्षोहण...स्वाहा। (७।४-७) -अग्ने देवा। (७।१०-१२) रक्षोघ्ने स्वाहा।

सविता त्वा प्रसवानाꣳ सुवतामग्निर्गृहपतीनाꣳ सोमो वनस्पतीनाꣳ रुद्रः पशूनां (१) बृहस्पतिर्वाचामिन्द्रो ज्येष्ठानां मित्रः सत्यानां वरुणो धर्मपतीनां ये देवा देवसुवः स्थ त इममामुष्यायणमनमित्राय सुवध्वं महते क्षत्राय महत आधिपत्याय महते जानराज्यायैष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा प्रति त्यन्नाम राज्यमधायि स्वां तनुवं वरुणो अशिश्रेच्छुचेर्मित्रस्य व्रत्या अभूमामन्महि महत ऋतस्य नाम सर्वे व्राता (२) वरुणस्याभूवन्वि मित्र एवैररातिमतारीदसूषुदन्त यज्ञिया ऋतेन व्यु त्रितो जरिमाणं न आनड् विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि ॥ (पशूनां, व्राताः, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

अभिषेकजलग्रहणम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अर्थेतः स्थापां पतिरसि वृषास्यूर्मिर्वृषसेनोऽसि व्रजक्षितः स्थ मरुतामोजः स्थ सूर्यवर्चसः स्थ सूर्यत्वचसः स्थ मान्दाः स्थ वाशाः स्थ शक्वरीः स्थ विश्वभृतः स्थ जनभृतः स्थाग्नेस्तेजस्याः स्थापामोषधीनाꣳ रसः स्थापो देवीर्मधुमतीरगृह्णन्नूर्जस्वती राजसूयाय चितानाः ।

याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्य (१) रातीः ॥

राष्ट्रदाः स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहा राष्ट्रदाः स्थ राष्ट्रममुष्मै दत्त (अत्ये,-कादश च) ॥ ११ ॥

अभिषेकजलसंस्कारः ॥ ५, २० त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवीरापः सं मधुमतीर्मधुमतीभिः सृज्यध्वं महि वर्चः क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदतोर्जस्वतीर्महि वर्चः क्षत्रियाय दधतीरनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रमसि शुक्रा वः शुक्रेणोत्पुनामि चन्द्राश्चन्द्रेणामृता अमृतेन स्वाहा राजसूयाय चितानाः ॥

सधमादो द्युम्निनीरूर्ज एता अनिभृष्टा अपस्युवो वसानः ।

पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाꣳ शिशु (१) र्मातृतमास्वन्तः ॥

क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य योनिरस्याविन्नो अग्निर्गृहपतिराविन्न इन्द्रो वृद्धश्रवा आविन्नः पूषा विश्ववेदा आविन्नौ मित्रावरुणावृतावृधावाविन्ने द्यावापृथिवी धृतव्रते आविन्ना देव्यदितिर्विश्वरूप्याविन्नोऽयमसावामुष्यायणोऽस्यां विश्यस्मिन् राष्ट्रे महते क्षत्राय महत आधिपत्याय महते जानराज्यायैष वो भरता राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजेन्द्रस्य (२) वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयायं वृत्रं वध्याच्छत्रुबाधनाः स्थ पात मा प्रत्यञ्चं पात मा तिर्यञ्चमन्वञ्चं मा पात दिग्भ्यो मा पात विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यः पात हिरण्यवर्णावुषसां विरोकेऽयःस्थूणावुदितौ सूर्यस्याऽऽरोहतं वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च ॥ (शिशु,-रिन्द्रस्य,-चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १२ ॥

दिग्व्यास्थापनम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

समिधमा तिष्ठ गायत्री त्वा छन्दसामवतु त्रिवृत्स्तोमो रथन्तरꣳ सामाग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणमुग्रामा तिष्ठ त्रिष्टुप्त्वा छन्दसामवतु पञ्चदशस्तोमो बृहत्सामेन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविणं विराजमा तिष्ठ जगती त्वा छन्दसामवतु सप्तदशस्तोमो वैरूपꣳ साम मरुतो देवता विड्द्रविणमुदीचीमा तिष्ठानुष्टुप्त्वा (१) छन्दसामवत्वेकविꣳशस्तोमो वैराजꣳ साम मित्रावरुणौ देवता बलं द्रविणमूर्ध्वामा तिष्ठ पङ्क्तिस्त्वा छन्दसामवतु त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ शाक्वररैवते सामनी बृहस्पतिर्देवता वर्चो द्रविणमीदृङ् चान्यादृङ् चैतादृङ् च प्रतिदृङ् च मितश्च संमितश्च सभराः । शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माꣳश्च सत्यश्चर्तपाश्चा (२) त्यꣳहाः । अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाꣳशाय स्वाहा भगाय स्वाहा क्षेत्रस्य पतये स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा (२) ॥ (अनुष्टुप्त्वं, तपाश्च, सरीसृपेभ्यः स्वाहा) ॥ १३ ॥

अभिषेकः ॥ ६ महापङ्क्तिः, १०, १२ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयादमृतमसि मृत्योर्मा पाहि दिद्योन्मा पाह्यवेष्टा दन्दशूका निरस्तं नमुचेः शिरः ॥

सोमो राजा वरुणो देवा धर्मसुवश्च ये ।

ते ते वाचꣳ सुवन्तां ते ते प्राणꣳ सुवन्तां ते ते चक्षुः सुवन्तां ते ते श्रोत्रꣳ सुवन्ताꣳ सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभि षिञ्चाम्यग्ने (१) स्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण मित्रावरुणयोर्वीर्येण मरुतामोजसा क्षत्राणां क्षत्रपतिरस्यति दिवस्पाहि ॥

समाववृत्रन्नधरागुदीचीरहिं बुध्नियमनु संचरन्तीस्ताः पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठे नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः ॥

रुद्र यत्ते क्रयी परं नाम तस्मै हुतमसि यमेष्टमसि ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता (२) बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

(अग्ने,-स्तै,-कादश च) ॥ १४ ॥

रथेन दिग्विजयः ॥ १८ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयाऽयं वृत्रं वध्यान्मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि यज्ञस्य योगेन विष्णोः क्रमोऽसि विष्णोः क्रान्तमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि मरुतां प्रसवे जेषमाप्तं मनः समहमिन्द्रियेण वीर्येण पशूनां मन्युरसि तवेव मे मन्युर्भूयान्नमो मात्रे पृथिव्यै माहं मातरं पृथिवीꣳ हिꣳसिषं मा (१) मां माता पृथिवी हिꣳसीदियदस्यायुरस्यायुर्मे धेह्यूर्गस्यूर्जं मे धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहेन्द्रस्य बलाय स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा (२) अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ (हिꣳसिषम्,-र्तजा,-स्त्रीणि च) ॥ १५ ॥

जितवतो राज्ञः सेवोपचारः ॥ ७ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

मित्रोऽसि वरुणोऽसि समहं विश्वैर्देवैः क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि स्योनामा सीद सुषदामा सीद मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीन्नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुर्ब्रह्मा३न् त्वꣳ राजन्ब्रह्माऽसि सवितासि सत्यसवो ब्रह्मा३न् त्वꣳ राजन्ब्रह्मासीन्द्रोऽसि सत्यौजा (१) ब्रह्मा३न् त्वꣳ राजन्ब्रह्मासि मित्रोऽसि सुशेवो ब्रह्मा३न् त्वꣳ राजन्ब्रह्माऽसि वरुणोऽसि सत्यधर्मेन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्तेन मे रध्य दिशोऽभ्ययꣳ राजाऽभूत् सुश्लोका३ँ सुमङ्गला३ँ सत्यराजा३न् ॥ अपां नप्त्रे स्वाहोर्जो नप्त्रे स्वाहाऽग्नये गृहपतये स्वाहा ॥ (सत्यौजा,-श्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १६ ॥

संसृपां हवींषि ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति हिरण्यं दक्षिणा सारस्वतं चरुं वत्सतरी दक्षिणा सावित्रं द्वादशकपालमुपध्वस्तो दक्षिणा पौष्णं चरुꣳ श्यामो दक्षिणा बार्हस्पत्यं चरुꣳ शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्रमेकादशकपालमृषभो दक्षिणा वारुणं दशकपालं महानिरष्टो दक्षिणा सौम्यं चरुं बभ्रुर्दक्षिणा त्वाष्ट्रमष्टाकपालꣳ शुण्ठो दक्षिणा वैष्णवं त्रिकपालं वामनो दक्षिणा ॥ (आग्नेयं द्विचत्वारिꣳशत्) ॥ १७ ॥

दशपेयः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सद्यो दीक्षयन्ति सद्यः सोमं क्रीणन्ति पुण्डरिस्रजां प्र यच्छति दशभिर्वत्सतरैः सोमं क्रीणाति दशपेयो भवति शतं ब्राह्मणाः पिबन्ति सप्तदशꣳ स्तोत्रं भवति प्राकाशावध्वर्यवे ददाति स्रजमुद्गात्रे रुक्मꣳ होत्रेऽश्वं प्रस्तोतृप्रतिहर्तृभ्यां द्वादश पष्ठौहीर्ब्रह्मणे वशां मैत्रावरुणायर्षभं ब्राह्मणाच्छꣳसिने वाससी नेष्टापोतृभ्याꣳ स्थूरि यवाचितमच्छावाकायानड्वाहमग्नीधे भार्गवो होता भवति श्रायन्तीयं ब्रह्मसामं भवति वारवन्तीय (१) मग्निष्टोमसामꣳ सारस्वतीरपो गृह्णाति ॥ (वारवन्तीयं, चत्वारि च) ॥ १८ ॥

दिशामवेष्टयः, पञ्चद्वयबन्धः, सारवदुतानां हवींषि च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति हिरण्यं दक्षिणैन्द्रमेकादशकपालमृषभो दक्षिणा वैश्वदेवं चरुं पिशङ्गी पष्ठौही दक्षिणा मैत्रावरुणीमामिक्षां वशा दक्षिणा बार्हस्पत्यं चरुꣳ शितिपृष्ठो दक्षिणाऽऽदित्यां मल्हां गर्भिणीमा लभते मारुतीं पृश्निं पष्ठौहीमश्विभ्यां पूष्णे पुरोडाशं द्वादशकपालं निर्वपति सरस्वते सत्यवाचे चरुꣳ सवित्रे सत्यप्रसवाय पुरोडाशं द्वादशकपालं तिसृधन्वꣳ शुष्कदृतिर्दक्षिणा ॥

(आग्नेयꣳ सप्तचत्वारिꣳशत्) ॥ १९ ॥

प्रयुजां हवींषि ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपति सौम्यं चरुꣳ सावित्रं द्वादशकपालं बार्हस्पत्यं चरुं त्वाष्ट्रमष्टाकपालं वैश्वानरं द्वादशकपालं दक्षिणो रथवाहनवाहो दक्षिणा सारस्वतं चरुं निर्वपति पौष्णं चरुं मैत्रं चरुं वारुणं चरुं क्षैत्रपत्यं चरुमादित्यं चरुमुत्तरो रथवाहनवाहो दक्षिणा ॥ (आग्नेयं चतुस्त्रिꣳशत्) ॥ २० ॥

सौत्रामणी ॥ २-३ गायत्री, ४ त्रिष्टुप्, ७ एकपदा त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन सृजामि सꣳ सोमेन सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व[1] पुनातु ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता ।

वारेण शश्वता तना[2] ॥

वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा[3] ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।

इहेहैषां कृणुत भोजनानि (१) ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥

आश्विनं धूम्रमा लभते सारस्वतं मेषमैन्द्रमृषभमैन्द्रमेकादशकपालं निर्वपति सावित्रं द्वादशकपालं वारुणं दशकपालꣳ सोमप्रतीकाः पितरस्तृप्णुत वडबा दक्षिणा ॥

(भोजनानि, षड्विꣳशतिश्च) ॥ २१ ॥

काम्ययाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-२, ४, ६-७, ९, १६-१९ त्रिष्टुप् ३, ५, ८, गायत्री १० अनुष्टुप् ११ पङ्क्तिः १५ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं वीतं घृतस्य गुह्यानि नाम ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधाना प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्येत् ॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।

दमेदमे सुष्टुतीर्वावृधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्येत् ॥

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ।

आ नो दिवो बृहतः (१) पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।

हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥

८ (ते ५)

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम्[6] ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।

यद्दीदयच्छवस (२) ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू[8] ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।

आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा[9] ॥

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीडे वसूनाम् । सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम्[10] ॥

मक्षू देववतो रथः (३) शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्[11] ॥

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो[12] ॥

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्वियम्[13] ॥ नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति[14] ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।

पृणन्तं च पपुरिं च (४) श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः[15] ॥

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।

आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्[16] ॥

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।

अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्[17] ॥

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना (५) पृथिव्याः ।

जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्[18] ॥

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमाꣳसि गूहतामजुष्टा ।

आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु[19]

बृहतः, शवसा, रथः, पपुरिं च, दिवो जनना, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ २२ ॥

[अनुमत्यै ८४ । आग्नेय-१८ । ऐन्द्राग्न-७० । मरुत्वते ८० । सोमाय १४४ । प्रतिपूरुष-१०३ । ऐन्द्राग्नं ९५ । धात्रे ५८ । बार्हस्पत्यं-१२३ । मरुते १२५ । उर्वेतो ६१ । देवीः १४१ । समिध-१५० । सोमस्ये-१११ । इन्द्रस्य १०३ । मित्र-९० । आग्नेयं ४२ । सद ५४ । आग्नेय-४७ । आग्नेयं-३४ । स्वाद्वीं त्वा ७६ । अग्नाविष्णू २७५ । द्वाविꣳशतिः ॥ २०९४]

[॥ इति प्रथमकाण्डे अष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥]

[युज १५३० । आर्षो १६९० । देवस्या-१५६० । ऽऽददे १८१० । देवासुराः २०१७ । सं त्वा २५०९ । पाकयज्ञ -२६५५ । अनुमत्या २०९४ । अष्टौ ॥ ८ ॥ १६५८२]

॥ इति प्रथमं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयं काण्डम् ।

पशुविधानम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

१-६ भूति-ग्राम-प्रजाकामस्य आमयाविनश्च, ७-९ प्रजाकामस्य, १० पशुकामस्य च पशवः । विश्वेदेवा ऋषयः ॥

वायव्यꣳ श्वेतमा लभेत भूतिकामो वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता वायुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं भूतिं गमयति भवत्येवातिक्षिप्रा देवतेत्याहुः सैनमीश्वरा प्रदह इत्येतमेव सन्तं वायवे नियुत्वत आ लभेत नियुद्वा अस्य धृतिर्धृत एव भूतिमुपैत्यप्रदाहाय भवत्येव (१) वायवे नियुत्वत आ लभेत ग्रामकामो वायुर्वा इमाः प्रजा नस्योता नेनीयते वायुमेव नियुत्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै प्रजा नस्योता नि यच्छति ग्राम्येव भवति नियुत्वते भवति ध्रुवा एवास्मा अनपगाः करोति वायवे नियुत्वत आ लभेत प्रजाकामः प्राणो वै वायुरपानो नियुत् प्राणापानौ खलु वा एतस्य प्रजाया (२) अपक्रामतो योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते वायुमेव नियुत्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै प्राणापानाभ्यां प्रजां प्र जनयति विन्दते प्रजां वायवे नियुत्वत आ लभेत ज्योगामयावी प्राणो वै वायुरपानो नियुत् प्राणापानौ खलु वा एतस्मादपक्रामतो यस्य ज्योगामयति वायुमेव नियुत्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप (३) धावति स एवास्मिन् प्राणापानौ दधात्युत यदीतासुर्भवति जीवत्येव प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् सोऽकामयत प्रजाः पशून्त्सृजेयेति स आत्मनो वपामुदक्खिदत् तामग्नौ प्रागृह्णात् ततोऽजस्तूपरः समभवत् तꣳ स्वायै देवताया आऽलभत ततो वै स प्रजाः पशूनसृजत यः प्रजाकामः (४) पशुकामः स्यात् स एतं प्राजापत्यमजं तूपरमा लभेत प्रजापतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै प्रजां पशून् प्र जनयति यच्छ्मश्रुणस्तत् पुरुषाणाꣳ रूपं यत् तूपरस्तदश्वानां यदन्यतोदन् तद्गवां यदव्या इव शफास्तदवीनां यदजस्तदजानामेतावन्तो वै ग्राम्याः पशवस्तान् (५) रूपेणैवाव रुन्धे सोमापौष्णं त्रैतमा लभेत पशुकामो द्वौ वा अजायै स्तनौ नानैव द्वावभि जायेते ऊर्जं पुष्टिं तृतीयः सोमापूषणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै पशून् प्र जनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पशूनां प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधाति पूषा पशून् प्र जनयत्यौदुम्बरो यूपो (६) भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्क् पशव ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पशूनव रुन्धे[13] ॥ (एव, प्रजाया, अप, प्रजाकामः, स्तान्, यूप, एकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ १ ॥

१-४ अक्षोदरगृहीतस्य, ५ पशुप्रजाकामस्य, ६-१० ब्रह्मवर्चसकामस्य, ११-१२ विद्वत्सभाजयार्थिनः, १३-१६ तीव्ररोगमहितस्य, प्रजाकामस्य, विदुषो जनानुरागार्थिनः, पौरोहित्यस्पर्धावतश्च पशुविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मात् सृष्टाः पराचीरायन् ता वरुणमगच्छन् ता अन्वैत् ताः पुनरयाचत ता अस्मै न पुनरददात् सोऽब्रवीद्वरं वृणीष्वाथ मे पुनर्देहीति तासां वरमाऽलभत स कृष्ण एकशितिपादभवद्यो वरुणगृहीतः स्यात् स एतं वारुणं कृष्णमेकशितिपादमा लभेत वरुण-(१) -मेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति कृष्ण एकशितिपाद्भवति वारुणो ह्येष देवतया समृद्ध्यै सुवर्भानुरासुरः सूर्यं तमसाऽविध्यत् तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्य यत् प्रथमं तमोऽपाघ्नन्त्सा

कृष्णाऽविरभवद्यद् द्वितीयꣳ सा फल्गुनी यत् तृतीयꣳ सा बलक्षी यदध्यस्थाद्वपाकृन्तन्त्साऽविर्वशा (२) समभवत् ते देवा अब्रुवन् देवपशुर्वा अयꣳ समभूत् कस्मा इममा लप्स्यामह इत्यथ वै तर्ह्यल्पा पृथिव्यासीदजाता ओषधयस्तामविं वशामादित्येभ्यः कामायाऽलभन्त ततो वा अप्रथत पृथिव्यजायन्तौषधयो यः कामयेत प्रथेय पशुभिः प्र प्रजया जायेयेति स एतामविं वशामादित्येभ्यः कामाया-(३) -ऽऽलभेतादित्यानेव कामꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवैनं प्रथयन्ति पशुभिः प्र प्रजया जनयन्त्यसावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्मा एता मल्हा आऽलभन्ताऽऽग्नेयीं कृष्णग्रीवीꣳ सꣳहितामैन्द्रीꣳ श्वेतां बार्हस्पत्यां ताभिरेवास्मिन् रुचमदधुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एता मल्हा आ लभेता-(४) -ऽऽग्नेयीं कृष्णग्रीवीꣳ सꣳहितामैन्द्रीꣳ श्वेतां बार्हस्पत्यामेता एव देवताः स्वेन भागधेयेनोप धावति ता एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वसन्ता प्रातराग्नेयीं कृष्णग्रीवीमा लभेत ग्रीष्मे मध्यंदिने सꣳहितामैन्द्रीꣳ शरदपराह्णे श्वेतां बार्हस्पत्यां त्रीणि वा आदित्यस्य तेजाꣳसि वसन्ता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यंदिने शरदपराह्णे यावन्त्येव तेजाꣳसि तान्येवा (५) ऽव रुन्धे संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते संवत्सरो वै ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता संवत्सर एवास्मै ब्रह्मवर्चसं प्र यच्छति ब्रह्मवर्चस्येव भवति गर्भिणयो भवन्तीन्द्रियं वै गर्भ इन्द्रियमेवास्मिन् दधति सारस्वतीं मेषीमा लभेत य ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न वदेद्वाग्वै सरस्वती सरस्वतीमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति सैवास्मिन् (६) वाचं दधाति प्रवदिता वाचो भवत्यपन्नदती भवति तस्मान्मनुष्याः सर्वां वाचं वदन्त्याग्नेयं कृष्णग्रीवमा लभेत सौम्यं बभ्रुं ज्योगामयाव्यग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छति सोमꣳ रसो यस्य ज्योगामयत्यग्नेरेवास्य शरीरं निष्क्रीणाति सोमाद्रसमुत यदीतासुर्भवति जीवत्येव सौम्यं बभ्रुमा लभेताऽऽग्नेयं कृष्णग्रीवं प्रजाकामः सोमो (७) वै रेतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधात्यग्निः प्रजां प्र जनयति विन्दते प्रजामाग्नेयं कृष्णग्रीवमा लभेत सौम्यं बभ्रुं यो ब्राह्मणो विद्यामनूच्य न विरोचेत यदाग्नेयो भवति तेज एवास्मिन् तेन दधाति यत् सौम्यो ब्रह्मवर्चसं तेन कृष्णग्रीव आग्नेयो भवति तम एवास्मादप हन्ति श्वेतो भवति (८) रुचमेवास्मिन् दधाति बभ्रुः सौम्यो भवति ब्रह्मवर्चसमेवास्मिन् त्विषिं दधात्याग्नेयं कृष्णग्रीवमा लभेत सौम्यं बभ्रुमाग्नेयं कृष्णग्रीवं पुरोधायाꣳ स्पर्धमान आग्नेयो वै ब्राह्मणः सौम्यो राजन्योऽभितः सौम्यमाग्नेयौ भवतस्तेजसैव ब्रह्मणोभयतो राष्ट्रं परि गृह्णात्येकधा समावृङ्क्ते पुर एनं दधते[9] ॥ (लभेत वर्णं, वशे, -ऽनमवि, वशामादित्येभ्यः कामाय, मल्हा आ लभेत, तान्येव, सैवास्मिन्, सोमो, श्वेतो भवति, त्रिचत्वारिꣳशच्च) ॥ २ ॥

१-३ स्पर्धमानस्य, ४ सङ्ग्रामार्थिनः, ५-७ ग्रामकामस्य, ८ अन्नकामस्य, १० राज्यकामस्य, ११ पुनः प्रतिष्ठाकामस्य, १२ पापक्षयार्थिनः, १३ राज्यार्थिनश्च पशुविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवासुरा एषु लोकेष्वस्पर्धन्त स एतं विष्णुर्वामनमपश्यत् तꣳ स्वायै देवताया आऽलभत ततो वै स इमाँल्लोकानभ्यजयद्वैष्णवं वामनमा लभेत स्पर्धमानो विष्णुरेव भूत्वेमाँल्लोकानभि जयति विषम आ लभेत विषमा इव हीमे लोकाः समृद्ध्या इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललामं प्राशृङ्गमा लभेत

संग्रामे (१) संयत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनसा संग्रामं जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मन्युं मनो दधाति जयति तꣳ संग्राम-मिन्द्राय मरुत्वते पृश्निसक्थमा लभेत ग्रामकाम इन्द्रमेव मरुत्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै सजातान् प्र यच्छति ग्राम्येव भवति यदृषभस्तेन-(२)-ऐन्द्रो यत् पृश्निस्तेन मारुतः समृद्ध्यै पश्चात् पृश्निसक्थो भवति पश्चादन्ववसायिनीमेवास्मै विशं करोति सौम्यं बभ्रुमा लभेतान्नकामः सौम्यं वा अन्नꣳ सोममेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा अन्नं प्र यच्छत्यन्नाद एव भवति बभ्रुर्भवत्येतद्वा अन्नस्य रूपꣳ समृद्ध्यै सौम्यं बभ्रुमा लभेत यमलꣳ (३) राज्याय सन्तꣳ राज्यं नोपनमेत् सौम्यं वै राज्यꣳ सोममेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै राज्यं प्र यच्छत्युपैनꣳ राज्यं नमति बभ्रुर्भवत्येतद्वै सोमस्य रूपꣳ समृद्ध्यै इन्द्राय वृत्रतुरे ललामं प्राशृङ्गमा लभेत गतश्रीः प्रतिष्ठाकामः पाप्मानमेव वृत्रं तीर्त्वा प्रतिष्ठां गच्छती-न्द्रायाभिमातिघ्ने ललामं प्राशृङ्गमा (४) लभेत यः पाप्मना गृहीतः स्यात् पाप्मा वा अभिमातिरिन्द्रमेवाभिमातिहनꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मात् पाप्मानमभिमातिं प्र णुदते इन्द्राय वज्रिणे ललामं प्राशृङ्गमा लभेत यमलꣳ राज्याय सन्तꣳ राज्यं नोपनमेदिन्द्रमेव वज्रिणꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै वज्रं प्र यच्छति स एनं (५) वज्रो भूत्या इन्ध उपैनꣳ राज्यं नमति ललामः प्राशृङ्गो भवत्येतद्वै वज्रस्य रूपꣳ समृद्ध्यै ॥ (संग्रामे, तेन, -ऽलं, -अभिमातिघ्ने ललामं प्राशृङ्गमे, -नं, पञ्चदश च) ॥ ३ ॥

१-७ ब्रह्मवर्चसकामस्य, ८ स्वर्दोषनिवारणार्थिनः, ९-१० भ्रातृव्यवतः, ११ पापविमुक्तिकामस्य, १२-१५ भ्रष्टराज्यस्य च पशुविधानम् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

असावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्मा एतां दशर्षभामालभन्त तयैवास्मिन् रुचमदधु-र्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एतां दशर्षभामा लभेताममेवाऽऽदित्यꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वसन्ता प्रातस्त्रीन् ललामाना लभेत ग्रीष्मे मध्यन्दिने (१) त्रीञ्छितिपृष्ठाञ्छरद्यपराह्णे त्रीञ्छितिवारान् त्रीणि वा आदित्यस्य तेजाꣳसि वसन्ता प्रातर्ग्रीष्मे मध्यन्दिने शरद्यपराह्णे यावन्त्येव तेजाꣳसि तान्येवाव रुन्धे त्रयस्त्रय आ लभ्यन्तेऽभिपूर्वमेवास्मिन् तेजो दधाति संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते संवत्सरो वै ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता संवत्सर एवास्मै ब्रह्मवर्चसं प्र यच्छति ब्रह्मवर्चस्येव भवति संवत्सरस्य परस्तात् प्राजापत्यं कद्रु-(२)-मा लभेत प्रजापतिः सर्वा देवता देवतास्वेव प्रति तिष्ठति यदि बिभीयाद् दुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णꣳ श्याममा लभेत सौम्यो वै देवतया पुरुषः पौष्णाः पशवः स्वयैवास्मै देवतया पशुभिस्त्वचं करोति न दुश्चर्मा भवति देवाश्च वै यमश्चास्मिँल्लोकेऽस्पर्धन्त स यमो देवानामिन्द्रियं वीर्यमयुवत तद्यमस्य (३) यमत्वं ते देवा अमन्यन्त यमो वा इदमभूद्यद्वयꣳ स्म इति ते प्रजापतिमुपाधावन्त्स एतौ प्रजापतिरात्मन उक्षवशौ निरमिमीत ते देवा वैष्णावरुणीं वशामालभन्तैन्द्रमुक्षाणं तं वरुणेनैव ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्राणुदन्तैन्द्रेणैवास्येन्द्रियमवृञ्जत यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स स्पर्ध-

मानो वैष्णावरुणीं (४) वशामा लभेतैन्द्रमुक्षाणं वरुणेनैव भ्रातृव्यं ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्र णुदत ऐन्द्रेणैवास्येन्द्रियं वृङ्क्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवती-न्द्रो वृत्रमहन् तं वृत्रो हतः षोडशभिर्भोगैरसिनात् तस्य वृत्रस्य शीर्षतो गाव उदायन् ता वैदेह्योऽभवन् तासामृषभो जघनेऽनूदैत् तमिन्द्रो (५) ऽचायत् सोऽमन्यत यो वा इममालभेत मुच्येतास्मात् पाप्मन इति स आग्नेयं कृष्णग्रीवमालभतैन्द्रमृषभं तस्याग्निरेव स्वेन भागधेयेनोपसृतः षोडशधा वृत्रस्य भोगानप्यदहदैन्द्रेणेन्द्रियमात्मन्नधत्त यः पाप्मना गृहीतः स्यात् स आग्नेयं कृष्णग्रीवमा लभेतैन्द्रमृषभमग्निरेवास्य स्वेन भागधेयेनोपसृतः (६) पाप्मानमपि दहत्यैन्द्रेणेन्द्रियमात्मन् धत्ते मुच्यते पाप्मनो भवत्येव द्यावापृथिव्यां धेनुमा लभेत ज्योगपरुद्धोऽनयोर्हि वा एषोऽप्रतिष्ठितोऽथैष ज्योगपरुद्धो द्यावापृथिवी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति ते एवैनं प्रतिष्ठां गमयतः प्रत्येव तिष्ठति पर्यारिणी भवति पर्यारीव ह्येतस्य राष्ट्रं यो ज्योगपरुद्धः समृद्ध्यै वायव्यं (७) वत्समा लभेत वायुर्वा अनयोर्वत्स इमे वा एतस्मै लोका अपशुष्का विडपशुष्काऽथैष ज्योगपरुद्धो वायुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा इमाँल्लोकान् विशं प्र दापयति प्रास्मा इमे लोकाः स्नुवन्ति भुञ्जत्येनं विडुप तिष्ठते ॥ (मध्यन्दिने, कद्रुं, यमस्य, स्पर्धमानो वैष्णावरुणीं, तमिन्द्रो, ऽस्य स्वेन भागधेयेनोपसृतो, वायव्यं, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

१-५ पशुकामस्य, ६ प्रजाकामस्य, ७-८ भूतिकामस्य, ९-११ विच्छिन्नसोमपीथस्य, १२-१६ अभिचरतश्च पशवः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्रो वलस्य बिलमपौर्णोत् स य उत्तमः पशुरासीत् तं पृष्ठं प्रति सङ्गृह्योदक्खिदत् तꣳ सहस्रं पशवोऽनूदायन्त्स उन्नतोऽभव-द्यः पशुकामः स्यात् स एतमैन्द्रमुन्नतमा लभेतेन्द्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पशून् प्र यच्छति पशुमानेव भव-त्युन्नतो (१) भवति साहस्री वा एषा लक्ष्मी यदुन्नतो लक्ष्मियैव पशूनव रुन्धे यदा सहस्रं पशून् प्राप्नुयादथ वैष्णवं वामनमा लभेतैतस्मिन् वै तत् सहस्रमध्यतिष्ठत् तस्मादेष वामनः समीषितः पशुभ्य एव प्रजातेभ्यः प्रतिष्ठां दधाति कोऽर्हति सहस्रं पशून् प्राप्तुमित्याहुरहोरात्राण्येव सहस्रꣳ सम्पाद्याऽऽ लभेत पशवो (२) वा अहोरात्राणि पशूनेव प्रजातान् प्रतिष्ठां गमय-त्योषधीभ्यो वेहतमा लभेत प्रजाकाम ओषधयो वा एतं प्रजायै परि बाधन्ते योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दत ओषधयः खलु वा एतस्यै सूतुमपि घ्नन्ति या वेहद्भवत्योषधीरेव स्वेन भागधेयेनोप धावति ता एवास्मै स्वाद्योनेः प्रजां प्र जनयन्ति विन्दते (३) प्रजामापो वा ओषधयोऽसत् पुरुष आप एवास्मा असतः सद्ददति तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च नाऽऽपस्त्वावासतः सद्ददती-त्यैन्द्रीꣳ सूतवशामा लभेत भूतिकामोऽजातो वा एष योऽलं भूत्यै सन् भूतिं न प्राप्नोतीन्द्रं खलु वा एषा सूत्वा वशाऽभव-(४)-दिन्द्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं भूतिं गमयति भवत्येव यꣳ सूत्वा वशा स्यात् तमैन्द्रमेवाऽऽलभेतैतद्वाव तदिन्द्रियꣳ साक्षादेवेन्द्रियमव रुन्धे ऐन्द्राग्नं पुनरुत्सृष्टमा लभेत य आ तृतीयात् पुरुषात् सोमं न पिबेद्विच्छिन्नो वा एतस्य सोमपीथो यो ब्राह्मणः सन्ना (५) तृतीयात् पुरुषात् सोमं न पिबतीन्द्राग्नी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै सोमपीथं प्र

यच्छत उपैनꣳ सोमपीथो नमति यदैन्द्रो भवतीन्द्रियं वै सोमपीथ इन्द्रियमेव सोमपीथमव रुन्धे यदाग्नेयो भवत्याग्नेयो वै ब्राह्मणः स्वामेव देवतामनु सं तनोति पुनरुत्सृष्टो भवति पुनरुत्सृष्ट इव ह्येतस्य (६) सोमपीथः समृद्ध्यै ब्राह्मणस्पत्यं तूपरमा लभेताभिचरन् ब्रह्मणस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तस्मा एवैनमा वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छति तूपरो भवति क्षुरपविर्वा एषा लक्ष्मी यत् तूपरः समृद्ध्यै स्फ्यो यूपो भवति वज्रो वै स्फ्यो वज्रमेवास्मै प्र हरति शरमयं बर्हिः शृणात्येवैनं वैभीदक इध्मो (७) भिनत्त्येवैनम् ॥ (भवत्युन्नतः, पशवो, विन्दते ऽभवत्, सन्, तस्य, इध्म, त्रीणि च) ॥ ५ ॥

१-२ ग्रामकामस्य समानेषु श्रेष्ठ्यकामस्य च, ३-६ अन्नकामस्य, ७-८ इन्द्रियकामस्य, ९-१० दानकर्तृक (स्वप्रतिग्रहीतृक) दानकामस्य, ११-१२ अन्नकामस्य, १३-१४ ग्रामकामस्य, १५-१६ अज्ञातचिररोगग्रस्तस्य च पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

बार्हस्पत्यꣳ शितिपृष्ठमा लभेत ग्रामकामो यः कामयेत पृष्ठꣳ समानानाꣳ स्यामिति बृहस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं पृष्ठꣳ समानानां करोति ग्राम्येव भवति शितिपृष्ठो भवति बार्हस्पत्यो ह्येष देवतया समृद्ध्यै पौष्णꣳ श्याममा लभेतान्नकामोऽन्नं वै पूषा पूषणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा (१) अन्नं प्र यच्छत्यन्नाद एव भवति श्यामो भवत्येतद्वा अन्नस्य रूपꣳ समृद्ध्यै मारुतं पृश्निमा लभेतान्नकामोऽन्नं वै मरुतो मरुत एव स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मा अन्नं प्र यच्छन्त्यन्नाद एव भवति पृश्निर्भवत्येतद्वा अन्नस्य रूपꣳ समृद्ध्यै ऐन्द्रमरुणमा लभेतेन्द्रियकाम इन्द्रमेव (२) स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं दधातीन्द्रियाव्येव भव-त्यरुणो भ्रूमान् भवत्येतद्वा इन्द्रस्य रूपꣳ समृद्ध्यै सावित्रमुपध्वस्तमा लभेत सनिकामः सविता वै प्रसवानामीशे सवितारमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै सनिं प्र सुवति दानकामा अस्मै प्रजा भव-न्त्युपध्वस्तो भवति सावित्रो ह्येष (३) देवतया समृद्ध्यै वैश्वदेवं बहुरूपमा लभेतान्नकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वानेव देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मा अन्नं प्र यच्छन्त्यन्नाद एव भवति बहुरूपो भवति बहुरूपꣳ ह्यन्नꣳ समृद्ध्यै वैश्वदेवं बहुरूपमा लभेत ग्रामकामो वैश्वदेवा वै सजाता विश्वानेव देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मै (४) सजातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवति बहुरूपो भवति बहुदेवत्यो ह्येष समृद्ध्यै प्राजापत्यं तूपरमा लभेत यस्यानाज्ञातमिव ज्योगामयेत् प्राजापत्यो वै पुरुषः प्रजापतिः खलु वै तस्य वेद यस्यानाज्ञातमिव ज्योगामयति प्रजापतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं तस्मात् स्रामान्मुञ्चति तूपरो भवति प्राजापत्यो ह्ये-(५)-ष देवतया समृद्ध्यै ॥ (अस्मा, एव, -षो, -स्मै, हि, त्रीणि च) ॥ ६ ॥

१-३ ब्रह्मवर्चसकामस्य, ४ वृष्टिकामस्य, ५ प्रजाकामस्य, ६ अन्नकामस्य, ७ ग्रामकामस्य, ८-९ ब्रह्मवर्चसकामस्य, १०-११ अभिचरतश्च पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वषट्कारो वै गायत्रियै शिरोऽच्छिनत् तस्यै रसः परापतत् तं बृहस्पतिरुपागृह्णात् सा शितिपृष्ठा वशाऽभवद्यो द्वितीयः परापतत् तं मित्रावरुणावुपागृह्णीतां सा द्विरूपा वशाऽभवद्यस्तृतीयः परापतत्

तं विश्वे देवा उपागृह्णन्त्सा बहुरूपा वशाऽभवद्यश्चतुर्थः परापतत् स पृथिवीं प्राविशत् तं बृहस्पतिर- (१) -भ्यगृह्णादस्त्वेवायं भोगायेति स उक्षवशः समभवद्यल्लोहितं परापतत् तद्रुद्र उपागृह्णात् सा रौद्री रोहिणी वशाऽभव-द्बार्हस्पत्याꣳ शितिपृष्ठामा लभेत ब्रह्मवर्चसकामो बृहस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति छन्दसां वा एष रसो यद्वशा रस इव खलु (२) वै ब्रह्मवर्चसं छन्दसामेव रसेन रसं ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे मैत्रावरुणीं द्विरूपामा लभेत वृष्टिकामो मैत्रं वा अहर्वारुणी रात्रिरहोरात्राभ्यां खलु वै पर्जन्यो वर्षति मित्रावरुणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मा अहोरात्राभ्यां पर्जन्यं वर्षयतश्छन्दसां वा एष रसो यद्वशा रस इव खलु वै वृष्टिश्छन्दसामेव रसेन (३) रसं वृष्टिमव रुन्धे मैत्रावरुणीं द्विरूपामा लभेत प्रजाकामो मैत्रं वा अहर्वारुणी रात्रिरहोरात्राभ्यां खलु वै प्रजाः प्र जायन्ते मित्रावरुणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मा अहोरात्राभ्यां प्रजां प्र जनयतश्छन्दसां वा एष रसो यद्वशा रस इव खलु वै प्रजा छन्दसामेव रसेन रसं प्रजामव (४) रुन्धे वैश्वदेवीं बहुरूपामा लभेतान्नकामो वैश्वदेवं वा अन्नं विश्वानेव देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मा अन्नं प्र यच्छन्त्यन्नाद एव भवति छन्दसां वा एष रसो यद्वशा रस इव खलु वा अन्नं छन्दसामेव रसेन रसमन्नमव रुन्धे वैश्वदेवीं बहुरूपामा लभेत ग्रामकामो वैश्वदेवा वै (५) सजाता विश्वानेव देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मै सजातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवति छन्दसां वा एष रसो यद्वशा रस इव खलु वै सजाताश्छन्दसामेव रसेन रसꣳ सजातानव रुन्धे बार्हस्पत्यमुक्षवशमा लभेत ब्रह्मवर्चसकामो बृहस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं (६) दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति वशं वा एष चरति यदुक्षा वश इव खलु वै ब्रह्मवर्चसं वशेनैव वशं ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे रौद्रीꣳ रोहिणीमा लभेताभिचरन् रुद्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तस्मा एवैनमा वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छति रोहिणी भवति रौद्री ह्येषा देवतया समृद्ध्यै स्फ्यो यूपो (७) भवति वज्रो वै स्फ्यो वज्रमेवास्मै प्र हरति शरमयं बर्हिः शृणात्येवैनं वैभीदक इध्मो भिनत्त्येवैनम् ॥ (अभि, खलु, रसेना, -ऽव, ब्रह्मवर्चसं, यूप, एकान्नविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

१-३ ब्रह्मवर्चसकामस्य, ४-७ अभिचरतः, ८ महायज्ञप्राप्तिकामिनः, ९-१० पशुकामस्य, ११-१२ समव (-प्रतिष्ठा पूर्ति-सन्धि) कामस्य, १३-१६ वृष्टिकामस्य च पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

असावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्मा एताꣳ सौरीꣳ श्वेतां वशामालभन्त तयैवास्मिन् रुचमदधु-र्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एताꣳ सौरीꣳ श्वेतां वशामा लभेताममेवाऽऽदित्यꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवति बैल्वो यूपो भवत्यसौ (१) वा आदित्यो यतोऽजायत ततो बिल्व उदतिष्ठत् सयोन्येव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे ब्राह्मणस्पत्यां बभ्रुकर्णीमा लभेताभिचरन् वारुणं दशकपालं पुरस्तान्निर्वपेद्वरुणेनैव भ्रातृव्यं ग्राहयित्वा ब्रह्मणा स्तृणुते बभ्रुकर्णी भवत्येतद्वै ब्रह्मणो रूपꣳ समृद्ध्यै स्फ्यो यूपो भवति वज्रो वै स्फ्यो वज्रमेवास्मै प्र हरति शरमयं बर्हिः शृणात्ये-(२)-वैनं वैभीदक इध्मो भिनत्त्येवैनं वैष्णवं वामनमा लभेत

यं यज्ञो नोपनमेद्विष्णुर्वै यज्ञो विष्णुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै यज्ञं प्र यच्छत्युपैनं यज्ञो नमति वामनो भवति वैष्णवो ह्येष देवतया समृद्ध्यै त्वाष्ट्रं वडबमा लभेत पशुकामस्त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां (३) प्रजनयिता त्वष्टारमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पशून् मिथुनान् प्र जनयति प्रजा हि वा एतस्मिन् पशवः प्रविष्टा अथैष पुमान्त्सन् वडबः साक्षादेव प्रजां पशूनव रुन्धे मैत्रꣳ श्वेतमा लभेत संग्रामे संयत्ते समयकामो मित्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं मित्रेण सं नयति (४) विशालो भवति व्यवसाययत्येवैनं प्राजापत्यं कृष्णमा लभेत वृष्टिकामः प्रजापतिर्वै वृष्ट्या ईशे प्रजापतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पर्जन्यं वर्षयति कृष्णो भवत्येतद्वै वृष्ट्यै रूपꣳ रूपेणैव वृष्टिमव रुन्धे शबलो भवति विद्युतमेवास्मै जनयित्वा वर्षयत्यवाश्रृङ्गो भवति वृष्टिमेवास्मै नि यच्छति ॥ (अश्वैः, श्रृणाति, मिथुनानां, नयति, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ८ ॥

१-२ अन्नाद्यकामस्य, ३-५ अन्नकामस्य, ६ दीर्घरोगिणः ७-८ पुष्टिकामस्य च पशुविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वरुणꣳ सुषुवाणमन्नाद्यं नोपानमत् स एतां वारुणीं कृष्णां वशामपश्यत् ताꣳ स्वायै देवताया आ लभत ततो वै तमन्नाद्यमुपानमद्यमलमन्नाद्याय सन्तमन्नाद्यं नोपनमेत् स एतां वारुणीं कृष्णां वशामा लभेत वरुणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा अन्नं प्र यच्छत्यन्नाद (१) एव भवति कृष्णा भवति वारुणी ह्येषा देवतया समृद्ध्यै मैत्रꣳ श्वेतमा लभेत वारुणं कृष्णमपां चौषधीनां च संधावन्नकामो मैत्रीर्वा ओषधयो वारुणीरापोऽपां च खलु वा ओषधीनां च रसमुप जीवामो मित्रावरुणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मा अन्नं प्र यच्छतोऽन्नाद एव भवत्य-(२)-पां चौषधीनां च संधाव लभत उभयस्यावरुद्ध्यै विशाखो यूपो भवति द्वे ह्येते देवते समृद्ध्यै मैत्रꣳ श्वेतमा लभेत वारुणं कृष्णं ज्योगामयावी यन्मैत्रो भवति मित्रेणैवास्मै वरुणꣳ शमयति यद्वारुणः साक्षादेवैनं वरुणपाशान्मुञ्चत्युत यदीतासुर्भवति जीवत्येव देवा वै पुष्टिं नाविन्दन् (३) तां मिथुनेऽपश्यन् तस्यां न समराधयन्तावश्विनावब्रूतामावयोर्वा एषा मैतस्यां वदध्वमिति साश्विनोरेवाभवद्यः पुष्टिकामः स्यात् स एतामाश्विनीं यमीं वशामा लभेताश्विनावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन् पुष्टिं धत्तः पुष्यति प्रजया पशुभिः । (अन्नादो,ऽन्नाद एव भवत्य,-विन्दन्, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

१ दुर्ब्राह्मणस्य सोमपिपासोः, २ मृषाभिशस्तस्य, ३ आश्विनशस्त्रकाले सूर्यानाविर्भाववतश्च पशवः ।

आश्विनं धूम्रललाममा लभेत यो दुर्ब्राह्मणः सोमं पिपासेदश्विनौ वै देवानामसोमपावास्तां तौ पश्चा सोमपीथं प्राप्नुतामश्विनावेतस्य देवता यो दुर्ब्राह्मणः सोमं पिपासत्यश्विनावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै सोमपीथं प्र यच्छत उपैनꣳ सोमपीथो नमति यद्धूम्रो भवति धूम्रिमाणमेवास्मादप हन्ति ललामो (१) भवति मुखत एवास्मिन् तेजो दधाति वायव्यं गोमृगमा लभेत यमजघ्निवाꣳसमभिशꣳसेयुरपूता वा एतं वागृच्छति यमजघ्निवाꣳसमभिशꣳसन्ति नैष ग्राम्यः पशुर्नारण्यो यद्गोमृगो नेवैष ग्रामे नारण्ये यमजघ्निवाꣳसमभिशꣳसन्ति वायुर्वै देवानां पवित्रं वायुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवै-(२)-नं पवयति पराची वा एतस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छति तमः पाप्मानं प्र विशति यस्याऽऽश्विने शस्यमाने सूर्यो नाऽऽविर्भवति सौर्यं बहुरूपमा लभेतामुमेवादित्यꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मात् तमः पाप्मानमप हन्ति प्रतीच्यस्मै व्युच्छन्ती व्युच्छत्यप तमः पाप्मानꣳ हते ॥ (लभेत, स एव, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

काम्येष्टियाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ त्रिष्टुप्, ७ द्विपदा; ९ जगती; १२-१६ अनुष्टुप्, १८, २१ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः

इन्द्रं वो विश्वतस्परी*— इन्द्रं नरो*— मरुतो यद्ध वो दिवो*— या वः शर्म*— ॥

भरेष्विन्द्रꣳ सुहवꣳ हवामहेꣳहोमुचꣳ सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणꣳ सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥
प्रिया वो नाम (१) हुवे तुराणाम् । आ यत् तृपन्मरुतो वावशानाः ॥
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥
अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् सोमो रुद्रेभिरभि रक्षतु त्मना ।
इन्द्रो मरुद्भिर्ऋतुधा कृणोत्वादित्यैर्नो वरुणः सꣳ शिशातु ॥
सं नो देवो वसुभिरग्निः सꣳ (२) सोमस्तनूभी रुद्रियाभिः ।
समिन्द्रो मरुद्भिर्यज्ञियैः समादित्यैर्नो वरुणो अजिज्ञिपत् ॥
यथाऽऽदित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भी रुद्राः समजानताभि ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमाना विश्वे देवाः समनसो भवन्तु ॥
कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने । अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥
सं यदिषो वनामहे सꣳ हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस (३) ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तराऽसत् ॥
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥
धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा (४) असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥

११। १-२ (सं. ११३।१२); ११।३-४ (सं. १।५।११)

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीꣳरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनाऽऽदित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥
त्यान्नु क्षत्रियाꣳ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृडीकाꣳ अभिष्टये ॥
न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद् (५) युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥
आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके ॥
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः ॥
(नाम, सꣳ, शवसा, रक्षमाणा, धीर्या चिदे,-कान्नपञ्चाशच्च) ॥ ११ ॥

(वायव्यं ३१२ । प्रजापति-४४३ ।-देवासुरा २६५ । असा-३९२ ।-विग्री ३५३ । बार्हस्पत्यं २५३ । वषट्कारो २६९ । ऽसौ २५० । वरुण-१५५ ।-माश्विन-१४६ ।-मिन्द्र-१९९ । -मेकादश ॥ ३२७८ ॥]

[इति द्वितीयकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

इष्टिविधानम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

१-२ प्रजाकामस्य, ३ स्पर्धमानस्य, ४ सङ्ग्राममुपप्रयास्यतः, ५ जितशत्रोः, ६-७ समामेष्यतः, ८-९ समां प्राप्तस्य च पुरोडाशाश्चरवश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ॥

प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः सृष्टा इन्द्राग्नी अपागूहताꣳ सोऽचायत् प्रजापतिरिन्द्राग्नी वै मे प्रजा अपाघुक्षतामिति स एतमैन्द्राग्नमेकादशकपालमपश्यत् तं निरवपत् तावस्मै प्रजाः प्रासाधयता-मिन्द्राग्नी वा एतस्य प्रजामप गूहतो योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दत ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकाम इन्द्राग्नी (१) एव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै प्रजां प्र साधयतो विन्दते प्रजा-मैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वेन्द्राग्नी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति ताभ्यामेवेन्द्रियं वीर्यं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते वि पाप्मना भ्रातृव्येण जयते ऽप वा एतस्मादिन्द्रियं वीर्यं क्रामति यः संग्राममुपप्रयात्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं नि-(२)-र्वपेत् संग्राममुपप्रयास्यन्निन्द्राग्नी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेण वीर्येणोप प्र याति जयति तꣳ संग्रामं वि वा एष इन्द्रियेण वीर्येणर्ध्यते यः संग्रामं जयत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं जित्वेन्द्राग्नी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं (३) धत्तो नेन्द्रियेण वीर्येण व्यृध्यते ऽप वा एतस्मादिन्द्रियं वीर्यं क्रामति य एति जनतामैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेज्जनतामेष्यन्निन्द्राग्नी एव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं धत्तः सहेन्द्रियेण वीर्येण जनतामेति पौष्णं चरुमनु निर्व-

पेत् पूषा वा इन्द्रियस्य वीर्यस्यानुप्रदाता पूषणमेव (४) स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा इन्द्रियं वीर्यमनु प्र यच्छति क्षैत्रपत्यं चरुं निर्वपेज्जनतामागत्येयं वै क्षेत्रस्य पतिरस्यामेव प्रति तिष्ठत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालमुपरिष्टान्निर्वपेदस्यामेव प्रतिष्ठायेन्द्रियं वीर्यमुपरिष्टादात्मन् धत्ते ॥ (इन्द्राग्नी, नि,-वीर्य,-मेव,-काञ्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

१ आहिताग्नेर्दर्शपूर्णमासातिक्रमे, २ व्रतस्याचरणे, ३-४ विशाचप्रयाधायाम्, ५ अभिचरतः, ६ गोपुरुषमृत्युतप्तवतः, ७ युयुत्सोः, ८ आयुरुपुमीतस्य, ९ गृहदाहे च पुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ॥

अग्नये पथिकृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यो दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयेत् पथो वा एषोऽध्यपथेनैति यो दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयत्यग्निमेव पथिकृतꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमपथात् पन्थामपि नयत्यनड्वान् दक्षिणा वही ह्येष समृद्ध्यै अग्नये व्रतपतये (१) पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नव्रत्यमिव चरेदग्निमेव व्रतपतिꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं व्रतमा लम्भयति व्रत्यो भवत्य-ग्नये रक्षोघ्ने पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यꣳ रक्षाꣳसि सचेरन्नग्निमेव रक्षोहणꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्माद्रक्षाꣳस्यप हन्ति निशितायां निर्वपेत् (२) निशितायाꣳ हि रक्षाꣳसि प्रेरते संप्रेर्णान्येवैनानि हन्ति परिश्रिते याजयेद्रक्षसामनन्ववचाराय रक्षोघ्नी याज्यानुवाक्ये भवतो रक्षसाꣳ स्तृत्या अग्नये रुद्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन्नेषा वा अस्य घोरा तनूर्यद्रुद्रस्तस्मा एवैनमा वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छत्य-ग्नये सुरभिमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य गावो वा पुरुषा (३) वा प्रमीयेरन् यो वा बिभीयादेषा वा अस्य भेषज्या तनूर्यत् सुरभिमती तयैवास्मै भेषजं करोति सुरभिमते भवति पूतीगन्धस्यापहत्या अग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे संयत्ते भागधेयेनैवैनꣳ शमयित्वा परानभि निर्दिशति यमवरेषां विध्यन्ति जीवति स यं परेषां प्र स मीयते जयति तꣳ संग्राम- (४)-मभि वा एष एतानुच्यति येषां पूर्वापरा अन्वञ्चः प्रमीयन्ते पुरुषाहुतिर्ह्यस्य प्रियतमाग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्भागधेयेनैवैनꣳ शमयति नैषां पुराऽऽयुषोऽपरः प्रमीयते ऽभि वा एष एतस्य गृहानुच्यति यस्य गृहान् दहत्यग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्भागधेयेनैवैनꣳ शमयति नास्यापरं गृहान् दहति ॥ (व्रतपतये, निशितायां निर्वपेत्, पुरुषाः, संग्रामं, न, चत्वारि च) ॥ २ ॥

१ कामोपनमनेच्छोः, २ क्षेत्रादौ स्पर्धमानस्य, ३ अभिचर्यमाणस्य, ४ सर्वायुःप्राप्तिकामस्य, ५ भूतिकामस्य, ६ काम्तिकामस्य, ७ तेजःकामस्य, ८ पराभिभवेच्छोश्च पुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये कामाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदग्निमेव कामꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं कामेन समर्धयत्युपैनं कामो नमत्य-ग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् स्पर्धमानः क्षेत्रे वा सजातेषु वाग्निमेव यविष्ठꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति तेनैवेन्द्रियं वीर्यं भ्रातृव्यस्य (१) युवते वि पाप्मना भ्रातृव्येण जयते ऽग्नये यविष्ठाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणोऽग्निमेव यविष्ठꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्माद्रक्षाꣳसि यवयति नैनमभिचरन्त्स्तृणुते ऽग्नय आयुष्मते पुरो-

डाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत सर्वमायुरियामित्यग्निमेवाऽऽयुष्मन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मि-(२)-न्नायुर्दधाति सर्वमायुरेत्य्[१]-अग्नये जातवेदसे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्भूतिकामोऽग्निमेव जातवेदसं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं भूतिं गमयति भवत्येवा[२]-ग्नये रुक्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्रुक्कामोऽग्निमेव रुक्मन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् रुचं दधाति रोचत एवा[३]-ग्नये तेजस्वते पुरोडाश-(३)-मष्टाकपालं निर्वपेत् तेजस्कामोऽग्निमेव तेजस्वन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् तेजो दधाति तेजस्व्येव भवत्य्[४]-अग्नये साहन्त्याय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् सीक्षमाणोऽग्निमेव साहन्त्यं स्वेन भागधेयेनोप धावति तेनैव सहते यं सीक्षते[५] ॥ (आयुष्मन्त,-स्मिन्, तेजस्वते पुरोडाश,-मष्टाविंशतिश्च) ॥ ३ ॥

१ अन्नवत्कामस्य, २ अन्नाद्यकामस्य, ३ अन्नपतित्वकामस्य, ४ दीर्घरोगयुक्तकामस्य, ५ चक्षुष्पाटवकामस्य, ६ पुत्रकामस्य पुरोडाशाः, ७ रसकामस्य चरुः, ८ धनकामस्य, ९ संग्रामजयपूर्वकधनकामस्य, १० द्विरग्न्युद्धरणे, ११-१४ उद्धृताग्निनाशे पुरोडाशाः ॥ १५ त्रिष्टुप्। विश्वेदेवा ऋषयः।

अग्नयेऽन्नवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नवान्त्स्यामित्यग्निमेवान्नवन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमन्नवन्तं करोत्यन्नवानेव भवत्य्[१]-अग्नयेऽन्नादाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नादः स्यामित्यग्निमेवान्नादं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमन्नादं करोत्यन्नाद (१) एव भवत्य्[२]-अग्नयेऽन्नपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नपतिः स्यामित्यग्निमेवान्नपतिं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमन्नपतिं करोत्यन्नपतिरेव भवत्य्[३]-अग्नये पवमानाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये पावकायाग्नये शुचये ज्योगामयावी यदग्नये पवमानाय निर्वपति प्राणमेवास्मिन् तेन दधाति यदग्नये (२) पावकाय वाचमेवास्मिन् तेन दधाति यदग्नये शुचय आयुरेवास्मिन् तेन दधात्युत यदीतासुर्भवति जीवत्येवै[४]-तामेव निर्वपेच्चक्षुष्कामो यदग्नये पवमानाय निर्वपति प्राणमेवास्मिन् तेन दधाति यदग्नये पावकाय वाचमेवास्मिन् तेन दधाति यदग्नये शुचये चक्षुरेवास्मिन् तेन दधात्यु-(३)-त यद्यन्धो भवति प्रैव पश्यत्य्[५]-अग्नये पुत्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय पुत्रिणे पुरोडाशमेकादशकपालं प्रजाकामोऽग्निरेवास्मै प्रजां प्रजनयति वृद्धामिन्द्रः प्र यच्छत्य्[६]-अग्नये रसवतेऽजक्षीरे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत रसवान्त्स्यामित्यग्निमेव रसवन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं रसवन्तं करोति (४) रसवानेव भवत्यजक्षीरे भवत्याग्नेयी वा एषा यदजा साक्षादेव रसमव रुन्धे[७] ऽग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत वसुमान्त्स्यामित्यग्निमेव वसुमन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं वसुमन्तं करोति वसुमानेव भवत्य्[८]-अग्नये वाजसृते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे संयत्ते वाजं (५) वा एष सिसीर्षति यः संग्रामं जिगीषत्यग्निः खलु वै देवानां वाजसृदग्निमेव वाजसृतं स्वेन भागधेयेनोप धावति धावति वाजं हन्ति वृत्रं जयति तं संग्राममथो अग्निरिव न प्रतिधृषे भवत्य्[९]-अग्नयेऽग्निवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याग्नावग्निमभ्युद्धरेयुर्निर्दिष्टभागो वा एतयोरन्योऽनिर्दिष्टभागोऽन्यस्तौ संभवन्तौ यजमान- (६) -मभि संभवतः स ईश्वर आर्तिमार्तोर्यदग्नयेऽग्निवते निर्वपति भागधेयेनैवैनौ शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानो[१०] ऽग्नये ज्योतिष्मते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याग्निरुद्धृतोऽहुतेऽग्निहोत्र उद्वायेद्[११] अपर

आदीप्यानुद्धृत्य इत्याहु[१२]-स्तत् तथा न कार्यं यद्भागधेयमभि पूर्व उद्ध्रियते किमपरोऽभ्युत् (७) ध्रियेतेति[१३] तान्येवावक्षाणानि संनिधाय मन्थे[१४]-

-दितः प्रथमं जज्ञे अग्निः स्वाद्योनेरधि जातवेदाः।

स गायत्रिया त्रिष्टुभा जगत्या देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्निति[१५]

छन्दोभिरेवैनं स्वाद्योनेः प्र जनयत्य्[१६]-एष वाव सोऽग्निरित्याहु[१७]-र्ज्योतिस्त्वा अस्य परापतितमिति यदग्नये ज्योतिष्मते निर्वपति यदेवास्य (८) ज्योतिः परापतितं तदेवाव रुन्धे[१८] ॥ (अन्नादो, ऽग्नये, दधाति, करोति, वाजं, यजमान,-मुद्,-स्य, षट् च) ॥ ४ ॥

१-२ अभिशस्यमानस्य प्रजाकामस्य च पुरोडाशचरवः, ३ पुत्रजन्मवतः, ४-५ दर्शपूर्णमासातिक्रमवतः, ६-७ अग्निमुद्वासयिष्यतः, ८-१३ ग्रामकामस्य पुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः।

वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्वारुणं चरुं दधिक्राव्णे चरुमभिशस्यमानो यद्वैश्वानरो द्वादशकपालो भवति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरेणैवैनं स्वदयत्यप पापं वर्णं हते वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति दधिक्राव्णा पुनाति हिरण्यं दक्षिणा पवित्रं वै हिरण्यं पुनात्येवैनमाद्यमस्यान्नं भवत्य्[१]-एतामेव निर्वपेत् प्रजाकामः संवत्सरो (१) वा एतस्याशान्तो योनिं प्रजायै पशूनां निर्दहति योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते यद्वैश्वानरो द्वादशकपालो भवति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरमेव भागधेयेन शमयति सोऽस्मै शान्तः स्वाद्योनेः प्रजां प्र जनयति वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति दधिक्राव्णा पुनाति हिरण्यं दक्षिणा पवित्रं वै हिरण्यं पुनात्येवैनं (२) विन्दते प्रजां[२] वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पुत्रे जाते यदष्टाकपालो भवति गायत्रियैवैनं ब्रह्मवर्चसेन पुनाति यन्नवकपालस्त्रिवृतैवास्मिन् तेजो दधाति यद्दशकपालो विराजैवास्मिन्नन्नाद्यं दधाति यदेकादशकपालस्त्रिष्टुभैवास्मिन्निन्द्रियं दधाति यद् द्वादशकपालो जगत्यैवास्मिन् पशून् दधाति यस्मिन् जात एतामिष्टिं निर्वपति पूत (३) एव तेजस्व्यन्नाद इन्द्रियावी पशुमान् भवत्य्-अव वा एष सुवर्गाल्लोकाच्छिद्यते यो दर्शपूर्णमासयाजी सन्नमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपादयति सुवर्गाय हि लोकाय दर्शपूर्णमासाविज्येते वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदमावास्यां वा पौर्णमासीं वाऽतिपाद्य संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरमेव प्रीणात्यथो संवत्सरमेवास्मा उप दधाति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्या (४) अथो देवता एवान्वारभ्य सुवर्गं लोकमेति वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते न वा एतस्य ब्राह्मणा ऋतायवः पुराऽन्नमक्षन्नाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्वैश्वानरं द्वादशकपालमग्निमुद्वासयिष्यन् यदष्टाकपालो भवत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्मा आतिथ्यं करोत्यथो यथा जनं यतेऽवसं करोति तादृ- (५) -गेव तद् द्वादशकपालो वैश्वानरो भवति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरः खलु वा अग्नेर्योनिः स्वामेवैनं योनिं गमयत्याद्यमस्यान्नं भवति वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेन्मारुतं सप्तकपालं ग्रामकाम आहवनीये वैश्वानरमधि श्रयति गार्हपत्ये मारुतं पापवस्यसस्य विधृत्यै द्वादशकपालो वैश्वानरो भवति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मै सजाताꣳश्च्यावयति मारुतो भवति (६) मरुतो वै देवानां विशो देवविशेनैवास्मै मनुष्य-

विशमव रुन्धे[११] सप्तकपालो भवति सप्तगणा वै मरुतो गणश एवास्मै सजातानव रुन्धे[१२] ऽनूच्यमान आ सादयति विशमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति[१३] ॥ (संवत्सर, एनं, पूतः, समष्ट्यै, तादृग्, भवति,-द्वात्रिंशच्च) ॥ ५ ॥

१ संग्राममुपप्रयास्यतश्चरुः, २ संग्रामभूमिं प्राप्तस्य, ३ विद्विषतोरन्नं अभ्यवहर्तुः, ४ शपथं कृत्वा द्रुह्यतः, ५ अविं प्रतिगृह्णानस्य, ६ उभयतोदन्तं प्रतिगृह्णानस्य, ७ याचितुं प्रयास्यतः, ८-९ याचित्वा प्रत्यागच्छतश्च पुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः।

आदित्यं चरुं निर्वपेत् संग्राममुपप्रयास्यन्नियं वा अदितिरस्यामेव पूर्वे प्रति तिष्ठन्ति[१] वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदायतनं गत्वा संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरः खलु वै देवानामायतनमेतस्माद्वा आयतनाद्देवा असुरानजयन् यद्वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति देवानामेवायतने यतते जयति तं संग्राम[२]-मेतस्मिन् वा एतौ मृजाते (१) यो विद्विषाणयोरन्नमत्ति वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्विद्विषाणयोरन्नं जग्ध्वा संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरस्वदितमेवात्ति नास्मिन् मृजाते[३] संवत्सराय वा एतौ समिमाते यौ समिमाते तयोर्यः पूर्वोऽभिद्रुह्यति तं वरुणो गृह्णाति वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् समिमानयोः पूर्वोऽभिद्रुह्य संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरमेवाऽऽप्त्वा निर्वरुणं (२) परस्तादभि द्रुह्यति नैनं वरुणो गृह्णात्या[४]-व्यं वा एष प्रति गृह्णाति योऽविं प्रतिगृह्णाति वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदविं प्रतिगृह्य संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरस्वदितामेव प्रति गृह्णाति नाऽऽव्यं प्रति गृह्णात्या[५]-त्मनो वा एष मात्रामाप्नोति य उभयादत् प्रतिगृह्णात्यश्वं वा पुरुषं वा वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेदुभयादत् (३) प्रतिगृह्य संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरस्वदितमेव प्रतिगृह्णाति नात्मनो मात्रामाप्नोति[६] वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् सनिमेष्यन्त्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो यदा खलु वै संवत्सरं जनतायां चरत्यथ स धनार्घो भवति यद्वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपति संवत्सरसातामेव सनिमभि प्र च्यवते दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति[७] यो वै संवत्सरं (४) प्रयुज्य न विमुञ्चत्यप्रतिष्ठानो वै स भवत्येतमेव वैश्वानरं पुनरागत्य निर्वपेद्यमेव प्रयुङ्क्ते तं भागधेयेन वि मुञ्चति प्रतिष्ठित्यै[८] यया रज्ज्वोत्तमां गामाजेत् तां भ्रातृव्याय प्र हिणुयान्निर्ऋतिमेवास्मै प्र हिणोति[९] ॥ (मृजाते, वरुण,-मुभयादत्, संवत्सरं, षट्त्रिंशच्च) ॥ ६ ॥

१-२ पशुकामस्य चरुः, ३ पशुकामस्य, ४ ब्रह्मवर्चसकामस्य, ५ अन्नकामस्य, ६ भूतिकामस्य, ७ पाप्मनागृहीतस्य, ८ अरेः पीडितस्य, ९ भयस्य पीडितस्य वा, १० महायज्ञेच्छोः पुरोडाशाः ॥

ऐन्द्रं चरुं निर्वपेत् पशुकाम ऐन्द्रा वै पशव इन्द्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पशून् प्र यच्छति पशुमानेव भवति[१] चरुर्भवति स्वादेवास्मै योनेः पशून् प्र जनयती[२]-न्द्रायेन्द्रियावते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत् पशुकाम इन्द्रियं वै पशव इन्द्रमेवेन्द्रियावन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स (१) एवास्मा इन्द्रियं पशून् प्र यच्छति पशुमानेव भवती[३]-न्द्राय घर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामो ब्रह्मवर्चसं वै घर्म इन्द्रमेव घर्मवन्तं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवती[४]-न्द्रायार्कवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदन्नकामोऽर्को वै देवानामन्न-मिन्द्रमेवार्कवन्तं स्वेन भागधेयेनो-(२)-प धावति स एवास्मा अन्नं प्र यच्छत्यन्नाद एव भवती[५]-न्द्राय

घर्मवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायेन्द्रियावत इन्द्रायार्कवते भूतिकामो यदिन्द्राय घर्मवते निर्वपति शिर एवास्य तेन करोति यदिन्द्रायेन्द्रियावत आत्मानमेवास्य तेन करोति यदिन्द्रायार्कवते भूत एवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति भवत्येवे[६]-न्द्राया-(३)-ऽꣳहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः पाप्मना गृहीतः स्यात् पाप्मा वा अꣳह इन्द्रमेवाꣳहोमुचꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं पाप्मनोऽꣳहसो मुञ्चती[७]-न्द्राय वैमृधाय पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं मृधोऽभि प्रवेपेरन् राष्ट्राणि वाऽभि समियुरिन्द्रमेव वैमृधꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मान्मृधो (४) ऽप हन्ती[८]-न्द्राय त्रात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्बद्धो वा परियत्तो वेन्द्रमेव त्रातारꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं त्रायत इन्द्रायार्काश्वमेधवते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यं महायज्ञो नोपनमेदेते वै महायज्ञस्यान्त्ये तनू यदर्काश्वमेधाविन्द्रमेवार्काश्वमेधवन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मा (५) अन्ततो महायज्ञं च्यावयत्युपैनं महायज्ञो नमति[१०] ॥ (स, भागधेयेने,-न्द्राय, मृधो, ऽस्मै, सप्त च) ॥ ७ ॥

१ ग्रामकामस्य पुरोडाशः, २-३ सेनाकामस्य चरुः, ४ युद्धार्थिनः, ५ नष्टधैर्यस्य, ६ अन्यकर्तृकदानकामस्य, ७ [illegible]स्य, ८ राज्यभ्रष्टस्य भ्रश्यमानस्य वा, ९-११ अन्यसाम्यमनिच्छतः पुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः।

इन्द्रायान्वृजवे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्ग्रामकाम इन्द्रमेवान्वृजुꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै सजातानानुकान् करोति ग्राम्येव भवती[१]-न्द्राण्यै चरुं निर्वपेद्यस्य सेनाऽसꣳशितेव स्यादिन्द्राणी वै सेनायै देवतेन्द्राणीमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति सैवास्य सेनाꣳ सꣳ श्यति[२] बल्बजानपी- (१) -ध्मे सं नह्येद्गौर्यत्राधिष्कन्नान्यमेहत् ततो बल्बजा उदतिष्ठन् गवामेवैनं न्यायमपिनीय गा वेदयती[३]-न्द्राय मन्युमते मनस्वते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे संयत्त इन्द्रियेण वै मन्युना मनसा संग्रामं जयतीन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मन्युं मनो दधाति जयति तꣳ (२) संग्राम[४]-मेतामेव निर्वपेद्यो हतमनाः स्वयं पाप इव स्यादेतानि हि वा एतस्मादपक्रान्तान्यथैष हतमनाः स्वयं पाप इन्द्रमेव मन्युमन्तं मनस्वन्तꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं मन्युं मनो दधाति न हतमनाः स्वयं पापो भवती[५]-न्द्राय दात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्यु-(३)-रितीन्द्रमेव दातारꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै दानकामाः प्रजाः करोति दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ती[६]-न्द्राय प्रदात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेद्यस्मै प्रत्तमिव सन्न प्रदीयेतेन्द्रमेव प्रदातारꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै प्र दापयती[७]-न्द्राय सुत्राम्णे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धो वा (४) ऽपरुध्यमानो वेन्द्रमेव सुत्रामाणꣳ स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं त्रायतेऽनपरुध्यो भवती[८]-न्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत् स न व्यावृतमगच्छत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतमैन्द्रमेकादशकपालं निरवपत् तेनैवास्मिन्निन्द्रियमदधाच्छक्वरी याज्यानुवाक्ये अकरोद्वज्रो वै शक्वरी स एनं वज्रो भूत्या ऐन्ध (५) सोऽभवत् सोऽबिभेद्भूतः प्र मा धक्ष्यतीति स प्रजापतिं पुनरुपाधावत् स प्रजापतिः शक्वर्या अधि रेवतीं निरमिमीत शान्त्या अप्रदाहाय योऽलꣳ श्रियै सन्त्सदृङ् समानैः स्यात् तस्मा एतमैन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रमेव स्वेन भागधेयेनोप

धावति स एवास्मिन्निन्द्रियं दधाति रेवती पुरोऽनुवाक्या भवति (६) शान्त्या अप्रदाहाय शाक्वरी याज्या वज्रो वै शाक्वरी स एनं वज्रो भूत्वा इन्धे भवत्येव ॥ (अपि तत्, एवं, वै,-न्व, भवति, चतुर्दश च) ॥ ८ ॥

१ अभिचरतः, २ प्रत्यभिचरतः, ३ पराभिचारपीडितस्य च चरुपुरोडाशौ, ४ यशोपनतिकामस्य पुरोडाशः, ५-७ चक्षुष्कामस्य चरुः, ८-९ यज्ञकर्तृभ्रातृव्यवत इन्द्रियसामर्थ्यविनाशकामस्य, १०-११ भ्रातृव्योपाकृतयज्ञानुष्ठपतकामिनः पुरोडाशः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्त्सरस्वत्याज्यभागा स्याद्बार्हस्पत्यश्चरुर्यदाग्नावैष्णव एकादशकपालो भवत्यग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताभिश्चैवैनं यज्ञेन चाभि चरति सरस्वत्याज्यभागा भवति वाग्वै सरस्वती वाचैवैनमभि चरति बार्हस्पत्यश्चरुर्भवति ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनमभि चरति (१) प्रति वै परस्तादभिचरन्तमभि चरन्ति द्वेद्वे पुरोऽनुवाक्ये कुर्यादतिप्रयुक्त्या एतयैव यजेताभिचर्यमाणो देवताभिरेव देवताः प्रतिचरति यज्ञेन यज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्म स देवताश्चैव यज्ञं च मध्यतो व्यवसर्पति तस्य न कुतश्चनोपाव्याधो भवति नैनमभिचरन्त्स्तृणुते आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्यं यज्ञो नो-(२)-पनमेदग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञोऽग्निं चैव विष्णुं च स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै यज्ञं प्र यच्छत उपैनं यज्ञो नमत्याग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामोऽग्नेर्वै चक्षुषा मनुष्या वि पश्यन्ति यज्ञस्य देवा अग्निं चैव विष्णुं च स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवा-(३)-ऽस्मिन् चक्षुर्धत्तश्चक्षुष्मानेव भवति धेन्वै वा एतद्रेतो यदाज्यमनडुहस्तण्डुला मिथुनादेवास्मै चक्षुः प्र जनयति घृते भवति तेजो वै घृतं तेजश्चक्षुस्तेजसैवास्मै तेजश्चक्षुरव रुन्धे इन्द्रियं वै वीर्यं वृङ्क्ते भ्रातृव्यो यजमानोऽयजमानस्याध्वरकल्पां प्रति निर्वपेद्भ्रातृव्ये यजमाने नास्येन्द्रियं (४) वीर्यं वृङ्क्ते पुरा वाचः प्रवदितोर्निर्वपेद्यावत्येव वाक् तामप्रोदितां भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते तामस्य वाचं प्रवदन्तीमन्या वाचोऽनु प्र वदन्ति ता इन्द्रियं वीर्यं यजमाने दधत्याग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत् प्रातःसवनस्याऽऽकाले सरस्वत्याज्यभागा स्याद्बार्हस्पत्यश्चरुर्यदष्टाकपालो भवत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं प्रातः सवनमेव तेनाऽऽप्नोत्या-(५)-ग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेन्माध्यंदिनस्य सवनस्याऽऽकाले सरस्वत्याज्यभागा स्याद्बार्हस्पत्यश्चरुर्यदेकादशकपालो भवत्येकादशाक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं माध्यंदिनमेव सवनं तेनाऽऽप्नोत्याग्नावैष्णवं द्वादशकपालं निर्वपेत् तृतीयसवनस्याऽऽकाले सरस्वत्याज्यभागा स्याद्बार्हस्पत्यश्चरुर्यद् द्वादशकपालो भवति द्वादशाक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवनमेव तेनाऽऽप्नोति देवताभिरेव देवताः (६) प्रतिचरति यज्ञेन यज्ञं वाचा वाचं ब्रह्मणा ब्रह्म कपालैरेव छन्दाꣳस्याप्नोति पुरोडाशैः सवनानि मैत्रावरुणमेककपालं निर्वपेद्वशायै काले यैवासौ भ्रातृव्यस्य वशाऽनूबन्ध्या सो एवैषैतस्यैककपालो भवति न हि कपालैः पशुमर्हत्याप्तुम् ॥ (ब्रह्मणैवैनमभि चरति, यज्ञो न, तावेवा, -ऽस्येन्द्रियं, -माप्नोति देवताः, सप्तत्रिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

१-५ ब्रह्मवर्चसकामस्य, ६ चर्मरोगभीतस्य, ७ प्रजाकामस्य, ८ अभिचरतः, ९-१० दीर्घरोगयुतस्य, ११ परस्य वैरिजननकामस्य च चरवः ॥

असावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्मा एतꣳ सौमारौद्रं चरुं निरवपन्

१० (तै. सं.)

तेनैवास्मिन् रुचमदधुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एतꣳ सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् सोमं चैव रुद्रं च स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं धत्तो ब्रह्मवर्चस्येव भवति तिष्यापूर्णमासे निर्वपेद्रुद्रो (१) वै तिष्यः सोमः पूर्णमासः साक्षादेव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे परिश्रिते याजयति ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै श्वेतायै श्वेतवत्सायै दुग्धं मथितमाज्यं भवत्याज्यं प्रोक्षणमाज्येन मार्जयन्ते यावदेव ब्रह्मवर्चसं तत् सर्वं करोत्य-ति ब्रह्मवर्चसं क्रियत इत्याहुरीश्वरो दुश्चर्मा भवितोरिति मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्याद्यद्वै किं च मनुरवदत् तद्भेषजं (२) भेषजमेवास्मै करोति यदि बिभीयाद्दुश्चर्मा भविष्यामीति सोमापौष्णं चरुं निर्वपेत् सौम्यो वै देवतया पुरुषः पौष्णाः पशवः स्वयैवास्मै देवतया पशुभिस्त्वचं करोति न दुश्चर्मा भवति सोमारौद्रं चरुं निर्वपेत् प्रजाकामः सोमो वै रेतोधा अग्निः प्रजानां प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधात्यग्निः प्रजां प्र जनयति विन्दते (३) प्रजाꣳ सौमारौद्रं चरुं निर्वपेदभिचरन्त्सौम्यो वै देवतया पुरुष एष रुद्रो यदग्निः स्वाया एवैनं देवतायै निष्क्रीय रुद्रायापि दधाति ताजगार्तिमार्च्छति सोमारौद्रं चरुं निर्वपेज्ज्योगामयावी सोमं वा एतस्य रसो गच्छत्यग्निꣳ शरीरं यस्य ज्योगामयति सोमादेवास्य रसं निष्क्रीणात्यग्नेः शरीरमुत यदी-(४)-तासुर्भवति जीवत्येव सौमारुद्रयोर्वा एतं ग्रसितꣳ होता निष्खिदति स ईश्वर आर्तिमार्तोरनड्वान् होत्रा देयो वह्निर्वा अनड्वान् वह्निर्होता वह्निनैव वह्निमात्मनः स्पृणोति सोमारौद्रं चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वेऽस्मा आयतने भ्रातृव्यं जनयेयमिति वेदिं परिगृह्यार्धमुद्धन्यादर्धं नार्धं बर्हिषः स्तृणीयादर्धं (५) नार्धमिध्मस्याभ्यादध्यादर्धं न स्व एवास्मा आयतने भ्रातृव्यं जनयति ॥ (रुद्रो, भेषजं, विन्दते, यदु,-र्धं, द्वादश च) ॥ १० ॥

१ ग्रामकामस्य, २ प्रजाराजयोर्विरोधकामस्य, ३ उक्तविरोधसमाधानेच्छोः, ४ ग्रामकामस्य पुरोडाशः, ५ ग्रामकामस्य चरुः, ६ समानैरप्रियस्य चरुपुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतꣳ सप्तकपालं ग्रामकाम इन्द्रं चैव मरुतश्च स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मै सजातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवत्याहवनीय ऐन्द्रमधि श्रयति गार्हपत्ये मारुतं पापवस्यसस्य विधृत्यै सप्तकपालो मारुतो भवति सप्तगणा वै मरुतो गणश एवास्मै सजातानव रुन्धेऽनूच्यमान आ सादयति विशमेवा-(१)-स्मा अनुवर्त्मानं करोत्य-तामेव निर्वपेद्यः कामयेत क्षत्राय च विशे च समदं दध्यामित्यैन्द्रस्यावद्यन् ब्रूयादिन्द्रायानु ब्रूहीत्याश्राव्य ब्रूयान्मरुतो यजेति मारुतस्यावद्यन् ब्रूयान्मरुद्भ्योऽनु ब्रूहीत्याश्राव्य ब्रूयादिन्द्रं यजेति स्व एवैभ्यो भागधेये समदं दधाति वितृꣳहाणास्तिष्ठन्त्ये-तामेव (२) निर्वपेद्यः कामयेत कल्पेरन्निति यथादेवतमवदाय यथादेवतं यजेद्भागधेयेनैवैनान् यथायथं कल्पयति कल्पन्त एवै-न्द्रमेकादशकपालं निर्वपेद्वैश्वदेवं द्वादशकपालं ग्रामकाम इन्द्रं चैव विश्वाꣳश्च देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मै सजातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवत्यैन्द्रस्यावदाय वैश्वदेवस्याव द्येदथैन्द्रस्यो-(३)-परिष्टादिन्द्रियेणैवास्मा उभयतः सजातान् परि गृह्णात्युपाधाय्यपूर्वयं वासो दक्षिणा सजातानामुपहित्यै पृश्न्यै दुग्धे प्रैयङ्गवं चरुं निर्वपेन्मरुद्भ्यो ग्रामकामः पृश्न्यै वै पयसो मरुतो जाताः पृश्न्यै प्रियङ्गवो मारुताः खलु वै देवतया सजाता मरुत एव स्वेन भागधेयेनोप धावति

त एवास्मै सजातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवति प्रियवती याज्यानुवाक्ये (४) भवतः प्रियमेवैनꣳ समानानां करोति द्विपदा पुरोऽनुवाक्या भवति द्विपद एवाव रुन्धे चतुष्पदा याज्या चतुष्पद एव पशूनव रुन्धे देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा मिथो विप्रिया आसन् तेऽन्योऽन्यस्मै ज्यैष्ठ्यायातिष्ठमानाश्चतुर्धा व्यक्रामन्नग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैः स इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावत् त-(५)-मेतया संज्ञान्याऽयाजयदग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपत् सोमाय रुद्रवते चरुमिन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादशकपालं वरुणायाऽऽदित्यवते चरुं ततो वा इन्द्रं देवा ज्यैष्ठ्यायाभि समजानत यः समानैर्मिथो विप्रियः स्यात् तमेतया संज्ञान्या याजयेदग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् सोमाय रुद्रवते चरुमिन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादशकपालं वरुणाया-(६)-ऽऽदित्यवते चरुमिन्द्रमेवैनं भूतं ज्यैष्ठ्याय समाना अभि सं जानते वसिष्ठः समानानां भवति ॥ (एवै, वै,-ग्रस्यं, याज्यानुवाक्ये, तं वरुणाय, चतुर्दश च) ॥ ११ ॥

काम्येष्टियाज्यापुरोनुवाक्याः ॥ ८,१०,१३-१९,२१,२७ त्रिष्टुप्; ७,९,२०,२८-२९गायत्री; ४,२० जगती; ११,१२,२६ अनुष्टुप्; २४ उष्णिक् पदपङ्क्तिर्वा; २५ पंक्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

हिरण्यगर्भ *- आपो ह यत् *- प्रजापते *- ॥

स वेद पुत्रः पितरꣳ स मातरꣳ स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।

स द्यामौर्णोदन्तरिक्षꣳ स सुवः स विश्वा भुवो अभवत् स आऽभवत् ॥

उदु त्यं *- चित्रम् *- ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाऽग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत् ततन्थ भानुना ॥

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो (१) नर्या पुरूणि ।

अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाꣳ सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।

वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥

बडित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।

प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि (२) महिनि ॥

प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः । प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।

अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यच्छ ॥

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाꣳ ऋजीषी ।

सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥

१ (ऋ. ४।१।८।१३), २ (ऋ. ४।१।८।१९), ३ (ऋ. १।८।१४।१२), ५ (ऋ. १।४।४३।१), ६ (ऋ. १।३।४३।२)

प्र (३) सुवानः सोम ऋतयुश्चिकेतेन्द्राय ब्रह्म जमदग्निरर्चन् ।

वृषा यन्ताऽसि शवसस्तुरस्यान्तर्यच्छ गृणते धर्त्रं दृꣳह ॥

सबाधस्ते मदं च शुष्मयं च ब्रह्म नरो ब्रह्मकृतः सपर्यन् ।

अर्को वा यत् तुरते सोमचक्षास्तत्रेदिन्द्रो दधते पृत्सु तुर्याम् ॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् (४) ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामाऽर्यः शꣳसामि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥

किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ (५) ॥

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥

दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजꣳ श्रुत्या अपा वृधि ।

प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि सुवर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥

अग्निर्दा द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।

अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥

मा (६) नो मर्धी *-रा तू भर *- ॥

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।

उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥

वायो शतꣳ हरीणां युवस्व पोष्याणाम् । उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥

प्र याभि-(७)-र्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवेह नि वीरवद्गव्यमश्वियं च राधः ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥

रेवाꣳ इद्रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥

(दधानो, जिनोषि, देभुः प्र हव्यं, बभूथ, मा, याभिः, ।-ऽष्टाविꣳशच्च) ॥ १२ ॥

[प्रजापति-२३९ ।-रग्नये २५४ । ऽग्ने १८८ । ऽग्ने ४०६ । वैश्वानर-३२९ ।-मादित्य-२३६ ।-मैन्द्र-२५० ।-मिन्द्राया-३१४ ।-ऽऽग्नावैष्णव-३३७ ।-मसा-२६१-पैन्द्र-२३१४ । हिरण्यगर्भो १९० । द्वादश ॥ ३५२६]

[इति द्वितीयकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

१२ (ऋ. १।७।१३।७), २४ (१।७।१३।८)

इष्टिविधानम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥] विश्वेदेवा ऋषयः ।

१ भूतिकामस्य, २ अवरुद्धस्यापरुद्धराजस्य च चरुः, ३-१२ अपरुद्धराजस्य [illegible] प्रयोगविशेषाः ॥

आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यश्चरुं निर्वपेद्भूतिकाम आदित्या वा एतं भूत्यै प्रति नुदन्ते योऽलं भूत्यै सन् भूतिं न प्राप्नोत्यादित्यानेव भुवद्वतः स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवैनं भूतिं गमयन्ति भवत्येवाऽऽदित्येभ्यो धारयद्वद्भ्यश्चरुं निर्वपेदपरुद्धो वाऽपरुध्यमानो वाऽऽदित्या वा अपरोद्धार आदित्या अवगमयितार आदित्यानेव धारयद्वतः (१) स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवैनं विशि दाध्रत्यनपरुध्यो भवत्यदितेऽनु मन्यस्वेत्यपरुध्यमानोऽस्य पदमा ददीतेयं वा अदितिरियमेवास्मै राज्यमनु मन्यते सत्याऽऽशीरित्याह सत्यामेवाऽऽशिषं कुरुत इह मन इत्याह प्रजा एवास्मै समनसः करोत्युप प्रेत मरुतः (२) सुदानव एना विश्पतिनाऽभ्यमुं राजानमित्याह मारुती वै विड् ज्येष्ठो विश्पतिर्विशैवैनं राष्ट्रेण समर्धयति यः परस्ताद् ग्राम्यवादी स्यात् तस्य गृहाद्व्रीहीनाहरेच्छुक्लाश्च कृष्णाश्च वि चिनुयाद् ये शुक्लाः स्युस्तमादित्यं चरुं निर्वपेदादित्या वै देवतया विड्विशमेवाव गच्छति (३) अवगताऽस्य विडनवगतं राष्ट्रमित्याहुर्ये कृष्णाः स्युस्तं वारुणं चरुं निर्वपेद्वारुणं वै राष्ट्रमुभे एव विशं च राष्ट्रं चाव गच्छति यदि नावगच्छेदिममहमादित्येभ्यो भागं निर्वपाम्याऽमुष्मादमुष्यै विशोऽवगन्तोरिति निर्वपेदादित्या एवैनं भागधेयं प्रेप्सन्तो विशमव (४) गमयन्ति यदि नावगच्छेदाश्वत्थान् मयूखान् सप्त मध्यमेषायामुपहन्यादिदमहमादित्यान् बध्नाम्याऽमुष्मादमुष्यै विशोऽवगन्तोरित्यादित्या एवैनं बद्धवीरा विशमव गमयन्ति यदि नावगच्छेदेतमेवाऽऽदित्यं चरुं निर्वपेदिध्मेऽपि मयूखान्त्सं नह्येदनपरुध्यमेवाव गच्छत्याश्वत्था भवन्ति मरुतां वा एत-(५)-दोजो यदश्वत्थ ओजसैव विशमव गच्छति सप्त भवन्ति सप्तगणा वै मरुतो गणश एव विशमव गच्छति ॥ (धारयद्वतो, मरुतो, गच्छति, विशमवै,-न, द्वादश च) ॥ १ ॥

१-६ [illegible], ७-९ ब्रह्मवर्चसकामस्य, १० हिरण्यार्थिनः, ११ हिरण्यं लब्धवतश्चोरादिभीतस्य, १२ विनष्टहिरण्यस्य च इष्टिविशेषाः । ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्ते प्रजापतिमुपाधावन्तेभ्य एतं प्राजापत्यं शतकृष्णलं निरवपत् तेष्वेवामृतमदधा—द्यो मृत्योर्बिभीयात् तस्मा एतं प्राजापत्यं शतकृष्णलं निर्वपेत् प्रजापतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन्नायुर्दधाति सर्वमायुरेति शतकृष्णला भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये (१) प्रति तिष्ठति घृते भवत्यायुर्वै घृतममृतं हिरण्यमायुश्चैवास्मा अमृतं च समीची दधाति चत्वारिचत्वारि कृष्णलान्यव द्यति चतुरवत्तस्याऽऽप्त्या एकधा ब्रह्मण उप हरत्येकधैव यजमान आयुर्दधात्य—सावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् तस्मा एतं सौर्यं चरुं निरवपन् तेनैवास्मिन् (२) रुचमदधुर्यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात् तस्मा एतं सौर्यं चरुं निर्वपेदमुमेवाऽऽदित्यं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं दधाति ब्रह्मवर्चस्येव भवत्यु—भयतो रुक्मौ भवत उभयत एवास्मिन् रुचं दधाति प्रयाजेप्रयाजे कृष्णलं जुहोति दिग्भ्य एवास्मै ब्रह्मवर्चसमव रुन्ध आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् सावित्रं द्वादशकपालं भूम्यै (३) चरुं यः कामयेत हिरण्यं विन्देय हिरण्यं मोप नमे-

दिति यदाग्नेयो भवत्याग्नेयं वै हिरण्यं यस्यैव हिरण्यं तेनैवैनद्विन्दते सावित्रो भवति सवितृप्रसूत एवैनद्विन्दते भूम्यै चरुर्भवत्यस्यामेवैनद्विन्दत उपैनं हिरण्यं नमति वि वा एष इन्द्रियेण वीर्येणर्ध्यते यो हिरण्यं विन्दत एता-(४)-मेव निर्वपेद्धिरण्यं वित्त्वा नेन्द्रियेण वीर्येण व्यृध्यत एतामेव निर्वपेद्यस्य हिरण्यं नश्येद्यदाग्नेयो भवत्याग्नेयं वै हिरण्यं यस्यैव हिरण्यं तेनैवैनद्विन्दति सावित्रो भवति सवितृप्रसूत एवैनद्विन्दति भूम्यै चरुर्भवत्यस्यां वा एतन्नश्यति यन्नश्यत्यस्यामेवैनद्विन्दती—न्द्र-(५)-स्त्वष्टुः सोममभीषहाऽपिबत् स विष्वङ् व्यार्च्छत् स इन्द्रियेण सोमपीथेन व्यार्ध्यत स यदूर्ध्वमुदवमीत् ते श्यामाका अभवन्त्स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतं सोमेन्द्रं श्यामाकं चरुं निरवपत् तेनैवास्मिन्निन्द्रियं सोमपीथमदधा—द्वि वा एष इन्द्रियेण सोमपीथेनर्ध्यते यः सोमं वमिति यः सोमवामी स्यात् तस्मा (६) एतं सोमेन्द्रं श्यामाकं चरुं निर्वपेत् सोमं चैवेन्द्रं च स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन्निन्द्रियं सोमपीथं धत्तो नेन्द्रियेण सोमपीथेन व्यृध्यते यत् सौम्यो भवति सोमपीथमेवाव रुन्धे यदैन्द्रो भवतीन्द्रियं वै सोमपीथ इन्द्रियमेव सोमपीथमव रुन्धे श्यामाको भवत्येष वाव स सोमः (७) साक्षादेव सोमपीथमव रुन्धे ऽग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय प्रदात्रे पुरोडाशमेकादशकपालं पशुकामोऽग्निरेवास्मै पशून् प्रजनयति वृद्धानिन्द्रः प्र यच्छति दधि मधु घृतमापो धाना भवन्त्येतद्वै पशूनां रूपं रूपेणैव पशूनव रुन्धे पञ्चगृहीतं भवति पाङ्क्ता हि पशवो बहुरूपं भवति बहुरूपा हि पशवः (८) समृद्ध्यै प्राजापत्यं भवति प्राजापत्या वै पशवः प्रजापतिरेवास्मै पशून् प्र जनयत्या—त्मा वै पुरुषस्य मधु यन्मध्वग्नौ जुहोत्यात्मानमेव तद्यजमानोऽग्नौ प्र दधाति पङ्क्त्यौ याज्यानुवाक्ये भवतः पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्ताः पशव आत्मानमेव मृत्योर्निष्क्रीय पशूनव रुन्धे ॥ (इन्द्रियं, ऽस्मिन्, भूम्यां, एता, -मिन्द्रः, स्यात् तस्मै, सोमः, बहुरूपा हि पशव, एकचत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

१-३ यज्ञविभ्रष्टस्य, ४ कामितार्थसिद्ध्यर्थिनः, ५ ब्रह्मवर्चसार्थिनः, ६ क्लैब्याद्बिभ्यतः, ७ ग्रामकामस्य, ८-९ ज्ञातिकामतो वैश्यस्य वश्यार्थं च चरुपुरोडाशाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वै सत्रमासतर्द्धिपरिमितं यशस्कामास्तेषां सोमं राजानं यश आर्च्छत् स गिरिमुदैत् तमग्निरनूदैत् तावग्नीषोमौ समभवतां ताविन्द्रो यज्ञविभ्रष्टोऽनु परैत् तावब्रवीद्याजयतं मेति तस्मा एतामिष्टिं निरवपतामाग्नेयमष्टाकपालमैन्द्रमेकादशकपालं सौम्यं चरुं तयैवास्मिन् तेजः (१) इन्द्रियं ब्रह्मवर्चसमधत्तां यो यज्ञविभ्रष्टः स्यात् तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमष्टाकपालमैन्द्रमेकादशकपालं सौम्यं चरुं यदाग्नेयो भवति तेज एवास्मिन् तेन दधाति यदैन्द्रो भवतीन्द्रियमेवास्मिन् तेन दधाति यत् सौम्यो ब्रह्मवर्चसं तेना—ऽऽग्नेयस्य च सौम्यस्य चैन्द्रे समाश्लेषयेत् तेजश्चैवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं च समीची (२) दधात्य—ग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेद्यं कामो नोपनमेदाग्नेयो वै ब्राह्मणः स सोमं पिबति स्वामेव देवतां स्वेन भागधेयेनोप धावति सैवैनं कामेन समर्धयत्युपैनं कामो नमत्य—ग्नीषोमीयमष्टाकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामोऽग्नीषोमावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन् ब्रह्मवर्चसं धत्तो ब्रह्मवर्चस्येव (३) भवति यदष्टाकपालस्तेनाऽऽग्नेयो यच्छ्यामाकस्तेन सौम्यः समृद्ध्यै सोमाय वाजिने श्यामाकं चरुं निर्व-

पेद्यः क्लैब्याद्बिभीयाद्रेतो हि वा एतस्माद्वाजिनमपक्रामत्यथैष क्लैब्याद्बिभाय सोममेव वाजिनं स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मिन् रेतो वाजिनं दधाति न क्लीबो भवति ब्राह्मणस्पत्यमेकादशकपालं निर्वपेद् ग्रामकामो (४) ब्रह्मणस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै सजातान् प्र यच्छति ग्राम्येव भवति गणवती याज्यानुवाक्ये भवतः सजातैरेवैनं गणवन्तं करोत्ये—तामेव निर्वपेद्यः कामयेत ब्रह्मन् विशं वि नाशयेयमिति मारुती याज्यानुवाक्ये कुर्याद् ब्रह्मन्नेव विशं वि नाशयति ॥ (तेजः, समीची, एव, ग्रामकाम,-श्चत्वारिंशच्च) ॥ ३ ॥

१ स्वर्गकामस्य, २ कन्यकार्थदानकामस्य, ३ सभां जिगमिषोः, ४-५ जातिनिकृष्टस्य राजन्यस्य, ६ तथाविधस्य ब्राह्मणस्य च इष्टयः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अर्यम्णे चरुं निर्वपेत् सुवर्गकामोऽसौ वा आदित्योऽर्यमाऽर्यमणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं सुवर्गं लोकं गमयत्य—र्यम्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरित्यसौ वा आदित्योऽर्यमा यः खलु वै ददाति सोऽर्यमाऽर्यमणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवा-(१)-स्मै दानकामाः प्रजाः करोति दानकामा अस्मै प्रजा भवन्त्य—र्यम्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत स्वस्ति जनतामियामित्यसौ वा आदित्योऽर्यमाऽर्यमणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं तद्गमयति यत्र जिगमिषती—न्द्रो वै देवानामानुजावर आसीत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतमैन्द्रमानुषूकमेकादशकपालं नि-(२)-रवपत् तेनैवैनमग्रं देवतानां पर्यणयद् बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये अकरोद् बुध्नादेवैनमग्रं पर्यणय—द्यो राजन्य आनुजावरः स्यात् तस्मा एतमैन्द्रमानुषूकमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमग्रं समानानां परि णयति बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवतो बुध्नादेवैनमग्रं (३) परि णयत्यानुषूको भवत्येषा ह्येतस्य देवता य आनुजावरः समृद्ध्यै यो ब्राह्मण आनुजावरः स्यात् तस्मा एतं बार्हस्पत्यमानुषूकं चरुं निर्वपेद् बृहस्पतिमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनमग्रं समानानां परि णयति बुध्नवती अग्रवती याज्यानुवाक्ये भवतो बुध्नादेवैनमग्रं परि णयत्यानुषूको भवत्येषा ह्येतस्य (४) देवता य आनुजावरः समृद्ध्यै ॥ (एव नि,-रवं, -मेतस्य, चत्वारि च) ॥ ४ ॥

यक्ष्मगृहीतस्येष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद् दुहितर आसन् ताः सोमाय राज्ञेऽददात् तासां रोहिणीमुपैत् ता ईर्ष्यन्तीः पुनरगच्छन् ता अन्वैत् ताः पुनरयाचत ता अस्मै न पुनरददात् सोऽब्रवीदृतममीष्व यथा समावच्छ उपैष्याम्यथ ते पुनर्दास्यामीति स ऋतममीत् ता अस्मै पुनरददात् तासां रोहिणीमेवोपै-(१)-त् तं यक्ष्म आर्च्छद्राजानं यक्ष्म आरदिति तद्राजयक्ष्मस्य जन्म यत् पापीयानभवत् तत् पापयक्ष्मस्य यज्जायाभ्योऽविन्दत् तज्जायेन्यस्य य एवमेतेषां यक्ष्माणां जन्म वेद नैनमेते यक्ष्मा विन्दन्ति स एता एव नमस्यन्नुपाधावत् ता अब्रुवन् वरं वृणामहै समावच्छ एव न उपाय इति तस्मा एत-(२)-मादित्यं चरुं निरवपन् तेनैवैनं पापात् स्रामादमुञ्चन् यः पापयक्ष्मगृहीतः स्यात् तस्मा एतमादित्यं चरुं निर्वपेदादित्यानेव स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवैनं पापात् स्रामान्मुञ्चन्त्य—मावास्यायां निर्वपेदमुमेवैनमाप्यायमानमन्वा प्याययति

नवोनवो भवति जायमान इति पुरोऽनुवाक्या भवत्यायुरेवास्मिन् (३) तया दधाति यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीति याज्यैवैनमेतया प्याययति ॥ (एवोपै,-त, -मस्मिन्, त्रयोदश च) ॥ ५ ॥

अन्नादत्वशक्तिकामस्य त्रिधातुसंज्ञकयागः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिर्देवेभ्योऽन्नाद्यं व्यादिशत् सोऽब्रवीद्यदिमान् लोकानभ्यतिरिच्याता इति तन्ममासदिति तदिमान् लोकानत्यरिच्यतेन्द्रं राजानमिन्द्रमधिराजमिन्द्रं स्वराजानं ततो वै स इमान् लोकांस्त्रेधाऽदुहत् तत् त्रिधातोस्त्रिधातुत्वं यं कामयेतान्नादः स्यादिति तस्मा एतं त्रिधातुं निर्वपेदिन्द्राय राज्ञे पुरोडाश-(१)-मेकादशकपालमिन्द्रायाधिराजायेन्द्राय स्वराज्ञेऽयं वा इन्द्रो राजाऽयमिन्द्रोऽधिराजोऽसाविन्द्रः स्वराडिमानेव लोकान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मा अन्नं प्र यच्छन्त्यन्नाद एव भवति यथा वत्सेन प्रत्तां गां दुह एवमेवेमान् लोकान् प्रत्तान् काममन्नाद्यं दुह उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयत्ययातयामत्वाय त्रयः (२) पुरोडाशा भवन्ति त्रय इमे लोका एषां लोकानामाप्त्या उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवत्येवमिव हीमे लोकाः समृद्ध्यै सर्वेषामभिगमयन्नव द्यत्यछम्बट्कारं व्यत्यासमन्वाहानिर्दाहाय ॥ (पुरोडाशं, त्रयः, षड्विंशतिश्च) ॥ ६ ॥

वीर्यकामस्य सर्वपृष्ठाख्येष्टिः, ९ अभिशस्यमानस्य इयमेवेष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् तान् देवानसुरा अजयन् ते देवाः पराजिग्याना असुराणां वैश्यमुपाऽऽयन् तेभ्य इन्द्रियं वीर्यमपाक्रामत् तदिन्द्रोऽचायत् तदन्वपाक्रामत् तदवरुधं नाशक्नोत् तदस्मादभ्यर्धोऽचरत् स प्रजापतिमुपाधावत् तमेतया सर्वपृष्ठयाऽयाजयत् तयैवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यमदधा—द्य इन्द्रियकामो (१) वीर्यकामः स्यात् तमेतया सर्वपृष्ठया याजयेदेता एव देवताः स्वेन भागधेयेनोप धावति ता एवास्मिन्निन्द्रियं वीर्यं दधति यदिन्द्राय राथन्तराय निर्वपति यदेवाग्नेस्तेजस्तदेवाव रुन्धे यदिन्द्राय बार्हताय यदेवेन्द्रस्य तेजस्तदेवाव रुन्धे यदिन्द्राय वैरूपाय यदेव सवितुस्तेजस्त-(२)-देवाव रुन्धे यदिन्द्राय वैराजाय यदेव धातुस्तेजस्तदेवाव रुन्धे यदिन्द्राय शाक्वराय यदेव मरुतां तेजस्तदेवाव रुन्धे यदिन्द्राय रैवताय यदेव बृहस्पतेस्तेजस्तदेवाव रुन्ध एतावन्ति वै तेजांसि तान्येवाव रुन्ध उत्तानेषु कपालेष्वधि श्रयत्ययातयामत्वाय द्वादशकपालः पुरोडाशो (३) भवति वैश्वदेवत्वाय समन्तं पर्यवद्यति समन्तमेवेन्द्रियं वीर्यं यजमाने दधाति व्यत्यासमन्वाहानिर्दाहाया—श्व ऋषभो वृष्णिर्बस्तः सा दक्षिणा वृषत्वा—यैतयैव यजेताभिशस्यमान एताश्चेद्वा अस्य देवता अन्नमदन्त्यदन्त्युवेवास्य मनुष्याः ॥ (इन्द्रियकामः, सवितुस्तेजस्त, पुरोडाशो, ऽष्टात्रिंशच्च) ॥ ७ ॥

चक्षुष्कामस्येष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

रजनो वै कौणेयः क्रतुजितं जानकिं चक्षुर्वन्यमयात् तस्मा एतामिष्टिं निरवपदग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं सौर्यं चरुमग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं तयैवास्मिन् चक्षुरदधा—द्यश्चक्षुष्कामः स्यात् तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालं सौर्यं चरुमग्नये भ्राजस्वते पुरोडाशमष्टाकपालमग्नेर्वै चक्षुषा मनुष्या वि (१) पश्यन्ति सूर्यस्य देवा अग्निं चैव सूर्यं च स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मिन् चक्षुर्धत्तश्चक्षुष्मानेव भवति यदाग्नेयौ भवतश्चक्षुषी एवास्मिन् तत् प्रति दधाति

यत् सौर्यो नासिकां तेनाभितः सौर्यमाग्नेयौ भवतस्तस्मादभितो नासिकां चक्षुषी तस्मान्नासिकया चक्षुषी विधृते[3] समानी याज्यानुवाक्ये भवतः समानꣳ हि (२) चक्षुः समृद्ध्यै उदु त्यं जातवेदसꣳ सप्त त्वा हरितो रथे चित्रं देवानामुदगादनीकमिति पिण्डान् प्र यच्छति चक्षुरेवास्मै प्र यच्छति यदेव तस्य तत् ॥ (वि, हं,-हाविꣳशतिश्च) ॥ ८ ॥

ग्रामकामस्य सांग्रहण्येष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासं धीरश्चेत्ता वसुविद् ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासमुग्रश्चेत्ता वसुविद् ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासमभिभूश्चेत्ता वसुवि[3]—दामनमस्यामनस्य देवा ये सजाताः*-- --*कुमाराः समनसस्तानहं कामये हृदा ते मा कामयन्ताꣳ हृदा तान् म आमनसः कृधि स्वाहा ऽऽमनमस्या-(१)-मनस्य देवा याः स्त्रियः समनसस्ता अहं कामये हृदा ता मां कामयन्ताꣳ हृदा ता म आमनसः कृधि स्वाहा वैश्वदेवीꣳ सांग्रहणीं निर्वपेद्ग्रामकामो वैश्वदेवा वै सजाता विश्वानेव देवान्त्स्वेन भागधेयेनोप धावति त एवास्मै स जातान् प्र यच्छन्ति ग्राम्येव भवति सांग्रहणी भवति मनोग्रहणं वैसं ग्रहणं मनं एव सजातानाम् (२) गृह्णाति ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहꣳ सजातेषु भूयासमिति परिधीन् परि दधात्याशिषमेवैतामा शास्तेऽथो एतदेव सर्वꣳ सजातेष्वधि भवति यस्यैवं विदुष एते परिधयः परिधीयन्त आमं नमस्यामनस्य देवा इति तिस्र आहुतीर्जुहोत्येतावन्तो वै सजाता ये महान्तो ये क्षुल्लका याः स्त्रियस्तानेवाव रुन्धे (३) त एनमवरुद्धा उप तिष्ठन्ते[1] ॥ (असि, सजातानाꣳ, रुन्धे पञ्च च) ॥ ९ ॥

आयुष्कामेष्टिमन्त्राः ॥ ६ प्रस्तारपङ्क्तिः १० त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

यन्नवमैत् तन्नवनीतमभवद्यदसर्पत् तत् सर्पिरभवद्यदध्रियत तद् घृत—मभवं—दश्विनोः प्राणोऽसि तस्य ते दत्तां ययोः प्राणोऽसि स्वाहे—न्द्रस्य प्राणोऽसि तस्य ते ददातु यस्य प्राणोऽसि स्वाहा[3] मित्रावरुणयोः प्राणोऽसि तस्य ते दत्तां ययोः प्राणोऽसि स्वाहा विश्वेषां देवानां प्राणोऽसि (१) तस्य ते ददतु येषां प्राणोऽसि स्वाहा

घृतस्य धारामृतस्य पन्थामिन्द्रेण दत्तां प्रयतां मरुद्भिः ।

तत् त्वा विष्णुः पर्यपश्यत् तत त्वेडा गव्यैरयत् ॥

पावमानेन त्वा स्तोमेन गायत्रस्य वर्तन्योपाꣳशो वीर्येण देवस्त्वा सवितोत् सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै बृहद्रथन्तरयोस्त्वा स्तोमेन त्रिष्टुभो वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येण देवस्त्वा सवितोत् (२) सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै अग्नेस्त्वा मात्रया जगत्यै वर्तन्याऽऽग्रयणस्य वीर्येण देवस्त्वा सवितोत् सृजतु जीवातवे जीवनस्यायै

इममग्न आयुषे वर्चसे कृधि प्रियꣳ रेतो वरुण सोम राजन् ।

(९।४) -*समं...स्वाहा; (९।५) -*आमनमस्य... ये

मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसत् ॥

अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मान् तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि[11] सोम आयुष्मान् (१) स ओषधीभिर्[12]—*-- यज्ञ आयुष्मान्त्स दक्षिणाभिर्[13]—*- ब्रह्माऽऽयुष्मत् तद्ब्राह्मणैरायुष्मद्[14]*- देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेन[15]*-- पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधयाऽऽयुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि[16] ॥ (अस्तु,-दा,-युष्मान्, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ १० ॥

आयुरारोग्यकामयोरिष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्निं वा एतस्य शरीरं गच्छति सोमꣳ रसो वरुण एनं वरुणपाशेन गृह्णाति सरस्वतीं वागग्नाविष्णू आत्मा यस्य ज्योगामयति यो ज्योगामयावी स्याद्यो वा कामयेत सर्वमायुरियामिति तस्मा एतामिष्टिं निर्वपेदाग्नेयमष्टाकपालꣳ सौम्यं चरुं वारुणं दशकपालꣳ सारस्वतं चरुमाग्नावैष्णवमेकादशकपालमग्नेर्वास्य शरीरं निष्क्रीणाति सोमाद्रसम् (१) वारुणेनैवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति सारस्वतेन वाचं दधात्यग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताभिश्चैवैनं यज्ञेन च भिषज्यत्युत यदीतासुर्भवति जीवत्येव यन्नवमैत् तन्नवनीतमभवदित्याज्यमवेक्षते रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे[3] ऽश्विनोः प्राणोऽसीत्याहाश्विनौ वै देवानां (२) भिषजौ ताभ्यामेवास्मै भेषजं करोतीन्द्रस्य प्राणोऽसीत्याहेन्द्रियमेवास्मिन्नेतेन दधाति मित्रावरुणयोः प्राणोऽसीत्याह प्राणापानावेवास्मिन्नेतेन दधाति विश्वेषां देवानां प्राणोऽसीत्याह वीर्यमेवास्मिन्नेतेन दधाति घृतस्य धारामृतस्य पन्थामित्याह यथायजुरेवैतत् पावमानेन त्वा स्तोमेनेत्याह (३) प्राणमेवास्मिन्नेतेन दधाति बृहद्रथन्तरयोस्त्वा स्तोमेनेत्याहौज एवास्मिन्नेतेन दधात्यग्नेस्त्वा मात्रयेत्याहाऽऽत्मानमेवास्मिन्नेतेन दधात्यृ—त्विजः पर्याहुर्यावन्त एवर्त्विजस्त एनं भिषज्यन्ति ब्रह्मणो हस्तमन्वारभ्य पर्याहुरेकधैव यजमान आयुर्दधति यदेव तस्य त—द्धिरण्यात् (४) घृतं निष्पिबत्यायुर्वै घृतममृतꣳ हिरण्यममृतादेवाऽऽयुर्निष्पिबति[1] शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यथो खलु यावतीः समा एष्यन् मन्येत तावन्मानꣳ स्यात् समृद्ध्यै इममग्न आयुषे वर्चसे कृधीत्याहाऽऽयुरेवास्मिन् वर्चो दधाति विश्वे देवा जरदष्टिर्यथाऽसदित्या—(५)—ह जरदष्टिमेवैनं करोत्य—ग्निरायुष्मानिति हस्तं गृह्णात्येते वै देवा आयुष्मन्तस्त एवास्मिन्नायुर्दधति सर्वमायुरेति[11] ॥ (रसं, त्वं,—देवानाꣳ, स्तोमेनेति, हिरण्या,—दसदिति द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

अश्वदानवतो वारुणीष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिर्वरुणायाश्वमनयत् स स्वां देवतामार्च्छत् स पर्यदीर्यत स एतं वारुणं चतुष्कपालमपश्यत् तं निरवपत् ततो वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणो वा एतं गृह्णाति योऽश्वं प्रतिगृह्णाति यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात् तावतो वारुणान् चतुष्कपालान् निर्वपेद्वरुणमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति (१) चतुष्कपाला भवन्ति चतुष्पाद्ध्यश्वः समृद्ध्यै एकमतिरिक्तं निर्वपेद्यमेव प्रतिग्राही भवति यं वा नाध्येति तस्मादेव वरुणपाशान्मुच्यते यद्यपरं प्रतिग्राही स्यात् सौर्यमेककपालमनु निर्वपेदमुमेवाऽऽदित्यमुच्चारं कुरुते ऽपोऽवभृथमवैत्यप्सु वै वरुणः साक्षादेव वरुणमव यजते

(१० । १२-१५) *- आयुष्मान्...करोमि ।

ऽपोनप्त्रीयं चरुं (२) पुनरेत्य निर्वपेदप्सुयोनिर्वा अश्वः स्वामेवैनं योनिं गमयति स एनꣳ शान्त उप तिष्ठते[3] ॥ (मुञ्चति, चरुꣳ, सप्तदश च) ॥ १२ ॥

पाप्मना गृहीतस्येष्टिः ६ विश्वेदेवा ऋषयः ।

या वामिन्द्रावरुणा यतव्या तनूस्तयेमम꣡ꣳहसो मुञ्चतं[1] या वामिन्द्रावरुणा सहस्या[2]*- -*रक्षस्या[3]*- -* तेजस्या तनूस्तयेमम꣡ꣳहसो मुञ्चतं यो वामिन्द्रावरुणावग्नौ स्रामस्तं वामेतेनाव यजे यो वामिन्द्रावरुणा द्विपात्सु पशुषु*- -*चतुष्पात्सु*- -*गोष्ठे[6]*- -*गृहेष्व—*- -*प्स्वो—*- -*षधीषु*- -*वनस्पतिषु स्रामस्तं वामेतेनाव यजे इन्द्रो वा एतस्ये-(१)-न्द्रियेणाप क्रामति वरुण एनं वरुणपाशेन गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति यः पाप्मना गृहीतः स्यात् तस्मा एतामैन्द्रावरुणीं पयस्यां निर्वपेदिन्द्र एवास्मिन्निन्द्रियं दधाति वरुण एनं वरुणपाशान्मुञ्चति[13] पयस्या भवति पयो हि वा एतस्मादपक्रामत्यथैष पाप्मना गृहीतो यत् पयस्या भवति पय एवास्मिन् तया दधाति[14] पयस्यायां (२) पुरोडाशमव दधात्यात्मन्वन्तमेवैनं करोत्यथो आयतनवन्तमेव चतुर्धा व्यूहति दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति[16] पुनः समूहति दिग्भ्य एवास्मै भेषजं करोति[17] समूढावं द्यति यथाऽऽविद्धं निष्कृन्तति तादृगेव त—द्यो वामिन्द्रावरुणावग्नौ स्रामस्तं वामेतेनाव यज इत्याह दुरिष्ट्या एवैनं पाति[19] यो वामिन्द्रावरुणा द्विपात्सु पशुषु स्रामस्तं वामेतेनाव यज इत्याहैतावतीर्वा आप ओषधयो वनस्पतयः प्रजाः पशव उपजीवनीयास्ता एवास्मै वरुणपाशान्मुञ्चति[20] ॥ (एतस्य, पयस्यायां, पाति, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ १३ ॥

काम्या याज्यापुरोनुवाक्याः ॥ त्रिष्टुप्; ५,७ गायत्री; ९ अनुष्टुप्; १४-१५ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

स प्रत्नवं*-न्नि काव्ये[1]*-न्द्रं वो विश्वतस्परी[2]*-न्द्रं नरः[3]*- ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा[4] ॥

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ॥

तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥

युवमे-(१)-तानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ॥

युवꣳ सिन्धूꣳरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥

अग्नीषोमाविमꣳ सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥

आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभाराऽमथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।

अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥

(१३।१-२) तनू...मुञ्चतं; (१३।६-११) स्राम...यजे; (१३।७-१२)-* यो वा...रुणा । (१४।१-२) (तै. सं. २।२।१२।७-८); (१४।३-४) (तै. सं. १।६।१२।१-२)

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतꣳ (२) हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।

सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः[11] ॥

आ प्यायस्व[12]*- सं ते[13]*- ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ।

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।

देवानां यः पितरमाविवासति (३) श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलꣳ रुरोज फलिगꣳ रवेण ।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥

मरुतो यद्ध वो दिवो[15]*- या वः शर्म[16]*-

अर्यमाऽऽयाति वृषभस्तुविष्मान् दाता वसूनां पुरुहूतो अर्हन् ।

सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥

ये तेऽर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो (४) राजन् दिव आचरन्ति ।

तेभिर्नो देव महि शर्म यच्छ शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

बुध्नादग्रमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दꣳहितान्यैरत् ।

रुजद्रोधाꣳसि कृत्रिमाण्येषाꣳ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।

बुध्नादग्रेण वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।

वृथाऽसृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार (५) ॥

प्र यो जज्ञे विद्वाꣳ अस्य बन्धुं विश्वानि देवो जनिमा विवक्ति ।

ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचादुच्चा स्वधयाऽभि प्र तस्थौ[13] ॥

महान् मही अस्तभायद्वि जातो द्याꣳ सद्म पार्थिवं च रजः ।

स बुध्नादाष्ट जनुषाऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता यस्य सम्राट् ॥

बुध्नाद्यो अग्रमभ्यर्त्योजसा बृहस्पतिमा विवासन्ति देवाः (६) ।

भिनद्वलं वि पुरो दर्दरीति कनिक्रदत् सुवरपो जिगाय ॥

(युवं, वीतं, विवासति, पन्थान,-श्चकार, देवा, नव च) ॥ १४ ॥

आदित्येभ्यो २६८ । देवा ४४१ । देवा २४३ । कर्युष्मो २०४ । प्रजापतेः १६३ । प्रजापति-१२६ । -देवासुरा १८८ । रश्मिनो १२८ । ध्रुवो १५५ । य-१७५ ।-दुम्रि २०२ । प्रजापति- ११७ ।-र्वा १७६ । स १०९ । चतुर्दश ॥ २६६५ ॥

[इति द्वितीयकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

१४ । १२-१३ (तै. सं. ४।२।७।१२-१३); १४ । १७-१८ (तै. सं. १।५।११।१५-१६)

हविर्विधानम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

भ्रातृव्यैः स्पर्धमानस्येष्टिः ॥

देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षाꣳसि पिशाचास्तेऽन्यतस्तेषां देवानामुत यदल्पं लोहितमकुर्वन्तद्रक्षाꣳसि रात्रीभिरसुभ्नन्तान्सुब्धान्मृतानभि व्यौच्छत्ते देवा अविदुर्यो वै नोऽयं म्रियते रक्षाꣳसि वा इमं घ्नन्तीति ते रक्षाꣳस्युपामन्त्रयन्त तान्यब्रुवन्वरं वृणामहै य-(१)-दसुरान् जयाम तन्नः सहासदिति ततो वै देवा असुरानजयन्तेऽसुराञ्जित्वा रक्षाꣳस्यपानुदन्त तानि रक्षाꣳस्यनृतमकर्तेति समन्तं देवान्पर्यविशन्ते देवा अग्नावनाथन्त तेऽग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपन्नग्नये विबाधवतेऽग्नये प्रतीकवते यदग्नये प्रवते निरवपन्यान्येव पुरस्ताद्रक्षाꣳस्या-(२)-सन् तानि तेन प्राणुदन्त यदग्नये विबाधवते यान्येवाभितो रक्षाꣳस्यासन् तानि तेन व्यबाधन्त यदग्नये प्रतीकवते यान्येव पश्चाद्रक्षाꣳस्यासन् तानि तेनापानुदन्त ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेताग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विबाधवते (३) ऽग्नये प्रतीकवते यदग्नये प्रवते निर्वपति य एवास्माच्छ्रेयान् भ्रातृव्यस्तं तेन प्र णुदते यदग्नये विबाधवते य एवैनेन सदृङ् तं तेन वि बाधते यदग्नये प्रतीकवते य एवास्मात् पापीयान् तं तेनाप नुदते प्र श्रेयाꣳसं भ्रातृव्यं नुदतेऽति सदृशं क्रामति नैनं पापीयानाप्नोति य एवं (४) विद्वानेतयेष्ट्या यजते ॥ (य,-द्रक्षाꣳसि, विबाधवत, एवं, चत्वारि च) ॥ १ ॥

भ्रातृव्यवतः स्पर्धमानस्य विजितेष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा अब्रुवन् यो नो वीर्यावत्तमस्तमनु समारभामहा इति इन्द्रमब्रुवन् त्वं वै नो वीर्यावत्तमोऽसि त्वामनु समारभामहा इति सोऽब्रवीत् तिस्रो म इमास्तनुवो वीर्यावतीस्ताः प्रीणीताथासुरानभि भविष्यथेति ता वै ब्रूहीत्यब्रुवन्नियमꣳहोमुगियं विमृधेयमिन्द्रियावती-(१)-त्यब्रवीत् त इन्द्रायाꣳहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निरवपन्निन्द्राय वैमृधायेन्द्रायेन्द्रियावते यदिन्द्रायाꣳहोमुचे निरवपन्नꣳहस एव तेनामुच्यन्त यदिन्द्राय वैमृधाय मृध एव तेनापाघ्नत यदिन्द्रायेन्द्रियावत इन्द्रियमेव तेनाऽऽत्मन्नदधत त्रयस्त्रिꣳशत्कपालं पुरोडाशं निरवपन् त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवतास्ता इन्द्र आत्मन्ननु समारम्भयत भूत्यै (२) तां वाव देवा विजितिमुत्तमामसुरैर्व्यजयन्त यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेतेन्द्रायाꣳहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपेदिन्द्राय वैमृधायेन्द्रायेन्द्रियावतेऽꣳहसा वा एष गृहीतो यस्माच्छ्रेयान् भ्रातृव्यो यदिन्द्रायाꣳहोमुचे निर्वपत्यꣳहस एव तेन मुच्यते मृधा वा एषोऽभिषण्णो यस्मात् समानेष्वन्यः श्रेयानुता-(३)-भ्रातृव्यो यदिन्द्राय वैमृधाय मृध एव तेनाप हते यदिन्द्रायेन्द्रियावत इन्द्रियमेव तेनाऽऽत्मन् धत्ते त्रयस्त्रिꣳशत्कपालं पुरोडाशं निर्वपति त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवतास्ता एव यजमान आत्मन्ननु समारम्भयते भूत्यै सा वा एषा विजितिर्नामेष्टिर्य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजत उत्तमामेव विजितिं भ्रातृव्येण वि जयते ॥ (इन्द्रियावती, भूत्यै, उत,-त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

भ्रातृव्यवतः स्पर्धमानस्य संवर्गेष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् तेषां गायत्र्योजो बलमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशून्त्संगृह्याऽऽदायापक्रम्यातिष्ठत् तेऽमन्यन्त यतरान् वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति तां व्यह्वयन्त विश्वकर्मन्निति देवा दाभीत्यसुराः सा नान्यतराꣳश्चनोपावर्तत ते देवा एतद्यजुरपश्यन्—

ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि (१) भ्राजोऽसि देवानां धाम
नामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभू—

रिति वाव देवा असुराणामोजो बलमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशूनवृञ्जत यद्गायत्र्यपक्रम्यातिष्ठत् तस्मादेतां गायत्रीतीष्टिमाहुः संवत्सरो वै गायत्री संवत्सरो वै तदपक्रम्यातिष्ठद्यदेतया देवा असुराणामोजो बलमिन्द्रियं वीर्यं (२) प्रजां पशूनवृञ्जत तस्मादेताꣳ संवर्ग इतीष्टिमाहु—र्यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेताग्नये संवर्गाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् तꣳ शृतमासन्नमेतेन यजुषाऽभि मृशेदोज एव बलमिन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशून् भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति ॥ (असि, वीर्यं, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

प्रजाकामस्य पशुकामस्य च गार्मुतश्चरुः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मात् सृष्टाः पराचीरायन् ता यत्रावसन् ततो गर्मुदुदतिष्ठत् ता बृहस्पतिश्चान्ववैताꣳ सोऽब्रवीद् बृहस्पतिरनया त्वा प्रतिष्ठान्यथ त्वा प्रजा उपावर्त्स्यन्तीति तं प्रातिष्ठत् ततो वै प्रजापतिं प्रजा उपावर्तन्त यः प्रजाकामः स्यात् तस्मा एतं प्राजापत्यं गार्मुतं चरुं निर्वपेत् प्रजापति-(१)-मेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै प्रजां प्र जनयति प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मात् सृष्टाः पराञ्च आयन् ते यत्रावसन् ततो गर्मुदुदतिष्ठत् तान् पूषा चान्ववैताꣳ सोऽब्रवीत् पूषाऽनया मा प्र तिष्ठाथ त्वा पशव उपावर्त्स्यन्तीति मां प्र तिष्ठेति सोमोऽब्रवीन्मम वा (२) अकृष्टपच्यमित्युभौ वां प्र तिष्ठानीत्यब्रवीत् तौ प्रातिष्ठत् ततो वै प्रजापतिं पशव उपावर्तन्त यः पशुकामः स्यात् तस्मा एतꣳ सौमापौष्णं गार्मुतं चरुं निर्वपेत् सोमापूषणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मै पशून् प्र जनयतः सोमो वै रेतोधाः पूषा पशूनां प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधाति पूषा (३) पशून् प्र जनयति ॥ (... प्रजापतिं, वै, पूषा, त्रीणि च) ॥ ४ ॥

चित्रायागोपहोममन्त्राः ॥ गायत्री, ५ उपरिष्टाद्बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्ने गोभिर्न आ गहीन्दो पुष्ट्या जुषस्व नः । इन्द्रो धर्ता गृहेषु नः ॥
सविता यः सहस्रियः स नो गृहेषु रारणत् । आ पूषा एत्वा वसु ॥
धाता ददातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन वावनत् ॥
त्वष्टा यो वृषभो वृषा स नो गृहेषु रारणत् । सहस्रेणायुतेन च ॥
येन देवा अमृतं (१) दीर्घꣳ श्रवो दिव्यैरयन्त ।
रायस्पोष त्वमस्मभ्यं गवां कुल्मिं जीवस आ युवस्व ॥
अग्निर्गृहपतिः सोमो विश्ववनिः सविता सुमेधाः स्वाहा ॥

अग्ने गृहपते यस्ते घृत्यो भागस्तेन सह ओज आक्रममाणाय धेहि श्रैष्ठ्यात् पथो मा योषं मूर्धा भूयासꣳ स्वाहा ॥ (अमृतं,-मष्टाविꣳशच्च) ॥ ५ ॥

पशुकामस्य चित्रायागः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

चित्रया यजेत पशुकाम इयं वै चित्रा यद्वा अस्यां विश्वं भूतमधि प्रजायते तेनेयं चित्रा य एवं विद्वाꣳश्चित्रया पशुकामो यजते प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते प्रैवाऽऽग्नेयेन वापयति रेतः सौम्येन दधाति रेत एव हितं त्वष्टा रूपाणि वि करोति सारस्वतौ भवत एतद्वै दैव्यं मिथुनं दैव्यमेवास्मै (१) मिथुनं मध्यतो दधाति पुष्ट्यै प्रजननाय सिनीवाल्यै चरुर्भवति वाग्वै सिनीवाली पुष्टिः खलु वै वाक् पुष्टिमेव वाचमुपैत्यैन्द्र उत्तमो भवति तेनैव तन्मिथुनꣳ सप्तैतानि हवीꣳषि भवन्ति सप्त ग्राम्याः पशवः सप्ताऽऽरण्याः सप्त छन्दाꣳस्युभयस्यावरुध्या अथैता आहुतीर्जुहोत्येते वै देवाः पुष्टिपतयस्त एवा-(२)-स्मिन् पुष्टिं दधति पुष्यति प्रजया पशुभिरथो यदेता आहुतीर्जुहोति प्रतिष्ठित्यै ॥ (अस्मै, त एव, द्वादश च) ॥ ६ ॥

कारीरीष्टियाज्यानुमन्त्राः ॥ ३ त्रिष्टुप्, ११ पङ्क्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

मारुतमसि मरुतामोजोऽपां धारां भिन्धि
रमयत मरुतः श्येनमायिनं मनोजवसं वृषणꣳ सुवृक्तिम् ॥
येन शर्ध उग्रमवसृष्टमेति तदश्विना परि धत्तꣳ स्वस्ति ।

पुरोवातो वर्षन् जिन्वरावृत् स्वाहा वातावद्वर्षन्नुग्ररावृत् स्वाहा स्तनयन् वर्षन् भीमरावृत् स्वाहाऽनश्न्यवस्फूर्जन् दिद्युद्वर्षन् त्वेषरावृत् स्वाहाऽतिरात्रं वर्षन् पूर्तिरावृत् (१) स्वाहा बहु हायमवृषादिति श्रुतरावृत् स्वाहाऽऽतपति वर्षन् विराडावृत् स्वाहाऽवस्फूर्जन् दिद्युद्वर्षन् भूतरावृत् स्वाहा मान्दा वाशाः शुन्ध्यूरजिराः ।

ज्योतिष्मतीस्तमस्वरीरुन्दतीः सुफेनाः । मित्रभृतः क्षत्रभृतः सुराष्ट्रा इह माऽवत ॥
वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामि ॥ (पूर्तिरावृत्, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

कारीर्युत्तरमन्त्राः ॥ १-२ विषमपदाबृहती, ३ विषमपदापङ्क्तिः, ४ गायत्री, ५ सतःपङ्क्तिः, ६ जगती, ७ द्विपदा विराड् गायत्री, ८ द्विपदा गायत्री, ९ अनुष्टुप्, १० विराण्महापङ्क्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्य ॥ देवाः शर्मण्या मित्रावरुणाऽर्यमन् ॥
देवाः सपीतयोऽपां नपादाशुहेमन् ।
उद्नो दत्तोदधिं भिन्त दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ॥
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । पृथिवीं यद् व्युन्दन्ति ॥
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्याः सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति (१) वृष्टयः ।
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।

न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥
सृजा वृष्टिं दिव आऽद्भिः समुद्रं पृण ॥
अब्जा असि प्रथमजा बलमसि समुद्रियम् ॥
उन्नम्भय पृथिवीं भिन्द्धीदं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो देहीशानो वि सृजा दृतिम् ॥
ये देवा (२) दिविभागा येऽन्तरिक्षभागा ये पृथिविभागाः ।
त इमं यज्ञमवन्तु त इदं क्षेत्रमा विशन्तु त इदं क्षेत्रमनु वि विशन्तु ॥
(यन्ति, देवा, विꣳशतिश्च) ॥ ८ ॥

कारीरीपूर्वभागविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

मारुतमसि मरुतामोज इति कृष्णं वासः कृष्णतूषं परि धत्त एतद्वै वृष्ट्यै रूपꣳ सरूप एव भूत्वा पर्जन्यं वर्षयति रमयत मरुतः श्येनमायिनमिति पश्चाद्वातं प्रति मीवति पुरोवातमेव जनयति वर्षस्यावरुद्ध्यै वातनामानि जुहोति वायुर्वै वृष्ट्या ईशे वायुमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति स एवास्मै पर्जन्यं वर्षयत्य—ष्टौ (१) जुहोति चतस्रो वै दिशश्चतस्रोऽवान्तरदिशा दिग्भ्य एव वृष्टिꣳ सं प्र च्यावयति कृष्णाजिने सं यौति हविरेवाक—रन्तर्वेदि सं यौत्यवरुद्ध्यै यतीनामद्यमानानाꣳ शीर्षाणि पराऽपतन् ते खर्जूरा अभवन् तेषाꣳ रस ऊर्ध्वोऽपतत् तानि करीराण्यभवन्त्सौम्यानि वै करीराणि सौम्या खलु वा आहुतिर्दिवो वृष्टिं च्यावयति यत् करीराणि भवन्ति (२) सौम्ययैवाऽऽहुत्या दिवो वृष्टिमव रुन्धे मधुषा सं यौत्यपां वा एष ओषधीनाꣳ रसो यन्मध्वद्भ्य एवौषधीभ्यो वर्षयत्यथो अद्भ्य एवौषधीभ्यो वृष्टिं नि नयति मान्दा वाशा इति सं यौति नामधेयैरेवैना अच्छैत्यथो यथा ब्रूयादसावेहीत्येवमेवैना नामधेयैरा (३) च्यावयति वृष्णो अश्वस्य संदानमसि वृष्ट्यै त्वोप नह्यामीत्याह वृषा वा अश्वो वृषा पर्जन्यः कृष्ण इव खलु वै भूत्वा वर्षति रूपेणैवैनꣳ समर्धयति वर्षस्यावरुद्ध्यै ॥ (मधुषा, भवन्ति, नामधेयैरा,-द्वात्रिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

कारीर्युत्तरभागविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वसव्या देवाः शर्मण्या देवाः सपीतय इत्या बध्नाति देवताभिरेवान्वहं वृष्टिमिच्छति यदि वर्षेत् तावत्येव होतव्यं यदि न वर्षेच्छ्वो भूते हविर्निर्वपे—दहोरात्रे वै मित्रावरुणावहोरात्राभ्यां खलु वै पर्जन्यो वर्षति नक्तं वा हि दिवा वा वर्षति मित्रावरुणावेव स्वेन भागधेयेनोप धावति तावेवास्मा (१) अहोरात्राभ्यां पर्जन्यं वर्षयतोऽग्नये धामच्छदे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतꣳ सप्तकपालꣳ सौर्यमेककपालमग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति मरुतः सृष्टां नयन्ति यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षति धामच्छदिव खलु वै भूत्वा वर्षत्येता वै देवता वृष्ट्या ईशते ता एव स्वेन भागधेयेनोप धावति ता (२) एवास्मै पर्जन्यं वर्षयन्त्युतावर्षिष्यन् वर्षत्येव सृजा वृष्टिं दिव

आऽद्भिः संमुद्रं पृणेत्याहेमाश्चैवामूश्चापः समर्धयत्यथो आभिरेवामुरच्छैत्ये– द्जा असि प्रथमजा बलमसि समुद्रियमित्याह यथायजुरेवैत–दुद्गम्भय पृथिवीमिति वर्षाह्वां जुहोत्येषा वा (२) ओषधीनां वृष्टिवनिस्तयैव वृष्टिमा च्यावयति ये देवा दिविभागा इति कृष्णाजिनमव धूनोतीम एवास्मै लोकाः प्रीता अभीष्टा भवन्ति ॥ (असौ, धावति ता, वा, एकविंशतिश्च) ॥ १० ॥

सर्वकामार्थिनः, अभिचरतः, अभिचर्यमाणस्य, सहस्रेण यक्ष्यमाणस्य, बहुविधयज्ञसाधनद्रव्यार्थिनश्च त्रैधातवीष्टिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सर्वाणि छन्दा॰स्येतस्यामिष्ट्यामनूच्यानीत्याहुस्त्रिष्टुभो वा एतद्वीर्यं यत् ककुदुष्णिहा जगत्यै यदुष्णिहककुभावन्वाह तेनैव सर्वाणि छन्दा॰स्यव रुन्धे गायत्री वा एषा यदुष्णिहा यानि चत्वार्यध्यक्षराणि चतुष्पाद एव ते पशवो यथा पुरोडाशे पुरोडाशोऽध्येवमेव यदृच्यध्यक्षराणि यज्जगत्या (१) परिदध्यादन्तं यज्ञं गमयेत् त्रिष्टुभा परि दधातीन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुगिन्द्रिय एव वीर्ये यज्ञं प्रतिष्ठापयति नान्तं गमयत्य–ग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्थेति त्रिवत्या परि दधाति सरूपत्वाय सर्वो वा एष यज्ञो यत् त्रैधातवीयं कामायकामाय प्र युज्यते सर्वेभ्यो हि कामेभ्यो यज्ञः प्रयुज्यते त्रैधातवीयेन यजेताभिचरन्त्सर्वो वा (२०) एष यज्ञो यत् त्रैधातवीय॰ सर्वेणैवैनं यज्ञेनाभि चरति स्तृणुत एवैन–मेतयैव यजेताभिचर्यमाणः सर्वो वा एष यज्ञो यत् त्रैधातवीय॰ सर्वेणैव यज्ञेन यजते नैनमभिचरन्त्स्तृणुत एतयैव यजेत सहस्रेण यक्ष्यमाणः प्रजातमेवैनद्दात्ये–तयैव यजेत सहस्रेणेजानोऽन्तं वा एष पशूनां गच्छति (३) यः सहस्रेण यजते प्रजापतिः खलु वै पशूनसृजत ता॰स्त्रैधातवीयेनैवासृजत य एवं विद्वा॰स्त्रैधातवीयेन पशुकामो यजते यस्मादेव योनेः प्रजापतिः पशूनसृजत तस्मादेवैनान्त्सृजत उपैनमुत्तर॰ सहस्रं नमति देवताभ्यो वा एष आ वृश्च्यते यो यक्ष्य इत्युक्त्वा न यजते त्रैधातवीयेन यजेत सर्वो वा एष यज्ञो (४) यत् त्रैधातवीय॰ सर्वेणैव यज्ञेन यजते न देवताभ्य आ वृश्च्यते द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति ते त्रयश्चतुष्कपालास्त्रिष्षमृद्धत्वाय त्रयः पुरोडाशा भवन्ति त्रय इमे लोका एषां लोकानामाप्त्या उत्तरउत्तरो ज्यायान् भवत्येवमिव हीमे लोका यवमयो मध्य एतद्वा अन्तरिक्षस्य रूप॰ समृद्ध्यै सर्वेषामभिगमयन्नव द्यत्यछम्बट्कार॰ हिरण्यं ददाति तेज एवा (५) ऽव रुन्धे तार्प्यं ददाति पशूनेवाव रुन्धे धेनुं ददात्याशिष एवाव रुन्धे साम्नो वा एष वर्णो यद्धिरण्यं यजुषां तार्प्यमुक्थामदानां धेनुरेतानेव सर्वान् वर्णानव रुन्धे ॥ (जगत्या, भिचरन्त्सर्वो वै, गच्छति, यज्ञ,-स्तेज एव, त्रिःशच्च) ॥ ११ ॥

त्रैधातवीयेष्टेर्वैनार्थमाख्यायिका ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्वष्टा हतपुत्रो वीन्द्र॰ सोममाऽहरत् तस्मिन्निन्द्र उपहवमैच्छत तं नोपाह्वयत पुत्रं मेऽवधीरिति स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् तस्य यदत्यशिष्यत तत् त्वष्टाऽऽहवनीयमुप प्रावर्तयत् स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति स यावदूर्ध्वः पराविध्यति तावति स्वयमेव व्यरमत यदि वा तावत् प्रवण-(१)-मासीद्यदि वा तावदध्यग्नेरासीत् स संभवन्नग्नीषोमावभि समभवत् स इषुमात्रमिषुमात्रं विष्वङ्ङवर्धत स इमाँ-

१२ (तै. सं.)

ल्लोकानवृणोद्यदिमाँल्लोकानवृणोत् तद्वृत्रस्य वृत्रत्वं तस्मादिन्द्रोऽबिभेदपि त्वष्टा तस्मै त्वष्टा वज्रमसिञ्चत् तपो वै स वज्र आसीत् तमुद्यन्तुं नाशक्नोदथ वै तर्हि विष्णु-(२)-रन्या देवताऽऽसीत् सोऽब्रवीद्विष्णवेहीदमा हरिष्यावो येनायमिदमिति स विष्णुस्त्रेधाऽऽत्मानं वि न्यधत्त पृथिव्यां तृतीयमन्तरिक्षे तृतीयं दिवि तृतीयमभिपर्यावर्ताद्ध्यबिभेद्यत् पृथिव्यां तृतीयमासीत् तेनेन्द्रो वज्रमुदयच्छद्विष्णवनुस्थितः सोऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं (३) मयि वीर्यं तत् ते प्र दास्यामीति तदस्मै प्रायच्छत् तत् प्रत्यगृह्णादधा मेति तद्विष्णवेऽति प्रायच्छत् तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णादस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्विति यदन्तरिक्षे तृतीयमासीत् तेनेन्द्रो वज्रमुदयच्छद्विष्णवनुस्थितः सोऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं (४) मयि वीर्यं तत् ते प्र दास्यामीति तदस्मै प्रायच्छत् तत् प्रत्यगृह्णाद्द्विर्माऽधा इति तद्विष्णवेऽति प्रायच्छत् तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णादस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्विति यद्दिवि तृतीयमासीत् तेनेन्द्रो वज्रमुदयच्छद्विष्णवनुस्थितः सोऽब्रवीन्मा मे प्र हार्येनाह–(५)-मिदमस्मि तत् ते प्र दास्यामीति त्वी३ इत्यब्रवीत् सन्धां तु सं दधावहै त्वामेव प्र विशानीति यन्मां प्रविशेः किं मा भुञ्ज्या इत्यब्रवीत् त्वामेवेन्धीय तव भोगाय त्वां प्र विशेयमित्यब्रवीत् तं वृत्रः प्राविशदुदरं वै वृत्रः क्षुत् खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्यो य (६) एवं वेद हन्ति क्षुधं भ्रातृव्यं तदस्मै प्रायच्छत् तत् प्रत्यगृह्णात् त्रिर्माऽधा इति तद्विष्णवेऽति प्रायच्छत् तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णादस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्विति यत् त्रिः प्रायच्छत् त्रिः प्रत्यगृह्णात् तत् त्रिधातोस्त्रिधातुत्वं यद्विष्णुरन्वतिष्ठत विष्णवेऽति प्रायच्छत् तस्मादैन्द्रावैष्णव॰ हविर्भवति (७) यद्वा इदं किं च तदस्मै तत् प्रायच्छदृचः सामानि यजू॰षि सहस्रं वा अस्मै तत् प्रायच्छत् तस्मात् सहस्रदक्षिणम् ॥ (प्रवणं, विष्णु,-र्वा इद,-मिद,-मह, यो, भवत्ये,-कविंशतिश्च) १२ ॥

राजन्यस्य शत्रुस्तम्भनिवारकग्रहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वै राजन्याज्जायमानादबिभयुस्तमन्तरेव सन्तं दाम्ना ऽपौम्भन्त्स वा एषोऽपोम्भो जायते यद्राजन्यो यद्वा एषोऽनपोम्भो जायेत वृत्रान् घ्न॰श्चरे–द्यं कामयेत राजन्यमनपोम्भो जायेत वृत्रान् घ्न॰श्चरेदिति तस्मा एतमैन्द्राबार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेदैन्द्रो वै राजन्यो ब्रह्म बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं (१) दाम्नोऽपोम्भनान्मुञ्चति हिरण्मयं दाम दक्षिणा साक्षादेवैनं दाम्नोऽपोम्भनान्मुञ्चति ॥ (एनं, द्वादश च) ॥ १३ ॥

काम्येष्टियाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-५, १५, १७ त्रिष्टुप्; ६-८ बृहती; ९ उष्णिक्; १०, १४, १६ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रे ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥
यमादित्या अ॰शुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति ।
तेन नो राजा वरुणो बृहस्पतिरा प्यायायन्तु भुवनस्य गोपाः ॥
प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्यां वृत्रहन् वृत्रहाऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्त–(१)–ज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एधि हव्यः

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयाति ।
विश्वा हि भूयाः पृतना अभिष्टीरुपसद्यो नमस्यो यथाऽसत् ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशान–(२)–मस्य जगतः सुवर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥
त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शत॰ शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्र॰ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥
न त्वा वज्रिन्त्सहस्र॰ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ (३) । सोतुर्बाहुभ्या॰ सुयतो नार्वा ॥
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥
उदग्ने शुचयस्तव॰–वि ज्योतिषो–॰–दु त्यं जातवेदस॰–
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आऽप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष॰ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुष–(४)–श्च ॥
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥
विश्वे देवाः शृणुतेम॰ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥
(न,-मीशान,-मद्रि,-स्तस्थुष,-श्चित्वारिंशच्च) ॥ १४ ॥

[देवा २०४ । देवासुरा १९९ । देवासुराः १४५ । प्रजापति–१५३ ।-रश्मे ८८ । त्रिगर्भा ११२ । मारुतं ९२ । देवा १२० । मारुतं १०९ । देवाः १७१ । मयीणि २८० । स्वर्गा २७१ । देवा ६२ । नवोनव–२३० । -श्चतुर्दश ॥ २४०९ ॥]

[इति द्वितीयकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

इष्टिविधानम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

विश्वरूपवधाख्यायिका, रजस्वलाव्रतानि च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत् स्वस्रीयोऽसुराणां तस्य त्रीणि शीर्षाण्यासन्त्सोमपान॰ सुरापानमन्नादन॰ स प्रत्यक्षं देवेभ्यो भागमवदत् परोक्षमसुरेभ्यः सर्वस्मै वै प्रत्यक्षं भागं वदन्ति यस्मा एव परोक्षं वदन्ति तस्य भाग उदितस्तस्मादिन्द्रोऽबिभेदीदृङ्वै राष्ट्रं वि पर्यावर्तयतीति तस्य

(१४।११) तै. सं. १।३।१४।२८ (१४।१२) तै. सं. १।२।१४।१७ (१४।१३) तै. सं. १।४।४।१

वज्रमादाय शीर्षाण्यच्छिनद्यत् सोमपान-(१)-मासीत् स कपिञ्जलोऽभवद्यत् सुरापान॰ स कलविङ्को यदन्नादन॰ स तित्तिरि–स्तस्याञ्जलिना ब्रह्महत्यामुपागृह्णात् ता॰ संवत्सरमबिभस्तं भूतान्यभ्यक्रोशन् ब्रह्महन्निति स पृथिवीमुपासीदस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृहाणेति साऽब्रवीद्वरं वृणै खातात् पराभविष्यन्ती मन्ये ततो मा परा भूवमिति पुरा ते (२) संवत्सरादपि रोहादित्यब्रवीत् तस्मात् पुरा संवत्सरात् पृथिव्यै खातमपि रोहति वारेवृत॰ ह्यस्यै तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णात् तत् स्वकृतमिरिणमभवत् तस्मादाहिताग्निः श्रद्धादेवः स्वकृत इरिणे नाव स्येद्ब्रह्महत्यायै ह्येष वर्णः स वनस्पतीनुपासीदस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णीतेति तेऽब्रुवन् वरं वृणामहै वृक्णात् (३) पराभविष्यन्तो मन्यामहे ततो मा परा भूमेत्यावश्चनाद्वो भूया॰स उत्तिष्ठानित्यब्रवीत् तस्माद्वृक्षाणामावश्चनाद्वृक्षाणां भूया॰स उत्तिष्ठन्ति वारेवृत॰ ह्येषां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन्त्स निर्यासोऽभवत् तस्मान्निर्यासस्य नाऽऽश्यं ब्रह्महत्यायै ह्येष वर्णोऽथो खलु य एव लोहितो यो वाऽऽवश्चनान्निर्येषति तस्य नाऽऽश्यं (४) काममन्यस्य स स्त्रीष॰सादमुपासीदस्यै ब्रह्महत्यायै तृतीयं प्रति गृह्णीतेति ता अब्रुवन् वरं वृणामहा ऋत्वियात् प्रजां विन्दामहै काममा विजनितोः सं भवामेति तस्मादृत्वियात् स्त्रियः प्रजां विन्दन्ते काममा विजनितोः सं भवन्ति वारेवृत॰ ह्यासां तृतीयं ब्रह्महत्यायै प्रत्यगृह्णन्त्सा मलवद्वासा अभवत् तस्मान्मलवद्वाससा न सं वदेत (५) न सहाऽऽसीत नास्या अन्नमद्याद्ब्रह्महत्यायै ह्येषा वर्णं प्रतिमुच्याऽऽस्तेऽथो खल्वाहुरभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अन्नमभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यदिति यां मलवद्वाससम्॰ सम्भवन्ति यस्ततो जायते सोऽभिशस्तो यामरण्ये तस्यै स्तेनो यां पराचीं तस्यै ह्रीतमुख्यपगल्भो या स्नाति तस्या अप्सु मारुको या (६) ऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा या प्रलिखते तस्यै खलतिरपमारी याऽऽङ्क्ते तस्यै काणो या दतो धावते तस्यै श्यावदन् या नखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबो या रज्जु॰ सृजति तस्या उद्बन्धुको या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादुको या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वस्तिस्रो रात्रीर्व्रतं चरेदञ्जलिना वा पिबेदखर्वेण वा (७) पात्रेण प्रजायै गोपीथाय ॥ (सोमपानं, ते, वृक्णा,-दाश्यं, वदेत, या, वा, त्रीणि च) ॥ १ ॥

पूर्णमासयागस्याग्नीषोमीयपुरोडाशः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

त्वष्टा हतपुत्रो वीन्द्र॰ सोममाऽहरत् तस्मिन्निन्द्र उपहवमैच्छत तं नोपाह्वयत पुत्रं मेऽवधीरिति स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत् तस्य यदत्यशिष्यत तत् त्वष्टाऽऽहवनीयमुप प्रावर्तयत् स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति यदवर्तयत् तद्वृत्रस्य वृत्रत्वं यदब्रवीत् स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्वेति तस्मादस्ये-(१)-न्द्रः शत्रुरभवत् स सम्भवन्नग्नीषोमावभि समभवत् स इषुमात्रमिषुमात्रं विष्वङ्ङवर्धत स इमाँल्लोकानवृणोद्यदिमाँल्लोकानवृणोत् तद्वृत्रस्य वृत्रत्वं तस्मादिन्द्रोऽबिभेत् स प्रजापतिमुपाधावच्छत्रुर्मेऽजनीति तस्मै वज्र॰ सिक्त्वा प्रायच्छदेतेन जहीति तेनाभ्यायत तावब्रूतामग्नीषोमौ मा (२) प्र हार्ग्गावमन्तः स्व इति मम वै युव॰ स्थ इत्यब्रवीन्मामभ्येतमिति तौ भागधेयमैच्छेतां ताभ्यामेतमग्नीषोमीयमेकादशकपालं पूर्णमासे प्रायच्छत् तावब्रूतामभि संदष्टौ वै स्वो न शक्नुव ऐतुमिति स इन्द्र आत्मनः शीतरूरावजनयत्

तच्छीतरूरयोर्जन्म य एवꣳ शीतरूरयोर्जन्म वेद (३) नैनꣳ शीतरूरौ हतस्ताभ्यामेनमभ्यनयत् तस्माज्जञ्जभ्यमानादग्नीषोमौ निरक्रामतां प्राणापानौ वा एनं तदजहितां प्राणो वै दक्षोऽपानः क्रतुस्तस्माज्जञ्जभ्यमानो ब्रूयान्मयि दक्षक्रतू इति प्राणापानावेवाऽऽत्मन्धत्ते सर्वमायुरेति स देवतां वृत्रान्निर्हृत्य वार्त्रघ्नꣳ हविः पूर्णमासे निरवपद् घ्नन्ति वा एनं पूर्णमास आ (४) ऽमावास्यायां प्याययन्ति तस्माद्वार्त्रघ्नी पूर्णमासेऽनूच्येते वृधन्वती अमावास्यायां तत्सꣳस्थाप्य वार्त्रघ्नꣳ हविर्वज्रमादाय पुनरभ्यायत ते अब्रूतां द्यावापृथिवी मा प्र हारावयोर्वै श्रित इति ते अब्रूतां वरं वृणावहै नक्षत्रविहिताऽहमसानीत्यसावब्रवीच्चित्रविहिताऽहमितीयं तस्मान्नक्षत्रविहिताऽसौ चित्रविहितेयं य एवं द्यावापृथिव्यो-(५)-र्वरं वेदैनं वरो गच्छति स आभ्यामेव प्रसूत इन्द्रो वृत्रमहन् ते देवा वृत्रꣳ हत्वाऽग्नीषोमावब्रुवन् हव्यं नो वहतमिति तावब्रूतामपतेजसौ वै त्यौ वृत्रे वै त्ययोस्तेज इति तेऽब्रुवन् क इदमच्छैतीति गौरित्यब्रुवन् गौर्वाव सर्वस्य मित्रमिति साऽब्रवीत् (६) वरं वृणै मय्येव सतोभयेन भुनजाध्या इति तद्गौराहरत् तस्माद्गवि सतोभयेन भुञ्जत एतद्वा अग्नेस्तेजो यद्घृतमेतत्सोमस्य यत्पयो य एवमग्नीषोमयोस्तेजो वेद तेजस्व्येव भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति किंदेवत्यं पौर्णमासमिति प्राजापत्यमिति ब्रूयात् तेनेन्द्रं ज्येष्ठं पुत्रं निरवासाययदिति तस्मा-(७)-ज्ज्येष्ठं पुत्रं धनेन निरवसाययन्ति ॥ (अभ्य, आ, वेदा,-ऽस, द्यावापृथिव्यो,-रब्रवीत्, तस्मा,-त्पञ्चाशच्च) ॥ २ ॥

पौर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो वैमृधपुरोडाशः, अमावास्यायां सान्नाय्यहविर्विधानञ्च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

इन्द्रं वृत्रं जघ्निवाꣳसं मृधोऽभि प्रावेपन्त स एतं वैमृधं पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यमपश्यत् तं निरवपत् तेन वै स मृधोऽपाहत यद्वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो भवति मृध एव तेन यजमानोऽप हत इन्द्रो वृत्रꣳ हत्वा देवताभिश्चेन्द्रियेण च व्यार्ध्यत स एतमाग्नेयमष्टाकपालममावास्यायामपश्यदैन्द्रं दधि (१) तं निरवपत् तेन वै स देवताश्चेन्द्रियं चावारुन्ध यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां भवत्यैन्द्रं दधि देवताश्चैव तेनेन्द्रियं च यजमानोऽव रुन्ध इन्द्रस्य वृत्रं जघ्नुष इन्द्रियं वीर्यं पृथिवीमनु व्यार्छत् तदोषधयो वीरुधोऽभवन्त्स प्रजापतिमुपाधावद्वृत्रं मे जघ्नुष इन्द्रियं वीर्यं (२) पृथिवीमनु व्यारत् तदोषधयो वीरुधोऽभवन्निति स प्रजापतिः पशुभ्योऽब्रवीदेतदस्मै सं नयतेति तत्पशव ओषधीभ्योऽध्यात्मन्त्समनयन् तत्प्रत्यदुहन् यत्समनयन्तत्सांनाय्यस्य सांनाय्यत्वं यत्प्रत्यदुहन्तत्प्रतिधुषः प्रतिधुक्त्वꣳ समनेषुः प्रत्यधुक्षन्न तु मयि श्रयत इत्यब्रवीदेतदस्मै (३) शृतं कुरुतेत्यब्रवीत् तदस्मै शृतमकुर्वन्निन्द्रियं वावास्मिन्वीर्यं तदश्रयन्तच्छृतस्य शृतत्वꣳ समनेषुः प्रत्यधुक्षञ्छृतमक्रन्न तु मा धिनोतीत्यब्रवीदेतदस्मै दधि कुरुतेत्यब्रवीत् तदस्मै दध्यकुर्वन्तदेनमधिनोत्तद्दध्नो दधित्वं ब्रह्मवादिनो वदन्ति दध्नः पूर्वस्यावदेयं (४) दधि हि पूर्वं क्रियत इत्यनादृत्य तच्छृतस्यैव पूर्वस्याव द्येदिन्द्रियमेवास्मिन्वीर्यꣳ श्रित्वा दध्नोपरिष्टाद्धिनोति यथापूर्वमुपैति यत्पूतीकैर्वा पर्णवल्कैर्वाऽऽतञ्च्यात्सौम्यं तद्यत्क्वलै राक्षसं तद्यत्तण्डुलैर्वैश्वदेवं तद्यदातञ्चनेन मानुषं तद्यद्दध्ना तत्सेन्द्रं दध्नाऽऽतनक्ति (५) सेन्द्रत्वाया-ऽग्निहोत्रोच्छेषणमभ्यातनक्ति यज्ञस्य संतत्यै इन्द्रो वृत्रꣳ हत्वा परां परावतमगच्छद-

पाराधमिति मन्यमानस्तं देवताः प्रैषमैच्छन्त्सोऽब्रवीत् प्रजापतिर्यः प्रथमोऽनुविन्दति तस्य प्रथमं भागधेयमिति तं पितरोऽन्वविन्दन्तस्मात् पितृभ्यः पूर्वेद्युः क्रियते सोऽमावास्यां प्रत्याऽगच्छत्तं देवा अभि समगच्छन्तामा वै नो (६) ऽद्य वसु वसतीतीन्द्रो हि देवानां वसु तदमावास्याया अमावास्यत्वं ब्रह्मवादिनो वदन्ति किंदेवत्यꣳ सांनाय्यमिति वैश्वदेवमिति ब्रूयाद्विश्वे हि तद्देवा भागधेयमभि समगच्छन्तेत्यथो खल्वैन्द्रमित्येव ब्रूयादिन्द्रं वाव ते तदभिषज्यन्तोऽभि समगच्छन्तेति ॥ (दधि, वीर्यं,-अस्मै, अवदेयं, तनक्ति, नो, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

भ्रातृव्यवतः पशुकामस्य च यागौ, सांनाय्यदेवता च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै दर्शपूर्णमासौ यजेत य एनौ सेन्द्रौ यजेतेति वैमृधः पूर्णमासेऽनुनिर्वाप्यो भवति तेन पूर्णमासः सेन्द्र ऐन्द्रं दध्यमावास्यायां तेनामावास्या सेन्द्रा य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते सेन्द्रावेवैनौ यजते श्वःश्वोऽस्मा ईजानाय वसीयो भवति देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एता-(१)-मिष्टिमपश्यन्नाग्नावैष्णवमेकादशकपालꣳ सरस्वत्यै चरुꣳ सरस्वते चरुं तां पौर्णमासꣳ सꣳस्थाप्यानु निरवपन्ततो देवा अभवन्पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स पौर्णमासꣳ सꣳस्थाप्यैतामिष्टिमनु निर्वपेत् पौर्णमासेनैव वज्रं भ्रातृव्याय प्रहृत्याऽऽग्नावैष्णवेन देवताश्च यज्ञं च भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते मिथुनान्पशून्त्सारस्वताभ्यां यावदेवास्यास्ति तत् (२) सर्वं वृङ्क्ते पौर्णमासीमेव यजेत भ्रातृव्यवान्नामावास्याꣳ हत्वा भ्रातृव्यं नाऽऽप्याययति साकम्प्रस्थायीयेन यजेत पशुकामो यस्मै वा अल्पेनाऽऽहरन्ति नाऽऽत्मना तृप्यति नान्यस्मै ददाति यस्मै महता तृप्यत्यात्मना ददात्यन्यस्मै महता पूर्णꣳ होतव्यं तृप्त एवैनमिन्द्रः प्रजया पशुभिस्तर्पयति दारुपात्रेण जुहोति न हि मृन्मयमाहुतिमानश औदुम्बरं (३) भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्क्पशव ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पशूनव रुन्धे नागतश्रीर्महेन्द्रं यजेत त्रयो वै गतश्रियः शुश्रुवान्ग्रामणी राजन्यस्तेषां महेन्द्रो देवता यो वै स्वां देवतामतियजते प्र स्वायै देवतायै च्यवते न परां प्राप्नोति पापीयान्भवति संवत्सरमिन्द्रं यजेत संवत्सरꣳ हि व्रतं नाति स्वै-(४)-वैनं देवतेज्यमाना भूत्या इन्धे वसीयान्भवति संवत्सरस्य परस्तादग्नये व्रतपतये पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत् संवत्सरमेवैनं वृत्रं जघ्निवाꣳसमग्निर्व्रतपतिर्व्रतमा लम्भयति ततोऽधि कामं यजेत ॥ (एतां, त,-दौदुम्बरꣳ, स्वा, त्रिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

अभ्युदयेष्टि, ५ स्वर्गकामस्य दाक्षायणयज्ञः, १० व्यावृत्कामस्य संवेष्टिः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

नासोमयाजी सं नयेदनागतं वा एतस्य पयो योऽसोमयाजी यदसोमयाजी सं नयेत् परिमोष एव सोऽनृतं करोत्यथो परैव सिच्यते सोमयाज्येव सं नयेत् पयो वै सोमः पयः सांनाय्यं पयसैव पय आत्मन्धत्ते वि वा एतं प्रजया पशुभिरर्धयति वर्धयत्यस्य भ्रातृव्यं यस्य हविर्निरुप्तं पुरस्ताच्चन्द्रमा (१) अभ्युदेति त्रेधा तण्डुलान्वि भजेद्ये मध्यमाः स्युस्तानग्नये दात्रे पुरोडाशमष्टाकपालं कुर्याद्ये स्थविष्ठास्तानिन्द्राय प्रदात्रे दधꣳश्चरुं येऽणिष्ठास्तान्विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरुमग्निरेवास्मै प्रजां प्रजनयति वृद्धामिन्द्रः प्र यच्छति यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रति तिष्ठति न द्वे (२) यजेत यत्पूर्वया सम्प्रति यजेतो-

त्तरया छम्बट्कुर्याद्यदुत्तरया सम्प्रति यजेत पूर्वया छम्बट्कुर्यान्नेष्टिर्भवति न यज्ञस्तदनु ह्वीतमुख्यपगल्भो जायत एकामेव यजेत प्रगल्भोऽस्य जायतेऽनादृत्य तद्द्वे एव यजेत यज्ञमुखमेव पूर्वयाऽऽलभते यजत उत्तरया देवता एव पूर्वयाऽवरुन्ध इन्द्रियमुत्तरया देवलोकमेव (३) पूर्वयाऽभिजयति मनुष्यलोकमुत्तरया भूयसो यज्ञक्रतूनुपैत्येषा वै सुमना नामेष्टिर्यमद्येजानं पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोक ऋधुकं भवति दाक्षायणयज्ञेन सुवर्गकामो यजेत पूर्णमासे सं नयेन्मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयाऽमावास्यायां यजेत पूर्णमासे वै देवानाꣳ सुतस्तेषामेतमर्धमासं प्रसुतस्तेषां मैत्रावरुणी वशाऽमावास्यायामनूबन्ध्या यत् (४) पूर्वेद्युर्यजते वेदिमेव तत् करोति यद्वत्सानपाकरोति सदोहविर्धाने एव सं मिनोति यद्यजते देवैरेव सुत्याꣳ सं पादयति स एतमर्धमासꣳ सधमादं देवैः सोमं पिबति यन्मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षयाऽमावास्यायां यजते यैवासौ देवानां वशाऽनूबन्ध्या सो एवैषैतस्य साकं वा एष देवानभ्यारोहति य एषां यज्ञ-(५)-मभ्यारोहति यथा खलु वै श्रेयानभ्यारूढः कामयते तथा करोति यद्यवविध्यति पापीयान्भवति यदि नावविध्यति सदृङ् व्यावृत्काम एतेन यज्ञेन यजेत क्षुरपविर्ह्येष यज्ञस्तानक् पुण्यो वा भवति प्र वा मीयते तस्यैतद्व्रतं नानृतं वदेन्न माꣳसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयान्नास्य पल्पूलनेन-वासः पल्पूलयेयुः (६) -रेतद्धि देवाः सर्वं न कुर्वन्ति ॥ (चन्द्रमा, द्वे, एव, य,-ज्ञं, पल्पूलयेयुः, दश च) ॥ ५ ॥

दर्शपूर्णमासयोः सोमयागेन सह तौल्यकथनम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

एष वै देवरथो यद्दर्शपूर्णमासौ यो दर्शपूर्णमासाविष्ट्वा सोमेन यजते रथस्पष्ट एवावसाने वरे देवानामव स्यत्ये-तानि वा अङ्गपरूꣳषि संवत्सरस्य यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजतेऽङ्गपरूꣳष्येव संवत्सरस्य प्रति दधात्ये-ते वै संवत्सरस्य चक्षुषी यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते ताभ्यामेव सुवर्गं लोकमनु पश्यत्ये-(१)-षा वै देवानां विक्रान्तिर्यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते देवानामेव विक्रान्तिमनु वि क्रमत एष वै देवयानः पन्था यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते य एव देवयानः पन्थास्तꣳ समारोहत्ये-तौ वै देवानाꣳ हरी यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते यावेव देवानाꣳ हरी ताभ्या-(२)-मेवैभ्यो हव्यं वहत्ये-तद्वै देवानामास्यं यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते साक्षादेव देवानामास्ये जुहोत्ये-ष वै हविर्धानी यो दर्शपूर्णमासयाजी सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहोति यजते दर्शपूर्णमासावहरहर्हविर्धानिनाꣳ सुतो य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते हविर्धान्यस्मीति सर्वमेवास्य बर्हिष्यं दत्तं भवति देवा वा अहः (३) -र्यज्ञियं नाविन्दन्ते दर्शपूर्णमासावपुनन्तौ वा एतौ पूतौ मेध्यौ यद्दर्शपूर्णमासौ य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते पूतावेवैनौ मेध्यौ यजते नामावास्यायां च पौर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्यदुपेयान्निरिन्द्रियः स्यात् सोमस्य वै राज्ञोऽर्धमासस्य रात्रयः पत्नय आसन्तासाममावास्यां च पौर्णमासीं च नोपैत् (४) ते एनमभि समनह्येतां तं यक्ष्म आर्च्छद्राजानं यक्ष्म आरदिति तद्राजयक्ष्मस्य जन्म यत्पापीयानभवत्तत्पापयक्ष्मस्य यज्जायाभ्यामविन्दत्तज्जायेन्यस्य य एवमेतेषां यक्ष्माणां जन्म वेद नैनमेते यक्ष्मा विन्द-

न्ति स एते एव नमस्यन्नुपाधावत् ते अब्रूतां वरं वृणावहा आवं देवानां भागधे असाव-(५)-दधि देवा इज्यान्ता इति तस्मात्सदृशीनाꣳ रात्रीणाममावास्यायां च पौर्णमास्यां च देवा इज्यन्त एते हि देवानां भागधे भागधा अस्मै मनुष्या भवन्ति य एवं वेद भूतानि क्षुधमघ्नन्त्सद्यो मनुष्या अर्धमासे देवा मासि पितरः संवत्सरे वनस्पतयस्तस्मादहरहर्मनुष्या अशनमिच्छन्तेऽर्धमासे देवा इज्यन्ते मासि पितृभ्यः क्रियते संवत्सरे वनस्पतयः फलं (६) गृह्णन्ति य एवं वेद हन्ति क्षुधं भ्रातृव्यम् ॥ (पश्यति, ताभ्या,-महः,-दयात्, फलꣳ, सप्त च) ॥ ६ ॥

सामिधेनीमन्त्रव्याख्यानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

देवा वै नर्चि न यजुष्यश्रयन्त ते सामन्नेवाश्रयन्त हिं करोति साम्नैवाकर्हिं करोति यत्रैव देवा अश्रयन्त तत एवैनान्प्र युङ्क्ते हिं करोति वाच एवैष योगो हिं करोति प्रजा एव तद्यजमानः सृजते त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां यज्ञस्यैव तद्बर्सं (१) नह्यत्यप्रस्रꣳसाय संततमन्वाह प्राणानामन्नाद्यस्य संतत्या अथो रक्षसामपहत्यै राथन्तरीं प्रथमामन्वाह राथन्तरो वा अयं लोक इममेव लोकमभि जयति त्रिर्वि गृह्णाति त्रय इमे लोका इमानेव लोकानभि जयति बार्हतीमुत्तमामन्वाह बार्हतो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकमभि जयति प्र वो (२) वाजा इत्यनिरुक्तां प्राजापत्यामन्वाह यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञमेव प्रजापतिमा रभते प्र वो वाजा इत्यन्वाहान्नं वै वाजोऽन्नमेवाव रुन्धे प्र वो वाजा इत्यन्वाह तस्मात्प्राचीनꣳ रेतो धीयतेऽग्न आ याहि वीतय इत्याह तस्मात्प्रतीचीः प्रजा जायन्ते प्र वो वाजा (३) इत्यन्वाह मासा वै वाजा अर्धमासा अभिद्यवो देवा हविष्मन्तो गौर्घृताची यज्ञो देवाञ्जिगाति यजमानः सुम्नयुरिदमसीदमसीत्येव यज्ञस्य प्रियं धामाव रुन्धे यं कामयेत सर्वमायुरियादिति प्र वो वाजा इति तस्यानूच्याग्न आ याहि वीतय इति सन्ततमुत्तरमर्धर्चमा लभेत (४) प्राणेनैवास्यापानं दाधार सर्वमायुरेति यो वा अरत्निꣳ सामिधेनीनां वेदारत्नावेव भ्रातृव्यं कुरुतेऽर्धर्चौ सं दधात्येष वा अरत्निः सामिधेनीनां य एवं वेदारत्नावेव भ्रातृव्यं कुरुत ऋषेरृषेर्वा एता निर्मिता यत्सामिधेन्यस्ता यदसंयुक्ताः स्युः प्रजया पशुभिर्यजमानस्य वि तिष्ठेरन्नर्धर्चौ सं दधाति सं (५) युनक्त्येवैनास्ता अस्मै संयुक्ता अवरुद्धाः सर्वामाशिषं दुह्रे ॥ (बर्सं, वो, वाजा, लभेत, सं, दश च) ॥ ७ ॥

द्वितीयादिसामिधेनीमन्त्रव्याख्यानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

अयज्ञो वा एष योऽसामाऽग्न आ याहि वीतय इत्याह रथन्तरस्यैष वर्णस्तं त्वा समिद्भिरङ्गिर इत्याह वामदेव्यस्यैष वर्णो बृहदग्ने सुवीर्यमित्याह बृहत एष वर्णो यदेतं तृचमन्वाह यज्ञमेव तत्सामन्वन्तं करो-त्यग्निरमुष्मिँल्लोक आसीदादित्योऽस्मिंस्ताविमौ लोकावशान्तौ (१) आस्तां ते देवा अब्रुवन्नेतेमौ वि पर्यूहामेत्यग्न आ याहि वीतय इत्यस्मिँल्लोकेऽग्निमदधुर्बृहदग्ने सुवीर्यमित्यमुष्मिँल्लोक आदित्यं ततो वा इमौ लोकावशाम्यतां यदेवमन्वाहानयोर्लोकयोः शान्त्यै शाम्यतोऽस्मा इमौ लोकौ य एवं वेद पञ्चदश सामिधेनीरन्वाह पञ्चदश (२) वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवत्सर आप्यते तासां त्रीणि च शतानि षष्टिश्चाक्षराणि तावतीः संवत्सरस्य रात्रयोऽक्षरश एव संवत्सरमाप्नोति नृमेधश्च परुच्छेपश्च

ब्रह्मवाद्यमवदेतामस्मिन् दारावार्द्रेऽग्निं जनयाव यतरो नौ ब्रह्मीयानिति नूमेध्योऽभ्यवदत् स धूममजनयत परुच्छेपोऽभ्यवदत् सोऽग्निमजनयदृष इत्यब्रवीत् (३) यत् समावद्विद्म कथा त्वमग्निमजीजनो नाहमिति सामिधेनीनामेवाहं वर्णं वेदेत्यब्रवीद् घृतवत् पदमनूच्यते स आसां वर्णस्तं त्वा समिद्भिरङ्गिर इत्याह सामिधेनीष्वेव तज्ज्योतिर्जनयति[1] स्त्रियस्तेन यदृचः स्त्रियस्तेन यद्गायत्रियः स्त्रियस्तेन यत् सामिधेन्यो वृषण्वतीमन्वाह (४) तेन पुंस्वतीस्तेन सेन्द्रास्तेन मिथुना अग्निर्देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणां तौ प्रजापतिं प्रश्नमैतां स प्रजापतिरग्निं दूतं वृणीमह इत्यभि पर्यावर्तत ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यस्यैवं विदुषोऽग्निं दूतं वृणीमह इत्यन्वाह भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवत्य-ध्वरवतीमन्वाह भ्रातृव्यमेवैतया (५) ध्वरति शोचिष्केशस्तमीमह इत्याह पवित्रमेवैतद्यजमानमेवैतया पवयति समिद्धो अग्न आहुतेत्याह परिधिमेवैतं परि दधात्यस्कन्दाय यदतं ऊर्ध्वमभ्यादध्याद्यथा बहिःपरिधि स्कन्दति तादृगेव तत् त्रयो वा अग्नयो हव्यवाहनो देवानां कव्यवाहनः पितृणां सहरक्षा असुराणां त एतर्ह्या शंसन्ते मां वरिष्यते मा-(६)-मिति वृणीध्वं हव्यवाहनमित्याह य एव देवानां तं वृणीत आर्षेयं वृणीते बन्धोरेव नैत्यथो संतत्यै[12] परस्तादर्वाचो वृणीते तस्मात् परस्तादर्वाञ्चो मनुष्यान् पितरोऽनु प्र पिपते[13] ॥ (अशान्तौ, पञ्चदश,-ऽब्रवी,-दन्वाह,-तया, मा,-मेकान्नत्रिंशच्च) ॥ ८ ॥

प्रवरमन्त्रस्य निगदस्य, ९-१५ स्रुगाद्यापननिगदस्य च व्याख्यानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

अग्ने महाँ असीत्याह महान् ह्येष यदग्निर्ब्राह्मणेत्याह ब्राह्मणो ह्येष भारतेत्याहैष हि देवेभ्यो हव्यं भरति[1] देवेद्ध इत्याह देवा ह्येतमैन्धत मन्विद्ध इत्याह मनुर्ह्येतमुत्तरो देवेभ्य ऐन्ध-र्षिष्टुत इत्याहर्षयो ह्येतमस्तुवन् विप्रानुमदित इत्याह (१) विप्रा ह्येते यच्छुश्रुवांसः कविशस्त इत्याह कवयो ह्येते यच्छुश्रुवांसो ब्रह्मसंशित इत्याह ब्रह्मसंशितो ह्येष घृताहवन इत्याह घृताहुतिर्ह्यस्य प्रियतमा प्रणीर्यज्ञानामित्याह प्रणीर्ह्येष यज्ञानां रथीरध्वराणामित्याहैष हि देवरथोऽतूर्तो होतेत्याह न ह्येतं कश्चन (२) तरति तूर्णिर्हव्यवाडित्याह सर्वं ह्येष तरत्या-स्पात्रं जुहूर्देवानामित्याह जुहूर्ह्येष देवानां चमसो देवपान इत्याह चमसो ह्येष देवपानोऽराँ इवाग्ने नेमिर्देवांस्त्वं परिभूरसीत्याह देवान् ह्येष परिभूर्यद्ब्रूयादा वह देवान् देवयते यजमानायेति भ्रातृव्यमस्मै (३) जनयेदा वह देवान् यजमानायेत्याह यजमानमेवैतेन वर्धयत्य-ग्निमग्न आ वह सोममा वहेत्याह देवता एव तद्यथापूर्वमुप ह्वयत आ चाग्ने देवान् वह सुयजा च यज जातवेद इत्याहाग्निमेव तत् संश्यति सोऽस्य संशितो देवेभ्यो हव्यं वहत्य-ग्निर्होते-(४)-त्याहाग्निर्वै देवानां होता य एव देवानां होता तं वृणीते स्मो वयमित्याहाऽऽत्मानमेव सत्त्वं गमयति[11] साधु ते यजमान देवतेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते[11] यद्ब्रूयादग्निं होतारमवृथा इत्यग्निनोभयतो यजमानं परि गृह्णीयात् प्रमायुकः स्यात्-यजमानदेवत्या वै जुहूर्भ्रातृव्यदेवत्योपभृत् (५) यद् द्वे इव ब्रूयाद् भ्रातृव्यमस्मै जनयेद् घृतवतीमध्वर्यो स्रुचमाऽस्यस्वेत्याह यजमानमेवैतेन वर्धयति[13] देवायुवमित्याह देवान् ह्येषाऽवति विश्ववारामित्याह विश्वं ह्येषाऽवती-डामहै देवाँ ईडेन्यान्नमस्याम नमस्यान् यजाम यज्ञियानित्याह मनुष्या वा ईडेन्याः पितरो नमस्या देवा यज्ञिया देवता एव (६) तद्यथाभागं यजति[15] ॥

(आह, चना,-ऽस्मै,-होता,-ऽव,-देव, त्रीणि च) ॥ ९ ॥

नैमित्तिक्यः काम्याश्च सामिधेन्यः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

त्रीँस्तृचाननु ब्रूयाद्राजन्यस्य त्रयो वा अन्ये राजन्यात् पुरुषा ब्राह्मणो वैश्यः शूद्रस्तानेवास्मा अनुकान करोति[1] पञ्चदशानु ब्रूयाद्राजन्यस्य पञ्चदशो वै राजन्यः स्व एवैनं स्तोमे प्रति ष्ठापयति[2] त्रिष्टुभा परि दध्यादिन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियकामः खलु वै राजन्यो यजते त्रिष्टुभैवास्मा इन्द्रियं परि गृह्णाति[3] यदि कामयेत (१) ब्रह्मवर्चसमस्त्विति गायत्रिया परि दध्याद्ब्रह्मवर्चसं वै गायत्री ब्रह्मवर्चसमेव भवति[4] सप्तदशानु ब्रूयाद्वैश्यस्य सप्तदशो वै वैश्यः स्व एवैनं स्तोमे प्रति ष्ठापयति[5] जगत्या परि दध्याज्जागता वै पशवः पशुकामः खलु वै वैश्यो यजते जगत्यैवास्मै पशून् परि गृह्णात्ये-कविंशतिमनु ब्रूयात् प्रतिष्ठाकामस्यैकविंशः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्यै[7] (२) चतुर्विंशतिमनु ब्रूयाद्ब्रह्मवर्चसकामस्य चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं गायत्रियैवास्मै ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे[8] त्रिंशतमनु ब्रूयादन्नकामस्य त्रिंशदक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवास्मा अन्नाद्यमव रुन्धे[9] द्वात्रिंशतमनु ब्रूयात् प्रतिष्ठाकामस्य द्वात्रिंशदक्षराऽनुष्टुगनुष्टुप् छन्दसां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्यै[10] षट्त्रिंशतमनु ब्रूयात् पशुकामस्य षट्त्रिंशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवो बृहत्यैवास्मै पशू-(३)-नव रुन्धे[11] चतुश्चत्वारिंशतमनु ब्रूयादिन्द्रियकामस्य चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुप् त्रिष्टुभैवास्मा इन्द्रियमव रुन्धे[12] ऽष्टाचत्वारिंशतमनु ब्रूयात् पशुकामस्याष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यैवास्मै पशूनव रुन्धे[13] सर्वाणि छन्दांस्यनु ब्रूयाद्बहुयाजिनः सर्वाणि वा एतस्य छन्दांस्यवरुद्धानि यो बहुयाजी-परिमितमनु ब्रूयादपरिमितस्यावरुद्ध्यै[15] ॥ (कामयेत, प्रतिष्ठित्यै, पशून्, सप्तचत्वारिंशच्च) ॥ १० ॥

सामिधेनीषु होतुर्नियमविशेषः, ९-२५ आध्वर्यव आघारश्च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवाना-मुप व्ययते देवलक्ष्ममेव तत् कुरुते[1] तिष्ठन्नन्वाह तिष्ठन् ह्याश्रुततरं वदति[3] तिष्ठन्नन्वाह सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्या आसीनो यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति[5] यत् क्रौञ्चमन्वाहाऽऽसुरं तद्यन्मन्द्रं मानुषं तद्यदन्तरा तत् सदेवमन्तराऽनूच्यं सदेवत्वाय[6] विद्वांसो वै (१) पुरा होतारोऽभूवन् तस्माद्विधृता अध्वानोऽभूवन् न पन्थानः समरुक्षन्नन्तर्वेद्यन्यः पादो भवति बहिर्वेद्यन्योऽथान्वाहाध्वनां विधृत्यै पथामसंरोहाया-थो भूतं चैव भविष्यच्चाव रुन्धेऽथो परिमितं चैवापरिमितं चाव रुन्धेऽथो ग्राम्यांश्चैव पशूनारण्यांश्चाव रुन्धेऽथो (२) देवलोकं चैव मनुष्यलोकं चाभि जयति[8] देवा वै सामिधेनीरनूच्य यज्ञं नान्वपश्यन्त्स प्रजापतिस्तूष्णीमाघारमा ऽघारयत् ततो वै देवा यज्ञमन्वपश्यन् यत् तूष्णीमाघारमाघारयति यज्ञस्यानुख्यात्या अथो सामिधेनीरेवाभ्यनक्त्य-लूक्षो भवति य एवं वेदा-थो तर्पयत्येवैना-स्तृप्यति प्रजया पशुभि-(३)-र्य एवं वेद[12] यदेकया ऽऽघारयेदेकां प्रीणीयाद्यद् द्वाभ्यां द्वे प्रीणीयाद्यत् तिसृभिरति तद्रेचयेन्मनसा ऽऽघारयति मनसा ह्यनाप्तमाप्यते[14] तिर्यञ्चमा घारयत्यच्छम्बट्कारं[15] वाक् च मनश्चाऽऽर्तीयेतामहं देवेभ्यो हव्यं वहामीति वागब्रवीदहं देवेभ्य इति मनस्तौ प्रजापतिं प्रश्नमैतां सोऽब्रवीत् (४) प्रजापतिर्दूतीरेव त्वं मनसोऽसि यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदतीति तत् खलु तुभ्यं न वाचा

जुहवन्नित्यब्रवीत् तस्मान्मनसा प्रजापतये जुह्वति मन इव हि प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै[16] परिधीन्त्सं मार्ष्टि पुनात्येवैनान्त्[17] त्रिर्मध्यमं त्रयो वै प्राणाः प्राणानेवाभि जयति त्रिर्दक्षिणार्धं त्रयं (५) इमे लोका इमानेव लोकानभि जयति[18] त्रिरुप वाजयति त्रिरुत्तरार्धं त्रयो वै देवयानाः पन्थानस्तानेवाभि जयति[19] द्वादश सं पद्यन्ते द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरमेव प्रीणात्यथो संवत्सरमेवास्मा उप दधाति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै त्रयो वै देवलोका देवलोकानेवाभि जयति[11] आघारमा घारयति तिर इव (६) वै सुवर्गो लोकः सुवर्गमेवास्मै लोकं प्र रोचयत्यृ-जुमा घारयत्यृजुर्ह्ये हि प्राणः संततमा घारयति प्राणानामन्नाद्यस्य संतत्या अथो रक्षसामपहत्यै[22] यं कामयेत प्रमायुकः स्यादिति जिह्मं तस्याऽऽ घारयेत् प्राणमेवास्माज्जिह्मं नयति ताजक् प्र मीयते[23] शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघार आत्मा ध्रुवा (७) ऽऽघारमाघार्य ध्रुवां समनक्त्यात्मन्नेव यज्ञस्य शिरः प्रति दधात्य-ग्निर्देवानां दूत आसीद् दैव्योऽसुराणां तौ प्रजापतिं प्रश्नमैतां स प्रजापतिर्ब्राह्मणमब्रवीदेतद्वि ब्रूहीत्या श्रावयेतीदं देवाः शृणुतेति वाव तदब्रवीदग्निर्देवो होतेति य एव देवानां तमवृणीत ततो देवा (८) अभवन् पराऽसुरा यद्ब्राह्मणश्चाब्राह्मणश्च प्रश्नमेयातां ब्राह्मणायाधि ब्रूयाद्यद्ब्राह्मणायाध्याहाऽऽत्मनेऽध्याह यद्ब्राह्मणं पराहाऽऽत्मानं पराऽऽह तस्माद्ब्राह्मणो न परोच्यः[26] ॥ (वा, त्रयो, पशुभि,-रब्रवीत, त्रयं, इव, ध्रुवा, देवा,-श्चत्वारिंशच्च) ॥ ११ ॥

यस्यैवं विदुषः प्रवरं प्रवृणते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति[25]

काम्येष्टियाज्यापुरोऽनुवाक्याः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आयुष्टे*-आयुर्दा अग्ने*-आ प्यायस्व*- सं ते*-ऽवं ते हेडः*- उदुत्तमं*- प्र णो देव्या*-नो दिवो*-ऽग्नाविष्णू*- अग्नाविष्णू*- इमं मे वरुण*- तत् त्वा यामि*- दूत्यं[13]*- चित्रम्*- ॥

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः[15] ॥
सम-(१)-न्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः[16] ।
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेण शिक्वना रेवदग्निर्दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥
स शुक्रेण शिक्वना रेवदग्निर्दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥
इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृडात ईदृशे[18] ॥
इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृडात ईदृशे ॥
इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो (२) विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः[19] ॥

(१२-१।२) १।२।१४।११-१२, (१२।३-४) ४।२।७।१२-१३, (१२।५-६) १।५।१।१९-१०, (१२।७-८,९-१०) १।८।२२।३-४, १-२, (१२।११-१२) २।१।११।२१-२२, (१२।१३-१४) १।४।४३।१-२ ।

आ नो मित्रावरुणा*-प्र बाहवा[21]*-
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं (१) रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि[23] ॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः[24] ॥
प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् (४) ॥
वि पाजसा*-वि ज्योतिषा*- ॥
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥
अंहोमुचे[31]*- विवेष यन्मा*- वि न इन्द्र[32]*-न्द्र क्षत्रं*- मिन्द्रियाणि शतक्रतो[34]*- ऽनु ते दायि[35]*- ॥ (तं, नो, वरुणं, राजन्,-श्चतुश्चत्वारिंशच्च) ॥ १२ ॥

[विश्वरूप-१५३ ।-एवहे-१५४ ।-ग्नं १४१ । ब्रह्मवादिनो २३० । नै-३०६ ।-व २०७ । देवा २६० । नवुशो ३११ । ऽग्ने ३०३ । त्रीन् १९७ । निवीत-४४० ।-माघु-२४७ -द्वादश ॥ २६६५)]

[इति द्वितीयकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

अवशिष्टकर्माभिधानम् ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

प्रयाजविधिः ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

समिधो यजति वसन्तमेवर्तूनामव रुन्धे तनूनपातं यजति ग्रीष्ममेवाव रुन्ध इडो यजति वर्षा एवाव रुन्धे बर्हिर्यजति शरदमेवाव रुन्धे स्वाहाकारं यजति हेमन्तमेवाव रुन्धे तस्मात् स्वाहाकृता हेमन् पशवोऽव सीदन्ति समिधो यजत्युषस एव देवतानामव रुन्धे तनूनपातं यजति यज्ञमेवाव रुन्ध (१) इडो यजति पशूनेवाव रुन्धे बर्हिर्यजति प्रजामेवाव रुन्धे[1] समानयत उपभृतस्तेजो वा आज्यं प्रजा बर्हिः प्रजास्वेव तेजो दधाति[3] स्वाहाकारं यजति वाचमेवाव रुन्धे[4] दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराजैवान्नाद्यमव रुन्धे[5] समिधो यजत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति तनूनपातं यजति (२) यज्ञ एवान्तरिक्षे प्रति तिष्ठतीडो यजति पशुष्वेव प्रति तिष्ठति बर्हिर्यजति य एव देवयानाः पन्थानस्तेष्वेव प्रति तिष्ठति स्वाहाकारं यजति सुवर्ग एव लोके प्रति तिष्ठत्येतावन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यथापूर्वं प्रति तिष्ठति[8]

(१२।२०-२१) १।८।२२।८-९, (१२।२६-२७) ४।१।५।१, १।२।१४।१, (१२।३०-३४) १।६।१२।९-१०, १२-११, ३-४

देवासुरा एषु लोकेष्वस्पर्धन्त ते देवाः प्रयाजैरेभ्यो लोकेभ्योऽसुरान् प्राणुदन्त तत् प्रयाजानां (३) प्रयाजत्वं यस्यैवं विदुषः प्रयाजा इज्यन्ते प्रैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यान्नुदतेऽभिक्रामं जुहोत्यभिजित्यै यो वै प्रयाजानां मिथुनं वेद प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते समिधो बहीरिव यजति तनूनपातमेकमिव मिथुनं तदिडो बहीरिव यजति बर्हिरेकमिव मिथुनं तदेतद्वै प्रयाजानां मिथुनं य एवं वेद प्र (४) प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते देवानां वा अनिष्टा देवता आसन्नथासुरा यज्ञमजिघांसन् ते देवा गायत्रीं व्यौहन् पञ्चाक्षराणि प्राचीनानि त्रीणि प्रतीचीनानि ततो वर्म यज्ञायाभवद्वर्म यजमानाय यत् प्रयाजानूयाजा इज्यन्ते वर्मैव तद्यज्ञाय क्रियते वर्म यजमानाय भ्रातृव्याभिभूत्यै तस्माद्वरूथं पुरस्ताद्वर्षीयः पश्चाद्ध्रसीयो देवा वै पुरा रक्षोभ्य (५) इति स्वाहाकारेण प्रयाजेषु यज्ञꣳ सꣳस्थाप्यमपश्यन् तꣳ स्वाहाकारेण प्रयाजेषु समस्थापयन् वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यत् स्वाहाकारेण प्रयाजेषु सꣳस्थापयन्ति प्रयाजानिष्ट्वा हवीꣳष्यभि घारयति यज्ञस्य संतत्या अथो हविरेवाकरथो यथापूर्वमुपैति पिता वै प्रयाजाः प्रजाऽनूयाजा यत् प्रयाजानिष्ट्वा हवीꣳष्यभिघारयति पितैव तत् पुत्रेण साधारणं (६) कुरुते तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न कथा पुत्रस्य केवलं कथा साधारणं पितुरित्यस्कन्नमेव तद्यत् प्रयाजेष्विष्टेषु स्कन्दति गायत्र्येव तेन गर्भं धत्ते सा प्रजां पशून् यजमानाय प्र जनयति ॥

(कन्ध यजति, प्रयाजानां, प्र, रक्षोभ्यः, साधारणं, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ १ ॥

आज्यभागौ; ६ अहीन याज्यानुवाक्ये; ७-१० प्रधानस्य हविषो याज्यानुवाक्ये च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ यदाज्यभागौ यजति चक्षुषी एव तद्यज्ञस्य प्रति दधाति पूर्वार्धे जुहोति तस्मात् पूर्वार्धे चक्षुषी प्रबाहुग्जुहोति तस्मात् प्रबाहुक् चक्षुषी देवलोकं वा अग्निना यजमानोऽनु पश्यति पितृलोकꣳ सोमेनोत्तरार्धेऽग्नये जुहोति दक्षिणार्धे सोमायैवमिव हीमौ लोकावनयोर्लोकयोरनुख्यात्यै राजानौ वा एतौ देवतानां (१) यदग्नीषोमावन्तरा देवता इज्येते देवतानां विधृत्यै तस्माद्राज्ञा मनुष्या विधृता ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं तद्यज्ञे यजमानः कुरुते येनान्यतोदतश्च पशून् दाधारोभयतोदतश्चेत्यृचमनूच्याऽऽज्यभागस्य जुषाणेन यजति तेनान्यतोदतो दाधारर्चमनूच्य हविष ऋचा यजति तेनोभयतोदतो दाधार मूर्धन्वती पुरोऽनुवाक्या भवति मूर्धानमेवैनꣳ समानानां करोति (२) नियुत्वत्या यजति भ्रातृव्यस्यैव पशून् नि युवते केशी ह दार्भ्यं केशी सात्यकामिरुवाच सप्तपदां ते शक्वरीꣳ श्वो यज्ञे प्रयोक्तासे यस्यै वीर्येण प्र जातान् भ्रातृव्यान्नुदते प्रति जनिष्यमाणान् यस्यै वीर्येणोभयोर्लोकयोर्ज्योतिर्धत्ते यस्यै वीर्येण पूर्वार्धेनानड्वान् भुनक्ति जघनार्धेन धेनुरिति पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोऽनुवाक्या भवति जातानेव भ्रातृव्यान् प्र णुदत उपरिष्टाल्लक्ष्मा (३) याज्या जनिष्यमाणानेव प्रति नुदते पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोऽनुवाक्या भवत्यस्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्त उपरिष्टाल्लक्ष्मा याज्याऽमुष्मिन्नेव लोके ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तावस्मा इमौ लोकौ भवतो य एवं वेद पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोऽनुवाक्या भवति तस्मात् पूर्वार्धेनानड्वान् भुनक्त्युपरिष्टाल्लक्ष्मा याज्या तस्माज्जघनार्धेन धेनुर्य एवं वेद भुङ्क्त एनमेतौ वज्र आज्यं वज्र आज्यभागौ (४) वज्रो वषट्कारस्त्रिवृतमेव वज्रꣳ सम्भृत्य भ्रातृव्याय प्र हरत्यछम्बट्कारमपगूर्य वषट्करोति स्तृत्यै गायत्री पुरोऽनुवाक्या भवति त्रिष्टुग् याज्या ब्रह्मन्नेव क्षत्रमन्वारम्भयति

तस्माद्ब्राह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेद प्रैवैनं पुरोऽनुवाक्ययाऽऽह प्र णयति याज्यया गमयति वषट्कारेणैवैनं पुरोऽनुवाक्यया दत्ते प्र यच्छति याज्यया प्रति (५) वषट्कारेण स्थापयति त्रिपदा पुरोऽनुवाक्या भवति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठति चतुष्पदा याज्या चतुष्पद एव पशूनव रुन्धे द्व्यक्षरो वषट्कारो द्विपाद्यजमानः पशुष्वेवोपरिष्टात् प्रति तिष्ठति गायत्री पुरोऽनुवाक्या भवति त्रिष्टुग् याज्यैषा वै सप्तपदा शक्वरी यद्वा एतया देवा अशिक्षन् तदशक्नुवन् य एवं वेद शक्नोत्येव (६) यच्छिक्षति ॥ (देवतानां, करोत्यु, परिष्टाल्लक्ष्मा, ऽऽज्यभागौ प्रत्यु,-व, द्वे च) ॥ २ ॥

आग्नेयपुरोडाशविधिः, १०-११ कपालनाशे प्रायश्चित्तं च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिशत् स आत्मन्नाज्यमधत्त तं देवा अब्रुवन्नेष वाव यज्ञो यदाज्यमप्येव नोऽत्रास्त्विति सोऽब्रवीद्यजान् व आज्यभागावुप स्तृणानभि घारयानिति तस्माद्यजन्त्याज्यभागावुप स्तृणन्त्यभि घारयन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्याद्यातयामान्यन्यानि हवीꣳष्ययातयाममाज्यमिति प्राजापत्य-(१)-मिति ब्रूयादयातयामा हि देवानां प्रजापतिरिति छन्दाꣳसि देवेभ्योऽपाक्रामन् न वोऽभागानि हव्यं वक्ष्याम इति तेभ्य एतच्चतुरवत्तमधारयन् पुरोऽनुवाक्यायै याज्यायै देवतायै वषट्काराय यच्चतुरवत्तं जुहोति छन्दाꣳस्येव तत् प्रीणाति तान्यस्य प्रीतानि देवेभ्यो हव्यं वहन्त्यङ्गिरसो वा इत उत्तमाः सुवर्गं लोकमायन् तदृषयो यज्ञवास्त्वभ्यवायन् ते (२) ऽपश्यन् पुरोडाशं कूर्मं भूतꣳ सर्पन्तं तमब्रुवन्निन्द्राय ध्रियस्व बृहस्पतये ध्रियस्व विश्वेभ्यो देवेभ्यो ध्रियस्वेति स नाध्रियत तमब्रुवन्नग्नये ध्रियस्वेति सोऽग्नयेऽध्रियत यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां च पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्यै तमब्रुवन् कथाऽहास्था इत्यनुपाक्तोऽभूवमित्यब्रवीद्यथाऽक्षोऽनुपाक्तो (३) ऽवार्च्छत्येवमवाऽऽरमित्युपरिष्टादभ्यज्याधस्तादुपानक्ति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै सर्वाणि कपालान्यभि प्रथयति तावतः पुरोडाशानमुष्मिँल्लोकेऽभि जयति यो विदग्धः स नैर्ऋतो योऽशृतः स रौद्रो यः शृतः स सदेवस्तस्मादविदहता शृतंकृत्यः सदेवत्वाय भस्मनाऽभि वासयति तस्मान्माꣳसेनास्थि छन्नं वेदेनाभि वासयति तस्मात् (४) केशैः शिरश्छन्नं प्रच्युतं वा एतदस्माँल्लोकादगतं देवलोकं यच्छृतꣳ हविरनभिघारितमभिघार्योद्वासयति देवत्रैवैनद्गमयति यद्येकं कपालं नश्येदेको मासः संवत्सरस्यानवेतः स्यादथ यजमानः प्र मीयेत यद् द्वे नश्येतां द्वौ मासौ संवत्सरस्यानवेतौ स्यातामथ यजमानः प्र मीयेत संख्यायोद्वासयति यजमानस्य (५) गोपीथाय यदि नश्येदाश्विनं द्विकपालं निर्वपेद् द्यावापृथिव्यमेककपालमश्विनौ वै देवानां भिषजौ ताभ्यामेवास्मै भेषजं करोति द्यावापृथिव्य एककपालो भवत्यनयोर्वा एतदस्यति यद्यज्ञस्य नश्यत्यनयोरेवैनद्विन्दति प्रतिष्ठित्यै ॥ (प्राजापत्यं, ते, ऽनुपाक्त,-स्तस्मा-द्यजमानस्य, द्वात्रिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

वेदिनिर्माणम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्फ्यमा दत्ते प्रसूत्या अश्विनोर्बाहुभ्यामित्याहाश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्ताभ्यामित्याह यत्यै शतभृष्टिरसि वानस्पत्यो द्विषतो वध इत्याह वज्रमेव तत् सꣳ

श्यति भ्रातृव्याय प्रहरिष्यन्त्स्तम्बयजुर्हरत्येतावती वै पृथिवी यावती वेदिस्तस्या एतावत एव भ्रातृव्यं निर्भजति (१) तस्मान्नाभागं निर्भजन्ति त्रिर्हरति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यो निर्भजति तूष्णीं चतुर्थꣳ हरत्यपरिमितादेवैनं निर्भजत्युद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यं तदप हन्त्युद्धन्ति तस्मादोषधयः परा भवन्ति मूलं छिनत्ति भ्रातृव्यस्यैव मूलं छिनत्ति पितृदेवत्याऽतिखातेयतीं खनति प्रजापतिना (२) यज्ञमुखेन संमिता मा प्रतिष्ठायै खनति यजमानमेव प्रतिष्ठां गमयति दक्षिणतो वर्षीयसीं करोति देवयजनस्यैव रूपमकः पुरीषवतीं करोति प्रजा वै पशवः पुरीषं प्रजयैवैनं पशुभिः पुरीषवन्तं करोत्युत्तरं परिग्राहं परि गृह्णात्येतावती वै पृथिवी यावती वेदिस्तस्या एतावत एव भ्रातृव्यं निर्भज्याऽऽत्मन उत्तरं परिग्राहं परि गृह्णाति क्रूरमिव वा (३) एतत् करोति यद्वेदिं करोति धा असि स्वधा असीति योयुप्यते शान्त्यै प्रोक्षणीरा सादयत्यापो वै रक्षोघ्नी रक्षसामपहत्यै स्फ्यस्य वर्त्मन्त्सादयति यज्ञस्य संतत्यै यं द्विष्यात् तं ध्यायेच्छुचैवैनमर्पयति ॥ (भजति, प्रजापतिना, वै, [illegible] च) ॥ ४ ॥

बर्हिः प्रोक्षणम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्त्यद्भिर्हवीꣳषि प्रौक्षीः केनाप इति ब्रह्मणेति ब्रूयादद्भिर्ह्येव हवीꣳषि प्रोक्षति ब्रह्मणाऽप इध्माबर्हिः प्रोक्षति मेध्यमेवैनत् करोति वेदिं प्रोक्षत्यृक्षा वा एषाऽलोमकाऽमेध्या यद्वेदिर्मेध्यामेवैनां करोति दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेति बर्हिरासाद्य प्रो-(१)-क्षत्येभ्य एवैनल्लोकेभ्यः प्रोक्षति क्रूरमिव वा एतत् करोति यत् खनत्यपो नि नयति शान्त्यै पुरस्तात् प्रस्तरं गृह्णाति मुख्यमेवैनं करोतीयन्तं गृह्णाति प्रजापतिना यज्ञमुखेन संमितं बर्हिः स्तृणाति प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदिः प्रजा एव पृथिव्यां प्रति ष्ठापयत्यनतिदृश्नꣳ स्तृणाति प्रजयैवैनं पशुभिरनतिदृश्नं करोत्यु-(२)-त्तरं बर्हिषः प्रस्तरꣳ सादयति प्रजा वै बर्हिर्यजमानः प्रस्तरो यजमानमेवायजमानादुत्तरं करोति तस्माद्यजमानोऽयजमानादुत्तरोऽन्तर्दधाति व्यावृत्त्या अनक्ति हविष्कृतमेवैनꣳ सुवर्गं लोकं गमयति त्रेधाऽनक्ति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्योऽनक्ति न प्रति शृणाति यत् प्रतिशृणीयादनूर्ध्वंभावुकं यजमानस्य स्यादुपरीव प्र हरत्यु-(३)-परीव हि सुवर्गो लोको नि यच्छति वृष्टिमेवास्मै नि यच्छति नात्यग्रं प्र हरेद्यदत्यग्रं प्रहरेदत्यासारिण्यध्वर्योर्नाशुका स्यान्न पुरस्तात् प्रत्यस्येद्यत् पुरस्तात् प्रत्यस्येत् सुवर्गाल्लोकाद्यजमानं प्रति नुदेत् प्राञ्चं प्र हरति यजमानमेव सुवर्गं लोकं गमयति न विष्वञ्चं वि युयाद्यद्विष्वञ्चं वियुयात् (४) स्त्र्यस्य जायेतोर्ध्वमुद्यौत्यूर्ध्वमिव हि पुꣳसः पुमानेवास्य जायते यत् स्फ्येन वोपवेषेण वा योयुप्येत स्तृतिरेवास्य सा हस्तेन योयुप्यते यजमानस्य गोपीथाय ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं यज्ञस्य यजमान इति प्रस्तर इति तस्य क्व सुवर्गो लोक इत्याहवनीय इति ब्रूयाद्यत् प्रस्तरमाहवनीये प्रहरति यजमानमेव (५) सुवर्गं लोकं गमयति वि वा एतद्यजमानो लिशते यत् प्रस्तरं योयुप्यन्ते बर्हिरनु प्र हरति शान्त्यै अनारम्भण इव वा एतर्ह्यध्वर्युः स ईश्वरो वेपनो भवितोर्ध्रुवाऽसीतीमामभि मृशतीयं वै ध्रुवाऽस्यामेव प्रति तिष्ठति न वेपनो भवत्यगाꣳ३नग्नीदित्याह यद्ब्रूयादगन्नग्निरित्य-(६)-ग्नावग्निं गमयेन्निर्यजमानꣳ सुवर्गाल्लोकाद्गच्छेदगन्नित्येव ब्रूयाद्यजमानमेव सुवर्गं लोकं गमयति ॥

(प्र, करोति, हरति, वियुया,-देव,-ग्नि, सप्तदश च) ॥ ५ ॥

उपांशुयाजः, ९-१३ स्विष्टकृत् च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

अग्नेस्त्रयो ज्यायाꣳसो भ्रातर आसन् ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रामीयन्त सोऽग्निरबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमाऽरिष्यतीति स निलायत सोऽपः प्राविशत् तं देवताः प्रैषमैच्छन् तं मत्स्यः प्राब्रवीत् तमशपद्धियाधिया त्वा वध्यासुर्यो मा प्रावोच इति तस्मान्मत्स्यं धियाधिया घ्नन्ति शप्तो (१) हि तमन्वविन्दन् तमब्रुवन्नुप न आ वर्तस्व हव्यं नो वहेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै यदेव गृहीतस्याहुतस्य बहिःपरिधि स्कन्दात् तन्मे भ्रातॄणां भागधेयमसदिति तस्माद्यद्गृहीतस्याहुतस्य बहिःपरिधि स्कन्दति तेषां तद्भागधेयं तानेव तेन प्रीणाति परिधीन् परि दधाति रक्षसामपहत्यै सꣳ स्पर्शयति (२) रक्षसामनन्ववचाराय न पुरस्तात् परि दधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षाꣳस्यपहन्त्यूर्ध्वे समिधावा दधात्युपरिष्टादेव रक्षाꣳस्यप हन्ति यजुषाऽन्यां तूष्णीमन्यां मिथुनत्वाय द्वे आ दधाति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै यजेत यो यज्ञस्याऽऽर्त्या वसीयान्त्स्यादिति भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां (३) पतये स्वाहेति स्कन्नमनु मन्त्रयेत यज्ञस्यैव तदार्त्या यजमानो वसीयान् भवति भूयसीर्हि देवताः प्रीणाति जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यदन्वञ्चौ पुरोडाशावुपाꣳशुयाजमन्तरा यजत्यजामित्वाय मिथुनत्वायाग्निरमुष्मिँल्लोक आसीद्यमोऽस्मिन् ते देवा अब्रुवन्नेतेमौ वि पर्यूहामेत्यन्नाद्येन देवा अग्नि-(४)-मुपामन्त्रयन्त राज्येन पितरो यमं तस्मादग्निर्देवानामन्नादो यमः पितृणाꣳ राजा य एवं वेद प्र राज्यमन्नाद्यमाप्नोति तस्मा एतद्भागधेयं प्रायच्छन् यदग्नये स्विष्टकृतेऽवद्यन्ति यदग्नये स्विष्टकृतेऽवद्यति भागधेयेनैव तद्रुद्रꣳ समर्धयति सकृत्सकृदव द्यति सकृदिव हि रुद्र उत्तरार्धादव द्यत्येषा वै रुद्रस्य (५) दिक् स्वायामेव दिशि रुद्रं निरवदयते द्विरभि घारयति चतुरवत्तस्याऽऽप्त्यै पशवो वै पूर्वा आहुतय एष रुद्रो यदग्निर्यत् पूर्वा आहुतीरभि जुहुयाद्रुद्राय पशूनपि दध्यादपशुर्यजमानः स्यादतिहाय पूर्वा आहुतीर्जुहोति पशूनां गोपीथाय ॥ (शप्तः, स्पर्शयति, भूतानां,-मग्निꣳ, रुद्रस्य, सप्तत्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

इडोपाह्वानम् ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

मनुः पृथिव्या यज्ञियमैच्छत् स घृतं निषिक्तमविन्दत् सोऽब्रवीत् कोऽस्येश्वरो यज्ञेऽपि कर्तोरिति तावब्रूतां मित्रावरुणौ गोरेवाऽऽवमीश्वरौ कर्तोः स्व इति तौ ततो गाꣳ समैरयताꣳ सा यत्रयत्र न्यक्रामत् ततो घृतमपीड्यत तस्माद्घृतपद्युच्यते तदस्यै जन्मोपहूतꣳ रथन्तरꣳ सह पृथिव्येत्याहे-(१)-यं वै रथन्तरमिमामेव सहान्नाद्येनोप ह्वयत उपहूतं वामदेव्यꣳ सहान्तरिक्षेणेत्याह पशवो वै वामदेव्यं पशूनेव सहान्तरिक्षेणोप ह्वयत उपहूतं बृहत् सह दिवेत्याहेरं वै बृहदिरामेव सह दिवोप ह्वयत उपहूताः सप्त होत्रा इत्याह होत्रा एवोप ह्वयत उपहूता धेनुः (२) सहर्षभेत्याह मिथुनमेवोप ह्वयत उपहूतो भक्षः सखेत्याह सोमपीथमेवोप ह्वयत उपहूताꣳ हो इत्याहाऽऽत्मानमेवोप ह्वयत आत्मा ह्युपहूतानां वसिष्ठ इडामुप ह्वयते पशवो वा इडा पशूनेवोप ह्वयते चतुरुप ह्वयते चतुष्पादो हि पशवो मानवीत्याह मनुर्ह्येता-(३)-मग्रेऽपश्यद्घृतपदीत्याह यदेवास्यै पदाद्घृतमपीड्यत तस्मादेवमाह मैत्रावरुणीत्याह मित्रावरुणौ ह्येनाꣳ समैरयतां ब्रह्म देवकृतमुपहूतमित्याह ब्रह्मैवोप ह्वयते दैव्या अध्वर्यव उपहूता

उपहूता मनुष्या इत्याह देवमनुष्यानेवोप ह्वयते य इमं यज्ञमवान् ये यज्ञपतिं वर्धानित्याह (४) यज्ञाय चैव यजमानाय चाऽऽशिषमा शास्त उपहूते द्यावापृथिवी इत्याह द्यावापृथिवी एवोप ह्वयते पूर्वजे ऋतावरी इत्याह पूर्वजे ह्येते ऋतावरी देवी देवपुत्रे इत्याह देवी ह्येते देवपुत्रे उपहूतोऽयं यजमान इत्याह यजमानमेवोप ह्वयत उत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूतो भूयसि हविष्करण उपहूतो दिव्ये धामन्नुपहूत (५) इत्याह प्रजा वा उत्तरा देवयज्या पशवो भूयो हविष्करणꣳ सुवर्गो लोको दिव्यं धामे-दमसीदमसीत्येव यज्ञस्य प्रियं धामोप ह्वयते विश्वमस्य प्रियमुपहूतमित्याहाच्छम्बट्कारमेवोप ह्वयते ॥ (आह, एनु,-रेता,-माहो,-पहूत,-भतुश्चिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

इडाभक्षणं, ७-१५ प्राशित्रभक्षणं च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

पशवो वा इडा स्वयमा दत्ते काममेवाऽऽत्मना पशूनामा दत्ते न ह्यन्यः कामं पशूनां प्रयच्छति वाचस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह वाचमेव भागधेयेन प्रीणाति सदसस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह स्वगाकृत्यै चतुरवत्तं भवति हविर्वै चतुरवत्तं पशवश्चतुरवत्तं यद्धोता प्राश्नीयाद्धोता (१) ऽऽर्तिमार्च्छेद्यदग्नौ जुहुयाद्रुद्राय पशूनपि दध्यादपशुर्यजमानः स्याद्वाचस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह परोक्षमेवैनज्जुहोति सदसस्पतये त्वा हुतं प्राश्नामीत्याह स्वगाकृत्यै प्राश्नन्ति तीर्थ एव प्राश्नन्ति दक्षिणां ददाति तीर्थ एव दक्षिणां ददाति वि वा एतद्यज्ञं (२) छिन्दन्ति यन्मध्यतः प्राशित्रमवद्यन्ति सर्वाभिर्देवताभिरेव यज्ञꣳ सं तन्वन्ति देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्त्स यज्ञमविध्यत् तं देवा अभि समगच्छन्त कल्पतां न इदमिति तेऽब्रुवन्त्स्विष्टं वै न इदं भविष्यति यदिमꣳ राधयिष्याम इति तत् स्विष्टकृतः स्विष्टकृत्वं तस्याऽऽविद्धं नि-(३)-रकृन्तन् यवेन सम्मितं तस्माद्यवमात्रमवं द्ये-द्यज्ज्यायोऽवद्येद्रोपयेत् तद्यज्ञस्य यदुप च स्तृणीयादभि च घारयेदुभयतः सꣳस्थायि कुर्यादवदायाभि घारयति द्विः सं पद्यते द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यत् तिरश्चीनमतिहरेदनभिविद्धं यज्ञस्याभि विध्येदग्रेण परि हरति तीर्थेनैव परि हरति तत् पूष्णे पर्यहरन् तत् (४) पूषा प्राश्य दतोऽरुणत् तस्मात् पूषा प्रपिष्टभागोऽदन्तको हि तं देवा अब्रुवन् वि वा अयमार्धि प्राशित्रियो वा अयमभूदिति तद्बृहस्पतये पर्यहरन्त्सोऽबिभेद्बृहस्पतिरित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स एतं मन्त्रमपश्यत् सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रति पश्यामीत्यब्रवीन्न हि सूर्यस्य चक्षुः (५) किं चन हिनस्ति सोऽबिभेत् प्रतिगृह्णन्तं मा हिꣳसिष्यतीति देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृह्णामीत्यब्रवीत् सवितृप्रसूत एवैनद्ब्रह्मणा देवताभिः प्रत्यगृह्णात् सोऽबिभेत् प्राश्नन्तं मा हिꣳसिष्यतीत्यग्नेस्त्वाऽऽस्येन प्राश्नामीत्यब्रवीन्न ह्यग्नेरास्यं किं चन हिनस्ति सोऽबिभेत् (६) प्राशितं मा हिꣳसिष्यतीति ब्राह्मणस्योदरेणेत्यब्रवीन्न हि ब्राह्मणस्योदरं किं चन हिनस्ति बृहस्पतेर्ब्रह्मणेति स हि ब्रह्मिष्ठोऽप वा एतस्मात् प्राणाः क्रामन्ति यः प्राशित्रं प्राश्नात्यद्भिर्मार्जयित्वा प्राणान्त्सं मृशतेऽमृतं वै प्राणा अमृतमापः प्राणानेव यथास्थानमुप ह्वयते ॥ (होता, यज्ञं, नि,-ए,-चक्षुः,-रबिभे,-च्चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

अनूयाजाः, १२-२२ सूक्तवाकाश्च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

अग्नीध्र आ दधात्यग्निमुखानेवर्तून् प्रीणाति समिधमा दधात्युत्तरासामाहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथो समिद्धत्येव जुहोति परिधीन्त्सं मार्ष्टि पुनात्येवैनांस्त्रिः-त्रिः सं मार्ष्टि त्र्यावृद्धि यज्ञोऽथो रक्षसामपहत्यै द्विः पर्येति चतुः सं पद्यते चतुष्पादः पशवः पशूनेवाव रुन्धे ब्रह्मन् प्र स्थास्याम इत्याहात्र वा एतर्हि यज्ञः श्रितो (१) यत्र ब्रह्मा यत्रैव यज्ञः श्रितस्ततं एवैनमा रभते यद्धस्तेन प्रमीवेद्वेपनः स्याद्यच्छीर्ष्णा शीर्षक्तिमान्त्स्याद्यत् तूष्णीमासीताऽसम्प्रत्तो यज्ञः स्यात् प्रतिष्ठेत्येव ब्रूयाद्वाचि वै यज्ञः श्रितो यत्रैव यज्ञः श्रितस्तत एवैनꣳ सं प्र यच्छति देव सवितरेतत् ते प्रा-(२)-ऽऽहेत्याह प्रसूत्यै बृहस्पतिर्ब्रह्मेत्याह स हि ब्रह्मिष्ठः स यज्ञं पाहि स यज्ञपतिं पाहि स मां पाहीत्याह यज्ञाय यजमानायाऽऽत्मने तेभ्य एवाऽऽशिषमा शास्तेऽनार्त्या आश्राव्याऽऽह देवान् यजेति ब्रह्मवादिनो वदन्तीष्टा देवता अथ कतम एते देवा इति छन्दाꣳसीति ब्रूयाद्गायत्रीं त्रिष्टुभं (३) जगतीमित्यथो खल्वाहुर्ब्राह्मणा वै छन्दाꣳसीति तानेव तद्यजति देवानां वा इष्टा देवता आसन्नथाग्निर्नोदज्वलत् तं देवा आहुतीभिरनूयाजेष्वन्वविन्दन् यदनूयाजान् यजत्यग्निमेव तत् समिन्धे एतदुर्वै नामाऽऽसुर आसीत् स एतर्हि यज्ञस्याऽऽशिषमवृङ्क्त यद्ब्रूयादेतदु द्यावापृथिवी भद्रमभूदित्येतदुमेवाऽऽसुरं यज्ञस्याऽऽशिषं गमयेदिदं द्यावापृथिवी भद्रमभूदित्येव (४) ब्रूयाद्यजमानमेव यज्ञस्याऽऽशिषं गमयत्यार्ध्म सूक्तवाकमुत नमोवाकमित्याहेदमरात्स्मेति वावैतदाहोपश्रितो दिवः पृथिव्योरित्याह द्यावापृथिव्योर्हि यज्ञ उपश्रित ओमन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यजमान द्यावापृथिवी (५) स्तामित्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते यद्ब्रूयात् सूपावसाना च स्वध्यवसाना चेति प्रमायुको यजमानः स्याद्यदा हि प्रमीयतेऽथेमामुपावस्यति सूपचरणा च स्वधिचरणा चेत्येव ब्रूयाद्वरीयसीमेवास्मै गव्यूतिमा शास्ते न प्रमायुको भवति तयोराविद्यग्निरिदꣳ हविरजुषतेत्याह या अयाक्ष्म (६) देवतास्ता अरीरधामेति वावैतदाह यन्न निर्दिशेत् प्रतिवेशं यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छेदाशास्तेऽयं यजमानोऽसावित्याह निर्दिश्यैवैनꣳ सुवर्गं लोकं गमयत्यायुरा शास्ते सुप्रजास्त्वमा शास्त इत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते सजातवनस्यामा शास्त इत्याह प्राणा वै सजाताः प्राणानेव (७) नान्तरेति तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनते वयमग्नेर्मानुषा इत्याहाग्निर्देवेभ्यो वनुते वयं मनुष्येभ्य इति वावैतदाहेह गतिर्वामस्येदं च नमो देवेभ्य इत्याह याश्चैव देवता यजति याश्च न ताभ्य एवोभयीभ्यो नमस्करोत्यात्मनोऽनार्त्यै ॥ (श्रितः, प्र, त्रिष्टुभं,-मेतदु, द्यावापृथिवी, अयाक्ष्म, च, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

शंयुवाकमन्त्रव्याख्या, ४-७ पत्नीसंयाजाश्च ॥ प्रजापतिर्ऋषिः ।

देवा वै यज्ञस्य स्वगाकर्तारं नाविन्दन् ते शंयुं बार्हस्पत्यमब्रुवन्निमं नो यज्ञꣳ स्वगा कुर्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणै यदेवाब्राह्मणोक्तोऽश्रद्दधानो यजाते सा मे यज्ञस्याऽऽशीरसदिति तस्माद्यदब्राह्मणोक्तोऽश्रद्दधानो यजते शंयुमेव तस्य बार्हस्पत्यं यज्ञस्याऽऽशीर्गच्छत्येतन्ममेत्यब्रवीत् किं मे प्रजाया (१) इति योऽपगुरातै शतेन यातयाद्यो निहनत् सहस्रेण यातयाद्यो लोहितं करवद्यावतः प्रस्कद्य पाꣳसून्त्संगृह्णात् तावतः संवत्सरान् पितृलोकं न प्र जानादिति तस्माद्ब्राह्मणाय नाप गुरेत न नि हन्यान्न लोहितं कुर्या-

-देतावता हैनसा भवति तच्छंयोरा वृणीमह इत्याह यज्ञमेव तत् स्वगा करोति त-(२)-च्छंयोरा वृणीमह इत्याह शंयुमेव बार्हस्पत्यं भागधेयेन समर्धयति गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतय इत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते सोमं यजति रेत एव तद्दधाति त्वष्टारं यजति रेत एव हितं त्वष्टा रूपाणि वि करोति देवानां पत्नीर्यजति मिथुनत्वायाग्निं गृहपतिं यजति प्रतिष्ठित्यै जामि वा एतद्यज्ञस्य क्रियते (३) यदाज्येन प्रयाजा इज्यन्त आज्येन पत्नीसंयाजा ऋचमनूच्य पत्नीसंयाजानामृचा यजत्यजामित्वायाथो मिथुनत्वाय पङ्क्तिप्रायणो वै यज्ञः पङ्क्त्युदयनः पञ्च प्रयाजा इज्यन्ते चत्वारः पत्नीसंयाजाः समिष्टयजुः पञ्चमं पङ्क्तिमेवानु प्रयन्ति पङ्क्तिमनूद्यन्ति ॥ (प्रजाया,-स्तत, क्रियते, षट्त्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

सर्वेष्टिहौत्रमन्त्राः ॥ गायत्री, १८-१९ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

युक्ष्वा हि देवहूतमाꣳ अश्वाꣳ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥
उत नो देव देवाꣳ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥
त्वꣳ ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥
तं नेमिमृभवो यथाऽऽ नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञ-(१)-मङ्गिरः ॥
तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥
कमु ष्विदस्य सेनयाऽग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्नियाः ॥
मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अꣳहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमै-(२)-रमित्रमर्दय ॥
कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गꣳ सꣳ रयिं जय ॥
अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधाऽवति ॥
परस्या अधि (३) संवतोऽवराꣳ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताꣳ अव ॥
विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वꣳसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥
सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥

सꣳ समिद्युवसे वृषन्न-(४)-ग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥
प्रजापते *-स वेद *-सोमापूषणे *-मौ देवौ *- ॥
(यज्ञ,-मग्ने,-रधि, वृष,-ञ्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

पितृयज्ञहविषां हौत्रमन्त्राः ॥ त्रिष्टुप्, १, १२ अनुष्टुप्, ५ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥
त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा (१) नः ॥
त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथास्मभ्यꣳ (२) शं योररपो दधात ॥
आऽहं पितॄन्त्सुविदत्राꣳ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहाऽऽगमिष्ठाः ॥
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥
उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं (३) य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥
अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥

११।२० (१।८।१०।१२), ११।२१ (२।२।१२।४), ११।२२-२३ (१।८।२२।१८-१९)

यदग्ने (४) कव्यवाहन पितॄन् यक्ष्यृतावृधः ।
प्र च हव्यानि वक्ष्यसि देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥
त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवीꣳषि[13] ।
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिरृक्वभिर्वावृधानः ।
याꣳश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहाऽन्ये स्वधयाऽन्ये मदन्ति (५) ॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ॥
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तꣳ हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य[16] ॥
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे (६) स्याम ॥
(भवा,ऽस्मस्तु,-मनु,-मग्ने, मदन्ति, सौमनस, एकं च) ॥ १२ ॥

[समिध-३३५ । -अङ्गुषी ३०२ । प्रजापति-२८२ । -देवस्य १८३ । प्रत्नवादिनो ३१७ । ऽपि- २८७ । -मंहुः २८४ । एषतो १४४ । ऽमिले ३१९ । देवा १८३ । यूवो २१२ । अन्यो- ३०१ । द्वादश ॥ ३४१३]

[॥ इति द्वितीयकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

[वाकुर्व ३२०८ । प्रजापति-३५२६ । -राशिदेवस्य २६६५ । देवा २४०६ । विश्वरूपः ३१६५ । समिधः २४२३ । (यट् ॥ ६ ॥ १९२०३)]

॥ इति द्वितीयं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं काण्डम् ।

न्यूनकर्माभिधानम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

दीक्षितेन वक्तव्यमन्त्रेषु अमेध्यदर्शने वर्षणे च वक्तव्यौ ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेयेति स तपोऽतप्यत स सर्पानसृजत सोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति स द्वितीयमतप्यत स वयाꣳस्यसृजत सोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति स तृतीयमतप्यत स एतं दीक्षितवादमपश्यत् तमवदत् ततो वै स प्रजा असृजत यत् तपस्तप्त्वा दीक्षितवादं वदति प्रजा एव तद्यजमानः (१) सृजते[2] यद्वै दीक्षितोऽमेध्यं पश्यत्यपास्माद्दीक्षा क्रामति नीलमस्य हरो व्येत्यबद्धं मनो दरिद्रं चक्षुः सूर्यो ज्योतिषाꣳ श्रेष्ठो दीक्षे मा मा हासीरित्याह नास्माद्दीक्षाऽप क्रामति नास्य नीलं न हरो व्येति[3] यद्वै दीक्षितमभिवर्षति दिव्या आपोऽशान्ता ओजो बलं दीक्षां (२) तपोऽस्य निर्घ्नन्त्युन्दतीर्बलं धत्तौजो धत्त बलं धत्त मा मे दीक्षां मा तपो निर्वधिष्टेत्याहैतदेव सर्वमात्मन् धत्ते नास्यौजो बलं न दीक्षां न तपो निर्घ्नन्त्यग्निर्वै दीक्षितस्य देवता सोऽस्मादेतर्हि तिर इव यर्हि याति तमीश्वरꣳ रक्षाꣳसि हन्तोः-(३)-भद्रादभि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्त्वित्याह ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिस्तमेवान्वारभते स एनꣳ सं पारयत्येदमगन्म देवयजनं पृथिव्या इत्याह देवयजनꣳ ह्येष पृथिव्या आगच्छति यो यजते[5] विश्वे देवा यदजुषन्त पूर्व इत्याह विश्वे ह्येतं देवा जोषयन्ते यद्ब्राह्मणा (४) ऋक्सामाभ्यां यजुषा सन्तरन्त इत्याहर्क्सामाभ्याꣳ ह्येष यजुषा सन्तरति यो यजते[6] रायस्पोषेण समिषा मदेमेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते[7] ॥ (यजमानो, दीक्षाꣳ, हन्तो,-र्ब्राह्मणा,-श्चतुर्विꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

सोमोपस्थानमन्त्राः, अध्वर्युकर्तव्यविषयश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोमानाꣳ साम्राज्यं गच्छेति मे सोमाय ब्रूता-द्यो वै सोमꣳ राजानꣳ साम्राज्यं लोकं गमयित्वा क्रीणाति गच्छति स्वानाꣳ साम्राज्यं छन्दाꣳसि खलु वै सोमस्य राज्ञः साम्राज्यो लोकः पुरस्तात् सोमस्य क्रयादेवमभि मन्त्रयेत साम्राज्यमेवै-(१)-नं लोकं गमयित्वा क्रीणाति गच्छति स्वानाꣳ साम्राज्यं[3] यो वै तानूनप्त्रस्य प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति ब्रह्मवादिनो वदन्ति न प्राश्नन्ति न जुह्वत्यथ क्व तानूनप्त्रं प्रति तिष्ठतीति प्रजापतौ मनसीति ब्रूयात् त्रिरव जिघ्रेत् प्रजापतौ त्वा मनसि जुहोमीत्येषा वै तानूनप्त्रस्य प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति[4] यो (२) वा अध्वर्योः प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति यतो मन्येतानभिक्रम्य होष्यामीति तत् तिष्ठन्ना श्रावयेदेषा वा अध्वर्योः प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति यदभिक्रम्य जुहुयात् प्रतिष्ठाया इयात् तस्मात् समानत्र तिष्ठता होतव्यं प्रतिष्ठित्यै[7] यो वा अध्वर्योः स्वं वेद स्ववानेव भवति स्रुग्वा अस्य स्वं वायव्यमस्य (३) स्वं चमसोऽस्य स्वं यद्वायव्यं वा चमसं वाऽनन्वारभ्याऽऽश्रावयेत् स्वादियात् तस्मादन्वारभ्याऽऽश्राव्यꣳ स्वादेव नैति[8] यो वै सोममप्र-

तिष्ठाप्य स्तोत्रमुपाकरोत्यप्रतिष्ठितः सोमो भवत्यप्रतिष्ठितः स्तोमोऽप्रतिष्ठितान्युक्थान्यप्रतिष्ठितो यजमानोऽप्रतिष्ठितोऽध्वर्युर्वायव्यं वै सोमस्य प्रतिष्ठा चमसोऽस्य प्रतिष्ठा सोमः स्तोमस्य स्तोम उक्थानां ग्रहं वा (४) गृहीत्वा चमसं वोन्नीय स्तोत्रमुपाकुर्यात् प्रत्येव सोमꣳ स्थापयति प्रति स्तोमं प्रत्युक्थानि प्रति यजमानस्तिष्ठति प्रत्यध्वर्युः[9] ॥ (एव, वो,ऽस्तु, वा,-ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

सोमक्रयणीपदहरणम्, २-३ पशुश्रपणार्थस्याग्नेः प्रणयनम्, ४ पशोरवदाननाशे प्रायश्चित्तं, ५ पश्ववदानेनाशार्थं होमश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यज्ञं वा एतत् सं भरन्ति यत् सोमक्रयण्यै पदं यज्ञमुखꣳ हविर्धाने यर्हि हविर्धाने प्राची प्रवर्तयेयुस्तर्हि तेनाक्षमुपाञ्ज्याद्यज्ञमुख एव यज्ञमनु सं तनोति[1] प्राञ्चमग्निं प्र हरन्त्युत् पत्नीमा नयन्त्यन्वनाꣳसि प्र वर्तयन्त्यथ वा अस्यैष धिष्णियो हीयते सोऽनु ध्यायति स ईश्वरो रुद्रो भूत्वा (१) प्रजां पशून् यजमानस्य शमयितोर्यर्हि पशुमाप्रीतमुदञ्चं नयन्ति तर्हि तस्य पशुश्रपणꣳ हरेत् तेनैवैनं भागिनं करोति[2] यजमानो वा आहवनीयो यजमानं वा एतद्वि कर्षन्ते यदाहवनीयात् पशुश्रपणꣳ हरन्ति स वैव स्यान्निर्मन्थ्यं वा कुर्याद्यजमानस्य सात्मत्वाय यदि पशोरवदानं नश्येदाज्यस्य प्रत्याख्यायमव द्येत् सैव ततः (२) प्रायश्चित्ति-र्ये पशुं विमथ्नीरन् यस्तान् कामयेताऽऽर्तिमार्च्छेयुरिति कुविदङ्गेति नमोवृक्तिवत्यर्चाऽऽग्नीध्रे जुहुयान्नमोवृक्तिमेवैषां वृङ्क्ते ताजगार्तिमार्च्छन्ति ॥ (भूत्वा, ततः, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

पशूपाकरणमन्त्राः ॥ त्रिष्टुप्, १, ९-१० अनुष्टुप्, ११-१२ द्विपदा । विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतेर्जायमानाः प्रजा जाताश्च या इमाः ।
तस्मै प्रति प्र वेदय चिकित्वाꣳ अनु मन्यताम् ॥
इमं पशुं पशुपते ते अद्य बध्नाम्यग्ने सुकृतस्य मध्ये ।
अनु मन्यस्व सुयजा यजाम जुष्टं देवानामिदमस्तु हव्यम् ॥
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्ति पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
सुवर्गं याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः[3] ॥
येषामीशे (१) पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत च द्विपदाम् ।
निष्क्रीतोऽयं यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानस्य सन्तु ॥
ये बध्यमानमनु बध्यमाना अभ्यैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निस्ताꣳ अग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संविदानः[5] ॥
य आरण्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुस्ताꣳ अग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संविदानः ॥
प्रमुञ्चमाना (२) भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतꣳ शशमानं यदस्थाज्जीवं देवानामप्येतु पाथः[7] ॥

नाना प्राणो यजमानस्य पशुना यज्ञो देवेभिः सह देवयानः ।
जीवं देवानामप्येतु पाथः सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः[8] ॥
यत् पशुर्मायुमकृतोरो वा पद्भिराहते । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः[9] ॥
शमितार उपेतन यज्ञं (३) देवेभिरिन्वितम् । पाशात् पशुं प्र मुञ्चत बन्धाद्यज्ञपतिं परि[10] ॥
अदितिः पाशं प्र मुमोक्त्वेतं नमः पशुभ्यः पशुपतये करोमि[11] ॥
अरातीयन्तमधरं कृणोमि यं द्विष्मस्तस्मिन् प्रति मुञ्चामि पाशम्[12] ॥
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहꣳ शृतंकर्तारमुत यज्ञियं च ।
अग्ने सदक्षः सतनुर्हि भूत्वाऽथ हव्या जातवेदो जुषस्व[13] ॥
जातवेदो वपया गच्छ देवान् त्वꣳ (४) हि होता प्रथमो बभूथ ।
घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः[14] ॥
स्वाहा देवेभ्यो[15] देवेभ्यः स्वाहा[16] ॥ (ईशे, प्रमुञ्चमाना, यज्ञं, त्वꣳ, षोडश च) ॥ ४ ॥

पशूपाकरणविधिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्राजापत्या वै पशवस्तेषाꣳ रुद्रोऽधिपतिर्यदेताभ्यामुपाकरोति ताभ्यामेवैनं प्रतिप्रोच्याऽऽलभत आत्मनोऽनाव्रस्काय द्वाभ्यामुपाकरोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै उपाकृत्य पञ्च जुहोति पाङ्क्ताः पशवः पशूनेवाव रुन्धे[3] मृत्यवे वा एष नीयते यत् पशुस्तं यदन्वारभेत प्रमायुको यजमानः स्यान्नानाप्राणो यजमानस्य पशुनेत्याह व्यावृत्त्यै (१) यत् पशुर्मायुमकृतेति जुहोति शान्त्यै शमितार उपेतनेत्याह यथायजुरेवैत-द्वपायां वा आह्रियमाणायामग्नेर्मेधोऽप क्रामति त्वामु ते दधिरे हव्यवाहमिति वपामभि जुहोत्यग्नेरेव मेधमव रुन्धेऽथो शृतत्वाय[5] पुरस्तात् स्वाहाकृतयो वा अन्ये देवा उपरिष्टात् स्वाहाकृतयोऽन्ये स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेत्यभितो वपां (२) जुहोति तानेवोभयान् प्रीणाति ॥ (व्यावृत्त्यै, वपां, पञ्च च) ॥ ५ ॥

आग्नीध्राभिमर्शनादिविधयः, द्रोणकलशाद्यासादनमन्त्रविशेषाश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वा अयथादेवतं यज्ञमुपचरत्या देवताभ्यो वृश्च्यते पापीयान् भवति यो यथादेवतं न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवत्याग्नेय्यर्चाऽऽग्नीध्रमभि मृशेद्वैष्णव्या हविर्धानमाग्नेय्या स्रुचो वायव्यया वायव्यान्यैन्द्रिया सदो यथादेवतमेव यज्ञमुप चरति न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवति युनज्मि ते पृथिवीं ज्योतिषा सह युनज्मि वायुमन्तरिक्षेण (१) ते सह युनज्मि वाचꣳ सह सूर्येण ते युनज्मि तिस्रो विपृचः सूर्यस्य ते । अग्निर्देवता गायत्री छन्द उपाꣳशोः पात्रमसि[6] सोमो देवता त्रिष्टुप् छन्दोऽन्तर्यामस्य पात्रमसीन्द्रो देवता जगती छन्द इन्द्रवायुवोः पात्रमसि[8] बृहस्पतिर्देवताऽनुष्टुप् छन्दो मित्रावरुणयोः पात्रमस्यश्विनौ देवता पङ्क्तिश्छन्दोऽश्विनोः पात्रमसि[10] सूर्यो देवता बृहती (२) छन्दः शुक्रस्य पात्रमसि[11] चन्द्रमा देवता सतो बृहती छन्दो मन्थिनः पात्रमसि[12] विश्वे देवा देवतोष्णिहा छन्द आग्रयणस्य पात्रमसीन्द्रो देवता ककुच्छन्द उक्थानां पात्रमसि[14] पृथिवी देवता विराट् छन्दो ध्रुवस्य पात्रमसि[15] ॥ (अन्तरिक्षेण, बृहती, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

स्पर्धाविजयोर्यजमानयोः प्रयोगाः केचिन्मन्त्राश्च । विश्वेदेवा ऋषयः ।

"हुणगां वा अध्वर्युर्यजमानस्येग्गः खलु वै पूर्वोऽर्धुः क्षीयत आसन्यान्मा मन्त्रात् पाहि कस्याश्चिदभिशस्त्या इति पुरा प्रातरनुवाकाज्जुहुयादात्मन एव तदध्वर्युः पुरस्ताच्छर्म नह्यतेऽनार्त्यै संवेशाय त्वोपवेशाय त्वा गायत्रियाः*- -*त्रिष्टुभो*- -*जगत्या अभिभूत्यै स्वाहा प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं प्राणापानौ मा मा हासिष्टं देवतासु वा एते प्राणापानयो-(१)-र्व्यायच्छन्ते येषाꣳ सोमः समृच्छते संवेशाय त्वोपवेशाय त्वेत्याह छन्दाꣳसि वै संवेश उपवेशश्छन्दोभिरेवास्य छन्दाꣳसि वृङ्क्ते प्रेतिवन्त्याज्यानि भवन्त्यभिजित्यै मरुत्वतीः प्रतिपदो विजित्या उभे बृहद्रथन्तरे भवत इयं वाव रथन्तरमसौ बृहदाभ्यामेवैनमन्तरेत्यद्य वाव रथन्तरꣳ श्वो बृहदद्याश्वादेवैनमन्तरेति भूतं (२) वाव रथन्तरं भविष्यद्बृहद् भूताच्चैवैनं भविष्यतश्चान्तरेति परिमितं वाव रथन्तरमपरिमितं बृहत् परिमिताच्चैवैनमपरिमिताच्चान्तरेति विश्वामित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेताꣳ स एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत् तेन वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्क्त यद्विहव्यꣳ शस्यत इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते (३) यस्य भूयाꣳसो यज्ञक्रतव इत्याहुः स देवता वृङ्क्त इति यद्यग्निष्टोमः सोमः परस्तात् स्यादुक्थ्यं कुर्वीत यद्युक्थ्यः स्यादतिरात्रं कुर्वीत यज्ञक्रतुभिरेवास्य देवता वृङ्क्ते वसीयान् भवति" ॥ (प्राणापानयो,-र्भूतं, वृङ्क्ते, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

उपांशुग्रहाभिषवः विधिः, मन्त्राश्च ॥ २, ४ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

निग्राभ्याः स्थ देवश्रुत आयुर्मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयतापानं मे तर्पयत व्यानं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयताऽऽत्मानं मे तर्पयताङ्गानि मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गृहान् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत सर्वगणं मा तर्पयत तर्पयत मा (१ गणा मे मा वि तृषन्-न्नोषधयो वै सोमस्य विशो विशः खलु वै राज्ञः प्रदातोरीश्वरा ऐन्द्रः सोमोऽ-

वीवृधं वो मनसा सुजाता ऋतप्रजाता भग इद्वः स्याम ।

इन्द्रेण देवीर्वीरुधः संविदाना अनु मन्यन्ताꣳ सवनाय सोमम्—

-मित्याहौषधीभ्य एवैनꣳ स्वायै विशः स्वायै देवतायै निर्याच्याभि षुणोति यो वै सोमस्याभिषूयमाणस्य (२) प्रथमोऽꣳशुः स्कन्दति स ईश्वर इन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशून् यजमानस्य निर्हन्तोस्तमभि मन्त्रयेताऽऽमाऽस्कान्त्सह प्रजया सह रायस्पोषेणेन्द्रियं मे वीर्यं मा निर्वधीरित्याशिषमेवैतामा शास्त इन्द्रियस्य वीर्यस्य प्रजायै पशूनामनिर्घाताय

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च (३) पूर्वः ।

तृतीयं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः" ॥ (मा,ऽभिषूयमाणस्य, च, दश च) ॥८॥

ग्रहमन्त्रोच्चारणादिधर्माः, आघारसंस्रावमन्त्राश्च ॥ ३-४ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वै देवान् देवयशसेनार्पयति मनुष्यान् मनुष्ययशसेन देवयशस्येव देवेषु भवति मनुष्ययशसी मनुष्येषु यान् प्राचीनमाग्रयणाद् ग्रहान् गृह्णीयात् तानुपाꣳशु गृह्णीयाद्यानूर्ध्वाꣳस्तानुपब्दिमतो देवानेव तद्-

(७।२-३) अभि... स्वाहा, (७।३-४) संवेशा... त्वा ।

वयशसेनार्पयति मनुष्यान् मनुष्ययशसेन देवयशस्येव देवेषु भवति मनुष्ययशसी मनुष्येष्व्-

—ग्निः प्रातः सवने पात्वस्मान् वैश्वानरो महिना विश्वशम्भूः ।

स नः पावको द्रविणं दधात्वा-(१)-युष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।

आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानाꣳ सुमतौ स्याम ॥

इदं तृतीयꣳ सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।

ते सौधन्वनाः सुवरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वसीयो नयन्तु ॥

आयतनवतीर्वा अन्या आहुतयो हूयन्तेऽनायतना अन्या या आघारवतीस्ता आयतनवतीर्याः (२) सौम्यास्ता अनायतना ऐन्द्रवायवमादायाऽऽघारमा घारयेदध्वरो यज्ञोऽयमस्तु देवा ओषधीभ्यः पशवे नो जनाय विश्वस्मै भूतायाध्वरोऽसि स पिन्वस्व घृतवद्देव सोमेति सौम्या एव तदाहुतीरायतनवतीः करोत्यायतनवान् भवति य एवं वेदाथो द्यावापृथिवी एव घृतेन व्युनत्ति ते व्युत्ते उपजीवनीये भवत उपजीवनीयो भवति (३) य एवं वेदै—ष ते रुद्र भागो यं निरयाचथास्तं जुषस्व विदेर्गौपत्यꣳ रायस्पोषꣳ सुवीर्यꣳ संवत्सरीणाꣳ स्वस्तिम् ॥

मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् स नाभानेदिष्ठं ब्रह्मचर्यं वसन्तं निरभजत् स आऽगच्छत् सोऽब्रवीत् कथा मा निरभागिति न त्वा निरभाक्षमित्यब्रवी—दङ्गिरस इमे सत्रमासते ते (४) सुवर्गं लोकं न प्र जानन्ति तेभ्य इदं ब्राह्मणं ब्रूहि ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशवस्ताꣳस्ते दास्यन्तीति तदेभ्योऽब्रवीत् ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशव आसन् तानस्मा अददु—स्तं पशुभिश्चरन्तं यज्ञवास्तौ रुद्र आऽगच्छत् सोऽब्रवीन्मम वा इमे पशव इत्यदुर्वै (५) मह्यमिमानित्यब्रवीन्न वै तस्य त ईशत इत्यब्रवीद्यद्यज्ञवास्तौ हीयते मम वै तदिति तस्माद्यज्ञवास्तु नाभ्यवेत्यꣳ सोऽब्रवीद्यज्ञे माऽऽ भजाथ ते पशून् नाभि मꣳस्य इति तस्मा एतं मन्थिनः सꣳस्रावमजुहोत् ततो वै तस्य रुद्रः पशून् नाभ्यमन्यत यत्रैत-(६)-मेवं विद्वान् मन्थिनः सꣳस्रावं जुहोति न तत्र रुद्रः पशूनभि मन्यते" ॥ (इत्याह, वा, भवति, ते, वा, एत,-मेकादश च) ॥ ९ ॥

ग्रहवहोमादिमन्त्राभिधानम् ॥ २ गायत्री, ३-५ त्रिष्टुप्, ९ अनुष्टुप् ।

जुष्टो वाचो भूयासं जुष्टो वाचस्पतये देवि वाक् ।

यद्वाचो मधुमत् तस्मिन् मा धाः स्वाहा सरस्वत्यै ॥

ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरम् । बृहद्गायत्रवर्तनि ॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अꣳशुर्बाहुच्युतो धिषणयोरुपस्थात् ।

अध्वर्योर्वा परि यस्ते पवित्रात् स्वाहाकृतमिन्द्राय तं जुहोमि ॥

यो द्रप्सो अꣳशुः पतितः पृथिव्यां परिवापात (१) पुरोडाशात् करम्भात् ।

धानासोमान्मन्थिन इन्द्र शुक्रात् स्वाहाकृतमिन्द्राय तं जुहोमि ॥

यस्ते द्रप्सो मधुमाꣳ इन्द्रियावान्त्स्वाहाकृतः पुनरप्येति देवान् ।

दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् स्वाहाकृतमिन्द्राय तं जुहोमि ॥

अध्वर्युर्वा ऋत्विजां प्रथमो युज्यते तेन स्तोमो योक्तव्य इत्याहुर्वागग्रेगा अग्र एत्वृजुगा देवेभ्यो यशो मयि दधती प्राणान् पशुषु प्रजां मयि (२) च यजमाने चेत्याह वाचमेव तद्यज्ञमुखे युनक्ति वास्तु वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यद्ग्रहान् गृहीत्वा बहिष्पवमानꣳ सर्पन्ति पराञ्चो हि यन्ति पराचीभिः स्तुवते वैष्णव्यर्चा पुनरेत्योप तिष्ठते यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेवाक—

—र्विष्णो त्वं नो अन्तमः शर्म यच्छ सहन्त्य । प्र ते धारा मधुश्चुत उत्सं दुह्रते (३) अक्षित—

—मित्याह यदेवास्य शयानस्योपशुष्यति तदेवास्यैतेनाऽऽप्याययति ॥

(परिवापा,-न्मयि, दुह्रते, चतुर्दश च) ॥ १० ॥

चित्रादियाज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ त्रिष्टुप्, १,५,७, ११-१२, २२, २३-२५ गायत्री, १५-१६, २५ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥

गोमाꣳ अग्नेऽविमाꣳ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।

इडावाꣳ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥

आ प्यायस्व*- सं ते*- ॥

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।

यतो वीरः (१) कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥

शिवस्त्वष्टरिहाऽऽ गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥

प्र णो दे—*-व्या नो दिवः*- ॥

पीपिवाꣳसꣳ सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । धुक्षीमहि प्रजामिषम् (२)

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेषां ते सुम्नमीमहे ॥

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपः ।

यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्तꣳ सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥

दिव्यꣳ सुपर्णं वयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।

(११।३-४) ४।२।७।१२-१३, (११।९-१०) १।८।२२।३-४ ।

अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तं तꣳ सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्य-(३)-माहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥

या सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्नियै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि—*- न्द्रं नरः*- ॥

असितवर्णा हरयः सुपर्णा मिहो वसाना दिवमुत् पतन्ति ॥

त आऽववृत्रन्त्सदनानि कृत्वाऽऽदित् पृथिवी घृतैर्व्युद्यते ॥

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।

शुचिभ्राजा उषसो (४) नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥

आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।

शिवाभिर्न स्मयमानाभिराऽगात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित् सानु रेजत स्वने वः ।

यत् क्रीडथ मरुत (५) ऋष्टिमन्त आप इव सध्रियञ्चो धवध्वे ॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।

दृतिꣳ सु कर्ष विषितं न्यञ्चꣳ समा भवन्तूद्वता निपादाः ॥

त्वं त्या चिदच्युताऽग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत् ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य धाम ।

याश्च (६) माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।

अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥

उदप्रुतो मरुतस्ताꣳ इयर्त वृष्टिं (७) ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।

क्रोशाति गर्दा कन्येव तुन्ना पेरुं तुञ्जाना पत्येव जाया ॥

घृतेन द्यावापृथिवी मधुना समुक्षत पयस्वतीः कृणुताऽऽप ओषधीः ।

ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वथ यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥

(११।१७-१८) १।६।१२।१-२

उदु त्यं *- चित्रम् *- ॥

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥

आ सवꣳ सवितुर्यथा भगस्ये- (८) -व भुजिꣳ हुवे । अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यꣳ सहः । अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥

(धीर, हवे, हवन्,-मुचम्, मरुत,-स्य, हवे, भवन्तु, द्वादश च) ॥ ११ ॥

[प्राश्नेति- २२४ । देव २१२ । प्राणं १२६ । प्रजापतेः २१६ । भक्षानुपहा १०५ । य १३३ । इष्टर्गो १७८ । निग्राभ्यां १६० । यो ३११ । श्री १६४ । अग्ने-४१२ -कादश ॥ २२४८]

[इति तृतीयकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

पवमानग्रहादीनां व्याख्यानम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

पवमानग्रहपदम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वै पवमानानामन्वारोहान् विद्वान् यजतेऽनु पवमानाना रोहति न पवमानेभ्योऽव च्छिद्यते

श्येनोऽसि गायत्रछन्दा अनु त्वाऽऽरभे स्वस्ति मा सं पारय

सुपर्णोऽसि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वाऽऽरभे स्वस्ति मा सं पारय

सघाऽसि जगतीछन्दा अनु त्वाऽऽरभे स्वस्ति मा सं पारयेत्याहै-ते (१) वै पवमानानामन्वारोहास्तान् य एवं विद्वान् यजतेऽनु पवमानाना रोहति न पवमानेभ्योऽव च्छिद्यते यो वै पवमानस्य सन्ततिं वेद सर्वमायुरेति न पुराऽऽयुषः प्र मीयते पशुमान् भवति विन्दते प्रजां पवमानस्य ग्रहा गृह्यन्तेऽथ वा अस्यैतेऽगृहीता द्रोणकलश आधवनीयः पूतभृत् तान् यदगृहीत्वोपाकुर्यात् पवमानं वि (२) च्छिन्द्यात् तं विच्छिद्यमानमध्वर्योः प्राणोऽनु वि च्छिद्येतो-पयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वेति द्रोणकलशमभि मृशेदि *- न्द्राय त्वेत्याधवनीयं *- विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य इति पूतभृतं पवमानमेव तत् सं तनोति सर्वमायुरेति न पुराऽऽयुषः प्र मीयते पशुमान् भवति विन्दते प्रजाम् ॥ (एते, वि, द्विपञ्चाशच्च) ॥ १ ॥

सवनविकल्पनम्, तन्मन्त्राश्च ॥ २-३ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्रीणि वाव सवनान्यथ तृतीयꣳ सवनमव लुम्पन्त्यनꣳशु कुर्वन्त उपाꣳशुꣳ हुत्वोपाꣳशुपात्रेऽꣳशुमवास्य तं तृतीयसवनेऽपिसृज्याभि षुणुयाद्यदाप्याययति तेनाꣳशुमद्यदभिषुणोति तेनर्जीषि सर्वाण्येव तत् सवनान्यꣳशुमन्ति शुक्रवन्ति समावद्वीर्याणि करोति

द्वौ समुद्रौ विततावजूर्यौ पर्यावर्तेते जठरेव पादाः ।

तयोः पश्यन्तो अति यन्त्यन्यमपश्यन्तः (१) सेतुनाऽति यन्त्यन्यम् ॥

द्वे द्रधसी सतती वस्त एकः केशी विश्वा भुवनानि विद्वान् ।

(१।११-१२) ११।४।११-२, (१।४-५) —० कवधान...होऽसि ।

तिरोधायैत्यसितं वसानः शुक्रमा दत्ते अनुहाय जार्यै ॥

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतं महायज्ञमपश्यन् तमतन्वताग्निहोत्रं व्रतमकुर्वत तस्माद् द्विव्रतः स्याद् द्विर्ह्यग्निहोत्रं जुह्वति पौर्णमासं यज्ञमग्नीषोमीयं (२) पशुमकुर्वत दार्श्यं यज्ञमाग्नेयं पशुमकुर्वत वैश्वदेवं प्रातःसवनमकुर्वत वरुणप्रघासान् माध्यन्दिनꣳ सवनꣳ साकमेधान् पितृयज्ञं त्र्यम्बकाꣳस्तृतीयसवनमकुर्वत तमेषामसुरा यज्ञमन्ववाजिगाꣳसन् तं नान्ववायन् तेऽब्रुवन्नध्वर्तव्या वा इमे देवा अभूवन्निति तदध्वरस्याध्वरत्वं ततो देवा अभवन् पराऽसुरा य एवं विद्वान्त्सोमेन यजते भवत्यात्मना परा (३) ऽस्य भ्रातृव्यो भवति ॥ (अपश्यन्तो, ऽग्नीषोमीयं, परा, त्रीणि च) ॥ २ ॥

सोमावेक्षणम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

परिभूरग्निं परिभूरिन्द्रं परिभूर्विश्वान् देवान् परिभूर्माꣳ सह ब्रह्मवर्चसेन

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते शꣳ राजन्नोषधीभ्यो

ऽच्छिन्नस्य ते रयिपते सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।

तस्य मे रास्व तस्य ते भक्षीय तस्य त इदमुन्मृजे ॥

प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वा-पानाय *- व्यानाय *- वाचे *- (१) दक्षक्रतुभ्यां *- चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदौ वर्चसे पवेथाꣳ श्रोत्राया- *- ऽऽत्मने *- ऽङ्गेभ्य *- आयुषे *- वीर्याय *- विष्णो-रिन्द्रस्य विश्वेषां देवानां जठरमसि वर्चोदा मे वर्चसे पवस्व कोऽसि को नाम कस्मै त्वा काय त्वा यं त्वा सोमेनातीतृपं यं त्वा सोमेनामीमदꣳ सुप्रजाः प्रजया भूयासꣳ सुवीरो वीरैः सुवर्चा वर्चसा सुपोषः पोषै-र्विश्वेभ्यो मे रूपेभ्यो वर्चोदा (२) वर्चसे पवस्व तस्य मे रास्व तस्य ते भक्षीय तस्य त इदमुन्मृजे ॥

बुभूषन्नवेक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापतिर्यज्ञः प्रजापतिस्तमेव तर्पयति स एनं तृप्तो भूत्याऽभि पवते ब्रह्मवर्चसकामोऽवेक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापतिर्यज्ञः प्रजापतिस्तमेव तर्पयति स एनं तृप्तो ब्रह्मवर्चसेनाभि पवत आमयावी- (३) -ऽवेक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापतिर्यज्ञः प्रजापतिस्तमेव तर्पयति स एनं तृप्त आयुषाऽभि पवतेऽभिचरन्नवेक्षेतैष वै पात्रियः प्रजापतिर्यज्ञः प्रजापतिस्तमेव तर्पयति स एनं तृप्तः प्राणापानाभ्यां वाचो दक्षक्रतुभ्यां चक्षुर्भ्याꣳ श्रोत्राभ्यामात्मनोऽङ्गेभ्य आयुषोऽन्तरेति ताजक् प्र धन्वति ॥ (वाचे, वर्चोदा, आमयावी, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

स्फ्याद्युपस्थानमन्त्राः विविधाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

स्फ्यः स्वस्तिर्विघनः स्वस्तिः पर्शुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्तिः ।

यज्ञिया यज्ञकृतः स्थ ते माऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वयध्व-

-मुप मा द्यावापृथिवी ह्वयेता-मुपाऽऽस्तावः *- -*कलशः *- -*सोमो *- -*अग्निः *-

(३।२-५,८-१२) *- मे वर्चोदा...पवस्व, (३।६) वर्चोदौ...पवेथाम्, (३।१३-१४) *- जठर... पवस्व । (४।२-६,७) *- ह्वयताम्, (३।४-६)

रुप देवाः *- उप यज्ञः *- उप मा होत्रा उपहवे ह्वयन्तां नमोऽग्नये मखघ्ने मखस्य मा यशोऽर्यादित्याहवनीयमुप तिष्ठते यज्ञो वै मखो (१) यज्ञं वाव स तद्हन् तस्मा एव नमस्कृत्य सदः प्र सर्पत्यात्मनोऽनार्त्यै नमो रुद्राय मखघ्ने नमस्कृत्या मा पाहीत्याग्नीध्रं तस्मा एव नमस्कृत्य सदः प्र सर्पत्यात्मनोऽनार्त्यै नम इन्द्राय मखघ्न इन्द्रियं मे वीर्यं मा निर्वधीरिति होत्रीयमाशिषमेवैतामा शास्त इन्द्रियस्य वीर्यस्यानिर्घाताय या वै (२) देवताः सदस्यार्तिमार्पयन्ति यस्ता विद्वान् प्रसर्पति न सदस्यार्तिमार्छति नमोऽग्नये मखघ्न इत्याहैता वै देवताः सदस्यार्तिमार्पयन्ति ता य एवं विद्वान् प्रसर्पति न सदस्यार्तिमार्छति दृढे स्थः शिथिरे समीची माꣳहसस्पातꣳ सूर्यो मा देवो दिव्यादꣳहसस्पातु *- वायुरन्तरिक्षाद् *- (३) अग्निः पृथिव्या *- यमः पितृभ्यः *- सरस्वती मनुष्येभ्यो देवी द्वारौ मा मा सं ताप्तं नमः सदसे नमः सदसस्पतये नमः सखीनां पुरोगाणां चक्षुषे नमो दिवे नमः पृथिव्या अहे दैधिषव्योदतस्तिष्ठान्यस्य सदने सीद योऽस्मत् पाकतर उन्निवत उदुद्वतश्च गेषं पातं मा द्यावापृथिवी अद्याह्नः सदो वै प्रसर्पन्तं (४) पितरोऽनु प्र सर्पन्ति त एनमीश्वरा हिꣳसितोः सदः प्रसृप्य दक्षिणार्धं परेक्षेताऽगन्त पितरः पितृमानहं युष्माभिर्भूयासꣳ सुप्रजसो मया यूयं भूयास्तेति तेभ्य एव नमस्कृत्य सदः प्र सर्पत्यात्मनोऽनार्त्यै ॥ (मखो, वा, अन्तरिक्षात्, प्रसर्पन्तं, सप्तचत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

भक्षमन्त्राः ॥ ८ गायत्री; ९ बृहती, १०, २० त्रिष्टुप्; १२ अनुष्टुप्; १४ द्विपदा गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

भक्षेहि माऽऽविश दीर्घायुत्वाय शन्तनुत्वाय रायस्पोषाय वर्चसे सुप्रजास्त्वायेहि वसो पुरोवसो प्रियो मे हृदोऽस्य-श्विनोस्त्वा बाहुभ्याꣳ सघ्यासं नृचक्षसं त्वा देव सोम सुचक्षा अव ख्येषं मन्द्राऽभिभूतिः केतुर्यज्ञानां वाग्जुषाणा सोमस्य तृप्यतु मन्द्रा स्वर्वाच्यदितिरनाहतशीर्ष्णी वाग्जुषाणा सोमस्य तृप्यत्वेहि विश्वचर्षणे (१) शम्भूर्मयोभूः स्वस्ति मा हरिवर्ण प्र चर क्रत्वे दक्षाय रायस्पोषाय सुवीरताया मा मा राजन् वि बीभिषो मा मे हार्दि त्विषा वधीः । वृष्णे शुष्मायाऽऽयुषे वर्चसे ॥

वसुमद्गणस्य सोम देव ते मतिविदः प्रातःसवनस्य गायत्रछन्दस इन्द्रपीतस्य नराशꣳसपीतस्य पितृपीतस्य मधुमत उपहूतस्योपहूतो भक्षयामि रुद्रवद्गणस्य सोम देव ते मतिविदो माध्यन्दिनस्य सवनस्य त्रिष्टुप्छन्दस इन्द्रपीतस्य नराशꣳसपीतस्य (२) पितृपीतस्य मधुमत उपहूतस्योपहूतो भक्षयाम्या-दित्यवद्गणस्य सोम देव ते मतिविदस्तृतीयस्य सवनस्य जगतीछन्दस इन्द्रपीतस्य नराशꣳसपीतस्य पितृपीतस्य मधुमत उपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥

हिन्व मे गात्रा हरिवो गणान् मे मा वि तीतृषः ।

शिवो मे सप्तर्षीनुप तिष्ठस्व मा मेऽवाङ्नाभिमति (३) गाः ॥

(४।७) *- ह्वयन्ताम्, (४।२-९) अग्नये मखघ्ने इत्येवं मन्त्राः । (५।१५-१८) *- पाहि ।

अपाम सोमममृता अभूमादर्श्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥

यन्म आत्मनो मिन्दाऽभूदग्निस्तत् पुनराऽहार्जातवेदा विचर्षणिः ॥

पुनरग्निश्चक्षुरदात् पुनरिन्द्रो बृहस्पतिः ।

पुनर्मे अश्विना युवं चक्षुरा धत्तमक्ष्योः ॥

इष्टयजुषस्ते देव सोम स्तुतस्तोमस्य (४) शस्तोक्थस्य हरिवत इन्द्रपीतस्य मधुमत उपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥

आपूर्याः स्थाऽऽ मा पूरयत प्रजया च धनेन च ॥

एतत् ते तत ये च त्वामन्व-त्र ते पितामह प्रपितामह ये च त्वामन्व-त्र पितरो यथाभागं मन्दध्वम्

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः (५) स्वधायै नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरो घोराय पितरो नमो वो य एतस्मिꣳल्लोके स्थ युष्माꣳस्तेऽनु येऽस्मिꣳल्लोके मां तेऽनु य एतस्मिꣳल्लोके स्थ यूयं तेषां वसिष्ठा भूयास्त येऽस्मिꣳल्लोकेऽहं तेषां वसिष्ठो भूयासं

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव (६) ।

यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्य-प्सु धौतस्य सोम देव ते नृभिः सुतस्येष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य यो भक्षो अश्वसनिर्यो गोसनिस्तस्य ते पितृभिर्भक्षंकृतस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ (विश्वचर्षणे, नराशꣳसपीतस्या,-ऽसि, स्तुतस्तोमस्य, पितरो, बभूव, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

पृषदाज्यम्, दधिघर्ममन्त्रश्च ॥ २ बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

महीनां पयोऽसि विश्वेषां देवानां तनूरृध्यासमद्य पृषतीनां ग्रहं पृषतीनां ग्रहोऽसि विष्णोर्हृदयमस्येकमिष विष्णुस्त्वानु वि चक्रमे भूतिर्दध्ना घृतेन वर्धतां तस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणमा गम्याज्ज्योतिरसि वैश्वानरं पृश्नियै दुग्धं

यावती द्यावापृथिवी महित्वा यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थुः ।

तावन्तमिन्द्र ते (१) ग्रहꣳ सहोर्जा गृह्णाम्यस्तृतम् ॥

यत् कृष्णशकुनः पृषदाज्यमवमृशेच्छूद्रा अस्य प्रमायुकाः स्युर्यच्छ्वाऽवमृशेच्चतुष्पादोऽस्य पशवः प्रमायुकाः स्युर्यत् स्कन्देद्यजमानः प्रमायुकः स्यात् पशवो वै पृषदाज्यं पशवो वा एतस्य स्कन्दन्ति यस्य पृष-

ह्राज्यꣳ स्कन्दति यत् पृषदाज्यं पुनर्गृह्णाति पशूनेवास्मै पुनर्गृह्णाति प्राणो वै पृषदाज्यं प्राणो वा (२) एतस्य स्कन्दति यस्य पृषदाज्यꣳ स्कन्दति यत् पृषदाज्यं पुनर्गृह्णाति प्राणमेवास्मै पुनर्गृह्णाति हिरण्यमवधाय गृह्णात्यमृतं वै हिरण्यं प्राणः पृषदाज्यममृतमेवास्य प्राणे दधाति शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यश्वमव घ्रापयति प्राजापत्यो वा अश्वः प्राजापत्यः प्राणः स्वादेवास्मै योनेः प्राणं (३) निर्मिमीते वि वा एतस्य यज्ञश्छिद्यते यस्य पृषदाज्यꣳ स्कन्दति वैष्णव्यर्चा पुनर्गृह्णाति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनैव यज्ञꣳ सं तनोति ॥ (ते, वै, प्राण, द्वाविंशतिश्च) ॥ ६ ॥

स्तुतशस्त्रयोरभिधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देव सवितरेतत् ते प्राऽऽह तत् प्र च सुव प्र च यज बृहस्पतिर्ब्रह्माऽऽयुष्मत्या ऋचो मा गात तनूपात् साम्नः सत्या व आशिषः सन्तु सत्या आकूतय ऋतं च सत्यं च वदत स्तुत देवस्य सवितुः प्रसवे स्तुतस्य स्तुतमस्यूर्जं मह्यꣳ स्तुतं दुहामा मा स्तुतस्य स्तुतं गम्याच्छस्त्रस्य शस्त्र- (१)-मस्यूर्जं मह्यꣳ शस्त्रं दुहामा मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यादि-

—न्द्रियावन्तो वनामहे धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥

सा मे सत्याऽऽशीर्देवेषु भूयाद्ब्रह्मवर्चसं माऽऽगम्यात् ॥

यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स वावृधे ।

स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्माꣳ अधिपतीन् करोतु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

यज्ञो वा वै (२) यज्ञपतिं दुहे यज्ञपतिर्वा यज्ञं दुहे स यः स्तुतशस्त्रयोर्दोहमविद्वान् यजते तं यज्ञो दुहे स इष्ट्वा पापीयान् भवति य एनयोर्दोहं विद्वान् यजते स यज्ञं दुहे स इष्ट्वा वसीयान् भवति स्तुतस्य स्तुतमस्यूर्जं मह्यꣳ स्तुतं दुहामा मा स्तुतस्य स्तुतं गम्याच्छस्त्रस्य शस्त्रमस्यूर्जं मह्यꣳ शस्त्रं दुहा- (३)-मा मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यादित्याहैष वै स्तुतशस्त्रयोर्दोहस्तं य एवं विद्वान् यजते दुह एव यज्ञमिष्ट्वा वसीयान् भवति ॥ (शस्त्रं, वै, दुहा, द्वाविंशतिश्च) ॥ ७ ॥

प्रस्थितयाज्यादग्धहोमादिमन्त्राः ॥ १६-२०, २४-२५ त्रिष्टुप्, २२-२३ जगती, २६ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

श्येनाय पत्वने स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमो विष्टम्भाय धर्मणे स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमः परिधये जनप्रथनाय स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम ऊर्जे होत्राणाꣳ स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमः पयसे होत्राणाꣳ स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमः प्रजापतये मनवे स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम ऋतमृतपाः सुवर्वाट् स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम-

—स्तृम्पन्ताꣳ होत्रा मधोर्घृतस्य

यज्ञपतिमृषय एनसा (१) ऽऽहुः ।

प्रजा निर्भक्ता अनुतप्यमाना मधव्यौ स्तोकावप तौ रराध ।

सं नस्ताभ्याꣳ सृजतु विश्वकर्मा

१६ (तै. सं.)

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यः ।

चक्षुष एषां मनसश्च सन्धौ बृहस्पतये महि षद् द्युमन्नमः ॥

नमो विश्वकर्मणे स उ पात्वस्मा-

नेनन्यान्त्सोमपान् मन्यमानः ।

प्राणस्य विद्वान्त्समरे न धीर एनश्चकृवान् महि बद्ध एषाम् ॥

तं विश्वकर्मन् (२) प्र मुञ्चा स्वस्तये

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृहुः ।

यानग्नयोऽन्वतप्यन्त धिष्णिया इयं तेषामवया दुरिष्ट्यै स्विष्टिं नस्तां कृणोतु विश्वकर्मा ॥

नमः पितृभ्यो अभि ये नो अख्यन् यज्ञकृतो यज्ञकामाः सुदेवा

अकामा वो दक्षिणां न नीनिम मा नस्तस्मादेनसः पापयिष्ट ।

यावन्तो वै सदस्यास्ते सर्वे दक्षिण्यास्तेभ्यो यो दक्षिणां न (३) नयेदैभ्यो वृश्च्येत यद्वैश्वकर्मणानि जुहोति सदस्यानेव तत् प्रीणात्य-

—स्मे देवासो वपुषे चिकित्सत यमाशिरा दम्पती वाममश्नुतः ।

पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वथ विश्वे अरपा एधते गृहः ॥

आशीर्दाया दम्पती वाममश्नुतामरिष्टो रायः सचताꣳ समोकसा ।

य आऽसिचत् संदुग्धं कुम्भ्या सहेष्टेन यामन्नमतिं जहातु सः ॥

सर्पिर्ग्रीवी (४) पीवर्यस्य जाया पीवानः पुत्रा अकृशासो अस्य ।

सहजानिर्यः सुमखस्यमान इन्द्रायाऽऽशिरꣳ सह कुम्भ्याऽदात् ॥

आशीर्म ऊर्जमुत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणꣳ सवर्चसम् ।

सञ्जयन् क्षेत्राणि सहसाऽहमिन्द्र कृण्वानो अन्याꣳ अधरान्त्सपत्नान् ॥

भूतमसि भूते मा धा मुखमसि मुखं भूयासं द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णामि विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः (५) प्र च्यावयन्तु दिवि देवान् दृꣳहान्तरिक्षे वयाꣳसि पृथिव्यां पार्थिवान्

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽव सोमं नयामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ।

यथा न इन्द्र इद्विशः केवलीः सर्वाः समनसः करत् ।

यथा नः सर्वा इद्दिशोऽस्माकं केवलीरसन् ॥

(एनसा, विश्वकर्मन्, न, सर्पिर्ग्रीवी, वैश्वानरा,-श्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

प्रतिगरः, तन्मन्त्राश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमेनमभि प्र वर्तयत्युक्थशा इत्याह प्रातःसवनं प्रतिगीर्य त्रीण्येतान्य-

२०२८

क्षराणि त्रिपदा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं गायत्रियैव प्रातःसवने वज्रमन्तर्धत्त उक्थं वाचीत्याह माध्यन्दिनꣳ सवनं प्रतिगीर्य चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुष्पदा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं त्रिष्टुभैव माध्यन्दिने सवने वज्रमन्तर्धत्त (१) उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह तृतीयसवनं प्रतिगीर्य सप्तैतान्यक्षराणि सप्तपदा शक्वरी शाक्वरो वज्रो वज्रेणैव तृतीयसवने वज्रमन्तर्धत्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा अध्वर्युः स्याद्यो यथासवनं प्रतिगरे छन्दाꣳसि सम्पादयेत् तेजः प्रातःसवन आत्मन् दधीतेन्द्रियं माध्यन्दिने सवने पशूꣳस्तृतीयसवन इत्यु-—क्थशा इत्याह प्रातःसवनं प्रतिगीर्य त्रीण्येतान्यक्षराणि (२) त्रिपदा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं प्रातःसवन एव प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो तेजो वै गायत्री तेजः प्रातःसवनं तेज एव प्रातःसवन आत्मन् धत्त उक्थं वाचीत्याह माध्यन्दिनꣳ सवनं प्रतिगीर्य चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुष्पदा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳ सवनं माध्यन्दिन एव सवने प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो इन्द्रियं वै त्रिष्टुगि-न्द्रियं माध्यन्दिनꣳ सवन- (३)-मिन्द्रियमेव माध्यन्दिने सवन आत्मन् धत्त उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह तृतीयसवनं प्रतिगीर्य सप्तैतान्यक्षराणि सप्तपदा शक्वरी शाक्वराः पशवो जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवन एव प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो पशवो वै जगती पशवस्तृतीयसवनं पशूनेव तृतीयसवन आत्मन् धत्ते यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयत आव्यमस्मिन् दधाति तद्यन्ना- (४)-पहनीत पुराऽस्य संवत्सराद्गृह आ वेवी-रन्छोꣳसा मोद इवेति प्रत्याह्वयते तेनैव तदप हते यथा वा आयतां प्रतीक्षत एवमध्वर्युः प्रतिगरं प्रतीक्षते यदभिप्रतिगृणीयाद्यथाऽऽयतया समृच्छते तादृगेव तद्-यदर्धर्चाल्लुप्येत यथा धावद्भ्यो हीयते तादृगेव तत् प्रबाहुग्वा ऋत्विजामुद्गीथा उद्गीथ एवोद्गातृणा- (५)-मृचः प्रणव उक्थशꣳसिनां प्रतिगरो-ऽध्वर्यूणां य एवं विद्वान् प्रतिगृणात्यन्नाद एव भवत्याऽस्य प्रजायां वाजी जायत इयं वै होता-ऽसावध्वर्युर्यदासीनः शꣳसत्यस्या एव तद्धोता नैत्यास्त इव हीयमथो इमामेव तेन यजमानो दुहे यत् तिष्ठन् प्रतिगृणात्यमुष्या एव तदध्वर्युर्नैति (६) तिष्ठतीव ह्यसावथो अमूमेव तेन यजमानो दुहे यदासीनः शꣳसति तस्मादितः प्रदानं देवा उप जीवन्ति यत् तिष्ठन् प्रतिगृणाति तस्मादमुतः प्रदानं मनुष्या उप जीवन्ति यत् प्राङासीनः शꣳसति प्रत्यङ् तिष्ठन् प्रतिगृणाति तस्मात् प्राचीनꣳ रेतो धीयते प्रतीचीः प्रजा जायन्ते यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमेनमभि प्र वर्तयति (७) पराङा वर्तते वज्रमेव तन्नि करोति ॥ (पत्ते, क्षराणि, सवने, नो,-द्गातृणा,-मेति, वर्तयत्य, द्वौ च) ॥ ९ ॥

प्रतिनिर्ग्राह्यमन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

उपयामगृहीतोऽसि वाक्षसदसि वाक्पाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णा-म्यु-पयामगृहीतोऽस्यृतसदसि चक्षुष्पाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णामि-म्यु-पयामगृहीतोऽसि श्रुतसदसि श्रोत्रपाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णामि देवेभ्यस्त्वा विश्वदेवेभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो विष्णवुरुक्रमैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व (१) तं ते दुश्चक्षा माऽव ख्यन्मयि वसुः पुरोवसुर्वाक्पा वाचं मे पाहि मयि वसुर्विदद्वसुश्चक्षुष्पा-

श्चक्षुर्मे पाहि मयि वसुः संयद्वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि भूरसि श्रेष्ठो रश्मीनां प्राणपाः प्राणं मे पाहि धूरसि श्रेष्ठो रश्मीनामपानपा अपानं मे पाहि यो न इन्द्रवायू मित्रावरुणा-वश्विनावभिदासति भ्रातृव्य (२) उत्पिपीते शुभस्पती इदमहं तमधरं पादयामि यथेन्द्राहमुत्तमश्चेतयानि ॥ (दुश्चक्षा, भ्रातृव्य,-स्त्रयोदश च) ॥ १० ॥

त्रैधातवीवेष्टिमन्त्राः ॥ १ ककुप्, २ उष्णिक्, ३-६, ९-१० त्रिष्टुप्, ७-८ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।

तिस्र उ ते तनुवो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥

सं वां कर्मणा समिषा (१) हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥

त्रीण्यायूꣳषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा (२) भव यजमानाय शं योः ॥

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः । स त्रीꣳरेकादशाꣳ इह ॥

यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतः । नभन्तामन्यके समे ॥

इन्द्राविष्णू दृꣳहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।

शतं वर्चिनः सहस्रं च साकꣳ हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा (३) जहति पुत्र देवाः ।

अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥

(इषा, ऽथ, त्वा, त्रयोदश च) ॥ ११ ॥

[य-१४१ । -स्त्रीणि १५३ । परिभूः १६५ । स्वयो २६३ । भक्षं २७४ । महीनां १७२ । देवं १७२ । श्येनाय २५० । य-१५८ ।-मुपयामगृहीतः ११२। त्रे-१६२ । कांदश ॥ २३२१]

[इति तृतीयकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

वैकृतविधीनामभिधानम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

अग्निमारुतमन्त्राः ॥ ७-९ द्विपदा गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्ने तेजस्विन् तेजस्वी त्वं देवेषु भूयास्तेजस्वन्तं मामायुष्मन्तं वर्चस्वन्तं मनुष्येषु कुरु दीक्षायै च त्वा तपसश्च तेजसे जुहोमि तेजोविदसि तेजो मा मा हासीन्माऽहं तेजो हासिषं मा मां तेजो

उदु त्यं *- चित्रम् *- ॥
औ॒र्वभृ॒गुवच्छु॒चिम॑प्नवान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्नि२ँ स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥
आ स॒व२ँ स॑वि॒तुर्यथा॒ भग॑स्येव भु॒जि२ँ हु॑वे । अ॒ग्नि२ँ स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥
हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्य॒२ँ सहः॑ । अ॒ग्नि२ँ स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥
(यो॒नि, इव॑, हव्य,-सुभगो, मरुत,-स्तु, वृ॒ति, मर्नन्तु, द्वादश च) ॥ ११ ॥

[प्रथमार्गति- २६४ । तैव ११२ । पुष्टं १२६ । प्रजातिः २१६ । प्राजापत्या १०५ । च १३३ । दृहगौ १७८ । निम्रान्यां १६० । यो १११ । हुती १६४ । अग्नि- ४१२ -कादश ॥ २२४८]

[इति तृतीयकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

पवमानग्रहादीनां व्याख्यानम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

पवमानग्रहग्रहणम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वै पव॑मानाना॒मन्वारो॒हान् वि॒द्वान् यज॑ते॒ऽनु॒ पव॑माना॒ना रोह॑ति॒ न पव॑माने॒भ्योऽव॑ च्छिद्यते
श्ये॒नो॑ऽसि गाय॒त्रछ॑न्दा अनु॒ त्वा ऽऽ र॑भे स्व॒स्ति मा॒ सं पा॑रय
सु॒प॒र्णो॑ऽसि त्रि॒ष्टुप्छ॑न्दा अनु॒ त्वा ऽऽ र॑भे स्व॒स्ति मा॒ सं पा॑रय
सघा॑ऽसि जग॑तीछन्दा अनु॒ त्वा ऽऽ र॑भे स्व॒स्ति मा॒ सं पा॑र॒येत्या॑ह—ते (१) वै पव॑माना-नामन्वारो॒हास्तान् य ए॒वं वि॒द्वान् यज॑ते॒ऽनु॒ पव॑माना॒ना रोह॑ति॒ न पव॑माने॒भ्योऽव॑ च्छिद्यते॒ यो वै पव॑मानस्य॒ सन्त॑ति॒ वेद॒ सर्व॒मायु॑रेति॒ न पु॒रा ऽऽयु॑षः॒ प्र मी॑यते पशु॒मान् भ॑वति वि॒न्दते॑ प्र॒जां पव॑मानस्य॒ ग्रहा॑ गृह्य॒न्तेऽथ॒ वा अ॑स्यै॒तेऽगृ॑हीता द्रोणकल॒श आ॑धव॒नीयः॑ पूत॒भृत् तान् यदगृ॑हीत्वोपाकु॒र्यात् पव॑मानं॒ वि (२) छि॑न्द्यात् तं वि॒च्छिद्य॑मानमध्व॒र्योः प्रा॒णोऽनु॒ वि च्छि॑द्येतो॒—प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि प्र॒जाप॑तये त्वेति॒ द्रोणकल॒शम॒भि मृ॑शेदि *- न्द्राय॑ त्वेत्या॑धव॒नीय॑ *- विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॒ इति॑ पूत॒भृतं॒ पव॑मानमे॒व तत् सं त॑नोति॒ सर्व॒मायु॑रेति॒ न पु॒रा ऽऽयु॑षः॒ प्र मी॑यते पशु॒मान् भ॑वति वि॒न्दते॑ प्र॒जाम् ॥ (एते, वि, द्विचत्वारि१ँशच्च) ॥ १ ॥

सवनत्रिकरणम्, तन्मन्त्राश्च ॥ २-३ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्रीणि॒ वाव सव॑नान्यथ॑ तृ॒तीय॒२ँ सव॑न॒मव॑ लुम्पन्त्यन॒१ँशु कु॒र्वन्त॑ उपा॒१ँशु२ँ हु॒त्वोपा॑१ँशुपा॒त्रे॑ऽ१ँशुम॒वास्य॒ तं तृ॑तीयसव॒नेऽपि॒सृज्या॒भि षु॑णुयाद्यदा॑प्याय॒यति॒ तेना॑१ँशु॒मद्यद॑भिषु॒णोति॒ तेन॑र्जी॒षि सर्वा॑ण्ये॒व तत् सव॑नान्य१ँशु॒मन्ति॑ शु॒क्रव॑न्ति स॒माव॑द्वीर्याणि करोति

द्वौ स॑मु॒द्रौ वित॑तावज॒र्यौ प॒र्याव॑र्तेते ज॒ठरे॑व॒ पादाः॑ ।
तयोः॒ पश्य॑न्तो॒ अति॑ यन्त्य॒न्यमप॑श्यन्तः (१) सेतु॒नाऽति॑ यन्त्य॒न्यम् ॥
द्वे द्रव॑सी स॒तती॑ वस्त॒ एकः॑ के॒शी विश्वा॒ भुव॑नानि वि॒द्वान् ।

(११।३१-३२) १।४।४३।१-२, (११४-५) —* इच्यान...शोऽसि ।

ति॒रो॒धायै॒त्यसि॑तं॒ वसा॑नः शु॒क्रमा द॑त्ते अनु॒हाय॑ जा॒र्यै ॥
दे॒वा वै य॒ज्ञाऽकु॑र्वत॒ तदसु॑रा अकुर्वत॒ ते दे॒वा ए॒तं म॑हाय॒ज्ञम॑पश्यन् तम॑तन्वताग्निहो॒त्रं व्र॒तम॑कुर्वत॒ तस्मा॒द् द्विव्र॑तः स्या॒द् द्विर्ह्य॑ग्निहो॒त्रं जुह्व॑ति पौर्णमा॒सं य॒ज्ञम॑ग्नीषो॒मीय॑ (२) प॒शुम॑कुर्वत दा॒र्श्यं य॒ज्ञमा॑ग्ने॒यं प॒शुम॑कुर्वत वैश्वदे॒वं प्रा॒तःसव॒नम॑कुर्वत वरुणप्रघा॒सान् माध्य॑न्दिन॒२ँ सव॑न२ँ साकमे॒धान् पि॑तृय॒ज्ञं त्र्य॑म्बका२ँस्तृ॒तीयसव॒नम॑कुर्वत॒ तमे॑षा॒मसु॑रा य॒ज्ञम॒न्ववा॑जिगा२ँसन् तं नान्ववा॑यन् तेऽब्रुवन्नध्व॒र्तव्या॒ वा इ॒मे दे॒वा अ॑भूव॒न्निति॒ तद॑ध्व॒रस्या॑ध्वर॒त्वं ततो॑ दे॒वा अभ॑वन् परा ऽसु॑रा॒ य ए॒वं वि॒द्वान्त्सोमे॑न॒ यज॑ते॒ भव॑त्या॒त्मना॒ परा॑ (३) ऽस्य॒ भ्रातृ॑व्यो भवति ॥ (अपश्यन्तो, ऽग्नीषोमीयं, परा, त्रीणि च) ॥ २ ॥

सोमावेक्षणम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प॒रि॒भूर॒ग्निं प॑रि॒भूरिन्द्रं॑ परि॒भूर्विश्वा॑न् दे॒वान् प॑रि॒भूर्मा॒२ँ स॒ह ब्र॑ह्मवर्च॒सेन॑
स नः॑ पवस्व॒ शं गवे॒ शं जना॑य॒ शमर्व॑ते॒ श२ँ रा॑जन्नोष॑धीभ्यो
ऽच्छि॑न्नस्य ते रयिपते सु॒वीर्य॑स्य रा॒यस्पोष॑स्य ददि॒तारः॑ स्याम ।
तस्य॑ मे रास्व॒ तस्य॑ ते भक्षीय॒ तस्य॑ त इ॒दमुन्मृ॑जे ॥
प्रा॒णाय॑ मे वर्चो॒दा वर्च॑से पवस्वा॒—पा॒नाय॑ *- व्या॒नाय॑ *- वा॒चे *- (१) द॑क्षक्र॒तुभ्यां॑ *- चक्षु॑र्भ्यां मे वर्चो॒दौ वर्च॑से पवेथा॒२ँ श्रोत्रा॑य॒—*- ऽऽत्मने॑ *- ऽङ्गेभ्य॒ *- आयु॑षे *- वी॒र्या॑य *- विष्णो॒रिन्द्र॑स्य॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ ज॒ठर॑मसि वर्चो॒दा मे॒ वर्च॑से पवस्व॒ कोऽसि॒ को ना॑म॒ कस्मै॑ त्वा॒ काय॑ त्वा॒ यं त्वा॒ सोमे॒नाती॑तृपं॒ यं त्वा॒ सोमे॒नामी॑मद२ँ सुप्र॒जाः प्र॒जया॑ भूयास२ँ सु॒वीरो॑ वी॒रैः सु॒वर्चा॒ वर्च॑सा सु॒पोषः॒ पोषै॒र्विश्वे॑भ्यो मे रू॒पेभ्यो॑ वर्चो॒दा (२) वर्च॑से पवस्व॒ तस्य॑ मे रास्व॒ तस्य॑ ते भक्षीय॒ तस्य॑ त इ॒दमुन्मृ॑जे ॥
बु॒भूष॑न्नवे॑क्षेतै॒ष वै पात्रि॑यः प्र॒जाप॑तिर्य॒ज्ञः प्र॒जाप॑ति॒स्तमे॒व त॑र्पयति॒ स ए॑नं तृ॒प्तो भूत्या॒ऽभि प॑वते ब्रह्मवर्च॒सका॑मोऽवे॑क्षेतै॒ष वै पात्रि॑यः प्र॒जाप॑तिर्य॒ज्ञः प्र॒जाप॑ति॒स्तमे॒व त॑र्पयति॒ स ए॑नं तृ॒प्तो ब्र॑ह्मवर्च॒सेना॒भि प॑वत आमया॒वी (३)—ऽवे॑क्षेतै॒ष वै पात्रि॑यः प्र॒जाप॑तिर्य॒ज्ञः प्र॒जाप॑ति॒स्तमे॒व त॑र्पयति॒ स ए॑नं तृ॒प्त आयु॑षा॒ऽभि प॑वतेऽभि॒चर॑न्नवे॑क्षेतै॒ष वै पात्रि॑यः प्र॒जाप॑तिर्य॒ज्ञः प्र॒जाप॑ति॒स्तमे॒व त॑र्पयति॒ स ए॑नं तृ॒प्तः प्रा॑णापा॒नाभ्यां॑ वा॒चो द॑क्षक्र॒तुभ्यां॒ चक्षु॑र्भ्या॒२ँ श्रोत्रा॑भ्यामा॒त्मनोऽङ्गे॑भ्य॒ आयु॑षो॒ऽन्तरे॑ति ता॒जक् प्र ध॑न्वति ॥ (वा॒चे, व॑र्चो॒दा, आ॑मया॒वी, पञ्च॑चत्वारि२ँशच्च) ॥ ३ ॥

स्फ्याद्युपस्थानमन्त्राः विधिश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

स्फ्यः स्व॒स्तिर्वि॑घ॒नः स्व॒स्तिः पर्शु॒र्वेदिः॑ पर॒शुर्नः॑ स्व॒स्तिः ।
य॒ज्ञिया॑ यज्ञ॒कृतः॑ स्थ॒ ते मा॒ऽस्मिन् य॒ज्ञ उप॑ ह्वयध्व॒—
—मुप॑ मा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ह्व॑येता॒—मुपा॑ऽऽस्ता॒वः *- —* क॒लशः॑ *- —* सोमो॑ *- —* अ॒ग्निः *-

(३।३-५,८-१२) *-मे वर्चोदा...पवस्व, (३।६) वर्चोदौ...पवेथाम्, (३।१३-१४) *- जठर... पवस्व । (४।३-६,७) *- ह्वयताम्, (३।४-६)

रुपं॑ दे॒वाः *- उप॑ य॒ज्ञः *- उप॑ मा॒ होत्रा॑ उपह॒वे ह्व॑यन्तां॒ नमो॒ऽग्नये॑ मख॒घ्ने म॒खस्य॑ मा॒ यशो॑ऽर्या॒दित्या॑हव॒नीय॒मुप॑ तिष्ठते य॒ज्ञो वै म॒खो (१) य॒ज्ञं वाव स तद॑हन् तस्मा॑ ए॒व न॑म॒स्कृत्य॒ सदः॒ प्र स॑र्पत्या॒त्मनोऽना॑र्त्यै॒ नमो॑ रु॒द्राय॑ मख॒घ्ने न॑म॒स्कृत्या॑ मा पा॒हीत्याग्नी॑ध्रं॒ तस्मा॑ ए॒व न॑म॒स्कृत्य॒ सदः॒ प्र स॑र्पत्या॒त्मनोऽना॑र्त्यै॒ नम॒ इन्द्रा॑य मख॒घ्न इ॑न्द्रि॒यं मे॑ वी॒र्यं॑ मा निर्व॑धी॒रिति॑ हो॒त्रीय॑मा॒शिष॑मे॒वैतामा शा॑स्त इन्द्रि॒यस्य॑ वी॒र्य॑स्या॒निर्घा॑ताय॒ या वै (२) दे॒वताः॒ सद॒स्यार्ति॑मार्प॒यन्ति॒ यस्ता वि॒द्वान् प्र॒सर्प॑ति॒ न सद॒स्या-र्ति॒मार्छ॑ति॒ नमो॒ऽग्नये॑ मख॒घ्न इत्या॑है॒ता वै दे॒वताः॒ सद॒स्यार्ति॒मार्प॑यन्ति॒ ता य ए॒वं वि॒द्वान् प्र॒सर्प॑ति॒ न सद॒स्यार्ति॒मार्छ॑ति॒ दृढे स्थः॑ शिथि॒रे स॒मीची॒ मा॒ऽ२ँह॑सस्पात२ँ॒ सूर्यो॑ मा दे॒वो दि॒व्याद२ँह॑सस्पातु *- वा॒युर॒न्तरि॑क्षा॒द् *- (३) अ॒ग्निः पृ॑थि॒व्या *- य॒मः पि॒तृभ्यः॑ *- सर॑स्वती मनु॒ष्ये॑भ्यो॒ देवी॑ द्वारौ॒ मा मा॒ सं ता॑प्तं॒ नमः॒ सद॑से॒ नमः॒ सद॑स॒स्पत॑ये॒ नमः॒ सखी॑नां पुरो॒गाणां॒ चक्षु॑षे॒ नमो॑ दि॒वे नमः॑ पृथि॒व्या अहे॑ दैधिषव्यो॒दत॑स्तिष्ठा॒न्यस्य॒ सद॑ने सीद॒ योऽस्मत् पाक॑तर॒ उन्नि॒वत॑ उद्व॒तश्च॑ गेषं॒ पा॒तं मा॑ द्यावापृथिवी अ॒द्याह्नः॑ सदो॒ वै प्र॒सर्प॑न्तं (४) पि॒तरो॒ऽनु॒ प्र स॑र्पन्ति॒ त ए॑नमीश्व॒रा हि२ँसि॑तोः॒ सदः॑ प्र॒सृप्य॑ दक्षिणा॒र्धं परे॑क्षे॒ताऽग॑न्त पितरः पितृ॒मान॒हं यु॒ष्माभि॑र्भूयास२ँ सुप्र॒जसो॒ मया॑ यू॒यं भू॑या॒स्तेति॒ तेभ्य॑ ए॒व न॑म॒स्कृत्य॒ सदः॒ प्र स॑र्पत्या॒त्मनोऽना॑र्त्यै ॥
(म॒खो, वै, अ॒न्तरि॑क्षा॒द्, प्र॒सर्प॑न्तं, प्रच॑त्वारि२ँशच्च) ॥ ४ ॥

भक्षमन्त्राः ॥ ८ गायत्री; ९ बृहती, १०, २० त्रिष्टुप्, १२ अनुष्टुप्, १४ द्विपदा गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

भक्षेहि॒ मा ऽऽ वि॑श दीर्घायु॒त्वाय॑ शन्तनु॒त्वाय॑ रा॒यस्पोषा॑य॒ वर्च॑से सुप्रजा॒स्त्वायेहि॑ वसो पुरो-वसो प्रि॒यो मे॑ हृ॒दोऽस्य॒—श्विनो॑स्त्वा बा॒हुभ्या॒२ँ सघ्यास॒ नृ॒चक्ष॑सं त्वा देव सोम सु॒चक्षा॒ अव॑ ख्येषं॒ म॒न्द्राऽभिभू॑तिः के॒तुर्य॒ज्ञानां॒ वाग्जु॑षा॒णा सोम॑स्य तृप्यतु म॒न्द्रा स्व॑र्वा॒च्यदि॑ति॒रना॑हतशीर्ष्णी॒ वाग्जु॑षा॒णा सोम॑स्य तृप्य॒त्वेहि॑ विश्वचर्षणे (१) श॒म्भूर्म॑यो॒भूः स्व॒स्ति मा॑ हरिवर्ण॒ प्र च॑र॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य रा॒यस्पोषा॑य सुवी॒रता॑यै॒ मा मा॑ राजन् वि बी॑भिषो॒ मा मे॒ हार्दि॑ त्वि॒षा व॑धीः । वृष॑णे॒ शुष्मा॒याऽऽयु॑षे॒ वर्च॑से ॥
वसु॑मद्गणस्य सोम देव ते मति॒विदः॑ प्रा॒तःसव॒नस्य॑ गाय॒त्रछ॑न्दस॒ इन्द्र॑पीतस्य॒ नरा॒श२ँस॑पीतस्य॒ पि॒तृपी॑तस्य॒ मधु॑मत॒ उप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि रु॒द्रव॑द्गणस्य सोम देव ते मति॒विदो॒ माध्य॑न्दिनस्य॒ सव॑नस्य त्रि॒ष्टुप्छ॑न्दस॒ इन्द्र॑पीतस्य॒ नरा॒श२ँस॑पीतस्य (२) पि॒तृपी॑तस्य॒ मधु॑मत॒ उप॑हूत॒स्यो-प॑हूतो भक्षयाम्या॒—दि॒त्यव॑द्गणस्य सोम देव ते मति॒विद॑स्तृ॒तीय॑स्य॒ सव॑नस्य॒ जग॑तीछन्दस॒ इन्द्र॑-पीतस्य॒ नरा॒श२ँस॑पीतस्य पि॒तृपी॑तस्य॒ मधु॑मत॒ उप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥
आ प्या॑यस्व॒ समे॑तु ते वि॒श्वतः॑ सोम॒ वृष्णि॑यम् । भवा॒ वाज॑स्य सङ्ग॒थे ॥
हि॒न्व मे॒ गात्रा॑ हरिवो ग॒णान् मे॒ मा वि ती॑तृषः ।
शि॒वो मे॑ सप्तर्षी॒नुप॑ तिष्ठस्व॒ मा मेऽवाङ्नाभि॒मति॑ (३) गाः ॥

(३।०) *- ह्वयताम्, (३।२-९) कस्मिंश्चित् मते अयमेव एव मन्त्रः । (४।१५-१८) *- पातु ।

अपा॑म॒ सोम॑म॒मृता॑ अभू॒माद॑र्श्म॒ ज्योति॒रवि॑दाम दे॒वान् ।
किम॒स्मान् कृ॑णव॒दरा॑तिः॒ किमु॑ धू॒र्तिर॑मृत॒ मर्त्य॑स्य ॥
यन्म॑ आ॒त्मनो॑ मि॒न्दाऽभू॑द॒ग्निस्तत् पुन॒राऽहा॑र्जा॒तवे॑दा॒ विच॑र्षणिः ॥
पुन॑र॒ग्निश्चक्षु॑रदा॒त् पुन॒रिन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॑ ।
पुन॑र्मे अश्विना यु॒वं चक्षु॒रा ध॑त्तम॒क्ष्योः ॥
इ॒ष्टय॑जुषस्ते देव सोम स्तु॒तस्तो॑मस्य (४) श॒स्तोक्थ॑स्य॒ हरि॑वत॒ इन्द्र॑पीतस्य॒ मधु॑मत॒ उप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥
आ॒प॒र्याः स्था॒ऽऽ मा॑ पूरयत प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च ॥
ए॒तत् ते॑ तत॒ ये च॒ त्वामन्वे॒तत् ते॑ पितामह प्रपितामह॒ ये च॒ त्वामन्वत्र॑ पितरो यथाभा॒गं म॑न्दध्वं॒
नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शुष्मा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ जीवा॑य॒ नमो॑ वः पितरः (५) स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॒ नमो॑ वः पितरो॒ घोरा॑य॒ पित॑रो॒ नमो॑ वो॒ य ए॒तस्मि॑ꣳल्लो॒के स्थ यु॒ष्मा२ँस्तेऽनु॒ येऽस्मि॑ꣳल्लो॒के मां तेऽनु॒ य ए॒तस्मि॑ꣳल्लो॒के स्थ यू॒यं तेषां॒ वसि॑ष्ठा भूयास्त॒ येऽस्मि॑ꣳल्लो॒केऽहं तेषां॒ वसि॑ष्ठो भूयासं॒
प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ जा॒तानि॒ परि॒ ता ब॑भूव (६) ।
यत् का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒य२ँ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥
दे॒वकृ॑त॒स्यैन॑सोऽव॒यज॑नमसि मनु॒ष्य॑कृत॒स्यैन॑सोऽव॒यज॑नमसि पि॒तृकृ॑त॒स्यैन॑सोऽव॒यज॑नम॒स्य॒—प्सु धौ॑तस्य सोम देव ते॒ नृभिः॑ सु॒तस्ये॒ष्टय॑जुषः स्तु॒तस्तो॑मस्य श॒स्तोक्थ॑स्य॒ यो भ॒क्षो अ॑श्व॒सनि॒र्यो गो॒सनि॒स्तस्य॑ ते पि॒तृभि॑र्भ॒क्षंकृ॑त॒स्योप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥ (विश्वचर्षणे, नराश२ँसपीतस्या,-ऽति, स्तुतस्तोमस्य, पितरो, बभूव, षट्चत्वारि२ँशच्च) ॥ ५ ॥

पृषदाज्यम्, तद्विधिमन्त्रश्च ॥ २ बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

म॒हीनां॒ पयो॑ऽसि॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ त॒नूरृ॒ध्यास॑म॒द्य पृष॑तीनां॒ ग्रहं॒ पृष॑तीनां॒ ग्रहो॑ऽसि॒ विष्णो॒र्हृद॑यम॒स्येक॑मिष॒ विष्णु॒स्त्वानु॒ वि च॑क्रमे भू॒तिर्द॒ध्ना घृ॒तेन॑ वर्धतां॒ तस्य॑ मे॒ष्टस्य॑ वी॒तस्य॒ द्रवि॑ण॒मा ग॑म्या॒ज्ज्योति॑रसि वैश्वान॒रं पृश्ञि॑यै दु॒ग्धं
याव॑ती॒ द्यावा॑पृथि॒वी म॑हि॒त्वा याव॑च्च स॒प्त सिन्ध॑वो वित॒स्थुः ।
ताव॑न्तमिन्द्र ते (१) ग्रह॒२ँ स॒होर्जा॑ गृह्णा॒म्यस्तृ॑तम् ॥
यत् कृ॑ष्णशकु॒नः पृ॑षदा॒ज्यम॑वमृ॒शेच्छू॒द्रा अ॑स्य प्र॒मायु॑काः स्यु॒र्यच्छ्वाऽवमृ॒शेच्चतु॑ष्पादोऽस्य प॒शवः॑ प्र॒मायु॑काः स्यु॒र्यत् स्कन्दे॒द्यज॑मानः प्र॒मायु॑कः स्यात् प॒शवो॒ वै पृ॑षदा॒ज्यं प॒शवो॒ वा ए॒तस्य॑ स्कन्दन्ति॒ यस्य॑ पृष-

आज्यꣳ स्कन्दति यत् पृषदाज्यं पुनर्गृह्णाति पशूनेवास्मै पुनर्गृह्णाति प्राणो वै पृषदाज्यं प्राणो वा (२)
एतस्य स्कन्दति यस्य पृषदाज्यꣳ स्कन्दति यत् पृषदाज्यं पुनर्गृह्णाति प्राणमेवास्मै पुनर्गृह्णाति हिरण्यम-
वधाय गृह्णात्यमृतं वै हिरण्यं प्राणः पृषदाज्यममृतमेवास्य प्राणे दधाति शतमानं भवति शतायुः पुरुषः
शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्य॒श्वमव घ्रापयति प्राजापत्यो वा अश्वः प्राजापत्यः प्राणः स्वादेवा-
स्मै योनेः प्राणं (३) निर्मिमीते वि वा एतस्य यज्ञश्छिद्यते यस्य पृषदाज्यꣳ स्कन्दति वैष्णव्यर्चा
पुनर्गृह्णाति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनैव यज्ञꣳ सं तनोति ॥ (ते, वै, प्राण, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

स्तुतशस्त्रयोरभिधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देव सवितरेतत् ते प्राऽऽह तत् प्र च सुव प्र च यज बृहस्पतिर्ब्रह्माऽऽयुष्मत्या ऋचो मा गात
तनूपात् साम्नः सत्या व आशिषः सन्तु सत्या आकूतय ऋतं च सत्यं च वदत स्तुत देवस्य
सवितुः प्रसवे स्तुतस्य स्तुतमस्यूर्जं मह्यꣳ स्तुतं दुहामा मा स्तुतस्य स्तुतं गम्याच्छस्त्रस्य शस्त्र-
(१)-मस्यूर्जं मह्यꣳ शस्त्रं दुहामा मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यादि—

—न्द्रियावन्तो वनामहे धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥
सा मे सत्याऽऽशीर्देवेषु भूयाद्ब्रह्मवर्चसं माऽऽगम्यात् ॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स वावृधे ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्माꣳ अधिपतीन् करोतु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

यज्ञो वा वै (२) यज्ञपतिं दुहे यज्ञपतिर्वा यज्ञं दुहे स यः स्तुतशस्त्रयोर्दोहमविद्वान् यजते तं यज्ञो
दुहे स इष्ट्वा पापीयान् भवति य एनयोर्दोहं विद्वान् यजते स यज्ञं दुहे स इष्ट्वा वसीयान् भवति स्तुत-
स्य स्तुतमस्यूर्जं मह्यꣳ स्तुतं दुहामा मा स्तुतस्य स्तुतं गम्याच्छस्त्रस्य शस्त्रमस्यूर्जं मह्यꣳ शस्त्रं दुहा-
(३)-मा मा शस्त्रस्य शस्त्रं गम्यादित्याहैष वै स्तुतशस्त्रयोर्दोहस्तं य एवं विद्वान् यजते दुह एव यज्ञमिष्ट्वा
वसीयान् भवति ॥ (शस्त्रं, वै, दुहे, द्वात्रिꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

प्रस्थितयाज्याद्यहोमादिमन्त्राः ॥ १६-२०, २४-२५ त्रिष्टुप्, २२-२३ जगती, २१ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

श्येनाय पत्वने स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमो विष्टम्भाय धर्मणे स्वाहा वट् स्वयमभि-
गूर्ताय नमः परिधये जनप्रथनाय स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम ऊर्जे होत्राणाꣳ स्वाहा
वट् स्वयमभिगूर्ताय नमः पयसे होत्राणाꣳ स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नमः प्रजापतये
मनवे स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम ऋतमृतपाः सुवर्वाट् स्वाहा वट् स्वयमभिगूर्ताय नम—

—स्तृम्पन्ताꣳ होत्रा मधोर्घृतस्य
यज्ञपतिमृषय एनसा (१) ऽऽहुः ।
प्रजा निर्भक्ता अनुतप्यमाना मधव्यौ स्तोकावप तौ रराध ॥
सं नस्ताभ्याꣳ सृजतु विश्वकर्मा

१६ (तै. सं.)

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यः ।
चक्षुष एषां मनसश्च सन्धौ बृहस्पतये महि षद् द्युमन्नमः ॥
नमो विश्वकर्मणे स उ पात्वस्मा—
नेनन्यान्त्सोमपान् मन्यमानः ।
प्राणस्य विद्वान्त्समरे न धीर एनश्चकृवान् महि बद्ध एषाम् ॥
तं विश्वकर्मन् (२) प्र मुञ्चा स्वस्तये
ये भक्षयन्तो न वसून्यानृहुः ।
यानग्नयोऽन्वतप्यन्त धिष्णिया इयं तेषामवया दुरिष्ट्यै स्विष्टिं नस्तां कृणोतु विश्वकर्मा ॥
नमः पितृभ्यो अभि ये नो अख्यन् यज्ञकृतो यज्ञकामाः सुदेवा
अकामा वो दक्षिणां न नीनिम मा नस्तस्मादेनसः पापयिष्ट ।

यावन्तो वै सदस्यास्ते सर्वे दक्षिण्यास्तेभ्यो यो दक्षिणां न (३) नयेदैभ्यो वृश्च्येत यद्वैश्वकर्मणानि
जुहोति सदस्यानेव तत् प्रीणात्य—

—स्मे देवासो वपुषे चिकित्सत यमाशिरा दम्पती वाममश्नुतः ।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वथ विश्वे अरपा एधते गृहः ॥
आशीर्दाया दम्पती वाममश्नुतामरिष्टो रायः सचताꣳ समोकसा ।
य आऽसिचत् संदुग्धं कुम्भ्या सहेष्टेन यामन्नमतिं जहातु सः ॥
सर्पिर्ग्रीवी (४) पीवर्यस्य जाया पीवानः पुत्रा अकृशासो अस्य ।
सहजानिर्यः सुमखस्यमान इन्द्रायाऽऽशिरꣳ सह कुम्भ्याऽदात् ॥
आशीर्म ऊर्जमुत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणꣳ सवर्चसम् ।
सञ्जयन् क्षेत्राणि सहसाऽहमिन्द्र कृण्वानो अन्याꣳ अधरान्त्सपत्नान् ॥
भूतमसि भूते मा धा मुखमसि मुखं भूयासं द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णामि विश्वे त्वा
देवा वैश्वानराः (५) प्र च्यावयन्तु दिवि देवान् दृꣳहान्तरिक्षे वयाꣳसि पृथिव्यां पार्थिवान्
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽव सोमं नयामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ।
यथा न इन्द्र इद्विशः केवलीः सर्वाः समनसः करत् ।
यथा नः सर्वा इद्दिशोऽस्माकं केवलीरसन् ॥
(एनसा, विश्वकर्मन्, न, सर्पिर्ग्रीवी, वैश्वानराः,-श्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

प्रतिगरः, तन्मन्त्राश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमेनमभि प्र वर्तयत्युक्थशा इत्याह प्रातःसवनं प्रतिगीर्य त्रीण्येतान्य-

२०२८

क्षराणि त्रिपदा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं गायत्रियैव प्रातःसवने वज्रमन्तर्धत्त उक्थं वाचीत्याह माध्यं-
दिनꣳ सवनं प्रतिगीर्य चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुष्पदा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं त्रिष्टुभैव माध्यंदिने
सवने वज्रमन्तर्धत्त (१) उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह तृतीयसवनं प्रतिगीर्य सप्तैतान्यक्षराणि सप्तपदा शक्वरी
शाक्वरो वज्रो वज्रेणैव तृतीयसवने वज्रमन्तर्धत्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा अध्वर्युः स्याद्यो यथा-
सवनं प्रतिगरे छन्दाꣳसि सम्पादयेत् तेजः प्रातःसवन आत्मन् दधीतेन्द्रियं माध्यंदिने सवने पशूꣳस्तृ-
तीयसवन इत्यु—क्थशा इत्याह प्रातःसवनं प्रतिगीर्य त्रीण्येतान्यक्षराणि (२) त्रिपदा गायत्री गायत्रं प्रातः-
सवनं प्रातःसवन एव प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो तेजो वै गायत्री तेजः प्रातःसवनं तेज एव
प्रातःसवन आत्मन् धत्त उक्थं वाचीत्याह माध्यंदिनꣳ सवनं प्रतिगीर्य चत्वार्येतान्यक्षराणि चतुष्पदा
त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं माध्यंदिन एव सवने प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो इन्द्रियं वै त्रिष्टुगि-
न्द्रियं माध्यंदिनꣳ सवन-(३)-मिन्द्रियमेव माध्यंदिने सवन आत्मन् धत्त उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह तृतीय-
सवनं प्रतिगीर्य सप्तैतान्यक्षराणि सप्तपदा शक्वरी शाक्वराः पशवो जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवन एव
प्रतिगरे छन्दाꣳसि सं पादयत्यथो पशवो वै जगती पशवस्तृतीयसवनं पशूनेव तृतीयसवन आत्मन् धत्ते
यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयत आव्यमस्मिन् दधाति तद्यन्ना-(४)-पहनीत पुराऽस्य संवत्सराद्गृह आ वेवी-
रन्छोꣳसा मोद इवेति प्रत्याह्वयते तेनैव तदप हते यथा वा आयतां प्रतीक्षत एवमध्वर्युः प्रतिगरं
प्रतीक्षते यदभिप्रतिगृणीयाद्यथाऽऽयतया समृच्छते तादृगेव तं—दर्धर्चाल्लुप्येत यथा धावद्भ्यो हीयते
तादृगेव तत् प्रबाहुग्वा ऋत्विजामुद्गीथा उद्गीथ एवोद्गातृणा-(५)-मृचः प्रणव उक्थशꣳसिनां प्रतिगरो-
ऽध्वर्यूणां य एवं विद्वान् प्रतिगृणात्यन्नाद एव भवत्याऽस्य प्रजायां वाजी जायत इयं वै होता-
साध्वर्युर्यदासीनः शꣳसत्यस्या एव तद्धोता नैत्यास्त इव हीयमथो इमामेव तेन यजमानो दुहे यद-
तिष्ठन् प्रतिगृणात्यमुष्या एव तदध्वर्युर्नैति (६) तिष्ठतीव ह्यसावथो अमूमेव तेन यजमानो दुहे यदा-
सीनः शꣳसति तस्मादितः प्रदानं देवा उप जीवन्ति यत् तिष्ठन् प्रतिगृणाति तस्मादमुतः प्रदानं मनुष्या
उप जीवन्ति यत् प्राङासीनः शꣳसति प्रत्यङ् तिष्ठन् प्रतिगृणाति तस्मात् प्राचीनꣳ रेतो धीयते
प्रतीचीः प्रजा जायन्ते यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमेनमभि प्र वर्तयति (७) पराङा वर्तते वज्रमेव
तन्नि करोति ॥ (धत्ते, क्षराणि, सवनं, नो,-द्गातृणा,-मेति, वर्तयति, द्वे च) ॥ ९ ॥

प्रतिनिर्ग्राह्यमन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

उपयामगृहीतोऽसि वाक्षसदसि वाक्पाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णा-
म्यु—पयामगृहीतोऽस्यृतसदसि चक्षुष्पाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णामि
म्यु—पयामगृहीतोऽसि श्रुतसदसि श्रोत्रपाभ्यां त्वा क्रतुपाभ्यामस्य यज्ञस्य ध्रुवस्याध्यक्षाभ्यां गृह्णा-
देवेभ्यस्त्वा विश्वदेवेभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो विष्णवुरुक्रमैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व (१)
तं ते दुश्चक्षा माऽव ख्य—न्मयि वसुः पुरोवसुर्वाक्पा वाचं मे पाहि मयि वसुर्विदद्वसुश्चक्षुष्पा-

श्चक्षुर्मे पाहि मयि वसुः संयद्वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि भूरसि श्रेष्ठो रश्मीनां प्राणपाः
प्राणं मे पाहि धूरसि श्रेष्ठो रश्मीनामपानपा अपानं मे पाहि यो न इन्द्रवायू मित्रावरुणा-
—वश्विनावभिदासति भ्रातृव्य (२) उत्पिपीते शुभस्पती इदमहं तमधरं पादयामि यथेन्द्राहमुत्त-
मश्चेतयानि ॥ (रक्षस्व, भ्रातृव्य,-स्त्रयोदश च) ॥ १० ॥

त्रैधातवीयेष्टिमन्त्राः ॥ १ ककुप्; २ उष्णिक्; ३-६, ९-१० त्रिष्टुप्; ७-८ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तनुवो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥
सं वां कर्मणा समिषा (१) हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥
त्रीण्यायूꣳषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा (२) भव यजमानाय शं योः ॥
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः । स त्रीꣳरेकादशाꣳ इह ॥
यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतः । नभन्तामन्यके समे ॥
इन्द्राविष्णू दृꣳहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकꣳ हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा (३) जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥
(इषा, ऽथ, त्वा, त्रयोदश च) ॥ ११ ॥

[य-१४१ । -श्रीणि १५३ । परिभूः १९५ । स्पवो २६३ । भक्षे १४४ । महीनां १७२ । देवं १७२ । श्येनाय १५० ।
य-१५८ । -दुपयामगृहीतः ११३। प्र-१५३ । कादश ॥ २३२१]

[इति तृतीयकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

वैकृतविधीनामभिधानम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

अतिग्राह्यग्रहमन्त्राः ॥ ७-९ द्विपदा गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्ने तेजस्विन् तेजस्वी त्वं देवेषु भूयास्तेजस्वन्तं मामायुष्मन्तं वर्चस्वन्तं मनुष्येषु कुरु दीक्षायै
च त्वा तपसश्च तेजसे जुहोमि तेजोविदसि तेजो मा मा हासीन्माऽहं तेजो हासिषं मा मां तेजो

हासीदिन्द्रौजस्विन्नोजस्वी त्वं देवेषु भूया ओजस्वन्तं मामायुष्मन्तं वर्चस्वन्तं मनुष्येषु कुरु ब्रह्मणश्च त्वा क्षत्रस्य चौ-(१)-जसे जुहोम्योजोविदस्योजो मा मा हासीन्माऽहमोजो हासिषं मा मामोजो हासीत् सूर्य भ्राजस्विन् भ्राजस्वी त्वं देवेषु भूया भ्राजस्वन्तं मामायुष्मन्तं वर्चस्वन्तं मनुष्येषु कुरु वायोश्च त्वाऽपां च भ्राजसे जुहोमि सुवर्विदसि सुवर्मा मा हासीन्माहꣳ सुवर्हासिषं मा माꣳ सुवर्हासीन्मयि (१) मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ॥ (च, मयि, त्रयोविंशतिश्च) ॥ १ ॥

स्तोत्रोपाकरणं, प्रतिगरादिमन्त्रश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वायुर्हिङ्कर्ताऽग्निः प्रस्तोता प्रजापतिः साम बृहस्पतिरुद्गाता विश्वे देवा उपगातारो मरुतः प्रतिहर्तार इन्द्रो निधनं ते देवाः प्राणभृतः प्राणं मयि दधत्वेतद्वै सर्वमध्वर्युरुपाकुर्वन्नुद्गातृभ्य उपाकरोति ते देवाः प्राणभृतः प्राणं मयि दधत्वित्याहैतदेव सर्वमात्मन् धत्त इडा देवहूर्मनुर्यज्ञनीर्बृहस्पतिरुक्थामदानि शꣳसिषद्विश्वे देवाः (१) सूक्तवाचः पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मधु मनिष्ये मधु जनिष्ये मधु वक्ष्यामि मधु वदिष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासꣳ शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोऽनु मदन्तु ॥ (विश्वे देवा, अष्टाविंशतिश्च) ॥ २ ॥

अदाभ्यांशुग्रहमन्त्राः ॥ २१-२५ अनुष्टुप्, [illegible] स्वराट् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

वसवस्त्वा प्र वृहन्तु गायत्रेण छन्दसाऽग्नेः प्रियं पाथ उपेहि रुद्रास्त्वा प्र वृहन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसेन्द्रस्य प्रियं पाथ उपेह्यादित्यास्त्वा प्र वृहन्तु जागतेन छन्दसा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथ उपेहि मान्दासु ते शुक्र शुक्रमा धूनोमि भन्दनासु*- कोतनासु*- नूतनासु*- रेशीषु*- मेषीषु*- वाशीषु*- विश्वभृत्सु*- माध्वीषु*- ककुहासु*- शक्वरीषु*-(१) शुक्रासु ते शुक्र शुक्रमा धूनोमि

शुक्रं ते शुक्रेण गृह्णाम्यह्नो रूपेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥
आ ऽस्मिन्नुग्रा अचुच्यवुर्दिवो धारा असश्चत ॥
ककुहꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहत् सोमः सोमस्य पुरोगाः शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः ॥
यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहो-

-शिक् त्वं देव सोम गायत्रेण छन्दसाऽग्नेः (२) प्रियं पाथो अपीहि वशी त्वं देव सोम त्रैष्टुभेन छन्दसेन्द्रस्य प्रियं पाथो अपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम जागतेन छन्दसा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथो अपीह्या-

नः प्राण एतु परावत आऽन्तरिक्षाद्दिवस्परि । आयुः पृथिव्या अध्यमृतमसि प्राणाय त्वा ॥
इन्द्राग्नी मे वर्चः कृणुतां वर्चः सोमो बृहस्पतिः (३) । वर्चो मे विश्वे देवा वर्चो मे धत्तमश्विना ॥

(१३-१४) ते शुक्र... धूनोमि

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् । परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥
(शक्वरीषु, -अग्ने, -बृहस्पतिः, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

अदाभ्यांशुग्रहमन्त्रब्राह्मणम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एतद्वा अपां नामधेयं गुह्यं यदाधावा मान्दासु ते शुक्र शुक्रमा धूनोमीत्याहापामेव नामधेयेन गुह्येन दिवो वृष्टिमव रुन्धे शुक्रं ते शुक्रेण गृह्णामीत्याहैतद्वा अह्नो रूपं यद्रात्रिः सूर्यस्य रश्मयो वृष्ट्या ईशतेऽह्न एव रूपेण सूर्यस्य रश्मिभिर्दिवो वृष्टिं च्यावयत्याऽस्मिन्नुग्रा (१) अचुच्यवुरित्याह यथायजुरेवैतत् ककुहꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहदित्याहैतद्वा अस्य ककुहꣳ रूपं यद्वृष्टी रूपेणैव वृष्टिमव रुन्धे यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवीत्याहैष ह वै हविषा हविर्यजति योऽदाभ्यं गृहीत्वा सोमाय जुहोति परा वा एतस्याऽऽयुः प्राण एति (२) योऽꣳशुं गृह्णात्या नः प्राण एतु परावत इत्याहाऽऽयुरेव प्राणमात्मन् धत्तेऽमृतमसि प्राणाय त्वेति हिरण्यमभि व्यनित्यमृतं वै हिरण्यमायुः प्राणोऽमृतेनैवाऽऽयुरात्मन् धत्ते शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठत्यप उप स्पृशति भेषजं वा आपो (३) भेषजमेव कुरुते ॥ (इमा, एत्या, -प, -स्त्रीणि च) ॥ ४ ॥

द्वादशाहशेषाः पृश्निग्रहाख्या उन्मानविशेषाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वायुरसि प्राणो नाम सवितुराधिपत्येऽपानं मे दाश्चक्षुरसि श्रोत्रं नाम धातुराधिपत्य आयुर्मे दा रूपमसि वर्णो नाम बृहस्पतेराधिपत्ये प्रजां मे दा ऋतमसि सत्यं नामेन्द्रस्याऽऽधिपत्ये क्षत्रं मे दा भूतमसि भव्यं नाम पितृणामाधिपत्येऽपामोषधीनां गर्भं धा ऋतस्य त्वा व्योमन ऋतस्य (१) त्वा विभूमन ऋतस्य त्वा विधर्मण ऋतस्य त्वा सत्यायर्तस्य त्वा ज्योतिषे प्रजापतिर्विराजमपश्यत् तया भूतं च भव्यं चासृजत तामृषिभ्यस्तिरोऽदधात् तां जमदग्निस्तपसाऽपश्यत् तया वै स पृश्नीन् कामानसृजत तत् पृश्नीनां पृश्नित्वं यत् पृश्नयो गृह्यन्ते पृश्नीनेव तैः कामान् यजमानोऽव रुन्धे वायुरसि प्राणो (२) नामेत्याह प्राणापानावेवाव रुन्धे चक्षुरसि श्रोत्रं नामेत्याहाऽऽयुरेवाव रुन्धे रूपमसि वर्णो नामेत्याह प्रजामेवाव रुन्ध ऋतमसि सत्यं नामेत्याह क्षत्रमेवाव रुन्धे भूतमसि भव्यं नामेत्याह पशवो वा अपामोषधीनां गर्भः पशूनेवा-(३)-व रुन्ध एतावद्वै पुरुषं परितस्तदेवाव रुन्ध ऋतस्य त्वा व्योमन इत्याहेयं वा ऋतस्य व्योमेमामेवाभि जयत्यृतस्य त्वा विभूमन इत्याहान्तरिक्षं वा ऋतस्य विभूमान्तरिक्षमेवाभि जयत्यृतस्य त्वा विधर्मण इत्याह द्यौर्वा ऋतस्य विधर्म दिवमेवाभि जयत्यृतस्य (४) त्वा सत्यायेत्याह दिशो वा ऋतस्य सत्यं दिश एवाभि जयत्यृतस्य त्वा ज्योतिष इत्याह सुवर्गो वै लोक ऋतस्य ज्योतिः सुवर्गमेव लोकमभि जयत्येतावन्तो वै देवलोकास्तानेवाभि जयति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति ॥ (ऋतस्य, प्राण, पशु, -र्तस्य, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

गवामयनिका परः संज्ञका अतिग्राह्याः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वै यज्ञेन नावारुन्धत तत् परैरवारुन्धत तत् पराणां परत्वं यत् परे गृह्यन्ते यदेव यज्ञेन

नावरुन्धे तस्यावरुद्ध्यै यं प्रथमं गृह्णातीममेव तेन लोकमभि जयति यं द्वितीयमन्तरिक्षं तेन यं तृतीयममुमेव तेन लोकमभि जयति यदेते गृह्यन्त एषां लोकानामभिजित्या (१) उत्तरेष्वहःस्वमुतोऽर्वाञ्चो गृह्यन्तेऽभिजित्यैवेमाल्लोकान् पुनरिमं लोकं प्रत्यवरोहन्ति यत् पूर्वेष्वहःस्वितः पराञ्चो गृह्यन्ते तस्मादितः पराञ्च इमे लोका यदुत्तरेष्वहःस्वमुतोऽर्वाञ्चो गृह्यन्ते तस्मादमुतोऽर्वाञ्च इमे लोकास्तस्मादयातयाम्नो लोकान् मनुष्या उप जीवन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्यादद्भ्य ओषधयः सं भवन्त्योषधयो (२) मनुष्याणामन्नं प्रजापतिं प्रजा अनु प्र जायन्त इति परानन्विति ब्रूयाद्यद्गृह्णात्यद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो गृह्णामीति तस्मादद्भ्य ओषधयः सं भवन्ति यद् गृह्णात्योषधीभ्यस्त्वा प्रजाभ्यो गृह्णामीति तस्मादोषधयो मनुष्याणामन्नं यद्गृह्णाति प्रजाभ्यस्त्वा प्रजापतये गृह्णामीति तस्मात् प्रजापतिं प्रजा अनु प्र जायन्ते ॥ (अभिजित्या, ओषधयो, ऽष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

[illegible]मन्त्रविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिर्देवासुरानसृजत तदनु यज्ञोऽसृज्यत यज्ञं छन्दाꣳसि ते विष्वञ्चो व्यक्रामन्त्सोऽसुराननु यज्ञोऽपाक्रामद्यज्ञं छन्दाꣳसि ते देवा अमन्यन्तामी वा इदमभूवन् यद्वयꣳ स्म इति ते प्रजापतिमुपाधावन्त्सोऽब्रवीत् प्रजापतिश्छन्दसां वीर्यमादाय तद्वः प्र दास्यामीति स छन्दसां वीर्य-(१)-मादाय तदेभ्यः प्रायच्छत् तदनु छन्दाꣳस्यपाक्रामन् छन्दाꣳसि यज्ञस्ततो देवा अभवन् पराऽसुरा य एवं छन्दसां वीर्यं वेदाऽऽश्रावयास्तु श्रौषड् यज ये यजामहे वषट्कारो भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मै कमध्वर्युरा श्रावयतीति छन्दसां वीर्यायेति ब्रूयादेतद्वै (२) छन्दसां वीर्यमाश्रावयास्तु श्रौषड् यज ये यजामहे वषट्कारो य एवं वेद सवीर्यैरेव छन्दोभिरर्चति यत् किं चार्चति यदिन्द्रो वृत्रमहन्नमेध्यं तद्यद्यतीनपावपदमेध्यं तदथ कस्मादिन्द्रो यज्ञ आ सꣳस्थातोरित्याहुरिन्द्रस्य वा एषा यज्ञिया तनूर्यद्यज्ञस्तामेव त-(३)-द्यजन्ति य एवं वेदोपैनं यज्ञो नमति ॥ (वीर्यं, वै, त, -दष्टौ च) ॥ ७ ॥

[illegible]मन्त्राः ॥ १,६ त्रिष्टुप्, ५-६ अनुष्टुप् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आयुर्दा अग्ने हविषो जुषाणो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमम् ॥

आ वृश्च्यते वा एतद्यजमानोऽग्निभ्यां यदेनयोः शृतङ्कृत्याथान्यत्रावभृथमवैत्यायुर्दा अग्ने हविषो जुषाण इत्यवभृथमवैष्यञ्जुहुयादाहुत्यैवैनौ शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानो

यत् कुसीद-(१)-मप्रतीत्तं मयि येन यमस्य बलिना चरामि ।
इहैव सन् निरवदये तदेतत् तदग्ने अनृणो भवामि ।
विश्वलोप विश्वदावस्य त्वाऽऽसञ्जुहोम्यग्धादेकोऽहुतादेकः समसनादेकः ।
ते नः कृण्वन्तु भेषजꣳ सदः सहो वरेण्यम् ॥
अयं नो नभसा पुरः सꣳस्फानो अभि रक्षतु । गृहाणामसमर्त्यै बहवो नो गृहा असन् ॥

स त्वं नो (२) नभसस्पत ऊर्जं नो धेहि भद्रया ।
पुनर्नो नष्टमा कृधि पुनर्नो रयिमा कृधि ॥

देव सꣳस्फान सहस्रपोषस्येशिषे स नो रास्वाज्यानिꣳ रायस्पोषꣳ सुवीर्यꣳ संवत्सरीणाꣳ स्वस्तिम् ॥

अग्निर्वाव यम इयं यमी कुसीदं वा एतद्यमस्य यजमान आ दत्ते यदोषधीभिर्वेदिꣳ स्तृणाति यदनुपौष्य प्रयायाद्ग्रीवबद्धमेन-(३)-ममुष्मिँल्लोके नेनीयेरन् यत् कुसीदमप्रतीत्तं मयीत्युपौषतीहैव सन् यमं कुसीदं निरवदायानृणः सुवर्गं लोकमेति यदि मिश्रमिव चरेदञ्जलिना सक्तून् प्रदाव्ये जुहुयादेष वा अग्निर्वैश्वानरो यत् प्रदाव्यः स एवैनꣳ स्वदयत्यहां विधान्यामेकाष्टकायामपूपं चतुःशरावं पक्त्वा प्रातरेतेन कक्षमुपौषेद्यदि (४) दहति पुण्यसमं भवति यदि न दहति पापसममेतेन ह स्म वा ऋषयः पुरा विज्ञानेन दीर्घसत्रमुप यन्ति यो वा उपद्रष्टारमुपश्रोतारमनुख्यातारं विद्वान् यजते सममुष्मिँल्लोक इष्टापूर्तेन गच्छतेऽग्निर्वा उपद्रष्टा वायुरुपश्रोताऽऽदित्योऽनुख्याता तान् य एवं विद्वान् यजते सममुष्मिँल्लोक इष्टापूर्तेन गच्छतेऽयं नो नभसा पुर (५) इत्याहाग्निर्वै नभसा पुरोऽग्निमेव तदाहैतन्मे गोपायेति स त्वं नो नभसस्पत इत्याह वायुर्वै नभसस्पतिर्वायुमेव तदाहैतन्मे गोपायेति देव सꣳस्फानेत्याहासौ वा आदित्यो देवः सꣳस्फान आदित्यमेव तदाहैतन्मे गोपायेति (६) ॥ (कुसीदं, न, एनं, वादं, पुर, इति) ॥ ८ ॥

[illegible] ॥ १-५ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

एतं युवानं परि वो ददामि तेन क्रीडन्तीश्चरत प्रियेण ।
मा नः शाप्त जनुषा सुभागा रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥
नमो महिम्न उत चक्षुषे ते मरुतां पितस्तदहं गृणामि ।
अनु मन्यस्व सुयजा यजाम जुष्टं देवानामिदमस्तु हव्यम् ॥
देवानामेष उपनाह आसीदपां गर्भ ओषधीषु न्यक्तः ।
सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा (१) बृहन्नद्रिरभवत् तदेषाम् ॥
पिता वत्सानां पतिरघ्नियानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा मस्तु घृतमस्य रेतः ॥
त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वाꣳ हवन्त मरुतः स्वर्काः ।
वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुभि शिश्रियाणस्ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥

व्यृद्धेन वा एष पशुना यजते यस्यैतानि न क्रियन्त एष (२) ह त्वै समृद्धेन यजते यस्यैतानि क्रियन्ते ॥ (पूषा, -ष्टौ च) ॥ ९ ॥

पाशुकगर्भप्रायश्चित्तम् ॥ १ बृहती; २, ४ अनुष्टुप्; ३ न्यङ्कुसारिणी; ५ एकपदा गायत्री; ६ द्विपदा विराट्; ८ गायत्री ॥
विश्वेदेवा ऋषयः ।

सूर्यो देवो दिविषद्भ्यो धाता क्षत्राय वायुः प्रजाभ्यः ।
बृहस्पतिस्त्वा प्रजापतये ज्योतिष्मतीं जुहोतु ॥
यस्यास्ते हरितो गर्भोऽथो योनिर्हिरण्ययी । अङ्गान्यह्रुता यस्यै तां देवैः समजीगमम् ॥
आ वर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तयेन्द्र नर्दबुद । भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभिरा वर्तया पुनः ॥
वि ते भिनद्मि तकरीं वि योनिं वि गवीन्यौ । वि (१) मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायु च ॥
बहिस्ते अस्तु बालिति ॥
उरुद्रप्सो विश्वरूप इन्दुः पवमानो धीर आनञ्ज गर्भम् ॥
एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदी पञ्चपदी षट्पदी सप्तपद्यष्टापदी भुवनाऽनु प्रथता स्वाहा
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥
(वि, चतुश्चत्वारिंशच्च) ॥ १० ॥

याज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ त्रिष्टुप्; १-३ गायत्री, ७, ९, ११-१२ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तꣳ शतग्विनम् । अश्वावन्तꣳ सहस्रिणम् ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः (१) शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥
त्वामग्ने मानुषीरीडते विशो होत्राविदं विविचिꣳ रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तꣳ सुभग विश्वदर्शतं तुविष्मणसꣳ सुयजं घृतश्रियम् ॥
धाता ददातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन वावनत् ॥
धाता प्रजाया उत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान ।
धाता पुत्रं यजमानाय दाता (२) तस्मा उ हव्यं घृतवद्विधेम ॥
धाता ददातु नो रयिं प्राचीं जीवातुमक्षिताम् । वयं देवस्य धीमहि सुमतिꣳ सत्यराधसः ॥
धाता ददातु दाशुषे वसूनि प्रजाकामाय मीढुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृताः सं व्ययन्तां विश्वे देवासो अदितिः सजोषाः ॥
१७ (तै. सं.)

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मयः ॥
अन्विदनुमते त्वं (३) मन्यासै शं च नः कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूꣳषि तारिषः ॥
अनु मन्यतामनुमन्यमाना प्रजावन्तꣳ रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्यै वयꣳ हेडसि माऽपि भूम सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु ॥
यस्यामिदं प्रदिशि यद्विरोचतेऽनुमतिं प्रति भूषन्त्यायवः ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षꣳ सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु (४) ॥
राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरꣳ शतदायमुक्थ्यम् ॥
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषꣳ सुभगे रराणा ॥
सिनीवालि *- या सुपाणिः *- ॥
कुहूमहꣳ सुभगां विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।
सा नो ददातु श्रवणं (५) पितॄणां तस्यास्ते देवि हविषा विधेम ॥
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषश्चिकेतु ।
सं दाशुषे किरतु भूरि वामꣳ रायस्पोषं चिकितुषे दधातु ॥
(भामासो, दाता, त्वं, यच्छतु, श्रवणं, चतुर्विꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥
[अग्ने १२३ । वायुं ७८ । वसंव १०५ । एत-१०२ ।-द्यावु-२४६ ।-देवा १४८ । प्रजापति-१५८ ।-रायुर्वा ३०० एतꣳ १०८ । सूर्यो ९४ । इद-२०४ । -त्रेकादश ॥ १८५०]
[॥ इति तृतीयकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

इष्टिहोमाभिधानम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥] विश्वेदेवा ऋषयः ।
यज्ञागमदर्शनानिमित्तकहोमविधिः ॥

वि वा एतस्य यज्ञ ऋध्यते यस्य हविरतिरिच्यते सूर्यो देवो दिविषद्भ्य इत्याह बृहस्पतिना चैवास्य
प्रजापतिना च यज्ञस्य व्यृद्धमपि वपति रक्षाꣳसि वा एतत् पशुꣳ सचन्ते यदेकदेवत्य आलब्धो भूयान्
भवति यस्यास्ते हरितो गर्भ इत्याह देवत्रैवैनां गमयति रक्षसामपहत्या आ वर्तन वर्तयेत्याह (१
ब्रह्मणैवैनमा वर्तयति वि ते भिनद्मि तकरीमित्याह यथायजुरेवैतत् उरुद्रप्सो विश्वरूप इन्दुरित्याह
प्रजा वै पशव इन्दुः प्रजयैवैनं पशुभिः समर्धयति दिवं वै यज्ञस्य व्यृद्धं गच्छति पृथिवीमतिरिक्तं तद्य
(११।१०-१८) ३।१।११।१५-१९

च्छमयेदार्तिमार्च्छेद्यजमानो मही द्यौः पृथिवी च न इत्या-(२)-ह द्यावापृथिवीभ्यामेव यज्ञस्य व्यृद्धं चातिरिक्तं
शमयेदार्तिमार्च्छेद्यजमानो मही द्यौः पृथिवी च न इत्याह द्यावापृथिवीभ्यामेव यज्ञस्य व्यृद्धं चातिरिक्तं च शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानो भस्मनाऽभि समूहति स्वगाकृत्या अथो अनयोर्वा एष गर्भो-ऽनयोरेवैनं दधाति यदवद्येदति तद्रेचयेद्यन्नावद्येत् पशोरालब्धस्य नाव द्येत् पुरस्तान्नाभ्या अन्यदवद्ये-दुपरिष्टादन्यत् पुरस्ताद्वै नाभ्यै (३ प्राण उपरिष्टादपानो यावानेव पशुस्तस्याव द्यति विष्णवे शिपि-विष्टाय जुहोति यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते यः पशोर्भूमा या पुष्टिस्तद्विष्णुः शिपिविष्टोऽतिरिक्त एवातिरिक्तं दधात्यतिरिक्तस्य शान्त्यै अष्टाप्रूड्ढिरण्यं दक्षिणाऽष्टापदी ह्येषाऽऽत्मा नवमः पशोराप्त्यै अन्तर-कोश उष्णीषेणाऽऽविष्टितं भवत्येवमिव हि पशुरुल्बमिव (४) चर्मेव माꣳसमिवास्थीव यावानेव पशु-स्तमाप्त्वाऽव रुन्धे यस्यैषा यज्ञे प्रायश्चित्तिः क्रियत इष्ट्वा वसीयान् भवति ॥ आहे,-ति, नाभ्या, इवे,-कविꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

यज्ञालम्भनमन्त्राः ॥ १, ७, ९-१० त्रिष्टुप्, ८ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥
आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा किक्किटा ते मनः प्रजापतये स्वाहा किक्किटा ते प्राणं वायवे स्वाहा किक्किटा ते चक्षुः सूर्याय स्वाहा किक्किटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा
किक्किटा ते वाचꣳ सरस्वत्यै स्वाहा (१)
त्वं तुरीया वशिनी वशाऽसि सकृद्यत् त्वा मनसा गर्भ आऽशयत् ।
वशा त्वं वशिनी गच्छ देवान्त्सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
अजाऽसि रयिष्ठा पृथिव्याꣳ सीदोर्ध्वाऽन्तरिक्षमुप तिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भाः ॥
तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ॥
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनु-(२)-र्भव जनया दैव्यं जनम् ॥
मनसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णो गात्राणां ते गात्रभाजो भूयास्म ॥
(स्वाहा, मनु,-स्त्रयोदश च) ॥ २ ॥

काम्यपश्ववदानविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।
इमे वै सहाऽऽस्तां ते वायुर्व्यवात् ते गर्भमदधातां तꣳ सोमः प्राजनयदग्निरग्रसत स एतं प्रजापति-राग्नेयमष्टाकपालमपश्यत् तं निरवपत् तेनैवैनामग्नेरधि निरक्रीणात् तस्मादप्यन्यदेवत्यामालभमान आग्नेयमष्टाकपालं पुरस्तान्निर्वपेदग्नेरेवैनामधि निष्क्रीयाऽऽलभते य-(१) द्वायुर्व्यवात् तस्माद्वायव्या यदिमे गर्भमदधातां तस्माद् द्यावापृथिव्या यत् सोमः प्राजनयदग्निरग्रसत तस्मादग्नीषोमीया यदनयोर्वि-यत्योर्वागवदत् तस्मात् सारस्वती यत् प्रजापतिरग्नेरधि निरक्रीणात् तस्मात् प्राजापत्या सा वा एषा सर्वदेवत्या यदजा वशा वायव्यामा लभेत भूतिकामो वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता वायुमेव स्वेन (२) भाग-

धेयेनोप धावति स एवैनं भूतिं गमयति द्यावापृथिव्यामा लभेत कृषमाणः प्रतिष्ठाकामो दिव एवास्मै पर्जन्यो वर्षति व्यस्यामोषधयो रोहन्ति समर्धुकमस्य सस्यं भवत्य-ग्नीषोमीयामा लभेत यः कामयेतान्नवानन्नादः स्यामित्यग्निनैवान्नमव रुन्धे सोमेनान्नाद्यमन्नवानेवान्नादो भवति सारस्वतीमा लभेत य (३) ईश्वरो वाचो वदितोः सन् वाचं न वदेद्वाग्वै सरस्वती सरस्वतीमेव स्वेन भागधेयेनोप धावति सैवास्मिन् वाचं दधाति प्राजापत्यामा लभेत यः कामयेतानभिजितमभि जयेयमिति प्रजापतिः सर्वा देवता देवता-भिरेवानभिजितमभि जयति वायव्ययोपाकरोति वायोरेवैनामवरुध्याऽऽलभत आकूत्यै त्वा कामाय त्वे-(४)-त्याह यथायजुरेवैतत् किक्किटाकारं जुहोति किक्किटाकारेण वै ग्राम्याः पशवो रमन्ते प्रा-ऽरण्याः पतन्ति यत् किक्किटाकारं जुहोति ग्राम्याणां पशूनां धृत्यै पर्यग्नौ क्रियमाणे जुहोति जीवन्ती-मेवैनाꣳ सुवर्गं लोकं गमयति त्वं तुरीया वशिनी वशाऽसीत्याह देवत्रैवैनां गमयति सत्याः सन्तु यजमानस्य कामा इत्याहैष वै कामो (५) यजमानस्य यदनार्त उदृचं गच्छति तस्मादेवमाहा-ऽजाऽसि रयिष्ठेत्याहैष्वेवैनां लोकेषु प्रति ष्ठापयति दिवि ते बृहद्भा इत्याह सुवर्ग एवास्मै लोके ज्योतिर्दधाति तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहीत्याहेमानेवास्मै लोकान् ज्योतिष्मतः करोत्य-नुल्बणं वयत जोगु-वामप इत्या-(६)-ह यदेव यज्ञ उल्बणं क्रियते तस्यैवैषा शान्ति-र्मनुर्भव जनया दैव्यं जनमित्याह मान-व्यो वै प्रजास्ता एवाऽऽद्याः कुरुते मनसो हविरसीत्याह सुवर्गत्यै गात्राणां ते गात्रभाजो भूया-स्मेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते तस्यै वा एतस्या एकमेवादेवयजनं यदालब्धायामभ्रो (७) भवति यदालब्धायामभ्रः स्यादप्सु वा प्रवेशयेत् सर्वां वा प्राश्नीया-द्यदप्सु प्रवेशयेद्यज्ञवेशसं कुर्यात् सर्वामेव प्राश्नीयादिन्द्रियमेवाऽऽत्मन् धत्ते सा वा एषा त्रयाणामेवावरुद्धा संवत्सरसदः सहस्रयाजिनो गृहमे-धिनस्त एवैतया यजेरन् तेषामेवैषाऽऽप्ता ॥ (य, स्वेन, य,-त्वा, काम, इत्या, भ्रो, द्विचत्वारिंशच्च) ॥ ३ ॥

जयहोममन्त्राः तदवदानं च ॥ ११ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

चित्तं च चित्तिश्चा-ऽऽकूतं चा-ऽऽकूतिश्च विज्ञातं च विज्ञानं च मनश्च शक्करीश्च दर्शश्च पूर्णमासश्च बृहच्च रथन्तरं च प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः पृतनाज्येषु तस्मै विशः समनमन्त सर्वाः स उग्रः स हि हव्यो बभूव
देवासुराः संयत्ता आसन्त्स इन्द्रः प्रजापतिमुपा-(१)-धावत् तस्मा एताञ्जयान् प्रायच्छत् ताञ्जुहोत् ततो वै देवा असुरानजयन् यदजयन् तज्जयानां जयत्वꣳ स्पर्धमानेनैते होतव्या जयत्येव तां पृतनाम् ॥
(उप, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ४ ॥

अभ्यातानमन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्निर्भूतानामधिपतिः स माऽवत्वि-न्द्रो ज्येष्ठानां *- यमः पृथिव्या *- वायुरन्तरिक्षस्य *- सूर्यो दिवः *- चन्द्रमा नक्षत्राणां *- बृहस्पतिर्ब्रह्मणो *- मित्रः सत्यानां *- वरुणोऽपाꣳ *- समुद्रः स्रोत्या-नां *- अन्नꣳ साम्राज्यानामधिपति तन्माऽवतु सोम ओषधीनाꣳ *- सविता प्रसवानाꣳ *- रुद्रः
(५।२-१०, १२-१६) अधिपतिः... इतु । अग्ने च ' अग्निर् महान्.. ' (५।१८) इत्यादयश्च ।

पशूनां॑ ७-त्वष्टा॑ रूपाणां॑ ८-विष्णुः॒ पर्वतानां॑ ९-मरुतो॑ गणाना॒मधिपतयस्ते माऽवन्तु पितरः पितामहाः परेऽवरे (१) तता॑स्ततामहा इह माऽवत । अस्मिन् ब्रह्मन्नस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया॑मस्मिन् कर्मन्नस्यां देवहूत्याम् ॥ (अवतु, ततामहा च) ॥ ५ ॥

कथ्यातानाम्नाष्टहोमविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतानभ्यातानानपश्यन् तानभ्यातन्वत यद्देवानां कर्माऽऽसीदार्ध्यत तद्यदसुराणां न तदार्ध्यत येन कर्मणेर्त्सेत् तत्र होतव्या ऋध्नोत्येव तेन कर्मणा यद्विश्वे देवाः समभरन् तस्मादभ्यातानाः वैश्वदेवा यत् प्रजापतिर्जयान् प्रायच्छत् तस्माज्जयाः प्राजापत्याः (१) यद्राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रमाऽदद॑त तद्राष्ट्रभृतां राष्ट्रभृत्त्वं ते देवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वत जयैरजयन् राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रमाऽदद॑त यद्देवा अभ्यातानैरसुरानभ्यातन्वत तदभ्यातानानामभ्यातानत्वं यज्जयैरजयन् तज्जयानां जयत्वं यद्राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रमाऽदद॑त तद्राष्ट्रभृतां राष्ट्रभृत्त्वं ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स (२) एतान् जुहुयादभ्यातानैरेव भ्रातृव्यानभ्यातनुते जयैर्जयति राष्ट्रभृद्भी राष्ट्रमा दत्ते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति ॥ (प्राजापत्याः, सं, अष्टात्रिंशच्च) ॥ ६ ॥

राष्ट्रभृन्मन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः

ऋताषाडृतधामाऽग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरस ऊर्जो नाम स इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु ता इदं ब्रह्म क्षत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहा संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवः सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो बेकुरयो भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तवाः प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो (१) गन्धर्वस्तस्यर्क्सामान्यप्सरसो वह्नय इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्याऽऽपोऽप्सरसो मुदाः

भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च ।

स नो रास्वाज्यानिꣳ रायस्पोषꣳ सुवीर्यꣳ संवत्सरीणाꣳ स्वस्तिम् ॥

परमेष्ठ्यधिपतिर्मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य विश्वमप्सरसो भुवः सुक्षितिः सुभूतिर्भद्रकृत् सुवर्वान् पर्जन्यो गन्धर्वस्तस्य विद्युतोऽप्सरसो रुचो दूरेहेतिरमृडयो (२) मृत्युर्गन्धर्वस्तस्य प्रजा अप्सरसो भीरुवश्चारुः कृपणकाशी कामो गन्धर्वस्तस्याऽऽधयोऽप्सरसः शोचयन्तीर्नाम स इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु ता इदं ब्रह्म क्षत्रं पान्तु तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहा

स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा इह च ।

उरु ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ ॥ (मनोऽमृडयः, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

राष्ट्रभृन्मन्त्राणां काम्यप्रयोगाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

राष्ट्रकामाय होतव्या राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतो राष्ट्रेणैवास्मै राष्ट्रमव रुन्धे राष्ट्रमेव भवत्यात्मने होतव्या

(का२-१२,१४-१५) नाम...ताभ्यः स्वाहा ।

राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतो राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रं पशवो राष्ट्रं यच्छ्रेष्ठो भवति राष्ट्रेणैव राष्ट्रमव रुन्धे वसिष्ठः समानानां भवति ग्रामकामाय होतव्या राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतो राष्ट्रꣳ सजाता राष्ट्रेणैवास्मै राष्ट्रꣳ सजातानव रुन्धे ग्राम्ये-(१)-व भवत्यधिदेवने जुहोत्यधिदेवन एवास्मै सजातानव रुन्धे त एनमवरुद्धा उप तिष्ठन्ते रथमुख ओजस्कामस्य होतव्या ओजो वै राष्ट्रभृत ओजो रथ ओजसैवास्मा ओजोऽव रुन्ध ओजस्व्येव भवति यो राष्ट्रादपभूतः स्यात् तस्मै होतव्या यावन्तोऽस्य रथाः स्युस्तान् ब्रूयाद् युङ्ग्ध्वमिति राष्ट्रमेवास्मै युनक्त्या-(२)-हुतयो वा एतस्याक्लृप्ता यस्य राष्ट्रं न कल्पते स्वरथस्य दक्षिणं चक्रं प्रवृह्य नाडीमभि जुहुयादाहुतीरेवास्य कल्पयति ता अस्य कल्पमाना राष्ट्रमनु कल्पते संग्रामे संयत्ते होतव्या राष्ट्रं वै राष्ट्रभृतो राष्ट्रे खलु वा एते व्यायच्छन्ते ये संग्रामꣳ संयन्ति यस्य पूर्वस्य जुह्वति स एव भवति जयति तꣳ संग्रामं मान्धुक इध्मो (३) भवत्यङ्गारा एव प्रतिवेष्टमाना अमित्राणामस्य सेनां प्रति बध्नन्ति य उन्माद्येत् तस्मै होतव्या गन्धर्वाप्सरसो वा एतमुन्मादयन्ति य उन्माद्यत्येते खलु वै गन्धर्वाप्सरसो यद्राष्ट्रभृतस्तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहेति जुहोति तेनैवैनाञ्छमयति नैयग्रोध औदुम्बर आश्वत्थः प्लाक्ष इतीध्मो भवत्येते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः स्व एवैना-(४)-नायतने शमयत्यभिचरता प्रतिलोमꣳ होतव्याः प्राणानेवास्य प्रतीचः प्रति यौति तं ततो येन केन च स्तृणुते स्वकृत इरिणे जुहोति प्रदरे वैतद्वा अस्यै निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋतिगृहीत एवैनं निर्ऋत्या ग्राहयति यद्वाचः क्रूरं तेन वषट् करोति वाच एवैनं क्रूरेण प्र वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छति यस्य कामयेतान्नाद्य-(५)-मा ददीयेति तस्य सभायामुत्तानो निपद्य भुवनस्य पत इति तृणानि सं गृह्णीयात् प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः प्रजापतिनैवास्यान्नाद्यमा दत्त इदमहममुष्याऽऽमुष्यायणस्यान्नाद्यꣳ हरामीत्याहान्नाद्यमेवास्य हरति षड्भिर्हरति षड्वा ऋतवः प्रजापतिनैवास्यान्नाद्यमादायर्तवोऽस्मा अनु प्र यच्छन्ति (६) यो ज्येष्ठबन्धुरपभूतः स्यात् तꣳ स्थलेऽवसाय्य ब्रह्मौदनं चतुःशरावं पक्त्वा तस्मै होतव्या वर्ष्म वै राष्ट्रभृतो वर्ष्म स्थलं वर्ष्मणैवैनं वर्ष्म समानानां गमयति चतुःशरावो भवति दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति क्षीरे भवति रुचमेवास्मिन् दधात्युद्धरति शृतत्वाय सर्पिष्वान् भवति मेध्यत्वाय चत्वार आर्षेयाः प्राश्नन्ति दिशामेव ज्योतिषि जुहोति ॥ (ग्राम्ये, युनक्ति,-इध्म, एवैना,-नन्नाद्यं, यच्छन्ति,-आर्षेयाः प्राश्नन्ति द्वे च) ॥ ८ ॥

दैविकाख्यहविषां काम्यप्रयोगाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

दैविका निर्वपेत् प्रजाकामश्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसीव खलु वै प्रजाश्छन्दोभिरेवास्मै प्रजाः प्र जनयति प्रथमं धातारं करोति मिथुनी एव तेन करोत्यन्वेवास्मा अनुमतिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जनयति प्रजास्वेव प्रजातासु कुह्वा वाचं दधात्येता एव निर्वपेत् पशुकामश्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसी-(१)-व खलु वै पशवश्छन्दोभिरेवास्मै पशून् प्र जनयति प्रथमं धातारं करोति प्रैव तेन वापयत्यन्वेवास्मा अनुमतिर्मन्यते राते राका प्र सिनीवाली जनयति पशूनेव प्रजातान् कुह्वा प्रति ष्ठापयत्येता एव निर्वपेद्ग्रामकामश्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसीव खलु वै ग्रामश्छन्दोभिरेवास्मै ग्राम-(२)-मव रुन्धे मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैनं ग्रामस्य दधात्येता एव निर्वपेज्ज्योगामयावी छन्दा-

ꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसि खलु वा एतमभि मन्यन्ते यस्य ज्योगामयति छन्दोभिरेवैनमगदं करोति मध्यतो धातारं करोति मध्यतो वा एतस्याक्लृप्तं यस्य ज्योगामयति मध्यत एवास्य तेन कल्पयत्येता एव नि-(३)-र्वपेद्यं यज्ञो नोपनमेच्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसि खलु वा एतं नोप नमन्ति यं यज्ञो नोपनमति प्रथमं धातारं करोति मुखत एवास्मै छन्दाꣳसि दधात्युपैनं यज्ञो नमत्येता एव निर्वपेदीजानश्छन्दाꣳसि वै दैविका यातयामानीव खलु वा एतस्य छन्दाꣳसि य ईजान उत्तमं धातारं करोत्यु-(४)-परिष्टादेवास्मै छन्दाꣳस्ययातयामान्यव रुन्ध उपैनमुत्तरो यज्ञो नमत्येता एव निर्वपेद्यं मेधा नोपनमेच्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसि खलु वा एतं नोप नमन्ति यं मेधा नोपनमति प्रथमं धातारं करोति मुखत एवास्मै छन्दाꣳसि दधात्युपैनं मेधा नमत्येता एव निर्वपे-(५)-द्रुक्कामश्छन्दाꣳसि वै दैविकाश्छन्दाꣳसीव खलु वै रुक् छन्दोभिरेवास्मिन् रुचं दधाति क्षीरे भवन्ति रुचमेवास्मिन् दधति मध्यतो धातारं करोति मध्यत एवैनꣳ रुचो दधाति गायत्री वा अनुमतिस्त्रिष्टुग्राका जगती सिनीवाल्यनुष्टुप् कुहूर्धाता वषट्कारः पूर्वपक्षो राकाऽपरपक्षः कुहूरमावास्या सिनीवाली पौर्णमास्यनुमतिश्चन्द्रमा धाताऽष्टौ (६) वसवोऽष्टाक्षरा गायत्र्येकादश रुद्रा एकादशाक्षरा त्रिष्टुब् द्वादशादित्या द्वादशाक्षरा जगती प्रजापतिरनुष्टुब् धाता वषट्कार एतद्वै दैविकाः सर्वाणि च छन्दाꣳसि सर्वाश्च देवता वषट्कारस्ता यत् सह सर्वा निर्वपेदीश्वरा एनं प्रदहो द्वे प्रथमे निरुप्य धातुस्तृतीयं निर्वपेत् तथो एवोत्तरे निर्वपेत् तथैनं न प्र दहन्त्य-(७)-थो यस्मै कामाय निरुप्यन्ते तमेवाऽऽभिरुपाऽऽप्नोति ॥ (छन्दाꣳसि, ग्राम, नि,-र्वपेदीजान, करो,-त्यु, निर्वपे, दृष्टौ, दहन्ति, नव च) ॥ ९ ॥

प्रवत्स्यतोऽग्निहोत्रिणो होमः, समारोपश्च ॥ १-२ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं न एधि द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

वास्तोष्पते शग्मया सꣳसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

आवः क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

यत् सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहोत्याहुतीष्टका एव ता उप धत्ते (१) यजमानोऽहोरात्राणि वा एतस्येष्टका य आहिताग्निर्यत् सायंप्रातर्जुहोत्यहोरात्राण्येवाऽऽप्त्वेष्टकाः कृत्वोप धत्ते दश समानत्र जुहोति दशाक्षरा विराड् विराजमेवाऽऽप्त्वेष्टकां कृत्वोप धत्तेऽथो विराज्येव यज्ञमाप्नोति चित्यश्चित्योऽस्य भवति तस्माद्यत्र दशोषित्वा प्रयाति तदशक्याऽस्त्ववास्त्वेव तदत् ततोऽर्वाचीनꣳ (२) रुद्रः खलु वै वास्तोष्पतिर्यदहुत्वा वास्तोष्पतीयं प्रयायाद् रुद्र एनं भूत्वाऽग्निरनूत्थाय हन्याद्वास्तोष्पतीयं जुहोति भागधेयेनैवैनꣳ शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानो यद्युक्ते जुहुयाद्यथा प्रयाति वास्त्वाहुतिं जुहोति तादृगेव तद्यद्युक्ते जुहुयाद्यथा क्षेम आहुतिं जुहोति तादृगेव तदहुतमस्य वास्तोष्पतीयꣳ स्या-(३)-द्दक्षिणो युक्तो भवति सव्योऽयुक्तोऽथ वास्तोष्पतीयं जुहोत्युभयमेवाकरपरिवर्गमेवैनꣳ शमयति यदेकया जुहुयाद्दर्वि-

होमं कुर्यात् पुरोऽनुवाक्यामनूच्य याज्यया जुहोति सदेवत्वाय यद्धुत आदध्याद् रुद्रं गृहानन्वारोहयेद्यदवक्षाणान्यसंप्रक्षाप्य प्रयायाद्यथा यवसे बहुं वाऽऽदहनं वा तादृगेव तदयं ते योनिर्ऋत्विय इत्यरण्योः समारोहयत्ये-(४)-ष वा अग्नेर्योनिः स्व एवैनं योनौ समारोहयत्यथो खल्वाहुर्यदरण्योः समारूढो नश्येदुदस्याग्निः सीदेत् पुनराधेयः स्यादिति या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहेत्यात्मन्त्समारोहयते यजमानो वा अग्नेर्योनिः स्वायामेवैनं योन्याꣳ समारोहयते (धत्ते, अर्वाचीनꣳ, स्यात्, समारोहयति, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

राजसूयगता याज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ त्रिष्टुप्; १,३,५,७,११,१५,१८ गायत्री; ८ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥

हव्यवाडग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्रियक् सं मिमीहि श्रवाꣳसि ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।

श्येनो गृध्राणाꣳ स्वधितिर्वनानाꣳ सोमः (१) पवित्रमत्येति रेभन् ॥

आ विश्वदेवꣳ सत्पतिꣳ सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवꣳ सवितारम् ॥

आ सत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवना विपश्यन् ॥

यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा (२) नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।

गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥

हꣳसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाꣳ अगायत् ॥

एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ (३) सजित्वानꣳ सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून् ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।

इन्द्राऽऽभर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥

त्वꣳ सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।

भुवो नॄꣳश्च्यौत्नो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो (४) विश्वचर्षणे ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसिम् । सत्यं चित्रश्रवस्तमम् ॥
मित्रो जनान् यातयति प्रजानन् मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाऽभि चष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम ॥
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमꣳहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥
य-(५)-च्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरे-(६)-व देवाथा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥
(सोमो, मा, रयिं, मन्द्रो, य,-च्छिथिरा, सप्त च) ॥ ११ ॥

[वि षा २२१ । आ वांयो ११३ । इम ३९२ चित्त-७५ ।-मग्नि-६७ । देवा ११८ । कतापा-१०६ द्वादशांमाय ३४९ । देविका ३५९ । वास्तो-२४५ । स्व-३०७ । मेकादश ॥ ३३९२]

[इति तृतीयकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

इष्टिशेषाभिधानम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

दर्शपूर्णमासाङ्गभूतारम्भणीयेष्टिः ॥ १-३ त्रिष्टुप्, ४ शक्वरी । विश्वेदेवा ऋषयः ।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवा अधि संवसन्त उत्तमे नाक इह मादयन्ताम् ॥
यत् ते देवा अदधुर्भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
सा नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥
निवेशनी सङ्गमनी वसूनां विश्वा रूपाणि वसून्यावेशयन्ती ।
सहस्रपोषꣳ सुभगा रराणा सा न आ गन् वर्चसा (१) संविदाना ॥
अग्नीषोमौ प्रथमौ वीर्येण वसून् रुद्रानादित्यानिह जिन्वतम् ।
माध्यꣳ हि पौर्णमासं जुषेथां ब्रह्मणा वृद्धौ सुकृतेन साताविथाऽस्मभ्यꣳ
सहवीराꣳ रयिं नि यच्छतम् ॥

आदित्याश्चाङ्गिरसश्चाग्नीनाऽदधत ते दर्शपूर्णमासौ प्रैप्सन् तेषामङ्गिरसां निरुप्तꣳ हविरासीदथाऽऽ-
दित्या एतौ होमावपश्यन् तावजुहवुस्ततो वै ते दर्शपूर्णमासौ (२) पूर्व आ ऽलभन्त दर्शपूर्णमासावाल-
भमान एतौ होमौ पुरस्ताज्जुहुयात् साक्षादेव दर्शपूर्णमासावा लभते ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै दर्शपूर्ण-
मासावा लभेत य एनयोरनुलोमं च प्रतिलोमं च विद्यादित्यमावास्याया ऊर्ध्वं तदनुलोमं पौर्णमास्यै प्रती-

अतिमोक्षमन्त्राः ॥ अनुष्टुप्, ३, ६, ९ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासते । अग्निर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥
आऽगन्म मित्रावरुणा वरेण्या रात्रीणां भागो युवयोर्यो अस्ति ।
नाकं गृह्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥
ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासते । वायुर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥
यास्ते रात्रीः सवित-(१)-र्देवयानीरन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति ।
गृहैश्च सर्वैः प्रजया न्वग्रे सुवो रुहाणास्तरता रजाꣳसि ॥
ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषो दिव्यध्यासते । सूर्यो मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥
येनेन्द्राय समभरः पयाꣳस्युत्तमेन हविषा जातवेदः ।
तेनाग्ने त्वमुत वर्धयेमꣳ सजातानाꣳ श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥

यज्ञहनो वै देवा यज्ञमुषः (२) सन्ति त एषु लोकेष्वासत आददाना विमथ्नाना यो ददाति यो यजते
तस्य । ये देवा यज्ञहनः पृथिव्यामध्यासते ये अन्तरिक्षे ये दिवीत्याहेमानेव लोकाꣳस्तीर्त्वा सगृहः
सपशुः सुवर्गं लोकमेत्य-प वै सोमेनेजानाद्देवताश्च यज्ञश्च क्रामन्त्याग्नेयं पञ्चकपालमुदवसानीयं निर्व-
पेदग्निः सर्वा देवताः (३) पाङ्क्तो यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चाव रुन्धे गायत्रो वा अग्निर्गायत्रछन्दास्तं
छन्दसा व्यर्धयति यत् पञ्चकपालं करोत्यष्टाकपालः कार्योऽष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्गायत्रछन्दाः स्वेनैवैनं
छन्दसा समर्धयति पङ्क्त्यौ याज्यानुवाक्ये भवतः पाङ्क्तो यज्ञस्तेनैव यज्ञाच्चैति ॥ (सवित,-यज्ञमुषो,
देवता,-श्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

आदित्यग्रहमन्त्राः ॥ १ आर्षि., २ शक्वरी, ४ अनुष्टुप्, ६-७ त्रिष्टुप्, ८ बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

सूर्यो मा देवो देवेभ्यः पातु वायुरन्तरिक्षाद्यजमानोऽग्निर्मा पातु चक्षुषः ।
सक्ष शूष सवितर्विश्वचर्षण एतेभिः सोम नामभिर्विधेम ते तेभिः सोम नामभिर्विधेम ते ॥
अहं परस्तादहमवस्तादहं ज्योतिषा वि तमो ववार । यदन्तरिक्षं तदु मे पिताऽभूदहꣳ सूर्य-
मुभयतो ददर्शाहं भूयासमुत्तमः समानाना-(१)-मा समुद्रादाऽन्तरिक्षात् प्रजापतिरुदधिं च्यावयाती-
न्द्रः प्र स्नौतु मरुतो वर्षयन्तू-
-न्नम्भय पृथिवीं भिन्धीदं दिव्यं नभः । उद्नो दिव्यस्य नो देहीशानो वि सृजा दृतिम् ॥
पशवो वा एते यदादित्य एष रुद्रो यदग्निरोषधीः प्रास्याग्नावादित्यं जुहोति रुद्रादेव पशूनन्तर्दधा-
त्यथो ओषधीष्वेव पशून् (२) प्रति ष्ठापयति
कविर्यज्ञस्य वि तनोति पन्थां नाकस्य पृष्ठे अधि रोचने दिवः ।
येन हव्यं वहसि यासि दूत इतः प्रचेता अमुतः सनीयान् ॥
यास्ते विश्वाः समिधः सन्त्यग्ने याः पृथिव्यां बर्हिषि सूर्ये याः ।

चीनं तत् प्रतिलोमं यत् पौर्णमासीं पूर्वामालभेत प्रतिलोममेनावा लभेतामुमपक्षीयमाणमन्वप (३) क्षीयेत
सारस्वतौ होमौ पुरस्ताज्जुहुयादमावास्या वै सरस्वत्यनुलोममेवैनावा लभतेऽमुमाप्यायमानमन्वा प्यायत
आग्नावैष्णवमेकादशकपालं पुरस्तान्निर्वपेत् सरस्वत्यै चरुꣳ सरस्वते द्वादशकपालं यदाग्नेयो भवत्यग्निर्वै
यज्ञमुखमेवर्द्धिं पुरस्ताद्धत्ते यद्वैष्णवो भवति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेवाऽऽरभ्य प्र तनुते सरस्वत्यै (४) चरुर्भ-
वति सरस्वते द्वादशकपालोऽमावास्या वै सरस्वती पूर्णमासः सरस्वान् तावेव साक्षादा रभत ऋध्नो-
त्याभ्यां द्वादशकपालः सरस्वते भवति मिथुनत्वाय प्रजात्यै मिथुनौ गावौ दक्षिणा समृद्ध्यै ॥
(वर्चसा, दर्शपूर्णमासा,-वप, सरस्वत्यै, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

सौमिकब्रह्मत्वविधिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन् तं वसिष्ठः प्रत्यक्षमपश्यत् सोऽब्रवीद्ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि यथा त्व-
त्पुरोहिताः प्रजाः प्रजनिष्यन्तेऽथ मेतरेभ्य ऋषिभ्यो मा प्र वोच इति तस्मा एतान्त्स्तोमभागानब्रवीत्
ततो वसिष्ठपुरोहिताः प्रजाः प्राजायन्त तस्माद्वासिष्ठो ब्रह्मा कार्यः प्रैव जायते रश्मिरसि क्षयाय त्वा
क्षयं जिन्वेत्या-(१)-ह देवा वै क्षयो देवेभ्य एव यज्ञं प्राऽऽह प्रेतिरसि धर्माय त्वा धर्मं जिन्वेत्याह मनुष्या
वै धर्मो मनुष्येभ्य एव यज्ञं प्राऽऽहा-न्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्वेत्याहैभ्य एव लोकेभ्यो यज्ञं प्राऽऽह
विष्टम्भोऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्वेत्याह वृष्टिमेवाव (२) रुन्धे प्रवाऽस्यनुवाऽसीत्याह मिथुनत्वायो-
शिगसि वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्वेत्याहाष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्या एतावन्तो वै देवास्तेभ्य
एव यज्ञं प्राऽऽहौ-जोऽसि पितृभ्यस्त्वा पितॄञ्जिन्वेत्याह देवानेव पितॄननु सं तनोति तन्तुरसि प्रजा-
भ्यस्त्वा प्रजा जिन्वे-(३)-त्याह पितॄनेव प्रजा अनु सं तनोति पृतनाषाडसि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्वे-
त्याह प्रजा एव पशूननु सं तनोति रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्वेत्याहौषधीष्वेव पशून् प्रति ष्ठाप-
यत्य-भिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रं जिन्वेत्याहाभिजित्यै अधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणं (४) जिन्वे-
त्याह प्रजास्वेव प्राणान् दधाति त्रिवृदसि प्रवृदसीत्याह मिथुनत्वाय सꣳरोहोऽसि नीरोहोऽसीत्याह
प्रजात्यै वसुकोऽसि वेषश्रिरसि वस्यष्टिरसीत्याह प्रतिष्ठित्यै ॥ (इत्य,-व, जिन्व, प्राणं, त्रिꣳशच्च) ॥२॥

विष्णुक्रमाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्निना देवेन पृतना जयामि गायत्रेण छन्दसा त्रिवृता स्तोमेन रथन्तरेण साम्ना वषट्कारेण
वज्रेण पूर्वजान् भ्रातृव्यानधरान् पादयाम्यवैनान् बाधे प्रत्येनान्नुदेऽस्मिन् क्षयेऽस्मिन् भूमिलोके
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो विष्णोः क्रमेणात्येनान् क्रामामी-न्द्रेण देवेन पृतना जयामि
त्रैष्टुभेन छन्दसा पञ्चदशेन स्तोमेन बृहता साम्ना वषट्कारेण वज्रेण (१) सहजान्*- विश्वेभिर्देवेभिः
पृतना जयामि जागतेन छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वामदेव्येन साम्ना वषट्कारेण वज्रेणापरजा-*-
-निन्द्रेण सयुजो वयꣳ सासह्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति । यत् ते अग्ने तेजस्तेनाहं
तेजस्वी भूयासं यत् ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासं यत् ते अग्ने हरस्तेनाहꣳ हरस्वी भूयासम् ॥
(वज्रेण, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

(३।२-१) भ्रातृव्या... क्रामामि ।

तास्ते गच्छन्त्वाहुतिं घृतस्य देवायते यजमानाय शर्म ॥
आशासानः सुवीर्यꣳ रायस्पोषꣳ स्वश्वियम् ।
बृहस्पतिना राया स्वगाकृतो मह्यं यजमानाय (३) तिष्ठ ॥
(समानानां, पशून्, यजमानाय,-ष्ट च) ॥ ५ ॥

पत्नीविषयका योक्त्रबन्धादिमन्त्राः ॥ १, ४ त्रिष्टुप्, २-३ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

सं त्वा नह्यामि पयसा घृतेन सं त्वा नह्याम्यप ओषधीभिः ।
सं त्वा नह्यामि प्रजयाऽहमद्य सा दीक्षिता सनवो वाजमस्मे ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पत्नी वेदिं वर्णेन सीदतु । अथाहमनुकामिनी स्वे लोके विशा इह ॥
सुप्रजसस्त्वा वयꣳ सुपत्नीरुप सेदिम । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम् ॥
इमं वि ष्यामि वरुणस्य पाशं (१) यमबध्नीत सविता सुकेतः ।
धातुश्च योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं मे सह पत्या करोमि ॥

प्रेद्धुदेवृतस्य वामीरन्वग्निस्तेऽग्रं नयत्वदितिर्मध्यं ददताꣳ रुद्रावसृष्टाऽसि युवा नाम मा मां
हिꣳसी-र्वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्यो विश्वेभ्यो वो देवेभ्यः पन्नेजनीर्गृह्णामि यज्ञाय वः पन्नेजनीः
-*सादयामि*- विश्वस्य ते विश्वावतो वृष्णियावत-(२)-स्तवाग्ने वामीरनु सन्दृशि विश्वा रेताꣳसि
धिषीयो-गन् देवान् यज्ञो नि देवीर्देवेभ्यो यज्ञमशिषन्नस्मिन्त्सुन्वति यजमान आशिषः स्वाहाकृताः
समुद्रेष्ठा गन्धर्वमा तिष्ठतानु । वातस्य पत्मन्निड ईडिताः ॥ (पाशं, वृष्णियावत,-स्त्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

स्रुचां वृक्षावयवविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वषट्कारो वै गायत्रियै शिरोऽच्छिनत् तस्यै रसः पराऽपतत् स पृथिवीं प्राविशत् स खदिरोऽभवद्यस्य
खादिरः स्रुवो भवति छन्दसामेव रसेनाव द्यति सरसा अस्याऽऽहुतयो भवन्ति तृतीयस्यामितो दिवि
सोम आसीत् तं गायत्र्याऽहरत् तस्य पर्णमच्छिद्यत तत् पर्णोऽभवत् तत् पर्णस्य पर्णत्वं यस्य पर्णमयी
जुहू-(१)-र्भवति सौम्या अस्याऽऽहुतयो भवन्ति जुषन्तेऽस्य देवा आहुती-र्देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त तत् पर्ण
उपाशृणोत् सुश्रवा वै नाम यस्य पर्णमयी जुहूर्भवति न पापꣳ श्लोकꣳ शृणोति ब्रह्म वै पर्णो विण्मरु-
तोऽन्नं विण्मारुतोऽश्वत्थो यस्य पर्णमयी जुहूर्भवत्याश्वत्थ्युपभृद्ब्रह्मणैवान्नमव रुन्धेऽथो ब्रह्म-(२)-व विश्यध्यू-
हति राष्ट्रं वै पर्णो विडश्वत्थो यत् पर्णमयी जुहूर्भवत्याश्वत्थ्युपभृद्राष्ट्रमेव विश्यध्यूहति प्रजापतिर्वा
अजुहोत् सा यत्राऽऽहुतिः प्रत्यतिष्ठत् ततो विकङ्कत उदतिष्ठत् ततः प्रजा असृजत यस्य वैकङ्कती ध्रुवा
भवति प्रत्येवास्याऽऽहुतयस्तिष्ठन्त्यथो प्रैव जायत एतद्वै स्रुचाꣳ (३) रूपं यस्यैवꣳ रूपाः स्रुचो भवन्ति
सर्वाण्येवैनꣳ रूपाणि पशूनामुप तिष्ठन्ते नास्यापरूपमात्मञ्जायते ॥ (जुहू,-र्ब्रह्म, स्रुचाꣳ, सप्तदश च) ॥ ७ ॥

दधिग्रहमन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामि दक्षाय दक्षवृधे रातं देवेभ्योऽ-
ग्निजिह्वेभ्यस्त्वर्तायुभ्य इन्द्रज्येष्ठेभ्यो वरुणराजभ्यो वातापिभ्यः पर्जन्यात्मभ्यो दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय

(३।८) -* वसुभ्यो... नेजनीः ।- यज्ञाय... नेजनीः ।

त्वा पृथिव्यै त्वा ऽपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो जह्यप यो नोऽरातीयति तं जहि[2] प्राणाय त्वाऽपानाय त्वा व्यानाय त्वा सते त्वाऽसते त्वाऽद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो (१) विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यो यतः प्रजा अक्खिद्रा अजायन्त तस्मै त्वा प्रजापतये विभूदाव्ने ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं जुहोमि[3] ॥
(ओषधीभ्यः, अष्टादश च) ॥ ८ ॥

हविर्ग्रहविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यां वा अध्वर्युश्च यजमानश्च देवतामन्तरितस्तस्या आ वृश्च्येते प्राजापत्यं दधिग्रहं गृह्णीयात् प्रजापतिः सर्वा देवता देवताभ्य एव नि ह्नुवाते[1] ज्येष्ठो वा एष ग्रहाणां यस्यैष गृह्यते ज्यैष्ठ्यमेव गच्छति[2] सर्वासां वा एतद्देवतानाꣳ रूपं यदेष ग्रहो यस्यैष गृह्यते सर्वाण्येवैनꣳ रूपाणि पशूनामुप तिष्ठन्ते उपयामगृहीतो (१) ऽसि प्रजापतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामीत्याह ज्योतिरेवैनꣳ समानानां करोत्य-ग्निजिह्वेभ्यस्त्वर्तायुभ्य इत्याहैतावतीर्वै देवतास्ताभ्य एवैनꣳ सर्वाभ्यो गृह्णात्य-पेन्द्र द्विषतो मन इत्याह भ्रातृव्यापनुत्त्यै[3] प्राणाय त्वाऽपानाय त्वेत्याह प्राणानेव यजमाने दधाति[4] तस्मै त्वा प्रजापतये विभूदाव्ने ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं जुहोमी- (२) -त्याह प्रजापतिः सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यो जुहोत्या-ज्यग्रहं गृह्णीयात् तेजस्कामस्य तेजो वा आज्यं तेजस्व्येव भवति सोमग्रहं गृह्णीयाद्ब्रह्मवर्चसकामस्य ब्रह्मवर्चसं वै सोमो ब्रह्मवर्चस्येव भवति दधिग्रहं गृह्णीयात् पशुकामस्योर्ग्वै दध्यूर्क् पशव ऊर्जैवास्मा ऊर्जं पशूनव रुन्धे ॥ (उपयामगृहीतो, जुहोमि, त्रिचत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

अंशुग्रहाः प्राणग्रहाश्च ॥ १ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समतः ऊ षु मधु मधुनाऽभि योधि ।
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजापतये त्वा ॥

प्राणग्रहान् गृह्णात्येतावद्वा अस्ति यावदेते ग्रहाः स्तोमाश्छन्दाꣳसि पृष्ठानि दिशो यावदेवास्ति त- (१) -दव रुन्धे[1] ज्येष्ठा वा एतान् ब्राह्मणाः पुरा विदामक्रन् तस्मात् तेषाꣳ सर्वा दिशोऽभिजिता अभूवन् यस्यैते गृह्यन्ते ज्यैष्ठ्यमेव गच्छत्यभि दिशो जयति[2] पञ्च गृह्यन्ते पञ्च दिशः सर्वास्वेव दिक्ष्वृध्नुवन्ति[3] नवनव गृह्यन्ते नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधति[4] प्रायणीये चोदयनीये च गृह्यन्ते प्राणा वै प्राणग्रहाः (२) प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणैरुद्यन्ति दशमेऽहन् गृह्यन्ते प्राणा वै प्राणग्रहाः प्राणेभ्यः खलु वा एतत् प्रजा यन्ति[5] यद्वामदेव्यं योनेश्च्यवते दशमेऽहन् वामदेव्यं योनेश्च्यवते यद्दशमेऽहन् गृह्यन्ते प्राणेभ्य एव तत् प्रजा न यन्ति ॥ (तद्, प्राणग्रहाः, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ १० ॥

याज्यादीष्टकोपधानमिष्टकायाः ॥ गायत्री, २-४ अनुष्टुभः, ६-८, २१ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते । रथो न योरभीवृतो घृणीवान् चेतति त्मना[2] ॥
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः । सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः[3] ॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि । जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोढवे[4] (१) ॥
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तꣳ सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु[5] ॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः[6] ॥
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाꣳ असदत् सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः[7] ॥
त्वं दूतस्त्व- (२) -मु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन् दीद्यद्बोधि गोपाः[8] ॥
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदाऽवन् भागमीमहे[9] ॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः[10] ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः[11] ॥
तमु (३) त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम्[12] ॥
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणेरणे[13] ॥
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाऽजनि । धनञ्जयो रणेरणे[14] ॥
आ यꣳ हस्ते न खादिनꣳ शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निꣳ स्वध्वरम्[15] ॥
प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥
आ (४) जातं जातवेदसि प्रियꣳ शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम्[16] ॥
अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः[17] ॥
त्वꣳ ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे[18] ॥
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र (५) पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः[21] ॥
(योनिम्, त्वं, तम्, आ, यत्र, चत्वारि च) ॥ ११ ॥

[पूर्व-२२५ ।-येयो २३० । ऽग्निना ९६ । ये १९३ । सूर्यः १५१ । सं १३० । यद्वार १६७ । उपयामगृहीतो १४१ । यां १४३ । त्वे १३० । प्रे-२५४ । कांदश ॥ १७९०]
[॥ इति तृतीयकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]
[पुरावति- २१४८ ।-यो वा २३३५ । अग्ने १८५७ । वि वै २३९२ । पूर्णा १७९० । (पञ्च ॥ ५ ॥ १०६१२)]
॥ इति तृतीयं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थं काण्डम् ।

अग्निचित्याङ्गमन्त्रपाठाभिधानम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥] अग्निचितिः ।

खनित्रादानम् ॥ ३, ९ गायत्री; १-२, १३ अनुष्टुभः; ५ त्रिष्टुप्; ४, ६ जगती ।

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत्[1] ॥
युक्त्वाय मनसा देवान्त्सुवर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान्[2] ॥
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्यै[3] ॥
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इ- (१) -न्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः[4] ॥
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोका यन्ति पथ्येव सूराः ।
शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः[5] ॥
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमर्चतः ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना ॥
देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव (२) यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः ।
केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचमद्य स्वदाति नः[7] ॥
इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्र सुव देवायुवꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ सुवर्जितम् ॥
ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरम् । बृहद्गायत्रवर्तनि ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां गायत्रेण छन्दसाऽऽददेऽङ्गिरस्व-दभ्रिरसि नारि- (३) -रसि पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा भर त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसाऽऽददेऽङ्गिरस्व-दभ्रिरसि नारिरसि त्वया वयꣳ सधस्थ आऽग्निꣳ शकेम खनितुं पुरीष्यं जागतेन त्वा छन्दसाऽऽददेऽङ्गिरस्व-
-द्धस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिꣳ हिरण्ययीम् ।
तया ज्योतिरजस्रमिदग्निं खात्वी न आ भराऽऽनुष्टुभेन त्वा छन्दसा (४) ऽऽददेऽङ्गिरस्वत् ॥
(इत, सुव, नारि,-रङ्गिरस्वत्, त्रीणि च) ॥ १ ॥

मृदाक्रमणम् ॥ त्रिष्टुभः ३, ४, १९ गायत्रो; ११-१२, २० अनुष्टुभः; २ उपरिष्टाद्बृहती; १३ पुरस्ताद्बृहती; ५ प्रस्तारपङ्क्तिः; १, १०, १४-१५, १७-१८, २१ मध्येज्योतिः । अग्निऋषिः ।

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या ।
तया देवाः सुतमा बभूवुरृतस्य सामन्त्सरमारपन्ती[1] ॥
प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यामधि योनिः[2] ॥
युञ्जाथाꣳ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये[4] ॥
प्रतूर्व- (१) -न्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यान्मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षमन्विहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् ॥
पूष्णा सयुजा सह । पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेह्य-ग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद-च्छेमो[8]-ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामो ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य (२) पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आ ततान ॥
आगत्य वाज्यध्वनः सर्वा मृधो वि धूनुते । अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा नि चिकीषते[11] ॥
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनाम तं वयम् ॥
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्माऽन्तरिक्षꣳ समुद्रस्ते योनिः ।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ (३) पृतन्यतः ॥
उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनिष्यन्त उपस्थे अस्याः ॥
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाऽकः स लोकꣳ सुकृतं पृथिव्याः ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ सुवो रुहाणा अधि नाक उत्तमे[17] ॥
अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासाꣳ स्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥
जिघर्म्य- (४) -ग्निं मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नꣳ रभसं विदानम् ॥
आ त्वा जिघर्मि वचसा घृतेनारक्षसा मनसा तज्जुषस्व ।

मर्येश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तनुवा जर्हृषाणः ॥
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥
परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रꣳ सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे भेत्तारं (५) भङ्गुरावतः ॥
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ (मर्त्यं,-स्सूर्यस्य, तिष्ठ, जिघर्मि, भेत्तारं, विꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

मृत्खननम् ॥ २ स्वराडभिसारिणी; ३, १०-११, १३ त्रिष्टुप्; ४-५ अनुष्टुप्, ६ प्रतिष्ठा; ७-९ गायत्री, १२ बृहती । अग्निर्देवः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां
पृथिव्याः सधस्थेऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि ॥
ज्योतिष्मन्तं त्वाऽग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यानम् ।
शिवं प्रजाभ्योऽहिꣳसन्तं पृथिव्याः सधस्थेऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि ॥
अपां पृष्ठमसि सप्रथा उर्वग्निं भरिष्यदपरावपिष्ठम् ।
वर्धमानं मह आ च पुष्करं दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्व ॥
शर्म च स्थो (१) वर्म च स्थो अच्छिद्रे बहुले उभे ।
व्यचस्वती सं वसाथां भर्तमग्निं पुरीष्यम् ॥
सं वसाथाꣳ सुवर्विदा समीची उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥
पुरीष्योऽसि विश्वभराः । अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे (२) अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ।
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयꣳ रणेरणे ॥
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाꣳ असदत् सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥
सꣳ सीदस्व महाꣳ असि शोचस्व (३) देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥
जनिष्वा हि जेन्यो अग्रे अह्नाꣳ हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ (स्थ, ईधे, शोचस्व, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

मृदाहरणम् ॥ १,५,११ त्रिष्टुप्; २,६,८-९,१२ अनुष्टुप्; ३,७ बृहती; ४ उपरिष्टाद्बृहती; १० उष्णिक् । अग्निर्देवः ।

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानायै हृदयं यद्विलिष्टम् ।
देवानां यश्चरति प्राणथेन तस्मै च देवि वषडस्तु तुभ्यम् ॥
सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदः सुवः ।
वासो अग्ने विश्वरूपꣳ सं व्ययस्व विभावसो ॥
उदु तिष्ठ स्वध्वराऽवा नो देव्या कृपा ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराऽग्ने याहि सुशस्तिभिः (१) ॥
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमाꣳस्यक्तः प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ॥
शिवो भव (२) प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शूशुचो माऽन्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ।
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥
रासभो वां कनिक्रदत् सुयुक्तो वृषणा रथे । स वामग्निं पुरीष्यमाशुर्दूतो वहादितः ॥
वृषाऽग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्न आ याहि (३) वीतय ऋतꣳ सत्यम् ॥
ओषधयः प्रति गृह्णीताग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मान् ।
व्यस्यन् विश्वा अमतीररातीर्निषीदन् नो अप दुर्मतिꣳ हनत् ॥
ओषधयः प्रति मोदध्वमेनं पुष्पावतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमाऽसदत् ॥ (सुशस्तिभि,-र्भव, याहि, षट्त्रिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

उखानिर्माणम् ॥ १ त्रिष्टुप्, ५, ७-१०, १९ अनुष्टुप्; २-४ गायत्री; ६ महाबृहती । अग्निर्देवः ।

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥
मित्रः (१) सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह । सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ॥
अयक्ष्माय त्वा सꣳ सृजामि प्रजाभ्यः ।
विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः सꣳ सृजन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥
रुद्राः सम्भृत्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥
सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली करोतु (२) ताम् ॥
सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥
उखां करोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साऽग्निं बिभर्तु गर्भ आ ॥
मखस्य शिरोऽसि यज्ञस्य पदे स्थः । वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वत् पृथिव्यसि रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदन्तरिक्षमस्या (३) दित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् द्यौरसि विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् दिशोऽसि ध्रुवाऽसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान् यजमानायादित्यै रास्नाऽस्यदितिस्ते बिलं गृह्णातु पाङ्क्तेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । तां पुत्रेभ्यः सं प्रा-(४)-यच्छददितिः श्रपयानिति ॥
(मित्रः, करोतु,-स्य, प्र, चत्वारि च) ॥ ५ ॥

उखासंस्कारः ॥ १४ शङ्कुमत्युष्णिक्; १८ अनुष्टुप्; १५-१७ गायत्री । अग्निर्देवः ।

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वद् विष्णुस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वद् वरुणस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वददितिस्त्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नी-(१)-र्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वद् दधतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वत् पचन्तूखे वरूत्रयो-(२)-जनयस्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थेऽङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तूखे ॥
मित्रैतामुखां पचैषा मा भेदि । एतां ते परि ददाम्यभित्यै ॥
अभीमां (२) महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । उत श्रवसा पृथिवीम् ॥
मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसिम् । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः । सुबाहुरुत शक्त्या ॥

(६-१२) त्वा देवी... पचन्तूखे ।

अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आ पृण । उत्तिष्ठ बृहती भवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ॥
वसवस्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु (३) त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाऽऽच्छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आ च्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत् ॥ (पत्नी,-रिमाꣳ रुद्रास्त्वाऽऽच्छृन्दन्त्वेकान्नविꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

अग्निचयनाङ्गपशुसामिधेन्यः ॥ १-५, १-९ त्रिष्टुप्; ६ विराड्रूपा; १० अनुष्टुप् । अग्निर्देवः ।

समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशः पृथिव्याः ॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने (१) सं वरणे भवा नः ।
सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥
क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳ रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥
अति (२) निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्यꣳ सहवीराꣳ रयिं दाः ॥
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा आशाः प्रमुञ्चन् मानुषीर्भियः शिवाभिरद्य परि पाहि नो वृधे ॥
बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्सन्तराꣳ सꣳ शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय (३) विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥
उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ (अग्ने,ऽति, सौभगाय, चतुस्त्रिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

आग्नेयो वाग्वापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-६ पिपीलिकमध्यानुष्टुप्; ७,१०-१२ पिपीलिकमध्योष्णिक्; ८ पुरउष्णिक्; ९ शङ्कुमती गायत्री; १३-२० त्रिष्टुप् । अग्निर्देवः ।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथ आनक्ति मध्वा घृतेन ॥
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥
अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स (१) ई मन्द्रासु प्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥
दैव्या होताराऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती (२) भारती । मही गृणाना ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीरम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥
वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्या- (३) -मुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहा- (४) -ऽऽहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितौ व्येति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढे येन सुवः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
आपो ह यन्महतीर्विश्व- (५) -मायन् दक्षं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां निरवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (म, सरस्वती, द्याꣳ, सह, विश्वं, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥८॥

अग्न्युत्पादनम् ॥ ७-८, १५-१६ अनुष्टुप्; ११-१३ गायत्री; ९, १४ त्रिष्टुप्; १० पिपीलिकमध्योष्णिक् । अग्निर्देवता ।

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा
विश्वे देवस्य नेतुर्मर्तो वृणीत सख्यं विश्वे राय इषुध्यसि द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥
मा सु भित्था मा सु रिषो दृꣳहस्व वीडयस्व सु । अम्ब धृष्णु वीरयस्वा (१) ग्निश्चेदं करिष्यथः ॥
दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृताऽसि ।
जुष्टं देवानामिदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥
मित्रैतामुखां तपैषा मा भेदि । एतां ते परि ददाम्यभित्त्यै ॥
द्रुन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥
परस्या अधि संवतोऽवराꣳ अभ्या (२) तर । यत्राहमस्मि ताꣳ अव ॥
परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहाऽऽगहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥
सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनामर्चिषा मा तपसाऽभि शूशुचोऽन्तरस्याꣳ शुक्रज्योतिर्वि भाहि ॥
अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायै सदने स्वे । तस्यास्त्वꣳ हरसा तपन् (३) जातवेदः शिवो भव ॥
शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहाऽसदः ॥
(वीरयस्वा,-ऽऽ, तपन्, विꣳशतिश्च) ॥९॥

अग्निधारणम् ॥ १-३, ५-१० अनुष्टुप्; ३-४, ११, १३ त्रिष्टुप्, १२ जगती । अग्निर्देवता ।

यदग्ने यानि कानि चाऽऽ ते दारूणि दध्मसि । तदस्तु तुभ्यमिद्घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥
रात्रिꣳरात्रिमप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥
नाभा (१) पृथिव्याः समिधानमग्निꣳ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरंमदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥
याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताꣳस्ते अग्नेऽपि दधाम्यास्ये ॥
दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराꣳ उत ।
हनूभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्ताꣳस्त्वं खाद सुखादितान् ॥
ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासस्तस्करा वने । ये (२) कक्षेष्वघायवस्ताꣳस्ते दधामि जम्भयोः ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः । निन्दाद्यो अस्मान् दिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥
सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् । सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्च उदू बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि (३) स्वाꣳ अहम् ॥
दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥
विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावा क्षामा रुक्मो (४) अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः स्तोम आत्मा साम ते तनूर्वामदेव्यं बृहद्रथन्तरे पक्षौ यज्ञायज्ञियं पुच्छं छन्दाꣳस्यङ्गानि धिष्णियाः शफा यजूꣳषि नाम ॥
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ सुवः पत ॥ (नाम, वे, नयामि, रुक्मो, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥१०॥

यातुमन्यनकर्मसंबन्धिविहित याज्यापुरोऽनुवाक्याः ॥ १-७, ९, ११, १७, १९-२० गायत्री; १०, १२, १४, १८ त्रिष्टुप्; ८, १३ जगती । विश्वेदेवा देवताः ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥
अग्निर्मूर्धा*- भुवः*- ॥
त्वं नः सोम*- या ते धामानि*- ॥
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता (१) ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रꣳ शरणꣳ सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यꣳसत् ॥
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजꣳ सनोतु नः ॥
शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्य- (२) -द्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥

(११।३-४) मै. सं. ४,२,४,१,३ । (११।५-६) तै. सं. २,३,१४,५-६ ।

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वनाऽऽ नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धाऽऽवद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहाꣳसि सहसा सहन्ते (३) रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥
विश्वे देवाः*- विश्वे देवाः*- ॥
द्यावा नः पृथिवी इमꣳ सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वꣳ सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥
अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥
स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः (४) । अग्निर्धिया समृण्वति ॥
शं नो भवन्तु*- वाजेवाजे*- ॥ (पुरुत्वना, ऽन्यत्, सहन्ते, चनोहितो, ऽष्टौ च) ॥११॥

[युञ्जान २०३। इमां २७०। देवस्य १०७। सं १८६। वि २०४। वसवः १६९। समा १८४। ऊर्ध्वा २८४। आहुति १००। य-२३८-दम् २०८। एकादश ॥ २२९३ ॥]

[॥ इति चतुर्थकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

देवयजनग्रहाभिधानम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥] अग्निर्देवता ।

आवाहनाद्यग्निस्थापनम् ॥ ८-९ गायत्री; ११, १४-१५ अनुष्टुप्; ५, १०, १२-१३ त्रिष्टुप्; ६ ककुब्विराट्; ७ महाबृहती; १६ जगती ।

विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा गायत्रं छन्द आ रोह पृथिवीमनु वि क्रमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोऽस्यभिशस्तिहा त्रैष्टुभं छन्द आ रोहान्तरिक्षमनु वि क्रमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आ रोह दिवमनु वि क्रमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मो विष्णोः (१) क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द आ रोह दिशोऽनु वि क्रमस्व निर्भक्तः स यं द्विष्मः ॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि न आ वर्तस्वाऽऽयुषा वर्चसा सन्या मेधया प्रजया धनेन ॥
अग्ने (२) अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः ।
तासां पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमा कृधि पुनर्नो रयिमा कृधि ॥

(११।१५-१६) तै. सं. २,२,१४,१५-१७ । (११।२०-२२) तै. सं. १,७,८,१२,९ ।

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा । पुनर्नः पाहि विश्वतः ॥
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्निया विश्वतस्परि ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं (३) वि मध्यमꣳ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥
आ त्वाऽहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मिन् राष्ट्रमधि श्रय ॥
अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषाऽऽगात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥
सीद त्वं मातुरस्या (४) उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनामर्चिषा मा तपसाऽभि शूशुचोऽन्तरस्याꣳ शुक्रज्योतिर्वि भाहि ॥
अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायै सदने स्वे । तस्यास्त्वꣳ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥
शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहाऽऽसदः ॥
हꣳसः शुचिष-(५)-द्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥
(विष्णो,-रसे,ऽधम,-मस्याः, शुचिषत्, षोडश च) ॥ १ ॥

आसन्द्यां स्थापितस्याग्नेरुपस्थानम् ॥ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते सद्म विभृतं पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा (१) रजसि तस्थिवाꣳसमृतस्य योनौ महिषा अहिन्वन् ॥
अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥
उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षत् ॥
विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ (२) रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसोः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरां वस्यो अच्छाभि द्युम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥
आ (३) तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसूनि दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥
दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदे-(४)-नं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥
(त्वा, गर्भ आ, यविष्ठ आ, यत्, चत्वारि च) ॥ २ ॥

चयनार्थस्य देवयजनस्य परिग्रहः ॥ त्रिष्टुप्; १ उपरिष्टाद्बृहती; २-३,८-१० अनुष्टुप्; ४,७,११-१२,१५ गायत्री । अग्निर्ऋषिः ।

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवतमः सुप्रतीको विभावसुः ॥
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिस्त्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तनुवा प्रजाः ॥
समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आ (१) ऽस्मिन् हव्या जुहोतन ॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥
आपो देवीः प्रति गृह्णीत भस्मैतत् स्योने कृणुध्वꣳ सुरभावु लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृता स्वेनम् ॥
अप्स्वग्ने सधिष्टव (२) सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । सꣳसृज्य मातृभिस्त्वं ज्योतिष्मान् पुनराऽसदः ॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याꣳ शिवतमः ॥
पुनरूर्जा (२) नि वर्तस्व पुनरग्न इषाऽऽयुषा । पुनर्नः पाहि विश्वतः ॥

सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्निया विश्वतस्परि ॥
पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥
बोधा नो अस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु (४) त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तनुवं वन्दे अग्ने ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुदावा वसुपतिः । युयोध्यस्मद् द्वेषाꣳसि ॥
(आ, तवो,-र्जा,-नु, षोडश च) ॥ ३ ॥

गार्हपत्यचयनम् ॥ १, ५-७,९ त्रिष्टुप्; ४,८,१०,१३-१४ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदादिदं यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥
अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ॥
सं या वः प्रियास्तनुवः सं प्रिया हृदयानि वः ।
आत्मा वो अस्तु (१) संप्रियः संप्रियास्तनुवो मम ॥
अयꣳ सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाꣳ ऊचिषे धिष्णिया ये ।
याः परस्ताद्रोचने सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥
अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्व-(२)-प्सु वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः । जुषन्ताꣳ हव्यमाहुतमनमीवा इषो महीः ॥
इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जान-(३)-न्नग्न आ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥
चिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद परिचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद शिवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥
(भस्मवो,-षधीषु, जान,-न्नष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

आहवनीयचयनार्थं भुवःकर्षणम् ॥ त्रिष्टुप्; १ महाबृहती; २ द्विपदा त्रिष्टुप्; ३,६,१९ अनुष्टुप्; ४, १७ पङ्क्तिः; ९ महासतोबृहती; १३ बृहती; १४-१५ गायत्री । अग्निर्ऋषिः ।

समितꣳ सं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
इषमूर्जमभि संवसानौ सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याऽकरम् ॥
अग्ने पुरीष्याधिपा भवा त्वं नः । इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥
पुरीष्यस्त्वमग्ने रयिमान् पुष्टिमाꣳ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वां योनिमिहाऽसदः ॥
भवतं नः समनसौ समोकसा-(१)-वरेपसौ ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥
मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥
यदस्य पारे रजसः शुक्रं ज्योतिरजायत । तं नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर स्वाहा ॥
नमः सु ते निर्ऋते विश्वरूपे (२) ऽयस्मयं वि चृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥
यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविचर्त्यम् ।
इदं ते तद्वि ष्याम्यायुषो न मध्यादथा जीवः पितुमद्धि प्रमुक्तः ॥
यस्यास्ते अस्याः क्रूर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय ।
भूमिरिति त्वा जना विदुर्निर्ऋति-(३)-रिति त्वाऽहं परि वेद विश्वतः ॥
असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्करस्यान्वेषि ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥
देवीमहं निर्ऋतिं वन्दमानः पितेव पुत्रं दसये वचोभिः ।
विश्वस्य या जायमानस्य वेद शिरःशिरः प्रति सूरी वि चष्टे ॥
निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभि चष्टे (४) शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥
सं वरत्रा दधातन निराहावान् कृणोतन ।
सिञ्चामहा अवटमुद्रिणं वयं विश्वाऽहाऽदस्तमक्षितम् ॥
निष्कृताहावमवटꣳ सुवरत्रꣳ सुषेचनम् । उद्रिणꣳ सिञ्चे अक्षितम् ॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह (५) बीजम् ।

गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा ऽयवन् ॥
लाङ्गलं पवीरवꣳ सुशेवꣳ सुमतित्सरु ।
उदित् कृषति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीम् । प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥
शुनं नः फाला वि तुदन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहान् ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥
कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय (६) वरुणाय च ।
इन्द्रायाग्नये पूष्ण ओषधीभ्यः प्रजाभ्यः ॥
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानाऽस्मान्त्सीते पयसाऽभ्याववृत्स्व ॥
(सभाकमी, विश्वके,–त्रिवृन्निर्ऋति,–रुभि षड्, इड, मित्राय, द्वाविंशतिश्च) ॥ ५ ॥

कृष्यर्थं भूमि ओषधिविधानः ॥ अनुष्टुप्; ९ बृहती । अग्निर्देवता ।

या जाता ओषधयो देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मन्दामि बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अथा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥
पुष्पावतीः प्रसूवतीः फलिनीरफला उत । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । रपाꣳसि विघ्नतीरित रप-(१)-श्चातयमानाः ॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिः कृता । गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥
यदहं वाजयन्निमा ओषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥
यदोषधयः सङ्गच्छन्ते राजानः समिताविव । विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः ॥
निष्कृतिर्नाम वो माताऽथा यूयꣳ स्थ सङ्कृतीः ।
सराः पतत्रिणीः (२) स्थन यदामयति निष्कृत ॥
अन्या वो अन्यामवत्वन्याऽन्यस्या उपावत ।
ताः सर्वा ओषधयः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधयः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तनुवाꣳ रपः ॥
या-(३)-स्त आतस्थुरात्मानं या आविविशुः परुःपरुः ।
तास्ते यक्ष्मं वि बाधन्तामुग्रो मध्यमशीरिव ॥
साकं यक्ष्म प्र पत श्येनेन किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥

अश्वावतीꣳ सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आ वित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥
याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥
या (४) ओषधयः सोमराज्ञीः प्रविष्टाः पृथिवीमनु ।
तासां त्वमस्युत्तमा प्र णो जीवातवे सुव ॥
अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयः परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ।
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः । इह सङ्गत्य ताः सर्वा अस्मै सं दत्त भेषजम् ॥
मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः (५) ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥
ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै करोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥
(रपः, पतत्रिणी,–र्या, या, वो, ऽष्टादश च) ॥ ६ ॥

लोष्टक्षेपादिकम् ॥ १,४,१३ त्रिष्टुप्; २ उष्णिक्; ३,१२ गायत्री; ५,८ विष्टारपङ्क्तिः; ६–७,१० सतोबृहती; ९ उपरिष्टाज्ज्योतिः । अग्निर्देवता ।

मा नो हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां ते अग्निरिषितोऽव सर्पतु ॥
अग्ने यत् ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत् पूतं यद्यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥
इषमूर्जमहमित आ (१) दद ऋतस्य धाम्नो अमृतस्य योनेः ।
आ नो गोषु विशत्वौषधीषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्त्यर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिꣳ रयिम् ।
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व (२) धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिरेतसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रः पितरा विचरन्नुपावस्युभे पृणक्षि रोदसी ॥
ऋतावानं महिषं विश्वचर्षणिमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।

श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ।
निष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसे महे ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुं पृणक्षि सानसिꣳ (३) रयिम् ॥
चितः स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वं तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवाः सीदत ॥
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्णियम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥
सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥
(आ, मन्दस्व, मानुषि,–मेकचत्वारिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

अभ्यवस्कन्दनादिमन्त्राः ॥ १–६ त्रिष्टुप्; ७–९ अनुष्टुप् । अग्निर्देवता ।

अभ्यस्थाद्विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।
बृहस्पतिः सविता तन्म आह पूषा माऽधात् सुकृतस्य लोके ॥
यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुतं जनिम तत् ते अर्वन् ॥
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानं महः (१) आ च पुष्करं दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्व ॥
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु (२) द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
तृतीयं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
येऽदो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदः कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
या इषवो यातुधानानां (३) ये वा वनस्पतीꣳरनु । ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
(महो, अनु, यातुधानानां,– मेकादश च) ॥ ८ ॥

स्वयमातृण्णाद्युपधानम् ॥ १ बृहती; २–४,१४ अनुष्टुप्; ७–११,१६–१७ गायत्री; १३ महापङ्क्तिः, १८,२१–२२ त्रिष्टुप् । अग्निर्देवता ।

ध्रुवाऽसि धरुणाऽस्तृता विश्वकर्मणा सुकृता ।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो व्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥

प्रजापतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथोऽसि पृथिव्यसि भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै (१) चरित्रायाग्निस्त्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥
काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि । एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च ॥
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥
अषाढाऽसि सहमाना सहस्वारातीः सहस्वारातीयतः सहस्व पृतनाः सहस्व पृतन्यतः ।
सहस्रवीर्या (२) सि सा मा जिन्व ॥
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥
मधु नक्तमुतोषसि मधुमत् पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाꣳ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥
तद्विष्णोः परमं (३) पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥
ध्रुवाऽसि पृथिवि सहस्व पृतन्यतः । स्यूता देवेभिरमृतेनाऽऽगाः ॥
यास्ते अग्ने सूर्ये रुच उद्यतो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥
विराड् (४) ज्योतिरधारयत् सम्राड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत् ॥
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥
युक्ष्वा हि देवहूतमाꣳ अश्वाꣳ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
तृतीयं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त (५) होत्राः ॥
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ।
अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ॥
ऋचे त्वा रुचे त्वा समित् स्रवन्ति सरितो न धेनाः ।
अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ॥
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि । हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥

तस्मिन्त्सुपर्णो मधुकृत् कुलायी भजन्नास्ते मधु देवताभ्यः ।
तस्याऽऽसते हरयः सप्त तीरे (६) स्वधां दुहाना अमृतस्य धाराम् ॥
(प्रतिष्ठायै, सहस्रवीर्यं परमं, विराट्, सप्त, तीरे, चत्वारि च) ॥ ९ ॥

पशुशीर्षोपधानम् ॥ त्रिष्टुप्, ६,८,१० जगती ॥ अग्निर्ऋषिः ।

आदित्यं गर्भं पयसा समञ्जन्त्सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परि वृङ्धि हरसा माऽभि मृक्षः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥
इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशूनाꣳ सहस्राक्ष मेध आ चीयमानः ।
मयुमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुवो नि षीद ॥
वातस्य ध्राजिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः (१) परमे व्योमन् ॥
इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशूनां कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुवो नि षीद ॥
अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तौ नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥
इमꣳ समुद्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानं भुवनस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा (२) हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुवो नि षीद ॥
वरूत्रिं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥
इमामूर्णायुं वरुणस्य मायां त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु (३) ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुवो नि षीद ॥
यो अग्निरग्नेस्तपसोऽधि जातः शोचात् पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा व्यानट् तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥
अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वा अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तया रोहमायन्नुप मेध्यासस्तया देवा देवतामग्र आयन् ।
तया शरभ-(४)-मारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुवो नि षीद ॥
(हिꣳसीः,-मां, ऽनु, शरभं, नव च) ॥ १० ॥
२१ (तै. सं.)

याज्यानुवाक्याः ॥ गायत्री; २,६,१० त्रिष्टुप् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥
श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतना हवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनाऽत्यन्या ॥
मरुतो यस्य हि (१) क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥
अव ते हेडः- उदुत्तमम् - ।
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता (२) ॥
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥
अग्ने नय-ऽऽदेवानाꣳ- शं नो भवन्तु-वाजेवाजे- ।
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥
वृषा सोम द्युमाꣳ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ।
इमं मे (३) वरुण-तत्त्वा यामि-त्वं नो अग्ने-स त्वं नो अग्ने ॥
(हि, वृता, म, एकादश च) ॥ ११ ॥
[विष्णो- २६६ । दिवो २०४ । ऽग्नेपुते २१६ । ऽपु १९८ । सं १२२ । वा २६८ । मा १८९ । ऽभि १९१ । भुवा १०४ । ऽऽदित्य-२०९ । मिन्द्राग्नी १६१ । एकादश ॥ २४९८ ॥]
[॥ इति चतुर्थकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥]

चितिवर्णनम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥]
प्रथमचितौ अपस्याभिधानेष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
अपां त्वेमन्त्सादयाम्य-पां त्वोद्मन्त्सादयाम्य-पां त्वा भस्मन्त्सादयाम्य-पां त्वा ज्योतिषि
सादयाम्य-पां त्वाऽयने सादयाम्य-र्णवे सदने सीद समुद्रे सदने सीद सलिले सदने

(१।१७-८) तै. सं. १।५।११।९-१०, (१।११-१२) तै. सं. १।१।१४।९-१०, (१।१३-१४) तै. सं. १।७।८।१२,१
(१।१७-१८) तै. सं. २।१।११।२१-२२, (१।१९-२०) तै. सं. २।५।१२।२२-२३ ।

सीदा-पां क्षये सीदा-पाꣳ सधिषि सीदा-पां त्वा सदने सादयाम्य-पां त्वा सधस्थे सादयाम्य-पां त्वा पुरीषे सादयाम्य-पां त्वा योनौ (१) सादयाम्य-पां त्वा पाथसि सादयामि गायत्री छन्द-स्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दो-ऽनुष्टुप् छन्दः पङ्क्तिश्छन्दः ॥ (योनौ, पञ्चदश च) ॥१॥

प्रथमचितौ प्राणभृदिष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्रियै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरꣳ रथन्तराद्वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यो ऽयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुग्ग्रैष्मी त्रिष्टुभ ऐडमैडादन्तर्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदशः पञ्चदशाद्बृहद् बृहतो भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो (१) गृह्णामि प्रजाभ्यो ऽयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाणि चाक्षुषाणि जगती वार्षी जगत्या ऋक्षममृक्षमाच्छुक्रः शुक्रात् सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं वैरूपाद्विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्य इदमुत्तरात् सुवस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप्छारद्यनुष्टुभः स्वारꣳ स्वारान्मन्थी मन्थिन एकविꣳश एकविꣳशाद्वैराजं वैराजाज्जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया (२) त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्य इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्माती हेमन्तो वाच्यायनः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते शाक्वररैवताभ्यां विश्वकर्मर्षिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥
(मनः, प्रजापतिगृहीतया, त्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

प्रथमचितौ अपानभृदिष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
प्राची दिशां वसन्त ऋतूनामग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणं त्रिवृत् स्तोमः स उ पञ्चदशवर्तनिस्त्र्यविर्वयः कृतमयानां पुरोवातो वातः सानग ऋषि-र्दक्षिणा दिशां ग्रीष्म ऋतूनामिन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविणं पञ्चदशः स्तोमः स उ सप्तदशवर्तनिर्दित्यवाड्वयस्त्रेताऽयानां दक्षिणाद्वातो वातः सनातन ऋषिः-प्रतीची दिशां वर्षा ऋतूनां विश्वे देवा देवता विट् (१) द्रविणꣳ सप्तदशः स्तोमः स उ एकविꣳशवर्तनिस्त्रिवत्सो वयो द्वापरोऽयानां पश्चाद्वातो वातोऽहभून ऋषि-रुदीची दिशाꣳ शरदृतूनां मित्रावरुणौ देवता पुष्टं द्रविणमेकविꣳशः स्तोमः स उ त्रिणववर्तनिस्तुर्यवाड् वय आस्कन्दोऽयानामुत्तराद्वातो वातः प्रत्न ऋषि-रूर्ध्वा दिशाꣳ हेमन्तशिशिरावृतूनां बृहस्पतिर्देवता वर्चो द्रविणं त्रिणवः स्तोमः स उ त्रयस्त्रिꣳशवर्तनिः पष्ठवाद्वयो (२) ऽभिभूरयानां विष्वग्वातो वातः सुपर्ण ऋषिः पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नः पान्तु ते नोऽवन्त्वस्मिन् ब्रह्मन्नस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मन्नस्यां देवहूत्याम् ॥ (विट्, वयो, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

(३।१-४) पितरः... देवहूत्याम् ।

द्वितीयचितावाश्विन्यादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवाऽसि ध्रुवां योनिमा सीद साध्या ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
स्वे दक्षे दक्षपितेह सीद देवत्रा पृथिवी बृहती रराणा ।
स्वासस्था तनुवा सं विशस्व पितेवैधि सूनव आ सुशेवाऽश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
कुलायिनी वसुमती वयोधा रयिं नो वर्ध बहुलꣳ सुवीरम् (१) ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती सुवर्धेहि यजमानाय पोषमश्विना-
ऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
अग्नेः पुरीषमसि देवयानी तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणाऽऽयजस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
दिवो मूर्धाऽसि पृथिव्या नाभिर्विष्टम्भनी दिशामधिपत्नी भुवनानाम् (२) ॥
ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः-सजू रुद्रैः-सजूरादित्यैः-सजूर्विश्वैर्देवैः-सजूर्देवैः
सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या (३) वि भाहि श्रोत्रं मे श्लोकया-प-
स्पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपात् पाहि चतुष्पादव दिवो वृष्टिमेरय ॥ (सुवीरं, भुवनाना,-मुर्व्या सप्तदश च) ॥४॥

द्वितीयचितौ वयस्याख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्द-स्त्रिवत्सो वय उष्णिहा छन्द- स्तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द उक्षा वयः सतोबृहती छन्द ऋषभो वयः ककुच्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दो ऽनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो बस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वय-(१)-स्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः ॥
(वयः, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

तृतीयचितौ स्वयमातृण्णाद्युपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।
इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च वि बाधताम् ॥
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं भास्वतीꣳ सूरिमतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायो-

(४।६-९) -सजूर्देवैर्वयो...त्वा । (४।७-१०) -सजूर्ऋतु...धाभिः ।

दानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय वायुस्त्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा (१) शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग् विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिगायुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि मनो मे जिन्व वाचं मे पिन्वा-(२)-ऽऽत्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ (छर्दिषा, जिन्व, षट् च) ॥ ६ ॥

तृतीयचितौ छन्दस्योपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दोऽस्रीविश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिहा छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो मनश्छन्दो वाक् छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥

अग्निर्देवता (१) वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता विश्वे देवा देवता मरुतो देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता मूर्धाऽसि राड् ध्रुवाऽसि धरुणा यन्त्र्यसि यमित्री ष त्वोर्जे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा यन्त्री राड् ध्रुवाऽसि धरणी धर्त्र्यसि धरित्र्यायुषे त्वा (२) वर्चसे त्वौजसे त्वा बलाय त्वा ॥ (देवता, त्वा, षट् च) ॥ ७ ॥

चतुर्थचितौ स्तोमीयाख्येष्टकासु काश्चिदुपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योम सप्तदशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभिवर्तः सविंशो धरुण एकविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंशा ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रश्चतुष्टोमः ॥ (आशुः सप्तत्रिंशच्च) ॥ ८ ॥

अवशिष्टस्तोमीयोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत् स्तोम इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳ स्पृतं पञ्चदशः स्तोमो नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदशः स्तोमो मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याऽऽधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वाताः स्पृता एकविंशः स्तोमोऽदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजः स्पृतं त्रिणवः स्तोमो वसूनां भागोऽसि (१) रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंशः स्तोम आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पञ्च-

विंशः स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिशः स्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमो यावानां भागोऽस्ययावानामाधिपत्यं प्रजाः स्पृताश्चतुश्चत्वारिंशः स्तोम ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतं निशान्तꣳ स्पृतं त्रयस्त्रिंशः स्तोमः ॥

(वसूनां भागोऽसि, षट्चत्वारिंशच्च) ॥ ९ ॥

सृष्टयभिधेयेष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

एकयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्तर्षयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीन्नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुवतर्तवोऽसृज्यन्ताऽऽर्तवोऽधिपतिरासीत् त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपति-(१)-रासीत् पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् सप्तदशभिरस्तुवत पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकविंशत्याऽस्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् त्रयोविंशत्याऽस्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाऽधिपतिरासीत् पञ्चविंशत्याऽस्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तविंशत्याऽस्तुवत द्यावापृथिवी व्यै-(२)-तां वसवो रुद्रा आदित्या अनु व्यायन् तेषामाधिपत्यमासीन्नवविंशत्याऽस्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीदेकत्रिंशताऽस्तुवत प्रजा असृज्यन्त यावानां चायावानां चाऽऽधिपत्यमासीत् त्रयस्त्रिंशताऽस्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ (अधिपति-र्वि, पञ्चत्रिंशच्च) ॥ १० ॥

चतुर्थचितौ व्युष्टिसंज्ञकेष्टकोपधानम् ॥ त्रिष्टुप्; २, ४ जगती; १३ अनुष्टुप् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदन्तरस्यां चरति प्रविष्टा ।
वधूर्जजान नवगज्जनित्री त्रय एनां महिमानः सचन्ते ॥
छन्दस्वती उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ।
सूर्यपत्नी वि चरतः प्रजानती केतुं कृण्वाने अजरे भूरिरेतसा ॥
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आऽगुस्त्रयो घर्मासो अनु ज्योतिषाऽऽगुः ।
प्रजामेका रक्षत्यूर्जमेका (१) व्रतमेका रक्षति देवयूनाम् ॥
चतुष्टोमो अभवद्या तुरीया यज्ञस्य पक्षावृषयो भवन्ती ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कं युञ्जानाः सुवराऽभरन्निदम् ॥
पञ्चभिर्धाता वि दधाविदं यत् तासाꣳ स्वसृरजनयत् पञ्चपञ्च ।
तासामु यन्ति प्रयवेण पञ्च नाना रूपाणि क्रतवो वसानाः ॥

त्रिꣳशत् स्वसार उप यन्ति निष्कृतꣳ समानं केतुं प्रतिमुञ्चमानाः (२) ।
ऋतूꣳस्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्येछन्दसः परि यन्ति भास्वतीः ॥
ज्योतिष्मती प्रति मुञ्चते नभो रात्री देवी सूर्यस्य व्रतानि ।
वि पश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे ॥
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन दस्यून् व्यसहन्त देवा हन्ताऽसुराणामभवच्छचीभिः ॥
अनानुजामनुजां मामकर्त सत्यं वदन्त्यन्विच्छ एतत् ।
भूयास-(३)-मस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्र युक्त ॥
अभून्मम सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदद्धि गाधम् ।
भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्र युक्त ॥
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः समानमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् (४) ॥
ऋतस्य गर्भः प्रथमा व्यूषुष्यपामेका महिमानं बिभर्ति ।
सूर्यस्यैका चरति निष्कृतेषु घर्मस्यैका सवितैकां नि यच्छति ॥
या प्रथमा व्यौच्छत् सा धेनुरभवद्यमे ।
सा नः पयस्वती धुक्ष्वोत्तरामुत्तराꣳ समाम् ॥
शुक्रर्षभा नभसा ज्योतिषाऽऽगाद्विश्वरूपा शबलीरग्निकेतुः ।
समानमर्थꣳ स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आऽगाः ॥
ऋतूनां पत्नी (५) प्रथमेयमाऽगादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानाम् ।
एका सती बहुधोषो व्युच्छस्यजीर्णा त्वं जरयसि सर्वमन्यत् ॥
(दृढा, प्रतिमुञ्चमाना, भूयास,- मेकं, पत्नी,- द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

सपत्नविनाशकमन्त्रेष्टकोपधानम् ॥ १-२ त्रिष्टुप् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अस्मे दीदिहि सुमना अहेडन् तव स्याꣳ शर्मन् त्रिवरूथ उद्भित् ॥
सहसा जातान् प्र णुदा नः सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्र णुदा नः सपत्नान् ॥

चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोमो वर्चो द्रविणꣳ षोडशः स्तोम ओजो द्रविणं पृथिव्याः पुरीषमस्य-(१)-प्सो नाम । एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मन-

श्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रं छन्दः सलिलं छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दः ककुच्छन्दस्त्रिककुच्छन्दः काव्यं छन्दोऽङ्कुपं छन्दः (२) पदपङ्क्तिश्छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरो भृज्वान् छन्दः प्रच्छच्छन्दः पक्षश्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विशालं छन्दो विष्पर्धाश्छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दोऽङ्काङ्कं छन्दः ॥ (अस्य, छन्दः,-त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ १२ ॥

याज्यानुवाक्याः ॥ गायत्री; ३-७, ११-१८, १९, २३-२५ त्रिष्टुप्; २०-२१ विराट् ॥ विश्वे देवा ऋषयः ।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥
त्वꣳ सोमासि सत्पतिस्त्वꣳ राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥
भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत् ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तनुवि रेप आ धुः ॥
भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य (१) ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥
सेनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाꣳ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ॥
स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
यत् सीमहि दिविजात प्रशस्तं तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥
यथा होतर्मनुषो (२) देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥
अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारꣳ रत्नधातमम् ॥
वृषा सोम द्युमाꣳ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥
सान्तपना इदꣳ हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥
यो नो मर्तो वसवो दुर्हृणायुस्तिरः सत्यानि मरुतो (३) जिघाꣳसात् ।
द्रुहः पाशं प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥
संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः ।
तेऽस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वꣳहसः सान्तपना मदिरा मादयिष्णवः ॥

विप्रीहि देवाꣳ उशतो यविष्ठ विद्वाꣳ ऋतूꣳरृतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वꣳ होतृणामस्यायजिष्ठः ॥
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावक (४) शोचे वेष्ट्वꣳ हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥
गृहमेधास आ गत मरुतो माऽप भूतन । प्रमुञ्चन्तो नो अꣳहसः ॥
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । महोभि-(५)-श्चर्षणीनाम् ॥
प्र बुध्निया ईरते वो महाꣳसि प्र णामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥
उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची । उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥
इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईꣳ सुरभीणि वियन्तु ॥
क्रीडं वः शर्धो मारुतमनर्वाणꣳ रथेशुभम् (६) । कण्वा अभि प्र गायत ॥
अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीडिनः पयोधाः ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीडयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन (७) चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥
अग्निमग्निꣳ हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥
तꣳ हि शश्वन्त ईडते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निꣳ हव्याय वोढवे ॥
इन्द्राग्नी रोचना दिवः॰-श्नथद्वृत्र॰-मिन्द्रं वो विश्वतस्परि॰-न्द्रं नरो॰- विश्वकर्मन् हविषा वावृधानो॰-विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन॰- ॥
(सूर्यस्य, मनुषो, मरुतः, पावक, महोभी, रथेशुभं, केन, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १३ ॥
(सूर्यस्य, मनुषो, मरुतः, पावक, महोभी, रथेशुभं, केन, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १३ ॥ (सूर्यस्य, मनुषो ...)

[अपा-६५।-मयं १३० । प्राची १२८। ध्रुवक्षिति-१६७।-स्यवि-७६।-रिग्नाभी १०६। मा १०६। ऽऽशुः२७। तुभ्ये-९६।-रेक्ये १२५।-य-२६९।मग्ने १३३। ऽग्नि-३९६। त्रयोदश ॥ १८४४ ॥]

[॥ इति चतुर्थकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥]

(१३।२८-२९) तै. सं. ४।२।११।१-२, (१३।३०-३१) तै. सं. १।६।१२।१-२, (१३।३२-३३) तै. सं. ४।६।२।१५-१६।

पञ्चमचितिशेषनिरूपणम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥]

पञ्चमचितिशेषस्तोमभागाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्व प्रेतिरसि धर्माय त्वा धर्मं जिन्वा–न्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व सन्धिरस्यन्तरिक्षाय त्वाऽन्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिरसि पृथिव्यै त्वा पृथिवीं जिन्व विष्टम्भोऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व प्रवाऽस्यह्ने त्वाऽहर्जिन्वा–नुवाऽसि रात्रियै त्वा रात्रिं जिन्वो–शिगसि (१) वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्व प्रकेतोऽसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व सुदीतिरस्यादित्येभ्यस्त्वाऽऽदित्याञ्जिन्वौ–जोऽसि पितृभ्यस्त्वा पितॄञ्जिन्व तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्व पृतनाषाडसि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्व रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्वा–भिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रं जिन्वा–धिपतिरसि प्राणाय (२) त्वा प्राणं जिन्व यन्ताऽस्यपानाय त्वाऽपानं जिन्व सꣳसर्पोऽसि चक्षुषे त्वा चक्षुर्जिन्व वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व त्रिवृदसि प्रवृदसि संवृदसि विवृदसि सꣳरोहोऽसि नीरोहोऽसि प्ररोहोऽस्यनु–रोहोऽसि वसुकोऽसि वेषश्रिरसि वस्यष्टिरसि ॥

(असि, प्राणाय, त्रिचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

नाकसदाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथयत् स्तभ्नातु रथन्तरꣳ साम प्रतिष्ठित्यै॰-विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथयत् स्तभ्नातु बृहत् साम प्रतिष्ठित्यै॰-सम्राडसि प्रतीची दि-(१)-गादित्यास्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथयत् स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्यै॰-स्वराडस्युदीची दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्तैकविꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथयत् स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या॰- अधिपत्न्यसि बृहती दिङ्मरुतस्ते देवा अधिपतयो (२) बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथयन्ती स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षायर्षयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे सुवर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥

(दि,-गधिपतय,- श्चत्वारिꣳशच्च) ॥ २ ॥

चोदाख्येष्टकोपधानम् ॥ ८ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानिग्रामण्यौ पुञ्जिकस्थला च कृतस्थ-

(२।१-४) अन्तरिक्षाय...सादयन्तु ।

ला चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाꣳसि प्रहेति–॰-रयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानिग्रामण्यौ मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेति–॰-रयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानिग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चा-(१)-नुम्लोचन्ती चाप्सरसौ सर्पा हेतिर्व्याघ्राः प्रहेति–॰-रयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानिग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेति–॰-रयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानिग्रामण्यावुर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ विद्युद्धेतिरवस्फूर्जन् प्रहेतिस्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं (२) द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधाम्या–योस्त्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायां नमः समुद्राय नमः समुद्रस्य चक्षसे परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं विभूमतीं प्रभूमतीं परिभूमतीं दिवं यच्छ दिवं दृꣳह दिवं मा हिꣳसीर्विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय सूर्यस्त्वाऽभि पातु मह्या स्वस्त्या (३) छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

प्रोथदश्वो न यवसे अविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥

(च, यं, स्वस्त्या, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

छन्दोभिधेष्टकोपधानम् ॥ १-३ गायत्री; ४-६ त्रिष्टुप्, ७-९ जगती; १०-१२ अनुष्टुप्; १३-१५ बृहती; १४ सतोबृहती; १६-१८ उष्णिक्; १९-२१ पङ्क्तिः; २२-२५ अक्षरपङ्क्तिः; २६ अत्यष्टिः; २७-२९ द्विपदा ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे सुवर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥
अबोध्यग्निः समिधा जनानां (१) प्रति धेनुमिवाऽऽयतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुर्व्यञ्चमश्रेत् ॥
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥
त्वामग्ने अङ्गिरसो (२) गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥

(३।१-५) तेभ्यो... दधामि ।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथꣳ स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥
सखायः सं वः सम्यञ्चमिषꣳ (३) स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥
सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥
स योजते अरुषो विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी (४) वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीढुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥
स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥
क्षपो राजन्नुत त्मनाऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ (५) रक्षसो दह प्रति ॥
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यꣳ हूयत इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या (६) उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् (७) सुवर्न ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ सहसो जातवेदसम् । विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥
अग्ने त्वं नो अन्तमः । उत त्राता शिवो भव वरूथ्यः ॥

हं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः । सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥
वसुरग्निर्वसुश्रवाः (८) । अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥
(ऋतावा,-मङ्गिरः, हवं, सुशमी, विश्वजन्म, दुवस्यत्, भुवोद्, वसुश्रवाः, षट् च) ॥ ४ ॥

संयुजादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

इन्द्राग्निभ्यां त्वा सयुजा युजा युनज्म्याघाराभ्यां *-तेजसा *-वर्चसो *-क्थेभिः *-स्तोमेभि *-श्छन्दोभी *-रय्यै पोषाय सजातानां मध्यमस्थेयाय मया त्वा सयुजा युजा युनज्म्यम्बा *- दुला *-नितत्नि *-रभ्रयन्ती *- मेघयन्ती *- वर्षयन्ती *- चुपुणीका नामासि प्रजापतिना त्वा विश्वाभिर्धीभिरुप दधामि पृथिव्युदपुरमन्नेन विष्टा मनुष्यास्ते गोप्तारोऽग्निर्वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा (१) मे शर्म च वर्म चास्त्वन्तरिक्षं ब्रह्मणा विष्टा मरुतस्ते गोप्तारो वायुर्वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु द्यौरपराजिताऽमृतेन विष्टाऽऽदित्यास्ते गोप्तारः सूर्यो वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु ॥ (सा, ऽष्टाचत्वारिंशच्च) ॥ ५ ॥

विश्वज्योतिरादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

बृहस्पतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छाग्निस्तेऽधिपतिर्विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ वायुस्तेऽधिपतिः प्रजापतिस्त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ परमेष्ठी तेऽधिपतिः पुरोवातसनिरस्यभ्रसनिरसि विद्युत्सनि (१) रसि स्तनयित्नुसनिरसि वृष्टिसनिरस्यग्नेर्यान्यसि देवानामग्नेयान्यसि वायोर्यान्यसि देवानां वायोयान्यस्यन्तरिक्षस्य यान्यसि देवानामन्तरिक्षयान्यस्यन्तरिक्षमस्यन्तरिक्षाय त्वा सलिलाय त्वा सर्णीकाय त्वा सतीकाय त्वा केताय त्वा प्रचेतसे त्वा विवस्वते त्वा दिवस्त्वा ज्योतिष आदित्येभ्यस्त्वर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा (२) भासे त्वा ज्योतिषे त्वा यशोदां त्वा यशसि *- तेजोदां त्वा तेजसि *- पयोदां त्वा पयसि *- वर्चोदां त्वा वर्चसि *- द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि तेनर्षिणा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ (विद्युत्सनि,- र्भासे,- द्वाविंशच्च) ॥ ६ ॥

भूयस्कृदादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

भूयस्कृदसि वरिवस्कृदसि प्राच्यस्यूर्ध्वाऽस्यन्तरिक्षसदस्यन्तरिक्षे सीदाप्सुषदसि श्येनसदसि गृध्रसदसि सुपर्णसदसि नाकसदसि पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्यन्तरिक्षस्य त्वा द्रविणे सादयामि दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि दिशां त्वा द्रविणे सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे (१) पाह्यायुर्मे पाहि विश्वायुर्मे पाहि सर्वायुर्मे पाह्यग्ने यत् ते परं हृन्नाम तावेहि सं रभावहै पाञ्च-

(५।२-७) त्वा सयुजा...युनज्मि । (५।९-१४) नामासि...दधामि । (६।१०-२१) सादयामि ...सीद ।

जन्येष्वप्यसद्यग्ने यावा अयावा एवा ऊमाः सब्दः सगरः सुमेकः ॥
(मे, द्वात्रिंशच्च) ॥ ७ ॥

इन्द्रतन्वाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

अग्निना विश्वाषाट् सूर्येण स्वराट् क्रत्वा शचीपतिर्ऋषभेण त्वष्टा यज्ञेन मघवान् दक्षिणया सुवर्गो मन्युना वृत्रहा सौहार्देन तनूधा अन्नेन गयः पृथिव्याऽसनो ऋग्भिरन्नादो वषट्कारेणर्धः साम्ना तनूपा विराजा ज्योतिष्मान् ब्रह्मणा सोमपा गोभिर्यज्ञं दाधार क्षत्रेण मनुष्यानश्वेन च रथेन च वज्र्यृतुभिः प्रभुः संवत्सरेण परिभूस्तपसाऽनाधृष्टः सूर्यः सन् तनूभिः ॥ (अग्निर्नैऋताक्षरपञ्चाशत्) ॥ ८ ॥

यज्ञतन्वाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

प्रजापतिर्मनसाऽन्धोऽच्छेतो धाता दीक्षायां सविता भृत्यां पूषा सोमक्रयण्यां वरुण उपनद्धोऽसुरः क्रीयमाणो मित्रः क्रीतः शिपिविष्ट आसादितो नरंधिषः प्रोह्यमाणोऽधिपतिरागतः प्रजापतिः प्रणीयमानोऽग्निराग्नीध्रे बृहस्पतिराग्नीध्रात् प्रणीयमान इन्द्रो हविर्धानेऽदितिरासादितो विष्णुरुपावह्रियमाणोऽथर्वोपोत्तो यमोऽभिषुतोऽपूतपा आधूयमानो वायुः पूयमानो मित्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीर्वैश्वदेव उन्नीतो रुद्र (१) आहुतो वायुरावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्ष आगतः पितॄणां नाराशंसोऽसुरात्तः सिन्धुरवभृथमवप्रयन्त्समुद्रोऽवगतः सलिलः प्रप्लुतः सुवरुदृचं गतः ॥
(रुद्र, एकत्रिंशतिश्च) ॥ ९ ॥

नक्षत्रेष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताऽग्ने रुचः स्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता *- मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवता *-ऽऽर्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता *-पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता *-तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता *-ऽऽश्रेषा नक्षत्रं सर्पा देवता *- मघा नक्षत्रं पितरो देवता *- फल्गुनी नक्षत्र (१) मर्यमा देवता *- फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता *-हस्तो नक्षत्रं सविता देवता *-चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता *-स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता *- विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता *-ऽनूराधा नक्षत्रं मित्रो देवता *-रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रो देवता *- विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता *-ऽषाढा नक्षत्रमापो देवता *-ऽषाढा नक्षत्रं विश्वे देवा देवता *- श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता *-श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो (२) देवता *-शतभिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता *- प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता *-प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता *-रेवती नक्षत्रं पूषा देवता *-ऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता *-ऽपभरणीर्नक्षत्रं यमो देवता *- पूर्णा पश्चाद्यत् ते देवा अदधुः *- ॥ (नक्षत्रं, वसवः,- स्त्रयस्त्रिंशच्च) ॥ १० ॥

(१०।२-२०) ऋचे त्वा...ज्योतिषे त्वा (१०।२८-२९) तै. सं. ३।५।१।१-२ ।

ऋतव्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू *-शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू *- नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू *- इषश्चोर्जश्च शारदावृतू *-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू *-तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधीः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः (१) येऽग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी शैशिरावृतू अभि कल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभि सं विशन्तु संयच्च प्रचेताश्चाग्नेः सोमस्य सूर्यस्योग्रा च भीमा च पितॄणां यमस्येन्द्रस्य *-ध्रुवा च पृथिवी च देवस्य सवितुर्मरुतां वरुणस्य *- धर्त्री च धरित्री च मित्रावरुणयोर्मित्रस्य धातुः *- प्राची च प्रतीची च वसूनां रुद्राणा (२) मादित्यानां ते तेऽधिपतयस्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि सहस्रस्य प्रमा असि सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रस्य विमा असि सहस्रस्योन्मा असि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वेमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च शतं च सहस्रं चायुतं च (३) नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु षष्टिः सहस्रमयुतमक्षीयमाणा ऋतस्थाः स्थर्तावृधो घृतश्चुतो मधुश्चुत ऊर्जस्वतीः स्वधाविनीस्ता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु विराजो नाम कामदुघा अमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ (सव्रता, रुद्राणां, च, पञ्चचत्वारिंशच्च) ॥ ११ ॥

अवशेषमन्त्रसहितविशेषविधानेषु अनुवाकः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

समिद्दिशामाशया नः सुवर्विन्मधोर्अतो माधवः पात्वस्मान् ।
अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदाभ्य इदं क्षत्रं रक्षतु पात्वस्मान् ॥
रथन्तरं सामभिः पात्वस्मान् गायत्री छन्दसां विश्वरूपा ।
त्रिवृन्नो विष्ठया स्तोमो अह्नां समुद्रो वात इदमोजः पिपर्तु ॥
उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्योजस्विनी ।
इन्द्राधिपतिः पिपृतादतो नो महि (१) क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥
बृहत् साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्णियं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् ।
इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष ॥
प्राची दिशां सहयशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाऽह्नां सुवर्वती ।
इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्टं सहस्रियं सहस्वत् ॥
वैरूपे सामन्निह तच्छकेम जगत्यैनं विक्ष्वा वेशयामः ।
विश्वे देवाः सप्तदशेन (२) वर्च इदं क्षत्रं सलिलवातमुग्रम् ॥
धर्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाऽऽशानां मित्रवदस्त्वोजः ।
मित्रावरुणा शरदाऽह्नां चिकित्नू अस्मै राष्ट्राय महि शर्म यच्छतम् ॥

(११।१-१०) अग्नेरन्तः...विशन्तु । (११।१३-१६) ते तेऽधिपतयो...दधामि ।

वैराजे सामन्नधि मे मनीषाऽनुष्टुभा सम्भृतं वीर्यं सहः ।
इदं क्षत्रं मित्रवदार्द्रदानु मित्रावरुणा रक्षतमाधिपत्यैः ॥
सम्राड् दिशां सहसाम्नी सहस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्ठया नः पिपर्तु ।
अवस्युवाता (३) बृहतीर्नु शक्वरीरिमं यज्ञमवन्तु नो घृताचीः ॥
सुवर्वती सुदुघा नः पयस्वती दिशां देव्यवतु नो घृताची ।
त्वं गोपाः पुरएतोत पश्चाद् बृहस्पते याम्यां युङ्ग्धि वाचम् ॥ ॥
ऊर्ध्वा दिशां रन्तिराशौषधीनां संवत्सरेण सविता नो अह्नाम् ।
रेवत् सामातिच्छन्दा उ छन्दोऽजातशत्रुः स्योना नो अस्तु ॥
स्तोमत्रयस्त्रिंशे भुवनस्य पत्नि विवस्वद्वाते अभि नो (४) गृणाहि ।
घृतवती सवितराधिपत्यैः पयस्वती रन्तिराशा नो अस्तु ॥
ध्रुवा दिशां विष्णुपत्न्यघोराऽस्येशाना सहसो या मनोता ।
बृहस्पतिर्मातरिश्वोत वायुः संधुवाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ।
विश्वव्यचा इषयन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे ॥
वैश्वानरो न ऊत्या *- पृष्टो दिवि *-नु नो (५) ऽद्यानुमति *-रन्विदनुमते त्वं *- कया नश्चित्र आ भुवत् *-को अद्य युङ्क्ते *- ॥
(महि, सप्तदशेना,-ऽवस्युवाता, नो, नु,- ऽष्टाविंशच्च) ॥ १२ ॥

[दुग्धी १४३ । राष्ट्र-१४०।-४-१७८।-मुगि-४०५।- रिग्भा विष्णु। ९८। बृहस्पति-१२९।-भूयस्कृ-८३।- कृत्तिका ९१ प्रजापति। ७१। कृत्तिका ११३। मधुः १९५। समिद् २६४ । द्वादश ॥ १८८० ॥]

[इति चतुर्थकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

होमविधिनिरूपणम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

शिवाग्नौ शतरुद्रहोममन्त्राः (रुद्राध्यायः) ॥ १-१५ अनुष्टुभः; ३ विषमपदा बृहती, ७ आस्तारपंक्तिः; ८ षट्पदा जगती । अग्निर्देवः ।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः ॥
या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय ॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शंतमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

(१२।१५-१६) तै. सं. १।५।३।१,३, (१२।१७-१८) तै. सं. ३।३।११।११-१२, (१२।१९-२०) तै. सं. ४।२।११।१-१०।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते (१) बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहीꣳश्च सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चेमाꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु (२) श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्यः ।
उतैनं विश्वा भूतानि स दृष्टो मृडयाति नः ॥
नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥
प्र मुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्नियोर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः (३) परा ता भगवो वप ॥
अवतत्य धनुस्त्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाꣳ उत ।
अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गथिः ॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयाऽस्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिब्भुज ॥
नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्या- (४) -मुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥
(हस्ते, दिक्षि,-षव, उभाभ्यां, द्वाविंशतिश्च ॥ १ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो बभ्लुशाय विव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रु-द्रायाऽऽततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमो (१) रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाऽऽक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमो नमः कृत्स्नवीताय धावते सत्वनां पतये नमः ॥ (नमो, एकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमः ककुभाय निषङ्गिणे स्तेनानां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमो नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम (१) इषुमद्भ्यो धन्वाविभ्यश्च वो नमो नम आतन्वा-नेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्च वो नमो नमोऽस्यद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नम आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमो अश्वेभ्योऽश्वपतिभ्य- (२) -श्च वो नमः ॥ (नमो, ऽश्वपतिभ्य,- स्त्रीणि च) ॥ ३ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽरथेभ्यश्च वो नमो नमो रथेभ्यो (१) रथपतिभ्यश्च वो नमो नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमस्तक्षभ्यो रथका-रेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्टेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमो नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमो नमो मृगयुभ्यः श्वनिभ्यश्च वो नमो नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च (२) वो नमः ॥ (रथेभ्यः, श्वपतिभ्यश्च, द्वे च) ॥ ४ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च संवृध्वने च (१) नमो अग्रियाय च प्रथमाय च नम आशवे चाजि-राय च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च द्वीप्याय च ॥ (संवृध्वने च, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्नियाय च नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय

च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च (१) नम आशुषेणाय चाऽऽशुरथाय च नमः शूराय चाव-भिन्दते च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमो बिल्मिने च कवचिने च नमः श्रुताय च श्रुत-सेनाय च ॥ (प्रतिश्रवाय च, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो दुन्दुभ्याय चाऽऽहनन्याय च नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो दूताय च प्रहिताय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चाऽऽयुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः सूद्याय च सरस्याय च नमो नाद्याय च वैशन्ताय च (१) नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नम ईध्रियाय चाऽऽतप्याय च नमो वात्याय च रेष्मियाय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च ॥ (वैशन्ताय च त्रिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शङ्गाय च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमो अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च (१) नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नम आतार्याय चाऽऽलाद्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च ॥ (शिवतराय च, त्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमो ह्रदय्याय च निवेष्प्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमः शुष्क्याय च हरि-त्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च (१) नम ऊर्व्याय च सूर्म्याय च नमः पर्ण्याय च पर्णशद्याय च नमोऽपगुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आख्खिदते च प्रख्खिदते च नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विक्षीणकेभ्यो- नमो विचिन्वत्केभ्यो- नम आनि-र्हतेभ्यो- नम आमीवत्केभ्यः- ॥ (उल्प्याय च त्रयोविꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

(१११) देवा... वेभ्यः । १६-१९

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ १ आस्तारपंक्तिः; २,११-१२ अनुष्टुप्; ३-६ जगती; ७-९ त्रिष्टुप्; १० पदपङ्क्त्या महाबृहती । अग्निर्ऋषिः ।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्रन्नीललोहित ।
एषां पुरुषाणामेषां पशूनां मा भेर्माऽरो मो एषां किं चनाऽऽममत् ॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी ।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥
इमाꣳ रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतिम् ।
यथा नः शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मि- (१) -न्ननातुरम् ॥
मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतौ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नस्तनुवो (२) रुद्र रीरिषः ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥
आरात् ते गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
रक्षा च नो अधि च देव ब्रूह्यधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥
स्तुहि (३) श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥
परि णो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृडय ॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं (४) बिभ्रदा गहि ॥
विकिरिद विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥
सहस्राणि सहस्रधा बाहुवोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥
(अस्मिन्,-स्तनुवः, स्तुहि, पिनाकं,-मेकान्नविꣳशच्च) ॥ १० ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ १-१० अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि- ॥

सं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः । सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥
वसुरग्निर्वसुश्रवाः (८) । अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥
(अन्नानां,-महिम्नः, ह्यर्दः,सुम्नानि, विषाजन्म, इद्धः, अर्वाङ्, वसुश्रवाः, पञ्च च) ॥ ४ ॥

सयुगादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

इन्द्राग्निभ्यां त्वा सयुजा युजा युनज्म्या-घाराभ्यां-तेजसा-वर्चसो-क्थेभिः-स्तोमेभि-श्छन्दोभी-रय्यै पोषाय सजातानां मध्यमस्थेयाय मया त्वा सयुजा युजा युनज्म्य-म्बा-दुला-नितत्नि-रभ्रयन्ती-मेघयन्ती-वर्षयन्ती-चुपुणीका नामासि प्रजापतिना त्वा विश्वाभिर्धीभिरुप दधामि पृथिव्युदपुरमन्नेन विष्टा मनुष्यास्ते गोप्तारोऽग्निर्वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा (१) मे शर्म च वर्म चा-स्त्वधिद्यौरन्तरिक्षं ब्रह्मणा विष्टा मरुतस्ते गोप्तारो वायुर्वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु द्यौरपराजिताऽमृतेन विष्टाऽऽदित्यास्ते गोप्तारः सूर्यो वियत्तोऽस्यां तामहं प्र पद्ये सा मे शर्म च वर्म चास्तु ॥ (सा, द्वाचत्वारिंशच्च) ॥५॥

विश्वज्योतिरादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

बृहस्पतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छाग्निस्तेऽधिपति-र्विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ वायुस्तेऽधिपतिः प्रजापतिस्त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ परमेष्ठी तेऽधिपतिः पुरोवातसनिरस्य-भ्रसनिरसि विद्युत्सनि-(१)-रसि स्तनयित्नुसनिरसि वृष्टिसनिरस्य-ग्नेर्यान्यसि देवानामग्नेयान्यसि वायोर्यान्यसि देवानां वायोयान्यस्य-न्तरिक्षस्य यान्यसि देवानामन्तरिक्षयान्यस्य-न्तरिक्षमस्य-न्तरिक्षाय त्वा सलिलाय त्वा सर्णीकाय त्वा सतीकाय त्वा केताय त्वा प्रचेतसे त्वा विवस्वते त्वा दिवस्त्वा ज्योतिष आदित्येभ्यस्त्व-र्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा (२) भासे त्वा ज्योतिषे त्वा यशोदां त्वा यशसि-तेजोदां त्वा तेजसि-पयोदां त्वा पयसि-वर्चोदां त्वा वर्चसि-द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि तेनर्षिणा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ (विद्युत्सनि,- स्त्वं,-कात्रिंशच्च) ॥ ६ ॥

भूयस्कृदादीष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

भूयस्कृदसि वरिवस्कृदसि प्राच्यस्यू-र्ध्वाऽस्य-न्तरिक्षसदस्यन्तरिक्षे सीदा-प्सुषदसि श्येनसदसि गृध्रसदसि सुपर्णसदसि नाकसदसि पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्य-न्तरिक्षस्य त्वा द्रविणे सादयामि दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि दिशां त्वा द्रविणे सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि प्राणं मे पाह्य-पानं मे पाहि व्यानं मे (१) पाह्या-युर्मे पाहि विश्वायुर्मे पाहि सर्वायुर्मे पाह्य-ग्ने यत् ते परꣳहृन्नाम तावेहि सꣳ रभावहै पाञ्च-

(५।२-७) त्वा सयुजा...युनज्मि । (५।९-१४) नामासि...दधामि । (६।१०-३२) सादयामि ...सीद ।

जन्येष्वप्यस्यग्ने यावो अयावो एवा ऊर्माः सब्दः सगरः सुमेकः ॥
(मे, द्वात्रिंशच्च) ॥ ७ ॥

इन्द्रतन्वाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

अग्निना विश्वाषाट् सूर्येण स्वराट् क्रत्वा शचीपति-र्ऋषभेण त्वष्टा यज्ञेन मघवान् दक्षिणया सुवर्गो मन्युना वृत्रहा सौहार्देन तनूधा अन्नेन गयः पृथिव्याऽसनो-र्ऋग्भिरन्नादो वषट्कारेणर्धः साम्ना तनूपा विराजा ज्योतिष्मान् ब्रह्मणा सोमपा गोभिर्यज्ञं दाधार क्षत्रेण मनुष्या-नश्वेन च रथेन च वज्र्य-तुभिः प्रभुः संवत्सरेण परिभू-स्तपसाऽनाधृष्टः सूर्यः सन् तनूभिः ॥ (अग्निनैकान्नपञ्चाशत्) ॥ ८ ॥

यज्ञतन्वाख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

प्रजापतिर्मनसाऽन्धोऽच्छेतो धाता दीक्षायाꣳ सविता भृत्यां पूषा सोमक्रयण्यां वरुण उपनद्धोऽसुरः क्रीयमाणो मित्रः क्रीतः शिपिविष्ट आसादितो नरंधिषः प्रोह्यमाणोऽधिपतिरागतः प्रजापतिः प्रणीयमानोऽग्निराग्नीध्रे बृहस्पतिराग्नीध्रात् प्रणीयमान इन्द्रो हविर्धानेऽदितिरासादितो विष्णुरुपावह्रियमाणोऽथर्वोपोत्तो यमोऽभिषुतोऽपूतपा आधूयमानो वायुः पूयमानो मित्रः क्षीरश्री-र्मन्थी सक्तुश्री-र्वैश्वदेव उन्नीतो रुद्र (१) आहुतो वायुरावृत्तो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्ष आगतः पितृणां नाराशꣳसोऽसुरात्तः सिन्धुरवभृथमवप्रय-न्त्समुद्रोऽवगतः सलिलः प्रप्लुतः सुवरुदृचं गतः ॥
(रुद्र, एकविꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

नक्षत्रेष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताऽग्ने रुचः स्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता-मृगशीर्षं नक्षत्रꣳ सोमो देवता-ऽऽर्द्रा नक्षत्रꣳ रुद्रो देवता-पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता-तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता-ऽऽश्रेषा नक्षत्रꣳ सर्पा देवता-मघा नक्षत्रं पितरो देवता-फल्गुनी नक्षत्र-(१)-मर्यमा देवता-फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता-हस्तो नक्षत्रꣳ सविता देवता-चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता-स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता-विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता-ऽनूराधा नक्षत्रं मित्रो देवता-रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रो देवता-विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता-ऽषाढा नक्षत्रमापो देवता-ऽषाढा नक्षत्रं विश्वे देवा देवता-श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता-श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो (२) देवता-शतभिषङ्नक्षत्रमिन्द्रो देवता-प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता-प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता-रेवती नक्षत्रं पूषा देवता-ऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता-ऽपभरणीर्नक्षत्रं यमो देवता-पूर्णा पश्चा-द्यत् ते देवा अदधुः-॥ (नक्षत्रं, वसवः,- षट्त्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

(१०।२-२०) ऋचे त्वा...ज्योतिषे त्वा (१०।२८-२९) तै. सं. ३।५।१।१-२ ।

ऋतव्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्देवः ।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू-शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू-नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू-इषश्चोर्जश्च शारदावृतू-सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू-तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधीः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः (१) येऽग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी शैशिरावृतू अभि कल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभि सं विशन्तु संयच्च प्रचेताश्चाग्नेः सोमस्य सूर्यस्यो-ग्रा च भीमा च पितॄणां यमस्येन्द्रस्य-ध्रुवा च पृथिवी च देवस्य सवितुर्मरुतां वरुणस्य-धर्त्री च धरित्री च मित्रावरुणयोर्मित्रस्य धातुः-प्राची च प्रतीची च वसूनाꣳ रुद्राणा-(२)-मादित्यानां ते तेऽधिपतयस्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि सहस्रस्य प्रमा असि सहस्रस्य प्रतिमा असि सहस्रस्य विमा असि सहस्रस्योन्मा असि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वे-मा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च शतं च सहस्रं चायुतं च (३) नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चेमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु षष्टिः सहस्रमयुतमक्षीयमाणा ऋतस्थाः स्थर्तावृधो घृतश्चुतो मधुश्चुत ऊर्जस्वतीः स्वधाविनीस्ता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु विराजो नाम कामदुघा अमुत्रामुष्मिꣳल्लोके ॥ (सव्रता, रुद्राणां, च, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

अश्वमेधगतदशहविर्भेदविधायकानुवाक्याः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

समिद्दिशामाशया नः सुवर्विन्मधोरतो माधवः पात्वस्मान् ।
अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदाभ्य इदं क्षत्रꣳ रक्षतु पात्वस्मान् ॥
रथन्तरꣳ सामभिः पात्वस्मान् गायत्री छन्दसां विश्वरूपा ।
त्रिवृन्नो विष्ठया स्तोमो अह्नाꣳ समुद्रो वात इदमोजः पिपर्तु ॥
उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्योजसीना ।
इन्द्राधिपतिः पिपृतादतो नो महि (१) क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥
बृहत् साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्णियं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् ।
इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष ॥
प्राची दिशाꣳ सहयशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषा ऽह्नाꣳ सुवर्वती ।
इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्टꣳ सहस्रियꣳ सहस्वत् ॥
वैरूपे सामन्निह तच्छकेम जगत्यैनं विक्ष्वा वेशयामः ।
विश्वे देवाः सप्तदशेन (२) वर्च इदं क्षत्रꣳ सलिलवातमुग्रम् ॥
धर्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाऽऽशानां मित्रवदस्त्वोजः ।
मित्रावरुणा शरदाऽह्नां चिकित्न् अस्मै राष्ट्राय महि शर्म यच्छतम् ॥

(११।१-१०) अग्नेरन्तः...विशन्तु । (११।१३-१६) ते तेऽधिपतयो...दधामि ।

वैराजे सामन्नधि मे मनीषाऽनुष्टुभा सम्भृतं वीर्यꣳ सहः ।
इदं क्षत्रं मित्रवदार्द्रदानु मित्रावरुणा रक्षतमाधिपत्यैः ॥
सम्राड् दिशाꣳ सहसाम्नी सहस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्ठया नः पिपर्तु ।
अवस्युवाता (३) बृहतीनु शक्वरीरिमं यज्ञमवन्तु नो घृताचीः ॥
सुवर्वती सुदुघा नः पयस्वती दिशां देव्यवतु नो घृताची ।
त्वं गोपाः पुरएतोत पश्चाद् बृहस्पते याम्यां युङ्ग्धि वाचम् ॥
ऊर्ध्वा दिशाꣳ रन्तिराशौषधीनाꣳ संवत्सरेण सविता नो अह्नाम् ।
रेवत् सामातिच्छन्दा उ छन्दोऽजातशत्रुः स्योना नो अस्तु ॥
स्तोमत्रयस्त्रिꣳशे भुवनस्य पत्नि विवस्वद्वाते अभि नो (४) गृणाहि ।
घृतवती सवितराधिपत्यैः पयस्वती रन्तिराशा नो अस्तु ॥
ध्रुवा दिशां विष्णुपत्न्यघोराऽस्येशाना सहसो या मनोता ।
बृहस्पतिर्मातरिश्वोत वायुः सन्धुवाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ।
विश्वव्यचा इषयन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे ॥
वैश्वानरो न ऊत्या-पृष्टो दिव्य-नु नो (५) ऽद्यानुमति-रन्विदनुमते त्वं-कया नश्चित्र आ भुवत्-को अद्य युङ्क्ते-॥
(महि, सप्तदशेना,-ऽवस्युवाता, नो, नु,-अष्टादश च) ॥ १२ ॥

[इष्मी १४३ । रश्मि-१४०।-व-१०८।-मनि-४०५।- रिन्द्राग्निभ्यां ९८। बृहस्पति-१२९।-भूयस्कृ-८२।-ग्निना ४९ प्रजापतिः ७१। कृत्तिका ११३। मधुः १९५। समिद् २६४। द्वादश ॥ १८८७ ॥]

[इति चतुर्थकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

होमविधिनिरूपणम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

चित्यग्नौ रुद्रहोममन्त्राः (रुद्राध्यायः) ॥ १-१५ अनुष्टुभः; ३ विषमपदा बृहती, ७ आस्तारपङ्क्तिः; ८ षट्पदा जगती, अग्निर्देवः ।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः ॥
या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
शिवा शरव्या या तव तया नो रुद्र मृडय ॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

(१२।१५-१६) तै. सं. १।५।११।१,३, (१२।१७-१८) तै. सं. ३।१।११।११-१२, (१२।१९-२०) तै. सं. ४।२।११।९-१०।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते (१) बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहीꣳश्च सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चेमाꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु (२) श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्यः ।
उतैनं विश्वा भूतानि स दृष्टो मृडयाति नः ॥
नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥
प्र मुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्नियोर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः (३) परा ता भगवो वप ॥
अवतत्य धनुस्त्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाꣳ उत ।
अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गथिः ॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयाऽस्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिब्भुज ॥
नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्या-(४)-मुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥
(हस्ते, दिक्षु, -षव, उभाभ्यां, द्वाविꣳशतिश्च ॥ १ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो
नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो बभ्लुशाय विव्याधिनेऽन्नानां पतये नमो
नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रु-
द्रायाऽऽततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमो (१)
रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो
भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाऽऽक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमो नमः
कृत्स्नवीताय धावते सत्वनां पतये नमः ॥ (नम, एकान्नत्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमः ककुभाय निषङ्गिणे स्तेनानां
पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां
पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमो नमः सृकाविभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो
मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमो नम उष्णीषिणे
गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम (१) इषुमद्भ्यो धन्वाविभ्यश्च वो नमो नम आतन्वा-
नेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्च वो नमो नमोऽस्यद्भ्यो
विध्यद्भ्यश्च वो नमो नम आसीनेभ्यः शयानेभ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च
वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमो
अश्वेभ्योऽश्वपतिभ्य-(२)-श्च वो नमः ॥ (नमो,ऽश्वपतिभ्य,-स्त्रीणि च) ॥ ३ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमो
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गणेभ्यो
गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यः क्षुल्लकेभ्यश्च
वो नमो नमो रथिभ्योऽरथेभ्यश्च वो नमो नमो रथेभ्यो (१) रथपतिभ्यश्च वो नमो नमः
सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमस्तक्षभ्यो रथका-
रेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्टेभ्यो निषादेभ्यश्च वो
नमो नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमो नमो मृगयुभ्यः श्वनिभ्यश्च वो नमो नमः
श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च (२) वो नमः ॥ (रथेभ्यः, श्वपतिभ्यस्, द्वे च) ॥ ४ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय
च नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशाय च
शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च
वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च संवृध्वने च (१) नमो अग्रियाय च प्रथमाय च नम आशवे चाजि-
राय च नमः शीघ्रियाय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमः स्रोतस्याय च
द्वीप्याय च ॥ (संवृध्वने च, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय
च नमो जघन्याय च बुध्नियाय च नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय

च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमो वन्याय च कक्ष्याय
च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च (१) नम आशुषेणाय चाऽऽशुरथाय च नमः शूराय चाव-
भिन्दते च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमो बिल्मिने च कवचिने च नमः श्रुताय च श्रुत-
सेनाय च ॥ (प्रतिश्रवाय च, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमो दुन्दुभ्याय चाऽऽहनन्याय च नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो दूताय च प्रहिताय च
नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चाऽऽयुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च
नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः सूद्याय च सरस्याय च नमो
नाद्याय च वैशन्ताय च (१) नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो मेघ्याय
च विद्युत्याय च नम ईध्रियाय चाऽऽतप्याय च नमो वात्याय च रेष्मियाय च नमो वास्तव्याय
च वास्तुपाय च ॥ (वैशन्ताय च त्रिꣳशच्च) ॥ ७ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ॥

नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः शङ्गाय च पशुपतये च नम
उग्राय च भीमाय च नमो अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो
हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमः शम्भवे च मयोभवे च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च (१) नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः पार्याय चावार्याय च
नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नम आतार्याय चाऽऽलाद्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च
नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च ॥ (शिवतराय च, त्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्त-
ये च नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च
नमो ह्रदय्याय च निवेष्प्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमः शुष्क्याय च हरि-
त्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च (१) नम ऊर्व्याय च सूर्म्याय च नमः पर्ण्याय च
पर्णशद्याय च नमोऽपगुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आक्खिदते च प्रक्खिदते च नमो वः
किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विक्षीणकेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नम आनि-
र्हतेभ्यो नम आमीवत्केभ्यः ॥ (उलप्याय च त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

(९।१६) देवा... येभ्यः । १६-१९

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ १ आस्तारपंक्तिः; २,११-१२ अनुष्टुप्; ३-६ जगती; ७-९ त्रिष्टुप्; १० पथ्यापंक्तिः महाबृहती । अग्निर्ऋषिः ।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्रन्नीललोहित ।
एषां पुरुषाणामेषां पशूनां मा भेर्माऽरो मो एषां किं चनाऽऽममत् ॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहभेषजी ।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥
इमाꣳ रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतिम् ।
यथा नः शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मि-(१)-न्ननातुरम् ॥
मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतौ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं प्रिया मा नस्तनुवो (२) रुद्र रीरिषः ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥
आरात् ते गोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
रक्षा च नो अधि च देव ब्रूह्यधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥
स्तुहि (३) श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥
परि णो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृडये ॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं (४) बिभ्रदा गहि ॥
विकिरिद विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥
सहस्राणि सहस्रधा बाहुवोस्तव हेतयः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥
(अस्मिꣳ,-स्तनुवः, स्तुहि, पिनाकं,-मेकान्नविꣳशतिश्च) ॥ १० ॥

चित्यग्नौ होममन्त्राः ॥ १-१० अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः - ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः - ॥
ये वृक्षेषु सस्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः - ॥
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः - ॥
ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् - ॥
ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा यव्युधः -- ॥
ये तीर्थानि (१) प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः -- ॥
य एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां --येऽन्तरिक्षे --ये दिवि येषामन्नं--वातो--वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमस्ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च (२) नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि ॥ (तीर्थानि, यश्च, षट् च) ॥ ११ ॥

[नमस्ते २२२ । नमो हिरण्यबाहवे ७९ । नमः सहमानाय १०३ । नम आव्याधिनीभ्यो १०२ । नमो भवाय ७५ । नमो ज्येष्ठाय ७५ । नमो दुन्दुभ्याय ८० । नमः सोमाय ८० । नम इरिण्याय ८३ । द्रापे २२२ । सहस्राणि-१०६ । -कांदशा ॥१२३४॥]

[इति चतुर्थकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

परिषेचनसंस्काराभिधानम् ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

अग्निसंस्कारेषु परिषेचनादि ॥ १ अतिजगती; ३-४ उष्णिक्; ५,८-१०,२१ गायत्री; ६ वर्धमाना, ककुम्मती वा गायत्री; ७ द्विपदा त्रिष्टुप्; ११-१२ आस्तारपङ्क्तिः; १८, २०, २२ त्रिष्टुप्; १९ जगती । अग्निर्ऋषिः ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणां वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
अद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽधि सम्भृतां तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणाः
अश्मꣳस्ते क्षुदमुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मः ॥
समुद्रस्य त्वाऽवाकयाऽग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥
हिमस्य त्वा जरायुणाऽग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥
उप (१) ज्मन्नुप वेतसेऽवत्तरं नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि ॥
मण्डूकि ताभिरा गहि सेमं नो यज्ञम् । पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥
पावक आ चितयन्त्या कृपा । क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ॥
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे । न ततृषाणो अजरः ॥

(११।२-१०) तेषाꣳ सहस्र० (११।१२) येषामन्नमिषवः... दधामि । (११।११) नमो रुद्रेभ्यो०,...येषां... इषवस्तेभ्यो...दधामि । (११।१४) येषां वर्षमिषवस्ते... दधामि ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् (२) वक्षि यक्षि च ॥
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाꣳ इहाऽऽवह । उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥
अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्यं ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥
नृषदे वट्--(३)--ऽप्सुषदे वट् वनसदे वट् बर्हिषदे वट् सुवर्विदे वट् ॥
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं जुहुध्वं मधुनो घृतस्य ॥
ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरएतारो अस्य ।
येभ्यो नर्ते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥
प्राणदा (४) अपानदा व्यानदाश्चक्षुर्दा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्यं ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यꣳसद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वꣳसते रयिम् ॥
सैनाऽनीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाꣳ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥
(रूपं, देवान्, वट्, प्राणदा,-अष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

वैश्वकर्मणहोमः ॥ त्रिष्टुप्; १७ पङ्क्तिः । अग्निर्ऋषिः ।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता निषसादा पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः परमच्छदो वर आ विवेश ॥
विश्वकर्मा मनसा यद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्र सप्तर्षीन् पर एकमाहुः ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता यो नः सतो अभ्या सज्जजान (१) ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥
त आऽयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ता सूर्ता रजसो विमाने ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥
न तं विदाथ य इदं जजानान्यद् युष्माकमन्तरं भवाति ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

परो दिवा पर एना (२) पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्गुहा यत् ।
कꣳ स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्निदं विश्वं भुवनमधि श्रितम् ॥
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीना (३)-मपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृꣳहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां नमति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥
किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् किमासीत् ।
यदी भूमिं जनयन् (४) विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥
किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीद्यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥
या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तनुवं जुषाणः ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये (५) मनोयुजं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो नेदिष्ठा हवनानि जोषते विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तनुवं जुषाणः ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत् ॥
समुद्राय वयुनाय सिन्धूनां पतये नमः (६) ।
नदीनाꣳ सर्वासां पित्रे जुहुता विश्वकर्मणे विश्वाऽहाऽमर्त्यꣳ हविः ॥
(गुहा,-मो,-षधीनां, जनयं,-मूतये, नमो, नव च) ॥ २ ॥

अग्निचयनम् ॥ १-४,१२, १४-१५ अनुष्टुप्; ६,९-११ त्रिष्टुप्, ५ विराट्; ७ विराड्रूपा; १३ द्विपदा त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाऽऽहुत । रायस्पोषेण सꣳ सृज प्रजया च धनेन च ॥
इन्द्रेमं प्रतरां कृधि सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवेभ्यो भागधा असत् ॥

यस्य कुर्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधि ब्रवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥
उदु त्वा विश्वे देवा (१) अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवतमः सुप्रतीको विभावसुः ॥
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्तीः ॥
रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् समिद्धे अग्नावधि मामहानः ।
उक्थपत्र ईड्यो गृभीतस्तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्त ॥
ऊर्जा यद्यज्ञमशमन्त देवा दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे ।
देवश्रीः श्रीमणाः शतपयाः (२) परिगृह्य देवा यज्ञमायन् ॥
सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयाꣳ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति देवः सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥
देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुर्वीतꣳ शमित्रे शमिता यजध्यै ।
तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ततः पावका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि (३) चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसः पात्यन्तौ ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥
सुम्नहूर्यज्ञो देवाꣳ आ च वक्षद्यक्षदग्निर्देवो देवाꣳ आ च वक्षत् ॥
वाजस्य (४) मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नाꣳ इन्द्रो मे निग्राभेणाधराꣳ अकः ॥
उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् । अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥
(विश्वे देवाः; शतपया, अभि , वाजस्य, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

अग्निप्रणयनमाहात्म्यप्रतिपादकसूक्तम् ॥ त्रिष्टुप्; १३, १५ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

आशुः शिशानो वृषभो न युध्मो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यूर्ध्वधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥
बृहस्पते परि दीया (१) रथेन रक्षोहाऽमित्राꣳ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽनु सꣳरभध्वम् ॥
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदायो (२) वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रे ॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु (३) ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मानु देवा अवता हवेषु ॥
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां महाꣳसि ।
उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतामेतु घोषः ॥
उप प्रेत जयता नरः स्थिरा वः सन्तु बाहवः ।
इन्द्रो वः शर्म यच्छत्वनाधृष्या यथाऽसथ ॥
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिता ।
गच्छामित्रान् प्र (४) विश मैषां कं चनोच्छिषः ॥
मर्माणि ते वर्मभिश्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनाभिवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरिवस्ते अस्तु जयन्तं त्वामनु मदन्तु देवाः ॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
इन्द्रो नस्तत्र वृत्रहा विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥
(इषुहस्तैः,-दायो, जयन्तु, प्र, चत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

चित्यामग्निस्थापनादिमारुतहोमान्तम् ॥ १,५-७,१०,१२ त्रिष्टुप्; २, ४ अनुष्टुप्; ३ पुरस्ताद्बृहती; ११ विराट्; १५-१६ अभिकृतिः । अग्निर्ऋषिः ।

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवः पृष्ठꣳ सुवर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥
पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमाऽरुहमन्तरिक्षाद् दिवमाऽरुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् सुवर्ज्योतिरगा- (१) -महम् ॥
सुवर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याꣳ रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वाꣳसो वितेनिरे ॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः सुवर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥
अग्ने सहस्राक्ष (२) शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रमपानाः ।
त्वꣳ साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृथिव्याꣳ सीद पृष्ठे पृथिव्याः सीद भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा
दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद् दृꣳह ॥
आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वां योनिमा सीद साध्या ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा (३) यजमानश्च सीदत ॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वाꣳ शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीꣳषि जुहुरे समिद्धे ॥
ताꣳ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाꣳ सहस्रधारां (४) पयसा महीं गाम् ॥
सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तर्षयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्वा घृतेन ॥

ईदृङ् चान्यादृङ् चैतादृङ् च प्रतिदृङ् च मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥
शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माꣳश्च सत्यश्चर्तपाश्चात्यꣳहाः (५) ॥
ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्चान्त्यमित्रश्च दूरेअमित्रश्च गणः ॥
ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥
ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन ।
मितासश्च सम्मितासश्च न ऊतये सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मि—
—न्निन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो (६) यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मान एवमिमं यजमानं
दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥
(अगाः, सहस्राक्ष, देवाः, सहस्रधारा,-मꣳहा, अनुवर्त्मानः, षोडश च) ॥ ५ ॥

अश्वमेधकर्तुः कवचादिसन्नाहः ॥ त्रिष्टुप्; ६ जगती, १२-१३ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तनुवा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥
धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताऽधि धन्वन् (१) ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यताꣳ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनाऽवगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥
रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं (२) पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूꣳरनपव्ययन्तः ॥
रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्राऽऽयुधं निहितमस्य वर्म ॥
तत्रा रथमुप शग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥
स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥

ब्राह्मणासः (३) पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन् ॥
ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः (४) शर्म यच्छतु ॥
आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाꣳ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परि पातु विश्वतः ॥
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वाऽऽस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥
दिवः पृथिव्याः पर्यो- (५) -ज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥
उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूरा- (६) -द्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुनाꣳ इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥
आऽमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥
(धन्वन्, महिमानं, ब्राह्मणासोऽदितिः, परि, दूरा,- देकचत्वारिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

अश्वस्तोमीया होममन्त्राः ॥ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त (१) आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाꣳ सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥
आत्मानं ते मनसाऽऽरादजानामवो दिवा (२) पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं (३) ते ॥
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳ शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हꣳसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्राऽरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥
उप (४) प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्ति रेभाः ॥
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाꣳ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवान् जुष्टतमो हि गम्या अथाऽऽशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥
(विपृक्तो, दिवा, वीर्यं,-मुपे,-चतुःपञ्चाशच्च) ॥ ७ ॥

अश्वस्तोमीया होममन्त्राः । त्रिष्टुप्; ३,६ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ॥
मा नो मित्रो वरुणो अर्यमाऽऽयुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद् विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोडाशमर्वता त्वष्टे-(१)-देनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥
होताऽध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो (२) तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥
उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥
यदश्वस्य क्रविषो (३) मक्षिकाऽऽश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधꣳ शृतपाकं पचन्तु ॥
यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिष-(४)-न्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥
(इ-दुतो, क्रविषः, श्रिषत्, सप्त च) ॥ ८ ॥

अश्वस्तोत्रमन्त्राः । त्रिष्टुप्; ३ मध्येज्योतिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥
यन्नीक्षणं माꣳस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्याऽपिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं (१) जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥
मा त्वाऽग्निर्ध्वनयिद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥
यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्णिया वा कशया (२) वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥
चतुस्त्रिꣳशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथर्तुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥
मा त्वा तपत् (३) प्रिय आत्माऽपियन्तं मा स्वधितिस्तनुव आ तिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्ताऽतिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥
न वा उवेतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाꣳ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥
सुगव्यं नो वाजी स्वश्वियं पुꣳसः पुत्राꣳ उत विश्वापुषꣳ रयिम् (४) ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥
(पार्ष्णि, कशया, तप,-दुवि, नव च) ॥ ९ ॥

[अस्मद् २४३। य १०९। ट- २२६।-द्वाभ्याः २४०। वार्षी ३१६। जीमूतस्य १४१। य-२२९।-त्मा २०७। ये १०९। नव च ॥ २३३१ ॥]

[॥ इति चतुर्थकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

वसोर्धारादिविशिष्टसंस्काराभिधानम् ।

[अथ सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

(१-११) वसोर्धारा होममन्त्राः । १ गायत्री । अग्निर्ऋषिः ।

अग्नाविष्णू सजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरः । द्युम्नैर्वाजेभिरा गतम् ॥

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रा-
वश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे सुवश्च मे प्राणश्च मेऽपान-(१)-श्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च
म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च म ओजश्च मे सहश्च
म आयुश्च मे जरा च म आत्मा च मे तनूश्च मे (२) शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थानि च
मे परूꣳषि च मे शरीराणि च मे ॥ (अपान,-स्तनूश्च मे, ऽष्टादश च) ॥ १ ॥

ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे
वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्ष्मा च मे द्राघुया च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे सत्यं च मे श्रद्धा च

मे जगच्च (१) मे धनं च मे वशश्च मे त्विषिश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं
च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथं
च म ऋद्धं च म ऋद्धि-(२)-श्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे ॥
(जगच्च,-र्द्धि,-श्चतुर्दश) ॥२॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस्यश्च
मे यशश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च (१) मे
महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च म ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं
च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुगं च मे शयनं (२)
च मे सूषा च मे सुदिनं च मे ॥ (विश्वं च, शयन,-मष्टौ च) ॥ ३ ॥

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृ-
षिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च (१)
मे प्रभु च मे बहु च मे भूयश्च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मेऽक्षितिश्च मे कूयवाश्च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च
मे व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे गोधूमाश्च मे मसुरा (२) श्च मे
प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे ॥ (विभु च मसुरा,- श्चतुर्दश च) ॥ ४ ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च
मे सीसं च मे त्रपुश्च मे श्यामं च मे लोहं च मेऽग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे
कृष्टपच्यं च (१) मेऽकृष्टपच्यं च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च यज्ञेन कल्पन्तां वित्तं च मे वित्तिश्च
मे भूतं च मे भूतिश्च मे वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इतिश्च मे
गतिश्च मे ॥ (कृष्टपच्यं च,- द्वाचत्वारिꣳशच्च) ॥५॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म
इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च (१) म इन्द्रश्च
मे धाता च म इन्द्रश्च मे विष्णुश्च म इन्द्रश्च मेऽश्विनौ च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे
च मे देवा इन्द्रश्च मे पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म (२) इन्द्रश्च मे दिशश्च
म इन्द्रश्च मे मूर्धा च म इन्द्रश्च मे प्रजापतिश्च म इन्द्रश्च मे । (त्वष्टा च, द्यौश्च म, एकविꣳशतिश्च) ॥६॥

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे
मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च म आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे
ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऋतुग्रहाश्च (१) मेऽतिग्राह्याश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे वैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे

माहेन्द्रश्चं म आदित्यश्चं मे सावित्रश्चं मे सारस्वतश्चं मे पौष्णश्चं मे पात्नीवतश्चं मे हारियोजनश्चं मे ॥
(ऋतुग्रहाश्च, चतुंस्त्रिंशच्च) ॥ ७ ॥

इध्मश्चं मे बर्हिश्चं मे वेदिश्च मे धिष्णियाश्च मे स्रुचंश्च मे चमसाश्चं मे ग्रावाणश्च मे स्वरंवश्च म उपरवाश्चं मेऽधिषवंणे च मे द्रोणकलशश्चं मे वायव्यांनि च मे पूतभृच्चं म आधवनीयंश्च म आग्नींध्रं च मे हविर्धानं च मे गृहाश्चं (१) मे सदंश्च मे पुरोडाशांश्च मे पचताश्चं मेऽवभृथश्चं मे स्वगाकारश्चं मे ॥
(गृहाश्च, षोडश च) ॥ ८ ॥

अग्निश्चं मे घर्मश्चं मेऽर्कश्चं मे सूर्यंश्च मे प्राणश्चं मेऽश्वमेधश्चं मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिंश्च मे द्यौश्चं मे शक्वरीरङ्गुलंयो दिशंश्च मे यज्ञेनं कल्पन्तामृक् चं मे सामं च मे स्तोमंश्च मे यजुंश्च मे दीक्षा (१) चं मे तपंश्च म ऋतुश्चं मे व्रतं चं मेऽहोरात्रयोर्वृष्ट्या बृंहद्रथन्तरे चं मे यज्ञेनं कल्पेताम् ॥ (दीक्षा, ऽष्टादंश च) ॥ ९ ॥

गर्भाश्च मे वत्साश्चं मे त्र्यविंश्च मे त्र्यवी चं मे दित्यवाट् चं मे दित्यौही चं मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी चं मे त्रिवत्सश्चं मे त्रिवत्सा चं मे तुर्यवाट् चं मे तुर्यौही चं मे पष्ठवाच्चं मे पष्ठौही चं म उक्षा चं मे वशा चं म ऋषभश्चं (१) मे वेहच्चं मेऽनड्वाञ्चं मे धेनुश्चं म आयुर्यज्ञेनं कल्पतां प्राणो यज्ञेनं कल्पतामपानो यज्ञेनं कल्पतां व्यानो यज्ञेनं कल्पतां चक्षुर्यज्ञेनं कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेनं कल्पतां मनो यज्ञेनं कल्पतां वाग्यज्ञेनं कल्पतामात्मा यज्ञेनं कल्पतां यज्ञो यज्ञेनं कल्पताम् ॥
(ऋषभश्चं, चत्वारिंशच्चं) ॥ १० ॥

एका च मे तिस्रश्चं मे पञ्चं च मे सप्त चं मे नवं च म एकांदश च मे त्रयोंदश च मे पञ्चंदश च मे सप्तदंश च मे नवंदश च म एकंविंशतिश्च मे त्रयोंविंशतिश्च मे पञ्चंविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवंविंशतिश्च म एकंत्रिंशच्च मे त्रयंस्त्रिंशच्च (१) मे चतंस्रश्च मेऽष्टौ चं मे द्वादंश च मे षोडंश च मे विंशतिश्चं मे चतुंर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्चं मे चतुंश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचंत्वारिंशच्च मे वाजंश्च प्रसवश्चां-पिजश्च क्रतुंश्च सुवंश्च मूर्धा च व्यश्नियश्चा-(२)-ऽऽन्त्यायनश्चान्त्यंश्च भौवनश्च भुवंनश्चाधिंपतिश्च ॥
(त्रयंस्त्रिंशच्च, व्यश्नियश्चै,-कांदश च) ॥ ११ ॥

वाजप्रसवीयहोमः ॥ १, ३ अनुष्टुप्; २, ४-५, ८ त्रिष्टुप्; ६-७ विराट् । अग्निर्ऋषिः ।

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतंस्रो वा परावतः । वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावंतु ॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिंद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा ऽऽ गंमन्तु विश्वंमस्तु द्रविंणं वाजो अस्मे ॥

वाजंस्य प्रसवं देवा रथैर्याता हिरण्ययैः । अग्निरिन्द्रो बृहस्पतिर्मरुतः सोमंपीतये ॥
वाजेवाजे ऽवत वाजिनो नो धनेषु (१) विप्रा अमृता ऋतज्ञाः
अस्य मध्वः पिबत मादयंध्वं तृप्ता यांत पथिभिर्देवयानैः ॥
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवाᳬ ऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजंस्य हि प्रसवो नन्नंमीति विश्वा आशा वाजंपतिर्भवेयम् ॥
पयः पृथिव्यां पय ओषंधीषु पयों दिव्यन्तरिंक्षे पयों धाम् ।
पयंस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥
सं मां सृजामि पयंसा घृतेन सं मां सृजाम्यप (२) ओषंधीभिः । सोऽहं वाजंᳬ सनेयमग्ने ॥
नक्तोषासा समंनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬ समीची ।
द्यावा क्षामा रुक्मो अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥
समुद्रोऽसि नभंस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मां वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मां वाहि स्वाहा ऽवस्युरंसि दुवंस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मां (३) वाहि स्वाहा ॥
(धनेषु,-पो, मा, द्वे चं) ॥ १२ ॥

अग्नियोगः, पुनश्चितिश्च ॥ त्रिष्टुप्; ३ विराट्स्थाना; ५ शक्वरी; ६ जगती; ११, १३ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

अग्निं युनज्मि शवंसा घृतेनं दिव्यᳬ सुंपर्णं वयंसा बृहन्तंम् ।
तेनं वयं पंतेम ब्रध्नस्यं विष्टपᳬ सुवो रुहाणा अधि नाकं उत्तमे ॥
इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणो याभ्याᳬ रक्षाᳬस्यपहᳬस्यंग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतांमु लोकं यत्रर्षंयः प्रथमजा ये पुंराणाः ॥
चिदंसि समुद्रयोनिरिन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावां ।
हिरंण्यपक्षः शकुनो भुरण्युर्महान्त्सधस्थे ध्रुव (१) आ निषंत्तः ॥
नमंस्ते अस्तु मा मां हिᳬसीर्विश्वंस्य मूर्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः ।
समुद्रे ते हृदंयमन्तरायुर्द्यावांपृथिवी भुवंनेष्वर्पिते ॥
उद्नो दंत्तोदधिं भिन्त दिवः पर्जन्यांदन्तरिंक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याऽवत ।
दिवो मूर्धाऽसिं पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषंधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रथा नमंस्पथे ॥
येनर्षंयस्तपंसा सत्र-(२)-मासतेन्धांना अग्निᳬ सुवंराभरंन्तः ।
तस्मिन्नहं नि दंधे नाके अग्निमेतं यमाहुर्मनंवः स्तीर्णबंर्हिषम् ॥
तं पत्नींभिरनुं गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृंभिरुत वा हिरंण्यैः ।
नाकं गृह्णानाः सुंकृतस्यं लोके तृतीयें पृष्ठे अधिं रोचने दिवः ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पंतिश्चेकिंतानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहिंतो दविंद्युतदधस्पदं कृणुते (३) ये पृंतन्यवंः ॥
अयमग्निर्वीरतंमो वयोधाः संहस्रियों दीप्यतामप्रंयुच्छन् ।
विभ्राजंमानः सरिरस्य मध्य उप प्र यांत दिव्यानि धामं ॥
सं प्र च्यंवध्वमनु सं प्र यातावग्ने पथो देवयानांन् कृणुध्वम् ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तंरस्मिन् विश्वे देवा यजंमानश्च सीदत ॥
येनां सहस्रं वहंसि येनांग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह देवयानो य (४) उंत्तमः ॥
उद्बुंध्यस्वाग्ने प्रतिं जागृह्येनमिष्टापूर्ते सᳬ सृंजेथामयं चं ।
पुनंः कृण्वᳬस्त्वा पितरं युवांनमन्वातांᳬसीत् त्वयि तन्तुंमेतम् ॥
अयं ते योनिंर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः । तं जानन्नंग्न आ रोहाथां नो वर्धया रयिम् ॥
(ध्रुवः, सप्त, कृणुते, यः, सप्तत्रिंशच्च) ॥ १३ ॥

विहव्यानेष्टकोपधानम् ॥ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

ममांग्ने वर्चो विहवेष्वंस्तु वयं त्वेन्धांनास्तनुवं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतंस्रस्त्वयाऽध्यंक्षेण पृतंना जयेम ॥
ममं देवा विंहवे संन्तु सर्व इन्द्रांवन्तो मरुतो विष्णुंरग्निः ।
ममान्तरिंक्षमुरु गोपमंस्तु मह्यं वातंः पवतां कामे अस्मिन् ॥
मयिं देवा द्रविंणमा यंजन्तां मय्याशीरंस्तु मयिं देवहूंतिः ।
दैव्या होतांरा वनिषन्त (१) पूर्वेऽरिंष्टाः स्याम तनुवां सुवीराः ॥
मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याऽऽकूंतिः सत्या मनंसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधिं वोचता मे ॥
देवीः षडुर्वीरुरु णंः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हांस्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रंधाम द्विषते सोंम राजन् ॥
अग्निर्मन्युं प्रंतिनुदन् पुरस्ता-(२)-ददंब्धो गोपाः परिं पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्तेऽमैषां चित्तं प्रबुधा वि नेंशत् ॥
धाता धांतृणां भुवंनस्य यस्पतिर्देवᳬ संवितारंमभिमातिषाहंम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजंमानं न्यर्थात् ॥
उरुव्यचां नो महिषः शर्म यᳬसदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुंरुक्षु ।
स नंः प्रजायै हर्यश्व मृडयेन्द्र मा (३) नो रीरिषो मा परां दाः ॥

ये नंः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामवं बाधामहे तान् ।
वसंवो रुद्रा आंदित्या उंपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमंक्रन् ॥
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतों हवामहे यो गोजिद्धनजिदंश्वजिद्यः ।
इमं नो यज्ञं विंहवे जुंषस्वास्य कुंर्मो हरिवो मेदिनं त्वां ॥
(वनिषन्त, पुरस्ता, न्मा, त्रिचंत्वारिंशच्च) ॥ १४ ॥

अश्वमेधसम्बन्धिवाग्यानुवाक्याः ॥ उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती; ८ पङ्क्तिः; १४ बृहती; २१-२२ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेंतसो यं पाञ्चंजन्यं बहवंः समिन्धते ।
विश्वंस्यां विशि प्रविविशिवाᳬसंमीमहे स नो मुञ्चत्वᳬहंसः ॥
यस्येदं प्राणन्निमिषद्यदेजंति यस्यं जातं जनंमानं च केवंलम् ।
स्तौम्यग्निं नांथितो जोंहवीमि स नो मुञ्चत्वᳬहंसः ॥
इन्द्रंस्य मन्ये प्रथमस्य प्रचेंतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उप मामुपागुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमुप गन्ता (१) स नो मुञ्चत्वᳬहंसः ॥
यः संग्रामं नयंति सं वशी युधे यः पुष्टानिं सᳬसृजतिं त्रयाणि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोंहवीमि स नो मुञ्चत्वᳬहंसः ॥
मन्वे वां मित्रावरुणा तस्यं वित्तᳬ सत्यौजसा दृᳬहणा यं नुदेथे ।
या राजांनᳬ सरथं याथ उंग्रा ता नो मुञ्चतमागंसः ॥
यो वाᳬ रथं ऋजुरंश्मिः सत्यधर्मा मिथु चरंन्तमुपयातिं दूषयंन् ।
स्तौमि (२) मित्रावरुंणा नाथितो जोंहवीमि तौ नो मुञ्चतमागंसः ॥
वायोः संवितुर्विदथांनि मन्महे यावात्मन्वद्बिभृतो यौ च रक्षंतः ।
यौ विश्वंस्य परिभू बंभूवतुस्तौ नो मुञ्चतमागंसः ॥
उप श्रेष्ठा न आशिषों देवयोर्धर्मे अस्थिरन् ।
स्तौमि वायुᳬ संवितारं नाथितो जोंहवीमि तौ नो मुञ्चतमागंसः ॥
रथीतमौ रथीनामंह्व ऊतये शुभं गमिंष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ।
ययोः-(३)-वां देवौ देवेष्वनिशितमोजस्तौ नो मुञ्चतमागंसः ॥
यदयांतं वहतुᳬ सूर्यायास्त्रिचक्रेणं सᳬसदमिच्छमांनौ ।
स्तौमि देवावश्विनौ नाथितो जोंहवीमि तौ नो मुञ्चतमागंसः ॥
मरुतां मन्वे अधिं नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनंसः ।

त्रिग्ममायुधं वीडितꣳ सहस्वद्दिव्यꣳ शर्धः (४) पृतनासु जिष्णु ।
स्तौमि देवान्मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥
देवानां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून्हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥
यदिदं माऽभिशोचति पौरुषेयेण दैव्येन ।
स्तौमि विश्वान्देवान्नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥
अनु नोऽद्यानुमति*-रन्वि-(५)-दनुमते त्वं*-वैश्वानरो न ऊत्या*-पृष्टो दिवि*-॥
ये अप्रथेताममितेभिरोजोभिर्ये प्रतिष्ठे अभवतां वसूनाम् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमꣳहसः ॥
उर्वी रोदसी वरिवः कृणोतं क्षेत्रस्य पत्नी अधि नो ब्रूयातम् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमꣳहसः ॥
यत्ते वयं पुरुषत्रा यविष्ठाविद्वाꣳसश्चकृमा कच्चना-(६)-ऽऽगः ।
कृधी स्वस्माꣳ अदितेरनागा व्येनाꣳसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥
यथा ह तद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवा त्वमस्मत्प्र मुञ्चा व्यꣳहः प्रातार्यग्ने प्रतरां न आयुः ॥
(मन्ता, स्तौमि, यदो, वायो, अनु, यत्, चतुर्विꣳशतिश्च) ॥ १५ ॥

[अग्नाविष्णू ११८ । ज्यैष्ठ्यं च ११४ । शं च-११८ ।-मू-११४ ।-वाजा ९८ ।ऽग्नि-१२१ ।-युञ्जे-८४ ।-रश्मिः ६६ ।ऽग्नि-५८-र्मूर्धा १० । एषा १११ । वाचो १५२ ।ऽग्ने २३० । ममा-१६३ ।-ऽग्ने: ३३४ ।- पञ्चदश ॥ २०१८ ॥]

[॥ इति चतुर्थकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

[युञ्जानो २२९३ । विष्णो-२४२८ । अपां १८४४ । रश्मि-१८८७ -नमो १२२४ । ऽश्म-२३२१ । अग्नाविष्णू २०१८ । (सप्त ॥ ७ ॥ १४१०५)]

॥ इति चतुर्थं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥

(४।७।१५-१६) तै. सं. ४।३।११।११-१२ (४।७।१०-१८) तै. सं. १।५।११।६,४

अथ पञ्चमं काण्डम् ।

उख्याग्निकथनम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

अभ्र्यादानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सावित्राणि जुहोति प्रसूत्यै चतुर्गृहीतेन जुहोति चतुष्पादः पशवः पशूनेवाव रुन्धे चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति छन्दाꣳसि देवेभ्योऽपाक्रामन् न वोऽभागानि हव्यं वक्ष्याम इति तेभ्य एतच्चतुर्गृहीतमधारयन् पुरोऽनुवाक्यायै याज्यायै देवतायै वषट्काराय यच्चतुर्गृहीतं जुहोति छन्दाꣳस्येव तत्प्रीणाति तान्यस्य प्रीतानि देवेभ्यो हव्यं वहन्ति यं कामयेत (१) पापीयान्स्यादित्येकैकं तस्य जुहुयादाहुतीभिरेवैनमप गृह्णाति पापीयान्भवति यं कामयेत वसीयान्स्यादिति सर्वाणि तस्यानुद्रुत्य जुहुयादाहुत्यैवैनमभि क्रमयति वसीयान्भवत्यथो यज्ञस्यैवैषाऽभिक्रान्ति-रेति वा एष यज्ञमुखादृद्ध्या योऽग्नेर्देवताया एत्यष्टावेतानि सावित्राणि भवन्त्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रो (२) ऽग्निस्तेनैव यज्ञमुखादृद्ध्या अग्नेर्देवतायै नैत्य-ष्टौ सावित्राणि भवन्त्याहुतिर्नवमी त्रिवृतमेव यज्ञमुखे वि यातयति यदि कामयेत छन्दाꣳसि यज्ञयशसेनार्पयेयमित्यृचमन्तमां कुर्याच्छन्दाꣳस्येव यज्ञयशसेनार्पयति यदि कामयेत यजमानं यज्ञयशसेनार्पयेयमिति यजुरन्तमं कुर्याद्यजमानमेव यज्ञयशसेनार्पयत्यृ-चा स्तोमꣳ समर्द्धये-त्या-(३)-ह समृद्ध्यै चतुर्भिरभ्रिमा दत्ते चत्वारि छन्दाꣳसि छन्दोभिरेव देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्याह प्रसूत्या अग्निर्देवेभ्यो निलायत स वेणुं प्राविशत् स एतामूतिमनु समचरद्वेणोः सुषिरꣳ सुषिराऽभ्रिर्भवति सयोनित्वाय स यत्रयत्रावसत् तत्कृष्णमभवत् कल्माषी भवति रूपसमृद्ध्या उभयतः क्ष्णूर्भवतीतश्चा-(४)-मुतश्चार्कस्यावरुद्ध्यै व्याममात्री भवत्येतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्यसम्मिताऽपरिमिता भवत्यपरिमितस्यावरुद्ध्यै यो वनस्पतीनां फलग्रहिः स एषां वीर्यावान् फलग्रहिर्वेणुर्वैणवी भवति वीर्यस्यावरुद्ध्यै ॥ (कामयेत, गायत्रो, ऽर्धयेति, च, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ १ ॥

मृदाहरणविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

व्यृद्धं वा एतद्यज्ञस्य यदयजुष्केण क्रियत इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमा दत्ते यजुष्कृत्यै यज्ञस्य समृद्ध्यै प्रतूर्तं वाजिन्ना द्रवेत्यश्वमभि दधाति रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे युञ्जाथाꣳ रासभं युवमिति गर्दभमसत्येव गर्दभं प्रति ष्ठापयति तस्मादश्वाद्गर्दभोऽसत्तरो योगेयोगे तवस्तरमित्याह (१) योगेयोग एवैनं युङ्क्ते वाजेवाजे हवामह इत्याहान्नं वै वाजोऽन्नमेवाव रुन्धे सखाय इन्द्रमूतय इत्याहेन्द्रियमेवाव रुन्धेऽग्निर्देवेभ्यो निलायत तं प्रजापतिरन्वविन्दत् प्राजापत्योऽश्वोऽश्वेन सं भरत्यनुवित्त्यै पापवस्यसं वा एतत् क्रियते यच्छ्रेयसा च पापीयसा च समानं कर्म कुर्वन्ति पापीयान् (२) ह्यश्वाद्गर्दभोऽश्वं पूर्वं नयन्ति पापवस्यसस्य व्यावृत्त्यै तस्माच्छ्रेयाꣳसं पापीयान् पश्चादन्वेति

बहुर्वै भवतो भ्रातृव्यो भवतीव खलु वा एष योऽग्निं चिनुते वज्रिन्नश्वः प्रत्यवरोहन्नाक्रमणमग्निमित्याह वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमव क्रामति रुद्रस्य गाणपत्यादित्याह रौद्रा वै पशवो रुद्रादेव (३) पशून् निर्याच्याऽऽत्मने कर्म कुरुते पूष्णा सयुजा सहेत्याह पूषा वा अध्वनाꣳ सन्नेता समष्ट्यै पुरीषायतनो वा एष यदग्निरङ्गिरसो वा एतमग्रे देवतानाꣳ समभरन् पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेहीत्याह सायतनमेवैनं देवताभिः सं भरत्य-ग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम इत्याह येन (४) सङ्गच्छते वाजमेवास्य वृङ्क्ते प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निः सम्भृत्य इत्याहुरियं वै प्रजापतिस्तस्या एतच्छ्रोत्रं यद्वल्मीकोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्याम इति वल्मीकवपामुप तिष्ठते साक्षादेव प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निꣳ सं भरत्य-ग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भराम इत्याह येन सङ्गच्छते वाजमेवास्य वृङ्क्ते ऽन्वग्निरुषसामग्र-(५)-मख्यदित्याहानुख्यात्यै आगत्य वाज्यध्वन आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमित्याहेच्छत्येवैनं पूर्वया विन्दत्युत्तराभ्यामा क्रमयति प्रतिष्ठित्या अनुरूपाभ्यां तस्मादनुरूपाः पशवः प्र जायन्ते द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमित्याहैभ्यो वा एतं लोकेभ्यः प्रजापतिः समैरयद् रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे वज्री वा (६) एष यदश्वो दद्भिरन्यतोदद्भ्यो भूयाँल्लोमभिरुभयादद्भ्यो यं द्विष्यात् तमधस्पदं ध्यायेद्वज्रेणैवैनꣳ स्तृणुते ॥ (आह, पापीयान्, रुद्रादेव, येना,-ऽग्र, वज्री वै, सप्तदश च) ॥ २ ॥

अथाक्रमणादि मृत्संस्कारः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

उत्क्रामोदक्रमीदिति द्वाभ्यामुत्क्रमयति प्रतिष्ठित्या अनुरूपाभ्यां तस्मादनुरूपाः पशवः प्र जायन्तेऽप उप सृजति यत्र वा आप उपगच्छन्ति तदोषधयः प्रति तिष्ठन्त्योषधीः प्रतितिष्ठन्तीः पशवोऽनु प्रति तिष्ठन्ति पशून् यज्ञो यज्ञं यजमानो यजमानं प्रजास्तस्मादप उप सृजति प्रतिष्ठित्यै यदध्वर्युरनग्नावाहुतिं जुहुयादन्धोऽध्वर्युः (१) स्याद्रक्षाꣳसि यज्ञꣳ हन्युर्हिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निवत्येव जुहोति नान्धोऽध्वर्युर्भवति न यज्ञꣳ रक्षाꣳसि घ्नन्ति जिघर्म्यग्निं मनसा घृतेनेत्याह मनसा हि पुरुषो यज्ञमभिगच्छति प्रतिक्ष्यन्तं भुवनानि विश्वेत्याह सर्वꣳ ह्येष प्रत्यङ् क्षेति पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तमित्याहाल्पो ह्येष जातो महान् (२) भवति व्यचिष्ठमन्नꣳ रभसं विदानमित्याहान्नमेवास्मै स्वदयति सर्वमस्मै स्वदते य एवं वेदा-ऽऽ त्वा जिघर्मि वचसा घृतेनेत्याह तस्माद्यत् पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदत्य-रक्षसेत्याह रक्षसामपहत्यै मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निरित्याहापचितिमेवास्मिन् दधात्य-पचितिमान् भवति य एवं (३) वेद मनसा त्वै तामाप्तुमर्हति यामध्वर्युरनग्नावाहुतिं जुहोति मनस्वतीभ्यां जुहोत्याहुत्योराप्त्यै द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै यज्ञमुखेयज्ञमुखे वै क्रियमाणे यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्त्येतर्हि खलु वा एतद्यज्ञमुखं यर्ह्येनदाहुतिरश्नुते परि लिखति रक्षसामपहत्यै तिसृभिः परि लिखति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्माद्रक्षाꣳस्यप हन्ति (४) गायत्रिया परि लिखति तेजो वै गायत्री तेजसैवैनं परि गृह्णाति त्रिष्टुभा परि लिखतीन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियेणैवैनं परि गृह्णात्य-नुष्टुभा परि लिखत्यनुष्टुप् सर्वाणि छन्दाꣳसि परिभूः पर्याप्त्यै मध्यतोऽनुष्टुभा वाग्वा अनुष्टुप् तस्मान्मध्यतो वाचा

वदामो गायत्रिया प्रथमया परि लिखत्यथानुष्टुभाऽथ त्रिष्टुभा तेजो वै गायत्री (५) यज्ञोऽनुष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुप् तेजसा चैवेन्द्रियेण चोभयतो यज्ञं परि गृह्णाति ॥ (अन्धोऽध्वर्युः,-महान्, भवति य एवं, हन्ति, त्रिष्टुभा तेजो वै गायत्री, त्रयोदश च) ॥ ३ ॥

मृत्खननं, वल्मीकवपो, सम्भरणं च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति खनति प्रसूत्या अथो धूममेवैतेन जनयति ज्योतिष्मन्तं त्वाऽग्ने सुप्रतीकमित्याह ज्योतिरेवैतेन जनयति सोऽग्निर्जातः प्रजाः शुचाऽऽर्पयत् तं देवा अर्धर्चेनाशमयञ्छिवं प्रजाभ्योऽहिꣳसन्तमित्याह प्रजाभ्य एवैनꣳ शमयति द्वाभ्यां खनति प्रतिष्ठित्या अपां पृष्ठमसीति पुष्करपर्णमा (१) हरत्यपां वा एतत् पृष्ठं यत् पुष्करपर्णꣳ रूपेणैवैनदा हरति पुष्करपर्णेन सं भरति योनिर्वा अग्नेः पुष्करपर्णꣳ सयोनिमेवाग्निꣳ सं भरति कृष्णाजिनेन सं भरति यज्ञो वै कृष्णाजिनं यज्ञेनैव यज्ञꣳ सं भरति यद्ग्राम्याणां पशूनां चर्मणा सम्भरेद् ग्राम्यान् पशूञ्छुचाऽर्पयेत् कृष्णाजिनेन सं भरत्यारण्यानेव पशून् (२) शुचाऽर्पयति तस्मात् समावत् पशूनां प्रजायमानानामारण्याः पशवः कनीयाꣳसः शुचा ह्यृता लोमतः सं भरत्यतो ह्यस्य मेध्यं कृष्णाजिनं च पुष्करपर्णं च सꣳ स्तृणातीयं वै कृष्णाजिनमसौ पुष्करपर्णमाभ्यामेवैनमुभयतः परि गृह्णात्य-ग्निर्देवेभ्यो निलायत तमथर्वाऽन्वपश्यदथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्न इत्या-(३)-ह य एवैनमन्वपश्यत् तेनैवैनꣳ सं भरति त्वामग्ने पुष्करादधीत्याह पुष्करपर्णे ह्येनमुपश्रितमविन्दत् तमु त्वा दध्यङ्ङृषिरित्याह दध्यङ् वा आथर्वणस्तेजस्व्यासीत् तेज एवास्मिन् दधाति तमु त्वा पाथ्यो वृषेत्याह पूर्वमेवोदितमुत्तरेणाभि गृणाति (४) चतसृभिः सं भरति चत्वारि छन्दाꣳसि छन्दोभिरेव गायत्रीभिर्ब्राह्मणस्य गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुग्भी राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यो यं कामयेत वसीयान्स्यादित्युभयीभिस्तस्य सं भरेत् तेजश्चैवास्मा इन्द्रियं च समीची दधात्य-ष्टाभिः सं भरत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तꣳ सं भरति सीद होतरित्या-(५)-ह देवता एवास्मै सꣳ सादयति नि होतेति मनुष्यान्सꣳ सीदस्वेति वयाꣳसि जनिष्वा हि जेन्यो अग्रे अह्नामित्याह देवमनुष्यानेवास्मै सꣳसन्नान् प्र जनयति ॥ (आ,-ऽरण्यानेव पशून्,-निरमन्थदग्न इत्या, गृणाति, होतरिति, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ ४ ॥

सम्भृतमृदो वशभूमौ समाहरणम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

क्रूरमिव वा अस्या एतत् करोति यत् खनत्यप उप सृजत्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्यै शुचꣳ शमयति सं ते वायुर्मातरिश्वा दधात्वित्याह प्राणो वै वायुः प्राणेनैवास्यै प्राणꣳ सं दधाति सं ते वायुरित्याह तस्माद्वायुप्रच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते तस्मै च देवि वषडस्तु (१) तुभ्यमित्याह षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव वृष्टिं दधाति तस्मात् सर्वानृतून् वर्षति यद्वषट्कुर्याद्यातयामाऽस्य वषट्कारः स्याद्यन्न वषट्कुर्याद् रक्षाꣳसि यज्ञꣳ हन्युर्वडित्याह परोक्षमेव वषट् करोति नास्य यातयामा वषट्कारो भवति न यज्ञꣳ रक्षाꣳसि घ्नन्ति सुजातो ज्योतिषा सहेत्यनुष्टुभोप नह्यत्यनुष्टुप् (२) सर्वाणि छन्दाꣳसि खलु वा अग्नेः प्रिया तनूः प्रिययैवैनं तनुवा परि दधाति वेदुको वासो भवति य एवं वेद वारुणो वा अग्निरुपनद्ध उदु तिष्ठ स्वध्वरोर्ध्व ऊ षु ण ऊतय इति सावित्रीभ्यामुत् तिष्ठति सवितृप्रसूत एवास्योर्ध्वां

वरुणमेनिमुत् सृजति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै स जातो गर्भो असि (२) रोदस्योरित्याहेमे वै रोदसी तयोरेष गर्भो यदग्निस्तस्मादेवमाहा—ग्ने चारुर्विभृत ओषधीष्वित्याह यदा ह्येतं विभरन्त्यथ चारुतरो भवति प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गा इत्याहौषधयो वा अस्य मातरस्ताभ्य एवैनं प्र च्यावयति स्थिरो भव वीडुङ्ग इति गर्दभ आ सादयति (४) सं नह्यत्येवैनमेतया स्थेम्ने गर्दभेन सं भरति तस्माद् गर्दभः पशूनां भारभारितमो गर्दभेन सं भरति तस्माद्गर्दभोऽप्यनालेशेऽत्यन्यान् पशून् मेद्यत्यन्न२ँ ह्येने-नार्क२ँ संभरन्ति गर्दभेन सं भरति तस्माद् गर्दभो द्विरेताः सन् कनिष्ठं पशूनां प्र जायतेऽग्निर्ह्यस्य योनिं निर्दहति प्रजासु वा एष एतर्ह्यारूढः (५) स ईश्वरः प्रजाः शुचा प्रदहः शिवो भव प्रजाभ्य इत्याह प्रजाभ्य एवैन२ँ शमयति मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिर इत्याह मानव्यो हि प्रजा मा द्यावापृथिवी अभि शूशुचो माऽन्तरिक्षं मा वनस्पतीनित्याहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति प्रैतु वाजी कनिक्रददित्याह वाजी ह्येषं नानदद्रासभः पत्वेत्या-(६)-ह रासभ इति ह्येतमृषयोऽवदन् भरन्नग्निं पुरीष्यमित्याहाग्नि२ँ ह्येष भरति मा पाद्यायुषः पुरेत्याहाऽऽयुरेवास्मिन् दधाति तस्माद्गर्दभः सर्वमायुरेति तस्माद्गर्दभे पुरा-ऽऽयुषः प्रमीते बिभ्यति वृषाऽग्निं वृषणं भरन्नित्याह वृषा ह्येष वृषाऽग्निर—पां गर्भ२ँ (७) समुद्रिय-मित्याहापा२ँ ह्येष गर्भो यदग्नि—रग्न आ याहि वीतय इति वा इमौ लोकौ व्यैतामग्न आ याहि वीतय इति यदाहानयोर्लोकयोर्वीत्यै प्रच्युतो वा एष आयतनादगतः प्रतिष्ठा२ँ स एतर्ह्यध्वर्युं च यजमानं च ध्या-यत्यृत२ँ सत्यमित्याहेयं वा ऋतमसौ (८) सत्यमनयोरेवैनं प्रति ष्ठापयति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यज-मानो वरुणो वा एष यजमानमभ्येति यदग्निरुपनद्ध ओषधयः प्रति गृभ्णीताग्निमेतमित्याह शान्त्यै व्यस्यन् विश्वा अमतीररातीरित्याह रक्षसामपहत्यै निषीदन् नो अप दुर्मति२ँ हनदित्याह प्रतिष्ठित्यै ओषधयः प्रति मोदध्व-(९)-मेनमित्याहौषधयो वा अग्नेर्भागधेयं ताभिरेवैन२ँ समर्धयति पुष्पावतीः सुपिप्पला इत्याह तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्त्य—यं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्न२ँ सधस्थमाऽसददित्याह याभ्य एवैनं प्रच्यावयति तास्वेवैनं प्रति ष्ठापयति द्वाभ्यामुपावहरति प्रतिष्ठित्यै ॥ (अस्य,-नृषद्,-वति, सादयत्या,-रूढः, पत्वेति गर्भ,-मसौ, मोदध्वं, द्विचत्वारि२ँशच्च) ॥ ५ ॥

उखानिर्माणम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

वारुणो वा अग्निरुपनद्धो वि पाजसेति वि स्र२ँसयति सवितृप्रसूत एवास्य विषूचीं वरुणमेनिं वि सृजत्य—प उप सृजत्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुच२ँ शमयति तिसृभिरुप सृजति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुच२ँ शमयति मित्रः स२ँसृज्य पृथिवीमित्याह मित्रो वै शिवो देवानां तेनैवै-(१)-न२ँ स२ँ सृजति शान्त्यै यद्ग्राम्याणां पात्राणां कपालैः स२ँसृजेद्ग्राम्याणि पात्राणि शुचाऽर्पयेदर्म-कपालैः स२ँ सृजत्येतानि वा अनुपजीवनीयानि तान्येव शुचाऽर्पयति शर्कराभिः स२ँ सृजति धृत्या अथो शन्त्वाया—जलोमैः स२ँ सृजत्येषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यदजा प्रिययैवैनं तनुवा स२ँ सृजत्यथो तेजसा कृष्णाजिनस्य लोमभिः स२ँ (२) सृजति यज्ञो वै कृष्णाजिनं यज्ञेनैव यज्ञ२ँ स२ँसृजति रुद्राः सम्भृत्य पृथिवीमित्याहैता वा एतं देवता अग्रे समभरन् ताभिरेवैन२ँ सम्भरति मखस्य शिरोऽसी-

२६ (तै. सं.)

त्याह यज्ञो वै मखस्तस्यैतच्छिरो यदुखा तस्मादेवमाह यज्ञस्य पदे स्थ इत्याह यज्ञस्य ह्येते (३) पदे अथो प्रतिष्ठित्यै प्रान्याभिर्यच्छत्यन्वन्यैर्मन्त्रयते मिथुनत्वाय त्र्युद्धिं करोति त्रय इमे लोका एषां लोकानामाप्त्यै छन्दोभिः करोति वीर्यं वै छन्दा२ँसि वीर्येणैवैनां करोति यजुषा बिलं करोति व्यावृत्त्यै इयतीं करोति प्रजापतिना यज्ञमुखेन सम्मिताम् द्विस्तनां करोति द्यावापृथिव्योर्दोहाय चतुःस्तनां करोति पशूनां दोहाया—ष्टास्तनां करोति छन्दसां दोहाय नवाश्रिमभिचरतः (४) कुर्यात् त्रिवृतमेव वज्र२ँ सम्भृत्य भ्रातृव्याय प्र हरति स्तृत्यै कृत्वाय सा महीमुखामिति नि दधाति देवता-स्वेवैनां प्रति ष्ठापयति ॥ (तेनैव, लोमभिः स,-मेव, अभिचरत, एकविंशतिश्च) ॥ ६ ॥

धूपनादिरुखासंस्कारः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सप्तभिर्धूपयति सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा शीर्षन्नेव यज्ञस्य प्राणान् दधाति तस्मात् सप्त शीर्षन् प्राणा अश्वशकेन धूपयति प्राजापत्यो वा अश्वः सयोनित्वाया—दितिस्त्वेत्याहेयं वा अदितिरदित्यैवादित्यां खनत्यस्या अक्रूरङ्काराय न हि स्वः स्व२ँ हिनस्ति देवानां त्वा पत्नीरित्याह देवानां (१) वा एतां पत्नयोऽग्रेऽकुर्वन् ताभिरेवैनां दधाति धिषणास्त्वेत्याह विद्या वै धिषणा विद्या-भिरेवैनामभीन्धे ग्नास्त्वेत्याह छन्दा२ँसि वै ग्नाश्छन्दोभिरेवैना२ँ श्रपयति वरूत्रयस्त्वेत्याह होत्रा वै वरूत्रयो होत्राभिरेवैनां पचति जनयस्त्वेत्याह देवानां वै पत्नी-(२)-र्जनयस्ताभिरेवैनां पचति षड्भिः पचति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनां पचति द्विः पचन्त्वित्याह तस्माद् द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते वारुण्युखा-ऽभीद्धा मैत्रियोपैति शान्त्यै देवस्त्वा सवितोद्वपत्वित्याह सवितृप्रसूत एवैनां ब्रह्मणा देवताभिरुद्वपत्य—पद्यमाना पृथिव्याशा दिश आ पृण-(३)-त्याह तस्मादग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भात्यु—त्तिष्ठ बृहती भवो-र्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वमित्याह प्रतिष्ठित्यै असुर्यं पात्रमनाच्छृण्णमा च्छृणत्ति देवत्राऽक—रजक्षीरेणाऽऽ-च्छृणत्ति परमं वा एतत् पयो यदजक्षीरं परमेणैवैनां पयसाऽऽच्छृणत्ति यजुषा व्यावृत्त्यै छन्दो-भिरा च्छृणत्ति छन्दोभिर्वा एषा-(४)-क्रियते छन्दोभिरेव छन्दा२ँस्या च्छृणत्ति ॥ (आह देवानां, वै पत्नीः, पृण, वा, षट् च) ॥ ७ ॥

वह्निपशवः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

एकविंशत्या माषैः पुरुषशीर्षमच्छैत्यमेध्या वै माषा अमेध्यं पुरुषशीर्षममेध्यैरेवास्यामेध्यं निरवदाय मेध्यं कृत्वाऽऽहरत्ये—कविंशतिर्भवन्त्येकविंशो वै पुरुषः पुरुषस्याऽऽप्त्यै व्यृद्धं वा एतत् प्राणैर-मेध्यं यत् पुरुषशीर्ष२ँ सप्तधा वितृण्णां वल्मीकवपां प्रति नि दधाति सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणैरेवैनत् समर्धयति मेध्यत्वाय यावन्तो (१) वै मृत्युबन्धवस्तेषां यम आधिपत्यं परीयाय यमगाथाभिः परि गायति यमादेवैनद्वृङ्क्ते तिसृभिः परि गायति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनल्लोकेभ्यो वृङ्क्ते तस्माद्गायते न देयं गाथा हि तद्वृङ्क्ते ऽग्निभ्यः पशूना लभते कामा वा अग्नयः कामानेवाव रुन्धे यत् पशून् नाऽऽलभेतानवरुद्धा अस्य (२) पशवः स्युर्यत् पर्यग्निकृतानुत्सृजेद्यज्ञवेशसं कुर्याद्यत् स२ँस्थापयेद्यातयामानि शीर्षाणि स्युर्यत् पशूनालभते तेनैव पशूनव रुन्धे यत् पर्यग्निकृतानुत्सृजति शीर्ष्णामयातयामत्वाय

प्राजापत्येन स२ँ स्थापयति यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञ एव यज्ञं प्रति ष्ठापयति प्रजापतिः प्रजा असृजत स रिरि-चानोऽमन्यत स एता आप्रीरपश्यत् ताभिर्वै स मुखत (१) आत्मानमाऽप्रीणीत यदेता आप्रियो भवन्ति यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञमेवैताभिर्मुखत आ प्रीणात्य—परिमितछन्दसो भवन्त्यपरिमितः प्रजापतिः प्रजा-पतेराप्त्यै ऊनातिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्यै लोमशं वै नामैतच्छन्दः प्रजापतेः पशवो लोमशाः पशूनेवाव रुन्धे सर्वाणि वा एता रूपाणि सर्वाणि रूपाण्यग्नौ चित्ये क्रियन्ते तस्मादेता अग्नेश्चित्यस्य (२) भवन्त्ये—कविंशतिं सामिधेनीरन्वाह रुग्वा एकविंशो रुचमेव गच्छत्यथो प्रतिष्ठामेव प्रतिष्ठा ह्येकविंशश्च—तुर्विंशतिमन्वाह चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानरमव रुन्धे पराचीरन्वाह पराङिव हि सुवर्गो लोकः समास्त्वाऽग्न ऋतवो वर्धयन्त्वि-त्याह समाभिरेवाग्निं वर्धयत्यृ—(३)—तुभिः संवत्सरं विश्वा आ भाहि प्रदिशः पृथिव्या इत्याह तस्मा-दग्निः सर्वा दिशोऽनु वि भाति प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मादित्याह मृत्युमेवास्मादप नुदत्यु—द्वयं तमसस्परीत्याह पाप्मा वै तमः पाप्मानमेवास्मादप हन्त्यु—गन्म ज्योतिरुत्तममित्याहासौ वा आदित्यो ज्योतिरुत्तममादित्यस्यैव सायुज्यं गच्छति न संवत्सरस्तिष्ठति नास्य श्रीस्तिष्ठति यस्यैताः (४) क्रियन्ते ज्योतिष्मतीमुत्तमामन्वाह ज्योतिरेवास्मा उपरिष्टाद् दधाति सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै ॥ (यावन्तो, ऽस्य, मुखत, श्चित्यस्य, वर्धयत्या,-द्वियां,ऽष्टाविंशतिश्च) ॥ ८ ॥

इष्टयजनम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

षड्भिर्दीक्षयति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं दीक्षयति सप्तभिर्दीक्षयति सप्त छन्दा२ँसि छन्दोभिरेवैनं दीक्षयति विश्वो देवस्य नेतुरित्यनुष्टुभोत्तमया जुहोति वाग्वा अनुष्टुप् तस्मात् प्राणानां वागुत्तमै—कस्मादक्षरादनाप्तं प्रथमं पदं तस्माद्यद्वाचोऽनाप्तं तन्मनुष्या उप जीवन्ति पूर्णया जुहोति पूर्ण इव हि प्रजापतिः (१) प्रजापतेराप्त्यै न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापतिः प्रजा असृजत प्रजाना२ँ सृष्ट्यै यद-र्चिषि प्रवृञ्ज्याद्भूतमव रुन्धीत यदङ्गारेषु भविष्यदङ्गारेषु प्र वृणक्ति भविष्यदेवाव रुन्धे भविष्यद्धि भूयो भूताद् द्वाभ्यां प्र वृणक्ति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ब्रह्मणा वा एषा यजुषा सम्भृता यदुखा सा यद्भिद्येतार्तिमार्च्छे-(२)-द्यजमानो हन्येतास्य यज्ञो मित्रैतामुखां तपेत्याह ब्रह्म वै मित्रो ब्रह्मन्नेवैनां प्रति ष्ठापयति नाऽऽर्तिमार्च्छति यजमानो नास्य यज्ञो हन्यते यदि भिद्येत तैरेव कपालैः स२ँ सृजेत् सैव ततः प्रायश्चित्ति—र्यो गतश्रीः स्यान्मथित्वा तस्याव दध्याद्भूतो वा एष स स्वां (३) देवतामुपैति यो भूतिकामः स्याद्य उखायै सम्भवेत् स एव तस्य स्याद्धि ह्येष सम्भवत्येष वै स्वयम्भूर्नाम भवत्येवं यं कामयेत भ्रातृव्यमस्मै जनयेयमित्यन्यतस्तस्याऽऽहृत्याव दध्यात् साक्षादेवास्मै भ्रातृव्यं जनयत्य—म्बरीषादन्नकामस्याव दध्यादम्बरीषे वा अन्नं भ्रियते सयोन्येवान्न-(४)-मव रुन्धे मुञ्जानव दधा-त्यूर्ग्वै मुञ्जा ऊर्जमेवास्मा अपि दधात्य—ग्निर्देवेभ्यो निलायत स क्रुमुकं प्राविशत् क्रुमुकमव दधाति यदे-वास्य तत्र न्यक्तं तदेवाव रुन्ध आज्येन सं यौत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यदाज्यं प्रियेणैवैनं धाम्ना समर्-

धयत्यथो तेजसा (५) वैकङ्कतीमा दधाति भा एवाव रुन्धे शमीमयीमा दधाति शान्त्यै सीद त्वं मातुरस्या उपस्थ इति तिसृभिर्जातमुप तिष्ठते त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वाविदं गच्छत्यथो प्राणा-नेवाऽऽत्मन् धत्ते ॥ (प्रजापति,-र्न्यून, स्वां,-मेवान्नं, तेजसा, चतुस्त्रि२ँशच्च) ॥ ९ ॥

उखधारणम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

न ह स्म वै पुराऽग्निरपरशुवृक्णं दहति तदस्मै प्रयोग एवर्षिरस्वदयद्यदग्ने यानि कानि चेति समि-धमा दधात्यपरशुवृक्णमेवास्मै स्वदयति सर्वमस्मै स्वदते य एवं वेदौ—दुम्बरीमा दधात्यूर्ग्वा उदु-म्बर ऊर्जमेवास्मा अपि दधाति प्रजापतिरग्निमसृजत त२ँ सृष्ट२ँ रक्षा२ँस्य-(१)-जिघा२ँसन्स एतद्रा-क्षोघ्नमपश्यत् तेन वै स रक्षा२ँस्यपाहत यद्राक्षोघ्नं भवत्यग्नेरेव तेन जाताद्रक्षा२ँस्यप हन्त्या—श्वत्थीमा दधात्यश्वत्थो वै वनस्पतीना२ँ सपत्नसाहो विजित्यै वैकङ्कतीमा दधाति भा एवाव रुन्धे शमीम-यीमा दधाति शान्त्यै स२ँशितं मे ब्रह्मोदेषां बाहू अतिरमित्युत्तमे औदुम्बरी (२) वाचयति ब्रह्मणैव क्षत्र२ँ स२ँ श्यति क्षत्रेण ब्रह्म तस्माद्ब्राह्मणो राजन्यवानत्यन्यं ब्राह्मणं तस्माद्राजन्यो ब्राह्मणवानत्यन्य२ँ राजन्यं मृत्युर्वा एष यदग्निरमृत२ँ हिरण्य२ँ रुक्ममन्तरं प्रति मुञ्चतेऽमृतमेव मृत्योरन्तर्धत्त एकवि-२ँशतिनिर्बाधो भवत्येकविंशतिर्वै देवलोका द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य (३) एकवि२ँश एतावन्तो वै देवलोकास्तेभ्य एव भ्रातृव्यमन्तरेति निर्बाधैर्वै देवा असुरान् निर्बाधेऽकुर्वत तन्निर्बाधानां निर्बाधत्वं निर्बाधी भवति भ्रातृव्यानेव निर्बाधे कुरुते सावित्रिया प्रति मुञ्चते प्रसूत्यै नक्तोषासेत्युत्तरया ऽहोरात्राभ्यामेवैनमुद्यच्छते देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदा इत्याह प्राणा वै देवा द्रविणोदा अहोरात्राभ्यामेवैनमुद्यत्य (४) प्राणैर्दाधारा—ऽऽसीनः प्रति मुञ्चते तस्मादासीनाः प्रजाः प्र जायन्ते कृष्णाजिनमुत्तरं तेजो वै हिरण्यं ब्रह्म कृष्णाजिनं तेजसा चैवैनं ब्रह्मणा चोभयतः परि गृह्णाति षडुद्यामं शिक्यं भवति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनमुद्यच्छते यद् द्वादशोद्याम२ँ संवत्सरेणैव मौञ्जं भवत्यूर्ग्वै मुञ्जा ऊर्जैवैन२ँ स-(५)-मर्धयति सुपर्णोऽसि गरुत्मानित्यवेक्षते रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्या-चष्टे दिवं गच्छ सुवः पतेत्याह सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति ॥ (रक्षा२ँस्यौ,-दुम्बरी, आदित्य, उद्यत्य, सं, चतुर्विंशतिश्च) ॥ १० ॥

अश्वस्वामिनः प्रयाजयाज्याः ॥ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥
घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ता२ँ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥
ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा (१) देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥
एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥
अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वा५ (२) सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥
प्रथमा वा५ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥
आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञ५ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥
त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः (३)
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥
अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवा५ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥
प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥

(अभिव्रो, वा,-मस्त्वो, द्विचत्वारि५शच्च) ॥ ११ ॥

[सावित्राणि २०७ । व्यृद्ध-३१७ । युञ्-२६३ ।-देवस्य २०० । पूर्वं १९२ । वाजुना २२१ । सुमभि-२०६ । -२६बिन्
समा १२८ । पविद्र-२८४ ।-ने २०४ । समिद्ध १९२ ॥ एकादश ॥ ३०८१]

[॥ इति पञ्चमकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

चित्युपक्रमाभिधानम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

आसन्द्यां वह्निस्थापनं, वात्सप्रेणोपस्थानं च ॥ अग्निर्देवता ।

विष्णुमुखा वै देवाश्छन्दोभिरिमाँल्लोकाननपजय्यमभ्यजयन् यद्विष्णुक्रमान् क्रमते विष्णुरेव भूत्वा यजमानश्छन्दोभिरिमाँल्लोकाननपजय्यमभि जयति विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहेत्याह गायत्री वै पृथिवी त्रैष्टुभमन्तरिक्षं जगती द्यौरानुष्टुभीर्दिशश्छन्दोभिरेवेमाँल्लोकान् यथापूर्वमभि जयति प्रजापतिरग्निमसृजत सोऽस्मात् सृष्टः (१) पराङैत् तमेतयाऽन्वैदक्रन्ददिति तया वै सोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्ध यदेतामन्वाहाग्नेरेवैतया प्रियं धामाव रुन्ध ईश्वरो वा एष पराङ् प्रदघो यो विष्णुक्रमान् क्रमते चतसृभिरा वर्तते चत्वारि

छन्दा५सि छन्दा५सि खलु वा अग्नेः प्रिया तनूः प्रियामेवास्य तनुवमभि (२) पर्यावर्तते दक्षिणा पर्यावर्तते स्वमेव वीर्यमनु पर्यावर्तते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरोऽथो आदित्यस्यैवाऽऽवृतमनु पर्यावर्तते शुनःशेपमाजीगर्तिं वरुणोऽगृह्णात् स एतां वारुणीमपश्यत् तया वै स आत्मानं वरुणपाशादमुञ्चद्वरुणो वा एतं गृह्णाति य उखां प्रतिमुञ्चत उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदित्याहाऽऽत्मानमेवैतया (३) वरुणपाशान्मुञ्चत्या त्वाऽहार्षमित्याहाऽऽह्येन५ हरति ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिरित्याह प्रतिष्ठित्यै विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वित्याह विशैवैन५ समर्धयत्यस्मिन् राष्ट्रमधि श्रयेत्याह राष्ट्रमेवास्मिन् ध्रुवमकर्यं कामयेत राष्ट्र५ स्यादिति तं मनसा ध्यायेद्राष्ट्रमेव भवत्य (४) ग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादित्याहाग्रमेवैन५ समानानां करोति निर्जगन्वान् तमस इत्याह तम एवास्मादप हन्ति ज्योतिषाऽऽगादित्याह ज्योतिरेवास्मिन् दधाति चतसृभिः सादयति चत्वारि छन्दा५सि छन्दोभिरेवाति-च्छन्दसोत्तमया वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दा वर्ष्मैवैन५ समानानां करोति सद्वती (५) भवति सत्त्वमेवैनं गमयति वात्सप्रेणोप तिष्ठत एतेन वै वत्सप्रीर्भालन्दनोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्धाग्नेरेवैतेन प्रियं धामाव रुन्धे एकादशं भवत्येकधैव यजमाने वीर्यं दधाति स्तोमेन वै देवा अस्मिँल्लोक आर्ध्नुवन् छन्दोभिरमुष्मिन्त्स्तोमस्येव खलु वा एतद्रूपं यद्वात्सप्रं यद्वात्सप्रेणोपतिष्ठत (६) इममेव तेन लोकमभि जयति यद्विष्णुक्रमान् क्रमतेऽमुमेव तैर्लोकमभि जयति पूर्वेद्युः प्र क्रामत्युत्तरेद्युरुप तिष्ठते तस्माद्योगेऽन्यासां प्रजानां मनः क्षेमेऽन्यासां तस्माद्यायावरः क्षेम्यस्येशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यमध्यवस्यति मुष्टी करोति वाचं यच्छति यज्ञस्य धृत्यै ॥

(सृष्टो, ऽन्वं,-तया, भवति, सद्वत्यु,-पतिष्ठते, द्विचत्वारि५शच्च) ॥ १ ॥

उख्याग्निनयनम् ॥ अग्निर्देवता ।

अन्नपतेऽन्नस्य नो देहीत्याहाग्निर्वा अन्नपतिः स एवास्मा अन्नं प्र यच्छत्यनमीवस्य शुष्मिण इत्याहायक्ष्मस्येति वावैतदाह प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पद इत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्त उदु त्वा विश्वे देवा इत्याह प्राणा वै विश्वे देवाः (१) प्राणैरेवैनमुद्यच्छतेऽग्ने भरन्तु चित्तिभिरित्याह यस्मा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैवैन५ समर्धयति चतसृभिरा सादयति चत्वारि छन्दा५सि छन्दोभिरेवातिच्छन्दसोत्तमया वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दा वर्ष्मैवैन५ समानानां करोति सद्वती भवति सत्त्वमेवैनं गमयति प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् (२) याहीत्याह ज्योतिरेवास्मिन् दधाति तनुवा वा एष हिनस्ति य५ हिनस्ति मा हि५सीस्तनुवा प्रजा इत्याह प्रजाभ्य एवैन५ शमयति रक्षा५सि वा एतद्यज्ञ५ सचन्ते यदन उत्सर्जत्यक्रन्ददित्यन्वाह रक्षसामपहत्या अनसा वहन्त्यपचितिमेवास्मिन् दधाति तस्मादनस्वी च रथी चातिथीनामपचिततमौ (३) अपचितिमान् भवति य एवं वेद समिधाऽग्निं दुवस्यतेति घृतानुषिक्तामवसिते समिधमा दधाति यथाऽतिथय आगताय सर्पिष्वदातिथ्यं क्रियते तादृगेव तद्गायत्रिया ब्राह्मणस्य गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुभा राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्योऽप्सु भस्म प्र वेशयत्यप्सुयोनिर्वा अग्निः स्वामेवैनं योनिं गमयति तिसृभिः प्र वेशयति त्रिवृद्वा (४) अग्निर्यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति परा वा एषोऽग्निं वपति योऽप्सु भस्म प्रवेशयति ज्योतिष्मती-

त्यावर्थ दधाति ज्योतिरेवास्मिन् दधाति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै परा वा एष प्रजां पशून् वपति योऽप्सु भस्म प्रवेशयति पुनरूर्जा सह रय्येति पुनरुदैति प्रजामेव पशूनात्मन् धत्ते पुनस्त्वाऽऽदित्या (५) रुद्रा वसवः समिन्धतामित्याहैता वा एतं देवता अग्रे समैन्धत ताभिरेवैन५ समिन्धे बोधा स बोधीत्युप तिष्ठते बोधयत्येवैनं तस्मात् सुप्त्वा प्रजाः प्र बुध्यन्ते यथास्थानमुप तिष्ठते तस्माद्यथास्थानं पशवः पुनरेत्योप तिष्ठन्ते ॥ (देवा, ज्योतिष्मा,-नपचिततमौ, त्रिवृद्वा, आदित्या, द्विचत्वारि५शच्च) ॥ २ ॥

गार्हपत्यचयनम् ॥ अग्निर्देवता ।

यावती वै पृथिवी तस्यै यम आधिपत्यं परीयाय यो वै यमं देवयजनमस्या अनिर्याच्याग्निं चिनुते यमायैन५ स चिनुतेऽपेतेत्यध्यवसाययति यममेव देवयजनमस्यै निर्याच्याऽऽत्मनेऽग्निं चिनुत इष्वग्रेण वा अस्या अनामृतमिच्छन्तो नाविन्दन् ते देवा एतद्यजुरपश्यन्नपेतेति यदेतेनाध्यवसाययत्य-(१)-नामृत एवाग्निं चिनुत उद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यं तदप हन्त्यपोऽवोक्षति शान्त्यै सिकता नि वपत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वानरस्य रूप५ रूपेणैव वैश्वानरमव रुन्ध ऊषान् नि वपति पुष्टिर्वा एषा प्रजननं यदूषाः पुष्टयामेव प्रजननेऽग्निं चिनुतेऽथो संज्ञान एव संज्ञान५ ह्येतत् (२) पशूनां यदूषा द्यावापृथिवी सहाऽऽस्तां ते वियती अब्रूतामस्त्वेव नौ सह यज्ञियमिति यदमुष्या यज्ञियमासीत् तदस्यामदधात् त ऊषा अभवन् यदस्या यज्ञियमासीत् तदमुष्यामदधात् तददश्चन्द्रमसि कृष्णमूषान् निवपन्नदो ध्यायेद् द्यावापृथिव्योरेव यज्ञियेऽग्निं चिनुतेऽय५ सो अग्निरिति विश्वामित्रस्य (३) सूक्तं भवत्येतेन वै विश्वामित्रोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्धाग्नेरेवैतेन प्रियं धामाव रुन्धे छन्दोभिर्वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् चतस्रः प्राचीरुप दधाति चत्वारि छन्दा५सि छन्दोभिरेव तद्यजमानः सुवर्गं लोकमेति तेषा५ सुवर्गं लोकं यतां दिशः समव्लीयन्त ते द्वे पुरस्तात् समीची उपादधत द्वे (४) पश्चात् समीची ताभिर्वै ते दिशोऽदृ५हन् यद् द्वे पुरस्तात् समीची उपदधाति द्वे पश्चात् समीची दिशां विधृत्या अथो पशवो वै छन्दा५सि पशूनेवास्मै समीचो दधात्यष्टावुप दधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तं चिनुतेऽष्टावुप दधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्री सुवर्गं लोकमञ्जसा वेद सुवर्गस्य लोकस्य (५) प्रज्ञात्यै त्रयोदश लोकम्पृणा उप दधात्येकवि५शतिः सं पद्यन्ते प्रतिष्ठा वा एकवि५शः प्रतिष्ठा गार्हपत्य एकवि५शस्यैव प्रतिष्ठां गार्हपत्यमनु प्रति तिष्ठति प्रत्यग्निं चिक्यानस्तिष्ठति य एवं वेद पञ्चचितीकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशवो यज्ञमेव पशूनव रुन्धे त्रिचितीकं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु (६) प्रति तिष्ठत्येकचितीकं चिन्वीत तृतीयं चिन्वान एकधा वै सुवर्गो लोक एकवृतैव सुवर्गं लोकमेति पुरीषेणाभ्यूहति तस्मान्मा५सेनास्थि छन्नं न दुश्चर्मा भवति य एवं वेद पञ्च चितयो भवन्ति पञ्चभिः पुरीषैरभ्यूहति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति ॥ (अध्यवसाययति, ह्येत,-द्विश्वामित्रस्य, दधत द्वे, लोकस्य, लोकेषु, सप्तचत्वारि५शच्च) ॥ ३ ॥

अग्न्यभिसंवपनम् ॥ अग्निर्देवता ।

वि वा एतौ द्विषाते यश्च पुराऽग्निर्यश्चोखायाः समितमिति चतसृभिः सं नि वपति चत्वारि छन्दा५सि छन्दा५सि खलु वा अग्नेः प्रिया तनूः प्रिययैवैनौ तनुवा स५ शास्ति समितमित्याह तस्माद्ब्रह्मणा क्षत्र५

समेति यत् सन्युप्य विहरति तस्माद्ब्रह्मणा क्षत्रं व्येत्यृतुभि-(१)-र्वा एतं दीक्षयन्ति स ऋतुभिरेव विमुच्यो मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमित्याहर्तुभिरेवैनं दीक्षयित्वर्तुभिर्वि मुञ्चति वैश्वानर्या शिक्यमा दत्ते स्वदयत्येवैनं नैर्ऋतीः कृष्णास्तिस्रस्तुषपक्वा भवन्ति निर्ऋत्यै वा एतद्भागधेयं यत् तुषा निर्ऋत्यै रूपं कृष्ण५ रूपेणैव निर्ऋतिं निरवदयत इमां दिशं यन्त्येषा (२) वै निर्ऋत्यै दिक् स्वायामेव दिशि निर्ऋतिं निरवदयते स्वकृत इरिण उप दधाति प्रदरे वैतद्वै निर्ऋत्या आयतन५ स्व एवाऽऽयतने निर्ऋतिं निरवदयते शिक्यमभ्युप दधाति नैर्ऋतो वै पाशः साक्षादेवैनं निर्ऋतिपाशान्मुञ्चति तिस्र उप दधाति त्रेधाविहितो वै पुरुषो यावानेव पुरुषस्तस्मान्निर्ऋतिमव यजते पराचीरुप (३) दधाति पराचीमेवास्मान्निर्ऋतिं प्र णुदतेऽप्रतीक्षमा यन्ति निर्ऋत्या अन्तर्हित्यै मार्जयित्वोप तिष्ठन्ते मेध्यत्वाय गार्हपत्यमुप तिष्ठन्ते निर्ऋतिलोक एव चरित्वा पूता देवलोकमुपावर्तन्त एकयोप तिष्ठन्त एकधैव यजमाने वीर्यं दधाति निवेशनः सङ्गमनो वसूनामित्याह प्रजा वै पशवो वसु प्रजयैवैनं पशुभिः समर्धयन्ति ॥

(ऋतुभि,-रेषा, पराचीरुप,-शाचत्वारि५शच्च) ॥ ४ ॥

क्षेत्रकर्षणम् ॥ अग्निर्देवता ।

पुरुषमात्रेण वि मिमीते यज्ञेन वै पुरुषः संमितो यज्ञपरुषैवैनं वि मिमीते यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावान् भवत्येतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्येणैवैनं वि मिमीते पक्षी भवति न ह्यपक्षः पतितुमर्हत्यरत्निना पक्षौ द्राघीया५सौ भवतस्तस्मात् पक्षप्रवया५सि वया५सि व्याममात्रौ पक्षौ च पुच्छं च भवत्येतावद्वै पुरुषे वीर्यं (१) वीर्यसंमितो वेणुना वि मिमीत आग्नेयो वै वेणुः सयोनित्वाय यजुषा युनक्ति यजुषा कृषति व्यावृत्त्यै षड्गवेन कृषति षड् वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं कृषति यद् द्वादशगवेन संवत्सरेणैवेयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत् सैतद् द्विगुणमपश्यत् कृष्टं चाकृष्टं च ततो वा इमां नात्यदहद्यत् कृष्टं चाकृष्टं च (२) भवत्यस्या अनतिदाहाय द्विगुणं त्वा अग्निमुद्यन्तुमर्हतीत्याहुर्यत् कृष्टं चाकृष्टं च भवत्यग्नेरुद्यत्या एतावन्तो वै पशवो द्विपादश्च चतुष्पादश्च तान् यत् प्राच उत्सृजेद्रुद्रायापि दध्याद्दक्षिणा पितृभ्यो नि धुवेयत् प्रतीचो रक्षा५सि हन्युरुदीच उत्सृजत्येषा वै देवमनुष्याणा५ शान्ता दिक् (३) तामेवैनाननूत्सृजत्यथो खल्विमां दिशमुत्सृजत्यसौ वा आदित्यः प्राणः प्राणमेवैनाननूत्सृजति दक्षिणा पर्यावर्तन्ते स्वमेव वीर्यमनु पर्यावर्तन्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरोऽथो आदित्यस्यैवाऽऽवृतमनु पर्यावर्तन्ते तस्मात् पराञ्चः पशवो वि तिष्ठन्ते प्रत्यञ्च आ वर्तन्ते तिस्रस्तिस्रः सीताः (४) कृषति त्रिवृतमेव यज्ञमुखे वि यातयत्योषधीर्वपति ब्रह्मणाऽन्नमव रुन्धेऽर्केऽर्कश्चीयते चतुर्दशभिर्वपति सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्ताऽऽरण्या उभयीषामवरुद्ध्या अन्नस्यान्नस्य वपत्यन्नस्यान्नस्यावरुद्ध्यै कृष्टे वपति कृष्टे ह्योषधयः प्रतितिष्ठन्त्यनुसीतं वपति प्रजात्यै द्वादशसु सीतासु वपति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मा अन्नं पचति यदग्निचि-(५)-दनवरुद्धस्याश्नीयादवरुद्धेन व्यृध्येत ये वनस्पतीनां फलग्रहयस्तानिध्मेऽपि प्रौक्षेदनवरुद्धस्यावरुद्ध्यै दिग्भ्यो लोष्टान्त्समस्यति दिशामेव वीर्यमवरुध्य दिशां वीर्येऽग्निं चिनुते यं द्विष्यात् यत्र स स्यात् तस्यै दिशो लोष्टमा हरेदिषमूर्जमहमित आ ददे इतीषमे-

योऽर्ज तस्यै दिशोऽर्थ (१) रुन्धे क्षोधुको भवति यस्तस्यां दिशि भवत्युत्तरवेदिमुप वपत्युत्तरवेद्याꣳ ह्यग्निश्चीयतेऽथो पशवो वा उत्तरवेदिः पशूनेवाव रुन्धेऽथो यज्ञपरुषोऽनन्तरित्यै ॥ (योऽर्थं, षु, दिक्, सीतां, मग्निं चि, -दुव, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

कृष्टे क्षेत्रे सिकतादिवापः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्ने तव श्रवो वय इति सिकता नि वपत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वानरस्य सूक्तꣳ सूक्तेनैव वैश्वानरमव रुन्धे षड्भिर्नि वपति षड् वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानरमव रुन्धे समुद्रं वै नामैतच्छन्दः समुद्रमनु प्रजाः प्र जायन्ते यदेतेन सिकता नि वपति प्रजानां प्रजननायेन्द्रो (१) वृत्राय वज्रं प्राहरत् स त्रेधा व्यभवत् स्फ्यस्तृतीयꣳ रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयं येऽन्तः शरा अशीर्यन्त ताः शर्करा अभवन् तच्छर्कराणाꣳ शर्करत्वं वज्रो वै शर्कराः पशुरग्निर्यच्छर्कराभिरग्निं परिमिनोति वज्रेणैवास्मै पशून् परि गृह्णाति तस्माद्वज्रेण पशवः परिगृहीतास्तस्मात् स्थेयानस्थेयसो नोप हरते त्रिसप्ताभिः पशुकामस्य (२) परि मिनुयात् सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणाः पशवः प्राणैरेवास्मै पशूनव रुन्धे त्रिणवाभिर्भ्रातृव्यवतस्त्रिवृतमेव वज्रꣳ सम्भृत्य भ्रातृव्याय प्र हरति स्तृत्या अपरिमिताभिः परि मिनुयादपरिमितस्यावरुद्ध्यै यं कामयेतापशुः स्यादित्यपरिमित्य तस्य शर्कराः सिकता व्यूहेदपरिगृहीत एवास्य विषूचीनꣳ रेतः परा सिञ्चत्यपशुरेव भवति (३) यं कामयेत पशुमान्त्स्यादिति परिमित्य तस्य शर्कराः सिकता व्यूहेत् परिगृहीत एवास्मै समीचीनꣳ रेतः सिञ्चति पशुमानेव भवति सौम्या व्यूहति सोमो वै रेतोधा रेत एव तद्दधाति गायत्रिया ब्राह्मणस्य गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुभा राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यः शंयुं बार्हस्पत्यं मेधो नोपानमत् सोऽग्निं प्राविशत् (४) सोऽग्नेः कृष्णो रूपं कृत्वोदायत सोऽश्वं प्राविशत् सोऽश्वस्यावान्तरशफोऽभवद्यदश्वमाक्रमयति य एव मेधोऽश्वं प्राविशत् तमेवाव रुन्धे प्रजापतिनाऽग्निश्चेतव्य इत्याहुः प्राजापत्योऽश्वो यदश्वमाक्रमयति प्रजापतिनैवाग्निं चिनुते पुष्करपर्णमुप दधाति योनिर्वा अग्नेः पुष्करपर्णꣳ सयोनि- (५) -मेवाग्निं चिनुतेऽपां पृष्ठमसीत्युप दधात्यपां वा एतत् पृष्ठं यत् पुष्करपर्णꣳ रूपेणैवैनदुप दधाति ॥ (इन्द्रः, पशुकामस्य, भवति, -विशत्, सयोनिं, विꣳशतिश्च) ॥ ६ ॥

रुक्माद्युपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

ब्रह्म जज्ञानमिति रुक्ममुप दधाति ब्रह्ममुखा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ब्रह्ममुखा एव तत् प्रजा यजमानः सृजते ब्रह्म जज्ञानमित्याह तस्माद्ब्राह्मणो मुख्यो मुख्यो भवति य एवं वेद ब्रह्मवादिनो वदन्ति न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्निश्चेतव्य इति यत् पृथिव्यां चिन्वीत पृथिवीꣳ शुचाऽर्पयेन्नौषधयो न वनस्पतयः (१) प्र जायेरन् यदन्तरिक्षे चिन्वीतान्तरिक्षꣳ शुचाऽर्पयेन्न वयाꣳसि प्र जायेरन् यद्दिवि चिन्वीत दिवꣳ शुचाऽर्पयेन्न पर्जन्यो वर्षेद्रुक्ममुप दधात्यमृतं वै हिरण्यममृत एवाग्निं चिनुते प्रजात्यै हिरण्मयं पुरुषमुप दधाति यजमानलोकस्य विधृत्यै यदिष्टकाया आतृण्णमनूपदध्यात् पशूनां च यज-

मानस्य च प्राणमपि दध्याद् दक्षिणतः (२) प्राञ्चमुप दधाति दाधारं यजमानलोकं न पशूनां च यजमानस्य च प्राणमपि दधात्यथो खल्विष्टकाया आतृण्णमनूप दधाति प्राणानामुत्सृष्ट्यै द्रप्सश्चस्कन्देत्यभि मृशति होत्रास्वेवैनं प्रति ष्ठापयति स्रुचावुप दधात्याज्यस्य पूर्णां कार्ष्मर्यमयीं दध्नः पूर्णामौदुम्बरीमियं वै कार्ष्मर्यमय्यसावौदुम्बरीमे एवोप धत्ते (३) तूष्णीमुप दधाति न हीमे यजुषाऽऽप्तुमर्हति दक्षिणां कार्ष्मर्यमयीमुत्तरामौदुम्बरीं तस्मादस्या असावुत्तराऽऽज्यस्य पूर्णां कार्ष्मर्यमयीं वज्रो वा आज्यं वज्रः कार्ष्मर्यो वज्रेणैव यज्ञस्य दक्षिणतो रक्षाꣳस्यप हन्ति दध्नः पूर्णामौदुम्बरीं पशवो वै दध्यूर्गुदुम्बरः पशुष्वेवोर्जं दधाति पूर्णे उप दधाति पूर्णे एवैन- (४) -ममुष्मिंल्लोक उप तिष्ठेते विराज्यग्निश्चेतव्य इत्याहुः स्रुग्वै विराड्यत् स्रुचावुपदधाति विराज्येवाग्निं चिनुते यज्ञमुखेयज्ञमुखे वै क्रियमाणे यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्ति यज्ञमुखꣳ रुक्मो यद्रुक्मं व्याघारयति यज्ञमुखादेव रक्षाꣳस्यप हन्ति पञ्चभिर्व्याघारयति पाङ्क्तो यज्ञो यावानेव यज्ञस्तस्माद्रक्षाꣳस्यप हन्त्यक्ष्णया व्याघारयति तस्मादक्ष्णया (५) पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै ॥ (वनस्पतयो, दक्षिणतो, धत्त, एनं, तस्मादक्ष्णया, पञ्च च) ॥ ७ ॥

स्वयमातृण्णाद्युपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

स्वयमातृण्णामुप दधातीयं वै स्वयमातृण्णेमामेवोप धत्तेऽश्वमुप घ्रापयति प्राणमेवास्यां दधात्यथो प्राजापत्यो वा अश्वः प्रजापतिनैवाग्निं चिनुते प्रथमेष्टकोपधीयमाना पशूनां च यजमानस्य च प्राणमपि दधाति स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्या अथो सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या अग्नावग्निश्चेतव्य इत्याहुरेष वा (१) अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मणस्तस्मै प्रथमामिष्टकां यजुष्कृतां प्र यच्छेत् तां ब्राह्मणश्चोपदध्याताम् अग्नावेव तदग्निं चिनुत ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोर्योऽविद्वानिष्टकामुपदधाति त्रीन् वरान् दद्यात् त्रयो वै प्राणाः प्राणानाꣳ स्तृत्यै द्वावेव देयौ द्वौ हि प्राणावेक एव देय एको हि प्राणः पशु- (२) -र्वा एष यदग्निर्न खलु वै पशव आयवसे रमन्ते दूर्वेष्टकामुप दधाति पशूनां धृत्यै द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्तीत्याह काण्डेनकाण्डेन ह्येषा प्रतितिष्ठत्येवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन चेत्याह साहस्रः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै देवलक्ष्मं वै त्र्यालिखिता तामुत्तरलक्ष्माणं देवा उपादधताधरलक्ष्माणमसुरा यं (३) कामयेत वसीयान्त्स्यादित्युत्तरलक्ष्माणं तस्योप दध्याद्वसीयानेव भवति यं कामयेत पापीयान्त्स्यादित्यधरलक्ष्माणं तस्योप दध्यादसुरयोनिमेवैनमनु परा भावयति पापीयान् भवति त्र्यालिखिता भवतीमे वै लोकास्त्र्यालिखितेभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तरेत्यङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यतः पुरोडाशः कूर्मो भूत्वाऽनु प्रासर्पत् (४) यत् कूर्ममुपदधाति यथा क्षेत्रविदञ्जसा नयत्येवमेवैनं कूर्मः सुवर्गं लोकमञ्जसा नयति मेधो वा एष पशूनां यत् कूर्मो यत् कूर्ममुपदधाति स्वमेव मेधं पश्यन्तः पशव उप तिष्ठन्ते श्मशानं वा एतत् क्रियते यन्मृतानां पशूनाꣳ शीर्षाण्युपधीयन्ते यज्जीवन्तं कूर्ममुपदधाति तेनाश्मशानचिद्वास्तव्यो वा एष यत् (५) कूर्मो मधु वाता ऋतायत इति दध्ना मधुमिश्रेणाभ्यनक्ति स्वदयत्येवैनं ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दध्यारण्यं मधु यद्दध्ना मधुमिश्रेणाभ्यनक्त्युभयस्यावरुद्ध्यै मही द्यौः पृथिवी च न इत्याहाऽऽभ्यामेवैनमुभयतः

परि गृह्णाति प्राञ्चमुप दधाति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुप दधाति तस्मात् (६) पुरस्तात् प्रत्यञ्चः पशवो मेधमुप तिष्ठन्ते यो वा अपनाभिमग्निं चिनुते यजमानस्य नाभिमनु प्र विशति स एनमीश्वरो हिꣳसितोरुलूखलमुप दधात्येषा वा अग्नेर्नाभिः सनाभिमेवाग्निं चिनुते हिꣳसायै औदुम्बरं भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवाव रुन्धे मध्यत उप दधाति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मा- (७) -न्मध्यत ऊर्जा भुञ्जत इयद्भवति प्रजापतिना यज्ञमुखेन सम्मितमव हन्त्यन्नमेवाकर्वैष्णव्यर्चोप दधाति विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवा वनस्पतयो यज्ञ एव यज्ञं प्रति ष्ठापयति ॥ (एष वै, पशु, -यं, -मसर्पं, -देव यत्, तस्मात्, तस्मात्, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ ८ ॥

उखाद्युपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

एषां वा एतल्लोकानां ज्योतिः सम्भृतं यदुखा यदुखामुपदधात्येभ्य एव लोकेभ्यो ज्योतिरव रुन्धे मध्यत उप दधाति मध्यत एवास्मै ज्योतिर्दधाति तस्मान्मध्यतो ज्योतिरुपास्महे सिकताभिः पूरयत्येतद्वा अग्नेर्वैश्वानरस्य रूपꣳ रूपेणैव वैश्वानरमव रुन्धे यं कामयेत क्षोधुकः स्यादित्यूनां तस्योप (१) दध्यात् क्षोधुक एव भवति यं कामयेतानुपदस्यदन्नमद्यादिति पूर्णां तस्योप दध्यादनुपदस्यदेवान्नमत्ति सहस्रं वै प्रति पुरुषः पशूनां यच्छति सहस्रमन्ये पशवो मध्ये पुरुषशीर्षमुप दधाति सवीर्यत्वायोखायामपि दधाति प्रतिष्ठामेवैनद्गमयति व्यृद्धं वा एतत् प्राणैरमेध्यं यत् पुरुषशीर्षममृतं खलु वै प्राणा (२) अमृतꣳ हिरण्यं प्राणेषु हिरण्यशल्कान् प्रत्यस्यति प्रतिष्ठामेवैनद्गमयित्वा प्राणैः समर्धयति दध्ना मधुमिश्रेण पूरयति मधव्योऽसानीति शृतातङ्क्येन मेध्यत्वाय ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दध्यारण्यं मधु यद्दध्ना मधुमिश्रेण पूरयत्युभयस्यावरुद्ध्यै पशुशीर्षाण्युप दधाति पशवो वै पशुशीर्षाणि पशूनेवाव रुन्धे यं कामयेतापशुः स्यादिति (३) विषूचीनानि तस्योप दध्याद्विषूच एवास्मात् पशून् दधात्यपशुरेव भवति यं कामयेत पशुमान्त्स्यादिति समीचीनानि तस्योप दध्यात् समीच एवास्मै पशून् दधाति पशुमानेव भवति पुरस्तात् प्रतीचीनमश्वस्योप दधाति पश्चात् प्राचीनमृषभस्यापशवो वा अन्ये गोअश्वेभ्यः पशवो गोअश्वानेवास्मै समीचो दधात्येतावन्तो वै पशवो (४) द्विपादश्च तान् वा एतदग्नौ प्र दधाति यत् पशुशीर्षाण्युपदधात्यमुमारण्यमनु ते दिशामीत्याह ग्राम्येभ्य एव पशुभ्य आरण्यान् पशूञ्छुचमनूत्सृजति तस्मात् समावत् पशूनां प्रजायमानानामारण्याः पशवः कनीयाꣳसः शुचा ह्यृताः सर्पशीर्षमुप दधाति यैव सर्पे त्विषिस्तामेवाव रुन्धे (५) यत् समीचीनं पशुशीर्षैरुपदध्याद् ग्राम्यान् पशून् दꣳशुकाः स्युर्यद्विषूचीनमारण्यान् यजुरेव वदेदव तां त्विषिꣳ रुन्धे या सर्पे न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नाऽऽरण्यानथो खल्वुपधेयमेव यदुपदधाति तेन तां त्विषिमव रुन्धे या सर्पे यद्यजुर्वदति तेन शान्तम् ॥ (अयं, प्राणा, इति, पशवो, ऽव रुन्धे, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

अपस्यानां प्राणभृतामपानभृतां च प्रथमचितावुपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

पशुर्वा एष यदग्निर्योनिः खलु वा एषा पशोर्वि क्रियते यत् प्राचीनमैष्टकाद्यजुः क्रियते रेतोऽपस्या अपस्या उप दधाति योनावेव रेतो दधाति पञ्चोप दधाति पाङ्क्ताः पशवः पशूनेवास्मै प्र जनयति

पञ्च दक्षिणतो वज्रो वा अपस्या वज्रेणैव यज्ञस्य दक्षिणतो रक्षाꣳस्यप हन्ति पञ्च पश्चात् (१) प्राचीरुप दधाति पश्चाद्वै प्राचीनꣳ रेतो धीयते पश्चादेवास्मै प्राचीनꣳ रेतो दधाति पञ्च पुरस्तात् प्रतीचीरुप दधाति पञ्च पश्चात् प्राचीस्तस्मात् प्राचीनꣳ रेतो धीयते प्रतीचीः प्रजा जायन्ते पञ्चोत्तरतश्छन्दस्याः पशवो वै छन्दस्याः पशूनेव प्रजातान्त्स्वमायतनमभि पर्यूहत इयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत् सैता (२) अपस्या अपश्यत् ता उपाधत्त ततो वा इमां नात्यदहद्यदपस्या उपदधात्यस्या अनतिदाहायोवाच हेयमददित् स ब्रह्मणाऽन्नं यस्यैता उपधीयान्तै य उ चैना एवं वेददिति प्राणभृत उप दधाति रेतस्येव प्राणान् दधाति तस्माद्वदन् प्राणन् पश्यञ्छृण्वन् पशुर्जायतेऽयं पुरो (३) भुव इति पुरस्तादुप दधाति प्राणमेवैताभिर्दाधारायं दक्षिणा विश्वकर्मेति दक्षिणतो मन एवैताभिर्दाधारायं पश्चाद्विश्वव्यचा इति पश्चाच्चक्षुरेवैताभिर्दाधारेदमुत्तरात् सुवरित्युत्तरतः श्रोत्रमेवैताभिर्दाधारेयमुपरि मतिरित्युपरिष्टाद्वाचमेवैताभिर्दाधार दशदशोप दधाति सवीर्यत्वायाक्ष्णयो- (४) -प दधाति तस्मादक्ष्णया पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै याः प्राचीस्ताभिर्वसिष्ठ आर्ध्नोद्या दक्षिणा ताभिर्भरद्वाजो याः प्रतीचीस्ताभिर्विश्वामित्रो या उदीचीस्ताभिर्जमदग्निर्या ऊर्ध्वास्ताभिर्विश्वकर्मा य एवमेतासामृद्धिं वेदर्ध्नोत्येव य आसामेवं बन्धुतां वेद बन्धुमान् भवति य आसामेवं क्लृप्तिं वेद कल्पते (५) ऽस्मै य आसामेवमायतनं वेदाऽऽयतनवान् भवति य आसामेवं प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति प्राणभृत उपधाय संयत उप दधाति प्राणानेवास्मिन् धित्वा संयद्भिः सं यच्छति तत् संयताꣳ संयत्त्वमथो प्राण एवापानं दधाति तस्मात् प्राणापानौ सं चरतो विषूचीरुप दधाति तस्माद्विष्वञ्चौ प्राणापानौ यद्वा अग्नेरसंयत- (६) -मसुवर्ग्यमस्य तत् सुवर्ग्योऽग्निर्यत् संयत उप दधाति समेवैनं यच्छति सुवर्ग्यमेवाकस्त्र्यविर्वयः कृतमयानामित्याह वयोभिरेवायानव रुन्धे वयोभिरयाꣳसि सर्वतो वायुमतीर्भवन्ति तस्मादयꣳ सर्वतः पवते ॥ (पश्चात्, -देता, पुरो, ऽक्ष्णया, कल्पते, ऽसंयतं, पञ्चत्रिꣳशच्च) ॥ १० ॥

अश्वमेधे अश्वशरीरे सूचीभी रेखाकरणम् ॥ अनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्; विश्वेदेवा ऋषयः ।

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुत् सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
द्विपदा या चतुष्पदा त्रिपदा या च षट्पदा ।
सच्छन्दा या च विच्छन्दाः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
महानाम्नी रेवतयो विश्वा आशाः प्रसूवरीः । मेघ्या विद्युतो वाचः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः । अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
नारी- (१) -स्ते पत्नयो लोम वि चिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्नीर्दिशः सूचीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ (नारी, त्रिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

अश्वस्य [illegible] ॥ अनुष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा वि शास्ति कस्ते गात्राणि शिम्यति । क उ ते शमिता कविः ॥
ऋतवस्त ऋतुधा परुः शमितारो वि शासतु ।
संवत्सरस्य धायसा शिमीभिः शिम्यन्तु त्वा ॥
दैव्या अध्वर्यवस्त्वा छ्यन्तु वि च शासतु । गात्राणि पर्वशस्ते शिमाः कृण्वन्तु शिम्यन्तः ॥
अर्धमासाः परूꣳषि ते मासाश्छ्यन्तु शिम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टꣳ (१) सूदयन्तु ते ॥
पृथिवी तेऽन्तरिक्षेण वायुश्छिद्रं भिषज्यतु । द्यौस्ते नक्षत्रैः सह रूपं कृणोतु साधुया ॥
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः । शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शमु ते तनुवे भुवत् ॥
(विलिष्टं, त्रिꣳशच्च) ॥ १२ ॥

[विष्णुमुखा १४२। अर्धपते २९२। सवितृ २४७ वि १९८। पुरुसमुद्रेणो-३२५। रत्ने २७०। अहं २५५। मन्त्र-३०७। -मैत्री २९४। पुषु-३२५। -मौवृषी ८०। को ८०। द्वादश ॥ ३१९५]

[॥ इति पञ्चमकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

चितीनां निरूपणम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

आश्विनी-ऋतव्या-प्राणभृत्-अपस्या-वयस्या-ख्येष्टकोपधानविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

उत्सन्नयज्ञो वा एष यदग्निः किं वाऽहैतस्य क्रियते किं वा न यद्वै यज्ञस्य क्रियमाणस्यान्तर्यन्ति पूयति वा अस्य तदाश्विनीरुप दधात्यश्विनौ वै देवानां भिषजौ ताभ्यामेवास्मै भेषजं करोति पञ्चोप दधाति पाङ्क्तो यज्ञो यावानेव यज्ञस्तस्मै भेषजं करोत्यृतव्या उप दधात्यृतूनां कॢप्त्यै (१) पञ्चोप दधाति पञ्च वा ऋतवो यावन्त एवर्तवस्तान् कल्पयति समानप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्कास्तस्मात् समाना ऋतव एकेन पदेन व्यावर्तन्ते तस्मादृतवो व्यावर्तन्ते प्राणभृत उप दधात्यृतुष्वेव प्राणान् दधाति तस्मात् समानाः सन्त ऋतवो न जीर्यन्त्यथो प्र जनयत्येवैना—एष वै वायुर्यत् प्राणो यदृतव्या उपधाय प्राणभृत (२) उपदधाति तस्मात् सर्वानृतूननु वायुरा वरीवर्ति वृष्टिसनीरुप दधाति वृष्टिमेवाव रुन्धे यदेकधोपदध्यादेकमृतुं वर्षेदनुपरिहारꣳ सादयति तस्मात् सर्वानृतून् वर्षति यत् प्राणभृत उपधाय वृष्टिसनीरुपदधाति तस्माद्वायुप्रच्युता दिवो वृष्टिरीर्ते पशवो वै वयस्या नानामनसः खलु वै पशवो नानाव्रतास्तेऽप एवाभि समनसो (३) यं कामयेतापशुः स्यादिति वयस्यास्तस्योपधायापस्या उप दध्यादसंज्ञानमेवास्मै पशुभिः करोत्यपशुरेव भवति यं कामयेत पशुमान्त्स्यादित्यपस्यास्तस्योपधाय वयस्या उप दध्यात् संज्ञानमेवास्मै पशुभिः करोति पशुमानेव भवति चतस्रः पुरस्तादुप दधाति तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे (४) मूर्धन्वतीर्भवन्ति तस्मात् पुरस्तान्मूर्धा पञ्च दक्षिणायाꣳ

श्रोण्यामुप दधाति पञ्चोत्तरस्यां तस्मात् पश्चाद्वर्षीयान् पुरस्तात् प्रवणः पशु—र्बस्तो वय इति दक्षिणेऽꣳस उप दधाति वृष्णिर्वय इत्युत्तरेऽꣳसावेव प्रति दधाति व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पक्ष उप दधाति सिꣳहो वय इत्युत्तरे पक्षयोरेव वीर्यं दधाति पुरुषो वय इति (५) मध्ये तस्मात् पुरुषः पशूनामधिपतिः ॥ (कॢप्त्यै, प्राणभृतः, समनसः, कृष्णे, इति, पञ्च च) ॥ १ ॥

स्वयमातृण्णा-दिश्या-प्राणभृत्-बृहती-वालखिल्याख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिति स्वयमातृण्णामुप दधातीन्द्राग्निभ्यां वा इमौ लोकौ विधृतावनयोर्लोकयोर्विधृत्या अधृतेव वा एषा यन्मध्यमा चितिरन्तरिक्षमिव वा एषेन्द्राग्नी इत्याहेन्द्राग्नी वै देवानामोजोभृतावोजसैवैनामन्तरिक्षे चिनुते धृत्यै स्वयमातृण्णामुप दधात्यन्तरिक्षं वै स्वयमातृण्णाऽन्तरिक्षमेवोप धत्तेऽश्वमुप (१) घ्रापयति प्राणमेवास्यां दधात्यथो प्राजापत्यो वा अश्वः प्रजापतिनैवाग्निं चिनुते स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्या अथो सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै देवानां वै सुवर्गं लोकं यतां दिशः समव्लीयन्त त एता दिश्या अपश्यन् ता उपादधत ताभिर्वै ते दिशोऽदृꣳहन् यद्दिश्या उपदधाति दिशां विधृत्यै दश प्राणभृतः पुरस्तादुप (२) दधाति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी प्राणानेव पुरस्ताद्धत्ते तस्मात् पुरस्तात् प्राणा ज्योतिष्मतीमुत्तमामुप दधाति तस्मात् प्राणानां वाग्ज्योतिरुत्तमा दशोप दधाति दशाक्षरा विराड् विराट् छन्दसां ज्योतिर्ज्योतिरेव पुरस्ताद्धत्ते तस्मात् पुरस्ताज्ज्योतिरुपाऽऽस्महे छन्दाꣳसि पशुष्वाजिमयुस्तान् बृहत्युदजयत् तस्माद्बार्हताः (३) पशव उच्यन्ते मा छन्द इति दक्षिणत उप दधाति तस्माद्दक्षिणावृतो मासाः पृथिवी छन्द इति पश्चात् प्रतिष्ठित्या अग्निर्देवतेत्युत्तरत ओजो वा अग्निरोज एवोत्तरतो धत्ते तस्मादुत्तरतोऽभिप्रयायी जयति षट्त्रिꣳशत् संपद्यन्ते षट्त्रिꣳशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवो बृहत्यैवास्मै पशूनव रुन्धे बृहती छन्दसाꣳ स्वाराज्यं परीयाय यस्यैता (४) उपधीयन्ते गच्छति स्वाराज्यꣳ सप्त वालखिल्याः पुरस्तादुप दधाति सप्त पश्चात् सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ प्राणानाꣳ सवीर्यत्वाय मूर्धाऽसि राडिति पुरस्तादुप दधाति यन्त्री राडिति पश्चात् प्राणानेवास्मै समीचो दधाति ॥ (उपो,- पु, बार्हता, एता,- श्चतुस्त्रिꣳशच्च) ॥ २ ॥

अक्ष्णयास्तोमीयोपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

देवा वै यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एता अक्ष्णयास्तोमीया अपश्यन् ता अन्यथाऽनूच्याऽन्यथोपादधत तदसुरा नान्ववायन् ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यदक्ष्णयास्तोमीया अन्यथाऽनूच्यान्यथोपदधाति भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवत्या—शुस्त्रिवृदिति पुरस्तादुप दधाति यज्ञमुखं वै त्रिवृ-(१)-द्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयति व्योम सप्तदश इति दक्षिणतोऽन्नं वै व्योमान्नꣳ सप्तदशोऽन्नमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते धरुण एकविꣳश इति पश्चात् प्रतिष्ठा वा एकविꣳशः प्रतिष्ठित्यै भान्तः पञ्चदश इत्युत्तरत ओजो वै भान्त ओजः पञ्चदश ओज एवोत्तरतो धत्ते तस्मादुत्तरतोऽभिप्रयायी जयति प्रतूर्तिरष्टादश इति पुरस्ता-(२)-दुप दधाति द्वौ त्रिवृतावभिपूर्वं यज्ञमुखे वि यातयत्य—भिवर्तः सविꣳश इति दक्षिणतोऽन्नं वा अभिवर्तोऽन्नꣳ सविꣳशोऽन्नमेव दक्षिणतो

धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते वर्चो द्वाविꣳश इति पश्चाद्यद्विꣳशतिर्द्वे तेन विराजौ यद्द्वे प्रतिष्ठा तेन विराजोरेवाभिपूर्वमन्नाद्ये प्रति तिष्ठति तपो नवदश इत्युत्तरतस्तस्मात् सव्यो (३) हस्तयोस्तपस्वितरो योनिश्चतुर्विꣳश इति पुरस्तादुप दधाति चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्री यज्ञमुखं यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयति गर्भाः पञ्चविꣳश इति दक्षिणतोऽन्नं वै गर्भा अन्नं पञ्चविꣳशोऽन्नमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यत ओजस्त्रिणव इति पश्चादिमे वै लोकास्त्रिणव एष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठति सम्भरणस्त्रयोविꣳश इत्यु-(४)-त्तरतस्तस्मात् सव्यो हस्तयोः सम्भार्यतरः क्रतुरेकत्रिꣳश इति पुरस्तादुप दधाति वाग्वै क्रतुर्यज्ञमुखं वाग्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयति ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳश इति दक्षिणतोऽसौ वा आदित्यो ब्रध्नस्य विष्टपं ब्रह्मवर्चसमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्धो ब्रह्मवर्चसितरः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳश इति पश्चात् प्रतिष्ठित्यै नाकः षट्त्रिꣳश इत्युत्तरतः सुवर्गो वै (५) लोको नाकः सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥ (त्रिवृत्, पुरस्तात्, सव्यः, इति, वै, पञ्च च) ॥ ३ ॥

अक्ष्णयास्तोमीया-सृष्टि-व्युष्टाख्योपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्नेर्भागोऽसीति पुरस्तादुप दधाति यज्ञमुखं वा अग्निर्यज्ञमुखं दीक्षा यज्ञमुखं ब्रह्म यज्ञमुखं त्रिवृद्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयति नृचक्षसां भागोऽसीति दक्षिणतः शुश्रुवाꣳसो वै नृचक्षसोऽन्नं धाता जातायैवास्मा अन्नमपि दधाति तस्माज्जातोऽन्नमत्ति जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदशः स्तोम इत्याहान्नं वै जनित्र-(१)-मन्नꣳ सप्तदशोऽन्नमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यते मित्रस्य भागोऽसीति पश्चात् प्राणो वै मित्रोऽपानो वरुणः प्राणापानावेवास्मिन् दधाति दिवो वृष्टिर्वाताः स्पृता एकविꣳशः स्तोम इत्याह प्रतिष्ठा वा एकविꣳशः प्रतिष्ठित्या इन्द्रस्य भागोऽसीत्युत्तरत ओजो वा इन्द्र ओजो विष्णुरोजः क्षत्रमोजः पञ्चदश (२) ओज एवोत्तरतो धत्ते तस्मादुत्तरतोऽभिप्रयायी जयति वसूनां भागोऽसीति पुरस्तादुप दधाति यज्ञमुखं वै वसवो यज्ञमुखꣳ रुद्रा यज्ञमुखं चतुर्विꣳशो यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयत्या—दित्यानां भागोऽसीति दक्षिणतोऽन्नं वा आदित्या अन्नं मरुतोऽन्नं गर्भा अन्नं पञ्चविꣳशोऽन्नमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यतेऽदित्यै भागो (३) ऽसीति पश्चात् प्रतिष्ठा वा अदितिः प्रतिष्ठा पूषा प्रतिष्ठा त्रिणवः प्रतिष्ठित्यै देवस्य सवितुर्भागोऽसीत्युत्तरतो ब्रह्म वै देवः सविता ब्रह्म बृहस्पतिर्ब्रह्म चतुष्टोमो ब्रह्मवर्चसमेवोत्तरतो धत्ते तस्मादुत्तरोऽर्धो ब्रह्मवर्चसितरः सावित्रवती भवति प्रसूत्यै तस्माद्ब्राह्मणानामुदीची सनिः प्रसूता धर्त्रश्चतुष्टोम इति पुरस्तादुप दधाति यज्ञमुखं वै धर्त्रो (४) यज्ञमुखं चतुष्टोमो यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वि यातयति यावानां भागोऽसीति दक्षिणतो मासा वै यावा अर्धमासा अयावास्तस्माद्दक्षिणावृतो मासा अन्नं वै यावा अन्नं प्रजा अन्नमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणेनान्नमद्यत ऋभूणां भागोऽसीति पश्चात् प्रतिष्ठित्यै विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳश इत्युत्तरतोऽनयोर्लोकयोः सवीर्यत्वाय तस्मादिमौ लोकौ समावद्वीर्यौ (५) यस्य मुख्यवतीः पुरस्तादुपधीयन्ते मुख्य एव भवत्याऽस्य मुख्यो जायते यस्यान्नवतीर्दक्षिणतोऽत्त्यन्नमाऽस्यान्नादो जायते यस्य प्रतिष्ठावतीः पश्चात् प्रत्येव तिष्ठति यस्यौजस्वतीरुत्तरत ओजस्व्येव भवत्याऽस्यौजस्वी जायतेऽर्को वा एष यदग्निस्तस्यैतदेव स्तोत्रमेतच्छस्त्रं यदेषा विधा (६)

विधीयतेऽर्क एव तदर्क्यमनु वि धीयतेऽत्त्यन्नमाऽस्यान्नादो जायते यस्यैषा विधा विधीयते य उ चैनामेवं वेद सृष्टीरुप दधाति यथासृष्टमेवाव रुन्धे न वा इदं दिवा न नक्तमासीदव्यावृत्तं ते देवा एता व्युष्टीरपश्यन् ता उपादधत ततो वा इदं (७) व्यौच्छद्यस्यैता उपधीयन्ते व्येवास्मा उच्छत्यथो तम एवाप हते ॥ (वै जनित्रं, पञ्चदशो, ऽदित्यै भागो, वै धर्त्रः, समावद्वीर्यौ, विधा, ततो वा इदं, चतुर्दश च) ॥ ४ ॥

असपत्ना-विराट्-स्तोमभागाख्योपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्ने जातान् प्र णुदा नः सपत्नानिति पुरस्तादुप दधाति जातानेव भ्रातृव्यान् प्र णुदते सहसा जातानिति पश्चाज्जनिष्यमाणानेव प्रति नुदते चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोम इति दक्षिणतो ब्रह्मवर्चसं वै चतुश्चत्वारिꣳशो ब्रह्मवर्चसमेव दक्षिणतो धत्ते तस्माद्दक्षिणोऽर्धो ब्रह्मवर्चसितरः षोडशः स्तोम इत्युत्तरत ओजो वै षोडश ओज एवोत्तरतो धत्ते तस्मा-(१)-दुत्तरतोऽभिप्रयायी जयति वज्रो वै चतुश्चत्वारिꣳशो वज्रः षोडशो यदेते इष्टके उपदधाति जाताꣳश्चैव जनिष्यमाणाꣳश्च भ्रातृव्यान् प्रणुद्य वज्रमनु प्र हरति स्तृत्यै पुरीषवतीं मध्य उप दधाति पुरीषं वै मध्यमात्मनः सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्माऽमुष्मिँल्लोके भवति य एवं वेदै—ता वा असपत्ना नामेष्टका यस्यैता उपधीयन्ते (२) नास्य सपत्नो भवति पशुर्वा एष यदग्निर्विराज उत्तमायां चित्यामुप दधाति विराजमेवोत्तमां पशुषु दधाति तस्मात् पशुमानुत्तमां वाचं वदति दशदशोप दधाति सवीर्यत्वायाक्ष्णयोप दधाति तस्मादक्ष्णया पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै यानि वै छन्दाꣳसि सुवर्ग्याण्यासन् तैर्देवाः सुवर्गं लोकमायन् तेनर्षयो (३) ऽश्राम्यन् ते तपोऽतप्यन्त तानि तपसाऽपश्यन् तेभ्य एता इष्टका निरमिमतैवश्छन्दो वरिवश्छन्द इति ता उपादधत ताभिर्वै ते सुवर्गं लोकमायन् यदेता इष्टका उपदधाति यान्येव छन्दाꣳसि सुवर्ग्याणि तैरेव यजमानः सुवर्गं लोकमेति यज्ञेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः स्तोमभागैरेवासृजत यत् (४) स्तोमभागा उपदधाति प्रजा एव तद्यजमानः सृजते बृहस्पतिर्वा एतद्यज्ञस्य तेजः समभरद्यत् स्तोमभागा यत् स्तोमभागा उपदधाति सतेजसमेवाग्निं चिनुते बृहस्पतिर्वा एतां यज्ञस्य प्रतिष्ठामपश्यद्यत् स्तोमभागा यत् स्तोमभागा उपदधाति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै सप्तसप्तोप दधाति सवीर्यत्वाय तिस्रो मध्ये प्रतिष्ठित्यै ॥ (उत्तरतो धत्ते तस्मा,-दुपधीयन्त, ऋषयो, ऽसृजत यत्, त्रिचत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

स्तोमभागाख्योपधानविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

रश्मिरित्येवाऽऽदित्यमसृजत प्रेतिरिति धर्ममन्वितिरिति दिवꣳ सन्धिरित्यन्तरिक्षं प्रतिधिरिति पृथिवीं विष्टम्भ इति वृष्टिं प्रवेत्यहरनुवेति रात्रिमुशिगिति वसून् प्रकेत इति रुद्रान्त्सुदीतिरित्यादित्यानोज इति पितॄꣳस्तन्तुरिति प्रजाः पृतनाषाडिति पशून् रेवदित्योषधी—रभिजिदसि युक्तग्रावे-(१)-न्द्राय त्वेन्द्रं जिन्वेत्येव दक्षिणतो वज्रं पर्यौहदभिजित्यै ताः प्रजा अपप्राणा असृजत तास्वधिपतिरसीत्येव प्राणमदधाद्यन्तेत्यपानꣳ संसर्प इति चक्षुर्वयोधा इति श्रोत्रं ताः प्रजाः प्राणतीरपानतीः पश्यन्तीः शृण्वतीर्न मिथुनी अभवन् तासु त्रिवृदसीत्येव मिथुनमदधात् ताः प्रजा मिथुनी (२) भवन्तीर्न प्राजायन्त ताः संरोहोऽसि नीरोहोऽसीत्येव प्राजनयत् ताः प्रजाः प्रजाता न प्रत्यतिष्ठन् ता वसुकोऽसि वेषश्रिरसि वस्य-

ष्ठिरसीत्येष्वेषु लोकेषु प्रत्यस्थापयद्यदाह वसुकोऽसि वेषश्रिरसि वस्यष्टिरसीति प्रजा एव प्रजाता एषु लोकेषु प्रति ष्ठापयति सात्माऽन्तरिक्षꣳ (३) रोहति सप्राणोऽमुष्मिँल्लोके प्रति तिष्ठत्यव्यर्धुकः प्राणापानाभ्यां भवति य एवं वेद ॥ (युक्तप्राणा, प्रजा मिथुनं,-न्तरिक्षं, द्वादश च) ॥ ६ ॥

नाकसत्-चोडा-स्वयमातृण्णा-विकर्णीनामुपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नाकसद्भिर्वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् तन्नाकसदां नाकसत्त्वं यन्नाकसद उपदधाति नाकसद्भिरेव तद्यजमानः सुवर्गं लोकमेति सुवर्गो वै लोको नाको यस्यैता उपधीयन्ते नास्मा अकं भवति यजमानायतनं वै नाकसदो यन्नाकसद उपदधात्यायतनमेव तद्यजमानः कुरुते पृष्ठानां वा एतत् तेजः संभृतं यन्नाकसदो यन्नाकसद (१) उपदधाति पृष्ठानामेव तेजोऽव रुन्धे पञ्चचोडा उप दधात्यप्सरस एवैनमेता भूता अमुष्मिँल्लोक उप शेरेऽथो तनूपानीरेवैता यजमानस्य यं द्विष्यात् तमुपदधद्ध्यायेदेताभ्य एवैनं देवताभ्य आ वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छत्युत्तरा नाकसद्भ्य उप दधाति यथा जायामानीय गृहेषु निषादयति तादृगेव तत् (२) पश्चात् प्राचीमुत्तमामुप दधाति तस्मात् पश्चात् प्राची पत्न्यन्वास्ते स्वयमातृण्णां च विकर्णीं चोत्तमे उप दधाति प्राणो वै स्वयमातृण्णाऽऽयुर्विकर्णी प्राणं चैवाऽऽयुश्च प्राणानामुत्तमौ धत्ते तस्मात् प्राणश्चाऽऽयुश्च प्राणानामुत्तमौ नान्यामुत्तरामिष्टकामुप दध्याद्यदन्यामुत्तरामिष्टकामुपदध्यात् पशूनां (३) च यजमानस्य च प्राणं चाऽऽयुश्चापि दध्यात् तस्मान्नान्योत्तरेष्टकोपधेया स्वयमातृण्णामुप दधात्यसौ वै स्वयमातृण्णाऽमूमेवोप धत्तेऽश्वमुप घ्रापयति प्राणमेवास्यां दधात्यथो प्राजापत्यो वा अश्वः प्रजापतिनैवाग्निं चिनुते स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्या अथो सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या एषा वै (४) देवानां विक्रान्तिर्यद्विकर्णी यद्विकर्णीमुपदधाति देवानामेव विक्रान्तिमनु वि क्रमते उत्तरत उप दधाति तस्मादुत्तरतउपचारोऽग्निर्वायुमती भवति समिद्ध्यै ॥ (नाकसद,-स्तत, पशूना,-मेषा वै, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

छन्दस्याख्योपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

छन्दाꣳस्युप दधाति पशवो वै छन्दाꣳसि पशूनेवाव रुन्धे छन्दाꣳसि वै देवानां वामं पशवो वाममेव पशूनव रुन्ध एताꣳ ह वै यज्ञसेनश्चैत्रियायणश्चितिं विदां चकार तया वै स पशूनवारुन्ध यदेतामुपदधाति पशूनेवाव रुन्धे गायत्रीः पुरस्तादुप दधाति तेजो वै गायत्री तेज एव (१) मुखतो धत्ते मूर्धन्वतीर्भवन्ति मूर्धानमेवैनꣳ समानानां करोति त्रिष्टुभ उप दधातीन्द्रियं वै त्रिष्टुगिन्द्रियमेव मध्यतो धत्ते जगतीरुप दधाति जागता वै पशवः पशूनेवाव रुन्धेऽनुष्टुभ उप दधाति प्राणा वा अनुष्टुप् प्राणानामुत्सृष्ट्यै बृहतीरुष्णिहाः पङ्क्तीरक्षरपङ्क्तीरिति विषुरूपाणि छन्दाꣳस्युप दधाति विषुरूपा वै पशवः पशव (२) छन्दाꣳसि विषुरूपानेव पशूनव रुन्धे विषुरूपमस्य गृहे दृश्यते यस्यैता उपधीयन्ते य उ चैना एवं वेदातिच्छन्दसमुप दधात्यतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दाꣳसि सर्वेभिरेवैनं छन्दोभिश्चिनुते वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दा यदतिच्छन्दसमुपदधाति वर्ष्मैवैनꣳ समानानां करोति द्विपदा उप दधाति द्विपाद्यजमानः (३) प्रतिष्ठित्यै ॥ (तेज एव, पशवः पशवो, यजमान, एकं च) ॥ ८ ॥

सयुक्-मण्डल-विश्वज्योतिः संज्ञकेष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सर्वाभ्यो वै देवताभ्योऽग्निश्चीयते यत् सयुजो नोपदध्याद् देवता अस्याग्निं वृञ्जीरन् यत् सयुज उपदधात्यात्मनैवैनꣳ सयुजं चिनुते नाग्निना व्यृध्यतेऽथो यथा पुरुषः स्नावभिः सन्तत एवमेवैताभिरग्निः सन्ततोऽग्निना वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् ता अमूः कृत्तिका अभवन् यस्यैता उपधीयन्ते सुवर्गमेव (१) लोकमेति गच्छति प्रकाशं चित्रमेव भवति मण्डलेष्टका उप दधातीमे वै लोका मण्डलेष्टका इमे खलु वै लोका देवपुरा देवपुरा एव प्र विशति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यग्निं चिक्यानो विश्वज्योतिष उप दधातीमानेवैताभिर्लोकान् ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथो प्राणानेवैता यजमानस्य दाधत्येता वै देवताः सुवर्ग्यास्ता एवा- (२)-न्वारभ्य सुवर्गं लोकमेति ॥ (सुवर्गमेव, ता एव, चत्वारि च) ॥ ९ ॥

वृष्टिसनि-संयानी-आदित्या-घृता-यशोदाख्योपधानविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

वृष्टिसनीरुप दधाति वृष्टिमेवाव रुन्धे यदेकधोपदध्यादेकमृतुं वर्षेदनुपरिहारꣳ सादयति तस्मात् सर्वानृतून् वर्षति पुरोवातसनिरसीत्याहैतद्वै वृष्ट्यै रूपꣳ रूपेणैव वृष्टिमव रुन्धे संयानीभिर्वै देवा इमाँल्लोकान्त्समयुस्तत् संयानीनाꣳ संयानित्वं यत् संयानीरुपदधाति यथाऽप्सु नावा संयात्येव-(१)-मेवैताभिर्यजमान इमाँल्लोकान्त्सं याति प्लवो वा एषोऽग्नेर्यत् संयानीर्यत् संयानीरुपदधाति प्लवमेवैतमग्नय उप दधात्युत यस्यैतासूपहितास्वापोऽग्निꣳ हरन्त्यहृत एवास्याग्निरादित्येष्टका उप दधात्यादित्या वा एतं भूत्यै प्रति नुदन्ते योऽलं भूत्यै सन् भूतिं न प्राप्नोत्यादित्या (२) एवैनं भूतिं गमयन्त्यसौ वा एतस्याऽऽदित्यो रुचमादत्ते योऽग्निं चित्वा न रोचते यदादित्येष्टका उपदधात्यसावेवास्मिन्नादित्यो रुचं दधाति यथाऽसौ देवानाꣳ रोचत एवमेवैष मनुष्याणाꣳ रोचते घृतेष्टका उप दधात्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद्घृतं प्रियेणैवैनं धाम्ना समर्धयत्य-(३)-थो तेजसाऽनुपरिहारꣳ सादयत्यपरिवर्गमेवास्मिन् तेजो दधाति प्रजापतिरग्निमचिनुत स यशसा व्यार्ध्यत स एता यशोदा अपश्यत् ता उपाधत्त ताभिर्वै स यश आत्मन्नधत्त यद्यशोदा उपदधाति यश एव ताभिर्यजमान आत्मन् धत्ते पञ्चोप दधाति पाङ्क्तः पुरुषो यावानेव पुरुषस्तस्मिन् यशो दधाति ॥ (एवं, प्राप्नोत्यादित्या, अर्धयत्य, -ष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

भूयस्कृद्-अग्निरूपा-द्रविणोदा-आयुष्या-अग्निहृदया-ऋतव्याख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् कनीयाꣳसो देवा आसन् भूयाꣳसोऽसुरास्ते देवा एता इष्टका अपश्यन् ता उपादधत भूयस्कृदसीत्येव भूयाꣳसोऽभवन् वनस्पतिभिरोषधीभिर्वरिवस्कृदसीतीमामजयन् प्राच्यसीति प्राचीं दिशमजयन्नूर्ध्वाऽसीत्यमूमजयन्नन्तरिक्षसदस्यन्तरिक्षे सीदेत्यन्तरिक्षमजयन् ततो देवा अभवन् (१) पराऽसुरा यस्यैता उपधीयन्ते भूयानेव भवत्यभीमाँल्लोकान् जयति भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवत्यप्सुषदसि श्येनसदसीत्याहैतद्वा अग्ने रूपꣳ रूपेणैवाग्निमव रुन्धे पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयामीत्याहेमानेवैताभिर्लोकान् द्रविणावतः कुरुत आयुष्या उप दधात्यायुरेवा-(२)-स्मिन् दधात्यग्ने यत् ते परꣳ हृन्नामेत्याहैतद्वा अग्नेः प्रियं धाम प्रियमेवास्य धामोपाऽऽप्नोति तावेहि सꣳ रभावहा इत्याह व्येवैनेन परि धत्ते पाञ्चजन्येष्वप्येध्यग्न इत्याहैष वा अग्निः पाञ्चजन्यो यः पञ्चचितीकस्तस्मादेवमाहर्तव्या

उप (३) दधात्येतद्वा ऋतूनां प्रियं धाम यदृतव्या ऋतूनामेव प्रियं धामाव रुन्धे सुमेक इत्याह संवत्सरो वै सुमेकः संवत्सरस्यैव प्रियं धामोपाऽऽप्नोति ॥ (अभवन्,-न्नेवो,-प, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

अश्वमेधविधिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतेरक्ष्यश्वयत् तत् पराऽपतत् तदश्वोऽभवद्यदश्वयत् तदश्वस्याश्वत्वं तद्देवा अश्वमेधेनैव प्रत्यदधुरेष वै प्रजापतिꣳ सर्वं करोति योऽश्वमेधेन यजते सर्व एव भवति सर्वस्य वा एषा प्रायश्चित्तिः सर्वस्य भेषजꣳ सर्वं वा एतेन पाप्मानं देवा अतरन्नपि वा एतेन ब्रह्महत्यामतरन्त्सर्वं पाप्मानं (१) तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेदोत्तरं वै तत् प्रजापतेरक्ष्यश्वयत् तस्मादश्वस्योत्तरतोऽव द्यन्ति दक्षिणतोऽन्येषां पशूनां वैतसः कटो भवत्यप्सुयोनिर्वा अश्वोऽप्सुजो वेतसः स्व एवैनं योनौ प्रति ष्ठापयति चतुष्टोमः स्तोमो भवति सरड्ढ वा अश्वस्य सक्थ्याऽवृहत् (२) तद्देवाश्चतुष्टोमेनैव प्रत्यदधुर्यच्चतुष्टोमः स्तोमो भवत्यश्वस्य सर्वत्वाय ॥ (सर्वं पाप्मानं,-मवृहद्, द्वादश च) ॥ १२ ॥

[ब्रह्मन्वयज्ञ २५५ । इन्द्राग्नी २३४ । देवा २५५ । अग्ने-३६४ । राज्ञे २४१ । रश्मि-१६२ । -नाकसद्भि-२२२ । -छन्दाꣳसि १५१ । सर्वाभ्यो १०४ । वृष्टिसनी-१६९ । -देवासुराः १०६ । प्रजापते- ११२ । द्वादश ॥ २४०१]

[इति पञ्चमकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

इष्टकात्रयाभिधानम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

इन्द्रतनु-यज्ञतनु-नक्षत्राख्येष्टकोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् ते न व्यजयन्त स एता इन्द्रस्तनूरपश्यत् ता उपाधत्त ताभिर्वै स तनुवमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यदिन्द्रतनूरुपदधाति तनुवमेव ताभिरिन्द्रियं वीर्यं यजमान आत्मन् धत्तेऽथो सेन्द्रमेवाग्निꣳ सतनुं चिनुते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो (१) भवति यज्ञो देवेभ्योऽपाक्रामत् तमवरुधं नाशक्नुवन् त एता यज्ञतनूरपश्यन् ता उपादधत ताभिर्वै ते यज्ञमवारुन्धत यद्यज्ञतनूरुपदधाति यज्ञमेव ताभिर्यजमानोऽव रुन्धे त्रयस्त्रिꣳशतमुप दधाति त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवता देवता एवाव रुन्धेऽथो सात्मानमेवाग्निꣳ सतनुं चिनुते सात्माऽमुष्मिँल्लोके (२) भवति य एवं वेद ज्योतिष्मतीरुप दधाति ज्योतिरेवास्मिन् दधात्येताभिर्वा अग्निश्चितो ज्वलति ताभिरेवैनꣳ समिन्ध उभयोरस्मै लोकयोर्ज्योतिर्भवति नक्षत्रेष्टका उप दधात्येतानि वै दिवो ज्योतीꣳषि तान्येवाव रुन्धे सुकृतां वा एतानि ज्योतीꣳषि यन्नक्षत्राणि तान्येवाऽऽप्नोत्यथो अनूकाशमेवैतानि (३) ज्योतीꣳषि कुरुते सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै यत् सꣳस्पृष्टा उपदध्याद्वृष्ट्यै लोकमपि दध्यादवर्षुकः पर्जन्यः स्यादसꣳस्पृष्टा उप दधाति वृष्ट्या एव लोकं करोति वर्षुकः पर्जन्यो भवति पुरस्तादन्याः प्रतीचीरुप दधाति पश्चादन्याः प्राचीस्तस्मात् प्राचीनानि च प्रतीचीनानि च नक्षत्राण्या वर्तन्ते ॥ (भ्रातृव्यो, लोके, एवैतानि, -ऽष्टचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

ऋतव्य-वैश्वदेवाख्येष्टकोपधानं, प्रोक्षणविधिश्च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

ऋतव्या उप दधात्यृतूनां कॢप्त्यै द्वन्द्वमुप दधाति तस्माद् द्वन्द्वमृतवोऽधृतेव वा एषा यन्मध्यमा चितिरन्तरिक्षमिव वा एषा द्वन्द्वमन्यासु चितीषूप दधाति चतस्रो मध्ये धृत्या अन्तःश्लेषणं वा एताश्चितीनां यदृतव्या यदृतव्या उपदधाति चितीनां विधृत्या अवकामनूप दधात्येषा वा अग्नेर्योनिः सयोनि-(१)-मेवाग्निं चिनुते उवाच ह विश्वामित्रोऽददित् स ब्रह्मणाऽन्नं यस्यैता उपधीयान्तै य उ चैना एवं वेददिति संवत्सरो वा एतं प्रतिष्ठायै नुदते योऽग्निं चित्वा न प्रतितिष्ठति पञ्च पूर्वाश्चितयो भवन्त्यथ षष्ठीं चितिं चिनुते षड् वा ऋतवः संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति तिष्ठत्येता वा (२) अधिपत्नीर्नामेष्टका यस्यैता उपधीयन्तेऽधिपतिरेव समानानां भवति यं द्विष्यात् तमुपदधद्ध्यायेदेताभ्य एवैनं देवताभ्य आ वृश्चति ताजगार्तिमार्च्छत्यङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तो या यज्ञस्य निष्कृतिरासीत् तामृषिभ्यः प्रत्यौहन् तद्धिरण्यमभवद्यद्धिरण्यशल्कैः प्रोक्षति यज्ञस्य निष्कृत्या अथो भेषजमेवास्मै करोत्यथो (३) रूपेणैवैनꣳ समर्धयत्यथो हिरण्यज्योतिषैव सुवर्गं लोकमेति साहस्रवता प्रोक्षति साहस्रः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्या इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वित्याह धेनूरेवैनाः कुरुते ता एनं कामदुघा अमुत्रामुष्मिँल्लोक उप तिष्ठन्ते ॥ (सयोनि,-मेता वै, करोत्य,-ष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ २ ॥

शतरुद्रीयहोमविधिः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

रुद्रो वा एष यदग्निः स एतर्हि जातो यर्हि सर्वश्चितः स यथा वत्सो जातः स्तनं प्रेप्सत्येवं वा एष एतर्हि भागधेयं प्रेप्सति तस्मै यदाहुतिं न जुहुयादध्वर्युं च यजमानं च ध्यायेच्छतरुद्रीयं जुहोति भागधेयेनैवैनꣳ शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो यद् ग्राम्याणां पशूनां (१) पयसा जुहुयाद् ग्राम्यान् पशूञ्छुचाऽर्पयेद्यदारण्यानामारण्यान् जर्तिलयवाग्वा वा जुहुयाद् गवीधुकयवाग्वा वा न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नाऽऽरण्यानथो खल्वाहुरनाहुतिर्वै जर्तिलाश्च गवीधुकाश्चेत्यजक्षीरेण जुहोत्याग्नेयी वा एषा यदजाऽऽहुत्यैव जुहोति न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नाऽऽरण्यानङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तो (२) ऽजायां घर्मं प्रासिञ्चन्त्सा शोचन्ती पर्णं पराऽजिहीत सोऽर्कोऽभवत् तदर्कस्यार्कत्वमर्कपर्णेन जुहोति सयोनित्वायोदङ् तिष्ठन् जुहोत्येषा वै रुद्रस्य दिक् स्वायामेव दिशि रुद्रं निरवदयते चरमायामिष्टकायां जुहोत्यन्तत एव रुद्रं निरवदयते त्रेधाविभक्तं जुहोति त्रय इमे लोका इमानेव लोकान्त्समावद्वीर्यान् करोतीयत्यग्रे जुहोत्य-(३)-थेयत्यथेयतीति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति तिस्र उत्तरा आहुतीर्जुहोति षट् सं पद्यन्ते षड् वा ऋतव ऋतुभिरेवैनꣳ शमयति यदनुपरिक्रामं जुहुयादन्तरवचारिणꣳ रुद्रं कुर्यादथो खल्वाहुः कस्यां वाऽह दिशि रुद्रः कस्यां वेत्यनुपरिक्राममेव होतव्यमपरिवर्गमेवैनꣳ शमयत्येता (४) वै देवताः सुवर्ग्या या उत्तमास्ता यजमानं वाचयति ताभिरेवैनꣳ सुवर्गं लोकं गमयति यं द्विष्यात् तस्य सञ्चरे पशूनां न्यस्येद्यः प्रथमः पशुरभितिष्ठति स आर्तिमार्च्छति ॥
(पशूनां, यन्तो, जुहोति, शमयति, त्रिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

परिषेचन-विकर्षणविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अश्मन्नूर्जमिति परि षिञ्चति मार्जयत्येवैनमथो तर्पयत्येव स एनं तृप्तोऽक्षुध्यन्नशोचन्नमुष्मिंल्लोक उप तिष्ठते तृप्यति प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ता न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा इत्याहान्नं वा ऊर्गन्नमेवाव रुन्धेऽश्मꣳस्ते क्षुदमुं ते शु-(१)-गृच्छतु यं द्विष्म इत्याह यमेव द्वेष्टि तमस्य क्षुधा च शुचा चार्पयति त्रिः परिषिञ्चन् पर्येति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचꣳ शमयति त्रिः पुनः पर्येति षट् सं पद्यन्ते षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवास्य शुचꣳ शमयत्य-पां वा एतत् पुष्पं यद्वेतसोऽपाꣳ (२) शरोऽवका वेतसशाखया चावकाभिश्च वि कर्षत्यापो वै शान्ताः शान्ताभिरेवास्य शुचꣳ शमयति यो वा अग्निं चितं प्रथमः पशुरधिक्रामतीश्वरो वै तꣳ शुचा प्रदहो मण्डूकेन वि कर्षत्येष वै पशूनामनुपजीवनीयो न वा एष ग्राम्येषु पशुषु हितो नाऽऽरण्येषु तमेव शुचाऽर्पयत्य-ष्टाभिर्वि कर्षत्य-(३)-ष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचꣳ शमयति पावकवतीभिरन्नं वै पावकोऽन्नेनैवास्य शुचꣳ शमयति मृत्युर्वा एष यदग्निर्ब्रह्मण एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुप मुञ्चते ब्रह्मणैव मृत्योरन्तर्धत्तेऽन्तर्मृत्योर्धत्तेऽन्तरन्नाद्यादित्याहुरन्यामुपमुञ्चतेऽन्यां नान्त-(४)-रेव मृत्योर्धत्तेऽवान्नाद्यꣳ रुन्धे नमस्ते हरसे शोचिष इत्याह नमस्कृत्य हि वसीयाꣳसमुपचरन्त्य-न्यं ते अस्मत् तपन्तु हेतय इत्याह यमेव द्वेष्टि तमस्य शुचाऽर्पयति पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भवेत्याहान्नं वै पावकोऽन्नमेवाव रुन्धे द्वाभ्यामधि क्रामति प्रतिष्ठित्या अपस्यवतीभ्याꣳ शान्त्यै ॥ (शु,-ग्वेतसोऽपा-मष्टाभिर्वि कर्षति, नान्त,-रेकान्नपञ्चाशच्च) ॥ ४ ॥

व्याघारण-वैश्वकर्मणाहुतिविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

नृषदे वडिति व्याघारयति पङ्क्त्याऽऽहुत्या यज्ञमुखमारभतेऽक्ष्णया व्याघारयति तस्मादक्ष्णया पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै यद्वषट्कुर्याद्यातयामाऽस्य वषट्कारः स्याद्यन्न वषट्कुर्याद्रक्षाꣳसि यज्ञꣳ हन्युर्वडित्याह परोऽक्षमेव वषट् करोति नास्य यातयामा वषट्कारो भवति न यज्ञꣳ रक्षाꣳसि घ्नन्ति हुतादो वा अन्ये देवा (१) अहुतादोऽन्ये तानग्निचिदेवोभयान् प्रीणाति ये देवा देवानामिति दध्ना मधुमिश्रेणावोक्षति हुतादश्चैव देवानहुतादश्च यजमानः प्रीणाति ते यजमानं प्रीणन्ति दध्नैव हुतादः प्रीणाति मधुषाऽहुतादो ग्राम्यं वा एतदन्नं यद्दध्यारण्यं मधु यद्दध्ना मधुमिश्रेणावोक्षत्युभयस्यावरुद्ध्यै प्रमुष्टिनाऽवोक्षति प्राजापत्यो (२) वै प्रमुष्टिः सयोनित्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या अनुपरिचारमवोक्षत्यपरिवर्गमेवैनान् प्रीणाति वि वा एष प्राणैः प्रजया पशुभिर्ऋध्यते योऽग्निं चिन्वन्नधिक्रामति प्राणदा अपानदा इत्याह प्राणानेवाऽऽत्मन् धत्ते वर्चोदा वरिवोदा इत्याह प्रजा वै वर्चः पशवो वरिवः प्रजामेव पशूनात्मन् धत्त इन्द्रो वृत्रमहन् तं वृत्रो (३) हतः षोडशभिर्भोगैरसिनात् स एतामग्नयेऽनीकवत आहुतिमपश्यत् तामजुहोत् तस्याग्निरनीकवान्त्स्वेन भागधेयेन प्रीतः षोडशधा वृत्रस्य भोगानप्यदहद्वैश्वकर्मणेन पाप्मनो निरमुच्यत यदग्नयेऽनीकवत आहुतिं जुहोत्यग्निरेवास्यानीकवान्त्स्वेन भागधेयेन प्रीतः पाप्मानमपि दहति वैश्वकर्मणेन पाप्मनो निर्मुच्यते यं कामयेत चिरं पाप्मनो (४) निर्मुच्येतेत्येकैकं तस्य जुहुयाच्चिरमेव पाप्मनो निर्मुच्यते यं काम-

येत ताजक् पाप्मनो निर्मुच्येतेति सर्वाणि तस्यानुद्रुत्य जुहुयात् ताजगेव पाप्मनो निर्मुच्यतेऽथो खलु नानैव सूक्ताभ्यां जुहोति नानैव सूक्तयोर्वीर्यं दधात्यथो प्रतिष्ठित्यै ॥ (देवाः, प्राजापत्यो, वृत्र,-श्चिरं पाप्मनो,-ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

समिदाधान-अग्निप्रणयन-होतुरप्रतिरथजपविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

उदेनमुत्तरां नयेति समिध आ दधाति यथा जनं यतेऽवसं करोति तादृगेव तत् तिस्र आ दधाति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्मै भागधेयं करोत्यौदुम्बरीर्भवन्त्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवास्मा अपि दधात्युदु त्वा विश्वे देवा इत्याह प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणै-(१)-रेवैनमुद्यच्छतेऽग्ने भरन्तु चित्तिभिरित्याह यस्मा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैवैनꣳ समर्धयति पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरित्याह दिशो ह्येषोऽनु प्रच्यवतेऽपामतिं दुर्मतिं बाधमाना इत्याह रक्षसामपहत्यै रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्तीरित्याह पशवो वै रायस्पोषः (२) पशूनेवाव रुन्धे षड्भिर्हरति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनꣳ हरति द्वे परिगृह्यवती भवतो रक्षसामपहत्यै सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तादित्याह प्रसूत्यै ततः पावका आशिषो नो जुषन्तामित्याहान्नं वै पावकोऽन्नमेवाव रुन्धे देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा एतदप्रतिरथमपश्यन् तेन वै ते प्रत्य-(३)-सुरानजयन् तदप्रतिरथस्याप्रतिरथत्वं यदप्रतिरथं द्वितीयो होताऽन्वाहाप्रत्येव तेन यजमानो भ्रातृव्यान् जयत्यथो अनभिजितमेवाभि जयति दशर्चं भवति दशाक्षरा विराड् विराजेमौ लोकौ विधृतावनयोर्लोकयोर्विधृत्या अथो दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठत्य-संदिव वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षमिवाऽऽग्नीध्रमाग्नीध्रे (४) ऽश्मानं नि दधाति सत्वाय द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्यै विमान एष दिवो मध्य आस्त इत्याह व्येवैतया मिमीते मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मेत्याहान्नं वै पृश्न्यन्नमेवाव रुन्धे चतसृभिरा पुच्छादेति चत्वारि छन्दाꣳसि छन्दोभिरेवे-न्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्याह वृद्धिमेवोपावर्तते वाजानाꣳ सत्पतिं पति-(५)-मित्याहान्नं वै वाजोऽन्नमेवाव रुन्धे सुम्नहूर्यज्ञो देवाꣳ आ च वक्षदित्याह प्रजा वै पशवः सुम्नं प्रजामेव पशूनात्मन् धत्ते यक्षदग्निर्देवो देवाꣳ आ च वक्षदित्याह स्वगाकृत्यै वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदग्रभीदित्याहासौ वा आदित्य उद्यन्नुद्ग्राभ एष (६) निम्रोचन् निग्राभो ब्रह्मणैवाऽऽत्मानमुद्गृह्णाति ब्रह्मणा भ्रातृव्यं नि गृह्णाति ॥ (प्राणैः, पोषो, प्रत्य,-ग्नीध्रे, पतिं,- मेष, दश च) ॥ ६ ॥

चित्यारोहणं तत्राग्निनिक्षेपादि च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानित्याह देवलोकमेवैतयोपावर्तते क्रमध्वमग्निना नाकमित्याहेमानेवैतया लोकान् क्रमते पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमित्याहेमानेवैतया लोकान्त्समारोहति सुवर्यन्तो नापेक्षन्त इत्याह सुवर्गमेवैतया लोकमेत्य-ग्ने प्रेहि (१) प्रथमो देवयतामित्याहोभयेष्वेवैतया देवमनुष्येषु चक्षुर्दधाति पञ्चभिरधि क्रामति पाङ्क्तो यज्ञो यावानेव यज्ञस्तेन सह सुवर्गं लोकमेति नक्तोषासेति पुरोऽनुवाक्यामन्वाह प्रत्यै अग्ने सहस्राक्षेत्याह साहस्रः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहेत्याहान्नं वै वाजोऽन्नमेवाव (२) रुन्धे दध्नः पूर्णामौदुम्बरीꣳ स्वयमातृण्णायां

जुहोत्यूर्ग्वै दध्यूर्गुदुम्बरोऽसौ स्वयमातृण्णाऽमुष्यामेवोर्जं दधाति तस्मादमुतोऽर्वाचीमूर्जमुप जीवाम-स्तिसृभिः सादयति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो न इत्यौदुम्बरीमा दधात्येषा वै सूर्मी कर्णकावत्येतया ह स्म (३) वै देवा असुराणाꣳ शततर्हाꣳस्तृꣳहन्ति यदेतया समिधमादधाति वज्रमेवैतच्छतघ्नीं यजमानो भ्रातृव्याय प्र हरति स्तृत्या अछम्बट्कारं विधेम ते परमे जन्मन्नग्न इति वैकङ्कतीमा दधाति भा एवाव रुन्धे ताꣳ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामिति शमीमयीꣳ शान्त्या अग्निर्वै हृ वा अग्निचितं दुहेऽग्निचिदग्निं दुहे ताꣳ (४) सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामित्याहैष वा अग्नेर्दोहस्तमस्य कण्व एव श्रायसोऽवेत् तेन ह स्मैनꣳ स दुहे यदेतया समिधमादधात्यग्निचिदेव तदग्निं दुहे सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्याह सप्तैवास्य साप्तानि प्रीणाति पूर्णया जुहोति पूर्ण इव हि प्रजापतिः प्रजापते-(५)-राप्त्यै न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापतिः प्रजा असृजत प्रजानाꣳ सृष्ट्या अग्निर्देवेभ्यो निलायत स दिशोऽनु प्राविशज्जुह्वन्मनसा दिशो ध्यायेद् दिग्भ्य एवैनमव रुन्धे दध्ना पुरस्ताज्जुहोत्याज्येनोपरिष्टात् तेजश्चैवास्मा इन्द्रियं च समीची दधाति द्वादशकपालो वैश्वानरो भवति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः साक्षा-(६)-देव वैश्वानरमव रुन्धे यत् प्रयाजानूयाजान् कुर्याद्विकस्तिः सा यज्ञस्य दर्विहोमं करोति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै राष्ट्रं वै वैश्वानरो विण्मरुतो वैश्वानरꣳ हुत्वा मारुतान् जुहोति राष्ट्र एव विशमनु बध्नात्यु-च्चैर्वैश्वानरस्याऽऽश्रावयत्युपाꣳशु मारुतान् जुहोति तस्माद्राष्ट्रं विशमति वदति मारुता भवन्ति मरुतो वै देवानां विशो देवविशेनैवास्मै मनुष्यविश-(७)-मव रुन्धे सप्त भवन्ति सप्तगणा वै मरुतो गणश एव विशमव रुन्धे गणेन गणमनुद्रुत्य जुहोति विशमेवास्मा अनुवर्त्मानं करोति ॥ (इत्य,-स्मं, ताꣳ, प्रजापतेः, साक्षा,-न्मनुष्यविश,-मेकविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

वसोर्धाराविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

वसोर्धारां जुहोति वसोर्मे धाराऽसदिति वा एषा हूयते घृतस्य वा एनमेषा धाराऽमुष्मिंल्लोके पिन्वमानोप तिष्ठत आज्येन जुहोति तेजो वा आज्यं तेजो वसोर्धारा तेजसैवास्मै तेजोऽव रुन्धेऽथो कामा वै वसोर्धारा कामानेवाव रुन्धे यं कामयेत प्राणानस्यान्नाद्यं वि (१) च्छिन्द्यामिति विग्राहं तस्य जुहुयात् प्राणानेवास्यान्नाद्यं वि च्छिनत्ति यं कामयेत प्राणानस्यान्नाद्यꣳ सं तनुयामिति संततां तस्य जुहुयात् प्राणानेवास्यान्नाद्यꣳ सं तनोति द्वादश द्वादशानि जुहोति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मा अन्नमव रुन्धेऽन्नं च मेऽक्षुच्च म इत्याहैतद्वा (२) अन्नस्य रूपꣳ रूपेणैवान्नमव रुन्धेऽग्निश्च म आपश्च म इत्याहैषा वा अन्नस्य योनिः सयोन्येवान्नमव रुन्धेऽर्धेन्द्राणि जुहोति देवता एवाव रुन्धे यत् सर्वेषामर्धमिन्द्रः प्रति तस्मादिन्द्रो देवतानां भूयिष्ठभाक्तम इन्द्रमुत्तरमाहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद् दधाति यज्ञायुधानि जुहोति यज्ञो (३) वै यज्ञायुधानि यज्ञमेवाव रुन्धेऽथो एतद्वै यज्ञस्य रूपꣳ रूपेणैव यज्ञमव रुन्धेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च म इत्याह स्वगाकृत्या अग्निश्च मे घर्मश्च म इत्याहैतद्वै ब्रह्मवर्चसस्य रूपꣳ रूपेणैव ब्रह्मवर्चसमव रुन्ध ऋक् च मे साम च म इत्याहै-(४)-

तद्वै छन्दसाꣳ रूपꣳ रूपेणैव छन्दाꣳस्यव रुन्धे गर्भाश्च मे वत्साश्च म इत्याहैतद्वै पशूनाꣳ रूपꣳ रूपेणैव पशूनव रुन्धे कल्पान् जुहोत्यक्लृप्तस्य क्लृप्त्यै युग्मदयुजे जुहोति मिथुनत्वायो-त्तरवती भवतोऽभिक्रान्त्या एका च मे तिस्रश्च म इत्याह देवछन्दसं वा एका च तिस्रश्च (५) मनुष्यछन्दसं चतस्रश्चाष्टौ च देवछन्दसं चैव मनुष्यछन्दसं चाव रुन्ध आ त्रयस्त्रिꣳशतो जुहोति त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवता देवता एवाव रुन्ध आऽष्टाचत्वारिꣳशतो जुहोत्यष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यैवास्मै पशूनव रुन्धे वाजश्च प्रसवश्चेति द्वादशं जुहोति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रति तिष्ठति ॥ (वि, वै, यज्ञ, माह, च,-द्वाचत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

वाजप्रसवीयहोमविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्निर्देवेभ्योऽपाक्रामद्भागधेयमिच्छमानस्तं देवा अब्रुवन्नुप न आ वर्तस्व हव्यं नो वहेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यमेव वाजप्रसवीयं जुहवन्निति तस्मादग्नये वाजप्रसवीयं जुह्वति यद्वाजप्रसवीयं जुहोत्यग्निमेव तद्भागधेयेन समर्धयत्यथो अभिषेक एवास्य स चतुर्दशभिर्जुहोति सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्ता-(१)-ऽऽरण्या उभयीषामवरुद्ध्या अन्नस्यान्नस्य जुहोत्यन्नस्यान्नस्यावरुद्ध्या औदुम्बरेण स्रुवेण जुहोत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्गन्नमूर्जैवास्मा ऊर्जमन्नमव रुन्धेऽग्निर्वै देवानामभिषिक्तोऽग्निचिन्मनुष्याणां तस्मादग्निचिद्वर्षति न धावे-द्वरुद्धꣳ ह्यस्यान्नमन्नमिव खलु वै वर्षं यद्धावेदन्नाद्याद्धावेदुपावर्ततान्नाद्यमेवाभ्यु-(२)-पावर्तते नक्तोषासेति कृष्णायै श्वेतवत्सायै पयसा जुहोत्यह्नैवास्मै रात्रिं प्र दापयति रात्रियाऽहरहोरात्रे एवास्मै प्रत्ते काममन्नाद्यं दुहाते राष्ट्रभृतो जुहोति राष्ट्रमेवाव रुन्धे षड्भिर्जुहोति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठति भुवनस्य पत इति रथमुखे पञ्चाऽऽहुतीर्जुहोति वज्रो वै रथो वज्रेणैव दिशो (३) ऽभि जयत्य-ग्निचितꣳ ह वा अमुष्मिंल्लोके वातोऽभि पवते वातनामानि जुहोत्यभ्येवैनममुष्मिंल्लोके वातः पवते त्रीणि जुहोति त्रय इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो वातमव रुन्धे समुद्रोऽसि नभस्वानित्याहैतद्वै वातस्य रूपꣳ रूपेणैव वातमव रुन्धेऽञ्जलिना जुहोति न ह्येतेषामन्यथा (४) ऽऽहुतिरवकल्पते ॥ (सप्ता,- भि, दिशो, ऽन्यथा, द्वे च) ॥ ९ ॥

अग्नियोगपुनश्चितिविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सुवर्गाय वै लोकाय देवरथो युज्यते यत्राकूताय मनुष्यरथ एष खलु वै देवरथो यदग्नि-रग्निं युनज्मि शवसा घृतेनेत्याह युनक्त्येवैनꣳ स एनं युक्तः सुवर्गं लोकमभि वहति यत् सर्वाभिः पञ्चभिर्युञ्ज्याद्युक्तोऽस्याग्निः प्रच्युतः स्यादप्रतिष्ठिता आहुतयः स्युरप्रतिष्ठिताः स्तोमा अप्रतिष्ठितान्युक्थानि तिसृभिः प्रातःसवनेऽभि मृशति त्रिवृ-(१)-द्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तं युनक्ति यथाऽनसि युक्त आधीयत एवमेव तत् प्रत्याहुतयस्तिष्ठन्ति प्रति स्तोमाः प्रत्युक्थानि यज्ञायज्ञियस्य स्तोत्रे द्वाभ्यामभि मृशत्येतावान् वै यज्ञो यावानग्निष्टोमो भूमा त्वा अस्यात ऊर्ध्वः क्रियते यावानेव यज्ञस्तमन्ततोऽन्वारोहति द्वाभ्यां प्रतिष्ठित्या एकयाऽप्रस्तुतं भवत्यथा-(२)-भि मृशत्युपैनमुत्तरो यज्ञो नमत्यथो संतत्यै प्र वा एषोऽस्माल्लोकाच्च्यवते योऽग्निं चिनुते न वा एतस्यानिष्टक आहुतिरव कल्पते यां वा एषोऽनिष्टक आहुतिं

जुहोति स्रवति वै सा तां स्रवन्ती यज्ञोऽनु परा भवति यज्ञं यजमानो यत् पुनश्चितिं चिनुत आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै प्रत्याहुतयस्तिष्ठन्ति (१) न यज्ञः परा भवति न यजमानोऽष्टावुप दधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रेणैवैनं छन्दसा चिनुते यदेकादश त्रैष्टुभेन यद् द्वादश जागतेन छन्दोभिरेवैनं चिनुते नपात्को वैनामैषोऽग्निर्यत् पुनश्चितिर्य एवं विद्वान् पुनश्चितिं चिनुत आ तृतीयात् पुरुषादन्नमत्ति यथा वै पुनराधेयं एवं पुनश्चितिर्योऽग्न्याधेयेन न-(४)-र्ध्नोति स पुनराधेयमा धत्ते योऽग्निं चित्वा नर्ध्नोति स पुनश्चितिं चिनुते यत् पुनश्चितिं चिनुत ऋद्ध्या अथो खल्वाहुर्न चेतव्येति रुद्रो वा एष यदग्निर्यथा व्याघ्रं सुप्तं बोधयति तादृगेव तत्-दथो खल्वाहुश्चेतव्येति यथा वसीयांसं भागधेयेन बोधयति तादृगेव तत्-न्मनुरग्निमचिनुत (५) तेन नाऽऽर्ध्नोत् स एतां पुनश्चितिमपश्यत् तामचिनुत तया वै स आर्ध्नोत् पुनश्चितिं चिनुत ऋद्ध्यै ॥ (त्रिष्ट, दध, तिष्ठन्ति, ना,-चिनुत, सप्तदश च) ॥ १० ॥

काम्यचितिविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

छन्दश्चितं चिन्वीत पशुकामः पशवो वै छन्दांसि पशुमानेव भवति श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकामः श्येनो वै वयसां पतिष्ठः श्येन एव भूत्वा सुवर्गं लोकं पतति कङ्कचितं चिन्वीत यः कामयेत शीर्षण्वानमुष्मिँल्लोके स्यामिति शीर्षण्वानेवामुष्मिँल्लोके भवत्यलजचितं चिन्वीत चतुःसीतं प्रतिष्ठाकामश्चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठति प्रउगचितं चिन्वीत भ्रातृव्यवान् प्रै-(१)-व भ्रातृव्यान् नुदत उभयतः प्रउगं चिन्वीत यः कामयेत प्रजातान् भ्रातृव्यान् नुदेय प्रति जनिष्यमाणानिति प्रैव जातान् भ्रातृव्यान् नुदते प्रति जनिष्यमाणान् रथचक्रचितं चिन्वीत भ्रातृव्यवान् वज्रो वै रथो वज्रमेव भ्रातृव्येभ्यः प्र हरति द्रोणचितं चिन्वीतान्नकामो द्रोणे वा अन्नं भ्रियते सयोन्येवान्नमव रुन्धे समूह्यं चिन्वीत पशुकामः पशुमानेव भवति (२) परिचाय्यं चिन्वीत ग्रामकामो ग्राम्येव भवति श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोक ऋध्नुयामिति पितृलोक एवर्ध्नोति विश्वामित्रजमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेतां स एता जमदग्निर्विहव्या अपश्यत् ता उपाधत्त ताभिर्वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृङ्क्त यद्विहव्या उपदधातीन्द्रियमेव ताभिर्वीर्यं यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते होतुर्धिष्णिय उप दधाति यजमानायतनं वै (३) होता स्व एवास्मा आयतन इन्द्रियं वीर्यमव रुन्धे द्वादशोप दधाति द्वादशाक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यैवास्मै पशूनव रुन्धेऽष्टावष्टावन्येषु धिष्णियेषूप दधात्यष्टाशफाः पशवः पशूनेवाव रुन्धे षण्मार्जालीये षड् वा ऋतव ऋतवः खलु वै देवाः पितर ऋतूनेव देवान् पितॄन् प्रीणाति ॥ (प्र, भवति वा, अष्टाचत्वारिंशच्च) ॥ ११ ॥

अश्वमेधीयस्तोत्रगतस्तोमसामविधानम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पवस्व वाजसातय इत्यनुष्टुक् प्रतिपद्भवति तिस्रोऽनुष्टुभश्चतस्रो गायत्रियो यत् तिस्रोऽनुष्टुभस्तस्मादश्वस्त्रिभिस्तिष्ठँस्तिष्ठति यच्चतस्रो गायत्रियस्तस्मात् सर्वांश्चतुरः पदः प्रतिदधत् पलायते परमा वा एषा छन्दसां यदनुष्टुक् परमश्चतुष्टोमः स्तोमानां परमस्त्रिरात्रो यज्ञानां परमोऽश्वः पशूनां परमेणैवैनं परमतां गमयत्ये-कविंशमहर्भवति (१) यस्मिन्नश्व आलभ्यते द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश एष प्रजापतिः प्रजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादृध्नोति शाक्वराः पृष्ठं भवन्त्यन्यद

२९ (तै. सं.)

न्यच्छन्दोऽन्यन्ये वा एते पशव आ लभ्यन्त उतेव ग्राम्या उतेवाऽऽरण्या यच्छक्वरयः पृष्ठं भवन्त्यश्वस्य सर्वत्वाय पार्थुरश्मं ब्रह्मसामं भवति रश्मिना वा अश्वो (२) यत ईश्वरो वा अश्वोऽयतोऽप्रतिष्ठितः परां परावतं गन्तोर्यत् पार्थुरश्मं ब्रह्मसामं भवत्यश्वस्य यत्यै धृत्यै संकृत्यच्छावाकसामं भवत्युत्सन्नयज्ञो वा एष यदश्वमेधः कस्तद्वेदेत्याहुर्यदि सर्वो वा क्रियते न वा सर्व इति संकृत्यच्छावाकसामं भवत्यश्वस्य सर्वत्वाय पर्याप्त्या अनन्तरायाय सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तममहर्भवति (३) सर्वस्याऽऽप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेव तेनाऽऽप्नोति सर्वं जयति ॥ (भवत्य,-श्वो, भवति, दश च) ॥ १२ ॥

[देवासुरा १९। चेतव्या १८। रुद्रो २३। ऽश्म-२४९।-न्नुपद्द २४०। उत २१०। प्राचीं २७१। वर्षा-२११। रुग्निः २०२। सुवर्णं २६७। छन्दश्चितं १९८। पवस्व १६०। द्वादश ॥ २९०६ ॥]

॥ इति पञ्चमकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

वायव्यपश्वाद्याना निरूपणम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

दीक्षणीयेष्टित्रिहविष्का ॥ अग्निर्ऋषिः ।

यदेकेन संस्थापयति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय-न्द्राः पशवो ये मुष्करा यदैन्द्राः सन्तोऽग्निभ्य आ लभ्यन्ते देवताभ्यः समदं दधात्याग्नेयीस्त्रिष्टुभो याज्यानुवाक्याः कुर्याद्यदाग्नेयीस्तेनाऽऽग्नेया यत् त्रिष्टुभस्तेनैन्द्राः समृद्ध्यै न देवताभ्यः समदं दधाति वायवे नियुत्वते तूपरमा लभते तेजोऽग्नेर्वायुस्तेजस एष आ लभ्यते तस्माद्यद्रियङ् वायु-(१)-र्वाति तद्रियङ्ङग्निर्दहति स्वमेव तत् तेजोऽन्वेति यन्न नियुत्वते स्यादुन्माद्येद्यजमानो नियुत्वते भवति यजमानस्यानुन्मादाय वायुमती श्वेतवती याज्यानुवाक्ये भवतः सतेजस्त्वाय हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इत्याघारमा घारयति प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वाय सर्वाणि वा एष रूपाणि पशूनां प्रत्या लभ्यते यच्छ्मश्रुणस्तत् (२) पुरुषाणां रूपं यत् तूपरस्तदश्वानां यदन्यतोदन् तद्गवां यदव्या इव शफास्तदवीनां यदजस्तदजानां वायुर्वै पशूनां प्रियं धाम यद्वायव्यो भवत्येतमेवैनमभि संजानानाः पशव उप तिष्ठन्ते वायव्यः कार्या३ः प्राजापत्या३ इत्याहुर्यद्वायव्यं कुर्यात् प्रजापतेरियाद्यत् प्राजापत्यं कुर्याद्वायो-(३)-रियाद्यद्वायव्यः पशुर्भवति तेन वायोर्नैति यत् प्राजापत्यः पुरोडाशो भवति तेन प्रजापतेर्नैति यद् द्वादशकपालस्तेन वैश्वानरान्नैत्या-ग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपति दीक्षिष्यमाणोऽग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चाऽऽरभते-ऽग्निरवमो देवतानां विष्णुः परमो यदाग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपति देवता (४) एवोभयतः परिगृह्य यजमानोऽव रुन्धे पुरोडाशेन वै देवा अमुष्मिँल्लोक आर्ध्नुवन् चरुणाऽस्मिन् यः कामयेतामुष्मिँल्लोक ऋध्नुयामिति स पुरोडाशं कुर्वीतामुष्मिन्नेव लोक ऋध्नोति यदष्टाकपालस्तेनाऽऽग्नेयो यत् त्रिकपालस्तेन वैष्णवः समृद्ध्यै यः कामयेतास्मिँल्लोक ऋध्नुयामिति स चरुं कुर्वीताग्नेर्घृतं विष्णोस्तण्डुलास्तस्मा-(५)-च्चरुः कार्योऽस्मिन्नेव लोक ऋध्नोत्या-दित्यो भवती यं वा अदितिरस्यामेव प्रति तिष्ठत्यथो अस्यामेवाधि यज्ञं तनुते यो वै संवत्सरमुख्यमभृत्वाऽग्निं चिनुते यथा सामि गर्भोऽवपद्यते तादृगेव

तदार्तिमार्च्छेद्वैश्वानरं द्वादशकपालं पुरस्तान्निर्वपेत् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो यथा संवत्सरमाप्त्वा काल आगते विजायत एवमेव संवत्सरमाप्त्वा काल आगतेऽग्निं चिनुते नाऽऽर्तिमार्च्छत्ये-षा वा (६) अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः प्रियामेवास्य तनुवमव रुन्धे त्रीण्येतानि हवींषि भवन्ति त्रय इमे लोका एषां लोकानां रोहाय ॥ (वायु,-तं,-द्वायो,-देवता,-स्तस्मा,-दष्वा, ऽष्टात्रिंशच्च) ॥ १ ॥

चयनविधिः, तत्फलं च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा प्रेणाऽनु प्राविशत् ताभ्यः पुनः संभवितुं नाशक्नोत् सोऽब्रवीदृध्नवदित् स यो मेतः पुनः संचिनवदिति तं देवाः समचिन्वन् ततो वै त आर्ध्नुवन् यत् समचिन्वन् तच्चित्यस्य चित्यत्वं य एवं विद्वानग्निं चिनुत ऋध्नोत्येव कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुरग्निवा-(१)-न्सानीति वा अग्निश्चीयते विदुरेनं देवाः श्चीयतेऽग्निवानेव भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुर्देवा मा वेदन्निति वा अग्निश्चीयते गृह्येव भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुर्गृह्यसानीति वा अग्निश्चीयते गृह्येव भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः पशुमान्सानीति वा अग्नि-(२)-श्चीयते पशुमानेव भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः सप्त मा पुरुषा उप जीवानिति वा अग्निश्चीयते त्रयः प्राञ्चस्त्रयः प्रत्यञ्च आत्मा सप्तम एतावन्त एवैनममुष्मिँल्लोक उप जीवन्ति प्रजापतिरग्निमचिकीषत् तं पृथिव्यब्रवीन्न मय्यग्निं चेष्यसेऽति मा धक्ष्यति सा त्वाऽतिदहमाना वि धविष्ये (३) स पापीयान् भविष्यसीति सोऽब्रवीत् तथा वा अहं करिष्यामि यथा त्वा नातिधक्ष्यतीति स इमामभ्यमृशत् प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदेतीमामेवेष्टकां कृत्वोपाधत्तानतिदाहाय यत् प्रत्यग्निं चिन्वीत तदभि मृशेत् प्रजापतिस्त्वा सादयतु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदे-(४)-तीमामेवेष्टकां कृत्वोप धत्तेऽनतिदाहाय प्रजापतिरकामयत प्र जायेयेति स एतमुख्यमपश्यत् तं संवत्सरमबिभस्ततो वै स प्राजायत तस्मात् संवत्सरं भार्यः प्रैव जायते तं वसवोऽब्रुवन् प्र त्वमजनिष्ठा वयं प्र जायामहा इति तं वसुभ्यः प्रायच्छत् तं त्रीण्यहान्यबिभरुस्तेन (५) त्रीणि च शतान्यसृजन्त त्रयस्त्रिंशतं च तस्मात् त्र्यहं भार्यः प्रैव जायते तान् रुद्रा अब्रुवन् प्र यूयमजनिढ्वं वयं प्र जायामहा इति तं रुद्रेभ्यः प्रायच्छन् तं षडहान्यबिभरुस्तेन त्रीणि च शतान्यसृजन्त त्रयस्त्रिंशतं च तस्मात् षडहं भार्यः प्रैव जायते तानादित्या अब्रुवन् प्र यूयमजनिढ्वं वयं (६) प्र जायामहा इति तमादित्येभ्यः प्रायच्छन् तं द्वादशाहान्यबिभरुस्तेन त्रीणि च शतान्यसृजन्त त्रयस्त्रिंशतं च तस्माद् द्वादशाहं भार्यः प्रैव जायते तेन वै ते सहस्रमसृजन्तोखां सहस्रतमीं य एवमुख्यं साहस्रं वेद प्र सहस्रं पशूनाप्नोति ॥ (अग्निवा,-न्नग्नि,-र्धविष्ये,-सीद,-तेन,-वयं, चत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

उखाहोमः, पुरुषशीर्षोपधानं, वामभृदुपधानं च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

यजुषा वा एषा क्रियते यजुषा पच्यते यजुषा वि मुच्यते यदुखा सा वा एषैतर्हि यातयाम्नी सा न पुनः प्रयुज्येत्याहुरग्ने युक्ष्वा हि ये तव युक्ष्वा हि देवहूतमाँ इत्युखायां जुहोति तेनैवैनां पुनः प्र युङ्क्ते तेनायातयाम्नी यो वा अग्निं योग आगते युनक्ति युङ्क्ते युञ्जानेष्वग्ने (१) युक्ष्वा हि ये तव युक्ष्वा हि देवहूतमाँ इत्याहैष वा अग्नेर्योगस्तेनैवैनं युनक्ति युङ्क्ते युञ्जानेषु ब्रह्मवादिनो वदन्ति

चेतव्या३ उत्ताना३ इति वयसां वा एष प्रतिमया चीयते यदग्निर्यन्न्यञ्चं चिनुयात् पृष्टित एनमाहुतय ऋच्छेयुर्यदुत्तानं न पतितुं शक्नुयादसुवर्ग्योऽस्य स्यात् प्राचीनमुत्तानं (२) पुरुषशीर्षमुप दधाति मुखत एवैनमाहुतय ऋच्छन्ति नोत्तानं चिनुते सुवर्ग्योऽस्य भवति सौर्या जुहोति चक्षुरेवास्मिन् प्रति दधाति द्विर्जुहोति द्वे हि चक्षुषी समान्या जुहोति समानं हि चक्षुः समृद्ध्यै देवासुराः संयत्ता आसन् ते वामं वसु सं न्यदधत तद्देवा वामभृताऽवृञ्जत तद्वामभृतो वामभृत्त्वं यद्वामभृत-(३)-मुपदधाति वाममेव तया वसु यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते हिरण्यमूर्ध्नी भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिर्वामं ज्योतिषैवास्य ज्योतिषा वामं वृङ्क्ते द्वियजुर्भवति प्रतिष्ठित्यै ॥ (भवतं, उत्तानं, वामभृतं चतुर्विंशतिश्च) ॥ ३ ॥

रेतःसिग्घोमः चित्यभिमर्शश्च ॥ ७ अतिजगती शक्वरी वा; ११ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

आपो वरुणस्य पत्नय आसन् ता अग्निरभ्यध्यायत् ताः समभवत् तस्य रेतः पराऽपतत् तदियमभवद्यद् द्वितीयं पराऽपतत् तदसावभवदियं वै विराडसौ स्वराड् यद्विराजावुपदधातीमे एवोप धत्ते यद्वा असौ रेतः सिञ्चति तदस्यां प्रति तिष्ठति तत् प्र जायते ता ओषधयो (१) वीरुधो भवन्ति ता अग्निरत्ति य एवं वेद प्रैव जायतेऽन्नादो भवति यो रेतस्वी स्यात् प्रथमायां तस्य चित्यामुभे उप दध्यादिमे एवास्मै समीची रेतः सिञ्चतो यः सिक्तरेताः स्यात् प्रथमायां तस्य चित्यामन्यामुप दध्यादुत्तमायामन्यां रेत एवास्य सिक्तमाभ्यामुभयतः परि गृह्णाति संवत्सरं न क-(२)-ञ्चन प्रत्यवरोहेन्न हीमे कं चन प्रत्यवरोहतस्तदेनयोर्व्रतं यो वा अपशीर्षाणमग्निं चिनुतेऽपशीर्षाऽमुष्मिँल्लोके भवति यः सशीर्षाणं चिनुते सशीर्षाऽमुष्मिँल्लोके भवति

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहाऽऽगमन् वीतिहोत्रा ऋतावृधः ।
समुद्रस्य वयुनस्य पत्मन् जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाऽहाऽमर्त्यं हवि-

-रिति स्वयमातृण्णामुपधाय जुहोत्ये (३) तद्वा अग्नेः शिरः सशीर्षाणमेवाग्निं चिनुते सशीर्षाऽमुष्मिँल्लोके भवति य एवं वेद सुवर्गाय वा एष लोकाय चीयते यदग्निस्तस्य यदयथापूर्वं क्रियतेऽसुवर्ग्यमस्य तत् सुवर्ग्योऽग्नि-श्चितिमुपधायाभि मृशे-

-च्चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय (४) देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्येति ॥

यथापूर्वमेवैनामुप धत्ते प्राञ्चमेनं चिनुते सुवर्ग्योऽस्य भवति ॥

(ओषधयो, कं, जुहोति, स्वपत्याय,-द्वादश च) ॥ ४ ॥

हिरण्येष्टका-स्वयमातृण्णोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

विश्वकर्मा दिशां पतिः स नः पशून् पातु सोऽस्मान् पातु तस्मै नमः प्रजापती रुद्रो वरुणोऽग्निर्दिशां पतिः स नः पशून् पातु सोऽस्मान् पातु तस्मै नम एता वै देवता एतेषां पशूनामधिपतयस्ताभ्यो वा एष आ वृश्च्यते यः पशुशीर्षाण्युपदधाति हिरण्येष्टका उप दधात्येताभ्य एव

देवताभ्यो नमस्करोति ब्रह्मवादिनो (१) वदन्त्यग्नौ ग्राम्यान् पशून् प्र दधाति शुचाऽऽरण्यानर्पयति किं तत उच्छिꣳषन्तीति यद्धिरण्येष्टका उपदधात्यमृतं वै हिरण्यममृतेनैव ग्राम्येभ्यः पशुभ्यो भेषजं करोति नैनान् हिनस्ति प्राणो वै प्रथमा स्वयमातृण्णा व्यानो द्वितीयाऽपानस्तृतीयाऽनु प्राण्यात् प्रथमाꣳ स्वयमातृण्णामुपधाय प्राणेनैव प्राणꣳ समर्धयति व्यन्याद् (२) द्वितीयामुपधाय व्यानेनैव व्यानꣳ समर्धयत्यपान्यात् तृतीयामुपधायापानेनैवापानꣳ समर्धयत्यथो प्राणैरेवैनꣳ समिन्धे भूर्भुवः सुवरिति स्वयमातृण्णा उप दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा एताभिः खलु वै व्याहृतीभिः प्रजापतिः प्राजायत यदेताभिर्व्याहृतीभिः स्वयमातृण्णा उपदधातीमानेव लोकानुपधायैषु (३) लोकेष्वधि प्र जायते प्राणाय व्यानायापानाय वाचे त्वा चक्षुषे त्वा तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदाग्निना वै देवाः सुवर्गं लोकमजिगाꣳसन् तेन पतितुं नाशक्नुवन् त एताश्चतस्रः स्वयमातृण्णा अपश्यन् ता दिक्षूपादधत तेन सर्वतश्चक्षुषा सुवर्गं लोकमायन् यच्चतस्रः स्वयमातृण्णा दिक्षूपदधाति सर्वतश्चक्षुषैव तदग्निना यजमानः (४) सुवर्गं लोकमेति ॥

(ब्रह्मवादिनो, व्यन्या,- देषु, यजमान,- श्चत्वारि च) ॥५॥

अग्नेर्वरणम्-लोकंपृणोपधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्न आ याहि वीतय इत्याहाह्वदेवैनमग्निं दूतं वृणीमह इत्याह हुत्वैवैनं वृणीतेऽग्निनाऽग्निः समिध्यत इत्याह समिन्ध एवैनमग्निर्वृत्राणि जङ्घनदित्याह समिद्ध एवास्मिन्निन्द्रियं दधात्यग्नेः स्तोमं मनामह इत्याह मनुत एवैनमेतानि वा अह्नाꣳ रूपाण्य-(१)-न्वहमेवैनं चिनुतेऽवाह्नाꣳ रूपाणि रुन्धे ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्यादयातयाम्न्यन्या इष्टका अयातयाम्नी लोकंपृणेत्यैन्द्राग्नी हि बार्हस्पत्येति ब्रूयादिन्द्राग्नी च हि देवानां बृहस्पतिश्चायातयामानोऽनुचरवती भवत्यजामित्वायाऽनुष्टुभाऽनु चरत्यात्मा वै लोकंपृणा प्राणोऽनुष्टुप् तस्मात् प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनु चरति ता अस्य सूददोहस (२) इत्याह तस्मात् परुषिपरुषि रसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नय इत्याहान्नं वै पृश्न्यन्नमेवाव रुन्धेऽर्को वा अग्निरर्कोऽन्नमन्नमेवाव रुन्धे जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिव इत्याहेमानेवास्मै लोकान् ज्योतिष्मतः करोति यो वा इष्टकानां प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति तया (३) देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदेत्याहैषा वा इष्टकानां प्रतिष्ठा य एवं वेद प्रत्येव तिष्ठति ॥ (रूपाणि, सूददोहस,-स्तया, षोडश च) ॥ ६ ॥

एकयूपादिविधिः ॥ १० अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

सुवर्गाय वा एष लोकाय चीयते यदग्निर्वज्र एकादशिनी यदग्नावेकादशिनीं मिनुयाद्वज्रेणैनꣳ सुवर्गाल्लोकादन्तर्दध्याद्यन्न मिनुयात् स्वरुभिः पशून् व्यर्धयेदेकयूपं मिनोति नैनं वज्रेण सुवर्गाल्लोकादन्तर्दधाति न स्वरुभिः पशून् व्यर्धयति वि वा एष इन्द्रियेण वीर्येणर्ध्यते योऽग्निं चिन्वन्नधि-

क्रामत्यैन्द्रिय-(१)-र्चा ऽऽक्रमणं प्रतीष्टकामुप दध्यान्नेन्द्रियेण वीर्येण व्यृध्यते रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्य तिस्रः शरव्याः प्रतीची तिरश्च्यनूची ताभ्यो वा एष आ वृश्च्यते योऽग्निं चिनुतेऽग्निं चित्वा तिसृधन्वमयाचितं ब्राह्मणाय दद्यात् ताभ्य एव नमस्करोत्यथो ताभ्य एवाऽऽत्मानं निष्क्रीणीते यत् ते रुद्र पुरो (२) धनुस्तद्वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्र संवत्सरेण नमस्करोमि यत् ते रुद्र दक्षिणा धनुस्तद्वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्र परिवत्सरेण नमस्करोमि यत् ते रुद्र पश्चाद्धनुस्तद्वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्रेदावत्सरेण नमस्करोमि यत् ते रुद्रोत्तराद्धनुस्त-(३)-द्वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्रेदुवत्सरेण नमस्करोमि यत् ते रुद्रोपरि धनुस्तद्वातो अनु वातु ते तस्मै ते रुद्र वत्सरेण नमस्करोमि रुद्रो वा एष यदग्निः स यथा व्याघ्रः क्रुद्धस्तिष्ठत्येवं वा एष एतर्हि संचितमेतैरुप तिष्ठते नमस्कारैरेवैनꣳ शमयति ॥

येऽग्नयः (४) पुरीष्याः प्रविष्टाः पृथिवीमनु । तेषां त्वमस्युत्तमः प्र णो जीवातवे सुव ॥

आपं त्वाऽग्ने मनसाऽऽपं त्वाऽग्ने तपसाऽऽपं त्वाऽग्ने दीक्षयाऽऽपं त्वाऽग्न उपसद्भि-

-रापं त्वाऽग्ने सुत्ययाऽऽपं त्वाऽग्ने दक्षिणाभि-रापं त्वाऽग्नेऽवभृथेना-पं त्वाऽग्ने वशयाऽऽपं त्वाऽग्ने स्वगाकारेणे-त्याहै-(५)-षा वा अग्नेराप्तिस्तयैवैनमाप्नोति ॥ (ऐन्द्रिया, पुर, उत्तराद्धनुस्त,-ऽग्नयं, आह,-द्वौ च) ॥ ७ ॥

उपस्थानम्, आत्मेष्टकोपधानं च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

गायत्रेण पुरस्तादुप तिष्ठते प्राणमेवास्मिन् दधाति बृहद्रथन्तराभ्यां पक्षावोज एवास्मिन् दधात्यृतुस्थायज्ञायज्ञियेन पुच्छमृतुष्वेव प्रति तिष्ठति पृष्ठैरुप तिष्ठते तेजो वै पृष्ठानि तेज एवास्मिन् दधाति प्रजापतिरग्निमसृजत सोऽस्मात् सृष्टः पराङैत् तं वारवन्तीयेनावारयत तद्वारवन्तीयस्य वारवन्तीयत्वꣳ श्यैतेन श्येती अकुरुत तच्छ्यैतस्य श्यैतत्वं (१) यद्वारवन्तीयेनोपतिष्ठते वारयत एवैनꣳ श्यैतेन श्येती कुरुते प्रजापतेर्हृदयेनापिपक्षं प्रत्युप तिष्ठते प्रेमाणमेवास्य गच्छति प्राच्या त्वा दिशा सादयामि गायत्रेण छन्दसाऽग्निना देवतयाऽग्नेः शीर्ष्णाऽग्नेः शिर उप दधामि दक्षिणया त्वा दिशा सादयामि त्रैष्टुभेन छन्दसेन्द्रेण देवतयाऽग्नेः पक्षेणाग्नेः पक्षमुप दधामि प्रतीच्या त्वा दिशा सादयामि (२) जागतेन छन्दसा सवित्रा देवतयाऽग्नेः पुच्छेनाग्नेः पुच्छमुप दधाम्यु-दीच्या त्वा दिशा सादयाम्यानुष्टुभेन छन्दसा मित्रावरुणाभ्यां देवतयाऽग्नेः पक्षेणाग्नेः पक्षमुप दधाम्यू-र्ध्वया त्वा दिशा सादयामि पाङ्क्तेन छन्दसा बृहस्पतिना देवतयाऽग्नेः पृष्ठेनाग्नेः पृष्ठमुप दधामि योऽपात्मानमग्निं चिनुतेऽपात्माऽमुष्मिंल्लोके भवति यः सात्मानं चिनुते (३) सात्माऽमुष्मिंल्लोके भवत्यात्मेष्टकामुप दधात्येष वा अग्नेरात्मा सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्माऽमुष्मिंल्लोके भवति य एवं वेद ॥

(श्यैतत्वं, प्रतीच्या त्वा दिशा सादयामि, यः सात्मानं चिनुते, द्वाविंशतिश्च) ॥ ८ ॥

शान्त्याहुतिविधानं प्रोक्षणं च ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्न उदधे या त इषुर्युवा नाम तया नो मृड तस्यास्ते नमस्तस्यास्त उप जीवन्तो भूयास्मा-ग्ने दुध्र✽- गह्य✽- किꣳशिल✽- वन्य या त इषुर्युवा नाम तया नो मृड तस्यास्ते नमस्तस्यास्त उप जीवन्तो भूयास्म पञ्च वा एतेऽग्नयो यच्चितय उदधिरेव नाम प्रथमो दुध्रो (१) द्वितीयो गह्यस्तृतीयः किꣳशिलश्चतुर्थो वन्यः पञ्चमस्तेभ्यो यदाहुतीर्न जुहुयादध्वर्युं च यजमानं च प्र दहेयुर्यदेता आहुतीर्जुहोति भागधेयेनैवैनाञ्छमयति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो वाङ्म आसन् नसोः प्राणो-ऽक्ष्योश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं बाहुवोर्बलमूरुवोरोजोऽरिष्टा विश्वान्यङ्गानि तनू-(२)-स्तनुवा मे सह नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसी-रप वा एतस्मात् प्राणाः क्रामन्ति योऽग्निं चिन्वन्नधिक्रामति वाङ्म आसन् नसोः प्राण इत्याह प्राणानेवाऽऽत्मन् धत्ते यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वा भुवनाऽऽविवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वा-हुतिभागा वा अन्ये रुद्रा हविर्भागा (३) अन्ये शतरुद्रीयꣳ हुत्वा गावीधुकं चरुमेतेन यजुषा चरमायामिष्टकायां नि दध्याद्भागधेयेनैवैनꣳ शमयति तस्य त्वै शतरुद्रीयं हुतमित्याहुर्यस्यैतदग्नौ क्रियत इति वसवस्त्वा रुद्रैः पुरस्तात् पान्तु पितरस्त्वा यमराजानः पितृभिर्दक्षिणतः पान्त्वा-दित्यास्त्वा विश्वैर्देवैः पश्चात् पान्तु द्युतानस्त्वा मारुतो मरुद्भिरुत्तरतः पातु (४) देवास्त्वेन्द्रज्येष्ठा वरुणराजानोऽधस्ताच्चोपरिष्टाच्च पान्तु न वा एतेन पूतो न मेध्यो न प्रोक्षितो यदेनमतः प्राचीनं प्रोक्षति यत् संचितमाज्येन प्रोक्षति तेन पूतस्तेन मेध्यस्तेन प्रोक्षितः ॥

(दुध्र-स्तनू, हविर्भागाः, पातु, द्वाविंशतिश्च) ॥ ९ ॥

सर्पाहुतिः महाहोमः; अप्रतिरथोपहोमश्च ॥ १५ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

समीची नामासि प्राची दिक् तस्यास्तेऽग्निरधिपतिरसितो रक्षिता यश्चाधिपतिर्यश्च गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नो मृडयतां ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्यो-जस्विनी नामासि दक्षिणा दिक् तस्यास्त इन्द्रोऽधिपतिः पृदाकुः प्राची नामासि प्रतीची दिक् तस्यास्ते (१) सोमोऽधिपतिः स्वजोऽवस्थावा नामास्युदीची दिक् तस्यास्ते वरुणोऽधिपतिस्तिरश्चराजि-रधिपत्नी नामासि बृहती दिक् तस्यास्ते बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो वशिनी नामासीयं दिक् तस्यास्ते यमोऽधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता यश्चाधिपतिर्यश्च गोप्ता ताभ्यां नमस्तौ नो मृडयतां ते यं द्विष्मो यश्च (२) नो द्वेष्टि तं वां जम्भे दधाम्ये-ता वै देवता अग्निं चितꣳ रक्षन्ति ताभ्यो यदाहुतीर्न जुहुयादध्वर्युं च यजमानं च ध्यायेयुर्यदेता आहुतीर्जुहोति भागधेयेनैवैनाञ्छमयति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानो हेतयो नाम स्थ तेषां वः पुरो गृहा अग्निर्व इषवः सलिलो✽- निलिम्पा नाम (३) स्थ तेषां वो दक्षिणा गृहाः पितरो व इषवः सगरो✽- वज्रिणो नाम स्थ तेषां वः पश्चाद् गृहाः स्वप्नो व इषवो गह्वरो✽- ऽवस्थावानो नाम स्थ तेषां व उत्तराद् गृहा आपो व इषवः

(५।३-४) या त...भूयास्म । (१०।८-९,१०) स्थ तेषां...इषवः ।

समुद्रो✽- ऽधिपतयो नाम स्थ तेषां व उपरि गृहा वर्षं व इषवोऽवस्वान्✽- क्रव्या नाम स्थ पार्थिवास्तेषां व इह गृहा (४) अन्नं व इषवोऽनिमिषो वातनामं तेभ्यो वो नमस्ते नो मृडयत ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तं वो जम्भे दधामि हुतादो वा अन्ये देवा अहुतादोऽन्ये तानग्निचिदेवोभयान् प्रीणाति दध्ना मधुमिश्रेणैता आहुतीर्जुहोति भागधेयेनैवैनान् प्रीणात्यथो खल्वाहुरिष्टका वै देवा अहुताद इत्य-(५)-नुपरिक्रामं जुहोत्यपरिवर्गमेवैनान् प्रीणाती-

-मꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रप्यातमग्ने सरिरस्य मध्ये ।

उत्सं जुषस्व मधुमन्तमूर्व समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥

यो वा अग्निं प्रयुज्य न विमुञ्चति यथाऽश्वो युक्तोऽविमुच्यमानः क्षुध्यन् पराभवत्येवमस्याग्निः परा भवति तं पराभवन्तं यजमानोऽनु परा भवति सोऽग्निं चित्वा लूक्षो (६) भवतीमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापामित्याज्यस्य पूर्णाꣳ स्रुचं जुहोत्येष वा अग्नेर्विमोको विमुच्यैवास्मा अन्नमपि दधाति तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च न सुधायꣳ ह वै वाजी सुहितो दधातीत्यग्निर्वाव वाजी तमेव तत् प्रीणाति स एनं प्रीतः प्रीणाति वसीयान् भवति (७) (त्, च, नाम, गृहा, इति, लूक्षो, भवति) ॥ १० ॥

अश्वमेधशेषभूतपशूनां प्रथमः सङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्राय राज्ञे सूकरो वरुणाय राज्ञे कृष्णो यमाय राज्ञ ऋश्य ऋषभाय राज्ञे गवयः शार्दूलाय राज्ञे गौरः पुरुषराजाय मर्कटः क्षिप्रश्येनस्य वर्तिका नीलङ्गोः क्रिमिः सोमस्य राज्ञः कुलुङ्गः सिन्धोः शिꣳशुमारो हिमवतो हस्ती ॥ (इन्द्रायाष्टाविꣳशतिः) ॥ ११ ॥

द्वितीयः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

मयुः प्राजापत्य ऊलो हलीक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धातुः सरस्वत्यै शारिः श्येता पुरुषवाक् सरस्वते शुकः श्येतः पुरुषवा-गारण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णा वाचे क्रौञ्चः ॥ (मयुस्त्रयोविꣳशतिः) ॥१२॥

तृतीयः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अपां नप्त्रे जषो नाक्रो मकरः कुलीकयस्तेऽकूपारस्य वाचे पैङ्गराजो भगाय कुषीतक आती वाहसो दर्विदा ते वायव्या दिग्भ्यश्चक्रवाकः ॥ (अपामेकान्नविꣳशतिः) ॥ १३ ॥

चतुर्थः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

बलायाजगर आखुः सृजया शयण्डकस्ते मैत्रा मृत्यवेऽसितो मन्यवे स्वजः कुम्भीनसः पुष्करसादो लोहिताहिस्ते त्वाष्ट्राः प्रतिश्रुत्कायै वाहसः ॥ (बलायाष्टादश) ॥ १४ ॥

पञ्चमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसे गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीना-मेण्यह्ने कृष्णो रात्रियै पिकः क्ष्विङ्का नीलशीर्ष्णी तेऽर्यम्णे धातुः कत्कटः ॥ (पुरुषमृगोऽष्टादश) ॥ १५ ॥

षष्ठः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सौरी बलाकर्-श्यो मयूरः श्येनस्ते गन्धर्वाणां वसूनां कपिञ्जलो रुद्राणां तित्तिरी रोहित

(१०।११-१२) स्थ तेषां...इषवः ।

कुण्डृणाची गोलत्तिका ता अप्सरसां—मरण्याय सृमरः (सौर्यैकादश) ॥ १६ ॥

सप्तमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पृषतो वैश्वदेवः पित्वो न्यङ्कुः कशस्तेऽनुमत्या अन्यवापोऽर्धमासानां मासां कश्यपः कर्यिः कुटरुर्दात्यौहस्ते सिनीवाल्यै बृहस्पतये शित्पुटः ॥ (पृषतोऽष्टादश) ॥ १७ ॥

अष्टमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शका भौमी पान्त्रः कशो मान्थीलवस्ते पितृणां—मृतूनां जहका संवत्सराय लोपा कपोत उलूकः शशस्ते नैर्ऋताः कृकवाकुः सावित्रः ॥ (शकाऽष्टादश) ॥ १८ ॥

नवमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

रुरू रौद्रः कृकलासः शकुनिः पिप्पका ते शरव्यायै हरिणो मारुतो ब्रह्मणे शार्ग—स्तरक्षुः कृष्णः श्वा चतुरक्षो गर्दभस्त इतरजनाना—मग्नये धूङ्क्ष्णा ॥ (रुरुर्विंशतिः) ॥ १९ ॥

दशमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अलज आन्तरिक्ष उद्रो मद्गुः प्लवस्तेऽपा—मदित्यै हंससाचि—रिन्द्राण्यै कीर्शा गृध्रः शितिकक्षी वार्ध्राणसस्ते दिव्यो द्यावापृथिव्या श्वावित् ॥ (अलजोऽष्टादश) ॥ २० ॥

एकादशः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सुपर्णः पार्जन्यो हंसो वृको वृषदंशस्त ऐन्द्रा अपामुद्रो ऽर्यम्णे लोपाशः सिंहो नकुलो व्याघ्रस्ते महेन्द्राय कामाय परस्वान् ॥ (सुपर्णोऽष्टादश) ॥ २१ ॥

अश्वमेधशेषः प्रथमो ग्राम्यपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितो ऽधोरामः सावित्रो वारुणः पेत्वः ॥ (आग्नेयो द्वाविंशतिः) ॥ २२ ॥

द्वितीयो ग्राम्यपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्या आग्नेयौ कृष्णग्रीवौ त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ शितिपृष्ठौ बार्हस्पत्यौ धात्रे पृषोदरः सौर्यो बलक्षः पेत्वः ॥ (अश्वः षोडश) ॥ २३ ॥

तृतीयो ग्राम्यपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वा—नधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः कृष्ण एकशितिपात् पेत्वः ॥ (अग्नये द्वाविंशतिः) ॥ २४ ॥

[यत् ३२८। प्रजापति- ३४०।- येजुषा १७१ ।ऽऽपो २१८। विश्वकर्मा २०३ ।ऽग्ने १६६। सुवर्णं २५८। गायत्रेणा- १०२।-ग्ने २३२। समीची-३५०।-ग्रीव १८। मधु-२३।-रुपो १९। बलाय १८। पुरुषमृगः १८। सारी १८। पृषतः १८। शका १८। रुरु-२०।-रलजः १८। सुपर्णं १८। आग्नेयो २२।ऽश्वो १६।ऽग्नये २२। चतुर्विंशतिः ॥ २०२० ॥]

[॥ इति पञ्चमकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

उपानुवाक्याभिधानम् ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥]

कुम्भेष्टकामन्त्रणम् ॥ १-३, ९-१० त्रिष्टुप्; ४ जगती; ५-८ अनुष्टुप्; ११-१३ गायत्री ।

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ।
अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
यासाꣳ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति (१) शुक्रास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यताऽऽपः शिवया तनुवोप स्पृशत त्वचं मे ।
सर्वाꣳ अग्नीꣳरप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो नि धत्त ॥
यददः संप्रयतीरहावनदता हते । तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥
यत् प्रेषिता वरुणेन ताः शीभꣳ समवल्गत (२) ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु स्थन ॥
अपकामꣳ स्यन्दमाना अवीवरत वो हिकम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्णाम वो हितम् ॥
एको देवो अप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् । उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥
आपो भद्रा घृतमिदाप आसुरग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ॥
तीव्रो रसो मधुपृचा-(३)- मरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गन् ॥
आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्न आसाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः (४) ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥
दिवि श्रयस्वान्तरिक्षे यतस्व पृथिव्या सं भव ब्रह्मवर्चसमसि ब्रह्मवर्चसाय त्वा ॥

(उन्दन्ति, समवल्गत, मधुपृचां, मातरो, द्वाविंशतिश्च) ॥ १ ॥

कुम्भेष्टका-वस्त्रधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अपां ग्रहान् गृह्णात्येतद्वाव राजसूयं यदेते ग्रहाः सवो ऽग्निर्वरुणसवो राजसूयमग्निसवश्चित्यस्ताभ्या-

मेव सूयतेऽथो उभावेव लोकावभि जयति यश्च राजसूयेनेजानस्य यश्चाग्निचित आपो भवन्त्यापो वा
अग्नेर्भ्रातृव्या यदपोऽग्नेरधस्तादुपदधाति भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना परा ऽस्य भ्रातृव्यो भवत्यमृतं (१)
वा आपस्तस्मादद्भिरवतान्तमभिषिञ्चन्ति नाऽऽर्तिमार्च्छति सर्वमायुरेति यस्यैता उपधीयन्ते य उ चैना
एवं वेदा—न्नं वा आपः पशव आपोऽन्नं पशवोऽन्नादः पशुमान् भवति यस्यैता उपधीयन्ते य उ चैना एवं
वेद द्वादश भवन्ति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरेणैवास्मा (२) अन्नमव रुन्धे पात्राणि भवन्ति
पात्रे वा अन्नमद्यते सयोन्येवान्नमव रुन्ध आ द्वादशात् पुरुषादन्नमत्त्यथो पात्रान्न छिद्यते यस्यैता उपधीयन्ते
य उ चैना एवं वेद कुम्भाश्च कुम्भीश्च मिथुनानि भवन्ति मिथुनस्य प्रजात्यै प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते
यस्यैता उपधीयन्ते य उ (३) चैना एवं वेद शुग्वा अग्निः सोऽध्वर्युं यजमानं प्रजाः शुचाऽर्पयति यदप
उपदधाति शुचमेवास्य शमयति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यध्वर्युर्न यजमानः शाम्यन्ति प्रजा यत्रैता उपधीयन्ते
ऽपां वा एतानि हृदयानि यदेता आपो यदेता अप उपदधाति दिव्याभिरेवैनाः सꣳसृजति वर्षुकः पर्जन्यो
(४) भवति यो वा एतासामायतनं क्लृप्तिं वेदाऽऽयतनवान् भवति कल्पतेऽस्मा अनुसीतमुप
दधात्येतद्वा आसामायतनमेषा क्लृप्ति—र्य एवं वेदाऽऽयतनवान् भवति कल्पतेऽस्मै द्वन्द्वमन्या
उप दधाति चतस्रो मध्ये धृत्या अन्नं वा इष्टका एतत् खलु वै साक्षादन्नं यदेष चरुर्यदेतं चरुमुपदधाति
साक्षा-(५)-देवास्मा अन्नमव रुन्धे मध्यत उप दधाति मध्यत एवास्मा अन्नं दधाति तस्मान्मध्यतोऽन्नमद्यते बार्हस्पत्यो भवति ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मा अन्नमव रुन्धे ब्रह्मवर्चसमसि
ब्रह्मवर्चसाय त्वेत्याह तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति यस्यैता उपधीयन्ते य उ चैनमेवं वेद ॥

(अमृत,-मस्मा, उ, पुर्जन्यः, साक्षात्, सप्तचत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

भूतेष्टकोपधानाभिषेकादि ॥ अग्निर्ऋषिः ।

भूतेष्टका उप दधात्यत्रात्र वै मृत्युर्जायते यत्रयत्रैव मृत्युर्जायते तत एवैनमव यजते तस्मादग्निचित्
सर्वमायुरेति सर्वे ह्यस्य मृत्यवोऽवेष्टास्तस्मादग्निचिन्नाभिचरितवै प्रत्यगेनमभिचारः स्तृणुते सूयते
वा एष योऽग्निं चिनुते देवसुवामेतानि हवीꣳषि भवन्त्येतावन्तो वै देवानाꣳ सवास्त एवा-(१)-स्मै
सवान् प्र यच्छन्ति त एनꣳ सुवन्ते सवोऽग्निर्वरुणसवो राजसूयं ब्रह्मसवश्चित्यो देवस्य त्वा
सवितुः प्रसव इत्याह सवितृप्रसूत एवैनं ब्रह्मणा देवताभिरभि षिञ्चत्य—न्नस्यान्नस्याभि षिञ्चत्यन्नस्या-
न्नस्यावरुद्ध्यै पुरस्तात् प्रत्यञ्चमभि षिञ्चति पुरस्ताद्धि प्रतीचीनमन्नमद्यते शीर्षतोऽभि षिञ्चति शीर्षतो
ह्यन्नमद्यत आ मुखादन्ववस्रावयति (२) मुखत एवास्मा अन्नाद्यं दधात्य—ग्नेस्त्वा साम्राज्येनाभि
षिञ्चामीत्याह ब्रह्म वै वा अग्नेः सवस्तेनैवैनमभि षिञ्चति बृहस्पतेस्त्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चामीत्याह ब्रह्म वै
देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनमभि षिञ्चतीन्द्रस्य त्वा साम्राज्येनाभि षिञ्चामीत्याहेन्द्रियमेवास्मिन्नुपरिष्टाद्दधाति
त-(३)-द्वै राजसूयस्य रूपं य एवं विद्वानग्निं चिनुत उभावेव लोकावभि जयति यश्च राजसूयेनेजानस्य
यश्चाग्निचित इन्द्रस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं पराऽपतत् तद्देवाः सौत्रामण्या समभरन्त्सूयते वा

एष योऽग्निं चिनुतेऽग्निं चित्वा सौत्रामण्या यजेतेन्द्रियमेव वीर्यꣳ संभृत्याऽऽत्मन् धत्ते ॥

(एवा,-न्ववस्रावयते,-त, द्वाचत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

क्षेत्रमाधनपूर्णाहुतिहोमः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सजूरब्दोऽयावभिः सजूरुषा अरुणीभिः सजूः सूर्य एतशेन सजोषावश्विना दꣳसोभिः सजूरग्निर्वैश्वानर इडाभिर्घृतेन स्वाहा संवत्सरो वा अब्दो मासा अयावा उषा अरुणीः सूर्य एतश इमे अश्विना संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः पशव इडा पशवो घृतꣳ संवत्सरं पशवोऽनु प्र जायन्ते संवत्सरेणैवास्मै पशून् प्र जनयति दर्भस्तम्बे जुहोति य-(१)-द्वा अस्या अमृतं यद्वीर्यं तद्दर्भास्तस्मिन् जुहोति प्रैव जायतेऽन्नादो भवति यस्यैवं जुह्वत्येता वै देवता अग्नेः पुरस्ताद्भागास्ता एव प्रीणात्यथो चक्षुरेवाग्नेः पुरस्तात् प्रति दधात्य—नन्धो भवति य एवं वेदा—ऽऽपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् स प्रजापतिः पुष्करपर्णे वातो भूतोऽलेलायत् सः (२) प्रतिष्ठां नाविन्दत स एतदपां कुलायमपश्यत् तस्मिन्नग्निमचिनुत तदियमभवत् ततो वै स प्रत्यतिष्ठ—द्यां पुरस्तादुपादधात् तच्छिरोऽभवत् सा प्राची दिग्यां दक्षिणत उपादधात् स दक्षिणः पक्षोऽभवत् सा दक्षिणा दिग्यां पश्चादुपादधात् तत् पुच्छमभवत् सा प्रतीची दिग्यामुत्तरत उपादधात् (३) स उत्तरः पक्षोऽभवत् सोदीची दिग्यामुपरिष्टादुपादधात् तत् पृष्ठमभवत् सोर्ध्वा दि—गियं वा अग्निः पञ्चेष्टकस्तस्माद्यदस्यां खनन्त्यभीष्टकां तृन्दन्त्यभि शर्कराꣳ सर्वा या इयं वयोभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते तस्मादिमां वयाꣳसि नक्तं नाध्यासते य एवं विद्वानग्निं चिनुते प्रत्येव (४) तिष्ठत्यभि दिशो जयत्या—ग्नेयो वै ब्राह्मणस्तस्माद्ब्राह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुकꣳ स्वामेव तद्दिशमन्वेत्य—पां वा अग्निः कुलायं तस्मादापोऽग्निꣳ हारुकाः स्वामेव तद्योनिं प्र विशन्ति ॥

(यत्, स, उपादधा,-देव, द्वाविंशच्च) ॥ ४ ॥

अभिजिदादिनामकचयनम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

संवत्सरमुख्यं भृत्वा द्वितीये संवत्सर आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं वैश्वदेवं द्वादशकपालं बार्हस्पत्यं चरुं वैष्णवं त्रिकपालं तृतीये संवत्सरेऽभिजिता यजेत यदष्टाकपालो भवत्यष्टाक्षरा गायत्र्याग्नेयं गायत्रं प्रातःसवनं प्रातःसवनमेव तेन दाधार गायत्रीं छन्दो यदेकादशकपालो भवत्येकादशाक्षरा त्रिष्टुगैन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं माध्यंदिनमेव सवनं तेन दाधार त्रिष्टुभं (१) छन्दो यद् द्वादशकपालो भवति द्वादशाक्षरा जगती वैश्वदेवं जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवनमेव तेन दाधार जगतीं छन्दो यद्बार्हस्पत्यश्चरुर्भवति ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मैव तेन दाधार यद्वैष्णवस्त्रिकपालो भवति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेव तेन दाधार यत् तृतीये संवत्सरेऽभिजिता यजतेऽभिजित्यै यत् संवत्सरमुख्यं बिभर्तीममेव (२) तेन लोकꣳ स्पृणोति यद् द्वितीये संवत्सरेऽग्निं चिनुतेऽन्तरिक्षमेव तेन स्पृणोति यत् तृतीये संवत्सरे यजतेऽमुमेव तेन लोकꣳ स्पृणोत्ये—तं वै परं आट्णारः कक्षीवाꣳ औशिजो वीतहव्यः श्रायसस्त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः प्रजाकामा अचिन्वत ततो वै ते सहस्रꣳ सहस्रं पुत्रानविन्दन्त प्रथते प्रजया पशुभिस्तां मात्रामाप्नोति यां तेऽगच्छन् य एवं (३) विद्वानेतमग्निं चिनुते ॥ (त्रिष्टुभं,- मेव,- वं, चत्वारि च) ॥५॥

पुरीषचितिप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिरग्निमचिनुत स क्षुरपविर्भूत्वाऽतिष्ठत् तं देवा बिभ्यतो नोपाऽऽयन् ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपाऽऽयन् तच्छन्दसां छन्दस्त्वं ब्रह्म वै छन्दाꣳसि ब्रह्मण एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुप मुञ्चते छन्दोभिरेवाऽऽत्मानं छादयित्वाऽग्निमुप चरत्यात्मनोऽहिꣳसायै देवनिधिर्वा एष नि धीयते यदग्नि-(१)-रन्ये वा वै निधिमगुप्तं विन्दन्ति न वा प्रति प्र जानात्युखामा क्रामत्यात्मानमेवाधिपां कुरुते गुप्त्यै अथो खल्वाहुर्नाऽऽक्रम्येति नैर्ऋत्युखा यदाक्रामेन्निर्ऋत्या आत्मानमपि दध्यात् तस्मान्नाऽऽक्रम्या पुरुषशीर्षमुप दधाति गुप्त्या अथो यथा ब्रूयादेतन्मे गोपायेति तादृगेव तत् (२) प्रजापतिर्वा अथर्वाऽग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणस्तस्येष्टका अस्थान्येतꣳ ह वाव तदृषिरभ्यनूवाचेन्द्रो दधीचो अस्थभिरिति यदिष्टकाभिरग्निं चिनोति सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्माऽमुष्मिंल्लोके भवति य एवं वेद शरीरं वा एतदग्नेर्यच्चित्य आत्मा वैश्वानरो यच्चिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सꣳस्कृत्या-(३)-भ्यारोहति शरीरं वा एतद्यजमानः सꣳस्कुरुते यदग्निं चिनुते यच्चिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सꣳस्कृत्याऽऽत्मनाऽभ्यारोहति तस्मात् तस्य नाव द्यन्ति जीवन्नेव देवानप्येति वैश्वानर्यर्चा पुरीषमुप दधातीयं वा अग्निर्वैश्वानरस्तस्यैषा चितिर्यत् पुरीषमग्निमेव वैश्वानरं चिनुत एषा वा अग्नेः (४) प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः प्रियामेवास्य तनुवमव रुन्धे ॥ (अग्नि,- स्तत्, सꣳस्कृत्या,- ग्ने,- र्दश च) ॥ ६ ॥

दीक्षाकालविकल्पाः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्नेर्वै दीक्षया देवा विराजमाप्नुवन् तिस्रो रात्रीर्दीक्षितः स्यात् त्रिपदा विराड् विराजमाप्नोति षड्रात्रीर्दीक्षितः स्यात् षड् वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति दश रात्रीर्दीक्षितः स्याद्दशाक्षरा विराड् विराजमाप्नोति द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्याद् द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति त्रयोदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् त्रयोदश (१) मासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति पञ्चदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् पञ्चदश वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवत्सर आप्यते संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति सप्तदश रात्रीर्दीक्षितः स्याद् द्वादश मासाः पञ्चर्तवः स संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति चतुर्विꣳशतिꣳ रात्रीर्दीक्षितः स्याच्चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति त्रिꣳशतꣳ रात्रीर्दीक्षितः स्यात् (२) त्रिꣳशदक्षरा विराड् विराजमाप्नोति मासं दीक्षितः स्याद्यो मासः स संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति चतुरो मासो दीक्षितः स्याच्चतुरो वा एतं मासो वसवोऽबिभरुस्ते पृथिवीमाऽजयन् गायत्रीं छन्दोऽष्टौ रुद्रास्तेऽन्तरिक्षमाऽजयन् त्रिष्टुभं छन्दो द्वादशाऽऽदित्यास्ते दिवमाऽजयन् जगतीं छन्दस्ततो वै ते (३) व्यावृतमगच्छञ्छ्रैष्ठ्यं देवानां तस्माद् द्वादश मासो भृत्वाऽग्निं चिन्वीत द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निश्चित्यस्तस्याहोरात्राणीष्टका आप्तेष्टकमेनं चिनुतेऽथो व्यावृतमेव गच्छति श्रैष्ठ्यꣳ समानानाम् ॥ (त्रयोदश, स्यात्, ते, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

अन्वारोहणाभिधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सुवर्गाय वा एष लोकाय चीयते यदग्निस्तं यन्नान्वारोहेत् सुवर्गाल्लोकाद्यजमानो हीयेत पृथिवीमा-

ऽक्रमिषं प्राणो मा मा हासीदन्तरिक्षमाऽक्रमिषं प्रजा मा मा हासीद्दिवमाऽक्रमिषꣳ सुवरगन्मेत्याहैष वा अग्नेरन्वारोहस्तेनैवैनमन्वारोहति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै यत् पक्षसंमितां मिनुयात् (१) कनीयाꣳसं यज्ञक्रतुमुपेयात् पापीयस्यस्याऽऽत्मनः प्रजा स्याद्वेदिसंमितां मिनोति ज्यायाꣳसमेव यज्ञक्रतुमुपैति नास्याऽऽत्मनः पापीयसी प्रजा भवति साहस्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः सहस्रसंमितो वा अयं लोक इममेव लोकमभि जयति द्विषाहस्रं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानो द्विषाहस्रं वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षमेवाभि जयति त्रिषाहस्रं चिन्वीत तृतीयं चिन्वान-(२)-स्त्रिषाहस्रो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकमभि जयति जानुदघ्नं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानो गायत्रियैवेमं लोकमभ्यारोहति नाभिदघ्नं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रिष्टुभैवान्तरिक्षमभ्यारोहति ग्रीवदघ्नं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानो जगत्यैवामुं लोकमभ्यारोहति नाग्निं चित्वा रामामुपेयादयोनौ रेतो धास्यामीति न द्वितीयं चित्वाऽन्यस्य स्त्रिय-(३)-मुपेयान्न तृतीयं चित्वा कां चनोपेयाद्रेतो वा एतन्नि धत्ते यदग्निं चिनुते यदुपेयाद्रेतसा व्यृध्येताथो खल्वाहुरप्रजस्यं तद्यन्नोपेयादिति यद्रेतःसिचावुपदधाति ते एव यजमानस्य रेतो बिभृतस्तस्मादुपेयाद्रेतसोऽस्कन्दाय त्रीणि वाव रेताꣳसि पिता पुत्रः पौत्रो (४) यद् द्वे रेतःसिचावुपदध्याद्रेतोऽस्य वि च्छिन्द्यात् तिस्र उप दधाति रेतसः संतत्या इयं वाव प्रथमा रेतःसिग्वाग्वा इयं तस्मात् पश्यन्तीमां पश्यन्ति वाचं वदन्तीमन्तरिक्षं द्वितीया प्राणो वा अन्तरिक्षं तस्मान्नान्तरिक्षं पश्यन्ति न प्राणमसौ तृतीया चक्षुर्वा असौ तस्मात् पश्यन्त्यमूं पश्यन्ति चक्षु-र्यजुषेमां चा-(५)-मूं चोप दधाति मनसा मध्यमामेषां लोकानां क्लृप्त्या अथो प्राणानामिष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिस्तस्य त इष्टस्य वीतस्य द्रविणेह भक्षीयेत्याह स्तुतशस्त्रे एवैतेन दुहे पिता मातरिश्वाऽच्छिद्रा पदा धा अच्छिद्रा उशिजः पदाऽनु तक्षुः सोमो विश्ववित्नेता नेषद्बृहस्पतिरुक्थामदानि शꣳसिषदित्याहैतद्वा (६) अग्नेरुक्थं तेनैवैनमनु शꣳसति ॥ (मिनुया,-च्चिन्वान, स्त्रियं पौत्रं,-च, वै, सप्त च) ॥ ८ ॥

आसन्दी-षडुद्याम-उखा-उलूखलादिप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सूयते वा एषोऽग्नीनां य उखायां भ्रियते यदधः सादयेद्गर्भाः प्रपादुकाः स्युरथो यथा सवात् प्रत्यवरोहति तादृगेव तदासन्द्यां सादयति गर्भाणां धृत्या अप्रपादायाथो सवमेवैनं करोति गर्भो वा एष यदुखा योनिः शिक्यं यच्छिक्यादुखां निरूहेद्योनेर्गर्भं निर्हण्यात् षडुद्यामꣳ शिक्यं भवति षोढाविहितो वै (१) पुरुष आत्मा च शिरश्च चत्वार्यङ्गान्यात्मन्नेवैनं बिभर्ति प्रजापतिर्वा एष यदग्निस्तस्योखा चोलूखलं च स्तनौ तावस्य प्रजा उप जीवन्ति यदुखां चोलूखलं चोपदधाति ताभ्यामेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोकेऽग्निं दुहे संवत्सरो वा एष यदग्निस्तस्य त्रेधाविहिता इष्टकाः प्राजापत्या वैष्णवी-(२)-र्वैश्वकर्मणीरहोरात्राण्येवास्य प्राजापत्या यदुखां बिभर्ति प्राजापत्या एव तदुप धत्ते यत् समिध आदधाति वैष्णवा वै वनस्पतयो वैष्णवीरेव तदुप धत्ते यदिष्टकाभिरग्निं चिनोतीयं वै विश्वकर्मा वैश्वकर्मणीरेव तदुप धत्ते तस्मादाहुस्त्रिवृदग्निरिति तं वा एतं यजमान एव चिन्वीत यदस्यान्य (३) श्चिनुयाद्यत् तं दक्षिणाभिर्न राधयेदग्निमस्य वृञ्जीत योऽस्याग्निं चिनुयात् तं दक्षिणाभी राधयेदग्निमेव तत् स्पृणोति ॥ (वै, वैष्णवी,-रन्यो, विꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

ऋतुभिः चयनप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिरग्निमचिनुतर्तुभिः संवत्सरं वसन्तेनैवास्य पूर्वार्धमचिनुत ग्रीष्मेण दक्षिणं पक्षं वर्षाभिः पुच्छꣳ शरदोत्तरं पक्षꣳ हेमन्तेन मध्यं ब्रह्मणा वा अस्य तत् पूर्वार्धमचिनुत क्षत्रेण दक्षिणं पक्षं पशुभिः पुच्छं विशोत्तरं पक्षमाशया मध्यं य एवं विद्वानग्निं चिनुत ऋतुभिरेवैनं चिनुतेऽथो एतदेव सर्वमव (१) रुन्धे शृण्वन्त्येनमग्निं चिक्यानमत्यन्यान् रोचते इयं वाव प्रथमा चितिरोषधयो वनस्पतयः पुरीषमन्तरिक्षं द्वितीया वयाꣳसि पुरीषमसौ तृतीया नक्षत्राणि पुरीषं यज्ञश्चतुर्थी दक्षिणा पुरीषं यजमानः पञ्चमी प्रजा पुरीषं यत् त्रिचितीकं चिन्वीत यज्ञं दक्षिणामात्मानं प्रजामन्तरियात् तस्मात् पञ्चचितीकश्चेतव्य एतदेव सर्वꣳ स्पृणोति यत् तिस्रश्चितय-(२)-स्त्रिवृद्ध्यग्निर्यद् द्वे द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै पञ्च चितयो भवन्ति पाङ्क्तः पुरुष आत्मानमेव स्पृणोति पञ्च चितयो भवन्ति पञ्चभिः पुरीषैरभ्यूहति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरो वै पुरुषो यावानेव पुरुषस्तꣳ स्पृणोत्यथो दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति संवत्सरो वै षष्ठी चितिर्ऋतवः पुरीषꣳ (३) षट् चितयो भवन्ति षट् पुरीषाणि द्वादश सं पद्यन्ते द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रति तिष्ठति ॥ (अव, चितयः, पुरीषं, पञ्चदश च) ॥ १० ॥

अश्वमेधिकाष्टादशिपशुषु प्रथमः पशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते प्राजापत्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते रौद्राः श्येतः श्येताक्षः श्येतग्रीवस्ते पितृदेवत्यास्तिस्रः कृष्णा वशा वारुण्यस्तिस्रः श्वेता वशाः सौर्यो मैत्राबार्हस्पत्या धूम्रललामास्तूपराः ॥ (रोहितः षड्विꣳशतिः) ॥ ११ ॥

द्वितीयोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी बलक्षी ताः सारस्वत्यः पृषती स्थूलपृषती क्षुद्रपृषती ता वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्यामा वशाः पौष्णियस्तिस्रो रोहिणीर्वशा मैत्रिय ऐन्द्राबार्हस्पत्या अरुणललामास्तूपराः ॥ (पृश्निः षड्विꣳशतिः) ॥ १२ ॥

तृतीयोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्त ऐन्द्रवायवाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते मैत्रावरुणाः शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनास्तिस्रः शिल्पा वशा वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्येनीः परमेष्ठिने सोमापौष्णाः श्यामललामास्तूपराः ॥ (शितिबाहुः पञ्चविꣳशतिः) ॥ १३ ॥

चतुर्थोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावरुणाः शितिककुच्छितिपृष्ठः शितिभसत् त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शितिपाच्छित्योष्ठः शितिभ्रुस्त ऐन्द्रावैष्णवास्तिस्रः सिध्मा वशा वैश्वकर्मण्यस्तिस्रो धात्रे पृषोदरा ऐन्द्रापौष्णाः श्येतललामास्तूपराः (उन्नतः पञ्चविꣳशतिः) ॥ १४ ॥

पञ्चमोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कर्णास्त्रयो यामाः सौम्यास्त्रयः श्वितिङ्गा अग्नये यविष्ठाय त्रयो नकुलास्तिस्रो रोहिणीस्त्र्यव्यस्ता

वसूनां तिस्रोऽरुणा दित्यौह्यस्ता रुद्राणाꣳ सोमैन्द्रा बभ्रुललामास्तूपराः ॥ (कर्णास्त्रयोविꣳशतिः) ॥ १५ ॥

षष्ठोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शुण्ठास्त्रयो वैष्णवा अधीलोधकर्णास्त्रयो विष्णव उरुक्रमाय लप्सुदिनस्त्रयो विष्णव उरुगायाय पञ्चावीस्तिस्र आदित्यानां त्रिवत्सास्तिस्रोऽङ्गिरसामैन्द्रावैष्णवा गौरललामास्तूपराः ॥ (शुण्ठा विꣳशतिः) ॥ १६ ॥

सप्तमोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्राय राज्ञे त्रयः शितिपृष्ठा इन्द्रायाधिराजाय त्रयः शितिककुद इन्द्राय स्वराज्ञे त्रयः शितिभसदस्तिस्रस्तुर्यौह्यः साध्यानां तिस्रः पष्ठौह्यो विश्वेषां देवानामाग्नेन्द्राः कृष्णललामास्तूपराः ॥ (इन्द्राय द्वाविꣳशतिः) ॥ १७ ॥

अष्टमोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अदित्यै त्रयो रोहितैता इन्द्राण्यै त्रयः कृष्णैताः कुह्वै त्रयोऽरुणैतास्तिस्रो धेनवो राकायै त्रयोऽनड्वाहः सिनीवाल्या आग्नावैष्णवा रोहितललामास्तूपराः ॥ (अदित्या अष्टादश) ॥ १८ ॥

नवमोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सौम्यास्त्रयः पिशङ्गाः सोमाय राज्ञे त्रयः सारङ्गाः पार्जन्या नभोरूपास्तिस्रोऽजा मल्हा इन्द्राण्यै तिस्रो मेष्य आदित्या द्यावापृथिव्या मालङ्गास्तूपराः ॥ (सौम्या एकान्नविꣳशतिः) ॥ १९ ॥

दशमोऽष्टादशिपशुसमूहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वारुणास्त्रयः कृष्णललामा वरुणाय राज्ञे त्रयो रोहितललामा वरुणाय रिशादसे त्रयोऽरुणललामाः शिल्पास्त्रयो वैश्वदेवास्त्रयः पृश्नयः सर्वदेवत्या ऐन्द्रासूराः श्येतललामास्तूपराः ॥ (वारुणा विꣳशतिः) ॥ २० ॥

द्वन्द्विनः पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सोमाय स्वराज्ञेऽनोवाहावनड्वाहाविन्द्राग्निभ्यामोजोदाभ्यामुष्टाराविन्द्राग्निभ्यां बलदाभ्याꣳ सीरवाहाववी द्वे धेनू भौमी दिग्भ्यो वडबे द्वे धेनू भौमी वैराजी पुरुषी द्वे धेनू भौमी वायव आरोहणवाहावनड्वाहौ वारुणी कृष्णे वशे अराड्यौ दिव्यावृषभौ परिमरौ ॥ (सोमाय चतुस्त्रिꣳशत्) ॥ २१ ॥

अतिरात्रेऽनुष्टेयाः केचित् पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एकादश प्रातर्गव्याः पशव आ लभ्यन्ते छगलः कल्माषः किकिदीविर्विदीगयस्ते त्वाष्ट्राः सौरीर्नव श्वेता वशा अनूबन्ध्या भवन्त्याग्नेय ऐन्द्राग्न आश्विनस्ते विशालयूप आ लभ्यन्ते ॥ (एकादश पञ्चविꣳशतिः) ॥ २२ ॥

ऋतुपशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पिशङ्गास्त्रयो वासन्ताः सारङ्गास्त्रयो ग्रैष्माः पृषन्तस्त्रयो वार्षिकाः पृश्नयस्त्रयः शारदाः पृश्निसक्था-

त्रयो हैमन्तिकौ अवलिप्तास्त्रयः शैशिराः संवत्सराय निवक्षसः ॥ (पिशङ्गा विꣳशतिः) ॥ २३ ॥

[हिरण्यवर्णा २२२। अपां १९७। भूतेष्टका १९८। सजू २२२। संवत्सर १५७। प्रजापति-२१०-२प्रे: १०८। सुवर्णाय १०७। सूयवे १७०। प्रजापती १६५। रोहित: २८। पृश्नि: २१। शितिबाहु- २५।-वेत: २५। कृष्णा: २३। शुण्ठा: २०। इन्द्राय-२२१-दिते १८। सौम्या १९। वारुणा: २०। सोमापौ-१७-कौरव २५। पिशङ्गा-२०। त्रयोविꣳशतिः ॥ २४१६ ॥]

[इति पञ्चमकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

उपानुवाक्याद्यवशिष्टकर्मनिरूपणम् ।

[अथ सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

चित्यभिमर्शनादि ॥ अग्निर्देवता ।

यो वा अयथादेवतमग्निं चिनुत आ देवताभ्यो वृश्च्यते पापीयान् भवति यो यथादेवतं न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवत्याग्नेय्या गायत्रिया प्रथमां चितिमभि मृशेत् त्रिष्टुभा द्वितीयां जगत्या तृतीयामनुष्टुभा चतुर्थीं पङ्क्त्या पञ्चमीं यथादेवतमेवाग्निं चिनुते न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवतीडायै वा एषा विभक्तिः पशव इडा पशुभिरेनं (१) चिनुते यं वै प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यश्वावभितस्तिष्ठेतां कृष्ण उत्तरतः श्वेतो दक्षिणतस्तावालभ्येष्टका उप दध्यादेतद्वै प्रजापते रूपं प्राजापत्योऽश्वः साक्षादेव प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नाऽऽर्तिमार्च्छत्येतद्वा अह्नो रूपं यच्छ्वेतोऽश्वो रात्रियै कृष्ण एतदह्नो (२) रूपं यदिष्टका रात्रियै पुरीषमिष्टका उपधास्यञ्छ्वेतमश्वमभि मृशेत् पुरीषमुपधास्यन् कृष्णमहोरात्राभ्यामेवैनं चिनुते हिरण्यपात्रं मधोः पूर्णं ददाति मधव्योऽसानीति सौर्या चित्रवत्याऽवेक्षते चित्रमेव भवति मध्यन्दिनेऽश्वमव घ्रापयत्यसौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः प्राजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादृध्नोति ॥

(एनं,-मेतदह्नो, ऽष्टाचत्वारिंशच्च) ॥ १ ॥

ऋषभेष्टकोपधानम् ॥ १, ५, ७-११ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् । अग्निर्देवता ।

त्वामग्ने वृषभं चेकितानं पुनर्युवानं जनयन्नुपागाम् ।
अस्थूरि णो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नो ब्रह्मणा सꣳ शिशाधि ॥

प्राणो वा एते यदिष्टकाश्चित्यां चित्यामृषभमुप दधाति मिथुनमेवास्य तदुपाकरोति प्रजननाय तस्मात् यूथे यूथ ऋषभः ॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपासते । प्रजाꣳ सुवीरां कृत्वा विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥

प्राजापत्या-(१)-मेतामुप दधातीयं वाव सैकाष्टका यदेवैकाष्टकायामन्नं क्रियते तदेवैतयाऽव रुन्ध एषा वै प्रजापतेः कामदुघा तयैव यजमानोऽमुष्मिंल्लोकेऽग्निं दुहे

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् येनाऽऽदित्या वसवो येन रुद्राः ।
येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानः स्वस्ति ॥

३१ (तै. सं.)

सुवर्गाय वा एष लोकाय (२) चीयते यदग्निर्येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्नित्युख्यꣳ समिन्ध इष्टका एवैता उप धत्ते वानस्पत्याः सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै

शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे ।
शतं यो नः शरदो अजीतानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ॥
ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति ।
तेषां यो अज्यानिमजीतिमावहात् तस्मै नो देवाः (३) परि दत्तेह सर्वे ॥
ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितं नो अस्तु ।
तेषामृतूनाꣳ शतशारदानां निवात एषामभये स्याम ॥
इदुवत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानां ज्योगजीता अहताः स्याम ॥
भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि त्वा ।
स नो मयोभूः पितो (४) आ विशस्व शं तोकाय तनुवे स्योनः ॥

अज्यानीरेता उप दधात्येता वै देवता अपराजितास्ता एव प्र विशति नैव जीयते ब्रह्मवादिनो वदन्ति यदर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सर ओषधीः पचन्त्यथ कस्मादन्याभ्यो देवताभ्य आग्रयणं निरुप्यत इत्येता हि तद्देवता उदजयन् यदृतुभ्यो निर्वपेद् देवताभ्यः समदं दध्यादाग्रयणं (५) निरुप्यैता आहुतीर्जुहोत्यर्धमासानेव मासानृतून्त्संवत्सरं प्रीणाति न देवताभ्यः समदं दधाति भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवा इत्याह हुताद्याय यजमानस्यापराभावाय ॥

(प्राजापत्यां, लोकाय, देवाः, पितो, दध्यादाग्रयणं, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

वज्रिणीष्टकोपधान-वसोर्धाराविशेषविधानम् ॥ १-४ बृहती; ७ गायत्री । अग्निर्देवता ।

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्तनूपा नः प्रतिस्पशः ।
यो नः पुरस्ता-*- -*द्दक्षिणतः*- -*पश्चा-*- -*दुत्तरतोऽघायुरभिदासत्येतꣳ सोऽश्मानमृच्छतु ॥

देवासुराः संयत्ता आसन् तेऽसुरा दिग्भ्य आऽबाधन्त तान् देवा इष्वा च वज्रेण चापानुदन्त यद्वज्रिणीरुपदधातीष्वा चैव तद्वज्रेण च यजमानो भ्रातृव्यानप नुदते दिक्षूप (१) दधाति देवपुरा एवैतास्तनूपानीः पर्यूहते

ऽग्नाविष्णू सजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरः । द्युम्नैर्वाजेभिरा गतम् ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्न देवतायै जुह्वत्यथ किंदेवत्या वसोर्धारेत्यग्निर्वसुस्तस्यैषा धारा विष्णुर्वसुस्तस्यैषा धाराऽऽग्नावैष्णव्यर्चा वसोर्धारां जुहोति भागधेयेनैवैनौ समर्धयत्यथो एता-(२)-मेवाहुतिमायतनवतीं करोति यत्काम एनां जुहोति तदेवाव रुन्धे रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते तनुवौ घोरा-

(३।१-३) यो नः...मृच्छतु ।

ऽन्या शिवाऽन्या यच्छतरुद्रीयं जुहोति यैवास्य घोरा तनूस्तां तेन शमयति यद्वसोर्धारां जुहोति यैवास्य शिवा तनूस्तां तेन प्रीणाति यो वै वसोर्धारायै (१) प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति यदाज्यमुच्छिष्येत तस्मिन् ब्रह्मौदनं पचेत् तं ब्राह्मणाश्चत्वारः प्राश्नीयुरेष वा अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण एषा खलु वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः प्रियायामेवैनां तनुवां प्रति ष्ठापयति चतस्रो धेनूर्दद्यात् ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोकेऽग्निं दुहे ॥ (वपै,-तां, धाराये, पट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

होमविशेषा राष्ट्रभृदाख्येष्टकोपधानं च ॥ ५-८ त्रिष्टुप् । अग्निर्देवता ।

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेनेत्याहादाभ्या वै नामैषाऽऽहुतिर्वैश्वकर्मणी नैनं चिक्यानं भ्रातृव्यो दभ्नोत्यथो देवता एवाव रुन्धेऽग्ने तमद्येति पङ्क्त्या जुहोति पङ्क्त्याऽऽहुत्या यज्ञमुखमा रभते सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्याह होत्रा एवाव रुन्धेऽग्निर्देवेभ्योऽपाक्रामद्भागधेय-(१)-मिच्छमानस्तस्मा एतद्भागधेयं प्रायच्छन्नेतद्वा अग्नेरग्निहोत्रमेतर्हि खलु वा एष जातो यर्हि सर्वश्चितो जातायैवास्मा अन्नमपि दधाति स एनं प्रीतः प्रीणाति वसीयान् भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यदेष गार्हपत्यश्चीयतेऽथ क्वास्याऽऽहवनीय इत्यसावादित्य इति ब्रूयादेतस्मिन् हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति (२) य एवं विद्वानग्निं चिनुते साक्षादेव देवता ऋध्नोत्य-

-ग्ने यशस्विन् यशसेममर्पयेन्द्रावतीमपचितीमिहाऽऽ वह ।
अयं मूर्धा परमेष्ठी सुवर्चाः समानानामुत्तमश्लोको अस्तु ॥
भद्रं पश्यन्त उप सेदुरग्रे तपो दीक्षामृषयः सुवर्विदः ।
ततः क्षत्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा अभि सं नमन्तु ॥
धाता विधाता परमो-(३)-त संदृक् प्रजापतिः परमेष्ठी विराजा ।
स्तोमाश्छन्दाꣳसि निविदो म आहुरेतस्मै राष्ट्रमभि सं नमाम ॥
अभ्यावर्तध्वमुप मेत साकमयꣳ शास्ताऽधिपतिर्वो अस्तु ।
अस्य विज्ञानमनु सꣳ रभध्वमिमं पश्चादनु जीवाथ सर्वे ॥

राष्ट्रभृत एता उप दधात्येषा वा अग्नेश्चितीं राष्ट्रभृत् तयैवास्मिन् राष्ट्रं दधाति (४) राष्ट्रमेव भवति नास्माद्राष्ट्रं भ्रꣳशते ॥ (भागधेयं, जुह्वति, परमा, राष्ट्रं दधाति, सप्त च) ॥ ४ ॥

पुनः पराभवादिविधानम् ॥ अग्निर्देवता ।

यथा वै पुत्रो जातो म्रियत एवं वा एष म्रियते यस्याग्निरुख्य उद्वायति यन्निर्मन्थ्यं कुर्याद्विच्छिन्द्याद्भ्रातृव्यमस्मै जनयेत् स एव पुनः परीध्यः स्वादेवैनं योनेर्जनयति नास्मै भ्रातृव्यं जनयति तमो वा एतं गृह्णाति यस्याग्निरुख्य उद्वायति मृत्युस्तमः कृष्णं वासः कृष्णा धेनुर्दक्षिणा तमसै-(१)-व तमो मृत्युमप हते हिरण्यं ददाति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिषैव तमोऽप हतेऽथो तेजो वै हिरण्यं तेज एवाऽऽत्मन् धत्ते सुवर्न घर्मः स्वाहा सुवर्नार्कः स्वाहा सुवर्न शुक्रः स्वाहा सुवर्न ज्योतिः स्वाहा

सुवर्न सूर्यः स्वाहाऽर्को वा एष यदग्निरसावादित्यो (२) ऽश्वमेधो यदेता आहुतीर्जुहोत्यर्काश्वमेधयोरेव ज्योतीꣳषि सं दधात्येष ह त्वा अर्काश्वमेधी यस्यैतदग्नौ क्रियत आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् स एतां प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदियमभवत् तं विश्वकर्माऽब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्य-(३)-ब्रवीत् स एतां द्वितीयां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदन्तरिक्षमभवत् स यज्ञः प्रजापतिमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति केन मोपैष्यसीति दिश्याभिरित्यब्रवीत् तं दिश्याभिरुपैत् ता उपाधत्त ता दिशो (४) ऽभव-न्त्स परमेष्ठी प्रजापतिमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणं च यज्ञं चाब्रवीदुप वामाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रूताꣳ स एतां तृतीयां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदसावभवत् स आदित्यः प्रजापतिमब्रवीदुप त्वा (५) आऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणं च यज्ञं चाब्रवीदुप वामाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रूताꣳ स परमेष्ठिनमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति केन मोपैष्यसीति लोकंपृणयेत्यब्रवीत् तं लोकंपृणयोपैत् तस्मादयातयाम्नी लोकंपृणाऽयातयामा ह्यसा-(६)-वादित्य-स्तानृषयोऽब्रुवन्नुप व आऽऽयामेति केन न उपैष्यथेति भूम्नेत्यब्रुवन् तान् द्वाभ्यां चितिभ्यामुपायन्त्स पञ्चचितीकः समपद्यत य एवं विद्वानग्निं चिनुते भूयानेव भवत्यभीमाँल्लोकाञ्जयति विदुरेनं देवा अथो एतासामेव देवतानाꣳ सायुज्यं गच्छति ॥ (नमसा, ऽऽदित्यो, ऽस्तीति, दिशो,-त्वा, ऽसौ, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

संवत्सरव्रतादि ॥ ८ त्रिपादनुष्टुप्; ९-१० अनुष्टुप् । अग्निर्देवता ।

पशुर्वा अग्निर्यदग्निंचित् पक्षिणोऽश्नीयात् तमेवाग्निमद्यादार्तिमार्च्छेत् संवत्सरं व्रतं चरेत् संवत्सरꣳ हि व्रतं नाति पशुर्वा एष यदग्निर्हिनस्ति खलु वै तं पशुर्य एनं पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपचरति तस्मात् पश्चात् प्राङुपचर्य आत्मनोऽहिꣳसायै तेजोऽसि तेजो मे यच्छ पृथिवीं यच्छ (१) पृथिव्यै मा पाहि ज्योतिरसि ज्योतिर्मे यच्छान्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षान्मा पाहि सुवरसि सुवर्मे यच्छ दिवं यच्छ दिवो मा पाहीत्याहैताभिर्वा इमे लोका विधृता यदेता उपदधात्येषां लोकानां विधृत्यै स्वयमातृण्णा उपधाय हिरण्येष्टका उप दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा ज्योतिर्हिरण्यं यत् स्वयमातृण्णा उपधाय (२) हिरण्येष्टका उपदधातीमानेवैताभिर्लोकाञ्ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथो एताभिरेवास्मा इमे लोकाः प्र भान्ति

यास्ते अग्ने सूर्ये रुच उद्यतो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥
रुचं नो धेहि (३) ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

पूर्वोक्तविधिप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिरग्निमचिनुत स क्षुरपविर्भूत्वाऽतिष्ठत् तं देवा बिभ्यतो नोपाऽऽयन् ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपाऽऽयन् तच्छन्दसां छन्दस्त्वं ब्रह्म वै छन्दाꣳसि ब्रह्मण एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुप मुञ्चते छन्दोभिरेवाऽऽत्मानं छादयित्वाऽग्निमुप चरत्यात्मनोऽहिꣳसायै देवनिधिर्वा एष नि धीयते यदग्नि-(१)-रन्ये वा वै निधिमगुप्तं विन्दन्ति न वा प्रति प्र जानात्युखामा क्रामत्यात्मानमेवाधिपां कुरुते गुप्त्या अथो खल्वाहुर्नाऽऽक्रम्येति नैर्ऋत्युखा यदाक्रामेन्निर्ऋत्या आत्मानमपि दध्यात् तस्मान्नाऽऽक्रम्या पुरुषशीर्षमुप दधाति गुप्त्या अथो यथा ब्रूयादेतन्मे गोपायेति तादृगेव तत् (२) प्रजापतिर्वा अथर्वाऽग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणस्तस्येष्टका अस्थान्येतꣳ ह वाव तदृषिरभ्यनूवाचेन्द्रो दधीचो अस्थभिरिति यदिष्टकाभिरग्निं चिनोति सात्मानमेवाग्निं चिनुते सात्माऽमुष्मिँल्लोके भवति य एवं वेद शरीरं वा एतदग्नेर्यच्चित्य आत्मा वैश्वानरो यच्चिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सꣳस्कृत्या-(३)-भ्यारोहति शरीरं वा एतद्यजमानः सꣳ स्कुरुते यदग्निं चिनुते यच्चिते वैश्वानरं जुहोति शरीरमेव सꣳस्कृत्याऽऽत्मनाऽभ्यारोहति तस्मात् तस्य नाव द्यन्ति जीवन्नेव देवानप्येति वैश्वानर्यर्चा पुरीषमुप दधातीयं वा अग्निर्वैश्वानरस्तस्यैषा चितिर्यत् पुरीषमग्निमेव वैश्वानरं चिनुत एषा वा अग्नेः (४) प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः प्रियामेवास्य तनुवमव रुन्धे ॥ (अग्नि,- स्तत्, सꣳस्कृत्या,- ग्ने,- दश च) ॥ ६ ॥

दीक्षाकालविकल्पाः ॥ अग्निर्ऋषिः ।

अग्नेर्वै दीक्षया देवा विराजमाप्नुवन् तिस्रो रात्रीर्दीक्षितः स्यात् त्रिपदा विराड् विराजमाप्नोति षड्रात्रीर्दीक्षितः स्यात् षड् वा ऋतवः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति दश रात्रीर्दीक्षितः स्याद्दशाक्षरा विराड् विराजमाप्नोति द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्याद् द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति त्रयोदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् त्रयोदश (१) मासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति पञ्चदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात् पञ्चदश वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवत्सर आप्यते संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति सप्तदश रात्रीर्दीक्षितः स्याद् द्वादश मासाः पञ्चर्तवः स संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति चतुर्विꣳशतिꣳ रात्रीर्दीक्षितः स्याच्चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति त्रिꣳशतꣳ रात्रीर्दीक्षितः स्यात् (२) त्रिꣳशदक्षरा विराड् विराजमाप्नोति मासं दीक्षितः स्याद्यो मासः स संवत्सरः संवत्सरो विराड् विराजमाप्नोति चतुरो मासो दीक्षितः स्याच्चतुरो वा एतं मासो वसवोऽबिभरुस्ते पृथिवीमाऽजयन् गायत्री छन्दोऽष्टौ रुद्रास्तेऽन्तरिक्षमाऽजयन् त्रिष्टुभं छन्दो द्वादशाऽऽदित्यास्ते दिवमाऽजयन् जगतीं छन्दस्ततो वै ते (३) व्यावृतमगच्छञ्छ्रैष्ठ्यं देवानां तस्माद् द्वादश मासो भृत्वाऽग्निं चिन्वीत द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निश्चित्यस्तस्याहोरात्राणीष्टका आप्तेष्टकमेनं चिनुतेऽथो व्यावृतमेव गच्छति श्रैष्ठ्यꣳ समानानाम् ॥ (त्रयोदश, स्यात्, ते, ऽष्टाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

अन्वारोहणाद्यभिधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सुवर्गाय वा एष लोकाय चीयते यदग्निस्तं यन्नान्वारोहेत् सुवर्गाल्लोकाद्यजमानो हीयेत पृथिवीमा-

ऽक्रमिषं प्राणो मा मा हासीदन्तरिक्षमाऽक्रमिषं प्रजा मा मा हासीद्दिवमाऽक्रमिषꣳ सुवरगन्मेत्याहैष वा अग्नेरन्वारोहस्तेनैवैनमन्वारोहति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै यत् पक्षसंमितां मिनुयात् (१) कनीयाꣳसं यज्ञक्रतुमुपेयात् पापीयस्यस्याऽऽत्मनः प्रजा स्याद्वेदिसंमितां मिनोति ज्यायाꣳसमेव यज्ञक्रतुमुपैति नास्याऽऽत्मनः पापीयसी प्रजा भवति साहस्रं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः सहस्रसंमितो वा अयं लोक इममेव लोकमभि जयति द्विषाहस्रं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानो द्विषाहस्रं वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षमेवाभि जयति त्रिषाहस्रं चिन्वीत तृतीयं चिन्वान-(२)-स्त्रिषाहस्रो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकमभि जयति जानुदघ्नं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानो गायत्रियैवेमं लोकमभ्यारोहति नाभिदघ्नं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानस्त्रिष्टुभैवान्तरिक्षमभ्यारोहति ग्रीवदघ्नं चिन्वीत तृतीयं चिन्वानो जगत्यैवामुं लोकमभ्यारोहति नाग्निं चित्वा रामामुपेयादयोनौ रेतो धास्यामीति न द्वितीयं चित्वाऽन्यस्य स्त्रिय-(३)-मुपेयान्न तृतीयं चित्वा कां चनोपेयाद्रेतो वा एतन्नि धत्ते यदग्निं चिनुते यदुपेयाद्रेतसा व्यृध्येताथो खल्वाहुरप्रजस्यं तद्यन्नोपेयादिति यद्रेतःसिचावुपदधाति ते एव यजमानस्य रेतो बिभृतस्तस्मादुपेयाद्रेतसोऽस्कन्दाय त्रीणि वाव रेताꣳसि पिता पुत्रः पौत्रो (४) यद् द्वे रेतःसिचावुपदध्याद्रेतोऽस्य वि च्छिन्द्यात् तिस्र उप दधाति रेतसः संतत्या इयं वाव प्रथमा रेतःसिग्वाग्वा इयं तस्मात् पश्यन्तीमां पश्यन्ति वाचं वदन्तीमन्तरिक्षं द्वितीया प्राणो वा अन्तरिक्षं तस्मान्नान्तरिक्षं पश्यन्ति न प्राणमसौ तृतीया चक्षुर्वा असौ तस्मात् पश्यन्त्यमूं पश्यन्ति चक्षुर्यजुषेमां चा-(५)-मूं चोप दधाति मनसा मध्यमामेषां लोकानां क्लृप्त्या अथो प्राणानामिद्धो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिस्तस्य त इष्टस्य वीतस्य द्रविणेह भक्षीयेत्याह स्तुतशस्त्रे एवैतेन दुहे पिता मातरिश्वाऽच्छिद्रा पदा धा अच्छिद्रा उशिजः पदाऽनु तक्षुः सोमो विश्वविन्नेता नेषद्बृहस्पतिरुक्थामदानि शꣳसिषदित्याहैतद्वा (६) अग्नेरुक्थं तेनैवैनमनु शꣳसति ॥ (मिनुया, -च्चिन्वानः, स्त्रियं पौत्रं,-श्च, वै, सप्त च) ॥ ८ ॥

आसन्दी-षडुद्याम-उखा-उलूखलादिप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

सूयते वा एषोऽग्नीनां य उखायां भ्रियते यदधः सादयेद्गर्भाः प्रपादुकाः स्युरथो यथा सवात् प्रत्यवरोहति तादृगेव तदासन्दी सादयति गर्भाणां धृत्या अप्रपादायाथो सवमेवैनं करोति गर्भो वा एष यदुख्यो योनिः शिक्यं यच्छिक्यादुखां निरूहेद्योनेर्गर्भं निर्हण्यात् षडुद्यामꣳ शिक्यं भवति षोढाविहितो वै (१) पुरुष आत्मा च शिरश्च चत्वार्यङ्गान्यात्मन्नेवैनं बिभर्ति प्रजापतिर्वा एष यदग्निस्तस्योखा चोलूखलं च स्तनौ तावस्य प्रजा उप जीवन्ति यदुखां चोलूखलं चोपदधाति ताभ्यामेव यजमानोऽमुष्मिँल्लोकेऽग्निं दुहे संवत्सरो वा एष यदग्निस्तस्य त्रेधाविहिता इष्टकाः प्राजापत्या वैष्णवी-(२)-र्वैश्वकर्मणीरहोरात्राण्येवास्य प्राजापत्या यदुख्यं बिभर्ति प्राजापत्या एव तदुप धत्ते यत् समिध आदधाति वैष्णवा वै वनस्पतयो वैष्णवीरेव तदुप धत्ते यदिष्टकाभिरग्निं चिनोतीयं वै विश्वकर्मा वैश्वकर्मणीरेव तदुप धत्ते तस्मादाहुस्त्रिवृदग्निरिति तं वा एतं यजमान एव चिन्वीत यदस्यान्य (३) श्चिनुयाद्यत् तं दक्षिणाभिर्न राधयेदग्निमस्य वृञ्जीत योऽस्याग्निं चिनुयात् तं दक्षिणाभी राधयेदग्निमेव तत् स्पृणोति ॥ (वै, वैष्णवी,-रन्यो, विꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

ऋतुभिः पक्षप्रशंसा ॥ अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिरग्निमचिनुतर्तुभिः संवत्सरं वसन्तेनैवास्य पूर्वार्धमचिनुत ग्रीष्मेण दक्षिणं पक्षं वर्षाभिः पुच्छꣳ शरदोत्तरं पक्षꣳ हेमन्तेन मध्यं ब्रह्मणा वा अस्य तत् पूर्वार्धमचिनुत क्षत्रेण दक्षिणं पक्षं पशुभिः पुच्छं विशोत्तरं पक्षमाशया मध्यं य एवं विद्वानग्निं चिनुत ऋतुभिरेवैनं चिनुतेऽथो एतदेव सर्वमव (१) रुन्धे शृण्वन्त्येनमग्निं चिक्यानमत्त्यन्नꣳ रोचते इयं वाव प्रथमा चितिरोषधयो वनस्पतयः पुरीषमन्तरिक्षं द्वितीया वयाꣳसि पुरीषमसौ तृतीया नक्षत्राणि पुरीषं यज्ञश्चतुर्थी दक्षिणा पुरीषं यजमानः पञ्चमी प्रजा पुरीषं यत् त्रिचितीकं चिन्वीत यज्ञं दक्षिणामात्मानं प्रजामन्तरियात् तस्मात् पञ्चचितीकश्चेतव्य एतदेव सर्वꣳ स्पृणोति यत् तिस्रश्चितय-(२)-स्त्रिवृद्ध्यग्निर्यद् द्वे द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै पञ्च चितयो भवन्ति पाङ्क्तः पुरुष आत्मानमेव स्पृणोति पञ्च चितयो भवन्ति पञ्चभिः पुरीषैरभ्यूहति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरो वै पुरुषो यावानेव पुरुषस्तꣳ स्पृणोत्यथो दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठति संवत्सरो वै षष्ठी चितिरृतवः पुरीषꣳ (३) षट् चितयो भवन्ति षट् पुरीषाणि द्वादश सं पद्यन्ते द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रति तिष्ठति ॥ (अव, चितयः, पुरीषं, पञ्चदश च) ॥ १० ॥

आश्वमेधिकाश्वादिपशुषु प्रथमः पशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते प्राजापत्या बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते रौद्राः श्येतः श्येताक्षः श्येतग्रीवस्ते पितृदेवत्यास्तिस्रः कृष्णा वशा वारुण्यस्तिस्रः श्वेता वशाः सौर्यो मैत्राबार्हस्पत्या धूम्रललामास्तूपराः ॥ (रोहितः षड्विꣳशतिः) ॥ ११ ॥

द्वितीयोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी बलक्षी ताः सारस्वत्यः पृषती स्थूलपृषती क्षुद्रपृषती ता वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्यामा वशाः पौष्णियस्तिस्रो रोहिणीर्वशा मैत्रिय ऐन्द्राबार्हस्पत्या अरुणललामास्तूपराः ॥ (पृश्निः षड्विꣳशतिः) ॥ १२ ॥

तृतीयोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शितिबाहुरन्यतःशितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्त ऐन्द्रावायवाः शितिरन्ध्रोऽन्यतःशितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते मैत्रावरुणाः शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनास्तिस्रः शिल्पा वशा वैश्वदेव्यस्तिस्रः श्येनीः परमेष्ठिने सोमापौष्णाः श्यामललामास्तूपराः ॥ (शितिबाहुः पञ्चविꣳशतिः) ॥ १३ ॥

चतुर्थोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावरुणाः शितिककुच्छितिपृष्ठः शितिभसत् त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शितिपाच्छित्योष्ठः शितिभ्रुस्त ऐन्द्रावैष्णवास्तिस्रः सिध्मा वशा वैश्वकर्मण्यस्तिस्रो धात्रे पृषोदरा ऐन्द्रापौष्णाः श्येतललामास्तूपराः (उन्नतः पञ्चविꣳशतिः) ॥ १४ ॥

पञ्चमोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कर्णास्त्रयो यामाः सौम्यास्त्रयः श्वितिङ्गा अग्नये यविष्ठाय त्रयो नकुलास्तिस्रो रोहिणीस्त्र्यव्यस्ता

वसूनां तिस्रोऽरुणा दित्यौह्यस्ता रुद्राणाꣳ सोमैन्द्रा बभ्रुललामास्तूपराः ॥ (कर्णास्त्रयोविꣳशतिः) ॥ १५ ॥

षष्ठोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शुण्ठास्त्रयो वैष्णवा अधीलोधकर्णास्त्रयो विष्णव उरुक्रमाय लप्सुदिनस्त्रयो विष्णव उरुगायाय पञ्चावीस्तिस्र आदित्यानां त्रिवत्सास्तिस्रोऽङ्गिरसामैन्द्रावैष्णवा गौरललामास्तूपराः ॥ (शुण्ठा विꣳशतिः) ॥ १६ ॥

सप्तमोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्राय राज्ञे त्रयः शितिपृष्ठा इन्द्रायाधिराजाय त्रयः शितिककुद इन्द्राय स्वराज्ञे त्रयः शितिभसदस्तिस्रस्तुर्यौह्यः साध्यानां तिस्रः पष्ठौह्यो विश्वेषां देवानामाग्नेन्द्राः कृष्णललामास्तूपराः ॥ (इन्द्राय द्वाविꣳशतिः) ॥ १७ ॥

अष्टमोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अदित्यै त्रयो रोहितैता इन्द्राण्यै त्रयः कृष्णैताः कुह्वै त्रयोऽरुणैतास्तिस्रो धेनवो राकायै त्रयोऽनड्वाहः सिनीवाल्या आग्नावैष्णवा रोहितललामास्तूपराः ॥ (अदित्या अष्टादश) ॥ १८ ॥

नवमोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सौम्यास्त्रयः पिशङ्गाः सोमाय राज्ञे त्रयः सारङ्गाः पार्जन्या नभोरूपास्तिस्रोऽजा मल्हा इन्द्राण्यै तिस्रो मेष्य आदित्या द्यावापृथिव्या मालङ्गास्तूपराः ॥ (सौम्या एकान्नविꣳशतिः) ॥ १९ ॥

दशमोऽश्वादिपशुसङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वारुणास्त्रयः कृष्णललामा वरुणाय राज्ञे त्रयो रोहितललामा वरुणाय रिशादसे त्रयोऽरुणललामाः शिल्पास्त्रयो वैश्वदेवास्त्रयः पृश्नयः सर्वदेवत्या ऐन्द्रासूराः श्येतललामास्तूपराः ॥
(वारुणा विꣳशतिः) ॥ २० ॥

इष्टिनः पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सोमाय स्वराज्ञेऽनोवाहावनड्वाहाविन्द्राग्निभ्यामोजोदाभ्यामुष्टाराविन्द्राग्निभ्यां बलदाभ्याꣳ सीरवाहाववी द्वे धेनू भौमी दिग्भ्यो वडबे द्वे धेनू भौमी वैराजी पुरुषी द्वे धेनू भौमी वायव आरोहणवाहावनड्वाहौ वारुणी कृष्णे वशे अराड्यौ दिव्यावृषभौ परिमरौ ॥
(सोमाय चतुस्त्रिꣳशत्) ॥ २१ ॥

अतिरात्रेऽनुबन्ध्याः केचित् पशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एकादश प्रातर्गव्याः पशव आ लभ्यन्ते छगलः कल्माषः किकिदीविर्विदीगयस्ते त्वाष्ट्राः सौरीर्नव श्वेता वशा अनूबन्ध्या भवन्त्याग्नेय ऐन्द्राग्न आश्विनस्ते विशालयूप आ लभ्यन्ते ॥
(एकादश पञ्चविꣳशतिः) ॥ २२ ॥

ऋतुपशवः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पिशङ्गास्त्रयो वासन्ताः सारङ्गास्त्रयो ग्रैष्माः पृषन्तस्त्रयो वार्षिकाः पृश्नयस्त्रयः शारदाः पृश्निसक्था-

त्रयो हैमन्तिका अवलिप्तास्त्रयः शैशिराः संवत्सराय निवक्षसः ॥ (पिशङ्गा विꣳशतिः) ॥ २१ ॥

[हिरण्यवर्णा २२२। अपां १९७। मूर्धन्वान् १९८। सुम्न २१२। संवत्सरं १५१। प्रजापति-२१०।-रुद्रैः १७८। सुवर्णाय १०७। सूर्यो १७०। प्रजापती १६५। रोहितः २८। पृश्निः २१। शितिबाहु- २५।-बभ्रुः २५। कर्णाः २१। शुण्ठाः २०। इन्द्राय-२२१।-दितियै १८। सोम्या १९। वारुणाः २०। सोमाय-३४।-वायव २५। पिशङ्गा-२०। त्रयोविꣳशतिः ॥ २४१६०]

[इति पञ्चमकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

उपानुवाक्याद्यवशिष्टकर्मनिरूपणम् ।

[अथ सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

चित्यभिमर्शनादि ॥ अग्निर्ऋषिः ।

यो वा अयथादेवतमग्निं चिनुत आ देवताभ्यो वृश्च्यते पापीयान् भवति यो यथादेवतं न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवत्याग्नेय्या गायत्रिया प्रथमां चितिमभि मृशेत् त्रिष्टुभा द्वितीयां जगत्या तृतीयामनुष्टुभा चतुर्थीं पङ्क्त्या पञ्चमीं यथादेवतमेवाग्निं चिनुते न देवताभ्य आ वृश्च्यते वसीयान् भवतीडायै वा एषा विभक्तिः पशव इडा पशुभिरेनं (१) चिनुते यं वै प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नाऽऽर्तिमार्च्छत्यश्वावभितस्तिष्ठेतां कृष्ण उत्तरतः श्वेतो दक्षिणतस्तावालभ्येष्टका उप दध्यादेतद्वै प्रजापते रूपं प्राजापत्योऽश्वः साक्षादेव प्रजापतये प्रतिप्रोच्याग्निं चिनोति नाऽऽर्तिमार्च्छत्येतद्वा अह्नो रूपं यच्छ्वेतोऽश्वो रात्रियै कृष्ण एतदह्नो (२) रूपं यदिष्टका रात्रियै पुरीषमिष्टका उपधास्यञ्छ्वेतमश्वमभि मृशेत् पुरीषमुपधास्यन् कृष्णमहोरात्राभ्यामेवैनं चिनुते हिरण्यपात्रं मधोः पूर्णं ददाति मधव्योऽसानीति सौर्या चित्रवत्याऽवेक्षते चित्रमेव भवति मध्यन्दिने ऽश्वमव घ्रापयत्यसौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः प्राजापत्योऽश्वस्तमेव साक्षादृध्नोति ॥

(एनं,-मेतदह्नो, ऽष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

ऋषभेष्टकोपधानम् ॥ १, ५, ७-११ त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

त्वामग्ने वृषभं चेकितानं पुनर्युवानं जनयन्नुपागाम् ।
अस्थूरि णो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नो ब्रह्मणा सꣳ शिशाधि ॥

पशवो वा एते यदिष्टकाश्चित्याञ्चित्यामृषभमुप दधाति मिथुनमेवास्य तद्यज्ञे करोति प्रजननाय तस्माद्यूथेयूथ ऋषभः ॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपासते । प्रजाꣳ सुवीरां कृत्वा विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥

प्राजापत्या-(१)-मेतामुप दधातीयं वावैषैकाष्टका यदेवैकाष्टकायामन्नं क्रियते तदेवैतयाऽव रुन्ध एषा वै प्रजापतेः कामदुघा तयैव यजमानोऽमुष्मिंल्लोकेऽग्निं दुहे

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् येनाऽऽदित्या वसवो येन रुद्राः ।
येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानः स्वस्ति ॥

सुवर्गाय वा एष लोकाय (२) चीयते यदग्निर्येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्नित्युख्यꣳ समिन्ध इष्टका एवैता उप धत्ते वानस्पत्याः सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै

शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे ।
शतं यो नः शरदो अजीतानिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा ॥
ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति ।
तेषां यो अज्यानिमजीतिमावहात् तस्मै नो देवाः (३) परि दत्तेह सर्वे ॥
ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितं नो अस्तु ।
तेषामृतूनाꣳ शतशारदानां निवात एषामभये स्याम ॥
इदुवत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानां ज्योगजीता अहताः स्याम ॥
भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयाऽवसेन समशीमहि त्वा ।
स नो मयोभूः पितो (४) आ विशस्व शं तोकाय तनुवे स्योनः ॥

अज्यानीरेता उप दधात्येता वै देवता अपराजितास्ता एव प्र विशति नैव जीयते ब्रह्मवादिनो वदन्ति यदर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सर ओषधीः पचन्त्यथ कस्मादन्याभ्यो देवताभ्य आग्रयणं निरुप्यत इत्येता हि तद्देवता उदजयन् यदृतुभ्यो निर्वपेद् देवताभ्यः समदं दध्यादाग्रयणं (५) निरुप्यैता आहुतीर्जुहोत्यर्धमासानेव मासानृतून्त्संवत्सरं प्रीणाति न देवताभ्यः समदं दधाति भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवा इत्याह हुताद्याय यजमानस्यापराभावाय ॥

(प्राजापत्यां, लोकाय, देवाः, पितो, दध्यादाग्रयणं, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

वज्रिणीष्टकोपधान-वसोर्धाराविशेषविधानम् ॥ १-४ बृहती; ५ गायत्री । अग्निर्ऋषिः ।

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्तनूपा नः प्रतिस्पशः ।
यो नः पुरस्तात् *- -*दक्षिणतः*- -*पश्चात् *- -*दुत्तरतोऽघायुरभिदासत्येतꣳ सोऽश्मानमृच्छतु ॥

देवासुराः संयत्ता आसन् तेऽसुरा दिग्भ्य आऽबाधन्त तान् देवा इष्वा च वज्रेण चापानुदन्त यद्वज्रिणीरुपदधातीष्वा चैव तद्वज्रेण च यजमानो भ्रातृव्यानप नुदते दिक्षूप (१) दधाति देवपुरा एवैतास्तनूपानीः पर्यूहते

अग्नाविष्णू सजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरः । द्युम्नैर्वाजेभिरा गतम् ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्न देवतायै जुह्वत्यथ किंदेवत्या वसोर्धारेत्यग्निर्वसुस्तस्यैषा धारा विष्णुर्यज्ञस्तस्यैषा धाराऽऽग्नावैष्णव्यर्चा वसोर्धारां जुहोति भागधेयेनैवैनौ समर्धयत्यथो एता-(२)-मेवाहुतिमायतनवतीं करोति यत्काम एतां जुहोति तदेवाव रुन्धे रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते तनुवौ घोरा-

(३।१-३) यो नः...मृच्छतु ।

ऽन्या शिवाऽन्या यच्छतरुद्रीयं जुहोति यैवास्य घोरा तनूस्तां तेन शमयति यद्वसोर्धारां जुहोति यैवास्य शिवा तनूस्तां तेन प्रीणाति यो वै वसोर्धारायै (१) प्रतिष्ठां वेद प्रत्येव तिष्ठति यदाज्यमुच्छिष्येत तस्मिन् ब्रह्मौदनं पचेत् तं ब्राह्मणाश्चत्वारः प्राश्नीयुरेष वा अग्निर्वैश्वानरो यद्ब्राह्मण एषा खलु वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः प्रियायामेवैनां तनुवां प्रति ष्ठापयति चतस्रो धेनूर्दद्यात् ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोकेऽग्निं दुहे ॥ (अपै,-तां, धारायै, पट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

होमविशेषा राष्ट्रभृदाद्येष्टकोपधानं च ॥ ५-८ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेनेत्याहादाभ्या वै नामैषाऽऽहुतिर्वैश्वकर्मणी नैनं चिक्यानं भ्रातृव्यो दभ्नोत्यथो देवता एवाव रुन्धेऽग्ने तमद्येति पङ्क्त्या जुहोति पङ्क्त्याऽऽहुत्या यज्ञमुखमा रभते सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्याह होत्रा एवाव रुन्धेऽग्निर्देवेभ्योऽपाक्रामद्भागधेय-(१)-मिच्छमानस्तस्मा एतद्भागधेयं प्रायच्छन्नेतद्वा अग्नेरग्निहोत्रमेतर्हि खलु वा एष जातो यर्हि सर्वश्चितो जातायैवास्मा अन्नमपि दधाति स एनं प्रीतः प्रीणाति वसीयान् भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यदेष गार्हपत्यश्चीयतेऽथ क्वास्याऽऽहवनीय इत्यसावादित्य इति ब्रूयादेतस्मिन् हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति (२) य एवं विद्वानग्निं चिनुते साक्षादेव देवता ऋध्नोत्य-

-ग्ने यशस्विन् यशसेममर्पयेन्द्रावतीमपचितीमिहाऽऽ वह ।
अयं मूर्धा परमेष्ठी सुवर्चाः समानानामुत्तमश्लोको अस्तु ॥
भद्रं पश्यन्त उप सेदुरग्रे तपो दीक्षामृषयः सुवर्विदः ।
ततः क्षत्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा अभि सं नमन्तु ॥
धाता विधाता परमो-(३)-त संदृक् प्रजापतिः परमेष्ठी विराजा ।
स्तोमाश्छन्दाꣳसि निविदो म आहुरेतस्मै राष्ट्रमभि सं नमाम ॥
अभ्यावर्तध्वमुप मेत साकमयꣳ शास्ताऽधिपतिर्वो अस्तु ।
अस्य विज्ञानमनु सꣳ रभध्वमिमं पश्चादनु जीवाथ सर्वे ॥

राष्ट्रभृत एता उप दधात्येषा वा अग्नेश्चिती राष्ट्रभृत् तयैवास्मिन् राष्ट्रं दधाति (४) राष्ट्रमेव भवति नास्माद्राष्ट्रं भ्रꣳशते ॥ (भागधेयं, जुह्वति, परमो, राष्ट्रं दधाति, सप्त च) ॥ ४ ॥

पुनः परोऽवत्तादिविधानम् ॥ अग्निर्ऋषिः ।

यथा वै पुत्रो जातो म्रियत एवं वा एष म्रियते यस्याग्निरुख्य उद्वायति यन्निर्मन्थ्यं कुर्याद्विच्छिन्द्याद्भ्रातृव्यमस्मै जनयेत् स एव पुनः परीध्यः स्वादेवैनं योनेर्जनयति नास्मै भ्रातृव्यं जनयति तमो वा एतं गृह्णाति यस्याग्निरुख्य उद्वायति मृत्युस्तमः कृष्णं वासः कृष्णा धेनुर्दक्षिणा तमसैव (१) तमो मृत्युमप हते हिरण्यं ददाति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिषैव तमोऽप हतेऽथो तेजो वै हिरण्यं तेज एवाऽऽत्मन् धत्ते सुवर्न घर्मः स्वाहा सुवर्नार्कः स्वाहा सुवर्न शुक्रः स्वाहा सुवर्न ज्योतिः स्वाहा

सुवर्न सूर्यः स्वाहाऽर्को वा एष यदग्निरसावादित्यो (२) ऽश्वमेधो यदेता आहुतीर्जुहोत्यर्काश्वमेधयोरेव ज्योतीꣳषि सं दधात्येष ह त्वा अर्काश्वमेधी यस्यैतदग्नौ क्रियत आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् स एतां प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदियमभवत् तं विश्वकर्माऽब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्य-(३)-ब्रवीत् स एतां द्वितीयां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदन्तरिक्षमभवत् स यज्ञः प्रजापतिमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति केन मोपैष्यसीति दिश्याभिरित्यब्रवीत् तं दिश्याभिरुपैत् ता उपाधत्त ता दिशो (४) ऽभव-न्त्स परमेष्ठी प्रजापतिमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणं च यज्ञं चाब्रवीदुप वामाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रूताꣳ स एतां तृतीयां चितिमपश्यत् तामुपाधत्त तदसावभवत् स आदित्यः प्रजापतिमब्रवीदुप त्वा (५) ऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रवीत् स विश्वकर्माणं च यज्ञं चाब्रवीदुप वामाऽऽयानीति नेह लोकोऽस्तीत्यब्रूताꣳ स परमेष्ठिनमब्रवीदुप त्वाऽऽयानीति केन मोपैष्यसीति लोकम्पृणयेत्यब्रवीत् तं लोकम्पृणयोपैत् तस्मादयातयाम्नी लोकम्पृणाऽयातयामा ह्यसा-(६)-वादित्यस्ताननृषयोऽब्रुवन्नुप व आऽयामेति केन न उपैष्यथेति भूम्नेत्यब्रुवन् तान् द्वाभ्यां चितीभ्यामुपायन्त्स पञ्चचितीकः समपद्यत य एवं विद्वानग्निं चिनुते भूयानेव भवत्यभीमाँल्लोकाञ्जयति विदुरेनं देवा अथो एतासामेव देवतानाꣳ सायुज्यं गच्छति ॥ (तमसा, ऽऽदित्यो, ऽस्तीति, दिशो,-त्वा, ऽसौ, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

स्वयमातृण्णादीष्टकाप्रशंसा ॥ ८ त्रिपादनुष्टुप्; ९-१० अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

वयो वा अग्निर्यदग्निचित् पक्षिणोऽश्नीयात् तमेवाग्निमद्यादार्तिमार्च्छेत् संवत्सरं व्रतं चरेत् संवत्सरꣳ हि व्रतं नाति पशुर्वा एष यदग्निर्हिनस्ति खलु वै तं पशुर्य एनं पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपचरति तस्मात् पश्चात् प्राङुपचर्य आत्मनोऽहिꣳसायै तेजोऽसि तेजो मे यच्छ पृथिवीं यच्छ (१) पृथिव्यै मा पाहि ज्योतिरसि ज्योतिर्मे यच्छान्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षान्मा पाहि सुवरसि सुवर्मे यच्छ दिवं यच्छ दिवो मा पाहीत्याहैताभिर्वा इमे लोका विधृता यदेता उपदधात्येषां लोकानां विधृत्यै स्वयमातृण्णा उपधाय हिरण्येष्टका उप दधातीमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा ज्योतिर्हिरण्यं यत् स्वयमातृण्णा उपधाय (२) हिरण्येष्टका उपदधातीमानेवैताभिर्लोकाञ्ज्योतिष्मतः कुरुतेऽथो एताभिरेवास्मा इमे लोकाः प्र भान्ति

यास्ते अग्ने सूर्ये रुच उद्यतो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिः सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥
रुचं नो धेहि (३) ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

द्वेधा वा अग्निं चिक्यानस्य यश इन्द्रियं गच्छत्यग्निं वा चितमीजानं वा यदेता आहुतीर्जुहोत्यात्मन्नेव यश इन्द्रियं धत्त ईश्वरो वा एष आर्तिमार्तोर्योऽग्निं चिन्वन्नधिक्रामति तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान इति वारुण्यर्चा (४) जुहुयाच्छान्तिरेवैषाऽग्नेर्गुप्तिरात्मनो हविष्कृतो वा एष योऽग्निं चिनुते यथा वै हविः स्कन्दत्येवं वा एष स्कन्दति योऽग्निं चित्वा स्त्रियमुपैति मैत्रावरुण्याऽऽमिक्षया यजेत मैत्रावरुणतामेवोपैत्यात्मनोऽस्कन्दाय यो वा अग्निमृतुस्थां वेदर्तुर्ऋतुरस्मै कल्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति संवत्सरो वा अग्नि(५)र्ऋतुस्थास्तस्य वसन्तः शिरो ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षो वर्षाः पुच्छꣳ शरदुत्तरः पक्षो हेमन्तो मध्यं पूर्वपक्षाश्चितयोऽपरपक्षाः पुरीषमहोरात्राणीष्टका एष वा अग्निर्ऋतुस्था य एवं वेदर्तुर्ऋतुरस्मै कल्पमान एति प्रत्येव तिष्ठति प्रजापतिर्वा एतं ज्यैष्ठ्यकामो न्यधत्त ततो वै स ज्यैष्ठ्यमगच्छद्य एवं विद्वानग्निं चिनुते (६) ज्यैष्ठ्यमेव गच्छति ॥ (पृथिवी यच्छ, यत् स्वयमातृण्णा वेधुत्राय, वेद,- वा, ऽग्नि,- चिनुते, त्रीणि च) ॥ ६ ॥

आकूतिमन्त्राः ॥ १-४ त्रिष्टुप्; ५-१० अनुष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

यदाकूतात् समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा ।
तमनु प्रेहि सुकृतस्य लोकं यत्रर्षयः प्रथमजा ये पुराणाः ॥
एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥
जानीतादेनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात् (१) पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै ॥
सं प्र च्यवध्वमनु सं प्र याताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥
प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो वह सुवर्देवेषु गन्तवे ॥
यदिष्टं यत् परादानं यद्दत्तं या च दक्षिणा ।
त- (२) -दग्निर्वैश्वकर्मणः सुवर्देवेषु नो दधत् ॥
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह सुवर्देवेषु गन्तवे ॥
येनाग्ने दक्षिणा युक्ता यज्ञं वहन्त्यृत्विजः । तेनेमं यज्ञं नो वह सुवर्देवेषु गन्तवे ॥
येनाग्ने सुकृतः पथा मधोर्धारा व्यानशुः । तेनेमं यज्ञं नो वह सुवर्देवेषु गन्तवे (३) ॥
यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः सुवर्देवेषु नो दधत् ॥
(आगच्छात्, त,-द्यानशुस्तेनेमं यज्ञं नो वह सुवर्देवेषु गन्तवे चतुर्दश च) ॥ ७ ॥

स्वयंचितिः, कूर्मोपधानं च ॥ १,२ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

यास्ते अग्ने समिधो यानि धाम या जिह्वा जातवेदो यो अर्चिः ।
ये ते अग्ने मेडयो य इन्दवस्तेभिरात्मानं चिनुहि प्रजानन् ॥

उत्सन्नयज्ञो वा एष यदग्निः किं वाऽहैतस्य क्रियते किं वा न यद्वा अध्वर्युरग्नेश्चिन्वन्नन्तरेत्यात्मनो वै तदन्तरेति यास्ते अग्ने समिधो यानि (१) धामेत्याहैषा वा अग्नेः स्वयंचितिरग्निरेव तदग्निं चिनोति नाध्वर्युरात्मनोऽन्तरेति

चतस्र आशाः प्र चरन्त्वग्नय इमं नो यज्ञं नयतु प्रजानन्
घृतं पिन्वन्नजरꣳ सुवीरं ब्रह्म समिद्भवत्याहुतीनाम् ॥

सुवर्गाय वा एष लोकायोप धीयते यत् कूर्मश्चतस्र आशाः प्र चरन्त्वग्नय इत्याह (२) दिश एवैतेन प्र जानातीमं नो यज्ञं नयतु प्रजानन्नित्याह सुवर्गस्य लोकस्याभिनीत्यै ब्रह्म समिद्भवत्याहुतीनामित्याह ब्रह्मणा वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् यद्ब्रह्मण्वत्योपदधाति ब्रह्मणैव तद्यजमानः सुवर्गं लोकमेति प्रजापतिर्वा एष यदग्निस्तस्य प्रजाः पशवश्छन्दाꣳसि रूपꣳ सर्वान् वर्णानिष्टकानां (३) कुर्याद्रूपेणैव प्रजां पशूञ्छन्दाꣳस्यव रुन्धेऽथो प्रजाभ्य एवैनं पशुभ्यश्छन्दोभ्योऽवरुध्य चिनुते ॥
(एति यास्ते अग्ने समिधो यान्या,-ग्नय इत्याहे-ष्टकानाꣳ, षोडश च) ॥ ८ ॥

अग्निग्रहः, सर्वमुखं च ॥ १-२ त्रिष्टुप् । अग्निर्ऋषिः ।

मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ।
मयि प्रजां मयि वर्चो दधाम्यरिष्टाः स्याम तनुवा सुवीराः ॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्याꣳ आविवेश ।
तमात्मन् परि गृह्णीमहे वयं मा सो अस्माꣳ अवहाय परा गात् ॥

यदध्वर्युरात्मन्नग्निमगृहीत्वाऽग्निं चिनुयाद्योऽस्य स्वोऽग्निस्तमपि (१) यजमानाय चिनुयादग्निं खलु वै पशवोऽनूप तिष्ठन्तेऽपक्रामुका अस्मात् पशवः स्युर्मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निमित्याहाऽऽत्मन्नेव स्वमग्निं दाधार नास्मात् पशवोऽप क्रामन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्मृच्चाऽऽपश्चाग्नेरनाद्यमथ कस्मान्मृदा चाद्भिश्चाग्निश्चीयत इति यदद्भिः संयौत्या(२)पो वै सर्वा देवता देवताभिरेवैनꣳ सꣳ सृजति यन्मृदा चिनोतीयं वा अग्निर्वैश्वानरोऽग्निनैव तदग्निं चिनोति ब्रह्मवादिनो वदन्ति यन्मृदा चाद्भिश्चाग्निश्चीयतेऽथ कस्मादग्निरुच्यत इति यच्छन्दोभिश्चिनोत्यग्नयो वै छन्दाꣳसि तस्मादग्निरुच्यतेऽथो इयं वा अग्निर्वैश्वानरो य(३)न्मृदा चिनोति तस्मादग्निरुच्यते हिरण्येष्टका उप दधाति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेवास्मिन् दधात्यथो तेजो वै हिरण्यं तेज एवाऽऽत्मन् धत्ते यो वा अग्निꣳ सर्वतोमुखं चिनुते सर्वासु प्रजास्वन्नमत्ति सर्वा दिशोऽभि जयति गायत्रीं पुरस्तादुप दधाति त्रिष्टुभं दक्षिणतो जगतीं पश्चादनुष्टुभमुत्तरतः पङ्क्तिं मध्य एष वा (४) अग्निः सर्वतोमुखस्तं य एवं विद्वाꣳश्चिनुते सर्वासु प्रजास्व-

न्नमत्ति सर्वा दिशोऽभि जयत्यथो दिश्येव दिशं प्र वयति तस्माद्दिशि दिक् प्रोता ॥
(अपि, संयौति, वैश्वानरो य,-न्नेष वै, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

पशुशीर्षोपधानं, तत्र केषांचिद्विशेषाश्च । अग्निर्ऋषिः ।

प्रजापतिरग्निमसृजत सोऽस्मात् सृष्टः प्राङ् प्राद्रवत् तस्मा अश्वं प्रत्यास्यत् स दक्षिणाऽऽवर्तत तस्मै वृष्णिं प्रत्यास्यत् स प्रत्यङ्ङाऽवर्तत तस्मा ऋषभं प्रत्यास्यत् स उदङ्ङाऽवर्तत तस्मै बस्तं प्रत्यास्यत् स ऊर्ध्वोऽद्रवत् तस्मै पुरुषं प्रत्यास्यद्यत् पशुशीर्षाण्युपदधाति सर्वत एवैन(१)मवरुध्य चिनुत एता वै प्राणभृतश्चक्षुष्मतीरिष्टका यत् पशुशीर्षाणि यत् पशुशीर्षाण्युपदधाति ताभिरेव यजमानोऽमुष्मिंल्लोके प्राणित्यथो ताभिरेवास्मा इमे लोकाः प्र भान्ति मृदाऽभिलिप्योप दधाति मेध्यत्वाय पशुर्वा एष यदग्निरन्नं पशव एष खलु वा अग्निर्यत् पशुशीर्षाणि यं कामयेत कनीयोऽस्यान्नꣳ (२) स्यादिति संतरां तस्य पशुशीर्षाण्युप दध्यात् कनीय एवास्यान्नं भवति यं कामयेत समावदस्यान्नꣳ स्यादिति मध्यतस्तस्योप दध्यात् समावदेवास्यान्नं भवति यं कामयेत भूयोऽस्यान्नꣳ स्यादित्यन्तेषु तस्य व्युदूह्योप दध्यादन्तत एवास्मा अन्नमव रुन्धे भूयोऽस्यान्नं भवति (३) ॥ (एन,-मन्नं, भूयोऽस्यान्नं भवति) ॥ १० ॥

[११-२४] अश्वमेधाङ्गत्वशरीरहोममन्त्राः ॥ ११-२६ । विश्वेदेवा ऋषयः ।

स्तेगान् दꣳष्ट्राभ्यां मण्डूकान् जम्भ्येभिरादकां खादेनोर्जꣳ सꣳसूदेनारण्यं जाम्बीलेन मृदं बर्स्वेभिः शर्कराभिरवकामवकाभिः शर्करामुत्सादेन जिह्वामवक्रन्देन तालुꣳ सरस्वतीं जिह्वाग्रेण ॥ (स्तेगान् द्वाविꣳशतिः) ॥ ११ ॥

वाजꣳ हनूभ्यामप आस्येनाऽऽदित्याञ्छ्मश्रुभिरुपयाममधरेणोष्ठेन सदुत्तरेणान्तरेणानूकाशं प्रकाशेन बाह्यꣳ स्तनयित्नुं निर्बाधेन सूर्याग्नी चक्षुर्भ्यां विद्युतौ कनीनकाभ्यामशनिं मस्तिष्केण बलं मज्जभिः ॥ (वाजं पञ्चविꣳशतिः) ॥ १२ ॥

कूर्माञ्छफैरच्छलाभिः कपिञ्जलान्त्साम कुष्ठिकाभिर्जवं जङ्घाभिरगदं जानुभ्यां वीर्यं कुहाभ्यां भयं प्रचालाभ्यां गुहोपपक्षाभ्यामश्विनाꣳसाभ्यामदितिꣳ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जाल्मकेन शीर्ष्णा ॥ (कूर्मान् त्रयोविꣳशतिः) ॥ १३ ॥

योक्त्रं गृध्राभिर्युगमानतेन चित्तं मन्याभिः संक्रोशान् प्राणैः प्रकाशेन त्वचं पराकाशेनान्तरां मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन रथमुष्णिहाभिः ॥ (योक्त्रमेकविꣳशतिः) ॥ १४ ॥

मित्रावरुणौ श्रोणीभ्यामिन्द्राग्नी शिखण्डाभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यामिन्द्राविष्णू अष्ठीवद्भ्याꣳ सवितारं पुच्छेन गन्धर्वाञ्छेपेनाप्सरसो मुष्काभ्यां पवमानं पायुना पवित्रं पोत्राभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां प्रतिक्रमणं कुष्ठाभ्याम् ॥ (मित्रावरुणौ द्वाविꣳशतिः) ॥ १५ ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवो जीमूतान् हृदयौपशाभ्यामन्तरिक्षं पुरितता नभ उदर्येणेन्द्राणीं प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोम्ना गिरीन् प्लाशिभिः समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ (इन्द्रस्य द्वाविꣳशतिः) ॥ १६ ॥

पूष्णो वनिष्ठुरन्धाहेः स्थूरगुदा सर्पान् गुदाभिर्ऋतून् पृष्टीभिर्दिवं पृष्ठेन वसूनां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीयाऽङ्गिरसां चतुर्थी साध्यानां पञ्चमी विश्वेषां देवानाꣳ षष्ठी ॥ (पूष्णस्त्रयोविꣳशतिः) ॥ १७ ॥

ओजो ग्रीवाभिर्निर्ऋतिमस्थभिरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन रुद्रस्य विचलः स्कन्धोऽहोरात्रयोर्द्वितीयोऽर्धमासानां तृतीयो मासां चतुर्थ ऋतूनां पञ्चमः संवत्सरस्य षष्ठः ॥ (ओजो विꣳशतिः) ॥ १८ ॥

आनन्दं नन्दथुना कामं प्रत्यासाभ्यां भयꣳ शितीमभ्यां प्रशिषं प्रशासाभ्याꣳ सूर्याचन्द्रमसौ वृक्याभ्याꣳ श्यामशबलौ मतस्नाभ्यां व्युष्टिꣳ रूपेण निम्रुक्तिमरूपेण ॥ (आनन्दं षोडश) ॥ १९ ॥

अहर्माꣳसेन रात्रिं पीवसाऽपो यूषेण घृतꣳ रसेन श्यां वसया दूषीकाभिर्ह्रादुनिमश्रुभिः पृष्वां दिवꣳ रूपेण नक्षत्राणि प्रतिरूपेण पृथिवीं चर्मणा छवीं छव्योपाकृताय स्वाहाऽऽलब्धाय स्वाहा हुताय स्वाहा ॥ (अहरष्टाविꣳशतिः) ॥ २० ॥

अग्नेः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिः सोमस्य तृतीयाऽपां चतुर्थ्योषधीनां पञ्चमी संवत्सरस्य षष्ठी मरुताꣳ सप्तमी बृहस्पतेरष्टमी मित्रस्य नवमी वरुणस्य दशमीन्द्रस्यैकादशी विश्वेषां देवानां द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यमस्य पाटूरः ॥ (अग्नेरेकान्नत्रिꣳशत्) ॥ २१ ॥

वायोः पक्षतिः सरस्वतो निपक्षतिश्चन्द्रमसस्तृतीया नक्षत्राणां चतुर्थी सवितुः पञ्चमी रुद्रस्य षष्ठी सर्पाणाꣳ सप्तम्यर्यम्णोऽष्टमी त्वष्टुर्नवमी धातुर्दशमीन्द्राण्या एकादश्यदित्यै द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यम्यै पाटूरः ॥ (वायोरष्टाविꣳशतिः) ॥ २२ ॥

पन्थामनूवृग्भ्याꣳ संततिꣳ स्नावन्याभ्याꣳ शुकान् पित्तेन हरिमाणं यक्ना हलीक्ष्णान् पापवातेन कूश्माञ्छकभिः शवर्तानूवध्येन शुनो विशसनेन सर्पांल्लोहितगन्धेन वयाꣳसि पक्वगन्धेन पिपीलिकाः प्रशादेन ॥ (पन्थां द्वाविꣳशतिः) ॥ २३ ॥

पुरस्तात्स्वयंचितिः ॥

क्रमैरत्यक्रमीद्वाजी विश्वैर्देवैर्यज्ञियैः संविदानः ।
स नो नय सुकृतस्य लोकं तस्य ते वयꣳ स्वधया मदेम ॥ (क्रमैरष्टादश) ॥ २४ ॥

अथानुमन्त्रणम् ॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्माऽन्तरिक्षं समुद्रो योनिः सूर्यस्ते चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रं मासाश्चार्धमासाश्च पर्वाण्यृतवोऽङ्गानि संवत्सरो महिमा ॥ (द्यौः पञ्चविंशतिः) ॥ २५ ॥

अथानुप्रापणम् ॥

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोकस्तं जेष्यस्यथावजिघ्र वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन् वायुः स ते लोकस्तस्मात् त्वाऽन्तरेष्यामि यदि नावजिघ्रस्यादित्यः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मि- (१) -न्नादित्यः स ते लोकस्तं जेष्यसि यद्यवजिघ्रसि ॥ (यस्मिन्नष्टौ च) ॥ २६ ॥

[य-१४८। स्वा-२७५। मिग्नर्स्य १९६। चित्तिं २०७। यथा १४५। वयो १०१। य-१४१। या १६६। मयि २२५। प्रजापतिः १५०। स्तेगान् २२। यामं २५। कूर्मान् २१। योक्त्रं २१। मित्रावरुणा-२२। विश्वेभ्य २२। पूष्णे २४। ओजं २०। आनन्द-१६। मई-२८। तुभ्यं-२९। यो यो २८। पन्थ्यां २२। कर्मे-१८। द्यौस्ते २५। अग्निः ५८। षड्विंशतिः ॥ २५८२ ॥]

[॥ इति पञ्चमकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥]

[सावित्राणि १०८१। विष्णुमुखा ११९५। उत्सन्नयज्ञो २४७७। देवासुरा २९०८। यदेकेन २०२७। हिरण्यवर्णा २४३६। यो वा २५८२। (तुल्य ॥ ७ ॥ १९४०४)]

॥ इति पञ्चमं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं काण्डम् ।

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

प्राचीनवंशाख्यशालानिर्माणं क्षौरादिभिः संस्कृतस्य यजमानस्य तत्र प्रवेशविधानम् । सोमऋषिः ।

प्राचीनवंशं करोति देवमनुष्या दिशो व्यभजन्त प्राचीं देवा दक्षिणा पितरः प्रतीचीं मनुष्या उदीचीं रुद्रा यत् प्राचीनवंशं करोति देवलोकमेव तद्यजमान उपावर्तते परि श्रयत्यन्तर्हितो हि देवलोको मनुष्यलोकान्नास्माल्लोकात् स्वेतव्यमिवेत्याहुः को हि तद्वेद यद्यमुष्मिंल्लोकेऽस्ति वा न वेति दिक्ष्वतीकाशान् करोत्यु- (१) -भयोर्लोकयोरभिजित्यै केशश्मश्रु वपते नखानि नि कृन्तते मृता वा एषा त्वगमेध्या यत् केशश्मश्रु मृतामेव त्वचममेध्यामपहत्य यज्ञियो भूत्वा मेधमुपैत्यङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तोऽप्सु दीक्षातपसी प्रावेशयन्नप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षातपसी अव रुन्धे तीर्थे स्नाति तीर्थे हि ते तां प्रावेशयन् तीर्थे स्नाति (२) तीर्थमेव समानानां भवत्यपोऽश्नात्यन्तरत एव मेध्यो भवति वाससा दीक्षयति सौम्यं वै क्षौमं देवतया सोममेव देवतामुपैति यो दीक्षते सोमस्य तनूरसि तनुवं मे पाहीत्याह स्वामेव देवतामुपैत्यथो आशिषमेवैतामा शास्तेऽग्नेस्तूषाधानं वायोर्वातपानं पितृणां नीविरोषधीनां प्रघात (३) आदित्यानां प्राचीनतानो विश्वेषां देवानामोतुर्नक्षत्राणामतीकाशास्तद्वा एतत् सर्वदेवत्यं यद्वासो यद्वाससा दीक्षयति सर्वाभिरेवैनं देवताभिर्दीक्षयति बहिःप्राणो वै मनुष्यस्तस्याशनं प्राणोऽश्नाति सप्राण एव दीक्षत आशितो भवति यावानेवास्य प्राणस्तेन सह मेधमुपैति घृतं देवानां मस्तु पितृणां निष्पक्वं मनुष्याणां तद्वा (४) एतत् सर्वदेवत्यं यन्नवनीतं यन्नवनीतेनाभ्यङ्क्ते सर्वा एव देवताः प्रीणाति प्रच्युतो वा एषोऽस्माल्लोकादगतो देवलोकं यो दीक्षितोऽन्तरेव नवनीतं तस्मान्नवनीतेनाभ्यङ्क्तेऽनुलोमं यजुषा व्यावृत्त्या इन्द्रो वृत्रमहन् तस्य कनीनिका परापतत् तदाञ्जनमभवद्यदाङ्क्ते चक्षुरेव भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते दक्षिणं पूर्वमाङ्क्ते (५) सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते न नि धावते नीव हि मनुष्या धावन्ते पञ्च कृत्व आङ्क्ते पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे परिमितमाङ्क्तेऽपरिमितं हि मनुष्या आञ्जते सतूलयाऽऽङ्क्तेऽपतूलया हि मनुष्या आञ्जते व्यावृत्त्यै यदपतूलयाऽऽञ्जीत वज्र इव स्यात् सतूलयाऽऽङ्क्ते मित्रत्वाय (६) इन्द्रो वृत्रमहन्त्सोऽपोऽभ्यम्रियत तासां यन्मेध्यं यज्ञियं सदेवमासीत् तदपोदक्रामन् ते दर्भा अभवन् यद्दर्भपुञ्जीलैः पवयति या एव मेध्या यज्ञियाः सदेवा आपस्ताभिरेवैनं पवयति द्वाभ्यां पवयत्यहोरात्राभ्यामेवैनं पवयति त्रिभिः पवयति त्रय इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पवयति पञ्चभिः (७) पवयति पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञायैवैनं पवयति षड्भिः पवयति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं पवयति सप्तभिः पवयति सप्त छन्दांसि छन्दोभिरेवैनं पवयति नवभिः पवयति नव वै पुरुषे प्राणाः सप्राणमेवैनं पवयत्येकविंशत्या पवयति दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पद्या आत्मैकविंशो यावानेव पुरुषस्तमपरिवर्गं (८) पवयति चित्पतिस्त्वा

पुनात्वित्याह मनो वै चित्पतिर्मनसैवैनं पवयति वाक्पतिस्त्वा पुनात्वित्याह वाचैवैनं पवयति देवस्त्वा सविता पुनात्वित्याह सवितृप्रसूत एवैनं पवयति तस्य ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कं पुने तच्छकेयमित्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते ॥ (अतीकाशान् करोत्यु,-वेशयन् तीर्थे स्नाति, प्रघातो, मनुष्याणां तद्वा, आङ्क्ते, मित्रत्वाय, पञ्चभि,-रपरिवर्गं,-मष्टाचत्वारिंशच्च) ॥ १ ॥

यज्ञशालां प्रविष्टस्य यजमानस्य दीक्षाहोमविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

यावन्तो वै देवा यज्ञायापुनत त एवाभवन् य एवं विद्वान् यज्ञाय पुनीते भवत्येव बहिः पवयित्वाऽन्तः प्र पादयति मनुष्यलोक एवैनं पवयित्वा पूतं देवलोकं प्र णयत्यदीक्षित एकयाऽऽहुत्येत्याहुः स्रुवेण चतस्रो जुहोति दीक्षितत्वाय स्रुचा पञ्चमीं पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहेत्याह मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहेत्याह (१) स्वाहेत्याहाऽऽकूत्या हि पुरुषो यज्ञमभि प्रयुङ्क्ते यजेयेति मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहेत्याह मेधया हि मनसा पुरुषो यज्ञमभिगच्छति सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहेत्याह वाग्वै सरस्वती पृथिवी पूषा वाचैव पृथिव्या यज्ञं प्र युङ्क्त आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्याह या वै वर्ष्यास्ता (२) आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्दिव्या आपोऽशान्ता इमं लोकमा गच्छेयुरापो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इत्याहास्मा एवैना लोकाय शमयति तस्माच्छान्ता इमं लोकमा गच्छन्ति द्यावापृथिवी इत्याह द्यावापृथिव्योर्हि यज्ञ उर्वन्तरिक्षमित्याहान्तरिक्षे हि यज्ञो बृहस्पतिर्नो हविषा वृधात्वि- (३) -त्याह ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मै यज्ञमव रुन्धे यद्ब्रूयाद्विधेरिति यज्ञस्थाणुमृच्छेद्वृधात्वित्याह यज्ञस्थाणुमेव परि वृणक्ति प्रजापतिर्यज्ञमसृजत सोऽस्मात् सृष्टः पराङैत् स प्र यजुरव्लीनात् प्र साम तमृगुदयच्छद्यदृगुदयच्छत् तदौद्ग्रहणस्यौद्ग्रहणत्वमृचा (४) जुहोति यज्ञस्योद्यत्यै अनुष्टुप्छन्दसामुदयच्छदित्याहुस्तस्मादनुष्टुभा जुहोति यज्ञस्योद्यत्यै द्वादश वात्सबन्धान्युदयच्छन्नित्याहुस्तस्माद् द्वादशभिर्वात्सबन्धविदो दीक्षयन्ति सा वा एषर्गनुष्टुग्वागनुष्टुग्यदेतयर्चा दीक्षयति वाचैवैनं सर्वया दीक्षयति विश्वे देवस्य नेतुरित्याह सावित्र्येतेन मर्तो वृणीत सख्य- (५) -मित्याह पित्र्येतेन विश्वे राय इषुध्यसीत्याह वैश्वदेव्येतेन द्युम्नं वृणीत पुष्यस इत्याह पौष्ण्येतेन सा वा एषा सर्वदेवत्या यदेतयर्चा दीक्षयति सर्वाभिरेवैनं देवताभिर्दीक्षयति सप्ताक्षरं प्रथमं पदमष्टाक्षराणि त्रीणि यानि त्रीणि तान्यष्टावुपयन्ति यानि चत्वारि तान्यष्टौ यदष्टाक्षरा तेन (६) गायत्री यदेकादशाक्षरा तेन त्रिष्टुग्यद् द्वादशाक्षरा तेन जगती सा वा एषा सर्वाणि छन्दांसि यदेतयर्चा दीक्षयति सर्वैरेवैनं छन्दोभिर्दीक्षयति सप्ताक्षरं प्रथमं पदं सप्तपदा शक्वरी पशवः शक्वरी पशूनेवाव रुन्धे एकस्मादक्षरादनाप्तं प्रथमं पदं तस्माद्यद्वाचोऽनाप्तं तन्मनुष्या उप जीवन्ति पूर्णया जुहोति (७) पूर्ण इव हि प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै न्यूनया जुहोति न्यूनाद्धि प्रजापतिः प्रजा असृजत प्रजानां सृष्ट्यै ॥ (अग्नये, ता, वृधात्वि, चा, सख्यं, तेन, जुहोति, पञ्चदश च) ॥ २ ॥

कृष्णाजिनेन वस्त्रेण मेखलया च दीक्षाविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

ऋक्सामे वै देवेभ्यो यज्ञायातिष्ठमाने कृष्णो रूपं कृत्वाऽपक्रम्यातिष्ठतां तेऽमन्यन्त यं वा इमे उपा-

वर्त्स्यतः स इदं भविष्यतीति ते उपामन्त्रयन्त ते अहोरात्रयोर्महिमानमपनिधाय देवानुपावर्तेतामेष वा ऋचो वर्णो यच्छुक्लं कृष्णाजिनस्यैष साम्नो यत् कृष्णमृक्सामयोः शिल्पे स्थ इत्याहर्क्सामे एवाव रुन्धे एष (१) वा अह्नो वर्णो यच्छुक्लं कृष्णाजिनस्यैष रात्रिया यत् कृष्णं यदेवैनयोस्तत्र न्यक्तं तदेवाव रुन्धे कृष्णाजिनेन दीक्षयति ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं ब्रह्मणैवैनं दीक्षयतीमां धियं शिक्षमाणस्य देवेत्याह यथायजुरेवैतद्गर्भो वा एष यद्दीक्षित उल्बं वासः प्रोर्णुते तस्मात् (२) गर्भाः प्रावृता जायन्ते न पुरा सोमस्य क्रयादपोर्णुवीत यत् पुरा सोमस्य क्रयादपोर्णुवीत गर्भाः प्रजानां परापातुकाः स्युः क्रीते सोमेऽपोर्णुते जायत एव तदथो यथा वसीयांसं प्रत्यपोर्णुते तादृगेव तदङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्त ऊर्जं व्यभजन्त ततो यदत्यशिष्यत ते शरा अभवन्नूर्ग्वै शरा यच्छरमयी (३) मेखला भवत्यूर्जमेवाव रुन्धे मध्यतः सं नह्यति मध्यत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्मध्यत ऊर्जा भुञ्जत ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्यै मेध्यमवाचीनममेध्यं यन्मध्यतः संनह्यति मेध्यं चैवास्यामेध्यं च व्यावर्तयतीन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत् स त्रेधा व्यभवत् स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयं (४) येऽन्तःशरा अशीर्यन्त ते शरा अभवन् तच्छराणां शरत्वं वज्रो वै शराः क्षुत् खलु वै मनुष्यस्य भ्रातृव्यो यच्छरमयी मेखला भवति वज्रेणैव साक्षात् क्षुधं भ्रातृव्यं मध्यतोऽप हते त्रिवृद्भवति त्रिवृद्वै प्राणस्त्रिवृतमेव प्राणं मध्यतो यजमाने दधाति पृथ्वी भवति रज्जूनां व्यावृत्त्यै मेखलया यजमानं दीक्षयति योक्त्रेण पत्नीं मिथुनत्वाय (५) यज्ञो दक्षिणामभ्यध्यायत् तां समभवत् तदिन्द्रोऽचायत् सोऽमन्यत यो वा इतो जनिष्यते स इदं भविष्यतीति तां प्राविशत् तस्या इन्द्र एवाजायत सोऽमन्यत यो वै मदितोऽपरो जनिष्यते स इदं भविष्यतीति तस्या अनुमृश्य योनिमाच्छिनत् सा सूतवशाऽभवत् तत् सूतवशायै जन्म (६) तां हस्ते न्यवेष्टयत तां मृगेषु न्यदधात् सा कृष्णविषाणाऽभवदिन्द्रस्य योनिरसि मा मा हिंसीरिति कृष्णविषाणां प्र यच्छति सयोनिमेव यज्ञं करोति सयोनिं दक्षिणां सयोनिमिन्द्रं सयोनित्वाय कृष्यै त्वा सुसस्याया इत्याह तस्मादकृष्टपच्या ओषधयः पच्यन्ते सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्य इत्याह तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्ति यद्धस्तेन (७) कण्डूयेत पामनंभावुकाः प्रजाः स्युर्यत् स्मयेत नग्नंभावुकाः कृष्णविषाणया कण्डूयतेऽपिगृह्य स्मयते प्रजानां गोपीथाय न पुरा दक्षिणाभ्यो नेतोः कृष्णविषाणामव चृतेद्यत् पुरा दक्षिणाभ्यो नेतोः कृष्णविषाणामवचृतेद्योनिः प्रजानां परापातुका स्यान्नीतासु दक्षिणासु चात्वाले कृष्णविषाणां प्रास्यति योनिर्वै यज्ञस्य चात्वालं योनिः कृष्णविषाणा योनावेव योनिं दधाति यज्ञस्य सयोनित्वाय ॥ (एष एव,- स्तस्मा,- च्छरमयी, यूपस्तृतीयं, मिथुनत्वाय जन्म, हस्तेना,- ष्टाचत्वारिंशच्च) ॥ ३ ॥

यजमानस्य दण्डप्रदानमुष्टीकरणवाग्यमपूर्वकं नियमानुष्ठानम् ॥ सोमऋषिः ।

वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामद्यज्ञायातिष्ठमाना सा वनस्पतीन् प्राविशत् सैषा वाग्वनस्पतिषु वदति या दुन्दुभौ या तूणवे या वीणायां यद्दीक्षितदण्डं प्रयच्छति वाचमेवाव रुन्धे औदुम्बरो भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवाव रुन्धे मुखेन संमितो भवति मुखत एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्मुखत ऊर्जा भुञ्जते (१) क्रीते सोमे मैत्रावरुणाय दण्डं प्र यच्छति मैत्रावरुणो हि पुरस्तादृत्विग्भ्यो वाचं विभजति तामृत्विजो यजमाने प्रति

छादयन्ति स्वाहा यज्ञं मनसेत्याह मनसा हि पुरुषो यज्ञमभिगच्छति स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यामित्याह द्यावापृथिव्योर्हि यज्ञः स्वाहोरोरन्तरिक्षादित्याहान्तरिक्षे हि यज्ञः स्वाहा यज्ञं वातादा रभ इत्याहायं (२) वाव यः पवते स यज्ञस्तमेव साक्षादा रभते मुष्टी करोति वाचं यच्छति यज्ञस्य धृत्या अदीक्षिष्टायं ब्राह्मण इति त्रिरुपांश्वाह देवेभ्य एवैनं प्राऽऽह त्रिरुच्चैरुभयेभ्य एवैनं देवमनुष्येभ्यः प्राऽऽह न पुरा नक्षत्रेभ्यो वाचं वि सृजेद् यत् पुरा नक्षत्रेभ्यो वाचं विसृजेद् यज्ञं विच्छिन्द्या-(३)-दुदितेषु नक्षत्रेषु व्रतं कृणुतेति वाचं वि सृजति यज्ञव्रतो वै दीक्षितो यज्ञमेवाभि वाचं वि सृजति यदि विसृजेद् वैष्णवीमृचमनु ब्रूयाद् यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनैव यज्ञꣳ सं तनोति दैवीं धियं मनामह इत्याह यज्ञमेव तन्म्रदयति सुपारा नो असद् वश इत्याह व्युष्टिमेवाव रुन्धे (४) ब्रह्मवादिनो वदन्ति होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३ इ न होतव्या३मिति हविर्वै दीक्षितो यज्जुहुयाद् यजमानस्यावदाय जुहुयाद् यन्न जुहुयाद् यज्ञपरुरन्तरियाद् ये देवा मनोजाता मनोयुज इत्याह प्राणा वै देवा मनोजाता मनोयुजस्तेष्वेव परोक्षं जुहोति तन्नेव हुतं नेवाहुतꣳ स्वपन्तं वै दीक्षितꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्त्यग्निः (५) खलु वै रक्षोहाऽग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहीत्याहाग्निमेवाधिपां कृत्वा स्वपिति रक्षसामपहत्या अव्रत्यमिव वा एष करोति यो दीक्षितः स्वपिति त्वमग्ने व्रतपा असीत्याहाग्निर्वै देवानां व्रतपतिः स एवैनं व्रतमा लम्भयति देव आ मर्त्येष्वेत्याह देवो (६) ह्येष सन् मर्त्येषु त्वं यज्ञेष्वीड्य इत्याहैतꣳ हि यज्ञेष्वीडतेऽप वै दीक्षितात् सुषुपुष इन्द्रियं देवताः क्रामन्ति विश्वे देवा अभि मामाऽववृत्रन्नित्याहेन्द्रियेणैवैनं देवताभिः सं नयति यदेतद्यजुर्न ब्रूयाद्यावत एव पशूनभि दीक्षेत तावन्तोऽस्य पशवः स्यू रास्वेयत् (७) सोमाऽऽ भूयो भरेत्याहापरिमितानेव पशूनव रुन्धे चन्द्रमसि मम भोगाय भवेत्याह यथादेवतमेवैनाः प्रति गृह्णाति वायवे त्वा वरुणाय त्वेति यदेवमेता नानुदिशेदयथादेवतं दक्षिणा गमयेदा देवताभ्यो वृश्च्येत यदेवमेता अनुदिशति यथादेवतमेव दक्षिणा गमयति न देवताभ्य आ (८) वृश्च्यते देवीरापो अपां नपादित्याह यो मेध्यो यज्ञियः सदेवं तं वो माऽव क्रमिषमिति वावैतदाहाच्छिन्नं तन्तुं पृथिव्या अनु गेषमित्याह सेतुमेव कृत्वाऽत्येति ॥ (मुष्टी, अयं, छिन्द्या,- दुन्धे, अग्नि,-र्वाह देव, इयत्, देवताभ्य आ, चतुस्त्रिꣳशच्च) ॥४॥

प्रायणीयेष्टिविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै देवयजनमध्यवसाय दिशो न प्राजानन् तेऽन्योऽन्यमुपाधावन् त्वया प्र जानाम त्वयेति तेऽदित्याꣳ समध्रियन्त त्वया प्र जानामेति साऽब्रवीद् वरं वृणै मत्प्रायणा एव वो यज्ञा मदुदयना असन्निति तस्मादादित्यः प्रायणीयो यज्ञानामादित्य उदयनीयः पञ्च देवता यजति पञ्च दिशो दिशां प्रज्ञात्या (१) अथो पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे पथ्याꣳ स्वस्तिमयजन् प्राचीमेव तया दिशं प्राजानन्नग्निना दक्षिणा सोमेन प्रतीचीꣳ सवित्रोदीचीमदित्योर्ध्वां पथ्याꣳ स्वस्तिं यजति प्राचीमेव तया दिशं प्र जानाति पथ्याꣳ स्वस्तिमिष्ट्वाऽग्नीषोमौ यजति चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदग्नीषोमौ ताभ्यामेवानु पश्यत्य-(२)-ग्नीषोमाविष्ट्वा सवितारं यजति सवितृप्रसूत एवानु पश्यति सवितारमिष्ट्वाऽदितिं यजतीयं वा अदितिरस्यामेव प्रतिष्ठायानु पश्यत्य-दितिमिष्ट्वा मारुतीमृचमन्वाह मरुतो वै देवानां विशो देवविशं खलु

वै कल्पमानं मनुष्यविशमनु कल्पते यन्मारुतीमृचमन्वाह विशां क्लृप्त्यै ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रयाजवदननूयाजं प्रायणीयं कार्यमनूयाजव-(३)-दप्रयाजमुदयनीयमितीमे वै प्रयाजा अमी अनूयाजाः सैव सा यज्ञस्य सन्ततिस्-तत् तथा न कार्यमात्मा वै प्रयाजाः प्रजाऽनूयाजा यत् प्रयाजानन्तरियादात्मानमन्तरियाद्यदनूयाजानन्तरियात् प्रजामन्तरियाद्यतः खलु वै यज्ञस्य विततस्य न क्रियते तदनु यज्ञः परा भवति यज्ञं पराभवन्तं यजमानोऽनु (४) परा भवति प्रयाजवदेवानूयाजवत् प्रायणीयं कार्यं प्रयाजवदनूयाजवदुदयनीयं नाऽऽत्मानमन्तरेति न प्रजां न यज्ञः पराभवति न यजमानः प्रायणीयस्य निष्कास उदयनीयमभि निर्वपति सैव सा यज्ञस्य सन्ततिर्-याः प्रायणीयस्य याज्या यत् ता उदयनीयस्य याज्याः कुर्यात् पराङमुं लोकमा रोहेत् प्रमायुकः स्याद्याः प्रायणीयस्य पुरोऽनुवाक्यास्ता (५) उदयनीयस्य याज्याः करोत्यस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठति ॥ (प्रज्ञात्यै, पश्यत्य,- नूयाजव,- यजमानोऽनु, पुरोऽनुवाक्यास्ता, अष्टौ च) ॥५॥

अरुणया गवा सोमक्रयणविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

कद्रूश्च वै सुपर्णी चाऽऽत्मरूपयोरस्पर्धेताꣳ सा कद्रूः सुपर्णीमजयत् साऽब्रवीत् तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमा हर तेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणीष्वेती-यं वै कद्रूरसौ सुपर्णी छन्दाꣳसि सौपर्णेयाः साऽब्रवीदस्मै वै पितरौ पुत्रान् बिभृतस्तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमा हर तेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणीष्वे (१)-ति मा कद्रूरवोचदिति जगत्युदपतच्चतुर्दशाक्षरा सती साऽप्राप्य न्यवर्तत तस्यै द्वे अक्षरे अमीयेताꣳ सा पशुभिश्च दीक्षया चाऽऽगच्छत् तस्माज्जगती छन्दसां पशव्यतमा तस्मात् पशुमन्तं दीक्षोप नमति त्रिष्टुगुदपतत् त्रयोदशाक्षरा सती साऽप्राप्य न्यवर्तत तस्यै द्वे अक्षरे अमीयेताꣳ सा दक्षिणाभिश्च (२) तपसा चाऽऽगच्छत् तस्मात् त्रिष्टुभो लोके माध्यन्दिने सवने दक्षिणा नीयन्त एतत् खलु वाव तप इत्याहुर्यः स्वं ददातीति गायत्र्युदपतच्चतुरक्षरा सत्यजया ज्योतिषा तमस्या अजाऽभ्यरुन्ध तदजाया अजत्वꣳ सा सोमं चाऽऽहरच्चत्वारि चाक्षराणि साऽष्टाक्षरा समपद्यत ब्रह्मवादिनो वदन्ति (३) कस्मात् सत्याद् गायत्री कनिष्ठा छन्दसाꣳ सती यज्ञमुखं परीयायेति यदेवादः सोममाऽहरत् तस्माद्यज्ञमुखं पर्यैत् तस्मात् तेजस्विनीतमा पद्भ्यां द्वे सवने समगृह्णान्मुखेनैकं यन्मुखेन समगृह्णात् तदधयत् तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती प्रातःसवनं च माध्यन्दिनं च तस्मात् तृतीयसवन ऋजीषमभि षुण्वन्ति धीतमिव हि मन्यन्त (४) आशिरमव नयति सशुक्रत्वायाथो सं भरत्येवैनत् तꣳ सोममाह्रियमाणं गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात् स तिस्रो रात्रीः परिमुषितोऽवसत् तस्मात् तिस्रो रात्रीः क्रीतः सोमो वसति ते देवा अब्रुवन्त्स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः स्त्रिया निष्क्रीणामेति ते वाचꣳ स्त्रियमेकहायनीं कृत्वा तया निरक्रीणन्-त्सा रोहिद्रूपं कृत्वा गन्धर्वेभ्यो (५) ऽपक्रम्यातिष्ठत् तद्रोहितो जन्म ते देवा अब्रुवन्नप युष्मदक्रमीन्नास्मानुपावर्तते वि ह्वयामहा इति ब्रह्म गन्धर्वा अवदन्नगायन् देवाः सा देवान् गायत उपावर्तत तस्माद्गायन्तꣳ स्त्रियः कामयन्ते कामुका एनꣳ स्त्रियो भवन्ति य एवं वेदाथो य एवं विद्वानपि जन्येषु भवति तेभ्य एव ददत्युत यद्बहुतया (६) भवन्त्ये-कहायन्या क्रीणाति वाचैवैनꣳ सर्वया क्रीणाति तस्मादेकहायना

मनुष्या वाचं वदन्त्य-कूटयाऽकर्णयाऽकाणयाऽश्लोणयाऽसप्तशफया क्रीणाति सर्वयैवैनं क्रीणाति यच्छ्वेतया क्रीणीयाद्दुश्चर्मा यजमानः स्याद्यत् कृष्णयाऽनुस्तरणी स्यात् प्रमायुको यजमानः स्याद्यद् द्विरूपया वार्त्रघ्नी स्यात् स वाऽन्यं जिनीयात् तं वाऽन्यो जिनीयादरुणया पिङ्गाक्ष्या (७) क्रीणात्येतद्वै सोमस्य रूपꣳ स्वयैवैनं देवतया क्रीणाति ॥ (निष्क्रीणीष्व, दक्षिणाभिश्च, वदन्ति, मन्यन्ते, गन्धर्वेभ्यो, बहुतया, पिङ्गाक्ष्या, द्वे च) ॥६॥

सोमक्रयप्रकारः ॥ सोमऋषिः ।

तद्धिरण्यमभवत् तस्मादद्भ्यो हिरण्यं पुनन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्यादनस्थिकेन प्रजाः प्रवीयन्तेऽस्थन्वतीर्जायन्त इति यद्धिरण्यं घृतेऽवधाय जुहोति तस्मादनस्थिकेन प्रजाः प्र वीयन्तेऽस्थन्वतीर्जायन्त एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतं तेजो हिरण्यमियं ते शुक्र तनूरिदं वर्च इत्याह सतेजसमेवैनꣳ सतनुं (१) करोत्यथो सं भरत्येवैनं यदबद्धमवदध्याद्गर्भाः प्रजानां परापातुकाः स्युर्बद्धमव दधाति गर्भाणां धृत्यै निष्टर्क्यं बध्नाति प्रजानां प्रजननाय वाग्वा एषा यत् सोमक्रयणी जूरसीत्याह यद्धि मनसा जवते तद्वाचा वदति धृता मनसेत्याह मनसा हि वाग्धृता जुष्टा विष्णव इत्याह (२) यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञायैवैनां जुष्टां करोति तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसव इत्याह सवितृप्रसूतामेव वाचमव रुन्धे काण्डेकाण्डे वै क्रियमाणे यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्त्येष खलु वा अरक्षोहतः पन्था योऽग्नेश्च सूर्यस्य च सूर्यस्य चक्षुराऽरुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकामित्याह य एवारक्षोहतः पन्थास्तꣳ समारोहति (३) वाग्वा एषा यत् सोमक्रयणी चिदसि मनाऽसीत्याह शास्त्येवैनामेतत् तस्माच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते चिदसीत्याह यद्धि मनसा चेतयते तद्वाचा वदति मनाऽसीत्याह यद्धि मनसाऽभिगच्छति तत् करोति धीरसीत्याह यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा (४) वदति दक्षिणाऽसीत्याह दक्षिणा ह्येषा यज्ञियाऽसीत्याह यज्ञियामेवैनां करोति क्षत्रियाऽसीत्याह क्षत्रिया ह्येषाऽदितिरस्युभयतःशीर्ष्णीत्याह यदेवाऽऽदित्यः प्रायणीयो यज्ञानामादित्य उदयनीयस्तस्मादेवमाह यदबद्धा स्यादयता स्याद्यत् पदिबद्धाऽनुस्तरणी स्यात् प्रमायुको यजमानः स्याद् (५) यत् कर्णगृहीता वार्त्रघ्नी स्यात् स वाऽन्यं जिनीयात् तं वाऽन्यो जिनीयान्मित्रस्त्वा पदि बध्नात्वित्याह मित्रो वै शिवो देवानां तेनैवैनां पदि बध्नाति पूषाऽध्वनः पात्वित्याहेयं वै पूषेमामेवास्या अधिपामकः समष्ट्या इन्द्रायाध्यक्षायेत्याहेन्द्रमेवास्या अध्यक्षं करोत्य-(६)-नु त्वा माता मन्यतामनु पितेत्याहानुमतयैवैनया क्रीणाति सा देवि देवमच्छेहीत्याह देवी ह्येषा देवः सोम इन्द्राय सोममित्याहेन्द्राय हि सोम आह्रियते यदेतद्यजुर्न ब्रूयात् पराच्येव सोमक्रयण्येयाद्रुद्रस्त्वाऽऽ वर्तयत्वित्याह रुद्रो वै क्रूरो (७) देवानां तमेवास्यै परस्ताद्दधात्यावृत्त्यै क्रूरमिव वा एतत् करोति यद्रुद्रस्य कीर्तयति मित्रस्य पथेत्याह शान्त्यै वाचा वा एष वि क्रीणीते यः सोमक्रयण्या स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि सह रय्येत्याह वाचैव विक्रीय पुनरात्मन् वाचं धत्तेऽनुपदासुकाऽस्य वाग्भवति य एवं वेद (८) ॥ (सतनुं, विष्णव इत्याह, समारोहति, तद्वाचा यजमानः स्यात्, करोति, क्रूरो, वेद) ॥७॥

सोमक्रयण्या गोमध्यमार्गे पदसप्तप्रदप्रकारः ॥ सोमऋषिः ।

षट् पदान्यनु नि क्रामति षड्ढं वाङ्नाति वदत्युत संवत्सरस्यायने यावत्येव वाक्तामव रुन्धे सप्तमे पदे जुहोति सप्तपदा शक्वरी पशवः शक्वरी पशूनेवाव रुन्धे सप्त ग्राम्याः पशवः सप्ताऽऽरण्याः सप्त छन्दाꣳस्युभयस्यावरुद्ध्यै वस्व्यसि रुद्राऽसीत्याह रूपमेवास्या एतन्महिमानं (१) व्याचष्टे बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वत्वित्याह ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मै पशूनव रुन्धे रुद्रो वसुभिरा चिकेत्वित्याहाऽऽवृत्त्यै पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्ना जिघर्मि देवयजन इत्याह पृथिव्या ह्येष मूर्धा यद्देवयजनमिडायाः पद इत्याहेडायै ह्येतत् पदं यत् सोमक्रयण्यै घृतवति स्वाहे-(२)-त्याह यदेवास्यै पदाद् घृतमपीड्यत तस्मादेवमाह यदध्वर्युरनग्नावाहुतिं जुहुयादन्धोऽध्वर्युः स्याद्रक्षाꣳसि यज्ञꣳ हन्युर्हिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निवत्येव जुहोति नान्धोऽध्वर्युर्भवति न यज्ञꣳ रक्षाꣳसि घ्नन्ति काण्डेकाण्डे वै क्रियमाणे यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्ति परिलिखितꣳ रक्षः परिलिखिता अरातय इत्याह रक्षसामपहत्या (३) इदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इत्याह द्वौ वाव पुरुषौ यं चैव द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तयोरेवानन्तरायं ग्रीवाः कृन्तति पशवो वै सोमक्रयण्यै पदं यावत्मूतꣳ सं वपति पशूनेवाव रुन्धेऽस्मे राय इति सं वपत्यात्मानमेवाध्वर्युः (४) पशुभ्यो नान्तरेति त्वे राय इति यजमानाय प्र यच्छति यजमान एव रयिं दधाति तोते राय इति पत्निया अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नी यथा गृहेषु निधत्ते तादृगेव तत् त्वष्टीमती ते सपेयेत्याह त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानाꣳ रूपकृद्रूपमेव पशुषु दधात्य-स्मै वै लोकाय गार्हपत्य आ धीयते (५) ऽमुष्मा आहवनीयो यद्गार्हपत्य उपवपेदस्मिँल्लोके पशुमान्त्स्याद्यदाहवनीयेऽमुष्मिँल्लोके पशुमान्त्स्यादुभयोरुप वपत्युभयोरेवैनं लोकयोः पशुमन्तं करोति ॥ (महिमानꣳ, स्वाहा, अपहत्या, अध्वर्यु - धीयते, चतुर्विꣳशतिश्च) ॥८॥

क्रयार्थं सोमस्योन्मानप्रकारः ॥ सोमऋषिः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति विचित्यः सोमा३ न विचित्या३ इति सोमो वा ओषधीनाꣳ राजा तस्मिन् यदापन्नं ग्रसितमेवास्य तद्यद्विचिनुयाद्यथाऽऽस्याद् ग्रसितं निष्खिदति तादृगेव तद्यन्न विचिनुयाद्यथाऽक्षन्नापन्नं विधावति तादृगेव तत् क्षोधुकोऽध्वर्युः स्यात् क्षोधुको यजमानः सोमविक्रयिन्त्सोमꣳ शोधयेत्येव ब्रूयाद्यदीतरं (१) यदीतरमुभयेनैव सोमविक्रयिणमर्पयति तस्मात् सोमविक्रयी क्षोधुकोऽरुणो ह स्माऽऽहौपवेशिः सोमक्रयण एवाहं तृतीयसवनमव रुन्ध इति पशूनां चर्मन् मिमीते पशूनेवाव रुन्धे पशवो हि तृतीयꣳ सवनं यं कामयेतापशुः स्यादित्यृक्षतस्तस्य मिमीतर्क्षं वा अपशव्यमपशुरेव भवति यं कामयेत पशुमान्त्स्या-(२)-दिति लोमतस्तस्य मिमीतैतद्वै पशूनाꣳ रूपꣳ रूपेणैवास्मै पशूनव रुन्धे पशुमानेव भवत्यपामन्ते क्रीणाति सरसमेवैनं क्रीणात्य-मात्योऽसीत्याहामैवैनं कुरुते शुक्रस्ते ग्रह इत्याह शुक्रो ह्यस्य ग्रहोऽनसाऽच्छ याति महिमानमेवास्याच्छ यात्य-नसा (३) ऽच्छ याति तस्मादनोवाह्यꣳ समे जीवनं यत्र खलु वा एतꣳ शीर्ष्णा हरन्ति तस्माच्छीर्षहार्यं गिरौ जीवनमभि त्यं देवꣳ सवितारमित्यतिच्छन्दसर्चा मिमीतेऽतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दाꣳसि सर्वेभिरेवैनं छन्दोभिर्मिमीते वर्ष्म वा एषा छन्दसां यद-

तिच्छन्दा यदतिच्छन्दसर्चा मिमीते वर्ष्मैवैनꣳ समानानां करोत्येकैकयोत्सर्गं (४) मिमीतेऽयातयाम्नियायातयाम्नियैवैनं मिमीते तस्मान्नानावीर्या अङ्गुलयः सर्वास्वङ्गुष्ठमुप नि गृह्णाति तस्मात् समावद्वीर्योऽन्याभिरङ्गुलिभिस्तस्मात् सर्वा अनु सं चरति[1] यत् सह सर्वाभिर्मिमीत सꣳश्लिष्टा अङ्गुलयो जायेरन्नेकैकयोत्सर्गं मिमीते तस्माद्विभक्ता जायन्ते[2] पञ्च कृत्वो यजुषा मिमीते पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे पञ्च कृत्वस्तूष्णीं (५) दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धे यद्यजुषा मिमीते भूतमेवाव रुन्धे यत् तूष्णीं भविष्यद्[3] यद्वै तावानेव सोमः स्याद्यावन्तं मिमीते यजमानस्यैव स्यान्नापि सदस्यानां प्रजाभ्यस्त्वेत्युप समूहति सदस्यानेवान्वाभजति वाससोप नह्यति सर्वदेवत्यं वै (६) वासः सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति पशवो वै सोमः प्राणाय त्वेत्युप नह्यति प्राणमेव पशुषु दधाति व्यानाय त्वेत्यनु शृन्थति व्यानमेव पशुषु दधाति तस्मात् स्वपन्तं प्राणा न जहति[4] ॥
(इतरं, पशुमानस्यां,- स्वात्वनंसो,- रसगं, तूष्णीꣳ, सर्वदेवत्यं वै, त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

अजादिभिर्द्रव्यान्तरैः सोमक्रयणम् ॥ सोमऋषिः ।

यत् कलया ते शफेन ते क्रीणानीति पणेतागोअर्घꣳ सोमं कुर्यादगोअर्घं यजमानमगोअर्घमध्वर्युं गोस्तु महिमानं नाव तिरेद्गवा ते क्रीणानीत्येव ब्रूयाद्गोअर्घमेव सोमं करोति गोअर्घं यजमानं गोअर्घमध्वर्युं न गोर्महिमानमव तिरत्यजया क्रीणाति सतपसमेवैनं क्रीणाति हिरण्येन क्रीणाति सशुक्रमेवै-(१)-नं क्रीणाति धेन्वा क्रीणाति साशिरमेवैनं क्रीणात्यृषभेण क्रीणाति सेन्द्रमेवैनं क्रीणात्यनडुहा क्रीणाति वह्निर्वा अनड्वान् वह्निनैव वह्नि यज्ञस्य क्रीणाति मिथुनाभ्यां क्रीणाति मिथुनस्यावरुद्ध्यै वाससा क्रीणाति सर्वदेवत्यं वै वासः सर्वाभ्य एवैनं देवताभ्यः क्रीणाति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धे[2] (२) तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्ण इत्याह पशुभ्य एव तदध्वर्युर्नि ह्नुत आत्मनोऽनाव्रस्काय गच्छति श्रियं प्र पशूनाप्नोति य एवं वेद[3] शुक्रं ते शुक्रेण क्रीणामीत्याह यथायजुरेवैतत्[4] देवा वै येन हिरण्येन सोममक्रीणन् तदभीषहा पुनराऽददत को हि तेजसा विक्रेष्यत इति येन हिरण्येन (३) सोमं क्रीणीयात् तदभीषहा पुनरा ददीत तेज एवाऽऽत्मन् धत्ते[5] अस्मे ज्योतिः सोमविक्रयिणि तम इत्याह ज्योतिरेव यजमाने दधाति तमसा सोमविक्रयिणमर्पयति[6] यदनुपग्रथ्य हन्याद्दन्दशूकास्ताꣳ समाꣳ सर्पाः स्युरिदमहꣳ सर्पाणां दन्दशूकानां ग्रीवा उप ग्रथ्नामीत्याहादन्दशूकास्ताꣳ समाꣳ सर्पा भवन्ति तमसा सोमविक्रयिणं विध्यति[7] स्वान (४) भ्राजेत्याहैते वा अमुष्मिंल्लोके सोममरक्षन् तेभ्योऽधि सोममाऽहरन् यदेतेभ्यः सोमक्रयणान्नानुदिशेदक्रीतोऽस्य सोमः स्यान्नास्यैतेऽमुष्मिंल्लोके सोमꣳ रक्षेयुर्यदेतेभ्यः सोमक्रयणाननुदिशति क्रीतोऽस्य सोमो भवत्येतेऽस्यामुष्मिंल्लोके सोमꣳ रक्षन्ति[8] ॥
(सशुक्रमेवा, व रुन्धे, येन हिरण्येन, स्वान, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

क्रीतस्य सोमस्य शकटेन प्राचीनवंशं प्रतिनयनम् ॥ सोमऋषिः ।

वारुणो वै क्रीतः सोम उपनद्धो मित्रो न एहि सुमित्रधा इत्याह शान्त्यै इन्द्रस्योरुमा विश दक्षिणमित्याह देवा वै यꣳ सोममक्रीणन् तमिन्द्रस्योरौ दक्षिण आऽसादयन्नेष खलु वा एतर्हीन्द्रो यो यजते

तस्मादेवमाह[1] आयुषा स्वायुषेत्याह देवता एवान्वारभ्योत् (१) तिष्ठत्युर्वन्तरिक्षमन्विहीत्याहान्तरिक्षदेवत्यो ह्येतर्हि सोमः[2] अदित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आ सीदेत्याह यथायजुरेवैतद्[3] वि वा एनमेतदर्धयति यद्ब्राह्मणꣳ सन्तं मैत्रं करोति वारुण्यर्चाऽऽसादयति स्वयैवैनं देवतया समर्धयति[4] वाससा पर्यानह्यति सर्वदेवत्यं वै वासः सर्वाभिरेवै-(२)-नं देवताभिः समर्धयत्यथो रक्षसामपहत्यै[5] वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेत्याह वनेषु हि व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्स्वित्याह वाजꣳ ह्यर्वत्सु पयो अघ्नियास्वित्याह पयो ह्यघ्नियासु हृत्सु क्रतुमित्याह हृत्सु हि क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निमित्याह वरुणो हि विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य-(३)-मित्याह दिवि हि सूर्यꣳ सोममद्रावित्याह ग्रावाणो वा अद्रयस्तेषु वा एष सोमं दधाति यो यजते तस्मादेवमाह[6] उदु त्यं जातवेदसमिति सौर्यर्चा कृष्णाजिनं प्रत्यानह्यति रक्षसामपहत्यै[7] उस्रावेतं धूर्षाहावित्याह यथायजुरेवैतत्[8] प्र च्यवस्व भुवस्पत इत्याह भूतानाꣳ ह्ये-(४)-ष पतिर्विश्वान्यभि धामानीत्याह विश्वानि ह्येषोऽभि धामानि प्रच्यवते मा त्वा परिपरी विददित्याह यदेवादः सोममाह्रियमाणं गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात् तस्मादेवमाहापरिमोषाय[9] यजमानस्य स्वस्त्ययन्यसीत्याह यजमानस्यैवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽनवच्छित्त्यै[10] वरुणो वा एष यजमानमभ्यैति यत् (५) क्रीतः सोम उपनद्धो नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षस इत्याह शान्त्यै[11] आ सोमं वहन्त्यग्निना प्रति तिष्ठते तौ सम्भवन्तौ यजमानमभि सं भवतः पुरा खलु वावैष मेधायाऽऽत्मानमारभ्य चरति यो दीक्षितो[12] यदग्नीषोमीयं पशुमालभत आत्मनिष्क्रयण एवास्य स तस्मात् तस्य नाऽश्यं पुरुषनिष्क्रयण इव ह्यथो खल्वाहु-(६)-रग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहन्निति यदग्नीषोमीयं पशुमालभते वार्त्रघ्न एवास्य स तस्माद्वाश्यं[13] वारुण्यर्चा परि चरति स्वयैवैनं देवतया परि चरति[14] ॥ (अन्वारभ्योत्, सर्वाभिरेव, सूर्यं, भूतानाꣳ ह्ये,- ति य,- दाहुः, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

[प्राचीनवꣳशं ४४८। वार्वन्त ३६५। ऋक्सामे ३९८। वा- ४२३।- देवाः २५८। कद्रू- ३६०।- स्वान ४००। वह् १७४। ब्रह्मवादिनो ३३३। य- २४४।- द्वादश ३२७। एकादश ॥ ३८४०॥

[॥ इति षष्ठकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥]

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥]

आतिथ्येष्टिविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

यदुभौ विमुच्याऽऽतिथ्यं गृह्णीयाद्यज्ञं वि च्छिन्द्याद्यदुभावविमुच्य यथाऽनागतायाऽऽतिथ्यं क्रियते तादृगेव तद्विमुक्तोऽन्योऽनड्वान् भवत्यविमुक्तोऽन्योऽथाऽऽतिथ्यं गृह्णाति यज्ञस्य सन्तत्यै[1] पत्न्यन्वारभते पत्नी हि पारीणह्यस्येशे पत्नियैवानुमतं निर्वपति यद्वै पत्नी यज्ञस्य करोति मिथुनं तदथो पत्निया एवै-(१)-ष यज्ञस्यान्वारम्भोऽनवच्छित्त्यै[2] यावद्भिर्वै राजाऽनुचरैरागच्छति सर्वेभ्यो वै तेभ्य आतिथ्यं क्रियते छन्दाꣳसि खलु वै सोमस्य राज्ञोऽनुचराण्यग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्याह गायत्रिया एवैतेन करोति

सोमस्याऽऽतिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्याह त्रिष्टुभ एवैतेन करोत्यतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्याह जगत्या एवैतेन करोत्यग्नये त्वा रायस्पोषदाव्ने विष्णवे त्वेत्याहानुष्टुभ एवैतेन करोति श्येनाय त्वा सोमभृते (२) विष्णवे त्वेत्याह गायत्रिया एवैतेन करोति[3] पञ्च कृत्वो गृह्णाति पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे[4] ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्याद्गायत्रिया उभयत आतिथ्यस्य क्रियत इति यदेवादः सोममा (३) ऽहरत् तस्माद्गायत्रिया उभयत आतिथ्यस्य क्रियते पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च[5] शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं नवकपालः पुरोडाशो भवति तस्मान्नवधा शिरो विष्यूतम्[6] नवकपालः पुरोडाशो भवति ते त्रयस्त्रिकपालास्त्रिवृता स्तोमेन सम्मितास्तेजस्त्रिवृत् तेज एव यज्ञस्य शीर्षन् दधाति[7] नवकपालः पुरोडाशो भवति ते त्रयस्त्रिकपालास्त्रिवृता प्राणेन सम्मितास्त्रिवृद्वै (४) प्राणस्त्रिवृतमेव प्राणमभिपूर्वं यज्ञस्य शीर्षन् दधाति[8] प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदश्ववाला ऐक्षवी तिरश्ची यदाश्ववालः प्रस्तरो भवत्यैक्षवी तिरश्ची प्रजापतेरेव तच्चक्षुः सं भरति[9] देवा वै या आहुतीरजुहवुस्ता असुरा निष्कावमादन् ते देवाः कार्ष्मर्यमपश्यन् कर्मण्यो वै कर्मैनेन कुर्वीतेति ते कार्ष्मर्यमयान् परिधी-(५)-नकुर्वत तैर्वै ते रक्षाꣳस्यपाघ्नत यत् कार्ष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै[10] सꣳ स्पर्शयति रक्षसामनन्ववचाराय[11] न पुरस्तात् परि दधात्यादित्यो ह्येवोद्यन् पुरस्ताद्रक्षाꣳस्यपहन्त्यूर्ध्वे समिधावा दधात्युपरिष्टादेव रक्षाꣳस्यप हन्ति[12] यजुषाऽन्यां तूष्णीमन्यां मिथुनत्वाय[13] द्वे आ दधाति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै[14] ब्रह्मवादिनो वदन्त्य-(६)-ग्निश्च वा एतौ सोमश्च कथा सोमायाऽऽतिथ्यं क्रियते नाग्नय इति यदग्नावग्निं मथित्वा प्रहरति तेनैवाग्नय आतिथ्यं क्रियते[15] अथो खल्वाहुरग्निः सर्वा देवता इति यद्धविरासाद्याग्निं मन्थति हव्यायैवाऽऽसन्नाय सर्वा देवता जनयति[16] ॥ (पत्निया एव, त्वा, आ, त्रिवृद्वै, परिधीन्, वदन्त्य,- ष्टाचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

तानूनप्त्रसंज्ञकस्याज्यस्य ग्रहणं, अवान्तरदीक्षा च ॥ सोमऋषिः ।

देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा मिथो विप्रिया आसन् तेऽन्योऽन्यस्मै ज्यैष्ठ्यायातिष्ठमानाः पञ्चधा व्यक्रामन्नग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैस्तेऽमन्यन्तासुरेभ्यो वा इदं भ्रातृव्येभ्यो रध्यामो यन्मिथो विप्रियाः स्मो या न इमाः प्रियास्तनुवस्ताः समवद्यामहै ताभ्यः स निर्ऋच्छाद्यो नः (१) प्रथमोऽन्योऽन्यस्मै द्रुह्यादिति तस्माद्यः सतानूनप्त्रिणां प्रथमो द्रुह्यति स आर्तिमार्च्छति[1] यत् तानूनप्त्रꣳ समवद्यति भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति[2] पञ्च कृत्वोऽव द्यति पञ्चधा हि ते तत् समवाद्यन्ताथो पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे[3] आपतये त्वा गृह्णामीत्याह प्राणो वा (२) आपतिः प्राणमेव प्रीणाति परिपतय इत्याह मनो वै परिपतिर्मन एव प्रीणाति तनूनप्त्र इत्याह तनुवो हि ते ताः समवाद्यन्त शाक्वरायेत्याह शक्त्यै हि ते ताः समवाद्यन्त शक्मन्नोजिष्ठायेत्याहौजिष्ठꣳ हि ते तदात्मनः समवाद्यन्तानाधृष्टमस्यनाधृष्यमित्याहानाधृष्टꣳ ह्येतदनाधृष्यं देवानामोज (३) इत्याह देवानाꣳ ह्येतदोजोऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमित्याहाभिशस्तिपा ह्येतदनभिशस्तेन्यं

ह्येतदनभिशस्तेन्यमनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामित्याह यथायजुरेवैतत्[1] घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन्नन्तिकमिव खलु वा अस्यैतच्चरन्ति यत् तानूनप्त्रेण प्रचरन्त्यꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाऽऽप्यायतामित्याह य-(४)-देवास्यापुवायते यन्मीयते तदेवास्यैतेनाऽऽप्याययत्या तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्वेत्याहोभावेवेन्द्रं च सोमं चाऽऽप्याययत्या प्यायय सखीन्त्सन्या मेधयेत्याहर्त्विजो वा अस्य सखायस्तानेवाऽऽप्याययति स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीये-(५)-त्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्ते[2] प्र वा एतेऽस्माल्लोकाच्च्यवन्ते ये सोममाप्याययन्त्यन्तरिक्षदेवत्यो हि सोम आप्यायित एष्टा रायः प्रेषे भगायेत्याह द्यावापृथिवीभ्यामेव नमस्कृत्यास्मिंल्लोके प्रति तिष्ठन्ति[3] देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा बिभ्यतोऽग्निं प्राविशन् तस्मादाहुरग्निः सर्वा देवता इति ते (६) ऽग्निमेव वरूथं कृत्वाऽसुरानभ्यभवन्नग्निमिव खलु वा एष प्र विशति योऽवान्तरदीक्षामुपैति भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवत्यात्मानमेव दीक्षया पाति प्रजामवान्तरदीक्षया[4] सन्तरां मेखलाꣳ समायच्छते प्रजा ह्यात्मनोऽन्तरतरा तप्तव्रतो भवति मदन्तीभिर्मार्जयते निर्ह्यग्निः शीतेन वायति समिद्ध्यै[5] या ते अग्ने (७) रुद्रिया तनूरित्याह स्वयैवैनं देवतया व्रतयति सयोनित्वाय शान्त्यै[6] ॥ (घो, वा, ओजं, आहु च, दशीये,- ति ते, ऽग्न, एकादश च) ॥ २ ॥

उपसद्होमविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाऽथ रजताऽथ हरिणी ता देवा जेतुं नाशक्नुवन् ता उपसदैवाजिगीषन् तस्मादाहुर्यश्चैवं वेद यश्च नोपसदा वै महापुरं जयन्तीति त इषुꣳ समस्कुर्वताग्निमनीकꣳ सोमꣳ शल्यं विष्णुं तेजनं तेऽब्रुवन् क इमामसिष्यतीति (१) रुद्र इत्यब्रुवन् रुद्रो वै क्रूरः सोऽस्यत्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणा अहमेव पशूनामधिपतिरसानीति तस्माद्रुद्रः पशूनामधिपतिस्ताꣳ रुद्रोऽवासृजत् स तिस्रः पुरो भित्त्वैभ्यो लोकेभ्योऽसुरान् प्राणुदत[1] यदुपसद उपसद्यन्ते भ्रातृव्यपराणुत्त्यै[2] नान्यामाहुतिं पुरस्ताज्जुहुयाद्यदन्यामाहुतिं पुरस्ताज्जुहुया-(२)-दन्यन्मुखं कुर्यात्[3] स्रुवेणाऽऽघारमा घारयति यज्ञस्य प्रज्ञात्यै[4] पराङतिक्रम्य जुहोति पराच एवैभ्यो लोकेभ्यो यजमानो भ्रातृव्यान् प्र णुदते[5] पुनरत्याक्रम्योपसदं जुहोति प्रणुद्यैवैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्याञ्जित्वा भ्रातृव्यलोकमभ्यारोहति[6] देवा वै याः प्रातरुपसद उपासीदन्नह्नस्ताभिरसुरान् प्राणुदन्त याः सायꣳ रात्रियै ताभिर्यत् सायं प्रातरुपसद (३) उपसद्यन्तेऽहोरात्राभ्यामेव तद्यजमानो भ्रातृव्यान् प्र णुदते[7] याः प्रातर्याज्याः स्युस्ताः सायं पुरोऽनुवाक्याः कुर्यादयातयामत्वाय[8] तिस्र उपसद उपैति त्रय इमे लोका इमानेव लोकान् प्रीणाति[9] षट् सं पद्यन्ते षड्वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति[10] द्वादशाहीने सोम उपैति द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरमेव प्रीणाति[11] चतुर्विꣳशतिः सं (४) पद्यन्ते चतुर्विꣳशतिरर्धमासा अर्धमासानेव प्रीणात्याराग्रामवान्तरदीक्षामुपेयाद्यः कामयेतास्मिन् मे लोकेऽर्धुकꣳ स्यादित्येकमग्रेऽथ द्वावथ त्रीनथ चतुर एषा वा आराग्राऽवान्तरदीक्षाऽस्मिन्नेवास्मै लोकेऽर्धुकं भवति[12] परोवरीयसीमवान्तरदीक्षामुपेयाद्यः कामयेतामुष्मिन् मे लोकेऽर्धुकꣳ स्यादिति चतुरोऽग्रे (५) ऽथ त्रीनथ द्वावथैकमेषा वै परोवरीयस्यवान्तरदीक्षाऽमुष्मिन्नेवास्मै लोकेऽर्धुकं भवति[13] ॥ (असिष्यतीति, जुहुयात्, सायम्प्रातरुपसदः,- चतुर्विꣳशतिः सं, चतुरोऽग्रे, षोडश च) ॥ ३ ॥

वेदिकरणाय वेद्युपरिपादनम् ॥ सोमऋषिः ।

सुवर्गं वा एते लोकं यन्ति य उपसदमुपयन्ति तेषां य उन्नयते हीयत एव स नोदनैषीति सूत्रीयमिवं यो वै स्वार्थेतां यतां श्रान्तो हीयत उत स निष्टाय सह वसति तस्मात् सकृदुन्नीय नापरमुन्नयेत दध्नोन्नयेतैतद्वै पशूनाꣳ रूपꣳ रूपेणैव पशूनव रुन्धे (१) यज्ञो देवेभ्यो निलायत विष्णू रूपं कृत्वा स पृथिवीं प्राविशत् तं देवा हस्तान्त्सꣳरभ्यैच्छन् तमिन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत् सोऽब्रवीत् को माऽयमुपर्युपर्यत्यक्रमीदित्यहं दुर्गे हन्तेत्यथ कस्त्वमित्यहं दुर्गादाहर्तेति सोऽब्रवीद् दुर्गे वै हन्ताऽवोचथा वराहोऽयं वाममोषः (२) सप्तानां गिरीणां परस्ताद्वित्तं वेद्यमसुराणां बिभर्ति तं जहि यदि दुर्गे हन्ताऽसीति स दर्भपुञ्जीलमुद्वृह्य सप्त गिरीन् भित्त्वा तमहन्त्सोऽब्रवीद् दुर्गाद्वा आहर्ताऽवोचथा एतमा हरेति तमेभ्यो यज्ञ एव यज्ञमाऽहरद्यत् तद्वित्तं वेद्यमसुराणामविन्दन्त तदेकं वेदेर्वेदित्व—मसुराणां (३) वा इयमग्र आसीद्यावदासीनः परापश्यति तावद्देवानां ते देवा अब्रुवन्नस्त्वेव नोऽस्यामपीति कियद्वो दास्याम इति यावदियꣳ सलावृकी त्रिः परिक्रामति तावन्नो दत्तेति स इन्द्रः सलावृकी रूपं कृत्वेमां त्रिः सर्वतः पर्यक्रामत् तदिमामविन्दन्त यदिमामविन्दन्त तद्वेदेर्वेदित्वꣳ (४) सा वा इयꣳ सर्वैव वेदिरियति शक्ष्यामीति त्वा अवमाय यजन्ते त्रिꣳशत् पदानि पश्चात् तिरश्ची भवति षट्त्रिꣳशत् प्राची चतुर्विꣳशतिः पुरस्तात् तिरश्ची दशदश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्ध उद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यं तदप हन्त्यु—द्धन्ति तस्मादोषधयः परा भवन्ति (५) बर्हिः स्तृणाति तस्मादोषधयः पुनरा भवन्त्यु—त्तरं बर्हिष उत्तरबर्हिः स्तृणाति प्रजा वै बर्हिर्यजमान उत्तरबर्हिर्यजमानमेवायजमानादुत्तरं करोति तस्माद्यजमानोऽयजमानादुत्तरः ॥ (रुन्धे, वाममोषो, वेद्यमसुराणां, वेदित्वं, भवन्ति, पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ४ ॥

दीक्षितस्य व्रतनिर्णयः ॥ सोमऋषिः ।

यद्वा अनीशानो भारमादत्ते वि वै स लिशते यद् द्वादश साह्नस्योपसदः स्युस्तिस्रोऽहीनस्य यज्ञस्य विलोम क्रियेत तिस्र एव साह्नस्योपसदो द्वादशाहीनस्य यज्ञस्य सवीर्यत्वायाथो सलोम क्रियते वत्सस्यैकः स्तनो भागी हि सोऽथैकꣳ स्तनं व्रतमुपैत्यथ द्वावथ त्रीनथ चतुर एतद्वै (१) क्षुरपवि नाम व्रतं येन प्र जातान् भ्रातृव्यान् नुदते प्रति जनिष्यमाणानथो कनीयसैव भूय उपैति चतुरोऽग्रे स्तनान् व्रतमुपैत्यथ त्रीनथ द्वावथैकमेतद्वै सुजघनं नाम व्रतं तपस्यꣳ सुवर्ग्यमथो प्रैव जायते प्रजया पशुभि—र्यवागू राजन्यस्य व्रतं क्रूरेव वै यवागूः क्रूर इव (२) राजन्यो वज्रस्य रूपꣳ समृद्ध्या आमिक्षा वैश्यस्य पाकयज्ञस्य रूपं पुष्ट्यै पयो ब्राह्मणस्य तेजो वै ब्राह्मणस्तेजः पयस्तेजसैव तेजः पय आत्मन् धत्तेऽथो पयसा वै गर्भा वर्धन्ते गर्भ इव खलु वा एष यद्दीक्षितो यदस्य पयो व्रतं भवत्यात्मानमेव तद्वर्धयति त्रिव्रतो वै मनुरासीद् द्विव्रता असुरा एकव्रता (३) देवाः प्रातर्मध्यन्दिने सायं तन्मनोर्व्रतमासीत् पाकयज्ञस्य रूपं पुष्ट्यै प्रातश्च सायं चासुराणां निर्मध्यं क्षुधो रूपं ततस्ते पराऽभवन् मध्यन्दिने मध्यरात्रे देवानां ततस्तेऽभवन्त्सुवर्गं लोकमायन् यदस्य मध्यन्दिने मध्यरात्रे व्रतं भवति मध्यतो वा अन्नेन

भुङ्क्ते मध्यत एव तदूर्जं धत्ते भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना (४) पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति गर्भो वा एष यद्दीक्षितो योनिर्दीक्षितविमितं यद्दीक्षितो दीक्षितविमितात् प्रवसेद्यथा योनेर्गर्भः स्कन्दति तादृगेव तत् प्रवस्तव्यमात्मनो गोपीथाय—एष वै व्याघ्रः कुलगोपो यदग्निस्तस्माद्यद्दीक्षितः प्रवसेत् स एनमीश्वरोऽनूत्थाय हन्तोर्न प्रवस्तव्यमात्मनो गुप्त्यै दक्षिणतः शय एतद्वै यजमानस्या-(५)-ऽऽयतनꣳ स्व एवाऽऽयतने शयेऽग्निमभ्यावृत्य शये देवता एव यज्ञमभ्यावृत्य शये ॥ (एतद्वै,- क्रूर इवै,- कव्रता, आत्मना, यजमानस्य, त्रयोदश च) ॥ ५ ॥

यागार्थं काम्या भूमयः ॥ सोमऋषिः ।

पुरोहविषि देवयजने याजयेद्यं कामयेतोपैनमुत्तरो यज्ञो नमेदभि सुवर्गं लोकं जयेदि—त्येतद्वै पुरोहविर्देवयजनं यस्य होता प्रातरनुवाकमनुब्रुवन्नग्निमप आदित्यमभि विपश्यत्यु—पैनमुत्तरो यज्ञो नमत्यभि सुवर्गं लोकं जयत्या—प्ते देवयजने याजयेद्भ्रातृव्यवन्तं पन्थां वाऽधिस्पर्शयेत् कर्तं वा यावन्नानसे यातवै (१) न रथायैतद्वा आप्तं देवयजन—माप्नोत्येव भ्रातृव्यं नैनं भ्रातृव्य आप्नोत्ये—कोन्नते देवयजने याजयेत् पशुकाम—मेकोन्नताद्वै देवयजनादङ्गिरसः पशूनसृजन्ता—न्तरा सदोहविर्धाने उन्नतꣳ स्यादेतद्वा एकोन्नतं देवयजनं पशुमानेव भवति त्र्युन्नते देवयजने याजयेत् सुवर्गकामं त्र्युन्नताद्वै देवयजनादङ्गिरसः सुवर्गं लोकमायन्—न्तराऽऽहवनीयं च हविर्धानं चो-(२)-न्नतꣳ स्यादन्तरा हविर्धानं च सदश्चान्तरा सदश्च गार्हपत्यं चैतद्वै त्र्युन्नतं देवयजनꣳ सुवर्गमेव लोकमेति प्रतिष्ठिते देवयजने याजयेत् प्रतिष्ठाकाम—मेतद्वै प्रतिष्ठितं देवयजनं यत् सर्वतः समं प्रत्येव तिष्ठति यत्रान्यान्या ओषधयो व्यतिषक्ताः स्युस्तद्याजयेत् पशुकाम—मेतद्वै पशूनाꣳ रूपꣳ रूपेणैवास्मै पशू-(३)-नव रुन्धे पशुमानेव भवति निर्ऋतिगृहीते देवयजने याजयेद्यं कामयेत निर्ऋत्याऽस्य यज्ञं ग्राहयेयमित्ये—तद्वै निर्ऋतिगृहीतं देवयजनं यत् सदृश्यै सत्या ऋक्षं निर्ऋत्यैवास्य यज्ञं ग्राहयति व्यावृत्ते देवयजने याजयेद्व्यावृत्कामं यं पात्रे वा तल्पे वा मीमाꣳसेरन् प्राचीनमाहवनीयात् प्रवणꣳ स्यात् प्रतीचीनं गार्हपत्यादेतद्वै व्यावृत्तं देवयजनं वि पाप्मना (४) भ्रातृव्येणाऽऽ वर्तते नैनं पात्रे न तल्पे मीमाꣳसन्ते कार्ये देवयजने याजयेद्भूतिकामं कार्यो वै पुरुषो भवत्येव ॥ (यातवै, हविर्धानं च, पशून्, पाप्मना, अष्टादश च) ॥ ६ ॥

उत्तरवेदिनिर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

तेभ्य उत्तरवेदिः सिꣳही रूपं कृत्वोभयानन्तराऽपक्रम्यातिष्ठत् ते देवा अमन्यन्त यतरान् वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति तामुपामन्त्रयन्त साऽब्रवीद्वरं वृणै सर्वान् मया कामान् व्यश्नवथ पूर्वां तु माऽग्नेराहुतिरश्नवता इति तस्मादुत्तरवेदिं पूर्वामग्नेर्व्याघारयन्ति वारेवृतꣳ ह्यस्यै शम्यया परि मिमीते (१) मात्रैवास्यै साऽथो युक्तेनैव युक्तमव रुन्धे वित्तायनी मेऽसीत्याह वित्ता ह्येनानावत् तिक्तायनी मेऽसीत्याह तिक्तान् ह्येनानावदवतान्मा नाथितमित्याह नाथितान् ह्येनानावदवतान्मा व्यथितमित्याह व्यथितान् ह्येनानाव—द्विदेरग्निर्नभो नामा-(२)-ग्ने अङ्गिर इति त्रिर्हरति य एवैषु लोकेष्व-

ग्नयस्तानेवाव रुन्धे तूष्णीं चतुर्थꣳ हरत्यनिरुक्तमेवाव रुन्धे सिꣳहीरसि महिषीरसीत्याह सिꣳही ह्येषा रूपं कृत्वोभयानन्तराऽपक्रम्यातिष्ठ—दुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामित्याह यजमानमेव प्रजया पशुभिः प्रथयति ध्रुवा (३) ऽसीति सꣳ हन्ति धृत्यै देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्वेत्यव चोक्षति प्र च किरति शुद्ध्या इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात् पात्वित्याह दिग्भ्य एवैनां प्रोक्षति देवाꣳश्चेदुत्तरवेदिरुपावर्तीहैव वि जयामहा इत्यसुरा वज्रमुद्यत्य देवानभ्यायन्त तानिन्द्रघोषो वसुभिः पुरस्तादपा-(४)-नुदत मनोजवाः पितृभिर्दक्षिणतः प्रचेता रुद्रैः पश्चाद्विश्वकर्माऽऽदित्यैरुत्तरतो यदेवमुत्तरवेदिं प्रोक्षति दिग्भ्य एव तद्यजमानो भ्रातृव्यान् प्र णुदत इन्द्रो यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत् तान् दक्षिणत उत्तरवेद्या आदन् यत् प्रोक्षणीनामुच्छिष्येत तद्दक्षिणत उत्तरवेद्यै नि नयेद्यदेव तत्र क्रूरं तत् तेन शमयति यं द्विष्यात् तं ध्यायेच्छुचै-(५)-वैनमर्पयति ॥ (मिमीते, नाम, ध्रुवा, ऽपं, शुचा, त्रीणि च) ॥ ७ ॥

व्याघारणं सम्भारस्थापनं च ॥ सोमऋषिः ।

सोत्तरवेदिरब्रवीत् सर्वान् मया कामान् व्यश्नवथेति ते देवा अकामयन्तासुरान् भ्रातृव्यानभि भवेमेति तेऽजुहवुः सिꣳहीरसि सपत्नसाही स्वाहेति तेऽसुरान् भ्रातृव्यानभ्यभवन् तेऽसुरान् भ्रातृव्यानभिभूयाकामयन्त प्रजां विन्देमहीति तेऽजुहवुः सिꣳहीरसि सुप्रजावनिः स्वाहेति ते प्रजामविन्दन्त ते प्रजां वित्त्वा (१) ऽकामयन्त पशून् विन्देमहीति तेऽजुहवुः सिꣳहीरसि रायस्पोषवनिः स्वाहेति ते पशूनविन्दन्त ते पशून् वित्त्वाऽकामयन्त प्रतिष्ठां विन्देमहीति तेऽजुहवुः सिꣳहीरस्यादित्यवनिः स्वाहेति त इमां प्रतिष्ठामविन्दन्त त इमां प्रतिष्ठां वित्त्वाऽकामयन्त देवता आशिष उपेयामेति तेऽजुहवुः सिꣳहीरस्या वह देवान् देवयते (२) यजमानाय स्वाहेति ते देवता आशिष उपाऽऽयन् पञ्च कृत्वो व्याघारयति पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धेऽक्षया व्याघारयति तस्मादक्षया पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै भूतेभ्यस्त्वेति स्रुचमुद्गृह्णाति य एव देवा भूतास्तेषां तद्भागधेयं तानेव तेन प्रीणाति पौतुद्रवान् परिधीन् परि दधात्येषां (३) लोकानां विधृत्या अग्नेस्त्रयो ज्यायाꣳसो भ्रातर आसन् ते देवेभ्यो हव्यं वहन्तः प्रामीयन्त सोऽग्निरबिभेदित्थं वाव स्य आर्तिमारिष्यतीति स निलायत स यां वनस्पतिष्ववसत् तां पूतुद्रौ यामोषधीषु ताꣳ सुगन्धितेजने यां पशुषु तां पेत्वस्यान्तरा शृङ्गे तं देवताः प्रैषमैच्छन् तमन्वविन्दन् तमब्रुव-(४)-न्नुप न आ वर्तस्व हव्यं नो वहेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै यदेव गृहीतस्याहुतस्य बहिःपरिधि स्कन्दात् तन्मे भ्रातृणां भागधेयमसदिति तस्माद्यद्गृहीतस्याहुतस्य बहिःपरिधि स्कन्दति तेषां तद्भागधेयं तानेव तेन प्रीणाति सोऽमन्यतास्थन्वन्तो मे पूर्वे भ्रातरः प्रामेषतास्थानि शातया इति स यान्य-(५)-स्थान्यशातयत तत् पूतुद्र्वभवद्यन्माꣳसमुपमृतं तद्गुल्गुलु यदेतान्त्सम्भाराꣳसंभरत्यग्निमेव तत् सं भरत्य—ग्नेः पुरीषमसीत्याहाग्नेर्ह्येतत् पुरीषं यत् सम्भारा अथो खल्वाहुरेते वावैनं ते भ्रातरः परि शेरे यत् पौतुद्रवाः परिधय इति ॥ (वित्त्वा, देवयते, एषां,- मब्रुवन्, यानि, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

हविर्धानानस्य शकटे अन्तर्भाव्य हविर्धानमण्डपनिर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

बद्धमव स्यति वरुणपाशादेवैनं मुञ्चति प्र णेनेक्ति मेध्य एवैनं करोति सावित्रियर्चा हुत्वा हविर्धाने प्र वर्तयति सवितृप्रसूत एवैने प्र वर्तयति वरुणो वा एष दुर्वागुभयतो बद्धो यदक्षः स यदुत्सर्जेद्यजमानस्य गृहानभ्युत्सर्जेत् सुवागेव दुर्याꣳ आ वदेत्याह गृहा वै दुर्याः शान्त्यै पत्न्यु-(१)-पानक्ति पत्नी हि सर्वस्य मित्रं मित्रत्वाय यद्वै पत्नी यज्ञस्य करोति मिथुनं तदथो पत्निया एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽनवच्छित्त्यै वर्त्मना वा अन्वित्य यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्ति वैष्णवीभ्यामृग्भ्यां वर्त्मनोर्जुहोति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञादेव रक्षाꣳस्यप हन्ति यदध्वर्युरनग्नावाहुतिं जुहुयादन्धोऽध्वर्युः स्याद्रक्षाꣳसि यज्ञꣳ हन्यु-(२)-र्हिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निवत्येव जुहोति नान्धोऽध्वर्युर्भवति न यज्ञꣳ रक्षाꣳसि घ्नन्ति प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती इत्याह सुवर्गमेवैने लोकं गमयत्य—त्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्या इत्याह वर्ष्म ह्येतत् पृथिव्या यद्देवयजनꣳ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या (३) इत्याशीर्पदयर्चा दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीं नि हन्ति शीर्षत एव यज्ञस्य यजमान आशिषोऽव रुन्धे दण्डो वा औपरस्तृतीयस्य हविर्धानस्य वषट्कारेणाक्षमच्छिनद्यत् तृतीयं छदिर्हविर्धानयोरुदाह्रियते तृतीयस्य हविर्धानस्यावरुद्ध्यै शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं विष्णो रराटमसि विष्णोः पृष्ठमसीत्याह तस्मादेतावद्धा शिरो विष्यूतं विष्णोः (४) स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवमसीत्याह वैष्णवꣳ हि देवतया हविर्धानं यं प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नीयाद्यत् तं न विस्रꣳसयेदमेहेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्मात् स विस्रस्यः ॥ (पत्नी, हन्यु,-र्वा पृथिव्या, विष्यूतं विष्णोः, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ९ ॥

सदो निर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभ्रिमा दत्ते प्रसूत्या अश्विनोर्बाहुभ्यामित्याहाश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्ताभ्यामित्याह यत्यै वज्र इव वा एषा यदभ्रिरभ्रिरसि नारिरसीत्याह शान्त्यै काण्डेकाण्डे वै क्रियमाणे यज्ञꣳ रक्षाꣳसि जिघाꣳसन्ति परिलिखितꣳ रक्षः परिलिखिता अरातय इत्याह रक्षसामपहत्यै (१) इदमहꣳ रक्षसो ग्रीवा अपि कृन्तामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इत्याह द्वौ वाव पुरुषौ यं चैव द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तयोरेवानन्तरायं ग्रीवाः कृन्तति दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वेत्याहैभ्य एवैनां लोकेभ्यः प्रोक्षति परस्तादर्वाचीं प्रोक्षति तस्मात् (२) परस्तादर्वाचीं मनुष्या ऊर्जमुपजीवन्ति क्रूरमिव वा एतत् करोति यत् खनत्यपोऽव नयति शान्त्यै यवमतीरव नयत्यूर्ग्वै यव ऊर्गुदुम्बर ऊर्जैवोर्जꣳ समर्धयति यजमानेन सम्मितौदुम्बरी भवति यावानेव यजमानस्तावतीमेवास्मिन्नूर्जं दधाति पितृणाꣳ सदनमसीति बर्हिरव स्तृणाति पितृदेवत्यꣳ (३) ह्येतद्यन्निखातं यद्बर्हिरनवस्तीर्य मिनुयात् पितृदेवत्या निखाता स्याद्बर्हिरवस्तीर्य मिनोत्यस्यामेवैनां मिनोत्यथो स्वारुहमेवैनां करोत्यु—द्दिवꣳ स्तभानाऽन्तरिक्षं पृणेत्याहैषां लोकानां विधृत्यै द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोत्वित्याह द्युतानो ह स्म वै मारुतो देवानामौदुम्बरीं मिनोति तेनैवै-(४)-नां मिनोति ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिमित्याह यथायजुरेवै—तद्घृतेन द्यावापृथिवी आ पृणेथामित्यौदुम्बर्यां जुहोति द्यावापृथिवी एव रसे-

नानक्त्यो—न्तमन्ववस्रावयत्यान्तमेव यजमानं तेजसाऽनक्त्यै—न्द्रमसीति छदिरधि नि दधात्यैन्द्रं हि देवतया सदो विश्वजनस्य छायेत्याह विश्वजनस्य ह्येषा छाया यत् सदो[16] नवच्छदि (५) तेजस्कामस्य मिनुयात् त्रिवृता स्तोमेन संमितं तेजस्त्रिवृत् तेजस्व्येव भवत्येकादशच्छदीन्द्रियकामस्यैकादशाक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुगिन्द्रियाव्येव भवति पञ्चदशच्छदि भ्रातृव्यवतः पञ्चदशो वज्रो भ्रातृव्याभिभूत्यै सप्तदशच्छदि प्रजाकामस्य सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्या एकविंशतिच्छदि प्रतिष्ठाकामस्यैकविंशः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या उदरं वै सद ऊर्गुदुम्बरो मध्यत औदुम्बरीं मिनोति मध्यत एव प्रजानामूर्जं दधाति तस्मान् (६) मध्यत ऊर्जा भुञ्जते[18] यजमानलोके वै दक्षिणानि छदींषि भ्रातृव्यलोक उत्तराणि दक्षिणान्युत्तराणि करोति यजमानमेवायजमानादुत्तरं करोति तस्माद्यजमानोऽयजमानादुत्तरो[19] ऽन्तर्वर्तान् करोति व्यावृत्त्यै तस्मादरण्यं प्रजा उप जीवन्ति[20] परि त्वा गिर्वणो गिर इत्याह यथायजुरेवैत—दिन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवमसीत्याहैन्द्रं हि देवतया सदो[22] (७) यं प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नीयाद्यत् तं न विस्रंसयेदमेहेनाध्वर्युः प्र मीयेत तस्मात् स विस्रस्यः[23] ॥ (भवत्यै, तस्मात्, विश्वदेवत्यं, तेनैव, नवच्छदि, तस्मात्, सदः, पञ्चदश च) ॥ १० ॥

हविर्धाने चतुर्णामुपरवाणां निर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवा हविर्धाने खायन्ते तस्माच्छीर्षन् प्राणा अधस्तात् खायन्ते तस्मादधस्ताच्छीर्ष्णः प्राणा रक्षोहणो वलगहनो वैष्णवान् खनामीत्याह वैष्णवा हि देवतयोपरवा असुरा वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन् तान् बाहुमात्रेऽन्वविन्दन् तस्माद्बाहुमात्राः खायन्त इदमहं तं वलगमुद्वपामि (१) यं नः समानो यमसमानो निचखानेत्याह द्वौ वाव पुरुषौ यश्चैव समानो यश्चासमानो यमेवास्मै तौ वलगं निखनतस्तमेवोद्वपति संतृणत्ति तस्मात् संतृण्णा अन्तरतः प्राणा न सं भिनत्ति तस्मादसंभिन्नाः प्राणा अपोऽव नयति तस्मादार्द्रा अन्तरतः प्राणा यवमतीरव नयत्यू-(२)-र्ग्वै यवः प्राणा उपरवाः प्राणेष्वेवोर्जं दधाति बर्हिरव स्तृणाति तस्माल्लोमशा अन्तरतः प्राणा आज्येन व्याघारयति तेजो वा आज्यं प्राणा उपरवाः प्राणेष्वेव तेजो दधाति हनू वा एते यज्ञस्य यदधिषवणे न सं तृणत्त्यसंतृण्णे हि हनू अथो खलु दीर्घसोमे संतृद्ये धृत्यै[13] शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं (३) प्राणा उपरवा हनू अधिषवणे जिह्वा चर्म ग्रावाणो दन्ता मुखमाहवनीयो नासिकोत्तरवेदिरुदरं सदो यदा खलु वै जिह्वया दत्स्वधि खादत्यथ मुखं गच्छति यदा मुखं गच्छत्यथोदरं गच्छति तस्माद्धविर्धाने चर्मन्नधि ग्रावभिरभिषुत्याऽऽहवनीये हुत्वा प्रत्यञ्चः परेत्य सदसि भक्षयन्ति यो वै विराजो यज्ञमुखे दोहं वेद दुह एवै-(४)-नामियं वै विराट् तस्यै त्वक् चर्मोधोऽधिषवणे स्तना उपरवा ग्रावाणो वत्सा ऋत्विजो दुहन्ति सोमः पयो य एवं वेद दुह एवैनाम् (वपामि, यवमतीरव नयति, हविर्धानं,- मेव, त्रयोविंशतिश्च) ॥ ११ ॥

[य- ३४१।- इंद्रपुरा- ३६१।- स्वेदाय २६६। सुवर्गं २७५। यद् २६३। पुरोहविषि २१८। तेभ्यः २५३। सा २९२। ब्रूत २२६। देवस्य ३६५। शिर २२३। एकादश ॥ ३०८५]

[॥ इति षष्ठकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥]

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥]

आग्नीध्रीयसदः प्रभृतिस्थानेषु धिष्णियाख्यस्थलविशेषनिर्माणम् ॥ सोमऋषिः ।

चात्वालाद्धिष्णियानुप वपति योनिर्वै यज्ञस्य चात्वालं यज्ञस्य सयोनित्वाय देवा वै यज्ञं पराऽजयन्त तमाग्नीध्रात् पुनरपाजयन्नेतद्वै यज्ञस्यापराजितं यदाग्नीध्रं यदाग्नीध्राद्धिष्णियान् विहरति यदेव यज्ञस्यापराजितं तत एवैनं पुनस्तनुते पराजित्येव खलु वा एते यन्ति ये बहिष्पवमानं सर्पन्ति बहिष्पवमाने स्तुत (१) आहाग्नीदग्नीन् वि हर बर्हिः स्तृणाहि पुरोडाशां अलं कुर्विति यज्ञमेवापजित्य पुनस्तन्वाना यन्त्य—ङ्गारैर्द्वे सवने वि हरति शलाकाभिस्तृतीयं सशुक्रत्वायाथो सं भरत्येवैनं—धिष्णिया वा अमुष्मिंल्लोके सोममरक्षन् तेभ्योऽधि सोममाऽहरन् तमन्ववायन् तं पर्यविशन् य एवं वेद विन्दते (२) परिवेष्टारं ते सोमपीथेन व्यार्ध्यन्त ते देवेषु सोमपीथमैच्छन्त तान् देवा अब्रुवन् द्वेद्वे नामनी कुरुध्वमथ प्र वाऽऽप्स्यथ न वेत्यग्नयो वा अथ धिष्णियास्तस्माद् द्विनामा ब्राह्मणोऽर्धुकस्तेषां ये नेदिष्ठं पर्यविशन् ते सोमपीथं प्राऽऽप्नुवन्नाहवनीय आग्नीध्रीयो होत्रीयो मार्जालीयस्तस्मात् तेषु जुह्वत्य—तिहाय वषट् करोति वि हि (३)-ते सोमपीथेनाऽऽर्ध्यन्त देवा वै याः प्राचीराहुतीरजुहवुर्ये पुरस्तादसुरा आसन् तांस्ताभिः प्राणुदन्त याः प्रतीचीर्ये पश्चादसुरा आसन् तांस्ताभिरपानुदन्त प्राचीरन्या आहुतयो हूयन्ते प्रत्यङ्ङासीनो धिष्णियान् व्याघारयति पश्चाच्चैव पुरस्ताच्च यजमानो भ्रातृव्यान् प्र णुदते तस्मात् पराचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीः (४)-र्जायन्ते प्राणा वा एते यद्धिष्णिया यदध्वर्युः प्रत्यङ् धिष्णियानतिसर्पेत् प्राणान्त्सं कर्षेत् प्रमायुकः स्यान्नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद्धोतोर्ध्वः खलु वै नाभ्यै प्राणोऽवाङपानो यदध्वर्युः प्रत्यङ् होतारमतिसर्पेदपाने प्राणं दध्यात् प्रमायुकः स्या—न्नाध्वर्युरुप गायेद्वाग्वीर्यो वा अध्वर्युर्यदध्वर्युरुपगायेदुद्गात्रे (५) वाचं सं प्र यच्छेदुपदासुकाऽस्य वाक् स्या—द्ब्रह्मवादिनो वदन्ति नासंस्थिते सोमेऽध्वर्युः प्रत्यङ् सदोऽतीयादथ कथा दाक्षिणानि होतुमेति यामो हि स तेषां कस्मा अह देवा यामं वाऽयामं वाऽनु ज्ञास्यन्तीत्यु—त्तरेणाऽऽग्नीध्रं परीत्य जुहोति दाक्षिणानि न प्राणान्त्सं कर्षति न्यन्ये धिष्णिया उप्यन्ते (६) नान्ये यान् निवपति तेन तान् प्रीणाति यान् न निवपति यदनुदिशति तेन तान् ॥ (स्तुते, विन्दते, हि, प्रतीचीः,- रुद्गात्रे, उप्यन्ते, चतुर्दश च) ॥ १ ॥

वैसर्जनहोमः, अग्नीषोमयोराग्नीध्रीये हविर्धाने च प्रणयनम् ॥ सोमऋषिः ।

सुवर्गाय वा एतानि लोकाय हूयन्ते यद्वैसर्जनानि द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या आग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवाऽऽक्रमत आहवनीये जुहोति सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति देवान् वै सुवर्गं लोकं यतो रक्षांस्यजिघांसन्ते सोमेन राज्ञा रक्षांस्यपहत्याप्पुमात्मानं कृत्वा सुवर्गं लोकमायन् रक्षसामनुपलाभायाऽऽत्तः सोमो भवत्यथ (१) वैसर्जनानि जुहोति रक्षसामपहत्यै त्वं सोम तनूकृद्भ्य इत्याह तनूकृद्ध्येष द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य इत्याहान्यकृतानि हि रक्षांस्यु—रु यन्ताऽसि वरूथमित्याहोरु णस्कृधीति वा वैतदाह जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेत्वित्याहाप्पुमेव यजमानं कृत्वा सुवर्गं लोकं

गमयति रक्षसामनुपलाभायाऽऽ सोमो ददत (२) आ ग्राव्ण आ वायव्यान्या द्रोणकलशमुत् पत्नीमा नयन्त्यन्वनांसि प्र वर्तयन्ति यावदेवास्यास्ति तेन सह सुवर्गं लोकमेति नयवत्यर्चाऽऽग्नीध्रे जुहोति सुवर्गस्य लोकस्याभिनीत्यै ग्राव्णो वायव्यानि द्रोणकलशमाग्नीध्र उप वासयति वि ह्येनं तैर्गृह्णते यत् सहोपवासयेदपवायेत सौम्यर्चा प्र पादयति स्वयै-(३)-वैनं देवतया प्र पादयत्य—दित्याः सदोऽस्यदित्याः सद आ सीदेत्याह यथायजुरेवैत—द्यजमानो वा एतस्य पुरा गोप्ता भवत्येष वो देव सवितः सोम इत्याह सवितृप्रसूत एवैनं देवताभ्यः सं प्र यच्छत्ये—तत् त्वं सोम देवो देवानुपागा इत्याह देवो ह्येष सन् (४) देवानुपैतीदमहं मनुष्यो मनुष्यानित्याह मनुष्यो ह्येष सन् मनुष्यानुपैति यदेतद्यजुर्न ब्रूयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् सह प्रजया सह रायस्पोषेणेत्याह प्रजयैव पशुभिः सहेमं लोकमुपावर्तते नमो देवेभ्य इत्याह नमस्कारो हि देवानां स्वधा पितृभ्य इत्याह स्वधाकारो हि (५) पितृणा—मिदमहं निर्वरुणस्य पाशादित्याह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽग्ने व्रतपत आत्मनः पूर्वा तनूरादेयेत्याहुः को हि तद्वेद यद्वसीयान्त्स्वे वशे भूते पुनर्वा ददाति न वेति ग्रावाणो वै सोमस्य राज्ञो मलिम्लुसेना य एवं विद्वान् ग्राव्ण आग्नीध्र उपवासयति नैनं मलिम्लुसेना विन्दति (६) ॥ (अथ, ददत, स्वया, सन्, हि, विन्दति) ॥ २ ॥

यूपच्छेदनम् ॥ सोमऋषिः ।

वैष्णव्यर्चा हुत्वा यूपमच्छैति वैष्णवो वै देवतया यूपः स्वयैवैनं देवतयाऽच्छैत्य—त्यन्यानगां नान्यानुपागामित्याहाति ह्यन्यानेति नान्यानुपैत्यर्वाक् त्वा परैरविदं परोऽवरैरित्याहार्वाग्घ्येनं परैर्विन्दति परोऽवरैस्तं त्वा जुषे (१) वैष्णवं देवयज्याया इत्याह देवयज्यायै ह्येनं जुषते देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्त्वित्याह तेजसैवैनमनक्त्योषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह वज्रो वै स्वधितिः शान्त्यै स्वधितेर्वृक्षस्य बिभ्यतः प्रथमेन शकलेन सह तेजः परा पतति यः प्रथमः शकलः परापतेत् तमप्या हरेत् सतेजसमेवैनमा हरती—(२)-मे वै लोका यूपात् प्रयतो बिभ्यति दिवमग्रेण मा लेखीरन्तरिक्षं मध्येन मा हिंसीरित्याहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति वनस्पते शतवल्शो वि रोहेत्याव्रश्चने जुहोति तस्माद्व्रश्चनाद्वृक्षाणां भूयांस उत्तिष्ठन्ति सहस्रवल्शा वि वयं रुहेमेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्तेऽनक्षसङ्गं (३) वृश्चे—द्यदक्षसङ्गं वृश्चेदधर्षं यजमानस्य प्रमायुकं स्या—द्यं कामयेताप्रतिष्ठितः स्यादित्यारोहं तस्मै वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामप्रतिष्ठितोऽप्रतिष्ठित एव भवति यं कामयेतापशुः स्यादित्यपर्णं तस्मै शुष्काग्रं वृश्चेदेष वै वनस्पतीनामपशव्योऽपशुरेव भवति यं कामयेत पशुमान्त्स्यादिति बहुपर्णं तस्मै बहुशाखं वृश्चेदेष वै (४) वनस्पतीनां पशव्यः पशुमानेव भवति प्रतिष्ठितं वृश्चेत् प्रतिष्ठाकामस्यैष वै वनस्पतीनां प्रतिष्ठितो यः समे भूम्यै स्वाद्योनेः रूढः प्रत्येव तिष्ठति यः प्रत्यङ्ङुपनतस्तं वृश्चेत् स हि मेधमभ्युपनतः पञ्चारत्निं तस्मै वृश्चेद्यं कामयेतोपैनमुत्तरो यज्ञो नमेदिति पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञ उपैनमुत्तरो यज्ञो (५) नमति षडरत्निं प्रतिष्ठाकामस्य षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठति सप्तारत्निं पशुकामस्य सप्तपदा शक्वरी पशवः शक्वरी पशूनेवाव रुन्धे नवारत्निं तेजस्कामस्य त्रिवृता स्तोमेन

संमितं तेजस्त्रिवृत् तेजस्व्येव भवत्येकादशारत्निमिन्द्रियकामस्यैकादशाक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुगिन्द्रियाव्येव भवति पञ्चदशारत्निं भ्रातृव्यवतः पञ्चदशो वज्रो भ्रातृव्याभिभूत्यै सप्तदशारत्निं प्रजाकामस्य सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्या (६) एकविंशत्यरत्निं प्रतिष्ठाकामस्यैकविंशः स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या अष्टाश्रिर्भवत्यष्टाक्षरा गायत्री तेजो गायत्री गायत्री यज्ञमुखं तेजसैव गायत्रिया यज्ञमुखेन संमितः ॥ (जुषे, सतेजस, -मनक्षसङ्गं, बहुशाखं वृश्चेदेष वै, यज्ञ उपैनमुत्तरो यज्ञः, आप्त्या, एकान्नविंशतिश्च) ॥ ३ ॥

छिन्नस्य यूपस्य स्थापनम् ॥ सोमऋषिः ।

पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेत्याहैभ्य एवैनं लोकेभ्यः प्रोक्षति पराञ्चं प्रोक्षति पराङिव हि सुवर्गो लोकः क्रूरमिव वा एतत् करोति यत् खनत्यपोऽव नयति शान्त्यै यवमतीरव नयत्यूर्ग्वै यवो यजमानेन यूपः संमितो यावानेव यजमानस्तावतीमेवास्मिन्नूर्जं दधाति (१) पितृणां सदनमसीति बर्हिरव स्तृणाति पितृदेवत्यं ह्येतद्यन्निखातं यद्बर्हिरनवस्तीर्य मिनुयात् पितृदेवत्यो निखातः स्याद्बर्हिरवस्तीर्य मिनोत्यस्यामेवैनं मिनोति यूपशकलमवास्यति सतेजसमेवैनं मिनोति देवस्त्वा सविता मध्वाऽनक्त्वित्याह तेजसैवैनमनक्ति सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्य इति चषालं प्रति (२) मुञ्चति तस्माच्छीर्षत ओषधयः फलं गृह्णन्त्य—नक्ति तेजो वा आज्यं यजमानेनाग्निष्ठाऽश्रिः संमिता यदग्निष्ठामश्रिमनक्ति यजमानमेव तेजसाऽनक्त्यान्तमनक्त्यान्तमेव यजमानं तेजसाऽनक्ति सर्वतः परि मृशत्यपरिवर्गमेवास्मिन् तेजो दधात्यु—द्दिवं स्तभानाऽन्तरिक्षं पृणेत्याहैषां लोकानां विधृत्यै वैष्णव्यर्चा (३) कल्पयति वैष्णवो वै देवतया यूपः स्वयैवैनं देवतया कल्पयति द्वाभ्यां कल्पयति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यं कामयेत तेजसैनं देवताभिरिन्द्रियेण व्यर्धयेयमित्यग्निष्ठां तस्याश्रिमाहवनीयादित्थं वेत्थं वाऽति नावयेत् तेजसैवैनं देवताभिरिन्द्रियेण व्यर्धयति यं कामयेत तेजसैनं देवताभिरिन्द्रियेण समर्धयेयमित्य-(४)-ग्निष्ठां तस्याश्रिमाहवनीयेन सं मिनुयात् तेजसैवैनं देवताभिरिन्द्रियेण समर्धयति ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिमित्याह यथायजुरेवैतत् परि व्ययत्यूर्ग्वै रशना यजमानेन यूपः संमितो यजमानमेवोर्जा समर्धयति नाभिदघ्ने परि व्ययति नाभिदघ्न एवास्मा ऊर्जं दधाति तस्मान्नाभिदघ्न ऊर्जा भुञ्जते यं कामयेतोर्जैनं (५) व्यर्धयेयमित्यूर्ध्वां वा तस्यावाचीं वाऽवोहेदूर्जैवैनं व्यर्धयति यदि कामयेत वर्षुकः पर्जन्यः स्यादित्यवाचीमवोहेद्वृष्टिमेव नि यच्छति यदि कामयेतावर्षुकः स्यादित्यूर्ध्वामुदूहेद्वृष्टिमेवोद्यच्छति पितृणां निखातं मनुष्याणामूर्ध्वं निखातादा रशनाया ओषधीनां रशना विश्वेषां (६) देवानामूर्ध्वं रशनाया आ चषालादिन्द्रस्य चषालं साध्यानामतिरिक्तं स वा एष सर्वदेवत्यो यद्यूपो यद्यूपं मिनोति सर्वा एव देवताः प्रीणाति यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् तेऽमन्यन्त मनुष्या नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते यूपेन योपयित्वा सुवर्गं लोकमायन् तमृषयो यूपेनैवानु प्राजानन् तद्यूपस्य यूपत्वं (७) यद्यूपं मिनोति सुवर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै पुरस्तान्मिनोति पुरस्ताद्धि यज्ञस्य प्रज्ञायते प्रशानं हि तदविदतिपन्न आहुरिदं कार्यमासीदिति साध्या वै देवा यज्ञमत्यमन्यन्त तान् यज्ञो नास्पृशत् तान् यज्ञस्यातिरिक्तमासीत् तदस्पृशदतिरिक्तं वा एतद्यज्ञस्य यदग्नावग्निं मथित्वा प्रहरत्यतिरिक्तमेत-(८)-

यूपस्य यदूर्ध्वं चषालात् तेषां तद्भागधेयं तानेव तेन प्रीणाति देवा वै सꣳस्थिते सोमे प्र स्रुचोऽहरन् प्र यूपं तेऽमन्यन्त यज्ञवेशसं वा इदं कुर्म इति ते प्रस्तरꣳ स्रुचां निष्क्रयणमपश्यन्त्स्वरुं यूपस्य सꣳस्थिते सोमे प्र प्रस्तरꣳ हरति जुहोति स्वरुमयज्ञवेशसाय ॥ (दधाति, पृथु,-वा, समर्धयेदुमिन्द्र,-अन्नं, विश्वेषां, यूपस्य,- सꣳस्थिते सोमेऽष्ट, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

मन्थनविधिरग्निप्रहरणम् ॥ सोमक्रतिः ।

साध्या वै देवा अस्मिंल्लोक आसन् नान्यत् किं चन मिषत् तेऽग्निमेवाग्नये मेधायाऽऽलभन्त न ह्यन्यदालम्भ्यमविन्दन् ततो वा इमाः प्रजाः प्राजायन्त यदग्नावग्निं मथित्वा प्रहरति प्रजानां प्रजननाय रुद्रो वा एष यदग्निर्यजमानः पशुर्यत् पशुमालभ्याग्निं मन्थेद् रुद्राय यजमान-(१)-मपि दध्यात् प्रमायुकः स्याद्-अथो खल्वाहुरग्निः सर्वा देवता हविरेतद्यत् पशुरिति यत् पशुमालभ्याग्निं मन्थति हव्यायैवाऽऽसन्नाय सर्वा देवता जनयत्य्-उपाकृत्यैव मन्थ्यस्तन्नेवाऽऽलब्धं नेवानालब्धम्-अग्नेर्जनित्रमसीत्याहाग्नेर्ह्येतज्जनित्रं वृषणौ स्थ इत्याह वृषणौ (२) ह्येतौ-उर्वश्यस्यायुरसीत्याह मिथुनत्वाय घृतेनाक्ते वृषणं दधाथामित्याह वृषणꣳ ह्येते दधाते ये अग्निं गायत्रं छन्दोऽनु प्र जायस्वेत्याह छन्दोभिरेवैनं प्र जनयत्य्-अग्नये मथ्यमानायानु ब्रूहीत्याह सावित्रीमृचमन्वाह सवितृप्रसूत एवैनं मन्थति जातायानु ब्रूहि (३) प्रह्रियमाणायानु ब्रूहीत्याह काण्डेकाण्ड एवैनं क्रियमाणे समर्धयति गायत्रीः सर्वा अन्वाह गायत्रछन्दा वा अग्निः स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयत्य्-अग्निः पुरा भवत्यग्निं मथित्वा प्र हरति तौ संभवन्तौ यजमानमभि सं भवतो भवतं नः समनसावित्याह शान्त्यै प्रहृत्य जुहोति जातायैवास्मा अन्नमपि (४) दधात्याज्येन जुहोत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यदाज्यं प्रियेणैवैनं धाम्ना समर्धयत्यथो तेजसा ॥ (यजमान,-माह वृषणौ, जातायानु ब्रूह्य, अपि, द्वादश च) ॥ ५ ॥

पशोरुपाकरणम् ॥ सोमक्रतिः ।

इषे त्वेति बर्हिरा दत्त इच्छत इव ह्येष यो यजते उपवीरसीत्याहोप ह्येनानाकरोत्य्-उपो देवान् दैव्या विशः प्रागुरित्याह दैव्या ह्येता विशः सतीर्देवानुपयन्ति वह्नीरुशिज इत्याहर्त्विजो वै वह्नय उशिजस्तस्मादेवमाह बृहस्पते धारया वसूनीत्या-(१)-ह ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मै पशूनव रुन्धे हव्या ते स्वदन्तामित्याह स्वदयत्येवैनान् देव त्वष्टर्वसु रण्वेत्याह त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानाꣳ रूपकृद्रूपमेव पशुषु दधाति रेवती रमध्वमित्याह पशवो वै रेवतीः पशूनेवास्मै रमयति देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति (२) रशनामा दत्ते प्रसूत्या अश्विनोर्बाहुभ्यामित्याहाश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्ताभ्यामित्याह यत्यै ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेनाऽऽरभ इत्याह सत्यं वा ऋतꣳ सत्येनैवैनमृतेनाऽऽरभतेऽक्ष्णया परि हरति वध्यꣳ हि प्रत्यञ्चं प्रतिमुञ्चन्ति व्यावृत्त्यै धर्षा मानुषानिति नि युनक्ति धृत्या अद्भ्य-(३)-स्त्वौषधीभ्यः प्रोक्षामीत्याहाद्भ्यो ह्येष ओषधीभ्यः संभवति यत् पशुर्-अपां पेरुरसीत्याहैष ह्यपां पाता यो मेधायाऽऽरभ्यते स्वात्तं चित् सदेवꣳ हव्यमापो देवीः स्वदतैनमित्याह स्वदयत्येवैन-मुपरिष्टात् प्रोक्षत्युपरिष्टादेवैनं मेध्यं करोति पाययत्यन्त-

-रत एवैनं (४) मेध्यं करोत्यधस्तादुपोक्षति सर्वत एवैनं मेध्यं करोति ॥ (वसूनीति, प्रसव इत्,-अद्भ्यो,-ऽन्तरत एवैनं, दश च) ॥ ६ ॥

सामिधेन्य आघारौ प्रयाजाश्च ॥ सोमक्रतिः ।

अग्निना वै होत्रा देवा असुरानभ्यभवन्नग्नये समिध्यमानायानु ब्रूहीत्याह भ्रातृव्याभिभूत्यै सप्तदश सामिधेनीरन्वाह सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै सप्तदशान्वाह द्वादश मासाः पञ्चर्तवः स संवत्सरः संवत्सरं प्रजा अनु प्र जायन्ते प्रजानां प्रजननाय देवा वै सामिधेनीरनूच्य यज्ञं नान्वपश्यन्त्स प्रजापतिस्तूष्णीमाघार-(१)-मा ऽघारयत् ततो वै देवा यज्ञमन्वपश्यन् यत् तूष्णीमाघारमाघारयति यज्ञस्यानुख्यात्या असुरेषु वै यज्ञ आसीत् तं देवास्तूष्णीꣳहोमेनावृञ्जत यत् तूष्णीमाघारमाघारयति भ्रातृव्यस्यैव तद्यज्ञं वृङ्क्ते परिधीन्त्सं मार्ष्टि पुनात्येवैनान् त्रिस्त्रिः सं मार्ष्टि त्र्यावृद्धि यज्ञोऽथो रक्षसामपहत्यै द्वादश सं पद्यन्ते द्वादश (२) मासाः संवत्सरः संवत्सरमेव प्रीणात्यथो संवत्सरमेवास्मा उप दधाति सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघारोऽग्निः सर्वा देवता यदाघारमाघारयति शीर्षत एव यज्ञस्य यजमानः सर्वा देवता अव रुन्धे शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघार आत्मा पशुराघारमाघार्य पशुꣳ समनक्त्यात्मन्नेव यज्ञस्य (३) शिरः प्रति दधाति सं ते प्राणो वायुना गच्छतामित्याह वायुदेवत्यो वै प्राणो वायावेवास्य प्राणं जुहोति सं यजत्रैरङ्गानि सं यज्ञपतिराशिषेत्याह यज्ञपतिमेवास्याऽऽशिषं गमयति विश्वरूपो वै त्वाष्ट्र उपरिष्टात् पशुमभ्यवमीत् तस्मादुपरिष्टात् पशोर्नाव द्यन्ति यदुपरिष्टात् पशुꣳ समनक्ति मेध्यमेवै-(४)-नं करोत्य्-ऋत्विजो वृणीते छन्दाꣳस्येव वृणीते सप्त वृणीते सप्त ग्राम्याः पशवः सप्ताऽऽरण्याः सप्त छन्दाꣳस्युभयस्यावरुद्ध्या एकादश प्रयाजान् यजति दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशो यावानेव पशुस्तं प्र यजति वपामेकः परि शय आत्मैवाऽऽत्मानं परि शये वज्रो वै स्वधितिर्वज्रो यूपशकलो घृतं खलु वै (५) देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथामित्याह वज्रेणैवैनं वशे कृत्वाऽऽलभते ॥ (आघार,-पद्यन्ते द्वादशा,-ऽऽत्मन्नेव यज्ञस्य, मेध्यमेव, खलु वा, अष्टादश च) ॥ ७ ॥

पशुसंज्ञपनम् ॥ सोमक्रतिः ।

पर्यग्नि करोति सर्वहुतमेवैनं करोत्यस्कन्दायास्कन्नꣳ हि तद्यद्धुतस्य स्कन्दति त्रिः पर्यग्नि करोति त्र्यावृद्धि यज्ञोऽथो रक्षसामपहत्यै ब्रह्मवादिनो वदन्त्यन्वारभ्यः पशू३र्नान्वारभ्या३ इति मृत्यवे वा एष नीयते यत् पशुस्तं यदन्वारभेत प्रमायुको यजमानः स्याद्-अथो खल्वाहुः सुवर्गाय वा एष लोकाय नीयते यत् (१) पशुरिति यन्नान्वारभेत सुवर्गाल्लोकाद्यजमानो हीयेत वपाश्रपणीभ्यामन्वारभते तन्नेवान्वारब्धं नेवानन्वारब्ध-मुप प्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्य इत्याहेषितꣳ हि कर्म क्रियते रेवतीर्यज्ञपतिं प्रियधाऽऽविशतेत्याह यथायजुरेवैतद्-अग्निना पुरस्तादेति रक्षसामपहत्यै पृथिव्याः संपृचः पाहीति बर्हि-(२)-रुपास्यत्यस्कन्दायास्कन्नꣳ हि तद्यद्बर्हिषि स्कन्दत्यथो बर्हिषदमेवैनं करोति पराङा वर्ततेऽध्वर्युः पशोः संज्ञप्यमानात् पशुभ्य एव तन्नि ह्नुत आत्मनोऽनाव्रस्काय गच्छति श्रियं प्र पशू-

-नाप्नोति य एवं वेद पश्चाल्लोका वा एषा प्राच्युदानीयते यत् पत्नी नमस्त आतानेत्याहाऽऽदित्यस्य वै रश्मय (१) आतानास्तेभ्य एव नमस्करोत्य्-अनर्वा प्रेहीत्याह भ्रातृव्यो वा अर्वा भ्रातृव्यापनुत्त्यै घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेणेत्याहाऽऽशिषमेवैतामा शास्त आपो देवीः शुद्धायुव इत्याह यथायजुरेवैतत् ॥ (लोकाय नीयते यद्, बर्हिर्, रश्मयः, त्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

वपाहोमः ॥ सोमक्रतिः ।

पशोर्वा आलब्धस्य प्राणाञ्छुगृच्छति वाक्त आ प्यायतां प्राणस्त आ प्यायतामित्याह प्राणेभ्य एवास्य शुचꣳ शमयति सा प्राणेभ्योऽधि पृथिवीꣳ शुक्प्र विशति शमहोभ्यामिति नि नयत्यहोरात्राभ्यामेव पृथिव्यै शुचꣳ शमयत्य्-ओषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीरित्याह वज्रो वै स्वधितिः (१) शान्त्यै पार्श्वत आ च्छ्यति मध्यतो हि मनुष्या आच्छ्यन्ति तिरश्चीनमा च्छ्यत्यनूचीनꣳ हि मनुष्या आच्छ्यन्ति व्यावृत्त्यै रक्षसां भागोऽसीति स्थविमतो बर्हिरक्त्वाऽपास्यत्यस्नैव रक्षाꣳसि निरवदयत इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इत्याह द्वौ वाव पुरुषौ यं चैव (२) द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तावुभावधमं तमो नयतीषे त्वेति वपामुत्खिदतीच्छत इव ह्येष यो यजते यदुपतृन्द्याद्रुद्रोऽस्य पशून् घातुकः स्याद्यन्नोपतृन्द्यादयता स्याद्-अन्ययोपतृणत्त्यन्ययान धृत्यै घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्ण्वाथामित्याह द्यावापृथिवी एव रसेनानक्त्यच्छिन्नो (३) रायः सुवीर इत्याह यथायजुरेवैतत् क्रूरमिव वा एतत् करोति यद्वपामुत्खिदत्युर्वन्तरिक्षमन्विहीत्याह शान्त्यै प्र वा एषोऽस्माल्लोकाच्च्यवते यः पशुं मृत्यवे नीयमानमन्वारभते वपाश्रपणी पुनरन्वारभतेऽस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठत्य्-अग्निना पुरस्तादेति रक्षसामपहत्या अथो देवता एव हव्येना-(४)-न्वेति नान्तममङ्गारमति हरेद्यदन्तममङ्गारमतिहरेद्देवता अति मन्येत वायो वीहि स्तोकानामित्याह तस्माद्विभक्ताः स्तोका अव पद्यन्ते अग्रं वा एतत् पशूनां यद्वपाऽग्रमोषधीनां बर्हिरग्रेणैवाग्रꣳ समर्धयत्यथो ओषधीष्वेव पशून् प्रति ष्ठापयति स्वाहाकृतीभ्यः प्रेष्येत्याह (५) यज्ञस्य समिष्ट्यै प्राणापानौ वा एतौ पशूनां यत् पृषदाज्यमात्मा वपा पृषदाज्यमभिघार्य वपामभि घारयत्यात्मन्नेव पशूनां प्राणापानौ दधाति स्वाहोर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतमित्याहोर्ध्वनभा ह स्म वै मारुतो देवानां वपाश्रपणी प्र हरति तेनैवैने प्र हरति विषूची प्र हरति तस्माद्विष्वञ्चौ प्राणापानौ ॥ (स्वधितिः,- चैव,-अच्छिन्नो, हव्येन,-प्रेष्येत्याह, षट्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

पश्ववदानानि ॥ सोमक्रतिः ।

पशुमालभ्य पुरोडाशं निर्वपति समेधमेवैनमा लभते वपया प्रचर्य पुरोडाशेन प्र चरत्यूर्ग्वै पुरोडाश ऊर्जमेव पशूनां मध्यतो दधात्यथो पशोरेव छिद्रमपि दधाति पृषदाज्यस्योपहत्य त्रिः पृच्छति शृतꣳ हवी३ः शमितरिति त्रिषत्या हि देवा योऽशृतꣳ शृतमाह स एनसा प्राणापानौ वा एतौ पशूनां (१) यत् पृषदाज्यं पशोः खलु वा आलब्धस्य हृदयमात्माऽभि समेति यत् पृषदाज्येन हृदयमभिघारयत्यात्मन्नेव पशूनां प्राणापानौ दधाति पशुना वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् तेऽमन्यन्त मनुष्या नोऽन्वाभविष्यन्तीति तस्य शिरश्छित्त्वा मेधं प्राक्षारयन्त्स प्रक्षोऽभवत् तत् प्रक्षस्य प्रक्षत्वं यत् प्लक्षशाखोत्तरबर्हिर्भवति समे-

-धस्यैव (२) पशोरव द्यति पशुं वै ह्रियमाणꣳ रक्षाꣳस्यनु सचन्तेऽन्तरा यूपं चाऽऽहवनीयं च हरति रक्षसामपहत्यै पशोर्वा आलब्धस्य मनोऽप क्रामति मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्यानु ब्रूहीत्याह मन एवास्याव रुन्ध एकादशावदानान्यव द्यति दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशो यावानेव पशुस्तस्याव (३) द्यति हृदयस्याग्रेऽव द्यत्यथ जिह्वाया अथ वक्षसो यद्वै हृदयेनाभिगच्छति तज्जिह्वया वदति यज्जिह्वया वदति तदुरसोऽधि निर्वदत्येतद्वै पशोर्यथापूर्वं यस्यैवमवदाय यथाकाममुत्तरेषामवद्यति यथापूर्वमेवास्य पशोरवत्तं भवति मध्यतो गुदस्याव द्यति मध्यतो हि प्राण उत्तमस्याव द्यत्यु (४) त्तमो हि प्राणो यदीतरं यदीतरमुभयमेवाजामि जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिरृणवा जायते ब्रह्मचर्येणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी तदवदानैरेवाव दयते तदवदानानामवदानत्वं देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा अग्निमब्रुवन् त्वया वीरेणासुरानभि भवामेति (५) सोऽब्रवीद्वरं वृणै पशोरुद्धारमुद्धरा इति स एतमुद्धारमुदहरत दोः पूर्वार्धस्य गुदं मध्यतः श्रोणिं जघनार्धस्य ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यत् त्र्यङ्गाणाꣳ समवद्यति भ्रातृव्याभिभूत्यै भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवत्य्-अक्ष्णयाऽव द्यति तस्मादक्ष्णया पशवोऽङ्गानि प्र हरन्ति प्रतिष्ठित्यै ॥ (पशूनां, समेधस्यैव, तस्याव,- उत्तमस्याव द्यति,- इति, पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १० ॥

अनूयाजविधानम् ॥ सोमक्रतिः ।

मेदसा स्रुचौ प्रोर्णोति मेदोरूपा वै पशवो रूपमेव पशुषु दधाति यूषन्नवधाय प्रोर्णोति रसो वा एष पशूनां यद्यूषो रसमेव पशुषु दधाति पार्श्वेन वसाहोमं प्र यौति मध्यं वा एतत् पशूनां यत् पार्श्वꣳ रस एष पशूनां यद्वसा यत् पार्श्वेन वसाहोमं प्रयौति मध्यत एव पशूनाꣳ रसं दधाति घ्नन्ति (१) वा एतत् पशुं यत् संज्ञपयन्त्यैन्द्रः खलु वै देवतया प्राण ऐन्द्रोऽपान ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे नि देध्यदित्याह प्राणापानावेव पशुषु दधाति देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेत्वित्याह त्वाष्ट्रा हि देवतया पशवो विषुरूपा यत् सलक्ष्माणो भवथेत्याह विषुरूपा ह्येते सन्तः सलक्ष्माण एतर्हि भवन्ति देवत्रा यन्त-(२)-मवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्त्वित्याहानुमतमेवैनं मात्रा पित्रा सुवर्गं लोकं गमयत्य्-अर्धर्चे वसाहोमं जुहोत्यसौ वा अर्धर्च इयमर्धर्च इमे एव रसेनानक्ति दिशो जुहोति दिश एव रसेनानक्त्यथो दिग्भ्य एवोर्जꣳ रसमव रुन्धे प्राणापानौ वा एतौ पशूनां यत् पृषदाज्यं वानस्पत्याः खलु (३) वै देवतया पशवो यत् पृषदाज्यस्योपहत्याऽऽह वनस्पतयेऽनु ब्रूहि वनस्पतये प्रेष्येति प्राणापानावेव पशुषु दधात्य्-अन्यस्यान्यस्य समवत्तꣳ समवद्यति तस्मान्नानारूपाः पशवो यूष्ण उप सिञ्चति रसो वा एष पशूनां यद्यूषो रसमेव पशुषु दधातीडामुप ह्वयते पशवो वा इडा पशूनेवोप ह्वयते चतुरुप ह्वयते (४) चतुष्पादो हि पशवो यं कामयेतापशुः स्यादित्यमेदस्कं तस्मा आ दध्यान्मेदोरूपा वै पशवो रूपेणैवैनं पशुभ्यो निर्भजत्यपशुरेव भवति यं कामयेत पशुमान्त्स्यादिति मेदस्वत् तस्मा आ दध्यान्मेदोरूपा वै पशवो रूपेणैवास्मै पशूनव रुन्धे पशुमानेव भवति प्रजापतिर्यज्ञमसृजत स आज्यं (५) पुरस्तादसृजत पशुं मध्यतः पृषदाज्यं पश्चात् तस्मादाज्येन प्रयाजा इज्यन्ते पशुना मध्यतः पृषदाज्येनानूयाजास्तस्मादेतन्मिश्रमिव

पश्चात् सृष्टंरं ह्येकादशानूयाजान् यजति दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशो यावानेव पशुस्तमनु यजति घ्नन्ति वा एतत् पशुं यत् संज्ञपयन्ति प्राणापानौ खलु वा एतौ पशूनां यत् पृषदाज्यं यत् पृषदाज्येना-(६)-नूयाजान् यजति प्राणापानावेव पशुषु दधाति ॥ (घ्नन्ति, यन्तं, कर्ज, इवत, भाज्यं, यत् पृषदाज्येन, षट् च) ॥ ११ ॥

[पारर्वालात् ३१४। सुवर्णाय ३००। वैष्णव्या ३१९। पृथिव्यै ४४२। साध्या २१८। हृदं २१०। ऽग्निना २६८। पर्यग्नि १८७। एतोः २९६। पशुं २५५। मेदसे-३०६। -कांदश ॥ ३१५५ ॥]

[॥ इति षष्ठकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥]

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥]

गुदहोमविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

यज्ञेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ता उपयड्भिरेवासृजत यदुपयज उपयजति प्रजा एव तद्यजमानः सृजते जघनार्धादव द्यति जघनार्धाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते स्थविमतोऽव द्यति स्थविमतो हि प्रजाः प्रजायन्ते ऽसंभिन्दन्नव द्यति प्राणानामसंभेदाय न पर्यावर्तयति यत् पर्यावर्तयेदुदावर्तः प्रजा ग्राहुकः स्यात् समुद्रं गच्छ स्वाहेत्याह रेतं (१) एव तद्धात्य-न्तरिक्षं गच्छ स्वाहेत्याहान्तरिक्षेणैवास्मै प्रजाः प्र जनयत्यन्तरिक्षꣳ ह्यनु प्रजाः प्रजायन्ते देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहेत्याह सवितृप्रसूत एवास्मै प्रजाः प्र जनयत्य-होरात्रे गच्छ स्वाहेत्याहाहोरात्राभ्यामेवास्मै प्रजाः प्र जनयत्यहोरात्रे ह्यनु प्रजाः प्रजायन्ते मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहे-(२)-त्याह प्रजास्वेव प्रजातासु प्राणापानौ दधाति सोमं गच्छ स्वाहेत्याह सौम्या हि देवतया प्रजा यज्ञं गच्छ स्वाहेत्याह प्रजा एव यज्ञियाः करोति छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहेत्याह पशवो वै छन्दाꣳसि पशूनेवाव रुन्धे द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहेत्याह प्रजा एव प्रजाता द्यावापृथिवीभ्यामुभयतः परि गृह्णाति नभो (३) दिव्यं गच्छ स्वाहेत्याह प्रजाभ्य एव प्रजाताभ्यो वृष्टिं नि यच्छत्य-ग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहेत्याह प्रजा एव प्रजाता अस्यां प्रति ष्ठापयति प्राणानां वा एषोऽव द्यति योऽवद्यति गुदस्य मनो मे हार्दि यच्छेत्याह प्राणानेव यथास्थानमुप ह्वयते पशोर्वा आलब्धस्य हृदयꣳ शुगृच्छति सा हृदयशूल-(४)-मभि समेति यत् पृथिव्याꣳ हृदयशूलमुद्वासयेत् पृथिवीꣳ शुचाऽर्पयेदप्स्वप्सु शुचाऽर्पयेच्छुष्कस्य चाऽऽर्द्रस्य च सन्धावुद्वासयत्युभयस्य शान्त्यै यं द्विष्यात् तं ध्यायेच्छुचैवैनमर्पयति ॥ (रेतः, स्वाहा, नभो, हृदयशूलं, द्वात्रिꣳशच्च) ॥ १ ॥

सोमाभिषवोपयुक्तानां वसतीवरीसंज्ञकानामपामुपादानम् ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै यज्ञमाग्नीध्रे व्यभजन्त ततो यदत्यशिष्यत तदब्रुवन् वसतु नु न इदमिति तद्वसतीवरीणां वसतीवरित्वं तस्मिन् प्रातर्न समशक्नुवन् तदप्सु प्रावेशयन् ता वसतीवरीरभवन् वसतीवरीर्गृह्णाति यज्ञो वै वसतीवरीर्यज्ञमेवाऽऽरभ्य गृहीत्वोप वसति यस्यागृहीता अभि निम्रोचेदनारब्धोऽस्य यज्ञः स्या-

(१)-द्यज्ञं वि च्छिन्द्या-ज्ज्योतिष्या वा गृह्णीयाद्धिरण्यं वाऽवधाय सशुक्राणामेव गृह्णाति यो वा ब्राह्मणो बहुयाजी तस्य कुम्भ्यानां गृह्णीयात् स हि गृहीतवसतीवरीको वसतीवरीर्गृह्णाति पशवो वै वसतीवरीः पशूनेवाऽऽरभ्य गृहीत्वोप वसति यदन्वीपं तिष्ठन् गृह्णीयान्निर्मार्गुका अस्मात् पशवः स्युः प्रतीपं तिष्ठन् गृह्णाति प्रतिरुध्यैवास्मै पशून् गृह्णाती-न्द्रो (२) वृत्रमहन्त्सोऽपोऽभ्यम्रियत तासां यन्मेध्यं यज्ञियꣳ सदेवमासीत् तदत्यमुच्यत ता वहन्तीरभवन् वहन्तीनां गृह्णाति या एव मेध्या यज्ञियाः सदेवा आपस्तासामेव गृह्णाति नान्तमा वहन्तीरतीयादवन्तमा वहन्तीरतीयाद्यज्ञमति मन्येत न स्थावराणां गृह्णीयाद्वरुणगृहीता वै स्थावरा यत् स्थावराणां गृह्णीया-(३)-द्वरुणेनास्य यज्ञं ग्राहये-द्यद्वै दिवा भवत्यपो रात्रिः प्र विशति तस्मात् ताम्रा आपो दिवा ददृश्रे यन्नक्तं भवत्यपोऽहः प्र विशति तस्माच्चन्द्रा आपो नक्तं ददृश्रे छायायै चाऽऽतपतश्च सन्धौ गृह्णात्यहोरात्रयोरेवास्मै वर्णं गृह्णाति हविष्मतीरिमा आप इत्याह हविष्कृतानामेव गृह्णाति हविष्माꣳ अस्तु (४) सूर्य इत्याह सशुक्राणामेव गृह्णात्य-नुष्टुभा गृह्णाति वाग्वा अनुष्टुग्वाचैवैनाः सर्वया गृह्णाति चतुष्पदयर्चा गृह्णाति त्रिः सादयति सप्त सं पद्यन्ते सप्तपदा शक्वरी पशवः शक्वरी पशूनेवाव रुन्धे ऽस्मै वै लोकाय गार्हपत्य आ धीयतेऽमुष्मा आहवनीयो यद्गार्हपत्य उपसादयेदस्मिँल्लोके पशुमान्त्स्याद्यदाहवनीयेऽमुष्मि-(५)-ꣳल्लोके पशुमान्त्स्यादुभयोरुप सादयत्युभयोरेवैनं लोकयोः पशुमन्तं करोति सर्वतः परि हरति रक्षसामपहत्या इन्द्राग्नियोर्भागधेयीः स्थेत्याह यथायजुरेवैत-दाग्नीध्र उप वासयत्येतद्वै यज्ञस्यापराजितं यदाग्नीध्रं यदेव यज्ञस्यापराजितं तदेवैना उप वासयति यतः खलु वै यज्ञस्य विततस्य न क्रियते (६) तदनु यज्ञꣳ रक्षाꣳस्यव चरन्ति यद्वहन्तीनां गृह्णाति क्रियमाणमेव तद्यज्ञस्य शये रक्षसामनन्ववचाराय न ह्येता ईलयन्त्या तृतीयसवनात् परि शेरे यज्ञस्य संतत्यै ॥ (स्या,-दिन्द्रो, गृह्णीया- दस्तु, मुष्मिꣳ, क्रियते, षड्विꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

हविर्धानशकटाद् अधिषवणफलकयोरुपरि सोमावरोहणम् ॥ सोमऋषिः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वा अध्वर्युः स्याद्यः सोममुपावहरन्त्सर्वाभ्यो देवताभ्य उपावहरेदिति हृदे त्वेत्याह मनुष्येभ्य एवैतेन करोति मनसे त्वेत्याह पितृभ्य एवैतेन करोति दिवे त्वा सूर्याय त्वेत्याह देवेभ्य एवैतेन करोत्येतावतीर्वै देवतास्ताभ्य एवैनꣳ सर्वाभ्य उपावहरति पुरा वाचः (१) प्रवदितोः प्रातरनुवाकमुपाकरोति यावत्येव वाक् तामव रुन्धे ऽपोऽग्रेऽभिव्याहरति यज्ञो वा आपो यज्ञमेवाभि वाचं वि सृजति सर्वाणि छन्दाꣳस्यन्वाह पशवो वै छन्दाꣳसि पशूनेवाव रुन्धे गायत्रिया तेजस्कामस्य परि दध्यात् त्रिष्टुभेन्द्रियकामस्य जगत्या पशुकामस्यानुष्टुभा प्रतिष्ठाकामस्य पङ्क्त्या यज्ञकामस्य विराजा-ऽन्नकामस्य शृणोत्वग्निः समिधा हवं (२) म इत्याह सवितृप्रसूत एव देवताभ्यो निवेद्यापोऽच्छैत्य-प इष्य होतरित्याहेषितꣳ हि कर्म क्रियते मैत्रावरुणस्य चमसाध्वर्यवा द्रवेत्याह मित्रावरुणौ वा अपां नेतारौ ताभ्यामेवैना अच्छैति देवीरापो अपां नपादित्याहाऽऽहुत्यैवैना निष्क्रीय गृह्णात्यथो हविष्कृतानामेवाभिघृतानां गृह्णाति (३) कार्षिरसीत्याह शमलमेवाऽऽसामप प्लावयति समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नय इत्याह तस्मादद्यमानाः पीयमाना आपो न क्षीयन्ते योनिर्वै यज्ञस्य चात्वालं यज्ञो वसतीवरीर्होतृचमसं

च मैत्रावरुणचमसं च सꣳस्पर्श्य वसतीवरीर्व्यानयति यज्ञस्य सयोनित्वायाथो स्वादेवैना योनेः प्र जनयत्य-ध्वर्योऽवेरपा३ इत्याहोते-(४)-मनन्नमुतेमाः पश्येति वावैतदाह यद्यग्निष्टोमो जुहोति यद्युक्थ्यः परिधौ नि मार्ष्टि यद्यतिरात्रो यजुर्वदन् प्र पद्यते यज्ञक्रतूनां व्यावृत्त्यै ॥ (वाचो, हवं,-मभिघृतानां गृह्णात्यु,-त पञ्चविꣳशतिश्च) ॥ ३ ॥

सोमस्याभिषवः ॥ सोमऋषिः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति ग्रावाणमा दत्ते प्रसूत्या अश्विनोर्बाहुभ्यामित्याहाश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्तां पूष्णो हस्ताभ्यामित्याह यत्यै पशवो वै सोमो व्यान उपाꣳशुसवनो यदुपाꣳशुसवनमभि मिमीते व्यानमेव पशुषु दधाती-न्द्राय त्वेन्द्राय त्वेति मिमीत इन्द्राय हि सोम आह्रियते पञ्च कृत्वो यजुषा मिमीते (१) पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे पञ्च कृत्वस्तूष्णीं दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धे श्वात्राः स्थ वृत्रतुर इत्याहैष वा अपाꣳ सोमपीथो य एवं वेद नाप्स्वार्तिमार्च्छति यत् ते सोम दिवि ज्योतिरित्याहैभ्य एवैनं (२) लोकेभ्यः सं भरति सोमो वै राजा दिशोऽभ्यध्यायत् स दिशोऽनु प्राविशत् प्रागपागुदगधरागित्याह दिग्भ्य एवैनꣳ सं भरत्यथो दिश एवास्मा अव रुन्धे ऽम्ब नि ष्वरेत्याह कामुका एनꣳ स्त्रियो भवन्ति य एवं वेद यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवीत्या-(३)-हैष वै सोमस्य सोमपीथो य एवं वेद न सौम्यामार्तिमार्च्छति घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्त्यꣳशूनप गृह्णाति त्रायत एवैनं प्राणा वा अꣳशवः पशवः सोमो ऽꣳशून् पुनरपि सृजति प्राणानेव पशुषु दधाति द्वौद्वावपि सृजति तस्माद् द्वौद्वौ प्राणाः ॥ (यजुषा मिमीत, एनं, जागृवीति, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

सुत्यादिनेऽनुष्ठेयेषु ग्रहेषु उपांशुग्रहः । सोमऋषिः ।

प्राणो वा एष यदुपाꣳशुर्यदुपाꣳश्वग्रा ग्रहा गृह्यन्ते प्राणमेवानु प्र यन्त्य-रुणो ह स्माऽऽहौपवेशिः प्रातःसवन एवाहं यज्ञꣳ सꣳ स्थापयामि तेन ततः सꣳस्थितेन चरामीत्यष्टौ कृत्वोऽग्रेऽभि षुणोत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं प्रातःसवनमेव तेनाऽऽप्नोत्येकादश कृत्वो द्वितीयमेकादशाक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ (१) सवनं माध्यंदिनमेव सवनं तेनाऽऽप्नोति द्वादश कृत्वस्तृतीयं द्वादशाक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवनमेव तेनाऽऽप्नोत्येताꣳ ह वाव स यज्ञस्य सꣳस्थितिमुवाचास्कन्दायास्कन्नꣳ हि तद्यज्ञस्य सꣳस्थितस्य स्कन्दत्य-थो खल्वाहुर्गायत्री वाव प्रातःसवने नातिवाद इत्यनतिवादुक एनं भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद तस्मादष्टावष्टौ (२) कृत्वोऽभिषुत्यं ब्रह्मवादिनो वदन्ति पवित्रवन्तोऽन्ये ग्रहा गृह्यन्ते किंपवित्र उपाꣳशुरिति वाक्पवित्र इति ब्रूयाद्वाचस्पतये पवस्व वाजिन्नित्याह वाचैवैनं पवयति वृष्णो अꣳशुभ्यामित्याह वृष्णो ह्येतावꣳशू यौ सोमस्य गभस्तिपूत इत्याह गभस्तिना ह्येनं पवयति देवो देवानां पवित्रमसीत्याह देवो ह्येषः (३) सन् देवानां पवित्रं येषां भागोऽसि तेभ्यस्त्वेत्याह येषाꣳ ह्येष भागस्तेभ्य एनं गृह्णाति स्वाङ्कृतोऽसीत्याह प्राणमेव स्वमकृत मधुमतीर्न इषस्कृधीत्याह सर्वमेवास्मा इदꣳ स्वदयति विश्वेभ्यस्त्वेन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्य इत्याहोभयेष्वेव देवमनुष्येषु प्राणान्

दधाति मनस्त्वा (४) ऽष्टित्याह मन एवाश्नुत उर्वन्तरिक्षमन्विहीत्याहान्तरिक्षदेवत्यो हि प्राणः स्वाहा त्वा सुभवः सूर्यायेत्याह प्राणा वै स्वभवसो देवास्तेष्वेव परोक्षं जुहोति देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य इत्याहाऽऽदित्यस्य वै रश्मयो देवा मरीचिपास्तेषां तद्भागधेयं तानेव तेन प्रीणाति यदि कामयेत वर्षुकः पर्जन्यः (५) स्यादिति नीचा हस्तेन नि मृज्याद्वृष्टिमेव नि यच्छति यदि कामयेतावर्षुकः स्यादित्युत्तानेन नि मृज्याद्वृष्टिमेवोद्यच्छति यद्यभिचरेदमुं जह्यथ त्वा होष्यामीति ब्रूयादाहुतिमेवैनं प्रेप्सन् हन्ति यदि दूरे स्यादा तमितोस्तिष्ठेत् प्राणमेवास्यानुगत्य हन्ति यद्यभिचरेदमुष्य (६) त्वा प्राणे सादयामीति सादयेदसन्नो वै प्राणः प्राणमेवास्य सादयति षड्भिरꣳशुभिः पवयति षड् वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं पवयति त्रिः पवयति त्रय इमे लोका एभिरेवैनं लोकैः पवयति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात् सत्यात् त्रयः पशूनाꣳ हस्तादाना इति यत् त्रिरुपाꣳशुꣳ हस्तेन विगृह्णाति तस्मात् त्रयः पशूनाꣳ हस्तादानाः पुरुषो (७) हस्ती मर्कटः ॥ (माध्यंदिन- मष्टावष्टौ,- ह्येष, मनस्त्वा, पर्जन्यो, ऽमुष्य, पुरुषो, द्वे च) ॥ ५ ॥

अन्तर्यामग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा उपाꣳशौ यज्ञꣳ सꣳस्थाप्यमपश्यन् तमुपाꣳशौ समस्थापयन् तेऽसुरा वज्रमुद्यत्य देवानभ्यायन्त ते देवा बिभ्यत इन्द्रमुपाधावन् तानिन्द्रोऽन्तर्यामेणान्तरधत्त तदन्तर्यामस्यान्तर्यामत्वं यदन्तर्यामो गृह्यते भ्रातृव्यानेव तद्यजमानोऽन्तर्धत्ते ऽन्तस्ते (१) दधामि द्यावापृथिवी अन्तरुर्वन्तरिक्षमित्याहैभिरेव लोकैर्यजमानो भ्रातृव्यानन्तर्धत्ते ते देवा अमन्यन्तेन्द्रो वा इदमभूद्यद्वयꣳ स्म इति तेऽब्रुवन् मघवन्ननु न आ भजेति सजोषा देवैरवरैः परैश्चेत्यब्रवीद्ये चैव देवाः परे ये चावरे ताननुभया-(२)-नन्वाभजत् सजोषा देवैरवरैः परैश्चेत्याह ये चैव देवाः परे ये चावरे ताननुभयानन्वाभजत्य-न्तर्यामे मघवन् मादयस्वेत्याह यज्ञादेव यजमानं नान्तरेत्यु-पयामगृहीतोऽसीत्याहापानस्य धृत्यै यदुभावपवित्रौ गृह्येयातां प्राणमपानोऽनु न्यृच्छेत् प्रमायुकः स्यात् पवित्रवानन्तर्यामो गृह्यते (३) प्राणापानयोर्विधृत्यै प्राणापानौ वा एतौ यदुपाꣳश्वन्तर्यामौ व्यान उपाꣳशुसवनो यं कामयेत प्रमायुकः स्यादित्यसꣳस्पृष्टौ तस्य सादयेद्व्यानेनैवास्य प्राणापानौ वि च्छिनत्ति ताजक् प्र मीयते यं कामयेत सर्वमायुरियादिति सꣳस्पृष्टौ तस्य सादयेद्व्यानेनैवास्य प्राणापानौ सं तनोति सर्वमायुरेति ॥ (ते, ऽनुभयान्, गृह्यते, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

ऐन्द्रवायवग्रहः । सोमऋषिः ।

वाग्वा एषा यदैन्द्रवायवो यदैन्द्रवायवाग्रा ग्रहा गृह्यन्ते वाचमेवानु प्र यन्ति वायुं देवा अब्रुवन्त्सोमꣳ राजानꣳ हनामेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मदग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्ता इति तस्मादैन्द्रवायवाग्रा ग्रहा गृह्यन्ते तमघ्न-न्त्सोऽपूयत् तं देवा नोपाधृष्णुवन् ते वायुमब्रुवन्निमं नः स्वदये-(१)-ति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मद्देवत्यान्येव वः पात्राण्युच्यान्ता इति तस्मान्नानादेवत्यानि सन्ति वायव्यान्युच्यन्ते तमेभ्यो वायुरेवास्वदयत् तस्माद्यत् पूयति तत् प्रवाते वि षजन्ति वायुर्हि तस्य पवयिता स्वदयिता तस्य विग्रहणं नाविन्दन्त्साऽदितिरब्रवीद्वरं वृणा अथ मया वि गृह्णीध्वं मद्देवत्या एव वः सोमाः (२) सन्ना

अंशुभिर्युवयामगृहीतोऽसीत्याहादितिर्देवत्यास्तेन यानि हि दारुमयाणि पात्राण्यस्यै तानि योनेः संभूतानि यानि मृन्मयानि साक्षात्तान्यस्यै तस्मादेवमाह वाग्वै पराच्यव्याकृताऽवदत्ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चैवैष वायवे च सह (१) गृह्याता इति तस्मादैन्द्रवायवः सह गृह्यते तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते तस्मात्सकृदिन्द्राय मध्यतो गृह्यते द्विर्वायवे द्वौ हि स वरावृणीत ॥ (स्वदु, सोमाः, सह,-द्वाविंशतिश्च) ॥ ७ ॥

मैत्रावरुणग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

मित्रं देवा अब्रुवन्त्सोमं राजानं हनामेति सोऽब्रवीन्नाहं सर्वस्य वा अहं मित्रमस्मीति तमब्रुवन् हनामैवेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै पयसैव मे सोमं श्रीणन्निति तस्मान्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणन्ति तस्मात्पशवोऽपाक्रामन्मित्रः सन्क्रूरमकरिति क्रूरमिव खलु वा एषः (१) करोति यः सोमेन यजते तस्मात्पशवोऽप क्रामन्ति यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति पशुभिरेव तन्मित्रं समर्धयति पशुभिर्यजमानं पुरा खलु वावैवं मित्रोऽवेदप मत्क्रूरं चक्रुषः पशवः क्रमिष्यन्तीति तस्मादेवमवृणीत वरुणं देवा अब्रुवन्त्वयांऽशभुवा सोमं राजानं हनामेति सोऽब्रवीद्वरं वृणै मह्यं चै (२) वैष मित्राय च सह गृह्याता इति तस्मान्मैत्रावरुणः सह गृह्यते तस्माद्राज्ञा राजानमंशभुवा घ्नन्ति वैश्येन वैश्यं शूद्रेण शूद्रं न वा इदं दिवा न नक्तमासीदव्यावृत्तं ते देवा मित्रावरुणावब्रुवन्निदं नो विवासयतमिति तावब्रूतां वरं वृणावहा एक एवाऽऽवत्पूर्वो ग्रहो गृह्याता इति तस्मादैन्द्रवायवः (३) पूर्वो मैत्रावरुणाद्गृह्यते प्राणापानौ ह्येतौ यदुपांश्वन्तर्यामौ मित्रोऽहरजनयद्वरुणो रात्रिं ततो वा इदं व्यौच्छद्यन्मैत्रावरुणो गृह्यते व्युष्ट्यै ॥ (एष-चै,-न्द्रवायवो, द्वाविंशतिश्च) ॥ ८ ॥

आश्विनग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ते देवा अश्विनावब्रुवन्भिषजौ वै स्थ इदं यज्ञस्य शिरः प्रति धत्तमिति तावब्रूतां वरं वृणावहै ग्रह एव नावत्रापि गृह्यतामिति ताभ्यामेतमाश्विनमगृह्णन्ततो वै तौ यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्तां यदाश्विनो गृह्यते यज्ञस्य निष्कृत्यै तौ देवा अब्रुवन्नपूतौ वा इमौ मनुष्यचरौ (१) भिषजाविति तस्माद्ब्राह्मणेन भेषजं न कार्यमपूतो ह्येषोऽमेध्यो यो भिषक्तौ बहिष्पवमानेन पवयित्वा ताभ्यामेतमाश्विनमगृह्णन्तस्माद्बहिष्पवमाने स्तुत आश्विनो गृह्यते तस्मादेवं विदुषा बहिष्पवमान उपसद्यः पवित्रं वै बहिष्पवमान आत्मानमेव पवयते तयोस्त्रेधा भैषज्यं वि न्यदधुरग्नौ तृतीयमप्सु तृतीयं तस्मादुदपात्र-(२)-मुपनिधाय ब्राह्मणं दक्षिणतो निषाद्य भेषजं कुर्याद्यावदेव भेषजं तेन करोति समर्धुकमस्य कृतं भवति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात्सत्यादेकपात्रा द्विदेवत्या गृह्यन्ते द्विपात्रा हूयन्त इति यदेकपात्रा गृह्यन्ते तस्मादेकोऽन्तरतः प्राणो द्विपात्रा हूयन्ते तस्माद्द्वौद्वौ बहिष्टात्प्राणाः प्राणा वा एते यद्द्विदेवत्याः पशव इडा यदिडां पूर्वां द्विदेवत्येभ्य उपह्वयेत (३) पशुभिः प्राणानन्तर्दधीत प्रमायुकः स्याद्द्विदेवत्यान्भक्षयित्वेडामुप ह्वयते प्राणानेवाऽऽत्मन्धित्वा पशूनुप ह्वयते वाग्वा ऐन्द्रवायवश्चक्षुर्मैत्रावरुणः श्रोत्रमाश्विनः पुरस्तादैन्द्रवायवं भक्षयति तस्मात्पुरस्ताद्वाचा वदति पुरस्तान्मैत्रावरुणं तस्मात्

पुरस्ताच्चक्षुषा पश्यति सर्वतः परिहारमाश्विनं तस्मात्सर्वतः श्रोत्रेण शृणोति प्राणा वा एते यद्द्विदेवत्याः (४) अरिक्तानि पात्राणि सादयति तस्मादरिक्ता अन्तरतः प्राणा यतः खलु वै यज्ञस्य विततस्य न क्रियते तदनु यज्ञं रक्षांस्यव चरन्ति यदरिक्तानि पात्राणि सादयति क्रियमाणमेव तद्यज्ञस्य शये रक्षसामनन्ववचाराय दक्षिणस्य हविर्धानस्योत्तरस्यां वर्तन्यां सादयति वाच्येव वाचं दधात्या तृतीयसवनात्परि शेरे यज्ञस्य संतत्यै ॥ (मनुष्यचरा,-वुदपात्र,-मुपह्वयेत, द्विदेवत्याः, षट्चत्वारिंशच्च) ॥ ९ ॥

शुक्रामन्थिग्रहौ ॥ सोमऋषिः ।

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीच्छण्डामर्कावसुराणां ब्रह्मण्वन्तो देवा आसन्ब्रह्मण्वन्तोऽसुरास्तेऽन्योऽन्यं नाशक्नुवन्नभिभवितुं ते देवाः शण्डामर्कावुपामन्त्रयन्त तावब्रूतां वरं वृणावहै ग्रहावेव नावत्रापि गृह्येतामिति ताभ्यामेतौ शुक्रामन्थिनावगृह्णन्ततो देवा अभवन्पराऽसुरा यस्यैवं विदुषः शुक्रामन्थिनौ गृह्येते भवत्यात्मना परा (१) अस्य भ्रातृव्यो भवति तौ देवा अपनुद्याऽऽत्मन इन्द्रायाजुहवुरपनुत्तौ शण्डामर्कौ सहामुनेति ब्रूयाद्यं द्विष्याद्यमेव द्वेष्टि तेनैनौ सहाप नुदते स प्रथमः संकृतिर्विश्वकर्मेत्येवैनावात्मन इन्द्रायाजुहवुरिन्द्रो ह्येतानि रूपाणि करिक्रदचरदसौ वा आदित्यः शुक्रश्चन्द्रमा मन्थ्यपिगृह्य प्राञ्चौ नि-(२)-ष्क्रामतस्तस्मात्प्राञ्चौ यन्तौ न पश्यन्ति प्रत्यञ्चावावृत्य जुहुतस्तस्मात्प्रत्यञ्चौ यन्तौ पश्यन्ति चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यच्छुक्रामन्थिनौ नासिकोत्तरवेदिरभितः परिक्रम्य जुहुतस्तस्मादभितो नासिकां चक्षुषी तस्मान्नासिकया चक्षुषी विधृते सर्वतः परि क्रामतो रक्षसामपहत्यै देवा वै याः प्राचीराहुतीरजुहवुर्ये पुरस्तादसुरा आसन्तांस्ताभिः प्रा-(३)-णुदन्त याः प्रतीचीर्ये पश्चादसुरा आसन्तांस्ताभिरपानुदन्त प्राचीरन्या आहुतयो हूयन्ते प्रत्यञ्चौ शुक्रामन्थिनौ पश्चाच्चैव पुरस्ताच्च यजमानो भ्रातृव्यान्प्र णुदते तस्मात्पराचीः प्रजाः प्र वीयन्ते प्रतीचीर्जायन्ते शुक्रामन्थिनौ वा अनु प्रजाः प्र जायन्तेऽत्त्रीश्चाऽऽद्याश्च सुवीराः प्रजाः प्रजनयन्परीहि शुक्रः शुक्रशोचिषा (४) सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीहि मन्थी मन्थिशोचिषेत्याहैता वै सुवीरा या अत्त्रीरेताः सुप्रजा या आद्या य एवं वेदात्त्र्यस्य प्रजा जायते नाऽऽद्या प्रजापतेरक्ष्यश्वयत्तत्पराऽपतत्तद्विकङ्कतं प्राविशत्तद्विकङ्कते नारमत तद्यवं प्राविशत्तद्यवेऽरमत तद्यवस्य (५) यवत्वं यद्वैकङ्कतं मन्थिपात्रं भवति सक्तुभिः श्रीणाति प्रजापतेरेव तच्चक्षुः सं भरति ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात्सत्यान्मन्थिपात्रं सदो नाश्नुत इत्यार्तपात्रं हीति ब्रूयाद्यदश्नुवीतान्धोऽध्वर्युः स्यादार्तिमार्छेत्तस्मान्नाश्नुते ॥ (आत्मना परा, नि,-ष्प्र, शुक्रशोचिषा, यवस्य, सप्तत्रिंशच्च) ॥ १० ॥

आग्रयणग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा आग्रयणाग्रान्ग्रहानपश्यन्तानगृह्णत ततो वै तेऽग्रं पर्यायन्यस्यैवं विदुष आग्रयणाग्रा ग्रहा गृह्यन्तेऽग्रमेव समानानां पर्येति रुग्णवत्यर्चा भ्रातृव्यवतो गृह्णीयाद्भ्रातृव्यस्यैव रुक्त्वाऽग्रं समानानां पर्येति ये देवा दिव्येकादश स्थेत्याह-(१)-तावतीर्वै देवतास्ताभ्य एवैनं सर्वाभ्यो गृह्णात्येष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य इत्याह वैश्वदेवो ह्येष

देवतया वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामद्यज्ञायातिष्ठमाना ते देवा वाच्यपक्रान्तायां तूष्णीं ग्रहानगृह्णत साऽमन्यत वागन्तर्यन्ति वै मेति साऽऽग्रयणं प्रत्याऽगच्छत्तदाग्रयणस्याऽऽग्रयणत्वं (२) तस्मादाग्रयणे वाग्वि सृज्यते यत्तूष्णीं पूर्वे ग्रहा गृह्यन्ते यथा त्सारीयति म आख इयति नाप राल्स्यामीत्युपावसृजत्येवमेव तदध्वर्युराग्रयणं गृहीत्वा यज्ञमारभ्य वाचं वि सृजते त्रिर्हिं करोत्युद्गातॄनेव तद्वृणीते प्रजापतिर्वा एष यदाग्रयणो यदाग्रयणं गृहीत्वा हिं करोति प्रजापतिरेव (३) तत्प्रजा अभि जिघ्रति तस्माद्वत्सं जातं गौरभि जिघ्रत्यात्मा वा एष यज्ञस्य यदाग्रयणः सवनेसवनेऽभि गृह्णात्यात्मन्नेव यज्ञं सं तनोत्युपरिष्टादा नयति रेत एव तद्दधात्यधस्तादुप गृह्णाति प्र जनयत्येवैनद्ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात्सत्याद्गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती सर्वाणि सवनानि वहतीत्ये-(४)-ष वै गायत्रियै वत्सो यदाग्रयणस्तमेव तदभिनिवर्तं सर्वाणि सवनानि वहति तस्माद्वत्समपाकृतं गौरभि नि वर्तते ॥ (आह, ऽऽग्रयणत्वं, प्रजापतिरेव, ति, विंशतिश्च) ॥ ११ ॥

[यज्ञेन २३२। देवा २२६। ब्रह्मवादिनो २२५। देवस्य १९७। प्राणो ३५२। देवा १९१। वा-१०८।-मित्रं १८१। यज्ञस्य २३६। बृहस्पति-२८०।-देवा २२०। एकादश ॥ २१३६]

[॥ इति षष्ठकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥]

उक्थ्यग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्स वृत्रो वज्रादुद्यतादबिभेत्सोऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं मयि वीर्यं तत्ते प्र दास्यामीति तस्मा उक्थ्यं प्रायच्छत्तस्मै द्वितीयमुदयच्छत्सोऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं मयि वीर्यं तत्ते प्र दास्यामीति (१) तस्मा उक्थ्यमेव प्रायच्छत्तस्मै तृतीयमुदयच्छत्तं विष्णुरन्वतिष्ठत जहीति सोऽब्रवीन्मा मे प्र हारस्ति वा इदं मयि वीर्यं तत्ते प्र दास्यामीति तस्मा उक्थ्यमेव प्रायच्छत्तं निर्मायं भूतमहन्यज्ञो हि तस्य मायाऽऽसीद्यदुक्थ्यो गृह्यत इन्द्रियमेव (२) तद्वीर्यं यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्त इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत इत्याहेन्द्राय हि स तं प्रायच्छत्तस्मै त्वा विष्णवे त्वेत्याह यदेव विष्णुरन्वतिष्ठत जहीति तस्माद्विष्णुमन्वाभजति त्रिर्निर्गृह्णाति त्रिर्हि स तं तस्मै प्रायच्छदेष ते योनिः पुनर्हविरसीत्याह पुनःपु-(३)-नर्ह्यस्मान्निर्गृह्णाति चक्षुर्वा एतद्यज्ञस्य यदुक्थ्यस्तस्मादुक्थ्यं हुतं सोमा अन्वायन्ति तस्मादात्मा चक्षुरन्वेति तस्मादेकं यन्तं बहवोऽनु यन्ति तस्मादेको बहूनां भद्रो भवति तस्मादेको बह्वीर्जाया विन्दते यदि कामयेताध्वर्युरात्मानं यज्ञयशसेनार्पयेयमित्यन्तराऽऽहवनीयं च हविर्धानं च तिष्ठन्नव नये-(४)-दात्मानमेव यज्ञयशसेनार्पयति यदि कामयेत यजमानं यज्ञयशसेनार्पयेयमित्यन्तरा सदोहविर्धाने तिष्ठन्नव नयेद्यजमानमेव यज्ञयशसेनार्पयति यदि कामयेत सदस्यान्यज्ञयशसेनार्पयेयमिति सद आलभ्याव नयेत्सदस्यानेव यज्ञयशसेनार्पयति ॥ (इति,-न्द्रियमेव, पुनः पुन,-र्नयेद् [illegible]) ॥ १ ॥

ध्रुवग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

आयुर्वा एतद्यज्ञस्य यद्ध्रुव उत्तमो ग्रहाणां गृह्यते तस्मादायुः प्राणानामुत्तमं मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या इत्याह मूर्धानमेवैनं समानानां करोति वैश्वानरमृताय जातमग्निमित्याह वैश्वानरं हि देवतयाऽऽयुरुभयतोवैश्वानरो गृह्यते तस्मादुभयतः प्राणा अधस्ताच्चोपरिष्टाच्चार्धिनोऽन्ये ग्रहा गृह्यन्तेऽर्धी ध्रुवस्तस्मा-(१)-दर्ध्यवाङ्प्राणोऽन्येषां प्राणानामुपोप्तेऽन्ये ग्रहाः साद्यन्तेऽनुपोप्ते ध्रुवस्तस्मादस्थ्नाऽन्याः प्रजाः प्रतितिष्ठन्ति मांसेनान्या असुरा वा उत्तरतः पृथिवीं पर्यचिकीर्षन्तां देवा ध्रुवेणादृंहन्तद्ध्रुवस्य ध्रुवत्वं यद्ध्रुव उत्तरतः साद्यते धृत्या आयुर्वा एतद्यज्ञस्य यद्ध्रुव आत्मा होता यद्धोतृचमसे ध्रुवमवनयत्यात्मन्नेव यज्ञस्या (२) आयुर्दधाति पुरस्तादुक्थस्यावनीय इत्याहुः पुरस्ताद्ध्यायुषो भुङ्क्ते मध्यतोऽवनीय इत्याहुर्मध्यमेन ह्यायुषो भुङ्क्त उत्तरार्धेऽवनीय इत्याहुरुत्तमेन ह्यायुषो भुङ्क्ते वैश्वदेव्यामृचि शस्यमानायामव नयति वैश्वदेव्यो वै प्रजाः प्रजास्वेवाऽऽयुर्दधाति ॥ (अर्धी ध्रुवस्तस्मा,-देव यज्ञस्या,-एकचत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

ऋतुग्रहाः ॥ सोमऋषिः ।

यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्तेऽमन्यन्त मनुष्या नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते संवत्सरेण योपयित्वा सुवर्गं लोकमायन्तमृषय ऋतुग्रहैरेवानु प्राजानन्यदृतुग्रहा गृह्यन्ते सुवर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै द्वादश गृह्यन्ते द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरस्य प्रज्ञात्यै सह प्रथमौ गृह्येते सहोत्तमौ तस्माद्द्वौद्वावृतू उभयतोमुखमृतुपात्रं भवति को (१) हि तद्वेद यत ऋतूनां मुखमृतुना प्रेष्येति षट्कृत्व आह षड्वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणात्यृतुभिरिति चतुश्चतुष्पद एव पशून्प्रीणाति द्विः पुनर्ऋतुनाऽऽह द्विपद एव प्रीणात्यृतुना प्रेष्येति षट्कृत्व आहर्तुभिरिति चतुस्तस्माच्चतुष्पादः पशव ऋतूनुप जीवन्ति द्विः (२) पुनर्ऋतुनाऽऽह तस्माद्द्विपादश्चतुष्पदः पशूनुप जीवन्त्यृतुना प्रेष्येति षट्कृत्व आहर्तुभिरिति चतुर्द्विः पुनर्ऋतुनाऽऽहाऽऽक्रमणमेव तत्सेतुं यजमानः कुरुते सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै नान्योऽन्यमनु प्र पद्येत यदन्योऽन्यमनु प्र पद्येतर्तुर्ऋतुमनु प्र पद्येतर्तवो मोहुकाः स्युः (३) प्रसिद्धमेवाध्वर्युर्दक्षिणेन प्र पद्यते प्रसिद्धं प्रतिप्रस्थातोत्तरेण तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेणोपयामगृहीतोऽसि संसर्पोऽस्यंहस्पत्याय त्वेत्याहास्ति त्रयोदशो मास इत्याहुस्तमेव तत्प्रीणाति ॥ (को, जीवन्ति द्विः, स्यु, रष्टात्रिंशच्च) ॥ ३ ॥

ऐन्द्राग्न-वैश्वदेवग्रहौ ॥ सोमऋषिः ।

सुवर्गाय वा एते लोकाय गृह्यन्ते यदृतुग्रहा ज्योतिरिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्नमृतुपात्रेण गृह्णाति ज्योतिरेवास्मा उपरिष्टाद्दधाति सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या ओजोभृतौ वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्नो गृह्यत ओज एवाव रुन्धे वैश्वदेवं शुक्रपात्रेण गृह्णाति वैश्वदेव्यो वै प्रजा असावादित्यः शुक्रो यद्वैश्वदेवं शुक्रपात्रेण गृह्णाति तस्मादसावादित्यः (१) सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ्ङुदेति तस्मात्सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगादिति वैश्वदेवं शुक्रपात्रेण गृह्णाति वैश्वदेव्यो वै प्रजास्तेजः शुक्रो यद्वैश्वदेवं शुक्रपात्रेण गृह्णाति प्रजास्वेव तेजो दधाति ॥ (तस्मादसावादित्य-, स्त्रिंशच्च) ॥ ४ ॥

माहेन्द्रग्रहश्च ॥ सोमऋषिः ।

इन्द्रो मरुद्भिः सांविद्येन माध्यंदिने सवने वृत्रमहन् यन्माध्यंदिने सवने मरुत्वतीया गृह्यन्ते वार्त्रघ्ना एव ते यजमानस्य गृह्यन्ते तस्य वृत्रं जघ्नुष ऋतवोऽमुह्यन्त्स ऋतुपात्रेण मरुत्वतीयानगृह्णात् ततो वै स ऋतून् प्राजानाद्यदृतुपात्रेण मरुत्वतीया गृह्यन्त ऋतूनां प्रज्ञात्यै वज्रं वा एतं यजमानो भ्रातृव्याय प्र हरति यन्मरुत्वतीया उदेव प्रथमेन (१) यच्छति प्र हरति द्वितीयेन स्तृणुते तृतीयेना-ऽऽयुधं वा एतद्यजमानः सं स्कुरुते यन्मरुत्वतीया धनुरेव प्रथमो ज्या द्वितीय इषुस्तृतीयः प्रत्येव प्रथमेन धत्ते वि सृजति द्वितीयेन विध्यति तृतीयेने-न्द्रो वृत्रं हत्वा परां परावतमगच्छदपाराधमिति मन्यमानः स हरितो-ऽभवत् स एतान्मरुत्वतीयानात्मस्परणानपश्यत् तानगृह्णीत (२) प्राणमेव प्रथमेनास्पृणुतापानं द्वितीयेना-ऽऽत्मानं तृतीयेना-ऽऽत्मस्परणा वा एते यजमानस्य गृह्यन्ते यन्मरुत्वतीयाः प्राणमेव प्रथमेन स्पृणुतेऽपानं द्वितीयेनाऽऽत्मानं तृतीयेने-न्द्रो वृत्रमहन् तं देवा अब्रुवन् महान् वा अयमभूद्यो वृत्रमवधीदिति तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वं स एतं माहेन्द्रमुद्धारमुदहरत वृत्रं हत्वाऽन्यासु देवतास्व-(३)-धि यन्माहेन्द्रो गृह्यत उद्धारमेव तं यजमान उद्धरतेऽन्यासु प्रजास्वधि शुक्रपात्रेण गृह्णाति यजमानदेवत्यो वै माहेन्द्रस्तेजः शुक्रो यन्माहेन्द्रं शुक्रपात्रेण गृह्णाति यजमान एव तेजो दधाति ॥ (प्रथमेना, -गृह्णीत, देवतास्व, द्वाविंशतिश्च) ॥ ५ ॥

आदित्यग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् तस्या उच्छेषणमददुस्तत् प्राश्नात् सा रेतोऽधत्त तस्यै चत्वार आदित्या अजायन्त सा द्वितीयमपचत् साऽमन्यतोच्छेषणान्म इमेऽज्ञत यदग्रे प्राशिष्यामीतो मे वसीयांसो जनिष्यन्त इति साऽग्रे प्राश्नात् सा रेतोऽधत्त तस्यै व्यृद्धमाण्डमजायत साऽऽदित्येभ्य एव (१) तृतीयमपचद्भोगाय म इदं श्रान्तमस्त्विति तेऽब्रुवन् वरं वृणामहै योऽतो जायाता अस्माकं स एकोऽसद्योऽस्य प्रजायामृध्याता अस्माकं भोगाय भवादिति ततो विवस्वानादित्यो ऽजायत तस्य वा इयं प्रजा यन्मनुष्यास्तास्वेक एवर्धो यो यजते स देवानां भोगाय भवति देवा वै यज्ञा-(२)-द्रुद्रमन्तरायन्त्स आदित्यानन्वाक्रमत ते द्विदेवत्यान् प्रापद्यन्त तान् न प्रति प्रायच्छन् तस्मा-दपि वध्यं प्रपन्नं न प्रति प्र यच्छन्ति तस्माद् द्विदेवत्येभ्य आदित्यो निर्गृह्यते यदुच्छेषणादजायन्त तस्मादुच्छेषणाद्गृह्यते तिसृभिर्ऋग्भिर्गृह्णाति माता पिता पुत्रस्तदेव तन्मिथुनमुल्बं गर्भो जरायु तदेव त-(३)-न्मिथुनं पशवो वा एते यदादित्य ऊर्ग्दधि दध्ना मध्यतः श्रीणात्यूर्जमेव पशूनां मध्यतो दधाति शृतातङ्क्येन मेध्यत्वाय तस्मादामा पक्वं दुहे पशवो वा एते यदादित्यः परिश्रित्य गृह्णाति प्रतिरुध्यैवास्मै पशून् गृह्णाति पशवो वा एते यदादित्य एष रुद्रो यदग्निः परिश्रित्य गृह्णाति रुद्रादेव पशूनन्तर्दधात्येष (४) वै विवस्वानादित्यो यदुपांशुसवनः स एतमेव सोमपीथं परि शय आ तृतीयसवनात् विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथ इत्याह विवस्वन्तमेवाऽऽदित्यं सोमपीथेन समर्धयति या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामीति वृष्टिकामस्य श्रीणीयाद्वृष्टिमेवाव रुन्धे यदि ताजक् प्रस्कन्देद्वर्षुकः पर्जन्यः स्याद्

यदि चिरमवर्षुको न (५) सादयत्यसन्नाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते नानु वषट् करोति यदनुवषट्कुर्याद्रुद्रं प्रजा अन्ववसृजेन्न हुत्वाऽन्वीक्षेत यदन्वीक्षेत चक्षुरस्य प्रमायुकं स्यात् तस्मान्नान्वीक्ष्यः ॥ (एव, यज्ञा, ज्जरायु तदेव तद्,-न्तर्दधाति, न, सप्तविंशतिश्च) ॥ ६ ॥

सावित्र-वैश्वदेवग्रहौ च ॥ सोमऋषिः ।

अन्तर्यामपात्रेण सावित्रमाग्रयणाद्गृह्णाति प्रजापतिर्वा एष यदाग्रयणः प्रजानां प्रजननाय न सादयत्य-सन्नाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते नानु वषट् करोति यदनुवषट्कुर्याद्रुद्रं प्रजा अन्ववसृजे-देष वै गायत्रो देवानां यत् सविता एष गायत्रियै लोके गृह्यते यदाग्रयणो यदन्तर्यामपात्रेण सावित्रमाग्रयणाद्गृह्णाति स्वादेवैनं योनेर्निर्गृह्णाति विश्वे (१) देवास्तृतीयं सवनं नोदयच्छन् ते सवितारं प्रातःसवनभागं सन्तं तृतीयसवनमभि पर्यणयन् ततो वै ते तृतीयं सवनमुदयच्छन् यत् तृतीयसवने सावित्रो गृह्यते तृतीयस्य सवनस्योद्यत्यै सवितृपात्रेण वैश्वदेवं कलशाद्गृह्णाति वैश्वदेव्यो वै प्रजा वैश्वदेवः कलशः सविता प्रसवानामीशे यत् सवितृपात्रेण वैश्वदेवं कलशाद्गृह्णाति सवितृप्रसूत एवास्मै प्रजाः प्र (२) जनयति सोमे सोममभि गृह्णाति रेत एव तद्दधाति सुशर्माऽसि सुप्रतिष्ठान इत्याह सोमे हि सोममभिगृह्णाति प्रतिष्ठित्या एतस्मिन् वा अपि ग्रहे मनुष्येभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यः क्रियते सुशर्माऽसि सुप्रतिष्ठान इत्याह मनुष्येभ्य एवैतेन करोति बृहदित्याह देवेभ्य एवैतेन करोति नम इत्याह पितृभ्य एवैतेन करोत्ये-(३)-तावतीर्वै देवतास्ताभ्य एवैनं सर्वाभ्यो गृह्णात्ये-ष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य इत्याह वैश्वदेवो ह्येषः ॥ (विश्वे प्र, पितृभ्य एवैतेन करोत्ये,- कान्नविंशतिश्च) ॥ ७ ॥

पात्नीवतग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

प्राणो वा एष यदुपांशुर्यदुपांशुपात्रेण प्रथमश्चोत्तमश्च ग्रहौ गृह्येते प्राणमेवानु प्रयन्ति प्राणमनूद्यन्ति प्रजापतिर्वा एष यदाग्रयणः प्राण उपांशुः पत्नीः प्रजाः प्र जनयन्ति यदुपांशुपात्रेण पात्नीवतमाग्रयणा-द्गृह्णाति प्रजानां प्रजननाय तस्मात् प्राणं प्रजा अनु प्र जायन्ते देवा वा इतइतः पत्नीः सुवर्गं (१) लोक-मजिगांसन् ते सुवर्गं लोकं न प्राजानन् त एतं पात्नीवतमपश्यन् तमगृह्णत ततो वै ते सुवर्गं लोकं प्राजानन् यत् पात्नीवतो गृह्यते सुवर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै स सोमो नातिष्ठत स्त्रीभ्यो गृह्यमाणस्तं घृतं वज्रं कृत्वाऽघ्नन् तं निरिन्द्रियं भूतमगृह्णन् तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रिया अदायादीरपि पापात् पुंस उपस्तितरं (२)-वदन्ति यद्धृतेन पात्नीवतं श्रीणाति वज्रेणैवैनं वशे कृत्वा गृह्णात्यु-पयामगृहीतोऽसीत्याहेयं वा उपयामस्तस्मादिमां प्रजा अनु प्र जायन्ते बृहस्पतिसुतस्य त इत्याह ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मै प्रजाः प्र जनयती-न्दो इत्याह रेतो वा इन्दू रेत एव तद्दधाती-न्द्रियाव इत्या-(३)-ह प्रजा वा इन्द्रियं प्रजा एवास्मै प्र जनयत्य-ग्ना३ इत्याहाग्निर्वै रेतोधाः पत्नीव इत्याह मिथुनत्वाय सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिबेत्याह त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृद्रूपमेव पशुषु दधाति देवा वै त्वष्टारमजिघांसन्त्स पत्नीः प्रापद्यत तं न प्रति प्रायच्छन् तस्मादपि (४) वध्यं प्रपन्नं न प्रति प्र यच्छन्ति तस्मात् पात्नीवते त्वष्टेऽपि गृह्यते न सादयत्यसन्नाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते नानु वषट् करोति यदनुवषट्-

कुर्याद्रुद्रं प्रजा अन्ववसृजेद्यन्नानुवषट्कुर्यादशान्तमग्नीत् सोमं भक्षयेदुपांश्वनु वषट् करोति न रुद्रं प्रजा अन्ववसृजति शान्तमग्नीत् सोमं भक्षयत्य-ग्नीन्नेष्टुरुपस्थमा सीद (५) नेष्टः पत्नीमुदानयेत्याहाग्नीदेव नेष्टरि रेतो दधाति नेष्टा पत्नियां-मुद्गात्रा सं ख्यापयति प्रजापतिर्वा एष यदुद्गाता प्रजानां प्रजननाया-प उप प्र वर्तयति रेत एव तत् सिञ्चत्यू-रुणोप प्र वर्तयत्यूरुणा हि रेतः सिच्यते नग्नंकृत्योरुमुप प्र वर्तयति यदा हि नग्न ऊरुर्भवत्यथ मिथुनी (६) भवतोऽथ रेतः सिच्यतेऽथ प्रजाः प्र जायन्ते ॥ (पत्नीः सुवर्गं,- मुपस्तितरं,- मिन्द्रियाव इत्य,- पि, सीद, मिथुन्य,- ष्टौ च) ॥ ८ ॥

हारियोजनग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

इन्द्रो वृत्रमहन् तस्य शीर्षकपालमुदौब्जत् स द्रोणकलशोऽभवत् तस्मात् सोमः समस्रवत् स हारियोजनोऽभवत् तं व्यचिकित्सज्जुहवानी३ मा हौषा३मिति सोऽमन्यत यद्धोष्याम्यामं होष्यामि यद्य होष्यामि यज्ञवेशसं करिष्यामीति तमध्रियत होतुं सोऽग्निरब्रवीन्न मय्यामं होष्यसीति तं धानाभिरश्रीणात् (१) तं शृतं भूतमजुहोद्यद्धानाभिर्हारियोजनं श्रीणाति शृतत्वाय शृतमेवैनं भूतं जुहोति बह्वीभिः श्रीणात्येतावतीरेवास्यामुष्मिंल्लोके कामदुघा भवन्त्यथो खल्वाहुरेता वा इन्द्रस्य पृश्नयः कामदुघा यद्धारियोजनीरिति तस्माद्बह्वीभिः श्रीणीया-दृक्सामे वा इन्द्रस्य हरी सोमपानौ तयोः परिधय आधानं यदप्रहृत्य परिधीञ्जुहुयादन्तराधानाभ्यां (२) घासं प्र यच्छेत् प्रहृत्य परिधीञ्जुहोति निराधानाभ्यामेव घासं प्र यच्छत्यु-न्नेता जुहोति यातयामेव ह्येतर्ह्यध्वर्युः स्वगाकृतो यदध्वर्युर्जुहुयाद्यथा विमुक्तं पुनर्युनक्ति तादृगेव त-च्छीर्षन्नधिनिधाय जुहोति शीर्षतो हि स समभवद्-विक्रम्य जुहोति विक्रम्य हीन्द्रो वृत्रमहन्त्समृद्ध्यै पशवो वै हारियोजनीर्यत् संभिन्द्यादल्पा (३) एनं पशवो भुञ्जन्त उप तिष्ठेरन् यन्न संभिन्द्याद्बहव एनं पशवोऽभुञ्जन्त उप तिष्ठेरन् मनसा सं बाधत उभयं करोति बहव एवैनं पशवो भुञ्जन्त उप तिष्ठन्त उन्नेतर्युपहवमिच्छन्ते य एव तत्र सोमपीथस्तमेवाव रुन्धत उत्तरवेद्यां नि वपति पशवो वा उत्तरवेदिः पशवो हारियोजनीः पशुष्वेव पशून् प्रति ष्ठापयन्ति (४) ॥ (अश्रीणा,- दन्तराधानाभ्या,- मल्पाः, स्थापयन्ति) ॥ ९ ॥

आग्रयणादीनां कथञ्चित् क्षये पुनर्ग्रहणम्, दारुपात्र-पुरोरुक् प्रशंसा च ॥ सोमऋषिः ।

ग्रहान् वा अनु प्रजाः पशवः प्र जायन्त उपांश्वन्तर्यामावजावयः शुक्रामन्थिनौ पुरुषा ऋतुग्रहानेकशफा आदित्यग्रहं गावः आदित्यग्रहो भूयिष्ठाभिर्ऋग्भिर्गृह्यते तस्माद्गावः पशूनां भूयिष्ठा यत् त्रिरुपांशुं हस्तेन विगृह्णाति तस्माद् द्वौ त्रीनजा जनयत्य-थावयो भूयसीः पिता वा एष यदाग्रयणः पुत्रः कलशो यदाग्रयण उपदस्येत् कलशाद्गृह्णीयाद्यथा पिता (१) पुत्रं क्षित उपधावति तादृगेव तद्-यत् कलश उपदस्येदाग्रयणाद्गृह्णीयाद्यथा पुत्रः पितरं क्षित उपधावति तादृगेव त-दात्मा वा एष यज्ञस्य यदाग्रयणो यद्ग्रहो वा कलशो वोपदस्येदाग्रयणाद्गृह्णीयादात्मन एवाधि यज्ञं निष्करोत्य-विज्ञातो वा एष गर्भेणाविज्ञातेन ग्रहो गृह्यते यदाग्रयणः स्थाल्या गृह्णाति वायव्येन जुहोति तस्मात् (२) गर्भेणाविज्ञातेन ब्रह्महा-ऽवभृथमवयन्ति परा स्थालीरस्यन्त्युद्वायव्यानि हरन्ति तस्मात् स्त्रियं जातां पराऽस्यन्त्युत् पुमांसं हरन्ति

यत् पुरोरुचमाह यथा वस्यस आहरति तादृगेव तद्यद्ग्रहं गृह्णाति यथा वस्यस आहृत्य प्राऽऽह तादृगेव तद्यत् सादयति यथा वस्यस उपनिधायापक्रामति तादृगेव तद्य-(३)-द्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्यदृचा तद् दृढं पुरस्तादुपयामा यजुषा गृह्यन्त उपरिष्टादुपयामा ऋचा यज्ञस्य धृत्यै ॥ (यथा पिता, तस्मा,- दपक्रामति तादृगेव त,-द्वादश च) ॥ १० ॥

सोमपात्रप्रशंसा, सवनीयपुरोडाशविधानं च ॥ सोमऋषिः ।

प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्तेऽमुमेव तैर्लोकमभि जयति पराङिव ह्यसौ लोको यानि पुनः प्रयुज्यन्त इममेव तैर्लोकमभि जयति पुनःपुनरिव ह्ययं लोकः प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषधयः परा भवन्ति यानि पुनः (१) प्रयुज्यन्ते तान्यन्वोषधयः पुनरा भवन्ति प्रान्यानि पात्राणि युज्यन्ते नान्यानि यानि पराचीनानि प्रयुज्यन्ते तान्यन्वारण्याः पशवोऽरण्यमप यन्ति यानि पुनः प्रयुज्यन्ते तान्यनु ग्राम्याः पशवो ग्राममुपावयन्ति यो वै ग्रहाणां निदानं वेद निदानवान् भवत्याज्यमित्युक्थं तद्वै ग्रहाणां निदानं यदुपांशु शंसति त-(२)-दुपांश्वन्तर्यामयोर्यदुच्चैस्तदितरेषां ग्रहाणामेतद्वै ग्रहाणां निदानं य एवं वेद निदानवान् भवति यो वै ग्रहाणां मिथुनं वेद प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते स्थालीभिरन्ये ग्रहा गृह्यन्ते वायव्यैरन्य एतद्वै ग्रहाणां मिथुनं य एवं वेद प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते इन्द्रस्त्वष्टुः सोममभीषहाऽपिबत् स विष्वङ् (३) व्यार्च्छत् स आत्मन्नारमणं नाविन्दत् स एताननुसवनं पुरोडाशानपश्यत् तान् निरवपत् तैर्वै स आत्मन्नारमणमकुरुत तस्मादनुसवनं पुरोडाशा निरुप्यन्ते तस्मादनुसवनं पुरोडाशानां प्राश्नीयादात्मन्नेवाऽऽरमणं कुरुते नैनं सोमोऽति पवते ब्रह्मवादिनो वदन्ति नर्चा न यजुषा पङ्क्तिराप्यतेऽथ किं (४) यज्ञस्य पाङ्क्तत्वमिति धानाः करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्या तेन पङ्क्तिराप्यते तद्यज्ञस्य पाङ्क्तत्वम् ॥ (भवन्ति यानि पुनः, शंसति त,- द्विष्वङ्, किं, चतुर्दश च) ॥ ११ ॥

[इन्द्र २३३। आयुं-१३९। -युञ्जते १८७। सुवर्गाय- ८०। -ग्नो १०८। ऽदितिः- २०७। -रन्तर्यामपात्रेण १६९। प्राण १०८। इन्द्रो २००। ग्रहान् १६८। प्रे- २१७। कादश २१५५]

[॥ इति षष्ठकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

सोममन्त्रब्राह्मणनिरूपणम् ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥]

दक्षिणाहोम, तद्दानादिवर्णनं च ॥ सोमऋषिः ।

सुवर्गाय वा एतानि लोकाय हूयन्ते यद्दाक्षिणानि द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या आग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवाऽऽक्रमते सदोऽभ्यैति सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति सौरीभ्यामृग्भ्यां गार्हपत्ये जुहोत्यमुमेवैनं लोकं समारोहयति नयवत्यर्चाऽऽग्नीध्रे जुहोति सुवर्गस्य लोकस्याभिनीत्यै दिवं गच्छ सुवः पतेति हिरण्यं (१) हुत्वोद्गृह्णाति सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति रूपेण वो रूपमभ्यै-

मीत्याह रूपेण वा अस्य तद् रूपमभ्येति यद्धिरण्येन । तुथो वो विश्ववेदा वि भजत्वित्याह तुथो ह स्म वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा वि भजति तेनैवैना वि भजत्यग्ने राध (२) एति सोमच्युतमित्याह सोमच्युतं ह्यस्य राध एति । तन्मित्रस्य पथा नयेत्याह शान्त्यै । ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा इत्याह सत्यं वा ऋतं सत्येनैवैना ऋतेन वि भजति । यज्ञस्य पथा सुविता नयन्तीरित्याह यज्ञस्य ह्येताः पथा यन्ति यद्दक्षिणा । ब्राह्मणमद्य राध्यासम् (३) ऋषिमार्षेयमित्याहैष वै ब्राह्मण ऋषिरार्षेयो यः शुश्रुवान् तस्मादेवमाह । वि सुवः पश्य व्यन्तरिक्षमित्याह सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति । यतस्व सदस्यैरित्याह मित्रत्वाय । अस्मद्दात्रा देवत्रा गच्छत मधुमतीः प्रदातारमा विशतेत्याह वयमिह प्रदातारः स्मोऽस्मानमुत्र मधुमतीरा विशतेति (४) वावैतदाह । हिरण्यं ददाति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेव पुरस्ताद्धत्ते सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या अग्नीधे ददात्यग्निमुखानेवर्तून् प्रीणाति । ब्रह्मणे ददाति प्रसूत्यै होत्रे ददात्यात्मा वा एष यज्ञस्य यद्धोताऽऽत्मानमेव यज्ञस्य दक्षिणाभिः समर्धयति ॥ (हिरण्यं, राधो, राध्यासं, मधुमतीरा विशतेत्,- एकत्रिंशच्च) ॥ १ ॥

समिष्टयजुर्होमः ॥ सोमऋषिः ।

समिष्टयजूंषि जुहोति यज्ञस्य समिष्ट्यै यद्वै यज्ञस्य क्रूरं यद्विलिष्टं यदत्येति यन्नात्येति यदतिकरोति यन्नापि करोति तदेव तैः प्रीणाति । नव जुहोति नव वै पुरुषे प्राणाः पुरुषेण यज्ञः संमितो यावानेव यज्ञस्तं प्रीणाति । षडृग्मियाणि जुहोति षड्वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति त्रीणि यजूंषि (१) त्रय इमे लोका इमानेव लोकान् प्रीणाति । यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छेत्याह यज्ञपतिमेवैनं गमयति स्वां योनिं गच्छेत्याह स्वामेवैनं योनिं गमयत्येष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सुवीर इत्याह यजमान एव वीर्यं दधाति । वासिष्ठो ह सात्यहव्यो देवभागं पप्रच्छ यत् सृञ्जयान् बहुयाजिनोऽयीयजो यज्ञे (२) यज्ञं प्रत्यतिष्ठिपा३ यज्ञपता३विति स होवाच यज्ञपताविति सत्याद्वै सृञ्जयाः परा बभूवुरिति होवाच यज्ञे वाव यज्ञः प्रतिष्ठाप्य आसीद्यजमानस्यापराभावायेति । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमितेत्याह यज्ञ एव यज्ञं प्रति ष्ठापयति यजमानस्यापराभावाय ॥ (यजूंषि, यज्ञे, एकचत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

अवभृथः ॥ सोमऋषिः ।

अवभृथयजूंषि जुहोति यदेवार्वाचीनमेकहायनादेनः करोति तदेव तैरव यजतेऽपोऽवभृथमवैत्यप्सु वै वरुणः साक्षादेव वरुणमव यजते । वर्त्मना वा अन्वित्य यज्ञं रक्षांसि जिघांसन्ति साम्ना प्रस्तोताऽन्ववैति साम वै रक्षोहा रक्षसामपहत्यै । त्रिर्निधनमुपैति त्रय इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो रक्षांसि (१) अप हन्ति । पुरुषःपुरुषो निधनमुपैति पुरुषःपुरुषो हि रक्षस्वी रक्षसामपहत्यै । उरुं हि राजा वरुणश्चकारेत्याह प्रतिष्ठित्यै । शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमित्याह भेषजमेवास्मै करोत्यभिष्ठितो वरुणस्य पाश इत्याह वरुणपाशमेवाभि तिष्ठति । बर्हिरभि जुहोत्याहुतीनां प्रतिष्ठित्या अथो अग्निवत्येव जुहोत्यपबर्हिषः प्रयाजान् (२) यजति प्रजा वै बर्हिः प्रजा एव वरुणपाशान्मुञ्चत्याज्यभागौ यजति यज्ञस्यैव चक्षुषी नान्तरेति । वरुणं यजति वरुणपाशादेवैनं मुञ्चत्यग्नीवरुणौ यजति साक्षादेवैनं वरुणपाशान्मुञ्चत्यपबर्हिषावनूयाजौ यजति प्रजा वै बर्हिः प्रजा एव वरुणपाशान्मुञ्चति चतुरः प्रयाजान् यजति द्वावनूयाजौ षट् सं पद्यन्ते षड्वा ऋतव (३) ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठत्यवभृथ निचङ्कुणेत्याह यथोदितमेव वरुणमव यजते । समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तरित्याह समुद्रे ह्यन्तर्वरुणः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुताऽऽप इत्याहाद्भिरेवैनमोषधीभिः सम्यञ्चं दधाति । देवीराप एष वो गर्भ इत्याह यथायजुरेवैतत् । पशवो वै (४) सोमो यद्भिन्दूनां भक्षयेत् पशुमान्त्स्याद्वरुणस्त्वेनं गृह्णीयाद्यन्न भक्षयेदपशुः स्यान्नैनं वरुणो गृह्णीयादुपस्पृश्यमेव पशुमान् भवति नैनं वरुणो गृह्णाति । प्रतियुतो वरुणस्य पाश इत्याह वरुणपाशादेव निर्मुच्यतेऽप्रतीक्षमा यन्ति वरुणस्यान्तर्हित्यै । एधोऽस्येधिषीमहीत्याह समिधैवाग्निं नमस्यन्त (५) उपायन्ति । तेजोऽसि तेजो मयि धेहीत्याह तेज एवाऽऽत्मन् धत्ते ॥ (लोकेभ्यो रक्षांसि, प्रयाजा,-नृतवो, वै, नमस्यन्तो, द्वादश च) ॥ ३ ॥

यूपैकादशिनी विधानम् ॥ सोमऋषिः ।

स्फ्येन वेदिमुद्धन्ति रथाक्षेण वि मिमीते यूपं मिनोति त्रिवृतमेव वज्रं संभृत्य भ्रातृव्याय प्र हरति स्तृत्यै । यदन्तर्वेदि मिनुयाद्देवलोकमभि जयेद्यद्बहिर्वेदि मनुष्यलोकं वेद्यन्तस्य संधौ मिनोत्युभयोर्लोकयोरभिजित्यै । उपरसंमितां मिनुयात् पितृलोककामस्य रशनसंमितां मनुष्यलोककामस्य चषालसंमितामिन्द्रियकामस्य सर्वान्त्समान् प्रतिष्ठाकामस्य ये त्रयो मध्यमास्तान्त्समान् पशुकामस्यैतान् वा (१) अनु पशव उप तिष्ठन्ते पशुमानेव भवति । व्यतिषजेदितरान् प्रजयैवैनं पशुभिर्व्यतिषजति । यं कामयेत प्रमायुकः स्यादिति गर्तमितं तस्य मिनुयादुत्तरार्ध्यं वर्षिष्ठमथ ह्रसीयांसमेषा वै गर्तमिद्यस्यैवं मिनोति ताजक् प्र मीयते दक्षिणार्ध्यं वर्षिष्ठं मिनुयात् सुवर्गकामस्याथ ह्रसीयांसमाक्रमणमेव तत् सेतुं यजमानः कुरुते सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै (२) यदेकस्मिन् यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैकां रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते । यं कामयेत स्त्र्यस्य जायेतेत्युपान्ते तस्य व्यतिषजेत् स्त्र्येवास्य जायते यं कामयेत पुमानस्य जायेतेत्यान्तं तस्य प्र वेष्टयेत् पुमानेवास्य (३) जायते । असुरा वै देवान् दक्षिणत उपानयन् तान् देवा उपशयेनैवापानुदन्त तदुपशयस्योपशयत्वं यद्दक्षिणत उपशय उपशये भ्रातृव्यापनुत्त्यै । सर्वे वा अन्ये यूपाः पशुमन्तोऽथोपशय एवापशुस्तस्य यजमानः पशुर्यन्न निर्दिशेदार्तिमार्छेद्यजमानोऽसौ ते पशुरिति निर्दिशेद्यं द्विष्यात्तमेव (४) द्वेष्टि तमस्मै पशुं निर्दिशति । यदि न द्विष्यादाखुस्ते पशुरिति ब्रूयान्न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नाऽऽरण्यान् । प्रजापतिः प्रजा असृजत सोऽन्नाद्येन व्यार्ध्यत स एतामेकादशिनीमपश्यत् तया वै सोऽन्नाद्यमवारुन्ध यद्दश यूपा भवन्ति दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धे (५) य एकादशः स्तन एवास्यै स दुह एवैनां तेन वज्रो वा एषा सं मीयते यदेकादशिनी सेश्वरा पुरस्तात् प्रत्यञ्चं यज्ञं संमर्दितोर्यत् पात्नीवतं मिनोति यज्ञस्य प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय ॥ (वै, समष्ट्यै, पुमानेवास्य, यमेव, रुन्धे, त्रिंशच्च) ॥ ४ ॥

एकादशिनी ॥ सोमऋषिः ।

प्रजापतिः प्रजा असृजत स रिरिचानोऽमन्यत स एतामेकादशिनीमपश्यत् तया वै स आयुरिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त प्रजा इव खलु वा एष सृजते यो यजते स एतर्हि रिरिचान इव यदेषैकादशिनी भवत्यायुरेव तयेन्द्रियं वीर्यं यजमान आत्मन् धत्ते । प्रैवाऽऽग्नेयेन वापयति मिथुनं सारस्वत्या करोति रेतः (१) सौम्येन दधाति प्र जनयति पौष्णेन बार्हस्पत्यो भवति ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मै प्रजाः प्र जनयति वैश्वदेवो भवति वैश्वदेव्यो वै प्रजाः प्रजा एवास्मै प्र जनयतीन्द्रियमेवैन्द्रेणाव रुन्धे विशं मारुतेनौजो बलमैन्द्राग्नेन प्रसवाय सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणो । मध्यत ऐन्द्रमा लभते मध्यत एवेन्द्रियं यजमाने दधाति (२) पुरस्तादैन्द्रस्य वैश्वदेवमा लभते वैश्वदेवं वा अन्नमन्नमेव पुरस्ताद्धत्ते तस्मात् पुरस्तादन्नमद्यत ऐन्द्रमालभ्य मारुतमा लभते विड्वै मरुतो विशमेवास्मा अनु बध्नाति । यदि कामयेत योऽवगतः सोऽप रुध्यतां योऽपरुद्धः सोऽव गच्छत्वित्यैन्द्रस्य लोके वारुणमा लभेत वारुणस्य लोक ऐन्द्रं (३) य एवावगतः सोऽप रुध्यते योऽपरुद्धः सोऽव गच्छति । यदि कामयेत प्रजा मुह्येयुरिति पशून् व्यतिषजेत् प्रजा एव मोहयति । यदभिवाहतोऽपां वारुणमालभेत प्रजा वरुणो गृह्णीयाद्दक्षिणत उदञ्चमा लभतेऽपवाहतोऽपां प्रजानामवरुणग्राहाय ॥ (रेतो, यजमाने दधाति, लोक ऐन्द्रं, सप्तत्रिंशच्च) ॥ ५ ॥

पात्नीवतपशुः ॥ सोमऋषिः ।

इन्द्रः पत्निया मनुमयाजयत् तां पर्यग्निकृतामुदसृजत् तया मनुरार्ध्नोत् पर्यग्निकृतं पात्नीवतमुत्सृजति यामेव मनुरृद्धिमार्ध्नोत् तामेव यजमान ऋध्नोति । यज्ञस्य वा अप्रतिष्ठिताद्यज्ञः परा भवति यज्ञं पराभवन्तं यजमानोऽनु परा भवति यदाज्येन पात्नीवतं संस्थापयति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनु प्रति तिष्ठतीष्टं वपया (१) भवत्यनिष्टं वशयाऽथ पात्नीवतेन प्र चरति तीर्थ एव प्र चरत्यथो एतर्ह्येवास्य यामं । त्वाष्ट्रो भवति त्वष्टा वै रेतसः सिक्तस्य रूपाणि वि करोति तमेव वृषाणं पत्नीष्वपि सृजति सोऽस्मै रूपाणि वि करोति ॥ (वपया, षट्त्रिंशच्च) ॥ ६ ॥

सोमचर्वादिविधानम् ॥ ६ अनुदृष्ट ॥ सोमऋषिः ।

घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति यत् सौम्यो भवति यथा मृतायानुस्तरणीं घ्नन्ति तादृगेव तद्यदुत्तरार्धे वा मध्ये वा जुहुयाद्देवताभ्यः समदं दध्याद्दक्षिणार्धे जुहोत्येषा वै पितॄणां दिक् स्वायामेव दिशि पितॄन् निरवदयते । उद्गातृभ्यो हरन्ति सामदेवत्यो वै सौम्यो यदेव साम्नश्छम्बट्कुर्वन्ति तस्यैव स शान्तिरवे (१) क्षन्ते पवित्रं वै सौम्य आत्मानमेव पवयन्ते य आत्मानं न परिपश्येदितासुः स्यादभिदर्दि कृत्वाऽवेक्षेत तस्मिन् ह्यात्मानं परिपश्यत्यथो आत्मानमेव पवयते । यो गतमनाः स्यात् सोऽवेक्षेत

यन्मे मनः परागतं यद्वा मे अपरागतम् । राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासु धारयामसीति ॥

मन एवात्मन् दाधार (२) न गतमना भवत्यप वै तृतीयसवने यज्ञः क्रामतीजानादनीजानमभ्याग्नावैष्णव्यर्चा घृतस्य यजत्यग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं च दाधारोपांशु यजति मिथुनत्वाय । ब्रह्मवादिनो वदन्ति मित्रो यज्ञस्य स्विष्टं युवते वरुणो दुरिष्टं क्व तर्हि यज्ञः क्व यजमानो

भवतीति यन्मैत्रावरुणीं वशामालभते मित्रेणैव (३) यज्ञस्य स्विष्टं शमयति वरुणेन दुरिष्टं नाऽऽर्तिमार्छति यजमानो । यथा वै लाङ्गलेनोर्वरां प्रभिन्दन्त्येवमृक्सामे यज्ञं प्र भिन्तो यन्मैत्रावरुणीं वशामालभते यज्ञायैव प्रभिन्नाय मत्यमन्ववास्यति शान्त्यै । यातयामानि वा एतस्य छन्दांसि य ईजानश्छन्दसामेष रसो यद्वशा यन्मैत्रावरुणीं वशामालभते छन्दांस्येव पुनरा प्रीणात्य (४) यातयामत्वायाथो छन्दःस्वेव रसं दधाति ॥ (अवे, दाधार, मित्रेणैव, प्रीणाति, षट् च) ॥ ७ ॥

अतिग्राह्यविधानम् ॥ सोमऋषिः ।

देवा वा इन्द्रियं वीर्यं व्यभजन्त ततो यदत्यशिष्यत तदतिग्राह्या अभवन् तदतिग्राह्याणामतिग्राह्यत्वं यदतिग्राह्या गृह्यन्त इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजमान आत्मन् धत्ते । तेज आग्नेयेनेन्द्रियमैन्द्रेण ब्रह्मवर्चसं सौर्येणोपस्तम्भनं वा एतद्यज्ञस्य यदतिग्राह्याश्चक्रे पृष्ठानि यत् पृष्ठ्ये न गृह्णीयात् प्राञ्चं यज्ञं पृष्ठानि सं शृणीयुर्यदुक्थ्ये (१) गृह्णीयात् प्रत्यञ्चं यज्ञमतिग्राह्याः सं शृणीयुर्विश्वजिति सर्वपृष्ठे ग्रहीतव्या यज्ञस्य सवीर्यत्वाय । प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिशत् स प्रियास्तनूरप न्यधत्त तदतिग्राह्या अभवन् वितनुस्तस्य यज्ञ इत्याहुर्यस्यातिग्राह्या न गृह्यन्त इत्यप्यग्निष्टोमे ग्रहीतव्या यज्ञस्य सतनुत्वाय । देवता वै सर्वाः सदृशीरासन् ता न व्यावृतमगच्छन् ते देवा (२) एत एतान् ग्रहानपश्यन् तानगृह्णताऽऽग्नेयमग्निरैन्द्रमिन्द्रः सौर्यं सूर्यस्ततो वै तेऽन्याभिर्देवताभिर्व्यावृतमगच्छन् यस्यैवं विदुष एते ग्रहा गृह्यन्ते व्यावृतमेव पाप्मना भ्रातृव्येण गच्छतीमे लोका ज्योतिष्मन्तः समावद्वीर्याः कार्या इत्याहुराग्नेयेनास्मिँल्लोके ज्योतिर्धत्त ऐन्द्रेणान्तरिक्ष इन्द्रवायू हि सयुजौ सौर्येणामुष्मिँल्लोके (३) ज्योतिर्धत्ते ज्योतिष्मन्तोऽस्मा इमे लोका भवन्ति समावद्वीर्यानेनान् कुरुत एतान् वै ग्रहान् बम्बाविश्ववयसावविदतां ताभ्यामिमे लोकाः पराञ्चश्चार्वाञ्चश्च प्राभुर्यस्यैवं विदुष एते ग्रहा गृह्यन्ते प्रास्मा इमे लोकाः पराञ्चश्चार्वाञ्चश्च भान्ति ॥ (उक्थ्ये, देवा, अमुष्मिँल्लोक, एकान्नचत्वारिंशच्च) ॥ ८ ॥

अदाभ्यग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै यद्यज्ञेऽकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा अदाभ्ये छन्दांसि सवनानि समस्थापयन् ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यस्यैवं विदुषोऽदाभ्यो गृह्यते भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति । यद्वै देवा असुरानदाभ्येनादभ्नुवन् तददाभ्यस्यादाभ्यत्वं य एवं वेद दभ्नोत्येव भ्रातृव्यं नैनं भ्रातृव्यो दभ्नोत्ये (१) षा वै प्रजापतेरतिमोक्षिणी नाम तनूर्यददाभ्य उपनद्धस्य गृह्णात्यतिमुक्त्या अति पाप्मानं भ्रातृव्यं मुच्यते य एवं वेद । घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति सोमे हन्यमाने यज्ञो हन्यते यज्ञे यजमानो ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं तद्यज्ञे यजमानः कुरुते येन जीवन्त्सुवर्गं लोकमेतीति जीवग्रहो वा एष यददाभ्योऽनभिषुतस्य गृह्णाति (२) जीवन्तमेवैनं सुवर्गं लोकं गमयति । वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यददाभ्ये संस्थापयन्त्यंशूनपि सृजति यज्ञस्य संतत्यै ॥ (दभ्नोत्य,- अनभिषुतस्य गृह्णाति,- एकान्नत्रिंशच्च) ॥ ९ ॥

अंशुग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

देवा वै प्रबाहुग्ग्रहानगृह्णत स एतं प्रजापतिरꣳशुमपश्यत् तमगृह्णीत तेन वै स आर्ध्नोद्यस्यैवं विदुषोऽꣳशुर्गृह्यत ऋध्नोत्येव सकृदभिषुतस्य गृह्णाति सकृद्धि स तेनार्ध्नोन्मनसा गृह्णाति मन इव हि प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै औदुम्बरेण गृह्णात्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवाव रुन्धे चतुःस्रक्ति भवति दिक्ष्वे-(१)-व प्रति तिष्ठति यो वा अꣳशोरायतनं वेदाऽऽयतनवान् भवति वामदेव्यमिति साम तद्वा अस्याऽऽयतनं मनसा गायमानो गृह्णात्यायतनवानेव भवति यदध्वर्युरꣳशुं गृह्णन्नार्धयेदुभाभ्यां नर्ध्येताध्वर्यवे च यजमानाय च यदर्धयेदुभाभ्यामृध्येतानवानं गृह्णाति सैवास्यर्द्धिर्हिरण्यमभि व्यनित्य-(२)-मृतं वै हिरण्यमायुः प्राण आयुषैवामृतमभि धिनोति शतमानं भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठति ॥ (दिक्ष्व,- निति, विꣳशतिश्च) ॥ १० ॥

षोडशिग्रहः ॥ सोमऋषिः ।

प्रजापतिर्देवेभ्यो यज्ञान् व्यादिशत् स रिरिचानोऽमन्यत स यज्ञानाꣳ षोडशधेन्द्रियं वीर्यमात्मानमभि समक्खिदत् तत् षोडश्यभवन्न वै षोडशी नाम यज्ञोऽस्ति यद्वाव षोडशꣳ स्तोत्रꣳ षोडशꣳ शस्त्रं तेन षोडशी तत् षोडशिनः षोडशित्वं यत् षोडशी गृह्यत इन्द्रियमेव तद्वीर्यं यजमान आत्मन् धत्ते देवेभ्यो वै सुवर्गो लोको (१) न प्राभवत् त एतꣳ षोडशिनमपश्यन् तमगृह्णत ततो वै तेभ्यः सुवर्गो लोकः प्राभवद्यत् षोडशी गृह्यते सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्या इन्द्रो वै देवानामानुजावर आसीत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतꣳ षोडशिनं प्रायच्छत् तमगृह्णीत ततो वै सोऽग्रं देवतानां पर्यैदग्रं पर्यैति यस्यैवं विदुषः षोडशी गृह्यते (२) ऽग्रमेव समानानां पर्येति प्रातःसवने गृह्णाति वज्रो वै षोडशी वज्रः प्रातःसवनꣳ स्वादेवैनं योनेर्निर्गृह्णाति सवनेसवनेऽभि गृह्णाति सवनात्सवनादेवैनं प्र जनयति तृतीयसवने पशुकामस्य गृह्णीयाद्वज्रो वै षोडशी पशवस्तृतीयसवनं वज्रेणैवास्मै तृतीयसवनात् पशूनव रुन्धे नोक्थ्ये गृह्णीयात् प्रजा वै पशव उक्थानि यदुक्थ्ये (३) गृह्णीयात् प्रजां पशूनस्य निर्दहेदतिरात्रे पशुकामस्य गृह्णीयाद्वज्रो वै षोडशी वज्रेणैवास्मै पशून्वृत्त्वा रात्रियोपरिष्टाच्छमयत्यप्यग्निष्टोमे राजन्यस्य गृह्णीयाद्व्यावृत्कामो हि राजन्यो यजते साह्न एवास्मै वज्रं गृह्णाति स एनं वज्रो भूत्या इन्धे निर्वा दहत्येकविꣳशꣳ स्तोत्रं भवति प्रतिष्ठित्यै हरिवच्छस्यत इन्द्रस्य प्रियं धामो-(४)-पाप्नोति कनीयाꣳसि वै देवेषु छन्दाꣳस्यासञ्ज्यायाꣳस्यसुरेषु ते देवाः कनीयसा छन्दसा ज्यायश्छन्दोऽभि व्यशꣳसन् ततो वै तेऽसुराणां लोकमवृञ्जत यत् कनीयसा छन्दसा ज्यायश्छन्दोऽभि विशꣳसति भ्रातृव्यस्यैव तल्लोकं

वृङ्क्ते षडक्षराण्यति रेचयन्ति षड् वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति चत्वारि पूर्वाण्यव कल्पयन्ति (५) चतुष्पद एव पशूनव रुन्धे द्वे उत्तरे द्विपद एवाव रुन्धेऽनुष्टुभमभि सं पादयन्ति वाग्वा अनुष्टुप् तस्मात् प्राणानां वागुत्तमा समयाविषिते सूर्ये षोडशिनः स्तोत्रमुपाकरोत्येतस्मिन् वै लोक इन्द्रो वृत्रमहन्त्साक्षादेव वज्रं भ्रातृव्याय प्र हरत्यरुणपिशङ्गोऽश्वो दक्षिणैतद्वै वज्रस्य रूपꣳ समृद्ध्यै ॥

(लोकं, विदुषः षोडशी गृह्यते, यदुक्थ्ये, धाम, कल्पयन्ति, समचत्वारिꣳशच्च) ॥ ११ ॥

[सुवर्गाय २३८ । स- १४१ । -मवभृथ युञ्जते २६२ । इत्येन २८० । प्रजापति-१८७ । -रिन्द्रा ८६ । प्रन्ति २०७ । देवा १८९ । देवा ११९ । देवाः १२० । प्रजापति- १९७ । रेकादश ॥ २१२६]

[॥ इति षष्ठकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥]

[प्राचीनवꣳशं ३८४० । य-३०८५ । व्याख्याता-३१५५ । -एकेन-२६३६ । गर्भः २१५० ।
सुवर्गाय २१२६ । (षट् ॥ ६ ॥ १६९९२)]

॥ इति षष्ठं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

अथ सप्तमं काण्डम् ।

अश्वमेधगतमन्त्राणामभिधानम् ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥]

ज्योतिष्टोमः, ज्योतिष्टोमस्य, तदायसंस्थारूपस्याग्निष्टोमस्य च विधानम् ॥ सोमऋषिः ।

प्रजननं ज्योतिरग्निर्देवतानां ज्योतिर्विराट् छन्दसां ज्योतिर्विराड् वाचोऽग्नौ सं तिष्ठते विराजमभि सं पद्यते तस्मात् तज्ज्योतिरुच्यते द्वौ स्तोमौ प्रातःसवनं वहतो यथा प्राणश्चापानश्च द्वौ माध्यंदिनꣳ सवनं यथा चक्षुश्च श्रोत्रं च द्वौ तृतीयसवनं यथा वाक् च प्रतिष्ठा च पुरुषसम्मितो वा एष यज्ञोऽस्थूरि-(१)-र्यं कामं कामयते तमेतेनाभ्यश्नुते सर्वꣳ ह्यस्थूरिणाऽभ्यश्नुतेऽग्निष्टोमेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अग्निष्टोमेनैव पर्यगृह्णात् तासां परिगृहीतानामश्वतरोऽत्यप्रवत तस्यानुहाय रेत आदत्त तद्गर्दभे न्यमार्ट् तस्माद्गर्दभो द्विरेता अथो आहुर्वडबायां न्यमार्डिति तस्माद्वडबा द्विरेता अथो आहुरोषधीषु (२) न्यमार्डिति तस्मादोषधयोऽनभ्यक्ता रेभन्त्यथो आहुः प्रजासु न्यमार्डिति तस्माद्यमौ जायेते तस्मादश्वतरो न प्र जायत आत्तरेता हि तस्माद्बर्हिष्यनवक्लृप्तः सर्ववेदसे वा सहस्रे वाऽवक्लृप्तोऽति ह्यप्रवत य एवं विद्वानग्निष्टोमेन यजते प्राजाताः प्रजा जनयति परि प्रजाता गृह्णाति तस्मादाहुर्ज्येष्ठयज्ञ इति (३) प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः स ह्येतेनाग्रेऽयजत प्रजापतिरकामयत प्र जायेयेति स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवताऽन्वसृज्यत गायत्री छन्दो रथंतरꣳ साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात् ते मुख्या मुखतो ह्यसृज्यन्तोरसो बाहुभ्यां पञ्चदशं निरमिमीत तमिन्द्रो देवताऽन्वसृज्यत त्रिष्टुप् छन्दो बृहत् (४) साम राजन्यो मनुष्याणामविः पशूनां तस्मात् ते वीर्यवन्तो वीर्याद्ध्यसृज्यन्त मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वे देवा देवता अन्वसृज्यन्त जगती छन्दो वैरूपꣳ साम वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां तस्मात् त आद्या अन्नधानाद्ध्यसृज्यन्त तस्माद्भूयाꣳसोऽन्येभ्यो भूयिष्ठा हि देवता अन्वसृज्यन्त पत्त एकविꣳशं निरमिमीत तमनुष्टुप् छन्दो (५) ऽन्वसृज्यत वैराजꣳ साम शूद्रो मनुष्याणामश्वः पशूनां तस्मात् तौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो न हि देवता अन्वसृज्यत तस्मात् पादावुप जीवतः पत्तो ह्यसृज्येतां प्राणा वै त्रिवृदर्धमासाः पञ्चदशः प्रजापतिः सप्तदशस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳश एतस्मिन् वा एते श्रिता एतस्मिन् प्रतिष्ठिता (६) य एवं वेदैतस्मिन्नेव श्रयत एतस्मिन् प्रति तिष्ठति ॥ (अस्थूरि,- रोषधीषु, ज्येष्ठयज्ञ इति,- बृहद्,- अनुष्टुप् छन्दः, एवं वेदैतस्मिन्नेव प्रतिष्ठिता नव च) ॥ १ ॥

स्तोमप्रशंसा ॥ सोमऋषिः ।

प्रातःसवने वै गायत्रेण छन्दसा त्रिवृते स्तोमाय ज्योतिर्दधदेति त्रिवृता ब्रह्मवर्चसेन पञ्चदशाय ज्योतिर्दधदेति पञ्चदशेनौजसा वीर्येण सप्तदशाय ज्योतिर्दधदेति सप्तदशेन प्राजापत्येन प्रजननेनैकविꣳशाय ज्योतिर्दधदेति स्तोम एव तत् स्तोमाय ज्योतिर्दधदेत्यथो स्तोम एव स्तोममभि प्र णयति यावन्तो

वै स्तोमास्तावन्तः कामास्तावन्तो लोका-(१)-स्तावन्ति ज्योतीꣳष्येतावत एव स्तोमानेतावतः कामानेतावतो लोकानेतावन्ति ज्योतीꣳष्यव रुन्धे ॥ (यावन्तो लोका,- स्त्रयोदश च) ॥ २ ॥

अतिरात्रविधिः ॥ सोमऋषिः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति स त्वै यजेत योऽग्निष्टोमेन यजमानोऽथ सर्वस्तोमेन यजेतेति यस्य त्रिवृतमन्तर्यन्ति प्राणाꣳस्तस्यान्तर्यन्ति प्राणेषु मेऽप्यसदिति खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यस्य पञ्चदशमन्तर्यन्ति वीर्यं तस्यान्तर्यन्ति वीर्ये मेऽप्यसदिति खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यस्य सप्तदशमन्तर्यन्ति (१) प्रजां तस्यान्तर्यन्ति प्रजायां मेऽप्यसदिति खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यस्यैकविꣳशमन्तर्यन्ति प्रतिष्ठां तस्यान्तर्यन्ति प्रतिष्ठायां मेऽप्यसदिति खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यस्य त्रिणवमन्तर्यन्त्यृतूꣳश्च तस्य नक्षत्रियां च विराजमन्तर्यन्त्यृतुषु मेऽप्यसन्नक्षत्रियायां च विराजीति (२) खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यस्य त्रयस्त्रिꣳशमन्तर्यन्ति देवतास्तस्यान्तर्यन्ति देवतासु मेऽप्यसदिति खलु वै यज्ञेन यजमानो यजते यो वै स्तोमानामवमं परमतां गच्छन्तं वेद परमतामेव गच्छति त्रिवृद्वै स्तोमानामवमस्त्रिवृत् परमो य एवं वेद परमतामेव गच्छति ॥ (सप्तदशमन्तर्यन्ति, विराजीति, चतुश्चत्वारिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

अङ्गिरसां द्विरात्रविधिः ॥ विश्वे देवा ऋषयः ।

अङ्गिरसो वै सत्रमासत ते सुवर्गं लोकमायन् तेषाꣳ हविष्माꣳश्च हविष्कृच्चाहीयेतां तावकामयेताꣳ सुवर्गं लोकमियावेति तावेतं द्विरात्रमपश्यतां तमाऽहरतां तेनायजेतां ततो वै तौ सुवर्गं लोकमैतां य एवं विद्वान् द्विरात्रेण यजते सुवर्गमेव लोकमेति तावैतां पूर्वेणाह्नाऽगच्छतामुत्तरेणा-(१)-भिप्लवः पूर्वमहर्भवति गतिरुत्तरं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः पूर्वमहर्भवति तेजस्तेनाव रुन्धे सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तरꣳ सर्वस्याऽऽप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै गायत्रं पूर्वेऽहन्त्साम भवति तेजो वै गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं तेज एव ब्रह्मवर्चसमात्मन् धत्ते त्रैष्टुभमुत्तर ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुगोज एव वीर्यमात्मन् धत्ते रथंतरं पूर्वे (२) ऽहन्त्साम भवतीयं वै रथंतरमस्यामेव प्रति तिष्ठति बृहदुत्तरेऽसौ वै बृहदमुष्यामेव प्रति तिष्ठति तदाहुः क्व जगती चानुष्टुप् चेति वैखानसं पूर्वेऽहन्त्साम भवति तेन जगत्यै नैति षोडश्युत्तरे तेनानुष्टुभोऽथाऽऽहुर्यत् समानेऽर्धमासे स्यातामन्यतरस्याह्नो वीर्यमनु (३) पद्येतेत्यमावास्यायां पूर्वमहर्भवत्युत्तरस्मिन्नुत्तरं नानैवार्धमासयोर्भवतो नानावीर्ये भवतो हविष्मन्निधनं पूर्वमहर्भवति हविष्कृन्निधनमुत्तरं प्रतिष्ठित्यै ॥ (उत्तरेण, रथंतरं पूर्वे, ऽनु-द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ४ ॥

गर्गत्रिरात्रः । विश्वे देवा ऋषयः ।

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत् स इमामपश्यत् तां वराहो भूत्वाऽहरत् तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्ट् साऽप्रथत सा पृथिव्यभवत् तत् पृथिव्यै पृथिवित्वं तस्यामश्राम्यत् प्रजापतिः स देवानसृजत वसून् रुद्रानादित्यान् ते देवाः प्रजापतिमब्रुवन् प्र जायामहा इति सोऽब्रवीत् (१) यथाऽहं युष्माꣳस्तपसाऽसृक्ष्येवं तपसि प्रजननमिच्छध्वमिति तेभ्योऽग्निमायतनं प्रायच्छदेतेनाऽऽयतनेन श्राम्यतेति तेऽग्निनाऽऽयतनेनाश्राम्यन् ते संवत्सर एकां गामसृजन्त तां वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्यः

प्राच्यावर्तत सहस्रमिति तां वसवो रुद्रा आदित्या अरक्षन्त सा वसुभ्यो रुद्रेभ्य आदित्येभ्यः प्राजायत त्रीणि च (२) शतानि त्रयस्त्रिꣳशतं चाथ सैव सहस्रतम्यभवत् ते देवाः प्रजापतिमब्रुवन्त्सहस्रेण नो याजयेति सोऽग्निष्टोमेन वसूनयाजयत् त इमं लोकमजयन् तच्चाददुः स उक्थ्येन रुद्रानयाजयत् तेऽन्तरिक्षमजयन् तच्चाददुः सोऽतिरात्रेणाऽऽदित्यानयाजयत् तेऽमुं लोकमजयन् तच्चाददुस्तदन्तरिक्षं (३) व्यवैर्यत तस्माद्रुद्रा घातुका अनायतना हि तस्मादाहुः शिथिलं वै मध्यममहस्त्रिरात्रस्य वि हि तदवैर्यतेति त्रैष्टुभं मध्यमस्याह्न आज्यं भवति संयानानि सूक्तानि शꣳसति षोडशिनꣳ शꣳसत्युत्यह्नो धृत्या अशिथिलंभावाय तस्मात् त्रिरात्रस्याग्निष्टोम एव प्रथममहः स्यादथोक्थ्योऽथातिरात्र एषां लोकानां विधृत्यै त्रीणि त्रीणि शतान्यनूचीनाहमव्यवच्छिन्नानि ददात्ये-(४)-षां लोकानामनु संतत्यै दशतं न वि च्छिन्द्याद्विराजं नेद्विच्छिनदानीत्यथ या सहस्रतम्यासीत् तस्यामिन्द्रश्च विष्णुश्च व्यायच्छेताꣳ स इन्द्रोऽमन्यतानया वा इदं विष्णुः सहस्रं वर्क्ष्यत इति तस्यामकल्पेतां द्विभाग इन्द्रस्तृतीये विष्णुस्तद्वा एषाऽभ्यनूच्यत उभा जिग्यथुरिति तां वा एतामच्छावाक (५) एव शꣳसत्यथ या सहस्रतमी सा होत्रे देयेति होतारं वा अभ्यतिरिच्यते यदतिरिच्यते होताऽनाप्तस्याऽऽपयिताऽथाऽऽहुरुन्नेत्रे देयेत्यतिरिक्ता वा एषा सहस्रस्यातिरिक्त उन्नेतर्त्विजामित्यथाऽऽहुः सर्वेभ्यः सदस्येभ्यो देयेत्यथाऽऽहुरनाकृता सा वशं चरेदित्यथाऽऽहुर्ब्रह्मणे चाग्नीधे च देयेति (६) द्विभागं ब्रह्मणे तृतीयमग्नीध ऐन्द्रो वै ब्रह्मा वैष्णवोऽग्नीद्यथैव तावकल्पेतामित्यथाऽऽहुर्या कल्याणी बहुरूपा सा देयेत्यथाऽऽहुर्या द्विरूपोभयतएनी सा देयेति सहस्रस्य परिगृहीत्यै तद्वा एतत् सहस्रस्यायनꣳ सहस्रꣳ स्तोत्रीयाः सहस्रं दक्षिणाः सहस्रसंमितः सुवर्गो लोकः सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्यै ॥ (अरक्षन्त,-च, तदन्तरिक्षं, ददात्य,-च्छावाक,-श्च देयेति, सप्तचत्वारिꣳशच्च) ॥ ५ ॥

सहस्रतमीदानं, तद्भक्षणं होमादिकं च । त्रिवृत् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

सोमो वै सहस्रमविन्दत् तमिन्द्रोऽन्वविन्दत् तौ यमो न्यागच्छत् तावब्रवीदस्तु मेऽत्रापीत्यस्तु हीत्यब्रूताꣳ स यम एकस्यां वीर्यं पर्यपश्यदियं वा अस्य सहस्रस्य वीर्यं बिभर्तीति तावब्रवीदियं ममास्त्वेतद्युवयोरिति तावब्रूताꣳ सर्वे वा एतदेतस्यां वीर्यं (१) परि पश्यामोऽꣳशमा हरामहा इति तस्यामꣳशमाऽहरन्त तामप्सु प्रावेशयन्त्सोमायोदेहीति सा रोहिणी पिङ्गलैकहायनी रूपं कृत्वा त्रयस्त्रिꣳशता च त्रिभिश्च शतैः सहोदैत् तस्माद्रोहिण्या पिङ्गलयैकहायन्या सोमं क्रीणीयाद्य एवं विद्वान् रोहिण्या पिङ्गलयैकहायन्या सोमं क्रीणाति त्रयस्त्रिꣳशता चैवास्य त्रिभिश्च (२) शतैः सोमः क्रीतो भवति सुक्रीतेन यजते तामप्सु प्रावेशयन्निन्द्रायोदेहीति सा रोहिणी लक्ष्मणा पष्ठौही वार्त्रघ्नी रूपं कृत्वा त्रयस्त्रिꣳशता च त्रिभिश्च शतैः सहोदैत् तस्माद्रोहिणीं लक्ष्मणां पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं दद्याद्य एवं विद्वान् रोहिणीं लक्ष्मणां पष्ठौहीं वार्त्रघ्नीं ददाति त्रयस्त्रिꣳशच्चैवास्य त्रीणि च शतानि सा दत्ता (३) भवति तामप्सु प्रावेशयन् यमायोदेहीति सा जरती मूर्खा तज्जघन्या रूपं कृत्वा त्रयस्त्रिꣳशता च त्रिभिश्च शतैः सहोदैत् तस्माज्जरतीं मूर्खां तज्जघन्यामनुस्तरणीं कुर्वीत य एवं विद्वाञ्जरतीं मूर्खां तज्जघन्यामनुस्तरणीं कुरुते त्रयस्त्रिꣳशच्चैवास्य त्रीणि च शतानि साऽमुष्मिँल्लोके भवति वागेव सहस्रतमी तस्मा-(४)-

द्वरो देयः सा हि वरः सहस्रमस्य सा दत्ता भवति तस्माद्वरो न प्रतिगृह्यः सा हि वरः सहस्रमस्य प्रतिगृहीतं भवतीयं वर इति ब्रूयादथान्यां ब्रूयादियं ममेति तथाऽस्य तत् सहस्रमप्रतिगृहीतं भवत्यु-भयतएनी स्यात् तदाहुरन्यतएनी स्यात् सहस्रं परस्तादेतमिति सैव वरः (५) कल्याणी रूपसमृद्धा सा स्यात् सा हि वरः समृद्ध्यै तामुत्तरेणाऽऽग्नीध्रं पर्याणीयाऽऽहवनीयस्यान्ते द्रोणकलशमवघ्रापये-दाजिघ्र कलशं मह्युरुधारा पयस्वत्या त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः सा मा सहस्र आ भज प्रजया पशुभिः सह पुनर्माऽऽविशताद्रयिरिति प्रजयैवैनं पशुभी रय्या स-(६)-मर्धयति प्रजावान् पशुमान् रयिमान् भवति य एवं वेद तया सहाऽऽग्नीध्रं परेत्य पुरस्तात् प्रतीच्यां तिष्ठन्त्यां जुहुया-

—दुभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयथामिति ॥

त्रेधाविभक्तं वै त्रिरात्रे सहस्रꣳ साहस्रीमेवैनां करोति सहस्रस्यैवैनां मात्रां (७) करोति रूपाणि जुहोति रूपैरेवैनाꣳ समर्धयति तस्या उपोत्थाय कर्णमा जपे-दिडे रन्तेऽदिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विश्रुत्येतानि ते अघ्निये नामानि सुकृतं मा देवेषु ब्रूतादिति देवेभ्य एवैनमा वेदयत्यन्वेनं देवा बुध्यन्ते ॥ (एतस्यां वीर्यं, त्रिभिश्च, दत्ता, सहस्रतमी तस्मा,-द्वरः, सं, मात्रा,-मेकान्नचत्वारिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

सहस्रतमीदानम् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

सहस्रतम्या वै यजमानः सुवर्गं लोकमेति सैनꣳ सुवर्गं लोकं गमयति सा मा सुवर्गं लोकं गमयेत्याह सुवर्गमेवैनं लोकं गमयति सा मा ज्योतिष्मन्तं लोकं गमयेत्याह ज्योतिष्मन्तमेवैनं लोकं गमयति सा मा सर्वान् पुण्याँल्लोकान् गमयेत्याह सर्वानेवैनं पुण्याँल्लोकान् गमयति सा (१) मा प्रतिष्ठां गमय प्रजया पशुभिः सह पुनर्माऽऽविशताद्रयिरिति प्रजयैवैनं पशुभी रय्यां प्रति ष्ठापयति प्रजावान् पशुमान् रयिमान् भवति य एवं वेद तामग्नीधे वा ब्रह्मणे वा होत्रे वोद्गात्रे वाऽध्वर्यवे वा दद्यात् सहस्रमस्य सा दत्ता भवति सहस्रमस्य प्रतिगृहीतं भवति यस्तामविद्वान् (२) प्रतिगृह्णाति तां प्रति गृह्णीयादेकाऽसि न सहस्रमेकां त्वा भूतां प्रति गृह्णामि न सहस्रमेका मा भूताऽऽविश मा सहस्रमित्येकामेवैनां भूतां प्रति गृह्णाति न सहस्रं य एवं वेद स्योनाऽसि सुषदा सुशेवा स्योना माऽऽविश सुषदा माऽऽविश सुशेवा माऽऽविशे-(३)-त्याह स्योनैवैनꣳ सुषदा सुशेवा भूताऽऽविशति नैनꣳ हिनस्ति ब्रह्मवादिनो वदन्ति सहस्रꣳ सहस्रतम्यन्वेती३ सहस्रतमीꣳ सहस्रा३मिति यत् प्राचीमुत्सृजेत् सहस्रꣳ सहस्रतम्यन्वियात् तत् सहस्रमप्रज्ञात्रꣳ सुवर्गं लोकं न प्र जानीयात् प्रतीचीमुत् सृजति ताꣳ सहस्रमनु पर्यावर्तते सा प्रजानती सुवर्गं लोकमेति यजमान-(४)-मभ्युत् सृजति क्षिप्रे सहस्रं प्र जायत उत्तमा नीयते प्रथमा देवान् गच्छति ॥ (लोकान् गमयति सा,-ऽविद्वान्, सुशेवा, माऽऽविश, यजमानं, द्वादश च) ॥ ७ ॥

आत्रेयचतूरात्रः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अत्रिरददादौर्वाय प्रजां पुत्रकामाय स रिरिचानोऽमन्यत निर्वीर्यः शिथिलो यातयामा स एतं चतूरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै तस्य चत्वारो वीरा आऽजायन्त सुहोता सूद्गाता स्वध्वर्युः

सुसभेयो य एवं विद्वाꣳश्चतूरात्रेण यजत आऽस्य चत्वारो वीरा जायन्ते सुहोता सूद्गाता स्वध्वर्युः सुसभेयो ये चतुर्विꣳशाः पवमाना ब्रह्मवर्चसं त-(१)-दुपयन्तः स्तोमाः श्रीः सा ऽत्रिꣳ श्रद्धादेवं यजमानं चत्वारि वीर्याणि नोपानमन् तेज इन्द्रियं ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यꣳ स एताꣳश्चतुरश्चतुष्टोमान्त्सोमानपश्यत् तानाऽहरत् तैरयजत तेज एव प्रथमेनावारुन्धेन्द्रियं द्वितीयेन ब्रह्मवर्चसं तृतीयेनान्नाद्यं चतुर्थेन य एवं विद्वाꣳश्चतुरश्चतुष्टोमान्त्सोमानाहरति तैर्यजते तेज एव (२) प्रथमेनाव रुन्ध इन्द्रियं द्वितीयेन ब्रह्मवर्चसं तृतीयेनान्नाद्यं चतुर्थेन यामेवात्रिर्ऋद्धिमार्ध्नोत् तामेव यजमान ऋध्नोति ॥ (त, तेज एवा,-ष्टादश च) ॥ ८ ॥

जामदग्न्यचतूरात्रः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

जमदग्निः पुष्टिकामश्चतूरात्रेणायजत स एतान् पोषाꣳ अपुष्यत् तस्मात् पलितौ जामदग्नियौ न सं जानाते एतानेव पोषान् पुष्यति य एवं विद्वाꣳश्चतूरात्रेण यजते पुरोडाशिन्य उपसदो भवन्ति पशवो वै पुरोडाशाः पशूनेवाव रुन्धेऽन्नं वै पुरोडाशोऽन्नमेवाव रुन्धेऽन्नादः पशुमान् भवति य एवं विद्वाꣳश्चतूरात्रेण यजते ॥ (जमदग्निरेकचत्वारिꣳशत्) ॥ ९ ॥

पञ्चरात्रः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

संवत्सरो वा इदमेक आसीत् सोऽकामयतर्तून्त्सृजेयेति स एतं पञ्चरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै स ऋतूनसृजत य एवं विद्वान् पञ्चरात्रेण यजते प्रैव जायते त ऋतवः सृष्टा न व्यावर्तन्त त एतं पञ्चरात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै ते व्यावर्तन्त (१) य एवं विद्वान् पञ्चरात्रेण यजते वि पाप्मना भ्रातृव्येणाऽऽवर्तते सार्वसेनिः शौचेयोऽकामयत पशुमान्त्स्यामिति स एतं पञ्चरात्रमाऽहरत् तेनायजत ततो वै स सहस्रं पशून् प्राऽऽप्नोद्य एवं विद्वान् पञ्चरात्रेण यजते प्र सहस्रं पशूनाप्नोति बबरः प्रावाहणिरकामयत वाचः प्रवदिता स्यामिति स एतं पञ्चरात्रमा (२) ऽहरत् तेनायजत ततो वै स वाचः प्रवदिताऽभवद्य एवं विद्वान् पञ्चरात्रेण यजते प्रवदितैव वाचो भवत्यथो एनं वाचस्पतिरित्याहुरनाप्तश्चतूरात्रोऽतिरिक्तः षड्रात्रोऽथ वा एष संप्रति यज्ञो यत् पञ्चरात्रो य एवं विद्वान् पञ्चरात्रेण यजते संप्रत्येव यज्ञेन यजते पञ्चरात्रो भवति पञ्च वा ऋतवः संवत्सर (३) ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति तिष्ठत्यथो पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धे त्रिवृदग्निष्टोमो भवति तेज एवाव रुन्धे पञ्चदशो भवतीन्द्रियमेवाव रुन्धे सप्तदशो भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायते पञ्चविꣳशोऽग्निष्टोमो भवति प्रजापतेराप्त्यै महाव्रतवानन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याभिजित्यै ॥ (व्यावर्तन्त, प्रवदिता स्यामिति स एतं पञ्चरात्रमा, संवत्सरे,-ऽभिजित्यै) ॥ १० ॥

अश्वमेधाश्वबन्धनमन्त्राः । त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे
इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या ।
तया देवाः सुतमा बभूवुर्ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥

अभिधा असि भुवनमसि यन्ताऽसि धर्ताऽसि सोऽग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः पृथिव्यां यन्ता राड् यन्ताऽसि यमनो धर्ताऽसि धरुणः (१) कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा पृथिव्यै त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा सते त्वाऽसते त्वाऽद्भ्यस्त्वौषधीभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः ॥ (धरुणः, षड्विꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

अश्वस्य कर्णे जपादिपूर्वकं तदुत्सर्जनम् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि नरोऽस्यर्वाऽसि सप्तिरसि वाज्यसि वृषाऽसि नृमणा असि ययुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विह्यग्नये स्वाहा स्वाहेन्द्राग्निभ्याꣳ स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा सर्वाभ्यो देवताभ्य इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहे-(१)-ह रमतिः स्वाहा भूरसि भुवे त्वा भव्याय त्वा भविष्यते त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यो देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं गोपायत ॥ (रन्तिः स्वाहा, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ १२ ॥

अश्वमेधे उद्द्रावहोमाः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा पलायिताय स्वाहाऽऽपलायिताय स्वाहाऽऽवल्गते स्वाहा परावल्गते स्वाहाऽऽयते स्वाहा प्रयते स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (आयनायावल्गत्यापलायिताय षड्विꣳशतिः) ॥ १३ ॥

(१४-२५) अश्वमेधे पूर्वहोमाः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा वायवे स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (अग्नये वायवेऽपां मोदायेन्द्राय त्रयोविꣳशतिः) ॥ १४ ॥

पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहा प्राच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽवान्तरदिशाभ्यः स्वाहा समाभ्यः स्वाहा शरद्भ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहाऽर्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहर्तुभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पृथिव्यै सूर्याय नक्षत्रेभ्यः प्राच्यै सप्तचत्वारिꣳशत्) ॥ १५ ॥

(१६-१७) पूर्वदीक्षाहोमाः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा वायवे स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (अग्नये सवित्रे पूष्णेऽपां मोदाय वायवे त्रयोविꣳशतिः) ॥ १६ ॥

पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहाऽग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहाऽह्ने स्वाहा रात्रियै स्वाहर्जवे स्वाहा साधवे स्वाहा सुक्षित्यै स्वाहा क्षुधे स्वाहाऽऽशितिम्ने स्वाहा रोगाय स्वाहा हिमाय स्वाहा शीताय स्वाहाऽऽतपाय स्वाहाऽरण्याय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पृथिव्या अग्नयेऽह्ने रात्रियै चतुश्चत्वारिंशत्) ॥१७॥

ऋतुदीक्षामन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

भुवो देवानां कर्मणाऽपसर्तस्य पथ्याऽसि वसुभिर्देवेभिर्देवतया गायत्रेण त्वा छन्दसा युनज्मि वसन्तेन त्वर्तुना हविषा दीक्षयामि रुद्रेभिर्देवेभिर्देवतया त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा युनज्मि ग्रीष्मेण त्वर्तुना हविषा दीक्षयाम्यादित्येभिर्देवेभिर्देवतया जागतेन त्वा छन्दसा युनज्मि वर्षाभिस्त्वर्तुना हविषा दीक्षयामि विश्वेभिर्देवेभिर्देवतयाऽऽनुष्टुभेन त्वा छन्दसा युनज्मि (१) शरदा त्वर्तुना हविषा दीक्षयाम्यङ्गिरोभिर्देवेभिर्देवतया पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा युनज्मि हेमन्तशिशिराभ्यां त्वर्तुनां हविषा दीक्षयाम्याऽहं दीक्षामरुहमृतस्य पत्नीं गायत्रेण छन्दसा ब्रह्मणा चर्तꣳ सत्येऽधाꣳ सत्यमृतेऽधाम् ॥

महीमू षु-*-सुत्रामाणं-*-मिह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमतिः स्वाहा ॥ (आनुष्टुभेन त्वा छन्दसा युनज्मि,- ऽष्टापञ्चाशच्च) ॥ १८ ॥

अश्वचरितहोमाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

हिंकाराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दते स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथते स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा प्राणाय स्वाहा व्यानाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा संदीयमानाय स्वाहा संदिताय स्वाहा विचृत्यमानाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा पलायिष्यमाणाय स्वाहा पलायिताय स्वाहोपरꣳस्यते स्वाहोपरताय स्वाहा निवेक्ष्यते स्वाहा निविश्यमानाय स्वाहा निविष्टाय स्वाहा निषत्स्यते स्वाहा निषीदते स्वाहा निषण्णाय स्वाहा (१) ऽऽसिष्यते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहाऽऽसिताय स्वाहा निपत्स्यते स्वाहा निपद्यमानाय स्वाहा निपन्नाय स्वाहा शयिष्यते स्वाहा शयानाय स्वाहा शयिताय स्वाहा संमीलिष्यते स्वाहा संमीलते स्वाहा संमीलिताय स्वाहा स्वप्स्यते स्वाहा स्वपते स्वाहा सुप्ताय स्वाहा प्रभोत्स्यते स्वाहा प्रबुध्यमानाय स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा जागरिष्यते स्वाहा जाग्रते स्वाहा जागरिताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहा श्रुताय स्वाहा वीक्षिष्यते स्वाहा (२) वीक्षमाणाय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा संहास्यते स्वाहा संजिहानाय स्वाहोज्जिहानाय स्वाहा विवर्त्स्यते स्वाहा

१८ । ७-८ (सं० ११ । ५ । १८-१९)
३८ (तै. सं.)

विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहोत्थास्यते स्वाहोत्तिष्ठते स्वाहोत्थिताय स्वाहा विधविष्यते स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहोत्क्रꣳस्यते स्वाहोत्क्रामते स्वाहोत्क्रान्ताय स्वाहा चङ्क्रमिष्यते स्वाहा चङ्क्रम्यमाणाय स्वाहा चङ्क्रमिताय स्वाहा कण्डूयिष्यते स्वाहा कण्डूयमानाय स्वाहा कण्डूयिताय स्वाहा निकषिष्यते स्वाहा निकषमाणाय स्वाहा (३) निकषिताय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मेहति तस्मै स्वाहा यच्छकृत् करोति तस्मै स्वाहा रेतसे स्वाहा प्रजाभ्यः स्वाहा प्रजननाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (निपन्नाय स्वाहा, वीक्षिष्यते स्वाहा, निकषमाणाय स्वाहा, सप्तविꣳशतिश्च) ॥ १९ ॥

सावित्रहोमः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये स्वाहा वायवे स्वाहा सूर्याय स्वाहर्तमस्यृतस्यर्तमसि सत्यमसि सत्यस्य सत्यमस्यृतस्य पन्था असि देवानां छायाऽमृतस्य नाम तत् सत्यं यत् त्वं प्रजापतिरस्यधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते दिवः सूर्येण विशोऽपो वृणानः पवते कव्यन् पशुं न गोपा इर्यः परिज्मा ॥ (अग्नये वायवेऽष्टाचत्वारिंशत्) ॥ २० ॥

[प्रजननं १०९। प्रातःसवने ६३ । ब्रह्मवादिनो १३४। ऽङ्गिरस् १७१। आपः ३४७। सोमः ३८९ । सहस्रतमया २१२। त्रि-११८ । -ऊर्मसद्मिः ४८। संवत्सरो २०० । देवस्यं ७५। विभू- ७२ । रायनाय- २६ ।-स्तनयं २३ । पृथिव्या ४७ । आग्नयं २३ । पृथिव्यै ४४ । भुवं ९९। हिंकाराय-१७७।-स्तनयं ४८। विंशतिः ॥ २६२५ ॥]

[॥ इति सप्तमकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥]

षड्रात्राद्यानां निरूपणम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥]

षड्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

साध्या वै देवाः सुवर्गकामा एतꣳ षड्रात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै ते सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाꣳसः षड्रात्रमासते सुवर्गमेव लोकं यन्ति देवसत्रं वै षड्रात्रः प्रत्यक्षꣳ ह्येतानि पृष्ठानि य एवं विद्वाꣳसः षड्रात्रमासते साक्षादेव देवता अभ्यारोहन्ति षड्रात्रो भवति षड् वा ऋतवः षट् पृष्ठानि (१) पृष्ठैरेवर्तूनन्वारोहन्त्यृतुभिः संवत्सरं ते संवत्सर एव प्रति तिष्ठन्ति बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं यन्ति त्रिवृदग्निष्टोमो भवति तेज एवाव रुन्धते पञ्चदशो भवतीन्द्रियमेवाव रुन्धते सप्तदशो (२) भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायन्त एकविꣳशो भवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् दधते त्रिणवो भवति विजित्यै त्रयस्त्रिꣳशो भवति प्रतिष्ठित्यै सदोहविर्धानिन एतेन षड्रात्रेण यजेरन्नाश्वत्थी हविर्धानं चाऽऽग्नीध्रं च भवतस्तद्धि सुवर्ग्यं चक्रीवती भवतः सुवर्गस्य

लोकस्य समष्ट्या उलूखलबुध्नो यूपो भवति प्रतिष्ठित्यै प्राञ्चो यान्ति प्राङिव हि सुवर्गः (३) लोकः सरस्वत्या यान्त्येष वै देवयानः पन्थास्तमेवान्वारोहन्त्याक्रोशन्तो यान्त्यवर्तिमेवान्यस्मिन् प्रतिषज्य प्रतिष्ठां गच्छन्ति यदा दश शतं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानꣳ शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्ति यदा शतꣳ सहस्रं कुर्वन्त्यथैकमुत्थानꣳ सहस्रसंमितो वा असौ लोकोऽमुमेव लोकमभि जयन्ति यदे-(४)-षां प्रमीयेत यदा वा जीयेरन्नथैकमुत्थानं तद्धि तीर्थम् ॥ (पृष्ठानि, सप्तदशः, सुवर्गो, जयन्ति यद्,- एकादश च) ॥ १ ॥

सप्तरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत पशुमान्त्स्यामिति स एतꣳ सप्तरात्रमाऽहरत् तेनायजत तेन वै स यावन्तो ग्राम्याः पशवस्तानवारुन्ध य एवं विद्वान्त्सप्तरात्रेण यजते यावन्त एव ग्राम्याः पशवस्तानेवाव रुन्धे सप्तरात्रो भवति सप्त ग्राम्याः पशवः सप्ताऽऽरण्याः सप्त छन्दाꣳस्युभयस्यावरुद्ध्यै त्रिवृदग्निष्टोमो भवति तेज (१) एवाव रुन्धे पञ्चदशो भवतीन्द्रियमेवाव रुन्धे सप्तदशो भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायत एकविꣳशो भवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् धत्ते त्रिणवो भवति विजित्यै पञ्चविꣳशोऽग्निष्टोमो भवति प्रजापतेराप्त्यै महाव्रतवानन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याभिजित्यै यत् प्रत्यक्षं पूर्वेष्वहःसु पृष्ठान्युपेयुः प्रत्यक्षं (२) विश्वजिति यथा दुग्धामुपसीदत्येवमुत्तममहः स्यान्नैकरात्रश्चन स्याद्बृहद्रथंतरे पूर्वेष्वहःसूप यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्ति यत् प्रत्यक्षं विश्वजिति पृष्ठान्युपयन्ति यथा प्रत्तां दुहे तादृगेव तत् ॥ (तेज, उपेयुः प्रत्यक्षं, द्विचत्वारिꣳशच्च) ॥ २ ॥

अष्टरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

बृहस्पतिरकामयत ब्रह्मवर्चसी स्यामिति स एतमष्टरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै स ब्रह्मवर्चस्यभवद्य एवं विद्वानष्टरात्रेण यजते ब्रह्मवर्चस्येव भवत्यष्टरात्रो भवत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं गायत्रियैव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धेऽष्टरात्रो भवति चतस्रो वै दिशश्चतस्रोऽवान्तरदिशा दिग्भ्य एव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे (१) त्रिवृदग्निष्टोमो भवति तेज एवाव रुन्धे पञ्चदशो भवतीन्द्रियमेवाव रुन्धे सप्तदशो भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायत एकविꣳशो भवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् धत्ते त्रिणवो भवति विजित्यै त्रयस्त्रिꣳशो भवति प्रतिष्ठित्यै पञ्चविꣳशोऽग्निष्टोमो भवति प्रजापतेराप्त्यै महाव्रतवानन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याभिजित्यै (२) (दिग्भ्य एव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धे, ऽभिजित्यै) ॥ ३ ॥

नवरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः सृष्टाः क्षुधं न्यायन्त्स एतं नवरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै प्रजाभ्योऽकल्पत यर्हि प्रजाः क्षुधं निगच्छेयुस्तर्हि नवरात्रेण यजेतेमे हि वा एतासां लोका अक्लृप्ता

अथैताः क्षुधं नि गच्छन्तीमानेवाऽऽभ्यो लोकान् कल्पयति तान् कल्पमानान् प्रजाभ्योऽनु कल्पते कल्पन्ते (१) ऽस्मा इमे लोका ऊर्जं प्रजासु दधाति त्रिरात्रेणैवेमं लोकं कल्पयति त्रिरात्रेणान्तरिक्षं त्रिरात्रेणामुं लोकं यथा गुणे गुणमन्वस्यत्येवमेव तल्लोके लोकमन्वस्यति धृत्या अशिथिलंभावाय ज्योतिर्गौरायुरिति ज्ञाताः स्तोमा भवन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुरेष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठन्ति ज्ञात्रं प्रजानां (२) गच्छति नवरात्रो भवत्यभिपूर्वमेवास्मिन् तेजो दधाति यो ज्योगामयावी स्यात् स नवरात्रेण यजेत प्राणा हि वा एतस्य धृता अथैतस्य ज्योगामयति प्राणानेवास्मिन् दाधार उत यदीतासुर्भवति जीवत्येव ॥ (कल्पन्ते, प्रजानां, त्रयस्त्रिꣳशच्च) ॥ ४ ॥

दशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिरकामयत प्र जायेयेति स एतं दशहोतारमपश्यत् तमजुहोत् तेन दशरात्रमसृजत तेन दशरात्रेण प्राजायत दशरात्राय दीक्षिष्यमाणो दशहोतारं जुहुयाद्दशहोत्रैव दशरात्रꣳ सृजते तेन दशरात्रेण प्र जायते वैराजो वा एष यज्ञो यद्दशरात्रो य एवं विद्वान् दशरात्रेण यजते विराजमेव गच्छति प्राजापत्यो वा एष यज्ञो यद्दशरात्रो (१) य एवं विद्वान् दशरात्रेण यजते प्रैव जायत इन्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत् स न व्यावृतमगच्छत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतं दशरात्रं प्रायच्छत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै सोऽन्याभिर्देवताभिर्व्यावृतमगच्छद्य एवं विद्वान् दशरात्रेण यजते व्यावृतमेव पाप्मना भ्रातृव्येण गच्छति त्रिककुद्वा (२) एष यज्ञो यद्दशरात्रः ककुत् पञ्चदशः ककुदेकविꣳशः ककुत् त्रयस्त्रिꣳशो य एवं विद्वान् दशरात्रेण यजते त्रिककुदेव समानानां भवति यजमानः पञ्चदशो यजमान एकविꣳशो यजमानस्त्रयस्त्रिꣳशः पुर इतरो अभिचर्यमाणो दशरात्रेण यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुतश्चनोपाव्याधो भवति नैनमभिचरन्त्स्तृणुते देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा एताः (३) देवपुरा अपश्यन् यद्दशरात्रस्ताः पर्यौहन्त तेषां न कुतश्चनोपाव्याधोऽभवत् ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् स दशरात्रेण यजेत देवपुरा एव पर्यूहते तस्य न कुतश्चनोपाव्याधो भवति भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति स्तोमः स्तोमस्योपस्तिर्भवति भ्रातृव्यमेवोपस्तिं कुरुते जामि वा (४) एतत् कुर्वन्ति यज्ज्यायाꣳसꣳ स्तोममुपेत्य कनीयाꣳसमुपयन्ति यदग्निष्टोमसामान्यवस्ताच्च पुरस्ताच्च भवन्त्यजामित्वाय त्रिवृदग्निष्टोमोऽग्निष्टुदाग्नेयीषु भवति तेज एवाव रुन्धे पञ्चदश उक्थ्य ऐन्द्रीष्विन्द्रियमेवाव रुन्धे त्रिवृदग्निष्टोमो वैश्वदेवीषु पुष्टिमेवाव रुन्धे सप्तदशोऽग्निष्टोमः प्राजापत्यासु तीव्रसोमोऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायते (५) एकविꣳश उक्थ्यः सौरीषु प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् धत्ते सप्तदशोऽग्निष्टोमः प्राजापत्यास्वपूर्व्य उपहव्यमेव गच्छति त्रिणवावग्निष्टोमावभित ऐन्द्रीषु विजित्यै त्रयस्त्रिꣳश उक्थ्यो वैश्वदेवीषु प्रतिष्ठित्यै विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याभिजित्यै ॥ (एष यज्ञो यद्दशरात्र,- स्त्रिककुद्वा, एता, वै, जायते, एकत्रिꣳशच्च) ॥५॥

एकादशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ऋतवो वै प्रजाकामाः प्रजां नाविन्दन्त तेऽकामयन्त प्रजाꣳ सृजेमहि प्रजामव रुन्धीमहि प्रजां विन्दे-

यदि प्रजाकामाः स्यामेति न एतमेकादशरात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै ते प्रजामसृजन्त प्रजामवारुन्धत प्रजामविन्दन्त प्रजावन्तोऽभवन् न क्रतवोऽभवन् तदितिमात्रमात्मवन्तमृतूनां वा एते पुत्रास्तस्मा-(१)-दार्तवा उच्यन्ते य एवं विद्वांसः एकादशरात्रमासते प्रजामेव सृजन्ते प्रजामव रुन्धते प्रजां विन्दन्ते प्रजावन्तो भवन्ति ज्योतिरतिरात्रो भवति ज्योतिरेव पुरस्ताद्दधते सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै पृष्ठ्यः षडहो भवति षड् वा ऋतवः षट् पृष्ठानि पृष्ठैरेवर्तूनन्वारोहन्त्यृतुभिः संवत्सरं ते संवत्सर एव प्रति तिष्ठन्ति चतुर्विंशो भवति चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री (२) गायत्रं ब्रह्मवर्चसं गायत्रियामेव ब्रह्मवर्चसे प्रति तिष्ठन्ति चतुश्चत्वारिंशो भवति चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुगिन्द्रियं त्रिष्टुप् त्रिष्टुभ्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्त्य-ष्टाचत्वारिंशो भवत्यष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागताः पशवो जगत्यामेव पशुषु प्रति तिष्ठन्त्ये-कादशरात्रो भवति पञ्च वा ऋतव आर्तवाः पञ्चर्तुष्वेवाऽऽर्तवेषु संवत्सरे प्रतिष्ठाय प्रजामव रुन्धते ऽतिरात्रावभितो भवतः प्रजायै परिगृहीत्यै ॥ (एते पुत्रास्तस्मा,-द्गायत्री, -कादशरात्रो च) ॥ ६ ॥

द्वादशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ऐन्द्रवायवाग्रान् गृह्णीयाद्यः कामयेत यथापूर्वं प्रजाः कल्पेरन्निति यज्ञस्य वै क्लृप्तिमनु प्रजाः कल्पन्ते यज्ञस्याक्लृप्तिमनु न कल्पन्ते यथापूर्वमेव प्रजाः कल्पयति न ज्यायांसं कनीयानति क्रामत्यै-न्द्रवायवाग्रान् गृह्णीयादामयाविनः प्राणेन वा एष व्यृध्यते यस्याऽऽमयति प्राण ऐन्द्रवायवः प्राणेनैवैनꣳ समर्धयति मैत्रावरुणाग्रान् गृह्णीरन् येषां दीक्षितानां प्रमीयेत (१) प्राणापानाभ्यां वा एते व्यृध्यन्ते येषां दीक्षितानां प्रमीयते प्राणापानौ मित्रावरुणौ प्राणापानावेव मुखतः परि हरन्त आश्विनाग्रान् गृह्णीताऽऽनुजावरोऽश्विनौ वै देवानामानुजावरौ पश्चेवाग्रं पर्यैतामश्विनावेतस्य देवता य आनुजावरस्तावेवैनमग्रं परि णयतः शुक्राग्रान् गृह्णीत गतश्रीः प्रतिष्ठाकामोऽसौ वा आदित्यः शुक्र एषोऽन्तोऽन्तं मनुष्यः (२) श्रियै गत्वा नि वर्ततेऽन्तादेवान्तमा रभते न ततः पापीयान् भवति मन्थ्यग्रान् गृह्णीताभिचरन्नार्तपात्रं वा एतद्यन्मन्थिपात्रं मृत्युनैवैनं ग्राहयति ताजगार्तिमार्च्छत्या-ग्रयणाग्रान् गृह्णीत यस्य पिता पितामहः पुण्यः स्यादथ तन्न प्राप्नुयाद्वाचा वा एष इन्द्रियेण व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः पुण्यो (३) भवत्यथ तन्न प्राप्नोत्युरः इवैतद्यज्ञस्य वागिव यदाग्रयणो वाचैवैनमिन्द्रियेण समर्धयति न ततः पापीयान् भवत्यु-क्थ्याग्रान् गृह्णीताभिचर्यमाणः सर्वेषां वा एतत् पात्राणामिन्द्रियं यदुक्थ्यपात्रꣳ सर्वेणैवैनमिन्द्रियेणाति प्र युङ्क्ते सरस्वत्यभि नो नेषि वस्य इति पुरोरुचं कुर्याद्वाग्वै (४) सरस्वती वाचैवैनमति प्र युङ्क्ते मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्मेत्याह मृत्योर्वै क्षेत्राण्यरणानि तेनैव मृत्योः क्षेत्राणि न गच्छति पूर्णान् ग्रहान् गृह्णीयादामयाविनः प्राणान् वा एतस्य शुगृच्छति यस्याऽऽमयति प्राणा ग्रहाः प्राणानेवास्य शुचो मुञ्चत्युत यदीतासुर्भवति जीवत्येव पूर्णान् ग्रहान् (५) गृह्णीयाद्यर्हि पर्जन्यो न वर्षेत् प्राणान् वा एतर्हि प्रजानाꣳ शुगृच्छति यर्हि पर्जन्यो न वर्षति प्राणा ग्रहाः प्राणानेव प्रजानाꣳ शुचो मुञ्चति ताजक् प्र वर्षति ॥ (प्रमीयेत, मनुष्यः, पुण्यो, वाग्वै, एव पूर्णान् ग्रहान्, पञ्चविंशतिश्च) ॥ ७ ॥

द्वादशाहस्य व्यूढप्रकाशः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

गायत्रो वा ऐन्द्रवायवो गायत्रं प्रायणीयमहस्तस्मात् प्रायणीयेऽहन्नैन्द्रवायवो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णाति त्रैष्टुभो वै शुक्रस्त्रैष्टुभं द्वितीयमहस्तस्माद् द्वितीयेऽहञ्छुक्रो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णाति जागतो वा आग्रयणो जागतं तृतीयमहस्तस्मात् तृतीयेऽहन्नाग्रयणो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णात्ये-तद्वै (१) यज्ञमाप्यच्छन्दाꣳस्याप्नोति यदाग्रयणः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदृशन् ततं एवैनं पुनः प्र युङ्क्ते जगन्मुखो वै द्वितीयस्त्रिरात्रो जागत आग्रयणो यच्चतुर्थेऽहन्नाग्रयणो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णात्यथो स्वमेव छन्दोऽनु पर्यावर्तन्ते राथंतरो वा ऐन्द्रवायवो राथंतरं पञ्चममहस्तस्मात् पञ्चमेऽह-(२)-न्नैन्द्रवायवो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णाति बार्हतो वै शुक्रो बार्हतꣳ षष्ठमहस्तस्मात् षष्ठेऽहञ्छुक्रो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णात्ये-तद्वै द्वितीयं यज्ञमाप्यच्छन्दाꣳस्याप्नोति यच्छुक्रः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदृशन् ततं एवैनं पुनः प्र युङ्क्ते त्रिष्टुङ्मुखो वै तृतीयस्त्रिरात्रस्त्रैष्टुभः (३) शुक्रो यत् सप्तमेऽहञ्छुक्रो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णात्यथो स्वमेव छन्दोऽनु पर्यावर्तन्ते वाग्वा आग्रयणो वागष्टममहस्तस्मादष्टमेऽहन्नाग्रयणो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णाति प्राणो वा ऐन्द्रवायवः प्राणो नवममहस्तस्मान्नवमेऽहन्नैन्द्रवायवो गृह्यते स्व एवैनमायतने गृह्णात्ये-त-(४)-द्वै तृतीयं यज्ञमाप्यच्छन्दाꣳस्याप्नोति यदैन्द्रवायवः श्वो गृह्यते यत्रैव यज्ञमदृशन् ततं एवैनं पुनः प्र युङ्क्तेऽथो स्वमेव छन्दोऽनु पर्यावर्तन्ते पथो वा एतेऽध्यपथेन यन्ति येऽन्येनैन्द्रवायवात् प्रतिपद्यन्तेऽन्तः खलु वा एष यज्ञस्य यद्दशममहर्दशमेऽहन्नैन्द्रवायवो गृह्यते यज्ञस्यै-(५)-वान्तं गत्वाऽपथात् पन्थामपि यन्त्यथो यथा वहीयसा प्रतिसारं वहन्ति तादृगेव तच्-छन्दाꣳस्यन्योन्यस्य लोकमभ्यध्यायन् तान्येतेनैव देवा व्यवाहयन्नै-न्द्रवायवस्य वा एतदायतनं यच्चतुर्थमहस्तस्मिन्नाग्रयणो गृह्यते तस्मादाग्रयणस्याऽऽयतने नवमेऽहन्नैन्द्रवायवो गृह्यते शुक्रस्य वा एतदायतनं यत् पञ्चम-(६)-महस्तस्मिन्नैन्द्रवायवो गृह्यते तस्मादैन्द्रवायवस्याऽऽयतने सप्तमेऽहञ्छुक्रो गृह्यत आग्रयणस्य वा एतदायतनं यत् षष्ठमहस्तस्मिञ्छुक्रो गृह्यते तस्माच्छुक्रस्याऽऽयतनेऽष्टमेऽहन्नाग्रयणो गृह्यते छन्दाꣳस्येव तद्वि वाहयति प्र वस्यसो विवाहमाप्नोति य एवं वेदाथो देवताभ्य एव यज्ञे संविदं दधाति तस्मादिदमन्योऽन्यस्मै (७) ददाति ॥ (एतद्वै, पञ्चमेऽहन्, त्रैष्टुभ, एतत्, गृह्यते यज्ञस्य, पञ्चम,-मन्यस्मा, एकं च) ॥ ८ ॥

द्वादशाहगतान्येकादशाहानि ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिरकामयत प्र जायेयेति स एतं द्वादशरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै स प्राजायत यः कामयेत प्र जायेयेति स द्वादशरात्रेण यजेत प्रैव जायते ब्रह्मवादिनो वदन्त्यग्निष्टोमप्रायणा यज्ञा अथ कस्मादतिरात्रः पूर्वः प्र युज्यत इति चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदतिरात्रौ कनीनिके अग्निष्टोमौ य-(१)-दग्निष्टोमं पूर्वं प्रयुञ्जीरन् बहिर्धा कनीनिके दध्युस्तस्मादतिरात्रः पूर्वः प्र युज्यते चक्षुषी एव यज्ञे धित्वा मध्यतः कनीनिके प्रति दधति यो वै गायत्रीं ज्योतिःपक्षां वेद ज्योतिषा भासा सुवर्गं लोकमेति यावग्निष्टोमौ तौ पक्षौ येऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मैषा वै गायत्री ज्योतिःपक्षा य एवं वेद ज्योतिषा भासा

सुवर्गं लोक-(२)-मेति प्रजापतिर्वा एष द्वादशधा विहितो यद् द्वादशरात्रो यावतिरात्रौ तौ पक्षौ येऽन्तरेऽष्टावुक्थ्याः स आत्मा प्रजापतिर्वावैष सन्त्सद्ध वै सत्रेण स्पृणोति प्राणा वै सत् प्राणानेव स्पृणोति सर्वासां वा एते प्रजानां प्राणैरासते ये सत्रमासते तस्मात् पृच्छन्ति किमेते सत्रिण इति प्रियः प्रजाना-(३)-मुत्थितो भवति य एवं वेद ॥ (अग्निष्टोमौ यत्, सुवर्गं लोकं, प्रियः प्रजानां, पञ्च च) ॥ ९ ॥

द्वादशाहः, दीक्षाविशेषश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

न वा एषोऽन्यतोवैश्वानरः सुवर्गाय लोकाय प्राभवदूर्ध्वो ह वा एष आतत आसीत् ते देवा एतं वैश्वानरं पर्यौहन्त्सुवर्गस्य लोकस्य प्रभूत्या ऋतवो वा एतेन प्रजापतिमयाजयन् तेष्वार्ध्नोदधि तदृध्नोति ह वा ऋत्विक्षु य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते तेऽस्मिन्नैच्छन्त स रसमह वसन्ताय प्रायच्छ-(१)-द्यवं ग्रीष्मायौषधीर्वर्षाभ्यो व्रीहीञ्छरदे माषतिलौ हेमन्तशिशिराभ्यां तेनेन्द्रं प्रजापतिरयाजयत् ततो वा इन्द्र इन्द्रोऽभवत् तस्मादाहुरानुजावरस्य यज्ञ इति स ह्येतेनाग्रेऽयजतै-ष ह वै कुणपमत्ति यः सत्रे प्रतिगृह्णाति पुरुषकुणपमश्वकुणपं गौर्वा अन्नं येन पात्रेणान्नं बिभ्रति यत् तन्न निर्णेनिजति ततोऽधि (२) मलं जायत एक एव यजेतैको हि प्रजापतिरार्ध्नोद् द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्याद् द्वादश मासाः संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापतिर्वावैष एष ह त्वै जायते यस्तपसोऽधि जायते चतुर्धा वा एतास्तिस्रस्तिस्रो रात्रयो यद् द्वादशोपसदो याः प्रथमा यज्ञं ताभिः सं भरति या द्वितीया यज्ञं ताभिरा रभते (३) यास्तृतीयाः पात्राणि ताभिर्निर्णेनिक्ते याश्चतुर्थीरपि ताभिरात्मानमन्ततः शुन्धते यो वा अस्य पशुमत्ति माꣳसꣳ सोऽत्ति यः पुरोडाशं मस्तिष्कꣳ स यः परिवापं पुरीषꣳ स य आज्यं मज्जानꣳ स यः सोमꣳ स्वेदꣳ सोऽपि ह वा अस्य शीर्षण्या निष्पदः प्रति गृह्णाति यो द्वादशाहे प्रतिगृह्णाति तस्माद् द्वादशाहेन (४) न याज्यं पाप्मनो व्यावृत्त्यै ॥ (अयच्छ,-दधि, रभते, द्वादशाहेन, चत्वारि च) ॥ १० ॥

एकाद्येकोत्तरा बृहत्संख्या, तत्र युग्मायुग्मानां च मिश्रितानां सङ्ख्याः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याꣳ स्वाहा त्रिभ्यः स्वाहा चतुर्भ्यः स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा षड्भ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहाऽष्टाभ्यः स्वाहा नवभ्यः स्वाहा दशभ्यः स्वाहैकादशभ्यः स्वाहा द्वादशभ्यः स्वाहा त्रयोदशभ्यः स्वाहा चतुर्दशभ्यः स्वाहा पञ्चदशभ्यः स्वाहा षोडशभ्यः स्वाहा सप्तदशभ्यः स्वाहाऽष्टादशभ्यः स्वाहैकान्न विꣳशत्यै स्वाहा नवविꣳशत्यै स्वाहैकान्न चत्वारिꣳशते स्वाहा नवचत्वारिꣳशते स्वाहैकान्न (१) षष्ट्यै स्वाहा नवषष्ट्यै स्वाहैकान्नाशीत्यै स्वाहा नवाशीत्यै स्वाहैकान्न शताय स्वाहा शताय स्वाहा द्वाभ्याꣳ शताभ्याꣳ स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (नवचत्वारिꣳशते स्वाहैकान्न,-विꣳशतिश्च) ॥ ११ ॥

अयुग्मानामेकादिकानां सङ्ख्याः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एकस्मै स्वाहा त्रिभ्यः स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहा नवभ्यः स्वाहैकादशभ्यः स्वाहा त्रयोदशभ्यः स्वाहा पञ्चदशभ्यः स्वाहा सप्तदशभ्यः स्वाहैकान्न विꣳशत्यै

स्वाहा नवविꣳशत्यै स्वाहैकान्न चत्वारिꣳशते स्वाहा नवचत्वारिꣳशते स्वाहैकान्न षष्ट्यै स्वाहा नवषष्ट्यै स्वाहैकान्नाशीत्यै स्वाहा नवाशीत्यै स्वाहैकान्न शताय स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (एकस्मै पञ्चाशत) ॥ १२ ॥

द्व्यादि युग्मसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

द्वाभ्याꣳ स्वाहा चतुर्भ्यः स्वाहा षड्भ्यः स्वाहाऽष्टाभ्यः स्वाहा दशभ्यः स्वाहा द्वादशभ्यः स्वाहा चतुर्दशभ्यः स्वाहा षोडशभ्यः स्वाहाऽष्टादशभ्यः स्वाहा विꣳशत्यै स्वाहाऽष्टानवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (द्वाभ्यामष्टानवत्यै षड्विꣳशतिः) ॥ १३ ॥

त्र्यादि त्र्युत्तरसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

त्रिभ्यः स्वाहा पञ्चभ्यः स्वाहा सप्तभ्यः स्वाहा नवभ्यः स्वाहैकादशभ्यः स्वाहा त्रयोदशभ्यः स्वाहा पञ्चदशभ्यः स्वाहा सप्तदशभ्यः स्वाहैकान्न विꣳशत्यै स्वाहा नवविꣳशत्यै स्वाहैकान्न चत्वारिꣳशते स्वाहा नवचत्वारिꣳशते स्वाहैकान्न षष्ट्यै स्वाहा नवषष्ट्यै स्वाहैकान्नाशीत्यै स्वाहा नवाशीत्यै स्वाहैकान्न शताय स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (त्रिभ्योऽष्टाचत्वारिꣳशत) ॥ १४ ॥

चतुरादि चतुरुत्तरसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

चतुर्भ्यः स्वाहाऽष्टाभ्यः स्वाहा द्वादशभ्यः स्वाहा षोडशभ्यः स्वाहा विꣳशत्यै स्वाहा षण्णवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (चतुर्भ्यः षण्णवत्यै षोडश) ॥ १५ ॥

पञ्चादि पञ्चोत्तरसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पञ्चभ्यः स्वाहा दशभ्यः स्वाहा पञ्चदशभ्यः स्वाहा विꣳशत्यै स्वाहा पञ्चनवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पञ्चभ्यः पञ्चनवत्यै चतुर्दश) ॥ १६ ॥

दशादि दशोत्तरसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

दशभ्यः स्वाहा विꣳशत्यै स्वाहा त्रिꣳशते स्वाहा चत्वारिꣳशते स्वाहा पञ्चाशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहा सप्तत्यै स्वाहाऽशीत्यै स्वाहा नवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (दशभ्यो द्वाविꣳशतिः) ॥ १७ ॥

विंशत्यादि विंशत्युत्तरसङ्ख्यासङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

विꣳशत्यै स्वाहा चत्वारिꣳशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहाऽशीत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (विꣳशत्यै द्वादश) ॥ १८ ॥

पञ्चाशतमारभ्य पञ्चाशदुत्तराणां शतोत्तराणां च सङ्घः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पञ्चाशते स्वाहा शताय स्वाहा द्वाभ्याꣳ शताभ्याꣳ स्वाहा त्रिभ्यः शतेभ्यः स्वाहा

चतुर्भ्यः शतेभ्यः स्वाहा पञ्चभ्यः शतेभ्यः स्वाहा षड्भ्यः शतेभ्यः स्वाहा सप्तभ्यः शतेभ्यः स्वाहा ऽष्टाभ्यः शतेभ्यः स्वाहा नवभ्यः शतेभ्यः स्वाहा सहस्राय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पञ्चाशते द्वात्रिंशच्च) ॥ १९ ॥

शतमारभ्य दशगुणवृद्धियुक्तसंख्यासहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

शताय स्वाहा सहस्राय स्वाहा ऽयुताय स्वाहा नियुताय स्वाहा प्रयुताय स्वाहा ऽर्बुदाय स्वाहा न्यर्बुदाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहा ऽन्ताय स्वाहा परार्धाय स्वाहोषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहोदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (शताय षड्विंशतिः) ॥ २० ॥

[साध्याः २११ । कुसुरुबिन्दो १४२ । बृहस्पतिः १०० । प्रजापतिः ११३ । प्रजापति -२८। - ऋतव १४९ । ऐन्द्रवायवा-ग्रान् २७५ । गायत्रः ३५९ । प्रजापति -१५५ । -नै -२०४ । -इमा ७१ । एकस्मै ५० । द्वाभ्यां २६ । त्रिभ्य -४८ । चतुर्भ्यः १६ । पञ्चभ्यो १४ । दशभ्यो २२ । विंशत्यै १२ । पञ्चाशते ३२ । शताय ३८ । विंशतिः ॥ २३३०]

[॥ इति सप्तमकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥]

सत्रजातनिरूपणम् ।

अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

द्वादशाहगतमविवाक्यमहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजवं वा एतेन यन्ति यद्दशममहः पापावहीयं वा एतेन भवन्ति यद्दशममहर्यो वै प्रजवं यतामपथेन प्रतिपद्यते यः स्थाणुं हन्ति यो भ्रेषं न्येति स हीयते स यो वै दशमेऽहन्नविवाक्य उपहन्यते स हीयते तस्मै य उपहताय व्याह तमेवान्वारभ्य समश्नुतेऽथ यो व्याह स (१) हीयते तस्माद्दशमेऽहन्नविवाक्य उपहताय न व्युच्यम्—मथो खल्वाहुर्यज्ञस्य वै समृद्धेन देवाः सुवर्गं लोकमायन् यज्ञस्य व्यृद्धेनासुरान् पराऽभावयन्निति यत् खलु वै यज्ञस्य समृद्धं तद्यजमानस्य यद्व्यृद्धं तद्भ्रातृव्यस्य स यो वै दशमेऽहन्नविवाक्य उपहन्यते स एवार्तिं रेचयति ते ये बाह्या दृशीकवः (२) स्युस्ते वि ब्रूयु—र्यदि तत्र न विन्देयुरन्तः सदसाद्व्युच्यं यदि तत्र न विन्देयुर्गृहपतिना व्युच्यं तद्व्युच्यमेवा—थ वा एतत् सर्पराज्ञिया ऋग्भिः स्तुवन्तीयं वै सर्पतो राज्ञी यद्वा अस्यां किं चार्चन्ति यदानृचुस्तेनेयं सर्पराज्ञी ते यदेव किं च वाचाऽऽनृचुर्यदतोऽध्यर्चितार-(३)-स्तदुभयमाप्त्वाऽवरुन्धोत् तिष्ठामेति तामिर्मनसा स्तुवते न या इमामश्वरथो नाश्वतरीरथः सद्यः पर्याप्तुमर्हति मनो वा इमां सद्यः पर्याप्तुमर्हति मनः परिभवितु—मथ ब्रह्म वदन्ति परिमिता वा ऋचः परिमितानि सामानि परिमितानि यजूंष्यथैतस्यैवान्तो नास्ति यद्ब्रह्म तत् प्रतिगृणत आ चक्षीत स (४) प्रतिगरः ॥ (व्याह स, दृशीकवो, ऽध्यर्चितारः, स, एकं च) ॥ १ ॥

द्वादशाहवाजिप्रशंसा ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं द्वादशाहस्य प्रथमेनाह्नर्त्विजां यजमानो वृङ्क्त इति तेज इन्द्रियमिति किं

द्वितीयेनेति प्राणानन्नाद्यमिति किं तृतीयेनेति त्रीनिमाँल्लोकानिति किं चतुर्थेनेति चतुष्पदः पशूनिति किं पञ्चमेनेति पञ्चाक्षरां पङ्क्तिमिति किं षष्ठेनेति षड् ऋतूनिति किं सप्तमेनेति सप्तपदां शक्वरीमिति (१) किमष्टमेनेत्यष्टाक्षरां गायत्रीमिति किं नवमेनेति त्रिवृतं स्तोममिति किं दशमेनेति दशाक्षरां विराजमिति किमेकादशेनेत्येकादशाक्षरां त्रिष्टुभमिति किं द्वादशेनेति द्वादशाक्षरां जगतीमित्येतावद्वा अस्ति यावदेतद्यावदेवास्ति तदेषां वृङ्क्ते ॥ (शक्वरीमिति, पञ्चचत्वारिंशच्च) ॥ २ ॥

त्रयोदशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

एष वा आप्तो द्वादशाहो यत् त्रयोदशरात्रः समानं ह्येतदहर्यत् प्रायणीयश्चोदयनीयश्च त्र्यतिरात्रो भवति त्रय इमे लोका एषां लोकानामाप्त्यै प्राणो वै प्रथमोऽतिरात्रो व्यानो द्वितीयोऽपानस्तृतीयः प्राणापानोदानेष्वेवान्नाद्ये प्रति तिष्ठन्ति सर्वमायुर्यन्ति य एवं विद्वांसस्त्रयोदशरात्रमासते तदाहुर्वाग्वा एषा वितता (१) यद् द्वादशाहस्तां विच्छिन्द्युर्यन्मध्येऽतिरात्रं कुर्युरुपदासुका गृहपतेर्वाक् स्यादुपरिष्टाच्छन्दोमानां महाव्रतं कुर्वन्ति संततामेव वाचमव रुन्धतेऽनुपदासुका गृहपतेर्वाग्भवति पशवो वै छन्दोमा अन्नं महाव्रतं यदुपरिष्टाच्छन्दोमानां महाव्रतं कुर्वन्ति पशुषु चैवान्नाद्ये च प्रति तिष्ठन्ति (वितता, त्रिंशच्च) ॥ ३ ॥

चतुर्दशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आदित्या अकामयन्तोभयोर्लोकयोर्ऋध्नुयामेति त एतं चतुर्दशरात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै त उभयोर्लोकयोरार्ध्नुवन्नस्मिंश्चामुष्मिंश्च य एवं विद्वांसश्चतुर्दशरात्रमासत उभयोरेव लोकयोर्ऋध्नुवन्त्यस्मिंश्चामुष्मिंश्च चतुर्दशरात्रो भवति सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्ताऽऽरण्या उभयीषामवरुद्ध्यै यत् पराचीनानि पृष्ठानि (१) भवन्त्यमुमेव तैर्लोकमभि जयन्ति यत् प्रतीचीनानि पृष्ठानि भवन्तीममेव तैर्लोकमभि जयन्ति त्रयस्त्रिंशौ मध्यतः स्तोमौ भवतः साम्राज्यमेव गच्छन्त्यधिराजौ भवतोऽधिराजा एव समानानां भवन्त्य—तिरात्रावभितो भवतः परिगृहीत्यै ॥ (पृष्ठानि, चतुस्त्रिंशच्च) ॥ ४ ॥

अन्यश्चतुर्दशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिः सुवर्गं लोकमैत् तं देवा अन्वायन् तानादित्याश्च पशवश्चान्वायन् ते देवा अब्रुवन् यान् पशूनुपाजीविष्म त इमेऽन्वाग्मन्निति तेभ्य एतं चतुर्दशरात्रं प्रत्यौहन् त आदित्याः पृष्ठैः सुवर्गं लोकमारोहन् त्र्यहाभ्यामस्मिंल्लोके पशून् प्रत्यौहन् पृष्ठैरादित्या अमुष्मिंल्लोक आर्ध्नुवन् त्र्यहाभ्यामस्मिन्-(१)-ल्लोके पशवो य एवं विद्वांसश्चतुर्दशरात्रमासत उभयोरेव लोकयोर्ऋध्नुवन्त्यस्मिंश्चामुष्मिंश्च पृष्ठैरेवामुष्मिंल्लोक ऋध्नुवन्ति त्र्यहाभ्यामस्मिंल्लोके ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुरिमानेव लोकानभ्यारोहन्ति यदन्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधं स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधत्वायौ—(२)—जो वै वीर्यं पृष्ठान्योज एव वीर्यं मध्यतो दधते बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं यन्ति पराञ्चो वा एते सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति ये पराचीनानि पृष्ठान्युपयन्ति प्रत्यङ्

त्र्यहो भवति प्रत्यवरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या (३) उभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्वोत् तिष्ठन्ति चतुर्दशैतास्तासां या दश दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धते याश्चतस्रश्चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठन्त्य—तिरात्रावभितो भवतः परिगृहीत्यै ॥ (आर्ध्नुवन् त्र्यहाभ्यामस्मिन्,-सविवधत्वाय, प्रतिष्ठित्या, एकत्रिंशच्च) ॥ ५ ॥

पञ्चदशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत् स न व्यावृतमगच्छत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतं पञ्चदशरात्रं प्रायच्छत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै सोऽन्याभिर्देवताभिर्व्यावृतमगच्छद्य एवं विद्वांसः पञ्चदशरात्रमासते व्यावृतमेव पाप्मना भ्रातृव्येण गच्छन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं (१) गौरसावायुरेष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्य—सत्रं वा एतद्यदच्छन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन सत्रं देवता एव पृष्ठैरव रुन्धते पशूञ्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पशवश्छन्दोमा ओजस्येव वीर्ये पशुषु प्रति तिष्ठन्ति पञ्चदशरात्रो भवति पञ्चदशो वज्रो वज्रमेव भ्रातृव्येभ्यः प्र हरन्त्य—तिरात्रावभितो भवत इन्द्रियस्य (१) परिगृहीत्यै ॥ (अन्तरिक्ष,- मिन्द्रियस्यै,- कं च) ॥ ६ ॥

अन्यः पञ्चदशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

इन्द्रो वै शिथिल इवाप्रतिष्ठित आसीत् सोऽसुरेभ्योऽबिभेत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतं पञ्चदशरात्रं वज्रं प्रायच्छत् तेनासुरान् पराभाव्य विजित्य श्रियमगच्छदग्निष्टुता पाप्मानं निरदहत पञ्चदशरात्रेणौजो बलमिन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त य एवं विद्वांसः पञ्चदशरात्रमासते भ्रातृव्यानेव पराभाव्य विजित्य श्रियं गच्छन्त्यग्निष्टुता पाप्मानं नि-(१)-र्दहन्ते पञ्चदशरात्रेणौजो बलमिन्द्रियं वीर्यमात्मन् दधते एता एव पशव्याः पञ्चदश वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवत्सर आप्यते संवत्सरं पशवोऽनु प्र जायन्ते तस्मात् पशव्या एता एव सुवर्ग्याः पञ्चदश वा अर्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशः संवत्सर आप्यते संवत्सरः सुवर्गो लोकस्तस्मात् सुवर्ग्या ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवतीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं (२) गौरसावायुरिमानेव लोकानभ्यारोहन्ति यदन्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधं स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधत्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योज एव वीर्यं मध्यतो दधते बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं (३) यन्ति पराञ्चो वा एते सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति ये पराचीनानि पृष्ठान्युपयन्ति प्रत्यङ् त्र्यहो भवति प्रत्यवरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्वोत् तिष्ठन्ति पञ्चदशैतास्तासां या दश दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धते याः पञ्च पञ्च दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठन्त्य—तिरात्रावभितो भवत इन्द्रियस्य वीर्यस्य प्रजायै (४) पशूनां परिगृहीत्यै ॥ (गच्छन्त्यग्निष्टुता पाप्मानं नि,-रन्तरिक्षं, लोकं प्रजायै, द्वे च) ॥ ७ ॥

सप्तदशरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिरकामयतान्नादः स्यामिति स एतं सप्तदशरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै सोऽन्नादोऽभवद्य एवं विद्वांसः सप्तदशरात्रमासतेऽन्नादा एव भवन्ति पञ्चाहो भवति पञ्च वा ऋतवः

संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति तिष्ठन्त्यथो पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धते ऽसत्रं वा एत-(१)-द्यदच्छन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन सत्रं देवता एव पृष्ठैरव रुन्धते पशूञ्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पशवश्छन्दोमा ओजस्येव वीर्ये पशुषु प्रति तिष्ठन्ति सप्तदशरात्रो भवति सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्या अतिरात्रावभितो भवतोऽन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै ॥ (एतत्, सप्तत्रिंशच्च) ॥ ८ ॥

विंशतिरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सा विराड् विक्रम्यातिष्ठद्ब्रह्मणा देवेष्वन्नेनासुरेषु ते देवा अकामयन्तोभयं सं वृञ्जीमहि ब्रह्म चान्नं चेति त एता विंशतिं रात्रीरपश्यन् ततो वै त उभयं समवृञ्जत ब्रह्म चान्नं च ब्रह्मवर्चसिनोऽन्नादा अभवन् य एवं विद्वांस एता आसत उभयमेव सं वृञ्जते ब्रह्म चान्नं च (२) ब्रह्मवर्चसिनोऽन्नादा भवन्ति द्वे वा एते विराजौ तयोरेव नाना प्रति तिष्ठन्ति विंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पद्या यावानेव पुरुषस्तमाप्त्वोत् तिष्ठन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुरिमानेव लोकानभ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यभिपूर्वमेव सुवर्गं (२) लोकमभ्यारोहन्ति यदन्यतः पृष्ठानि स्युर्विविवधं स्यान्मध्ये पृष्ठानि भवन्ति सविवधत्वायौजो वै वीर्यं पृष्ठान्योज एव वीर्यं मध्यतो दधते बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं यन्ति पराञ्चो वा एते सुवर्गं (३) लोकमभ्यारोहन्ति ये पराचीनानि पृष्ठान्युपयन्ति प्रत्यङ् त्र्यहो भवति प्रत्यवरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्वोत् तिष्ठन्त्य—तिरात्रावभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्यान्नाद्यस्य परिगृहीत्यै ॥ (वृञ्जते ब्रह्म चान्नं च, सुवर्गं,-मेते सुवर्गं,-त्रयोविंशतिश्च) ॥ ९ ॥

एकविंशतिरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

असावादित्योऽस्मिंल्लोक आसीत् तं देवाः पृष्ठैः परिगृह्य सुवर्गं लोकमगमयन् परैरवस्तात् पर्यगृह्णन् दिवाकीर्त्येन सुवर्गे लोके प्रत्यस्थापयन् परैः परस्तात् पर्यगृह्णन् पृष्ठैरुपावारोहन्त्स वा असावादित्योऽमुष्मिंल्लोके परैरुभयतः परिगृहीतो यत् पृष्ठानि भवन्ति सुवर्गमेव तैर्लोकं यजमाना यन्ति परैरवस्तात् परि गृह्णन्ति दिवाकीर्त्येन (१) सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्ति परैः परस्तात् परि गृह्णन्ति पृष्ठैरुपावरोहन्ति यत् परे परस्तान्न स्युः पराञ्चः सुवर्गाल्लोकान्निष्पद्येरन् यदवस्तान्न स्युः प्रजा निर्दहेयुरभितो दिवाकीर्त्यं परःसामानो भवन्ति सुवर्ग एवैनाँल्लोक उभयतः परि गृह्णन्ति यजमाना वै दिवाकीर्त्यं संवत्सरः परःसामानोऽभितो दिवाकीर्त्यं परःसामानो भवन्ति संवत्सर एवोभयतः (२) प्रति तिष्ठन्ति पृष्ठं वै दिवाकीर्त्यं पार्श्वे परःसामानोऽभितो दिवाकीर्त्यं परःसामानो भवन्ति तस्मादभितः पृष्ठं पार्श्वे भूयिष्ठा ग्रहा गृह्यन्ते भूयिष्ठं शस्यते यज्ञस्यैव तन्मध्यतो ग्रन्थिं ग्रथ्नन्त्यविस्रंसाय सप्त गृह्यन्ते सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधति यत् पराचीनानि पृष्ठानि भवन्त्यमुमेव तैर्लोकमभ्यारोहन्ति यदिमं लोकं न (३) प्रत्यवरोहेयुरुद्वा माद्येयुर्यजमानाः प्र वा मीयेरन् यत् प्रतीचीनानि पृष्ठानि भवन्तीममेव तैर्लोकं प्रत्यवरोहन्त्यथो अस्मिन्नेव लोके प्रति तिष्ठन्त्यनुन्मादाये—न्द्रो वा अप्रतिष्ठित आसीत् स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतमेकविंशतिरात्रं प्रायच्छत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै स प्रत्यतिष्ठद्ये बहु-

याजिनोऽप्रतिष्ठिताः (४) स्युस्त एकविंशतिरात्रमासीरन् द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश एतावन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यथापूर्वं प्रति तिष्ठन्त्यसावादित्यो न व्यरोचत स प्रजापतिमुपाधावत् तस्मा एतमेकविंशतिरात्रं प्रायच्छत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै सोऽरोचत य एवं विद्वांस एकविंशतिरात्रमासते (५) रोचन्त एवैकविंशतिरात्रो भवति रुग्वा एकविंशो रुचमेव गच्छन्त्यथो प्रतिष्ठामेव प्रतिष्ठा ह्येकविंशोऽतिरात्रावभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै ॥ (गृह्णीत द्विचत्वारिंशच्च,-सोमपतो, वा,-प्रतिष्ठिता, ब्रह्म, एकविंशतिश्च) ॥ १० ॥

अश्वमेधाहरणपर्यग्निहोममन्त्राः ॥ १ गायत्री, २ महापङ्क्तिः, ३ उपरिष्टाद्बृहती, ४ द्विपदाजगती, ५ अभिसारिणी, ६ महाबृहती, ७ ज्योतिष्मती, ८ अस्तारपङ्क्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अर्वाङ् यज्ञः सं क्रामत्वमुष्मादधि मामभि । ऋषीणां यः पुरोहितः ॥
निर्देवं निर्वीरं कृत्वा विष्कन्धं तस्मिन् हीयतां योऽस्मान् द्वेष्टि ।
शरीरं यज्ञशमलं कुसीदं तस्मिन्त्सीदतु योऽस्मान् द्वेष्टि ।
यज्ञ यज्ञस्य यत् तेजस्तेन सं क्राम मामभि ।
ब्राह्मणानृत्विजो देवान् यज्ञस्य तपसा ते सवाहमा हुवे ॥
इष्टेन पक्वमुप (१) ते हुवे सवाहम् । सं ते वृञ्जे सुकृतं सं प्रजां पशून् ॥
प्रैषान्त्सामिधेनीराघारावाज्यभागावाश्रुतं प्रत्याश्रुतमा शृणोमि ते ।
प्रयाजानूयाजान्त्स्विष्टकृतमिडामाशिष आ वृञ्जे सुवः ॥
अग्निनेन्द्रेण सोमेन सरस्वत्या विष्णुना देवताभिः ।
याज्यानुवाक्याभ्यामुप ते हुवे सवाहं यज्ञमा ददे ते वषट्कृतम् ॥
स्तुतं शस्त्रं प्रतिगरं ग्रहमिडामाशिष-(२)-आ वृञ्जे सुवः ।
पत्नीसंयाजानुप ते हुवे सवाहं समिष्टयजुरा ददे तव ॥
पशून्त्सुतं पुरोडाशान्त्सवनान्योत यज्ञम् ।
देवान्त्सेन्द्रानुप ते हुवे सवाहमग्निमुखान्त्सोमवतो ये च विश्वे ॥ (अप, प्रयाजानाशिषो, द्वाविंशतिश्च) ॥ ११ ॥

अश्वमेधाहुतिहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

भूतं भव्यं भविष्यद्वषट्स्वाहा नम ऋक्साम यजुर्वषट्स्वाहा नमो गायत्री त्रिष्टुब्जगती वषट्स्वाहा नमः पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्वषट्स्वाहा नमोऽग्निर्वायुः सूर्यो वषट्स्वाहा नमः प्राणो व्यानोऽपानो वषट्स्वाहा नमोऽन्नं कृषिर्वृष्टिर्वषट्स्वाहा नमः पिता पुत्रः पौत्रो वषट्स्वाहा नमो भूर्भुवः (१) सुवर्वषट्स्वाहा नमः ॥ (सुवः,-स्वाहा नमो द्वे च) ॥ १२ ॥

आभूहोममन्त्राः ॥ १ विराट्, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आ मे गृहा भवन्त्वा प्रजा म आ मा यज्ञो विशतु वीर्यावान् ।
आपो देवीर्यज्ञिया माऽऽविशन्तु सहस्रस्य मा भूमा मा प्र हासीत् ॥
आ मे ग्रहो भवत्वा पुरोरुक् स्तुतशस्त्रे माऽऽविशतां समीची ।
आदित्या रुद्रा वसवो मे सदस्याः सहस्रस्य मा भूमा मा प्र हासीत् ॥
आ माऽग्निष्टोमो विशतू-(१)-क्थ्यश्चातिरात्रो माऽऽविशत्वापिशर्वरः ।
तिरोअह्निया मा सुहुता आ विशन्तु सहस्रस्य मा भूमा मा प्र हासीत् ॥ (अग्निष्टोमो, विशतु,-द्वादश च) ॥ १३ ॥

अनुमूर्होममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्निना तपोऽन्वभवद्वाचा ब्रह्म मणिना रूपाणीन्द्रेण देवान् वातेन प्राणान्त्सूर्येण द्यां चन्द्रमसा नक्षत्राणि यमेन पितॄन् राज्ञा मनुष्यान् फलेन नादेयानजगरेण सर्पान् व्याघ्रेणारण्यान् पशूञ्छ्येनेन पतत्रिणो वृष्णाऽश्वानृषभेण गा बस्तेनाजा वृष्णिनाऽवीर्व्रीहिणाऽन्नानि यवेनौषधीर्न्यग्रोधेन वनस्पतीनुदुम्बरेणोर्जं गायत्रिया छन्दांसि त्रिवृता स्तोमान् ब्राह्मणेन (१) वाचम् ॥ (ब्राह्मणेनै,-कं च) ॥ १४ ॥

वैश्वदेवाहुतिमन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

स्वाहाऽऽधिमाधीताय स्वाहा स्वाहाऽऽधीतं मनसे स्वाहा स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहाऽदित्यै स्वाहाऽदित्यै मह्यै स्वाहाऽदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा (१) विष्णवे स्वाहा विष्णवे निखुर्यपाय स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पुरुरूपाय स्वाहा, द्वे च) ॥ १५ ॥

पशङ्गहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

दद्भ्यः स्वाहा हनूभ्याꣳ स्वाहौष्ठाभ्याꣳ स्वाहा मुखाय स्वाहा नासिकाभ्याꣳ स्वाहाऽक्षीभ्याꣳ स्वाहा कर्णाभ्याꣳ स्वाहा पार इक्षवोऽवार्येभ्यः पक्ष्मभ्यः स्वाहाऽवार इक्षवः पार्येभ्यः पक्ष्मभ्यः स्वाहा शीर्ष्णे स्वाहा भ्रूभ्याꣳ स्वाहा ललाटाय स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा मस्तिष्काय स्वाहा केशेभ्यः स्वाहा वहाय स्वाहा ग्रीवाभ्यः स्वाहा स्कन्धेभ्यः स्वाहा कीकसाभ्यः स्वाहा पृष्टीभ्यः स्वाहा पाजस्याय स्वाहा पार्श्वाभ्याꣳ स्वाहा (१) अꣳसाभ्याꣳ स्वाहा दोषभ्याꣳ स्वाहा बाहुभ्याꣳ स्वाहा जङ्घाभ्याꣳ स्वाहा श्रोणीभ्याꣳ स्वाहोरुभ्याꣳ स्वाहाऽष्ठीवद्भ्याꣳ स्वाहा जङ्घाभ्याꣳ स्वाहा भसदे स्वाहा

शिखण्डेभ्यः स्वाहा वालधानाय स्वाहाऽऽण्डाभ्याꣳ स्वाहा शेपाय स्वाहा रेतसे स्वाहा प्रजाभ्यः स्वाहा प्रजननाय स्वाहा पद्भ्यः स्वाहा शफेभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा माꣳसाय स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा (२) ऽङ्गेभ्यः स्वाहाऽऽत्मने स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (पार्श्वाभ्याꣳ स्वाहा, मज्जभ्यः स्वाहा, षट् च) ॥ १६ ॥

अश्वावयवहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कञ्जेताय स्वाहाऽञ्जिसक्थाय स्वाहा शितिपदे स्वाहा शितिककुदे स्वाहा शितिरन्ध्राय स्वाहा शितिपृष्ठाय स्वाहा शित्यꣳसाय स्वाहा पुष्पकर्णाय स्वाहा शित्योष्ठाय स्वाहा शितिभ्रवे स्वाहा शितिभसदे स्वाहा श्वेतानूकाशाय स्वाहाऽञ्जये स्वाहा ललामाय स्वाहाऽसितज्ञवे स्वाहा कृष्णैताय स्वाहा रोहितैताय स्वाहाऽरुणैताय स्वाहेदृशाय स्वाहा कीदृशाय स्वाहा तादृशाय स्वाहा सदृशाय स्वाहा विसदृशाय स्वाहा सुसदृशाय स्वाहा रूपाय स्वाहा (१) सर्वस्मै स्वाहा ॥ (रूपाय स्वाहा, द्वे च) ॥ १७ ॥

अश्वावयववर्णहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कृष्णाय स्वाहा श्वेताय स्वाहा पिशङ्गाय स्वाहा सारङ्गाय स्वाहाऽरुणाय स्वाहा गौराय स्वाहा बभ्रवे स्वाहा नकुलाय स्वाहा रोहिताय स्वाहा शोणाय स्वाहा श्यावाय स्वाहा श्यामाय स्वाहा पाकलाय स्वाहा सुरूपाय स्वाहाऽनुरूपाय स्वाहा विरूपाय स्वाहा सरूपाय स्वाहा प्रतिरूपाय स्वाहा शबलाय स्वाहा कमलाय स्वाहा पृश्नये स्वाहा पृश्निसक्थाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (कृष्णाय षट्चत्वारिꣳशत्) ॥ १८ ॥

ओषधिहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ओषधीभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा तूलेभ्यः स्वाहा काण्डेभ्यः स्वाहा वल्शेभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहा गृहीतेभ्यः स्वाहाऽगृहीतेभ्यः स्वाहाऽवपन्नेभ्यः स्वाहा शयानेभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (ओषधीभ्यो,-ऽष्टाविꣳशतिः) ॥ १९ ॥

वनस्पतिहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वनस्पतिभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा तूलेभ्यः स्वाहा स्कन्धोभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा पर्णेभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहा गृहीतेभ्यः स्वाहाऽगृहीतेभ्यः स्वाहाऽवपन्नेभ्यः स्वाहा शयानेभ्यः स्वाहा शिष्टाय स्वाहाऽतिशिष्टाय स्वाहा परिशिष्टाय स्वाहा सꣳशिष्टाय स्वाहोच्छिष्टाय स्वाहा रिक्ताय स्वाहाऽरिक्ताय स्वाहा प्ररिक्ताय स्वाहा सꣳरिक्ताय स्वाहोद्रिक्ताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (वनस्पतिभ्यः षट्चत्वारिꣳशत्) ॥ २० ॥

[प्रजवं २०। ब्रह्मवादिनं ९१। एव ९३। आदित्याः ८४। प्रजापति- १८३। -रिन्द्र १०१। इन्द्रः २०२। प्रजापतिः ८०। सा १७३। ऽसा २७१। -वर्ताः १३२। भूत-५४। -मा ६८। ऽग्निना ५१। स्वाहा ६०। दद्भ्यो १०६। ऽम्बपुंवताय ५२। कृष्णाया- ४६। -षधीभ्यो २४। वनस्पतिभ्यो ४६। विंशतिः ॥ २१२३ ॥]

[इति सप्तमकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥]

सत्रकर्मनिरूपणम् ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥]

चतुर्विंशतिरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

बृहस्पतिरकामयत श्रन्मे देवा दधीरन् गच्छेयं पुरोधामिति स एतं चतुर्विंशतिरात्रमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै तस्मै श्रद्देवा अदधतागच्छत् पुरोधां य एवं विद्वाꣳसश्चतुर्विंशतिरात्रमासते श्रदेभ्यो मनुष्या दधते गच्छन्ति पुरोधां ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायु-(१)-रिमानेव लोकानभ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यभिपूर्वमेव सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति सत्रं वा एतद्यदछन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन सत्रं देवता एव पृष्ठैरव रुन्धते पशूञ्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पशवश्छन्दोमा ओजस्येव वीर्ये पशुषु प्रति तिष्ठन्ति बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव (२) यन्त्ययो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं यन्ति चतुर्विंशतिरात्रो भवति चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरः सुवर्गो लोकः संवत्सर एव सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथो चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं गायत्रियैव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धतेऽतिरात्रावभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै ॥ (अन्तरिक्षं गौरसावायु, -राभ्यामेव पञ्चचत्वारिꣳशच्च) ॥ १ ॥

अपरचतुर्विंशतिरात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यथा वै मनुष्या एवं देवा अग्र आसन् तेऽकामयन्तावर्तिं पाप्मानं मृत्युमपहत्य दैवीꣳ सꣳसदं गच्छेमेति त एतं चतुर्विंशतिरात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै तेऽवर्तिं पाप्मानं मृत्युमपहत्य दैवीꣳ सꣳसदमगच्छन् य एवं विद्वाꣳसश्चतुर्विंशतिरात्रमासतेऽवर्तिमेव पाप्मानमपहत्य श्रियं गच्छन्ति श्रीर्हि मनुष्यस्य (१) दैवी सꣳसज्ज्योतिरतिरात्रो भवति सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै पृष्ठ्यः षडहो भवति षड् वा ऋतवः संवत्सरस्तं मासा अर्धमासा ऋतवः प्रविश्य दैवीꣳ सꣳसदमगच्छन् य एवं विद्वाꣳसश्चतुर्विंशतिरात्रमासते संवत्सरमेव प्रविश्य वस्यसीꣳ सꣳसदं गच्छन्ति त्रयस्त्रयस्त्रिꣳशा अवस्ताद्भवन्ति त्रयस्त्रयस्त्रिꣳशाः परस्तात् त्रयस्त्रिꣳशैरेवोभयतोऽवर्तिं पाप्मानमपहत्य दैवीꣳ सꣳसदं मध्यतो (२) गच्छन्ति पृष्ठानि हि दैवी सꣳसज्जामि वा एतत् कुर्वन्ति यत् त्रयस्त्रयस्त्रिꣳशा अन्वञ्चो मध्येऽनिरुक्तो भवति तेनाजाम्यूर्ध्वानि पृष्ठानि भवन्त्यूर्ध्वाश्छन्दोमा उभाभ्याꣳ रूपाभ्याꣳ सुवर्गं लोकं यन्ति सत्रं वा एतद्यदछन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन सत्रं देवता एव पृष्ठैरव रुन्धते पशूञ्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पशव-(३)-श्छन्दोमा ओजस्येव वीर्ये पशुषु प्रति तिष्ठन्ति त्रयस्त्रयस्त्रिꣳशा अवस्ताद्भवन्ति

त्रयस्त्रयस्त्रिꣳशाः परस्तान्मध्ये पृष्ठान्युरो वै त्रयस्त्रिꣳशा आत्मा पृष्ठान्यात्मन्नेव तद्यजमानाः शर्म नह्यन्तेऽनार्त्यै बृहद्रथंतराभ्यां यन्तीयं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव (४) सुवर्गं लोकं यन्ति पराञ्चो वा एते सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति ये पराचीनानि पृष्ठान्युपयन्ति प्रत्यङ् षडहो भवति प्रत्यवरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्वोत्तिष्ठन्ति त्रिवृतोऽधि त्रिवृतमुप यन्ति स्तोमानाꣳ संपत्त्यै प्रभवाय ज्योतिरग्निष्टोमो भवत्ययं वाव स क्षयोऽस्मादेव तेन क्षयान्न यन्ति चतुर्विꣳशतिरात्रो भवति चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः संवत्सरः (५) संवत्सरः सुवर्गो लोकः संवत्सर एव सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथो चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्री ब्रह्मवर्चसं गायत्रियैव ब्रह्मवर्चसमव रुन्धतेऽतिरात्रावभितो भवतो ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै ॥ (मनुष्यस्य, मध्यतः, पशव,- स्ताभ्यामेव, संवत्सर,- श्चतुर्विꣳशतिश्च) ॥ २ ॥

त्रिंशद्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ऋक्षा वा इयमलोमकाऽऽसीत् साऽकामयतौषधीभिर्वनस्पतिभिः प्र जायेयेति सैतास्त्रिꣳशतꣳ रात्रीरपश्यत् ततो वा इयमोषधीभिर्वनस्पतिभिः प्राजायत ये प्रजाकामाः पशुकामाः स्युस्त एता आसीरन् प्रैव जायन्ते प्रजया पशुभि-रियं वा अक्षुध्यत् सैतां विराजमपश्यत् तामात्मन् धित्वाऽन्नाद्यमवारुन्धौषधी-(१)-र्वनस्पतीन् प्रजां पशून् तेनावर्धत सा जेमानं महिमानमगच्छद्य एवं विद्वाꣳस एता आसते विराजमेवाऽऽत्मन् धित्वाऽन्नाद्यमव रुन्धते वर्धन्ते प्रजया पशुभिर्जेमानं महिमानं गच्छन्ति ज्योतिरतिरात्रो भवति सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै पृष्ठ्यः षडहो भवति षड् वा ऋतवः षट् पृष्ठानि पृष्ठैरेवर्तूनन्वारोहन्त्यृतुभिः संवत्सरं ते संवत्सर एव (२) प्रति तिष्ठन्ति त्रयस्त्रिꣳशात् त्रयस्त्रिꣳशमुप यन्ति यज्ञस्य संतत्या अथो प्रजापतिर्वै त्रयस्त्रिꣳशः प्रजापतिमेवाऽऽरभन्ते प्रतिष्ठित्यै त्रिणवो भवति विजित्या एकविꣳशो भवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् दधते त्रिवृदग्निष्टुद्भवति पाप्मानमेव तेन निर्दहन्तेऽथो तेजो वै त्रिवृत् तेज एवाऽऽत्मन् दधते पञ्चदश इन्द्रस्तोमो भवतीन्द्रियमेवाव (३) रुन्धते सप्तदशो भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायन्त एकविꣳशो भवति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् दधते चतुर्विꣳशो भवति चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरः सुवर्गो लोकः संवत्सर एव सुवर्गे लोके प्रति तिष्ठन्त्यथो एष वै विषूवान् विषूवन्तो भवन्ति य एवं विद्वाꣳस एता आसते चतुर्विꣳशात् पृष्ठान्युप यन्ति संवत्सर एव प्रतिष्ठाय (४) देवता अभ्यारोहन्ति त्रयस्त्रिꣳशात् त्रयस्त्रिꣳशमुप यन्ति त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवता देवतास्वेव प्रति तिष्ठन्ति त्रिणवो भवतीमे वै लोकास्त्रिणव एष्वेव लोकेषु प्रति तिष्ठन्ति द्वावेकविꣳशौ भवतः प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् दधते बहवः षोडशिनो भवन्ति तस्माद्बहवः प्रजासु वृषाणो यदेते स्तोमा व्यतिषक्ता भवन्ति तस्मादियमोषधीभिर्वनस्पतिभिर्व्यतिषक्ता (५) व्यतिषज्यन्ते प्रजया पशुभिर्य एवं विद्वाꣳस एता आसतेऽक्लृप्ता वा एते सुवर्गं लोकं यन्त्युच्चावचान् हि स्तोमानुपयन्ति यदेत ऊर्ध्वाः क्लृप्ताः स्तोमा भवन्ति क्लृप्ता

एव सुवर्गं लोकं यन्त्युभयोरेभ्यो लोकयोः कल्पते त्रिꣳशदेतास्त्रिꣳशदक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धतेऽतिरात्रावभितो भवतोऽन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै ॥ (ओषधीः, संवत्सर एवा,- व, प्रतिष्ठाय, व्यतिषक्ता,- क्लृप्ताः पञ्चाशच्च) ॥ ३ ॥

द्वात्रिंशद्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रजापतिः सुवर्गं लोकमैत् तं देवा येनयेन छन्दसाऽनु प्रायुञ्जत तेन नाऽऽप्नुवन् त एता द्वात्रिꣳशतꣳ रात्रीरपश्यन् द्वात्रिꣳशदक्षराऽनुष्टुगानुष्टुभः प्रजापतिः स्वेनैव छन्दसा प्रजापतिमाप्त्वाऽभ्यारुह्य सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाꣳस एता आसते द्वात्रिꣳशदेता द्वात्रिꣳशदक्षराऽनुष्टुगानुष्टुभः प्रजापतिः स्वेनैव छन्दसा प्रजापतिमाप्त्वा श्रियं गच्छन्ति (१) श्रीर्हि मनुष्यस्य सुवर्गो लोको द्वात्रिꣳशदेता द्वात्रिꣳशदक्षराऽनुष्टुग्वागनुष्टुप् सर्वामेव वाचमाप्नुवन्ति सर्वे वाचो वदितारो भवन्ति सर्वे हि श्रियं गच्छन्ति ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहा भवन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुरिमानेव लोकानभ्यारोहन्त्यभिपूर्वं त्र्यहा भवन्त्यभिपूर्वमेव सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति बृहद्रथंतराभ्यां यन्ती-(२)-यं वाव रथंतरमसौ बृहदाभ्यामेव यन्त्यथो अनयोरेव प्रति तिष्ठन्त्येते वै यज्ञस्याञ्जसायनी स्रुती ताभ्यामेव सुवर्गं लोकं यन्ति पराञ्चो वा एते सुवर्गं लोकमभ्यारोहन्ति ये पराञ्चस्त्र्यहाननुपयन्ति प्रत्यङ् त्र्यहो भवति प्रत्यवरूढ्या अथो प्रतिष्ठित्या उभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्वोत्तिष्ठन्ति द्वात्रिꣳशदेतास्तासां यास्त्रिꣳशत् त्रिꣳशदक्षरा (३) विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धते ये द्वे अहोरात्रे एव ते उभाभ्याꣳ रूपाभ्याꣳ सुवर्गं लोकं यन्त्य-तिरात्रावभितो भवतः परिगृहीत्यै ॥ (गच्छन्ति, यन्ति, त्रिꣳशदक्षरा, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ४ ॥

त्रयस्त्रिंशद्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

द्वे वाव देवसत्रे द्वादशाहश्चैव त्रयस्त्रिꣳशदहश्च य एवं विद्वाꣳसस्त्रयस्त्रिꣳशदहमासते साक्षादेव देवता अभ्यारोहन्ति यथा खलु वै श्रेयानभ्यारूढः कामयते तथा करोति यद्यवविध्यति पापीयान् भवति यदि नाववविध्यति सदृङ् य एवं विद्वाꣳसस्त्रयस्त्रिꣳशदहमासते वि पाप्मना भ्रातृव्येणाऽऽवर्तन्तेऽहर्भाजो वा एता देवा अग्र आऽहर-(१)-न्नहरेकोऽभजताहरेकस्ताभिर्वै ते प्रबाहुगार्ध्नुवन् य एवं विद्वाꣳसस्त्रयस्त्रिꣳशदहमासते सर्व एव प्रबाहुगृध्नुवन्ति सर्वे ग्रामणीयं प्राप्नुवन्ति पञ्चाहा भवन्ति पञ्च वा ऋतवः संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति तिष्ठन्त्यथो पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवाव रुन्धते त्रीण्याश्विनानि भवन्ति त्रय इमे लोका एष्वे-(२)-व लोकेषु प्रति तिष्ठन्त्यथो त्रीणि वै यज्ञस्येन्द्रियाणि तान्येवाव रुन्धते विश्वजिद्भवत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै सर्वपृष्ठो भवति सर्वस्याभिजित्यै वाग्वै द्वादशाहो यत् पुरस्ताद् द्वादशाहमुपेयुरनाप्तां वाचमुपेयुरुपदासुकैषां वाक् स्यादुपरिष्टाद् द्वादशाहमुप यन्त्याप्तामेव वाचमुप यन्ति तस्मादुपरिष्टाद्वाचा वदामोऽवान्तरं (३) वै दशरात्रेण प्रजापतिः प्रजा असृजत यद्दशरात्रो भवति प्रजा एव तद्यजमानाः सृजन्त एताꣳ ह वा उदङ्कः शौल्बायनः सत्रस्यर्धिमुवाच यद्दशरात्रो यद्दशरात्रो भवति सत्रस्यर्ध्या अथो यदेव पूर्वेष्वहःसु विलोम क्रियते तस्यैवैषा शान्ति-र्द्व्यनीका वा एता रात्रयो यजमाना विश्वजित् सहातिरात्रेण पूर्वाः षोडश सहा-(४)-तिरात्रेणोत्तराः

षोडश य एवं विद्वाꣳसस्त्रयस्त्रिꣳशदहमासत ऐषां द्व्यनीका प्रजा जायतेऽतिरात्रावभितो भवतः परिगृहीत्यै ॥ (अहर,- ष्वे,- वान्तरꣳ, षोडश सह, सप्तदश च) ॥ ५ ॥

षट्त्रिंशद्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

आदित्या अकामयन्त सुवर्गं लोकमियामेति ते सुवर्गं लोकं न प्राजानन्न सुवर्गं लोकमायन् त एतꣳ षट्त्रिꣳशद्रात्रमपश्यन् तमाऽहरन् तेनायजन्त ततो वै ते सुवर्गं लोकं प्राजानन्त्सुवर्गं लोकमायन् य एवं विद्वाꣳसः षट्त्रिꣳशद्रात्रमासते सुवर्गमेव लोकं प्र जानन्ति सुवर्गं लोकं यन्ति ज्योतिरतिरात्रो (१) भवति ज्योतिरेव पुरस्ताद्दधते सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै षडहा भवन्ति षड् वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठन्ति चत्वारो भवन्ति चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठन्त्य-सत्रं वा एतद्यदछन्दोमं यच्छन्दोमा भवन्ति तेन सत्रं देवता एव पृष्ठैरव रुन्धते पशूञ्छन्दोमैरोजो वै वीर्यं पृष्ठानि पशवश्छन्दोमा ओजस्येव (२) वीर्ये पशुषु प्रति तिष्ठन्ति षट्त्रिꣳशद्रात्रो भवति षट्त्रिꣳशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवो बृहत्यैव पशूनव रुन्धते बृहती छन्दसाꣳ स्वाराज्यमाश्नुताश्नुवते स्वाराज्यं य एवं विद्वाꣳसः षट्त्रिꣳशद्रात्रमासते सुवर्गमेव लोकं यन्त्य-तिरात्रावभितो भवतः सुवर्गस्य लोकस्य परिगृहीत्यै ॥ (अतिरात्र, ओजस्येव, षट्त्रिꣳशच्च) ॥ ६ ॥

एकोनपञ्चाशद्रात्रः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

वसिष्ठो हतपुत्रोऽकामयत विन्देय प्रजामभि सौदासान् भवेयमिति स एतमेकस्मान्नपञ्चाशमपश्यत् तमाऽहरत् तेनायजत ततो वै सोऽविन्दत प्रजामभि सौदासानभवद्य एवं विद्वाꣳस एकस्मान्नपञ्चाशमासते विन्दन्ते प्रजामभि भ्रातृव्यान् भवन्ति त्रयस्त्रिवृतोऽग्निष्टोमा भवन्ति वज्रस्यैव मुखꣳ सꣳ श्यन्ति दश पञ्चदशा भवन्ति पञ्चदशो वज्रो (१) वज्रमेव भ्रातृव्येभ्यः प्र हरन्ति षोडशिमद्दशममहर्भवति वज्र एव वीर्यं दधति द्वादश सप्तदशा भवन्त्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तैर्जायन्ते पृष्ठ्यः षडहो भवति षड्वा ऋतवः षट् पृष्ठानि पृष्ठैरेवर्तूनन्वारोहन्त्यृतुभिः संवत्सरं ते संवत्सर एव प्रति तिष्ठन्ति द्वादशैकविꣳशा भवन्ति प्रतिष्ठित्या अथो रुचमेवाऽऽत्मन् (२) दधते बहवः षोडशिनो भवन्ति विजित्यै षडाश्विनानि भवन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठन्त्यूनातिरिक्ता वा एता रात्रय ऊनास्तद्यदेकस्यै न पञ्चाशदतिरिक्तास्तद्यद्भूयसीरष्टाचत्वारिꣳशत ऊनाच्च खलु वा अतिरिक्ताच्च प्रजापतिः प्राजायत ये प्रजाकामाः पशुकामाः स्युस्त एता आसीरन् प्रैव जायन्ते प्रजया (३) पशुभिर्वैराजो वा एष यज्ञो यदेकस्मान्नपञ्चाशो य एवं विद्वाꣳस एकस्मान्नपञ्चाशमासते विराजमेव गच्छन्त्यन्नादा भवन्त्य-तिरात्रावभितो भवतोऽन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै ॥ (वज्रं, आत्मन्, प्रजया, द्वाविꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

संवत्सरसत्रदीक्षाकालः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

संवत्सराय दीक्षिष्यमाणा एकाष्टकायां दीक्षेरन्नेषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टकैतस्यां वा एष एताꣳ रात्रिं वसति साक्षादेव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्त आर्तं वा एते संवत्सरस्याभि दीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्तेऽन्तनामानावृतू भवतो व्यस्तं वा एते संवत्सरस्याभि दीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्तेऽन्तनामानावृतू भवतः फल्गुनीपूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् (१) संवत्सरस्य यत् फल्गुनी-

पूर्णमासो मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते तस्यैकैव निर्या यत् साम्मेघ्ये विषूवान्त्संपद्यते चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन् मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासो मुखत एव संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते तस्य न का चन निर्या भवति चतुरहे पुरस्तात् पौर्णमास्यै दीक्षेरन् तेषामेकाष्टकायां क्रयः सं पद्यते तेनैकाष्टकां न छम्बट् कुर्वन्ति तेषां (२) पूर्वपक्षे सुत्या सं पद्यते पूर्वपक्षं मासा अभि सं पद्यन्ते ते पूर्वपक्ष उत् तिष्ठन्ति तानुत्तिष्ठत ओषधयो वनस्पतयोऽनूत् तिष्ठन्ति तान् कल्याणी कीर्तिरनूत् तिष्ठत्यरात्सुरिमे यजमाना इति तदनु सर्वे राध्नुवन्ति ॥ (एव,- छम्बट् कुर्वन्ति तेषां, चतुस्त्रिꣳशच्च) ॥ ८ ॥

दीक्षा उपसदश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सुवर्गं वा एते लोकं यन्ति ये सत्रमुपयन्त्यभीन्धत एव दीक्षाभिरात्मानꣳ श्रपयन्त उपसद्भि-र्द्वाभ्यां लोमाव द्यन्ति द्वाभ्यां त्वचं द्वाभ्यामसृद् द्वाभ्यां माꣳसं द्वाभ्यामस्थि द्वाभ्यां मज्जानमात्मदक्षिणं वै सत्रमात्मानमेव दक्षिणां नीत्वा सुवर्गं लोकं यन्ति शिखामनु प्र वपन्त ऋद्ध्या अथो रघीयाꣳसः सुवर्गं लोकमयामेति ॥ (सुवर्गं पञ्चाशत्) ॥ ९ ॥

प्रायणीयमहः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ब्रह्मवादिनो वदन्त्यतिरात्रः परमो यज्ञक्रतूनां कस्मात् तं प्रथममुप यन्तीत्येतद्वा अग्निष्टोमं प्रथममुप यन्त्यथोक्थ्यमथ षोडशिनमथातिरात्रमनुपूर्वमेवैतद्यज्ञक्रतूनुपेत्य तानालभ्य परिगृह्य सोममेवैतत् पिबन्त आसते ज्योतिष्टोमं प्रथममुप यन्ति ज्योतिष्टोमो वै स्तोमानां मुखं मुखत एव स्तोमान् प्र युङ्क्ते ते (१) सꣳस्तुता विराजमभि सं पद्यन्ते द्वे चर्चावति रिच्येते एकया गौरतिरिक्त एकयाऽऽयुरूनः सुवर्गो वै लोको ज्योतिरूर्ग्विराट्त्सुवर्गमेव तेन लोकं यन्ति रथंतरं दिवा भवति रथंतरं नक्तमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः केन तदजामीति सौभरं तृतीयसवने ब्रह्मसामं बृहत् तन्मध्यतो दधति विधृत्यै तेनाजामि ॥ (ते, एकान्नपञ्चाशच्च) ॥ १० ॥

संवत्सरगतेषु सर्वमासेष्वहानि ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

ज्योतिष्टोमं प्रथममुप यन्त्यस्मिन्नेव तेन लोके प्रति तिष्ठन्ति गोष्टोमं द्वितीयमुप यन्त्यन्तरिक्ष एव तेन तिष्ठन्त्यायुष्टोमं तृतीयमुप यन्त्यमुष्मिन्नेव तेन लोके प्रति तिष्ठन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुर्यदेतान्त्स्तोमानुपयन्त्येष्वेव तल्लोकेषु सत्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ते सꣳस्तुता विराज-(१)-मभि सं पद्यन्ते द्वे चर्चावति रिच्येते एकया गौरतिरिक्त एकयाऽऽयुरूनः सुवर्गो वै लोको ज्योतिरूर्ग्विराडूर्जमेवाव रुन्धते ते न क्षुधाऽऽर्तिमार्छन्त्यक्षोधुका भवन्ति क्षुत्संबाधा इव हि सत्त्रिणोऽग्निष्टोमावभितः प्रधी तावुक्थ्या मध्ये नभ्यं तत् तदेतत् परियद्वचक्रं यदेतेन (२) षडहेन यन्ति देवचक्रमेव समारोहन्त्यरिष्ट्यै ते स्वस्ति समश्नुवते षडहेन यन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रति तिष्ठन्त्युभयतो ज्योतिषा यन्त्युभयत एव सुवर्गे लोके प्रतितिष्ठन्तो यन्ति द्वौ षडहौ भवतस्तानि द्वादशाहानि सं पद्यन्ते द्वादशो वै पुरुषो द्वे सक्थ्यौ द्वौ बाहू आत्मा च शिरश्च चत्वार्यङ्गानि स्तनौ द्वादशौ (३) तत् पुरुषमनु पर्यावर्तन्ते त्रयः षडहा भवन्ति तान्यष्टादशाहानि सं पद्यन्ते नवान्यानि नवान्यानि नव वै पुरुषे प्राणा-

स्तत् प्राणानर्नु पर्यावर्तन्ते चत्वारः षडहा भवन्ति तानि चतुर्विंशतिरहानि सं पद्यन्ते चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरस्तत् संवत्सरमनु पर्यावर्तन्तेऽप्रतिष्ठितः संवत्सर इति खलु वा आहुर्वर्षीयान् प्रतिष्ठाया इत्येतावद्वै (४) संवत्सरस्य ब्राह्मणं यावन्मासो मासिमास्येव प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ॥ (त्रिरात्रं,- सुतेन, द्वादश,- वेतावद्वा, अष्टौ च) ॥ ११ ॥

अश्वमेधाङ्गाश्वावघ्राणहोममन्त्राः, परिधानमन्त्राश्च ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

मेषस्त्वा पचतैरवतु लोहितग्रीवश्छागैः शल्मलिर्वृद्ध्या पर्णो ब्रह्मणा प्लक्षो मेधेन न्यग्रोधश्चमसैरुदुम्बर ऊर्जा गायत्री छन्दोभिस्त्रिवृत् स्तोमैरवन्तीः स्थावन्तीस्त्वाऽवन्तु प्रियं त्वा प्रियाणां वर्षिष्ठमाप्यानां निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम ॥ (मेषः षड्विंशतिः) ॥ १२ ॥

(१३-१४) अपां होममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

कूप्याभ्यः स्वाहा कुल्याभ्यः स्वाहा विकर्याभ्यः स्वाहाऽवट्याभ्यः स्वाहा खन्याभ्यः स्वाहा ह्रद्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा सरस्याभ्यः स्वाहा वैशन्तीभ्यः स्वाहा पल्वल्याभ्यः स्वाहा वर्ष्याभ्यः स्वाहाऽवर्ष्याभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा पृष्वाभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा स्थावराभ्यः स्वाहा नादेयीभ्यः स्वाहा सैन्धवीभ्यः स्वाहा समुद्रियाभ्यः स्वाहा सर्वाभ्यः स्वाहा ॥ (कूप्याभ्यश्चतुर्विंशतिः) ॥ १३ ॥

अद्भ्यः स्वाहा वहन्तीभ्यः स्वाहा परिवहन्तीभ्यः स्वाहा समन्तं वहन्तीभ्यः स्वाहा शीघ्रं वहन्तीभ्यः स्वाहा शीभं वहन्तीभ्यः स्वाहोग्रं वहन्तीभ्यः स्वाहा भीमं वहन्तीभ्यः स्वाहाऽम्भोभ्यः स्वाहा नभोभ्यः स्वाहा महोभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (अद्भ्य एकान्नविंशतिः) ॥ १४ ॥

पुनः प्रहारः ॥ १ द्विपदा गायत्री; २ एकपदा गायत्री; ३ पङ्क्तिः; ४ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः

यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः ॥
परो मर्तः परः श्वा ॥
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं बभूव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥
अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविद-(१)-युधा ते ॥ (विविद, द्वे च) ॥ १५ ॥

यवाग्वाहोमः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ॥

नमो राज्ञे नमो वरुणाय नमोऽश्वाय नमः प्रजापतये नमोऽधिपतयेऽधिपतिरस्यधिपतिं मा कुर्वधिपतिरहं प्रजानां भूयासं मां धेहि मयि धेह्युपाकृताय स्वाहाऽऽलब्धाय स्वाहा हुताय स्वाहा ॥ (नम एकान्नत्रिंशत्) ॥ १६ ॥

गव्यालयाहोमः ॥ १-४ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृड ॥
याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥
या देवेषु तनुवमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र (१) गोष्ठे रिरीहि ॥
प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाऽकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥

इह धृतिः स्वाहेह विधृतिः स्वाहेह रन्तिः स्वाहेह रमतिः स्वाहा महीमू षु*- सुत्रामाणम्*- ॥ (इन्द्र,- इह त्रिंशच्च) ॥ १७ ॥

ब्रह्मोद्यम् ॥ १-४ अनुष्टुप्, ५-६ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ॥

किंस्विदासीत् पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद्बृहद्वयः ।
किंस्विदासीत् पिशङ्गिला किंस्विदासीत् पिलिप्पिला ॥
द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः । रात्रिरासीत् पिशङ्गिलाऽविरासीत् पिलिप्पिला ॥
कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किंस्विद्धिमस्य भेषजं किंस्विदावपनं महत् ॥
सूर्य एकाकी चरति (१) चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि त्वा भुवनस्य नाभिम् ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥
वेदिमाहुः परमन्तं पृथिव्या यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिम् ।
सोममाहुर्वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मैव वाचः परमं व्योम ॥ (सूर्य एकाकी चरति, षट्चत्वारिंशच्च) ॥ १८ ॥

मारणोत्तरकालीनोऽश्वोपचारः ॥ गायत्री; २,८,१०,१२,१४-१५ अनुष्टुप्, ३,६ द्विपदा गायत्री; ४ एकपदा त्रिष्टुप्; ५ पंक्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ॥

अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः ॥
सुभगे काम्पीलवासिनि सुवर्गे लोके सं प्रोर्णवाथाम् ।
आऽहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥

(१०। ९-१०) तै. सं. १. ५. ११. १८-१९

तौ सह चतुरः पदः सं प्र सारयावहै ॥
वृषा वां रेतोधा रेतो दधातूत् सक्थ्योर्गृदं धेह्यञ्जिमुदञ्जिमन्वज ।
यः स्त्रीणां जीवभोजनो य आसां (१) बिलधावनः । प्रियः स्त्रीणामपीच्यः ॥
य आसां कृष्णे लक्ष्मणि सर्दिगृदिं परावधीत् ॥
अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा यभति कश्चन । ससस्त्यश्वकः ॥
ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रयताद्वेणुभारं गिराविव । अथास्या मध्यमेधतां शीते वाते पुनन्निव ॥
अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा यभति कश्चन । ससस्त्यश्वकः ॥
यद्धरिणी यवमत्ति न (२) पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥
अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा यभति कश्चन । ससस्त्यश्वकः ॥
इयं यका शकुन्तिकाऽऽहलमिति सर्पति ।
आहतं गभे पसो नि जल्गुलीति धाणिका ॥
अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा यभति कश्चन । ससस्त्यश्वकः ॥
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः (३) ।
प्र सुलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ (४) । आपो जनयथा च नः ॥
(आसां,- अत्ति न, रोहतो, जिन्वथ, चत्वारि च) ॥ १९ ॥

मरणोत्तरकालीनोऽश्वोपचारः ॥ ७ बृहती; ८ उपरिष्टाद्बृहती, अनुष्टुप् वा; ९-११ गायत्री । विश्वेदेवा ऋषयः ॥

भूर्भुवः सुवर्वसवस्त्वाऽञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वाऽञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽऽदित्यास्त्वाऽञ्जन्तु जागतेन छन्दसा ॥
यद्वातो अपो अगमदिन्द्रस्य तनुवं प्रियाम् । एतं स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमा वर्तयासि नः ॥
लाजी३ञ्छाची३न् यशो ममा३म् ।
यव्यायै गव्याया एतद्देवा अन्नमत्तैतदन्नमद्धि प्रजापते ॥
युञ्जन्ति ब्रध्न-(१)-मरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ (ब्रध्नं, पञ्चविंशतिश्च) ॥ २० ॥

सन्ततिहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्राणाय स्वाहा व्यानाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा संतानेभ्यः स्वाहा परिसंतानेभ्यः स्वाहा पर्वभ्यः स्वाहा संधानेभ्यः स्वाहा शरीरेभ्यः स्वाहा यज्ञाय स्वाहा दक्षिणाभ्यः स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा । (प्राणायाष्टाविंशतिः) ॥ २१ ॥

प्रमुक्तिहोमः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

सिताय स्वाहाऽसिताय स्वाहाऽभिहिताय स्वाहाऽनभिहिताय स्वाहा युक्ताय स्वाहाऽयुक्ताय स्वाहा सुयुक्ताय स्वाहोद्युक्ताय स्वाहा विमुक्ताय स्वाहा प्रमुक्ताय स्वाहा वञ्चते स्वाहा परिवञ्चते स्वाहा संवञ्चते स्वाहाऽनुवञ्चते स्वाहोद्वञ्चते स्वाहा यते स्वाहा धावते स्वाहा तिष्ठते स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥ (सितायाष्टात्रिंशत्) ॥ २२ ॥

[बृहस्पति- १४५। -वैद्य- २७४। -अर्धाः २९१। प्रजापति- १७२। -द्वे २१७। आदित्या १३६। वसिष्ठः १७२। संवत्सराय ११७। सुवर्गं ५०। ब्रह्मवादिनो ९१। ज्योतिष्टोमं २०८। मेषः ३६। कूप्याभ्यो ४०। ऽद्भ्यो २९। यो ५२। नमो २९। मयोभूः ८८। किम- ९१। -म्बे २०७। भूः ७५। प्राणाय २८। सिताय ३८। द्वाविंशतिः ॥ २६२१]

[इति सप्तमकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥]

सत्रविशेषाभिधानम् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

गवामयनाख्यं संवत्सरसत्रम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

गावो वा एतत् सत्रमासताशृङ्गाः सतीः शृङ्गाणि नो जायन्तामिति कामेन तासां दश मासा निषण्णा आसन्नथ शृङ्गाण्यजायन्त ता उदतिष्ठन्नरात्स्मेत्यथ यासां नाजायन्त ताः संवत्सरमाप्त्वोदतिष्ठन्नरात्स्मेति यासां चाजायन्त यासां च न ता उभयीरुदतिष्ठन्नरात्स्मेति गोसत्रं वै (१) संवत्सरो य एवं विद्वांसः संवत्सरमुपयन्त्यृध्नुवन्त्येव तस्मात् तूपरा वार्षिकौ मासौ पर्त्वा चरति सत्राभिजितं ह्यस्यै तस्मात् संवत्सरसदो यत् किं च गृहे क्रियते तदाप्तमवरुद्धमभिजितं क्रियते समुद्रं वा एते प्र प्लवन्ते ये संवत्सरमुपयन्ति यो वै समुद्रस्य पारं न पश्यति न वै स तत उदेति संवत्सरो (२) वै समुद्रस्तस्यैतत् पारं यदतिरात्रौ य एवं विद्वांसः संवत्सरमुपयन्त्यनार्ता एवोदृचं गच्छन्तीयं वै पूर्वोऽतिरात्रोऽसावुत्तरो मनः पूर्वो वागुत्तरः प्राणः पूर्वोऽपान उत्तरः प्ररोधनं पूर्व उदयनमुत्तरो ज्योतिष्टोमो वैश्वानरोऽतिरात्रो भवति ज्योतिरेव पुरस्ताद्धत्ते सुवर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै चतुर्विंशः प्रायणीयो भवति चतुर्विंशतिरर्धमासाः (३) संवत्सरः प्रयन्त एव संवत्सरे प्रति तिष्ठन्ति तस्य त्रीणि च

शतानि पृष्ठ्यश्च स्तोत्रियास्तावतीः संवत्सरस्य रात्रय उभे एव संवत्सरस्य रूपे आप्नुवन्ति ते संस्थित्या अरिष्टया उत्तरैरहोभिश्चरन्ति षडहा भवन्ति षड् वा ऋतवः संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रति तिष्ठन्ति गौश्चाऽऽयुश्च मध्यतः स्तोमौ भवतः संवत्सरस्यैव तन्मिथुनं मध्यतो (४) दधति प्रजननायै ज्योतिरभितो भवति विमोचनमेव तच्छन्दाꣳस्येव तद्विमोकं यन्त्यथो उभयतोज्योतिषैव षडहेन सुवर्गे लोके यन्ति ब्रह्मवादिनो वदन्त्यासते केन यन्तीति देवयानेन पथेति ब्रूयाच्छन्दाꣳसि वै देवयानः पन्था गायत्री त्रिष्टुब्जगती ज्योतिर्वै गायत्री गौस्त्रिष्टुगायुर्जगती यदेते स्तोमा भवन्ति देवयानेनैव (५) तत् पथा यन्ति समानꣳ साम भवति देवलोको वै साम देवलोकादेव न यन्त्य—न्या अन्या ऋचो भवन्ति मनुष्यलोको वा ऋचो मनुष्यलोकादेवान्यमन्यं देवलोकमभ्यारोहन्तो यन्त्य—भिवर्तो ब्रह्मसामं भवति सुवर्गस्य लोकस्याभिवृत्त्या अभिजिद्भवति सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्यै विश्वजिद्भवति विश्वस्य जित्यै मासिमासि पृष्ठान्युप यन्ति मासिमास्यतिग्राह्या गृह्यन्ते मासिमास्येव वीर्यं (६) दधति मासां प्रतिष्ठित्या उपरिष्टान्मासां पृष्ठान्युप यन्ति तस्मादुपरिष्टादोषधयः फलं गृह्णन्ति ॥ (गौस्त्वं वा, एति संवत्सरो, ऽर्धमासा, मिथुनं मध्यतो देवयानेनैव, वीर्यं, त्रयोदश च) ॥ १ ॥

गवामयनस्य दशमासद्वादशमासविकल्पः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

गावो वा एतत् सत्रमासताशृङ्गाः सतीः शृङ्गाणि सिषासन्तीस्तासां दश मासा निषण्णा आसन्नथ शृङ्गाण्यजायन्त ता अब्रुवन्नरात्स्मोत् तिष्ठामाव तं काममरुत्स्महि येन कामेन न्यषदामेति तासामु त्वा अब्रुवन्नर्धा वा यावतीर्वाऽऽसामहा एवेमौ द्वादशौ मासौ संवत्सरꣳ संपाद्योत् तिष्ठामेति तासां (१) द्वादशे मासि शृङ्गाणि प्रावर्तन्त श्रद्धया वाऽश्रद्धया वा ता इमा यास्तूपरा उभय्यो वाव ता आर्ध्नुवन् याश्च शृङ्गाण्यसन्वन् याश्चोर्जमवारुन्धत—र्ध्नोति दशसु मासूत्तिष्ठन्नृध्नोति द्वादशसु य एवं वेद पदेन खलु वा एते यन्ति विन्दति खलु वै पदेन यन् तद्वा एतदृद्धमयनं तस्मा-(२)-देतद्गोसनि ॥ (तिष्ठामेति तासां, तस्माद्, द्वे च) ॥ २ ॥

पृष्ठ्यषडहविकल्पः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

प्रथमे मासि पृष्ठान्युप यन्ति मध्यम उप यन्त्युत्तम उप यन्ति तदाहुर्यां वै त्रिरेकस्याह्न उपसीदन्ति दह्रं वै साऽपराभ्यां दोहाभ्यां दुहेऽथ कुतः सा धोक्ष्यते यां द्वादश कृत्व उपसीदन्तीति संवत्सरꣳ संपाद्योत्तमे मासि सकृत् पृष्ठान्युपेयुस्तद्यजमाना यज्ञं पशूनव रुन्धते समुद्रं वा (१) एतेऽनवारमपारं प्र प्लवन्ते ये संवत्सरमुपयन्ति यद् बृहद्रथंतरे अन्वर्जेयुर्यथा मध्ये समुद्रस्य प्लवमन्वर्जेयुस्तादृक् तदनुत्सर्गं बृहद्रथंतराभ्यामित्वा प्रतिष्ठां गच्छन्ति सर्वेभ्यो वै कामेभ्यः संधिर्दुहे तद्यजमानाः सर्वान् कामानव रुन्धते ॥ (समुद्रं वै, चतुस्त्रिꣳशच्च) ॥ ३ ॥

उपरि पक्षसि विशेषः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

समान्य ऋचो भवन्ति मनुष्यलोको वा ऋचो मनुष्यलोकादेव न यन्त्य—न्यदन्यत् साम भवति देवलोको वै साम देवलोकादेवान्यमन्यं मनुष्यलोकं प्रत्यवरोहन्तो यन्ति जगतीमग्र उप यन्ति जगतीं

वै छन्दाꣳसि प्रत्यवरोहन्त्या—ग्रयणं ग्रहा बृहत् पृष्ठानि त्रयस्त्रिꣳशꣳ स्तोमास्तस्माज्ज्यायाꣳसं कनीयान् प्रत्यवरोहति वैश्वकर्मणो गृह्यते विश्वान्येव तेन कर्माणि यजमाना अव रुन्धत आदित्यो (१) गृह्यत इयं वा अदितिरस्यामेव प्रति तिष्ठन्त्य—न्योऽन्यो गृह्येते मिथुनत्वाय प्रजात्या अवान्तरं वै दशरात्रेण प्रजापतिः प्रजा असृजत यद्दशरात्रो भवति प्रजा एव तद्यजमानाः सृजन्त एताꣳ ह वा उदङ्कः शौल्बायनः सत्रस्यर्द्धिमुवाच यद्दशरात्रो यद्दशरात्रो भवति सत्रस्यर्द्ध्या अथो यदेव पूर्वेष्वहःसु विलोम क्रियते तस्यैवै-(२)-षा शान्तिः ॥ (आदित्य,- स्तस्यैव, द्वे च) ॥ ४ ॥

महाव्रतेन प्रवृत्तयोर्द्वयोर्गवामयनयोर्विशेषः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

यदि सोमौ सꣳसुतौ स्यातां महति रात्रियै प्रातरनुवाकमुपाकुर्यात् पूर्वो वाचं पूर्वो देवताः पूर्वश्छन्दाꣳसि वृङ्क्ते वृषण्वतीं प्रतिपदं कुर्यात् प्रातःसवनादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्तेऽथो खल्वाहुः सवनमुखे सवनमुखे कार्येति सवनमुखात्सवनमुखादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्ते संवेशायोपवेशाय गायत्रियास्त्रिष्टुभो जगत्या अनुष्टुभः पङ्क्त्या अभिभूत्यै स्वाहा छन्दाꣳसि वै संवेश उपवेशश्छन्दोभिरेवैषां (१) छन्दाꣳसि वृङ्क्ते सजनीयꣳ शस्यं विहव्यꣳ शस्यमगस्त्यस्य कयाशुभीयꣳ शस्यमेतावद्वा अस्ति यावदेतद्यावदेवास्ति तदेषां वृङ्क्ते यदि प्रातःसवने कलशो दीर्येत वैष्णवीषु शिपिविष्टवतीषु स्तुवीरन् यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते विष्णुं तच्छिपिविष्टमभ्यति रिच्यते तद्विष्णुः शिपिविष्टोऽतिरिक्त एवातिरिक्तं दधात्यथो अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्त्वाऽव (२) रुन्धते यदि मध्यंदिने दीर्येत वषट्कारनिधनꣳ साम कुर्युर्वषट्कारो वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा प्रतिष्ठामेवैनद्गमयन्ति यदि तृतीयसवन एतदेव ॥ (छन्दोभिरेवैषा,- मवैकावꣳशतिश्च) ॥ ५ ॥

गवामयनस्य गुणविकाररूपोऽहरुत्सर्गः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

षडहैर्मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति षडहैर्हि मासान्त्संपश्यन्त्य—र्धमासैर्मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यर्धमासैर्हि मासान्त्संपश्यन्त्य—मावास्यया मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्त्यमावास्यया हि मासान्त्संपश्यन्ति पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्या हि मासान्त्संपश्यन्ति यो वै पूर्ण आसिञ्चति परा स सिञ्चति यः पूर्णादुदचति (१) प्राणमस्मिन्त्स दधाति यत् पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति संवत्सरायैव तत् प्राणं दधति तदनु सत्रिणः प्राणन्ति यदहर्नोत्सृजेयुर्यथा दृतिरुपनद्धो विपतत्येवꣳ संवत्सरो वि पतेदार्तिमार्च्छेयुर्यत् पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति संवत्सरायैव तदुदानं दधति तदनु सत्रिण उ-(२)-दनन्ति नाऽऽर्तिमार्च्छन्ति पूर्णमासे वै देवानाꣳ सुतो यत् पौर्णमास्या मासान्त्संपाद्याहरुत्सृजन्ति देवानामेव तद्यज्ञेन यज्ञं प्रत्यवरोहन्ति वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यत् षडहसंततꣳ संतमथाहरुत्सृजन्ति प्राजापत्यं पशुमा लभन्ते प्रजापतिः सर्वा देवता देवताभिरेव यज्ञꣳ सं तन्वन्ति यन्ति वा एते सवनाद्येऽह-(३)-रुत्सृजन्ति तुरीयं खलु वा एतत् सवनं यत् सांनाय्यं यत् सांनाय्यं भवति तेनैव सवनान्न यन्ति समुपहूय भक्षयन्त्येतत् सोमपीथा ह्येतर्हि यथायतनं वा एतेषाꣳ सवनभाजो देवता गच्छन्ति येऽहरुत्सृजन्त्यनुसवनं पुरोडाशान् निर्वपन्ति यथायतनादेव सवनभाजो देवता अव रुन्धतेऽष्टाकपालान् प्रातःसवन एकादशकपालान्

माध्यंदिने सवने द्वादशकपालाꣳस्तृतीयसवने छन्दाꣳस्येवाऽऽप्त्वा (४) ऽव रुन्धते वैश्वदेवं चरुं तृतीयसवने निर्वपन्ति वैश्वदेवं वै तृतीयसवनं तेनैव तृतीयसवनान्न यन्ति ॥ (उदचत,- उ,- येऽह,- राप्त्वा, पञ्चदश च) ॥ ६ ॥

उत्सर्गिणामयनमीमांसा ॥ १४ बृहती । विश्वेदेवा ऋषयः ।

उत्सृज्यां३ नोत्सृज्या३मिति मीमाꣳसन्ते ब्रह्मवादिनस्तद्वाहुरुत्सृज्यमेवेत्य—मावास्यायां च पौर्णमास्यां चोत्सृज्यमित्याहुरेते हि यज्ञं वहत इति ते त्वाव नोत्सृज्य इत्याहुर्ये अवान्तरं यज्ञं भेजाते इति या प्रथमा व्यष्टका तस्यामुत्सृज्यमित्याहुरेष वै मासो विशर इति नाऽऽदिष्ट-(१)-मुत्सृजेयु—र्यदादिष्टमुत्सृजेयुर्यादृशे पुनः पर्याप्लावे मध्ये षडहस्य संपद्येत षडहैर्मासान्त्संपाद्य यत् सप्तममहस्तस्मिन्नुत्सृजेयु—स्तदग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेयुरैन्द्रं दधीन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादशकपालं वैश्वदेवं द्वादशकपालं—मग्नेर्वै वसुमतः प्रातःसवनं यदग्नये वसुमते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति (२) सवनमष्टाभिरुप यन्ति यदैन्द्रं दधि भवतीन्द्रमेव तद्भागधेयान्न च्यावयन्ती—न्द्रस्य वै मरुत्वतो माध्यंदिनꣳ सवनं यदिन्द्राय मरुत्वते पुरोडाशमेकादशकपालं निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति सवनमेकादशभिरुप यन्ति विश्वेषां वै देवानामृभुमतां तृतीयसवनं यद्वैश्वदेवं द्वादशकपालं निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्ति सवनं द्वादशभि-(३)-रुप यन्ति प्राजापत्यं पशुमा लभन्ते यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञस्यानुसर्गाया—भिवर्त इतः षण्मासो ब्रह्मसामं भवति ब्रह्म वा अभिवर्तो ब्रह्मणैव तत् सुवर्गं लोकमभिवर्तयन्तो यन्ति प्रतिकूलमिव हीतः सुवर्गो लोक—

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि

—त्यमु-(४)-त्र आयताꣳ षण्मासो ब्रह्मसामं भवत्ययं वै लोको ज्योतिः प्रजा ज्योतिरिममेव तल्लोकं पश्यन्तोऽभिवदन्त आ यन्ति ॥ (नाऽऽदिष्टं,- कुर्वन्ति, द्वादशभि,- रिति, विꣳशतिश्च) ॥ ७ ॥

गवामयनस्य वान्तिमदिनगते सामविशेषाः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

देवानां वा अन्तं जग्मुषामिन्द्रियं वीर्यमपाक्रामत् तत् क्रोशेनावारुन्धत तत् क्रोशस्य क्रोशत्वं यत् क्रोशेन चात्वालस्यान्ते स्तुवन्ति यज्ञस्यैवान्तं गत्वेन्द्रियं वीर्यमव रुन्धते सत्रस्यर्द्ध्याऽऽहवनीयस्यान्ते स्तुवन्त्यग्निमेवोपद्रष्टारं कृत्वर्द्धिमुप यन्ति प्रजापतेर्हृदयेन हविर्धानेऽन्तः स्तुवन्ति प्रेमाणमेवास्य गच्छन्ति श्लोकेन पुरस्तात् सदसः (१) स्तुवन्त्यनुश्लोकेन पश्चाद्यज्ञस्यैवान्तं गत्वा श्लोकभाजो भवन्ति नवभिरध्वर्युरुद्गायति नव वै पुरुषे प्राणाः प्राणानेव यजमानेषु दधाति सर्वा ऐन्द्रियो भवन्ति प्राणेष्वेवेन्द्रियं दधत्य—प्रतिहृताभिरुद्गायति तस्मात् पुरुषः सर्वाण्यन्यानि शीर्ष्णोऽङ्गानि प्रत्यञ्चति शिर एव न पञ्चदशꣳ रथंतरं भवतीन्द्रियमेवाव रुन्धते सप्तदशं (२) बृहदन्नाद्यस्यावरुद्ध्या अथो प्रैव तेन जायन्ते पत्नय उप गायन्ति मिथुनत्वाय प्रजात्यै प्रजापतिः प्रजा एकविꣳशं भद्रं द्विपदासु प्रतिष्ठित्यै

असृजत सोऽकामयताऽऽसामहꣳ राज्यं परीयामिति तासाꣳ राजनेनैव राज्यं पर्यैत् तद्राजनस्य राजनत्वं यद्राजनं भवति प्रजानामेव तद्यजमाना राज्यं परि यन्ति पञ्चविꣳशं भवति प्रजापते-(३)-राप्त्यै पञ्चभिस्तिष्ठन्तः स्तुवन्ति देवलोकमेवाभि जयन्ति पञ्चभिरासीना मनुष्यलोकमेवाभि जयन्ति दश सं पद्यन्ते दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराजैवान्नाद्यमव रुन्धते पञ्चधा विनिषद्य स्तुवन्ति पञ्च दिशो दिक्ष्वेव प्रति तिष्ठन्त्ये—कैकयाऽस्तुतया समायन्ति दिग्भ्य एवान्नाद्यꣳ सं भरन्ति ताभिरुद्गातोद्गायति दिग्भ्य एवान्नाद्यं (४) संभृत्य तेज आत्मन् दधते तस्मादेकः प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यवत्यथो यथा सुपर्ण उत्पतिष्यञ्छिर उत्तमं कुरुत एवमेव तद्यजमानाः प्रजानामुत्तमा भवन्त्या—सन्दीमुद्गाताऽऽरोहति साम्राज्यमेव गच्छन्ति प्लेङ्खꣳ होता नाकस्यैव पृष्ठꣳ रोहन्ति कूर्चावध्वर्युर्ब्रध्नस्यैव विष्टपं गच्छन्त्येतावन्तो वै देवलोकास्तेष्वेव यथापूर्वं प्रति (५) तिष्ठन्त्यथो आक्रमणमेव तत् सेतुं यजमानाः कुर्वते सुवर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥ (सदसः, सप्तदशं, प्रजापते,- र्गायति दिग्भ्य एवान्नाद्यं, प्रति,- कादश च) ॥ ८ ॥

शततन्तुवीणादिविधिः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

अर्कयेण वै सहस्रशः प्रजापतिः प्रजा असृजत ताभ्य इलान्देनेरां लूतामवारुन्ध यदर्क्यं भवति प्रजा एव तद्यजमानाः सृजन्त इलान्दं भवति प्रजाभ्य एव सृष्टाभ्य इरां लूतामव रुन्धते तस्माद्याꣳ समाꣳ सत्रꣳ समृद्धं क्षोधुकास्ताꣳ समां प्रजा इषꣳ ह्यासामूर्जमाददते याꣳ समां व्यृद्धमक्षोधुकास्ताꣳ समां प्रजा (१) न ह्यासामिषमूर्जमाददत उत्क्रोदं कुर्वते यथा बन्धान्मुमुचाना उत्क्रोदं कुर्वत एवमेव तद्यजमाना देवबन्धान्मुमुचाना उत्क्रोदं कुर्वत इषमूर्जमात्मन् दधाना वाणः शततन्तुर्भवति शतायुः पुरुषः शतेन्द्रिय आयुष्येवेन्द्रिये प्रति तिष्ठन्त्या—जिं धावन्त्यनभिजितस्याभिजित्यै दुन्दुभीन्त्समाघ्नन्ति परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ परमामेव (२) वाचमव रुन्धते भूमिदुन्दुभिमा घ्नन्ति यैवेमां वाक् प्रविष्टा तामेवाव रुन्धतेऽथो इमामेव जयन्ति सर्वा वाचो वदन्ति सर्वासां वाचामवरुद्ध्या आर्द्रे चर्मन् व्यायच्छेते इन्द्रियस्यावरुद्ध्या आऽन्यः क्रोशति प्रान्यः शꣳसति य आक्रोशति पुनात्येवैनान्त्स यः प्रशꣳसति पूतेष्वेवान्नाद्यं दधात्यृ—षिकृतं च (३) वा एते देवकृतं च पूर्वैर्मासैरव रुन्धते यद्भूतेच्छदाꣳ सामानि भवन्त्युभयस्यावरुद्ध्यै यन्ति वा एते मिथुनाद्ये संवत्सरमुपयन्त्यन्तर्वेदि मिथुनौ सं भवतस्तेनैव मिथुनान्न यन्ति ॥ (व्यृद्धमक्षोधुकास्ताꣳ समां प्रजाः, परमामेव, च, त्रिꣳशच्च) ॥ ९ ॥

दासीनृत्यम् ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

चर्मावभिन्दन्ति पाप्मानमेवैषामव भिन्दन्ति माऽप रात्सीर्माऽति व्यात्सीरित्याह संप्रत्येवैषां पाप्मानमव भिन्दन्त्यु—दकुम्भानधिनिधाय दास्यो मार्जालीयं परि नृत्यन्ति पदो निघ्नतीरिदंमधुं गायन्त्यो मधु वै देवानां परममन्नाद्यं परममेवान्नाद्यमव रुन्धते पदो नि घ्नन्ति महीयामेवैषु दधति ॥ (चर्मावभिन्दन्ति) ॥ १० ॥

अश्वमेधाङ्गा अन्नहोममन्त्राः ॥ विश्वेदेवा ऋषयः ।

पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा संप्लोष्यते स्वाहा संप्लवमानाय

स्वाहा संप्लुताय स्वाहा मेघायिष्यते स्वाहा मेघायते स्वाहा मेघिताय स्वाहा मेघाय स्वाहा नीहाराय स्वाहा निहाकाय स्वाहा प्रासचाय स्वाहा प्रचलाकाय स्वाहा विद्योतिष्यते स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा संविद्योतमानाय स्वाहा स्तनयिष्यते स्वाहा स्तनयते स्वाहो-ग्र२ स्तनयते स्वाहा वर्षिष्यते स्वाहा वर्षते स्वाहा ऽभिवर्षते स्वाहा परिवर्षते स्वाहा संवर्षते (१) स्वाहा ऽनुवर्षते स्वाहा शीकायिष्यते स्वाहा शीकायते स्वाहा शीकिताय स्वाहा प्रोषिष्यते स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा परिप्रुष्णते स्वाहो-द्ग्रहीष्यते स्वाहो-द्गृह्णते स्वाहो-द्गृहीताय स्वाहा विप्लोष्यते स्वाहा विप्लवमानाय स्वाहा विप्लुताय स्वाहा ऽऽतप्स्यते स्वाहा ऽऽतपते स्वाहो-ग्रमातपते स्वाहा-ऋग्भ्यः स्वाहा यजुर्भ्यः स्वाहा सामभ्यः स्वाहा ऽङ्गिरोभ्यः स्वाहा वेदेभ्यः स्वाहा गाथाभ्यः स्वाहा नाराशंसीभ्यः स्वाहा रैभीभ्यः स्वाहा (२) सर्वस्मै स्वाहा ॥ (संप्लुते, रैभीभ्यः स्वाहा, द्वे च) ॥११॥

सर्वाङ्गहोममन्त्राः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

दत्वते स्वाहा ऽदन्तकाय स्वाहा प्राणिने स्वाहा ऽप्राणाय स्वाहा मुखवते स्वाहा ऽमुखाय स्वाहा नासिकवते स्वाहा ऽनासिकाय स्वाहा ऽक्षण्वते स्वाहा ऽनक्षिकाय स्वाहा कर्णिने स्वाहा ऽकर्णकाय स्वाहा शीर्षण्वते स्वाहा ऽशीर्षकाय स्वाहा पद्वते स्वाहा ऽपादकाय स्वाहा प्राणते स्वाहा-ऽप्राणते स्वाहा वदते स्वाहा ऽवदते स्वाहा पश्यते स्वाहा ऽपश्यते स्वाहा शृण्वते स्वाहा ऽशृण्वते स्वाहा मनस्विने स्वाहा (१) ऽमनसे स्वाहा रेतस्विने स्वाहा ऽरेतस्काय स्वाहा प्रजाभ्यः स्वाहा प्रजननाय स्वाहा लोमवते स्वाहा ऽलोमकाय स्वाहा त्वचे स्वाहा ऽत्वक्काय स्वाहा चर्मण्वते स्वाहा ऽचर्मकाय स्वाहा लोहितवते स्वाहा ऽलोहिताय स्वाहा मांसन्वते स्वाहा ऽमांसकाय स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा ऽस्नावकाय स्वाहा ऽस्थन्वते स्वाहा ऽनस्थिकाय स्वाहा मज्जन्वते स्वाहा ऽमज्जकाय स्वाहा ऽङ्गिने स्वाहा ऽनङ्गाय स्वाहा ऽऽत्मने स्वाहा ऽनात्मने स्वाहा (२) सर्वस्मै स्वाहा ॥ (मनस्विने स्वाहा, ऽनात्मने स्वाहा, द्वे च) ॥ १२ ॥

परिधिमन्त्राः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तु विष्णुस्त्वा युनक्त्वस्य यज्ञस्यर्द्ध्यै मह्यꣳ संनत्या अमुष्मै कामायाऽऽयुषे त्वा प्राणाय त्वा ऽपानाय त्वा व्यानाय त्वा व्युष्ट्यै त्वा रय्यै त्वा राधसे त्वा घोषाय त्वा पोषाय त्वा ऽऽराद्घोषाय त्वा प्रच्युत्यै त्वा ॥ (कोऽष्टाविꣳशतिः) ॥१३॥

सर्वपृष्ठेष्टिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तराय वासन्तायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हताय ग्रैष्मायै-

कादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो वार्षिकेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्याꣳ शारदाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय हैमन्तिकाय चरुः सवित्र आतिच्छन्दसाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय शैशिराय द्वादशकपालो ऽदित्यै विष्णुपत्न्यै चरु-रग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो ऽनुमत्यै चरुः काय एककपालः ॥ (अग्नये गायत्रायादित्या अनुमत्यै चरुः सप्तचत्वारिꣳशत्) ॥ १४ ॥

सर्वपृष्ठेष्टिप्रयोगः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वा अग्नावग्निः प्रह्रियते यश्च सोमो राजा तयोरेष आतिथ्यं यदग्नीषोमीयोऽथैष रुद्रो यश्चीयते यत् संचितेऽग्नावेतानि हवीꣳषि न निर्वपेदेष एव रुद्रोऽशान्त उपोत्थाय प्रजां पशून् यजमानस्याभि मन्येत यत् संचितेऽग्नावेतानि हवीꣳषि निर्वपति भागधेयेनैवैनꣳ शमयति नास्य रुद्रोऽशान्त (१) उपोत्थाय प्रजां पशूनभि मन्यते दश हवीꣳषि भवन्ति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी प्राणानेव यजमाने दधात्यथो दशाक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रति तिष्ठत्यृ-तुभिर्वा एष छन्दोभिः स्तोमैः पृष्ठैश्चेतव्य इत्याहुर्यदेतानि हवीꣳषि निर्वपत्यृतुभिरेवैनं छन्दोभिः स्तोमैः पृष्ठैश्चिनुते दिशः सुषुवाणेनाꣳभिजित्या इत्याहुर्यदेतानि हवीꣳषि निर्वपति दिशामभिजित्या एतया वा इन्द्रं देवा अयाजयन् तस्मादिन्द्रसव एतया मनुं मनुष्यास्तस्मान्मनुसवो यथेन्द्रो देवानां यथा मनुर्मनुष्याणामेवं भवति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजते दिग्वतीः पुरोऽनुवाक्या भवन्ति सर्वासां दिशामभिजित्यै ॥ (अशान्त इत्याहुः, सुषुवाणेनै,-कचत्वारिꣳशच्च) ॥ १५ ॥

[१६-१७] महिमग्रहः ॥ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्य ते द्यौर्महिमा नक्षत्राणि रूपमादित्यस्ते तेजस्तस्मै त्वा महिम्ने प्रजापतये स्वाहा ॥ (यः प्राणतो द्यौरादित्योऽष्टाविꣳशतिः) ॥ १६ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्य ते पृथिवी महिमौषधयो वनस्पतयो रूपमग्निस्ते तेजस्तस्मै त्वा महिम्ने प्रजापतये स्वाहा ॥ (य आत्मदा पृथिव्यग्नि,-रेकान्नचत्वारिꣳशत्) ॥१७॥

ब्रह्मवर्चसहोमः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायता-मास्मिन् राष्ट्रे राजन्य इषव्यः शूरो महारथो जायतां दोग्ध्री धेनु-र्वोढाऽनड्वा-नाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवा ऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलिन्यो न ओषधयः पच्यन्तां

योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ (आ ब्रह्मन्नेकचत्वारिꣳशत्) ॥ १८ ॥

अश्वानुमन्त्रणम् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आऽक्रान् वाजी पृथिवीमग्निं युजमकृत वाजयर्वा ऽऽक्रान् वाज्यन्तरिक्षं वायुं युजमकृत वाज्यर्वा द्यां वाज्याऽक्रꣳस्त सूर्यं युजमकृत वाज्यर्वा ऽग्निस्ते वाजिन् युङ्ङनु त्वा ऽऽरभे स्वस्ति मा सं पारय वायुस्ते वाजिन् युङ्ङनु त्वा ऽऽरभे स्वस्ति मा सं (१) पारया ऽऽदित्यस्ते वाजिन् युङ्ङनु त्वा ऽऽरभे स्वस्ति मा सं पारय प्राणधृगसि प्राणं मे दृꣳह व्यानधृगसि व्यानं मे दृꣳहा-पानधृगस्यपानं मे दृꣳह चक्षुरसि चक्षुर्मयि धेहि श्रोत्रमसि श्रोत्रं मयि धेह्या-युरस्यायुर्मयि धेहि ॥ (वायुस्ते वाजिन् युङ्ङनु त्वा ऽऽरभे स्वस्ति मा सं, त्रिचत्वारिꣳशच्च) ॥ १९ ॥

अश्वहोममन्त्राः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

जज्ञि बीजं वर्ष्टा पर्जन्यः पक्ता सस्यꣳ सुपिप्पला ओषधयः स्वधिचरणेयꣳ सूपसदनोऽग्निः स्वध्यक्षमन्तरिक्षꣳ सुपावः पवमानः सूपस्थाना द्यौः शिवमसौ तपन् यथापूर्वमहोरात्रे पञ्चदशिनोऽर्धमासा-स्त्रिꣳशिनो मासाः क्लृप्ता ऋतवः शान्तः संवत्सरः ॥ (जज्ञि बीजं चतुर्विꣳशतिः) ॥ २० ॥

अश्वस्य रोगादिनिमित्ते प्रायश्चित्तिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

आग्नेयोऽष्टाकपालः सौम्यश्चरुः सावित्रोऽष्टाकपालः पौष्णश्चरू रौद्रश्चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो मृगाखरे यदि नाऽऽगच्छेदग्नयेऽꣳहोमुचेऽष्टाकपालः सौर्यं पयो वायव्य आज्यभागः ॥ (आग्नेयश्चतुर्विꣳशतिः) ॥ २१ ॥

मृगारेष्टिः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नयेऽꣳहोमुचेऽष्टाकपाल इन्द्रायाꣳहोमुच एकादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामागोमुग्भ्यां पयस्या वायोसावित्र आगोमुग्भ्यां चरु-रश्विभ्यामागोमुग्भ्यां धाना मरुद्भ्य एनोमुग्भ्यः सप्तकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्य एनोमुग्भ्यो द्वादशकपालो ऽनुमत्यै चरु-रग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो द्यावापृथिवीभ्यामꣳहोमुग्भ्यां द्विकपालः ॥ (अग्नयेऽꣳहोमुचे त्रिꣳशत्) ॥ २२ ॥

सन्नतिहोमाः । विश्वेदेवा ऋषयः ।

अग्नये समनमत् पृथिव्यै समनमद्यथाऽग्निः पृथिव्या समनमदेवं मह्यं भद्राः संनतयः सं नमन्तु वायवे समनमदन्तरिक्षाय समनमद्यथा वायुरन्तरिक्षेण सूर्याय समनम-द्दिवे समनमद्यथा सूर्यो दिवा चन्द्रमसे समनम-न्नक्षत्रेभ्यः समनमद्यथा चन्द्रमा नक्षत्रैर्वरुणाय समनम-दद्भ्यः समनमद्यथा (१) वरुणोऽद्भिः साम्ने समनम-दृचे समनमद्यथा साम्चा ब्रह्मणे समनमत् क्षत्राय समनमद्यथा ब्रह्म क्षत्रेण राज्ञे समनम-द्विशे समनमद्यथा राजा विशा रथाय समनम-दश्वेभ्यः समनमद्यथा रथोऽश्वैः प्रजापतये समनम-द्भूतेभ्यः समनमद्यथा प्रजापतिर्भूतैः समनमदेवं मह्यं

(२) भद्राः संनतयः सं नमन्तु ॥ (अग्नये समनमद्यथा, मह्यं, चत्वारि च) ॥ २३ ॥

यजमानेन वाचनीयः ॥ १ त्रिष्टुप् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

ये ते पन्थानः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवो वितता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च देव ब्रूहि ॥

नमोऽग्नये पृथिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि नमः सूर्याय दिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि ॥ (ये ते चतुश्चत्वारिꣳशत्) ॥ २४ ॥

विराड्रूपेणाश्वावयवप्रतिपादनम् । विश्वेदेवा ऋषयः ।

यो वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरो वेद शीर्षण्वान् मेध्यो भवत्यु-षा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाः श्रोत्रं दिशः पादा अवान्तरदिशाः पर्शवोऽहोरात्रे निमेषोऽर्धमासाः पर्वाणि मासाः संधानान्यृतवोऽङ्गानि संवत्सर आत्मा रश्मयः केशा नक्षत्राणि रूपं तारका अस्थानि नभो माꣳसान्योषधयो लोमानि वनस्पतयो वाला अग्निर्मुखं वैश्वानरो व्यात्तꣳ (१) समुद्र उदरमन्तरिक्षं पायुर्द्यावापृथिवी आण्डौ ग्रावा शेपः सोमो रेतो यज्जञ्जभ्यते तद्वि द्योतते यद्विधूनुते तत् स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वा-गहर्वा अश्वस्य जायमानस्य महिमा पुरस्ताज्जायते रात्रिरेनं महिमा पश्चादनु जायत एतौ वै महिमानावश्वमभितः सं बभूवतुर्हयो देवानवह-(२)-दर्वाऽसुरान् वाजी गन्धर्वानश्वो मनुष्यान्त्समुद्रो वा अश्वस्य योनिः समुद्रो [बन्धुः]* ॥ (व्यात्तं,-मवहद्, द्वादश च) ॥ २५ ॥

[नावो ३११। नार्वः १०२। यथे ८४। समान्यां १०२। यदि ११९। यद्दे- २१५। -ऽरमृगयां २२० देवानां- २६१। -मर्येन १८०। यमे ४९। पृथिव्यै १०२। दत्वते १०२। को ३८। ऽग्नये ४७। यो १४१। यो ३८। य ३९। आ ४१ आ ९३। जज्ञ- ३१। -ग्नये २४। ऽग्नये ३०। ऽग्नये १०४। ये ४४। यः ११२। पञ्चविꣳशतिः ॥ २६३१]

[॥ इति सप्तमकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

[प्रजननं २६२५। साध्याः २३३०। प्रजवं २१२३। बृहस्पति- २६२१। -गावः २६३१। पञ्च ॥ १२३३०]

॥ इति सप्तमं काण्डं सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥

[इषे १६५८२। वायव्यं १९२०३। प्रजापति- १०६२२। -युञ्जानः १४१०५। सावित्राणि १९४०४। प्राचीनवंशं १६९६२। प्रजननं १२१३०। सप्त ॥ १०९३०८]

॥ इति तैत्तिरीयसंहिता समाप्ता ॥

* 'समुद्रो बन्धुः' इत्यत्र संहितायां पदपाठे च 'बन्धु' रिति पदं वैदिका न पठन्ति, तथाऽपि भाष्यकारसंमतत्वात् 'व्यात्तमवहद्, द्वादश च' इति वैदिकसंप्रदायानुरोधिन्यां दशकोक्तद्वादशसंख्यापूरणार्थमादरणीयत्वात्रस्थापितम् ।

काठक संहिता

अथ यजुर्वेदीय--

काठक-संहिता।

अथ प्रथमं स्थानकम्।

पुरोडाशः।

इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्स्थोपायवस्स्थ देवो वस्सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ॥ आप्याय-
ध्वमघ्न्या देवभागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः ॥ मा वस्स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य
हेतिर्वृणक्तु ॥ ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि यजमानस्य पशुपा असि
॥ १ ॥ १-४

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे गोषदसि प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा-
रातिः प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहीन्द्रस्य परिपूतमसि
माघो मोपरि परुस्त ऋध्यासमाच्छेत्ता ते मा रिषत् ॥ देव बर्हिश्शतवल्शं विरोह सहस्रवल्शा वि
वयं रुहेम ॥ अदित्या रास्नासीन्द्राण्यास्संनहनं पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नातु सं ते मा स्थादिन्द्रस्य त्वा
बाहुभ्यामुद्यच्छे बृहस्पतेस्त्वा मूर्ध्नाहरामि देवङ्गममसि ॥ तदाहरन्ति कवयः पुरस्ताद्देवेभ्यो जुष्टमिह
बर्हिरासदे ॥ २ ॥ ५-९

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥ १०

अयक्ष्मा वः प्रजया संसृजामि रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः।

मधुमद् घृतवत् पिन्वमाना जीवा जीवन्तीरुप वस्सदेम ॥ ११

[१] मै. १,१,१। कपि. १,१। वा. १,१; १६,५०। काण्व. १,१-३; १७,५०। [मा वस्स्तेन ईशत माघशंसः। ऋ. ६,२८,७; अथर्व. ४,२१,७। परि वो (णो) रुद्रस्य० (हेती)। ऋ. २,३३,१४; अथर्व. ४,२१,७]

[२] मै. १,१,२(२-३,६)। कपि. १,२। वा. १,१०,२१,२४; २,११;५,१२,२६; ६,१,९,३०; ९,३०,३८; ११,९,२८; १८,३७;२०,३; २२,१; ३७,१; ३८,१,३; १,७,२९; ५,४३; १२,१००। काण्व. १,१३,३६,४०; २,२२; ५,२८, ३३; ६,१,१०,४३; १०,३९; ११,४; १२,९,२८; २०,७; २१,९३; २४,१; ३७,१;३८,१,३; १,१०,४६; ५,५५। [देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७। शतवल्शं (०ल्शो) विरोह सहस्रवल्शा... रुहेम। ऋ० ३,८,११; तै. सं. १,३,५,१]

[३] मै. १,१,३(७-१०)। कपि. १,३। वा. १,२-४। काण्व. १,४-५,७।

मातरिश्वनो घर्मोऽसि द्यौरसि पृथिव्यसि विश्वधाया: परेण धाम्नाहुतासि मा ह्वास्सा विश्वा-
युस्सा विश्वव्यचास्सा विश्वधाया हुतस्स्तोको हुतो द्रप्सोऽग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथि-
वीभ्याम् ॥ १२

संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिणा मधुमत्तमाः। मन्द्रा धनस्य सातयः ॥ १३

इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनातनच्म्यदस्तमसि विष्णवे विष्णो हव्यं रक्षस्वापो जागृत ॥ ३ ॥ १४

कर्मणे वां वानस्पत्यमसि प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टारातिः ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि धूरसि धूर्व धूर्वन्तं यो-
ऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्तं च धूर्व ॥ देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं
देवहूतमं विष्णोः क्रमोऽस्यहृतमसि हविर्धानं दृंहस्व मा ह्वार्मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्ष उरु त्वा वाताय
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामि यच्छन्तु त्वा पञ्च
रक्षायै त्वा नारात्या इदं देवानामिदं नस्सह स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरं दृंहन्तां दुर्यास्स्वाहा
पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षं प्रेह्यग्ने हव्यं रक्षस्व ॥ ४ ॥ १५-१७

विष्णोर्मनसा पूते स्थः ॥ देवो वस्सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ देवस्य
त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं प्रोक्षामि शुन्धन्तां पात्राणि देवयज्यायै
यदशुद्धः पराजघान तद्व एतेन शुन्धन्तामवधूतं रक्षोऽवधूतारातिरदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी
वेत्त्वधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृंहाग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं
देवताभ्यस्त्वा देववीतये गृह्णामि बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यस्स इदं देवेभ्यो हव्यं शम्नीष्व सुशमि
शमीष्वाद्रिरसि श्लोककृदपहतं रक्षोऽपहतारातिर्वयं संघातं संघातं संजयेम वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा
वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतं रक्षः परापूतारातिर्निरस्तो अघशंसो वायुर्व इप ऊर्जे विविनक्तु ॥ ५ ॥ १८-२०

अवधूतं रक्षोऽवधूतारातिरदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु धिषणासि पार्वती प्रति त्वादि-
त्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृंह धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पार्वती वेत्तु दिवं दृंह दिवस्स्कम्भधान्यमसि
धिनुहि देवान् धिनुहि यज्ञं धिनुहि यज्ञपतिं धिनुहि मां यज्ञन्यं प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय
त्वा दीर्घामनु समृतिमायुषे त्वा देवो वस्सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णात्वदब्धेन वश्चक्षुषावपश्यामि
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय ॥ ६ ॥ २१

[४] मै. १,१,४-५ (११-१२)। कपि. १,४। वा. १,६-११,२९। काण्व. १,९-१५,४६। [देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

[५] मै. १,१,६-७ (१३-१५)। कपि. १,५। वा. १,१२-१६,३१; ४,४; १०,६। काण्व. १,१६,१८-२६,४८-४९; ४,५; ११,१३।

[६] मै. १,१,७,११ (१५,२७)। कपि. १,६। वा. १,१६,१९-२०। काण्व. १,२६,३१-३४।

निर्दग्धं रक्षो निर्दग्धारातिरपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेधा देवयजनं वह ध्रुवमसि
पृथिवीं दृंहायुर्देहि प्राणं देहि सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह चक्षुर्देहि श्रोत्रं
देहि सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह धर्त्रमसि दिवं दृंहौजो देहि बलं देहि सजातानस्मै यजमानाय
पर्यूह धर्मासि दिशो दृंह रयिं देहि पोषं देहि सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह यन्त्रमस्याशा दृंह रूपं
देहि बलं देहि सजातानस्मै यजमानाय पर्यूह चितस्स्थ परिचितो यजमानस्य सजाता भृगूनामाङ्गिरसां
तपसा तप्यध्वम् ॥ २२

यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः। पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चताम् ॥ ७ ॥ २३

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं संवपामि समाप ओषधी-
भिस्समोषधयो रसेन मधुना मधुमतीः पृच्यन्तां यद्वो रेवती रेवत्यं यद्वो हविष्या हविष्यं यद्वो
जगतीर्जगत्यं तेनास्मै यज्ञपतय आशासाना मधुना मधुमतीस्संपृच्यध्वं जनयत्यै त्वा मखस्य
शिरोऽसि घर्मोऽसि विश्वायुरुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतां प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टारातिर्देवस्त्वा
सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधिनाकेऽग्निस्ते तन्वं मा हिंसीदग्ने ब्रह्म गृहीष्वैकताय स्वाहा द्विताय स्वाहा
त्रिताय स्वाहा ॥ ८ ॥ २४

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणस्सह-
स्रभृष्टिश्शततेजा वायुरसि तिग्मतेजाः पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गो-
स्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्विष्टि यं वयं
द्विष्मस्तमतो मा मौग्रप्सस्ते द्यां मा स्कान् व्रजं गच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः
परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्विष्टि यं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगररुर्यां मा पसद्
व्रजं गच्छ गोस्थानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान्
द्विष्टि यं वयं द्विष्मस्तमतो मा मौगपाररुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहि ॥ इमां नरः
कृणुत वो देवेभ्यो जुष्टामदित्या उपस्थे ॥ इमां देवा अजुषन्त विश्वे रायस्पोषा यजमानं विशन्तु ॥
वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदादि-
त्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद्वा असि स्वधा असि ॥ २५-२८

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीरदानुम्।

तामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदृश्यायजन्त कवयः ॥ ९ ॥ २९

[७] मै. १,१,८ (१६-१७)। कपि. १,७। वा. १,१७-१८। काण्व. १,२७-३०।

[८] मै. १,१,९ (१८-२२)। कपि. १,८। वा. १,२१-२३; ११,५७; ३७,८। काण्व. १,३६-३९; १२,१९; ३७,८।

[९] मै. १,१,१० (२३-२४)। कपि. १,९। वा. १,२४-२६,२८; ११,६०,६५; ४,१। काण्व. १,४८-४३,५५; १२,६१,६६; ४,१।

पृश्न्याः पयोऽसि तस्य तेऽक्षीयमानस्य पिन्वमानस्य पिन्वमानं निर्वपामि ॥ ३०

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्। अग्नेरनुव्रता भूत्वा संनह्य सुकृताय कम् ॥ ३१

अग्ने गृहपत उप मा ह्वयस्व देवानां पत्नीरुप मा ह्वयध्वमदितिरिव त्वा सुपुत्रोपनिषदेयमि-
न्द्राणीवाविधवेषे त्वादब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वायोर्जे त्वाग्नेर्जिह्वासि
सुपूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने त्वा यजुषे यजुषे हविरसि वैश्वानरमुम्नीतशुष्मं सत्यौजास्सहो नामासि
सहस्वारातिं सहस्व पृतनायतस्सहस्रवीर्यमसि तन्माजिन्वाज्यस्याज्यमसि हविषो हविस्सत्याभिघृ-
तमसि सत्येन त्वाभिघारयामि ॥ तेजोऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं
देवयजनं देवताभ्यस्त्वा यज्ञियेभ्यो गृह्णामि प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टारातिरनिशितास्स्थ सपत्नक्षयणी-
रायुः प्राणं मा निर्दक्षं वाजिनं त्वा वाजिन्वाजयत्यायै संमार्ज्मि चक्षुः श्रोत्रं मा निर्दक्षं वाजिनीं
त्वा वाजिनि वाजयत्यायै संमार्ज्मि प्रजां योनिं मा निर्दक्षं वाजिनीं त्वा वाजयत्यायै संमा-
र्ज्मि गोष्ठं यजमानस्य रायस्पोषं मा निर्दक्षं वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजयत्यायै संमार्ज्मि ॥ १० ॥
३२-३३

देवीरापो अग्रेगुवः प्रेमं यज्ञं नयत प्र यज्ञपतिं तिरत युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रम-
वृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षितास्स्थ कृष्णोऽस्याखरेष्ठा अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं
प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि पितृणां भागधेयीस्स्थोर्जा पृथिवीं गच्छत विष्णोस्स्तु-
पोऽस्यूर्णम्रदः प्रथस्व स्वासस्थं देवेभ्यो गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मादीषतो यजमानस्य परिधि-
रिड ईडित इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो यजमानस्य परिधिरिड ईडितो मित्रावरुणौ त्वा परिधत्तां
ध्रुवेण धर्मणेड ईडितम् ॥ ३४

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तस्समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३५

सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्याः। वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ ३६

सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणिर्वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदनमसि जुह्वेहि घृताची द्यौ-
र्जन्मनादितिरच्छिन्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीदोपभृदेहि घृताच्यन्तरिक्षं
जन्मनादितिरच्छिन्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ध्रुव एहि घृताची पृथिवी
जन्मनादितिरच्छिन्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीदर्षभोऽसि शाक्वरो वायु-

[१०] मै. १,१,११ (२५-२८)। कपि. १,१०। वा. १,२९-३१; १३,१। काण्व. १,४६-४९; १४,१। [आशासाना सौमनसं०...कम्। अथर्व. १४,१,४२]

[११] मै. १,१,११-१२ (२९-३५)। कपि. १,११। वा. १,१२-१३; २,१-६। काण्व. १,१७-१८, २,१-९। [वीतिहोत्रं त्वा कवे०। ऋ. ५,२६,३; सा. १५२३]

जन्मनादितिश्छिन्नपत्रः प्रियो देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद ध्रुवा असदृतस्य योनौ
सुकृतस्य लोके ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ ११ ॥ ३७

भुवनमसि विप्रथस्वाग्निर्यष्टेदं नमो जुह्वग्निस्त्वाह्वयति देवयज्याया उपभृदेहि देवस्त्वा सवि-
ताह्वयति देवयज्याया अग्ग्निणा विष्णू मा वामवक्रमिषं पाहि माग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भज
विजिहाथां मा मा संताप्तं लोकं मे लोककृतौ कृणुतं विष्णोस्स्थाम्न इत इन्द्रो वीर्यमकृणोत्॥ ऊर्ध्वो
अध्वरो दिविस्पृगहुतो यज्ञो यज्ञपतेः ॥ इन्द्रवान् बृहद्भास्स्वाहा ॥ सं ज्योतिषा ज्योतिर्वाजस्याहं
प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयोन्नयामि वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयासुं प्रतिनुदे ॥ ३८-४१

वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेनोदजीग्रभम् । अधा सपत्नां इन्द्रो मे निग्राभेनाधराँ अकः॥ ४२
उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवाँ अवीवृधत् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥ ४३

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वार्थं गिहाणा व्यन्तु वयः ॥ ४४

मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ । ततो नो वृष्टिमेरय ॥ ४५

अहीनः प्राणश्चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि ॥ ४६

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिरिध्यमानः ।
तं त एतमनु जोषं भराम्येष नेन्त्वदपचेतयातै ॥ ४७

अग्नेः पाथ उपेहीन्द्रस्य पाथ उपेहि विश्वेषां देवानां पाथ उपेहि यजमानं प्रथत ॥ ४८

सँस्रावभागास्स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः ।
यज्ञस्य गोपा उत रक्षितारस्स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ४९

अग्नेऽदब्धायोऽशीततनो पाहि विद्योत्पाहि प्रसित्याः पाहि दुरिष्ट्याः पाहि दुरद्मन्या अविषं नः
पितुं कृधि सुषदां योनीन् सुषदां पृथिवीं स्वाहा देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत
इमं देवयज्ञँ स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः ॥ १२ ॥ ५०

[५०]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां पुरोडाशो नाम प्रथमं स्थानकं संपूर्णम् ॥ १ ॥

[१२] मै. १,१,१३ (३६-४३)। कपि. १,१२। वा. २,८—९,१५—१८,२०—२१। काण्व. २,११—१२,१४—३०, ३६,३९; १७,६३—६४।

अथ द्वितीयं स्थानकम्।

अध्वरम् ।

आर्द्रदानवस्स्थ जीवदानवस्स्थोन्दतीरिह मावताप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे ओषधे
त्रायस्वैनं स्वधिते मैनँ हिंसीर्देवायुरिमान् प्रवपे स्वस्त्युत्तराँ अशीय ॥ १

शं न आपो धन्वन्याश्शं नस्सन्त्वनूप्याः । शं नस्समुद्रिया आपश्शमु नस्सन्तु कूप्याः॥ २
आपो अस्मान् मातरस्सूदयन्तु घृतेन मा घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वँ ह रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ ३

सोमस्य दात्रमसि तनूरसि तन्वं मे पाहि महीनां पयोऽस्यपामोषधीनां रसो वर्चोधा असि वर्चो
मे धेहि मित्रस्यासि कनीनिकान्तरहं त्वया द्वेषमन्तररातीर्दधे चक्षुर्धा असि चक्षुर्मे धेहि चित्पति-
स्त्वा पुनातु वाक्पतिस्त्वा पुनातु देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिस्तस्य
ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कं पुने तच्छकेयम् ॥ १ ॥ ४

आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहा मेधायै मनसे अग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहा सरस्व-
त्यै पूष्णे अग्नये स्वाहापो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष बृहस्पतये हविषा वि-
धेम स्वाहा ॥ ५

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वरेत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वरेत पुष्यतु ॥ ६

स्वाहेन्द्राग्नी द्यावापृथिवी आप ओषधय उरो अन्तरिक्षानु मे दीक्षां दीक्षापतयो मन्यध्वमनु
तपस्तपस्पतयोऽग्निश्च देव सूर्यश्चमूर्जं दधातन देव सवितस्त्वं दीक्षाणां दीक्षापतिरसीत्थं मा सन्तं
पाह्या मोदृचः पाहि ॥ २ ॥ ७

ऋक्सामयोश्शिल्पे स्थस्ते वामारभ आ मोदृचः पातँ शर्मासि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा
मा हिंसीः ॥ ८

इमां धियँ शिक्षमानस्य देव क्रतुं दक्षं वरुणँ सँशिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेयम् ॥ ९

[१] मै. १,२,१ (२—३,५—१०)। कपि. १,१३। वा. २,१६,२६; ३,१७; ४,१—४; ५,४२; ६,१५। काण्व. २, ३३,४८; ३,२३; ४.२—५; ५,५४; ६,२०। [आपो अस्मान् मातरः०...एमि। ऋ. १०,१७,१०; अथर्व. ६,५,१,२; तै. सं. १,२,१,१। चक्षुर्धा असि०। अथर्व. २,१७,६]

[२] मै. १,२,२ (११—१४,१६—१७)। कपि. १,१४। वा. ४,७-८; ५,६,४०; ११,६७; २२,२१। काण्व. ४,८-९; ५,८,५०; १२,६८; २४,२९। [विश्वो देवस्य नेतु०। ऋ. ५,५०,१; तै. सं. १,२,२,१; ४,१,९,१। अग्नये स्वाहा। अथर्व १९,४३,१]

[३] मै. १,२,२ (१४-१५,१७—१९,२१)। कपि. १,१५। वा. ४,६,९—१०; २१,६। काण्व. ४,७,१०—१३; २३, ६। [इमां धियँ शिक्षमान (०ण) स्य०। ऋ. ८,४२.३; तै. सं. १,२,२,२]

इमाँ सु नावमारुहमरित्रां पारयिष्णुम् । शतारित्राँ स्वस्तये ॥ १०
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसँ सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावँ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेम स्वस्तये ॥ ११

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि मा मा हिंसीस्सोमस्य नीविरसि मा मा हिंसीरि-
न्द्रस्य योनिरसि मा मा हिंसीः कृष्यै त्वा सुसस्यायै कृषि सुसस्यामुत्कृधि विष्णोश्शर्मासि
शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीर्नक्षत्राणां मातीकाशात् पाहि सुपस्था-
वा वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्योदृचस्स्वाहा यज्ञमनसस्स्वाहा दिवस्स्वाहा पृथिव्यास्स्वाहोरोरन्तरिक्षात्
स्वाहा वातात् प्रतिगृह्णामि यज्ञम् ॥ ३ ॥ १२

व्रतं कृणुत तच्छकेयम् ॥ १३

दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये । वर्चोधां विश्वधायसँ सुतीर्थां नो असद्वशे ॥ १४
ये देवा मनुजाता मनुयुजस्सुदक्षा दक्षपितरः । ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ॥ १५
अग्ने त्वँ सु जागृहि वयँ सु मन्दिषामहे । गोपाय नो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुरस्कृधि॥१६
त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १७

पृषा सनीनाँ सोमो राधसां रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवस्सविता वसोर्वसुदावा मा पृणन् पृन्यां
विराधिष्ट माहमायुषा वर्चसा विराधिषि ॥ देवीराषो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावाँस्तं वो मा
क्रमिषँ सक्षेमहि या ते यज्ञिया तनूस्तयारोह ॥ १८-१९

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥ २०
एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवा अजुषन्त विश्वे ।
ऋक्सामाभ्याँ संतरन्तो यजुर्भी रायस्पोषे समिषा मदेम ॥ ४ ॥ २१

इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्चस्तया संभव भ्राजं गच्छ ॥ जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे तस्या-
स्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा ॥ शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवँ हविरसि

[सुत्रामाणं पृथिवीं द्यां०। ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५]

[४] मै. १,२,३ (२२-२४,२६,२८-२९)। कपि. १,१६। वा. ४,२,११,१४,१६; ६,२७; ३,१४; १२,४२; १५,४६। काण्व. ४,१,१३-१६,१९,२२; ६,३९; ३,२०; १३,५३; १६,७८। [त्वमग्ने व्रतपा असि०। ऋ. ८,११,१; अथर्व. १९,५९,१; तै. सं. १,१,१४,४; १,२,३,१। अयं ते योनिर्ऋत्वियो०। ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०, १; तै. सं. १,५,५,२; ४,२,४,३; ३,७,१३,५; मै. ब्रा. १,२,१,१६; २,२,८,८]

[५] मै. १,२,४ (३०)। कपि. १,१७-१८। वा. ४,१७-२३; ६,९। काण्व. ४,२३-३१; ६,१०।

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि यज्ञियासि क्षत्रियास्यदितिरस्युभयतश्शीर्ष्णी सा मा सुप्राची
सुप्रतीची भव मित्रस्त्वा पदि बध्नातु पूषाध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षायानु त्वा माता मन्यतामनु पिता
नु भ्राता संगर्भ्योऽनु सखा संयूथ्यः ॥ सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमं रुद्रस्त्वावर्तयतु स्वस्ति
सोमसखा पुनरेहि वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि चन्द्रासि रुद्रासि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रम्णातु
रुद्रो वसुभिराचके पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजन इडायास्पदे घृतवति स्वाहेदमहं रक्षसो
ग्रीवा अपिकृन्तामीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्ताम्यस्मे रम-
स्वास्मे ते रायो मे रायस्तव तव रायो माहं रायस्पोषेण वियोषँ सं देवी देव्योर्वश्याख्यत सुरेता
रेतो दधानास्त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव संदृशि ॥५॥
२२-२५

देव सूर्य सोमं क्रेष्यामस्तं ते प्रब्रूमस्तं त्वं विश्वेभ्यो देवेभ्य क्रतून् कल्पय दक्षिणाः कल्पय
यथापि यथादेवतमास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रहः ॥ २६

अभि त्यं देवँ सवितारमोण्योः कविक्रतुम् । अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥
२७

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि । हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ २८
प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनु प्राणिहि सोमं ते क्रीणाम्यूर्जस्वन्तं पयस्वन्तं वीर्या-
वन्तं वर्हथं शोभमानम् ॥ शुक्रं ते शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन शक्म यत्ते गोर-
स्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णस्सहस्रपोषं पुष्यन्ती परमेण पशुना क्रीयसेऽस्मे ते बन्धु-
र्मित्रो न एहि सुमित्रधा इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तँ स्योनस्स्योनम् ॥ स्वानभ्राडङ्घारे
बम्भारे हस्त सुहस्त कृशान एते वस्सोमक्रयणास्तान् रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ २९-३१

उदायुषा स्वायुषोदस्थामोषधीनाम् । उत्पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थाममृताँ अनु ॥ ३२
उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ ३३

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥
३४

अदित्यास्त्वगस्यदित्यास्सदने सीद ॥ ३५

[६] मै. १,२,५-६ (३१-४०)। कपि. १,१९। वा. ४,२४-३२। काण्व. ४,३१-४४। [अभि त्यं देवँ०। श्रौ. सू. परि. अ. ४ सं. ६; अथर्व. ७,१४,१। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा०। श्रौ. सू. अ. ४ सं. ६; अथर्व. ७,१४,२। उदायुषा स्वायुषो०। श्रौ. सू. अ. १ सं. ३। अपि पन्थामगन्महि०। ऋ. ६,५१,१६; तै. सं. १,२,९,१]

अस्तभ्नाद् द्यामृषभो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३६
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्न्यासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ३७
सूर्यस्य चक्षुरारुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकाम् । यदेतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता॥६॥ ३८
उस्रा एतं धूर्षाहौ अनवीरहणा अनश्रू ब्रह्मचोदनौ यज्ञस्यायुः प्रतिरन्तौ स्वस्ति गृहान् गच्छतं
धूरसि धूर्व धूर्वन्तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्तं च धूर्व वारुणमसि वरुणस्य स्कम्भ-
न्यसि प्रच्यवस्व भुवनस्पते विश्वान्यभि धामानि मा त्वा परिपरिणो विदन्मा परिपन्थिनो मा त्वा
वृका अघायवो विदन् ॥ श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य नो गृहं संस्कृतम् ॥ ३९--४०
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ ४१
वारुणमसि वरुणस्त्वोत्तभ्नातु वरुणस्य स्कम्भसर्जन्यसि प्रमुक्तो वरुणस्य पाशो वरुणोऽसि
धृतव्रतोऽच्छिन्नपत्रः प्रजा उपावरोह वरुणस्यर्तसदनमस्यदित्यास्त्वगस्यदित्यास्सदने सीद ॥ ४२
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ४३
वारुणमसि वरुणाय त्वा ॥ ७ ॥ ४४
अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वातिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वाग्नये त्वा
रायस्पोषदे विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वापतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे
शक्मने शाक्कराय शक्मन्नोजिष्ठायानाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम-
ञ्जसा सत्यमुपागां सुविते मा धा अग्ने व्रतपा अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपाः पुनर्व्रतपा व्रतिनां व्रतानि
याग्ने मम तनूरेषा सा त्वयि या तव तनूरियं सा मयि सह नौ व्रतपा व्रतिनां व्रतानि ॥ या ते
अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि तस्यै ते स्वाहांशुरंशुस्ते देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविद आ तुभ्य-
मिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्वाप्यायय सखीन् सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्या-

[अस्तभ्नाद् द्यामृषभो० (०मसुरो०) : ऋ. ८,४२,१; ३,३०,९; तै. सं. १,२,८,१ । वनेषु व्यन्तरिक्ष०।
ऋ. ५,८५,२; तै. सं. १,२,८,१]
[७] मै. १,२,६ (४१-४७) । कपि. २,१ । वा. ४,३०,३३—३६; १०,२७; २०,२ । काण्व. ४.४२,४५-४८; ११.
३७; २१,९३ । [नमो मित्रस्य वरुणस्य० । ऋ. १०,३७,१; तै. सं. १,२,९,१ । निषसाद धृतव्रतो० ।
ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,१; तै. ब्रा. १,७,१०,२; २,६,५,१]
[८] मै. १,२,६-७ (४७-५७) । कपि. २,२-३ । वा. ५,१,४-८ । काण्व. ५,१,५-१२ ।
काठ. ९

मशीय स्वस्त्युदृचमशीय राय एष्टा वामानि प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्यै या ते
अग्नेऽयाशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचोऽपावधीत् त्वेषं वचोऽपावधीत् स्वाहा
या ते अग्ने रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचोऽपावधीत् त्वेषं
वचोऽपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥ ४५--४६
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे नार्यसीदमहं रक्षसो ग्रीवा
अपिकृन्तामीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि तप्तायन्यसि
वित्तायन्यस्यवतान्मा नाथितमवताद् व्यथितमग्ने अङ्गिरो योऽस्यां पृथिव्यामस्यायुना नाम्नेहि
यत्तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधेऽग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामस्यायुना
नाम्नेहि यत्तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे विदेदग्निर्नभो नाम सिंहासि महिष्यसि देवेभ्यः
प्रथस्व देवेभ्यः कल्पस्व देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ ४७
विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता अविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा विराजति ॥ ४८
इन्द्रघोषास्त्वा वसवः पुरस्तात् पान्तु मनोजवास्त्वा पितरो दक्षिणतः पान्तु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः
पश्चात् पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरात् पातु त्वष्टा त्वा रूपैरुपरिष्टात् पातु सिंहासि सपत्नसाही
स्वाहा सिंहासि रायस्पोषवनिस्स्वाहा सिंहासि सुप्रजावनिस्स्वाहा सिंह्यस्यादित्यवनिस्स्वाहा सिंह्यस्या-
वह देवान् देवायते यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा विश्वायुरसि पृथिवीं स्कभानाच्युतक्षिदस्यन्तरिक्षं
स्कभान ध्रुवक्षिदसि दिवं स्कभानाग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसि यज्ञः प्रत्यष्ठात् ॥ ४९
मनुष्वत्त्वा निधीमहि मनुष्वत्समिधीमहि । अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज॥९॥५०
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ५१
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषेथाम् ॥ ५२
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे ॥ ५३

[९] मै. १,२,८ (५८-५९) । कपि. २,३ । वा. ५,९-१३,२२,२६; ६,१; ३३,३० । काण्व. ५.१३—१८,२८,३३,
६,१; ३२,३० । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७ । विभ्राड् बृहत्पिबतु० । ऋ. १०,
१७०,१; सा. ६२८,१४५३ । मनुष्वत्त्वा निधीमहि० । ऋ. ५,२१,१; तै. ब्रा. ३,११,६,३]
[१०] मै. १,२,९ (६०-६१,६३-६४,६७-७१) । कपि. २,४ । वा. ५,१४-२१; ११,४; ३७,२ । काण्व. ५,१९-२२,
२४-२७; १२,४; ३७,२ । [युञ्जते मन उत० । ऋ. ५,८१,१; तै. सं. १,२,१३,१; ४,१,१,१; तै. आ. ४,२,१ ।
इदं विष्णुर्वि चक्रमे० । ऋ. १,२२,१७; सा. २२२,१६६९; अथर्व. ७,२६,४; तै. सं. १,२,१३,१; नि. १२,१९]

इडावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे यशस्ये ।
व्यष्टभ्ना रोदसी विष्ण एते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ५४
वैष्णवमसि विष्णुस्त्वोत्तभ्नातु ॥ ५५
दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ५६
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ ५७
विष्णोः पृष्ठमसि विष्णो ररराटमसि विष्णोश्श्नप्त्रे स्थो विष्णोस्स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णव-
मसि विष्णवे त्वा ॥ ५८
प्र तद्विष्णुस्स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ १० ५९
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृ-
न्तामीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि बृहन्नसि बृहद्रावा
बृहतीमिन्द्राय वाचं वद रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं तान् वलगानुद्वपामि यान्समानो यानस-
मानो निचखानेदमहं तान् वलगानुद्वपामि यान्सबन्धुर्यानसबन्धुर्निचखानेदमहं तान् वलगानुद्व-
पामि यान्सनाभिर्यानसनाभिर्निचखानेदमहं तान् वलगानुद्वपामि यान्स्वो यानरणो निचखान
राडसि विराडसि सम्राडसि स्वराडसि गायत्रेण च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मस्त्रैष्टुभेन जागतेनानुष्टुभेन
पाङ्क्तेन च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मः ॥ किमत्र भद्रं तन्नौ सह निरस्तो वलगोऽवबाढो दुरस्यं रक्षो-
घ्नो वलगघ्नः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवसिञ्चामि वैष्णवान् रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवस्तृणामि
वैष्णवान् रक्षोहणौ वलगहनौ प्रोक्षामि वैष्णवी रक्षोहणौ वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ
वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी रक्षोहा त्वा वलगहा प्रोक्षामि वैष्णवं रक्षोहा त्वा वलगहा स्तृणामि ६०-६१
वैष्णवं रक्षोघ्नो वलगघ्नस्संसादयामि वैष्णवान् ॥ ११ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपि-

[इडा (रा) वती धेनुमती० । ऋ. ७,९९,३; तै. सं. १,२,१३,१; तै. आ. १,८,१ । दिवो वा विष्ण उत० ।
अथर्व. ७,२६,८ । विष्णोर्नु कं वीर्याणि० । ऋ. १,१५४,१; अथर्व. ७,२६,१; तै. सं. १,२,१३,२ । प्र तद्वि-
ष्णुः स्तवते वीर्येण० । ऋ. १,१५४,२; अथर्व ७,२६,२-३ । तै. ब्रा. २,४,३,४; नि. १,२०]
[११] मै. १,२,१०-११ (७२,८०) । कपि. २,५ । वा. ५,२२-२५ । काण्व. ५,२८-३२ ।
[१२] मै. १,२,११ (७५—८०) । कपि. २,६ । वा. ५,२६—३० । काण्व ५,३३—३८ । [देवस्य त्वा सवितु० ।
अथर्व १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८७]

कृन्तामीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा
पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातिं पितृषदनं त्वा
लोकमास्तृणाम्युद् द्यां स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्यां नितानस्त्वा मारुतो निहन्तु मित्रावरु-
णयोर्ध्रुवेण धर्मणा ॥ ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं देववनिं सजातवनिं रायस्पोषवनिं पर्यूहामि ब्रह्म
दृंह क्षत्रं दृंह प्रजां दृंह रायस्पोषं दृंह घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेथां विश्वजनस्य च्छायासीन्द्रस्य
स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽस्यैन्द्रमसीन्द्राय त्वा ॥ ६२--६३
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ ६४
विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनश्श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदा उशिगसि कवि-
रङ्घारिरसि बम्भारिरवस्युरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्युरसि मार्जालीयस्सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽस्या-
स्तव्यो नभोऽसि प्रतक्वासंमृष्टोऽसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिस्समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजो-
स्यैकपादहिरसि बुध्न्यः कव्योऽसि कव्यवाहनो रौद्रेणानीकेन पाहि माग्ने पिपृहि माग्ने नमस्ते अस्तु
मा मा हिंसीः ॥ १३ ॥ ६५
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धश्शुक्र आहुतः ॥ ६६
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ६७
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ६८
त्वं नस्सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतस्सखा ॥ ६९
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ ७०
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ ७१
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ७२

[परि त्वा गिर्वणो० । ऋ. १,१०,१२; तै. सं. १,६,१,२]
[१३] मै. १,२,१२ (८१) । कपि. २,७ । वा. ५,३१—३४; ३,६३; १८,५३; २०,१; ३७,१०; ३८,१६ । काण्व. ५,
३९—४३; ४,११; २०,२३; २१,०.३; ३७,१९; ३८,१६ ।
[१४] वा. ३३,९; ३,२९; १९,३६; २३,१३ । काण्व. ३२,९; ३,३७; ११,३७ । [अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्० । ऋ. ६,
१६,३४; सा. ४,१३९६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१ । त्वं सोमासि सत्पतिः० । ऋ. १,९१,५; तै.
सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१ । अग्ने यं यज्ञमध्वरं० । ऋ. १,१,४; तै. सं. ४,१,११,१ । त्वं नस्सोम
विश्वतो रक्षा० । ऋ. १,९८,८; तै. सं. २,३,१४,१ । स त्वं विप्राय दाशुषे० । ऋ. ८,४३,१५ । वृषा सोम
द्युमाँ० । ऋ. ९,६४,१; सा. ५०४,७८१; तै. सं. ४,२,११,३; ४,३,१३,३ । आ नो अग्ने सुचेतु(न)ना० ।
ऋ. १,७९,९; सा. १५२६; तै. ब्रा. २,४,५,३]

गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रस्सोम नो भव ॥ ७३
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वितन्वते ॥ ७४
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं ददासि जीवसे ॥ ७५
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ ७६
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ७७
आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवा ॥ ७८
अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥ ७९
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयस्सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ८०
अप्स्वग्ने ॥ ८१
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥ ८२
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिष्पावक ईड्यः ॥ ८३
एषु षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ८४
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ ८५
उदग्ने शुचयस्तव ॥ ८६
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ ८७
अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ८८
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृडीको न आविश ॥ १४ ॥ ८९

[गयस्फानो अमीवहा० । ऋ. १,९१,१२; तै. सं. ४,३,१३,५ । त्वमग्ने सप्रथा असि० । ऋ. ५,१३,४; सा. १४०७; तै. ब्रा. २,४,१,६; नि. ६,७ । त्वं सोम महे भगं० । ऋ. १,९१,७; तै. ब्रा. २,४,५,३ । अग्ने रक्षा णो० । ऋ. ७,१५,१३; सा. २४; तै. ब्रा. २,४,१,६ । अग्ने नक्षत्रमजरमा० । ऋ. १०,१५६,४; सा. १५३० । आदित् प्रत्नस्य रेतसो० । ऋ. ८,६,३०; सा. २० । अग्निः प्रत्नेन मन्मना० । ऋ. ८,४४,१२; सा. १७११; तै. ब्रा. ३,५,६,१ । सोम यास्ते मयोभुव० । ऋ. १,९१,९; तै. सं. ४,१,११,१ । अप्स्वग्ने सधिष्टव० । ऋ. ८,४३,९; तै. सं. ४,२,३,२; ४,२,११,३ । अप्सु मे सोमो० । ऋ. १,२३,२०; १०,९,६; अथर्व. १,६,२; तै. ब्रा. २,५,८,६ । अग्नी रक्षांसि सेधति० । ऋ. ७,१५,१०; अथर्व. ८,३,२६; तै. ब्रा. २,४,१,६ । एषु षु ब्रवाणि० । ऋ. ६,१६,१६; सा. ७,००५ । इमं यज्ञमिदं वचो० । ऋ. १,९१,१०; १०,१५०,२ । उदग्ने शुचयस्तव० । ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४; तै. सं. १,३,१४,८; १,५,५,३; २,४,१४,४ । न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं० । ऋ. ५,२६,७ । अग्निमीडे (०ळे) पुरोहितं० । ऋ. १,१,१; तै. सं. ४,३,१३,३; नि. ७,१५ । सोम गीर्भिष्ट्वा वयं० । ऋ. १,९१,११; तै. ब्रा. ३,५,६,१; शाङ्ख्य ब्रा. १,५,७]

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ॥ ९०
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांसि ॥ ९१
सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ९२
सखायस्सं वस्सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ ९३
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् । अतूर्तं श्रावयत् पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ९४
अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ९५
प्रेद्धो अग्न इमो अग्ने ॥ ९६
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः । शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ९७
नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ९८
त्वां चित्रश्रवस्तम त्वामग्ने हविष्मन्तो वि पाजसा ॥ ९९
भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नस्सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥ १००
हव्यवाहमभिमातिषाहं रक्षोहणं पृतनासु जिष्णुम् ।
ज्योतिष्मन्तं दीद्यतं पुरंधिमग्निं स्विष्टकृतमाहुवेम ॥ १०१
स्विष्टमग्ने अभि तद्गृणीहि विश्वाश्च देव पृतना अभिष्याः ।
सुगं नु पन्थां प्रदिशन् विभाहि ज्योतिष्मद्धेह्यजरं न आयुः ॥ १०२
सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवां अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १०३

[१५] वा. ३३,१२; १५,२९—३१; १७,७६; १२,२२; २२,१७ । काण्व. ३२,१२; १६,५०—५३; १८,७६; १३,१३; २४,२२ । [जुष्टो दमूना अतिथिः० । ऋ. ५,४,५; अथर्व. ७,७३,९; तै. ब्रा. २,४,१,१; नि. ४,५ । अग्ने शर्ध महते० । ऋ. ५,२८,३; अथर्व. ७,७३,१०; तै. ब्रा. २,४,१,१; २,५,२,४ । सं समिद्युवसे० । ऋ. १०, १९१,१; अथर्व. ६,६३,४; तै. सं. २,६,११,४; ४,४,४,४ । सखायस्सं वः० । ऋ. ५,७,१; तै. सं. २,६,११,४; ४,४,४,३ । अग्निस्तुविश्रवस्तमं० । ऋ. ५,२५,५ । अग्निर्ददाति सत्पतिं० । ऋ. ५,२५,६ । प्रेद्धो अग्ने० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै. सं. ४,६,५,४ । इमो अग्ने० । ऋ. ७,१,१८; तै. सं ४,३,१३,६ । उत नो ब्रह्मन्नविष० । ऋ. ३,१३,६ । नू नो रास्व सहस्रवत्० । ऋ. ३,१३,७ । त्वां चित्रश्रवस्तम० । ऋ. १,४५,६; तै. सं. ४,४,४,३ । त्वामग्ने हविष्मन्तो० । ऋ. ५,९,१; तै. ब्रा. २,४,१,४ । भवा नो अग्नेऽवितोत० । ऋ. १०,७७ । सोमस्य मा तवसं० । ऋ. ३,१,१]

श्रीणामुदारः ॥ १०४
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्वस्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ १०५
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायस्सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ १०६
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यस्समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥ १०७
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात् समुद्राद्बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नस्सृजेह ॥ १०८
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षितामसुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ १०९
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ११०
विप्राहि देवां उशतो यविष्ठ विद्वां ऋतूंरृतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ १११
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्रवाम तदनु प्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान् स यजात्सेदु होता सो अध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ॥ ११२
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायास्सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥ ११३
सार्धामिकद्देवहूतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥ ११४

[श्रीणामुदारो० । ऋ. १०,४५,५; तै. सं. ४,२,२,३ । यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा० । ऋ. ४,१२,४; तै. सं. ४,७,१५,६ । महश्चिदग्न एनसो० । ऋ. ४,१२,५ । यं त्वा देवापिः शुशुचानो० । ऋ. १०,९८,८ । अग्ने बाधस्व वि मृधो० । ऋ. १०,९८,१२; तै. ब्रा. २,५,८,११ । यथा ह त्यद्वसवो० । ऋ. ४,१२,६; १०,१२६,८; तै. सं. ४,७,१५,७ । त्रीण्यायूंषि तव० । ऋ. ३,१७,३; तै. सं. ३,२,११,२ । विप्राहि देवां उशतो० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,२,७,५; ३,६,११,४ । आ देवानामपि पन्थां० । ऋ. १०,२,३; अथर्व. १९,५९,३; तै. सं. १,१,१४,३ । वि ज्योतिषा बृहता० । ऋ. ५,२,९; अथर्व. ८,३,२४; तै. सं. १,२,१४,७; नि. ४,१८ । सार्धामिकद्देवहूतिं०(०र्वीति) । ऋ. १०,५३,३; तै. सं. १,३,१४,२]

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुस्सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ११५
अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवां आसादयादिह ॥ ११६
अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १५ ॥ ११७
[१६७]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामध्वरं नाम द्वितीयं स्थानकं संपूर्णम् ॥ २ ॥

अथ तृतीयं स्थानकम् ।

ज्योतिरिकम् ।

ज्योतिरसि विश्वरूपं मरुतां पृषती देवेभ्यस्त्वा यज्ञियेभ्यो गृह्णामि ॥ १
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथम् ॥ २
स्वाहा जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ ४
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर ॥ ५
स्वाहोर्वन्तरिक्षं वीह्यदित्यास्त्वगस्यदित्यास्सदने सीद ॥ देव सवितरेष ते सोमस्तं रक्षस्व मा
त्वा दभन्नेतत्त्वं देव सोम देवानुपागा इदमहं मनुष्यान् सह प्रजया सह रायस्पोषेण नमो देवे-
भ्यस्स्वधा पितृभ्यो निर्द्रुहो निर्वरुणस्य पाशान्मुक्षीय स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरमग्ने व्रतपा
अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपा व्रतिनां व्रतानि याग्ने मम तनूस्त्वय्यभूदियं सा मयि या तव तनूर्मय्यभू-
देषा सा त्वयि यथायथं नो व्रतपा व्रतिनां व्रतानि स्वाहा यज्ञं मनसि स्वाहा दिवि स्वाहा पृथि-
व्यां स्वाहोरोरन्तरिक्षे स्वाहा वाते वाचि विसृजे ॥ १ ॥ ६-७
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर ॥ ८

[अग्निर्होता न्यसीदद्० । ऋ. ५,१,६; तै. ब्रा. १,३,१४,१ । अग्निं दूतं पुरोदधे० । ऋ. ८,४४,३ । अग्निर्होता पुरोहितो० । ऋ. ३,११,१]
[१] मै. १,२,१३ (८२-८७) । कपि. २,८ । वा. ५,३५-३६,३८-४१; ७,४३; ४०,१६ । काण्व. ५,४४-४५,४७-५१; ९,८; ४०,१८ । [त्वं सोम तनूकृद्भ्यो० । ऋ. ८,७९,३; तै. सं. १,३,४,१ । अग्ने नय सुपथा० । ऋ. १,१८९,१; (अथर्व. ४,३९,१०); तै. सं. १,१,१४,३; १,४,४३,१; तै. ब्रा. २,८,२,३; तै. आ. १,८,८; शत. ब्रा. १४,८,३,१; उरु विष्णो विक्रमस्व० । अथर्व, ७,२६,३; श्री. सू. पू. अ. ५, सं. १९]
[२] मै. १,२,१४ (८८—९१) । कपि. २,९ । वा. ४,१; ५,३८,४१—४३; ६,१५ । काण्व. ४,१; ५,४७,५१—५५; ६,२० । [उरु विष्णो विक्रमस्व० । अथर्व. ७,२६,३; श्री. सू. पू. अ. ५, सं. १९]

स्वाहात्यन्यान्गां नान्यांनुपागां यान्नाजुजोषं परि तानवृजमर्वाक्त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्य-
स्तं त्वा जुषामहे वनस्पते देवयज्यायै जुष्टं विष्णवे विष्णवे त्वा देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्वोषधे
त्रायस्वैनँ स्वधिते मैनँ हिंसीर्द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव ॥ ९

वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ॥ १०

यं त्वायं स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।
अच्छिन्नरायँ सुवीरः ॥ २ ॥ ११

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृ-
न्तामीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय
त्वा दिवे त्वा शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना यवोऽसि यावयास्मद्द्वेषं यावयारातिं पितृषदनं त्वा
लोकमास्तृणामि स्वावेशोऽस्यग्रेगा नेतृणां वनस्पतिस्त्वाधिष्ठास्यति तस्य वित्ताद् घृतेन द्यावापृथिवी
आपृणेथां देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पला ओषधीस्कृधि द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येना-
प्राः पृथिवीमुपरेणादृँहीः ॥ १२

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि ॥ १३

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १४

ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं देववनिं सजातवनिं रायस्पोषवनिं पर्यूहामि ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँह प्रजां दृँह
रायस्पोषं दृँह ॥ १५

तद्विष्णोः परमं पदँ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ १६

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं रायो मनुष्युमन्तरिक्षस्य सानूपेष द्यां ते धूमो
गच्छत्वन्तरिक्षमर्चिः पृथिवीं भस्म स्वाहा ॥ ३ ॥ १७

[ओषधे त्रायस्वैनँ स्वधिते० । एक्ष. सू. अ. १ सं. १७ । वनस्पते शतवल्शो०...सौभगाय । ऋ. ३, ८,११; तै. सं. १,३,५,१]

[३] मै. १,२,१४ (९१—१००) । कपि. २,१० । वा. ६,१-६; १०,३१; १३,३३; १९,३ । काण्व. ६,१-७; ११,४४; १४,३५; २१,२३ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७ । ता वां वास्तून्युश्मसि० । ऋ. १,१५४,६; तै. सं. १,३,६,१; नि. २,७ । विष्णोः कर्माणि पश्यत० । ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१; अथर्व. ७,२६,६; तै. सं. १,३,६,२ । तद्विष्णोः परमं पदं० । ऋ. १,२२,२०; सा. १६७२; अथर्व. ७,२६,७; तै. सं. १,३,६,२; ४,२,९,३]

इषे त्वोपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नय उशिजो बृहस्पते धारया वसूनि हव्या ते अस्वदन्
देव त्वष्टर्वसु रण रेवती रमध्वमग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि गायत्रं
छन्दोऽनुप्रजायस्व त्रैष्टुभं छन्दोऽनुप्रजायस्व जागतं छन्दोऽनुप्रजायस्व ॥ १८

भवतं नस्समनसौ समोकसा अरेपसौ ।
मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ १९

अग्ना अग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ४ ॥ २०

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन
प्रतिमुञ्चाम्यमुष्मै जुष्टं धर्षा मानुषँ अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता
सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य आवह देवान् देवयते यजमानायापां पेरुरसि स्वात्तँ हव्यं देवेभ्यो घृत-
वत् सं ते वायुः प्राणेन गच्छतां सं यजत्रैरङ्गानि सं यज्ञपतिराशिषा ॥ ५ ॥ २१

घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथां रेवति प्रेधा यज्ञपतिमाविशोरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन वातेनास्य हविष-
स्त्मना यज समस्य तन्वा भव वर्षीयो वर्षीयसो यज्ञं यज्ञपतौ धा नमस्त आतानानर्वा प्रेहि घृतस्य
कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण देवीरापश्शुद्धा यूयं देवान् यूद्ध्वं शुद्धा वयं परिविष्टाः परि-
वेष्टारो वो भूयास्म प्राणं ते मा हिंसिषं चक्षुस्ते मा हिंसिषँ श्रोत्रं ते मा हिंसिषं वाचं ते मा हिंसि-
षं यत्ते क्रूरतरं यदास्थितं तत्त एतेन कल्पतां तत्ते मा हिंसिषं चरित्रांस्ते मा हिंसिषं नाभिं ते मा
हिंसिषं मेढ्रं ते मा हिंसिषं पायुं ते मा हिंसिषं देवेभ्यश्शुन्धस्व समङ्क्ष्व ओषधे त्रायस्वैनँ स्वधिते
मैनँ हिंसी रक्षसां भागोऽसीदमहं रक्षोऽवबाध इदमहं रक्षोऽधमं तमो नयामीषे त्वोर्जे घृतेन द्यावा-
पृथिवी प्रोर्णुवाथां देवेभ्यश्शुन्धस्व देवेभ्यश्शुम्भस्वामुष्मै त्वा जुष्टामुर्वन्तरिक्षं वीहि वायो वेष्टो-
कानां प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्यष्टारातिर्देवेभ्यस्स्वाहा स्वाहा देवेभ्यः प्रयुता द्वेषाँसि स्वाह्नोर्ध्वनभसं मारुतं
गच्छतम् ॥ ६ ॥ २२

[४] मै. १,२,१५ (१०१) । कपि. २,११ । वा. ५,३—४; ६ ७—८, १३,३४; ३५,१९ । काण्व. ५,३—४; ६, ८-९; १४,३६, ३५,५२ । [अग्ना अ (०व) ग्निश्चरति प्रविष्ट० । अथर्व. ४,३९,९ (पूर्वार्धः) । देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् । ऋ. १०,१६,९; अथर्व. १२,२,८]

[५] मै. १,२,१५ (१०१) कपि. २,१२ । वा. ६,९-१०, ४,२० । काण्व. ६,१०—१२, ४,२६ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७ । अनु त्वा माता०...सयूथ्यः । ऐ. ब्रा. २,६]

[६] मै. १,२,१५—१६ (१०१,१०३—४; १०९—१३) । कपि. २,१३ । वा. ६,११—१६ । काण्व. ६,१३-२१ [ओषधे त्रायस्वैनँ स्वधिते० । एक्ष सू. अ. १ सं. १७]

रेडस्यग्निस्त्वा श्रीणात्वापस्समारिणन् वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रँह्या ऊष्मणोऽव्यथिष्या अपा-
मोषधीनां रोहिष्या ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्रो व्यानो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्रोऽपानो
अङ्गे अङ्गे निदीध्यत् ॥ २३

देव त्वष्टर्भूरि ते सँ समेतु सलक्ष्म यद्विषुरूपं बभूव ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायमनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २४

घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा त्वा वाताय दिशः
प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिशस्स्वाहा दिग्भ्यो नमो दिग्भ्यः ॥ ७ ॥ २५

समुद्रं गच्छ स्वाहान्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवं सवितारं गच्छ स्वाहाहोरात्रे गच्छ स्वाहा मित्रा
वरुणौ गच्छ स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा छन्दो गच्छ स्वाहा सोमं गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ
स्वाहा नभो गच्छ स्वाहाग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा मनो मे हार्दि यच्छ पुत्रं नप्तारमशीयौषधी-
भ्यस्स्वाहा ॥ धाम्नो धाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च यदापो अघ्न्या वरुणेति शपामहे ततो
वरुण नो मुञ्च ॥ २६-२७

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ २८

सुमित्रा ण आप ओषधयो भवन्तु दुर्मित्रास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २९

द्रीपे राज्ञो वरुणस्य गृहो हिरण्ययो मितः ।
ततो धृतव्रतो राजा धाम्नो धाम्न इह मुञ्चतु ॥ ८ ॥ ३०

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान् देवो अध्वरः ।
हविष्मां आविवासति हविष्मानस्तु सूर्यः ॥ ३१

अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि सुम्नायवस्सुम्न्याय सुम्न्यं धत्तेन्द्राग्न्योर्भागधेयीस्स्थ मि-
त्रावरुणयोर्भागधेयीस्स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयीस्स्थ सोमस्य वसतीवरीहृदे त्वा मनसे त्वा दिवे
त्वा सूर्याय त्वोर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ सोम राजन् विश्वाः प्रजा उपावरोह विश्वा-

[७] मै. १,२,१७ (११४—११५) कपि. २,१४ । वा. ६,१८—२० । काण्व. ६,२३—२५ ।

[८] मै. १,१,१८ (११६-१९) । कपि. २,१८ । वा. १,१५—१६, ६,२१-२२; १२,१२; २०,१९; ३५,१२, ३६,२३; ३८,२३ । काण्व. ६,२८—३२; १३,१३; २२.४; ३५,४५; ३६,२३, ३८.२३ । [धाम्नो धाम्नो राजन्नितो० । अथर्व. ७,८३,१; श्री. सू. अ. ३, सं. ६ । उदुत्तमं वरुण पाशं० । ऋ. १,२४,१५; सा. ५८९; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; नि. २,१३ । सुमित्रा ण आप० । श्री. सू. अ. ३, सं ६ । योऽस्मान् द्वेष्टि०...द्विष्मः । अथर्व. ३,२७,१—६; ७,८१,५ । द्रीपे (अप्सु मे) राज्ञो (राजन्) वरुणस्य० । अथर्व. ७,८३,१]

[९] मै. १,३,१, (१—६) । कपि. २,१६ । वा. ६,२३-२९; ८,१७ । काण्व. ६,३३—४१; ९,१७ ।

स्त्वा प्रजा उपावरोहन्तु ॥ ३२

शृणोत्वग्निस्समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
शृणोतु ग्रावाणो विदुषो नु यज्ञँ शृणोतु देवस्सविता हवं मे ॥ ३३

देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमस्तं देवेभ्यो देवत्रा दात शुक्रपेभ्यो
येषां भागस्स्थ स्वाहा कार्ष्यसि समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नये ॥ ३४

सं वो दधातु वरुणो मित्रो अग्निस्समिन्द्रस्सं बृहस्पतिः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणा यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ३५

यथाधूरन्धूरो धूर्भिः कल्पन्ताम् ॥ ३६

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ३७

स्वाहा वसूनां रुद्राणामादित्यानां पत्नेजनीस्स्थ ॥ वसवो रुद्रा आदित्या एता वः पत्नेजनीस्स-
मुद्रं गन्धर्वेष्ठामन्वातिष्ठथ वातस्य पत्मन्नीडिता वामी ते संदृशि विश्वं रेतो धिषीय तव वाम्यनु सं-
दृशि ॥ ९ ॥ ३८-३९

निग्राभ्यास्स्थ देवश्रुतश्शुक्राश्शुक्रभृत आयुर्मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत व्यानं मे तर्पयतापानं मे
तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत वाचं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत गृहान्
मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत तृप्ता मा तर्पयत प्रीता मा प्रीणीत ते मे मा वितृ-
पन् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ग्रावाध्वरकृद्देवेभ्य ऊर्ध्वमिम-
मध्वरं कृध्युत्तमेन पविनेन्द्राय सुषुतमं मधुमन्तं पयस्वन्तमिन्द्राय त्वाभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा सहोद
इन्द्राय त्वा वसुमत इन्द्राय त्वा रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा
श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृथिव्यां यदुरा अन्तरिक्षे तेनास्मै
यज्ञपतय उरु राये कृध्यधि धात्रे वोचश्श्वात्रास्स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीस्ता देवीर्देवत्रेमं
यज्ञं कृत्वोपहूतास्सोमस्य पिबत मा भेर्मा संविक्था धिषणे वीते वीडयेथामूर्जं दधथामूर्जमस्मासु
धत्तं मा वाँ हिंसिषं मा युवमस्मान् हिंसिष्टं प्रागपागुदगधराक्तास्त्वा दिश आधावन्त्वम्ब निस्वर
समरिविदः ॥ १० ॥ ४०[२०७]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां ज्योतिरिकं नाम तृतीयं स्थानकं संपूर्णम् ॥३॥

[त्वष्टा विष्णुः प्रजया० । अथर्व. ७,१७,४ (उत्तरार्धः) । यमग्ने पृत्सु मर्त्यं० । ऋ. १,२७,७; सा. १४१५; तै. सं. १,३,१३,२]

[१०] मै. १,३,२-३ (८-१३,१६) । कपि. २ १७ । वा. ६,३०-३६ । काण्व. ६,४३-६९ । [प्रागपागुदगधराक्त० । अथर्व. २०,१३४,१ ६]

अथ चतुर्थं स्थानकम् ।

ग्रहाः ।

वाचस्पतये पवस्व ॥ वाजिन् वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतो देवो देवानां पवित्रमसि येषां भागो-
ऽसि मधुमतीर्न इषस्कृधि स्वंकृतोऽस्युर्वन्तरिक्षं वीहि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो
मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः प्राणाय त्वा व्यानाय त्वोपयामगृही-
तोऽसि ॥ १–२

अन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोममुरुष्य रायस्समिषो यजस्व ।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजोषा देवैरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ३

मधुमतीर्न इषस्कृधि स्वंकृतोऽस्युर्वन्तरिक्षं वीहि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो
मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्योऽपानाय त्वा ॥ १ ॥ ४

आ वायो भूष शुचिपा उप नस्सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ ५

उपयामगृहीतोऽसि वायवे त्वा ॥ ६

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् ॥ ७
इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ८

उपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिस्सजोषोभ्यां त्वा ॥ ९

अयं वां मित्रावरुणा सुतस्सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ १०

उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वैष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ॥ ११

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ १२

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वोपयामगृहीतोऽसि वायव इन्द्रवायुभ्यां

[१] मै. १,३,४-५ (१४-१९) । कपि. ३,१ । वा. ७,१-३,८-१२,१६,२०,२५,३०-४०; ८,१,७—९,११,३३-३५; ३८—४१,४४—४७; ९,२—४; १०,३२; १९,६,८; २०,३३; २३,२,४; २६,३—१०; ३३,५६ । काण्व. ७, १—५,७—८,१०-११,१५,२१,२२,२७,३०—४०; ८,६—८,१२,१४—१६,१९-२९; १०,१—५; ११,४५; २१,५,७; २२,१८; २५,२,४; २८,४—११; ३२,५६ ।

[२] मै. १,३,६-९ (२०-२८,३०) । कपि. ३,२ । वा. ७,७—९; ५,३९; ८,१ । काण्व. ७,६—१०; ५,४८ । [आ वायो भूष शुचिपा० । ऋ. ७,९२,१; तै. सं. १,४,४,१; ३,४,२,१ । इन्द्रवायू इमे सुता० । ऋ. १, २,४; तै. सं. १,४,४,१ । अयं वां मित्रावरुणा० । ऋ. २,४१,४; (१,१३७,३; १,४७,१); सा. ९१०; तै. सं. १,४,५,१ । या वां कशा मधुमति० । ऋ. १,२२,३; तै. सं. १,४,६,१]

त्वैष ते योनिर्विष्णोरुरुक्रम उपयामगृतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वैष ते योनिर्विष्णोरुरुक्रम उपयाम-
गृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्विष्णोरुरुक्रमैतं रक्षस्व मा त्वा दभन् दुश्शंसास्ते मावक्षन् ॥ २ ॥
१३

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमानः ।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ १४

उपयामगृहीतोऽसि शण्डायेन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिर्वीरतायै त्वा ॥ १५

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिरा या संजयन्तमधि यासु वर्धसे ॥ १६

उपयामगृहीतोऽसि मर्काय सूर्याय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः प्रजाभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥ १७

अपनुत्ता शण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्मस्तुथोऽसि जनधाया देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु तुथो-
ऽसि जनधाया देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वायुस्संधत्तं प्राणं संधत्तं चक्षुस्संधत्तं श्रोत्रं संधत्तं वाचं
संधत्तमनाधृष्टासि जिन्वेथां स्वपत्या मध्वा वीतं सुवीराः प्रजाः प्रजनयन् परीहि सुप्रजाः प्रजाः
प्रजनयन् परीहि ॥ १८

इन्द्रेण मन्युना युजा सासह्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥ १९

संजग्माना दिवा पृथिव्या शुक्रश्शुक्रशोचिषा मन्थी मन्थिशोचिषा शुक्रोऽसि शुक्रशोचिर्मन्थ्यु-
सि मन्थिशोचिरच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारस्स्याम निरस्ता शण्डामर्कौ
सह तेन यं द्विष्मश्शुक्रस्याधिष्ठानमसि मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ २०

या संस्कृतिः प्रथमा विश्वकर्मा यो मध्यमो बृहस्पतिश्चिकित्वान् ।
यः परमो वरुणो मित्रो अग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोत ॥ २१
स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः ॥ ४ ॥ २२

ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुषदो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ २३

उपयामगृहीतोऽस्याग्रायणो जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिमभि सवनानि पाहि विष्णुस्त्वा पातु

[३] मै. १,३,१० – ११ (३१-३४)। कपि. ३,३ । वा. ७,१२,१६ । काण्व. ७,११,१५। [अयं वेनश्चोदयत्० ऋ. १०,१२३,१; तै.सं. १,३,८,१; नि. १०,३९। तं प्रत्नथा पूर्वथा०। ऋ. ५,४४,१; तै. सं. १,४,९,१; नि.३,१६]

[४] मै. १,३,१२ (३५—३९)। कपि. ३, ३ । ७,१२-१५ । काण्व ७,१२-१५,१७—१९]

[५] मै. १,३,१३—१५ (४०—४३,४५-४७)। कपि. ३,४-५ । वा. ७,१९-२२,२४—२५; ३३,८ । काण्व. ७, २१-२४,२६—२७, ३२,८ । [ये देवा (०सो) दिव्येकादश० । ऋ. १,१३९,११, अथर्व. १९,२७,११-१३; तै. सं. १,४,१०,१]

विशं त्वं पाहीन्द्रियेणैष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वय-
स्वत उक्थाव्यं यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥ २४–२५

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २६

उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानरो ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम एष ते
योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ५ ॥ २७

उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वोक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिर्मित्रावरुणाभ्यां
त्वा पुनर्हविरसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुष उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वोक्थेभ्यस्त्वो-
क्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा पुनर्हविरसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुष उप-
यामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वोक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा देवेभ्यस्त्वा
देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुष उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वेन्द्राय त्वोक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते
योनिरिन्द्राय त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुष उपयामगृहीतोऽसीन्द्रावरुणाभ्यां त्वो-
क्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्रावरुणाभ्यां त्वा पुनर्हविरसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि
यज्ञस्यायुष उपयामगृहीतोऽसीन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वोक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राबृह-
स्पतिभ्यां त्वा पुनर्हविरसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुष उपयामगृहीतोऽसीन्द्राविष्णु-
भ्यां त्वोक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राविष्णुभ्यां त्वा पुनर्हविरसि देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं
पृणच्मि यज्ञस्यायुषे ॥ ६ ॥ २८

उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोप-
यामगृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वोपयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वोपयामगृही-
तोऽसीषाय त्वोपयामगृहीतोऽस्यूर्जाय त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहस्याय
त्वोपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वोपयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वा ॥ २९

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ ३०

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ ३१

[मूर्धानं दिवो अरतिं० । ऋ. ६,७,१; सा. ६७,११४०; तै. सं. १,४,१३,१]

[६] मै. १,३,१४ (४४) । कपि. ३,४ । वा. ७,२२-२३ । काण्व. ७,२५ ।

[७] मै. १,३,१६-१८ (५० -५३) । कपि. ३,५ । वा. ७,३०-३१,३३ । काण्व. ७,३०--३१,३३ । [इन्द्राग्नी आगतं सुतं० । ऋ. ३,१२,१; सा. ६६९; तै. सं. १,४,१५,१]

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वांसो दाशुषस्सुतम् ॥ ३२

उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ७ ॥ ३३

जनिष्ठा उग्रस्सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ ३४

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबस्सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयस्सुयज्ञाः ॥ ३६

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवस्सुतानाम् ॥ ३८

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३९

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ४०

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ४१

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ ४२

उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४३

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनस्सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुस्सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ ४४

उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ८ ॥ ४५

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ४६

[ओमासश्चर्षणीधृतो० । ऋ. १,३,७; ऐ. आ. १,४; तै. सं. १,४,१६,१; नि. १२,४०]

[८] मै. १,३,१९-२२,२४-२५ (५५-६२,६४-६८)। कपि. ३,६ । वा. ३३,६४; ७,३५-४० । काण्व. ३२,६४; ७,३५-४० । [जनिष्ठा उग्रस्सहसे तुराय० । ऋ. १०,७३,१; तै. ब्रा. २,८,३,४ । इन्द्र मरुत्व इह पाहि० । ऋ. ३,५१,७; तै. सं. १,४,१८,१ । मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो० । ऋ. ३,४७,१; तै. सं. १,४,१९,१; नि. ४,९ । मरुत्वन्तं वृषभं० । ऋ. ३,४७,५; ६,१९,११; तै. सं. १,४,१७,१; तै. ब्रा. २,८,३,४ । महाँ इन्द्रो य ओजसा० । ऋ. ८,६,१; सा. १३०७; अथर्व. २०,१३८,१; तै. सं. १,४,२०,१; तै. ब्रा. ३,५,७,४ । महाँ इन्द्रो नृवदा० । ऋ. ६,१९,१; तै. सं. १,४,२१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,४; नि. ६,१६-१७]

[९] मै. १,२,६, १,३,२७ (४०,१००-१०६) । कपि. ३,७ । वा. ७,४१-४२,४४-४६; ८,४१; ३३,३१, १३,४६; ५,३७; ४,३१। काण्व. ८,२३-२४, ९,६-७,९-१०; ३२,३१; १४,४८, ५,४६; ४,४३। उदु त्यं जातवेदसं० । ऋ. १,५०,१ सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६, २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; १,४,४३,१; नि. १२,१५]

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ४७

द्यां गच्छ स्वर्गच्छ रूपं वो रूपेणाभ्यागां वयसा वयस्तुथो वो विश्ववेदा विभजतु वर्षिष्ठेऽधि
नाक एतत्ते अग्ने राध एति सोमच्युतं तन्मित्रस्य पथा नयर्तस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा ब्राह्मण-
मद्यर्ध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयँ सुधातुदक्षिणम् ॥ ४८

अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयँ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणोऽयँ वाजं जयतु वाजसातौ ॥ ४९
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्न्यासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ५०

वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैरसंद्राता मधुमती देवत्रा गच्छ प्रदातारमाविशानवहा-
यास्मान् देवि दक्षिणे देवयानेन पथा यती सुकृतां लोके सीद तन्नौ सँस्कृतम् ॥ ९ ॥ ५१

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ५२
उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ५३

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्था अमृतं दिवि ॥ ५४
उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ५५

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादँहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ५६

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ विवस्व आदित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मन्दस्व ॥ या
दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामि ॥ ५७-५९

[चित्रं देवानामुदगाद० । ऋ. १,११५,१; ऐ. आ. ३,९; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,
४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६ । अयं नो अग्निर्वरिवः० ।
श्रौ. उ. पद्क. अ. २, खं. १४ । वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान० । ऋ. ५,८५,२; तै. सं. १,२,८,१]
[१०] मै. १,३,२६—२८ (६९-७३,७६-७९) । कपि. ३,८ । वा. ८, १—५,७—८; ३३,६८-६९,८४; २,१६;
३,३४; काण्व. ८,१-३,६-७; ३२,६८—६९,८४; २,२१; ३,४२ । [कदा चन स्तरीरसि० ऋ. ८,५१,७;
सा. ३००; तै. सं. १,४,२२,१; १,५,६,४ । कदा चन प्रयुच्छस्युभे० । ऋ. ८,५२,७; तै. सं. १,४,२२,१ ।
यज्ञो देवानां प्रत्येति० । ऋ. १,१०७,१; तै. सं. १,४,२२,१; २,१,११,४]

अदब्धेभिस्सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वस्सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशँस ईशत ॥ ६०

उपयामगृहीतोऽसि देवाय त्वा सवित्र उपयामगृहीतोऽसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षे नम
एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ १० ॥ ६१

उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य इन्द इन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहमृध्यासमग्ना३ इ पत्नीवा३-
न्सजूस्त्वष्ट्रा सोमं पिबोपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हर्योस्स्थाता हरिभ्यां त्वा स्तुतस्तो-
मस्य ते देव सोम शस्तोक्थस्येष्टयजुषो हरिवतो ग्रहमृध्यासँ हर्योस्स्थ हरिवतो धानास्सहसोमा
इन्द्रस्य ॥ ६२

अग्न आयूँषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ६३
उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा तेजस्वत एष ते योनिरग्नये त्वा तेजस्वते ॥ ६४
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ६५
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजस्वते ॥ ६६
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ६७
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजस्वत एष ते योनिस्सूर्याय त्वा भ्राजस्वते ॥ ६८
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ६९
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा हरिवत एष ते योनिरिन्द्राव त्वा हरिवते ॥ ११ ॥ ७०

धाता रातिस्सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्वरुणो मित्रो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणा यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ ७१
समिन्द्र नो मनसा नेषि गोभिस्सँ सूरिभिर्हरिवस्सँ स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाँ सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ७२

[अदब्धेभिस्सवितः० । ऋ. ६, ७१,३; तै सं. १,४,२४,१; तै. ब्रा. २,४,४,७]
[११] मै. १,३,२९—३४ (८०-९३) । कपि. ३,९ । वा. ८,९-१९,३५,३८-४१; १९,३८; ३५,१६ । काण्व. ८,
८,१०,१२-१३,१६,१९-२४; २१,४०; २९,३७; ३५,४८ । [अग्न आयूँषि पवस० । ऋ. ९,६६,१९; सा.
६२७,१४६४,१५१८; तै. सं. १,३,१४,७; १,४,२९,१; १,५,५,१; १,६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ.
२,५,१ । ओजस्तदस्य तित्विषे० । ऋ. ८,६,५; सा. १८२,१६५३; अथर्व. २०,१०७,२ । अदृश्रन्न (म)-
स्य केतवो० । ऋ. १,५०,३; अथर्व. १३,२,१८; २०,४७,१५ । इन्द्रमिद्धरी वहतो० । ऋ. १,८४,२; सा.
१०३०; तै. सं. १,४,३८,१]
[१२] मै. १,३,३८ (१०७-११३) कपि. ३,९ । वा. २,२१,२४; ८,१४-२२ । काण्व. २,३९,४४; ९,१५-२२ ।
[धाता रातिस्सवितेदं० । अथर्व. ७,१७,४ । समिन्द्र नो (णो) मनसा० । ऋ. ५,४२,४; अथर्व. ७,
९७,२; मै. सं. १,४,४४,१; तै. ब्रा. २,८,२,६]

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ ७३
सुगा वो देवास्सदनेदमस्तु य आजग्म सवनेदं जुषाणाः ।
जक्षिवाँसः पपिवाँसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥ ७४
यानावह उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
वहमाना भरमाणा हवीँष्यसुं घर्मं दिवमातिष्ठतानु ॥ ७५
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।
ऋधगयाडृधगुताशमिष्ट विद्वान् प्रजानन्नुपयाहि यज्ञम् ॥ ७६

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहैष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकस्सुवी-
रो यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा मनसस्पत इमं देवयज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते
रस्स्वाहा देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं देवयज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते ७७
धाः ॥ १२ ॥

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ७८
शतं ते राजन् भिषजस्सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
आरे बाधस्व निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुग्ध्यस्मात् ॥ ७९
अग्नेरनीकमप आविवेशापां नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्यम् ।
दमे दमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ॥ ८०
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तस्सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सह सूक्तवाके नमोवाके विधेम ॥ ८१

अवभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणोऽव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृत-
स्वाहावभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणोऽव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृत-
स्वाहावभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणोऽव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृत-
स्वाहावभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणोऽव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृत-

[सं वर्चसा पयसा० । अथर्व. ६,५३,३ । त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः । ऋ. ७,३४,२२ (च. पा.); नि.
६,१४ । सुगा वो देवास्सदना० । अथर्व. ७,९७,४; नि. ६,४२ । यानावह उशतो० । अथर्व. ७,९७,३ ।
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे० । ऋ. ३,२९,१६; अथर्व. ७,९७,१; तै. सं. १,४,४४,१ । यज्ञ यज्ञं गच्छ...वाते
धाः (धां)० । अथर्व. ७,९७,५-८]
[१३] मै. १,३,३९ (११४-११९,१२१-१२३) । कपि. ३,११ । वा. ८,२१,२३-२७; ३,४८; २०,१८-१९,२२-२३;
३८,२५ । काण्व. ८,१३,२३-२६; ३,५६; २१,७; ३८,२४ । [उरुं हि राजा वरुणश्चकार० । ऋ. १,२४,८;
तै. सं. १,४,४५,१ । शतं ते राजन् भिषजः० । ऋ. १,२४,९; तै. सं. १,४,४५,१ । अग्नेरनीकमप आवि-
वेश० । श्रौ. पू. अ. २, खं ८ । अवभृथ निचुङ्कुण० । नि. ५,१८]

ष्टितो वरुणस्य पाशोऽवहतो वरुणस्य पाशोऽप्सु धौतस्य ते देव सोम नृभिस्स्तुतस्य यो भक्षो
गोसनिर्योऽश्वसनिस्तस्य त उपहूत उपहूतस्य भक्षं कृणोमि प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशो नमो वरुणस्य
पाशाय ॥ ८२

उदेत प्रजामायुर्वर्चो दधाना अध स्याम सुरभयो गृहेषु ।
गायत्री छन्दाँस्यनु सँरभन्तामस्मान् राय उत यज्ञस्सचन्ताम् ॥ ८३

सुप्रीतश्शिशुरप आविवेश ॥ उन्नेतर्वस्योऽभ्युन्नया नः ॥ एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि समेधि-
षीमहि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ ८४-८६

अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगन्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा संसृज वर्चसा ॥ ८७
सं माग्ने वर्चसा सृज प्रजया च धनेन च ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सहर्षिभिः ॥ १३ ॥ ८८
ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ ८९

अग्ने व्रतपते व्रतमालभे तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयं तेनर्ध्यासम् ॥ ९०

अग्निर्होताय तं हुवे देवान् यज्ञियानिह यान् यजामहे ।
आ देवा यन्तु सुमनस्यमाना व्यन्तु देवा हविषो मे अस्य ॥ ९१
युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायास्मै वोढवे जातवेदः ।
इन्धानास्त्वा सुप्रजसस्सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते ॥ ९२

अङ्गिरसो मास्य यज्ञस्य प्रथमानुवाकैरवन्तु ॥ समिद्धो अग्निराहुतस्स्वाहाकृतः पिपर्तु नः ॥
मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाविश वागस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी वाचामिन्द्रियेणाविश देवाः
पितरः पितरो देवा योऽस्मि स सन्यजे तद्वः प्रब्रवीमि तस्य मे वित्त स्वं म इष्टमस्तु शुनं शान्तं स्वं
कृतं वसन्तमृतूनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु वसन्तस्याहं देवयज्ययौजस्वान् पयस्वान् भूयासं
ग्रीष्ममृतूनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु ग्रीष्मस्याहं देवयज्ययौजस्वाँस्तेजस्वान् भूयासं वर्षा

[यो भक्षो गोसनियो० । श्रौ. पू. अ. ६, खं. १३ । एधोऽस्येधिषी(ष)महि० । अथर्व. ७,८९,४; १९,३१,
१२; श्रौ. पू. अ. ३, खं. ६ । अपो(आपो) अद्यान्वचारिषं० । ऋ. १,२३,२३; १०,९,९; अथर्व. ७,८९,१;
९,१,१४; १०,५,४६; तै. सं. १,४,४५,३; १,४,४६,२; तै. ब्रा. २,६,६,५ । सं माग्ने वर्चसा० । ऋ. १,२३,
२४; अथर्व. ७,८९,२; ९,१,१५; तै. सं. १०,५,४७]
[१४] मै. १,४,१, (१-४,१०) । वा. १,५; २,२८ । काण्व. १,८; २,५३ । [ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु० ।
ऋ. १०,१२८,१; अथर्व. ५,३,१; तै. सं. ४,७,१४,१]

ऋतूनां प्रीणामि तां मा प्रीताः प्रीणन्तु वर्षाणामहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान् भूयासं शरदमृतूनां प्रीणामि सा मा प्रीता प्रीणातु शरदोऽहं देवयज्ययान्नवान् वर्चस्वान् भूयासं हेमन्तमृतूनां प्रीणामि स मा प्रीतः प्रीणातु हेमन्तस्याहं देवयज्यया सहस्वान् वीर्यावान् भूयासम् ॥ १४ ॥ ९३-९५

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९६

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेस्सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ ९७

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥ ९८

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपस्स्वरुषसो अग्न ऊढाः ।
दिशस्स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ ९९

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे । पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ १००

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ १०१

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ १०२

आ वृत्रहणा वृत्रहभिश्शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ १०३

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ १०४

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ १०५

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ १०६

---

[१५] वा. ३३,६१ । काण्व. ३२,६१ । [इन्द्राग्नी रोचना दिव० । ऋ. ३,१२,९; सा. १६९३; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३ । श्नथद् वृत्रमुत सनोति० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३ । या वां सन्ति पुरुस्पृहो० । ऋ. ६,६०,८; सा. ९१२ । ता योधिष्टमभि गा० । ऋ. ६,६०,२ । ता वामेषे रथानाम्० । ऋ. ५,८६,४ । अश्रवं हि भूरि० । ऋ. १,१०९,२; तै. सं. १,१,१४,१; नि. ६,९ । इन्द्राग्नी नवतिं पुरो० । ऋ. ३,१२,६; सा. १५०६,१७०४; तै. सं. १,१,१४,१ । आ वृत्रहणा वृत्रहभिः० । ऋ. ६,६०,३; तै. ब्रा. ३,६,८,१ । उग्रा विघनिना मृध० । ऋ. ६,६०,५; सा. ८५४ । प्र चर्षणिभ्यः पृतना० । ऋ. १,१०९,६; तै. सं. ४,२,११,१ । गोमद्धिरण्यवद्वसु० । ऋ. ७,९४,९]

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ १०७

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥ १०८

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १०९

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि । गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृडातीदृशे ॥ ११०

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्च्युतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ १५ ॥ १११

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यानि नाम ।
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ॥ ११२

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।
दमे दमे सुष्टुत्या वावृधानानु वां जिह्वा घृतमाचरण्यत् ॥ ११३

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां संगतानामुत्तमो विष्णुरासीत् ।
यजमानाय परिगृह्य देवान् दीक्षयेदं हविरागच्छतं नः ॥ ११४

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ ११५

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिस्सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥ ११६

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ ११७

[गीर्भिर्विप्रः प्रमति० । ऋ. ७,९३,४; तै. ब्रा. ३,६,९,१ । पूषा गा अन्वेतु नः० । ऋ. ६,५४,५; तै. सं. ४,१,११,२; तै. ब्रा. २,४,१,५ । शुक्रं ते अन्यद्यजतं० । ऋ. ६,५८,१; सा. ७५; तै. सं. ४,१,११,२; तै. आ. १,२,४; १,१०,१; ४,५,६; नि. १२,१७ । क्षेत्रस्य पतिना वयं० । ऋ. ४,५७,१; तै. सं. १,१,१४,२; नि. १०,१५ । क्षेत्रस्य पते मधुमन्तं० । ऋ. ४,५७,२; तै. सं. १,१,१४,३; नि. १०,१६]

[१६] वा. २०,८४;२६,३,६-८;२१,१-२,८-९; ३२,३; १३,४; २३,१,३; २५,१०-११; १८,४९,७२-७३। काण्व. २२,६९; २८४,६,८-९; २३,१-२,८-९; २९,३३; १४४; २५,१,३; २७,१४-१५; २०,१९,४१-४२। [अग्नाविष्णू महि तद्वां(-धाम)। अथर्व. ७,२९,१-२ । इयमददाद्रभस०। ऋ. ६,६१,१। इयं शुष्मेभिर्बिसखा० ऋ. ६,६१,२; तै.ब्रा. २,८,२,८; नि. २,२४। जनाय चिद्य ईवत०। ऋ. ६,७३,२; अथर्व.२०,९०,२]

बृहस्पतिस्समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन् स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ११८

पावका नस्सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ११९

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ १२०

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ १२१

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ १२२

अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो निकर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२३

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ १२४

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १२५

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १२६

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ १२७

हिरण्यगर्भः ॥ १२८

यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२९

अग्नीषोमा इमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १३०

[बृहस्पतिस्समजयद्वसूनि० ऋ. ६,७३,३; अथर्व. २०,९०,३; तै. ब्रा. २,८,२,८। पावका नस्सरस्वती०। ऋ. १,३,१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४,३,१; नि. ११,२६ । इमा जुह्वाना युष्मदा० । ऋ. ७,९५,५; तै. ब्रा. २,४,६,१ । आ नो दिवो बृहतः० । ऋ. ५,४३,११; तै. सं. १,८,२२,१ । वृषभं चर्षणीनां० । ऋ. ३,६२,६ । अदेवेन मनसा यो०। ऋ. २,२३,१२। बृहस्पते जुषस्व नो०। ऋ. ३,६२,४; तै. सं. १,८,२२,२। बृहस्पते अति यदर्यो० । ऋ. २,२३,१५; तै. सं. १,८,२२,२ । आ नो मित्रावरुणा घृतैः० । ऋ. ३,६२, १६; सा. २२०, ६६३; तै. सं. १,८,२२,३। प्र बाहवा सिसृतं० ऋ. ७,६२,५; तै. सं. १,८,२२,३; तै. ब्रा. २,७,१५,६; २,८,६,७ । हिरण्यगर्भः० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; ४,२,८,२; शतपथ ब्रा. ९,१,२९; नि. १०,२३ । यः प्राणतो निमिषतश्च०(०तो) । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१६,१ । अग्नीषोमा इमं (०विमं) सु मे० । ऋ. १,९३,१; तै. सं. २,३,१४,२]

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ १३१

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमा अमुञ्चतं गृभीतान् ॥ १३२

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ १३३

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥ १३४

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन् स्पृहयाय्याणि ॥ १३५

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १३६

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १३७

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरस्सहसा पृष्टो अग्निस्स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १३८

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीरम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ १३९

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ १४०

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ १४१

शतेन पाशैर्वरुणाभिधेहि मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जल्म उदरं स्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥ १४२

[अग्नीषोमा सवेदसा०। ऋ. १,९३,९; तै. सं. २,३,१४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,२ । युवमेतानि दिवि०। ऋ. १,९३,५; तै. सं. २,३,१४,२; तै. ब्रा. ३,५,७,२ । आन्यं दिवो मातरिश्वा०। ऋ. १,९३,६; तै. सं. २,३,१४,२। वैश्वानरो न ऊतय० । अथर्व. ६,३५,१; आ. श्रौ. सू. २,११ । त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने० । ऋ. ६,७,३ । ऋतावानं वैश्वानर०। अथर्व. ६,३६,१; आ. श्रौ. सू. ३,८ । वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम० । ऋ. १,९८,१; तै. सं. १,५,११,३; नि. ७,२२ । पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । अस्माकमग्ने मघवत्सु० । ऋ. ६,८,६; तै. सं. १,५,११,२ । इमं मे वरुण श्रुधी० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. सं. २,१,११,६ । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६]

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १६ ॥ १४३
[३५०]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां ग्रहो नाम चतुर्थं स्थानकं संपूर्णम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं स्थानकम् ।

यजमानम् ।

अग्नीषोमाभ्यां यज्ञश्चक्षुष्माँस्तयोरहं देवयज्यया चक्षुषा चक्षुष्मान् भूयासमग्निरन्नस्यान्नपतिस्त-
स्याहं देवयज्ययान्नस्यान्नपतिर्भूयासं दब्धिरस्यदब्धो भूयासममुं दभेयमग्नीषोमा वृत्रहणी तयोरहं
देवयज्यया वृत्रहा भूयासमिन्द्राग्न्योरहं देवयज्ययौजस्वान् वीर्यावान् भूयासमिन्द्रस्याहं देवयज्यये-
न्द्रियावान् भूयासं महेन्द्रस्याहं देवयज्यया जेहमानं भूमानं गमेयमिन्द्रस्याहं विमृधस्य देवयज्य-
यासपत्नो भूयासमिन्द्रस्याहमिन्द्रियावतो देवयज्यया पशुमान् भूयासम्॥ सरस्वत्या अहं देवयज्य-
या वाचमन्नाद्यं पुषेयं पूष्णोऽहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान् भूयासमदित्या अहं देवयज्यया
प्रतिष्ठां गमेयं विश्वेषामहं देवानां देवयज्यया प्राणानाँ सायुज्यं गमेयं द्यावापृथिव्योरहं देवयज्यया
प्रजनिषेयं प्रजया पशुभिरग्नेरहँ स्विष्टकृतो देवयज्ययायुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ १-२

अतीतपद्यज्ञे यज्ञमयाड् देवाँ अरंकृतः । सोमस्ते मित्रो अर्यमा रायस्पोषं दधातन ॥१॥ ३

बृहतो मा वाजेन वाजय वामदेवस्य मा वाजेन वाजय रथन्तरस्य मा वाजेय वाजय जुष्टे जुष्टिं
त गमेयमुपहूत उपहवं तेऽशीय सुहवामेहि सह प्रजया सह रायस्पोषेण ॥ ४

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानस्सचन्ताम् ।
अस्माकँ सन्त्वाशिषः ॥ ५

आशीर्म ऊर्जमुत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणँ सवर्चसम् ।
संजयन् क्षेत्राणि सहसाहमिन्द्र कुर्वाणो अन्याँ अधरान् सपत्नान् ॥ ६

ब्रह्म तेजो मे पिन्वस्व क्षत्रमोजो मे पिन्वस्व प्रजां पुष्टिं मे पिन्वस्व पशून् विशं मे पिन्वस्वे-
षमूर्जं मे पिन्वस्व ॥ ७

मयि त्यदिन्द्रियं महन्मयि द्युम्न उत क्रतुः ।
त्रिशुग्घर्मस्सदमिन्मे विभाति विराड् ज्योतिषा सह ॥ ८

[धीरा त्वस्य महिना० । ऋ. ७.८६,१]
[२] मै. १,४,१ (५,१२) । वा. २,१०; ३८,१४,२७-२८ । काण्व. २,१८; ३८,१४,२३ ।

तस्य दोहमशीय ब्रह्म पिन्वस्व कल्पन्तां दिशो यजमानस्यायुषे ददतो मे मा क्षायि कुर्वतो मे
मोपदसद्भजतां भागी माभागो भक्त ये ब्राह्मणास्सोम्यास्तेषामिदँ हविर्नासोम्यस्याप्यस्ति निर्भक्तो
यं द्विष्मः ॥ २ ॥ ९

देवस्याहं बर्हिषो देवयज्यया प्रजावान् भूयासं देवस्याहं नराशँसस्य देवयज्यया पशुमान् भूया-
सं देवस्याहमग्नेस्स्विष्टकृतो देवयज्ययायुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ १०

आ माशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो हवामहे । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ११

सा मे सत्याशीर्देवान् गम्याज्जुष्टाज्जुष्टतरा पन्यात् पन्यतराहेडता मनसा देवान् गच्छ यो
देवयानः पन्थास्तेन देवान् गच्छ यज्ञो देवान् गच्छतु यज्ञो देवान् गम्याददो मा गच्छतु ॥
रोहितेन त्वाग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्वेतशेन त्वा सूर्यो देवतां गमयतु यज्ञ
यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ यज्ञस्यायुरसि यज्ञो म आयुर्दधातु ॥ १२-१३

वि ते मुञ्चामि रशनां वि रश्मीन् वि योक्त्राणि परिचर्तनानि ।
दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्र मा ब्रूताद्भविदां देवताभ्यः ॥ १४

विष्णोश्च यज्ञस्यान्तस्तयोरहं देवयज्ययायुः प्रतिष्ठां गमेयम् ॥ ३ ॥ १५

इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्वाँ अथर्वभिः॥ तस्य यज्ञस्येष्टस्य स्विष्टस्य द्रविणमाग-
च्छत्वङ्गिरसो मेऽस्य यज्ञस्य प्रातरनुवाकैरहौपुर्वसुर्यज्ञो वसुमान् यज्ञो वसु वसीय वसुमन्तो भूयास्म
तस्य यज्ञस्य वसोर्वसुमतो वसु मागच्छतु सोमो रेतोधास्तस्याहं देवयज्यया सुरेतोधा रेतो धिषीय
त्वष्टा रूपाणां विकर्ता तस्याहं देवयज्यया विश्वरूपं प्रियं पुषेयं देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्मिथुनं यज-
मानस्य तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्रजनिषीयायुषे वर्चसे रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय॥१६--१७

सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूताम् ।
आप्रीणानौ विजहता अरातिं दिवे ज्योतिरुत्तममारभेथाम् ॥ १८

स्वाहा स्वाहेष्टिभ्यो वषडनिष्टेभ्यो भिषजौ स्विष्टयै स्वाहा निष्कृतिर्दुरिष्टयै स्वाहा ॥ देवेभ्यस्त-
नूभ्यस्स्वाहा ॥ १९--२०

अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि ।
अयास्सन्मनसा कृतोऽयास्सन्हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजम् ॥ २१

स्वाहा सरस्वत्यै वेशभगिन्यै स्वाहा ॥ या सरस्वती वेशभगिनी तस्या नो रास्व तस्यास्ते

[३] मै. १,४,१ (६-९,११) । वा. ८,२२ । काण्व. ९,१२ । [वि ते मुञ्चामि रशनां० । अथर्व. ७,७८,१-२]
[४] मै. १,४,१,३(१०,२३,२७-३०) । वा. २,२० । काण्व. २,३६-३७ । [अयादत्त्वाग्नेऽस्यनभि० । श्री. न. प. भा. १, सं. ११]

भक्तिवानो भूयास्म यज्ञस्य त्वा प्रमयाभिमयोन्मया प्रतिमया परिगृह्णामि वेदोऽसि वित्तिरसि वेदमे
त्वा वेदो मे विन्द विदेय ॥ २२--२३

घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषँ सहस्रिणम् । वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे ॥ २४

वृषा वृषण्वतीभ्यो वेदपत्नीभ्यो भव ॥ ४ ॥ २५

प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वानक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वाक्षितो नामासि मा मे क्षेष्ठाः प्राणापानौ मे
पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहा मा गम्याः पूर्णमसि पूर्णं मे भूयास्म
दसि सन्मे भूयास्सर्वमसि सर्वं मे भूया अक्षितिरसि मा मे क्षेष्ठाः प्राच्या दिशा देवा ऋत्विजो
मार्जयन्तां दक्षिणया दिशा मासाः पितरो मार्जयन्तां प्रतीच्या दिशा गृहाः पशवो मार्जयन्ता-
मुदीच्या दिशाप ओषधयो वनस्पतयो मार्जयन्तामूर्ध्वया दिशा यज्ञस्संवत्सरो मार्जयन्ताम् ॥
पृथिवीं विष्णुर्व्यक्रँस्त गायत्रेण च्छन्दसा निर्भक्तो यं द्विष्मोऽन्तरिक्षं विष्णुर्व्यक्रँस्त त्रैष्टुभेन
च्छन्दसा निर्भक्तो यं द्विष्मो दिवं विष्णुर्व्यक्रँस्त जागतेन च्छन्दसा निर्भक्तो यं द्विष्मो दिशो
विष्णुर्व्यक्रँस्तानुष्टुभेन च्छन्दसा निर्भक्तो यं द्विष्मोऽगन्म स्वस्सं ज्योतिषाभूम सूर्यस्यावृतमन्वावर्त
इदमहं योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणं निवेष्टयामि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि समहं
प्रजया सं मया प्रजा समहं रायस्पोषेण सं मया रायस्पोषोऽग्नेस्तेजसा तेजस्वी भूयासं वायोरायुषा-
युष्मान् भूयासँ सूर्यस्य वर्चसा वर्चस्वी भूयासमिन्द्रस्येन्द्रियेणेन्द्रियावान् भूयासं धाता मे धाम्ना
सुधां दधातु प्रजापतेः प्रजया प्रजावान् भूयासमग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासँ
सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूया अस्थूरि णौ गार्हपत्यं दीदायच्छतँ हिमाद्वायु ॥५॥ २६-२७

देवाञ्जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याशीरागच्छतु ।पितॄन् सर्पान् गन्धर्वानप ओषधीः पञ्च जना-
ञ्जनमगन् यज्ञस्ततो मा यज्ञस्याशीरागच्छतु पञ्चानां त्वा वातानां धर्त्रायागृह्णामि पञ्चानां त्वा म-
लिलानां धर्त्रायागृह्णामि पञ्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्रायागृह्णामि पञ्चानां त्वा दिशां धर्त्रायागृह्णामि
पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्रायागृह्णामि भूरस्माकँ हव्यं देवानामाशिषो यजमानस्य चरोस्त्वा
पञ्चबिलस्य धर्त्रायागृह्णामि धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनं देवताभिस्त्वा देवताभ्यो
गृह्णामि ॥ २८

[घृतवन्तं कुलायिनं० । श्री. न. प. भा. १, सं. ११]
[५] मै. १,४,२ (१२) । वा. २,२५-२७. १,३१; १५,८; १९,९; २०,२३; ३८,२५ । काण्व. २,४६-५० १,४९. १६,१३; २१.८; २२.८; ३८,२४ । [योऽस्मान् द्वेष्टि...द्विष्मः अथर्व. ३,२७,१-६; ७,८१,५ । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । अथर्व. ७,८९,४; १९,३१,१२]
[६] मै. १,४,१.३-४ (२,१३-२१,२५) । वा. ८,६०; १,५,३१; १५,५०; २,२८ । काण्व. ९,४६; १,८४९; १६, ७१; २,५३ ।

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासते ।
अग्निर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥ २९

यास्ते रात्रयस्सवितर्देवयानीस्सहस्रयज्ञमभिसंबभूवुः ।
गृहैश्च सर्वैः प्रजया न्वग्रे स्वो रुहाणास्तरता रजाँसि ॥ ३०

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासते ।
वायुर्मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥ ३१

आगन्म मित्रावरुणा वरेण्यं रात्रीणां भागो युवयोर्यो अस्ति ।
नाकं गृह्णानास्सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ ३२

ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषो दिव्यध्यासते ।
सूर्यो मा तेभ्यो रक्षतु गच्छेम सुकृतो वयम् ॥ ३३

येनेन्द्राय समभरन् पयाँस्युत्तमेन हविषा जातवेदः ।
तेनाग्ने त्वमुत वर्धयेमँ सुजातानाँ श्रैष्ठ्य आधेह्येनम् ॥ ३४

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इडावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नस्सभावान् ॥ ३५

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मे प्रव्रमस्तन्नो गोपाय ॥ ६ ॥ ३६
[३८६]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां यजमानं नाम पञ्चमं स्थानकं संपूर्णम् ॥ ५ ॥

अथ षष्ठं स्थानकम् ।

अग्निहोत्र-ब्राह्मणम् ।

प्रजापतिर्वा इदमासीत् तस्मादग्निरध्यसृज्यत सोऽस्य मूर्ध ऊर्ध्व उदद्रवत् तस्य यल्लोहितमासीत्
तद्यपामृष्ट तद्भूम्यां न्यमार्ट् तत उदुम्बरोऽजायत तस्मात् स लोहितं पच्यते स प्राङ् प्राद्रवत् तँ
स्वा वागिष्ट जुहुधीति स इतः पर्यमृष्ट तत् स्वाहेत्यजुहोत् तस्मादेषैवमाहुतिस्स्वा ह्येनं वागिष्ट तस्मा-
न्न ललाटे लोमास्ति न पाण्योस्तस्मादरत्निमात्री स्रुग्भवति चक्षुर्वाव स तत् स्वमजुहोदमुमेवादि-
त्यमग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्ना इति ज्योतिरेव ज्योतिष्यजुहोद्ब्रह्माजुहोत् सत्यमजुहोदमुमेव तदादित्यम-

[तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः० । ऋ. ९,८६,२७ । गोमाँ अग्नेऽविमाँ० । ऋ. ४,२,५; तै. सं. १,६, ६,४; ३,१,११,१]
[१] मै. १,८,१ (१-४) । कपि. ३,११ । ना. ३,१ । काण्व. ३,१ ।

जुहोदेष स्वर्गाग्निहोत्रं श्वश्वो वसीयान् भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ॥ न वै पुरोहोरात्रे आस्तां ते एतयाहुत्योमे सहासृज्येतां यत् सायं जुहोति तेन भ्रातृव्याय पराचीं विवासयति यत् प्रातस्तेनास्मै प्रतीचीमग्नेर्वै गुप्त्या अग्निहोत्रं हूयते यत् सायं जुहोति तेनैनं रात्र्यै रमयति यत् प्रातस्तेनाह्न एषा वा अग्रा आहुतिः प्रथमा हुता यदग्निहोत्रं तस्मादग्नौ सर्वा आहुतयो हूयन्तेऽथैषैवाग्निहोत्रमुच्यतेऽग्निहोत्रं ह वै नाम नास्मादन्यस्समानेषु वसीयान् भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ॥ १ ॥ १–२

स नारमत स प्राद्रवत् तस्मिन्नजुहोत् तस्या आहुत्याः पुरुषोऽजायत स नारमत स प्राद्रवत् तस्मिन्नजुहोत् तस्या आहुत्या अश्वोऽजायत तस्मात् पुरुषश्चाश्वश्च नक्तं प्रत्यञ्चौ न सु विज्ञायेते इव स नारमत स प्राद्रवत् तस्मिन्नजुहोत् तस्या आहुत्या गौरजायताविरजायताजोऽजायत यवोऽजायत व्रीहिरजायतैताभ्यो वै सप्तभ्य आहुतिभ्यस्सप्तैते ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त स नारमत स प्राद्रवत् तस्मिन्नजुहोत् तस्या आहुत्या वसन्तोऽजायत ग्रीष्मोऽजायत वर्षा अजायन्त शरदजायत हेमन्तोऽजायत स त्रयोदश्यामाहुत्यामुद्यतायामबिभेत् तं प्रत्यङ्ङुपापद्यत तं पाणितः प्राविशत् तस्मात् पाण्योर्लोम नास्त्यग्निधानं ह्येतत् तस्माद्धस्ताभ्यामग्निर्मथ्यमानो जायते ॥ तस्माद्धन्यमानौ हस्तौ प्रतिगृह्णात्यग्नावेव तत् त्राणमिच्छतेऽग्निं वै पशवोऽनूपतिष्ठन्ते पशूनग्निः प्रैनं पशवो विशन्ति प्र पशून् विशति य एवं वेद तामाहुतिमप्सु प्रासिञ्चत् ततश्शिशिरमजायत तस्मात् तत् क्रूरतमं नहि तद्धुतान्नाहुतादजायत साहुतिरपो दग्धुमुपाक्रामत तत आपोऽग्नये वज्रोऽभवँस्तस्मात् प्रोक्षन्नग्निं न प्रापयेद्यत् प्रापयेद्वज्रेण यजेत तामाहुतिमोषधीषु न्यदधात् तस्मादोषधयोऽनभ्यक्ता रेभन्त ओषधिभ्योऽधि पशवः पशुभ्योऽधि प्रजास्तदेतच्छिशिर आज्यं स्यायत्यग्नये तस्माच्छिशिरे कक्ष उपादुत्यः प्रियमेव धामाग्नये प्रादात् सोऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छत्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ २ ॥
३–४

समाने वै योना आस्तां सूर्यश्चाग्निश्च ततस्सूर्य ऊर्ध्व उदद्रवत् तस्य रेतः परापतत् तदग्निर्योनिनोपागृह्णादयसा तदक्रुडयत् तत् क्रुड्यमानं गवि न्यदधात् तदिदं पयस्तस्मादयस्मयः पात्रं प्रतिधुक् क्रुडयति तत् पयसाग्निहोत्रं जुहोत्यमुमेव तदादित्यं जुहोत्येष ह्येवाग्निहोत्रमनड्वाहो वै पयस्तण्डुला असा आदित्योऽनड्वान् यद्यवाग्वाग्निहोत्रं जुहोत्यमुमेव तदादित्यं जुहोत्येष ह्येवाग्निहोत्रं चक्रवृत्तमन्यदचक्रवृत्तमन्यद्यच्चक्रवृत्तं तदमुयं यदचक्रवृत्तं तदेवमात्रं तस्मादचक्रवृत्तामग्निहोत्रतपनीं कुर्वीत ॥ न क्षीरेण प्रतिपिञ्चेन्नोदकेन यत् क्षीरेण प्रतिपिञ्चेदप्रतिपिक्तं स्याद्यदुदकेन शमयेद्दोहने संस्रावमुच्छिष्येत नोदकमिश्रेण प्रतिपिञ्चेत् तन्न क्षीरेण प्रतिपिक्तं भवति नोदकेन स्कन्नं दाव तत् परि चेदाकरोति

[२] मै. १,८,१-२ (१-७)। कपि. ४,१।
[३] मै. १,८,२-३ (७-८)। कपि. ४,२।

या स्थाल्यग्निहोत्रतपनी तया दुह्यादियं वै मानवा इमामिह नेहातिस्कन्दत्यनयैवोपसीदति तदस्यास्कन्नं भवत्यद्भिः प्रतिपिञ्चत्यापो हि प्रतिषेचनाय तस्यिरे तच्छान्तं मिथुनमापश्च पयश्च यदि दुह्यमानावभिद्यादन्यया स्थाल्या दुह्यात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यद्यधिश्रीयमाणं यद्यधिश्रितं स्कन्देदन्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यद्युन्नीयमानं यद्युन्नीतं यदि पुर उपसन्नमहुते स्कन्देत् पुनरवनीयान्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यत्र स्कन्देत् तदपो निनयेदापो वै यज्ञस्य निष्कृतिरद्भिरेवैनं निष्करोति प्रतिपिक्तमन्यदप्रतिपिक्तमन्यत् प्रतिपिक्तं पशुकामस्याप्रतिपिक्तं ब्रह्मवर्चसकामस्य घर्मो वा एष प्रवृज्यते यदग्निहोत्रं यदप्रतिपिक्तं न जुहोति ब्रह्मवर्चसी भवति यदि पयो न विन्देदाज्येन जुहुयात् तद्ध्यप्रतिषेक्यमपशव्यमीश्वरमस्याशान्तं शुचा पशून्निर्दहः प्रतिपिक्तं पशुकामस्य तच्छान्तं मिथुनमापश्च मयश्च यदि पयो न विन्देद्यवाग्वा जुहुयात् तद्धि प्रतिषेक्यं शान्तं मिथुनं पशव्यमापश्च तण्डुलाश्च ॥ ३ ॥ ५–६

अग्निहोत्रे वै जायम्पती व्यभिचरेते यत् प्राचीनमुद्वासयेत् पतिः पूर्वः प्रमीयेत यत् प्राचीनमुद्वासयेज्जाया पूर्वा प्रमीयेत संप्रत्युदीचीनमुद्वासयेत् समेवं जीर्यतः पूर्णमग्र उन्नयेदथ संमितमथ संमितमथ संमिततममुत्तममनुज्येष्ठमेवास्य पुत्रा ऋध्नुवन्ति संमितमग्र उन्नयेदथ भूयोऽथ भूयोऽथ पूर्णमुत्तमं भूयो भूय एवान्नाद्यमभ्युत्क्रामति कनिष्ठस्त्वस्य पुत्राणामर्धुको भवति सर्वान् समावदुन्नयेद्यः कामयेत सर्वे मे पुत्रास्समावदृध्नुयुरिति सर्वेषां वै पिता पुत्राणामृद्धिं कामयते सर्व एव समावदृध्नुवन्ति ॥ नान्योऽन्यमतिक्रामति चतुरुन्नयति चतुष्पद एवास्मै पशून् .... द्विपद एवास्मै पशून् यच्छति पशून् मे यच्छेति पश्चादुपसादयेत् पशवो वै गार्हपत्यः पशवः पयः पशूनामेवैषा यतिर्न पश्चादुपसादयेद्धविर्वा एतद्यदग्निहोत्रं यजमानो हविर्हविर्भूतमेव यजमानमपनुदत उत्तरादुपसादयेदपूतं वा एतद्यदग्निहोत्रमग्निः पवित्रं यत् समयाग्निं हरति तेनैवैनत् पुनात्यनु वा एष एतद्ध्यायति यत् पश्चाधिश्रित्य पुरो जुहोति यत् समयाग्निं हरति तेनैवैनं प्रीणात्यनुध्यायिनं करोत्यस्माद्धि गार्हपत्यादसौ पूर्वोऽग्निरसृज्यतायं वाव प्रजापतिरसौ पूर्वोऽग्निस्तदयमित आदाय प्राङनूद्द्रुत्याजुहोत् तस्मादग्निहोत्रं पश्चाधिश्रित्य पुरो जुह्वति पुर एवान्यानि हवींषि शृतानि कुर्वन्ति पुरो जुह्वति ॥ ४ ॥ ७–८

इध्मो वा एषोऽग्निहोत्रस्य यत् समिद्यत् समिधमादधातीध्ममेवैतमग्निहोत्रस्य करोति रुद्र ओषधीर्विषेणालिम्पत्ताः पशवो नालिशन्त ताभ्यो देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन् स प्रजापतिरब्रवीद्वरं वृणा अहं व एतास्स्वदयिष्यामीति स एतां समिधमवृणीत तस्मादेकैको हि प्रजापतिस्ता अग्निनोपासृजत्ता

[४] मै. १,८,४ (९-१७)। कपि. ४,३।
[५] मै. १,८,४-५ (९-२७)। कपि. ४,४। ना. ३,९। त.ब्रा. ३,१०।

अग्निरस्वदयदेतस्यां वा आहितायामग्निहोत्रिणे वीरुधस्स्वदन्ति स्वदितमस्यान्नं भवति य एवं वेद बहुकीकरोत्युभे आहुती समिद्धे जुहवानीत्येकैव कार्या सकृद्ध्येव सर्वस्मै यज्ञाय समिध्यत आयुर्मे यच्छ वर्चो मे यच्छ प्रजां मे यच्छेति पुर उपसादयेत् सृष्टिर्वा एतद्यदग्निहोत्रं यन्नोपसादयेत् पराचीः प्रजा इयुर्यदुपसादयति तस्मादिदं प्रजा यतास्तस्मादुपतिष्ठन्तेऽग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्ना इति सायमग्निहोत्रं जुहुयाद्गर्भिण्या वाचा गर्भं दधाति मिथुनया वाचा गर्भं दधाति सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिस्सूर्य इति प्रातस्तं गर्भिण्या वाचा मिथुनया प्रजनयति यन्निरुक्तं चानिरुक्तं च तन्मिथुनं यद्यजुषा च मनसा च तन्मिथुनं तदजाम्याहुत्योराग्नेयी सायमाहुतिस्सौरी प्रातरग्निः प्रवापयिता सूर्यः प्रजनयिताग्नस्सूर्ये निम्रुक्ते सायमग्निहोत्रं जुहुयादुपोदयं सूर्यस्य प्रातरग्निरेव प्रवापयित्वा सूर्यं रात्र्यै गर्भं दधाति तं गर्भिण्या वाचा मिथुनया प्रातः प्रजनयत्येतं वै प्रजायमानं प्रजा अनुप्रजायन्ते प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते यस्यैवमग्निहोत्रं हूयत एषा वा अग्निहोत्रस्य स्थाणुर्या पूर्वाहुतिस्तामतिहाय जुहुयात् तमेव परिवृणक्त्यभिक्रामं सायं होतव्यं गर्भमेव दधाति प्रतिक्रामं प्रातः प्रैव जनयति तदाहुरभिक्राममेव होतव्यमभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति यज्जुहोति तद्देवानां यदुद्दिशति तेन रुद्रं शमयति यन्निमार्ष्टि तत् पितॄणां यत् प्राश्नाति तन्मनुष्याणां तस्मादग्निहोत्रं वैश्वदेवमुच्यते ॥ ५ ॥ ९

प्रियमेधा वै नाम ब्राह्मणा आसंस्ते सर्वमाविदुस्तत् सहैवाविदुस्तेऽग्निहोत्र एव न समराधयंस्तेषां सकृदेकोऽग्निहोत्रमजुहोद् द्विरेकस्त्रिरेकस्तेषां यस्सकृदजुहोत् तमितरा अपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीत्येकमेवेदमित्यब्रवीत् प्रजापतिः प्रजापतय एवाहं जुहोमीति तेषां यो द्विरजुहोत् तमितरा अपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीत्यग्नये चैव सायं प्रजापतये चेत्यब्रवीत् सूर्याय च प्रातः प्रजापतये चेति तेषां यस्त्रिरजुहोत् तमितरा अपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीत्यग्नये सूर्याय प्रजापतय इत्यब्रवीत् तेभ्य एव सायं जुहोमि तेभ्यः प्रातरिति तेषां यो द्विरजुहोत् स आर्ध्नोत् स भूयिष्ठोऽभवत् प्रजयार्धोतरौ श्रियाक्रामत् तस्य प्रजामितयोः प्रजे सजातत्वमुपैतां तस्माद् द्वे होतव्ये यजुषा च मनसा च यामेव स ऋद्धिमार्ध्नोत् तामृध्नोति यदि सायमहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेदग्निहोत्रमधिश्रित्योन्नीयाग्निना पूर्वेणोद्द्रुत्याग्निहोत्रेणानुद्द्रवेदाहुर्य्यैवैनं व्यावयति यो ब्राह्मणो बहुविस्स्यात् स उद्धरेत् सर्वेणैवैनं ब्रह्मणोद्धरति यत् पुरा धनमदायी स्यात् तदद्यादच्युतेनैवैनं च्यावयति यदि प्रातरहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेदनुगमयित्वा पूर्वं मथित्वापरमुद्धृत्य जुहुयात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यदि त्वरेत ॥ पूर्वमग्निमन्ववसाय ततः प्राञ्चमुद्धृत्य जुहुयात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्जामि नु तद्योऽस्य पूर्वोऽग्निस्तमपरं करोत्यन्यत्रैवावसायाग्निं मथित्वोद्धृत्य जुहुयात् सैव तत्र प्रायश्चित्तिस्ततश्चोऽग्नये तपस्वते जनद्वते पावकवत इष्टिं निर्वपेद्यदा वा अग्निस्संतप्यतेऽथ जायत ओषधयः पावका

[६] मै. १,८,७ (३६-४४)। कपि. ४,५।

ओषधीरेवास्मै पावका भागधेयमपिदधाति न गार्हमनुबुध्यते यदा ह्येवास्मै नापिदधत्यथैषोऽनुगच्छति यौ पन्थाना अभितस्थौ दर्शपूर्णमासौ या मध्ये सृतिस्तदग्निहोत्रमेवं वा अग्निहोत्रिणे दर्शपूर्णमासिने स्वर्गो लोकोऽनुभाति ॥ मनसा वा इमां प्रजापतिर्वेदिं पर्यगृह्णादग्निहोत्रिणे तत्र यत् किंच ददाति तद्बर्हिष्यं यथासन्नेषु नाराशंसेषु ददात्येवमेष ददाति यत्किंच ददाति मध्य एव यज्ञस्य द्यावापृथिवी एतस्य सदोहविर्धाने अहोरात्राणीध्मो दिशः परिधयः स्रुचाः प्रोक्षणीरोषधयो न हि यजमानो यूपो न संभवन् वदेत् पशुरेव भूत्वा संभवत्यहरहर्वै पशवस्संभवन्तोऽथ मेध्या न राजन्यस्याग्निहोत्रमस्त्यव्रत्यो हि स हन्ति व्रतं न विच्छिन्द्यात् पौर्णमासीं च रात्रीममावस्यां च जुहुयात् ते हि व्रतं गोपायति यान्यहानि न जुहुयात् तान्यस्य ब्राह्मणायाग्रे गृह उपहरेयुरग्निर्वै ब्राह्मणोऽग्ना एव तज्जुहोति तदस्य स्वदितमेष्टं भवति ॥ ६ ॥ १०–१२

वाचा वै सह मनुष्या अजायन्त ते वाचो देवाश्चासुराश्च ते यन्मनुष्या अवदँस्तदेवाभवन्ते देवाश्चासुराश्च प्रजापतिमब्रुवन्निमे वावेदमभूवन्निति स वाचस्सत्यं निरमिमीत भूर्भुवस्स्वरिति यत्तुरीयमनृतं तन्मनुष्येषु न्यदधादेतद्धि वाचोऽनृतं यन्मनुष्या वदन्ति भूरितीमामसृजताग्निं रथंतरं त्रिवृतं गायत्रीं भुवरित्यन्तरिक्षं वातं वामदेव्यं त्रिष्टुभं पञ्चदश स्वरिति दिवं सूर्यं बृहदेकविंशं जगतीं भूर्भुवस्स्वरग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्ना इत्यग्निहोत्रं जुहुयादेतद्धि वाचस्सत्यमेतन्मिथुनमेतद्ब्रह्म तेनैव जुहोतीमा एवैतदिष्टका उपधत्त इमा एवैतदिष्टका उपधायोत्तमं नाकं रोहत्युत्तमस्समानानां भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ॥ वाचं यच्छेदग्निहोत्र उन्नीयमाने तपसा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत यन्न व्याहरत् तद्देवातप्यत सृष्टिर्वा एतद्यदग्निहोत्रं सृष्टिरेतद्व्रतं ता उद्भवस्थेत्युदभावयद्यर्हि बिन्दव इव स्युस्तर्ह्यवेक्षेतोद्भवस्थोदहं प्रजया प्र पशुभिर्भूयासमित्युद्भूतिर्वा एतत् प्रभूतिर्यदग्निहोत्रमुत्प्रजया प्र पशुभिर्भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयतेऽग्निनावेक्षते प्रजननं वा एतद्यदग्निहोत्रमग्निः प्रजनयिता प्रैव जनयति॥ रेतो वा एतद्यदग्निहोत्रं न सुशृतं कुर्याद् रेतः क्रुडयेन्नो अशृतमन्तरेणैव स्याद्रुद्र मृडानार्भव मृड धूर्त नमस्तेऽस्त्विति हुत्वोदङ्ङुदिशेदेतानि वै रुद्रस्य क्रूराणि नामानि तैरेष प्रजा हिनस्त्यग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानस्तान्येवास्य प्रतिनुदति तानि शमयति यद्ययं देवः प्रजा अभिमन्येत सजूर्जातवेदो दिवा पृथिव्या हविषो वीहि स्वाहेति द्वादश रात्रीरग्निहोत्रं जुहुयाद्या वा अग्नेर्जातवेदास्तनूस्तयैष प्रजा हिनस्त्यग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानस्तामेवास्य प्रीणाति तस्यैतज्जुहोति॥ तदजाम्याहुत्योराग्नेय्येषाग्नेर्यातरा संवत्सरं वा एतमिन्धतेऽग्निं वैश्वानरं न वा एतस्य संवत्सरेऽप्यस्ति न वैश्वानरे योऽनाहिताग्निर्यानि दारूणि ते मासा ये स्थूला अङ्गारास्त ऋतवो येऽणीयाँसस्तेऽर्धमासा मुर्मुरा अहोरात्राणि यत् सुवर्णं ज्योतिस्तद्बार्हस्पत्यं यन्न सुवर्णं न लोहितं तन्मैत्रं यल्लोहितं तद्वारुणं यत्सधूमं

[७] मै. १,८,६ (२८-३५)। कपि. ४,६।

तद्वैश्वदेवं यत्राङ्गारेष्वग्निर्लेलायेव तदस्यास्यमाविर्नोम तद्ब्रह्म तस्मिन् होतव्यं मुखेन वा अन्नात्यन्ना-
न्यवत्याविः प्रजासु भवति श्वश्वो वसीयान् भवति यस्यैवमग्निहोत्रँ हूयते ॥ ७ ॥ १३--१६

ओदनपचनो गार्हपत्य आहवनीयो मध्याधिदेवनमामन्त्रणमेषा वै विराट् पञ्चपदा तामेवाप्नोति
तामवरुन्द्धे यस्य हैषावरुद्धा स मनुष्याणाँ श्रेष्ठो भवति यदि सायमग्निहोत्रस्य कालोऽतिपद्येत
दोषा वस्तोस्स्वाहेति जुहुयात् सैव तत्राहुतिस्तेनास्य तदनतिपन्नं भवति यदि प्रातरग्निहोत्रस्य
कालोऽतिपद्येत दिवा वस्तोस्स्वाहेति जुहुयात् सैव तत्राहुतिस्तेनास्य तदनतिपन्नं भवति न स्वाहा-
कारो वा अग्निहोत्रस्याहुतिं युवते यर्हि वाव प्रवदेत् तर्हि जुहुयात् स ह्यग्निहोत्रस्य वषट्कारस्सजूर-
ग्निर्दिवा पृथिव्येति द्यावापृथिवी अग्निं तानेव प्रीणाति तानवरुन्द्धे सजूर्देवेन सवित्रेति न हि सवि-
तुर्ऋत आहुतिरस्ति सजूः पूष्णान्तरिक्षेणेति पशवो वै पूषा पशवोऽन्तरिक्षं पशूनेवावरुन्द्धे सजू
रात्र्येन्द्रवत्या स्वाहेति रात्रीमेवैतदभिजुहोति न हीन्द्रादृत आहुतिरस्ति देवा वै पुराग्निहोत्रमहौषु-
स्तस्मात् पुरा बृहन्महानजनि सजूरह्नेन्द्रवता स्वाहेति धार्हतं वा अहर्यार्हतस्सूर्योऽहश्चैवास्यैतत् सूर्य-
श्चाभिजिता अभिहुतौ भवत आनुष्टुभी वै रात्री त्रैष्टुभमहो रात्रीं चैवैतदहश्चाभिजुहोत्यग्नेऽदाभ्य जुप-
स्व स्वाहेत्युत्तरामाहुतिं जुहोति यथाग्नये समवद्यत्येवमेव तदपिग्नेरग्ने स्वां तन्वमयान् द्यावापृथिवी
ऊर्जमस्मासु धेहीति तृणमक्त्वानुप्रहरति सँस्थितिरेवैषा स्वगाकृतिरग्निहोत्रस्य वा एषोऽशान्तमनु प्रजा
हिनास्ति यत्तृणमक्त्वानु प्रहरति तेनैवैनच्छमयत्यग्ने गृहपते जुषस्व स्वाहेति स्रुवेण गार्हपत्ये जुहोति
यथा पत्नीस्संयाजयत्येवमेव तदनु वा एष एतद्ध्यायति यत् पश्चाधिश्रित्य पुरा जुहोति यत् स्रुवेण
गार्हपत्ये जुहोति तेनैवैनं प्रीणात्यननुध्यायिनं करोत्यस्याग्निहोत्री प्रजायां जायते श्वश्वो वसीयान्
भवति यस्यैवमग्निहोत्रँ हूयते ॥ ८ ॥ १७

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १८
अस्य प्रत्नामनु द्युतँ शुक्रँ दुदुह्रे अह्रयः । पयस्सहस्रसामृषिम् ॥ १९
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेताँसि जिन्वति ॥ २०

[८] मै. १,८,७ (३६—४४) । कपि. ४,७ । वा. ३,१० । काण्व. ३,११-१२ ।
[९] मै. १,५,१—२ (१-२१) । कपि. ४,८ । वा. ३,११-१९; १३,१४; १५,१९,२०,२६,५६; ३३,६; १२,५२; २३,३२; १,२५—२६; २,१५; ६,२२; ३५,१२; ३६,२३; ३८,२३ । काण्व. ३,१७-२७; १४,१४; १६,४१, २३,३२; १,२५—२६; २,१५; ६,२२; ३५,१२; ३६,२३; ३८,२३ । [उप- ४७,७८; ३२,६; १३,५३; २५,३४; १,४२-४३; २,३०, ६,३१; २२,४; ३५,४५; ३६,२३; ३८,२३ । [उप- प्रयन्तो अध्वरं० । ऋ. १,७४,१; सा. १३७९; तै. सं. १,५,५,१ । अस्य प्रत्नामनु द्युतं० । ऋ. ९,५४,१; सा. ७५५; तै. सं. १,५,५,१ । अग्निर्मूर्धा दिव० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२; तै. सं. १,५,५,१, ४, ४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१]

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसस्सह मादयध्यै ।
उभा दातारा इषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ २१
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे ॥ २२
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥ २३
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूँषि तारिषत् ॥ २४
त्वमग्ने सूर्यवर्चास्सं मामायुषा वर्चसा सृज सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथास्समृषीणाँ स्तुतेन
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मीय ॥ २५
इन्धानास्त्वा शतँ हिमा द्युमन्तस्समिधीमहि ।
वयस्वन्तो वयस्विनं यशस्वन्तो यशस्विनम् ।
सुवीरासो अदाभ्यमग्ने सपत्नदम्भनम् ॥ २६
आयुर्धा अग्नेऽस्यायुर्मे धेहि वयोधा अग्नेऽसि वयो मे धेहि तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥
यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्म आपृणाग्नेस्समिदस्यभिशस्त्या मा पाहि सोमस्य समिदसि परस्पा म
एधि यमस्य समिदसि मृत्योर्मा पाह्यग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो-
ऽग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रतिशोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽग्ने यत्ते तेजस्तेन तं प्रतितितिग्धि
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽग्ने यत्तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो-
ऽग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रतिहर योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽग्ने रुचां पते नमस्ते रुचे मयि
रुचं धेहि चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीयावाग्वसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ ९ ॥ २७-२८
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ २९

[उभा वामिन्द्राग्नी० । ऋ. ६,६०,१३; तै. सं. १,१,१४,१; १,५,५,१ । अयमिह प्रथमो० । ऋ. ४,७,१; तै. सं. १,५,५,१ । अयं ते योनिर्ऋत्वियो० । ऋ. ३,२९.१०; अथर्व. ३,२०,१. तै. सं. १,५,५,२, ४,२, ४,३; ४,७,१३,५; तै. ब्रा. १,२,१,१६; २,५,८.८ । दधिक्राव्णो अकारिषं० । ऋ. ४,३९,६; सा. ३५८; अथर्व. २०,१३७,३; तै. सं. १,५,११,४; ७,४,१९,४; ताण्ड्य ब्रा. १,६,१७ । योऽस्मान्द्वेष्टि०...द्विष्मः । अथर्व. १०, ५,१५-२१,२५-३५; १६,७,५; श्री पू. अ. ३ खं. ६]
[१०] वा. ५,३६—३७; ७,४३—४४; ४०,१६; ३३,६५; १९,६—७; १०,५४; २७,१८; ३४,४०; ४,१९ । काण्व. ५,४५-४६; ९,८-९; ४०,१८; ३२,६५; २८,६,९; २२,३९; ३९.३१; ४,२१ । [वेत्था हि वेधो० । ऋ. ६, १६,३; सा. १४७६]

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ ३०
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ ३१
त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यँ ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान् सृजस्सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥ ३२
३३--३४
ऋतावानं वैश्वानरम् ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम ॥ ३५
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नस्सूनुमतः ॥
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
३६
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेन वचसा सत्यमग्ने ॥ ३७
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥
आ तू भर माकिरेतत् परिष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
३८
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्रयन्धि ॥
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यश्शँसामि वयुनानि विद्वान् ।
३९
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिस्सदा नः ॥ ४०
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ४१
अयं नो अग्निर्वरिवः कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयं वाजं जयतु वाजसाता अयं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः ॥ ४२
४३--४४
त्वमग्ने व्रतपा असि ॥ यद्वो वयम् ॥ १० ॥

[अग्ने नय सुपथा० । ऋ. १,१८९,१; तै.सं. १,१, १४,४; १,४,४३,१; तै.ब्रा. २,८,२,३; तै. आ. १,८,८; शत. ब्रा. १४,८,३,१ । आ तू न इन्द्र वृत्रहन्० । ऋ. ४,३२,१; सा. १८१ । त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं० । ऋ. ४, १७,१ । ऋतावानं वैश्वानरम् । अथर्व. ६,३६,१; आ. सू. अ. ८ । वैश्वानरस्य सुमतौ० । ऋ. १,९८,१. तै. सं. १,५,११,३; नि. ७,२२ । अग्ने दा दाशुषे० । ऋ. ३,२४,५; तै. सं. २,१२,६ । त्वद्धि पुत्र सहसो० । ऋ. ३,१४,६ । दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो० । ऋ. ८,१७,१० । अथर्व. २०,५,४, । आ तू भर माकिरेतत्० । ऋ. ३,३६,९, तै. सं. १,७,१३,३ । प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट० । ऋ. ७,१००,५; सा. १६२६; तै. सं. २,२,१२,५; नि. ५,९ । वषट् ते विष्ण अ.स (वास) आ० । ऋ. ७,९९,७; ७,१००,७; सा. १६२७; तै. सं. २,२, १२,४ । त्वामग्ने वाजसातमं० । ऋ. ५,१३,५; तै. सं. १,४,४६,३ । त्वमग्ने व्रतपा असि० । ऋ. ८,११, १; अथर्व. १९,५९.१; तै. सं. १,१,१४,४; १,२,३,१ । यद्वो वयम्० । ऋ. १०,२,४; अथर्व. १९,५९,२; तै. सं. १,१,१४,४]

कृणुष्व पाजः ॥ ४५
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभिद्यौत् ॥ ४६
सेदग्ने अस्तु सुभगस्सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ४७
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मार्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ४८
इह त्वा भूर्याचरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवाँसमनु द्यून् ।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसस्सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवाँसो जनानाम् ॥ ४९
यस्त्वा स्वश्वस्सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥ ५०
महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ ५१
अस्वप्नजस्तरणयस्सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवस्सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ ५२
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ५३
त्वया वयं सधन्य२स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शँसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ ५४
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमँ शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ ११ ॥ ५५ [४४१]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामग्निहोत्र-ब्राह्मणं नाम षष्ठं स्थानकं संपूर्णम् ॥६॥

[११] वा. १३, ९ । काण्व. १४,९ । [कृणुष्व पाजः० । ऋ. ४,४.१; तै. सं. १,२,१४,१; नि. ६,१२ । [स ते जानाति सुमतिं० । ऋ. ४,४,६; तै. सं. १,२,१४,२ । सेदग्ने अस्तु सुभग० । ऋ. ४,४,७; तै. सं. १,२, १४.३ । अर्चामि ते सुमतिं० । ऋ. ४,४,८; तै. सं. १,२,१४,३ । इह त्वा भूर्याचरेदुप० । ऋ. ४,४,९; तै. सं. १,२,१४,४ । यस्त्वा स्वश्वस्सुहिरण्यो० । ऋ. ४,४,१०; तै. सं. १,२,१४,४ । महो रुजामि बन्धुता० । ऋ. ४,४,११; तै. सं. १,२,१४,४ । अस्वप्नजस्तरणयस्सुशेवा० । ऋ. ४,४,१२; तै. सं. १,२,१४,५ । ये पायवो मामतेयं० । ऋ. १,१४७,३; ४,४,१३; तै. सं. १,२,१४,५ । त्वया वयं सधन्य२स्त्वोता० । ऋ. ४, ४,१४; तै.सं. १,२,१४,६; नि. ५,१५ । अया ते अग्ने समिधा० । ऋ. ४,४,१५; तै. सं. १,२,१४,६; नि. ३,२१]

अथ सप्तमं स्थानकम् ।

आलोभी ।

अम्भस्थाम्भो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षीयोर्जस्थोर्जं वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन् क्षये इहैव स्त मापगात मा मा हासिष्ट बह्वीर्मे भवत संहितासि विश्वरूपा मोर्जा विशा गौपत्येना प्रजया रायस्पोषेण मयि वो रायश्श्रयन्तां सहस्रपोषं वः पुषेयम् ॥ १

संपश्यामि प्रजा अहमिडाप्रजसो मानवीः । बह्वीर्भवन्तु नो गृहे ॥ २

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ३

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ४

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नस्स्वस्तये ॥ ५

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवस्सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ६

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतस्समस्मात् ॥ ७

ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण मा पश्यतेडास्थ मधुकृतस्स्योना माविशतेरंमदो मयि वो रायश्श्रयन्तां सहस्रपोषं वः पुषेयम् ॥ १ ॥ ८

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ९

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ १०

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय । ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ ११

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १२

[१] मै. १,५,१—३ (३१-३३) । कपि. ५,१ । वा. ३,२०-२३; १५,४८; २५,४७. ४,२६ । काण्व. ३,२७-३४; १६, ७०; १७,४५; ४,३८ । [उप त्वाग्ने दिवे दिवे० ऋ. १,१,७; सा. १४; तै.सं. १,५,६,२ । राजन्तमध्वराणां० । ऋ. १,१,८; तै. सं. १,५,६,२ । स नः पितेव सूनवे० ऋ. १,१,९; तै. सं. १,५,६,२; नि. ३,२१ । अग्ने त्वं नो अन्तम० । ऋ. ५,२४,१; सा. ४४८,११०७; तै. सं १,५,६,२; ४,४,४,८ । तं त्वा शोचिष्ठ० । ऋ. ५, २४,४; सा. ११०९; तै. सं. १,५,६,३; ४,४,४,८ । वसुरग्निर्वसुश्रवा० । ऋ. ५,२४,२; सा. ११०८; तै. सं. १,५,६,३; ४,४,४,८]

[२] मै. १,५,४ (३५-३९,४१-३४) । कपि. ५,२ । वा. ३,२८-३४,३६; ८,१ । काण्व. ३,३६-४२; ८,१ । [महि त्रीणामवोऽस्तु० ऋ. १०,१८५,१; सा. १९२ । नहि तेषाममा चन० । ऋ. १०,१८५,२ । यस्मै (ते हि) पुत्रासो अदितेः० । ऋ. ८,१८,५ । सोमानं स्वरणं० । ऋ. १,१८,१; सा. १३९,१४६३; तै. सं १,५,६,४; तै. ब्रा. १०,२,११; नि. ६,१०]

यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नस्सिषक्तु यस्तुरः ॥ १३

मा नश्शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ १४

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ १५

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ १६

अच्छिन्नो दैव्यस्तन्तुर्मा मनुष्यश्छेदि निम्रदोऽसीदमहं तं निमृणामि योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं
द्विष्मो विभूरस्यभ्यहं तं भूयासं योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः प्रभूरसि प्राहं तमतिभूयासं योऽस्मा-
न् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पूषा मा प्रपथे पातु पूषा मा पशुपाः पातु पूषा माधिपतिः पातु प्राची
दिगग्निर्देवताग्निं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदासति दक्षिणा दिगिन्द्रो देवतेन्द्रं स ऋच्छतु यो
मैतस्या दिशोऽभिदासति प्रतीची दिक्सोमो देवता सोमं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदास-
त्युदीची दिङ् मित्रावरुणौ देवता मित्रावरुणौ स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदासत्यूर्ध्वा दिग्बृह-
स्पतिर्देवता बृहस्पतिं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदासतीयं दिगदितिर्देवतादितिं स ऋच्छतु
यो मैतस्या दिशोऽभिदासति ज्योतिषे तन्तव आशिषमाशास्तेऽसा अनु मा तनु ॥ २ ॥ १७

धनं मे शंस्य पाहि तन्मे गोपाय ॥ १८

मम नाम प्रथमं जातवेदो माता पिता च दधतुर्न्वग्रे ।
तत्त्वं गोपाया पुनर्ददे ते वयं बिभराम तव नाम ॥ १९

प्रजां मे नर्य पाहि तां मे गोपाय ॥ २०

इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवम् ।
अविनष्टानविह्रुतान् पूषैनानभिरक्षत्वास्माकं पुनरागमात् ॥ २१

अन्नं मे पुरीष्य पाहि तन्मे गोपाय धनं मे शंस्याजुगुपस्तन्मे पुनर्देहि ॥ अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्ध-
ञ्छतं तेजश्शतं ते प्राणास्सहस्रं व्यानाः ॥ त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्य नो रास्व तस्य ते भक्ति-
वानो भूयास्म ॥ २२-२४

[यो रेवान्यो अमीवहा० । ऋ. १,१८,२; नि. ३,२१ । मा नश्शंसो अररुषो० । ऋ. १,१८,३ । कदा चन स्तरीरसि० । ऋ. ८,५१,७; सा. ३००; तै. सं. १,४,२२,१; १,५,६,४ । परि ते दूड (ळ) भो० । ऋ.४,९,८ । योऽस्मान द्वेष्टि० । अथर्व. १०,५,१५-२२,२५-३५, १६,७,५; श्री. पू. अ. ३, सं. ६]

[३] मै. १,४,२; १,५,१४ (१२,५१-७७) । कपि. ५,२ । वा. २,२७; ३,३७,३९; १७,७१ । काण्व. २,४०-५०; ३, ४६-४८; १८,७१ ।

मम च नाम तव जातवेदो वाससी इव विवसानौ चराव ।
ते विभृवो दक्षसे जीवसे च यथायथं नौ तन्वौ जातवेदः ॥ २५

प्रजां मे नर्याजुगुपस्तां मे पुनर्देह्यग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूया अस्थूरि णौ गार्हपत्यं दीदायच्छतं हिमाद्वायू अन्नं मे पुरीष्याजुगुपस्तन्मे पुनर्देहि ॥ ३ ॥ २६

अग्निहोत्रे स्तोमो योक्तव्यो यस्य वा अग्निहोत्रे स्तोमो युज्यते वसीयान् भवत्युपप्रयन्तो अध्वरमिति प्रजा वा इमा उप तास्सत्सत्स्तोमस्ता एवोपयुनक्त्यस्य प्रत्नामनु द्युतमिति देवा वै प्रत्नं ते सत्सत्स्तोमस्तानेव प्रायुङ्क्त स्वर्गायोपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु त इतीय वा उप स्वर्गमेवत्वास्यां प्रतितिष्ठति या वै प्रजा आभविष्यन्तीस्ता उप ता एवोपयुनक्ति परि ते दूडभो रथ इति स्तोममेवैतया युक्तं परिगृह्णात्यग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्येषा मिथुना रेतस्वती पशव्या यासौ धुरं गायत्री प्रथमा सैषा गायत्र्योपास्थितोभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या इति सूर्यो वा इन्द्रस्सोऽग्निं नक्तं प्राविशत्युभा एवैनौ सहेते यासौ धुरं त्रिष्टुप्प्रथमा सैषा त्रिष्टुभोपास्थितायमिह प्रथमो धायि धातृभिरित्यग्निर्वा अस्मिँल्लोक इह प्रथमोऽधीयत यासौ धुरं जगती प्रथमा सैषा जगत्योपास्थितायं ते योनिर्ऋत्विय इतीयं वा अग्नेर्योनिरग्निस्सूर्यस्य यासौ धुरामनुष्टुप्प्रथमा सैषानुष्टुभोपास्थित ॥ दधिक्राव्णो अकारिषमित्येषा वा अग्नेः पशव्या तनूर्या दधिक्रावती तामेवास्य गृह्णात्युपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति पशुर्वा अग्निर्यथा वै गौर्जीर्यति यथाश्वो यथा पुरुष एवमेष आहितो जीर्यत्यग्न्याधेयस्याग्निरुपस्थेयस्तन्वो वा अस्यैतास्ताभिरेवैनं पुनर्णवं करोति यच्छन्दोभिरुपतिष्ठते तैरेवैनं पुनर्णवं करोति यथाग्र आहित एवमस्य भवत्युपतिष्ठते योग एवास्यैष दम एवास्यैष याच्ञ एवास्यैष यथा श्रेयस आहृत्य नमस्यत्येवमेवं तत् ॥ ४ ॥ २७-२८

[४] मै. १,५,५-६ (४५—४६) । कपि. ५,३ । वा. ३,११-१६,३४,३६; २३,३२; ८,२,१३,१४; १५,२०,२६,५६; १२,५२; ३३,६ । काण्व. ३,१७-२२,४२,४४; २५,३४; १४,१४; १६,४१,४७,७८; ३२,६; १३,५३; ८,१ । [उपप्रयन्तो अध्वरं० । ऋ. १,७४,१; सा. १३७९; तै. सं. १,५,५,१ । अस्य प्रत्नामनु द्युतम्० । ऋ. ९,५४,१; सा. ७५५; तै. सं. १,५,५,१ । उपोपेन्नु मघवन् भूय० । ऋ. ८,५१,७; सा. ३००; तै. सं. १,४, २२,१; १,५,६,४ । परि ते दूड (ळ) भो० । ऋ. ४,९,८ । अग्निर्मूर्धा दिवः ककुद्० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२; तै. सं. १,५,५,१; ४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१ । उभा वामिन्द्राग्नी० । ऋ. ६,६०,१३; तै. सं. १,१,१४,१; १,५,५,१ । अयमिह प्रथमो० । ऋ. ४,७,१; तै. सं. १,५,५,१ । अयं ते योनिर्ऋत्वियः० । ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१; तै. सं. १,५,५,२; ३,४,४,३; ४,७,१३,५; तै. ब्रा. १,२,१,१६; २,५,८,८ । दधिक्राव्णो अकारिषं० । ऋ. ४,३९,६; सा. ३५८; अथर्व. २०,१३७,३; तै. सं. १,५,११,४; ७,४,१९,४; ताण्ड्य ब्रा. १,६,१७]

अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपतिष्ठताग्नीषोमयोर्वा एतद्भागधेयं यत् पौर्णमासं ताभ्यामेवैनं परिददाति ता एनमनपक्रामन्तौ गोपायत ऐन्द्राग्न्यापरपक्ष इन्द्राग्न्योर्वा एतद्भागधेयं यदमावस्या ताभ्यामेवैनं परिददाति ता एनमनपक्रामन्तौ गोपायतोऽग्नीषोमा एवैनं पूर्वपक्षाय परिदत्त इन्द्राग्नी अपरपक्षाय संप्रदायँ ह वा एनं देवा अनपक्रामन्तो गोपायन्ति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते कस्मै कमग्निरुपस्थीयत इत्याहुरशित्रं वा एतदग्नेर्यदग्निमुपतिष्ठतेऽग्नय एवैतदशित्रं क्रियते सायमुपतिष्ठते न प्रातस्तस्मात् सायमतिथये प्रत्येनसो नोत तथा प्रातर्यज्ञस्य यज्ञस्य वा आशीरस्ति यदग्निमुपतिष्ठतेऽग्निहोत्रस्यैवैतामाशिषमाशास्ते प्रजापतिः प्रजा असृजत सोऽग्निमेवाग्रेऽसृजत तस्मा एतद्भागधेयमकल्पयद्यदग्न्युपस्थानं यदग्निमुपतिष्ठते स्वेनैवैनं भागधेयेन समर्धयत्यग्निर्वै प्रयुक्तिमभ्यकामयत यथाश्वो रथकाम्यति यदग्निमुपतिष्ठते प्रैवैनं युङ्क्ते काममस्यर्ध्नोति मनुष्यस्येन्नु यः काममृध्नोति स वसीयान् भवत्यृध्नोति वसीयान् भवति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठत उपेति संभवत्येवैतयाग्निर्मूर्धेति रेत एवैतया प्रसिञ्चत्युभा वामिन्द्राग्नी इति प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी प्राणापाना एवैतया दधात्ययमिह प्रथमो धायीति गर्भमेवैतया दधात्यस्य प्रत्नामनु द्युतमित्यूध एवैतया करोत्ययं ते योनिर्ऋत्विय इति जनयति चैवैतया वर्धयति च क्लृप्ता ह वा अस्य प्रजा जायते य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥ २९

अहर्वै देवानामासीद्रात्रिरसुराणां ते देवास्तमसोऽन्धसो मृत्यो रात्र्या अभ्याप्लवमानाद्बिभयुस्ते छन्दोभिरग्निमन्वारभन्त गायत्र्या वसवस्त्रिष्टुभा रुद्रा जगत्यादित्या अम्भस्स्थेति पशव इन्धाना इति मनुष्यास्ते देवास्तमसोऽन्धसो मृत्यो रात्र्याः पारमतरन्यच्छन्दोभिरग्निमुपतिष्ठते तमस एवैषान्धसो मृत्यो रात्र्याः पारतीर्तिंस्त्वमग्ने सूर्यवर्चा इत्यग्नय एवैतामाशिषमाशास्ते सं मामायुषा वर्चसा सृजेत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथा इत्यग्नय एवैतामाशिषमाशास्ते ॥ समृषीणाँ स्तुतेनेति च्छन्दाँसि वा ऋषीणाँ स्तुतं छन्दोभिरेवैनँ समर्धयति सं प्रियेण धाम्नेति पशवो वा अग्नेः प्रियं धाम पशुभिरेवैनँ समर्धयति समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मीयेत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्त इन्धानास्त्वा शतं हिमा इत्येतद्ध वै दाशर्म आरुणिमुवाचाग्निमादधिवाँसमुद्दालकः केनाग्निरुपस्थेय इति तस्मै हैतदग्न्युपस्थानमुवाच स होवाचानयोपस्थेय इन्धानास्त्वा शतँ हिमा इति यो वा एतयोपतिष्ठते पापीयानस्माद् भ्रातृव्यो भवति पापीयान् सपत्नस्सर्वमायुरेत्या जीवितोरन्नमत्त्यायुर्धा अग्नेऽस्यायुर्मे धेहीत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते

[५] मै. १,५,७ (४८) । कपि. ५,४ । वा. ३,१२-१६; १३,१४; १५,२०,२६,५६; ३३,१; १२,५२ । काण्व. ३, १८-२२; १४,१४. १६,४१,४७,७८; ३२,६; १३,५३ ।

[६] मै. १,५,८-९ (४९-५०) । कपि. ५,५ । वा. ३,१७-२० । काण्व. ३,२३-२७ । [योऽस्मान् द्वेष्टि०...द्विष्मः । अथर्व. १०,५,१५-२१,२५-३५; १६,७,५; श्री. पू. अ. ३, सं. ६]

वयोधा अग्नेऽसि वयो मे धेहीत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहीत्यात्मन
एवैतामाशिषमाशास्ते यन्मे अग्न ऊन तन्वस्तन्म आपृणेति यदेवास्योनमात्मनस्तदापूरयतेऽग्नेस्समि-
दस्यभिशस्त्या मा पाहि सोमस्य यमस्येति सर्वस्मादेवैनमेताः पान्त्यग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रतितप
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति तेनैवैनं प्रतितपति प्रतिशोचति प्रतितित्यक्ति प्रत्यर्चति प्रति-
हरत्येतद्ध वा आरुणिरुवाचैतेनाहँ सर्वान् सपत्नान् सर्वान् भ्रातृव्यानभ्यभवमिति श्रेयाञ्छ्रेयाना-
त्मना भवति पापीयान् पापीयान् य एनं द्वेष्टि योऽस्मा अरातीयति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठतेऽग्ने
रुचां पते नमस्ते रुचे मयि रुचं धेहीति सर्वा एव शुचश्शमयित्वा रुचमात्मन् धत्ते चित्रावसो
स्वस्ति ते पारमशीयार्वाग्वसो स्वस्ति ते पारमशीयेति रात्री वै चित्रावसुरहर्वाग्वसुरहोरात्रयोरेवैषा
परीतिर्न नक्तं न दिवार्तिमार्च्छति य एवं वेद भङ्क्ते वा एते यज्ञस्याग्नी रात्र्यसा आदित्योऽहरेते
एव भङ्क्ते इष्ट्वे ईश्वरो भूतं च भविष्यच्चाज्ञातोर्य एवं वेद ॥ ६ ॥ ३०–३१

अम्भस्स्थेत्यम्भो होता महस्स्थेति महो होता ऊर्जस्स्थेत्यूर्जो होता रायस्पोषस्स्थेति रायस्पोषो
होता रेवती रमध्वमिति पशवो वै रेवतीः पशव एतद्यदन्तराग्नी स एवैना गोष्ठे रमयामकरस्मिन्
योना इत्येष ह्यासां योनिरस्मिन् गोष्ठ इत्येष ह्यासां गोष्ठोऽयं वो बन्धुरितो मापगातेत्युपोषैवैनं
पशवो यन्ति नापक्रामन्ति य एवं विद्वानग्निमुपातिष्ठत एति वा एषोऽस्माल्लोकाद्योऽग्निमुपतिष्ठतेऽम्भ-
स्स्थेति पशवो वा अम्भः पशवोऽन्तरिक्षं पशुष्वेव प्रतितिष्ठति बिभ्यति वै देवेभ्यः पशवो देवा-
नामेष एको योऽग्निमुपतिष्ठते ॥ तेऽस्मादीश्वराः प्रत्रसस्सँहितासि विश्वरूपीत्येतानि वै गोर्नामानि
सँहिता विश्वरूपा गौस्तान्येवास्य गृह्णात्यप्रत्रासाय सँहितासि विश्वरूपेति रूपेण रूपेण ह्येषा सँहिता
मोर्जा विशा गौपत्येना प्रजया रायस्पोषेणेत्येतैर्ह्येषा विशन्त्याविशति मयि वो रायश्श्रयन्ताँ सहस्र-
पोषं वः पुषेयमिति साहस्रीमेव पुष्टिं न्यङ्क्ते वत्सं पराहन्ति वत्सनिकान्ताः पशवः पशूनामनु-
क्शात्या अभिका एनं पशवो भवन्ति सप्त वै बन्धुमतीरिष्टका अग्नौ चित्य उपधीयन्ते तास्ता
अमुष्मै लोकाय सप्त ग्राम्यास्ता अत्रोपधेया गौश्चाश्वश्चाविश्चाजा चाश्वतरश्च गर्दभश्च पुरुषो यद्गां
पराहन्ति ता एवैतदपधत्तेऽथो गवैवैनं चिनुते ॥ ७ ॥ ३२--३३

सं पश्यामि प्रजा अहमिति सर्वा एव प्रजा अवरुन्द्ध इडप्रजसो मानवीरित्यैडीर्हि प्रजा मान-
वीर्ये च वै ग्राम्याः पशवो ये चारण्यास्त उभये नक्तँ सँसृज्यन्ते तस्मादपि येऽल्पाः पशवस्ते नक्तं
बहव इव दृश्यन्ते त ईश्वरा अमुं लोकमनुपदो यदेतद्यजुर्वदत्यस्मिन्नेवैनांल्लोके यच्छत्यग्निर्वा एत-
स्यांस्मिँल्लोकेऽग्रे जायते य आहिताग्निस्सोऽस्य पशूनुपजायमानान् हिनस्त्युप त्वाग्ने दिवे दिव इत्यु-

[७] मै. १,५,९-१० (५०-५१) । कपि. ५,५ । वा. ३,२०-२२ । काण्व. ३,२७-२९ ।
[८] मै. १,५,१० (५०-५३) । कपि. ५,५ । वा. ३,२२—२५ । काण्व. ३,३०—३३ ।

पैवैनं जायमानेभ्यश्शमयति दोषावस्तर्धिया वयं नमो भरन्त एमसीति नमस्वत्योपास्थित राजन्त-
मध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानँ स्वे दम इति वृधद्वत्या स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपा-
यनो भव सचस्वा नस्स्वस्तय इति स्वस्तिमत्याग्ने त्वं नो अन्तम इत्येतद्ध वै दिवोदासो भैमसे-
निरारुणिमुवाचाग्निमादधिवाँसमुद्दातः केन गार्हपत्य उपस्थेय इति तस्मै हैता उवाच स होवाचा-
भिरुपस्थेयोऽग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्य इत्येषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्या
वरूथ्या प्रिययैवैनं तन्वोपास्थित द्विपदाभिर्द्विपात् पुरुषो गृहा गार्हपत्यो गृहेष्वेव प्रतितिष्ठति तिस्रः
पूर्वाश्चतस्र एतास्तास्सप्त सप्त ग्राम्याः पशवस्तानेवावरुन्द्ध ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यतेत्यूर्ज-
मेव गृहेषु पशुष्वात्मन् धत्तेऽथो या अमूरिष्टका उपधत्ते ता एवैतत् कल्पयतीडास्स्थ मधुकृत इतीडा
होता मधुकृतस्स्योना माविशतेरंमद इति स्योना होता इरया सहाविशन्ति मयि वो रायश्श्रयन्ताँ
सहस्रपोषं वः पुषेयमिति साहस्रीमेव पुष्टिं न्यङ्क्ते वत्सं पराहन्ति वत्सनिकान्ताः पशवः पशूना-
मनुक्शात्या अभिका एनं पशवो भवन्त्यथो इष्टकामेवैतां गार्हपत्य उपाधत्ते ॥ ८ ॥ ३४

महि त्रीणामवोऽस्त्वित्येष प्राजापत्यस्तृचः प्राजापत्या इमाः प्रजास्सर्वा एव प्रजा अवरुन्द्धे
प्रजापतिर्वा एताः प्रजापतिमेवैतदुपेत्य सर्वमाप्त्वा सर्वमवरुध्य सोमानँ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पत
इति ब्राह्मणस्पत्या ब्रह्मवर्चसमेवैतयात्मन् धत्ते वैश्वदेवीर्वा एता वैश्वदेवीरिमाः प्रजा ब्रह्मणो योनेः
प्रजाः प्रजायन्ते यदेषा ब्राह्मणस्पत्या ब्रह्मण एवैना योनेः प्रजनयत्येताभिर्वा अदितिः पुत्रान-
न्वैक्षत यत् सोममाहरन्नमुष्माल्लोकात् स्वस्ति पुनरागच्छन् सह सोमेन यमेव कामं कामयते
तँ स्पृणोति यं कामयेत स्वस्ति पुनरागच्छेदिति तमेताभिरन्वीक्षेत स्वस्त्येव पुनरागच्छति ॥
कदा चन स्तरीरसि परि ते दूडभो रथ इति स्तोमस्यैवैतद्योगः कदा चन स्तरीरसीत्ये-
तद्ध वा आरुणिरुवाच न तावद्रात्रीँ स्तर्यमुवस यावदेतामृचमश्रृणवमिति न रात्रीँ स्तर्यं
वसति य एवं वेद गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दास्तं छन्दसा व्यर्धयति यद्विच्छन्दोभिरुपतिष्ठते
यदेषा गायत्र्युत्तमा स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयति सर्वं वा एष आप्त्वा सर्वमवरुध्य स्वर्गं लोकमेति
योऽग्निमुपतिष्ठते व्यस्य प्रजा छिद्यते यत् पुत्रं ह्वयति प्रजामेवानुसंतनोति मानुषमिव वा एतदुपा-
वर्तत यत् पुत्रं ह्वयत्यच्छिन्नो दैव्यस्तन्तुर्मा मनुष्यश्छेदीति देवलोकं चैव मनुष्यलोकं च संतनो-
त्युभौ लोका आजयति ॥ निम्रदोऽसीत्यव तं गृह्णाति योऽस्य पश्चाद् भ्रातृव्योऽभिभूरसीत्याभि तं
भवति य एनेन सदङ् प्रभूरसि प्राहं तमतिभूयासमित्यति तं क्रामति य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो
भ्रातृव्यः पूषा मा प्रपथे पातु पूषा मा पशुपाः पातु पूषा माधिपतिः पात्वितीयं वै पूषा प्रपथेऽन्तरिक्षं

[९] मै. १,५,११(५४) । कपि. ५,५ । वा. ३,२८,३१,३४,३६ । काण्व. ३,३६,३९,४२,४४ । [महि त्रीणामवोऽस्तु० ।
ऋ. १०,१८५,१; सा. १९२ । सोमानँ स्वरणं० । ऋ. १,१८,१, सा. १३९,१४६३; तै. सं. १,५,६,४; तै. आ.
१०,१,११; नि. ६,१० । कदा चन स्तरीरसि० । ऋ. ८,५१,७; सा. ३००; तै. सं. १,४,२२,१; १,५,६,४]

पशुपा द्यौरधिपतिरिति एवैनं लोकाः पान्त्यग्निं समिन्धेऽनुसंतत्यै प्राची दिगग्निर्देवतेत्येता एव
स देवता ऋत्वा पराभवति य एनमेताभ्यो दिग्भ्योऽभिदासति ज्योतिषे तन्तव आशिषमाशास
इत्याशिषमेवाशास्ते योऽस्य प्रियः पुत्रस्स्यात् तस्य नाम गृह्णीयात् तस्मिन्नेव ता आशिषो दधाति
॥ ९ ॥ ३५--३७

अहर्वावासीन्न रात्री सा यमी भ्रातरं मृतं नामृष्यत तां यदपृच्छन्यमि कर्हि ते भ्रातामृतेत्यद्ये-
त्येवाब्रवीत् ते देवा अब्रुवन्नन्तर्दधामेदं रात्रीं करवामेति ते रात्रीमकुर्वँस्ते रात्र्यां भूतायां पशून्ना-
पश्यन् सावेन्न वै पश्यन्तीति सा न व्यौच्छदरेत्कलस्यत पशुषु तान् देवा इच्छन्तः पल्यायन्त
ताँश्छन्दोभिरन्वपश्यँस्तस्माच्छन्दोभिर्नक्तमग्निरुपस्थेयः पशूनामनुक्शात्यै नास्मात् पशवस्तिरो-
भवन्ति य एवं वेद सावेदनु वा अरुयन्निति सा व्यौच्छत् ते देवा अब्रुवन्नमा वै नो वसभूदिति
सामावस्यामा ह वा अस्य वसु भवति विन्दतेऽन्यस्य वसु नास्यान्यो वसु विन्दते य एवं विद्वान-
ग्निमुपातिष्ठते॥ देवा वा अह्ना रक्षाँसि निरघ्नँस्तानि रात्रीं प्राविशँस्ता देवा न व्येतुमधृष्णुवँस्त इन्द्रम-
ब्रुवँस्त्वं वै न ओजिष्ठोऽसि त्वामिमां वीहीति स्तुत मेत्यब्रवीत्तास्तुतो वीर्यं कर्तुमर्हामीति तेऽब्रुवन्नेष
तेऽग्निर्नेदिष्ठँ स त्वा स्तौत्विति तमग्निरस्तौत् स स्तुतस्सर्वा मृधस्सर्वा नाष्ट्रास्सर्वाणि रक्षाँस्यतरदिन्द्रो
यजमानो यदग्निमुपतिष्ठते सर्वा एव मृधस्सर्वा नाष्ट्रास्सर्वाणि रक्षाँसि तरति नास्य नक्तं रक्षाँसीशते
य एवं वेद त्वष्टा वै भूत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत त्वष्टा यजमानस्स यद्वाचावदत् तदभवद्यद्
वाचा वदति तद्भवति यद्यदेव वाचा वदति तत् तद्भवति तत् तत् सृजते ॥१०॥ ३८–३९

धनं मे शँस्य पाहि तन्मे गोपायेति प्रवत्स्यन्नाहवनीयमुपतिष्ठेत धनस्य वा एष गोप्ता तदे-
वास्मै परिददाति मम नाम प्रथमं जातवेद इत्यग्निनैवैतत्तन्वं विपरिधत्ते यथान्ते सतोऽग्निहोत्रँ हुतं
यथेष्टमेवमस्यापि प्रवसतो भवति प्रजां मे नर्य पाहि तां मे गोपायेति प्रजाया वा एष गोप्ता तामे-
वास्मै परिददातीमान्मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवमिति मित्रेण च वा इमाः प्रजा गुप्ताः
क्रूरेण च मित्रं मित्रः क्रूरं वरुण इयं पूर्वैताभ्य एव देवताभ्यो गृहान् परिददात्यश्नं मे पुरीष्य पाहि
तन्मे गोपायेत्यन्नस्य वा एष गोप्ता तदेवास्मै परिददाति धनं मे शँस्याजुगुपस्तन्मे पुनर्देहीति धन-
मेव गुप्तं पुनरात्मन् धत्तेऽग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेज इत्येतैर्वा एतौ व्यृध्येते विप्रवसन्तौ प्राणे-
रपानैस्तेजोभिर्वीर्यैर्यदेतैरुपतिष्ठते तैरेव समृध्येते मम च नाम तव च जातवेद इत्यग्निनैवैतत् तन्वं
यथायथं कुरुते प्रजां मे नर्याजुगुपस्तां मे पुनर्देहीति प्रजामेव गुप्तां पुनरात्मन् धत्तेऽग्ने गृहपत इति

[१०] मै. १,५,१२ (५५) । कपि. ५,६ ।
[११] मै. १,५,१४ (६३—६४, ६६-७१) । कपि. ६,१ । वा. ३,३७; १७,७१ । काण्व. ३,४३; १८,७१ ।

नार्तिमार्च्छतोऽग्निश्च यजमानश्च न श्रेयं नीतोऽश्नं मे पुरीष्याजुगुपस्तन्मे पुनर्देहीत्यन्नमेव गुप्तं
पुनरात्मन् धत्ते ॥ ११ ॥ ४०

प्र वेधसे कवये वेद्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यजेह्येळानि ॥ ४१
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ४२
उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निंसानं जुह्वो मुखे ॥ ४३
उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ ४४
प्रजा अग्ने संवासयाशाश्च पशुभिस्सह । राष्ट्राण्यस्मा आधेहि यान्यासन् सवितुस्सवे ॥ ४५
सं वस्सृजामि हृदयँ सँसृष्टं मनो अस्तु वः ।
सँसृष्टास्तन्वस्सन्तु वस्सँसृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥ ४६
सं या वः प्रियास्तन्वस्सँप्रिया हृदयानि वः ।
आत्मा वो अस्तु सँप्रियस्सँप्रियास्तन्वो मम ॥ ४७
यो अश्वत्थश्शमीगर्भ आरुरोह त्वय्यपि । तं ते गृह्णामि यज्ञियैः केतुभिस्सह ॥ ४८
मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निं रायस्पोषेण सह वर्चसेह देवाः ।
मयि प्रजां मयि पुष्टिं दधामि मदेम शतहिमास्सुवीराः ॥ ४९
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तमात्मनि परिगृह्णीमहे वयं मैषो अस्मानवहाय परागान्मा वयमेतमवहाय परागाम ॥ ५०
मही विश्पत्नी सदनी ऋतस्यार्वाची एतं धरुणे रयीणाम् ।
अन्तर्वती जन्यं जातवेदसमध्वराणां जनयतं पुरोगाम् ॥ ५१
उत् समुद्रान्मधुमाँ ऊर्मिरागात् साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं चेषमूर्जं मधुमत् सम्भरेम ॥ ५२
इयत्यग्र आसीरद्यो देवि प्रथमाना पृथग्यत् ।
देवैर्नुत्ता व्युसर्पो महित्वा अदृँहथाश्शर्कराभिस्त्रिविष्टपि ।
अजयो लोकान् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५३

[१२] मै. १,६,१ (२—४,१०,१२) । कपि. ६,१ । वा० ३,१,४; १२,३०; १३,१ । काण्व. ३,१,४; १३,३१;
१४,१ । [प्र वेधसे कवये० । ऋ. ५,१५,१; तै. ब्रा. १,२,१,९ । समिधाग्निं दुवस्यत० । ऋ. ८,४४,१;
तै. सं. ४,२,३,१; तै. ब्रा. १,२,१,९ । उदग्ने तव तद् घृता० । ऋ. ८,४३,१० । उप त्वा जुह्वो मम० ।
ऋ. ८,४४,५; सा. १५४२ । मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निं० । अथर्व. ७,८२,२ । यो नो अग्निः पितरो० ।
अथर्व. १२,२,३३]

उदैष्यग्ने अधि मातुः पृथिव्या विश आविश महतस्सधस्थात् ।
आशुं त्वाजौ दधिरे देवयन्तो हव्यवाहं भुवनस्य गोपाम् ॥ ५४
यदीदं दिवो यदि वा पृथिव्यास्संबभूव सुकृतो रणयोः ।
तयोः पृष्ठे सीदतु जातवेदाः प्रजामस्मभ्यं जनयन् रयिं च ॥ ५५
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥ ५६
यत् पृथिव्या अनामृतं संबभूव त्वे सचा । तदग्निरग्नये ददत् तस्मिन्नाधीयतामयम् ॥ ५७
यदन्तरिक्षस्य यद्दिवो अनामृतं संबभूव त्वे सचा ।
तदग्निरग्नये ददत् तस्मिन्नाधीयतामयम् ॥ १२ ॥ ५८
इत एवं प्रथमं जज्ञे अग्निरेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ५९

सहाग्ने अग्निना जायस्व सह रय्या सह पुष्ट्या सह प्रजया सह ब्रह्मवर्चसेनाजन्यग्निर्होता पूर्वः पूर्वेभ्यः पवमानः पावकश्शुचिरीड्योऽसुरसि प्रथमजा असुनामासुरुच्यसेऽसुरहमसुस्त्वं किमद्यासुरंसु करदसोरसुं प्रतीतन संजानीध्वं भूर्भुवरङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादध आदित्यानां त्वा देवानां व्रतेनादधे द्यौर्महासि भूमिर्भूम्ना तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमन्नाद्यायान्नपत्यायादधे ॥ ६०

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६१

अग्ने गृहपतेऽहे बुध्न्य परिषद्य दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं विन्द यजमानाय पृथिव्या मूर्धन् सीद यज्ञिये लोके यो नो अग्ने निष्ट्यो योऽनिष्ट्योऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि ॥ ६२

यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवि याः पृथिव्याम् ।
ताभिस्संभूय संगणस्सजोषा हिरण्ययोनिर्वह हव्यमग्ने ॥ ६३

सं त्वमग्ने दिव्येन ज्योतिषा भाहि समन्तरिक्ष्येण सं पार्थिवेन वैश्वानर्या समिधा दीदिही न ऊर्जस्वत्या वर्चस्वत्या भास्वत्या रश्मिवत्या ज्योतिष्मत्या ॥ या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः पशुषु पवमाना तामावह तया मा जिन्व या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूरप्सु पावका तामावह तया मा जिन्व या

[चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं० । ऋ. ३,३,५]
[१२] मै. १,६,१-२ (६-९,१३—१४,१६,१९,२१—२२) । कपि. ६,२—३ । वा. १३,३४; ३,५—८; ५,२३; १७,६६ । काण्व. १४,३६; ३,५—८; ५,२९; १८,६६ । [स गायत्र्या त्रिष्टुभा०...प्रजानन्। ऋ. १०,१६,९; अथर्व. १२,२,८ । आयं गौः पृश्नि० । ऋ. १०,१८९,१; सा. ६३०,१३७६; अथर्व. ६,३१,१; २०,४८,४; तै. सं. १,५,३,१ । यास्ते शिवास्तन्वो० । अथर्व. ९,२,२५]

वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूस्सूर्ये शुक्रा शुचिमती तामावह तया मा जिन्वौजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृषण शुष्मायायुषे वर्चसे । शस्तिर्नृरसि वृत्रतूरस्मान् पथो ज्यैष्ठ्यान्मा योषम् ॥ ६४-६५
प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्ने भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यद्विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६
भुवरङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादध आदित्यानां त्वा देवानां व्रतेनादधे द्यौर्महासि भूमिर्भूम्ना तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमन्नाद्यायान्नपत्यायादधे ॥ ६७
अस्य प्राणादपानत्यन्तश्चरति रोचना । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ६८
अग्ने नय मयोभो सुशेव दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं विन्द यजमानाय पृथिव्या मूर्धन् सीद यज्ञिये लोके यो नो अग्ने निष्ट्यो योऽनिष्ट्योऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि ॥ ६९
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवि याः पृथिव्याम् ।
ताभिस्संभूय संगणस्सजोषा हिरण्ययोनिर्वह हव्यमग्ने ॥ ७०
सं त्वमग्ने दिव्येन ज्योतिषा भाहि समन्तरिक्ष्येण सं पार्थिवेन वैश्वानर्या समिधा दीदिही न ऊर्जस्वत्या वर्चस्वत्या भास्वत्या रश्मिवत्या ज्योतिष्मत्या नाकोऽसि ब्रध्नः प्रतिष्ठा संक्रमणं भूर्भुवस्स्वरङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादध आदित्यानां त्वा देवानां व्रतेनादधे द्यौर्महासि भूमिर्भूम्ना तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमन्नाद्यायान्नपत्यायादधे ॥ ७१
त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गो अशिश्रयुः । प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ७२
अग्ने सम्राडजैकपादाहवनीय दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं विन्द यजमानाय पृथिव्या मूर्धन् सीद यज्ञिये लोके यो नो अग्ने निष्ट्यो योऽनिष्ट्योऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि ॥ ७३
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवि या पृथिव्याम् ।
ताभिस्संभूय संगणस्सजोषा हिरण्ययोनिर्वह हव्यमग्ने ॥ ७४
सं त्वमग्ने दिव्येन ज्योतिषा भाहि समन्तरिक्ष्येण सं पार्थिवेन वैश्वानर्या समिधा दीदिही न ऊर्जस्वत्या वर्चस्वत्या भास्वत्या रश्मिवत्या ज्योतिष्मत्या ॥ ७५
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वाविवेश ।
यत्र यत्र बिभ्रतो जातवेदा अग्ने ततो द्रविणोदा न एहि ॥ ७६

[अस्य प्राणा० (अन्तश्चरति) रोचना० । ऋ. १०,१८९,२; सा. १३७७; अथर्व. ६,३१,२; २०,४८,५; तै. सं. १,५,३,१ । त्रिंशद्धाम विराजति० । ऋ. १०,१८९,३; सा. ६३२,१३७८; अथर्व. ६,३१,३; २०,४८,६; तै. सं. १,५,३,१ । यस्ते अप्सु महिमा० । अथर्व. १९,३,२ (पूर्वार्धः) । यत्र यत्र बि (बि) भ्रतो० । अथर्व. १९,३,१ (उत्तरार्धः)]

मनुष्वत् त्वा निधीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ १३ ॥ ७७

सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि सप्त होत्रा अनुविद्वान् सप्त योनीरापृणस्वा घृतेन या ते अग्ने पवमाना तनूः पृथिवीमन्वाविवेश याग्नौ या रथन्तरे या गायत्रे छन्दसि या त्रिवृति स्तोमे याग्नौ तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा या ते अग्ने पावका तनूरन्तरिक्षमन्वाविवेश या वाते या वामदेव्ये या त्रैष्टुभे छन्दसि या पञ्चदशे स्तोमे या पशुषु तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा या ते अग्ने शुचिस्तनूर्दिवमन्वाविवेश या सूर्ये या बृहति या जागते छन्दसि या सप्तदशे स्तोमे याप्सु तां त एतदवरुन्धे तस्यै स्वाहा ॥ वातः प्राणस्तदयमात्मा पुरीषमसि संप्रियः पशुभिर्यच्छा लोकाय तनयाय शं योः प्रजां मे यच्छ घर्मश्शिरस्तदयमग्निः पुरीषमसि संप्रियः पशुभिस्त्वदितं नः पितुं पच पशून् मे यच्छार्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्यः पुरीषमसि संप्रियः पशुभिर्यद् ते शुक्र शुक्रं धाम शुक्रा तनूश्शुक्रं ज्योतिरजस्रं यत् तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे वर्चो मे यच्छ येऽग्नयो दिवो येऽन्तरिक्षाद्ये पृथिव्यास्समाजग्मुरिषमूर्जं वसानास्तेऽस्मा अग्नये द्रविणानि दत्त्वा तृप्ताः प्रीताः पुनरस्तं परेत ॥ ७८-७९

कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथक् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ ८०
येऽग्नयस्समनसस्सचेतस ओषधीष्वप्सु प्रविष्टाः ।
ते सम्राजमभिसंयन्तु सर्वे ऊर्जं नो धत्त द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८१
अयमग्निश्श्रेष्ठतमोऽयमस्तु यशस्तमः ।
अयं सहस्रसातमस्सुकृतं योनिमासदत् ततो वरान् वृणीमहे ॥ ८२
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ८३
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ १४ ॥ ८४

अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत् तस्योच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त य एष

[मनुष्वत्त्वा निधीमहि० । ऋ. ५,८६,२०; सा. ८२२]
[१३] मै. १,६,२,७ (१९,२४,२९-३२,३४-३८,४४) । कपि. ६,३-४ । वा. १७,७९; १३,२५; १४,६,१५-१६,२७; १५,५७; १०,२७; २०,२; ३३,५७ । काण्व. १८,७९; १४,२६; १५,५,१६,३१,७९; [निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,२; तै. ब्रा. १,७,१०,२; २,६,५,१ । प्र नूनं ब्रह्मणस्पति० । ऋ. १,४०,५]
[१५] कपि. ६,५ ।

ओदनः पच्यत आरम्भणमेवैतत् क्रियत आक्रमणमेव प्रादेशमात्रीस्समिधो भवन्त्येतावान् ह्यात्मा प्रजापतिना संमितोऽग्नेर्वै या यज्ञिया तनूरश्वत्थे तया समगच्छतैषास्य घृत्या तनूर्यद् घृतं यद् घृतेन समिधोऽनक्ति ताभ्यामेवैनं तनूभ्यां संगमयति निर्मार्गस्मादधात्यपगूर्त्या वै वीर्यं क्रियते यन्निर्मार्गस्मादधात्यपगूर्त्या एव संवत्सरो वै प्रजननमग्निः प्रजनयिता तत् प्रजनन यत् पुरा संवत्सराद्यां समिध आदधाति प्रजननादेवैनं प्रजनयिता प्रजनयत्यभक्तर्तुर्वै पुरुषो न हि तद्वेद यमृतुमभिजायते यन्नक्षत्रं यत् समिध आदधाति य एवास्यर्तुर्यन्नक्षत्रं तदाप्नोति य एष ओदनः पच्यते योनिरेवैष क्रियते यत् समिध आधीयन्ते रेतस्तद्धीयते संवत्सरे वै रेतो हितं प्रजायते यत् संवत्सरे पर्येतेऽग्निमाधत्ते प्रजातमेवैनमाधत्ते द्वादशसु रात्रीषु पुराधेयास्ता हि संवत्सरस्य प्रतिमाथो तिसृष्वथो द्वयोरथो पूर्वेद्युराधेयास्त एवाग्निमादधानेनादित्या वा इत उत्तमा अमुं लोकमायंस्ते पथिरक्षयस्त इयक्षमाणं प्रतिनुदन्त उच्छेषणभागा वा आदित्वा यदुच्छिष्टेन समिधोऽनक्ति तेभ्य एव प्रायोचत तेभ्य एव प्रोच्य स्वर्गं लोकमारोहति ॥ १५ ॥ ८५

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ८६
कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ८७
अग्निर्होता साध्वीमकरग्न आयूंषि पवसे ॥ ८८
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चस्सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ८९
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ९०
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ ९१

[१६] वा. १९,३८; ३५,१६; ८,३८; २६,६-७; १३,५२; १८,७७ । काण्व. ८,१९-२०; २१,४०; २९,३७-३८; ३५,४८; २८,६,९; १४,५४; २०,४६ । [आ वो राजानमध्वरस्य० । ऋ. ४,३,१; सा. ६९; तै. सं. १,३,१४,१ । कद्धिष्ण्यासु वृधसानो० । ऋ. ४,३,६ । अग्निर्होता० । ऋ. १,१,५; ३,११,१; ४,१५,१; ५,१,६; ५,९,२; ६,१५,१३; तै. ब्रा. १,३,१४,१; ३,५,१२,१; ३,६,३,१ । साध्वीमक० । ऋ. १०,५३,३; तै. सं. १,३,१४,१ । अग्न आयूंषि पवसे० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७, १४६४, १५१८; तै. सं. १,३,१४,७; ४,२९,१; ५,५,१; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१ । अग्ने पवस्व स्वपा० । ऋ. ९,६६,२१; सा. १५२०; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,२; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१ । यो अश्वस्य दधिक्राव्णो० । ऋ. ४,३९,३ । महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा० । ऋ. ४,३९,२]

ऋतावानं वैश्वानरं वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम ॥ ९२
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ९३
तृपु यदन्ना तृपुणा ववक्ष तृपुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेडिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥ ९४
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य । तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ९५
त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्रमन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ ९६
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ९७
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥ ९८
कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥ ९९
त्वे वसूनि पूर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन् सं सौभगानि दधिरे पावके ॥ १००
प्र वस्सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्च गाय च वेधसे ॥ १०१
प्र वश्शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १०२
वि ज्योतिषा वि पाजसा ॥ १०३
सं त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥ १०४
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१६॥ १०५

[ऋतावानं वैश्वानरं० । अथर्व. ६,३६,१; आ. गृ. अ. ८ । वैश्वानरस्य सुमतौ० । ऋ. १,९८,१; मै. ग. १,५,११,३; नि. ७,२२ । उक्षान्नाय वशान्नाय० । ऋ. ८,४३,११; अथर्व. ३,२१,६; २०,१,३; तै. सं. १,३,१४,७ । तृपु यदन्ना तृपुणा० । ऋ. ४,७,११ । अग्निरीशे वसव्यस्य० । ऋ. ४,५५,८ । त्वामग्ने वसुपति० । ऋ. ५,४,१; तै. सं. १,४,४६,२ । त्वं यविष्ठ दाशुषो० । ऋ. ८,८४,३; सा. १२४६ । तुभ्यं भरन्ति क्षितयो० । ऋ. ५,१,१०; तै. ब्रा. २,४,७,९ । कृष्णा रजांसि पत्सुतः० । ऋ. ८,४३,६ । त्वे वसूनि पू(पु०)र्वणीक० । ऋ. ६,५,२; तै. सं. १,३,१४,२ । प्र वस्सखायो अग्नये० । ऋ. ६,१६,२२ । प्र वश्शुक्राय भानवे० । ऋ. ७,४,१; तै. ब्रा. २,८,२,३ । वि ज्योतिषा० । ऋ. ५,२,९; अथर्व. ८,३,२४; तै. सं. १,२,१४,७; नि. ४,१८ । वि पाजसा० । ऋ. ३,१५,१; तै. सं. १,१,५,१ । स त्वमग्ने प्रतीकेन० । ऋ. १०,११८,८; तै. सं. २,५,१२,५ । तं सुप्रतीकं सुदृशं० । ऋ. ६,१५,१०; तै. सं. २,५,१२,५]

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यस्सदः । १०६
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ १०७
त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसस्सून आहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ १०८
अयमग्निस्सहस्रिणः ॥ १०९
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ११०
कस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ १११
कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ ११२
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ११३
मा नस्समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ११४
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ ११५
कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ ११६
मा नो अस्मिन् महाधने परावर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥ ११७
परस्या अधि संवत एवा पु ब्रवाणि ते ॥ १७ ॥ ११८
[५५९]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामालोमी नाम सप्तमं स्थानकं संपूर्णम् ॥ ७ ॥

अथाष्टमं स्थानकम् ।

दिशस्थानकम् ।

दिशो वै नाकल्पन्त न प्राजायन्त तत एतामग्नये प्राचीं दिशमरोचयन्यत् कृत्तिका यत् कृत्तिका-
स्वग्निमाधत्ते प्राच्यामेवैनं दिश्याधत्त एष वावैकः प्राङवस्यति य आहिताग्निः प्रत्यञ्चोऽन्य आग्नेय-

[१७] वा. १३,३७; ३३,४; १५,२१; ११,७१; २६,१३ । काण्व. १४,३९; ३२,४; १६,४२; १२,७२ । [युक्ष्वा हि देवहूतमाँ० । ऋ. ८,७५,१; तै. सं. २,६,११,१ । उत नो देव देवाँ० । ऋ. ८,७५,२; तै. सं. २,६,११,१ । त्वं ह यद्यविष्ठ्य० । ऋ. ८,७५,३; तै. सं. २,६,११,१ । अयमग्निस्सहस्रिणः० । ऋ. ८,७५,४; तै. सं. २,६,११,१; ४,४,४,१ । तं नेमिमृभवो यथा० । ऋ. ८,७५,५; तै. सं. २,६,११,१ । क(त) स्मै नूनमभिद्यवे० । ऋ. ८,७५,६; तै. सं. २,६,११,१ । कमु ष्विदस्य सेनयाग्ने० । ऋ. ८,७५,७; तै. सं. २,६,११,२ । मा नो देवानां विशः० । ऋ. ८,७५,८; तै. सं. २,६,११,२ । मा नस्समस्य दूढ्यः० । ऋ. ८,७५,९; तै. सं. २,६,११,२; नि. ५,२३ । नमस्ते अग्न ओजसे० । ऋ. ८,७५,१०; सा. ११,१६४८; तै. सं. २,६,११,२ । कुवित्सु नो गइ (गवि०) ष्टये० । ऋ. ८,७५,११; सा. १६४९; तै. सं. २,६,११,३ । मा नो अस्मिन् महाधने० । ऋ. ८,७५,१२; सा. १६५०; तै. सं. २,६,११,३ । परस्या अधि संवत० । ऋ. ८,७५,१५; तै. सं. २,६,११,३; ४,१,९,२ । एवा पु ब्रवाणि ते० । ऋ. ६,१६,१६; सा. ७,७०५]
[१] मै. १,६,९ (४९) । कपि. ६,६ । तै. ब्रा. १,१,२ । मा. श्रौ. १,५,१ ।

मेतन्नक्षत्रं यत् कृत्तिका यत् कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते स्व एवैनं नक्षत्र आधत्ते प्रजापतेर्वा एतच्छिरो यत् कृत्तिका यत् कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते शीर्षण्यो मुख्यो भवति सप्त वै कृत्तिकास्सप्त शीर्षण्याः प्राणाः प्राणा इन्द्रियाणि प्राणानेवेन्द्रियाण्याप्नोति पुष्टिमावद्ध्यिष्ठमेकं नक्षत्रं पुष्टिमेव प्रजायाः पशूनां गच्छति ॥ रोहिण्यामाधेयो रोहिण्यां वा एतं देवा आदधत तया रोहमरोहंस्तद्रोहिण्या रोहिणीत्वं रोहिण्यां वा एतं प्रजापतिराधत्त तया रोहमरोहत् तद्रोहिण्या रोहिणीत्वमेष वै मनुष्यस्य स्वर्गो लोको यदस्मिल्लोके वसीयान् भवत्यृद्ध्या एव रोहिण्यामाधेयः कालकाञ्जा वै नामासुरा आसंस्त इष्टका अचिन्वत तदिन्द्र इष्टकामप्युपाधत्त तेषां मिथुनौ दिवमाक्रमेतां ततस्तामावृहत् ते ऽवाकीर्यन्त ता एतौ दिव्यौ श्वानौ यो व्यवृश्चत सोऽयमूर्णवाभिस्त्वैरान्त्रैस्संविततसत्योजो वात्रैषां तद्वीर्यमाधत्तौजो वीर्यं भ्रातृव्यस्याधत्ते यच्चित्रायामग्निमाधत्ते तदेतदैन्द्रं नक्षत्रमभिभूतिमत् पूर्वासु फल्गुनीष्वादधीत यः कामयेत भगी स्यामिति भगस्य वा एतन्नक्षत्रं भगी भवत्युत्तरास्वादधीत यः कामयेत दानकामा मे प्रजास्स्युरित्यर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रमेषोऽर्यमा यो ददाति दानमिमाः प्रजा उपजीवन्ति दानकामा अस्मै भवन्ति राजन्यस्यादध्यात् स हि दानमुपजीवति वसन्ता ब्राह्मणेनाधेयो वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुस्स्व एवैनमृता आधत्ते तेजो ब्रह्मवर्चसमुपाधत्ते ग्रीष्मे राजन्येनाधेयो ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुस्स्व एवैनमृता आधत्त ओजो वीर्यमुपाधत्ते शरदि वैश्येनाधेयश्शरद्वै वैश्यस्यर्तुस्स्व एवैनमृता आधत्त ऊर्जं पशूनुपाधत्ते ॥ सोमेन यजा इति वा अग्निमाधत्ते यस्मिन्नेव कस्मिंश्चर्ता आदधीत सोमेन यक्ष्यमाण एतद्ध्यवर्धयत् सोमेन यजते फल्गुनीपूर्णमास आधेय एतद्वा ऋतूनां मुखमृतुमुख एवैनमाधत्ते शिशिर आधेयश्शिशिरं वा अग्नेर्जन्म प्रजातमेवैनमाधत्ते सर्वासु दिक्ष्वृध्नोति यश्शिशिरेऽग्निमाधत्ते पूर्णमासे नीति वा अग्निमाधत्ते सर्वासु दिक्ष्वग्निश्शिशिरे सर्वास्वेव दिक्ष्वृध्नोति यश्शिशिरेऽग्निमाधत्ते पूर्णमासे वामावस्यायां वादधीतैतद्वै पुण्याहं पुण्याह एवैनमाधत्ते तस्मादिष्ट्या वाग्रायणेन वा पशुना वा सोमेन वा पूर्णमासे वामावस्यायां वा यजेतैष वै यज्ञो यज्ञमेवैतत् प्रति यज्ञमालभते ॥१॥ १-३

यद्वा इमे व्यैतां यदमुष्यायज्ञियमासीत् तदिमामभ्युसृज्यतोषा यदूषा भवन्त्यनयोरेवैनं यज्ञिय आधत्ते प्राजापत्या वा ऊषाश्श्वश्वो भूयांसो भवन्ति प्रजननायैवैते पशूनां वा एतत् प्रियं धाम यदूषा यदूषा भवन्ति पशूनामेव प्रियं धामोपाप्नोत्यलेलेद्वा इयं पृथिवी साविमेदग्निर्माविधक्ष्यतीत्यविभेदग्निर्हैरो मे विनेष्यतीत्यार्द्रेव हीयमासीत् तां देवाश्शर्कराभिरदृंहंस्तेजोऽग्ना अदधुर्यच्छर्करा भवन्तीमामेव दृंहति तेजोऽग्नौ दधात्यभिमृता वा इयं वृत्रेण वाम्रियस्त्वै तद्विदुर्यत्रास्या जीवं यज्ञियं यद्वल्मीकवपा भवन्त्यस्या एवैनं जीवे यज्ञिय आधत्त आपो वा इदमासन् सलिलमेव स प्रजापति-

[१] मै. १,६,३, (३९) । कपि. ६,७ ।

र्वराहो भूत्वोपन्युमज्जत् तस्य यावन्मुखमासीत् तावतीं मृदमुदहरत् सेयमभवद्यद्वराहविहतं भवत्यस्यामेवैनं प्रत्यक्षमाधत्ते वराहो वा अस्यामन्नं पश्यति तस्मा इयं विजिहीते यद्वराहविहतं भवति तदेवान्नमवरुन्द्धे यत् तदादत्त तददितिर्यदप्रथत तत् पृथिवी यदभवत् तद्भूमिर्यद्वराहविहतं भवति प्रथत एव प्रजया पशुभिर्नाना वै पशूनामन्नान्यन्यद्गोरन्नमन्यदश्वस्यान्यदव्या अन्यदजाया अन्यत् पुरुषस्यापोऽन्नं यदप उपसृजति यावदेवान्नं तदवरुन्द्धे पञ्चैते संभाराः पञ्च वै पुरुषे वीर्याणि करोत्यनया वीर्यं करोत्यनया करोत्यनेन यावदेव वीर्यं तदाप्नोति तत् स्पृणोति पञ्चैते संभाराः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धे ॥ न वा ऋते ऊर्जोऽन्नं धिनोत्यूर्गुदुम्बरो यदौदुम्बराणि भवन्त्यन्न एवोर्जं दधाति शमीमयानि भवन्ति मिथुनत्वायाग्निर्वै सृष्टः प्रजापतिस्तं शम्याग्रे समैन्द्ध यच्छमीमयानि भवन्ति स्वयैवैनं समिधा समिन्द्धेऽश्वो वै भूत्वाग्निर्देवेभ्योऽपाक्रामत् स यत्रातिष्ठत् तदश्वत्थस्समभवत् तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वं यदाश्वत्थानि भवन्ति यदेवास्य तत्र न्युक्तं तत् तैस्संभरत्यग्निर्वै मनुष्येभ्योऽपाक्रामत् तं देवा अमन्यन्तायं वाविदं भविष्यतीति तस्य मरुतस्स्तनयित्नुना हृदयमाच्छिन्दन् गा दिव्याशनिरभवद्यद्वृक्षस्याशनिहतस्य भवति यदेवास्य तत्र न्युक्तं तत् तैस्संभरति पर्णमयानि पञ्चयानि भवन्ति पाङ्क्तत्वाय ॥ २ ॥ ४-५

अष्टासु प्रक्रमेषु ब्राह्मणेनाधेयोऽष्टाक्षरा गायत्री गायत्रच्छन्दा ब्राह्मणस्स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेवैनं स्वं छन्दो जिन्वत्येकादशसु प्रक्रमेषु राजन्येनाधेय एकादशाक्षरा त्रिष्टुप् त्रिष्टुप् छन्दा राजन्यस्स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेनं स्वं छन्दो जिन्वति द्वादशसु प्रक्रमेषु वैश्येनाधेयो द्वादशाक्षरा जगती जगच्छन्दा वैश्यस्स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेनं स्वं छन्दो जिन्वत्यपरिमितमवरुणधा इति वा अग्निमाधत्तेऽपरिमित आधेयोऽपरिमितस्यावरुद्ध्यै यावति चक्षुषा मन्येत तावत्यादधीत सत्यं वै चक्षुस्सत्य एवैनमाधत्ते पूर्वाह्ण आधेय एतद्वै पुण्याहं पुण्याह एवैनमाधत्ते व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोराधेय एतास्मिन् वै लोके प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः प्राजायन्त प्रजननायैवमाधेय आग्नेयी वै रात्र्यैन्द्रमहर्यदुदिते सूर्य आदधीताग्नेयाद्वर्णादियाद्यदनुदित ऐन्द्रादनुदितेऽपर आधेय उदिते पूर्व उभा एवेन्द्राग्न्योर्वर्णा आप्नोत्यसुर्या वै रात्री वर्णेन शुक्रियमहश्शुक्रिय आधत्ते य उदिते सूर्य आधत्ते नक्तं वा अनुदितेन दिवोदितेन दिवाधत्ते य उदिते सूर्य आधत्ते ॥ न वै सु विदुरिव मनुष्या नक्षत्रं मीमांसन्त इव व्युदितेन वाव पुण्याहे पुण्याह आधत्ते य उदिते सूर्य आधत्ते सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि सप्त होत्रा अनु विद्वान् सप्त योनीरापृणस्वा घृतेनेति यावतीर्वा अग्नेस्तन्वो या वा अस्य ता आदधानो वितर्पयति वि ह तृप्यत्येतावतीर्वा

[३] मै. १,६,१० (५०-५५) । कपि. ६,८ । वा. ३,९ । काण्व. ३,९-१० ।

अग्नेस्तन्वः षोढा सप्त सप्त ता एवास्य प्रीणाति न विलुप्यति पूर्णया स्रुचा मनसा प्रजापतये जुहोति
पूर्णः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति ॥ ३ ॥ ६—७

अङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादध इति ब्राह्मणेनाधेयो ये वै देवानामङ्गिरसस्ते ब्राह्मणस्य प्रत्ये
नसोऽग्निर्वायुर्वाग्बृहस्पतिस्ततो बन्धुरस्य यज्ञस्तत आयनो यतो बन्धुरेवास्य यज्ञो यत आयनस्तत
एनं प्रतीच्छतीन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादध इति राजन्येनाधेयो ये वै देवानां राजानस्ते राजन्यस्य
प्रत्येनस इन्द्रो वरुणो धाता त्वष्टा ततो बन्धुरस्य यज्ञस्तत आयनो यतो बन्धुरेवास्य यज्ञो यत
आयनस्तत एनं प्रतीच्छति मनोस्त्वा ग्रामण्यो व्रतेनादध इति वैश्येनाधेयो मरुतो वै देवानां
विशस्ते वैश्यस्य प्रत्येनसस्ततो बन्धुरस्य यज्ञस्तत आयनो यतो बन्धुरेवास्य यज्ञो यत आयनस्तत
एनं प्रतीच्छतीडा वै मना आसीत् सासुरानग्निमादधानानगच्छत् त आहवनीयमग्र आदधताथ
गार्हपत्यमथौदनपचनं तानब्रवीदाप्त्वा श्रियं प्रत्यवारुक्षन् पुण्या भविष्यन्ति परा तु भविष्यन्तीति
सा देवानग्निमादधानानगच्छत् त ओदनपचनमग्र आदधताथ गार्हपत्यमथाहवनीयं तानब्रवीदाप-
च्छ्रियं यीमं लोकमच्छिन्दन् पुण्या भविष्यन्ति प्रजा त्वेषां न भविष्यतीति सैडव मनोरादधात्
साब्रवीत् तथा तेऽग्निमाधास्यामि यथा मनुष्या देवानुप प्रजनिष्यन्त इति सा गार्हपत्यमग्र आदधा-
दथौदनपचनमथाहवनीयमनयोर्लोकयोर्व्यवगृहीत्यै ॥ ततो मनुष्या देवानुप प्राजायन्त प्रजननायै-
षमाधेयोऽथो अनयोरेव लोकयोर्व्यवगृहीत्यै प्रजापतिर्वै यदग्रे व्याहरत् स सत्यमेव व्याहरदेतद्वाव
स त्रिर्व्याहरद्भूर्भुवस्स्वरित्येतद्वै वाचस्सत्यं यदेव वाचस्सत्यं तेनाधत्ते भूष्णु वै सत्यं य एवं विद्वा-
नेतेनाधत्ते भवत्येवायं वा अपरो भूरसौ पूर्वो भुवो भूर्भुवरित्यपर आधेयस्सत्यस्यानुगत्यै भूर्भु-
वस्स्वरिति पूर्वस्तत् पुरस्सर्वमाप्यते वाग्वै देवतां निरवदत निरुदितदेवता हि वै वागथ तत् सर्वं न
सत्यं यद्वाचा शपते यत् प्राशूर्भवति यां वै तां वाग्देवतां निरवदतैषा वाव सा यदेता व्याहृतय
एतद्वै वाचस्सदेवं यदेव वाचस्सदेवं तेनाधत्तेऽयं वा अपरो भूरसौ पूर्वो भुवो भूर्भुवरित्यपर आधेय
उभा एवैनौ सहाधत्त एष ह्येतस्य योनिरेतस्माद्ध्येषोऽधिसृज्यतेऽयं वावाग्निर्योऽयमन्तरग्नि यो
ऽसौ पूर्वोऽसा आदित्य एष योऽसा अमुष्मादधिसृज्यते यद् द्वितीयं ज्योतिस्तदेव तद्भूर्भुवस्स्वरिति
पूर्व आधेय उभा एवैनौ सहाधत्त एष ह्येतस्य योनिरेतस्माद्ध्येषोऽधि प्राक्रियते योऽसा अमुष्मादधि
प्राक्रियते यत् तृतीयं ज्योतिस्तदेव तेनाप्यतेऽसौ वाव स आदित्यः प्रत्यङ्ङाधीयते तस्मादेष सर्वाः
प्रजाः प्रत्यङ्ङग्निना वै देवा अन्नमदन्ति प्रत्यग्वा अन्नमद्यते यत् प्रत्यङ्ङाधीयतेऽन्नाद्याय प्राचो वै
देवान् प्रजापतिरसृजतापाचोऽसुरान् सोऽसुरान् ब्रह्मणापानुदताग्निर्ब्रह्म यत् प्रत्यङ्ङाधीयते भ्रातृव्य-
स्यापनुत्त्या इममर्घमग्निना परियन्तीममर्घमुपचरन्ति देवानामेवार्धं परियन्ति देवानामर्धमुपचरन्तीमां

[४] मै. १,६,१२ (५८)। कपि. ६,१। तै. ब्रा. १,१,४।

दिशमभ्यावृत्य जुहोत्येतस्यां वै देवा दिशि यस्यामेव देवा दिशि तां दिशमभ्यावृत्य जुहोति
॥ ४ ॥ ८-९

अग्निर्वै प्राङुदेतुं नाकामयत तमश्वेनोदवहन्यत् पूर्वमुदवहँस्तत् पूर्ववाहः पूर्ववाट्त्वमग्निर्वै प्रजाप-
तिस्तस्याश्वश्चक्षुर्यदश्वं पुरो नयन्ति स्वमेव तच्चक्षुः पश्यन्ननुदेति स्तोमपुरोगा वै देवा एभ्यो लोके-
भ्योऽसुरान् प्राणुदन्त स्तोमादश्वस्संभूतो यदश्वं पुरो नयन्ति स्तोमपुरोगा एवैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं
प्रणुदतेऽग्निं वै जातं रक्षाँस्यधूर्षँस्तान्येनमभिसमलभन्त तान्यश्वेनापाहत यदश्वं पुरो नयन्ति रक्षसा-
मपहत्या अश्वो वै भूत्वा यज्ञो मनुष्यानत्यक्रामत् तमेनदतिक्रामन्तं मन्यन्ते यदश्वमभ्यावर्तयन्ति
यज्ञमेवैतद्यजमानमभ्यावर्तयन्त्यग्निर्वा अश्वं प्राविशत् कृष्णो भूत्वा सोऽत्रागच्छद्यत्रैष मृगशफ
इव तस्मादाक्रम्यो यदश्वमाक्रमयति तमेवावरुन्द्धे वास्तु वा एतदथो अन्तर्हितमिव तस्मान्नाक्रम्य
इन्द्रो वै यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत् तेषामद्यमानानाँ स्यूमरश्मिर्ऋषिरश्वं प्राविशत्
तस्मादश्वस्स्वँ शकृदुपजिघ्रति कश्चिद्वापि चाग्निं च न निरास्था३मित्यग्निं वै विभाजं नाशक्नुवँस्तमश्वेन
व्यभजन्यदश्वं पुरो नयन्त्यग्नेरेव विभक्त्यै॥ यौ वाव ता ऋपिश्चाग्निश्च ते एवैनं तद्देवते विभजतोऽश्वो
देयः प्राजापत्यो वा अश्वो यदश्वं ददाति सर्वा एवास्य तेन देवता अभीष्टाः प्रीता भवन्ति परमा
वा एषा दक्षिणा यदश्वो यदश्वं ददाति पर्याप्त्यै वही देयो वहिनो वै पशवो भुञ्जन्ति यज्ञोऽग्नेर्वही
भुनक्त्येनमग्निराहितो हिरण्यं देयँ सतेजस्त्वाय शतमानं वीरं वा एष जनयति योऽग्निमाधत्ते शतदायो
वीरस्त्रिंशन्माने पूर्वयोर्हविषोर्देये चत्वारिँशन्मानमुत्तमेऽभिक्रान्त्या अभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोत्यात्मा
वै हविः पवित्रँ हिरण्यँ सर्वेष्वेवैनँ हविष्षु पुनात्यग्निर्वै वरुणानीरभ्यकामयत तस्य तेजः परापतत्ताद्धि-
रण्यमभवद्यद्धिरण्यमुपास्यति स्वेनैवैनं तेजसा समर्धयति नोपास्य पुनरादधीत ग्रासितमस्य निष्वि-
दति क्षोधुको भवत्यग्निं वै वरुणानीरभ्यकामयन्त तास्समभवदापो वरुणानीर्यदग्ने रेतोऽसिच्यत
तद्धरितमभवद्यदपां तद्रजतं तस्माद्धरितरजताभ्यामुभयाहिरण्यो यद्गर्भस्य शमलं तद्दुर्वर्णं तस्माद्ब्राह्मणेन
दुर्वर्णं न भर्तव्यँ शमलँ हि तद्धिरण्यमुपास्यति स्वेनैवैनं रेतसा समर्धयति ॥ ५ ॥ १०-११

सह वा इमा अग्नेस्तन्व इयमोदनपचनोऽन्तरिक्षं गार्हपत्यो द्यौराहवनीयो यो वा अस्यैता अव्या-
कृत्याधत्ते न पाप्मना व्यावर्तते घातकोऽस्य रुद्रः पशून् भवति यदेतैरुपतिष्ठते ता एवास्यैतद्व्याकृत्य
यथायोनि प्रतिष्ठाप्याधत्ते वि पाप्मना वर्ततेऽघातकोऽस्य रुद्रः पशून् भवति द्यौर्महासीति महान-
ग्निमावाय भवति भूमिर्भूम्नेति श्वश्वो भूयान् भवति तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमन्नाद्यायान्न-
पत्यायादध इत्यन्नादमेवैनमन्नाद्यायान्नपत्यायाधत्तेऽन्नाद्यायाग्निमाधत्तेऽत्त्यन्नं य एवं विद्वानग्निमाधत्ते॥

[५] मै. १,६,४ (४०)। कपि. ७,१। तै. ब्रा. १,१,५।
[६] कपि. ७,२।

अथैतास्सर्पराज्ञ्या ऋच इयं वै सर्पराज्ञ्यन्नँ सार्पराज्ञमन्नाद्यायाग्निमाधत्तेऽत्त्यन्नं य एवं विद्वानग्निमा-
धत्ते वसन्तो वा इमाः प्रजा ग्रीष्मायोपरुणद्धि ग्रीष्मो वर्षाभ्यो वर्षाश्शरदे शरद्धेमन्ताय हेमन्तश्शि-
शिराय शिशिरमग्नयेऽग्निर्यजमानायान्नाद्यायाग्निमाधत्तेऽत्त्यन्नं य एवं विद्वानग्निमाधत्ते ॥ ६ ॥
१२-१३

निरुप्तँ हविरुपसन्नमप्रोक्षितं भवत्यथ मध्याधिदेवनमवोक्ष्याक्षान्न्युप्य जुहोति निषसाद धृतव्रतो
वरुणः पस्त्यास्वा साम्राज्याय सुक्रतुरिति त्रिर्वै विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीयं मध्याधिदेवनं
विराज एवैनं विक्रान्तमनुविक्रमयति प्रत्येव तिष्ठति गच्छति प्रतिष्ठां धर्मधृत्या जुहोति धर्मधृतमेवैनं
करोति सवितारं धारयितारं गां घ्नन्ति तां विदीव्यन्ते तां सभासद्भ्य उपहरन्ति तेनास्य सोऽभीष्टः
प्रीतो भवति प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिरित्यामन्त्रणे जुहोति मन्त्रवत्या वैश्वदेव्या मन्त्रमेवास्मै गृह्णाति
तमभिसमेत्य मन्त्रयन्ते ॥ सह वै देवाश्च मनुष्याश्चौदनपचन आसँस्ते मनुष्या देवानत्यचरँस्तेभ्यो
देवा अश्वं प्रत्युह्य गार्हपत्यमभ्युदक्रामँस्ताँस्तस्मिन्नन्वागच्छँस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरँस्तेभ्यो
देवाः पशून् प्रत्युह्याहवनीयमभ्युदक्रामँस्ताँस्तस्मिन्नन्वागच्छँस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरँस्तेभ्यो
देवा यज्ञं प्रत्युह्य सभामभ्युदक्रामँस्ताँस्तस्यामन्वागच्छँस्ते मनुष्या एव देवानत्यचरँस्तेभ्यो देवा
विराजं प्रत्युह्यामन्त्रणमभ्युदक्रामँस्ताँस्ततो नानुप्राच्यवन्तैते वै देवानाँ संक्रमाश्श्रेयाँसँ श्रेयाँसं लोक-
मभ्युत्क्रामति य एवं वेदैतद्वै देवानाँ सत्यमनभिजितं यदामन्त्रणं तस्मादामन्त्रणँ सु प्रातर्गच्छेत्
सत्यमेव गच्छति तस्मादामन्त्रणं नानृत एयात्तस्मादामन्त्रणे नानृतं वदेद्बर्हिर्वै नामौदनपचन आस
बर्हिर्जायते य एवं वेद गृहा गार्हपत्यो गृहवान् भवति य एवं वेद धिष्ण्या आहवनीय उपैनं यज्ञो
नमति य एवं वेद सप्रथा मध्याधिदेवनं प्रथते प्रजया पशुभिर्य एवं वेदानाप्त आमन्त्रणं नैनमाप्नोति
य ईप्सति य एवं वेद ॥ ७ ॥
१४-१५

अजो देयस्सयोनित्वाय वासो देयँ सर्वदेवत्यं वासो देवतानाममीष्ट्यै वर्धमाना दक्षिणा देया
दक्षिणाया वै वृद्धिं यजमानोऽनुवर्धत उपाहरन्ती दक्षिणा देया धेनुर्वा उपाहरन्त्युप ह्येषा पय
आहरति नास्याग्निमादधानस्य कनीयो भवति धेनुर्होत्रे देयाशिषामवरुद्ध्या अनड्वानध्वर्यवे
वहत्येव यज्ञस्यावरुन्द्धे रथो देयो देवरथो वा एष प्रयुज्यते यद्यज्ञो मनुष्यरथेनैव देवरथम-
भ्यातिष्ठति मिथुनौ गावौ देयौ मिथुनस्यावरुद्ध्यै षड् देयाः षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति

[७] मै. १,६,११ (५६)। कपि. ७,४। ऋ. १०,३४; २०,२; ३४,४७। काण्व. ११,३७; २१,९३; ३३,४५।
[निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,१; तै. ब्रा. १,७,१०,२, २,६,५,२, । प्र नूनं
ब्रह्मणस्पति:० । ऋ. १,४०,५]
[८] कपि. ७,२—३ ।

द्वादश देया द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरस्याप्त्यै यदि द्वादशातिप्रच्यवेत चतुर्विंशतिं दद्याच्चतु-
र्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्री यज्ञमुखं गायत्रीमेव यज्ञमुखं नातिक्रामति त्रीणि हवींषि भवन्ति त्रय
इमे लोका इमानेव लोकानाप्नोति त्रिर्विराड् व्यक्रमत विराज एवैनं विक्रान्तमनु विक्रमयति यत्
पवमानं पुनात्येवैनं तेन यत् पावकमन्नं वै पावकमन्नमेवास्मै तेन प्रयच्छति यच्छुचये शुचिमेवैनं
मेध्यं यज्ञियं तेन करोति पशुगानसानि प्रजावानसानि तेजस्व्यसानीति वा अग्निमाधत्ते प्राणो वै
पवमानः प्राणादधि पशवः प्रजायन्ते यदग्नये पवमानाय पशूनेवास्मै तेन प्रजनयत्यापो वै पावका
अद्भ्यः प्रजाः प्रजायन्ते यदग्नये पावकाय प्रजामेवास्मै तेन प्रजनयत्यसौ वा आदित्यश्शुचिरेष
तेजसः प्रदाता यदग्नये शुचयेऽसा एवास्मा आदित्यस्तेजः प्रयच्छति देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता
आसन् सोऽग्निर्विजयमुपयत्सु त्रेधा तन्वो विन्यधत्त पशुषु तृतीयमप्सु तृतीयममुष्मिन्नादित्ये तृतीयं
यदेतानि हवींषि निरुप्यन्ते ता एवास्यैतत् तन्वस्संभरति सतनूरेवैतत् सतेजा आधीयत इमे वै लोका
एतानि हवींषि नानाबर्हीँषि भवन्तीमानेव लोकानाप्रीणाति यन्नानाबर्हीँषि स्युर्लोकं प्रजननाय
नोच्छिँषेदूनं व प्रजा उपप्रजायन्ते समानबर्हिषी उत्तरे कार्ये लोकमेव प्रजननायाकस्तमुपप्रजायते
त्रिव वा इमं लोकं त्रिर्मेमं नामुं पश्यामो वा तु न वा तस्मात् समानबर्हिषी उत्तरे कार्ये पशवो वा
एतानि हवींषि घृतं पुरोडाशा रुद्रोऽग्निर्यदग्नेऽनुनिर्वपेद्रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुस्स्यात् संवत्सरेऽनुनि-
रुप्यँ संवत्सरेणैवैनँ शमयति शिथिलं वा एतद्यज्ञस्य क्रियतेऽसयोनि यत् संवत्सरेऽनुनिर्वपत्यग्न
एवानुनिरुप्यमशिथिलत्वाय सयोनित्वाय ॥ ८ ॥ १६

अग्निर्वा इमं लोकं नोपाकामयत यदस्मिन्नामं माँसं पचन्ति यत् पुरुषं दहन्ति यत् स्तेयं पचन्ति
तदमीमं लोकं नोपाकामयत स यदिमं लोकमुपावर्तत या अस्य यज्ञियास्तन्व आसँस्ताभिरुदक्रा-
मत् ता एताः पवमाना पावका शुचिस्तस्य या पवमाना तनूरासीत् पशूँस्तया प्राविशद्या पावकाप-
स्तया या शुचिरमुमादित्यं तया प्राणो वै पवमानः प्राणेन पशवो यता यदग्नये पवमानाय पशूने-
वास्मै तेन यच्छत्येषा वा अस्य सा तनूर्यया पशून् प्राविशद्यदिदं घृते हुते प्रतीवार्चिरुज्ज्वलत्येषा
वा अस्य सा तनूर्ययापः प्राविशद्यदिदमप्सु परीव ददृशे यद्धस्ता अवनिज्य स्नात्वा श्रदिव धत्ते य
एवाप्स्वग्निस्स एवैनं तत् पावयति स स्वदयति यदग्नये पावकाय सपशुमेवैनं पावयत्येषा वा अस्य
सा तनूर्ययापः प्राविशद्यदिदं घृते हुते शोणमिवार्चिरुज्ज्वलत्येषा वा अस्य सा तनूर्ययामुमादित्यं
प्राविशद्यदिदमुपरिष्टाद्भाति यज्ज्योतिरिव यदग्नये शुचय आविर्भूत्या एव घोषायैव श्लोकायैव
रुच एवैषा वा अस्य सा तनूर्ययामुमादित्यं प्राविशद्यदिदं घृते हुते सुवर्णमिवार्चिरुज्ज्वलति यदेतानि
हवींषि निरुप्यन्ते ता एवास्यैतत् तन्वस्संभरति सतनूरेवैतत् सतेजा आधीयत इमे वै लोका एतानि

[९] कपि. ७,५।

हवीँषि नानाबर्हीँषि भवन्ति नाना हीमे लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ९ ॥ १७

गायत्रीस्संयाज्या भवन्ति गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दा आग्नेयमेतत् क्रियते यदग्न्याधेयमग्ना एवैतदग्निः प्रतितिष्ठन्नेति यदाग्नेयानि हवींष्यग्निनाग्निस्समिध्यत इत्युत्तरयोर्हविषोरनुवाक्यां कुर्यात् तेजस आयतनायोर्वशी वै पुरूरवस्यासीत् सान्तर्वती देवान् पुनः परेत् सोऽदो देवेष्वायुरजायत तामन्वागच्छत् तां पुनरयाचत तामस्मै न पुनरददुस्तस्मा आयुं प्रायच्छन्नेष आयुरित्यग्निं चोल्यमुखायाँ समुप्यैतमाधत्स्व तेन प्रजनिष्यस इति स वृक्षस्य शाखायामग्निमासज्यायुना ग्राममभ्ययँत् स पुनरैमीत्यैद्वृक्षस्याग्रेऽग्निं ज्वलन्तँ सोऽचिकेदयं वाव सोऽग्निरिति तस्यारणी आदायाग्निं मथित्वाधत्त तेन प्राजायत यदारोहस्यारणी भवतः प्रजननायादित्यै घृते चरुममात्रस्यायां पशुकामोऽनुनिर्वपेदियमदितिरस्यामधि पशवः प्रजायन्ते यज्ञमुखमग्न्याधेयं यज्ञमुखमेवालभ्य पशूनवरुन्द्धे चातुष्प्राश्यो भवत्याचतुरँ हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनास्ते वीर्यकृतोऽग्नीषोमीयमेकादशकपालं पूर्णमासेऽनुनिर्वपेदाग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया सोमराजा यज्ञमुखमग्न्याधेयं यज्ञमुखमेवाक्रम्य स्वाराज्यमुपैति ॥ देवान् वै यज्ञो नाभ्यनमत्तेऽश्राम्यन्यज्ञो नो नाभिनमतीति तेषामग्नीषोमा एवाग्रे यज्ञोऽभ्यनमत्तेऽविदुरग्नीषोमौ वै नोऽग्रे यज्ञोऽभ्यनँस्तयोर्यज्ञस्याभिनतिमिच्छामहा इति तेऽब्रुवन् युवा वै नोऽग्रे यज्ञोऽभ्यनान्युवयोर्नोऽधि यज्ञोऽभिनमत्विति ता अब्रुवतां वार्यं वृणावहा आवामेवाग्र आज्यभागौ यजानिति तस्मादग्नीषोमा एवाग्र आज्यभागौ यजन्ति वार्यवृतँ ह्येनयोर्यदग्नीषोमीयमनुनिर्वपति यज्ञस्याभिनत्या अतो हि देवानग्रे यज्ञोऽभ्यनमद्यदन्यदनुनिर्वपेद्देवतया यज्ञमन्तर्दध्यान्मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च सोमो रेतोधा अग्निः प्रजनयिताग्निर्वावेदँ सर्वमाप ओषधयो वनस्पतयस्तदेव सोम एतौ वै नो देवानां नेदिष्ठमेतौ हि पश्यामो यथा वा इदं मनुष्या उपासत एवमेतं देवा उपासत तेऽचिकयुरुद्धृतेन त्वा अनेनाभिजयेमेति तमुदहरन्त तेनाभ्यजयन्नभिजित्या एवैष उद्ध्रियतेऽग्निं निराधानादविभेन्नातिदूर आधेयो निराधानाय ॥ १० ॥ १८-१९

अग्निं वै सृष्टमग्निहोत्रमन्वसृज्यत तस्मादग्निमाहितमग्निहोत्रेणानूद्द्रवन्त्याग्नेयी सायमाहुतिस्सौरी प्रातर्यदाग्नेय्या प्रातर्जुहुयात् प्रजननं पुरस्तात् परिहरेदयथापूर्वं कुर्यात् पूर्णया स्रुचा मनसा प्रजापतये जुहोति पूर्णः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति पूर्णो वै प्रजापतिस्समृद्धिभिरूनो व्यृद्धिभिः पूर्णः पुरुषः कामैरूनस्समृद्धिभिः पूर्णयैव पूर्णास्समृद्धीरवरुन्द्ध आनीता वा अन्येषां देवानाँ स्मोऽनानीता अन्येषाँ सँस्पर्शेनान्येषां जीवामस्सकाशेनान्येषां पृथिव्या वातस्यापां तेषामानीतास्स्मस्तेषाँ

[१०] कपि. ७,६ ।
[११] कपि. ७,८ ।
काठ० ९

सँस्पर्शेन जीवामोऽग्नेस्सूर्यस्य दिवस्तेषामनानीतास्स्मस्तेषाँ सकाशेन जीवामस्तानेवालब्ध त एनमानेषन्त श्रेयसो व्रातस्य भवति नास्य मनुष्याः पापवसीयसस्येशते य एवं वेद ॥ यदात्मनालभेत प्रमायुकस्स्यादाज्येन चौषधीभिश्चालभतेऽप्रमायुको भवत्यानीतो वा एष देवानां य आहिताग्निरदन्त्यस्यान्नं पूर्णया स्रुचा जुहोति पूर्णयाग्नयेऽलङ्करलमस्मै भवत्योषधयश्च वै वनस्पतयश्च दिवा समदधुस्त इतोऽन्यत्सर्वमबाधन्त स प्रजापतिरमन्यतेमे वावेदमभूवन्निति सोऽग्निं सृष्ट्वा तमाधत्त तेनैनान्न्यभावयद्भ्रातृव्यसहनो वावैष आधीयते हुताद्यायैष वा अहुतादोऽलमग्न्याधेयाय सन्ननाहिताग्निर्हुदमेवैतेन स्वदितमत्ति ॥ ११ ॥ २०-२१

आधेयोऽग्नी३र्नाधेया३ इति मीमाँसन्ते श्वोऽग्निमाधास्यमानेना३ इत्याधेय एवायज्ञो ह्येष योऽनग्निरजो यद्धस्तां रात्रीं वसेदग्नितेजसं वा अजस्तदेवं तमग्निमाधत्ते कल्माषस्स्यात् स हि सर्वदेवत्यो यस्तँ श्वोऽग्निमाधास्यन् स्यात् स तां रात्रीं व्रतं चरेन्न माँसमश्नीयान्न स्त्रियमुपेयात् सर्वो वै पुरुषोऽग्निमाननग्निरस्मादपक्रामेदेष ह्युतस्य योनिरेतस्माद्धस्पोऽधि सृज्यते यस्तमुद्धरति यो दक्षिणो ब्रह्मवर्चसायैवैष मध्यतेऽथो अग्निभ्यामेवैनँ सयोनिं करोति दुर्गोपस्त्वहरहरस्य मन्थेयुर्यत एवं कृतश्चाहरेदेषा वा अस्यानवरुद्धा तनूस्तामेवावरुन्द्धे यत्र दीप्यमानं परापश्येत् तत आहरेदेवता वा एता आविर्भवन्ति ता एवावरुन्द्धे भृज्जनादाहरेदन्नकामस्यैषा वा अस्यान्नादी तनूस्तामेवावरुन्द्धे॥ यो ब्राह्मणो वा वैश्यो वा पुष्टोऽसुर इव स्यात् तस्य गृहादाहरेदेषैव सा पुष्टिर्यदन्नं तदवरुन्द्धे गृहे त्वस्य ततो नाश्नीयात् त्रिरुद्यच्छते त्रय इमे लोका इमानेव लोकानाप्नोति यदुद्यच्छत इमं तेन लोकमाप्नोति यत् प्राङुद्द्रवत्यन्तरिक्षं तेन यदादधात्यमुं तेन नाधाय पुनरुद्गृह्णीयादपक्रमस्स्स पापीयान् भवति प्राणेभ्यो वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः प्राजायन्त तया मात्रयोद्गृह्णीयात् प्रजननाय नान्युद्गृह्णीयादग्निरस्य प्राणानुद्दहेत् प्रमीयेत नाधो दध्युयादपक्रमस्स्स पापीयान् भवति ॥ १२ ॥ २२-२३

अहुतादो वा एतस्य पुरा देवा अथैतद्धुताद उपावर्तते तेऽस्योर्जापक्रामन्त्यूर्जमेवावरुन्द्धे तानेव भागिनः करोति यजन्त्यमुष्मिञ्जुह्वत्यस्मिन् पचन्त्यमुष्मिन्ननन्तरयायैतस्याथो वैश्वानरतायामेवैनमुपातिष्ठिपद्ये वै यज्ञेनायजन्ताध्रुवँस्ते न वै सु विदुरिव मनुष्या यज्ञं तस्मान्न सर्व इवर्ध्नोति दक्षिणावद्धयाँ ह स्म वै पुरा दर्शपूर्णमासाभ्यां यजन्ते य एष ओदनः पच्यते दक्षिणामेवैतां ददाति यज्ञस्यर्द्ध्या इष्टी वा एतेन यद्यजते य एष ओदनः पच्यते तेन पूर्त्येष वावेष्टापूर्ती य एतं पचति ॥ प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यादिशद्यज्ञमेव सोऽमन्यतात्मानमन्तरगामिति स एतमोदनमपश्यत्तमात्मने

[१२] मै. १,६,११ (५६)। कपि. ७,७ ।
[१३] कपि. ८,१ ।

भागमकल्पयत् प्रजापतेर्वा एष भागो महान्तमपरिमितं पचेदपरिमितः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्तान्योऽन्यस्यासन्नसुरा अजुहवुस्ते देवा एतमोदनमपचँस्तं प्रजापतये भागमनुनिरवपँस्तं भागं पश्यन् प्रजापतिर्देवानुपावर्तत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानन्वाहार्यमाहरति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवतीज्या वा अन्ये देवास्सपर्येण्या अन्ये देवा ईज्या ब्राह्मणास्सपर्येण्या यज्ञेनैवेडयान् प्रीणात्यन्वाहार्येण सपर्येण्याँस्तस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्ति प्रजापतेर्भागोऽस्यूर्जस्वान् पयस्वानक्षितोऽस्यक्षित्यै त्वाक्षितो नामासि मा मे क्षेष्ठाः प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाह्युदानरूपे मे पाह्यूर्गस्यूर्जं मयि २४-२५
धेह्या मा गम्या इति प्रजापतिमेव समक्षमृध्नोति ॥ १३ ॥
अग्ने सहस्रमाभर रूपं रूपं वयो वयः ॥ २६

पुनराधेय आर्धायते देवानां ज्योतिषा सह । अग्ने सहस्रमाभर रूपं रूपं वयो वयः ॥
पुनराधेय आर्धायते देवानां ज्योतिषा सह । आदित्या विश्वे तद्देवा वसवः पुनराभरन् ॥ २७
यत्ते मन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनुदध्वसे । आदित्या विश्वे तद्देवा वसवः पुनराभरन् ॥ २८
यत्ते क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या । सुकल्पमग्ने तत् तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवस्समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुधीतमग्ने । २९
इहैव धेह्यधि दक्षमुग्रमश्वावद्गोमद्यवमत् सुवीर्यम् ॥
पुनस्त्वा मित्रावरुणौ पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । ३०
पुनस्त्वा विश्वे देवा ब्राह्मणा उददीदिपन् ॥ ३१
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यँहसः ॥ ३२
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥
केतस्सुकेतस्सकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा सलिलस्सलिगस्सगरस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा दिवो ज्योते विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु ३३
सत्यां देवहूतिमासुवध्वमादित्येभ्यस्स्वाहा ॥ १४ ॥

अग्नेर्वै भागः पुनराधेयं तं भागं प्रेप्सन् व्यर्धयति यद्याधाय मन्येत व्यृध्यतेऽस्या इति पुनराधीत यं भागं प्रेप्सन् व्यर्धयति तं प्राप्याधयत्येव सर्वमाग्नेयं क्रियते यत् किंच सर्वमग्नये भागं प्रादात् सर्वामृद्धिमृध्नोति न संभृत्यास्संभारा इत्याहुर्न यजुष्कार्यमिति संभृतसंभारो ह्येष कृतयजुस्तत् तन्न समृद्ध्यै संभृत्या एव संभाराः कार्यं यजुः पुनरुत्स्यूतं वासो देयं पुनरुत्सृष्टोऽनड्वान् पुनर्निष्कृतो रथ

[१४] मै. १,७,१ (१-२,४,१०—१२) । कपि ८,२ । वा. १२,९—१०,४०—४१,४४ । काण्व. १२,८५; १३. १०-११,४२—४२.४५ । [रूपं रूपं वयो वयः [प. पा.] । अथर्व. १९,१,३ । यत्ते (०त्वा) क्रुद्धः (०द्धाः)०। अथर्व. १२,२,५ । पुनस्त्वादित्या० । अथर्व. १२,२,६] तै. सं. १,५,१—२ । मा. श्रौ. १,६,५ ।
[१५] मै. १,७,२ (१३) । कपि ८,३ ।

एतानि वै पुनराधेयस्य रूपाणि रूपैरेवैनत् समर्धयत्यग्निर्वा उत्सीदन्नप ओषधीरनूत्सीदत्याप एता ओषधयो यद्दर्भा यद्दर्भा उपोलपा भवन्त्यद्भ्य एवैनमोषधीभ्योऽध्यवरुन्द्धे ॥ देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्ते देवा विजयमुपयन्तोऽग्नौ प्रियास्तन्वस्संन्यदधत यदि जयेमेमा उपावर्तेमहि यदि नो जयेयुरिमा अभ्युपधावेमेति तेऽभिजित्यान्वैच्छन् सर्वेषां नस्सहेति सोऽग्निरब्रवीद्यो मा मदेवत्यमादधातै स एताभिस्तनूभिस्संभवादिति तं देवा आदधत त एताभिस्तनूभिस्समभवन्नेताभिरेव तनूभिस्संभवति य एवं विद्वानेतमाधत्ते त्वष्टा पशुकाम आधत्त त इमे त्वाष्ट्राः पशवस्तेनर्द्धा मनुः पुष्टिकाम आधत्त स इमान् पोषानपुष्यत्तेनर्द्धाः प्रजापतिः प्रजाकाम आधत्त ता इमाः प्राजापत्याः प्रजाः प्राजायन्त तेनर्द्धा यो वै तमाधत्त स तेन वसुना समभवत् तस्मात् पुनर्वसुस्तस्मात् पुनर्वसा आधेय आर्ध्नोद्धि स यस्तमाधत्त तस्मादनूराधास्तस्मादनूराधेष्वाधेयः ॥ १५ ॥ ३४—३५

घर्मं नं सांमन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ।
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ३६
आ यस्मिन् सप्त वासवा रोहन्ति पूर्व्यारुहः ।
ऋषिर्ह दीर्घश्रुत्तम इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः ॥ ३७
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥ ३८
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ३९
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४०
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नस्स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिस्सदा नः ॥ ४१
सं यत्त इन्द्र मन्यवस्सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥ ४२
आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्विचारीत् ॥ ४३

[१६] वा. २०,५४,५१—५२; १२,४४; ११,३४; १८,७१ । काण्व. २२,३९,३६-३७; १२,८५; १३.४५; १२,३४; २०,४० । [आमासु पक्वमेरय० । ऋ. ८,८९,७; सा. १४३१; तै. सं. १,६,१२,२; नि. ६,१४ । इन्द्रियाणि शतक्रतो० । ऋ. ७,१०४,२; अथर्व. ८,४,२; नि. ६,११ । अनु ते दायि० । ऋ. ६,२५,८; तै. सं. १, ६,१२,१; तै. ब्रा. २,८,५,७ । इन्द्रमिद्गाथिनो० । ऋ. १,७,१; सा. १९८,७९६; अथर्व. २०,३८,४; ४७.४; ७०,७; तै. सं. १,६,१२,२; तै. ब्रा. १,५,८,१; ७,२ । एवेदिन्द्रं वृषणं० । ऋ. ७,२३,६; अथर्व. २०,१२,६ । सं यत्त इन्द्र० । ऋ ४,३१,६ । आ ते मह० । ऋ. ७,२५,१; तै. सं. १,७,१३,१]

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४४
यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ ४५
इन्द्रस्सुत्रामा स्ववाँ अवोभिस्सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयस्स्याम ॥ ४६
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषस्सनुतर्युयोतु ॥ ४७
अंहोमुचे प्रभरेमा मनीषां भूविष्ठदाम्ने सुमतिमावृणानाः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं जुषस्व सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४८
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ ४९
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ५०
वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिस्सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५१
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ ५२
अनु द्यावापृथिवी तत् त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ ५३
अभि प्रभर धृषता धृषन्मनश्श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ५४

[स्थिरं मनश्चकृषे० । ऋ. ५,३०,४ । यो जात एव० । ऋ. २,१२,१; अथर्व. २०,३४,१; तै. सं. १,७,१३, २; नि. ३,२१; १०,१० । इन्द्रः सुत्रामा स्ववां० । ऋ. ६,४७,१२; १०,१३१,६ । अथर्व. ७,९१,१; २०, १२५,६; तै. सं. १,७,१३,४ । तस्य वयं सुमतौ० । ऋ. ६,४७,१३; १०,१३१,७; अथर्व. ७,९२,१; २०, १२५,७; तै. सं. १,७,१३,५; नि. ६,७ । विवेष यन्मा धिषणा० । ऋ. ३,३२,१४; तै. सं. १,६,१२,३ । अनवस्ते रथमश्वाय० । ऋ. ५,३१,४; सा. ४३१,४४०; तै. सं. १,६,१२,६ । वृष्णे यत्ते वृषणो० । ऋ. ५,३१,५; तै. सं. १,६,१२,६, । अनु त्वाहिघ्ने अध० । ऋ. ६,१८,१४ । अनु द्यावापृथिवी० । ऋ. ६, १८,१५ । अभि प्रभर धृषता० । ऋ. ८,८९,४]

अस्मा इदु प्रभरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व विरदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ ५५
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणे रणे ॥ ५६
ममाग्ने वर्चः ॥ ५७
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ ५८
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १६ ॥ ५९
रेवतीर्नस्सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ६०
ता अस्य नमसा सहस्सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ६१
इन्द्राणी पत्या सुजितं जिगायोदंशेन पतिविद्ये बिभेद ।
त्रिंशद्यस्या जघनं योजनान्युपस्थ इन्द्रं स्थविरं बिभर्ति ॥ ६२
सेना ह नाम पृथिवी धनंजया विश्वव्यचा अदितिस्सूर्यत्वक् ।
इन्द्राणी प्रासहा संजयन्ती मयि पुष्टिं पुष्टिपत्नी दधातु ॥ ६३
इन्द्राणीमासु नारिषु सुपत्नीमहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६४
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेरृते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६५

[अस्मा इदु प्रभरा०। ऋ. १,६१,१२; अथर्व. २०,३५,१२; नि. ६,२० । उत ब्रुवन्तु जन्तव०। ऋ. १,७४, ३; सा. १३८१; तै. सं. ३,५,११,४ । ममाग्ने वर्चः० । ऋ. १०,१२८,१; अथर्व. ५,३,१; तै. सं. ४,७,१४,१। इन्द्र क्षत्रमभि० । ऋ. १०,१८०,३; अथर्व. ७,८४,२; तै. सं. १,६,१२,४ । मृगो न भीमः० । ऋ. १०, १८०,२; सा. १८७३; अथर्व. ७,८४,३; तै. सं. १,६,१२,४]

[१७] वा. १३.४; २३,१,३; २५,१०-११; १०,२०; १९,४४,५४,६१; २३,६५ । क.व्र १४,४; २५,१,३; १७, १४—१५; ११,२९; २१,४६,५४,६१; २५,६७ । [रेवतीर्नस्सधमाद०। ऋ. १,३०,१३; सा. १५३,१०८४; अथर्व. २०,१२२,१; तै. सं. १,७,१३,५; २,२,१२,८; ४,१४,४ । ता अस्य नमसा० । ऋ. १,८४,११; सा. १००७; अथर्व. २०,१०९,३ । इन्द्राणीमासु नारिषु० । ऋ. १०,८६,११; अथर्व. २०,१२६,११; तै. सं. १, ७,१३,१; नि. ११,३८ । नाहमिन्द्राणि रारण० । ऋ. १०,८६,१२; अथर्व. २०,१२६,१२; तै. सं. १,७,१३, २; नि. ११,३९]

प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्यां वृत्रहन् वृत्रहासि ।
यत्र यन्ति स्रवत्यस्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ॥ ६६
अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वं दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तस्स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ६७
त्वमिन्द्रास्यधिराजस्त्वं भवाधिपतिर्जनानाम् ।
दैवीर्विशस्त्वमुताविराजौजस्वत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ ६८
हिरण्यगर्भो यः प्राणतः ॥ ६९
सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ७०
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तस्सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ ७१
प्रियां वो नाम हुवे तुराणाम् । आ यत् तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ ७२
श्रियसे कं भानुभिस्संमिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिस्सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ७३
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ ७४
आ नो विश्वाभिरूतिभिस्सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत्स्थविरेभिस्सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ७५
मरुतो यद्ध वो दिवस्सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उपगन्तन ॥ ७६
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ७७

[प्राच्यां (०च्या) दिशि (०दास्त्व०)० । अथर्व. ६,९८,३ । अस्येदेव प्ररिरिचे० । ऋ. १,६१,९; अथर्व. २०,३५,९; तै. सं. २,४,१४,२ । त्वमिन्द्रास्यधि (०न्द्राधि०)० । अथर्व. ६,९८,२ । हिरण्यगर्भ० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; ४,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३ । यः प्राणतो० । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१६,१ । सोमापूषणा जनना० । ऋ. २,४०,१; तै. सं. १,८,२२,५ । इमौ देवौ जायमानौ० । ऋ. २,४०,२; तै. सं. १,८,२२,५ । प्रिया वो नाम० । ऋ. ७,५६, १०; तै. सं. २,१,११,१ । श्रियसे कं भानुभि० । ऋ. १,८७,६; तै. सं. २,१,११,२; ४,२,११,२; नि. ४,१६। इन्द्रं वो विश्वत० । ऋ. १,७,१०; सा. १६२०; अथर्व. २०,३९,१; ७०,१६; तै. सं. १,६,१२,१ । आ नो विश्वाभि० । ऋ. ७,२४,४; तै. ब्रा. २,४,३,६; ७,१३,४ । मरुतो यद्ध वो० । ऋ. ८,७,११; तै. सं. १, ५,११,४ । यूयमस्मान्नयत० । ऋ. ५,५५,१०]

स युध्मस्सत्वा खजकृत् समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत् सहावा ॥ ७८
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासश्शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ ७९
ऐन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ८०
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतस्सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतस्स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥ ८१
या वश्शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणस्सुवीरम् ॥ १७ ॥ ८२
[६४१]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां दिशस्थानकं नामाष्टमं स्थानकं संपूर्णम् ॥८॥

अथ नवमं स्थानकम् ।

उत्सीदनम् ।

अग्निर्वा उत्सीदन् संवत्सरमनूत्सीदति सप्तदश सामिधेनीः कार्यास्सप्तदशो वै संवत्सरः पञ्चर्तवो द्वादश मासा एष वाव स संवत्सरस्संवत्सरादेवैनमध्यवरुन्द्धे तदाहुः पञ्चदशैव कार्या न सप्तदशेत्येतद्धि संवत्सरस्य संक्रमणतरं यत् पञ्चदश पञ्चदश सामिधेनीरनूच्यन्ते पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयस्ताभिरेव ता आप्यन्ते यावन्ति वै सामिधेनीनामक्षराणि तावन्ति संवत्सरस्याहानि तैरेव तान्याप्यन्तेऽग्निर्वा उत्सीदन् संवत्सरमनूत्सीदति षड्वा ऋतवस्संवत्सरो यत् षड् विभक्तयस्संवत्सरादेवैनमध्यवरुन्द्धे ॥ संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरष्षडृतवस्तस्मात् षड् विभक्तयो यद् द्व्यक्षरास्सतीश्चतुरक्षराः क्रियन्त आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनास्ते वीर्यकृतो यद्वा इदमग्निं बहुधा विहरन्ति यदिमान् पोषान् पुपोष तस्मादग्निरेवैतावतीर्विभक्तीरश्नुते नान्या देवता यज्ञमुखं वै प्रयाजा यत् प्रयाजानन्द

[स युध्मस्सत्वा० । ऋ. ६,१८,२ । सं यद्धनन्त मन्यु० । ऋ. ७,५६,२२ । एन्द्र सानसिं रयिं० । ऋ. १,८,१; सा. १२९; अथर्व. २०,७०,१७; तै. सं. ३,४,११,३; तै. ब्रा. ३,५,७,३ । स्वस्तये वाजिभिश्च० । ऋ. ३,३०,१८ । या वश्शर्म शशमानाय० । ऋ. १,८५,१२; तै. सं. १,५,११,५; तै. ब्रा. २,८,५,६]

[१] मै. १,७,३—४ (१४—१८) । कपि. ८,४ । बा. १२,९—१०,४०—४१ । काण्व. १३,१०—११, ४१—४२ ।

रियाद्यज्ञमुखमन्तरियादन्नं वै प्रयाजा यत् प्रयाजानन्तरियादन्नमन्तरियाद्यं कामयेतर्भुयादिति तस्यो-
परिष्टात् प्रजानां विभक्तीः कुर्याद्वीर्यं वै प्रयाजा वीर्यं विभक्तयो वीर्यादेवाधि वषट्करोत्यजिरमृद्धि-
मभिक्रामति ॥ नानाग्नेयं क्रियत इत्याहुः कस्मात् सविभक्तयः प्रयाजा भवन्तीति संवत्सर वा एते
परीजयन्ते यत् प्रयाजास्तेनाग्नेयं तेन नानाग्नेयं क्रियते॥ पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा पुनर्नः
पाह्यँहस इति पुरस्तात् प्रयाजानां जुहुयात् सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया विश्वप्स्न्या
विश्वतस्परीत्युपरिष्टादनुयाजानां जुहुयादूर्जा वा एष पशुभिरुत्सीदन् सहोत्सीदति पुनरेवोर्जं पशून-
वरुन्द्धेऽधो उभयत एव यज्ञस्याशिषश्नोति ॥ १ ॥ १-४

नानाग्नेयं क्रियत इत्याहुः कस्मादाज्यभागौ यजन्तीति चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ यदा-
ज्यभागा अन्तरियाच्चक्षुषी यज्ञस्यान्तरियादग्न आयूँषि पवस इत्येतां सोमस्याज्यभागस्य लोके कुर्या-
द्यदाग्नेयं तेनाग्नेयी यत् पावमानं तेन सौमी नानाग्नेयं क्रियते न सोममन्तरेत्यग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्ये-
तां सोमस्याज्यभागस्य लोके कुर्यात् प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य वा यन्मिथुना तेन प्रजननवती
यद्वृत्रवती तेन सौमी नानाग्नेयं क्रियते न सोममन्तरेति ॥ वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुत्साद-
यते शतदायो वीरो यदेताश्शताक्षरा अक्षरपङ्क्तयो वीरमेवैतद्देवानामवदयतेऽन्यस्यै वै प्रमाया
आधेयोऽन्यस्यै पुनराधेयो न वै तामाधेयेन स्पृणोति यस्यै पुनराधेयः पुनराधेयेन वाव तां स्पृणोति
जरा वै देवहितमायुस्तावतीर्हि समा जीवति तस्मादाहुश्शतदायो वीर इति यदेताश्शताक्षरा अक्षर-
पङ्क्तयो भवन्ति यावदेव वीर्यं तदाप्नोति तत् स्पृणोत्यायुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते योऽग्निमु-
त्सादयते शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुर्वीर्यं हिरण्यं यद्धिरण्यँ शतमानं ददात्यायुरेव वीर्यं पुनरा-
लभेत ॥ २ ॥ ५-६

यज्ञेन वा एष व्यृध्यते योऽग्निमुत्सादयते पाङ्क्तो यज्ञो यत् पञ्चकपालो यज्ञमेवालभते
तदाहुरष्टकपाल एव कार्यो न पञ्चकपाल इत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्गायत्रच्छन्दा आग्ने-
यमेतत् क्रियते यत् पुनराधेयं तस्मादष्टाकपालस्तत् तन्न सूक्ष्यं पञ्चकपाल एव कार्योऽग्निर्वा
उत्सीदन् संवत्सरमनूत्सीदति पञ्च वा ऋतवस्संवत्सरः पञ्चधाद्वा अध्यृतोष्पष्ट ऋतुर्बभूव
समानमेतद्यत् पञ्चधश्चर्तुष्पष्टश्च यत् पञ्चकपालस्संवत्सरादेवैनमध्यवरुन्द्धे पञ्च वा ऋतवः
प्रजननमृतवो यत् पञ्चकपालः प्रजननाय प्रजननं वा ऋतवोऽग्निः प्रजनयिता यत् पञ्चकपालः

[२] मै. १,७,४-५ (१८-१९)। कपि. ८,५। वा. १९,३८; ३५,१६; ३,१२; १३,१४; १५,२०; काण्व. ८,१९; २१,४०; २९,३७; ३५,४८; ३,१८; १४,१४; १६,४१। [अग्न आयूंषि० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७, २१,४०; ... १४६४, १५१८, तै. सं. १,३,१४,७; ४,२९,१; ५,५,२; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३४; तै. आ २,५,२ । अग्नि-मूर्धा दिवः० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७, १५३२; तै. सं. १,५,५,१, ४,४,१,१, तै. ब्रा. ३,५,७,१]

[३] मै. १,७,४-५ (१८-१९)। कपि. ८,६।

काठ. १०

प्रजननादेवैनं प्रजनयिता प्रजनयत्यादित्या वा इतस्सर्वेणैव सहामुं लोकमायँस्तेऽमुं लोकं गत्वा
व्यतृष्यँस्तेऽविदुरमुतः प्रदानाद्वा इहाजगामेति त एतं पुनरादधत तेनार्ध्नुवन्नादित्या वा अस्मिल्लोक
ऋद्धा आदित्या अमुष्मिन् पशवोऽस्मिन्भृतवोऽमुष्मिन्नुभयोरेव लोकयोर्ऋध्नोति य एवं विद्वानेतमाधत्ते
केतस्सुकेतस्सकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा सलिलस्सलिगस्सगरस्ते न
आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा दिवो ज्योतिर्विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु सत्यां
देवहूतिमासुवध्वमादित्येभ्यस्स्वाहेत्येतैर्वै ते तमादधत तेनार्ध्नुवन् यदा वा एतैराधत्तेऽथाहित
आदित्यो हि पुनराधेयः ॥ ३ ॥ ७

आग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावित्रो द्वादशकपालस्सारस्वतश्चरुः पौष्णश्चरुर्मारुतस्सप्तकपालो
वैश्वदेव्यामिक्षा द्यावापृथिव्य एककपाल आग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावित्रोऽष्टाकपालस्सारस्वत-
श्चरुः पौष्णश्चरुरैन्द्राग्नो द्वादशकपालो मारुत्यामिक्षा वारुण्यामिक्षा कायं एककपालो नमस्त आता-
नानर्वा प्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण ॥ ८

प्रघास्यान् हवामहे मरुतो यज्ञवाहसः । करम्भेण सजोषसः ॥ ९
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवा अस्तु स्म ते शुष्मिन्नवयाः ।
मही ह्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १०
यद्ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयं यदप्स्वश्चकृमा वयम् ।
यदेकस्यापि धर्मण्येतत् तदवयजामहे । स्वाहा ॥ ११
अक्रन् कर्म कर्मकृतस्सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सुदानवः ॥४॥ १२

अग्नयेऽनीकवते प्रातरष्टाकपालो मरुद्भ्यस्सान्तपनेभ्यो मध्यंदिने चरुर्मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्यस्स-
र्वासां दुग्धे सायमोदनो निष्कासो निधीयते संतर्यै ॥ १३

पूर्णा दर्वे परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो ॥ १४
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारमिन्नि मे हर निहारं निहरामि ते ।
अप्रामित्यमिव संभरेषमूर्जं शतक्रतो ॥ १५

[४] मै. १,१०,१—२ (१,३-७)। कपि. ८,७। वा. ६,१२; ३,४४—४७; २०,१७; ८४,१६। काण्व. ६,१६; ३,५१-५५; २२,४। [मो षू (षु) ण इन्द्रात्र० । ऋ १,१७३,१२। यदेनश्चकृमा वयम्० । अथर्व. १०, ३,८]

[५] मै. १,१०,१-२ (१-२,८-९)। कपि. ८,८। वा. २४,१६, ३,४९—५०; २,९। काण्व. २६,१०; ३, ५७—५८; २,१३। [पूर्णा दर्वे (दर्वि)०। अथर्व. ३,१०,७; श्रौ. पू. अ. २, खं. १८। देहि मे ददामि ते० । श्रौ. पू. अ. २, खं. १८]

मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातस्सप्तकपालस्साकं सूर्यस्य रश्मिभिराग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावि-
त्रोऽष्टाकपालस्सारस्वतश्चरुः पौष्णश्चरुरैन्द्राग्न एकादशकपाल ऐन्द्रश्चरुर्वैश्वकर्मण एककपालोऽग्ने वेहोत्रं
वेर्दूत्यमूध्वोऽध्वरेऽस्था अवतां त्वा द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृदिन्द्राय देवेभ्यो भव १६
जुषाणो अस्य हविषो घृतस्य वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

सोमाय पितृमत आज्यं पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यष्षट्कपालः पुरोडाशः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यो धाना
अग्नये कव्यवाहनाय मन्थ एतत् ते तत ये च त्वामन्वेतत् ते पितामह ये च त्वामन्वेतत् ते प्रपिता- १७
मह ये च त्वामन्वत्र पितरो मादयध्वम् ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् मन्दिषीमहि । १८
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥
परेत पितरस्सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः । १९
दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नस्सर्ववीरं नियच्छत ॥ २०
अमीमदन्त पितरः ॥
अयां विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः । २१
स प्रत्युदैद्धरुणं मध्वो अग्रं स्वां यत् तनूं तन्वमैरयत ॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । २२
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥
नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो
नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरश्शुष्माय नमो वः पितरो बलाय नमो नमो वः पितरस्स्वधा वः पितरो
रसाय नमो वः पितरः क्रूराय नमो वः पितरो बलाय नमो नमो वः पितरस्स्वधा वः पितरो
यात्र पितरस्स्वधा यत्र यूयं स्थ सा युष्मासु तया यूयं यथाभागं मादयध्वं येह पितर ऊर्ग्यत्र वयं २३
संस्सास्मासु तस्यै वयं ज्योग्जीवन्तो भूयास्म ॥ २४
मनो न्वाहुवामहे नाराशँसेन स्तोमेन । पितृणां च मन्मभिः ॥ २५
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥

[६] मै. १,१०,३ (१०-२०)। कपि. ८,९-१०। वा. २,२९,३१,—३२; ३,५१-५५। काण्व. २,६५,५४,५६-५७; परेत पितरस्सोम्यासो० । ३,५९—६३। [सुसंदृशं त्वा वयं० । ऋ. १,८२,३; तै. सं. १,८,५,१। अयां विष्ठा० । अथर्व. ७,३,१; श्रौ. पू. अ. २, खं. १९। अथर्व. १८,४,६२—६३; श्रौ. पू. अ. २, खं. ७। अक्षन्नमीमदन्त० । ऋ. १,८२,२, अथर्व. १८,४,६१; सा. ४१५, तै. सं. १,८,५,२। नमो वः पितरो० । अथर्व. १८,४,८१-८७; श्रौ. पू. अ. २, खं. ७। मनो न्वाहुवामहे० । ऋ. १०,५७,३; तै. सं. १,८,५,२ । अथर्व. १,६,३, ६,११,१, तै. सं. १.८,५,२]
आ न (त) एतु मनः० । ऋ. १०,५७,४; अथर्व. १,६,३, ६,११,१, तै. सं. १.८,५,२]

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवं व्रातं सचेमहि ॥ २६
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवि ।
इषँ स्तोतृभ्य आभर ॥ २७
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यत् पितरं मातरं वा जिहिंसिम ।
अग्निर्नस्तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु चकृम यानि दुष्कृता ॥ ६ ॥ २८

रुद्राखुं ते पशुं करोमि तेन त्वा पशुभ्यो निरवदय एष ते रुद्र भागस्सह स्वस्राम्बिकया तं
जुषस्व स्वाहा ॥ २९

अवाम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम ।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नश्श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ३०
भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय सुगं मेषाय मेष्यै ।
अथो अस्मभ्यं भेषजं सुभेषजं यथासति ॥ ३१
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं रयिपोषणम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ ३२

भगस्स्थ भगस्य वो लप्सीयैष ते रुद्र भागस्तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि कृत्तिवासाः
पिनाकहस्तोऽवततधन्वा ॥ एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि समेधिषीमहि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ३३-३४
॥ ७ ॥

चित्तिस्स्रुक् चित्तमाज्यं वाग्वेदिराधीतं बर्हिः केतो अग्निर्विज्ञातमग्निद्वाचस्पतिर्होता मन उपवक्ता
प्राणो हविस्सामाध्वर्युरिन्द्रं गच्छ स्वाहा पृथिवी होता द्यौरध्वर्युस्त्वष्टाग्निर्मित्र उपवक्ता वाचस्पते
वाचो वीर्येण संभृततमेनायक्षसे यज्ञपतये वार्यमा स्वस्करो वाचस्पतिस्सोमं पिबतु जजनदिन्द्रमि-
न्द्रियाय स्वाहा सोमस्सोमस्य पुरोगाश्शुक्रश्शुक्रस्य पुरोगाश्श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापे हवनश्रु-
तस्स्वाहाग्निर्होताश्विनाध्वर्यू रुद्रोऽग्नीद्बृहस्पतिरुपवक्ता वाचस्पते हृद्विधे नामन् वाचस्पतिस्सोममपा-
दास्मासु नृम्णं धात् स्वाहा सोमस्सोमस्य पुरोगाश्शुक्रश्शुक्रस्य पुरोगाश्श्रातास्त इन्द्र सोमा
वातापे हवनश्रुतस्स्वाहा ॥ ८ ॥ ३५

[पुनर्नः पितरो० । ऋ. १०,५७,५; तै. सं. १,८,५,३। आ ते अग्न इधीमहि० । ऋ. ५,६,४; सा. ४१९, १०२२; अथर्व. १८,४,८८; तै. सं. ४,४,४,६। इषँ स्तोतृभ्य आ भर । ऋ. ५,६,१-१०; सा. ४१९,४२५, १०२२-१०२४,१५८६,१७३७—१७३९। यदन्तरिक्षं पृथिवी० अथर्व. ६,१२०,१, श्रौ. पू. अ. २, खं. ७]

[७] मै. १,१०,४. (२२—२७)। कपि. ८,११। वा. ३,५७—६१, २०,२३; ३८,२५। काण्व. ३,६५-७०; २२, ७; ३८,२४। [सुगं मेषाय मेष्यै (०ष्ये) [द्वि. पा.]। ऋ. १,४३,६। त्र्यम्बकं यजामहे० । ऋ. ७,५९, १२; अथर्व. १४,१,१७; तै. सं. १,८,६,२; नि. १४,३५। एधोऽस्येधिषीमहि० । श्रौ. पू. अ. ३, खं. ६]

[८] मै. १,९,१ (१)। कपि. ८. १२। [चित्तिस्स्रुक्०...ध्वर्युः । ऐ. ब्रा. ५,२५]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे यमायाश्वं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणेऽग्नये हिरण्यं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे रुद्राय गां तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि प्रोस्याक्रन्तन्नपसोऽतन्वत वरुत्रीरवयन् वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे बृहस्पतये वासस्तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिण उत्तानायाङ्गिरसायाप्राणत् तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे प्रजापतये पुरुषं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे क इदं कस्मा अदात् कामः कामाय कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामस्समुद्रमाविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत् ते महाहविर्होता सत्यहविरध्वर्युरचित्तपाजा अग्निदचित्तमना उपवक्तानाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरा अयास्य उद्गाता वाचस्पते विधे नामन् विधेम ते नाम विधेस्त्वमस्माकं नाम मा देवानां तन्तुश्छेदि मा मनुष्याणाम् ॥ ९ ॥ ३६-३७

अग्निर्यजुर्भिस्सविता स्तोमैरिन्द्र उक्थामदैर्बृहस्पतिश्छन्दोभिर्विष्णुर्दीक्षातपोभ्यामदितिस्सदोहविर्धानाभ्यामादित्या आज्यैर्मित्रावरुणौ धिष्ण्येभिरग्निभिर्मरुतोऽपश्च बर्हिश्च त्वष्टा समिधाश्विना आशिरा पूषा स्वगाकारैः पृथिव्यग्नेर्वाग्वातस्य सेनेन्द्रस्य धेना बृहस्पतेः पथ्या पूष्णो गायत्री वसूनां त्रिष्टुब्रुद्राणां जगत्यादित्यानामनुष्टुम्मित्रस्य विराड्वरुणस्य पङ्क्तिर्विष्णोर्दीक्षा सोमस्य ॥ १० ॥ ३८

प्रजापतिरकामयत स्यात् प्रजायेयेति स दशधात्मानं व्यधत्त तस्य चित्तिस्स्रुगासीच्चित्तमाज्यं वाग्वेदिराधीतं बर्हिः केतो अग्निर्विज्ञातमग्निद्वाचस्पतिर्होता मन उपवक्ता प्राणो हविस्सामाध्वर्युस्स दशधात्मानं विधाय मिथुनं कृत्वा स आयतनमैच्छत् स त्रिवृतमेवायतनमचायत् प्राणाँस्ततः प्रजा

[९] मै. १,९,१,४ (१,४—१६)। कपि. ८,१३। मा. ७,३०; ७,३७—४८। काण्व. ९,४३ ९,१२—१४। [देवस्य त्वा० अथर्व. १९,५१,२; ऐ ब्रा. ८,७; श. ब्रा. १,१०,२४। कस्मा अदात्काम:०। अथर्व. ३,२९,७; श्री. सू. अ. ५, खं. १३]
[१०] मै. १,९,२ (२)।
[११] मै. १,९,३—४ (३—१६)।

असृजत तत ऊर्ध्वोऽन्य उदतृणत् पञ्चदशोऽवाङन्योऽवातृणत् पञ्चदशो य ऊर्ध्व उदतृणत् स पूर्वपक्षस्तेन देवानसृजत तमूर्ध्वमाप्यायमानं देवा ऊर्ध्वा अन्वाप्यायन्त योऽवाङवातृणत् सोऽपरपक्षस्तेनासुरानसृजत तमपध्वँसमानमसुरा अवाञ्चोऽनुप्राध्वँसन्त दक्षिणँ हस्तमनु देवानसृजत ते वीर्यावन्तोऽभवन् सव्यँ हस्तमन्वसुराँस्ते मृद्धा अभवँस्तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरस्सत्येन देवानसृजत ते सत्यमभवन्ननृतेनासुराँस्तेऽनृतमभवन्नह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन् रात्र्यासुराँस्ते कृष्णा अभवन् स वै तदैच्छद्यस्मिन् होष्यामीति स इन्द्रमेव वीर्यमन्तरात्मन्नपश्यत् सोऽस्मान्यज्ञातमासीत् स इन्द्रं गच्छ स्वाहेत्यपानीद्वीर्यं वै प्राणो वीर्यमिन्द्रो वीर्य एव वीर्यमादधात् ते चतुर्होत्रा सोमगृहपतयो न्यसीदन्निन्द्रं जनयामेति तेषां पृथिवी होतासीद् द्यौरध्वर्युस्त्वष्टाग्निर्मित्र उपवक्ता त एतां ग्रहा अगृह्णत त आयतनमैच्छँस्त एकविंशमेवायतनमचायँस्त इन्द्रमजनयँस्ते पञ्चहोत्रा वरुणगृहपतयो न्यसीदन् स्वरयामेति तेषामग्निर्होतासीदश्विनाध्वर्यू यदश्विना तेन पञ्चहोत्रा रुद्रोऽग्निद्बृहस्पतिरुपवक्ता त एतां ग्रहा अगृह्णत त आयतनमैच्छँस्ते त्रिणवमेवायतनमचायँस्ते स्वरायँस्तँ सेतुं कृत्वा तत् पशवोऽसृज्यन्त तान् देवताभ्योऽनयन् यमायाश्वमग्नये हिरण्यं रुद्राय गां बृहस्पतये वास उत्तानायाङ्गिरसायाप्राणत् प्रजापतये पुरुषम् ॥ ११ ॥ ३९

तस्य यमस्याश्वं प्रतिजगृहुषोऽर्धमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् सोऽर्धमिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वानश्वं प्रतिगृह्णात्यर्धमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णात्यर्धमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्याग्नेर्हिरण्यं प्रतिजगृहुषस्तृतीयमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स तृतीयमिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वान् हिरण्यं प्रतिगृह्णाति तृतीयमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति तृतीयमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्य रुद्रस्य गां प्रतिजगृहुषश्चतुर्थमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स चतुर्थमिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वान् गां प्रतिगृह्णाति चतुर्थमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति चतुर्थमस्येन्द्रियस्यापक्रामति ॥ तस्य बृहस्पतेर्वासः प्रतिजगृहुषः पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स पञ्चममिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वान् वासः प्रतिगृह्णाति पञ्चममिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति पञ्चममस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्योत्तानस्याङ्गिरसस्याप्राणत् प्रतिजगृहुषः षष्ठमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स षष्ठमिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वानप्राणत् प्रतिगृह्णाति षष्ठमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति षष्ठमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्य प्रजापतेः पुरुषं प्रतिजगृहुषस्सप्तममिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स सप्तममिन्द्रियस्योपाधत्त य एतद्विद्वान् पुरुषं प्रतिगृह्णाति सप्तममिन्द्रियस्योपधत्ते य

[१२] मै. १,९,४-५ (४-१७)। मा. ७,४८। काण्व. ९,१४।

एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति सप्तममस्येन्द्रियस्यापक्रामति ॥ क इदं कस्मा अदात् कामः कामायेति कामो हि दाता कामः प्रतिग्रहीता कामस्समुद्रमाविशदिति समुद्र इव हि कामोऽपरिमितः कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत् त इति कामेनैवं प्रतिगृह्णाति कामे प्रतिष्ठापयति न ह वै तस्मिन्नमुष्मिंल्लोके दक्षिणामिच्छन्ति य एवं विद्वान् दक्षिणां प्रतिगृह्णाति यस्तं देवं वेद योऽग्रे दक्षिणा अनयत् प्र तावदाप्नोति यावद्दक्षिणानां नेत्रं य उ तान् वेद येभ्यस्सं तदनयद्दक्षिणीयो भवति यस्तं प्रतिग्रहं वेद येन तं प्रत्यगृह्णन् वसीयान् भवति प्रतिगृह्य वसीयाँसो हि तं प्रतिगृह्याभवँस्तं देवास्त्वरित्वा व्युदृप्यँस्तेऽविदुरहंतः प्रदानाद्वा इहाजगामेति ॥ तं ऋषीनब्रुवन्तो नो यूयं प्रयच्छतेति सप्तहोतॄन् कैनायतनेनेत्यत्रैव वेत्स्यथेति ते सप्तहोत्रार्यमगृहपतयो न्यसीदन् संतनवामेति तेषां महाहविर्होतासीत् सत्यहविरध्वर्युरचित्तपाजा अग्निदचित्तमना उपवक्तानाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरा अयास्य उद्गाता त एतं ग्रहमगृह्णत त आयतनमैच्छँस्तं त्रयस्त्रिंशमेवायतनमचायँस्तेनेदं समतन्वँस्त्रयस्त्रिंशेन च ह वा इदं सप्तहोत्रा च संततं यदिदं देवमनुष्या अन्योऽन्यस्मै प्रददति संततमस्मा अविच्छिन्नं प्रदीयते य एवं वेद ॥ १२ ॥ ४०-४३

प्रजापतिर्दशहोता दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता चातुर्मास्यानि पञ्चहोता सौम्योऽध्वरस्सप्तहोताग्निहोत्रं दशहोता दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता पशुबन्धष्षड्ढोता सौम्योऽध्वरस्सप्तहोता प्राणो दशहोता चक्षुश्चतुर्होता श्रोत्रं पञ्चहोता वाक्चात्मा च सप्तहोतायुषे कमग्निहोत्रँ हूयते सर्वमायुरेति य एवं वेद चक्षुषे कं पूर्णमा इज्यते न चक्षुषो गृह्यते य एवं वेद श्रोत्राय कममावस्येज्यते न श्रोत्रस्य गृह्यते य एवं वेद ॥ वाचे चात्मने च कं सौम्योऽध्वर इज्यते न वाचो नात्मनो गृह्यते य एवं वेद प्रजापतिर्दशहोतैकस्मिन् भूयिष्ठमाग्न्याहुतीनामुतैकस्मिन् बहुर्भवति य एवं वेद तेजसे कं पूर्णमा इज्यत आग्नेयो वै ब्राह्मणो गायत्रोऽग्निर्गायत्रश्छन्दास्त्वे एव देवते सप्रस्थे अकर्नास्यान्यो योगक्षेमस्येशे य एवं वेदायुषे कममावस्येज्यते सर्वमायुरेति य एवं वेद स्वर्गाय कं सौम्योऽध्वर इज्यते स्वर्गमेव तेनैति ॥ १३ ॥ ४४-४५

यः प्रजया पशुभिरिव प्रमेदरासीं परिधाय तप्तं पिबन् द्वादश रात्रीरधश्शयीत द्वादश्याः प्रातः प्राकुदद्रुत्य दशहोतारं व्याचक्षीतामिथुनो हि वा एषोऽथ न प्रमवति प्रजापतिर्दशहोता दशधैवात्मानं विधाय मिथुनं कृत्वा प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते चतुर्होत्रा याजयेत् पुत्रकामं चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रियं पुत्रः पुत्रमेवास्मै जनयति न त्वेनमपरोऽनुजायते सर्वेण हीन्द्रियेण सर्वेण

[क इदं कस्मा अदात्० । अथर्व. ३,२९,७; श्रौ. सू. अ. ५, खं. १३]
[१३] मै. १,९,५ (१७)।
[१४] मै. १,९,५-६ (१७-१८)।

वीर्येण जायते वरो दक्षिणा वरो हि पुत्रश्चतुर्होत्रा याजयेद्राजानँ संग्रामे संयत्ते चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्यतरेषामिन्द्रो भवति ते संग्रामं जयन्तीन्द्रमेवास्मै जनयति जयति संग्रामं यत् तत्र विन्दते ततो दक्षिणा समृद्ध्यै पञ्चहोत्रा याजयेत् पशुकामं पञ्चहोत्रा वै देवाः पशूनसृजन्त सर्वानेवास्मै पशूञ्जनयति तस्यैताश्चतस्रो दक्षिणा अश्वो हिरण्यं गौर्वासस्सप्तहोत्रा याजयेद्यो यज्ञस्य सँस्थामनु पापीयान् स्याद्धि वा एष च्छिनत्ति यो यज्ञस्य सँस्थामनु पापीयान् भवति पराङेव संक्रामति सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति न ततः पापीयान् भवति याद्दक्तन्यजते यच्चतुर्होतॄननुसवनं तर्पयितव्यान् वेद तृप्यति प्रजया पशुभिरुपैनँ सोमपीथो नमति ॥ दशहोतारं व्याख्याय बहिष्पवमानेनोद्गायेत् प्रजापतिर्दशहोता प्रैव जनयति चतुर्होतारं व्याख्यायाज्येरुद्गायेच्चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रमेवास्मै जनयति सेन्द्रं तत् सवनं करोति पञ्चहोतारं व्याख्याय माध्यंदिनेन पवमानेनोद्गायेत् पञ्चहोत्रा वै देवा असुरान् प्राणुदन्त पञ्चहोत्रा पशूनसृजन्त भ्रातृव्यमेव पराणुद्य पशून् सृजते सप्तहोतारं व्याख्यायार्भवेण पवमानेनोद्गायेत् सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति ॥ दशहोतारँ सामिधेनीष्वनूच्यमानासु व्याचक्षीत प्रजापतिर्दशहोता प्रैव जनयति चतुर्होतारं प्रयाजानां पुरस्ताद्व्याचक्षीत चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रमेवास्मै जनयति सेन्द्रं यज्ञं करोति पञ्चहोतारँ हविषामवदीयमाने व्याचक्षीत पञ्चहोत्रा वै देवा असुरान् प्राणुदन्त पञ्चहोत्रा पशूनसृजन्त भ्रातृव्यमेव पराणुद्य पशून् सृजते सप्तहोतारमनुयाजानामुपरिष्टाद्व्याचक्षीत सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति चतुर्होत्रा पूर्णमासे हवींष्यासन्नान्यभिमृशेच्चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन् प्रजननं पूर्णमाः प्रैव जनयति पञ्चहोत्रामावस्यायाँ हवींष्यासन्नान्यभिमृशेत् पञ्चहोत्रा वै देवास्स्वरायन् स्वर्ग्यामावस्या स्वर्गस्यैवैष लोकस्य परिग्रहः ॥ १४ ॥ ४६-४८

अन्नं वै चतुर्होतारोऽन्नवान् भवति य एवं वेद यदेक एव चतुर्होतेत्याहुः कस्मात् सर्वे चतुर्होतार उच्यन्त इति चत्वारो वा एते यज्ञास्तेषां चत्वारो होतारस्तदेषां चतुर्होतृत्वँ संवत्सरं चतुर्णामेको नाश्नीयात् तदेषां व्रतमेषा वा अनाहिताग्नेरिष्टिर्यच्चतुर्होतारोऽन्नाद्यायैवैतां विदुस्तेजसे वीर्याय सर्पराज्ञ्या ऋग्भिर्दशमेऽहन्नुद्गातोद्गायेदियं वै सर्पराज्ञ्यन्नं चतुर्होतारोऽन्नमेवाप्त्वान्नमवरुन्द्धेऽप्रयुक्ता वा एतेऽनवरुद्धा यच्चतुर्होतारो यच्चतुर्होतॄन् होता वदति तानेव प्रयुङ्क्ते तानवरुन्द्ध एतद्वै देवानाँ स्तोत्रमनिरुक्तं यत् सर्पराज्ञ्या ऋचस्तस्यैँ तदुक्थमनिरुक्तं यच्चतुर्होतारो मनसा प्रस्तौति मनसोद्गायति मनसा प्रतिहरति रेत एवैतदुद्गातारः प्रसिञ्चन्ति यच्चतुर्होतॄन् होता वदति रेत एव प्रसिक्तँ होता प्रजनयत्यग्न्याधेये व्याचक्षीत ब्रह्मणो वा एतदुदरणं यदग्न्याधेयं ब्रह्मण एतदुदरणं यच्चतु-

[१५] मै. १,९,७—८ (१९—२०)।

होतारो ब्रह्मण एतदुदरणं यदसा आदित्य उदेति सर्वमेव ब्रह्म सृजतेऽथैते संभारास्सह वै देवानां
चासुराणां च यज्ञौ प्रतता आस्तां यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा यज्ञमादाय व्युत्क्रा-
मँस्तमुपरि समभरँस्तेनासुरान् पराभावयन् यत् समभरँस्तत् संभाराणाँ संभारत्वँ समृतसोम एतेशां
चतुर्भिश्चतुर्भिः प्रचरिष्यञ्जुहुयात् पूर्व एव यज्ञं पूर्वो देवता गृह्णाति सयज्ञो भवत्ययज्ञ इतरो दीक्षायां
वाचयेदेतावान् वै यज्ञो यावानेव यज्ञस्तं गृहीत्वा दीक्षते द्वादशाहे वाचयेदेतावान् वै यज्ञो यावान्
द्वादशाहो यावानेव यज्ञो यावान् द्वादशाहस्तं गृहीत्वा दीक्षतेऽथैताः पत्न्यो दक्षिणतो वै देवानाम-
सुरा यज्ञमभ्यजयँस्तेषामाग्नीध्रमनभिजितमासीत् तद्देवाः पत्नीभिस्संप्रापद्यन्त तेऽसुरा ह्रीकाः पत्नीः
प्रख्याय पुनरावर्तन्त तान् देवास्ततोऽनूत्थाय माध्यंदिनेन पवमानेनाभ्यजयन् यस्य पत्नीर्विद्वान-
ग्निद्भवत्यभि भ्रातृव्यस्य गृहानभि पशूनारोहति नास्य भ्रातृव्यो गृहान्न पशूनभ्यारोहति यस्य पत्नी-
र्विद्वानग्नित्पात्नीवतस्य यजति विद्वान् पत्नीं तर्पयति तृप्ता पत्नी रेतो धत्ते रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते
प्रजनिष्णुः प्रजया च पशुभिश्च भवति ॥ १५ ॥ ४९

प्रजास्सृष्ट्वा सोऽकामयत यज्ञं सृजेयेति स एतँ सप्तहोतारमपश्यत् तँ मनसानूद्द्रुत्याजुहोत् तेन
यज्ञमसृजत सोऽस्माद्यज्ञस्सृष्टः पराङैत् तं ग्रहेणानूद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं दीक्षिष्यमाणस्सप्त-
होत्रा पुरस्ताज्जुहुयाद्यज्ञमेव सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति यज्ञस्य सृष्टस्य धृत्यै यज्ञं सृष्ट्वा सोऽका-
मयत दर्शपूर्णमासौ सृजेयेति स एतँ चतुर्होतारमपश्यत् तँ मनसानूद्द्रुत्याजुहोत् तेन दर्शपूर्णमासा-
असृजत तौ अस्माद्दर्शपूर्णमासौ सृष्टौ पराञ्चा ऐतां तौ ग्रहेणानूद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं दर्श-
पूर्णमासा आलप्स्यमानश्चतुर्होत्रा पुरस्ताज्जुहुयाद्दर्शपूर्णमासा एवं सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति
दर्शपूर्णमासयोस्सृष्टयोर्धृत्यै दर्शपूर्णमासौ सृष्ट्वा सोऽकामयत चातुर्मास्यानि सृजेयेति स एतं पञ्च-
होतारमपश्यत् तँ मनसानूद्द्रुत्याजुहोत् तेन चातुर्मास्यान्यसृजत तान्यस्माच्चातुर्मास्यानि सृष्टानि
पराञ्च्यायँस्तानि ग्रहेणानूद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं चातुर्मास्यान्यालप्स्यमानः पञ्चहोत्रा पुर-
स्ताज्जुहुयाच्चातुर्मास्यान्येव सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति चातुर्मास्यानाँ सृष्टानां धृत्या अभिचरन्
दशहोत्रा जुहुयान्नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी प्राणानेवास्योपदासयति स्रक्त्य इरिणे प्रदरे वा
जुहुयादेतद्वा अस्या निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋत्यैवैनं ग्राहयति वषट्करोत्येतद्वै वाचः क्रूरं वाचैवैनं
क्रूरेण प्रवृश्चत्याङ्गिरसश्च वा आदित्याश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त त आदित्या एतं पञ्चहोतारमपश्यँस्तं
मनसानूद्द्रुत्याजुहवुस्तेत आदित्यास्स्वर्गं लोकमायन्नपाङ्गिरसोऽभ्रँशन्त तेऽङ्गिरस आदित्यानब्रुवन्
क्व स्थ कथँ वो हव्यं वक्ष्याम इति च्छन्दस्स्वित्यब्रुवन् गायत्र्यां वसवस्त्रिष्टुभि रुद्रा जगत्यामा-
दित्या इत्यत्र वै देवेभ्यस्सद्र्यो हव्यमुह्यते य एवं देवानुपदेशनाद्वेदोपदेशनवान् भवति यस्स्वर्गं-

कामस्स्यात् स एत पञ्चहोतारं मनसानूद्द्रुत्य जुहुयात् पञ्च वा ऋतव ऋतवस्संवत्सरस्संवत्सर-
स्स्वर्गो लोक ऋतुष्वेव संवत्सरं प्रतिष्ठाय स्वर्गं लोकमेति ॥ योऽब्राह्मणो विद्यामनूच्य नेव रोचेत
स एताँश्चतुर्होतॄनरण्यं परेत्य दर्भस्तम्बमुद्ग्रथ्य ब्राह्मणं दक्षिणतो निषाद्य व्याचक्षीतैतद्वै देवानां
ब्रह्मानिरुक्तं यच्चतुर्होतारस्तदेनं निरुच्यमानं प्रकाशं गमयति दर्भस्तम्बमुद्ग्रथ्य व्याचष्टेऽग्निर्वै दर्भ-
स्तम्बोऽग्निमत्येव व्याचष्टे ब्राह्मणो दक्षिणत आस्ते ब्राह्मणो वै प्रजानामुपद्रष्टोपद्रष्टृमत्येव व्याचष्ट
ईश्वरे वा एता उभौ यशोऽर्तोर्यो व्याचष्टे यश्च दक्षिणत आस्ते यो दक्षिणत आस्ते तस्मै वरं दद्या-
द्यदेव तत्र यश ऋच्छति तद्वरेणावरुन्द्धे ॥ १६ ॥ ५०-५१
ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवानोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येणाभिभवत्यैन्द्रा-
ग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् सजातकाम ओजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनान् वीर्येणाधस्तादुपा-
स्यते न वा एत एतं प्रयान्तमकामा अनुप्रयान्त्योजो वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न ओज एवैषां वीर्यं
संगृह्य प्रयाति तं प्रयान्तमकामा अनुप्रयान्त्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः प्रजापतेर्वै
प्रजास्सिसृक्षमानस्य तस्यैन्द्राग्नी प्रजा अपागूहतां सोऽवेदिन्द्राग्नी वै मे प्रजा अपाघुक्षतामिति स
एतमैन्द्राग्नमपश्यदेकादशकपालं ततो वै तस्मै तौ प्रजाः पुनरदत्तामिन्द्राग्नी एतस्य प्रजामपगूहतो
योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रीतौ प्रजां पुनर्दत्तः पुन-
र्दातृमती याज्यानुवाक्ये भवतस्समृद्ध्या ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयानोजो वै
वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येणाभिप्रयात्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत संग्राममागत्योजो वै वीर्य-
मिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येण जयत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं जित्वौजसा वा एष वीर्येण
व्यृध्यते यस्संग्रामं जयति सर्वेण हीन्द्रियेण सर्वेण वीर्येण जयत्योजो वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न इन्द्राग्नी
एवैनमोजसा वीर्येण समर्धयत ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुँ सनिं प्रयन्नोजो वै वीर्य-
मिन्द्राग्नी ओजसैव वीर्येण प्रैति पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता यत् पौष्णः पूषैवास्मै वीर्यमनुप्रयच्छत्यैन्द्रा-
ग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं क्षेत्रस्य पतये चरुं यः कामयेतास्यां मे जनतायामृध्येतेत्योजो
वै वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न इन्द्राग्नी एवास्मा ओजसा वीर्येण लोकं विन्दतः पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता
यत् पौष्णः पूषैवास्मै वीर्यमनुप्रयच्छत्ययं क्षेत्रस्य पतिर्यत् क्षेत्रपत्योऽस्यामेव प्रतितिष्ठति॥१७॥५२

कया शुभा सवयसस्सनीडास्समान्या मरुतस्संमिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ ५३

[१७] मै. २,१,१ (१)।
[१८] मै. ४,११,३ (७९-९३)। वा. ३३,२७,७८-७९; ३४,४८। काण्व. ३२,२७,७८-७९; ३३,३६। [कया शुभा०...वसूया। ऋ. १,१६५,१]

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ ५४
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनस्सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
संपृच्छसे समराणश्शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ॥ ५५
ब्रह्माणि मे मतयश्शं सुतासश्शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आशासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ५६
अतो वयमन्तमेभिर्युजानास्स्वक्षत्रेभिस्तन्वश्शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उपयुज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५७
क्व स्या वो मरुतस्स्वधासीद्यन्मामेकँ समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ५८
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ५९
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्रास्सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ६०
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ६१
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ ६२
अमन्दन्मा मरुतस्स्तोमो अत्र यन्मे नरश्श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ६३
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यश्श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ ६४

[कस्य ब्रह्माणि०...रीरमाम। ऋ. १,१६५,२। कुतस्त्वमिन्द्र०...अस्मे। ऋ. १,१६५,३। ब्रह्माणि मे मतयः०...अच्छ। ऋ. १,१६५,४। अतो वयमन्त०...बभूथ। ऋ. १,१६५,५। क्व स्या वो०...वधस्नैः। ऋ. १,१६५,६; तै. ब्रा. २,८,३,५। भूरि चकर्थ०...यद्वशाम। ऋ. १,१६५,७; नि. ६,७। वधीं वृत्रं०...वज्रबाहुः। ऋ. १,१६५,८; तै. ब्रा. २,८,३,६। अनुत्तमा ते०...प्रवृद्ध। ऋ. १,१६५,९। एकस्य चिन्मे०...एषाम्। ऋ. १,१६५,१०। अमन्दन्मा०...तनूभिः। ऋ. १,१६५,११। एवेदेते०...नूनम्। ऋ. १,१६५,१२]

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्रयातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ ६५
आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ ६६
एष वस्स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषायासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १८ ॥ ६७
मरुतो यद्ध वो दिवो यूयमस्मानिन्द्रं वः ॥ ६८
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ६९
त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे ससुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूँरपावृणोदपिहितेव खानि ॥ ७०
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यस्सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ ७१
अग्ने नक्षत्रमग्ने बृहन्नुद त्यं चित्रं देवानाम् ॥ ७२
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवस्सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ७३
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ७४
अयं पूषा रयिर्भगस्सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७५

[को न्वत्र मरुतो०...ऋतानाम्। ऋ. १,१६५,१३। आ यद्दुवस्या०...अर्चत्। ऋ. १,१६५,१४। एष वस्स्तोमो०...जीरदानुम्। ऋ. १,१६५,१५; १६६,१५; १६७,११; १६८,१०]
[१९] मै. ४,११,१—२ (२४,४६—४७)। वा. ७,४१—४२; ८,४१; ३३,३१; १३,४६; ४,३, १९,६९। काण्व. ८,२३—२४; ९,६—७, ३२,३१; १४,४८; ४,४; १३,२०। [मरुतो यद्ध वो०। ऋ. ८,७,११; तै. सं. १,५,११,४। यूयमस्मान्नयत०। ऋ. ५,५५,१०। इन्द्रं व०। ऋ. १,७,१०; ६,२९,१; सा. १६२०; अथर्व. २०,३९,१; ७०,१६; तै. सं. १,६,१२,१। आ ते शुष्मो०। ऋ. ६,१९,९; तै. ब्रा. २,५,८,१; ८,५,९। त्वा युजा तव०। ऋ. ४,२८,१। ऋदूदरेण सख्या०। ऋ. ८,४८,१०; तै. सं. २,२,१२,३; नि. ६,४। अग्ने नक्षत्र०। ऋ. १०,१५६,४; सा. १५३०। अग्ने बृहन्०। ऋ. १०,१,१; तै. सं. ४,२,१,४। उदु त्यं०। ऋ. १,५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६; २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५। चित्रं देवानां०। ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; ऐ. आ. ३,९; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६। अयुक्त सप्त०। ऋ. १,५०,९; अथर्व. १३,२,२४; २०,४७,२१; तै. ब्रा. २,४,५,४। सप्त त्वा०। ऋ. १,५०,८; सा. ६४०; अथर्व. १३,२,२३; २०,४७,२०; तै. सं. २,४,१४,४। अयं पूषा रयि०। ऋ. ९,१०१,७; सा. ५४६ ८१८]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे यमायाश्वं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणेऽग्नये हिरण्यं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे रुद्राय गां तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ग्रास्याकृन्तन्नपसोऽतन्वत वरुत्रीरवयन् वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे बृहस्पतये वासस्तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिण उत्तानायाङ्गिरसायाप्राणत् तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे प्रजापतये पुरुषं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे क इदं कस्मा अदात् कामः कामाय कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामस्समुद्रमाविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत् ते महाहविर्होता सत्यहविरध्वर्युरचित्तपाजा अग्निदचित्तमना उपवक्तानाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरा अयास्य उद्गाता वाचस्पते विधे नामन् विधेम ते नाम विधेस्त्वमस्माकं नाम मा देवानां तन्तुश्छेदि मा मनुष्याणाम् ॥ ९ ॥ ३६-३७

अग्निर्यजुर्भिस्सविता स्तोमैरिन्द्र उक्थामदैर्बृहस्पतिश्छन्दोभिर्विष्णुर्दीक्षातपोभ्यामदितिस्सदोहविर्धानाभ्यामादित्या आज्यैर्मित्रावरुणौ धिष्ण्यैरग्निभिर्मरुतोऽपश्च बर्हिश्च त्वष्टा समिधाश्विना आशिरा पूषा स्वगाकारैः पृथिव्यग्नेर्वसवो वातस्य सेनेन्द्रस्य धेना बृहस्पतेः पथ्या पूष्णो गायत्री वसूनां त्रिष्टुब्रुद्राणां जगत्यादित्यानामनुष्टुम्मित्रस्य विराड्वरुणस्य पङ्क्तिर्विष्णोर्दीक्षा सोमस्य ॥ १० ॥ ३८

प्रजापतिरकामयत स्यात् प्रजायेयेति स दशधात्मानं व्यधत्त तस्य चित्तिस्स्रुगासीच्चित्तमाज्यं वाग्वेदिराधीतं बर्हिः केतो अग्निर्विज्ञातमग्निर्वाचस्पतिर्होता मन उपवक्ता प्राणो हविस्सामाध्वर्युस्स दशधात्मानं विधाय मिथुनं कृत्वा स आयतनमैच्छत् स त्रिवृतमेवायतनमचायत् प्राणांस्ततः प्रजा

[९] मै. १,९,२,४ (१,४—१६)। कपि. ८,१३। का. ६,३०; ७,४७—४८। काण्व. ६,४३ ९,१२—१४। [देवस्य त्वा० अथर्व. १९,५१,२; तै.ब्रा. ८,७; तै. ब्रा. ३,२०,२४। कस्मा अदात्कामः० । अथर्व. ३,२९,७; औ. सू. अ. ५, सं. १३]
[१०] मै. १,९,२ (३)।
[११] मै. १,९,३—४ (३—१६)।

असृजत तत ऊर्ध्वोऽन्य उदतृणत् पञ्चदशोऽवाङन्योऽवातृणत् पञ्चदशो य ऊर्ध्व उदतृणत् स पूर्वपक्षस्तेन देवानसृजत तमूर्ध्वमाप्यायमानं देवा ऊर्ध्वा अन्वाप्यायन्त योऽवाङवातृणत् सोऽपरपक्षस्तेनासुरानसृजत तमपध्वँसमानमसुरा अवाञ्चोऽनुप्राध्वँसन्त दक्षिणँ हस्तमनु देवानसृजत ते वीर्यावन्तोऽभवन् सव्यँ हस्तमन्वसुराँस्ते मृद्धा अभवँस्तस्माद्दाक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरस्सत्येन देवानसृजत ते सत्यमभवन्ननृतेनासुराँस्तेऽनृतमभवन्नह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन् रात्र्यासुराँस्ते कृष्णा अभवन् स वै तदैच्छद्यस्मिन् होष्यामीति स इन्द्रमेव वीर्यमन्तरात्मन्नपश्यत् स ह्येभ्यो ज्ञातमासीत् स इन्द्रं गच्छ स्वाहेत्यपानीद्वीर्यं वै प्राणो वीर्यमिन्द्रो वीर्य एव वीर्यमादधात् ते चतुर्होत्रा सोमगृहपतयो न्यसीदन्निन्द्रं जनयामेति तेषां पृथिवी होतासीद् द्यौरध्वर्युस्त्वष्टाग्निर्मित्र उपवक्ता त एतौ ग्रहा अगृह्णत त आयतनमैच्छँस्त एकविँशमेवायतनमचायँस्त इन्द्रमजनयँस्ते पञ्चहोत्रा वरुणगृहपतयो न्यसीदन् स्वरयामेति तेषामग्निर्होतासीदश्विनाध्वर्यू यदश्विना तेन पञ्चहोत्रा रुद्रोऽग्निर्बृहस्पतिरुपवक्ता त एतौ ग्रहा अगृह्णत त आयतनमैच्छँस्ते त्रिणवमेवायतनमचायँस्ते स्वरायँस्ते सेतुं कृत्वा तत् पशवोऽसृज्यन्त तान् देवताभ्योऽनयन् यमायाश्वमग्नये हिरण्यं रुद्राय गां बृहस्पतये वास उत्तानायाङ्गिरसायाप्राणत् प्रजापतये पुरुषम् ॥ ११ ॥ ३९

तस्य यमस्याश्वं प्रतिजगृहुषोऽर्धमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् सोऽर्धमिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वानश्वं प्रतिगृह्णात्यर्धमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णात्यर्धमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्याग्नेर्हिरण्यं प्रतिजगृहुषस्तृतीयमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स तृतीयमिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वान् हिरण्यं प्रतिगृह्णाति तृतीयमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति तृतीयमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्य रुद्रस्य गां प्रतिजगृहुषश्चतुर्थमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स चतुर्थमिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वान् गां प्रतिगृह्णाति चतुर्थमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति चतुर्थमस्येन्द्रियस्यापक्रामति ॥ तस्य बृहस्पतेर्वासः प्रतिजगृहुषः पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स पञ्चममिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वान् वासः प्रतिगृह्णाति पञ्चममिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति पञ्चममस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्योत्तानस्याङ्गिरसस्याप्राणत् प्रतिजगृहुषः षष्ठमिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स षष्ठमिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वानप्राणत् प्रतिगृह्णाति षष्ठमिन्द्रियस्योपधत्ते य एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति षष्ठमस्येन्द्रियस्यापक्रामति तस्य प्रजापतेः पुरुषं प्रतिजगृहुषस्सप्तममिन्द्रियस्यापाक्रामत् स एतेन प्रत्यगृह्णात् स सप्तममिन्द्रियस्योपाधत्त य एवंविद्वान् पुरुषं प्रतिगृह्णाति सप्तममिन्द्रियस्योपधत्ते य

[१२] मै. १,९,४-५ (४-१७)। का. ७,४८। काण्व. ९,१४।

एतदविद्वान् प्रतिगृह्णाति सप्तममस्येन्द्रियस्यापक्रामति ॥ क इदं कस्मा अदात् कामः कामायेति कामो हि दाता कामः प्रतिग्रहीता कामस्समुद्रमाविशदिति समुद्र इव हि कामोऽपरिमितः कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत् त इति कामेनैव प्रतिगृह्णाति कामे प्रतिष्ठापयति न ह वै तस्मिन्नमुष्मिँल्लोके दक्षिणामिच्छन्ति य एवं विद्वान् दक्षिणां प्रतिगृह्णाति यस्तं देवं वेद योऽग्रे दक्षिणा अनयत् प्र तामवाप्नोति यो दक्षिणानां नेत्रं य उ तान् वेद येभ्यस्तं तदनयद्दक्षिणीयो भवति यस्तं प्रतिग्रहं वेद येन तं प्रत्यगृह्णन् वसीयान् भवति प्रतिगृह्य वसीयाँसो हि तं प्रतिगृह्यामवँस्ते देवास्सुरित्वा प्युरुर्यँस्तेऽविदुरहुतः प्रदानाद्वा इहाजगामेति ॥ तं ऋषीनब्रुवन्तो नो यूयं प्रयच्छतेति सप्तहोतॄन् कैनापतनेनेत्यत्रैव वेत्स्ययेति ते सप्तहोत्रार्यमगृहपतयो न्यसीदन् संतनवामेति तेषां महाहविर्होतासीत् सत्यहविरध्वर्युरचित्तपाजा अग्निदचित्तमना उपवक्तानाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरा अयास्य उद्गाता त एतं ग्रहमगृह्णत त आयतनमैच्छँस्ते त्रयस्त्रिँशमेवायतनमचायँस्तेनेदं संमतन्वँस्त्रयस्त्रिँशेन च ह वा इदं सप्तहोत्रा च संततं यदिदं देवमनुष्या अन्योऽन्यस्मै प्रददति संततमस्मा अविच्छिन्नं प्रदीयते य एवं वेद ॥ १२ ॥ ४०-४३

प्रजापतिर्दशहोता दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता चातुर्मास्यानि पञ्चहोता सौम्योऽध्वरस्सप्तहोताग्निहोत्रं दशहोता दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता पशुबन्धः षड्ढोता सौम्योऽध्वरस्सप्तहोता प्राणो दशहोता चक्षुश्चतुर्होता श्रोत्रं पञ्चहोता वाक्चात्मा च सप्तहोतायुषे कमग्निहोत्रं हूयते सर्वमायुरेति य एवं वेद चक्षुषे कं पूर्णमा इज्यते न चक्षुषो गृहये य एवं वेद श्रोत्राय कममावस्येज्यते न श्रोत्रस्य गृहये य एवं वेद ॥ वाचे चात्मने च कं सौम्योऽध्वर इज्यते न वाचो नात्मनो गृहये य एवं वेद प्रजापतिर्दशहोतैकस्मिन् भूयिष्ठमाज्याहुतीनामुतैकस्मिन् बहुर्भवति य एवं वेद तेजसे कं पूर्णमा इज्यत आग्नेयो वै ब्राह्मणो गायत्रोऽग्निर्गायत्रच्छन्दास्स्व एव देवते सप्रस्थे अकर्नास्यान्यो योगक्षेमस्येशे य एवं वेदायुषे कममावस्येज्यते सर्वमायुरेति य एवं वेद स्वर्गाय कं सौम्योऽध्वर इज्यते स्वर्गमेव तेनैति ॥ १३ ॥ ४४-४५

यः प्रजया पशुभिरिव प्रसवेद्दरात्रीं परिधाय तप्तं पिबन् द्वादश रात्रीरधश्शयीत द्वादश्याः प्रातः प्राक्दुत्थ्य दशहोतारं व्याचक्षीतामिथुनो हि वा एषोऽथ न प्रभवति प्रजापतिर्दशहोता दशधैवात्मानं विधाय मिथुनं कृत्वा प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते चतुर्होत्रा याजयेत् पुत्रकामं चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रियं पुत्रः पुत्रमेवास्मै जनयति न त्वेनमपरोऽनुजायते सर्वेण हीन्द्रियेण सर्वेण

[क इदं कस्मा अदात्० । अथर्व. ३,२९,७; श्री. सू. अ. ५, सं. १३]
[१३] मै. १,९,५ (१७)।
[१४] मै. १,९,५-६ (१७-१८)।

वीर्येण जायते वरो दक्षिणा वरो हि पुत्रश्चतुर्होत्रा याजयेद्राजानँ संग्रामे संयत्ते चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्यतरेषामिन्द्रो भवति ते संग्रामं जयन्तीन्द्रमेवास्मै जनयति जयति संग्रामं यत् तत्र विन्दते ततो दक्षिणा समृद्धयै पञ्चहोत्रा याजयेत् पशुकामं पञ्चहोत्रा वै देवाः पशूनसृजन्त सर्वानेवास्मै पशूञ्जनयति तस्यैवाश्वतरो दक्षिणा अश्वो हिरण्यं गौर्वासस्सप्तहोत्रा याजयेद्यो यज्ञस्य सँस्थामनु पापीयान् स्याद्धि वा एष च्छिनत्ति यो यज्ञस्य सँस्थामनु पापीयान् भवति पराङेव संक्रामति सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति न ततः पापीयान् भवति याद्वक्तन्यजते यच्चतुर्होतॄननुसवनं तर्पयितव्यान् वेद तृप्यति प्रजया पशुभिरुपैनँ सोमपीथो नमति ॥ दशहोतारं व्याख्याय बहिष्पवमानेनोद्गायेत् प्रजापतिर्दशहोता प्रैव जनयति चतुर्होतारं व्याख्यायाज्यैरुद्गायेच्चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रमेवास्मै जनयति सेन्द्रं तत् सवनं करोति पञ्चहोतारं व्याख्याय माध्यंदिनेन पवमानेनोद्गायेत् पञ्चहोत्रा वै देवा असुरान् प्राणुदन्त पञ्चहोत्रा पशूनसृजन्त भ्रातृव्यमेव पराणुद्य पशून् सृजते सप्तहोतारं व्याख्यायार्भवेण पवमानेनोद्गायेत् सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति ॥ दशहोतारँ सामिधेनीष्वनूच्यमानासु व्याचक्षीत प्रजापतिर्दशहोता प्रैव जनयति चतुर्होतारं प्रयाजानां पुरस्ताद्व्याचक्षीत चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्निन्द्रमेवास्मै जनयति सेन्द्रं यज्ञं करोति पञ्चहोतारँ हविषामवदीयमाने व्याचक्षीत पञ्चहोत्रा वै देवा असुरान् प्राणुदन्त पञ्चहोत्रा पशूनसृजन्त भ्रातृव्यमेव पराणुद्य पशून् सृजते सप्तहोतारमनुयाजानामुपरिष्टाद्व्याचक्षीत सप्तहोत्रा वै देवास्स्वरायन् सप्तहोत्रेदँ समतन्वन् समेव तनोति चतुर्होत्रा पूर्णमासे हवींष्यासन्नान्यभिमृशेच्चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन् प्रजननं पूर्णमाः प्रैव जनयति पञ्चहोत्रामावस्यायाँ हवींष्यासन्नान्यभिमृशेत् पञ्चहोत्रा वै देवास्स्वरायन् स्वर्ग्यामावस्या स्वर्गस्यैवैष लोकस्य परिग्रहः ॥ १४ ॥ ४६-४८

अन्नं वै चतुर्होतारोऽन्नवान् भवति य एवं वेद यदेक एव चतुर्होतेत्याहुः कस्मात् सर्वे चतुर्होतार उच्यन्त इति चत्वारो वा एते यज्ञास्तेषां चत्वारो होतारस्तदेषां चतुर्होतृत्वँ संवत्सरं चतुर्णामेको नाश्नीयात् तदेषां व्रतमेषा वा अनाहिताग्नेरिष्टिर्यच्चतुर्होतारोऽन्नाद्यायैवैतां विदुस्तेजसे वीर्याय सर्पराज्ञ्या ऋग्भिर्दशमेऽहन्नुद्गातोद्गायेदियं वै सर्पराज्ञ्यन्नं चतुर्होतारोऽन्नमेवाप्त्वान्नमवरुन्द्धेऽप्रयुक्ता वा एतेऽनवरुद्धा यच्चतुर्होतारो यच्चतुर्होतॄन् होता वदति तानेव प्रयुङ्क्ते तानवरुन्द्ध एतद्वै देवानाँ स्तोत्रमनिरुक्तं यत् सर्पराज्ञ्या ऋचस्तस्यैं तदुक्थमनिरुक्तं यच्चतुर्होतारो मनसा प्रस्तौति मनसोद्गायति मनसा प्रतिहरति रेत एवैतदुद्गातारः प्रसिञ्चन्ति यच्चतुर्होतॄन् होता वदति रेत एव प्रसिक्तँ होता प्रजनयत्यग्न्याधेये व्याचक्षीत ब्रह्मणो वा एतदुदरणं यदग्न्याधेयं ब्रह्मण एतदुदरणं यच्चतु-

[१५] मै. १,९,७—८ (१९—२०)।

होतारो ब्रह्मण एतदुदरणं यदसा आदित्य उदेति सर्वमेव ब्रह्म सृजतेऽथैते संभारास्सह वै देवानां चासुराणां च यज्ञौ प्रतता आस्तां यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा यज्ञमादाय व्युत्क्रामँस्तमुपरि समभरँस्तेनासुरान् पराभावयन् यत् समभरँस्तत् संभाराणाँ संभारत्वँ समृतसोम एतेषां चतुर्भिश्चतुर्भिः प्रचरिष्यञ्जुहुयात् पूर्व एव यज्ञं पूर्वो देवता गृह्णाति सयज्ञो भवत्ययज्ञ इतरो दीक्षायां वाचयेदेतावान् वै यज्ञो यावानेव यज्ञस्तं गृहीत्वा दीक्षते द्वादशाहं वाचयेदेतावान् वै यज्ञो यावान् द्वादशाहो यावानेव यज्ञो यावान् द्वादशाहस्तं गृहीत्वा दीक्षतेऽथैताः पत्न्यो दक्षिणतो वै देवानामसुरा यज्ञमभ्यजयँस्तेषामाग्नीध्रमनभिजितमासीत् तद्देवाः पत्नीभिस्संप्रापद्यन्त तेऽसुरा ह्रीकाः पत्नीः प्रख्याय पुनरावर्तन्त तान् देवास्ततोऽनूत्थाय माध्यंदिनेन पवमानेनाभ्यजयन् यस्य पत्नीर्विद्वानग्निङ्चत्यभि भ्रातृव्यस्य गृहानभि पशूनारोहति नास्य भ्रातृव्यो गृहान्न पशूनभ्यारोहति यस्य पत्नीर्विद्वानग्नित्पात्नीवतस्य यजति विद्वान् पत्नीं तर्पयति तृप्ता पत्नी रेतो धत्ते रेतसः प्रजाः प्रजायन्ते प्रजनिष्णुः प्रजया च पशुभिश्च भवति ॥ १५ ॥ ४९

प्रजास्सृष्ट्वा सोऽकामयत यज्ञं सृजेयेति स एतं सप्तहोतारमपश्यत् तं मनसानुद्द्रुत्याजुहोत् तेन यज्ञमसृजत सोऽस्माद्यज्ञस्सृष्टः पराङैत् तं ग्रहेणानुद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं दीक्षिष्यमाणस्सप्तहोत्रा पुरस्ताज्जुहुयाद्यज्ञमेव सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति यज्ञस्य सृष्टस्य धृत्यै यज्ञं सृष्ट्वा सोऽकामयत दर्शपूर्णमासौ सृजेयेति स एतं चतुर्होतारमपश्यत् तं मनसानुद्द्रुत्याजुहोत् तेन दर्शपूर्णमासावसृजत तावस्माद्दर्शपूर्णमासौ सृष्टौ पराञ्चा ऐतां तौ ग्रहेणानुद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं दर्शपूर्णमासावालप्स्यमानश्चतुर्होत्रा पुरस्ताज्जुहुयाद्दर्शपूर्णमासावेव सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति दर्शपूर्णमासयोस्सृष्टयोर्धृत्यै दर्शपूर्णमासौ सृष्ट्वा सोऽकामयत चातुर्मास्यानि सृजेयेति स एतं पञ्चहोतारमपश्यत् तं मनसानुद्द्रुत्याजुहोत् तेन चातुर्मास्यान्यसृजत तान्यस्माच्चातुर्मास्यानि सृष्टानि पराञ्च्यायँस्तानि ग्रहेणानुद्द्रुत्यागृह्णात् तद्ग्रहस्य ग्रहत्वं चातुर्मास्यान्यालप्स्यमानः पञ्चहोत्रा पुरस्ताज्जुहुयाच्चातुर्मास्यान्येव सृष्ट्वालभ्य प्रतनुते ग्रहो भवति चातुर्मास्यानाँ सृष्टानां धृत्या अभिचरन् दशहोत्रा जुहुयान्नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी प्राणानेवास्योपदासयति स्रक्त्य इरिणे प्रदरे वा जुहुयादेतद्वा अस्या निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋत्यैवैनं ग्राहयति वषट्करोत्येतद्वै वाचः क्रूरं वाचैवैनं क्रूरेण प्रवृश्चत्याङ्गिरसश्च वा आदित्याश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त त आदित्या एतं पञ्चहोतारमपश्यँस्तं मनसानुद्द्रुत्याजुहवुस्ततं आदित्यास्स्वर्गं लोकमायन्नप्याङ्गिरसोऽभ्रंशन्त तेऽङ्गिरस आदित्यानब्रुवन् क्व स्थ कथं वो हव्यं वक्ष्याम इति छन्दस्स्वित्यब्रुवन् गायत्र्यां वसवस्त्रिष्टुभि रुद्रा जगत्यामादित्या इत्यत्र वै देवेभ्यस्सन्द्ध्यो हव्यमुह्यते य एवं देवानुपदेशनाद्वेदोपदेशनवान् भवति यस्स्वर्ग-

कामस्स्यात् स एत पञ्चहोतारं मनसानुद्द्रुत्य जुहुयात् पञ्च वा ऋतव ऋतवस्संवत्सरस्संवत्सरस्स्वर्गो लोक ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतिष्ठाय स्वर्गं लोकमेति ॥ योऽब्राह्मणो विद्यामनूच्य नेव रोचेत स एतांश्चतुर्होतॄनरण्यं परेत्य दर्भस्तम्बमुद्ग्रथ्य ब्राह्मणं दक्षिणतो निषाद्य व्याचक्षीतेतद्वै देवानां ब्रह्मानिरुक्तं यच्चतुर्होतारस्तदेनं निरुच्यमानं प्रकाशं गमयति दर्भस्तम्बमुद्ग्रथ्य व्याचष्टेऽग्निर्वै दर्भस्तम्बोऽग्निमत्येव व्याचष्टे ब्राह्मणो दक्षिणत आस्ते ब्राह्मणो वै प्रजानामुपद्रष्टोपद्रष्टृमत्येव व्याचष्ट ईश्वरौ वा एता उभौ यशोऽर्तोर्यो व्याचष्टे यश्च दक्षिणत आस्ते यो दक्षिणत आस्ते तस्मै वरं दद्याद्देव तत्र यश ऋच्छति तद्वरेणावरुन्द्धे ॥ १६ ॥ ५०-५१

ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवानोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येणाभिभवत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् सजातकाम ओजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनान् वीर्येणाधस्तादुपास्यते न वा एत एतं प्रयान्तमकामा अनुप्रयान्त्योजो वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न ओज एवैषां वीर्यं संगृह्य प्रयाति तं प्रयान्तमकामा अनुप्रयान्त्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामः प्रजापतेर्वै प्रजास्सिसृक्षमाणस्य तस्येन्द्राग्नी प्रजा अपागूहतां सोऽवेदिन्द्राग्नी वै मे प्रजा अपागुक्षतामिति स एतमिन्द्राग्नमपश्यदेकादशकपालं ततो वै तस्मै तौ प्रजाः पुनरदत्तामिन्द्राग्नी एतस्य प्रजामपगूहतो योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रीतौ प्रजां पुनर्दत्तः पुनर्दातृमती याज्यानुवाक्ये भवतस्समृद्ध्या ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयानोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येणाभिप्रयात्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममागत्यौजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येण जयत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामं जित्वौजसा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यस्संग्रामं जयति सर्वेण हीन्द्रियेण सर्वेण वीर्येण जयत्योजो वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न इन्द्राग्नी एवैनमोजसा वीर्येण समर्धयत ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं सनिं प्रयन्नोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैव वीर्येण प्रैति पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता यत् पौष्णः पूषैवास्मै वीर्यमनुप्रयच्छत्यैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं क्षेत्रस्य पतये चरुं यः कामयेतास्यां मे जनतायामृध्येतेत्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी यदैन्द्राग्न इन्द्राग्नी एवास्मा ओजसा वीर्येण लोकं विन्दतः पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता यत् पौष्णः पूषैवास्मै वीर्यमनुप्रयच्छतीयं क्षेत्रस्य पतिर्यत् क्षेत्रपत्योऽस्यामेव प्रतितिष्ठति॥१७॥५२

कया शुभा सवयसस्सनीडास्समान्या मरुतस्संमिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ ५३

[१७] मै. २,१,१ (१) ।
[१८] मै. ४,११,३ (७९-९३) । वा. ३३,२७,७८-७९; ३४,४८ । काण्व. ३२,२७,७८-७९; ३३,३६ । [कया शुभा०...वसूया । ऋ. १,१६५,१]

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ ५४
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनस्सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
संपृच्छसे समराणश्शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ॥ ५५
ब्रह्माणि मे मतयश्शं सुतासश्शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आशासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ५६
अतो वयमन्तमेभिर्युजानास्स्वक्षत्रेभिस्तन्वश्शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उपयुज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५७
क्व स्या वो मरुतस्स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ५८
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ५९
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्रास्सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ६०
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ६१
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ ६२
अमन्दन्मा मरुतस्स्तोमो अत्र यन्मे नरश्श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ६३
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यश्श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ ६४

[कस्य ब्रह्माणि०...रीरमाम । ऋ. १,१६५,२ । कुतस्त्वमिन्द्र०...अस्मे । ऋ. १,१६५,३ । ब्रह्माणि मे मतयः०...अच्छ । ऋ. १,१६५,४ । अतो वयमन्त०...बभूथ । ऋ. १,१६५,५ । क्व स्या वो०...वधस्नैः । ऋ. १,१६५,६; तै. ब्रा. २,८,३,५ । भूरि चकर्थ०...यद्वशाम । ऋ. १,१६५,७; नि. ६,७ । वधीं वृत्रं०...वज्रबाहुः । ऋ. १,१६५,८; तै. ब्रा. २,८,३,६ । अनुत्तमा ते०...प्रवृद्ध । ऋ. १,१६५,९ । एकस्य चिन्मे०...एषाम् । ऋ. १,१६५,१० । अमन्दन्मा०...तनूभिः । ऋ. १,१६५,११ । एवेदेते०...नूनम् । ऋ. १,१६५,१२]

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्रयातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ ६५
आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ ६६
एष वस्स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषायासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १८ ॥ ६७
मरुतो यद्ध वो दिवो युयमस्मानिन्द्रं वः ॥ ६८
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ६९
त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ ७०
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्च पीतः ।
अयं यस्सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ ७१
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि । दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ७२
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ७३
चित्रं देवानाम् ॥ ७२
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवस्सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ७३
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ७४
अयं पूषा रयिर्भगस्सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७५

[को न्वत्र मरुतो०...ऋतानाम् । ऋ. १,१६५,१३ । आ यद्दुवस्या०...अर्चत् । ऋ. १,१६५,१४ । एष वस्स्तोमो०...जीरदानुम् । ऋ. १,१६५,१५; १६६,१५; १६७,११; १६८,१०]
[१९] मै. ४,१२,१—२ (२४,४६—४७) । वा. ७,४१—४२; ८,४१; ३३,३१; १३,४६; ४,३; १२,१९ । काण्व. ८,२३—२४; ९,३—७; ३२,३२; १४,४८; ४,४; १३,२० । [मरुतो यद्ध वो० । ऋ. ८,७,११; मै. सं. १, ५,११,४ । युयमस्मान्नयत० । ऋ. ५,५५,१० । इन्द्रं वा० । ऋ. १,७,१०; ३,१९,१; सा. १६२०; अथर्व. २०,३९,१; ७०,१६; तै. सं. १,६,१२,१ । आ ते शुष्मो० । ऋ. ३,१९,९; मै. ब्रा. २,५,८,१; ८,५,९ । त्वा युजा तव० । ऋ. ४,२८,१ । ऋदूदरेण सख्या० । ऋ. ८,४८,१०; तै. सं. २,२,१२,३; नि. ६,४ । अग्ने नक्षत्र० । ऋ. १०,१५६,४; सा. १५३० । अग्ने बृहन्० । ऋ. १०,१,१; तै. सं. ४,२,१,४ । उदु त्यं० । ऋ. १,५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६; २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५ । चित्रं देवाना० । ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; ऐ. आ. ३,२; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६ । अयुक्त सप्त० । ऋ. १,५०,९; अथर्व. १३, २,२४; २०,४७,२१; तै. ब्रा. २,४,५,४ । सप्त त्वा० । ऋ. १,५०,८; सा. ६४०; अथर्व. १३,२,२३; २०,४७, २०; तै. सं. २,४,१४,४ । अयं पूषा रयि० । ऋ. ९,१०१,७; सा. ५४६; ८१८]

वयस्सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७६
यथा ह त्यद्वसवः ॥ ७७
चक्षुर्मे धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥ ७८
सुसंदृशं त्वा वयं प्रतिपश्येम सूर्य । विपश्येम नृचक्षसः ॥ ७९
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ ८०
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते सद्म विभृतं पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥ ८१
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ८२
अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्ना त्रिस्सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ ८३
यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ ८४
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ १९ ॥ ८५
[७२६]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामुत्सादनं नाम नवमं स्थानकं संपूर्णम् ॥९॥

[वयस्सुपर्णा० । ऋ. १०,७३,११; सा. ३१९; ऐ. ब्रा. २,१,८,३; तै. आ. ४,४२,३; नि. ४,३ । यथा ह त्यद्वसवो० । ऋ. ४,१२,६; १०,१२६,८; तै. सं. ४,७,१५,७ । चक्षुर्मे (०र्नो) धेहि० । ऋ. १०,१५८,४ । सुसंदृशं त्वा० । ऋ. १०,१५८,५ । अग्ने त्री ते० । ऋ. ३,२०,२; तै. सं. ३,२,११,१ । विद्मा ते अग्ने० । ऋ. १०,४५,२; तै. सं. ४,२,२,१ । इन्द्र त्रिधातु० । ऋ. ६,४६,९; सा. २६६; अथर्व. २०,८३,१ । अतिविद्धा विथुरेणा० । ऋ. ८,९६,२ । यस्तस्तम्भ सहसा० । ऋ. ४,५०,१; अथर्व. २०,८८,१ । विभिद्या पुरं० । ऋ. १०,६७,५; अथर्व. २०,९१,५]

अथ दशमं स्थानकम् ।

आग्नावैष्णवम् ।

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमभिचरन्वाभिचर्यमाणो वाग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो वाक् सरस्वती ब्रह्म बृहस्पतिरग्निनैवास्य देवताभिर्देवताः प्रतिचरति विष्णुना यज्ञेन यज्ञं सरस्वत्या वाचा वाचं बृहस्पतिना ब्रह्मणा ब्रह्म सममेव कृत्वा यत् किंच ततः करोति तेनातिप्रयुङ्क्त एतामेव निर्वपेदभिचरन्नग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो वाक् सरस्वती ब्रह्म बृहस्पतिरग्निनैवैनं देवताभिरभिप्रयुङ्क्ते विष्णुना यज्ञेन सरस्वत्या वाचा बृहस्पतिना ब्रह्मणा स्तृणुत एनमाग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् पशुमालप्स्यमानो व्यृद्धेन वा एष पशुना चरति यो देवताश्च यज्ञं चानवरुध्य पशुमालभतेऽग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चावरुध्य पशुमालभत आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामेऽग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताभिश्चैवैनं यज्ञेन च जयति यदि मन्येत प्रति पुरस्ताच्चरन्तीति द्वे अनुवाक्ये कुर्यादेकां याज्यां सममेव द्वाभ्यां करोत्येकया प्रयुङ्क्त आग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेदभिचर्यमाणोऽग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं च मध्यतः प्रविशति ॥ मिथुनं वा एतद्यद् घृतं च तण्डुलाश्च धेन्वा घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला मिथुनेनैवात्मानमभितः पर्यूहते स्तृत्या आग्नावैष्णवं घृते चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामोऽग्निर्वै मनुष्याश्चक्षुषा पश्यन्ति विष्णोर्देवतास्तौ चक्षुषः प्रदातारौ ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै चक्षुः प्रयच्छतो मिथुनं वा एतद्यद् घृतं च तण्डुलाश्च धेन्वा घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला मिथुनं चक्षुर्मिथुनेनैवास्मै मिथुनं जनयति घृते भवति तेजो वै घृतं तेजश्चक्षुस्तेजसैवास्मिंस्तेजो दधात्याग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत् प्रातस्सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमाग्नावैष्णवमेकादशकपालं मध्यंदिन एतौ च चरू आग्नावैष्णवं द्वादशकपालमपराह्ण एतौ च चरू यस्य भ्रातृव्यस्सोमेन यजेताग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो वाक् सरस्वती ब्रह्म बृहस्पतिरग्निनैवास्य देवताभिर्देवता आप्नोति विष्णुना यज्ञेन यज्ञं सरस्वत्या वाचा वाचं बृहस्पतिना ब्रह्मणा ब्रह्म पुरोडाशैस्सवनानि कपालैश्छन्दाँसि सैषाध्वरकल्पा नामेष्टिर्यज्ञमेवैतयाप्नोति तत्र यत् किंच ददाति तद्दक्षिणा मैत्रावरुणमेककपालमनुनिर्वपति यैवासौ मैत्रावरुणी वशानूबन्ध्या तामेव तेनाप्नोत्येककपालो भवति न वै पुरुषं कपालैराप्नुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोति ॥ १ ॥ १-२

देवा वै सत्रमासत यशस्कामा अग्निस्सोम इन्द्रस्तेऽब्रुवन् यशो यश ऋच्छात् तन्नस्सहेति तेषाँ सोमं यश आर्च्छत् तस्मात् स यशस्वी स गिरिमगच्छत् तस्मात् स गिरौ तमग्निरन्वागच्छत् ता

[१] मै. २,१,७ (७) । तै. सं. २,२,९ ।
[२] मै. २,१,५ (४) । तै. सं. २,३,३; २,४,४,३ ।

अग्नीषोमौ समभवतामथेन्द्रोऽधृतशिथिल इवामन्यत सोऽन्वागच्छत् सोऽग्नौ चैव सोमे चानाथत तमेतयेष्ट्यायाजयतामग्नीषोमीयेणैकादशकपालेन तेजो वा अग्निरिन्द्रियं सोमस्तेज एवास्मिन्नग्निराग्नेयेनादधादिन्द्रियं सोमस्सौम्येन ततो वै सोऽभवदेतेन यजेत बुभूषन्नग्नीषोमीयेणैकादशकपालेन तेजो वा अग्निरिन्द्रियं सोमस्तेज एवास्मिन्नग्निराग्नेयेनादधातीन्द्रियं सोमस्सौम्येन भवत्येवाग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेत् सर्वेभ्यः कामेभ्यो ब्राह्मणोऽग्नीषोमौ वै ब्राह्मणस्य स्वा देवता ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै सर्वान् कामान् प्रयच्छतोऽग्नीषोमीयमष्टाकपालं निर्वपेच्छ्यामाकं वसन्ता ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसकामोऽग्नीषोमौ वै ब्रह्मवर्चसस्य प्रदातारौ ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छतो वसन्ता यजेत वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुस्स्व एवैनं ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्ध एवमिव वै ब्रह्मवर्चसं बभ्रुव क्षुद्रमिव हरितमिव ब्रह्मवर्चसमेव संदधाति यदष्टाकपालस्तेनाग्नेयो यच्छ्यामाकस्तेन सौम्यस्तेनोभयस्मादग्नीषोमीयौ याज्यानुवाक्ये भवतस्समार्ध्यौ संयाज्ये तेजो वा अग्निरिन्द्रियं सोमस्तेजसा चैवेन्द्रियेण च ब्रह्मवर्चसमुभयतः परिगृह्यात्मन्धत्ते ॥ २ ॥ ३

अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्योऽनन्नमद्याद्वा जिघत्सेद् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरेणैव पूतं स्वदितमत्ति यदि जग्ध्वा निर्वपति संवत्सर एवास्मै जग्धं स्वदयत्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यस्समान्तमभिद्रुह्येद्यो वाभिदुद्रुक्षेत् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरायैव सममते यस्सममते संवत्सरमेवाप्त्वा काममवस्यन्तमभिद्रुह्यत्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः प्रतिगृहीतस्स्यात् सनिकामस्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरायैतं प्रतिगृह्णन्ति यं प्रतिगृह्णन्ति संवत्सरमेवाप्त्वा सनिं सनिं वनुतेऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् सनिं निद्धन् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरमेव प्रयुङ्क्ते यो याचति संवत्सरमेव विमुञ्चति संवत्सरो वा एतदेतस्मै सनोति यद् वनुते तमेव भागिनं करोति यमुत्तममाजेत् तं स रज्जुमप्रियाय भ्रातृव्याय दद्याद् पाशेन वा एष चरति यो याचति पाशमेवाप्रियाय भ्रातृव्याय प्रतिमुञ्चत्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेतानेन राज्ञा वा ग्रामण्या वेदं सस्यमादद्दीयेति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरोऽन्नाद्यस्य प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छति संवत्सरं हव्यमनुप्रजायतेऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद् वृष्टिकामस्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर एषा संवत्सरस्य क्रूरा तनूर्या वैश्वानरी यदेतदभितप्तमिवोच्चैस्तिष्ठति भागधेयमिच्छमानस्तामेवास्य प्रीणाति तास्मै प्रीता वृष्टिं नियच्छत्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो यतरस्संवत्सरयोरनायतनो भवति परा स जयते संवत्सरमेवायतनं कृत्वा जयति संग्रामम् ॥ ३ ॥ ४

[३] मै. २,१,२ (२) । तै. सं. २,२,६ । [अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं । ऐ. ब्रा. अ. ७, खं. ९]

अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्ग्रामकामो भूतिकामो ब्रह्मवर्चसकामस्तस्य हरितँ हिरण्यं मध्ये कुर्याद् रजतमुपरिष्टात् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो वीर्यं संवत्सर आत्मा हरितँ हिरण्यं वीर्यस्यैवैनं मध्यतो दधाति भूत्यं भवत्येव यद् रजतं तत् सह भस्मनापोहति शमलगृहीतो वा एष योऽलं ब्रह्मवर्चसाय सन्न ब्रह्मवर्चसी भवति शमलमेवास्मादपहन्ति ब्रह्मवर्चसेनैनँ सँसृजति यथा वै नाभिमरा अभिसँश्रिता एवँ संवत्सरं मासाश्चर्तवश्चाभिसँश्रिता यद्धिरण्यं मध्ये करोति नाभिमेवैनं करोति॥ यथा नाभिमरा अभिसँश्रिता एवमेनँ सजातैरभिसँश्रयति वारुणं यवमयं चरुं निर्वपेदग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालमामयावी वरुणगृहीतो वा एष य आमयावी यद् वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चति यवमयो भवत्येतद्वै वरुणस्य भागधेयं यद्यवास्स्वेनैव भागधेयेन वरुणं निरवदयते प्रादेशमात्रो भवत्येतावान् वै पुरुषो यावदस्य प्राणा अभि यावानेवास्यात्मा तं वरुणान्मुञ्चति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर आयुस्संवत्सरस्संवत्सर एवैनमायुषि प्रतिष्ठापयति सर्वमायुरेति वारुणं यवमयं चरुं निर्वपेदग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं राजन्यायाभिचरते वा बुभूषते वा वरुणगृहीतो वा एष योऽन्यस्याददान उपहरमाणश्चरति यद् वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चति यवमयो भवति प्रादेशमात्रो भवति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो वीर्यं संवत्सरस्संवत्सर एवैनं वीर्ये प्रतिष्ठापयति भूत्यं भवत्येवाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेदग्निमुत्सादयिष्यन् संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरमेष उत्सादयमानोऽनूत्सीदति भागिनमेवैनं कृत्वा संवत्सरमनूत्सादयत्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः पुरुषं प्रतिगृह्णीयादामां वा एष आत्मना दक्षिणां प्रतिगृह्णाति यः पुरुषं प्रतिगृह्णात्यामां दक्षिणां प्रतिगृहीताँ हिनस्ति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरस्स्वदितस्य स्वदयिता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै तत् सर्वं स्वदयति ॥ ४ ॥ ५-६

अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य पौर्णमासी वामावस्या वातिपद्येत बहिष्पथं वा एष एति यस्य पौर्णमासी वामावस्या वातिपद्यतेऽग्निर्देवानां पथिकृत् तमेवान्वारभते स एनं पन्थामपिनयति वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यद्यज्ञे प्रतत एतामन्तरेष्टिं निर्वपति य एवासा आग्नेयोऽष्टाकपालः पूर्णमासे योऽमावस्यायां तमग्नये पथिकृते कुर्यात् तेनैव पुनः पन्थामवैति न यज्ञं विच्छिनत्त्यग्नये वाजसृतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामेऽग्निर्वै देवानां वाजसृद्वाजमेष धावति यस्संग्रामं जयति तमेव भागधेयेनोपधावति वाजमेनं धावति जयति संग्राममथो अग्निरिव न प्रतिधृषे भवत्यग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निस्सन्नव्रत्यं चरेदानीतो वा एष देवानां य आहिताग्निरदन्त्य स्यान्नं व्रतपतिमेतस्य व्रतं गच्छति य आहिताग्निस्सन्नव्रत्यं चरत्यग्निर्देवानां व्रतपतिस्तमेव

[४] मै. २,१,२ (२) । तै. सं. २,२,६ । [अग्नये०...कपालं । ऐ. ब्रा. अ. ७ खं ९]
[५] मै. २,१,१०—११ (१४—१५) । तै. सं. २,२,१ । [अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं । ऐ. ब्रा. ७,८]

भागधेयेनोपधावति व्रतपतेरेवाधि व्रतमालभतेऽग्नये रक्षोघ्नेऽष्टाकपालं निर्वपेदामयावीन्द्रं वै जातं रक्षाँस्यसचन्त स आदीयमानो रक्षोभिस्संमृश्यमानोऽग्निं प्राविशत् तस्मादग्नी रक्षाँस्यपाहन् रक्षाँस्येतं सचन्ते य आमयाव्यग्निर्देवानां रक्षोहा तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्माद् रक्षाँस्यपहन्त्यमावस्यां रात्रीं निशि यजेतामावस्यां वै रात्रीं निशि रक्षाँसि प्रेरते पूर्णान्येवैनान्यपवपति परिश्रिते यजेत रक्षसामन्तर्हित्यै॥ वामदेवस्यैतत् पञ्चदशं राक्षोघ्नं सामिधेन्यो भवन्ति वामदेवश्च वै कुसिदायी चात्मनोराजिमयातां तस्य कुसिदायी पूर्वस्यातिद्रुतस्य कूवरं न्यमृणत् सा द्वितीयमुपपर्यावर्ततेषां वाक्षं वा छेत्स्यामीति स वामदेव उरुष्यमग्निमभिभस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीमिति तामग्निरनूद्द्रुत्य समदहत् सा दह्यमाना ह्रदं कौसिदं प्रामज्जद्यदेतदनूच्यते रक्षसां दुष्ट्यै ॥ ५ ॥ ७-८

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत तान्वको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि स मह्यं गृहान् करिष्यतीति तमागच्छत् तन्नासूक्षत् तं प्राकालयत्तैता गा ब्रह्मबन्ध इत्यब्रवीत् पशुपतिर्गा हन्ति ताः परः पचमानश्चरेति तासां देवस्त्रमें राजान्नं प्रासुषोदिति सक्थान्युत्कर्तमपचत तस्मिन् पचमाने व्युदस्यत् सोऽग्नये रुद्रवतेऽष्टाकपालं निरवपत् कृष्णानां व्रीहीणां तस्य यत् किंच धृतराष्ट्रस्यासीत् तत् सर्वमवकर्ण विद्राणमभिव्यौच्छत् ता विप्रश्निका अविन्दन् ब्राह्मणो वै त्वायमभिचरति तमिन्नाथस्वेति तमुपाशिक्षत् तस्मै वहददात् सोऽग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निरवपच्छुक्लानां व्रीहीणां ततो वै तत्रदस्यदग्नये रुद्रवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणामभिचरन्नग्निर्वै रुद्रो रुद्रायैवैनमपिदधाति कृष्णानां व्रीहीणां भवति कृष्णमिव वै तमस्तमो मृत्युर्मृत्युनैवैनं ग्रहयत्यग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यर्ह्यं देवः प्रजा अभिमन्येत यदा कामयेत विदस्येदित्येषा वा अग्नेर्भिषज्या तनूर्या सुरभिमती तामेव भागधेयेनोपधावति तयैना भिषज्यत्यग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यं प्रमीतं शृणुयुः पूतिर्वा एष श्रूयते यः प्रमीतश्श्रूयते यैवाग्नेस्सुरभिमती तनूस्तामेव भागधेयेनोपधावति तयैनं सुरभिं करोत्यग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यमजाग्निवाँसमभिशँसेयुश्शमलगृहीतो वा एष यमजाग्निवाँसमभिशँसन्ति यैवाग्नेस्सुरभिमती तनूस्तामेव भागधेयेनोपधावति तयैनं पुनात्यग्नयेऽन्नादायाष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नादस्स्यामित्यग्निर्वै देवानामन्नादस्तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमन्नादं करोत्यग्नयेऽन्नवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नवान् स्यामित्यग्निर्वै देवानामन्नवाँस्तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमन्नवन्तं करोत्यग्नयेऽन्नपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेतान्नपतिस्स्यामित्यग्निर्वै देवानामन्नपतिस्तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमन्नपतिं करोति संवत्सरं परिनिर्वपेत् संवत्सरो वा

[कृणुष्व पाजः प्रसितिं० । ऋ. ४,४,१; तै. सं. १,२,१४,१; नि. ६,१२]
पाठ. १२

अन्नाद्यस्य प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमन्नादमन्नवन्तमन्नपतिं करोत्यग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् सर्वेभ्यः कामेभ्यो ब्राह्मणो यद्वै किंच विन्दते तद्ब्रह्माग्निर्देवानां वसुमाँस्तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥ ६ ॥ ९

अग्नये यविष्ठायाष्टाकपालं निर्वपेदभिचरन् वाभिचर्यमाणो वा देवाश्च वा असुराश्च व्यभ्युचरन्त तेऽसुरा देवेभ्यो विसृष्टीर्व्यसृजँस्ते देवा अविदुर्विसृष्टीर्वै नोऽसुरा व्यस्राक्षुरिति तेऽग्नये यविष्ठायाष्टाकपालं निरवपँस्तेन वै ते ता विसृष्टीरयावयन्तात्मनोऽधि विसृष्टिमेतस्मै विसृजन्ति यमभिचरन्ति यदग्नये यविष्ठाय निर्वपति तेनैव ता विसृष्टिं यावयत आत्मनोऽध्यग्नये यविष्ठायाष्टाकपालं निर्वपेत् समृतसोमे देवतासु वा एते समृच्छन्ते येषाँ सोमौ समृच्छेते अग्निस्सर्वा देवता अग्निनैवैषां यविष्ठेन देवता वृङ्क्ते॥ देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन् यान् देवानामघ्नँस्तदेव तेऽभवन् यानसुराणां पुनस्त उत्पत्यायुध्यन्त ते देवा अविदुर्यं वै न इमे केच म्रियन्तेऽग्निर्वा एतान् हन्तीति तेऽब्रुवन् मा नश्शग्रीधाः कथा नश्शग्नीप इति भागो मेऽस्त्वित्यब्रवीन्न वोऽभागधेयः क्षमिष्य इति तेऽग्नये क्षमवतेऽष्टाकपालं निरवपँस्ततो वै स तेभ्योऽक्षमताग्नये क्षमवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यर्ह्यं देवः प्रजा अभिमन्येत यदा कामयेत विदस्येदिति ये वा इमे केच म्रियन्तेऽग्निर्वा एतान् हन्त्यग्निर्देवानां क्षमवाँस्तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै प्रीतः क्षमत एव देवाः पितरो मनुष्यास्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षाँसि पिशाचास्तेऽन्यतस्ते समयतन्त ते यद्देवानामप्यल्पकं लोहितमसुरा अकुर्वँस्तद्रात्रीभी रक्षाँस्यसुम्भँस्तान् सुब्धान् मृतानभिव्यौच्छत् ते देवा अविदुर्यं वै न इमे केच म्रियन्ते रक्षाँसि वा एतान् सुम्भन्तीति तान्युपामन्त्रयन्त तान्यब्रुवन् वार्यं वृणामहै यद्देवमानसुराञ्जयाम तन्नस्सहासदिति ततो देवा असुरानजयँस्तेऽसुराञ्जित्वा रक्षाँस्यपानुदन्त तान्यनृतमकर्तेति समन्तं देवान् पर्यविशँस्ते देवा अग्ना एवानाथन्त तेऽग्नये प्रवतेऽष्टाकपालं निरवपन्नग्नये विबाधवतेऽष्टाकपालमग्नये प्रतीकवतेऽष्टाकपालं यदग्नये प्रवते यान्येव पुरस्ताद्रक्षाँस्यासँस्तानि तेन प्राणुदन्त यद्विबाधवते यान्येवाभित आसँस्तानि तेन व्यबाधन्त यत् प्रतीकवते यान्येव पश्चाद्रक्षाँस्यासँस्तानि तेनापानुदन्तैतया यजेत भ्रातृव्यवान् यो बहुभ्रातृव्यस्स्यादग्नये प्रवतेऽष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विबाधवतेऽष्टाकपालमग्नये प्रतीकवतेऽष्टाकपालं यदग्नये प्रवते य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदते यद्विबाधवते य एवैनेन सदृङ् तं तेन विबाधते यत् प्रतीकवते य एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेनापनुदते प्र श्रेयाँसं भ्रातृव्यं नुदतेऽति सदृशं क्रामति नैनं पापीयानाप्नोति य एवं विद्वानेतया यजते देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्तान् गायत्र्यन्तरातिष्ठदोजो वीर्यमन्नाद्यं परिगृह्य संवत्सरो वा एनान् सोऽन्तरातिष्ठच्चतुर्विंशति-

[७] मै. २,१,११ (१५—२१)। वा. १०,१५; १९,९ । काण्व. ११,१३; २१,८ ।

र्गायत्र्या अक्षराणि चतुर्विंशतिस्संवत्सरस्यार्धमासास्तेऽविदुर्यतरान्वा इयमुपावर्त्स्यतीति त इदं भविष्यन्तीति तां व्यह्वयन्त दाभीत्यसुरा अह्वयन् विश्वकर्मन्निति देवास्सा नान्यतराँश्चनोपावर्तत ते देवा एतद्यजुरपश्यन्नोजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धाम नामासि विश्वमसि विश्वायुस्सर्वमसि सर्वायुरभिभूरिति सा देवानुपावर्तत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन्नाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवान् वा स्पर्धमानो वा तमासाद्यैतैर्यजुर्भिरभिमृशेदोजो वै वीर्यं संवत्सरं ओज एव वीर्यं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते स निर्वार्यः पराभवति सैषा गायत्री नामेष्टिरथो आहुः क्षत्रस्य संवर्ग इति ॥७॥
१०-११

इन्द्राय घर्मवत एकादशकपालं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामोऽसौ वा आदित्यो घर्म एष इन्द्र एष ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छतीन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालं निर्वपेत् पशुकाम इन्द्रियं वै पशव इन्द्रः पशूनां प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै पशून् प्रयच्छतीन्द्रायार्कवत एकादशकपालं निर्वपेदन्नकामोऽन्नं वा अर्क इन्द्रोऽन्नाद्यस्य प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छतीन्द्रायार्कवत एकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धोऽवगमकामोऽन्तं वा एष गच्छति यमपरुन्धन्त्येषेन्द्रस्यान्त्या तनूर्यार्कवत्यन्त एवास्मा अन्तं कल्पयति वशा दक्षिणा वशं मा नयादितीन्द्राय घर्मवत एकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालमिन्द्रायार्कवत एकादशकपालँ समानबर्हीषि बुभूषन् यदिन्द्राय घर्मवतेऽसौ वा आदित्यो घर्म एष इन्द्र एष शिरः प्रजानां शिर एव तेन कुरुते यदिन्द्रायेन्द्रियवत इन्द्रियमेव तेनात्मन् धत्ते यदिन्द्रायार्कवत इयं वा अर्कोऽस्यामेव तेन प्रतितिष्ठति चरुर्मध्ये स्यादजामित्वायेन्द्राय मन्युमत एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे मन्युना वै वीर्यं करोतीन्द्रियेण जयति मन्युं चैवेन्द्रियं च जित्यै दधातीन्द्राय मन्युमते मनस्वत एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे मन्युना वै वीर्यं करोतीन्द्रियेण जयति मन्युं चैवेन्द्रियं च सयुजौ कृत्वा तयोर्मनो जित्यै दधातीन्द्राय मनस्वते त्विषीमत एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत मनस्वी त्विषीमान् स्यामिति मनो वै श्रीस्त्विषिर्मन एवास्मिञ्छ्रियं त्विषिं दधाति संवत्सरं पुरा
मनसो न कीर्तयेत् संवत्सरेण वा अनाप्तमाप्यते संवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे ॥ ८ ॥ १२

इन्द्राय सुत्राम्ण एकादशकपालं निर्वपेदपरुद्धो वापरुध्यमानो वेन्द्रो वै त्रातेन्द्रोऽपरोद्धा तमेव भागधेयेनोपधावति स एनं त्रायत इन्द्रायाँहोमुच एकादशकपालं निर्वपेदामयाव्यँहसा वा एष गृहीतो य आमयाव्येषेन्द्रस्य भिषज्या तनूर्याँहोमुगिन्द्रोऽँहसो मोक्ता तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमँहसो मुञ्चतीन्द्रायाँहोमुच एकादशकपालं निर्वपेद्य आत्मना वा गृहैर्वाह्वरणमवेयादँहसा वा

[ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि । अथर्व. २,१७,१—३]
[८] मै. २,२,९,१२ (३१,३४) । तै. सं. २,२,७—८; ८,२ । [९] मै. २,२,१० (३०) ।

एष गृहीतो य आत्मना वा गृहैर्वाह्वरणमवैतीन्द्रोऽँहसो मोक्ता तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमँहसो मुञ्चतीन्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवत एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत महायज्ञो मोपनमेदितीयं वा अर्कोऽसावश्वमेध ऐन्द्रो यज्ञोऽन्तमेतस्य यज्ञो गच्छति यं यज्ञकामं यज्ञो नोपनमत्येते इन्द्रस्यान्त्ये तन्वौ ये अर्कवती ये एवेन्द्रस्यान्त्ये तन्वौ ताभ्यामेव यज्ञमालभत उपैनं यज्ञो नमतीन्द्रायान्वृजव एकादशकपालं निर्वपेत् सजातकाम इन्द्रियं वै ज्यैष्ठ्यमिन्द्रियेणैव सजातानन्वृजून् कुरुत इन्द्राय प्रवभ्रायैकादशकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवान् वज्रो वै प्रवभ्रः प्रवभ्रेण वा इन्द्रोऽसुरेभ्यो वज्रं प्राहरद्वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति स्तृणुत एनमाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय विमृधायैकादशकपालँ संग्राम ऋद्ध्या एवाग्नेय इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवाँसं मृधोऽसचन्त स एतं वैमृधमपश्यत् तेन ता मृधोऽपाहत वृत्रमेष जिघाँसति यस्संग्रामं जिगीषति यैवेन्द्रस्य विमृधा तनूस्तामेव भागधेयेनोपधावति तया मृधोऽपहते हन्ति वृत्रं जयति संग्राममाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदिन्द्राय विमृधायैकादशकपालं यँ सर्वतो भयमागच्छेदृद्ध्या एवाग्नेय इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवाँसं तँ समन्तं मृधस्संप्राकम्पन्त स एतं वैमृधमपश्यत् तेन ता मृधोऽपाहत समन्तमेतं मृधस्संप्रकम्पन्ते यँ सर्वतो भयमागच्छति यैवेन्द्रस्य विमृधा तनूस्तामेव भागधेयेनोपधावति तया मृधोऽपहत आत्मनोऽधि ॥ ९ ॥ १३

प्रजापतिर्वा इन्द्राय वज्रं प्रत्यमुञ्चन्महानाम्नीस्तेन व्यजयत ततो वै सोऽभवत् सोऽबिभेद्वज्रो मेऽशान्तो ग्रीवा अपिधक्ष्यतीति ततो रेवतीर्निरमिमीत शान्त्या ऐन्द्रं चरुं निर्वपेद्राजन्याय बुभूषत ऐन्द्रो वै राजन्यो देवतया स्वादेवैनं योनेर्जनयति भूत्यै भवत्येव रेवत्यनुवाक्या शक्करी याज्या वज्रो वै रेवती वज्रश्शक्करी वज्रमेव संदधाति तेन विजयते भवत्येव चरुर्भवति शान्त्या अनुद्दाहायेन्द्राण्यै चरुं निर्वपेत् सेनायामुत्थितायां राज्ञो गृहे सेना वा इन्द्राणी ब्रह्मणैवैनां विस्यै सँश्यति बल्वजा इध्मे च बर्हिषि चापिभवन्ति शक्रो वा एते जाता न्यायेनैवैनामभिनयति यत् सा विन्देत ततो दक्षिणा समृद्ध्या इन्द्राय चेन्द्राण्यै च चरुं निर्वपेत् सेनायामुत्थितायां राज्ञो गृह एषा वा इन्द्रस्य परिवृक्ती जाया गोष्ठेवैनामधिनयति बल्वजा इध्मे च बर्हिषि चापिभवन्ति शक्रो वा एते जाता न्यायेनैवैनामभिनयति यत् सा विन्देत ततो दक्षिणा समृद्ध्यै प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यादिशत् तदिन्द्रियमत्यरिच्यत तदिन्द्रोऽब्रवीन्मयीदमस्त्विति तदस्मिन्नदधात् तदेनमत्यत्येवारिच्यत तदिमांल्लोकानूर्ध्वमनूदश्रयत तदेकेनाप्नोन्न द्वितीयेन तत् तृतीयेनाप्त्वावारुन्द्ध त्रीन् पुरोडाशान्निर्वपेद्बुभूषँस्त्रय इमे लोका इमानेव लोकानाप्त्वौजो वीर्यमवरुन्द्ध उत्तर उत्तरो ज्यायान् भवत्युत्तर उत्तरो ह्येषां लोकानां ज्यायानिन्द्राय राज्ञे प्रथममथेन्द्राय स्वराजेऽथेन्द्रायाधिराजायैतानि वै सर्वाणीन्द्रोऽभवन्नोदेतान्येव सर्वाणि भवति य एवं विद्वानेतया यजते ॥ तिस्रोऽनुवाक्यास्ता

[१०] मै. २,२,५, १० (१४—१०,१२)।

याज्यास्तासां प्रथमामनूच्य मध्यमया यजति मध्यमामनूच्योत्तमया यजत्युत्तमामनूच्य पुनः प्रथमया यजत्येषां लोकानां संतत्यै प्रतिप्रज्ञात्यै सर्वा एकानुवाक्याः करोति सर्वा याज्या देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसंस्तेऽसुरा भूयांसोऽजितमनस आसन् कनीयांसः पराजितमनस्तरा इव देवास्ते देवा असुरेभ्यो बिभ्यत इन्द्रमब्रुवंस्त्वं वै नो वीर्यावत्तमोऽसि त्वामनु समारभामहा इति सोऽब्रवीत् तिस्रो म इमास्तन्वो वीर्यावतीस्ता मे प्रीणीताथैतानभिभविष्याम इति ता वै ब्रूतेत्यब्रुवन्निमं विमृधेत्यब्रवीदियमंहोमुगियमिन्द्रियावतीति त इन्द्राय विमृधायैकादशकपालं निरवपन्निन्द्रायांहोमुच एकादशकपालमिन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालं यदिन्द्राय विमृधाय मृधा वै तेऽभिषण्णा आसन् ये श्रेयोभिरसुरैरस्पर्धन्त मृध एव तेनापाघ्नत यदिन्द्रायांहोमुचेंऽहसा वै ते गृहीता आसन्नंहस एव तेनामुच्यन्त यदिन्द्रायेन्द्रियवत इन्द्रियमेव तेनात्मन्नदधतैतया यजेत भ्रातृव्यवान् यो वा भूयोभ्रातृव्यस्स्यादिन्द्राय विमृधायैकादशकपालं निर्वपेदिन्द्रायांहोमुच एकादशकपालमिन्द्रायेन्द्रियवत एकादशकपालम् ॥ यदिन्द्राय विमृधाय मृधा वा एषोऽभिषण्णो यश्श्रेयसा भ्रातृव्येण स्पर्धते मृध एव तेनापहते यदिन्द्रायांहोमुचेंऽहसा वा एष गृहीतो यो भ्रातृव्यवानंहस एव तेन मुच्यते यदिन्द्रायेन्द्रियवत इन्द्रियमेव तेनात्मन् धत्ते त्रयस्त्रिंशद्वै देवतास्तास्सर्वा वीर्यैरनुसमारभन्त स उत्तमां विजितिमसुरैर्व्यजयत ततो वै सोऽभवद्यत् त्रयस्त्रिंशत् कपालानि भवन्ति यावतीरेव देवतास्तास्सर्वा वीर्यैरात्मानमनुसमारम्भयते भवत्येव सैषा विजितिर्नामेष्टिरुत्तमामेव विजितिं भ्रातृव्येण विजयते य एवं विद्वानेतया यजते ॥

॥ १० ॥ १४-१६

प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मादपाक्रामँस्तेषां बृहस्पतिश्च पदेनान्वैतां ते यत्रावसँस्तद्गर्मुतँ शक्नो जातामविन्दतां तामाच्छिद्याहरतां तं बृहस्पतिरब्रवीदनया त्वाया जयान्युप वै त्वैते पशवः पुनर्नेष्यन्तीति स प्राजापत्यं चरुं निरवपद्गार्मुतमप्सु ततो वै तं पशवः पुनरुपानमन् प्राजापत्यं चरुं निर्वपेद्गार्मुतमप्सु पशुकामोऽपक्रान्ता वा एतस्मात् पशवो योऽपशुः प्रजापतिः पशूनां प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै पशून् पुनरुपावर्तयति गोमूत्रस्यापि स्यात् सयोनित्वाय प्रजापतिः पशून् सृष्ट्वा तेषां पूषणमधिपामकरोत् तेऽस्मादपाक्रामँस्तेषां पूषा पदेनान्वैत् ते यत्रावसँस्तद्गर्मुतँ शक्नो जातामविन्दत् तामाच्छिद्याहरत् तया प्रजापतिमब्रवीदनया मा प्रतिष्ठस्वोप वै त्वैते पशवः पुनर्नेष्यन्तीति तत् सोमोऽभ्यातीयत ॥ मम वा एतद्यदकृष्टपच्यमिति स सौमापौष्णं चरुं निरवपद्गार्मुतमप्सु ततो वै तं पशवः पुनरुपानमन् सौमापौष्णं चरुं निर्वपेद्गार्मुतमप्सु प्रजाकामो वा पशुकामो वा सोमो वै रेतोधाः पूषा प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधाति पूषा प्रजनयति विन्दते

[११] मै. २,२,४ (१३) ।

प्रजां वा पशून् वा यतरस्मै कामाय निर्वपति गोमूत्रस्यापि स्यात् सयोनित्वाय मारुतं प्रैयङ्गवं चरुं निर्वपेत् पृश्न्या दुग्धे सजातकामः पृश्न्या वै मरुतो जाता वाचो वास्या वा पृथिव्या मारुतास्सजाता एतन्मरुताँ स्वं पयो यत् प्रियङ्गवस्स्वेनैवैनान् पयसाच्छैति यथा वत्स ऊधोऽभ्यायच्छत्येवमेनँ सजाता अभ्यायच्छन्ति ॥ प्रियवत्यनुवाक्या श्रीवती याज्या यत् प्रियवती प्रियमेवैनँ सजातानां करोति यच्छ्रीवती श्रियमेवैनं गमयति द्विपदानुवाक्या चतुष्पदा याज्या द्विपदश्चैव चतुष्पदश्च पशूनवरुन्द्ध ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुतं प्रैयङ्गवं चरुं तं पश्चा शृतं कुर्युर्यस्मात् क्षत्रियाद्विडभ्यर्धश्चरेत् क्षत्रं वा इन्द्रो विण्मरुतः क्षत्रायैव विशमनुनियुनक्ति तमनूच्यमाने पश्चात् प्राञ्चमुदाहरन्ति विशमेवास्मै पश्चादुपदधात्यसँसर्गाय मारुतँ सप्तकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं यः कामयेत विशे च क्षत्राय च समदं कुर्यामिति क्षत्रं वा इन्द्रो विण्मरुतो भागधेय एवैभ्यस्समदं करोति मारुतस्य मारुतीमनूच्यैन्द्र्या यजेदैन्द्रस्यैन्द्रीमनूच्य मारुत्या यजेत् क्षत्रमेव विशः परिहायादत्ते विट् क्षत्रस्य ते अन्योन्यां निर्णयत उभयतः पुरोडाशस्यावद्येद्यतरान् कामयेत पराजयेरन्नित्युभयत एवं विशमुपदीपयति ताजक् पराजयन्त एतामेव निर्वपेद्यदा कामयेत कल्पेरन्निति तस्याः प्रसृति यजेद्भागधेयेनैवैनान् कल्पयति मारुतँ सप्तकपालं निर्वपेद्यः क्षत्रियो विशो ज्यान्या बिभीयाद्ब्राह्मणो वा विड्ढि मरुतो भागधेयेनैवैनाञ्छमयत्यगस्त्यस्यैतत् सूक्तं कयाशुभीयं तस्य सामिधेनीष्वप्यनुब्रूयात् तस्य याज्यानुवाक्ये स्यातामगस्त्यो वै मरुद्भ्यश्शतमुक्ष्णः पृश्नीन् प्रौक्षत् तानिन्द्रायालभत तं मरुतः क्रुद्धा वज्रमुद्यत्याभ्युपतन् स एतत् सूक्तमपश्यत् तेनैनानशमयद्यदेतदनूच्यते शान्त्यै ॥ ११ ॥ १७-१९

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥ २०

यस्मै त्वँ सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवस्स्योनम् ।

अश्विनँ स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ २१

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥ २२

विश्वा रूपाणि ॥ २३

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीस्साकं गन्मनसा यज्ञम् । शिवो नियुद्भिश्शिवाभिः ॥ २४

प्र याभिर्यासि दाश्वाँसमच्छा नियुद्भिर्वाय इष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ २५

[१२] मै. २,२,६ (२२-२६) । तै. ब्रा. २,४,४ । वा. १२,३,५८; २७,२७,३१; ३३.८६ । काण्व. १३,३,५९; २९, २५-२६ । [अस्मै ते प्रतिहर्यते० । ऋ. ८,४३,२ । यस्मै त्वं सुकृते० । ऋ. ५,४,११; तै. सं. १,४,४६,१ । य इमा विश्वा जातानि० । ऋ. ५,८२,९ । विश्वा रूपाणि० । ऋ. ५,८१,२; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३ । प्र याभिर्यासि दाश्वाँ० । ऋ. ७,९२,३; मै. सं. १,२,१२,७; तै. ब्रा. १,८,१,१]

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि । प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ २६

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन् क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।

यत् ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ २७

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २८

गोमाँ अग्ने ॥ २९

मदे मदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।

संगृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आभर ॥ ३०

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शँसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३१

रेवतीर्नः प्र सधादिषे ॥ ३२

संज्ञानं नो दिवा पशोस्संज्ञानं नक्तमर्वतः ।

संज्ञानं नस्स्वेभ्यस्संज्ञानमरणेभ्यस्संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नियच्छतम् ॥ ३३

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ३४

इन्द्रवायू सुसंदृशा सुहवेह हवामहे । यथा नस्सर्व इज्जनस्संगमे सुमना असत् ॥ ३५

अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् सोमो रुद्रैरभिरक्षतु त्मना ।

इन्द्रो मरुद्भिरृतुथा कृणोत्वादित्यैर्नो वरुणश्शर्म यँसत् ॥ ३६

समग्निर्वसुभिर्नो अव्यात् सँ सोमो रुद्रियाभिस्तनूभिः ।

समिन्द्रो रातहव्यो मरुद्भिस्समादित्यैर्वरुणो विश्ववेदाः ॥ ३७

समाना व आकूतानि समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वस्सुसहासति ॥ ३८

[बळित्था पर्वतानां० ऋ. ५,८४,१; तै.सं. २,२,१२,२; नि. ११,३७ । दृढा (दृढा) चिद्या वनस्पतीन्० । ऋ. ५,८४,३ । आ नो अग्ने रयिं भर० । ऋ. १,७९,८; सा. १५५४ । गोमाँ अग्ने० । ऋ. ४,२,५; तै.सं. १,६,६,४; ३,१,११,१ । मदे मदे हि नो० । ऋ. १,८१,७; अथर्व. २०,५६,४; तै. ब्रा. २,४,४,७ । शिप्रिन् वाजानां पते० । ऋ. १,२९,२; अथर्व. २०,७४,२; तै. ब्रा. २,४,४,८ । रेवतीर्नः० । ऋ. १,३०,१३; सा. १५३, १०८४; अथर्व. २०,१२२,१; तै. सं. १,७,१३,५; २,२,१२,८; ४,१२,४ । प्र सधादिषे० । ऋ. १०,१८०,१; तै. सं. ३,४,११,४; तै. ब्रा. २,६,९,१; ३,७,४,४ । संज्ञानं नस्स्वेभ्य० । ऋ. परि० ३६,५; अथर्व. ७,५२,१; समिन्द्र राया० ऋ. १,५३,५; अथर्व. २०,२१,५ । इन्द्रवायू सुसंदृशा० । ऋ. १०,१४१,४; अथर्व. ३,२०,६ । समाना(नी) व आकूतानि० । ऋ. १०,१९१,४; अथर्व. ६,६४,३; तै. ब्रा. २,४,४,५]

सं वो मनाँसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।

अमी ये विव्रतास्स्थन तान् वस्संनमयामसि ॥ ३९

यथादित्यमादित्या आप्याययन्ति यथाक्षितिमक्षितयो मदन्ति ।

एवा मामिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ ४०

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥ १२ ॥ ४१

प्र यो जज्ञे विद्वाँ अस्य बन्धुं विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।

ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचादुच्चा स्वधयाभि प्रतस्थौ ॥ ४२

महान्मही अस्कभायद् वि जातो द्यां द्विता पार्थिवं च रजः ।

स बुध्नादाष्ट जनुषाभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ॥ ४३

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।

ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नश्शृण्वन्नूतिभिस्सीद सादनम् ॥ ४४

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।

बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ४५

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ ४६

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्रयन्तु मरुतस्सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ ४७

अर्यमा यातु वृषभस्तुविष्मान् यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ।

सहस्राक्षो गोत्रभिद् वज्रबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥ ४८

ये ते अर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति ।

तेभिर्नो अद्य पथिभिस्सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ४९

[सं वो मनांसि० । ऋ. परि. ३६,४; अथर्व. ६,९४,१ । नवो नवो भवति० । ऋ. १०,८५,१९; अथर्व. ७,८१,२; १४,१,२४; तै. सं. २,३,५,३; ४,१४,१; नि. ११,६]

[१३] वा. २३,१,३,१९; ३४,५६; १३,४; २५,१०-११; ७,४१-४२; ८,४१; ३३,३१,३६; १३,४६ । काण्व. २५,१, ३,२१; ३३,४४; १४,४; २७,१४-१५; ८,२३-२४; ९,६-७; ३२,३१,३६; १४,३८ । [प्र यो यज्ञे विद्वाँ० । अथर्व. ४,१,३; आ. श्रौ. सू. ४,६,३ । महान्मही अस्कभा० । अथर्व. ४,१,४ (उत्तरार्धः) । सबुध्या (०ध्न्या) दाष्ट (०ष्ट्र) ० । अथर्व. ४,१,५ (पूर्वार्धः) । गणानां त्वा गणपतिं० । ऋ. २,२३,१; तै. सं. २,३,१४,३ । स सुष्टुभा स ऋक्वता० ऋ. ४,५०,५ अथर्व. २०,८८,५; तै. सं. २,३,१४,४ । अग्निरुक्थे पुरोहितो० । ऋ. ८,२७,१; सा. ४८ । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० । ऋ. १,४०,१; तै. आ. ४,२,१]

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तँ शतग्विनम् । अश्वावन्तँ सहस्रिणम् ॥ ५०
बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नस्सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ५१
हिरण्यगर्भो यः प्राणत उदु त्यं चित्रं देवानाम् ॥ ५२
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ५३
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरे अर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनास्सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपाँसि ॥ १३ ॥ ५४
[७८०]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामाग्नावैष्णवं नाम दशमं स्थानकं संपूर्णम् ॥१०॥

अथैकादशं स्थानकम् ।

मारुतम् ।

मारुतं चरुं निर्वपेत् तस्यैकविंशतिनिर्बाधो हरितो रुक्मोऽपिधानस्स्यात् तस्यापग्राहमवद्येद्यत् क्षत्रियं विण् निर्बाधे कुर्वीत विड्वै मरुतो भागधेयेनैवैनाञ्छमयत्येकविंशतिनिर्बाधो भवत्येकविंशतिर्वै मारुता गणा यदेकविंशतिनिर्बाधो निर्बाधैरेवैषां निर्बाधान् वृङ्क्त ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपेद् वैश्वदेवं द्वादशकपालँ सजातकामः क्षत्रं वा इन्द्रो वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः क्षत्रायैव विशमनुनियुनक्त्यैन्द्रस्यावदायाथ वैश्वदेवस्योभे अवदाने अवद्येदथैन्द्रस्य क्षत्रं वा इन्द्रो वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः क्षत्रेणैव विशमुभयतः परिगृह्णात्यैन्द्री वैश्वदेववर्णे याज्यानुवाक्ये भवतस्समृद्ध्या उपचाय्यपृडं हिरण्यं दक्षिणा सजातानेवास्मा उपदधाति तदेतदनुवर्त्म नाम हविस्सजातानेवास्मा अनुवर्त्मनः करोति सौम्यँ श्यामाकं चरुं निर्वपेत् सोमवामीन्द्रो वै त्वष्टुस्सोममनुपहूतोऽपिबत् स विश्वक् सोमपीथेन व्यार्ध्यत तस्मात्

[अस्मे इन्द्राबृहस्पती०। ऋ. ४,४९,४; तै. सं. ३,३,११,१। बृहस्पतिर्नः परिपातु०। ऋ. १०, ४२,११; ४३,११; ४४,११; अथर्व. ७,५१,१; २०, १७,११; ८९,११; ९४,११; तै. सं. ३,३,११, १। हिरण्यगर्भो०। ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७, तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१९; नि. १०, २३। यः प्राणत०। ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१६,१। उदु त्यं०। ऋ. १, ५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६; २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५। चित्रं देवानाम्। ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै.ब्रा. २,८,७,३; ऐ. आ. ३,९; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६। तरणिर्विश्वदर्शतो०। ऋ. १,५०,४; सा. ६३५; अथर्व. १३, २,१९; २०,४७,१६; तै. सं. १,४,३१,१; तै. आ. ३,१६,१। दिवो रुक्म उरुचक्षा०। ऋ. ७,६३,४; तै. ब्रा. २,८,७,३]

[१] मै. २,१,१३ (३५)। वा. ७,४१; ८,४१; ३३,३१। काण्व. ८,२३; ९,६; ३२,३१।

सोमो नानुपहूतेन पातवै सोमपीथेन व्यर्धुको भवति स यत् परावमीत्ते श्यामाका एव वाव स सोमपीथो यच्छ्यामाकस्समक्षमेव सोमपीथमवरुन्द्धे सौमेन्द्रः कार्य इन्द्रियेण वा एष सोमपीथेन व्यृध्यते यस्सोमं वमिति सौम्यो ब्राह्मणो देवतयेन्द्रियमस्य सोमपीथो यत् सौमेन्द्र इन्द्रियेणैवैनँ सोमपीथेन समर्धयत्यधृतो वा एतस्मिन् सोमपीथो यस्सोमं वमिति तण्डुलानुच्छिंपेत् तान् कथति प्रत्यावपेत् सोमपीथमेवास्मिन् दधात्यग्नये ज्योतिष्मतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् सौर्यं चरुमग्नये ज्योतिष्मत उपरिष्टादष्टाकपालं चक्षुष्कामोऽग्नेर्वै मनुष्या नक्तं चक्षुषा पश्यन्ति सूर्यस्य दिवा तौ चक्षुषः प्रदातारौ ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै चक्षुः प्रयच्छतो यत् समानी देवता द्वेधा क्रियते तस्मात् समानँ सच्चक्षुर्द्वेधा तस्मात् समानी याज्यानुवाक्ये भवतस्सौर्यस्य मध्यतोऽवद्यतीदमेव तेन करोति यदिदमन्तरा चक्षुषी चक्षुषोर्व्यावृत्त्यै त्रीन् पिण्डान् प्रयच्छत्युदु त्यं जातवेदसमयुक्त सप्त शुन्ध्युवस्सप्त त्वा हरितो रथ इति चक्षुरेवास्मै तत् प्रयच्छति यदेव तस्य तत् सैषा राजनी नामेष्टिरेतया ह वै रजनं कोणेयं क्रतुजिज्जानकिश्चक्षुष्कामं याजयांचकार तयैतया चक्षुष्काम एव यजेताग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं बार्हस्पत्यमष्टाकपालं बुभूषन्निन्द्रो वा अधृतश्शिथिल इवामन्यत सोऽग्नौ चैव बृहस्पतौ चानाथत तमेतयेष्ट्यायाजयतां यदाग्नेयस्तेज एवास्मिंस्तेन पुरस्तादधत्तां यदैन्द्र इन्द्रियमेवास्मिंस्तेन मध्यतोऽधत्तां यद्बार्हस्पत्य उपरिष्टादेवास्मिंस्तेन ब्रह्मवर्चसमधत्तां ततो वै सोऽभवदेतया यजेत बुभूषन् यदाग्नेयस्तेजो वा अग्निस्तेज एव तेन पुरस्ताद्धत्ते यदैन्द्र इन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियमेव तेन मध्यतो धत्ते यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिरुपरिष्टादेव तेन ब्रह्मवर्चसं धत्ते भवत्यैवैन्द्र इतरयोर्नाभी समादधातीन्द्रियमेवास्मिन् मध्यतस्समादधात्यैन्द्रो मध्ये भवत्यभित इतरौ तेजो वा अग्निरिन्द्रियमिन्द्रो ब्रह्म बृहस्पतिस्तेजसा चैव ब्रह्मवर्चसेन चेन्द्रियमुभयत आत्मन् परिगृह्णाति त्रिवतीर्याज्यानुवाक्या भवन्ति समृद्ध्यै तदेतत् त्रिधातु नाम हविस्त्रीणि हि स तेन वीर्याण्यधत्त ॥ १ ॥ १

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् सावित्रमष्टाकपालं वायव्यां यवागुं भौममेककपालं यस्य हिरण्यमपहृतं वोपहतं वा स्याद्यो वा कामयेत हिरण्यं विन्देयेत्यग्निर्वा अग्रे हिरण्यमविन्दत् तस्मिन् सविता चामन्त्रयतामेऽतो वायुनानुपगतमस्त्यस्यामेतद्विन्दन्त्यस्यां पुनन्ति यदाग्नेयो विश्या एव स जातवेदा इति हि प्रसवायैव सावित्रोऽभिनीत्यै वायव्यास्यामेतद्विन्दन्त्यस्यां पुनन्त्येता वै देवता हिरण्यस्ये-

[उदु त्यं जातवेदसं०। ऋ. १५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६; २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; ४,४३, १; नि. १२,१५। अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः०। ऋ. १,५०,९; अथर्व. १३,२,२४; २०,४७,२१; तै. ब्रा २४. ५,४। सप्त त्वा हरितो०। ऋ. १,५०,८; सा. ६४०; अथर्व. १३,२,२३; २०,४७,२०; तै. सं. १,४,१४,४]

[२] मै. २,२,७ (२९)। तै. सं. २,३,५।

शते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै हिरण्यं ददति यदा हिरण्यं विन्देताथैतामेव निर्वपेद्या एवास्मै देवता हिरण्यं ददति ता एव भागिनीः करोत्यात्मनोऽहिंसाया आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं दधि मधु घृतं धानास्तण्डुलास्तत् सँसृष्टँ स्यात् तेन पशुकामो यजेतद्वया एवाग्नेयो यदैन्द्र इन्द्रः पशूनां प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै पशून् प्रयच्छति यत् सँसृष्टं पशवो वै सँसृष्टं पशूनेवावरुन्द्ध ऐन्द्रः कार्यमिन्द्रः पशूनां प्रदाता यदैन्द्रे द्वे सह कुर्याज्जामि स्यात् प्राजापत्यं कार्यं प्रजापतिः पशूनां योनिस्स्वादेवैनान् योनेः प्रजनयति प्रजापतिः प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै पशून् प्रयच्छति रेवती सँसृष्टस्य याज्यानुवाक्ये शक्वरी इतरस्य पशवो वै रेवती पशवश्शक्वरी पशूनेवावरुन्द्धे पञ्चैतानि सँसृष्टानि द्वे इतरे तानि सप्त सप्तपदा शक्वरी शाक्वराः पशवः पशूनेवावरुन्द्धे ॥ पङ्क्तिरपिभवति पाङ्क्तः पुरुषस्सर्व एव भूत्वा पशुनुपैति घृतं भवत्याग्नेयं वै घृतमग्निः प्रवापयिता प्र तेन वापयति मधु भवति सौम्यं वै मधु सोमो रेतोधा रेत एव तेन दधाति धानाश्च तण्डुलाश्च भवन्त्यह्नो वै रूपं धाना रात्र्यास्तण्डुला अहोरात्रे पशवोऽनुप्रजायन्ते नक्तं वा हि दिवा वा प्रजायन्तेऽहोरात्रे एवैनाननुप्रजनयति दधि भवत्येतद्रूपा वै पशवो यद्दधि सरूपानेव पशूनवरुन्द्धे न मधु होतव्यमायुर्वै मध्वायुरग्नौ प्रदध्यात् प्रमायुकस्स्यादेतयेष्ट्वायुष्युया यजेत पशूनेवावरुध्यायुरुपैति यद्येतया न यजेत वरं दद्याद्वरेणैव वरँ स्पृणोति ॥ द्वौ दद्याद् द्वौ हि प्राणश्चापानश्च त्रीन् दद्यात् त्रयो हि प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानस्तानेव यजमाने दधात्येकमेव दद्यात् त्रिवृतं तु त्रिवृद्धि प्राणो बहु वा एतदन्यदन्यज्जुहोति स ईश्वरोऽन्यद्रूपं पोष्टोस्सिध्मां गां दद्याद्रूपाणां निष्क्रीत्यै सर्वाणि वयाँसि दद्यात् सर्वानेव पशूनवरुन्द्धे यदि नाभ्याशँसेत पष्ठौहीमन्तर्वत्नीं दद्यात् सा हि सर्वाणि वयाँसि यद्वत्सं बिभर्ति तेन वत्सा यद्वत्सतरी तेन वयो यत् परं वय आप्ता तेन स्थविरा तयैव सर्वान् पशूनवरुन्द्ध आपो वा इदं निरमृजन् स मनुरेवोदशिष्यत स एतामि-
ष्टिमपश्यत् तामाहरत् तयायजत तयाप्रथत तयेमं भूमानमगच्छन् प्रथत एव तं भूमानं गच्छति यं
२-४
मनुरगच्छद्य एवं विद्वानेतया यजेत ॥ २ ॥

देवा वै न समजानत ते चतुर्धा व्युदक्रामन्नग्निर्वसुभिस्सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैस्तान् बृहस्पतिरब्रवीद्याजयानि वस्सं वै ज्ञास्यध्व इति तेन गृहे याजयानीतीन्द्रमब्रवीत् तेन वै श्रैष्ठ्याय संज्ञास्यन्त इति सोऽग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं निरवपत् सोमाय रुद्रवते चरुमिन्द्राय मरुत्वत एकादशकपालं वरुणायादित्यवते चरुं तानिन्द्रस्य गृहेऽयाजयत् ततो वै ते समजानत त इन्द्रस्यैव श्रैष्ठ्याय समजानत स त्रिष्टुभौ याज्यानुवाक्ये अकरोत् त्रिष्टुब् वा इन्द्रस्य स्वं छन्द ओजो वीर्यं त्रिष्टुप् स्वेनैवास्मिञ्छन्दसौजो वीर्यमदधात् तस्मादिन्द्रो देवानामोजिष्ठो यं स्वा न संजानीरंस्ता-

नेतया याजयेद्यं कामयेतायं श्रैष्ठ्यस्स्यादिति तस्य गृहे समेव जानत एतां एवैनं देवता भागधेयमभि संजानानास्संज्ञापयन्ति त्रिष्टुभौ याज्यानुवाक्ये कुर्यादोजो वै वीर्यं त्रिष्टुबोज एवैषु वीर्यं दधाति संवती संयाज्ये समृद्ध्यै सैषा संज्ञानी नामेष्टिस्समेव जानते प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितृरददान्नक्षत्राणि स रोहिण्यामेवावसत् तान्यनुपेयमानानि पुनरगच्छँस्तस्मात् स्त्र्यनुपेयमाना पुनर्गच्छति तान्यन्वागच्छत् तानि पुनरयाचत तान्यस्मै न पुनरददात् सोऽब्रवीत् सर्वेष्वेव समावद्वसाथ ते पुनर्दास्यामीति स रोहिण्यामेवावसत् तं तस्मिन्ननृते यक्ष्मोऽगृह्णाच्चन्द्रमा वै सोमो राजा यद्राजानं यक्ष्मोऽगृह्णात् तद्राजयक्ष्मस्य जन्म स तृणमिवाशुष्यत् स प्रजापता अनाथत सोऽब्रवीत् सर्वेष्वेव समावद्वसाथ त्वातो मोक्ष्यामीति तस्माच्चन्द्रमास्सर्वेषु नक्षत्रेषु समावद्वसति तं वैश्वदेवेन चरुणामावस्यां रात्रीमयाजयत् तेनैनं यक्ष्मादमुञ्चत् सोऽमुमेवाप्यायमानमन्वाप्यायत वैश्वदेवेन चरुणामावस्यां रात्रीं यजेत यो राजयक्ष्माद्बिभीयाद्यक्ष्मादेवैनं मुञ्चति सोऽमुमेवाप्यायमानमन्वाप्यायते ॥३॥ ५

बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेदानुपूकानां व्रीहीणामानुजावरो बृहस्पतिर्वै देवानामानुजावरस्सोऽग्रं पर्यैद्बृहस्पतिरेतस्य देवता य आनुजावरस्तमेवान्वारभते स एनमग्रं परिणयति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्राह्मणस्य पिता पिता पुत्रस्येशे प्राचो वापाचो वा नोत्तोर्ब्रह्मैवैनं पिताग्रं परिणयत्यानुपूका वा एते व्रीहयो य आनुजावरस्तानेतदग्रं परिणयति यद्धविष्करोति तानेवान्वारभते त एनमग्रं परिणयन्ति पुनः प्रवृद्धं बर्हिर्भवति पुनः प्ररूढ इध्मस्समृद्ध्यै बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत् सजातकामस्तस्य गणवती याज्यानुवाक्ये स्यातां बार्हस्पत्यो वै ब्राह्मणो देवतया स्वामेव देवतां भूयिष्ठेनार्पयते गणवती याज्यानुवाक्ये भवतस्सजातैरेवैनं गणिनं करोति ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेत् तस्य मारुती याज्यानुवाक्ये स्यातां यः कामयेत ब्रह्म बलं स्यादिति ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्विण्मरुतो ब्रह्मण्येव विशमनुविनाशयति ताजग् ब्रह्म बलं भवत्यर्यम्णे चरुं निर्वपेद्यः कामयेत दानकामा मे प्रजास्स्युरित्येष वा अर्यमा यो ददाति दानमिमाः प्रजा उपजीवन्ति दानकामा अस्मै भवन्त्यैन्द्राबार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेद्राजन्याय बुभूषते देवा वै राजन्याज्जायमानादबिभयुस्तमनुहाय दाम्नापोम्भनेनापोभ्यो वा एष जायते यो राजन्यो यद्वा एषोऽनपोब्धो जायेत न किंचन स्यात् सर्वा इमाः प्रजा अधिपादमद्यादैन्द्रो राजन्यो देवतया ब्रह्म बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनमपोम्भनान्मुञ्चति सोऽनपोब्धो वीर्याय प्रस्रियते द्विवृद्धिरण्यं दक्षिणा यदेवादो दाम तस्य निरवत्त्यै प्राजापत्यं चरुं निर्वपेच्छतकृष्णलं घृत आयुष्कामो देवा वै प्रमयादबिभयुस्ते प्रजापता अनाथन्त तानेतयेष्ट्यायाजयदमृतं वै हिरण्यममृतेनैवैष्वमृतमदधात् ततो वै तेऽमृता अभवन्नेतया यजेत यः प्रमयाद्बिभीयादमृतं वै हिरण्यममृतेनैवास्मिन्नमृतं दधाति शतकृष्णलो भवति शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य

[४] मै. २,१,१२; २,२,२ (१२,११)।

आयुरेव वीर्यमवरुन्द्धे वैश्वदेवः कार्यो विश्वान् हि स तद्देवानयाजयत् प्राजापत्यः कार्यः प्रजापतियों-
निर्योना एव प्रतितिष्ठति ॥ चत्वारि चत्वारि कृष्णलान्यवदानं भवति समृद्ध्यै तं ब्रह्मणे परिहरन्ति
ब्रह्म वै ब्रह्मा ब्रह्मण्येवास्मिन्नेकधायुर्दधात्येतया यजेत यः कामयेत वसीयान् स्यामित्येष वै मनुष्यस्य
स्वर्गो लोको यदस्मिंल्लोके वसीयान् भवत्यृध्नोति वसीयान् भवति य एवं विद्वानेतया यजेत सौर्यं
चरुं निर्वपेद्धतश्रीस्तस्य हरितो रुक्मोऽभिधानस्स्याद्रजतोऽधस्तादसौ वा आदित्योऽन्तोऽन्तं मनु-
ष्यश्रियो गत्वा निवर्ततेऽन्तादेवान्तमालभते न ततः पापीयान् भवति यादृक् सन् यजतेऽसौ वा
आदित्य इदमासीत् स इदं निर्दहन्नचरत् तं देवा आभ्यां परिगृह्यामुं लोकमगमयन् स न व्यरोचत
ते प्रयाजेषु पञ्च हिरण्यकृष्णलान्यजुहवुस्तेजो वै हिरण्यं तेजसैवास्मिंस्तेजोऽदधुस्ततो वै स तेजो
ऽगृह्णात् स इमाः पञ्च दिशोऽनु तेजस्व्यभवदियं वै रजतासौ हरिण्याभ्यामेवैनं परिगृह्यामुं लोकं
गमयति स वै न विरोचत इत्याहुर्न हि स व्यरोचतेति प्रयाजेषु पञ्च हिरण्यकृष्णलानि जुहुयात्
तेजो वै हिरण्यं तेजसैवैनं संसृजति स इमाः पञ्च दिशोऽनु तेजस्वी भवति ॥ ४ ॥ ६-७

सौमारौद्रं चरुं निर्वपेच्छुक्लानां व्रीहीणां श्वेतायाश्श्वेतवत्साया आज्यं मथितं स्यात् तस्मिन्
ब्रह्मवर्चसकामस्स्वर्भानुर्वा आसुरस्सूर्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छं-
स्तमेतयैष्टयायाजयंस्तयास्मात् तमोऽपाघ्नंस्तमसैष प्रावृतो योऽलं ब्रह्मवर्चसाय सन्न ब्रह्मवर्चसी भवति
तम एवास्मादपहन्ति ब्रह्मवर्चसेनैनं संसृजति श्वेतायाश्श्वेतवत्साया आज्यं भवति शुक्ला व्रीहय
एवमिव वै ब्रह्मवर्चसं ब्रह्मवर्चसमेव संदधाति ॥ घृतेन प्रोक्षन्ति घृतेन मार्जयन्ते शान्त्यै शान्ति-
र्यौपोऽप्यस्य तां गौर्यामसौ गृहाण्यावहेयुः परिश्रिते यजेत ब्रह्मवर्चसस्य परिगृहीत्यै प्रादेशमात्रं-
मूर्ध्वौ भवत्येव तिर्यङ्ङेतावान् वै पुरुषो यावदस्य प्राणा अभि यावानेवास्यात्मा तस्मात्
तमोऽपहन्ति साकं रश्मिभिः प्रचरन्त्यसावेवास्मादादित्य उद्यंस्तमोऽपहन्ति तिष्यापूर्णमासे यजेत
तिष्यो वै रुद्रश्चन्द्रमास्सोमस्सौमीरेतः प्राचीनमोपवेषो रौद्रीः प्रतीचीनं शुष्यन्ति प्राचीनं शुष्यन्ति
प्रतीचीनं प्रत्यक्षमेवैना रुद्रोऽशावो दुश्चर्मा भवितोर्य एतया यजेतैव यस्मादपहन्ति
मनोऋचस्सामिधेनीर्धाय्या अनुब्रूयान्मनुर्वै यत् किंचावदत् तद्भेषजमासीद्भेषजमेवास्मै करोत्यु-
पक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव इति नागरश्म्या परिददाति शान्त्यै षट्पदा भवति षड्वा ऋतव
ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठतीश्वरस्तु तदति दुश्चर्मेव भवितोस्तेजांसि हुत्व प्रत्यारोहन्तीति सौमापौष्णं
चरुं पशुकामोऽनुनिर्वपेत् सोमो वै ब्राह्मणस्य स्वा देवता पशवः पूषा स्वामेव देवतां पशुभिर्वि-
हयते त्वचमेव कुरुते सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् कृष्णानां व्रीहीणामभिचरन् सोमो वा आसां प्रजानाम-
धिपती रुद्रोऽग्निरधिपतिर्विष्वस्य चावप्यस्य चेशोऽधिपतिमेवैनं निर्याच्य रुद्रायापिदधाति कृष्णानां

[५] मै. २,१,४-६ (५-६) । तै. सं. २,२,१० ।

व्रीहीणां भवति कृष्णमिव वै तमस्तमो मृत्युर्मृत्युनैवैनं ग्राहयति शरमयं बर्हिश्शीर्त्यै वैभीतक इध्मो
विभित्त्यै सौमारौद्रं चरुं निर्वपेद् भ्रातृव्यतायै वा द्वितीयतायै वा तस्यार्धमर्धं सर्वं स्यादर्धं शुक्लानां
व्रीहीणां स्यादर्धं कृष्णानामर्धं शरमयं बर्हिषोऽर्धं दर्भमयमर्धं वैभीतकमिध्मस्यार्धमन्यस्य वृक्षस्य
सोमो वै ब्राह्मणस्य स्वा देवता स्वायामेवास्मै देवतायां द्वितीयं जनयति यदर्धमर्धं द्वितीयत्वायैव
तेन सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् पयस्यामयाविनस्सौम्यो वै जीवन्नाग्नेयः प्रमीतो नैष जीवो न मृतो य
आमयावी तयोरेवैनं भागधेयेन निष्क्रीणाति ॥ पयसि भवति पयो वै पयः पयः पुरुषः पय एत-
स्यामयति यस्यामयति पयसैवास्य पयस्स्पृणोति ग्रसितं वा एष एतं सोमारुद्रयोर्निष्खिदति यो
होता भवति स ईश्वरः प्रमेतोरनड्वाहं तस्मै दद्यात् तं हन्यात् तस्याश्नीयात् सैव तत्र प्रायश्चित्ति-
स्सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् प्रजाकामो वा पशुकामो वा सोमो वै रेतोधा रुद्रोऽग्निस्स प्रजनयिता सोम
एवास्मै रेतो दधात्यग्निः प्रजनयति विन्दते प्रजां वा पशून् वा यतरस्मै कामाय निर्वपति॥५॥८-१०

आदित्येभ्यो धारयद्वद्भ्यश्चरुं निर्वपेदपरुद्धो वापरुरुत्स्यमानो वादित्या वै त्रातार आदित्या
अपरोद्धारस्तानेव भागधेयेनोपधावति त एनं दाधत्यादित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यश्चरुं निर्वपेद्भूपन्नदितिर्वै
प्रजाकामौदनमपचत् तस्योच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त सामन्यतैतो मे
श्रेयांसोऽजनिष्यन्त यत् पुरस्तादाशिष्यमिति सापरमपचत् तस्योभयत आश्नात् पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च
सा गर्भमधत्त सोऽन्तरेव गर्भोऽवदत् त आदित्या अमन्यन्तायं च वै जनिष्यते स एवेदं भवि-
ष्यतीति तं निरघ्नन् स निरस्तोऽशयत् सा तृतीयमपचदादित्येभ्य एवास्त्वेव स यस्तस्माद्योनेरे-
भूयस्माद्यूयमसृज्यध्वमिति तं समस्कुर्वंस्तस्य यन्मृतमासीत् तदपाकृन्तन् स हस्त्यभवद्यज्जीवं स
विवस्वानादित्यस्स न तथासीद्यथा तेन भवितव्यं स एतमादित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यश्चरुं निरवपत् स्वो
वै स्वाय नाथिताय सुहृदयतमस्स्वानेवोपाधावत् ततो वै सोऽभवदादित्या इमाः प्रजास्स्वस्स्वाय
नाथिताय सुहृदयतमस्स्वानेव भागधेयेनोपधावति भूत्यै भवत्येवादित्या भागं वः करिष्यामीति
निर्वपन् ब्रूयादिममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यां विश्यवगमयतेति भागधेयमेवेभ्यः कुर्वन् प्राह
तमादित्येभ्यश्चरुं निर्वपत्यादित्या वै देवविशो देवविशो मनुष्यविशाया ईशे देवविशैवैनं मनुष्यविशा-
मवगमयति सप्ताश्वत्था मयूखा भवन्ति तानिध्मेऽपि प्रोक्षति त आ संस्थातोर्वेद्यां शेरते तान् संस्थिते
मध्यमेषामुपहन्तीदमहमादित्यान् बध्नाम्यमुष्यामुष्यायणस्यावगमायेति यद्यां सप्तमादह्नो नावग-
च्छेदिध्मं तान् कृत्वापरया यजेतैवं द्वितीययैवं तृतीयया त्रिर्वा आदित्यास्सप्त सप्त यावन्त एवादि-
त्यास्तान् बध्नाति त एनं बद्धा मोक्षमाणा अवगमयन्ति ॥ विशो वै वीर्यमपाक्रामत् तदश्वत्थं
प्राविशत् तस्मादेषोऽभूतस्सर्वाहा पर्णमेजयंस्तिष्ठति यदाश्वत्था भवन्ति विश एवास्मिन् वीर्यं बध्नाति

[६] मै. २,२,१ (१-१०) । तै. सं. २,३,१ ।

सस्यावारिदं मन इति निरुद्धस्य पदमादधीतामनस एवैनान् करोत्युप प्रेत मरुतस्स्वतवस एना
विश्पतिनाभ्यमुं राजानमिति विशोऽभिवादमभिच्छंसयन् परीयादमनस एवैनान् करोति यः परं-
स्माद्राष्ट्रभ्यवादी स्यात् तस्य गृहाद्व्रीहीनाहरेयुस्तान्छुक्लांश्च कृष्णांश्च विचिनुयुर्ये शुक्लास्तमादित्येभ्यश्चरुं
निर्वपेद्ये कृष्णा नि तान् दध्युरादित्या वै देवविशो देवविशा मनुष्यविशाया ईशे देवविशैवैनं मनुष्य-
विशामवगमयत्येतद्विशमवगमन्निन्वाहुरथ क्व क्षत्रमिति यदा वै क्षत्रमवगच्छत्यथावगच्छति यदा-
वगच्छेद्ये कृष्णास्तं वारुणं चरुं निर्वपेत् क्षत्रं वै वरुणो वरुण एवैनं क्षत्रमवगमयत्यथ विशा अव-
गच्छति देवविशां च मनुष्यविशां च यच्छुक्लानामादित्येभ्यो निर्वपति तस्माच्छुक्ल इव वैश्यो जायते
यत् कृष्णानां वारुणं तस्माद्धूम्र इव राजन्यः ॥६॥ ११-१२

अग्नेरायुरसि तस्य ते मनुष्या आयुष्कृतस्तेनास्मा अमुष्मा आयुर्धेहीन्द्रस्य प्राणस्स ते प्राणं ददातु
यस्य प्राणस्तस्मै ते स्वाहा पितॄणां प्राणस्ते ते प्राणं ददतु येषां प्राणस्तेभ्यो वस्स्वाहा मरुतां
प्राणस्ते ते प्राणं ददतु येषां प्राणस्तेभ्यो वस्स्वाहा विश्वेषां देवानां प्राणस्ते ते प्राणं ददतु येषां
प्राणस्तेभ्यो वस्स्वाहा प्रजापतेः परमेष्ठिनः प्राणस्स ते प्राणं ददातु ययोः प्राणस्ताभ्यां वां स्वाहा
यदसर्पस्तत् सर्पिरभवो यदव्लस्तन्नवनीतमभवो यदघ्रियथास्तद् घृतमभवः ॥ १३

घृतस्य धारामृतस्य पन्थामिन्द्रेण दत्तां प्रयतां मरुद्भिः ।
तत्त्वा विष्णुरन्वपश्यत् तत्त्वेडा गव्यैरयत् ॥ १४

पावमानेन त्वा स्तोमेन गायत्र्या वर्तन्योपांशोर्वीर्येणोद्धराम्यसौ बृहता त्वा रथन्तरेण त्रिष्टुभा
वर्तन्या शुक्रस्य वीर्येणोत्सृजाम्यसावग्नेस्त्वा मात्रया जगत्या वर्तन्या देवस्त्वा सवितोन्नयतु जीवातवे
जीवनस्याया असौ देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेषामयमायुषायुष्मानस्त्वसौ ब्रह्मायुष्मत्
तद्ब्राह्मणैरायुष्मत् तस्यायमायुषायुष्मानस्त्वसा अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तस्यायमायुषा-
युष्मानस्त्वसौ यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तस्यायमायुषायुष्मानस्त्वसौ सोम आयुष्मान्
स ओषधीभिरायुष्मांस्तस्यायमायुषायुष्मानस्त्वसा ओषधय आयुष्मतीस्ता अद्भिरायुष्मतीस्ता-
सामयमायुषायुष्मानस्त्वसौ ॥
१५

इममग्न आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण संशिशाधि ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥ १६

अश्विनोः प्राणस्तौ ते प्राणं दत्तां तेन जीव मित्रावरुणयोः प्राणस्तौ ते प्राणं दत्तां तेन जीव
बृहस्पतेः प्राणस्स ते प्राणं ददातु तेन जीव ॥७॥
१७

[७] मै. २,३,४ (१२-१८) । तै. सं. २,३,१० । [इममग्न आयुषे० । अथर्व. २,२८,५ । जरदष्टिर्यथासत्० । ऋ० परि० २७,८; अथर्व. ८,५,२१]

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत् सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुं पूर्वेद्युरेतया यक्ष्यमाणोऽग्निर्वै
सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो वाक् सरस्वती ब्रह्म बृहस्पतिरेता एव देवताः पूर्वेद्युर्गृह्णाति प्राणा वै देवताः
प्राणानेव गृहीत्वोपवसत्याग्नेयमष्टाकपालं श्वो निर्वपेत् सौम्यं चरुमादित्यं चरुं वारुणं यवमयं चरु-
मग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालमामयाव्यग्निं वै पुरुषस्य प्रमीतस्य मांसानि गच्छन्ति सोमं रसः
पृथिवीं शरीरमियमदितिरस्यां हि शय एता वै देवताः पुरुषस्येशते ताभ्य एवैनमधि समीरयति॥
सौम्यो वै जीवन्नाग्नेयः प्रमीतो नैष जीवो न मृतो य आमयावी तयोरेवैनं भागधेयेन निष्क्रीणाति
वरुणगृहीत एष य आमयावी यद्वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चति यवमयो भवति प्रादेशमात्रो भवति
संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर आयुस्संवत्सरस्संवत्सर एवैनमायुषि प्रतिष्ठापयति सर्वमायुरेति पञ्चैतानि
हवींषि पाङ्क्तः पुरुषः पुरुषमेवाप्नोत्यग्नेरायुरसीति हिरण्यं घृतेऽवदधात्यग्निजा वै हिरण्यं मनुष्या
अग्नेरायुष्कृतस्तैरेवास्मा आयुर्दधातीन्द्रस्य प्राण इत्येतद्देवत्या वै प्राणास्तानेवास्मिन् दधात्येतद्देवत्या
दिशो यथादेवतमेवैनं दिग्भ्योऽधि समीरयति पञ्चैतानि जुहोति पाङ्क्तः पुरुषः पुरुषमेव स्पृणोति॥
सर्व ऋत्विजः पर्याहुस्सर्व एवास्मा ऋत्विजश्चिकित्सन्ति ब्रह्मणो हस्तमनु पर्याहुर्ब्रह्म वै ब्रह्मा
ब्रह्मण्येवास्मिन्नेकधायुर्दधाति यदसर्प इति घृतस्यैवैतज्जन्म बन्धुतां वीर्यं व्याचष्टे पावमानेन
त्वा स्तोमेनेत्येतावद्वावास्ति यावद्ब्रह्मास्स्तोमाश्छन्दांसि यावदेवास्ति तावतास्मै चिकित्सत्यु-
द्धराम्युत्सृजाम्युन्नयामीति यथा वध्यमुद्धरत्युत्सृजत्युन्नयत्येवमेवैनमेतदुद्धरत्युत्सृजत्युन्नयति देवा
आयुष्मन्त इति प्रयच्छत्येते वै देवा आयुष्मन्तस्तैरेवास्मा आयुः प्रयच्छति तत् पिबत्यायुरेव तत्
पिबति यदेवं तस्य तच्छिरिव धयेद्धिरण्याद् घृतं तेजो वै हिरण्यमायुर्घृतं तेजस एवाध्यायुरात्मन् धत्त
इममग्न आयुषे वर्चसे कृधीति हिरण्यमाबध्नात्यग्निर्वै सर्वा देवता आयुर्हिरण्यं सर्वाभिरेवास्मै देवता-
भिराबध्नाति तिग्ममोजो वरुण संशिशाधीति सममेवैनं श्यति मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छेतीयमदिति-
रस्यामेवैनं प्रतिष्ठापयति विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासदिति जरामृत्युमेवैनं करोत्यश्विनोः प्राणौ मित्रा-
वरुणयोर्बृहस्पतेरित्येतद्देवत्या वै प्राणास्तानेवास्मिन् दधाति तानस्मिन्नधि विधातयति तानस्माद-
नपगान् करोति ॥८॥
१८-२०

पुरोवातो जिन्व रावत् स्वाहा वातावान् वर्षन्नुग्र रावत् स्वाहा स्तनयन् वर्षन् भीम रावत् स्वाहा-
वस्फूर्जन् विद्युद्वर्षंस्त्वेष रावत् स्वाहातिरात्रं ववृष्वान् पूर्त रावत् स्वाहा बहु हायमवृषदिति श्रुत
रावत् स्वाहा तपति वर्षन् विराड् रावत् स्वाहा नश्नन्यवस्फूर्जन् विद्युद्वर्षन् भूत रावत् स्वाहा मान्दा

[८] मै. २,३,४-५ (१७,१९-२१) । तै. सं. २,३,११ । [इममग्न आयुषे० । अथर्व. २,२८,५ । जरदष्टिर्यथा-
सत । ऋ. परि० २७,८; अथर्व. ८,५,२१]
[९] मै. १,३,२६; २,४,७; ४,१२,५ (७१,२३-२४,१४०) । वा. १८,५५ । काण्व. २०,२५ ।

वशाश्शुन्ध्युवोऽजिरा उन्दतीस्सुफेना ज्योतिष्मतीस्तमस्वतीर्मित्रभृतः क्षत्रभृतस्सुशग्रा इह मावत ॥
वृष्णस्संदानमसि वृष्टचै त्वोपनह्यामि देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्योद्रो दत्तोदधिं भिन्त दिवः
पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो मा वृष्ट्यावत देवाश्शर्मण्या मित्र वरुणार्यमन्नुद्रो दत्तोदधिं
भिन्त दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो मा वृष्ट्यावत देवास्सपीतयोऽपां नपादाशुहेमन्नुद्रो
दत्तोदधिं भिन्त दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो मा वृष्ट्यावत ॥ २१-२२

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ २३
उदीरयत मरुतस्समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उपदस्यन्ति धेनवश्शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २४
आ यं नरस्सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
प्र पर्जन्यस्सृजतां रोदसी अनु धन्वना यन्तु वृष्टयः ॥ २५

सृजा वृष्टिं दिव आद्भिस्समुद्रं पृण ये देवा दिविभागा येऽन्तरिक्षभागा ये पृथिविभागास्त
इमं यज्ञमवन्तु त इदं क्षेत्रमाविशन्तु त इदं क्षेत्रमनुविविशन्त्वब्जा असि प्रथमजा बलमसि समु-
द्रियं दिवो धारां भिन्द्धि मारुतमसि मरुतामोजोऽपां धारां भिन्द्धि ॥ २६

उन्नम्भय पृथिवीं भिन्द्धीदं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो देहीशानो विष्या दृतिम् ॥ २७
कृष्णं नियानं हरयस्सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् सदनानि रात्वी घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्दन् ॥९॥ २८

कृष्णाजिनं भवति मधु करीराणि श्यावस्याश्वस्य दाम तानि पूर्वस्याग्नेरन्ते निधाय कृष्णं वासो यजमानं परिधापयित्वान्वारम्भयित्वैतानि जुहोति वातनामानि वा एतान्येष वै वर्षस्येशे यदा ह्येव आप्याययति यदा समीरयति यदा प्रदापयत्यथ वर्षति तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै प्रीतो वृष्टिं निनयत्यष्टा एतानि जुहोति चतस्रो दिशश्चतस्र उपदिशा यथादिशमेव दिग्भ्यो वृष्टिं संप्रच्यावयति कृष्णाजिने संयौति हविरेव करोति मधुना संयौत्यपां वा एष ओषधीनां रसो यन्मध्वद्भ्य एवौष-धिभ्यो वर्षति यर्हि वर्षत्यद्भ्य एवौषधिभ्यो वृष्टिं निनयति ॥ मान्दा वशा इत्येतानि वा अपां नामधेयानि यथाद आहासा एहासा एहीत्येवमेवैना एतन्नामग्राहं दिवश्च्यावयति न वा अन्यये-

[दिवा चित्तमः०...व्युन्दन्ति । ऋ. १,३८,९, तै. सं. २,४,८,१ । उदीरयत (था) मरुत० । ऋ. ५, ५५,५; तै. सं. २,४,८,२ । आ यं नरस्सुदानवो० । ऋ. ५,५३,६; तै. सं. २,४,८,१ । कृष्णं नियानं हरय० । ऋ. १,१६४,४७; अथर्व. ६,२२,१, ९,१०,२२; १३,३,९; तै. सं. ३,१,११,४; नि. ७,२४]
[१०] मै. २,४,८ (३२) । तै. सं. २,४,९—१० ।
काठ० १४

त्याहुस्सौम्या आहुत्या दिवो वृष्टिं च्यावयितुमर्हतीति यतीन् वै सालावृकेया आदंस्तेषां शीर्षाणि परापतंस्ते खर्जूरा अभवन् यस्सोमपीथस्स ऊर्ध्वोऽपतत् तानि करीराणि यत् करीराणि भवन्ति सौम्यैवाहुत्या दिवो वृष्टिं निनयति तस्मात् करीराणि न खिये दद्यान्न शुद्रायासोमपीथ इव ह्युप वृष्णस्संदानमसि वृष्टचै त्वोपनह्यामीति वृषा ह्यश्वो वृषा पर्जन्यस्समृद्ध्यै श्यावस्याश्वस्य दाम भवति श्याव इव ह्युप वर्षिष्यन् भवति॥ देवा वसव्या देवाश्शर्मण्या देवास्सपीतय इत्येता वै देवता वर्षस्येशते ताभिरेवास्मा अन्वहं वृष्टिमिच्छति कृष्णाजिनं उपनह्यत्यृक्सामयोर्वा एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनमृक्सामा-भ्यामेवास्मै वृष्टिमिच्छति यदि वर्षेत् तदेवेष्टिं निर्वपेद्यदि न वर्षेत् तथैव वसेयुरहोरात्रे वै मित्रावरुणा अहोरात्रे पर्जन्योऽनुवर्षति नक्तं वा हि दिवा वा वर्षत्येतौ वर्षस्येशाते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रीतौ वृष्टिं निनयतोऽग्नये धामच्छदे श्रोऽष्टाकपालं निर्वपेन्मारुतं चरुं सौर्यमेककपालमग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति धामच्छदिव भूत्वा वर्षति मरुतस्सृष्टां वृष्टिं नयन्ति ॥ यदासा आदित्योऽर्वाङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षत्येता वै देवता वर्षस्येशते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रीता वृष्टिं निनयन्त्यप्यवर्षिष्यन् वर्षत्येव पडेतानि हवींषि पड्वा ऋतव ऋतुभ्य एव वृष्टिं संप्रच्यावयति यत् सप्तमं संवत्सरादेव तेन वृष्टिं च्यावयत्यथैता मारुतीश्चतस्रः पित्र्यास्तासां तिसृभिः प्रचरन्ति न्येकां दधत्यृचोऽनुवाक्या यजूंषि याज्या मरुतो वै वर्षस्येशते तेभ्य एव भूयो भागधेयं करोति या चतुर्थी तां संस्थितेऽप्सु जुहोति सृजा वृष्टिं दिव आद्भिस्समुद्रं पृणेत्याभिरेवामूरच्छैत्यथो इमा-श्चैवामूश्च संसृजति ये देवा दिविभागा इति कृष्णाजिनमवधूनोति दिशश्चैव देवताश्च तर्पयत्यथो इमं
एवास्य लोका अभीष्टाः प्रीता भवन्ति सैषा कारीरी नामेष्टिस्संवत्सरं करीराणां नाश्नीयाद्य एतया
यजेतायो योऽनुब्रुवीत तदस्या व्रतम् ॥१०॥ २९-३२

या वां मित्रावरुणौ सहस्यौजस्या रक्षस्या यातव्या तनूस्तया वां विधेम तयेममभुमामुष्यायण-
ममुष्याः पुत्रमंहसो मुञ्चतं यस्ते राजन् वरुण देवेषु पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा यस्ते राजन्
वरुणाग्ने द्विपात्सु चतुष्पात्सु पशुषु वनस्पतिष्वोषधीष्वप्सु पृथिव्यां पाशस्तं त एतदवयजे तस्मै
स्वाहा या वां मित्रावरुणौ सहस्यौजस्या रक्षस्या यातव्या तनूस्तया वामविधाम तयेममभुमामुष्या-
यणममुष्याः पुत्रमंहसोऽमौक्तम् ॥११॥ ३३

मक्षू देववतो रथश्शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ३४

[११] मै. २,३,१ (३)
[१२] मै. १,३,२६; ४,१०,२,४; ११,२; १२,१; १४,१४ (७३,४९,१०४,४२—४३,४९—५६,७,१००-१०१) वा. ८,४; ३३,६८; ३४,५४, २१,१ । काण्व. ८,३; ३२,६८; ३३,४२; २३, १ । [मक्षू देववतो० । ऋ. ८,३१,१५; तै. सं. १,८,२२,३]

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्रयोषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ३५
न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ३६
असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ३७
अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीडे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ ३८
उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ३९
सोमारुद्रा विवृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ ४०
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो असत् ॥ ४१
सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४२
सोमापूषणेमौ देवौ महि वो महतामवः ।
वरुण मित्रार्यमन्नवाँस्याचृणीमहे ॥ ४३
यज्ञो देवानाम् ॥ ४४
धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४५

[नकिष्टं कर्मणा० । ऋ. ८,३१,१७; तै. सं. १,८,२२,४ । न यजमान रिष्यसि० । ऋ. ८,३१,१६; तै. सं. १,८,२२,४ । असदत्र सुवीर्यमुत० । ऋ. ८,३१,१८ । अग्निं वः पूर्व्यं गिरा० । ऋ. ८,३१,१४; तै. सं. १,८,२२,४ । सोमारुद्रा विवृहतं० । ऋ. १,८,२२,३ । उपक्षरन्ति सिन्धवो० । ऋ. १,१२५,४; तै. सं. १,८,२२,४ । सोमारुद्रा विवृहतं० । ऋ. ६,७४,२; अथर्व. ७,४२,१; तै. सं. १,८,२२,१ । सोमारुद्रा युवमेतानि० । ऋ. ६,७४,३; अथर्व. ७,४२,२; तै. सं. १,८,२२,५ । सोमारुद्रा धारयेथा० । ऋ. ६,७४,१ । सोमापूषणेमौ० । ऋ. २,४०,१-३; तै. सं. १,८,२२,५ । यज्ञो देवानाम्० । ऋ. १,१०७,१; तै. सं. १,४,२२,१; २,१,११,४ । धारयन्त आदित्यासो० । ऋ. २,२७,४; तै. सं. २,१,११,४]

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रींरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ ४६
इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूस्सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो मे तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ ४७
आदित्यासो अदितयस्स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ ४८
इमं मे वरुणास्तभ्नाद् द्याममुरः ॥१२॥ ४९
अग्नाविष्णू अग्नाविष्णू पावका न आ नो दिवो बृहस्पते जुषस्व नः ॥ ५०
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ५१
अग्न आयूंषि पवसे ॥ ५२
आयुर्दा देव जरसं वृणानो घृतं वसानो घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पिबन्नमृतं चारु गव्यं पितेव पुत्रं जरसे नयेमम् ॥ ५३
गयस्फानः ॥ ५४

[तिस्रो भूमीर्धारय० । ऋ. २,२७,८; तै. सं. २,१,११,५ । इमा गिर आदित्येभ्यो० । ऋ. २,२७,१; नि. १२,३६ । आदित्यासो अदितय० । ऋ. ७,५२,१ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. ब्रा. २,१,११,६ । अस्तभ्नाद् द्याममुरः० । ऋ. ८,४२,१; तै. सं. १,२,८,१]
[१३] मै. ४,११,२; १२,४—५ (५८—६०,६२—६३; ९६—१००; १४०—१४२,१४५) । वा. २०,८४; १९, ३८; ३५,१६; ४,३७; २२,१—२,५—६; १८,७२—७३; २६,८ । काण्व. २२,६९; ८,१९; २२,४०; २१, ३७; ३५,४८; ४,४९; २३,१—२,५—६; २०,४१—४२; २८,८ । [अग्नाविष्णू सजोषसा० । तै. सं. ४, ७,१,५,७,३,२; तै. ब्रा. ३,११,३; श्री. सू. २,८ । अग्नाविष्णू महि० । अथर्व. ७,२९,१—२; तै. सं. १,८, २२,१; २,५,१२,१; श्री. सू. २,८ । पावका नः० । ऋ. १,३,१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४,३,१; नि. ११,२६ । आ नो दिवो० । ऋ. ५,४३,११; तै. सं. १,८,२२,१; २,५,१२,१; ३,१,११,१ । बृहस्पते जुषस्व नः० । ऋ. ३,६२,४; तै. सं. १,८,२२,२ । बृहस्पतिः प्रथमं० । ऋ. ४,५०,४; अथर्व. २०,८८,४; तै. ब्रा. २,८,२,७ । अग्न आयूंषि० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४ १५१८; तै. सं. १,३,१४,७ ४,२९,१; ५,५,१; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,२ । गयस्फानः० । ऋ. १,९१,१२; तै. सं. ४,१,१३,५]

यां ते धामानि हविषा यजन्ति तां ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणस्सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥ ५५
सुत्रामाणं महीमू ष्विमं मे वरुण तत्त्वा यामि वैश्वानरो न ऊतये पृष्टो दिवि ॥ ५६
रथंवता मरुत्वश्येनमार्थिनं मनोजवसं वृषणं सुवृक्तिम् ।
येन शर्धोऽग्रमृद्वद्ग्रमेति तमश्विना परिधयं स्वस्ति ॥ ५७
अभिक्रन्द स्तनय गर्भमाधा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ५८
आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहस्स्तनयन्त्यभ्रा ॥ ५९
कृष्णं नियानं हरयस्सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्युद्यते ॥ ६०
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ६१
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्रपिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६२
परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः । उभे आपप्रौ रोदसी महित्वा ॥ ६३
वहिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयस्सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥१३॥ ६४

[८४४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां मारुतं नाम एकादशं स्थानकं संपूर्णम् ॥११॥

[या ते धामानि हविषा० । ऋ. १,९१,१९; तै. सं. ३,२,१०,२; मै. ब्रा. २,८,३,१ । सुत्रामाणं० । ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; मै. सं. १,५,११,५ । महीमू षु० । तै. सं. १,५,११,५; कपि. ४६,७ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; वा. १२८०; तै. सं. २,१,११,६ । तत्त्वा यामि० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६ । वैश्वानरो न ऊतये० । तै. सं. १,५,११,३; औ. सू. ३,८ । पृष्टो दिवि पृष्टो० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । अभिक्रन्द स्तनय० । ऋ. ५,८३,७; अथर्व. ४,१५,६; मै. सं. ३,१,११,६ । आ ते सुपर्णा० । ऋ. १,७९,२; तै. सं. ३,१,११,५ । कृष्णं नियानं हरय० । ऋ. १,१६४,४७; अथर्व. ६,२२,१; ९,१०,२२; १३,३,९; तै. सं. ३,१,११,४; नि. ७,२४ । वाश्रेव विद्युन्मिमाति० । ऋ. १,३८,८; तै. सं. ३,१,११,५ । दिवो नो वृष्टिं० । ऋ. ५,८३,६; तै. सं. ३,१,११,७ । परि यो रश्मिना दिवो० ; ऋ. ८,२५,१८ । वहिष्ठेभिर्विहरन्० । ऋ. ६,६३,४; तै. ब्रा. २,४,५,४]

अथ द्वादशं स्थानकम् ।

पयस्स्थानकम् ।

पयस्यया यजेतामयावी मैत्रावरुणी ब्राह्मणस्य स्यादैन्द्रावरुणी राजन्यस्याग्निवारुणी वैश्यस्यर्द्ध्या एवाग्नेयो मैत्रो ब्राह्मणो देवतया वरुणगृहीत एष य आमयावी स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चत्यैन्द्रो राजन्यो देवतया वरुणगृहीत एष य आमयावी स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चत्यग्निस्सर्वा देवतास्तत्र वैश्यस्यापि वरुणगृहीत एष य आमयावी स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चति पयस्या भवति पयो वै पयस्या पयः पुरुषः पय एतस्यामयति यस्यामयति पयसैवास्य पयस्स्पृणोति ॥ पुरोडाशो भवत्यस्थन्वन्तमेवैनं कृत्वा प्रतिष्ठापयति पशुर्वै पुरुषः पशुः पुरोडाशः पशुनैव पशुं स्पृणोति व्युह्यावद्यति यथानुभिद्य शल्यं निर्हरत्येवमेवास्यैतन्मध्यतो यक्ष्मं निर्हरति समुह्याग्नयेऽवद्यति यथा शल्यं निर्हृत्य समायत्य संनह्यत्येवमेव तदर्थैत एककपाला न वै पुरुषं कपालैराप्तुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोत्यष्टौ भवन्त्यष्टौ वै पुरुषस्य शफाश्शफश एवैनमाप्नोतिताननुपरिचारं जुहोत्यत्रात्र वै वरुणपाशो यत्र यत्रैव वरुणपाशस्तत एनं वरुणान्मुञ्चति ॥ व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोत्यग्नौ सर्वे होतव्या अग्निस्सर्वा देवतास्तेनैव तान् कामान् स्पृणोति न व्यृद्धामाहुतिं जुहोति पयस्यया यजेत सजातकाम ऋद्ध्या एवाग्नेयो मैत्रो ब्राह्मणो देवतया वरुणगृहीत एष योऽलँ सजातेभ्यस्सन्नसजातो भवति स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चति पयस्या भवति पयो वै पयस्या पयस्सजाताः पयसैव पयोऽवरुन्द्धे व्यूहति दिशस्तर्पयति समूहति सजातानेवास्मै समूहति समानमेककपालानां ब्राह्मणं पयस्यया यजेत पशुकाम ऋद्ध्या एवाग्नेयो मैत्रो ब्राह्मणो देवतया वरुणगृहीत एष योऽलं पशुभ्यस्सन्नपशुर्भवति स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चति पयस्या भवति पयो वै पयस्या पयः पशवः पयसैव पयोऽवरुन्द्धे व्यूहति दिशस्तर्पयति समूहति पशूनेवास्मै समूहति समानमेककपालानां ब्राह्मणं पयस्यया यजेत बुभूषन्नृद्ध्या एवाग्नेयो मैत्रो ब्राह्मणो देवतया वरुणगृहीत एष योऽलं भूत्यै सन्न भवति स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति वरुणादेनं वारुणेन मुञ्चति पयस्या भवति पयो वै पयस्या पयः पुरुषः पयसैव पयोऽवरुन्द्धे व्यूहति दिशस्तर्पयति समूहति भूतिमेवास्मै समूहति समानमेककपालानां ब्राह्मणम् ॥१॥ १-३

ध्रुवोऽसि ध्रुवोऽहँ सजातेषु भूयासं ध्रुवा मयि सजाता उग्रश्चेत्ता वसुविदभिभूरस्यभ्यहँ सजा-

[१] मै. २,३,१ (१-३) । तै. सं. २,३,१३ ।
[२] मै. २,३,२ (४—८) । तै. सं. २,३,९ ।

तान् भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवित् परिभूरसि पर्यहँ सजातान् भूयासं धीरश्चेत्ता वसुवित् सुरिरसि सुरिरहँ सजातेष्वधिभूयासमुग्रश्चेत्ता वसुविदामनस्य देवा ये सजातास्समनसो यानहं कामये हृदा ते मां कामयन्तां हृदा तान्म आमनसस्कृधि स्वाहामनस्य देवा याः स्त्रियस्समनसो या अहं कामये हृदा ता मां कामयन्तां हृदा ता म आमनसस्कृधि स्वाहामनस्य देवा ये पुत्रासो ये पशवस्समनसो यानहं कामये हृदा ते मां कामयन्तां हृदा तान्म आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्तेऽसुरा मनस्वितरा आसन्नमनस्तरा इव देवास्ते देवा एतत् संग्रहणमपश्यँस्तेनासुराणां मनाँसि समगृह्णँस्ततो वै ते समनसः पराभवन् मन एव भ्रातृव्यस्य संगृह्णाति सोऽस्यामनाः पराभवत्येतया यजेत पशुकाम एतया वै देवा असुराणां पशून् समगृह्णँस्ततो वै ते पशवः पराभवन् पशूनेव भ्रातृव्यस्य संगृह्णाति सोऽस्यापशुः पराभवत्येतया यजेत सजातकामो मनोग्रहणं वा एतन्मनस्विन इव सजाता यावन्त एव सजातास्तेषां मनाँसि गृह्णाति तेऽस्मान्मनोगृहीता नापयन्ति ॥ वैश्वदेवः कार्यो वैश्वदेवा हि सजाताः पृषत्याः पृषद्वत्साया दुग्धे भवति वैश्वदेवी हि पृषती सर्वेभ्यस्सजातेभ्य आज्यं समाहरन्ति वैश्वदेवत्वाय वैश्वदेवा हि सजाता ध्रुवोऽसीति परिधीन् परिदधाति सजातानेवास्मा उपदधात्यामनस्य देवा इत्यन्वारम्भयित्वा जुहोति मनोग्रहणं वा एतदेवमिव सजातास्स्त्रिय इव पुमाँस इव कुमारा इव यावन्त एव सजातास्तेषां मनाँसि गृह्णाति तेऽस्मान् मनोगृहीता नापयन्ति ॥ वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यद्यज्ञे प्रतत एता अन्तराहुतीर्जुहोति सँस्थिते होतव्या यद् सँस्थिते जुहुयाद्बहिरात्मँ सजातान् कुर्वीतान्तरा प्रयाजानुयाजाञ्जुहुयात् प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजा आत्मा हविरात्मन्नेव मध्यतस्सजातान् धत्ते दारुमयेण जुहुयाद्यदि कामयेत क्षिप्रं मा सजाता एयुः क्षिप्रं पुनः परेयुरित्येवमिव हि वनस्पतयोऽध्रुवा इव चराचरा इव मृन्मयेन जुहुयाद्यदि कामयेत चिरं मा सजाता एयुश्चिरं पुनः परेयुरित्येवमिव हीयं ध्रुवेव प्रतिष्ठितेवाचराचरेव ॥२॥ ४-७

इन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत् सोऽब्रवीद्वीर्यं वा इदं मय्यस्ति तत् ते प्रदास्यामि मा मे प्रहारिति तदस्मै प्रायच्छत् सोऽवेदस्ति वावास्मिन् वीर्यमिति तस्मै द्वितीयं तस्मै तृतीयमुदयच्छत् सोऽब्रवीद्वीर्यं वा इदं मय्यस्ति तत् ते प्रदास्यामि मा मे प्रहारिति तदस्मै प्रायच्छद्यज्ञं वावास्मै तत् प्रायच्छद्यज्ञं प्रायच्छदिन्द्राय प्रायच्छत् तस्मादैन्द्रावैष्णवँ हविर्भवति वीर्यं वावास्मै तत् प्रायच्छत् तन्निर्वीर्यं भूतमस्तृणुत तं विष्णुर्वीर्यमन्वतिष्ठत सोऽब्रवीत् सकृन्माधा विष्णो द्विर्माधा विष्णो त्रिर्माधा विष्ण इति तत् त्रैधातव्यायास्त्रैधातव्यात्वमिन्द्रो वै वृत्रँ हत्वा तँ शवे मानये श्रीढत् सोमो वै वृत्र उदरं श्वो मानवस्तस्मादुदरे सोमः पीयते ॥ तस्मादाहुर्हतो वृत्रोऽस्तृतस्त्विति यज्ञो वा असुरेभ्योऽपाक्रामदु-

[३] मै. २,४,३ (३—२५) । कल्प. २,१८ ।

त्सङ्के पात्राण्योप्यैतद्रूपं कृत्वा यत् तार्प्याणि त्रिषीव्यन्ति स इन्द्रं प्रतिन्यागच्छेत् तेनेन्द्रोऽयजत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानेतेन यजेत भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति यज्ञो न्यागच्छदिन्द्रं प्रतिन्यागच्छत् तस्मादैन्द्रावैष्णवँ हविर्भवत्यृचो वावास्मै तदग्रे प्रायच्छदथ सामान्यथ यजूँषि ब्रह्मणो वा एष योनिरतो वा इदँ सर्वमसृज्यतर्चस्सामानि स्तोमा यजूँषि ब्रह्मण एव योनिमालभते ॥ स इदँ सर्वमत्येत्येतेन वै सृञ्जया अयजन्त त इदँ सर्वमत्यायँस्तदेनान्मुहुः प्रयुज्यमानमवाभृनुत तस्मान्न मुहुः प्रयोज्यं त्रि वा एष च्छिनत्ति य एतेन यजतेऽपि पुत्रं याजयेदनुसंतत्या एतस्य वै वीर्येण वृत्रोऽहरहरिषुमात्रमूर्ध्वोऽवर्धतेषुमात्रं तिर्यङ्ङथो यत् प्राणीत् तत् पुनर्न समैद्वर्धते प्रजया प्र पशुभिर्भवति य एवं विद्वानेतेन यजते सर्वेभ्यः कामेभ्यो यजेत सर्वो वा एष यज्ञस्सर्वेभ्यो हि कामेभ्यस्सौम्योऽध्वरः प्रयुज्यतेऽभिचरन् यजेत न दक्षिणां दद्यान्मेनिमेवैनं कृत्वाभिप्रयुङ्क्ते मेनिरदक्षिणः ॥३॥ ८-१०

त्रीन् पुरोडाशान्निर्वपेद्बुभूषँस्त्रय इमे लोका इमानेव लोकानाप्त्वौजो वीर्यमवरुन्द्ध उत्तर उत्तरो ज्यायान् भवत्युत्तर उत्तरो ह्येषां लोकानां ज्यायानधरोत्तरं भवन्त्येवमिव हीमे लोका द्वादश कपालानि भवन्ति त्रयो हि ते चतुष्कपालास्समृद्ध्यै सर्वेषामभिघातमवद्यत्यच्छम्बट्कारं यस्य नावद्यति च्छम्बट्करोति च्छम्बण्नास्य चरति व्रीहिमयः प्रथमो भवत्यथ यवमयोऽथ व्रीहिमयो रोहिता इव वै व्रीहयो रोहित इवायं लोको रोहित इवासौ शुक्ला इव यवाश्शुक्लमिवान्तरिक्षमन्तरिक्षेणेमे लोकास्संतता एषां लोकानामनुसंतत्यै नैवारमुत्तमं कुर्यादजामित्वाय ॥ तिस्रो धेनवो दक्षिणा त्रीणि तार्प्याणि त्रीणि हिरण्यानि यजुषां वा एतद्रूपं यत् तार्प्याणि त्रिषीव्यन्ति साम्नाँ हिरण्यानि च्छन्दसां धेनव एतानि वै यज्ञस्य रूपाणि रूपैरेव यज्ञमवरुन्द्धे सर्वदेवत्यं वासो यद्वासाँसि ददाति सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे तेजो ब्रह्मवर्चसँ हिरण्यं यद्धिरण्यानि ददाति तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्धे ॥ त्रिस्समृद्धा धेनुरात्मा वत्सः पयो यद्धेनुर्ददाति त्रिस्समृद्धमेवैनं करोति सर्वाणि च्छन्दाँस्यनुब्रूयात् सर्वो वा एष यज्ञस्सर्वाणि हि च्छन्दाँसि सौम्येऽध्वरेऽनूच्यन्ते यज्ञो यदसृज्यत तस्योल्बमन्ववेष्टत तत् तार्प्यमभवद्यज्ञस्त्रैधातव्या यत् तार्प्यं यजमानः परिधत्ते स्वेनैव योनिनात्मानमोर्णुत उष्णिहककुभौ सामिधेनीष्वप्यनुब्रूयादुष्णिहा वै ककुभो वीर्यं ककुबुष्णिहायास्सवीर्ये एवैने अवरुन्द्धे न जगत्या परिदध्यादन्तो वा एषा छन्दसामन्तं गच्छेद्यज्ञं विच्छिन्द्यादग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्थेति त्रिष्टुभा परिदध्यादोजो वै वीर्यं त्रिष्टुब्नान्तं गच्छत्योजस्येनं वीर्ये प्रतिष्ठापयति॥४॥ ११-१३

[४] मै. २,४,४—५ (१८—२१) । तै. सं. २,४,१२,६; २,३,११; ३,२,११ ।
[अग्ने त्री ते वाजिना० । ऋ. ३,२०,२]

देवा वा असुराणां वेशन्वमुपायँस्तदिन्द्रोऽपि नोपैत् तेषां वीर्याण्यपाक्रामन्त्रग्ने रथन्तरमिन्द्राद्बृहद्वि-
श्वेभ्यो देवेभ्यो वैरूपं सवितुर्वैराजं मरुतां शक्वरी त्वष्टू रेवती तानीन्द्रोऽनरुरुत् समानोऽन्वचरत् स
एतमैन्द्रमपश्यद् द्वादशकपालं तेन वै स तानीन्द्रियाणि वीर्याण्यवारुन्द्ध ततो वै सोऽभवत् तन
एनं देवा अनुसमभवन्नेतेन यजेत बुभूषन्नैन्द्रेण द्वादशकपालेनैतान्येवेन्द्रियाणि वीर्याण्यवरुन्द्धे
भवत्येवान्वेनँ स्वास्संभवन्ति द्वादशकपालो भवति वैश्वदेवत्वायोत्तानेषु कपालेष्वधिश्रयति
चरुमेव करोति शान्त्या अनिर्दाहाय सर्वाणि वा एतानीन्द्रियाणि वीर्याणि यत् पृष्ठानि
तान्येनमीश्वराण्यनायतनानि निर्मृजो व्यतिषजेद् याज्यानुवाक्या इन्द्राय राथन्तरायानुब्रूहीति
रथन्तरस्यर्चमनूच्य बृहत ऋचा यजेदिन्द्राय बार्हतायानुब्रूहीति बृहत ऋचमनूच्य रथन्तरस्यर्चा
यजेदिन्द्राय वैरूपायानुब्रूहीति वैरूपस्यर्चमनूच्य वैराजस्यर्चा यजेदिन्द्राय वैराजायानुब्रूहीति
वैराजस्यर्चमनूच्य वैरूपस्यर्चा यजेदिन्द्राय शाक्वरायानुब्रूहीति शक्वरीमनूच्य रेवत्या यजेदिन्द्राय
रैवतायानुब्रूहीति रेवतीमनूच्य शक्वर्या यजेदेतैरेवेन्द्रियैर्वीर्यैरात्मानमभ्यतिषजत्यनिर्मार्गाय न
बृहत्या वषट्कुर्याद् बृहत्या वा इदमन्वयातयामत्वं प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननमपिहन्यात् पशवो वै
बृहती रुद्रोऽग्नी रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुस्स्यादनुवाक्यायाश्चत्वार्यक्षराणि याज्यामभ्यत्यूहेत् तथा
ते पङ्क्तिश्चानुष्टुप् च संपद्येते अनुष्टुबनुवाक्या स्यात् पङ्क्तिर्याज्या प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य
वा प्रजापतिर्वा इदमासीत् तस्य वाग् द्वितीयासीत् तां मिथुनँ समभवत् सा गर्भमधत्त सास्मादपा-
क्रामत् सेमाः प्रजा असृजत सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशद् यदनुष्टुबनुवाक्या भवति पङ्क्तिर्याज्या
वाग् वा अनुष्टुप्पाङ्क्तस्संवत्सरस्संवत्सरः प्रजापतिर्वाच्येव संवत्सरं वृषाणमविसृजति सोऽस्मै मिथुनं
करोति समन्तं पर्यूहं पुरोडाशस्यावद्येदेतैरेवेन्द्रियैर्वीर्यैस्समन्तमात्मानमभितः पर्यूहति स्तृत्या
एतया यजेत यमजामित्रॉसमभिशँसेयुर्देवता वा एतस्यान्नं नादन्ति यमजामित्राँसमभिशँसन्ति तस्य
देवैः परिवृज्यमानस्य मनुष्या अन्नं नादन्ति तस्मादपि यमनृतमभिशँसेयुस्तस्यान्नं नाद्यात् सर्वदेव-
त्यानि पृष्ठानि यत् सर्वपृष्ठया यजते देवता एवास्यान्नमादयति तस्य पूतस्य स्वदितस्य मनुष्या
अन्नमदन्ति सैषा सर्वपृष्ठा नामेष्टिः पृष्ठमेव समानानां भवति य एवं विद्वानेतया यजते ॥५॥ १४
अश्वो न प्रतिगृह्य उभयादन्वा एष एतस्येन्द्रियं वीर्यं निर्वभस्ति यः प्रतिगृह्णाति तस्मान्न प्रति-
गृह्यो वरुणो वा एतमग्रे प्रत्यगृह्णात् स स्वां देवतामार्छत् तं वरुणोऽगृह्णात् स एतेन वारुणेन हवि-
षायजत निर्वरुणत्वाय योऽश्वं प्रतिगृह्णीयात् स एतेन वारुणेन हविषा यजेत निर्वरुणत्वाय चतु-
ष्कपालो भवति चतुष्पाद् वा अश्वः प्रत्यक्षमेवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति तदाहुर्न वै तेनेतरेभ्यो मुच्यते

[५] मै. २,३,७ (३३—३५) । तै. सं. २,३,७ ।
[६] मै. २,३,३ (९—११) । तै. सं. २,३,१२ ।

यदेनमेकस्मान्मुञ्चतीति यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात् तावतश्चतुष्कपालान्निर्वपेदत्र वै वरुणपाशो
यत्र यत्रैव वरुणपाशस्तत एनं वरुणान्मुञ्चत्येकोऽधिभवति यस्यैव नाधियन्ति तस्मादेनं तेन
मुञ्चत्यथो भविष्यदेव वरुणस्यावयजते भूयस्त्वा एतं वरुणो गृह्णाति य एतयेष्ट्वापरमश्वं प्रतिगृह्णाति
यद्यपरमश्वं प्रतिग्रहीष्यन् स्यात् सौर्यवारुणं कुर्यात् सूर्यमेव देवतामेतं लोकमुपप्रतिगृह्णाति वरुणादेनं
वारुणेन मुञ्चत्यपांनप्त्रीयश्चरुरपिभवत्ययोनिर्वा अश्वोऽप्सुजा योनिमन्तमेवैनं कृत्वा प्रतिष्ठापय-
त्येकविंशतिस्सामिधेन्यो भवन्त्येकविंशो वै संवत्सरः पञ्चर्तवो द्वादश मासास्त्रय इमे लोका असा
आदित्य एकविंश एष प्रजापतिः प्राजापत्योऽश्वोऽश्वमेवाप्नोति ॥ यस्ते राजन् वरुण गायत्रच्छन्दाः
पाशस्त त एतदवयजे तस्मै स्वाहा यस्ते राजन् वरुण त्रिष्टुप्छन्दा जगच्छन्दा अनुष्टुप्छन्दाः पाशस्तं त
एतदवयजे तस्मै स्वाहेत्येतावन्ति वै छन्दाँसि च्छन्दाँसि वरुणपाशास्तैरेष गृह्णाति यं वरुणो गृह्णात्यत्रात्र
ध वरुणपाशो यत्र यत्रैव वरुणपाशस्तत एनं वरुणान्मुञ्चत्यपांनप्त्रीयं द्वे अपिभवतो या एवास्या-
प्सव्यौ पाशौ ताभ्यामेनं तेन मुञ्चति षडेतानि जुहोति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥६॥
१५–१६
देवा वा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुस्स इन्द्रोऽवेदग्निर्वा उज्जेष्यतीति सोऽब्रवीद्यतरो ना उज्जयात्
तन्नौ सहेति सोऽग्निरेव पूर्व उदजयत् तदिन्द्रोऽनूदजयत् तस्मादाग्नेन्द्रमैन्द्राग्नं कार्यमग्निर्हि पूर्व उदज-
यत् तदिन्द्रोऽनूदजयदभिजित्या एवाग्रायणं द्वादशकपालो भवति संवत्सराद्ध्येतदधिभवति सप्तदश
सामिधेन्यो भवन्ति संवत्सराद्ध्येतदधिभवत्येका वै तर्हि व्रीहेरश्रुष्टिरासीदेका यवस्यैका माषस्यैका
तिलस्य ते विश्वे देवा अब्रुवन् भागो नोऽस्तु वयमिदं प्रथयिष्याम इति तेभ्य एतं भागमकुर्वंस्ततो
वा इदमप्रथत भूम्ने वैश्वदेवः प्रथयत्येवैतेन पयसि भवति वैश्वदेवत्वाय वैश्वदेवँ हि पयोऽथ वा
इयमब्रवीन्मयि वा एतदध्यसौ वृष्ट्या पचति नावाभ्यामृत उज्जेष्यथेति ताभ्यामेतं भागमकुर्वन्नेक-
कपालं प्रतिष्ठित्यै द्यावापृथिव्यं ग्राम्या वा अन्या ओषधय आरण्या अन्यास्ता अस्यैतेनोभय्यरिष्टा
भवन्ति सोम ओषधीनामधिराजस्तस्यैष उद्धारो यदकृष्टपच्यमुद्धार एवास्यैष भाग एव यदारण्यं
तस्यैतेनाग्रं क्रियते यत् फालकृष्टं तस्येतरेण वत्सः प्रथमजो दक्षिणा रेत एव ह्येषोऽप्रजातः
प्रजननाय सर्वस्मै वा एषोऽभिषिच्यते यदाग्रायणं राजसूये भवत्यन्नमेवावरुन्द्धे तदस्य स्वदितमिष्टं
भवत्यानीतो वा एष देवानां य आहिताग्निरदन्त्यस्यान्नं यदनिष्ट्वाग्रायणेन नवस्याश्नीयाद् देवानां
भागं प्रतिक्लृप्तमद्यादार्तिमार्छेत् तस्मान्नानिष्ट्वाग्रायणेन नवस्याशितव्यमेतेन वै देवा अग्रं पर्यायँस्त-
दाग्रायणस्याग्रायणत्वमग्रमेव समानानां पर्येति य एवं विद्वानाग्रायणेन यजते ॥७॥ १७
संवत्सरं वा एतस्य च्छन्दाँसि यातयामानि भवन्ति यस्सोमेन यजते छन्दाँसि देविकाश्छन्दाँ-
स्येवायातयामानि पुनर्यामाणि कुरुते पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणाशा वा एषाशामेष उपाभिषिच्यत आशामे-

वास्मै करोति पशुकामो देविकाभिर्यजेत च्छन्दाँसि देविका मिथुनं छन्दाँसि गायत्र्यनुमती राका
त्रिष्टुप्सिनीवाली जगती कुहूरनुष्टुब्धाता वषट्कारो यद् द्वे अवरे द्वे परे तन्मिथुनं यद्धाता वषट्कार-
स्तन्मिथुनं तस्मादेवास्मै मिथुनात् पशून् प्रजनयति ॥ या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा
राका या पूर्वामावस्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूश्चन्द्रमा एव धाता यत् पूर्णोऽन्यां वसत्यूनो-
ऽन्यां तन्मिथुनं यत् पश्यन्त्यन्या नान्यां तन्मिथुनं यच्चन्द्रमा अमावस्याया अधि प्रजायते
तन्मिथुनं तस्मादेवास्मै मिथुनात् पशून् प्रजनयति प्रजाकामो देविकाभिर्यजेत धातारमुत्तमं कुर्यात्
स्त्रियो वै देविकाः पुमान् धाता पराचीः प्रजा रेतो दधते पराचीष्वेवैतद् रेतो धीयते तदाहुर्न वै तेन
पराधत्ते यत् पूर्वा प्रवीयत इति व्यवदध्याद्धातारँ सर्वा एवैना वृषामोदिनीः करोति ॥ विन्दते
पुत्रं पश्चाचर इव तु भवति स्त्रीभिर्ह्येनं पश्चात् परिणयति यदाजायेत धातारं पुरस्तात् कृत्वाथैतामेव
निर्वपेदग्रमेवैनं परिणयत्यामयावी देविकाभिर्यजेत धातारं मध्ये कुर्यात् संवत्सरो वै धाता संवत्सरो
हि वा एतस्य लुब्धोऽथैतस्यामयति संवत्सरमेवास्मै मध्यतः कल्पयित्वाथैनमेतस्मान्मिथुनात् पुनः
प्रजनयतीश्वराणि वा एनमेतानि च्छन्दाँस्यशान्तानि निर्मृजः पशुमालभेत शान्त्या अनिर्मार्गाय ॥
वीरस्था वा अन्ये पशवोऽवीरस्था अन्ये ये पुरस्तात् पुरोडाशास्ते वीरस्था ये पश्चात् पुरोडाशास्ते-
ऽवीरस्था ये वीरस्था भुञ्जन्तस्त उपतिष्ठन्ते येऽवीरस्थाः परा ते भवन्ति ये पुरस्तात् पुरोडाशास्ते
वीरस्थाः प्रजापतिं ते प्रतिष्ठामभिसृज्यन्ते यासु स्थालीषु सोमा भवन्ति तासु देविकाः कुर्याद्
रेतोधा हि सोमस्सर्ववेदसी देविकाभिर्यजेत पशुभिर्वा एष व्यृध्यते यस्सर्वं ददाति च्छन्दाँसि
देविकाः पशवश्छन्दाँस्यत्रैष जघन्यं पशून् पश्यति यत्रैनान् विभजति यत्रैवैनाञ्जघन्यं पश्यति तत
एनान् पुनः प्रजनयति य एव कश्च सोमेन यजेत स देविकाभिर्यजेत च्छन्दाँसि देविकाश्छन्दाँ-
स्येवायातयामानि पुनर्यामाणि कुरुते ॥८॥ १८—२१
सँ सोमेन
स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेण देवीं देवेन शुक्रां शुक्रेणामृताममृतेन सृजामि २२
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ २३
पुनातु ते परिस्रुतँ सोमँ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ २४
वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यस्सखा ॥

[९] मै. २,३,८ (३३—४१) । वा. १९,१,३—४,३; १०,३१; २०.३३; २३,३८ । काण्व. २१,१,३—५, २२,१८; २१.४५; २५,४० । तै. सं. १,८,२१; ३,२,८,३ । तै. ब्रा. १,४.३, २,६,१.३ । [पुनातु (०ति) ते०... तना । ऋ. ९,१,६ । वायुः पूतः पवित्रेण० । अथर्व. ६,५१.१ । इन्द्रस्य युज्यस्स ०। ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१]

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २५
उपयामगृहीतोऽस्यच्छिद्रां त्वाच्छिद्रेणाश्विभ्यां जुष्टां गृह्णाम्येष ते योनिरश्विभ्यां त्वोपयाम-
गृहीतोऽस्यच्छिद्रां त्वाच्छिद्रेण सरस्वत्यै जुष्टां गृह्णाम्येष ते योनिस्सरस्वत्यै त्वोपयामगृहीतोऽस्य-
च्छिद्रां त्वाच्छिद्रेणेन्द्राय सुत्राम्णे जुष्टां गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ स्वाद्वीं त्वा
स्वादुनेति ब्रह्मणैवैनाँ सँसृजति तिस्रो रात्रीस्सँसृष्टा वसति तिस्रो हि रात्रीस्सोमः क्रीतो वसत्य-
श्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्वेत्येताभ्यो ह्येषा देवताभ्यः पच्यते वायुः
पूतः पवित्रेणेति व्यृद्धस्यातिपवितस्यैतया पुनीयादेका पुरोरुगेकधैवास्मिन् वीर्यं दधात्यनिरुक्ता
प्राजापत्यानिरुक्तः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति ॥९॥ २६–२७
विश्वरूपो वै त्रिशीर्षासीत् त्वष्टुः पुत्रोऽसुराणां स्वस्रीयस्स सोममेकेन शीर्ष्णापिबदन्नमेकेनावयन्
सुरामेकेनापिबन् स इन्द्रोऽमन्यतायं वावेदं भविष्यतीति तेन समलभत तेन युगशरमपद्यत स तक्षाणं
तिष्ठन्तमब्रवीदाधावास्येमानि शीर्षाणि च्छिन्द्धीति तस्य तक्षोपाद्रुत्य परशुना शीर्षाण्यच्छिनत्
तस्मात् तक्ष्णशिरो धृतं तस्मादस्यान्नमन्नाद्यं तस्य यत् सोमपानँ शिर आसीत् स कपिञ्जलो-
ऽभवद् यदन्नादनँ स तित्तिरियत् सुरापानँ स कलविङ्कस्तस्मात् स नितनतपमिव वदति॥ स त्वष्टा
पुत्रहतो वीन्द्रँ सोममाहरत् तमघस्सहस्रशलेऽसुनोदथो आहुश्शतशल इति तमस्येन्द्रः प्रास-
हापहृत्य नाड्या निरपिबत् स विष्वङ् सोमपीथेन व्यार्च्छत तस्मात् सोमो नानुपहूतेन पातवै सोम-
पीथेन व्यर्धुको भवति तस्य यन्नस्तोऽमुच्यत तौ सिंहा अभवतां यदक्षीभ्यां तौ शार्दूलौ यत्
कर्णाभ्यां तौ वृकौ यदधस्तात् सा सौत्रामणी यत् प्रथमं निरष्ठीवत् तत् कुवलमभवद् यद् द्वितीयं
तद्बदरं यत् तृतीयं तत् कर्कन्धु तमश्विना अभिषज्यतां तमयाजयतामेतया सौत्रामण्या स यैरेव तद्वीर्यै-
र्व्यार्ध्यत तान्यस्मिन्नाप्त्वाधत्तामेतया यजेत यँ सोमोऽतिपवेत वीर्येण वा एष व्यृध्यते यँ सोमो-
ऽतिपवते यावदेव वीर्यं तदस्मिन् दधात्येवैव राजसूयेऽपि भवति वीर्येण वा एष व्यृध्यते यो राजसूये-
नाभिषिच्यते वृत्रँ हि हन्ति यावदेव वीर्यं तदस्मिन् दधात्येतयैव ब्राह्मणो वा राजन्यो वा बुभूषन्
यजेतैतावद्वै वीर्यं यावदेव वीर्यं तदस्मिन् दधाति तदाहुरार्तयज्ञो वा एष नानार्त एतया यजेतेति
तदाहुर्यष्टव्यमेव सर्वो हि पुरुष आर्तस्सर्वो बुभूषति तस्माद्यष्टव्यं यदाश्विनोऽश्विनौ ह्यभिषज्यतां यत्
सारस्वतो वाग्वै सरस्वती वाचा ह्यभिषज्यताम्॥ यदैन्द्र इन्द्रे हि तद्वीर्यमधत्तां कुवलसक्तुभिराश्विनँ
श्रीणाति बदरसक्तुभिरैन्द्रं कर्कन्धुसक्तुभिस्सारस्वतं वाग्वै सरस्वती वाच्येवास्य स्वाद्यानं दधात्यथो

[कुविदङ्ग यवमन्तो० । ऋ. १०,१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२]
[१०] मै. २,३,९; ४,१ (४८:१) । तै. सं. २,५,१ ।

येनमसौ वामश्लीलमभिवदति सैनं पुनः कल्याणमभिवदाति सिंहा अध्वर्युर्मनसा ध्यायेच्छार्दूलौ प्रतिप्रस्थाता वृकौ यजमानस्सुरा भवति येरेव तद्वीर्यैर्व्यृध्यते तान्यस्मिन्नाप्त्वा धत्तः॥१०॥ २८-३०

ब्राह्मणस्य मूर्धन् सादयेत् तेन मेध्यात्वं वै सुरा मेध्यमत्वं तेन मेध्यैका पुरोरुगेका याज्यैकधैवास्मिन् वीर्यं दधाति सर्वहुतं जुहोति सर्वमेवास्मिन् वीर्यं दधाति ब्राह्मणं पाययेत् तेन हविष्क्रियत आत्मनाशयान्मखेव वीर्यं धत्ते तद् तन्न हस्यं पाप्मा वै सुरा मध्यत एष पाप्मना गृहीतो यत् समयाल्येति मध्यत एवैनं पाप्मनो मुञ्चति यदुत्तरेऽग्नौ जुहुयान्न पाप्मना व्यावर्तेत क्रियेत भेषजं यद् दक्षिणेऽग्नौ जुहोति वि पाप्मना वर्तते क्रियते भेषजं यद् विक्षारयति वीव खेष क्षरिति ॥ यद् वा एतस्य व्याधि यत् श्रामाय पितृस्तदगन्यत् पितृमतीभिरभिमन्त्रयन्त पितृभ्य एवैनमधिसमीरयन्ति यत् तिसृभिस्तिसृभिस्तृतीये हि लोके पितरो यच्चत्वार आभ्य एवैनं चतसृभ्यो दिग्भ्योऽधिसमीरयन्ति शताक्षरा भवति शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुरेव वीर्यमवरुन्द्धे क्लीबात् सीसेन लोकमानि क्रीणात्यनृतं वै क्लीबोऽनृतं सीसमनृतं सुरानृतेनैवानृतादध्यनृतं क्रीणाति वडवा दक्षिणा सुन्वरी खेषा सृत्वरीव सुरा समृद्ध्यै ॥११॥ ३१-३२

आश्विनमजमालभेत सारस्वतीं मेषीमैन्द्रमृषभं वा वृष्णि वैवमेव वपाभिश्वरन्ति यदैन्द्री वपानामुत्तमा भवतीन्द्र एवास्मिंस्तदधिभवति यत् प्रचरन्त ऐन्द्रेण पुनः प्रथमेन प्रचरन्तीन्द्रमेव तत् पुनरालभ्य सेन्द्रत्वाय यदाश्विनोऽश्विनौ ह्यभिषज्यतां यत् सारस्वती वाग्वै सरस्वती वाच्येव प्रतितिष्ठत्यैन्द्री वपानामुत्तमा भवत्यैन्द्रः पुरोडाशानां प्रथमो वीर्यं वा इन्द्रो वीर्य एवैनमभिसंधत्तः प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणो मध्यतो ह्येष वरुणगृहीतः पश्चाद् वा एषा सृष्टा प्रतीचीनशीर्ष्णी यदुपरिष्टात् पुरोडाशा भवन्त्यपिहित्या एवाच्छिद्रत्वाय सह समवत्तं भवति सहेडामुपह्वयन्ते संहित्या एवाथो इडाया अविदोहाय ॥ यद्वै सौत्रामण्या व्यृद्धं तदस्यास्समृद्धं यदन्यदेवत्याः पशवो भवन्त्यन्यदेवत्याः पुरोडाशा एतद् वा अस्या व्यृद्धं सदथ समृद्धं नाना वै तैर्वीर्याण्यवरुन्द्धेऽथ वै प्रजापतेर्वीर्यमासीदथ माल्व्यं यद्वीर्यमासीत् तद् पुरस्तात् पर्यहरत सोमो वाव स ततो ब्राह्मणमसृजत तस्माद् ब्राह्मणस्सर्वो ब्रह्मणि धीरो यन्माल्व्यमासीत् तत्पश्चात् पर्यहित सुरा वाव सा ततो राजन्यमसृजत तस्माज्ज्यायांश्च कनीयांश्च स्नुषा च श्वशुरश्च सुरां पीत्वा सह लालपत आसते पाप्मा वै माल्व्यं तस्माद् ब्राह्मणस्सुरां न पिबति पाप्मना नेत्संसृज्या इति तदेतत् क्षत्रियाय ब्राह्मणं ब्रूयाच्चैनं सुरा पीता हिनस्ति य एवं विद्वान् सुरां पिबति प्रजापतेर्वा एषा तनूर्वीर्यं प्रजापतिर्वीर्यमेवास्मिन् दधाति ॥१२॥ ३३-३४

[११] मै. २,३,९; ४,२ (४८, २)। [१२] मै. २,४,२ (२)।

स्वर्भानुर्वा आसुरस्सूर्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत तस्माद्देवास्तमोऽपालुम्पन् यत् प्रथममपालुम्पन् साविष्कृष्णाभवद्यद् द्वितीयं सा फल्गुर्यत् तृतीयं सा वलक्षी यदध्यस्थादपालुम्पन् साविवशाभवदथ वा इयं तर्ह्यलोमकासीत् तां देवा अदित्यै कामायालभन्त तयास्यां लोमान्यरोहयंस्ततो वा इयं लोमान्यगृह्णात् तामेतामेवमालभेतादित्यै कामाय यमेव कामं कामयते तं स्पृणोत्यमुतो वा आदित्यस्यार्वाङ् रश्मिरवातिष्ठचात्वालमभि तदिमं मिथुनं समभवतां साविवशाभवदथ वा इमास्तर्ह्यफला ओषधय आसंस्ता देवा आदित्येभ्यः कामेभ्य आलभन्त तया सु फलमग्राहयंस्ततो वा इमाः फलमगृह्णंस्तं एते एवमालभेतादित्या अन्यां कामायादित्येभ्योऽन्यां कामेभ्य उभाभ्यामेव वृष्टिभ्यां कामायालभते सारस्वतीं मेषीमालभेत यस्माद् वागपक्रामेद् वाग्वै सरस्वती सरस्वत्येतस्मादपक्रामति यस्माद् वागपक्रामति यत् सारस्वती वाचमेव समक्षमाप्त्वावरुन्द्धेऽपन्नदती भवति सर्वत्वायानास्कन्ना समृद्ध्यै यस्त्रेतानामुत्तमो जायेत तमूर्जे आलभेतोर्क्कामो नाना वा एतौ स्तना अभिजायेते अथैष ऊर्जमेवाभिजायत ऊर्जमेवैतेनाप्त्वावरुन्द्ध औदुम्बरो यूपो भवति देवा वै यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरोऽजायत यदौदुम्बर ऊर्जं एवावरुद्ध्या एतमेव सौमापौष्णमालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा सौम्यो वै रेतोधाः पूषा प्रजनयिता सोम एवास्मै रेतो दधाति पूषा प्रजनयति विन्दते प्रजां वा पशून् वा यतरस्मै कामायालभते वायवे श्वेतमजमालभेत बुभूषन् वायुर्वै देवानां क्षेपिष्ठस्तमेव भागधेयेनोपधावति स एनमाशिष्ठं श्रियमभिप्रणयति स निमार्ष्टि स प्रधन्वति स एवैनं श्रियमभिप्रणयति ॥ स एव आचोपचे उत पुण्यो भवत्युतो यथेव तथेव वायवे नियुत्वते श्वेतमजं पिशङ्कर्णमालभेत सजातकामो वायुं वा इमाः प्रजा नस्योता इत्थं चेत्थं चानुचरन्ति प्राणो वायुर्वायुर्देवानां विशो नेता नियुतो देवानां विशस्तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै विशं निनयति यन्नियुत्वत आरम्भणमेव कुरुतेऽनिर्मार्गाय वायवे श्वेतमजमालभेत कामेभ्योऽणु वा एष कामयते यः कामयते वायुर्देवानामण्वनुवाति तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्य कामाननुवाति॥१३॥ ३५-३६

आ नो मित्रावरुणा प्र वाहवा ॥ ३७

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आवृणे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ ३८

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।

इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ३९

[१३] मै. २,५,१-२ (१-२)।
[१४] मै. ४.११.९; १४ १२ (६५–६६; १६६)। वा. ९.१८; २१,३—४.८—११, ३३,४२: ३४,३०; ३ ११; १३,१४; १५,२०,३५। काण्व. १०.२४; २३,३-४,८-१०,१२; ३२,४२; ३३.२४, ३,१८; १४,१४, १९,४१, ५७। [आ नो मित्रावरुणा० । ऋ. ३.६२,१६; ७,६५ ४; सा. २२०,६६३; तै. सं. १,८,२२,३; तै. ब्रा.२, ८,६.७। इन्द्रावरुणयोरहं० । ऋ. १,१७,१; तै. सं. २,५,१२,२ । नू न इन्द्रावरुणा० । ऋ. ६,६८,८]

त्वं नो अग्ने स त्वं नो अग्ने शं नो भवन्तु वाजे वाजे ॥ ४०

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिस्सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ४१

एना वयं वयमिन्द्रवन्तोऽभिष्याम वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिस्सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ४२

अग्निर्मूर्धा ॥ ४३

यं सीं अग्ने तवोतिभिस्सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ४४

अग्ने वाजस्याग्ने श्री ते ॥ ४५

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ ४६

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ४७

इयं दुहन् सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुन्वते ।

अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद् वर्तिर्यज्ञं परियन् सुक्रतूयसि ॥ ४८

शीर्ष्णायूंषि तव जातवेदः ॥१४॥ ४९

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ ५०

[त्वं नो अग्ने० । ऋ. ९.६९,८–९,६२; ४,१,४; ५,१०,२,७; ८.७१,१; १०.८७.२०; १४१, ६; सा. ६, १४०४; अथर्व. ३,२०,५; ८,३,१९; तै. सं. २,५,१२,३। स त्वं नो अग्ने० ऋ. ४,१,५; तै. सं. २,५,१२,३। शं नो भवन्तु० ऋ. ७,३८,७; तै. सं. १,७,८,२; नि. १२.४४। वाजे वाजे० । ऋ. ७,३८,८; तै. सं. १,७, ८.१ ३७,१२,१। विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता० । ऋ. १,१००.१९; १०२,११। तन्नो मित्रो०...उत द्यौः। ऋ. १.९४.१६; ९५,११; ९६.९; ९८.३, १००,१९; १०१,११; १०२,११; १०३.८, १०५,१९; १०६,७; १०७,३; १०८,१३; १०९,८; ११०,९; १११,५, ११२,२५; ११३,२०; ११४,११; ११५,६। एनावयं० । ऋ. १ १०५,१९; नि. ५,११। अग्निर्मूर्धा० । ऋ. ८.४४.१६; सा. २७,१५३९; तै. सं १,५,५,१; ४,४,१,१; तै. ब्रा. ३, ५,७,१। यं सीं अग्ने० । ऋ. ८,१९,३०; सा. १०८, १८२२; तै. सं. ३,२,११,१। अग्ने वाजस्य० । ऋ. १,७९,४; सा. ९९,१४६४; तै. सं. ४,४,४,५। अग्ने श्री ते० । ऋ. ३,२०,२; तै. सं. ३,२ ११,१। सं वां कर्मणा० । ऋ. ६,६९ १; तै. सं, ३,२ ११,१। उभा जिग्यथुर्न परा० । ऋ. ६,६९, ८; अथर्व. ७,४४,१; तै. सं. ३,२,११,२; ७,१,६,७। इयं दुहन् सुदुघां० । ऋ. १०,१७६,६। शीर्ष्णायूंषि तव० । ऋ. ३,१७,३; तै. सं. ३,२,११,२]
[१५] मै. ४७,३५,३७; ३१,१-२; १८,४१; ३,४३। काण्व. ३९,४०,४२; ३७.१-२, २०,२९; ३,३६। [दूतं वो विश्ववेदसं० । ऋ. ४,८,१; सा. १२]

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥ ५१

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद् वसु ॥ ५२

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ५३

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५४

ते राया ते सुवीर्यैस्ससवांसो विशृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ५५

अभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे ॥ ५६

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन् सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ५७

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ५८

ता अस्य नमसा सहो रेवतीर्न इमं मे वरुण तत्त्वायामि ॥ ५९

रदत् पथो वरुणस्सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ ६०

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।

वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ ६१

उपमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।

अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करोति जोषिषद्धि ॥ ६२

[स हि वेदा वसुधितिं० । ऋ. ४.८,२ । स वेद देव आनमं० । ऋ. ४,८,३ । स होता सेदु० । ऋ. ४, ८,४ । ते स्याम ये० । ऋ. ४.८,५ । ते राया ते० । ऋ. ४,८,६ । अभि त्वा शूर० । ऋ. ७,३२,२२; सा. २३३,६८०; अथर्व. २०,१२१,१; तै. सं. २,४,१४,२। त्वामिद्धि हवामहे० । ऋ. ६,४६,१; सा. २३४,८०९; अथर्व. २०.९८.१; तै. सं. २,४ १४,३ । यद् द्याव इन्द्र० । ऋ. ८,७०,५; सा. २७८,८६२; अथर्व. २०,८१, १, ९२,२०; तै. सं. २,४,१४,३; तै. आ. १,७,५; नि. १३,१। बोधा सु मे मघवन्० । ऋ. ७,२२,३; सा. ९,२९; अथर्व. २०,११७,३ । ता अस्य नमसा० । ऋ. १,८४,१२; सा. १००७; अथर्व. २०,१०९,३। रेवतीर्न० । ऋ. १,३०,१३; सा. १५३,१०८४; अथर्व. २०,१२२,१; तै. सं. १,७,१३,५; २,२,१२,८; ४,१४, ४ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. ब्रा. २,१,११,६, । तत्त्वायामि० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६ । रदत् पथो० । ऋ. ७,८७,१ । प्र सम्राजे बृहदर्चा० । ऋ. ५,८५,१। उपमसृक्षि वाजयु० । ऋ. २,३५,१]

इमं स्वस्मै हृदं आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ ६३
आपो रेवतीः ॥ ६४
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥१५॥ ६५
[१०९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां पयस्स्थानकं नाम द्वादशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१२॥

अथ त्रयोदशं स्थानकम्।

पशुबन्धम्।

तिस्रोऽजाश्श्वेता मल्हा गर्भिणीरालभेत ब्रह्मवर्चसकाम आग्नेयीं वसन्ता सौरीं ग्रीष्मे बार्हस्पत्यां
शरदि यदाग्नेयी मुखत एव तया तेजो धत्ते यत् सौरी मध्यत एव तया रुचं धत्ते यद् बार्हस्पत्योप-
रिष्टादेव तया ब्रह्मवर्चसं धत्ते संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते वीर्यं वै संवत्सरस्संवत्सरमेव वीर्यमाप्नोति य-
च्छ्वेता रुच एव तद्रूपं गर्भिणीर्भवन्तीन्द्रियं वै गर्भ इन्द्रियमेवावरुन्द्धे तिस्रो मल्हा गर्भिणीरालभेत
यं पर्यम्युर्वायव्यां श्वेतां सारस्वतीं मेषीमादित्यामजामघोरामां मेषीं वा मनसा वा एत एतं पर्य-
मन्ति मनो वायुर्यद् वायव्या मनसैवैषां मनांसि शमयति वाचा वा एत एतं पर्यमन्ति वाक् सरस्वती
यत् सारस्वती वाचैवैषां वाचं शमयत्यप्रतिष्ठितो वा एष यं पर्यमन्तीयमदितिर्यदादित्यास्यामेव
प्रतितिष्ठत्यनपिमन्त्रो वा एष एतेषु यं पर्यमन्ति वाचो मन्त्रो गर्भो यद् गर्भिणीर्वाच एवैनं गर्भमक-
रपिमन्त्रमेनं करोत्यप वा एतस्मादिन्द्रियं क्रामति यं पर्यमन्तीन्द्रियं गर्भो यद्गर्भिणीरिन्द्रियमेवा-
वरुन्द्धेऽग्नये वैश्वानराय कृष्णं पेत्वमालभेत यस्समान्तमभिद्रुह्येद् यो वाभिदुद्रुक्षेत् संवत्सरो वा अग्नि
वैश्वानरस्संवत्सरायैष सममते यस्सममते संवत्सरमेवाप्त्वा काममवरुणमभिद्रुह्यति प्राजापत्यमजं तूपरं
विश्वरूपमालभेत सर्वेभ्यः कामेभ्यः प्रजापतिर्योनिर्योनेरेव प्रजायते प्रजापतिः प्रदाता तमेव भाग-
धेयेनोपधावति सोऽस्मै सर्वान् कामान् प्रयच्छत्यश्वस्येव वा एतस्य शिरो गर्दभस्येव कर्णौ पुरुषस्येव
श्मश्रूणि गोरिव पूर्वौ पादा अवेरिवापरौ शुन इव लोमान्यजो भवत्येतावन्तो वै ग्राम्याः पशवस्ता-
नेवैतेनाप्त्वावरुन्द्धे द्वादश धेनवो दक्षिणा तार्प्यं हिरण्यमधीवासः प्रजापतेर्यास्साामिधेन्यस्तास्सा-

[इमं स्वस्मै हृद०। ऋ. २,३५,२। आपो रेवतीः०। ऋ. १०,३०,१२। आपः पृणीत भेषजं०। ऋ. १,
२३,२१; १०,९,७; अथर्व. १,६,३]

[१] मै. २,५,१—२ (१—२)। तै. सं. २,१,१—२।

मिधेन्यः प्रजापतेर्या आप्रियस्ता आप्रियो हिरण्यगर्भवत्याघार एतस्य सूक्तस्य याज्यानुवाक्ये एतेन
ह वा उपकेतू रराधऽर्भ्नोति य एतेन यजते द्वादशधा ह त्वै स प्राशित्राणि परिजहार तत्र द्वादश
द्वादश धेनूर्ददौ यद् द्वादश ददाति सैव तस्य प्रतिमा यत् तार्प्यं हिरण्यमधीवासमपरिमितमेव
तेनावरुन्द्धे ॥१॥ १

वारुणं कृष्णं पेत्वमेकशितिपादमालभेतामयावी ज्योगामयावी प्रजापतिः प्रजा असृजत ता
एनमत्यचरँस्ता अतिचरन्तीर्वरुणेनाग्राहयत् ता जिह्माः पन्ना अशेरत वरुणगृहीतास्ताः कृष्णः पेत्व
आप्रवत तस्याभिहाय पादमगृह्णात् स प्रावृह्यत स एकशितिपादभवत् ताः प्रजापता अनाथन्त
सोऽपश्यद्योऽयमवरुणगृहीतस्तेनैना वरुणान्मुञ्चानीति तं वारुणमालभत तेनैना वरुणादमुञ्चद्वरुण-
गृहीत एष य आमयावी यद्वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चति ॥ द्वीपे यजेतापो वै वरुणस्समक्षमेवैनं वरु-
णान्मुञ्चति प्रजापतिः पशून् सृष्ट्वा वरुणं वरमभ्यसृजत् स एतमवृणीत तस्माद्वरुणदेवत्यः पाप्मनैष
गृहीतो य आमयावी कृष्ण इव पाप्मा यत् कृष्णः पाप्मानमेवापहते यदेकशितिपाद्वरुणपाशमेव तेन
प्रमुञ्चत आग्नेयमजमालभेत वारुणं कृष्णं पेत्वं बुभूषन्नृद्ध्या एवाग्नेयो वरुणगृहीत एष योऽलं भूत्यै
सन्न भवति यद्वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चत्यर्धं वै पुरुषस्याग्नेयमर्धं वारुणमस्थान्याग्नेयानि मांसानि
वारुणानि तयोरेवैनं भागधेयेन निष्क्रीणाति ॥ सोऽनृणो भूत्वा भवत्येव वारुणं कृष्णं वृष्णिम-
भिचरन्नालभेत मृत्युर्वै वरुणो मृत्युनैवैनं ग्राहयत्येतद्वै पाप्मनो रूपं कृष्ण इव पाप्मा यत् कृष्णः
पाप्मनैवैनमभिषुवति ॥ २–४

पशुं बध्नामि वरुणाय राज्ञ इन्द्राय भागमृषभं केवलो हि।
गात्राणि देवा अभिसंविशन्तु यमो गृह्णातु निर्ऋतिस्सपत्नान् ॥ ५

इत्येता वै देवताः पुरुषस्येशते ताभ्य एवैनमधिनिष्क्रीय मृत्युर्यमो मृत्युनैवैनं ग्राहयति॥२॥ ६

वैष्णवं वामनमालभेत भ्रातृव्यवान् विष्णुर्वा इमांल्लोकानुदजयत् स एभ्यो लोकेभ्योऽसुरान्
प्राणुदतेमानेव लोकानुजयत्येभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदते विषमे यजेत विषमा इव हीमे लोका
ऐन्द्रामारुतं पृश्निसक्थमालभेत यस्मात् क्षत्रियाद् विडभ्यर्धश्चरेत् क्षत्रं वा इन्द्रो विण्मरुतः क्षत्रायैव
विशमनुनियुनक्ति पृश्निसक्थो भवति विशमेवास्मै पश्चादुपदधात्यसंसर्गायैन्द्रमुत्सृष्टिमालभेत पशु-
काम इन्द्रो वै वलमपावृणोत् तं सहस्रमनूदैत् तस्यैषोऽग्रत उदतृणत् स समैषदुत्तितृत्सन्निमांल्लो-
कान् पश्यँस्तस्मादेष समीषितः प्रतीषितग्रीवस्तमेतं पुरस्तात् सहस्रस्यालभेत प्र सहस्रं पशूनाप्नोति

[२] मै. २,५,६ (६-८)। तै. सं. २,१,२।
[३] मै. २,५,३,८-९ (४,१०-११)। तै. सं. २,१,३-५; २,५.३।

वलमेवापवृणोति यदा सहस्रं पशून् प्राप्नुयादथ वैष्णवं वामनमालभेत प्रतिष्ठित्या एतस्मिन् वै तत्
सहस्रमध्यतिष्ठत् स व्यैषदधिष्ठीयमानस्तस्मादेष तिर्यङ्ङिव वीषितस्ता एता एवमभित आलभेत
सहस्रस्य परिगृहीत्यै यज्ञो वै दक्षिणामभ्यकामयत तां समभवत् सा गर्भमधत्त तमववृज्य प्राद्रवत्
तमववृक्तं शयानमदितिरचायत् तमाहरत् तमधस्तादूर्वोरुपास्यत सोऽधस्तादूर्वोरवर्धत तस्मादेष
तिर्यङ्ङिव वीषितोऽधस्ताद्धयूर्वोरवर्धत तं विष्णुरचायत् तमभ्यवदत् तस्मिन् प्रश्नमैतां तं
विष्णवेऽन्वब्रुवँस्तस्मादाहुः कर्तुरेव पुत्र इति येन वामनेनेत्संददित्यै चरुं पुरस्तान्निर्वपेदतिर्वा एत-
मवर्धयत् तस्या एवैनमधिनिष्क्रीणाति वेनानृणेन निष्क्रीतेन मेध्येन प्रसूतेनर्भ्नोत्येव सौम्यं बभ्रु-
मृषभं प्रथमकुसिन्धमालभेत यो राज्य आशंसेत सोमो वै देवानां राजा सोम एतस्य देवता यो राज्य
आशंसते स्वामेव देवतां भागधेयेनोपधावति सैनं राज्याय परिणयति यत् प्रथमकुसिन्धो वीर्यस्य
तद्रूपमिन्द्राय वज्रिणे रोहितमृषभं प्रथमकुसिन्धमालभेत राजन्यायाभिचरते वा बुभूषते वैन्द्रो वै
राजन्यो देवतया वज्रोऽस्य वीर्यं वज्रमेवास्मिन् दधाति तेन विजयति भवत्येव यत् प्रथमकुसिन्धो
वीर्यस्य तद्रूपं य एकाष्टकायां जायेत तमुत्सृजेद् यदि द्वौ जायेयातां ता उभा उत्सृजेद् यदि संवत्सरे
द्वितीयो जायेत तं संवत्सरेऽनूत्सृजेदाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेज्जातयोराग्नेया वै पशवस्तस्मादेवैना अधिनि-
ष्क्रीणात्यग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्संवत्सरे पर्येते संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरादेवैना
अधिनिष्क्रीणात्या मेध्याभ्यां भवितोस्संवत्सरे संवत्सरेऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् सं-
वत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरादेवैना अधिनिष्क्रीणाति ॥ ताभ्यां सर्वतो निष्क्रीताभ्यां मेध्याभ्यां
प्रसूताभ्यामृध्नोत्येवैतस्यां वा इन्द्रोऽजायत स देवानां वीर्यावत्तमस्तस्माद् य एकाष्टकायां पशूनां
जायते स वीर्यावान् भवति वीर्यावान् भवति य एवं विद्वानेताभ्यां यजत इन्द्रायाभिमातिघ्ने
पूर्वमालभेत पाप्मा वा अभिमातिः पाप्मानमेवापहत इन्द्राय वृत्रतुर उत्तरं पाप्मा वा अभिमातिः
पाप्मानमेवापहत्यार्थैतेन वृत्रतूर्भवति स्वाराज्यमुपैति नास्मादन्यस्समानेषु वसीयान् भवति य एवं
विद्वानेताभ्यां यजते शतमन्यस्य दक्षिणाश्वोऽन्यस्य पूर्ववाडया एव कौच द्वा एतद् ब्राह्मणा
अनेवमुत्सृष्टा आलभेत ताभ्यामेवर्भ्नोति तत्र यत् किंच ददाति तद् दक्षिणा ॥ ३ ॥ ७–८

इन्द्राय मन्युमते ललाममृषभमालभेत संग्रामे मन्युना वै वीर्यं करोतीन्द्रियेण जयति मन्युं चैवेन्द्रि-
न्द्रियं च जित्यै दधाति यल्ललामः पुरस्तान्मन्योस्सम्पृक्त्यै देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्ते न
व्यजयन्त तेऽब्रुवन् ब्रह्मणा नो मेनी विजयेतामिति त ऋषभौ समवासृजन्श्वैत्रेयोऽरुणस्तूपरो देवाना-
मासीच्छ्येनेयश्श्येतोऽयश्मश्रुरसुराणां तौ समहतां तं श्वैत्रेयस्समयाभिनत् सा या वाक् पराजिता-

[४] मै. २,५,३—४,८-९ (३-४,१०—११)। तै. सं. २,१,३—५; २,५,३।

सीत् सावाच्यपतद् याजयत् सोर्ध्वा तस्माद् यस्यावाची वाक् सोऽनार्त्विजीनोऽसुर्यो हि स वर्णस्तस्माद्
यस्योर्ध्वा वाक् स आर्त्विजीनो देवत्रेव हि स बार्हस्पत्यमरुणं तूपरमभिचरन्नालभेत ब्रह्म वै बृहस्पति-
र्ब्रह्मणैवैनमभिप्रयुङ्क्त एतेन वै देवा असुरानस्तृण्वत यत् तूपरस्स्तृत्या इन्द्रो वै वृत्रमहँस्तं हतस्सप्त-
भिर्भोगैः पर्यहँस्तस्य मूर्ध्नो वैदेहीरुदायँस्ताः प्राचीरायँस्तस्मात् ताः पुरस्स जघन्यमृषभं वैदेहमन्वयन्त-
ममन्यतेममिदानीमालभेय तेन त्वा इतो मुच्येयेति तमालभत तेन नामुच्यत स आग्नेयमजमालभ-
तैन्द्रमृषभं तेन वै स तानग्निना पाप्मनो भोगानपिदह्यार्थैन्द्रेणेन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त ततो वै सो-
ऽभवदाग्नेयजमालभेतैन्द्रमृषभं बुभूषन् यः पाप्मगृहीत इव मन्येत पाप्मा वै स तं सप्तभिर्भोगैः
पर्यहन् पाप्मन एष भोगैः परिहतो योऽलं भूत्यै सन्न भवति यदाग्नेयोऽग्निनैव पाप्मनो भोगान-
पिदह्यार्थैन्द्रेणेन्द्रियं वीर्यमात्मन् धत्ते भवत्येव ॥ देवाश्च वा असुराश्चास्मिंल्लोक आसँस्तेऽसुरा देवा-
ननुदन्तास्माल्लोकात् ते देवाः प्रजापता एवानाथन्त स एता असृजतर्षभं च वशां च यमं च यम्यं
च तस्माद् यौ यमौ मिथुनौ जायेते ऋषभ एवान्यो भवति वशान्या स वैष्णुवारुणीं वशामाल-
भतैन्द्रमृषभं तेन वै स तान् वरुणेनासुरान् ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्राणुदतार्थैन्द्रेणेन्द्रियं वीर्य-
मात्मन्नदधादेषु ततो देवा अभवन् परासुरा अभवँस्ता एता एवमालभेत यो भ्रातृव्येन व्यायच्छेत
वैष्णुवारुणीं वशामैन्द्रमृषभं वरुणेनैव भ्रातृव्यं ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्रणुदतेऽथैन्द्रेणेन्द्रियं
वीर्यमात्मन् धत्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्योषधिभ्यो वेहतमालभेत प्रजाकाम ओषधीनां
वा एषा प्रिया ता एतां घ्नतोः परिधावन्ते तस्मादेषा सर्वेषां पशूनां प्रियाप ओषधय आपोऽसत्
खनन्ति ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रजां खनन्ति यावन्तस्तां वाशितामन्वाधावन्ति ते
दक्षिणा समृद्ध्या ऐन्द्रीं सूतवशामालभेत राजन्याय बुभूषत इन्द्रो वा एतस्या अजायत स पुनः
प्रत्यवैक्षत सोऽमन्यत यो वा इतोऽपरो जनिष्यते स मे भ्रातृव्यो भविष्यतीति तं प्रत्यवमृश्य
योनिं न्यवेष्टयत् तस्मादेषा नापरं सूत ऐन्द्रो राजन्यो देवतया स्वादेवैनं योनेर्जनयति भूत्यै भवत्येव
यस्तस्या अधिजायेत तमैन्द्रमालभेतेन्द्रियकाम इन्द्रियं वा एतदेतस्या अधिजायते तदेव समक्ष-
माप्त्वावरुन्द्धे ब्राह्मणस्पत्यमतिष्ठायमालभेत यः कामयेतातिष्ठायस्स्यामित्यग्रेवै जिह्वा ब्रह्मणस्पति-
स्सर्वमेपातितिष्ठति रूपेणैवैनं समर्धयति सैनमातिष्ठायं करोति ॥ ४ ॥ ९–१०

आग्नेयमजमालभेत सौम्यमृषभं यस्य पिता पितामहः पुण्यस्स्यादथ तन्न प्राप्नुयादग्निस्सर्वा
देवता मुखत एव देवता आलभत इन्द्रियेण वा एष सोमपीथेन व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः पुण्यो
भवत्यथ तन्न प्राप्नोति सौम्यो ब्राह्मणो देवतयेन्द्रियमस्य सोमपीथो यत् सौम्य इन्द्रियेणैवैनं सोम-
पीथेन समर्धयति द्यावापृथिव्यां धेनु पर्यारिणीमालभेत निरुद्धो ज्योङ्निरुद्धो द्यावापृथिव्योर्वा एष

[५] मै. २,५,५ (५)। तै. सं. २,१,५।

निर्ऋतो यो निरुद्धो ज्योगनिरुद्धो यद् द्यावापृथिव्या द्यावापृथिव्योरेवैनमाभजति पर्यारी वा एष यो निरुद्धो ज्योगनिरुद्धः पर्यारिण्यस्य देवता यत् पर्यारिणी स्व एवास्य तेन पशुरेतस्या एव वायव्यं वत्सं च आलभेत वायुर्वा अनयोर्वत्सस्स इमे आप्याययति स प्रदापयति तमेव भागधेये-नोपधावति सोऽस्मा इमे प्रदापयत्यैन्द्राग्नमेतमनुसृष्टमालभेत यस्य पिता पितामहस्सोमं न पिबेदथ स पिपासेदिन्द्रियेण वा एष सोमपीथेन व्यृध्यते यस्य पिता पितामहस्सोमं न पिबत्याग्नेयो ब्राह्मणो देवतयेन्द्रियमस्य सोमपीथो यदैन्द्राग्नस्स्वयैव देवतया सोमपीथमनुसंतनोत्यनुसृष्टो वा एतस्य सोमपीथो यस्य पिता पितामहस्सोमं न पिबति यदनुसृष्टस्स्व एवास्य तेन पशुर्यदेतौ द्विवत्यस्य तद्रूपं त्वाष्ट्रं शुण्ठमालभेत यः कामयेत रूपकाशो मे पुत्रो जायेतेति त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै रूपाणि विकरोत्याश्विनं कृष्णललाममालभेत भ्रातृव्यवान् देवा वा असुरानह्नोऽनुदन्त तेषां यत् स्वमासीद् यद्विसं यद्वेद्यं तेन रात्रीं समवायँस्ते देवा एतमाश्विनं कृष्ण-ललाममपश्यँस्तमालभन्त तेनैनान् रात्रीमन्ववायन् द्यावापृथिवी वा अश्विनौ तान् द्यावापृथिवीभ्या-मेवावस्तान्निबाध्यादित्येन परस्ताद्रात्र्या अनुदन्त तेषां यत् स्वमासीद् यद्विसं यद्वेद्यं तदवृञ्जत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् द्यावापृथिवी वा अश्विनौ द्यावापृथिवीभ्यामेवावस्ताद् भ्रातृव्यं निबा-ध्यादित्येन परस्तादहोरात्रयोः प्रणुदते तस्य यत् स्वं यद्विसं यद्वेद्यं तद् वृङ्क्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति॥ यल्ललामोऽह्नस्तद्रूपं यत् कृष्णो रात्र्यास्तदुभयोरेवैनं वर्णयोः प्रणुदत इन्द्रो वै विलि-स्तेङ्गां दानवीमकामयत सोऽसुरेष्वचरत् स्त्र्येव स्त्रीष्वभवत् पुमान् पुंसु स निर्ऋतिगृहीत इवामन्यत स एतमैन्द्रानैर्ऋतं त्रिपुँसकमपश्यत्तेन रूपेणाचरत् तमालभत तस्य यदनवदानीयमासीत् तेन पूर्वेण प्राचरद्दक्षिणा परेत्य स्वकृत इरिणे जुशाणा निर्ऋतिर्वेत् स्वाहेत्यथेतरं पुनरेत्यैन्द्रं समस्थापयत् स निर्ऋतिमेव पूर्वां निरवदायाथैन्द्रेणेन्द्रियं वीर्यमात्मन्नधत्त ततो वै सोऽभवदैन्द्रानैर्ऋतं त्रिपुँसकमाल-भेत बुभूषन् यो निर्ऋतिगृहीत इव मन्येत तस्य यदनवदानीयँ स्यात् तेन पूर्वेण प्रचरेद्दक्षिणा परेत्य स्वकृत इरिणे जुशाणा निर्ऋतिर्वेत् स्वाहेत्यथेतरं पुनरेत्यैन्द्रं संस्थापयेन्निर्ऋतिमेव पूर्वां निरव-दायाथैन्द्रेणेन्द्रियं वीर्यमात्मन् धत्ते भवत्यैवैन्द्रं विशालमृषभमालभेत संग्रामे यः कामयेतायँ संग्रामो न विजयेतेतीन्द्रो वै संग्रामस्य विनेतेन्द्रो विजापयिता तमेव भागधेयेनोपधावति स एनान् विनयति यद्विशालो वियतां तद्रूपमिन्द्राय वियनाय विशालमृषभमालभेत जनतयोस्संयर्षे यः कामयेतोभे जनते ऋच्छेयमित्युभे एव जनते ऋच्छति ते अन्यान्यां प्रती चरतो यद्विशाल आक्रस्कमेवैने गम-यति ॥५॥ ११-१२

आग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेतानाज्ञातयक्ष्मगृहीतोऽनाज्ञातयक्ष्मा वा एतां विन्दो या स्त्री सत्य-

[६] मै. २,५,४ (४) । तै. सं. २,१,५।

नड्वाही तस्मादेनामनाज्ञातयक्ष्मगृहीत आलभेताग्निस्सर्वा देवता यदेवास्य देवताभिर्निषितं तदग्निना मुञ्चति यद्वरुणगृहीतं तद्वरुणेन यद्वाहिनी तेनाग्नेयी यत् स्त्री सती दान्ता तेन वारुणी तस्मादाग्नि-वारुणी भवति त्वाष्ट्रमँसेपादमालभेत पशुकामो मिथुनो वा एष योँऽसेपात्त्वष्टा मिथुनस्य प्रजनयिता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मा एतस्मान्मिथुनात् पशुन् प्रजनयति वारुणँ श्यामशितिकण्ठमा-लभेत यं ज्येमानं यक्ष्मो गृह्णीयाद् रुणो वा एतं गृह्णाति यं ज्येमानं यक्ष्मो गृह्णाति यद् वारुणो वरुणादेवैनं मुञ्चति पाप्मनैष गृहीतो य आमयावी श्याम इव पाप्मा यच्छ्यामः पाप्मानमेवापहते यच्छितिकण्ठो वरुणपाशमेव तेन प्रमुञ्चत आश्विनं धूम्रललाममालभेत यो दुर्ब्राह्मणँ सोमं पिपास-िपेदश्विनौ वै देवानामसोमपा आस्तां तौ पश्चात् सोमपीथं प्राप्नुतामश्विना एतस्य देवता यः पश्चात् सोमपस्ता एव भागधेयेनोपधावति ता एनँ सोमपीथाय परिणयतस्तायदिव यजेत स्तायदिव हि दुर्ब्राह्मणो ब्राह्मणो बुभूषति धूम्र इव वा एष यो दुर्ब्राह्मणो यद्धूम्रो धूम्रिमाणमेवापहते यल्ललामो मुखत एव तेन तेजो धत्ते सारस्वतीं धेनुष्टरीमालभेत यं भ्रातृव्या नीव श्वासयेरन् वाचा वा एत एतं निश्वासयन्ते वाक् सरस्वती यत् सारस्वती वाचैवैषां वाचं प्रतिशृणाति ॥ धेनुर्वा एषा सती न दुहे तस्माद्धेनुष्टर्युच्यते यद्धेनुष्टरी वाचमेवैषाँ स्तरीकरोति सारस्वतीं धेनुष्टरीमालभेत यमज-न्निवाँसमभिशँसेयुरशान्ता वा एतं वागृच्छति यमजन्निवाँसमभिशँसन्ति वाक् सरस्वती यत् सारस्वती वाचैवैषां वाचँ शमयति धेनुर्वा एषा सती न दुहे तस्माद्धेनुष्टर्युच्यते यद्धेनुष्टरी वाचमेवैषाँ स्तरी-करोति सावित्रं पुनरुत्सृष्टमालभेत यः पुरा पुण्यो भूत्वा पश्चात् पापीयान् स्याद्यया वा एष देवतया पुरा पुण्यो भवति सा हि वा एतमनुसृजत्यथैष पापीयान् भवति सविता श्रियः प्रसविता तमेव भागधेयेनोपधावति स एनं पुनश्श्रियै प्रसुवति पापो वा एष पुरा भूत्वा पश्चाच्छ्रियं प्राप्नोति योऽन-ड्वान् भूत्वोक्षा भवति यथैव स श्रियं प्राप्नोत्येवमेनँ श्रियं प्रापयति ॥६॥ १३-१४

त्रीँल्ललामानृषभान् वसन्तालभेत त्रीञ्छितिककुदो ग्रीष्मे त्रीञ्छितिभसदश्शरदि यल्ललामा मुखत एव तेन तेजो धत्ते यच्छितिककुदो मध्यत एव तेन रुचं धत्ते यच्छितिभसद उपरिष्टादेव तेन ब्रह्मवर्चसं धत्ते संवत्सरं पर्यालभ्यन्ते वीर्यं वै संवत्सरस्संवत्सरमेव वीर्यमाप्नोति नव भवंति नव प्राणाः प्राणानेवा-त्मन् धत्त ऐन्द्रास्स्युर्बुभूषन् यजेतासौ वा आदित्य इन्द्रस्स एतैरभवत् स एतैस्तेजो वीर्यमात्मन्नधत्त भवत्येव तेजो वीर्यमात्मन् धत्ते य एवं विद्वानेतैर्यजते प्राजापत्यँ सर्वरूपं दशममालभेत संवत्सरे पर्यंते संवत्सरस्याप्त्यै प्रजापतिर्योनिर्योना एव प्रतितिष्ठति ॥ सर्वरूपो भवति सर्वस्याप्त्यै सर्व-स्यावरुद्ध्यै दश भवन्ति दश प्राणाः प्राणा वीर्यं वीर्य एव प्रतितिष्ठति द्यावापृथिव्ये धेनू

[७] मै. २,५,४:७ (४,६) । तै. सं. २,१,५,७–८ ।

संमातरा आलभेतान्नकामो द्यावापृथिवी वा अन्नाद्यस्येशाते अमुतो वर्षत्यस्यां प्रतितिष्ठत्येते अन्नाद्यस्य प्रदात्री ते एव भागधेयेनोपधावति ते अस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छतस्संमातरौ भवत-स्संमातरा इव हीमे एतयोरेव वायव्यं वत्सं च आलभेत वायुर्वा अनयोर्वत्सस्स इमे आप्या-ययति स प्रदापयति तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मा इमे प्रदापयति बार्हस्पत्यँ शिति-पृष्ठमालभेत ब्रह्मवर्चसकामो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता तमेव भागधेयेनो-पधावति सोऽस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छति ॥ पृष्ठमिव वा एष भवति यो भवति यच्छितिपृष्ठः पृष्ठमेवैनं करोत्याश्विनं कृष्णललाममालभेतानुजावरोऽश्विनौ वै देवानामानुजावरौ ता अग्रं पर्यैताम-श्विना एतस्य देवता य आनुजावरस्ता एवान्वारभते ता एनमग्रं परिणयतः पाप्मनैष गृहीतो य आनुजावरः कृष्ण इव पाप्मा यद् कृष्णः पाप्मानमेवापहते यल्ललामो मुखत एव तेन तेजो धत्त आश्विनं कृष्णललाममालभेतामयाव्यश्विनौ वै देवानां भिषजा अश्विना एतस्य देवता य आम-यावी ता एव भागधेयेनोपधावति ता एनं भिषज्यतः पाप्मनैष गृहीतो य आमयावी कृष्ण इव पाप्मा यद् कृष्णः पाप्मानमेवापहते यल्ललामो मुखत एव तेन तेजो धत्ते ॥ त्वाष्ट्रं त्रिपुँसक-मालभेत प्रजाकामो वा पशुकामो वा प्रजापतिर्वै प्रजास्सिसृक्षमाणस्स द्वितीयं मिथुनं नाविन्दत स एतद्रूपं कृत्वाङ्गुष्ठेनात्मानँ समभवत् ततः प्रजा असृजत त्वष्टा मिथुनस्य प्रजनयिता तमेव भाग-धेयेनोपधावति सोऽस्मा एतस्मान्मिथुनात् पशून् प्रजनयत्येतेन वै रूपेण प्रजापतिः प्रजा असृजत येनैव रूपेण प्रजापतिः प्रजा असृजत तस्मादेव रूपात् प्रजया च पशुभिश्च प्रजायत ऐन्द्रं त्रिपुँसक-मालभेत यः षण्ढकल्वाटिर्भीषादिन्द्रो वा एतां त्वचमेतं पाप्मानमपाहत तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मात् तां त्वचं तं पाप्मानमपहन्त्यृषभो दक्षिणा वीर्यं वा ऋषभो वीर्यमेवास्मिन् दधाति॥७॥ १५-१८

छन्दाँसि वै यज्ञमभ्यमन्यन्त स वषट्कारोऽभ्यद्य गायत्र्याश्शिरोऽच्छिनत् ततो यो रसो-ऽस्रवत् सा वशाभवद्यत्प्रथममस्रवत् तद्वशाया वशात्वं यत् प्रथममस्रवल्लोहितं वाव तदस्रवत् तद्बृहस्प-तिरभ्यगृह्णात् सा या रोहिणी साभवत् तस्मात् सा बार्हस्पत्या यद् द्वितीयमस्रवत् तन्मित्रावरुणा उपागृह्णीतां सा या द्विरूपा साभवत् तस्मात् सा मैत्रावरुणी यत् तृतीयमस्रवत् तद्विश्वे देवा उपा-गृह्णन् सा या बहुरूपा साभवत् तस्मात् सा वैश्वदेवी ॥ यदुदौक्षत तद्बृहस्पतिरभ्यगृह्णात् स उक्षा-भवत् तदुक्ष्ण उक्षत्वं यदन्यमुच्यत तानीमान्यन्यानि रूपाणि बार्हस्पत्यां रोहिणीमालभेत ब्रह्मवर्चस-कामो रसेन वा एष व्यृध्यते योऽलं ब्रह्मवर्चसाय सन् ब्रह्मवर्चसी भवति च्छन्दसामेष रसो ब्रह्म बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मिंस्तेजो रसं दधाति ब्रह्मवर्चसी भवति मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत वृष्टिकामो-

[८] मै. २,५,७ (९) । तै. सं. २,१,७–८ ।

ऽहोरात्रे वै मित्रावरुणा अहोरात्रे पर्जन्योऽनुवर्षति नक्तं वा हि दिवा वर्षत्येतौ वर्षस्येशाते ता एव भागधेयेनोपधावति ता अस्मै प्रीतौ वृष्टिं निनयतो मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत प्रजाकामोऽहोरात्रे वै मित्रावरुणा अहोरात्रे प्रजा अनुप्रजायन्ते नक्तं वा हि दिवा वा प्रजायन्तेऽहोरात्रे एवैना अनुप्रजन-यति ॥ वैश्वदेवीं बहुरूपामालभेत कामेभ्यः कामा वै विश्वे देवास्तानेव भागधेयेनोपधावति तेऽस्मै स सर्वान् कामान् प्रयच्छन्ति बार्हस्पत्यमुक्षाणमालभेत बुभूषन् रसेन वा एष व्यृध्यते योऽलं भूत्यै सन्न भवति च्छन्दसामेष रसो ब्रह्म बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवास्मिन् भूतिं रसं दधाति भवत्येव सौरीं श्वेतामाल-भेत रुक्कामोऽसौ वा आदित्यो रुचः प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै रुचं प्रयच्छति ब्राह्म-णस्पत्यां बभ्रूमभिचरन्नालभेत ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मणैवैनमाभिप्रयुङ्क्त एतद्वै ब्रह्मणो रूपं यद्बभ्रू रूपेणैवैनत्सँश्यति ॥८॥ १९-२१

धाता रातिस्सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्वरुणो मित्रो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणा यजमानाय द्रविणं दधात ॥ २२

आवर्तय निवर्तया वर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।

इन्द्र नन्दबल भूम्याश्चतस्रस्स्रक्त्यस्ताभ्यस्त्वा वर्तयामसि ॥ २३

वि ते भिनद्मि तकरिं वि योनिं वि परीणहम् ।

वि मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायु च ॥ २४

बहिष्टे अस्तु बालिति पुरुदस्मवद् विश्वरूपमिन्दुः पवमानो गर्भमानञ्ज धीरः ।

एकपादं द्विपादं त्रिपादं चतुष्पादं भुवनानुप्रथन्ताम् ॥ २५

गर्भो यस्ते यज्ञियो योनिर्यस्ते हिरण्ययः । अङ्गान्यह्रुता यस्य तं देवास्समचीक्लृपन्॥२६

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ २७

नमो महिम्न उत चक्षुषे ते मरुतां पितरुत तद्गृणीमः ।

हुतो याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ २८

देवानामेष उपनाह आसीदपां पतिरोषधीनाम् ।

सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा बृहन्नद्रिरभवद्यत् तदासीत् ॥ २९

[९] मै. २,५,१०; १,३,३८; २,७,१६; ४,१०,३; ११,१ (१३—१६; १०७; १२५; ६४; ३१) तै. सं. ३,१,९, १०। वा. ८,१७,२९-३०,३१; १३,३१ । काण्व. ९,१६; २८-२९,३१, १४,३४ । [धाता रातिस्सवितेदं०। अथर्व. ७,१७,४ । मही द्यौः पृथिवी० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,३ । हुतो (सृता) याहि (०त) पथिभिर्देवयानैः । ऋ. ७,३८,८; अथर्व. ९,४,३ । तै. सं. १,७,८,२; ४,७,१२,१ । ओषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः । ऋ. १०, १६,३, अथर्व. १८.२, ७; तै. सं. ४,६,३,३ । देवानामेष (०नां भाग) .. आसीत् (च्छरीरम्)। अथर्व. ९,४,५]

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
गर्भो जरायुः प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा मस्तु घृतमस्य योनिः ॥ ३०
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥९॥ ३१

यदाष्टापद्यभूदित्यनुबुध्येत धाता रातिस्सवितेदं जुषन्तामिति स्रुवणाहवनीय उद्द्रुयादवनाम्य
एवैनाम्निवेदयत्यावर्तय निवर्तयेतीन्द्रमेव दिग्भ्य आवर्तयति प्रायश्चित्त्यै त्रि ते भिनद्मि तकरीमिति
प्रैव जनयत्यन्तरा श्रोणी निघ्नन्ति प्रजननाय पुरुदस्मवदिति पात्रमुपदधात्यस्कन्दायैकपाद् द्विपाद्
मिति प्रथयत्येव यदवद्येदवदानान्यतिरेचयेद्यन्नावद्येन् पशोरालब्धस्य नावद्येदानिमात्र्छेत् पुरस्ता-
दन्यद्बाभ्या अवद्येत् पश्चादन्यत् पुरस्ताद्धि नाभ्याः प्राणः पश्चादपान एतावान् वै पशुर्यावानेव
पशुस्तस्यावद्यत्यच्छम्बट्कारं यद्रसमवदानेषु व्यानयति तेनैव सर्वेषामङ्गानामवत्तं भवत्यष्टापृड्
हिरण्यं दक्षिणाष्टापदी वा एषात्मा नवमोऽष्टापृडमेतत्रेमिर्नवमः पशोरास्यै तृतीयेऽन्तरकोश उष्णी-
षेणावेष्टितं भवति विबिलानिव कोशान् कुर्यादेवमेव हि पशुर्लोम चर्म माँसमस्थि मज्जा पशुमेवाप्नोति
तद्विष्णवे शिपिविष्टाय जुहोति यो वै पशूनां भूमा यदतिरिक्तं तद्विष्णोश्शिपिविष्टमतिरिक्तं वा
एतदतिरिक्तँ शिपिविष्टमतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोत्यथो अतिरिक्त एवातिरिक्तं दधाति ॥ गर्भो यस्त
यज्ञिय इति यज्ञियमेवैनं करोति योनिर्यस्ते हिरण्यय इति हिरण्ययमेवैनं करोत्यङ्गान्यहुता यस्य ते
देवास्समचीक्लृपन्निति समेवैनं कल्पयति मही द्यौः पृथिवी च न इति पशुश्रपण उपवपत्यनयोर्वा
एष गर्भोऽनयोरेवैनं प्रतिष्ठापयति नमो महिम्न उत चक्षुषे त इति व्यृद्धेन वा एष पशुना चरति
यस्यैतानि न क्रियन्ते यदेतानि करोति सर्वमेवैनँ सवीर्यँ सयोनिं सतनूमृद्ध्यै संभरति ॥१०॥
३२-३३

आ वायो भूष शुचिपा उप नस्सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ ३४

आकूत्यै त्वा कामाय त्वा समृधे त्वा किक्किटा ते मनः प्रजापतये स्वाहा किक्किटा ते चक्षुस्सू-
र्याय स्वाहा किक्किटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा किक्किटा ते वाचँ सरस्वत्यै स्वाहा किक्किटा ते
प्राणं वाताय स्वाहा ॥ ३५

[पिता वत्सानां०...योनिः (रेत) । अथर्व. ९,४,४ । द्रप्सश्चस्कन्द०...होत्राः ऋ. १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८]

[१०] तै. सं. ३,४,१ । (नवमानुवाके द्रष्टव्यम्) ।

[११] मै. १,३,६ (१०) । तै. सं. ३,४,२ । वा. ७,७, । काण्व. ७,६ । [आ वायो भूष शुचिपा० । ऋ. ७,९२, १; तै. सं. १,४,४,१; ३,४,२,१]

वशासि वशिनी सकृद्यत्ते मनसा गर्भमाशयत् ।
वशा त्वं वशिनी गच्छ देवान् सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३६

अजासि रयिष्ठाः पृथिव्याँ सीद । ऊर्ध्वान्तरिक्षमुपतिष्ठस्व दिवि ते बृहद्भास्स्वाहा ॥ ३७

तन्तुं तन्वं रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयसि जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥ ३८

तपसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णो गात्राणां ते गात्रभाग्भूयासँ सूर्यो दिवो दिविषद्भ्यो धाता क्षत्रस्य
वायुः प्रजानां बृहस्पतिस्त्वा प्रजापतये ज्योतिष्मते ज्योतिष्मतीं जुहोतु स्वाहा ॥११॥ ३९

इमे वै सहास्तां ते वायुर्व्यवात् ते गर्भमदधातां ततोऽजा वशाजायत तामग्निरग्रसत तां प्रजा-
पतिरेतेन पुरोडाशेन निरक्रीणाद्यदाग्नेयः पुरोडाशो भवति निष्क्रीत्यै यद्वायुर्व्यवात् तस्माद्वायव्या यद्
द्यावापृथिवी गर्भमदधातां तस्माद् द्यावापृथिव्येमे वै सहास्तां ते यथा वेणू संधाय्येते एवँ समधा-
य्येताँ सा या वागासीत् साजा वशाभवत् तस्मात् सारस्वती भवत्यसौ वा आदित्य इमे अभ्यक्र-
न्दत् ते गर्भमदधातां ततोऽजा वशाजायत तस्मात् सौरी भवति वायव्यामालभेत बुभूषन् क्षिप्रा
देवताजिरं भूतिमुपैति द्यावापृथिव्यामालभेत कृषिमवस्यत् प्रतिष्ठा वा एतस्मा एष्टव्या यः कृषिम-
वस्यति यद् द्यावापृथिव्या द्यावापृथिव्योरेव प्रतितिष्ठति वर्षुकोऽस्मै पर्जन्यो भवति तामेतां कण्वा-
स्सौश्रवसा विदुस्सारस्वतीमालभेत यस्माद्वागपक्रामेद्वाग्वै सरस्वती सरस्वत्येतस्मादपक्रामति यस्मा-
द्वागपक्रामति यत् सारस्वती वाचमेवावरुन्द्धे तामेतां गर्भाः प्रावरेया विदुस्सौरीमालभेत रुक्कामो-
ऽसौ वा आदित्यो रुचः प्रदाता सोऽस्मै रुचं प्रयच्छति तामेतां यस्का गैरिक्षिता विदुराग्नेन्द्रीमा-
लभेत पुरोधाकाम आग्नेयो वै ब्राह्मण ऐन्द्रो राजन्यो ब्रह्म चैव क्षत्रं च सयुजौ करोति तामेतां कापेया
विदुरग्नीषोमीयामालभेतान्नकामोऽग्निर्वै देवानामन्नादस्सोमोऽन्नमग्निनैवान्नमत्ति सोमेनावरुन्द्धे ताम-
तामारुणयो विदुरा वायो भूष शुचिपा उपा न इति य एव प्राजनयत् तस्मादेनामध्यवरुन्द्ध आकूत्यै
त्वेत्याकूत्यै ह्येषालभ्यते कामाय त्वेति कामाय ह्येषालभ्यते समृधे त्वेति समृधे ह्येषालभ्यते किक्किटा
ते मनः प्रजापतये स्वाहेति प्रजापतिमेवास्या मनो गमयति किक्किटा ते चक्षुस्सूर्याय स्वाहेति सूर्य-
मेवास्याश्चक्षुर्गमयति किक्किटा ते श्रोत्रं द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहेति द्यावापृथिवी एवास्याश्श्रोत्रं गमयति
किक्किटा ते वाचँ सरस्वत्यै स्वाहेति सरस्वतीमेवास्या वाचं गमयति किक्किटा ते प्राणं वाताय
स्वाहेति वातमेवास्याः प्राणं गमयति ॥ किक्किटा त इति जुहोति तस्मात् किक्किटाकारं ग्राम्याः

[१२] तै. सं. ३,४,३ ।

पशव उपतिष्ठन्ते किक्किटाकाराद्दारण्याः प्रत्रसन्ति पञ्चैतानि जुहोति पाङ्क्ताः पशवो यावानेव
पशुस्तँ स्वर्गं लोकं गमयति वशासि वशिनीत्याशिषमेवाशास्ते सकृद्यत्ते मनसा गर्भमाशयदिति प्रैव
जनयत्यजासि रयिष्ठाः पृथिव्याँ सीदेतीमानेवैनांल्लोकानामयत्यूर्ध्वान्तरिक्षमुपतिष्ठस्व दिवि ते बृह-
द्भास्स्वाहेति स्वर्गमेवैनांल्लोकान् गमयति तन्तुं तन्वं रजसो भानुमन्विहीत्याशिषमेवाशास्ते ज्योति-
ष्मतः पथो रक्ष धिया कृतानिति रक्षसामपहत्या अनुल्बणं वयसि जोगुवामप इत्यनुल्बणमेवैनां
तनुते मनुर्भव जनया दैव्यं जनमिति प्रैव जनयति तपसो हविरसि प्रजापतेर्वर्णो गात्राणां ते गात्र-
भाग्भूयासमित्याशिषमेवाशास्ते ॥ यदप्सु प्रवपति व्यृद्धिस्सा यदग्नौ जुहोति स्वगाकृतिस्सा यन्मेध
आलभते व्यृद्धा तेनाप्रजातेव तर्हि वीध्रसमृद्धा वा एषा वीध्र एवैतया यजेत त्रयाणां चाविपावरुद्धा
संवत्सरसदो गृहमेधिनस्सहस्रयाजिनस्त एवैतया यजेरन् सूर्यो देवो दिविषद्भ्यो धाता क्षत्रस्य वायुः
प्रजानां बृहस्पतिस्त्वा प्रजापतये ज्योतिष्मते ज्योतिष्मतीं जुहोतु स्वाहेति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनां
प्रजापतये ज्योतिष्मते ज्योतिष्मतीं जुहोति ॥१२॥ ४०-४२

अग्निर्वै जातो न व्यरोचत सोऽकामयत तेजस्वी स्यामिति सोऽग्नये तेजस्विनेऽजं कृष्णग्रीवमा-
लभत ततो वै स तेजस्व्यभवत् सोऽकामयत सर्वत्र विभवेयमिति सोऽग्नये विभुमतेऽजं कृष्णग्रीव-
मालभत ततो वै स सर्वत्र व्यभवत् सोऽकामयत सर्वत्रापिभागस्स्यामिति सोऽग्नये भागिनेऽजं
कृष्णग्रीवमालभत ततो वै स सर्वत्रापिभागोऽभवद्यः कामयेत तेजस्वी स्याँ सर्वत्र विभवेयँ सर्वत्रा-
पिभागस्स्यामिति स एतानाग्नेयानजान् कृष्णग्रीवानालभेत तेजस्व्येव भवति सर्वत्र विभवति सर्व- ४३
त्रापिभागो भवति ॥१३॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं पुनातु वाचस्पतिर्वाचमद्य स्वदाति नः ॥ ४४
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवस्सविता धर्म साविषत् ॥ ४५
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिषु । अश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४६
वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा गन्धर्वास्सप्तविंशतिः ।
ते अग्रे अश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिञ्जवमादधुः ॥ ४७

[१४] मै. १,११,१-२ (१—१४) । वा. ९,१,५—१०,१३-१८; ११,७; ३०,१; १८,३०; २२,१०—११ । [वाजस्य नु प्रसवे० । माध्य० काण्व. १०,१,७-१०, १४,१८-२४; २०,१; १२,७; ३४,१; २३,१०-१२ । वाजस्य नु प्रसवे० । ऋ. १,७३,१९; अथर्व. १,४,४; तै. सं. १,७,७,१; ७,३,४ । अप्स्वन्तरमृतमप्सु० । ऋ. १,२३,१९; अथर्व. १,४,४; तै. सं. १,७,७,१]

अपां नपादाशुहेमन्य ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुद्मान् । वाजसास्तेन वाजँ सेषम् ॥ ४८

देवस्य सवितुः प्रसवे सत्यसवस्य वर्षिष्ठं नाकं रुहेयं देवस्य वयँ सवितुः प्रसवे सत्यसवनस्य
बृहस्पतेर्वाजिनो वाजजितो वाजं जेष्म ॥ वाजं वाजिनो जयताध्वनस्स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः
काष्ठां गच्छत ॥ ४९-५०

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवस्स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षाँसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ ५१
वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ५२
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धना समिथेषु जभ्रिरे ॥ ५३
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवासु बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनुसँसनिष्यदत् पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ५४
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णस्सहोर्जा तरित्रतः ॥१४॥ ५५
त्वमिमा ओषधीस्सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ५६
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैस्सुमना अहेडन् राजन् सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ५७
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीस्संपिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्याँ सदनं पुरुक्षोः ॥ ५८

[शं नो भवन्तु० । ऋ. ७,३८,७; तै. सं. १,७,८,२; नि. १२,४४ । वाजे वाजेऽवत वाजिनो० । ऋ. ७,३८,८; तै. सं. १,७,८,२; ४,७,१२,१ । ते नो अर्वन्तो० । ऋ. १०,६४,६; तै. सं. १,७,८,२ । एष (उत) स्य वाजी० । ऋ. ४,४०,४; तै. सं. १,७,८,३; नि. २,२८ । उत स्मास्य द्रवत० । ऋ. ४,४०,३; तै. सं. १,७,८,३]

[१५] मै. ४,१४,१; १०,३; १२,१,६; ११,१; १३,५, १४,८; ९,१८; २,१३,२३ (४-५; ७६; १४९; ९; ३९; १०४; ८४; २३; २१६; ११७) । तै. सं. ५,७,२ । वा. ३४,२२, ७,३२, १९,५०, २७,४५ । काण्व. ३३,१३; ७,३२, २१,४९ । त्वमिमा ओषधीस्सोम० । ऋ. १,९१,२२; तै. ब्रा. २,८,३,१ । या ते धामानि दिवि० । ऋ. १,९१,४, तै. सं. २,३,१४,१; तै. ब्रा. २,८,३,२ । सदा सुगः पितुमाँ० । ऋ. ३,५४,२१]

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक् संमिमीहि श्रवांसि ।
विश्वां अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥ ५९
आ यं ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ६०
सुकर्माणस्सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ ६१
इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ ६२
शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ ६३
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥ ६४
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ६५
मही द्यौष्पृथिवी भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे ।
सुपेशसा द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ६६
शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे ।
शतं यो नश्शरदोऽनयदिन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ६७
इमे चत्वारो रजसो विमाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति पन्थानः ।
तेषामज्यानिं यतमो न आवहात् तस्मै नो देवाः परिदत्त सर्वे ॥ ६८
वसन्तो ग्रीष्मो मधुमन्ति वर्षाश्शरद्धेमन्तस्सुविते दधात ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहतास्स्याम ॥ ६९
संवत्सराय परिवत्सरायेदावत्सरायानुवत्सरायोद्वत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां निवात एषामभये स्याम ॥ ७०
इयं स्वस्तिस्संवत्सरीया परिवत्सरीयेदावत्सरीयानुवत्सरीयोद्वत्सरीया ।
सा नः पिपर्त्वहृणीयमानेनाह्नेदमहरशीय स्वाहा ॥ ७१

[स्वदस्व हव्या समिषो० । ऋ. ३,५४,२२ । आ यं ये अग्निमिन्धते० । ऋ. ८,४५,१; सा. १३३,१३३८; तै. ब्रा. २,४,५,७; नि. ६,१४ । सुकर्माणस्सुरुचो० । ऋ. ४,२,१७; अथर्व. १८,३,२२ । इयं वामस्य मन्मन० । ऋ. ७,९४,१; सा. ९१६ । शुचिं नु स्तोमं० । ऋ. ७,९३,१; तै. सं. १,१४,१; तै. ब्रा. २,४,८,३ । विश्वे देवा ऋतावृध० । ऋ. ६,५२,१० । तै. सं. २,४,१४,५ । ये के च ज्मा महिनो० । ऋ. ६,५२,१५ । तेषां (वयं) वयं सुमतौ यज्ञियानां (०पद्य) ० । ऋ. ६,४७,१३; १०,१३१,७; अथर्व. ७,९२,१; २०,१२५,७; तै. सं. १,७,१३,५; नि. ६,७]

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥ ७२
अग्निः प्राश्नातु प्रथमस्स हि वेद यथा हविः । शिवा अस्मभ्यमोषधीः करोतु विश्वचर्षणिः ॥ ७३
भद्रान्नश्श्रेयस्समनैष्ट देवास्त्वयावसेन समशीमहि त्वा ।
स नः पितो मधुमाँ आविशेह शिवस्तोकाय तन्वे न एधि ॥ ७४
एतमु त्यं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्या अधि मनावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिश्शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतस्सुदानवः ॥१५॥ ७५
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ ७६
एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
संजानते मनसा संचिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥ ७७
ओषधीरिति मातरः ॥ ७८
या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ ७९
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावस्सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावस्स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ८०
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य विचरन्ति यज्वनः ॥ ८१
रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः । विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ ८२
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः । रात्रि स्तोमं न जिग्युषी ॥ ८३

[आ नः प्रजां जनयतु० । ऋ. १०,८५,४३]
[१६] वा. ३६,१२; १२,७५,७८; ७,४१-४२; ८,४१; ३३,३१; १३,४६; ३४,८,१०, ११,६३ । काण्व. ३६,११; १३,७६,७९; ८,२३—२४; ९,६—७; ३२,३१; १४,४८; ३३,३—४; १२,६५ । [शं नो देवीरभिष्टय० । ऋ. १०,९,४; सा. ३३; अथर्व. १,६,१; तै. ब्रा. १,२,१,१; २,५,८,५; तै. आ. ४,४२,४ । एवेद्यूने युवतयो० । ऋ. १०,३०,६ । ओषधीरिति मातरः० । ऋ. १०,९७,४; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ६,३ । या ओषधीः पूर्वा जाता० । ऋ. १०,९७,१; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ९,२८ । गावो भगो गाव इन्द्रो० । ऋ. ६,२८,५; अथर्व. ४,२१,५; तै. ब्रा. २,८,८,१२ । न ता अर्वा रेणुककाटो० । ऋ. ६,२८,४; अथर्व. ४,२१,४; तै. ब्रा. २,४,६,९ । रात्री व्यख्यदायती० । ऋ. १०,१२७,१; तै. ब्रा. २,४,६,१० । उप ते गा इवाकरं० । ऋ. १०,१२७,८; तै. ब्रा. २,४,६,१०]

उदु त्यं चित्रं देवानाम् ॥ ८४
अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
इषे तोकाय नो दधः प्र ण आयूंषि तारिषः ॥ ८५
यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेन त्वं सुमतिं देव्यस्मे इषं पिन्व विश्ववारं सुवीरम् ॥ ८६
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नस्सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपस्सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ८७
यास्ते राके सुमतयस्सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ८८
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ८९
या सुबाहुस्स्वङ्गुरिस्सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविस्सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ९०
कुहूमहं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।
या नो ददाति श्रवणं पितॄणां तस्यै ते देवि हविषा विधेम ॥ ९१
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषश्शृणोतु ।
स्वसा देवानां महयन्त्यस्मै रायस्पोषं चिकितुषे दधातु ॥ ९२
धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन वावनत् ॥ ९३
प्रजापती रमयतु प्रजा इह धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सर ऋतुभिश्चाक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥१६॥ ९४

[९३८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां पशुबन्धो नाम त्रयोदशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१३॥

[उदु त्यं० । (९८ इति द्रष्टव्यम्) । चित्रं देवानाम्० । ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; तै. आ. ३,९; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६ । अन्विदनुमते त्वं० । ऋ. खि. ३,४; अथर्व. ७,२०,२ । यत् ते नाम सुहवं० । अथर्व. ७,२०,४ । राकामहं सुहवां० । ऋ. २,३२,४; अथर्व. ७,४८,१; तै. सं. ३,३,११,५; नि. ११,३१ । यास्ते राके सुमतयः० । ऋ. २,३२,५; अथर्व. ७,४८,२; तै. सं. ३,३,११,५ । सिनीवालि पृथुष्टुके० । ऋ. २,३२,६; अथर्व. ७,४६,१; तै. सं. ३,१,११,३; नि. ११,३२ । या सुबाहुस्स्वङ्गुरि० । ऋ. २,३२,७; अथर्व. ७,४६,२; तै. सं. ३,१,११, ४; ३,१,११,४ । कुहूमहं सुकृतं (सुवृतं) ० । ऋ. खि. ३,१; अथर्व. ७,४७,१; तै. सं. ३,३,११,५ । कुहूर्देवानाममृतस्य० । ऋ. खि. ३,२; अथर्व. ७,४७,२; तै. सं. ३,३,११,५ । धाता दधातु नो रयिं० । ऋ. खि. ३,५; अथर्व. ७,१७,१—२; तै. सं. ३,३,११,३]

अथ चतुर्दशं स्थानकम् ।

वाजपेयम् ।

इन्द्राय वाचं वदतेन्द्राय वाचं संवदतेन्द्रं वाजं जापयतेन्द्र वाजं जय ॥ १
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादा मा द्यावापृथिवी विश्वरूपे ।
आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ २
एषा वस्सा सत्या संवागभूद्यामिन्द्रेण समदध्वम् ।
अजीजपत वनस्पतय इन्द्रं वाजं विमुच्यध्वम् ॥ ३
वाजिनो वाजजितो वाजं जित्वा बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत वाजिनो वाजजितो वाजं जिगीवांसो
बृहस्पतेर्भागे निमृजतां पत्नी३ स्वो रोहावेहि स्वो रोहावेहि स्वो रोहाव स्वो रोहाव स्वो रोहाव
स्वो रोहावायुर्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं
यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां
यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्वर्देवा अगन्म प्रजापतेः प्रजा अभूवन्नमृता अभूम वाजाय स्वाहा प्रसवाय
स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वाक्पतये स्वाहा वसवे स्वाहा स्वर्मूर्ध्ने स्वाहा मूर्ध्ने वैयश-
नाय स्वाहा व्यश्नुवन आन्त्याय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा प्रजापतये
स्वाहाधिपतये स्वाहान्नाय त्वा वाजाय त्वा वाजजित्यै त्वा ॥१॥ ४
वाजस्य नु प्रसवस्सुषुवेऽग्रे सोमो राजौषधीष्वप्सु ।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ॥ ५
वाजस्येदं प्रसव आबभूवेमा विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
अदित्सन्तं दापयति प्रजानन् सोमो रयिं सहवीरं नियंसत् ॥ ६
वाजस्य नु प्रसवश्शिश्रिये देवीमा विश्वा भुवनानि सम्राट् ।
स विराजा पर्येति प्रजानन् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे ॥ ७
सोमं राजानमवस इन्द्रं दानाय चोदय । विष्णुं वाचं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ८
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः । प्र वाग्देवी ददातु नः ॥ ९

---

[१] मै. १,११,३ (१६) । वा. ९,११—१२,१९—२१ । काण्व. १०,१५—१७,२५—२८ ।
[२] मै. १,११,४ (१७—२६) । वा. ९,२३-३० । काण्व. १०,३२—३९ । वाजस्येदं प्रसव० । अथर्व. ३,२०,८ । सोमं राजानमवसे० । ऋ. १०,१४१,३; सा. ९१; अथर्व. ३,२०,४,७ तै. सं. १,७,१०,३ । प्र नो यच्छत्वर्यमा० । ऋ. १०,१४१,२; अथर्व. ३,२०,३; तै. सं. १,७,१०,२]

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नस्सुमना भव ।
प्र नो रास्व विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ १०
इन्द्रवायू सुसंदृशा सुहवेह हवामहे । यथा नस्सर्व इज्जनस्संगमे सुमना असत् ॥ ११
सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे । आदित्यं विष्णुँ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याँ सरस्वत्या वाचा यन्तुर्यन्त्रेणेममुम-
मामुष्यायणममुष्याः पुत्रं बृहस्पतेस्साम्राज्येनाभिषिञ्चामीन्द्रस्य साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥२॥ १३

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवदं त्वा नृषदमायुस्सदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वोपया-
मगृहीतोऽस्यप्सुषदं त्वा घृतसदं भूतसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि
पृथिविषदं त्वान्तरिक्षसदं नाकसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥ उपयामगृहीतो-
ऽसि ग्रह विश्वजनीन न्यन्तर्विप्र आ सती ॥ १४-१५

यास्तिस्रः परमजा दैव्यः कोशस्समुब्जितः । तासां त्रिशिश्न्यानामिषमूर्जं समग्रभम् ॥ १६
एष ते योनिरिन्द्राय त्वोपयामगृहीतोऽसि ॥ १७
अपां रसमुदयँसँ सूर्ये शुक्रँ समाभृतम् । अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तमम् ॥ १८
एष ते योनिरिन्द्राय त्वा ॥ १९
अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद्धरुणं मध्वो अग्रँ स्वा यत् तनू तन्वमैरयत ॥ २०
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वैष ते योनिः प्रजापतये त्वा ॥ २१
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २२
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वैष ते योनिः प्रजापतये त्वा ॥३॥ २३

अग्निरेकाक्षरामश्विनौ द्व्यक्षरां विष्णुस्त्र्यक्षराँ सोमश्चतुरक्षराँ सविता पञ्चाक्षरां पूषा षडक्षरां मरुत-
स्सप्ताक्षरां बृहस्पतिरष्टाक्षरां मित्रो नवाक्षरां वरुणो दशाक्षरामिन्द्र एकादशाक्षरां विश्वे देवा द्वाद-

[अग्ने अच्छा वदेह नः० । ऋ. १०,१४१,१; अथर्व. ३,२०,२; तै. सं. १,७,१०,२ । इन्द्रवायू सुसंदृशा० ।
ऋ. १०,१४१,४; अथर्व. ३,२०,६ । देवस्य त्वा सवितुः० अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]
[३] मै. १,११,४, (२६—३३) । । वा. ९,२—४; १०,३२; १९,६; २३,३८ । काण्व. १०,३—५; ११,४०;
२१,५; २५,४० । [कुविदङ्ग यवमन्तो० । ऋ. १०,१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२; तै. सं. १,८,२१,१; ५,
२,११,२ तै. ब्रा. २,६,१,३]
[४] मै. १,११,१० (३९) । वा. ९,३१—३४ । काण्व. १०,४०—४३ । तै. सं. १,७,११ ।
पाठ० १८

शाक्षरां वसवस्त्रयोदशाक्षरां रुद्राश्चतुर्दशाक्षरामादित्याः पञ्चदशमदितिष्षोडशं प्रजापतिस्सप्तदशोऽ-
ग्निरेकाक्षरया वाचमुदजयदश्विनौ द्व्यक्षरया प्राणापाना उदजयतां विष्णुस्त्र्यक्षरया त्रीनिमांल्लोकानु-
दजयत् सोमश्चतुरक्षरया चतुष्पदः पशूनुदजयत् सविता पञ्चाक्षरया पञ्च दिश उदजयत् पूषा षड-
क्षरया षड्ऋतूनुदजयन्मरुतस्सप्ताक्षरया शक्वरीमुदजयन् बृहस्पतिरष्टाक्षरयाष्टौ दिश उदजयच्चतस्रो
दिशश्चतस्र उपदिशा मित्रो नवाक्षरया नव प्राणानुदजयद्वरुणो दशाक्षरया विराजमुदजयदिन्द्र एका-
दशाक्षरया त्रिष्टुभमुदजयद्विश्वे देवा द्वादशाक्षरया जगतीमुदजयन् वसवस्त्रयोदशाक्षरया त्रयोदशं
मासमुदजयन् रुद्राश्चतुर्दशाक्षरया चतुर्दश रात्रीरुदजयन् या इमा अन्तरार्धमासा आदित्याः पञ्च-
दशमदितिष्षोडशं प्रजापतिस्सप्तदशोऽग्निरेकाक्षरया मामुदजयदिमां पृथिवीमश्विनौ द्व्यक्षरया प्रमाम-
न्तरिक्षं विष्णुस्त्र्यक्षरया प्रतिमाँ स्वर्गं लोकँ सोमश्चतुरक्षरयास्त्रीन्नक्षत्राणि सविता पञ्चाक्षरया पङ्क्ति-
मुदजयद्या हाक्षरपङ्क्तिस्सा पङ्क्तिश्चतुर्धा हि तस्याः पञ्च पञ्चाक्षराणि ॥ पूषा षडक्षरया गाय-
त्रीमुदजयच्चतुर्धा हि तस्याष्षट् षडक्षराणि मरुतस्सप्ताक्षरयोष्णिहमुदजयँश्चतुर्धा हि तस्यास्सप्त सप्ता-
क्षराणि बृहस्पतिरष्टाक्षरयानुष्टुभमुदजयच्चतुर्धा हि तस्या अष्टा अष्टाक्षराणि मित्रो नवाक्षरया बृहतीमुद-
जयच्चतुर्धा हि तस्या नव नवाक्षराणि वरुणो दशाक्षरया विराजमुदजयदिन्द्र एकादशाक्षरया त्रिष्टु-
भमुदजयद्विश्वे देवा द्वादशाक्षरया जगतीमुदजयन् वसवस्त्रयोदशाक्षरया त्रयोदशं मासमुदजयन् रुद्रा-
श्चतुर्दशाक्षरया चतुर्दश रात्रीरुदजयन् या इमा अन्तरार्धमासा आदित्याः पञ्चदशमदितिष्षोडशं
प्रजापतिस्सप्तदशः ॥४॥ २४--२५

देवा वै नानैव यज्ञानपश्यन्निममहमिमं त्वमित्यथैतँ सर्वेऽपश्यँस्तस्मिन्नायतन्त तस्मिन्नाजिमयुस्तं
बृहस्पतिरुदजयद्बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितो यद्वै पुरोहितो ब्रह्म शृणोति तद् राज्ञे तेनेन्द्रमयाजयत्
स स्वाराज्यमगच्छत् स एष स्वाराज्यो यज्ञस्स्वाराज्यं गच्छति य एतेन यजते यद्बृहस्पतिरुदजयत्
तस्माद्ब्राह्मणो यजेत यदिन्द्रमयाजयत् तस्माद्राजन्यो देवा वै नानैव यज्ञानाहरन्नथैतं प्रजापति-
राहरत् तस्मिन् देवा अपित्वमैच्छन्त तेभ्यश्छन्दाँस्युज्जितीः प्रायच्छदथैतेन प्रजापतिरयजत स
स्वाराज्यमगच्छत् स एष स्वाराज्यो यज्ञस्स्वाराज्यं गच्छति य एतेन यजतेऽन्नं वै वाजो य एवं
विद्वानन्नमत्ति वाजयत्येनँ सोमो वाजपेयो य एवं विद्वान् सोमं पिबति वाजमेव गच्छति यावन्तो
हि देवास्सोममपिबँस्ते वाजमगच्छँस्तस्मात् सर्व एव सोमं पिपासति वाग्वै वाजस्य प्रसवस्सा
वाग्दृष्टा चतुर्धा व्यभवदेषु लोकेषु त्रीणि तुरीयाणि पशुषु तुरीयं या दिवि सा बृहति सा स्तन-
यित्नौ यान्तरिक्षे सा वाते सा वामदेव्ये या पृथिव्याँ साग्नौ सा रथन्तरे या पशुषु तस्या यदत्य-
रिच्यत तां ब्राह्मणे न्यदधुस्तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवीं च मानुषीं च करोति वाचा वीर्यं

[५] मै. १,११,५ (३४) ।

य एवं वेद ॥ या बृहद्रथन्तरयोस्तयैनं यज्ञ आगच्छति या पशुषु तयैनं यज्ञमाह वा एनमप्रति-
ख्याताद्गच्छति य एवं वेद यावती हि वाक्तां वेद वाचा हि दीयते वाचा प्रदीयते यो
गाथानाराशँसीभ्याँ सनोति तस्य न प्रतिगृह्यमनृतेन हि स सनोत्यनृतँ हि गाथानृतं नाराशँसी
मत्तस्य न प्रतिगृह्यमनृतँ हि मत्तो यदा हि सोऽमत्तो भवत्यथ तं तत्तुपति ॥ ५ ॥ २६-२७

सप्तदशैते द्वया ग्रहाः प्राजापत्यास्सप्तदशो वै पुरुषः प्राजापत्यश्चत्वार्यङ्गानि शिरोग्रीवमात्मा
वाक् सप्तथी दश प्राणा अङ्गेऽङ्गे वै पुरुषस्य पाप्मोपाश्लिष्टो यत्प्रतिपङ्क्तं ग्रहान् गृह्णात्यङ्गादङ्गा-
देवैनं पाप्मनो मुञ्चति श्रीर्वै सोमः पाप्मा सुरोपयामा यदागते काले ग्राव्णस्सोमैरुद्द्रवन्ति प्रत्यञ्च-
स्सुरोपयामैः पाप्मनैवैनं विपुनाति तस्मादाहुर्वाजपेययाजी त्वै पूत इति पाप्मना ह्येनं विपुनाति
पञ्चैते ग्रहा गृह्यन्ते पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्ध ऐन्द्रास्सर्वे भवन्त्येकधैवास्मिन्निन्द्रियं दधाति ॥
परं वा एतद्देवानामन्नं यत् सोमः परममेतन्मनुष्याणामन्नाद्यं यत् सुरा यत् सोमग्रहाश्च सुराग्रहाश्च
सह गृह्यन्ते परेणैवान्नेनावरमन्नाद्यमवरुन्द्धे ब्रह्मणो वा एतत् तेजो यत् सोमोऽन्नस्य शमलं
सुरा यत् सोमग्रहाश्च सुराग्रहाश्च सह गृह्यन्ते ब्रह्मण एव तेजसा तेज आत्मन् धत्तेऽन्नस्य
शमलेन शमलमपहते देवलोकमेव सोमग्रहैरभिजयति मनुष्यलोकँ सुराग्रहैरात्मानमेव सोमग्रहै-
स्स्पृणोति पत्नीँ सुराग्रहैस्तस्मादाहुर्वाजपेययाजी त्वा अमुष्मिंल्लोके संभवतीति यज्ञेन ह्यस्या-
मिजितं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगायेति सावित्र्या परुषि परुषि जुहोत्युत्स-
न्नयज्ञो वा एष को ह तद्वेद यावदेतस्याधियन्ति यावन्न सर्वत्वायैव प्रसवाय वाजस्य नु प्रसवे
मातरं महीमिति रथमुपावहरतीयमदितिरनया चैव सवित्रा च प्रसूत उपावहरति वाजस्योज्जित्या
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमित्यश्वान् पल्पूलयत्यप्सुजा वा अश्वस्स्वादेवैनान्योनेर्जनयत्यथो मेध्याने-
वैनान् यज्ञियान् करोति वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वेति युनक्ति न वा एतान्मनुष्यो योक्तुमर्हति देवता-
भिरेवैनान्युनक्त्यपां नपादाशुहेमन्निति रराटानि प्रतिमार्ष्टि पूर्वमेवोदितमनुवदति ॥६॥ २८-२९

सप्तदशस्सर्वो भवति सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति दुन्दुभीन्निर्ह्रादयन्ति वाग्वा एषैकारण्यं
प्राविशत् तामेवोज्जयति देवस्य सवितुः प्रसवे सत्यसवस्येति सवितृप्रसूत एव वज्रं रोहति देवस्य वयं
सवितुः प्रसवे सत्यसवनस्येति सवितृप्रसूत एव रथमभ्यातिष्ठति वाजस्योज्जित्यै ब्रह्मान्वेति प्रजापति-
र्वै ब्रह्मा यज्ञस्य प्रजापतिरिन्द्रमसुवत प्रजापतिरेवैनं वज्रादधि प्रसुवति साम गायति सत्यं वै साम
सत्येनैवैनमुज्जापयति वाजिनामृचोऽन्वाह वाजस्योज्जित्या अनुदिष्टे रथैर्धावन्ति दक्षिणया वै देवा-
स्स्वर्गं लोकमायन् यदनुदिष्टे रथैर्धावन्ति दक्षिणयैव स्वर्गं लोकमेति॥ दर्भमयं वासो भवति पवित्र-

[६] मै. १,११,६ (३५) । वा. ९,१,५—७, ११,७; ३०,१ । काण्व. १०,१,७,९—१०; १२,७; ३४,१ ।
[७] मै. १,११,६—७ (३५—३६) । वा. ९,९—१०,१२—१३,१९ । काण्व. १०,१३—१४,१७,२५-२६ ।

त्वायोज्जितीर्वाचयति वाग्वा उज्जितयो वाचमेवोज्जयति देवा वा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुस्ता बृह-
स्पतिरुदजयत् स नीवाराभिरवृणीत तन्नीवाराणां नीवारत्वं बृहस्पतिर्वा एतमुदजयत् तमेव भागिनं
करोति चात्वालेऽवदधातीह वा असा आदित्य आसीत् तं देवा आभ्यां परिगृह्यामुं लोकमगमयन्
स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादिति पुनरागतेषु जुहोति यमेव ते वाज-
मुज्जयन्ति तमात्मन् धत्त एषा वस्सा सत्या संवागभूद्यामिन्द्रेण समदध्वम् ॥ अजीजपत वनस्पतय
इन्द्रं वाजं विमुच्यध्वमिति यजुषैव युज्यन्ते यजुषा विमुच्यन्ते वाजिनौ वाजजिता इति युग्या अव-
घ्रापयति भागिना एवैनौ करोति वाजिनो वाजजित इत्यनुदिशति सर्वानेवैनान् प्रीणाति ॥७॥
३०-३२

अर्धवशां च सुरोपयामाँश्च हरन्ति य आजिं धावन्ति तेभ्यो यमेव ते वाजमुज्जयन्ति तं तेन
परिक्रीणाति मधुष्ठालं ब्रह्मणे हरन्ति ब्रह्मण एव तेन परिक्रीणाति ककुभो राजपुत्रः प्राश्नाति वीर्यं
वै ककुब्वीर्यं राजपुत्रो वीर्य एवं वीर्यं दधाति पत्नी३ स्वो रोहावेति स्वरेव रोक्ष्यन् पत्न्या संवदते
पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननायायुर्यज्ञेन कल्पतामित्ये-
तावान् वै पुरुषस्सर्व एव भूत्वा स्वर्गं लोकमेति गौधूमं चषालं भवति प्राजापत्या वै गोधूमा अर्षं
प्रत्योपधीनाँ सहैवान्नाद्येन स्वर्गं लोकमेति वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहेति त्रयोदशैता आहुतय-
स्त्रयोदश मासास्संवत्सरस्संवत्सरस्स्वर्गो लोकस्संवत्सरमेवास्मै स्वर्गं लोक उपाधात् तस्मिन्नधि
प्रतितिष्ठत्यूषपुटैरर्पयन्ति प्राजापत्या वा ऊषा अन्नाद्येनैवैनमर्पयन्त्येति वा एषोऽस्माल्लोकाद्योऽमुं
लोकं गच्छति यदूषपुटैरर्पयन्ति तेनास्माल्लोकान्नैति बस्ताजिनं च रुक्मं चाभ्यवरोहति पशवो वै
बस्ताजिनं यद्बस्ताजिनमभ्यवरोहति पशुष्वेव प्रतितिष्ठति तेजो हिरण्यं यद्रुक्ममभ्यवरोहति तेजस्येव
प्रतितिष्ठति शतमानो भवति शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुरेव वीर्यमवरुन्द्धे वाजप्रसव्याभिरन्नस्या-
न्नस्य जुहोत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै सप्तभिस्सप्त वै छन्दाँसि च्छन्दोभिरेवान्नाद्यमवरुन्द्धे वाग्वै छन्दाँसि
वाचैवान्नाद्यमवरुन्द्धे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याँ सरस्वत्या वाचा
यन्तुर्यन्त्रेणेममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रं बृहस्पतेस्साम्राज्येनाभिषिञ्चामीति यदि ब्राह्मणो यजेत
बृहस्पतिसवो ह्येष इन्द्रस्येति यदि राजन्य इन्द्रसवो ह्येषः ॥८॥ ३३

अथैतेऽतिग्राह्या यदेव परमन्नाद्यमनवरुद्धं तस्यावरुद्ध्या अथैते पशवो यज्ञक्रतूनामवरुद्ध्यै यदा-
ग्नेयोऽग्निष्टेतमं तेनाप्नोत्यग्निप्रतिष्ठानो ह्यग्निष्टोमो यदैन्द्राग्न उक्थानि तेनाप्नोत्यैन्द्राग्नानि ह्युक्थानि

[८] मै. १,११,७—८ (३६—३७) । वा. ९,२१; १८,२८—२९; २२,३२—३३ । काण्व. १०,२८; १०,४०,
४२; २४,४५—४६ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]
[९] मै. १,११,९ (३८) । मा. श्रौ. ७,१,५,६ ।

यदैन्द्रष्षोडशिनं तेनाप्नोत्यैन्द्रो हि षोडश्यात्मानमेवाग्निष्टोमेन स्पृणोति प्राणापानावुक्थेन वीर्यं षोडशिनस्स्तोत्रेण वाचमतिरात्रेण प्रजां बृहत्स्तोत्रेणास्मिन्नेव लोकेऽग्निष्टोमेन प्रतितिष्ठत्यन्तरिक्ष उक्थेन स्वर्गे लोके षोडशिनस्स्तोत्रेण ये देवयानाः पन्थानस्तेष्वतिरात्रेण नाके बृहत्स्तोत्रेणैतावन्तो वै देवलोका यावन्त एव देवलोकास्तानाप्नोत्यथैषा सारस्वती मेषी यदेवादस्सप्तदशं स्तोत्रमत्यरिच्यत तस्यावरुद्ध्या अथैषा मारुती पृश्निर्वशा देवाश्च वा असुराश्चास्मिंल्लोक आसंस्ते देवा नेमेऽसुरास्ते देवा एतां मारुतीं पृश्निं वशामपश्यंस्तामालभन्त तया लोकं द्वितीयमवृञ्जतासुरलोकं यस्यावद्यन्ति स देवलोको यस्य नावद्यन्ति सोऽसुरलोको लोकमेवैतया द्वितीयं वृङ्क्ते भ्रातृव्यलोकं द्वितीये हि लोके भ्रातृव्यस्सारस्वत्येतेषां पशूनामुत्तमा भवति सारस्वत इतरेषां सप्तदशानामुत्तमो वाग्वै सरस्वती वाचैव यज्ञं संतनोति यद्वै विद्वान् यज्ञस्य न करोति यदविद्वानन्तरेति तच्छिद्रं तद्वाचैव सरस्वत्या कल्पयति सप्तदशैते प्राजापत्याः पशव आलभ्यन्ते सप्तदशः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोत्येकरूपा भवन्त्येकधैवास्मिन् वीर्यं दधाति सारस्वत उत्तमो भवति वाग्वै सरस्वती वाच्येव प्रतितिष्ठति ॥ ९ ॥ ३४

रथन्तरं साम भवत्यौशीय ऊर्ज्या इयं वै रथन्तरमस्यामेवाप्यभिषिच्यते वियोनिर्वै वाजपेयोऽनिरुक्तस्सन् प्राजापत्योऽनिरुक्तसामा तेन वियोनिर्यदनिरुक्ताः प्रातस्सवास्तेन संयोनिरनिरुक्ताः प्रातस्सवा अनिरुक्तः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति वाजवतीभिर्माध्यंदिने स्तुवन्त्यन्नं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै चित्रवतीभिरार्भवे पवमाने स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या आप्त्रादशमुत्तममुक्थानां भवत्युत्तर एवं स्तोत्रं अभिसंतनोति बृहद् साम भवति यद्वा अतिरिच्यतेऽमुं तल्लोकमभ्यतिरिच्यते बृहत्त्वा अमुं लोकमाप्नुवन्तीन्द्रियं वीर्यं बृहदिन्द्रिय एवं वीर्ये प्रतितिष्ठति वैष्णवीषु शिपिविष्टवतीषु स्तुवन्त्येषा वै प्रजापतेः पशूनामतनूर्या शिपिविष्टवती तस्माच्छिपिविष्टवतीषु स्तुवन्त्यतिरिक्तं वा एतदतिरिक्तं शिपिविष्टमतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति ॥१०॥ ३५

[९७३]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां वाजपेयं नाम चतुर्दशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१४॥

[१०] मै. १,११,९ (३८) । मा. श्रौ. ७,१,५,६ ।

अथ पञ्चदशं स्थानकम् ।

श्रीराजसूयम् ।

अनुमत्या अष्टाकपालो धेनुर्दक्षिणा ये प्रत्यञ्चश्शम्यामतिशीयन्ते स नैर्ऋत एककपालो भवति ता उभौ सह शृतौ कुर्वन्ति तयोर्नैर्ऋतेन पूर्वेण प्रचरन्ति दक्षिणा परेत्य स्वकृत इरिण एकोल्मुकं निधाय विस्रंसिकायाः काण्डाभ्यां जुहोति जुषाणा निर्ऋतिर्वेतु स्वाहा वासो भिन्नान्तं दक्षिणा-स-उदञ्चोऽवशीयन्ते तानुदक् परेत्य वल्मीकवपामुद्धृत्य जुहोतीदमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमवयजे स्वाहेदमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमपिदधामीत्यपिदधात्यादित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यो घृते चरुर्वरो दक्षिणाग्रावैष्णव एकादशकपालोऽनड्वान् वामनो दक्षिणाग्नीषोमीय एकादशकपालो हिरण्यं दक्षिणैन्द्राग्न एकादशकपाल ऋषभोऽनड्वान् दक्षिणाग्नेयोऽष्टाकपालो महेन्द्रीयं दधि वासः क्षौमं दक्षिणा सौम्यश्श्यामाकश्चरुर्बभ्रुः पिङ्गलो दक्षिणैन्द्राग्नो द्वादशकपालो वैश्वदेवश्चरुर्द्यावापृथिव्य एककपालो वत्सः प्रथमजो दक्षिणा ॥१॥ १

आग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावित्रोऽष्टाकपालस्सारस्वतश्चरुः पौष्णश्चरुर्वायवे नियुत्वते पयो वा यवागूर्वैन्द्राय शुनासीराय द्वादशकपालस्सौर्य एककपाल उष्टारौ दक्षिणा सीरं वा द्वादशायोगमाग्नेयोऽष्टाकपालो वारुणो यवमयो दशकपालो रौद्रो गावीधुकश्चरुरैन्द्रं सान्नाय्यं धेनुरनड्वाही दक्षिणापां न्ययनादपामार्गानाहरन्ति तान् सक्तून् कुर्वन्ति तान् पर्णमयेन स्रुवेण जुहोति दक्षिणा परेत्य स्वकृत इरिणे देवस्य सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामिन्द्रस्यौजसा रक्षोहासि स्वाहा हतं रक्षोऽवधिष्म रक्षो वरो दक्षिणा ॥ ये देवाः पुरस्सदोऽग्निनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ये देवा दक्षिणात् सदो यमनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ये देवाः पश्चात् सदो मरुन्नेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ये देवा उत्तरात् सदो मित्रावरुणनेत्रा रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ये देवा उपरिषदस्सोमनेत्रा अवस्वद्वन्तो रक्षोहणस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यस्स्वाहा ॥ इदमहं रक्षोऽभिसंमूहाम्यग्ने संदह रक्षस्संदग्धं रक्षोऽग्नये पुरस्सदे रक्षोघ्ने स्वाहा यमाय दक्षिणात् सदे रक्षोघ्ने स्वाहा मरुद्भ्यः पश्चात् सद्भ्यो रक्षोहभ्यस्स्वाहा मित्रावरुणाभ्यामुत्तरात् सद्भ्यां रक्षोहभ्यां स्वाहा सोमायोपरिषदेऽवस्वद्वते रक्षोघ्ने स्वाहा रथः पञ्चवाही दक्षिणा ॥ २ ॥ २-४

[१] मै. २,६,१–२ (१-८) । तै. सं. १,८,१; २,६,१ । वा. २९,६०; ३,१०; ९,३५ । काण्व. ३१,४९; ३,११-१२ । शत. ब्रा. ५,२,३,२; मा. श्रौ. ९,१,१ ।

[२] मै. २,६,३ (९-१२) । तै. सं. १,८,७ । वा. ९,३५—३६,३८ । काण्व. ११,१-४ । शत. ब्रा. ५,२,४,५ । मा. श्रौ. ९,१,१. । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

अनुमत्यै चरू राकायै चरुस्सिनीवाल्यै चरुः कुह्वै चरुर्धात्रे द्वादशकपालः पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहा नक्षत्रेभ्यस्स्वाहाद्भ्यस्स्वाहौषधीभ्यस्स्वाहा वनस्पतिभ्यस्स्वाहा पतयद्भ्यस्स्वाहा परिप्लवेभ्यस्स्वाहा चराचरेभ्यस्स्वाहा सरीसृपेभ्यस्स्वाहाग्नावैष्णव एकादशकपाल ऐन्द्रावैष्णवश्चरुर्वैष्णवस्त्रिकपालो वामनो दक्षिणा सौमापौष्णश्चरुरैन्द्रापौष्णश्चरुः पौष्णश्चरुश्श्यामो दक्षिणाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो हिरण्यं दक्षिणा वारुणो यवमयश्चरुरश्वो यभ्रुर्दक्षिणा ॥ ३ ॥ ५

बार्हस्पत्यश्चरुः पुरोहितस्य गृहे शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्र एकादशकपालो राज्ञो गृह ऋषभो दक्षिणादित्यै चरुर्महिष्या गृहे धेनुर्दक्षिणा नैर्ऋतश्चरुः कृष्णानां व्रीहीणां नखनिर्भिन्नानां परिवृक्त्या गृहे कृष्णा कूटा वण्डापस्फुरा दक्षिणाग्नेयोऽष्टाकपालस्सेनान्यो गृहे हिरण्यं दक्षिणाश्विनो द्विकपालस्संग्रहीतुर्गृहे सवात्यौ दक्षिणा सावित्रोऽष्टाकपालः क्षत्तुर्गृहे श्येतो दक्षिणा वारुणो यवमयो दशकपालस्सूतस्य गृहे बभ्रुर्महानिरष्टो दक्षिणा मारुतस्सप्तकपालो वैश्यस्य ग्रामण्यो गृहे पृश्निः पष्ठौही दक्षिणा पौष्णश्चरुर्भागदुघस्य गृहे श्यामो दक्षिणा रौद्रो गावीधुकश्चरुरक्षावपस्य च गोव्यच्छस्य च गृहेऽसिर्वालावृतो वध्रिर्वालप्रतिग्रथिता भरासी दामभूषा वत्सतरो वा शबलो दक्षिणेन्द्राय सुत्राम्ण एकादशकपाल इन्द्रायांहोमुच एकादशकपालो राज्ञो गृह ऋषभो दक्षिणा ॥ ४ ॥ ६

स्वयमवपन्नाया अश्वत्थशाखायाः पात्रं भवति श्वेतां श्वेतवत्सां दुहन्ति तत् स्वयं मूर्च्छति स्वयं मथ्यते स्वयं विलीयतेऽथ मैत्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपति तान् द्वेधा तण्डुलान् विभजति ये क्षोदीयांसस्तं बार्हस्पत्यं चरुं शृतं कुर्वन्ति स यदा शृतो भवत्यथ तत् पात्रमाश्वत्थमपिधाय पवित्रवत्याज्यमानयति तत् स्वयंपत्त आवपति स मैत्रश्चरुस्स्वयंशृतो भवत्यर्धं वेद्याः कुर्वन्त्यर्धं स्वयंकृतमर्धं बर्हिषो दान्त्यर्धं स्वयंदिनमर्धमिध्मस्य कुर्वन्त्यर्धं स्वयंकृतं शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यस्य दक्षिणाश्वो मैत्रस्य सा वै श्वेता श्वेतवत्साग्नये गृहपतय आशूनामष्टाकपालस्सवित्रे प्रसवित्रे सतीनानामष्टाकपालस्सोमाय वनस्पतये श्यामाकश्चरुर्बृहस्पतये वाचस्पतये नैवारश्चरुरिन्द्राय ज्येष्ठाय हायनाना-

[३] मै. २,६,४ (१३) । तै. सं. १,८,८ । शत. ब्रा. ५,२,५ । मा. श्रौ. ९,१,१ । वा. ३९,१—२; २२,२७-३०। काण्व. ३९,१; २४,३९-४१,४३ । [पृथिव्यै स्वाहा । अथर्व. ५,९,२; ६ । अन्तरिक्षाय स्वाहा । अथर्व. ५,९,३—४ । दिवे स्वाहा । अथर्व. ५,९,१,५ । सूर्याय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,३ । चन्द्रमसे स्वाहा । अथर्व. १९,४३,४ । स्वाहाद्भ्यस्स्वाहौषधीभ्यः । अथर्व. १९,४३,७]

[४] मै. २,६,५—६ (१४-१६) । तै. सं. १,८,९-१० । शत. ब्रा. ५,३,१—२; २,४; ३,२ । मा. श्रौ. ९,१, १-२ ।

[५] मै. २,६,६ (१५-१६) । तै. सं. १,८,९—१० । वा. ९,३९-४०; १०,१८; १७,८०,८१-८३ । काण्व. ११, ९-१०,६६; १८,८०,८१-८३ । शत. ब्रा. ५,३,२,३; ५,३,३,२ । मा. श्रौ. ९,१,१—७ ।

मेकादशकपालो मित्राय सत्यस्य पतय आम्बानां चरुर्वरुणाय धर्मणस्पतये यवमयो दशकपालो रुद्राय पशुपतय गावीधुकश्चरुस्सविता त्वा प्रसवानां सुवतामग्निर्गार्हपत्यानां सोमो वनस्पतीनां बृहस्पतिर्वाचामिन्द्रो ज्यैष्ठ्यानां मित्रस्सत्यानां वरुणो धर्मणां रुद्रः पशूनां ते देवा असपत्नमिमं सुवध्व महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते राज्याय महते जानराज्याय महते विश्वस्य भुवनस्याधिपत्याय ॥५॥ ७

देवीरापो अपां नपाद्राष्ट्रदास्स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहा वृषोर्मिरसि राष्ट्रदास्स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदास्स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहापां पतिरसि राष्ट्रदास्स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहा प्रहावरीस्स्थ परिवाहिणीस्स्थौजस्विनीस्स्थ व्रजक्षितस्स्थ सूर्यवर्चसस्स्थ सूर्यत्वचसस्स्थ मान्दास्स्थ वशास्स्थ शक्करीस्स्थ मरुतामोजस्स्थ जनभृतस्स्थ विश्वभृतस्स्थानाधृष्टास्स्थापामोषधीनां रसश्श्रविष्ठास्स्थ राष्ट्रदास्स्थ राष्ट्रं दत्त स्वाहा ॥ ८

अपो देवीर्मधुमतीरगृभ्णामूर्जस्वती राजसूयाश्चितानाः ।
याभिर्मित्रावरुणा अभ्यषिञ्चन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ ९
देवीरापो मधुमतीस्संसृज्यध्वं महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाः ।
अनाधृष्टास्सीदतोर्जस्वतीर्महि वर्चः क्षत्रियाय दधतीः ॥ १०

अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजास्सोमस्य दात्रं शुक्रा वश्शुक्रेण पुनामि चन्द्रा वश्चन्द्रेण पुनामि देवो वस्सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिस्स्वाहा राजसूयाः ॥ ११

सधमादो द्युम्न्या ऊर्ज एका अनाधृष्टा अपस्यो वसानः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणस्सधस्थमपां शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ १२

रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मै हुतमसि यमेष्टमसि स्वाहा सोम इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निस्ते देवा धर्मधृतो धर्मं धारयन्तां तेऽस्मै वाचं सुवन्ताम् ॥६॥ १३

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्योल्बमसि क्षत्रस्य नाभिरस्याविद आवेदयताविन्नो अग्निर्गृहपतिराविन्न इन्द्रो वृद्धश्रवा आविन्नौ मित्रावरुणौ धृतव्रता आविन्ने द्यावापृथिवी ऋतावृधा आविन्ना देव्यदितिराविन्नः पूषा विश्ववेदा आविन्नोऽयमसावामुष्यायणोऽमुष्याः पुत्रोऽमुष्यां विश्येष ते जनतं

[६] मै. २,६,७-८ (१७-२४) । वा. ६,२७; १०,१—४,६-७,२० । काण्व. ६,३९; १०,८; ११,५—८, १३—१४,३० ।

[७] मै. २,६,९-११ (२५-३०) । वा. १०,५,८-१६,१८-१९,२२,२३,२६; २०,२; ९,५,४०; २१,६,२०,२७, ३९,१ । काण्व. ११,१०,१२-१३,१५—२४,२६,२८,३२,३३,३६; २२,९३; २४,६,३७; ३९,१ । तै. सं. १,८, १०-१५ । शत. ब्रा. ५,३,५,८-९, २०; ५,४,२,३—७; ५,४,२,५ ।

राजा सोमो अस्माकं ब्राह्मणानां राजेन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नस्त्वयायं वृत्रं वध्याच्छत्रुबाधनास्स्थ
पात प्राचः पात प्रतीचः पातानूचः पात तिरश्चो मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १४

हिरण्यवर्णमुषसो व्युष्टा अयस्स्थूणमुदितौ सूर्यस्य ।
आरोहथो वरुण मित्र गर्तं तत्र चक्राथे अदितिं दितिं च ॥ १५

समिधमातिष्ठ गायत्री त्वा छन्दसावतु त्रिवृत्स्तोमो रथन्तरँ सामाग्निर्देवता ब्रह्म द्रविणमुग्रा-
मातिष्ठ त्रिष्टुप्त्वा छन्दसावतु पञ्चदशस्स्तोमो बृहत् सामेन्द्रो देवता क्षत्रं द्रविणं प्राचीमातिष्ठ जगती
त्वा छन्दसावतु सप्तदशस्स्तोमो वैरूपँ साम मरुतो देवता विड् द्राविणमुदीचीमातिष्ठानुष्टुप् त्वा छन्द-
सावत्वेकविंशस्स्तोमो वैराजँ साम मित्रावरुणौ देवता पुष्टं द्रविणमूर्ध्वामातिष्ठ पङ्क्तिस्त्वा छन्दसा-
वतु ॥ त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ शाक्वररैवते सामनी बृहस्पतिर्देवता वर्चो द्रविणँ सोमस्य त्विषिरसि
त्विषिमाँ असि तवेव मे त्विषिर्भूयात् प्रत्यस्तं नमुचेश्शिरोऽवेष्टा दन्दशूका मृत्योः पाहि दियोत्पा-
ह्यग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय
स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाँशाय स्वाहा भगाय स्वाहा क्षेत्रस्य पतये स्वाहा सोमस्य
त्वा द्युम्नेनाग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण विश्वेषां त्वा देवानां क्रतुनाभिषिञ्चाम्यति
दिवस्पाहीन्द्रस्य योनिरसि जनय ॥ १६-१७

समाववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बुध्न्यमन्वीयमानाः ।
ताः पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठे नावो वियन्ति सुषिचो न वाणीः ॥७॥ १८

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयायँ वाजँ सेन्मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि विष्णोः
क्रमोऽसि मरुतां प्रसवे जयासि मनस्समिन्द्रियेणैष वज्रो वाजसातमस्तेन नौ पुत्रो वाजँ सेदियदस्या-
युरस्यायुर्मे धेह्यूर्गस्यूर्जं मे धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मे धेहि मित्रोऽसि वरुणोऽसि सं विश्वै-
र्देवैर्नमो मात्रे पृथिव्यै ॥ १९

प्रति त्यन्नाम राज्यमधायि स्वां तन्वं वरुणोऽसुषोत् ।
शुचेर्मित्रस्य व्रत्या अभूमामन्महि महद्वतस्य नाम ॥ २०
सर्वे व्राता वरुणस्याभूवन्वि मित्रयुरस्तीनतारीत् ।
अशूशुभन्त यज्ञिया ऋतेन नि त्रितो नो जरिमाणमानट् ॥ २१

[अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । समावृत्र० (ता अधरादु-दीचीरावृत्र) न वाणीः (पुराणीः) । अथर्व. ११,२,४१]

[८] मै. २,६,११-१३ (३१—४४) । वा. ९,५; १०,५,२०,२३—२८; ११,६,१०,२७,२३.६५; १२,१४; ३९,१ । काण्व. ११,१२-१३,३३-४०; १३,१५; ११,२९; २५,६७; २४,६,३७; ३९,१ । [इयदस्यायुर्मे धेहि (वाः) । अथर्व. २,१७,४]

स्योनासि सुषदासि स्योनामासीद सुषदामासीद ॥ २२
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २३
अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहेन्द्रस्य बलाय स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा॥२४
हँसश्शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ २५

ब्रह्मा३स्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यसवो ब्रह्मा३स्त्वं ब्रह्मासि मित्रोऽसि सुशेवो ब्रह्मा३स्त्वं
ब्रह्मासीन्द्रोऽसि सत्यौजा ब्रह्मा३स्त्वं ब्रह्मासि वरुणोऽसि विश्वौजा एष वज्रस्तेन मे रध्य दिशो
अभ्युभूदयम् ॥ २६

प्रजापते नहि त्वदन्य एता विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु ॥ २७
असा अमुष्य पुत्रोऽमुष्यासौ पुत्रः । वयँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २८
अपां नप्त्रे स्वाहोर्जो नप्त्रे स्वाहाग्नये गृहपतये स्वाहा ॥८॥ २९

सावित्रोऽष्टाकपालश्श्येतो दक्षिणा सारस्वतश्चरुः पष्ठौह्यप्रवीता दक्षिणा पौष्णश्चरुश्श्यामो दक्षिणा
बार्हस्पत्यश्चरुश्शितिपृष्ठो दक्षिणैन्द्र एकादशकपाल ऋषभो दक्षिणा वारुणो यवमयो दशकपालो
बभ्रुर्महानिरष्टो दक्षिणा त्वाष्ट्रोऽष्टाकपालश्शुण्ठो दक्षिणाग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुर्वैष्णवस्त्रिकपाल
आग्नेयोऽष्टाकपालो हिरण्यं दक्षिणैन्द्र एकादशकपाल ऋषभो दक्षिणा ॥ वैश्वदेवश्चरुर्धेनुः पिशङ्गी
दक्षिणा मैत्रावरुण्यामिक्षा वशा दक्षिणा बार्हस्पत्यश्चरुश्शितिपृष्ठो दक्षिणाग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरु-
स्सावित्रोऽष्टाकपालो बार्हस्पत्यश्चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालस्त्वाष्ट्रोऽष्टाकपालो दक्षिणो रथ-
वाहनवाहो दक्षिणा सारस्वतश्चरुः पौष्णश्चरुर्मैत्रश्चरुर्वारुणश्चरुरदित्यै चरुः क्षेत्रस्य पतये चरुरितरो
रथवाहनवाहो दक्षिणा सवित्रे द्वादशकपालोऽश्विभ्यां पूष्ण एकादशकपालस्सरस्वत्यै सत्यवाचे
चरुस्तिसृधन्वँ शुष्कदृतिर्दण्ड उपानहौ तद्दक्षिणाश्वो वा शोणकर्णः ॥९॥ ३०-३१

त्रिवृद्बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि पञ्चदशो माध्यंदिनः पवमानस्सप्तदशानि पृष्ठानि सप्तदश
आर्भवः पवमान एकविंशोऽग्निष्टोमश्चतुस्त्रिंशाः पवमाना अभिषेचनीयस्य पञ्चदशान्याज्यानि सप्त-

[निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,१; तै. ब्रा. १,७,१०,२; २,६,५,१ । अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । हँसश्शुचिषद्वसु० । ऋ. ४,४०,५; तै. सं. १,८,१५,२; ४,२,१,५; तै. आ. १०,१०,२ । प्रजापते नहि (नत्वदेता०) । ऋ. १०,१२१,१०; अथर्व. ७,७९,४; ८०,३; तै. सं. १,८,१४,२; ३,२,५,६; तै. ब्रा. २,८,१,२; ३,५,७,१; नि. १०,४३]

[९] मै. २,६,१३ (४५) । वा. २९,६० । काण्व. ३१,४९ । शत. ब्रा. ५,४,५,६; मा. श्रौ. ९,१,५ ।

दशानि पृष्ठान्येकविंशोऽग्निष्टोमश्चोक्थानि च सप्तदशो दशपेयस्सर्व एकविंशं बहिष्पवमानं केशवप-
नीयस्य सप्तदशान्याज्यानि सप्तदशो माध्यंदिनः पवमानः पञ्चदशानि पृष्ठानि पञ्चदश आर्भवः
पवमानस्त्रिवृदग्निष्टोमश्चोक्थानि चैकविंशष्षोडशी पञ्चदशी रात्री त्रिवृत्सन्धिरथैष द्विरात्रो व्युष्टि-
स्तस्य यावन्ति संवत्सरस्याहोरात्राणि तावतीस्स्तोत्रीयाः ॥१०॥ ३२

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः। अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥३३
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुस्सवे । स्वर्ग्यया शक्त्या ॥ ३४
युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम् ।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतस्सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३५
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ३६
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ३७
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमर्चतः ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजाँसि देवस्सविता महित्वना ॥ ३८
देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ॥ ३९
दिव्यो गन्धर्वः केतपः केतं पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नस्स्वदतु ॥ ४०
इमं मे देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यम् । सखिविदँ सत्राजितं धनजितँ स्वर्विदम् ॥ ४१
ऋचा स्तोमँ समर्धय गायत्रेण रथन्तरम् । बृहद्गायत्रवर्तनि ॥११॥ ४२
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ ४३
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते । रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ४४

[११] मै. २,७,१ (१—८) । वा. ११,१—८; ५,१४; ३७,२; ९,१; ३०,१ । काण्व. १२,१-८; ५,१०; ३७,२; तै. सं. १,२,१३,१; ४,१,१,१; तै. आ. ४,२,१ । युञ्जते मन उत० । ऋ. ५,८१,१; १०,२१; ३४,१ । [युञ्जते मन उत० । ऋ. ५,८१,१; तै. सं. ४,१,१,२ । यस्य प्रयाणमन्वन्य० । ऋ. ५,८१,३; वां ब्रह्म० । ऋ. १०,१३,१; अथर्व. १८,३,३९; तै. सं. ४,१,१,२ (९१—९७; १-०, २२५, ६१—९१; ३३) । का. ३४, तै. सं. ४,१,१,२]

[१२] मै. २,७,२६; ४,१०,३—४; ४,११,१; १३,१; (९१—९७; १-०, २२५, ६१—९१; ३३) । का. ३४, १५; ११,३५-३६, ४२; ४,१०; ८,३२; १३, ३२; ११,३१—३४; १५,२२; ३१,१६ । काण्व. ३३,९; १२, ३५-३६,४२; ४,१३; ९,३१; १४ ३४; १२,३१—३४; १६,४३; ३५,१६ । [प्र देवं देव्या धिया० । ऋ. १०,१७६,२; तै. सं. ३,५,११,२] अयमु ष्य प्र देवयुः । ऋ. १०,१७६,३; तै. सं. ३,५,११,२ ।

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः । सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ॥ ४५
इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ ४६
अग्ने विश्वेभिस्स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमस्सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तँ सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ ४७
सीद होतर्नि होता ॥ ४८
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन् दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ ४९
अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठाद् द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ ५०
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि । सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ५१
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरँ सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय॥ ५२
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ५३
ऊर्ध्वो नः पाह्यँहसो नि केतुना विश्वँ समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ ५४
युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ ५५
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ॥ ५६

[अयमग्निरुरुष्यति० । ऋ. १०,१७६,४; तै. सं. ३,५,११,१ । इड(ळा)यास्त्वा पदे वयं० । ऋ. ३,२९,४; तै. सं. ३,५,११,१ । अग्ने विश्वेभिस्स्वनीक० । ऋ. ६,१५,१६; तै. सं. ३,५,११,२ । सीद होत:० । ऋ. ३,२९,८; तै. सं. ३,५,११,२; ४,१,३,३ । नि होता० । ऋ. २,९,१; तै. सं. ३,५,११,२; ४,१,३,१ । त्वं दूतस्त्वमु नः० । ऋ. २,९,२; तै. सं. ३,५,११,२ । अञ्जन्ति त्वामध्वरे० । ऋ. ३,८,१; तै. ब्रा. ३,६,१,१, नि. ८,१८ । उच्छ्रयस्व वनस्पते० । ऋ. ३,८,३; तै. ब्रा. ३,६,१,१ । समिद्धस्य श्रयमाणः० । ऋ. ३,८,२; तै. ब्रा. ३,६,१,१ । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये० । ऋ. १,३६,१३; सा. ५७; तै. सं. ४,१,४,२; तै. ब्रा. ३,६,१,२ । ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो० । ऋ. १,३६,१४; तै. ब्रा. ३,६,१,२ । युवा सुवासाः परीवीत० । ऋ. ३,८,४; तै. ब्रा. ३,६,१,३ । अभि त्वा देव सवित:० । ऋ. १,२४,३; तै. सं. ३,५,११,३]

मही द्यौः पृथिवी च नस्त्वामग्ने पुष्करादधि तमु त्वा दध्यङ्ङृषिस्तमु त्वा पाथ्यो वृषाग्नी
रक्षाँसि सेधत्युत श्रुवन्तु जन्तवः ॥ ५७

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ५८

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ निषीदतु ॥ ५९

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥ ६०

अग्निनाग्निस्समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६१

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ ६२

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ६३

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानस्सचन्त यत्र पूर्वे साध्यास्सन्ति देवाः ॥ १२ ॥ ६४

होता यक्षदग्निं समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्यास्संगथे वामस्य वर्ष्मन् दिव इडस्पदे वेत्वा-
ज्यस्य होतर्यज होता यक्षत् तनूनपातमदितेर्गर्भं भुवनस्य गोपां मध्वाद्य देवो देवेभ्यो देवयानान्
पथो अनक्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षदग्निमिड ईडितो देवो देवाँ आ वक्षद्दूतो हव्यवाडमूर
उपेमं यज्ञमुपेमां देवो देवहूतिं वेत्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षद्बर्हिस्सुष्टरीमोर्णम्रदा अस्मिन् यज्ञे
वि च प्र च प्रथताँ स्वासस्थं देवेभ्य एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्यास्सदन्तु प्रियमिन्द्रस्यास्तु
वेत्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षद्दुर ऋष्वाः कवष्यो कोषधावनीरुदाताभिर्जिहतां वि पक्षोभिश्श्रयन्ताँ
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षदुषासानक्ता बृहती
सुपेशसा नॄः पतिभ्यो योनिं कृण्वाने संस्मयमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिस्सीदतां वीतामाज्यस्य होत-

[मही द्यौः पृथिवी० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,३ । त्वामग्ने पुष्करादध्य० । ऋ. ६,१६,१३; सा. ९; तै. सं. ३,५,११,३; ४,१,३,२; ४,४,१ । तमु त्वा दध्यङ्ङृषि० । ऋ. ६,१६, १४; तै. सं. ३,५,११,३; ४,१,३,२ । तमु त्वा पाथ्यो वृषा० । ६,१६,१५; तै. सं. ३,५,११,४; ४,१,३,३; अग्नी रक्षांसि सेधति० । ऋ. ७,१५,१०; अथर्व. ८,३,२६; तै. ब्रा. २,४,१,६ । उत श्रुवन्तु जन्तवः० । ऋ. १,७४,३; सा. १३८०; तै. सं. ३,५,११,४ । आ यं हस्ते न खादिनं० । ऋ. ६,१६,४०; तै. सं. ३,५,११,४ । प्र देवं देववीतये० । ऋ. ६,१६,४१; तै. सं. ३,५,११,४ । आ जातं जातवेदसि० । ऋ. ६,१६,४२; तै. सं. ३,५,११,४ । अग्निनाग्निस्समिध्यते० । ऋ. १,१२,६; सा. ८४४; तै. सं. १,४,४६,३; ३,५,११,५; तै. ब्रा. २,७,१२,३ । त्वं ह्यग्ने अग्निना० । ऋ. ८,४३,१४; तै. सं. १,४,४६,३; ३,५,११,५ । तं मर्जयन्त सुक्रतुं० । ऋ. ८,८४,८; तै. सं. ३,५,११,५ । यज्ञेन यज्ञमयजन्त० । ऋ. १,१६४,५०; १०,९०,१६; अथर्व. ७,५,१; तै. सं. ३,५,११,५; तै. आ. ३,१,७; शत. ब्रा. १०,२,२,२]

[१२] मै. ४,१३,२, (१०) । वा. २८,१-१०,२६-३६; २१,२९-४० । काण्व. ३०,१—१०,२४—३४; २३,३०-४१ । तै. ब्रा. ३,६,२ ।

र्यज होता यक्षद्दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा स्विष्टमद्यान्यः करत् स्वभिगूर्तमन्यस्स्व-
तवसेमं यज्ञं दिवि देवेषु धत्तां वीतामाज्यस्य होतर्यज होता यक्षत् तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छि-
द्रमद्येदमपस्तन्वतां देवेभ्यो देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षत् त्वष्टारमचिष्टुमपाकं
रेतोधां विश्रवसं यशोधां पुरुरूपमकामकर्शनँ सुपोषः पोषैस्स्यात् सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य होतर्यज
होता यक्षद्वनस्पतिमुपावस्रक्षद्धियो जोष्टारँ शशमन्नरस्स्वदात् स्वधितिर्ऋतुथाद्य देवो देवेभ्यो हव्य-
वाड्वेत्वाज्यस्य होतर्यज होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसस्स्वाहा स्तोकानाँ स्वाहा स्वाहा-
कृतीनाँ स्वाहा हव्यसूक्तीनाँ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥१३॥
६५

[१०३८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां श्रीराजसूयं नाम पञ्चदशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१५॥

अथ षोडशं स्थानकम् ।

अग्निवीशिका ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे नार्यसि गायत्रेण च्छन्दसा
पृथिव्यास्सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन च्छन्दसाभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निं शकेम
खनितुँ सधस्थ आ जागतेन च्छन्दसा ॥ १

हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिं हिरण्ययीम् । अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ २

आनुष्टुभेन च्छन्दसा ॥ ३

प्रतूर्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः ॥ ४

पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ ५

युञ्जाथाँ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्ता अस्मयुम् ॥ ६

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्ये मयोभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ ८

स्वस्ति गव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह पृथिव्यास्सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदा-
भराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ॥१॥ ९

[१] मै. २,७,१-२ (१—१९) । वा. ११,९—१६ । काण्व. १२,९—१६ । मा. श्रौ. ६,१,१ । तै. सं. ४,१,२—३ ।
[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७ । योगे योगे तवस्तरं० । ऋ. १,३०,७; सा. १६३, ७४३; अथर्व. १९,२४,७; २०,२६,१; तै. सं. ४,१,२,१]

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥ १०

आगत्य वाज्यध्वानं सर्वा मृधो विधूनुत । अग्निं सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ ११

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।

भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १२

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षँ समुद्रो योनिः ।

विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः ॥ १३

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।

वयँ स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ १४

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकस्सु लोकँ सुकृतं पृथिव्याः ।

ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं स्वो रुहाणा अधि नाक उत्तमे ॥ १५

जिघर्म्यग्निं मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नं रभसं विदानम् ॥ १६

आ त्वा जिघर्मि वचसा घृतेनारक्षसा मनसा तज्जुषेथाः ।

मर्यश्रीस्स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्हृषाणः ॥ १७

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १८

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रँ सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ १९

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥२॥ २०

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां पृथिव्यास्सधस्थे अग्निं पुरीष्यमङ्गि-
रस्वत् खनामि ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतँ शिवं प्रजाभ्यो अहिंसन्तं पृथि-
व्यास्सधस्थे ॥ अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि ॥ २१-२२

[२] मै. २,७,२ (१९—२९) । वा. ११,१७—२७ । काण्व. १२,१७—२७ । तै. सं. ४,१,२,३ । मा. श्रौ. ६,१,१ ।
[अन्वग्नि (प्रत्यग्नि) रुषसा० । ऋ. ४,१३,१; अथर्व. ७,८२,४—५; १८,१,२७—२८ । जिघर्म्यग्निं मनसा (हविषा)० । ऋ. २,१०,४; तै. सं. ४,१,२,४ । आ त्वा (विश्वतः) जिघर्मि (प्रत्यञ्चं)० । ऋ. २,१०,५; तै. सं. ४,१,२,५ । परि वाजपतिः० । ऋ. ४,१५,३; सा. ३०; तै. सं. ४,१,२,५; तै. ब्रा. ३, ६,४,१ । परि त्वाग्ने पुरं वयं० । ऋ. १०,८७,२२; अथर्व. ७,७१,१; ८,३,२२; तै. सं. १,५,६,४; ४,१,२,५ । त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशु० । ऋ. २,१,१; तै. सं. ४,१,२,५; तै. आ. १०,७६,१; खि. ६,१; १३,१]
[३] मै. २,७,२—३ (३०-४१) । वा. ११,२८-३७ । काण्व. १२,२८-३७ । मा. श्रौ. ६,१,१ । तै. सं. ४,१,३-३ ।
[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेस्समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।

वर्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्व ॥ २३

शर्म च स्थो वर्म च स्थो अच्छिद्रे बहुले उभे ।

व्यचस्वती संवसाथां भर्तमग्निं पुरीष्यम् ॥ २४

संवसाथाँ स्वर्विदा समीची उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ २५

पुरीष्योऽसि विश्वभराः ॥ अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ॥ २६-२७

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २८

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरंदरम् ॥ २९

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनंजयं रणे रणे ॥ ३०

सीद होतस्स्व उ लोके चिकित्वान् सादया यज्ञँ सुकृतस्य योनौ ।

देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३१

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः ।

अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठस्सहस्रंभरश्शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३२

सँसीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुषं विविग्धि सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३३

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नाँ हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।

दमे दमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता निषसादा यजीयान् ॥३॥ ३४

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।

तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयस्सुपिप्पलाः ॥ ३५

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।

यो देवानां चरसि प्राणथेन तस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३६

सुजातो ज्योतिषा शर्म वरूथमासदत्स्वः । वासो अग्ने विश्वरूपँ संव्ययस्व विभावसो ॥ ३७

[त्वामग्ने पुष्करादध्य० । ऋ. ६,१६,१३; सा. ९; तै. सं. ३,५,११,३; ४,१,३,२; ४,४,१ । तमु त्वा दध्यङ्० । ऋ. ६,१६,१४; तै. सं. ३,५,११,३; ४,१,३,२ । तमु त्वा पाथ्यो० । ऋ. ६,१६,१५; तै. सं. ३, ५,११,४; ४,१,३,३ । सीद होतस्स्व उ लोके० । ऋ. ३,२९,८; तै. सं. ३,५,११,२; ४,१,३,३ । नि होता होतृषदने० । ऋ. २,९,१; तै. सं. ३,५,११,२; ४,१,३,३ । सँसीदस्व महाँ असि० । ऋ. १,३६,९; तै. सं. ४,१,३,३; तै. आ. ४,५,२ । जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे० । ऋ. ५,१,५; तै. सं. ४,१,३,४]
[४] मै. २,७,४ (४५-६१) । वा. ११,३८—५२; ३६,१४—१६ । काण्व. १२,३८—५३, ३६,१४-१६]

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या कृपा ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वभिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ३८
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ३९
स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रश्शिशुः परि तमाँस्यक्तः प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४०
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ॥ ४१
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभिशुचो मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४२
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥ ४३
वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भँ समुद्रियम् । अग्न आयाहि वीतये ॥ ४४
ऋतँ सत्यमृतँ सत्यम् ॥ ४५
ओषधयः प्रतिगृह्णीताग्निमेतँ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मान् ।
व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥ ४६
ओषधयः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीस्सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नँ सधस्थमासदत् ॥ ४७
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतश्शर्मणि स्यामग्नेरहँ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४८
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ४९
यो वश्शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ ५०
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥४॥ ५१

[उदु तिष्ठ स्वध्वरावा० । ऋ. ८,२३,५; तै. सं. ४,१,४,१ । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये० । ऋ. १,३६,१३; सा. ५७; तै. सं. ४,१,४,१; तै. ब्रा. ३,६,१,२ । स जातो गर्भो असि० । ऋ. १०,१,२; तै. सं. ४,१,४,२ । अग्न आयाहि वीतये० । ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६०; तै. सं. २,५,७,३; २,५,८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१ । वि पाजसा पृथुना० । ऋ. ३,१५,१; तै. सं. ४,१,५,१ । आपो हि ष्ठा मयो० । ऋ. १०,९,१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११; नि. ९,२७ । यो वश्शिवतमो० । ऋ. १०,९,२; सा. १८३८; अथर्व. १,५,२; तै. सं. ४,१,५,१; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११ । तस्मा अरं गमाम० । ऋ. १०,९,३; सा. १८३९; अथर्व. १,५,३; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,१२]

पाठ० २०

मित्रस्सँसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सँसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५२
रुद्रास्सँसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिस्समीधिरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५३
सँसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली करोतु ताम् ॥ ५४
सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५५
उखां करोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ ॥ ५६
मखस्य शिरोऽसि वसवस्त्वा कुर्वन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया
मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यँ सुवीर्यँ सजातान् यजमानाय रुद्रास्त्वा कुर्वन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसा-
ङ्गिरस्वद् ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यँ सुवीर्यँ सजातान् यजमानाया-
दित्यास्त्वा कुर्वन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यँ
सुवीर्यँ सजातान् यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कुर्वन्त्वानुष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि
दिशोऽसि धारया मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यँ सुवीर्यँ सजातान् यजमानायादित्या रास्नास्यदिति-
स्ते बिलं गृह्णातु ॥ ५७
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । तां पुत्रेभ्यस्संप्रायच्छददितिश्श्रपयानिति॥५८
वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदा-
दित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन च्छन्द-
साङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥५॥ ५९
अदितिस्त्वा देवी विश्वदेव्यावती पृथिव्यास्सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट देवानां त्वा पत्नी-
र्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्यास्सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखे धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्या-
स्सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखे वरुत्रीस्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्यास्सधस्थे अङ्गिरस्वच्छ्रप-
यन्तूखे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्यास्सधस्थे अङ्गिरस्वत् पचन्तूखे जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा
देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्यास्सधस्थे अङ्गिरस्वत् पचन्तूखे ॥ ६०

[५] मै. २,७,५-६ (६२-६९) । वा. ११,५३-६०; ३७,८ । काण्व. १२,५४-६१; ३७,८ । तै. सं. ४,१,४-६ । मा. श्री. ६,१,२-२ ।
[६] मै. २,७,६ (६९-७४) । वा. ११,६१-६५ । काण्व. १२,६२-६६ । तै. सं. ४,१,६; ४,१,९-१० । मा. श्री. ६,१,२—३ ।

मित्रस्य चर्षणीधृतश्श्रवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६१
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिस्स्वङ्गुरिः । सुबाहुरुत शक्त्या ॥ ६२
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण । उत्तिष्ठ बृहती भवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ॥ ६३
मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्त्या एषा मा भेदि वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिर-
स्वद्रुद्रास्त्वाच्छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाच्छृन्दन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे
त्वा देवा वैश्वानरा आच्छृन्दन्त्वानुष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥६॥ ६४
आकूतिमग्निं प्रयुजँ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजँ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजँ स्वाहा वाचो
विधृतिमग्निं प्रयुजँ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६५
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वरेत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वरेत पुष्यतु ॥ ६६
स्वाहा मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ॥ ६७
दृँहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय आसुरी माया स्वधया कृतासि ।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ६८
द्रवन्नस्सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६९
परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥ ७०
परमस्याः परावतो रोहिदश्व उपागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७१
यदग्ने कानि कानि चा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥ ७२
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३
रात्रीं रात्रीमप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७४
नाभा पृथिव्यास्समिधानो अग्निं रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरंमदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७५

[मित्रस्य चर्षणीधृतो० । ऋ. ३,५९,६; तै. सं. ३,४,११,५; ४,१,६,३; तै. आ. ४,३,२ । देवस्त्वा० (मा. सुपाणिः (सुबाहुः)० । ऋ. २,३२,७; अथर्व. ७,४६,२; तै. सं. ३,१,११,४]
[७] मै. २,७,७ (७५—९१) । वा. ११,६६—८२; ४,८; २२,२१ । काण्व. १२,६७—८३; ४,९; २४,२२ । तै. सं. ४,१,९—१० । मा. श्री. ६,१,३ । [विश्वो देवस्य० । ऋ. ५,५०,१; तै. सं. १,२,२,१; ४,१,९,१ । द्रवन्नस्सर्पिरासुतिः० । ऋ. २,७,६; तै. सं. ४,१,९,२ । परस्या अधि संवतो० । ऋ. ८,७५,१५; तै. सं. २,६,११,३; ४,१,९,२ । यदग्ने कानि कानि० । ऋ. ८,१०२,२०; अथर्व. १९,६४,३; तै. सं. ४,१,१०,१ । यदत्त्युपजिह्विका० । ऋ. ८,१०२,२१; तै. सं. ४,१,१०,१; नि. ३,२०]

यास्सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेऽपि दधाम्यास्ये ॥ ७६
दँष्ट्राभ्यां मलिम्लूनग्ने जम्भ्येभिस्तस्करानुत ।
हनुभ्याँ स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥ ७७
ये जनेषु मलिम्लवस्स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः॥ ७८
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् दिप्साच्च सर्वाँस्तान् मष्मषा कुरु ॥ ७९
सँशितं मे ब्रह्म सँशितं वीर्यं बलम् । सँशितं क्षत्रं मे जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८०
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ अहम् ॥७॥ ८१
दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुश्श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवत् सहोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥ ८२
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकँ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ ८३
विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ८४
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत् ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दाँस्यङ्गानि
यजूँषि नाम साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञीयं पुच्छं धिष्ण्याश्शफास्सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ
स्वः पत ॥ विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमो-
ऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं
छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनु-
विक्रमस्व ॥ ८५-८६

[सँशितं मे ब्रह्म० । अथर्व. ३,१९,१]
[८] मै. २,७,८ (९३—१०७) । वा. १२,१—१७,२१,२५ ३३,४०; १०,२४; १७,७० । काण्व. १३,१-१८,२२,२६, ३४,४१; ११,३४; १८,७० । तै. सं. ४,१,१०; ४,२,१ । मा. श्री. ६,१,३ । [दृशानो रुक्म उर्व्या० । ऋ. १०,४५,८; तै. सं. १,३,१४,५; ४,१,१०,४; ४,२,२,४ । नक्तोषासा समनसा० । ऋ. १,९६,५; १,११३,३ (च.पा.) । तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३ । विश्वा रूपाणि० । ऋ. ५,८१,२; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३ । विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा० । अथर्व. १०,५,२५-३५]

अक्रन्ददग्निस्स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधस्समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ८७
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि नो निवर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया ॥ ८८
अग्ने अङ्गिरश्शतं ते सन्त्वावृतस्सहस्रं त उपावृतः ।
अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥ ८९
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ ९०
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ९१
आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मे राष्ट्रमधिश्रय ॥ ९२
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ९३
अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ ९४
हंसश्शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ९५
सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनां तपसा मार्चिषाभिशोचोऽन्तरस्यां शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥ ९६
अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाँ सदने स्वे । तस्यास्त्वँ हरसा तपञ्जातवेदश्शिवो भव ॥ ९७
शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवाः कृत्वा दिशस्सर्वास्स्वं योनिमिहासदः ॥८॥ ९८

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ ९९

[अक्रन्ददग्निस्स्तनयन्निव० ऋ. १०,४५,४; तै. सं. १,३,१४,२; ४,२,१; २,२,२ । आ त्वाहार्षमन्तरभू०। ऋ. १०,१७३,१; अथर्व. ६,८७,१; तै. सं. ४,२,१,४; तै. ब्रा. २,४,२,८ । उदुत्तमं वरुण पाश० । ऋ. १, २४,१५; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; नि. २,१३ । अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो० । ऋ. १०,१,१; तै. सं. ४,२,१,४ । हंसश्शुचिषद्वसु० । ऋ० ४,४०,५; तै. सं. १,८,१५,२; ४,२,१,५; तै. आ. १०,१०,२]

[९] मै. २,७,९ (१०८-११६) । क. १२,१,६,१८—२८,३३ । काण्व. १३,१,७,१९-२९,३४ । तै. सं. ४,२,२ । मा. श्रौ. ६,१,३ । [दिवस्परि प्रथमं० । ऋ. १०,४५,१; तै. सं. १,३,१४,५; ४,२,२,१; नि. ४,२४]

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते सद्म विभृतं पुरुत्रा ।
विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ विद्मा ते नाम परमं गुहा यत् ॥ १००
समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाँसमृतस्य योनौ महिषा अहिन्वन् ॥ १०१
अक्रन्ददग्निस्स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधस्समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ १०२
उशिक् पावको अरतिस्सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि ।
इयर्ति धूममरुषो भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ १०३
श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणस्सोमगोपाः ।
वसुस्सूनुस्सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ॥ १०४
विश्वस्य जज्ञे भुवनस्य राजा रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ १०५
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि द्युम्नं देवहितं यविष्ठ्य ॥ १०६
आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ आभज शस्यमाने ।
प्रियस्सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ १०७
दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुश्श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥ १०८
त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो अपव्रन् ॥९॥ १०९
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वँ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ११०

[विद्मा ते अग्ने त्रेधा० । ऋ. १०,४५,२; तै. सं. ४,२,२,१ । समुद्रे त्वा नृमणा० । ऋ. १०,४५,३; तै. सं. ४,२,२,१ । अक्रन्ददग्नि० (अष्टमानुवाके द्रष्टव्यम्) । उशिक् पावको० । ऋ. १०,४५,७; तै. सं. ४,२,२,२ । श्रीणामुदारो धरुणो० । ऋ. १०,४५,५; तै. सं. ४,२,२,३ । विश्वस्य (केतु०) जज्ञे० । ऋ. १०,४५,६; तै. सं. ४,२,२,२ । यस्ते अद्य० । ऋ. १०,४५,९; तै. सं. ४,२,२,३ । आ तं भज० । ऋ. १०,४५,१०; तै. सं. ४,२,२,३ । दृशानो रुक्म० । (अष्टमानुवाके द्रष्टव्यम्) । त्वामग्ने यजमाना० । ऋ. १०,४५,११; तै. सं. ४,२,२,४]

[१०] मै. २,७,१० (११८-१३०) । कपि. २५,१ । वा. ११,८३; १२,३०-४३; ३,१ । काण्व. १२,८४; १३,३१-४४; ३,१ । तै. सं. ४,२,३ । मा. श्रौ. ६,१,४]

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ १११
अक्रन्ददग्निस्स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधस्समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ११२
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ११३
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ११४
प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिश्शिवो नः ॥ ११५
आपो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मैतत् स्योने कृणुध्वं सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयस्सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृता स्वेनम् ॥ ११६
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ११७
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ ११८
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ११९
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्यां शिवतमः ॥ १२०
पुनरूर्जा सह रय्या ॥
१२१
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ १२२
स बोधि सूरिर्मघवा वसुदावा वसुपतिः । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥१०॥ १२३
अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदाद्यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ १२४

[अक्रन्ददग्नि० । (अष्टमानुवाके द्रष्टव्यम्) । समिधाग्निं दुवस्यत० । ऋ. ८,४४,१; तै. सं. ४,२,३,१; तै. ब्रा. १,२,१,२ । प्र प्रायमग्निर्भरतस्य० । ऋ. ७,८,४; तै. सं. २,५,१२,४; ४,२,३,२ । अप्स्वग्ने सधि० । ऋ. ८,४३,९; तै. सं. ४,२,३,२; १२,३ । गर्भो अस्योषधीनां० अथर्व. ५,२५,७; ६,९५,३ । पुनरूर्जा सह रय्या० । ऋ. १०,१५९,१०,१६० । बोधा मे अस्य० । ऋ. १,१४७,२; तै. सं. ४,२,३,४; नि. ३,२० । स बोधि सूरिर्मघवा० । ऋ. १,६,४; तै. सं. ४,२,३,४]

[११] मै. २,७,११ (१३१-१४४) । कपि. २५,२ । वा. १२,४४-४६,४९-६२; ३,२४; ५,३; १५,४६,१७,६१ । काण्व. १३,४५-४८,५८-६२; ३,२०; ५,३; १६,७८; १८,६१ । तै. सं. ४,२,४-५ । मा. श्रौ. ६,१,५ । [अपेत वीत वि च० । ऋ. १०,१४,९; अथर्व. १८,१,५५; तै. सं. ४,२,४,१; तै. ब्रा. १,२,१,१६; तै. आ. १,२७,५; ६,६,२]

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयादग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितस्थ परिचित ऊर्ध्वश्चितश्श्रयध्वम् ॥ १२५
अयँ सो अग्निर्यस्मिन् सोममिन्द्रस्सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान् सन् स्तूयसे जातवेदः ॥ १२६
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
यास्स्वावस्तादुपतिष्ठन्त आपो या वा परो रोचने सूर्यस्य ॥ १२७
अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषस्स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ १२८
पुरीष्यासो अग्नयः प्रवणेन सजोषसः । जुषन्तां हव्यमाहुतमनमीवा इषो महीः ॥ १२९
इडामग्ने पुरुदंसँ सनिं गोश्शश्वत्तमँ हवमानाय साध ।
स्यान्नस्सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ १३०
अयं ते योनिरृत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥ १३१
चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १३२
समितँ संकल्पेथाँ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभिसंवसानौ ॥ १३३
सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥ १३४
अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ असि ।
शिवाः कृत्वा दिशस्सर्वास्स्वं योनिमिहासदः ॥ १३५
भवतं नस्समनसौ समोकसा अरेपसौ ।
मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ १३६

[अयं सो अग्निर्यस्मिन्० । ऋ. ३,२२,१; तै. सं. ४,२,४,२ । अग्ने दिवो अर्णमच्छा० । ऋ. ३,२२,३; तै. सं. ४,२,४,२ । अग्ने यत्ते दिवि० । ऋ. ३,२२,२; तै. ब्रा. ४,२,४,२ । पुरीष्यासो अग्नयः । ऋ. ३, २२,४; तै. सं. ४,२,४,३ । इडा(ळा)मग्ने पुरुदंसं० । ऋ. ३,१,२३; ५,११; ६,११; ७,११, १५,७; २२,५; २३,५; सा. ७६; तै. सं. ४,२,४,३ । अयं ते योनिरृत्वियो० । ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१; तै. सं. १, ५,५,२; ४,२,४,३; ७,१३,५; तै. ब्रा. १,२,१,१६; २,५,८,८ । सं वां (वो) मनांसि० । ऋ. परि. ३६,४; अथर्व. ६,९४,१]

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योना अभारुखा।
तां विश्वे देवा ऋतुभिस्संविदानाः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥११॥ १३७
यदस्य पारे रजसश्चित्रं ज्योतिरजायत। तन्नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर द्युमत् ॥ १३८
असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्करस्यान्विहि।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ १३९
यत् ते अस्मिन् घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय कम्।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥ १४०
नमस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयेनम् ॥ १४१
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचर्त्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो नु मध्येऽधा विपितः पितुमद्धि प्रसूतः ॥ १४२
निवेशनस्संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ १४३
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ॥ १४४
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिस्सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमायत् ॥ १४५
पूषा युनक्तु सविता युनक्तु बृहस्पतिस्सविता देवो अग्निः ॥ १४६
शुनँ सुफाला वितुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनासीरा हव्यजुष्टिं जुषाणेदं बीजमवतमुप्यमानम् ॥ १४७
लाङ्गलं पवीरवँ सुशेवँ सोमपित्सरु।
उदिद्वपति गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं प्रफर्व्यं च पीवरीम् ॥ १४८
घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमतं मरुद्भिः।
ऊर्जो भागं मधुमत् पिन्वमानास्मान् सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥ १४९

[१२] मै. २,७,१२ (१४५-१६०)। कपि. २५,३। वा. १२,६२-७३। काण्व. १३,६३-७४। [तन्नः(स नः)पर्षदति द्विषः०। ऋ. परि. २६,७; ३५,१। नमस्तु ते निर्ऋते०। अथर्व. ६,६३,२-३; ६,८४,३-४। यं ते(यस्ते) देवी०। अथर्व. ६,६३,१। निवेशनस्संगमनो० (रायो बुध्नः)०। ऋ. १०,१३९,३; अथर्व. १०,८,४२; तै. सं. ४,२,५,४। सीरा युञ्जन्ति कवयो०। ऋ. १०,१०१,४; अथर्व. ३,१७,१; तै. सं. ४,२,५,५। युनक्त सीरा वि युगा०। ऋ. १०,१०१,३; अथर्व. ३,१७,२; तै. सं. ४,२,५,५; नि. ५,२८। शुनँ सु(नः)फाला०। ऋ. ४,५७,८; अथर्व. ३,१७,५; तै. सं. ४,२,५,६। लाङ्गलं पवीरवं०। अथर्व. ३,१७,३। घृतेन सीता मधुना०। अथर्व. ३,१७,९]
पाठ० २१

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारम्। ज्योतिरापाम ॥ १५०
कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥१२॥ १५१
या ओषधयः प्रथमजा देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रूणामहँ शतं धामानि सप्त च॥ १५२
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥ १५३
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥ १५४
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे। रपाँसि विघ्नतीरित रक्षश्चातयमानाः ॥ १५५
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत् सनवाथ पूरुषम्॥ १५६
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्। आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥ १५७
यदोषधयस्समग्मत राजानस्समिता इव। विप्रस्स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ १५८
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनँ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ १५९
अति विश्वाः परिष्ठास्स्तेन इव व्रजमक्रमुः। ओषधयः प्राचुच्यवुर्यत् किंचित् तन्वो रपः॥ १६०
यास्त आतस्थुरात्मानमाविविशुः परुष्परुः।
तास्ते यक्ष्मं विबाधन्तामुग्रो मध्यमशीरिव ॥ १६१
यदहं वाजयन्निमा ओषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ १६२
निष्कृतिर्नाम वो माताथो त्वमसि निष्कृतिः।
सराः पतत्रिणीस्स्थ यदामयति निष्कृत ॥ १६३
साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ १६४

[१३] मै. २,७,१३ (१६६-१८१)। कपि. २५,४। वा. १२,७५-९४। काण्व. १३,७६-९५। तै. सं. ४,२,६। मा. श्री. ६,१,६। [या ओषधयः(ओषधी)०। ऋ. १०,९७,१; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ९,२८। शतं वो अम्ब०। ऋ. १०,९७,२; तै. सं. ४,२,६,१। पुष्पवतीः(ओषधीः)०। ऋ. १०,९७,३; तै. सं. ४,२,६,१। ओषधीरिति मातरः०। ऋ. १०,९७,४; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ६,३। अश्वत्थे वो निषदनं०। ऋ. १०,९७,५; तै. सं. ४,२,६,२। अश्वावतीं सोमावतीं०। ऋ. १०,९७,७; तै. सं. ४,२,६,४। यदोषधय(यत्रौषधीः) स्समग्मत०। ऋ. १०,९७,६; तै. सं. ४,२,६,२। उच्छुष्मा ओषधीनां०। ऋ. १०,९७,८; तै. सं. ४,२,६,३। अति विश्वाः परिष्ठा०। ऋ. १०,९७,१०; तै. सं. ४,२,६,३। यास्त आतस्थु(यस्यौषधीः प्रसर्पथ)०। ऋ. १०,९७,१२। यदहं(यदिमा)वाजय०। ऋ. १०,९७,११; तै. सं. ४,२,६,२; नि. ३,१५। निष्कृति(इष्कृ०)र्नाम वो०। ऋ. १०,९७,९; तै. सं. ४,५,६,२। साकं यक्ष्म प्रपत०। ऋ. १०,९७,१३; तै. सं. ४,२,६,४]

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।
तास्सर्वास्संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ १६५
अवपतन्तीरवदन् दिवोऽन्तेभ्यस्परि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ १६६
याः फलिनीर्या अफला अकोशाः कोशिनीश्च याः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँहसः ॥ १६७
याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँहसः ॥ १६८
यास्सोमराज्ञीर्वरुणस्य राज्ञो यासां विश्वे देवा अधिपतयश्च सर्वे।
या अन्तरिक्षे दिवि याः पृथिव्यां ता नस्स्तुता ओषधीः पारयन्तु ॥१३॥ १६९
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो दिवँ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १७०
अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह। वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥ १७१
अग्ने यत् ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत् पूतं यच्च यज्ञियम्। तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १७२
इषमूर्जमहमित आदृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्।
आ नो गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १७३
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्त्यर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १७४
पावकवर्चाश्शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रः पितरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥ १७५
ऊर्जो नपाज्जातवेदस्सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे विश्वे संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १७६

[अन्या वो अन्यामव०। ऋ. १०,९७,१४; तै. सं. ४,२,६,३। अवपतन्तीरवदन्०। ऋ. १०,९७,१७; अथर्व. ६,१०९,२; तै. सं. ४,२,६,५। याः फलिनीर्या०। ऋ. १०,९७,१५; अथर्व. ६,९६,१; ७,११,१; ८,७,२७; १४,२,३५; तै. सं. ४,२,६,४। याश्चेदमुपशृण्वन्ति०। ऋ. १०,९७,२१; तै. सं. ४,२,६,५]
[१४] मै. २,७,१४ (१८४-१८७,१८९-१९६)। कपि. २५,५। वा. १२,१०२-११३। काण्व. १३,१०१-११२। तै. सं. ४,२,७। मा. श्री. ६,१,६ [मा नो हिंसीज्जनिता०। ऋ. १०,१२१,९; तै. सं. ४,२,१,१। कस्मै देवाय...विधेम। अथर्व. ४,२,१-८। अग्ने तव श्रवो वयो०। ऋ. १०,१४०,१; सा. १८१६; तै. सं. ४,२,७,१। पावकवर्चाश्शुक्रवर्चा०। ऋ. १०,१४०,२; सा. १८१७; तै. सं. ४,२,७,२। ऊर्जो नपाज्जातवेदः०। ऋ. १०,१४०,३; सा. १८१८; तै. सं. ४,२,७,२]

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं रयिम् ॥ १७७
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णँ सप्रथस्तमं त्वा युजा विप्रासो मानुषा युगा ॥ १७८
निष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतस क्षयन्तँ शवसे महे।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥ १७९
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतस्सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे ॥ १८०
सं ते पयाँसि समु यन्तु वाजास्सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाँस्युत्तमानि धिष्व ॥१४॥ १८१
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेस्समुद्रमभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो महाँ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्व ॥ १८२
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतस्सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास्सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ १८३
हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १८४
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ १८५
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिव्यामधि।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यस्सर्पेभ्यो नमः ॥ १८६
येषु वा यातुधाना ये वा वनस्पतीँरनु। येऽवटेषु शेरते तेभ्यस्सर्पेभ्यो नमः ॥ १८७

[इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व०। ऋ. १०,१४०,४; सा. १८१९; तै. सं. ४,२,७,२। ऋतावानं महिषं०। ऋ. १०,१४०,६; सा. १८२१; तै. सं. ४,२,७,३। नि(इ)ष्कर्तारमध्वरस्य०। ऋ. १०,१४०,५; सा. १८२०; तै. सं. ४,२,७,३। आप्यायस्व समेतु०। ऋ. १,९१,१६; ९,३१,४; तै. सं. ३,२,५,३; ४,२,७,४; ताण्ड्य ब्रा. १,५,८। सं ते पयाँसि समु०। ऋ. १,९१,१८; तै. सं. ४,२,७,४]
[१५] मै. २,७,१५ (१९७-१९८, २००-२११)। वा. १३,२-१३; २३,१; २५,१०। काण्व. १४,२-१५; २५,१; २७,१४। तै. सं. ४,२,८,९; १,२,१४। मा. श्री. ६,१,७। [ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं०। अथर्व. ४,१,१; ५,६,१। हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे०। ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३। द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी०। ऋ. १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३; ४,२,८,२; ९,५; तै. आ. ६,६,१। नमो अस्तु सर्पेभ्यो०। ऋ. परि. १५,११। येषु(या)वा(इषवो)यातुधाना०। ऋ. परि. १५,१०]

ये वादो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येऽप्सु सदांसि चक्रिरे तेभ्यस्सर्पेभ्यो नमः ॥ १८८
कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १८९
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १९०
प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ १९१
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ १९२
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥ १९३
अग्नेस्त्वा तेजसा सादयामीन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १९४
अयमग्निस्सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ १९५
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिस्सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥१५॥ १९६
ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृंह
प्रथोऽसि पृथिव्यसि भूरसि भूमिरस्यदितिरसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९७
काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषस्परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ १९८
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यै ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ १९९

[ये वादो रोचने दिवो० । ऋ. परि. १०,९ । कृणुष्व पाजः प्रसितिं० । ऋ. ४,४,१; तै. सं. १,२,१४,१; नि. ६,१२ । तव भ्रमास आशुया० । ऋ. ४,४,२; तै. सं. १,२,१४,१ । प्रति स्पशो विसृज० । ऋ. ४,४,३; तै. सं. १,२,१४,१ । उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व० । ऋ. ४,४,४; तै. सं. १,२,१४,२ । ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्या० । ऋ. ४,४,५; अथर्व. १३,१,३ ; तै. सं. १,२,१४,२ । अयमग्निस्सहस्रिणो० । ऋ. ८,७५,४; तै. सं. २,६,११, १; ४,४,४,१ । भुवो यज्ञस्य रजसश्च० । ऋ. १०,८,६; तै. सं. ४,४,४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१]
[१६] मै. २,७,१४; २,७,१६—१७ (९७; २२२,२२४—२२६,२२५,२३७—२३८) । क. २५,६ । वा. १३,१६—२४,३२-३३, ३८—४० ८,३९; ९,४ । काण्व. १४,१६—२२,२७—२८,३४—३५,४०—४२; ९,३१; ६,५ । तै. सं. ४,२, ९ । मा. श्री. ६,१,७]

यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २००
या वो देवास्सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिस्सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २०१
विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयदषाढासि सहमाना सहस्वारातिं सहस्व पृतनायत-
स्सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥ २०२
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ २०३
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यस्सखा ॥ २०४
सरित् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा यश्चिक्रित्रे ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ २०५
ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वाभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य
चाग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ध्रुवासि धरुणा सहस्रदा असि सहस्राय
त्वा ॥१६॥ २०६
आदित्यं गर्भं पयसा समञ्जन् सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृङ्धि हरसा माभिमंस्थाश्शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ २०७
वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानं सरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनां हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ २०८
अजस्रमिन्द्रमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानस्स गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ २०९
वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानां रजसः परस्मात् ।
महीं साहस्रीमसुरस्य मायां तामग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ २१०
यो अग्निरग्नेस्तपसोऽधि जातश्शोकात् पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ २११

[मही द्यौः पृथिवी च० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,३ । विष्णोः कर्माणि पश्यत० । ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१; अथर्व. ७,२६,६; तै. सं. १,३,६,२ । सरित्(सम्यक्)स्रवन्ति सरितो० । ऋ. ४,५८,६; तै. सं. ४,२,९,६]
[१७] मै. २,७,१७(२३९—२४६) । कपि. २५,८ । वा. १३,४१ – ४५,४७—५१ । काण्व. १४,४३-४७,४९-५३ । तै. सं. ४,२,९—१० । मा. श्री. ६,१,७]

इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशूनां सहस्राक्ष मेध आ चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ २१२
मयुं ते शुचं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ २१३
इमं मा हिंसीरेकशफं पशूनां कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ २१४
गौरं ते शुचं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ २१५
इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ २१६
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ २१७
गवयं ते शुचं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ २१८
इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ २१९
मेषमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ २२०
मेषं ते शुचं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ २२१
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्ने ।
तेन देवा देवतामग्रमायंस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ॥ २२२
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ॥ २२३
शरभं ते शुचं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१७॥ २२४
अपां त्वेमन् सादयाम्यपां त्वोद्मन् सादयाम्यपां त्वा भस्मनि सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि साद-
याम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि सरिरे त्वा सदने
सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे
सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण
त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन जागतेनानुष्टुभेन पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥१८॥ २२५
अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं
गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि

[अजो ह्यग्नेरजनिष्ट० । अथर्व. ४,१४,१; ९,५,१३]
[१८] मै. २,७,१८ (२२७) । कपि. २५,९ । वा. १३,५३ । काण्व. १४,५५ । तै. सं. ४,३,१ । मा. श्री. ६,१,८ ।
[१९] मै. २,७,१९; २,८,१ (२२८; १-२) । कपि. २५,९ । वा. १३,५४-५५; १३,५६-५८; १५,५९-६० । काण्व. १३,५५-५६; १४,५६-६५; १६,६०-६१ । तै. सं. ४,३,२ ।

प्रजाभ्योऽयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभस्स्वारं
स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात् पञ्चदशः पञ्चदशाद्बृहद्भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो
गृह्णामि प्रजाभ्योऽयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाणि चाक्षुषाणि जगती वार्षी जगत्या
ऋक्सममृक्समाच्छुक्रश्शुक्रात् सप्तदशस्सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षु-
र्गृह्णामि प्रजाभ्य इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रं सौवं शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन
एकविंश एकविंशाद्वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्य इयमु-
परि मतिस्तस्या वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्या निधनवन्निधनवत आग्रायण
आग्रायणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते विश्वकर्मर्षिः प्रजापतिगृहीतया त्वया
वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ २२६
लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् ।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योना असीषदन् ॥ २२७
ता अस्य सूददोहसस्सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥१९॥ २२८
समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २२९
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २३०
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिस्सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २३१
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ २३२
व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयश्शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ २३३

[ता अस्य सूददोहस० । ऋ. ८,६९,३; तै. सं. ४,२,४,४; तै. ब्रा. ३,११,६,२]
[२०] मै. ३,१३,३; ५(११-१२,१४-२१; ३४) । वा. २९,२५-२६,२८-३६ । काण्व. ३१,३७-३८,४०-४८ । [समिद्धो अद्य मनुषो० । ऋ. १०,११०,१; अथर्व. ५,१२,१; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,५ । तनूनपात्पथ ऋतस्य० । १०,११०,२; अथर्व. ५,१२,२; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,६ । आजुह्वान ईड्यो० । ऋ. १०,११०,३; अथर्व. ५,१२,३; तै. ब्रा. ३,६,३,२ । नि. ८,८ । प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा० । ऋ. १०,११०,४; अथर्व. ५,१२,४; तै. ब्रा. ३,६,३,२; नि. ८,९ । व्यचस्वतीरुर्विया० । ऋ. १०,११०,५; अथर्व. ५,१२,५; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,१०]

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ २३४
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ २३५
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसस्सदन्तु ॥ २३६
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ २३७
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिश्शमिता देवो अग्निस्स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ २३८
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥२०॥ २३९

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ २४०
परि त्रिविष्टध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २४१
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २४२
अजैदग्निरसनद्वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यावाट् प्राङ्गोभिर्हिन्वानो धेनाभिः कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुप प्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यो दैव्याश्शमितार उत च मनुष्या आरभध्वमुपनयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतये मेधं प्रास्मा अग्निं भरत स्तृणीत बर्हिरन्वेनं माता मन्यतामनु पितानु भ्राता

[आ सुष्वयन्ती यजते० । ऋ. १०,११०,६; अथर्व. ५,१२,६; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,११ । दैव्या होतारा प्रथमा०। ऋ. १०,११०,७; अथर्व. ५,१२,७; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,१२। आ नो यज्ञं भारती०। ऋ. १०,११०,८; अथर्व. ५,१२,८; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१३ । य इमे द्यावापृथिवी० । ऋ. १०,११०, ९; अथर्व. ५,१२,९; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१४ । उपावसृज त्मन्या० । ऋ. १०,११०,१०; अथर्व. ५, १२,१०; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१७ । सद्यो जातो व्यमिमीत० । ऋ. १०,११०,११; अथर्व. ५,१२,११; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,२१]

[२१] मै. ४,१३,४-५(२२-३३)। वा. ११,२५; ४,२०, १,१५; २१,४१ । काण्व. १२,२५; ४,२६; १,२१; २३,४२; तै. ब्रा. ३,६,४,६; ७-९ । [अग्निर्होता नो अध्वरे० । ऋ. ४,१५,१; तै. ब्रा. ३,६,४,१ । परि त्रिविष्टध्वरं० । ४,१५,२; तै. ब्रा. ३,६,४,१ । परि वाजपतिः० । ऋ. ४,१५,३; सा. ३०; तै. सं. ४,१,२,५; तै. ब्रा. ३,६,४,१। अजैदग्निरसद्वाजं । तै. ब्रा. ३,६,५ । स्तृणीत बर्हिः० । ऋ. १,१३,५]

संगभ्योऽनु सखा सयूथ्यः ॥ उदीचीनाँ अस्य पदः कृणुतात् सूर्यं चक्षुर्गमयताद्वातं प्राणमन्ववसृजतादन्तरिक्षमसुं पृथिवीं शरीरमेकधास्य त्वचमाच्छयतात् पुरा नाभ्या अपिशसो वपामुत्खिदतादन्तरेवोष्माणं वारयध्वाच्छ्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसा बाहू शला दोषणी कश्यपेवांसाच्छिद्रे श्रोणी कवषोरूस्रेकपर्णाष्ठीवन्ता षड्विंशतिरस्य वङ्क्रयस्ता अनुष्ठुयोच्च्यावयताद्गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतादूवध्यगोहं पार्थिवं खनतादस्रा रक्षस्संसृजताद्वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना नेद्वस्तोके तनये रविता रवदध्रिगो शमीध्वं सुशमि शमीध्वं शमीध्वमध्रिगो ॥ २४३--२४४
जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ २४५
इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ २४६
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाश्श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २४७
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिश्श्रेष्ठस्समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ २४८
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवस्स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ २४९
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ २५०
होता यक्षद्बृहस्पतिं छागस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज होता यक्षदश्विना छागस्य वपाया मदसो जुषतां हविर्होतर्यज होता यक्षत् सरस्वतीं मेष्या वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज होता यक्षदिन्द्रं मेषस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज ॥२१॥ २५१
[१२८९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायामग्निचीशिका नाम षोडशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१६॥

[उदीचीनाँ०। ऐ.ब्रा.२,६। जुषस्व सप्रथस्तमं०। ऋ. १,७५,१; तै. ब्रा. ३,६,७,१ । इमं नो यज्ञममृतेषु० । ऋ. ३,२१,१; तै. ब्रा. ३,६,७,१ । घृतवन्तः पावक ते० । ऋ. ३,२१,२; तै. ब्रा. ३,६,७,१ । तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो० । ऋ. ३,२१,३; तै. ब्रा. ३,६,७,२ । तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो०। ऋ. ३,२१,४; तै. ब्रा. ३,६,७,२। ओजिष्ठं मे मध्यतो० । ऋ. ३,२१,५; तै. ब्रा. ३,६,७,२]

अथ सप्तदशं स्थानकम्।

ध्रुवक्षितिः।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साध्या । १
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
कुलायिनी घृतवती पुरंधिस्स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥२
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवस्स्वावेशया तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४
अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशाम् ॥ ५
अधिपत्नीं भुवनानामूर्मिर्द्रप्सो अपामसि । ६
विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥
सजूरृतुभिस्सजूर्विधाभिस्सजूर्देवैस्सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ सजूरृतुभिस्सजूर्विधाभिस्सजूर्वसुभिस्सजू रुद्रैस्सजूरादित्यैस्सजूर्विश्वैर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ प्राणं मे पाहि व्यानं मे पाह्यपानं मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकयापः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वा वृष्टिमेरय ॥१॥ ७-९

त्रियविर्वयो गायत्री छन्दो दित्यवाड् वयस्त्रिष्टुप् छन्दः पञ्चाविर्वयो विराट् छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिहा छन्दस्तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द उक्षा वयः ककुप् छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दोऽनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्द ऋषभो वयस्सतोबृहती छन्दो बस्तो वयो युवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्यं छन्दस्सिंहो वयश्छादिश्छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दः ॥२॥ १०

[१] मै. २,८,१-२ (३-९) । कपि. २५,१० । वा. १४,१—५,७—८ । काण्व. १५,१—८ । तै. सं. ४,३,४ । मा. श्रौ. ६,२,१ ।
[२] मै. २,८,२ (९) । कपि. २६,१ । वा. १४,९—१० । काण्व. १५,९—१३ । तै. सं. ४,३,४—५ ।

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम् ।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११
राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक्सम्राडसि प्रतीची दिक्स्वराडस्युदीची दिगाधिपत्न्यासि बृहती दिगायुर्मे पाहि प्राणं मे पाहि व्यानं मे पाह्यपानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि मनो मे पिन्व वाचं मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ मा छन्दः प्रमा छन्दः प्रतिमा छन्दोऽस्त्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दः उष्णिहा छन्दोऽनुष्टुप्छन्दो विराट् छन्दो बृहती छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दःपृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दस्समा छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दोऽग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता बृहस्पतिर्देवता मूर्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरण्यायुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा यन्त्री राडयन्त्र्यासि यमनी ध्रुवासि धरित्रीषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥३॥ १२

आशुस्त्रिवृद्भ्रान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्तस्सविंशो धरुण एकविंशो वर्चो द्वाविंशस्संभरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकष्षट्त्रिंशो वीवर्तो अष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमोऽग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोम इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्चदशस्स्तोमो नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदशस्स्तोमो मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातस्पृत एकविंशस्स्तोमो वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंशस्स्तोम आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भास्स्पृताः पञ्चविंशस्स्तोमोऽदित्या भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्स्पृतं त्रिणवस्स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिशस्स्पृताश्चतुष्टोमस्स्तोमो यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजास्स्पृताश्चतुश्चत्वारिंशस्स्तोम ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतं निशान्तं त्रयस्त्रिंशस्स्तोमः ॥४॥ १३

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्तर्षयो-

[३] मै. २,८,३ (१०—११) । कपि. २६,२ । वा. १४,११,१३,१७—२२ । काण्व. १५,१४,१६—२४ । तै. सं. ४, ३,६—७ । मा. श्रौ. ६,२,१ ।
[४] मै. २,८,४—५ (१२—१३) । कपि. २६,३ । वा. १४,२३—२६ । काण्व. १५,२५—३१ । तै. सं. ४,३,८-९। मा. श्रौ. ६,२,१ ।
[५] मै. २,८,३(१४)। कपि. २६,४ । वा. १४,२८—३१ । काण्व. १५,३२-३५ । तै. सं. ४.३.१० । मा. श्रौ. ६.२.१।

ऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीन्नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुव-
तार्तवा असृज्यन्तर्तवोऽधिपतय आसँस्त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् सप्तदशभिरस्तुवत पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधि-
पतिरासीन्नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्तामेकविंशत्यास्तुवतैकशफाः
पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्
पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां
वसवो रुद्रा अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन्नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपति-
रासीदेकत्रिंशतास्तुवत प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसँस्त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशा-
म्यत् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥५॥ १४

अग्ने जातान् प्रणुदा नस्सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडञ्छर्मन्ते स्याम त्रिवरूथ उद्भौ ॥ १५
सहसा जातान् प्रणुदा नस्सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयँ स्याम प्रणुदा नस्सपत्नान् ॥ १६
चतुश्चत्वारिंशस्स्तोमो वर्चो द्रविणँ षोडशस्स्तोम ओजो द्रविणम् ॥ १७
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ॥ १८

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दश्शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दस्सिन्धु-
श्छन्दस्समुद्रं छन्दस्सरिरं छन्दः ककुप्छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दोऽङ्कुपं छन्दः क्षुरो भ्रज-
श्छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्द आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दस्संय-
च्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायं छन्दो वीवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्राजश्छन्द-
स्सँस्तुप्छन्दोऽनुष्टुप्छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विशालं छन्दो विष्प-
र्धाश्छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो अङ्कलक्षं छन्दः ॥६॥ १९

रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्व प्रेतिरसि धर्मणे त्वा धर्मं जिन्वान्वितिरसि दिवे त्वा दिवं
जिन्व संधिरस्यन्तरिक्षाय त्वान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिरसि पृथिव्यै त्वा पृथिवीं जिन्व विष्टम्भोऽसि
वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व प्रवास्यह्ने त्वाहर्जिन्वानुवासि रात्र्यै त्वा रात्रीं जिन्वोशिगसि वसुभ्यस्त्वा

[६] मै. २,८,७ (१५—१९) । कपि. २६,५ । वा. १५,१-५ । काण्व. १६,१—८ । तै. सं. ४,३,१२ । मा. श्रौ. ६,
२,२ । [अग्ने जातान् प्रणुदा० । अथर्व. ७,३४,१ । सहसा जातान् प्रणुदा० । अथर्व. ७,३५,१]
[७] मै. २,८,८(२०) । कपि. २६,६ । वा. १५,६-७,८) काण्व. १६,९-१२,१४-१५ । तै. सं. ४,४,१ । मा. श्रौ. ६,२,२ ।

वसूञ्जिन्व प्रकेतोऽसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व सुदितिरस्यादित्येभ्यस्त्वादित्याञ्जिन्वौजोऽसि पितृ-
भ्यस्त्वा पितॄञ्जिन्व तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्व पृतनाषाडसि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्व रेवद-
स्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्वाभिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रं जिन्वाधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणं
जिन्व धरुणोऽस्यपानाय त्वापानं जिन्व सँसर्पोऽसि चक्षुषे त्वा चक्षुर्जिन्व वयोधा असि श्रोत्राय त्वा
श्रोत्रं जिन्व त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वानूवृदस्यनूवृते त्वा सँरो-
होऽसि विरोहोऽसि प्ररोहोऽस्यनूरोहोऽसि वसुकोऽसि वस्यष्टिरसि वेषश्रीरसि देवस्य सवितुः प्रसवे
बृहस्पतये स्तुत ॥७॥ २०

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ
श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथाय स्तभ्नातु रथन्तरँ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षमृषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो
मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिस्ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यज-
मानं च सादयन्तु विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता पञ्चदश-
स्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथाय स्तभ्नातु बृहत् साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षमृषय-
स्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिस्ते त्वा सर्वे संविदाना
नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतय-
स्सोमो हेतीनां प्रतिधर्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथाय स्तभ्नातु
वैरूपँ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षमृषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता
चायमधिपतिस्ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु स्वराडस्युदीची
दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याँ श्रयतु निष्के-
वल्यमुक्थमव्यथाय स्तभ्नातु वैराजँ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षमृषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया
वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिस्ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च
सादयन्त्वधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ
त्वा स्तोमौ पृथिव्याँ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथाय स्तभ्नीतां शाक्वररैवते सामनी प्रति-
ष्ठित्या अन्तरिक्षमृषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिस्ते
त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥८॥ २१

अयं पुरो हरिकेशस्सूर्यरश्मिस्तस्य रथकृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ पुञ्जिकस्थला च कृतस्थला

[८] मै. २,८,९(२१) । कपि. २६,७ । वा. १५,१०—१४ । काण्व. १६,१६—३० । तै. सं. ४,४,२ । मा. श्रौ. ६,२,१ ।
[९] मै. २,८,१० (२२) । कपि. २६,८ । वा. १५,१५—१९; १६,६४—६६ । काण्व. १६,३१—४०; १७,६४ । तै.
सं. ४,४,३ । मा. श्रौ. ६,२,२ ।

चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाँसि प्रहेतिस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधाम्ययं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ मेनका
च सहजन्या चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधाम्ययं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानी-
ग्रामण्यौ प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिस्सर्पाः प्रहेतिस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधाम्ययमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानी-
ग्रामण्यौ विश्वाची च घृताची चाप्सरसा आपो हेतिर्वातः प्रहेतिस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु ते यं
द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधाम्ययमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्या
उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसा अवस्फूर्जन्हेतिर्विद्युत् प्रहेतिस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्तु ते यं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥९॥
२२

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायां नमस्समुद्राय नमस्समुद्रस्य चक्षसे ॥ २३
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महस्संवरणे व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनमस्तु कृष्णम् ॥ २४

प्रजापतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानाय विश्वं
ज्योतिर्यच्छाग्निष्टेऽधिपतिर्विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणाय
व्यानायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ वायुष्टेऽधिपतिः परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं
विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ सूर्यस्तेऽधिपतिर्मधुश्च माधवश्च वासन्तिका ऋतू
अग्नेरन्तश्श्लेषोऽसि ॥
२५

कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ २६
येऽग्नयस्समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ।
इमे वासन्तिका ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु ॥ २७

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मा ऋतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिका ऋतू इषश्चोर्जश्च शारदा ऋतू सहश्च सह-
स्यश्च हैमन्तिका ऋतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरा ऋतू अग्नेरन्तश्श्लेषोऽसि ॥ २८

[ते नोऽवन्तु० । अथर्व. ३,२७,१—६]
[१०] मै. २,८,१२,१३ (२४-२९,३१-३३) । कपि. २६,९ । वा. १३,२४-२५; १४,६,१५-१६,२७; १५,५७-५८,
६३-६५; १७,१—३ । काण्व. १४,२४—२६; १५,५,१५—१६,३१; १६,७९,८३—८५ १८,१—४ । तै.
सं. ४,४,११ । मा. श्रौ. ६,६,१ । [प्रोथदश्वो न० । ऋ. ७,३,२; ऋ. १२२०; तै. सं. ४,४,११]

कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ २९
येऽग्नयस्समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ।
इमे शैशिरा ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु ॥ ३०

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वेमा मे अग्न
इष्टका धेनवस्सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च प्रयुतं
च प्रयुतं च नियुतं च नियुतं चार्बुदं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च ता मे
अग्न इष्टका धेनवस्सन्त्वृतवस्स्थतावृध ऋतुष्ठास्स्थर्तुस्पृशो घृतश्चुतो मधुश्चुत ऊर्जस्वतीस्स्वधायिनीर्विराजो
नाम कामदुघास्ता मे अग्न इष्टका धेनवस्सन्तु ॥१०॥ ३१

तत् पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ३२
नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ ३३
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ ३४
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ३५
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नस्सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥ ३६
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ ३७
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुस्सुमङ्गलः ।
ये चेमे रुद्रा अभितो दिक्षु श्रितास्सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥ ३८
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नुतैनमुदहार्यः ।
उतैनं विश्वा भूतानि स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ३९
नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ४०

[सहस्रं च०...चार्बुदं च । श्र. परि. ३३,७ (द्वि. पा.) ।
[११] मै. २,९,१—२ (३,२४—२८) । कपि. २७,१ । वा. १६,१—१४ । काण्व. १७,१—१४ । तै. सं. ४,५,१ । मा.
श्रौ. ६,२,४ । [यथा नस्सर्वमिज्ज० । ऋ. १०,१४१,४; अथर्व. ३,२०,६ । अहींश्च सर्वाञ्जम्भय० । ऋ.
१,१९१,८; अथर्व. ४,९,९]

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ४१
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवानुत । अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गथिः ॥ ४२
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मेण परिभुज ॥ ४३
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥ ४४
नमस्ते त आयुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ ४५
अवतत्य धनुस्त्वँ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखँ शिवो नस्सुमना भव ॥ ४६
या त इषुश्शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
शिवा शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे ॥११॥ ४७

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमश्शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतस्पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमस्सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नम आक्रन्दयत उच्चैर्घोषाय सत्त्वानां पतये नमो नमः कृत्स्नवीताय धावते पत्तीनां पतये नमो नमस्सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निचराय परिचरायारण्यानां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमस्सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमो नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमः॥१२॥४८

नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमो नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमस्स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमश्शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमस्सभाभ्यस्सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यद्भ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृँहतीभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो

[१२] मै. २,९,३ (२९)। कपि. २७,२। वा. १६,१७-२२। काण्व. १७,१७—२२। तै. सं. ४,५,२—३।
[१३] मै. २,९,४—५ (३०—३१)। कपि. २७,३। वा. १६,२२—२९। काण्व. १७,२२—२९। तै. सं. ४,५,३-५।
मा. श्रौ. ६,२,४।

व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमः कृच्छ्रेभ्यः कृच्छ्रपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमस्सेनाभ्यस्सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो वरूथिभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽर्भकेभ्यश्च वो नमो नमो युवभ्य आशिनेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यस्संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमो नमश्श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमो नमश्श्वभ्यश्श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमश्शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च नमो व्युप्तकेशाय च कपर्दिने च नमस्सहस्राक्षाय च शतधन्वने च ॥१३॥ ४९

नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृध्वने च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च नम आशवे चाजिराय च नमश्शीभाय च शीघ्र्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नाद्याय च द्वीप्याय च नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो बुध्न्याय च जघन्याय च नमस्सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमश्शूराय चावभेदिने च नमश्श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नम उर्वर्याय खल्याय च नमश्श्लोक्याय चावसान्याय च नमश्श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमस्स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥१४॥ ५०

नमस्स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमो नाद्याय च वैशन्ताय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमस्सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमश्शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमश्शंभवे च मयोभवे च नमश्शंकराय च मयस्कराय च नमश्शिवाय च शिवतराय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमः पुलस्तिने च कपर्दिने च नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय

[१४] मै. २,९,५—७ (३२—३३)। कपि. २७,४। वा. १६,२९—३६। काण्व. १७,२९—३६। तै. सं. ४,५,४-८।
[१५] मै. २,९,६—८ (३२—३४)। कपि. २७,५। वा. १६,३७-४६। काण्व. १७,३७-४६। तै. सं. ४,५,६-९।
मा. श्रौ. ६,२,४।

चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः फेन्याय च शष्प्याय च नमस्सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमो ह्रदव्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमश्शुष्क्याय च हरित्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमस्सूर्म्याय चोर्म्याय च नमः पर्ण्याय च पर्णशदाय च नम आखिदते च प्रखिदते च नमोऽभिघ्नते चापगुरमाणाय च नम आखिदाय च विखिदाय च ॥१५॥ ५१

नमो वः किरिकेभ्यो देवानाँ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षीणकेभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ५२

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पुरुषाणामेषां पशूनाम् ।
मा भेर्मा रोङ् मा नः किञ्चनाममत् ॥ ५३
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ।
यथा नश्शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ५४
या ते रुद्र शिवा तनूश्शिवा विश्वाह भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ५५
परि णो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ५६
मीढुष्टम शिवतम शिवो नस्सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान उचर पिनाकं बिभ्रदुचर ॥ ५७
विकिरिद विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रँ हेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः॥५८
सहस्रधा सहस्राणि हेतयस्तव बाह्वोः । तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कुरु ॥ ५९
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६०
येऽस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१
ये नीलग्रीवाश्शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२

[१६] मै. २,९,९ (३५-५३)। कपि. २७,६। वा. १६,४६-६६। काण्व. १७,४६-६४। तै. सं. ४,५,९-१०। मा. श्रौ. ६,२,४। [मा भे (मे)र्मा०...ममत्। अथर्व. ६,५७,३। इमा रुद्राय०...नातुरम्। ऋ. १,११४, १। परि णो (नो)रुद्रस्य०। ऋ. २,३३,१४; अथर्व. ४,२१,७]

ये नीलग्रीवाश्शितिकण्ठाश्शर्वा अधः क्षमाचराः ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३
ये वनेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६४
येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६५
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६६
ये पथीनां पथिरक्षय ऐडमृदा यव्युधः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६७
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६८
य एतावन्तो वा भूयाँसो वा दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६९

नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि । नमो अस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि । नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥१६॥ ७०

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽधि संभृताम् ।
तां न ऊर्जं धत्त मरुतस्संरराणा अश्मन्ते क्षुद्धं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ७१
समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि ।
अन्यांस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ ७२

[ते नो मृडयन्तु (मृडत)० ...दधामि(दध्मः)। अथर्व. ३,२६,१-६; २७,१-६]

[१७] मै. २,१०,१ (१-१३)। कपि. २८,१। वा. १७,१,४-१५; ११,८३; ३६,२०। काण्व. १८,१,५-१५; १२,८४; ३६,२०। तै. ४,६,१। मा. श्रौ. ६,२,४।

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि ।
अन्याँस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ ७३
उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि ।
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णँ शिवं कृधि ॥ ७४
अपामिदं न्ययनँ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याँस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ ७५
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ७६
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न केतुना ।
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ ७७
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥ ७८
नृषदे वेडप्सुषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ ७९
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाँ संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन् स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ ८०
ये देवा देवेभ्यो अधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरएतारो अस्य ।
येभ्यो नर्ते पवते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ ८१
प्राणदा व्यानदा अपानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्ते अस्मत् तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यँ शिवो भव ॥१७॥ ८२
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायस्सुवीर्यस्य तं दात् पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ८३
तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीलवत् सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ८४
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः ॥ ८५

[हिमस्य त्वा०...परिव्ययामसि । ऋ. खि. १०,१; अथर्व. ६,१०६,३ । अपामिदं न्ययन०० । ऋ. १०, १४२,७; अथर्व. ६,१०६,२; तै. सं. ४,६,१,३ । अग्ने पावक रोचिषा० । ऋ. ५,२६,१; सा. १५९१; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३; ४,६,१,२ । पावकया यश्चित० । ऋ. ६,१५,५; तै. सं. ४,६,१,२]

[१८] वा. २९,१९; २०,५०-५२; काण्व. ३१,२४; २२,३४-३७ [स आ नो योनिं० । ऋ. ७,९७,४ । तं शग्मासो अरुषासो० । ऋ. ७,९७,६ । बृहस्पतिः प्रथमं जायमान० । ऋ. ४,५०,४; अथर्व. २०,८८,४; तै. ब्रा. २,८,२,७]

तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणँ हुवेम ॥ ८६
स हि शुचिश्शतपत्रस्स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरस्स्वर्षाः ।
बृहस्पतिस्स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ८७
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ८८
प्र वां दँसाँस्यश्विना अवोचमस्य पतिस्स्याँ सुगवस्सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ ८९
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदँसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ ९०
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नश्शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ९१
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ ९२
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ९३
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापस्फरीः पयसा मा न आधक् ।
जुषस्व नस्सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ ९४
इमा जुह्वाना ॥ ९५
पावीरवी कन्या चित्रायुस्सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रँ शरणँ सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यँसत् ॥ ९६
इन्द्रस्सुत्रामा । तस्य वयम् ॥ ९७

[तमा नो अर्कममृताय० । ऋ. ७,९७,५ । स हि शुचिश्शतपत्र० । ऋ. ७,९७,७; तै. ब्रा. २,५,५,४ । एवा पित्रे विश्वदेवाय० । ऋ. ४,५०,६; अथर्व. २०,८८,६; तै. सं. १,८,२२,२ । प्र वां दँसाँस्यश्विना० । ऋ. १,११६,२५ । अतारिष्म तमस० । ऋ. ७,७३,१ । यो ह स्य वां रथिरा० । ऋ. ७,६९,५; तै. सं. १, ८७,८ । त्रिव(व)न्धुरेण त्रिवृता० । ऋ. १,११८,२ । सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते० । ऋ. १०,१७,७; अथर्व. १८,१,४१ । सरस्वत्यभि नो नेषि० । ऋ. ६,६१,१४; तै. ब्रा. २,४,३,१ । इमा जुह्वाना० । ऋ. ७,९५,५; तै. ब्रा. २,४,६,१ । पावीरवी कन्या चित्रायु० । ऋ. ६,४९,७; तै. सं. ४,१,११,२ । इन्द्रस्सुत्रामा स्ववाँ० । ऋ. ६,४७,१२; १०,१३१,६; अथर्व. ७,९१,१; २०,१२५,६; तै. सं. १,७,१३,४ । तस्य वयम्० । ऋ. ६,४७,१३; १०,१३१,७; अथर्व. ७,९२,१; २०,१२५,७; तै. सं. १,७,१३,५; नि. ६,७]

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रँ हवे हवे सुहवँ शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ९८
उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन् ।
अग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ ९९
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ १००
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः ॥१८॥ १०१
युवँ सुराममश्विना नमुचा आसुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ १०२
होता यक्षदश्विना सरस्वतीमिन्द्रँ सुत्रामाणँ सोमानाँ सुराम्णां जुषन्तां व्यन्तु पिबन्तु सोमान् सुराम्णो होतर्यज ॥ १०३
पुत्रमिव पितरा अश्विनोभेन्द्रावतं काव्यैर्दँसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबश्शचीभिस्सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ १०४
आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १०५
अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आगात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशँसाय सवितर्जरित्रे ॥ १०६
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नश्शर्म त्रिवरूथं वियँसत् पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥ १०७
तस्त्वा यामि ॥ १०८
यदत्र शिष्टं रसिनस्सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
तेनाहमद्य मनसा सुतस्य सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥ १०९

[त्रातारमिन्द्रमवितार० । ऋ. ६,४७,११; सा. ३३३; अथर्व. ७,८६,१; तै. सं. १,६,१२,५ । उग्रो जज्ञे वीर्याय० । ऋ. ७,२०,१ । अध स्मा ते चर्षणयो० । ऋ. ६,२५,७ । स्वस्तये वाजिभिश्च० । ऋ. ३,३०,१८]

[१९] मै. ३,११,४; ४,१२,५ (३०-३४, ११८-११९) । वा. १०,३३-३४; २०,७६-७७; २१,२,४१; १८,४९; १९,७,३५,३७ । काण्व. ११,५६-५७; २२,६१-६२; २३,२,४३; २०,१९; २१,६,३५,३९ । [युवँ सुराममश्विना० । ऋ. १०,१३१,४; अथर्व. २०,१२५,४; तै. ब्रा. १,४,२,१ । पुत्रमिव पितरा० । ऋ. १०,१३१,५; अथर्व. २०,१२५,५; तै. ब्रा. १,४,२,१ । आ देवो यातु० । ऋ. ७,४५,१; तै. ब्रा. २,८,६,१ । अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः० । ऋ. २,३८,११ । एवा वन्दस्व वरुणं० । ऋ. ८,४२,२; तै. ब्रा. २,५,८,४ । तस्त्वा यामि० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६]

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
अहानीव सूर्यो वासराणि प्र ण आयूँषि जीवसे सोम तारीः ॥ ११०
नाना हि देवैश्चकृषे सदो वां मा सँसृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा माँ हिँसिष्टं यत् स्वं योनिमाविशाथः ॥ १११
त्वँ सोम सुरया संविदानः प्रजामन्यः क्षत्रमन्यः पिपर्तु ।
युवं नो अत्र वरिवः कृणुतं वयँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ११२
इन्द्राग्नी मेतं निर्ह्वेथां यँ सोमं पपिमा वयम् ।
इहैषो अस्तु भक्षितश्शिवश्शिवाभिरूतिभिः ॥ ११३
द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वं भुवनँ समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ११४
यस्ते राजन् वरुण द्रुहः पाशो गायत्रच्छन्दाः पृथिवीमन्वाविवेश ब्रह्मणि प्रतिष्ठितस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा यस्ते राजन् वरुण द्रुहः पाशस्त्रिष्टुप् छन्दा अन्तरिक्षमन्वाविवेश क्षत्रे प्रतिष्ठितस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा यस्ते राजन् वरुण द्रुहः पाशो जगच्छन्दा दिवमन्वाविवेश विशि प्रतिष्ठितस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा यस्ते राजन् वरुण द्रुहः पाशोऽनुष्टुप् छन्दा दिशोऽन्वाविवेश पशुषु प्रतिष्ठितस्तं त एतदवयजे तस्मै स्वाहा ॥१९॥ ११५
[१४०४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकाया भुवक्षितिर्नाम सप्तदशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१७॥

[इषिरेण ते मनसा० । ऋ. ८,४८,७; नि. ४,७ । द्वे सृती (स्रुती) अशृणवं० । ऋ. १०,८८,१५; तै. ब्रा. १,४,२,३; २,६,३,५; शत. ब्रा. १४,९,१,४]

अथाष्टादशं स्थानकम् ।

चमाः ।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥ १
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः परमच्छदवरा आविवेश ॥ २
विश्वकर्मा विमना यो व्योमा धाता विधाता परमो न संदृक् ।
स नो महानि समिषो महत्त्वां यत्र सप्तर्षीन् परं एकमाहुः ॥ ३
त आयजन्त द्रविणा समस्मा ऋषयः पूर्वे जनिमानि भूना ।
असूर्ता सूर्ते रजसि न सत्ता ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४
यो नः पिता जनिता यो विधाता यो नस्सतो अभ्या सज्जिनाय ।
यो देवानां नामधा एको अस्ति तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ५
न तं विदाथ य इदं जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ६
विश्वकर्मा चेदजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्युदधात् पुरुत्रा ॥ ७
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवास्समपश्यन्त विश्वे ॥ ८
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवास्समपश्यन्त विश्वे ।
अजस्य नाभा अध्येकमर्पितं तत्रेदं विश्वं भुवनमधि श्रितम् ॥१॥ ९

[१] मै. २,१०,२-३(१४-१५; २४-३०)। कपि. २८,२। वा. १७,१६-१७,२६-३१। काण्व. १८,१६-१७,२६-३१। तै. सं. ४,६,१—२। मा. श्रौ. ६,२,५। [अग्निस्तिग्मेन शोचिषा०। ऋ. ६,१६,२८; सा. २२; तै. सं. ४,६, १-२। मा. श्रौ. ६,२,५। य इमा विश्वा भुवनानि०। ऋ. १०,८१,१; तै. सं. ४,६,२,१। विश्वकर्मा विमना०। ऋ. १०,८२,२; तै. सं. ४,६,२,१; नि. १०,२६। त आयजन्त द्रविणा०। ऋ. १०,८२,४; तै. सं. ४,६,२,२; नि. ६,१५। यो नः पिता जनिता०। ऋ. १०,८२,३; अथर्व. २,१,३; तै. सं. ४,६,२,१, तै. आ. १०,१,४। न तं विदाथ य०। ऋ. १०,८२,७; तै. सं. ४,६,२,२; नि. १४,१०। परो दिवा पर एना०। ऋ. १०,८२,५, तै. सं. ४,६,२,२। तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र०। ऋ. १०,८२,६; तै. सं. ४,६,२,२]

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदिदन्ता अदद्दन्त पूर्व ॥ १०
किं स्विदासीद्वनं क उ स वृक्ष आसीद्यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ११
किं स्विदासीदारम्भणमधिष्ठानं कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यदिद्भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १२
यो विश्वचक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां नमते सं यजत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥ १३
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषा स्वधावस्स्वयं यजस्व तन्वं जुषाणः ॥ १४
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानस्स्वयं यजस्व तन्वं स्वाहिते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १५
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशस्समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ १६
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोयुजं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो नेदिष्ठं हवनान्यागमद्विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥२॥ १७

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुतः । रायस्पोषेण संसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १८
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवेभ्यो भागदा असत् ॥ १९
यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ २०

[२] मै. २,१०,२-३ (१६-२३)। कपि. २८,२। वा. ८,४५-४६; १७,१८-२५। काण्व. ८,२६-२८, १८,१८-२५। तै. सं. ४,६,१-२। मा. श्रौ. ६,२,५। [चक्षुषः पिता मनसा०। ऋ. १०,८२,१; तै. सं. ४,६,२,४। किं स्विद्वनं क उ स०। ऋ. १०,८१,४; तै. सं. ४,६,२,५; तै. ब्रा. २,८,९,६। किं स्विदासीदारम्भण०। ऋ. १०,८१,२; तै. सं. ४,६,२,४। यो (विश्वतश्चक्षुरुत)विश्वतो०। ऋ. १०,८१,३; अथर्व. १३,२,२६; तै. सं. ४,६,२,४; तै. आ. १०,१,३। या ते धामानि परमाणि०। ऋ. १०,८१,५; तै. सं. ४,६,२,५। विश्वकर्मन् हविषा वावृधान०। ऋ. १०,८१,६; सा. १५८९; तै. सं. ४,६,२,६; नि. १०,२७। वाचस्पतिं विश्वकर्माण०। ऋ. १०,८१,७, तै. सं. ४,६,२,५]

[३] मै. २,१०,४-५ (३१-३३, ४४-५५)। कपि. २८,३। वा. १७,५०-६४, १२,५६; १५,६१। काण्व. १८, ५०—६४; १३,५७; १६,८२। तै. सं. ४,६,३—४। मा. श्रौ. ६,२,५। [उदेनमुत्तरां नयाग्ने०। अथर्व. ६,५,१। इन्द्रेमं प्रतरं०... असत्। अथर्व. ६,५,२। तस्मै देवा (सोमो)०। ऋ. १०,१७३,३ (उत्तरार्धः); अथर्व. ६,५,३; ८७,३]

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वं सुप्रतीको विभावसुः ॥ २१
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ २२
समिद्धे अग्ना अधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमशमन्त देवाः ॥ २३
दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीश्श्रीमनाश्शतपयाः परिगृह्य यज्ञमयान् ॥ २४
हरिकेशस्सूर्यरश्मिः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयानजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति देवस्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २५
देवा देवेभ्यो अध्वरीयन्तो अस्थुर्वीतं शमितं शमिता यजध्यै ।
तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ २६
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाची अभिचष्टे घृताची अन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ २७
उक्षा समुद्रे अरुणस्सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसः पात्यन्तौ ॥ २८
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः । २९
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ ३०
सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ आ च वक्षत् ॥
वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजीगृभम् ।
अधा सपत्नाँ इन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ अकः ॥ ३१
उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवा अवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥३॥ ३२
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यं हस्तेषु बिभ्रतः । दिवः पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ ३३
प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्ने भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यद्विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३४

[हरिकेशस्सूर्यरश्मि (सूर्यरश्मिर्हरिकेशः)०। ऋ. १०,१३९,१; तै. सं. ४,६,३,३। विमान (नृचक्षा) एष दिवो०। ऋ. १०,१३९,२; तै. सं. ४,६,३,३। उक्षा समुद्रे (०ग्नो)०। ऋ. ५,४७,३; तै. सं. ४,६,३,३। इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्०। ऋ. १,११,१; सा. ३४३,८२७; तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५] ... क्ण्व. १८,६५—७६,७९। तै. सं. ४,६,५।

[४] मै. २,१०,६ (५६-६७)। कपि. २८,४। वा. १७,६५-७६,७९। मा. श्रौ. ६,२,५। [क्रमध्वमग्निना०। अथर्व. ४,१४,२]

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ३५
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥ ३६
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवायतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिस्सजोषास्स्वर्यन्तु यजमानास्स्वस्ति ॥ ३७
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ ३८
अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेजश्शतं ते प्राणास्सहस्रं व्यानाः । त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै
ते विधेम वाजाय स्वाहा । सुपर्णोऽसि गरुत्मान् । पृष्ठे पृथिव्यास्सीद भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा
दिवमुत्तभान । तेजसा दिश उद्दृंह ॥ ३९
आजुह्वानस्सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साध्या ।
अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ४०
तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ४१
अग्ने विधेम ते परमे जन्मन् विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथ यजा तं प्र त्वे हवींषि जुहुमस्समिद्धे ॥ ४२
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ४३
सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्रा अनुविद्वान् सप्त योनीरापृणस्वा घृतेन ॥४॥ ४४
आशुश्शिशानो वृषभो न युध्मो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरश्शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥ ४५

[पृथिव्या अहमुदन्तरिक्ष०। अथर्व. ४,१४,३। स्वर्यन्तो नापेक्षन्त०। अथर्व ४,१४,४। अग्ने प्रेहि प्रथमो०। अथर्व. ४,१४,५। नक्तोषासा समनसा०। ऋ. १,९६,५; ११३,३; सा. १७५१ (च. पा.)। तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३। तां सवितुर्वरेण्यस्य०। अथर्व. ७,१५,१। अग्ने (विधेम)ते परमे०। ऋ. २,९,३; तै. सं. ४,६,५,४। प्रेद्धो अग्ने दीदिहि०। ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै. सं. ४,६,५,४]

[५] मै. २,१०,४ (३४—४३)। कपि. २८,५। वा. १७,३३—४१,४३। काण्व. १८,३३—४१,४३। तै. ४,६,३,४। मा. श्रौ. ६,१,५। आशुश्शिशानो वृषभो०। ऋ. १०,१०३,१; सा. १८४९; अथर्व. १९,१३,२; तै. सं. ४,६,४,१; नि. १,१५]

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ४६
स इषुहस्तैस्स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४७
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन् सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ४८
बलविज्ञायस्स्थविरः प्रवीरस्सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ४९
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम् ॥ ५०
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरश्शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ५१
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ५२
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ५३
अस्माकमिन्द्रस्समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता भरेष्वा ॥५॥ ५४

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च सत्यश्चर्तपाश्चात्यँहा ईदृङ् चान्यादृङ्

[संक्रन्दनेनानिमिषेण० ऋ. १०,१०३,२; सा. १८५०; अथर्व. १९,१३,३; तै. सं. ४,६,४,१। स इषुहस्तैः सनिषङ्गिभिः० ऋ. १०,१०३,३; सा. १८५१; अथर्व. १९,१३,४; तै.सं. ४,६,४,१। बृहस्पते परिदीया०। ऋ. १०,१०३,४; सा. १८५२; अथर्व. १९,१३,८; तै. सं. ४,६,४,१। बलविज्ञायस्स्थविरः०। ऋ. १०,१०३, ५; सा. १८५३; अथर्व. १९,१३,५; तै. सं. ४,६,४,२। गोत्रभिदं गोविदं०। ऋ. १०,१०३,६; सा. १८५४; अथर्व. ६,९७,३; १९,१३,६; तै.सं. ४,६,४,२। अभि गोत्राणि सहसा०। ऋ.१०,१०३,७; सा. १८५५; अथर्व. १९,१३,७; तै. सं. ४,६,४,२। इन्द्र एषां (आसां) नेता०। ऋ. १०,१०३,८; सा. १८५६; अथर्व. १९,१३,९; तै. सं. ४,६,४,३। इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य०। ऋ. १०,१०३,९; सा. १८५७; अथर्व. १९,१३,१०; तै. सं. ४,६,४,३। अस्माकमिन्द्रस्समृतेषु०। ऋ. १०,१०३,११; सा. १८५९; अथर्व. १९,१३,११; तै. सं. ४,६,४,३]

[६] मै. २,११,१ (१)। कपि. २८,६। वा. १७,८०—८१,८६। काण्व. १८,८०—८४,८६। तै. सं. ४,६,५। मा. श्रौ. ६,२,५।

च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च मितश्च संमितश्च सभरा ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्ता च विधर्ता च विधारयः ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्चान्तिमित्रश्च दूरेअमित्रश्च गणः ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णस्सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन मितासश्च संमितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन्निन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्नेवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥६॥ ५५

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रावश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे प्राणश्च मे व्यानश्च मेऽपानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च म ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थानि च मे परूंषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्ष्मा च मे द्राघ्मा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे ॥७॥ ५६

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे वशश्च मे त्विषिश्च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस्यश्च मे यशश्च मे यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे विश्वं च मे महश्च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे ॥८॥ ५७

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुगं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च म ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे ॥ विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितिश्च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे नीवाराश्च मे श्यामाकाश्च मेऽणवश्च मे प्रियङ्गवश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे॥९॥५८-५९

[७] मै. २,११,२ (२)। कपि. २८,७। वा. १८,१-४। काण्व. १९,१३-१६। तै. सं. ४,७,१-२। मा. श्रौ. ६,२,५।
[८] मै. २,११,३ (३)। कपि. २८,८। वा. १८,५,७—८,११। काण्व. १९,१७-२०। तै. सं. ४,७,२—३।
[९] मै. २,११,३—४ (३—४)। कपि. २८,९। वा. १८,६,९—१०,१२। काण्व. १९,२१—२४। तै. सं. ४,७,३—४।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे सीसं च मे त्रपु च मे श्यामं च मे लोहितायसं च मेऽग्निश्च म आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्यं च मेऽकृष्टपच्यं च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मेऽग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे ॥१०॥ ६०

अंशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपांशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च म आग्रायणश्च मे क्षुल्लकवैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे वैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयश्च मे माहेन्द्रीयश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे पूतभृच्च मेऽधवनीयश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मेऽग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मे शक्वरीरङ्गुलयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्तां व्रतं चर्तुश्च संवत्सरश्च तपश्चाहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पेताम् ॥११॥ ६१

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च म ऋषभश्च मे वेहच्च म एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे ॥ वाजश्च प्रसवश्चापिजश्च क्रतुश्च व्यश्नियश्च वसुश्च स्वर्मूर्धा च मूर्धा वैयश्नो व्यश्न्य आन्त्योऽन्त्यो भौवनो भुवनस्य पतिः प्रजापतिरियं ते राण्मित्रा यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्यायायुर्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतामात्मा

[१०] मै. २,११,५ (५)। कपि. २८,१०। वा. १८,१३—१८। काण्व. १९,२५—३०। तै. सं. ४,७,५—८।
[११] मै. २,११,५—६ (५-६)। कपि. २८,११। वा. १८,१९-२३। काण्व. १९,३१—३५। तै. सं. ४,७,५—११। मा. श्रौ. ६,२,५।
[१२] मै. २,११,६ (६)। कपि. २९,१। वा. १८,२४—२९। काण्व. १९,३६—४३। तै. सं. ४,७,९—११। मा. श्रौ. ६,२,५। बृहच्च रथन्तरं च० । अथर्व. ८,१०,६]

यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतामृक् च साम च स्तोमश्च यजुश्च बृहच्च रथन्तरं च स्वर्देवा अगन्म प्रजापतेः प्रजा अभूमामृता अभूम वेट् स्वाहा ॥१२॥ ६२-६३

वाजस्य नु प्रसव इति षट् ॥ ६४
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयस्समिद्धाः ।
विश्वे मा देवा अवसागमन्निह विश्वमस्तु द्रविणं वाजे अस्मिन् ॥ ६५
आ मा वाजस्य वाजस्य नु ॥ ६६
वाजो मा सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः । वाजो मा विश्वैर्देवैर्धनसाता इहावतु ॥ ६७
वाजो मे अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवान् हविषा वर्धयाति ।
वाजस्य हि प्रसवे नन्नमीति विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ६८
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवानृतुभिः कल्पयाति ।
वाजस्य हि प्रसवे नन्नमीति सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ६९
सं मा सृजामि पयसा पृथिव्यास्सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः ।
सोऽहं वाजं सनाम्यग्ने ॥ ७०
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशस्सन्तु मह्यम् ॥१३॥ ७१

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वट् सुषुम्णस्सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो बेकुरयो नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वट् संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वड् भुज्युस्सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसस्स्तवा नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वट् प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यर्क्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वडिषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽप्सरस ऊर्जो

[१३] मै. २,१२,१ (१—६)। कपि. २९,२। वा. ९,१९; १८,३०—३६। काण्व. १०,२५; २०,१—७। तै. सं. ४, ७,१२। मा. श्रौ. ६,२,५। [विश्वे अद्य मरुतो०। ऋ. १०,३५,१३; तै. सं. ४,७,१२,१। वाजस्य नु०। अथर्व. ७,६,४]
[१४] मै. २,१२,२—३ (७—८)। कपि. २९,३। वा. १८,३८—४५। काण्व. २०,८—१५। तै. सं. ३,४,७; ४,७, १२—१३। मा. श्रौ. ६,२,५—६।

नाम सं न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वट् ताभ्यस्स्वाहा वट् ॥ सं नो भुवनस्य पते यस्यं त
उपरि गृहा विराट्पते ॥ अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ समुद्रोऽसि नभस्वा-
नार्द्रदानुश्शंभुर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा मारुतोऽसि मरुतां गणश्शंभुर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा-
वस्युरसि दुवस्वाञ्छंभुर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥१४॥ ७२-७५

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यँ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं पतेम ब्रध्नस्य विष्टपँ स्वो रुहाणा अधि नाक उत्तमे ॥ ७६
इमौ ते पक्षा अजरौ पतत्रिणो याभ्यां रक्षाँस्यपहँस्यग्ने ।
ताभ्यां वयं पतेम सुकृतामु लोकं यत्रर्षयो जग्मुः प्रथमाः पुराणाः ॥ ७७
इन्दुर्दक्षश्श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षश्शकुनो भुरण्युः ।
महान् सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥ ७८
दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् ।
विश्वायुश्शर्म सप्रथा नमस्पथे विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः ॥ ७९
समुद्रे ते हृदयमन्तरायुरुद्रो देह्युदधिं भिन्धि ।
दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो मा वृष्ट्यावा ॥ ॥१५॥ ८०

समास्त्वाग्न ऋतवा वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशः पृथिव्याः ॥ ८१
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसस्सन्तु मान्ये ॥ ८२
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजित्स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ॥ ८३
इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन् पूर्वचितो निकारिणः ।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ८४

[१५] मै. २,१२,३ (९—१३) । कपि. २९,४ । वा. १८,५१—५५ । काण्व. २०,११—१५ । तै. सं. ४,७,१२-१३ । मा. श्रौ. ६,२,५—६ ।
[१६] मै. २,१२,५ (२५-३४) । कपि. २९,४ । वा. २७,१-१०; २०,२३; ३५,१४; ३८,२४ । काण्व. २९.१—१०; ११,६; ३५.४७; ३८,२४ । तै. सं. ४,१,७ । [समास्त्वाग्न ऋतवो० । अथर्व. २,६,१ । सं चेध्यस्वाग्ने० । अथर्व. २,६,२ । त्वामग्ने वृणते० । अथर्व. २,६,३ । इहैवाग्ने अधिधारया० । अथर्व. ७,८२,३]

क्षत्रेणाग्ने स्वेन संरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठेयाय राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ८५
अति निहो अति स्रिधो अत्यचित्तिमति निर्ऋतिमद्य ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यँ सहवीरं रयिं दाः ॥ ८६
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन्मानुषेभ्यश्शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे ॥ ८७
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ८८
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ८९
बृहस्पते सवितर्बोधयैनँ सँशितं चित्संतरां सँशिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनुमदन्तु देवाः ॥ ९०
क्षत्रभृदग्निरनिभृष्टतेजास्सहस्रियो द्योततामिध्यमानः ।
वर्ष्मन् पृथिव्या अधि जातवेदा उदन्तरिक्षमारुहदगन् द्याम् ॥१६॥ ९१
ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ९२
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्ति मध्वा घृतेन मध्वा यज्ञं नक्षति प्रीणानः ॥ ९३
नराशँसो अग्ने सुकृद्देवस्सविता विश्ववारः । अच्छायं यन्ति शवसा घृताचीः ॥ ९४
ईडाना वह्निं नमसाग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु । स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ९५
स्तनी मन्द्रस्सुप्रयक्षुः । वसुश्रेष्ठो वसुधातमश्च ॥ ९६
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वा व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ ९७

[क्षत्रेणाग्ने स्वेन० । अथर्व. २,६,४ । अति निहो अति० । अथर्व. २,६,५ । अनाधृष्यो जातवेदा० । अथर्व. ७,८४,१ । शिवेभिरद्य०...वृधे० । ऋ. ६,७१,३; तै. सं. १,४,२४,१; तै. ब्रा. २,४,४,७ । अमुत्रभूया०... । अथर्व. ७,५३,१ । उद्वयं तमसस्परि० । ऋ. १,५०,१०; अथर्व. ७,५३,७; तै. सं. ४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४, ४,९; ६,६,४; तै. आ. ६,३,२ । बृहस्पते सवित० । अथर्व. ७,१६,१]
[१७] मै. २,१२,६ (३५-४६) । कपि. २९,५ । वा. २७,११—२२ । काण्व. २९,११—२२ । तै. सं. ४,१,८ । [ऊर्ध्वा अस्य० । अथर्व. ५,२७,२ । तनूनपादसुरो० । अथर्व. ५,२७,१—२ । मध्वा यज्ञं० । अथर्व. ५,२७,३ । नराशँसो अग्ने० । अथर्व. ५,२७,३—४ । ईडाना वह्निं० । अथर्व. ५,२७,४—५ । स्तनी (तरी)मन्द्रस्सु (मन्द्रासु)० । अथर्व. ५,२७,६ । द्वारो देवीरन्वस्य० । अथर्व. ५,२७,७—८]

ते अस्य योषणे दिव्यो न योनिरुषासानक्ताग्नेः । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ९८
दैव्या होतारोर्ध्वमिममध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभिगृणीतम् । कृणुतं नस्स्विष्टम् ॥ ९९
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदँ सदन्त्विडा सरस्वती भारती महीर्गृणानाः ॥ १००
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । त्वष्टः पोषाय विष्य नाभिमस्मे ॥ १०१
वनस्पतेऽवसृज रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हविश्शमिता सूदयाति ॥ १०२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥१७॥ १०३

येनर्षयस्तपसा सत्रमासतेन्धाना अग्निं स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवस्स्तीर्णबर्हिषम् ॥ १०४
तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृह्णानास्सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ १०५
आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निस्सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ १०६
अयमग्निर्वीरतमो वयोधास्सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानस्सरिरस्य मध्य उपप्रयाहि दिव्यानि धामन् ॥ १०७
संप्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् ।
पुनः कृण्वन्ता पितरा युवानान्वाताँसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥ १०८
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँसृजेथामयं च ।
अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ १०९
येन सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ११०
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥ १११

[ते अस्य (आ सुष्वयन्ती)योषणे० । अथर्व. ५,२७,८ । दैव्या होतारा० (पूर्वार्धः) । अथर्व. ५,२७,९ । तिस्रो देवी०(उत्तरार्धः) । अथर्व. ५,२७,९ । तन्नस्तुरीपमद्भुतं० । अथर्व. ५,२७,१० । वनस्पतेऽवसृज० । अथर्व. ५,२७,११ । अग्ने स्वाहा कृणुहि० । अथर्व. ५,२७,१२]
[१८] मै. २,१२,३—४ (१५—१९,२१—२४) । कपि. २९,६ । वा. १५,४९—५३; १८,५६—५७,६१—६२; ३,१४; १२,५२ । काण्व. १६,७१—७८; २०,२६-२७,३१—३२; ३,२२; १३,४५; ३२,३ । तै. सं. ४,७,१३; ३,१२,१० । मा. श्रौ. ६,२,६ । [येन सहस्रं वहसि० । अथर्व. ९,५,१७ । अयं ते योनिर्ऋत्वियो० । ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१; तै. सं. १,५,५,२; ४,२,४,३; ७,१३,५; तै. ब्रा. १,२,१,१६; २,५,८,८]

इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्वाँ अथर्वभिः ।
इष्टो अग्निराहुतस्स्वाहाकृतः पिपर्तु नः । इष्टँ हविस्स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥१८॥ ११२
जुहूँ संमार्ष्टि यज्ञमुखं वै जुहूर्यज्ञमुखमेवालभते जुह्वा वै देवा विराजमह्वयँस्तज्जुह्वा जुहूत्वमग्निर्वै
विराडग्निमेवैतद्विराजँ ह्वयति च्छन्दाँसि वै देवेभ्योऽपाक्रामन् यज्ञे भागधेयमिच्छमानानि न
वो भागधेयानि हव्यं वक्ष्याम इति तेभ्य एतच्चतुर्गृहीतं प्रायच्छन्ननुवाक्यायै याज्यायै देवतायै
वषट्काराय यच्चतुर्गृहीतेन जुहोति च्छन्दाँस्येव भागधेयवन्ति करोति सावित्राणि जुहोति प्रसूत्या
एति वा एतद्यज्ञमुखाद्यदनाग्नेयमग्रे यज्ञस्य क्रियते यदष्टौ कृत्वो गृहीत्वाष्टा एतानि जुहोत्यष्टाक्षरा
गायत्री गायत्रोऽग्निस्तेन यज्ञमुखान्नैति प्रसूत्यै सावित्राणि युञ्जते मन इति मनस्वन्ति मनो ह्यग्रे
युज्यते मनसा यज्ञस्तायतेऽग्निर्ज्योतिरिति ज्योतिष्मत् सविता वा एतत् पृथिव्या ज्योतिस्समभरद्य-
देवास्यात्र न्यक्तं तदेतेन संभरति षड्ृचो भवन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति द्वे यजुषी द्विपा-
द्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यदि कामयेत देवतां यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयेयमित्यृचमन्ततः कुर्याद्देवतामेव
यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयति यदि कामयेत यजमानं यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयेयमिति यजुरन्ततः कुर्याद्यज-
मानमेव यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयत्यृचा स्तोमँ समर्धयेति समृद्ध्यै गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्तनीतीयं वै
रथन्तरमसौ बृहद्यष्ट्या आहुत्या वा अभिक्रममन्वभिक्रम्य यजमानो वसीयान् भवत्याहुत्या अपक्रमम-
न्वपक्रम्य पापीयान् भवति सकृत् सर्वाण्यनुद्रुत्योत्तमेन जुहुयादाहुत्या एवाभिक्रममन्वभिक्रामति
वसीयान् भवत्येकैकेन जुहुयाद्यदि कामयेत सदृङ् यजमानस्स्यादिति यजूँष्येव नाना वीर्याणि करो-
त्यष्टा एतानि भवन्त्याहुतिर्नवमी त्रिवृतमेव यज्ञमुखँ संपादयति त्रिवृद्धि यज्ञमुखमूर्ध्वस्तिष्ठञ्जुहो-
त्यूर्ध्वो हि तिष्ठन् वीर्यावत्तरः पूर्णया स्रुचा जुहोति पूर्णः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति ॥१९॥ ११३
त्वँ ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वँ सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ ११४
अधा होता न्यसीदो यजीयानिडस्पद इषयन्नीड्यस्सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥ ११५
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवाँसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवाँसम् ॥ ११६

[१९] मै. ३,१,१ (१) । कपि. २९,७ । तै. सं. ५,११ । शत. ब्रा. ६,३,१,१ । वा. ५,१४; ११,४; ३७,२ । काण्व. ५,१०; १२,४; ३७,२ । [युञ्जते मन० । ऋ. ५,८१,१; तै. सं. १,२,१३,१; ४,१,१,१; तै. आ. ४,२,१]
[२०] मै. ४,१३,६ (४७—५९) । तै. ब्रा. ३,६,१० । [त्वँ ह्यग्ने प्रथमो० । ऋ. ६,१,१; तै. ब्रा. ३,६,१०,१ । अधा होता न्यसीदो० । ऋ. ६,१,२; तै. ब्रा. ३,६,१०,१ । वृतेव यन्तं बहुभिः० । ऋ. ६,१,३; तै. ब्रा. ३,६,१०,१]

पदं देवस्य नमसा व्यन्तश्श्रवस्यवश्श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ११७
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुष्याणाम् ॥ ११८
सपर्येण्यस्स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो निषसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ११९
तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ १२०
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ १२१
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ॥ १२२
अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १२३
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्युस्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैस्स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं विभाहि ॥ १२४
नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२५
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥२०॥ १२६

होता यक्षद्बृहस्पतिं छागस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतश्श्रोणितश्शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवं बृहस्पतिर्जुषताँ हविर्होतर्यज होता

[पदं देवस्य नमसा० । ऋ. ६,१,४; तै. ब्रा. ३,६,१०,२; नि. ४,१९ । त्वां वर्धन्ति क्षितय:० । ऋ. ६,१,५; तै. ब्रा. ३,६,१०,२ । सपर्येण्यस्स प्रियो० । ऋ. ६,१,६; तै. ब्रा. ३,६,१०,३ । तं त्वा वयं सुध्यो० । ऋ. ६,१,८; तै. ब्रा. ३,६,१०,३ । विशां कविं विश्पतिं० । ऋ. ६,१,८; तै. ब्रा. ३,६,१०,३ । सो अग्न ईजे० । ऋ. ६,१,९; तै. ब्रा. ३,६,१०,४ । अस्मा उ ते महि० । ऋ. ६,१,१०; तै. ब्रा. ३,६,१०,४ । आ यस्ततन्थ० । ऋ. ६,१,११; तै. ब्रा. ३,६,१०,५ । नृवद्वसो सदमिद्धे० । ऋ. ६,१,१२; तै. ब्रा. ३,६,१०,५ । पुरूण्यग्ने पुरुधा० । ऋ. ६,१,१३; तै. ब्रा. ३,६,१०,५]
[२१] मै. ४,१३,७ (६१-६७) । वा. २१,४३-४७; २८,४१ । काण्व. २३,४४-४६; २३,५२ । तै. ब्रा. ३,६,११-१२,

यक्षदश्विना छागस्य हविष आत्तां घस्तां करत एवमश्विना जुषेताँ हविर्होतर्यज होता यक्षत् सरस्वतीं मेष्या हविष आवयद् घसत् करदेवँ सरस्वती जुषताँ हविर्होतर्यज होता यक्षदिन्द्रं मेषस्य हविष आवयद् घसत् करदेवमिन्द्रो जुषताँ हविर्होतर्यज ॥ १२७
देवेभ्यो वनस्पते हवींषि हिरण्यपर्ण प्रदिवस्ते अर्थम् ।
प्रदक्षिणिद्रशनया नियूयर्तस्य वक्षि पथिभी रजिष्ठैः ॥ १२८

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित यत्र बृहस्पतेश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेष्या हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाँसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषताँ हविर्होतर्यज ॥ १२९
वनस्पते रशनयाभिधाय पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् ।
वहा देवत्रा दिधिषो हवींषि प्र च दातारममृतेषु वोचः ॥ १३०
पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँ ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वँ होतृणामस्यायजिष्ठः ॥ १३१

होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतमयाडग्निरग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाड् बृहस्पतेश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेष्या हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाड्वनस्पतेः प्रिया पाथाँस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वराञ्जातवेदा जुषताँ हविर्होतर्यज ॥ आ देवानामिडामग्ने ॥ १३२-१३३
अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्य जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥२१॥ १३४[१५३८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां यमा नामाष्टादशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१८॥

॥ संपूर्णा च इठिमिका ॥

[देवेभ्यो वनस्पते० । तै. ब्रा. ३,६,११,२ । देवो वनस्पतिर्जुषतां० । तै. ब्रा. ३,६,११,४ । वनस्पते रशनया० । ऋ. १०,७०,१०; तै. ब्रा. ३,६,१२,१; नि. ६,७ । पिप्रीहि देवाँ० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५; ६,११,४; काठ. २,१५; २०,१५ । आ देवानाम्० । ऋ. ३,१,१७; १०,९,३; ७०,२; अथर्व. १९,५९,३; तै. सं. १,१,१४,३ । इडा(ळा)मग्ने० । ऋ. ३,१,२३; ५,११; ६,११; ७,११; १५,७; २२,५; २३,५; ना. ७६; तै. सं. ४,२,४,३ । अग्निं सुदीतिं० । ऋ. ३,१७,४; तै. ब्रा. ३,६,९,१]

अथ मध्यमिका ।

एकोनविंशं स्थानकम् ।

सावित्रा ।

सावित्रैरभ्रिमादत्ते प्रसूत्या इयं वै गायत्र्यन्तरिक्षं त्रिष्टुब् द्यौर्जगती दिशोऽनुष्टुप् छन्दोभिरेवैनाभ्यो लोकेभ्य आवर्तयन्नुभयतःक्ष्णुद्भवत्यन्यतःक्ष्णुदेन्ये कालेनेयदश्वं क्रियतेऽश्वमर्कोऽर्कोऽग्निरश्वस्यार्कस्यावरुद्धया अरत्निमात्रीं कुर्यात् पुरुषेण वै यज्ञस्संमितो यज्ञपुरुषासंमितां व्याममात्रीं कुर्यादेतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्येण संमितामपरिमितां कुर्यादपरिमितस्यावरुद्ध्यै यो वृक्षः फलग्राहिस्तस्य कुर्यादेष वै वनस्पतीनां वीर्यावत्तमस्सवीर्यत्वाय कल्माषीं वैणवीं सुषिरां कुर्यादग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् स वेणुं प्राविशत् स एतानि वर्माण्यनह्यत यानि पर्वाण्येतं लोकमन्वचरयत् सुषिरस्स यत्र यत्रावसत् तदभिरदहत् तत् कल्माषमभवद्यत् कल्माषी वैणवी सुषिरा भवति सा ह्याग्नेयीतमा समृद्ध्या अथो यदेवास्यात्र न्यक्तं तस्यावरुद्ध्यै ॥१॥ १

अग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् स यत्र यत्रागच्छत् तं प्रजापतिरन्वपश्यत् प्राजापत्योऽश्वो यदश्वेन यन्त्यग्निरेवानुख्यात्या एतेन वै देवा असुरानुत्तममभ्यभवन् यदश्वेन यन्ति भ्रातृव्यस्याभिभूत्या एतं वै रक्षाँसि नातरन् यदश्वेन यन्ति रक्षसामतीत्या अश्वं पूर्वं नयन्ति गर्दभमपरं पापवसीयसस्य व्यावृत्त्यै तस्मात् पुण्यं पूर्वं यन्तं पापीयान् पश्चादन्वेति गर्दभेन संभरति तस्मादेष समावत् पशूनां रेतो दुधानानां कनिष्ठोऽग्निर्ह्यस्य रेतो निरदहद्यदेतेनास्यामूर्जमर्कं संभरति तस्मादेषोऽस्यां जीवितन्तमः ॥ प्रतूर्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् ... युक्तं राजनं युवमित्यश्वगर्दभयोरेवैष योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे सखाय इन्द्रमूतय इन्द्रियं हि वाजायाग्निश्चीयते प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीरिति वहुर्वै भवतो भ्रातृव्यो भवत्येष योऽग्निं चिनुते वज्रोऽश्वः पाप्मा शस्तिर्भ्रातृव्यो वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमवक्रामति रुद्रस्य गाणपत्ये मयोभूरेहीति रौद्रा वै पशवो रुद्रमेव पशुभिर्याच्यात्मने कर्म कुरुत उर्वन्तरिक्षं वीहीत्यन्तरिक्षं देवत्यो ह्येष एतर्हि पूष्णा सयुजा सहेति पूषा वा अध्वनां संनेता समष्ट्यै ॥ पृथिव्यास्सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरेति पुरीषायतनो वा अग्निरङ्गिरस एतमग्रे देवताभिस्समभरन् सायतनमेवैनं देवताभिस्संभरत्यग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम इति ब्रूयाद्येन संगच्छेत सर्वो वै पुरुषोऽग्निमान्वाजमेवास्य वृङ्क्ते प्रजापतये प्रोच्याग्निर्वेदव्यो गर्भे प्रोच्य स हि प्राजापत्यतम इयं वाव

[१] मै. ३,१,२ (२) । कपि. २९,८ । शत. ब्रा. ६,३,१,३० ।
[२] मै. ३,१,३ (३) । कपि. २९,८ । वा. ११,१२—१६,१८ । काण्व. १२,१०—१६,१८ । तै. सं. ५,१,२ । शत. ब्रा. ६,३,२,३,१—५ । [योगे योगे तवस्तरं० । ऋ. १,३०,७; सा. १६३,७४३; अथर्व. २०,२६,१; तै. सं. ४,१,२,१]

प्रजापतिस्तस्या एष कर्णो यद्वल्मीको यद्वल्मीकवपामुद्धृत्याभिमन्त्रयते प्रजापतय एव प्रोच्याग्निं चिनुते शृण्वन्त्येनमग्निं चिक्यानमसा अग्निमचेष्टेति कर्णो हि कर्णायाह ॥२॥ २-४

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदित्यनुख्यात्या आगत्य वाज्यध्वानँ सर्वा मृधो विधूनुत इति मृध एवैतयापहत आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वमित्येवैच्छद्वा एतं पूर्वया प्रजापतिरविन्ददुत्तरयेच्छत्येव पूर्वया विन्दत्युत्तरया द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमिति वज्री वा अश्वः प्राजापत्यो लोमभिरुभयादतः पशूनति दद्भिरन्यतोदतो वज्रेणैव भ्रातृव्यमवगृह्णाति यत्र वै यज्ञस्यानुरूपं क्रियते तत् पशवोऽनुरूपा जायन्ते ॥ उत्क्रामोदक्रमीदित्यनुरूपाभ्यामुत्क्रमयति तस्मात् पशवोऽनुरूपा जायन्ते द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यां वा अनग्ना अध्वर्युराहुतिं जुहोत्यन्धोऽध्वर्युर्भवति रक्षाँसि यज्ञं घ्नन्त्यग्निर्वै वरुणानीरभ्यकामयत तस्य तेजः परापतत् तद्धिरण्यमभवद्यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति समृद्ध्यै नान्धोऽध्वर्युर्भवति रक्षाँसि यज्ञं घ्नन्ति जिघर्म्यग्निं मनसा घृतेनेति मनो वै वाचः क्षेपीयो मनसैवाहुतिमाप्नोति प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वेति तस्मादेष सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ्क्षियते व्यचिष्ठमन्नं रभसं विदानमित्यन्नमेवास्मै स्वदयत्या त्वा जिघर्मि वचसा घृतेनेति पूर्वमेवोदितमनुवदत्यरक्षसा मनसा तज्जुषेथा इति रक्षसामपहत्यै मर्यश्रीस्स्पृहयद्वर्णो अग्निरित्यपचितिमेवास्मिन् दधाति द्वाभ्यां जुहोति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ॥ यज्ञमुखे यज्ञमुखे वै यज्ञं रक्षाँसि जिघाँसन्ति यत् परिलिखति रक्षसामपहत्यै तिसृभिः परिलिखति त्रय इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो रक्षाँस्यपहन्ति परि वाजपतिः कविरिति गायत्र्या परिलिखति ब्रह्म वै गायत्री ब्रह्मणैवैनं परिगृह्णाति परि त्वाग्ने पुरं वयमित्यनुष्टुभा वाग्वा अनुष्टुप् सर्वाणि छन्दाँसि परिभूर्वाचैव सर्वाणि छन्दाँसि परिगृह्णाति त्वमग्ने द्युभिरिति त्रिष्टुभा वीर्यं वै त्रिष्टुब् वीर्येणैवैनं परिगृह्णात्यनुष्टुभा मध्यतः परिलिखति वाग्वा अनुष्टुब् वाचमेव मध्यतो दधाति तस्मान्मध्यतो वाग्वदति तेजो वै गायत्री यज्ञोऽनुष्टुबिन्द्रियं त्रिष्टुप् तेजसा चैवेन्द्रियेण च यज्ञमुभयत आत्मन् परिगृह्णाति ॥३॥ ५-७

सावित्राभ्यां खनति प्रसूत्यै धूममेव पूर्वेण विन्दति ज्योतिरुत्तरेण द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेरिति पुष्करपर्णमादत्तेऽपाँ ह्येतत् पृष्ठं योनिरग्नेः पुष्करपर्णेन संभरति

[३] मै. ३,१,४ (४—६) । कपि. ३०,१ । वा. ११,१७—२७ । काण्व. १२,१७—२७ । [अन्वग्निरुषसा० । अथर्व. ७,८२,४; १८,१,२७-२८ । आ त्वा (जिघर्म्यग्नि)० । ऋ. २,१०,४; तै. सं. ४,१,२,४ । आ विश्वतः प्रत्यञ्चं० । ऋ. २,१०,५; तै. सं. ४,१,२,५ । परि वाजपतिः० । ऋ. ४,१५,३; सा. ३०; तै. सं. ४,१,२,५; तै. ब्रा. ३,६,४,१ । परि त्वाग्ने पुरं वयं० । ऋ. १०,८७,२२; अथर्व. ७,७१,१; ८,३,२२; तै. सं. १,५,६,४; ४,१,२,५ । त्वमग्ने द्युभिस्त्वमा० । ऋ. २,१,१; तै. सं. ४,१,२,५; तै. आ. १०,७६,१; नि. ६,१; १३,१]
[४] मै. ३,१,५ (७) । कपि. ३०,२ । वा. ११,२९—३४ । काण्व. १२,२९—३४ । तै. सं. ५,१,४—५ । शत. ब्रा. ६,४,१,८

स्वेनैवैनं योनिना संभरति शान्त्या अनुद्दाहाय कृष्णाजिनेन संभरति यज्ञो वै कृष्णाजिनं यज्ञेनैव यज्ञँ संभरत्यस्कन्दाय न हि यज्ञे यज्ञस्स्कन्दत्येतद्वै ब्रह्मणो रूपं यत् कृष्णाजिनं ब्रह्मणा चैवैन-मृक्सामाभ्यां च संभरति शर्म च स्थो वर्म च स्थ इति सँस्तृणातीयं वै पुष्करपर्णमसौ कृष्णाजिनमिमे एवैतत् सँस्तृणात्यच्छिद्रे बहुले उभे इत्यच्छिद्रे हीमे बहुले उभे व्यचस्वती इति तस्मादिमे व्यचस्वती भर्तमग्निं पुरीष्यमिति पुरीष्यो ह्येष संवसाथाँ स्वर्विदा समीची उरसा त्मनेति तस्मादिमे नाना सती समीची अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमिदिति ज्योतिरेवास्मिन्नजस्रं दधाति पुरीष्योऽसि विश्वभरा इति पुरीष्यो ह्येष विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्न इति प्रजापतिर्वा अथर्वा प्रजापतिरेतमग्रेऽमन्थत् प्रजापतिरेवैनं जनयति तमु त्वा दध्यङ्ङृषिरिति दध्यङ् वा आथर्वण-स्तेजस्व्यासीत् तेनैवैनँ संभरति तमु त्वा पाथ्यो वृषेति पूर्वमेवोदितमनुवदति चतसृभिस्संवपति चत्वारि वै छन्दाँसि च्छन्दोभिरेवैनँ संवपति गायत्रीभिर्ब्राह्मणस्य संवपेद्गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुब्भी राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यो जगतीभिर्वैश्यस्य जागतो हि वैश्यो यथाछन्दसमेवोभयीभिस्संवपेद्य कामयेत वसीयान् स्यादिति तेजो वै गायत्रीन्द्रियं त्रिष्टुप् तेजश्चैवास्मिन्निन्द्रियं च समीची दधात्य-ष्टाभिस्संवपत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तँ संभरति सीद होतरिति देवता एवास्मिन् सँसादयति नि होतेति मनुष्यानेव सँसीदस्वेति वयाँस्येव जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नामिति देव-
मनुष्यानेवास्मिन् सँसन्नान् प्रजनयति॥४॥ ८

अपो देवीरुप सृज मधुमतीरित्योषधीनां प्रतिष्ठित्यै तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयस्सुपिप्पला इति तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्ति सं ते वायुर्मातरिश्वा दधात्विति तस्माद्वायुर्वृष्टिं वहति प्राणो वै वायुः प्राणमेवास्मिन् दधाति तस्मै देव वषडस्तु तुभ्यमिति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव वृष्टिं दधाति तस्मादृतुमृतुं वर्षति यत् प्रत्यक्षं वषट् कुर्याद्यातयामा वषट्कारस्स्याद्यन्न वषट् कुर्याद्रक्षाँसि यज्ञँ हन्युस्तस्मै देव वषडस्तु तुभ्यमिति परोक्षं न यातयामा वषट्कारो भवति न रक्षाँसि यज्ञं घ्नन्ति ॥ यदाज्येन जुहुयाच्छुचा पृथिवीमर्पयेदपो निनयति शान्त्या अनुद्दाहाय सुजातो ज्योतिषेत्येतर्हि वा एष जायते यर्हि संभ्रियते जात एवास्मिञ्ज्योतिर्दधाति शर्म वरूथमासदत् स्वरिति ब्रह्म वै शर्म वरूथं ब्रह्मण्येवैनं प्रतिष्ठापयति वासो अग्ने विश्वरूपँ संव्ययस्व विभावस इति च्छन्दाँसि वा अग्ने-र्वासश्छन्दोभिरेवैनं परिदधात्यनुष्टुब् वा अग्नेः प्रिया तनूः प्रिययैवैनं तन्वा परिदधाति वेदुको वासो

[तमु त्वा दध्यङ्ङृषि०। ऋ. ६,१६,१४; तै. सं. ३,५,११,३; ४,१,३,२। तमु त्वा पाथ्यो०। ऋ. ६,१६,१५; तै. सं. ३,५,११,४; ४,१,३,३]

[५] मै. ३,१,५-६ (७-८)। कपि. ३०,३। वा. ११,३८-५२; ३६,१४-१६। काण्व. १२,३८-५३; ३६,१४-१६। तै. सं. ५,१,५-६; ६,१,४-५। शत. ब्रा. ६,४,१,६; ४,३।

काठ० २६

भवति य एवं वेद ॥ वरुणमेनिर्वा एष उपनद्ध उदुतिष्ठ स्वध्वरोर्ध्व ऊ षु ण ऊतय इत्यूर्ध्वामेव वरुणमेनिमुत्सुवति द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै स जातो गर्भो असि रोदस्योरितीमे वै रोदसी अनयोरेष गर्भोऽनयोरेवैनं प्रतिष्ठापयत्यग्ने चारुर्विभृत ओषधीष्विति तस्मादग्निस्सर्वा अन्वोषधीः प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गा इत्योषधयो वा एतस्य मातरस्ताभ्य एवैनमधिप्रणयति स्थिरो भव वीड्वङ्ग इति गर्दभ एव स्थेमानं दधाति तस्मादेष पशूनां भारभारितमश्शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषी-भ्यस्त्वमङ्गिर इत्यभि वा एष एतर्हि प्रजाश्शोचयति शान्त्यै ॥ मा द्यावापृथिवी अभि शुचो मान्त-रिक्षं मा वनस्पतीनित्येभ्य एवैनं लोकेभ्यश्शमयति प्रैतु वाजी कनिक्रददिति समष्ट्यै मा पाद्यायुषः पुरेत्यायुरेवास्मिन् दधाति तस्माद्गर्दभस्सर्वमायुरेति तस्माद्गर्दभे प्रमीते बिभ्यति वृषाग्निं वृषणं भर-न्निति वृषा ह्येष वृषाणं भरत्यपां गर्भँ समुद्रियमित्यपाँ ह्येष गर्भस्समुद्रियोऽग्न आयाहि वीतय इत्यग्निना वै देवा इदमग्रे व्यायन् वीत्यै प्रच्युतो वा एष एतस्मादायतनादगतः प्रतिष्ठाँ स यजमानं चैवाध्वर्युं च ध्यायत्यृतँ सत्यमृतँ सत्यमितीयं वा ऋतमसौ सत्यमनयोरेवैनं प्रतिष्ठापयत्योषधयः प्रतिगृह्णीताग्निमेतँ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मानित्योषधयो वा एतस्य भागधेयं ताभिरेवैनँ सम्यञ्चं दधात्यथो याभ्य एनं प्रच्यावयति तास्वेनं प्रतिष्ठापयति ॥ पुष्पवतीस्सुपिप्पला इति तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्ति द्वाभ्यामुपावहरति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै वि पाजसेति वि स्रंसयति वरुणमेनिमेव विष्यत्यापो हि ष्ठा मयोभुव इत्यप उपसृजत्यापश्शान्ताश्शान्ताभिरेवास्य शुचँ शमयति विसृभिस्त्रि-वृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचँ शमयत्यजलोमैस्सँसृजत्येषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यदजा प्रिययैवैनं तन्वा सँसृजति शर्कराभिर्धृत्या अर्म्यैः कपालैस्सँसृजत्यारण्यानेव पशूञ्छुचार्पयति यद्ग्राम्यैस्सँसृजेद् ग्राम्यान् पशूञ्छुचार्पयेत् तस्मादेते समावत् पशूनां प्रजायमानानां कनिष्ठाश्शुचा ह्येत ऋताः ॥५॥
९-१३

मित्रस्सँसृज्य पृथिवीमिति वरुणमेनिर्वा एषा मित्रेणैव वरुणमेनिमुपैति रुद्रस्सँसृज्य पृथिवीँ सँसृष्टां वसुभी रुद्रैरित्येताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिस्समसृजत् ताभिरेवैनाँ सँसृजति प्रान्यै-र्यच्छत्यन्वन्यैर्मन्त्रयते मिथुनमेव करोत्यथो मध्यत एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे मखस्य शिरोऽसीति

[उदुतिष्ठ स्वध्वरावा०। ऋ. ८,२३,५; तै. सं. ४,१,४,१। ऊर्ध्व ऊ षु ण०। ऋ. १,३६,१३, सा. ५७, तै. सं. ४,१,४,२; तै. ब्रा. ३,६,१,२। स जातो गर्भो०। ऋ. १०,१,२, तै. सं. ४,१,४,२। अग्न आयाहि वीतये०। ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६०। तै. सं. २,५,७,३; ८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१। आपो हि ष्ठा०। ऋ. १०,९,१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१, ११; नि. ९,२७]

[६] मै. ३,१,६—७ (८-९)। कपि. ३०,४। वा. ११,५३-६०। काण्व. १२,५४-६१। तै. सं. ५,१,६-७। शत. ब्रा. ६,४,३३, ६,५,१,२।

यज्ञो वै मखो यज्ञस्यैव शिरः करोति वसवस्त्वा कुर्वन्तु गायत्रेण च्छन्दसेत्येताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिरकरोत् ताभिरेवैनां करोति त्र्युद्धिं करोति त्रय इमे लोका इमानेव लोकानाप्नोति पञ्चोद्धिं करोति पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धे ॥ धारया मयि प्रजामित्याशीरेवैषा छन्दसां दोहोऽरत्निमात्रीं कुर्यात् पुरुषेण वै यज्ञस्संमितो यज्ञपुरुषासंमितां यावद्बाहुभ्यां पर्याप्नुयात् तावतीं कुर्यादेतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्येण संमितां प्रादेशमात्रीं कुर्यादेतावद्वै मुखं मुखं देवानामग्निर्मुखेन संमितामपरिमितां कुर्यादपरिमितस्यावरुद्ध्यै चतुस्स्तनां कुर्याददित्या दोहाय षट्स्तनामृतूनां दोहायाष्टास्तनां गायत्र्या दोहाय द्विस्तनां द्यावापृथिव्योर्दोहाय नवाश्रिमभिचरणीयां कुर्यात् त्रिवृद्वज्रो वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरत्यदित्या रास्नास्यदितिस्ते बिलं गृह्णात्विति यजुषा बिलं करोत्ययजुषा हि मनुष्याः कुर्वन्ति मानुषेणैवैनां पात्रेण व्यावर्तयन्ति यद्वा एषा पुरा पक्तोर्भिद्येतार्तिं यजमान आर्छेद्धन्त्येतास्य यज्ञः कृत्वाय सा महीमुखामिति देवताभ्य एवैनाँ संप्रयच्छति वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण च्छन्दसेत्ये-ताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिरधूपयत् ताभिरेवैनां धूपयत्यश्वशकेन धूपयति प्राजापत्यो वा अश्वो यज्ञः प्रजापतिस्सयोनित्वाय सप्तभिर्धूपयति शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदुखा सप्त प्राणाश्शीर्षन्नेव १४-१५
प्राणान् दधाति तस्मात् सप्त शीर्षण्याः प्राणाः ॥६॥

अदितिस्त्वा देवी विश्वदेव्यावतीतीयं वा अदितिरदित्यैवादित्यां खनत्यस्या अक्रूरंकाराय न हि स्वस्वँ हिनस्ति देवानां त्वा पत्नीरिति देवानां वा एतां पत्नीरग्रेऽश्रादधुस्ताभिरेवैनां दधाति धिषणास्त्वेति विद्या वै धिषणा विद्ययैवैनामभीन्द्धे वरुत्रीस्त्वेति होत्रा वै वरुत्रीर्होत्राभिरेवैनाँ श्रपयति ग्नास्त्वेति च्छन्दाँसि वै ग्नाश्छन्दोभिरेवैनां पचति जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा इति देवानां वै पत्नी-र्जनयस्ता एतामग्रेऽपचँस्ताभिरेवैनां पचति ॥ द्विष्पचन्त्वित्याह तस्माद् द्विस्संवत्सरस्य सस्यं पच्यते षड्भिः पचति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेतां देवानां पत्नीरपचँस्तैरेवैनां पचति वरुणमेनिर्वा एषाभीद्धा मित्रस्य चर्षणीधृत इति मित्रेणैव वरुणमेनिमुपैति देवस्त्वा सवितोद्वपत्विति सावित्र्योद्वपति प्रसूत्या अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृणेति तस्मादग्निस्सर्वा दिशो विभात्युत्तिष्ठ बृहती भवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वमिति दृंहत्येवैनां यद्वा एषा भिद्येतार्तिं यजमान आर्छेद्धन्त्येतास्य यज्ञो मित्रैतां त उखां परिददामीति ब्रह्म वै मित्रो ब्रह्मण एवैनां परिददाति ॥ यदि भिद्येत तैः कपालैस्सँसृज्यान्यां कुर्यात् सैव ततो यज्ञस्य निष्कृतिर्वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु गायत्रेण च्छन्दसेति च्छन्दोभिर्वा एषा क्रियते छन्दोभिर्धूप्यते छन्दोभिः पच्यते ॥ छन्दाँस्येव च्छन्दोभिराच्छृन्दन्ति स्वेनायतनेनामुयं वै पात्रम-

[७] मै. ३,१,८ (१०-१२)। कपि. ३०,५। वा. ११,६१-६५। काण्व. १२,६२-६६। तै. सं. ५,१,७। शत. ब्रा. ६,५,४। [मित्रस्य चर्षणी०। ऋ. ३,५९,६; तै. सं. ३,४,११,५; ४,१,६,३; तै. आ. ४,३,२]

नाच्छृणं यदाच्छृणत्ति देवत्रैव करोत्यजक्षीरेणाच्छृणत्ति सा ह्याग्नेयीतमा समृद्ध्या अथो परमेणैव पयसा ॥७॥ १६-१९

अथैतेऽग्निभ्यः कामेभ्यः पशव आलभ्यन्ते कामा वा अग्नयस्सर्वानेवैतैः कामानभिजयति सर्वान् कामान् स्पृणोति यत् पशून्नालभेतानवरुद्धा अस्य पशवस्स्युर्यत् संस्थापयेद्यातयामानि शीर्षाणि स्युर्यन्न सँस्थापयेद्यज्ञं विच्छिन्द्याद्यद् पशूनालभते तेनैव पशूनवरुन्द्धे यत् पर्यग्निकृतानुत्सृजति शीर्ष्णा-मयातयामत्वायैकेन सँस्थापयति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय प्राजापत्येन यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति न यज्ञं विच्छिनत्त्यैन्द्रा वा एते पशवो ये मुष्करा यदैन्द्रास्सन्तोऽग्निभ्य आलभ्यन्ते देवताभ्यस्समदं करोत्याग्नेयीस्त्रिष्टुभो याज्यानुवाक्याः कुर्यादैन्द्रीर्वै त्रिष्टुभस्तेनैवैन्द्राः क्रियन्ते न देवताभ्यस्समदं करोत्यथैष वायव्यश्श्वेतस्तूपरस्सर्वान् वा एष पशून् प्रत्यालभ्यते यत्तू-परोऽश्वं तेन पशूनां प्रत्यालभ्यते यच्छ्मश्रुणः पुरुषं तेन यदष्टाशफोऽष्टाशफान् पशूँस्तेन नियुत्वती याज्यानुवाक्ये कुर्याद्यजमानस्य धृत्या अनुन्मादाय यन्न नियुत्वती स्यातामुद्वा माद्येद्यजमानः प्र वा पतेद्वायुमती शुक्रवती वायुर्वा अग्नेस्तेजस्तस्माद्यद्वातो वाति तदग्निरन्वेति स्वमेव तत् तेजो-ऽन्वेति वायुर्वै पशूनां प्रियं धाम प्राणो वायुर्यद्वायव्य एतमेवैनमभिसंजानाना: पशव उपतिष्ठन्ते वायव्या कार्या३ प्राजापत्या३ इति मीमाँसन्ते यद्वायव्यां कुर्यात् प्रजापतेरियाद्यत् प्राजापत्यां वायो-रियाद्य एव कश्चाग्नौ पशुरालभ्यते तस्याग्नये वैश्वानराय पुरोडाशं कुर्याद्यद्वायव्यः पशुस्तेन वायो-र्नैति यत् प्राजापत्यः पुरोडाशस्तेन प्रजापतेर्नैति यद् द्वादशकपालो द्वादशमासस्संवत्सरस्संवत्सरो-
ऽग्निर्वैश्वानरस्तेन वैश्वानरत्वान्नैति ॥८॥ २०

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपत्यग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चालभते मुखं वै देवानामग्निः परोऽन्तो विष्णुर्यज्ञस्यैवान्तौ समग्रहीदथादित्येभ्यो घृते चरुरादित्या वा इत उत्तमा अमुं लोकमायन्नादित्या इमाः प्रजा आदित्यानां नेदिष्ठिनीस्स्वामेव देवतामुपैति घृते भवति घृत-भागा ह्यादित्या अथाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालस्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो द्वादशमासस्संवत्सर-स्संवत्सरस्याप्त्यै ॥ योऽयोनिमग्निं चिनुते यजमानस्य योनिमनु प्रविशति स एनं निर्दहति संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्संवत्सरोऽग्नेर्योनिर्यदग्नये वैश्वानराय योनिमन्तमेवैनं चिनुत एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्या वैश्वानरी यदग्नये वैश्वानराय प्रियाया एवास्य तन्वे हविष्कृत्वा प्रियां तन्वमादत्ते कामो वा अग्निर्वैश्वानरो यदग्नये वैश्वानराय निर्वपत्यश्नुते तं कामं यस्मै कामाय दीयते यद् द्वादशकपालो द्वादशमासस्संवत्सरो या वै प्रजा भ्रँशन्ते संवत्सरात् ता भ्रँशन्ते याः प्रतितिष्ठन्ति संवत्सरे ताः प्रतितिष्ठन्ति संवत्सर एव प्रतिष्ठायाग्निं बिभर्ति ॥९॥ २१-२२

[८] मै. ३,१,१० (१५-१६)। कपि. ३०,६। तै. सं. ५,१,८,१। [९] मै. ३,१,१० (१६)। कपि. ३०,७।

षडाघीतयजूंषि जुहोति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं दीक्षयत्यृतुभिरस्या वीर्यमुपच्छते सप्तैतानि जुहोति सप्त प्राणाः प्राणैरेवैनं दीक्षयति नाना जुहोति तस्मान्नानावीर्याः प्राणाश्चक्षुश्श्रोत्रं वागनुष्टु-भोत्तमं जुहोति वाग्वा अनुष्टुब् वाचमेवोत्तमां दधाति तस्माद्वाक् प्राणानामुत्तमा विहितं वदत्यनुष्टुब् वै सर्वाणि छन्दाँसि पशवश्छन्दाँस्यन्नं पशवः पशूनेवान्नाद्यमवरुन्द्धे यज्ज्योतिषि प्रवृणक्ति भूतं तेनावरुन्द्धे यदक्तुषु भविष्यत् तेनाक्तुषु प्रवृज्या भविष्यद्धि भूयो भूतान्मा सु भित्था मा सु रिष इति दृंहत्येवैनामरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन्निति समष्ट्यै द्वाभ्यां प्रवृणक्ति द्विपाद्यजमानः प्रति-ष्ठित्यै ॥ परीष्या वृभृथो गर्भो दीक्षितोऽन्न इव वा एष भवत्यत एवैनं जनयति मथित्वा गतश्रे-रवद्ध्याकृतो हि स स्वामेव देवतामुपैत्यन्यत आहृत्यावदध्यायं कामयेत भ्रातृव्यमस्मै जनयेयमिति भ्रातृव्यमेवास्मै जनयति भृज्जनादवदध्यादन्नकामस्य भृज्जने वा अन्नं क्रियते सयोन्येवान्नमव-रुन्द्धे यो वृक्ष उपरि दीप्येत तस्यावदध्यात् स्वर्गकामस्यैष वा अग्नीनाँ स्वर्ग्यस्स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै द्रुघ्नस्सर्पिरासुतिरिति क्रुमुकं लिखितं घृतेनाक्त्वावदधात्यग्नेर्वै प्रिया तनूस्तया क्रुमुकं प्राविशत् तेजो घृतं प्रियामेवास्य तन्वं तेजसा समनक्ति मुञ्जानवदधात्यूर्ग्वै मुञ्जा ऊर्जमेवास्मा अपिदधाति परस्या अधि संवत इत्यौदुम्बरीमूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवास्मा अपिदधाति परमस्याः परावत इति वैकङ्कतीमग्नेर्वै सृष्टस्य विकङ्कतं भा आर्छत् तदेवावरुन्द्धे यदग्ने कानि कानि चेति न ह स्म वै पुराग्निरपरशुवृक्णं दहति तदस्मा एताभिः प्रयोग ऋषिरस्वदयद्यदेताभिस्समिध आदधाती-ध्ममेवास्मै स्वदयति स्वदितमस्यान्नं भवति य एवं वेद छन्दाँसि वा अग्नेर्योनिर्यच्छन्दोभिरादधाति स्वयैवैनं योनिनानुबिभर्ति रात्रीं रात्रीमप्रयावं भरन्त इत्याशिषमेवाशास्ते नाभा पृथिव्यास्समिधानो अग्निमिति पृतना एवैतया जयति ॥ यास्सेना अभीत्वरीरित्यग्निं वै जातं रक्षाँस्यजिघाँसँस्ते देवा एता ऋचोऽपश्यँस्ताभिरक्षाँस्यपाघ्नन् यदेताभिस्समिध आदधाति रक्षसामपहत्या अथैतन्मा-लिम्लवं देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त ते देवा एतन्मालिम्लवमपश्यँस्तेनासुरानभ्यभवन् यदेतेन समिध आदधाति भ्रातृव्यस्याभिभूत्यै तस्माद्याँ समामग्निं चिन्वन्ति प्राहुकास्स्तेनं भवन्ति यास्सेना अभीत्वरीरित्यौदुम्बरी देवा वै यज्ञोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरोऽजायत जातायैवास्मा ऊर्जमपिदधाति दंष्ट्राभ्यां मलिम्लूनग्न इत्याश्वत्थीमेष वै वनस्पतीनाँ सपत्नसाहो विजित्यै यर्हि दँष्ट्राभ्यामिति भृधायं द्विष्यात् तं मनसा ध्यायेन्मनो वै वाचः क्षेपीय आहुतिमेवैनं भूतामग्रयेऽपिदधाति ये जनेषु मलिम्लव इति वैकङ्कतीमग्नेर्वै सृष्टस्य विकङ्कतं भा आर्छत् तदेवावरुन्द्धे यो अस्मभ्यमरातीयादिति

[१०] मै. ३,१,९ (१३-१४); कपि. ३०,८; वा. ११,६८-८२। काण्व. १२,६९-८३। तै. सं. ५,१,९-१०। शत.ब्रा. ६,६,१,१५। [द्रुघ्नस्सर्पिरा०। ऋ. २,७,६. तै. सं. ४,१,९,२। परस्या अधि०। ऋ. ८,७५,१५; तै. सं. २,६,११,३; ४,१,९,२। यदग्ने कानि कानि०। ऋ. ८,१०२,२०; अथर्व. १९,६४,३; तै. सं. ४,१,१०,१। सँशितं मे०। अथर्व. ३,१९,१।

शमीमयीं शान्त्यै निन्दाद्यो अस्मान् दिप्साच्चेति तस्मादग्निचितो नाश्लीलं कीर्तयेत् सँशितं मे ब्रह्मेति ब्रह्मणैव क्षत्रँ सँश्यति क्षत्रेण ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रमत्यन्यानि क्षत्राणि तस्माद्ब्रह्म क्षत्र-वदत्यन्यान् ब्राह्मणानुदेयां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलमित्याशिषमेवाशास्ते क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रा-नुन्नयामि स्वाँ अहमिति यथायजुः ॥१०॥ २३-२५

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौदिति रुक्मं प्रतिमुञ्चेत मृत्युर्वा अग्निरमृतँ हिरण्यममृतेनैव मृत्यो-रन्तर्धत्त एकविंशतिनिर्बाधो भवति प्रतिष्ठित्या एकविंशतिर्देवलोकास्तेभ्य एव भ्रातृव्यं निर्बाधते बहिष्टान्निर्बाधं कुर्यादस्मादेवैनं लोकान्निर्बाधत उभयतः पर्यस्यति प्रतिमुञ्चमान उभाभ्यामेवैनं लोकाभ्यां निर्भजति नक्तोषासेत्यहोरात्राभ्यामेवैनं परिगृह्णाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदा इति प्राणा वै देवा द्रविणोदाः प्राणैरेवैनं दाधार षड्यामँ शिक्यं भवति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं परि-गृह्णाति द्वादशोद्यामं भवति द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरेणैवैनं परिगृह्णाति मौञ्जं भवत्यूर्ग्वै मुञ्जा ऊर्जैनं परिगृह्णाति ॥ नाधोनाभि बिभृयादग्निरस्य रेतो निर्दहेदूर्ध्वं नाभ्या बिभृयादूर्ध्वं नाभ्यास्स-देवमग्निस्सर्वा देवतास्सदेव एव देवता बिभर्ति विश्वा रूपाणीति सावित्र्या प्रतिमुञ्चते प्रसूत्या आसीनः प्रतिमुञ्चते तस्मादासीनाः प्रजाः प्रजायन्त सुपर्णोऽसि गरुत्मानित्यग्नेर्वा एते संभारा अग्नि-मेवैतैस्संभरत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम तदेवावरुन्द्धे दिवं गच्छ स्वः पतेति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या असुराणां वा इमे लोका आसँस्ते देवा विष्णुमब्रुवन् यावदयं कुमारो विक्रमते तावन्नो दत्तेति स सकृदेवेमां व्यक्रमत गायत्रीं छन्दस्सकृदन्तरिक्षं त्रिष्टुभं छन्दस्सकृद्दिवं जगतीं छन्दस्सकृद्दिशो-ऽनुष्टुभं छन्दस्ते देवा इमांल्लोकानसुराणामविन्दन्त ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वान् प्रक्रमान् प्रक्रामतीमानेव लोकान् भ्रातृव्यस्य विन्दते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भव-त्यक्रन्ददग्निरित्येतया वै वत्सप्रीर्भालन्दनोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्द्धाग्नेरेवैतया प्रियं धामावरुन्द्धेऽग्ने-ऽभ्यावर्तिन्नग्ने अङ्गिरः पुनरूर्जा सह रय्येति पुनरेति तस्माद्ग्राम्याः पशवस्सायमरण्याद्ग्राममायान्ति चतसृभिश्चतुष्पादा हि पशवो दक्षिणा पर्यावर्तते तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तर आ त्वाहार्ष-मित्या ह्येनँ हरति विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मे राष्ट्रमधिश्रयेति यं कामयेत राष्ट्रँ स्यादिति तं

[११] मै. ३,२,१ (१); कपि. ३२,१। वा. १०,२४; १२,१-१६,२१,२५,३३,४०-४१; १७,७०। काण्व. ११,३४; १३,१-१५,२२,२६,३४,४१-४२; १८,७०। तै. सं. ५,१,९-१०। शत. ब्रा. ६,६,४; ७,२। [दृशानो रुक्म०। ऋ. १०,४५,८; तै. सं. १,३,१४,५; ४,१,१०,४; २,२,४। नक्तोषासा समनसा०। ऋ. १,९६,५; १,११३, ३ (च.पा.); तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३। विश्वा रूपाणि०। ऋ. ५,८१,२; अथर्व. ७,७३,६; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३। अक्रन्ददग्नि०। ऋ. १०, ४५,४; तै. सं. १,३,१४,२; ४,२,१; २,२,२। पुनरूर्जा सह रय्या०। सा. १८३२-१८३३। आ त्वाहार्ष०। ऋ. १०,१७३,१; अथर्व. ६,८७,१; तै. सं. ४, २,१,४; तै. ब्रा. २,४,२,८]

मनसा ध्यायेद्राष्ट्रमेव भवत्युदुत्तमं वरुण पाशमस्मदिति शुनश्शेपो वा एतामाजीगर्तिर्वरुणगृहीतो-ऽपश्यत् तया वै स वरुणपाशादमुच्यत वरुणपाशमेवैतया प्रमुञ्चतेऽग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादिति पाप्मा वै तमः पाप्मानमेवैतयापहते हँसश्शुचिषदिति साम्रान्येवैतया प्रीणाति सदित्यभिपूर्वमेवैनँ करोति प्रतिष्ठापयत्यासन्द्याँ सादयति क्षुयते वा एषोऽग्नीनां य उखायां ध्रियते तस्मादासन्द्याँ सादयति यदश्मसादयेत् प्रपादुका गर्भास्स्युरुपरि सादयति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय तिसृभिरुपतिष्ठते त्रयः प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानस्तानेव यजमाने दधाति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नोति ॥११॥ २६-२७

अथैतद्वात्सप्रमेतेन वै वत्सप्रीर्भालन्दनोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्द्धाग्नेरेवैतेन प्रियं धामावरुन्द्ध एतेन वै स ऋषीणामधिवादमपाजयत् पाप्मानमेवैतेनाधिवादमपजयत्येतेन वै सोऽभिशस्तीरजयदभि-शस्तीरेव जयति य एवं विद्वानेतेनोपतिष्ठते यत् प्रक्रमान् प्रक्रामति ग्रामं तेन दाधार यदुपतिष्ठते क्षेमं तेन पूर्वेद्युः प्रक्रामत्यपरेद्युरुपतिष्ठते तस्माद्ग्रामेऽन्यासां प्रजानां मनः क्षेमेऽन्यासां तस्माद्याया-वरः क्षेमस्य ईशे तस्माद्यायावरः क्षेम्यमध्यवस्यत्येकादशं भवत्येकादशाक्षरा त्रिष्टुब् वीर्यं त्रिष्टुब् वीर्य-मेवावरुन्द्धे ॥ एकेषं वै पुरान आसीत् तत एतदपश्योऽग्रये द्वीपमाधानमपश्यँस्तस्माद् द्वीपमग्रय आधानं कुर्वन्ति तामिदमनुकृतिं द्वीपमनः क्रियत उदु त्वा विश्वे देवा इति प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणैरेवैनमुद्यच्छते मनुष्या वै विश्वे देवा मनुष्यैरेवैनमुद्यच्छतेऽग्ने भरन्तु चित्तिभिरिति यस्मा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैनँ समर्धयति प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहीत्यभि वा एष एतर्हि प्रजाश्शोचयति शान्त्या अक्रन्ददग्निरित्यनुमन्त्रयेत यदि क्ष्वेदेत्क्रन्दतव ह्यनसा वहन्ति तस्मादनस्वी च रथी चाति-थीनामपचितमा अन्नपते अन्नस्य नो देहीत्यन्नमेवास्मै स्वदयत्यनमीवस्य शुष्मिण इत्ययक्ष्मस्ये-त्येवैतदाह प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो देहि द्विपदे चतुष्पद इत्याशिषमेवाशास्ते समिधाग्निं दुवस्यतेति घृतेनाक्त्वा समिधमादधाति यथा ब्राह्मणायातिथये सर्पिष्मन्तं पचत्येवमेव तद्गायत्र्या ब्राह्मणस्या-दध्याद्गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुभा राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यो जगत्या वैश्यस्य जागतो हि वैश्यो यथाछन्दसमेवापो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मैतदित्यप्सु भस्म प्रवपत्यापो वा अग्नेर्योनिस्स्वयैवैनं योनिं

[उदुत्तमं वरुण०। ऋ. १,२४,१५; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; सा. ५८९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; नि. २,१३। अग्ने बृहन्नुषसा०। ऋ. १०,१,१; तै. सं. ४,२,१,४। हँसश्शुचिषद्०। ऋ. ४,४०,५; तै.सं. १,८,१५,२; ४,२,१,५; तै. ब्रा. १०,१०,२]

[१२] मै. ३,२,१ (२); कपि. ३२,१; वा. ११,८३; १२,६,९—१०,१२,३०—३३,३४,३८—४३; ३,१; काण्व. १२,८४; १३,७,१०-११,२२,३२-३४,३६,३९-४४; ३,१; तै. सं. ५,२,१-२; शत. ब्रा. ६,७,४; ६,८,४; [अक्रन्ददग्नि०। ऋ. १०,४५,४; तै. सं. १,३,१४,२; ४,२,१; २,२,२। समिधाग्निं दुवस्यत०। ऋ. ८,४४,१; तै. सं. ४,२,१,१; तै. ब्रा. १,२,१,९]

गमयति तिसृभिस्त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति परा वा एषोऽग्निं वपति योऽप्सु भस्म प्रवपति सँसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासद इति ज्योतिरेवास्मिन् दधात्यूर्जा वा एष पशुभिर्व्यृध्यते योऽप्सु भस्म प्रवपति पुनरूर्जा सह रय्येति पुनरेवोर्जं पशूनवरुन्द्धे बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठेति तस्मात् प्रजास्सुषुपुषीः प्रबुध्यन्ते स बोधि सूरिर्मघवेति तस्मात् पशवः प्रेत्वान-श्चरित्वा पुनरेत्य यथालोकं निषीदन्ति द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ॥१२॥ २८-२९

देवं बर्हिस्सुदेवं देवैस्स्यात् सुवीरं वीरैर्वस्तोर्वृज्येताक्तोः प्रभ्रियेतात्यन्यान् राया बर्हिष्मतो मदेम वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज देवीर्द्वारस्संघाते वीड्वीर्यामञ्छ्रिथिरा ध्रुवा देवहूतौ वत्स ईमेनास्तरुण आमिमीयात् कुमारो वा नवजातो मैना अर्वा रेणुककाटः प्रणग्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज देवी उषासानक्ताद्यास्मिन् यज्ञे प्रयत्यह्वेतामपि नूनं दैवीर्विशः प्रायासिष्टाँ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसु-धेयस्य वीतां यज देवी जोष्ट्री वसुधिती ययोरन्याघा द्वेषाँसि यूयवदान्या वक्षद्वसु वार्याणि यज-मानाय वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज देवी ऊर्जाहुती इषमूर्जमन्या वक्षत् सग्धिं सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमानास्स्याम पुराणेन नवं तामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने अधातां वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज-देवा दैव्या होतारा पोतारा नेष्टारा हताघशँसा आभरद्वसू वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज देवीस्ति-स्रस्तिस्रो देवीरिडा सरस्वती भारती द्यां भारत्यादित्यैरस्पृक्षत् सरस्वतीमं रुद्रैर्यज्ञमावीदिहैवेडया वसुमत्या सधमादं मदेम वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज देवो नराशँसस्त्रिशीर्षा षडक्षश्शतमिदेनँ शितिपृष्ठा आदधति सहस्रमीं प्रवहन्ति मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज देवो वनस्पतिर्वर्षप्रावा घृतनिर्णिग्द्यामग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणाद्दृँहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज देवं बर्हिर्वारितीनां निधेधासि प्रच्युतीनामप्रच्युतं निकामधरणं पुरुस्पार्हं यशस्वदेना बर्हिषान्या बर्हीँष्यभिष्याम वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज देवो अग्निस्स्विष्टकृत्सुद्रविणा मन्द्रः कविस्सत्ययजी होता होतुर्होतुरायजीयानग्ने यान् देवानयाड्याँ अपिप्रेर्ये ते होत्रे अमत्सत तान् समनैषीर्होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमँ स्विष्टकृच्चाग्ने होता-भूर्वसुवने वसुधेयस्य नमोवाके वीहि यजाग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन् बृहस्पतये छागं सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवद्बृहस्पतये छागेन बध्नन्नश्विभ्यां छागँ सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवत् सरस्वत्यै मेष्या बध्नन्निन्द्राय मेषँ सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय मेषणाक्षँस्तान्मेदस्तः प्रतिपचताग्रभीपतावीवृधन्त पुरोडाशैस्त्वामद्यर्षे

[पुनरूर्जा सह रय्या०। सा. १८३२-१८३३। बोधा मे अस्य०। ऋ. १,१४७,२; तै. सं. ४,२,३,४; नि. ३,२०। स बोधि सूरिर्मघवा०। ऋ. २,६,४; तै. सं. ४,२,३,४]

[१३] मै. ४,१३,८-९ (६८-६९); वा. २१,४८-६१; २८,३५-४६। काण्व. २३,४७-६०; ३०,१२-२३,३५-४६। तै. ब्रा. १२-२३,३,५,१०; ३,६,१३; १५।

आर्षेयर्षीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति
ता या देवा देवदानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो
मानुषस्सूक्तवाकाय सूक्तं ब्रूहि ॥१३॥ ३०

अग्न आयूँष्यग्ने पवस्वाग्ने पावक रोचिषा ॥ ३१

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहावह । उप यज्ञँ हविश्च नः ॥ ३२

अग्निश्शुचिव्रततम उदग्ने शुचयस्तव सुत्रामाणं महीमू षु ॥ ३३

तँ हि शश्वन्त ईडते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निँ हव्याय वोढवे ॥ ३४

अग्निं दूतं पुरो दधे ॥ ३५

स हव्यवाडमर्त्य उशिग् दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ ३६

अग्निँ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ ३७

प्रेद्धो अग्न इमो अग्ने ॥ ३८

पीपिवाँसँ सरस्वतस्स्तनं यो विश्वदर्शतः । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ३९

ये ते सरस्वन्नूर्मयो मधुमन्तो घृतश्च्युतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥ ४०

दिव्यँ सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां पतिं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ण्या तर्पयन्तँ सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ४१

[१४] मै. १,३,८६; ५,८,१०-१२; २,१०,६,६६; ६,१५; ३,११,९०; ४,१०,१७,२३,२५-२६,२८-३०,३८,६०; १२,९६ । वा. १९,३८; ३५,१६; ८,३८; १७,८-९,७३; २२,१५-१७ । काण्व. ८,१९-२०, २१,४०; २९, ३७-३८; ३५,४८; १८,९-१०,७३; २४,१९-२०,२२ । [अग्न आयूँषि० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४, १५१८; तै. सं. १३,१४,७; ४,२९,१; ५,५,१; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१ । अग्ने पवस्व० । ऋ. ९,६६,२१; सा. १५१०, तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,२; ६,६,२; तै.ब्रा. २,६,३,४; तै.आ. २,५,१ । अग्ने पावक रोचिषा० । ऋ. ५,२६,१; सा. १५२१; तै. सं. १,३,१४,८; ५.५,३; ४,६,१,२ । स नः पावक दीदिवो० । ऋ. १,१२,१०; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३; ४,६,१,३ । अग्निश्शुचिव्रततम० । ऋ.८,४४,२१; तै. सं. १,३,१४, ८; ५,५,३ । उदग्ने शुचयस्तव० । ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३, २,४,१४,४ । सुत्रामाणं० । ऋ. १०,६३.१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५ । महीमू षु० । अथर्व. ७,६,२; आ. स. २,१ । तँ हि शश्वन्त ईड(ळ)ते० । ऋ. ५,१४,३; तै. सं. ४,३,१३,८ । अग्निं दूतं पुरो दधे० । ऋ. ८,४४,३ । स हव्यवाड(ळ)मर्त्य० । ऋ. ३,११,२; तै. सं. ४,१,११,४ । अग्निँ स्तोमेन० । ऋ. ५,१४,१; तै. सं. ४,१,११.४ । प्रेद्धो अग्न० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५, तै. सं. ४,६,५,४ । इमो अग्ने० । ऋ. ७,१, १८; तै. सं. ४,३,१३,६ । पीपिवांसं० । ऋ. ७,९६,६; तै. सं. ३,१,११,२ । ये ते सरस्वन्नूर्मयो० । ऋ. ७,९६,५; तै. सं. ३,१,११,३; नि. १०,२४ । दिव्यँ सुपर्णं वायसं० । ऋ. १,१६४,५२; अथर्व. ७,३९,१; तै. सं. ३,१,११,३]

काठ० २७

यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपो यस्य व्रते पशवो यन्ति सर्वे ।
यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्तँ सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥१४॥ ४२
[१५८०]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां सावित्रा नामैकोनविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥१९॥

अथ विंशं स्थानकम् ।

अपेतवीतम् ।

अपेत वीत वि च सर्पतात इति देवयजनमध्यवस्यति यो वा अस्या अधिपतिं देवयजनमनि-
र्याच्याग्निं चिनुते यमाय तेऽग्नयश्चीयन्ते यमोऽस्या अधिपतिर्यममेवास्या अधिपतिं देवयजनं निर्या-
च्यात्मनेऽग्निं चिनुत इष्वग्रेण ह वा अस्या अनामृतमिच्छन्तो न विविदुर्यदेतेन देवयजनमध्यवस्य-
त्यस्या एवानामृतेऽग्निं चिनुत उवाच ह सनाच्छव एतन्मा कतिपयथं यजुरायतनादचुच्यवदिति
दिवः प्रिये धामन्नग्निश्चेतव्य ऊषा वै दिवः प्रियं धाम यदूषानुपवपति दिव एव प्रिये धामन्नग्निं
चिनुत इष्टका वा एता वैश्वानरीरपरिमिता यत् सिकता यत् सिकता उपवपति ता एवावरुन्द्धेऽग्नेर्वा
एषा वैश्वानरस्य प्रिया तनूर्यत् सिकता यत् सिकता उपवपति तामेवावरुन्द्धेऽयँ सो अग्निरित्येतद्वि-
श्वामित्रस्य सूक्तमेतेन वै विश्वामित्रोऽग्नेः प्रियं धामावारुन्द्धाग्नेरेवैतेन प्रियं धामावरुन्द्धे चतस्रः
प्राचीरुपदधाति चत्वारि वै च्छन्दाँसि छन्दोभिर्देवास्स्वर्गं लोकमायँस्तेषां दिशस्समव्लीयन्त त एता
दिश्या अपश्यँस्ताभिर्दिशोऽदृँहन् यद् द्वे पुरस्तात् समीची उपदधाति द्वे पश्चाद्दिशां विधृत्या अष्टा
एता उपदधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्री स्वर्गं लोकमञ्जसा वेद स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्या अष्टा
एता उपदधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तं चिनुतेऽष्टा एता उपधाय त्रयोदश लोकं-
पृणयोपदधाति ता एकविंशतिस्संपद्यन्त एकविंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा गार्हपत्य एकविंशस्यैव
प्रतिष्ठामनु गार्हपत्येन प्रतितिष्ठति प्रत्यग्निं चिक्यानस्तिष्ठति य एवं वेद पञ्चचितीकं चिन्वीत प्रथमं
चिन्वानः पाङ्क्तो वै यज्ञः पाङ्क्ताः पशवो यज्ञं चैव पशूँश्चावरुन्द्धे त्रिचितीकं चिन्वीत द्वितीयं
चिन्वानस्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नोत्येकचितीकं चिन्वीतोत्तमं चिन्वान एकधैव स्वर्गं
लोकमेति पञ्च चितयः पञ्च पुरीषाणि तद्दश दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठ-
त्यस्थि वा इष्टका माँसं पुरीषं यदिष्टकां पुरीषेणाभ्यूहति तस्मादस्थि माँसेन च्छन्नं न दुश्चर्मा भवति

[यस्य व्रतमुपतिष्ठत० । अथर्व. ७,४०,१]

[१] मै. ३,२,३ (३) । कपि. ३२,३ । वा. १२,४५,५७,६१ । काण्व. १३,४६,५८,६२ । [अपेत वीत वि० । ऋ. १०,१४,९; अथर्व. १८,१,५५; तै. सं. ४,२,४,१; तै. ब्रा. १,२,१,१६; तै. आ. १,२७,५, ६,६,१]

य एवं वेद समितँ संकल्पेथामिति संनिवपति क्षत्रं वा एता अग्नीनां यश्चोखायां भ्रियते यश्च चीयते
ब्रह्मणा क्षत्रँ समेति ब्रह्म यजुर्ब्रह्मणैवैनौ संनिवपति चतुर्भिस्संनिवपति चत्वारि वै छन्दाँसि च्छन्दो-
भिरेवैनौ संनिवपत्येषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यच्छन्दाँसि प्रिययैवैनौ तन्वा सँशास्ति यत्संन्युप्य
विहरति तस्माद्ब्रह्मणा क्षत्रँ समेति ब्रह्मणा व्येति मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमित्यृतुभिरेवैनं दीक्षयित्व-
र्तुभिर्विमुञ्चति प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चत्विति प्रजापतिमेवास्या विमोक्तारं करोति ॥१॥ १

अथैता नैर्ऋतीस्तिस्रः कृष्णास्तुषपक्वा यत् कृष्णा एष हि तं वर्णस्सचते यं निर्ऋतिर्गृह्णात्येतद्वै
निर्ऋत्या भागधेयं यत्तुषा रूपेण चैव भागधेयेन च निर्ऋतिं निरवदयते यदस्य पारे रजस इति
वैश्वानर्यादत्ते स्वदयत्येवेमां दिशँ हरन्त्येतां हि तं दिशँ हरान्ति यं निर्ऋतिर्गृह्णात्येषा वै निर्ऋत्या
दिक् स्वायामेव दिशि निर्ऋतिं निरवदयते स्वकृत इरिण उपदधात्येतद्वा अस्या निर्ऋतिगृहीतं
यत्रैवास्या निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋतिं निरवदयते ॥ पराचीरुपदधाति पराचीमेव निर्ऋतिं निरवदयते यं ते देवी
तिस्र उपदधाति त्रेधाविहितो वै पुरुषो यावानेवास्यात्मा तस्मान्निर्ऋतिं निरवदयते यं ते देवी
निर्ऋतिराबबन्धेति शिक्यमधिन्यस्यति नैर्ऋतो वै पाशो निर्ऋतिपाशादेवैनं मुञ्चति पितृलोकं वा एते
निगच्छान्ति ये दक्षिणा नैर्ऋतीभिश्चरन्ति देवलोक आहवनीयो यदाहवनीयमुपतिष्ठते देवलोकमेवा-
पावर्तते त्रिष्टुभोपतिष्ठते वीर्यं वै त्रिष्टुब् वीर्यमेवास्मिन् दधात्येकयैकयैवास्मिन् वीर्यं दधाति ॥२॥ २-३

यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावता वेणुना विमिमीत एतावद्वै पुरुषे वीर्यं वीर्येणैवैनं विमिमीते त्रीन्
पुरुषान् प्राञ्चं मिमीते चतुरस्तिर्यञ्चं तस्मात् सप्त पुरुषानभ्यग्निचिदश्नमत्ति त्रीन् परस्तात् त्रीनवस्ता-
दात्मा सप्तमोऽरत्निमात्रं पक्षयोरुपदधाति प्रादेशमात्रं पुच्छे पुरुषेण वै यज्ञस्संमितो यज्ञपुरुषासंमितं
तस्मात् पक्षप्रवयाँसि वयाँसि षड्गवेन कृषति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेव तिस्रस्तिस्रस्सीतास्संपादयति
त्रिवृद्ध्यग्निस्ता द्वादश संपद्यन्ते ॥ द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरस्यैव विधामनुविधीयतेऽथो
ऋतुभिरेव कृष्ट्वा संवत्सरे प्रतितिष्ठतीयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत् सैतद् द्विगुणं कृष्टं चाकृष्टं चाकुरुत
यत् कृष्टं चाकृष्टं च भवत्यस्या अनतिदाहायाथो द्विगुणेनैवास्या वीर्यमुद्यच्छत एतावन्तो वै पशवो
द्विपादश्च चतुष्पादश्च तानेतदग्नौ प्रतिदधाति यदुदीच उत्सृजेद्रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुस्स्याद्यद्दक्षिणा
पितृभ्यो निधुवेद्यत् प्रतीचो रक्षाँसि हन्युर्दक्षिणा प्राचस्सृजत्यभ्युत्सृजति सूर्यो वै पशूनां प्राणः
प्राणमेवैनानभ्युत्सृजत्योषधीनामृग्भिरोषधीनां फलानि वपति रूपेणैवान्नमवरुन्द्धेऽन्नस्यान्नस्य वपति
सर्वमेवान्नमवरुन्द्धे यस्य न वपति तेन व्यृध्यते यस्य न वपेत् तन्मनसा ध्यायेत् तेनैव तदवरुन्द्धे

[२] मै. ३,२,४ (४-६) । कपि. ३२,४ । वा. १२,६५ । काण्व. १३,६६ । तै. सं. ५,२,४-५ । [यं ते देवी० । अथर्व. ६,६३,१]

[३] मै. ३,२,४-५ (६-७) । कपि. ३२,५ । तै. सं. ५,२,५-६ ।

चतुर्दशभिर्वपति सप्त वै ग्राम्या ओषधयस्सप्तारण्यास्ता एवोभयीरवरुन्द्धेऽन्नमर्कोऽर्कोऽग्निरर्क एवैत-
दर्कश्चीयते कृष्टे वपति कृष्टे ह्याशिष्ठमोषधयः प्रतितिष्ठन्त्यनुसीतं प्रजात्यै द्वादशसु सीतासु वपति द्वादश
मासास्संवत्सरस्संवत्सरेणैवास्मा अन्नं पचति ॥३॥ ४-५

दिग्भ्यो लोष्टान् समस्यति दिग्भ्य ऊर्जँ संभरत्यूर्ज्येवाग्निं चिनुते यां जनतां द्विष्यात् तस्या
दिश आहरेदिषमूर्जमहमित आदीतीषमेवास्या ऊर्जमादत्ते क्षोधुका भवत्युत्तरवेदिं निवपत्युत्तरवेद्याँ
ह्यग्निश्चीयतेऽथो यज्ञपरुरेव नान्तरेति पशवो वा उत्तरवेदिः पशूनेवावरुन्द्धेऽग्ने तव श्रवो वय इति
षड्चेन निवपति षड्वा ऋतवस्संवत्सरस्संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरो रूपेणैव वैश्वानरमवरुन्द्धेऽष्टाक्षरा प्रथमा-
ष्टाशफाः पशवः पशूनेवावरुन्द्ध ऊनातिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्यै समुद्रं वै नामैतत् प्रजापतेश्छन्द-
स्समुद्रात् पशवः प्रजायन्ते पशूनां प्रजात्या इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत् स त्रेधाभवत् स्फ्य-
स्तृतीयं यूपस्तृतीयं रथस्तृतीयं यदशीर्यत ताश्शर्कराः पशुर्वा अग्निर्वज्रश्शर्करा यच्छर्कराभिः परि-
मिनोति वज्रेणैवास्मै पशून् परिगृह्णाति तस्मात् पशवो वज्रेण विधृतास्तस्मात् स्रेयानस्थेयसो नादत्ते
दशभिर्दशभिः परिमिनुयादन्नकामस्य दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति नवभि-
र्नवभिरभिचरतस्त्रिवृद्वज्रो वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति सप्तभिस्सप्तभिः पशुकामस्य सप्त प्राणाः
प्राणेभ्योऽधि पशवः प्रजायन्ते पशूनां प्रजात्या अपरिमित्य शर्करास्सिकता व्यूहेयं कामयेतापशु-
स्स्यादित्यपरिगृहीतमेवास्य रेतः परासिञ्चत्यपशुर्भवति परिमित्य शर्करास्सिकता व्यूहेद्यं कामयेत
पशुमान् स्यादिति परिगृहीतमेवास्मै रेतस्सिञ्चति पशुमान् भवति च्छन्दाँसि वा अग्नेर्योनिस्सोमो
रेतोधा यच्छन्दोभिर्न्युप्य सौम्य व्यूहति योना एव रेतो दधाति व्यूहति तस्माद्योनौ गर्भा वर्धन्ते
समानप्रभृतयो भवन्ति नानोदर्कास्तस्मात् समानाद्योनेर्नानारूपाः प्रजायन्ते गायत्र्या ब्राह्मणस्य
व्यूहेद्गायत्रो हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुभा राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यो जगत्या वैश्यस्य जागतो हि वैश्यो
यथाछन्दसमेव ॥४॥ ६

उपाँश्वन्वाहानिरुक्तो वा एतर्ह्यग्निर्यर्ह्यव्यावृत्तस्तस्मादुपाँश्वन्वाह च्छन्दाँस्यन्वाह च्छन्दोभिर्वा
अग्निरुत्तरवेदिमानशे तस्माच्छन्दाँस्यन्वाह सूर्यस्य वा एतदध्वानं यन्ति यदश्वं प्राञ्चं च प्रत्यञ्चं
चाक्रमयन्ति तस्मादसा आदित्यः प्राङ् चैति प्रत्यङ् च प्राजापत्योऽश्वो यदश्वमाक्रमयति प्रजा-
पतिनैवैनं चिनुतेऽपां पृष्ठमसि योनिरग्नेरिति पुष्करपर्णमुपदधाति स्व एवैनं योनौ चिनुते शान्त्या
अनुदाहाय ॥ वर्धमानो महाँ आ च पुष्कर इति वर्धते क्षेप यो भवति दिवो मात्रया वरिणा

[४] मै. ३,२,५ (७) । कपि. ३२,६ । वा. १२,१०६ । काण्व. १३,१०५ । तै. सं. ५,२,५,६ । [अग्ने तव श्रवो० । ऋ. १०,१४०,१; सा. १८१६; तै. सं. ४,२,७,२]

[५] मै. ३,२,६ (८) । कपि. ३२.७ । वा. ११,२९; १३,२-५; २३,१; २५,१० । काण्व. १२,२९; १४,२-५; २५,१; २७,१४ । तै.सं. ५,२,६-८]

प्रथस्वेति प्रथयत्येव ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तादिति रुक्ममुपदधाति ब्रह्ममुखाभिर्वै प्रजापतिः प्रजाभिराह्नोद्‌द्या एकविंशतिनिर्बाधो भवति प्रतिष्ठित्या एकविंशतिर्देवलोकास्तेभ्य एव भ्रातृव्यं निर्बाधते-ऽथस्तान्निर्बाधान् कुर्याद्भ्रातृव्यस्य निगृहीत्यै न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्निश्चेतव्यो यत् पृथिव्यां चिन्वीतौषधीश्शुचा निर्दहेद्यदन्तरिक्षे वयांसि यद्दिवि दिवममृतं हिरण्यं यद्रुक्ममुपदधात्यमृत एवाग्निं चिनुते ॥ हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्र इति पुरुषं हिरण्मयमुपदधाति यजमानलोकमेवैतेन दाधाराथो मध्येज्योतिषमेवाग्निं चिनुते द्रप्सश्चस्कन्देत्यभिमृशति होत्रास्वेवैनं सत्ये प्रतिष्ठापयति सर्पशीर्षिरुपतिष्ठते मृत्युव एवैनं परिदधात्यथो या सर्वे त्विषिस्तामेवावरुन्द्धे यदुपदध्यात् प्रमायुकस्स्याद्यत् समीचीनमितरच्छीर्षिरुपदध्याद्ग्राम्यान् पशून् दंशुकास्स्युर्यद्विषूचीनमारण्यान् यजुरेव वदेत् तेनैव तां त्विषिमवरुन्द्धे तेन शान्तमेतस्माद्ध वै पुराग्निचितमादित्वान्त सर्वा हेतास्त्विषीरवारुद्ध याग्नौ या सर्पे या सूर्येऽथैतद्रामदेवस्य राक्षोघ्नं यज्ञमुखे यज्ञमुखे वै यज्ञं रक्षांसि जिघांसन्ति रक्षसामपहत्यै पश्चार्धं प्राङ्क्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्माद्रक्षांस्यपहन्ति सर्वा दिशोऽनुपरिचारं जुहोति दिग्भ्य एव रक्षांसि हन्ति स्रुचा उपदधातीमे एवैतदुपधत्ते तूष्णीमुपदधाति न हीमे यजुषामुमर्हत्यात्मा वै पुरुषो बाहू स्रुचौ यत् स्रुचा उपदधाति सात्मत्वाय दक्षिणतो वै देवानां रक्षांस्याहुतीर्निष्कावमादंस्तानि कार्ष्मर्यमयेनान्तरदधत यत् कार्ष्मर्यमयीं दक्षिणत उपदधाति रक्षसामन्तर्हित्यै ॥ घृतेन पूरयति वज्रो वै कार्ष्मर्यो वज्रो घृतं वज्र एव वज्रं दधाति गायत्र्योपदधाति गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दास्स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयति दध्नौदुम्बरीं पूरयत्यन्नं वै दध्यूर्गुदुम्बरोऽन्न एवोर्जं दधाति त्रिष्टुभोपदधात्यैन्द्री वै त्रिष्टुबन्नमिन्द्रियमिन्द्रियमेवान्नाद्यमवरुन्द्ध इयं वै कार्ष्मर्यमय्यसा औदुम्बरी यदौदुम्बरीमुत्तरामुपदधाति तस्मादसा अस्या उत्तरा मूर्धन्वती मूर्धवैताभ्यां क्रियते विराज्यग्निश्चेतव्यस्स्रुग्वै विराड् यत् स्रुचा उपदधाति विराज्येवाग्निं चिनुते ॥५॥ ७-१०

यां वा अविद्वानध्वर्युरिष्टकां प्रथमामुपदधाति तया यजमानस्य प्राणमपिदधाति प्रजायाश्च पशूनां च स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै प्राजापत्योऽश्वो यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुत इयं वै स्वयमातृण्णामेवैतदुपधत्ते यदि मन्येत पूर्वो मातिक्रान्तो भ्रातृव्य इति प्राचीमुदूहेय एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तमनया प्रणुदते यदि मन्येत पश्चान्मे भ्रातृव्य इति प्रतीचीमपोहेय एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तमनयापनुदते प्र श्रेयांसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते॥ यदि

[ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं० । अथर्व. ४,१,१, ५,६,१ । हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्र० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४२,७; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ... ६,२,१२; नि. १०,२३ । द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी० । ऋ. १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३; ४,२,८,२; ६,५; तै. आ. ६,६,१]

[६] मै. ३,२,६-७ (८—९) । कपि. ३२,८ । वा. १३,२० । काण्व. १४,२० । तै. सं. ५,२,६-९ ।

मन्येत सदङ् मयेति विचालयेद्या वा इयं प्रजा व्यधूनुत परा ता अभवन्नियमेवैनं विधूनुतेऽथैषा दूर्वेष्टका पशुर्वा अग्निर्न पशव आयवसे रमन्ते पशुभ्य एवैतदायतनं करोति पशूनां धृत्यै काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्तीति प्रतिष्ठित्यै सहस्रेण शतेन चेति सहस्रवती प्रजापतिना संमिता गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनां य एवं विद्वानेतामुपधत्तेऽथैषा वामभृदेतया वै देवा असुराणां वामं पशूनवृञ्जत वाममेवैतया पशून् भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते द्वियजुर्भवति भ्रातृव्यलोकमेव द्वियजुषा वृङ्क्ते द्वितीये हि लोके भ्रातृव्यो हिरण्यशीर्ष्णी भवति हिरण्यज्योतिरेव स्वर्गं लोकमेति ॥ प्रबाहुक्वाचा आहनौ भवतस्तस्मात् प्रबाहुगस्या अथैते रेतस्सिचा असौ वै स्वराडियं विराडुत्तानायाँ स्त्रियां पुमान् रेतस्सिञ्चत्यसा अस्यां रेतस्सिञ्चतीयं प्रजनयत्यग्निरत्ति सरेतसमग्निं चिनुते प्रजायतेऽन्यन्नं य एवं विद्वानेते उपधत्ते स्वराडसीति दक्षिणत उपदधाति तस्माद्दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये यदि पूर्ववयसे चिन्वीतोभे सह प्रथमायां चित्यामुपदध्यात् समीची एवास्मै रेतस्सिञ्चतोऽन्यतरामुपदध्याद्यं द्विष्यात् तस्य रेतसैवैनं व्यर्धयति यद्युत्तरवयसे चिन्वीत प्रथमायामन्यां चित्यामुपदध्यादुत्तमायामन्यां रेत एव सिक्तमाभ्यां परिगृह्णात्यृतव्ये उपदधात्यृतूनां विधृत्यै द्वे द्वे उपदधाति द्वौ द्वौ ह्यृतवोऽथैषा त्र्यालिखिता देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतां त्र्यालिखितामपश्यँस्तामुत्तरलक्ष्माणमुपादधत तदसुरा नान्ववायँस्ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानेतामुत्तरलक्ष्माणमुपधत्ते भ्रातृव्यस्यानन्ववायाय भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्यधरलक्ष्माणमुपदध्याद्यं द्विष्यात् तस्यासुरयोनिमेवैनमनुपराभावयतीमे वै लोकास्त्र्यालिखितेमानेवैतया लोकानाप्नोति यस्या मृद उखां कुर्वन्ति तस्या एतां कुर्यात् तेनैवास्य सर्वा इष्टका ज्योतिष्मतीर्यजुष्मतीर्भवन्ति ॥६॥ ११-१३

मेधो वा एष पशूनां यत् कूर्मो यत् कूर्ममुपदधात्येतमेवैनं मेधमभिसंजानानाः पशव उपतिष्ठन्ते जीवन्तमुपदधाति स हि मेध्यश्चतुष्पाद्भवति चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति मही द्यौः पृथिवी च न इति द्यावापृथिव्योरेवैतया रूपे दाधार दध्ना च मधुना चाभ्यनक्त्यपां वा एष ओषधीनां रसो यन्मधु यन्मधुनाभ्यनक्त्यपामेवौषधीनां रसमवरुन्द्धे मेधो वा एष पशूनामूर्ग्दधि यद्दध्नाभ्यनक्ति पशूनामेव मेध ऊर्जं दधातीष्टकचिद्वा अन्योऽग्निः पशुचिदन्यो यज्जीवन्तं कूर्ममुपदधाति तेनैवैनं पशुचितं करोत्येष वै स्वर्गस्य लोकस्योत्तमपदी यथा क्षेत्रवित् प्रजानन्नञ्जसान्यान्नयत्येवमेवैनमेष स्वर्गं लोकमभिनयति ॥ विष्णोर्नाभा अग्निश्चेतव्यो योऽनाभिमग्निं चिनुते यजमानस्य नाभिमनुप्रविशति स एनं निर्दहत्येषा वै विष्णोर्नाभिर्यदुलूखलमुपदधाति विष्णोरेव नाभा अग्निं चिनुत औदुम्बरं

[७] मै. ३,२,७ (९) । कपि. ३२,९ । वा. ८,३२; १३,३२ । काण्व. ९,३१; १४,३४ । तै. सं. ५,२,९ ।
[मही द्यौः पृथिवी० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,३]

भवत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयति ॥ प्रादेशमात्रं भवत्येतावती हि विष्णोर्नाभिर्विष्णव्या कर्मण्यव्योपदधाति कर्म ह्येतत् क्रियतेऽथैषोखाँजो वा एतच्छीर्ष्णः संभियते यदुखौज एव वीर्यमवरुन्द्ध एषां वा एतल्लोकानां ज्योतिरवरुन्द्धे ज्योतिर्मध्यतो दधाति मध्येज्योतिषमग्निं चिनुते तस्मान्मध्यतो ज्योतिरुपासते सिकताभिः पूरयति स्वेनायतनेनाग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत् सिकता रूपेणैव वैश्वानरमवरुन्द्धे यदूनामुपदध्यात् क्षोधुको यजमानस्स्यात् पूर्णामुपदधात्यक्षोधुको यजमानो भवत्यनुपदस्यदन्नमत्ति घृतेन पूरयत्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद्घृतं प्रियेणैवैनं धाम्ना समर्धयति ॥७॥ १४-१६

एकविंशतिं मापान् प्रतिन्युप्य पुरुषशीर्षमाहरत्यमेध्या वै माषा अमेध्यं पुरुषशीर्षममेध्येनैवामेध्यं क्रीणात्येकविंशतिर्भवन्त्येकविंशो वै पुरुषो यावानेवास्यात्मा तं क्रीणाति सप्तधातृण्णां वल्मीकवपां प्रतिनिदधाति अर्बुदं वा एतत् प्राणैस्सप्त शीर्षण्याः प्राणाः प्राणैरेवैनत् समर्धयति यमगाथा गायति यमलोकादेवैनद्वृङ्क्ते तिस्रो गायति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनल्लोकेभ्यो वृङ्क्ते तस्माद्गायते न देयं गाथा हि तद्वृङ्क्तेऽप वा एतस्मादिन्द्रियं क्रामति प्राणाश्शीर्षन् वीर्यं चक्षुश्श्रोत्रं वाग्घ्येतदिन्द्रियं वा एतदमेध्यं मृतशीर्षमिति वा एतदाहुर्मेध्यं हिरण्यं यद्धिरण्यशल्कैः प्रत्यस्यति मेध्यमेवैनत्करोत्यनुत्कामामपिधाय प्रत्यस्यति प्रतिष्ठामेवैनत्कृत्वापिधाय प्राणैस्समर्धयति सहस्रदा असि सहस्राय त्वेति पुरुषशीर्षमुपदधाति पुरुषो ह स्वै सहस्रं पशून् यच्छति सहस्रमन्वे पशवो यन्मध्ये पुरुषशीर्षमुपदधाति सवस्याग्रधैतानि पशुशीर्षाण्येता ह वै साहस्रीरिष्टकास्सोमदक्षः कौश्रेयस्याममपर्णायोपदधौ ततो वै साहस्रीं पुष्टिं पशूनां जगाम गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनां य एवं विद्वानेता उपधत्ते पुरस्तात् प्रतीचीनमश्वस्य शिर उपदधाति पश्चात् प्राचीनमृषभस्य गोअश्वानेवास्मिन् समीचो दधाति समीचीनान्युपदध्यायं कामयेत पशुमान् स्यादिति समीच एवास्मिन् पशून् दधाति विषूचीनान्युपदध्यायं कामयेतापशुस्स्यादिति विषूचानेवास्मात् पशून् करोति ॥ नान्तरा पशुशीर्षाणि व्यवेयादध्वर्युर्वसिष्ठो वै नामैषोऽग्निः प्राणानस्य वृतेत प्रमीयेतैकमुपवार्यैतस्स्वैरुपतिष्ठेत तद्धा सर्वतोऽनुपरिहारं सादयेत् तेनैव सर्वाण्युपश्रीयन्ते नार्तिमार्छेत्यध्वर्युर्न श्रेयं न्येत्येतावन्तो वै पशवो द्विपादश्च चतुष्पादश्च तानेवास्मै सर्वानुपारण्यमनु ते दिशामीति ग्राम्येभ्य एव पशुभ्य आरण्यान् पशूनुचमनुत्सृजति तस्मादेते समावत् पशूनां प्रजायमानानां कनिष्ठाश्शुचा हित ऋताः ॥८॥ १७-१८

पशुर्वा अग्निः पशोरियं योनिर्विक्रियते रेतोऽपस्या यदपस्या उपदधाति योना एव रेतो दधाति यदा वै पशुस्संवत्सरेऽथ जायते पशवश्छन्दस्या यदपस्या अनु छन्दस्या उपदधाति

[८] मै. ३,२,७ (९) । कपि. ३२,१० । तै. सं. ५,२,९ ।
[९] मै. ३,२,८ (१०) । कपि. ३२,११ । तै. सं. ५,२,९-१० ।

पशूनां प्रजात्यै पञ्चोपदधाति पाङ्क्ताः पशवो यावानेव पशुस्तं प्रजनयतीयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत् सैता अपस्या असृजत ता उपाधत्त यदपस्या उपधीयन्तेऽस्या अनतिदाहायोवाच हेयमददित्से ब्रह्मणान्नं यस्यैता उपधीयन्त इत्यत्ति ब्रह्मणान्नं य एवं विद्वानेता उपधत्ते पञ्च पुरस्तात् प्रतीचीरुपदधाति तस्मात् पुरस्तात् प्रत्यङ् पशुर्जायते पञ्च दक्षिणत उदीचीस्तस्माद्दक्षिणतः पुमान् स्त्रियमुपशये ॥ पञ्च पश्चात् प्राचीस्तस्मात् पश्चात् प्राचीनं रेतो धीयते पञ्चोत्तराच्छन्दस्याः पशवो वै छन्दस्या उत्तरादायतनाः पशवः पशूनेव प्रजातान् स्वमायतनमभिपर्यूहति पशूनामहिंसायै नोत्तरादपस्या उपदध्याद्यदुपदध्यादभीपतः प्रजा वरुणो गृह्णीयादपस्या अनु प्राणभृत उपदधाति रेतस्येव सिक्ते प्राणं मनश्चक्षुश्श्रोत्रं वाचं दधाति तस्मात् प्राणन् पश्यञ्छृण्वन् वदन् पशुर्जायतेऽयं पुरो भूरिति याः प्राणवतीस्ताः पुरस्तादुपदधाति प्राणमेव पुरस्ताद्दधाति तस्मात् प्राङ् पशुः प्राणित्ययं दक्षिणा विश्वकर्मेति या मनस्वतीस्ता दक्षिणतो मन एव दक्षिणतो दधाति तस्माद्दक्षिणोऽर्धो मनस्वितरस्तस्माद्दक्षिणतो मन उपचरन्त्ययं पश्चाद्विश्वव्यचा इति याश्चक्षुष्मतीस्ताः पश्चाच्चक्षुरेव पश्चाद्दधाति तस्मात् प्राङ् पशुः पश्यतीदमुत्तरात् स्वरिति याश्श्रोत्रवतीस्ता उत्तराच्छ्रोत्रमेवोत्तराद्दधाति तस्मादुत्तरात् पशुर्भूयश्शृणोतीयमुपरि मतिरिति या वाङ्मतीस्ता मध्ये वाचमेव मध्यतो दधाति तस्मान्मध्यतो वाग्वदत्यक्ष्णयोपदधाति तस्मादक्ष्णयाङ्गानि पशवो हरन्तो यन्ति याः पुरस्तादुपादधात् ताभिर्वसिष्ठ आर्ध्नोद्या दक्षिणतस्ताभिर्भरद्वाजो याः पश्चात् ताभिर्जमदग्निर्या उत्तरात् ताभिर्विश्वामित्रो या मध्ये ताभिर्विश्वकर्मा य एवमेतासामृद्धिं वेदर्ध्नोति य एवमासां क्लृप्तिं वेद कल्पतेऽस्मै य एवमासां बन्धुतां वेद बन्धुमान् भवति य एवमासां निदानं वेद निदानवान् भवति य एवमासामायतनं वेदायतनवान् भवति य एवमासां प्रतिष्ठां वेद गच्छति प्रतिष्ठां निदानवानायतनवान् भवति य एवं वेद ॥९॥ १९-२०

अथैता आश्विनीरुत्सन्नयज्ञो वा एष यदग्निः को ह तद्वेद यावदेतस्य न क्रियते यावन्न चीयते तदेताभिः कल्पयति तद्भिषज्यति पञ्चैता उपदधाति पाङ्क्तोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्मै भेषजं करोत्यग्नेरेवैताभिर्दिशः कल्पयत्यदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयामीतीमानेवैतया लोकान् दाधारर्तव्या उपदधात्यृतूनां क्लृप्त्यै पञ्चोपदधाति पञ्च वा ऋतवो यावन्त एवर्तवस्तान् कल्पयति समानप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्कास्समानप्रभृतयो ह्यृतवस्समानोदर्का एकया व्याहृत्या व्यावर्तयति तस्मादृतवो व्यावर्तन्ते ॥ तस्मात् समानस्य संवत्सरस्य नानारूपाण्याश्विनीरन्वृतव्या उपदधाति रेतस्येव हित ऋतूनुपदधाति तस्माद्रेतो हितमृतूननु प्रजायत ऋतव्या अनु वायव्या उपदधात्यृतुष्वेव प्राणं दधाति तस्मादेते समानाः परियन्तो न जीर्यन्ति तस्मादृतूननु वायुरावरीवर्ति वायव्या अन्वपस्या उपदधाति

[१०] मै. ३,२,९ (११) । कपि. ३२,१२ । वा. १४,५ । काण्व. १५,५ । तै. सं. ५,३,१-२ ।

तस्माद्वायुर्वृष्टिं वहति वृष्टिमेवैताभिरवरुन्द्धे यदेकधोपदध्यादेकमृतुं वर्षेदनुपरिहारँ सादयति तस्माद्दतुमृतुं वर्षत्यपस्या अनु वयस्या उपदधाति पशवो वै वयस्या यदपस्या अनु वयस्या उपदधाति तस्मात् पशवो नानामनसो नानाव्रता अप एवाभि समनसोऽपस्या उपधाय वयस्या उपदध्याद्यं कामयेत पशुमान् स्यादिति संज्ञानं वा एतत् पशूनां यदापः पशूनामेव संज्ञानेऽग्निं चिनुते पशुमान् भवति वयस्या उपधायापस्या उपदध्याद्यं कामयेतापशुस्स्यादिति पशूनामेवासंज्ञानेऽग्निं चिनुतेऽपशुर्भवति॥ चतस्रः पुरस्तादुपदधाति तस्मात् पुरस्तात् पशुरणीयाँस्तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे मूर्धन्वतीस्तस्मात् पुरस्तात् पशूनां मूर्धा पञ्च पञ्चाभितः पशोस्सयत्वाय तस्मात् प्राङ् पशुः प्रवणो बस्तो वय इति दक्षिणत उपदधाति वृष्णिर्वय इत्युत्तरादँसा एवास्योपदधाति व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पक्षे सिंहो वय इत्युत्तरस्मिन् पक्षयोरेव वीर्यं दधाति व्याघ्रो वय इति पूर्वाँ सिंहो वय इत्यपरां तस्मात् पुरो व्याघ्रो जायते पश्चात् सिंहः पुरुषो वय इति मध्ये तस्मात् पुरुषः पशूनामधिपतिः

॥१०॥ २१-२३

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृँहतं युवमित्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी अन्तरिक्षमेषा चितिश्शिथिलमिवान्तरिक्षं प्रजा अन्तरिक्षं प्रजास्वेवौजो वीर्यं दधाति स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै प्राजापत्योऽश्वो यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुतेऽथैता दिश्या देवानां वै स्वर्गं लोकं यतां तेषां दिशस्समव्लीयन्त त एता दिश्या अपश्यँस्ताभिर्दिशोऽदृँहन् यदेता उपधीयन्ते दिशां विधृत्यै राज्ञ्यसि प्राची दिगिति तस्मादेषा दिशां राज्ञी विराडसि दक्षिणा दिगिति तस्मादेषा दिशां विराजति सम्राडसि प्रतीची दिगिति तस्मादत्र साम्राज्यँ स्वराडस्युदीची दिगिति तस्मादत्र स्वाराज्यमधिपत्न्यसि बृहती दिगिति तस्मादेषा दिशामधिपत्न्येतान्येव सर्वाणि भवति य एवं विद्वानेता उपधत्त आयुर्मे पाहीति दश पुरस्तादुपदधाति नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी प्राणानेवास्मिन् दधाति ज्योतिर्मे यच्छेत्युत्तमां ज्योतिरेवोत्तमं दधाति तस्माद्वाक् प्राणानां ज्योतिरुत्तमं दशैता उपदधाति दशाक्षरा विराड्विराट् छन्दसां ज्योतिश्चक्षुर्ज्योतिश्चक्षुरेव प्रजानां पुरस्ताद्धाति मा छन्द इति दक्षिणत उपदधाति तस्माद्दक्षिणावृतो मासाः पृथिवी छन्द इति पश्चात् प्रतिष्ठित्या अग्निर्देवतेत्युत्तरादोजो वा अग्निरोज एवोत्तराद्धाति तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति द्वादश दक्षिणत उपदधाति द्वादश पश्चाद् द्वादशोत्तरात् ताष्षट्त्रिँशत् संपद्यन्ते षट्त्रिंशदक्षरा बृहती बृहती छन्दसाँ स्वाराज्यमानशे स्वाराज्यं गच्छति य एवं विद्वानेता उपधत्ते षट्त्रिंशदेताष्षट्त्रिंशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवोऽन्तरिक्षमेषा चितिः पशवोऽन्तरिक्षं पशुष्वेव पशून् दधात्यादित्यधामानो वा

[११] मै. ३,२,९ (११)। कपि. ३२,१३। वा. १४,११,१३,१७-२२; १५,१०-१४। काण्व. १५,१४,१६-२४; १६, १६-२८। तै. ५,३,१-२।

काठ० २८

अन्ये प्राणा अङ्गिरोधामानोऽन्ये ये पुरस्तात् त आदित्यधामानो ये पश्चात् तेऽङ्गिरोधामानो मूर्धासि राडिति पुरस्तादुपदधाति य आदित्यधामानः प्राणास्ताँस्तद्दाधार यन्त्री राडिति पश्चाद्येऽङ्गिरोधामानः प्राणास्ताँस्तद्दाधार सप्त पुरस्तादुपदधाति सप्त पश्चात् तस्मादधरः प्राण उत्तरेषां प्राणानामर्धभाक् प्रजापतिः प्रजास्सृष्ट्वा तासामकामयत मूर्धा स्यामिति स एता मूर्धन्या अपश्यत् ताभिर्निरजिहीत तासां मूर्धाभवत् तन्मूर्धन्यानां मूर्धन्यात्वं मूर्धैव समानानां भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते

॥११॥ २४

आशुस्त्रिवृदिति पुरस्तादुपदधाति यज्ञमुखं वै त्रिवृद्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वियातयति व्योमा सप्तदश इति दक्षिणतोऽन्नं वै सप्तदशस्सप्तदशँ संवत्सरमन्नमनुप्रजायतेऽन्नमेव दक्षिणतो भवति तस्माद्दक्षिणेन हस्तेन पुरुषोऽन्नमत्ति यत् सप्तदशवतीर्दक्षिणत उपदधाति तस्माद्दक्षिणं पक्षं वयाँस्यनुपरिप्लवन्त एकविँशवती पश्चात् प्रतिष्ठित्यै पश्चाद्धि वयाँसि प्रतितिष्ठन्ति पञ्चदशवतीमुत्तरादोजो वै पञ्चदश ओज एवोत्तराद्धाति तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयत्यग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यमिति पुरस्ताद् द्वौ त्रिवृता अभिपूर्वमेव यज्ञमुखे वियातयति पञ्चदशवतीर्दक्षिणतस्सप्तदशवतीमुत्तरात् पक्षयोस्सयत्वायान्नं वै सप्तदशो यत् सप्तदशवतीमुभयत उपदधात्यन्नमेवोभयतो दधाति तस्मादुभाभ्याँ हस्ताभ्यां परिगृह्य पुरुषोऽन्नमत्त्येकविंशवती भवति प्रतिष्ठित्या अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यमित्येतद्वै देवा एताभिरस्पृण्वन्नेतदेतद्देवैताभिस्स्पृणोति ता एतास्स्पृतयो नामेष्टका एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्तेत्येतदेतद्वै देवा एताभिरसृजन्तैतद्देवैताभिस्सर्वमवरुन्द्धेऽर्कयस्य वा एषा विधामनु विधीयतेऽन्नमर्कोऽर्कोऽग्निरत्त्यन्नं यस्यैषैवं विदुषो विधीयते ॥१२॥ २५

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतां चतुर्थीं चितिमपश्यँस्तामन्यथानूच्यान्यथोपादधत तदसुरा नान्ववायँस्ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानेतां चतुर्थीं चितिमुपधत्ते भ्रातृव्यस्यानन्ववायाय भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्याशुस्त्रिवृदिति पुरस्तादुपदधाति यज्ञमुखं वै त्रिवृद्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्धाति व्योमा सप्तदश इति दक्षिणतोऽन्नं वै सप्तदशोऽन्नमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्ध एकविंशवती पश्चात् प्रतिष्ठित्यै पञ्चदशवतीमुत्तरादोजो वै पञ्चदश ओज एवोत्तराद्धाति तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति प्रतूर्तिरष्टादश इति पुरस्ताद् द्वौ त्रिवृता अभिपूर्वमेव यज्ञमुखे दधात्यभीवर्तस्सविंश इति दक्षिणतोऽन्नं वै सविंशोऽन्नमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्धे वर्चो द्वाविंश इति पश्चाद्यद् द्वे द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै यद्विंशतिर्द्वे विराजा अन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति तपो नवदश इत्युत्तरात् तस्मात् सव्यो हस्तयोस्तपस्वितरो बाहुकुचनं

[१२] मै. ३,२,१० (१२)। कपि. ३२,१४। वा. १४,२३-२४,२८। काण्व. १५,२५-२७,३२। तै. सं. ५,३,३-५।
[१३] मै. ३,२,१० (१२)। कपि. ३२,१५। वा. १४,२३। काण्व. १५,२५-२६। तै. सं. ५,३,३-५।

निगच्छति योनिश्चतुर्विँश इति पुरस्ताद्यज्ञमुखं वै चतुर्विंशो यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्धाति गर्भाः पञ्चविंश इति दक्षिणतोऽन्नं वै पञ्चविंशोऽन्नमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्धे यद्दश दशाक्षरा विराडन्नं विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति ॥ यत् पञ्चदश वज्रः पञ्चदशो वज्रमेवोपरिष्टाद्धाति रक्षसामपहत्या ओजस्त्रिणव इति पश्चादिमे वै लोकास्त्रिणव एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति संभरणस्त्रयोविंश इत्युत्तरात् तस्मात् सव्यो हस्तयोस्संभार्यतरः क्रतुरेकत्रिंश इति पुरस्ताद्वाग्वा एकत्रिंशो वाचमेव यज्ञमुखे दधाति ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंश इति दक्षिणतोऽसौ वा आदित्यो ब्रध्नस्य विष्टपं ब्रह्मवर्चसमसा आदित्यो ब्रह्मवर्चसमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्धे प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंश इति पश्चात् त्रयस्त्रिंशद्देवता देवतास्वेव प्रतितिष्ठति नाकष्षट्त्रिंश इत्युत्तरात् स्वर्गो वै लोको नाकस्स्वर्ग एव लोके यजमानं प्रतिष्ठापयति ॥१३॥ २६-२७

२८

एह्यू षु ब्रवाणि ते ॥ २९

यत्रो क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥ ३०

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥ ३१

आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ ३२

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना । वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ ३३

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत् ततन्थ भानुना ॥ ३४

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ ३५

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनदग्निनाग्निस्समिध्यतेऽग्निं स्तोमेन बोधयाग्निर्मूर्धा प्रेद्धो अग्नेऽग्निं होतारं ३६

मन्ये ॥

[१४] मै. ४,१०,१-२; १२,१ (१३,३०,३७-४४, ३)। का. २६,१३; ११,४६; २२,१५; ३३,९; ३,१२; १३,१४; १५,२०,४५-४७; १७,७६। काण्व. १२,४७; २४,१९; ३२,९; ३,१८; १४,१४; १६,४२,६७-६९; १८,७६। यत्रो (यत्र) क्व च ते मनो०। ऋ. ६,१६,१७; सा. ७, ७०५। [एह्यू षु ब्रवाणि०। ऋ. ६,१६,१६; सा. ७, ७०५। आग्निरगामि भारतो०। ऋ. ६,१६,१९। स ७०६। नहि ते पूर्तमक्षिप०। ऋ. ६,१६,१८; सा. ७०७। स हि विश्वाति०। ऋ. ६,१६,२०। स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने०। ऋ. ६,१६,२१; तै. सं. २,२,१२.१; तै. ब्रा. २, ४,८,१। अग्न आयाहि वीतये०। ६,१६,१०; सा. १, ६६०; तै. सं. २,५,७,३; ८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१। अग्निं दूतं वृणीमहे०। ऋ. १,१२,१; सा. ३, ७९०; अथर्व. २०,१०१,१; तै. सं. २,५,८,५; तै. ब्रा. ३,५,२,३। अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्०। ऋ. ६,१६,३४; सा. ४, १३९६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१। अग्निनाग्निस्समिध्यते०। ऋ. १,१२,६; सा. ८४४; तै. सं १,४,४६,३; ३,५,११,५; तै. ब्रा. २,७,१२,३। अग्निं स्तोमेन बोधय०। ऋ. ५,१४,१; तै. सं. ४,१,११,४। अग्निर्मूर्धा दिवः०। ऋ. ८,४४,१६; सा. २७, १५३२; तै. सं. १,५,५,१; ४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१। प्रेद्धो अग्ने०। ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै. सं ४,६,५,४। अथर्व. २०,६७,३; तै. सं ४,४,४,८; नि. ६,८] अग्निं होतारं मन्ये०। ऋ. १,१२७,१; सा. ४६५, १८१३;

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिस्सुमना अनीकैः ॥ ३७

अध ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ३८

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ ३९

अग्नेस्स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिवस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥१४॥ ४०

वैश्वानरो न ऊतये ॥ पृष्टो दिवि ॥ ४१-४२

पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीढुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥ ४३

इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।

मयोभुवो वृष्टयस्सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ४४

समिधो अग्न आज्यस्य व्यन्तु तनूनपादग्न आज्यस्य वेत्विडो अग्न आज्यस्य व्यन्तु बर्हिरग्न आज्यस्य वेतु दुरो अग्न आज्यस्य व्यन्तु दुरो अग्न आज्यस्य व्यन्त्विडो अग्न आज्यस्य व्यन्तु बर्हिरग्न आज्यस्य वेतु दुरो अग्न आज्यस्य व्यन्तूषासानक्ताग्न आज्यस्य वीतां दैव्या होताराग्न आज्यस्य वीतां तिस्रो देवीरग्न आज्यस्य व्यन्तु ॥ स्वाहाग्निं स्वाहा सोमँ स्वाहाग्निं स्वाहा सोमँ स्वाहा सवितारँ स्वाहा सरस्वतीँ स्वाहा पूषणँ स्वाहा मरुतस्स्वतवसस्स्वाहा विश्वान् देवान् स्वाहा द्यावापृथिवी स्वाहाग्निं होतारँ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा आज्यस्य व्यन्तु त्वमग्ने सप्रथा असि त्वँ सोम महे भगमग्निर्मूर्धा भुवो यज्ञस्य वृषा सोम या ते धामानि वद्विश्वा रूपाणि पावका न

[एभिर्नो अर्कैर्भवा०। ४,१०,३; सा. १७७९; तै. सं. ४,४,४,७। अध (अधा) ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य०। ऋ. ४,१०,२; सा. १७७८; तै. सं. ४,४,४,७। अग्ना यो मर्त्यो दुवो०। ऋ. ६,१४,१। अग्नेस्स्तोमं मनामहे०। ऋ. ५,१३,२; सा. १४०५]

[१५] मै. ३,१६,४; ४,१०,१-३,६; ११,१; १२,५ (६४-६५; ३-४,१०;४५-४६; ७२,७४,७६,७९-८४,८९-९०, १३२; १०,१५,३३-३४; १३६)। का. १८,७२-७३; २६,८; २१,१०-१६,२९—४०,४८—५८; ३,१२;१३, १४—१५,३२; १५,२३,४०; ४,३७; १२,३; २०,८४; ८,३२; ३४,४१; २८,१२—२२,३५—४५; ९,१६, २८। काण्व. २०,४१-४२; २८,८; २३,१०,१२—१७,३०—४१,४७—५७; ३,१८; १४,१४—१५,३४; १६,४१,४४; ४,४९; १३,३; २२,९९; ०,३१; ३३,३३; ३०,११—२२,३४—४५; १०,१२,१४। [वैश्वानरो न ऊतये०। अथर्व. ६,३५,१; आ. श्री. सू. २,११। पृष्टो दिवि०। ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; ४, ४,१२,५; तै. ब्रा. ३,११,६,४। पर्जन्याय प्रगायत०। ऋ. ७,१०२,१; तै. ब्रा. २,४,५,५; तै. आ. १,२९,१। इदं वचः पर्जन्याय०। ऋ. ७,१०१,५; तै. आ. १,२९,१। त्वमग्ने सप्रथा असि०। ऋ. ५,१३,४; सा. १४०७; तै. ब्रा. २,४,१,६; नि. ६,७। त्वँ सोम महे०। ऋ. १,९१,७; तै. ब्रा. २,४,५,३। अग्निर्मूर्धा० (चतुर्दशानुवाके द्रष्टव्यम्)। भुवो यज्ञस्य०। ऋ. १०,८,६; तै. सं. ४,४,४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१। वृषा सोम०। ऋ. ९,६४,१; सा. ५०४, ७८१; तै. सं. ४,२,११,३; ३,१३,३। या ते धामानि०। ऋ. १,९१,४,१९; १०, ८१,५; तै. सं. १,२,१०,१; २,३,१४,१; ४,६,२,५; तै. ब्रा. २,८,३,२। विश्वा रूपाणि०। ऋ. ५,८१,२; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३। पावका नः०। ऋ. १,३,१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४,३,१; नि. ११,२६]

आ नो दिवः पूषा गा अन्वेतु नष्टुकं ते अन्यत् ॥ ४५-४६
इहेह वस्स्वतवसो मरुतस्सूर्यत्वचः । शर्मा सप्रथा आवृणे ॥ ४७
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहाँसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ४८
विश्वे देवा ये के च ज्मा मही द्यौर्घृतवती पिप्रीहि देवाना देवानां देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य
वेतु देवीर्द्वारो वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु देवी उषासानक्ता वसुवने वसुधेयस्य वीतां देवी जोष्ट्री
वसुवने वसुधेयस्य वीतां देवी ऊर्जाहुती वसुवने वसुधेयस्य वीतां देवा दैव्या होतारा वसुवने
वसुधेयस्य वीतां देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य
वेतु देवो अग्निस्स्विष्टकृच्छं नो भवन्तु वाजे वाजे ॥१५॥ ४९
[१६२९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायामेतवीतं नाम विंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२०॥

अथैकविंशं स्थानकम् ।

पञ्चचूडम् ।

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया आधिपत्यमिति पुरस्तादुपदधाति यज्ञमुखं वा अग्निर्यज्ञमुखं दीक्षा यज्ञ-
मुखं त्रिवृद्यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्धाति नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यमिति दक्षिणतो ये वै विद्वाँस-
स्ते नृचक्षसोऽन्नं धाता प्रजननँ सप्तदशः प्रजाभ्य एव प्रजाताभ्योऽन्नमपिदधाति तस्माज्जातोऽन्न-
मभ्यायच्छति मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यमिति पश्चात् प्राणो वै मित्रोऽपानो वरुणः प्राणा-
पाना एव यजमाने दधातीन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यमित्युत्तरादोजो वा इन्द्र ओजो विष्णु-
रोजः पञ्चदश ओज एवोत्तरद्धाति तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति ॥ वसूनां भागोऽसि रुद्राणा-
माधिपत्यमिति पुरस्ताद्यज्ञमुखं वै वसवो यज्ञमुखं रुद्रा यज्ञमुखं चतुर्विंशो यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्धा-

[आ नो दिव० । ऋ. ५,४३,११; तै. सं. १,८,२२,१ । पूषा गा अन्वेतु न:० । ऋ. ६,५४,५; तै. सं. ४,१,११,२; तै. आ. २,४,१,५ । शुक्रं ते अन्यत्० । ऋ. ६,५८,१; सा. ७५; तै. सं. ४,१,११,२; तै. आ. १,२,४; १०,१; ४,५,६; नि. १२,१७ । इहेह वस्स्वतवसो० । ऋ. ५,५९,११; तै. आ. १४,३ । प्र चित्रमर्कं गृणते० । ऋ. ६,६६,९; तै. सं. ४,१,११,३; तै. ब्रा. २,८,५,२; नि. ३,२१ । विश्वे देवा० । ५,५१,१३; ६,९,५; ५२, १०,१४; १०,२४,५; तै. सं. २,४,१४,५ । ये के च ज्मा० । ऋ. ६,५२,१५ । मही द्यौ:० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,६,३ । घृतवती० । ऋ. ६,७०,१; सा. ३७८ । पिप्रीहि देवाना (देवाँ)० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५; ६,११,४ । शं नो भवन्तु० । ऋ. ७,३८,७; तै. सं. १, ७,८,१; नि. १२,४४ । वाजे वाजे० । ऋ. ७,३८,८; तै. सं. १,७,८,२; ४,७,१२,१]
[१] मै. ९,८,५; ३,२,१० (१३, १२) । कपि. ३२,१६ । वा. १४,२४-२६ । काण्व. १५,२७-३१ । तै. सं. ५,३,४ ।

त्यादित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यमिति दक्षिणतोऽन्नं वा आदित्या अन्नं मरुतोऽन्नं पञ्च-
विंशोऽन्नमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्धेऽदित्या भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमिति पश्चात् प्रतिष्ठा वा अदितिः
प्रतिष्ठा पूषा प्रतिष्ठा त्रिणवः प्रतिष्ठित्यै देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यमित्युत्त-
राद्ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्म चतुष्टोमो ब्रह्मवर्चसमेवोत्तराद्धाति सवितृप्रसूती भवति तस्मादुदीची
ब्राह्मणेभ्यस्सनिः प्रसूता धर्त्रं चतुष्टोम इति पुरस्ताद्यज्ञमुखं वै चतुष्टोमो यज्ञमुखमेव
पुरस्ताद्धाति ॥ यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यमिति दक्षिणतो मासा वै यवा अन्नं मासा
अन्नमेव दक्षिणतोऽवरुन्द्ध ऋभूनां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यमिति पश्चात् त्रयस्त्रिंशद्देवता
देवतास्वेव प्रतितिष्ठति वीवर्तो अष्टाचत्वारिंश इत्युत्तरात् तस्माद्वस्तौ समावद्वीर्यौ अर्क्यस्य वा एषा
विधामनु विधीयतेऽन्नमर्कोऽर्कोऽग्निरत्त्यन्नं यस्यैवं विदुषो विधीयते या मुख्यास्ताः पुरस्तादुपद-
धात्यास्य मुख्यो जायते य एवं वेद या अन्नवतीस्ता दक्षिणत आस्यान्नादो जायते य एवं वेद
याः प्रतिष्ठावतीस्ताः पश्चाद्गच्छति प्रतिष्ठां य एवं वेद या ओजस्वतीस्ता उत्तरादास्य बली जायते
य एवं वेद य एवमेतासामृद्धिं वेदर्भ्नोति ॥१॥ १-३

अग्ने जातान् प्रणुदा नस्सपत्नानिति पुरस्तादुपदधाति य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तया
प्रणुदति सहसा जातानिति पश्चाद्य एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तयापनुदते प्र श्रेयाँसं भ्रातृव्यं नुदते
प्रति पापीयाँसं नुदते चतुश्चत्वारिंशस्स्तोम इति दक्षिणतष्षोडशस्स्तोम इत्युत्तराद्वज्रो वै षोडशो
वज्रस्त्रिष्टुप् त्रैष्टुभश्चतुश्चत्वारिंशस्सव्यापग्रहणो वज्रो दक्षिणाविसर्जनो भ्रातृव्यमेव पराणुद्य तस्मै वज्र-
मनुविसृजति चतुश्चत्वारिंशस्स्तोम इति दक्षिणत उपदधाति ब्रह्मवर्चसं वै चतुश्चत्वारिंशो ब्रह्मवर्चस-
मेव दक्षिणतोऽवरुन्द्धे षोडशस्स्तोम इत्युत्तरादोजो वै षोडश ओज एवोत्तराद्धाति तस्मादुत्तराद-
भिप्रयायी जयति ॥ पृथिव्याः पुरीषमसीति मध्ये पुरीषं वा आत्मनो मध्यँ सात्मानमेवाग्निं चिनुते
ता एता अभ्रातृव्या नामेष्टका नास्य भ्रातृव्यो भवति य एवं विद्वानेता उपधत्तेऽथैता विराजो
विराजमेव पशुपूत्तमां दधाति तस्मात् पशुमानुत्तमां वाचं वदति दश दशोपदधाति सयत्वाय देवा
वै स्वर्गं लोकं यन्तस्तेषां यानि च्छन्दाँस्यनिरुक्तानि स्वर्ग्याण्यासँस्तैस्सह स्वर्गं लोकमायँस्तान्यृषयो-
ऽनुप्राजिज्ञासन्त तानीष्टकाभिर्निरमिमत तानीमानि च्छन्दाँसि यान्ययज्ञवाहानि यान्येव देवानां
छन्दाँस्यनिरुक्तानि स्वर्ग्याणि तैस्सह स्वर्गं लोकमेति य एवं विद्वानेता उपधत्ते ॥ अथैते स्तोम-
भागा बृहस्पतिर्वा एतां यज्ञस्य प्रतिष्ठामाहरद्यदेत उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै बृहस्पतिर्वा एतद्
तेजो यज्ञस्य समभरद्यदेत उपधीयन्ते सतेजसमेवाग्निं चिनुते प्रजापतिः प्रजा असृजत तास्स्तोमभागै-

[२] म. ३,२,१०; ३,१ (१२,१) । कपि. ३२,१७ । वा. १५,१—३ । काण्व. १६,१—३ । तै. सं. ५,३,३-५ ।
[अग्ने जातान् प्रणुदा० । अथर्व. ७,३४,१ । सहसा जातान्० । अथर्व. ७,३५,१]

रेवासृजत यदेत उपधीयन्ते प्रजननाय दक्षिणतो वै देवानां यज्ञोऽन्लीयत तँ स्तोमभागैः
प्रत्युदस्तभ्नुवन् यदेते दक्षिणत उदञ्च उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रत्युत्तब्ध्यै सप्त सप्तोपदधाति सवीर्यत्वाय
शीन्मध्ये प्रतिष्ठित्या अथैता नाकसदो नाकसद्भिर्वै देवास्स्वर्गं लोकमायन् यदेता उपधीयन्ते स्वर्गस्य
लोकस्याभिजित्यै ॥ न वा अमुं लोके जग्मुषे किञ्चनाकं तन्नाकसदां नाकसत्त्वं ता एतास्सर्वपृष्ठा
नामेष्टका यदेव किञ्च पृष्ठा नामेष्टका यदेव किञ्च पृष्ठानां तेजस्तदवरुन्द्धे य एवं विद्वानेता उपधत्ते-
ऽथैताः पञ्चचूडा यजमानायतनं वै पत्न्यो यन्नाकसत्सु पञ्चचूडा उपदधाति नाक एव यजमानं
प्रतिष्ठापयत्यप्सरसो वा एता एतद्रूपं कृत्वा पत्न्यो भूत्वामुष्मिँल्लोके यजमानमुपशेरते पश्चात् प्राची-
मेकामुपदधाति तस्माद् पश्चात् प्राची पत्न्यन्वास्ते तनूपानीर्वा एता यजमानस्य सर्वमायुरेति य एवं
विद्वानेता उपधत्ते एता वै देवतास्स्वर्ग्यास्ताभिरेव स्वर्गं लोकमेत्येता वै देवता अभिचरणीया यं
द्विष्यात् तं ब्रूयादमुं वो जम्भे दधामीत्येताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजक् प्रधन्वति ॥२॥
४-७

आयोस्त्वा सदने सादयामीत्यायुर्वा उत्तमं दधाति तस्मादायुः प्राणानामुत्तमँ स्वयमातृण्णा भवति
प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै प्राजापत्योऽश्वो यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुते-
ऽथैषा विकर्णी देवानां वा एषा विक्रान्तिर्यद्विकर्णी देवानामेवैनं विक्रान्तिमनु विक्रमयति वायुमती
प्राणो वै वायुरायुस्स्वयमातृण्णायुश्चैवास्मिन् प्राणं च समीची दधाति सं वा एनमेतदिन्द्धे यच्चिनोति
दीपयति वायुमत्या संवत्सरमुख्यं भृत्वाग्निं चिन्वीत ॥ संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरस्तस्याहोरात्राणीष्टका
आप्तेष्टकमेवैनं चिनुत ऋध्नोति यदेवं चिनुयात् प्रियवैनं तन्वा व्यर्धयेद्यदेवं चिनुते प्रियवैवैनं तन्वा
समर्धयति सतनूरेवैद्वैश्वानरश्चीयत ऋतव्या उपदधात्यृतूनां विधृत्यै द्वे द्वे उपदधाति द्वौ द्वौ ह्यृतव-
श्चतस्रो मध्यमायां चित्यामुपदधात्यन्तरिक्षमिव वा एषा या मध्यमा चितिश्शिथिलमिवान्तरिक्षं
चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठत्यृतुभ्यो वा एता देवा निरमिमत तदृतव्यानामृतव्यात्वमायन्तमा-
यन्तमृतुं प्रतितिष्ठति य एवं विद्वानेता उपधत्ते ॥ नानाप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्कास्तस्मात् समान-
स्य संवत्सरस्य नाना रूपाण्येकामुपधायेष्टकामुपधात्यग्नेर्वा एषा वैश्वानरस्य योनिर्यदेवका स्व
एवैना योना उपदधाति ग्राम्या अनुदाहायर्भ्नोति य एवं विद्वानेता उपधत्तेऽथैता विश्वज्योतिषः
प्राणभृतो वा एता यजमानस्य प्राणमेव प्रथमया दाधार व्यानं द्वितीययापानं तृतीययैता वै देवता-
स्स्वर्ग्यास्ताभिरेव स्वर्गं लोकमेत्येता वै देवता ज्योतिष्मतीरग्निरेवास्मिँल्लोके ज्योतिर्भवति वायु-
रन्तरिक्षे सूर्यो दिवि सर्वेऽस्मा इमे लोका ज्योतिष्मन्तो भवन्त्यधिपतिवतीर्भवन्त्याधिपत्यमेवैताभि-

[३] मै. २,८,१४; ३,२,८ (१४,१०) । कपि. ३२,१८ । वा. १३,५४—५५; १५,५९—६०, ६३ । काण्व. १३, ५५—५६; १६,८०—८१,८४ । तै. सं. ५,३,७]

गच्छति लोकं पृण च्छिद्रं पृणेति यदेवास्योनं यच्छिद्रं तदापूरयत्यथो सीद ध्रुवा त्वमिति दृँहत्ये-
वैनामिन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरित्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैवैनं वीर्येण चिनुते ता अस्य सूद-
दोहस इति तस्मात् परुषि परुषि सूदस्सोमँ श्रीणन्ति पृश्नय इत्यन्नं पृश्न्यन्नमेवावरुन्द्धे त्रिष्वारोचने
दिव इति त्रीणि सवनानि सवनेष्वेवैनं चिनुतेऽनुष्टुबनुचरा भवति प्राणो वा अनुष्टुप् तस्मात् प्राण-
स्सर्वाण्यङ्गान्यनुसंचरति वाग्वा अनुष्टुब् यदेवास्यात्र न क्रियते यन्न चीयते तद्वाचा कल्पयति
तद्धिपज्यति ॥३॥ ८-१०

या आग्नेयीर्गायत्रीर्मूर्धन्वतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रः पूर्वार्ध उपदधात्यथ त्रिष्टुब्भिरथ जगतीभि-
रथानुष्टुब्भिरथ पङ्क्तिभिरथ यत् किञ्चाग्नेयं छन्दस्तिस्र एकेन च्छन्दसा तिस्र एकेन सर्वमग्निमनूप-
दधात्येतौँ ह वै यज्ञसेनश्चैत्रश्चितिं विदांचकार तया ह वै स आनर्धर्भ्नोति य एवं विद्वानेता उपधत्ते
पशवो वै छन्दाँसि वामं देवानां पशून्त्व वामं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते ॥ आत्मा वा आहवनीयो
भ्रातृव्यो धिष्ण्यो यद्गार्हपत्य उपदध्याद्भ्रातृव्ये वामं पशून् दध्यादाहवनीय उपदधात्यात्मन्नेव
वामं पशून् धत्ते सैषोत्तरवेदिर्नाम चितिस्तस्मादेता उत्तमायां चित्यामुपधीयन्त उत्तमस्समानानां
भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते पशुर्वा अग्निरग्निमुखान् प्रजापतिः पशूनसृजत यत् पञ्च चितय-
स्तस्मात् पाङ्क्ताः पशव उच्यन्ते यत् तिस्रस्त्रिवृद्ध्यग्निर्यद् द्वे द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै अक्षरं लोम
अक्षरं चर्म अक्षरं माँसं अक्षरमस्थि अक्षरो मज्जा तद्दश दशाक्षरं विराट् तस्माद्विराजः पशव उच्यन्ते
यो जानुदघ्नस्स गायत्रचियो नाभिदघ्नस्स त्रिष्टुप् चियः पुरुषमात्रस्स जगच्चिच्छ्येनचितं पक्षिणं
चिन्वीत स्वर्गकामश्श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठस्स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या अलजचितं पक्षिणं चतुस्सीतं
चिन्वीत प्रतिष्ठाकामश्चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति ॥ कङ्कचितँ शीर्षण्वन्तं चिन्वीत यः कामयेत
सशीर्षामुष्मिँल्लोके स्यामिति सशीर्षैवामुष्मिँल्लोके भवति ॥ प्रउगचितं चिन्वीत यदि मन्येत
पूर्वो मातिक्रान्तो भ्रातृव्य इति प्रउगचिता वै देवा असुरान् प्राणुदन्त य एनान् पूर्वेऽतिक्रान्ता
आसन् य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदत उभयतःप्रउगं चिन्वीत यदि मन्येत पश्चान्मे
भ्रातृव्य इति य एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेनापनुदते प्र श्रेयाँसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयाँसं
नुदते ॥ रथचक्रचितं चिन्वीताभिचरन् रथचक्रचितं ह स्म वै देवा असुरेभ्यो वज्रमियच्छ्यस्त्वेत्य-
भ्यवसृजन्ति वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति स्तृणुत एनँ समूह्यं चिन्वीत पशुकामः पशवो वै पुरीषं
पशूनेवास्मै समूहति सर्वत उत्तरवेदिं निर्वपति पशवो वा उत्तरवेदिः पशूनेवावरुन्द्धे ॥ परिचाय्यं
चिन्वीत सजातकामः परीव वै सजाता विशन्ति सजातैरेवैनं परिचिनोति ॥ द्रोणचितं चिन्वीता-

[ता अस्य सूददो० । ऋ. ८,६९,३; तै. सं. ४,२,४,४; तै. आ. ३.११,६,२]
[४] मै. ३,३,२—३; ३,४,७ (२—३; ७) । कपि. ३२,१९—२० । तै. सं. २,८,११—१२; ५,४,११ ।

सकामः पात्रेण वा अन्नमद्यते तेनैव मुखेनान्नमत्ति ॥ श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोक ऋध्नुयामिति श्मशानचिता वै यमोऽमुष्मिंल्लोक आर्ध्नोत् पितृलोक एवर्ध्नोति ॥ गायत्रचितं पक्षिणं चिन्वीत स्वर्गकामोऽग्निर्वै तत् पक्षी भूत्वा स्वर्गं लोकमपतद्यदाहुर्गायत्री पक्षिणी भूत्वा स्वर्गं लोकमपतदिति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या अन्येऽग्नय ऊर्ध्वाश्चीयन्ते न्यञ्चोऽन्ये य ऊर्ध्वाश्चीयन्ते तेऽमुष्मै लोकाय ये न्यञ्चस्तेऽस्मै यदूर्ध्वस्तिष्ठन् हिरण्यशल्कैः प्रोक्षति तेनैवैनमूर्ध्वं चिनुते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥४॥ ११-१९

दीक्षया विराडाप्तव्या तिस्रो रात्रीर्दीक्षितस्स्यात् त्रिपदा विराड्विराजमेवाप्नोति षड् रात्रीर्दीक्षितस्स्यात् षड्वा ऋतव ऋतवस्संवत्सरस्संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति दश रात्रीर्दीक्षितस्स्याद्दशाक्षरा विराड्विराजमेवाप्नोति द्वादश रात्रीर्दीक्षितस्स्याद् द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति त्रयोदश रात्रीर्दीक्षितस्स्यात् त्रयोदश मासास्संवत्सरस्संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति पञ्चदश रात्रीर्दीक्षितस्स्यात् पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशस्संवत्सर आप्यते संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति चतुर्विंशतिं रात्रीर्दीक्षितस्स्याच्चतुर्विंशतिस्संवत्सरस्यार्धमासा अर्धमासशस्संवत्सर आप्यते संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति मासं दीक्षितस्स्याद्यो वै मासस्स संवत्सरस्संवत्सरो विराड्विराजमेवाप्नोति चतुरो मासो दीक्षितस्स्याच्चतुरो वा एतं मासो वसवोऽबिभरुस्ते पृथिवीमाजयन् गायत्री छन्दोऽष्टौ रुद्रास्तेऽन्तरिक्षमाजयँस्त्रिष्टुभं छन्दो द्वादशादित्यास्ते दिवमाजयञ्जगतीं छन्दस्ततो वै ते व्यावृतमगच्छञ्छ्रैष्ठ्यं देवानां तस्माद् द्वादश मासो भृत्वाग्निं चिन्वीत द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरस्तस्याहोरात्राणीष्टका आप्तेष्टकमेवैनं चिनुत ऋध्नोति व्यावृतमेव गच्छति श्रैष्ठ्यं समानानां गायत्रं पुरस्ताद्गायति शिरो वै देवानां गायत्रं गायत्रोऽग्निस्तस्माद्गायत्रं पुरस्ताद्गायत्याग्निपावमान्यामयं वाव यः पवते स प्राणो मुखं देवानामग्निर्मुखत एव प्राणं दधाति तस्मान्मुखतः प्राणो रथन्तरमुत्तराद्गायति बृहद्दक्षिणतः पक्षा एवास्योपदधातीयं वै रथन्तरमसौ बृहदाभ्यामेवैनं परिगृह्णाति यज्ञायज्ञीयं पुच्छे गायति श्रोण्यां वामदेव्यमात्मा वै यज्ञायज्ञीयं तनूर्वामदेव्यं सात्मानमेवैनं संतनुं चिनुते हृदयमपिकक्षे तस्मादपिकक्षे हृदयमनूचं भवति तस्मादनस्थकं हृदयमर्क्यैः परिगायत्यर्को वा अग्निरर्कमेवार्क्यैः परिगायति शान्त्यै ॥५॥ २०

संवत्सरो वा अन्तरा तमस्स्वर्गो लोको ज्योतिष्मतीरेतास्साहस्रीरिष्टका यद्धिरण्यशल्कैः प्रोक्षति ज्योतिषैवास्मै संवत्सरं विवासयति सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासीति सहस्रसंमिता ह्यिमे लोका घ्नन्ति वा एतदग्नेर्यदस्यात्र न क्रियते यन्न चीयतेऽमृतं हिरण्यं यद्धिरण्यशल्कैः प्रोक्षत्यमृतेनैवास्य

[५] मै. ३,३,५ (७) । कपि. ३२,२० ।
[६] मै. ३,३,४ (४) । कपि. ३२,२१ । वा. १५,६५; १७,२-३ । काण्व. १६,८५; १८,२—४ ।

तन्वं पृणक्तीमा मे अग्न इष्टका धेनवस्सन्त्विति धेनूरेवैनाः कुरुते ता एनं कामदुघा अमुष्मिंल्लोक उपतिष्ठन्ते रुद्रं वै देवा यज्ञान्निरभजन् स देवानायतयाभिपर्यावर्तत ते देवा एतच्छतरुद्रियमपश्यँस्तेनैनमशमयन् यच्छतरुद्रियं जुहोति तेनैवैनं शमयति ॥ जानुदघ्नेऽग्रे जुहोत्यस्या एव रुद्रमवयजतेऽथ नाभिदघ्नेऽन्तरिक्षादेव रुद्रमवयजतेऽथ पुरुषमात्रेऽमुष्या एव रुद्रमवयजत इत एवोर्ध्वं रुद्रमवयजतेऽथ पुरुषमात्रेऽथ नाभिदघ्नेऽथ जानुदघ्नेऽमुत एवार्वाञ्चं रुद्रमवयजते तत् षट् संपद्यते षड्वा ऋतव ऋतुभ्य एव रुद्रं निरवयजते गवीधुकासक्तुभिर्वा जर्तिलैर्वा कुसयसर्पिषा वा मृगक्षीरेण वा जुहोति यद्ग्राम्येण जुहुयाद्ग्रामावचारिणं रुद्रं कुर्यादारण्येनैवारण्यमभि रुद्रं निरवयजतेऽर्कपर्णेन जुहोत्यर्को वा अग्निरर्केणैवैनमर्कादधि निरवयजत उत्तरस्य पक्षस्य या चरमेष्टका तस्यां जुहोत्येषा वै रुद्रस्य दिक् स्वायामेव दिशि रुद्रं प्रतिहृत्यावयजते पशुर्वा अग्निरेतर्हि वा एष जायते यर्हि चीयते यथा वत्सो जातस्स्तनं प्रेप्सत्येवं वा एष एतर्हि भागधेयं प्रेप्सति स यजमानं चैवाध्वर्युं च ध्यायति यच्छतरुद्रियं जुहोति भागधेयेनैवैनं शमयत्यङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्तेऽजायां घर्मं प्रासिञ्चन् सा शोचन्ती पर्णं परामृशत् सोऽर्कोऽभवत् तदर्कस्यार्कत्वं यदर्कपर्णेन जुहोति सयोनित्वाय यं द्विष्यात् तस्य संचरे पशूनां न्यस्येद्यः प्रथमः पशुराक्रामति स आर्तिमार्छन्ति या उत्तमास्ता यजमानं वाचयेदेता वै देवतास्स्वर्ग्यास्ताभिरेव स्वर्गं लोकमेत्येता वै देवता अभिचरणीया यं द्विष्यात् तं ब्रूयादमुं वो जम्भे दधामीत्येताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजक् प्रधन्वति ॥६॥ २१-२२

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामित्यद्भिः परिषिञ्चति प्रजापतेर्वा एष रसो यदापः प्रजापतेरेवैनं रसेन तर्पयति स एनं तृप्तः प्रीतोऽक्षुध्यन्नुपतिष्ठतेऽश्मन्ते क्षुधं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्विति यमेव द्वेष्टि तमस्य क्षुधा च शुचा चार्पयति त्रिः परिषिञ्चति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यश्शमयति त्रिः पुनरपरिषिञ्चन् पर्येति तत् षट् संपद्यते षड्वा ऋतव ऋतुभ्य एवैनं शमयति यद्यभिचरेत् त्रिः पुनरपरिषिञ्चन् परीत्य या दक्षिणा श्रोणिस्तस्यां प्रक्षिणीयादिदमहममुमामुष्यायणममुष्य पुत्रं प्रक्षिणामीति यैवाग्नौ शुक्तामादाय तयैनमर्पयति तं भिद्यमानमन्वार्तिमार्छति यन्नाम गृह्णाति मूलमेवास्य च्छिनत्ति ॥ वरुणमेनिर्वा एष संचितो मण्डूकेन विकर्षति मण्डूकस्यायुषा व्येति न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नारण्याँस्तस्मादेतं वसन्ता च प्रावृषि चाभिगच्छति शुचा ह्येष ऋतोऽवकया च वेतसशाखया च विकर्षत्यपां वा एतच्छरो यदवकापामेतत् पुष्पं यद्वेतस आपश्शान्ताश्शान्ताभिरेवास्य शुचं शमयति तिसृभिस्त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचं शमयति प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अक्षुध्यँस्ताभ्योऽन्नं प्रायच्छत् ता अशुचन्नोऽभूदित्यन्नं पावकं यत् पावकवतीर्भवन्त्यन्नाद्याय

[७] मै. ३,३,५—६ (५—८) । वा. १७,१—१५; ३६,२० । काण्व. १८,१—१५; ३६,२० । तै. सं. ५,४,४—५ ।

कमसा अग्निश्चिक्यानाय भवति सप्तभिर्विकर्षयति सप्त वै छन्दाँसि च्छन्दोभिरेवास्य शुचँ शमयति ॥ संलुप्योत्करेऽध्यत्यष्टाभिर्विकर्षत्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्य शुचँ शमयति ॥ संलुप्योत्करेऽध्य- ... पञ्चगृहीत स्यत्येषा वा अस्याँ शुक्छुच्येवास्य शुचं दधाति यं द्विष्यात् तमभ्यस्येच्छुचैवैनमर्पयति पञ्चगृहीत आज्ये पञ्च हिरण्यशल्कानवास्यति तेजो वै हिरण्यमायुर्घृतं तेजसैवास्यायुर्व्याघारयत्यथो पङ्क्त्यै वाहुत्याग्निमालभते नमस्ते हरसे शोचिष इत्यधिक्रामति नमस्कृत्य हि श्रेयाँसमुपचरन्त्यक्ष्णया व्याघारयत्यजामित्वाय नृषदे वेडिति प्रतिष्ठित्यै हुतादो वा अन्ये देवा अहुतादोऽन्येऽग्निचिदस्वैतानुभयानवरुन्द्धे यज्जुहोति चाव चोक्षति तानेव प्रीणाति तानवरुन्द्धे तेऽस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्ति ॥ गुरुमुष्टिनावोक्षति स हि प्राजापत्यतमस्तेनास्य न हुतं भवति नाहुतं कृष्णाजिनस्योपानहौ कुरुते ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं मृत्युरग्निर्ब्रह्मणैव मृत्योरन्तर्धत्तेऽन्तर्मृत्योर्धत्तेऽन्तरश्नायादन्यतरामुपानहं कुर्वीतान्तर्मृत्योर्धत्तेऽवान्नाद्यं रुन्द्धे प्राणैर्वा एष पशुभिर्व्यृध्यते योऽग्निं चिनुते तं प्रथमोऽधिक्रामति प्राणदा व्यानदा इति प्राणैरेवैनं समर्धयति वर्चोदा वरिवोदा इति प्रजा वै वर्चः पशवो वरिवः प्रजया चैवैनं पशुभिश्च समर्धयति प्राणदा अपानदा इत्यवरोहति रूपेणैव द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ॥७॥ २३-२६

इन्द्रो वै वृत्रमहँस्तँ हतष्षोडशभिर्भोगैरसिनात्सोऽग्निना पाप्मनो भोगानपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनो निरमुच्यत यदाग्नेय्या जुहोत्यग्निनैव पाप्मनो भोगानपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनो निर्मुच्यते सकृत् सर्वाभ्यां ... मुच्यत एकैकया जुहुयाद्यदि कामयेत चिरं पाप्मनो मुच्येतेति चिरमेव पाप्मनो मुच्यते ॥ षोडशं ननूद्द्रुत्योत्तमया जुहुयाद्यदि कामयेताजिरं पाप्मनो मुच्येतेत्यजिरमेव पाप्मनो मुच्यते ॥ षोडशं भवति षोडशकलः पुरुषो यावानेवास्यात्मा तं पाप्मनो मुञ्चत्यथो षोडशभिर्हि स तं भोगैरसिनात् स्नानासूक्ताभ्यां जुहोति सूक्तयोर्नानावीर्यत्वाय समिध आदधाति भागधेयमेवास्मा अपिदधाति यथा जनमेष्यतेऽवसं करोत्येवमेवैतदग्नय आतिथ्यं क्रियते विस्र आदधाति त्रिवृद्ध्यग्निर्यावानेवाग्निस्तस्मा आतिथ्यं करोत्यौदुम्बरीर्भवन्त्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवास्मा अपिदधाति घृतेनानक्त्येतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतं प्रियमेवास्मै धामातिथ्यं करोत्युद्दु त्वा विश्वे देवा इति प्राणा वै विश्वे देवाः प्राणैरेवैनमुद्यच्छते मनुष्या वै विश्वे देवा मनुष्यैरेवैनमुद्यच्छतेऽग्ने भरन्तु चित्तिभिरिति यस्मा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैनँ समर्धयति ॥ पञ्च दिश इति दिश एवैनमनुप्रणयति द्वे परिगृह्यवती भवतो रक्षसामपहत्यै हरिकेशस्सूर्यरश्मिरिति सावित्री प्रसूत्यै देवा

[नमस्ते हरसे शोचिषे० । श्री. सू. २,१२]
[८] मै. ३,३,७—८ (९—१०) । वा. १२,३१,५६; १५,६१; १७,५३—६४ । काण्व. १३,३२,५७; १६,८२; १८, ५३—६४ । [हरिकेशः सूर्यरश्मि० (सूर्यरश्मिर्हरि०)० । ऋ. १०,१३९,१; तै. सं. ४,६,३,३]

देवेभ्यो अध्वरीयन्तो अस्थुरित्याशिषामेवैष दोहो विमान एष इति स्वर्गस्यैवैष लोकस्य विमान उक्षा समुद्रो अरुणस्सुपर्ण इत्यश्मानमाग्नीध्रे सादयत्यनारम्भणमिव वा एतदनायतनमिव यदन्तरिक्षमन्तरिक्षमाग्नीध्रं यदाग्नीध्रे सादयत्यायतनमेव करोति मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मेत्यन्नं पृश्न्यन्नमेवावरुन्द्धे द्वाभ्याँ सादयति द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ॥ षड्भिराग्नीध्राद्यन्ति षड्वा ऋतव ऋतुभिरेव चतसृभिरा पुच्छाच्चत्वारि वै छन्दाँसि च्छन्दोभिरेवेन्द्रमितीन्द्रियमेवावरुन्द्धेऽवीवृधन्निति वृद्धिमेवोपैति वाजा इत्यन्नं वै वाजा अन्नमेवावरुन्द्धेऽनुष्टुभा वैश्वदेव्या यन्ति वाग्वा अनुष्टुब् वैश्वदेवी वाक् सर्वाणि वा एषा रूपाणि सर्वाणि रूपाण्यग्नौ चित्ये क्रियन्ते तस्मादेतया यन्ति सुम्नहूरिति यज्ञो वै सुम्नं यज्ञमेवावरुन्द्धे वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजीगृभमिति ब्रह्म वा उद्ग्राभो ब्रह्म निग्राभोऽसा आदित्य उद्यन्नुद्ग्राभ एष निम्रोचन्निग्राभो ब्रह्मणैवात्मानमुद्गृह्णाति ब्रह्मणा भ्रातृव्यमवगृह्णात्यथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यतामित्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैव वीर्येण भ्रातृव्यं विनुदते ॥८॥ २७-३०

क्रमध्वमग्निना नाकमिति स्वर्गस्य लोकस्याक्रमः प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानिति देवलोकमेवोपावर्तते विश्वा आशा दीद्यद्विभाहीति तस्मादग्निस्सर्वा दिशो विभाति पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहमित्येषामेवैते लोकानाँ संक्रमास्स्वर्यन्तो नापेक्षन्त इति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या अग्ने प्रेहि प्रथमो देवायतामिति देवेषु चैव मनुष्येषु च चक्षुर्दधातीयक्षमाना भृगुभिस्सजोषा इति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति पञ्चभिरधिक्रामति पाङ्क्तोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तस्मै नमस्कृत्याधिक्रामति ॥ नक्तोषासाग्ने सहस्राक्षेति सँहिताभ्यां जुहोत्यहोरात्रे एव संदधाति तस्मादहोरात्रे सँहिते कृष्णायाश्श्वेतवत्साया जुहोत्यह्नेवास्मै रात्रीं प्रदापयति नानारूपा वै पशवो नानाव्रतास्त एतदेव प्रत्तिमरूपयत् पयसा जुहोत्येतदेवैनमभिसंजानानाः पशव उपतिष्ठन्ते दध्ना स्वयमातृण्णायां जुहोत्यसौ वै स्वयमातृण्णोर्गद्ध्यमुष्यामेवोर्जं दधाति तस्मादमुतोऽर्वाचीमूर्जमुपजीवन्ति सुपर्णोऽसि गरुत्मानिति गायत्र्या सादयत्यस्यामेवैनमाक्रमयति भासान्तरिक्षमापृणेति त्रिष्टुभान्तरिक्षमेवैनमाक्रमयत्याजुह्वानस्सुप्रतीकः पुरस्तादिति जगत्यामुष्यामेवैनमाक्रमयत्येताभिरेवैनं देवताभिस्सयुजं कृत्वा

विमान एष० । ऋ. १०,१३९,२; तै. सं. ४,६,३,३ उक्षा समुद्रो अरुणः । ऋ. ५,४७,३; तै. सं. ४,६,३,३ । इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्० । ऋ. १,११,१; सा. ३४३,८२७; तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५]
[९] मै. ३,३,९ (११) । वा. १७,६५—७६,७९; १९,२,४ । काण्व. १८,६५—७६,७९; २१,२,४ । तै. सं. ५,४,७ । [क्रमध्वमग्निना० । अथर्व. ४,१४,२ । पृथिव्या अहमुदन्तरिक्ष० । अथर्व. ४,१४,३ । स्वर्यन्तो नापेक्षन्त० । अथर्व. ४,१४,४ । अग्ने प्रेहि प्रथमो० । अथर्व. ४,१४,५ । नक्तोषासा समनसा० । ऋ. १,९६,५; ११३,३ (च. पा.); सा. १७५१; तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३]

प्रतिष्ठापयति त्रिसृभिस्त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति ॥ तां सवितुरिति सावित्र्या-दधाति प्रसूत्या औदुम्बरीमूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जमेवास्मा अपिदधात्यग्निं वा ह वा अग्निचिद्दुहेऽग्निर्वाग्नि-चितं दुहे कण्वो ह वा एतस्य श्रायसो दोहं विदांचकार यथा गां प्रत्तां दुह एवमेवैतयाग्निमग्नि-चिद्दुहेऽग्ने त्रिधेम त इत्यृद्ध्यै वैकङ्कतीमग्रेवैं मृत्युस्य विकङ्कतं मा आछेन् तदेवावरुन्द्धे प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो न इति शमीमयीं शान्त्यै विराजैषा वै शमी कर्णकवत्येषा ह वै सोमदक्षः कौश्रेयस-श्विणः पप्रच्छ विद यूयं शमी३कर्णकवती३मिति यैवारण्ये तां विद्मेति पशवो वा एतस्याः कर्णः पशूनेवावरुन्द्धे ॥ एतां ह स्म वै देवा असुरेभ्यो वज्रं शतघ्नीमियद्ध्यस्त्वेत्यभ्यवसृजन्ति वज्रमेव भ्रातृ-व्याय प्रहरति स्रुग्वत एनं सप्त ते अग्ने समिध इति साप्तान्येवैतया प्रीणाति पूर्णया स्रुचा जुहोति यथा वत्साय जाताय स्तनमपिदधात्येवमेवास्मा एतद्भागधेयमपिदधाति दध्ना पुरस्ताज्जुहोत्याज्ये-नोपरिष्टादूर्ग्वै दधि तेज आज्यमूर्जं चैवास्मिंस्तेजश्च समीची उत्तमे दधात्यथो इमे एवास्मै प्रदाप-यति ॥९॥ ३१-३४

अथैतदप्रतिरथमेतेन वै देवा असुरानप्रत्यभ्यजयँस्तदप्रतिरथस्याप्रतिरथत्वमप्रत्येवैतेन भ्रातृव्य-मभिजयत्येषा वै गायत्री ज्योतिष्पक्षा तयैव स्वर्गं लोकमेति दशर्चं भवति दशाक्षरा विराडन्नं विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठत्येतेन ह स्म वै भरद्वाजः प्रतर्दनं संनह्यतेति ततो वै स राष्ट्रमभवद्यं कामयेत राष्ट्रं स्यादिति तमेतेन संनह्येद्राष्ट्रमेव भवति तदेतद्रुवनच्यवं नाम हविरास्थानादास्थाना-देवैतेन भ्रातृव्यं नुदते संग्रामे कुर्यात् तेजनो वा बान्धुको वेष्मस्स्याद्यद्भारा: प्रतिवेष्टन्ते प्रत्य-मित्राणां सेना वेष्टतेऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालस्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर एषा संवत्सरस्य प्रिया तनूर्या वैश्वानरी यदग्नये वैश्वानराय प्रियाया एवास्य तन्व आतिथ्यं करोति ॥ क्षत्रं वैश्वानरो विण्मरुतो यद्वैश्वानरं मारुता अनुहूयन्ते क्षत्रायैव विशमनुनियुनक्त्युच्चैर्वैश्वानरस्य यजत्युपांशु मारुता-ञ्जुहोति तस्मात् क्षत्रं विशमतिवदति पशवो अग्निरग्निमुखान् प्रजापतिः पशूनसृजत पशवो मरुतो यद्वैश्वानरं मारुता अनुहूयन्ते पशूनां प्रजात्यै यत् प्राङ् पर्यावर्तेत देवविशा मुखेद्यद्दक्षिणा पितृदेवत्य-स्स्याद्यत् प्रत्यङ् रक्षसां स्याद्यदुदङ् मानुषस्स्यादृजुः प्रतिष्ठितो होतव्यो यजमानस्य प्रतिष्ठित्या अथैते मारुतास्सप्त सप्तकपालास्सप्त सप्त हि मरुतो सप्तधा गणा गणेन गणमनुद्रुत्य जुहोति गणश एव मरुतस्तर्पयति ॥ योऽरण्येऽनुवाक्यो गणस्तेन मध्ये जुहोति क्षत्रं वा एष मरुतां विडितरे क्षत्रमेव विशो मध्यमेष्टं करोति यदि कामयेत विशा क्षत्रं हन्यामिति योऽरण्येऽनुवाक्यो गणस्तमितरैर्गणै-र्मोहयेद्विशैव क्षत्रं हन्ति यदि कामयेत क्षत्रेण विशं हन्यामिति त्रिष्टुभौ याज्यानुवाक्ये कुर्यादोजो

[तां सवितुर्वरेण्यस्य० । अथर्व. ७,१५,१ । विधेम ते० । ऋ. २,९,३; तै. सं. ४,६,५,४ । प्रेद्धो अग्ने० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५ तै. सं. ४,६,५,४]

[१०] मै. ३,३,७; १० (९,१०) । वा. १७,८०; १७,८६ । काण्व. ३१,५१; १८,८६ । तै. सं. ५,४,७-८ ।

वै वीर्यं त्रिष्टुबोज एव वीर्यं विश आदाय तां क्षत्रायापिदधाति यं कामयेत क्षत्रान्नुदेयेति योऽरण्ये-ऽनुवाक्यो गणस्तेनाग्निष्ठं रथवाहनं विचालयेदेतद्वै राजन्यस्य क्षत्रं विभर्ति क्षत्रमेव मरुतां क्षत्रेणैवैनं क्षत्रान्नुदत इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मान इत्येतद्वै देवानामनुवर्त्म देवानामेवानुवर्त्मना यजमाना-यानुवर्त्म करोति सं वा एनमेतदिन्द्धे यच्चिनोति दीपयति मरुन्नामैः ॥१०॥ ३५-३७

वसोर्धारां जुहोति वसोर्मे धारासदिति वा एषा हूयते घृतस्य वा एषा धारामुष्मिंल्लोके यजमान-मुपतिष्ठते संततं जुहोत्यन्नाद्यस्य संतत्या अविच्छेदाय यं द्विष्यात् तस्य विच्छिन्द्यादन्नाद्यमेवास्य विच्छिनत्ति घृतेन जुहोति तेजो वै घृतं तेजो वसोर्धारा तेजस्येव तेजो दधात्यक्लृप्तस्य वा एषा क्लृप्त्यै हूयतेऽनवरुद्धस्यावरुद्ध्या अनभिजितस्याभिजित्यै प्राणश्चापानश्चेति प्राणापाना एव यजमाने दधात्यन्नं च चक्षुश्चेत्येतद्वा अन्नस्य रूपं रूपेणैवान्नमवरुन्द्धे द्वादशैतानि द्वादशानि जुहोति द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरेणैवान्नाद्यमवरुन्द्धे ॥ अग्निश्चापश्चेत्येषा वा अन्नस्य योनिस्सयोन्येवा-न्नमवरुन्द्धेऽर्धेन्द्राणि जुहोति देवतानामवरुद्ध्यै यदर्धेन्द्राणि जुहोति तस्मादिन्द्रो देवतानां भूयिष्ठ-भागिन्द्रमुत्तरं करोतीन्द्रिय एव यजमानं प्रतिष्ठापयत्यँशुश्च रश्मिश्चेति यज्ञमुखं वा अँशुश्च रश्मिश्च यज्ञमुखमेवावरुन्द्धे स्रुचश्च चमसाश्चेत्येतानि वै यज्ञस्य रूपाणि रूपैरेव यज्ञमवरुन्द्धेऽवभृथश्च स्वगा-कारश्चेति प्रतिष्ठित्या अग्निश्च घर्मश्चेतद्वा अग्नेर्ब्रह्मवर्चस्यं तदेवावरुन्द्धे त्र्यविश्च त्र्यवी चेत्येतावन्ति वै पशूनां वयाँसि सवयस एव पशूनवरुन्द्ध एका च तिस्रश्चेति मनुष्यच्छन्दसं वा एका च तिस्रश्च मनुष्यच्छन्दसमेवावरुन्द्धे चतस्रश्चाष्टौ चेति देवच्छन्दसं वै चतस्रश्चाष्टौ च देवच्छन्दसमेवावरुन्द्धे ॥ युग्मदयुजौ स्तोमौ मिथुनौ प्रजात्यै मिथुनमेव ह्युत्तरेण करोति प्र चतुरुत्तरेण जनयत्येका च तिस्रश्चेत्या त्रयस्त्रिंशतो जुहोति त्रयस्त्रिंशद्देवता देवता एवावरुन्द्धे चतस्रश्चाष्टौ चेत्यष्टाचत्वारिंशतोऽष्टाचत्वारिं-शदक्षरा जगती जागताः पशवः पशूनेवावरुन्द्धेऽस्मिन्नेव लोके मनुष्यच्छन्दसेनभ्रोत्यमुष्मिन् देव-च्छन्दसेनोभौ लोका आजयति वाजश्च प्रसवश्चेति त्रयोदशैता व्याहृतयस्त्रयोदशमासस्संवत्सरोऽन्तत एव संवत्सरं रोहत्यायुर्यज्ञेन कल्पतामिति यज्ञस्यैवैषा क्लृप्तिर्ऋक् च साम चेत्यन्नाद्यं वै वसोर्धारा-न्नाद्यमेव वसोर्धारयावरुध्यान्नादो भूत्वा स्तोमश्च यजुश्चेति देवक्षत्रं वै स्तोमश्च यजुश्चान्तत एव देवक्षत्रं प्रावस्यति ॥११॥ ३८-४०

देवा वै वाजप्रसव्यु आजिमयुस्तदग्निरुदजयद्यद्वाजप्रसव्यं जुहोत्यन्नाद्यस्योज्जित्या अन्नस्यान्नस्य जुहोति सर्वमेवान्नमवरुन्द्धे यस्य न जुहोति तेन व्यृध्यते यस्य न जुहुयात् तदिधर्मेऽपि प्रोक्षेत् तेनैव

[११] मै. ३,४,१-२ (१-२) । वा. १८,१-१४,१९,२१-२२,२४-२७,२९ । काण्व. १९,१३-२६,३१, ३३-३४,३६-३८,४२-४३ । तै. सं. ५,४,८ ।

[१२] मै. ३,४,३-४ (३-४) । वा. १७,६०; १८,३०,४५ । काण्व. १८,६०; २१,१,१५ । तै. सं. ५,४,९ ।

तदेवरुन्द्ध औदुम्बरेण स्रुवेण जुहोत्यूर्ग्वा उदुम्बर ऊर्जैवान्नाद्यमवरुन्द्धेऽग्नेर्वा एषोऽभिषेकस्तस्मादग्नि-चिद्वर्षति न धावेद्यद्धावेदवत्यन्नाद्याद्धावत्ययैते राष्ट्रभृतः क्षत्रं वा एषोऽग्नीनां यच्चीयत एतं वा एतस्य राष्ट्रं बिभ्रति तद्राष्ट्रभृतां राष्ट्रभृत्त्वं तैरेवास्मै राष्ट्रं संप्रयच्छति षडेते षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवास्मै राष्ट्रं संप्र-यच्छत्यथो ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥ मिथुनो आहुतयः प्रजात्यै द्वादश द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरेणै-वास्मै राष्ट्रं संप्रयच्छत्यथो संवत्सर एव प्रतितिष्ठति रथमुखे त्रयोदशीं जुहोति वज्रो वै रथो वज्रेणैव दिशोऽभिजयति तां दिशोऽभिजिता रथेनेयते वातहोमाञ्जुहोति वातमेवावरुन्द्धेऽग्निचितं ह त्वा एषो-ऽमुष्मिंल्लोकेऽभिपवते त्रिर्जुहोति त्रय इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो वातमवरुन्द्ध इमेऽस्मै लोका वातं धुन्वन्त्यञ्जलिना जुहोति हस्तावदानो वै वायुर्न वै वायुमवदानैरामुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोति समुद्रोऽसि नभस्वानित्येतानि वै वातस्य रूपाणि रूपैरेव वातमवरुन्द्धे ॥ प्राणो वै गायत्री गायत्रं हविर्धानं व्यानस्त्रिष्टुप् त्रैष्टुभमाग्नीध्रमपानो जगती जागतं सदो मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मेत्यमुर्वीवं स पृश्निरश्मामुमेवं प्राणापानयोर्व्यवदधाति प्राणापानयोर्विधृत्या एकविंशतिं होत्रीय उपदधात्येक-विंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या एकादश ब्राह्मणाच्छंस्य एकादशाक्षरा त्रिष्टुब् वीर्यं त्रिष्टुब् वीर्यमेवावरुन्द्धेऽष्टौ अष्टा इतरेष्वष्टाक्षरा गायत्री गायत्र्यामेव प्रतितिष्ठति षण्मार्जालीये षड्वा ऋतव ऋतव एते दक्षिणा पर्यहरन् पितर ऋतवस्तस्मादेत्र षड्डुपधीयन्ते ॥१२॥ ४१-४३

इयं वामस्य मन्मनश्शुचिं नु स्तोमं मरुतो यद्व वो दिवो या वश्शर्मेमं मे वरुण तत्त्वा यामि कया नश्चित्रः ॥
४४

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु काचिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अँहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ४५
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥ ४६

[पृश्निरश्मेव दिवा (मध्ये दिवो०) । श्र. ५,४७,३; तै. सं. ४,६,३,३]

[१३] मै. १,२,११८; २,७,१०२; ३,४,१६; ४,१०,४९-५०,१०२-१०३,१०६,१०८-१०९,११२,११४-११५, ११७-११८,१२२-१२३,१२५-१२६,१२९; ११,९,७३,९६-९८; १३,३९; १४,१०४,२५२-२५४, ... । वा. ३२,१-४; १८,४९; २७,३९; ३६,४; १२,१६; ३३,३५; १७,३२-३३; ८,३५ । काण्व. २३, ... ८,३६-३७; १८,२२-२३ । [इयं वामस्य मन्मनः०। ऋ. ७,९४,१; सा. ९१६ । शुचिं नु स्तोमं० । ऋ. ७,९३,१; तै. सं. १,१४,१; तै. ब्रा. २,४,८,३ । मरुतो यद्ध वो दिवः । ऋ. ८,७,११; तै. सं. १,५,११,४ । या वश्शर्म० । ऋ. १,८५,१२; तै. सं. १,५,११,५; तै. ब्रा. २,८,५,६ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. ब्रा. २,१,११,६ । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०। ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६ । कया नश्चित्र० । ऋ. ४,३१,१; सा. १६९,६८२; अथर्व. २०,१२४,१; तै. सं. ४,२,११,२; तै. ब्रा. ४,४४,२ । कया तच्छृण्वे शच्या० । ऋ. ४,२०,९ । उदुत्तमं मुमुग्धि नो० । ऋ. १,२५,२१; तै. ब्रा. २,४,२,६]

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत् त्वं नो अग्ने स त्वं नो अग्ने ॥ ४७
अनेकवन्तमूतयेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे । स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४८
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठस्स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ ४९
सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ५०
यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशं प्रति पू मुचीष्ट तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥ ५१
गृहमेधा रिशादसो मरुतो मापभूतन । प्रमुञ्चन्तो नो अँहसः ॥ ५२
प्र बुध्न्या व ईरते महाँसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ ५३
क्रीडं वश्शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभिप्रगायत ॥ ५४
अत्यासो न ये मरुतस्स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाश्शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीडिनः पयोधाः ॥ ५५
इन्द्राग्नी अपवृत्रमा तू न इन्द्र त्वं महाँ इन्द्र ॥ ५६
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानस्स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ५७
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्याहुवेम ।
स नो नेदिष्ठं हवनानि जोषद्विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥१३॥ ५८

[उदुत्तमं वरुण० । ऋ. १,२४,१५; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; नि. २,१३ । त्वं नो अग्ने० । ऋ. ४,१,४; तै. सं. २,५,१२,३ । स त्वं नो अग्ने० । ऋ. ४,१,५; तै. सं. २,५,१२,३ । अने(नो)कवन्तमूतये० । ऋ. परि. ३५,१; २६,७(च. पा.) । सैनानीकेन सुविदत्रो० । ऋ. ९,९,६; तै. सं. ४,३,१३,२ । सांतपना इदं हवि० । ऋ. ७,५९,९; अथर्व. ७,७७,१; तै. सं. ४,३,१३,३ । यो नो मर्तो(मरुतो)० । ऋ. ७,५९,८; अथर्व. ७,७७,२; तै. सं. ४,३,१३,३ । गृहमेधा (०स)रिशादसो० । ऋ. ७,५९,१०; तै. सं. ४,३,१३,५ । प्र बुध्न्या व ईरते० । ऋ. ७,५६,१४; तै. सं. ४,३,१३,६ । क्रीडं(०ळं) वश्शर्धो० । ऋ. १,३७,१; तै. सं. ४,३,१३,६; नि. ७,२ । अत्यासो न ये० । ऋ. ७,५६,१६; तै. सं. ४,३,१३,७ । इन्द्राग्नी नवति पुरो० । ऋ. ३,१२,६; सा. १५७६, १७०४; तै. सं. १,१,१४,१ । अपवृत्रम्० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३ । आ तू न इन्द्र० । ऋ. १,१०,११; ३,४१,१; ४,३२,१; ८,८१,१; सा. १६७, १८१, ७२८; अथर्व. २०,२३,१ । त्वं महाँ इन्द्र० । ऋ. १,६३,१; ४,१७,१ । विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः० । ऋ. १०,८१,६; सा. १५८९; तै. सं. ४,६,२,६; नि. १०,२७ । वाचस्पतिं विश्व-कर्माणं० । ऋ. १०,८१,७; तै. सं. ४,६,२,५]

उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तस्समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ५९
त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ६०
त्वया हि नः पितरस्सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ६१
त्वं सोम पितृभिस्संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६२
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नश्शं योररपो दधात ॥ ६३
आहं पितॄन् सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ६४
उपहूताः पितरस्सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ६५
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदस्सदस्सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ ६६
अग्निष्वात्ता ऋतावृधः पितरो मृडता सु नः । प्रमुञ्चन्तु नो अंहसः ॥ ६७
अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नराशंसे सोमपीथं य आनशुः ।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ६८
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ ६९

[१४] मै. १,३,१००-१०१; १०,४३; २,७,१५४; ४,९,१८९,२०१; १०,१३०,१३३-१३८,१४१-१४३,१४५, १४८-१४९; १४,५६ । या. १९,५१-५७,५९,६१,६५,७०; २७,२७,३१; १२,६७; ७,४१-४२; ८,४१, ३३, ३१; १३,४६ । काण्व. २१,५२-५८,६१,६५,७०; २९,२५-२६; १३,६८; ८,२३-२४; ९,६-७; ३२,३१; १४,४८ । [उशन्तस्त्वा (नि धीमहि) हवामह० । ऋ. १०,१६,१२; अथर्व. १८,१,५६; तै. सं. २,६,१२, १ । त्वं सोम प्रचिकितो० । ऋ. १,९१,१; तै. सं. २,६,१२,१ । त्वया हि नः० । ऋ. ९,९६,११; तै. सं. २,६,१२,१ । त्वं सोम पितृभिः० । ऋ. ८,४८,१३; तै. सं. २,६,१२,२ । बर्हिषदः पितर० । ऋ. १०,१५,४; अथर्व. १८,१,५१; तै. सं. २,६,१२,२; नि. ४,२१ । आहं पितॄन् सुविदत्रां० । ऋ. १०,१५,३; अथर्व. १८, १,४५; तै. सं. २,६,१२,३ । उपहूताः पितर० । ऋ. १०,१५,५; अथर्व. १८,३,४५; तै. सं. २,६,१२,३ । अग्निष्वात्ताः पितर० : ऋ. १०,१५,११; अथर्व. १८,३,४४; तै. सं. २,६,१२,२ । स पूर्वया निविदा० । ऋ. १,९६,२]

काठ० ३०

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः । प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥ ७०
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ७१
वायुरग्रेगाः प्र याभिर्यासि ॥ ७२
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा इन्द्राय सुम्नया ॥ ७३
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ७४
उदु त्यं चित्रं देवानाम् ॥ ७५
इन्द्रं वयं शुनासीरमस्मिन् यज्ञे हवामहे । इह देवं सुराधसम् ॥ ७५
इन्द्रं वयं धनपतिं स्वनुमन्वारभामहे । स नः पितेव पुत्रेभ्य ईशानश्शर्म यच्छतु ॥१४॥ ७७
[१७०६]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां पञ्चचूडं नामैकविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२१॥

[यो अग्निः कव्यवाहनः० । ऋ. १०,१६,११ । त्वदग्ने काव्या० । ऋ. ४,११,३ । प्र याभिर्यासि० । ऋ. ७,९२,३; तै. सं. २,२,१२,७ । सीरा युञ्जन्ति कवयो० । ऋ. १०,१०१,४; अथर्व. ३,१७,१; तै. सं. ४,२,५,५ । शुनं हुवेम मघवा० । ऋ. ३,३०,२२; ३१,२२; ३२,१७; ३४,११; ३५,११; ३६,११; ३८,१०; ३९,९; ४३,८; ४८,५; ४९,५; ५०,५; १०,८९,१८; १०४,११; सा. ३२९; अथर्व. २०,११,११; तै. ब्रा. २,४,४,३ । उदु त्यं जातवेदसं० । ऋ. १,५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६; २०,४७,१३; तै. सं. १, २,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५ । चित्रं देवानाम्० । ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; ऐ. आ. ३,९; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६]

अथ द्वाविंशं स्थानकम्।

स्वर्गम् ।

स्वर्गाय वै लोकाय देवरथो युज्यते कामाय मनुष्यरथोऽग्निं युनज्मि शवसा घृतेनेति देवरथमेव
युनक्ति स एनं युक्तस्स्वर्गं लोकमभिवहति यत् सर्वाभिर्युञ्ज्यायुक्तोऽस्याग्निस्स्यादप्रतिष्ठिता आहुतय-
स्तिसृभिर्युनक्ति त्रिवृद्वा अग्निर्यावानेवाग्निस्तं युनक्ति तस्मिन् युक्ते यज्ञस्समाधीयते द्वाभ्यां नापि-
युनक्त्याहुतीनां प्रतिष्ठित्यै द्वाभ्यां यज्ञायज्ञीयस्य स्तोत्रेऽभिमृशत्येतावान् वै यज्ञो यावानेवाग्निष्टोमो
यज्ञमेवाग्निष्टोमस्त्वमन्ततस्स्वर्गं लोकमनुसमारोहति ॥
भूमा त्वा अस्यात ऊर्ध्वं क्रियते यावानेव यज्ञो यावानग्निष्टोमस्त्वमन्ततस्स्वर्गं लोकमनुसमारोहति ॥
सं वा एतमेता अग्नी तपतो यश्चाग्निष्टोमो यश्च वैश्वानरोऽपस्वतीभ्यामभिमृशति शान्त्यै द्वाभ्यां
द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्त्विति समाभिरेवर्तून्वर्धयत्यृतुभिस्संवत्सरं सं
दिव्येन दीदिहि रोचनेनेति तस्मादग्निस्सर्वा दिशो विभाति प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मादित्याम-
याविन एतान् कुर्यान्मृत्युमेवास्मात् प्रतिनुदत्युद्वयं तमसस्परीति पाप्मा वै तमः पाप्मानमेवैतया-
पहते ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरमित्यसौ वा आदित्यो ज्योतिरुत्तममुष्यैवादित्यस्य सायुज्यं गच्छति ॥
या अपस्वतीस्ताः कुर्याच्छान्त्यै चतुर्विंशतिं चतुर्विंशतिस्संवत्सरस्यार्धमासा न वै संवत्सरस्तिष्ठते
नास्य श्रीस्तिष्ठते यस्यैताः क्रियन्तेऽथैता आप्रियः प्रजापतिः प्रजास्सृष्ट्वा स रिरिचान इवामन्यत
स एता आप्रीरपश्यत् ताभिरात्मानमाप्रीणीत यज्ञः प्रजापतिर्यदाप्रियो भवन्ति यज्ञमेवाप्रीणात्यूना-
तिरिक्ता मिथुनाः प्रजात्यै लोमशं वै नामैतत् प्रजापतेश्छन्दो लोमशाः पशवः प्रजायन्ते पशूनां
प्रजात्यै सर्वाणि वा एता रूपाणि सर्वाणि रूपाण्यग्नौ चित्ये क्रियन्ते तस्मादेता अग्नेश्चित्यस्य भवन्ति
१-३
॥१॥

यथा वै पुनराधेय एवं पुनश्चितिर्यो वा अग्न्याधेयेन नर्ध्नोति पुनराधेयं स आधत्ते यद्यग्निना
चित्येन नर्ध्नुयात् पुनश्चितिं चिन्वीतर्ध्नोत्येवात्मा वै प्रथमा चितिः प्रजा द्वितीया नपात् तृतीया
तृतीयमग्निं चिन्वानो मध्यमायामेताश्चित्यामुपदध्यादनुसंतत्यै नपात् को वै नामैषोऽग्निस्त्वस्त्वं य
एवं विद्वानेता उपधत्तेऽष्टा एता उपदधात्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्र्यामेव प्रतितिष्ठति यां वा अनि-
ष्टकेऽग्निचिदाहुतिं जुहोति स्रवति सा तां स्रवन्तीं यज्ञोऽनु परास्रवति यज्ञं यजमानो यदेता उपधी-
यन्त आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै ॥ ताः प्रतितिष्ठन्तीर्यज्ञोऽनु प्रतितिष्ठति यज्ञं यजमानोऽष्टा उ ता उपदधा-

[१] मै. ३,४,४; ६(४,६) । वा. १८,५१; २०,२१; २७,१,१०; ३५,१४; ३८,२४ । काण्व. २०,२१; २२,६; २९,१, १०; ३५,४७; ३८,२४ । तै. सं. ५,४,१० । [समास्त्वाग्न ऋतवो० । अथर्व. २,६,१ । उद्वयं तमसस्परि० । ऋ. १,५०,१०; अथर्व. ७,५३,७; तै. सं. ४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,४,९; ६,६,४; तै. आ. ६,३,२]
[२] मै. ३,४,५ (५) । तै. सं. ५,४,१० ।

न्त्यष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्यावानेवाग्निस्तं चिनुतेऽष्टा एता उपधाय पुरीषेणाभ्यूहत्यष्टाक्षरा
गायत्री ब्रह्म गायत्री ब्रह्मणैवैनं चिनुते गायत्र्या छन्दसैकादश लोकंपृणयोपधाय पुरीषेणाभ्यूहत्ये-
कादशाक्षरा त्रिष्टुब् वीर्यं त्रिष्टुब् वीर्येणैवैनं चिनुते त्रिष्टुभा छन्दसा द्वादश लोकंपृणयोपधाय पुरीषे-
णाभ्यूहति द्वादशाक्षरा जगती जागताः पशवः पशुभिरेवैनं चिनुते ॥ जगत्या छन्दसा तिस्र-
श्चितयस्त्रीणि पुरीषाणि तत् षट् संपद्यते षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति तदाहुरुत्तरवेदिर्वावैषा
योऽस्य पूर्वोऽग्निश्चितस्स्यात् तमन्ववसाय यजेतेति यथा दीप्यमाने भूयोऽभ्यादधात्येवमेवास्मिं-
स्तदधि पूर्वं तेजो दधाति तदाहुः कश्श्रेयांसं विपुसं वोषयितुमर्हतीति यद्यजत आहुत्यैवैनं वर्षयति
गृहान् वा एतत् कुरुते यदग्निं चिनुते यद्वा अन्यतो विन्दते गृहाँस्तदाहरति यदीष्ट्या यजेत यदि
पशुना यदि सोमेन योऽस्य पूर्वोऽग्निश्चितस्स्यात् तमन्ववसाय यजेत यथान्यतो वित्त्वा गृहानाहर-
त्येवमेव तत् ॥२॥
४-६

संवत्सरमुख्यं भृत्वा द्वितीये संवत्सरे पर्यंते आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रमेकादशकपालं वैश्वदेवं
द्वादशकपालं बार्हस्पत्यं चरुं वैष्णवं त्रिकपालं तृतीये संवत्सरे पर्यंतेऽभिजिता यजेत यदष्टाकपालो-
ऽष्टाक्षरा गायत्र्याग्नेयं गायत्रं प्रातस्सवनं प्रातस्सवनमेव तेन दाधार गायत्रीं छन्दो यदेकादशकपाल
एकादशाक्षरा त्रिष्टुबैन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनं माध्यन्दिनमेव तेन सवनं दाधार त्रिष्टुभं छन्दो यद्
द्वादशकपालो द्वादशाक्षरा जगती वैश्वदेवं जागतं तृतीयसवनं तृतीयसवनमेव तेन दाधार जगतीं
छन्दो यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्म वै तेन दाधार यद्वैष्णवो यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञमेव तेन दाधार
यदभिजिता यजतेऽभिजित्यै यत् संवत्सरमुख्यं बिभर्तीमं तेन लोकं स्पृणोति यद् द्वितीयं चिनुते-
ऽन्तरिक्षं तेन स्पृणोति यद्यजतेऽमुं तेन लोकं स्पृणोत्येतं वै पर आट्णारः कक्षीवाँ औशिजस्त्रसदस्युः
पौरुकुत्सः प्रजाकामा अचिन्वत ततो वै ते सहस्रं सहस्रं पुत्रानविन्दन्त प्रथत एव तं भूमानं गच्छति
यं तेऽगच्छन् य एवं विद्वानेतं चिनुते ॥३॥
७

प्रजापतिर्वा एतमग्रेऽग्निमचिनुतर्तुभिस्संवत्सरं वसन्तेन पूर्वार्धं ग्रीष्मेन दक्षिणं पक्षं वर्षाभिरुत्तरं
शरदा पुच्छं हेमन्तेन मध्यं ब्रह्मणा वावास्य तत् पूर्वार्धमचिनुत क्षत्रेण दक्षिणं पक्षं विशोत्तरं पशुभिः
पुच्छमाशया मध्यमेतावद्वावास्ति यावदेवास्ति तत् स्पृणोति शृण्वन्त्येनमग्निं चिक्यानमत्यन्नं रोचते
का प्रथमा चितिः किं पुरीषमित्याहुर्ब्रह्मवादिन इयं वाव प्रथमा चितिरोषधयः पुरीषमन्तरिक्षं
द्वितीया वयांसि पुरीषं द्यौस्तृतीया नक्षत्राणि पुरीषं यज्ञश्चतुर्थी दक्षिणा पुरीषमात्मा पञ्चमी प्रजा
पुरीषं यद् त्रिचितीकं चिन्वीत यज्ञं दक्षिणामात्मानं प्रजामन्तरियात् तस्मात् पञ्चचितीकश्चेतव्यो

[३] तै. सं. ५,६,५ । [४] मै. ३,४,८ (१३,१७) । तै. सं. ५,६,१० ।

यत् तिस्रधितयश्चिवृद्धयग्निर्यद् द्वे द्विपाद्यजमानस्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृभ्नोति ॥४॥ ८

सजूरब्द आयवोभिस्सजूरुषा अरुणीभिस्सजूस्सूर एतशेन सजोषा अश्विना दंसोभिस्सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ९

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १०
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यस्सदः ॥ ११
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्त्याशवः ॥ १२

अग्नेर्यान्यस्यग्नेरग्नियान्यसि वायोर्यान्यसि वायोर्वायुयान्यसि देवानां यान्यसि देवानां देवयान्यस्यन्तरिक्षस्य यान्यस्यन्तरिक्षस्यान्तरिक्षयान्यस्यन्तरिक्षसदस्यन्तरिक्षे सीद ॥ यवा आयवा ऊमा एशा अब्दस्सगरस्सुमेकस्सलिलाय त्वा मृडीकाय त्वा सर्वीकाय त्वा केताय त्वा प्रचेतसे त्वा दिवे त्वा ज्योतिषे त्वा विवस्वते त्वादित्येभ्यस्त्वर्चे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा सूर्याय त्वा पुरोवातसनिरस्यभ्रसनिरसि विद्युत्सनिरसि स्तनयित्नुसनिरसि वृष्टिसनिरसि प्राच्या त्वा दिशाग्निना देवतया गायत्रेण च्छन्दसाग्नेश्शिर उपदधामि गायत्रेण च्छन्दसा छन्दसाग्नेश्शीर्ष्णाग्नेश्शिर उपदधामि ॥ दक्षिणया त्वा दिशेन्द्रेण देवतया त्रैष्टुभेन च्छन्दसाग्नेः पार्श्वमुपदधामि त्रैष्टुभेन च्छन्दसा छन्दसाग्नेः पार्श्वेनाग्नेः पार्श्वमुपदधामि प्रतीच्या त्वा दिशा सवित्रा देवतया जागतेन च्छन्दसाग्नेः पुच्छमुपदधामि जागतेन च्छन्दसा छन्दसाग्नेः पुच्छेनाग्नेः पुच्छमुपदधाम्युदीच्या त्वा दिशा मित्रावरुणाभ्यां देवतयानुष्टुभेन च्छन्दसाग्नेः पार्श्वमुपदधाम्यानुष्टुभेन च्छन्दसा छन्दसाग्नेः पार्श्वेनाग्नेः पार्श्वमुपदधाम्यूर्ध्वया त्वा दिशा बृहस्पतिना देवतया पाङ्क्तेन च्छन्दसाग्नेः पृष्ठमुपदधामि पाङ्क्तेन च्छन्दसा छन्दसाग्नेः पृष्ठेनाग्नेः पृष्ठमुपदधामि ॥ संयच्च प्रचेताश्चाग्नेस्सोमस्य सूर्यस्य ते तेऽधिपतयस्ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधाम्युग्रा च भीमा च पितॄणां यमस्येन्द्रस्य ते तेऽधिपतयस्ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ध्रुवा च पृथिवी च सवितुर्मरुतां वरुणस्य ते तेऽधिपतयस्ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि यन्त्री च यमनी च

[५] मै. २,१२,३; ३,३,४ (८, ८); ४ । का. १९,७३; ७,४२; १३,३६-३७,३९,४६; ३३,४; ५,२६, ६,१,५५; ३७,१९; १९,६४-६६ । काण्व. १३,७५; ८,२४; ९,७; १४,३८-३९,४८; ३२,४; ५,३३; ६,१,३६; ३७,१८; १७,६४ । तै. सं. ४,४,६ । [चित्रं देवानां० । ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; ऐ. ब्रा. ३,९; मै. ब्रा. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६ । युक्ष्वा हि देवहूतमां० । ऋ. ८,७५,१; तै. सं. २,६,११,१ । अग्ने युक्ष्वा हि ये० । ऋ. ६,१६,४३; सा. २५, १५८३; तै. सं. ४,२,९,५ । यं द्विष्मो यश्च नो० । अथर्व. ३,२७,१-६]

मित्रावरुणयोर्मित्रस्य धातुस्ते तेऽधिपतयस्ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि प्राची च प्रतीची च वसूनां रुद्राणामादित्यानां ते तेऽधिपतयस्ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥५॥ १३-१६

सजूरब्द आयवोभिरिति संवत्सरो वा अब्दो मासा आयवा उषा अरुणीस्सूर एतश इमे अश्विना संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः पशव इडा पशवो घृतं संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते संवत्सरादेवास्मै पशून् प्रजनयति दर्भस्तम्बे जुहोति यद्वा अस्या अनामृतं यद्वीर्यं तदेतदुत्सर्पति यदेवास्या अनामृतं यद्वीर्यं तस्मिञ्जुहोति नाग्निं चिक्यानः प्रमीयते यस्यैवं जुह्वति चित्रं देवानामुदगादनीकमिति पुरुषशीर्षे जुहोत्यहर्वै मित्रो रात्री वरुण एतावद्वावास्ति यावदेवास्ति तत् स्पृणोति सौर्यर्चा जुहोति तस्मात् पुरुष एवं सूर्यं प्रत्यङ् पशूनां न्यङ्ङोऽन्ये यत् समान्यर्चा द्विर्जुहोति तस्मात् समानस्य पुरुषस्य द्वौ पादौ ॥ यो ह वा अग्निं योग आगते न युनक्ति न युञ्जानेषु युङ्क्ते युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवेत्यग्निमेवैतद्योग आगते युनक्ति युङ्क्ते युञ्जानेषु य एवं वेद द्वाभ्यां युनक्त्यस्थूरि ह्येवं यो ह वा अग्निं विमोक आगते न विमुञ्चति न विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमित्यग्निमेवैतद्विमोक आगते विमुञ्चति वि विमुञ्चमानेषु मुञ्चते य एवं वेदाथैतास्संयानीरेता वै देवतास्स्वर्ग्यास्ताभिरेव स्वर्गं लोकमेत्येषा वै गायत्री ज्योतिष्पक्षा तयैव स्वर्गं लोकमेति ॥ यथा नावोदकादुदकमभिसंयात्येवं वा एताभिरग्निचिदमुत्र यथालोकं संयाति तत् संयानीनां संयानीत्वमथैतान्यृतुनामान्यृतूनेवावरुन्द्धे सुमेक इति संवत्सरो वै सुमेकस्संवत्सरमेवावरुन्द्धेऽथैता आदित्येष्टका आदित्या वा एतस्य तेज आददते योऽग्निं चिक्यानो नेव रोचते यदेता उपधीयन्ते यथा दीप्यमाने भूयोऽभ्यादधात्येवमेवास्मिंस्तदधि पूर्वं तेजो दधाति नास्यादित्यास्तेज आददते यथासौ देवेष्वेवं मनुष्येषु भवत्यथैता घृतेष्टकास्तेजो वा अग्निस्तेजो घृतं तेजस्येव तेजो दधात्यथैता वृष्टिसनयो वृष्टिमेवैताभिरवरुन्द्ध एताभिर्वा अग्निचितेऽमुत्र यथाकामं वर्षति तद्वृष्टिसनीनां वृष्टिसनित्वमथैता आत्मैतद्ध वा उवाच शङ्ख कौप्यः पुत्रमग्निं चिकिवाँसमचैरग्नी३मित्यचैषं ही३त्यथ कथा न सर्वात्मागा इति तद्धि नूनं न विदांचकर्थेति यदेता उपधीयन्ते सात्मानमेवाग्निं चिनुते पुनर्नितुन्ना भवन्ति प्राण एव प्राणमुपसंदधात्यथैषा षष्ठी चितिर्योऽग्निं चिक्यानो नेव प्रतितिष्ठेत् स एतां षष्ठीं चितिमुपदधीत षड्वा ऋतवस्संवत्सर ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतितिष्ठत्येता वै देवतास्स्वर्ग्यास्ताभिरेव स्वर्गं लोकमेत्येता वै देवता अभिचरणीया यं द्विष्यात् तं ब्रूयादमुं वै जम्भे दधामीत्येताभ्य एवैनं

[६] मै. २,१२,३; ३,३,४-५ (८; ४-५) । कपि. ३४ । वा. १२,६१,७४; ७,४२; १३,३६-३७,४६, ३३,४ । काण्व. १३,६२,७५; ८,२४; ९,७; १४,३८-३९,४८; ३२,४ । तै. सं. ५,६,४ । [चित्रं देवानां० । युक्ष्वा हि० । अग्ने युक्ष्वा० । (पञ्चमानुवाके द्रष्टव्यम्)]

देवताभ्य आवृश्चति ताजक् प्रधन्वति ॥६॥ १७-१९

अग्निना वै देवास्स्वर्गं लोकमायँस्तान् परा च आवृत्तान् पश्चादन्ववेत्य रक्षाँस्यजिघाँसँस्ते देवा एता वितृण्णीरपश्यँस्ताभी रक्षाँस्यपाघ्नत यद् द्वे पुरस्तादुपदधाति द्वे पश्चाच्चक्षुषोरेवोभयतो दधाति रक्षसामपहत्यै स्वयमातृण्णा भवन्ति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै चतस्रस्तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे स्वर्गाय वै लोकायाग्निश्चीयते यदेकादशिनीं कुर्याद्वज्रेण पुरस्तादवगृह्णीयादस्वर्ग्यस्स्याद्यदनेकादशिनीमनवरुद्धा अस्य पशवस्स्युरेकयूप एकादश पशूनालभेत तेनैव स्वर्ग्यस्तेन पशूनवरुन्द्धे ॥ न पक्षसंमितां मिनुयाद्यत् पक्षसंमितां मिनुयात् कनीयाँसं यज्ञक्रतुमुपेयात् पापीयस्यस्यात्मनः प्रजा स्यादेतद्ध वा उवाच जातश्शाकायन्यश्शङ्ख कौप्यं पक्षसंमितामेकादशिनीममेष्टेति श्रुत्वा कनीयाँसं यज्ञक्रतुमुपागात् पापीयस्यस्यात्मनः प्रजा भविष्यतीति सतो वै तं पराभूतं मन्यन्ते वेदिसंमितां मिनुयाज्ज्यायाँसमेव यज्ञक्रतुमुपैति नास्यात्मनः प्रजा पापीयसी भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुर्देवा मा वेदन्निति वा अग्निश्चीयते य एवं विद्वानग्निं चिनुते विदुरेनं देवाः कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुर्गृही मेऽसन्निति वा अग्निश्चीयते य एवं विद्वानग्निं चिनुते गृहवान् भवति कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुरन्नमदानीति वा अग्निश्चीयते य एवं विद्वानग्निं चिनुतेऽन्नाद्यं व्रतं चरेदग्निं चित्वा प्रथमं चित्वा न रामामुपेयाद् द्वितीयं चित्वा नान्येषां स्त्रियस्तृतीयं चित्वा न काञ्चन रेतो वा एतन्निधत्ते यदग्निं चिनुते यदुपेयाद्रेतसा व्यृध्येत तदाहुर्य एषाम् रेतस्सिचा इष्टके ते अग्निचितो रेतो बिभृतस्तस्मादुपेत्येति सहस्रेष्टकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानस्सहस्रसंमितो ह्ययं लोको द्वे सहस्रे द्वितीयं चिन्वानोऽन्तरिक्षेण संमितं त्रीणि सहस्राणि तृतीयं चिन्वानस्त्रय इमे लोका एभिर्लोकैस्संमितं प्रजापतिर्वा उख्यमग्निमबिभस्तेन प्रजा असृजत ता अनुप्राविशत् सोऽब्रवीत् स एव मे प्रजानामृषभो मेतस्संचिनवदित्यग्निः प्रजापतिर्यदग्निं चिनुते प्रजापतिमेव संचिनोत्यृभ्नोति तच्चिन्वस्य चित्यत्वं तं वसुभ्यः प्रायच्छन् तेन वसवस्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त तं वसवो रुद्रेभ्यः प्रायच्छँस्तेन रुद्रास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त तं रुद्रा आदित्येभ्यः प्रायच्छँस्तेनादित्यास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्तोखा सहस्रतमी य एवमुख्यां सहस्रतमीं वेद गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनाम् ॥७॥ २०-२१

यथारूपमग्निश्चेतव्यो यो वै यथारूपमग्निं चिनुते नास्यापरूपं जायते गायत्र्या प्रथमां चितिं संचितामभिमृशेत् त्रिष्टुभा द्वितीयां जगत्या तृतीयामनुष्टुभा चतुर्थीं पङ्क्त्या पञ्चमीं यथारूपमेवाग्निं चिनुते नास्यापरूपं जायते प्राणो वै प्रथमा चितिर्व्यानो द्वितीयापानस्तृतीया प्राणापानैरेवैनं

[७] मै. ३,४,८; ९,७ (१३,१७, २७) । कपि. ३५,१ । तै. सं. ५,५,७ ।
[८] मै. ३,४,८ । कपि. ३५,२ । वा. ७,४२; १३,४६ । काण्व. ८,२४; ९,७; १४,४८ । तै. सं. ५,५,७]

समिन्द्ध इडाया वा एषा विभक्तिः पशव इडा पशुभिरेवैनं चिनुते प्रजापतये प्रोच्याग्निश्चेतव्यो यो वै प्रजापतयेऽप्रोच्याग्निं चिनुत आर्तिमार्छत्यश्वा अभितस्तिष्ठेताँ श्याव उत्तराच्छ्वेतो दक्षिणतस्ता आलभ्यमिष्टकामिष्टकामुपदध्यादेतद्वै प्रजापते रूपं प्राजापत्योऽश्वः प्रजापतय एवं प्रोच्याग्निं चिनुते नार्तिमार्छति ॥ हिरण्यपात्रं मधोः पूर्णं ब्रह्मणे ददाति मधव्यो भवति शतमानं शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुरेव वीर्यमवरुन्द्धे चित्रं देवानामुदगादनीकमिति चित्रवत्यावेक्षते चित्रमेव भवति मध्यन्दिनेऽश्वमवघ्रापयत्यसौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः प्राजापत्योऽश्वः प्रत्यक्षमेवैनमृभ्नोति योऽग्नेरग्निं वेदाप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते प्रयास्यन्नग्निं चितमुपतिष्ठेत दीक्षया त्वापं तपसा त्वापँ सुत्यया त्वापमवभृथेन त्वापं वशया त्वापमिति तत् पञ्च संपद्यते पञ्च वा ऋतव ऋतवस्संवत्सरस्संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानर आप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते ॥ एकेष्टकेत्याहुर्ब्रह्मवादिनो वागेवैकेष्टकेति ब्राह्मण एवैकेष्टकेतीम एव लोका एतद्ध स्म वा आहुश्शर्कराख्यातिस्र एव वयमिष्टका अग्निं चित्यं विद्मानेव लोकानिति ससत्योऽग्निश्चेतव्यो भूरिति प्रथमां वितृण्णीमभिमृशेद्भुवरिति द्वितीयाँ स्वरिति तृतीयामेतद्वै वाचस्सत्यँ ससत्यमेवाग्निं चिनुते ससत्यमाग्निमचेष्टा३मुपसत्या३मित्याहुर्ब्रह्मवादिनस्स ह त्वं ससत्यं चिनुते य एवं चिनुते कस्यै देवताया अग्निश्चीयत इत्याहुर्ब्रह्मवादिनः प्रजापतय एव तस्य किं हविरित्यात्मैव ॥८॥ २२-२४

आपो वा इदमासन् सलिलमेव स प्रजापतिः पुष्करपर्णे वातो भूतोऽलेलीयत स प्रतिष्ठां नाविन्दत स एतमपां कुलायमपश्यत् स एतं प्रजापतिरपां मध्येऽग्निमचिनुत सेयमभवत् ततः प्रत्यतिष्ठदियं वावाग्निस्तस्माद्यदस्यां खनन्त्यभीष्टकां तृन्दन्त्यभि शर्करां यां पुरस्तादुपादधात् तच्छिरोऽभवत् सा प्राची दिग्यां दक्षिणत उपादधात् स दक्षिणः पक्षोऽभवत् सा दक्षिणा दिग्यां पश्चादुपादधात् तत् पुच्छमभवत् सा प्रतीची दिग्यामुत्तरादुपादधात् स उत्तरः पक्षोऽभवत् सोदीची दिग्यां मध्य उपादधात् तत् पृष्ठमभवत् सोर्ध्वा दिगियं वावाग्निः पञ्चेष्टको य एवं वेद प्रजायते गच्छति प्रतिष्ठामाग्नेयो वै ब्राह्मणस्तस्माद्ब्राह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुकँ स्वाँ ह्येव दिशमन्वेति सर्वा ह वा इयं वयोभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते तस्मादिमां वयाँसि नक्तं नाध्यासतेऽपां वा एष कुलायस्तस्मादेतमापः प्रहारुका अपाँ ह्येष कुलायः ॥९॥ २५

यदि मन्येत पूर्वो मातिक्रान्तो भ्रातृव्य इति बहिष्पवमानस्य पुरस्तादष्टौ लोकंपृणयोपदध्यान्माध्यन्दिनस्य पवमानस्य पुरस्तादेकादशार्भवस्य पवमानस्य पुरस्ताद् द्वादशायं वाव यः पवते स पवमानो वायुरग्नेस्तेजो य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेजसा प्रणुदते यदि मन्येत पश्चान्मे

[चित्रं देवानां० । (पञ्चमानुवाके द्रष्टव्यम्)]
[९] कपि. ३५,३ । तै. सं. ५,६,४ । [१०] कपि. ३५,४ । वा. ३,२२; १८,६७ । काण्व. ३,३०; २०,३६]

भ्रातृव्य इति पश्चादेतेषां पवमानानामुपदध्यादयं वाव यः पवते स पवमानो वायुरग्नेस्तेजो य
एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेजसापनुदते प्र श्रेयाँसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयाँसं नुदते ॥ स एष
सवनचित् प्रजापतिर्वा उख्यमग्निमबिभस्तस्य शिरः प्रावर्तत तेन देवा अश्राम्यँस्तस्यैतच्छिरः प्रत्य-
दधुर्यदुखा तत् संवत्सरमरोहदग्निः प्रजापतिर्यत् संवत्सरमुख्यं बिभर्ति प्रजापतेरेव शिरः प्रतिदधाति
तस्मात् संवत्सरमुख्यो भर्तव्यो यदर्वाक् संवत्सरादरुश्चिदेव सः ॥ २६-२७

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् येनादित्या वसवो येन रुद्राः ।
येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानस्स्वस्ति ॥ २८

इति घृतेनाक्त्वा समिधमादधाति समिद्भिरेवैषाथो यजमानायैवैतत् स्वस्त्ययनं क्रियते ॥ २९

येऽग्नयः पुरीषिण आविष्टाः पृथिवीमनु । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ॥ ३०

इति स्वमग्निं चितमुपतिष्ठेत सर्वमायुरेत्युप त्वाग्ने दिवे दिव इत्येतेन त्रियृचेनान्येषामाशीरेव सा
॥१०॥ ३१

यर्हि धिष्ण्या उपधीयन्ते तर्हि बार्हस्पत्याभिस्तिसृभिस्तिस्रो दक्षिणत उपदधात्यथ यामीभिस्ति-
सृभिस्तिस्रः पूर्वा अथ रौद्रीभिस्तिसृभिस्तिस्र उत्तराद्दक्षिणतः पशुश्रपणस्याथ वारुणीभिस्तिसृभि-
स्तिस्रोऽवभृथे दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षाँस्यजिघाँसँस्तानि ब्रह्मणापाघ्नत ब्रह्म बृहस्पतिर्यद्बार्ह-
स्पत्या दक्षिणत उपधीयन्ते रक्षसामपहत्या अथ यामीरेताभिर्वा असिताय देवलायेमे लोका अर्वा-
ञ्चश्च पराञ्चश्च प्राभुर्यस्यैता उपधीयन्ते समस्मा इमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च भान्त्यथ रौद्रीरेष वै
रुद्रः पशुश्रपण एवेश्वरो वा एष एतमतोऽनूत्थाय हन्तोर्यद्रौद्रीरुपदधाति तेनैव रुद्रं शमयत्यथ
वारुणीरापो वै वरुण ईश्वरो वा एष एतमवभृथादनूदेत्य वरुणो ग्रहीतोर्यद्वारुणीरुपदधाति निर्वरुण-
त्वाय ॥११॥ ३२

यद्युख्ये भ्रियमाणेऽयं देवः प्रजा अभिमन्येत या आग्नेयीर्भिषग्वतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रस्समिध
आदध्यादेष वावैतत् प्रजा अभिमन्यते यद्भिषग्वतीभिरादधाति भेषजमेव करोति शान्तिरेव सा
यद्युख्ये भ्रियमाणे कामयेत वर्षेदिति यास्सौरी रश्मिवतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रस्समिध आदध्यादेष
वावैतत् प्रजाश्शुचार्पयति यर्हि पर्जन्यो न वर्षति यद्रश्मिवतीभिरादधाति वृष्टिमेव निनयति ताजक्
प्रवर्षति ॥ यद्युख्ये भ्रियमाणे कामयेत न वर्षेदिति यास्सौरीर्भ्राजस्वतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रस्समिध
आदध्याद्भ्राज एव करोति न ताँ समां वर्षति यद्युख्ये भ्रियमाणे नश्येदेताभिश्चतसृभिरुपतिष्ठेताग्ने-
ऽभ्यावर्तिन्नग्ने अङ्गिरः पुनरूर्जा सह रय्येति विन्दत्येव ॥१२॥ ३३-३४

[उप त्वाग्ने दिवे दिवे० । ऋ.१,१,७; सा. । १४; तै. सं. १,५,६,२] [११] कपि. ३५,५ ।
[१२] कपि.३५,६। वा.१२,७-१०,४०-४१। काण्व.१३,८-११,४१-४२। [पुनरूर्जा सह रय्या०। सा.१८३२-१८३३]
काठ० ३१

प्राचीनवँशं कुर्वन्ति प्राची वै देवानां दिग्देवलोकमेवोपावर्तते पुरं आदित्योऽसा अमुमेवादित्य-
मुपोत्क्रामति परिश्रिते याजयन्ति देवलोकमेव परिगृह्य तस्मिन्नेनं दीक्षयन्त्येति वा एषोऽस्माल्लोका-
द्योऽमुं लोकं गच्छत्यन्तर्हित इव वा इतोऽसौ लोकस्तक्षिप्वतीरोकान् कुर्यात् तेनास्माल्लोकान्नैत्या-
ग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपत्यग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चालभ्य दीक्षामुपैति
पवित्रं वा अग्निर्यज्ञो विष्णुः पवित्रपूत एवं यज्ञमालभते यदष्टाकपालस्तेनाग्नेयो यत् त्रिकपालस्तेन
वैष्णवस्तेनो भस्मान्नैत्याग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपत्यग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमो यथा
तेजन्या अन्तौ संगृह्णात्येवमेवैतदुभयतस्संगृह्य मध्यतो देवता आवपते पुरोडाशस्स्याद्ब्रह्मवर्चस-
कामस्य शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत् पुरोडाशो ब्रह्मवर्चसं पुरोडाशो ब्रह्मवर्चसी भवति चरुर्घृते स्याद
प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य वा मिथुनं वा एतद्यद्घृतं च तण्डुलाश्च धेन्वा घृते पयोऽनडुहस्तण्डुला
मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय यतो वा एतद्रूपं यच्चरुरेजतेव होति दीक्षितोऽमुं लोकममु
ह्युप लोकमभिदीक्षते यच्चरुर्भवति समृद्ध्या आङ्क्तेऽभ्युङ्क्तेऽश्नाति वासः परिधत्त एता वै पुरुषस्य
तन्वस्सर्वतनूरेव भूत्वा दीक्षामुपैति च्छिद्रो वै पुरुषोऽन्तरादमेध्यो यदश्नाति मेध्यत्वायैवाच्छिद्र-
त्वायैवमिव वा अमुष्मिंल्लोके यथा दीक्षमाणो यथा मन्येतेत्थं मे नोपतप्स्यतीति तथा व्रतयेदथो
यतः कनीयो दीक्षितस्सन् व्रतयिष्यन् स्यात् तथा प्राश्नीयात् केशश्मश्रु वपते नखान्निकृन्तते दतो
धावतेऽमृतं वा एतत् पुरुषस्यामेध्यममेध्यमेवापहत्य मेधमुपैति स्नात्यङ्गिरसो वा अप्सु दीक्षां
निधाय स्वर्गं लोकमायन् यत् स्नाति तामेव दीक्षामालभते ग्रीवादघ्ने स्नेयं ग्रीवादघ्ने हि ते तां
निधायायन् यावत्येव कियति चाद्भिश्चेत् स्नाति तेनैव तां दीक्षामालभते न वहन्तीभिस्स्नायाद्य-
द्वहन्तीभिस्स्नायात् क्षत्रं यश ऋच्छेन्न कूप्याभिस्स्नायाद्यत् कूप्याभिस्स्नायाद्विशं यश ऋच्छेत्
स्थावराभिस्स्नेयमेता वा अपां दीक्षिताः पशुमतीर्यास्स्थावरा लोमशास्संतता लोमशाः पशवो
यजमानमेव यशसार्पयति तीर्थे स्नेयं तीर्थमेव समानानां भवति॥१३॥ ३५

समिद्दिशामाशया नस्स्वर्विन्मधुरतो माधवः पात्वस्मान् ।
अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदब्ध इदं ब्रह्म जिन्वन्तु पात्वस्मान् ॥ ३६
रथंतरँ सामभिः पात्वस्मान् गायत्री छन्दसां विश्वरूपा ।
त्रिवृद्दिष्टया स्तोमो अह्नाँ समुद्रो वात इदमोजः पिपर्तु ॥ ३७

[१३] मै. ३,६,१ (१) । कपि. ३५,६ । तै. सं. ६,१,१-२ ।
[१४] मै. ३,१६,४; २,७,१९८; १३,११०-१११; ३,१२,१८; २०; (५०-६१,६३-६७) । वा. १३,४; १८,७२-७३; २३,१,३; २५,१०-११; २६,८; ३४,८ । काण्व. १४,४; २०,४१-४२; २,५,१,३; २७,१४-१५; २८,८; ३३,३ । तै. सं. ४,४,१२]

उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाश्शुचिश्शुक्रो अहन्योजस्ये ।
इन्द्राधिपत्यैः पिपृतादतो नो महि क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥ ३८
बृहत् साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्ण्यं त्रिष्टुभौजश्शुभितमुग्रवीरम् ।
इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेनौज इदं वातेन सगरेण रक्ष ॥ ३९
प्राची दिशाँ सहाशया नो विश्वे देवाः प्रावृषाह्नाँ स्वर्वित् ।
इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्टँ सहस्रियँ सहस्वत् ॥ ४०
वैरूपेण साम्ना तच्छकेयं जगत्यैनं विक्ष्वावेशयामि ।
विश्वे देवास्सप्तदशेन मध्यमिदं क्षत्रँ सलिलं वातमुग्रम् ॥ ४१
यन्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाशा मित्रवतीदमोजः ।
मित्रावरुणा शरदाह्नां जिगत्नू अदब्धक्षत्रमिदमस्त्वोजः ॥ ४२
वैराजे सामन्नधि मे मनीषानुष्टुभा संभृतं दुष्टरँ सहः ।
इदं क्षत्रं मित्रवदार्द्रदान्वोजो मित्रावरुणा रक्षतमाधिपत्यैः ॥ ४३
सम्राड् दिशाँ सहसाम्नी सहस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्टया पिपर्तु नः ।
अवस्युवाता बृहती न शक्करीमं यज्ञमवतु या घृताची ॥ ४४
स्वर्वती सुदुघा या पयस्वतीमं यज्ञमवतु या घृताची ।
त्वं नो गोपा अवितोत यन्ता बृहस्पते याम्यां युङ्ग्धि वाचम् ॥ ४५
ऊर्ध्वा दिशां रन्तिराशौषधीनाँ संवत्सरेण सविता नो अह्नाम् ।
रेवत् सामातिच्छन्दा उ च्छन्दोऽजातशत्रुस्सुहवो न एधि ॥ ४६
स्तोम त्रयस्त्रिंशे भुवनस्य पत्नि विवस्वद्वाते अभि नो गृणीहि ।
घृतवती सवितुराधिपत्ये पयस्वती रन्तिराशा नो अस्तु ॥ ४७
४८
हिरण्यगर्भो यः प्राणतः ॥
विराड् दिशां विष्णुपत्न्यघोरास्येशाना सहसो या मनोता ।
विश्वव्यचा इषयन्ती सुभूता शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे ॥ ४९
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना सहसो विष्णुपत्नी ।
बृहस्पतिर्मातरिश्वोत वायुस्संध्वाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥ ५०

[हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३। २,८,२; तत्कनां. अं. ९,९,१२; नि. १०,२३ । यः प्राणतो निमिषतो० । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५, १६,१ । विष्टम्भो दिवो धरुणः० । ऋ. ९,८९,६]

वैश्वानरो न ऊतये पृष्टो दिव्यन्विदनुमते त्वं यत् ते नाम ॥१४॥ ५१

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो यं पाञ्चजन्यं बहवस्समिन्धते ।
विश्वस्यां विशि प्रविविशानमीमहे स नो मुञ्चत्वँहसः ॥ ५२
यस्येदं प्राणन्निमिषद्यदेजति यस्य जातं जनमानं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वँहसः ॥ ५३
इन्द्रस्य मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नस्स्तोमा उप मामिहागुः ।
यो दाशुषस्सुकृतो हवमुप गन्ता स नो मुञ्चत्वँहसः ॥ ५४
यस्संग्रामं जयति सं वशी युधा यः पुष्टानि सँसृजति त्रयाणि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वँहसः ॥ ५५
वायोस्सवितुर्विदथानि मन्महे या आत्मन्वद्भिभृथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्याधिपा बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ५६
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धर्मे अस्थिरन् ।
स्तौमि वायुँ सवितारं नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ५७
मन्वे वां मित्रावरुणा तस्य वित्तँ सत्यौजसा दृंहणा यं नुदेथे ।
या राजाना सरथं याथ उग्रा तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ५८
यो वां रथ ऋजुरश्मिस्सत्यधर्मा मिथूचरन्तमुपयाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणा नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ५९
रथीतमौ रथीनाँ हुव ऊतये शुभं गमिष्ठा सुयमेभिराशुभिः ।
ययोर्वाँ देवौ देवेष्वनिषितमोजस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ६०
यद्यातं वहतुँ सूर्यायास्त्रिचक्रेण सँसदमिच्छमानौ ।
स्तौमि देवा आश्विना नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ६१

[वैश्वानरो न ऊतये० । अथर्व. ६,३५,१, आ. श्रौ. सू. १,११ । पृष्टो दिवि० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । अन्विदनुमते त्वं० । ऋ. परि. ३,४; अथर्व. ७,२०,२]
[१५] मै. ३,१६,५ (७०-८३, ८५-८३) । वा. १८,७२-७३; २६,८; ३४,८ । काण्व. २०,४१-४२; २८,८; ३३,३ । तै. सं. ४,७,१५ । [अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य० । अथर्व. ४,२३,१ । यस्येदं प्राणन्निमिष० । अथर्व. ४,२३,७ । इन्द्रस्य मन्वे० । अथर्व. ४,२४,१ । यस्संग्रामं जयति० । अथर्व. ४,२४,७ । वायोस्सवितुः० । अथर्व. ४,२५,१ । उप श्रेष्ठा न० । अथर्व. ४,२५,७ । मन्वे वां मित्रावरुणा० । अथर्व. ४,२९,१-२ । यो वां रथ० । अथर्व. ४,२९,७ । रथीतमौ (प्र सुमतिं) रथीनाँ० । अथर्व. ४,२५,६ । स्तौमि देवा (भया-द्यावा)० । अथर्व. ४,२८,७]

मरुतां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ६२
तिग्ममायुधमीडितं सहस्वद्दिव्यं शर्धः पृतनासु जिष्णु ।
स्तौमि देवान्मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ६३
विश्वेषां देवानां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ६४
यदिदमभिदासति पौरुषेयाद्दैव्याद्देवेभ्यस्तु द्विपदश्चतुष्पदः ।
स्तौमि विश्वान् देवान्नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ६५
अग्निदनुमते त्वं यत् ते नाम वैश्वानरो न ऊतये पृष्टो दिवि ॥ ६६
ये अग्रयेतामभितोऽभितो जोऽभिर्ये प्रतिष्ठि अमवतां वसूनाम् । ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ६७
उर्वी रोदसी वरिवः कृणुतं क्षेत्रस्य पत्नी अधिवोचतं नः ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥१५॥ ६८
[१७७४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां स्वर्गं नाम द्वाविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२२॥

[मरुतां (देवानां) मन्वे० । अथर्व. ४,२७,१ । तिग्ममायुधमीडितं० । अथर्व. ४,२७,७ । विश्वेषां (मरुतां देवानां०) अथर्व. ४,२७,१ । यदिदमभि० । अथर्व. ४,२६,७ । अग्निदनुमते० । ऋ. परि. १,४ । अथर्व. ७,२०,१ । वैश्वानरो न ऊतय० । अथर्व. ६,३५,१; आ. श्रौ. सू. २,११ । पृष्टो दिवि० । ऋ. १,९८, २; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । ये अग्रयेतामभि० । अथर्व. ४,२६,१-२]

अथ त्रयोविंशं स्थानकम् ।

दीक्षितम् ।

हविर्वै दीक्षितो न हविरनभिघृतं मेधमश्नुते यदभ्यनक्त्यभ्युवैनं घारयति मेध्यत्वाय घृतं देवानां निष्पक्वं मनुष्याणामायुतं गन्धर्वाणाँ स्वयंविलीनमादित्यस्य नैतद्देवत्रा न मनुष्यत्रा यन्नव-नीतं नैष देवत्रा न मनुष्यत्रा यो दीक्षितः प्रच्युतोऽस्माल्लोकादप्राप्तोऽमुं यन्नवनीतेनाभ्यङ्क्ते समृद्ध्यै वासः परिधत्तेऽग्नेस्तूषः पितॄणां नीविरोषधीनां प्रघातो वायोर्वातपा विश्वेषां देवानामोतवश्च तन्तवश्च नक्षत्राणामतीरोकास्सर्वदेवत्यं वासस्सर्वदेवत्यो दीक्षितस्सर्वाभिरेवैनं देवताभिस्सम-र्धयत्याङ्क्त इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं रक्षाँस्यसचन्त तान्यञ्जनगिरिणान्तरधत्त रक्षाँस्येतं सचन्ते यो दीक्षते भवति हि यदाङ्क्ते रक्षसामन्तर्हित्या इन्द्रो वै वृत्रमहँस्तस्य चक्षुः परापतत् तत् त्रिककुभं प्राविशद्यदाङ्क्ते तस्यैव चक्षुषोऽवरुद्ध्यै द्विर्दक्षिणमाङ्क्ते सकृत् सव्यं चितृधत्तो मुखत एव यज्ञ-मालभते त्रिर्दक्षिणमाङ्क्ते द्विस्सव्यं पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धे दक्षिणं पूर्वमाङ्क्ते सव्यं हि पूर्वे मनुष्या आञ्जते व्यावृत्त्यै यजुषाङ्क्तेऽयजुषा हि मनुष्या आञ्जते व्यावृत्त्यै पराचीनमानक्ति न निधावत्याचपराचं हि मनुष्या आञ्जते व्यावृत्त्या इषीकयाङ्क्ते शलल्या हि मनुष्या आञ्जते व्यावृत्त्यै ॥ संतूला भवति मैत्री वै संतूला वारुणी परिशीर्णा मैत्रो दीक्षितस्समृद्ध्या ऊनमिव वा एतच्छिद्रमिव यच्चक्षुर्यदाङ्क्ते तदेवापूरयत्यच्छिद्रत्वाय पावयतीन्द्रो वै वृत्रमहँस्तमप्स्वभ्यध्यहँस्तासां या यज्ञिया मेध्या आसँस्ता उदक्रामँस्ता ओषधयोऽभवन् यत् तेजस्ते दर्भास्तस्मात् ते पवित्रं तस्माद्दर्भैरपः पुनन्ति यद्दर्भपिञ्जूलैः पावयत्यपामेवैनमोषधीनां तेजसा पावयति द्वाभ्यां पावयति द्वे सत्यं चानृतं च सत्येनैवास्यानृतं पावयति द्वौ प्राणश्चापानश्च त्रिभिः पावयति त्रिषत्या हि देवा अथो त्रयो हि प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानस्तानेव यजमाने दधाति पञ्चभिः पावयति पाङ्क्तः पुरुषो यावानेवास्यात्मा तं पावयति सप्तभिः पावयति सप्त वै छन्दाँसि छन्दो-भिरेवैनं पावयति नवभिः पावयति नव प्राणाः प्राणैरेवैनं पावयत्येकविंशत्या पावयत्ये-कविंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पद्या आत्मैकविंशो यावानेवास्यात्मा तं पावयति चित्पतिस्त्वा पुनात्विति ब्रह्म वै चित्पतिर्ब्रह्मणैवैनं पावयति वाक्पतिस्त्वा पुनात्विति स हि पावयिता देवस्त्वा सविता पुनात्विति सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिः पावयत्यच्छिद्रेण पवित्रेणेत्य-च्छम्बट्कारमेवैनं पावयति सूर्यस्य रश्मिभिरित्यादित्यस्यैवैनं तन्वा पावयति तस्य ते पवित्रपते पवित्रेणेति यज्ञो वै पवित्रपतिर्यज्ञेनैवैतत् पुनीते यस्मै कं पुने तच्छकेयमिति यज्ञ शकेयमित्येवै-तदाहान्वञ्चं पावयत्यन्वङ्वै पुरुषं प्राणो यदा वै प्राणस्तिर्यङ् भवत्यथ प्रमीयते यत् तिर्यञ्चं पावयेत

[१] मै. ३,६,२—३ (२—५) । कपि. ३५,७ । वा. ४,४ । काण्व. ४,५ । तै. सं. ६,१,१ ।

तिर्यञ्चमस्य प्राणं कुर्यात् प्रमीयेतान्वञ्चमेवास्य प्राणं करोति बर्हिष्पावयति मनुष्यलोक एवैनं पावयित्वा पूतं देवलोकं प्रणयति ॥१॥
१-२
गर्भो दीक्षितो योनिर्दीक्षितविमितमुल्वं दीक्षितवसनं जरायु कृष्णाजिनमेतस्माद्वै योने-रिन्द्रोऽजायत कुलायमेवैतदासीनं कुलायोपचरति तस्माद्दीक्षितं नान्यत्र दीक्षितविमितात् सूर्योऽभिनिम्रोचेन्नान्यत्राभ्युदियात् स्वादिव योनिः प्रजायत आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहे-त्याकूत्या वै यज्ञः प्रयुज्यते यत्रैव यज्ञमाकुरुते तदेनमालभते मेधायै मनसे अग्नये स्वाहेति मेधया वै मनसाभिगच्छति यजतो स्य इति यज्ञमेवालभते दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहेति दीक्षया वै तपसा यज्ञं प्राप्नोति यज्ञमेवावरुन्द्धे सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहेति वाग्वै सरस्वती पशवः पूषा वाचा पशुभ्यो यज्ञ आलभ्यते वाचैव पशुभ्योऽधि यज्ञमालभत आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुव इत्यापो वै यज्ञो दिवि यज्ञोऽन्तरिक्षे पृथिव्यां ब्रह्म बृहस्पतिरत्रात्र वै यज्ञो यत्र यत्रैव यज्ञस्तत एनं ब्रह्मणा-लभते पञ्चैतानि जुहोति पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धे यज्ञस्य वा एते संभारा यदेतानि यजूँषि यदेतानि न जुहुयादसंभृतोऽस्य यज्ञस्स्याद्यदेतानि जुहोति यावानेव यज्ञस्तं संभरत्यदीक्षितो वा एकयाहुत्यादन्ति ह स्म वा एतस्य पुरान्नं यस्यैतानि न हूयन्ते यदेतानि जुहोति दीक्षितत्वायैव द्वितीयत्वायाग्नये स्वाहाग्नये स्वाहेति जुहोत्यग्निस्सर्वा देवतास्सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे पञ्चैतानि जुहोत्यौद्ग्रभणं षष्ठं षड्वा ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥ यज्ञस्सृष्टः प्र यजुरब्लिनात् प्र साम तमृगेवापच्छ-न्द सामानि द्वादश यजूँषि तस्मादृग्भिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्त्यृचौद्ग्रभणं जुह्वति यदौद्ग्रभणं जुहोति यज्ञमेव सृष्टं प्रत्यृचा यच्छति द्वादशभिर्ह स्म वै काठकोऽपि औद्ग्रभणं जुह्वत्येतदेव स द्वादश-गृहीतं कृत्वा जुहुयात् तेनैव तदाप्नोति पूर्णया स्रुचा जुहोति पूर्णः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति यद्-नेया जुहुयाद्धाद्व्यायच्छेत् कुर्यात् कामं वै पूर्णं यं हि कामं कामयते तं पूर्णस्य कुरुते यमेव कामं कामयते तमवरुन्द्धे ॥ स्वं छन्दसि यज्ञः प्रतिष्ठाप्योऽनुष्टुब् वै प्रजापतेस्स्वं छन्दो यज्ञः प्रजा-पतिर्यदनुष्टुभौद्ग्रभणं जुहोति स्व एव छन्दसि यज्ञं प्रतिष्ठापयति छन्दःप्रतिष्ठानो वै यज्ञस्सं यथाछन्दसं छन्दस्सु प्रतिष्ठाप्यस्सैवानुष्टुप् तस्यास्सप्ताक्षरमेकं पदमष्टाक्षराणि त्रीणि तेषां सप्तानां यानि त्रीणि तान्यष्टा उपयन्ति तान्येकादश सा त्रिष्टुब् यानि चत्वारि तान्यष्टा उपयन्ति तानि द्वादश सा जगती यान्यष्टौ सा गायत्र्येवमितरानुष्टुप् स्वाहाकारेण पङ्क्तिरेतावन्ति वै छन्दाँसि यज्ञमेव यथाछन्दसं छन्दस्सु प्रतिष्ठापयति ॥ यज्ञस्सृष्टो देवताभिरालभ्यो विश्वो देवस्य नेतुरिति यदेतद्गती तेन सावित्री मर्त इति पितृदेवत्या विश्व इति वैश्वदेवी द्युम्नमिति बार्हस्पत्या पुष्यत्विति

[२] मै. ३,६,४-५ (६-७) । कपि. ३५,८ । वा. ४,७-८; ११,६७; २२,२१ । काण्व. ४,८-९; १२,६८, २४,२१ । तै. सं. ६,१,२ । [विश्वो देवस्य नेतु० । ऋ. ५,५०,१; तै. सं. १,२,२,१; ४,१,१,१]

पौष्णी सारस्वतस्स्वाहाकार एतावतीर्वै देवता यज्ञमेव सृष्टं देवताभिरालभते यज्ञस्सृष्टस्त्रेधा प्राविशदृचं तृतीयेन साम तृतीयेन यजुस्तृतीयेन तस्य या प्रिया तनूरासीत् तया यजुः प्राविशत् तस्माद्यजुषो नोच्चैः कीर्तयितव्यं यज्ञस्य प्रियां तन्वमुदूर्णोत्यब्रह्मवर्चसी भवति नग्नंभावुकः ॥२॥
३-६
यज्ञो वै देवेभ्योऽपाक्रामत् कृष्णो भूत्वा तस्मात् पुनरुपावर्तमानादृक्सामे अपाक्रामतां ते कृष्णं प्राविशतां यज्ञं मन्यमाने शुक्लं साम कृष्णमृग्यत् कृष्णाजिनेन दीक्षत ऋक्सामे एवालभतेऽहोरात्रे वै मिथुनं समभवतां तयोरोजो वीर्यमपाक्रामत् तत् कृष्णं प्राविशद्यत् कृष्णाजिनेन दीक्षतेऽहोरात्रयो-रेवौजो वीर्यमालभते द्यावापृथिवी वै मिथुनं समभवतां तयोस्तेजो यज्ञियमपाक्रामत् तत् कृष्णं प्रावि-शद्यत् कृष्णाजिनेन दीक्षते द्यावापृथिव्योरेव तेजो यज्ञियमालभत ऋक्सामयोश्शिल्पे स्थ इत्यृक्सामे एवालभते यथा नावा तरिष्यन्तं एनं संपारयत ओर्द्वचश्शर्मासि शर्म मे यच्छेति देवताश्च वा एषं यज्ञं चाभ्यारोहति यत् कृष्णाजिनमारोहति यदा वै श्रेयान् कामयतेऽथ पापीयाँसं प्रतिनुदते देव-ताभ्यश्चैव यज्ञाय च नमस्करोत्यप्रतिनोदायाशुमवन्ति वा अन्यानि छन्दाँस्यासन्ननाशुमवन्त्य-न्यानि तान्याजिमयुर्यान्याशुमवन्त्यासँस्तानि प्रधक्ष्यामह इति भीषा कृष्णं प्राविशँस्तानीमानि यज्ञं वहन्ति यान्यनाशुमवन्त्यासँस्तानिमान्वक्ष्यामह इति भीषा कृष्णं प्राविशँस्तानीमानि छन्दाँसि यान्ययज्ञवाहानि तानि स्वाराज्यमगच्छन् स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद यत् कृष्णाजिनेन दीक्षत आशुमवन्ति चैवानाशुमवन्ति चोभयानि छन्दाँस्यवरुन्द्धे ॥ होत्रा वै देवेभ्योऽपाक्रामँस्तद्वषट्कारो-ऽप्यचरत् कृष्णो भूत्वास्कन्नं वै वषट्कारोद्धविस्तस्मात् कृष्णाजिने हविरध्यपन्ति हविर्वै दीक्षित-स्तस्मात् कृष्णाजिनमध्यास्ते तस्मान्न निष्ठीवति हविषोऽस्कन्दाय बर्हिष्टाद्वै पशूनां यज्ञश्च देवता-श्चान्तरान्मेदो यद्बहिर्लोमं कृष्णाजिनं कुर्यादन्तर्हितो यजमानो यज्ञाच्च देवताभ्यश्च स्याद्यदन्तर्लोम-मन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यो द्वे समस्येदन्तर्मांसे बहिर्लोम्नी यद्येकं स्यात् पादं प्रतिषीव्येदनन्तर्हितो यजमानो यज्ञाच्च देवताभ्यश्च भवत्यनन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यो विष्णोश्शर्मासि शर्म यजमानस्येति विष्णुर्वै यज्ञो वैष्णवो यजमानो विष्णुनैव यज्ञेनात्मानमुभयतस्सयुजं कुरुते यज्ञो यदसृज्यत तस्यो-ल्बमन्ववेष्टत तद्दीक्षितवसनमभवद्गर्भो दीक्षितो यद्दीक्षितवसनं परिधत्ते स्वेनैव योनिनात्मानमोर्णुते तस्मान्महत् कार्यमेवमिव ह्युल्बेन गर्भ आवृत इव च्छन्न इव न प्रत्यक्षं वदेद्वाचोऽपावयामत्वाय ॥३॥
७-८
अङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते मेखलास्संन्युकिरँस्तेतश्शरं उदतिष्ठद्यच्छरमयी मेखला भवति

[३] मै. ३,६,६—७ (८—११) । कपि. ३५,९ । वा. ४,९—१० । काण्व. ४,१०-११ । तै. सं. ६,१,३ ।
[४] मै. ३,६,७-८ (११-१४) । कपि. ३६,१ । तै. सं. ६,१,३,३ ।

तामेव मेखलामालभते देवा वै यत्रोर्जं व्यभजन्त ततश्शर उदतिष्ठद्यच्छरमयी मेखला भवति तामे-
वोर्जमालभत ऊर्ग्वै मेखला मध्यं प्रति परिव्ययत्यूर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च
तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयति नाभिं प्रति परिव्ययत्यूर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्या मेध्यमवाचीनममेध्यं
मेध्यस्य चामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै त्रिवृद्भवति त्रिवृता वै स्तोमेन प्रजापतिः प्रजा असृजत त्रिवृद्वज्रो
वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरतीन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत् तस्य यत् प्राशीर्यत स शरोऽभवत् तच्छरस्य
शरत्वं वज्रो वै शरो यच्छरमयी मेखला भवति वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति स्तृणुत एनं यं द्विष्यात्
तं परिव्ययन् ध्यायेद्वज्रेणैवैनं समर्पयति मेखला पुंसो भवति योक्त्रं स्त्रियास्स्त्री वै मेखला पुमान्
योक्त्रं मिथुनमेव यज्ञमुखे विपर्यूहेते प्रजननाय वज्रो वै मेखला क्षुदुदारं पाप्मा भ्रातृव्यो यन्मेखलां
परिव्ययते वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमपहते ॥ यज्ञो वै देवेष्वासीद्दक्षिणा पितृषु स यज्ञो दक्षिणा-
मभ्युकामयत तं पितरोऽब्रुवन् देवेषु नो भागधेयमिच्छेति तेऽब्रुवँस्तृतीयसवनभागा आसन्निति
तस्मात् पितृभ्यस्तृतीयसवनं क्रियते तमह्वयत् तां हूतोऽधावन् तस्मात् पुमान् स्त्रिया हूतो धावति
तस्माच्छ्रोत्रियस्त्रीकामतमस्स हि यज्ञस्य नेदिष्ठं तां समभवत् तदिन्द्रोऽचायत् सोऽमन्यत यो वा
इतो जनिष्यते स एवेदं भविष्यतीति तं योनिं प्राविशत् तस्मादजायत स पुनः प्रत्यवैक्षत सोऽम-
न्यत यो वा इतोऽपरो जनिष्यते स मे सपत्नो भविष्यतीति तमनुहाय निर्वेष्टयाच्छिनत् सा
विपाणाभवद्यद्विषाणा भवति यज्ञस्यैव रेत इन्द्रस्य योनिं दक्षिणाया योनिमालभते पञ्चावृद्भवति
पञ्चभिर्हि स तां निर्वेष्टयाच्छिनदिन्द्रस्य योनिरसीतीन्द्रस्य ह्येषा योनिः कृष्यै त्वा सुमनस्याया
इति तस्मात् कृष्टं पच्यत उत्कृधीति तस्मादूर्ध्वा ओषधय उत्पच्यन्ते यजुषा कण्डूयतेऽयजुषा हि
मनुष्याः कण्डूयन्ते व्यावृत्त्यै यदयजुषा कण्डूयेत वरुणवत् कण्डूयेतापि गर्भाः पामना जायेरन्
वाग्वै देवान् मनुष्यान् प्रविशन्त्यैत्तस्या यदत्यरिच्यत तद्वनस्पतीन् प्राविशत् सैषा वनस्पतिषु
वाग्वदति या दुन्दुभौ या नाड्यां या तूणवे यद्दण्डो भवति वाचं एवातिरिक्तमवरुन्द्धे तं मैत्रा-
वरुणाय प्रयच्छति वाचमेवास्मै तत् प्रयच्छति तां शश्वदृत्विग्भ्यो विभजति तस्मादस्य वाङ् नोपद-
स्यत्यास्यदसः कार्युस्तावती ह्यीय वाग्वदत्यथो एतावति हि वाचा वीर्यं क्रियते यो वृक्षः फलग्रहि- ९-१०
स्तस्य कुर्यात् फलग्रहिरसानीति ॥४॥

स्वाहा यज्ञं मनस इति मनसा वै यज्ञ आलभ्यते वातयोनिर्यज्ञो दिवि यज्ञोऽन्तरिक्षे पृथिव्या-
मत्रात्र वै यज्ञो यत्र यत्रैव यज्ञस्तत एनं मनसालभते तं यत्वास्ते यज्ञमेव तद्यत्वास्ते यद्विसृजेद्यज्ञं
विसृजेद्यदि विसृजेत् पुनर्दीक्षयेद्यत् पुनर्दीक्षयेदाहुतीरभिरेचयेद्गायत्रीं वैष्णवीमनुब्रूयाद्गाग्वै गायत्री

[५] मै. ३,६,८—९ (१७—२०)। कपि. ३६,२। वा. १,५; २,१८; ४,६, ११,१४,१६। काण्व. १,८; २,५३; ४,७,१४—१६,१९,२१। तै. सं. ६,१,४]

काठ० ३२

यज्ञो विष्णुर्वाचैव यज्ञं संतनोति बार्हस्पत्यामुत्तरामनुब्रूयाद्ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणा यज्ञस्यार्तं नि-
ष्क्रियते ब्रह्मणैव यज्ञस्यार्तं निष्करोति त्वमग्ने व्रतपा असीत्यग्नये व्रतपतयेऽनुब्रूयाद्व्रतपतिं वा एतस्य
व्रतं गच्छति यो दीक्षितस्सन् व्रतं चरत्यग्निर्देवानां व्रतपतिर्व्रतपतेरेवाधि व्रतमालभतेऽदीक्षिष्टाय-
मसा आमुष्यायण इति त्रिरुपांश्वाह त्रिरुच्चैर्देवेभ्यश्चैव मनुष्येभ्यश्च यज्ञं प्राह नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं
विसृजते दिवा वै मनुष्या यज्ञेन चरन्ति नक्तं देवा अह्नैव रात्रीमभिसंतत्य देवेभ्यो यज्ञं संप्रयच्छति
गोपीथाय व्रतं कृणुतेति यज्ञं कुरुतेत्येवैतदाह पाङ्क्तयेषा व्याहृतिः पाङ्क्तो यज्ञो वाच एवैतत्
सम्यगुद्यते नोत्तानो दीक्षितश्शयीत यदुत्तानश्शयीत देवलोकमुपावर्तेत न न्यङ् शयीत यन्न्यङ्
शयीत पितृलोकमुपावर्तेत ॥ जनो वा इतः पितरो दूरे जनादागच्छति प्रमायुकस्स्यात् तिर्यङ्ङेव
शयीतान्तरिक्षदेवत्यो वै दीक्षितस्स्वमेव लोकं स्वमायतनमुपावृत्य शये नाग्नेः पराङ् शयीताग्निस्सर्वा
देवता देवताभ्य आवृश्च्येताग्निमेवाभ्यावृत्य शयीताग्निस्सर्वा देवता देवता एवाभ्यावृत्य शये देवीं
धियं मनामह इति मार्जयते ब्रह्मणा सतेजस्त्वायाथो आपो मे नेद्दीक्षामवमुष्णान्नित्यन्नं वै मनुष्येभ्य
उदवीभत्सत तद्देवा अपियँस्ता आपोऽब्रुवन्नुपावर्तस्व वयं त एतान् स्वदयिष्याम इति तदुपावर्तत
यद्दीक्षितो मार्जयतेऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै ॥ तस्माद्ब्राह्मण आहार्य आहृते हस्ता अवनेनिर्जितान्नाद्यस्या-
वरुद्ध्यै न वा एतेन हुतं व्रतयितव्यं नाहुतं यो दीक्षितो ये देवा मनुजाता इति व्रतयति प्राणा वै
देवा मनुजातास्तत्रायामेव देवतायां हुतं व्रतयति तेनास्य न हुतं भवति नाहुतमग्ने त्वं सु जागृहीति
स्वप्स्यन्नग्निमभिमन्त्रयेत बहु वा एष सुप्तो व्रत्यं निगच्छत्यग्निर्देवानां व्रतपतिर्व्रतपतय एव व्रतं
संप्रदाय काममृधते त्वमग्ने व्रतपा असीति प्रबुध्याग्निमभिमन्त्रयेत व्रतपतये वा एष व्रतं संप्रयच्छ-
त्यग्निर्देवानां व्रतपतिर्व्रतपतेरेवाधि व्रतमालभते ॥५॥ ११-१३

न दीक्षितेन होतव्यं हविर्वै दीक्षितो रुद्रोऽग्निर्यज्जुहुयाद्धविर्भूतमात्मानं रुद्रायापिदध्यायन्न
जुहुयाद्यज्ञं विच्छिन्द्यात् तदेतद्व्रतमपरस्मिन्नग्ना अधिश्रित्य पूर्वमग्निमभिसंचरति तेनैव यज्ञं संतनोति
यथा वि गौरूधः कुरुत एवमेष देवेभ्यो यज्ञं संभरति यो दीक्षते यज्जुहुयाद्यज्ञं विदुह्यात् सेवयेद्य-
थोपधीते सुत एवं तद्यदुपरि जुहोति सकृदेव याम आगते देवेभ्यो यज्ञं दुहे सर्वं वा एतस्य हवि-
र्भूतं यो दीक्षितो निरादिश्य हि दीक्षते तस्य योऽन्नमत्ति यज्ञं गिरति तस्य यज्ञेनैव प्रायश्चित्तिः॥
पाशेन वा एषोऽभिहितो यो दीक्षितो वरुण्यः पाशस्तस्य योऽन्नमत्ति वरुण एनं ग्राहुको भवति
तस्माद्रुद्रस्य निगस्य चान्नं नाद्याद्देवानां वा एतत् परिपूतं यो दीक्षितो मनुष्याणामिन्न्वै परिपूतं
तुरभ्यत्रायं तस्माद्दीक्षितस्यान्नं नाद्यात् त्रेधा वा एतस्य पाप्मानं विभजन्ते यो दीक्षितो योऽन्नमत्ति

[त्वमग्ने व्रतपा असि०। ऋ. ८,११,१; अथर्व. १९,५९,१; तै. सं. १,१,१४,४; २,३,१]
[६] मै. ३,६,९—१० (२०—२१)। कपि. ३६,३। वा. ४,१,१६; ६,२७। काण्व. ४,१,२२; ६,३९; १०,८। तै. सं. ६,१,४; ३,१,१,४।

स तृतीयं योऽश्लीलं कीर्तयति स तृतीयं यो नाम गृह्णाति स तृतीयं तस्माद्दीक्षितस्य नान्न-
मद्यान्नाश्लीलं कीर्तयेन्न नाम गृह्णीयाद्दानाय वा एष दीक्षतेऽथैतदनृतं करोति यत् प्रतिगृह्णाति गर्भो
दीक्षितो हिनस्ति गर्भं प्रतिगृहीतं पूषा सनीनां सोमो राधसामिति पूषा हि सनीनामीष्टे सोमो
राधसां रास्वेयत् सोमेति सोमो वा एतदेतस्मै रासते यद्दनुत आ भूयो भरेत्यागमे ह्येनं भूयो
देवस्सविता वसोर्वसुदावेति सवितृप्रसूत एव प्रतिगृह्णात्यात्मनोऽहिंसायै देवेभ्यो वै यज्ञो न प्राभवत्
तं दक्षिणाभिस्समभावयन् यद्दीक्षितो भृतिं वनुते यज्ञमेव संभावयति तस्माद् द्वादश रात्रीर्दीक्षितो
भृतिं वन्वीत यावानेव यज्ञस्तं संभावयति॥ देवेभ्यो वा अन्या दक्षिणा नीयन्ते मनुष्येभ्योऽन्यास्ता
एता अनुदिशति वायवे त्वेति या नश्यति निर्ऋत्यै त्वेति यावसीदति रुद्राय त्वेति यां रुद्रो हन्ति
या सँशीर्यते वरुणाय त्वेति याप्सु या श्लेष्मेण यमाय त्वेति यान्येन मृत्युनैता वै देवेभ्यो नीयन्ते
मनुष्येभ्य इतरास्ता एताः पुण्यब्राह्मण एताभिर्भूय उपर्योत्पृभोति य एवं वेद देवीरापो अपां नपादि-
त्यपोऽतिगाहते यदेवासां यज्ञियं यद्धविष्यं तत् परिवृणक्त्यनवक्लेशायाग्निर्वै दीक्षितश्शमयन्त्यग्निमापो
यजुषातिगाहते शान्त्यै शान्तिर्ह्यापोऽथो तेज एवात्मन् भूयस्समाधत्ते यदयजुषातिगाहेत विग्रदिनी-
रापस्स्युर्यजुषातिगाहते ॥ तस्मादापस्संतता अविच्छिन्ना धावन्ति यदि नाव्यां तरेदरणी च रथं चाधाय
तरेदग्निर्वै सर्वा देवता यज्ञो रथो देवताभिश्चैव यज्ञेन च सह तरत्या पाराद्गन्तोर्लोष्टं विमृणन्नासीत तेनास्या
नैते सत्येद्ययं ते योनिर्ऋत्विय इति यथायजुरेदमगन्म देवयजनं पृथिव्या इति देवयजनमध्यवस्य-
त्यृक्सामाभ्याँ संतरन्तो यजुर्भिरित्यृक्सामाभ्यां चैव देवताभिश्च देवयजनमभिसंतरति॥६॥ १४-१७

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वताग्निहोत्रं दर्शपूर्ण-
मासौ चातुर्मास्यान्येष वाव तर्हि यज्ञ आसीत् ते देवा एतं सौम्यमध्वरमपश्यँस्तमाहरँस्तेऽदीक्षयँस्ते-
ऽग्निहोत्रं व्रतमकुर्वताग्निहोत्रं वाव व्रतं तस्माद्याग्निहोत्रस्य स्कन्नस्य प्रायश्चित्तिस्सा व्रतस्य स्कन्नस्य
प्रायश्चित्तिस्तस्माद् द्विव्रतो दीक्षितस्स्याद् द्विर्ह्यग्निहोत्रं जुह्वति तेषां यत् पौर्णमासमासीत् तमग्नी-
षोमीयं पशुमकुर्वत यः पूर्वेद्युरालभ्यते यद्दार्शं तमाग्नेयं योऽनुसवनमालभ्यते वैश्वदेवं प्रातस्सवनम-
कुर्वत वरुणप्रघासान्माध्यन्दिनं सवनं साकमेधाँस्तृतीयसवनं तृतीयसवने पितृयज्ञमवाकल्पयँस्तृतीय-
सवने त्र्यम्बकाँस्तेऽसुरा अपक्रामन्तोऽब्रुवन्न वा इमे ध्वर्तवा अभूवन्निति तदध्वरस्याध्वरत्वं ततो
देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वान् दीक्षते यमेवं विद्वान् दीक्षयति भवत्यात्मना परास्य १८
भ्रातृव्यो भवति ॥७॥

स्वर्गं वा एतेन लोकं प्रयन्ति यत् प्रायणीयं तत् प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वं छिद्यते वा एषो-

[७] मै. ३,६,१० (२१)। कपि. ३६,४। वा. ४,११। काण्व. ४,१४।
[८] मै. ३,७,१ (१)। कपि. ३६,५। तै. सं. ६,१,५।

ऽस्माल्लोकाद्योऽमुं लोकं गच्छति यदादित्यमुदयनीयं भवत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति देवा वा
असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते दिशोऽमोहयन्नेन्न इदमन्योऽनु प्रजानादिति तदाहुस्साध्या वै
नाम देवा आसन् पूर्वे देवेभ्यस्ते दिशो मोहयित्वा स्वर्गं लोकमायन्नेष इमं लोकमन्योऽनु प्रजा-
नादिति ता इमेऽवरे देवा अनु प्राजिज्ञासन्त ता न प्राजानन् सादितिरब्रवीद्वार्यं वृणा अहं व इमा
दिशः प्रवक्ष्यामि मत्प्रायण एव यज्ञोऽसन्मदुदयन इति तस्मादादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्य-
मुदयनीयं वार्यवृतं ह्यस्याः पथ्यां स्वस्तिं यजतेत्यब्रवीत् तया प्राचीं दिशं प्रज्ञास्यथेत्यग्निं यजते-
त्यब्रवीत् तेन दक्षिणां सोमं यजतेत्यब्रवीत् तेन प्रतीचीं सवितारं यजतेत्यब्रवीत् तेनोदीचीमहमेवेमा
उभौ लोकौ वेदेत्यब्रवीदियमदितिस्तस्या इयमूर्ध्वा दिगूर्ध्वा एव तेन स्वर्गं लोकमायँस्ता एता एवं
देवता इज्यन्ते दिशां क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै पथ्यया वै स्वस्त्या देवाः प्राचीं दिशं
प्राजानन्नग्नीषोमा अनुसमपश्यतां सविता प्रासुवदियमदितिरस्यामधि यज्ञं प्राश्नमतन्वत ॥ यज्ञमुखं
वा एतत् संश्रियते यत् प्रायणीयं वाक्पथ्या स्वस्तिर्यत् पथ्यां स्वस्तिं यजति वाचमेव तत् संभर-
यति प्राणापाना एवाग्नीषोमाभ्यां संभरति प्रसवायैव सवितेयमदितिरस्यामधि यज्ञमुखं संभरयति
क्लृप्त्यै वा एतन्निरूप्यते यत् प्रायणीयं मरुतां देवविशा देवविशां वै कल्पमानां मनुष्यविशानु-
कल्पते यन्मरुत्वद्याज्यायाः पदं भवति स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति देवविशामेव कल्पयति तां
कल्पमानां मनुष्यविशानुकल्पते पथ्यां स्वस्तिं यजति तस्मादसा आदित्योऽच्छिन्नं पुर उदेति
पश्चान्निम्रोचति पथ्यां ह्येष स्वस्तिमनुसंचरत्यग्निं यजति तस्माद्दक्षिणतोऽग्र ओषधयः पच्यमाना
आयन्त्याग्नेया ह्योषधयस्सोमं यजति तस्मादापः प्रतीचीर्भूयिष्ठा धावन्ति सौमीर्ह्यापस्सवितारं यजति
तस्मादयमुत्तराद्भूयिष्ठं पवते सवितृप्रसूतो ह्येष पवतेऽदितिं यजति तस्मादियमुपरिष्टात् प्रजाभ्यो
वर्षति पञ्चैता देवता यजति पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धेऽग्रये षष्ठमवद्यति षड्वा ऋतुष्वेव प्रति-
तिष्ठति दश याज्यानुवाक्या भवन्ति दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति स्विष्टकृते
द्वादशी भवतो द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरस्याप्त्यै सप्तदश सामिधेन्यो भवन्ति सप्तदशो वै
संवत्सरः पञ्चर्तवो द्वादश मासा एष वाव स संवत्सरस्संवत्सरादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते ॥८॥
१९-२०

पथ्यां स्वस्तिं यजति वाग्वै पथ्या स्वस्तिर्वाचमेव तदात्मनस्स्पृणोत्यग्निं यजति यदेवास्य
शुष्कमग्निदाह्यं तत् तेन स्पृणोति सोमं यजति यदेवास्यार्द्रमात्मनोऽनग्निदाह्यं तत् तेन स्पृणोति
प्रसवायैव सविता समिष्ट्यै प्रतिष्ठित्या अदितिः पथ्यया स्वस्त्या प्रयन्ति पथ्यया स्वस्त्योद्यन्ति
वाग्वै पथ्या स्वस्तिर्वाचैव प्रयन्ति वाचोद्यन्त्यादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयमस्मिन्नेव

[९] मै. ३,७,२ (२)। कपि. ३६,६। तै. सं. ६,१,५।

लोकेऽर्ध्नुयश्च यज्ञमुखेन प्रतितिष्ठति दिशो वै स्वर्गो लोक एतद्देवत्या दिशो यत् प्रायणीयेन यजते दिश एव स्वर्गं लोकमभ्यातिष्ठति यथा वै तेजन्यृतत एवं यज्ञ ऊयते यदादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयं वर्मा एवैता अन्ततो नयति इविषोऽप्रसंसाय याः प्रायणीयस्यानुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्या या याज्यास्ता अनुवाक्या येनैव प्रयन्ति तेनोद्यन्ति प्रतिपदत्वाय प्रतिप्रज्ञात्यै व्यतिषजेद्याज्यानुवाक्या यं द्विष्यात् तस्य प्रैनमस्माल्लोकाच्च्यावयति नामुं प्रापयति यथा पथ उदेत्येवं तदुभयत एवैनं छिनत्त्यननुयाजं प्रायणीयं स्यादप्रयाजमुदयनीयं समानं वा एतद्धविस्संतत्या आत्मा वै प्रयाजाः प्रजानुयाजा यदेवं कुर्यादात्मानं च प्रजां चान्तरियादप्रजाः प्रमीयेत प्रयाजवती एवानुयाजवती स्यातां समानं वा एतद्धविस्समानी देवता समानं मेक्षणं तेनैव यज्ञं संतनोति नात्मानं न प्रजामन्तरेति ॥ सँस्थाप्या३श्च सँस्थाप्या३मिति मीमांसन्ते स्रवति वै यज्ञोऽसँस्थितस्सँ स्रवन्तं यजमानोऽनु परास्रवति प्रजया च पशुभिश्च सँस्थाप्यमेव पत्नीं तु न संयाजयेदमेध्या वा एषानृता नेश्वरा स्वर्गं लोकं गन्तोस्तामुदयनीये संयाजयति यथा प्रवासी स्वमायतनमागच्छत्येवमेवैतत् पत्नीं यजमानोऽस्मिँल्लोकेऽपि प्रतितिष्ठति दीक्षिताश्च हि वा ईजाना अदन्त्यथ न वसीयाँसो भवन्ति दीक्षितो वै तर्हि यर्हि प्रायणीयेन यजते दीक्षितस्तर्हि यर्ह्यवभृथादुदेति प्रायणीयस्य निष्काष उदयनीयमभिनिर्वपत्युदयनीयस्यैव नाश्नीयादीक्षिताश्नमेव परिवृणक्ति वसीयान् भवति ॥९॥

२१-२२

कद्रूश्च वै सुपर्णी चात्मरूपयोरस्पर्धेतां सा कद्रूस्सुपर्णीमात्मरूपमजयदियं वै कद्रूर्द्यौस्सुपर्णी छन्दाँसि वै सौपर्णानि सा कद्रूस्सुपर्णीमब्रवीत् तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमाहर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेति सा सुपर्णी छन्दांस्यब्रवीदेतस्मै वै पितरौ पुत्रान् बिभृत इदशान् मा स्पृणवानितो मा निष्क्रीणीतेति सा जगत्युदपतच्चतुर्दशाक्षरा सती सा प्राप्य न्यवर्तत तस्या द्वे अक्षरे अहीयेतां सा पशूंश्च दीक्षां चादायापतत् तस्मात् पशुमन्तं दीक्षोपनमति तस्मादाहुर्जगती छन्दसां पशव्यतमेति सा त्रिष्टुबुदपतत् त्रयोदशाक्षरा सती साप्राप्य न्यवर्तत तस्या द्वे अक्षरे अहीयेत, सा दक्षिणां च तपश्चादायापतत् तस्मात् त्रिष्टुभो लोके दक्षिणा नीयन्त एतद्वाव तपो यत् स्वं ददाति तस्मादाहुर्माध्यन्दिनं सवनानां तपस्वितममिति सा गायत्र्युदपतच्चतुरक्षरा सती साजया कर्णगृह्योदपतत् तमस्या अजाऽभ्यारुणत् तदजाया अजात्वं सा तानि च चत्वार्यक्षराणि सोमं चादायापतत् साष्टाक्षराभवद्ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद्गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयाय कस्मात् तेजस्वितमेति यदेवादस्सोममाहरत् तस्माद्गायत्री यज्ञमुखं तस्मात् तेजस्वितमा सा पद्भ्यां द्वे सवने आहरन् मुखेन तृतीयं यन्मुखेनाहरत् तदधयत् तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती धीतमिव तृतीयसवनं

[१०] मै. ३,७,३ (३)। कपि. ३७,१। तै. सं. ६,१,६।

तस्मादृजीषं तृतीयसवनेऽभिषुण्वन्ति यत् तृतीयसवन आशिरमवनयन्ति तृतीयसवनमेव तत् संभरन्तो मन्यन्ते ॥१०॥ २३

इन्द्राग्नी श्नथद्वृत्रमिन्द्रावरुणयोरहं नू न इन्द्रावरुणा सं वां कर्मणोभा जिग्यथुरस्मे इन्द्राबृहस्पती बृहस्पतिं नः ॥ २४

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां निशिशीतमत्रिणः ॥ २५
इन्द्रासोमा समघशँसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २६
इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ २७
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत् सचा ॥ २८
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आवहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ २९
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३०
ऋभुर्ऋभुभिरभि वस्स्याम विभ्वो विभुभिश्शवसा शवाँसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाता इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ ३१
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरा अतष्टेन्द्रवाहा ऋभवो वाजरत्नाः ॥ ३२
वर्धीं वृत्रं भूरि चकर्थ विश्वाहेन्द्र एनाङ्कुषेण ॥११॥ ३३

[११] मै. २,४,३७; ४,१०,१२५—१२६; ११,८५,८६; १२,२,८६,१२७—१२८,१६३। [इन्द्राग्नी नवतिं०। ऋ. ३,१२,६; सा. १५७६, १७०४; तै. सं. १,१,१४,१। श्नथद्वृत्रं०। ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३। इन्द्रावरुणयोरहं०। ऋ. १,१७,१; तै. सं. २,५,१२,२। नू न इन्द्रावरुणा०। ऋ. ६,६८,८। सं वां कर्मणा०। ऋ. ६,६९,१; तै. सं. ३,२,११,१। उभा जिग्यथुर्नः०। ऋ. ६,६९,८; अथर्व. ७,४४,१, तै. सं. ३,२,११,२; ७,१,६,७। अस्मे इन्द्राबृहस्पती०। ऋ. ४,४९,४; तै. सं. ३,३,११,१। बृहस्पतिं (०स्पतिर्नः) नः०। ऋ. १०,४२,११; ४३,११; ४४,११; अथर्व. ७,५१,१, २०,१७,११; ८९,११, ९४,११; तै. सं. ३,३,११,१। इन्द्रासोमा तपतं०। ऋ. ७,१०४,१; अथर्व. ८,४,१। इन्द्रासोमा समघशंसं०। ऋ. ७,१०४,२; अथर्व. ८,४,२; नि. ६,११। इन्द्रा नु पूषणा०। ६,५७,१; सा. २०२। यदिन्द्रो अनयद्रितो०। ऋ. ६,५७,४; सा. १४८। इन्द्रापर्वता बृहता०। ऋ. ३,५३,१; सा. ३३८। ममत्तु नः परिज्मा०। ऋ. १,१२२,३; तै. सं. २,१,११,१। ऋभुर्ऋभुभिरभि वस्स्याम०। ऋ. ७,४८,२; नि. ५,२। शच्याकर्त पितरा०। ऋ. ४,३५,५। वर्धीं वृत्रं०। ऋ. १,१६५,८; तै. ब्रा. २,८,३,६। भूरि चकर्थ०। ऋ. १,१६५,७; नि. ६,७। विश्वाहेन्द्र (०हेन्द्रो)०। ऋ. १,१००,१९, १०२,११। एनाङ्कुषेण०। ऋ. १,१०५,१९; नि.५,११]

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा हव्यवाडग्निरजरः ॥ ३४

पितरो विश्वविभावा सुदृशीको अस्मे सुगार्हपत्यास्समिषो दीदिह्यस्मद्र्यक्संमिमीहि श्रवाँसि य इमा विश्वा जातानि विश्वा रूपाणि ॥ ३५

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ३६
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ३७
उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ ३८
हँसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३९
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४०
भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥ ४१
मित्रस्य चर्षणीधृतश्श्रवो देवस्य सानसि । सत्यं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ४२
मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम ॥ ४३
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ ४४

[१२] मै. १,५,३०; २,७,७०,६५; ४,९,३१; १२,१६५,१६७—१६८,१७१—१७५,१७७—१८१। का. ११,६१; १२,३; १६,१६; १७,१७। काप्र. १२,६४; १६,३; १७,१६; १८,१७। [त्वमग्ने बृहद्वयो०। ऋ. ८,१०२, १; तै. सं. ३,४,११,१। य इमा विश्वा जातानि०। ऋ. ५,८२,९। विश्वा रूपाणि प्रति०। ऋ. ५,८१,२; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३। त्वं च सोम नो वशो०। ऋ. १,९१,६; तै. सं. ३,४,११,१। ब्रह्मा देवानां पदवीः०। ऋ. ९,९६,६; सा. ९४३; तै. सं. ३,४,११,१; तै. आ. १०,१०,१; नि. १४,१३। उदप्रुतो न वयो०। ऋ. १०,६८,१; अथर्व. २०,१६,१; तै. सं. ३,४,११,३। हँसैरिव सखिभिः०। ऋ. १०,६७,३; अथर्व. २०,९१,३; तै. सं. ३,४,११,३। त्वं सुतस्य पीतये०। ऋ. १,५,६; अथर्व. २०,६९,४; तै. सं. ३,४, ११,४। भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा०। ऋ. १०,५०,४; तै. सं. ३,४,११,४। मित्रस्य चर्षणी०। ऋ. ३,५९,६; तै. सं. ३,४,११,५; ४,१,६,३; तै. ब्रा. ४,३,२। मित्रो जनान्यातयति०। ऋ. ३,५९,१; तै. सं. ३,४, ११,५; तै. ब्रा. ३,७,२,३; नि. १०,२२। प्र स मित्र मर्तो०। ऋ. ३,५९,२; तै. सं. ३,४,११,५; नि. २,१३]

यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ४५
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ४६
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ ४७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥१२॥ ४८

[१८११]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां दीक्षितं नाम त्रयोविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२३॥

अथ चतुर्विंशं स्थानकम्।

साक्षीति।

या श्येताक्षी कृष्णवाला कृष्णशफा न तया क्रीणीयाद्धतं वा अस्या एतत् परिपिष्टं पितृदेवत्या सा प्रमायुकस्स्याद्या द्विरूपा न तया क्रीणीयाद्वार्त्रघ्नी सा जिनाति वा जीयते वोत तया राजन्यस्य क्रीणीयान्न हि तस्यान्तरास्ति जिनाति वा हि स जीयते वा याधीलोधकर्णी तया षोडशिनं क्रीणीयादतिरिक्तं वा एतद्रूपाणामतिरिक्तष्षोडश्यतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति या बभ्रुरेकहायनी तया क्रीणीयाद्वाग्वै सोमक्रयणी पुरुषो वाग्यदेकहायन्या क्रीणाति तस्मादेकहायनः पुरुषो वाचं वदति यज्ज्यायस्या क्रीणाति तस्माज्ज्यायान् वदति ॥ छन्दाँसि वा अमुष्माल्लोकात् सोममाहरन् गायत्री श्येनो भूत्वा तं गन्धर्वा अन्तरा पर्यमुष्णन् विश्वावसुस्स तिस्रो रात्रीरुपहृतोऽवसत् तस्मात् तिस्रो रात्रीस्सोमः क्रीतो वसति तं देवाः पुनरयाचन्त तमेभ्यो न पुनरददुस्तेऽब्रुवन् गवा निष्क्रीणामेति तेऽमन्यन्त यज्ञेन विक्रेष्यामहे यद्गवा निष्क्रेष्याम इति तेऽब्रुवन् स्त्रीकामा वै गन्धर्वा वाचँ स्त्रियं कृत्वा मायामुपावसृजँस्तेऽमन्यन्त प्रजया व्यक्रेष्महि ये वाचा व्यक्रेष्महीति तेऽन्वार्तीयन्तास्माकँ सोमोऽस्माकँ सोमक्रयणीति ते गन्धर्वा अब्रुवन् विह्वयामहा इति ते ब्रह्म गन्धर्वा अवदन्नगायन् देवास्सा देवान् गायत उपावर्तत तस्माद्गायन्तँ स्त्री कामयते न ब्रह्म वदन्तमद्भुताद्धि सा ब्रह्मणे

[यत्किंचेदं वरुण०। ऋ. ७,८९,५; अथर्व. ६,५१,३; तै. सं. ३,४,११,६। कितवासो यद्रिरिपुर्न०। ऋ. ५,८५,८; तै. सं. ३,४,११,६। यथा नो अदितिः०। ऋ. १,४३,२; तै. सं. ३,४,११,२। मा नस्तोके तनये०। ऋ. १,११४,८; तै. सं. ३,४,११,२; ४,५,१०,३]

[१] मै. ३,७,३—४ (३—६)। कपि. ३७,२। का. ४,३४। काप्र. ४,४३। तै. सं. ६,१,६।

तस्मादाहुरक्रीता सोमेन सोमक्रयण्यस्ति देवान् हि सा पुनरुपावर्ततेति तेऽब्रुवन् स्त्रीकामा वै
गन्धर्वा बहु वै गन्धर्वेषु मिथुनीभवन्ती संभरन्त्यचारीरषः प्रविश्योदेहीति तस्या यद्धृतं परिपिष्ट-
मासीत् तज्जरती कूटा भूत्वोदैत् तेऽब्रुवन् पितृदेवत्या वा इयमिति तस्मात् तां पितृभ्यो घ्नन्ति
तेऽब्रुवन् पुनः प्रविश्योदेहीति सा पष्ठौही वार्त्रघ्नी द्विरूपा भूत्वोदैत् सा तेन रूपेणापास्तृणुत तस्मात्
सा वरोऽतिवरेण्यो नैनं वरो हिनस्ति य एवं विद्वान् वरं वृणीते तेऽब्रुवन् पुनः प्रविश्योदेहीति सा
बभ्रुरेकहायनी भूत्वोदैत् तयाक्रीणँस्तस्मात् सा सोमक्रयणी तदस्या रूपम् ॥१॥ १-२

सोमक्रयण्या तृतीयसवनमवरुध्यं पशवो वै तृतीयसवनं यद्गवा क्रीणाति तेनैव तृतीयँ सवन-
मवरुन्द्धे रोहिते चर्मन् मिमीते तस्माद्रोहितरूपं पशवो भूयिष्ठा न विचेतवा अनुमन्येत न विचीय-
मानस्योपद्रष्टा स्यात् सोम ओषधीनामधिराजो ग्रसितमस्य निष्खिदति क्षोधुको भवति तस्मात्
सोमविक्रयी क्षोधुकोऽपामन्ते क्रीणाति सरसमेवैनं क्रीणाति हिरण्येन क्रीणाति सतेजसमेवैनं
क्रीणात्यजया क्रीणाति सतपसमेवैनं क्रीणाति धेन्वा क्रीणाति साशिरमेवैनं क्रीणात्यनडुहा क्रीणाति
वह्वयेव यज्ञस्यावरुन्द्धे वत्सतरेण च वत्सतर्या च क्रीणाति मिथुनमेवास्य क्रीणात्यृषभेण क्रीणाति
सेन्द्रमेवैनं क्रीणाति तदाहुः प्रजापतिना वा एष विक्रीणीते यदृषभेण विक्रीणीत इति य एव कश्च
साण्डस्स्यादरेतास्तेन क्रीणीयात् तेनैव सेन्द्रं क्रीणाति न प्रजापतिना विक्रीणीते दशभिः क्रीणाति
दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति ॥२॥ ३

जूरसीति वाग्वै सोमक्रयणी जवते हि वाचेत्थं चेत्थं च पश्यन् सोमक्रयणीं जुहोति वाग्वै
सोमक्रयणी पश्यत्यैवैनां यच्छति धृता मनसेति मनसा हि वाग्धृता जुष्टा विष्णव इति यज्ञो वै
विष्णुर्यज्ञायैवैनां जुष्टां करोति तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहेति यो वा एत-
स्यास्तन्वो यन्त्रमश्नुते भवति स सवितृत एवास्यास्तन्वो यन्त्रमश्नुते स्वाहाकारेणैवैनां यच्छत्य-
मुष्मा आदित्याय प्रोच्य सोमः क्रेतव्यो देव सूर्य सोमं क्रेष्याम इत्यमुष्मा एवादित्याय प्रोच्य
सोमं क्रीणाति ॥ चिदसीति वाग्वै सोमक्रयणी शास्त्येवैनां तस्माच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते मना
असीति मनसा हि वाग्धृता धीरसीति ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च दक्षिणासीति दक्षिणा ह्येषा
यज्ञियासीति यज्ञिया ह्येषा क्षत्रियासीति क्षत्रिया ह्येषाथो यँ ह्येषा जुषते स क्षत्रियो भवत्यदिति-
रस्युभयतश्शीर्ष्णीत्यदितिर्ह्येषोभयतश्शीर्ष्ण्युभयतो ह्येषा यज्ञं परिभूरादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्य-
मुदयनीयँ सा मा सुप्राची सुप्रतीची भवेति सुप्राचीमेवैनां सुप्रतीचीं कुरुते मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति

[२] मै. ३,७,४ (६) । कपि. ३७,३ । तै. सं. ६,१,९—१० ।
[३] मै. ३,७,५-६ (७-८) । कपि. ३७,४ । वा. ४,१७-२०; ६,९ । काण्व. ४,२३-२७; ६,१० । तै. सं. ६,१,७ ।
काठ० ३३

यत् पदि बद्धा स्यात् पितृदेवत्या स्याद्वाग्वै सोमक्रयणी वरुण्यः पाशो वाग्वरुणगृहीता न वदेयत्
कर्णगृहीता स्याद्वार्त्रघ्नी स्याद्यदनालब्धायता ॥ मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति ब्रह्म वै मित्रो ब्रह्मणैवैनं
पदि बध्नाति पूषाध्वनस्पात्विती यं वै पूषास्या एवैनां परिददातीन्द्रायाध्यक्षायेतीन्द्रो वै देवाना-
मोजिष्ठस्तमेवास्या अध्यक्षं करोत्यनु त्वा माता मन्यतामनु पितेति पिता च ह्येतस्या माता चानु-
मन्तारौ सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोममिति देवी ह्येषा देवमच्छैतीन्द्राय सोमं रुद्रस्त्वावर्तयत्विति
रुद्रो वै देवानां क्षेपिष्ठस्तमेवास्याः परस्तात् करोत्यपरानँशाय स्वस्ति सोमसखा पुनरेहीति पुन-
रेवास्या आवृत्तायै स्वस्ति करोति ॥३॥ ४-६

दक्षिणेन पदा दक्षिणानि पदान्यनुनिंक्रामति तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यावत्तरष्षट् पदान्य-
नुनिंक्रामति षडृतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति षट् पृष्ठानि तान्येवावरुन्द्धे सप्तमं पदमभिगृह्णाति सप्त
ग्राम्याः पशवस्तानेवावरुन्द्धे सप्तधेयँ वाग्वदति तामेवाप्नोति वस्व्यसि रुद्रासीति देवनामानि वा
एषैतानि प्रपद्यत इयमसीयमसीत्येवैतदाह यद्यद्धवत्यथो वाचं एवैतत् सम्यगुद्यते बृहस्पतिस्त्वा
सुम्ने रण्वातु रुद्रो वसुभिराचक इति ब्रह्म वै बृहस्पती रुद्रो देवानामोजिष्ठो गा एव देवानामोजिष्ठौ
ताभ्यामेनामन्ततो यच्छति ॥ पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजन इत्येष हि पृथिव्यां मूर्धा
यद्देवयजनमिडायास्पदे घृतवति स्वाहेतीडा वा एषा तस्या एतद्घृतवत् पदं स्वाहाकारेणैवैनां यच्छ-
तीदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति भ्रातृव्यो वै रक्षो भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति स्फ्येन पदं
परिलिखति वज्रो वै स्फ्यः पशवः पदं वज्रेणैवास्मै पशून् परिगृह्णाति यावद् घृतं विषावेत् तावद-
भिपरिलिखेत् पशवो वै घृतं पशूनेवावरुन्द्धे स्थाल्यां पदं संवपत्यादित्यां वै पशवः पृथिव्यदितिः
पृथिव्यास्स्थाली संभृता स्व एवैनान् योनौ दधात्यस्मे रमस्वास्मे ते राय इति यत् त्वे राय इति
ब्रूयादितरस्मै पशून् संप्रयच्छेदध्वर्युरपशुस्स्यान्मे राय इत्यात्मन्नेव पशून् यच्छते ॥ त्वष्टृद्धा वा एषा-
हुतिर्यामनग्नौ जुहोति यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति संमृद्ध्या अनग्नौ वा एतामाहुतिं
जुहोति तामीश्वराणि रक्षाँस्यनूदय्य हन्तोर्यदपो निनयति शान्त्या एव रक्षसामपहत्या अयोनीन्वा
एतत् पशूंन्छुचार्पयति यदेषां पदं परिस्वायाहरति यदपो निनयति पशूनेव शुचो मुञ्चति सोम-
क्रयण्या पत्नीं संख्यापयति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेत्यतो ह्रीमाः प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननाय ॥४॥ ७-९

हस्ते हिरण्यं कृत्वा मिमीते सत्यं वै हिरण्यँ सत्येनैवैनं मिमीतेऽमृतं वै हिरण्यममृतेनैवैनं मिमीत

[४] मै. ३,७,६-७ (८-११) । कपि. ३७,५ । वा. ४,२१-२२, ५,२२,२६; ६,१ । काण्व. ४,२८-२९; ५,२८,३३;
६,१ । तै. सं. ६,१,८ ।
[५] मै. ३,७,४ (६) । कपि. ३७,६ । वा. ४,२४-२५ । काण्व. ४,३३-३५ । तै. सं. ६,१,९ ।

आस्माकोऽसीति स्वमेवैनं कुरुते शुक्रस्ते ग्रह इति शुक्रमेवास्य गृह्णात्यभि त्यं देवं सवितारमिति सवितृ-
प्रसूत एवैनं देवताभिर्मिमीतेऽतिच्छन्दसा मिमीते वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दा वर्ष्मैवैनां
गमयति यज्ञं च यजमानं चैकैकया मिमीत आसामेव वीर्याण्याप्नोति तस्मादिमाः कामं न्यंचामः
कामं प्रसारयामो यत् सर्वाभिस्सह मिमीत हस्तमासां वीर्यमभिसंमियादङ्गुष्ठेन प्रतिमिमीते तस्मादेषं
एतासां वीर्याणि प्रत्युदेव सृजेन्न न्युचेयन्क्रयचेत् पाशं कुर्याद्वरुण्युः पाशो वरुण एनं ग्राहुकस्स्याद्य-
दुत्सृजति वरुणपाशादेवात्मानं परिवृणक्ति ॥ द्विर्मिमीते द्वे हि शुक्रिये सवने दश कृत्वो मिमीते
दशाक्षरा विराडन्नं विराड्विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति यत् परिमितं मिमीत परिमितं जीवनँ स्याद-
परिमितं मिमीते तस्मादिदमपरिमितं जीवनं यत् परिमितं मिमीत यजमानायैव स्यादपरिमितं
मिमीते तेन सदस्येभ्योऽपि क्रियते प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्त्विति प्रजा वा अंशवः प्रजास्वेव
प्राणं दधाति चतुर्गृहीतमाज्यं भवति चतुष्पादः पशवः पशूनेवास्मै गृह्णात्येतद्रूपा वै पशवो यद् घृतं
सरूपानेव पशूनवरुन्द्धे ॥ इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्च इति हिरण्यं घृतेऽवदधात्येषा वा अग्नेः प्रिया
तनूर्यद् घृतं तेजो हिरण्यं प्रियामेवास्य तन्वं तेजसा समर्धयति रेतो वै हिरण्यं पशवो घृतं यद्धिरण्यं
घृतेऽवदधाति पशुष्वेव रेतो दधाति तस्मादनस्थकाद्रेतसोऽस्थन्वन्तो गर्भाः प्रजायन्ते बध्नावदधाति
गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय निष्टक्युं बध्नाति तस्माद्योनिर्गर्भा मुच्यन्ते यदनिष्टक्यं बध्नीयान्न योने-
र्गर्भा मुच्येरन् यजुषावदधाति यजुषोद्धरति यजुषैव युनक्ति यजुषा विमुञ्चति तस्मात् पराचीः
प्रजा रेतो दधतेऽर्वाचीः प्रजायन्ते ॥५॥ १०-१२

न पूर्वस्मिन् पदमुपवपेद्देवानां वा एष प्रदग्धाहुतीनां रुद्रोऽग्निः पशवः पदं रुद्राय पशूनपि-
दध्यादपशुस्स्याद्गार्हपत्य उपवपति गार्हपत्यं वै पशवोऽनूपतिष्ठन्त एष पशूनां योनिस्स्व एवैनान्
योनौ दधाति यत्र शान्तमिवानङ्गारँ स्यात् तदुपवपेच्छान्त्या अनुद्दाहाय सोमं ते क्रीणामीति सोम-
स्यैवैतद्राज्ञो वीर्याणि महिमानं व्याचष्टे न कलाशः पणेत यत् कलाशः पणते सोमस्य राज्ञो वीर्य-
मवतिरति यजमानस्यावर्तिं व्याचष्टे क्षोधुको भवतीयमिति ब्रूयात् तस्या आत्मा तस्या रूपं तस्याः
प्रजा तस्याः पय इति न सोमस्य राज्ञो वीर्यमवतिरति न यजमानस्यावर्तिं व्याचष्टेऽक्षोधुको
भवति ॥ शुक्रं ते शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेनेति शुक्रमेवास्य शुक्रेण क्रीणाति चन्द्रं
चन्द्रेणामृतममृतेन शक्म यत् ते गोरस्मे ते चन्द्राणीत्यात्मन्नेवास्य वीर्यं धत्ते तेन निर्वीर्येण भूतेन
विक्रीणीते तपसस्तनूरसीति तपसो ह्येषा तनूः प्रजापतेर्वर्ण इत्यग्निर्वै प्रजापतेरग्निजा अजास्सहस्रपोषं
पुष्यन्तीत्येषा हि पशूनाँ सहस्रपोषं पुष्यत्यतो ह्येष श्रीजनयन्त्यथो द्वौ परमेण पशुना क्रीयस इति

[अभि त्यं देवं० । अथर्व. ७,१४,१; श्रौ. सू. ४,६]
[६] मै. ३,७,७-८ (१०-१४) । कपि. ३७,७ । वा. ४,२६-३१ । काण्व. ४,३६-४४ । तै. सं. ६,१,१०-११]

परमो ह्येषा पशूनामस्मे ते बन्धुरित्यात्मन्नेवास्या वीर्यं धत्ते तया निर्वीर्यया भूतया विक्रीणीते ॥
छन्दाँसि वा अमुष्माल्लोकात् सोममाहरँस्तत् तमोऽन्तराधीयत सा गायत्र्यजया ज्योतिषोदपतत्
सास्यै प्रारोचयदेतर्हि वा एष एतस्मा आह्रियते यर्हि क्रीयते तम इदमन्तरा यदजया क्रीणाति
प्रैवास्मै रोचयति मित्रो न एहि सुमित्रधा इति वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्यैति मित्रमेवैनं
कुरुतेऽपोर्णुते यथा श्रेयाँसमायान्तं पापीयान् प्रत्यपोर्णुत एवमेव तदिन्द्रस्योरुमाविश दक्षिण-
मितीन्द्रो वा एतमग्र ऊरा आधत्तेन्द्रो यजमानस्स्व एवैनं योनौ दधाति स्वान्नभ्राडिति सोमक्रयणा
ननुदिशत्येते वा एतद्गन्धर्वा अगोपायन्नमुष्मिंल्लोके तं गायत्र्याहरन्नेष्टापोत्रोः प्रति गोपीथं तस्मादेवे
होत्रे व्यृद्धे व्यृद्धसोमपीथे तस्मान्न नेष्ट्रा न पोत्रा भवितव्यं तस्मादेतौ सँसचन्ता इव यजतस्तमेते-
ऽन्वायन्नेते वा एतस्य गन्धर्वाः पुष्टिं हरन्ति तस्मात् सोमविक्रयी न पुष्यति यदि कृच्छ्रायेतोपैव
हरेत् तेभ्यो ह्येष गन्धर्वेभ्योऽधि क्रीयत उदायुषेति यथायजुरुर्वन्तरिक्षं वीहीत्यन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष
एतर्ह्यपि पन्थामगन्महीति रक्षाँसि वा एतमेतर्हि सचन्ते प्रच्युतमितोऽप्राप्तमदो रक्षाँस्येव घ्नन्
एत्यनसाच्छ यान्ति महिमानमेवास्याच्छ यन्त्यनसा वहन्ति तस्मादनोवाह्यमोषधयः पच्यन्ते
यच्छीर्ष्णा हरेयुश्शीर्षहार्यमोषधयः पच्येरन्नदित्यास्त्वगस्यदित्यास्सदने सीदेत्यादित्यो वै सोमः
पृथिव्यदितिः पृथिव्या अनस्संभृतँ स्व एवैनं योनौ दधाति वारुणो वै सोमस्वं देवतया व्यर्धयति
यन्मित्रं करोति यद्वारुण्या सादयति स्वयैवैनं देवतया समर्धयति वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेति वाससा
पर्यानह्यति सर्वदेवत्यं वै वाससर्वाभिरेवैनं देवताभिस्समर्धयति सूर्यस्य चक्षुरारुहमिति कृष्णाजिनं
पुरस्तात् प्रत्यानह्यन्ति रक्षाँसि वा एतमेतर्हि जिघाँसन्ति स्वर्गं लोकमभ्यारोहन्तमसा आदित्यो-
ऽपरिपरः पन्थास्तमेवैनमभ्यारोहयति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥६॥ १३-१५

प्रच्यवस्व भुवनस्पत इति भूतानाँ ह्येष पतिर्विश्वान्यभि धामानीति देवता वै विश्वा धामानि
देवता एवैनमभि प्रच्यावयति श्येनो भूत्वा परापतेति श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठश्श्येनमेवैनं कृत्वा
रक्षाँस्यतिसृजति यजमानस्य नो गृहे सँस्कृतमिति यजमानायतनमेवैनं करोत्यथो यजमानस्यैव गृहे
देवताभिस्सँस्कृतं कुरुते नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षस इति वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्येति
मित्रमेवैनं कुरुत आसन्दीमुद्गृह्णन्ति यथा मनुष्यराजायावस्थितायासन्दीमुद्गृह्णन्त्येवमेव तदग्निना
प्रतितिष्ठतेऽग्निस्सर्वा देवता देवताभिरेवैनं प्रतितिष्ठतेऽग्नीषोमौ वा एतर्हि यजमानमभि संधत्तो यत्
पशुना प्रतितिष्ठते तमेवाभ्यामपिदधात्यग्नीषोमाभ्यां वा एष आत्मानं मेधायालभते यो दीक्षते यत्

[वनेषु व्यन्तरिक्षं० । ऋ. ५,८५,२; तै. सं. १,२,८,१]
[७] मै. ३,७,८ (१४) । कपि. ३७,८ । वा. ४,३४-३५ । काण्व. ४,४६-४७ । तै. सं. ६,१,११ । [नमो मित्रस्य
वरुणस्य० । ऋ. १०,३७,१; तै. सं. १,२,९,१]

पशुमालभत आत्मान तन । इष्टीणाति यन्मूत्रस्य मुखो द्विदेवत्यस्य रूपं लोमशः पीवा पुरुषरूपस्तमालभत तस्य योऽश्नाति पुरुषमत्ति तस्मात् तस्य नाशितव्यं क्षुध्यति वै दीक्षितः क्षुध एष निष्क्रयण आलभ्यते तस्य योऽश्नाति क्षोधुको भवति तस्मात् तस्य नाशितव्यमग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमहन् स एष वार्त्रघ्नः पशुर्विजित्या आलभ्यते तस्मादस्याशितव्यं देवता वा एनं पूर्वेद्युरालभ्यमानं नाभिप्राच्यवन्त परस्मायज्ञक्रतोर्निरेष्याम इति तमग्नीषोमा एवाभिप्राच्यवेतां पराचीरितरा यज्ञमभ्यवसृजन्त तस्मादेषोऽग्नीषोमीय आलभ्यते तस्मादग्नीषोमाभ्यां ग्रहो न गृह्यते॥ तौ देवानुपावर्तमानौ तयोर्वेन् प्रियं धामासीत् तदपन्यदधातां तद्देवा अन्वैष्टुमध्रियन्त ते प्रबाहुगिच्छन्त आयंस्ते नवं वा इदं मुमनित्यब्रुवन्नवमित्यब्रुवँस्तन्नवनीतस्य नवनीतत्वं यत् मुममिति तत् सर्पिरस्सर्पिर्हि यदजोऽविन्दत् तदाज्यस्याज्यत्वं स घृङ्ङकरोत् तद् घृतस्य घृतत्वं तस्मादजो घृङ्ङकरिश्चरति तत् पशुनन्वाकुर्वंस्तत् पशवस्समभरंस्तेनैतेन पशुभ्योऽधिजायन्ते ता अब्रुवतां वार्यं वृणावहा अवमेव नौ भागधेयमस्तु यो नौ प्रियं धामाविन्ददिति तस्मादेषोऽग्नीषोमीय आलभ्यते तस्मादस्याशितव्यं वार्यवृतो हि ॥७॥ १६--१७

विमुक्तोऽन्योऽनड्वान् भवत्यविमुक्तोऽन्योऽथातिथ्यं निरुप्यते यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय यदमौ विमुक्तौ स्यातां पितृदेवत्यँ हविस्स्याद्विच्छिन्नो यज्ञोऽसंततोऽनवरुद्धो यदमा अविमुक्तौ वार्त्रघ्नँ हविस्स्यात् संततो यज्ञोऽविच्छिन्नोऽवरुद्धो यद्विमुक्तोऽन्यो भवत्यविमुक्तोऽन्यो वार्त्रघ्नँ हविर्भवत्यपितृदेवत्यँ संततो यज्ञोऽविच्छिन्नोऽवरुद्धः पत्नीमन्वारम्भयित्वा निर्वपति पत्नी वै पारीणह्यस्येशेऽनुमतमेव प्रसूतं देवेभ्यो हविर्निर्वपति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय ॥ यावन्तो वै पुण्यमन्वायन्ति सर्वेभ्यस्तेभ्य आतिथ्यं क्रियते छन्दाँसि सोमं राजानं क्रीतमन्वायन्नग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वेति त्रिष्टुभैतन्निर्वपत्यतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेति जगत्यैतन्निर्वपत्यग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वेत्यनुष्टुभैतन्निर्वपति श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति गायत्री वा एतमाहरदमुष्माल्लोकात् तस्मात् सा पुनर्याम्णी तस्मात् पुनः प्रयुज्यते यच्छन्दोभिर्निर्वपति छन्दाँस्येव भागधेयवन्ति करोति पञ्च कृत्वो निर्वपति पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धे विष्णवे त्वा विष्णवे त्वेति विष्णुर्वा एतर्हि यज्ञो यदनिरुक्तस्तस्माद्वैष्णवः पुरोडाशो भवति त्रिकपालः कार्यस्स हि वैष्णवो नवकपालस्तेनैव त्रिकपालस्त्रयो हि ते त्रिकपाला नवकपालो भवति नव प्राणाः प्राणैरेव यज्ञमुखे त्रेधा तेज एव त्रिवृतं यज्ञमुखेऽधिवियातयति यत् त्रिकपालस्तेन वैष्णवो यत् षट् तेन छन्दसां तेनोभयस्माकैति ॥ पशुरालभ्यस्सोमाय राज इत्याहुर्मनुष्य-

[८] मै. ३,७,९ (१०)। कपि. ३८,२। श. ५,१। काण्व. ५,१। तै. सं. ६,२,१।

राजावेक्ष्यै पशुरालभ्यत इत्यग्निं मन्थन्त्याग्नेया वै पशवस्तदेवास्मै पशुमालभतेऽग्निस्सर्वा देवतास्सर्वा एव देवतास्सोमाय च छन्दोभ्यश्चागतेभ्यो जनयत्याश्ववालः प्रस्तारो भवत्यैक्षवा उद्यावा अश्व इव वै प्रजापतिरासीत् तस्यैते वाला आसन् यदश्ववाला एतौ बाहू या उद्यावौ तं देवा अन्वारभ्य स्वर्गं लोकमायन् यदाश्ववालः प्रस्तारो भवत्यैक्षवा उद्यावौ प्रजापतिमेवान्वारभते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि येऽश्ववाला यदाश्ववालः प्रस्तारो भवति प्रजापतेरेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते ॥ रक्षाँसि वै देवानां यज्ञमजिघाँसँस्तानि काष्मर्येणापाघ्नत यत् काष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै यद्धै देवा एतेनाकुर्वत तेनाभुवँस्तदस्य कर्मण्यत्वं कर्मण्यो वै नामैष यज्ञमुख एवैतेनभ्नोति सप्तदश सामिधेन्यो भवन्ति सप्तदशो वै संवत्सरः पञ्चर्तवो द्वादश मासा एष वाव स संवत्सरस्संवत्सरादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते ॥ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं ग्रीवा उपसदो यत् सँस्थापयेन्मुखतो यज्ञे सँस्थापयेच्छिरो ग्रीवाभ्यो यज्ञस्यावच्छिन्द्यादिडान्तं भवति शिर एव ग्रीवासु यज्ञस्य प्रतिदधाति नवकपालो भवति तस्मान्नवधा पुरुषस्य शिरो विष्यूतमुपसदो वा एतस्यानुयाजास्तानूनप्त्रमाशीस्तस्मादननुयाजं भवति ॥८॥ १८-२२

देवा वा अन्योऽन्यस्य श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त ते चतुर्धा व्युदक्रामन्नग्निर्वसुस्सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैस्ते देवाः पापीयाँसोऽभवन् वसीयाँसोऽसुरास्तेऽविदुः पापीयाँसो वै स्मे भवन्ति वसीयाँसोऽसुरा इति ते प्रियास्तन्वस्समवाद्यन्त ते ब्रुवन्नेषां नस्तन्न पारयाद्यो नोऽन्योऽन्यस्मै द्रुह्यादिति तस्मात् सतानूनप्त्रिणे न द्रोग्धवै यद् द्रुह्यति प्रियायै तन्वै द्रुह्यति यत् तन्वस्समवाद्यन्त तत् तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वं ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वाँस्तानूनप्त्रमुपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्यसौ वा आदित्य इन्द्रस्तस्य ते श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त तिष्ठन्तेऽस्य समानाश्श्रैष्ठ्याय य एवं वेदैतस्मिन् वै ते तास्तन्वस्संन्यदधत तस्मादेष तेजिष्ठं तपति तस्मात् सूर्यदेवत्यास्सोमा भूयिष्ठा हूयन्त आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन् स्रुग्भ्यां बाहुभ्यां सोमो वृत्रो घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदस्याज्येनान्तिकं जुह्वत्यँशुरँशुस्ते देव सोमाप्यायतामिति यदेवास्य घ्नन्ति यन्निवमयन्ति तदाप्याययन्ति यन्ति वा एतेऽस्माल्लोकाद्ये सोममाप्याययन्त्येष्टा रायः प्रेषे भगायेत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठन्ति पितरं च वा मातरं च हिनस्ति यो गर्भँ हन्त्यनयोर्गर्भस्सोमो राजा नमो दिवे नमः पृथिव्या इत्याभ्यामेव निह्नुते किं दीक्षया स्तृणोतीत्याहुः किमवान्तरदीक्षयेत्यात्मानमेव दीक्षया स्तृणोति प्रजामवान्तरदीक्षया संतरां मेखलामायच्छते ॥ कनीयो व्रतमुपैति तस्मादात्मनः प्रजाँहीयसी यत् परस्सत्यां विसृजते तस्मात् परोवरीयः प्रजया पुत्रेण पौत्रेण प्रथतेऽग्निर्वै दीक्षितश्शमयन्त्यग्निमापो मदन्तीनां मार्जयते मदन्तीनां व्रतयत्यशान्त्यै शान्तिर्ह्यापोऽथो तेज एवात्मन् भूयस्समाधत्ते न

[९] मै. ३,७,१० (१६—१८)। कपि. ३८,२। श. ५,७—८। काण्व. ५,९—१२। तै. सं. ६,२,२।

वा एतेन हुतं व्रतयितव्यं नाहुतं यो दीक्षितोऽग्निर्वै रुद्रोऽग्निरेष तन्वं विपरिधत्ते या ते अग्ने रुद्रिया तनूरिति व्रतयति स्वायामेव देवतायाँ हुतं व्रतयति तेनास्य न हुतं भवति नाहुतम् ॥९॥ २३-२४

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्तेषामसुराणामिमाः पुर आसन्नयस्मयीयं रजतान्तरिक्षँ हरिणी द्यौस्ते देवास्संघातँ संघातं पराजयन्त तेऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात् पराजयामह इति त एताः पुरः प्रत्यकुर्वत हविर्धानं दिव आग्नीध्रमन्तरिक्षात् सदः पृथिव्यास्तेऽब्रुवन्नुपसदमुपायामोपसदा वै महापुरं जयन्तीति त उपसदमुपायँस्तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो निरघ्नँस्तस्मादाहुरुपसदा वै महापुरं जयन्तीति त एभ्यो लोकेभ्यो निर्हता ऋतून् प्राविशँस्ते षडुपायँस्तानुपसद्भिरेवर्तुभ्यो निरघ्नन् द्वाभ्याममुष्माल्लोकाद् द्वाभ्यामन्तरिक्षाद् द्वाभ्यां पृथिव्यास्त ऋतुभ्यो निर्हतास्संवत्सरं प्राविशँस्ते द्वादशोपायँस्तानुपसद्भिरेव संवत्सरान्निरघ्नँश्चतसृभिरमुष्माल्लोकाच्चतसृभिरन्तरिक्षाच्चतसृभिः पृथिव्यास्ते संवत्सरान्निर्हता अहोरात्रे प्राविशँस्ते यत् सायमुपायँस्तेनैनान् रात्र्या अनुदन्त यत् प्रातस्तेनाह्नस्तस्माद्ग्रीष्मायं प्रातस्तनमाप्यायते प्रातस्सायन्तनं तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो नुदमाना आयँस्ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् सर्वेभ्य एवैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदमान एति य एवं विद्वानुपसद उपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति ॥ न द्वादशाग्निष्टोमस्य कुर्याद्दशान्ता निर्मृज्युर्न तिस्रोऽहीनस्योपरिष्टाद्यज्ञक्रतुर्गरीयानभिषीदेद्ग्रीवा निश्शृणीयादार्तिमार्छेद् द्वादशाहीनस्य कुर्याच्छान्त्या अनिर्मार्गाय तिस्रोऽग्निष्टोमस्य भ्रातृव्यवधै सयत्वाय ते देवा असुरानिमाँल्लोकान्नान्वैतुमधृष्णुवँस्तानग्निना मुखेनान्ववायन् यदग्निमन्त्युपसदां प्रतीकानि भवन्ति यथा क्षेत्रपतिः क्षेत्रेऽन्ववनयत्येवमेवैतदग्निना मुखेनेमाँल्लोकानभिजयन्तो यन्ति यो ह वै देवान् साध्यान् वेद सिध्यत्यस्मा इमे वाव लोका देवास्साध्यास्सिद्धं ह्यस्मै सिद्धमस्मै सिद्धममुष्मै य एवं वेद सिध्यत्यस्मै ॥१०॥

२५-२६

[१८४८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां सार्षीति नाम चतुर्विंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२४॥

[१०] मै. ३,८,१-२ (१—३)। कपि. ३८,३। तै. सं. ६,२,३

अथ पञ्चविंशं स्थानकम्।

इषुः।

इषुं वा एता देवास्समस्कुर्वन् यदुपसदोऽग्निँ शृङ्गँ सोमँ शल्यं विष्णुं तेजनं तेऽब्रुवन् यो न ओजिष्ठस्स इमां विसृजत्विति ते रुद्रमब्रुवँस्त्वं वै न ओजिष्ठोऽसि त्वमिमां विसृजेति सोऽब्रवीद्वार्यं वृणा अहमेव पशूनामीशा इति तेऽमन्यन्त यदयं पशूनामीशिष्यते सर्वान्निर्णेष्यतीति तेऽब्रुवन् सप्ताहानीशासै न पराचीनमिति तस्मात् सप्ताहानि रुद्रः पशूनामीशे रक्षाँसि पराचीनं घ्नन्ति तां व्यसृजत् तया पुरस्समरुजयत् समरुजत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वं विसृष्टिमेव भ्रातृव्याय विसृजति य एवं विद्वानुपसद उपैति न पुनरपक्रामेद्यतरो वै संयत्तयोः पुनरपक्रामति परा स जयति ॥ समेष एतर्हि यतते य उपसद उपैति सकृदेव पराङतिक्रम्याश्रावयति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजाः पुरो वा एते यज्ञस्य यत् प्रयाजानुयाजा यत् प्रयाजानुयाजान् कुर्यात् पुरो यज्ञस्य कुर्याद्दुरतिव्यथँ स्यादतीक्ष्णामिषुं कुर्याच्चतुर्व्रतो भवति चत्वारि हीष्वाः पर्णानि त्रिव्रतो भवति त्रिपन्धिर्हीषुश्शृङ्गँ शल्यस्तेजनं द्विव्रतो भवति द्विपन्धिर्हीषुश्शल्यश्च तेजनं चैकव्रतो भवत्येका ह्येवेषुरिषुमेवैतां सँस्कृत्य तां श्वो भ्रातृव्याय विसृजत्यथो व्रतमेवाप्नोति ॥ ग्रीवा वा एता यज्ञस्य यदुपसदो न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजास्तस्माद्ग्रीवाः प्रतिपुरुषस्याणिष्ठं तास्सवीर्याः प्रयुज्यन्ते तस्माद्ग्रीवा अणिष्ठास्सतीर्वीर्यावत्तमास्तिस्र उपसदो भवन्ति त्रय इमे लोकास्तस्मात् पुरुषस्य त्रयस्स्कन्दा अतिषक्ताभिर्यजति तस्माद्ग्रीवा अतिषक्ता अथो अयातयाम्न्यायातयाम्न्यैव यजति सच्छन्दसो याज्यानुवाक्याः कुर्याद्यद्विच्छन्दसस्स्युरपरिचितो होतारँ हन्युर्भिद्वतीः पुरां भित्त्यै ॥१॥

१-३

देवाश्च वा असुराश्च यज्ञे संयत्ता आसन् स यज्ञोऽविभेद्यतरेऽभिजेष्यन्ति ते मा विमथिष्यन्त इति स न्यलयत तं देवा अभिजित्यान्वैच्छँस्ते प्रबाहुगिच्छन्त आयँस्तमिन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत् सोऽब्रवीत् को मायमुपर्युपर्यत्यक्रमीदित्यहमेष कृच्छ्रे हन्तेत्यथ कस्त्वमित्यहमेष कृच्छ्रादाहर्तेत्येमूषो नामायं वराह इत्यब्रवीदेकविंशत्याः पुरामश्ममयीनां पारे यत्किंचासुराणां वामं वसु तेन तिष्ठति तं जहि य एष कृच्छ्रे हन्तावोचथा इति तमिन्द्रो दाल्भूष्याभिविसृज्य पराभिनत् सोऽब्रवीदेष हतस्तमाहर य एष कृच्छ्रादाहर्तावोचथा इति तं विष्णुरपासङ्ग आहरद्यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनैवैषां तद्यज्ञमवृञ्जत पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियं ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञेनैवैतद्यज्ञं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियं भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति देवयजन-

[१] मै. ३,८,१—२ (१—६)। कपि. ३८,४। तै. सं. ६,२,३।
[२] मै. ३,८,३ (११)। कपि. ३८,५। तै. सं. ६,२,४।

मिच्छन्ति यज्ञमेवेच्छन्ति यद्विन्दन्ति यज्ञमेव विन्दन्ति यदुदीचीनं प्राचीनं प्रवणँ स्यात् तस्मिन् यजेत यज्ञकाम एवमेव हि स यज्ञोऽशयद्यज्ञस्यानुवित्त्यै यत् समं प्रतिष्ठितं तस्मिन् यजेत गतश्रीः प्रतिष्ठा वा एतस्मा एष्टव्या यो गतश्रीरेतद्भूम्याः प्रतिष्ठितं यत् समं प्रतिष्ठामेवास्मै विन्दति गच्छति प्रतिष्ठां त्र्युन्नते यजेत भ्रातृव्यवाँस्त्र्युन्नतेन वै विष्णुरिमांल्लोकानुदजयत् स एभ्यो लोकेभ्योऽसुरान् प्राणुदतेमानेव लोकानुञ्जयत्येभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदते ॥ यस्यैकधा मध्य उन्नतँ स्यात् तस्मिन् यजेत स्वर्गकामोऽतो वै देवास्स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै यत्रौषधयो बह्वीरन्या अन्या इव स्युस्तस्मिन् यजेत पशुकाम ओषधयो वै पशवो भूमानमेव पशूनामुपैति यत्रौषधयः कृच्छ्रशः पर्यायशः परीयुस्तस्मिन् यजेत पशुकामोऽतो वै देवाः पशूनुदसृजन्त पशूनेवोत्सृजते यद्दक्षमलोमकं तस्मिन् याजयेद्यं द्विष्याद्वृद्धं वा एतदोषधिभिर्यद्दक्षमलोमकमोषधयः पशवः पशुभिरेवैनं व्यर्धयति ॥ यत् समया देवयजनं पन्था विधावेत् तस्मिन् याजयेद्यं कामयेत व्येनं प्रजया पशुभिश्छिन्द्यामित्येतद्वै विच्छिन्नं नाम देवयजनं व्येनं प्रजया पशुभिश्छिनत्ति यदन्तरापश्च देवयजनं च पन्था विधावेत् तस्मिन् याजयेद्यं कामयेत नैनमपरो यज्ञ उपनमेदित्येतद्वै परिवर्म नाम देवयजनं पर्येणमपरो यज्ञो वृणक्ति यत्रापस्सर्वतस्समवद्रवेयुस्तस्मिन् यजेतान्नकामो दिग्भ्यो वा एतस्मा अन्नँ हरन्ति यस्मै हरन्त्यापोऽन्नँ सर्वाभ्य एव दिग्भ्योऽन्नाद्यमवरुन्द्धे तदेतत् समापं नाम देवयजनं नीपतमभिवर्तसमानानां भवति ॥२॥ ४-६

यत्रापः प्राचीराहवनीयात् प्रतीचीर्गार्हपत्याद्धवद्रवेयुस्तस्मिन् याजयेद्यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमाँसेरन् पाप्मना वा एषोऽनुषक्तो यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमाँसन्ते पाप्मनैवैनं व्यावर्तयति यत्रापो दक्षिणा परिप्लूय पश्चात् प्राची रमेरँस्तस्मिन् यजेत बुभूषन्नापो वै सर्वा देवता एतद्देवताभिर्जुष्टं देवयजनं यदेवं देवताभिरेव जुष्टे देवयजने यजते भवत्येव यत्रापो दक्षिणत उदीची रमेरँस्तस्मिन् यजेत सजातकाम आपो वै सर्वा देवता देवतास्सजातास्सजातानामेवैनं प्रार्धं करोति कृत्रिमे यजेत बुभूषन्नात्मा वै देवयजनं करोत्येवैनं यत्राग्निं चापश्च पश्यन् प्रातरनुवाकमनुब्रूयात् तस्मिन् यजेत यः कामयेत यज्ञो मापर उपनमेदित्यग्निर्वै सर्वा देवता आपो यज्ञ उपैनमपरो यज्ञो नमति देवताश्च हि यज्ञं च पश्यन् यजते यत्राग्निमपस्सूर्यं पश्यन् प्रातरनुवाकमनुब्रूयात् तस्मिन् यजेत ब्रह्मवर्चसकाम एतद्वै त्रिशुक्रियं नाम देवयजनं ब्रह्मवर्चसी भवति यत् पुरस्तादाप्तँ स्याद्देवयजनं तस्मिन् यजेत भ्रातृव्यवान् भ्रातृव्याय वा एष लोक उच्छिष्यते यः पुरस्ताद्देवयजनस्योच्छिष्यत एतावन्तमेवास्मै लोकमुच्छिंषत्यलोकमेनं करोति यो ह वै विद्वान् देवयजनं यजत ऋध्नोत्यभि-

[३] मै. ३,८,४ (१४)। कपि. ३८,६ । तै. सं. ६,२,६ ।
काठ० ३४

र्वाव देवयजनमग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते यत्रैव क्वचाग्निमाधाय यजेत तेनैवर्ध्नोति ब्राह्मणा वाव देवयजनं यत्र ब्राह्मणा बहवस्संराधयेयुस्तस्मिन् यजेत तेनैवर्ध्नोति ॥३॥ ७

वेदिं विमिमीते त्रिंशता पश्चात् प्रक्रमैर्मिमीते षट्त्रिंशता प्राचीं चतुर्विंशत्या पुरस्ताद्विराजैवैनां पश्चात् परिमिमीते बृहत्या प्राचीं गायत्र्या पुरस्ताच्छन्दोभिरेवैनाँ सर्वतः परिमिमीते विराज्येव प्रतितिष्ठति यद्विराजमभिसंपादयति स्फ्येन स्तम्बयजुर्हरतीन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत् स त्रेधाभवत् स्फ्यस्तृतीयं यूपस्तृतीयं रथस्तृतीयं वज्रो वै स्फ्य एतावती पृथिवी यावती वेदिर्वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भजति त्रिर्हरति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यो निर्भजति ॥ तूष्णीं चतुर्थँ हरत्यपरिमितादेवैनं निर्भजतीन्द्रो वै वृत्रँ हत्वा तमनयाभिन्यदधाद्यं तूष्णीं चतुर्थँ हरत्यनयैव भ्रातृव्यमभिनिदधाति मूलं छिनत्ति भ्रातृव्यस्यैव मूलं छिनत्त्युद्घ्नन्ति तस्माच्छिशिर ओषधयः पराभवन्ति बर्हिस्स्तृणाति तस्माद्वसन्ता पुनराभवन्त्यपाररुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहीति भ्रातृव्यो वा अररुर्भ्रातृव्यमेव पृथिव्या अपहन्ति द्रप्सस्ते द्यां मा स्कानिति यो वा अस्या रसस्स द्रप्सस्तमिमाः प्रजा उपजीवन्ति तमेवास्यां यच्छति तस्मात्स्कन्दायारुर्द्यां मा पप्तादिति भ्रातृव्यो वा अररुर्भ्रातृव्यमेव स्वर्गाल्लोकात् प्रतिनुदते ॥ विषाद्वै नामासुर आसीत् स पृथिवीं विषेणालिम्पत् तस्या न कश्चनाश्नाद्य आश्नात् सोऽरुप्यद्यदुद्घ्नन्ति यदेवास्या अमेध्यमयज्ञियं तदपघ्नन्त्यपि मूलमनुखनेदाविद्धस्य निष्कृत्या अधो दूरं खनेदधो वा अस्या वीर्यं वीर्यस्याभितृत्त्यै तस्मात् सुकृष्टे व्रीहियवाः पच्यन्ते तदाहुरुत्तरार्धे वा अस्या वीर्यं तदिमाः प्रजा उपजीवन्ति तस्मान्नातिखेयेत्या प्रतिष्ठायाः खनेद्यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै दक्षिणत उद्धनां कुर्याद्देवयजनस्य रूपं रक्षसामपहत्यै पुरीषवतीं पशवो वै पुरीषं पशूनेवावरुन्द्धे ॥४॥ ८-१०

स्फ्येन वेदिं परिगृह्णाति वज्रो वै स्फ्य एतावती पृथिवी यावती वेदिर्वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भज्य छन्दोभिरात्मने परिगृह्णाति वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसेति दक्षिणतस्तेजो वै ब्रह्म गायत्री तेजसैवैनं दक्षिणतः परिगृह्णाति रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसेति पश्चादोजो वै वीर्यं त्रिष्टुबोजसैवैनां पश्चात् परिगृह्णात्यादित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसेत्युत्तराज्जगता वै पशव उत्तरादायतनाः पशवः पशुभ्य एवैतदायतनं करोति पशूनां धृत्या अथो तेजसा चोभयतः पशून् परिगृह्णाति पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्निति यद्वा अस्यास्तेजो यज्ञियं तददश्चन्द्रमसि तदेवावरुन्द्धे ॥ इध्माबर्हिषी प्रोक्षति शुष्काणि वा एतान्यमेध्यान्यारण्यादाहृतान्यापो मेध्या यज्ञिया यदद्भिः प्रोक्षति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति वेदिं प्रोक्षति मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोत्यथो यदेवास्या

[४] कपि. ३९,१ । वा. १,२५—२६ । काण्व. १,४१,४३ ।
[५] मै. ३,८,५—६ (१५—१६) । कपि. ३९,२ । वा. १.२७—२८ । काण्व. १,४४—४५ ।

उद्घ्नन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति बर्हिस्स्तृणाति प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदः प्रजा एव पृथिव्यां प्रतिष्ठापयति सर्वां वेदिमनुस्तृणाति तस्मात् पृथिवीँ सर्वामन्वोषधयो बहुलँ स्तृणीयादक्षोधुको यजमानो भवत्यनग्रंभावुकोऽध्वर्युर्बर्हिषि प्रस्तरँ सादयति यजमानो वै प्रस्तरः प्रजा बर्हिर्यजमानमेव प्रजास्वधिसादयत्युत्तरँ सादयत्युत्तरो हि यजमानो यजमानाद्व्यावृत्तँ सादयति व्यावृत्तो हि यजमानो यजमानेनाक्त्वा प्रस्तरे प्रहरति यजमानो वै प्रस्तरो हविर्भूतमेवैनँ स्वर्गं लोकं गमयति नात्यग्रं प्रहरेद्यदत्यग्रं प्रहरेद्वृक्णकेशीर्जनयस्स्युरभ्यासरिणीर्निशुका अग्रमग्र आदीपयत्यग्रेणैवाग्रँ समर्धयत्यृजुं प्रहरेत् स्वर्गकामस्यर्जुमेवैनँ स्वर्गं लोकं गमयति यं द्विष्यात् तस्य हृर्छयेत् स्वर्गादेवैनं लोकाद्धृर्छप्रहरेत् स्वर्गकामस्यर्जुमेवैनँ स्वर्गं लोकं गमयति यं द्विष्यात् तस्य हूर्छयेत् स्वर्गादेवैनं लोकाद्धूर्छ-

यति ॥ न्यञ्चं प्रहरेद्वृष्टिकामस्य या वा इव आहुतिरुदयते सामुतो वृष्टिं च्यावयति स्वयैवाहुत्या दिवो वृष्टिं निनयत्यूर्ध्वं प्रहरेद्यदि कामयेत पुमानस्य पुत्रो जायेतेत्यूर्ध्व एव हि पुमान् प्रथयित्वा प्रहरेद्यदि कामयेत स्त्री जायेतेत्येवमेव हि स्त्री प्रथितेव यजमानो वै प्रस्तर एति वा एतदस्माल्लोकाद्यत् प्रस्तरं प्रहरति यत् तृणमुपगृह्णात्यस्मिन्नेवैनं लोके यच्छत्यनुप्रहरति यदेवास्यावमृशन्तः क्रूरं कुर्वन्ति यद्विच्छिन्दन्तस्तच्छमयत्यगा३नग्नी३दित्यगन्नित्यगन् स्वर्गं लोकमित्येवैतदाह श्रावय ११-१२
श्रौषदिति स्वर्गमेवैनं लोकं गतँ श्रावयति ॥५॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्तान् यदस्यास्तेजो यज्ञियमासीत् तत् सिंहीरूपमिव महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठत् तेऽविदुर्यतरान्वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति तां देवा उपामन्त्रयन्त सात्रवीद्वार्यं वृणै मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयँ सर्वान् कामान् व्यश्नवाथेति सा देवानुपावर्तत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्न्युप्यते यथैवं विद्वान्भवति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति दश पश्चात् तिरश्ची पदानि भवन्ति दशोभयतः प्राच्यपरिमिता पुरस्ताद्विराजा संमिता यद्वा असुराणां वित्तमासीत् तद्देवा वेद्याविन्दन्त तद्वेद्या वेदित्वं यद्वेद्यं तदुत्तरवेद्या तदुत्तरवेद्या उत्तरवेदित्वं यस्यैवं विदुषो वेदिश्च क्रियत उत्तरवेदिश्च न्युप्यते वित्तं चैव वेद्यं च भ्रातृव्यस्य विन्दते प्रजापतेर्वै नासिकाशीर्यत सोत्तरवेदिरभवद्यज्ञः प्रजापतिर्यदुत्तरवेदिं निर्वपति प्रजापतेरेव नासिकां मुखतः प्रतिदधाति चत्वारि वा एतस्या नामानि नासिका कशारिसिंह्युत्तरवेदिस्तप्तायन्यसीति वप्ता ह्येनानैद्वित्तायन्यसीति वित्ता ह्येनानैदवतान् मा नाथितमिति नाथितान् ह्येनानावदवताद्व्यथितमिति व्यथितान् ह्येनानावदग्ने अङ्गिरो योऽस्यां पृथिव्यामसि यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यामिति यदेवास्यैषु लोकेषु श्लिष्टं यद्व्यक्तं तदवरुन्द्धे विदेदग्निर्नभो नामेति॥ यद्वा अग्नेर्वामं वस तन्नभस्तेनेमां पृथिवीं प्राविशआनुदभमधस्तस्माज्ञानुदभ्रं खेयं तस्यैव वामस्य

[६] मै. ३,८,५ (१५) । कपि. ३९,३—४ । वा. ५,९—१०; ३३,३० । काण्व. ५,१३—१४; ३२,३० । [विभ्राड् बृहत् पिबतु० । ऋ. १०,१७०,१; सा. ६२८, १४५३]

वसोरनुवित्त्यै सिंहासि महिष्यसीति सिंहीरूपमिव हि तन्महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठद्देवेभ्यः प्रथस्वेति प्रथयत्येवैनान् देवेभ्यः कल्पस्वेति कल्पयत्येवैनान् देवेभ्यश्शुन्धस्वेति शुन्धत्येवैनान् देवेभ्यश्शुम्भस्वेति शुम्भत्येवैनां विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वित्यन्तान् कल्पयति देवपात्रं वा उत्तरवेदिर्देवपात्रेणैव देवतास्तर्पयत्यथो देवताभ्य एव देवपात्रं निवेदयति ॥ यतीन् वै सालावृकेया आदँस्त आदीयमानास्संमृश्यमाना उत्तरवेदिं समुदक्रामँस्तानाभ्यधृष्णुवँस्तेषामेकोऽस्मयत तत एनानभ्यधृष्णुवँस्तेषामेकैकमावर्हमादँस्तस्मान्न मोघहासिना भव्यं यन्निस्सारयति यदेवास्या अभिमृतममेध्यं तन्निस्सारयति प्रोक्षत्येतावती वा इयं पृथिव्यासीद्यावत्युत्तरवेदिस्ताँ समन्त रक्षाँसि संप्राकम्पन्त तानि देवा विनुधैताभिर्देवताभिस्समन्तं परिन्यदधुर्यत् प्रोक्षत्येतद्देवत्या वा इमा दिशो रक्षाँस्येव विनुधैताभिर्देवताभिस्समन्तमात्मानं परिनिदधाति ॥ गोपीथायैतद्वा एतां पूर्वामग्नेराहुतिरश्नुते यदाघारयत्यथादोऽब्रवीन्मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयँ सर्वान् कामान् व्यश्नवाथेत्यथ वा एषां तर्ह्यसुरास्सपत्ना आसँस्तेऽकामयन्त सपत्नान् सहेमहीति सिंहासि सपत्नसाही स्वाहेति सपत्नाँस्तेनासहन्त तेऽकामयन्त पशून् विन्देमहीति सिंहासि रायस्पोषवनिस्स्वाहेति पशूँस्तेनाविन्दन्त तेऽकामयन्त प्रजां विन्देमहीति सिंहासि सुप्रजावनिस्स्वाहेति प्रजां तेनाविन्दन्त तेऽकामयन्तादित्यास्स्यामेति सिंहास्यादित्यवनिस्स्वाहेत्यादित्यास्तेनाभवँस्तस्मादिमा आदित्याः प्रजास्तेऽकामयन्त यज्ञियास्स्यामेति सिंहास्यावह देवान् देवायते यजमानाय स्वाहेति यज्ञियास्तेनाभवँस्तेऽकामयन्त स्वर्गं लोकमियामेति भूतेभ्यस्त्वेति ॥ देवा वै भूतास्स्वर्गमेव तेन लोकमायन् यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्व्याघार्यते यश्चैवं विद्वान् व्याघारयति सर्वानेवैतया कामान् व्यश्नोतीमे वै लोका आधृता आसँस्ते संप्राकम्पन्त तान् देवा एतैर्यजुर्भिर्व्यदृंहन् यदेतैः परिधीन् परिदधात्येषां लोकानां विधृत्या अग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् स यां प्रथमां प्रावसत् तां पशुध्वसद्भृष्णेरन्तरागृह्णं तस्मादूर्णास्तुका भवति यां द्वितीयां तां वनस्पतिषु पीतुदारौ तस्मात् पीतुदारुर्भवति यां तृतीयां तामोषधिषु सुगन्धितेजने तस्मात् सुगन्धितेजनो भवति यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यद्व्यक्तं तदेतैस्संभरति स पुनरुपावर्तमानश्शरीरमधूनुत तस्य यन्माँसमासीत् तद्गुल्गुल्वभवद्यदस्थि स पीतुदारुर्यानि लोमानि स सुगन्धितेजनो यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यद्व्यक्तं तदेतैस्संभरत्यग्नेस्सर्वत्वायाग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसीति कुलायमिव ह्येतत् पुरीषमिव यज्ञः प्रत्यष्ठादिति यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै ॥६॥ १४-१८

चत्वारो वै देवानाँ होतार आसन् भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिर्भूतस्तेषां त्रयो होत्रेण प्रामीय

[७] मै. ३,८,६ (१७) । कपि. ३९,५ । वा. १,२; ८,६० । काण्व. १,३; ९,४६ ।

न्शाषो यज्ञस उदक्षिप्यत स प्रमपादविभेद् स न्वलयत स समुद्रं प्राविशत् स यत् समुद्रे मस्मा-कुरुत स एष कर्दमस्तं मत्स्यः प्राब्रवीत् तमब्रवदभिगन्ता त्वा हतादिति तस्मान्मत्स्यमभिगन्ता हन्ति ग्रसो हि स तत उद्द्रुत्य नडं प्राविशत् तस्मान्नडो दग्धः क्रूर इव बर्बरस्तमश्वश्श्वेतोऽयमृश-मन्वविन्दत् तं प्रत्यौषत् तस्मात् स प्रत्युष्टकुसस्सोऽक्रन्दत् सा या वागासीत् स सुश्लोकश्यकुनि-रभवत् तस्मादेँ स नष्टेषमभ्यवक्रन्दति विन्दन्त्येवा तं देवा अनुविद्यानयन्निदं नो होता भविष्यसीति स प्रमयादबिभेत् तं भ्रातरः प्रमीता अब्रुवन् वयं त इतो वयं भविष्यामो देवेषु नो भागधेय-मिच्छेति तेऽब्रुवन् यत्किंच हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्दात् तदेषां भागधेयमित्येते वाव ते परिधयो यदि हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्देद्भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहेत्यनुमन्त्र-येतैते वै देवास्स्कन्नभागा य एव देवास्स्कन्नभागास्तानेनद्गमयति यज्ञो वा एतेषां मध्यमो यज-मानो दक्षिणार्ध्यो भ्रातृव्य उत्तरार्ध्यस्स्थविष्ठं मध्यमं कुर्यादणिष्ठं दक्षिणार्ध्यं क्रधिष्ठमुत्तरार्ध्यं स्थविष्ठं प्रथमं परिदधाति प्रथमो हि यज्ञो वर्षिष्ठं दक्षिणार्ध्यं यथा यजमानो दक्षिणतो यज्ञमुप-सीदत्येवं तत् पश्चेवोत्तरार्ध्यं पश्चेव हि भ्रातृव्यो यज्ञेनैवैतद्यजमानं प्रतरां करोति यज्ञेन भ्रातृव्यमप-नुदतेऽक्त्वा दक्षिणार्ध्यं प्रहरति मुखत एव यजमानं प्रीणात्यथो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यु-पवपत्युत्तरार्ध्यं भ्रातृव्यमेवं तदुपवपत्यथ ह स्माहार्यलः काहोडिः किमु स यजेत यो यज्ञस्य स्कन्नेन न वसीयानित्स्यादिति यत्र स्कन्देत् तदपो निनीय भूपतये स्वाहेति प्राक् प्रादेशेन मिमीत भुवन-पतये स्वाहेति दक्षिणा भूतानां पतये स्वाहेति प्रत्यग्जनं वा एतद्यज्ञस्यैति यत् स्कन्दतीयं वाव जनो यो वा इमामेति न स पुनरागच्छति जनमेवैतस्य यज्ञस्य यां कामयत आशिषं तामवरुन्द्धे ॥ दिशो मिमीते दिशो वै यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति दिग्भ्य एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे प्रादेशेन मिमीत एतावद्वै पुरुषे वीर्यं यावदस्य प्राणा अभि यावदेवास्मिन् वीर्यं तेनैनत् संभरत्यपो नि-नयति म्रियते वा एतद्यज्ञस्य यत् स्कन्दत्यद्भिस्तान्तमभिषिञ्चन्त्यापस्सर्वा देवता देवता एवैनत् प्रवेशयति यदि प्रातस्सवने स्कन्देद्देवाञ्जनमगन् यज्ञस्तस्य यज्ञस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत यदि मध्यन्दिनेऽप ओषधीर्जनमगन् यज्ञस्तस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत यदि तृतीयसवने पितॄञ्जनमगन् यज्ञस्तस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या इत्यनु-मन्त्रयेत यदि नक्तं द्यावापृथिवी जनमगन् यज्ञस्तस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत यदि तिरोह्नयेषु गन्धर्वाञ्जनमगन् यज्ञस्तस्य मेष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्र-येतैता वै देवता यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छन्त्येता एव देवता यथादेवतं प्रत्युपसृत्य यां कामयते यज्ञस्याशिषं तामवरुन्द्धे यस्यैवं विदुषो यज्ञस्य स्कन्नमनुमन्त्रयन्ते यश्चैवं विद्वाननुमन्त्रयते वसीयान् भवति ॥७॥ १९-२०

हविर्धाने प्रणेनेक्ति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति ग्रन्थीन् विचृतन्ति देवग्रन्थीनेव ग्रन्थिष्यन्तो मनुष्यग्रन्थीन् विचृतन्ति हविर्वै हविर्धाने स्तीर्णे बर्हिषि हविरासादयन्ति तस्मात् स्तीर्णे बर्हिषि हविर्धाने प्रवर्तयन्ति पत्न्युपानक्ति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय त्रिः प्राचीनमुपानक्त्यसंख्यातँ हि तिरश्चीनं मनुष्या उपाञ्जन्ति व्यावृत्त्यै यजुषोपान-क्त्ययजुषा हि मनुष्या उपाञ्जन्ति व्यावृत्त्यै दक्षिणत उपानक्ति दक्षिणतो ह्येते उदीची मनुष्यलोक-मुपावर्तेते मानुषमेवैनयोरुत्तरं करोति ॥ यदुत्तरादुपाञ्ज्यान्नान्यतरं च्यवन लोकमुपावर्तेयातां स्वर्गाय वा एते लोकाय प्रवर्तेते यद्धविर्धाने युञ्जते मन इति सावित्र्या जुहोति सवितृप्रसूते एवैने स्वर्गं लोकं गमयति हविर्वै हविर्धाने न हविरनभिघृतं मेधमश्नुते यदभ्यनक्त्यभ्येवैने घारयति मेध्यत्वाय शुष्को वा एष निर्ऋतिगृहीतो यदक्षो नभ्याभ्यामुभयतो बद्ध उपधिभ्यां संदष्टो यदुपानक्ति मेध्य-मेवैनं यज्ञियं करोति घोषो वै नामासुर आसीत् स वनस्पतीन् प्राविशत् तं देवा गृहीत्वोभयतो-ऽबध्नन् यत् स्वेदेदसुर्या वाग्यज्ञमववदेद्रक्षाँसि यज्ञमन्ववेत्य हन्युरनुगृह्णन्तो यान्ति रक्षसामन्तर्वायाय वर्त्मना वै यज्ञं रक्षाँस्यन्ववेत्य जिघाँसन्ति वैष्णव्या वर्त्मञ्जुहोति विष्णुर्वै यज्ञो विष्णुनैव यज्ञा-द्रक्षाँस्यपहन्ति व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोति यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति समृद्ध्यै स्वर्गं वा एते लोकं प्रेतो यद्धविर्धाने गायत्र्या दक्षिणस्य वर्त्मञ्जुहोत्यस्यामेवैने आक्रमयति त्रिष्टु-भोत्तरस्यान्तरिक्ष एवैने आक्रमयत्याहवनीयं गमयति स्वर्गमेवैने लोकं गमयति स्वर्गो हि लोक आहवनीयस्त्रीन् पुरस्तात् प्रक्रमानुच्छिंषति त्रय इमे लोका इमानेवास्मिँल्लोकानुच्छिंषति ॥ दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या इति दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीमुपमिनोति विष्णुर्वै यज्ञो मुखत एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे तां परुषि परुष्याशासान एति विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचमित्युत्तरस्य वैष्णवं वै हविर्धानँ स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति विष्णोः पृष्ठमसीति च्छदिरुपरिष्टादधिनिदधातीदमेव तेन करोति यदिदमुत्तरार्धँ शीर्ष्णो विष्णो रराटमसीति पुरस्ताद्रराटमेव तेन करोति विष्णोश्श्नप्त्रे स्थ इत्यभितश्श्नप्त्रे एव तेन करोति ॥ तिर्यञ्चं पुरस्ताद्वँशं विषीव्यन्ति तस्मात् तिरश्ची पुरुषस्य भ्रुवौ विष्णोस्स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसीति वैष्णवं वै हविर्धानँ स्वयैव देवतया सीव्यति स्वया देवतया ग्रन्थिं ग्रथ्नाति यं प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नीयात् तं प्रथमं विचृतेदात्मनो गोपीथाय यदन्यं पूर्वं विचृतेदमेहेनाध्वर्युः प्रमीयेतोपरिष्टाच्छम्यास्संनह्यन्ति पश्चादुपमिन्वन्त्यधस्ताद्धि मनुष्या युञ्जन्ति पुरस्तादुपमिन्वन्ति व्यावृत्त्यै ॥ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं पुरस्ताद्वर्षीयो भवति पश्चात् क्रधीयस्तस्मात् पुरस्ताद्

[८] मै. ३,८,७ (१९,२१) । कपि. ४०,१ । वा. ५,१४,१९-२१; ११,४; ३७,२ । काण्व. ५.१९,२४—२७, ११,४, ३७,२ । तै. सं. ६.२,९ । [युञ्जते मन० । ऋ ५.८१,१; तै. सं. १,२,१३,१, ४,१,१,१; तै. आ. ४,२,१ । दिवो वा विष्ण० । अथर्व. ७,२६,८ । विष्णोर्नु कं वीर्याणि० । ऋ. १,१५४,१; अथर्व. ७,२६,१; तै. सं. १,२,१३,३]

पुरुषस्य शिरो वर्षीयः पश्चात् क्रधीयो वैष्णवमसि विष्णवे त्वेति संमितमभिमन्त्रयते वैष्णवं वै हविर्धानँ स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति प्र तद्विष्णुस्स्तवते वीर्येणेति त्रीन् प्रक्रमान् यजमानं प्राञ्चं प्रक्रमयति विष्णुमेवैनं भूतमिमांल्लोकान् गमयति ॥८॥ २१-२५

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवा दक्षिणस्य हविर्धानस्याधस्तात् परिलिखत्येतद्वा एतयोः पर्व मुखत एव यज्ञस्य प्राणान् प्रतिदधाति तस्मान्मुखतः प्राणाश्चतुरः परिलिखति चत्वारो हि प्राणाः प्रादेशं प्रादेशं विपरिलिखत्येतावदेतावद्ध्यस्मिऽभि प्राणा असंभिन्दन्तः खनन्ति प्राणानामसं-भेदाय यत् संभिन्द्यात् प्राणान् संभिन्द्यात् प्रमीयेत तान् पर एकधा संतृन्दन्ति तस्मात् प्राणाः पर एकधा संतृण्णा देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभ्रिमादत्ते सवितृप्रसूत एवैनान् देवताभिरादत्त इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति भ्रातृव्यो वै रक्षो भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्ततीदमहं यो नस्समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामीति ॥ प्राणा वा उपरवाः प्राणेभ्य एव भ्रातृव्य-मन्तरेति तानक् प्रधन्वति बृहन्नसि बृहद्ग्रावा बृहतीमिन्द्राय वाचं वदेति बृहतीं ह्येष इन्द्राय वाचं वदति रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवीमिति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देव-तया समर्धयति देवाश्च वा असुराश्च व्यस्पर्धन्त तेऽसुरा देवानां प्राणेषु वलगान्न्यखनँ-स्तान् बाहुमात्रेऽन्वविन्दँस्तस्माद्बाहुमात्राः खेयाः प्राणानामनुवित्त्या इदमहं तान् वलगानुद्वपामि यान्नस्समानो यानसमानो निचखानेति यदेवास्यात्र भ्रमं यदभिचरितं तदनुविद्योद्वपति तस्मादेते मिथस्त्यास्तस्माद्दामथाविनमनुमर्शयन्ति ॥ सम्राडसि स्वराडसीति साम्राज्यमेवैतैरुपैति गायत्रेण च्छन्दसावबाढो वं त्रिष्टुभेन जागतेनेत्येतावन्ति वै छन्दाँसि च्छन्दोभिरेव भ्रातृव्य-मवबाधते किमत्र भद्रं तन्नौ सहेत्याशिषमेवाशास्ते निरस्तो वलगोऽवबाढो दुरस्युरिति यथायजु रक्षोघ्नो वलगघ्नः प्रोक्षामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवानिति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देव-तया समर्धयति रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवसिञ्चामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्या अथो यदेवैषां खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति यद्वैष्णवानिति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देवतया समर्धयति रक्षोघ्नो वलग-घ्नोऽवस्तृणामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवानिति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देवतया समर्ध-यत्यवसिञ्चत्यव च स्तृणाति तस्मात् प्राणा अन्तरतो लोमशा उदन्वन्तो रक्षोहणौ वलगहनौ प्रोक्षामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवी इति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देवतया समर्धयत्यृक्षे वा एते हते अमेध्ये आपो मेध्या यज्ञिया यदद्भिः प्रोक्षति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति हनू वा एते यज्ञस्य यदधिषवणे अवितृण्णे भवतस्तस्माद्धनू अवितृण्णे पुरस्ताद्वँहीयसी पश्चाद्वरीयसी एवमेव हि

[प्र तद्विष्णुस्स्तवते० । ऋ. १,१५४,२; अथर्व. ७,२६,२—३; ऐ. ब्रा. १,३,३,४; नि. १,२०]
[९] मै. ३,८,८ (२२) । कपि. ४०,२ । वा. ५,२२-२६; ६,१ । काण्व. ५,२८-३३; ६,१ । तै. सं. ६,२,११ ।
[देवस्य त्वा सवितु० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

हनू ह्यङ्गुलमन्तराधिषवणे भवति तस्मादियमन्तरा हनू रास्नाकेव रक्षोहणौ वलगहना उपदधामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवी इति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैने देवतया समर्धयति रक्षोहणौ वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै यद्वैष्णवी इति यज्ञो वै विष्णुस्स्वयैवैनं देवतया समर्धयति ॥ पर्यूहति तस्माद्धनू अनग्ने अमुषिते वस्थैरोष्ठाभ्यां सृक्काभ्यां श्मश्रुभिश्शिरो वा एतद्यज्ञ-स्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवा हनू अधिषवणे दन्ता ग्रावाणो जिह्वाधिषवणं चर्म मूर्धा द्रोणकलशो यज्ञः प्रजापतिर्मुखतो वा इदं प्रजापतेस्सोमं निष्पिबन्ति तस्मादजीर्णं जग्धमिव प्सातमिवैवँ हि दद्भिः प्सातं भवति यो विराजं यज्ञमुखे दोह्यां वेद दुह एनामियं वाव विराट् तस्या एतदूधो यदधि-षवणे स्तना उपरवा वत्सा ग्रावाणस्त्वगधिषवणं चर्मर्त्विजो दुह्नन्ति य एवं विराजं यज्ञमुखे दोह्यां वेद दुह एनाम् ॥९॥ २६-२९

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं ग्रीवा आग्नीध्रमुदरँ सद ऊर्गुदुम्बरो यत् सदस्यौदुम्बरीं मिनो-त्यूर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयत्यस्मै वै लोकायौ-दुम्बरी मीयतेऽमुष्मै यूपस्तस्मादितः पराञ्चं यूपं प्रोक्षत्यमुतोऽर्वाचीमौदुम्बरीमनयोर्लोकयोर्विधृत्या ऊर्ग्वा उदुम्बरो यदमुतोऽर्वाचीमौदुम्बरीं प्रोक्षत्यमुत एवार्वाचीमूर्जं च्यावयत्यस्मिन्नेव लोक ऊर्जं न्यनक्ति प्रजापतेर्वा उद्गातोर्गुदुम्बर्याँ श्रयते प्रजास्वेवोर्जं न्यनक्ति देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभ्रिमादत्ते सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्त इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति भ्रातृव्यो वै रक्षो भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति ॥ शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना इति शुन्धत्येवैनमथो यदेवास्य खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति यवमतीरवसिञ्चत्यूर्ग्वै यवा ऊर्गुदुम्बरोऽन्न एवोर्जं दधाति पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामीति यद्वा एतामपबर्हिषं मिनुयुर्गर्तमित्स्यादस्या उत्तरार्ध ओष-धयोऽस्या एवैनामुत्तरार्धे मिनोत्यगर्तमितमेवाकरुद्द्याँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृँहस्व पृथिव्यामिति दृँहत्येवैनां नितानस्त्वा मारुतो निहन्त्विति मनो वै नितानः प्राणा मारुतास्स्वयैवैनां देवतयाव-हरति ॥ नितानो ह स्म वै मारुतो देवानामौदुम्बरीं मिनोति तेनैवैनां मिनोति मित्रावरुणयोर्ध्रुवेण धर्मणेति मित्रेण वा इमाः प्रजाश्शान्ता वरुणेन विधृताः क्लृप्त्या एव विधृत्यै ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्र-वनिमित्याशिषमेवाशास्ते ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँहेत्याशिषमेवास्मा आशिष्टां दृँहति घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेथामिति घृतेन द्यावापृथिवी व्युनत्ति तस्मादोषधयोऽनभ्यक्ता रेभन्ते घृतेनौदुम्बरीमभिजुहोति तेजो वै घृतमन्नमुदुम्बरोऽन्न एव तेजो दधात्यान्तमेव वनस्पतिषु चौषधिषु च रसं दधाति ॥ विश्वजनस्य च्छायासीति विश्वजनस्य ह्येषा छाया गोत्राद्गोत्राद्ध्येतत् संप्रसर्पन्त्यौदुम्बरीमभि

[१०] मै. ३,८,९ (२३) । कपि. ४०,३ । वा. ५,२६-२७,३० । काण्व. ५,३३-३६,३८ । [देवस्य त्वा सवितु:० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

च्छदींषि संमुखानि कुर्याद्दैवीर्वा एता विशो यदोषधय ओषधयश्छदींषि यजमान औदुम्बरी यजमानमेव प्रजा अभिसंमुखाः करोति च्छदिर्भवत्यथान्तर्वर्तस्तस्मात् पुरुषस्य माँसमथ पर्शुरुदरं वा एतद्यज्ञस्य यत् सदस्तिर्यङ् मिन्वन्ति तस्मात् पुरुषेऽशितं ध्रियते यदन्वङ् मिनुयुर्न पुरुषेऽशितं ध्रियेत पुरुषेण वै यज्ञस्संमितो यज्ञेन पुरुषो यत् सद उभयतश्छिद्रं तस्मात् पुरुष उभयतश्छिद्रो विषीव्यन्ति तस्मात् पुरुषोऽन्तरतो विष्यूत इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसीत्यैन्द्रं वै सदस्स्वयैव देवतया सीव्यति स्वया देवतया ग्रन्थिं ग्रभ्नात्यैन्द्रमसीन्द्राय त्वेति संमितमभिमन्त्रयत ऐन्द्रं वै सदस्स्वयैवैनं देवतया समर्धयति ॥ नव च्छदींषि कुर्याद्यद्यग्निष्टोमस्स्यात् तेजसा त्रिवृता संमितं पञ्चदश यद्युक्थ्यः पञ्चदशेन संमितं वज्रः पञ्चदशो वज्रेण संमितँ सप्तदश यद्यतिरात्रस्सप्तदशेन संमितं प्रजापतिस्सप्तदशः प्रजापतिना संमितमेकविंशतिं प्रतिष्ठाकामस्य कुर्यादेकविंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित्या अथो यज्ञक्रतूनामेव व्यावृत्त्यै या अन्ततस्स्थूणास्ताः कधिष्ठाः कुर्याद्यदि कामयेत वर्षेदिति नीचैरिव हि द्यौर्वर्षिष्यन्ती भवति ता वर्षिष्ठाः कुर्याद्यदि कामयेत न वर्षेदित्युच्चैरिव हि द्यौरवर्षिष्यन्ती भवति यानि दक्षिणानि च्छदींषि तान्युत्तराणि कुर्याद्यजमानलोके वा एतानि यानि दक्षिणानि भ्रातृव्यलोक उत्तराण्युत्तरमेव यजमानमयजमानाद्भ्रातृव्यात् करोत्युत्तरो हि यजमानोऽयजमानात् ॥१०॥　　　३०-३४

[१८८९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायामिषुर्नाम पञ्चविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२५॥

अथ षड्विंशं स्थानकम् ।

धिष्ण्यम् ।

धिष्ण्या न्युप्यन्तेऽनयोर्लोकयोर्विधृत्यै न्यन्य उप्यन्ते नान्ये न्युप्यन्त इमं तैर्लोकं दाधार ये न न्युप्यन्तेऽमुं तैः पराङ् वासौ लोकोऽनिरुक्तोऽग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् स पृथिवीं प्राविशत् तं जानुदघ्नेऽन्वविन्दँस्तस्माज्जानुदघ्नं खेयमनुविधैवैताभिवपति चात्वालाभिवपत्येषा वा अग्नेर्योनिस्स्वादेवैनान्योनेर्निवपति यो वेद्यास्तीर्थं वेद न सदस्यामार्तिमार्छति प्राचीनमाग्नीध्रात् प्रतीचीनं चात्वालात् तेन संचरेदेतद्वै वेद्यास्तीर्थं य एवं वेद न सदस्यामार्तिमार्छति न प्रत्यङ् सदोऽतीयादध्वर्युरुदरं वा एतद्यज्ञस्य यत् सद उदरं यज्ञस्य संकर्षेत् प्रमीयेत जनो वा एषोऽध्वर्योर्जनमेति जनता जनतामभीत्य जिनाति यद्यतीयादैन्द्रया संचरेदैन्द्रं वै सदस्स्वयैव देवतया संचरति न प्राङ् हविर्धानँ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानँ शिरो यज्ञस्य संकर्षेत् प्रमीयेत यद्यतीयाद्वैष्णव्या संचरेद्वैष्णवं वै हविर्धानँ स्वयैव देवतया संचरति तदाहुः क्षेत्रपत्ययैव संचरेदितीयं क्षेत्रस्य पतिस्तेनास्या नैत्यमुष्मिन् वै लोके सोम आसीत् तं धिष्ण्या अगोपायँस्तं गायत्र्याहरच्छेष्टापोत्रोः प्रतिगोपीथं तस्मादेते होत्रे व्यृद्धे व्यृद्धसोमपीथे तस्मात्र नेष्टा न पोत्रा भवितव्यं तस्मादेतौ सँसचन्त्या इव यजतस्तमेतेऽन्वायन् द्वितीयानि नामानि कृत्वा तस्माद्ब्राह्मणो द्विनामार्धुकस्तं पर्यविशन् भागधेयमिच्छमानास्तेभ्य एतद्भागधेयकल्पयद्यद्धिष्ण्यान् व्याघारयति स्वेनैवैनान् भागधेयेन समर्धयति तेषां ये नेदिष्ठं पर्यविशँस्ते सोमपीथं प्राप्नुवन्नाहवनीय आग्नीध्रो होत्रीयस्तस्मादेत उपर्युपरि वषट्कुर्वन्तं न हिंसन्ति प्रीता हि न प्रत्यङ् धिष्ण्यानतिसर्पेदध्वर्युः प्राणा वै धिष्ण्याः प्राणान् संकर्षेत् प्रत्यङ् होतारं नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद्धोतोर्ध्वं नाभ्याः प्राणोऽवाचीनमपानोऽपाने प्राणं दध्यात् प्रमीयेत ॥ दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षाँस्यभ्यजयँस्तमाग्नीध्रात् पुनरपाजयन् यदाग्नीध्राद्धिष्ण्यान् विहरन्ति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै जम्भो वै नामासुर आसीत् स देवानां यज्ञमगिरत् स आग्नीध्रमपि नागिरद्यदाग्नीध्राद्धिष्ण्यान् विहरन्ति तेन यज्ञो जीवस्तेन मेध्योऽङ्गारान् पूर्वयोस्सवनयोर्विहरन्ति शुक्रवती हि ते शलाकान् दीप्यमानाँस्तृतीयसवने तेन तच्छुक्रवत् सर्वाण्यस्य सवनानि शुक्रवन्ति भवन्ति य एवं वेद ॥ प्राचीभिर्वा आहुतिभिर्देवा अन्यानसुरान् प्राणुदन्त प्रतीचीभिरन्यान् प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्याघार्यन्ते प्राचीरन्या आहुतयो हूयन्ते भ्रातृव्यस्य विनुत्त्या अग्नेर्वा एता वैश्वानरस्य प्रियास्तन्वो यद्धिष्ण्या यद्धिष्ण्यान् व्याघारयति ता एवैतत् समुद्धर्षयत्यग्निर्वा एष वैश्वानर उपावसृज्यते यदग्निष्टोमस्स ईश्वरोऽशान्तो यजमानं च सदस्याँश्चाभ्युपः प्रोर्णुवीत यजमान आत्मनोऽनभिदाहाय सवने वै यज्ञस्याशिष ईरते यत् प्रोर्णुवीत ताम्य आत्मान-

[१] मै. ३,८,१० (२४-२६) । कपि. ४०,४ । तै. सं. ६,३,१-२; ६,५,८,६ ।

मन्तर्दध्यात्माभिं वै पितरोऽभिसंजानत आविर्नाभिं कुर्वीतामीव कर्णौ प्रोर्णुवीत नाशीर्म्य आत्मानमन्तर्दधाति जानन्त्येनं पितरो घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति यावन्तः प्रसुप्तास्स्युस्ते सर्वेऽग्निष्टोममुपगायेयुरन्तो वा अग्निष्टोमोऽन्तमेवैनमागस्य समीरयन्तीन्द्रियायं वै कं ब्राह्मणस्सोमं पिबति यदुपगायेदिन्द्रियं निस्स्वरेत् तस्मान्नोपगेयं संवत्सरो वा अग्निष्टोमो द्वादशाग्निष्टोमस्य स्तोत्राणि द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरं प्रजा अनुप्रजायन्ते यदग्निष्टोमस्य स्तोत्रेऽप उपप्रवर्तयति मिथुनं वा आपो रेतः प्रसिक्तं प्रजननाय यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनं यत् पत्न्यप उपप्रवर्तयति मिथुन एव रेतः प्रसिच्य प्रजननाय यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनं यत् पत्न्यप उपप्रवर्तयति प्रजाः प्रजायन्ते वृषाणमेवास्यामपिसृजति स्युद्राग्रा पत्नीं संख्यापयति वृषा वा उद्गाता पत्न्याः प्रजाः प्रजायन्ते वृषाणमेवास्यामपिसृजति स्युद्राग्रा पत्नीं संख्यापयति देवतान्तरतो ह्येषा प्रजननायोरुम्यां प्रवर्तयत्यूरुभ्याँ हि प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननायान्तरत इव तु देवतान्तरतो ह्येषा वीर्यं करोति दृष्टमुपर्युद्दहेदाग्नीध्रमुपस्या जायते न दक्षिणा प्रवर्तयेदक्षिणा प्रवर्तयेत् पितृभ्यः प्रजां निपृष्वेदुदीचीः प्राची प्रवर्तयत्येषा वै मनुष्याणां दिङ् मनुष्यलोक एवैना उपप्रजनयति ॥१॥　　　१-३

उपसद्भिर्वै देवा इमाँल्लोकान् व्यजयँस्तान् वैसर्जनैरभिव्यसृजन्त यथा ग्रामस्संग्रामादिसृज्यते तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वं प्राञ्चँ सोममिमे प्रणयन्ति प्राचीं पत्नीमुदानयन्तीमानेवैताँल्लोकानभिप्रयन्त्यग्निना वै मुखेन देवा इमाँल्लोकानभ्यजयन् गार्हपत्येनेममाग्नीध्रेणान्तरिक्षमाहवनीयेनामुं यदाहवनीयोऽमुं तेन स्वर्गाय वा एष पत्य इमं तेन लोकमभिजयति यदाग्नीध्रोऽन्तरिक्षं तेन यदाहवनीयोऽस्यामाक्रमयति यदाग्नेय्याग्नीध्रे लोकाय प्रहियते द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति द्विपाद्यजमानोऽस्यामेवैनमाक्रमयति यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवैनमाक्रमयति यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति स्वर्गो हि लोक आहवनीयो रक्षाँसि वा एतमेतर्हि जिघाँसन्ति प्रच्युतमितोऽप्राप्तमदस्त्वँ सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति सौमीरिमाः प्रजाः प्रजाभ्य एवैनं प्राह जुषाणो अप्तुरिति प्रमुमेवैनं करोत्येमामतिनयति यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यग्निमेवैनं करत्यान्तरिक्षमपिनयति यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति स्वर्गो हि लोक आहवनीयस्सर्वेभ्यो वा एष आह्रियते मनुष्येभ्यः पितृभ्यो देवेभ्यस्त्वँ सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति सौमीरिमाः प्रजाः प्रजाभ्य एवैनं प्राह जुषाणो अप्तुरिति पितृभ्य एवैनं प्राह यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यग्निस्सर्वा देवता देवताभ्य एवैनं प्राह ॥ वैष्णवो वै सोमस्तं देवतया व्यर्धयति यदन्यामन्यां देवतां करोति यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वयैवैनं देवतया समर्धयति सर्वान् वा एतद्वरुणो गृह्णाति यदीक्षिते मनुष्यान् पितॄन् देवाँस्त्वँ सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति सौमीरिमाः प्रजाः प्रजा एव वरुणपाशान्मुञ्चति जुषाणो अप्तुरिति पितॄनेव वरुणपाशान्मुञ्चति

[२] मै. ३,९,१ (१) । कपि. ४०,५ । पा. १,१४,१९; ४,३०; ५,६,३९-४० । काण्व. १,२०,३१; ४,४१; ५,७-८, ४८-५० । तै. सं. ६,३,१ ।

यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यग्निस्सर्वा देवता देवता एव वरुणपाशान्मुञ्चति सोऽनृण इमाँल्लोकानभिविसृजमान एति तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वम् ॥ तस्मादाहुरपि वा एतर्ह्यरण्येभ्यः पशुभ्यो विसृजत इत्याग्नीध्रे ग्रावाणवायव्यानि सादयति प्राञ्चँ सोमं प्रणयत्येतैर्वा एतं घ्नन्ति हन्तृभिरेवैनं व्यावर्तयति न हन्तॄन् प्रतिपद्यते य एवं वेद पुरस्तात् प्रतिपद्येत रुद्रो वा अग्निः पशवोऽश्वो रुद्राय पशून्निदध्यात् पशुस्स्यात् पश्चात् प्राञ्चः प्रपद्यन्ते श्रीर्वै सोमः पश्चादिव प्राङ् श्रियमाप्नोति तस्मात् पश्चात् प्राचीः प्रजाः क्षेत्राण्यभिजयन्तीर्यन्ति पुरस्ताद्धतश्रीः प्रपद्येत पुरस्तादेव प्रत्यङ् श्रियमाप्नोतीममेव लोकमभि प्रतितिष्ठति पश्चात् सोमं प्रपादयन्ति पुरस्तादयजमानः प्रपद्यत उभयत एवास्मै श्रियं परिगृह्णात्युर्वन्तरिक्षं वीहीत्यन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्ह्यदित्यास्सदस्यदित्यास्सदने सीदेत्यादित्यो वै सोमः पृथिव्यदितिः पृथिव्या अनस्संभृतँ स्व एवैनं योनौ दधाति ॥ देव सवितरेष ते सोम इति सविता वै देवानामधिपतिर्मनुष्या एतमतः प्राचीनं गोपायन्ति तस्मा एवैनँ संप्रयच्छति गोपीथायैवैनं देव सोम देवानुपागा इति देवो ह्येष देवानुपैतीदमहं मनुष्यान् सह प्रजया सह रायस्पोषेणेति सहैव प्रजया पशुभिरिमं लोकमुपावर्तते नमो देवेभ्यस्स्वधा पितृभ्य इति नमो हि देवानाँ स्वधा पितॄणां निर्द्विहो निर्वरुणस्य पाशान्मुक्षीयेति द्रुह एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति स्वरभिव्यख्यमितीमे वै लोकास्स्वरिमानेव लोकानभिविपश्यत्यग्ने व्रतपा इत्यग्निना वा एष व्रतं विपरिषज्ते तान्नग्नेः सैनमीश्वरा हिंसितोरग्निनैवैतत् तन्वं यथायथं कुरुत एतर्हि वा एष देवैस्तन्वं विसृजते तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वं यात्मनस्तां पूर्वां ब्रूयाद्दितरस्य पूर्वां ब्रूयादीश्वरो निकमो यं द्विष्यात् तस्योत्तरं ब्रूयादग्निर्वै रुद्रो रुद्रायैवैनमपिदधाति ताजक् प्रधन्वति ॥२॥　　　४-७

न दीक्षितेन होतव्यं हविर्वै दीक्षितो रुद्रोऽग्निर्यज्जुहुयाद्धविर्भूतमात्मानं रुद्रायापिदध्यात्तन्न जुहुयाद्यन्नपरुत्तरियाद्यदि क्रीतसोमस्स्यादाग्नीध्रीक्षितस्याग्नौ जुहुयाद्धिसृष्टो हि तर्हि यज्ञः प्रेता आहुतयो भवन्ति यद्यक्रीतोऽरणी चाज्यं चादाय परेत्याग्निं मथित्वा वैष्णव्यर्चा यूपस्यान्ते जुहुयाद्वैष्णवो वै यूपस्स्वयैवैनं देवतयाच्छैत्यत्यन्यानगां नान्यामुपागामित्यति ह्यन्यानेति नान्यानुपैति यात्साजुजोषं परि तानवृजमिति यान् हि न जुषते परि तान् वृणक्त्यर्वाक् त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्य इत्यर्वाङ्ह्येनं परेभ्यो विन्दति परोऽवरेभ्यस्तं त्वा जुषामहे वनस्पते देवयज्याया इति देवयज्यायै ह्येनं जुषते जुष्टं विष्णव इति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञायैवैनं जुष्टं करोति देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति घृतं वै देवानां मधु मध्येमेवैनं यज्ञियं करोत्योषधे त्रायस्वैनमिति वज्रमेव करोति स्वधिते मैनं हिंसीरिति वज्रो वै स्वधितिर्हिंसायै यः प्रथमश्शकलः परापतति तस्माहरेदेतं वा एतस्य परापतन्तं

[३] मै. ३,९,२-३ (२-३) । कपि. ४१,३ । पा. ४,१; ५,४२-४३; ६,१,१५; ३७,११ । काण्व. ४,१,५,५१-५५; ६,१,१०; ३७,११ । तै. सं. ६,३,३ ।

तेजोऽनुपरापतति सतेजसमेवैनं मिनोति ॥ यो दक्षिणावृत्तं वृश्चेद्दक्षिणस्य य उदङ्ङावृत्तो न तँ स्पृण्यस्स य ऊर्ध्वशाख ऊर्ध्वशकलस्तं वृश्चेदेष वै वृष्यो य एव वृष्यस्तं वृश्चति योऽशुष्काग्रो बहुशाखो बहुपर्णस्तं वृश्चेदोषधयो वै वनस्पतयः पशव ओषधयः पशुभिरेवैनं समर्धयति यश्शुष्काग्रोऽशाखोऽपर्णस्तं वृश्चेद्यं द्विष्यात् तस्यौषधयो वनस्पतयः पशव ओषधयः पशुभिरेवैनं व्यर्धयति य उदङ् प्राङुपनतस्तं वृश्चेदेष वै मेधमभ्युपनतो य एव मेधमभ्युपनतस्तं वृश्चति द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभवेति वज्रो वै यूप एषां लोकानामहिंसाया उदश्चं प्राञ्चं प्रश्रयत्येष वै देवलोको देवलोकमेवैनमुपप्रश्रयति ॥ वनस्पते शतवल्शो विरोहेत्याव्रश्चने जुहोति वनस्पतिष्वेव भूमानं दधाति तस्मादेत आव्रश्चनाद्भूयांसो जायन्ते सहस्रवल्शा वि वयं रुहेमेत्याशिषमेवाशास्ते यं त्वायं स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगायेति महते ह्येष सौभाग्याय प्रणीयते यो यज्ञाय प्रणीयते य आरोहस्तं वृश्चेद्यं द्विष्यात् तस्यायोनिर्वा एषोऽनायतनो य आरोहोऽयोनिमेवैनमनायतनं करोति यस्त्वारुढं वृश्चेदेष वै योनिमानायतनवान् यस्त्वारुढयोनिमन्तमेवायतनवन्तं यजमानं करोति गुल्फदघ्ने वृश्चेत् परहि गुल्फो यज्ञपरुषा संमितं जानुदघ्ने वृश्चेत् परहि जानु यज्ञपरुषा संमितं यावत्यनक्षसङ्गस्स्यात् तावति वृश्चेद्यज्ञपरुषा संमितं पशूनामप्रतिनोदाय ॥३॥ ८–१०

पशुसंमितो व्रष्टव्यो दशारत्निर्दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशोऽष्टा अश्रयो द्वे परुषी आत्मैकादशः पशुसंमितमेव वृश्चति स्तोमसंमितो व्रष्टव्यो नवारत्निस्तेजसा त्रिवृता संमितः पञ्चदशारत्निर्व्रष्टव्यः पञ्चदशेन संमितो वज्रः पञ्चदशो वज्रेण संमितस्सप्तदशारत्निर्व्रष्टव्यस्सप्तदशेन संमितः प्रजापतिस्सप्तदशः प्रजापतिना संमित एकविंशत्यरत्निर्व्रष्टव्य एकविंशेन संमितोऽसा आदित्यः एकविंशोऽमुनादित्येन संमितस्सप्तविंशत्यरत्निर्व्रष्टव्यस्सप्तविंशेन संमितस्त्रिणवा इमे लोका एभिर्लोकैस्संमितस्त्रयस्त्रिंशदरत्निर्व्रष्टव्यस्त्रयस्त्रिंशेन संमितस्त्रिंशद्देवता देवताभिस्संमितश्छन्दस्संमितो व्रष्टव्यः पञ्चारत्निः पङ्क्त्या छन्दसा संमितष्षडरत्निरतिच्छन्दसा संमितस्सप्तारत्निश्शक्वर्या संमितोऽष्टारत्निर्गायत्र्या संमितो नवारत्निर्बृहत्या संमितो दशारत्निर्विराजा संमित एकादशारत्निस्त्रिष्टुभा संमितो द्वादशारत्निर्जगत्या संमितस्त्रयोदशारत्निस्साध्यैर्देवैस्संमितो बृहत्परिमितो व्रष्टव्यो यूपाद्वै देवास्स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै य एव कश्च पुरुषाद्वर्षीयान् स्यात् तं वृश्चेदेषा वै यूपस्य मात्रा यावानेव यूपस्तं वृश्चति चषालं भवति चषालाद्वै देवास्स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत् तस्य यावदालब्धमासीत् तत् प्राशीर्यत तच्चषालं प्रत्यवृञ्जन् यच्चषालं भवति इन्द्रिय एवालब्ध्वा अशिथिलत्वायैवञ्जन्येदायद्धि तदालब्धमासीच्च यूपस्यातिरेचयेद्यदतिरेचयेद्वु-

[वनस्पते शतवल्शोः० ऋ. ३,८,११; तै. सं. १,३,५,१]

[४] मै. ३,९,२ (२)। कपि. ४१,१।

दिनीर्जनयस्युर्यावदुत्तममङ्गुलिकाण्डं तावदतिरेचयेद्यज्ञपरुषा संमितं पशूनामप्रतिनोदाय यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते साध्यान्तद्देवानभ्यतिरिच्यते यज्ञस्य तदतिरिच्यते यद्यूपस्यातिरिच्यते साध्यानेव तेन देवान् प्रीणात्यन्यस्य वृक्षस्य चषालं कुर्याद्यस्य च यूपस्स्याद्यं कामयेत भ्रातृव्यमस्मै जनयेयमिति भ्रातृव्या वा एतस्यान्ये वनस्पतयो भ्रातृव्यमेवास्य लोकमभ्यारोहयत्यलोकमेनं करोति ॥४॥ ११

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेति यूपं प्रोक्षत्येभ्य एवैनं लोकेभ्यः प्रोक्षत्यस्मै वै लोकायौदुम्बरी मीयतेऽमुष्मै यूपस्तस्मादितः पराञ्चं यूपं प्रोक्षत्यमुतोऽर्वाचीमौदुम्बरीमनयोर्लोकयोर्विधृत्यै देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभ्रिमादत्ते सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्त इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति भ्रातृव्यो वै रक्षो भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना इति शुन्धत्येवैनमथो यदेवास्य खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति यवमतीरवसिञ्चत्यन्नं वै यवास्तेजो यूपोऽन्न एव तेजो दधात्यन्नं वै यवा वज्रो यूपोऽन्न एव वज्रं दधाति ॥ पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामीति यद्वा एतमपवर्हिषं मिनुयुर्गर्तमित्स्यादस्या उत्तरार्ध ओषधयोऽस्या एवैनमुत्तरार्धे मिनोत्यगर्तमितमेवाकस्स्वावेशोऽस्यग्रेगा नेतृणामिति यूपशकलमवास्यत्यृक्षो वा एष तष्टोऽपशव्यस्सत्वचसमेवैनं मिनोति घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेथामिति घृतेनैव द्यावापृथिवी व्युनत्ति तस्मादोषधयोऽनभ्यक्ता रेभन्ते देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति घृतं वै देवानां मधु मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति॥ सुपिप्पला ओषधीस्कृधीति चषालं प्रतिमुञ्चत्योषधीरेव फलं ग्राहयति तस्मादेता अकृष्टपच्याः पच्यन्ते घृतेनाग्निष्ठामनक्ति तेजो वै घृतं यजमानोऽग्निष्ठास्तेजसैव यजमानँ समर्धयत्यान्तँ संततमनक्ति तेजसस्संतत्या अविच्छेदाय यं द्विष्यात् तस्य विच्छिन्द्यात् तेजसैवैनं व्यर्धयति सर्वतोऽनक्ति सर्वत एवैनं तेजसा समर्धयति द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृँहीरिति वज्रो वै यूप एषां लोकानां विधृत्यै ॥ ता वां वास्तूनीति वैष्णव्यावहरति वैष्णवो वै यूपस्स्वयैवैनं देवतयावहरति विष्णोः कर्माणि पश्यतेति वैष्णव्या कल्पयति वैष्णवो वै यूपस्स्वयैवैनं देवतया कल्पयत्यग्निं प्रत्यग्निष्ठां कुर्यात् तेजो वा अग्निर्यजमानोऽग्निष्ठास्तेजसैव यजमानँ समर्धयति यं द्विष्यात् तस्येत्थं वेत्थं वा नमयेत् तेजसैवैनं व्यर्धयति ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिमित्याशिषमेवाशास्ते ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँहेत्याशिषमेवास्मा आशिष्टां दृँहति तद्विष्णोः परमं पदमिति वैष्णव्योदीक्षते वैष्णवो वै यूपस्स्वयैवैनं देवतयोदीक्षते ॥५॥ १२–१५

[५] मै. ३,९,३ (३)। कपि. ४१,३। वा. ५,२६-२८; ६,१-५,२५; १३,३३; ३७,१९। काण्व. ५,३३-३६; ६,१-६, ३६; १४,३५; ३७,१८। [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७। शुन्ध (०म०)न्तां लोकाः०। अथर्व. १८,४,६७। विष्णोः कर्माणि०। ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१, अथर्व. ७,२६,६, तै. सं. १, ३,६,२। तद्विष्णोः परमं पदं०। ऋ. १,२२,२०; सा. १६७२; अथर्व. ७,२६,७; तै. सं. १,३,६,२; ४,२,९,३]

अर्धं वेद्यां यूपावटस्य कुर्यादर्धं बहिर्वेदि परिमितस्य चापरिमितस्य चावरुद्ध्यै नाविरुपरस्य कुर्याद्यदाविरुपरस्य कुर्याद्गर्तमित्स्यात्परिवीतमवसृजेद्यदपरिवीतमवसृजेत् क्षोधुको यजमानस्यापशुमायुकोऽध्वर्युरूर्ध्वं रशना मध्यं प्रतिपरिव्ययत्यूर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गुँजयत्यरशनं मिनुयाद्यं द्विष्यात् तस्योर्गं रशनोर्जैवैनं व्यर्धयत्यूर्ध्वामुद्गृहेदवार्चीं यं द्विष्यात् तस्योर्गं रशनोर्जैवैनं व्यर्धयत्युपरि दूरे परिव्ययेद्यदि कामयेत वर्षेदित्यङ्ग्यो वा एष ओषधिभ्यो वर्षति यर्हि वर्षत्योषधयो रशनौषधीरेव नेदीयो वृष्ट्याः करोति ताजक् प्रवर्षत्यथो दूरे परिव्ययेद्यदि कामयेत न वर्षेदित्यङ्ग्यो वा एष ओषधिभ्यो वर्षति यर्हि वर्षत्योषधयो रशनौषधीरेव दवीयो वृष्ट्याः करोति चिरं प्रवर्षति परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तामिति दैवीर्वा एता विशो यदोषधय ओषधयो रशना यजमानो यूपो यजमानमेव प्रजा अभिसंमुखाः करोति परीमं रायो मनुष्यमिति पशवो वै रायः पशुभिरेवैनँ समर्धयत्यन्तरिक्षस्य सानूपेपेति स्वरुमुपोहत्यन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि परीवास्माल्लोकादथोऽमुष्मात् स्वयैवैनं देवतयापोहति पितृणामुपरं मनुष्याणामूर्ध्वंहपरादोषधीनां रशनां प्रति विश्वेषां देवानामूर्ध्वं रशनाया इन्द्रस्य चषालं साध्यानामतिरिक्तमेवमिव वा एषु लोकेषु पितरो मनुष्या देवास्सर्वदेवत्यो यूपस्सर्वाभिरेवैनं देवताभिस्समर्धयत्यग्नेरर्वादुपनतं यूपस्य कुर्याद्धविष्टाभिर्णतमग्नेर्वा अर्वादुपनतेन यजमानाय लोकं करोति बहिष्टाभिर्णतेन भ्रातृव्यं यज्ञान्निर्णुदते ॥ यज्ञेन वै देवास्स्वर्गं लोकमायँस्तेऽकामयन्तेमं नो लोकमन्यो नानुप्रजानीयादिति ते दिशोऽयोपयन् यदिशोऽयोपयँस्तद्यूपस्य यूपत्वं तेऽमुं लोकं गत्वा व्यतृप्यँस्तेऽविदुरमुतःप्रदानाद्वा इहाजगामेति त एतं पुनः प्रायच्छँस्तेनार्धुवँस्तेष वै यज्ञस्य तन्तुरेष उत्तमपदी यथा वै मयूखात् तन्त्रं तायत एवमतो यज्ञस्तायते तँ ह स वा एतं पुरात्रैव जुहुति यत् स्वरुं जुहोत्येतस्यैव निष्क्रीत्यै सोऽस्य निष्क्रीतः प्रीतस्स्वगाकृत इमांल्लोकाननुपतिष्ठते द्यां ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षमर्चिः पृथिवीं भस्म स्वाहेतीमानेवैनं लोकान् गमयति ॥६॥ १६–१७

साध्या वै नाम देवा आसन् पूर्वे देवेभ्यस्तेषां न किंचन स्वमासीत् तेऽग्निं मथित्वाग्नौ जुह्वत आसत तस्माद्वन्धोः पशवोऽजायन्त तस्मादाग्नेयास्सर्वे पशव उच्यन्ते यदग्निं मथित्वा पशुमालभते प्रजातमेवैनमालभतेऽथो यथापूर्वमेव करोति तदाहुः पशुमालभ्याग्निर्मथितव्य इत्यग्निस्सर्वा देवतास्सर्वा एव देवताः पशव आलब्धाय जनयति पशुना सर्वाणि सवनानि पशुमन्ति वीर्यावन्ति कर्तव्यानि यद्वपया प्रातस्सवने चरन्ति तेन तत् पशुमद्वीर्यावद्यद्दक्षिणाभिर्माध्यन्दिने तेन तत् पशुमद्वीर्यावद्यदितरेण पशुना तृतीयसवने तेन तत् पशुमद्वीर्यावत् सर्वाण्यस्य सवनानि पशुमन्ति वीर्या-

[६] मै. ३,९,४ (४-१४)। कपि. ४१,४। वा. ६,६। काण्व. ६,७।

[७] मै. ३,९,५—६ (१५—१६) कपि. ४१,५। वा. ५,२-३, ६,७—८। काण्व. ५,२-३; ६,८—९।

वन्ति भवन्ति य एवं वेद ॥ सर्वाभ्यो वा एष दिग्भ्य ऋद्ध्या आलभ्यते यत् पशुर्यत् प्राञ्चमाप्रीणन्ति देवलोकं तेनाभिजयति यदुदञ्चमाप्रीतं नयन्ति मनुष्यलोकं तेनाभिजयति यद्दक्षिणतः परिहृत्यावद्यन्ति पितृलोकं तेनाभिजयन्ति यत् प्रतीचीनँ समवत्तँ हरन्त्येतां तेन दिशमभिजयति यदूर्ध्वस्तिष्ठञ्जुहोति स्वर्गं तेन लोकमभिजयति पशुना वै देवास्स्वर्गं लोकमायँस्ते शरीरमभून्वत स्वर्गो वपा यद्वपया प्रातस्सवने चरन्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै यदितरेण पशुना तृतीयसवने शरीरस्य निष्क्रीत्यै याद्रा बहुपर्णा तयोपाकुर्यादोषधयो वै वनस्पतयः पशव ओषधयः पशुभिरेवैनँ समर्धयति या शुष्कापर्णा तयोपाकुर्याद्यं द्विष्यात् तस्यौषधयो वै वनस्पतयः पशव ओषधयः पशुभिरेवैनं व्यर्धयति ॥ घोरो वा अन्यो वज्रश्शिवोऽन्यो यश्शुष्कस्स घोरो य आर्द्रस्स शिवो य एव शिवस्तेनोपाकरोति बर्हिषोपाकरोति पशवो वै बर्हिः पशुभिरेवास्मै पशूनुपाकरोत्युपावीरसीत्युप ह्येषोऽवस्युप देवान् दैवीर्विशः प्रागुरिति दैवीर्वा एता विशो यत् पशवः पशूनेवास्मा उपाकरोति वह्नीरुशिज इत्यृत्विजो वै वह्नय उशिज ऋत्विग्भ्य एवैनानुपाकरोति बृहस्पते धारया वसूनीति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणा प्रजाः प्रजायन्ते ब्रह्मणैवैनाः प्रजनयति देव त्वष्टर्वसु रणेति त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता सोऽस्मै रूपाणि विकरोति रेवती रमध्वमिति ब्रह्म वै बृहस्पतिः पशवो रेवतीर्ब्रह्मणैवास्मै पशून् यच्छत्यग्नेर्जनित्रमसीत्यग्नेर्ह्येतज्जनित्रं वृषणौ स्थ इति न ह्यमुष्काः प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननायोर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असीति माता वा उर्वश्यायुर्गर्भः पिता पुरूरवा रेतो घृतं यद् घृतेनारणी समनक्ति मिथुन एव रेतो दधाति गायत्रं छन्दोऽनुप्रजायस्व त्रैष्टुभं जागतमित्येतावन्ति वै छन्दाँसि च्छन्दोभी रेतो हितं प्रजायते छन्दोभिरेवास्मै रेतो हितं प्रजनयति ॥ दक्षिणा वर्तयत्येषा वा आदित्यस्य प्रजानिष्णुस्तनूस्तामेवानुप्रजायतेऽग्नी वा एतर्हि यजमानमभिसंधत्तो भवतं नस्समनसा इति समनसा एवैनौ करोति मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदस इत्यात्मनोऽहिंसायै शिवौ भवतमद्य न इति शिवा एवैनौ कुरुते रक्षसां वा एतेऽनवजयाय परिधीयन्ते यत् परिधयो यदुपर्युपरि प्रहरेद्रक्षोभ्यस्तीर्थं कुर्यात् संधिना वा प्रहरत्यग्रेण वा तीर्थेनैव स्रुवेण जुहोति संजग्मानाभ्यामेवाभ्यां भागधेयमपिदधाति ॥७॥ १८–२१

सावित्रीमन्वाह सवितृप्रसूत एवैनं प्रजनयत्येकदेवत्यामन्वाहैकधैवैनं प्रजनयति यद् द्विदेवत्यामनुब्रूयाद्भ्रातृव्यमस्मै द्वितीयं जनयेद् द्यावापृथिव्यामन्वाह प्रजानां प्रजातानां परिगृहीत्यै न धूमवतीमनुब्रूयादिन्द्रो वै यद्वृत्रमहँस्तस्य यत्र यत्र व्यृद्धमासीत् ततो धूम उदायत व्यृद्धाद्वा एष जातो व्यर्धुकमस्मै भवति यदि मथ्यमानो न जायेत रक्षोघ्नीमनुब्रूयाद्रक्षसामपहत्या अनवानमनुब्रूयादवानं वा अनु यज्ञं रक्षाँसि जिघाँसन्ति रक्षोभ्य एवातीर्थं करोति गायत्रीं ब्राह्मणस्यानुब्रूयाद्गायत्रो

[८] मै. ३,९,५-६ (१५-१६)। कपि. ४१,६। वा. ६,८—१०। काण्व. ६,९-११]

हि ब्राह्मणस्त्रिष्टुभं राजन्यस्य त्रैष्टुभो हि राजन्यो जगतीं वैश्यस्य जागतो हि वैश्यो यथाछन्दसमेव॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति रशनामादत्ते सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्त ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामीति यो वै यज्ञियो मेध्यस्स ऋतस्य पाशस्तेनैवैनमालभतेऽमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवताया आलभते तस्या एव जुष्टं करोति धर्षा मानुषँ इति वज्रो वै यूपः पशवो मानुषा वज्रेणैवास्मै पशून् यच्छत्यृक्षो वा एष तष्टोऽमेध्यो यत् पशुं नियुनक्ति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति॥ पुरस्ताद्धि पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते देवता एतस्मिन् प्राणा यत् पुरस्तात् प्रत्यञ्चमाप्रीणन्ति देवतानामेवैनमर्धमाप्रीणन्त्यद्भ्यस्त्वौषधीभ्य इत्यद्भ्यो वा एष ओषधिभ्य आलभ्यते यत् पशुरद्भ्य एवैनमोषधिभ्यः प्रोक्षत्यनु त्वा माता मन्यतामनु पितेति पिता च ह्येतस्य माता चानुमन्तारा आपो वै सर्वा देवतास्सर्वदेवत्यः पशुस्सर्वाभिरेवैनं देवताभिस्समर्धयति बहु वा एषोऽमेध्यमयज्ञियं निगच्छति यत् पशुरापो मेध्या यज्ञिया यदद्भिः प्रोक्षति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोत्यपां पेरुरसीत्यप उपगृह्णाति यान्यन्तरतोऽवदानानि तानि तन्मेध्यानि करोति स्वात्तँ हव्यं देवेभ्यो घृतवदित्युरः प्रत्युपोक्षति यान्यधस्तादवदानानि तानि तन्मेध्यानि करोति सर्वत उपोक्षति सर्वत एवैनं मेधेन समर्धयति शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघार आत्मा पशुर्यदाघारमाघार्य पशुं समनक्ति शिर एव यज्ञस्यात्मन् प्रतिदधाति सं ते वायुः प्राणेन गच्छतामिति वायुमेवास्य प्राणं गमयति सं यजत्रैरङ्गानीति देवता वै यजत्रा देवता एवास्याङ्गानि गमयति सं यज्ञपतिराशिषेत्याशिषैव यजमानँ समर्धयति॥८॥ २२-२४

ऋत्विजो वृणीते छन्दाँसि वा ऋत्विजश्छन्दाँस्येव तद्वृणीते तैरस्य वृतैर्युक्तैर्वषट्काराः पुरो युज्यन्ते होतारं वृणीते जगतीं तच्छन्दसां वृणीतेऽग्निधं वृणीते पङ्क्तिं तच्छन्दसां वृणीतेऽध्वर्यूं वृणीतेऽतिच्छन्दसं तच्छन्दसां वृणीतेऽन्तरा होतारं चाध्वर्यूं चाग्निधं वृणीते तस्मादग्निर्मध्यत ओषधीः प्रविष्टो यदुत्तमस्संयजति तस्मादुपरिष्टान्मथ्यमानो जायते मैत्रावरुणं वृणीते गायत्रीं तच्छन्दसां वृणीते ब्राह्मणाच्छँसिनं वृणीते त्रिष्टुभं तच्छन्दसां वृणीते पोतारं वृणीत उष्णिहं तच्छन्दसां वृणीते नेष्टारं वृणीते ककुभं तच्छन्दसां वृणीते॥ पश्चाजमिव वा एतच्छन्दो यदनुष्टुप् पश्चाजेवैषा होत्रा यदच्छावाक्या तस्मादच्छावाकमुपैव ह्वयन्ते न वृणतेऽथैता आप्रियः प्रजापतिः प्रजास्सृष्ट्वा स रिरिचान इवामन्यत स एता आप्रीरपश्यत् ताभिरात्मानमाप्रीणीत यज्ञः प्रजापतिर्यज्ञात्मा यजमानो यदेताः पूर्वार्धे यज्ञस्य क्रियन्ते मुखत एव यजमानमाप्रीणाति प्रयाजान् यजति प्राणा वै प्रयाजाः प्राणानेव तत् प्रयजति तत् प्रयाजानां प्रयाजत्वमनवानमाप्रीणीयाद्यं कामयेत सर्वमायुरियादिति प्राणा वै प्रयाजा अविच्छिन्नानेवास्मिन् प्राणान् प्रतिदधाति सर्वमायुरेत्यात्मा वै पशोर्वपात्मा

[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]
[९] मै. ३,९,८ (१८-२०)। कपि. ४१,७। तै. सं. ६,३,७,५।

यजमानस्याप्रीर्यदुत्तमाप्रीर्वपां परिशय आत्मैवात्मानं परिशये यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदायैकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयज एतावतीर्वै देवतास्सर्वदेवत्यः पशुस्सर्वाभिरेवैनं देवताभिस्समर्धयति त्रयस्त्रिंशद्वै देवतास्सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या वषट्कारश्च प्रजापतिश्च ते सोमपाः प्रयाजा अनुयाजा उपयजस्तेऽसोमपास्तस्मात् ते बहिर्यज्ञं क्रियन्ते सोमेन वै तद्देवान् सोमपान् प्रीणाति पशुनासोमपाँस्तेऽस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्त्येतद्ध वा उवाच श्यापर्णस्सायकायनोऽपाढं कैशिनं यत्रैनमदस्सोमाभ्रयति यदि वै मा सोमाभ्रेष्यस्युभयैर्मा देवैस्सह नेष्यसि सोमपैश्चासोमपैश्च विदेवस्ते यज्ञोऽवहास्यतेऽथो यग्रश्चं मा नेष्यान्ति ततस्त्वामीत्य ज्यास्यन्तीति ते मीमाँसित्वेतो नो भयं नास्तीति दक्षिणा प्रत्यञ्चं निन्युस्ततः कुन्तयः पञ्चालानभीत्य जिनान्ति य एवंविदँ सोमाभ्रयत्युभयैरेनं देवैस्सह नयति सोमपैश्चासोमपैश्च विदेवोऽस्य यज्ञोऽवहीयतेऽथो यग्रश्चमेनं नयन्ति तत एनमभीत्य जिनान्ति॥९॥ २५-२६

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ततो देवा एतमुपाँशुमपश्यँस्त एतस्मिन् यज्ञँ सँस्थाप्यमपश्यँस्तस्मिन्नेव यज्ञँ समस्थापयन्नष्टौ कृत्वोऽभ्यषुण्वन् गायत्रीं तच्छन्द आप्नुवन्नेकादश कृत्वस्त्रिष्टुभं तद् द्वादश कृत्वो जगतीं तत् त्रिर्व्यगृह्णन् सवनान्येव तदाप्नुवँस्ते देवा यावानेव यज्ञस्तं परिगृह्योपोदतिष्ठन् होतुं तेऽसुरा अपश्यञ्जुहुति वै देवा इति तान् वज्रमुद्यत्याभ्यपतँस्तान् देवा अन्तर्यामेनान्तरदधँतेभ्यो लोकेभ्यस्ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यस्यैवं विदुष उपाँशुं जुहुति यश्चैवं विद्वाञ्जुहोत्येभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तर्धत्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्यथ ह स्माहारुण औपवेशिः किमु स यजेत य उपाँशौ यज्ञँ सँस्थाप्यं न विद्यादित्यष्टौ कृत्वोऽभिषुणोति गायत्रीं तच्छन्द आप्नोत्येकादश कृत्वस्त्रिष्टुभं तद् द्वादश कृत्वो जगतीं तत् त्रिर्विगृह्णाति सवनान्येव तदाप्नोत्युपाँशा एवैवद्यज्ञस्सँस्थाप्यते न सँस्थितेनारिष्टेनाघात्येन प्रचरत्यष्टा अष्टा अभिषुणुयाद्ब्रह्मवर्चसकामस्याष्टाक्षरा गायत्री गायत्रीमेव यज्ञमुखेऽधि वियातयति गायत्र्यामेवैतत् तेजसि स्वे योनौ स्वर्गे लोके यज्ञमुखं तायते मुख्यो भवति य एवं वेद नोपयामगृहीतोऽसीति ब्रूयादियं वा उपयामोऽनया प्राणानपिहन्यान्न पवित्रं वितन्वन्त्यन्तरिक्षं वै पवित्रमन्तरिक्षेण प्राणान् परिगृह्णीयात् प्रमीयेतायं वाव यः पवते स प्राणस्तस्येदमपग्राहं प्राणिमो यन्नोपयामगृहीतोऽसीत्याह न पवित्रं वितन्वन्ति तस्मादयमपरिगृहीतः काममित्थं चेत्थं च पवते तस्मात् कामं प्राणिमः प्राणपवित्रो वा उपाँशुः प्राणैरेवैनं पावयति षडँशून् परि-

[१०] मै. ४,५,५,६ (१४-१९)। कपि. ४१,८। वा. ७,४,८-९,११-१२,१६,२०,२१,२५,३०-४०; ८,१,७-९,११, ३३-३५,३८-४१,४४-४७; १९,८; २०,३३; २३,२,४। काण्व. ३,५०; ७,४,७-८; १०-११,१५,२१,२४, २७,३०—४०; ८,६—८,११,१४—१६,१९-२९; ११,७; १२,१८; १५,२,४। तै. सं. ६,४,६।

गृह्णाति तस्मात् षट् प्राणा द्वन्द्वं पावयति तस्मात् प्राणा द्वन्द्वमुपाँशुसवनादुपाँशुं निगृह्णाति प्राणो वा उपाँशुसवनः प्राण उपाँशुः प्राणादेव प्राणं निगृह्णात्युत्तर उपाँशुसवनो भवत्यधरेऽँशवः प्राणो वा २७
उपाँशुसवनः प्रजा अँशवः प्रजास्वेवं प्राणं दधाति तस्मात् प्राण उत्तमः॥१०॥ २८

ऋत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वर्धन् सुरेक्णाः। मर्त आनाश सुवृक्तिम्॥ २९
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिस्सीद। वीहि शूर पुरोडाशम्॥ ३०
उप नस्सूनवो गिरश्शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः॥ ३१
ता नश्शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य। महि वां क्षत्रं देवेषु॥ ३२
बृहस्पते जुषस्व नो अग्न आयाहि वीतय एन्द्र सानसिं रयिम्॥
आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। ३३
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे॥ ३४
आ नो मित्रावरुणा॥
आ विबाध्या परिरापस्तमाँसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि। ३५
बृहस्पते भीममभिमित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदँ स्वर्विदम्॥ ३६
पञ्च व्युष्टीः॥
सखे सखायमभ्यावववृत्स्वाशुर्न चक्रं रथ्येऽवरोध्यास्मभ्यं दस्म रँह्या।
अग्ने मृडीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु। ३७
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि॥
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुँ सूनुँ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। ३८
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः॥११॥

[११] मै. २,१३,५५,८२। ४,१०,३७; ११,६३,६५, १२,६५; १४,१६६। वा. ११,४६; १५,४७, २५,१४; ३३,७७। काण्व. १२,४७; १६,६९; २७,१८; ३२,७७। [ऋत्वा दा अस्तु०। ऋ. ६,१६,२६; तै. ब्रा. २,४,६,२ : नि. ४,१९। उप नस्सूनवो गिर०। ऋ. ६,५२,९; सा. १५९५; तै. सं. २,४,१४,५। ता नश्शक्तं पार्थिवस्य०। ऋ. ५,६८,३; सा. ११४५,१४६५। बृहस्पते जुषस्व नो०। ऋ. ३,६२,४; तै. सं. १,८,२२,२। अग्न आयाहि वीतये०। ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६०; तै. सं. २,५,७,३; ८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१। आ नो भद्राः क्रतवो०। ऋ. १,८९, १; नि. ४,१९। आ नो मित्रावरुणा०। ऋ. ३,६२,१६; ७,६५,४; सा. २२०, ६६३; तै. सं. १,८,२२,३; तै. ब्रा. २,८,६,७। आ विबाध्या परिराप०। ऋ. २,२३,३। सखे सखायमभ्या०। ऋ. ४,१,३। अग्निं होतारं मन्ये०। ऋ. १,१२७,१; सा. ४६५, १८१३; अथर्व. २०,६७,३; तै. सं. ४,४,४,८; नि. ६,८]

द्रष्ट्रे नम उपद्रष्ट्रे नमोऽनुद्रष्ट्रे नमः ख्यात्रे नम उपख्यात्रे नमोऽनुख्यात्रे नमश्शृण्वते नम उपशृण्वते नमस्सते नमोऽसते नमो जाताय नमो जनिष्यमाणाय नमो भूताय नमो भविष्यते नमश्चक्षुषे नमश्श्रोत्राय नमो मनसे नमो वाचे नमो ब्रह्मणे नमश्श्रान्ताय नमस्तपसे नमः॥१२॥
३९
[१९२१]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां धिष्ण्यं नाम षड्विंशं स्थानकं संपूर्णम्॥२६॥

अथ सप्तविंशं स्थानकम्।

वाचस्पतिः।

वाचस्पतये पवस्वेति वाच आधिपत्याय पवस्वेत्येवैतदाह तस्मादेतया कामं वदामश्च प्र चानिमः प्रजापतिर्वा इदमासीत् तस्य वाग्द्वितीयासीत् तां मिथुनँ समभवत् सा गर्भमधत्त सास्मादपाक्रामत् सेमाः प्रजा असृजत सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशद्वाचस्पतये पवस्वेत्येतस्मादेव मिथुनात् प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते वाचस्पतये पवस्वेति ब्रह्म वै वाचस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं पावयति वृष्णो अँशुभ्यां गभस्तिपूत इतीन्द्रो वै वृषा तस्य हस्तौ गभस्ती ताभ्यामेवैनं पावयति॥ देवो देवानां पवित्रमसीति देवताभ्य एवैनं निदिशति मधुमतीर्न इषस्सोमेन हि सोमं पुनन्ति येषां भागोऽसीति देवताभ्य एवैनं निदिशति मधुमतीर्न इषस्कृधीति देवता वा इषो देवेभ्य एवैनं मधुमन्तं करोति स्वंकृतोऽसीति प्राणमेव स्वं कुरुत उर्वन्तरिक्षं वीहीत्यन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्य इति देवेषु चैव मनुष्येषु च प्राणं दधाति मनस्त्वाष्ट्विति मनसा हि प्राणो धृतस्स्वाहा त्वा सुभो सूर्यायेति सोमो वै सुभूरमुष्मिन्नादित्ये देवानां प्रियास्तन्वस्ता एव तर्पयत्यथो स्वाहाकारेणैवास्मिन्नाहुतीश्श्रीणाति॥ सर्वहुतं जुहोति तस्मात् पराङ् प्राण ऋजुस्तिष्ठञ्जुहोति पुरुषेणैव यज्ञस्संमितः प्राणापानाभ्यां पुरुषस्संततः प्राणापानयोरसँशराय नाध्वर्युर्विहूर्छति य एवं वेदोत्तरादुपाँशुं जुहुयाद्दक्षिणतोऽन्तर्यामं देवरथो वा एष यद्यज्ञस्तस्यैतौ रश्मी यदुपाँश्वन्तर्यामौ देवरथस्यैव पुरस्ताद्रश्मी विहरति संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै तामनुकृतिं मनुष्यरथस्य रश्मी विह्रियेते ऋजू होतव्यौ प्राणानामव्यतिहारायोध्वमुन्मृज्याद्यदि कामयेत न वर्षेदित्यमुत्रैव वृष्टिं परिगृह्णात्यवाचीनमवमृज्याद्यदि कामयेत वर्षेदिति या वा इतराहुतिरुद्यते सामुतो वृष्टिं च्यावयति

[१] मै. ४,५,५ (१४)। कपि. ४२,१। वा. ७,१—३,६; ८,४०, ९,३०,३७। काण्व. ७,१-३,५। ८,३१, १०,३९; ११,४। तै. सं. १,४,५]

सौम्यैवाहुत्या दिवो वृष्टिं निनयति ॥ देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य इति परिधौ निमार्ष्टि प्राणा वै देवा मरीचिपास्तानेव प्रीणात्यथो परिधीनामेवैष सोमपीथोऽन्तरतो निमार्ष्टि तस्मात् प्राणा अन्तरतो वि या एतद्यज्ञं छिनत्ति यत् पुराभिषोतोस्सँस्थां गमयति यदँशूननभिषुतानपिसृजति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय षडँशूनपिसृजति तस्मात् षट् प्राणा द्वन्द्वं तस्मात् प्राणा द्वन्द्वमार्द्रास्सन्तोऽसँश्लिष्टा भवन्ति तस्मात् प्राणा आर्द्रास्सन्तोऽसँश्लिष्टा यो ह वै सोमस्य सोमपीथं वेद न सोमपीथाच्छिद्यते नास्य प्रजा यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहेत्येष वै सोमस्य सोमपीथस्सोममेवैतत् सोमस्य तर्पयति न सोमपीथाच्छिद्यते नास्य प्रजा य एवं वेद यद्यभिचरेत् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामादद इत्याददीत प्रहर्षिणो मदिरस्य मदे वृषासा अस्त्वय त्वा होष्यामीति वृषैवैनं करोति सर्वदेवत्यो वै सोमस्सर्वा वा एतर्ह्येतस्मिन् देवता आशँसन्ते मह्यँ होष्यति मह्यँ होष्यतीति देवता एवैनमाहुतिमभीप्सन्तीरुदहन्त्या तमितोस्तिष्ठति प्राणस्यैवास्यान्तं गच्छति यद्यजुर्वदति देवेभ्य एवैनमावृश्चत्युपाँशुनाभिचरति प्राणो वा उपाँशुः प्राणेनैवास्य प्राणमभिचरति ताजक् प्रधन्वति ॥१॥ १-५

देवा वै सोमायाभिषुताय पात्रं नाविन्दन्त येनेमं विगृह्णीमहीति त इमामेव देवपात्रमपश्यँस्तमनयैव व्यगृह्णतैवं वाव देवपात्रमस्यास्थाली: कुर्वन्त्यस्या वायव्यानि प्र श्रेयसः पात्रमाप्नोति य एवं वेद ब्राह्मणं पात्रेण मीमाँसेत तद्वतमुपयामगृहीतोऽसीतीयं वा उपयामो यदत्र स्कन्दत्यनया तद्यतं नास्य सोमस्स्कन्दति य एवं वेदोपयामगृहीतोऽसीत्युपयामगृहीता ह्यतस्सोमा भवन्ति पवित्रं वितन्वन्ति पवित्रपूता ह्यतस्सोमा भवन्ति स्वर्भानुर्वा आसुरस्सूर्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत तस्माद्देवास्तमोऽपालुम्पन् यत् प्रथममपालुम्पन् साविष्कृष्णाभवद्यद् द्वितीयँ सा फल्गुर्यत् तृतीयँ सा बलक्षी ॥ तस्मात् तस्याः पवित्रं कुर्वन्त्यादित्यस्यैवैनं तन्वा पावयत्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोममित्येभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तर्यच्छ मधुमतीर्न इषस्कृधीति देवता वा इषो देवेभ्य एवैनं मधुमन्तं करोति स्वंकृतोऽसीत्यपानमेव स्वं कुरुत उर्वन्तरिक्षं वीहीत्यन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्य इति देवेषु चैव मनस्येषु चापानं दधाति मनस्त्वाष्टिति मनसा ह्यपानो धृतस्स्वाहा त्वा सुभो सूर्यायेति सोमो वै सुभूरसुष्मित्रादित्ये देवानां प्रियास्तन्वस्ता एव तर्पयत्यथो स्वाहाकारेणैवास्मिन्नाहुतीश्श्रीणाति ॥ यदि कुर्यादन्तर्यामपात्रमूर्ध्वं सोमोऽन्तरिक्षमन्तर्यामोऽन्तरिक्ष एव रसं दधात्यूर्ध्वं पशुपुरांश्चन्तर्यामौ वै पशवोऽनुप्रजायन्त इतरान् ग्रहानन्वन्याः प्रजास्ता असन्नौ जुहोति तस्मादसन्नाः पशवस्सदर्दि प्रजायन्ते तस्मात् सद्यो जाताः पशवः प्रतितिष्ठन्ति संवत्सरे पुरुषः

[देवस्य त्वा सवितुः । अथर्व. १९,५१,२; तै. आ. ८,७]
[१] मै. ४,५,६—७ (१९—२२) । कपि. ४२,२ । श. ७,१—६ । काण्व. ७,१,५ । तै. सं. ६,४,६ ।

प्राणाय त्वेत्युपाँशुपात्रँ सादयति व्यानाय त्वेत्युपाँशुसवनमपानाय त्वेत्यन्तर्यामपात्रं व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ प्राङ् च प्रत्यङ् च न क्षीयेते नायमूर्ध्व उत्क्रामति नेतरोऽवाङ् संक्रामति व्यानमेव मध्यतो दधाति प्राणापानयोर्विधृत्यै ॥ शुक्रमुपाँशुरेतोऽन्तर्याम इन्द्रियं प्रजास्सोमपीथ एतौ ह स्म वै तद्रजनः कौणेयो ग्रहौ धयन्मन्यते यच्छुक्रं धयति यदेतौ पूर्वार्धे यज्ञस्य क्रियेते मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय तस्मादाहुः प्राणापानौ वै प्रजा अनुप्रजायन्त इति पुरुषेण वै यज्ञस्संमितः प्राणापानाभ्यां पुरुषस्संततो यदेते प्रातस्सन्ने आ तृतीयसवनाच्छयाते प्राणापानाभ्यामेव यज्ञँ संतनोति तस्मात् पुरुषात् सुप्तात् प्राणापानौ नापक्रामतस्ते पुनस्तृतीयसवने प्रयुज्येते तस्मात् सुप्त्वा प्रबुध्यते तस्माद्वा अवाञ्चौ प्राणौ ॥२॥ ६-९

प्राण उपाँशुरपानोऽन्तर्यामो वागैन्द्रवायवो यदुपाँश्वन्तर्यामा ऐन्द्रवायवोऽनुगृह्यते प्राणापानयोरेव वाचमुपरिष्टाद्दधाति तस्मात् प्राण्यापान्य पुरुषो वाचं वदति देवा वै प्रातस्सवनमुद्यमं नाशक्नुवँस्तृतीयसवने तर्हि वायुरासीत् तं देवाः प्राञ्चं पर्यहरन् प्राणो वायुरैन्द्रो यज्ञो यदैन्द्रवायवः प्रातस्सवने गृह्यते प्राणेनैव यज्ञं परिगृह्य पुरस्तादुद्यच्छन्ते वायव्यो वा एष पुरासीत् सा वाक् सृष्टा न व्यावर्तताध्वनदेव स इन्द्रोऽब्रवीन्मह्यमत्रापिगृह्यतामहमेतां व्यावर्तयिष्यामीति तत एतमैन्द्रवायवमगृह्णन् सेयं वागिन्द्रियेण व्यावृत्ता वदति स एष सोमो वाचो व्यावृत्त्यै गृह्यते व्यावृत्तं पापीयसा वदति य एवं वेद प्रजानाँ सृष्टानां तौ समभिधेतां ता न प्राण्यापानमशक्नुवन्नापान्य प्राणितुं स इन्द्रोऽब्रवीन्मह्यमत्रापि गृह्यतामहमेतौ प्राणापानौ विदधिष्य इति तत एतमैन्द्रवायवमगृह्णन् वायव इन्द्रवायुभ्यामनुब्रूहीतीन्द्रं मध्ये करोति वायुमभितः प्राणापानयोर्विधृत्या इन्द्रियं वै व्यानो व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ प्राङ् च प्रत्यङ् च न क्षीयेते नायमूर्ध्व उत्क्रामति नेतरोऽवाक् संक्रामति व्यानमेव मध्यतो दधाति प्राणापानयोर्विधृत्यै ॥ त्रिर्विगृह्णाति तस्मात् त्रिर्वाग्वदति शनकैरुच्चैरथ सूर्ध्वं देवा वै वायुमब्रुवँस्त्वया मुखेन वृत्रँ हनामेति सोऽब्रवीद्वार्यं वृणै मदग्रा एव ग्रहा गृह्यान्ता इति तस्माद्वाय्वग्रा ग्रहा गृह्यन्ते वार्यवृतो ह्यस्य स इन्द्रोऽब्रवीन्मह्यमत्रापि गृह्यतामथ त्वै स्तरिष्यामह इति त एतमैन्द्रवायवमगृह्णँस्ततो वृत्रमघ्नन् स एष सोमो वार्त्रघ्नो विजित्यै गृह्यते सोमो वै वृत्रस्स हतोऽपूयत् ते देवा वायुमब्रुवन्निमं नो विवाहीति सोऽब्रवीद्वार्यं वृणै मद्देवत्यान्येव पात्राण्युच्यान्ता इति तं व्यवात् तस्माद्गन्धमपाहन् स एष पशौ प्रमीते तस्मात् तस्मान्नापिगृह्यँ सोमस्य हि स राज्ञो गन्धो नैनं राजयक्ष्मो विन्दति य एवं वेद तस्माच्छुक्तं विषजन्ति तस्मादपि तृतीयं वायोः पात्रमथ वायव्यान्युच्यन्ते वार्यवृतानि ह्यस्य ॥३॥ १०-११

[३] मै. ४,५,८ (२३) । कपि. ४२,३ । तै. सं. ६,४,७—८ ।

नाना वा एतौ पुरा सोमा अगृह्णन् मित्राय वरुणाय च ताः प्रजा अशान्ता अविधृता अन्यान्यां मर्तीरचरँस्ते देवा अब्रुवन् सहेमं गृह्णाम मित्रेण वरुणँ शमयाम वरुणेन मित्रमिति ततो वा एतँ सहागृह्णँस्ते मित्रेणैव वरुणमशमयन् वरुणेन मित्रं ता इमाः प्रजा मित्रेण शान्ता वरुणेन विधृता यन्मैत्रावरुणो गृह्यते क्लृप्त्या एव विधृत्यै देवा वै मित्रमब्रुवन् वृत्रँ हनामेति नेत्यब्रवीन्मित्रोऽहमस्मि न हिनस्मीति हनामेवेत्यब्रुवन् सोऽब्रवीद्वार्यं वृणै पयसा मे सोमं श्रीणानिति तस्मात् पयसा मैत्रावरुणँ श्रीणन्ति वार्यवृतं ह्यस्य ततो वृत्रमघ्नँस्तस्माद्राजन्येनाध्यक्षेण वैश्यं घ्नन्ति तं मित्रस्सन्नृतमकरिति वरुणोऽगृह्णादप पशवोऽक्रामन् स मित्रो वरुण एवानाथत सोऽब्रवीत् सह ना एष सोमो गृह्यतामथ त्वातो मोक्ष्यामीति ततो वा एतँ सहागृह्णँस्तेनैनं वरुणादमुञ्चन्मैत्रावरुणो गृह्यते निर्वरुणत्वाय पशवो वै पयः पशूनाँ हि पयो यत् पयसा मैत्रावरुणँ श्रीणाति पशुभिरेवैनँ समर्धयत्यसोमो वा एष इत्याहुरोषधय एताः पय एव सोम इति यत् पयसा मैत्रावरुणँ श्रीणाति सोममेवैनं करोत्यथो यदेवास्याभिषुण्वन्तो घ्नन्ति यत् क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति ॥ शृतेन श्रीणाति मैत्रं वै शृतं वारुणं प्रतिधुक् स्वेनैवैनौ भागधेयेन समर्धयति मैत्रो ब्राह्मणो वारुणो राजन्यो यदेष मैत्रावरुणो गृह्यते तस्माद्ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रं यज्ञस्य वै शिरोऽच्छिद्यताथ तदश्विना असोमपौ भिषजौ देवानामास्तां तौ देवा अब्रुवन् भिषजौ वै स्थ इदं यज्ञस्य शिरः परिधत्तमिति ता अब्रुवतां वार्यं वृणावहै सोमपीथो नौ देवेष्वस्तु ग्रहो नौ गृह्यतामिति तौ देवा बहिष्पवमानेन पावयित्वा ताभ्यां शुचिभ्यां मेध्याभ्यां भूताभ्यां ग्रहमगृह्णँस्तस्मात् स्तुते बहिष्पवमान आश्विनो गृह्यते तस्माद्ब्राह्मणो बहिष्पवमानमासीत पवित्रं हि तत् तस्माद्यं द्विष्यात् तं बहिष्पवमानात् परिबाधेत पवित्रादेवैनं परिबाधते तौ देवानुपावर्तमानौ तयोर्या भिषज्या तनूरासीद् तां त्रेधा विन्यदधातामग्नौ तृतीयं ब्राह्मणे तृतीयमप्सु तृतीयं यं कामयेतामयाविनं जीवेदित्यपैरन्वे ब्राह्मणाय प्रोच्यापः परिब्रूयादेतावद्वै भेषजं यावदेव भेषजं तदस्मै करोति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते ॥४॥ १२-१३

प्राणा वै द्विदेवत्या एकपात्रा गृह्यन्ते तस्मात् प्राणा एकनामानस्ते द्विपात्रा हूयन्ते तस्मात् प्राणा द्वन्द्वं येन यजुषा प्रयच्छति तेन प्रतिगृह्णाति प्राणानाँ संतत्यै प्रतिष्ठात्यै नानुवषट् करोति यदनुवषट् कुर्यात् प्राणान् सँस्थापयेत् प्रमीयेत यजमानुयजति तस्मात् प्राणा असँस्थिता आ च परा च चरन्ति द्विदेवत्याः पूर्वे भक्षयितव्या३ इडोपहूया३ इति मीमाँसन्ते ॥ इडैव पूर्वोपहूया यज्ञस्य यथापूर्वत्वाय प्राणा वै द्विदेवत्याः पशव इडा यदेवं कुर्यात् पशुभिः प्राणानन्तरियात् प्रमीयेत द्विदेवत्या एव पूर्वे भक्षयितव्या अन्तरे वै प्राणाः परे पशवः प्राणानेवात्मन् धित्वा पशूनुपहूते ॥

[४] मै. ४,५,८; ६,२ (२३—२४; ८) । कपि. ४२,४ । तै. सं. ६,४,७—९ ।
[५] मै. ४,६,१—२ (१—८) । कपि. ४२,५ । श. ९,२०; १०,१८ । काण्व. ११,१०,२६ । तै. सं. ६,४,९ ।

ये वा इमे पुरुषे प्राणास्ते द्विदेवत्या वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवश्चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणश्श्रोत्रं चात्मा चाश्विनोऽग्निर्होतासीत् स वषट्कृत्याताम्यदाहितास्येडासीत् तस्य देवा द्विदेवत्यैरन्वैन्दन् प्राणा वै द्विदेवत्याः प्राणैरेवैनं तदभ्यधिन्वन् स इडोपहूतेति प्रत्यपद्यत प्राणा वै द्विदेवत्या यद् द्विदेवत्यान् भक्षयति प्राणैरेवात्मानमभिधिनोति तस्माद् द्विदेवत्या एव पूर्वे भक्षयितव्यास्ते हि पूर्वे भक्षिता आश्विनो दशमो गृह्यते ॥ दश हि प्राणास्तं तृतीयं जुहोति शिर एव प्राणानभिसँहरति समन्तं परिहृत्य भक्षयति श्रोत्रं वा आश्विनस्तस्मात् पुरुषस्सर्वतश्शृणोति रक्षाँसि वा एतत् पात्रँ सचन्ते यद्यज्ञे रिक्तमविमुक्तं भवति पुरोडाशमैन्द्रवायवस्य पात्रेऽवदधाति पयस्यां मैत्रावरुणस्य धानामाश्विनस्य रक्षसामपहत्यै तस्मात् प्राणा अदस्ता अरिक्ता दक्षिणस्य हविर्धानस्याधस्तात् सादयत्येतद्वा एतयोरग्निमद्धीर्यावद्यदेवाग्निमद्धीर्यावत् तस्मिन् सादयति पुरुषेण वै यज्ञस्संमितः प्राणापानैः पुरुषस्संततो यदेतानि प्रातस्सन्नान्या तृतीयसवनाच्छेरे प्राणापानैरेवं यज्ञँ संतनोत्येकया च दशभिश्चेत्येतां प्रतिविमुञ्चति यदर्वाग्विमुञ्चेत् प्राणान् विच्छिन्द्याद्यत् परः प्राणानतिरेचयेत् प्रमीयेत प्राणो वै वायुः प्राणा द्विदेवत्याः प्राणेनैव प्राणान् विमुञ्चति बहु वायव्यं प्रातस्सवने शस्यत एकैव तृतीयसवने तस्माद्बहवो मुखप्राणा एकोऽवाङ्यदि कामयेतावगतमपरुन्ध्युरपरुद्धोऽवगच्छेदितीदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्या विश उद्दूहामीत्यध्वर्योः पात्रमुद्दूहेदिदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यां विश्यभ्यूहामीति प्रतिप्रस्थातुः पात्रमभ्यूहेदध्वर्युर्वै श्रेयान् पापीयानपरुद्धोऽवगतमेवापरुणद्ध्यपरुद्धमवगमयति ताजग्व्यवगच्छेते व्यत्यूहेत् पात्राणि यदि कामयेत पापवसीयसँ स्यादित्यध्वर्योः पात्राणां लोके प्रतिप्रस्थातुः पात्राणि सादयेत् प्रतिप्रस्थातुः पात्राणां लोकेऽध्वर्योः पात्राणि सादयेदध्वर्युर्वै श्रेयान् पापीयान् प्रतिप्रस्थाता पापीयाँसमेव वसीयसो लोके सादयति वसीयाँसं पापीयसः पापवसीयसं करोत्येतद्ध वै विपूजनस्सौराकिः पापवसीयसं विदांचकार ॥५॥ १४-१७

यदि कामयेत यजमानादयजमानं भ्रातृव्यं पूर्वं कुर्यामिति प्रतिप्रस्थाता पूर्वो गृहीत्वा स पूर्वो निरूहेद्यजमानो वै श्रेयान् पापीयानस्माद्भ्रातृव्योऽयजमानो भ्रातृव्यमेवास्मात् पूर्वं करोत्यध्वर्यालोके तिष्ठञ्जुहोत्यध्वर्युर्वै श्रेयान् पापीयान् प्रतिप्रस्थाता भ्रातृव्यमेवास्य लोकमभ्यारोहयत्यलोकमेनं करोति नयत्राश्रावयेदध्वर्युरप्रतिष्ठानस्स्यात्स्थानालम्भ्य पात्रमाश्रावयेदेतद्वा अध्वर्योस्स्वमस्वस्स्याद्यत्राग्र आहुतिं जुहोति तदुत्तरा जुहुयाद्यत्र वा अग्र आहुतिं जुहोति तद्देवताः परिविशन्ति यदन्यत्रा जुहुयाद्देवताभ्यस्समर्दं कुर्यात् साक्षादेव देवेभ्यो भागधेयँ संप्रयच्छति ॥ नाना वा एतौ पुराग्नी आस्तां पशोश्चाहवनीयश्च तस्मात् पुरा रुद्रः पशूनघातुक आसीत् पशवो वै पशवः पशवोऽश्वो

[६] मै. ४,६,२ (२,४,८) । कपि. ४१,६ ।

रुद्रोऽग्निर्यदाहुतीस्संसृजति रुद्राय पशूनपिदधात्यपशुर्भवति तस्मादिदानीं रुद्रः पशून् घातुको मध्येऽग्नेर्जुहुयादाज्याहुतीश्च पश्चाहुतीश्चाभितस्सोमाहुती रुद्रमेव पशुभिः परिवृणक्त्यघातुकस्तत्र रुद्रः पशून् भवति यत्रैवंविदध्वर्युर्भवति ॥६॥ १८-१९

आयुस्संधत्तं प्राणँ संधत्तमिति प्राणानेव संधत्तस्तस्मात् प्राणा द्वन्द्वँ संजग्माना दिवा पृथिव्येतीमानेव लोकान् समर्धयतो निरस्ता शण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्म इत्येतावान् वै यज्ञो यावच्छुक्रामन्थिना एतावती पृथिवी यावत्युत्तरवेदिरनृतँ शण्डामर्का अनृतं भ्रातृव्योऽनृतमेव भ्रातृव्यमेतावता यज्ञाच्च पृथिव्याश्च निर्भजतश्शुक्रस्याधिष्ठानमसि मन्थिनोऽधिष्ठानमसीति समिद्ध एव जुहुतोऽग्निर्वा आहुत्या अतिद्रवादविभेद्यच्छल्कौ प्रास्यत आहुत्या अनतिद्रवाय ॥ चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यच्छुक्रामन्थिनौ यच्छल्कौ प्रास्यतश्चक्षुषोरेवान्तर्धत्तोऽप्रदाहाय तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोतेति चक्षुषोर्व्यावृत्त्यै तस्मात् समानँ सच्चक्षुर्द्वेधा सर्वहुतौ जुहुतस्सर्वमेव प्रजासु चक्षुर्धत्तो यः पात्राणां ग्रहाणाँ सोमानां मिथुनं वेद तस्मादेव मिथुनात् प्रजायते स्थालीभिरन्यान् ग्रहान् गृह्णन्ति वायव्यैरन्याँस्तत्पात्राणां मिथुनँ श्रीणन्त्यन्यान् ग्रहान्नान्याँस्तद्ग्रहाणां मिथुनमाशीर्वन्तोऽन्ये सोमा भवन्ति नान्ये तत् सोमानां मिथुनं तस्मादेव मिथुनात् प्रजायते ॥७॥ २०-२१

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन् बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीच्छण्डामर्का असुराणां ते न व्यजयन्त स इन्द्रोऽवेदुभये हि वै ब्रह्मण्वन्तस्स्मस्तन्न विजयामह इति ता उपामन्त्रयत अब्रुवतां वार्यं वृणावहै सोमपीथो नौ देवेष्वस्तु ग्रहौ नौ गृह्येतामिति ताभ्यामेता इन्द्रश्शुक्रामन्थिनौ प्रायच्छदात्मनस्सन्तौ तद्भागधेयमभ्यैतां तस्माद्राष्ट्रमपुरोहितं पराभावुकं तस्माद्भ्रातृव्यायानृतं वदेत् सोऽमन्यत यदिमा आभ्यामसुरब्रह्मास्याँ होष्यामि तदन्वसुरा आभविष्यन्ति यन्न होष्यामि तदन्वाभविष्यन्तीति ता आददानोऽपानुदतापनुत्ता शण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्म इति ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यस्यैवं विदुषश्शुक्रामन्थिनौ जुह्वति यस्यैवं विद्वाँसौ जुहुतो भ्रातृव्यस्यापनुत्त्यै भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति प्रजापतेर्वा अक्ष्यश्वयत् तस्य कनीनिका परापतत् सा विकङ्कतं प्राविशत् तस्मिन्नाध्रियत सा यवं प्राविशत् तस्मिन्नाध्रियत वैकङ्कतं मन्थिनः पात्रं भवति सक्तुभिश्श्रीणाति प्रजापतेरेव चक्षुसंभरति यजमानदेवत्यो वै शुक्रो भ्रातृव्यदेवत्यो मन्थी हिरण्येन शुक्रँ श्रीणाति तेजो वै हिरण्यं तेजसैव यजमानँ समर्धयति तस्मादन्यतरच्चक्षुषोस्तेजस्वितरं तस्मादहरेकरूपँ सक्तुभिर्मन्थिनँ श्रीणाति तेज एव भ्रातृव्यस्य विनयति

[७] मै. ४,६,३ (९—१५)। कपि. ४३,१। वा. ७,१२-१३,१७—१८। काण्व. ७,१२,१७। तै. सं. ६,४,१०।
[८] मै. ४,६,३ (९—१५)। कपि. ४३,१। वा. ७,१२—१३,१७—१८। काण्व. ७,१२,१७। तै. सं. ६,४,१०।
काठ० ३७

तस्माद्रात्री बहुरूपानभिध्वँसयन्नितराणि पात्राणि श्रीणीयाद्यदभिध्वँसयेदक्ष्यामयः प्रजा विन्देदन्धम्भावुको यजमानस्स्यात् प्रजापतेर्वा एते चक्षुषी यच्छुक्रामन्थिनौ यज्ञः प्रजापतिर्यत् प्राञ्चा उद्द्रुत्य जुहुतस्सवनमुखयोरेव चक्षुषी धत्तस्तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती असौ वा आदित्यश्शुक्रश्चन्द्रमा मन्थी यदपिगृह्य प्राञ्चा उदद्रवतस्तस्मादेतौ प्राञ्चौ यन्तौ न पश्यन्ति यदनपिगृह्य पुरस्तात् प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतस्तस्मात् प्रत्यञ्चौ यन्तौ पश्यन्ति ॥ प्राचीभिर्वा आहुतिभिर्देवा अन्यानसुरान् प्राणुदन्त प्रतीचीभिरन्यान् प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ शुक्रामन्थिनौ जुहुतः प्राचीरितरा आहुतयो हूयन्ते भ्रातृव्यस्य विनुत्त्यै न वा एतौ मनुष्याः प्रच्यवमर्हन्ति तुथोऽसि जनधाया देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु तुथोऽसि जनधाया देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्विति स्वयैवैनौ देवतया प्रणयति सुवीराः प्रजाः प्रजनयन् परीहि सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीहीति वीरमेवात्रीषु प्रजासु धत्तो भूमानमाद्यासु तस्मादेतासु वीर आजायते तस्मादितरा अद्यमाना न क्षीयन्ते ॥ शुक्रं वा अन्वत्रीः प्रजाः प्रजायन्ते मन्थिनमाद्या अग्निः प्रजनयिता यदभितोऽग्निं विपरिद्रुत्यजुह्वत उभयीरेवैतदत्रीश्चाद्याश्च प्रजाः प्रजनयतोऽवरिफन्ता इयोत्तरवेदिं परीयातां सपर्वास्य सुप्रकाशो जायते प्रजापतेर्वा एषा नासिका यदुत्तरवेदिश्चक्षुषी शुक्रामन्थिनौ यज्ञः प्रजापतिर्यत् प्राञ्चा उद्द्रुत्य जुहुतो नासिकाया एव पुरस्ताच्चक्षुषी धत्त एतद्ध्येतस्याः पूर्वमभितस्तिष्ठन्तौ जुहुतस्तस्मान्नासिकामभितश्चक्षुषी अनाधृष्टासीति निगृह्णीतस्तस्मादक्षि धाने नीपतमम् ॥८॥ २२-२४

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत तेऽसुरा भूयाँसश्श्रेयाँस आसन् कनीयाँसः पापीयाँस आनुजावरतरा इव देवास्ते देवा एतमाग्रायणमपश्यँस्तमगृह्णत तेनाग्रं पर्यायन् यदग्रं पर्यायँस्तदाग्रायणस्याग्रायणत्वं य आनुजावरस्स्यात् ॥ २५

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यँ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ २६

इत्येतया पुरोरुचाग्रायणं गृहीतं भ्रातृव्यमेव वृक्त्वाग्रं पर्येति ॥ वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामद्यज्ञे भागधेयमिच्छमाना ते देवा एतावद्यज्ञस्य मनसातन्वत सान्तर्यन्ति मेत्याग्रायणं प्रतिन्यागच्छद्यदाग्रायणं गृहीत्वा वाचं विसृजते वाचमेव यज्ञ आगतां युनक्ति मृगस्येव वै यज्ञस्याभित्सार आत्मा यज्ञस्याग्रायणो यद्वाचं यच्छति यज्ञमेवाभित्सरति यद्विसृजते यज्ञमेव यत्वा वाचं विसृजते प्रजापतिर्वा आग्रायणः प्राजापत्या एत ऋत्विजस्त्रयो वृता युक्ता यज्ञे भवन्ति प्रस्तोतोद्गाता प्रतिहर्ता यद्धिङ्करोत्युद्गातॄनेव वृणीते तेऽस्य वृता युक्ता यज्ञे भवन्ति ॥ द्वयोर्धारयोः प्रातस्सवने गृह्णाति

[९] मै. ४,६,४ (१६-१८)। वा. ७,१९-२०; ३३,३९। काण्व. ७,२०-२१; ३२,५९। तै. ब्रा. ६,४,११।
[विदद्यदी सरमा०। ऋ. ३,३१,६। तै. ब्रा. २,५,८,१०]

तिसृणां मध्यन्दिने चतसृणां तृतीयसवने नव वै पुरुषे प्राणा आत्मा यज्ञस्याग्रायणः प्राणानेवात्मानमभिसंपादयते वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यन्नाना सवनानि सँस्थापयन्त्यात्मा यज्ञस्याग्रायणो यदाग्रायणँ सवने सवनेऽभिगृह्णात्यात्मनैव यज्ञँ संतनोति ये देवा दिव्येकादश स्थेति त्रयस्त्रिंशद्देवता- भिरेव यज्ञँ संतनोति प्रजापतिर्वा आग्रायणो यत् प्रस्कन्दयति रेत एव दधाति यदुपगृह्णाति प्रैव भिरेव यज्ञँ संतनोति प्रजापतिर्वा आग्रायणो यत् प्रस्कन्दयति रेत एव दधाति यदुपगृह्णाति प्रैव जनयति स्थाल्या गृह्णाति सोऽविज्ञातो भवति येन होष्यन्तीति तस्माद्गर्भेणाविज्ञातेन भ्रूणहा स्थाल्या गृह्णाति वायव्येन जुहोति तस्मात् स्त्री निर्वीर्यानिर्वीर्यः पुमान् परा स्थालीमस्यन्ति न वायव्यं तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमाँसं यदि ग्रह उपदस्येदाग्रायणाद्गृह्णीयाद्यद्याग्रायण उपदस्येद्ग्रहेभ्यो गृह्णीयात् पिता वा आग्रायणः पुत्रा ग्रहा यद्वै पुत्रस्योपदस्यति पितरँ स उपधावति स एष प्रायश्चित्त्या एव सोमो गृह्यते ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद्गायत्र्ययातयाम्न्यभिनिवर्ततँ सर्वाणि सवनानि वहतीति वत्सो वा एष गायत्र्या यदाग्रायणो यदाग्रायणँ सवने सवनेऽभि- गृह्णाति तस्माद्गायत्र्ययातयाम्न्यभिनिवर्ततँ सर्वाणि सवनापि वहति तस्माद्गौर्वत्सादपाक्रियमाणा पुनरभिनिवर्तते प्रजापतिः प्रजास्सृष्ट्वा ता अभिहिङ्करोत् प्रजापतिराग्रायणो यदाग्रायणं गृहीत्वा हिङ्करोति तस्माद्गौर्वत्सं जातमभिहिङ्करोति ॥९॥ २७-२९

इन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत सोऽब्रवीद्वीर्यं वा इदं मय्यस्ति तत् ते प्रदास्यामि मा मे प्रहारिति तदस्मै प्रायच्छत् सोऽवेदस्ति वावास्मिन् वीर्यमिति तस्मै द्वितीयं तस्मै तृतीयमुदयच्छत सोऽब्रवीद्वीर्यं वा इदं मय्यस्ति तत् ते प्रदास्यामि मा मे प्रहारिति तदस्मै प्रायच्छद्यज्ञं वावास्मै तत् प्रायच्छदुक्थ्यमेवैतावान् यज्ञो यावानुक्थ्योऽन्तश्श्लेषणाय त्वा इतरे ग्रहा गृह्यन्ते त्रिः प्रायच्छत् तस्मादेतं त्रिर्विगृह्णन्ति यदेकँ सन्तं बहुधा विगृह्णन्ति तस्मादेको बहूनां ग्रामणीश्शिरो वै यज्ञस्योक्थ्योऽङ्गान्युक्थानि चक्षुषी शुक्रामन्थिनौ यदेतौ भूयिष्ठास्सोमा अनुहूयन्ते तस्माच्चक्षुस्सर्वाण्यङ्गानि प्रति यदुक्थ्यपात्रं भूयिष्ठास्सोमा अन्वायन्ति तस्मादेकं पुण्यं यन्तं बहवोऽनुयन्ति ॥ वि वा एतद्यज्ञं छिन्दन्ति यन्नाना सवनानि सँस्थापयन्त्यात्मा यज्ञस्योक्थ्यो यदुक्थ्यं सवने सवने विगृह्णाति तेनैव यज्ञँ संतनोतीन्द्राय त्वा बृहद्वत इत्यैन्द्रो वै यज्ञस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वेति विष्णुर्वै यज्ञो विष्णुनैव यज्ञेन यज्ञँ संतनोति यथा वा उभयतोयुक्तं यथोभयतोवीवधमेवं पुरोरुक् च ग्रहश्चावैषोऽपुरोरुक् को गृह्यत ईश्वरो यज्ञो विवृहो यदुक्थ्यं विगृह्णाति तेनैष सयुक्तेन सवीवधँ शिरो वै यज्ञस्योक्थ्योऽङ्गान्युक्थानि पश्चाद्वै प्राङ् यज्ञ उक्थ्यैश्शिरोऽभिसंततो यदुक्थ्यमवनयति पश्चादेव प्राञ्चं यज्ञमुक्थैश्शिरोऽभिसंतनोति तस्मात् पश्चात् पश्चात् प्राङ् पुरुषस्त्वावभिश्शिरोऽभिसंततस्त्वचा

[ये देवा(०सो) दिव्येकादश०। ऋ. १,१३९,११; तै. सं. १,४,१०,१]
[१०] मै. ४,६,५ (१९-३१)। वा. ७,९,२२;। काण्व. ७,८,२४। तै. सं. ६,५,१।

छन्नश्श्रीर्वै सोमो यदि कामयेताध्वर्युरात्मानं यशसार्पयेयमित्यन्तराहवनीयं च हविर्धानं चावनयेदेष वा अध्वर्योर्लोकस्स्व एव लोकेऽध्वर्युरात्मानं यशसार्पयति यदि कामयेत यजमानं यशसार्पयेयमित्यन्तरा सदोहविर्धाने अवनयेदेष वै यजमानस्य लोकस्स्व एव लोके यजमानं यशसार्पयति यदि कामयेत सदस्यान् यशसार्पयेयमिति सद आलभ्यावनयेदेष वै सदस्यानां लोकस्स्व एव लोके सदस्यान् यशसार्पयत्यात्मा वै यज्ञस्याग्रायणोऽङ्गान्युक्थ्यो यदाग्रायणमुक्थ्योऽनुगृह्यत आत्मन्नेव यज्ञस्याङ्गानि प्रतिदधाति तस्मादात्मन्नङ्गानि प्रतिहितानि ॥१०॥ ३०-३१

[१९५२]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां वाचस्पतिर्नाम सप्तविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२७॥

अथाष्टाविंशं स्थानकम् ।

आयुष्यम् ।

आयुर्वै ध्रुव उत्तमो गृह्यते तस्मादायुः प्राणानामुत्तमं नवमो गृह्यते नव हि प्राणा एकाकिनमुत्तरस्मिन् हविर्धाने सादयति तस्मादेकाकी प्राणानामर्धभागवाङ् प्राणो ध्रुवं वा अनु मनुष्याः प्रजायन्त इतरान् ग्रहानन्वन्याः प्रजा अनुपोप्ते ध्रुवँ सादयत्युपोप्त इतरान् ग्रहाँस्तस्मात् पुरुषो माँसेन प्रतितिष्ठत्यस्थ्ना पशवो राजपुत्रो गोपायति राजन्यो वै प्रजानामधिपतिरायुर्ध्रुव आयुरेव प्रजानां गोपायत्यथो क्षत्रमेव गोपायते यदि कामयेतावगतमपरुन्ध्युरपरुद्धोऽवगच्छेदित्यध्रुवं त्वा ध्रुवक्षितिमध्रुवाणामध्रुवतममच्युतानामच्युततमममुष्या विश उद्वहामीति ध्रुवमुद्वहेद् ध्रुवो वा एष योऽवगतोऽध्रुवोऽपरुद्धोऽवगतमेवापरुणद्ध्यपरुद्धमवगमयति ताजग्व्यवगच्छेते यदेवं कुर्यादायुः प्रजानां विचालयेत् तृणमेतेन मन्त्रेणोपर्युपर्यतिहरेत् तेनैवापरुद्धमवगमयति नायुः प्रजानां विचालयति देवक्षेत्रं वै वेदिरेतावती पृथिवी यावती वेदिर्देवक्षेत्रेणैवैनं मनुष्यक्षेत्रान् वदति पूर्णं गृह्णीयाद्यं कामयेत सर्वमायुरियादिति पूर्णमेवास्मा आयुर्गृह्णाति सर्वमायुरेत्यल्पं गृह्णीयाद्यं कामयेताल्पमायुरियादित्यल्पमेवास्मायुष्करोति ताजक् प्रधन्वत्युपर्युपाधं गृह्णीयाद्यं कामयेतोत्तरमायुरियादित्युत्तरमेवैनमायुर्गमयति॥ यथारूपमस्मा आयुः परिगृह्णात्युभयतोवैश्वानरं गृह्णाति तस्मात् प्राणा उभयतोवैश्वानरा मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या इति देवेषु चैवं मनुष्येषु चायुर्दधाति पुरुषेण वै यज्ञस्संमित आयुषा पुरुषस्संततो यदेष प्रातर्गृहीत आ तृतीयसवनाच्छय आयुषैव यज्ञँ संतनोति प्रातर्वा एतौ गृह्येते गायत्र्या लोक आग्रायणश्च ध्रुवश्च ता आ तृतीयसवनाच्छयाते जगत्या लोकात् तस्माद्गायत्र्ययातयाम्न्युत्तरे सवने प्रत्येत्येतदेवाभि भागधेयं प्राणो वै गायत्र्यायुर्ध्रुवो यदेष प्रातस्सन्न आ तृतीयसवनाच्छये

[१] मै. ४,६,६ (३३-५४)। कपि. ४४,१। वा. ७,२४; ३३,८। काण्व. ७,२६, ३२,८। तै. सं. ६,५,२।
[मूर्धानं दिवो०। ऋ. ६,७,१। सा. ६७; ११४०। तै. सं. १,४,१३,१]

तस्माद्यावदेवायुस्तावान् प्राण आयुर्वै ध्रुवो रुद्रोऽग्निर्नैकाकी होतव्य आयुः प्रजानां प्रदध्यात् प्रमायुकास्स्युर्होतुश्चमसेऽवनयति वैश्वदेवो वै होता वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः प्रजास्वेवायुर्दधात्यध्रुवं वा एनमेतद् करोति यदवनयत्येतस्य वा अध्रुवत्वमनु प्रजाभ्यो न कल्पते दृँहन्तां दैवीर्विशः कल्पन्तां मनुष्या दिवि दिव्यानि सन्त्वन्तरिक्षे वयाँसि पृथिव्यां पार्थिवानीति ध्रुवमवनयति यथायतनमेव प्रजा दृँहन्त्याहृत उक्थेऽवनयेत् स्तुतेनैव शस्त्रमभिसंतनोति यदाहृतेऽवनयेदुक्थमतिरेचयेद्यच्छस्ते ग्रहमतिरेचयेद्या मध्यमा परिधानीया तस्यामवनयत्यङ्गानि वा एतानि यज्ञस्य यदुक्थामदान्यायुर्ध्रुवोऽर्धं वै पुरुषस्यात्मनोऽङ्गान्यर्धमायुरन्ता एवाभितस्संधायायुर्मध्यतो दधाति कस्मात् सत्यादित्याहुर्ब्रह्मवादिन आयस्त्वरमाणा न क्षीयन्ते न प्रदस्यन्तीत्येतमेव सोमपीथं प्रतीक्षमाणा यद् ध्रुव एष क्षेना अपनुदते प्रत्यङ्ङासीनोऽवनयत्यन्वीपमेवैना अवार्जति न सामि प्रस्तावयेताग्निष्टोममेवासीतायुर्वै ध्रुव आयुर्व्यवस्तावयेत्तावान् वै यज्ञो यावानेवाग्निष्टोमो यदाग्निष्टोममास्ते प्राणस्यैवास्यान्तं गच्छति सर्वमायुरेत्युदरं वा एतद्यज्ञस्य यत् सदस्तद् द्रवन्ति निस्सर्पन्तो यज्ञः प्रजापतिर्यदाग्निष्टोममास्ते प्रजापतेरेवोदरं न रिणक्त्यप्रमायुको भवति ॥१॥ १–२

देवा वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्त ऋतून् संवत्सरममोहयँस्तस्य देवाः क्लृप्तिमैच्छँस्त ऋतुग्रहैरेवाकल्पयन् यदृतुग्रहा गृह्यन्ते संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्या उभौ सह प्रथमं गृह्यते उभौ सेतौ सह संवत्सरं कल्पयितुमुपप्रेत उभौ सहोत्तमँ संवत्सरमेव कल्पयित्वोभौ सह विमुच्येते उभयतोमुखे ऋतुपात्रे भवत उभयतोमुखा ह्यृतवो न हि तद्विद्म यतरत ऋतूनां मुखं नान्योऽन्यमभिप्रपद्येयातां यदभिप्रपद्येयातामृतुर्ऋतुमन्यायुकस्स्याद्यदतीतस्तस्मादाहुरश्वा इवर्तू समप्रावामिति द्वादशैते गृह्यन्ते द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सरस्य क्लृप्त्यै संवत्सरो वै स्वर्गो लोकस्तस्यैत आक्रमास्संक्रमा यदृतुग्रहा रोहमेवैतै रोहति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै षडन्ये भवन्ति षडन्येऽसौ वा आदित्य ऋतुस्तस्मादेष षण्मास उदङ्ङेति षड् दक्षिणा षडृतुना षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति चतुर्ऋतुभिश्चतुष्पादाः पशवस्संवत्सरं पशवोऽनुप्रजायन्ते संवत्सरादेवास्मै पशून् प्रजनयति द्विर्ऋतुना पुनर्द्विपाद्यजमानः पशुष्वेवोपरिष्टाद् प्रतितिष्ठति ॥ सोमपाना वा एते सोमपा इन्द्रस्य सजाता यदृतुग्रहा ऋतुना सोमं पिबन्त्विति ह्याह नर्तुरिति नर्तवे जुह्वति तेषामेते स्वे पात्रे याभ्यामेनाञ्जुह्वति तस्मात् सजातस्स्वेन पात्रेण बलिं हरत्यास्मै बलिं हरन्ति य एवं वेद व्यवहारं भक्षयन्त्ययातयामत्वाय तस्मादृतुमृतुं वर्षति तेन देवास्संवत्सरं कल्पयित्वा स्वर्गं लोकं प्रज्ञाय त एतद्यज्ञस्य ज्योतिरुपरिष्टाददधुर्यदैन्द्राग्नो गृह्यते ज्योतिरेव मुखतो यज्ञस्य दधाति संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै ॥ तस्मात् संवत्सरं ज्योतिरुपर्युपरि चरत्यृतुपात्रेणैन्द्राग्नं गृह्णाति

[२] मै. ४,६,७-८ (५४-५६) । कपि. ४४,२ । तै. सं. ६,५,३—४ ।

क्षत्रं वा इन्द्राग्नी विडृतवो विश्येव क्षत्रमध्यूहति विश्वे वै देवास्तृतीयसवनभागास्सन्तस्ते प्रातस्सवनमभ्यकामयन्त तान् प्रजापतिरेतस्मिन् ग्रहे तर्पयितव्यानपश्यद्यद्वैश्वदेवः प्रातस्सवने गृह्यते विश्वानेव देवान् प्रातस्सवने तर्पयति तानस्य तृप्तान् प्रीतानुत्तरे सवने अभिविसृज्येते शुक्रपात्रेण वैश्वदेवं गृह्णात्यसौ वा आदित्यश्शुक्रो वैश्वदेवीरिमाः प्रजास्तस्मादेष सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ् मा३म्प्रति मा३म्प्रतीति हि मन्यन्ते ॥२॥ ३–५

माध्यन्दिनेन वै सवनेनेन्द्रो वृत्रमहन् मरुद्भिर्वीर्येण मरुत्वतीयँ स्तोत्रं भवति मरुत्वतीयमुक्थं मरुत्वतीया ग्रहास्सर्वत एव यजमानं वीर्येण समर्धयति सर्वतो वृत्रँ हन्ति प्रतिहितिरेव प्रथमो मरुत्वतीयोऽपायतिर्द्वितीयो विसृष्टिं तृतीयेन विसृजति वज्रमेव प्रथमेन मरुत्वतीयेनोद्यच्छते प्र द्वितीयेन हरति स्तृणुते तृतीयेन यं द्विष्यादमरुत्वतीयाँस्तस्य गृह्णीयाद्वीर्यं वै मरुतो वीर्येणैवैनं व्यर्धयतीन्द्रो वै वृत्रँ हनिष्यन् प्रदानं देवेभ्यः प्रायच्छद्दक्षिणास्स मरुत्वतीयैरेव वृत्रमहँस्तस्मान्मरुत्वतेऽनूक्ते न देयँ हतो हि तर्हि वृत्रो विजितं भवति नो प्रतिगृह्णीयात् प्रतिष्ठितान् पशून् प्रच्यावयत्यपशुर्भवतीन्द्रो वै वृत्रँ हत्वा स महेन्द्रोऽभवत् सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत स एतं ग्रहमुद्धारमुदहरत महेन्द्रीयं तस्माद्राजा संग्रामं जित्वा निराजं निरजते ते तं देवा अब्रुवन् सर्वं वा अवोचथा अस्तु नोऽत्रापीति कथं वोऽपि स्यादिति विराजैतस्य ग्रहस्य यजत्विति देवपात्रं वै विराड् यद्विराजा यजति देवपात्रेणैव देवतास्तर्पयति ।। तस्माद्यद्राजा संग्रामं जयत्यपि तत्र सूतग्रामणीनां गायत्र्या वै त्रिवृदायतनवाँस्त्रिष्टुभा पञ्चदशो जगत्यैकविंशोऽथैषा विराडायतनमेव यत् सप्तदशो यद्विराजा यजति सप्तदशमेवायतनवन्तं करोति यं द्विष्यात् त्रिष्टुभा तस्य यजेदोजो वै वीर्यं त्रिष्टुबोजसैवैनं वीर्येणायतनाच्छिनत्ति सोऽनायतनः पराभवति देवा वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते यज्ञं मध्यतः प्राविशन्नेतां वाव तद्वचं प्राविशन् विराजमेव यद्विराजा यजति देवतानामभीष्ट्या आदित्या वै स्वर्गं लोकं यन्तस्तेऽङ्गिरसोऽस्मिँल्लोके सह यज्ञेन प्रत्यौहँस्तेऽङ्गिरस आदित्यानब्रुवन् कतिभ्यो वो हव्यं वक्ष्याम इति त्रयस्त्रिंशत इत्यब्रुवन् दश वसव इन्द्र एकादशो दश रुद्रा इन्द्र एकादशो दशादित्या इन्द्र एकादशस्त्रिंशदेता देवतास्त्रिंशद् व्यक्षरो वषट्कार एकाक्षरा वाक्तेनैन्द्रं कल्पन्तेऽस्य देवता हव्ये यथादेवतमस्य हव्यं गच्छति वृणत एनमार्त्विज्याय य एवं वेद यावतीर्हि देवतास्ता हव्यं गमयति ॥३॥ ६–७

माध्यन्दिनाद्वै सवनाद्देवास्स्वर्गं लोकमायँस्तेषामेत आक्रमास्संक्रमा यद्दक्षिणा यद्दक्षिणा ददाति सेतुमेव कीर्त्वा स्वर्गं लोकमेति यावद्वा इह प्राणद्ददाति तावन्तोऽमुष्मिँल्लोके प्राणास्तस्माद्बहु देयं

[३] मै. ४,६,८ (५६) । कपि. ४४,३ । तै. सं. ६,५,५ ।

[४] मै. ४,८,२—३ (५—६) । कपि. ४४,४ । वा. ७,४५-४६ । काण्व ९,१०-११ । तै. सं. ६,६.१ ।

तस्मादिह बहु दत्तं प्रशँसन्ति ज्यायाँसमेव सेतुं किरत एतर्हि वै देवता नेदिष्ठाद्व्यानमन्ति तस्मादेष एतर्हि तेजिष्ठं तपति यावन्नेदिष्ठादेव स्वर्गं लोकमारोहति सौरीभ्यां जुहोति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै द्वाभ्यां द्विपाद्यजमानोऽस्यामेवैनमाक्रामयति यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवैनमाक्रामयति ॥ यद्ददाति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति द्यां गच्छ स्वर्गच्छेति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै रूपं वो रूपेणाभ्यागां वयसा वय इत्येतद्वै पशूनां रूपं यद् घृतं यद्धिरण्यं रूपमेवैषां रूपेणाभ्येति वयसा वयस्तुथो वो विश्ववेदा विभजत्विति सत्यं वै तुथो विश्ववेदास्सत्येनैवैनान् ब्रह्मणा विभजत्येतद् ते अग्ने राध एति सोमच्युतमित्याग्नेया वै पशवस्ते सोमे दीयन्ते तान् मित्रस्य पथा नयेति मित्रस्यैवैनान् पथा नयत्यन्तराग्नीध्रं च सदश्च नयत्येतेन वै पथा देवास्स्वर्गं लोकमायँस्तमेवैना अपिपादयति ॥ दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षाँस्यजयँस्तमाग्नीध्रात् पुनरपाजयन् यदाग्नीध्राद्दक्षिणा दक्षिणा नयन्ति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्या आग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्याग्नेया वै पशवः पशूनां निष्क्रीत्यै वारुण्या द्वितीयया जुहुयाद्यद्यश्वं वानो वा रथं वा दास्यन् स्याद्वारुणा ह्यश्वा वारुणा वनस्पतयोऽग्निस्सर्वा देवता देवतानामभीष्ट्या उपबर्हणं ददात्येतद्वै छन्दसां रूपं रूपेणैव च्छन्दाँस्यवरुन्द्धे हिरण्यं ददाति हिरण्यज्योतिष एवैनास्स्वर्गं लोकं गमयत्यरुद्राता मधुमती देवत्रा गच्छेति स्वर्गमेवैना लोकं गमयति ॥ प्र दातारमाविशेति तस्मादमुष्मिँल्लोक आगामुका ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा इति यो वै यज्ञियो मेध्यस्स ऋतस्य पन्थास्तेनैवैना नयति ब्राह्मणमद्यर्ध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमिति यो वै श्रोत्रिय आर्षेयस्स पितृमान् पैतृमत्यस्तं विदेयमित्येवैतदाह स हि सुधातुदक्षिणो यामब्राह्मणाय ददाति वनस्पतयस्तया प्रयन्ते यां कण्वकश्यपेभ्यो ददाति नीहारस्तया प्रयते यां ब्राह्मणायाश्रोत्रियाय ददाति मरीचयस्तया प्रयन्ते याँ श्रोत्रियायार्षेयाय ददाति स यामुष्मिँल्लोक ऋध्नोत्यस्मिँश्चास्य लोके पुनर्भोगाय भवति तस्मात् स एवैष्टव्यो वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षमिति सदः प्रेक्षते ॥ सोमपा वा एते ब्राह्मणास्तेषां तेजस्वीनि चक्षूँष्यगतीयन्ति वा एते ददते त एनमीश्वराः प्रतिनुदस्तेभ्य एव नमस्करोत्यप्रतिनोदायात्रिहिरण्यं ददाति स्वर्भानुर्वा आसुरस्सूर्यं तमसाविध्यत् तमत्रिरेवाग्रेऽन्वविन्दद्यदत्रिहिरण्यं ददाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै यद्यात्रेयं न विन्देद्य आर्षेयस्सँहितस्तस्मै दद्यात् तेनैवर्ध्नोत्यसुरा वै देवेभ्यो दक्षिणामनयँस्तां प्रत्यनुदन्त तेऽब्रुवन्नश्लीलदेषेति तेभ्योऽपरामनयँस्तां प्रत्यनुदन्त तेऽब्रुवन्नृम्णमेषामादिति तेभ्योऽपरामनयँस्तां प्रत्यनुदन्त तेऽब्रुवन्नुद्राप्मीदेषेत्येता ह वै तद्विरभ्यनूवाच ॥ ८–१२

अव द्रप्सो अँशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिस्सहस्रैः ।

आवत् तमिन्द्रश्शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्ताम् ॥ १३

[अव द्रप्सो अंशुमती० ऋ. ८,९६,१३; सा. ३२३; अथर्व. २०,१३७,७; तै. आ. १,६,३]

इति सा सालावृकी संभूयासुरान् प्राविशत् सैनानिरदहत् तस्माद्दक्षिणा प्रतिनुत्ता न प्रतिगृह्या न गोषु चालयेत् सालावृकयैवैनं भूत्वा प्रविशति सैनं निर्दहति ॥४॥ १४

यद्गां ददात्यायुस्तेन स्पृणोति यद्वासो ददाति दीर्घं तेनायुष्कुरुते यदश्वं ददाति सूर्यभ्राजमेवैनं करोति यदनो यद्रथं ददाति शरीराणि तेन स्पृणोति यदविं यदजां ददाति माँसानि तेन स्पृणोति यदोदनं यन्मन्थं ददाति यदेवास्यान्तरात्मं तत् तेन स्पृणोति यद्वरं ददात्यात्मानं तेन स्पृणोत्यात्मा हि वरो यद्ब्रह्मणे ददाति बार्हस्पत्यो वै ब्रह्मा बृहस्पतिमेव तेन प्रीणाति यदुद्गात्रे ददाति प्राजापत्यो वा उद्गाता प्रजापतिमेव तेन प्रीणाति यद्धोत्रे ददाति वैश्वदेवो वै होता सर्वा एवास्य तेन देवता अभीष्टाः प्रीता भवन्ति यदध्वर्युभ्यां ददात्याश्विनौ वा अध्वर्यू अश्विना एव तेन प्रीणाति यदृत्विग्भ्यो ददाति होत्रा वा ऋत्विजो होत्रा एवास्य तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति ॥ यद् सदस्येभ्यो ददाति यमेव ते सोमं पिबन्ति तं तेन निष्क्रीणाति यां ब्राह्मणाय श्रोत्रियायानृत्विजे प्रसृप्ताय ददाति यामेव स विद्यां वेद सास्य तेनाभीष्टा प्रीता भवति यामब्राह्मणायाश्रोत्रियायानृत्विजे प्रसृप्ताय ददाति यामेव स विद्यां वेद सास्य तेनाभीष्टा प्रीता भवति यामकामो ददाति तस्मात् क्षत्रं ब्रह्मात्ति यां याचितो ददाति भ्रातृव्यं तया जिन्वति यां बहिर्वेदि ददाति नैनँ सा गच्छति यां ज्ञातयेऽनृत्विजे प्रसृप्ताय ददाति पाप्मानं तन्निधत्ते यां ज्येष्ठाय याँ श्रोत्रियाय ददाति येनैव स तदिन्द्रियेण भवति तदस्याभीष्टं प्रीतं भवति ॥५॥ १५–१६

आदित्या वा असुरान् हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते देवान् प्राविशन् द्विदेवत्यान् वाव तत् प्राविशन्नेते हि देवानाँ सह भूयिष्ठास्तस्मादादित्यो द्विदेवत्येभ्यो गृह्यत उच्छिष्टाद्वा आदित्या जातास्तस्मादेष उच्छिष्टस्सोमो गृह्यत उच्छेषणभागा वा आदित्यास्तस्मादेष उच्छिष्टस्सोमो गृह्यते परिश्रिते गृह्णाति रुद्रो वा अग्निः पशव आदित्यः पशूनां गोपीथाय रुद्रं वै देवा यज्ञान्निरभजँस्ते समवादिग्रन्नेष ते मातरि भाग इत्यादित्यान्तमेतावदागमयित्यैतत् प्रति यज्ञादन्तरदधुर्यत् परिश्रित आदित्यं गृह्णाति रुद्रमेव यज्ञादन्तर्दधाति ॥ पशवो वा आदित्यो यदेष भूयिष्ठस्सोमो गृह्यते तस्मात् पशवोऽद्यमाना न क्षीयन्ते यदा बहवोऽन्तर्वेदि स्युरथ गृह्णीयात् तानेवाम्नायमवरुन्द्धे यदास्य भ्रातृव्योऽन्तर्वेदि स्यादथ गृह्णीयादेष वै यजमानस्य स्वो लोको यद्वेदिः पशव आदित्यस्स्व एव लोके भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्ते बृहतीः पुरोरुचो भवन्ति पशवो वै बृहतीः पशव आदित्यः पशुष्वेव पशून् दधाति सोममग्रे गृह्णात्यथ दध्यथ सोममूर्ग्वै दधि पशव आदित्य ऊर्जमेव पशुषु मध्यतो दधाति भृतातङ्क्यं भवति तस्मादामा पक्वं दुहे यदि कामयेत वर्षेदिति या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा

[५] मै. ४,८,३ (६) । कपि. ४४,५ ।

[६] मै. ४,६,९ (५९-६३) । कपि. ४४,६ । तै. सं. ६,५,६ ।

श्रीणामीति दध्नोपरिष्टाच्छ्रीणीयात् पशवो वै दधि पशव आदित्यः पशुभ्य एव वर्षति यर्हि वर्षति पशुभ्य एव वृष्टिं निनयत्युपाँशुसवनेन मेक्षयति प्राणो वा उपाँशुसवनः पशव आदित्यः पशुष्वेव प्राणं दधाति विवस्व आदित्यैष ते सोमपीथ इत्येष वाव स उपाँशुसवनस्साक्षादेवैनँ सोमपीथेन समर्धयति यद्युद्गृहीतस्य स्तोकोऽवपद्यते ताजक् प्रवर्षति गृहीत्वापिदधाति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय तं दशमे स्तोत्रे प्रच्यावयति तस्माद्दशमे मासि गर्भा हिताः प्रजायन्तेऽन्यत्रेक्षमाणो जुहोति रुद्रो वा अग्निः पशव आदित्यः पशूनां गोपीथाय यदीक्षेत ब्राह्मण उपद्रष्टा पशून् गृह्णीयात् पशूनामेव प्रदीयमानानामनुपद्रष्टा भवति ॥६॥ १७-१८

अन्तर्यामपात्रेण सावित्रं गृह्णाति पशवो वा अन्तर्यामस्सवितृप्रसूताः पशवः प्रजायन्ते सवितृप्रसूत एवैनान् प्रजनयति तमसन्नं जुहोति तस्मादसन्नाः पशवस्सदप्रजायन्ते देवा वै तृतीयसवनमुद्यमं नाशक्नुवन् प्रातस्सवने तर्हि सवितासीत् तं देवा अब्रुवँस्त्वयेदमुद्यच्छामहा इति नेत्यब्रवीन्मुख्योऽहमस्मि न प्रत्यङ्ङुपक्रमिष्यामीति मुख्य एवात्रास इत्यब्रुवन् मुख्य इहाथ त्वयोद्यच्छामहा इति तत् सवित्रोदयच्छन्त यत् सावित्रो गृह्यते तृतीयसवनस्योद्यत्या अभि त्वा देव सवितरित्येतया प्रातस्सवने मुख्यस्समन्तं वै तत् सविता यज्ञं पर्यभवत् समन्तं भ्रातृव्यं परिभवति य एवं वेदान्तर्यामपात्रेणाग्रायणात् सावित्रं तृतीयसवने गृह्णाति ॥ प्रातर्वा एष गृह्यते गायत्र्या लोके यदाग्रायणस्तं तृतीयसवने विगृह्णाति जगत्या लोके तस्मादाग्रायणात् सावित्रो गृह्यते सविता हि देवानां गायत्रस्सावित्रस्य सँस्रावे वैश्वदेवमभिगृह्णाति समानो वा एष ग्रहस्संतत्यै वैश्वदेवीरिमाः प्रजास्सवितृप्रसूताः प्रजाः प्रजायन्ते सवितृप्रसूता एवैनाः प्रजनयति सुशर्मासि सुप्रतिष्ठान इति सोमे हि सोममभिगृह्णात्यथो सुशर्माणमेवोत्तरमधरस्मै करोति सुप्रतिष्ठानमधरमुत्तरस्मै बृहदुक्षे नम इति बृहद्धि देवानां नमः पितृणामुक्थभागा वै पितरोऽस्तोमभाजो यत्रैवैभ्य उक्थँ शँसति तदेभ्यो ग्रहं गृह्णाति ॥७॥ १९-२०

प्रजननं वै पात्नीवतो यद्वै किंच यज्ञे पात्नीवतं क्रियते प्रजननमेव तदुपाँशुपात्रेण गृह्णाति प्राणो वा उपाँशुः प्राणात् प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननायोपाँशुना प्रयन्त्युपाँशुपात्रेणोद्यन्ति प्राणो वा उपाँशुः प्राणेनैव प्रयन्ति प्राणेनोद्यन्ति बृहस्पतिसुतस्य त इति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते ब्रह्मणैवैनाः प्रजनयतीन्द इति रेत एव दधातीन्द्रियावत इतीन्द्रियं वै प्रजास्सोमपीथोऽग्ना३इ पत्नीवानिति मिथुनमेव करोति सजूस्त्वष्ट्रा सोमं पिबेति त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता सोऽस्मै रूपाणि विकरोत्येष वै ग्रहः पत्नीभ्यो नातिष्ठत तं देवा आज्यं वज्रं कृत्वाघ्नन् यत् पात्नीवतँ

[७] मै. ४,७,१ (१)। कपि. ४४,७। तै.सं. ६,५,७ [अभि त्वा देव सवित०। ऋ. १,२४,३, तै. सं.३,५,११,३]
[८] मै. ४,७,४ (११)। कपि. ४४,८। वा. ८,९—१०। काण्व. ८,८-११। तै. सं. ६,५,८।

श्रीणाति स्तृत्यै संपातेन श्रीणाति संतत्या उपरिष्टाच्छ्रीणाति तस्मात् स्त्र्यखलतिर्भावुका मृतं वा एतँ सोमं जुहोत्यमृतानितराँस्तस्मात् स्त्री निर्वीर्यानिर्वीर्यः पुमान्नेतस्य होता यजति पश्चेव हि स पश्चात् प्राणान् परिहरेदग्निर्यजति पुरो हि स पुरः प्राणान्नानुयजति यदनुयजेदग्निना प्राणानन्तरियात् प्रमीयेत स्तृतं वा एतँ सोमं भक्षयति तस्मादग्निस्पण्डको भावुकः प्रजननं वै पात्नीवतस्तस्माद्बहुपशुर्भावुकस्सह पात्रेण नेष्टारमभिसर्पति पत्नीरिव सोमपीथं गमयति नोपस्थ आसीत यदुपस्थ आसीत पण्डकस्स्यादन्तरा नेष्टारं च धिष्ण्यं च व्यवसर्पति स्त्रीणां वै नेष्टा पुमान् धिष्ण्यो मिथुन एव रेतो दधाति ॥८॥ २१

इन्द्रो वै वृत्रमहँस्तस्य मूर्धानमुदरुजत् स द्रोणकलशोऽभवत् ततो यस्सोमस्समस्रवत् स हारियोजनोऽभवदिन्द्रो वै वृत्रँ हत्वा तस्य क्लोम्नो हृदयात् सोमँ समसिश्चत् स हारियोजनोऽभवत् सोऽमन्यत यदिममशृतमद्वितीयँ होष्यामि तदन्वसुरा आभविष्यन्ति यन्न होष्यामि तदन्वाभविष्यन्तीति स सँस्थितस्सोम आसीत् प्रहृताः परिधयोऽथोपोदतिष्ठद्धोतुं तमग्निरब्रवीन्न मय्येतमशृतमद्वितीयँ होष्यसीति तस्मिन् धाना आवपत् तँ शृतं द्वितीयवन्तमजुहोद्यद्धाना आवपति शृतत्वायैव द्वितीयत्वाय ये वै ते वृत्रे पशव आसँस्त एवैते पशूनेवैतत् कामदुघोऽवरुन्द्धे कामं कामँ ह्येतेषां कुरुत ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी तयोरेतद्भागधेयम् ॥ यद्धारियोजन आधानानि परिधयो यत् प्रहृतेषु परिधिषु हारियोजनं जुहोति निराधानाभ्यामेवाभ्यां घासमपिदधाति प्रजापतिर्वा आग्रायण आग्रायणादेष सोमोऽतिरिच्यते यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते प्रजापतिं तदभ्यतिरिच्यते यदेतमतिरिक्तँ सोमं जुहोति तस्मादयमतिरिक्तः प्रजापतिः प्रजा एवाभिवपते द्रोणकलशेनोन्नेता हारियोजनं जुहोत्यतिरिक्तं वा एतत् पात्राणां यद् द्रोणकलशोऽतिरिक्त एष ऋत्विजां यदुन्नेतातिरिक्त एष सोमानां यद्धारियोजनोऽतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोत्युन्नेतर्युपहवमिच्छन्ते य एव तत्र सोमपीथस्तस्यावरुद्ध्यै ये वै ते वृत्रे पशव आसँस्त एवैते यत् संभिन्द्यात् सँशारुका एनमल्पाः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठेरन् हिनस्ति हि यन्न संभिन्द्यादसँशारुका एनं बहवः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठेरन् न हि हिनस्ति समिव गृह्णीयादुभयमेव करोत्यसँशारुका एनं बहवः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठन्ते निरिव धयेद्य एव तत्र सोमपीथस्तस्यावरुद्ध्या उत्तरवेद्यां निवपति पशवो वा उत्तरवेदिः पशवो हारियोजनीः पशुष्वेव पशून् दधाति ॥९॥ २२-२३

पात्राणि प्रयुज्यन्तेऽनयोर्लोकयोर्विधृत्यै प्रान्यानि युज्यन्ते नान्यानि यानि प्रयुज्यन्त इमं तैर्लोकं दाधार यानि न प्रयुज्यन्तेऽमुं तैः पराङ् ह्यसौ लोकोऽनिरुक्त उपाँशुपात्रं प्रयुज्यतेऽजा

[९] मै. ४,७,४ (११)। कपि. ४४,९। वा. ८,११। काण्व. ८,१२। तै. सं. ६,५,९।
[१०] मै. ४,८,८ (१६)। कपि. ४५,१। तै. सं. ६,५,१०,१, ६,५,११,१—३।

एव तत् पशूनामनुप्रजायन्ते त्रिर्विगृह्णाति तस्मात् सा.त्रीञ्जनयत्यथो द्वौ यदुपाँशुपात्रं प्रयुज्यतेऽजा एव तेन पशूनां दाधारान्तर्यामपात्रं प्रयुज्यतेऽवय एव तत् पशूनामनुप्रजायन्ते यदन्तर्यामपात्रं प्रयुज्यतेऽवीरेव तेन पशूनां दाधारर्तुपात्रे प्रयुज्येते अश्वा एव तत् पशूनामनुप्रजायन्ते तस्मात् तयोरश्वस्येव शफोऽधस्ताद्यदृतुपात्रे प्रयुज्येते अश्वानेव तेन पशूनां दाधारोक्थ्यपात्रं प्रयुज्यत आरण्या एव तत् पशवोऽनुप्रजायन्ते तस्मात् तान् धृतान् ग्राममागतान् घ्नन्ति यदुक्थ्यपात्रं प्रयुज्यत आरण्यानेव तेन पशून् दाधार शुक्रपात्रं प्रयुज्यतेऽत्रीरेव तत्प्रजा अनुप्रजायन्ते मन्थिपात्रं प्रयुज्यत आद्या एव तत् प्रजा अनुप्रजायन्ते यदेते प्रयुज्येते उभयोरेवैतदत्रीश्चाद्याश्च प्रजा दाधारर्तुप्रयुज्यत आद्या... पात्रे शुक्रपात्रात् पूर्वे प्रयुज्येते असौ वा आदित्यश्शुक्रो रश्मय ऋतवस्तस्मादेते पूर्वे प्रयुज्येते पूर्वे ह्येव एतस्मादवरमादित्यपात्रं प्रयुज्यते गाव एव तत् पशूनामनुप्रजायन्ते यदादित्यपात्रं प्रयुज्यते गा एव तेन पशूनां दाधाराग्रायणपात्रं प्रयुज्यते सर्वा एव तत् प्रजा अनुप्रजायन्ते यदाग्रायणपात्रं प्रयुज्यते सर्वा एव तेन प्रजा दाधार द्रोणकलशः प्रयुज्यते प्रजापतिर्वै द्रोणकलशो यद् द्रोणकलशः प्रयुज्यते तस्मादिदं प्रजापतिः प्रजा वेद तस्मादयं क्षयोऽस्त्येतावन्तो वै प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते ते स्तोत्रवन्त उक्थवन्तो निदानवन्त आयतनवन्तः कर्तव्या नवैतान् गृहीत्वा नवभिर्बहिष्पवमानँ स्तुवन्ति तेन ते स्तोत्रवन्तो यत् पुनरेत्याश्विनं गृह्णाति सोमेनैव स स्तोत्रवान् यदुपाँश्वन्तर्यामौ हुतौ होतानुमन्त्रयते तेन ता उक्थवन्तौ ॥ यदैन्द्रवायवं तेनैन्द्रवायव उक्थवान् यन्मैत्रावरुणं तेन मैत्रावरुण उक्थवान् यदाश्विनं तेनाश्विन उक्थवान् यच्छिष्केवल्यं तेन शुक्रमन्थिना उक्थवन्तौ यद्वैश्वदेवं तेनाग्रायण उक्थवान् यदुक्थान्युक्थशँसिनश्शँसन्ति तेनोक्थ्य उक्थवानेतावन्तो वै प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते तानेतत् स्तोत्रवत उक्थवतो निदानवत आयतनवतः करोति निदानवानायतनवान् भवति य एवं वेद ॥१०॥ २४-२५
[१९७७]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायामायुष्यं नामाष्टाविंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशं स्थानकम्।

दीर्घजिह्वी।

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्ते देवास्संघातँ संघातं पराजयन्त तेऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात् पराजयामहा इति त एताः पुरोऽकुर्वत ता एषामनायतना नाध्रियन्त त एतान् पुरोडाशँ अपश्यँस्ताननुसवनं निरवपँस्तैः पुरोऽदँहन् सवनानि वाव ते पुरोऽकुर्वत यत् पुरोऽदँहँस्तत् पुरोडाशानां पुरोडाशत्वं यदनुसवनं पुरोडाशान्निर्वपति सवनानां धृत्यै विजित्यै तस्मादनुसवनं पुरोडाशस्य प्राश्नीयात् सोमपीथस्य धृत्यै यतो घृताक्तँ स्यात् ततः प्राश्नीयादाज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन् सोमो वृत्रस्सोमपीथस्यायाताय तदाहुर्न वा अन्येनाज्यादहीने समष्टुमर्हतीति सर्वमेतद्धविर्भूतं यत् किंचोत्पुनन्ति यदेवानुत्पूतँ स्यात् तस्य नाश्नीयाद्दीर्घजिह्वी वै देवानां यज्ञमवालेट् प्रातस्सवनं तन्मथायत् सा पयस्याभवत् तस्मादामिक्षा विमदितेव यत् पयस्या प्रातस्सवने भवति प्रातस्सवनस्य समृद्ध्यै मैत्रावरुणी प्रातस्सवने भवति नोत्तरे सवने अश्नुवे प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ प्राणापाना एव मुखतः परिहरते तस्मान्मुखतः प्राणापानौ न वै स्तोत्रेण न शस्त्रेण पङ्क्तिर्यज्ञेऽवकल्पते पञ्चैतानि हवींषि पङ्क्तिमेवैतद्यज्ञेऽवकल्पयति ॥ हविष्पङ्क्तिर्वै यज्ञो नाराशँसपङ्क्तिः पाङ्क्तः पञ्चैतानि हवींषि तेन हविष्पङ्क्तिर्द्विनाराशँसा प्रातस्सवने द्विनाराशँसा माध्यन्दिन एकनाराशँसा तृतीयसवने तेन नाराशँसपङ्क्तिरग्नीषोमीयः पशुस्त्रीणि सवनानि वशानूबन्ध्या तेन पाङ्क्तो य एवमेतानि यज्ञस्य रूपाण्यनुवेदर्ध्नोति देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्ते देवेभ्यो महिमानोऽपाक्रामँस्तेऽसुरानगच्छँस्तेऽसुरा देवानां बहूनि शतान्यघ्नँस्तानीमानि च्छन्दाँसि यान्ययज्ञवाहानि ते देवा अबिभयुरित्थं वाव नस्सर्वानसुरा अवपत्स्यन्तीति तान्युपामन्त्रयन्त तेऽब्रुवन् वार्यँ वृणामहा इति ते परिवापपुरोडाशमवृणत तद्भागधेयमभ्यायन्नृक्सामे वावैभ्यस्तदपाक्रामतां पशवो वागिन्द्रियं प्राणापानौ स इन्द्रोऽमन्यतेमे वावेदमभूवन्निति तेषाँ सायुज्यमगच्छद्धरिवाँ इन्द्रो धाना अत्त्वित्यृक्सामे वा इन्द्रस्य हरी ऋक्सामयोरेव तत् सायुज्यमगच्छत् पूषण्वान् करम्भमिति पशवो वै पूषा पशूनामेव तत् सायुज्यमगच्छत् सरस्वतीवान् भारतीवान् परिवाप इति वाग्वै सरस्वती वाच एव तत् सायुज्यमगच्छदिन्द्रस्यापूप इतीन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियस्यैव तत् सायुज्यमगच्छन्मित्रावरुणयोः पयस्येति प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ प्राणापानयोरेव तत् सायुज्यमगच्छदेतेषामेव महिम्नाँ सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति पशुमान् भवति न यज्ञियामार्तिमार्छति य एवं वेद ॥१॥ १-२

[१] मै. ३,१०,५—६ (१३—१४)। कपि. ४५,२। वा. १९,२१। काण्व. २१,२१।

नीदं वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यद्यजुषा क्रियत उच्चैर्ऋचा च साम्ना च क्रियते यदृचः पुरोरुचो
भवन्ति द्रविण एव प्रत्युत्तब्ध्या अशिथिलत्वाय प्रैषचाह प्र यजुषा यच्छति गमयति ग्रहणचर्चा वै
स्तोत्राय गृह्यते यजुषा शस्त्राय तस्मादेते सँहिते सँहिते हि स्तोत्रं च शस्त्रं च पराङ् वा एतर्हि
यज्ञः पराचीर्देवतास्तृतीयसवने यजमानादाग्नेय्या पुरस्तात् सौम्यं परियजति वैष्णव्योपरिष्टादग्निर्वै
सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चालभते घ्नन्ति वा एतद् सोमं यदभिषुण्वन्ति तस्यैषानु-
स्तरणी यत् सौम्यो दक्षिणार्धेऽग्नेर्जुहोति दक्षिणा हि पितॄणां सकृदवद्यति सकृदवत्तँ हि पितॄणां
यन्मेक्षणेन द्वितीयमवद्यति तेनैव सकृदवत्तं भवत्युद्गातृभ्यो हरन्ति सोमदैवत्यं वै साम साम्न-
स्सवीर्यत्वाय सतनूत्वाय प्राश्या३ न प्राश्या३ इति मीमाँसन्ते यद् प्राश्नीयात् प्राकारुकस्स्याद्यन्न
प्राश्नीयादहविस्स्यादवजिघ्रेदुभयमेव करोति योऽकमकाशाय सन्नं नाद्यात् स प्राश्नीयात् परं वा
एतदन्नं यत् पितरः परमैवाक्षेनावरमन्नाद्यमवरुन्द्धे भेषजं वा एतद्देवा यज्ञायाकुर्वन् यत् सौम्यस्तदेष
भिषज्यस्तस्मादामयाविना प्राश्यः शिरो मन्दन्तां सोमप्रतीका मन्दन्तां व्यशेम देवहितं यदायु-
रिन्द्रपीतो विचक्षणो व्यशेम देवहितं यदायुर्हृदिस्पृक् क्रतुस्पृग्वर्चोधा असि वर्चो मे धेहि ॥ ३
यन्मे मनो यमं गतं यद्वा मे अपरागतम्। राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासु धारयामसि ॥ ४
इति सौम्यमवेक्षेत यद्वा इद प्राकरोति यदस्यात्मनो मीयते पितॄँस्तद्गच्छति यत् सौम्यमवेक्षते
तदेवात्मन् यच्छते परीव पश्येद्यत् परिपश्यत्यात्मानमेव परिपश्यति सह त्वा अमुष्मिँल्लोके सर्वतनूर्य
एवं विद्वान् सौम्यमवेक्षते वीर्यं वा उपसदो निर्वीर्यं तृतीयसवनं ता यहियज्ञं क्रियन्ते यत् सौम्येन
तृतीयसवने चरन्ति तृतीयसवन एव वीर्यं दधत्येता हि देवता उपसत्स्विज्यन्त आग्नेय्या पुरस्तात्
सौम्यं परियजति इतो नेदग्निमभिप्रयाता इति वैष्णव्योपरिष्टादग्निष्टोमे नेत्सौम्यमभिप्रपद्याता इत्यु-
भयत एव परिस्तृणात्यनभिप्रपादायाग्नेय्या घृतस्य यजति सौम्या सौम्यस्य वैष्णव्योपरिष्टाद्घृतस्य
यथापूर्वमेव देवताः कल्पयति ॥२॥
५
प्राणा वै संस्थितयजूँषि नवैतानि यजूँषि नवभिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्ति नव प्राणाः प्राणैरेव
प्रयन्ति प्राणैरुद्यन्ति संततं जुहोति प्राणानां संतत्या अविच्छेदाय यं कामयेत प्रमीयेतेति नव
कृत्वो गृहीत्वायजुष्कैकैकं जुहुयात् प्राणा वै संस्थितयजूँषि प्राणेभ्य एवैनमन्तरेति ताजक् प्रधन्वति
विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रो यज्ञस्य व्यृद्धं च समृद्धं चापश्यत् षडेतान्यृग्म्याणि यदेवास्य व्यृद्धं तत्
तैस्समर्धयति त्रीणि यजूँषि समृद्धमेव तत् षडृग्म्याणि षड्वा ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति त्रीणि

[२] मै. ४,७,२-३ (९-१०)। कपि. ४५,३। श. ४,२६; ३,१७; ४,२। काण्व. २,४८; ३,२३; ४,४। तै. सं. ६,५,७-८।
[३] मै. १,३,३६; ४,८,४-५ (११४-११९, १२१-१२३; ७-८)। कपि. ४५,४। श. ३,४८,८,२३-२७; २०, १८-१९,९,२२-२३; ३८,२५। काण्व. ३,४६; ९,१३-२६; २१-८; २२,४,७; ३८,२४। तै. सं. ६,६,३]

यजूँषि त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नोति ॥ यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते वरुणस्तद्गृह्णाति यज्ञस्यैतद-
तिरिच्यते यदृजीषं यदौदुम्बरी यदधिषवणे तेनापोऽवभृथमवयन्त्यापो वै वरुणो निर्वरुणत्वाय न
वहन्तीष्वभ्यवेयुः पशवो वा ऋजीषं पशूनस्य निर्मृज्युरपशुस्स्यान्नोदञ्चोऽभ्यवेयुर्यदुदञ्चोऽभ्यवेयु-
रभीपतः प्रजा वरुणो गृह्णीयान्न दक्षिणा यद्दक्षिणा पितृभ्यः प्रजा निधूवेयुरुदञ्चः प्राञ्चोऽभ्यवयन्ति
पश्चाद्धि प्राङ् यज्ञो वरुणपाशान्मुच्यमान एति स्थावरास्स्ववयन्ति स्थावरा वै प्रत्यक्षं वरुणो वरुण
एव वरुणमवयजत उरुँ हि राजा वरुणश्चकार शतं ते राजन् भिषजस्सहस्रमिति यथायजुरग्नेरनीक-
मप आविवेशेत्याघारमाघारयति समिद्ध्या एषोद्दीप्त्यै यत्र तृणं वा दारु वा पश्येत् तत् प्रत्या-
घारयेदग्निमत्येव जुहोति समृद्ध्या अपबर्हिषः प्रयाजान् यजति प्रजा वै बर्हिः प्रजा एव मृत्योरुत्सृज-
त्याज्यभागौ यजति प्राणापानौ वा आज्यभागौ प्राणापाना एव प्रजानां वरुणपाशान्मुञ्चत्यथैष
वारुणो निर्वरुणत्वायैककपालो भवति न वै पुरुषं कपालैराप्तुमर्हत्येकधैवैनमाप्नोत्यग्नीवरुणाभ्याँ
समवद्यत्युभयत एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चत्यग्नेश्च वरुणाच्च सर्वो वा एष यज्ञस्तस्य बहु क्रियते बहु न
क्रियते यत् सँस्थापयेद्यज्ञं वरुणेन ग्राहयेद्यन्न सँस्थापयति यज्ञमेव वरुणपाशादुत्सृजति समुद्रे ते हृदय-
मप्स्वन्तरिति समुद्रयोनिर्वै यज्ञस्स्वमेवैनं योनिं गमयति यज्ञस्य त्वा यज्ञपत इत्याहुतिमेव करोत्य-
वभृथ निचुङ्कुणेत्युभयस्मादेवैनमेतद्देवकृताच्च मनुष्यकृताच्चैनसो मुञ्चति देवीराप एष वो गर्भ
इत्यपां वा एष गर्भस्स्वमेवैनं योनिं गमयत्यभिष्ठितो वरुणस्य पाशोऽवहतो वरुणस्य पाश इति
वरुणपाशमेवावहन्त्यप्सुधौतस्य ते देव सोमेति बिन्दुमाचामति य एव तत्र सोमपीथस्तस्याव-
रुद्ध्यै ॥ यदाचामेद्वरुण एनं ग्राहुकस्स्यान्नीव गृह्णीतोभयमेव करोति प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशो
नमो वरुणस्य पाशायेति वरुणपाशमेव प्रत्यस्यत्युदेत प्रजामायुर्वर्चो दधाना इत्याशिषमेवाशास्ते ॥
एधोऽस्येधिषीमहीति वरुणमेव निरवदायैधन्तमुपयन्ति समिदसि समेधिषीमहीत्याशिषमेवाशास्ते
तेजोऽसि तेजो मयि धेहीति तेज एवात्मन् धत्तेऽपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगन्महीति यथायजुः
॥३॥ ६-९
यज्ञस्य वै शिरोऽच्छिद्यत ततो यो रसोऽस्रवत् सा वशाभवद्यद्वशानूबन्ध्या भवति यज्ञस्य स-
रसत्वाय मित्रो वै यज्ञस्य स्विष्टं गृह्णाति वरुणो दुरिष्टं यन्मैत्रावरुणी वशानूबन्ध्या भवत्युभयत एव
यज्ञं प्रमुच्य यजमानाय संप्रयच्छति मित्राच्च वरुणाच्च यथा लङ्गलेनोर्वरां प्रभिनत्त्येवमृक्सामाभ्यां

[उरुं हि राजा०। ऋ. १,२४,८; तै. सं. १,४,४५,१। एधोऽस्येधिषीमहि०। अथर्व. ७,८९,४। तेजोऽसि तेजो०...धेहि। अथर्व. १९,३,१२। अपो (आपो) अद्यान्वचारिषं०। ऋ. १,२३,२३; १०,९,९, अथर्व. ७,८९,१; ९,१,१४ (उत्तरार्धः); १०,५,४६; तै. सं. १,४,४५,३, ४६,२, तै. ब्रा. २,६,६,५]
[४] मै. ४,८,६ (९)। कपि. ४५,५। तै. सं. ६,६,७।

यज्ञः प्रभिद्यते यथा मत्यमन्ववास्यत्येवं तद्यद्वशानूबन्ध्या यज्ञस्य शान्त्या अनुबध्यते यत् प्रथम-
मस्रवत् तद्बृहस्पतिरुपागृह्णाद्यद् द्वितीयं तन्मित्रावरुणौ यत् तृतीयं तद्विश्वे देवा यदि तिस्रोऽनूबन्ध्या-
स्स्युर्मैत्रावरुणीं प्रथमां कुर्यादथ वैश्वदेवीमथ बार्हस्पत्यां यज्ञस्य सर्वत्वाय सरसत्वायात्रात्र हि
यज्ञस्य रसोऽयातयामा वा एतस्य देवताश्च ब्रह्म च यस्सोमेन यजते यदेते वैश्वदेवी च बार्हस्पत्या
च भवतो देवतानां चैव ब्रह्मणश्चायातयामत्वाय वैश्वदेवी मध्ये भवति वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः प्रजा-
स्स्वेव रेतो दधात्युपाँशु यजत्यनिरुक्तँ हि रेतो बार्हस्पत्युत्तमा भवति ब्रह्म वै बृहस्पतिरन्तमेवा-
गत्य ब्रह्मवर्चसे प्रतितिष्ठति ॥ यथा वा अनड्वान् यथाश्वो विमुक्तोऽपक्रामत्येवँ सोमेनेजानाद्देवताश्च
यज्ञश्चापक्रामन्त्याग्नेयं पञ्चकपालमुदवसानीयं निर्वपत्यग्निर्वै सर्वा देवताः पाङ्क्तो यज्ञो देवताश्चैव
यज्ञं चालभते गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दास्तं छन्दसा व्यर्धयति यत् पञ्चकपालं कुर्यात्यष्ट-
कपालः कार्योऽष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्गायत्रच्छन्दास्स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयति पाङ्क्ते
याज्यानुवाक्ये भवतः पाङ्क्तो यज्ञस्तेन यज्ञात्रैति ॥४॥ १०-११
उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामि दक्षाय दक्षवृधमग्निजिह्वे-
भ्यस्त्वर्तायुभ्यो वातापिभ्यः पर्जन्यात्मभ्य इन्द्रज्येष्ठेभ्यो वरुणराजभ्यः पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय
त्वा दिवे त्वा सते त्वासते त्वा भूताय त्वा भव्याय त्वा यतः प्रजा अच्छिद्रा अजायन्त तस्मै त्वा
प्रजापतये विभूदाव्ने जुहोमि स्वाहाभि सोमोऽपः कामयतेऽभि सोममापो यथा गावस्संजानाना-
स्संगच्छन्त्यान्त्यां मन्येऽयं वा एतौ संजानानौ संगत्यान्योऽन्यस्येन्द्रियं वीर्यामिहैत उभयमेतत्
प्राजापत्यं यत् सोमश्चापश्चायामेष रसो यदधि यद्वै पुत्रौ युध्येते पिता ताभ्यां कल्पयति स्व एवैनौ
लोके स्वेन भागधेयेन पिता शमयति सह त्वै यज्ञेन समृद्धेन यजते यस्यैष गृह्यते दध्ना सर्वाणि
सवनानि पशुमन्ति वीर्यावन्ति कर्तव्यानि यत् पयस्यया प्रातस्सवने चरन्ति तेन तत् पशुमद्वीर्या-
वद्यद्दधिघर्मेण मध्यन्दिने तेन तत् पशुमद्वीर्यावद्यदाशिरा तृतीयसवने तेन तत् पशुमद्वीर्यावत्
सर्वाण्यस्य सवनानि पशुमन्ति वीर्यावन्ति भवन्ति य एवं वेद ॥५॥ १२
देवा वा असुरान् यज्ञमभिजित्य ते प्रबाहुग्ग्रहान् गृह्णाना आयन् स प्रजापतिरमन्यत यः प्रथमो
ग्रहीष्यते स एवेदं भविष्यतीति स एतमँशुमपश्यत् तं पराङ् प्राणन्न गृहीत स पराङ् श्रियोऽन्त-
मगच्छद्वृषश्चैतं गृह्णीत पराङेव प्राण्यात्पापान्यात् पराङेव श्रियोऽन्तं गच्छति यदपानित्यार्ति-
मार्छति प्र वा मीयते सर्वज्यानिं वा जीयते यदि कामयेत सदृक्षयजमानस्स्यादिति न प्राण्यान्ना-

[५] मै. १,३,३५ (१४)। कपि. ४५,६। श. १,११,२०; ५,८६; ६,१,९,२५; ७,३; ३७,१९। काण्व. १,१४,३४; ५,३३; ६,१,१०,३६; ७,३; ३७,१८। तै. सं. ३,५,८।
[६] मै. ४,७,७ (१४)। कपि. ४५,७। तै. सं. ६,६,१०।

पान्यात् सदृङ्ङेव भवति चतुस्स्रक्ति पात्रं भवति चतस्रो दिशस्सर्वास्वेव दिक्ष्वृध्नोति ॥ हिरण्येन
सँस्पर्शयत्यमृतं वै हिरण्यममृतेनैवैनँ संदधाति सकृदभिषुतस्य गृह्णाति न वै प्रजापतिं सवनैराप्तु-
मर्हत्येकधैवैनमाप्नोति नर्चमन्वाह न यजुर्वदति न वै प्रजापतिं वाचाप्तुमर्हति मनसैवैनमाप्नोति योऽँशो-
रायतनं वेदायतनवान् भवति वामदेव्यमेवाँशुं गृह्णन् वामदेव्यं मनसा ध्यायेदेतद्वा अँशोरायतन-
मायतनवान् भवति य एवं वेद हिरण्यमभिव्यनित्यायुर्वै हिरण्यमायुष्येवात्मानमभिधिनोत्यद्भिः
प्रत्युक्षत्यमृतं वा आपोऽमृतेनैवैनँ संरम्भयति ॥६॥ १३-१४
अथैतेऽतिग्राह्या यदेव परमोजो वीर्यमनवरुद्धं तस्यावरुद्ध्यै यदाग्नेयस्तेजो वा अग्निस्तेज एव
तेन पुरस्ताद्धत्ते यदैन्द्र इन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियमेव तेन मध्यतो धत्ते यत् सौर्यो ब्रह्मवर्चसमसा
आदित्य उपरिष्टादेव तेन ब्रह्मवर्चसं धत्ते तेजो वा अग्निरिन्द्रियमिन्द्रो ब्रह्मवर्चसमसा आदित्यस्तेजसा
चैव ब्रह्मवर्चसेन चेन्द्रियमुभयत आत्मन् परिगृह्णात्युपस्तम्भनं वा एतद्यज्ञस्य यदतिग्राह्याश्चक्रियौ
पृष्ठानि यदेते न गृह्येरन्नुपरिष्टाद्गरीयाँसि पृष्ठानि प्राञ्चं यज्ञँ संमृण्युर्यदेते गृह्यन्ते पुरस्तादेव
यज्ञमुपस्तभ्य चक्रिया उपास्यति सयत्वाय प्रातस्सवने गृह्णीयादेतद्वै सवनानां वीर्यावत्तमं वीर्या-
देवैनानधिगृह्णाति ॥ देवा वै सर्वे एव सदृशा आसन्न व्यावृतमगच्छँस्तत एत एतान् ग्रहानपश्य-
न्नाग्नेयमग्निरैन्द्रमिन्द्र ऐन्द्रँ सूर्यस्सौर्यं ततो वै ते व्यावृतमगच्छञ्छ्रैष्ठ्यं देवानां यस्यैते गृह्यन्ते व्यावृतमेव
गच्छति श्रैष्ठ्यँ समानानां प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यादिशद्यज्ञमेव सोऽमन्यतात्मानमन्तर-
गामिति तस्य याः प्रियास्तिस्रस्तन्व आसँस्ता अपन्यधत्तैतान् वाव स तद्ग्रहानपन्यधत्त येन यज्ञेने-
स्सेत् तस्मिन्नेतान् ग्रहान् गृह्णीयात् सर्वमेवैनँ सवीर्यँ सयोनिं सतनूमृद्ध्यै संभरति ॥ वृत्रे वा एते
पुरासन् स इन्द्रो वृत्रँ हत्वा स एतमाग्नेयमविन्दत तमग्नये प्रायच्छदेतं मे धारयेति स सौर्यमविन्दत
तँ सूर्याय प्रायच्छदेतं मे धारयेति स ऐन्द्रं विश्वेतरौ पुनरयाचत ता अस्मै न पुनरदत्तां त
इमाँल्लोकान् व्युपायन्नग्निरिममिन्द्रोऽन्तरिक्षँ सूर्योऽमुमेतैर्वै ते ग्रहैरेषु लोकेष्वार्धुवन्नेतैरेषां लोकाना-
माधिपत्यं पर्यायन् सर्वेष्वेवैषु लोकेष्वृध्नोत्येषां लोकानामाधिपत्यं पर्येति यस्यैते गृह्यन्ते ॥ यद्वै विराज-
स्तेजस्तदाग्नेयो यच्छक्वर्यास्तदैन्द्रो यद्रेवत्यास्तत् सौर्यो यत्रैतानि सामानि स्युस्तदेतान् गृह्णीयात्
साम्नाँ सतेजस्त्वायाथैते होमाश्च भक्षणानि चैतैर्वै यम्भाविश्ववयसा इमाँल्लोकानर्वाचश्च पराचश्च
प्राजानीतां यस्यैते गृह्यन्ते समस्मा इमे लोका अर्वाञ्चः पराञ्चश्च भान्त्येतेषां वै वीर्येणाग्निरिव
ऊर्ध्वो भात्यर्वाङ् सूर्यस्तपति तिर्यङ् वायुः पवते सुप्रज्ञानो वा इत इत्थमसौ लोकोऽमुतो ह त्वा
अर्वाङ् दुष्प्रज्ञानँ स ह त्वा इमं लोकममुतोऽर्वाङ् प्रजानाति यस्यैते गृह्यन्ते ॥७॥ १५-१८
आग्नेयसौम्यो बार्हस्पत्यस्ते समानमर्धमालभ्यन्ते यदाग्नेयस्तेजो वा अग्निस्तेजस्स एव तेन

[७] मै. ४,७,३ (८-१०)। कपि. ४५,८। तै. सं. ६,६,८। [८] मै. ४,७,९ (१७-२१)। तै. सं. ६,६,४।

पुरस्ताद्धत्ते यत् सौम्य इन्द्रियं वै सोम इन्द्रियमेव तेन मध्यतो धत्ते यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पति-रुपरिष्टादेव तेन ब्रह्मवर्चसं धत्ते तेजो वा अग्निरिन्द्रियँ सोमो ब्रह्म बृहस्पतिस्तेजसा चैव ब्रह्मवर्चसेन चेन्द्रियेणोभयत आत्मन् परिगृह्णाति दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षाँस्यजिघाँसन् या देवता ओजीयसीस्ताभ्यो दक्षिणत आलभ्यन्ते रक्षसामपहत्यै किं तदेकादशिन्यां क्रियत इत्याहुर्ब्रह्मवादिनो यस्माद्विट् क्षत्रस्योपाशारमवस्यतीति या देवता ओजीयसीस्ताभ्यो दक्षिणत आलभ्यन्ते ॥ या अवलीयसीस्ताभ्य उत्तरां तस्माद्विट् क्षत्रस्योपाशारमवस्यति दक्षिणत उद्धनां कुर्याद्देवयजनस्य रूपं रक्षसामपहत्यै तस्माद्दक्षिणतस्तीर्थानां गाधं येऽग्निष्ठास्त्रयस्तान् समान् कुर्यादग्निं वै पशवोऽनूप-तिष्ठन्ते पशूनामुपस्थित्या आत्मा वा अग्निष्ठो भ्रातृव्या अस्येतरौ तौ ऋधीयाँसौ कुर्यादधरमेव भ्रातृव्यं कुरुते यौ परौ ता अग्निष्ठेन समौ तौ हि तस्य स्वा आ परार्धादेवं मिनुयात् पापवसीयसस्य व्यावृत्त्या अथो अधरमेव भ्रातृव्यं कुरुते येऽग्निष्ठादुदीचीनं तान् वर्षीयसः कुर्याद्यदि कामयेत विट् क्षत्रादोजीयसी स्यादिति विशमेव क्षत्रादोजीयसीं करोति ॥ येऽग्निष्ठाद्दक्षिणात् तान् वर्षी-यसः कुर्याद्यदि कामयेत क्षत्रं विश ओजीयस्स्यादिति क्षत्रमेव विश ओजीयः करोति सर्वान् समान् कुर्याद्यदि कामयेत पापवसीयसँ स्यादिति पापवसीयसमेव करोति तिरश्ची मीयते दिशां विधृत्या ऊर्ध्वा मीयन्त एषां लोकानां विधृत्यै न यूपं बहिर्वेदि मिनुयान्न वेद्या अतिरेचयेद्यजमानो वै यूप एतावती पृथिवी यावती वेदिर्यद्यूपं बहिर्वेदि मिनुयात् पृथिव्या यजमानं निर्भजेद्यद्वेद्या अतिरेचये-द्भ्रातृव्याय लोकमुच्छिंपेत् समां वेद्यन्तेन मिनुयान्न पृथिव्या यजमानं निर्भजति न भ्रातृव्याय लोकमुच्छिंपत्युपरसंमितां मिनुयाद्यदि कामयेत पितृलोक ऋध्नुयादिति पितृलोक एवर्ध्नोति रशना-संमितां मिनुयाद्यदि कामयेत मनुष्यलोक ऋध्नुयादिति मनुष्यलोक एवर्ध्नोति चषालस्संमितां मिनु-याद्यदि कामयेत देवलोक ऋध्नुयादिति देवलोक एवर्ध्नोति सर्वेष्वेवैषु लोकेष्वृध्नोति रथाक्षेण मिमीते वज्रो वै यूपो वज्रो रथो वज्र एव वज्रं दधाति सर्वेऽग्निष्ठाः कार्या या अग्निष्ठा अश्रयस्ता अग्निमभि-पर्यूहेत् तेनैव सर्वेऽग्निष्ठाः क्रियन्ते ॥ यदग्निष्ठाद्रशना विहरन्ति तेनैव सर्वेऽग्निष्ठाः क्रियन्ते द्वे द्वे रशने यूपमृच्छतस्तस्मात् स्त्रियः पुँसोऽविरिक्तास्तस्मादुतैको बह्वीर्जाया विन्दते नैका बहून् पतीनुप-शयो द्वादशो भवति द्वादशमासस्संवत्सरस्संवत्सरस्याप्त्यै तं दक्षिणतः परिहृत्य निदधाति दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षाँस्यजिघाँसन् वज्रो यूपो रक्षसामपहत्यै यद्यभिचरेत् पुरुषपशुं कुर्यादिदमह-ममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रं नियुनज्मीति रशनां यूपेऽधिन्यस्येद्वज्रो वै यूपो वज्र एवैनं नियुनक्ति ताजक् प्रधन्वति यदि नाभिचरेदारण्यं पशुं निर्दिशेत् तस्य नाश्नीयादुपशयं वा अन्वारण्याः पशव उपतिष्ठन्त एकादशिनीं ग्राम्या यदेकादशिन्या वेदिर्मीयते तस्माद्ग्राम्याः पशव आविरिव शान्ता इव
यदुपशयो गुहेव शये तस्मादारण्याः पशवो गुहेव निलायमिव प्रलायमिव चरन्ति ॥८॥ १९-२२

प्रजापतिः प्रजास्सृष्ट्वा स रिरिचान इवामन्यत स एतामेकादशिनीमपश्यत् तामाहरत् तयात्मान-माप्रीणीत यो रिरिचान इव मन्येत स एतामेकादशिनीमाहरेद्यस्मिन्नेव कस्मिंश्च यज्ञे दश वै पुरुषे प्राणा आत्मैकादशो यावानेवास्यात्मा तमाप्रीणात्यग्निस्सर्वा देवता अग्ना एवैता देवता उपालभ्यन्त आत्मा वा आग्नेयो वाक् सरस्वती यत् सारस्वती वाचमेव मिथुनमात्मन्नुपनियुङ्क्तेऽथ सौम्य-स्सोमो रेतोधा मिथुन एव रेतो दधात्यथ पौष्णः पशवो वै पूषा प्रैव जनयत्यथ बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मैव पशुष्वधिवियातयत्यथ वैश्वदेवो वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः प्रजा एव ब्रह्मन्ननुनियुन-क्त्यथैन्द्रः क्षत्रं वा इन्द्रः क्षत्रमेव प्रजास्वधिवियातयत्यथ मारुतो विड्वै मरुतो विशमेव क्षत्रायानु-नियुनक्त्यथैन्द्राग्न ओजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओजसैव वीर्येण विशं क्षत्रायोपोहति प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मादपाक्रामँस्ता ऊर्ध्वा आयँस्ता अकामय-तोप मा वर्तेरन्निति सोऽतप्यत स आत्मानं मेधायालभत ता एनमुपावर्तन्त ता अस्मादबिभयुस्ता न्याच्यन्त तस्मात् पशवो न्यक्नास्ता आरादचरँस्ता एनं बलिभिरुपायन् देवयजनेन पृथिवी बर्हि-षौषधयः प्रोक्षणीभिराप इध्मेन च यूपेन च वनस्पतयः पशुभिरजावय आशिरा चाज्येन च गाव एते वै देवा बलिहृतो यज्ञः प्रजापतिस्तस्मा एते सर्वा हैवं बलिं हरन्त्यास्मै बलिं हरन्ति य एवं वेद ॥ तेषामपक्रमादबिभेत् तेषां द्वन्द्वं वीर्याण्यात्मन्नुपन्ययुङ्क्तात्मा वा आग्नेयो वाक् सरस्वती-न्द्रियँ सोमो वाचं चैवेन्द्रियं चात्मन्नुपनियुङ्क्तेऽथ पौष्णोऽथ बार्हस्पत्यः पशवो वै पूषा ब्रह्म बृहस्पतिः पशूँश्चैव ब्रह्म चात्मन्नुपनियुङ्क्तेऽथ वैश्वदेवोऽथैन्द्रो वीर्यं वै विश्वे देवास्सह इन्द्रो वीर्यं चैव सहश्चात्मन्नुपनियुङ्क्तेऽथ मारुतोऽथैन्द्राग्नो बलं वै मरुत ओज इन्द्राग्नी बलं चैवौजश्चात्मन्नुपनियुङ्क्ते
प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः ॥९॥ २३-२४

आग्नेयँ सारस्वतीं सौम्यं बार्हस्पत्यं तान् सहालभेत ब्रह्मवर्चसकामः प्रजाकामः पशुकामः पुरोधाकामो यदाग्नेय आग्नेयो हि ब्राह्मणो यत् सारस्वती वाग्वै सरस्वती वाचँ हि वदति यत् सौम्यस्सोमँ हि पिबति यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मैव चतुष्पात् संपाद्य प्रतिष्ठापयति ब्रह्म-वर्चसी भवत्यथ पौष्णः पशवो वै पूषा पशूनेव ब्रह्मन्ननुनियुनक्त्यथैन्द्राग्नोऽथैन्द्रः क्षत्रं वा इन्द्राग्नी क्षत्रमिन्द्रः क्षत्रमेव संपाद्य प्रतिष्ठापयत्यथो क्षत्रेणैव पशून् ब्रह्मण उपोहत्याग्नेयो मध्ये भवत्यैन्द्रा अभित आग्नेयो वै ब्राह्मण ऐन्द्रो राजन्यो ब्रह्मणैव क्षत्रं मध्यतो व्यवसर्पति प्र पुरोधामाप्नोति य एवं वेदेन्द्राग्नी पशूनां भूयिष्ठभाजौ करोत्यग्नेराग्नेय इन्द्रस्यैन्द्र ऐन्द्राग्नस्सह तस्माद्ब्राह्मणश्च राजन्यश्च प्रजानां भूयिष्ठभाजा अथ वैश्वदेवोऽथ मारुतो विड्वै विश्वे देवा विण्मरुतो विशमेव संपाद्य तां क्षत्रायानुनियुनक्ति ब्रह्ममुखमेव क्षत्रं करवा तस्मै विशमनुनियुनक्ति प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय

[९] मै. ४,७,८ (१५)। कपि. ४६,२। तै. सं. ६,६,५। [१०] कपि. ४६,३।

वारुणस्सम्यगेव ब्रह्म समूहति सम्यक् क्षत्रँ समीचीं विशं यत्रैव क्लृप्तैकादशिन्यालभ्यते कल्पते तत्र प्रजाभ्यो ब्राह्मण एव ब्राह्मणो भवति राजन्यो राजन्यो वैश्यो वैश्य एकादशिन्या वा इदमक्लृप्तमनु प्रजाभ्यो न कल्पत एषा वावैकादशिनी तामेतां कापेया विदुस्तामेवामातिरात्रचरमा-
मालभेत सत् त्रियेयमितरायामिदं प्रजा आपद्य चरन्त्यह्नामेवैषा विधैतद्देवत्यान्यहानि ॥१०॥ २५
[२००२]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां दीर्घजिह्वी नामैकोनत्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥२९॥

अथ त्रिंशं स्थानकम्।

पात्नीवतम्।

प्रजननं वै पात्नीवतो यद्वै किंच यज्ञे पात्नीवतं क्रियते प्रजननमेव तत् पराङ् वा एतर्हि यज्ञः पराचीर्देवतास्त्वाष्ट्रो भवति पराचीष्वेव देवतासु त्वष्टारं वृषाणमपिसृजति सोऽस्मै मिथुनं करोति वज्रो वा एष पुरस्तात् संमीयते यदेकादशिनी स ईश्वरः प्रत्यञ्चं यज्ञँ संपुरो यत् पात्नीवतो मीयते प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय मनोर्वै कपालान्यासँस्तैर्यावतो यावतोऽसुरानभ्युपादधात्ते पराभवन्नथ तर्हि त्रिष्टावरुत्री आस्तामसुरब्रह्मौ ता असुरा अब्रुवन्निमानि मनुकपालानि याचेथामिति तौ प्रातरि-त्वाना अभिप्रापद्येतां वायवेऽग्ना३इ वायव इन्द्रा३ इति किंकामौ स्थ इत्यब्रवीदिमानि नौ कपालानि देहीति तान्याभ्यामददात् तान्यरण्यं पराहृत्य समपिंष्टां तन्मनोर्गावोऽभिव्यतिष्ठन्त तान्यृषभस्स-मलेट् तस्य रुवतो यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वँस्ते पराभवँस्तौ प्रातरित्वाना अभिप्रापद्येतां वायवेऽग्ना३इ वायव इन्द्रा३ इति किंकामौ स्थ इत्यब्रवीदनेन त्वर्षभेन याजयावेति तत् पत्नी यजुर्वदन्ती प्रत्यपद्यत तस्या द्यां वागातिष्ठत् तस्या वदन्त्या यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वँस्ते पराभवँस्तस्मान्नक्तँ स्त्री चन्द्रतरं वदति तौ प्रातरित्वाना अभिप्रापद्येतां वायवेऽग्ना३इ वायव इन्द्रा३ इति किंकामौ स्थ इत्यब्रवी-दनया त्वा पत्न्या याजयावेति सा पर्यग्निकृतासीदथेन्द्रोऽचायन्मनुँ श्रद्धादेवं त्रिष्टावरुत्री असुरब्रह्मौ जायया व्यर्धयत इति स आगच्छत् सोऽब्रवीदाभ्यां त्वा याजयानीति नेत्यब्रवीन्न वा अहमनयो-
रीश इत्यतिथिपतिर्वावातिथेरीश इत्यब्रवीत् ता अस्मै प्रायच्छत् स प्रतिवेशो वेदिं कुर्वन्नास्त ता १
अपृच्छतां कोऽसीति ब्राह्मण इति कतमो ब्राह्मण इति ॥

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरम्।
२
श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यँ स पिता स पितामहः ॥

इति ता अविन्तामिन्द्रो वा इति तौ प्रापततां तयोर्याः प्रोक्षणीराप आसँस्ताभिरनुविसृज्य

[१] मै. ४,८,१ (१-४)। कपि. ४६,४। तै. सं. ६,६,६।

शीर्षे अच्छिनत् तौ वृषश्च यवापश्चाभवतां तस्मात् तौ वर्षेषु शुष्यतोऽद्भिर्हि हतौ वा पर्यग्निकृता-मुदासृजत् तयार्ध्नोत् ता इमा मनाव्याः प्रजा यत् पर्यग्निकृतं पात्नीवतमुत्सृजति यामेव मनुर्ऋद्धि-मार्ध्नोत् तामृध्नोति सँस्थाप्या३ न सँस्थाप्या३ इति मीमाँसन्ते स्रवति वै यज्ञोऽसँस्थितस्तँ स्रवन्तं यजमानोऽनु परास्रवति प्रजया च पशुभिश्च सँस्थाप्य एव यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै यदि सँस्थापयेद्यावन्ति पशोरवदानानि तावन्त्याज्यस्यावद्येदयातयामँ ह्येतत् प्राजापत्यं यदाज्यमयातयामो देवानां प्रजा-
पतिस्तदेव सँस्थापयति तदु न सँस्थापयत्युभयमेव करोति ॥१॥ ३

ऐन्द्रवायवाग्रा अग्रे गृह्णन्तेऽथ शुक्राग्रा अथाग्रायणाग्रा गायत्रो वा ऐन्द्रवायवस्त्रैष्टुभश्शुक्रो जागत आग्रायण एतावन्ति वै छन्दाँसि च्छन्दोभिर्देवास्स्वर्गं लोकमायँश्छन्दोभिरेव स्वर्गं लोक-मेत्याग्रायणश्चतुर्थेऽहञ्जागतो वा आग्रायणो जगन्मुख एष त्रिरात्रो यदेव च्छन्द आप्नोति तेनोत्तरं त्रिरात्रं प्रतनुत ऐन्द्रवायवाग्राः पञ्चमेऽहन् गायत्रो वा ऐन्द्रवायवः प्राणो गायत्री प्राणमेव मध्यतो दधाति तस्मान्मध्यतः प्राणश्शुक्राग्राष्षष्ठेऽहँस्त्रैष्टुभो वै शुक्रस्त्रिष्टुबन्त एष त्रिरात्रोऽन्तमेवैनमभ्यु-द्दृहति शुक्राग्रा एव सप्तमेऽहँस्त्रैष्टुभो वै शुक्रस्त्रिष्टुम्मुख एष च्छन्दोमः प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वायाथो यदेव च्छन्द आप्नोति तेनोत्तरं त्रिरात्रं प्रतनुत आग्रायणाग्रा अष्टमेऽहञ्जागतो वा आग्रायणो जग-न्मध्य एष च्छन्दोमश्छन्दसामेव व्यूहमनुव्यूहत्यैन्द्रवायवाग्राः प्रायणीय ऐन्द्रवायवाग्रा उदयनीये प्राणो वा ऐन्द्रवायवः प्राणेनैव प्रयन्ति प्राणेनोद्यन्ति प्राणा वै ग्रहास्तानेतन्मोहयति यद्व्यतिहारं गृह्णाति यदग्रान् यदग्रान् गृह्णीयात् तं धारयन्ना सादयितोरासीत प्राणा वै ग्रहाः प्राणानेवा-यतनश आपादयत्यथोत्तरं प्रसृता गृह्णन्त एवँ ह वै केशिनो दाल्भ्यस्य वँशव्रश्चने ग्रहाञ्जगृहुस्स होवाच लुशाकपिः खार्गलिः कथं ग्रहानग्रहीष्टेतीत्थमित्थमिति हास्मा ऊचुस्स होवाच त्र्यनीकमस्य
प्रजा भविष्यतीति ततः पञ्चालास्त्रेधाभवन् यस्यैवं ग्रहा गृह्णन्ते त्र्यनीकमस्य प्रजा भवति ॥२॥ ४

ऐन्द्रवायवाग्रान् गृह्णीत यः कामयेत यथापूर्वं प्रजाभ्यः कल्पेतेति यज्ञस्य वै क्लृप्तमनु प्रजाभ्यः कल्पते यज्ञस्याक्लृप्तमनु न कल्पते यथापूर्वमेव प्रजाभ्यः कल्पयति न कनीयाञ्ज्यायाँसमतिक्राम-त्यैन्द्रवायवाग्रान् गृह्णीयादामयाविनः प्राणेन वा एष व्यृध्यते यस्यामयति प्राण ऐन्द्रवायवः प्राणे-नैवैनँ समर्धयति मैत्रावरुणाग्रान् गृह्णीरन् येषां दीक्षितानां प्रमीयेत प्राणापानाभ्यां वा एते व्यृध्यन्ते येषां दीक्षितानां प्रमीयते प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ प्राणापाना एव मुखतः परिहरन्ते तस्मान्मुखतः प्राणापाना आश्विनाग्रान् गृह्णीतानुजावरोऽश्विनौ वै देवानामानुजावरौ ता अग्रं पर्यै-तामश्विना एतस्य देवता य आनुजावरस्ता एवान्वारभते ता एनमग्रं परिणयतः शुक्राग्रान् गृह्णीत

[२] कपि. ४९,५। तै. सं. ७,२,८। [३] कपि. ४६,६। तै. सं. ७,२,७।

गतश्रीरसौ वा आदित्यश्शुक्र एषोऽन्तोऽन्तं मनुष्यश्रियो गत्वा निवर्ततेऽन्वादेवान्तमालभते न ततः पापीयान् भवति यादृङ् सन् यजते मन्थ्यग्रान् गृहीताभिचरन्नार्तपात्रं वा एतद्यन्मन्थिपात्रं मृत्युनैवैनं ग्राहयत्युक्थ्याग्रान् गृहीताभिचर्यमाणस्सर्वेषां वा एतत् पात्राणामिन्द्रियं वीर्यं यदुक्थ्यपात्रं सर्वेणैवैनामिन्द्रियेणार्तिप्रयुङ्क्ते ॥ ५

मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म मा पस्फरीः पयसा मा न आधक् ।
मा वयमेनोऽन्यकृतं भुजेम सस्त्वत्पभि नो नेषि वस्यः ॥ ६

इति मृत्योर्वै क्षेत्राण्यरणानि तेनैव मृत्योः क्षेत्राणि न गच्छत्याग्रायणाग्रान् गृह्णीत यस्य पिता पितामहः पुण्यस्स्यादथ तन्न प्राप्नुयाद्वाचा वा एष इन्द्रियेण व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः पुण्यो भवत्यथ तन्न प्राप्नोत्युप इवैतद्यज्ञस्य वागिव यदाग्रायणो वाचैवैनमिन्द्रियेण समर्धयति पूर्णान् ग्रहान् गृह्णीयादामयाविनः प्राणान् वा एतस्य शुगृच्छति यस्यामयति प्राणा ग्रहाः प्राणानेवास्य शुचो मुञ्चति पूर्णान् ग्रहान् गृह्णीयाद्यर्हि पर्जन्यो न वर्षेत् प्राणान् वा एतर्हि प्रजानां शुगृच्छति यर्हि पर्जन्यो न वर्षति प्राणा ग्रहाः प्राणानेव प्रजानां शुचो मुञ्चति ताजक् प्रवर्षति ॥३॥ ७

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ ८
उपयामगृहीतोऽस्यदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै ॥ ९
उदीरयत मरुतस्समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उपदस्यन्ति धेनवश्शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १०
उपयामगृहीतोऽस्यदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै ॥ ११
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ १२

उपयामगृहीतोऽस्यदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै ॥ एष ते योनिरदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै ॥ वृष्टिर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् सैषु लोकेष्वश्रयत तां देवा अन्वेष्टुमध्रियन्त त एतं ग्रहमपश्यँस्तमगृह्णत तेनैभ्यो लोकेभ्यो वृष्टिं संप्राच्यावयँस्तमेतं वृष्टिकामो गृह्णीत क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिमित्यसौ वै क्षेत्रस्य पतिरमुतो वर्षत्युदीरयत मरुतस्समुद्रत इति मरुतस्सृष्टां वृष्टिं नयन्ति महीमू षु मातरं सुव्रतानामितीयमदितिरस्यां वर्षत्येता वै देवता वर्षस्येशते ता एवोपधावत्येभ्य एव लोकेभ्यो वृष्टिं

[४] मै. १,३,७०,७२; २,४,३१,३३; ४,१०,३४ । कपि. ३६,७ । वा. ८,१; २३,५ । काण्व. ३,५०; २३,५ । [क्षेत्रस्य पते मधुमन्तं० । ऋ. ४,५७,२; तै. सं. १,१,१४,३; नि. १०,१६ । उदीरयत (०रयथा मरुत० । ऋ. ५,५५,५; तै. सं. २,४,८,२ । महीमू षु मातरं० । तै. सं. १,५,११,५; ७,१,१८,१; तै. ब्रा. ३,१,१,३; तै. आ. १,१३,२; मा. श्रौ. ७,२,६; कपि. ४६,७]

संप्रच्यावयति चतुस्स्तनं पात्रं भवति चतस्रो दिशो दिग्भ्य एव वृष्टिं संप्रच्यावयति यं प्रथमं स्तनमनुपद्यते तस्या दिशोऽभ्येतद्वर्षत्यपि पात्रे क्रियमाणे वर्षति मृन्मयेन गृह्णाति दारुमयेण जुहोति न हि मृन्मयमाहुतिमानशे ॥४॥ १३-१५

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा प्रजाभ्य एष ते योनिः प्रजापतये त्वा प्रजाभ्य उपयामगृहीतोऽसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजापतय एष ते योनिः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजापत उपयामगृहीतोऽस्यन्तरिक्षाय त्वा वनस्पतिभ्य एष ते योनिरन्तरिक्षाय त्वा वनस्पतिभ्य उपयामगृहीतोऽसि वनस्पतिभ्यस्त्वान्तरिक्षायैष ते योनिर्वनस्पतिभ्यस्त्वान्तरिक्षायोपयामगृहीतोऽस्यद्भ्यस्त्वौषधीभ्य एष ते योनिरद्भ्यस्त्वौषधीभ्य उपयामगृहीतोऽस्योषधीभ्यस्त्वाद्भ्य एष ते योनिरोषधीभ्यस्त्वाद्भ्यः ॥ १६

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १७
उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वैष ते योनिस्सूर्याय त्वा ॥ १८
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोयुजं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो नेदिष्ठं हवनान्यागमद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ १९
उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ २०
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ २१

उपयामगृहीतोऽस्यदित्यै त्वैष ते योनिरदित्यै त्वा ॥ संततिर्वा एते ग्रहा यथा वै शालैवं संवत्सरो यथा शालायाः पक्षसी एवं संवत्सरस्य पक्षसी यथा मध्यमो वंश एवं दिवाकीर्त्यं यदेते न गृह्येरन् विषूची संवत्सरस्य पक्षसी व्यवस्रंसेयातामार्तिमार्छेयुर्यदेते गृह्यन्ते यथा शालायाः पक्षसी मध्यमं वंशमभिसमायच्छन्त्येवमेवैतत् संवत्सरस्य पक्षसी दिवाकीर्त्यमभिसंतन्वन्ति ते सर्वे सह दिवाकीर्त्ये गृह्यन्ते यथा वै मध्यमो वंश एवं दिवाकीर्त्यं यद्वै सौबलस्स्यादवशीर्येत ॥ यदेते न गृह्यन्ते द्रढिम्न एवानुनद्ध्या अशिथिलत्वाय शुक्राग्रा एतदहर्गृह्यन्ते त्रैष्टुभो वै शुक्रस्त्रैष्टुभमेतदहः प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय सौर्य एतदहः पशुरालभ्यते सौर्यो ग्रहो गृह्यतेऽसौ वा आदित्य एतदहस्तमेव प्रत्यक्षमृध्नुवन्ति षडेतदहरतिग्राह्या गृह्यन्ते पशुस्सप्तमस्सप्त प्राणा असा आदित्यश्शिरः प्रजानां शीर्षन्नेव प्राणान् दधाति तस्मात् सप्त शीर्षण्याः प्राणा इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा स इमांल्लोकानभ्यजयत्

[५] मै. १,३,७०,७२,९१,९४,१००; २,१०,२२, ४,१०,३४ । वा. ७,४१; ८,१,४०-४१,४५-४६; १७,२३, ११,५; २३,२,४ । काण्व. ३,५०; ८,२२-२३,२६-२८; ९,६; १८,२२; २३,५; २५,२,४; ३२,३१ । [उदु त्यं जातवेदसं० । ऋ. १,५०,१; सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६, २०,४७,१३; तै. सं. १,२,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५ । वाचस्पतिं विश्वकर्माणं० । ऋ. १०,८१,७; तै. सं. ४,६,२,५ । महीमू षु मातरं० । (चतुर्थानुवाके द्रष्टव्यम्)]

तस्यासौ लोकोऽनभिजित आसीत् तं विश्वकर्मा भूत्वाभ्यजयद्वैश्वकर्मणो गृह्यतेऽमुष्य लोकस्याभिजित्यै यन्ति वा एतेऽस्माल्लोकाद्ये वैश्वकर्मणं गृह्णते पराञ्च इव ह्येते न रोहन्ति त ईश्वराः प्रमेतोरादित्यं ये गृह्णीरन्नियमदितिरस्यामेव तेन प्रतितिष्ठन्त्या परार्धात् संवत्सरस्यान्यमन्यं गृह्णीरन् विश्वान्यन्यत्र कर्माणि कुर्वाणा यन्त्यस्यामन्येन प्रतितिष्ठन्ति ता उभौ सह महाव्रते गृह्येते अन्तमेवागत्योभयोर्लोकयोरृध्नुवन्ति वैश्वकर्मणेनामुष्मिन्नादित्येनास्मिन्नर्क्यमुक्थं भवत्यन्नं वा अर्क्यमन्नाद एव तेन प्रतितिष्ठन्ति ॥५॥ २४

अग्नये त्वा प्रवृहामि गायत्रेण च्छन्दसेन्द्राय त्वा प्रवृहामि त्रैष्टुभेन च्छन्दसा विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः प्रवृहामि जागतेन च्छन्दसा ॥ २५

अग्निः प्रातस्सवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणं दधात्वायुष्मन्तस्सहभक्षास्स्याम ॥ २६
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
सुमेधसः प्रियमेषां वदन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७
इदं तृतीयस्सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
सौधन्वना अमृतमानशानास्स्विष्टं नोऽभि वस्यो नयन्तु ॥ २८

शुक्रं ते शुक्रेण गृह्णाम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मान्दानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि कृशनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि देवयानीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि ॥ २९

आ सीमुग्रा अचुच्यवुर्दिवो धारामसश्चत । ककुभं रूपमृषभस्य रोचते बृहत् ॥ ३०

सोमस्सोमस्य पुरोगाश्शुक्रश्शुक्रस्य पुरोगा यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ त्रिर्वसुभ्यो अवपथास्त्री रुद्रेभ्यो अवपथास्त्रिरादित्येभ्यो अवपथा येन रूपेण प्रजापतयेऽवपथास्तेन मह्यं पवस्वोशिक्त्वं देव सोम गायत्रेण च्छन्दसाग्नेः पाथ उपेहि वशी त्वं देव सोम त्रैष्टुभेन च्छन्दसेन्द्रस्य पाथ उपेह्यस्मत् सखा देव सोम जागतेन च्छन्दसा विश्वेषां देवानां पाथ उपेहि ॥६॥ ३१-३२

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतमदाभ्यमपश्यँस्तमगृह्णताग्नये त्वा प्रवृहामि गायत्रेण च्छन्दसेति देवताश्चैव तच्छन्दाँसि चामुष्णन्नग्निः प्रातस्सवने पात्वस्मानिति सवनान्येव तदामुष्णँश्शुक्रं ते शुक्रेण गृह्णामीत्यहोरात्रयोरेव तद्रूपे आमुष्णन्

[६] मै. १,३,३६ (९६-९९) । मा. श्रौ. ७,१,१ । वा. ८,४७-५० । काण्व. ८,२९-३२ । तै. सं. ३,१,९ ।
[७] मै. ४,७,७ (१४) । वा. ८,४७-५० । काण्व. ८,२९-३२ । तै. सं. ६,६,९ ।

रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमीत्यपामेव तद्रूपाण्यामुष्णँस्ते देवा यावानेव यज्ञस्तं परिगृह्याजुहवुस्तँ हुतमसुरा अन्वबुध्यन्त तेऽब्रुवन्नदभन्न इति तदस्यादाभ्यत्वमथो यदेनान् दब्धुं नाशक्नुवँस्तदस्यादाभ्यत्वँ स एव भ्रातृव्यस्यैव दब्ध्यै गृह्यते ॥ निग्राभ्याणां गृह्णाति सोमो वै दभ्रो गृह्णाति सोमो हि दधि चतुस्स्रक्ति पात्रं भवति चतस्रो दिशो दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति तस्यैषातिमोक्षिणी तनूर्यदादाभ्यस्तामेवान्वहुताँ हुतस्स्वर्गं लोकमभ्यतिमुच्यते तदनु यजमानो यज्ञात् सा हि यजमानस्स ह त्वा अमुष्मिल्लोके सर्वतनूर्यस्यैष गृह्यते वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यत् पुराभिषोतोस्सँस्थां गमयति यदंशूननभिषुतानपिसृजति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय ॥ न सामानुक्थोऽग्रहोऽस्तीत्याहुरनायतनस्स इति त्रिर्वसुभ्यो अवपथा इत्येतदुक्थमेषाशीर्गौरिवीतँ साम देवा वै यद्ब्रह्म व्यभजन्त ततो यदत्यरिच्यत तद्गौरिवीतमभवदतिरिक्तं वै गौरिवीतमतिरिक्ता अतिग्राह्या अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति यत्र गौरिवीतँ साम स्यात् तदपि बहूनतिग्राह्यान् गृह्णीयात् तेनैवैनान् सामवत उक्थवतो निदानवत आयतनवतः करोति निदानवानायतनवान् भवति य एवं वेद ॥७॥ ३३-३५

प्रजापतेर्जायमानाः प्रजा जाताश्च या इमाः । ता अस्मै प्रतिवेदय चिकित्वाँ अनुमन्यताम् ॥ ३६
पशुपतेः पशवो विरूपास्सदृशा उत । तेषां यं वव्रिरे देवास्तँ स्वराडनुमन्यताम् ॥ ३७
प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्ति पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यो अधिनिश्चरन्तम् ।
हुतो याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ ३८
ये बध्यमानमनुबध्यमाना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टाँ अग्रे प्रमुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संविदानः ॥ ३९
य आरण्याः पशवो विश्वरूपा विरूपास्सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टाँ अग्रे प्रमुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ ४०
येषामीशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पाद उत ये द्विपादः ।
निष्क्रीतास्ते यज्ञियं भागं यन्तु रायस्पोषा यजमानं विशन्तु ॥ ४१
प्रमुञ्चमाना भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥ ४२

[८] मै. १,२,१५ (१०२,१०७–१०८) । तै. सं. ३,१,४ । [प्रजानन्तः प्रति० । अथर्व. २,३४,५ । ये बध्यमानमनु० । अथर्व. २,३४,३ । य (ये) आरण्या(ग्राम्याः)० । अथर्व. २,३४,४ । येषामीशे (य ईशे) पशुपतिः० । अथर्व. २,३४,१ । प्रमुञ्चमाना (प्रमुञ्चन्तो)० । अथर्व. २,३४,२]

नाना प्राणो यजमानस्य पशुना यज्ञो देवेभिस्सह देवयानः ।
सम्यगायुर्यज्ञो यज्ञपतौ दधातु ॥ ४३
उपेत शमितारो देवानां दसितँ हविः । पशोः पाशं प्रमुञ्चत पाशं यज्ञपतेरधि ॥ ४४
अदितिः पाशान् प्रमुमोक्त्वेतान्नमः पशुभ्यः पशुपतयेऽस्तु ।
यो नो द्वेष्टयधरस्स पदीष्ट तस्मिन् पाशान् प्रतिमुञ्चाम एतान् ॥ ४५
त्वामु त्ये दधिरे प्रथमं विचक्ष्यँ शृतंकर्तारमुत यज्ञियं च ।
अग्ने सदक्षस्सतनूर्हि भूत्वाथ वह हव्यं देवेभ्यो जातवेदः ॥ ४६
जातवेदो वपया गच्छ देवाँस्त्वँ हि होता प्रथमो बभूथ ।
घृतस्याग्ने तन्वा संभव सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥ ४७

प्रजापतेर्वै पशवो जाताश्च जायमानाश्च रुद्रस्य जाता व्यृद्धेन वा एष पशुना चरति य एतयो-
स्सन्तं पशुं तमनिर्याच्यैतयोरालभते ययोरेव पशुस्तयोरेवैनं निर्याच्य तेनानुमतेन प्रसूतेनर्ध्नोत्येव
जीवन् पशुस्स्वर्गं लोकं गमयितव्य इत्याहुर्न मृतस्स्वर्गं लोकं गन्तुमर्हतीति प्रजानन्तः प्रतिगृह्णन्ति
पूर्व इति जीवन्तमेवैनँ स्वर्गं लोकं गमयति ये च वै ग्राम्याः पशवो ये चारण्यास्त एतमालभ्यमान-
मनुध्यायन्ति स ईश्वरो यजमानोऽपशुः पराभवितोर्ये वध्यमानमनुवध्यमाना य आरण्याः पशवो
विश्वरूपा इति पशूनामेवैषा संप्रमुक्तिः पञ्चैतानि जुहोति पाङ्क्ताः पशवो यावानेव पशुस्तँ स्वर्गं
लोकं गमयति ॥ यदवघ्रापयति तमेव निर्दिष्टमालभते पशुर्वै यज्ञो यज्ञात् स यजमान एतत्
पशुमालभत इत्याहुः क्वैतर्हि यजमानो भवतीति नाना प्राणो यजमानस्य पशुनेति प्राणा एवैनयो-
र्व्यावर्तयति यज्ञेन वा एनमेतद्व्यर्धयति यन्नाना प्राण इत्याह सम्यगायुर्यज्ञो यज्ञपतौ दधात्विति
यज्ञेनैवैनँ समर्धयत्यधिरज्जू वा एता अमुष्मिल्लोके पशुश्च यजमानश्च ययोरेतेन पाशं न प्रमुञ्चत्यु-
पेत शमितारो देवानां दसितँ हविः पशोः पाशं प्रमुञ्चत पाशं यज्ञपतेरधीति पाशमेवैनयोः प्रमुञ्चति
वरुणपाशँ स ह त्वा अमुष्मिल्लोकेऽपरज्जुर्यस्यैवं क्रियते यद्यभिचरेद्यो नो द्वेष्टयधरस्स पदीष्ट
तस्मिन् पाशान् प्रतिमुञ्चाम एतानिति स्तम्भं वा दारु वाभिदध्यात् पाशमेवास्मिन् प्रतिमुञ्चति
वरुणपाशमाहवनीयं वा एतद्व्यर्धयति यत् पशुश्रपणं करोति त्वामु त्ये दधिरे प्रथमं विचक्ष्यमिति
मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति जातवेदो वपया गच्छ देवानिति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति यद्यद्वा
ऋषीणां च देवानां च यज्ञस्यापूतमासीत् तदेतैरपुनत यदेवास्य यज्ञस्यापूतं तदेतैः पुनीत आव्यं
वा एतैस्तेऽपाजयँस्तदपाव्यानामपाव्यत्वमाव्यमेवैतैरपजयति ॥९॥ ४८–४९

[९] तै. सं. ३,१,५।

काठ० ४०

तृतीयस्यां वै दिवि सोम आसीत् तं गायत्र्याहरत् तस्य पर्णमच्छिद्यत स पर्णोऽभवत् तत्
पर्णस्य पर्णत्वं तस्मात् सर्वे वृक्षाः पर्णवन्तोऽथैष एव पर्ण उच्यते यत् पर्णशाखा भवति तमेव
सोममवरुन्द्धे देवा वै ब्रह्मन् समवदन्त तत् पर्ण उपाशृणोत् सुश्रवा वै नामैष न बधिरो भवति य
एवं वेद यत् पर्णशाखया प्रार्पयति ब्रह्मणैवैनाः प्रार्पयति प्रजापतिः पशूनसृजत तानयं देवोऽभ्यु-
मन्यत तं शम्याशमयत् तच्छम्याश्शमीत्वं यच्छमीशाखया प्रार्पयति शान्त्या अपां वा एतदोषधीनां
तेजो यद्दर्भा यद्दर्भपिञ्जूलैः प्रार्पयत्यपामेवैना ओषधीनां तेजसा प्रार्पयतीषे त्वोर्जे त्वेतीषमे-
वोर्जं यज्ञे दधाति वायवस्स्थेति वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षोऽन्तरिक्षदेवत्याः पशवो वायुरेवैनानन्त-
रिक्षाय परिददाति प्र वा एनानेतदाकरोति यद्वायवस्स्थेत्याहारण्यस्येव हि वायुरुपायवस्स्थेति यज-
मानायैवं पशूनपाकरोति देवो वस्सविता प्रार्पयत्विति प्रसूत्यै श्रेष्ठतमाय कर्मण इति यज्ञो वै श्रेष्ठ-
तमं कर्माप्यायध्वमघ्न्या देवभागमिति वत्सेभ्यश्च वा एता मनुष्येभ्यश्च पुराप्यायन्तेऽथैतर्हि देवेभ्य
एवैना आप्याययति प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा इति प्रजावतीरेवैना अनमीवा अयक्ष्माः करोति ॥
मा वस्स्तेन ईशत माघशँस इत्याशिषमेवाशास्ते परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्त्विति रुद्रमेव पशुभिः
परिवृणक्त्यघातुकोऽस्य रुद्रः पशून् भवति यस्यैवं विदुषो यश्चैवं विद्वान् हविषे गाः प्रार्पयति ध्रुवा
अस्मिन् गोपतौ स्यातेति दृँहत्येवैना बह्वीरिति भूमानमेवैना गमयति यजमानस्य पशून् पाहीति
यजमानस्य पशूनां गोपीथाय प्रतीचीं शाखामुपगूहति तस्माद्ग्राम्याः पशवस्सायमारण्याद्ग्राममायन्ति
यत् पराचीमुपगूहेदरण्ये हीयेरन् ॥१०॥ ५०–५१

[२०५३]

॥ इत्येकोत्तरशतशाखाध्वर्युप्रभेदभिन्ने श्रीयजुषि काठके चरकशाखायां मध्यमिकायां
पात्नीवतं नाम त्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३०॥
॥ संपूर्णा चेयं मध्यमिका ॥

[१०] मै. ४,१,१ (१—८)। कपि. ४६,८। वा. १,१; १६,५०। काण्व. १,१-३; १७,५०। तै. ब्रा. ३,२,१।
[मा वस्स्तेन ईशत०। ऋ. ६,२८,७ (उत्तरार्धः); अथर्व. ४,२१,७। परि वो (णो) रुद्रस्य०। ऋ.
२,३३,१४; अथर्व. ४,२१,७]

अथ ओरिमिका।

अथैकत्रिंशं स्थानकम्।

पुरोडाश-ब्राह्मणम् ।

प्रजापतिर्वा ओषधीः परुश्शो वेद प्राजापत्योऽश्वो यदश्वपर्श्वा बर्हिर्दात्योषधीनामहिंसायै देवस्य
त्वा सवितुः प्रसव इति सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते गोपदसीति रयिमेव यजमाने दधाति
प्रत्युष्टं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षाँस्यपहन्ति प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छेति विद्या वै धिषणा विद्यये-
वैनदच्छैति मनुना कृता स्वधया वितष्टेति मनुना ह्येषा कृता स्वधया वितष्टोर्वन्तरिक्षं वीहीति
समष्ट्या इन्द्रस्य परिषूतमसीति यद्वा इदं किंच तदिन्द्रस्य परिषूतं यथा श्रेयसे प्रोच्य कर्म करो-
त्येवमेवैतदिन्द्राय प्रोच्य बर्हिर्दाति यावत् परिदिशति यत् तत् सर्वं न दाति यज्ञस्य तदतिरिच्यते
यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते भ्रातृव्यं तेन वर्धयत्येकँ स्तम्बं परिदिशेत् तँ सर्वं दायाद्यज्ञस्यानतिरेकाय
यत् सर्वं दायान्न पशुभ्यो जीवनमुच्छिंषेदेकां वा श्रुष्टिं द्वे वोच्छिंषेन्न यज्ञस्यातिरेचयत्युत्पशुभ्यो
जीवनँ शिंषति मावो मोपरि परुस्त ऋध्यासमित्यृद्ध्या आच्छेत् ता ते मा रिषदिति यावद्यावद्वा
अविद्वानध्वर्युर्बर्हिषो दाति तावदस्यात्मनो मीयते नास्यात्मनो मीयते य एवं वेद देव बर्हिश्शत-
वल्शं विरोहेत्योषधिष्वेव भूमानं दधाति सहस्रवल्शा वि वयं रुहेमेत्याशिषमेवाशास्तेऽदित्या
रास्नासीतीयमदितिरस्या एवैनद्रास्नां करोतीन्द्राण्यास्संनहनमितीन्द्राणी वा अग्रे देवतानां समनह्यत
सार्ध्नोदृद्ध्यै बर्हिस्संनह्यति प्रजा वै बर्हिः प्रजानामपरावापाय तस्मात् स्नाव्ना प्रजास्संतताः ॥ पूषा
ते ग्रन्थिं ग्रथ्नात्विति पुष्टिर्वै पूषा पुष्टिमेव यजमाने दधाति स ते मास्थादित्यहिंसाया इन्द्रस्य त्वा
बाहुभ्यामुद्यच्छ इतीन्द्रस्यैवैनद्बाहुभ्यामुद्यच्छते बृहस्पतेस्त्वा मूर्ध्नाहरामीति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणै-
वैनद्धरति देवंगममसीति बहु वा एतस्य पूर्वेद्युराह्रियमाणस्य स्कन्दत्यस्कन्नमेवैनद्देवेभ्यस्संप्रयच्छति
तदाहरन्ति कवयः पुरस्तादिति ब्राह्मणा वै कवयो ब्राह्मणा ह्येतदाहरन्ति देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासद
१–२
इति देवेभ्य एवैनज्जुष्टं करोति ॥१॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारमिति वसूनां वा एतद्भागधेयं यत् पवित्रं
तेभ्य एवैनं करोति प्रजापतिः प्रजा असृजत तस्योखे अस्रँसेतां स एते उखे अपश्यत् ताभ्यामादत्त
यदेते उखे भवतः प्रजापतेरेवोखे प्रतिदधात्ययक्ष्मा वः प्रजया सँसृजामीत्ययक्ष्मा एवैनाः

[१] काठ. १,२,५—९ (३१)। मै. ४,१,२ (९—१९)। कपि. ४७,१। वा. १,७,१०,११,१४,१९-३०; ५,४३; १२,
१००। काण्व. १,१०,१३,३६,४०,४६-४७, ५,५५। तै. ब्रा. ३,२,२। [देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,
५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७। शतवल्शं (०ह्शं) विरोह०। ऋ. ३,८,११; तै. सं. १,३,५,१]
[२] काठ. १,३,११—१४। मै. ४,१,३ (१०-२६)। कपि. ४७,२। वा. १,१-४। काण्व. १,४-७। तै. ब्रा. ३,२,३

करोति रायस्पोषेण बहुला भवन्तीरिति भूमानमेवैना गमयति मधुमद् घृतवत् पिन्वमाना
इति मधुमदेव घृतवद्देवेभ्यो हव्यं करोति जीवा जीवन्तीरुप वस्सदेमेत्याशिषमेवाशास्ते ॥
मातरिश्वनो घर्मोऽसीत्यन्तरिक्षं वै मातरिश्वनो घर्मो द्यौरसि पृथिव्यसीति दिवमेवैनां पृथिवी-
मकर्विश्वधायाः परेण धाम्नाहृतासि मा ह्वारिति दृँहत्येवैनां पवित्रमपिदधात्योषधीनां चैव
पशूनां च पयस्सँसृजति सा विश्वायुस्सा विश्वव्यचास्सा विश्वधाया इत्यसौ वै विश्वायुरन्तरिक्षं
विश्वव्यचा इयं विश्वधाया इमानेव लोकान् यथापूर्वं प्रदापयतीमेऽस्मै लोका यथापूर्वं प्रत्ता दुह्रे तिस्रो
यजुषाभिमन्त्रयते त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु रसं दधाति तस्मादिमाँल्लोकान् प्रजा उपजीवन्त्युप-
जीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ हुतस्स्तोको हुतो द्रप्स इत्यनुमन्त्रयतेऽस्कन्दायाग्नये बृहते
नाकाय स्वाहेतीयं वा अग्निर्बृहन्नाको बहु वा एतस्य दुह्यमानस्य स्कन्दत्यस्यामेवैनत् प्रतिष्ठापय-
त्यस्कन्दाय न दारुपात्रेण दुह्यादग्निमद्वै दारुपात्रं यातयामेन हविषा यजेत तद्ध ह स्माहुर्दार्वेयाः
पुरोडाशमुखं वै हविर्न वा इत इतः पुरोडाशँ हविषो यामोऽस्ति दोग्धव्यमेवेति न शूद्रो
दुह्यादसतो वा एष संभूतोऽसत् स्याद्यद्वाव पवित्रमत्येति तद्धविरग्निहोत्रमेव शूद्रो न दुह्यात् तद्धि
नोत्पुनन्ति संपृच्यध्वमृतावरीरिति प्रत्यानयति शृतत्वाय शृतकामा हि देवाः ॥ इन्द्रस्य त्वा भागँ
सोमेनातनच्मीति सोममेवैनं करोति सोमो वै देवानां परोक्षँ सान्नाय्यं तस्य ह त्वै सोमपीथस्संवत्वो
य एवं विद्वान् सान्नाय्येन यजतेऽदस्तमसि विष्णव इति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञायैवैनददस्तं करोति न
मृत्पात्रेणापिदध्याद्यन्मृत्पात्रेणापिदध्यात् पितृदेवत्यँ हविस्स्याद्दारुपात्रेणापिदधात्यग्निमद्वै दारुपात्र-
मग्निरेव हव्यं रक्षत उदन्वत् कुर्यादापो रक्षोघ्नी रक्षसामपहत्यै विष्णो हव्यं रक्षस्वेति विष्णुरेव हव्यं
रक्षत आपो जागृतेत्यापो वै यज्ञस्य गोप्त्रीस्ताभ्य एवैनत् परिददाति ॥२॥ ३–६

अपः प्रणयत्यापो वै यज्ञो यज्ञमेव तत्या प्रचरत्यापो देवानां प्रियं धाम देवानामेव प्रियं धाम
प्रणीय प्रचरत्यापो रक्षोघ्नी रक्षसामपहत्या आपो वज्रो वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरत्यापश्श्रद्धा श्रद्ध
वा असै देवाश्श्रन्मनुष्या दधते यस्यैवं विदुषो यस्यैवं विद्वानपः प्रणयति कर्मणे वामिति हस्ता
अवनेनिक्ते कर्म ह्येतत् क्रियते वानस्पत्यमसि प्रत्युष्टं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षाँस्यपहन्त्युर्वन्तरिक्षं
वीहीति समष्ट्यै धूरसि धूर्व धूर्वन्तमिति धुर्यो वा एषोऽग्निर्यदनालभ्यातीयाद्यजमानँ शुचार्पयेद् द्वौ
वै पुरुषस्य भ्रातृव्यौ यं च द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि ता एवास्य शुचार्पयति ॥ देवानामसि वह्नितममिति
देवेभ्य एवैनद्वाह्नि करोति विष्णोः क्रमोऽस्यक्रुतमसि हविर्धानं दृँहस्व मा ह्वारिति दृँहत्येवै-
नन्मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्ष इति मित्रमेवैनत् कुरुत उरु त्वा वातायेति यद्वै किंच वातो नाभिवाति

[३] काठ. १,४,१५-१७। मै. ४,१,४-५ (२७, २८-३८)। कपि. ४७,३। वा. १.६-११,१९। काण्व. १,९-१५,
४६। तै. ब्रा. ३,२,४।

तद्वरुणस्यावरुण्यत्वमेवैनत् देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितृप्रसूत एवैनं देवताभ्यो निर्वपत्यमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै निर्वपति तस्या एनज्जुष्टं करोति यच्छन्तु त्वा पञ्चेति पञ्च वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति तेऽस्मै प्रीताः कल्पन्ते कल्पन्तेऽस्मा ऋतवो य एवं वेद ॥ रक्षायै त्वा नाराल्या इति रक्षसामपहत्या इदं देवानामिदं नस्सहेति व्यावृत्त्यै स्वरभिव्यख्यमिति तम इव वा एष प्रपद्यते यरीणहं स्वरेवाभिविपश्यतीमे वै लोका हविषो गृहीतादुदवेपन्त तान् देवा एतेन यजुषादृंहन् दृंहन्तां दुर्या द्यावापृथिव्योरिति इमानेव लोकान् दृंहन्त्युर्वन्तरिक्षं वीहीति अयाम्यायुकोऽध्वर्युस्स्यादुर्वन्तरिक्षं प्रेहीत्यव्यायुकोऽध्वर्युर्भवति य एवं वेदाग्ने हव्यं रक्षस्वेत्युपसादयत्यग्निरेव हव्यं रक्षते ॥३॥ ७-९

विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति पुनात्येवैने देवो वस्सवितोत्पुनात्विति सवितृप्रसूत एवैना देवताभिरुत्पुनाति देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितृप्रसूत एवैनं देवताभ्यः प्रोक्षत्यमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै प्रोक्षति तस्या एनज्जुष्टं करोति शुन्धन्तां पात्राणि देवयज्याया इति देवेभ्य एवैतानि शुन्धन्त्यवधूतं रक्षोऽवधूता अरातय इति रक्षसामपहत्या अदित्यास्त्वगसीतीयमदितिरस्या एवैनत् त्वचं करोत्यधिषवणमसि वानस्पत्यमित्यधिषवणमेवैनत् करोत्यग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनमित्यग्नेर्वा तनूर्वाचो विसर्जनं यदा हि पशव ओषधीरश्नन्त्यथ वाचं विसृजन्ते बृहद्ग्रावासि वानस्पत्य इति ग्रावाणमेव कृत्वा हविष्करोति हविष्कृदेहीति य एव देवानां हविष्कृत्तं ह्वयति त्रिर्ह्वयति त्रिसत्या हि देवा अद्रिरसि श्लोककृदपहतं रक्षोऽपहता अरातय इति रक्षसामपहत्यै वर्षं संघातं संघातं जयेमेति संघातं संघातमेव भ्रातृव्यं जयति ॥ मनोर्वै श्रद्धादेवस्य यजमानस्यासुरघ्नी वाग्यज्ञायुधानि प्रविष्टासीत् तेषां यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वँस्ते पराभवन् य एवं विद्वान् भ्रातृव्याणां मध्येऽवसाय यजेत यावन्तोऽस्य भ्रातृव्या यज्ञायुधानामुपशृण्वन्ति तेषामिन्द्रियं वीर्यं वृङ्क्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्त्विति मिथुनमेव करोत्यस्मा वै देवाः पशुभ्यो रक्षांसि निरवादयन्त तुषैरोषधिभ्यः परापूतं रक्षः परापूता अरातय इत्येतावतैव यज्ञाद्रक्षांसि निरवदयते निरस्तो अघशंस इति भ्रातृव्यो वा अघशंसो भ्रातृव्यमेव निरस्यति वायुर्व इव ऊर्जं विविनक्त्विति वायुर्वै देवानां पवित्रं पुनात्येवैनान् सुफलीकृतान् करोति मेध्यानेवैनान् यज्ञियान् करोति त्रिः फलीकरोति त्रिसत्या हि देवाः ॥४॥ १०-११

अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातय इति रक्षसामपहत्या अदित्यास्त्वगसीतीयमदितिरस्या एवैनं त्वचं करोति धिषणासि पार्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृंहेति पृथिवीमेव दृंहति धिषणासि

[देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

[४] काठ. १,५,१८–२०। मै. ४,१,६-७ (३९-४९)। कपि. ४७,४। वा. १,१९-१६,३१; ४,४; १०,६। काण्व. १,१६,१८–२६,४८–४९; ४,५; ११,१३। तै. ब्रा. ३,२,५।

[५] काठ. १,६,२१। मै. ४,१,७ (४५–४९)। कपि. ४७,५। वा. १,१६,१९–२०। काण्व. १,२६,३१–३४।

उपसृजत्यमृतं वा आपोऽमृतमेव हव्यं करोति समाप ओषधीभिस्समोषधयो रसेनेत्यन्या वा एतासामन्या जिन्वन्त्योषधयो यद्वो रेवती रेवत्यं यद्वो हविष्या हविष्यं यद्वो जगतीर्जगत्यमित्यापो वै रेवतीरोषधयो मधुमतीः पशवो जगतीरप ओषधीः पशूंस्तानेवास्मा एकधा संसृज्य मधुमतः करोति ॥ जनयत्यै त्वेति संयौति मिथुनमेव करोति मखस्य शिरोऽसीति यज्ञो वै मखो यज्ञस्यैव शिरः करोति घर्मो विश्वायुरुरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामिति प्रथयत्येव प्रत्युष्टं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षांस्यपहन्ति घर्मो वा एषोऽर्धमासेऽर्धमासे प्रवृज्यते यत् पुरोडाशस्स ईश्वरोऽशान्तो यजमानस्य पशून्निर्दहो यत् पर्यग्नि करोति पशुमेव करोति शान्त्या अनिर्दाहाय त्रिः परिहरति त्रय इमे लोका एभ्य एवैनल्लोकेभ्यश्शमयति पुरोडाशं वा अधिश्रितं रक्षांस्यजिघांसन् स नाको नाम दिवि रक्षोहाग्निस्सोऽस्माद्रक्षांस्यपाहन् देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाक इति रक्षसामपहत्या अग्निस्ते तन्वं मा हिंसीदित्यहिंसायै त्वचं ग्राहयति ॥ तस्मान्मस्तिष्कः परितो यानि वा इमानि शीर्ष्णः कपालानि तानि कपालानि यो मस्तिष्कस्स पुरोडाशो यत्राभिवासयेदाविर्मस्तिष्कस्स्याद्यदभिवासयति तस्माद्गुहा मस्तिष्को भस्मनाभिवासयति तस्मादस्थि मांसेन छन्नं वेदेनाभ्यूहति तस्माच्छिरः केशैश्छन्नं ते देवास्तन्नाविन्दन्त यस्मिन् यज्ञस्य क्रूरं मार्क्ष्यामह इति सोऽग्निरब्रवीदहं वस्तं जनयिष्यामि यस्मिन् यज्ञस्य क्रूरं मार्क्ष्यध्व इति सोऽपोऽङ्गारेणाभ्यपातयत् तत एकतोऽजायत द्वितीयं ततो द्वितस्तृतीयं ततस्त्रितो यदात्मनो निरमिमीत तदात्मीयानामात्मीयत्वं यदद्भ्यो निरमिमीत तदाप्यानामाप्यत्वमन्तर्वेदि निनयति तदेवावरुन्द्ध उल्मुकेनाभिधारयति शृतत्वाय शृतकामा हि देवास्तेऽतिमृजाना आयन् सूर्याभ्युदिते तेऽमृजत सूर्याभ्युदितस्सूर्याभिनिम्रुक्ते सूर्याभिनिम्रुक्तः कुनखिनि कुनखी श्यावदति श्यावदन् परिवित्ते परिवित्तः परिविविदाने परिविविदानोऽग्रेदिधिषौ अग्रेदिधिषुर्दिधिषूपत्यां दिधिषूपतिर्वीरहणि वीरहा ब्रह्महणि ब्रह्महा भ्रूणहनि भ्रूणहनमेनो नात्येति ॥७॥ १८-२०

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्फ्यमादत्ते सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिरादत्त इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणस्सहस्रभृष्टिश्शततेजा इति वज्रो वै स्फ्यो वज्रमेव संश्यति भ्रातृव्याय प्रहरिष्यन् पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषमित्योषधीनामहिंसायै व्रजं गच्छ गोस्थानमिति छन्दांसि वै व्रजो गोस्थानश्छन्दांस्येवास्मै व्रजं गोस्थानं करोति वर्षतु ते द्यौरिति वृष्टिमेव निनयति बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैरिति द्वौ वै पुरुषस्य भ्रातृव्यौ यं च द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि तावेवास्य बध्नाति परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं ... यां मा स्कानिति यो वा अस्या रसस्स

[८] काठ. १,७,२४। मै. ४,१,१० (६०–६३)। कपि. ४७,८। वा. १,२४–२६। काण्व. १,४०–४३। तै. ब्रा. ३,२,९। देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

पार्वतेयी प्रति त्वा पार्वती वेत्तु दिवं दृंहेति दिवमेव दृंहति दिवस्स्कम्भन्यसीति शम्यामुपदधातीमे वै सहास्तां ते शम्यामात्रं शम्यामात्रं व्यैतां यत्त्रश्शम्या यच्छम्यामुपदधात्यनयोरेव विधृत्यै ॥ धान्यमसि धिनुहि देवानित्येतस्य वै यजुषो वीर्येण यावदेका देवता कामयेत यावदेका तावदस्या आहुतेः प्रथते प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय त्वेति प्राणं व्यानमपानं तानेव यजमाने दधाति दीर्घामनु प्रसृतिमायुषे त्वेत्यायुरेवास्मिन् दधाति देवो वस्सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णात्विति प्रेव वा एते स्कन्दन्ति प्रतिष्ठित्या अदब्धेन वश्चक्षुषावपश्यामीति चक्षुषो गोपीथाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वायेत्याशिषमेवाशास्ते ॥५॥ १२-१३

निर्दग्धं रक्षो निर्दग्धा अरातय इति रक्षसामपहत्या अपाग्ने अग्निमामादं जहीति य आमात् क्रव्यात् तमपहत्य यज्ञिये देवयजन उपदधाति यदधस्तादङ्गारमुपवर्तयत्यस्मिंस्तेन लोके ज्योतिर्धत्ते यदुपरिष्टादधिवर्तयत्यन्तरिक्षे तेन ज्योतिर्धत्तेऽसा एवास्यादित्योऽमुष्मिँल्लोके ज्योतिर्भवति सर्वेऽस्मा इमे लोका ज्योतिष्मन्तो भवन्ति त्रीणि समीचीनान्युपदधाति त्रयः प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानस्तानेव यजमाने दधाति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नोति ॥ ध्रुवमसि पृथिवीं दृंहेति पृथिवीमेव दृंहत्यायुर्दृंहि प्राणं देहीत्याशिषमेवाशास्ते धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंहेत्यन्तरिक्षमेव दृंहति चक्षुर्दृंहीत्याशिषमेवाशास्ते धर्त्रमसि दिवं दृंहेति दिवमेव दृंहत्योजो देहि बलं देहीत्याशिषमेवाशास्ते धर्मासि दिशो दृंहेति दिश एव दृंहति रयिं देहि पोषं देहीत्याशिषमेवाशास्ते यन्त्रमस्याशा दृंहेत्याशा एव दृंहति रूपं देहि वर्णं देहीत्याशिषमेवाशास्ते ॥ प्रजापतिर्वै यदग्रे समभवत् स एतावच्छ एव समभवदेकं वा अग्रे शीर्ष्णः कपालं संभवत्यथ द्वितीयमथ तृतीयमथ चतुर्थमथ पञ्चममथ षष्ठमथ सप्तममथाष्टमं यदष्टौ समीचीनान्युपदधात्यात्मानमेवैतद्यजमानस्संस्कुरुते तं संस्कृतममुष्मिँल्लोकेऽनुपरैति यदष्टा उपदधाति गायत्रीं तच्छन्द आप्नोति ॥ यदेकादश त्रिष्टुभं तद्यद् द्वादश जगतीं तच्छन्दस्संमितान्येवोपदधाति चितस्स्थ परिचित इति सर्वाण्येव यजुष्मन्ति करोति भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वमित्येतासामेवैनानि देवतानां तपसा तपति यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधस इत्यसौ वा आदित्यो घर्मस्तस्य दिशः कपालानि ता एवैतद्विमुञ्चति यथायतनं पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चतामितीन्द्रवायू एवैषां विमोक्तारौ करोति ॥६॥ १४-१७

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितृप्रसूत एवैनद्देवताभ्यस्संवपत्यमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै संवपति हविरेव करोत्यपि तस्या एनज्जुष्टं करोति पवित्रवति संवपति हविरेव करोत्यप

[६] काठ. १,७,२२–२३। मै. ४,१,८ (५०–५४)। कपि. ४७,६। वा. १,१७–१८। काण्व. १,२७,३०। तै. ब्रा. ३,२,६-७।

[७] काठ. १,८,२४। मै. ४,१,९ (५५–५९)। कपि. ४७,७। वा. १,२१–२३; ११,५७; ३७,८। काण्व. १,३६-३९; १२,५९; ३७,८। तै. ब्रा. ३,२,८। [देवस्य त्वा सवितुः०। अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

द्रप्सस्तमिमाः प्रजा उपजीवन्ति तमेवास्यां यच्छति तस्यास्कन्दायाररुर्यां मा पप्तादिति भ्रातृव्यो वा अररुर्भ्रातृव्यमेव स्वर्गाल्लोकात् प्रतिनुदतेऽररुर्वै नामासुर आसीत् सोऽविभेदयज्ञेन नो देवा अभिभविष्यन्तीति स पृथिवीं विषेणालिम्पदमेध्यां कुर्वन्निन्द्रो वै वृत्रमहँस्तस्येमां लोहितमन्वधावत् तदमेध्याभवद्यदुद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यमयज्ञियं तदपहन्त्यररुर्वै नामासुर आसीत् सोऽविभेद्देवा मा पृथिव्या नोत्स्यन्त इति स पृथिवीमुपस्रुच्याशयत् तमिन्द्रोऽच्यायत् तमपाररुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहीति पृथिव्या अपाहन् स दिवमपतदररुर्द्यां मा पप्तादिति तं दिवः प्रत्यनुदत ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यस्यैवं विदुषस्तम्बयजुर्ह्रियते यस्यैवं विद्वान् हरत्येभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यं निर्भजति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्यसुराणां वा इयं पृथिव्यासीत् ते देवा अब्रुवन् दत्त नोऽस्या इति ते वै स्वयं वृध्वमित्यब्रुवन् सोऽग्निरेव प्राचीं दिशमुदजयद्वसवो दक्षिणां रुद्राः प्रतीचीमादित्या उदीचीं ते देवा इमामसुराणामविन्दन्त ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानेताभिर्देवताभिर्वेदिं परिगृह्णातीमामेव भ्रातृव्यस्य विन्दते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति ॥ पृथिव्या वै मेध्यं चामेध्यं च व्युदक्रामत् प्राचीनमुदीचीनं मेध्यमुदक्रामत् प्रतीचीनं दक्षिणामेध्यं प्राचीमुदीचीं वेदिं प्रवणां कुर्यान्मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोत्यथो मेध्यस्य चामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै प्राञ्चौ बाहू उन्नयत्याहवनीयमेव परिगृह्णाति प्रतीची श्रोणी गार्हपत्यमेव परिगृह्णाति मूलं वै रक्षांस्यनूत्पिबन्ति न नखेन छिन्द्याद्यन्नखेन छिन्द्यात् कुनखी स्यात् स्फ्येन छिनत्ति वज्रो वै स्फ्यो वज्रेणैव रक्षांसि हन्ति ॥८॥ २१-२२

घृतं च वै मधु च प्रजापतिरासीद्यतो मध्वासीत् ततः प्रजा असृजत तस्मान्मधोः प्रजननमिवास्ति तस्मान्मधुना न प्रचरन्ति यातयामं हि तद् घृतेन प्रचरन्त्ययातयामं ह्येतत् प्राजापत्यं यदाज्यमयातयामा देवानां प्रजापतिर्गार्हपत्येऽधिश्रयति पत्न्यवेक्षते पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भोऽथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनं यत् पत्न्यवेक्षते मिथुनमेव करोत्यमेध्यं वा एतदयज्ञियं यद् पत्न्यवेक्षत आहवनीयेऽधिश्रयति मेध्यमेवैनद्यज्ञियं करोति देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत स इन्द्र एतमवकाशमपश्यत् तेनावैक्षत तेनासुरानभ्यभवत् ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् य एवं विद्वानेतेनाज्यमवेक्षतेऽभ्येव भ्रातृव्यं भवति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति प्रत्युष्टं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षांस्यपहन्त्यनिशितास्स्थ सपत्नक्षयणीरित्यनिशिता एवैनाः करोति स्रुचस्संमार्ष्टि पुनात्येवैनास्स्रुवमग्रे संमार्ष्टि पुमांसमेवासामग्रे संश्यत्यथ जुहूमथोपभृतमथ ध्रुवामसौ वै जुहूरन्तरिक्षमुपभृदियं ध्रुवेमानेव

[९] काठ. १,१०,३२-३३। मै. ४,१,१२ (७३,७४-७६)। कपि. ४७,९। वा. १,२९। काण्व. १,४९। तै. ब्रा. ३,३,४।

लोकान् यथापूर्वं संमार्ष्टि यजमानदेवत्या वै जुहूर्भ्रातृव्यदेवत्योपभृच्चतुर्जुह्वां गृह्णन् भूय आज्यं गृह्णात्यष्टौ गृह्णन्नुपभृति कनीयो भ्रातृव्यमेवास्मा उपस्तिं करोति ॥९॥ २३

देवीरापो अग्रेगुव इति यज्ञमेव प्रणयति प्रेमं यज्ञं नयत प्र यज्ञपतिं तिरतेत्याशिषमेवाशास्ते- ऽग्नेर्वै मेधोऽपाक्रामत् कृष्णो भूत्वा स वनस्पतीन् प्राविशत् प्रोक्षितास्स्य कृष्णोऽस्याखरेष्ठा अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति तमेव मेधमवरुन्द्धेऽथो यस्या एव देवतायै प्रोक्षति तस्या एनं जुष्टं करोति वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदिः प्रजा एव पृथिव्यां प्रतिष्ठापयत्यूर्जो पृथिवीं गच्छतेति पृथिव्यामेवोर्जं दधाति तस्मात् पृथिवीं प्रजा उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ बह्वीरासादयेद्यावतीर्वै प्रोक्षणीरासादयति तावतीरस्यामुष्मिंल्लोक आपस्तस्माद्बह्वीरासाद्याः पुरस्तात् प्रस्तरं गृह्णाति मुख्यमेव यजमानं करोति यावद्धस्तेन पर्याप्नुयात् तावन्तं गृह्णीयाद्दक्षोधुको यजमानो भवत्यनग्नंभावुकोऽध्वर्युर्न विधूनुयाद्यद्विधूनुयात् प्रजां चास्य पशूंश्च विधूनुयान्न प्रमृज्याद्यदेवास्य स्वं यद्वित्तं यद्वेद्यं तत् प्रमार्ष्टि न प्रमृज्याद्यदेवैनमागमिष्यद्भवति तत् प्रविनुदते ॥ दक्षिणतस्संनहनं स्तृणाति तस्माद्दक्षिणतो नीविः प्रस्तरं धारयन् परिधीन् परिदधाति यजमानो वै प्रस्तरस्स्वयमेवैतद्यजमान आत्मानं परिदधाति रक्षसामपहत्यै संहितान् परिधीन् परिदधाति रक्षसामनन्ववायाय न पुरस्तात् परिदधात्यसा एवास्मादादित्य उद्यन् पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्त्यूर्ध्वे समिधा आदधात्युपरिष्टादेव रक्षांसि हन्ति द्वे आदधाति मिथुनमेव करोति ॥ सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणिरिति सवितुर्ह्येतौ बाहू देवजनानां विधरणिर्वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदनमसीति या एव देवता अभ्यजयंस्ताभ्य एनत् सदनं करोति जुहेहि घृताचीत्येतद्वा आसां प्रियं धाम यद्घृतवत् प्रियेणैवैना धाम्ना समर्धयति ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहीति यथाहैव ते भागस्तं गोपायस्वेत्येवमेवैतद्विष्णुमाहैतं त आज्यं तद्गोपायस्वेति ॥१०॥ २४–२७

भुवनमसि विप्रथस्वेति प्रथयत्येवाग्निर्यष्टेदं नम इति नमस्कृत्य हि श्रेयांसमुपचरन्ति जुह्वेह्यग्निस्त्वाह्वयति देवयज्याया इत्यग्निस्सर्वा देवतास्सर्वा एव देवता अवरुन्द्ध उपभृदेहि देवस्त्वा सविताह्वयति देवयज्याया इति सवितृप्रसूत एव प्रचरति नार्तिमार्छत्यङ्घ्रिणा विष्णू मा वामवक्रमिषमिति यथायजुः पाहि माग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भजेति पाप्मानमेवापहते विजिहाथां मा मा संताप्तमित्यात्मनोऽहिंसायै लोकं मे लोककृतौ कृणुतमित्याशिषमेवाशास्ते विष्णोस्स्थानमसि इति

[१०] काठ. १,११,३४,३७। मै. ४,१,१२ (७८—८२)। कपि. ४७,१०। वा. १,१२—१३; २,१,५—६। काण्व. १,१७—१८; २,१,६—८। तै. ब्रा. ३,३,६।
[११] काठ. १,११,३८-४९। मै. ४,१,१४ (८३-९४)। कपि. ४७,११। वा. २,८-९,१५—१८। काण्व. २,११-१२, १४—३०। तै. ब्रा. ३,३,७।
काठ० ४१

प्रतिष्ठित्या ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगिति यज्ञो वा अध्वरो यज्ञस्योर्ध्वत्वायाहुतो यज्ञो यज्ञपतेरिति समृद्ध्या इन्द्रवान् बृहद्भास्स्वाहेत्यैन्द्रो वै यज्ञो मुखत एवेन्द्राय यज्ञं संप्रयच्छति सेन्द्रोऽस्य यज्ञो भवति सं ज्योतिषा ज्योतिरिति ज्योतिर्वै यज्ञो यज्ञ एव यज्ञमनुसंतनोति वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयोज्जयामीति य एवैनं पूर्वोऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदते वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयामुं प्रतिनुद इति य एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेनापनुदते प्र श्रेयांसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते ॥ पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेतीमानेवैनं लोकान् गमयत्यक्तं रिहाणा व्यन्तु वय इति स्वदयत्येव मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छेति यजमानो वै प्रस्तरो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति ततो नो वृष्टिमेरयेति वृष्टिमेवावरुन्द्धेऽहीनः प्राण इति प्राणानेवैतदध्वर्युर्मुखतः कल्पयति चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहीति चक्षुषो गोपीथाय यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिरिष्यमान इत्यग्निस्सर्वा देवतास्सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे यजमानं प्रथतेति प्रथयत्येवाथो भूमानं गमयति संस्रावभागास्स्थेति परिधीनभिजुहोति स्वेनैवैनान् भागधेयेन समर्धयति ॥११॥ २८–२९

अग्नेऽदब्धायोऽशीततन इति यदेवान्तर्यन्ति यत् क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयत्यविषं नः पितुं कृधीत्यन्नमेवास्मै स्वदयति सुषीन्योनीन् सुषदां पृथिवीमिति सुषदेवैनं सादयति वेदिर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत् तां वेदेनान्वविन्दंस्तद्वेदस्य वेदत्वं यद्वेदो भवति वेद्या अनुवित्त्यै स्त्री वै वेदिः पुमान् वेदो यद्वेदेन वेदिं संमार्ष्टि मिथुनमेव करोति प्रजापतेर्वा एतानि श्मश्रूणि यद्वेदो यां पत्नीं कामयेत पुत्रं विन्देतेति तस्या उपस्थ आस्येन्मिथुनमेव करोति वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यदर्धमासे संस्थां गमयति यद्वेदं संततमाहवनीयात् स्तृणाति तेनैव यज्ञं संतनोति तं संततमुत्तरेऽर्धमास आलभते ॥ एष वै वनस्पतीनां परिवेष्टा यदुपवेषो य एवं वेदादब्धा अस्य वेशा भवन्ति पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपहन्ति तस्मात् प्रतीचीनावसिता वेशा भवन्ति स्वविमत उपहन्त्यनतिवादिना एनं वेशा भवन्ति सर्पेभ्यो वै यत्र क्रियते सर्प उपवेषो वल्मीक उत्करो यदुपवेषमुत्कर उपहन्ति तस्मात् सर्पाणां वल्मीको गृहाः ॥१२॥ ३०–३१

यो ह वै स्रुचां योगमविद्वानध्वर्युरध्वर्य इति हूतः प्रतिशृणोत्या देवताभ्यो वृश्च्यतेऽप्रजा अपशुर्भवत्यथ यस्स्रुचां योगं विद्वानध्वर्युरध्वर्य इति हूतः प्रतिशृणोति न देवताभ्य आवृश्च्यते प्रजावान् पशुमान् भवत्याश्रावयेति जुहूं तेन युनक्त्यस्तु श्रौषडित्युपभृतं तेन यजेति ध्रुवां तेन ये यजामह इत्याज्यधानीं तेन वषट्कारेण स्रुवमसौ वै जुहूरन्तरिक्षमुपभृदियं ध्रुवा दिश आज्यधान्यसा

[१२] काठ. १,१२,५०। वा. २,२०—२१। काण्व. २,३६,३९। तै. ब्रा. ३,३,९,९—११; ३,३,११,१—२।
[१३] मै. ४,१,११ (६५—७२)। कपि. ४७,९। तै. ब्रा. ३,२,१।

आदित्यस्स्रुवोऽसौ वा अस्यै प्रयच्छतीयममुष्यै तस्माद्यज्जुह्वां तेन ध्रुवामाप्याययति यद् ध्रुवायां तेन जुहूमसौ ह्यस्यै प्रयच्छतीयममुष्यै संततमस्मा अविच्छिन्नं प्रदीयते य एवं वेद ॥१३॥ ३२

स्योनो मे सीद सुषदः पृथिव्यामुरुः पृथुः प्रथमानस्स्वर्गे ।
स्रुवोऽसि घृतादनिशितस्सपत्नक्षयणो दिवि सीदान्तरिक्षे पृथिव्यामुत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥ ३३

आरोह पथो जुहु देवयानान् यत्रर्षयो जग्मुः प्रथमाः पुराणाः ।
हिरण्यपक्षाजिरा संभृताङ्गा वहासि सा सुकृतां यत्र लोक उत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः॥ ३४

अवाहं बाध उपभृता द्विषन्तं जातान् भ्रातृव्यान् ये च जनिष्यमाणाः । ३५
दुहे यज्ञं सुदुघामिव धेनुमुत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥
यो नो वाचा मनसा दुर्हृणायुर्हृदारातीयन्नभिदासदग्ने । ३६
इदमस्य चित्तमधरं ध्रुवाया उत्तमोऽहं भूयासमधरे मत्सपत्नाः ॥
यन्मे अग्ने अस्य यज्ञस्य रिष्याद्यद्वा स्कन्दादाज्यस्योत विष्णो । ३७
तेन हन्मि सपत्नं दुर्हृणायुमैनं दधामि निर्ऋत्या उपस्थे ॥
यो नः कनिष्ठमिह कामयाता अस्मिन् यज्ञे यजमानाय मह्यम् । ३८
अप तमिन्द्राग्नी भुवनान्नुदेतां प्रजां विदेय वाजवतीं सुवीराम् ॥
अयं वेदः पृथिवीमन्वविन्दद्गुहा हितां गह्वरेषु । ३९
स मह्यं लोकं यजमानाय विन्दत्वच्छिद्रं यज्ञं भूरिरेताः कृणोतु ॥
स्तृणीत बर्हिः परिधत्त वेदिं जामि मा हिंसीरमुया शयानाम् । ४०
दर्भैस्स्तृणीत हरितैस्सुवर्णैर्निष्का एते यजमानस्य सन्तु ॥
अस्मिन् मे यज्ञ उप भूयो अस्त्वविक्षोभाय परिधीन् दधामि । ४१
धर्ता विधर्ता धरुणो धरीयान् विश्वा द्वेषांसि वीतो नुदन्ताम् ॥
चतुश्शिखण्डा युवतिस्सुपत्नी विनीयमाना महते सौभगाय । ४२
घृतं दुहानादितिर्जनाय सा मे धुक्ष्व सर्वान् भूतिकामान् ॥
वेदेन वेदिं विविदुः पृथिव्यां सा पप्रथे पृथिवी पार्थिवाय । ४३
गर्भं बिभर्ति भुवनेष्वन्तस्ततो यज्ञस्तायते विश्वदानीम् ॥

[१४] मै. २,१२,१ (६)। वा. १८,३६। काण्व. २०,७। तै. ब्रा. ३,७,६,९।

विशो यन्त्री नुदमाने अरातिं विश्वं जातमरणं दुर्हृणायुम् ।
सीदन्ती देवी सुकृतस्य लोके विश्वा द्वेषांसि वीतो नुदेताम् ॥ ४४
आप्यायतां ध्रुवा घृतेन यज्ञिया यज्ञं प्रति देवयद्भ्यः ।
सूर्याया ऊधो अदितेरुपस्थ उरुधारेव दोहतां यज्ञे अस्मिन् ॥ ४५
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशस्सन्तु मह्यम् ॥१४॥ ४६

समृतयज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ कस्य वा ह देवता यज्ञमागच्छन्ति कस्य वा न बहूनां समानमहर्यजमानानां यो वै देवताः पूर्वेद्युर्गृह्णाति तस्य श्वो भूते यज्ञमागच्छन्ति ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्त्विति पूर्वमग्निं गृह्णात्यग्निस्सर्वा देवता देवता एव पूर्वेद्युर्गृह्णाति ताश्श्वो भूतेऽभियजते बर्हिषा वै पूर्णमासे व्रतमुपयन्ति वत्सैरमावास्यायां पुरा वत्सानामपाकर्तोर्दम्पती अश्नीतो हस्ता अवनिज्य दक्षिणतोऽग्नेस्तिष्ठन् ब्रूयादग्ने व्रतपते व्रतमालभ इत्यग्निर्वै व्रतपतिर्ब्राह्मणो व्रतभृद्व्रतपतय एव प्रोच्य व्रतमालभते समस्मै व्रतमृध्यते यदि निम्रुक्ते सूर्ये व्रतमालभेताग्निमुपस्थायैतद्यजुर्वदेदग्निर्हि स तर्हि प्रविष्टोऽग्निर्होतोप तं हुव इति पात्रमभिमृशति येन हविर्निर्वप्स्यन् भवति दुर्ग्रहा वै देवता दुर्ग्रहो यज्ञो देवताश्चैवैतद्यज्ञं च गृह्णात्या देवा यन्तु सुमनस्यमाना इत्येता वै देवानां देवहूतयो यन्त्यस्य देवा देवहूतिं न यज्ञाच्छिद्यते य एवं वेद व्यन्तु देवा हविषो मे अस्येत्याशिषमेवाशास्ते ॥ पुनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येनेति परिधिषु परिधीयमानेषु वदत्यग्नेर्वा एष यागो ब्रह्मणैवाग्निं युनक्ति युक्तोऽस्य हव्यं देवेभ्यो वहत्यङ्गिरसो मास्य यज्ञस्य प्रथमानुवाकैरवन्त्विति सामिधेनीनामेवैष योगस्तासां युक्तानां यां कामयत आशिषं तामवरुन्द्धे समिद्धो अग्निराहुत इति समिद्भिरेवैना मनोऽसि प्राजापत्यं मनसा मा भूतेनाविशेति मन इव वै प्रजापतिः प्राजापत्यो यज्ञो यज्ञमेव संतनोति वागस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी वाचा मेन्द्रियेणाविशेतीन्द्रियं वै वागिन्द्रियमेवावरुन्द्धे॥ न वै तद्विदुर्यदि ब्राह्मणा वसन्त्वा यजन्ति ब्राह्मणा वा यदि तस्य वर्षेरन् यस्य वा यस्य ब्रुवते यस्यैवार्षेयं वृणानो यजते तं तदिष्टं गच्छति नेतरमुपनमति तत् प्रवरं प्रवृणाने ब्रूयाद्देवाः पितरो देवा योऽस्मि स सन् यज इति य एव कश्च सन् यजते तं तदिष्टमागच्छति नेतरमुपनमति देवेभ्य एव पितृभ्यो यज्ञं परिददाति तमस्य ते गोपयन्ति समिष्टापूर्तेन गच्छति स्वर्गं लोके तदस्याक्षय्यमपरिमितं भवति वसन्तमृतूनां प्रीणामीति पञ्च वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति तेऽस्मै प्रीताः कल्पन्तेऽस्मा ऋतवो य एवं वेद ॥१५॥ ४७–४९[२१०१]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां पुरोडाश-ब्राह्मणं नामैकत्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३१॥

[१५] मै. १,४,५ (३४)। तै. सं. १,६,७। [ममाग्ने वर्चो विहवेषु० ऋ. १०,१२८,१; अथर्व. ५,३,१; तै. सं. ४,७,१४,१। पुनज्मि त्वा (ते) ब्रह्मणा० : ऋ. १,८२,६]

अथ द्वात्रिंशं स्थानकम् ।

यजमान-ब्राह्मणम् ।

अग्नीषोमाभ्यां यज्ञश्चक्षुष्मानित्यग्नीषोमौ वै यज्ञस्य चक्षुषी यज्ञस्यैव चक्षुषा चक्षुरात्मन् धत्ते चक्षुष्मान् भवति य एवं वेदाग्निरन्नस्यान्नपतिरित्यग्निर्वै देवानामन्नादस्स एनं मनुष्येष्वन्नाद्यं प्रापयत्यन्नादो भवति य एवं वेद दब्धिरस्यदब्धो भूयासममुं दभेयमित्येतया वै दब्ध्या देवा असुरानदभ्नुवँस्तयैव भ्रातृव्यं दभ्नोति नैनं दिप्सन् दभ्नोति य एवं वेदाग्नीषोमौ वृत्रहणा इत्यग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमहँस्ताभ्यामेव भ्रातृव्यं स्तृणुत इन्द्राग्न्योरहं देवयज्ययौजस्वान् वीर्यावान् भूयासमित्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी ओज एव वीर्यमात्मन् धत्त इन्द्रस्याहं देवयज्ययेन्द्रियावान् भूयासमितीन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियमेवात्मन् धत्ते ॥ महेन्द्रस्याहं देवयज्यया जेमानं भूमानं गमेयमिति जेमानमेव भूमानमुपैतीन्द्रस्याहं विमृधस्य देवयज्ययासपत्नो भूयासमित्यसपत्न एव भवतीन्द्रस्याहमिन्द्रियावतो देवयज्यया पशुमान् भूयासमितीन्द्रियं वै पशवः पशूनेवात्मन् धत्ते सरस्वत्या अहं देवयज्यया वाचमन्नाद्यं पुषेयमिति वाग्वै सरस्वती वाचैवान्नाद्यमवरुन्द्धे पूष्णोऽहं देवयज्यया पुष्टिमान् पशुमान् भूयासमिति पुष्टिर्वै पूषा पुष्टिमेवावरुन्द्धेऽदित्या अहं देवयज्यया प्रतिष्ठां गमेयमितीयमदितिरस्यामेव प्रतितिष्ठति ॥ विश्वेषामहं देवानां देवयज्यया प्राणानां सायुज्यं गमेयमिति प्राणानामेव सायुज्यं गच्छति द्यावापृथिव्योरहं देवयज्यया प्रजनिषीय प्रजया पशुभिरिति प्रजापतिमेवोपैत्यग्नेरहं स्विष्टकृतो देवयज्ययायुः प्रतिष्ठां गमेयमित्यायुरेवात्मन् धत्ते प्रति यज्ञेन तिष्ठति यो देवताश्च यज्ञं च यज्ञे तर्पयितव्यान् वेद तृप्यति प्रजया पशुभिरुपैनं सोमपीथो नमत्येतर्हि वै सर्वा देवता यर्हि स्विष्टकृदेतर्हि ह्येनास्सर्वास्संयजत्येष खलु वाव प्रत्यक्षं यज्ञो यत् स्विष्टकृदसौ तृप्यद्यज्ञमिति देवताश्चैवैतद्यज्ञं च यज्ञे तर्पयति तृप्यति प्रजया पशुभिरुपैनं सोमपीथो नमत्ययाडग्निरग्नेः प्रिया धामानीति ब्रह्मवर्चसं तेनावरुन्द्धे सोमस्यायाट् प्रिया धामानीति क्षत्रं तेनाग्नीषोमयोरयाट् प्रिया धामानीत्युपाँश्वनिरुक्तं तेनावरुन्द्धेऽग्नीषोमयोरयाट् प्रिया धामानीत्युच्चैर्निरुक्तं तेनानिरुक्तं च वा इदं निरुक्तं च तस्यैवोभयस्यावरुद्ध्या अथो शुष्कहरिते एवावरुन्द्धे यद्वै शुष्कं तदाग्नेयं यद्धरितं तत् सौम्यँ शुष्कं च वा इदँ हरितं च तस्यैवोभयस्यावरुद्ध्यै देवानामाज्यपानामयाट् प्रिया धामानीति प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपास्तानेवोभयान् प्रीणाति तेऽस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्ति ॥१॥ १-३

बृहतो मा वाजेन वाजय वामदेव्यस्य मा वाजेन वाजयेति वामदेवो वा एतद्द्रोणामपश्यत्

[१] काठ. ५,१,१-२ । मा. २१,४६-४७ । काण्व. २३,४५-४६ । तै. सं. १,६,११,५ ।
[२] काठ. ५,२,४-९ । मै. १,४,१ (५,१२) । वा. २,२०; ३८,१४,२७-२८ । काण्व. २,१८; ३८,१४,१६ ।

पशव इडा पशुष्वेव पशून् दधाति जुष्टे जुष्टिं ते गमेयमुपहूत उपहवं तेऽशीयेति आशीर्वै यज्ञो यज्ञस्यैवैतामाशिषमाशास्ते सुहवा मेहीति सुहवामेवैनां कुरुते सह रायस्पोषेणेति सहैवैवं रय्याभ्यैत्यस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वितीडाया वा एष दोह इडामेवैतद्दुहेऽस्मान् रायो मघवानस्सचन्तामिति पशवो वै रायो मघवानः पशूनेवात्मन् धत्तेऽस्माकं सन्त्वाशिष इत्याशिषमेवाशास्ते संजयन् क्षेत्राणि सहसाहमिन्द्र कृण्वाणो अन्याँ अधरान् सपत्नानित्यधरमेव भ्रातृव्यं कुरुते ॥ ब्रह्म तेजो मे पिन्वस्व क्षत्रमोजो मे पिन्वस्वेत्येतदेवासा इडा सर्वं दुहे सर्वँ हास्यैतद्भवति य एवं वेद मयि त्यदिन्द्रियं महदितीन्द्रियं वा आप इन्द्रियमेवात्मन् धत्ते ब्रह्म पिन्वस्व कल्पन्तां दिश इत्यसौ वा आदित्यो ब्रह्मस्स यदोदेत्यथ दिशः कल्पन्ते य एवं वेद यामब्राह्मणः प्राश्नाति सा स्कन्नाहुतिस्तस्या वै वसिष्ठ एव प्रायश्चित्तिं विदांचकार ब्रह्म पिन्वस्वेति पुरोडाशमभिमृशति दक्षिणीयेष्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयत्यस्कन्नमविक्षुब्धमपि ह वा अस्य यामब्राह्मणः प्राश्नाति सा हुतैव भवत्यथ ह स्माह कपिवनो भौवायनः किमु स यजेत यो गामिव यज्ञं न दुहे सुदोहतरो वा एष गोरिति सं यज्ञपतिराशिषेति यजमानो यजमानभागं प्राश्नाति यजमानो वै यज्ञपतिर्यज्ञो यजमानभागो यद्यजमानो यजमानभागं प्राश्नाति यज्ञपता एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति ॥२॥ ४-५

देवस्याहं बर्हिषो देवयज्यया प्रजावान् भूयासमिति बर्हिषा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत प्रजामेव सृजते देवस्याहं नराशँसस्य देवयज्यया पशुमान् भूयासमिति नराशँसेन वै प्रजापतिः पशूनसृजत पशूनेव सृजते देवस्याहमग्नेस्स्विष्टकृतो देवयज्ययायुः प्रतिष्ठां गमेयमित्यायुरेवात्मन् धत्ते प्रति यज्ञेन तिष्ठत्या माशिषो दोहकामा इत्याशिषो वै दोहकामा यजमानमुपतिष्ठन्ते ता यथा धेनवोऽदुग्धा अपक्रामन्त्येवं त्वस्माद्यजमानादपक्रामन्त्यथ य एवं वेदाशिष एवैष दुहे सा मे सत्याशीर्देवान् गम्यादिति सत्यामेवाशिषं देवान् गमयित्वा वरं वृणीते ॥ जुष्टाज्जुष्टतरेति जुष्टादेवैनां जुष्टतरां करोति पन्यात् पन्यतरेति पन्यादेवैनां पन्यतरां करोत्यरेडता मनसा देवान् गच्छेत्येवैतदाह यो देवयानः पन्थास्तेन देवान् गच्छेति य एव देवयानः पन्थास्तमेवैनमपिपादयति रोहितेन त्वाग्निर्देवतां गमयतु हरिभ्यां त्वेन्द्रो देवतां गमयत्विति यजमानो वै प्रस्तरो हविर्भूतमेवैनँ स्वर्गं लोकं गमयति यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छेति स्वमेवैनं योनिं गमयति यो यज्ञस्यायुर्वेद सर्वमायुरेति यज्ञस्यायुरसि यज्ञो म आयुर्दधात्वित्येतद्वै यज्ञस्यायुर्य एवं वेद सर्वमायुरेति यद्वै युक्तो विमुक्तश्शमरथं दा करोति प्र वा क्षिणाति वि ते मुञ्चामि रशनां वि रश्मीनिति विमोक एवास्यैष स्वर्गमेव

[३] काठ. ५,३,१०-१५ । मै. १,४,१; ५ (६-९,११,३४) । वा. ८,२२ । काण्व. ९,२२ । तै. सं. १,७,४; १,६,४ ।
[वि ते मुञ्चामि० । अथर्व. ७,७८,१-२]

लोकं देवता गमयित्वा प्रतिष्ठाप्य विमुञ्चति विष्णोश्शम्योर्यज्ञस्यान्त इति विष्णुर्वै यज्ञोऽन्तत एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति ॥३॥ ६-७

इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिरिति यज्ञस्य वा एष दोहो यज्ञमेवैतद्दुहे तस्य यज्ञसंष्टस्य स्विष्टस्य द्रविणमागच्छत्वित्याशिषमेवाशास्तेऽङ्गिरसो मेऽस्य यज्ञस्य प्रातरनुवाकैरहौषुरित्याशिषामेवैष दोहो वसुर्यज्ञो वसुमान् यज्ञ इति वसुमन्तमेव यज्ञं कुरुते तस्य यज्ञस्य वसोर्वसुमतो वसु मागच्छत्वित्याशिषमेवाशास्ते सोमो रेतोधा इति सोमो वै देवानां रेतोधास्सोम एवास्मै रेतोधा रेतो दधाति त्वष्टा रूपाणां विकर्तेति त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता सोऽस्मै रूपाणि विकरोति देवानां पत्नीरग्निर्गृहपतिर्मिथुनं यजमानस्येत्येतद्वै दर्शपूर्णमासयोर्मिथुनं दर्शपूर्णमासयोरेव मिथुनेन मिथुनमात्मन् धत्ते तयोरहं देवयज्यया मिथुनेन प्रजनिषीयेति प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते या वा एतस्य पत्नी सैतर्हि संप्रति यथादासीताग्निरस्याः प्रजा निर्दहेद्यदाह पत्न्येष ते पत्नि लोक इति लोकमेवास्यै करोत्यनिर्दाहुकोऽस्या अग्निः प्रजा भवति सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतामिति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भस्सह स्वर्गे लोके भवतस्स्वाहा स्वाहेष्टेभ्यो वषडनिष्टेभ्य इति स्विष्टिश्च वै दुरिष्टिश्च यज्ञे संयेते यस्य स्विष्टिर्यज्ञं युवते स वसीयान् भवति यस्य दुरिष्टिर्यज्ञं युवते स पापीयान् भवति स्विष्टयैवास्य यज्ञँ समर्धयति वसीयान् भवत्यथाथाग्नेऽस्यनाभिशस्तिश्चेत्ययपा वै नामैवाग्नेस्तनूरया सर्वाश्चैवेति खलु वा आहुर्यां च विद्म यज्ञस्य प्रायश्चित्तिं यां च न विद्म यच्च यज्ञस्य क्रियते यच्च न क्रियते तस्यैषोभयस्य प्रायश्चित्तिस्सरस्वत्यै वेशभगिन्यै स्वाहेति वेशयमनं वा एतदपि ह वा एनमाजीवन्त उपासते ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वोपास्मह इति य एवं वेद यज्ञस्य त्वा प्रमयाभिमयोन्मया प्रतिमया परिगृह्णामीति गायत्री वै यज्ञस्य प्रमा त्रिष्टुबभिमा जगत्युन्मानुष्टुप् प्रतिमैतावन्ति वै छन्दाँसि यज्ञं वहन्ति तैरेवैनं परिगृह्णाति तेष्वेनं प्रतिष्ठापयति ॥४॥ ८

पूर्णमसि पूर्णं मे भूया इति येभ्य एव कामेभ्य ऊनस्तानापूरयतेऽग्निर्वै भूयाँसं यजमानं प्रदहति संतर्दे स्मायन्त्यग्नेऽतिमुच्यमाना अनु यजमानोऽतिमुच्यतेऽथो अङ्गिरसैवैतदग्नेरात्मानमन्तर्धत्तेऽप्रदाहाय सर्वं वा एतस्य यज्ञो मृष्टश्शुचामिषीदति यद्बृहा यद् यजवः प्राच्या दिशा देवा ऋत्विजो मार्जयन्तामित्येता वै यज्ञस्य मृष्ट्य एताश्शान्तयो मृष्टोऽस्य यज्ञो भवति शान्तोऽघातुकः पशुपतिः पशून् पृथिवीं विष्णुर्व्यक्रँस्त गायत्रेण छन्दसेति विष्णुमुखा वै देवाश्छन्दोभिरेभ्यो लोकेभ्यो-

[४] काठ. ५,४,२६-२३ । मै. १,४,१,३,८ (१०,१७-१०,१७) । वा. २,२० । काण्व. २,३६-३७ । तै. सं. ३,५,४ । तै. ब्रा. ३,३,९,११ ।
[५] काठ. ५,५,६ । मै. १,४,२,३, १,८,४-५ (११, ३६, ९-१७) । वा. १,३१; २,२५-२७, १५,८, १९,०, २०, २३, ३८,२५ । काण्व. १,४१, २,४६-५०, २६,२३, २२,८, २२,८, ३८,२४ ।

ऽसुरान् प्राणुदन्त विष्णुमुख एवैतद्यजमानश्छन्दोभिरेभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदतेऽगन्म स्वरिति स्वरेव गच्छति सं ज्योतिषाभूमेति ज्योतिर्वै यज्ञो यज्ञ एव यज्ञमनुसंतनोति सूर्यस्यावृतमन्वावर्त इत्यमुष्यैवादित्यस्यावृतमन्वावर्ततेऽथो एवँ हि यज्ञ आवर्ततेदमहं योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणं निवेष्टयामीति यमेव द्वेष्टि तस्य प्राणं निवेष्टयति तेजोऽसि तेजो मयि धेहीति तेज एवात्मन् धत्ते समहं प्रजया सं मया प्रजेति प्रजामेवात्मन् धत्ते समहं रायस्पोषेण सं मया रायस्पोष इति पशवो वै रायस्पोषः पशूनेवात्मन् धत्तेऽग्नेस्तेजसा तेजस्वी भूयासमिति तेज एवात्मन् धत्ते वायोरायुषायुष्मान् भूयासमित्यायुरेवात्मन् धत्ते सूर्यस्य वर्चसा वर्चस्वी भूयासमिति वर्च एवात्मन् धत्त इन्द्रस्येन्द्रियेणेन्द्रियावान् भूयासमितीन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियमेवात्मन् धत्ते ॥ धाता मे धाम्ना सुधां दधात्विति धातैवास्मै धाम्ना सुधां दधाति प्रजापतेः प्रजया प्रजावान् भूयासमिति प्रजामेवात्मन् धत्ते प्र वा एषोऽस्माल्लोकाच्च्यवते यः प्रक्रमान् प्रक्रामति छन्दोभिर्हि पराङ् रोहति स ईश्वरः प्रमेतोरग्ने गृहपत इति गार्हपत्यमुपतिष्ठतेऽस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति ॥५॥ ९-१०

देवाञ्जनमगन् यज्ञ इति जनं वा एतद्यज्ञस्यैति यत् स्कन्दति जनादेव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे पञ्चानां त्वा वातानां धर्त्राय गृह्णामीत्ययं वाव यः पवते स यज्ञः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवास्मै गृह्णाति पञ्चानां त्वा सलिलानां धर्त्राय गृह्णामीति पशवो वै सलिलं पशूनेवास्मै गृह्णाति पञ्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्राय गृह्णामीति यज्ञो वै पृष्ठानि यज्ञमेवास्मै गृह्णात्येतेन वै दर्शपूर्णमासौ पृष्ठवन्तौ पञ्चानां त्वा दिशां धर्त्राय गृह्णामीति पञ्च वै दिशो दिश एवास्मै गृह्णाति सर्वा दिशोऽभिजयति सर्वा अस्य दिशोऽभिजिता भवन्ति पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्राय गृह्णामीति ॥ छन्दाँसि वै पञ्च पञ्चजना यज्ञश्छन्दाँस्युपैनं यज्ञो नमति भूरस्माकं हव्यं देवानामाशिषो यजमानस्येति भूतिमेवात्मने गृह्णाति हव्यं देवेभ्य आशिषो यजमानस्य चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य धर्त्राय गृह्णामीतीमे लोकाश्चरुः पञ्चबिल इमानेवास्मै लोकान् गृह्णाति धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमिति प्रज्ञात आज्यग्रहः पथागान्न यज्ञाद्धूर्छति नास्माद्यज्ञो ह्वर्छति य एवं वेद यज्ञो वै देवेभ्योऽपाक्रामत् तं वेदेनान्वविन्दँस्तद्वेदस्य वेदत्वं यद्वेदो भवति यज्ञस्यानुवित्त्यै स्त्री वै वेदिः पुमान् वेदो यद्वेदेन वेदिं संमार्ष्टि मिथुनमेव करोति प्रजापतेर्वा एतानि श्मश्रूणि यद्वेदो यां पत्नीं कामयेत पुत्रं विन्देतेति तस्या उपस्थ आस्येन्मिथुनमेव करोति ॥ शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत् पुरोडाशः केशा वेदो यद्वेदेन

[योऽस्मान् द्वेष्टि०...द्विष्मः० । अथर्व. ३,२७,१-६; ७,८१,५ । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । अथर्व. ७,८९,४; १९,३१,१२]
[६] काठ. ५,६,१८-२६ । मै. १,४,१,३-४,८-९ (९,१३-११,१५; ३७-४०) । कपि. ४,५ । वा. १,५, ३१; २,२८; ८,६०; १५,५० । काण्व. १,८,४९; २,५३; ९,४६; १६,७२ ।

पुरोडाशँ समुन्मार्ष्टि यज्ञस्य सर्वत्वायौषधयो वै वेदः पशव ओषधय एष पशूनां गोष्ठो यदन्तराग्नी
यद्वेदमन्तराग्नी स्तृणाति स्व एव गोष्ठे भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्ते दुरनुवेदो वा अमुत्र यज्ञो यद्वेदो
भवति यज्ञस्यानुविरत्यै वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यदर्धमासेऽर्धमासे सँस्थां गच्छति यत् संततमाहव-
नीयात् स्तृणाति यज्ञमेव संतनोति तँ संततमुत्तरेऽर्धमास आलभते ॥ यज्ञहनो वै देवा यज्ञमुष-
स्सन्ति त एषु लोकेष्वासत आददाना विमथ्नाना यो ददाति यो यजते तस्य ये देवा यज्ञहनो
यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासत इति य एव पृथिव्यां यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्च देवास्तानतीत्यान्तरिक्षं गच्छति
गच्छेम सुकृतो वयमित्याशिषमेवाशास्ते ये देवा यज्ञहनो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षेऽध्यासत इति य एवा-
न्तरिक्षे यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्च देवास्तानतीत्य दिवं गच्छति गच्छेम सुकृतो वयमित्याशिषमेवाशास्ते ये
देवा यज्ञहनो यज्ञमुषो दिव्यध्यासत इति य एव दिवि यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्च देवास्तानतीत्य स्वर्गं
लोकं गच्छति गच्छेम सुकृतो वयमित्याशिषमेवाशास्ते ॥ गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञ इति गोमन्त-
मेवाविमन्तमश्विनं यज्ञं कुरुते नृवत् सखा सदमिदप्रमृष्य इति नृवत् सखा ह्येष सदमिदप्रमृष्य इडावाँ
एषो असुर प्रजावानित्याशिषमेवाशास्ते दीर्घो रयिः पृथुबुध्नस्सभावानिति प्रथयत्येवाग्ने व्रतमचा-
रिषमित्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिर्व्रतपतय एव व्रतँ संप्रयच्छति ॥६॥ ११-१५

देवतानां वा एतदायतनं यदाहवनीयो यदन्तराग्नी तत् पशूनां मनुष्याणां गार्हपत्योऽन्वाहार्य-
पचनः पितॄणां पूर्वं चाग्निमपरं च परिस्तरितवा आह मनुष्याणामिध्वै नवावसानं प्रियं नवावसान-
मेवाकृन् मेध्यत्वाय सर्वा ह वा अस्य यक्ष्यमाणस्य देवता यज्ञमागच्छन्ति य एवं वेदाग्नेस्तनूरसि
वाचो विसर्जनमिति पुरोडाशीयानावपति देवतानां वा एष ग्रहो देवता एवैतदग्रहीदथ ह स्माहारुण
औपवेशिरहुतासु वा अहमाहुतिषु देवता हव्यं गमयामि सँस्थितेन यज्ञेन सँस्थां गच्छानीति
य एवं वेदाहुतास्वेवास्याहुतिषु देवता हव्यं गच्छति सँस्थितेन यज्ञेन सँस्थां गच्छत्यपः प्रणेष्यन्
वाचं यच्छेदौलूखलेन वै दृषदा देवा यज्ञमुखाद्रक्षाँस्यपाघ्नन्मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञमतनुतौलूखल-
स्योद्वदितोरध्वर्युश्च यजमानश्च वाचं यच्छेतां प्रजापतिरेव भूत्वा मनसा यज्ञं तत्वा तेन सर्वाणि सह
यज्ञायुधानि प्रहृत्यानि मानुषं तत् क्रियते नैकमेकं पितृदेवत्यं तद् द्वे द्वे प्रहृत्ये याज्यानुवाक्ययो
रूपमुपवसत्युभयाँस्तत् पशूनवरुन्द्धे ग्राम्याँश्चारण्याँश्च यद्ग्राम्यस्य नाश्नाति तेन ग्राम्यान्
पशूनवरुन्द्धे यदारण्यस्याश्नाति तेनारण्यानथो इन्द्रियं वा एतद्यदारण्यमिन्द्रियमेवावरुन्द्धे ॥ न
माषाणामश्नीयादमेध्या वै माषा न तस्य सायमश्नीयाद्येन प्रातर्यक्ष्यमाणस्स्यादप्रतिजग्धेन वै
हव्येन देवा वसीयोभूयमगच्छन् प्रतिजग्धेनासुराः पराभवन्नप्रतिजग्धेन वै तद्धव्येन यजमानो

[गोमाँ अग्नेऽविमाँ० । ऋ. ४ २,५; तै. सं. १,६,६,४; ३,१,११,१]
[७] मै. १,४,१० (४१-४४) । वा. १,६५ । काण्व. १,९३ । तै. सं. १,६,८ ।
काठ० ४२

वसीयोभूयं गच्छति यो वै श्रद्धामनारभ्य यजते पापीयान् भवत्यापश्श्रद्धा न वाचा गृह्णाति न यजु-
षाति वा एता वाचं नेदन्त्यति वर्षं मनस्तु नातिनेदन्ति तद्यदपो ग्रहीष्यन् स्यादिमां तर्हि मनसा
ध्यायेदियं वा एतासां पात्रमनयैवैना गृह्णाति श्रद्धामेवारभ्य यजते वसीयान् भवति ॥७॥
१६-१७
[११२९]
॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां यजमान-ब्राह्मणं नाम द्वात्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशं स्थानकम्।

सत्त्राणि।

गावो वै सत्त्रमासत शृङ्गाणि सिषासन्तीस्तासां दशमे मासि शृङ्गाण्यजायन्त ता अब्रुवन्नराव्
स्मोत्तिष्ठामाव तं काममरुत्स्महि यस्मै कामाय न्यसदामेति तासामु त्वा अब्रुवन्नर्धा वा यावती-
र्वासामहा एव द्वादशौ मासौ संवत्सरँ संपाद्योत्तिष्ठामेत्युत्तिष्ठन्तीरु त्वा अनुवन्नेवास्मासु श्रद्धाभूदिति
तासां या द्वादशौ मासा आसत तासाँ शृङ्गाणि प्रावर्तन्त श्रद्धया वाश्रद्धया वा ता इमा
यास्तूपरास्तस्माद् द्वादश मासास्तूपराः प्रेत्वरीश्चरन्ति दश शृङ्गिणीरुभयीर्वाव ता आर्ध्नुवन् या-
श्शृङ्गाण्यसन्वन्याश्चोर्जमवारुन्धतर्ध्नुवन्ति दशसु मास्सूत्तिष्ठन्त ऋध्नुवन्ति द्वादशसु य एवं विदुस्तदेत-
द्गवामयनं तस्मादेतेन यन्ति पदेन वा एतद्यन्ति विन्दति ह खलु वै पदेन यँस्तस्मादेतद्गोसनि
॥१॥ १

अतिरात्रः परमो यज्ञक्रतूनामित्याहुर्ब्रह्मवादिनः कस्मात् तं प्रथममुपयन्तीति यद्वा अतिरात्रमुप-
यन्त्यग्निष्टोमं प्रथममुपयन्त्यथोक्थ्यमथ षोडशिनमथातिरात्रं यथापूर्वमेव यज्ञक्रतूनुपेत्यैतानालभ्य
परिगृह्य सोमं पिबन्त आसते ज्योतिष्टोमं प्रथममुपयन्ति ज्योतिष्टोमो वै स्तोमानां मुखं मुखत एव तत्
स्तोमान् प्रयुङ्क्ते विराजं ज्योतिष्टोमोऽभिसंपन्न एकया गौरतिरिक्त एकयायुरूनस्ते सँस्तुता विराजम-
भिसंपद्यन्ते द्वे चर्चा अतिरिच्येते स्वर्गो वै लोको विराड् द्विपादो यजमानास्स्वर्ग एव तल्लोके विराजि
द्विपादो यजमानाः प्रतितिष्ठन्ति ॥ रथन्तरं पृष्ठं भवतीयं वै पृथिवी रथन्तरमिमामेव तदालभ्यासते
रथन्तरं दिवा भवति रथन्तरं नक्तमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः केन तदजामीति सौभरं तृतीयसवने ब्रह्मसामं
बृहद्भवति तन्मध्यतो दधाति रथन्तरस्य विधृत्यै तेनाजाम्यतिरात्राच्चतुर्विंशमहरुपयन्ति चतुर्विंशति-
स्संवत्सरस्यार्धमासा अर्धमासशस्संवत्सर आप्यतेऽर्धमासश एव तत् संवत्सरमाप्नुवन्ति तस्य
षष्टिश्च त्रीणि च शतानि स्तोत्रीयाष्षष्टिश्च वै त्रीणि च शतानि संवत्सरस्याहान्यहश्शस्संवत्सर

[१] तै. सं. ७,५,१–१ । [२] तै. सं. ७,४,१०; ७.५.१ ।

आप्यतेऽहश्श एव तत् संवत्सरमाप्नुवन्त्युक्थ्यो भवति पशवो वा उक्थानि पशूनेवावरुन्धते बृहत् पृष्ठं
भवति स्वर्गो वै लोको बृहत् स्वर्गमेव तेन लोकमाप्नुवन्ति त्रयस्त्रिंशो नाम साम माध्यन्दिने पवमाने
भवति त्रयस्त्रिंशद्देवास्तद्देवा नाप्नुवन्त्येतस्मै वै संवत्सरमुपयन्त्यापन् देवानापन् स्वर्गं लोकमव-
पशूनरुत्सतापन् संवत्सरमर्धमासश आपन्नहश्शस्तच्चतुर्विंशेऽहन् सर्वा देवताः परिगृह्य सोमं
पिबन्त आसते ये वा इतः पराञ्चं संवत्सरमुपयन्ति नैनं ते स्वस्ति समश्नुवतेऽथो येऽमुतोऽर्वाञ्च- २-३
मुपयन्ति ते हैनँ स्वस्ति संतरन्त्येतद्वा अमुतोऽर्वाञ्चमुपयन्ति यदेवम् ॥२॥

ज्योतिष्टोमं प्रथममुपयन्त्यस्मिंस्तेन लोके प्रतितिष्ठन्ति गोष्टोमं द्वितीयमुपयन्त्यन्तरिक्षे तेन
प्रतितिष्ठन्त्ययं वै लोको ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसा
प्रतितिष्ठन्त्यायुष्टोममुत्तममुपयन्त्यस्मिंस्तेन लोके प्रतितिष्ठन्त्ययं वै लोको ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसा
एवायुर्यदेतान् स्तोमानुपयन्त्येष्वेव तल्लोकेषु सत्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति विराजं ज्योतिष्टोमो-
ऽभिसंपन्न एकया गौरतिरिक्त एकयायुरूनस्ते सँस्तुता विराजमभिसंपद्यन्त ऊर्ग्वै विराड् यदेतैस्स्तोमै
र्यन्त्यूर्जमेवैतत् सत्त्रिणोऽवरुन्धाना यन्ति ते न क्षुधार्तिमार्छन्त्यक्षोधुका भवन्ति क्षुत्संबाधमाना
इव हि सत्त्रिणोऽग्निष्टोमा अभितः प्रधी ता उक्थ्या मध्ये नभ्यं तदेतद्वै परियद्देवचक्रं यदेतेन
षडहेन यन्ति देवचक्रमेव तत् समारोहन्त्यरिष्ट्यै ते स्वस्ति समश्नुवत उभयतोज्योतिषा यन्ति
षडहेन यन्ति देवचक्रमेव तत् समारोहन्त्यरिष्ट्यै ते स्वस्ति समश्नुवत उभयतोज्योतिषा यन्ति षडहेन यन्ति पञ्चा
स्वर्गो वै लोको ज्योतिरुभयत एव तत् स्वर्गे लोके सत्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति षडहेन यन्ति षड्वा
स्वर्गो वै लोको ज्योतिरुभयत एव तत् स्वर्गे लोके सत्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति द्वौ षडहौ भवतस्तानि द्वादशाहानि संपद्यन्ते दश वै पुरुषे
ऋतव ऋतुष्वेव तत् प्रतितिष्ठन्तो यन्ति द्वौ षडहौ भवतस्तानि द्वादशाहानि संपद्यन्ते दश वै पुरुषे
प्राणास्स्तनौ द्वादशौ तत् पुरुषमनुपर्यावर्तन्ते त्रयष्षडहा भवन्ति तान्यष्टादशाहानि संपद्यन्ते नवान्या-
नि नव प्राणास्तत् प्राणाननुपर्यावर्तन्ते चत्वारष्षडहा भवन्ति तानि चतुर्विंशतिरहानि संपद्यन्ते
चतुर्विंशतिस्संवत्सरस्यार्धमासा अर्धमासशस्संवत्सर आप्यते तत् संवत्सरमनुपर्यावर्तन्ते पञ्च षडहा
भवन्ति तानि त्रिंशदहानि संपद्यन्ते दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पद्या दश प्राणास्तत् त्रिंशत् त्रिंश-
दक्षरा विराड्वैराजः पुरुषस्तत् पुरुषमनुपर्यावर्तन्तेऽप्रतिष्ठितस्संवत्सर इति खलु वा आहुर्वर्षीयान्
प्रतिष्ठाया इत्येतावद्वै संवत्सरस्य ब्राह्मणं यावन्मासो मासि मास्येव प्रतितिष्ठन्तो यन्ति य एवं ४
विदुः ॥३॥

नवैतान्यहानि नव वै स्वर्गा लोकाश्चतस्रो दिशश्चत्वारोऽन्तर्देशा ऊर्ध्वा नवमी यदेतान्यहान्युप-
यन्ति नवस्वेव तत् स्वर्गेषु लोकेषु सत्त्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यग्निष्टोमाः परसामानः कर्तव्या
इत्याहुरग्निष्टोमसंमितो वै स्वर्गो लोक इति द्वादशाग्निष्टोमस्तोत्राणि द्वादश मासास्संवत्सरस्संवत्सर
स्स्वर्गो लोकस्तस्मात् तदाहुस्तत्र वृद्धर्यमुक्थ्या एव परसामानः कर्तव्या इति पशवो वा उक्थानि

[३] तै. सं. ७,४,११ । [४] तै. ब्रा. १,२,२ ।

पशूनामवरुद्ध्यै विश्वजिदभिजिता अग्निष्टोमा उक्थ्यास्सप्तदशाः परसामान एकविंशं दिवाकीर्त्यं ते
सँस्तुता विराजमभिसंपद्यन्ते द्वे चर्चा अतिरिच्येते स्वर्गो वै लोको विराड् द्विपादो यजमानास्स्वर्गं
एव तल्लोके विराजि द्विपादो यजमानाः प्रतितिष्ठन्ति ॥ यत् परो रथन्तरं तत् प्रथमेऽहन् कर्तव्यं
बृहद् द्वितीये वैरूपं तृतीये वैराजं चतुर्थे शाक्वरं पञ्चमे रैवतँ षष्ठे तदु पृष्ठेभ्यो न यन्ति संतत्य एते
ग्रहा गृह्यन्तेऽतिग्राह्याः परसामसु यदेते गृह्यन्त इमानेवैतल्लोकान् संतत्य स्वर्गं लोकं यजमाना
आरोहन्ति मिथुना एते ग्रहा गृह्यन्तेऽतिग्राह्याः परसामसु यदेते गृह्यन्ते मिथुनमेवैतैरवरुन्धते सौर्य
एष ग्रहो गृह्यतेऽतिग्राह्य एकविंशेऽहँस्तस्य प्रत्यक्षं नाम न ग्रहीतवै तेजस्वितर इव वाश्वतरः प्रदा-
हाद्वा भय्यं किलासंभावाद्वाया विष्ठा जनयन् कर्वराणीत्येष प्राजापत्योऽनिरुक्तो ग्रहो गृह्यतेऽतिग्राह्य
एकविंशेऽहन् समन्त आयुष्या पशव्यो यो ह खलु वाव प्रजापतिस्स एवेन्द्रस्तदु देवेभ्यो न
यन्ति ॥४॥ ५-६

प्रथमे मासि पृष्ठान्युपयन्ति मध्यम उपयन्त्युत्तम उपयन्ति यत् प्रथमे मासि पृष्ठान्युपयन्त्य-
स्मिंस्तेन लोके प्रतितिष्ठन्ति यन्मध्यम उपयन्त्यन्तरिक्षे तेन प्रतितिष्ठन्ति यदुत्तम उपयन्त्यमुष्मिंस्तेन
लोके प्रतितिष्ठन्ति मासि मासि पृष्ठान्युपेत्यानीत्याहुः पृष्ठानि वै यज्ञस्य दोह इति तदाहुरेकं वा
एतद्देवानामहर्यत् संवत्सरो यां वै त्रिरेकस्याह्न उपसीदन्ति दहँ सापराभ्यां दोहाभ्यां दुहे तत्
कुतस्सा धोक्ष्यति यां द्वादश कृत्व उपसीदेयुरिति सकृत् पृष्ठान्युपेयुरुत्तमे मासि समुद्रं खलु वा
एतेऽनवारमपारं प्रस्नान्ति ये संवत्सरमुपयन्ति बृहद्रथन्तराभ्यामेतव्यं बृहद्रथन्तरे वै देवानां प्लव-
स्तद्देवानां प्लवेन समुद्रमर्णवं तरन्ति यथा मध्ये समुद्रस्य प्लवमन्ववर्जेयुरेवं तद्यत् पुरा संवत्सरा-
द्बृहद्रथन्तरे उत्सृजेयुरनुत्सर्गं बृहद्रथन्तराभ्यां गत्वा प्रतिष्ठां गत्वा सकृत् पृष्ठान्युपेयुरुत्तमे मासि
सर्वेभ्यो वै कामेभ्यस्संधिर्दुहे तत् सर्वान् कामान् यज्ञं पृष्ठानि संवत्सराद्दुहे ॥५॥ ७

एकविंश एष एतेन वै देवा एकविंशेनादित्यमितस्स्वर्गं लोकमारोहयन् स एष इत एकविंश-
स्तस्य दशावस्तादहानि दश परस्तात् स एष उभयतो विराजि प्रतिष्ठित उभयतो हि वा एष
विराजि प्रतिष्ठितस्तस्मादन्तरेमौ लोकौ यत् सर्वेषु स्वर्गेषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्नेति देवा वा आदि-
त्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादबिभयुस्तं त्रिषु स्वर्गेषु लोकेष्वादधुस्तस्य पराचोऽतिपादादबिभयुस्तं
परस्तात् त्रिभिस्स्वर्गैर्लोकैः प्रत्यस्तभ्नुवन् स एष उभयतष्षट्सु स्वर्गेषु लोकेषु प्रतिष्ठितो धृत्यै
प्रतिष्ठाया अनवपादायानतिपादाय ॥ देवा वै सप्तदशानां प्रम्लयादबिभयुस्तान् सर्वैस्स्तोमैरवस्ताद्
पर्यार्षन् सर्वैस्स्तोमैः परस्तात् तस्मादभिजित् सर्वस्तोमोऽवस्तात् सप्तदशानां विश्वजित् सर्वस्तोमः

[५] तै. सं. ७,५,३ । [६] तै. ब्रा. १,२,४ ।

परस्तात् सप्तदशानां धृत्या अप्रच्युत्याय देवा वा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादबिभयुस्तं ये त्रय्यं स्वर्गाणां लोकानामधिपतयस्तेभ्यादयुश्चतुर्विंशा वै स्तोमा त्रय्यं स्वर्गाणां लोकानामधिपतयस्तद्यदेकविंशस्याहुस्त्रयोऽवस्तात् सप्तदशास्त्रयः परस्तात् ते त्रयश्चतुर्विंशा द्वौ द्वौ तेषु वा एष आहितो धृत्यै प्रतिष्ठाया अनवपादायानतिपादाय ॥ त्रय्यंन् हि वा एष स्वर्गाणां लोकानामाहितस्तस्मादृतेभ्यो भूतेभ्य उत्तरो त्रय्यं स्थानानामाधिपत्यं पर्येति य एवं वेद देवा वा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादबिभयुस्तं पञ्चभी रश्मिभिरुदवयन् रश्मयो दिवाकीर्त्यानि तस्मादेकविंशेऽहन् पञ्च दिवाकीर्त्यानि क्रियन्ते ये गायत्रे ते गायत्रीवृत्तयोः पवमानयोर्महादिवाकीर्त्यं होतुः पृष्ठं विकर्णं ब्रह्मसामं भासमग्निष्टोमस्तद्यदेकविंशेऽहन् पञ्च दिवाकीर्त्यानि क्रियन्त आदित्यमेव तत् पञ्चभी रश्मिभिरुद्वयन्ति धृत्यै प्रतिष्ठाया अनवपादायानतिपादाय ॥ अथैतानि स्पराणि स्परैर्वै देवा आदित्याय स्वर्गं लोकमस्पृण्वन् यदस्पृण्वंस्तत् स्पराणां स्परत्वं स्पृण्वन्त्यस्मै स्पराणि स्वर्गं लोकं य एवं विद्वानेतैस्स्तुतेऽथैतानि पराणि परैर्वै देवा आदित्यं स्वर्गं लोकमपारयन् यदपारयंस्तत् पराणां परत्वं पारयन्त्येनं पराणि स्वर्गं लोकं य एवं विद्वानेतैस्स्तुतेऽनुष्टुभो वै यदयातयामरूपं तानि पराणि तस्मादनुष्टुप्सु पराणि क्रियन्ते यदनुष्टुप्सु पराणि क्रियन्तेऽनुष्टुभमेव तत् सर्वायां कुर्वन्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥६॥ ८-११

उत्सृज्या३न्नोत्सृज्या३मिति मीमांसन्ते तदाहुरुत्सृज्यमेव प्राणापाना वा एते संवत्सरस्य यत् पूर्णमासा यन्नोत्सृजेयुस्संवत्सरमपिनह्येयुरमेहेन सत्त्रिणो म्रियेरन् पौर्णमास्यां चामावस्यायां चोत्सृज्यमित्याहुरेते हि यज्ञं वहत इति तदाहुरेतयोस्त्वाव नोत्सृज्यं ये अवान्तरा यज्ञं भेजाते इति या प्रथमा व्यष्टका तस्यामुत्सृज्यमित्याहुरेष हि मासो विशर इति नादिष्टमुत्सृजेयुर्यदादिष्टमुत्सृजेयुर्यादृशे पुनः पर्याप्लावे मध्ये षडहस्य संपद्यत इति षडहैर्मासैं संपाद्य यत् सप्तममहस्तदुत्सृजेयुस्सं षडहं तन्वन्त्युत्संवत्सरं श्रामयन्ति यदहरुत्सृजेयुस्तदग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं प्रातर्निर्वपेयुरैन्द्रं दधीन्द्राय मरुत्वत एकादशकपालं मध्यन्दिने विश्वेभ्यो देवेभ्य ऋतुमद्भ्यो द्वादशकपालमपराह्णे प्राजापत्यः पशुस्स्यादग्नेर्वै वसुमतः प्रातस्सवनं यदग्नये वसुमतेऽष्टाकपालं पुरोडाशं प्रातर्निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्त्यननुसर्गाय सोमो वा एष ओषधीषु प्रविष्टो यदैन्द्रं दधि भवतीन्द्रमेव तद्भागधेयान्न च्यावयन्ति सवनमष्टाभिरुपयन्ति ये खलु वाव प्रातः पशव उपाक्रियन्ते ते वसव इन्द्रस्य वै मरुत्वतो माध्यन्दिनं सवनं यदिन्द्राय मरुत्वत एकादशकपालं पुरोडाशं मध्यन्दिने निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्त्यननुसर्गाय ॥ सवनमेकादशभिरुपयन्ति विश्वेषां वै

[७] तै. सं. ७,५,७।

देवानामृतुमतां तृतीयसवनं यद्विश्वेभ्यो देवेभ्य ऋतुमद्भ्यो द्वादशकपालं पुरोडाशमपराह्णे निर्वपन्ति देवतामेव तद्भागिनीं कुर्वन्त्यननुसर्गाय सवनं द्वादशभिरुपयन्ति प्राजापत्यः पशुर्भवति यज्ञो वै प्रजापतिर्यज्ञस्याननुसर्गायाभीवर्त इतष्षण्मासो ब्रह्मसामं भवति ब्रह्म वा अभीवर्तो ब्रह्मणैव तत् स्वर्गं लोकमभिवर्तयन्तो यन्ति ॥ प्रतिकूलमिव हीतस्स्वर्गो लोकस्समानाः प्रगाथा भवन्त्यन्यान्यन्यानि सामानि लोका वै सामानि स्वर्गा ऋचो लोकैरेव तत् स्वर्गाल्लोकानभ्यारोहन्तो यन्ति समानं साम भवत्यन्या अन्या ऋचस्स्वर्गा वै सामानि लोका ऋचो लोकैरेव तत् स्वर्गाल्लोकानभ्यारोहन्त आयन्ति ॥ १२-१४

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १५

इत्यमुत आयतां षण्मासो ब्रह्मसामं भवत्ययं वै लोको ज्योतिः प्रजा ज्योतिरिममेव तल्लोकं पश्यन्तोऽभिवदन्त आयन्त्ययं हि लोको लोकानां प्रतिष्ठा ॥७॥ १६

अथैते परसामानस्तेषां परसाम्नां यत् प्रथमं तदुत्तमं यदुत्तमं तत् प्रथमं यन्मध्ये मध्य एव तत् तद्येनैवैते यन्ति तेनामुतः पुनरायन्त्येषां लोकानां संतत्यै प्रतिज्ञात्यै ते विश्वजित उपरिष्टात् प्रत्यवरोहिणस्स्तोमानुपयन्ति तदाहुर्जितं वा एते पराजयन्ते निर्वृत्तान् प्रत्यवरोहिणस्स्तोमानुपयन्ति निवर्तन्ते स्वर्गाल्लोकात् प्रत्यश्रमु यज्ञं तन्वत इति ते तथा पञ्च मासो यन्ति षष्ठस्य च मासस्त्रीनभिप्रवान् द्वे चाहनी गोआयुषी ते पृष्ठान्युपयन्ति पृष्ठानि वै यज्ञस्य दोहो यज्ञं दोहामहै पशूँश्चामृतं च प्राश्नमु यज्ञं तनवामहा इत्यृतवो वै पृष्ठान्यृतुष्वेव तत् प्रतितिष्ठन्तो यन्ति स्वर्गो वै लोकः पृष्ठानि स्वर्ग एव तल्लोके प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ॥ देवक्षत्रं वा आयुषस्तोमा देवक्षत्रमेव तदभ्यारोहन्तो यन्ति ते छन्दोमानुपयन्ति पशवो वै छन्दोमाः पशूनेवावरुन्धते ते दशममहरुपयन्ति प्रजननं प्राजापत्यं प्रतिष्ठां प्रजननमेव तत् प्रजां प्रतिष्ठामवरुन्धते ते महाव्रतीयमहरुपयन्ति तदाहुर्विषुवान् वा एतदहर्यन्महाव्रतीयं विषुवत्युपेत्यमित्यथाहुः प्राजापत्यं वा एतदहर्यन्महाव्रतीयं तदुत्तमार्धे संवत्सरस्योपेत्यमिति यो वै षण्मास्यो जायते यस्सप्तमास्यः प्र वै स मीयते न तेन भोगमश्नुते ॥ संवत्सरे खलु वाव रेतो हितं प्रजायते तद्यदुत्तमार्धे संवत्सरस्य महाव्रतीयमहरुपयन्ति संवत्सर एतद्रेतो हितं प्रजनयन्ति यथर्त्वेवर्तून् कल्पयन्ति यथापूर्वं प्रजां प्रजनयन्ति ते पञ्चविंशं स्तोममुपयन्ति पुरुषस्तोमं दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पद्या द्वौ बाहू द्वे सक्थ्या आत्मा पञ्चविंशो

[इन्द्र क्रतुं न आभर०। ऋ. ७,३२,२६; सा. २५९,१४५६; अथर्व. १८,३,६७; २०,७९,१; तै. सं. ७,५,७,४]

यदेतं स्तोममुपयन्ति स्वादेव तत् स्तोमात् सत्त्रिण आत्मानं प्रजनयन्ति भूत्यै तदाहुः प्राजापत्यं वा एतदहर्यन्महाव्रतीयं तस्मिन् सर्वे ग्रहा ग्रहीतव्यास्सर्वमिव हि प्रजापतिर्विव्याचेत्येको ग्रहीतव्य एको हि प्रजापतिस्त्रयो ग्रहीतव्यास्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नुवन्ति ॥ पञ्च ग्रहीतव्याः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्धते सप्त ग्रहीतव्यास्सप्त ग्राम्याः पशवस्तानेवावरुन्धते नव ग्रहीतव्या नव प्राणाः प्राणेष्वेव प्रतितिष्ठन्ति पञ्चदश ग्रहीतव्याः पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयोऽर्धमासशस्संवत्सर आप्यतेऽर्धमासश एव तत् संवत्सरमाप्नुवन्ति सप्तदश ग्रहीतव्याः प्रजापतिस्सप्तदशः प्रजापतिमेवाप्नुवन्त्येकविंशतिर्ग्रहीतव्या असा आदित्य एकविंशोऽमुमेवादित्यमाप्नुवन्ति सप्तविंशतिर्ग्रहीतव्यास्त्रिणवा इमे लोका एष्वेव लोकेष्वृध्नुवन्ति त्रयस्त्रिंशद्ग्रहीतव्यास्त्रयस्त्रिंशद्देवता देवतास्वेव प्रतितिष्ठन्ति ॥८॥ १७-२०

[५१३९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामिठिमिकायां सत्राणि नाम त्रयस्त्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशं स्थानकम् ।

एकादशिनी ।

एकादशिनीभिर्यन्ति प्राणा वा एकादशिनीः प्राणेष्वेव तत् प्रतितिष्ठन्तो यन्ति तदाहुर्यदेकादशिनीभिरिवुरहानि वातिरिच्येरन् पशवो वा नोपमेनाह्नोत्तमः पशुस्संपद्येतेति तद्यदेकादशिनीकामास्युः प्रथमे मास्येकादशिनीमुपेयुरुत्तमे च प्राणा वा एकादशिनी प्राणानेव मुखतः प्रतिपद्यन्ते प्राणेष्वन्ततः प्रतितिष्ठन्त्यैन्द्राग्नः खल्वेवाच्युतः पशुस्स्यात् प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी प्राणापानयोरेव तत् प्रतितिष्ठन्तो यन्ति तेजो वा इन्द्राग्नी तेजस्येव तत् प्रतितिष्ठन्तो यन्त्योजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी तेजस्येव वीर्ये प्रतितिष्ठन्तो यन्तीन्द्राग्नी सर्वा देवता यदैन्द्राग्नः पशुर्भवति सर्वा एव तद्देवताः प्रीणन्तो यन्ति ॥ यदहो रथंतरं साम स्यादाग्नेयं तदहः पशुमालभेरन् यदहर्बृहदैन्द्रं तदहस्तदैन्द्राग्न एव यदहो रथंतरं साम स्यादाग्नेन्द्रं तदहः पशुमालभेरन् यदहर्बृहदैन्द्राग्नं तदहस्तदनुपूर्वं देवते कल्पयन्ति यथापूर्वं पशुमालभन्त इन्द्राग्निभ्यामेव यन्ति बार्हस्पत्यं शितिपृष्ठं षष्ठेऽहन्नालभेरन् ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मण्येव तद्यज्ञस्यान्ततः प्रतितिष्ठन्ति बार्हस्पत्यः खलु वाव शितिपृष्ठो देवतया द्यावापृथिव्यां धेनुं सप्तमेऽहन्नालभेरन् प्रथमे छन्दोमे द्यावापृथिवी वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा द्यावापृथिव्योरेव तद्यज्ञस्यान्ततः प्रतितिष्ठन्ति द्यावापृथिव्या खलु वाव धेनुर्देवतया वायव्यं वत्समष्टमेऽहन्नालभेरन् मध्यमे छन्दोमे प्राणो वै वायुः प्राण एव तद्यज्ञस्यान्ततः प्रतितिष्ठन्ति ॥ वायव्यः खलु वाव वत्सो देवतया वाचे पृश्निं नवमेऽहन्नालभेरन्नुत्तमे छन्दोमे वाग्वै पृश्निः प्रतिष्ठा वाच्येव तद्यज्ञस्यान्ततः

प्रतितिष्ठन्ति वाग्देवत्या खलु वाव पृश्निर्देवतयादित्यां वशां शमेऽहन्नालभेरन्नियं वा अदितिरियं प्रतिष्ठास्यामेव तद्यज्ञस्यान्ततः प्रतितिष्ठन्त्यादित्या खलु वाव वशा देवतया वैश्वकर्मणमृषभं महाव्रतीयेऽहन्नालभेरन्निन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माभवत् प्रजापतिः प्रजासृष्ट्वा विश्वकर्माभवत् संवत्सरो विश्वकर्मेत्याहुर्यमिमाः प्रजा अनुप्रजायन्त इति त्रिरूपस्स्यादुभयतएतो यत् प्रथमं रूपं तेनैन्द्रो यद् द्वितीयं तेन प्राजापत्यो यत् तृतीयं तत् संवत्सरस्य रूपमिन्द्रो वृषा प्रजापतिर्वृषा संवत्सरोऽस्य वृषेत्याहुर्यमिमाः प्रजा अनुप्रजायन्त इति तस्मादृषभस्स्यात् ॥१॥ १-३

असुर्यं वा एतस्माद्वर्णं कृत्वा तेज इन्द्रियं वीर्यं प्रजा पशवोऽपक्रामन्ति यस्य यूपो विरोहति स ईश्वर ईजानः पापीयान् भवितोस्त्वाष्ट्रं बहुरूपमालभेत त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै तेज इन्द्रियं वीर्यं प्रजां पशून् पुनरुपावर्तयत्यार्तिं वा एते नियन्ति येषां दीक्षितानां प्रमीयते तं यदववृजेयुः क्रूरकृतामिवैषां लोकस्स्यादाहर दहेति ब्रूयुस्तं दक्षिणार्धे वेद्यां निधाय सर्पराज्ञ्या ऋग्भिस्स्तुयुरियं वै सर्पराज्ञ्यस्या एवैनमधिसमीरयन्ति तदाहुर्व्यृद्धं वा एतद्यत् स्तुतमननुशस्तमिति होता प्रथमो दीक्षितानां प्राचीनावीतं कृत्वा मार्जालीयं परीयायामीरनुब्रुवन् सर्पराज्ञ्या ऋचां कीर्तयन्नियं वै सर्पतो राज्ञस्या एवैनमधिसमीरयन्ति धुवन्त्येवैनमेतदथो न्येवास्मै ह्नुवते तम इव वा एते नियन्ति येषां दीक्षितानां प्रमीयते ॥ अग्न आयूंषि पवस इत्येतां सोमस्य प्रतिपदं कुर्वीरन् पुनत एवात्मानमायुरेवात्मन् दधतेऽथो ज्योतिष्मन्त एव यन्त्यप्रतिष्ठिता वा एते येषां दीक्षितानां प्रमीयते रथंतरसामैषां सोमस्स्यादियं वै पृथिवी रथंतरमस्यामेव प्रतितिष्ठन्ति ॥२॥ ४-५

यद्यक्रीतमपहरेयुरन्यः क्रीतव्यो यदि क्रीतं यो नेदिष्ठं स्यात् स आहृत्याभिषुत्यो राजाहाराय तु किंचिद्दीयते नास्य स परिक्रीतो भवति यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानार्जुनानि गायत्री वै सोममपाहरच्छ्येनो भूत्वा तस्य सोमरक्षिरनुविसृज्य नखमच्छिनत् ततो योंऽशुरमुच्यत स पूतीकोऽभवत्पूतीका वै नामैते यत्पूतीकानभिषुण्वन्त्यूतिमेव यज्ञाय कुर्वन्तीन्द्रो वै वृत्रमहंस्तस्य यल्लोहितमासीत् तान्यार्जुनानि लोहिततूलान्यभवन्नथ यो ग्रीवाभ्यः प्रवृढास्यो रसस्समस्रवत् तान्यार्जुनानि बभ्रुतूलान्यभवन् सोमो वा एषोऽमुर्य इव तु तस्मान्नाभिषुत्यः प्रतिधुक् च प्रातः पूतीकाश्च दधि मध्यन्दिने पूतीकाश्च शृतं चापराह्णे पूतीकाश्चेन्द्रियेण वा एष

[२] तै. ब्रा. १,४,६,५-७; १,४,७,१। का. १९,३८; ३५,१६। कप. ८,१९; २१,४०; २९,३७; ३५,४८। [अग्न आयूंषि पवस०। ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४,१५१८। तै. सं. १,३,१४,७; ४,२९,१; ५,५,१; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१]
[३] तै. ब्रा. १,४,७, ५-७।

सोमपीथेन व्यृध्यते यस्य सोममपाहरन्ति स ओषधीश्च पशूँश्च प्रविशति यदेतदुभयमभिषुण्व-
न्त्योषधिभ्यश्चैव पशुभ्यश्चाधि सोमपीथं पुनरवरुन्द्धे ॥३॥ ६

यदि सोमौ सँसुतौ स्यातां महति रात्र्याः प्रातरनुवाकमुपाकुर्यात् पूर्व एव यज्ञं पूर्वो देवताः
पूर्वश्छन्दाँसि वृङ्क्ते वृषण्वतीं प्रतिपदं कुर्यादिन्द्रो वै वृषा प्रातस्सवनादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्ते
तदाहुस्सवनमुखे सवनमुखे कर्तव्येति सवनमुखात् सवनमुखादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्ते संवेशायोपवेशाय
गायत्र्यै छन्दसेऽभिभुवे स्वाहा संवेशायोपवेशाय त्रिष्टुभे जगत्या अनुष्टुभे छन्दसेऽभिभुवे स्वाहेत्ये-
तावन्ति वै छन्दाँसि च्छन्दोभिर्देवा असुराणां छन्दाँस्यवृञ्जत च्छन्दोभिरेवैषां छन्दाँसि वृङ्क्ते ॥
सजन्यँ शस्यं विहव्यँ शस्यमगस्त्यस्य कयाशुभीयँ शस्यमेतावद्वावास्ति यावदेवास्त्यन्तरिक्षाद्दिवः
पृथिव्या अहोरात्राभ्यां तेभ्य एनान् सर्वेभ्यो निर्भजति यदि प्रातस्सवने कलशो दीर्येत वैष्णवीषु
शिपिविष्टवतीषु माध्यन्दिने पवमाने स्तुयुर्यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते विष्णुं तच्छिपिविष्टमभ्यतिरिच्यते-
ऽतिरिक्तं वा एतदतिरिक्तँ शिपिविष्टमतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति यदि मध्यन्दिन आर्भवस्य
पवमानस्य पुरस्ताद्वषट्कारनिधनँ साम कुर्युर्यदि तृतीयसवन एतदेव वषट्कारो वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा
प्रतिष्ठामेवैनं गमयन्ति ॥४॥ ७-८

आसन्दीमारुह्योद्गाता महाव्रतेनोद्गायति प्रेङ्खमारुह्य होता महदुक्थमनुशँसत्यधिष्ठानेऽधिष्ठाया-
ध्वर्यू प्रतिगृणीतः कूर्चेष्वितर आसतेऽन्तरिक्षं वा अन्नममुतो वै प्रदीयतेऽस्यां प्रजायते तदन्तरिक्षाय
जायते यदन्तरिक्ष आसीना महाव्रतेन चरन्त्यन्नाद्यस्योपाप्त्या अथो देवसाक्ष्य एवो परिपद्य याज-
यन्ति स्वर्गमु लोकमाक्रममाणा यन्त्यभिगरापगरौ भवतः प्र वा अन्यस्सत्रिणश्शँसति निन्दत्यन्यो
यः प्रशँसति यदेवैषाँ सुष्टुतँ सुशस्तं तत् स प्रशँसत्यथ यो निन्दति यदेवैषाँ दुष्टुतँ दुश्शस्तं तत् सो-
ऽपहन्ति शूद्रार्यौ चर्मन् व्यायच्छेते ॥ देवाश्च वा असुराश्चादित्ये व्यायच्छन्त तं देवा अभ्यजय-
न्नार्यं वर्णमुज्जापयत्यात्मानमेवोज्जापयत्यन्तर्वेद्यार्यस्स्याद्बहिर्वेदि शूद्रश्श्वेतं चर्म परिमण्डलं स्या-
दादित्यस्य रूपँ सर्वासु स्रक्तिषु दुन्दुभयो वदन्ति या दिक्षु वाक्तां तेनावरुन्धते भूमिदुन्दुभिर्भवति
यास्यां वाक्तां तेनावरुन्धते वीणा वदन्ति या पशुषु वाक्तां तेनावरुन्धते काण्डवीणा वदन्ति यौष-
धिषु वाक्तां तेनावरुन्धते नाडीतूणवा वदन्ति या वनस्पतिषु वाक्तां तेनावरुन्धते वाणश्शततन्तु-
र्भवति शतायुर्वै पुरुषश्शतवीर्य आयुरेव वीर्यमवरुन्द्धे ॥ ब्रह्मचारी च पुँश्चली चर्तीयेते सर्वा हि भूते
वाचो वदन्ति मिथुनं चरन्ति संवत्सरं वा एते प्रजायमानास्सत्त्रमासते तेषाँ संवत्सरेणैव प्रजनन-
मन्तर्धीयते यन्मिथुनं चरन्ति संवत्सरस्यैव प्रजननस्योपाप्त्यै कुम्भिनीरुपाचरन्ति समृद्ध्या इदंमधुरं
गायन्तीस्संनद्धकवचाः परियन्ति महाव्रतमेव महयन्त्यथो सेन्द्रताया एव ब्रह्मणो वा अन्या

[४] तै. सं. ७,५,५ । पञ्चविंश ब्रा. ९,४ ।　[५] तै. सं. ७,५,८-१० । तै. ब्रा. १,२,६,६—७ ।

त्विषिः क्षत्रस्यान्या यद्दीक्षितोऽधिकृष्णाजिनस्सा ब्रह्मणस्त्विषिर्यत् संनद्धकवचोऽधिज्यधनुस्सा
क्षत्रस्य त्विषिस्तदुभयं भवत्युभयोस्त्विष्योरवरुद्ध्यै ॥५॥ ९-११

प्रजापतिर्वा आत्मनोऽधि द्वादशाहं निरमिमीत संवत्सरः प्रजापतिस्स चतुर्णां मासां तिस्रस्तिस्रो
रात्रीरादत्त सा दीक्षाभवत् स उत्तरेषां चतुर्णां तिस्रस्तिस्रो रात्रीरादत्त ता उपसदोऽभवन् स उत्तरेषां
चतुर्णां तिस्रस्तिस्रो रात्रीरादत्त सा सुत्याभवत् तस्मादाहुर्यावान् संवत्सरस्तावान् द्वादशाह इति
सर्वस्माद्ध्येष संवत्सरादधि निर्मितस्स प्रथमं चाहरसृजतेहीडं च सामेमं लोकमग्निं ज्योतिर्द्वितीयं
चाहरसृजतोर्ध्वेडं च सामान्तरिक्षं लोकं वायुं ज्योतिस्तृतीयं चाहरसृजतेडाभिरैडं च सामामुं लोकँ
सूर्यं ज्योतिश्चतुर्थं चाहरसृजत परिस्तुब्धेडं च साम यस्मिंश्च लोके तेजो ज्योतिः पञ्चमं चाहरसृज-
ताध्यर्धेडं च साम यस्मिंल्लोके सत्यं ज्योतिष्षष्ठं चाहरसृजत होइडं च साम यस्मिंल्लोके ब्रह्म
ज्योतिस्सप्तमं चाहरसृजत पुनर्नितुन्नां चेडां यस्मिंश्च लोके तपो ज्योतिरष्टमं चाहरसृजत विष्वगेडं
च साम यस्मिंश्च लोक ऋतं ज्योतिर्नवमं चाहरसृजत होइडं च साम यस्मिंश्च लोके ब्रह्म ज्योति-
र्दशमं चाहरसृजत द्वीडं च साम यस्मिंल्लोकेऽमृतं ज्योतिः प्राण एव प्रायणीयोऽपान उदयनीय-
स्तस्माद्यावदेव प्रायणीये क्रियते तावदुदयनीये क्रियते यावान् हि प्राणस्तावानपान एतां-
ल्लोकानेतानि सामान्येतानि ज्योतींष्येतानि तेजाँस्यवरुन्द्धे य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते ॥६॥
१२

प्रजापतिरकामयत प्रजास्सृजेयेति स एतमात्मन् द्वादशाहमपश्यत् तमात्मनो निरमिमीत तेन
प्रजा असृजत तं गायत्री छन्दोऽन्वसृज्यत साकामयताहमिमँ सर्वतः परिभवेयमिति तं तेजसा
मुखतः पर्यभवदोजसा मध्यतश्छन्दसोपरिष्टात् सर्वतो वै सा तं व्यत्यशयत् सर्वतो भ्रातृव्यं व्यति-
शये य एवं वेद द्वे रूपे संवत्सरस्य मासा अन्यदृतवोऽन्यद्यत् षडृतवस्तेनाप्तो यद् द्वादश मासा-
स्तेनाप्त उभाभ्यामेव रूपाभ्याँ संवत्सरमाप्नोति ब्रह्म वै गायत्री क्षत्रं द्वादशाहोऽन्वेनं क्षत्रं बुध्यते प्र
पुरोधामाप्नोति य एवं वेद ॥ यज्ञं वा अन्यानि च्छन्दाँस्यभ्यसृज्यन्त स्वाराज्यमेव बृहत्यभ्यसृज्यत
तस्माद्बृहत्या न वषट्कुर्वन्ति यद्वषट्कुर्युः पशूनग्नौ प्रदध्युर्वचसाप्त्वा पशूनवरुन्धते वाचि वा एते
चत्वारः पशवो गौरश्वोऽजाविस्तस्माद्वाचा हूताः पशव उदायन्ति वाचा सिद्धा आवर्तन्ते बृहतीं
वा एत आप्नुवन्ति य एता रात्रीरासते षट्त्रिंशदेता रात्रयष्षट्त्रिंशदक्षरा बृहती बृहती स्वर्गं लोकं
प्रवेद स्वर्गं लोकमाप्नुवन्ति य एता रात्रीरासते देवलोकान् वा एत आप्नुवन्ति य एता रात्रीरासते
षट्त्रिंशदेता रात्रयष्षट्त्रिंशद्देवलोका अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या वषट्कारश्च प्रजापति-
श्च त्रय इमे लोकास्तान् सर्वान् देवलोकानाप्नुवन्ति य एता रात्रीरासत उभये वै देवाश्च मनुष्या-

श्चाष्यावृत्ता आसँस्ते देवा एतं द्वादशाहमुपायँस्ते दीक्षयैवात्मानमपुनतोपसद्भिर्यज्ञँ समभरन्त हित्वा
शरीरँ सुत्यया स्वर्गं लोकमायन् य एवं विद्वान् द्वादशाहमुपैति दीक्षयैवात्मानं पुनीत उपसद्भिर्यज्ञँ
संभरते हित्वा शरीरँ सुत्यया स्वर्गं लोकमेति प्रजापतिर्वा एतँ स्वर्गकाम आहरत् स न प्राभवदेका-
दशाहो वा एष स एतमतिरात्रमुपरिष्टादुभयतः पर्यहरत् समानो वा एष उभयतः परिह्रियते
स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥७॥ १३-१४

प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति स द्वादशाहेनायजत तेन प्राजायत प्रैव जायते य एवं वेदापो
वै यज्ञिया मेध्या असृज्यन्त तदेका अपि नासृज्यन्तासृग्वाव तन्नासृज्यत तदस्नोऽसृक्त्वं तस्मा-
द्यदेवासृक् छिद्यतेऽथ यज्ञियो मेध्यो भवति पुरुषसंमितो वा एष यस्सत्रियं प्रतिगृह्णाति पुरुषं वै
सोऽत्ति यं खलु वै पुरुषमत्ति न तस्यास्मिंल्लोके नामुष्मिन्नपिभवति प्राणो वै पूर्वोऽतिरात्रोऽपान
उत्तर इयं वै पूर्वोऽतिरात्रोऽसा उत्तरोऽग्निर्वै पूर्वोऽग्निष्टोमस्सूर्य उत्तरोऽन्तरौ वा एता अनयोस्तस्मा-
दन्तरौ प्रयुज्येते तदाहुर्यदग्निष्टोमप्रायणो यज्ञः कस्मादतिरात्रौ पूर्वौ प्रयुज्येते इत्यथाहुश्चक्षुषी वा
एते यज्ञस्य यदतिरात्रौ कनीनिके अग्निष्टोमा इति यदग्निष्टोमौ पूर्वौ प्रयुञ्जीरन् बहिष्कनीनिके
निरादध्युरन्धाः प्रजायेरन् यदतिरात्रौ पूर्वौ प्रयुज्येते चक्षुषी एव यज्ञस्य प्रतिधाय मध्यतः
कनीनिके प्रतिदधाति भूतं वै पूर्वोऽतिरात्रो भव्यमुत्तरस्सदिमानि दशाहानि मध्ये सद्भवति य एवं
वेद यो ह वै गायत्रीं ज्योतिष्पक्षां वेद ज्योतिष्मता भासा स्वर्गं लोकमेति या अतिरात्रौ तौ पक्षौ
या अग्निष्टोमौ ते ज्योतिषी येऽष्टा अन्तर उक्थ्यास्स आत्मैषा वै गायत्री ज्योतिष्पक्षा य एवं
गायत्रीं ज्योतिष्पक्षां वेद ज्योतिष्मता भासा स्वर्गं लोकमेति ॥ पक्षिणो वा एते भवन्ति पक्षिणा
भूत्वा यत्र कामयन्ति तत् परापातमासत एष वै प्रजापतिर्द्वादशधा विनिहितो यद् द्वादशाहो या
अतिरात्रौ तौ पक्षौ या अग्निष्टोमौ ते चक्षुषी येऽष्टा अन्तर उक्थ्यास्स आत्मा स एष प्रजापतिरेव
यद्वै सत्त्रिणस्स्तृण्वन्ति तत् सत्त्रस्य सत्त्रत्वं प्राणा वै सत् प्राणानेव तत् स्तृण्वन्ति सर्वांशं वा
एते प्रजानां प्राणैरासते ये सत्त्रमासते तस्मात् पृच्छन्ति किमेते सत्त्रिण इति प्रियः प्रजानामुत्थितो
भवति य एवं वेद ॥८॥ १५-१६

प्रजापतिरकामयत स्यामिति स द्वादशाहेनायजत तेनाभवत् तस्मादाहुर्बुभूषतो यज्ञ इति तं मासा
दीक्षितमदीक्षिता अयाजयँस्तस्माद्दीक्षितमदीक्षिता याजयन्ति तेभ्य इषमूर्जमददात् सेयं मासेष्वाभोत्
प्रजापतिदत्ताध्नुवन्मासाः प्रतिगृह्णभ्रोति य एवं विद्वान् ददात्यृभ्नोति यः प्रतिगृह्णाति पीवा दीक्षेत
यदस्याङ्गानामीयते जुहोत्येव तत् स यथा वसन्तो नवदाव्यश्शोभमान उत्तिष्ठत्येवमेव नवदाव्य-

[८] तै. सं. ७,२,९ ।

श्शोभमान उत्तिष्ठति तपो वै यज्ञस्य श्लेष्म यथा वै रथस्य श्लेष्मैवं यज्ञस्य तपो योऽतपस्वी
भवत्यसँश्लिष्टोऽस्य यज्ञस्तपस्वी स्याद्यज्ञमेव सँश्लेषयतेऽर्धमसा वावासँस्तेऽकामयन्त मासास्स्यामेति
ते द्वादशाहमुपायँस्त्रयोदशं ब्रह्माणं कृत्वा तस्मिन् द्दष्टोदतिष्ठँस्तस्मात् सोऽनायतन इतरानुपजीवति
तस्माद् द्वादशाहस्य त्रयोदशेन न ब्रह्मणा भवितव्यं द्वादश दीक्षेरन् संवत्सरायतना द्वादश
मासास्संवत्सरस्संवत्सरायतना एवर्ध्नुवन्ति त्रयोदश दीक्षेरन् संवत्सरायतनास्त्रयोदश मासास्सं-
वत्सरस्संवत्सरायतना एवर्ध्नुवन्ति पञ्चदश दीक्षेरन्नर्धमासायतनाः पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयो-
ऽर्धमासायतना एवर्ध्नुवन्ति सप्तदश दीक्षेरन् प्राजापत्यायतनाः प्रजापतिस्सप्तदशः प्राजापत्या-
यतना एवर्ध्नुवन्त्येकविंशतिर्दीक्षेरन् रुक्कामा असा आदित्य एकविंश एष रुचः प्रदाता
स एभ्यो रुचं प्रयच्छति चतुर्विंशतिर्दीक्षेरन् ब्रह्मवर्चसकामाश्चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री तेजो
गायत्री ब्रह्मवर्चसं तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्धते सप्तविंशतिर्दीक्षेरँस्त्रिणवायतनास्त्रिणवा इमे
लोकास्त्रिणवायतना एवर्ध्नुवन्ति त्रिंशद्दीक्षेरन् मासायतनास्त्रिंशन्मासो रात्रयो मासायतना
एवर्ध्नुवन्ति त्रयस्त्रिंशद्दीक्षेरन् देवतायतनास्त्रयस्त्रिंशद्देवता देवतायतना एवर्ध्नुवन्ति चतुश्चत्वारिंश-
द्दीक्षेरन्नोजस्कामा वीर्यकामाश्चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुबोजो वीर्यं त्रिष्टुबोज एव वीर्यमवरुन्धते-
ऽष्टाचत्वारिंशद्दीक्षेरन् पशुकामा अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती जागताः पशवः पशूनेवावरुन्धते-
ऽपरिमिता दीक्षेरन्नपरिमितस्यावरुद्ध्या अपरिमितः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाध्नुवन्त्यृतवो वावा-
सन्ननुयावरा मासास्ते मासा अकामयन्तर्तूनाप्नुयामेति ते द्वादशाहमुपायँस्त्रयोदशं ब्रह्माणं
कृत्वा त ऋतूञ्छिशिरेण निभाग्य वसन्तमूर्जमेषामभ्युदतिष्ठन् य एवं विद्वाञ्छिशिरे दीक्षते तपसैव
भ्रातृव्यं निभाग्येषमूर्जमस्याभ्युत्तिष्ठति शिशिरं वा एतस्य प्रयाणं वसन्तोऽवसानमृध्नोति य एवं
विद्वाञ्छिशिरे दीक्षते ॥९॥ १७

ब्रह्मवादिनो वदन्ति किं प्रथमेनाह्ना द्वादशाहस्यावरुन्द्ध इति तेजो ब्रह्मवर्चसं किं द्वितीयेनेति
वाचमन्नाद्यं किं तृतीयेनेति त्रीनिमांल्लोकान् किं चतुर्थेनेति चतुष्पदः पशून् किं पञ्चमेनेति चतस्रो
दिश ऊर्ध्वां पञ्चमीं किं षष्ठेनेति षडृतून् किं सप्तमेनेति सप्तपदाँ शक्वरीं किमष्टमेनेत्यष्टाक्षरां गायत्रीं
किं नवमेनेति नव प्राणान् किं दशमेनेति दशाक्षरां विराजं किमेकादशेनेत्येकादशाक्षरां त्रिष्टुभं
किं द्वादशेनेति द्वादशाक्षरां जगतीमेतावद्वावास्ति यावदेवास्ति तत् सर्वमाप्त्वावरुन्द्ध ऋध्नोति
वसीयान् भवति य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते ॥१०॥ १८

चतुर्वै तास्तिस्रस्तिस्रस्तासां याः प्रथमा आत्मानं ताभिः पुनीते या द्वितीया मेध्यस्ताभि-

[१०] तै. सं. ७,३,२ ।　[११] तै. सं. ७,२,१०,३—४ ।

यैक्षियो भवति यास्तृतीया गात्राणि तामिर्निर्णेनिक्तेऽथ याश्चतुर्थीर्यदेवास्यान्तरतो यद्बहिष्टाच्छमलं तत् तामिर्धूनुते पुरुषं खलु वा एतेऽदन्ति यद् द्वादशाहेन याजयन्ति यः पाशवमत्ति माँसँ सोऽत्ति यो वाजिनं लोहितँ स यो धाना अस्थि स य आज्यं मज्जानँ स यः परिवापं केशान् स यः पुरोडाशं मस्तिष्कँ स यो राद्धानं भक्षयति स्वेदँ स यः करम्भं निष्पदँ स एष ह खलु वै सत्रियमत्ति योऽनृतं वदति स्वदितमस्य सत्रियं भवति नास्य सत्रियं जग्धं भवति य एवं वेद ॥११॥ १९

द्वादश दीक्षितो भवति जायत एव तत् तद्धि जातं यत् तपसोऽधि जायते न यत् स्त्रिया द्वादश दीक्षितो भवति द्वादश वै पुरुषेऽमेध्यानि लोम च तनूश्चासृक् च मांसं चास्थि च मज्जा च स्नेहश्च प्लीहा चाश्रु च दूषीका च स्वेदश्च यच्च प्रस्रावयत एतानि वै पुरुषे द्वादशामेध्यानि यद् द्वादश दीक्षितो भवति तान्येवापहते द्वादश दीक्षितो भवति द्वादशोपसदो द्वादश प्रसुतस्ताष्षट्त्रिँशत् संपद्यन्ते षट्त्रिँशदक्षरा बृहती बार्हताः पशवो बृहत्यामेवैतत् पशूनाप्नोति बृहत्यामेवैतत् पशूनाप्त्वावरुन्द्धे ततो यानि चत्वार्यक्षराण्युत्क्रामन्ति सा चतुष्पदानुष्टुब् वागनुष्टुब् वाच्येवैतत् पशूनाप्नोति वाच्येवैतत् पशूनाप्त्वावरुन्द्धे तस्माद्वाचा पशवो नाम जानते वाचा सिद्धानि वर्तन्ते ॥१२॥
२०

प्रजापतिरकामयत भूयान् स्याँ श्रेयान् स्यामृध्नुयामिति स द्वादशाहेनादीक्षत तेनायजत स आर्ध्नोत् तस्मादेको द्वादशाहेन यजतैको हि स आर्ध्नोत् प्रजापतिरेव प्रजापतेरेवर्द्धमन्वृध्नोति य एवं विद्वानेको द्वादशाहेन यजते तेन तिस्रो देवता रोचना अदीक्षन्त तेनायजन्त ता आर्ध्नुवँस्तस्मात् त्रयो द्वादशाहेन यजेरँस्त्रयो हि त आर्ध्नुवन्निम एव लोका एषामेव लोकानामृद्धमन्वृध्नुवन्ति य एवं विद्वाँसस्त्रयो द्वादशाहेन यजन्ते तेन षड् देवता अदीक्षन्त तेनायजन्त ता आर्ध्नुवँस्तस्मात् षड् द्वादशाहेन यजेरन् षड्ढि त आर्ध्नुवन्नृतव एवर्तूनामेवर्द्धमन्वृध्नुवन्ति य एवं विद्वाँसष्षड् द्वादशाहेन यजन्ते तेन द्वादश देवता अदीक्षन्त तेनायजन्त ता आर्ध्नुवँस्ते पूर्वपक्षेष्वार्ध्नुवन्नपरपक्षाननूद्यायन्त तस्माद् द्वादश द्वादशाहेन यजेरन् द्वादश हि त आर्ध्नुवन् मासा एव मासानामेवर्द्धमन्वृध्नुवन्ति य एवं विद्वाँसो द्वादश द्वादशाहेन यजन्त उपसत्सु त्रयोदशो दीक्षेतोत हि तं विदुरुत न विदुरुत वै त्रयोदशं मासं विदुरुत न विदुः ॥१३॥ २१

प्रजापतिर्मनसि सारस्वतो वाचि विसृष्टायां धाता दीक्षायां ब्रह्म व्रते सविता भृत्यामन्धोऽच्छेतो दिष्यस्सुपर्णः प्रतिख्यातोऽदितिः प्रायणीये पञ्चषा न्युप्तो रुद्रो विचीयमानश्छन्दाँसि मीयमानो वरुण उपनद्धः पूषा सोमक्रयण्यां भगः पण्यमानोऽसुरः क्रीतश्शिपिविष्ट ऊरा आसाद्यमानो बृहस्पति-

[११] तै. सं. ७,२,१०,३ । [१४] अथ० प्राय० सूत्र ३,१ । तै. सं. ४,४,९ ।

रुत्थितो वायुरधिह्रियमाणोऽधिपतिः प्रोक्षमाणोऽग्नीषोमीयः पशा अतिथिर्दुरोणसदातिथ्ये वरुणस्सम्राडासन्द्यामासाद्यमान ऐन्द्राग्नो अग्नौ मथ्यमान ऐन्द्राग्नोऽग्नौ प्रह्रियमाणे साम तानूनप्त्रे तपोऽवान्तरदीक्षायां पृथिव्युपसद्यन्तरिक्षमुपसादि द्यौरुपसादि यज्ञस्य प्रमाभिमोन्मा प्रतिमा वेद्यां क्रियमाणायां पशव उत्तरवेद्यां द्यौर्हविर्धानेऽन्तरिक्षमाग्नीध्रे पृथिवी सदसि ॥१४॥ २२

प्राण उपरवेषु भ्रातृव्या धिष्ण्येषु पशवा बर्हिषि वेद्याँ स्तीर्यमाणायामप्सु वैसर्जने प्रजापतिः प्रणीयमानोऽग्निराग्नीध्रे वैष्णव आसन्नकर्मणि हस्तो विसृष्टो वैष्णवो यूप ओषधयो रशनायां मेघ आप्रीषु हविः पर्यग्निकृतः पितृदेवत्यस्संज्ञप्यमाने यज्ञस्य मिथुनं पत्नेजनीषु रक्षसां भागधेयं वपायामुद्धृष्यमानायां यज्ञस्य संततिर्वसतीवरीषु परिह्रियमाणास्विन्द्राग्न्योर्धेनुर्दक्षिणायामुत्तरवेद्याश्श्रोण्यामासन्ना मित्रावरुणयोर्धेनुरुत्तरस्यामुत्तरवेद्याश्श्रोण्यामासन्ना विश्वेषां देवानामाग्नीध्रे छन्दाँस्युपवसथे हविरुपावहृतस्सारस्वतः प्रातरनुवाकेऽथ वा न्युप्तः प्रजापतिर्विभज्यमाना देवता विभक्त इन्द्रो वृत्रहेन्द्रोऽभिमातिहेन्द्रो वृत्रतूरुन्नीयमान आयुरुपाँश्वन्तर्यामयोर्यमोऽभिषुतः ॥१५॥ २३

निभूयपूराधवनीये सुपूतपूः पूतभृति शुक्रश्रीः क्षीरश्रीः ककुहस्सक्तुश्रीः पात्रेषु वायुर्बहिष्पवमाने होत्राः प्रवरे वसवः प्रयाजेषु यद्देवत्यस्सोमस्तद्देवतयः पशुर्वैश्वदेव उन्नीयमान ऐन्द्राग्न उन्नीतो रुद्रो हूयमानो वाग्घुतो मारुतो गणोऽभ्यावृत्तो मित्रः प्रतिख्यात इन्द्र आसन्नो भक्षो भक्ष्यमाणस्सखा भक्षितः पितरो नाराशँस आग्नेयं प्रातस्सवनमैन्द्रं माध्यन्दिनँ सवनं यज्ञो दक्षिणायामैन्द्राणि पृष्ठानि वैश्वदेवं तृतीयसवनं वैश्वानरोऽग्निष्टोम ऐन्द्रावारुणं मैत्रावरुणस्य स्तोत्रमैन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छँसिन ऐन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्यैन्द्रष्षोडशी रात्री पत्न्याग्नेयो रथंतरस्संधिस्सौर्यमाश्विनमहर्यज्ञ आदित्या अनुयाजेषु यदन्तरा क्रियते समुद्रो वरुणोऽवभृथे समुद्र ऋजीषे यदवारे तीर्थं तत् प्रायणीयं यत्पारे तीर्थं तदुदयनीयं वैष्णवो वशायां ब्रह्मा समिष्टयाम् ॥१६॥ २४

यथा वै रथ एकैकमरमभिप्रतितिष्ठन् वर्तत एवं यज्ञ एकैकां तन्वमभिप्रतितिष्ठन्नेति पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्या एतद्ध वा उवाच वासिष्ठस्सात्यहव्याऽस्कान् सोम इत्युक्ते मा स्वक्षेत प्रचरत प्रातर्वावाद्याहँ सोमँ समस्थापयमिति नास्य सोमस्स्कन्दति य एवं वेद स ह स्म वै स आसन्द्यामासीनस्सक्तुभिरुपमथ्य सोमं पिबत्यहं वाव सर्वतो यज्ञं वेद य एता वेद न मामेष हिंसिष्यतीति नैनँ सोमः पीतो न पेयो हिनस्ति य एवं विद्वान् सोमं पिबति तँ ह स्म यदाहुः कस्मात् त्वमिदमासीनस्सक्तुभिरुपमथ्य सोमं पिबसीति देवतास्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयामीत्यब्रवीद्यस्यैवं विदुषो यस्यैवं विद्वान् यज्ञार्त्यां यज्ञप्रायश्चित्तिं जुहोति देवतास्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयति ॥ यज्ञार्तिं प्रतिजुहुयात्

[१५] अथ० प्राय० सूत्र ३,२ । तै. सं. ४,४,९ । [१६] अथ० प्राय० सूत्र ३,३ । तै. सं. ४,४,९ ।
[१७] गोप० ब्रा० २,२,१० ।

यद्योनिस्त्वाय त्रयस्त्रिंशद्वै यज्ञस्य तन्व एकान्नत्रिँशत् स्तोमभागास्त्रीणि सवनानि यज्ञश्चतुर्थस्स्तोमभागैरेवैतत् स्तोमभागान् प्रतियुङ्क्ते सवनैस्सवनानि यज्ञेन यज्ञँ सर्वा ह वा अस्य यज्ञस्य तन्वः प्रयुक्ता भवन्ति सर्वा आशास्सर्वा अवरुद्धा देवस्य सवितुः प्रसवे बृहस्पतये स्तुतेति यद्वै सविता देवेभ्यः प्रासुवत् तेनार्ध्नुवन् सवितृप्रसूता एव स्तुवन्त्यृध्नुवन्त्यृध्यन्ते ह वा अस्य स्तोमा ऋध्यते यज्ञ ऋध्यते यजमानायर्ध्यते प्रजाया ऋध्यते पशुभ्य ऋध्यते ब्रह्मणे यस्यैवं विदुषो यस्यैवं विद्वान् ब्रह्मा भवति ॥१७॥
२५-२६

यो वै स्तोमभागानामायतनाश्च प्रतिष्ठिताश्च विद्यात् स समृतसोमस्य ब्रह्मा स्याद्बहिष्पवमाने प्रस्तुते ब्रूयात् स्तुतेषे स्तुतोर्जे स्तुत देवस्य सवितुः प्रसवे बृहस्पतिप्रसूता इत्येता वै स्तोमभागानामायतनप्रतिष्ठिता य एवं विद्यात् स समृतसोमस्य ब्रह्मा स्वायां दिशँ सोमौ सँस्तुतौ स्यातां तां दिशं परीक्षेतेदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रं शुचा विध्यामीत्यृत्विजामेकं ब्रूयाच्छुचैवैनान् विध्यति यो वै स्तोमभागानामायतनाश्च प्रतिष्ठिताश्चाविद्वान् ब्रह्मा भवति स विष्वग्वीर्येण व्यृध्यते बहिष्पवमाने प्रस्तुते स्तुतेषे स्तुतोर्जे स्तुत देवस्य सवितुः प्रसवे बृहस्पतिप्रसूता इत्युपर्युपरि ब्रह्माणमतीक्षेतावरमेव द्विषन्तं कुरुते ब्रह्मन् सोमोऽस्कानिति यज्ञोऽस्कानित्येवैतदाह यत्र स्कन्देत् तदपो निनीय ॥
२७

अभूद्देवस्सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यश्श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥ २८

इत्यभिमन्त्रयेतापो वै सर्वा देवता देवतास्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयति यत्र वै ब्रह्मान्यस्मै भूयो दीयमानं पश्यति सोऽर्वाचीनप्रवणस्सोमो भवति यदि ब्रह्मान्यस्मै भूयो दीयमानं पश्येदिदमहममुष्यामुष्यायणस्येन्द्रियं वीर्यं वृञ्ज इति यजमानं ब्रूयादिन्द्रियमेवास्य वीर्यं वृङ्क्ते ॥१८॥ २९

अग्नि नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ ३०
अग्निनाग्निस्समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ३१
सप्त ते अग्ने समिधस्सप्त जिह्वास्सप्तर्षयस्सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्रा अनु विद्वान् सप्त योनीँरापृणस्वा घृतेन ॥ ३२

[१८] [अभूद्देवस्सविता वन्द्यो० । ऋ. ४,५४,१; तै. ब्रा. ३,७,१३,४]
[१९] मै. १,६,१०; ७,५-६; ८,५६; ४,१०,३६,१०८—१०९; १३,५४६—५५७ । कपि. ४८,१ । वा. २,१३; ८,६१; १७,७९; २१,३—४ । काण्व. २,४२; १८,७९; २३,१—४ । [अग्नि नरो दीधितिभि० । ऋ. ७,१,१; सा. ७२; १३७३, वि. ५,१० । अग्निनाग्निस्समिध्यते० । ऋ. १,१२,६; सा. ८४४; तै. सं. १,४,४६,३; ३,५,११,५; तै. ब्रा. २,७,१२,३]

मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्यारिष्टं यज्ञँ समिमं तनोतु ।
इमं यज्ञँ सप्ततन्तुं ततं न आ देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ३३
त्रयस्त्रिंशत् तन्तवो यान्वितन्वत इमं यज्ञँ स्वधया ये ददन्ते ।
तेषां छिद्रं प्रतिदध्मो यदत्र स्वाहायं यज्ञो अप्येतु देवान् ॥ ३४
यन्मे मनसश्छिद्रं यद्वाचो यच्च मे हृदः ।
अयं देवो बृहस्पतिस्सं तत् सिञ्चतु राधसा ॥ ३५
विश्वकर्मा हविरिदं जुषाणस्संतानैर्यज्ञँ समिमं तनोतु ।
या व्युष्टा उषसो याश्च निम्रुचस्तास्संदधातु हविषा घृतेन ॥ ३६
अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि ।
अयास्सन् मनसा कृतोऽयास्सन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजम् ॥ ३७
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमश्शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ३८
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकँ सुहवो न एधि ॥१९॥ ३९
[११७८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायामेकादशिनी नाम चतुस्त्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशं स्थानकम् ।

प्रायश्चित्तिः ।

भद्रं कर्णेभिश्शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ १
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवास्स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिस्स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २

[त्वं नो अग्ने वरुणस्य० । ऋ. ४,१,४; तै. सं. २,५,१२,३ । स त्वं नो अग्नेऽवमो० । ऋ. ४,१,५; तै. सं. २,५,१२,३]

[१] कपि. ४८,१ । मै. १,१०,६६; ४,९,२५४; १०,२३; १४,२८ । वा. २५,१९—२१; १७,७९ । काण्व. २७, २३—२६, १८,७६ । [भद्रं कर्णेभिश्शृणुयाम० । ऋ. १,८९,८; सा. १८७४; तै. आ. १,१,१ । स्वस्ति न इन्द्रो० । ऋ. १,८९,६; सा. १८७५; तै. आ. १,१,१; ११,३; १०,१,१]

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरश्शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवस्सूरचक्षसो विश्वे मा देवा अवसागमन्निह ॥ ३
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ४
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वाँ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ५
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्नाकमुपयामि शँसन् ।
यतो भयमभयत्वं नो अस्त्वग्ने देवानामव हेड इक्ष्व ॥ ६
अग्निं वो देवमग्निभिस्सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ ७
घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्निर्घृताहवनो घृतमस्य धाम ।
घृतप्रुषो हरितस्त्वावहन्तु घृतं पिबन् यजताद्देव देवान् ॥१॥ ८

इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रा वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईँ सुरभीणि व्यन्तु ॥ ९
सप्त ते अग्ने त्रयस्त्रिँशद्यन्मे मनसो विश्वकर्माग्निं युनज्मीन्धानास्त्वाग्निर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैः
पार्थिवैः पातु वायुर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैरन्तरिक्ष्यैः पातु सूर्यो न ईडित ईडितव्यैर्देवैर्दिव्यैः पातु
विष्णुर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैर्दिश्यैः पात्वग्निर्यजुर्भिः पूषा स्वगाकारैस्त इमं यज्ञमवन्तु ते मामव-
न्त्वनु व आरभेऽनु मारभध्वम् ॥२॥ १०

पृथिवि विभूवरि सिनीवाल्युरंध आचित्ते मनस्ते भुवो विवस्ते य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावांस्तं
व ऋध्यासँ सोमस्याज्यमसि हविषो हविर्ज्योतिषो ज्योतिर्विश्वेषां देवानां भागधेयीस्स्थ देववीतये
वो गृह्णामि ॥ ११
सं वस्सिञ्चन्तु मरुतस्सं पूषा सं धाता समिन्द्रस्सं बृहस्पतिः ।
सं वोऽयमग्निस्सिञ्चतु प्रजया च धनेन च । आयुष्मन्तं कृणोत मा ॥ १२

[पृषदश्वा मरुतः० । ऋ. १,८९,७ । शतमिन्नु शरदो० । ऋ. १,८९,९ । प्रेद्धो अग्ने दीदिहि० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५, तै. सं. ४,६,५,४ । श्रुत्कर्णाय कवये० । अथर्व. १९,३,४ । अग्निं वो देवमग्निभिः०। ऋ. ७,३,१; सा. १९१९]
[२] कपि. ४८,३ । मै. १,५,२०, ६,३०; ७,५, ८,५९, २,१०,२४,२९, १२,९; ४,७,५ । वा. १७,७९; ८,६१, १८,५१; ३,१८ । काण्व. १८,७९, २०,२१; ३,२४ । [विश्वकर्मा० । ऋ. १०,८२,२, तै. सं ४,६,२,१, नि. १०,२६]
[३] कपि. ४८,४ । मै. २,४,२४; ७,५९—६१; १३,१,११—१२, १३,१३; ४,९,२४६—२४८, ४,१२,९३ । वा. ६,२७, ११,५०—५२; ३६,१४—१६ । काण्व. ६,३९—४०; १२,५१—५३; ३६,१४—१६ ।
काठ० ४४

मान्दा वशाः ॥ १३
आपो देवीर्घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसागन् ॥ १४
आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्म आसाम् ।
मेने भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥ १५
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्यास्समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परितस्थुरापः ॥ १६
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १७
यो वश्शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ १८
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ १९
स ईं वृषा जनयँस्तासु गर्भँ स ईँ शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुधेयाय विधते विभाति ॥ २०
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणो रायस्पोषः प्रजायताम् ॥ २१
अयं यज्ञो वर्धतां गोभिरश्वैरियं वेदिस्स्वपत्या सुवीरा ।
इदं बर्हिरति बर्हींष्यन्यैमं यज्ञं विश्वे अवन्तु देवाः ॥ २२
स आ दमे सुदुघा यस्य धेनुस्स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥३॥ २३
स्कन्ना द्यौस्स्कन्ना पृथिवी स्कन्नं विश्वमिदं हविः ।
स्कन्नादो विश्वा भूतानि प्र स्कन्नं जायतां हविः ॥ २४
इह गावोऽयं यज्ञः ॥ २५

[समन्या यन्त्युप० । ऋ. २,३५,३; सा. ६०७, तै. सं. २,५,१२,१ । आपो हि ष्ठा० । ऋ. १०,९,१, सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१, ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै.आ.४,४२,४; १०,१,११; नि. ९,२७। यो वश्शिवतमो० । ऋ. १०,९,२; सा. १८३८, अथर्व. १,५,२, तै. सं. ४,१,५,१; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११ । तस्मा अरं गमाम० । ऋ. १०,९,३; सा. १८३९; अथर्व. १,५,३; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४, ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४, १०,१,१२ । स ईं वृषा जनयँस्तासु (०यन्तासु)० । ऋ. २,३५,१३ । इह गावः प्रजा० । अथर्व. २०,१२७,१२ । स (स्व) आ दमे सुदुघा० । ऋ. २,३५,७]
[४] कपि. ४८,५ । [इह गावः० । अथर्व. २०,१२७,१२ । अयं यज्ञः० । ऋ. १,१७७,४]

पयस्वतीराप ओषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अपां पयस्वदित् पयस्तेन नस्सह वर्धताम् ॥ २६
यद्वामृक्षच्छकुनिर्मुखेन निर्ऋते तव । अग्निष्टत् सर्वँ शुन्धतु हव्यवाड् घृतसूदनः ॥ २७
यद्वामृक्षच्छ्वपान्मुखेन निर्ऋते तव । अग्निष्टत् सर्वँ शुन्धतु हव्यवाड् घृतसूदनः ॥ २८
भूतिर्दध्ना घृतेन वर्धतां यज्ञं यज्ञाय मुञ्चतु स्वाहा घृतेन वर्धतां भूतिर्मुञ्चेमं यज्ञं मुञ्चं यज्ञपति-
महसस्स्वाहा ॥ २९
यास्ते अग्ने समिधो अप्स्वन्तर्वर्मन् पृथिव्या उप सूर्ये याः ।
तास्ते गच्छन्त्वाहुतीर्घृतस्य देवान्यु यजमानाय शर्म ॥४॥ ३०

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा इन्द्राग्नी कल्पना युवम् ।
हुताहुतस्य तृम्पतमहुतस्य हुतस्य च ॥ ३१
हुतस्य चाहुतस्य चाहुतस्य हुतस्य च ।
पीतापीतस्य सोमस्यास्य हव्यस्येन्द्राग्नी वीतं पिबतमागतम् ॥ ३२
मेमं यज्ञं तमो विदन्मर्त्विजो मो इमाः प्रजाः ।
मा यस्सोमं पिबादिमं संसृष्टमुभयं कृतम् ॥ ३३
मा नो ध्वारिपुः पितरो मोत देवा मा नस्सबन्धुरुत वान्यबन्धुः ।
मा नो दुश्शँसो अघशँस ईशताहुतोऽयं यज्ञो अप्येतु देवान् ॥ ३४
सप्तर्त्विजस्सप्त सदाँस्येषां दश क्षिपो अश्विना पञ्चवाजा ।
सर्वे सप्त सदाँस्येषां दश क्षिपो अश्विना पञ्चवाजा ।
प्राणो व्यानोऽपानो मन आकूतमग्निस्स्वाहा देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥५॥ ३५
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नानि पाति काव्यः ॥ ३६
गोपा इन्दो नृपा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ३७
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य योनिरमृतं विजायते ।
समीचीनास्सुदानवः प्रीणन्ति तन्नरो हितमवमेहन्ति पेरवः ॥ ३८
ये स्थ त्रय एका-
दश ...

[पयस्वतीराप (०रोषधयः)० । ऋ. १०,१७,१४, अथर्व. ३,२४,१; १८,३,५६; तै. सं. १,५,१०,१]
[५] कपि. ४८,६ । [यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा० । ऋ. ८,३८,१; सा. १०७३; तै. ब्रा. ३,७,८,३]
[६] कपि. ४८,७ । [आत्मा यज्ञस्य रंह्या० । ऋ. ९,६,८ । गोपा इन्दो नृपा० । ऋ. ९,२,१०, सा. १०४५ । आत्मन्वन्नभो दुह्यते० । ऋ. ९,७४,४]

व आरभेऽनु मारभध्वम् ॥६॥ ३९
वसवस्त्वोदीरयन्तु रुद्रास्त्वोदीरयन्त्वादित्यास्त्वोच्छ्रयन्तु विश्वे त्वा देवा दृंहन्तु ॥ ४०
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
देवा ह धर्मणा ध्रुवा यजमानः पशुभिर्ध्रुवः ॥ ४१
दिवि दिव्यान् दृँहान्तरिक्षेऽन्तरिक्ष्यान् दृँह पृथिव्यां पार्थिवान् दृँह ॥ ४२
आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्यज्ञो अधिभ्रशत् ॥ ४३
ध्रुवं ध्रुवेण हविषा हविरेव सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत ॥ ४४
स्वाहा दिवं आप्यायस्व स्वाहान्तरिक्षादाप्यायस्व स्वाहा पृथिव्या आप्यायस्वायुर्धा असि
ध्रुवायुर्मे धेहि वयोधा असि ध्रुव वयो मे धेहि तनूपा असि ध्रुव तन्वं मे पाहि चक्षुष्पा असि ध्रुव
चक्षुर्मे पाहि वर्चोधा असि ध्रुव वर्चो मे धेहि ॥ ४५
अध्वर्योऽयं यज्ञो अस्तु देवा ओषधीभ्यः पशुभ्यो मे धनाय ।
विश्वस्मै भूताय ध्रुवो अस्तु देवास्सं पिन्वस्व घृतवद्देव यज्ञ ॥ ४६
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् । इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह यज्ञमु धारय ॥ ४७
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा हविः ।
तस्मै सोमो अधिब्रुवत् तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४८
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामसि ॥७॥ ४९
असवे स्वाहा वसवे स्वाहा वसुधेयाय स्वाहा भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये
स्वाहा भूताय स्वाहा ॥ ५०

[७] कपि. ४८,९ । मै. १,३,४८; २,७,१०१, ४,६,४० । वा. २,१६,२६; ३,१७; १४,१७; २२,१ । काण्व. २,३३, ४८; ३,२३, १५,१७, २४,१ । [ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी० । ऋ. १०,१७३,४; अथर्व. ६,८८,१, तै. ब्रा. २, ४,२,८ । आ त्वाहार्षमन्त० । ऋ. १०,१७३,१; अथर्व. ६,८७,१; तै. सं. ४,२,१,४, तै. ब्रा. २,४,२,८ । ध्रुवं ध्रुवेण हविषा० । ऋ. १०,१७३,६; अथर्व. ७,९४,१; तै. सं. ३,२,८,६ । अध्वर्योऽयं यज्ञो अस्तु०। तै. सं. ३,१,९,३ । इहैवैधि माप च्योष्ठाः० । ऋ. १०, १७३,२; अथर्व. ६,८७,२; तै. ब्रा. २,४,२,८ । इम-मिन्द्रो अदीधरद्० । ऋ. १०,१७३,३, अथर्व. ६,८७,३; तै. ब्रा. २,४,२,९]
[८] कपि. ४८,९ । मै. २,५,१५; ७,२००, ३,१२,१३ । वा. २,२, ७,२६, ९,२०; १३,५, १८,२८, २२,३० । काण्व. २,३; ७,२९; १०,२७, १४,५; १९,४०, २४,४२ ।

द्रप्संश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५१
यस्ते द्रप्सस्स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थे ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात् तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥ ५२
यो द्रप्सो अंशुः पतितः पृथिव्यां परिवापात् पुरोडाशात् करम्भात् ।
धानासोमान्मन्थिन इन्द्र शुक्रात् स्वाहाकृतमिन्द्राय तं जुहोमि ॥ ५३
यस्ते द्रप्सो मधुमाँ इन्द्रियावान् स्वाहाकृतः पुनरप्येति देवान् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात् तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥ ५४
यस्ते द्रप्सस्स्कन्दति यस्ते अंशुरवश्च यः परो दिवः ।
अयं देवो बृहस्पतिस्सं तं सिञ्चतु राधसा ॥८॥ ५५

विसृष्टधेनास्सलिला घृतश्च्युतो वसन्तो ग्रीष्मो मधुमन्ति वर्षाः ।
शरद्धेमन्त ऋतवो मयोभुव उदग्रुतो नभसी संवसन्ताम् ॥ ५६
आ नः प्रजामां देवानां त्वमग्ने व्रतपा असि ॥ ५७
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमापृणाति विद्वान् येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ५८
मधुश्च माधवश्च वासन्तिका ऋतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मा ऋतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिका ऋतू
इषश्चोर्जश्च शारदा ऋतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिका ऋतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरा ऋतू त इमं यज्ञमवन्तु
ते मागवन्त्वनु च आरभेऽनु मारभध्वम् ॥९॥ ५९

अंसवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा शूषाय स्वाहा संसर्पाय स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा गणश्रिये स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहाभिभवे स्वाहाधिपतये स्वाहा दिवापतये स्वाहेन्द्रस्य ग्रहोऽस्यगृहीतो ग्राह्यो देवानां पुरसि तां त्वा प्रविशामि तां त्वा प्रपद्ये सह गृहैस्सह प्रजया सह पशुभिस्सहर्त्विग्भिस्सह सदस्यैस्सह सोम्यैस्सह दक्षिणीयैस्सह यज्ञेन सह यज्ञपतिना ॥ इन्द्राग्नी परिधी मम धाता देव पुरां कृतां तस्येन्द्रग्रह प्रपद्ये सगुस्साश्वस्सपूरुषस्सह

[द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी (प्रथमां)० । ऋ. १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३; ४,२,८,२; ६,५, तै. आ. ६,६,१ । यस्ते द्रप्सस्स्कन्दति० । ऋ. १०,१७,१२; तै. सं. ३,१,१०,१ । यो द्रप्सो अंशुः मधुमाँ० । तै. सं. ३,१,१०,१-२ । यस्ते द्रप्सस्स्कन्दति (स्कन्नो)० । ऋ. १०,१७,१३]
[९] कपि. ४८,१० । मै. २,८,१२ । वा. १३,२५ । काण्व. १४,२६ ।
[१०] कपि. ४८,८, ४८,११ । मै. ३,१०,११(१३) । वा. २०,३० । काण्व. २४,४२ । तै. ब्रा. ३,१०,७ । [चन्द्राय स्वाहा० । अथर्व. १९,४३,४]

यन्मेऽस्ति तेन ॥ अरिष्टया अव्यथ्यै संवेशायोपवेशाय गायत्र्यै छन्दसेऽभिभुवे स्वाहारिष्टा
अव्यथ्यै संवेशायोपवेशाय त्रिष्टुभे जगत्या अनुष्टुभे छन्दसेऽभिभुवे स्वाहा ॥१०॥ ६०-६२
द्यौश्च त्वा पृथिवी च श्रीणीतामहश्च त्वा रात्री च श्रीणीतां वाक् च त्वा मनश्च श्रीणीतामापश्च त्वौषधयश्च श्रीणन्त्वृक् च त्वा साम च श्रीणीतां स्तोमश्च त्वा यजुश्च श्रीणीतां बृहच्च त्वा रथन्तरं च श्रीणीतां यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च श्रीणीतां सूर्यश्च त्वा चन्द्रमाश्च श्रीणीतां दर्शश्च त्वा पूर्णमासश्च श्रीणीतां ब्रह्म च त्वा क्षत्रं च श्रीणीतामर्कश्च त्वाश्वमेधश्च श्रीणीतां श्रीतस्त्वं श्रीतोऽहमिन्दुरिन्दुमवागँस्तस्य त इन्द इन्द्रियावत इन्द्रपीतस्य सर्वगणस्सर्वगणस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥११॥
६३
विश्वा अग्ने त्वया वयं धारा उदन्या इव । अतिगाहेमहि द्विषः ॥ ६४
या देव्यष्टकास्यपसामपस्तमा स्वपा असि ।
तस्यै त एना हविषा विधेम त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि ॥ ६५
श्रुत्कर्णाय ॥ ६६
अनुमतेऽनुमन्यस्व न इदं यद्भेषजं कृणुमहे तनूषु ।
यद्वो तोकेषु तनुषु प्रजासु यद्गोष्वोषधीष्वप्सु ॥१२॥ ६७
हिरण्यगर्भः ॥ ६८
तदित् पदं न विचिकेत विद्वान् यन्मृतः पुनरप्येति जीवान् ।
त्रिवृद्भुवनं यद्रथवृज्जीवो गर्भो न मृतस्स्वाहा ॥ ६९
आप्यायस्व सं ते पयांसि ॥ ७०
आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नस्सुश्रवस्तमस्सखा वृधे ॥१३॥ ७१
अप्स्वग्ने ॥ ७२

[११] कपि. ४८,११ । वा. ८,१२ । काण्व. ८,१३ ।
[१२] कपि. ४८,१२ । [विश्वा अग्ने (उत) त्वया० । ऋ. १,७,३ । श्रुत्कर्णाय कवये० । अथर्व. १९,३,४]
[१३] कपि. ४८,१३ । मै. २,७,१९८; १३,११०; ३,१२,१८; ४,१३,७१ । वा. १२,११२—११४; १३,४; १९,१; २५,१० । काण्व. १३,१११—११३, १४,४; २५,१; २७,१४ । [हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे० । ऋ. १०, १२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३ । तदित् पदं न विचिकेत० । तै. ब्रा. ३,७,१०,६ । आप्यायस्व समेतु ते० । ऋ. १,९१,१६; ९,३१,४; तै. सं. ३,२,५,३; ४,२, ७,४; ताण्ड्य ब्रा. १,५,८ । सं ते पयांसि० । ऋ. १,९१,१८; तै. सं. ४,२,७,४ । आप्यायस्व मदिन्तम० । ऋ. १,९१,१७; तै. सं. १,४,३२,१; तै. आ. २,१७,१]
[१४] कपि. ४८,१३ । मै. २,७,१९४ । वा. १२,३६ । काण्व १३.३७ । [अप्स्वग्ने सधिष्टव० । ऋ. ८,४३,९; तै. सं. ४,२,३,२; ११,३]

तपोऽप्स्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ ७३
यो नस्सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ७४
स स्मा कृणोतु केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ७५
नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्तः । कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥ ७६
मेष इव यदुप च वि च चर्वति यदप्सरद्रुपरस्य खादति ।
शीर्ष्णा शिरो वक्षसा वक्ष एजयन्नंशु वमस्ति हरितेभिरासभिः ॥ ७७
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ् नियन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥१४॥ ७८
अग्निना तपोऽन्वाभवत् सूर्येण तेजो वायुना प्राणा इन्द्रेण देवा यमेन पितरस्सरस्वत्या मनुष्यास्समुद्रेण स्तोमा वामदेव्येन सामानि गायत्र्या छन्दांसि मण्या रूपाणि हिरण्येन वर्चांसि तिरश्चिराजिना सर्पा अजगरेणाप्स्वप्सव्याश्श्येनेन पतत्रिणो व्याघ्रेणारण्याः पशवस्सुपर्णेन वयांस्यश्वत्थेन वनस्पतय ओदनेनान्नानि यवेनौषधयोऽश्ववृषभेनाश्वाः (?) पशवो वृषभेण गावो वृष्णिनावयो बस्तेनाजाश्चन्द्रमसा नक्षत्राणि ब्राह्मणेन वाचो वाचा देवतास्स्त्रियो विराड् ग्राव्णा पर्वतास्समुद्रेणापोऽग्निस्सत्यं सत्येनर्तमृतेन तपस्तपसा परमेष्ठी परमेष्ठिना मृत्युर्मृत्युना प्रजाः प्रजाभिस्संगरस्तन्नभि प्रजापतिस्तेदेवैरन्वाभूविरनु च भूयासमिति च भूयासं ब्राह्मणानां श्रेष्ठश्च भूयासम् ॥१५॥ ७९
यस्य द्रोणकलश उपदस्यति कलशमेव तस्योपवायन्तं प्राणोऽनूपदस्यति प्राणो हि सोमस्तदाहुः यो वा अनपेर्दित्यो वा एतत् पयो हिरण्यमेवापोऽभ्यवनयेद्धिरण्यमभ्युक्षयेदमृतं वा आप आयुर्हिरण्यममृतादेवाप्यायुरारम्भेन् घ्नते चत्वारो वरा देया ब्रह्मण उद्गात्रे होत्रेऽध्वर्यव एते वै यज्ञस्येन्द्रास्तानेव प्रीणाति सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यस्य चमस उपदस्यति चमसमेव तस्योपवायन्तं प्राणोऽनूपदस्यति प्राणो हि सोमो यमध्वर्युरन्तमं ग्रहं गृह्णीयात् तस्य संपातमवनयेत् प्रायश्चित्त्यै वै सोमो गृह्यते प्रायश्चित्त्यैवास्मै प्रायश्चित्तिं करोति सर्वमायुरेति सैव तत्र

[तपोऽप्स्वग्ने अन्तराँ० । ऋ. ३,१८,२; तै. आ. ४,५,२ । यो नस्सनुत्यो अभिदासत्० । ऋ. ६,५,४ । स स्मा कृणोतु (०ति) केतुमा० । ऋ. ५,७,४ । नहि ते अग्ने तन्वः० । अथर्व. ६,४९,१; तै. आ. ६,१०,१ । मेष इव यदुप० । अथर्व. ६,४९,२ । सुपर्णा वाचमक्रतोप० । ऋ. १०,९४,५; अथर्व. ६,४९,३]
[१५] तै. सं. ७,३,१४ । [१६] कपि. ४८,१ ।

प्रायश्चित्तिर्यस्य ग्रावापिशीर्यते पशुभिर्व्यृध्यते पशवो हि ग्रावाणो द्युतानस्य मारुतस्य ब्रह्मसाम्नेन
स्तुवीरन् पशवो वै द्युतानो मारुतस्स्वेनैवैनं साम्ना संदधाति पशुमान् भवति सैव तत्र प्रायश्चित्तिः
प्रजापतये स्वाहेत्यभक्षणीयानुपरवेष्ववनयेत् प्राजापत्यो वै सोमः प्रतिष्ठामेवैनं गमयति सैव तत्र
प्रायश्चित्तिर्यस्य सोममभिदहेद्द्रहानध्वर्युस्स्याशयेत स्तोत्राण्युद्गाता शस्त्राणि होताथ यथापूर्वं यज्ञेन
चरेयुः पञ्च वरा देयाः पाङ्क्तो यज्ञो यज्ञमेवावरुन्द्धेऽवभृथं गत्वा पुनरुदेत्य पुरा द्वादश्याः
पुनर्दीक्षेत यद् द्वादशीमतिनयेदन्तर्धीयेत तत्र तां दक्षिणा दद्याद्याः पूर्वस्मिन् दास्यन् भवति सैव
तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१६॥ ८०
सर्वान् वा एषोऽग्नौ कामान् प्रवेशयते योऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति स यदनिष्ट्वा प्रयायादकाम-
प्रीता एनं कामा नानु प्रयायुरतेजा अवीर्यस्स्यात् स प्रयास्यञ्जुहुयात् ॥ ८१
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वास्सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ ८२
इति कामानेवास्मिन् दधाति कामप्रीता एनं कामा अनु प्रयान्ति तेजस्वी वीर्यवान् भवति संततिर्वा एषा यज्ञस्य योऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति स यदनिष्ट उद्वायाद्विच्छित्तिरेवास्य सा प्राङुदेत्य मनसोपतिष्ठेत मन इव वै प्रजापतिः प्राजापत्यो यज्ञो यज्ञमेव संतनोति भूरिति व्याहरेद्भूर्वै प्रजापतिर्भूतिमेवोपैत्यायुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यस्याहिताग्नेरग्निरपक्षायति स यावच्छम्यया
पराविध्येद्यदि तावदपक्षायेत् तं संभरेत् ॥ ८३
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।
संवेशनस्तन्वे चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ८४
इति ब्रह्मणैवैनं संभरति सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यदि परस्तरामपक्षायेदनुप्रयाय वसेत् सैव तत्र प्रायश्चित्तिरोषधीर्वा एतस्य पयः पशून् प्रविशति यस्य हविषेऽपाकृता वत्सा धयन्ति वायव्या यवागूं निर्वपेद्वायुर्वै पयसः प्रदाता तमेव भागधेयेनोपधावति सोऽस्मै पयः प्रयच्छत्यथोत्तरस्मै हविषे
वत्सानपावर्तयेत् सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१७॥ ८५
अर्धं वा एतस्य यज्ञस्य मीयते यस्य सायं दुग्धं हविरार्तिमार्छतीन्द्राय व्रीहीन्निरुप्योपवसेत् पयो वा ओषधयः पय एवारभ्योपवसति यत् प्रातस्स्यात् तच्छृतं कुर्युरैन्द्रं इतरः पुरोडाशस्स्यात् पयो वा ओषधयः पयसैवास्मै पयः प्रदापयत्यथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत् सैव तत्र प्रायश्चित्तिरुभयान् वा एष देवान् भागधेयेन व्यर्धयति यं यजमानस्य सायं च प्रातश्च गृहमागच्छन्ति

[१७] कपि. ४८,१५ । वा. १२,११६ । काण्व. १३,११५ । तै. ब्रा. ३,७,१,१-६ । [तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम० । ऋ. ८,४३,१८; तै. सं. १,३,१४,३; तै. ब्रा. ३,७,१,१ । इदं त एकं पर ऊ त० । ऋ. १०,५६,१; सा. ६५, अथर्व. १८,३,७; तै. ब्रा. ३,७,१,३, तै. आ. ६,३,१; ४,२]
[१८] कपि. ४८,१६ । तै. ब्रा. ३,७,१,६-९; ३,७,२,९-७ । वा. ३,६३ । काण्व. ३,७९ ।

यस्य सायं प्रातर्दुग्धं हविरार्तिमार्छेत्योदनं पञ्चशरावं निर्वपेदग्निं देवतानां प्रथमं यजेदग्निमुखा एवं
देवताः प्रीणात्यग्निं वा अन्वन्या देवता इन्द्रमन्यास्ता एवोभयीः प्रीणात्यथोत्तरस्मै हविषे वत्सा-
नपावर्तयेत् सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यत् कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानस्स्याद्यदनायतने निन-
येदनायतनस्स्यान्मध्यमेन पर्णेन द्यावापृथिव्ययर्चान्तःपरिधि निनयेद् द्यावापृथिवी वै यज्ञस्य
प्रतिष्ठा प्रतिष्ठामेवैनं गमयति सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यत् प्रयाजेष्वनिष्टेषु प्राङङ्गारस्स्कन्देदध्वर्यवे च
यजमानाय चार्तिं स्याद्यद्दक्षिणा ब्रह्मणे च यजमानाय चार्तिं स्याद्यत् प्रत्यङ् होत्रे च पत्न्यै चार्तिं
स्याद्यदुदङ्ङग्नीधे च यजमानस्य च पशुभ्योऽर्तिं स्यात् तं प्रहरेत् ॥ ८६

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदास्स्तोमपृष्ठो घृतवान् सुप्रतीकः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत्त्वा जहानि सहस्रपोषस्स गोपोषं च यच्छ ॥ ८७

इति ब्रह्मणैवैनं प्रहरति सैव तत्र प्रायश्चित्तिरर्धं वा एतस्य यज्ञस्य मीयते यस्य व्रत्येऽहन्
पत्न्यनालम्भुका भवति तामपरुध्य यजेत सर्वेणैव यज्ञेन यजते तामिष्ट्वोपह्वयेत ॥ ८८

सा त्वमस्यमोऽहममोऽहमस्मि सा त्वम् । ता एहि संरभावहै पुंसे पुत्राय कर्तवे ।
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ८९

इत्यर्ध एवैनामाभजति सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१८॥ ९०

यदवघृष्टेन जुहुयादपरूपमस्यात्मञ्जायेत यत् प्रत्येयात् पापीयान् स्याद्यन्न जुहुयादार्ति-
मार्छेत् ॥ ९१

मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवद्विधेम ॥ ९२

इति मैत्र्यर्चा समिधमाधाय होतव्यं मित्रो वै यज्ञस्य शान्तिर्मित्रेणैवैनच्छमयति तद्धुत्वाथान्यां
दुग्ध्वा पुनर्होतव्यं सैव तत्र प्रायश्चित्तिर्यत् कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानस्याद्यन्न जुहु-
यादार्तिमार्छेत् प्राजापत्ययर्चा वल्मीकवपायामवनयेत् प्राजापत्यो वै वल्मीको यज्ञः प्रजापतिर्यज्ञ
एवं यज्ञं प्रतिष्ठापयति तद्धुत्वाथान्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यं सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥ यदि पूर्वस्या-
माहुत्यां हुतायामुत्तराहुतिस्स्कन्देद् द्विपाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यृध्येत यदभिजुहुयाच्चतुष्पाद्भिः
पशुभिर्यजमानो व्यृध्यते॥ ९३-९४

[सहस्रशृङ्गो वृषभो० । ऋ. ७,५५,७; अथर्व. ४,५,१; १३,१,१२ । सा त्वमस्यमो० । अथर्व. १४,२,७१;
तै. ब्रा. ३,७,१,९]
[१९] कपि. ४८,१७ । तै. ब्रा. ३,७,२ । [मित्रो जनान्यातयति० । ऋ. ३,५९,१; तै. सं. ३,४,११,५; तै. ब्रा.
३,७,२,३; नि. १०,२२]

यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥ ९५

इति वानस्पत्ययर्चा समिधमाधाय होतव्यं वनस्पतिनैवास्यार्तो चानार्तो चाहुती विदाधार
तद्धुत्वाथान्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यं सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१९॥ ९६

देवाश्च वा असुराश्चास्मिल्लोके आसन् स प्रजापतिरकामयत परासुरान्नुदेय प्रजास्सृजेयेति स
एतानि चातुर्मास्यान्यपश्यत् स चातुर्मास्यैरेवासुरान् प्राणुदत चातुर्मास्यैः प्रजा असृजत य
एवं विद्वांश्चातुर्मास्यैर्यजते परा भ्रातृव्यं नुदते प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायतेऽग्निष्टोमाद्वैश्वदेवं
यज्ञक्रतुं निर्माय प्रजापतिः प्रजा असृजतोक्थ्याद्वरुणप्रघासान् यज्ञक्रतुं निर्माय प्रजा वरुणे-
नाग्राहयदतिरात्रात् साकमेधान् यज्ञक्रतुं निर्मायेन्द्रो वृत्रमहन् वैश्वदेवेन वै सोऽसुरान् प्राणु-
दत वैश्वदेवेन प्रजा असृजत ॥ सृष्टा वा अन्याः प्रजा आसन्नसृष्टा अन्या अथ प्रजापतिरकामयत
प्रजास्सृजेयेति संवत्सरो वै यज्ञो यज्ञः प्रजापतिस्स एते आत्मनोऽधि पयसी निरमिमीतोधन्युं च
वहं चाथैताभ्यो देवताभ्य एतानि हवींषि भागं निरवपत् तैः प्रजा असृजतताभ्यो वै ताः प्रजाः
प्राजायन्ततैव एतानि पञ्च हवींषि पञ्च ऋतवस्तत एवं प्रजायतेऽग्निरेव प्रावापयत् सोमो रेतो-
ऽदधान्मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च सविता प्रासुवत् संवत्सरो वै सविता द्वादश मासास्संवत्सरस्तस्माद्
द्वादशकपालोऽथो वैश्वदेवत्वायैव द्वादशकपाल उपांशु यजत्यनिरुक्तो हि संवत्सरस्सरस्वत्येव
सृष्टासु वाचमदधात् पूषणं प्रतिष्ठामभ्यसृजन्त॥ वाग्वै सरस्वती पशवः पूषा मिथुनं वाक् च पशव-
श्च मध्यतो वै प्रजा विसृज्यन्तेऽन्ततो मिथुनाद्विषूचीः प्रजायन्ते तदेतत् प्रजापतेरेवाधि मध्यतः
प्रजा विसृज्यन्तेऽथादोऽन्ततो मिथुनादुभयतो विषूचीः प्रजायन्ते वार्त्रघ्नानि वा एतानि हवींष्य-
ग्निना वा अनीकेनेन्द्रो वृत्रमहन् सोमेन राज्ञा सवित्रा प्रसूतस्सरस्वत्या चैत्र्या पूषा वीर्येणान्वतिष्ठत
विजितिरेवैतानि हवींषि ॥२०॥ ९७-९९

[१२७७]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां प्रायश्चित्तिर्नाम पञ्चत्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३५॥

[यत्र वेत्थ वनस्पते० । ऋ. ५,५,१०; तै. ब्रा. ३,७,२,५]
[२०] कपि. ४८,१८ । मै. १,१०,५ (९८) । तै. ब्रा. १,६,१—२ ।

अथ षट्त्रिंशं स्थानकम्।

चातुर्मास्यानि।

इन्द्रस्य वै वृत्रं जघ्नुष इन्द्रियं वीर्यमपाक्रामत् तदिदं सर्वमनुप्राविशदप ओषधीर्वनस्पतींस्तेन
देवा अश्राम्यंस्त इदं समनयन् यत् सान्नाय्यं मिथुनं वै दधि च पयश्च यत् संसृष्टं मण्डमिव मास्त्विव
परीव ददृशे गर्भ एव स तपसो वै प्रजाः प्रजायन्ते तपस्त्वमेतद्गच्छति यच्छृतत्वं गच्छति तत
एव प्रजायते यद्वैश्वदेव्यामिक्षया प्रजा असृजत तस्मादिमा वैश्वदेवीः प्रजास्स्तोका वै विश्वे देवा-
स्तानेवैतद्यजत्यमुतःप्रदानाद्धि प्रजा उपजीवन्ति ॥ योनिर्वा एष प्रजानां तं मरुतोऽभ्य-
कामयन्त तेऽहोगृहीता असृज्यन्त यत् स्वतवद्भ्यस्स्वत्वायैव निष्कृत्यै पशवो वै मरुतः
प्रजननायैष पशूनां सप्तकपालो भवति सप्त हि मरुतो निरवत्त्या एव मारुतोऽथो ग्राम्यमेवैतेनान्ना-
द्यमवरुन्द्धे ता वैश्वदेवेन सृष्टा विषूचीर्व्युदायंस्ता द्यावापृथिव्येन पर्यगृह्णात् प्रजानामेवैष सृष्टानां
परिगृहीत्यै यदेककपालस्तेन प्राजापत्यः प्रजापतिमेवैतद्देवता अभि प्रतितिष्ठति यजमानो वा एक-
कपाल आहवनीयस्स्वर्गो लोकस्सर्वहुतं जुहोति हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यात्मा वा एककपालः
पशवो घृतं यद् घृतेनाभिपूरयति पशुभिरेवैनं समर्धयति यदाभिपूरयेदभुञ्जन्त एनं पशव उपतिष्ठेरन्नपरं
होनं पशुभ्यः करोत्याविःपृष्ठः कार्य उत्तरमेवैनं पशुभ्यः करोति भुञ्जन्त एनं पशव उपतिष्ठन्ते तत्
तन्न सर्वमभ्येव पूरयेन्न हि पशवो न भुञ्जन्ति बर्हिषदं करोति प्रतिष्ठित्यै यजमानं वै हूर्छन्तं प्रजा
अनुहूर्छन्ति यजमानं प्रतितिष्ठन्तमनु प्रतितिष्ठन्त्यृजुः प्रतिष्ठितो होतव्यो यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै
॥१॥ १-२

त्रेधासंनद्धस्तर्हि भवति त्रेधासंनद्ध इध्मस्त्रेधाविहितानि हि संवत्सरेण चातुर्मास्यानि वसन्ता
यजेत प्रजननाय प्रवणे यजेत प्रजननाय प्रस्वो भवन्ति प्र मा जनयानीति नोत्तरवेदिमुपवपन्ति
प्रजननायाग्निं मन्थत्यग्निं वै पशवोऽनुप्रजायन्ते प्रजननायाथो वृषाणमेवैतं यजमानाय जनयति
पशवो वै पृषदाज्यं नानारूपाः पशवस्तस्मान्नानारूपमाग्नेयं घृतमैन्द्रं दध्यैन्द्राग्नं पृषदाज्यं देवतया
प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी मिथुनं प्राणापानौ मिथुनयोनयः प्रजास्तस्मादेव मिथुनात् प्रजायते ॥ यदि
प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी मिथुनं प्राणापानौ मिथुनयोनयः प्रजास्तस्मादेव मिथुनात् प्रजायते ॥ यदि प्रावृषि यजेत सकृदुप-
वसन्ता यजेत द्विरुपस्तृणीयात् सकृदभिघारयेदोषधीरेव प्रतिष्ठापयति यदि प्रावृषि यजेत सकृदुप-
स्तृणीयाद् द्विरभिघारयेद्वृष्ट्यैव पशूनभिजिघर्ति प्राणेभ्यो वै प्रजाः प्रजायन्ते प्राणा एतानि नव
हवींषि नव प्राणा आत्मा देवता तत एव प्रजायते नव प्रयाजा नवानुयाजा द्वा आज्यभागा अष्टौ

[१] मै. १,१०,५; ७ (२८-३०) । तै. ब्रा. १,६,१-३ ।
[२] मै. १,१०,७—८ (३०—३१) । तै. ब्रा. १,६,३ ।

हवींष्यग्नये समवद्यते वाजिनो यजति तत् त्रिंशत् त्रिंशदक्षरा विराडन्नं विराड् विराज्येवान्नाद्ये
प्रतितिष्ठति त्रिंशदक्षरा वै विराड् विराजो योनेः प्रजाः प्रजायन्ते विराज एवैना योनेः प्रजनयति॥
त्रिंशत् त्रिंशद्वै रात्रयो मासो यो वै मासस्स संवत्सरस्संवत्सरः प्रजापतिस्तदेतत् प्रजापतेश्चैव विराज-
श्चाधि मिथुनात् प्रजायत एकैकया वा आहुत्या द्वादश द्वादश रात्रीरयुवन्त ता यावतीस्संवत्सरस्य
रात्रयस्तावतीस्संख्याने संवत्सरमेव भ्रातृव्याद्युवते वैश्वदेवेन वै ते चतुरो मासोऽयुवन्त वरुण-
प्रघासैः परांश्चतुरस्साकमेधैः परांश्चतुरस्तानेव भ्रातृव्याद्युवते यच्चतुरश्चतुरो मासोऽयुवन्त तच्चातु-
र्मास्यानां चातुर्मास्यत्वम् ॥२॥ ३-५

वैश्वदेवेन यजते प्रजाकामो वा पशुकामो वा न वरुणप्रघासैर्न साकमेधैस्सर्वो वै पुरुषस्साहस्रो
जायते यावत्तरसं त्वै गच्छति प्रजननमेतद्धविर्यद्वैश्वदेवं प्रजननमेव यजते स्वां मात्रां गच्छानीति
यदा सहस्रं पशून् गच्छेदथ वरुणप्रघासैर्यजेत यदेव तत् सहस्रमगंस्तस्याहोऽवयजत ऋतुयाजी वा
अन्यश्चातुर्मास्ययाज्यन्यो यो वसन्तोऽभूत् प्रावृडभूच्छरदभूदिति यजते स ऋतुयाजी यस्त्रयोदशं
मासं संपादयति स त्रयोदशं मासमभियजते स चातुर्मास्ययाजी त्रीन् ऋजूनिष्ट्वा चतुर्थमुत्सृजेद् द्वौ
परा ऋजू इष्ट्वा तृतीयमुत्सृजेद्ये वै त्रयस्संवत्सरास्तेषां षट्त्रिंशत् पूर्णमासा यौ द्वौ तयोश्चतुर्विंशतिर्ये
षट्त्रिंशत्यधि ते चतुर्विंशतिमुपयन्त्येष वाव स त्रयोदशो मासस्तमेवैतत् संपादयति तमभियजते॥
यद्बर्हिः प्रयाजेषु यजत्योषधीस्तद्यजति यद्बर्हिरनुयाजेषु फलं तद्यजति यद्बर्हिर्वीरिणीनां यदेव फला-
दधि प्रजायते तत् तद्यजति यद्दुरो यजत्युपस्थं तद्यजति यदुषासानक्ता व्युष्टिं चैव निम्रुक्तिं च
तद्यजति यज्जोष्ट्री यदेव जातं यज्जनिष्यमाणं तद्यजति यदूर्जाहुती यदेवात्ति च पिबति च तत्
तद्यजति यद्दैव्या होतारेमे वै दैव्या होतारेम एव तद्यजति यत् तिस्रो देवीर्वाग्वै तिस्रो देवीर्वाचमेव
तद्यजति च्छन्दांसि वै वाक् छन्दांस्येव तद्यजति नराशंसं यजति तनूनपाद्वै यज्ञः प्रसूवो नराशंसो-
ऽप्रसूतः प्रसूतो वा एतर्हि यज्ञस्तस्मान्नराशंसमनुयाजेषु यजति त्वष्टारं यजति स हि रूपाणि वि-
करोति वनस्पतिं यजत्यूर्ग्वै सोमो वनस्पतिस्सौमीरिमाः प्रजाः प्रजास्वेवोर्जं दधाति ॥३॥ ६-७

वाजिनो यजति पशवो वै वाजिनस्तानेव तद्यजति न वा एष सुयज्ञ इव संस्थिते हि यज्ञे प्रहृतेषु
परिधिषु जुहोति यदनवानं होता यजति तेन यज्ञः क्रियतेऽनुयजत्यग्निस्समिष्टिरग्निः प्रतिष्ठिति-
स्समिष्ट्या एव प्रतिष्ठित्यै पशवो वै वाजिनो यत् संस्थापयेत् तान् संस्थापयेदसंस्थिता ह्येते सदादि
प्रजायन्ते बर्हिरनुनिषिञ्चन् गृह्णात्यृषभेष्वेव रेतो दधाति प्रजा वै बर्ही रेतो वाजिनं प्रजास्वेव रेतो-
दधात्यूर्ध्वज्ञुरासीनो यजत्यूर्ध्वज्ञुर्हि पशुः पशौ रेतो दधाति समुपहूय भक्षयन्ति सोमपीथ इव ह्येष

[३] मै. १,१०,८-९ (३१-३२) । तै. ब्रा. १,६,३ ।
[४] मै. १,१०,९ ((३२-३४) । तै. ब्रा. १,६,३ ।

सर्वे ऋत्विजः प्राश्नन्ति वाजिनो मे यज्ञं वहानित्यात्मना प्राश्नीयादात्मन्नेव वाजं धत्ते ॥४॥ ८
ता वैश्वदेवेन सृष्टास्तस्मिंस्तमभिमन्यरुणोऽगृह्णाद्यो आहुरति वै तास्वमचरँस्ता अतिचरन्तीर्वरुणे-
नाग्राहयदिति तस्मात् पिता नातिचरितवै वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत तस्य मरुतो हव्यं
घ्यमघ्नत तर्होऽहोगृहीता अनृत्यन्त ताभ्यो भेषजमैच्छत् तदात्मन्नेवैच्छत् स एतदात्मनोऽधि पयो
निरमिमीत तेनाभ्योऽहोऽवायजदँहसो वा एषावेष्टिर्यद्वरुणप्रघासा जन्याद्वै वरुणो गृह्णाति तस्माद्वरुण-
प्रघासा यावद्वै कुमारेऽग्नो जात एनस्तावदेतस्मिन्नेनो भवति यो वरुणप्रघासैर्यजतेऽथैतानि पञ्च
हवींषि संतत्यै ॥ सावित्रोऽष्टाकपालो गायत्रो हि देवानाँ सवितैन्द्राग्नो द्वादशकपालो वैश्वदेवत्वाय
यद्वै तत् प्रजा वरुणगृहीता अवेव्लीयन्तेव तदाश्विन्द्राग्नी बलमधत्तां न वै ताः प्राणँस्ता अप्राणन्ती-
र्वरुणोऽगृह्णात् प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी प्राणापाना एवैतन्मध्यतो धीयेते शिथिला वै ताः प्रजा
वरुणोऽगृह्णादोजो वीर्यमिन्द्राग्नी ओज एवैतद्वीर्यं मध्यतो धीयते निरवत्त्या एव मारुती निर्वरुण-
त्वाय वारुणी कन्त्वाय कायो यद्वा आभ्यस्तद्वरुणगृहीताभ्यः कमभवत् तस्मात् कायः प्रजापतिर्वै
ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयत् प्रजापतिः क आत्मनैवैना वरुणान्मुञ्चत्यृतं वै सत्यं यज्ञोऽनृतँ स्त्र्यनृतमेषा
करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरत्यनृतमेव निरवदायर्तं सत्यमुपैति यद्वाचयति मेध्यामेवैनां
यज्ञियां करोति न मिथु ब्रूयाद्यन्मिथु ब्रूयात् प्रियतमेन यातयेत् ॥५॥ ९–१०

आमयेषा भवन्ति सर्वस्याँहसोऽवेष्ट्यै यन्मृज्जैर्पुर्विन्त्वकर्मँहोऽवेष्टँ स्यात् पात्रेभ्यो वै ताः प्रजा
वरुणोऽगृह्णायत् पात्राणि पात्रेभ्य एवैना वरुणान्मुञ्चति प्रतिपुरुषं भवन्ति प्रतिपुरुषमेवाँहोऽवयजत
एकमधि भवति गर्भेभ्य एवं तेनाँहोऽवयजतेऽश्वाद्वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाच्छूर्पेणान्नं बिभ्रति
तस्माच्छूर्पेण हूयते स्त्रीपुंसौ जुहुतो मिथुना एवं प्रजा वरुणान्मुञ्चतः पुरस्तात् प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ
जुहुतः पुरस्तादेवाग्नेरँहोऽवयजतो यत् पात्राणि ये एवं द्विपादः पशवो मिथुनास्तेषां तेन पुरस्ता-
दँहोऽवयजतो यन्मेषश्च मेषी च ये एवं चतुष्पादः पशवो मिथुनास्तेषां तेनोपरिष्टादँहोऽवयजत
उभयत एवाँहोऽवयजतः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च ॥ पात्राणि हुत्वाग्निं संमार्ष्टि यत्राँहोऽवायाक्षुस्तस्मि-
न्नुप्ते देवता यजानीति यद्वै प्रजा वरुणो गृह्णाति शमीं च यवं च न गृह्णाति हेमन्तौ हि वरुण-
स्तस्मादेतौ हेमन्त्ये शुष्यतो या एवावरुणगृहीतौ ताभ्यामेना वरुणान्मुञ्चति वरुण्यो वै यवो वरुण-
देवत्यस्त्वेनैव भागधेयेन वरुणं निरवदयतेऽथैता अनृतपशु अनृताद्वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाद्यदेता
अनृतपशु अनृतादेवैना वरुणान्मुञ्चति स्त्रीपुंसौ भवतो मिथुना एवं प्रजा वरुणान्मुञ्चति लोमशौ
भवतो मेध्यत्वाय यावन्तो हि पशवो लोम जगृहुस्ते मेधं प्रापुश्शमीपर्णानि भवन्ति शन्त्वाय

[५] मै. १,१०,१०-११ (३५-३६)। तै. ब्रा. १,४,४; १,६,४-५।
[६] मै. १,१०,११-१२ (३६-३७)। तै. ब्रा. १,६,४-५। मा. श्रौ. १,७,४।

भूर्जो वै नामैष वृक्षः कार्युः वा एतस्य स्रुचः प्रजापतिर्वा अन्नाद्यं नावारुन्ध तच्छतेध्मेनावारुन्ध
परश्शतानि कार्याण्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै सहस्रेध्मो ह त्वा अँहसोऽवेष्टिं विव्याच परस्सहस्राणि
कार्याण्यँहसोऽवेष्ट्यै ॥६॥
११–१२

यतीन् वै सालावृकेया आदँस्तेषामेतानि शीर्षाणि यत् खर्जूरास्सोमपीथ एष उदीयति यत् करी-
राणि यत् करीराणि भवन्ति सोमपीथमेवावरुन्द्धे प्रजापतेर्वा एतज्ज्येष्ठं तोकं यत् पर्वतास्ते पक्षिण
आसँस्ते यत्र यत्राकामयन्त तत् परापातमासताथ वा इयं तर्हि शिथिलासीत् तेषामिन्द्रः पक्षान-
च्छिनत् तैरिमामदृँहद्ये पक्षा आसँस्ते जीमूता अभवँस्तस्मात् ते गिरिमुपप्लवन्ते योनिर्ह्येषामेष तस्मा-
द्गिरौ भूयिष्ठं वर्षति यत् प्राक्षरत् तानि करीराणि तदेतत् प्रावृष्युज्जीमूताः प्लवन्ते यजन्ते वरुण-
प्रघासैर्वृष्टिमेव संतनोति तस्मात् तर्हि भूयिष्ठं वर्षति वृष्टिं हि संतनोति न वैश्वदेव उत्तरवेदिमुपवपन्त्यु-
पात्र वपन्ति प्रजाता एव प्रजाः परिगृह्णाति योत्तरा वेदिर्या अग्रीः प्रजास्तासाँ सा योनिस्तास्ता-
मनुप्रजायन्ते या दक्षिणा वेदिर्या आद्याः प्रजास्तासाँ सा योनिस्तास्तामनुप्रजायन्त उभयीरेवैत-
दग्रीश्चाद्याश्च प्रजाः प्रजनयत्ययं वाव हस्त आसीन्नायं यैषा द्वितीया वेदिस्तयेमं द्वितीयँ हस्तमविन्दँ-
स्तस्मादेष एतस्य परिवेष्टापरजो हि तस्मात् कनीयाञ्ज्यायाँसं परिवेवेष्टि समे कार्ये समौ हीमौ
हस्ता असंभिन्ने भवतोऽँहसोऽवेष्ट्यै यत् संभिन्द्युरनवेष्टमँहस्स्यादेकस्फ्यामनु संभिन्दन्त्यनुसंतत्या
उपोत्तरां वपन्ति न दक्षिणामनभ्यारोहाय ॥ क्षत्रं वै वरुणो विण्मरुतो नाना यजन्ति पापवसीयसस्य
व्यावृत्त्यै यदध्वर्युः करोति तत् प्रतिप्रस्थाता करोति तस्माद्यद्राजा करोति तद्विट्करोति न वैश्वदेवे
त्रिंशदाहुतयस्सन्ति न साकमेधेषु वरुणप्रघासेषु वाव त्रिंशदाहुतयो वैराजः पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुल्यो
दश पद्या दश प्राणास्तत् त्रिंशत् त्रिंशदक्षरा विराड्वैराजः पुरुषो यदेतर्ह्यवभृथमवैत्यात्मानमेवाँहोऽवयजते
यद्वै यज्ञस्य स्वगाकृतिं न प्राप्नोति वरुणस्तद्गृह्णाति यन्निष्कापेणावभृथमवैति यदेव वरुणगृहीतं तेन
वरुणं निरवदयतेऽथो यदेवात्र वरुणस्य न्यक्तं तस्य निरवत्त्या अनपेक्षमाणा आयान्ति वरुणस्या-
नन्ववायायैधोऽस्येधिषीमहीति वरुणमेव निरवदायैधतुमुपयन्ति समिदसि समेधिषीमहीत्याशिष-
मेवाशास्ते तेजोऽसि तेजो मयि धेहीति तेज एवात्मन् धत्ते ॥७॥ १३–१४

प्रजास्सृष्ट्वाँहोऽवेज्य सोऽकामयत वृत्रँ हन्यामिति स एताभिर्देवताभिस्सयुग्भूत्वोपप्लायत
मरुद्भिर्विशाग्निनानीकेन स वृत्रमभीत्य वृत्रं दष्ट्वोरुस्तम्भगृहीतोऽतिष्ठदनभिधृष्णुवँस्तं मरुत ऐषीकै-
र्वातरथैरघ्नँयन्त तेऽस्यैषँस्तेऽस्य यत्र मर्मागच्छँस्तदचेष्टत् सं वा एनं तदतपँस्तस्मात् सांतपना

[७] मै. १,१०,१२-१३ (३७-३८)। वा. २०,२३; ३८,२५। काण्व. २२,७; ३८,२४। तै. ब्रा. १,६,४-५।
[एधोऽस्येधिषी महि० । अथर्व. ७,९४,४]
[८] मै. १,१०,१४ (३९)। तै. ब्रा. १,६,६,३।

यत्रैषा वै साकमेधा अग्निना वा अनीकेनेन्द्रो वृत्रमहन्ननीकत्वायैवैषोऽग्निर्देवानाँ सेनानीस्सेनो-
त्थापनीयमेवैतदिन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुद्यमं नाशक्नोत् स एतं मरुद्भ्यो भागं निरवपत् तं मरुतो
वीर्याय समतपन् स तेन वीर्येण वज्रमुदयच्छत् सं वा एनं तदतपँस्तस्मात् सांतपना मध्यंदिने
निरुप्यस्तर्हि क्षुमा अन्तौ तपति चरुर्भवति तँ हि सर्वतस्तपति देवा वै वृत्रस्य मर्म नाविन्दँस्तं
मरुतः क्षुरपविना व्ययुस्सं वा एनं तदतपँस्तस्मात् सांतपनाः ॥८॥ १५

ते श्वो वृत्रँ हनिष्यन्त उपावसँस्तेऽब्रुवन् कस्य वाहेदं श्वो भविता कस्य वा पचतेति त एत-
मोदनमपचन्त ते पशूनचिकयुर्यतरान् वा इमे श्वः कमितारस्ते जेतार इति तेभ्य एतेन प्रातिष्ठँस्ता-
नेतेनायच्छन् पशूनामेवैषा यतिस्ते श्वोविजयिनोऽवसँस्तेऽब्रुवन् कस्य वाहेदं श्वो भविता कस्य वा
पचतेति त एतमोदनमपचन्त तेऽब्रुवन् माहुतमश्निष्मेति ते मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्योऽजुहवुः पशवो
वै मरुतो गृहमेधास्तेभ्य एव तदजुहवुस्ते संयत्ता आसँस्तेऽसुरा देवेभ्यः क्षुधं प्राहिण्वँस्तां देवाः
प्रतिश्रुत्यैतमोदनमपचन्त सा देवेषु लोकमविन्त्वा पुनरसुरान् प्राविशत् सैनान्निरदहदपि प्रतिवेश
ओदनं पचेत भ्रातृव्यायैव क्षुधं प्रहिणोति सैनं निर्दहति ॥ यद्वै चातुर्मास्यानां पाकयज्ञस्यैव तदेषां
पशव्यं गृहमेधो वै पाकयज्ञो न प्रयाजा इज्यन्ते नानुयाजा न सामिधेनीरन्वाहाज्यभागौ यजति
तेन यज्ञः क्रियतेऽग्नये समवद्यत्यग्निस्समिष्टिरग्निः प्रतिष्ठितिस्समिष्ट्या एव प्रतिष्ठित्यै पशवो वै
गृहमेधाः पशव इडा तस्मादिडामुपह्वयन्ते निष्कासो निधीयते संतत्यै तेषां वा उभयेषामिन्द्रः
प्रावसत् ते देवा एतमिन्द्राय भागं न्यदधुरस्माच्छ्वो निहितभागो वृणाता इति रुवथो वषट्कारो-
ऽथो असुराणामेव तद्वृषभमन्वाह्वयन्त्यस्मान् प्रजनयादित्यृषभमाह्वयतीन्द्रमेव तन्निह्वयतेऽथो पुष्टिमेव
भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते ॥९॥
१६–१७

सवत्सा गावो वसन्ति साकमेधत्वाय यत् पत्नी नाश्नीयादसाकमेधास्स्युर्यत् पत्न्यश्नाति साक-
मेधत्वाय निर्ऋतिर्वा एतद्यज्ञस्य गृह्णाति यत् स्त्र्यश्नाति निर्ऋतिर्वै स्त्री स्त्रिया एष हस्तो यद्दर्वि-
र्यद्दर्व्या जुहोति निर्ऋत्यैव निर्ऋतिं निरवदयते यद्वै यज्ञस्य स्वगाकृतिं न प्राप्नोति निर्ऋतिस्तद्गृह्णाति
निर्ऋतिगृहीता वै दर्विस्तर्हि लेपावचरति यद्दर्व्या जुहोति निर्ऋतिगृहीतयैव निर्ऋतिं निरवदयते स
श्वो वृत्रँ हन्तुमुपप्लायत तं मरुतः परिक्रीडन्त आयँस्तेऽस्याप्त्वा व्यनयँस्त एनमभ्यवर्धयँस्तस्मात्
क्रीडयस्ते संयत्ता आसँस्ते देवा असुराणां परमन्नं न परापश्यँस्ते मरुतः क्रीडीन् क्रीडतोऽपश्यँस्ते-
ऽविदुर्जितमनसो वा इम इति तेभ्य एतं भागं निरवपँस्ततोऽजयन् विजित्या एवैषोऽसौ वा आदित्य
इन्द्रो रश्मयः क्रीडयस्ताकं रश्मिभिः प्रचरन्ति विजित्यै ॥ देवा वै वृत्रँ हतं न व्यजानँस्तं मरुतो-

[९] मै. १,१०,१५-१६ (४०-४१)। तै. ब्रा. १,६,६,४; १,६,७।
[१०] मै. १,१०,१६ (४१)। तै. ब्रा. १,६,७।

ऽभ्यक्रीडँस्तस्मात् क्रीडयोऽथैतानि पञ्च हवींषि संतत्या अथैन्द्राग्न इन्द्राग्नी वै तं वज्रेणाभ्यौहतामथो
आहुरिन्द्राग्नी अस्मै वज्रमनुविभृतामित्यथैन्द्र एतेन वा इन्द्रो वृत्रमहन् स एतमुद्धारमुदहरतोद्धार
एवास्यैष भाग एवाथ वैश्वकर्मणो विश्वा मे कर्म कृतानीति विश्वकर्मा ह्यभवद्वृत्रँ हत्वाग्ने वेहोत्रं
वेदृत्यमित्याघारमाघारयत्याहुतीनाँ संपत्त्यै त्रिंशत्त्वाय ॥१०॥ १८–१९

प्रजास्सृष्ट्वाँहोऽवेज्य वृत्रँ हत्वा तेऽमृतत्वमकामयन्त स्वर्गो वै लोकोऽमृतत्वं द्वादश मासास्संव-
त्सरस्स्वर्गो लोको यद् द्वादशाहुतयोऽमृतत्वमेव तेन स्पृणोति सं वा एतत् संवत्सरमकक्षदापद्वा
एतत् सवत्सरं यत् षट् षट् संपादयति षड्वा ऋतव ऋतूनेवैतत् पुनरपिपादयति तानपिपद्यमानान-
न्वपिपद्यते ततः प्रजायतेऽति वा एतत् संवत्सरमगाद्यद् द्वादशाहुतयस्संवत्सरमेवाभिपर्यावर्तत
आपद्वा एतत् संवत्सरं पितर ऋतवस्तमेव प्रजनयति तं प्रजायमानमनुप्रजायत एतद्वा अस्य संवत्सरो-
ऽभीष्टोऽभूदभीष्टा ऋतवोऽथास्य पितरोऽनभीष्टा यदेष पितृयज्ञस्तेनास्य पितरोऽभीष्टाः प्रीता
भवन्ति ॥ दक्षिणतो निरुप्यं दक्षिणा हि पितॄणामुभयतो निरुप्यमुभये हीज्यन्ते तत् तन्न सूक्ष्यं
दक्षिणत एव निरुप्यं दक्षिणा हि पितॄणाँ षट्कपालः पुरोडाशो भवति षड्वा ऋतव ऋतव एवास्य
तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति न वै धानाभिर्न मन्थेन यज्ञो यदेष पुरोडाशस्तेन यज्ञः क्रियतेऽथैता
धानास्सुधा वा एता अमुष्मिल्लोकेऽपरिमितास्संवत्सरस्य रात्रयस्ता एवास्यैताभिरभीष्टाः प्रीता
भवन्ति न वै धानाभिर्न पुरोडाशेन पितृयज्ञो यदेष मन्थस्तेन पितृयज्ञोऽभिवान्यवत्साया दुग्धे
भवति सा हि पितॄणां नेदिष्ठमेकयोपमन्थत्येकलोका हि पितरो दक्षिणोपमन्थति दक्षिणा हि
पितॄणामनारभ्योपमन्थति तद्धि पितॄन् गच्छति ॥११॥ २०–२१

न प्राच्युद्धरत्या पितृयज्ञो हि न दक्षिणा यज्ञो ह्युभे दिशा अन्तरोद्धरन्त्युभये हीज्यन्त उभयानेव
व्यश्नोति देवाँश्च पितॄँश्च चतुस्स्रक्तिर्वेदिर्भवति सर्वासु हि दिक्षु पितरः परिश्रिते याजयन्त्यन्तर्हिता
ह्यमुष्मादादित्यात् पितरोऽथो अन्तर्हिता हि देवेभ्यश्च मनुष्येभ्यश्च पितर उपमूलं बर्हिर्दाति तेन
पितॄणां यदतेमूलं तेन देवानामुभये हीज्यन्ते समन्तं बर्हिस्स्तृणन् पर्येति समन्तँ हीम ऋतवः परि-
विष्टा एति वा एषोऽस्माल्लोकाद्यः पितृयज्ञं पर्येति यदस्तृणन् पुनः पर्येतीममेव लोकमुपावर्तते-
ऽमुष्मिन् वै पूर्वस्मिन् देवता यजन्ति यत् तत्र यजेदाहुतीस्सँसृजेत् समदं कुर्याद्गार्हपत्ये शृतं कुर्वन्ति
तेन यज्ञः क्रियत ओदनपचनादग्निमाहरन्ति तदु स्विन्नान्यत आह्रियत उशन्तस्त्वा हवामह इत्य-
न्वाहोशन्तो हि पितरोऽनुष्टुभमन्वाहान्तो वा अनुष्टुबन्तः पितरोऽथो अनुष्टुब्भि सर्वाणि च्छन्दाँस्ये-

[११] मै. १,१०,१७ (४२)। तै. ब्रा. १,६,८।
[१२] मै. १,१०,१७-१८ (४२-४६)। वा. १९,७०। काण्व. २१,७०। तै. ब्रा. १,६,८-९।
[उशन्तस्त्वा०...अत्तवे० । ऋ. १०,१६,१२। अथर्व. १८,१,५६; १८,३,३४]

कामन्वाहैकलोका हि पितरस्त्रिरन्वाह तृतीये हि लोके पितरो यदेकामन्वाह तेन पितृणां यत् त्रिरन्वाह
तेन देवानामुभये हीज्यन्ते नार्षेयं वृणीते न होतारं मृत्योरेवैना उत्सृजत्यपबर्हिषः प्रयाजान् यजति
प्रजा वै बर्हिः प्रजा एव मृत्योरुत्सृजति संव्ययते वै मनुष्येभ्यः करिष्यन् दक्षिणतो देवेभ्य
उपव्ययतेऽथात्र प्राचीनावीतेन भव्यं व्यावृत्त्यै दक्षिणतोऽवदायोदङ्ङतिक्रम्य दक्षिणावृत्य जुहोति
दक्षिणा हि पितृणाम् ॥१२॥ २२

सोममग्रे यजति सोमो वै पितृणां देवता पितृदेवत्यो हि सोमो यत् सोमं पितृमन्तं यजति
सोमपाँस्तत् पितॄन् यजति यद्बर्हिषदो यज्वनस्तद्यदग्निष्वात्तान् गृहमेधिनस्तद्यदग्निं कव्यवाहनं द्वे
वा अग्नेस्तन्वौ हव्यवाहन्या देवेभ्यो हव्यं वहति कव्यवाहन्या पितृभ्योऽग्निस्समिष्टिरग्निः प्रतिष्ठिति-
स्समिष्टया एव प्रतिष्ठित्यै पञ्च पञ्च कृत्वोऽवद्यति पञ्च ह्यृतवस्स्वधा नम इति वषट्करोति स्वधा
हि पितृणां नमस्कारो देवानां द्वे वै देवानां याज्यानुवाक्ये अन्यया यच्छति गमयत्यन्ययाथात्र
तिस्रः कार्या व्यावृत्त्यै द्वे अनुवाक्ये एका याज्या परे वै देवेभ्यः पितरो यैषा तृतीयाभ्येवैतया
प्रयच्छति ॥ देवान् वै पितॄन् मनुष्याः पितरोऽनुप्रपिबन्ते देवानेवैतत् पितॄनयाड्यत् स्रक्तिषु नि-
दधाति तेन मनुष्यान् पितॄन् यजति त्रिर्निदधाति त्रीन् हीदं पुरुषानभिस्मरन्तीन् परानन्वाचष्टे त्रयो
वै पिता पुत्रः पौत्रोऽनुसंतत्यै सर्वासु स्रक्तिषु निदधाति सर्वा एव दिशो गमयति सर्वासु हि दिक्षु
पितरो नास्यां निदध्याद्यदस्यां निदध्यान्मृत्युनैनान् परिगृह्णीयात् तामेवानूद्यन्ति यत् तस्यां निमार्ष्टि
तेनैव तान् प्रीणात्यत्र पितरो मादयध्वमिति निष्क्रामन्ति त आहवनीयमुपायन्ति सुसंदृशं त्वा वयमि-
ति त आ तमितोस्तिष्ठन्त्यन्तं वा एते प्राणस्य गच्छन्ति ये पितृयज्ञमुपयन्त्यग्निमेवोपद्रष्टारं कृत्वान्तं
प्राणस्य गच्छन्ति परेत पितरस्सोम्यास इति पुनरायन्त्यनुपक्ता वा एतान् पितरो व्यावृत्त्या अमीमदन्त
पितर इति प्रपद्यन्ते त ऊर्णां वा दशां वा न्यस्यन्ति यदेव तत्र निगच्छन्ति तस्य निरवत्त्या अपः
परिषिञ्चति मार्जयत्येव पुनरपरिषिञ्चन् पर्येत्यमुं वा एते लोकं निगच्छन्ति ये पितृयज्ञमुपयान्ति
प्रजापतिस्त्वा एनानत उन्नेतुमर्हति यदेतामनिरुक्तां प्राजापत्यामन्वाहाया विष्टा जनयन् कवराणीति
प्रजापतिरेवैनाँस्तत उन्नयति पितॄन् वा एतद्यज्ञोऽगन् पङ्क्त्या पुनरायन्ति पाङ्क्तो यज्ञस्सहैव यज्ञे-
नायान्ति पितॄन् वा एतस्य मनो गच्छति मनो न्वह्वामह इति तदेव पुनरुपह्वयते॥१३॥२३-२४

एतद्वा अस्य संवत्सरोऽभीष्टोऽभूदभीष्टाः पितरोऽथास्य रुद्रा अनभीष्टा रुद्रास्त्र्यम्बका यदेते
त्र्यम्बकास्तेनास्य रुद्रा अभीष्टाः प्रीता भवन्ति प्रतिपुरुषं भवन्ति प्रतिपुरुषमेव रुद्रं निरवदयत

[१३] मै. १,१०,३; १८-१९ (१०-१८, ४४-४७)। वा. २,३१; ३,५२; १९,५८। काण्व. २,५६; ३,६०; २१,५९।
तै. ब्रा. १,६,८-९।
[१४] मै. १,१०,४; २० (२२-२७, ४८-५०)। वा. ३,५७-६१। काण्व. ३,६५-७०। तै. ब्रा. १,६,१०।
काठ० ४६

एकोऽधि भवति गर्भेभ्य एव तेन रुद्रं निरवदयत एककपाला भवन्ति न वै पुरुषं कपालैराप्नुमर्ह-
त्येकधैवैनमाप्नोत्यभिघार्या३ नाभिघार्या३ इति मीमाँसन्ते अभिघार्या एव न हि हविरनभिघृतं
यदभिघारयेद्रुद्रं पशूनन्ववनयेत् तस्मान्नाभिघार्या एकोल्मुकँ हरन्त्येकोल्मुकँ हि रुद्राणां धूपाय-
द्धरन्ति धूपायद्धि रुद्राणां पराचीनँ हरन्ति पराञ्चमेव रुद्रँ हरन्तीमां दिशँ हरन्त्येतस्यां वै दिशि
रुद्राणां गृहा गृहेष्वेव रुद्रं निरवयजते॥ रुद्राखुं ते पशुं करोमीत्याखुकिरा एकमुपवपति पशुभ्य एव
रुद्रं निरवदयते तस्मात् तान् पशुपतिर्घातुकश्चतुष्पथे याजयन्ति चतुष्पथे वै रुद्राणां गृहा गृहेष्वेव
रुद्रं निरवयजत एष ते रुद्र भागस्सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहेति शरद्वै रुद्रस्य स्वसाम्बिका
तामेषोऽन्ववचरति तस्मादेष शरदि भूयिष्ठं हन्ति तयैवैनँ सह निरवदयते मध्यमेन पर्णेन जुहोति
तद्धयरक्षोहतं यद्ग्राम्येण जुहुयाद्रुद्रः पशूनन्ववनयेत् तस्मादारण्येन हूयतेऽवाम्ब रुद्रमदिमहीत्य-
नृणा एवाभूवन भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय चेत्यनृणा एव भूत्वा भेषजमक्रत ॥ त्र्यम्बकं यजामह
इति परियन्ति या पतिकामा स्यात् सापि परीयात् पतिवेदनमेवास्यै कुर्वन्ति तानुदस्य प्रतिलभन्ते-
ऽनृणा एव भूत्वा भगं प्रतिलभन्ते तान् यजमानाय समावपन्ति भगमेवास्मै समावपन्ति या पति-
कामा स्यात् तस्यै समावपेयुर्भगमेवास्यै समावपन्ति तान् मूते कृत्वा वृक्ष आसजन्त्येष ते रुद्र
भागस्तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहीति गिरिर्वै रुद्रस्य योनिस्तत एषोऽभ्यवचरति स्वेनैवैनं भाग-
धेयेन स्वं योनिं गमयत्यनपेक्षमाणा आयान्ति रुद्रस्यानन्ववायायैधोऽस्येधिषीमहीति रुद्रमेव निर-
वदायैधतुमुपयन्ति समिदसि समेधिषीमहीत्याशिषमेवाशास्ते तेजोऽसि तेजो मयि धेहीति तेज
एवात्मन् धत्तेऽम्बी वै स्त्री भगानाम्नी तस्मात् त्र्यम्बका अप्रतिष्ठितो वा एष यस्याप्रतिष्ठितँ हवि-
रप्रतिष्ठितास्त्र्यम्बका न प्रयाजा इज्यन्ते नानुयाजा न सामिधेनीरन्वाहादित्यै चरुं निर्वपतीयं वा
अदितिरियं प्रतिष्ठास्यामेव प्रतितिष्ठति ॥१४॥ २५-२७

अपां यो द्रवणे रसस्तमहमस्मा अमुष्मा आमुष्यायणाय तेजसे वर्चसे गृह्णाम्यपां य ऊर्मौ रस-
स्तमहमस्मा अमुष्मा आमुष्यायणायौजसे क्षत्राय गृह्णाम्यपां यो मध्ये रसस्तमहमस्मा अमुष्मा
आमुष्यायणाय प्रजायै पुष्ट्यै गृह्णाम्यपां या यज्ञिया तनूस्तामहमस्मा अमुष्मा आमुष्यायणायायुषे
दीर्घायुत्वाय गृह्णामि ॥ २८

रथे अक्षेषु वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ २९

[एधोऽस्येधिषीमहि०। अथर्व. ७,९४,४]
[१५] वा. १२,५६; १४,१३; १५,११-१३,६१; १७,६१। काण्व. १३,५७; १५,१६, १६,१९,२२,२५,८२; १८,९१।
तै. ब्रा. २,७,७। [रथे अक्षेषु वृषभस्य०। अथर्व. ६,३८,२]

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये गोष्वश्वेषु पुरुषेष्वन्तः।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ ३०
सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ ३१
या राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य क्रन्दे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सेयमागाद्वर्चसा संविदाना ॥ ३२

राडसि विराडसि सम्राडसि स्वराडसीन्द्राय त्वा मधुमते मधुमन्तँ श्रीणामीन्द्राय त्वौजस्वत
ओजस्वन्तँ श्रीणामीन्द्राय त्वा पयस्वते पयस्वन्तँ श्रीणामीन्द्राय त्वायुष्मत आयुष्मन्तँ श्रीणामि
वर्चोऽसि तन्मे नियच्छ तत् ते नियच्छाम्योजोऽसि तन्मे नियच्छ तत् ते नियच्छामि पयोऽसि
तन्मे नियच्छ तत् ते नियच्छाम्यायुरसि तन्मे नियच्छ तत् ते नियच्छामि ॥ ३३

वर्चस्वदस्तु मे मुखं वर्चस्वच्छिरो अस्तु मे।
वर्चस्वान् विश्वतः प्रत्यङ् वर्चसा संपिपृग्धि मा ॥ ३४
ओजस्वदस्तु मे मुखमोजस्वच्छिरो अस्तु मे।
ओजस्वान् विश्वतः प्रत्यङ्ङोजसा संपिपृग्धि मा ॥ ३५
पयस्वदस्तु मे मुखं पयस्वच्छिरो अस्तु मे।
पयस्वान् विश्वतः प्रत्यङ् पयसा संपिपृग्धि मा ॥ ३६
आयुष्मदस्तु मे मुखमायुष्मच्छिरो अस्तु मे।
आयुष्मान् विश्वतः प्रत्यङ्ङायुषा संपिपृग्धि मा ॥ ३७

इदमहं गायत्रेण च्छन्दसा त्रिवृता स्तोमेन रथंतरेण साम्नाग्निना देवतया तेजस्ते वर्च आददे-
ऽसा इदमहं त्रैष्टुभेन च्छन्दसा पञ्चदशेन स्तोमेन बृहता साम्नेन्द्रेण देवतयौजस्ते क्षत्रमाददेऽसा
इदमहं जागतेन च्छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण साम्ना विश्वैर्देवैर्देवतया प्रजां ते पुष्टिमाददे-
ऽसा इदमहमानुष्टुभेन च्छन्दसैकविंशेन स्तोमेन वैराजेन साम्ना प्रजापतिना देवतयायुस्ते दीर्घा-
युत्वमाददेऽसौ ॥ ३८

इममग्न आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण संशिशाधि।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥ ३९

[या हस्तिनि द्वीपिनि०। अथर्व. ६,३८,२। सिंहे व्याघ्र उत०। अथर्व. ६,३८,१। या राजन्ये दुन्दु-
भा०। अथर्व. ६,३८,४। इममग्न आयुषे वर्चसे०। मै. २,३,१७; अथर्व. २,२८,५; तै. ब्रा. २,७,७,५]

विश्वकर्मा विश्वदेवो विश्वजिद्विश्वदर्शतः। वै त्वा घृतस्य धारया श्रैष्ठ्याय समसूषत ॥ ४०
यतो वातो मनोजवा यतः क्षरन्ति सिन्धवः।
तासां त्वा सर्वासां रुचाभिषिञ्चामि वर्चसा ॥ ४१
अभि त्वा वर्चसासिचं यज्ञेन पयसा सह।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥ ४२
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ ४३

अपां यो द्रवणे रसस्तेनाहमिमममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रं तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चाम्यपां
य ऊर्मौ रसस्तेनाहमिमममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमोजसे क्षत्रायाभिषिञ्चाम्यपां यो मध्ये रसस्ते-
नाहमिमममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रं प्रजायै पुष्ट्या अभिषिञ्चाम्यपां या यज्ञिया तनूस्तयाहमिमम-
मुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमायुषे दीर्घायुत्वायाभिषिञ्चामि ॥१५॥ ४४

[२३२१]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामौरिमिकायां चातुर्मास्यानि नाम षट्त्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३६॥

अथ सप्तत्रिंशं स्थानकम्।

सवाः।

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मादपाक्रामँस्ता अकामयतोप मावर्तेरन्निति स एतमोदनमपचत्
सोऽन्नमेव भूत्वैकधातिष्ठत् ता अन्यत्रान्नमविन्दन्ता ताः प्रजापतिमेवैकधान्नायायाभिसमावर्तन्त
यावतीर्ह वै कियतीश्च प्रजा वाचं वदन्ति ता एनमेकधान्नायायाभिसमावर्तन्ते य एतेनाभिषिच्यते
स एष ओदनसवो राडसि विराडसीत्येतानीव सर्वाणि भवन्ति सर्वाण्यन्नानि भवन्ति सर्वे पुरुषा-
स्सर्वाण्येवान्नान्यवरुन्द्धे सर्वान् पुरुषान् हिरण्यं ब्रह्मणे ददाति तेजस्तेन परिक्रीणाति तिसृधन्वं
राजन्यायौजस्तेन परिक्रीणात्यष्ट्रां वैश्याय पुष्टिं तेन परिक्रीणाति माषकमण्डलुं शूद्रायायुस्तेन
परिक्रीणाति हिरण्यमावध्नाति तदेवास्मिन् प्रतिष्ठापयति॥ यदोदनं प्राश्नात्येतदेव सर्वमवरुध्य तद-
स्मिन्नेकधा दधाति रोहिण्यां क्रियते यद् ब्राह्मणा रोहिणी तस्माद्यद्धाति सूर्ये क्रियत एतद्वै प्रजापते

[जरदष्टिर्यथासत्०। ऋ. परि. १७,८; अथर्व. ८,५,२१। तासां त्वा सर्वासा०। अथर्व. ४,८,५(उत्तरार्धः)।
अभि त्वा वर्चसासिचं०। अथर्व. ४,८,६, तै. ब्रा. २,७,१५,४। इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्०। ऋ. १,११,१;
सा. ३४३,८२७; तै. सं. ४,६,३,४ तै. ब्रा. २,७,१५,५]
[१] मै. १,८,१,९; २,५,६। तै. ब्रा. २,७,९।

रूपं यदेष उदेति सर्वा वा एतं प्रजाः प्रतिनन्दन्ति दिदृक्षेण्यो ह दर्शनीयो भवत्यवेत्योऽवभृथा३
नावेत्या३ इति मीमाँसन्ते यदर्भपिञ्जूलैः पावयति तदेवावैति तदु नावैत्युभयमेव करोति द्वाभ्यां
पावयति द्वे सत्यं चानृतं च सत्येनैवास्यानृतं पावयति द्वौ प्राणश्चापानश्च त्रिभिः पावयति त्रिपत्या
हि देवा अथो त्रयो हि प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानः पञ्चभिः पावयत्यपां वा एतदोषधीनां तेजो
यद्दर्भा यद्दर्भपिञ्जूलैः पावयत्यपामेवैनमोषधीनां तेजसाभिषिञ्चति ॥१॥ १-२

आग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावित्रोऽष्टाकपालो बार्हस्पत्यश्चरुरग्नीषोमीय एकादशकपाल-
स्सारस्वतश्चरुर्वारुणो यवमयो दशकपालो द्यावापृथिव्य एककपालो यदाग्नेय आग्नेयो हि ब्राह्मणो यत्
सौम्यस्सौम्यो हि ब्राह्मणो यत् सावित्रः प्रसवायैव सावित्रो यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिरेतद्ब्राह्म-
णस्य वाक्पत्यं यदग्नीषोमीय आग्नेयो हि सौम्यो ब्राह्मणस्तौ यदा संगच्छेते अथ वीर्यावान् भवति
यत् सारस्वतो वाग्वै सरस्वत्येतद्ब्राह्मणस्य प्रत्यक्षं वाक्पत्यं यद्वारुणो निर्वरुणत्वायैव वारुणो यो
ह्येव कश्च सन् सूयते स वारुणो यद् द्यावापृथिव्य इन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत तं द्यावापृथिवी
नान्वमन्येतां तमेतेन भागधेयेनान्वमन्येतां वज्रस्य वा एषोऽनुमानोऽनुमतवज्रस्सूयाता इति यदष्टौ
हवींष्यष्टाक्षरा गायत्री ब्रह्म गायत्री ब्रह्मणा सूयाता इति कृष्णाजिनेऽध्यभिषिच्यत ऋक्सामयोर्वा
एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनमृक्सामयोरेवाध्यभिषिच्यते हिरण्येन घृतमुत्पुनाति तेजस एव रुचे यद्
घृतेनाध्यभिषिच्यते तेन ह श्रेष्ठ्यं प्राप्नोति ॥२॥ ३

आग्नेयोऽष्टाकपालः पौष्णश्चरुस्सावित्रोऽष्टाकपालो वैश्वदेवश्चरुस्त्वाष्ट्रोऽष्टाकपालो वारुणो यवमयो
दशकपालो मारुतस्सप्तकपालो मारुती पृश्निर्वशा यदाग्नेय ऋद्ध्या एवाग्नेयोऽग्निमुखा ह्यृद्धिर्यत् पौष्णः
पुष्ट्यै पूषा पुष्टिर्वैश्यस्य यद् सावित्रः प्रसवायैव सावित्रो यद्वैश्वदेवो वैश्वदेवो हि वैश्यो यत् त्वाष्ट्र-
स्त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति यद्वारुणो निर्वरुणत्वायैव वारुणो यो ह्येव कश्च सन् सूयते स वारुणो
यन्मारुतो मारुतो हि वैश्यो यत् सप्त हवींषि सप्त हि मरुतोऽथैषा मारुती पृश्निर्वशा तस्या अग्नये
समवत्तं भवत्यथाभिषिच्यते विड्वै मरुतो विश एव मध्यतोऽभिषिच्यते तस्मादेष विशः प्रियो विशो
हि मध्यतोऽभिषिच्यत ऋषभचर्मेऽध्यभिषिच्यते स हि प्रजनयिता प्रजननाय दध्नाभिषिच्यते मृदु
दधि मृदुमेवैनं करोति ॥३॥ ४

नराशँसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवश्शुचयो धियंधास्स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ ५

[१] मै. १,१०,१; २,६,९ । तै. ब्रा. ७,३ ।
[३] मै. १,१०,१; २,६,९ । तै. ब्रा. २,७,२ ।
[४] मै. ४,१३,१३ । तै. ब्रा. २,७,५ । [नराशँसस्य महिमान० । ऋ. ७,२,२; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,७]

यो वै सोमेन यजते स देवसवो यः पशुना यजते स देवसवो य इष्टया यजते स मनुष्यसव
एतं वै पृथ्यै देवा अन्वमन्यन्त तेनैनमभ्यभिषिञ्चन् सोऽप्यारण्यानां पशूनामसूयत यावतीर्वै
कियतीश्च प्रजा वाचं वदन्ति तासाँ सर्वासाँ सूयते य एतेनाभिषिच्यते निह्नुत्यैवैतदभिषिच्यते
नाराशँस्यर्चा मनुष्या हि नराशँसो यत् किंच राजसूयेऽनुत्तरवेदिकं तदत्र सर्वं क्रियतेऽथैष मारुत
एकविंशतिकपालस्तस्याग्नये समवत्तं भवत्यथाभिषिच्यते त्रिर्वै सप्त सप्त मरुतो विण्मरुतो विश एव
मध्यतोऽभिषिच्यते तस्मादेष विशः प्रियो विशो हि मध्यतोऽभिषिच्यते ॥४॥ ६

सं ते पयाँसि समु यन्तु वाजास्सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाँस्युत्तमानि धिष्व ॥ ७

न वै सोमेन सोमस्य सवोऽस्त्यभिषिक्तो हि सोमो घ्नन्ति हि सोमं न हि हतस्सूयते सौम्या
त्रिष्टुभाभिषिच्यते सा हि सोमसवस्सौम्याँ सूतवशायामध्यभिषिच्यते सा हि रेतोधा रेतस्सोमो यत्
किंच राजसूयेऽन्यत् स्तोमेभ्यस्तदत्र सर्वं क्रियतेऽथैष मारुत एकविंशतिकपालस्तस्याग्नये समवत्तं
भवत्यथाभिषिच्यते त्रिर्वै सप्त सप्त मरुतो विण्मरुतो विश एव मध्यतोऽभिषिच्यते तस्मादेष विशः
प्रियो विशो हि मध्यतोऽभिषिच्यते ॥५॥ ८

यद्वै राजसूयँ स वरुणसवो यद्वाजपेयँ स सम्राट् सवः प्रजापतिस्साम्राज्यं परमेष्ठी स्वाराज्यं गौरेव
स एष गोसवो यथैव ह गौरेवमिव भवति य एतेनाभिषिच्यते प्रतिदुहाभिषिच्यते तद्धि स्वाराज्यं
बृहत्साम तद्धि स्वाराज्यमयुतं दक्षिणा तद्धि स्वाराज्यं पवमाने कण्वरथंतरं प्रोहन्ति दक्षिणत
आहवनीयस्यानुद्धृतेऽभिषिच्यत इयं वै गौरस्या एवानन्तर्हितोऽभिषिच्यते षट्त्रिँशस्स्तोमो भवति
पशुस्तोमो वा एष तेन गोसवः ॥६॥ ९

त्रिवृत्स्तोमो ब्रह्मवर्चसं वै त्रिवृद्ब्रह्मवर्चसेनैवाभिषिच्यते रथंतरँ साम ब्रह्मवर्चसं वै रथंतरं ब्रह्म-
वर्चसेनाभिषिच्यतेऽग्निष्टोमस्स्तोमो ब्रह्मवर्चसं वा अग्निष्टोमो ब्रह्मवर्चसेनैवाभिषिच्यते प्रवर्ग्यः
प्रवृज्यते ब्रह्मवर्चसं वै प्रवर्ग्यो ब्रह्मवर्चसेनैवाभिषिच्यते परिस्रजी होतारुणो मिर्मिरस्त्रिशुक्रिय एतद्वै
ब्रह्मवर्चसस्य रूपं रूपेणैव ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्ध एकं वा एतत् सवनं यदेकस्स्तोम एकं छन्द एकादशै-
कादशानुसवनं दद्यात् सवनानां व्यावृत्त्यै त्रयस्त्रिँशत् संपद्यन्ते त्रयस्त्रिँशद्देवता देवता एवावरुन्द्धेऽश्वं
चतुस्त्रिँशं ददाति प्रजापतिश्चतुस्त्रिँशः प्रजापतिमेवाप्नोति बृहस्पतये वै देवा न श्रदद्धत तमेतेन

[५] मै. २,७,१९६ । तै. ब्रा. २,७,४ । वा. १२,११३ । काण्व. १३,११२ । [सं ते पयाँसि समु० । ऋ. १,९१,
१८; तै. सं. ४,२,७,४]
[६] तै. ब्रा. २,७,६ । [७] तै. ब्रा. २,७,१ ।

प्रजापतिरयाजयत् ततोऽस्मै श्रदद्धत स एष बृहस्पतिसवो ब्रह्मवर्चसकाम एतेन यजेत ब्रह्मवर्चसी
भवति तस्यैषैव नियतिः प्रजास्सर्वा ब्राह्मणीर्ब्रह्मवर्चसिनीर्भवन्ति ॥७॥ १०

पञ्चदशस्स्तोम ओजो वै वीर्यं पञ्चदश ओजसैव वीर्येणाभिषिच्यते बृहत्सामौजो वै वीर्यं बृह-
दोजसैव वीर्येणाभिषिच्यत उक्थ्यस्स्तोम ओजो वै वीर्यमुक्थान्योजसैव वीर्येणाभिषिच्यत ऐन्द्रँ
स्तोत्रं च शस्त्रं च त्रैष्टुभाः पवमाना ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुबोजसैव वीर्येणाभिषिच्यत इन्द्रं वै सर्वा
मृधस्सर्वा नाष्ट्रास्सर्वाणि रक्षाँस्यजिघाँसँस्तमेतेन प्रजापतिरयाजयत् स सर्वा मृधस्सर्वा नाष्ट्रास्सर्वाणि
रक्षाँस्यतरदिन्द्रो यजमानो यदेतेन यजते सर्वा एव मृधस्सर्वा नाष्ट्रास्सर्वाणि रक्षाँसि तरति स एष
इन्द्रसवः ॥८॥ ११

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवो दिव आसुवा भूरि पश्वः ॥ १२
भूतो भूतेषु चरति प्रविष्टस्स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्यौश्चरति राजसूयँ स राजा राज्यमनुमन्यतामिदम् ॥ १३
येभिश्शिल्पैः पप्रथानामदृँहद्येभिर्द्यामभ्यपिंशत् प्रजापतिः ।
येभिर्वाचं विश्वरूपेभिरव्ययँस्तेनेममग्न इह वर्चसा समङ्ग्धि ॥ १४
येभिरादित्यस्तपति प्र केतुभिर्येभिस्सूर्यो ददृशे चित्रभानुः ।
येभिर्वाचं पुष्कलेभिरव्ययँस्तेनेममग्न इह वर्चसा समङ्ग्धि ॥ १५
आयं भातु शवसा पञ्च कृष्टीरिन्द्र इव ज्येष्ठो भवतु प्रजानाम् ।
अस्मिन्नस्तु पुष्कलं चित्रभान्वायं पृणातु रजसा विमानम् ॥ १६
यत् ते शिल्पं कश्यप रोचनावदिन्द्रियावत् पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन् सूर्या अर्पितास्सप्त साकं तस्मिन् राजानमधि विश्रयेमम् ॥ १७
व्याघ्रो वैय्याघ्रे अधि विक्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १८
या आपो दिव्याः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्ष्या उत पार्थिवासः ।
तासां त्वा सर्वासां रुचाभिषिञ्चामि वर्चसा ॥ १९

[९] मै. २,६,१०; २,१०,४२ । वा. ८,४३; १३,४६; १४,६१; १७,६१; ३३,४४ । काण्व. ८,२५; २३,५७; १६,
८२,३८,६१; ३२,४४ । तै. ब्रा. २,७,१५—१६; २,७,८ [सावीर्हि देव प्रथमाय० । अथर्व. ७,१४,३ ।
भूतो भूतेषु चरति० । अथर्व. ४,८,१ । व्याघ्रो वैय्याघ्रे अधि० । अथर्व. ४,८,४ । या आपो दिव्याः
पयसा० । अथर्व. ४,८,५]

अभि त्वा वर्चसासिचं यज्ञेन पयसा सह ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ॥ २०
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानाँ सत्पतिं पतिम् ॥ २१
अभि प्रेहि वीरयस्वोग्रश्चेत्ता सपत्नहा । आतिष्ठ मित्रवर्धनस्तुभ्यं देवा अधिब्रुवन् ॥ २२
आतिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनँ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २३
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तदस्यासुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ २४
अनु त्वेन्द्रो मदत्वनु बृहस्पतिरनु सोमो अन्वग्निरावीत् ।
अनु त्वा विश्वे अवन्तु देवास्सप्त राजानो य उदाभिषिक्ताः ॥ २५
अनु त्वा मित्रावरुणा इहावतामनु द्यावापृथिवी ओषधीभिः ।
सूर्योऽहोभिरनु त्वावतु चन्द्रमा नक्षत्रैरनु त्वावीत् ॥ २६
द्यौश्च त्वा पृथिवी च प्रचेतसा यज्ञो बृहद्दक्षिणा त्वा पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निरनु त्वावतु सविता सवेन ॥ २७
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाँ सिंहं हिन्वन्ति महते धनाय ।
मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तरुक्षं न सुम्भुस्तस्थिवाँसम् ॥९॥ २८

बोधश्च मा प्रतीबोधश्च पुरस्ताद्गोपायतामस्वप्नश्च मानवद्राणश्च दक्षिणतो गोपायतां गोपायमानश्च
मा रक्षमाणश्च पश्चाद्गोपायतां जागृविश्च मारुन्धती चोत्तराद्गोपायताम् ॥ २९
अनमित्रं नो अधरागनमित्रमुदक् कृधि । इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥ ३०
अनमित्रैरहोभिस्सचीमहि विश्वे देवा ह्यनमित्रा न उपसस्सन्तु निम्रुचः ॥ याष्षडुर्वीः पञ्च
प्रदिशस्ता नः पान्तु मित्रधा नो मित्रे दधाता अभयं नो अस्तु ॥ ३१-३२

[अभि त्वा वर्चसासिचं० । अथर्व. ४,८,६ । इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्० । ऋ. १,११,१; सा.
३४३,८२७; तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५ । अभि प्रेहि वीरयस्व० अथर्व. ४,८,२ । आतिष्ठ वृत्र-
हन् रथं० । ऋ. १,८४,३; तै. सं. १,४,३७,१ । आतिष्ठन्तं परि विश्वे० । ऋ. ३,३८,४; अथर्व. ३,८,३;
तै. ब्रा. २,७,८,१ । द्यौश्च (ना) त्वा पृथिवी च प्रचेतसा० । ऋ. १०,३६,२; अथर्व. ६,५३,१ । एना व्याघ्रं
परिषस्व० । अथर्व. ४,८,७]
[१०] [बोधश्च मा प्रतिबोधश्च० । अथर्व. ८,१,१३ । अनमित्रं नो अधरा० । अथर्व. ६,४०,३]

ये रात्रीमनुतिष्ठथ ये च भूतेषु जागृथ । पशून् ये सर्वान् रक्षथ ते न आत्मसु जागृत ॥ ३३
बोध प्रतिबोधास्वप्नानवद्राण गोपायमान रक्षमाण जागृवऽरुन्धति ये देवास्तनूपास्स्थ ते म इह
तन्वं पात बोध प्रतीबोधेत्यसौ वा आदित्यो बोधोऽग्निः प्रतीबोधोऽस्वप्नानवद्राणेति चन्द्रमा वा
अस्वप्नो यः पवते सोऽनवद्राणो गोपायमान रक्षमाणेत्यहर्वै गोपायमानो रात्री रक्षमाणो जागृवे-
ऽरुन्धतीति यज्ञो वै जागृविर्दक्षिणारुन्धत्येते वै देवा राष्ट्रभृतस्तानेवेह्न आत्मनो गोपीथाय ॥१०॥
३४

ये राष्ट्रभृतो ये राष्ट्रस्यानुभर्तारस्तेभ्यो राष्ट्रीयः परिदेय इमे वाव ते प्राणास्तेभ्य एवैनं परिददाति
तेषामेताः पत्न्यस्तानेता अनु ताभ्योऽत्रापि कार्यं ताभ्य एवैतत् क्रियते ता हुता अनु पुरोधाकामः
कुर्वीत ब्रह्म चैव क्षत्रं च सयुजौ करोति यदि क्षत्रमभिचरेत् स न इदं ब्रह्म पात्विति ब्रूयाद्ब्रह्म क्षत्र-
मपि ब्रह्मणि वै क्षत्रं प्रतिष्ठितं ब्रह्मण एव क्षत्रमन्तरेति ताजक् प्रधन्वत्यपरुरुत्स्यमानः कुर्वीत संग्रामे
कुर्वीत ये राष्ट्रभृतो ये राष्ट्रस्यानुभर्तारस्तानेवोपासरत् तेऽस्मै राष्ट्रमनुबिभ्रति य एषां लोकानां द्वन्द्वं
राष्ट्रभृतो वेद नास्य राष्ट्रं व्यथते ॥ अग्निश्चास्यां मनश्च वायुश्चान्तरिक्षस्य यज्ञश्च सूर्यश्च दिवश्चन्द्रमाश्च
रथस्सप्तथस्सं हि भयादपवहति त्रिपप्ताः कत्रचिनस्त्रिपप्ता निपङ्गिणस्त्रिपप्ता आयुधिनस्तेभ्यो
राष्ट्रीयः परिदेय इमे वाव ते प्राणास्तेभ्य एवैनं परिददात्यभितो वा अग्निष्टोमे देवासुरा यत्ता
आसन्नग्निष्टोमे देवा उक्थेष्वसुरास्ते देवा यदोक्थान्यागच्छन् यदोक्थान्यभ्यजयन्नथेन्द्रोऽब्रवीत्
कश्चाहं चेदमाहरिष्याव इत्यहं चेत्यब्रवीद्वरुणस्त्वं वरुणोऽन्वतिष्ठतेन्द्र आहरत् सोऽब्रवीत् कश्चाहं
चेदमाहरिष्याव इत्यहं चेत्यब्रवीद्बृहस्पतिस्त्वं बृहस्पतिरन्वतिष्ठतेन्द्र आहरत् सोऽब्रवीत् कश्चाहं चेद-
माहरिष्याव इत्यहं चेत्यब्रवीद्विष्णुस्त्वं विष्णुरन्वतिष्ठतेन्द्र आहरदेताभिर्वै देवताभिस्सायुज्येन देवा
असुराणां राष्ट्रमाददतैताभिरेव देवताभिस्सायुज्येन भ्रातृव्याद्राष्ट्रमादाय तद्राष्ट्रं कृत्वा ये राष्ट्रभृतो
ये राष्ट्रस्यानुभर्तारस्तेभ्य एनत् संप्रयच्छत्येतद्धि भृतैतन्मा रिपदित्यसौ वा आदित्यो राष्ट्रभृतयो
राष्ट्रभृतस्तेभ्य एवैनत् संप्रयच्छत्येतद्धि भृतैतन्मा रिपदिति य एषं सप्तथः प्रजापतिरेवैष यन्मध्ये
जुहुयाद्यत्रधून्वीतैनं परोगव्यूति होतव्युस्तथा हैनं न व्यवधूनुत ऊर्ध्वस्तिष्ठञ्जुहोत्यूर्ध्वो हि तिष्ठन्
वीर्यावत्तरः पूर्णया स्रुचा जुहोति पूर्णः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति ॥११॥ ३५–३६

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञेऽकुर्वत यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत ते देवा एतान्
राष्ट्रभृतोऽपश्यँस्तेषामग्निं चौषधीश्च प्रथमेनावृञ्जत सूर्यं च मनाँसि च द्वितीयेन चन्द्रमसं च नक्षत्राणि

[ये रात्री(०त्रिं०)मनुतिष्ठथ०। अथर्व. १९,४८,५]
[११] मै. २,१,१२ (२१)। [१२] मै. १,९,२०; १०,२८; २,५,३; ३,१०,१४; ४,३,४। तै. सं. ३,४,८।
काठ० ४७

च तृतीयेन यज्ञं च दक्षिणां च चतुर्थेन तेऽसुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्रा यत् किंचाकुर्वत तां
कृत्यामेवाकुर्वत तस्मान्नादक्षिणं गृहे हविष्कुर्वीत यत् कुरुते कृत्यां कुरुते प्रजापतिं चक्सोमानि च
पञ्चमेन वायुमप ओषधीरूर्जं षष्ठेनैतावद्वावास्ति यावदेवास्ति तदेषामेतैरवृञ्जत य एष सप्तथः
प्रजापतिरेवैष तेनैनाद् प्राणुदन्त ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन्नेतैर्यजेत भ्रातृव्यवानेताव-
द्वावास्ति यावदेवास्ति तदेतैर्भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एष सप्तथः प्रजापतिरेवैष तेनैनं प्रणुदते भवत्या-
त्मना परास्य भ्रातृव्यो भवत्येतैर्याजयेद्राजानं संग्रामे संयत्त एतावद्वावास्ति यावदेवास्ति तदेषा-
मेतैर्वृङ्क्ते य एष सप्तथः प्रजापतिरेवैष तेनैनान् प्रणुदते जित्यै जयत्येवैतैर्याजयेद्यद्राष्ट्रं शिथिल-
मिवावहतं स्यात् तेषां यावन्तो रथास्स्युस्तान् सर्वान् योजयित्वा यच्छ्रेष्ठस्स्यात् तस्य दक्षिणं
रथचक्रं प्रवृह्य नाड्यां जुहुयाद्वीर्यं वै रथो वीर्येणैवैषां राष्ट्रं विसंश्यति रथचक्रं विगृह्णन्ति वज्रो वै
रथो वज्रेणैवैषां पाप्मानं विगृह्णन्ति यदि क्लृप्ताहुतिरत्येति कल्पत एभ्यो यस्य नाड्यां जुहोति
स दक्षिणा समृद्ध्यै ॥१२॥ ३७

कोऽसि कतमोऽसि को नामासि कस्मै त्वा कतमस्मै त्वा काय त्वा कामस्य त्वासन्नसा अपि-
दधामि स त्वं नो देव गायत्रेण च्छन्दसाह्ने परिपाहि मृडोऽसि मृडसे द्विपदे चतुष्पद आदित्यो-
ऽसि वृष्णो अश्वस्य रेतो देवानां यातुरसि यातुमेऽस्यसुमाद्धि तं जहि स त्वं नो देव त्रैष्टुभेन
च्छन्दसा रात्र्यै परिपाहि मृणोऽसि मृणामुष्य द्विपदश्चतुष्पदस्स्कम्भोऽसि वरुणस्य राज्ञो वरुणस्य
पाशस्सोऽमुमह्ने बधान श्लेष्कोऽसि निर्ऋत्याः पाशस्सोऽमुं रात्र्यै बधानाग्नये वीतमन्यवे स्वाहा ॥
३८

येनेन्द्रो वृत्रं निरहँश्छन्दसस्स्वादनुष्टुभः । तेनाहमद्य शँसेनामुं निर्हन्म्योकसः ॥१३॥ ३९

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्नसुरेषु तर्ह्यमृतमासीच्छुष्णे दानवे तच्छुष्ण एवान्तरास्येऽबि-
भर्यान् देवानामघ्नँस्तदेव तेऽभवन् यानसुराणां ताञ्छुष्णोऽमृतेनाभिव्यानीत् ते समानन् स इन्द्रो-
ऽवेदसुरेषु वा अमृतँ शुष्णे दानव इति मध्वष्ठीला भूत्वा प्रपथेऽशयत् ताँ शुष्णोऽभि व्याददात्
तस्येन्द्रश्श्येनो भूत्वास्यादमृतं निरमुष्णात् तस्मादेष वयसां वीर्यावत्तम इन्द्रस्य ह्येषैका तनूरमृत-
मेष बिभर्ति य एवं वेद यं कामयेतामयाविनं जीवेदिति तं व्यादायाभिव्यन्यादमृतेनैवैनमभि-
व्यनिति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते ॥ देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसँस्ते देवा
असुरानघ्नँस्तेषां य उदशिष्यन्त ते देवानन्वरोहँस्त एनान् वृञ्जानाः प्रत्यस्यमाना आयँस्ते देवा-
स्समितिमकुर्वत त एतौ ब्रह्मयातुं च देवयातुं चापश्यँस्ता एभ्यः प्रत्यवासृजँस्ता एनान्निरदहतां

[१३] वा. ७,२९; २०,४। काण्व. ९,४; २१,९५। [१४] मै. १,९,२०; १०,२८; २,५,३; ३,१०,१४; ४,३,४।

ता एनान् वृञ्जानौ प्रत्यस्यमाना ऐतां तेषां येऽत्यमुच्यन्त ते मनुष्यान् प्राविशँस्तज्जन्मानो यातु-
धानाः क्रव्याद इतरे न ह वा अस्य यातुधाना न क्रव्यादो न पिशाचा न रक्षाँसीशते नैनं शप्तं
नाभिचरितमागच्छति य एवं वेद ॥ तद्यदेनं यातुधान इति ब्रूयुर्नापह्नुवीतैतौ ह्येव तस्य यातू को-
ऽसि कतमोऽसीत्येष वै ब्रह्मयातुस्तस्मा एवैनमपिदधाति स त्वं नो देव गायत्रेण च्छन्दसाह्ने परि-
पाहीत्यह्न एवात्मानं परिददाति मृडोऽसि मृडसे द्विपदे चतुष्पद इति द्विपदश्चैवास्मै चतुष्पदश्च
पशून् परिददात्यादित्योऽसि वृष्णो अश्वस्य रेतो देवानां यातुरसि यातुमेऽस्यसुमद्धि तं जहीत्येष
वै देवयातुस्तस्मा एवैनमपिदधाति स त्वं नो देव त्रैष्टुभेन च्छन्दसा रात्र्यै परिपाहीति रात्र्या
एवात्मानं परिददाति मृणोऽसि मृणामुष्य द्विपदश्चतुष्पद इति द्विपदश्चैवास्मै चतुष्पदश्च पशून-
पिदधाति ॥ स्कम्भोऽसि श्लेष्कोऽसीत्येतौ वै यमश्चा अहश्च रात्री च ता इदं मनुष्यान् वृञ्जानौ
प्रत्यस्यमाना इतस्ताभ्यामेवैनमपिदधाति ता एनं वृञ्जानौ प्रत्यस्यमाना इतो यदा प्रब्लयव्यथित
इव मन्येताग्नये वीतमन्यवे स्वाहेति जुहुयादीश्वरो वा अभिचरोऽशान्तः प्रत्यङ्क्ता शान्त्यै॥१४॥
४०–४३

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा कामाय स्वाहा स्वप्नाय स्वाहाह्ने स्वाहा रात्र्यै
स्वाहा तृप्तस्त्वं तृप्तोऽहं तृप्तो मे प्राणस्तृप्तो मे व्यानस्तृप्तो मेऽपानस्तृप्तं मे चक्षुस्तृप्तं मे श्रोत्रं तृप्ता
मे वाक् तृप्तो म आत्मा द्यौर्मे पिता पृथिवी मे माता सूर्यो मे चक्षुर्वातो मे प्राणोऽस्तृतो नामाह-
मस्मि स इदं द्यावापृथिव्योरात्मानं परिददे तयोश्श्रये तयोः पराक्रमे गोपीथाय पिपृतं मा मा
मा हिंसिष्टं पाहि द्विषः पाहि रिपः पाह्यदेव्या अभिशस्त्या अश्मासि तनूपानस्स म इह तन्वं
पाहि ॥ त्वयि मे मर्म बृहस्पतौ प्राणस्स मा मृत्योः पात्वुद्वावमुन्मनीपामुदिन्द्रियमुत्प्रजामुत्पशू-
नेतँ स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशोऽभिदासतीन्द्राग्नी मैतस्या दिशो गोपायतां पितरो मैतस्या
दिशो गोपायन्तु सविता मैतस्या दिशो गोपायतु मित्रावरुणौ मैतस्या दिशो गोपायतां बृहस्पति-
र्मैतस्या दिशो गोपायत्वायुष्टदायुपतिं स्वधावो गोपा नस्स्थ रक्षितारो मा नः कश्चित् प्रखान्मा
४४–४५
प्रमेष्महि ॥१५॥

यान् वा असुरा देवेभ्यो न्यदधत तान् देवा अन्वपश्यन् यान् देवा असुरेभ्यस्तानसुरा नान्व-
पश्यँस्ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् यत्रान्यो नानुपश्येत् तदेताभिर्दधीत भ्रातृव्यस्यानु-
पश्यत्यै मेवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहेति त्रय

[१५] मै. ३,१२,१२। वा. २२,२७,२९; ३९,१। काण्व. २४,३७,३९; ३९,१। [पृथिव्यै स्वाहा। अथर्व. ५,९,२,
६। अन्तरिक्षाय स्वाहा। अथर्व. ५,९,३,४। दिवे स्वाहा। अथर्व. ५,९,१,५]
[१६] (पञ्चदशानुवाके द्रष्टव्यम्।)

इमे लोका एभ्य एवैनं लोकेभ्यः परिददाति कामाय स्वाहेत्यायुर्वै परमः काम आयुरेव तेन
स्पृणोति स्वप्नाय स्वाहेति यो एवैनँ स्वपन्तं नाष्ट्रा दिप्सन्ति स्वप्न एनं ताभ्यः पात्यह्ने स्वाहा
रात्र्यै स्वाहेति द्वौ वा ऋतू अहश्च रात्री च ताभ्यामेवैनं परिददाति सप्तैता आहुतीर्जुहोति सप्त प्राणा-
स्तानेवास्मिन् दधाति तानस्मिन्नधि विपावयति तानस्मादनपगान् करोति ॥ घृतेनाश्मानमनक्त्येषं
हुतहुतस्यात्मा तेजो घृतं यावानेवास्यात्मा तं तेजसानक्ति सर्वतोऽनक्ति सर्वत एवैनं तेजसा समर्ध-
यति तृप्तस्त्वं तृप्तोऽहमिति प्राणानेवास्यैतन्महिम्नो व्याचष्टे प्राणा हि महिमानो द्यौर्मे पिता पृथिवी
मे माता सूर्यो मे चक्षुर्वातो मे प्राण इत्येताभ्य एव देवताभ्य आत्मानं परिददात्यस्तृतो नामाहमस्मि
स इदं द्यावापृथिव्योरात्मानं परिदद इति द्यावापृथिव्योरेवात्मानं परिदत्ते तयोश्श्रये तयोः पराक्रम
इति यो वा अनयोः पराक्रमते न स व्यथतेऽनयोरेव पराक्रँस्त गोपीथाय पिपृतं मा मा मा हिंसिष्ट-
मित्यात्मनोऽहिंसायै पाहि द्विषः पाहि रिपः पाह्यदेव्या अभिशस्त्या इत्याशिषमेवाशास्ते ॥ सर्वतो-
ऽश्मानं परिहरत्येषं हुतं सर्वतः पातीयान्तं लोष्टमुद्द्रुजत्येतावान् ह्यात्मा बाहुमात्रमवटं खनत्येता-
वान् हि पुरुषस्तमवधायाथाश्मानमथ हिरण्यमस्या एवैनमुत्तरार्धे निदधात्यनिखातो भवति नाभिं
प्रति निखनति नाभिर्वै प्राणान् दाधार ये चोर्ध्वा ये चावाञ्चः प्राणानां धृत्यै हिरण्येन
संस्पर्शयत्यमृतं वै हिरण्यममृतेनैवैनँ संदधात्युद्वावमुन्मनीपाममित्येतानि वा अस्य निखनेत्
तान्येवोद्धरत्यात्ममात्रीं वेदिर्भवत्यात्ममात्रं हि वर्म यन्नात्ममात्री स्यान्नात्मने क्रियेतैतावती पृथिवी
यावती वेदिरस्या एवैतदन्तेषु पुरोऽधित देवपुरा एवाकृताथो एता एव देवता एतासां दिशां
परस्पा अकृत गोपीथाय ॥१६॥ ४६–४८

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यँस्तं वसिष्ठ एव प्रत्यक्षमपश्यत् सोऽबिभेदितरेभ्यो मर्षिभ्यः
प्रवक्ष्यतीति सोऽब्रवीद्ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि यथा त्वत्पुरोहिताः प्रजाः प्रजनिष्यन्तेऽथ मेतरेभ्य
ऋषिभ्यो मा प्रवोच इति तस्मा एतान् स्तोमभागानब्रवीत् ततो वसिष्ठपुरोहिताः प्रजाः प्राजायन्त
स्तोमो वा एतेषां भागस्तत् स्तोमभागानां स्तोमभागत्वं रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्वेति क्षयो
वै देवा देवेभ्य एव यज्ञं प्राह प्रेतिरसि धर्मणे त्वा धर्मं जिन्वेति धर्मो मनुष्या मनुष्येभ्य एव यज्ञं
प्राहान्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व संधिरस्यन्तरिक्षाय त्वान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिरसि पृथिव्यै
त्वा पृथिवीं जिन्वेति त्रय इमे लोका एभ्य एव लोकेभ्यो यज्ञं प्राह विष्टम्भोऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं
जिन्वेति वृष्टिमेवावरुन्द्धे प्रवास्यनुवासीति मिथुनमेव करोत्युशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्व प्रकेतो-
ऽसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व सुदितिरस्यादित्येभ्यस्त्वादित्याञ्जिन्वेत्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा

[१७] काठ. १७,७,२०। मै. २,८,८ (२०)। कपि. २६,६। वा. १५,६–७,९। काण्व. १६ ९–१२,१४–१५।
तै. सं. ३,५,२; ४,४,१। गोप० ब्रा. २,२,१३–१४। मा. श्रौ. ६,२,२। तै. सं. ३,५,२।

द्वादशादित्या वाग्द्वात्रिँशी स्वरस्त्रयस्त्रिँशस्त्रयस्त्रिँशद्देवता देवतास्व एव यज्ञं प्रतिष्ठापयत्योजोऽसि पितृभ्यस्त्वा पितॄञ्जिन्वेति देवानेव पितॄननुसंतनोति तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्वेति प्रजा एव पशूननुसंतनोति पृतनाषाडसि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्वेति प्रजा एव पशूननुसंतनोति रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्वेत्योषधीष्वेव पशून् प्रतिष्ठापयत्यभिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रं जिन्वेति वज्रो वै षोडशी भ्रातृव्योऽन्वेवैनं सज्जाद्देशोऽन्वैव्यात्रृचोऽधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणं जिन्वेति प्राणमेवावरुन्द्धे धरुणोऽस्यपानाय त्वापानं जिन्वेत्यपानमेवावरुन्द्धे संसर्पोऽसि चक्षुषे त्वा चक्षुर्जिन्वेति चक्षुरेवावरुन्द्धे वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्वेति श्रोत्रमेवावरुन्द्धे ॥ एतद्वै पुरुषमकरथातः प्राणानुवैति प्रजापतिमेव त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वानूवृदस्यनूवृते त्वेति मिथुनमेव करोति संरोहोऽसि विरोहोऽसि प्ररोहोऽस्यनुरोहोऽसीति प्रजापतिरेव वसुकोऽसि वस्यष्टिरसि वेषश्रीरसीति प्रतिष्ठितिरेव देवस्य सवितुः प्रसवे बृहस्पतये स्तुतेति यद्वै सविता देवेभ्यः प्रासुवत् तेनार्ध्नुवन् सवितृप्रसूता एव स्तुवन्त्यृध्नुवन्ति यस्यैवं विदुषो यस्यैवं विद्वान् स्तोमभागैर्ब्रह्मा भवति वसीयान् भवति ॥१७॥ ४९–५०

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन मधुमतीं मधुमता सृजामि सँ सोमेन सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ ५१

परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमँ हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ ५२

वायुः पूतः पुनातु ते ॥ ५३

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियँ सुरया सोमस्सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५४

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ ५५

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा जुष्टं गृह्णामि सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्ण एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ५६

[१८] काठ. १२.९ (४९-५०) । मै. २.११.४; ४,३,८; ३,११,७ (३१; ३६-४१; ४९-५६) । वा. १०,३२; १९,१, ३-४,६; २०,३३; २३,३८ । काण्व. ११,८४; २१,१,३—५; २२,१८; २५,४० । तै. सं. १,८,२१; ३,२,८३ । तै. ब्रा. १,४,३; २,६,१,३ । [परीतो षिञ्चता सुतँ० । ऋ. ९.१०७,१; सा. ५१२; १३१३; तै. ब्रा. २,६, १,१ । वायुः पूत० । अथर्व. ६,५१,१ । पुनातु (०ति) ते० । ऋ. ९,१,६; तै. सं. १,८,२१,१; तै. ब्रा. २,६, १,२ । कुविदङ्ग यवमन्तो० । ऋ. १०.१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२; तै. सं. १,८,२१,१; ५,२,११,२; तै. ब्रा. २,६,१,३]

नाना हि वां देवकृतँ सदस्कृतं मा सँसृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिँसीस्स्वं योनिमाविशन् ॥ ५७

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजस्सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलमेष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ५८

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति । श्येनं पतत्रिणँ सिँहँ सोमं पात्वँहसः ॥ ५९

संपृचस्स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृचस्स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥१८॥ ६०

[१३८१]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां सवा नाम सप्तत्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३७॥

अथाष्टात्रिंशं स्थानकम् ।

सौत्रामणी ।

सोमो राजामृतँ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ १

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हँसश्शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ २

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ३

अन्नात् परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्बं जहाति जन्मना ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ५

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ६

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ सत्ये प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७

[१] मै. ३,११,६ (३९-४८) । वा. १९,७२—७९ । काण्व. २१,७२—७६ । तै. ब्रा. २,६,२ ।

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसँ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयस्सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियँ विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥१॥ ८

सुरावन्तं बर्हिषदँ सुवीरं यज्ञँ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानास्सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानास्स्वर्काः ॥ ९

यस्ते रसस्संभृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मस्सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विना इन्द्रमग्निम् ॥ १०

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तँ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुँ सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥ ११

यदत्र रिप्तँ रसिनस्सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥ १२

पितृभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमः पितामहेभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यस्स्वधायिभ्यस्स्वधा नमोऽक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरश्शुन्धध्वम् ॥ १३

पुनन्तु मा पितरस्सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।
पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा ॥ १४

पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ १५

अग्न आयूँषि पवसे ॥ १६

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ १७

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँरनु ॥ १८

यत् ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ १९

पवमानस्सुवर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥ २०

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥ २१

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्या इमास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तस्सधमादेषु वयँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २२

[१] मै. ३,११,७; १० (७७-८०; ८८-१०४) । वा. १९,३२—४८ । काण्व. २१,३२—५० । तै. ब्रा. २,६,३,६ । अग्न आयूँषि पवसे० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७; १५१८; तै. सं. १,३,१४,७; ४,२९,१; ५,५,२, ६,६,४; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१ । पुनन्तु मा (माँ) देवजना० । ऋ. ९,६७,२७; अथर्व. ६,१९,१; तै. ब्रा. १,४,८,१; २,६,३,४ । यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने० । ऋ. ९,६७,२३; तै. ब्रा. १,४,८,२ । पवमानस्सुवर्जनः पवित्रेण० । ऋ. ९,६७,२२ । उभाभ्यां देव सवितः० । ऋ. ९,६७,२५; अथर्व. ६,१९,३ । वैश्वदेवी पुनती० । ऋ. खि. १०,२; अथर्व. ६,६२,२ । वयँ स्याम पतयो रयीणाम् (च. पा.) । ऋ. ४,५०,६; ५,५५,१०; ८,४०,१२; ४८,१३; १०,१२१,१०; अथर्व. ६,६४,२]

ये समानास्समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकस्स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ २३

ये समानास्समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाँ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतँ समाः ॥ २४

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ २५

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरँ सर्वगणँ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसन्यभयसनि लोकसनि ।
अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ २ ॥ २६

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञँ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यम् ॥ २७

तदस्य रूपममृतँ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवतास्संरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माँसमभवन्न लाजाः ॥ २८

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ २९

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ३०

पयसा शुक्रममृतं जनित्रँ सुराया मूत्राज्जनयन्ति रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातँ सब्वं तदारात् ॥ ३१

इन्द्रस्सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ३२

अन्त्राणि स्थाली मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ३३

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तश्शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ३४

मुखँ सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन् सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ३५

[द्वे स्रुती अशृणवं० । ऋ. १०.८८,१५; तै. ब्रा. १,४, २,३; २,६,३,५; शत. ब्रा. १४,९; १,४]
[३] मै. ३,११,९ (७२—८७) । वा. १९,८०-९५ । काण्व. २१,७७-९२ । तै. ब्रा. २,६,४ ।

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ३६
अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ३७
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याँ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ३८
आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ३९
अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैस्समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपँ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधाना ॥ ४०
सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपां रसेन वरुणेन साम्नेन्द्रँ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ४१
तेजः पशूनाँ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
आश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतस्सोम इन्दुः ॥३॥ ४२

क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि स्योनासि सुषदासि स्योनामासीद सुषदामासीद मा त्वा
हिँसीन्मा मा हिँसीः ॥ ४३
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ४४
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसा-
याभिषिञ्चामि देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याँ सरस्वत्या भैषज्येन
वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामि देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामिन्द्रस्ये-
न्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि कोऽसि को नामासि कस्मै त्वा काय त्वा सुश्लोका३
सुमङ्गला३ सत्यराजा३न् ॥ ४५
शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणो अमृतँ सम्राट् चक्षुर्विराट्छ्रोत्रम् ॥ ४६

[४] मै. ३,११,८ (६१-७१) । वा. १०,२७; २०,१—१३ । काण्व. ११.३७; २१.९३-१०६ । तै. ब्रा. २.६.५ । देवस्य त्वा [निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८.१६,१; तै. ब्रा. १,७,१०,२, २,६,५,१ । ऐ. ब्रा. ८,७] सवितुः० । काठ. १,२,५; अथर्व. १९,५१,२ ।

जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युस्स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ४७
बाहू मे बलमिन्द्रियँ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ४८
पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमँसौ ग्रीवाश्च श्रोण्यौ । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ४९
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दा अण्डौ मे भगस्सौभाग्यं पसः ॥ ५०
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ।
प्रति क्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु ॥ ५१
प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे ।
प्रति द्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥ ५२
त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिंशास्सुराधसः । बृहस्पतिप्रसूता देवस्य सवितुस्सवे ॥ ५३
देवा देवैरवन्तु मा प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयास्सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूँषि
सामभिस्सामान्यृग्भिर्ऋचो याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान् समर्ध-
यन्तु भूस्स्वाहा ॥ ५४
लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म आनतिरागतिः ।
माँसं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥४॥ ५५

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँहसः ॥ ५६
यदि दिवा यदि नक्तमेनाँसि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँहसः॥ ५७
यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनाँसि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वँहसः॥५८
यद्ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्य एनश्चकृमा वयम् ।
यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ ५९
यदापो अघ्न्या वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्चावभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणो-
ऽव देवैर्देवकृतमेनोऽयाडव मर्त्यैर्मर्त्यकृतमुरोरा नो देव रिषस्पाहि ॥ ६०
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तस्सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ॥ ६१

[५] मै. ३,११,१०; १,३,३९; २,१२,५; ४,९,२७ (१०५—११२; ११८—११९; ३४; १५६) वा. २०,१४-२३; ८,२५; २७,१०; ३५,१४; ३८,२४—२५ । काण्व. २२,१—८; ९,२५; २९,१०; ३५,४७; ३८,२४ । तै. सं. १,४ ४५ । [यद्देवा देवहेडनं० । अथर्व. ६,११४,१ । यदि दिवा यदि० । अथर्व. ६,११५,१ । यदि जाग्र-द्यदि स्वप्न० । अथर्व. ६,११४,१—२ । यदापो अघ्न्या वरुणेति० । अथर्व. ७,८३,२; १९,४४,९]

सुमित्रा ण आप ओषधयो भवन्तु दुर्मित्रास्तस्मै भूयासुर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥६२
द्रुपदादिवेन्मुमुचानस्स्विन्नस्स्नात्वी मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापश्शुन्धन्तु मैनसः ॥ ६३
उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४
प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशः प्रतियुतो वरुणस्य पाशः ॥ एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि ॥ तेजो-
ऽसि तेजो मयि धेहि ॥ ६५-६७
अपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगन्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सँसृज वर्चसा ॥ ६८
समाववर्ति पृथिवी समुषास्समु सूर्यः । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभुं कामं व्यश्नवै ॥ ६९
भूस्स्वाहा ॥५॥ ७०

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ७१
नराशँसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात् प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजतु प्रचेताः ॥ ७२
ईडितो देवैर्हरिवाँ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरंदरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ७३
जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न इन्द्रः प्राचीनँ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानँ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिस्सजोषाः ॥ ७४
इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयस्सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताँ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥ ७५
उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
पेशस्वती तन्तुना संव्ययन्ती देवानां देवं यजतस्सुरुक्मे ॥ ७६
दैव्या मिमाना मनसा पुरुत्रा होतारा इन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ७७

[द्रुपदादिव मुमुचानः० । अथर्व. ६,११५,३ । उद्वयं तमसस्परि० । ऋ. १,५०,१०; अथर्व. ७,५३,७; तै.सं.४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,४,९; ६,६,४; तै. आ. ६,३,२ । एधोऽस्येधिषीमहि० । अथर्व. ७,८९,४ । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि० । अथर्व. ७,८९,४; १९,३१,१२ । अपो (आपो) अद्यान्वचारिषं० । ऋ. १,२३,२३; १०,९,९; तै. सं. १,३,४५,३; ४६,२; तै. ब्रा. २,६,६,५ ।
[६] मै. ३,११,२ (१-११) । वा. २०,३६—४६ । काण्व. २२,२१—३१ । तै. ब्रा. २,६,८ ।

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा वृषणं न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥ ७८
त्वष्टा दधदिन्द्राय शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ७९
वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानस्स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ८०
स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य जुषताँ स्वाहा ॥६॥ ८१

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतश्श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाक् ॥ ८२
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अँहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ ८३
तँ सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौँस्यानि नियुतस्सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आविशन्ति ॥ ८४
सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ८५
प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्राभर दक्षिणेना वसूनि पतिस्सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ ८६
स शेवृधमधिधा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नस्स्वपत्या इषे धाः ॥७॥ ८७

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुस्सरस्वती सामँ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ८८

[७] मै. ४,१२,३; १४,१८ (४९; २५३-२७८) । तै. ब्रा. २,६,९ । [आ चर्षणिप्रा वृषभो० । ऋ. १,१७७,१; तै. ब्रा. २,४,३,११ । विवेष यन्मा धिषणा० । ऋ. ३,३२,१४; तै. सं. १,६,१२,३; २,५,१२,५; तै. ब्रा. २, ६,९,१ । तँ सध्रीचीरूतयो० । ऋ. ३,३६,३; तै. ब्रा. २,४,५,२; ६,९,१ । सत्यमित् तन्न त्वावाँ० । ऋ. ६,३०,४; तै. ब्रा. २,६,९,१ । प्र ससाहिषे० । ऋ. १०,१८०,१; तै. सं. ३,४,११,४; तै. ब्रा. २,६,९,१; ३,५,७,४ । स शेवृधमधिधा० । ऋ. १,५४,११; तै. ब्रा. २,६,९,१]
[८] मै. ३,११,३ (१३—२३) । वा. २०,५५—६६ । काण्व. २२,४१—५१ । तै. ब्रा. २,६,१२ । [समिद्धो अग्नि-रश्विना० । अथर्व. ७,७३,१]

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजाँसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ८९
इन्द्रायेन्दुं सरस्वती नराशँसेन नग्नहुम् । अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ९०
आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरश्विना इषँ समूर्जँ सं रयिं दधुः॥ ९१
अश्विना नमुचेस्सुतँ सोमँ शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ९२
कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे कामान् सरस्वती ॥ ९३
उषासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रँ सायमिन्द्रियैः । संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या॥ ९४
पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तँ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रँ सचा सुते ॥ ९५
तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्रायासुषवुर्मदम् ॥ ९६
अश्विना भेषजं मधु भेषजं नस्सरस्वती । गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुतम् ।
समधातां सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥८॥ ९७

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ९८
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् । स बिभेद बलं मघं नमुचा आसुरे सचा ॥ ९९
तमिन्द्रं पशवस्सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियम् ॥ १००
य इन्द्र इन्द्रियं दधुस्सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत॥ १०१
सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ १०२
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत॥ १०३
अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रँ सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ १०४
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ १०५
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम्॥ १०६
युवँ सुराममश्विना नमुचा आसुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ १०७
पुत्रमिव पितरा अश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दँसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबश्शचीभिस्सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ १०८

[९] मै. ३,११,४ (९४—३०,३२-३७) । वा. २०,६७-७९; १०,३३-३४ । काण्व. २२,५२—६४; ११,४६-४७ । तै. ब्रा. २,६,१२—१३ । [युवँ सुराममश्विना० । ऋ. १०,१३१,४; अथर्व. २०,१२५,४; तै. ब्रा. १,४,२, १ । पुत्रमिव पितरा० । ऋ. १०,१३१,५; अथर्व. २०,१२५,५; तै. ब्रा. १,४,२,१]

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टा आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥ १०९
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥९॥ ११०

समिद्धो अग्निस्समिधा सुषमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द इन्द्रियं त्रियविर्गौर्वयो दधुः॥ १११
तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः॥ ११२
इडाभिरग्निरीड्यस्सोमो देवो अमर्त्यः । अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ ११३
सुबर्हिरग्निः पूषण्वाँ स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ ११४
दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥ ११५
उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड्गौर्वयो दधुः॥ ११६
दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ ११७
तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।
विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ ११८
त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ ११९
शमिता नो वनस्पतिस्सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ १२०
स्वाहा यज्ञं वरुणस्सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्द इन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः ॥१०॥ १२१

वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ १२२
ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् ।
बृहता यशसा बलँ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ १२३

[यस्मिन्नश्वास ऋषभास० । ऋ. १०,९१,१४; तै. ब्रा. १,४,२,१ । अहाव्यग्ने हविरास्ये० । ऋ. १०,९१, १५; तै. ब्रा. १,४,२,१]
[१०] मै. ३,११,११ (११३—१२३) । वा. २१,१२—२२ । काण्व. २३,१३—२३ । तै. ब्रा. २,६,१८ ।
[११] मै. ३,११,१२ (१२४—१२९) । वा. २१,२३,२८ । काण्व. २३,२४—२९ । तै. ब्रा. २,६,१९ ।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्यास्स्तोमे सप्तदशे स्तुतम् । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥ १२४
शारदेनर्तुना देवा एकविंश ऋभवस्स्तुतम् । वैराजेन श्रिया श्रियँ हविरिन्द्रे वयो दधुः॥ १२५
हेमन्तेनर्तुना देवास्त्रिणवे मरुतस्स्तुतम् । बलेन शक्वरीस्सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ १२६
शैशिरेणर्तुना देवास्त्रयस्त्रिंशेऽमृतँ स्तुतम् ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रँ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥११॥ १२७

बृहस्पतिपुरोहिता देवा देवानां देवा देवाः प्रथमजा देवा देवेषु पराक्रमध्वं प्रथमा द्वितीयेषु
द्वितीयास्तृतीयेषु त्रिरेकादशास्त्रयस्त्रिंशा अनु व आरभ इदं शकेयं यदिदं करोमि ते मावत ते मा
जिन्वतास्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्यां देवहूत्याम् ॥ १२८
योऽस्य कौष्ठ्य जगतः पार्थिवस्यैक इद्वशी । यमं भङ्ग्यश्रवो गाय यो राजानपरोध्यः॥ १२९
यमं गाय भङ्ग्यश्रवो यो राजानपरोध्यः । येनापो नद्यो धन्वानि येन द्यौः पृथिवी दृढा॥ १३०
हिरण्यकेशान् सुधुरान् हिरण्याक्षानयश्शफान् ।
अश्वाननश्यतो दानं यमो राजाभितिष्ठति ॥ १३१
अयं योऽसि यस्य त इदं शिर एतेन त्वमत्र शीर्षण्वानेधि ।
इदमस्माकं भुजे भोगाय भूयात् ॥ १३२
उदीचे अधि मातुः पृथिव्या विश आविश महतस्सधस्थात् ।
आशुं त्वाजौ दधिरे देवयन्तो हव्यवाहं भुवनस्य गोपाम् ॥ १३३
धनंजयं संदहमानः पृतन्यूनग्न इषमूर्जं यजमानाय धेहि ।
विश्वाः पृतनास्संदहमानस्संहोमिरेकं नो धेहि बहुधा विरूपं यत् प्रजा अनु जीवन्ति सर्वाः॥
१३४
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये त्वा वैश्वानराय त्रैष्टुभेन
च्छन्दसाहरामि देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये त्वा वैश्वानरायानु-
ष्टुभेन च्छन्दसा रात्रीमुपदधे ॥
१३५
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवस्समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयामि सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ १३६

[१२] मै. १,१,२१,२३; २,७२; ३,९; ७,४; ९,५; ११,२६; २,६,१०; ७,९,२०-२८, ३०; ३,५,३; ८०२; ११, ६१; ४,१,९,४२,६०; ९,१,९९, १३,३२—४४ । काठ. १,२,५ । वा. ११,२५—२६; १२,४४ । काण्व. १२,२५—२६,८२; १३,४५ । [योऽस्य कौष्ठ्य० । तै. आ. ६,५,२ । देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७ । पुनस्त्वादित्या रुद्रा० । ऋ. १०,११६,८; अथर्व. १२,२,६; तै. सं. ४,१,३,४; ५,२,२,५]

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १३७
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ १३८
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १३९
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रँ सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ १४०
परि प्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । सेधन् विश्वा अप द्विषो दहन् रक्षाँसि विश्वहा॥ १४१
चितस्स्थ परिचित ऊर्ध्वश्रितश्श्रयध्वम् । प्रजामस्मै रयिमस्मै नियच्छत ॥१२॥ १४२

व्रजं कृणुध्वँ स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वस्सुस्रोचमसो दृँहता तम् ॥ १४३
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीडुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवस्समीचीः पुमाँसं जातमभिसंरभन्ताम् ॥ १४४
साकँ हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानुरोहति ॥ १४५
अपास्मदेतु निर्ऋतिर्नेहास्या अपि किं चन । अगोतां नाम्नीं पाप्मानँ सर्वं तदपहन्महे॥ १४६
अपास्य नैर्ऋतान् पाशान् मृत्योरेकशतं चये ।
अपास्य ये सिनाः पाशा मृत्योरेकशतँ सुवे ॥ १४७
ये ते पाशा एकशतं मृत्यो मर्त्याय हन्तवे । तांस्ते यज्ञस्य मायया सर्वानवयजामहे॥ १४८
देवीमहँ निर्ऋतिं बाधमानः पितेव पुत्रं दमये वचोभिः ।
या जायमानस्य जायमानस्य शिरो देवी प्रति सुरिर्विचष्टे ॥ १४९
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १५०
ऊर्जं बिभ्रद्वसुवनिस्सुमेधा गृहाणां मोदमाना सुवर्चाः ।
अघोरेण चक्षुषाहँ शिवेन गृहाणां पश्यन् वय उत्तिरामि ॥ १५१

[अग्निर्होता नो अध्वरे० । ऋ. ४,१५,१; तै. ब्रा. ३,६,४,१ । परि त्रिविष्ट्यध्वरं० । ऋ. ४,१५,२; तै. ब्रा. ३,६,४,१ । परि वाजपतिः० । ऋ. ४,१५,३; सा. ३०; तै. सं. ४,१,२,५; तै. सं. ३,६,४,१ । परि त्वाग्ने पुरं वयं० । ऋ. १०,८७,२२; अथर्व. ७,७१,१; ८,३,२२; तै. सं. १,५,६,४; ४,१,२,५]
[१३] मै. २,७,१५२; ४,१२,३५ । वा. १२,५३; ३५,११; ३६,१२-१३ । काण्व. १३,५४; ३५,५४; ३६,११—१३ । [व्रजं कृणुध्वं० । ऋ. १० १०१,८; अथर्व. १९,५८,४ । अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो० । ऋ. ३,२९,१३; तै. ब्रा. १,२,१,१९ । साकँ हि शुचिना० । ऋ. २,५,४ । शं नो देवीरभिष्टय० । ऋ. १०,९,४; सा. ३३; अथर्व. १,६,१; तै. ब्रा. १,२,१,१; २,५,८,५; तै. आ. ४,४२,४]

गृहाणामायुः प्र वयं तिराम गृहा अस्माकं प्रतिरन्त्वायुः ।
येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् येनादित्या वसवो येन रुद्राः ।
येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानस्स्वस्ति ॥ १५२
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नश्शर्म सप्रथाः ॥ १५३

वाक्त्वा समुद्र उपदधातु प्रजावनिं रायस्पोषवनिं मयं वाजिनाय मही ध्रुवा सलिलासि ज्योतिष्मती सा स्वर्गं लोकं प्रजानीहि प्रजापतिः प्रजापतौ सादयतु तयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१३॥
१५४

उदस्थाद्धनजिद्गोजिदश्वजिद्धिरण्यजित् सूनृतया परीवृतः ।
एतच्चक्रेण सविता रथेनोर्जो भागं पृथिवीमेत्यापृणन् ॥ १५५
सं वरत्रान् दधातन निराहावं कृणोतन ।
सिञ्चामहा अवतं वयमुद्रिणं विश्वाहादस्तमक्षितम् ॥ १५६
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतस्सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास्सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ १५७
अनाप्ता या वः प्रथमा यस्यां कर्माणि कुर्वते ।
वीरान्नो अत्र मा दभँस्तद्व एतत् पुरो दधे ॥ १५८
पर्यू षु प्रधन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १५९
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न निमिषन्ति भूर्णयः पदे पदे पाशिनस्सन्ति सेतवः ॥ १६०

मलिम्लुचो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य शर्मासीन्द्रस्य वर्मासीन्द्रस्य वरूथमसि तं त्वा प्रपद्ये सगुस्साश्वस्सपुरुषः ॥ सह यन्मेऽस्ति तेन स मे शर्म च वर्म च भव गायत्रीं लोमभिः प्रविशामि त्रिष्टुभं त्वचा प्रविशामि जगतीं मांसेन प्रविशाम्यनुष्टुभमस्थ्ना प्रविशामि पङ्क्तिं मज्ज्ञा प्रविशामि ॥ १६१-१६२

[स्योना पृथिवी० । ऋ. १,२२,१५; अथर्व. १८,२,१९; तै. आ. १०,१,१०; नि. ९,३२]
[१४] मै. २,७,१६२; १९७ : वा. १३,३ । काण्व. १४,३ । [सं वरत्रान् दधातन० । तै. सं. ४,२,५,५ । ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं० । अथर्व. ४,१,१; ५,६,१; काठ. १६,२०,१८३; २०,५,८; तै. सं. ४,२,८,२ । अनाप्ता या (ये) वः० । अथर्व. ४,७,७ । पर्यू षु प्रधन्व० । ऋ. ९,११०,१; सा. ४२८; १३६४; अथर्व. ५,६,४ । सहस्रधारेऽव समस्वरन्० । ऋ. ९,७३,४; अथर्व. ५,६,३]
काठ० ४९

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति शूराः ।
तन्नस्त्रायतां तन्वस्सर्वतो महदायुष्मन्तो जरामुपगच्छेम जीवाः ॥१४॥ १६३
[१५४४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां सौत्रामणीनामाष्टात्रिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशं स्थानकम् ।

यदक्रन्दः ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १
अभ्यस्थाद्विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।
बृहस्पतिस्सवितेन्द्रस्तदाह पूषा माधात् सुकृतस्य लोके ॥ २
आस्यादुदस्थादजनिष्ट विप्रो व्यास्यन् मृधो अशिशीत बाहू ।
समपृक्षि ज्योतिषा सूर्यस्य परा बाधस्व निर्ऋतिं पराचैः ॥ ३
प्रजापतिस्त्वा सादयतु ॥ ४
दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् ।
विश्वायुश्शर्म सप्रथा नमस्पथे वयस्स्वस्सदः ॥ ५
प्राचीनमूर्ध्वमधरागपागुदग्देवाः पान्तु यजमानममृतमृतात् ।
तेन ब्रह्मणा तेन च्छन्दसा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ६
आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीस्सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥ ७

अर्थेतस्स्थान्वगतोऽग्नेर्वस्तेजसा देवताभिर्गृह्णामि शर्म च स्थ वर्म च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि ज्योतिषे वां शुक्रास्स्थ वीर्यावतीरिन्द्रस्य व इन्द्रियावतो देवताभिर्गृह्णाम्यमृतं च स्थ सत्यं च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि चक्षुषे वां मन्द्रास्स्थाभिभुवो विश्वेषां वो देवानां देवताभ्यो गृह्णामि रक्षोघ्नीश्च स्थारातिघ्नीश्च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि रेतसे वामधिपतिरस्यूर्जस्वानादित्यानां वो देवानां देवताभिर्गृह्णामि सपत्नघ्नीश्च

[ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं० । अथर्व. ८,५,१९]
[१] मै. १,५,३०; ६,१७,२०; २,७,३२; १२,१२; ४,९,२१२ । वा. ११,३०; १३,१७; १८,५४; २९,१२ । काण्व. १२,३०; १४,१७; २०,२४; ३१,२४ । [यदक्रन्दः प्रथमं जायमान० । ऋ. १,१६३,१; तै. सं. ४,२,८,१; ६,७,१ । अभ्यस्थाद्विश्वा पृतना० । तै. सं. ४,२,८,१ । आपो रेवतीः क्षयथा० । ऋ. १०,३०,१२]

स्थाभिमातिघ्नीश्च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि प्रजाभ्यो वां व्रजक्षितस्स्थोर्ध्वश्रितो बृहस्पतेर्वो ब्रह्मणा देवताभिर्गृह्णामि वसु च स्थ वामं च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि तेजसे वां क्षत्रभृतस्स्थौजस्विनीर्मित्रावरुणयोर्वो देवयोर्देवताभिर्गृह्णामि भूतं च स्थ भव्यं च स्थ देवस्य वस्सवितुः प्रसवे मधुमतीस्सादयामि वर्चसे वां दिवि श्रयस्वान्तरिक्षमापृण पृथिव्यां
८
कल्पस्व ॥१॥

यददस्संप्रयतीरहा अनदता हते । तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥ ९
यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभँ समवल्गत । तदिन्द्र आप्नोद्यतीर्वस्तस्मादापो अनुष्ठन ॥ १०
अपकामँ स्यन्दमाना अवीवरत वो हिकम् । ११
इन्द्रो वश्शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वः प्रियम् ॥
एको देवो अप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना उपेत्य । उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥ १२
आपो देवीर्घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः । १३
तीव्रा रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसागन् ॥ १४
तपो योनिरसि प्राजापत्यं विश्वाभिस्त्वा धीभिरुपदधामि ॥
ये यज्ञं समगृभ्णन् देवा देवेभ्यस्परि । १५
तान् गायत्री नयतु प्रजानती स्वर्गे लोके अमृतं दुहाना ॥
ये ज्योतींषि संदधति स्वरारोहन्तो अमृतस्य लोकम् । १६
ते यन्तु प्रजानन्तो यज्ञं दधानास्सुकृतस्य लोकम् ॥
यः पन्था विततो देवयानश्छन्दोभिर्विगृहीत एति । १७
तेनातिष्ठ दिवमन्तरिक्षं यज्ञं गृहीत्वा सुकृतस्य लोकम् ॥
ये पशवो मेध्यासो यज्ञस्य योनिमभिसंबभूवुः । १८
तान् ददन्ते कवयो विपश्चितो यज्ञं दुहानास्सुकृतस्य लोके ॥
यो वज्रस्सहस्रधारो द्यावापृथिव्योरधि निर्मितः । १९
तेनैतु यजमानस्स्वस्त्या दिवोऽधि पृष्ठमस्थात् ॥

[१] मै. २,१३,१-२; २,७,१५ (७-१२,१५; १९९) । वा. १०,५; २२,६,२०; ३१,१७ । काण्व. ११,१२; २४,६; ३५,१७ । तै. सं. ५,६,१ । [यददस्संप्रयतीरहा० । अथर्व. ३,१३,१; तै. सं. ५,६,१,२ । यत् प्रेषिता वरुणेना० । अथर्व. ३,१३,२; तै. सं. ५,६,१,२ । अपकामँ स्यन्दमाना० । अथर्व. ३,१३,३; तै. सं. ५,६,१,३ । एको (वो) देवो अप्यतिष्ठत्० । अथर्व. ३,१३,४ । आपो देवी(भद्रा)र्घृतमिदाप० । अथर्व. ३,१३,५; तै. सं. ५,६,१,३]

आयवे स्वाहायुष्कृते स्वाहायोः परमने स्वाहा विष्णवे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा ॥ २०
अद्भ्यस्संभृतः पृथिव्या रसो विश्वकर्मणस्समवर्तताधि ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवमाजानमग्रे ॥ २१

त्रिवृत् ते अग्ने शिरस्तन्मे अग्ने शिरः पञ्चदशौ ते अग्ने बाहू तौ मे अग्ने बाहू सप्तदशस्ते अग्न आत्मा स मे अग्न आत्मैकविंशौ ते अग्न ऊरू तौ मे अग्न ऊरू त्रिणवौ ते अग्ने अष्ठीवन्तौ तौ मे अग्ने अष्ठीवन्तौ त्रयस्त्रिंशं ते अग्ने प्रतिष्ठानं तन्मे अग्ने प्रतिष्ठानं त्रिवृत् ते अग्ने शिरस्तेन माभिपाहि पञ्चदशौ ते अग्ने बाहू ताभ्यां माभिपाहि सप्तदशस्ते अग्न आत्मा तेन माभिपाह्येकविंशौ ते अग्न ऊरू ताभ्यां माभिपाहि त्रिणवौ ते अग्ने अष्ठीवन्तौ ताभ्यां माभिपाहि त्रयस्त्रिंशं ते अग्ने प्रतिष्ठानं तेन माभिपाहि ॥२॥ २२

प्रजापतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथोऽसि पृथिव्यसि भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृँह पृथिवीं मा हिंसीर्विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्रायाग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शंतमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २३
चित्तिं जुहोमि मनसा यथा देवा इहागमन् । वीतिहोत्रा ऋतावृधः ॥ २४
समुद्रस्य वयुनस्य परमञ्जुहोमि विश्वकर्मणे । विश्वाहादाम्यँ हविः ॥ २५

स्वाहोदपुरा नामास्यन्नेन विष्टा वसवो रक्षितारोऽग्निरधि वियत्तो अस्यां तां त्वा प्रपद्ये सा मे शर्म च वर्म च भव तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ज्योतिरसि ज्योतिर्मे यच्छ पृथिवीं दृँह पृथिव्या मा पाहि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद भूरसि भुवनस्य रेत इष्टका स्वर्गो लोको मनसा त्वान्वारोहामि सूरसि स्वरसीष्टका स्वर्गे लोके वाचा त्वान्वारोहामि यास्ते अग्न आर्द्रा योनयो याः कुलायिनीर्ये ते अग्न इन्दवो या उ नाभयो यास्ते अग्ने तन्व ऊर्जो नाम ताभिस्त्वमुभयीभिस्संविदानास्स्वयंचित्यानास्तन्वो निषीद ॥ २६
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥ २७
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८

[अद्भ्यस्संभृतः पृथिव्या० । तै. आ. ३,१३; १०,१,३]
[२] मै. २,७,१६; ८,१४; १०,६; १२,५; ३,४,६; ४,९,१६ । (२१८,२२०—२२५,२२९—२३०,२३२—२३४; ३३; २५; ६; ६८-६९; २१२) । वा. ८,३२; १२,५३; १३,१७,२७—३२; १७,७८; २७,१ । काण्व. ९,३१; १३,५४; १४,१७,२९—३४; १८,७८; २९,१ । चित्तिं जुहोमि० । तै. सं. ५,५,४,३ । मधु वाता ऋतायते० । ऋ. १,९०,६; तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०,१०,२; शत० ब्रा. १४,९,३,११ । मधु नक्तमुतोषसो० । ऋ. १,९०,७; तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०,१०,२; शत. ब्रा. १४,९,३,११]

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९
सँसर्पन् त्रीन् समुद्रान् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम्।
तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः पुरीषं वसानस्सुकृतस्य लोकम् ॥ ३०
अपां गम्भीरं गच्छ मा त्वा सूर्यः परिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः।
अनु त्वा दिव्या वृष्टिस्सचतामच्छिद्राः प्रजा अभिविपश्य ॥ ३१
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२
स्पृशा देवेभिरमृतेनागादुखा स्वसारमधि वेदिमस्थात्।
सत्यं पूर्वैर्ऋषिभिश्चाकॢपानोऽग्निः प्रविद्वाँ इह तद्दधातु ॥ ३३
पृथिवि पृथिव्यां सीद माता मातरि माता स्योना स्योनायाम् ॥ ३४
ऋतुं देवानाममृतत्वमीमहेऽग्निं सधस्थे सदनेष्वच्युतम्।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसँ स्तोमस्य धामन्निदधे पुरीष्यम् ॥ ३५
न्यधुर्माग्नया कवयो वयोधसमग्निं सधस्थे सदनेषु सुक्रतुम्।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसँ स्तोमस्य धामन् न्यधां पुरीष्यम् ॥ ३६
समिध्यमानं समिधा समिन्धतेऽग्निं सधस्थे सदनेष्वद्भुतम्।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसँ स्तोमस्य धामन् पवमानमाभृतम् ॥ ३७
समास्त्वाग्ने ॥३॥ ३८

विश्वकर्मा दिशां पतिः प्रजापतिस्स नः पशून् पातु स मां पातु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद प्रजापतिर्दिशां पतिः प्रजापतिस्स नः पशून् पातु स मां पातु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद रुद्रो दिशां पतिर्वरुणो दिशां पतिरग्निर्दिशां पतिः प्रजापतिस्स नः पशून् पातु स मां पातु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ मा छन्दस्तद् पृथिव्यग्निर्देवता प्रमा छन्दस्तदन्तरिक्षं वातो देवता प्रतिमा छन्दस्तद् द्यौस्सूर्यो देवताऽस्त्रीवयश्छन्दस्तद्दिशस्सोमो देवता विराट् छन्दस्तद्वाग्वरुणो देवता गायत्री छन्दस्तदजा बृहस्पतिर्देवता त्रिष्टुप् छन्दस्तद्धिरण्यमिन्द्रो देवता जगती छन्दस्तद्गौः प्रजापतिर्देवतानुष्टुप् छन्दस्तदायुर्मित्रो देवतोष्णिहा छन्दस्तच्चक्षुः पूषा देवता बृहती छन्दस्तद्दृष्टिः पर्जन्यो

[मधुमान्नो वनस्पति०। ऋ. १,९०,८. तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०.१०,२; शत. ब्रा. १४,९,३,१३। मही द्यौः पृथिवी च न०। ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,२। समास्त्वाग्ने०। अथर्व. २.६.१]
[४] मै. २,१३,१४ (९६-९७)। वा. १४,१८-२०; १२,५३; १३,१९,२४; १४,६,१२,१४; १५,५८,६४। काण्व. १५,१८-२२; १३,५४; १४,१९,२५; १५,५,१९-१६; १६,७९,८४। तै. सं. ४,३,७,१; ५,५,५।

देवता पङ्क्तिश्छन्दस्तदश्वः परमेष्ठी देवता तेन ब्रह्मणा तेन च्छन्दसा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्सीदत ॥४॥ ३९-४०

ऋतसदसि सत्यसदसि तेजस्सदसि वर्चस्सदसि यशस्सदसि गृणानासि धामासि धाम्ने त्वा धामभ्यस्त्वा धामसु सीद सनिरसि सन्ये त्वा सनेयं वित्तिरसि वित्त्यै त्वा विदेयं कर्मासि कर्मणे त्वा क्रियासँ शक्तिरसि शक्त्यै त्वा शकेयं भूतिरसि भूत्यै त्वा भूयासं गूर्दोऽसि गूर्दाय त्वा गूर्देभ्यस्त्वा गूर्दे सीद क्षत्रं पाहि क्षत्रं पिन्व क्षत्रं जिन्व क्षत्रं यच्छ क्षत्रमसि क्षत्राय त्वा क्षत्रेभ्यस्त्वा क्षत्रे सीद विश्वेषु त्वा पार्थिवेषु सादयामि विश्वेषु त्वान्तरिक्षेषु सादयामि विश्वेषु त्वा दिव्येषु सादयामि विश्वासु त्वाप्सु सादयामि विश्वासु त्वौषधिषु सादयामि विश्वेषु त्वा वनस्पतिषु सादयामि विश्वासु त्वा दिक्षु सादयामि विश्वासु त्वा प्रदिक्षु सादयामि ॥ दिवि सीद स्वर्जिदसि पृतनाजिदसि भूरिजिदस्यभिजिदसि विश्वाजिदसि सर्वजिदसि सत्राजिदसि धनजिदसि भ्राडसि विभ्राडसि प्रभ्राडसि सपत्नहनं त्वा वज्रँ सादयामि रक्षोहनं त्वा वज्रँ सादयामि पिशाचहनं त्वा वज्रँ सादयामि यातुधानहनं त्वा वज्रँ सादयाम्यरातिहनं त्वा वज्रँ सादयाम्यभिमातिहनं त्वा वज्रँ सादयामि शत्रुहणमसि शत्रुहणं भ्रातृव्यहणमसुरहणं त्वेन्द्रं वज्रँ सादयामि ॥५॥ ४१-४२

उद्यदस्युदितिरस्युद्यत्यस्याक्रममाणास्याक्रामन्त्यस्याक्रान्तिरसि संक्रममाणासि संक्रामन्त्यसि संक्रान्तिरसि स्वर्गासि स्वरसीषि सीदोर्जि सीद भगे सीद द्रविणे सीद सुभूते सीद पृथिव्या यज्ञिये सीद विष्णोः पदे सीदेडायाः पदे सीद घृतवति सीद पिन्वमाने सीद संवत्सरे सीद परिवत्सरे सीदेदावत्सरे सीदानुवत्सरे सीदोद्वत्सरे सीदैकस्यां सीद दशसु सीद शते सीद सहस्रे सीदायुते सीद प्रयुते सीद नियुते सीदार्बुदे सीद न्यर्बुदे सीद बद्वे सीद समुद्रे सीद मध्ये सीदान्ते सीद परार्धे सीद ॥ पिन्वमानासि पिन्वमानाय त्वा पिन्वमानेभ्यस्त्वा पिन्वमाने सीदर्तमस्यृताय त्वर्तेभ्यस्त्वर्ते सीद सत्यमसि सत्याय त्वा सत्येभ्यस्त्वा सत्ये सीद संधिरसि संधये त्वा संधिभ्यस्त्वा संधिषु सीद सँश्लिडसि सँश्लिषे त्वा सँश्लिड्भ्यस्त्वा सँश्लिट्सु सीद संपदसि संपदे त्वा संपद्भ्यस्त्वा संपत्सु सीद ॥६॥ ४३-४४

प्राची दिग्गायत्री छन्दो रथन्तरँ सामाग्निर्देवता वसन्त ऋतुस्त्रिवृत्स्तोमः पञ्चदशवर्तनिस्त्र्यविर्वयः कृतमयानां पुरोवातो वातस्सानग ऋषिर्दक्षिणा दिक् त्रिष्टुप् छन्दो बृहत्सामेन्द्रो देवता ग्रीष्म ऋतुः पञ्चदशस्स्तोमस्सप्तदशवर्तनिर्दित्यवाड्वयस्त्रेतायानां दक्षिणाद्वातो वातः प्रत्न ऋषिः प्रतीची

[६] वा. २७,४५। काण्व. २९,४९।
[७] मै. २,७,२० (२४९-२५२)। वा. १५,१०-१९; ४,१२; १६,६४-६६। काण्व. १६,१६-१७,१९-२०, २२-२३,२५-२६,२८-२९; ४,१६; १७,६४। तै. सं. ४,३,३।

दिग्जगती छन्दो वैरूपँ साम मरुतो देवता वर्षा ऋतुस्सप्तदशस्स्तोम एकविंशवर्तनिस्त्रिवत्सो वयो द्वापरोऽयानां पश्चाद्वातो वातस्सनातन ऋषिरुदीची दिगनुष्टुप् छन्दो वैराजँ साम विश्वे देवा देवता शरदृतुरेकविंशस्स्तोमस्त्रिणववर्तनिस्तुर्यवाड्वय आस्कन्दोऽयानामुत्तराद्वातो वातः पुराण ऋषिरूर्ध्वा दिक् पङ्क्तिश्छन्दश्शाक्वरं रैवतँ साम मित्रावरुणौ देवता हेमन्तशिशिरा ऋतू त्रिणवस्स्तोमस्त्रयस्त्रिंशवर्तनिः पष्ठवाड्वयोऽभिभूरयानां विष्वग्वातो वातस्सुपर्ण ऋषिः पितरः पितामहाः परेऽवरेभ्यस्ते नः पान्तु ते नोऽवन्त्वस्मिन् ब्रह्मन्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्यां देवहूत्यां तेन ब्रह्मणा तेन च्छन्दसा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्सीदत ॥७॥ ४५

आयुषः प्राणँ संतनु प्राणाद्व्यानँ संतनु व्यानादपानँ संतन्वपानाच्चक्षुस्संतनु चक्षुषश्श्रोत्रँ संतनु श्रोत्राद्वाचँ संतनु वाच आत्मानँ संतन्वात्मनः पृथिवीं संतनु पृथिव्या अन्तरिक्षँ संतन्वन्तरिक्षाद्दिवँ संतनु दिवस्स्वस्संतनु पृथिवी यज्ञामावस्या गर्भो वनस्पतयो जराय्वग्निर्वत्सोऽग्निहोत्रं पीयूषोऽन्तरिक्षं यज्ञा धाता गर्भो रुद्रा जरायु वायुर्वत्सो घर्मः पीयूषो द्यौर्वशा स्तनयित्नुर्गर्भो नक्षत्राणि जरायु सूर्यो वत्सो वृष्टिः पीयूष ऋग्वशा बृहद्रथन्तरे गर्भः प्रैषनिविदो जरायु यज्ञो वत्सो दक्षिणा पीयूषो विड्वशा राजन्यो गर्भः पशवो जरायु राजा वत्सो बलिः पीयूषः ॥८॥ ४६

नृमस्कृदसि वाग्विस्कृदसि प्राच्यस्यूर्ध्वास्यन्तरिक्षमसि तेजोदां त्वा तेजसि सादयामि वर्चोदां त्वा वर्चसि सादयामि पयोदां त्वा पयसि सादयामि यशोदां त्वा यशसि सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयामि पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्यन्तरिक्षस्य त्वा द्रविणे सादयामि दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि दिशां त्वा द्रविणे सादयामि द्रविणोदां त्वा द्रविणे सादयाम्यप्सुषदसि वयस्सदसि श्येनसदसि गृध्रसदसि सुपर्णसदसि ॥ ४७
या देव्यसीष्टक आयुर्दा उपशीवरी। सा मामुपशेष्व जायेव पतिमित् सदा ॥ ४८
या देव्यसीष्टके प्राणदा व्यानदा अपानदाश्चक्षुर्दाश्श्रोत्रदा वाग्दा आत्मदाः पृथिविदा अन्तरिक्षदा द्यौदास्स्वर्दाः कुमारीदाः प्रफर्वीदाः प्रथमौपशदा युवतिदा उपशीवरी ॥ सा मामुपशेष्व जायेव पतिमित् सदा ॥९॥ ४९-५०
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत् सावास्वन्तश्चरति प्रविष्टा।
वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री त्रय एनां महिमानस्सचन्ते ॥ ५१

[अग्मिन्‌ ब्रह्मन्य०…। अथर्व. ५,२४,१-१७]
[८] तै. ब्रा. १,५,७।
[९] मै. २,१३,१६; १८ (९९,१०१)। वा. १३,५३। काण्व. १४,५४। तै. सं. ४,४,७; ६। मा. श्रौ. ६,२,३।
[१०] मै. २,१३,१० (७१-८०)। तै. सं. ४,३,११। [इयमेव सा या प्रथमा०। अथर्व. ८,९,११; तै. सं. ४,३,११,१]

छन्दस्वती उषसौ पेपिशाने समानं योनिमनुसंचरेते।
सूर्यपत्नी विचरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ ५२
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मासो अनु रेतसागुः।
प्रजामेका रक्षत्यूर्जमेका क्षत्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ ५३
चतुष्टोममदधाद्या तुरीया यज्ञस्य पक्षा ऋषयो भवन्ती।
गायत्री त्रिष्टुब्जगती विराडर्कं युञ्जानास्स्वराभरन्निदम् ॥ ५४
पञ्चभिर्धाता विदधा इदं यत् तासाँ स्वसॄरजनन् पञ्च पञ्च।
तासामु यन्ति प्रयवेण पञ्च नाना रूपाणि क्रतवो वसानाः ॥ ५५
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्ऌप्तास्समानमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ ५६
ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते नभ उषा देवी सूर्यस्य व्रतेन।
विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे ॥ ५७
त्रिंशत् स्वसार उपयन्ति निष्कृतँ समानं केतुं प्रतिमुञ्चमानाः।
ऋतूँस्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्येछन्दसः परियन्ति भास्वतीः ॥ ५८
शुक्रर्षभा नभसा ज्योतिषागाद्विश्वरूपा शबल्यग्निकेतुः।
समानमर्थँ स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आगाः ॥ ५९
ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्री प्रजानाम्।
एका सती बहुधोषो व्युच्छाजीर्णा त्वं जरय सर्वमन्यत् ॥ ६०
ऋतस्य धाम प्रथमा व्यूषुष्यपामेका महिमानं बिभर्ति।
सूर्यस्यैका चरति निष्कृतानि घर्मस्यैका सवितैकां नियच्छते ॥ ६१
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्।
तेन दस्यून् व्यसहन्त देवा हन्तासुराणामभवच्छचीभिः ॥ ६२

[छन्दस्वती (छन्दः पक्षे) उषसौ (उषसा)०। अथर्व. ८,९,१२; तै. सं. ४,३,११,१। ऋतस्य पन्थामनु०। अथर्व. ८,९,१३; तै. सं. ४,३,११,१। चतुष्टोम० (अग्नीषोमा०)। अथर्व. ८,९,१४; तै. सं. ४,३,११,२। पञ्चभिर्धाता विदधा०। तै. सं. ४,३,११,२। पञ्च व्युष्टीरनु०। अथर्व. ८,९,१५; तै. सं. ४,३,११,४; काठ. २६,११,३६। ज्योतिष्मती प्रतिमुञ्चते०। तै. सं. ४,३,११,३। त्रिंशत् स्वसार उपयन्ति०। तै. सं. ४,३,११,३। शुक्रर्षभा नभसा०। तै. सं. ४,३,११,५। ऋतूनां पत्नी प्रथमे०। तै. सं. ४,३,११,५। ऋतस्य धाम०। तै. सं. ४,३,११,५। एकाष्टका तपसा०। तै. सं. ४,३,११,३]

अनानुजामनुजां मामकर्त सत्यं वदन्त्यनुयच्छ एतत् ।
भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त ॥ ६३
अभून्नु नस्सुमतौ विश्ववेदा आष्ट प्रतिष्ठामविदन्नु गाधम् ।
भूयासमस्य सुमतौ यथा यूयमन्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त ॥ ६४
प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे । सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥१०॥ ६५

अग्निनर्वाषाट् ऋत्वा शचीपतिस्सौहार्देन स्वर्गो यज्ञेन मघवान्मन्युना वृत्रहा वृषभेन त्वष्टा वषट्-
कारेणर्षभाक् पृथिव्या स्तृणीकोऽश्वेन गयस्साम्ना तनूमानृग्भिरन्नादस्तपसानाधृष्टस्सूर्येण विराडृ-
तुभिः प्राभवत् संवत्सरेण पर्यभवदभीषाट् चामीषाश्चाभिवयाश्चोर्ध्ववयाश्च सवयाश्च बृहद्वयाश्च
सासहांश्च सहीयाँश्च सहमानश्च सहस्वाँश्चाभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे ॥११॥ ६६

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधस्सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ६७
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ ६८
अभी षु णस्सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६९
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ ७०
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । अविन्दच्छर्यणावति ॥ ७१
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ७२
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७३
इन्द्रस्स दामने कृत ओजिष्ठस्स बले वृधी । द्युम्नी शुक्री स सोम्यः ॥ ७४

। अनानुजामनुजां०। तै. सं. ४,२,११,३ । अभून्नु नस्सुमतौ०। तै. सं. ४,३,११,४ । प्रथमा ह व्युवास०। अथर्व. २,१०,१; तै. सं. ४,३,११,५]

[११] वा. २७,३५,३७ । काण्व. २९,४०,४२ । तै. सं. ४.४,८ । [अभि त्वा शूर नोनुमः० । ऋ. ७.३२,२२; सा. २३३,६८०, अथर्व. २०.१२१,१, तै. सं. २,४,१४,१ । त्वामिद्धि हवामहे० । ऋ. ६,४६,१; सा. २३४,८०९; अथर्व. २०.९८ १; तै. सं. २,४ १४,३]

[१२] मै. २, १३,६, ९ (२२—३२ ६२—७०) । वा. २७,३५—४२,४४, ३६ ४—६ । काण्व. २९ ४०—४८; ३६.४-६ । [कया नश्चित्र०। ऋ. ४,३१,१; सा. १६९; ६८२, अथर्व. २०,१२४,१; तै. सं ४,२,११,२, तै. आ. ४,४२,२ । कस्त्वा सत्यो मदानां० । ऋ. ४,३१,२; सा. ६८३; अथर्व. २०,१२४,२; तै. आ. ४,४२,३ । अभी षु णस्सखीनां० ऋ. ४,३१.३; सा. ६८४; अथर्व. २०,१२४,३; तै. आ. ४,४२,३ । इन्द्रो दधीचो अस्थभिः० । ऋ. १,८४,१३, सा. १७९; ९१३; अथर्व. २०,४१,१; तै. ब्रा. १,५,८,१। इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः० । ऋ. १,८४,१४; सा. ९१४; अथर्व. २०,४१,२; तै. ब्रा. १,५,८,१ । अत्राह गोरमन्वत० । ऋ. १, ८४,१५; सा. १४७; ९१५; अथर्व. २०,४१,३; तै. ब्रा. १,५,८,१; नि. ४,२५ । तमिन्द्रं वाजयामसि० । ऋ. ८,९३,७; सा. ११९; १२२२; अथर्व. २०,४७,१, १३७,१२; तै. ब्रा. १,५,८,३; २,४,१,३ । इन्द्रस्स दामने कृत० । ऋ. ८,९३,८; सा. १२२३; अथर्व. २०,४७,२; १३७,१३; तै. ब्रा. १,५.८,३]

गिरा वज्रो न संभृतस्सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ७५
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७६
इन्द्र इद्धर्योस्सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७७
इन्द्र वाजेषु नो वह सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ७८
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतस्स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः । ईशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ७९
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ८०
त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः । त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ८१
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्स्तवानो अद्रिवः ।
महस्स्तवानो अद्रिवो गामश्वं रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ८२
यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च चक्षसे ।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शँसिषम् ।
प्रियं मित्रं न शँसिषम् ॥ ८३
ऊर्जो नपातँ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥१२॥ ८४
अग्ने देवाँ इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ८५

[गिरा वज्रो न संभृत० । ऋ. ८,९३.९; सा. १२२४, अथर्व. २०,४७,३, १३७,१४; तै. ब्रा. १,५,८,३ । इन्द्रमिद्गाथिनो० । ऋ. १,७,१; सा. १९८; ७९६; अथर्व. २०,३८.४, ४७,४; ७०,७; तै. सं. १,६,१२,२; तै. ब्रा. १,५.८.१, नि. ७,२ । इन्द्र इद्धर्योस्सचा० । ऋ. १,७,२, सा. ५९७; ७९७; अथर्व. २०,३८,५; ४७, ५; ७० ८; तै. ब्रा. १,५,८,२ । इन्द्र वाजेषु नो० । ऋ. १,७,४; सा. ५९८; ७९८; अथर्व. २०,७०,१०; तै. ब्रा. १,५,८,२ । अभि त्वा शूर नोनुमः० । (एकादशानुवाके द्रष्टव्यम्) । न त्वावाँ अन्यो दिव्यो० । ऋ. ७,३२,२३; सा. ६८१; अथर्व. २०,१२१.२ । त्वामिद्धि हवामहे० । (एकादशानुवाके द्रष्टव्यम्) । स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त० । ऋ. ६,४६,२; सा. ८१०; अथर्व. २०,९८.२ । यज्ञा यज्ञा वो० । ऋ. ६,४८,१; सा. ३५; ७०३ । ऊर्जो नपातं स० । ऋ. ६,४८,२; सा. ७०४]

[१३] मै. २,१३,५; २० (१९;१०३) । वा. १३,३९; १२,५३; १३,१९,२४; १४,६,१२,१४; १५,५७-५८, ६४ । काण्व. १४.४१; १३,५४; १४,१९,२५; १५,५,१५—१६, १६,७९,८४ । तै. ब्रा. ३,११,६,३-४ । मा. श्रौ. ६.२,३ । [अग्ने देवाँ इहावह जज्ञानः० । ऋ. १,१२,३; सा. ७९२, अथर्व. २०,१०१,३; तै. ब्रा. ३,११, ६,२]

अगन्म महो नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धस्स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ ८६
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषस्समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ८७
मनुष्वत् त्वा निधीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ ८८
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवँ सं प्रीतो याति वार्यमिषँ स्तोतृभ्य आभर ॥ ८९
अग्निर्देवता कृत्तिका नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता रोहिणी नक्षत्रं मरुतो देवतेन्वका नक्षत्रं रुद्रो दवता
बाहुर्नक्षत्रमदितिर्देवता पुनर्वसुर्नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवता तिष्यो नक्षत्रँ सर्पा देवताश्लेषा नक्षत्रं
पितरो देवता मघा नक्षत्रं भगो देवता फल्गुनीर्नक्षत्रमर्यमा देवतोत्तराः फल्गुनीर्नक्षत्रँ सविता
देवता हस्तो नक्षत्रं त्वष्टा देवता चित्रा नक्षत्रं वायुर्देवता निष्ट्या नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवता विशाखं
नक्षत्रं मित्रो देवतानूराधा नक्षत्रमिन्द्रो देवता ज्येष्ठा नक्षत्रं निर्ऋतिर्देवता मूलं नक्षत्रमापो देवताषाढा
नक्षत्रं विश्वे देवा देवतोत्तरा अषाढा नक्षत्रं विष्णुर्देवताश्वत्थो नक्षत्रं वसवो देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं
वरुणो देवता शतभिषङ् नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्न्यो देवतोत्तरे प्रोष्ठपदा नक्षत्रं
पूषा देवता रेवती नक्षत्रमश्विनौ देवताश्वयुजौ नक्षत्रं यमो देवतापभरणीर्नक्षत्रमग्ने रुचस्स्थ प्रजापते-
स्सोमस्य धातुर्भूयासं प्रजनिषीय तेन ब्रह्मणा तेन च्छन्दसा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवास्सीदत ९०
॥१३॥ ९१
अग्निर्मूर्धायमग्निस्त्वामग्ने पुष्करादधि ॥
हुवे वस्सुद्योत्मानँ सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ ९२

[अगन्म महो (महा) नमसा०। ऋ. ७,१२,१; सा. १३०४; तै. ब्रा. ३,११,६,२ । मेधाकारं विदथस्य०। ऋ. १०,९१,८; सा. ९८४; तै. ब्रा. ३,११,६,३ । मनुष्वत् त्वा निधीमहि० । ऋ. ५,२१,१; तै. ब्रा. ३,११, ६,३ । अग्निर्हि वाजिनं विशे० । ऋ. ५,६,३; सा. १७३८; तै. ब्रा. ३,११,६,४]

[१४] मै. २,१३,७ (३३,३७—३८,४२—४४) । वा. ३,१२,४०; ११,३२, १३,१४; १५,२०—२२,२७—२८,३१, ४१; २६,१२ । काण्व. ३,१८; १२,३२, १४,१४; १६,४१—४३,४८—४९,५२—५३,६३ । तै. सं. ४,४,५ । [अग्निर्मूर्धा दिवः० । ऋ. ८,४४,१६, सा. २७; १५३२; तै. सं. १,५,५,१; ४,४,१,१, तै. ब्रा. ३,५,७,१ । त्वामग्ने पुष्करादधि० । अयमग्निः० । ऋ. ८,७५,४; ३,१६,१, सा. ६०; तै. सं. २,६,११,१; ४,४,४,१ । हुवे वस्सुद्योत्मानँ० । ऋ. ६,१६,१३, सा. ९; तै. सं. ३,५,११,३, ४,१,३,१ २,४,१ । ऋ. २,४,१]

पुरो वो मन्द्रं दिव्यँ सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिस्स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ ९३
का त आकूतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ ९४
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निस्सुदक्षस्सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यश्शुचिः ॥ ९५
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वने वने ।
स जायसे मथ्यमानस्सहो महत्त्वामाहुस्सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ ९६
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैस्सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ९७
त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईडते । मन्ये त्वा जातवेदसँ स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ ९८
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ९९
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ १००
आ ते अग्न इधीमहि ॥ १०१
आ ते अग्न ऋचा हविश्शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यँ हूयत इषँ स्तोतृभ्य आभर ॥ १०२
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषँ स्तोतृभ्य आभर ॥१४॥ १०३
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ १०४

[पुरो वो मन्द्रं दिव्यँ० । ऋ. ६,१०,१। का त आकूति (उपेति) मनसो० । ऋ. १,७६,१ । जनस्य गोपा अजनिष्ट० । ऋ. ५.११,१; सा. ९०७; तै. सं. ४,४,४,२ । त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा० । ऋ. ५,११,६; सा. ९०८; तै. सं. ४.४,४,२ । यज्ञस्य केतुं प्रथमं० । ऋ. ५,११,२; सा. ९०९; तै. सं. ४,४,४,३ । त्वामग्ने हविष्मन्तो० । ऋ. ५,९,१, तै. ब्रा. २,४,१,४ । त्वां चित्रश्रवस्तम० । ऋ. १,४५,६. तै. सं. ४,४,४,३ । यद्वाहिष्ठं तदग्नये० । ऋ. ५ २५,७; सा. ८६; तै. सं. १.१.१४.४ । आ ते अग्न इधीमहि० । ऋ. ५,६,४. सा. ४१९; १०२२; अथर्व. १८,४,८८; तै. सं. ४,४ ४.६ । आ ते अग्न ऋचा० । ऋ. ५,६,५; सा. १०२३; तै.सं. ४,४,४,६ । अग्निं तं मन्ये० । ऋ. ५,६,१; सा. ४२५; १७३७]

[१५] मै. २,१०,६; १३,८; ४,१०,१, १२,५ (६६; ४६,४९-५१,५५; ९३; १२२-१२४) । वा. १५,३२,३५-३८, ४७; १७,७६ । काण्व. १६,५४,५७—६०,६९, १८,७६ । तै. सं. ४.४,४ । [अग्निं नरो दीधितिभिः० । ऋ. ७,१,१, सा. ७२,१३७३; नि. ५,१०]

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन् सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ १०५
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः॥ १०६
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १०७
अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १०८
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीढुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशस्समग्निमिन्धते नरः ॥ १०९
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानस्सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः॥ ११०
स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ १११
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ११२
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिस्सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ११३
यस्समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः ॥ ११४
तदग्ने द्युम्नमाभर यत् सासहत् सदने कंचिदत्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥ ११५
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ११६
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिश्शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ ११७

[तमग्निमस्ते वसवो० । ऋ. ७,१,२; सा. १३७४ । प्रेद्धो अग्ने दीदिहि० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै.सं. ४,६,५,४ । एना वो अग्निं० । ऋ. ७,१६,१; सा. ४५,७६९; तै. सं. ४,४,४,४; नि.३,२१ । अग्न आयाह्यग्निभि० । ऋ. ८,६०,१; सा. १५४२; अथर्व. २०,१०३,२ । उदस्य शोचिरस्थाद्० । ऋ. ७,१६,३; तै. सं. ४, ४,४,५ । अग्ने वाजस्य गोमतः० । ऋ. १,७९,४; सा. ९९; १५६१; तै. सं. ४,४,४,५ । स इधानो वसुष्कवि० । ऋ. १,७९,५; सा. १५६२; तै. सं. ४,४,४,५ । क्षपो राजन्नुत० । ऋ. १,७९,६; सा. १५६३; तै.सं. ४,४,४,५ । भद्रो नो अग्निराहुतो० । ऋ. ८,१९,१९; सा. १११; १५५१ । यस्समिधा य आहुत्या० । ऋ. ८,१९,५ । तदग्ने द्युम्नमाभर० । ऋ. ८,१९,१५; सा. ११३ । अग्नि होतारं मन्ये० । ऋ. १,१२७,१; सा. ४६५; १८१३; अथर्व. २०,६७,३; तै. सं. ४,३,४,८; नि. ६,८ । यजिष्ठं त्वा यजमाना० । ऋ. १,१२७,२; सा. १८१४]

एवेन सद्यः पर्येषि पार्थिवं मुहुर्गीरितो वृषभः कनिक्रदत् दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ११८
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निश्शुक्रेण शोचिषा बृहत् सूर्यो अरोचत ॥ ११९
भन् मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षाँसि विश्वहा ।
अग्निर्विश्वस्य राजति । अग्निर्विश्वं विराजति । अग्निस्सर्वं विराजति ॥१५॥ १२०
[१९६४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां यद्क्रन्दो नामैकोनचत्वारिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥३९॥

अथ चत्वारिंशं स्थानकम् ।

हिरण्यगर्भः ।

हिरण्यगर्भस्समवर्ततताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १
यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।
ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २
य ओजोदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्स्तभितं येन नाकम् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४

[एवेन सद्यः पर्येति० । ऋ. १,१२८,३ । अचेत्यग्निश्चिकितिः (०तुः)० । ऋ. ८,५६,५; सा. ४४७ । भ्रन्मृध्राण्यप द्विषो० । ऋ. ८,४३,२६]

[१] मै. २,१३,२३ (११०—११७) । वा. १२,१०२; १३,४; २३,१-३; २५,१०-१३; २७,२५—२६; १९,३४; ३२,३,६—७ । काण्व. १३,१०१; १४,४; २५,१-३; २७,१४—१७; २९,३३—३५; ३१,४६ । तै. सं. ४,१, ८,३ । मा. श्रौ. ६,२,३ । [हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; ११,५,१; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३ । यः प्राणतो निमिषतश्च० । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१६,१ । य ओजोदा (आत्मदा)० । ऋ. १०,१२१,२; अथर्व. ४,२,१; १३,३,२४; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१७,१ । येन द्यौरुग्रा० । ऋ. १०,१२१,५; ऋ. परि. ३३,१२; अथर्व. ४,२,४; तै. सं. ४,१,८,५]

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यस्मिन्नधि विततस्सूर एति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५
यस्येमे विश्वे गिरयो महित्वा समुद्रं यस्य रसया सहाहुः ।
दिशो यस्य प्रदिशः पञ्च देवीः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६
आपो ह यन्महतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां निरवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सरं ऋतुभिश्चाक्लृपानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥१॥ ८

प्राणापानाभ्यां त्वा सयुजा युजा युनज्म्याधाराभ्यां त्वा सयुजा युजा युनज्मीन्द्राग्निभ्यां
त्वा सयुजा युजा युनज्मि च्छन्दोभिस्त्वा स्तोमैभिस्त्वोक्थेभिस्त्वा तेजसे त्वा वर्चसे त्वा रय्यै त्वा
पोषाय त्वा सजातानां मध्यमेष्ठ्याय मया त्वा सयुजा युजा युनज्मि ॥ ९

त्वामग्ने वृषभं चेकितानं पुनर्युवानं जनयन्नुपागाम् ।
अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नौ ब्रह्मणा सँशिशाधि ॥ १०
संवत्सरस्य प्रतिमां ये त्वा रात्र्युपासते ।
तेषामायुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सँसृज ॥ २ ॥ ११
यो अप्स्वन्तरग्निर्यो वृत्रे यः पुरुषे यो अश्मनि ।
य आविवेश भुवनानि विश्वा तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १२
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरस्सहसा पृष्टो अग्निस्स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १३

[य इमे द्यावापृथिवी० । ऋ. १०,१२१,६; अथर्व. ४,२,३; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१४ । यस्येमे विश्वे गिरयो (हिमवन्तो)० । ऋ. १०,१२१,४; अथर्व. ४,२,५; तै. सं. ४,१,८,४ । आपो ह यन्महतीः० । ऋ. १०,१२१,७; अथर्व. ४,२,६; तै. सं. ४,१,८,६; ४,१,८,५; तै. आ. १,२३,८ । कस्मै देवाय०-विधेम । ऋ. १०,१२१,१—९; अथर्व. ४,२,१—८ । आ नः प्रजां जनयतु० । ऋ. १०,८५,४३; अथर्व. १४,२,४०]

[२] मा. २,२७; १२,२१—२२; १५,८; १९,६ । काण्व. २,२०; १५,२२—२४; १६,१३; २१,५ । [अस्थूरि णौ (णो) गार्हपत्यानि० । ऋ. ६,१५,१९ (उत्तरार्धः); तै. ब्रा. ३,५,१२,१ । संवत्सरस्य प्रतिमां० । अथर्व. ३,१०,३; तै. सं. ५,७,२,१]

[३] मै. २,१३,११,१३ (८६; ९०—९३,९५) । वा. ८,३६; १२,४३; १३,१९; १४,६,१२,१४; १५,५८,६४; १८, ७१ । काण्व. ८,१७; १३,४३; १४,१९; १५,५,१५—१६; १६,७१,८४; २०,४१ । तै. सं. ४,४,५; ५,५,९,१; [यो अप्स्वन्तरग्नियों (ये अग्नयो)० । अथर्व. ३,२१,१ । पृष्टो दिवि पृष्टो० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १, ५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४; कठ. ४,१६,१३८]

यस्सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्वयाँसि य आविवेश यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १४
विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृँहान्तरिक्षं मा
हिँसीर्विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या
छर्दिषा शंतमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदान्तरिक्षमसि द्यौर्ब्रह्मणा विष्टं रुद्रा रक्षितारो वायुरधि-
विपत्तो अस्यां तां त्वा प्रपद्ये सा मे शर्म च वर्म च भव तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद तेजो-
ऽसि तेजो मे यच्छान्तरिक्षं दृँहान्तरिक्षं मा पाहि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १५
हुतादमग्निं यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिग्रहीतारमाहुः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १६
येनेन्द्रस्य रथँ संबभूवुर्वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
धीरो यश्शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १७
वेदिरसि सुधां मे धेहि वरुणस्य कुक्षी स्थो मा मा संताप्तं तार्क्ष्यारिष्टनेमेऽभि मा सच स्वस्त्या
छर्दिषा शंतमेन नमोऽग्नेर्वैश्वानरस्य हरसे नमश्शरवे त्रायमाण त्रायस्व नो इन्द्रराधि नो ब्रूहि ॥ १८
वर्च आधायि मे तनूस्सह ओजो महद्बलम् । त्रयस्त्रिंशद्वीर्याणि तान्यग्निः प्रददातु मे ॥ १९
आ मा वर्चोऽग्निना दत्तमेतु महि राधस्सह ओजो महद्बलम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय प्रतिगृह्णामि महत इन्द्रियाय ॥ २०
अग्ने दुध्राग्ने कव्याग्ने किंशिलाग्ने वन्याग्ने कक्ष्य या त इषुर्युवा नाम तस्यै ते विधेम तया नः
पाहि तस्यै ते स्वाहा ॥३॥ २१

रोहितेषु त्वा जीमूतेषु सादयाम्यरुणेषु त्वा जीमूतेषु सादयामि कृष्णेषु त्वा नीलेषु त्वासितेषु
त्वा जीमूतेषु सादयाम्यम्बा नामासि दुला नामासि नितत्नी नामासि चुपुणीका नामास्यभ्रयन्ती
नामासि मेघयन्ती नामासि वर्षयन्ती नामासि ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि

[यस्सोमे (यः सोमे)अन्तर्यो० । अथर्व. ३,२१,२ । हुतादमग्निं यमु० (यो देवो विश्वादयमु) । अथर्व. ३,२१,४ (पूर्वार्धः) । यं जोहवीमि०...तत् । अथर्व. ३,२१,३ (उत्तरार्धः) । येनेन्द्रस्य रथँ (य इन्द्रेण सरथं)० । अथर्व. ३,२१,३ (पूर्वार्धः) । धीरो यश्शक्रः (यो धीरः शक्रः)० । अथर्व. ३,२१,४ (उत्तरार्धः) । तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् । अथर्व. ३,२१,१—७ । वर्च आधायि (आ धेहि) मे० । अथर्व. १९,३७,१ (पूर्वार्धः) । त्रयस्त्रिंशद्वीर्याणि (०तान्यानि)० । अथर्व. १९,३१,२ (उत्तरार्धः) । आ मा (इदं) वर्चोऽग्निना० । अथर्व. १९,३७,१ (पूर्वार्धः) । सह ओजो महद् (वयो) बलम् । अथर्व. १९,३७,१-२ (द्वि.च.) दीर्घायुत्वाय (इन्द्रियाय)० । १९,३७,२ (उत्तरार्धः) । अग्ने दुध्राग्ने कव्याग्ने० । तै. सं. ५,५,९,१]
[४] मै. २,१३,१९ (१०२) । तै. सं. १,४,३४; ४,४,५,१ । तै. आ. ३,१९ ।

ज्योतिर्विदं त्वा सादयामि ज्वलन्तीं त्वा सादयामि दीप्यमानां त्वा सादयामि मल्मलाभवन्तीं त्वा सादयामि रोचमानां त्वा सादयामि बृहज्ज्योतिषं त्वा सादयामि भास्वतीं त्वा सादयामि बोधयन्तीं त्वा सादयामि जाग्रतीं त्वा सादयाम्यजस्रां त्वा सादयामि प्रसवाय त्वोपयामाय त्वा काटाक्षाय त्वार्णवाय त्वा सिन्धवे त्वा समुद्राय त्वा सरसे त्वा विश्वव्यचसे त्वा धर्णसाय त्वा द्रविणाय त्वा सुभूताय त्वान्तरिक्षाय त्वा ॥४॥ २२

द्यौरपराजितामृतेन नष्टादित्या रक्षितारस्सूर्योऽधिवियत्तो अस्यां तां त्वा प्रपद्ये सा मे शर्म च वर्म च भव तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद स्वरसि स्वर्मे यच्छ दिवं दृँह दिवो मा पाहि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं भास्वतीं रश्मिवतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमुर्वन्तरिक्षं दिवं यच्छ दिवं दृँह दिवं मा हिंसीर्विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शंतमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २३

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्॥२४

प्राणोऽसि व्यानोऽस्यपानोऽसि श्रोत्रमसि चक्षुर्नाम तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २५

यत् तेऽचितं यदु चितं ते अग्ने यदूनं यद्वात्रातिरिक्तम् ।
विश्वे देवा अङ्गिरसश्चिनवन्नादित्यास्ते चितिमापूरयन्तु ॥ २६
यास्ते अग्ने समिधो यानि धाम या जिह्वा जातवेदो यो अर्चिः ।
ये ते अग्ने मेडवो य इन्दवस्तेभिरात्मानं चिनुहि प्रजानन् ॥ २७
चित्तिमचित्तिं चिनवो विविद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नस्स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥ २८
वयमग्ने धनवन्तस्स्यामालं यज्ञायोत दक्षिणायै ।
ग्रावा वदेदभि सोमस्यांशुमिन्द्रं शिक्षेमेन्दुना सुतेन ॥ २९
रायस्पोषं नो धेहि जातवेद ऊर्जो भागं मधुमत् सूनृतावत् ।
दधाम यज्ञं सुनवाम सोमं यज्ञेन त्वामुपशिक्षेम शक्र ॥ ३०
ईशानं त्वा शुश्रुमा वयं धनानां धनपते ।
गोमदग्ने अश्ववद्भूरि पुष्टं हिरण्यवदन्नवद्धेहि मह्यम् ॥ ३१

[५] मै. २,१३,१३ (९५)। वा. १२,५३; १३,१९; १४,६,१२,१४; १५,५८,६४। काण्व. १३,५४; १४,१९; १५,५,१५—१६; १६,७९,८४। तै. सं. ४,४,५-६। [उक्षान्नाय वशान्नाय०। ऋ. ८,४३,११; अथर्व. ३,२१,६; २०,१,३; तै. सं. १,३,१४,७। यत् तेऽचितं यदु०। तै. ब्रा. ३,११,६,१। यास्ते अग्ने समिधो०। तै. सं. ५,५,४,४। चित्तिमचित्तिं चिनवो०। ऋ. ४,२,११; तै. सं. ५,५,४,४]

दुहां ते द्यौः पृथिवी पयो जगरंस्त्वा सोदको विसर्पतु ।
प्रजापतिनात्मानमाप्रीणेऽरिक्तो म आत्मा ॥ ३२
यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु ।
यो रुद्रो विश्वा भुवनाविवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु देवाः ॥५॥ ३३

पिता मातरिश्वाच्छिद्रा पदा धादच्छिद्रोशिजः कवयः पदानुतक्षिषुस्सोमो विश्वविभेता नेषद्बृह-
स्पतिरुक्थामदानि शँसिषत् ॥ ३४

यदक्रन्दः ॥ ३५

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एनं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ ३६
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३७
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तस्समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ३८
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाँ सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा वृषभा अगृभ्णामृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ३९

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽस्यनुवत्सरोऽस्युद्वत्सरोऽसि देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे-
ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामिन्द्रवन्तं त्वा सादयामि धामच्छदसि स्वे योनौ सीद स्वे
पृथिव्या योनौ सीदर्तवस्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तामहोरात्राणि ते कल्प-
न्तामङ्गानि ते कल्पन्तां परूँषि ते कल्पन्ताँ शरीराणि ते कल्पन्तामेत्या प्रेत्या सं चा च प्र च
सारयाग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रस्सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिस्सूर्यः ॥ ४०

इमँ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमूर्मिं समुद्रियँ सदनमाविशस्व ॥६॥ ४१

[६] मै. १,६,१७,५१; ८,२,२०; ४,९,२१६। वा. ३,९; १७,८७; २७,४५; २९,१२—१६। काण्व. ३,९-१०; १९,१; २९,४९; ३१,२४-२८। तै. सं. ५,६,८,६; ४,६,७; ५,५,१०,६। [यदक्रन्दः प्रथमं०। ऋ. १,१६३,१; तै. सं. ४,२,८,१; ६,७,१। यमेन दत्तं त्रित०। ऋ. १,१६३,२; तै. सं. ४,६,७,१; नि. ४,१३। असि यमो अस्यादित्यः०। १,१६३,३; तै. सं ४,६,७,१। त्रीणि त आहुर्दिवि०। ऋ. १,१६३,४; तै. सं. ४,६,७,१। इमा ते वाजिन्नव०। ऋ. १,१६३,५; तै. सं. ४,६,७,२। संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि०। अथर्व. ६, ५५,३। इमं स्तनमूर्जस्वन्तं०। तै. सं. ५,५,१०,६]

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपाँशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ ४२
वयं नाम प्रब्रवाम घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुश्शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ ४३
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आविवेश ॥ ४४
त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकँ सूर एकं जजान वेनादेकँ स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४५
एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ४६
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ४७
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ४८
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यस्स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धारास्समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ४९
कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि ।
यत्र सोमस्सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥ ५०
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥ ५१
धामन्ते विश्वं भुवनमधिश्रितमन्तस्समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥७॥ ५२

[७] मै. १,६,२६—२८; २,७,२३७। वा. १३,३८; १७,८९—९९। काण्व. १४,४०; १९,३—१२। [समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ०। ऋ. ४,५८,१; तै. आ. १०,१०,२। वयं नाम प्रब्रवाम०। ऋ. ४,५८,२; तै. आ. १०,१०,२। चत्वारि शृङ्गा त्रयो०। ऋ. ४,५८,३; तै. आ. १०,१०,२; नि. १३,७। त्रिधा हितं पणिभि०। ऋ. ४,५८,४; तै. आ. १०,१०,२। एता अर्षन्ति हृद्यात्०। ऋ. ४,५८,५; वा. १३,३८ (उत्तरार्धः)। सम्यक् स्रवन्ति०। ऋ. ४,५८,६; वा. १३,३८ (पूर्वार्धः); तै. आ. ४,२,९,६। सिन्धोरिव प्राध्वने०। ऋ. ४,५८,७। कन्या इव वहतु०। ऋ. ४,५८,९। अभि प्रवन्त समनेव०। ऋ. ४,५८,८; नि. ७,१७। अभ्यर्षत सुष्टुतिं०। ऋ. ४,५८,१०; अथर्व. ७,८२,१। धामन्ते विश्वं०। ४,५८,११]

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ५३
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥ ५४
उप नः पितवाचर शिवश्शिवाभिरूतिभिः । मयोभूरद्विषेण्यस्सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ५५
तव त्ये पितो रसा रजाँस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥ ५६
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो । प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ५७
त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ५८
यददः पितो अजगन् विवस्व पर्वतानाम् । अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः॥५९
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ६०
यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ६१
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥ ६२
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥८॥ ६३

मह्यमापो मधुमदेरयन्त मह्यं ज्योतिरभरत् सूर्यस्तत् ।
मां देवा अनु विश्वे तपोजा मह्यं देवस्सविता व्यचो धात् ॥ ६४
अहमस्तभ्नां पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनँ सप्त साकम् ।
अहं वाचं परि सर्वां बभूव य इन्द्राग्नी असनँ सखायौ ॥ ६५
अहं द्यावापृथिवी आवभूवाहं विश्वा ओषधीस्सप्त सिन्धून् ।
मह्यं विशस्समनमन्त दैवीरहमुग्रश्शतहव्यो बभूव ॥ ६६
रायो जातस्सहसे वृद्धः क्षत्राणां क्षत्रभृत्तमो वयोधाः ।
महान् महित्वा संस्तभ्नो क्षत्रे राष्ट्रे च जागृहि ॥ ६७

[८] वा. ३४,७। काण्व. ३३,२। [पितुं नु स्तोषं०। ऋ. १,१८७,१; नि. ९,२५। स्वादो पितो मधो०। ऋ. १, १८७,२। उप नः पितवाचर०। ऋ. १,१८७,३। तव त्ये पितो रसा०। ऋ. १,१८७,४। तव त्ये पितो ददतः०। ऋ. १,१८७,५। त्वे पितो महानां०। ऋ. १,१८७,६। यददः (०दो) पितो०। ऋ. १,१८७,७। यदपामोषधीनां०। ऋ. १,१८७,८। यत् ते सोम गवाशिरो०। ऋ. १,१८७,९। करम्भ ओषधे भव०। ऋ. १,१८७,१०। तं त्वा वयं पितो०। १,१८७,११]

[९] मै. २,१२,२५; ३,४,६। वा. ९,४०; १०,१८; १८,३७। काण्व. ११,१०,२६; २०,७। [मह्यमापो मधु०। अथर्व. ३,६१,१। अहमस्तभ्नां (अहं विवेच) पृथिवीमुत०। अथर्व. ६,६१,२। अहं द्यावापृथिवी० (अजान पृथिवी०)। अथर्व. ६,६१,३]

नय कुत्स इन्द्रो राजा सविता त्वाभिषिञ्चतु ।
मित्रो वायुर्बृहस्पतिर्धाता क्षत्रं दधातु ते ॥ ६८

अदितिस्त्वा सुष्वतु राजन् महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते राज्याय महते जानराज्याय महते विश्वस्य भुवनस्याधिपत्याय समास्त्वाग्ने देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणेममसुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यैस्साम्राज्येनाभिषिञ्चामीन्द्रस्य साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥९॥ ६९

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ ७०
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥ ७१
मयि देवा द्रविणमायजन्तां ममाशीरस्तु मम देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनिषन्त पूर्वेऽरिष्टास्स्याम तन्वा सुवीराः ॥ ७२
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिस्सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा निगां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अनुतिष्ठन्तु मेह ॥ ७३
अग्निर्मन्युं प्रतिनुदन् पुरस्तादद्ब्धो गोपः परिपातु विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवतो दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधा विनश्यतु ॥ ७४
धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं सवितारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञं बृहस्पतेऽश्विनोमेन्द्रावत काम्यैर्दसनाभिः ॥ ७५
प्रयीष्वद्वीरुरु यस्कृणोत विश्वे देवा इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥ ७६

[देवस्य त्वा सवितुः० । अर्थ. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]

[१०] मै. २,३,२ । क. ३४,३६ । काप. ३३,३३ । तै. सं. ४,७,१४ । [ममाग्ने वर्चो० । ऋ. १०,१२८,१; अथर्व. ५,३,१; तै. सं. ४,७,१४,१ । मम देवा विहवे० । ऋ. १०,१२८,२; अथर्व. ५,३,३; तै. सं. ४,७,१४,१ । मयि देवा द्रविणम्० । ऋ. १०,१२८,३; अथर्व. ५,३,५; तै. सं. ४,७,१४,१ । मह्यं यजन्ता (०न्तु) मम० । ऋ. १०,१२८,४; अथर्व. ५,३,४; तै. सं. ४,७,१४,१ । अग्नि (अग्ने) म०र्मन्युं प्रतिनुदन् । ऋ. १०,१२८,६; अथर्व. ५,३,२; तै. सं. ४,७,१४,२ । धाता धातॄणां भुवनस्य० । ऋ. १०,१२८,७; अथर्व. ५,३,९; तै. सं. ४,७,१४,३ । प्रयी (देवीः) षट्दुर्वीरुरु णः (नः) कृणोत० । ऋ. १०,१२८,५; अथर्व. ५,३,६; तै. सं. ४,७,१४,२]

उरुव्यचा नो महिषश्शर्म यँसदास्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥ ७७
तिस्रो देवीर्महि नश्शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे यच्च पुष्टम् ।
मा नो वधीदभिभा मो अशस्तिर्मा नो वृधद्वृजना द्वेष्या या ॥ ७८
ये नस्सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामवबाधामहे तान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ७९
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद्धनजिदश्वजिद्यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे जुषस्वेह कृण्मो हरिवो मेदिनं त्वा ॥१०॥ ८०
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ८१
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ ८२
बृहस्पतिस्समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपस्सिषासन् स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ८३
यमो दाधार पृथिवीं यमो द्यामुत सूर्यम् ।
यमाय सर्वमित् तस्थे यत् प्राणद्वायुरक्षितम् ॥ ८४
यथा पञ्च यथा षड् यथा पञ्चदशर्षयः । यमं यो विद्यात् स ब्रूयाद्यथैकर्षिर्विजानते ॥ ८५
त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
गायत्री त्रिष्टुप् छन्दाँसि सर्वा ता यम आहिता ॥ ८६
मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ८७

[उरुव्यचा नो महिषः० । ऋ. १०,१२८,८; अथर्व. ५,३,८; तै. सं. ४,७,१४,३ । तिस्रो देवीर्महि० । अथर्व. ५,३,७ । ये नस्सपत्ना अप ते० । ऋ. १०,१२८,९; अथर्व. ५,३,१०; तै. सं. ४,७,१४,४ । अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो० ऋ. परि. २८,१; अथर्व. ५,३,११; तै. सं. ४,७,१४,४]

[११] मै. १,२,११८; २,७,१०२, ३,४,१६; ४,१०,४९,१०४,१०६; १४,५०,२५२—२५४ । वा. १२,१९; १८,४९; २१,१-२; २६,३ । काण्व. १३,१३; २०,१९; २३,१-२; २८,४ । तै. आ. ६,५,२ । [तव श्रिये व्यजिहीत० । ऋ. २,२३,१८ । बृहस्पते अति यदर्यो० । ऋ. २,२३,१५; तै. सं. १,८,२२,२ । बृहस्पतिस्समजयद्वसूनि० । ऋ. ६,७३,३; अथर्व. २०,९०,३; तै. ब्रा. २,८,२,८ । यमो दाधार पृथिवीं० । तै. आ. ६,५,२ । यथा पञ्च यथा० । तै. आ. ६,५,२ । त्रिकद्रुकेभिः पतति० । ऋ. १०,१४,१६; अथर्व. १८,२,६; तै. आ. ६,५,३ । मृडा (०ळा) नो रुद्रोत० । ऋ. १,११४,२; तै. सं. ४,५,१०,२]

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमाचरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ८८
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे निह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेडो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ८९
अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेतो राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ ९०
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ९१
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ ९२
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशँस मा न आयुः प्रमोषीः ॥११॥ ९३

हव्यं प्रीणीहि हव्यँ श्रीणीहि हव्यँ श्रपय ॥ हव्यं पच हव्यमसि हव्याय त्वा हव्यवाडसि हव्ये सीद ॥
९४-९५

स्वयं कृण्वानस्सुगमप्रयावं तिग्मशृङ्गो वृषभश्शोशुचानः ।
प्रत्नं सधस्थमनुपश्यमान आ तन्तुमग्निर्दिव्यं ततान ॥ ९६
त्वं नस्तन्तुरुत सेतुरग्ने त्वं पन्था भवसि देवयानः ।
त्वयाग्ने पृष्ठं वयमारुहेमाथा देवैस्सधमादं मदेम ॥ ९७
अतिसर्गं ददतो मानवाय स्वर्गं पन्थामनुपश्यमानाः ।
अजुषन्त मरुतो यज्ञमेत वृष्टिद्यावानममृतँ स्वर्विदम् ॥ ९८
आवर्तमानो भुवनस्य मध्ये प्रजा विकृण्वञ्जनयन् विरूपम् ।
संवत्सरः परमेष्ठी धृतव्रतो यज्ञं नः पातु रजसः परस्मात् ॥ ९९
प्रजां पिपर्तु परिवत्सरो नो धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
वह्वीस्साकं बहुधा विश्वरूपा एकव्रता मामभिसंविशन्तु ॥१२॥ १००

[अश्याम ते सुमतिं० । ऋ. १,११४,३ । त्वेषं वयं रुद्रं० । ऋ. १,११४,४ । अव ते हेडो (०ळो) वरुण० । ऋ. १,२४,१४; तै. सं. १,५,११,३ । उदुत्तमं वरुण पाशं० । ऋ. १,२४,१५; वा. १२,१२; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; नि. २,१३ । इमं मे वरुण श्रुधी० । ऋ. १,२५,१९; वा. २१,१; तै. सं. २,१,११,६ । तत्त्वा यामि ब्रह्मणा० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६]

[१२] मै. २,१३,२२ (१०५—१०९) । तै. ब्रा. २,४,२,५—६ । आ. श्रौ. ६,१,६ । [धाता दधातु सुमनस्यमानः । अथर्व. ७,१९,१ [illegible] १३,१,३५ (व. च.)]

यदाकूतात् समसुस्रोद्धृदो वा मनसस्संभृतं चक्षुषो वा ।
तमनुप्रेहि सुकृतस्य लोकं यत्रर्षयो जग्मुः प्रथमाः पुराणाः ॥ १०१
एतँ सधस्थाः परि वो ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानस्स्वस्ति तँ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १०२
एतं जानीत परमे व्योमन्नग्ने सधस्था विद लोकमस्य ।
यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणुतादाविरस्मै ॥ १०३
इमँ स्तनमिष्टो यज्ञः ॥ १०४
येन सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १०५
येनाग्ने सुकृतः पथा मधोर्धारा व्यानशुः । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १०६
येनाग्ने दक्षिणावन्तं यज्ञं वहन्त्यृत्विजः । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १०७
प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १०८
यत्र धारा मधुमतीस्सदा स्यन्दन्ते अक्षिताः । तदग्निर्वैश्वकर्मणस्स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ १०९
अपूपकूला नद्यस्सदा स्यन्दन्ते अक्षिताः । तदग्निर्वैश्वकर्मणस्स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ११०
उपक्षरन्ति मधुनो घृतस्य कुल्याः पूर्णास्सदमक्षीयमाणाः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणस्स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ १११
यास्ते अग्ने या वो देवाः ॥ ११२
रोचय मा ब्राह्मणेष्वथो राजसु रोचय ।
रोचय मा विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ११३
स्वर्णघर्मस्स्वाहा स्वर्णशुक्रस्स्वाहा स्वर्णसूर्यस्स्वाहा स्वर्णार्कस्स्वाहा स्वर्णाग्निस्स्वाहा ॥१३॥
११४

ईडे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ ११५
अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषाँसि तरेम ॥ ११६

[१३] मै. १,४,१०, २,७,११६—११७; १२,२५,२३ । वा. १३,२२-२३; १७,८७, १८,४६-४८,५०,५६,५८-६०, ६२—६५ । काण्व. १४,२२—२३; १९,१; २०,१६—१८,२०,२६,२८ – ३०,३२—३५ । तै. सं. ५,७,७ । [यदाकूतात् सम० । तै. सं. ५,७,७,१ । एतँ सधस्थाः० । अथर्व. ६,१२३,१; तै. सं. ५,७,७,१ । एतं जानीत (जानीत स्मैनं) परमे० । अथर्व. ६,१२३,२]

[१४] मै. १,५,२,१३—१४; ४,१०,३,६—७,६०; ११,३५—३९,६७—६९; १२,११५ । वा. ३,११; १३,१४; १५,२० । काण्व. ३,१८;१४,१४; १६,४१ । [ईडे(०ळे) अग्निं विपश्चितं० । ऋ. ३,२७,२; तै. ब्रा. २,४,२,४ । अग्ने शकेम ते वयं० । ऋ. ३,२७,३, तै. ब्रा. २,४,२,५]

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः ।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ११७
तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः ।
आचक्रुरग्निमूतये ॥ ११८
नवं नु स्तोममग्नये दिवश्श्येनाय जीजनम् ।
वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ११९
स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।
अग्ने यज्ञस्य चेततः ॥ १२०
उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तस्सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १२१
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ १२२
अग्ने मृड महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १२३
स मानुषीषु दूडभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः ।
दूतो विश्वेषां भुवद् ॥ १२४
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ १२५
आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ १२६
हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः ।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ १२७

[पृथुपाजा अमर्त्यो० । ऋ. ३,२७,५; तै. ब्रा. ३,६,१,३ । तँ सबाधो यतस्रुच० । ऋ. ३,२७,६; तै. ब्रा. ३,६,१,३ । नवं नु स्तोममग्नये० । ऋ. ७,१५,४; तै. ब्रा. २,४,८,१ । स्पार्हा यस्य श्रियो० । ऋ. ७,१५,५; तै. ब्रा. २,४,८,१ । उप त्वा रण्वसंदृशं० । ६,१६,३७; सा १७०५ । उप छाया (च्छाया०) मिव घृणेः० । ऋ. ६,१६,३८; तै. ब्रा. २,४,४,६ । अग्ने मृड(०ळ) महाँ० । ऋ. ४,९,१; सा. २३ । स मानुषीषु दूड(ळ) भो० । ऋ. ४,९,२ । और्वभृगुवच्छुचिम० । ऋ. ८,१०२,४; सा. १८; तै. सं. ३,१,११,८ । आ सवं सवितुः । ऋ. ८,१०२,६; तै. सं. ३,१,११,८ । हुवे वातस्वनं० । ऋ. ८,१०२,५; तै. सं. ३,१,११,८]

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १२८
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् ।
आपश्चिन्निदधा पदम् ॥ १२९
अग्निर्मूर्धा ॥ १३०
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ १३१
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १३२
त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १३३
अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतस्सदा ।
अग्नेस्सख्यं वृणीमहे ॥ १३४
अग्निश्शुचिव्रततमश्शुचिर्विप्रश्शुचिष्कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥१४॥ १३५
[१७९९]

॥ इत्येकोत्तरशतशाखाध्वर्युप्रभेदभिन्ने श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामोरिमिकायां हिरण्यगर्भं नाम चत्वारिंशं स्थानकं संपूर्णम् ॥४०॥

॥ श्रीग्रन्थत्रये मध्यपठिताश्च याज्यानुवाक्याः संपूर्णाः ॥

॥ अस्मिन् ग्रन्थत्रयाभ्यन्तरे याज्यानुवाक्या नाम चतुर्थो ग्रन्थः ॥

॥ संपूर्णा चेयमोरिमिका ॥

[उप त्वा जामयो गिरो० । ऋ. ८,१०२,१३, सा. १३,१५७०; तै. ब्रा. १,८,८,१ । यस्य त्रिधात्ववृतं० । ऋ. ८,१०२,१४; सा. १५७१ । अग्निर्मूर्धा दिवः० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७; १५३२; तै. सं. १,५,५,१; ४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१ । उदग्ने शुचयस्तव० । ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३; २,४,१४,४ । ईशिषे वार्यस्य हि० । ऋ. ८,४४,१८; सा. १५३३ । त्वामग्ने मनीषिणस्त्वाँ० । ऋ. ८,४४,१९ । अदब्धस्य स्वधावतो० । ऋ. ८,४४,२० । अग्निश्शुचिव्रततम० । ऋ. ८,४४,२१; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३]

अथाश्वमेधः ।

(पञ्चमो ग्रन्थः ।)

अथ प्रथमं वचनम् ।

पन्थानुवचनम् ।

ये ते पन्थानस्सवितः पूर्व्यासोऽरेणवो वितता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिस्सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ १
नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकस्पृते
नमोऽग्नये पृथिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि
लोकमस्मै यजमानाय देहि नम आदित्याय दिविक्षिते लोकस्पृते लोकमस्मै यजमानाय देहि २
॥१॥ ३
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥
इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेषु कव्या । ४
तया देवास्सुतमावभूवुर्ऋतस्य सामन् सरमारपन्ती ॥
तया देवास्सुतमावभूवुर्ऋतस्य सामन् सरमारपन्ती ॥ अभिधा असि भुवनमसि ॥ यन्तासि धर्तासि सोऽग्निं वैश्वानरं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः
अभिधा असि भुवनमसि ॥ यन्तासि धर्तासि सोऽग्निं वैश्वानरं सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः
पृथिव्यां स्वगा त्वा देवेभ्यस्स्वाहा त्वा प्रजापतये यन्ता राड्यन्तासि यमनो धर्तासि धरुणः
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा सते त्वासते ५-६
त्वाद्भ्यस्त्वौषधीभ्यस्त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः ॥२॥
विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽसि मयोऽस्यत्योऽसि नरोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि
वृषासि नृमणा असि ययुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्वेह्यग्नये स्वाहा स्वाहेन्द्राग्निभ्यां स्वाहा विश्वेभ्यो
देवेभ्यस्स्वाहा प्रजापतये स्वाहा सर्वाभ्यो देवताभ्य इह धृतिस्स्वाहेह विधृतिस्स्वाहेह रन्तिस्स्वाहेह
रमतिस्स्वाहा भूरसि भुवे त्वा भव्याय त्वा भविष्यते त्वा विश्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यो देवा आशापाला ७
एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितं गोपायत ॥३॥

[१] तै. सं. ७,५,२४ । वा. ३४,२७ । काण्व. ३३,२१ । [ये ते पन्थान (पन्थाः) स्सवितः० । ऋ. १,३५,११, तै. सं. ७,५,२४,१]
[२] मै. ३,१२,१ (१—९) । वा. २२,२—५ । क०१. २४,१—५ । तै. सं. ७,१,११ । देवस्य त्वा सवितुः० । काठ. १,२,५; अथर्व. १९,५१,२; ऐ. ब्रा. ८,७]
[३] मै. ३,१२,४ (६) । वा. २२,१९ । क०१. २४,२४—२५ । तै. सं. ७,१,१२,१ ।

आयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा
पलायिताय स्वाहापलायिताय स्वाहा वल्गते स्वाहा परावल्गते स्वाहा यते स्वाहा प्रयते स्वाहा
॥४॥ ८
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा वायवे स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा
पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥५॥ ९
पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे स्वाहा नक्षत्रेभ्यस्स्वाहा
प्राच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहा
दिग्भ्यस्स्वाहावान्तरदिशाभ्यस्स्वाहा समाभ्यस्स्वाहा शरद्भ्यस्स्वाहाहोरात्रेभ्यस्स्वाहार्धमासेभ्य-
स्स्वाहा मासेभ्यस्स्वाहर्तुभ्यस्स्वाहा संवत्सराय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥६॥ १०
अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहापां
मोदाय स्वाहा वायवे स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥७॥ ११
पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहाग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्रमसे
स्वाहाह्ने स्वाहा रात्र्यै स्वाहर्जवे स्वाहा साधवे स्वाहा सुक्षित्यै स्वाहा क्षुधे स्वाहाशितिम्ने स्वाहा
रोचाय स्वाहा हिमाय स्वाहा शीताय स्वाहातपाय स्वाहारण्याय स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा लोकाय
स्वाहा वृत्ताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥८॥ १२
भुवो देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यासि वसुभिर्देवेभिर्देवतया गायत्रेण त्वा छन्दसा युनज्मि
वसन्तेन त्वर्तूनां हविषा दीक्षयामि भुवो देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यासि रुद्रेभिर्देवेभिर्देवतया त्रैष्टुभेन

[४] मै. ३,१२,३ (५) । वा. २२,७—८ । काण्व. २४,९—१० । तै. सं. ७,१,१३ ।
[५] मै. ३,१२,२ (४) । वा. १०,५; २२,६,२७, ३९,१ । काण्व. ११,१२; २४,६,३७; ३९,१ । तै. सं. ७,१,१४ । [अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । वायवे स्वाहा । अथर्व. १९,४३,२]
[६] मै. ३,१२,७—८,१० (९-१०,१२) । वा. २२,६,२४,२७—२९; १०,५; ३९,१—२ । काण्व. २४,६,३४,३७—४१,४३; ११,१२; ३९,१ । तै. सं. ७,१,१५ । [पृथिव्यै स्वाहा । अथर्व. ५,९,२; ६ । अन्तरिक्षाय स्वाहा । अथर्व. ५,९,३—४ । दिवे स्वाहा । अथर्व. ५,९,१; ५ । सूर्याय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,३ । चन्द्रमसे स्वाहा । अथर्व. १९,४३,४]
[७] मै. ३,१२,२; ५ (४,७) । वा. १०,५; २२,६,२०,२७; ३९,१ । काण्व. ११,१२; २४,६,२५-२८,३७; ३९,१ । तै. सं. ७,१,१६ । मा. श्रौ. ९,२,१ । [अग्नये स्वाहा । (पञ्चमानुवाके द्रष्टव्यम्)]
[८] मै. ३,१२,७; १० (९,१२) । तै. सं. ७,१,१७ । [पृथिव्यै स्वाहा । (षष्ठानुवाके द्रष्टव्यम्)]
[९] मै. ४,१०,३३—३४ । वा. २१,५-६ । काण्व. २३,५-६ । तै. सं. ७,१,१८]

त्वा छन्दसा पुनज्मि ग्रीष्मेन स्वर्तूनाँ हविषा दीक्षयामि ध्रुवो देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यास्या-
दित्येभिर्देवेभिर्देवतया जागतेन त्वा छन्दसा पुनज्मि वर्षाभिस्स्वर्तूनाँ हविषा दीक्षयामि ध्रुवो
देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यासि विश्वेभिर्देवेभिर्देवतयानुष्टुभेन त्वा छन्दसा पुनज्मि शरदा स्वर्तूनाँ
हविषा दीक्षयामि ध्रुवो देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यास्यङ्गिरोभिर्देवेभिर्देवतया पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा
पुनज्मि हेमन्तशिशिराभ्यां स्वर्तूनाँ हविषा दीक्षयामि ध्रुवो देवानां कर्मणापसर्तस्य पथ्यास्याहं
दीक्षामरुहमृतस्य पत्नीं गायत्रेण च्छन्दसा ब्रह्मणा चर्तँ सत्येऽधाँ सत्यमृतेऽधाँ सुत्रामाणं महीम्
पु ॥९॥ १३

हिंकाराय स्वाहेंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहावक्रन्दते स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथते स्वाहा गन्धाय
स्वाहा घ्राताय स्वाहा प्राणाय स्वाहा व्यानाय स्वाहापानाय स्वाहा संदीयमानाय स्वाहा संदिताय
स्वाहा विचृत्यमानाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा पलायिष्यते स्वाहा पलायिताय स्वाहोपरँस्यते
स्वाहोपरताय स्वाहा निवेक्ष्यते स्वाहा निविशमानाय स्वाहा निविष्टाय स्वाहा निषत्स्यते स्वाहा
निषीदते स्वाहा निषण्णाय स्वाहासिष्यते स्वाहासीनाय स्वाहासिताय स्वाहा निपत्स्यते स्वाहा निपद्य-
मानाय स्वाहा निपन्नाय स्वाहा शयिष्यते स्वाहा शयानाय स्वाहा शयिताय स्वाहा संमीलिष्यते
स्वाहा संमीलते स्वाहा संमीलिताय स्वाहा स्वप्स्यते स्वाहा स्वपते स्वाहा सुप्ताय स्वाहा प्रभोत्स्यते
स्वाहा प्रबुध्यमानाय स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा जागरिष्यते स्वाहा जाग्रते स्वाहा जागृताय स्वाहा
शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहा श्रुताय स्वाहा वीक्षिष्यते स्वाहा वीक्षमाणाय स्वाहा वीक्षिताय
स्वाहा संहास्यते स्वाहा संजिहानाय स्वाहोज्जिहानाय स्वाहा विवर्त्स्यते स्वाहा विवर्तमानाय
स्वाहा विवृत्ताय स्वाहोत्थास्यते स्वाहोत्तिष्ठते स्वाहोत्थिताय स्वाहा विधविष्यते स्वाहा विधून्वानाय
स्वाहा विधूताय स्वाहोत्क्रँस्यते स्वाहोत्क्रामते स्वाहोत्क्रान्ताय स्वाहा चंक्रमिष्यते स्वाहा
चंक्रम्यमाणाय स्वाहा चंक्रमिताय स्वाहा कण्डूयिष्यते स्वाहा कण्डूयमानाय स्वाहा कण्डूयिताय
स्वाहा निकषिष्यते स्वाहा निकषमाणाय स्वाहा निकषिताय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति
तस्मै स्वाहा यन्मेहति तस्मै स्वाहा यच्छकृत् करोति तस्मै स्वाहा रेतसे स्वाहा प्रजाभ्यस्स्वाहा
प्रजननाय स्वाहा ॥१०॥ १४

अग्नये स्वाहा वायवे स्वाहा सूर्याय स्वाहर्तमस्यृतस्यर्तमसि सत्यमसि सत्यस्य सत्यमस्यृतस्य
पन्था असि देवानां छायामृतस्य नाम तत् सत्यं यत् त्वं प्रजापतिरसि ॥ १५

[सुत्रामाणं पृथिवीं० । ऋ. १०.६३.१०; अथर्व. ७.६.३; तै. सं १,५,११,५; तै. आ. १,१३,२ । महीमू षु० । तै. सं. १,५,११,५; ७,१,१८,२; तै. ब्रा. ३,१,३,३; तै. आ. १,१३,२; मा श्रौ. ७,२,६; कपि. ४६,७]
[१०] मै. ३,१२,३ (५) ; वा. २२,७—८ । काण्व. २४,७—१२ । तै. सं. ७,१,१३; १९ ।
[११] तै. सं. ७,१,२०]

अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभस्स्पर्धन्ते दिवस्सूर्येण विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन् पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा ॥११॥ १६

[१८४५]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे पन्थानुवचनं नाम प्रथमं वचनं संपूर्णम् ॥१॥

अथ द्वितीयं वचनम् ।

गणानुवचनम् ।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याँ स्वाहा त्रिभ्यस्स्वाहा चतुर्भ्यस्स्वाहा पञ्चभ्यस्स्वाहा षड्भ्यस्स्वाहा सप्तभ्य-
स्स्वाहाष्टाभ्यस्स्वाहा नवभ्यस्स्वाहा दशभ्यस्स्वाहैकान्नविंशत्यै स्वाहा विंशत्यै स्वाहा नवविंशत्यै
स्वाहा त्रिंशते स्वाहैकान्नचत्वारिंशते स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहा नवचत्वारिंशते स्वाहा पञ्चाशते
स्वाहैकान्नषष्ट्यै स्वाहा नवषष्ट्यै स्वाहा सप्तत्यै स्वाहैकान्नाशीत्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहा नवाशीत्यै
स्वाहा नवत्यै स्वाहैकान्नशताय स्वाहा शताय स्वाहा द्वाभ्याँ शताभ्याँ स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा
॥१॥ १

एकस्मै स्वाहा त्रिभ्यस्स्वाहा पञ्चभ्यस्स्वाहा सप्तभ्यस्स्वाहा नवभ्यस्स्वाहैकादशभ्यस्स्वाहैकान्न-
विंशत्यै स्वाहैकविंशत्यै स्वाहा नवविंशत्यै स्वाहैकत्रिंशते स्वाहैकान्नचत्वारिंशते स्वाहैकचत्वारिंशते
स्वाहा नवचत्वारिंशते स्वाहैकपञ्चाशते स्वाहैकान्नषष्ट्यै स्वाहैकषष्ट्यै स्वाहा नवषष्ट्यै स्वाहैकसप्तत्यै
स्वाहैकान्नाशीत्यै स्वाहैकाशीत्यै स्वाहा नवाशीत्यै स्वाहैकनवत्यै स्वाहैकान्नशताय स्वाहा शताय
स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥२॥ २

द्वाभ्याँ स्वाहा चतुर्भ्यस्स्वाहा षड्भ्यस्स्वाहाष्टाभ्यस्स्वाहा दशभ्यस्स्वाहाष्टादशभ्यस्स्वाहा
विंशत्यै स्वाहा त्रिंशते स्वाहाष्टात्रिंशते स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहाष्टाचत्वारिंशते स्वाहा पञ्चाशते
स्वाहाष्टपञ्चाशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहाष्टाषष्ट्यै स्वाहा सप्तत्यै स्वाहाष्टासप्तत्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहाष्टा-
शीत्यै स्वाहा नवत्यै स्वाहाष्टानवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥३॥ ३
त्रिभ्यस्स्वाहा पञ्चभ्यस्स्वाहा यथा द्वितीय एवं चतुर्थोऽन्यत् प्रभृतेः ॥४॥ ४

चतुर्भ्यस्स्वाहाष्टाभ्यस्स्वाहा द्वादशभ्यस्स्वाहा षोडशभ्यस्स्वाहा विंशत्यै स्वाहा चतुर्विंशत्यै

[अधि यदस्मिन् वाजिनीव० । ऋ. ९.९४.१; सा. ५३९; तै. सं. ७.१,२०,१]
[१] मै. ३,१२,१५ (१७) । वा. २३,३४ । काण्व. २४,४७ । तै. सं. ७,२,११ ।
[२] तै. सं. ७,२,१२ । [३] तै. सं. ७,२,१३ । [४] तै. सं. ७,२,१४ । [५] तै. सं. ७,२,१५ ।

स्वाहाष्टाविंशत्यै स्वाहा द्वात्रिंशते स्वाहा षट्त्रिंशते स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहाष्टाचत्वारिंशते स्वाहा
द्वापञ्चाशते स्वाहा षट्पञ्चाशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहा चतुष्षष्ट्यै स्वाहाष्टाषष्ट्यै स्वाहा द्वासप्तत्यै स्वाहा
षट्सप्तत्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहा चतुरशीत्यै स्वाहाष्टाशीत्यै स्वाहा द्वानवत्यै स्वाहा षण्णवत्यै स्वाहा
शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥५॥ ५

पञ्चभ्यस्स्वाहा दशभ्यस्स्वाहा पञ्चदशभ्यस्स्वाहा विंशत्यै स्वाहा पञ्चविंशत्यै स्वाहा त्रिंशते
स्वाहा पञ्चत्रिंशते स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहा पञ्चचत्वारिंशते स्वाहा पञ्चाशते स्वाहा पञ्चपञ्चाशते
स्वाहा षष्ट्यै स्वाहा पञ्चषष्ट्यै स्वाहा सप्तत्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहा पञ्चाशीत्यै स्वाहा नवत्यै स्वाहा
पञ्चनवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥६॥ ६

दशभ्यस्स्वाहा विंशत्यै स्वाहा त्रिंशते स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहा पञ्चाशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहा
सप्तत्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहा नवत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥७॥ ७

विंशत्यै स्वाहा चत्वारिंशते स्वाहा षष्ट्यै स्वाहाशीत्यै स्वाहा शताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा
॥८॥ ८

पञ्चाशते स्वाहा शताय स्वाहा द्वाभ्याँ शताभ्याँ स्वाहा त्रिभ्यश्चतुर्भ्यः पञ्चभ्यष्षड्भ्यस्सप्तभ्यो-
ऽष्टाभ्यो नवभ्यश्शतेभ्यस्स्वाहा सहस्राय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥९॥ ९

शताय स्वाहा सहस्राय स्वाहायुताय स्वाहा प्रयुताय स्वाहा नियुताय स्वाहार्बुदाय स्वाहा
न्यर्बुदाय स्वाहा बद्वाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहान्ताय स्वाहा परार्धाय स्वाहापसे
स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहोदिताय स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै
स्वाहा ॥१०॥ १०

[१८४५]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे गणानुवचन नाम द्वितीयं वचनं संपूर्णम् ॥२॥

[६] तै. सं. ७,२,१६ । [७] तै. सं. ७,२,१७ । [८] तै. सं. ७,२,१८ । [९] तै. सं. ७,२,१९ ।
[१०] वा. २२,३४ । काण्व. २४,४७ । तै. सं. ७,२,२० ।

अथ तृतीयं वचनम् ।

अनुवचनम् ।

अर्वाङ् यज्ञस्संक्रामत्वमुष्मादधि मामभि । ऋषीणां यः पुरोहितः ॥ १
निर्देवं निर्वीर्यं कृत्वा विष्कन्धं तस्मिन् हीयतां योऽस्मान् द्वेष्टि ।
शरीरं यज्ञशमलं कुसीदं तस्मिन् सीदतु योऽस्मान् द्वेष्टि ॥ २
यज्ञ यज्ञस्य यत् तेजस्तेन संक्राम मामभि ।
ब्राह्मणानृत्विजो देवान् यज्ञस्य तपसा तेऽसा अहमाहुवे ॥ ३
इष्टेन पक्वमुप ते हुवेऽसा अहम् । सं ते वृञ्जे सुकृतँ सं प्रजां पशून् ॥ ४
प्रैषान् सामिधेनीराघारा आज्यभागा आश्रुतं प्रत्याश्रुतमाम्मृणामि ते ।
प्रयाजानुयाजान् स्विष्टकृतमिडामाशिष आवृञ्जे स्वः ॥ ५
अग्निनेन्द्रेण सोमेन सरस्वत्या विष्णुना देवताभिः ।
याज्यानुवाक्याभ्यामुप ते हुवेऽसा अहं यज्ञमाददे ते वषट् कृतम् ॥ ६
स्तुतँ शस्त्रं प्रतिगरं ग्रहमिडामाशिष आवृञ्जे स्वः ।
पत्नीसंयाजानुप ते हुवेऽसा अहँ समिष्टयजुराददे तव ॥ ७
पशून् सुतं पुरोडाशान् सवनान्योत यज्ञम् ।
देवान् सेन्द्रानुप ते हुवेऽसा अहमग्निमुखान् सोमवतो ये च विश्वे ॥१॥ ८

भूतं भव्यं भविष्यद्वषट् स्वाहा नम ऋक्साम यजुर्वषट् स्वाहा नमो गायत्री त्रिष्टुब्जगती वषट्
स्वाहा नमः पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्वषट् स्वाहा नमोऽन्नं कृषिर्वृष्टिर्वषट् स्वाहा नमः पिता पुत्रः पौत्रो
वषट् स्वाहा नमः प्राणो व्यानोऽपानो वषट् स्वाहा नमो भूर्भुवस्स्वर्वषट् स्वाहा नमः ॥२॥ ९

आ मे गृहा भवन्त्वा प्रजा म आ मा यज्ञो विशतु वीर्यावान् ।
आपो देवीर्यज्ञिया माविशन्तु सहस्रस्य मा भूमा मा प्रहासीत् ॥ १०

[१] तै. सं. ७,३,११ । वा. १,२५-२६; २,१५ । काण्व. १,४२-४३; २,३० । [अर्वाङ् यज्ञस्संक्रामतु० । तै. सं. ७,३,११,१ । निर्देवं निर्वीर्यं कृत्वा० । तै. सं. ७,३,११,१ । यज्ञ यज्ञस्य यत्० । तै. सं. ७,३,११,१ । इष्टेन पक्वमुप० । तै. सं ७,३,११,२ । प्रैषान् सामिधेनी० । तै. सं. ७,३,११,२ । अग्निनेन्द्रेण सोमेन० । तै. सं. ७,३,११,२ । स्तुतँ शस्त्रं प्रतिगरं० । तै. सं. ७,३,११,३ । पशून् सुतं पुरोडाशान्० । तै. सं. ७,३,११,३]
[२] तै. सं. ७,३,१२ । [३] तै. सं. ७,३,१३ ।

आ मे ग्रहा भवन्त्वा पुरोरुक् स्तुतशस्त्रे मात्रिशतौ समीची ।
आदित्या रुद्रा वसवो मे सदस्यास्सहस्रस्य मा भूमा मा प्रहासीत् ॥ ११
आ माग्निष्टोमो विशतूक्थ्यश्चातिरात्रो मा विशत्वापिशर्वरः ॥
तिरोअह्न्या मा सुहुता आविशन्तु सहस्रस्य मा भूमा मा प्रहासीत् ॥३॥ १२

अग्निना तपोऽन्वाभवद्वाचा ब्रह्म मणिना रूपाणि हिरण्येन वर्चोऽद्भिः पृथिवीं वायुनान्तरिक्षँ सूर्येण दिवं चन्द्रमसा नक्षत्राणि यमेन पितॄन् राज्ञा मनुष्यान् फलेन नाद्यानजगरेण सर्पान् व्याघ्रेणारण्यान् पशूञ्छ्येनेन पतत्रिणो व्रीहिनान्नानि यवेनौषधीरुदुम्बरेणोर्जं न्यग्रोधेन वनस्पतीन् धृष्णाश्वान् वृषभेण गा वृष्णिनावीर्बस्तेनाजा गायत्र्या छन्दाँसि त्रिवृता स्तोमान् रथन्तरेण सामानि ब्राह्मणेन वाचम् ॥४॥ १३

स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा स्वाहाधीतं मनसे स्वाहा स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरंधिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निखुर्यपाय स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विश्वो देवस्य नेतुः ॥५॥ १४

दद्भ्यस्स्वाहा हनुभ्याँ स्वाहोष्ठाभ्याँ स्वाहा नासिकाभ्याँ स्वाहा मुखाय स्वाहा चक्षुर्भ्याँ स्वाहा श्रोत्राभ्याँ स्वाहा पार इक्षवोऽवारीयेभ्यः पक्ष्मभ्यस्स्वाहावार इक्षवः पारीयेभ्यः पक्ष्मभ्यस्स्वाहा शीर्ष्णे स्वाहा भ्रूभ्याँ स्वाहा ललाटाय स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा मस्तिष्काय स्वाहा केशेभ्यस्स्वाहा वहाय स्वाहा ग्रीवाभ्यस्स्वाहा स्कन्धेभ्यस्स्वाहा कीकसाभ्यस्स्वाहा पृष्टिभ्यस्स्वाहा पाजस्याय स्वाहा पार्श्वाभ्याँ स्वाहाँसाभ्याँ स्वाहा दोषभ्याँ स्वाहा बाहुभ्याँ स्वाहा जङ्घाभ्याँ स्वाहा श्रोणिभ्याँ स्वाहोरुभ्याँ स्वाहाष्ठीवद्भ्याँ स्वाहा जङ्घाभ्याँ स्वाहा भसदे स्वाहा शिखण्डेभ्यस्स्वाहा वालधानाय स्वाहाण्डाभ्याँ स्वाहा शेपाय स्वाहा रेतसे स्वाहा प्रजाभ्यस्स्वाहा प्रजननाय स्वाहा पद्भ्यस्स्वाहा शफेभ्यस्स्वाहा लोमभ्यस्स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा माँसाय स्वाहा स्नावभ्यस्स्वाहास्थिभ्यस्स्वाहा मज्जभ्यस्स्वाहाङ्गेभ्यस्स्वाहात्मने स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥६॥ १५

अञ्ज्येताय स्वाहाञ्जिसक्थाय स्वाहा शितिपदे स्वाहा शितिककुदे स्वाहा शितिरन्ध्राय स्वाहा

[४] तै. सं. ७,३,१४।
[५] मै. १,२,१३; २,७,७६। वा. ४,८; ११,६७; २२,२०-२१। काण्व. ४,९; १२,६८; २४,२६-२९। तै. सं. ७,३,१५ [विश्वो देवस्य नेतु:०। ऋ. ५,५०,१; तै. सं. १,२,२,१; ४,१,९,१]
[६] वा. ३९,१०। काण्व. ३९,९। तै. सं. ७,३,१६। [७] तै. सं. ७,३,१७।

शितिपृष्ठाय स्वाहा शित्यँसाय स्वाहा पुष्पकर्णाय स्वाहा शित्योष्ठाय स्वाहा शितिभ्रवे स्वाहा शितिभसदे स्वाहा श्वेतानूकाशाय स्वाहाञ्जये स्वाहा ललामाय स्वाहासितज्ञवे स्वाहा कृष्णैताय स्वाहा रोहितैताय स्वाहारुणैताय स्वाहेदृशाय स्वाहा कीदृशाय स्वाहा तादृशाय स्वाहा सदृशाय स्वाहा विसदृशाय स्वाहा सुसदृशाय स्वाहा रूपाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥७॥ १६

कृष्णाय स्वाहा श्वेताय स्वाहा पिशङ्गाय स्वाहा सारङ्गाय स्वाहारुणाय स्वाहा गौराय स्वाहा बभ्रवे स्वाहा नकुलाय स्वाहा शोणाय स्वाहा रोहिताय स्वाहा श्यावाय स्वाहा श्यामाय स्वाहा पालवाय स्वाहा सुरूपाय स्वाहा सरूपाय स्वाहा विरूपाय स्वाहानुरूपाय स्वाहा प्रतिरूपाय स्वाहा शबलाय स्वाहा कमलाय स्वाहा पृश्नये स्वाहा पृश्निसक्थाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥८॥ १७

ओषधीभ्यस्स्वाहा मूलेभ्यस्स्वाहा तूलेभ्यस्स्वाहा पर्वभ्यस्स्वाहा वल्शेभ्यस्स्वाहा पुष्पेभ्यस्स्वाहा फलेभ्यस्स्वाहा गृहीतेभ्यस्स्वाहागृहीतेभ्यस्स्वाहावपन्नेभ्यस्स्वाहा शयानेभ्यस्स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥९॥ १८

वनस्पतिभ्यस्स्वाहा मूलेभ्यस्स्वाहा तूलेभ्यस्स्वाहा स्कन्धेभ्यस्स्वाहा शाखाभ्यस्स्वाहा पर्णेभ्यस्स्वाहा पुष्पेभ्यस्स्वाहा फलेभ्यस्स्वाहा गृहीतेभ्यस्स्वाहागृहीतेभ्यस्स्वाहावपन्नेभ्यस्स्वाहा शयानेभ्यस्स्वाहा शिष्टाय स्वाहा परिशिष्टाय स्वाहातिशिष्टाय स्वाहा सँशिष्टाय स्वाहोच्छिष्टाय स्वाहा रिक्ताय स्वाहारिक्ताय स्वाहा प्ररिक्ताय स्वाहा संरिक्ताय स्वाहोद्रिक्ताय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥१०॥ १९

[२८४४]

॥इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थेऽनुवचनं नाम तृतीयं वचनं संपूर्णम् ॥३॥

अथ चतुर्थं वचनम्।

मेषानुवचनम्।

मेषस्त्वा पचतैरवतु लोहितग्रीवश्छागैश्शल्मलिर्वृद्ध्या पर्णो ब्रह्मणा प्लक्षो मेधेन न्यग्रोधश्चमसैरुदुम्बर ऊर्जा गायत्री छन्दोभिस्त्रिवृत्स्तोमैरवन्तीस्स्थावन्तीस्त्वावन्तु प्रियं त्वा प्रियाणां वर्षिष्ठमाप्यानां गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे वसो मम प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे वसो मम निधीनां त्वा निधिपतिँ हवामहे वसो मम ॥१॥ १

[८] तै. सं. ७,३,१८। वा. २५,१। कण्व. २७,२। [९] तै. सं. ७,३,१९। वा. २२,२८-२९। काण्व. २४,४०-४१।
[१०] तै. सं. ७,३,२०। वा. २२,२८—२९। कण्व. २४,४०—४१।
[१] मै. ३,१२,२१। वा. २३,१९। काण्व. २५,२१। तै. सं. ७,४,१२। [गणानां त्वा गणपति० हवामहे। ऋ. २,२३,१]

कूप्याभ्यस्स्वाहा कुल्याभ्यस्स्वाहा स्थाल्याभ्यस्स्वाहावट्याभ्यस्स्वाहा खल्याभ्यस्स्वाहा ह्रद्याभ्यस्स्वाहा सूद्याभ्यस्स्वाहा पल्वल्याभ्यस्स्वाहा वैशन्तीभ्यस्स्वाहा सरस्याभ्यस्स्वाहा वर्ष्याभ्यस्स्वाहावर्ष्याभ्यस्स्वाहा प्रुष्वाभ्यस्स्वाहा ह्रादुनिभ्यस्स्वाहा स्थावराभ्यस्स्वाहा स्यन्दमानाभ्यस्स्वाहा नादेयीभ्यस्स्वाहा सैन्धवीभ्यस्स्वाहा समुद्रियाभ्यस्स्वाहा सर्वाभ्यस्स्वाहा ॥२॥ २

अद्भ्यस्स्वाहा वहन्तीभ्यस्स्वाहा समुद्रं वहन्तीभ्यस्स्वाहा समन्तं वहन्तीभ्यस्स्वाहोग्रं वहन्तीभ्यस्स्वाहा भीमं वहन्तीभ्यस्स्वाहा शीमं वहन्तीभ्यस्स्वाहा शीघ्रं वहन्तीभ्यस्स्वाहाम्भोभ्यस्स्वाहा नभोभ्यस्स्वाहा महोभ्यस्स्वाहा ॥३॥ ३

यो अर्वन्तं जिघाँसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्तः परश्श्वा ॥ ४
अहं च त्वं च वृत्रहन् सँसनुयाव वरीष्वा।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मँसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५
अभि क्रत्वेन्द्र भूरथ ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजाँसि।
स्वेना हि वृत्रँ शवसा जगन्थ न शत्रुरन्तं विविद्युधा ते ॥४॥ ६

नमो राज्ञे नमो वरुणाय नमोऽश्वाय नमः प्रजापतये नमोऽधिपतयेऽधिपतिरस्यधिपतिं मा कुर्वधिपतिरहं प्रजानां भूयासं मां धेहि मयि धेह्युपाकृताय स्वाहालब्धाय स्वाहा हुताय स्वाहा ॥५॥ ७

मयोभूर्वातो अभिवात्तुस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीराविशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र नो मृड ॥ ८
यास्सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निर्निष्टया नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ९
या देवेषु तन्वमैरयन्त यासाँ सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥ १०

[२] तै. सं. ७,४,१३।
[३] वा. २२,२५,२९; ३९,२। काण्व. २४,३५,४१; ३९,२। तै. सं. ७,४,१४।
[४] मै. ३,१२,३। वा. २२,५। काण्व. २४,५। तै. सं. ७,४,१५। [अहं च त्वं च वृत्रहन्०। ऋ. ८,६२,११; तै. सं. ७,४,१५,१; नि. १,३। अभि क्रत्वेन्द्र भूरथ(०ध)०। ऋ. ७,२१,६; तै. सं. ७,४,१५,१]
[५] तै. सं. ७,४,१६।
[६] मै. ४,१०,३३—३४। वा. ११,५—६। काण्व. १३,५—६। तै. सं. ७,४,१७। [मयोभूर्वातो अभि०। ऋ. १०,१६९,१; तै. सं. ७,४,१७,१; नि. १,१७। यास्सरूपा विरूपा०। ऋ. १०,१६९,२; तै. सं. ७,४,१७,१। या देवेषु तन्वम्०। ऋ. १०,१६९,३; तै. सं. ७,४,१७,१]

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैर्यज्ञियैस्संविदानः।
बह्वीर्भवन्तीरुप नो गोष्ठमाशुस्तासां वयं प्रजया सँसदेम ॥ ११
इह धृतिस्स्वाहेह विधृतिस्स्वाहेह रन्तिस्स्वाहेह रमतिस्स्वाहा महीमू षु सुत्रामाणम् ॥६॥ १२

कस्स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किं स्वदावपनं महत् ॥ १३
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १४
का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः किं स्विदासीद्बृहद्वयः।
का स्विदासीत् पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥ १५
द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः।
अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला ॥ १६
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि त्वा भुवनस्य नाभिम्।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ १७
वेदिमाहुः परमन्तं पृथिव्या यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिम्।
सोममाहुर्वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मैव वाचः परमं व्योम ॥७॥ १८

अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकस्सुभगे काम्पीलवासिनि ॥ १९
स्वर्गे लोके संप्रोर्णुवाथामाहमजामि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधं तौ सह चतुरः पदस्संप्रसारयावहै वृषा वां रेतोधा रेतो दधातूत्सक्थ्योर्गृदं धेह्यञ्जिमुदञ्जिमन्वज ॥ २०
यस्स्त्रीणां जीवभोजनो य आसां बिलधावनः।
प्रियस्स्त्रीणामपीच्यो य आसां कृष्णे लक्ष्मणि सर्दिगृर्दिं परावधीत् ॥ २१
अम्बे अम्बाल्यम्बिके न मा नयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः ॥ २२

[प्रजापतिर्मह्यमेता०। ऋ. १०,१६९,४; तै. सं. ७,४,१७,२। महीमू षु०। तै. सं. १,५,११,५; ७,१,१८,२; तै. ब्रा. ३,१३,३; तै. आ. १,१३,२, मा. श्री. ७,२,६; कपि. ४६,७। सुत्रामाणम्। ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५; तै. आ. १,१३,२; काठ. २,३,११]
[७] मै. ३,१२,१९ (२५—२८)। वा. २३,९—१२,४५-४७,५३-५४,६१-६२। काण्व २५,१०-१३,४७-४९, ५५-५६,६३-६४। तै. सं. ७,४,१८। [कस्स्विदेकाकी चरति०। आ. सू. १०,९। सूर्य एकाकी चरति०। आ. सू. १०,९। पृच्छामि त्वा परमन्तं०। ऋ. १,१६४,३४; अथर्व. ९,१०,१३। वेदिमाहु:(इयं वेदि:)०। ऋ. १,१६४,३५; अथर्व. ९,१०,१४]
[८] मै. १,५,३; ११,२०; १३,१ (३०-३२; १-५)। वा. ११,५०-५२; २३,१८-२७,३०-३२; ३६,१४-१६। काण्व. १२,५१-५३; ३६,१४-१६; २५,२०-२९,३२-३४,४०। तै. सं. ७,४,१९।

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रयताद्वेणुभारं गिरा इव । अथास्या मध्यमेधतां शीते वाते पुनन्निव ॥ २३

अम्ब इत्युक्तम् ॥ २४

यद्धरिणी यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ २५

अम्ब इत्युक्तम् ॥ २६

इयं यका शकुन्तिकाहलमिति वञ्चति । आहतं गभे पसो निजल्गलीति धानिका ॥ २७

अम्ब इत्युक्तम् ॥ २८

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।
प्रसुलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥ २९

दधिक्राव्णो अकारिषमापो हि ष्ठेति तिस्रः ॥८॥ ३०

भूर्भुवस्स्वर्वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण च्छन्दसा रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसादित्यास्त्वाञ्जन्तु
जागतेन च्छन्दसा ॥ ३१

यद्वातो अपो अगमदिन्द्रस्य तन्वं प्रियाम् ।
एतं स्तोतरेतेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥ ३२

लाजी३ञ्छाची३न्यशो ममा३ यव्यायै गव्याया एतद्देवा अन्नमत्तैतदन्नमद्धि प्रजापते ॥ ३३

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ३४

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ३५

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥९॥ ३६

प्राणाय स्वाहा व्यानाय स्वाहापानाय स्वाहा स्नावभ्यस्स्वाहा संतानेभ्यस्स्वाहा परिसंतानेभ्य-

[दधिक्राव्णो अकारिषं० । ऋ. ४,३९,६; १०,१८६,१; सा. ३५८ । अथर्व. ४,१०,६; २०,१३७,३ । आपो हि ष्ठा मयो० । ऋ. १०,९,१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११; नि. ९,२७ । यो वः शिवतमो० । ऋ. १०,९,२; सा. १८३८; अथर्व. १,५,२; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११ । तस्मा अरं गमाम वो० । ऋ. १०, ९,३; सा, १८३९; अथर्व. १,५,३; तै. सं. ४,१,५,१; ५,६,१,४; ७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४; १०,१,११]

[९] मै. ३,१२,१८—१९; १६,३ (२२—२४; २९—३०) वा. २३,५—८; २९,३७ । काण्व. २५,५—९; ३१,१२ । तै. सं. ७,४,२० । [युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं० । ऋ. १,६,१; सा. १४६८; अथर्व. २०,२६,४; ४७,१०; ६९,९; तै. सं. ७,४,२०,१ । युञ्जन्त्यस्य काम्या० ऋ. १,६,२; सा. १४६९; अथर्व. २०,२६,५; ४७,११; ६९,१०; तै. सं. ७,४,२०,१ । केतुं कृण्वन्नकेतवे० । ऋ. १,६,३; सा. १४७०; अथर्व. २०,२६,६; ४७,१२; ६९,११; तै. सं. ७,४,२०,१; तै. ब्रा. ३,९,४,३]

[१०] मै. ३,१२,१९ । वा. २२,२३,३४; २३,१८; ३९,३ । काण्व. २४,३३,३७; २५,२०; ३९,२; तै. सं. ७,४,२१ ।

स्स्वाहा पर्वभ्यस्स्वाहा संधानेभ्यस्स्वाहा शरीरेभ्यस्स्वाहा यज्ञाय स्वाहा दक्षिणायै स्वाहा स्वर्गाय
स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥१०॥ ३७

[१८८१]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे मेधानुवचनं नाम चतुर्थं वचनं संपूर्णम् ॥४॥

अथ पञ्चमं वचनम् ।

मितानुवचनम् ।

सिताय स्वाहासिताय स्वाहाभिहिताय स्वाहानभिहिताय स्वाहा युक्ताय स्वाहायुक्ताय स्वाहा-
युक्ताय स्वाहोद्युक्ताय स्वाहा विमुक्ताय स्वाहा प्रमुक्ताय स्वाहा वञ्चते स्वाहा परिवञ्चते स्वाहा
संवञ्चते स्वाहानुवञ्चते स्वाहोद्वञ्चते स्वाहा यते स्वाहा धावते स्वाहा तिष्ठते स्वाहोपरताय स्वाहा
सर्वस्मै स्वाहा ॥१॥ १

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा संप्लोष्यते स्वाहा संप्लवमानाय स्वाहा संप्लुताय
स्वाहा मेघायिष्यते स्वाहा मेघायते स्वाहा मेघायिताय स्वाहा मेघिताय स्वाहा मेघाय स्वाहा
नीहाराय स्वाहा निहाकायै स्वाहा प्रासचाय स्वाहा प्रचलाकायै स्वाहा विद्योतिष्यते
स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा संविद्योतमानाय स्वाहा स्तनयिष्यते स्वाहा स्तनयते स्वाहोग्रँ
स्तनयते स्वाहा वर्षिष्यते स्वाहा वर्षते स्वाहाभिवर्षते स्वाहा परिवर्षते स्वाहा संवर्षते स्वाहा-
नुवर्षते स्वाहा प्रोषिष्यते स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा परिप्रुष्णते स्वाहा शीकायिष्यते स्वाहा शीकायते
स्वाहा शीतिकाय स्वाहोद्ग्रहीष्यते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा विप्लोष्यते स्वाहा विप्लवमानाय
स्वाहा विप्लुताय स्वाहातप्स्यते स्वाहातपते स्वाहोग्रमातपते स्वाहर्ग्भ्यस्स्वाहा यजुर्भ्यस्स्वाहा
सामभ्यस्स्वाहाङ्गिरोभ्यस्स्वाहा वेदेभ्यस्स्वाहा गाथाभ्यस्स्वाहा नाराशँसीभ्यस्स्वाहा रैभीभ्यस्स्वाहा
सर्वस्मै स्वाहा ॥२॥ २

दत्वते स्वाहादन्तकाय स्वाहा प्राणिने स्वाहाप्राणकाय स्वाहा नासिकावते स्वाहानासिकाय
स्वाहा मुखवते स्वाहामुखकाय स्वाहाक्षण्वते स्वाहानक्षकाय स्वाहा कर्णवते स्वाहाकर्णकाय स्वाहा

[१] तै. सं. ७,४,२१ ।

[२] मै. ३,१२,१२ । वा. २२,२६—२७,२९; ३९,१ । काण्व. २४,३६—३७ ४१; ३९,१ । तै. सं. ७,५,११ । [पृथिव्यै स्वाहा । अथर्व. ५,९,२; ६ । अन्तरिक्षाय स्वाहा । अथर्व. ५,९,३—४ । दिवे स्वाहा । अथर्व. ५,९,१,५]

[३] वा. ३९,१० । काण्व. ३९,९ । तै. सं. ७,५,१२ ।

शीर्षण्वते स्वाहाशीर्षकाय स्वाहा पादवते स्वाहापादकाय स्वाहा प्राणते स्वाहाप्राणते स्वाहा वदते
स्वाहावदते स्वाहा पश्यते स्वाहापश्यते स्वाहा शृण्वते स्वाहाशृण्वते स्वाहा मनस्विने स्वाहामन-
स्काय स्वाहा रेतस्विने स्वाहारेतस्काय स्वाहा प्रजाभ्यस्स्वाहाप्रजननाय स्वाहा लोमवते स्वाहा-
लोमकाय स्वाहा त्वचे स्वाहात्वक्काय स्वाहा चर्मवते स्वाहाचर्मकाय स्वाहा लोहितवते स्वाहालोहि-
ताय स्वाहा माँसन्वते स्वाहामाँसकाय स्वाहा स्नावभ्यस्स्वाहास्नावकाय स्वाहास्थन्वते स्वाहानस्थ-
काय स्वाहा मज्जन्वते स्वाहामज्जकाय स्वाहाङ्गवते स्वाहानङ्गकाय स्वाहात्मन्वते स्वाहानात्मकाय
स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥३॥ ३

अग्निः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निस्स ते लोकस्तं जेष्यस्यथावजिघ्र
वायुः पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन् वायुस्स ते लोकस्तं जेष्यस्यथावजिघ्रादित्यः
पशुरासीत् तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नादित्यस्स ते लोकस्तं जेष्यस्यथावजिघ्र ॥४॥ ४

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षँ समुद्रो योनिस्सूर्यस्ते चक्षुर्वातः प्राणश्चन्द्रमाश्श्रोत्रं दिशः
पादा अवान्तरदिशाः पर्शवो नक्षत्राणि रूपं मासाश्चार्धमासाश्च परूँष्यृतवोऽङ्गानि संवत्सरो महिमा
॥५॥ ५

आयासाय स्वाहावयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहा प्रयासाय स्वाहा संयासाय स्वाहोद्यासाय
स्वाहा शोकाय स्वाहा शुचे स्वाहा शुचये स्वाहा तपसे स्वाहा तप्यत्यै स्वाहा क्षुधे स्वाहा
भ्रूणहत्यायै स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥६॥ ६

जुम्बकाय स्वाहावभृथाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥७॥ ७

मृत्यवे स्वाहावभृथाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥८॥ ८

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्तु विष्णुस्त्वा युनक्त्वस्य यज्ञस्यर्द्ध्यै मह्यँ संनत्या अमुष्मै कामा-
यायुषे त्वा प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय त्वा व्युष्ट्यै त्वा रय्यै त्वा राधसे त्वा पोषाय त्वा
घोषाय त्वाराद्घोषाय त्वा प्रच्युत्यै त्वा कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चतु विष्णुस्त्वा विमुञ्चत्वस्य
यज्ञस्यर्द्ध्यै मह्यँ संनत्या अमुष्मै कामायायुषे त्वा प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय त्वा व्युष्ट्यै त्वा
रय्यै त्वा राधसे त्वा पोषाय त्वा घोषाय त्वाराद्घोषाय त्वा प्रतिष्ठित्यै त्वा ॥९॥ ९

[४] वा. २३,१७ । काण्व. २५,१९ । तै. सं. ५,७,२६ ।
[५] वा. ११,२० । काण्व. १२,२० । तै. सं. ५,७,२५ ।
[६] वा. ३९,११—१२ । काण्व. ३९,१०—११ । तै. सं. १,४,३५ ।
[७] वा. २५,९ । काण्व. २७,१३ । [८] वा. ३९,१३ । काण्व. ३९,१२ ।
[९] वा. ३,६,२०; ३,२३; ७,३; १३,३१—३४ । काण्व. २,९,३४; ३,४१; ७,३; १५,२३—२४ । तै. सं. ७,५,१३ ।

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तराय वासन्तायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हताय
ग्रैष्मायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यस्सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो वार्षिकेभ्यो द्वादशकपालो
मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविँशाभ्यां वैराजाभ्याँ शारदाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय
त्रिणवाय शाक्वराय हैमन्तिकाय चरुस्सवित्र आतिच्छन्दसाय त्रयस्त्रिँशाय रैवताय शैशिराय द्वादश-
कपालोऽदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्यै चरुः काय एककपालः
॥१०॥ १०

हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्य ते द्यौर्महिमा नक्षत्राणि रूपमादित्यस्ते
तेजस्तस्मै त्वा महिम्ने प्रजापतये स्वाहा ॥११॥ १२

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद्धरुणं मध्वो अग्रँ स्वा यत् तनू तन्वमैरयत ॥ १३

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्य तेऽन्तरिक्षं महिमापो वयाँसि रूपं वायुष्टे
तेजस्तस्मै त्वा महिम्ने प्रजापतये स्वाहा ॥१२॥ १४

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १५

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि तस्य ते पृथिवी महिमौषधयो वनस्पतयो
रूपमग्निस्ते तेजस्तस्मै त्वा महिम्ने प्रजापतये स्वाहा ॥१३॥ १६

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामस्मिन् राष्ट्रे राजन्य इषव्यश्शूरो महारथो जायतां
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुस्सप्तिर्जिष्णू रथेष्ठाः पुरंधिर्योषा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां

[१०] मै. ३,१५,१० । वा. २९,६० । काण्व. ३१,४९ । तै. ७,५,१४ ।

[११] मै. ३,१२,१६ (१८-१९) । वा. २३,१—२,४; १३,४; २५,१० । काण्व. २५,१—२,४; १४,४; २७,१४ । तै. सं. ७,५,१६ । [हिरण्यगर्भस्समवर्तताग्रे० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; ९,८,१; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३ ।

[१२] मै. १,१०,३; ३,१२,१६—१७ (१६; १९; २१) । वा. २३,१—२,४ । काण्व. २५,१—२,४ । तै. सं. १,७,१२, २ । [अया विष्ठा जनयन्० । अथर्व. ७,३,१]

[१३] मै. ३,१२,१७ (२०—२१) । वा. २३,३—४; २५,११ । काण्व. २५,३—४; २७,१५ । तै. सं. ७,५,१६—१७ । [यः प्राणतो निमिषतो० । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,१—२]

[१४] मै. ३,१२,६ (८) । वा. २२,२२ । काण्व. २४,३०—३२ । तै. सं. ७,५,१८ ।

निकामें निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवतीर्न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥१४॥
१७

आक्रान् वाजी पृथिवीमग्निं युजमकृत वाज्यर्वाक्रान् वाज्यन्तरिक्षं वायुं युजमकृत वाज्यर्वा द्यां
वाज्याक्रँस्त सूर्यं युजमकृत वाज्यर्वायुष्टे वाजिन्युङ्क्तु त्वारभे स्वस्ति मा संपारय वायुष्टे वाजि-
न्युङ्क्तु त्वारभे स्वस्ति मा संपारयादित्यस्ते वाजिन्युङ्क्तु त्वारभे स्वस्ति मा संपारय प्राणधृगसि
प्राणं मे दँह व्यानधृगसि व्यानं मे दँहापानधृगस्यपानं मे दँह चक्षुरसि चक्षुर्मे धेहि श्रोत्रमसि श्रोत्रं
मयि धेह्यायुरस्यायुर्मे धेहि सर्वमायुर्गेषम् ॥१५॥ १८

क्रमैरत्यक्रमीद्वाजी विश्वैर्देवैर्यज्ञियैस्संविदानस्स नो नय सुकृतस्य लोकं तस्य ते वयँ स्वधया
मदेम ॥१६॥ १९

जज्ञि बीजं वर्ष्टा पर्जन्यः पन्था सस्यँ सुपिप्पला ओषधयस्स्वधिचरणेयँ सूपसदनोऽग्निस्स्वध्यक्ष-
मन्तरिक्षँ सूपवाः पवमानस्सूपस्थाना द्यौश्शिवमसौ तपन् यथापूर्वमहोरात्रे पञ्चदशिनोऽर्धमासा-
स्त्रिंशिनो मासाः क्लृप्ता ऋतवश्शान्तस्संवत्सरः ॥१७॥ २०

आग्नेयोऽष्टाकपालस्सौम्यश्चरुस्सावित्रोऽष्टाकपालस्सारस्वतश्चरुः पौष्णश्चरू रौद्रो गावीधुकश्चरुरग्नये
वैश्वानराय द्वादशकपालो मृगाखरे यदि नागच्छेदग्नयेऽँहोमुचेऽष्टाकपालस्सौर्यं पयो वायव्य आज्य-
भागः ॥१८॥ २१

अग्नयेऽँहोमुचेऽष्टाकपाल इन्द्रायाँहोमुच एकादशकपालो वायांसावित्र आगोमुग्भ्यां चरुर्मित्रा-
वरुणाभ्यामागोमुग्भ्यां पयस्याश्विभ्यामागोमुग्भ्यां धाना मरुद्भ्य एनोमुग्भ्यस्सप्तकपालो विश्वेभ्यो
देवेभ्य एनोमुग्भ्यो द्वादशकपालोऽनुमत्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो द्यावापृथिवीभ्यामँहो-
मुग्भ्यां द्विकपालः ॥१९॥ २२

अग्नये संमनमत् पृथिव्यै संमनमद्यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु
वायवे संमनमदन्तरिक्षाय संमनमद्यथा वायुरन्तरिक्षेण समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु सूर्याय
संमनमद्दिवे संमनमद्यथा सूर्यो दिवा समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु वरुणाय संमनमदद्भ्य-

[१५] मै. २,७,२१। वा. ४,३; ११,१९। काण्व. ४,४; १२,१९। तै. सं. ७,५,१९।
[१६] तै. सं. ५,७,२४। [१७] तै. सं. ७,५,२०।
[१८] मै. १,१०,१; २,६,९। वा. १९,६०। काण्व. ३१,४९। तै. सं. ७,५,२१।
[१९] मै. ३,१५,११ (११)। तै. सं. ७,५,२२।
[२०] तै.-सं. ७,५,२३।

स्संमनमद्यथा वरुणोऽद्भिस्समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु साम्ने संमनमदृचे संमनमद्यथा
सामर्चा समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु ब्रह्मणे संमनमत् क्षत्राय संमनमद्यथा ब्रह्म क्षत्रेण
समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतयस्संनमन्तु राज्ञे संमनमद्विशे संमनमद्यथा राजा विशा समनमदेवं मह्यं
भद्रास्संनतयस्संनमन्तु रथाय संमनमदश्वेभ्यस्संमनमद्यथा रथोऽश्वैस्समनमदेवं मह्यं भद्रास्संनतय-
स्संनमन्तु ॥२०॥ २३

समिद्दिशां कया नः ॥ २४

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥२१॥ २५

[१९०६]

इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे मितानुवचनं नाम पञ्चमं वचनं संपूर्णम्॥५

अथ षष्ठं वचनम्।

जीमूतानुवचनम्।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वँ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्रास्समदो जयेम ।
धनुश्शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २
वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रियँ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयँ समने पारयन्ती ॥ ३
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यताँ संविदाने आर्त्नी इमे विस्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४
वह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिस्सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५

[२१] मै. ३,१६,४ (६९)। तै. सं. ४,२,११,३। [को अद्य युङ्क्ते धुरि गा०। ऋ. १,८४,१६; सा. ३४१; अथर्व. १८,१,६; तै. सं. ४,२,११,३; नि. १४,२५]
[१] मै. ३,१६,३ (३१-४९)। वा. २९,३८-५७। काण्व. ३१,१३-२३। तै. सं. ४,६,६। [जीमूतस्येव भवति०। ऋ. ६,२५,१; तै. सं. ४.६,६,१। धन्वना गा०। ऋ. ६,७५,२; तै. सं. ४,६,६,१; नि. ९,१७। वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति०। ऋ. ६,७५,३; तै. सं. ४,६,६,१; नि. ९,१८। ते आचरन्ती०। ऋ. ६,७५,४; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,४०। वह्वीनां पिता०। ऋ. ६,७५,५; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,१४]

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनुयच्छन्ति रश्मयः ॥ ६
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिस्सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७
रथवाहनँ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मँ सदेम विश्वाहा वयँ सुमनस्यमानाः ॥ ८
स्वादुषँसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितश्शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्रास्सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९
ब्राह्मणासः पितरस्सोम्यासश्शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरिताद्दतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशँस ईशत ॥ १०
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिस्संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरस्सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवश्शर्म यँसन् ॥ ११
यत्रा नरस्सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवश्शर्म यँसन् ॥
वृजीते परिवृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिश्शर्म यच्छतु ॥
१२

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाँसं परिपातु विश्वतः ॥ १३
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान् समत्सु चोदय ॥ १४
आजङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते ।
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणस्सुवीरः ।
गोभिस्संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ १५
दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतँ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रँ हविषा रथं यज ॥ १६

[रथे तिष्ठन्नयति०। ऋ. ६,७५,६; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,१६। तीव्रान् घोषान्०। ऋ. ६,७५,७; तै. सं. ४,६,६,३। रथवाहनँ हविरस्य०। ऋ. ६,७५,८; तै. सं. ४,६,६,३। स्वादुषँसदः पितरो०। ऋ. ६,७५,१०; तै. सं. ४,६,६,३। सुपर्णं वस्ते ६,७५,९; तै. सं. ४,६,६,३। ब्राह्मणासः पितरः०। ऋ. ६,७५,१२; वृ (ऋ)जीते परिवृङ्धि०। ऋ. ६,७५,११; मृगो०। ऋ. ६,७५,११; तै. सं. ४,६,६,४; नि. २,५; ९,१९। आजङ्घन्ति तै. सं. ४,६,६,४। अहिरिव भोगैः०। ऋ. ६,७५,१४; तै. सं. ४,६,६,५; नि. ९,१५। वनस्पते वीड्वङ्गो०। ऋ. ६,४७,२६; अथर्व. सान्वेषां०। ऋ. ६,७५,१३; तै. सं. ४,६,६,५; नि. ९,२०। दिवः पृथिव्याः०। ऋ. ६,४७,२७; अथर्व. ६,१२५,२; ६,१२५,१; तै. सं. ४,६,६,५; नि. २,५; ९,१२। तै. सं. ४,६,६,५]

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ १७
उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥ १८
आक्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अपप्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ १९
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥१॥ २०

समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ २१
घृतेनाञ्जन् सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशस्सचन्ताँ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २२
ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिस्सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ २३
स्तीर्णं बर्हिस्सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिरक्तमदितिस्सजोषास्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ २४
एता उ वस्सुभगा विश्ववारा वि पक्षोभिश्श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वास्सतीः कवयश्शुम्भमाना द्वारो देवीस्सुप्रयाणा भवन्तु ॥ २५
अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभिसंविदाने ।
उषासा वाँ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योना इह सादयामि ॥ २६
प्रथमा वाँ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ २७

[इन्द्रस्य वज्रो०। ऋ. ६,४७,२८; अथर्व. ६,१२५,३; तै. सं. ४,६,६,६। उपश्वासय पृथिवी०। ऋ. ६,४७,२९; अथर्व. ६,१२६,१; तै. सं. ४,६,६,६; नि. ९,१३। आक्रन्दय बलमोजो०। ऋ. ६,४७,३०; अथर्व. ६,१२६,२; तै. सं. ४,६,७,७। आमूरज प्रत्यावर्तय०। ऋ. ६,४७,३१; अथर्व. ६,१२६,३; तै. सं. ४,६,६,७]
[२] मै. ३,१६,२ (१७-२७)। वा. २९,१-११। काण्व. ३१,१-११। तै. सं. ५,१,११। मा. श्रौ. ९,२,५। [घृतेनाञ्जन् सं पथो०। तै. सं. ५,१,११,१। ईड्यश्चासि वन्द्यश्च०। तै. सं. ५,१,११,१। स्तीर्णं बर्हिस्सुष्टरीमा०। तै. सं. ५,१,११,२। एता उ वस्सुभगा०। तै. सं. ५,१,११,२। अन्तरा मित्रावरुणा०। तै. सं. ५,१,११,३। प्रथमा वाँ सरथिना०। तै. सं. ५,१,११,३]

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिस्सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ २८
त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥ २९
अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ ३०
प्रजापतेस्तपसा वावृधानस्सद्यो जातो मधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥२॥ ३१

यदक्रन्दः ॥ ३२
आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिस्सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ३३
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ३४
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवाममिरे वीर्यं ते ॥ ३५
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ३६
ईर्मान्तासस्सिलिकमध्यमासस्सँ शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ ३७
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ३८

[आदित्यैर्नो भारती० । तै. सं. ५,१,११,३ । अश्वो घृतेन त्मन्या० । तै. सं. ५,१,११,४ । प्रजापते स्तपसा वावृधानः० । तै. सं. ५,१,११,४]

[१] वा. २९,१२,१७—२४ । काण्व. ३१,२४,२९—३६ । तै. सं. ४,६,७ । [यदक्रन्दः प्रथमं । ऋ. १,१६३,१; तै. सं. ४,६,७,१; ६,७,१ । आत्मानं ते मनसा० । १,१६३,६; तै. सं. ४,६,७,२ । अत्रा ते रूपमुत्तमं० । ऋ. १,१६३,७; तै. सं. ४,६,७,३; नि. ६,८ । अनु त्वा रथो अनु० । ऋ. १,१६३,८; तै. सं. ४,६,७,३ । हिरण्यशृङ्गोऽयो० । ऋ. १,१६३,९; तै. सं. ४,६,७,४ । ईर्मान्तासस्सिलिक० । ऋ. १,१६३,१०; तै. सं. ४,६,७,४; नि. ४,१३ । तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्० । ऋ. १,१६३,११; तै. सं. ४,६,७,४]

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चाद् कवयो यन्ति रेभाः ॥ ३९
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥३॥ ४०

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वार्याणि ॥ ४१
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येतु पाथः ॥ ४२
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेवः ।
अभिप्रियं यत् पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनँ सौश्रवसाय जिन्वन्ति ॥ ४३
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
तत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः परिवेदयन्नजः ॥ ४४
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शँस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वम् ॥ ४५
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनँ संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ४६
उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्तु देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ४७
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणँ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ४८

[उप प्रागाच्छसनं० । ऋ. १,१६३,१२; तै. सं. ४,६,७,४ । उप प्रागात् परमं० । ऋ. १,१६३,१३; तै. सं. ४,६,७,५]

[४] मै. ३,१६,१ (१—१०,१३) । वा. २५,२४—३३,३६ । काण्व. २७,२८—३७,४० । तै. सं. ४,६,८—९ । [मा नो मित्रो वरुणो० । ऋ. १,१६२,१; तै. सं. ४,६,८,१; नि. ९,३ । यन्निर्णिजा रेक्णसा० । ऋ. १,१६२,२; तै. सं. ४,६,८,१ । एष च्छागः पुरो० । ऋ. १,१६२,३; तै. सं. ४,६,८,१ । यद्धविष्यमृतुशो० । ऋ. १,१६२,४; तै. सं. ४,६,८,२ । होताध्वर्युरावया० । ऋ. १,१६२,५; तै. सं. ४,६,८,२ । यूपव्रस्का उत ये० । ऋ. १,१६२,६; तै. सं. ४,६,८,२ । उप प्रागात सुमन्मे० । ऋ. १,१६२,८; तै. सं. ४.६.

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोश्शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ४९
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधँ शृतपाकं पचन्तु ॥ ५०
यन्नीक्षणं माँस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥४॥ ५१
यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ५२
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुस्सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो माँसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ५३
मा त्वाग्निर्ध्वनयेद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ५४
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ५५
यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ५६
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥ ५७
चतुस्त्रिँशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिस्समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ॥ ५८
एकस्त्वष्टुरश्वस्य विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथर्तुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ ॥ ५९

[यदश्वस्य क्रविषो० । ऋ. १,१६२,९; तै. सं. ४,६,८,३ । यदूवध्यमुदरस्या० । ऋ. १,१६२,१०; तै. सं. ४,६,८,४ । यन्नीक्षणं माँस्पचन्या० । ऋ. १,१६२,१३; तै. सं. ४,६,९,१]

[५] मै. ३,१६,१७; ३,१६,१ (१०६; ११—१९,१४—१६) । वा. २५,३४—३५,३७ —४५ । काण्व. २७,३८—३९, ४१—४३ । तै. सं. ४,६,८,४; ४,६,९,१ । [यत् ते गात्रादग्निना० । ऋ. १,१६२,११; तै. सं. ४,६,८,४ । ये वाजिनं परि० । ऋ. १,१६२,१२; तै. सं. ४,६,९,१ । मा त्वाग्निर्ध्वनये० । ऋ. १,१६२,१५; तै. सं. ४,६,९,२ । निक्रमणं निषदनं० । ऋ. १,१६२,१४; तै. सं. ४,६,९,१ । यत् ते सादे महसा० । ऋ. १, १६२,१७; तै. सं. ४,६,९,२ । यदश्वाय वास० । ऋ. १,१६२,१६; तै. सं. ४,६,९,२ । चतुस्त्रिँशद्वाजिनो देव० । ऋ. १,१६२,१८; तै. सं. ४,६,९,३ । एकस्त्वष्टुरश्वस्य० ; ऋ. १,१६२,१९; तै. सं. ४,६,९,३]

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय च्छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ६०
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिस्सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ६१
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुँसः पुत्राँ उत विश्वपुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनते हविष्मान् ॥५॥ ६२
[१०६८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे जीमूतानुवचनं नाम षष्ठं वचनं संपूर्णम् ॥६॥

अथ सप्तमं वचनम् ।

इन्द्रानुवचनम् ।

इन्द्राय राज्ञे सूकरो वरुणाय राज्ञे कृष्णो यमाय राज्ञ ऋश्य ऋषभाय राज्ञे गवयश्शार्दूलाय राज्ञे
गौरः पुरुषराजाय मर्कटः क्षिप्रश्येनस्य वर्तिका नीलङ्गोः कृमिस्सोमाय राज्ञे कुलङ्गस्सिन्धोश्शिशु-
मारो हिमवतो हस्ती ॥१॥ १

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदँशस्ते धातुस्सरस्वत्यै शारिश्श्येता पुरुषवाक् सरस्वते शुक-
श्श्येतः पुरुषवागारण्योऽजो नकुलश्शका ते पौष्णा वाचे क्रौञ्चः ॥२॥ २

अपां नप्त्रे झषो नाक्रो मकरः पुलीरयस्ते कूवरस्य वाचे पैङ्गराजो भगाय कुषीतक आती
वाहसो दर्विदा ते वायव्या दिग्भ्यश्चक्रवाकः ॥३॥ ३

बलायाजगर आखुस्सृजया शयाण्डकस्ते मैत्रा मृत्यवेऽसितो मन्यवे स्वजः कौम्भीनसः पुष्कर-
सादो लोहिताहिस्ते त्वाष्ट्राः प्रतिश्रुत्कायै वाहसः ॥४॥ ४

[मा त्वा तपत् प्रिय० । ऋ. १,१६२,२०; तै. सं. ४,६,९,३, । न वा उ एतन्म्रियसे० । ऋ. १,१६२,२१; तै. सं. ४,६,९,४; तै. आ. ३,७,७,१४ । सुगव्यं नो वाजी० । ऋ. १,१६२,२२; तै. सं. ४,६,९,४]
[१] मै. ३,१४,११ (११) । वा. २४,३० । काण्व. २६,३४ । तै. सं. ५,५,११ ।
[२] मै. ३,१४,१२-१४ (१२—१४) । वा. २४,३१—३३ । काण्व. २६,३५—३७ । तै. सं. ५,५,१२ ।
[३] मै. ३,१४,२—३,१५—१६ (२—३,१५ - १६) । वा. २४,२१—२२, ३४—३५ । काण्व. २६,२५—२६, ३८—३९ । तै. सं. ५,५,१३ ।
[४] मै. ३,१४,१४ (१४) । वा. २४,३३ । काण्व. २६,३७ । तै. सं. ५,५,१४ ।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसे गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनामेण्यह्ने कृष्णो रात्र्यै पिगः क्ष्विङ्क्षा
नीलशीर्ष्णी तेऽर्यम्णो धातुः कक्कटः ॥५॥ ५

सौरी बलाकश्शर्यो मयूरश्श्येनस्ते गन्धर्वाणां वसूनां कपिञ्जलो रुद्राणां तित्तिरी रोहित्कुण्डृणाची
गोलत्तिका ता अप्सरसामरण्याय सृमरः ॥६॥ ६

पृषतो वैश्वदेवो बिद्धो न्यङ्कुः कशस्तेऽनुमत्या अन्यवापोऽर्धमासानां मासां कश्यपः कुवयिः
कुटरुर्दात्यौहस्ते सिनीवाल्यै बृहस्पतये शित्पुटः ॥७॥ ७

शका भौमी पाङ्क्तः कशो मन्थीलवस्ते पितृणामृतूनां जहका संवत्सराय लोपा कपोत उलूक-
श्शशस्ते नैर्ऋताः कृकवाकुस्सावित्रः ॥८॥ ८

रुरू रौद्रः कृकिलासश्शकुनिः पिप्पका ते शरव्यायै हरिणो मारुतो ब्रह्मणे शार्गस्तरक्षुः कृष्णश्श्वा
चतुरक्षो गर्दभस्त इतरजनानामग्नये धूङ्क्षा ॥९॥ ९

अलज आन्तरिक्ष उद्रो मद्गुः प्लवस्तेऽपामदित्यै हँससाचिरिन्द्राण्यै कीर्शा गृध्रश्शितिकक्षी
वार्ध्रीणसस्तेऽदित्या द्यावापृथिव्या श्वावित् ॥१०॥ १०

सुपर्णः पार्जन्यो हँसो वृको वृषदँशस्त ऐन्द्रा अपामुद्रोऽर्यम्णो लोपाशस्सिँहो नकुलो व्याघ्रस्ते
महेन्द्राय कामाय परस्वान् ॥११॥ ११

[२९७९]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे इन्द्रानुवचनं नाम सप्तमं
वचनं संपूर्णम् ॥७॥

[५] मै. ३,१४,१६-१७ (१६-१७)। वा. २४,३५-३६। काण्व. २६,३९-४०। तै. सं. ५,५,१५।
[६] मै. ३,१४,१८ (१८)। वा. २४,३७। काण्व. २६,४१। तै. सं. ५,५,१६।
[७] मै. ३,१४,२० (२०)। वा. २४,३९। काण्व. २६,४३। तै. सं. ५,५,१७।
[८] मै. ३,१४,१९ (१९)। वा. २४,३८। काण्व. २६,४२। तै. सं. ५,५,१८।
[९] मै. ३,१४,२०-२१ (२०-२१)। वा. २४,३९—४०। काण्व. २६,४३-४४। तै. सं. ५,५,१९।
[१०] मै. ३,१४,१६; २० (१६; २०)। वा. २४,३४,३९। काण्व. २६,३९,४३। तै. सं. ५,५,२०।
[११] मै. ३,१४,१५; १७-१८ (१५; १७-१८)। वा. २४,३४-३७। काण्व. २६,३८-४१। तै. सं. ५,५,२१।
काठ-५५

अथाष्टमं वचनम्।

पेत्वानुवचनम्।

आग्नेयः कृष्णग्रीवस्सारस्वती मेषी बभ्रुस्सौम्यः पौष्णश्श्यामश्शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यश्शिल्पो वैश्व-
देव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नस्संहितोऽधोरामस्सावित्रो वारुणः पेत्वः ॥१॥ १

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्या आग्नेयौ कृष्णग्रीवौ त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ शितिपृष्ठौ बार्ह-
स्पत्यौ धात्रे पृषोदरस्सौर्यो बलक्षः पेत्वः ॥२॥ २

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ
मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णोऽजस्सारस्वती मेषी वारुणः कृष्ण एकशितिपात् पेत्वः ॥३॥ ३

[२९८२]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे पेत्वानुवचनं नामाष्टमं
वचनं संपूर्णम् ॥८॥

अथ नवमं वचनम्।

रोहितानुवचनम्।

रोहितो धूम्रलोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते प्राजापत्या बभ्रुररुणबभ्रुश्शुकबभ्रुस्ते रौद्राश्श्येतश्श्येताक्ष-
श्श्येतग्रीवस्ते पितृदेवत्यास्तिस्रः कृष्णा वशा वारुण्यस्तिस्रश्श्वेता वशास्सौर्यो मैत्राबार्हस्पत्या धूम्र-
ललामास्तूपराः ॥१॥ १

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गुर्लोहितोर्णी बलक्षी तास्सारस्वत्यः पृषती क्षुद्र-
पृषती स्थूलपृषती ता वैश्वदेव्यस्तिस्रश्श्यामा वशाः पौष्ण्यस्तिस्रो रोहिण्यो वशा मैत्र्य ऐन्द्राबार्ह-
स्पत्या अरुणललामास्तूपराः ॥२॥ २

शितिबाहुरन्यतश्शितिबाहुस्समन्तशितिबाहुस्त ऐन्द्रवायवाश्शितिरन्ध्रोऽन्यतश्शितिरन्ध्रस्सम-
न्तशितिरन्ध्रस्ते मैत्रावरुणाश्शुद्धवालस्सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनास्तिस्रश्शिल्पा वशा वैश्व-
देव्यस्तिस्रश्श्येनीः परमेष्ठिने सौमापौष्णाश्श्यामललामास्तूपराः ॥३॥ ३

[१] मै. ३,१३,२ (६)। वा. २९,५८। काण्व. ३१,५०। तै. सं. ५,५,२२।
[२] मै. ३,१३,२ (६)। वा. २४,१। काण्व. २६,१-३। तै. सं. ५,५,२३।
[३] मै. ३,१३,१२; १४ (१६,१८)। वा. २९,५९। काण्व. ३१,५१। तै. सं. ५,५,२४।
[१] मै. ३,१३,३ (७)। वा. २४,२। काण्व. २६,३-४। तै. सं. ५,६,११। मा. श्रौ. ९,२,४।
[२] मै. ३,१३,३,५ (७; ९)। वा. २४,२,४। काण्व. २६,३-४,६-८। तै. सं. ५,६,१२।
[३] मै. ३,१३,३-४,६ (७-८,१०)। वा. २४,२-३,५। काण्व. २६,४-५,९। तै. सं. ५,६,१३।

उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावरुणाश्शितिककुच्छितिपृष्ठश्शितिभसत् त ऐन्द्राबार्हस्पत्याश्शिति-
पाच्छित्योष्ठश्शितिभ्रूस्त ऐन्द्रावैष्णवास्तिस्रस्सिध्मा वशा वैश्वकर्मण्यस्तिस्रो धात्रे पृषोदराः पौष्णा-
श्श्येतललामास्तूपराः ॥४॥ ४

कर्णास्त्रयो यामास्सौम्यास्त्रयश्शितिङ्गा अग्नये यविष्ठाय त्रयो नकुलास्तिस्रो रोहिण्यस्त्र्यव्यस्ता
वसूनां तिस्रोऽरुणा दित्यौह्यस्ता रुद्राणाँ सौमेन्द्रा बभ्रुललामास्तूपराः ॥५॥ ५

शुण्ठास्त्रयो वैष्णवा अधीलोधकर्णास्त्रयो विष्णव उरुक्रमाय लप्सुदिनस्त्रयो विष्णव उरुगायाय
पञ्चाव्यस्तिस्र आदित्यानां त्रिवत्सास्तिस्रोऽङ्गिरसामाग्नेन्द्राः कृष्णललामास्तूपराः ॥६॥ ६

इन्द्राय राज्ञे त्रयश्शितिपृष्ठा इन्द्रायाधिराजाय त्रयश्शितिककुद इन्द्राय स्वराजे त्रयश्शितिभस-
दस्तिस्रस्तुर्यौह्यस्साध्यानां तिस्रः पष्ठौह्यो विश्वेषां देवानामैन्द्रावैष्णवा गौरललामास्तूपराः ॥७॥ ७

अदित्यै त्रयो रोहितैता इन्द्राण्यै त्रयः कृष्णैताः कुह्वै त्रयोऽरुणैतास्तिस्रो धेनवो राकायै त्रयो-
ऽनड्वाहस्सिनीवाल्या आग्नावैष्णवा रोहितललामास्तूपराः ॥८॥ ८

सौम्यास्त्रयः पिशङ्गास्सोमाय राज्ञे त्रयस्सारङ्गाः पार्जन्या नभोरूपास्तिस्रोऽजा मल्हा इन्द्राण्यै
तिस्रो मेष्य आदित्या द्यावापृथिव्या मालङ्गास्तूपराः ॥९॥ ९

वारुणास्त्रयः कृष्णललामा वरुणाय राज्ञे त्रयो लोहितललामा वरुणाय रिशादसे त्रयोऽरुणललामा-
श्शिल्पास्त्रयो वैश्वदेवास्त्रयः पृश्नयस्सर्वदेवत्या ऐन्द्रासौराश्श्यामललामास्तूपराः ॥१०॥ १०

[२९९२]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे रोहितानुवचनं नाम
नवमं वचनं संपूर्णम् ॥९॥

[४] मै. ३,१३,७—८ (११—१२)। वा. २४,६—७। काण्व. २६,१०—११। तै. सं. ५,६,१४। [७] तै. सं. ५,६,१७। [८] तै. सं. ५,६,१८।
[५] तै. सं. ५,६,१५। [६] तै. सं. ५,६,१६।
[९] तै. सं. ५,६,१९। [१०] तै. सं. ५,६,२०।

अथ दशमं वचनम्।

सोमानुवचनम्।

सोमाय स्वराजेऽनोवाहा अनड्वाहा इन्द्राग्निभ्यामोजोदाभ्यामोष्टारा इन्द्राग्निभ्यां बलादाभ्याँ
सीरवाहा अवी द्वे धेनू भौमी दिग्भ्यो वडवे द्वे धेनू भौमी वैराजे पुरुषी द्वे धेनू भौमी वायव
आरोहणवाहा अनड्वाहौ वारुणी कृष्णे वशे आराड्यौ दिव्या ऋषभौ परिमरौ ॥१॥ १

एकादश प्रातर्गव्याः पशव आलभ्यन्ते छगलः कल्माषः किकिदिवीविदीगयस्तौ त्वाष्ट्रौ सौरी-
र्नव श्वेता वशा अनूबन्ध्या भवन्त्याग्नेय ऐन्द्राग्न आश्विनस्ते विशालयूप आलभ्यन्ते ॥२॥ २

पिशङ्गास्त्रयो वासन्तास्सारङ्गास्त्रयो ग्रैष्माः पृषन्तस्त्रयो वार्षिकाः पृश्नयस्त्रयश्शारदाः पृश्निसक्था-
स्त्रयो हैमन्तिका अवलिप्तास्त्रयश्शैशिरास्संवत्सराय निवक्षसः ॥३॥ ३

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्तिका हेमन्ताय
ककराञ्छिशिराय विकरान् ॥४॥ ४

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप् सूचीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ ५
द्विपदा या चतुष्पदा त्रिपदा या च षट्पदा ।
सच्छन्दा या च विच्छन्दास्सूचीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ ६
महानाम्नी रेवतयो विश्वा आशाः प्रसूवरीः ।
मेघ्या विद्युतो वाचस्सूचीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ ७
रजता हरिणीस्सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सूचीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ ८
नारीस्ते पत्नयो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्नीर्विशस्सूचीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ ९

कुविदङ्ग ॥५॥ १०

[१] तै. सं. ५,६,२१। [२] तै. सं. ५,६,२२। [३] तै. सं. ५,६,२३।
[४] मै. ३,१४,१ (१)। वा. २४,२०। काण्व. २६,२४। तै. सं. ५,५,११—२४। मा. श्रौ. ९,२,४।
[५] मै. ३,१२,२१ (३३-३८)। वा. २३,३३-३८; १०,३१; १९,६। काण्व. २५,३५-४०; ११.४५; ११,५।
तै. सं. ५,२,११। [कुविदङ्ग०। ऋ. १०,१३१.२; अथर्व. २०,१२५,२; तै. सं. १,८,२१,१; ५,२,११,२;
तै. ब्रा. २,६,१.३]

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शिम्यति ।
क उ ते शमिता कविः ॥ ११
ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु ।
संवत्सरस्य धायसा शिमीभिश्शिम्यन्तु त्वा ॥ १२
दैव्या अध्वर्यवस्त्वा छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशश्शिमाः कृण्वन्तु शिम्यन्तः ॥ १३
अर्धमासाः परूंषि ते मासाश्छ्यन्तु शिम्यन्तः ।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ॥ १४
पृथिवी तेऽन्तरिक्षेण वायुश्छिद्रं भिषज्यतु ।
द्यौस्ते नक्षत्रैस्सह रूपं कृणोतु साधुया ॥ १५
शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यश्शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यश्शम्वस्तु ते तन्वे भुवत् ॥६॥ १६
[३००८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे सोमानुवचनं नाम दशमं वचनं संपूर्णम् ॥१०॥

अथैकादशं वचनम् ।

नमस्कारवचनम् ।

अग्नये नमो गायत्र्यै नमस्त्रिवृते नमो रथन्तराय नमो वसन्ताय नमः प्राच्यै दिशे नमः प्राणाय नमो वसुभ्यो नमः ॥१॥ १

इन्द्राय नमस्त्रिष्टुभे नमः पञ्चदशाय नमो बृहते नमो ग्रीष्माय नमो दक्षिणायै दिशे नमो व्यानाय नमो रुद्रेभ्यो नमः ॥२॥ २

मरुद्भ्यो नमो जगत्यै नमस्सप्तदशाय नमो वैरूपाय नमो वर्षाभ्यो नमः प्रतीच्यै दिशे नमोऽपानाय नम आदित्येभ्यो नमः ॥३॥ ३

विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमोऽनुष्टुभे नम एकविंशाय नमो वैराजाय नमश्शरदे नम उदीच्यै दिशे नमस्समानाय नमश्चन्द्रमसे नमः ॥४॥ ४

[६] वा. २३.३९-४४ । काण्व. २५,८१-८६ । तै. सं. ५,२,१२ ।

मित्रावरुणाभ्यां नमः पङ्क्त्यै नमस्त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यो नमश्शाक्वररैवताभ्यां नमो हेमन्तशिशिराभ्यां नम ऊर्ध्वायै दिशे नम उदानाय नमो विष्णवे नमः ॥५॥ ५

पृथिव्यै नमोऽग्नये नमो भूताय नमश्चक्षुषे नमोऽन्तरिक्षाय नमो वायवे नमो भव्याय नमश्श्रोत्राय नमो दिवे नमस्सूर्याय नमो भविष्यते नमो मनसे नमः ॥६॥ ६
[३०१४]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे नमस्कारवचनं नामैकादशं वचनं संपूर्णम् ॥११॥

अथ द्वादशं वचनम् ।

अलिवन्दानुवचनम् ।

अलिवन्दाय स्वाहा बलिवन्दाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा ॥१॥ १
[३०१५]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे अलिवन्दानुवचनं नाम द्वादशं वचनं संपूर्णम् ॥१२॥

अथ त्रयोदशं वचनम् ।

शादानुवचनम् ।

शादं दद्भिरवकान् दन्तमूलैस्तेगान् दंष्ट्राभ्यां मण्डूकाञ्जम्भैरादकां खादेनोर्जं संसीदेनारण्यं जाम्बीलेन मृदं बर्स्वैश्शर्कराभिरवकामवक्राभिश्शर्करामुत्सादेन जिह्वामवक्रन्देन तालुं सरस्वतीं जिह्वाग्रेण ॥१॥ १

वाजं हनुभ्यामप आस्येनादित्याञ्छ्मश्रुभिरुपयाममधरोष्ठेन सदुत्तरेणान्तरेणानूकाशं प्रकाशं प्रकाशेन बाह्यं स्तनयित्नुं निर्बाधेन सूर्याग्नी चक्षुर्भ्यां विद्युतं कनीनिकाभ्यामशनिं मस्तिष्केण बलं मज्जभिः ॥२॥ २

कूर्माञ्छफैरच्छराभिः कपिञ्जलान् साम कुष्ठिकाभिर्जवं जङ्घाभिरगदं जानुभ्यां वीर्यं गुहाभ्यां भयं प्रचलाभ्यां गुहोपपक्षाभ्यामश्विना अंसाभ्यामदितिं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जाल्मकशीर्ष्णा ॥३॥ ३

[१] मै. ३,१५,१ (१) । वा. २५,१ । काण्व. २७,१ । तै. सं. ५,७,११ । मा. श्रौ. ९,२,५ ।
[२] मै. ३,१५,१-२ (१-२) । वा. २५,१-२ । काण्व. २७,१-३ । तै. सं. ५,७,१२ ।
[३] मै. ३,१५,३ (३) । वा. २५,३ । काण्व. २७,५-६ । तै. सं. ५,७,१३ ।

योक्त्रं गृध्राभिर्युगमानतेन चित्तं मन्याभिस्संक्रोशान् प्राणैः प्रकाशेन त्वचं पराकाशेनान्तरां मशकान् केशैरिन्द्रं स्वपसा वहेन बृहस्पतिं शकुनिसादेन रथमुष्णिहाभिः ॥४॥ ४

मित्रावरुणौ श्रोणिभ्यामिन्द्राग्नी शिखण्डाभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यामिन्द्राविष्णू अष्ठीवद्भ्यां सवितारं पुच्छेन गन्धर्वाञ्छेपेनाप्सरसो मुष्काभ्यां पवमानं पायुना पवित्रं पोत्राभ्यामाक्रमणं स्थूराभ्यां प्रतिक्रमणं गृष्ठाभ्याम् ॥५॥ ५

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवो जीमूतान् हृदयौपशाभ्यामन्तरिक्षं पुलितता नभ उदर्येणेन्द्राणीं प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोम्ना गिरीन् प्लाशिभिस्समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥६॥ ६

पूष्णो वनिष्ठुरन्धाहेस्स्थूरगुदा सर्पान् गुदाभिर्ऋतून् पृष्टिभिर्दिवं पृष्ठेन वसूनां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीयाङ्गिरसां चतुर्थी साध्यानां पञ्चमी विश्वेषां देवानां षष्ठी ॥७॥ ७

ओजो ग्रीवाभिर्निर्ऋतिमस्थभिरिन्द्रं स्वपसा वहेन रुद्रस्य विचलस्स्कन्धोऽहोरात्रयोर्द्वितीयोऽर्धमासानां तृतीयो मासश्चतुर्थ ऋतूनां पञ्चमस्संवत्सरस्य षष्ठः ॥८॥ ८

आनन्दनन्दथुभ्यां कामं प्रत्यासाभ्यां भयं शितीमद्भ्यां प्रशिषं प्रशासाभ्यां सूर्याचन्द्रमसौ वृक्काभ्यां श्यामशबलौ मतस्नाभ्यां व्युष्टिं रूपेण निम्रुक्तिमरूपेण ॥९॥ ९

अहर्मांसेन रात्रीं पीवसापो यूषेण घृतं रसेन श्यां वसया दूषीकाभिर्ह्रादुनिमश्रुभिः प्रुष्वां दिवं रूपेण नक्षत्राणि प्रतिरूपेण पृथिवीं चर्मणा कर्वीं छव्योपाकृताय स्वाहालब्धाय स्वाहा हुताय स्वाहा ॥१०॥ १०

अग्नेः पक्षतिस्सरस्वत्या निपक्षतिस्सोमस्य तृतीयापां चतुर्थ्योषधीनां पञ्चमी रुद्रस्य षष्ठी मरुतां सप्तमी बृहस्पतेरष्टमी मित्रस्य नवमी वरुणस्य दशमीन्द्रस्यैकादशी विश्वेषां देवानां द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यमस्य पाटोरः ॥११॥ ११

वायोः पक्षतिस्सरस्वतो निपक्षतिश्चन्द्रमसस्तृतीया नक्षत्राणां चतुर्थी सवितुः पञ्चमी संवत्सरस्य

[४] मै. ३,१५,३ (३) । वा. २५,३ । काण्व. २७,५ । तै. सं. ५,७,१४ ।
[५] मै. ३,१५,६ (६) । वा. २५,६ । काण्व. २७,९ । तै. सं. ५,७,१५ ।
[६] मै. ३,१५,७ (७) । वा. २५,८ । काण्व. २७,११-१२ । तै. सं. ५,७,१६ ।
[७] मै. ३,१५,९ (९) । वा. २५,७ । काण्व. २७,१० । तै. सं. ५,७,१७ ।
[८] तै. सं. ५,७,१८ । [९] तै. सं. ५,७,१९ । [१०] तै. सं. ५,७,२० ।
[११] मै. ३,१५,४ (४) । वा. २५,४ । काण्व. २७,७ । तै. सं. ५,७,२१ ।
[१२] मै. ३,१५,५ (५) । वा. २५,५ । काण्व. २७,८ । तै. सं. ५,७,२२ ।

षष्ठी सर्पाणां सप्तम्यर्यम्णोऽष्टमी धातुर्नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्राण्या एकादश्यदित्या द्वादशी द्यावापृथिव्योः पार्श्वं यम्याः पाटोरः ॥१२॥ १२

पन्थामनूवृग्भ्यां संततिं स्नावन्याभ्यां शुकान् पित्तेन हरिमाणं यक्ना हलीक्ष्णान् पापवातेन कूश्माञ्छकपिण्डैश्शर्वर्तानूवध्येन शुनो विशसनेन सर्पांल्लोहितगन्धेन वयांसि पक्वगन्धेन पिपीलिकाः प्रशादेन ॥१३॥ १३
[३०१८]

॥ इति श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधनामनि पञ्चमे ग्रन्थे शादानुवचनं नाम त्रयोदशं वचनं संपूर्णम् ॥१३॥

॥ इत्येकोत्तरशताध्वर्युशाखाप्रभेदभिन्ने श्रीयजुषि काठके चरकशाखायामश्वमेधो नाम पञ्चमो ग्रन्थः संपूर्णः ॥५॥

॥ संपूर्णा च चरकशाखा ॥

इति काठक-संहिता समाप्ता ।

[१३] तै. सं. ५,७,२३ ।

मैत्रायणी संहिता

ॐ

अथ यजुर्वेदीय

मैत्रायणी-संहिता ।

प्रथमं काण्डम् ।

अथ प्रथमः प्रपाठकः ।

दर्श-पूर्णमासौ ।

[श्रीगणेशाय नमः ॥ ओम् ॥ नमो यजुर्वेदाय ॥]

॥ ॐ ॥ इषे त्वा सुभूताय, वायव स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणा,
आप्यायध्वमघ्न्या देवेभ्य इन्द्राय भागं, मा व स्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन्
गोपतौ स्यात बह्वीः,—र्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥ १
गोपदसि, प्रत्युष्टꣳ रक्षः, प्रत्युष्टारातिः ॥ २
प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा ।
तयावहन्ते कवयः पुरस्तात् ॥ ३
देवानां परिपूतमसि विष्णो स्तुपोऽतिसृष्टो गवां भागो देवस्य त्वा सवितुः प्रसव३वेऽश्वि-
नोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां, बर्हिर्देवसदनं दामि ॥ ४
अतस्त्वं बर्हिः शतवल्शꣳ विरोह, सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥ ५
अयुपिता योनि,—रदित्या रास्नासीन्द्राण्याः संनहनं, पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नातु, सं ते मा
स्थादि,—न्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छे, बृहस्पतेर्मूर्ध्नाहराम्यु३,—र्वन्तरिक्षꣳ वी,—हादित्या-
स्त्वा पृष्ठे सादयामि ॥२॥ ६

[१] मै. ४,१,१ । तै. १,१,१ । काठ. १,१ । कपि. १,१ । वा. १,१ । काण्व. १,१-३ । मा. श्रौ. १,१,१ । [मा व स्तेन...शꣳ । अथर्व. ४,२१,७]
[२] मै. ४,१,२ । तै. १,१,२ । काठ. १,२ । कपि. १,२ । मा. श्रौ. १,१,१ । [देवस्य त्वा० । अथर्व. १९,५१,२]

मै० १

शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणे, वसूनां पवित्रमसि शतधारꣳ सहस्रधारमच्छिद्रतनुः ॥ द्यौरसि,
पृथिव्यसि, मातरिश्वनो घर्मः ॥ विश्वहोतुर्धामन् त्सीद ॥ पोषाय त्वा,—ऽदित्या रास्नासि,
कामधुक्षः, सा विश्वायुरस्त्वसौ, कामधुक्षः, सा विश्वभूरस्त्वसौ, कामधुक्षः, सा विश्व-
कर्मास्त्वसौ, हुत स्तोको, हुतो द्रप्सो, ऽग्ने पाहि विप्रुषः, सुपचा देवेभ्यो हव्यं पचा,—
ऽग्नये त्वा बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यामि,—न्द्राय त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि, विष्णो
हव्यꣳ रक्षस्वा,—ऽऽपो जागृत ॥३॥ ७-१०
वेषाय वां, कर्मणे वाꣳ, सुकृताय वां, देवीरापोऽग्रेगुवोऽग्रेणीयोऽग्रेऽस्य यज्ञस्य प्रेता,
—ऽग्रꣳ यज्ञं नयताग्रꣳ यज्ञपतिꣳ, युष्मानिन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये, यूयमिन्द्रमवृणीध्वꣳ वृत्रतूर्ये,
प्रोक्षिता स्थ, सꣳसीदन्तां दैवीर्विशो, वानस्पत्यासि, वर्षवृद्धमस्यु३,—र्वन्तरिक्षꣳ वीहि,
प्रत्युष्टꣳ रक्षः, प्रत्युष्टाराति,—र्धूरसि, ध्वर ध्वरन्तꣳ यो अस्मान् ध्वराद्, यꣳ वयं ध्वराम
तं ध्वर ॥४॥ ११
देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्,—हुतमसि हविर्धानं, दृꣳहस्व,
मा ह्वा,—र्विष्णोः क्रमोऽस्त्व,—रु वाताय, मित्रस्य वश्चक्षुषा प्रेक्षे, देवस्य वः सवितुः प्रसव३वे-
ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ, यच्छन्तु पञ्च, गोपीथाय वो नारातये, ऽग्नये वो जुष्टा-
न्निर्वपाम्यमुष्मै वो जुष्टानि,—दं देवानामिदमु नः सह, दृꣳहन्तां दुर्या, स्वाहा द्यावापृथिवी-
भ्यां, निर्वरुणस्य पाशादमुक्षि, स्वरभिव्येख्यं ज्योतिर्वैश्वानरमु३,—र्वन्तरिक्षꣳ३ वीह्य,—दित्या
व उपस्थे सादयामि ॥ ५ ॥ १२
देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण । वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः । १३
अग्नये वो जुष्टान् प्रोक्षाम्यमुष्मै वो जुष्टान्, यद्वोऽशुद्ध आलेभे तं शुन्धध्व,—मदित्यास्त्व-
गस्य,—वधूतꣳ रक्षो, ऽवधूतारातिर,—दित्यास्त्वगसि, प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु, पृथुग्रावासि
वानस्पत्यः, प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्त्व,—ग्निजिह्वासि वाचो विसर्जनमा,—युषे वो, बृहद्ग्रावासि
वानस्पत्यो, देवेभ्यो हव्यꣳ शमीष्व, सुशमि शमीष्व, कुटरुरसि मधुजिह्व—स्त्वया वयꣳ

[३] मै. ४,१,३ । तै. १,१,३ । काठ. १,३ । कपि. १,३ । वा. १,२-४ । काण्व. १,४-७ । मा. श्रौ. १,१,३ ।
[४] मै. ४,१,४ । तै. १,१,४-५ । काठ. १,४ । कपि. १,४ । वा. १,६-८,११,१२ । काण्व. १,९-११,१७,१८ । मा. श्रौ. १,२,१ ।
[५] मै. ४,१,५ । तै. १,१,४ । काठ. १,४ । कपि. १,४ । वा. १,८-११ । काण्व. १,१२-१५ । मा. श्रौ. १,२,१ ।
[६] मै. ४,१,६ । तै. १,१,६ । काठ. १,५ । कपि. १,५ । वा. १,१२-१६ । काण्व. १,१६,१८-२४ । मा. श्रौ. १,२,२ ।

संघातꣳ संघातं जेष्मे,—पमावदो,—र्जमावद, रायस्पोषमावद ॥ ६ ॥ १४
वर्षवृद्धमसि, प्रति त्वा वर्षवृद्धꣳ वेत्तु, परापूतꣳ रक्षः, परापूतारातिः, प्रविद्धो
रक्षसां भागो, ऽदित्यास्त्वगस्य,—वधूतꣳ रक्षो, ऽवधूतारातिर,—दित्यास्त्वगसि, प्रति
त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु, धिषणासि पार्वती, प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु, धिषणासि पार्वती, प्रति
त्वा पार्वती वेत्त्व,—दित्या स्कम्भोऽसि, धान्यमसि, धिनुहि देवान्, प्राणाय त्वा,—ऽपानाय
त्वा, व्यानाय त्वा, दीर्घामनु प्रसितिꣳ सꣳस्पृशेथामा,—ऽऽयुषे वो, मित्रस्य वश्चक्षुषावेक्ष्ये, १५
देवो वः सविता हिरण्यपाणिरुपगृह्णातु ॥ ७ ॥
निर्दग्धꣳ रक्षो, निर्दग्धारातिः, समुद्रं मा धां, ध्रुवमसि, पृथिवीं दृꣳहा,—ऽपाग्ने-
ऽग्निमामादं जहि, निः क्रव्यादं नुदस्वा,—ऽग्ने देवयजनꣳ वह, धरुणमस्य,—न्तरिक्षं दृꣳह,
घर्त्रमसि, दिवं दृꣳह, धर्मासि, विश्वा विश्वानि दृꣳह, चिदसि, परिचिदसि, विश्वासु
दिक्षु सीद, सजातानस्मै यजमानाय परिवेशय, सजाता इमꣳ यजमानं परिविशन्तु, वसूनाꣳ १६
रुद्राणामादित्यानां भृगूणामङ्गिरसां घर्मस्य तपसा तप्यध्वम् ॥
यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः । १७
पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चताम् ॥ ८ ॥
देवस्य वः सवितुः प्रसव३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ संवपामि ।
देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण । वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ १८
समापा ओषधीभिर्गच्छन्ताꣳ समोषधयो रसेन ।
सꣳ रेवतीर्जगतीः शिवाः शिवाभिः समसृक्षतापः ॥ १९
—र्धर्म धर्मे श्रयस्वो,—रु प्रथस्वो,
सीदन्तु विशो, जनयत्यै त्वा, घर्मोऽसि विश्वायु, २०
—रु ते यज्ञपतिः प्रथताꣳ, सं ते तन्वा तन्वः पृच्यन्ताम् ॥ २१
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥
देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाके पृथिव्या, अग्ने ब्रह्म गृह्णीष्व ॥९॥ २२

[७] मै. ४,१,७ । तै. १,१,५-६ । काठ. १,५-६ । कपि. १,६ । वा. १,१६,१९,२० । काण्व. १,२५,३१-३४ । मा. श्रौ. १,२,२ ।
[८] मै. ४,१,८ । तै. १,१,७ । काठ. १,७ । कपि. १,७ । वा. १,१७-१८ । काण्व. १,२७-३० । मा. श्रौ. १,२,३ ।
[९] मै. ४,१,९ । तै. १,१,८ । काठ. १,८,१० । कपि. १,८,१० । वा. १,२१-२२;११,२५ । काण्व. १,३६-३८;१२, २५ । मा. श्रौ. १,२,३ । [परि वाजपतिः... दाशुषे । ऋ० ४,१५,३ । सा. ३०]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा, इन्द्रस्य बाहुरसि
दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा, वायुरसि तिग्मतेजाः, पृथिवि देवयजनि मा हिꣳसिषं तामोषधीनां
मूलꣳ, व्रजं गच्छ गोस्थानꣳ, वर्षतु ते पर्जन्यो, बधान देव सवितः शतेन पाशैः परमस्यां
परावति यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमत्र बधान, सोऽतो मा मोचि, मा वः शिवा
ओषधयो मूलꣳ हिꣳसिषꣳ, व्रजं गच्छ गोस्थानꣳ, वर्षतु ते पर्जन्यो, बधान देव सवितः
शतेन पाशैः परमस्यां परावति यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमत्र बधान, सोऽतो मा
मोचि, द्रप्सस्ते दिवं मा स्कान्, व्रजं गच्छ गोस्थानꣳ, वर्षतु ते पर्जन्यो, बधान देव
सवितः शतेन पाशैः परमस्यां परावति यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमत्र बधान, सोऽतो
मा मोचि, वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसा, रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा,
ऽऽदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसा, ऽपाररुं पृथिव्या अदेवयजनꣳ, सत्यसदस्यृ,—
तसदसि, घर्मसदसि ॥ २३
पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन उदादाय पृथिवीं जीरदानुम् ।
तामैरयꣳश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासः कवयोऽनुदिश्यायजन्त ॥ १० ॥ २४
प्रत्युष्टꣳ रक्षः, प्रत्युष्टाराति,—रायुः प्राणं मा निर्मार्जी,—श्चक्षुः श्रोत्रं मा निर्मार्जी,—
र्वाचं पशून् मा निर्मार्जी,—र्यज्ञं प्रजां मा निर्मार्जी,—स्तेजोऽसि, शुक्रमसि, ज्योतिरस्य,—
मृतमसि, वैश्वदेवमसि ॥ २५
हविरसि वैश्वानरमुब्जीतशुष्मꣳ सत्यौजाः ।
सहोऽसि सहस्वारातिꣳ सहस्व पृतनायतः ॥ २६
सहस्रवीर्यमसि, तन्वा जिन्वा,—ऽऽज्यस्याज्यमसि हविषो हविः सत्यस्य सत्यꣳ,
सत्याभिहितꣳ सत्येन त्वाभिघारयाम्य,—दब्धेन त्वा चक्षुषावेक्षे रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय ॥ २७
धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् । देववीत्यै त्वा गृह्णामि ॥ २८
देवीरापः शुद्धा यूयं देवान् युयुध्वꣳ, शुद्धा वयꣳ सुपरिविष्टाः परिवेष्टारो वो भूयास्म,
कृष्णोऽस्याखरेष्ठो, अग्नये घृतं भव, वेदिरसि, बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, बर्हिरसि, वेद्यै
त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, स्वाहा पितृभ्यो घर्मपावभ्यः ॥११॥ २९

[१०] मै. ४,१,१० । तै. १,१,९ । काठ. १,९ । कपि. १,९ । वा. १,२४-२८ । काण्व. १,४०-४५ । मा. श्रौ. १,२,४ ।
[११] मै. ४,१,१२-१३ । तै. १,१,१० । काठ. १,१०-११ । कपि. १,१०-११ । वा. १,२९-३१, २,१; ६,११ । काण्व. १,४६,४७,४९; २,१-४; ६,१७ । मा. श्रौ. १,२,५ ।

पूषा ते ग्रन्थिं विष्यतु,　विष्णो स्तूपोऽसि,—ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यो,
गन्धर्वोऽसि विश्वावसुर्विश्वस्मादीषमाणो,　यजमानस्य परिधिरिड ईडितः,　इन्द्रस्य बाहुरसि
दक्षिणो,　यजमानस्य परिधिरिड ईडितो,　मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां,　यजमानस्य
परिधिरसीड ईडितः ॥ ३०
नित्यहोतारं त्वा कवे द्युमन्तः समिधीमहि ॥ ३१
वर्षिष्ठे अधि नाके पृथिव्याः सूर्यस्त्वा रश्मिभिः पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्या,
विश्वजनस्य विधृती स्थो,　वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदोऽसि सूचां योनि,—र्द्यौरसि जन्मना
जुहूर्नाम प्रिया देवानां प्रियेण नाम्ना,　ध्रुवे सदसि सीद,—अन्तरिक्षमसि जन्मनोपभृन्नाम प्रिया
देवानां प्रियेण नाम्ना,　ध्रुवे सदसि सीद,　पृथिव्यसि जन्मना ध्रुवा नाम प्रिया देवानां प्रियेण
नाम्ना,　ध्रुवे सदसि सीद,　ऋषभोऽसि शाक्वरो वषट्कारस्य त्वा मात्रायां सादयामि ॥ ध्रुवा
असदन्नृतस्य योनौ सुकृतस्य लोके,　ता विष्णो पाहि ॥ पाहि यज्ञं,　पाहि यज्ञपतिं,　पाहि
मां यज्ञन्यम् ॥ विष्णूनि स्थ,　वैष्णवानि धामानि स्थ प्राजापत्यानि ॥१२॥ ३२-३५
सुयमे मेऽद्य स्तं स्वावृतौ घृतावृता,　अग्नाविष्णू विजिहाथां,　मा मा हिंसिष्टं,
लोकं मे लोककृतौ कृणुतं,　मा मोदोषिष्टमात्मानं मे पातं,　शिवौ भवतमद्य नो,　विष्णो
स्थामासी,—द इन्द्राविष्णू वीर्यमकृणोद्देवताभिः समारभ्य ॥ ३६
ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगह्रुतो यज्ञो यज्ञपतेः ।
इन्द्रवान् त्स्वर्वान् बृहद्भाः ॥ ३७
वीहि मधोर्घृतस्य,　स्वाहा,　सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ३८
वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजिग्रभत् ।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरां अकः ॥ ३९
उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवां अवीवृधन् ।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान् व्यस्यताम् ॥ ४०
वसुभ्यस्त्वा,—पावसुरसि,　विश्वावसुरस्य,—सुमी रिहाणा व्यन्तु वयो,　वशा पृश्निर्भूत्वा
मरुतो गच्छ,　ततो नो वृष्टिमावह ॥ ४१

[१२] मै. ४,१,१३ । तै. १,१,१०-११ । काठ. १,११ । कपि. १,११ । वा. २,२-६ । काण्व. २,२-९ । मा. श्रौ. १,२,६ ।
[नित्यहोतारं (वीतिहोत्रं) त्वा…समिधीमहि । ऋ. ५,२६,३ । सा. १४२३)
[१३] मै. ४,१,१४ । तै. १,१,१२-१३ । काठ. १,१२ । कपि. १,१२ । वा. २,७-९;१६,१८,२१;८,२१;१७,६३-६४ ।
काण्व. २,१०,१२,१४,१६,३०,३१;९,२१,१८,६३-६४ । मा. श्रौ. १,३, १-४ ।

संस्रावभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठा बर्हिषदश्च देवाः ।
इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ४२
देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित,　मनसस्पत इमं नो यज्ञं दिवि देवेषु वाते
धाः,　स्वाहा ॥१३॥ ४३ [४३]

॥ इति प्रथमकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥
अथ द्वितीयः प्रपाठकः ।

अध्वरः ।

आपो देवीः शुन्धत मा मधुमन्तं मधुमतीर्देवयज्यायै ॥ १
ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीः । या ते शिवतमा तनूस्तयैनमुपस्पृश ॥ २
देवश्रूरिमान् प्रवपे,　स्वस्त्युत्तरं अशीय ॥ ३
हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः प्रचक्रमुर्हित्वावद्यमापः ।
शतं पवित्रा वितता ह्यासु ताभिर्मा देवः सविता पुनातु ॥ ४
आपो मा मातरः सूदयन्तु घृतेन मा घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्तु देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ ५
विष्णोः शर्मासि,　शर्म मे यच्छो,—र्जे त्वा,　महीनां पयोऽस्योषधीनां रसो,　वर्चोधा
असि,　वर्चो मे धेहि ॥ वृत्रस्यासि कनीनिका चक्षुषो मे वयोधा,　अन्तरहं त्वया द्वेषो
अन्तररातीर्दधे महता पर्वतेन,　चक्षुष्पा असि,　चक्षुर्मे पाहि ॥ चित्पतिस्त्वा पुनातु,
वाचस्पतिस्त्वा पुनातु ॥ ६-८
देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण । वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ९
तस्य ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कं पुने तं शकेयम् ॥१॥ १०
आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहा,　मेधायै मनसे अग्नये स्वाहा,　दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहा,
सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहा ॥ ११
आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्षः ।
बृहस्पतिर्नो हविषा वृधातु ।　स्वाहा ॥ १२

[१] मै. ३,६,२-३ । तै. १,२,१ । काठ. २,१ । कपि. १,१३ । वा. ४,१-४ । काण्व. ४,२-५ । मा. श्रौ. २,१,१ ।
[हिरण्यवर्णाः (एकादः) अथर्व. १.३३.१] [आपो (अस्मान्) मा० । ऋ. १०,१७,१०; अथर्व. ६,५१,१]
[२] मै. ३,६,४;५,८ । तै. १,२,२ । काठ. २,२-३ । कपि. १.१४-१६ । वा. ४,७-१०;५-६ । काण्व. ४,८-११,६,७ ।
मा. श्रौ. २,१,२ । [विश्वो देवस्य० ऋ० ५।५०।१]

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ।　स्वाहा ॥ १३
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थ,—स्ते वामारभे,　ते मा पातं,　विष्णोः शर्मासि,
शर्म मे यच्छ,　नमस्ते अस्तु,　मा मा हिंसीः ॥ १४
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ १५
स्वर्याग्नी द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्षापः ॥ ओषधय उप मा दीक्षायां दीक्षापतयो ह्वयध्वं,
देव सवितस्त्वं दीक्षायां दीक्षापतिरसी,—त्वं मा सन्तं पा,—ह्यूर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा,　ऊर्जं
मयि धेही,—न्द्रस्य योनिरसि,　गोपाय मा,　नमस्ते अस्तु,　मा मा हिंसीः ॥ १६-१७
कृषिं सुसस्यांस्कृधि सुपिप्पला ओषधीस्कृधि ।
विषाणे विष्यैतं ग्रन्थिं यदस्य गुःपितं हृदि मनो यदस्य गुःपितम् ॥ १८
बृहन्नसि वानस्पत्यः,　सुद्युम्नो द्युम्नं यजमानाय धेहि,　नक्षत्राणां मातीकाशात् पाहि ॥ १९
आ वो देवास ईमहे वामं प्रयत्यध्वरे ।
यद्वो देवास आगुरे यज्ञियासो हवामहे ॥ २०
स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहा दिवः स्वाहा पृथिव्याः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा वातात्
परिगृह्णामि,　स्वाहा ॥२॥ २१
नक्षत्राणां मकाशान्वा पीषं,　व्रतं चरत ॥ २२
दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये ।
वर्चोधां यज्ञवाहसं सुतीर्था नो असद्वशे ॥ २३
ये देवा मनुजाता मनोयुजः सुदक्षा दक्षपितरस्ते नोऽवन्तु,　ते नः पान्तु,　तेभ्यः स्वाहा ॥ २४
शिवाः पीता भवत यूयमापो अस्माकं योना उदरे सुशेवाः ।
इरावतीरनमीवा अनागसः शिवा नो भवत जीवसे ॥ २५
कामो हविषां मन्दिष्ठोऽग्ने त्वं सु जागृहि वयं सु मन्दिषीमहि ।
गोपाय नः स्वस्तये प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥ २६

[३] मै. ३,६,९,१० । तै. १,२,३ । काठ. २,४ । कपि. १,१९ । वा. ४,११,१२,१४-१६;६,२७ । काण्व. ४,१५-१७,
१९-२१. ६,३९,४०; १०,८ । मा. श्रौ. २,१,३ ।

पुनर्मनः पुनरायुर्न आगात् पुनः प्राणः पुनराकूतमागात् ।
वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा अपबाधतां दुरितानि विश्वा ॥ २७
त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा ।
त्वं यज्ञेष्वीड्यो व्रतमस्मासु धारय ॥ २८
पूषा सनीनां सोमो राधसां,　मा पूर्णन् पूर्त्यो विराधिष्ट,　मा वयमायुषा वर्चसा च,
रास्त्वेयत् सोमा,—ऽऽ भूयो भर,　देवः सविता वसोर्वसुदावा,　वायुर्गोपा,—स्त्वष्टाधिपतिः,
पूषा प्रतिग्रहीता,　दैवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमस्तं वो मा क्रमीषं,
याः पशूनामृषभे वाचस्ताः सूर्यो अग्रे शुक्रो अग्रे ताः प्रहिणोमि यथाभागं वो अत्र,　शिवा नः
पुनरायन्तु वाचो,　वायवे त्वा,　वरुणाय त्वा,　रुद्राय त्वा,　निर्ऋत्यै त्वे,—न्द्राय त्वा,
मरुद्भ्यस्त्वा ॥३॥ २९
इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्च,—स्तया संभव,　भ्राजं गच्छ,　जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे,
तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय,　स्वाहा,　शुक्रमसि,　चन्द्रमस्य,—मृतमसि,
वैश्वदेवमसि,　चिदसि,　मनासि,　धीरसि,　दक्षिणासि,　यज्ञियासि क्षत्रियास्य,—दिति-
रस्युभयतः शीर्ष्णी,　सा नः सुप्राची सुप्रतीची भव,　मित्रस्त्वा पदि बध्नातु,　पूषाध्वनः पात्वि,
—न्द्रायाध्यक्षाया,—नु त्वा माता मन्यतामं,—नु पिता,　ऽनु भ्राता सगर्भ्यो,　ऽनु सखा
सयूथ्यः,　सा देवि देवमच्छेही,—न्द्राय सोमं,　रुद्रस्त्वावर्तयतु,　स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि,
वस्व्यसि,　रुद्रास्य,—दितिरस्या,—दित्यासि,　चन्द्रासि,　रुद्रासि,　बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने
रम्णातु,　रुद्रो वसुभिराचके,　पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि यज्ञिया इडायास्पदे घृतवति-
स्वाहा,　ऽस्मे रमस्वा,—ऽस्मे ते राय,—स्तव,　राय,—स्तव तव रायो,　मा रायस्पोषेण वि-
योष्म,—स्त्वष्टीमन्तस्त्वा सपेम ॥४॥ ३०
सूर्यस्य चक्षुरारुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकाम् । यदेतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥ ३१
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥३२

[पुनर्मनः पुनरा० । अथर्व. ६. ५३. ३ । त्वमग्ने व्रतपा० । ऋ० ८. ११. १; अथर्व० १९. ५९. १]
[४] मै. ३,७,५-७ । तै. १,२,४-५ । काठ. २,५ । कपि. १,१७-१८ । वा. ४,१७-२२ । काण्व. ४,१६-२१ ।
मा. श्रौ. २,१,३; २,४,२ ।
[५] मै. ३,७,७ । तै. १,२,६-७ । काठ. २,६ । कपि. १,१९ । वा. ४, ३२,२९,१४-२७ । काण्व. ४,३२,३९,४४,४१ ।
मा. श्रौ. २,१,३-४ ।

आस्माकोऽसि, शुक्रस्ते ग्रह, स्वाहा त्वा विचिक्षयः ॥ ३३
अभि त्यं देव२ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवस२ रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ३४
प्रजाभ्यस्त्वा, प्रजास्त्वानुप्राणन्तु, प्रजाः पाहि, शुक्रं ते शुक्र शुक्रेण चन्द्रं चन्द्रेणा-
मृतममृतेन क्रीणामि देव सोमः शक्म यत्ते गोर,—स्मे ते चन्द्राणि, तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः,
सहस्रपोषं पुष्यन्ति, परमेण पशुना क्रियस्वा,—ऽस्मे ते बन्धुः सुवाङ्गभ्राडङ्घारे बम्भारेऽस्तरहस्तः
कृशान एते वः सोमक्रयणा, स्तान् रक्षध्वं, मा वो दभन्, दुश्चक्षा वो मावक्षत् ॥५॥ ३५
स्वजा असि, स्वभूरस्य,—स्मै कर्मणे जात, ऋतेन त्वा गृह्णाम्य,—तेन नः पाहि मित्रो
ना एहि सुमित्रधः सह रायस्पोषेणे,—न्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्त२ स्योनः स्योनम् ॥ ३६
उदायुषा स्वायुषोदोषधीना२ रसेन । उत्पर्जन्यस्य धाम्नोदस्थाममृतं अनु ॥ ३७
उ३र्वन्तरिक्ष२ वीहि,—दित्याः सदा आसीद ॥ ३८
अस्तभ्नाद् द्यामृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३९
वनेषु३ व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्न्यासु ।
हृत्सु क्रतु२ वरुणं दि३क्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ ४०
धूरसि, धूर्व धूर्वन्त२ यो अस्मान् धूर्वा,—यं२ वयं धूर्वाम तं धूर्व ॥ ४१
वारुणमसि, वरुणस्त्वोत्तभ्नातु, वरुणस्य स्कम्भोऽसि ॥ ४२
प्रच्यवस्व भुवनस्पते विश्वान्यभि धामानि ।
मा त्वा परिपरिणो मा परिपन्थिनो मा त्वा वृका अघायवो विदन् ॥ ४३
श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य नो गृहं स२स्कृतम् । देवेभ्यः सुत्यायै ॥ ४४
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत२ सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय श२सत ॥ ४५
वारुणमसि, वरुणस्त्वोत्तभ्नातु, वरुणस्य स्कंभसर्जनमसि ॥ ४६

[अभि त्यं देवं० । अथर्व० ७,१४,१-२]
[६] मै. ३,७,८,९ । तै. १,२,८-१० । काठ. २,७ । कपि. १,१९; २,१ । वा. ४,२७,२८,३०,३१,३४-३६; ५,१ । काण्व. ४,३८,४०,४२,४३,४६-४८; ५,१ । मा. श्रौ. २,१,४,५ । [अस्तभ्नाद्द्यां (द्यामृषभो) वृषभो० । ऋ० ३,३०,९; ८,४२,१] [वनेषु (३) व्यन्तरिक्षं० । ऋ. ५,८५,२] [नमो मित्रस्य० । ऋ० १०,३७,१]

विचृत्तो वरुणस्य पाशः, प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशो, नमो वरुणस्य पाशाया,—ऽग्नेस्तनू-
रसि, विष्णवे त्वा, सोमस्य तनूरसि, विष्णवे त्वा,—ऽतिथेरातिथ्यमसि, विष्णवे त्वा,
—ऽग्नये त्वा रायस्पोषदे, विष्णवे त्वा, श्येनाय त्वा सोमभृते, विष्णवे त्वा, वारुणमसि,
वरुणोऽसि धृतव्रतो, वरुणस्य ऋतसदनमासीद, वरुणाय त्वा ॥६॥ ४७
अग्नेर्जनित्रमसि, वृषणौ स्था, उर्वश्यस्या,—युरसि, पुरूरवा असि, गायत्रमसि,
त्रिष्टुबसि, जगदसि ॥ भवतं नः समनसौ समोकसौ सचेतसा अरेपसौ ॥ मा यज्ञ२ हि२सिष्टं मा
यज्ञपतिं जातवेदसौ, शिवौ भवतमद्य नः ॥ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज
एषः ॥ तस्मै विधेम हविषा वयं, मा देवाना२ यूयुपाम भागधेयम् ॥ आपतये त्वा गृह्णामि
परिपतये त्वा गृह्णामि, तनूनप्त्रे शक्मने शाक्वराय शक्मन ओजिष्ठाया,—ऽनाधृष्टमस्य,—नाधृष्यं
देवानामोजः ॥ अभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम् ॥ अनु म इद२ व्रत२ व्रतपतिर्मन्यतामनु दीक्षां
दीक्षापतिरञ्जसा, सत्यमुपागा२, सुविते मा धा, अग्ने व्रतपते या मम तनूरेषा सा त्वय्य,
—ग्ने व्रतपते या तव तनूरिय२ सा मयि, सह नौ व्रतपते व्रतिनोर्व्रतान्य२,—शुर२शुष्टे देव
सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदा, आ त्वमिन्द्राय प्यायस्वा, तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा,—प्यायय
सखीन्त्सन्या मेधया, स्वस्ति ते देव सोम सुत्यमशीय स्व३स्त्यौदचमेष्टा राया, एष्टा वामनि,
प्रेषे भगाय, ऋतमृतवादिभ्यो, नमो दिवे, नमः पृथिव्यै ॥ ४८--५५
या ते अग्नेऽयाशया तनूर्वर्षिष्ठा गहनेष्ठा ।
त्वेष२ वचो अपावधीरुग्र२ वचो अपावधीः ॥ स्वाहा ॥ ५६
या ते अग्ने रजाशया, या ते अग्ने हराशया, या ते अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि,
तस्यै ते स्वाहा ॥ ७ ॥ ५७
तप्तायनी मेऽसि, वित्तायनी मेऽस्य,—वतान्मा नाथितं,—मवताद्व्यथितं,—मग्ने अङ्गिरो-
३योऽस्यां पृथिव्यामध्यस्यायुना नाम्नेहि, वसवस्त्वा हरन्तु गायत्रेण छन्दसा, वित्स्व यज्ञपते,
—यत्तेऽनाधृष्टं धामानाधृष्यं तेन त्वादधे, अग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामध्यस्यायुना
नाम्नेहि, रुद्रास्त्वा हरन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा, वित्स्व यज्ञपते,—यत्तेऽनाधृष्टं धामानाधृष्यं तेन

[७] मै. ३,७,१०; ३,८,२; ३,९,५ । तै. १,२,१०-११ । काठ. २,८ । कपि. २,२-३ । वा. ५,१-८ । काण्व. ५, २-११ । मा. श्रौ. १,७,१, २,२,१ । [अग्नाव (अ) ग्निश्चरति० । अथर्व० ४,३९,९]
[८] मै. ३,८,५ । तै. १,२,१२ । काठ. २,९ । कपि २,३ । वा. ५,९-१३; ३३,३० । काण्व. ५,१३-१८; ३३,३० । मा. श्रौ. १,७,३ । [विभ्राड् बृहत्पिबतु० । ऋ० १०,१७०,१ । सा० ६२८,१४५३]

त्वादधे, अग्ने अङ्गिरो यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामध्यस्यायुना नाम्नेह्यादित्यास्त्वा हरन्तु जागतेन
छन्दसा, वित्स्व यज्ञपते,—यत्तेऽनाधृष्टं धामानाधृष्यं तेन त्वादधे, विदेरग्ने नभो नाम यत्ते,
सि२हीरसि, महिषीरसि, देवेभ्यः शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्वे,—न्द्रघोषास्त्वा पुरस्ताद्वसुभिः
पान्तु, पितरस्त्वा मनोजवा दक्षिणतः पान्तु, रुद्रास्त्वा प्रचेतसः पश्चात् पान्तु, विश्वकर्मा
त्वादित्यैरुत्तरात् पातु, सि२हीरसि सपत्नसाही, स्वाहा, सि२हीरसि रायस्पोषवनिः, स्वाहा,
सि२हीरसि सुप्रजावनिः, स्वाहा, सि२हीरस्यादित्यवनिः सजातवनिः, स्वाहा, सि२हीर-
स्या,—वह देवान् देवायते यजमानाय, स्वाहा, भूतेभ्यस्त्वा, विश्वायुरसि, पृथिवीं दृ२ह,
ध्रुवक्षितिरस्य,—न्तरिक्षं दृ२हाच्युत,—क्षिदसि, दिवं दृ२हा,—ऽग्नेर्भस्मास्य,—ग्नेः पुरीषमस्य, ५८
—ग्नेः कुलायमसि ॥
विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता अविहुतम् ।
वातयुतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा विराजति ॥८॥ ५९
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषेथाम् ॥ ६०
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ६१
अप जन्यं भयं नुद मा चक्रा अवृत्सत । गृह२ सोमस्य गच्छतं गच्छदिन्द्रस्य निःकृतम् ॥ ६२
इद२ विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा । समूढमस्य पा२सुरे ॥ ६३
इरावती धेनुमती हि भूत२ सूयवसिनी मनवे यशस्ये ।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्ण एते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ६४
सुवागावद देव दुर्यं अरिष्यन्नरिष्यतः ॥ ६५
आ नो वीरो जायतां कर्मण्योऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यः ।
यं बहवोऽनुजीवान्यो बहूनामसद्वशी ॥ ६६
वैष्णवमसि, विष्णुस्त्वोत्तभ्नातु ॥ ६७
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या उरोर्वा विष्णो बृहतो अन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वस३व्यैरात् प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ६८

[९] मै. ३,८,७ । तै. १,२,१३ । काठ. २,१० । कपि. २,४ । वा. ५,१४-२१ । काण्व. ५,१९-२७ । मा. श्रौ. २,२,२ । [युञ्जते मन० । ५,८१,१] [इदं (२) विष्णुर्वि० । ऋ. १,२२,१७; अथर्व. ७,२६,४; सा. २२२; १६६९] [इरावती धेनुमती० । ऋ. ७,९९,३] [दिवो (वा) विष्णो० । अथर्व. ७,२६,८]

विष्णोर्नु क२ वीर्याणि प्रवोच२ यः पार्थिवानि विममे रजा२सि ।
यो अस्कभायदुत्तर२ सधस्थ२ विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ ६९
विष्णोः पृष्ठमसि, विष्णो ररांटमसि, विष्णोः श्निप्त्रे स्थो, विष्णोः स्यूरसि,
विष्णोर्ध्रुवोऽसि, वैष्णवमसि, विष्णवे त्वा ॥ ७०
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥९॥ ७१
देवस्य त्वा सवितुः प्रस३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददेऽभ्रिरसि, नारिर,—
सीदमह२ रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामी,—दमह२ यो मे समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा
अपिकृन्तामि, बृहन्नसि बृहद्रावा, बृहतीमिन्द्राय वाच२ वद रक्षोहण२ वलगहन२ वैष्णवी२,
सम्राडसि सपत्नहे,—दमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्मे समानो यानसमानो निचखान यं कुल्फदघ्ने,
निरस्तो वलगः, स्वराडस्यभिमातिहे,—दमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्मे सजातो यानसजातो
निचखान यं जानुदघ्ने, निरस्तो वलगो, विराडसि रक्षोहे,—दमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्मे
सबन्धुर्यानसबन्धुर्निचखान यं नाभिदघ्ने, निरस्तो वलगः, सत्रराडस्यशस्तिहे,—दमहं ता-
न्वलगानुद्वपामि यान्मे, भ्रातृव्यो यानभ्रातृव्यो निचखान यं अ२सदघ्ने, निरस्तो वलगः,
सर्वराडस्यरातीयतो हन्ते,—दमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्मे सजन्यो यानसजन्यो निचखान यं
शीर्षदघ्ने, निरस्तो वलगः ॥ ७२
संमृश इमानायुषे वर्चसे च देवानां निधिरसि द्वेषोयवनः ।
युयो३ध्यस्मद्द्वेषा२सि यानि कानि च चकृम ॥ ७३
देवानामिदं निहित२ यदस्त्यथाभाहि प्रदिशश्चतस्रः । कृण्वानो अन्यं अधरान् त्सपत्नान् ॥१०॥ ७४
पृथिव्यै त्वा,—ऽन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वा, शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना, यवोऽसि,
यावय द्वेषो अस्मद्,—यवयारातिं, पितृषदनं त्वा लोकमवस्तृणामि ॥ ७५
उच्छ्रयस्व वनस्पते सजूर्देवेन बर्हिषा ।
नितानस्त्वा मारुतो निहन्तु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा ॥ ७६

[विष्णोर्नु कं० । ऋ. १,१५४,१; अथर्व. ७,२६,१] [प्र तद्विष्णु० । ऋ. १,१५४,२; अथर्व. ७,२६,२-३]
[१०] मै. ३,८,८ । तै. १,३,१-२ । काठ. २,११ । कपि. २,५ । वा. ५,२२-२४ । काण्व. ५,२८-३० । मा. श्रौ. १, २,३; १,८,२ । [देवस्य त्वा० । अथर्व. १९,५१,२]
[११] मै. ३,८,९ । तै. १,३,१-२ । काठ. २,१२ । कपि. २,६ । वा. ५,२६-३०,२५ । काण्व. ५,३३-३८,३१,३२ । मा. श्रौ. २,२,३; १,८,२ ।

ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं पर्यूहामि, ब्रह्म दृꣳह, क्षत्रं दृꣳह रायस्पोषं दृꣳह, प्रजां
दृꣳह, सजातानस्मै यजमानाय दृꣳह ॥ घृतेन द्यावापृथिवी आपृण, विश्वजनस्य छायासि ॥
७७-७८
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥७९॥
इन्द्राय त्वेन्द्रस्य स्यूरसी,—न्द्रस्य ध्रुवोऽसी,—न्द्रमसी,—न्द्राय त्वा, रक्षोघ्नो वो वलगघ्नः
प्रोक्षामि वैष्णवान्, रक्षोहणं त्वा वलगहनमवसिञ्चामि वैष्णवꣳ, रक्षोहणं त्वा वलगहनमवस्तृ-
णामि वैष्णवꣳ, रक्षोघ्नी वाꣳ वलगघ्नी उपदधामि वैष्णवी, रक्षोघ्नी वाꣳ वलगघ्नी पर्यूहामि
वैष्णवी, रक्षोहणं त्वा वलगहनमास्तृणामि वैष्णवम् ॥११॥
८०
विभूरसि प्रवाहणो, वह्निरसि हव्यवाहनः, श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तु,—थोऽसि विश्ववेदा,
अवस्युरसि दुवस्वा,—न्नहारिरसि कम्भारिरसि,—गसि कविः, शुन्ध्युरसि मार्जालीयः, सम्रा-
डसि कृशानुः, परिषद्योऽस्यास्तꣳरव्यो, नभोऽसि प्रतक्वा, मृष्टोऽसि हव्यसूदनः, संगरोऽसि
विश्ववेदा, ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः, समुद्रोऽसि विश्वव्यचा, अꣳहोऽस्येकपाद,—हिरसि
बुध्न्यः, कव्योऽसि कव्यवाहनो, रौद्रेणानीकेन पाहि माग्ने, पिपृहि मा, नमस्ते अस्तु,
मा मा हिꣳसीः ॥१२॥
८१
त्वꣳ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा ॥ ८२
जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु । स्वाहा ॥ ८३
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोꣳध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिꣳ विधेम ॥ ८४
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतवने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर । स्वाहा ॥ ८५
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथꣳ वियꣳसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥ ८६
उꣳर्वन्तरिक्षꣳ वीहि,—दित्याः सदा आसीद, देव सवितरेष ते सोम,—स्तꣳ रक्षस्व,

[परि त्वा गिर्वणो० । ऋ. १,१०,१२]
[१२] मै. ३,८,१० । तै. १,३,३ । काठ. २,१३ । कपि. २,७ । वा. ५,३१-३४ । काण्व. ५,३९-४३ । मा. श्रौ. १,२,४ ।
[१३] मै. ३,९,१ । तै. १,३,४ । काठ. ३,१ । कपि. २,८ । वा. ५,३५,३६, ३८-४० । काण्व. ५,४४,४५,४८-५० ।
मा. श्रौ. १,२,४ । [अग्ने नय० । ऋ. १,१८९,१; अथर्व. ४,३९,१०] [उरुविष्णो० । अथर्व. ७,२६,३]

मा त्वा दभन्, दुश्चक्षास्ते मावक्ष्यदे,—तत्त्वं देव सोम देवानुपावृत, इदमहं मनुष्यान् त्सह
रायस्पोषेण प्रजया चोपावर्ते, नमो देवेभ्यः, स्वधा पितृभ्यो, निर्वरुणस्य पाशादमुक्षि,
स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरं,—मग्ने व्रतपते या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वं,—य्यग्ने व्रतपते या
मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि, पुनर्नौ व्रतपते प्रतिनोव्रतानि, यथायथं नौ व्रतपते व्रति-
नोर्व्रतानि, वि व्रतानि सृजावहै ॥ १३॥
८७
अत्यन्यानगां, नान्यानुपागाम,—र्वाक् त्वा परेभ्यः परोऽवरेभ्योऽविदं, तं त्वा जुषामहे
देवयज्यायै जुष्टꣳ विष्णवे, विष्णवे त्वा ॥
८८
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतवने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर । स्वाहा ॥ ८९
ओषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः । या ते शिवतमा तनूस्तयैनमुपस्पृश ॥ ९०
यं त्वामयꣳ स्वधितिस्तिग्मतेजाः प्रणिनाय महते सौभगाय ।
दिवमग्रेण मा हिꣳसी,—रन्तरिक्षं मध्येन, पृथिव्याः संभव, भ्राजं गच्छ ।
वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयꣳ रुहेम ॥ ९१
पृथिव्यै त्वा,—ऽन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वा, शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना, यवोऽसि,
यावय द्वेषो अस्मद्य,—वयारातिं, पितृषदनं त्वा लोकमवस्तृणामि ॥ स्वावेशोऽस्यग्रेगा नेतृणां,—
मधि त्वा स्थास्यति, तस्य वित्स्व ॥ घृतेन द्यावापृथिवी आपृण, देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु॥
इन्द्रस्य चषालमसि, सुपिप्पला ओषधीस्कृधि, दिवमग्रेणोत्तभाना,—ऽन्तरिक्षं मध्येनापृण,
पृथिवीमुपरेण दृꣳह ॥
९२-९५
ता ते धामान्युश्मसि गमध्यै गावो यत्र भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि ॥ ९६
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ९७
ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं पर्यूहामि, ब्रह्म दृꣳह, क्षत्रं दृꣳह, रायस्पोषं दृꣳह, प्रजां
दृꣳह, सजातानस्मै यजमानाय दृꣳह ॥ ९८

[१४] मै. ३,९,२-४ । तै. १,३,५-६ । काठ. ३,२-३ । कपि. २,९-१० । वा. ५,४२,४१,४३; ६,१-६ ।
काण्व. ५, ५२,५१,५३-५५; ६,१-७ । मा. श्रौ. १,८,१-२ । [शुन्धन्तां (शुम्भन्तां) लोकाः ।
अथर्व. १८,४,६७] [याते धामा० । ऋ. १,१५४,६] [विष्णोः कर्माणि० । ऋ. १,२२,१९;
अथर्व. ७,२६,६; सा. १६७१]

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ९९
परिवीरसि, परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां, परीमꣳ यजमानं मनुष्यान्सह रायस्पोषेण
प्रजया च व्ययन्तां, दिवः सानूपेष, दिवं ते धूमो गच्छत्व,—न्तरिक्षं ज्योतिः, पृथिवीं भस्म,
स्वाहा ॥१४॥
१००
इषे त्वो,—पावीरस्यु,—पो देवान् दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नय उशिजो, बृहस्पते धारया वसूनि,
हव्या ते स्वदं, देव त्वष्टर्वसुरण्वे, रेवती रमध्वं, देवस्य त्वा सवितुः प्रसꣳवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां
पूष्णो हस्ताभ्यामाददे, ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चाम्य,—ग्नये त्वा जुष्टं, धर्षा मा-
नुषा, अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो जुष्टं प्रोक्षाम्य,—नु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु
सखा सयूथ्यो, ऽनुमानावह देवान् देवायते यजमानाया,—ऽपां पेरुरसि, स्वात्तꣳ सद्धविरापो
देवीः स्वदन्तु, सं ते वायुर्वातेन गच्छताꣳ सꣳ यजत्रैरङ्गानि सꣳ यज्ञपतिराशिषा, घृतेनाक्तौ
पशुꣳस्त्रायेथाम् ॥
१०१
यं बध्यमानमनु बध्यमाना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टं अग्रे प्रमुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणः ॥ १०२
रेवति प्रेधा यज्ञपतिमाविशो,—रो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन वातेन ॥ १०३
स्वेनास्य हविषो यज समस्य तन्वा भव । वर्षीयो वर्षीयसो यज्ञꣳ यज्ञपतौ धाः ॥ १०४
स्वर्विदसि, स्वर्विन्दा स्वरिहिꣳ, स्वर्मेहꣳ, स्वः पशुभ्यो, लोकविदसि, लोकꣳ
विन्दा लोकमिहि, लोकं मह्यं, लोकं पशुभ्यो, नाथविदसि, नाथꣳ विन्दा नाथमिहि,
नाथं मह्यं, नाथं पशुभ्यो, गातुविदसि, गातुꣳ विन्दा गातुमिहि, गातुं मह्यं, गातुं
पशुभ्यः ॥
१०५
न वा एतन्म्रियसे नोत रिष्यसि देवां इदेषि पथिभिः शिवेभिः ।
यत्र यन्ति सुकृतो नापि दुःकृतस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १०६
अमितार उपेतन यज्ञं देवेभिरन्वितम् । पाशात् पशुं प्रमुञ्चत बन्धाद्यज्ञपतिं परि ॥ १०७
अदितिः पाशान् प्रमुमोक्त्वेतान् पशोः पाशान् पशुपतेरधि ।

[तद्विष्णोः परमं० । ऋ. १,२२,२०; अथर्व. ७,२६,७; सा. १६७२]
[१५] मै. ३,९,६,७ । तै. १,३,७-८ । काठ. ३,४-६ । कपि. २,११-१३ । वा. ६,७-११, १२,१६ । काण्व. ६,८-१५;
१५,१८ । मा. श्रौ. १,८,३ । [न वा (उ) एतन्म्रि० । ऋ. १,१६२,२१; १०,१७,४; अथर्व. १८,२,५५]

यो नो द्वेष्टयधरः स पद्यतां तस्मिन् पाशान् प्रतिमुञ्चाम एतान् ॥ १५ ॥ १०८
नमस्त आताना,—नर्वा प्रेहि यजमानाय घृतस्य कुल्यामनु सह रायस्पोषेण, देवीरापः
शुद्धा यूयं देवान् युयुध्वꣳ, शुद्धा वयꣳ सुपरिविष्टाः परिवेष्टारो वो भूयास्म, वाचमस्य मा
हिꣳसीः, प्राणमस्य मा हिꣳसी,—श्चक्षुरस्य मा हिꣳसीः, श्रोत्रमस्य मा हिꣳसी,—र्यत्ते
क्रूरꣳ यदास्थितं तदेतेन शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्व, गात्राण्यस्य मा हिꣳसीश्च,—रित्राणस्य
मा हिꣳसी,—र्नाभिमस्य मा हिꣳसी,—र्मेढ्रमस्य मा हिꣳसीः, पायुमस्य मा हिꣳसीः,
शमञ्जः ॥
१०९
ओषधे त्रायस्वैनꣳ स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ।
या ते शिवतमा तनूस्तयैनमुपस्पृश ॥
११०
पृथिव्यै त्वा, रक्षसां भागोऽसी,—दमहꣳ रक्षोऽवबाध, इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नया,
—मीषे त्वोर्जे त्वा, देवेभ्यः शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्व ॥ घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाताम्,
—ग्नये त्वा जुष्टं, नमः सूर्यस्य संदृशे ॥ उꣳर्वन्तरिक्षꣳ वीहि, प्रत्युष्टꣳ रक्षः, प्रत्युष्टारातिः,
—र्वायोः स्तोकानां, प्रयुता द्वेषाꣳसि, स्वाहो,—र्ध्वनभसं मारुतं देवं गच्छतम् ॥१६॥
१११-११३
जुष्टं देवेभ्यो हव्यं घृतावद,—ग्नये त्वा जुष्टꣳ, रेडस्य,—ग्निष्ट्वा श्रीणात्वा,—पस्त्वा समरिण-
न्वा,—तस्य त्वा प्राज्यै पूष्णोरꣳह्या ऊष्मणोऽव्यथिषेऽपामोषधीनाꣳ रसो, घृतं घृतपावानः
पिबत, वसाꣳ वसापावानः पिबता,—न्तरिक्षस्य हविरसि, स्वाहा त्वा वाताय, दिशः
प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिश, ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदिध्य,—दैन्द्रोऽपानो अङ्गे
अङ्गे निबोभुवदै,—न्द्रो व्यानो अङ्गे अङ्गे विबोभुवत् ॥
११४
देव त्वष्टर्भूरि ते सत्समेतु सलक्ष्म यद्विषुरूपं बभूव ।
देवत्रा यन्तमवसे सखायो अनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥१७॥
११५
समुद्रं गच्छ स्वाहा,—ऽन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा, देवꣳ सवितारं गच्छ स्वाहा,—ऽहोरात्रे गच्छ

[१६] मै. ३,१०,१ । तै. १,३,८-९ । काठ. ३,६ । कपि. २,१३ । वा. ६,१२-१६ । काण्व. ६,१६-२१
मा. श्रौ. १,८,३ ।
[१७] मै. ३,१०,४ । तै. १,३,१० । काठ. ३,७ । कपि. २,१४ । वा. ६,१८-२० । काण्व. ६,२३-२७ ।
मा. श्रौ. १,८,५ ।

स्वाहा, मित्रावरुणौ गछ स्वाहा, द्यावापृथिवी गछ स्वाहा, छन्दांसि गछ स्वाहा, सोमं
गछ स्वाहा, यज्ञं गछ स्वाहा, दिव्यं नभो गछ स्वाहा,—ऽग्निं वैश्वानरं गछ स्वाहा, मनो
हार्दिं यछ,—पथीभ्यस्त्वा ॥ ११६

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च यदापो अघ्न्या वरुणेति शपामहे ।
ततो वरुण नो मुञ्च ॥ ११७
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ११८
सुमित्रा न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रास्तस्मै सन्तु ।
यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १८ ॥ ११९ [१६२]

॥ इति प्रथमकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः ।

ग्रहाः ।

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान् देवो अध्वरः ।
हविष्मं आ विवासति हविष्मं अस्तु सूर्यः ॥ १
अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि, देवानां भागधेयी स्थे,—न्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ,
मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ, विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ, सुम्नायुव सुम्न्याय सुम्नं धत्त २
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यछ ॥ ३
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
शृणोतु ग्रावाणो विदुषो नु यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवं मे ॥ ४
देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमस्तं देवेभ्यः शुक्रपेभ्यो दात येषां
भाग स्थ स्वाहा, कार्ष्यसि, समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नये, वसूनां रुद्राणामादित्यानां पत्नी-
जनी स्थ, वसवो रुद्रा आदित्या एता वः पत्नीजनी स्थ, समुद्रे गन्धर्वेष्ठामन्वातिष्ठत वातस्य
पत्मनेडिता, वामी ते संदृशि विश्वं रेतो धेषीय तव वामीरनु संदृशि ॥ ५

[१८] मै. ३,१०,७ । तै. १,३,११ । काठ. ३,८ । कपि. २,१५ । वा. ६,२१-२२; १२,१२ । काण्व. ६,२८-३१, १३,१३ । मा. श्रौ. १,८,६ । [धाम्नो धाम्नो... नः ॥ १ ॥ उदुत्तमं वरुण...स्याम ॥ ३ ॥ ऋ. १,२४,१५; सा. ५८९; अथर्व. ७,८३,२-३]
[१] मै. ४,५,१-४ । तै. १,३,१२-१३ । काठ. ३,९ । कपि. २,१६ । वा. ६,२३-२९ । काण्व. ६,३३,३४,३६,३८-४२ । मा. श्रौ. २,२,५; २,३,१-२ । [यमग्ने पृत्सु मर्त्य० । ऋ. १,२७,७; सा. १४१५]
३

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ६
जुष्टो वाचो भूयासं, जुष्टो वाचस्पति,—र्यद्वाचो मधुमत्तस्मै स्वाहा, स्वाहा सरस्वत्यै॥१॥
७
निग्राभ्या स्थ देवश्रुत,—स्तर्पयत मा,—युर्मे तर्पयत, तर्पयत मा, प्राणं मे तर्पयत,
तर्पयत मा,—ऽपानं मे तर्पयत, तर्पयत मा, व्यानं मे तर्पयत, तर्पयत मा, चक्षुर्मे तर्पयत,
तर्पयत मा, श्रोत्रं मे तर्पयत, तर्पयत मा, मनो मे तर्पयत, तर्पयत मा, वाचं मे
तर्पयत, तर्पयत मा—ऽऽत्मानं मे तर्पयत, तर्पयत मा, प्रजां मे तर्पयत, तर्पयत मा,
गृहान् मे तर्पयत, तर्पयत मा, पशून् मे तर्पयत, तर्पयत मा, गणैर्मा मा वितीतृपत, तर्प-
यत मा ॥२॥ ८
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे, ग्रावास्यध्वरकृद्देवेभ्यो,
गभीरमिममध्वरं कृधि ॥ ९
इन्द्राय त्वा सुषुत्तमं मधुमन्तं पयस्वन्तम् ।
इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवता इन्द्राय त्वादित्यवते ॥ १०
अग्नये त्वा रायस्पोषदे, विष्णवे त्वा, श्येनाय त्वा सोमभृते, विष्णवे त्वा ॥ ११
श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राध्वं गूर्ता अमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं धत्तोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ १२
यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृथिव्यां यदुरा अन्तरिक्षे तेनास्मै यज्ञपतय उरु राये कृध्य,
—धि धात्रे वोचो, मा भे,—र्मा संविक्था, ऊर्जं धत्स्वो,—र्जमस्मासु धेहि, धिषणे
ईडिते इडेथा,—मूर्जं दधाथा,—मूर्जमस्मासु धत्तं, मा वां हिंसिषं, मास्मान् युवं हिं-
सिष्टम् ॥ ३ ॥ १३
वाचस्पतये पवस्व विष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः ॥ देवो देवानां पवित्रमसि येषां भागोऽसि ॥

[२] काठ. ३,१० । कपि. २,१७ । वा. ६,३०-३१ । काण्व. ६,४३-४४ । मा. श्रौ. २,३,२; २,४,१ ।
[३] मै. ४,५,४ । तै. १,४,१ । काठ. ३,१० । कपि. २,१७ । वा. ६,३०,३२-३५ । काण्व. ६,४३ ४५-४८ । मा. श्रौ. २,३,३ ।
[४] मै. ४,५,५,७ । तै. १,४,२,१ । काठ. ४,१ । कपि. ३,१,२,१७ । वा. ७,१-३,६, ६,३६ । काण्व. ७,१-३,५; ६,४९ । मा. श्रौ. २,३,३,४ । [प्रागपागुदगधराग० । अथर्व. २०,१३४,१-६]

मधुमतीर्न इषस्कृधि, स्वाकृतोऽस्यु,—र्वन्तरिक्षं वीहि, विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः
पार्थिवेभ्यो, मनस्त्वाष्टु, स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय, देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः, प्राणाय त्वा,
यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा, प्रागपागधरागुदगेतास्त्वा दिश
१४-१६
आधाव,—न्त्वम्ब निस्सर, समरिर्विदाम् ॥ ४ ॥ १७
उपयामगृहीतोऽसि ॥
अन्तर्यछ मघवन् पाहि सोममुरुष्य रायः समिषो यजस्व ।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । १८
सजोषा देवैरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ १९
वाक्त्वाष्टु, स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय, देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्योऽपानाय त्वा ॥५॥
आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ २०
उपयामगृहीतोऽसि, वायवे त्वा ॥ २१
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ २२
उपयामगृहीतोऽसि, वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वै,—ष ते योनिः, सजोषोभ्यां त्वा ॥६॥ २३
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ २४
उपयामगृहीतोऽसि, मित्रावरुणाभ्यां त्वै,—ष ते योनिरृतायुभ्यां त्वा ॥७॥ २५
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ २६
उपयामगृहीऽतोऽस्य,—श्विभ्यां त्वै,—ष ते योनि,—र्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ८ ॥ २७
उपयामगृहीतो,—ऽसि, देवेभ्यस्त्वो—पयामगृहीतोऽसि, विश्वेदेवेभ्यस्त्वो,—पयाम- २८
गृहीतोऽसि, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥

[५] मै. ४,५,६ । तै. १,४,३ । काठ. ४,१ । कपि. ३,१ । वा. ७,४-६ । काण्व. ७,४,५ । मा. श्रौ. २,३,४ ।
[६] मै. ४,५,८ । तै. १,४,४ । काठ. ४,२ । कपि. ३,२ । वा. ७,७,८ । काण्व. ७,६,७ । मा. श्रौ. २,३,५ । [आ वायो भूष० ऋ. ७,९२,१ । इन्द्रवायू इमे० ऋ. १,२,४]
[७] मै. ४,५,८; ४,६,५ । तै. १,४,५ । काठ. ४,२ । कपि. ३,२ । वा. ७,९,१० । काण्व. ७,८,९ । मा. श्रौ. २,३,५ । [अयं वां मित्रा० । ऋ. १,४७,१ (द्वि. पादः), २,४१,४]
[८] मै. ४,६,१ । तै. १,४,६ । काठ. ४,२ । कपि. ३,२ । वा. ७,११ । काण्व. ७,१० । मा. श्रौ. २,३,६ । [या वां कशा० । ऋ. १,२२,३]
[९] तै. ३,२,२० । काठ. ४,२ । कपि. ३,२ । मा. श्रौ. २,३,८ ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमुरुशर्मणां बृहतां वरूथिनाम् ।
येषां नामानि विहितानि धामशश्चित्रैर्यजन्ति भुवनाय जीवसे ॥ २९
उपयामगृहीतोऽसि, विष्णोस्त्वोरुक्रमे गृह्णामि, विष्ण उरुक्रमैष ते सोम,—स्तं रक्ष-
स्व, मा त्वा दभन् दु,—श्चक्षास्ते मावख्यद,—यं वसुः पुरोवसुर्वाक्पा वाचं मे पात्व,—यं
वसुर्विदद्वसुश्चक्षुःपाश्चक्षुर्मे पात्व,—यं वसुः संयद्वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पातु ॥ ९ ॥ ३०
अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥ ३१
उपयामगृहीतोऽसि, षण्डाय त्वै,—ष ते योनि,—र्वीरतायै त्वा ॥१०॥ ३२
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठराजं बर्हिषदं स्वर्दृशम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ ३३
उपयामगृहीतोऽसि, मर्काय त्वै,—ष ते योनिः, प्रजाभ्यस्त्वा ॥११॥ ३४
अपनुत्तौ षण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्मो, ऽछिन्नस्य ते देव सोम दक्षस्य रायस्पोषस्य सुवी-
र्यस्याभिग्रहीतारः स्याम ॥ तुथोऽसि जनधाया, देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु, तुथोऽसि जनधाया
देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि, सुवीराः प्रजाः प्रजनयन् परीहि, सुप्रजाः प्रजाः
प्रजनयन्नभिपरीहि ॥ ३५-३६
इन्द्रेण मन्युना युजावबाधे पृतन्यतः । घ्नता वृत्राण्यप्रति ॥ ३७
संजग्मानौ दिवा पृथिव्या शुक्रौ शुक्रशोचिषा तौ देवौ शुक्रमन्थिना आयुर्यज्ञे धत्तमायुर्यज्ञ-
पतौ, पूमांसं गर्भमाधत्तं गविण्योः प्राणान् पशुषु यछतं, शुक्रस्याधिष्ठानमसि, मन्थिनो-
ऽधिष्ठानमसि, निरस्तः षण्डो, निरस्तो मर्कः सह तेन यं द्विष्मः ॥ ३८
या प्रथमा संस्कृतिर्यज्ञे अस्मिन् यः परमो बृहस्पतिश्चिकित्वान् ।
यो मध्यमो वरुणो मित्रो अग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोत
॥१२॥ ३९

[१०] मै. ४,६,३ । तै. १,४,८ । काठ. ४,३ । कपि. ३,३ । वा. ७,१६,१२ । काण्व. ७,१५,११ । मा. श्रौ. २,३,५ । [अयं वेनश्चोदय० । ऋ. १०,१२३,१]
[११] मै. ४,६,३ । तै. १,४,९ । काठ. ४,३ । कपि. ३,३ । वा. ७,१२,१६ । काण्व. ७,११,१५ । [तं प्रत्नथा पूर्वथा० । ऋ. ५,४४,१]
[१२] मै. ४,६,३ । काठ. ४,४ । कपि. ३,३ । वा. ७,१२-१५,१७,१८ । काण्व. ७,१२-१४,१७-१९ । तै. ब्रा. १, १,१,१-५ । ताण्ड्य-ब्रा. १,४,३ । मा. श्रौ. २,४,१ ।

ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ४०

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणो, जिन्व यज्ञं, जिन्व यज्ञपतिम्, अभि सवनानि पाहि, तस्त्वा विष्णुः पातु, विशं त्वं पाहीन्द्रियेण, एष ते योनिर्, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ १३ ॥ ४१

उपयामगृहीतोऽसि ॥ ४२

इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थायुवम् । यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वा ॥ ४३
एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वो, पयामगृहीतोऽसि, देवेभ्यस्त्वा देवायुवं गृह्णामि, पुनर्हविरसि, देवेभ्यस्त्वा देवायुवं ग्रह्णामि यज्ञस्यायुषे ॥१४॥ ४४

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ४५

उपयामगृहीतोऽसि, वैश्वानराय त्वा ॥ ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम, एष ते योनिर्, वैश्वानराय त्वा ॥ ४६–४७

ध्रुवं ध्रुवेण हविषा वः सोमं नयामसि ।
यथा नः सर्वा इज्जनः संगमे सुमना असत् ॥ ४८
दिवि दिव्यान् दृꣳहान्तरिक्षे अन्तरिक्ष्यान् पृथिव्यान् पार्थिवान् ॥१५॥ ४९

उपयामगृहीतोऽसि, मधवे त्वा, माधवाय त्वा, शुक्राय त्वा, शुचये त्वा, नभसे त्वा, नभस्याय त्वे, षाय त्वो, र्जाय त्वा, सहसे त्वा, सहस्याय त्वा, तपसे त्वा, तपस्याय त्वा ॥१६॥ ५०

[१३] मै. ४,६,४ । तै. १,४,१० । काठ. ४,५ । कपि. ३,४ । वा. ७,१९–२० । काण्व ७,२०–२३ । मा. श्रौ. २,३,५ ।
[ये देवासो० । ऋ. १,१३९,११; अथर्व. १९,२७,११–१३]
[१४] मै. ४,६,५ । तै. १,४,१२ । काठ. ४,५,६ । कपि. ३,४ । वा. ७,२२,२३ । काण्व ७,२४,२५ । मा. श्रौ. २,३,५; २,४,३ ।
[१५] मै. ४,६,६ । तै. १,४,१३ । काठ. ४,५ । कपि. ३,५ । वा. ७,२४–२५ । काण्व. ७,२६–२८ । मा. श्रौ. २,३,५ ।
[मूर्धानं दिवो० । ऋ. ६।७।१; सा. ११४०; ध्रुवं ध्रुवेण...रसत् । ऋ. १०,१७३,६, अथर्व. ७,९४.१]
[१६] मै. ४,६,७ । तै. १,४,१४ । काठ. ४,७ । कपि. ३,५ । वा. ७,३० । काण्व. ७,३० । मा. श्रौ. २,४,२ ।

इन्द्राग्नी आगतꣳ सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ ५१
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राग्निभ्यां त्वै, ष ते योनिर्, इन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥१७॥ ५२

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत । दाश्वाꣳसो दाशुषः सुतम् ॥ ५३
उपयामगृहीतोऽसि, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य, एष ते योनिर्, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥१८॥ ५४

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमꣳ यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ५५
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥१९॥ ५६

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥ ५७
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वा मरुत्वत, एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥२०॥ ५८

मरुत्वन्तꣳ वृषभꣳ वावृधानमकवारिं दिव्यꣳ शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳ सहोदामिह तꣳ हुवे ॥ ५९
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वा मरुत्वत, एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥२१॥ ६०

मरुत्वाꣳ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ ६१

[१७] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१५ । काठ. ४,७ । कपि. ३,५ । वा. ७,३१ । काण्व. ७,३१ । मा. श्रौ. २,४,२,३ ।
[इन्द्राग्नी आगत२०। ऋ. ३।१२।१; सा. ६६९]
[१८] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१६ । काठ. ४,७ । कपि. ३,५ । वा. ७,३३ । काण्व. ७,३३ । मा. श्रौ. २,४,२ ।
[ओमासश्चर्षणी० । ऋ. १।३।७]
[१९] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१८ । काठ. ४,८ । कपि. ३,६ । वा. ७,३५ । काण्व. ७,३५ । मा. श्रौ. २,४,४ ।
[इन्द्र मरुत्व इह । ऋ. ३।५१।७]
[२०] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१८ । तै. ब्रा २,८,३,४–५ । काठ. ४.८ । कपि. ३,६ । वा. ३३,६४; ७,३५ । काण्व. ३२,६४; ७,३५, । मा. श्रौ. २,४,४ । [जनिष्ठा उग्रः० । ऋ. १०।७३।१]
[२१] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१७ । काठ. ४,८ । कपि. ३,६ । वा. ७,३६ । काण्व. ७,३६ । [मरुत्वन्तꣳ (न्तं) वृषभꣳ । ऋ. ३।४७।५]
[२२] मै. ४,६,८ । तै. १,४,१९ । काठ. ४,८ । कपि. ३,६ । वा. ७,३८ । काण्व. १८,१० । [मरुत्वाꣳ (त्वाँ) इन्द्र वृषभो० । ऋ. ३।४७।१]

उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वा मरुत्वत, एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥२२॥ ६२
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूꣳरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ ६३
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वा मरुत्वत, एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥२३॥ ६४
महाꣳ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाꣳ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ ६५
उपयामगृहीतोऽसि, महेन्द्राय त्वै, ष ते योनिर्, महेन्द्राय त्वा ॥२४॥ ६६
महाꣳ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ ६७
उपयामगृहीतोऽसि, महेन्द्राय त्वै, ष ते योनिर् महेन्द्राय त्वा ॥२५॥ ६८
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ६९
उपयामगृहीतोऽस्या, ऽऽदित्येभ्यस्त्वा ॥
कदा चन प्रयुच्छस्युभे नि पासि जन्मनी । ७०
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिवि ॥ ७१
उपयामगृहीतोऽस्या, ऽऽदित्येभ्यस्त्वा ॥ ७२
यज्ञो देवानां प्रत्येतु सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ७३
अदब्धेभिः...
इदं पुरस्तादुत पश्चादुदङꣳ विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
अहꣳ सूर्यमयतो ददर्श यदन्तरिक्षं तदु नः पिताभूत् ॥ ७४

[२३] मै. ४,६,८ । तै. १,४,२० । कपि. ३,६ । वा. ७,३७ । काण्व. ७,३८ । मा. श्रौ. २,४,६ ।
[सजोषा इन्द्र सगणो० । ऋ. ३।४७।२]
[२४] मै. ४,६,८ । तै. १,४,२० । काठ. ४,८ । कपि. ३,६ । वा. ७,४० । काण्व. ७,४० । मा. श्रौ. ७,२,४ ।
[महाँ (हाँ) इन्द्रो य० । ऋ. ८।६।१; अथर्व. २०।१३८।१; सा. १६०७]
[२५] मै. ४,६,८ । तै. १,४,२१ । काठ. ४,८ । कपि. ३,६ । वा. ७,३९ । काण्व. ७,३९ । मा. श्रौ. २,४,६ । [महाँ (हाँ) इन्द्रो नृवदा । ऋ. ६।१९।१]
[२६] मै. ४,६,९ । तै. १,४,२२; ४,४,८,२२ । काठ. ४,१० । कपि. ३,८ । वा. ८,२–४,९ । काण्व. ८,१–३,९ । मा. श्रौ. २,५,१ । [कदा चन स्तरीरसि० । ऋ. ८।५१।७; कदा चन प्रयुच्छस्युभे० । ऋ. ८।५२।७; यज्ञो देवानां० । ऋ. १।१०७।१]

उरुꣳमय पृथिवी मीꣳन्त्यादो दिव्यं नभः ।
उभो दिव्यस्य नो धातरीशानो विष्या धृतिम् ॥ २६ ॥ ७५
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ७६
उपयामगृहीतोऽसि, सावित्रोऽसि जनधाया, जिन्व यज्ञं, जिन्व यज्ञपतिम्, अभि सवनानि पाहि, तस्त्वा विष्णुः पातु, विशं त्वं पाहीन्द्रियेण ॥ २७ ॥ ७७
उपयामगृहीतोऽसि ॥ सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो, बृहदुक्षे नमः ॥ एष ते योनिर्, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २८ ॥ ७८–७९
उपयामगृहीतोऽसि, बृहस्पतिसुतस्य त इन्द इन्द्रियावतः ॥ पत्नीवन्तं ग्रहꣳ राध्यासम् ॥ अग्ना३इ पत्नीवा३न् त्सजूस्त्वष्ट्रा सोमं पिब ॥ २९ ॥ ८०–८२
उपयामगृहीतोऽसि, हरिरसि हारियोजनो हरिवान् हर्योः स्थाता, स्तुतस्तोमस्य ते देव सोम शस्तोक्थस्येष्टयजुषः ॥ हरिवतो हारियोजनस्य हरिवन्तं ग्रहꣳ राध्यासम् ॥ हर्योर्धाना हरिवतीः सहसोमा इन्द्राय, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा ॥ ३० ॥ ८३–८५
अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ८६
उपयामगृहीतोऽस्य, ग्नये त्वायुष्मत, एष ते योनिर्, ग्नये त्वायुष्मते ॥ ३१ ॥ ८७
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समावर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८८
उपयामगृहीतोऽसी, न्द्राय त्वौजस्वत, एष ते योनिर्, इन्द्राय त्वौजस्वते ॥३२॥ ८९

[२७] मै. ४,७,१ । तै. १,४,२४ । काठ. ४,१० । कपि. ३,८ । वा. ३३,६९,८४; ८,७ । काण्व. ३२,६९,८४; ८,६ । मा. श्रौ. २,५,१ । [अदब्धेभिः सवितः० । ऋ. ६।७१।३; शिवेभिरद्य० । अथर्व. ७।८४।१, रक्षा माकिर्नो० । अथर्व. १९।४७।६]
[२८] मै. ४,७,१ । तै. १,४,२६ । काठ. ४,१० । कपि. ३,८ । वा. ८,८ । काण्व. ८,७ । मा. श्रौ. २,५,१ ।
[२९] मै. ४,७,४ । तै. १,४,२७ । काठ. ४,११, । कपि. ३,९ । वा. ८, ९,१० । काण्व. ८,८,१०–११ । मा. श्रौ. २,५,२ ।
[३०] मै. ४,७,४ । तै. १,४,२८ । काठ. ४,११ । कपि ३,९ । वा. ८,११,१२ । काण्व. ८,१२–१३ । मा. श्रौ. २,५,४ ।
[३१] मै. ४,७,३ । मै. १,४,२९ । काठ. ४,११ । कपि. ३,९ । वा. १९,३८; ३५,१६; ८,३८ । काण्व. ८,१९,१०–११, ४०; २१,३७; ३५,४८ । मा. श्रौ. ७,२,२ ।
[अग्ना (ग्न) आयूꣳषि० ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७; १४६४; १५१८]
[३२] तै. १,४,३० । काठ. ४,११ । कपि. ३,९ । वा. ८,३९ । काण्व. ८,२१ ।

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनं अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ९०

उपयामगृहीतोऽसि, सूर्याय त्वा भ्राजस्वत, एष ते योनिः, सूर्याय त्वा भ्राजस्वते ॥
॥३३॥ ९१

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ९२

उपयामगृहीतोऽसी,—न्द्राय त्वा हरिवत, एष ते योनि,—रिन्द्राय त्वा हरिवते ॥३४॥ ९३

उपयामगृहीतोऽसि, प्रजापतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामि, रातं देवेभ्यो दक्षाय दक्षवृधम,—ग्निहोत्रेभ्यस्त्वा ऋतायुभ्या इन्द्रज्येष्ठेभ्यो वरुणराजभ्यो वातापिभ्यः पर्जन्यात्मभ्यः, पृथिव्यै त्वा,—ऽन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वा,—ऽद्भ्यस्त्वौषधीभ्यो वनस्पतिभ्यस्त्वा, प्राणाय त्वा,—ऽपानाय त्वा, व्यानाय त्वा, सते त्वा,—ऽसते त्वा, भूताय त्वा, भव्याय त्वा, येन प्रजा अछिद्रा अजायन्त तस्मै त्वा प्रजापतये विश्वकर्मणे विश्वव्यचसे विभूदाव्ने विश्वं भागं
जुहोमि, स्वाहा ॥ ९४

तिस्रो जिह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरकृण्वन्नुशिजो अमृत्यवे ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजं लोकमु द्वे उप जामी ईयतुः ॥३५॥ ९५

अग्निः प्रातःसवनात् पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वभूर्विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणं दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षा स्याम ॥ ९६

अग्नये त्वा प्रवृहामि गायत्रेण छन्दसे,—न्द्राय त्वा प्रवृहामि त्रैष्टुभेन छन्दसा,—ऽऽदित्येभ्यस्त्वा प्रवृहामि जागतेन छन्दसा, रशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, मान्दानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, मन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, पूतनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, पस्त्यानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, माध्वीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, मधूयानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि, देवयानीनां त्वा पत्मन्नाधूनोम्यु,—पयामगृहीतोऽसि, शुक्रं त्वा शुक्र शुक्राय गृह्णाम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ९७

[३३] तै. १,४,३१ । काठ. ४,११ । कपि. ३,९-१० । वा. ८,४० । काण्व. ८,११ । [अदृश्रमस्य केतवो० । ऋ. १, ५०,३ । अथर्व. १३,२,१८; २०,४७,१५ । सा. ६३४]
[३४] मै. ४,७,६ । तै. १,४,३८ । काठ. ४,११ । कपि. ३,९ । वा. ८,३५ । काण्व. ८,१६ । मा. श्रौ. २,५,१ । [इन्द्रमिद्धरी वहतो० । ऋ. १,८४,२ । सा. १०३०]
[३५] तै. ३,५,८ । काठ. ३०,५,६ । मा. श्रौ. ७,२,४ ।
[३६] मै. ४,७,७ । तै. ३,१,९,५; ३,३,३ । काठ. ३०,६ । वा. ८,४८-५० । काण्व. ८,३०-३२ । मा. श्रौ. ७,१,१ । मै. ४

आ समुद्रा अचुच्यवुर्दिवो धारा असश्चत ॥ ९८

ककुभꣳ रूपꣳ वृषभस्य रोचते, बृहद्वसूनामाधीतौ रुद्राणां कर्मण्यादित्यानां चेतसी,—न्द्राय त्वा विभूवसे जुहोम्यु,—शिक्त्वं देव सोम गायत्रेण छन्दसाग्नेर्धामोपेहि, वशीक्त्वं देव सोम त्रैष्टुभेन छन्दसेन्द्रस्य धामोपेह्य,—स्मत्सखा देव सोम जागतेन छन्दसा विश्वेषां देवानां प्रियं पाथ उपेहि ॥३६॥ ९९

उदु त्यं जातवेदसं देवꣳ वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १००
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १०१

द्यां गछ, स्वर्गछ, रूपꣳ वो रूपेणाभ्येमि वयसा वय,—स्तुथो वो विश्ववेदा विभजतु वर्षिष्ठे अधि नाके पृथिव्याः ॥ १०२

एतत्ते अग्ने राध एति सोमच्युतं, तन्मित्रस्य पथा नय ॥ १०३
अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।
अयꣳ शत्रून् जयतु जर्हृषाणोऽयꣳ वाजं जयतु वाजसातौ ॥ १०४

ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा, ब्राह्मणमद्य ऋध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम् ॥ वि स्वः पश्य३ व्यन्तरिक्षꣳ, यत स्वः सदस्यै,—रस्मद्दाता मधुमतीर्देवत्रा गछत, प्रदातारमाविशता,—ऽनवहायास्मान् देवयानेन पथा सुकृतां लोके सीदत, तन्नः सꣳस्कृतम् ॥३७॥
१०५-१०६

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्वरुणो मित्रो अग्निः ।
विष्णुस्त्वष्टा प्रजया सꣳरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥ १०७

[३७] मै. ४,८,२,३ । तै. १,४,४३ । काठ. ४,९ । कपि. ३,७ । वा. ७,४१,४२,४४-४६; १३,४६; ८४१; ३३,३१ । काण्व. ८,२३,२४;९,६-७,९-१२, ३२,३१;१४,४८ । मा. श्रौ. ७,२,५ । [उदुत्यं जातवेदसं० । ऋ. १,५०,१ । अथर्व. १३,२,१६,२०,४७,१३ । सा. ३१ । चित्रं देवानां० । ऋ. १,११५,१ । अथर्व. १३,२,३५, । सा. ६२९]
[३८] मै. ४,८,४ । तै. १,४,४४ । काठ. ४,१२ । कपि. ३,१० । वा. २,२१,२४;८,१७,१५,१६,१४,१८-२२ । काण्व. २,३९.४४;९,१७,१५.१४,१८-२१ । मा. श्रौ. २,५,४ । [धाता रातिः सविते० । अथर्व. ७,१७,४ । समिन्द्र णो मनसा० । ऋ. ५,४२,४ । सं वर्चसा पयसा० । अथर्व. ६,५३,३ । यानावह (याँ२ऽआवह) । अथर्व. ७,९७,३ । सुगा वो देवाः० । अथर्व. ७,९७,४ । यज्ञ यज्ञं गच्छ० । अथर्व. ७,९७,५-६ । देवा गातुविदो० । अथर्व. ७,९७,७-८]

समिन्द्र नो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्हरिवः सꣳ स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतꣳ यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ १०८
सꣳ वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥ १०९
सुगा वो देवाः सदना कृणोमि य आजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः ।
यक्षिवाꣳसः पपिवाꣳसश्च विश्वेऽस्मे धत्त वसवो वसूनि ॥ ११०
यानावह उशतो देव देवाꣳस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
वहमाना भरमाणा हवीꣳष्यसुं घर्मं दिवमातिष्ठतानु ॥ १११
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।
ऋधगयाडृधगुताशमिष्ठ विद्वान् प्रजानन्नुपयाहि यज्ञम् ॥ ११२
यज्ञ यज्ञं गछ, यज्ञपतिं गछ, स्वꣳ योनिं गछ, स्वाहै,—ष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सुवीर,—स्तेन संभव, भ्राजं गछ, देवा गातुविदो गातुꣳ वित्त्वा गातुमित, मनसस्पत
इमꣳ यज्ञं दिवि देवेषु वाते धा, स्वाहा ॥ ३८ ॥ ११३

उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ११४
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु । ११५
आरे बाधस्व निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ११६
अग्नेरनीकमप आविवेशापां नपात् प्रतिरक्षदसुर्यान् ॥ ११७
दमेदमे समिधꣳ यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । ११८
यज्ञस्य ते यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम स्वाहा ॥

[३९] मै. ४ ८,५, । तै. १,४,४५ । काठ. ४,१३ । कपि. ३,११ । वा. ८,११,२३-२५,२७;३,४८;२०,१८,१९,२२, २३; ३८.२५ । काण्व. ८,१२; ९,२३-२६,११,४,७; ३८,२४;३.५६ । [उरुꣳ हि राजा० । ऋ. १,२४,८ । उदु ते (त्ये) मधुमत्तमा...इव । कण्वा इव भृगवः० । ऋ. ८,३,१५-१६ । अथर्व. २०,१०,१-२;२०,५९,१-२ । सा. २५१,१३६१; १३६३ । एधोऽस्येधिषी (य) महि० । अथर्व. ७,८९,४; १९.३१,१२ । अपो (आपो) अद्यान्वचा० । ऋ. १,२३,२३; १०,९,९; अथर्व. ७,८९,१; ९,१,१४; १०,५,४६]

अवभृथ निचुङ्कुण निचेरुरसि निचुङ्कुणो, गृहं गृहो,—ऽव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्य,—व मर्त्यैर्मर्त्यकृतं चिकित्वा,—ऽनुरोरा नो देव रिषस्पाह्य,—प्सु धौतस्य ते देव सोमनृभिष्टुतस्य यस्ते गोसनिर्भक्षो यो अश्वसनिस्तस्य त उपहूता उपहूतस्य भक्षयामि, विचृत्तो वरुणस्य पाशः, प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशो, नमो वरुणस्य पाशाया,—श्वेतवैशीयो ना उक्षुपाभिः ॥ ११९

उदु ते मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १२०
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धितमानशुः ।
उदितः प्रजामुत वर्चो दधाना युष्मान् राय उत यज्ञा असश्चतः ॥ १२१
गायत्रं छन्दो अनु सꣳरभध्वमथा स्यात सुरभयो गृहेषु ।
एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि समेधिषीमहि ॥ १२२
अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा ॥ ३९ ॥ १२३ [१८५]

॥ इति प्रथमकाण्डे ग्रहो नाम तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः ।

यजमान-ब्राह्मणम् ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम । १
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥
अग्ने व्रतपते व्रतमालप्स्ये, तच्चे प्रब्रूमस्तं,—नो गोपाय, तच्छकेयम् ॥ २
अग्निꣳ होतारमुप तꣳ हुवे देवान् यज्ञियानिह यान्यजामहै ।
आयन्तु देवा हविषो मे अस्या देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ३
युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन हव्यायास्मै वोढवे जातवेदः ।
इन्धानास्त्वा सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते ॥ ४

[१] मै. १,४,५ । तै. १,५,१०,३, १,६,२-४ । काठ. ४,१४; ५,१-४ । वा. १,५; २,१८,१०; १८,५६ । काण्व. १,८; २,५३,१८; २०,२६ । मा. श्रौ. १,४,१ ।

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकः सन्त्वाशिषः ॥ ५
आमाशिषो दोहकामा इन्द्रवन्तो हवामहे । धुक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६
सा मे सत्याशीर्देवान् गम्याज्जुष्टाज्जुष्टतरा पण्यात् पण्यतरा ॥ ७
अरेडता मनसा देवान् गछ, यज्ञो देवान् गछतु, यज्ञो देवान् गम्यात् ॥ ८
वि ते मुञ्चामि रशनाः वि रश्मीन् वि योक्त्राणि परिचर्तनानि ।
धत्तादस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्र मा ब्रूताद्भागधां देवतासु ॥ ९
इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्दा वसुभिः ।
अङ्गिरसो मे अस्य यज्ञस्य प्रातरनुवाकैरहृषुः ॥ १०
तस्य मा यज्ञस्येष्टस्य वीतस्य द्रविणेहागम्या,—दसुर्यज्ञो, वसुमान्यज्ञ,—स्तस्य मा यज्ञस्य
वसोर्वसुमतो वस्विहागछत्व,—दो मागछत्व,—दो मागम्यात् ॥ १ ॥ ११

सं यज्ञपतिराशिषा, संदसि, सन्मे भूयाः, पूर्णमसि, पूर्णं मे भूयाः, सर्वमसि, सर्वं मे भूयाः, अक्षितमस्य,—क्षितं मे भूयाः, प्राच्या दिशा देवा ऋत्विजो मार्जयन्तां, दक्षिणया दिशा मासाः पितरो मार्जयन्तां, प्रतीच्या दिशा गृहाः पशवो मार्जयन्ता,—मुदीच्या दिशापा ओषधयो वनस्पतयो मार्जयन्ता,—मूर्ध्वया दिशा यज्ञः संवत्सरो मार्जयतां, विष्णुः पृथिव्यां व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा, निर्भक्तः स यं द्विष्मो, विष्णुरन्तरिक्षे व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा, निर्भक्तः स यं द्विष्मो, विष्णुर्दिवि व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा, निर्भक्तः स यं द्विष्मो, ऽगन्म३ स्वः, सं ज्योतिषाभूमे,—दमहममुष्य प्राणं निवेष्टयामि, तेजोऽसि, समहं प्रजया, सं मया प्रजा, समहं पशुभिः, सं मया पशवो, ऽग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं, सुगृहपतिस्त्वं मया गृहपतिना भूया, अस्थूरिणौ गार्हपत्यं दिदाश्यतं हिमाद्वायू, रायाःसि संपृचानो असंपृचानौ तन्वो, ऽसा अनु मा तन्व,—छिन्नो दिव्यस्तन्तु,—र्मा मानुषश्छेदि, दिव्याद्धाम्नो मा छित्सि मा मानुषा,—ज्ज्योतिषे तन्तवे त्वा ॥
॥ २ ॥ १२

[२] मै. १,४,६,७ । तै. १,६,५-६ । काठ. ५,५ । वा. ६,१०, २,२५,२७ । काण्व. ६,१२, २,४६-४७,४९-५० । मा. श्रौ. १,४,३, २,३,६ । कात. श्रौ. ३,७,४,१०-११ ।

ये देवा यज्ञहनः पृथिव्यामध्यासते । अग्निर्नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ १३
ये देवा यज्ञमुषः पृथिव्यामध्यासते । अग्निर्नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ १४
यास्ते रात्रयः सवितर्देवयानीः सहस्रयज्ञमभि संबभूवुः ।
गृहैश्च सर्वैः प्रजयान्वग्ने३ स्वो रुहाणास्तरता रजांसि ॥ १५
ये देवा यज्ञहनो अन्तरिक्षे अध्यासते ।
वायुर्नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ १६
ये देवा यज्ञमुषो अन्तरिक्षे अध्यासते । वायुर्नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ १७
अगन्म मित्रावरुणा वरेण रात्रीणां भागो युवयोर्यो अस्ति ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ १८
ये देवा यज्ञहनो दिव्यध्यासते । सूर्यो नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ १९
ये देवा यज्ञमुषो दिव्यध्यासते । सूर्यो नस्तेभ्यो रक्षतु गछेम सुकृतो वयम् ॥ २०
येनेन्द्राय समभरन् पयांस्युत्तमेन हविषा जातवेदः ।
तेनाग्ने त्वमुत वर्धया मां सजातानां मध्ये श्रैष्ठ्या आ धेहि मा ॥ २१
वेदोऽसि, वेदो मा आभर, तृप्तोऽहं, तृप्तस्त्वम् ॥ २२
घृतवन्त कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम् । वेदो वाजं ददातु मे ॥ २३
निर्द्विषन्तं निररातिं दह, रुद्रास्त्वायछन्त्वा,—ऽऽदित्यास्त्वास्तृणन् ॥ २४
गोमं अग्नेऽविमं अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इडावानेषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ २५
सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गछतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूथाम् ॥ २६
आपृणानो विजहुता अरातिं दिवं ज्योतिरुत्तममारभेयां स्वाहा ॥ २७
पत्नि पत्न्येष ते लोको, नमस्ते अस्तु, मा मा हिंसी,—र्या सरस्वती वेशयमनी तस्यै स्वाहा ॥ २८
या सरस्वती वेशभगीना तस्यास्ते भक्तिवानो भूयास्म ॥ २९
अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिश्च सत्यमित्त्वमया असि ।
अयाः सन् मनसा कृत्तोऽयाः सन् हव्यमूहिषेऽया नो धेहि भेषजं स्वाहा ॥ ३ ॥ ३०

[३] मै. १,४,८ । तै. ३,५,४; १,६,६,४ । काठ. ५,६,४ । वा. १५,५०, ३,६३; ४,९ । काण्व. १६,७२; ४,११ । मा. श्रौ. १,४,३,१; १,३,५ । (गोमं (माँ) अग्नेऽविमं (माँ)० । ऋ. ४,२,५]

देवान्जनमगन्यज्ञ,—स्ततो मा यज्ञस्याशीरागछतु, पितॄन् जनमगन्यज्ञ,—स्ततो मा यज्ञस्याशीरागछतु, मनुष्यान्जनमगन्यज्ञ,—स्ततो मा यज्ञस्याशीरागछत्व,—प ओषधीर्वनस्पतीन्जनमगन्यज्ञ,—स्ततो मा यज्ञस्याशीरागछतु, पञ्चजनं जनमगन्यज्ञ,—स्ततो मा यज्ञस्याशीरागछतु, पञ्चानां त्वा वातानां धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा दिशां धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा सलिलानां धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्राय गृह्णामि, पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्राय गृह्णामि, चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य धर्त्राय गृह्णामि ॥ ३१
धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् । देववीत्यै त्वा गृह्णामि ॥ ३२
भूरस्माकं, हव्यं देवानामा,—ऽऽशिषो यजमानस्य, देवताभ्यस्त्वा देवताभिर्गृह्णामि ॥४॥ ३३
समृद्धयज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ, कस्य वाह यक्ष्यमाणस्य देवता यज्ञमागछन्ति कस्य वा न, बहूनां समानमहर्यजमानानां यः पूर्वेद्युरग्निं गृह्णाति स श्वो भूते देवता अभियजते, समाप्ने वचो विहवेष्वस्ति,—ति पूर्वमग्निं गृह्णाति, देवता वा एतत् पूर्वेद्युरग्रहीत्, ताः श्वो भूतेऽभियजते, बर्हिषा वै पूर्णमासे व्रतमुपयन्ति वत्सैरमावास्यायां, पुरा वत्सानामपाकर्तोर्दम्पत्योश्नीयातां, हस्ता अवनिज्य दक्षिणतोऽग्निमुपतिष्ठेता,—ऽग्ने व्रतपते व्रतमालप्स्या, इत्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिर्ब्राह्मणो व्रतभृद्, व्रतपतय एव प्रोच्य व्रतमालभते, ऽग्निं होतारमुप तं हुवा, इति येन हविर्निर्वप्स्यन्त्स्यात्तदभिमृशेद्, देवतानां वा एष ग्रहो, देवता वा एतदग्रही,—त्पुनन्ति त्वा ब्रह्मणा देवतेन,—ति परिधिषु परिधीयमानेषु वदेद,—वैर्वा एष योगो, ऽग्निमेतद्युनक्ति, युक्तोऽस्मै हव्यं वहत्व,—स्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वि,—तीडायामुपहूयमानायां वदेदि,—डाया वा एष दोहा, इडां वा एतद्दु, ऽयो इन्द्रियं वा इडे,—न्द्रियमेवात्मन्धत्ता, आमाशिषो दोहकामा, इत्याशिषो वै दोहकामा यजमानमभिसर्पन्ति, ता दक्षिणतो यजमानलोकमुपतिष्ठन्ते, ता यथा धेनवोऽदुग्धा अपक्रामन्त्येवमस्मादाशिषोऽदुग्धा अपक्रामन्ति य एवं न वेदा,—ऽथ य एवं वेदाशिष एव दुहे, सा मे सत्याशीर्देवान् गम्यादि,—ति प्रस्तरे प्रह्रियमाणे वदेत्, सत्यां वा एतदाशिषं देवान् गमयित्वाथ वरं वृणीत, एतद्ध स्म वा आहौपावृजानः श्रुतेहं, सहस्रेणेष्ट्वा कमु स्विदतोऽधि वरं वरिष्यामहा, इति सहस्रेण यक्षीय,—ति ह स्म वाव ततः पुराह, वि ते मुञ्चामि रशनां वि रश्मीनि,—ति परिधिषु प्रह्रियमाणेषु

[४] मै. १,४,९ । तै. १,६,१ । काठ. ५,६ । वा. ८,६०; १,३१ । काण्व. ९,१४; १,४९ । मा. श्रौ. १,४,१ ।
[५] मै. १,४,१ । तै. १,६,७; १,७,४,३ । काठ. ३१,१५; ३२,२-३ ।

वदेद्, देवता वा एतत् स्वर्गं लोकं गमयित्वा प्रतिष्ठाप्य व्युमौगि,—ष्टो यज्ञो भृगुभिरिति, यज्ञस्य वा एष दोहो, यज्ञमेतद्दुह, एतद्ध स्म वा आह कपिवनो भौवायनः, किमु स यज्ञेन यजेत यो गामिव यज्ञं न दुहीते, सुदोहतरो हि गोरिति ॥५॥ ३४

सं यज्ञपतिराशि,—षेति यजमानो यजमानभागं प्राश्नाति, यजमानो वै यज्ञपति,—र्यज्ञो यजमानभागो, यद्यजमानो यजमानभागं प्राश्नाति यज्ञपता एवं यज्ञं प्रतिष्ठापयति, यदि प्रवसेत्समिष्टयजुषा सह जुहुया,—दुग्रा एवं यज्ञं प्रतिष्ठापयति, यद्धविर्निर्वप्स्यन्नग्नौ निष्टप्यग्नेरेव यज्ञं निर्मिमीते, ऽथ यद्धविर्निर्वप्स्यन्यजमानाय प्राह यज्ञपतेरेवाधि यज्ञं निर्मिमीते, ऽग्निर्वै भूयांसं प्रदहत्ये,—तं वै लोकं यजमानोऽन्वतिमुच्यते यदेता आपोऽतिसृज्यन्ते, ऽछिन्नं स्रावयितव्या, अद्भिर्वा एतद्यजमानोऽग्नेरात्मानमन्तर्धत्ते, द्वया वै देवा यजमानस्य गृहमागछन्ति सोमपा अन्येऽसोमपा अन्ये हुतादोऽन्येऽहुतादोऽन्ये, एते वै देवा अहुतादो यद्ब्राह्मणं, एतद्देवत्य एष यः पुरानीजान, एते वा एतस्य प्रजाया पशूनामीशते३, तेऽस्याः प्रीता इषमूर्जमादायापक्रामन्ति, यदन्वाहार्यमन्वाहरति तामेव तेन प्रीणाति, दक्षिणतः मन्द्रयः परिहितवा आह, दक्षिणावतैव यज्ञेन यजता, आहुतिभिरेव देवान् हुतादः प्रीणाति, तेऽस्मै प्रीता इषमूर्जं नियछन्ति ॥ ६ ॥ ३५

संदसि, सन्मे भूया, इत्याशिषो वा एता,—स्ता एवावरुन्धे, पूर्णमसि, पूर्णं मे भूया, इति पूर्णो ह वा अमुत्राग्निः संभवति, सर्वमसि, सर्वं मे भूया, इति सर्वो ह वा अमुत्राग्निः संभवत्य,—क्षितमस्य,—क्षितं मे भूया, इत्यक्षितो ह वा अमुत्राग्निः संभवति, प्राच्या दिशा देवा ऋत्विजो मार्जयन्तामि,—त्येता वै यज्ञस्य मृष्टय, एताः शान्तयस्ता, वैजवापयो विदामक्रं,—स्तैषां मृष्टो यज्ञः शान्तो भूदघातुकः पशुपतिः पशूं,—स्तद्य एवं वेद मृष्ट एवास्य यज्ञः शान्तो भवत्य,—घातुकः पशुपतिः पशून्, विष्णुः पृथिव्यां व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसे,—ति विष्णुमुखा वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यः प्रणुद्य स्वर्गं लोकमायंस्त,—द्विष्णुमुखो वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यमेभ्यो लोकेभ्यः प्रणुद्य स्वर्गं लोकमेत्य,—गन्म३ स्वरि,—ति स्वर्गमेव लोकमेति, सं ज्योतिषाभू,—मेति ज्योतिर्हि स्वर्गो लोक, इदमहममुष्य प्राणं निवेष्ट-

[६] मै. १,४,२ । तै. १,७,३ । वा. ६,१० । काठ. ६,१२ ।
[७] मै. १,४,० । तै. १,७,५-६ । काठ. ३१,१५ । वा. २,२५,२७ । काण्व. २,४६,४७,४९,५० ।

यामी,—ति प्राणमेवास्य निवेष्टयती,—त्थं पर्यावर्तत, एवꣳ हि यज्ञः पर्यावर्तते, ऽथो अमुष्य वा एतदादित्यस्यावृतमनु पर्यावर्तते, तेजोऽसी,—त्याह, तेजो३ह्यग्निः, स वै हित्वा प्रजां च पशूꣳश्च स्वरेति, यदाह, समहं प्रजया, सं मया प्रजा, समहं पशुभिः, सं मया पशवा, इति प्रजायां चैवं पशुषु च प्रतितिष्ठत्य,—ग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासꣳ, सुगृहपतिस्त्वं मया गृहपतिना भूया, इत्यंग्रहणौ संजीयतः, सर्वमायुरितो, नाति नीतः, पुत्रस्य नाम गृह्णाति, प्रजामेवानु समतानीत्, स वै मानुषमेवाभ्युपावर्तते, मनुष्यस्य हि नाम गृह्णाति, यदाहाछिन्नो दिव्यस्तन्तुर्मा मानुषश्छे,—दीति दिव्यं चैवं मानुषं च समतानीद्, दिव्याद्धाम्नो मा छित्सि मा मानुषा,—दित्युभा इमं लोकं जयतः, सह स्वर्गे लोके भवतः ॥ ७ ॥ ३६

इति य एवं देवा यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्च पृथिव्यां ताꣳस्तीर्त्वान्तरिक्षमारुहद्, य एवं देवा यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्चान्तरिक्षे ताꣳस्तीर्त्वा दिवमगन्, य एवं देवा यज्ञहनश्च यज्ञमुषश्च दिवि ताꣳस्तीर्त्वा सुजातानां मध्ये श्रैष्ठ्या आधादेनꣳ, शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत्पुरोडाशः, केशा वेदो, यद्वेदेन पुरोडाशꣳ संमार्ष्टि यज्ञस्य सर्वत्वायाथो मेध्यत्वाय, यज्ञो वै देवेभ्यस्तिरोऽभवत्, तं देवा वेदेनाविन्दꣳ,—स्तद्वेदस्य वेदत्वꣳ, यद्वेदेन वेद्यामास्ते यज्ञमेवास्मै विन्दति, पत्न्यै वेदं प्रयछति, दुरनुवेदो वा अमुत्र यज्ञो, यज्ञमेवास्मै विन्दति, त्रिः प्रयछति, त्रिषत्या हि देवा, उपस्था आस्यते, पुंमाꣳसं जानुका भवति, पशवो वै वेद, ओषधयो३ ह्येष, एष खलु वै पशूनां लोको यदन्तराग्नी, स्वे वा एतं लोके यजमानो भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्ते, ऽर्धमासेऽर्धमासे वै यज्ञो विछिद्यते, संततमाहवनीयात् स्तृणन्नेति यज्ञस्य संतत्यै, तꣳ संततमुत्तरेऽर्धमा३सेऽभियजते, गोमं अग्नेऽविमं अश्वी यज्ञ, इति गोमन्तमेवाविमन्तमश्विनꣳ यज्ञमकरि,—डावानेषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावा,—नित्याशिषमेवाशास्ते, सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गछतामित्येष वै पत्न्या यज्ञस्यान्वारम्भः, सह स्वर्गे लोके भवतो, या वा एतस्य पत्नी सैतꣳ संप्रति पश्चादन्वास्ते, यत् संप्रति पश्चादन्वासीत प्रजामस्या निर्दहेद्, यदाह पत्नि पत्न्येष ते लोक, इति लोकमेवास्या अकर,—न्निर्दाहुकोऽस्याः प्रजा भवति, या सरस्वती वेशयम,—नीति वेशयमनꣳ, वेशनेवास्मै तेन यछत्यु,—तास्याजीवन्तः सजाता उपासते, वाचामिन्वस्य ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वोपास्महा, इति माꣳसं तु न पचेयु,—

[८] मै. १,४,३। तै. ३,५,४। तै. ब्रा. ३,३,९,११। काठ. ३१,४,६। (गोमाँ अग्ने०) ऋ. ४,२,५।
मै० ५

स्तस्मिन्नग्नौ यत् पचेयुः क्रव्यादं कुर्यु,—र्न हि तस्मिन्नग्नौ माꣳसं पचन्ति यस्मिन्नाहुतीर्जुहुत्य,—याश्चाग्नेऽस्यनभिशस्ति,—श्चेत्यया वै नामैषाग्नेः प्रिया तनू,—र्या मर्याधेयेणे,—ति खलु वा आहु,—र्यच्चैवात्र यज्ञे क्रियते यच्च न, या चैवात्र यज्ञस्य प्रायश्चित्तिꣳ विद्म या च न तस्यैषोभयस्य प्रायश्चित्तिः ॥ ८ ॥ ३७

देवान् जनमगन्यज्ञ, इति स्कन्नमभिमन्त्रयेत, जनꣳ वा एतद्यज्ञस्य गछति यत् स्कन्दति, जनो३ ह्ययमस्मद्दधि, यज्ञस्य वा एतज्जनं गतस्याशिषमवरुन्धे, पञ्चानां त्वा वातानां धर्त्राय गृह्णामीति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालब्धा,—ऽयꣳ वाव यः पवत एष यज्ञ,—स्तमेवाग्रहीत, पञ्चानां त्वा दिशां धर्त्राय गृह्णामी,—तीमा एव पञ्च दिशोऽग्रहीत्, पञ्चानां त्वा सलिलानां धर्त्राय गृह्णामीति, पशवो वै सलिलं, पशूनेवाग्रहीत्, पञ्चानां त्वा पृष्ठानां धर्त्राय गृह्णामी,—ति पृष्ठान्येवाग्रहीत्, तेनास्य पृष्ठवन्तौ दर्शपूर्णमासौ संतता अविछिन्नौ भवतः, पञ्चानां त्वा पञ्चजनानां धर्त्राय गृह्णामीति, छन्दाꣳसि वै पञ्च पञ्चजना,—श्छन्दाꣳस्येवाग्रही,—चरोस्त्वा पञ्चबिलस्य धर्त्राय गृह्णामी,—तीमे वै लोकाश्चरुः पञ्चबिल, इमानेव लोकानग्रहीन् ॥ ३८

धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम् । देववीत्यै त्वा गृह्णामि ॥ ३९

इति प्रज्ञात आज्यग्रहः पर्यागाद्, भूरस्माकꣳ, हव्यं देवाना, माशिषो यजमानस्यै,—ति भूतिमेवात्मन आशास्ते, हव्यं देवेभ्य, आशिषो यजमानस्य, देवताभ्यस्त्वा देवताभिर्गृह्णामी,—ति देवताभ्य एवैनं देवताभिरग्रहीत् ॥९॥ ४०

देवतानाꣳ वा एतदायतनꣳ यदाहवनीयो, यदन्तराग्नी तत् पशूनां, मनुष्याणां गार्हपत्यः, पितॄणामोदनपचनः, सर्वा ह वा अस्य यक्ष्यमाणस्य देवता यज्ञमागछन्ति य एवꣳ वेद, पूर्वं चाग्निमपरं च परिस्तरीतवा आह, मनुष्याणाꣳ वै नवावसानं, प्रियं नवावसानमेवाकर्मेभ्यस्त्राया,—ऽग्नेर्जिह्वासि वाचो विसर्जन,—मिति पुरोडा३श्यानावपति, देवतानाꣳ वा एष ग्रहो, देवता वा एतद्ग्रही,—देतद्ध स्म वा आहारुण औपवेशि,—रहुतासु वा आहमाहुतिषु देवता हव्यं गमयामि, संꣳस्थितेन यज्ञेन सꣳस्थां गछानी,—ति तद्य एवꣳ वेदाहुतास्वेवास्याहुतिषु देवता हव्यं गछति संꣳस्थितेन यज्ञेन सꣳस्थां गछत्यु,—लूखलाभ्याꣳ वै दृषदा हविष्कृदेहि ॥ इति

[९] मै. १,४,४। काठ. ३२,६। वा. १,३१। काण्व. १,४९। मा. श्रौ. ३,१।
[१०] तै. १,६,८। काठ. ३२.७। वा. १.१५। काण्व. १.२३।

देवा यज्ञाद्रक्षाꣳस्यपाघ्नत यदोलूखला उद्वादयन्ति दृषदो समाघ्नन्ति ॥ हविष्कृदेहि ॥ इत्याह रक्षसामपहत्या, अपः प्रणीय वाचꣳ यछति, मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञमतनु,—तौलूखलयोरद्रेदितोरध्वर्युश्च यजमानश्च वाचꣳ यछेतां, प्रजापतिरेव भूत्वा मनसा यज्ञं तन्वाते, न सर्वाणि सह यज्ञायुधानि प्रहृत्यानि, मानुषं तत् क्रियते, नैकमेकं, पितृदेव३त्यं तद् द्वे द्वे सह प्रहृत्ये, याज्यानुवाक्ययो रूपमुपवसत्य,—मयाꣳस्तेन पशूनवरुन्धे ग्राम्याꣳश्चारण्याꣳश्च, यद्ग्राम्यस्य नाश्नाति तेन ग्राम्यानवरुन्धे, ऽथ यदारण्यस्याश्नाति तेनारण्या,—नयो इन्द्रियꣳ वा आरण्य,—मिन्द्रियमेवात्मन्धत्ते, न माषाणामश्नीयाद,—यज्ञिया वै माषा, न तस्य सायमश्नीयाद्यस्य प्रातर्यक्ष्यमाणः स्याद,—प्रतिजग्धेन वै देवा हव्येन वसीयोभूयमगछन् प्रतिजग्धेनासुराः पराभवꣳस्त,—दप्रतिजग्धेन वा एतद्धव्येन यजमानो वसीयोभूयं गछति, परास्य भ्रातृव्यो भवति, यो वै श्रद्धामनालभ्य यजते पापीयान् भवत्या,—ऽऽपो वै श्रद्धा, न वाचा गृह्णन्ति न यजुषा,—ऽति वा एता वाचं नेदन्त्यति वक्त्रं, मनस्तु नातिनेदन्ति, यद्यपो गृह्णीयादिमा तर्हि मनसा ध्याये,—दियꣳ वा एतासां पात्र,—नयैवैना अग्रहीत्, श्रद्धामालभ्य यजते, न पापीयान् भवति ॥१०॥ ४१-४४

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, प्रेध्ममुक्षन्ति प्र हवि,—रिध्मः प्रथम आहुतीनां, कस्मादन्येषाꣳ हविषाꣳ याज्यानुवा३क्याः सन्ति, कस्मादिध्मस्य नेति ॥ अग्नये समिध्यमानायानुब्रूहि ॥ इति पुरोनुवाक्या सामिधेनी,—र्याज्योपवाको वषट्कारो, यत्र वै यज्ञस्यातिरिक्तं क्रियते तद्यजमानस्यातिरिक्तमात्मन् जायते, यदनाप्नꣳ वै यज्ञश्छिद्यते क्षोधुको यजमानो भवति, परिधानीयया सामिधेनीनामुत्तममिध्मस्य समर्धय,—त्यक्षोधुको यजमानो भवति, नास्यातिरिक्तमात्मन् जायते, यो वै प्रजापतिꣳ सप्तदशꣳ य३ज्ञेऽन्वायत्तꣳ वेद नास्य यज्ञो व्यथते, प्रजापतौ यज्ञेन प्रतितिष्ठति ॥ ओ श्रावय ॥ इति चतुरक्षरम् ॥ अस्तु श्रौषट् ॥ इति चतुरक्षरम् ॥ यज ॥ इति द्व्यक्षरम् ॥ ये यजामहे ॥ इति पञ्चाक्षरं, द्व्यक्षरो वषट्कार, एष वै प्रजापतिः सप्तदशो य३ज्ञेऽन्वायत्तो. यद्यनुवाक्याया एति यदि याज्याया, अतश्चैदेवं नैति नास्य यज्ञो व्यथते, प्रजापतौ यज्ञेन प्रतितिष्ठति, न वै तद्विद्म यदि ब्राह्मणा वा स्मोऽब्राह्मणा वा यदि तस्य वा ऋषे३स्मोऽन्यस्य वा यस्य ब्रूमहे, यस्य ह३त्वेव ब्रुवाणो यजते तं तदिष्टमागछति, नेतरमुपनमति, तत् प्रवरे प्रवर्यमाणे ब्रूयात् ॥ देवाः पितरः पितरो देवा, योऽस्मि स सन्करामि, योऽस्मै स संयुजे,

[११] तै. १,६,११।

शुनं म इष्टꣳ शुनꣳ शान्तꣳ शुनं कृतं भूयात् ॥ इति तद्य एवं कश्च स संन्यजते तं तदिष्टमागछति, नेतरमुपनमति ॥ यज्ञस्य त्वा प्रमयाभिमया परिमयोन्मया परि गृह्णामि ॥ इति गायत्री वै यज्ञस्य प्रमा, त्रिष्टुबभिमा, जगती परिमा,—ऽनुष्टुबु,—न्मैतानि वै छन्दाꣳसि यज्ञꣳ वहन्ति, तैरेवैनं परिगृह्णाति ॥११॥ ४५--५९

केशिनꣳ वै दार्भ्यं गन्धर्वाप्सरसोऽपृछन्, कथा यजमानो यजमानेन भ्रातृव्येण सदृङ्ङसी,—त्यहꣳ वेदा, इत्यब्रवीत्, तेऽब्रुवन्,—ङ्गा नो यज्ञꣳ व्याचक्ष्वा, इति तेभ्यो यज्ञꣳ व्याचष्ट, तेऽब्रुवꣳ,—स्तेनेन यजमानो यजमानाद् भ्रातृव्यात् पापीयान्त्स्यादिति, तेऽब्रुवꣳ,—स्तथा वै ते यज्ञꣳ विधास्यामो यथा यजमानो यजमानं भ्रातृव्यमभिभविष्यसी,—ति तस्मा आहुतीर्यज्ञꣳ व्यदधु,—स्ततः केशी षाण्डिकमौद्भारिमभ्यभव,—दभि भ्रातृव्यꣳ यज्ञेन भवति य एवꣳ वेद, प्राणो वा आघारः, पूर्वार्धे होतव्यो, मुखत एवास्य प्राणं दधाति, प्राणो वा आघारो, मध्यतो होतव्यो, मध्यत एवास्य प्राणं दधात्या,—ऽऽघारं भूयिष्ठमाहुतीनां जुहुयात्, प्राणो वा आघारः, प्राणमेवास्य भूयिष्ठं करोति, संततमाघारमाघारयेत्,—प्राणो वा आघारः, प्राणस्य संतत्या, ऊर्ध्वमाघारमाघारयेत् स्वर्गकामस्य, यजमानो वा आघारो, यजमानमेव स्वर्गं लोकं गमयति, यं द्विष्यात्तस्य न्युञ्चमाघारयेत्, पापीयान् भवत्य,—भिक्रामन्ती वा एकाहुति,—रपक्रामन्त्येका, प्रतिष्ठितैका, यामभिक्रामं जुहोति साभिक्रामन्ती, यामपक्रामं जुहोति सापक्रामन्ती, याꣳ समानत्र तिष्ठन् जुहोति सा प्रतिष्ठिता, यं कामयेता,—ऽभितरꣳ वसीयाञ्छ्रेयान् त्स्या,—दिति तस्याभिक्रामं जुहुयात्, तेन सोऽभितरꣳ वसीयाञ्छ्रेयान् भवत्य,—थ यं कामयेता,—पतरं पापीयान् त्स्यादिति, तस्यापक्रामं जुहुयात्, तेन सोऽपतरं पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेत, न वसीयान् त्स्यान्न पापीयानिति, तस्य समानत्र तिष्ठन् जुहुयात्,—तेन स न वसीयान्न पापीयान् भवत्यृ,—तवो वै प्रयाजाः, समानत्र होतव्या ऋतूनां प्रतिष्ठित्यै, यामग्नेराज्यभागस्य सोत्तरार्धे होत३व्या, ततो योत्तरा सा रक्षोदेव३त्या, या सोमस्याज्यभागस्य सा दक्षिणार्धे होत३व्या, ततो या दक्षिणा सा पितृदेव३त्यै,—तद्वा अन्तराहुतीनां लोकः, क्लृप्ता अस्याहुतयो यथापूर्वꣳ हूयन्ते य एवꣳ वेद, यां धूमे जुहोति वा तमसि जुहोति, ततो यजमानोऽरोचुको भवति, यामङ्गारेषु जुहोति सान्धाहुति,—स्ततो यजमानस्य

[१२] तै. १,६,३,१; १,७,१।

चक्षुः प्रमायुकं भवत्य्,—र्दं ज्योतिष्मति होत३व्ये, ऽप्रोचुको यजमानो भवति, नास्य चक्षुः प्रमीयते, यामब्राह्मणः प्राश्नाति सा स्कन्नाहुति,—स्तस्या वसिष्ठ एवं प्रायश्चित्ति२ विदांचकार ॥ कं नु प्राहि ॥ इति पुरोडाशमभिमृशेद्, भजतां भागी, मा भागो भक्त, ब्राह्मणानामिदं२ हविः सोम्यानां२ सोमपानां, नेहाब्राह्मणस्यास्ति, कुर्वतो मे मा क्षेष्ट, ददतो मे मोपदसत् ॥ इति दक्षिणाग्निष्वेव यज्ञे प्रतिष्ठापयन्त्यस्कन्नमविक्षुभ्य,—मुद यामब्राह्मणः प्राश्नाति सास्य हुतैव भवति ॥ १२ ॥ ६०–६३

यस्याज्यमनुत्पूत२ स्कन्दति सा वै चित्रा नामाहुति,—स्ततो यजमानस्य चित्रं प्रमायुकं भवति, चित्रं देय२ सैव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्थ यस्योत्पूत२ स्कन्दति सा वै स्कन्ना नामाहुति,—स्ततो यजमानः प्रमायुको भवति, वरो देयः, सैव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्थ यस्य पुरोडाशो दुःशृतो भवत्यस्तद्धविर्यदैवत्य२, यदा तद्धविः संतिष्ठेताथ चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेद्, सैव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्थ यस्य पुरोडाशौ क्षायतस्तं२ यज्ञ२ वरुणो गृह्णाति, यदा तद्धविः संतिष्ठेताथ तदेव हविर्निर्वपेद्, यज्ञो हि यज्ञस्य प्रायश्चित्ति,—र्थ योऽदक्षिणेन यज्ञेन यजते त२ यजमान२ विधा,—ददक्षिणेन हि वा अय२ यज्ञेन यजते, ऽथ न वसीयान् भवती,—त्यूर्वरा समृद्धा देयाद्, सैव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्थ यस्य कपालं भिद्येत तत् संदध्याद्, गायत्र्या त्वा शताक्षरया संदधामि ॥ इति वाग्वै गायत्री शताक्षरा, वाचैवैनत् संदधात्य,—थ यस्य कपालं नश्यति त२ वा इय२ स्वर्गाल्लोकादन्तर्दधाति, यदा तद्धविः संतिष्ठेताथाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपे,—दिय२ वा अग्निर्वैश्वानर, इमामेव भागधेयेनोपासरत् स्वर्गस्य लोकस्यानन्तर्हित्या, अथ यस्याहुतिर्बहिष्परिधि स्कन्दति सा वै जीवनडाहुति,—राग्नीध्रं ब्रूयात् ॥ एता२ संकृप्य जुहुधि ॥ इत्यग्निर्वै सर्वा देवताः, सर्वाभिरेवास्य देवताभिर्हुतं भवति, पूर्णपात्रमग्नीधे देय२, सैव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्यजमानो वै जुहू,—र्भ्रातृव्य उपभृ,—त्स प्रक्षिणन्नेव होतव्य२, यत् प्रक्षिणीयाद्यजमानं प्रक्षिणीयाद्, व्यूषन्नेव होतव्यं, देवयज्ञो वा एता यदाहुतयो, यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेद्, देवयज्ञैरेवैन२ विपृषति, स्तृणुत एवं, पशवो वा आहुतयो रु३द्रोऽग्निः स्विष्टकृ,—त्स यद् होत३व्य२, यत् सह जुहुयाद्रुद्रायास्य पशूनपिदध्या,

—दुत्तरार्धपूर्वार्धे होत३व्यमाहुतीनामसंसृष्ट्या, अथो एवमस्य रुद्रः पशूननभिमानुको भवति ॥१३॥ ६४–६७

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्दर्शपूर्णमासा आलप्स्यमानो, ऽग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालभ्य दर्शपूर्णमासा आलभते, जयानु त्वो जुहुति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, स प्रजापतिरेतान् जयानपश्यत्, तानिन्द्राय प्रायच्छत्, तैः संस्तम्भं२ संस्तम्भमसुरानजयत्, संस्तम्भं२ संस्तम्भं भ्रातृव्यं जयति यस्यैते हूयन्ते ॥ आकूतं चाकूतिश्च ॥ इति यज्ञो वा आकूतं, दक्षिणाकूतिः ॥ चित्तं च चित्तिश्च ॥ इति मनो वै चित्त२, वाक्चित्तिः ॥ आधीतं चाधीतिश्च ॥ इति प्रजा वा आधीतं, पशव आधीतिः ॥ विज्ञातं च विज्ञातिश्च ॥ इत्यृग्वै विज्ञात२, साम विज्ञातिः ॥ भगश्च क्रतुश्च ॥ इति प्रजापतिर्वै भगो, यज्ञः क्रतुः ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च ॥ इति दर्शपूर्णमासा एवं तद् द्वादश, द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे, प्रजापतिः प्रायच्छज्जयानिन्द्राय वृष्ण, उग्रः पृतनासु जिष्णुः ॥ तेभिर्वाज२ वाजयन्तो जयेम तेभिर्विश्वाः पृतना अभिष्याम ॥ इति त्रयोदशीमाहुतिं जुहुया,—दस्ति मासस्त्रयोदश,—स्तमेवैतयाप्त्वावरुन्द्धे ॥ अग्ने बलदः सहा ओजः क्रममाणाय मे दा अभिशस्तिकृतेऽनभिशस्तेन्याय ॥ अस्या जनताया२ श्रैष्ठ्याय स्वाहा ॥ इति जुहुयाद्, यत्र कामयेत, चित्रमस्यां जनताया२ स्यामिति, चित्रमह तस्यां जनतायां भवति, शबलं त्वस्यात्मन् जायते ॥१४॥ ६८–८५

अग्नये भगिनेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, भग्युन्नाद स्यामिति, प्रजापतिर्वै भगो, यज्ञः क्रतुः, स इमाः प्रजा भगेनाभिरक्षति, तस्मात् सर्वो मन्यते, मा भगोऽरिष्यति मा भगोऽरिष्यतीति, यदग्नये भगिने भगमेव साक्षादाप्त्वावरुन्धे, भग्युन्नादो भवत्य,—मा सह दर्शपूर्णमासा आलभ्या, उद्वा अन्यः शृङ्गे सितो मुच्यते, दर्शो वा एतयोः पूर्वः पूर्णमास उत्तरो, ऽथ पूर्णमासं पूर्वमालभन्ते, तदयथापूर्वं क्रियते, तत् पूर्णमासमालभमानः सरस्वत्यै चरुं निर्वपेत् सरस्वते द्वादशकपाल,—ममावा३स्या वै सरस्वती पूर्णमासः सरस्वा,—नुभा एवैनौ यथापूर्वं कल्पयित्वालभता, ऋद्धया, ऋध्नोत्येवा,—ऽथो मिथुनत्वाय ॥१५॥ ८६ [३७१]

॥ इति प्रथमकाण्डे यजमान-ब्राह्मणं नाम चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

अग्न्युपस्थानम् ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्र२ वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपा२ रेता२सि जिन्वति ॥ २
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दाताराविषा२ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ ३
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्र२ विभ्व२ विशे विशे ॥ ४
अस्य प्रत्नामनु द्युत२ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ ५
अयं ते योनिरृत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह तनो नो वर्धया रयिम् ॥ ६
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ना आयू२षि तारिषत् ॥ ७
अग्न आयू२षि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ८
अग्निरृषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् ॥ ९
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधत् पोष२ रयिं मयि ॥ १०
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ११
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवा इहावह । उप यज्ञ२ हविश्च नः ॥ १२

[१] श. १,५,४,६ । तै. १,५,५ । काठ. ६,९ । कपि. ४,८ । वा. ३,११-१३; १५,१६,२४; १२,११; १५,२०; १५. ३६; ३३,६; १२,४२; १५,४६; ३३,३२; १९,३८; ३५,१६; २६,९; ८,३८; १७,८-९ । काण्व. ३,१७-१९,११, [illegible] । मा. श्री. १,६,२ । [उपप्रयन्तो अध्वर० ऋ. १,७४,१; साम. १३७९ । अग्निर्मूर्धा दिवः० ऋ. ८,४४,१६; सा. २७; १५३२ । उभा वामिन्द्राग्नी० ऋ. ६,६०,१३ । अयं ते योनिरृत्वियो० ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१ । अयमिह प्रथमो० ऋ. ४,७,१ । अस्य प्रत्नामनु० ऋ. ९,५४,१ । सा. ७५५ । दधिक्राव्णो० ऋ. ४,३९,६; १०,१८६,१; अथर्व. ४,१०,६; २०,१३७,३; सा. ३५८ । प्र ना (ण) आयूंषि तारिषत्० ऋ. १,२४,१२; अथर्व. [illegible]; सा. १८७;१८८० । अग्न आयूंषि पवस० ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७; [illegible] । अग्निरृषिः पवमानः० ऋ. ९,६६,२०; सा. १५१९ । अग्ने पवस्व स्वपा० ऋ. ९,६६,२१ । अग्ने पावक० ऋ. ५,२६,१; सा. १५७१ । स नः पावक० ऋ. १,१२,१० । अग्निः शुचिव्रततमः० ऋ. ८,४४,२१ । उदग्ने शुचयस्तव० ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४ । शुक्रा भ्राजन्त ईरते० अथर्व. १३,१,१ ।

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचता आहुतः ॥ १३
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योती२ष्यर्चयः ॥ १४
अग्नीषोमा इम२ सु मे शृणुत२ वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १५
अग्निस्तिग्मस्तिग्मतेजाः प्रति रक्षो दहतु सहतामरातिम् । अपाघश२सं नुदताम् ॥ १६
अग्ने सपत्नसाह सपत्नान् मे सहस्व । मा मा तितीर्षन्तारीत् ॥ १ ॥ १७

त्वमग्ने सूर्यवर्चा असि, सं मामायुषा वर्चसा सृज, सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथाः ॥ १८
समृषीणा२ स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं२ वर्चसा सं प्रजया सं२ रायस्पोषेण ग्मीय ॥ १९

इन्धानास्त्वा शत२ हिमा द्युमन्तः समिधीमहि ।
वयस्वन्तो वयस्कृत२ सहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भन२ सुवीरासो अदाभ्यम् ॥ २०
अग्नेः समिदस्य,—भिशस्त्या मा पाहि, सोमस्य समिदसि, परस्पा म एधि, यमस्य समिदसि, मृत्योर्मा पाह्या,—ऽऽयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे धेहि, वर्चोधा अग्नेऽसि, वर्चो मे धेहि, चक्षुष्पा अग्नेऽसि, चक्षुर्मे पाहि, श्रोत्रपा अग्नेऽसि, श्रोत्रं मे पाहि, तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि, यन्मे अग्न ऊनं त३न्वस्तन्मा आपृणा,—ऽग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रतिशोच यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽग्ने यत्ते अर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रति हर यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽग्ने यत्ते तेजस्तेन तं प्रतितितिग्धि यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽग्ने रुचां पते नमस्ते रुचे, मयि रुचं धा,—श्चित्रावसोः स्वस्ति ते पारमशीयार्वाग्वसोः स्वस्ति ते पारमशीया,—ऽम्भः स्था,—ऽम्भो वो भक्षीय, महः स्थ, महो वो भक्षीयो,—र्जः स्थो,—र्ज२ वो भक्षीय, रायस्पोषः स्थ, रायस्पोष२ वो भक्षीय ॥ रेवती रमध्वमस्मिन्योना अस्मिन्गो३ष्ठे, ऽय२ वो बन्धु,—रितो मापगात, बह्वीर्भवत, मा मा हासिष्ट ॥ स२हितासि विश्वरूपा, मोर्जा विशा गौपत्येना प्रजया रायस्पोषेण ॥ मयि वो राय श्रयन्ता२, सहस्रपोष२ वोऽशीय ॥ २ ॥ २१–२४

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्ता एमसि ॥ २५

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानꣳ स्वे दमे ॥ २६
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २७
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ २८
वसुरग्निर्वसुश्रवा अछा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या नो अघायतः समस्मात् ॥ २९
अभ्यस्थाꣳ विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।
बृहस्पतिः सवितेन्द्रस्तदाह पूषा ना आधात् सुकृतस्य लोके ॥ ३०
ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत । रय्या वः पश्यामि रय्या मा पश्यत ॥ ३१
संपश्यामि प्रजा अहमिडप्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥ ३२
इडा स्थ मधुकृतः स्योना माविशतेरमदः । सहस्रपोषꣳ वोऽशीय ॥ ३३
भुवनमसि सहस्रपोषपुषि, तस्य नो रास्व, तस्य ते भक्तिवानो भूयास्मे,—डासि
व्रतभृद्, त्वयि व्रतꣳ, व्रतभृदसि ॥३॥ ३४
महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षꣳ वरुणस्य ॥ ३५
नहि तेषाममा सतां नाध्वसु वारणेषु च । ईशे रिपुरघशꣳसः ॥ ३६
ते हि पुत्रासो अदितेश्छर्दिर्यछन्त्यजस्रम् । प्र दाशुषे वार्याणि ॥ ३७
सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तꣳ य औशिजः ॥ ३८
यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यः शिवः ॥ ३९
मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ४०
कदा च न स्तरीरसि कदा च न प्रयुछसि ॥ ४१

[३] मै. १,५,१० । तै. १,५,६ । काठ. ७,१ । कपि. ५,१ । वा. ३,२२-२६ । काण्व. ३,३०-३४ । [उप त्वाग्ने दिवे० । ऋ. १,१,७; सा. १४ । राजन्तमध्वराणां० । ऋ. १,१,८ । स नः पितेव० । ऋ. १,१,९ । अग्ने त्वं नो अन्तम० । ऋ. ५,२४,१; सा. ४४८,११०७ । तं त्वा शोचिष्ठ० । ऋ. ५,२४,४; सा. ११०९ । वसुरग्निर्वसु० । ऋ. ५,२४,२; सा. ११०८ स नो बोधि० । ऋ. ५,२४,३ ।]
[४] मै. १,५,११ । तै. १,५,६ । काठ. ७,२ । कपि. ५,२ । वा. ३,३१-३३,२८,२९,३४,३६; ११.६२; ८,२-३ । काण्व. ३,३९-४१,३६,३७,४२,४४; ८,१-२, १२,६४ । मा. श्रौ. १,६,२ । [सोमानꣳ स्वरणं० । ऋ. १,१८,१; सा. १३९; १४६३ । यो रेवान्यो० । ऋ. १,१८,२ । महि त्रीणामवोऽस्तु० । ऋ. १०,१८५,१ । नहि तेषाममा० । ऋ. १०,१८५,२ । ते हि पुत्रासो० । ऋ. १०,१८५,३ । कदा चन स्तरीरसि० । ऋ. ८,५१,७; सा. ३०० । परि ते दूडभो० । ऋ. ४,९,८ । मित्रस्य चर्षणी० । ऋ. ३,५९,६]
मै० ६

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ४२
निम्रदोऽसि३,—न्यहं तं मृध्यासꣳ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो, ऽभिभूरस्य३,—
भ्यहं तं भूयासꣳ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः, प्रभूरसि, प्राहं तमति भूयासꣳ यो
अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ पूषा मा पथिपाः पातु, पूषा मा पशुपाः पातु, पूषा माधिपाः
पातु, प्राची दिगग्निर्देवता, यो मैतस्या दिशो अभिदासादग्निꣳ सा ऋछतु, दक्षिणा दिगिन्द्रो
देवता, यो मैतस्या दिशो अभिदासादिन्द्रꣳ सा ऋछतु, प्रतीची दिङ्मरुतो देवता, यो
मैतस्या दिशो अभिदासान्मरुतः सा ऋछतू,—दीची दिङ्मित्रावरुणौ देवता, यो मैतस्या दिशो
अभिदासान्मित्रावरुणौ सा ऋछतु,—र्ध्वा दिक् सोमो देवता, यो मैतस्या दिशो अभिदासात्
सोमꣳ सा ऋछतु, धर्मो मा धर्मणः पातु, विधर्मो मा विधर्मणः पात्वा,—ऽऽयुश्च प्राणश्च चक्षुश्च
विचक्षुश्च प्राङ् चापाङ् चो,—रुक उरुकस्य ते वाचा वयꣳ सं भक्तेन गमेमह्यग्ने गृहपते॥४॥४३-४४

यस्य वा अग्निहोत्रे स्तोमो युज्यते स्वर्गमस्मै भवत्य,—यज्ञो वा एष यत्र स्तोमो न युज्यत,
उपप्रयन्तो अध्वर,—मितीयꣳ वा उपोति,—रित एव स्तोमꣳ युनक्त्य,—थो इमामेव स्तोममुपयुन-
क्त्य,—थो या एव प्रजा भूतानामन्वतीस्ता एव स्तोममुपयुनक्त्य,—स्य प्रत्नामनु द्युत,—मि-
त्यसौ वै लोकः प्रत्न,—ममुत एव स्तोमꣳ युनक्त्य,—थो देवा वै प्रत्ना, तानेव स्तोममुपयुन-
क्त्यु,—भयत एव स्तोमꣳ युनक्तीतश्चामुतश्च, देवान् वा एष प्रयुज्य स्वर्गं लोकमेति, यदाहो-
पोपेन्नु मघवन् भूया इन्नु ता, इतीयꣳ वा उपोति,—रस्यामेव प्रतितिष्ठत्य,—थ यदुपवत् पदमाह
या एव प्रजा आभविष्यन्तीस्ता एव स्तोममुपयुनक्ति, परि ते दूडभो रथा, इत्युभयत एवैतया
स्तोमꣳ युक्तं परिगृह्णातीतश्चामुतश्चा,—ऽग्निर्मूर्धा,—ति स्वर्गो वै तेन, दिवः ककु,—दिति स्वर्गो तेन,
पतिः पृथिव्या अय,—मिति मिथुना तेना,—ऽपाꣳ रेताꣳसि जिन्वती,—ति रेतस्वती पशव्या
सर्वसमृद्धा, गायत्र्योपास्थित, गायत्रो३ह्यग्निर्गायत्रछन्दाः, स्वेनैवैनं छन्दसोपास्थितो,—भा
वामिन्द्राग्नी आहुवध्या, इत्युभौ३ह्येतौ सहा,—ऽमुꣳ षा अयं दिवा भूत्वे प्रविशति, तस्मादसौ
दिवा रोचत, इमामसौ नक्तं, तस्मादयं नक्तꣳ, यदुभा वामित्याहोभा एवैना अछम्बट्का-
रमुपतिष्ठत, उभयोर्लोकयो रोचतेऽस्मिꣳश्चामुष्मिꣳश्च, त्रिष्टुभोपास्थिता,—ऽयमिह प्रथमो धायि

[५] मै. १,५,१ । तै. १,५,७ । काठ. ७,४ । कपि. ५,३ । वा. ३,११-१६,३४,३६; ८,९; १५,२६; ३३,६ । काण्व.३, १७-२२,४२,४४, ८,१; १६,४७; ३२,६ । [उपप्रयन्तो अध्वरं० । ऋ. १,७४,१; सा.१३७९ । अग्निर्मूर्धा दिवः० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२ । उभा वामिन्द्राग्नी० । ऋ. ६,६०,१३ । अयं ते योनिर्ऋ० ऋ. ३, २९,१०; अथर्व. ३,२०,१ । अयमिह प्रथमो० । ऋ. ४,७,१ । अस्य प्रत्ना० । ऋ. ९,५४,१; सा. ७५५]

धातृभि,—रित्यग्नि३र्ह्यस्यां प्रथमोऽधीयत, होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्या, इत्येष हि होता
यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो यमप्नवानो भृगवो विरुरुचु,—रित्यप्नवानो३ह्येतं भृगवो व्यरोचयन्, वनेषु
चित्रꣳ विभ्वꣳ विशे विशा, इत्येष३ह्येदꣳ सर्वꣳ विभू,—र्जगत्योपास्थिता,—ऽस्य प्रत्नामनु
द्युत,—मिति स्वर्गो वै लोकः प्रत्नꣳ, स्वर्ग एव लोके प्रतितिष्ठत्य,—यं ते योनिर्ऋत्विया,
इत्येष३ह्येतस्य योनिर्ऋत्वियो, ऽग्निः सूर्यस्या,—ऽनुष्टुभोपास्थित ॥५॥ ४५

उपप्रयन्तो अध्वर,—मिति प्रवापयत्येवैतया,—ऽग्निर्मूर्धा,—ति प्रवापित एवैतया रेतो दधा-
त्यु,—भा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या, इति प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी, प्राणापानौ वा एतन्मुखतो
यज्ञस्य धीयेते ॥ अयमिह प्रथमो धायि धातृभि,—रिति गर्भमेवाधा,—दस्य प्रत्नामनु द्युत,—
मित्युधरेवाक,—रयं ते योनिर्ऋत्विया, इत्यजीजनदेवावीवृधच्च, षड्भिरुपतिष्ठते, षड्वै पृष्ठानि,
पृष्ठान्येवाचीक्लृपद्, दधिक्राव्णो अकारिष,—मिति दधिक्रावत्योपतिष्ठत, एषा वा अग्नेर्दधिक्रा-
वती प्रिया तनूः पशव्या सर्वसमृद्धा,—ऽग्नेरेवैतया प्रियं धामोपैत्य,—थो पशुमान् भवत्य,—थो
आत्मानमेवैतया यजमानः पुनीते, सप्तभिरुपतिष्ठते, सप्तपदा शक्करी, शाक्कराः पशवः,
पशूनेवावरुन्धे, जीर्यति वा एष आहितः, पशु३र्ह्यग्नि,—स्तदेतान्येवाग्न्याधेयस्य हवीꣳषि
सꣳवत्सरे सꣳवत्सरे निर्वपेत, तेन वा एष न जीर्यति, तेनैनं पुनर्णवं करोति, तन्न सूक्ष्य,
—मेताभिरेवाग्नेयपावमानीभिरग्न्याधेयस्य याज्यानुवाक्याभिरुपस्थेय,—स्तेन वा एष न जीर्यति,
तेनैनं पुनर्णवं करोति, द्वादशभिरुपतिष्ठते, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरमेवा
प्त्वावरुन्द्धे ऽग्नीषोमीयया त्रयोदश्योपस्थेयो, ऽस्ति मासस्त्रयोदशस्तमेवैतयाप्त्वावरुन्द्धे॥६॥
४६-४७

कस्मात् सायमग्निमुपतिष्ठन्ते कस्मात् प्रातर्नेत्य,—सौ वा आदित्यः
ब्रह्मवादिनो वदन्ति,
सायमासुवति, तस्मात्सायमुपतिष्ठन्त, एष प्रातः प्रसुवति, तस्मात् प्रातर्नोपतिष्ठन्ते, तस्मात्
सायमहुतेऽग्निहोत्रेऽग्निहोत्रिणा नाशितव्यं, तस्माद् प्रातरहुते नाशित३व्यं, तस्मात् सायम-
तिथये प्रत्येनसः, पुण्यत्वात् तु प्रातर्ददति, प्रातरवनेगेन प्रातरुपस्थेयो, ऽथिश्चिव उश्रीष-
माने वा हस्ता अवनेनिजीत, तत्र विहव्यस्य चतस्रा ऋचो वदेत् प्रातरवनेगे चतस्रः, प्रातरव-
नेगेन वा अनाप्तमाप्नोत्य,—नवरुद्धमवरुन्द्धे, तदनाप्तमेवैतेनाप्नोत्य,—नवरुद्धमवरुन्द्धे, ऽग्निभेद्धा

[६] मै. १,५,१ । तै. १,५,७ । काठ. ७,४ । कपि. ५,३-४ ।
[७] तै. १,५,९ । काठ. ७,५ । कपि. ५,४ ।

एष उद्धत,—स्तं देवाश्छन्दोभिः पर्यस्तृणन्, यदुपतिष्ठते छन्दोभिरेवैनं परिस्तृणात्यु,—भयमस्मा
अक,—रग्नीषोमीयया पूर्वपक्षं उपस्थेयो, ऽग्नीषोमीयो वै पूर्वपक्षो, ऽपरपक्षायैवैनं परिददा,—
त्यैन्द्राग्न्यापरपक्ष उपस्थेय, ऐन्द्राग्नो वा अपरपक्षः, पूर्वपक्षायैवैनं परिददाति, सर्वा ह
वा एनं देवताः संप्रदायमनपेक्षं गोपायन्ति य एवꣳ विद्वानग्निमुपतिष्ठते ॥७॥ ४८
त्वमग्ने सूर्यवर्चा असी,—ति वसीयसे श्रेयस आशिषमाशास्ते, सं मामायुषा वर्चसा सृजे,—
त्यात्मना आशास्ते, सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथा, इति सह३ह्येते तर्हि ज्योतिषी
भवतः, संमृषीणाꣳ स्तुतेनेति, छन्दाꣳसि वा ऋषीणाꣳ स्तुतं, छन्दोभिरेवैनꣳ समर्धयति,
सं प्रियेण धाम्ने,—त्याहुतयो वा अग्नेः प्रियं धामाहुतिभिरेवैनꣳ समर्धयति, समहमायुषा सꣳ
वर्चसा सं प्रजया सꣳ रायस्पोषेण ग्मीये,—त्याशिषमेवाशास्ता, इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा, इति
पृतनाजिद्ध्याहुति,—स्तया राज३न्या उपतिष्ठेत, यदा हि राज३न्यः पृतना जयत्यथो भवत्यु,—
ताग्राजन्या उपतिष्ठेत, सत्रो हि पृतना जिगीषति, सत्रो बुभूषति, मनोर्वै दश जाया
आसन्, दशपुत्रा नवपुत्राऽष्टपुत्रा सप्तपुत्रा षट्पुत्रा पञ्चपुत्रा चतुष्पुत्रा त्रिपुत्रा द्विपुत्रैकपुत्रा,
ये नवासꣳस्तानेक उपसमक्राम३द्, येऽष्टौ तान् द्वौ, ये सप्त ताꣳस्त्रयो, ये षट् ताꣳश्चत्वारो,
ऽथ वै पञ्चैव पञ्चासꣳ,—स्ता इमाः पञ्च दशत इमान् पञ्च निरभजन्, यदेव किंच मनोः स्वमा-
सीत्, तस्मात् ते वै मनुमेवोपाधावन्, मना अनाथन्त, तेभ्य एताः समिधः प्रायछत, ताभिर्वै
ते तान् निरदहꣳ,—स्ताभिरेनान् पराभावयन्, परा पाप्मानं भ्रातृव्यं भावयति य एवꣳ विद्वानेताः
समिध आदधात्य,—ग्नेः समिदस्य,—भिशस्त्या मा पाही,—त्यभिशस्त्या एनं पाति, सोमस्य
समिदसि, परस्पा म एधी,—ति परस्पा अस्य भवति, यमस्य समिदसि, मृत्योर्मा
पाही,—ति मृत्योरेनं पात्ये,—तद्ध स्म वा आह नारदं, इदꣳ वावाग्न्युपस्थानमासे,—त्यभि-
शस्त्या एनं पाति, परस्पा अस्य भवति, मृत्योरेनं पाति ॥८॥ ४९
आयुर्दा अग्नेऽस्या,—ऽऽयुर्मे धेही,—त्यायुरेवास्मिन् दधाति, वर्चोदा अग्नेऽसि, वर्चो मे
धेही,—ति वर्च एवास्मिन् दधाति, चक्षुष्पा अग्नेऽसि, चक्षुर्मे पाही,—ति चक्षुरेवास्य पाति,
श्रोत्रपा अग्नेऽसि, श्रोत्रं मे पाही,—ति श्रोत्रमेवास्य पाति, तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाही,—

[८] मै. १,५,१ । तै. १,५,७ । काठ. ७,६ । कपि. ५,५ । वा. ३,१९,१८ । काण्व. ३,२६,२७,२४,२५ ।
[९] मै. १,५,२ । तै. १,५,७-८ । काठ. ७,६-७ । कपि. ५,५ । वा. ३,१७,१८,२०-२२ । काण्व. ३,२३,२४,२६, २७-२९ ।

ति तन्वमेवास्य पाति, यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्मा आपृणे,—ति यदेवास्यात्मन ऊनं यत्
प्रजाया यत् पशूनां तदेवैतेनाप्याययति, तदाप्यायनवत्यं,—ग्ने यत् ते तपा, इत्येता वा अग्नेस्त३न्वो
ज्योतिष्मती,—रेतद् स्म वा आहारुणं औपवेशि,—र्यान् वसीयसः श्रेयस आत्मनो भ्रातृव्यानभि-
प्राज्ञानीमाभिष्टानवस्तनभिर्ज्योतिष्मतीभिः पराभावयामि,—ति परा पाप्मानं भ्रातृव्यं भावयति य
एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते, उभे रुचौ पत्ते नमस्ते रुचे, मयि रुचं धा, इति शान्तमेवं रुचमा-
त्मन् धत्ते, तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति, चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीये,—ति रात्रिर्वै चित्रावसु,
—रहर्वामसु,—रग्निर्वै रात्रि,—रसा आदित्योऽह,—रेते वै भक्षे, ते इद्धे, त्रिराह, त्रिसत्या हि
देवा, रोचते ह वा अस्य यज्ञो वा भद्रं वा य एवं वेदा,—ऽम्भः स्था,—ऽम्भो वो भक्षीये,—
त्यम्भो ३ह्येता, महः स्थ, महो वो भक्षीये,—ति महो ३ह्येता, ऊर्जः स्थो,—र्जं वो भक्षीये,
—त्यूर्जो ३ह्येता, रायस्पोषः स्थ, रायस्पोषं वो भक्षीये,—ति रायस्पोषो ३ह्येता, रेवती
रेमध्वमस्मिन् योना अस्मिन् गोष्ठे, इति स्व एवैना योनौ स्वे गोष्ठे संवेशयत्य,—यं वो
बन्धु,—रिती मोपगात, बहीर्भवत, मा मा हासिष्टे,—त्याशिषमेवाशास्ते, वत्समालभते,
वत्सनिकान्ता हि पशव, एष वै सहस्रपोषस्येशे, पुष्यति सहस्रं, न सहस्राद् व्यपद्यते य
एवं वेद, संहितासि विश्व,—रूपेति रूपेण रूपेण ३ह्येषा संहिता, रूपेणैवैना समर्ध-
यति, नोमासामप्रदी,—निमित्रमाभिरकृतो,—ते हि यदा मित्रस्य नाम गृह्णाति मित्रमेवैनेन
कुरुते ॥९॥ ५०
सप्त वै बन्धुमतीरिष्टका अग्नौ चित्या उपधीयन्ते, ता वै ता अमुष्मा एव लोकाय, सप्त
ग्राम्या इष्टका,—स्ता अत्रोपधेया, गौश्चाश्वश्चाजश्च गर्द३भोऽजा चाविश्च पुरुषो, यद्धामाल-
भते गवैव चिता भवन्त्य,—थो आलभ्य एवोपधीयन्ते, पराङ् वा एष छन्दोभिः स्वर्गं लोक-
मन्यन्यदन्वच्छन्दः समारोह,—मुपत्वाग्ने दिवे दिवा, इति यदेतेन गायत्रेण तृचेनोपतिष्ठत,
इयं वै गाय३,—त्र्यस्यामेव प्रतितिष्ठत्य,—ग्ने त्वं नो अन्तमा, इत्येषा वा अग्नेस्तनूः प्रिया
तनूरुरु३ध्या, तामेव प्रैति, नैनमभिदासन्त्स्तृणुते, चतसृभिर्द्विपदाभिरुपतिष्ठते, चतुष्पादो
वै पशवो, द्विपाद् यजमानो, गृहा गार्हपत्यो, गृहेषु चैव पशुषु च प्रतितिष्ठ,—त्यूर्जा वः
पश्या,—म्यूर्जा मा पश्यते,—त्यूर्जैनाः पश्यत्य,—र्जैनं पश्यन्ति, रय्या वः पश्यामि, रय्या

[१०] मै. १,५,३ । तै. १,५,८ । काठ. ७,७–८ । वा. ३,२२,२५ । काण्व. ३,३०,३३ । [उप त्वाग्ने…एमसि० । ऋ. १,१,७ सा. १४ । अग्ने त्वं नो…बरूथ्यः । ऋ. ५,२४,१; सा. ४४८; ११०७]

मा पश्यते,—ति रय्यैनाः पश्यति, रय्यैनं पश्यन्ति ॥ ५१
संपश्यामि प्रजा अहमिडप्रजसो मानवीः । सर्वा भवन्तु नो गृहे ॥ ५२
इत्यैडीश्च वा इमाः प्रजा मानवीश्च, ता एवावारुन्द्ध, ता आद्या अकुर्त,—डाः स्थ मधुकृता,
इतीडा ३ह्येता मधुकृतः, स्योना माविशतेरमदा, इतीरमदो ३ह्येता, भुवनमसि सहस्रपोष-
पुषी,—ति भुवनं ३ह्येतत् सहस्रपोषपुषि, तस्य नो रास्व, तस्य ते भक्तिवानो भूयास्म,—
त्याशिषमेवाशास्ता, इडासि व्रतभृदि,—तीडा ३ह्येषा व्रतभृत्, त्वयि व्रतं, व्रतभृदसी,—ति
व्रतभृ३द्ध्येषा ॥१०॥ ५३
महि त्रीणामवोऽस्त्वि,—ति प्राजापत्येन तृचेनोपतिष्ठते, प्राजापत्या वा इमाः प्रजा,—स्ता
एवावारुन्द्ध, ता आद्या अकृता,—ऽथो प्रजापतिमेवोपैति, प्रजापता एव देवतासु प्रतितिष्ठति,
सोमानं स्वरण,—मिति ब्राह्मणस्पत्ययोपतिष्ठते, ब्रह्मणि प्रतितिष्ठत्य,—थो ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्द्धे,
यो वै ब्रह्मणि प्रतिष्ठितेन स्पर्धते पूर्वोऽस्मात् पद्यत, उभयीर्वा अग्निहोत्रिणो देवता आशंसन्ते
याभ्यश्च जुहोति याभ्यश्च न, मित्रस्य चर्षणीधृता, इति मैत्र्योपतिष्ठत, उभयत एवैतया
मित्रमकृतेतश्चामुतश्च, कदा च न स्तरीरसी,—त्यैन्द्रीभ्यां बृहतीभ्यामुपतिष्ठत, ऐन्द्रा वै
पशव,—स्तानेवावारुन्द्ध, तानाद्यानकृत, परि ते दूडभो रथा, इत्यसौ वा आदित्यो दूडभो
रथ, एष वा इमा उभौ लोकौ समीयते, सर्वमेवैतया परिगृह्णाति, निम्रदोऽसि, ३न्यहं
तं मृध्यासं यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म, इति पार्ष्ण्यावगृह्णीयाद्यदि पापीयसा स्पर्धेता,—
ऽभिभूरस्य,—३म्यहं तं भूयासं यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म, इति दक्षिणतः पदोऽवगृ-
ह्णीयाद्यदि सदृशेन स्पर्धेत, प्रभूरसि, प्राहं तमतिभूयासं यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म,
इति प्रपदेनावगृह्णीयाद्यदि श्रेयसा स्पर्धेत, सर्वानेवैनानभिभवति, सर्वानतिभवति, सर्वानं-
तिक्रामति, पूषा मा पथिपाः पात्वि,—तीयमेव, पूषा मा पशुपाः पात्वि,—त्यन्तरिक्षमेव,
पूषा माधिपाः पात्वि,—त्यसा एवेमानेव लोकाननुपासर,—देभ्यो लोकेभ्य आत्मानं परिधत्तेऽहिं-
साये, प्राची दिगग्निर्देवते,—ति तनूपानामेव दिक्षु निधत्ते, ऽथ येन स्पर्धते येन वा व्यभि-
चरते स एता एव देवता ऋत्वा पूर्वः पराभवति, सप्त वै पुरुषे महिमान,—स्ते वा एनेनेड्या,
—स्ते वै ते सप्तऋषय एव, प्राणा वै सप्तऋषयः, प्राणान् वा एतदीट्टा, ईट्टे ह वै स्वान्

[११] मै. १,५,४ । तै. १,५,८ । काठ. ७,९ । वा. ३,३१,२८, ११,६१; ३,३४,३६; ८,१; ३३,२७; ६,११, १०, १९; ३५,११, ३६,२३, ३८,२३ । काण्व. ३,३९,३६; १२,६४; ३,४४,४२; ८,१; ३२,२७, ६,३१, २२,४; ३५,४५; ३६,२३; ३८,२३ । [महि त्रीणामवो० । ऋ. १०,१८५,१ । मित्रस्य चर्षणी…स्तमम् । ऋ. ३,५९,६]

प्राणान्, वृङ्क्ते भ्रातृव्यस्य प्राणान्, नैनमभिदासन्त्स्तृणुते य एवं वेद, धर्मो मा धर्मणः
पातु, विधर्मो मा विधर्मणः पात्वा,—ऽयुश्च प्रायुश्च चक्षुश्च विचक्षुश्च प्राङ् चापाङ् चोरुकं,
इत्ययं वा उरुकं, एष विभजति, तद्यदेष भजति तदेतस्मिन्नेव पुनराभजत्य,—ग्ने गृहपते-
ऽग्निं समिन्धे यजमान, एतद्वै यजमानस्य स्वं यदग्नि,—रेतदग्नेर्यजमान, आयतनमिव
वा एतत् क्रियते, ज्योतिषे तन्तवे त्वे,—त्यन्तराग्नी उपविश्य वदे,—द्यामेव पुरं आशिषमाशास्ते
या पश्चात् तामात्मन् धत्ते ॥११॥ ५४
ददन्मा, इति वै दीयते, सदुर्दि वा एष ददाति योऽग्निहोत्रं जुहोति, यद्यन् कामयेत
तत् तदग्निहो३त्रग्निं याचे,—दुप हैनं तन्नमति, तदाहु,—ऋच्छति वा एष देवान् य एनान्
त्सदुर्दि याचतीति, तस्मात् तर्हि नोपस्थेयो, यमो वा अम्रियत, ते देवा यम्या यममपाब्रुवं,—
स्ता यद्यपृच्छन्त्साब्रवीद,—द्यामृतेति, तेऽब्रुवन्, न वा इयमिममित्थं मृष्यते, रात्रीं सृजा-
महा, इत्यहर्वाव तर्ह्यासीन्न रात्रि,—स्ते देवा रात्रिमसृजन्त, ततः श्वस्तनमभवत्, ततः सा तम-
मृष्यत, तस्मादाहु,—रहोरात्राणि वाव यमं मर्षयन्तीति, सा वै रात्रिः सृष्टा पशूनभिसममिलत्,
ते देवाश्छन्दोभिरेव पशूनन्वैच्छं,—श्छन्दोभिरेनान् पुनरुपाह्वयन्त, यदुपतिष्ठते छन्दोभिर्वा
एतत् पशूननुपश्यति, छन्दोभिरेनान् पुनरुपह्वयते, ऽथो आहु,—र्वरुणो वै स तद् रात्रिर्भूत्वा
पशूनग्रसतेति, ते देवाश्छन्दोभिरेव वरुणात् पशून् प्रामुञ्चं,—श्छन्दोभिरेनान् पुनरुपाह्वयन्त यदुप-
तिष्ठते छन्दोभिर्वा एतद् वरुणात् पशून् प्रमुञ्चति छन्दोभिरेनान् पुनरुपह्वयते, यज्ञो यज्ञो वै समृच्छते,
ऽशाकम्भविष्टो मन्यन्ते, सोम एव समृच्छता, इत्यग्नीषोमीयायाः पुरस्ताद्धविष्यस्य चतस्रा ऋचो
वदे,—दग्नेर्वस्य पुरोडाशस्य द्वे याज्यानुवाक्ये कुर्या,—द्देतेनैव हवींष्यासन्नान्यभिमृशेद्,
वृ३हत्केऽन्यस्य यज्ञो नास्मान्यो यज्ञं वृङ्क्ते, सयज्ञो भवत्ययज्ञा इतरः ॥१२॥ ५५
अग्निं वा एते चित्यं चिन्वते य आहिताग्नयो दर्शपूर्णमासिन,—स्तेषां वा अहोरात्राण्येवेष्टका
उपधीयन्ते, यत्र पञ्च रात्रीः संहिता वसेत् तज्जुहुयात्, पञ्च रात्रयः पञ्चाहानि सा दशेन्
संपद्यते, तदेव कर्तवा, अयुते तद्, दशस्तेव रात्रिष्वन्तमं होत३व्यं, तथा यदं क्रियते,
न सर्वेषु युक्तेषु होतव्यं, वास्तौ जुहुयाद्, ऽयुक्तेष्व,—यतं क्रियते, सर्वाण्यन्यानि

[१२] तै. १,५,९ । काठ. ७,१० । कपि. ५,६ ।
[१३] तै. ३,४,१० । मा. श्रौ. १,६,४ । [अमीवहा…एधि नः० । ऋ. ७,५५,१ । वास्तोष्पते प्रति…चतुष्पदे० । ऋ. ७,५४,१]

युक्तानि स्युं,—रग्निष्ठस्य दक्षिणो युक्तः स्यात्, सव्यस्य योक्त्रं परिहृत,—मथ जुहुया,—न्न वास्तौ
जुहोति, यदमुत्क्रियते, तन्न संस्र्युं, सर्वेष्वेव युक्तेषु होतव्यं, वास्तोष्पत्यं ३ह्येतं,—
न्न हीनमन्वाहर्तवै, रुद्राय हि तद्धीयते, यद्धीनमन्वाहरेयू रुद्रं भूतमन्वाहरेयु,—र्यद्यनुवाहः
स्यात् पूर्वं तं प्रवहेयुरप वोद्धरेयु,—र्यद्धीयेत हीयेतैव तं,—दथ जुहुयात् ॥ ५६
अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ ५७
वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १३ ॥ ५८
पशून्मे शंस्य पाहि, तान्मे गोपायास्माकं पुनरागमात् ॥ अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः
सहस्रमपानां,—स्त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे, तस्मै ते विधेम वाजाय ॥ प्रजां मे नर्य पाहि,
तां मे गोपायास्माकं पुनरागमा,—दग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं, सुगृहप-
तिस्त्वं मया गृहपतिना भूया, अन्नं मे बुध्य पाहि, तन्मे गोपायास्माकं पुनरागमात् ॥५९-६१
इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवम् ।
अविनष्टानविह्रुतान् पूषन्नानभिरक्षत्वास्माकं पुनरागमात् ॥ ६२
पशून्मे शंस्य पाहि, तान्मे गोपायास्माकं पुनरागमा,—दित्याहवनीयमुपतिष्ठत, आहव-
नीयायैव पशून् परिदाय प्रैत्य,—ग्ने सहस्राक्ष शतमूर्ध,—न्नित्ति सहस्राक्षो ३ह्येष शतमूर्धा, शतं
ते प्राणाः सहस्रमपानां, इति शतं ३ह्येतस्य प्राणाः सहस्रमपानां,—स्त्वं साहस्रस्य राय
ईशिषे, तस्मै ते विधेम वाजाये,—त्याशिषमेवाशास्ते ॥ प्रजां मे नर्य पाहि, तां मे गोपाया-
स्माकं पुनरागमा,—दिति गार्हपत्यमुपतिष्ठते, गार्हपत्यायैव प्रजां परिदाय प्रैत्य,—ग्ने गृहपते
सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं, सुगृहपतिस्त्वं मया गृहपतिना भूया, इत्यग्रहणी
संजीयतः, सर्वमायुरितो, नार्ति ३नीतो, ऽन्नं मे बुध्य पाहि, तन्मे गोपायास्माकं
पुनरागमा,—दिति दक्षिणाग्निमुपतिष्ठते, दक्षिणाग्नय एवान्नं परिदाय प्रैति ॥ ६३-६४
इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् गोपायतं युवम् ।
अविनष्टानविह्रुतान् पूषन्नानभिरक्षत्वास्माकं पुनरागमात् ॥ ६५
इत्यहोरात्रे वै मित्रावरुणौ, पशवः पूषा, ऽहोरात्राभ्यां चैव मित्रावरुणाभ्यां च गृहान्परिदाय
प्रैति ॥ अग्निं समाविदि ॥ इत्याह, भस्म त्वा उपतिष्ठते ॥ पशून्मे शंस्याजुगुप,—स्तान्मे

[१४] काठ. ७,३,११ । कपि. ६,१ । वा. ३,३७; १७,७१; २,२७ । काण्व. ३,४६; १८,७१; २,४९ । मा. श्रौ. १,६,३ ।

पुनर्देहि ॥ इत्याहवनीयं पुनरेत्योपतिष्ठत, आहवनीयेनैव पशून्गुप्तानात्मन्धत्ते ॥ अग्ने सहस्राक्ष
शतमूर्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रमपाना,—स्त्वꣳ साहस्रस्य रायं ईशिषे, तस्मै ते विधेम वाजाय ॥
प्रजां मे नर्याजुगुप,—स्तां मे पुनर्देहि ॥ इति गार्हपत्यं पुनरेत्योपतिष्ठते, गार्हपत्येनैव प्रजां
गुप्तामात्मन्धत्ते ॥ अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासꣳ, सुगृहपतिस्त्वं मया
गृहपतिना भूया, अन्नं मे बुध्न्याजुगुप,—स्तन्मे पुनर्देहि ॥ इति दक्षिणाग्निं पुनरेत्योपतिष्ठते,
दक्षिणाग्निनैवान्नं गुप्तमात्मन् धत्ते ॥ ६६–७५

इमान् मे मित्रावरुणौ गृहान् जुगुपतꣳ युवम् ।
अविनष्टानविहुतान् पूर्षानभ्यरक्षीदास्माकं पुनरागमात् ॥ ७६

इत्यहोरात्रे वै मित्रावरुणौ, पशवः पूषा, ऽहोरात्राभ्यां चैवं मित्रावरुणाभ्यां च गृहान्
गुप्तानात्मन् धत्ते ॥ १४ ॥ ७७ [४४८]

॥ इति प्रथमकाण्डे अग्न्युपस्थानं नाम पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥

अथ षष्ठः प्रपाठकः ।

आधानम् ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवान् जिगाति सुम्नयुः ॥ १
उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २
उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निꣳसानं जुह्वो मुखे ॥ ३
प्रजा अग्ने सꣳवासयेहाशाश्च पशुभिः सह । राष्ट्राण्यस्मिन् धेहि यान्यासन्त्सवितुः सवे ॥४
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम् ॥ ५
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ६
त्रिꣳशद्धामा विराजति वाक् पतङ्गाय हूयते । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ७
अन्तश्चरत्यर्णवे अस्य प्राणादपानतः । प्रति वाꣳसरो अहभिः ॥ ८

[१] तै. १,५,३; ५,७,९ । काठ० ७,१२,१३ । कपि० ६,२,४; ७,२ । तै. ब्रा. १,२,१,१३,१६; १,१,७,१; १,१,४,८ । वा. ३,४,१४,६,८,७, १३,३४,१ (प्र. पा.); ३,५; १९,३८; ३५,१६ (प्र. पा.) । काण्व. ३,४,२०,६,८,७; १४,३६,१ (प्र. पा); ३,५; ८,१९; २१,४०; २९,३७; ३५,४८ (प्र. पा.) । मा. श्रौ. १,५,१–३ । [प्र वो वाजा० । ऋ. ३,२७,१] [आयं गौ० । ऋ. १०,१८९,१ । अथर्व. ६,३१,१; २०,४८,४ । सा. ६३० । त्रिꣳशद्धामा० । ऋ. १०,१८९,३ । अथर्व. ६,३१,३; २०,४८,६ । सा. ६३१ । अन्तश्चरत्य० । ऋ. १०,१८९,२ । अथर्व. ६,३१,२; २०,४८,५ । सा. ६३२ ।]

इतो जज्ञे प्रथमꣳ स्वाद्योनेरधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्या वहतु प्रजानन् ॥ ९
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्यं आविवेश ।
तमात्मनि परिगृह्णीमसीह नेदेषो अस्मानवहाय परायत् ॥ १०

दोह्या च ते दुग्धभृच्चोर्वरी, तं ते भागधेयं प्रयच्छामि, ताभ्यां त्वादधे, घर्मः शिर,—स्त्वं
दुर्यमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसि, यत् ते शुक्र शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमश्नीथाः॥
११

मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निꣳसह प्रजया वर्चसा धनेन ।
मयि क्षत्रं मयि रायो दधामि मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १२

भूर्भुवो, ऽङ्गिरसां त्वा देवानाꣳ व्रतेनादधे, ऽग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधा, इन्द्रस्य त्वा
मरुत्वतो व्रतेनादधे, मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधे ॥ १३

आच्छेदि त्वा छन्दो दधे द्यौर्महासि भूमिर्भूना ।
तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमग्निमन्नपत्यायादधे ॥ १४
अग्न आयूꣳषि पवसे, ऽग्निर्ऋषिरि,—ग्ने पवस्व ॥१॥ १५

या वाजिन्नग्नेः पवमाना प्रिया तनूस्तामावह, या वाजिन्नग्नेः पावका प्रिया तनूस्तामावह,
या वाजिन्नग्नेः शुचिः प्रिया तनूस्तामावह ॥ १६

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य ते पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं जनिम तत् ते अर्वन् ॥ १७

ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृष्णे शुष्माय, सपत्नतूरसि वृत्रतूः ॥ १८

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह ।
विश्वा आशा दीद्यद्विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ १९

[१] मै. १,६,७; २,८,१२ । तै. ४,२,८,२; ३,५,११,१; १,८,१६,१; ४,६,५,५; ४,४,११ । काठ. ७,१३–१४, ४०,७; ३९,१ । कपि. ६,३–४; ७,२ । वा. ११,८३; २९,१२; १७,६६; ३४,२५; १७,७९,८९–९१; १०,२७; २०,२; ३४,५३,५७; १३,२५; १४,६,१५,१६,२७; १५,५७ । काण्व. १२, ८४; ३१,२४, १८,६६,७९; ३३,९; १९,३–५; ११,३७; २१,९३, ३३,४१.४५; १४,२६; १५,५,१६,३१; १६,७९ । तै. ब्रा. १,१,७,१–३ । मा. श्रौ. १,५,४–५ । [यदक्रन्दः प्रथमं० । ऋ. १,१६३,१ । इडा (ळा) यास्त्वा पदे० । ऋ. ३,२९,४ । समुद्रादूर्मि०...आततान (आविवेश) । ऋ. ४,५८,१–३ । निषसाद धृत० । ऋ. १,२५,१० । उत नोऽहिर्बुध्न्यः । ऋ. ६,५०,१४ । प्र नूनं ब्रह्मण० । ऋ. १,४०,५]

अभ्यस्थाꣳ विश्वाः पृतना अरातीस्तदग्निराह तदु सोम आह ।
बृहस्पतिः सवितेन्द्रस्तदाह पूषा मा आधात् सुकृतस्य लोके ॥ २०

भुवः ३स्वर,—ङ्गिरसां त्वा देवानाꣳ व्रतेनादधे, ऽग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधा, इन्द्रस्य त्वा
मरुत्वतो व्रतेनादधे, मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधे ॥ २१

आच्छेदि त्वा छन्दो दधे द्यौर्महासि भूमिर्भूना ।
तस्यास्ते देव्यदित उपस्थेऽन्नादमग्निमन्नपत्यायादधे ॥ २२
यत् ते शुक्र शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादधे ॥ २३
इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ २४

सम्राट् च स्वराट् चाग्ने ये ते तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जꣳ यच्छ, विराट् च प्रभूश्चाग्ने ये ते
तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जꣳ यच्छ, विभूश्च परिभूश्चाग्ने ये ते तन्वौ ताभ्यां मा ऊर्जꣳ यच्छ ॥२५

समुद्रादूर्मिर्मधुमाꣳ उदारदुपाꣳशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यꣳ यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ २६
वयं नाम प्रब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ २७
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रेधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यं आततान ॥ २८
ये अग्नयः समनसा ओषधीषु वनस्पतिषु प्रविष्टाः ।
ते विराजमभिसꣳयन्तु सर्वा ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ २९

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त होत्रा ऋतुथा नु विद्वान् त्सप्त योनीरापृणस्व
घृतेन स्वाहा ॥ ३०

ये अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः समागच्छन्तीषमूर्जꣳ वसानाः ।
ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परेत स्वाहा ॥
३१–३२
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु न एना राजन् हविषा मादयस्व ॥ ३३
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रꣳ वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकाꣳसि चक्रिरे ॥ ३४

घर्मः शिर,—स्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसि, यच्छा तोकाय तनयाय शꣳ योर,
—र्को ज्योति,—स्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसि, यच्छा तोकाय तनयाय शꣳ
यो,—र्वातः प्राणं,—स्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसि, यच्छा तोकाय तनयाय शꣳ
योः ॥ अविषं नः पितुं पच ॥ ३५–३६

कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापा ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ ३७
ये अग्नयः समनसा ओषधीषु वनस्पतिषु प्रविष्टाः ।
ते विराजमभिसꣳयन्तु सर्वा ऊर्जं नो धत्त द्विपदे चतुष्पदे ॥ २ ॥ ३८

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्, तꣳ वीरुधोऽभ्यरोह,—न्नसु३र्यो वा एता यदोषधय,— स्ता अति-
तिष्ठिषन्नतिष्ठिधं नाशक्नोत्, सोऽशोचत्, सोऽतप्यत, ततोऽग्निरसृज्यत, तमग्निꣳ सृष्टꣳ
वीरुधां तेजोऽगच्छत्, ता अशुष्यं, न ततः पुराशुष्यन्, त्सं प्रजापतिरग्निमाधत्ते,—मां एवा सहा,
इति ता असहत, तत् साढ्यै वाविषं आधीयते, तद्यथादो वसन्ताशिशिरे३रेऽग्निर्वीरुधः संहत
एवꣳ सपत्नं भ्रातृव्यमवर्तिꣳ सहते य एवꣳ विद्वानग्निमाधत्ते, एतावद्वा अस्या अनभिमृतꣳ
यावद्वेदिः परिगृहीता, तामुद्धत्याप उपसृज्याग्निमाधत्ते, यज्ञियामेवैनां मेध्यां कृत्वाधत्ते,
ऽग्नेर्वा इयꣳ सृष्टादबिभेद,—ति मा धक्ष्यतीति, यदप उपसृज्याग्निमाध३त्तेऽस्या अनविदा-
हाये,—पो वै प्रजापतेः सर्वता तनूर्यदापः, सर्वत एनं प्रजाः सर्वतः पशवोऽभि पुण्येन भवन्ति
य एवꣳ विद्वानप उपसृज्याग्निमाधत्ते, यावद्वै वराहस्य चषालं तावतीयमग्र आसीद्, यद्वराह-
विहतमुपास्याग्निमाधत्ते इमामेव तन्नापाराड,—स्यां एनं मात्रायामभ्याधत्ते, तस्मादेषा वराहाय
विम्रदत, एषं ३ह्यस्या मात्रां बिभर्ति, देवपाणयो वै नामासुरा आसꣳ,—स्ते देवगवीरपा-
जꣳ,—स्ता अन्वगच्छꣳ,—स्ता अभ्याजꣳ,—स्तासां पयोऽह्रीयत, तेऽब्रुवन्, यद्वा आसाꣳ
वरमभूत्तदहास्तेति, तद्वराहो भूत्वासुरेभ्योऽधि देवानागच्छत्, तस्माद्वराहं गावोऽनुधावन्ति स्वं

[३] काठ. ८,२ । कपि. ६,७ ।

पयो आनानां,—स्तेयावद् प्रियमेव पशूनां द्विपदां चतुष्पदां पयस्तावत्प्रियः पशूनां द्विपदां चतुष्पदां भवति य एवं विद्वान् वराहविहतमुपास्याग्निमाधत्ते, एतद्वा अस्या अनभिमृतं यद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनमनभिमृतेऽध्याधत्ते, रसो वा एषोऽस्या उद्दीपद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनं रसेऽध्याधत्त, ऊर्ग्वा एषोऽस्या उद्दीपद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनमूर्ज्यध्याधत्ते, प्रजापतेर्वा एष स्तनो यद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्ते प्रजापतिरेवास्मै स्तनमपिदधात्य,—न्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, ऽक्षुध्यता स्वानां पुरःस्थाता भवति य एवं वेद,—तावद्वा अमुष्या इह यज्ञियं यदूषा, यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्तेऽमुष्या एवैनं यज्ञियेऽध्याधत्ते, न वा अनूषारिहः पशवो रेतो दधते, यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्ते रेत एवैतद्दधाति, पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, एष वा अग्निर्वैश्वानरो यदसा आदित्यः, स यदिहासीत्तस्यैतद्भस्म यत्सिकता, यत्सिकता उपकीर्याग्निमाधत्ते स्व एवैनं योनौ स्वे भस्मन्नाधत्ते, शिथिरा वा इयमग्र आसीत्, तां प्रजापतिः शर्कराभिरदृंहद्, यच्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्त, इमामेव तद्दृंहति धृत्यै, तद्यथेमां प्रजापतिः शर्कराभिरदृंहदेवमस्मिन् पशवो दृंहन्ते य एवं विद्वाञ्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्त, इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्, तस्य या विप्रुष आसंस्ताः शर्करा अभवन्, यच्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्ते वज्रमेव सपत्नाय भ्रातृव्याय प्रहरति, यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेद्, वज्रमेवास्मै प्रहरति, स्थपत एव, पुरीषी,—ति वै गृहमेधिनमाहुः, पुरीषस्य खलु वा एतन्निरूपं
यदाखुकिरि,—यदाखुकिरिमुपकीर्याग्निमाधत्ते पुरीषी गृहमेधी भवति ॥ ३ ॥ ३९

अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्, यत्प्राञ्चमहरन्त्सर्वः पुरोऽभवद्, यत्प्रत्यञ्चमहरन्त्सर्वः पश्चाभवत्, तमश्वेन पूर्ववाहोदवहन्त्स्तदश्वस्य पूर्ववाहः पूर्ववाट्त्वम्,—ग्निर्वै विभक्त्या अश्वोऽभ्याधेये दीयते, ऽविभक्तो वा एतस्याग्निराहितो योऽश्वमग्न्याधेये न ददात्य,—थ योऽश्वमग्न्याधेये ददाति विभक्तम्, विभाज्यैवैनमाधत्ते, सोमपुरोगवा वै देवा असुरानभ्यजयन्न,—ष खलु वै सोमो यदश्वो, यदश्वं पुरस्तान्नयन्त्यभिजित्या, अभिजित्यैवैनमाधत्ते, प्रजापतेर्वै चक्षुरश्वयत्, तस्य यः श्वयथ आसीत् सोऽश्वोऽभवद्, यदश्वं पुरस्तान्नयन्ति यजमानायैव चक्षुर्दधाति, न पराङावर्त्यो, यत्पराञ्चमावर्तयेद्यजमानं चक्षुर्जह्याद,—न्धः स्यात्, प्रत्यवगृह्यायो,

[४] तै. ब्रा. १,१,५ । काठ. ८,५ । कपि. ७,१-२ ।

यजमानायैव चक्षुः प्रत्यवग्रही,—त्रं पदं आधेयो, वास्तव्यं कुर्याद्रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्यात्, पाश्वत इतो वेतो वाधेयो, न वास्तव्यं करो,—त्यघातुकोऽस्य पशुपतिः पशून्भवति, गायत्रीं वै देवा यज्ञमच्छ प्राहिण्वन्, तस्या रिक्तागच्छन्त्या अग्निस्तेजः प्रायच्छत्, सोऽजोऽभवद्, यदजमग्न्याधेये ददाति तेज एवावरुन्धे, ऽग्नीध्रे देयो, यज्ञमुखं वा अग्नी,—द्यज्ञमुखेनैव यज्ञमुखं समर्धयति, धेनुं चानड्वाहं च ददाति, तत्सर्वं वयोऽवरुन्द्ध, एतद्वै सर्वं वयो यद्धेनुश्चानड्वांश्च,—श्वेता वै यज्ञस्य माता च पिता च यद्धेनुश्चानड्वांश्च,—श्चाज्यं च पयश्च धेन्वाः पुरोडाशश्च चरुश्चानडुह,—स्तदाहुः, कामदुघां वा एषोऽवरुन्द्धे योऽग्न्याधेये धेनुं चानड्वाहं च ददातीति, तद्येषां पशूनां भूयिष्ठं पुष्टिं कामयेत तेषां दित्यौहीं वयसो दद्याद्दित्यवाहं च मुष्करं, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै, वाग्वै सोमक्रयणी, दित्यौहीं वयसः सोमक्रयणी, यद्दित्यौहीं वयसो ददाति वाचमेवावरुन्धे, चारु वदति य एवं वेदो,—पबर्हणं सर्वसूत्रं देयं, छन्दसां वा एतन्निरूपं यदुपबर्हणं सर्वसूत्रं, यदुपबर्हणं सर्वसूत्रं ददाति छन्दांस्येवावरुन्द्धे, पशवो वै छन्दांसि, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽयज्ञियो वै पुरुषोऽमेध्य आहनस्याज्जायते, पुरुषक्षीरं धयति, हिरण्यं ददात्यात्मानमेव तेन पुनीते, शतमानं भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, पर्वयोर्हविषोर्द्वे त्रिंशन्माने देये, उत्तरस्मिंश्चत्वारिंशन्मानं, तदेनमुदग्रहीत्, तेन स उत्तरं वसीयाञ्छ्रेयान्भव,—त्यजातो वै तावत्पुरुषो यावदग्निं नाधत्ते, स वै तर्ह्येव जायते यर्ह्यग्निमाधत्ते, क्षौमे वसाना अग्निमादधीयातां, ते अध्वर्यवे देये, उल्बस्य वा एतन्निरूपं यत् क्षौम,—मुल्बमेवापलुम्पते, हिरण्यं सुवर्णमुपास्याग्निराधेयो, हिरण्यं वा अग्नेस्तेजः, सतेजसमेवैनमाधत्ते, तद्धि निरस्तवै, यथानुहितं निरस्येदेवं तथा निरस्येदनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, तन्न निरस्तवा,
अननुध्याय्यक्षोधुको भवति ॥ ४ ॥ ४०

यो वा अस्यायं मनुष्योऽग्निरेतमुपासीतो,—न्नमत्त्येतमु,—पासीनः प्रजां विन्दत, एतमुपासीनं पशवा उपतिष्ठन्ते, यदेतमभागधेयमुत्सादयेत तस्मा आवृश्चेता, ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, तद्ये वनस्पतय आरण्या आद्यं फलं भूयिष्ठं पच्यन्ते तस्य पर्णाभ्यां यवमयश्चापूपो व्रीहिमयश्च संगृह्योपास्याधेय,—स्तदेनं द्वयं भागधेयमभ्युत्सादयामकर्ग्राम्यं चारण्यं च, तेन तस्मै नावृश्चते, ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, यवो वै पूर्व ऋतुमुखे पच्यत, इतः खलु वा एतं प्राश्नन्त्युद्धरन्ति,

[५] आप. ६,९ । तै. आ. १,१,५, १,१,३ ।

तस्माद्यवमयः पश्चात्स्यो व्रीहिमयः पुर,—स्तद्यस्यैतस्यैव यवमयमेव तस्य पश्चात्स्याद्व्रीहिमयं पुरः, प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ, यज्ञमस्य देवा उपजीवन्ति वयं मनुष्या, अन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, ऽक्षुध्यता स्वानां पुरःस्थाता भवति य एवं वेद,—तद्ध स्म वा आह केशी सात्यकामिः केशिनं दार्भ्यम्,—भाद जनताया एवमिव वयमेतस्मा अग्न्याधेयेऽन्नमवारुध्म यथैषोऽन्नमत्ति, तदाहुः, सर्वं वा एतस्येदमन्नं, यजमानं त्वेवास्यैतदासन्नपिदधाति, तदु वं वदितोर्न्नं श्वेव कर्तव्या इति, त्रिर्वा इदं प्रजापतिः सत्यं व्याहरत् ॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इतीदं वाव भूरिदं भुवोऽदः स्व,—स्तद्यो ब्राह्मण आहिताग्निः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवोऽङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादधा, इति पश्चा, स्वः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ यो ब्राह्मणो वैश्वानरः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवो, ऽग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधा, इति पश्चा, स्वः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ राजन्यस्यादध्याद्, भूर्भुवो, इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादधा, इति पश्चा, स्वः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—न्द्रो वै राजन्यो देवतया मारुती विड्,—भ्रो खलु वै राजन्यो भद्रो भवति, विशमस्मा अवरुन्धे, ऽथ वैश्यस्यादध्याद्, भूर्भुवो, मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधा, इति पश्चा, स्वः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपति,—र्ग्रामणीथ्येन खलु वै वैश्यो भद्रो भवति, ग्रामणीथ्यमस्मा अवरुन्धे, ऽग्निर्वै सृष्ट उल्बमपलुम्पं नाशक्नोद्, तस्य प्रजापतिराग्नेयपावमानीभिरुल्बमपालुम्पद्, यदाग्नेयपावमानीभिरास्थन्वीः समिध आदधात्युल्बमेवास्यापलुम्पति, पुनान्येनं, यथा शिशुं माता रेढि वत्सं वा धेनुरेवम्,—ग्निर्वै सृष्टस्य तेजा उददीप्यत, तदश्वत्थं प्राविशद्, यदाश्वत्थीः समिध आदधाति तेज एवावरुन्धे, ऽग्निर्वै सृष्टो विविधामवक्षतिष्ठत् समिध्यमानः, स प्रजापतिरविभेन्, मां वावायं हिंसिष्यतीति, तं शम्या समैन्धद्, तमशमयत्, तं शम्यः शमीत्वं, यच्छमीमयीः समिध आदधाति समेनमिन्धे, शमयत्येवं, शं च यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, देवा यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बर उदतिष्ठद्, यदौदुम्बरीः
समिध आदधात्यूर्जमेवावरुन्द्धे ॥ ५ ॥
४१

विभ्रिणो वा एषं पशुभिराधीयत, एष हि रुद्रो यदग्निस्तद्, वाचयेद्, धर्मः शिरस्त,—देयमर्कः सप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसीति, तेनैनं सप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्येन

[६] तै. ब्रा. १,१,७ ।

शुक्र शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमशीया, इति रुचमेवैनमजीगमद,—ष वा अग्निर्वैश्वानरो यदसा आदित्यो, यदुत्तरतो हरेदुद्योऽतः स्याद,—थमितो जीवन्तमेवैनं प्रदहेत्, सदक्षिणत एवं हार्यः, स यदा समयाध्वं गच्छेदथ यजमानो वरं दद्यात्, तद्विराजं मध्यतोऽधित, विराड्वा अस्याग्निर्विदधते, पशवो वै विराट् पशून्वा एतन्मध्यतोऽधित, ऽसृष्टो वा अग्निरासीद,—थ प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता अन्वेतमुसीमाल्लोकाननुव्युनश्यन्, सोऽशोचत्, सोऽतप्यत, ततोऽग्निरसृज्यत, तमग्निं सृष्टमधोऽन्यदधात्, ता या अस्मिंल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं गुल्फदघ्नमुदगृह्णात्, ता या उत्तरस्मिंल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं जानुदघ्नं तं नाभिदघ्नं तमंसदघ्नं तं कर्णदघ्नमुदगृह्णात्, ता या उत्तरस्मिंल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं कर्णदघ्नं नात्युद्गृह्णो, यत्कर्णदघ्नमत्युद्गृह्णीयाद्, यजमानो वर्षिष्ठः पशूनां, यजमानमुपरिष्टादग्निरभ्यवदहेद्, तदाहुः, कथमग्नेर्ब्रह्मणाहितं प्रच्यावयेयुः, शिथिरं वा एनमेतदकः, परेण वपतीति, तमनिधायैवाथ जानुदघ्नमुद्गृह्णीयाद,—थ नाभिदघ्नमथांसदघ्नं तद्यथेदं प्रजापतिः प्रजा एभ्यो लोकेभ्योऽभिसमावर्तन्तैवमेवं यजमानं पशव एभ्यो लोकेभ्योऽभिसमावर्तन्ते य एवं विद्वानग्निमाधत्ते, ऽग्निना वै देवतया विष्णुना यज्ञेन देवा असुरान् प्रच्छीय वज्रेणान्ववासृजन्, यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान्वा स्यात्तस्य रथचक्रं त्रिरनुपरिवर्तयेयुस्तद्, यथैव देवा असुरानग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रच्छीय वज्रेणान्ववासृजन्नेवमेव यजमानः सपत्नं भ्रातृव्यमग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रच्छीय वज्रेणान्ववसृजति य एवं विद्वानग्नि-
माधत्ते ॥ ६ ॥
४२

एषा वै प्रजापती रूपेण यत् पूर्णा स्रुग्, यत् पूर्णां स्रुचं जुहोति प्रजापतिमेवाप्नोति, सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा, इत्येतावतीर्वा अग्नेस्तन्वः षोढा सप्त सप्त, यो वा अस्यैता अग्निमादधानो वितर्पयति वि ह तृप्यति, ता एवास्य तर्पयति, शमीमयीस्तिस्रः समिधा आदधाति घृतान्वक्ता घृतस्तोम्याभिः, समेनमिन्धे, शमयत्येवं, स शं यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, ये वा एषु त्रिषु लोकेष्वग्नयस्ते समागच्छन्त्य,—स्यं द्रविणमाददामहा, अति नोऽक्रमीद्, हव्यवाड्
भवतीति, तं जुहुयात् ॥ ४३

ये अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः समागच्छन्तीषमूर्जं वसानाः ।
ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिमाज्यो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परेत ॥ ४४

[७] मै. १,६,२ । तै. ब्रा. १,१,८ । वा. १७,७९; ३४,१५ । अथर्व. १८,७९; ३३,९ ।

स्वाहेति तदिमम्मेव द्रविणवन्तं कृत्वैष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परा-
यन्ति, तद्वाचयेद्, घर्मः शिर,—स्तदयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसीति, तदेन२
संप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्यत्ते शुक्र शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादधा, इति सतेज-
समेवैनमाधत्ते ॥ ४५

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ ४६

इति हव्यवाहमेवैनमक,—रग्नेर्वै सृष्टस्य पशवोऽस्या अवक्षाय प्रापतन्, तं प्रजापतिर्वारवन्ती-
यमसजत्, तानवारयत,—तर्हि खलु वा एष सृज्यते यर्ह्याधीयते, तद्यथैतस्मात्सृष्टात्पशवः
प्रापतन्नेवमस्मादाहितात्पशवः प्रपतन्त्ये,—ष हि रुद्रो यदग्नि,—स्तस्य एव२ विद्वान्वारवन्तीयं
गायते पशूनेव वारयते, वारवन्तीय२ वै सृष्ट्वा प्रजापतिर्यं काममकामयत तमाप्नोत्, तमेव
काममृप्नोति यजमानो यं कामं कामयमानोऽग्निमाधत्ते य एव२ विद्वान्वारवन्तीयं गायते, ऽग्निर्वै
क्रव्याद्विश्वदाव्य इमांल्लोकानदहत्, तं प्रजापतिर्वारवन्तीयं गायमानो वरणं बिभ्रत् प्रत्यैत्,
तमशमयद्, यदेवास्य क्रव्यादद्विश्वदा३व्यं तच्छमयति य एव२ विद्वान् वारवन्तीयं गायते,
तस्माद्वरणो यज्ञावचरः स्या,—न्न त्वेनेन जुहुयाद्, यद्वा इद२ संयद्धत२ यत्कृवयच्चाविर्व्ययदिमे
अन्तरा द्यावापृथिवी तद्वामदेव्यं तदेवावरुन्द्धे य एव२ विद्वान् वामदेव्यं गायते, ब्रह्मणो वा एष
रसो यद्यज्ञायज्ञिय२, यद्यज्ञायज्ञियं गायते ब्रह्मण्येव रसं दधाति ॥ ७ ॥ ४७

अग्नि२ वै सृष्टं प्रजापतिः पवमानेनाग्रा उपाधमद्, यत् पवमानाय निर्वपत्युर्वैवैनं तद्धमति, यत्
पावकाय पुनात्येन२, यच्छुचये यदेवास्यापूतं तदेतेन पुनाति, यत् पवमानाय निर्वपति,
पशवो वै पवमानः पशूनेवावरुन्धे, यत् पावकाया,—ऽन्न२ वै पावक,—मन्नमेवावरुन्धे, यच्
शुचये, पूतं एवास्मिन् रुचं दधाति, यं कामयेता,—ऽपतरं पापीयान्त्स्यादिति, तस्यैकमेक२
हवी२षि निर्वपेत्, तदेनमपाग्रहीत्, तेन सोऽपतरं पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेत, न वसी-
यान्त्स्यान्न पापीयानिति, तस्य सर्वाणि साक२ हवी२षि निर्वपेत्, तदेन२ स२रुणद्धि, तेन
स न वसीयान्न पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेतो,—त्तर२ वसीयाञ्छ्रेयान् त्स्यादिति, तस्या-
ग्नये पवमानाय निरुप्याथ पावकाय च शुचये चोत्तरे हविषी समानबर्हिषि निर्वपेत्, तदेनमुदग्रहीत्,
तेन स उत्तर२ वसीयाञ्छ्रेयान् भवत्य,—थ यस्य त्रिष्टुभौ वानुष्टुभौ वा जगती वा स२याज्ये
स्यातामिति गायत्री क्रामे,—द्वीक् छन्दोभ्योऽवपद्येत, तद्यस्यैतस्यैन्द्रायत्र्या एव तस्य स२याज्ये

[इडा (ळा) यास्त्वा। ऋ० ३,२९,४] [८] तै. ब्रा. १,१,६।
मै० ८

कुर्याद्, गायत्रो३ ह्यग्निर्गायत्रछन्दाः, स्व एवैन२ योनौ स्वे छन्दसि प्रतिष्ठापयत्या,—ग्नावै-
ष्णवमेकादशकपालं निर्वपे,—दग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्ध, वि-
ष्णवे शिपिविष्टाय त्र्युद्धौ घृते चरुं निर्वपेद्, यद्विष्णवे, विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञमेवालब्ध, यं शि-
पिविष्टे, पशवो वै शिपिविष्टं, पशूनेवावरुन्द्धे, यत् त्र्युद्धौ, त्रयो वा इमे लोका, इमानेव
लोकानाप्नोति, यद् घृते, तेजो वै घृतं, तेज एवावरुन्ध, आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत् पशु-
कामो, धेन्वा वै घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला,—स्तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, अग्नीषोमीयं
पुरोडाशं द्वितीयमनुनिर्वपेत्, तद्धूयो हव्यमुपागा,—न्नो अस्यान्य ईशे, यर्हि वा एतं पुरा ब्राह्म-
णा निरवप२स्तर्हिषा न कश्चनेश, न हि वा एतमिदानीं निर्वपन्त्यं,—थैषा२ सर्व ईशे, यदाग्ने-
यं,—स्तेजो वा अग्नि,—स्तेज एवावरुन्द्धे, यत्सौम्यः, सोमो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चसं, ब्रह्मवर्चसं
ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्द्धे, त३द्योऽसा आदित्यो घृते चरुस्तं ब्रह्मणे परिहरेयु,—स्तं चत्वारः प्राश्नीयु,
—स्तेभ्यः समानो वरो देय,—श्चतुर्वा इदमग्रे मिथुनमासीदे,—कश्चैका च, द्वौ च द्वे च,
त्रयश्च तिस्रश्च, चत्वारश्च चतस्रश्च, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै ॥८॥ ४८

फल्गुनीपूर्णमासे ब्राह्मणस्यादध्यात्, फल्गुनीपूर्णमासो वा ऋतूनां मुख,—मग्निर्देवतानां,
ब्राह्मणो मनुष्याणां, ग्रीष्मे राज३न्यस्यादध्याद्, ग्रीष्मे वा इन्द्रो वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वै राज३-
न्यो बुभूषन् जिघा२सति, शरदि वैश्यस्यादध्या,—दन्न२ वै शर,—दन्नेन वैश्यो भद्रो भवत्य,
—न्नाद्यमस्मा अवरुन्द्ध, यद्यन्यस्मिन्नृता आदधीत यदि वा अस्मै स एक ऋतुः शिवः स्याद-
थास्मा इतरेऽशिवा दुर्योणा भवेयु,—स्तद्यस्यैतत्सैव फल्गुनीपूर्णमास एव तस्यादध्यात्, तदस्मै
सर्व ऋतवः शिवा भवन्ति, सर्व एनमृतवो जिन्वन्ति, स२वत्सरस्य वा एतदा३स्य२ यत्
फल्गुनीपूर्णमा३स्यमह,—र्यत् फल्गुनीपूर्णमा३स्यमहरादध्यात् स२वत्सरस्यैनमासन्नपिदध्याद्,
द्व्यहे वा पुरःकाहे वाधेय,—स्तद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति, नैन२ स२वत्सरस्यास्यन्नपिदधाति,
तद्यद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति द्वितीयमेव सपत्नस्य भ्रातृव्यस्येन्द्रियं पशून् क्षेत्र२ वृञ्जान एति,
कृत्तिकासु ब्राह्मणस्यादध्या,—दाग्नेयीः कृत्तिका, आग्नेयो ब्राह्मणः, स्व एवैन२ योनौ स्वेऽहव्या-
धत्ते, प्रजापतेर्वा एतच्छिरो यत् कृत्तिका, अग्निरास्य२, शीर्ष्णामिवमद्यते, ऽन्नाद्यमस्मा अवरुन्धे,
सप्त कृत्तिकाः, सप्त शीर्षन् प्राणाः, प्राणानस्मिन् दधाति, रोहिण्यां पशुकामस्यादध्यात्,
सोमस्य वा एतन्नक्षत्र२ यद्रोहिणी, सोमो रेतोधा, रेतोऽस्मिन् दधात्यू,—क्षा वा इयमग्र

[९] काठ. ८,१। कपि. ६,६। तै. ब्रा. १,१,२। मा. श्री. १,५,१।

आसीत्, तस्यां देवा रोहिण्या२ वीरुधोऽरोहय२,—स्तद्यथेमा अस्या२ वीरुधो रूढा एवमस्मिन्
पशवो रोहन्ति य एव२ विद्वान् रोहिण्यामग्निमाधत्ते, रोहिण्या२ स्वर्गकामस्यादध्याद्,
रोहिण्या२ वै देवाः स्वरायन्, त्स्वरेवेति, कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका आचिन्वत, दिवमा-
रोक्ष्यामा, इति तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्, स एतामिष्टकामप्युपाधत्त, प्रथमा इव
दिवमाक्रमन्ता,—ऽथ स तामावृहत्, तेऽसुराः पापीया२सो भवन्तोऽपाभ्र२शन्त, या उत्तमा
आस्तां तौ युमश्वा अभवता२, यैऽधुरे तं ऊर्णावाभयो, यां तामिष्टकामावृहत् सा चित्राभवद्,
यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात् स चित्रायामग्निमादधीत, तद्यथैतस्यामावृढायामसुराः
पापीया२सो भवन्तोऽपाभ्र२शन्तैवमस्य सपत्नो भ्रातृव्यः पापीयान्भवन्नपभ्र२शते य एव२ विद्वा२-
श्चित्रायामग्निमाधत्ते, यः कामयेत, भगवन्नादः स्यामिति, स पूर्वासु फल्गुनीष्वग्निमादधीत,
भगस्य वा एतदहर्यत् पूर्वाः फल्गुनी,—भगवन्नादो भवत्य,—थ यः कामयेत, दानकामा मे
प्रजाः स्युरिति, स उत्तरासु फल्गुनीष्वग्निमादधीता,—ऽर्यम्णो वा एतदहर्यदुत्तराः फल्गुनी,—
दानमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, तासु राज३न्यस्यादध्याद्, दान२ ३ह्येष प्रजानामु-
पजीवति, दानमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यत्पौर्णमासी
चामावास्या च, यत्पौर्णमास्या२ वामावास्याया२ वाग्निमाधत्ते प्रजापतिमेव प्रत्तं दुहे, देवा-
ना२ वा एते सदोहविर्धाने यत्पौर्णमासी चामावास्या च, यत्पौर्णमास्या२ वामावास्याया२ ४९
वाग्निमाधत्त उभे पुण्याहे उभे यज्ञिये ॥ ९ ॥

न पुरा सूर्यस्योदितोर्मन्थितवा, असुर्या३ विदेवा आधीयत, उद्यत्सु रश्मिषु मथ्य,—स्तत्स-
देवः सेन्द्र उभयोरह्नो रूपं आधीयते, चतुर्वि२शत्या प्रक्रमेष्वाधेय,—श्चतुर्वि२शत्यक्षरा वै गाय-
त्री, गायत्रमग्नेश्छन्दः, स्व एवैन२ योनौ स्वे छन्दस्याधत्ते, तद्यस्यैतत्सैदपरिमित एव तस्याद-
ध्यात्, क्षेष्णु वै परिमित,—मपरिमितमेवास्मै जीवनमवरुन्द्धे, ऽग्निर्वै सृष्टः प्रजापतेरध्युदक्रा-
मत्, स प्रजापतिरबिभे—दुद एवासा अभूदिदमहमिति, तस्मिन्ननुनिष्क्रम्याजुहो,—देतर्हि खलु
वा एष सृज्यते यर्ह्याधीयते, तदाहु,—रग्ना एवानुद्रुत्याथाग्निहोत्र२ होत३व्यमिति, तन्नेव
कर्तवा, अयुतं तत् कुण्ड्याग्रीय तद्यज्ञस्य क्रियते यद्योनिः परमवरं कुर्याद,—प्रजनिष्णुः स्या,—

[१०] काठ. ८,३। कपि. ६,८। मा. ३,९। काण्व. ३,९-१०।

द्वी२ष्येवं पूर्वाणि निरुप्याथ सायमग्निहोत्रं जुहुयात् ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ इति तत्सायं
ज्योतिषा रेतो मध्यतो दधाति ॥ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ इति प्रातस्तत्सायं ज्योतिषा२
रेतो मध्यतो हितं ॥ प्रातः प्रजनयामक,—र्देवाश्च वा असुराश्च स२यत्ता आस,—न्थेन्द्रोऽग्निमाधत्त,
तं देवा आबिभयु,—रद एवासा अग्निं गोपायमानोऽग्निहोत्रं गोपायमानो भविष्यति, न ना उपै-
ष्यत्य,—भि नो जेष्यन्तीति, तेऽब्रुवन्, यदेव त्वं किंच करवो यद्धुना यज्जिना यद्विन्दासे तत्ते-
ऽग्निहोत्रं कुर्मो, ऽथेहीति, स वा ऐत्, तस्माद्राजन्यस्याग्निहोत्रमहोत३व्य२, य३द्ध्येवैष किंच
करोति यद्धन्ति यज्जिनाति यद्विन्दते यदेन२ विश उपतिष्ठन्ते तद्राजन्यस्याग्निहोत्र२ होतव्य२,
राजन्यस्याग्निहोत्रा३श्न होत३व्या,—मिति मीमा२सन्ते, यद्धुत्वा न जुहुयाद्धि यज्ञं छिन्द्या,—
ज्जीर्येत वा प्र वा मीयेत, पौर्णमासीममावास्या२ वा प्रति होत३व्य,—मयो अग्न्युपस्थान२ वा
चयित३व्य,—स्तेनास्य दर्शपूर्णमासौ संतता अविच्छिन्नौ भवतः ॥१०॥ ५०-५५

यं कामयेत, पशुमान्त्स्यादिति, यो बहुपुष्टस्तस्य गृहादग्निमाहरेयु,—र्यथा वा एव२ सृ-
ज्यमानं पशवोऽन्वसृज्यन्तैवमेनमाह्रियमाणं पशवोऽन्वाय,—न्त्येष हि रुद्रो यदग्नि,—र्थ यं कामये-
ता,—ऽन्नादः स्यादिति, तस्य भ्राष्ट्राद्दक्षिणाग्निमाहरेयु,—रेष वा अग्नीनामन्नादो, ऽन्नकरुणं भ्र-
ष्ट्र,—मन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, तदाहु,—र्यथा वृपलो निजः पुंल्कुकश्चिकित्सेदेव२ स, इति स
मथ्य एव, स श२ यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, यः सोमेनायक्ष्यमाणोऽग्निमादधीत न पुरा
स२वत्सराद्धवी२षि निर्वपेद्, रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्या,—देते वै पशवो यद्व्रीहयश्च
यवाश्च, तेषां चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत्, तद्याभ्यो देवताभ्यो-
ऽग्निमाधत्ते यत्ताभ्यो न जुहुयात्ताभ्या आवृश्चेता,—ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, ताभ्या आज्यस्य
होत३व्यं, तेन ताभ्यो नावृश्चते, ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, स२वत्सरे हवी२षि निर्वपति,
तदस्य स२वत्सरान्तर्हितो रुद्रः पशून्न हिनस्ति, स२वत्सरमग्निहोत्रमहौषीत्, तत्तपोऽविदत्, स
सर्वेण साक२ स्वर्गं लोक२ समारुक्षत्, त्रिर्वा इद२ विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीय२ सभ्यं,
तद्विराजमाप,—दन्न२ वै विरा,—डन्न२ वावैतदापन्, मध्याधिदेवनं राजन्यस्य जुहुयाद्वारुण्य
ऋचा, वरुणो वै देवाना२ राजा, राज्यमस्मा अवरुन्द्धे, हिरण्यं निधाय जुहोत्य,—ग्निम-
स्येव जुहोत्यायतनवत्य,—न्योऽध्वर्युः स्याद्यदनायतने जुहुयाच्, शतमस्मा अश्वान् प्रयच्छेत्,

[११] काठ. ८,७,११। कपि. ७,३-४।

पशो आनानां,—स्तोयावद् प्रियमेव पशूनां द्विपदां चतुष्पदां पश्वस्तावत्प्रियः पशूनां द्विपदां चतुष्पदां
भवति य एवं२ विद्वान् वराहविहतमुपास्याग्निमाधत्ते, एतद्वा अस्या अनभिमृत२ यद्वल्मीको,
यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाध३त्तेऽस्या एवैनमनभिमृतेऽध्याधत्ते, रसो वा ए३षोऽस्या उद्दीपर्य-
द्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाध३त्तेऽस्या एवैनं२ रसेऽध्याधत्ता, ऊर्ग्वा ए३षोऽस्या
उद्दीपद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाध३त्तेऽस्या एवैनमूर्ज्यध्याधत्ते, प्रजापतेर्वा एष
स्तनो यद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्ते प्रजापतिरेवास्मै स्तनमपिदधात्य,—न्नाद्यमस्मा
अवरुन्धे, ऽक्षुध्यता२ स्वानां पुरःस्थाता भवति य एवं२ वेद,—तावद्वा अमुष्या इह यज्ञिय२
यदूषा, यदूषानुपकीर्याग्निमाध३त्तेऽमुष्या एवैनं२ यज्ञियेऽध्याधत्ते, न वा अनूषरिहः पशवो
रेतो दधते, यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्ते रेत एवैतद्दधाति, पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, एष वा
अग्निर्वैश्वानरो यदसा आदित्यः, स यदिहासीत्तस्यैतद्भस्म यत्सिकता, यत्सिकता उपकीर्या-
ग्निमाधत्ते स्व एवैनं२ योनौ स्वे भस्मन्याधत्ते, शिथिरा वा इयमग्र आसीत्, तां प्रजापतिः
शर्कराभिरदृ२हद्, यं शर्करा उपकीर्याग्निमाधत्त, इमामेव तद् दृ२हति धृत्यै, तद्यथेमां
प्रजापतिः शर्कराभिरदृ२हदेवमस्मिन् पशवो दृ२हन्ते य एवं२ विद्वाञ्शर्करा उपकीर्याग्निमाधत्त,
इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्, तस्य या विप्रुषा आस२स्ताः शर्करा अभवन्, यं शर्करा उपकीर्या-
ग्निमाधत्ते वज्रमेव सपत्नाय भ्रातृव्याय प्रहरति, यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेद्, वज्रमेवास्मै
प्रहरति, स्तृणुत एवं, पुरीषी,—ति वै गृहमेधिनमाहुः, पुरीषस्य खलु वा एतन्निरूप२
यदाखुकिरि,—यदाखुकिरिमुपकीर्याग्निमाधत्ते पुरीषी गृहमेधी भवति ॥ ३ ॥ ३९
अग्नि२ वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्, यत्प्राञ्चमहरन्त्सर्वः पुरोऽभवद्, यत्प्रत्यञ्चमहरन्त्सर्वः
पश्चाभवत्, तमश्वेन पूर्ववाहोदवह२स्तदश्वस्य पूर्ववाहः पूर्ववाट्त्वम्,—ग्नैवै विभक्त्या अश्वोऽभ्याधेये
दीयते, ऽविभक्तो वा एतस्याग्निरनाहितो योऽश्वमग्न्याधेये न ददात्य,—थ योऽश्वमग्न्याधेये
ददाति विभक्तय, विभाज्यैवैनमाधत्ते, स्तोमपुरोगवा वै देवा असुरानभ्यजयन्ने,—ष खलु
वै स्तोमो यदश्वो, यदश्वं पुरस्तान्नयन्त्यभिजित्या, अभिजित्यैवैनमाधत्ते, प्रजापतेर्वै चक्षुर-
श्वयत्, तस्य यः श्वयथा आसीत् सोऽश्वोऽभवद्, यदश्वं पुरस्तान्नयन्ति यजमानायैव चक्षुर्दधाति,
न पराङवसृज्यो, यत् पराञ्चमवसृजेद्यजमानं चक्षुर्जह्याद,—न्धः स्यात्, प्रत्यवगृह्याधेयो,

[४] तै. ब्रा. १,१,५ । काठ. ८,५ । कपि. ७,१-२ ।

यजमानायैव चक्षुः प्रत्यवाग्रहीं,—न्नं पदं आधेयो, वास्तव्यं कुर्याद्रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः
स्यात्, पार्श्वत इतो वेतो वाधेयो, न वास्तव्यं करो,—त्यघातुकोऽस्य पशुपतिः पशून्भवति,
गायत्रीं२ वै देवा यज्ञमच्छ प्राहिण्वन्, त्सा रिक्तागच्छत्तस्या अग्निस्तेजः प्रायच्छ३त्, सोऽजो
ऽभवद्, यदजमग्न्याधेये ददाति तेज एवावरुन्धे, ऽग्नीधे देयो, यज्ञमुख२ वा अग्नी,—द्यज्ञ-
मुखेनैव यज्ञमुख२ समर्धयति, धेनुं चानड्वाहं च ददाति, तत्सर्व२ वयोऽवरुन्द्ध, एतद्वै
सर्व२ वयो यद्धेनुश्चानड्वा२,—श्चैतौ वै यज्ञस्य माता च पिता च यद्धेनुश्चानड्वा२,—श्चाज्यं च
पयश्च धेन्वाः पुरोडाशश्च चरुश्चानडुह,—स्तदाहुः, कामदुघा२ वा एषोऽवरुन्द्धे योऽग्न्याधेये
धेनुं चानड्वाहं च ददातीति, तद्येषां पशूनां भूयिष्ठं पुष्टिं कामयेत तेषां दित्यौहीं२ वयसो दद्या-
दित्यवाहं च मुष्करं, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै, वाग्वै सोमक्रयणी, दित्यौहीं२ वयसः
सोमक्रयणी, यद्दित्यौहीं२ वयसो ददाति वाचमेवावरुन्धे, चारु वदति य एवं२ वेदो,—
पबर्हण२ सर्वसूत्रं देयं, छन्दसा२ वा एतन्निरूप२ यदुपबर्हण२ सर्वसूत्र२, यदुपबर्हण२ सर्वसूत्रं
ददाति छन्दा२स्येवावरुन्द्धे, पशवो वै छन्दा२सि, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽयज्ञियो वै पुरुषो-
ऽमेध्य आहनस्याज्जायते, पुरुषक्षीरं धयति, हिरण्यं ददात्यात्मानमेव तेन पुनीते, शतमानं
भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यो, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, पर्वयोर्द्विर्विपोद्धे त्रि२शन्माने देये,
उत्तरस्मि२श्चत्वारि२शन्मानं, तदेनमुदग्रहीत्, तेन स उत्तर२ वसीयाञ्श्रेयान्भव,—त्यज्जातो
वै तावत्पुरुषो यावदग्निं नाधत्ते, स वै तर्ह्येव जायते यर्ह्यग्निमाधत्ते, क्षौमे वसाना अग्निमा-
दधीयातां, तं अध्वर्यवे देये, उल्बस्य वा एतन्निरूप२ यत् क्षौम,—मुल्बमेवापलुम्पेते,
हिरण्य२ सुवर्णमुपास्याग्निराधेयो, हिरण्य२ वा अग्नेस्तेजः, सतेजसमेवैनमाधत्ते, तन्न
निरस्तवै, यथानुहितं निरस्येदेवं तद्यन्निरस्येदनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, तन्न निरस्तवा,
अननुध्याय्यक्षोधुको भवति ॥ ४ ॥ ४०
यो वा अस्यायं मनु३षोऽग्निरेतमुपासीतो,—न्नमत्येतमु,—पासीनः प्रजां२ विन्दत, एतमुपा-
सीनं पशवा उपतिष्ठन्ते, यदेतमभागधेयमुत्सादयेत तस्मा आवृश्चेता, ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्,
तद्य वनस्पतय आरण्या आ३द्यं फलं भूयिष्ठं पच्यन्ते तस्य पर्णीभ्या२ यवमयश्चापर्णो व्रीहिमयश्च
संगृह्योपास्याधेय,—स्तदेनं द्वयं भागधेयमभ्युत्सादयामकग्राम्यं चारण्यं च, तेन तस्मै नावृश्चते,
ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, यवो वै पूर्व ऋतुमुखे पच्यत, इतः खलु वा एतं प्राञ्चमुद्धरन्ति,

[५] कपि. ६,९ । तै. ब्रा. १,१,५; १,१,३ ।

तस्माद्यवमयः पश्चादुपास्यो व्रीहिमयः पुर,—स्तद्यस्यैतस्यैव यवमयमेव तस्य पश्चादुपास्येद्व्रीहिमयं पुरः,
प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ, यज्ञमस्य देवा उपजीवन्ति वर्द मनुष्या, अन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे,
ऽक्षुध्यता२ स्वानां पुरः स्थाता भवति य एवं२ वेद,—तद्ध स्म वा आह केशी सात्यकामिः
केशिनं दार्भ्यम्,—न्नादं जनताया एवमिव वयमेतस्मा अन्न्याधेयेऽक्रमंत्रारुध्म यथैषोऽक्रमेति,
तदाहुः, सर्व२ वावैतस्येदमन्न२, यजमानं ३त्वेवास्यैतदासन्नपिदधाति, तदेव२ वेदितोनै
३त्वेवं कर्तवा इति, त्रिर्वा इदं प्रजापतिः सत्यं२ व्याहरत् ॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इतीदं२ वाव भूरिदं
भुवोऽदः ३स्व,—स्तद्यो ब्राह्मणं आङ्गिरसः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवोऽङ्गिरसां त्वा देवाना२
व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुवः ३स्वरि,—ति पुरो, द्विःपश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा यज्ञः
सत्ये प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ यो ब्राह्मणो वैश्वानरः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवो, ऽग्नेष्ट्वा
देवस्य व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुव ३स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा
यज्ञः सत्ये प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ राज३न्यस्यादध्याद्, भूर्भुवा, इन्द्रस्य त्वा मरु-
त्वतो व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुव ३स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा
यज्ञः सत्ये प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—न्द्रो वै राजन्यो देवतया मारुती विड्,—ग्रो खलु वै रा-
जन्यो भद्रो भवति, विशमस्मा अवरुन्द्धे, ऽथ वैश्यस्यादध्याद्, भूर्भुवो, मनोष्ट्वा ग्राम-
ण्यो व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुवः ३स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा
यज्ञः सत्ये प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपति,—र्ग्रामणीभ्येन खलु वै वैश्यो भद्रो भवति, ग्रामणीभ्यमस्मा
अवरुन्द्धे, ऽग्नि वै सृष्टं उल्बमपलुम्पं नाशक्नोद्, तस्य प्रजापतिराग्नेयपावमानीभिरुल्बमपालु-
म्पद्, यदाग्नेयपावमानीभिराश्वत्थीः समिध आदधात्युल्बमेवास्यापलुम्पति, पुनात्येन२, यथा
शिशुं माता रेढि वत्सं श्वा गौरिवमेन२रेढ्य,—ग्नेर्वै सृष्टस्य तेजा उददीप्यत, तदश्वत्थं प्राविशद्,
यदाश्वत्थीः समिध आदधाति तेज एवावरुन्द्धे, ऽग्निर्वै सृष्टो बिभिवामवनतिष्ठदसमिध्यमानः,
स प्रजापतिरबिभेन्, मा२ वावाय२ हि२सिष्यतीति, त२ शम्या समैन्धत्, तमशमयन्,
तं शम्याः शमीत्व२, यं शमीमयीः समिध आदधाति समेनमिन्धे, शमयत्येव, स शं२
यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, देवा यत्रोर्ध्व२ व्यमृजन्त तत उदुम्बरा उदतिष्ठद्, यदौदुम्बरी२
समिध आदधात्यूर्जमेवावरुन्द्धे ॥५॥ ४१
विग्निरुरो वा एषं पशुभिराधीयत, एषं हि क्रूरो यदग्निस्तद्, वाचयेद्, घर्मः शिरस्त,—
दयमग्निः सप्रियः पशुभिरेव, पुरीषमसीति, तदेन२ सप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्यच्च

[६] तै. ब्रा. १,१,७ ।

शुक्र शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमशीथा, इति रुचमेवैनमजीगमदे,—ष वा अग्निर्वैश्वानरो यदसा
आदित्यो, यदुत्तरतो हरेदेषोऽतः स्याद,—यमितो जीवन्तमेवैनं प्रदहेत, सदक्षिणत एव हा-
३र्यः, स यदा समयाध्वं गच्छेदथ यजमानो वरं दद्यात्, तद्विराजं मध्यतो ऽधित, विराड्वेषा-
स्याग्नीन्विदधते, पशवो वै विराट् पशून्वा एतन्मध्यतोऽधित, ऽसृष्टो वा अग्निरासीद,—थ
प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता अन्वं तमुसीमाँल्लोकाननुव्युनश्यन्, त्सोऽशोचत, सोऽतप्यत,
ततोऽग्निरसृज्यत, तमग्नि२ सृष्टमवोऽन्यदधात्, त२ या अस्मिँल्लोक आस२स्ता अभिसमा-
वर्तन्त, तं गुल्फदघ्नमुदगृह्णात्, त२या उत्तरस्मिँल्लोक आस२स्ता अभिसमावर्तन्त, तं जानु-
दघ्नं तं नाभिदघ्नं तम२सदघ्नं तं कर्णदघ्नमुदगृह्णात्, त२ या उत्तरस्मिँल्लोक आस२स्ता अभिसमा-
वर्तन्त, तं कर्णदघ्नं नात्युदगृह्णो, यत्कर्णदघ्नमत्युद्गृह्णीयाद्, यजमानो वर्षिष्ठः पशूना२, यज-
मानमुपरिष्टादग्निरभ्यवदहेद्, तदाहुः, कथमग्नेर्ब्रह्मणाहितं प्रच्यावयेयुः, शिथिर२ वावैनु-
मेतदुकः, परेन२ वपतीति, तमनिधायैवाथ जानुदघ्नमुद्गृह्णीयाद,—थ नाभिदघ्नमथा२सदघ्नं
तद्यथैवेदं प्रजापतिः प्रजा एभ्यो लोकेभ्योऽभिसमावर्तन्तैवमेव यजमानं पशव एभ्यो लोकेभ्योऽभि-
समावर्तन्ते य एवं२ विद्वानग्निमाध३त्ते, ऽग्निना वै देवतया विष्णुना यज्ञेन देवा असुरान्
प्रच्लीय वज्रेणान्ववासृजन्, यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान्वा स्यात्तस्य रथचक्रं त्रिरनुपरिवर्तयेयुस्त-
द्, यथैव देवा असुरानग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रच्लीय वज्रेणान्ववासृजन्नेवमेव यजमानः
सपत्नं भ्रातृव्यमग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रच्लीय वज्रेणान्ववसृजति य एवं२ विद्वानग्नि-
माधत्ते ॥६॥ ४२
एष वै प्रजापती रूपेण यत् पूर्णा२स्रुग्, यत् पूर्णा२ स्रुचं जुहोति प्रजापतिमेवाप्नोति, सप्त
ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा, इत्येतावतीर्वा अग्नेस्तन्वः षोढा सप्त सप्त, यो वा अस्यैता अग्नि-
मादधानो वितर्पयति वि ह तृप्यति, ता एवास्य तर्पयति, शमीमयीस्तिस्रः समिधा आदधाति
घृतान्वक्ता घृतस्तोम्याभिः, समेनमिन्धे, शमयत्येव, स शं२यजमानाय भवति शं पशुभ्यो-
यं वा एषु त्रिषु लोकेष्वग्नयस्तं समागच्छन्त्य,—स्यं द्रविणमाददामहा, अति नोऽक्रमीद्, हव्यवाड् ४३
भवतीति, तं जुहुयात् ॥
यं अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः समागच्छन्तीषमूर्ज२ वसानाः ।
ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिमाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परेत ॥ ४४

[७] मै. १,६,१ । तै. ब्रा. १,१,८ । वा. १७,७९, ३४,१५ । ऋग्. १८,७९; ३३,९ ।

स्वाहेति तदिमेमेव द्रविणवन्तं कृत्वैष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परा-
यन्ति, तद्वाचयेद्, घर्मः शिर,—स्तद्युमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसीति, तदेन२
संप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्यत्ते शुक्र शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादुघा, इति संतेज-
समेवैनमाधत्ते ॥ ४५

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ ४६

इति हव्यवाहमेवैनमक,—रग्नेर्वै सृष्टस्य पशवोऽक्ष्या अवक्शाय प्रापतन्, स एतां प्रजापतिर्वारवन्ती-
यमसजत्, तानवारयत,—तर्हि खलु वा एष सृज्यते यर्ह्याधीयते, तद्यथैतस्मात्सृष्टात्पशवः
प्रापतन्नेवमस्मादाहितात्पशवः प्रपतन्त्ये,—ष हि रुद्रो यदग्नि,—स्तथ एव२ विद्वान्वारवन्तीयं
गायते पशूनेव वारयते, वारवन्तीय२ वै सृष्ट्वा प्रजापतिर्यं काममकामयत तमाप्नोत्, तमेव
काममृध्नोति यजमानो यं कामं कामयमानोऽग्निमाधत्ते य एव२ विद्वान्वारवन्तीयं गायते, ऽग्निर्वै
क्रव्यादिश्वदाव्य इमांल्लोकानदहत्, तं प्रजापतिर्वारवन्तीयं गायमानो वरुणं बिभ्रत् प्रत्यैत्,
तमशमयद्, यदेवास्य क्रव्याद्यद्विश्वदा३व्यं तच्छमयति य एव२ विद्वान् वारवन्तीयं गायते,
तस्माद्वरुणो यज्ञावचरः स्या,—न्न त्वेनेन जुहुयाद्, यद्वा इद२ सर्व२ यच्चवद्यच्चनिष्यद्यदिमे
अन्तरा द्यावापृथिवी तद्वामदेव्यं तदेवावरुन्द्धे य एव२ विद्वान् वामदेव्यं गायते, ब्रह्मणो वा एष
रसो यद्यज्ञायज्ञिय२, यद्यज्ञायज्ञियं गायते ब्रह्मण्येव रसं दधाति ॥ ७ ॥ ४७

अग्नि२ वै सृष्टं प्रजापतिः पवमानेनान्ना उपाधमद्, यत् पवमानाय निर्वपत्युपैवैनं तद्धमति, यत्
पावकाय पुनात्येन२, यच्छुचये यदेवास्यापूतं तदेवैन पुनाति, यत् पवमानाय निर्वपति,
पशवो वै पवमानः पशूनेवावरुन्धे, यत् पावकाया,—ऽन्न२ वै पावक,—मन्नमेवावरुन्धे, यच्
शुचये, पूत एवास्मिन् रुचं दधाति, यं कामयेता,—ऽपतरं पापीयान्त्स्यादिति, तस्यैकमेक२
हवी२षि निर्वपेत्, तदेनमपाग्रहीत्, तेन सोऽपतरं पापीयान् भवत्यं,—थ यं कामयेत, न वसी-
यान्त्स्यान्न पापीयानिति, तस्य सर्वाणि साक२ हवी२षि निर्वपेत्, तदेन२ स२रुणद्धि, तेन
स न वसीयान्न पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेतो,—त्तर२ वसीयाञ्छ्रेयान् त्स्यादिति, तस्या-
ग्नये पवमानाय निरुप्याथ पावकाय च शुचये चोत्तरे हविषी समानबर्हिषि निर्वपेत्, तदेनमुदग्रहीत्,
तेन स उत्तर२ वसीयाञ्छ्रेयान् भवत्य,—थ यस्य त्रिष्टुभौ वानुष्टुभौ वा जगती वा स२या३ज्ये
स्यातामति गायत्रं क्रामे,—द्वीक् छन्दोभ्योऽवपद्येत, तद्यस्यैतेऽग्नाय त्र्या एव तस्य स२याज्ये

[इडा (ळा) यास्त्वा। ऋ० ३,२९,४] [८] तै. ब्रा. १,१,६।
मै० ८

कुर्याद्, गायत्रो३ ह्यग्निर्गायत्रछन्दाः, स्व एवैन२ योनौ स्वे छन्दसि प्रतिष्ठापयत्या,—ग्नावै-
ष्णवमेकादशकपालं निर्वपे,—दग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्ध, वि-
ष्णवे शिपिविष्टाय त्र्युद्धो घृते चरुं निर्वपेद्, यद्विष्णवे, विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञमेवालब्ध, यं शि-
पिविष्टं, पशवो वै शिपिविष्टं, पशूनेवावरुन्द्धे, यत् त्र्युद्धो, त्रयो वा इमे लोका, इमानेव
लोकानाप्नोति, यद् घृते, तेजो वै घृतं, तेज एवावरुन्ध, आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत् पशु-
कामो, धेन्वा वै घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला,—स्तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, अग्नीषोमीयं
पुरोडाशं द्वितीयमनुनिर्वपेत्, तद्भूयो हव्यमुपागा,—न्नो अस्यान्य ईशे, यर्हि वा एतं पुरा ब्राह्म-
णा निरवप२स्तर्हिपा न कश्चनेश, न हि वा एतमिदानीं निर्वपन्त्य,—ग्नेषा२ सर्व ईशे, यदाग्ने-
यं,—स्तेजो वा अग्नि,—स्तेज एवावरुन्द्धे, यत्सौम्यः, सोमो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चसं, ब्रह्मवर्चसं
ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्द्धे, त३द्योऽसा आदित्यो घृते चरुस्तं ब्रह्मणे परिहरेयु,—स्तं चत्वारः प्राश्नीयु,
—स्तेभ्यः समानो वरो देय,—श्चतुर्वा इदमग्रे मिथुनमासीत्,—कश्चैका च, द्वौ च द्वे च,
त्रयश्च तिस्रश्च, चत्वारश्च चतस्रश्च, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै ॥८॥ ४८

फल्गुनीपूर्णमासे ब्राह्मणस्यादध्यात्, फल्गुनीपूर्णमासो वा ऋतूनां मुख, —मग्निर्देवतानां,
ब्राह्मणो मनुष्याणां, ग्रीष्मे राज३न्यस्यादध्याद्, ग्रीष्मे वा इन्द्रो वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वै राज३-
न्यो बुभूषन् जिघा२सति, शरदि वैश्यस्यादध्या,—दन्न२ वै शर,—दन्नेन वैश्यो भद्रो भवत्य,
—न्नाद्यमस्मा अवरुन्द्ध, यद्यन्यस्मिन्नृता आदधीत यदि वा अस्मै स एक ऋतुः शिवः स्याद-
थास्मा इतरेऽशिवा दुर्योणा भवेयु,—स्तद्यस्यैतत्सैव फल्गुनीपूर्णमास एव तस्यादध्यात्, तदस्मै
सर्व ऋतवः शिवा भवन्ति, सर्व एनमृतवो जिन्वन्ति, स२वत्सरस्य वा एतदा३स्य२ यत्
फल्गुनीपूर्णमा३स्यमह,—र्यत् फल्गुनीपूर्णमा३स्यमहरादध्यात् स२वत्सरस्यैनमासन्नपिदध्याद्,
द्व्यहे वा पुरकाहे वाधेय,—स्तद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति, नैन२ स२वत्सरस्यासन्नपिदधाति,
तद्यद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति द्वितीयमेव सपत्नस्य भ्रातृव्यस्येन्द्रियं पशून् क्षेत्र२ वृञ्जान एति,
कृत्तिकासु ब्राह्मणस्यादध्या,—दाग्नेयीः कृत्तिका, आग्नेयो ब्राह्मणः, स्व एवैन२ योनौ स्वेऽहन्ना-
धत्ते, प्रजापतेर्वा एतच्छिरो यत् कृत्तिका, अग्निरास्य२, शीर्ष्णोन्नमद्यते, ऽन्नाद्यमस्मा अवरुन्धे,
सप्त कृत्तिकाः, सप्त शीर्षन् प्राणाः, प्राणानस्मिन् दधाति, रोहिण्यां पशुकामस्यादध्यात्,
सोमस्य वा एतन्नक्षत्र२ यद्रोहिणी, सोमो रेतोधा, रेतोऽस्मिन् दधात्य,—ग्रां वा इयमग्र

[९] काठ. ८,१। कपि. ६,६। तै. ब्रा. १,१,२। मा. श्री. १,५,१।

आसीत्, तस्यां देवा रोहिण्या२ वीरुधोऽरोहय२,—स्तद्यथेमा अस्या२ वीरुधो रूढा एवमस्मिन्
पशवो रोहन्ति य एव२ विद्वान् रोहिण्यामग्निमाधत्ते, रोहिण्या२ स्वर्गकामस्यादध्याद्,
रोहिण्या२ वै देवाः स्वरायन्, त्स्वरेवैति, कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका अचिन्वत, दिवमा-
रोक्ष्यामा, इति तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्, स एतामिष्टकामप्युपाधत्त, प्रथमा इव
दिवमाक्रमन्ता,—ऽथ स तामावृहत्, तेऽसुराः पापीया२सो भवन्तोऽपाभ्र२शन्त, या उत्तमा
आस्तां तौ युमश्वा अभवता२, येऽघुरे त ऊर्णावाभयो, यां तामिष्टकामावृहत् सा चित्राभवद्,
यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात् स चित्रायामग्निमादधीत, तद्यथैतस्यामावृढायामसुराः
पापीया२सो भवन्तोऽपाभ्र२शन्तैवमस्य सपत्नो भ्रातृव्यः पापीयान्भवन्नपभ्र२शते य एव२ विद्वा२-
श्चित्रायामग्निमाधत्ते, यः कामयेत, भगयुन्नादः स्यामिति, स पूर्वासु फल्गुनीष्वग्निमादधीत,
भगस्य वा एतदहर्यत् पूर्वाः फल्गुनी,—भगयुन्नादो भवत्य,—थ यः कामयेत, दानकामा मे
प्रजाः स्युरिति, स उत्तरासु फल्गुनीष्वग्निमादधीता,—ऽर्यम्णो वा एतदहर्यदुत्तराः फल्गुनी,—
दीनमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, तासु राज३न्यस्यादध्याद्, दान२ ३ह्येषं प्रजानामु-
पजीवति, दानमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यत्पौर्णमासी
चामावास्या च, यत्पौर्णमास्या२ वामावास्याया२ वाग्निमाधत्ते प्रजापतिमेव प्रत्तं दुहे, देवा-
ना२ वा एते सदोहविर्धाने यत्पौर्णमासी चामावास्या च, यत्पौर्णमास्या२ वामावास्याया२ ४९
वाग्निमाधत्त उभे पुण्याहे उभे यज्ञिये ॥ ९ ॥

न पुरा सूर्यस्योदेतोर्मन्थितवा, असु३र्या विदेवा आधीयत, उद्यत्सु रश्मिषु मन्थ्य,—स्तत्स-
देवः सेन्द्र उभयोरह्नो रूप आधीयते, चतुर्वि२शत्यां प्रक्रमेष्वाधेय,—श्चतुर्वि२शत्यक्षरा वै गाय-
त्री, गायत्रमग्नेश्छन्दः, स्व एवैन२ योनौ स्वे छन्दस्याधत्ते, तद्यस्यैतत्सेदपरिमित एव तस्याद-
ध्यात्, क्षेष्णु वै परिमित,—मपरिमितमेवास्मै जीवनमवरुन्द्धे, ऽग्निर्वै सृष्टः प्रजापतेरध्युदक्रा-
मत्, स प्रजापतिरबिभे—दिदं एवासा अभूदिदमहमिति, तस्मिन्ननुनिष्क्रम्याजुहो,—देतर्हि खलु
वा एष सृज्यते यर्ह्याधीयते, तदाहु,—रग्ना एवानुदृत्याथाग्निहोत्र२ होत३व्यमिति, तन्नेव
कर्तवा, अयुतं तत् कुर्व्याग्नीयं तद्यज्ञस्य क्रियते यद्योनिः परमवरं कुर्याद,—प्रजनिष्णुः स्या,—

[१०] काठ. ८,३। कपि. ६,८। बा. ३,९। कात्या. ३,९-१०।

द्धवी२ष्येव पूर्वाणि निरुप्याथ सायमग्निहोत्रं जुहुयात् ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ इति तत्सायं
ज्योतिषा रेतो मध्यतो दधाति ॥ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ इति प्रातस्तत्सायं ज्योतिषा२
रेतो मध्यतो हितं ॥ प्रातः प्रजनयामक,—देवाश्च वा असुराश्च स२यत्ता आस,—न्नथेन्द्रोऽग्निमाधत्त,
ते देवा अबिभयु,—रिद एवासा अग्नि गोपायमानोऽग्निहोत्रं गोपायमानो भविष्यति, न ना उपै-
ष्यत्य,—भि नो जेष्यन्तीति, तेऽब्रुवन्, यदेव त्वं किंच करवो यद्धना यजिना यद्विन्दासै तच्चे-
ऽग्निहोत्रं कुर्मो, ऽथेहीति, स वा ऐत्, तस्माद्राजन्यस्याग्निहोत्रमहोत३व्य२, य३द्वयेवैव किंच
करोति यद्धन्ति यजिनाति यद्विन्दते यदेन२ विश उपतिष्ठन्ते तद्राजन्यस्याग्निहोत्र२ होतव्य२,
राजन्यस्याग्निहोत्रा३न्न होत३व्या,—मिति मीमा२सन्ते, यद्धुत्वा न जुहुयाद्धि यज्ञं छिन्द्या,—
ज्जीर्येत वा प्र वा मीयेत, पौर्णमासीममावास्या२ वा प्रति होत३व्य,—मथो अग्न्युपस्थान२ वा
चयित३व्य,—स्तेनास्य दर्शपूर्णमासौ संतता अविच्छिन्नौ भवतः ॥१०॥ ५०-५५

यं कामयेत, पशुमान्त्स्यादिति, यो बहुपुष्टस्तस्य गृहादग्निमाहरेयु,—र्यथा वा एव२ सृ-
ज्यमानं पशवोऽन्वसृज्यन्तैवमेनमाह्रियमाणं पशवोऽन्वाय,—न्त्येष हि रुद्रो यदग्नि,—रथ यं कामये-
ता,—ऽन्नादः स्यादिति, तस्य भ्राष्ट्राद्दक्षिणाग्निमाहरेयु,—रेष वा अग्नीनामन्नादो, ऽन्नकरणं भ्रं-
ष्ट्र,—मन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, तदाहु,—र्यथा वृषलो निजः पुल्कुकश्चिकित्सेदेव२ स, इति स
मंध्य एव, स श२ यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, यः सोमेनायक्ष्यमाणोऽग्निमादधीत न पुरा
स२वत्सराद्धवी२षि निर्वपेद्, रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्या,—देते वै पशवो यद्व्रीहयश्च
यवाश्च, तेषां चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत्, तद्याभ्यो देवताभ्यो-
ऽग्निमाधत्ते यत्ताभ्यो न जुहुयात्ताभ्या आवृश्चेता,—ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यान्, ताभ्या आज्यस्य
होत३व्यं, तेन ताभ्यो नावृश्चते, ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, स२वत्सरे हवी२षि निर्वपति,
तदस्य स२वत्सरान्तर्हितो रुद्रः पशून्न हिनस्ति, स२वत्सरमग्निहोत्रमहोषीत्, तत्तपोऽविदत्, स
सर्वेण साक२ स्वर्गं लोक२ समारुक्षत्, त्रिर्वा इद२ विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीय२ सभ्यं,
तद्विराजमाप,—दन्न२ वै विरा,—डन्न२ वावैतदापन्, मध्याधिदेवने राजन्यस्य जुहुयाद्वारुण्य
ऋचा, वरुणो वै देवाना२ राजा, राज्यमस्मा अवरुन्द्धे, हिरण्यं निधाय जुहोत्य,—ग्निम-
त्येव जुहोत्यायतनवत्य,—ध्वोऽध्वर्युः स्याद्यदनायतने जुहुयाच्, शतमस्मा अश्वान् प्रयच्छेत्,

[११] काठ. ८,७,११। कपि. ७,३-४।

पशो जानाना,—स्तथावत् प्रियमेव पशूनां द्विपदां चतुष्पदां पयस्तावत्प्रियः पशूनां द्विपदां चतुष्पदां भवति य एवं विद्वान् वराहविहतमुपास्याग्निमाधत्ते, एतद्वा अस्या अनभिमृतं यद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनमनभिमृतेऽध्याधत्ते, रसो वा एषोऽस्या उदीषद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनं रसेऽध्याधत्ता, ऊर्ग्वा एषोऽस्या उदीषद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्तेऽस्या एवैनमूर्ज्यध्याधत्ते, प्रजापतेर्वा एष स्तनो यद्वल्मीको, यद्वल्मीकवपामुपकीर्याग्निमाधत्ते प्रजापतिरेवास्मै स्तनमपिदधात्य,—न्नाद्यमस्मा अवरुन्धे, ऽक्षुध्यता स्वानां पुरःस्थाता भवति य एवं वेद,—तावद्वा अमुष्या इह यज्ञियं यदूषा, यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्तेऽमुष्या एवैनं यज्ञियेऽध्याधत्ते, न वा अनूषरिहः पशवो रेतो दधते, यदूषानुपकीर्याग्निमाधत्ते रेत एवैतद्दधाति, पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, एष वा अग्निर्वैश्वानरो यदसा आदित्यः, स यदिहासीत्तस्यैतद्भस्म यत्सिकता, यत्सिकता उपकीर्याग्निमाधत्ते स्व एवैनं योनौ स्वे भस्मन्नाधत्ते, शिथिरा वा इयमग्र आसीत्, तां प्रजापतिः शर्कराभिरदृंहद्, यच्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्त, इमामेव तद्दृंहति धृत्यै, तद्यथेमां प्रजापतिः शर्कराभिरदृंहदेवमस्मिन् पशवो दृंहन्ते य एवं विद्वाञ्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्ते, इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्, तस्य या विप्रुषा आसंस्ताः शर्करा अभवन्, यच्छर्करा उपकीर्याग्निमाधत्ते वज्रमेव सपत्नाय भ्रातृव्याय प्रहरति, यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेद्, वज्रमेवास्मै प्रहरति, स्तृणुत एवं, पुरीषी,—ति वै गृहमेधिनमाहुः, पुरीषस्य खलु वा एतद्रूपं
यदाखुकिरि,—र्यदाखुकिरिमुपकीर्याग्निमाधत्ते पुरीषी गृहमेधी भवति ॥ ३ ॥ ३९

अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्, यत्प्राञ्चमहरन्त्सर्वः पुरोऽभवद्, यत्प्रत्यञ्चमहरन्त्सर्वः पश्चाभवत्, तमश्वेन पूर्ववाहोदवहन्त्सोऽश्वस्य पूर्ववाहः पूर्ववाट्त्वम्,—श्वेन विभक्त्या अश्वोऽभ्याधेये देयो, ऽविभक्तो वा एतस्याग्निरनाहितो योऽश्वमग्न्याधेये न ददात्य,—थ योऽश्वमग्न्याधेये ददाति विभक्त्यै, विभाज्येवैनमाधत्ते, सोमपुरोगवा वै देवा असुरानभ्यजयन्ने,—ष खलु वै सोमो यदश्वो, यदश्वं पुरस्तान्नयन्त्यभिजित्या, अभिजित्यैवैनमाधत्ते, प्रजापतेर्वै चक्षुरश्वयत्, तस्य यः श्वयथ आसीत् सोऽश्वोऽभवद्, यदश्वं पुरस्तान्नयन्ति यजमानायैव चक्षुर्दधाति, न पराङश्वः सृज्यो, यत् पराञ्चमश्वमुत्सृजेद्यजमानं चक्षुर्जह्याद्,—न्धः स्यात्, प्रत्यवगृह्णीयो,

[४] तै. ब्रा. १,१,५ । काठ. ८,५ । कपि. ७,१-२ ।

यजमानायैव चक्षुः प्रत्यवग्राही,—न्नं पदं आधेयो, वास्तव्यं कुर्याद्रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्यात्, पार्श्वत इतो वेतो वाधेयो, न वास्तव्यं करो,—त्यघातुकोऽस्य पशुपतिः पशून्भवति, गायत्रीं वै देवा यज्ञमच्छ प्राहिण्वन्, त्सा रिक्तागच्छत्तस्या अग्निस्तेजः प्रायच्छत्, सोऽजोऽभवद्, यदजमग्न्याधेये ददाति तेज एवावरुन्धे, ऽग्नीधे देयो, यज्ञमुखं वा अग्नी,—द्यज्ञमुखेनैव यज्ञमुखं समर्धयति, धेनुं चानड्वाहं च ददाति, तत्सर्वं वयोऽवरुन्द्ध, एतद्वै सर्वं वयो यद्धेनुश्चानड्वां,—श्चेतौ वै यज्ञस्य माता च पिता च यद्धेनुश्चानड्वां,—श्चाज्यं च पयश्च धेन्वाः पुरोडाशश्च चरुश्चानडुह,—स्तदाहुः, कामदुघां वा एषोऽवरुन्द्धे योऽग्न्याधेये धेनुं चानड्वाहं च ददातीति, तद्येषां पशूनां भूयिष्ठं पुष्टिं कामयेत तेषां दित्यौहीं वयसो दद्यादित्यवाहं च मुष्करं, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै, वाग्वै सोमक्रयणी, दित्यौहीं वयसः सोमक्रयणी, यद्दित्यौहीं वयसो ददाति वाचमेवावरुन्धे, चारु वदति य एवं वेदो,—पवर्हणं सर्वसूत्रं देयं, छन्दसां वा एतद्रूपं यदुपवर्हणं सर्वसूत्रं, यदुपवर्हणं सर्वसूत्रं ददाति छन्दांस्येवावरुन्द्धे, पशवो वै छन्दांसि, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽयज्ञियो वै पुरुषोऽमेध्य आहनस्याज्जायते, पुरुषक्षीरं धयति, हिरण्यं ददात्यात्मानमेव तेन पुनीते, शतमानं भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, पर्वयोर्हविषोर्द्वे त्रिंशन्माने देये, उत्तरस्मिंश्चत्वारिंशन्मानं, तदेनमुदग्रहीत्, तेन स उत्तरं वसीयाञ्छ्रेयान्भव,—त्यजातो वै तावत्पुरुषो यावदग्निं नाधत्ते, स वै तर्ह्येव जायते यर्ह्यग्निमाधत्ते, क्षौमे वसाना अग्निमादधीयातां, ते अध्वर्यवे देये, उल्बस्य वा एतद्रूपं यत् क्षौम,—मुल्बमेवापलुम्पेते, हिरण्यं सुवर्णमुपास्याग्निराधेयो, हिरण्यं वा अग्नेस्तेजः, सतेजसमेवैनमाधत्ते, तन्न निरस्तवै, यथानुहितं निरस्येदेवं तद्यन्निरस्येदनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, तन्न निरस्तवा,
अननुध्याय्यक्षोधुको भवति ॥ ४ ॥ ४०

यो वा अस्यायं मनुष्योऽग्निरेतमुपासीतो,—न्नमत्येतमु,—पासीनः प्रजां विन्दत, एतमुपासीनं पशवा उपतिष्ठन्ते, यदेतमभागधेयमुत्सादयेत तस्मा आवृश्चेता, ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, तद्ये वनस्पतय आरण्या आद्यं फलं भूयिष्ठं पच्यन्ते तस्य पर्णाभ्यां यवमयश्चापूपो व्रीहिमयश्च संगृह्योपास्याधेय,—स्तदेनं द्वयं भागधेयमभ्युत्सादयामकर्ग्राम्यं चारण्यं च, तेन तस्मै नावृश्चते, ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, यवो वै पूर्व ऋतुमुखे पच्यत, इतः खलु वा एतं प्राञ्चमुद्धरन्ति,

[५] आप. ६,१ । तै. ब्रा. १,१,५; १,१,३ ।

तस्माद्यवमयः पश्चादास्यो व्रीहिमयः पुर,—स्तद्यथस्यैनमीयवमयमेव तस्य पश्चादास्येद्व्रीहिमयं पुरः, प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ, यन्नमस्य देवा उपजीवन्ति वयं मनुष्या, अन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, ऽक्षुध्यता स्वानां पुरःस्थाता भवति य एवं वेद,—तद्ध स्म वा आह केशी सात्यकामिः कोशिनं दार्भ्यम्,—कादं जनताया एवमिव वयमेतस्मा अग्न्याधेयेऽन्नमवारुध्म यथैषोऽन्नमत्ति, तदाहुः, सर्वं वा एतस्येदमन्नं, यजमानं ह्येतास्मिन्नेतद्दासं वा पिदधाति, तदु वै वदितोनै ह्येवं कर्तवा इति, त्रिर्वा इदं प्रजापतिः सत्यं व्याहरत् ॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इतीदं वाव भूरिदं भुवोऽदः स्व,—स्तद्यो ब्राह्मण आङ्गिरसः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवोऽङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुवः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ यो ब्राह्मणो वैश्वानरः स्यात् तस्यादध्याद्, भूर्भुवो, ऽग्नेष्ट्वा देवस्य व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुव स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुर,—स्तद् द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—थ राजन्यस्यादध्याद्, भूर्भुवा, इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुव स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपतिर,—न्द्रो वै राजन्यो देवतया मारुती विड्,—यां खलु वै राजन्यो भद्रो भवति, विशमस्मा अवरुन्द्धे, ऽथ वैश्यस्यादध्याद्, भूर्भुवो, मनोष्ट्वा ग्रामण्यो व्रतेनादधा, इति पश्चा, भुवः स्वरि,—ति पुरो, द्विः पश्चा द्विः पुरस्तद्, द्वेधा यज्ञः सत्यं प्रत्यष्ठाद् द्वेधा यज्ञपति,—र्ग्रामणीभ्येन खलु वै वैश्यो भद्रो भवति, ग्रामणीथ्यमस्मा अवरुन्धे, ऽग्निर्वै सृष्ट उल्बमपलुम्पं नाशक्नोद्, तस्य प्रजापतिराग्नेयपावमानीभिरुल्बमपालुम्पद्, यदाग्नेयपावमानीभिराश्वत्थीः समिध आदधात्युल्बमेवास्यापलुम्पति, पुनात्येनं, यथा शिशुं माता रेढि वत्सं वा गौरेवमेन रेढ्य,—ग्नेर्वै सृष्टस्य तेजा उददीप्यत, तदश्वत्थं प्राविशद्, यदाश्वत्थीः समिध आदधाति तेज एवावरुन्द्धे, ऽग्निर्वै सृष्टो बिभ्यदवेपत तिष्ठत्समिध्यमानः, स प्रजापतिरबिभेद, मां वाव मे हिंसिष्यतीति, तं शम्या समैन्धत्, तमशमयत्, तं शम्याः शमीत्वं, यच्छमीमयीः समिध आदधाति समेनमिन्धे, शमयत्येवं, स शं यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, देवा यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बर उदतिष्ठद्, यदौदुम्बरीं
समिधमादधात्यूर्जमेवावरुन्द्धे ॥५॥ ४१

विग्रियो वा एष पशुभिराधीयत, एष हि रुद्रो यदग्निस्तद्, वाचयेद्, घर्मः शिरस्त,—दयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, इतीयमसीति, तदेनं संप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्येन

[६] तै. ब्रा. १,१,७ ।

शुक्र शुक्रं ज्योतिस्तेन रुचा रुचमशीथा, इति रुचमेवैनमजीगमद्,—ष वा अग्निर्वैश्वानरो यदसा आदित्यो, यदुत्तरतो हरेदेषोऽतः स्याद्,—यमितो जीवन्तमेवैनं प्रदहेत, सदक्षिणत एव हार्यः, स यदा समयाध्वं गच्छेद्य यजमानो वरं दद्यात्, तद्विराजं मध्यतोऽधितं, विराडेषास्याग्निन्विदधते, पशवो वै विराट् पशून्वा एतन्मध्यतोऽधितं, ऽसृष्टो वा अग्निरासीद्,—थ प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता अन्वेतमुसीमाँल्लोकाननुव्यनश्यन्, त्सोऽशोचत्, सोऽतप्यत, ततोऽग्निरसृज्यत, तमग्निं सृष्टमघोऽन्यदधात्, तं या अस्मिँल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं कुल्फदघ्नमुदगृह्णात्, तं या उत्तरस्मिँल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं जानुदघ्नं तं नाभिदघ्नं तमंसदघ्नं तं कर्णदघ्नमुदगृह्णात्, तं या उत्तरस्मिँल्लोक आसंस्ता अभिसमावर्तन्त, तं कर्णदघ्नं नात्युदगृह्णो, यत्कर्णदघ्नमत्युद्गृह्णीयाद्, यजमानो वर्षिष्ठः पशूनां, यजमानमुपरिष्टादग्निरभ्यवदहेद्, तदाहुः, कथमथैतं ब्रह्मणाहितं प्रच्यावयेयुः, शिथिरं वा एनमेतदकुः, परेन वपतीति, तमनिधायैवाथ जानुदघ्नमुद्गृह्णीयाद,—थ नाभिदघ्नमथांसदघ्नं तद्यथैव प्रजापतिः प्रजा एभ्यो लोकेभ्योऽभिसमावर्तन्तैवमेवं यजमानं पशव एभ्यो लोकेभ्योऽभिसमावर्तन्ते य एवं विद्वानग्निमाधत्ते, ऽग्निना वै देवतया विष्णुना यज्ञेन देवा असुरान् प्रव्लीय वज्रेणान्ववासृजन्, यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान्वा स्यात्तस्य रथचक्रं त्रिरनुपरिवर्तयेयुस्तद्, यथैव देवा असुरानग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रव्लीय वज्रेणान्ववासृजन्नेवमेवं यजमानः सपत्नं भ्रातृव्यमग्निना देवतया विष्णुना यज्ञेन प्रव्लीय वज्रेणान्ववसृजति य एवं विद्वानग्नि-
माधत्ते ॥६॥ ४२

एष वै प्रजापती रूपेण यत् पूर्णास्रुग्, यत् पूर्णां स्रुचं जुहोति प्रजापतिमेवाप्नोति, सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा, इत्येतावतीर्वा अग्नेस्तन्वः षोढा सप्त सप्त, यो वा अस्यैता अप्रियादधानो वितर्पयति वि ह तृप्यति, ता एवास्य तर्पयति, शमीमयीस्तिस्रः समिधा आदधाति घृतान्वक्ता घृतस्तोम्याभिः, समेनमिन्धे, शमयत्येवं, स शं यजमानाय भवति शं पशुभ्यो-
ये वा एषु त्रिषु लोकेष्वग्नयस्ते समागच्छन्त्य,—स्यै द्रविणमाददामहा, अति नोऽक्रमीद्, हव्यवाड्
भवतीति, तं जुहुयात् ॥ ४३

ये अग्नयो दिवो ये पृथिव्याः समागच्छन्तीषमूर्जं वसानाः ।
ते अस्मा अग्नये द्रविणं दत्त्वेष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परेत ॥ ४४

[७] मै. १,६,२ । तै. ब्रा. १,१,८ । वा. १७,७९, ३४,१५ । अथ. १८,७९; ३३,१ ।

स्वाहेति तदग्निमेव द्रविणवन्तं कृत्वैष्टाः प्रीता आहुतिभाजो भूत्वा यथालोकं पुनरस्तं परा-
यन्ति, तद्वाचयेद्, घर्मः शिर,—स्तद्युयमग्निः संप्रियः पशुभिर्भव, पुरीषमसीति, तदेनꣳ
संप्रियं पशुभिः पुरीषिणमक,—र्यत्ते शुक्र शुक्रं ज्योतिः शुक्रं धामाजस्रं तेन त्वादुघा, इति संतेज-
समेवैनमाधत्ते ॥ ४५

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ ४६

इति हव्यवाहमेवैनमक,—र्ग्नेर्वै सृष्टस्य पशवोऽक्ष्या अवक्षाय प्रापतन्, तं प्रजापतिर्वारवन्ती-
यमसजत, तानवारयत,—र्वर्हि खलु वा एष सृज्यते यह्याधीयते, तद्यथैतस्मात्सृष्टात्पशवः
प्रापतन्नेवमस्मादाहितात्पशवः प्रपतन्त्ये,—ष हि रुद्रो यदग्नि,—स्तद्य एवꣳ विद्वान्वारवन्तीयं
गायते पशूनेव वारयते, वारवन्तीयꣳ वै सृष्ट्वा प्रजापतिर्यं काममकामयत तमाप्नोद्, तमेव
काममृध्नोति यजमानो यं कामं कामयमानोऽग्निमाधत्ते य एवꣳ विद्वान्वारवन्तीयं गायते, ऽग्निर्वै
क्रव्याद्विश्वदाव्य इमाँल्लोकानदहत्, तं प्रजापतिर्वारवन्तीयं गायमानो वरुणं बिभ्रत् प्रत्यैत्,
तमशमयद्, यदेवास्य क्रव्याद्यद्विश्वदा३व्यं तच्छमयति य एवꣳ विद्वान् वारवन्तीयं गायते,
तस्माद्वरुणो यज्ञावचरः स्या,—न्न त्वेनेन जुहुयाद्, यद्वा इदꣳ संयन्तꣳ यच्च वयच्च विष्यद्यदिमे
अन्तरा द्यावापृथिवी तद्वामदेव्यं तदेवावरुन्द्धे य एवꣳ विद्वान् वामदेव्यं गायते, ब्रह्मणो वा एष
रसो यद्यज्ञायज्ञियꣳ, यद्यज्ञायज्ञियं गायते ब्रह्मण्येव रसं दधाति ॥ ७ ॥ ४७

अग्निꣳ वै सृष्टं प्रजापतिः पवमानेनान्ना उपाधमद्, यत् पवमानाय निर्वपत्युपैवैनं तद्धमति, यत्
पावकाय पुनात्येनꣳ, यच्छुचये यदेवास्यापूतं तदेतेन पुनाति, यत् पवमानाय निर्वपति,
पशवो वै पवमानः पशूनेवावरुन्धे, यत् पावकाया,—ऽन्नꣳ वै पावक,—मन्नमेवावरुन्धे, यच्
छुचये, पूत एवास्मिन् रुचं दधाति, यं कामयेता,—ऽपतरं पापीयान्त्स्यादिति, तस्यैकमेकꣳ
हवीꣳषि निर्वपेत्, तदेनमपाग्रहीत्, तेन सोऽपतरं पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेत, न वसी-
यान्त्स्यान्न पापीयानिति, तस्य सर्वाणि साकꣳ हवीꣳषि निर्वपेत्, तदेनꣳ संꣳरुणद्धि, तेन
स न वसीयान्न पापीयान् भवत्य,—थ यं कामयेतो,—त्तरꣳ वसीयाञ्छ्रेयान् त्स्यादिति, तस्या-
ग्नये पवमानाय निरुप्याथ पावकाय च शुचये चोत्तरे हविषी समानबर्हिषि निर्वपेत्, तदेनमुदग्रहीत्,
तेन स उत्तरꣳ वसीयाञ्छ्रेयान् भवत्य,—थ यस्य त्रिष्टुभौ वानुष्टुभौ वा जगती वा सꣳयाज्ये
स्यातामिति गायत्र्यौ कार्ये,—द्वीर्क् छन्दोभ्योऽवपद्येत, तद्यस्यैतत्सैन्द्रायत्र्या एव तस्य सꣳयाज्ये

[इडा (ळा) यास्त्वा। ऋ० ३,२९,४] [८] तै. ब्रा. १,१,६ ।
मै० ८

कुर्याद्, गायत्रो३ ह्यग्निर्गायत्रछन्दाः, स्व एवैनꣳ योनौ स्वे छन्दसि प्रतिष्ठापयत्या,—ग्नावै-
ष्णवमेकादशकपालं निर्वपे,—दग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्ध, वि-
ष्णवे शिपिविष्टाय त्र्युद्धौ घृते चरुं निर्वपेद्, यद्विष्णवे, विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञमेवालब्ध, यं शि-
पिविष्टं, पशवो वै शिपिविष्टं, पशूनेवावरुन्द्धे, यत् त्र्युद्धौ, त्रयो वा इमे लोका, इमानेव
लोकानाप्नोति, यद् घृते, तेजो वै घृतं, तेज एवावरुन्ध, आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत् पशु-
कामो, धेन्वा वै घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला,—स्तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्या, अग्नीषोमीयं
पुरोडाशं द्वितीयमनुनिर्वपेत्, तद्भूयो हव्यमुपागा,—न्नो अस्यान्य ईशे, यर्हि वा एतं पुरा ब्राह्म-
णा निरवपꣳस्तर्ह्येषां न कश्चनेश, न हि वा एतमिदानीं निर्वपन्त्य,—थैषाꣳ सर्व ईशे, यदाग्ने-
यं,—स्तेजो वा अग्नि,—स्तेज एवावरुन्द्धे, यत्सौम्यः, सोमो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चसं, ब्रह्मवर्चसं
ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्द्धे, तꣳ ह्योऽसा आदित्यो घृते चरुस्तं ब्रह्मणे परिहरेयु,—स्ते चत्वारः प्राश्नीयु,
—स्तेभ्यः समानो वरो देय,—ऋतुर्वा इदमग्रे मिथुनमीयते,—कश्चैका च, द्वौ च द्वे च,
त्रयश्च तिस्रश्च, चत्वारश्च चतस्रश्च, तन्मिथुनं पशूनां पुष्ट्यै प्रजात्यै ॥८॥ ४८

फल्गुनीपूर्णमासे ब्राह्मणस्यादध्यात्, फल्गुनीपूर्णमासो वा ऋतूनां मुख,—मग्निर्देवतानां,
ब्राह्मणो मनुष्याणां, ग्रीष्मे राज३न्यस्यादध्याद्, ग्रीष्मे वा इन्द्रो वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वै राज३-
न्यो बुभूषन् जिघाꣳसति, शरदि वैश्यस्यादध्या,—दन्नꣳ वै शर,—दन्नेन वैश्यो भद्रो भवत्य,
—न्नाद्यमस्मा अवरुन्द्ध, यद्यन्यस्मिन्नृता आदधीत यदि वा अस्मै स एक ऋतुः शिवः स्याद-
थास्मा इतरेऽशिवा दुर्योणा भवेयु,—स्तद्यस्यैतत्सैन् फल्गुनीपूर्णमास एव तस्यादध्यात्, तदस्मै
सर्व ऋतवः शिवा भवन्ति, सर्व एनमृतवो जिन्वन्ति, सꣳवत्सरस्य वा एतदा३स्यꣳ यत्
फल्गुनीपूर्णमा३स्यमह,—र्यत् फल्गुनीपूर्णमा३स्यमहरादध्यात् सꣳवत्सरस्यैनमास्यन्नपिदध्याद्,
द्व्यहे वा पुरेकाहे वाधेय,—स्तद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति, नैनꣳ सꣳवत्सरस्यास्यन्नपिदधाति,
तद्यद् द्वितीयस्य ऋतोरभिगृह्णाति द्वितीयमेव सपत्नस्य भ्रातृव्यस्येन्द्रियं पशून् क्षेत्रꣳ वृञ्जान एति,
कृत्तिकासु ब्राह्मणस्यादध्या,—दाग्नेयीः कृत्तिका, आग्नेयो ब्राह्मणः, स्व एवैनꣳ योनौ स्वेऽहन्ना-
धत्ते, प्रजापतेर्वा एतच्छिरो यत् कृत्तिका, अग्निरास्यꣳ, शीर्ष्णान्नमद्यते, ऽन्नाद्यमस्मा अवरुन्धे,
सप्त कृत्तिकाः, सप्त शीर्षन् प्राणाः, प्राणानस्मिन् दधाति, रोहिण्यां पशुकामस्यादध्यात्,
सोमस्य वा एतन्नक्षत्रꣳ यद्रोहिणी, सोमो रेतोधा, रेतोऽस्मिन् दधात्यृ,—क्षा वा इयमग्र

[९] काठ. ८,१ । कपि. ६,६ । तै. ब्रा. १,१,२ । मा. श्रौ. १,५,१ ।

आसीत्, तस्यां देवा रोहिण्याꣳ वीरुधोऽरोहयꣳ,—स्तद्यथेमा अस्याꣳ वीरुधो रूढा एवमस्मिन्
पशवो रोहन्ति य एवꣳ विद्वान् रोहिण्यामग्निमाधत्ते, रोहिण्याꣳ स्वर्गकामस्यादध्याद्,
रोहिण्याꣳ वै देवाः स्वरायन्, त्स्वरेवैति, कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका अचिन्वत, दिवमा-
रोक्ष्याम, इति तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्, स एतामिष्टकामप्युपाधत्त, प्रथमा इव
दिवमाक्रमन्ता,—ऽथ स तामावृहत्, तेऽसुराः पापीयाꣳसो भवन्तोऽपाभ्रꣳशन्त, या उत्तमा
आस्तां तौ युमश्वा अभवताꣳ, येऽघुरे त ऊर्णावाभयो, यां तामिष्टकामावृहत् सा चित्राभवद्,
यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात् स चित्रायामग्निमादधीत, तद्यथैतस्यामावृढायामसुराः
पापीयाꣳसो भवन्तोऽपाभ्रꣳशन्तैवमस्य सपत्नो भ्रातृव्यः पापीयान्भवन्नपभ्रꣳशते य एवꣳ विद्वाꣳ-
श्चित्रायामग्निमाधत्ते, यः कामयेत, भगवन्नादः स्यामिति, स पूर्वासु फल्गुनीष्वग्निमादधीत,
भगस्य वा एतदहर्यत् पूर्वाः फल्गुनी,—र्भगवन्नादो भवत्य,—थ यः कामयेत, दानकामा मे
प्रजाः स्युरिति, स उत्तरासु फल्गुनीष्वग्निमादधीता,—ऽर्यम्णो वा एतदहर्यदुत्तराः फल्गुनी,—
र्दानमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, तासु राज३न्यस्यादध्याद्, दानꣳ ह्येष प्रजानामु-
पजीवति, दानमर्यमा, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यत्पौर्णमासी
चामावास्या च, यत्पौर्णमास्याꣳ वामावास्यायाꣳ वाग्निमाधत्ते प्रजापतिमेव प्रत्तं दुहे, देवा-
नाꣳ वा एते सदोहविर्धाने यत्पौर्णमासी चामावास्या च, यत्पौर्णमास्याꣳ वामावास्यायाꣳ ४९
वाग्निमाधत्त उभे पुण्याहे उभे यज्ञिये ॥ ९ ॥

न पुरा सूर्यस्योदितोर्मन्थितवा, असु३र्या विदेवा आधीयत, उद्यत्सु रश्मिषु मन्थ्य,—स्तत्स-
देवः सेन्द्र उभयोरह्नो रूपं आधीयते, चतुर्विꣳशत्या प्रक्रमेष्वाधेय,—श्चतुर्विꣳशत्यक्षरा वै गाय-
त्री, गायत्रमग्नेश्छन्दः, स्व एवैनꣳ योनौ स्वे छन्दस्याधत्ते, तद्यस्यैतत्सैदपरिमित एव तस्यादु-
ध्यात्, क्षेष्णु वै परिमित,—मपरिमितमेवास्मै जीवनमवरुन्द्धे, ऽग्निर्वै सृष्टः प्रजापतेरध्युदक्रा-
मत्, स प्रजापतिरबिभे,—दुद एवासा अभूदिदमहमिति, तस्मिन्ननुनिष्क्रम्याजुहो,—देनर्हि खलु
वा एष सृज्यते यह्याधीयते, तदाहु,—र्म्णा एवानुद्रुत्याधाग्निहोत्रꣳ होत३व्यमिति, तन्नैव
कर्तवा, अयुतं तत् कुण्ड्याग्नीयं तद्यज्ञस्य क्रियते यद्योनिः परमवरं कुर्याद,—प्रजनिष्णुः स्या,—

[१०] काठ. ८,३ । कपि. ६,८ । बा. ३,१ । काण्व. ३,९-१० ।

द्वीꣳष्येव पूर्वाणि निरुप्याथ सायमग्निहोत्रं जुहुयात् ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ इति तत्सायं
ज्योतिषा रेतो मध्यतो दधाति ॥ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ इति प्रातस्तत्सायं ज्योतिषाꣳ
रेतो मध्यतो हितं ॥ प्रातः प्रजनयामक,—देवाश्च वा असुराश्च संꣳयत्ता आस,—न्नथेन्द्रोऽग्निमाधत्त,
ते देवा अबिभयु,—रिद एवासामग्निं गोपायमानोऽग्निहोत्रं गोपायमानो भविष्यति, न ना उपै-
ष्यत्य,—भि नो जेष्यन्तीति, तेऽब्रुवन्, यदेव त्वं किंच करवो यद्धनो यजिनो यद्विन्दासै तच्चे-
ऽग्निहोत्रं कुर्मो, ऽथेहीति, स वा ऐत्, तस्माद्राजन्यस्याग्निहोत्रमहोत३व्यꣳ, य३द्ध्येवैवꣳ किंच
करोति यद्धन्ति यजिनाति यद्विन्दते यदेनꣳ विश उपतिष्ठन्ते तद्राजन्यस्याग्निहोत्रꣳ होतव्यꣳ,
राजन्यस्याग्निहोत्रा३म् होत३व्या,—मिति मीमाꣳसन्ते, यद्धुत्वा न जुहुयाद्धि यज्ञं छिन्द्या,—
ज्जीयेत वा प्र वा मीयेत, पौर्णमासीममावास्याꣳ वा प्रति होत३व्य,—मयो अग्न्युपस्थानꣳ वा
चयित३व्य,—स्तेनास्य दर्शपूर्णमासौ संतता अविछिन्नौ भवतः ॥१०॥ ५०-५५

यं कामयेत, पशुमान्त्स्यादिति, यो बहुपुष्टस्तस्य गृहादग्निमाहरेयु,—र्यथा वा एवꣳ सृ-
ज्यमानं पशवोऽन्वसृज्यन्तैवमेनमाह्रियमाणं पशवोऽन्वाय,—न्त्येष हि रुद्रो यदग्नि,—रथ यं कामये-
ता,—ऽन्नादः स्यादिति, तस्य भ्राष्ट्राद्दक्षिणाग्निमाहरेयु,—रेष वा अग्नीनामन्नादो, ऽन्नकरणं भ्रा-
ष्ट्र,—मन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, तदाहु,—र्यथा वृषलो निजः पुल्कुकश्चिकित्सेदेवꣳ स, इति स
मन्थ्य एव, स शꣳ यजमानाय भवति शं पशुभ्यो, यः सोमेनायक्ष्यमाणोऽग्निमादधीत न पुरा
सꣳवत्सराद्धवीꣳषि निर्वपेद्, रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्या,—देते वै पशवो यद्व्रीहयश्च
यवाश्च, तेषां चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीवतण्डुलमिवोपहरेत्, तद्याभ्यो देवताभ्यो-
ऽग्निमाधत्ते यत्ताभ्यो न जुहुयात्ताभ्या आवृश्चेता,—ऽनुध्यायी क्षोधुकः स्यात्, ताभ्या आज्यस्य
होत३व्यं, तेन ताभ्यो नावृश्चते, ऽननुध्याय्यक्षोधुको भवति, सꣳवत्सरे हवीꣳषि निर्वपति,
तदस्य सꣳवत्सरान्तर्हितो रुद्रः पशून्न हिनस्ति, सꣳवत्सरमग्निहोत्रमहौषीत्, तत्तपोऽविदत्, स
सर्वेण साकꣳ स्वर्गं लोकꣳ समारुक्षत्, त्रिर्वा इदꣳ विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीयꣳ सभ्यं,
तद्विराजमाप,—दन्नꣳ वै विरा,—डन्नꣳ वावैतदापन्, मध्याविदेवनं राजन्यस्य जुहुयाद्वारुण्य
ऋचा, वरुणो वै देवानाꣳ राजा, राज्यमस्मा अवरुन्द्धे, हिरण्यं निधाय जुहोत्य,—ग्निम-
त्येव जुहोत्यायतनवत्य,—न्धोऽध्वर्युः स्याद्यदनायतने जुहुयाच्, शतमस्मा अक्षान् प्रयच्छेद्,

[११] काठ. ८,७,११ । कपि. ७,३-४ ।

तान्निर्विनुयात्, प्रतायुर्वै पुरुषः प्रतवीर्यो, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, गामस्य तदहः सभायां
दिव्येयुः,—स्तस्याः पञ्च षि न हि रस्य,—स्तां समासङ्क्या उपहरेत्, तया यदहीयात् तद्ब्राह्-
मणेभ्यो देयं, तद् संम्यमवरुन्द्धे ॥ ११ ॥ ५६

यस्या रात्र्याः प्रातरग्निमाधास्यमानः स्यात्ता रात्रीं चतुःशरावमोदनं पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यो जीव-
तण्डुलमिवोपहरे,—ददितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्, सोच्छिष्टमाश्नात्, तस्या धाता चार्यमा चाजा-
येताम्, सापरमपचत्, सोच्छिष्टमाश्नात्, तस्या मित्रश्च वरुणश्चाजायेताम्, सापरमपचत्,
सोच्छिष्टमाश्नात्, तस्या अंशश्च भगश्चाजायेताम्, सापरमपचत्, सैक्षतो,—च्छिष्टं मेऽश्नत्यां
द्वौ द्वौ जायेते, इतो नूनं मे श्रेयः स्यादिति पुरस्तादश्नीयामिति, सा पुरस्तादश्नित्वोपाहरत्,
ता अन्तरेव गर्भः सन्ता अवदता,—मावमिदं भविष्यावो यदादित्या इति, तयोरादित्या निर्हन्ता-
रमैच्छन्,—स्तौ अंशश्च भगश्च निरहताम्, तस्मादेतौ यज्ञे न यजन्ते, ऽंशप्रासोऽंशस्य
भागधेयं, अन्नं भगोऽगच्छत्, तस्मादाहु,—र्भगो गन्तवेऽयु,—स्तत्र भगेन संगच्छता इति, स
या इन्द्र ऊर्ध्वं एव प्राणमुदश्रयत, मृदमितरमाण्डमवापयत, स वाव मार्ताण्डो यस्येमे मनुष्याः
प्रजा, सा वा अदितिरादित्याननुधावत,—दस्त्वेव म इदं, मा म इदं मोघं परापतदिति,
तऽब्रुव,—न्ययेषोऽस्माकमेव प्रजातं, न नोऽतिमन्याता, इति स वाव विवस्वानादित्यो यस्य
मनुश्च वैवस्वतो यमश्च, मनुरेवास्मिंल्लोके यमोऽमुष्मिं,—स्तेते वै देवयानान् पथो गोपायन्ति,
यदादित्यास्त इयक्षमाणं प्रतिनुदन्ते, यो वा एतेभ्योऽप्रोच्याग्निमाधत्ते तमेते स्वर्गाल्लोकात्प्रतिनु-
दन्ता, उच्छिष्टभागा वा आदित्या, यदुच्छिष्टे विवर्तयित्वा समिधमादधाति तदादित्येभ्योऽ-
न्वार्धेयं प्राह, नैनं स्वर्गाल्लोकात् प्रतिनुदन्ते, संवत्सरमुत्सृजेताग्निमाधास्यमानो, नास्याग्निं
गृहादरेयु,—र्नान्यत आहरेयुः, संवत्सरे वृद्धा गर्भाः प्रजायन्ते, प्रजातमेनं वृद्धमाधत्ते,
द्वादश रात्रीरुत्सृजेत, द्वादश वै रात्रयः संवत्सरस्य प्रतिमा, संवत्सरे वृद्धा गर्भाः प्रजा-
यन्ते, प्रजातमेनं वृद्धमाधत्ते, तिस्र उत्सृजेत, त्रयो वा इमे लोका, इमानेव लोकानाप्तो-
मोत्यै,—काममुत्सृजेतं,—को वै प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति, पुरूरवा वा ऐड उर्वशीमविन्दत
देवीं, तस्या आयुरजायत, स देवान्स्वर्गं लोकं यतोऽन्वैद्, तेऽब्रुवं,—स्त्वदयं देवा
इमः, ऽकायं मनुष्यो गमिष्यतीति, सोऽब्रवीद्, बहवो वै मे समामा,—स्ते मा वक्ष्यन्ति,
किमयं देव्याः पुत्रो देवेभ्यो मातुर्भ्रातृभ्य आहार्षी,—दस्त्वेव मे किंचिदिति, तस्मा अग्निर्यज्ञियो

[११] काठ. ७,१५; ८,१०। कपि. ६,५; ७,६। तै. ब्रा. १,१,६।

तमन्वं प्रायच्छत्, तामुत्सङ्गेऽवधायाहरत्, तामुखायामवादधात्, सोऽश्वत्थ आरोहोऽभवद्,
योखा सा शमी, तस्मादेतौ यज्ञावचरौ, पुण्यजन्मानो ह्य,—मित्रं वरुणं ब्रह्मचर्यमागच्छत्
प्रवसन्तं, तस्य जायां समभवत्, तं पुरस्तादायन्तं प्रतिक्षाय प्रत्यङ् निरद्रवत्, सोऽवेत्,
सर्वं वा इन्द्रियं नृम्णं रेतो निर्लिप्य हरतीति, तदनुपराहाय निरलुम्पद्, यद्रेता आसीत्सोऽश्वत्थ
आरोहोऽभवद्, यदुल्बं सा शमी, तस्मादेतौ यज्ञावचरौ, पुण्यजन्मानौ हि, प्रजापतिः
प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचानोऽमन्यत, सोऽश्वो भूत्वा संवत्सरं न्यङ् भूम्याः शिरः प्रतिनिधाया-
तिष्ठत्, तस्याश्वत्थो मूर्ध्न उदभिनत्, तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वं, तस्मादेष यज्ञावचरः, प्राजा-
पत्यो हि ॥१२॥ ५७

मनुर्वै प्रजाकामोऽग्निमाधास्यमानो देवताये देवताया अजुहोत्, ततो मित्रावरुणयोराहुत्या
प्रफर्व्युदतिष्ठत्, तस्या घृतं पदोरक्षरत्, सा मित्रावरुणा ऐत्, ता अब्रूता,—माहुत्या वै
त्वमावयोरजनिष्ठा, मनोस्त्वं त्वमसि, तं परेहीति, सा मनुमैत्, सोऽब्रवी,—दसुरा वा इमे
पुण्यमन्या अग्निमादधते, तान् परेहीति, सा परेत्, तेऽमुमग्ना आदधताथेममथेमं, सा पुन-
रैत्, तामपृच्छत्, किमभ्यगन्निति, साब्रवी,—दमुमेवाग्ना आधिषताथेममथेममिति, सोऽब्रवीद्,
सकृद्वावासुराः श्रियोऽन्तमगुः, परा तु भविष्यन्तीति, सोऽब्रवीद्, देवा वा इमे पुण्य-
मन्या अग्निमादधते, तान् परेहीति, सा परैत्, त इममग्ना आदधताथामुमथेमं, सा पुनरैत्,
तामपृच्छत्, किमभ्यगन्निति, साब्रवी,—दिममेवाग्ना आधिषताथामुमथेममिति, सोऽब्रवीत्,
सकृद्वाव देवाः सर्वेण साकं स्वर्गं लोकं समारुक्ष,—न्नितः प्रदानात्तु यज्ञमुपजीविष्यन्तीति,
यः सर्ववेदसं दास्यंन्त्स्यात्स इममग्ना आदधीताथामुमथेमं, तद्यथैव देवाः सर्वेण साकं
स्वर्गं लोकं समारोहन्नेवमेव यजमानः सर्वेण साकं स्वर्गं लोकं समारोहति य एवं विद्वानग्नि-
माधत्ते,—सोऽब्रवी,—दपुयो वा इमे पुण्यमन्या अग्निमादधते, तान्परेहीति, सा परैत्, त
इममग्ना आदधताथेममथामुं, सा पुनरैत्, तामपृच्छत्, किमभ्यगन्निति, साब्रवी,—दि-
ममेवाग्ना आधिषता,—ऽथेममथामुमिति, सोऽब्रवी,—दहं वावाग्न्याधेयं विदांचकार, सर्वेषु
वा एषु लोकेष्वृध्युयः प्रत्यष्ठुरिति, प्रति प्रजया च पशुभिश्च तिष्ठति य एवं विद्वानग्निमाधत्ते,
यदमुमाधायेममादध्यादप तदादध्याद्, यद्वावेममाधायामुमादध्यादप तदादध्यात्, तदिममेवाधा-
यथेममथामुं, तथा समृद्धा आधीयते, प्राचीनप्रवण आधेय,—स्तथा समृद्धा आधीयते,

[१३] काठ. ८,४। कपि. ६,९। तै. ब्रा. १,१,४।

प्राचीनं मध्यमाहवनीयादाधेय,—स्तथा समृद्धा आधीयते, या वै सा प्रफर्व्यासीत् सा गौरभवत्
सेडा सा मानवी घृतपदी मैत्रावरुणी ॥१३॥ ५८ [५०६]

॥ इति प्रथमकाण्डे आधानं नाम षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥

अथ सप्तमः प्रपाठकः ।

पुनराधानम् ।

यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युना सुमनस्तर । सुकल्पमग्ने तत्तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ १
यत्ते मन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनुदध्वसे । आदित्या विश्वे तद्देवा वसवः पुनराभरन् ॥ २
यत्ते भामेन विचकर्नानीमानो हृदस्परि । पुनस्तदिन्द्रश्चाग्निश्च वसवः समचीक्लृपन् ॥ ३
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ अग्ने ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४
अपाविश्वत्तन्तवो ये वितन्वत इमं च यज्ञं सुधया ददन्ते ।
तेभिश्छिद्रमपिदध्मो यदत्र स्वाहा यज्ञो अप्येतु देवान् ॥ ५
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
इमं यज्ञं समितं तनुतां नो आ देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ६
बृहस्पतिर्नो हविषा घृतेन विच्छिन्नं यज्ञं समिमं दधातु ।
या इष्टा उषसो याश्च याऽश्व्यास्ताः संदधामि मनसा घृतेन ॥ ७
अग्नेऽभ्यावर्तिन्नभि मा वर्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ८
अग्ने अङ्गिरः शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त उपावृतः ।
तासां पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ॥ ९
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ १०
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ११
सलिलः सलिगः संगृरस्ते न आदित्या हविषो जुषाणा व्यन्तु स्वाहा, केतः सुकेतः संकेतस्ते
न आदित्या हविषो जुषाणा व्यन्तु स्वाहा, देवजते विवस्वन्नादित्य ते नो देवाः सत्यां देवहूतिं
देवेष्वासुवध्व,—मादित्येभ्यः स्वाहा ॥१॥ १२

[१] ऋ. १०,४,५। तै. १,५,३; १,५,१०; ४,२,१,२,३; ४,२,३,४। काठ. ८,१४; ३८,१२। कपि. ८,२। वा. १२,
४४; ८,६२; २,१३; १२,७-१०,४०,४१। काण्व. १२,८५; १३,४५; २,७६; १३,८-११,४१,४२। [यत्त्वा
क्रुद्ध० । अथर्व. १२,२,५। पुनस्त्वादित्या रुद्रा० । ऋ. १०,११६,८; अथर्व. १२,२,६]

अग्नेर्वै भागः पुनराधेयं,—मेतं वै भागं प्रेप्सन् व्यर्धयति, यद्यादधानो मन्येत, वि स्या
ऋध्यता, इत्युत्साद्य पुनरादधीत, यमेव भागं प्रेप्सन् व्यर्धयति तं प्राप्याधीयत्येवं, सर्वमे-
वाग्नेयं क्रियते, यत्किंच सर्वमेवाग्नये भागं प्रदाय सर्वामृद्धिमृध्नोति, न संभाराः संभृत्या, न
यजुः कर्तव्यं, इत्याहुः, संभृतसंभारो ह्येष कृतयजु,—स्तदाहुः, संभृत्या एव संभाराः,
कार्यं यजुरिति, पुनरुत्स्यूतं वासो देयं पुनर्णवो रथः पुनरुत्सृष्टोऽनड्वा,—नेतानि वै पुनरा-
धेयस्य रूपाणि, रूपाण्येवास्याप्त्वावरुन्द्धे, ऽग्निर्वा उत्सीदन्नप ओषधीरभ्युत्सीदति, दर्भा वा
आपा ओषधयो, यद्दर्भा उपोलपा भवन्त्यद्भ्य एवैनमोषधीभ्योऽध्याप्त्वावरुन्द्धे, देवा असु-
रैर्विजयमुपयन्तोऽग्नौ प्रियास्तन्वः संन्यदधत, यन्नो जयेयुरिमा अभ्युपधावेम, यद्यु जयेमेमा
अभ्युपावर्तेमहीति, ता देवा जित्वान्वैच्छन्, त्सर्वेषां नः सहेति, सोऽग्निरब्रवीद्, य एवं मा
मद्देवत्य आदधातै स एताभिस्तनूभिः संभवादिति, तं देवा आदधत, त एताभिस्तनूभिः
समभवन्, पशवो वै देवानां प्रियास्तन्वः, पशुभिरेव समभवं,—स्तद्य एवं विद्वान् पुनरा-
धेयमाधत्त एताभिरेवाग्नेस्तनूभिः संभवति, पशवो वै देवानां प्रियास्तन्वः, पशुभिरेव संभवति,
मनुः पुष्टिकामा आधत्त, स इमान् पोषानपुष्यत्, तेन ऋद्धं, त्वष्टा पशुकामा आधत्त, त
इमे त्वाष्ट्राः पशवः प्राजायन्त, तेन ऋद्धं, प्रजापतिः प्रजाकामा आधत्त, ता इमाः प्रजाः
प्राजापत्याः प्राजायन्त, तेन ऋद्धं, यो वै तमग्ना आधत्त स तेन वसुना समभवत्,
तत् पुनर्वसोः पुनर्वसुत्वं, तस्मात् पुनर्वसा आधेयः, पुनर्हि स तेन वसुना समभवद्, यो वै
तमाधत्ताभ्रौत्, स तस्मादनुराधास्वाधेया ऋद्ध्या, ऋध्नोत्येवा,—ऽथो मिथुनत्वाय ॥२॥ १३

अग्निर्वा उत्सीदन्त्संवत्सरमभ्युत्सीदति, सप्तदश सामिधेनीः कार्याः, पञ्च ऋतवो,
द्वादश मासा, एष संवत्सरः, संवत्सरादेवैनमध्याप्त्वावरुन्द्धे, तदाहुः, पञ्चदश
सामिधेनीः कार्या न सप्तदश,—त्येतद्वै संवत्सरस्य संक्रमणतम,—मेतेनाशिष्टमाप्यते, पञ्च-
दश सामिधेनीः, पञ्चदशार्धमासस्य रात्रय,—स्ताभिरेव ता आप्यन्ते, यावन्ति वै सामिधे-
नीनामक्षराणि तावन्ति संवत्सरस्याहानि, तैरेव तान्याप्यन्ते, ऽग्निर्वा उत्सीदन्त्संवत्सरम-
भ्युत्सीदति, पङ्क्ता ऋतवः संवत्सरे,—स्तस्मात् पङ्क्तिमत्कयः, संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरो,
यत् पङ्क्तिमत्कयः संवत्सरादेवैनमध्याप्त्वावरुन्द्धे, ऽथ यदग्निर्बहुधा विह्रियत इमान् पोषान्

[२] तै. १,५,१-२। काठ. ८,१५। कपि. ८,३। मा. श्रौ. १,६,५।
[३] तै. १,५,२। काठ. ९,१। कपि. ८,४। मा. श्रौ. १,६,५।

पुपोष, तस्मादग्निरेतावतीर्विभक्तीरानशे नान्या देवता,—य यद् यक्षराः सतीश्चतुरक्षराः क्रियन्त,
आचतुरं हि पशवो द्वन्द्वं मिथुना, ऋतवो वै प्रयाजा, अङ्गमृतवो, यत् प्रयाजाननन्तरियाद-
ङ्गमन्तरियाद्, यज्ञमुखं वै प्रयाजा, यत् प्रयाजाननन्तरियाद्यज्ञमुखमन्तरियात्, तद्यस्यैतत्संस्यो-
परिष्टात् प्रयाजानां विभक्तीः कुर्याद्, वीर्यं वै प्रयाजा, वीर्यं विभक्तयो, वीर्याद्देवाधि
वषट्करोति, ताजग्वृद्धिमभिक्रामति, नानाग्नेयं क्रियते, ऽथ कस्मात्सह विभक्तयः प्रयाजैरिति,
संवत्सरं वै प्रयाजाः परीज्यन्ते, कस्मादाग्नेयं क्रियते, तस्मान्नानाग्नेयम् ॥३॥ १४

पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ १५

इति पुरस्तात् प्रयाजानां जुहुयात् ॥ १६

सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १७

इत्युपरिष्टादनुयाजानां जुहुया,—दूर्जा वा एष पशुभिरुत्सीदन्सहोत्सीदति, पुनरूर्जा निव-
र्तस्वे,—ति तदूर्जमेव पशून् पुनरवरुन्द्धे, ऽथो तानेव भागिनः करोत्य,—थो उभयत एव यज्ञ-
स्याशिष ऋध्नोति, नानाग्नेयं क्रियते, ऽथ कस्मादाज्यभागा इज्येते इति, चक्षुषी वा एते यज्ञस्य
यदाज्यभागौ, यदाज्यभागा अन्तरियाच्चक्षुषी यज्ञस्यान्तरियाद,—ग्न आयूंषि पवसा, इति
सोमस्य लोके कुर्याद्, यदाग्नेयी तेनाग्नेयी, यत् पावमानी तेन सौमी, नानाग्नेयं क्रियते, न
सोममन्तर्यन्त्य,—ग्निर्मूर्धा दिवः ककुदि,—ति प्रजाकामो वा पशुकामो वा सोमस्य लोके कुर्याद्,
यन्मिथुना तेन प्रजननवती, यद्रेतस्वती तेन सौमी, यज्ञेन वा एष व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्साद-
यते, पाङ्क्तो यज्ञो, यत् पञ्चकपालो यज्ञमेव पुनरालभते, ऽष्टाकपालः कार्यो, गायत्रो
ह्यग्निर्गायत्रच्छन्दा, आग्नेयं वा एतत् क्रियते यद् पुनराधेयं, तस्मादष्टाकपाल,—स्तन्न सूक्ष्यं,
पञ्चकपाल एव कार्युः, पञ्चमाद्वा अध्यृतोः षष्ठ ऋतुरभवत्, समानमेतद्यत् पञ्चमश्च ऋतुः
षष्ठश्च, यत् पञ्चकपालः संवत्सरादेवैनमध्याप्त्वावरुन्द्धे, प्रजननं वा ऋतवो, ऽग्निः
प्रजनयिता, यत् पञ्चकपालः प्रजननादेवैनं प्रजनयिता प्रजनयति ॥४॥ १८

वीरहा वा एष देवानां यो ऽग्निमुत्सादयते, शतदायो वीरो, यदेताः शताक्षराः पङ्क्तयो
भवन्ति वीरं वा एतद्देवानामवदयते, ऽन्यस्मै वै कमाधेयमन्यस्मै पुनराधेयं, न वै तदाधेयेन

[४] मै. १,७,१ । तै. १,५,२ । काठ. ९,१-३ । कपि. ८,४-५ ।
[५] तै. १,५,२; ४,४ । काठ. ९,२-३ । कपि. ८,५-६ ।

स्पृणोति यस्मै कं पुनराधेयं, पुनराधेयेन वाव तत्स्पृणोति, जरा वै देवहितमायु,—रेतावतीर्हि
समा एति यदेताः शताक्षराः पङ्क्तयो भवन्ति, यावद्देवायुर्वा३यं तदाप्नोति, तत्स्पृणोति,
तदवरुन्द्धा, आयुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्सादयता, आयुर्वा३यं हिरण्यं, य-
द्धिरण्यं ददात्यायुषैवैनं वीर्येण समर्धयति, शतमानं भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या,
आयुरेव वीर्यमाप्नोत्या,—दित्या वा इत उत्तमाः स्वर्गं लोकमायं,—स्ते व्यतृष्यन्नि,—तः प्रदा-
नाद्धि देवा यज्ञमुपजीवन्ति, ते वा एवं पुनरादधत, त आर्ध्नुवन्ना,—दित्या वा अस्मिंल्लोके
ऋद्धा आदित्या अमुष्मिन्, पशवोऽस्मिन्नृतवोऽमुष्मिं,—स्तद्य एवं विद्वान् पुनराधेयमाधत्त
उभयोरेव लोकयोर्ऋध्नोत्यस्मिंश्चामुष्मिंश्च, सलिलः सलिगः सगरस्ते न आदित्या हविषो
जुषाणा व्यन्तु स्वाहा, केतः सुकेतः सकेतस्ते न आदित्या हविषो जुषाणा व्यन्तु स्वाहा,
देवजूते विवस्वन्नादित्य ते नो देवाः सत्यां देवहूतिं देवेष्वासुवध्वमादित्येभ्यः स्वाहे,—त्येतैर्वै ते तं
पुनरादधत, त आर्ध्नुवं,—स्तद्यदेतैः पुनराधत्तेऽथ अध्नोत्या,—दित्या हि पुनराधेयम् ॥५॥
१९ [५२५]

॥ इति प्रथमकाण्डे पुनराधानं नाम सप्तमः प्रपाठकः ॥७॥

अथाष्टमः प्रपाठकः ॥

अग्निहोत्र-ब्राह्मणम् ।

प्रजापतिः प्रजा असृजत, स वा अग्निमेवाग्रे मूर्धतोऽसृजत, स यतोऽग्निमसृजत तत् पर्यु-
मार्ट्, ततो लोहितमवाहरत्, तन्न्युमार्ट्, तत उदुम्बरः समभवत्, तस्मादुदुम्बरः प्राजापत्य,—
स्तस्माल्लोहितं फलं पच्यते, सोऽस्मात् सृष्टः पराङैद्भागधेयमिच्छमानः, स तदेव नाविन्दद्
प्रजापतिर्यदहोष्यत्, स स्वं चक्षुरादायाजुहोत् ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ इति तद्वा अद-
श्चक्षुर्मन्यन्ते यदसा आदि३त्यो, ऽमुं वा एतदस्मिन् जुह्वतो मन्यन्ते, सत्यं वै चक्षुः,
सत्येनाग्निहोत्रं जुहोति य एवं विद्वान् जुहोति, भविष्णुः सत्यं भवति य एवं वेद, कस्मै
कमग्निहोत्रं हूयता, इति ब्रह्मवादिनो वदन्त्य,—ग्नये वा एतद्भूत्यै गुप्त्यै हूयते, यत् सायं
जुहोति रात्र्यै तेन दाधार, यत् प्रातरह्ने तेना,—ग्नौ सर्वान् यज्ञान् संस्थापयन्त्य,—थ कस्मा-

[१] काठ. ६,१-२ । कपि. ४,१ । तै. ब्रा. २,१,२ । वा. ३,९ (प्र. पा.) । काण्व. ३,९ (तृ. पा.) ।

देवदेवाग्निहोत्रमुच्यता, इति ब्रह्मवादिनो वदन्ति, होत्रा वै देवेभ्योऽपाक्रामन्नग्निहोत्रे भाग-
धेयमिच्छमाना, यत् ॥ अग्निहोत्रम् ॥ इत्याह तेन होत्रा आभजति, तेनैना भागिनीः करोत्ये,—
षां वा अग्रेऽग्ना आहुतिरहूयत, तदग्निहोत्रस्याग्निहोत्रत्वं, सोऽस्मात् सृष्टः पराङैद्भाग-
धेयमिच्छमानः, स तदेव नाविन्दत् प्रजापतिर्यदहोष्यत्, तं स्वा वागभ्यवद,—ज्जुहुधीति,
स इत एवोन्मृज्याजुहोत्। स्वाहा ॥ इति स्वा ह्येनं वागभ्यवदत्, तत् स्वाहाकारस्य जन्म,
तस्मादग्निहोत्रे स्वाहाकारं,—स्तस्माल्ललाटे च पाणौ च लोम नास्त्य,—तो हि स तदादायाजुहोत्,
तस्माद्यस्य दक्षिणतः केशा उन्मृष्टास्तमाहु,—र्ज्येष्ठलक्ष्मीति, प्रजापति३र्ह्येतदग्रे ज्येष्ठ उद-
मृष्टा,—नेन संमिता स्रुक्कार्या,—नेन वा अग्रेऽग्ना आहुतिरहूयत, तस्या आहुत्याः पुरुषो
ऽसृज्यत, द्वितीयामजुहोत्, ततोऽश्वोऽसृज्यत, तस्मादश्व उभयादन्न,—न्तर्हितो हि
पुरुषादसृज्यत, तस्मादेनं प्रत्यञ्चं तिष्ठन्तं मन्यन्ते, ऽश्वो नु पुरुषा, इति तृतीयामजुहोत्,
ततो गौरसृज्यत, चतुर्थीमजुहोत्, ततोऽविरसृज्यत, पञ्चमीमजुहोत्, ततोऽजासृज्यत,
षष्ठीमजुहोत्, ततो यवोऽसृज्यत, सप्तमीमजुहोत्, ततो व्रीहिरसृज्यत,—ते सप्त ग्राम्याः
पशवोऽसृज्यन्त, तानेवावरुन्द्धे य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥१॥ १-६

अष्टमीमजुहोत्, ततो वसन्तोऽसृज्यत, नवमीमजुहोत्, ततो ग्रीष्मोऽसृज्यत, दश-
मीमजुहोत्, ततो वर्षा असृज्यन्त,—कादशीमजुहोत्, ततः शरदसृज्यत, द्वादशीमजुहोत्,
ततो हेमन्तोऽसृज्यता,—ग्रता त्रयोदश्याहुतिरासीद,—थ शिशिरमसृज्यत, तस्मादेतदृतूना-
मशान्तं क्रूरं,—महुताद्धि समभव,—दहुतादसृज्यत, तदाहु,—र्ब्रह्मवादिन, ऋतवः पूर्वे
ऽसृज्यन्ता३ पशवा३, इत्युत ऋतव उत पशवा, इति ब्रूया,—दुभये३ह्येते सहासृज्यन्त,
स वा एनमित एव पुनः प्राविश,—देतद्वा अग्निधानं हस्तस्य यत् पाणिं,—स्तस्मादेतो हस्त-
स्याग्निनैतमां विदहति, यद्धन्यमानो हस्तौ प्रतिप्रसारय,—त्यग्नौ वा एतत्पर्यञ्चनमिच्छते,
ऽग्निं वै पशवः प्रविशन्त्यग्निः पशून्, प्र ह वा एनं पशवो विशन्ति प्र स पशून् य एवं
वेद,—तद्ध स्म वा आह नारदो, यत्र गां शयानां निर्जानाति मृतामिनामविद्वान् मन्यते, ऽत्यग्निं
३ह्येते प्रविशन्त्यग्निरेतां,—स्तस्मात् सर्वानृतून् पशवोऽग्निमभिसर्पन्ति, न ३ह्येत ऋ३तेऽग्नें,
—यज्जातः पशूनविन्दत तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वं, तामप्सु प्रासिञ्चत्, सापो न्यदहत्,

[२] काठ. ६,२-३ । कपि. ४,१-२ ।

ता अग्नये वज्रोऽभवं,—स्तस्माद्धर्वींषि प्रोक्षताग्निरग्निं न प्रोक्ष्यो, यदग्निप्रोक्षेद्वज्रेणेनु यज्ञेन
यजेत, तां वै प्रजापतिरन्वैच्छत्, तामप्स्वन्वविन्दत्, तामोषधीषु न्यमार्ट्, तस्मादोषध-
योऽनभ्यक्ता रेभन्ता, ओषधीभ्यः पशवः, पशुभ्यो मनु३ष्या, अनभ्यक्तो ह रेभते य
एवं वेद, तयो वसन्ताशिशिरे कक्षः स उपाधेय, एतद्वै तदग्नेः प्रियं धाम,—पो वाव
साहुतिः श्रायत्य,—ग्नेरेवैतया प्रियं धामोपैत्य,—थो पशुमान् भवत्य,—थो आत्मानमेवैतया
यजमानः पुनीते, सह वा एता आस्तामग्निश्च सूर्यश्च समाने योना अयुसि लोहिते, स आदित्य
ऊर्ध्व उदद्रवत्, तस्य रेतः परापतत्, तदग्निर्योनिनोपागृह्णात्, तदेनं व्यदहत्, तस्मा-
दयोऽत्रपु प्रतिधुक् क्षीरं विदहति, तस्मादेतज्जुह्वति, पशूनां वा एतत् पयो यद्
व्रीहियवौ, तस्मादेतज्जुह्वति, नातिश्रृतं का३र्यं, रेतः शोषयेद्, यद्विष्यन्देतोन्मादुको
ऽस्य प्रजायामाजायेता, ऽमुष्य वा एतदादित्यस्य रेतो हूयतेऽमेध्यमश्रृतं, समुदन्तं होत३-
व्यं, तद्धि श्रृतं मेध्यं मिथुनं प्रजनिष्णुः ॥२॥ ७

स्थाल्यां दुहत्य,—नया वा एतदुपसीदन्ति, नहीमामितो नैतः स्कन्दत्यस्कन्नत्वाया,—य-
कृती भवत्यूर्ध्वकपाला सदेवत्वाय, सा हि सदेवा, ऽसु३र्यं वा एतत् पात्रं यत्कुलालकृतं
चक्रवृत्तं, यत्र स्कन्देत्तदपो निनये,—दापो वै शान्ति,—रापो निष्कृति,—रापो भेषजा,
यत्र वा एता अस्या उपयन्ति तत् प्रशस्ततरा ओषधयो जायन्ते बंहीयसी,—र्यदि दुह्यमानावभि-
न्द्यादन्यया स्थाल्या निर्णिज्य दोह्या, यज्ञो हि यज्ञस्य प्रायश्चित्ति,—र्यदवश्रितं स्कन्देद्य-
द्युद्वास्यमानं यद्युद्वासितं यद्युन्नीयमानं यद्युन्नीतं यदि पुरः परार्हतं होमाय पुनरवनीया-
न्याभिर्दुह्या, यज्ञो हि यज्ञस्य प्रायश्चित्ति,—र्वारुणीमृचमनूच्य वारुण्या होत३व्यं, वरुणो वा
एतद्यज्ञस्य गृह्णाति यदार्छन्ति, निष्कृतिरेवैषा प्रायश्चित्ति,—रप्रतिषेक्यं स्यात्तेजस्कामस्य ब्रह्मवर्च-
सकामस्या,—ऽथो तुस्तूर्षमाणस्या,—ऽथो यः कामयेत, वीरो मा आजायेते,—त्यप्रतिषिक्तो वै
घर्म,—स्तेजो ब्रह्मवर्चसं, तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति, स्तृणुते यं तुस्तूर्षता, आ हास्य वीरो
जायता, आज्येन होत३व्यं यस्याप्रतिषेक्यं स्या,—देतद्वा अप्रतिषिक्तं, न तु स्कन्नस्य प्राय-
श्चित्तिरस्त्य,—थो न पशुमानिव भवति, पशूनां वा एतत् पयः प्रवृज्यते, शुचं पशुषु दधाति,
तेजोऽशान्तं पशूनिर्दहति, तस्मात् प्रतिषेक्यमेव स्याद्, यदाद्भिः प्रतिषिञ्चेद्वरो विनयेद्,

[३] काठ. ६,३ । कपि. ४,२ । तै. ब्रा. २,१,३ । मा. श्रौ. १,६,१; १,३,१ ।

गांदोहसंनेजनेन प्रतिषिच्यं, तद्धि नापो न पय,—स्तदाहुः, स्कन्दति वा एतद्, यर्हि वा एतद्दोहनात् पर्याक्रियते तर्हि स्कन्नम्,—न्तर्हिता३ह्यस्या वनस्पतया, इति तदुद्भिरेव प्रतिषिच्यꣳ, स्तोकेनैकेन न हरो विनयति, शुचं पशूनाꣳ शमयति, पशवो वै तेजो ब्रह्मवर्चसं, मिथुनꣳ वा आपश्च पयश्च, मिथुनात् खलु वै प्रजाः पशवः प्रजायन्ते, तन्मिथुनं, तस्मादेवं मिथुनाद्यजमानः प्रजया च पशुभिश्च प्रजायत, कोऽनेन होत३व्यꣳ यस्य प्रतिषे३क्यꣳ स्यादे,—ष हि प्रतिषिक्तः शान्तो मेध्यो मिथुनः प्रजनिष्णुः ॥३॥ ८

प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता वै तपसैवासृजत, स वै स वाचमेवायच्छत, तपो वा एष उपैति यो वाचꣳ यच्छति, सृष्टिः प्रजानामग्निहोत्रं,—मुमयत एव प्रजा असृजत इतश्चामुतश्च, निमुक्ते यर्ये वाग्यन्तव्याथो दुग्धानामावामेश्चो अधिश्रित, उन्नीयमान एव यन्त३व्या,—स्तदेव कल्पतमम् ॥ उद्धृतः स्व ॥ इत्यवेक्षेत ॥ उदुहं प्रजया पशुभिर्भूयासम् ॥ इति प्रजायाः पशूनाꣳ सृष्ट्या, अथो अ३भ्येवैनद्धारयति मेध्यत्वाया, ऽग्निहोत्रे वै दंपती व्यभिचरेते, पूर्वो यजमानस्य लोकोऽपरः पत्न्या, यत् प्राचीनमुद्धासयेद्यजमानः प्रमीयेत, यत् प्रतीचीनं पत्नी, कं धर्मेमभ्युदवीवसा, इति ब्रह्मवादिनो वदन्त्यु,—दीचीनमेवोद्वास्य,—मंग्रहणी संजीयतः, संवेनापुरितो, नाति नीत,—श्चतुरुन्नयति, चतुष्पदस्तेन पशूनवरुन्द्धे, द्विर्जुहोति, द्विपदस्तेन, य कामयेता, ऽनुज्येष्ठं प्रजया ऋध्नुयादिति, तस्य पूर्वमग्रा उन्नयेदथ कनीयोऽथ कनीयो, ऽनुज्येष्ठं प्रजया ऋध्नोति, तदाहुः, कनीयाꣳसꣳ वा एष यज्ञक्रतुमुपैति कनीयसीं प्रजां कनीयसः पशून् कनीयोऽन्नाद्यं, पापीयान् भवति, संमितमिवाग्रा उन्नयेदथ भूयोऽथ भूयः, पूर्णमुत्तमꣳ, यज्ञस्याभिक्रान्त्यै, तदाहु,—र्ज्यायाꣳसꣳ वा एष यज्ञक्रतुमुपैति भूयसीं प्रजां भूयसः पशून् भूयोऽन्नाद्यꣳ, वसीयान् भवत्य,—थैकोऽस्य पुत्रः कुनिष्ठो भवतीति, यदि कामयेत, सर्वे सदृशाः स्युरिति, सर्वान् त्समावदुन्नयेत, सर्वे ह सदृशा भवन्ति, न पश्चादुपसादये,—दपक्रान्तिः सा यज्ञस्य, यत्रैवोन्नयेत् तत्सादयेत, प्रतरꣳ वा यज्ञस्याभिक्रान्त्या, अनुख्यायिनꣳ वा एतदपरं करोति यदपरस्मिꣳस्तपन्ति पूर्वस्मिन् जुहुति, समेवाग्निꣳ हरन्ति, तेनैवैनं प्रीणात्य,—थो अग्निहोत्रस्य वा एतत् पवित्र,—मपूपोदेवैन,—दपरस्माद्वै पूर्वꣳ सृष्टं, समेतावन्तरमयꣳ,—स्तस्मात् पुरोऽनूद्धृत्य जुहोति ॥ आयुर्मे यच्छ ॥ इति सादयत्या,—युरेवास्मिन् यच्छति ॥ वर्चो मे यच्छ ॥ इति सादयति, वर्च एवास्मिन् यच्छत्यो,—पृथीवीं इमां रुद्रां

[४] काठ. ६,४-५ । कपि. ४,३-४ । तै. ब्रा. २,१,३-४ । मा. श्रौ. १,६,१ ।

विषेणाश्नꣳ,—स्ताः पशवो नालिशन्त, ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधावन्, त्स प्रजापतिरब्रवीद्, वार्यꣳ वृणै, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुवन्, त्सोऽब्रवी,—न्मदेव३त्यैव समिदुसदिति, तस्मात् प्राजापत्या समिद्, देवेषु ह्यस्यैषा वार्यवृता, द्वे समिधौ का३र्ये, द्वे ह्याहुती, एकैव कार्ये,—को हि प्रजापतिरे,—कधा खलु वै समिद्ध, उत बह्वीराहुतयो हूयन्ते, ता अग्निनान्वैवाकरोत्, ता अस्वदयत्, ताः पुनर्णवा अजायन्त,—तर्हि खलु वा अग्निहोत्रिणे दर्शपूर्णमासिने सर्वा ओषधयः स्वदन्ते, यत्समिधमादधाति सर्वा एवास्मा ओषधीः स्वधयामकः ॥४॥ ९-१७

भूर्भुवः स्वः॥ इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेदे,—तद्वै ब्रह्म,—तत्सत्यमे,—तद्दतं, न वा एतस्माद्दतं यज्ञोऽस्ति, तस्मादेवꣳ वदितव्यम्॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ इति गर्भिण्या वाचा गर्भं दधाति, मिथुनया वाचा मिथुनं प्रजनयति, यद्वाचा च जुहोति यजुषा च तन्मिथुनꣳ, यत्तूष्णीं च जुहोति मनसा च तन्मिथुनꣳ, स्थाणुर्वै पूर्वाहुतिर,—तिहाय पूर्वामाहुतिमुत्तरा होतव्या, स्थाणुमेवं छम्बट्कुरोत्यु,—त्तराहुतिर्भूयो होतव्या यज्ञस्याभिक्रान्त्यै, पशूनेव पूर्वयाहुत्या स्पृणोति ब्रह्मवर्चसमुत्तरया, ऽऽग्नेयीं सायमाहुति,—स्तया रेतः सिञ्चति, तद्रेतः सिक्तꣳ रात्र्यै गर्भं दधाति, तत्सौर्या प्रातः प्रजनयामकरि,—यꣳ होतव्याथ परांथ पुनुरवस्तात् प्रातरवस्ताद्धि प्रजानां प्रजातिः, प्रजननꣳ हि सौरी, तन्न सूक्ष्यं, परापरेवं होतव्या यज्ञस्याभिक्रान्त्या, उदङ्ङुद्दिशति ॥ अनाभो मृड, धूर्ते नमस्ते अस्तु, रुद्र मृड ॥ इत्येता वै रुद्रस्य तन्वः क्रूरा एतानि नामान्ये,—ताभिर्वा एष पशूञ्छमायते, ता एवास्य भागधेयेन शमयत्य,—वाचीनꣳ सायमवमार्ष्टि, तस्मात्सायमवाची प्रुष्वे,—त्यूर्ध्वं दिवोन्मार्ष्टि, तस्मादूर्ध्वा दिवैति, पराचीनमिव वा एतद्यदग्निहोत्रꣳ, यत्पुरस्ताद्याजुषꣳ वदति धृत्या अनिर्मार्गाय, यो वा अग्निहोत्रस्य वैश्वदेवꣳ वेदाघातुक एनं पशुपतिर्भवत्यघातुकोऽस्य पशुपतिः पशून्, प्राङासीनो जुहोति, देवाꣳस्तेन प्रीणाति, हुत्वोञ्शिꣳषति, पशूनेव यजमानायोञ्शिꣳषत्यु,—दङुदिशति, रुद्रं तेन निरवदयते, दक्षिणतो निमार्ष्ट्यो,—षधीश्च तेन पितॄꣳश्च प्रीणाति, प्राश्नाति, मनु३ष्याꣳस्तेन प्रीणात्य,—ङ्गुल्या प्राश्नाति, यदुत्वाय न दुतो गमयेद्, यद्दुतो गमयेत् सर्पा एनं घातुकाः स्युः, सर्पानेव शमयत्यहिꣳसायै ॥ पूषासि ॥ इति यजुर्वदेत्, पशवो वै पूषा, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽशान्तो वा एषोऽप्रीतः, पुरुषमेधꣳ वा एष प्रतीक्षते यजमानमेव हव्यꣳ, यद-

[५] काठ. ६,५ । कपि. ४,४,६ । वा. ३,९ । काण्व. ३,९ । तै. ब्रा. २,१,४ । मा. श्रौ. १,६,१ ।

ग्निहोत्रहवण्यां निर्वपत्यशान्तस्तेनाग्निहोत्रहवण्यां प्रतप्य हस्तोऽनुवेयो, हस्तो वा प्रतप्याग्निहोत्रहवण्यामवधेय,—स्तेनैवैनꣳ शमयति, तेन प्रीणाति, शान्त एनं प्रीतो न हिनस्ती,—त्थं पर्यावर्तत, एवꣳ हि पशवः पर्यावर्तन्ते, ऽथो अमुष्य वा एतदादित्यस्यावृतमनु पर्यावर्तते, होत३व्यं गार्हपत्या३ं होत३व्यामि,—ति मीमाꣳसन्ते, ऽनुख्यायी वा एष रुक्षो, होतव्यमेव ॥ अग्ने गृहपते परिषद्य जुषस्व स्वाहा ॥ इति जुहुयात्, तेनैवैनꣳ शमयति, तेन प्रीणात्य,—थो तेनैवैनमननुख्यायिनमरुक्षं करोत्य,—थ यत्पूर्वामाहुतिꣳ हुत्वोत्तराꣳ होष्यन्प्रतीक्षते तेनैवैनꣳ शमयति, तेन प्रीणात्य,—थो तेनैवैनमननुख्यायिनमरुक्षं करोत्य,—थ यत्पूर्वामाहुतिꣳ हुत्वोत्तराꣳ होष्यन् प्रतीक्षते तेनैवैनꣳ शमयति, तेन प्रीणात्य,—थो तेनैवैनमननुख्यायिनमरुक्षं करोत्य,—थ यदेवास्य गृह उपक्रियते यदेनमग्निमभिता आसीना याचन्ति तेनैवैनꣳ शमयति, तेन प्रीणात्य,—थो तेनैवैनमननुख्यायिनमरुक्षं करोति ॥५॥ १८-२७

द्वे दुहन्त्यग्निहोत्राय, ज्यायान्वा एकस्या दुग्धादग्निहोत्रिणो लोको, यद् द्वे दुहन्ति ज्यायाꣳसꣳ वा एतं लोकꣳ यजमानोऽभिजयति, मनुश्च वा इदं मनायी च मिथुनेन प्राजनयताꣳ, यत्स्थान्या च दोहनेन च दुहन्ति मिथुनादेव प्रजायते ॥ सजातवेदो दिवा पृथिव्या जुषाणो अस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ इति जुहुयाद,—या वा अस्य जातवेदस्या तनूः क्रूरे,—तया वा एष पशूञ्छमायते, तामेवास्य भागधेयेन शमयति, यदि तदति शमायेत ॥ अग्ने दुःशीततनो जुषस्व स्वाहा ॥ इति जुहुया,—द्या वा अस्य शूनदी तनूः क्रूरे,—तया वा एष पशूञ्छमायते, तामेवास्य भागधेयेन शमयति, यदि तदति शमायेत॥ द्वादश रात्रीः सायꣳ सायं जुहुयाद्, द्वादश वै रात्रयः संवत्सरस्य प्रतिमा, संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः,—स्तमाहिताग्नयो दर्शपूर्णमासिन इन्धते, तेषाꣳ वा अर्वत्र एवं दोहानि, ये स्वविष्ठा अङ्गारास्ते मासा, ये क्षोदिष्ठास्तेऽर्धमासा, अहोरात्राणि हेमुरा, यत्संभूतं ज्योतिस्तद्वैश्वदेवꣳ, यल्लोहितं तद्वारुणꣳ, यत्सुवर्णं तद्बार्हस्पत्यꣳ, यत्र लोहितं न सुवर्णं तन्मैत्रꣳ यदङ्गारेषु व्यवशान्तेषु लेलायतीव भाति तद्देवानामा३स्यम्,—थो अमुष्य च वा एतदादित्यस्य तेजो मन्यन्तेऽन्नं, तस्मात्तर्हि होत३व्यꣳ, य३ इध्मा अग्निरिद्धवाति तद्विनीत्या,—विर्वै नामैषाहुति,—राविर्भूय देवमनुष्येषु गच्छति य एवꣳ वेद, न समिद्धमिद्धोतवा, अप्रतिष्ठिता साहुति,—र्नो यथा ग्रीवावस्थेदे,—युता सा, तस्यैव होत३व्यꣳ यथाग्निꣳ व्युषेयाद, सा हि यता, सा प्रतिष्ठिता, तस्मान्महानग्निहोत्रस्येध्मः का३र्यो,

[६] काठ. ६,७ । कपि. ४,६ ।

यो वै बहु दुदिवान्बहीजा३नोऽग्निमुत्सादयते ऽक्षित्तद्वै तस्य, तदीजाना वै सुकृतोऽमुं लोकं नक्षन्ति, ते वा एते यन्नक्षत्राणि, यदाहु,—र्ज्योतिरवापादि तारकावापादीति, ते वा एतेऽवपद्यन्त, आप्त्वा स्विते त इदꣳ यथालोकꣳ सचन्ते यदामुतः प्रच्यवन्ते, ऽथ यो बहु दुदिवान् बहीजानोऽग्निहोत्रं जुहोति दर्शपूर्णमासौ यजते चातुर्मास्यैर्यजते बहूनि सत्राण्युपैति तस्य वा एतदक्षय्यमपरिमितं, तिरो वा ईजानाद्यज्ञो भवति, तदाम्यामिवाग्निभ्यां दग्ध३व्यः, स्वꣳ वा एतद्दिष्टमन्वारोह,—त्यपरेण दग्ध३व्या३ः पूर्वेणा३, इति मीमाꣳसन्त, उभौ समाहृत्या,—न्तरा दग्ध३व्य,—स्तदेवक्षततमं गृह्णीयान्नक्तमग्नि,—मसु३र्या वै रात्रि,—र्ज्योतिषैव तमस्तरति, दिवा ह वा अस्मा अस्मिंल्लोके भवति, प्रास्मा असौ लोको भाति य एवꣳ वेद॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इति पुरस्ताद्धोतोर्वदे,—देभ्यो वा एतल्लोकेभ्या इष्टका उपदधाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, यत्सायं जुहोति सहस्रं तेन कामदुघा अवरुन्द्धे, यत्प्रातः सहस्रं तेन, यदस्याग्निराधीयते सहस्रं तेन, यमराज्यꣳ वा अग्निष्टोमेनाभिजयति, सोमराज्यमुक्थ्येन, सूर्यराज्यꣳ षोडशिना, स्वाराज्यमतिरात्रेण,—तानि वै सर्वाणीन्द्रोऽभव,—देतानि सर्वाणि भवति य एतैर्यजते, सर्वमेतद्भवति य एवꣳ वेद, हविष्मान् वा एको, देवयाज्येकः, सहस्रयाज्येको, योऽग्निहोत्रं जुहोति स हविष्मान्, यो दर्शपूर्णमासौ यजते स देवयाजी, यश्चातुर्मास्यैर्यजते स सहस्रयाज्य-ग्निहोत्रे वै सर्वे यज्ञक्रतवः सर्वान् यज्ञक्रतूनवरुन्द्धे य एवꣳ विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥६॥ २८-३५

प्रियमेधा वै सर्वे सह ब्रह्माविदु,—स्तेऽग्निहोत्रेण समराधयꣳ,—स्तेषां त्रिरेकोऽजुहोद् द्विरेकः सकृदेकꣳ,—स्तेषाꣳ यस्त्रिरजुहोत्तमपृच्छन्, कस्मै त्वमहौषीरिति, सोऽब्रवीत्, त्रेधा वा इदं,—मग्नये प्रजापतये सूर्याये,—त्यथ यो द्विरजुहोत्तमपृच्छन्, कस्मै त्वमहौषीरिति, सो ऽब्रवीद्, द्वेधा वा इदं,—मग्नये च प्रजापतये च सायꣳ, सूर्याय च प्रजापतये च प्रातरि,—त्यथ यः सकृदजुहोत्तमपृच्छन्. कस्मै त्वमहौषीरिति, सोऽब्रवी,—देकधा वा इदं, प्रजापतय एवेति, तेषाꣳ यो द्विरजुहोत् स आर्ध्नोत्, तस्येतरे साजात्यमुपायन्, ऋध्नोति य एवꣳ विद्वानग्निहोत्रं जुहो,—त्युपास्य समानाः साजात्यꣳ यन्ति, प्रदोषमग्निहोत्रꣳ होत३व्यꣳ, व्युष्टायां प्रातर्वृद्धान् गर्भान् प्रजनयति, तदाहुः, परा वा एतस्याग्निहोत्रं पतति यस्य प्रदोषं न जुह्वतीति, यदि मन्येत, ऋतुमत्यनेषमिति ॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेत, तेनैव सर्वं नान्तरेति ॥ दोषा वस्तो-

[७] काठ. ६,६,८ । कपि. ४,५,७ ।

नमः स्वाहा ॥ इति जुहुयाद्, ऋतुमेव नात्यनै,—द्धोतव्या३म् होतव्या३मि,—ति मीमाꣳसन्ते, यस्याहुतमग्निहोत्रꣳ सूर्योऽभ्युदियाद्धोतव्यमेवा,—ऽग्नये वा एतद्धूत्यै गुप्त्यै हूयते, प्रजननं तु छम्बट्करोति, यदि मन्येत, ऋतुमत्यनैषमिति ॥ भूर्भुवः स्वः ॥ इति पुरस्ताद्धोतोर्वदेत्, तेनैव सर्वं नान्तरेति ॥ प्रातर्वस्तोर्नमः स्वाहा ॥ इति जुहुयाद्, ऋतुमेव नात्युनैत्, तद्यथा कारुद्वेषिणो जुहुत्येवमस्य हुतं भवति, यस्याग्निमनुद्धृतꣳ सूर्योऽभिनिम्रोचेद्यो ब्राह्मणो बहुवित्सं उद्धरेत्, संवेणैवैनं ब्रह्मणाद्धुरत्य,—ग्निहोत्रेणानुद्रवेद्, भागधेयेनैवैनं प्रणयत्य,—थो भागधेयेनैवैनꣳ समर्धयति, वरो दक्षिणा, सर्वत एवैनं दिग्भ्यो वरेण च्यावयति, यस्योभा अनुगता अभिनिम्रोचेद्यस्य वाभ्युदियात् पुनराधेयमेव तस्य प्रायश्चित्ति,—र्यथा वै पथो वर्तनी एवं दर्शपूर्णमासौ, यथान्तरैवमग्निहोत्रमेवꣳ वा अग्निहोत्रिणे दर्शपूर्णमासिने स्वर्गो लोकोऽनुभात्यु,—पान्यानि हवीꣳष्यपि वसन्त्य,—थ कस्मादग्निहोत्रं नोपवसन्तीति, ब्रह्मवादिनो वदन्ति, प्रततꣳ वा एतदपरिमितमसꣳस्थितम,—श्नाति माꣳसं,—मुपस्त्रियमेति, तस्मान्नोपवसन्ति, पशुव्रतेन भवितव्यं, तूष्णीमिव पशवः संभवन्ति, ते मेध्या, यत्तूष्णीꣳ स्त्रियमुपैति मेध्यतरस्तेन भवति, हिंकृत्योपेयादे,—वमिव हि पशव उपयन्ति मेध्यत्वाय, सꣳस्थाप्या३म् सꣳस्थाप्या३मि,—ति मीमाꣳसन्ते, ऽग्निहोत्रꣳ यत्सꣳस्थापयेत्तृणमकृत्वानुप्रहरेत्, सा ह्यग्निहोत्रस्य सꣳस्थितिस्त,—दाहु,—र्यदा वै जीयते यदा प्रमीयते यदार्तिमार्छत्यथाग्निहोत्रꣳ सैतिष्ठता इति, तन्न सꣳस्थाप्य, मनसा वा इमां प्रजापतिः पर्यगृह्णादि,—यꣳ वा अग्निहोत्रस्य वेदि,—र्यमुपयाम, ओषधयो बर्हिः, प्रंष्वा प्रोक्षणी,—दिशः परिधयो, यत् किंचाभ्याधीयते स इध्मो, यजमानो यूप, उन्नीयमाने स्वेयुमे,—वमिव हि यूपः समृद्धयै, मध्यतो वा एष यज्ञः प्रततो यदग्निहोत्रं, तस्मादग्निहोत्री दर्शपूर्णमासी सर्वं बर्हिष्यं ददाति, मध्यतो३ह्येतद्यज्ञस्य दीयते यदग्निहोत्रं, होतव्यꣳ राजन्यस्याग्निहोत्रा३म् होतव्या३मि,—ति मीमाꣳसन्त, आमादिव वा एष यद्राजन्यो, बहु वा एषोऽयज्ञियममेध्यं चरत्य,—त्युनन्न जिनाति ब्राह्मण, तस्माद्राजन्यस्याग्निहोत्रमहोतव्य—मृतꣳ वै सत्यमग्निहोत्रं, ब्राह्मण ऋतꣳ सत्यं, तस्माद्ब्राह्मणस्यैव होतव्यम,—थो ब्राह्मणायैवास्याग्रतो गृह आहरेयुस्त,—द्धुतमेवास्याग्निहोत्रं भवत्य,—थो य ऋतमिव सत्यमिव चरेत् तस्य होतव्यमनुसंतत्यै ॥७॥ ३६-४४

याग्निहोत्रायोपसृष्टा निषीदेद्यस्यान्नं नाद्यात् तस्मै तां दद्याद,—र्तिꣳ वा एषा यजमानस्या-

[८] तै. २,२,४,६-८; ४,२,५,१ । का १३,३४-३५; ३५,१९ (च. पा.); ५,३; ११,६० । काण्व. १४,३६-३७; ३५, ५१ (च. पा.); ५,३; १३,६१ । मा. श्रौ. ३,३ ।

नुत्सच निषीदति, तयैवैनाꣳ सह निरवदयते, गृहे तु तस्य ततः परो नाश्नीयाद्, यद्श्रीयादार्तिमार्छेद्, यस्याहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेदग्निना च सहाग्निहोत्रेण चोद्द्रवेद्, भागधेयेनैवैनं प्रणयत्य,—थो भागधेयेनैवैनꣳ समर्धयत्य,—थाभिमन्त्रयेत ॥ ४५

इत एव प्रथमं जज्ञे अग्निरेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभा जगत्यानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यां वहतु प्रजानन् ॥ ४६

इत्येते वा एतस्य योनयः, स्वेभ्य एवैनꣳ योनिभ्योऽधि प्रजनयति ॥ इषे राये रमस्व सहसे द्युम्नायोर्जेऽपत्याय ॥ इत्येतान्येवावरुन्द्धे, ऽथो रमयत्येवैनम् ॥ सम्राडसि स्वराडसि, सुषदा सीद ॥ इति सुषदैवैनꣳ सादयति ॥ सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ इत्यृक्सामे वै सारस्वता उत्सौ, ताभ्यामेवैनं प्रावति, ताभ्याꣳ समर्धयत्य,—ग्नये ज्योतिष्मतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्वारुणꣳ यवमयं चरुꣳ यस्याहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छेत्, तमो वा एतस्य यज्ञꣳ युवते यस्याहुतेऽग्निहोत्रे पूर्वोऽग्निरनुगच्छति, यदग्नये ज्योतिष्मते ज्योतिषैवास्य यज्ञꣳ समर्धयति, वारुणी रात्रि,—र्यद्वारुणो वरुणादेवास्याधि यज्ञꣳ स्पृणोति, यस्याहुतेऽग्निहोत्रेऽपरोऽग्निरनुगच्छेत् तत एव प्राञ्चमुद्धृत्यान्ववसायाग्निहोत्रं जुहुयाद,—थाभिमन्त्रयेत ॥ भवतं नः समनसौ समोकसौ सचेतसा अरेपसा, इति समनसा एवैनौ करोति यजमानस्याहिꣳसाया, एतौ वै तौ या आहुर्ब्रह्मवादिनो, नकः कुञ्जिद्धौ व्याघ्रौ विव्याचे,—त्यग्नयेऽग्निमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याग्ना अग्निमभ्युद्धरेयु,—र्देवताभ्यो वा एष समदं करोति यस्याग्ना अग्निमभ्युद्धरन्ति, यदग्नयेऽग्निमते देवता एवास्मै भूयसीर्जनयति, वसीयान् भवति ॥८॥ ४७-५४

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥ ५५

इत्यभिमन्त्रयेत यस्याहुतमग्निहोत्रꣳ सूर्योऽभ्युदियाद्,—नुक्शायैवैनत् पुनरवरुन्द्धे, तदाहुर,—मुꣳ वा एष लोकꣳ समारोहयति सह प्रजया पशुभिश्च यजमानस्य, तस्मादुत बहुराहिताग्निरपशुर्भवतीति, तदुपस्थेयः ॥ इहैव क्षेम्य एधि, मा प्रहासीर्मामुमामुष्यायणम् ॥ इत्यस्मिन् न्वावैनमेतं लोके दाधार, सह प्रजया पशुभिश्च यजमानो वसीयान् भवति, मैत्रं

[देवेभ्यो...प्रजानन्– ऋ. १०,१६,९; अथर्व. १२,२.८]
[९] मा. श्रौ. ३,३-४ । का. ११,१७; ८,६१; ५,१५ [अन्वग्नि (प्रत्यग्नि) रुषसा...आ (विवेश; ततान) ततन्थ– अथर्व० ७,८२,४-५; १८,१,२७ । प्रत्यग्निरुषसा०– (प्र. पा.) ऋ. ४,१३,१ ।

चरुं निर्वपेत्सौर्यमेककपालꣳ यस्याहुतमग्निहोत्रꣳ सूर्योऽभ्युदिया,—न्मित्रो वा एतस्य यज्ञꣳ स्पृणोत्य,—थ यत् सौ३र्योऽमुनैवास्यादित्येन पुरस्ताद्यज्ञꣳ समर्धयति, यस्याहुतमग्निहोत्रꣳ सूर्योऽभ्युदियादग्निꣳ समाधाय वाचꣳ यत्वा दंपती सर्वाह्णमुपासीयातां, द्वयोर्गवोः सायमग्निहोत्रं जुहुयाद,—मयुमेवास्मै भागधेयं प्रयच्छति सायन्तनं च प्रातस्तनं च, यद्वै पुरुषस्यामयत्याश्नाती३ नाश्नाती३, इति वै तमाहु,—र्नाश्नातीति, वेदाहुस्तद्वाव सोऽमृतेति, यन्नाश्नीतो न व्याहरतोऽन्वेवैनमम्नातां, तपसैनं पुनरवरुन्धाते, अग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद,—यस्याग्निरनुगच्छेद्यजुषा, अग्निर्वै देवानाꣳ व्रतपति,—स्तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनꣳ व्रतमालम्भयति यस्याग्नि-रुपक्षायेद्, यत्रैवैनमनुपरागच्छेत् तत समाधायान्ववसायाग्निहोत्रं जुहुयाद,—ति वा एतदग्निर्यद-रुपक्षायेद्, यत्रैवैनमनुपरागच्छति तत एनं पुनरवरुन्द्धे, ऽग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याग्निरुपक्षायेद्, बहिष्पथꣳ वा एष एति यस्याग्निरुपक्षायत्य,—ग्निर्वै देवानां पथिकृत्, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनं पन्थामपिनयत्य,—नड्वान् दक्षिणा, स हि पन्थामपिवहत्य,—ग्नये शुचयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याभ्यादाव्येन सꣳसृज्येता,—ऽशुचितर इव वा एष यदभ्यादा३व्यो, यदग्नये शुचये शुचिमेवैनं मेध्यं करोत्य,—ग्नये क्षामवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याहिताग्नेः स३तोऽग्निर्गृहान् दहेद,—ग्निर्वा एतस्य क्षामो गृहानभ्युच्यति, स दहत्येवापुरꣳ, यदग्नये क्षामवते यैवास्य क्षामा तनूस्तामेवास्य भागधेयेन शमयत्य,—दाहुकोऽस्यापरमग्निर्गृहान् भवति, यस्याग्निरनुगच्छेत् तस्य एवावक्षाणेभ्योऽधि मन्थितव्य,—स्तदेनꣳ स्वाद्योनेः प्रजनयति, यदि न तावक्षानि स्युर्भस्मनारणी सꣳस्पृश्य मन्थितव्यः, स्वादेवैनꣳ योनेः प्रजनयत्य,—ग्नये पावकवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्याग्निरनुगच्छे,—न्न हि वा एतस्मा अपिधीयतेऽथैषोऽनुगच्छ,—त्योषधयो वै पावका, ओषधीरेवास्मै पावका भागधेयमपिदधाति प्रजननाय ॥५६-५८

त्रयस्त्रिꣳशत् तन्तवो यꣳ वितन्वत इमं च यज्ञꣳ सुधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नं प्रत्येतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥ ५९

तेमिश्छिद्रमपिदध्मो यदत्र स्वाहा यज्ञो अप्येतु देवान् ॥

इति जुहुयाद्यद्यनो वा रथो वान्तरा वियायादि,—तावन्तो वै यज्ञस्य तन्तवो, देवता वा एता,—स्तान्वा एतत्समवृक्षद्, ताः संदधात्ये,—तद्ध स्म वा आहु,—र्दाक्षायणास्तन्तून् त्समवृक्षद्, स्वान्वा एतत्समवृक्षत्, ताः संदधात्ये,—दꣳ विष्णुर्विचक्रमा, इति पदꣳ गोपयति, गामन्वत्यावर्तयेति, गौर्हि यज्ञिया मेध्ये,—

[इदं विष्णुर्वि० ऋ. १,२२,१७; अथर्व. ७,२६,४; सा. २२२; १६६९]

विष्णोः स्विदेव यज्ञस्य विक्रान्तमकर३पोऽन्वातिपिश्चति शान्त्यै ॥९॥ ६०

रौद्रं गवि सद्, वायव्यमुपावसृष्टमा,—ऽश्विनं दुह्यमानꣳ, सौम्यं दुग्धꣳ, वारुणमधिश्रितं, मैत्रꣳ शरोगृहीतं, मारुतं बिन्दुमत्, पौष्णमुदन्तꣳ, सारस्वतꣳ विष्यन्दꣳ, वैष्णवं प्रतिनीयमानꣳ, स्व३र्ग्यमुद्वासितं, त्वष्टुरुन्नीयमानं, धातुरुन्नीतꣳ, वैश्वकर्मणमुद्यतꣳ, सावित्रं प्रणीयमानं, द्यावापृथिवीयं प्रह्रियमाणमै,—न्द्राग्नमुपसन्नं, प्राजापत्यꣳ समिधि, वैश्वदेवꣳ हुतम् ॥१०॥ ६१[५८६]

॥ इति प्रथमकाण्डे अग्निहोत्र-ब्राह्मणं नाम अष्टमः प्रपाठकः ॥८॥

अथ नवमः प्रपाठकः ।

चतुर्होतारः ।

चित्तिः स्रुक्, चित्तमाज्यꣳ, वाग्वेदि,—राधीतं बर्हिः, केतो अग्नि,—र्विज्ञातमग्नीद्, वाचस्पतिर्होता, मन उपवक्ता, प्राणो हविः, सामाध्वर्युरि,—न्द्रं गच्छ स्वाहा, पृथिवी होता, द्यौरध्वर्युस्त्व,—ष्टाग्नी,—न्मित्र उपवक्ता, वाचस्पते वाचो वीर्येण संभृततमेनायक्षसे, यज्ञपतये वार्यमा स्वस्क,—र्वाचस्पतिः सोममपा,—ज्जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय, सोमः सोमस्य पिबतु, शुक्रः शुक्रस्य पिबतु, श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापयो हवनश्रुतो, ऽग्निर्होता,—ऽश्विनाध्वर्यू, रुद्रो अग्नीद्, बृहस्पतिरुपवक्ता, वाचस्पते हिंन्विधे नामन् विधेम ते नाम, विधेस्त्वमस्माकं नाम, वाचस्पतिः सोममपादा,—ऽस्मासु नृम्णं धात्, सोमः सोमस्य पिबतु, शुक्रः शुक्रस्य पिबतु, श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापयो हवनश्रुतो, महाहविर्होता, सत्यहविरध्वर्यु,—श्चित्तपाजा अग्नीद,—श्चित्तमना उपवक्ता,—ऽनाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरा, अयास्य उद्गाता, विधे नामन् विधेम ते नाम, विधेस्त्वमस्माकं नाम, मा देवानां तन्तुश्छेदि मा मनुष्याणां, नमो मात्रे पृथिव्यै ॥१॥ १

अग्निर्यजुर्भिः, सविता स्तोमै,—रिन्द्र उक्थामदै,—र्बृहस्पतिश्छन्दोभि,—रदितिरंशु बर्हिषा,—ऽऽदित्या आज्यै,—र्मरुतः सदोहविर्धानै,—र्विष्णुर्दीक्षातपोभ्यां, मित्रावरुणौ धिष्ण्यै,—रश्विना आशिरा, त्वष्टा समिधा, पूषा स्वाहाकारै,—र्वाग्वायोः पत्नी, पथ्या पूष्णः,

[१] मै. १,९,३-६ । काठ. ९,८ । कपि. ८,११ ।
[२] मै. १,९,८ । काठ. ९,१० ।

पृषिश्चपदेः, सेनेन्द्रस्य, धेना बृहस्पते,—र्गायत्री वसूनां, त्रिष्टुब् रुद्राणां, जगत्यादित्यानाम,—नुष्टुब् मित्रस्य, विराड् वरुणस्य, पङ्क्तिर्विष्णो,—र्दीक्षा सोमस्य ॥२॥ २

प्रजापतिर्वा एक आसीत्, सोऽकामयत, यज्ञो भूत्वा प्रजाः सृजेयेति, स दशहोतारꣳ यज्ञमात्मानꣳ व्यधत्त, स चित्तिꣳ स्रुचमकुरुत, चित्तमाज्यꣳ, वाचꣳ वेदिमा,—ऽधीतं बर्हिः, स दशधात्मानꣳ विधाय मिथुनं कृत्वायतनमैच्छत्, स वै त्रिवृतमेव प्राणानामायतनमचायत्, तैः प्रजा असृजतो,—र्य उदतृणत् पूर्वपक्षः पञ्चदशो,—स्तेन देवानसृजत, ते देवा ऊर्ध्वा आप्यायन्तो,—र्य आप्यायते य एवꣳ वेदा,—ऽथ योऽवातृणदपरपक्षः पञ्चदशो,—स्तेनासुरानसृजत, तेऽसुरा अवाञ्चः प्राध्वꣳसन्त, प्रास्य भ्रातृव्यो ध्वꣳसते य एवꣳ वेद, दिवा देवानसृजत नक्तमसुराꣳ,—स्ते देवाः शुक्ला अभवन् कृष्णा असुराः, सत्येन देवानसृजतानृतेनासुराꣳ,—स्ते देवाः सत्यमभवन्ननृतमसुरा, दक्षिणेन हस्तेन देवानसृजत सव्येनासुराꣳ,—स्ते देवा वीर्यवन्तोऽभवन्नवीर्या असुरा,—स्ततो देवा अभवन् परासुरा,—स्तद्य एवꣳ वेद भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्योऽभवति, सोऽमन्यत, क्व होष्यामीति, स तदेव नाविन्दत् प्रजापतिर्यत्राहोष्य,—च्छो अस्मान्यद्वौ न्वमासीत् प्राणात्, स वा इन्द्रमेवान्तरात्मनायतनमचायत्, स इन्द्रं गत्स्वाहेति,—त्वेपानद्वीꣳशेयेꣳ वै प्राणो, वीꣳर्यमिन्द्रो, वीर्य एव वीर्यमजुहोत् ॥३॥
३

ते वै चतुर्होतारो न्यसीदन् सोमगृहपतय, इन्द्रं जनयिष्याम इति पृथिवी होतासीद्, द्यौरध्वर्युस्त्वष्टाग्नी,—र्मित्र उपवक्ता, ते वा एतं ग्रहा अगृह्णत, वाचस्पते वाचो वीर्येण संभृततमेनायक्षसे, यज्ञपतये वार्यमा स्वस्कारिति, तं एकविꣳशमायतनमचायꣳ, स्तेनेन्द्रमजनयꣳ,—स्त इन्द्रं जनयित्वाब्रुवन्, त्स्वरयामेति, ते वै पञ्चहोतारो न्यसीदन् वरुणगृहपतयो, ऽग्निर्होतासीद्,—श्विनाध्वर्यू, रुद्रो अग्नीद्, बृहस्पतिरुपवक्ता, यदश्विनेति, तेन पञ्चहोता, ते वा एतं ग्रहा अगृह्णत, वाचस्पते हिन्विधे नामन् विधेम ते नाम, विधेस्त्वमस्माकं

[३] मै. १,९,१ । काठ. ९,११ । तै. आ. ३,२,३ ।
[४] मै. १,९,१ । काठ. ९,११-१२ । कपि. ८,१२ । श. १,१०,२१,२४; २,११; ५,२२,२६; ६,१९,३०; ९,३०, ३८; ११,९,२८; १८,३७; २०,३; ३७,१; ३८,१; ७,३७-३८ । कात्या. १,१३, ३६,४०; २,२१,५,२८,३३; ६, १,१०,४३; १०,३१; ११,४; १२,९,२८; २०,७; २१,९३; ३७,१,३८,१; ९,१०-१४ । मा. श्रौ. ११,१,५,२, १४ ।

नामेति, तं त्रिणवमायतनमचायꣳ,—स्तꣳ सेतुं कृत्वा स्वरायꣳ,—स्तेन पशूनसृजन्त, तान्वरुणाभ्योऽनयन् यमायाश्वमनयꣳ,—स्तस्यार्धमिन्द्रियस्यापाक्रामत्, स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसꣳवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि, यमाय त्वा मह्यꣳ वरुणो ददाति, सोऽमृतत्वमशीय, मयो दात्रे भूया,—न्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ इतिꣳसोऽर्धमिन्द्रियस्योपाधत्ता,—ऽर्धमिन्द्रियस्योपधत्ते य एवꣳ विद्वानश्वं प्रतिगृह्णात्य,—थ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णात्यर्धमस्येन्द्रियस्यापक्रामति, रुद्राय गामनयꣳ,—स्तस्य तृतीयमिन्द्रियस्यापाक्रामत्, स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ॥ रुद्राय त्वा मह्यꣳ वरुणो ददाति, सोऽमृतत्वमशीय, मयो दात्रे भूया,—न्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ इति स तृतीयमिन्द्रियस्योपाधत्त, तृतीयमिन्द्रियस्योपधत्ते य एवꣳ विद्वान् गां प्रतिगृह्णात्य,—थ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति तृतीयमस्येन्द्रियस्यापक्रामत्य,—ग्नये हिरण्यमनयꣳ,—स्तस्य चतुर्थमिन्द्रियस्यापाक्रामत्, स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ॥ अग्नये त्वा मह्यꣳ वरुणो ददाति, सोऽमृतत्वमशीय, मयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ इति स चतुर्थमिन्द्रियस्योपाधत्त, चतुर्थमिन्द्रियस्योपधत्ते य एवꣳ विद्वान् हिरण्यं प्रतिगृह्णात्य,—थ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति चतुर्थमस्येन्द्रियस्यापक्रामति, बृहस्पतये वासोऽनयꣳ,—स्तस्य पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत्, स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ॥ ग्नास्त्वाकृन्तन्न,—पसोऽतन्वत, धियोऽवयन्, बृहस्पतये त्वा मह्यꣳ वरुणो ददाति, सोऽमृतत्वमशीय, मयो दात्रे भूया,—न्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ इति स पञ्चममिन्द्रियस्योपाधत्त, पञ्चममिन्द्रियस्योपधत्ते य एवꣳ विद्वान् वासः प्रतिगृह्णात्य,—थ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति पञ्चममस्येन्द्रियस्यापक्रामत्यु,—त्तानायाङ्गिरसायाप्राणदनयꣳ,—स्तस्य षष्ठमिन्द्रियस्यापाक्रामत्, स एतं प्रतिग्रहमपश्यत् ॥ उत्तानाय त्वाङ्गिरसाय मह्यꣳ वरुणो ददाति, सोऽमृतत्वमशीय, मयो दात्रे भूया,—न्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ॥ इति स षष्ठमिन्द्रियस्योपाधत्त, षष्ठमिन्द्रियस्योपधत्ते य एवꣳ विद्वानप्राणत् प्रतिगृह्णात्य,—थ योऽविद्वान् प्रतिगृह्णाति षष्ठमस्येन्द्रियस्यापक्रामति ॥ क इदं कस्मा अदात्, कामः कामायादात्, कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता, कामाय त्वा प्रतिगृह्णामि, कामैतत्ते ॥ इति समुद्रो वै कामो, दक्षिणा कामो, दक्षिणयैव दक्षिणां प्रतिगृह्णाति, यो वै तां देवताꣳ वेद याग्रे दक्षिणामनयददक्षिणीयो ह भवति, नयति दक्षिणाम् ॥४॥ ४-१६

ते वै स्वयन्तोऽब्रुव,—न्नतो नो यूयं प्रयच्छत, केनायतनेनात्रैव वेत्स्यथे,—त्यब्रुवꣳ,—स्ते वै सप्तहोतारो न्यसीदन्नर्यमगृहपतयो, महाहविर्होतासीत्, सत्यहविरध्वर्युर,—च्चित्तपाजा

[देवस्य त्वा सवितुः— अथर्व. १९,५१,२ । कोदात्कस्मा०— अथर्व. ३,२९,७]
[५] मै. १,९,२ । काठ. ९,१२-१३ ।

अग्नीद्,—च्चित्तमना उपवक्ता,—ऽनाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरौ, अयास्य उद्गाता, ते वा एतं ग्रहमगृह्णत, विधे नामन्विधेम ते नाम, विधेस्त्वमस्माकं नामेति, तं त्रयस्त्रिꣳशमायतनमचायꣳ,—स्तेनेदꣳ समतन्वन्, त्सप्तहोत्रा च वा इदꣳ संततं त्रयस्त्रिꣳशेन च, यदिदं देवमनुष्या अꣳन्योऽन्यस्मै संप्रयच्छन्ते, प्राणो वै दशहोता, चक्षुश्चतुर्होता, श्रोत्रं पञ्चहोता, वाक्चात्मा च सप्तहोता,—ऽग्निहोत्रꣳ वै दशहोता, दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता, चातुर्मास्यानि पञ्चहोता, सौम्योऽध्वरः सप्तहोता,—ऽऽयुषे कमग्निहोत्रꣳ हूयते, सर्वमायुरेति य एवꣳ वेद, चक्षुषे कं दर्शपूर्णमासा इज्येते, न चक्षुषो गृहे य एवꣳ वेद, श्रोत्राय कं चातुर्मास्यानीज्यन्ते, न श्रोत्रस्य गृहे य एवꣳ वेद, वाचे चात्मने च कꣳ सौम्योऽध्वर इज्यते, न वाचो नात्मनो गृहे य एवꣳ वेद, प्रजापतिर्वै दशहोतै,—कः संभूयिष्ठमाम् व्याहृतीना,—मेकः संभूयिष्ठो भवति य एवꣳ वेद, तेजसे कं पूर्णमा इज्यते, सौम्यो वै ब्राह्मणो देवतया गायत्रच्छन्दा, गायꣳत्रोऽग्निः, स्वे वावास्मा एतद्देवते संप्रस्थे अक्र,—न्नौस्यान्यो योगक्षेमस्येशा, आयुषे कममावास्येज्यते, संमीव वा एषं आम्रियते, सर्वमायुरेति य एवꣳ वेद, स्वर्गाय लोकाय कꣳ सौम्योऽध्वर इज्यत, एति स्वर्गं लोकꣳ य एवꣳ वेद, दशहोत्राग्निहोत्रमुन्नीतमभिमृशेद्, दशहोत्रा वै देवा अग्निहोत्रमसृजन्त, प्रज्ञातमेनत् सृष्टमालभ्य, चतुर्होत्रा दर्शपूर्णमासा अभिमृशे,—च्चतुर्होत्रा वै देवा दर्शपूर्णमासा असृजन्त, प्रज्ञाता एनौ सृष्टा आलभ्य, पञ्चहोत्रा चातुर्मास्यान्यभिमृशेत्, पञ्चहोत्रा वै देवाश्चातुर्मास्यान्यसृजन्त, प्रज्ञातान्येनानि सृष्टान्यालभ्य, सप्तहोत्रा सौम्यमध्वरमभिमृशेत्, सप्तहोत्रा वै देवाः सौम्यमध्वरमसृजन्त, प्रज्ञातमेनꣳ सृष्टमालभ्य, दशहोतारꣳ वदेत् पुरस्तात् सामिधेनीनां, प्रजापतिर्वै दशहोता, यज्ञमुखꣳ सामिधेन्यो, मिथुनꣳ वावास्यैतद्यज्ञमुखे दधाति, चतुर्होतारꣳ वदेत् पुरस्तात् प्रयाजानां, चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्नि,—न्द्रꣳ वावास्यैतद्यज्ञेऽजीजनद्, सेन्द्रेण यज्ञेन यजते, पञ्चहोतारꣳ वदेत् पुरस्ताद्धविषां, पञ्चहोत्रा वै देवाः पशूनसृजन्त, परासुरानभावयन्, पशूनेव सृजते, परा भ्रातृव्यं भावयति, सप्तहोतारꣳ वदेत् पुरस्तादनुयाजानाꣳ, सप्तहोत्रा वै देवाः स्वरायन्, त्स्वरेवैति, दशहोतारꣳ वदेत् पुरस्ताद् बहिष्पवमानस्य, प्रजापतिर्वै दशहोता, यज्ञमुखं बहिष्पवमानं, मिथुनꣳ वावास्यैतद्यज्ञमुखे दधाति, चतुर्होतारꣳ वदेत् पुरस्तादाज्यानां, पञ्चहोतारꣳ वदेत् पुरस्तान्माध्यंदिनस्य पवमानस्य, सप्तहोतारꣳ वदेत् पुरस्तादार्भवस्य पवमा-

नस्य, सप्तहोत्रा वै देवाः स्वरायन्,—त्स्वरेवैति, यो वै चतुर्होतॄननुसवनं तर्पयितꣳव्यान् वेद तृप्यति प्रजया च पशुभि,—र्श्रेते वै चतुर्होतारोऽनुसवनं तर्पयितꣳव्या, यद् ब्राह्मणा बहुविदस्तानेव तर्पयति, तं एनं तृप्ताः प्रजया च पशुभिश्च तर्पयन्ति ॥५॥ १७

यः प्रजया पशुभिर्न प्रजायेत स द्वादशाहानि वरासी परिधाय तप्तं पिबन्नधः शयीत, तपो वै तप्त्वा प्रजापतिर्विधायात्मानं मिथुनं कृत्वा प्रजया च पशुभिश्च प्राजायता,—ऽविहितो हि वा एषो ऽमिथुनो, ऽथैष न प्रजायते, तत्तप एव तप्त्वा विधायात्मानं मिथुनं कृत्वा प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते, प्रजापतिर्वै दशहोता, ज्यायान् वै प्रजापतिर्होमात्, तस्मात्तं न जुहति, प्राण्यापाने,—दपाने एव प्राणं जुहोति, संग्रामिणं चतुर्होत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा चतुर्होतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनय,—न्यतरस्मिन् खलु वै संग्रामे इन्द्रो भवति स जयती,—न्द्रꣳ वावास्यैतत्संग्रामेऽजीजन,—ज्जयति संग्रामं, प्रजाकामं चतुर्होत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा चतुर्होतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनय,—न्यतरस्मिन् खलु वै संग्रामे इन्द्रो भवति स जयती,—न्द्रꣳ वावास्यैतत् संग्रामेऽजीजन,—ज्जयति संग्रामं, प्रजाकामं चतुर्होत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा चतुर्होतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, चतुर्होत्रा वै देवा इन्द्रमजनयन्, प्रजामस्मै जनयति, नैव त्वपरोऽनुजायते, तेजस्वी तु भवति, सर्वेण ह्येनमिन्द्रियेण जनयति, पशुकामं पञ्चहोत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, पञ्चहोत्रा वै देवाः पशूनसृजन्त, पशूनेव सृजते, भ्रातृव्यवन्तं पञ्चहोत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, पञ्चहोत्रा वै देवा असुरान् पराभावयन्, परा पाप्मानं भ्रातृव्यं भावयति, स्वर्गकामं पञ्चहोत्रा याजये,—च्चतुर्गृहीतमाज्यं कृत्वा पञ्चहोतारꣳ व्याचक्षीत, पूर्वेण ग्रहेणार्धं जुहुयादुत्तरेणार्धं, पञ्चहोत्रा वै देवाः स्वरायन्, त्स्वरेवैति, यो यज्ञस्य सꣳस्थामनु पापीयान्मन्येत तꣳ सप्तहोत्रा याजयेत्, सप्तहोत्रा वै देवा इदꣳ समतन्वन्, त्संमतत तादृक्, तादृङ् पुनर्भवति यादृक् सन्यजते ॥६॥ १८

[६] मै. १,९,१ । काठ. ९,१४ ।

ब्र॒ह्म॒वा॒दिनो॑ वदन्ति, यदे॑को य॒ज्ञश्च॑तु॒र्होता॒थ॒ कस्मा॑त् सर्वे॒ चतु॑र्होतार उच्यन्ता॒ इति॒, च॒त्वा-
रो॒ वा ए॒ते य॒ज्ञा,—स्तेषां॒ च॒त्वारो॒ होता॒रस्ते,—चतु॒र्होतॄणां चतुर्होतृत्वं, चु॒तु॒र्णामेकः॑ सꣳवत्स॒रं
नाश्नी॑या॒त्, तद् व्र॒तम्,—अꣳ वै चतु॒र्होता॒रो, ऽन्नवान्भवति॒ य ए॒वꣳ वेदा,—ऽथ॒ यम॒नूचा॒नꣳ सन्तं॒
नोप॒न॒मे॒त्सोऽर॒ण्यं पर॑त्य ब्राह्म॒णमु॒पद्र॒ष्टारं॒ कृत्वा चतु॒र्होतॄ॒न् व्या॒चक्षी॒त, ब्रह्म॒णो वा ए॒तद्दु॒द॒रु॒णꣳ
यच्चतु॒र्होता॒रो, ब्राह्म॒णं उ॒पद्र॒ष्टा,—प॒द्र॒ष्टु॒रे॒वान्ते॒ ब्रह्मा॒विरु॒क्,—स्तदे॒नमा॒वि॒र्भू॒तमा॒वि॒दं॒ गमय॒त्यं,—य॒
यौ वि॒ञ्शपे॒याता॒म्,—हं भूयो॒ वेदा॒हं भूयो॒ वे॒दे,—त्ये॒षं वा॒व भूयो॒ वेद॒ यश्चतु॒र्होतॄ॒न् वे॒द, चतु॒र्होता॒रो॒
वै य॒ज्ञस्य॒ योनि॒,—श्चतु॒र्होतृ॒भ्योऽधि॒ य॒ज्ञो निर्मि॒तो, नैन॒ꣳ विश॒सꣳ हिनस्ति॒, चतु॒र्होता॒रꣳ व-
देह॒स॒र्गेऽह॒र्न॒क्त॒का॒मो, ऽन्नꣳ वै चतु॒र्होता॒रो, ऽन्तो॒ द॒श॒मम॒हरं,—न्त॒मे॒व ग॒त्वान्नाद्य॒म॒व॒रु॒न्द्ध,
ए॒तद्वा अ॒स्यैत॒र्ह्य॑प्र॒युक्त॒मे॒,—वद॒न॒वरु॒द्धं तदे॒व प्र॒यु॒ङ्क्ते, तद॒वरु॒न्द्ध, इ॒यꣳ वै स॒र्परा॒ज्ञी, त॒स्या॒
वा ए॒तदु॒क्थꣳ यच्चतु॒र्होता॒रो॒, होता वदति, स्तु॒तꣳ वा ए॒तद॒नु॒शꣳस॒ति॒, न हि स्तु॒तम॒न॒नु-
श॒स्त॒मस्ति॒ ॥७॥ १९

दे॒वाश्च॒ वा असु॒राश्चास्पर्धन्त॒, ते वै स॒मावु॒दे॒व य॒ज्ञं कु॒र्वा॒णा आ॒य॒न्, यदे॒व दे॒वा अकु॒र्वत॒ त-
द॒सुरा अकुर्वत॒, तेन॒ व्या॒वृ॒त॒मग॒च्छꣳ,—स्ते दे॒वा अ॒ब्रुव॒न्ने,—त॒मꣳ य॒ज्ञं ति॒रं उ॒पर्य॑सु॒रेभ्य॒स्त॒ꣳ-
स्या॒मु॒हा इति॒, तमे॒ताव॒च्छ्ल आ॒दायो॒दक्राम॒,—दृ॒ग्भिर्य॑जु॒र्भिः, स॒वि॒ता स्तोमै॒रिं,—न्द्र॒ उक्थाम॒दै,
—र्बृ॒ह॒स्पति॒श्छन्दो॒भि॒रिति॒, तं ति॒रं उ॒पर्य॑सु॒रेभ्यो॒ऽतन्वत॒, तमे॒षाꣳ य॒ज्ञम॑सु॒रा नान्वव॒ाय॒ꣳ,—
स्तेन॒ वा ए॒नानपा॒नुद॒न्त॒, ततो॒ दे॒वा अभ॒वन्, परा॑सु॒रा,—स्तद्य॒ एवꣳ वेद॒ ति॒रं उ॒परि॒ भ्रा॒तृ॒व्या-
द्य॒ज्ञं त॒नु॒ते, भव॒त्या॒त्मना॒, परा॑स्य॒ भ्रा॒तृ॒व्यो भवत्य॒,—तैरे॒व जु॒हु॒यात् सम॒तय॒ज्ञे, च॒तु॒र्भिश्च-
तु॒र्भिरन्वाक्य॒ायं पु॒रस्ता॒त् प्रा॒वरनु॒वा॒कस्यै,—तावा॒न्वै य॒ज्ञो, यावा॒ने॒व य॒ज्ञस्तꣳ वृ॒ङ्क्ते, सय॒ज्ञो
भव॒त्य,—य॒ज्ञा इत॒र, ए॒तैरे॒वं जु॒हु॒यात् पु॒रस्ता॒द्दी॒क्षाया॒, ए॒षा वै प्र॒त्यक्षं दी॒क्षा, ता॒मे॒वाल॒भ्यै,—
तैरे॒व जु॒हु॒यात् पु॒रस्ता॒द्द्वा॒द॒शा॒हस्यै,—ष वै प्र॒त्यक्षं द्वाद॒शाहं,—स्त॒मे॒वाल॒भ्यै,—तैरे॒वाति॒थ्य॒म॒भि॒मृ॒शेद्,
य॒ज्ञेनै॒व य॒ज्ञमाल॒भ्य, द॒क्षि॒ण॒तो वै दे॒वान॒सु॒रा य॒ज्ञम॒जय॒ꣳ,—स्त उद॒ञ्चः पत्नी॑भिः स॒हाग्नी॒ध्रं प्रा-
वि॒श॒ꣳ,—स्तान् पत्नी॑भिः स॒ह प्र॒क्षा॒य जि॒ह्रि॒य॒तोऽसु॒रा अ॒पाव॒र्त॒न्त॒, तांꣳस्तत॒ ए॒वानू॒त्याया॒जय॒ꣳ,

[७] काठ. ९,१५।
[८] मै. १,९,२। काठ. ९,१५।

—स्ततो॒ दे॒वा अभ॒वन्, परा॑सु॒रा,—स्तद्य॒ ए॒वꣳ वेद॒ भव॒त्या॒त्मना॒, परा॒स्य॒ भ्रा॒तृ॒व्यो भवति॒,
नास्य॒ भ्रा॒तृ॒व्यो गृ॒हान्नं प॒शू॒न॒भ्यारो॑ह॒त्य,—भि भ्रा॒तृ॒व्यस्य गृ॒हा॒ना॒भि प॒शू॒ना॒रो॒ह॒ति॒ य ए॒वꣳ वेदे,—
तान्ये॒वाग्नी॒ध्रेऽनु॒ब्रू॒याद्,—ग्नी॒द्ध्रे पा॒त्नी॒व॒तस्य॒ यजति, तृ॒प्ता पत्नी॒ रेतो॒ ध॒त्ते, प्र प्र॒जया॒ च प॒शु॒भिश्च॒
प्रजा॒यत, ए॒तैरे॒व जु॒हु॒याद॒न्त॒रा त्वष्टा॒रं च॒ पत्नी॒श्च सꣳवत्स॒रं प्र॒जाका॒मो, मिथु॒नꣳ वै त्वष्टा॒ च॒
पत्नी॒श्च॒, त्वष्टा॒रꣳ वा ए॒तन्मि॒थु॒नेऽप्य॒स्मात् प्र॒ज॒न॒नाय॒, तन्मि॒थु॒नं, तस्मा॒दे॒व मि॒थु॒नाद्य॒ज॒मानः
प्र॒जया॒ च प॒शु॒भिश्च॒ प्रजा॒यते, वि॒न्दते॒ प्र॒जामा,—स्य॒ वी॒रो जा॒यते॒, यदि॒ सꣳवत्स॒रं जु॒हु॒या॒
वि॒न्दे॒श्चा॒ह॒त्यम् ॥८॥ २०[६०६]

॥ इति प्रथमकाण्डे चातुर्होतृको नाम नवमः प्रपाठकः ॥९॥

अथ दशमः प्रपाठकः।

चातुर्मास्यानि।

आ॒ग्ने॒३यो॒ऽष्टाक॒पालः, सौ॒म्यश्च॒रुः, सा॒वि॒त्रो द्वाद॒शकपालः, सारस्व॒तश्च॒रुः, पौ॒ष्णश्च॒रु,
—र्मा॒रु॒तः स॒प्तक॒पालो, वैश्वदे॒३व्या॒मि॒क्षा, द्यावा॒पृ॒थि॒वीया॒ एक॒कपालो, वा॒जिना॒ꣳ वाजि॒नमा,
—ग्ने॒३यो॒ऽष्टाक॒पालः, सौ॒म्यश्च॒रुः, सा॒वि॒३त्रोऽष्टाक॒पालः, सारस्व॒तश्च॒रुः, पौ॒ष्णश्च॒रु॒रै,—
न्द्रा॒ग्नो द्वाद॒शकपालो, मारु॒३त्या॒मि॒क्षा, वारु॒३ण्या॒मि॒क्षा, का॒य एक॒कपालो, वा॒जिना॒ꣳ
वाजि॒नम्,—ग्नयेऽनीकवते प्रा॒तर॒ष्टाक॒पालो, म॒रुद्भ्यः॒ सांतप॒नेभ्यो॒ म॒ध्यंदि॒ने च॒रुं,—र्म॒रुद्भ्यो॒ गृह-
मे॒धेभ्यः॒ सर्वा॑सां दु॒ग्धे सा॒यमो॒द॒नं, इ॒न्द्रस्य॒ निष्का॒पो, म॒रुद्भ्यः॒ क्री॒डिभ्यः॒ सा॒कꣳ र॒श्मिभिः॒ स॒प्त-
क॒पाल, आ॒ग्ने॒३यो॒ऽष्टाक॒पालः, सौ॒म्यश्च॒रुः, सा॒वि॒३त्रोऽष्टाक॒पालः, सारस्व॒तश्च॒रुः, पौ॒ष्ण-
श्च॒रु॒रै,—न्द्रा॒ग्नो द्वाद॒शकपाला॒, इ॒न्द्राय वृ॒त्रघ्ने च॒रुं,—र्वैश्वक॒र्म॒ण एक॒कपाल, आ॒ग्ने॒३यो॒ऽष्टा-
क॒पालः, सौ॒म्यश्च॒रुः, सा॒वि॒३त्रोऽष्टाक॒पालः, सारस्व॒तश्च॒रुः, पौ॒ष्णश्च॒रु,—र्वा॒यव्या॒ यवा॒गूः
प्र॒ति॒धु॒ग्वं,—न्द्रा॒य शु॒ना॒सी॒राय॒ द्वाद॒शकपालः, सौ॒र्य एक॒कपाल॒ः पट्क॒पालः पु॒रो॒डा॒शो॒ धा॒ना॒
म॒न्थः, प्र॒ति॒पु॒रु॒षं पु॒रो॒डा॒शा॒ एक॒श्चाध्या॒वि॒त्य॒श्च॒रुः ॥१॥ १

अग्ने॒ वेर्होत्रꣳ, वेर्दू॒त्यम्,—व॒तां अ॒ध्व॒रो अ॒स्था॒द,—व॒तां नो॒ द्यावा॒पृ॒थि॒वी, स्वि॒ष्ट॒कृ॒दि॒न्द्रा॒य
दे॒वेभ्यो॒ भवा,—ऽस्य॒ घृ॒तस्य॒ ह॒विषो॒ जु॒षा॒णो वी॒हि स्वाहा॑ ॥ २

[१] तै. १,८,२; ३,४,७। काठ. ९,४-५। कपि. ८,७-८। मा. श्रौ. १,७,१,५।
[२] तै. १,८,३-४। काठ. ९,४-५। कपि. ८,७-८। वा. २,९; ३,४४-४७,४९,५०;२०,१७। काण्व. २,१३-१४; ३,५२-५५; २२,४। मा. श्रौ. १,७,४।

प्र॒घा॒स्या॒न् हवामहे म॒रुतो॒ य॒ज्ञवा॑हसः। क॒र॒म्भेण॑ स॒जोष॑सः ॥ ३
मो षू ण॑ इन्द्रात्र पृ॒त्सु दे॒वास्तु॒ स्म ते शुष्मिन्नव॒याः ॥ ४
म॒ही चि॒द्यस्य॑ मी॒ढुषो॑ य॒व्या ह॒विष्म॑तो म॒रुतो॒ वन्द॑ते॒ गीः ॥ ५
यद्ग्रामे॒ यदर॑ण्ये॒ यत् स॒भाया॒ꣳ यदि॑न्द्रि॒ये।
यदे॑न॒श्चकृ॒मा व॒यꣳ यद॒प्स॒श्चकृ॒मा व॒यम्।
तदे॑क॒स्यापि॒ चेत॑सि॒ तदे॑क॒स्यापि॒ धर्म॑णि। ६
तस्य॒ सर्व॒स्याꣳह॒सोऽव॒यज॑नमसि ॥
अक्र॒न् कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा ७
दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेत॑ सुदानवः ॥
पू॒र्णा द॑र्वे॒ परा॑ पत॒ सुपू॑र्णा॒ पुन॒राप॑त। ८
व॒स्नेव॒ वि॒क्री॒णाव॒हा इष॒मूर्जꣳ शतक्रतो ॥
दे॒हि मे॒ ददा॑मि ते॒ नि मे॑ धेहि॒ नि ते॑ दधौ। ९
अ॒पा॒मि॒त्यमि॑व॒ संभ॑र॒ क्वा अम्बा॒ददते ददत् ॥२॥ १०

अत्र॑ पितरो मादयध्वम् ॥
सु॒संदृ॑शं त्वा व॒यꣳ व॒सो म॑घवन् मन्दिषी॒महि।
प्र नू॒नं पू॒र्णब॑न्धुर स्तु॒तो या॑सि॒ वशा॒ँ अनु॒ योजा॒ न्वि॑न्द्र ते॒ हरी॑ ॥ ११
यद॒न्तरि॑क्षं पृथि॒वीमु॒त द्याꣳ यन्मा॒तरं॑ पि॒तरꣳ वा जिहिꣳसि॒म।
अ॒ग्निर्न॒स्तस्मा॒देन॑सो॒ गार्ह॑पत्या॒ उन्नि॑नेतु दुष्कृ॒ताज्जा॒तवे॑दाः ॥ १२
अमी॑मदन्त पि॒तरो॒, नमो॑ वः पितर इ॒षे, नमो॑ वः पितर ऊ॒र्जे, नमो॑ वः पितरः शु-
ष्माय॑, नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य, नमो॑ वः पितरो॒ यज्जी॒वं तस्मै॑, नमो॑ वः पितरो॒ यद्घो॒रं
तस्मै॑, स्व॒धा वः॑ पितरो॒, नमो॒ नमो॑ वः पितरः ॥ ए॒षा यु॒ष्माकं॑ पितर, इ॒मा अ॒स्माकं॑, १३-१४
जी॒वा वो॒ जीव॑न्तः इ॒ह सन्तः॑ स्याम ॥

[मो षू ण इन्द्रात्र०। ऋ. १,१७३,१२। यदेनश्चकृमा वयम्०। अथर्व. १०,३,८। पूर्णा दर्वे (दर्वि) परा०। अथर्व. ३,१०,७]
[३] मै. १,१०,१९। तै. १,८,५; १,७,१२,२। काठ. ९,६। कपि. ८,९। वा. २,३१,३२; ३,५१-५५; १५,४४; १७,७७; १९,५८। काण्व. २,५६,५७; ३,५९-६३; १६,६६; १८,७७; २१,५९। मा. श्रौ. १,७,६; १,१,१। अमीमदन्त...नमो वः...स्याम— अथर्व १८,४,८१-८५।
[सुसंदृशं त्वा वयं०। ऋ. १,८२,३। यदन्तरिक्षं पृथिवी०। अथर्व. ६,१२०,१।

परे॑तन पितरः सो॒म्यासो॑ गम्भी॒रेभिः॑ प॒थिभिः॑ पू॒र्व्येभिः॑।
द॒धा॒थ नो॑ द्रवि॑णꣳ यच्च॑ भ॒द्रꣳ र॒यिं च॑ नः स॒र्ववी॑रं॒ नि य॑च्छत ॥ १५
अया॑ वि॒ष्ठा ज॒नय॑न् कर्व॑राणि॒ स हि घृणि॑रु॒रुर्वरा॑य गा॒तुः।
स प्र॒त्युदै॑द्ध॒रुणो॒ मध्वो॒ अग्रꣳ॒ स्वाꣳ यत् त॒नूं त॒३न्वा॒मैर॑यत ॥ १६
अक्ष॒न्नमी॑मदन्त॒ ह्यव॑ प्रि॒या अ॑धूषत।
अस्तो॑षत॒ स्वभा॑नवो॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती योजा॒ न्वि॑न्द्र ते॒ हरी॑ ॥ १७
मनो॒ न्वाहु॑वामहे नाराश॒ꣳसेन॒ स्तोमे॑न। पि॒तॄ॒णां च॒ मन्म॑भिः ॥ १८
आ न॑ एतु॒ मनः॒ पुनः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य जी॒वसे। ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ १९
पुन॑र्नः पि॒तरो॒ मनो॒ ददा॑तु॒ दैव्यो॒ जनः॑। जी॒वꣳ व्रातꣳ सचेमहि ॥ २०
अग्ने॒ तम॒द्याश्वं॒ न स्तोमैः॒ क्रतुं॒ न भ॒द्रꣳ हृ॑दि॒स्पृश॑म्। ऋ॒ध्यामा॑ त॒ ओहैः॑ ॥३॥ २१

आखुं॑ ते रुद्र प॒शुं क॑रो॒म्ये,—ष ते॑ रुद्र भा॒ग,—स्तं जु॑षस्व स॒ह स्वस्राम्बि॒कया॒ स्वाहा॑ ॥ २२

अवा॑म्ब रु॒द्रम॑दिम॒ह्यव॑ दे॒वं त्र्य॑म्बकम्।
यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः॒ श्रेय॑स॒स्कर॑त् ॥ २३
यथा॑ नो॒ भूय॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नः प्र॒तरं॑ ति॒राद्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त्।
भे॒ष॒जं गवे॒ अश्वा॑य॒ पुरु॑षाय भेष॒जम्।
अथो॑ अ॒स्मभ्यं॑ भेष॒जꣳ सुभे॑ष॒जꣳ यथास॑ति सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्यै ॥ २४
त्र्य॑म्बकꣳ यजामहे सु॒ग॒न्धिं पु॑ष्टि॒वर्ध॑नम्।
उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नान्मृ॒त्योर्मु॑क्षीय॒ मामृता॑त् ॥ २५
रु॒द्रैष ते॑ भा॒ग,—स्तेना॑व॒सेन॑ प॒रो मूज॑व॒तोऽती॑हि ॥ २६
पिना॑कहस्तः॒ कृत्ति॑वासा॒ अव॑ततधन्वा ॥४॥ २७

दे॒वाश्च॒ वा असु॒राश्चा॒स्मिँल्लो॒क आ॑सन्, तत् प्र॒जाप॑तिरकामयत॒, प्रासु॒रान्नु॒देय॒, प्र॒जाः सृ॑जे॒येति॒,

आ यात (परेतन) पितरः०। अथर्व. १८,४,६२-६३। अया विष्ठा०। अथर्व. ७,३,१। अक्षन्नमी०। ऋ. १,८२,२, अथर्व. १८,४,६१। मनो न्वाहुवामहे०। ऋ. १०,५७,३। आ न एतु०। ऋ. १०,५७,४। क्रत्वे दक्षाय जीवसे। अथर्व. ६,१९,२। ज्योक् च सूर्यं दृशे। अथर्व. १,६,३। पुनर्नः पितरो०। ऋ. १०,५७,५। अग्ने तमद्याश्व०। ऋ. ४,१०,१; सा. ४३४,१७७७]
[४] मै. १,१०,२०। तै. १,८,६। काठ. ९,७। कपि. ८,१०। वा. ३,५७-६१। काण्व. ३,६५-६८,७०,(६९)। [त्र्यम्बकं यजामहे...मृतात्। ऋ. ७,५९,१२। त्र्यम्बकं यजामहे... इतः। अथर्व. १४,१,१७]

स चातुर्मास्यान्यपश्यत्,—चातुर्मास्यैर्वै सोऽसुरान् प्राणुदत, चातुर्मास्यैः प्रजा असृजत, तद्य एवं२ विद्वा२श्चातुर्मास्यैर्यजते प्र भ्रातृव्यं नुदते प्र प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते, ऽग्निष्टोमाद्धि वैश्वदेवं२ यज्ञक्रतुं निर्मीय प्रजापतिः प्रजा असृजत,—उक्थ्याद्वरुणप्रघासान् यज्ञक्रतुं निर्मायेमाः प्रजा वरुणेनाग्राहय,—दतिरात्रात् साकमेधान् यज्ञक्रतुं निर्मायेन्द्रो वृत्रमहन्, त्वष्टा वा अन्याः प्रजा आसृज-सृष्टा अन्या, अथ प्रजापतिरकामयत, प्रजाः सृजेयेति, संवत्सरो वै यज्ञो, यज्ञः प्रजापतिः, स एतं मिथुनं पयसि आत्मन्नपश्यदन्यं च दध्यं वा,—ऽथैताभ्यो देवताभ्य एतानि हवी२षि भागं निरवपद्, तैः प्रजा असृजत, ऋतुभ्यो वै ताः प्रजाः प्राजायन्त, ऋतवो वा एतानि पञ्च हवी२षि, पञ्च ह्यृतव,—स्ततः प्रजायते, ऽग्निरिवं प्राजनयद्, सोमो वै रेतोऽदधा,—न्मिथुनं२ वा अग्निश्च सोमश्च, सविता प्रासुवत् प्रजननाय, संवत्सरो वै सविता, द्वादश मासाः संवत्सरं,—स्तस्माद्द्वादशकपालो, ऽथो वैश्वदेवत्वायैव द्वादशकपाल, उपा२शु यजत्य,—निरुक्तो हि संवत्सरः, सरस्वत्येव सृष्टासु वाचमदधात्, पूर्वां प्रतिष्ठामभ्यसृज्यन्त, वाग्वै सरस्वती, पशवः पूषा, मिथुनं२ वाक्च पशवश्च, मध्यतः प्रजापतिनासृज्यन्ता,—ऽन्ततो मिथुनाद्विषूचीः प्राजायन्त, तन्मध्यत एवैतद् प्रजापतिना सृज्यन्ते, ऽथाद्यो ऽन्ततो मिथुनाद्विषूचीः प्रजायन्ते, वार्त्रघ्नानि वा एतानि हवी२ष्य,—ग्निना वा अनीकेनेन्द्रो वृत्रमहन्, त्सोमेन राज्ञा सवितृप्रसूतः सरस्वत्या चेत्रा पूष्णा२ वी३र्येणान्वतिष्ठत, विजितिर्वा एतानि हवी२षी,—न्द्रो वै वृत्रमहन्, त्स विष्वङ् वीर्येण व्यार्छन्, तदिदं२ सर्वं प्राविशदप ओषधीर्वनस्पती२,—स्तं देवा अश्राम्य२,—स्तं समनय२,—स्तं साक्षात्यस्य साक्षाद्यत्त्वं, तद्य एवं२ विद्वान्त्साक्षात्येन यजत ऋध्नो-ति ॥५॥ २८

मिथुनं२ वै दधि च शृतं चा,—ऽथ यद् सं२सृष्टमाण्डमिव मस्तिव परीव ददृशे गर्भ एवं सं, तपसो वै ताः प्रजाः प्राजायन्त, तपस्त्वं२ वा एतद्गच्छति यं शृतत्वं गच्छति, ततः प्रजायते, ऽथैषा वैश्वदेव्यामिक्षा, प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता वैश्वदेवेनैवासृजत, तस्मादिमा वैश्वदेवीः प्रजा, विश्वान् देवान् यजति, स्तोका वै विश्वे देवा,—स्तान् वा एतद्यजत्य,—थो अमुतःप्रदानाद्धि मनुष्या यज्ञमुपजीवन्ति, योनिर्वा एष प्रजानां, तं मरुतोऽभ्यकामयन्त, ततोऽ२होगृहीता असृज्यन्त, यत्स्वतवसः स्वत्वायैव निष्कृत्यै, प्रजननो वा एष पशूनां२, यन्मा-

[५] तै. ब्रा. १,६,१-२ ।
[६] काठ. ३६,१ । तै. ब्रा. १,६,२ ।

रुतः सप्तकपालो भवति, सप्त हि मरुतो, विण्मरुतो, ऽथो निरवपस्या एव मारुतो, ऽथो ग्राम्यमेवैतेनान्नाद्यमवरुन्द्धे ॥६॥ २९

तां वैश्वदेवेन सृष्टा विषूचीर्व्युदाय२,—स्ताः प्रजापतिर्द्यावापृथिवीयेन पर्यगृह्णाद्, यद् द्यावापृथिवीयः प्रजाना२ सृष्टानां परिगृहीत्यै, यदेककपालस्तेन प्राजापत्यः, प्रजापता एव देवतासु प्रतितिष्ठति, यजमानो वा एककपाल, आहवनीयः स्वर्गो लोको, यत् सर्वहुतं करोति हविर्भूतमेवैनं२ स्वर्गं लोकं गमयति, यजमानं२ वै हृच्छन्तं प्रजा अनुहृच्छन्ति, यजमानं प्रतितिष्ठन्तं प्रजा अनुप्रतितिष्ठ,—न्त्यृजुहोत३व्यः प्रतिष्ठित्यै, सर्वहुतं करोति प्रतिष्ठित्यै, यजमानो वा एककपालः, पशवो घृतं, तदभिपूर्यः, पशुभिरेवैनं२ समर्धयति, यदभिपूरयेदधरमेनं पशुभ्यः कुर्या,—दभुञ्जन्त एनं पशवा उपतिष्ठेयु,—रातिः पृष्ठः कार्यः, पशुभ्य एवैनमुत्तरमक,—भुञ्जन्त एनं पशवा उपातिष्ठन्ते, तन्न सूक्ष्यं,—मभिपूर्य एद, न हि पशवो न भुञ्जन्ति, यत् प्राङ् पद्येत यजमानः प्रमीयेत, यद्दक्षिणा प्रजामस्य निर्दहेद्, यत् प्रत्यङ् पत्नी प्रमीयेत, यदुदङ् पशूनस्य निर्दहेद्, यदुत्तानः पतेत् पर्जन्योऽवर्षुकः स्यात्, पुनरादायाभिघार्य होत३व्यो यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै, वरो दक्षिणा, वरेणैव वरं२ स्पृणोत्या,—त्मा हि वरं,—स्त्रेधासंनद्धं बर्हिर्भवति, त्रेधासंनद्ध इध्म,—स्त्रेधाविहितानि चातुर्मास्यानि, संवत्सरं२ वै चातुर्मास्यानि, संवत्सरेणाग्निं मन्थन्त्य,—ग्निं२ वै प्रजा अनुप्रजायन्ते, प्रजननो वा एष मथ्यते, ऽथो प्राणं२ वा एतद्यजमानाय जनयन्ति, वसन्ता यष्टव्यं प्रजननाय, प्रवणे यष्टव्यं प्रजननाय, नोत्तरवेदिमुपवपन्ति प्रजननाय, प्रस्वो भवन्ति, प्र मा जनयानीति, पशवो वै पृषदाज्यं, नानारूपा वै पशव,—स्तस्मान्नानारूपमाग्नेयं घृतमि,—न्द्रं दध्यै,—न्द्राग्नं पृषदाज्यं देवतया, प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी, मिथुनं प्राणापानौ, मिथुनयोनयः प्रजा, मिथुनात् खलु वै प्रजाः पशवः प्रजायन्ते, तन्मिथुनं, तस्मादेव मिथुनाद्यजमानः प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते, यदि वसन्ता यजेत द्विरुपस्तृणीयात्, सकृदभिघारये,—दोषधयो वै पशवा, ओषधीष्वेव पशून् प्रतिष्ठापयति, यदि प्रावृषि यजेत सकृदुपस्तृणीयाद्, द्विरभिघारयेद्, वृष्ट्यैव पशूनभि-जिघर्ति ॥७॥ ३०

प्राणेभ्यो वै ताः प्रजाः प्राजायन्त, प्राणा वा एतानि नव हवी२षि, नव हि प्राणा,

[७] काठ. ३६,१-२ । तै. ब्रा. १,६,३ ।
[८] काठ. ३६,२-३ । तै. ब्रा. १,६,३ ।

आत्मा देवता, ततः प्रजायते, नव प्रयाजा, नवानुयाजा, द्वा आज्यभागा, अष्टौ हवी२ष्य,—ग्ने समवद्यति, वाजिनो यजति, तत् त्रि२श,—त्रि२शदक्षरा विराड्, विराजेव प्रतितिष्ठति, विराजो वै योनिः प्रजापतिः प्रजा असृजत, विराजो वा एतद्योनेर्यजमानः प्रजायते, त्रि२शत् त्रि२शद्ध रात्रयो मासो, यो मासः स संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापति,—स्तत् प्रजापतेश्च वा एतद्विराजश्च योनेर्मिथुनाद्यजमानः प्रजायता, एकैकया वा आहुत्या द्वादश द्वादश रात्रीरयुवत, ता यावतीः संख्यानि तावतीः संवत्सरस्य रात्रयः, संवत्सरमेव भ्रातृव्याद्युवते, वैश्वदेवेन चतुरो मासोऽयुवत, वरुणप्रघासैः परा२श्चतुरः, साकमेधैः परा२श्चतुर,—स्तानेव भ्रातृव्याद्युवत, ऋतुपात्रं वा अन्यच्चातुर्मास्ययाजिन्यो, यो, वसन्तोऽभूत् प्रावृडभूच्छरदभूदि,—ति यजते स ऋतुयाज्य,—थ यस्त्रयोदशं मास२ संपादयति त्रयोदशं मासमभियजते स चातुर्मास्ययाजी३न्,—ऊर्ज२स्वी शिष्ट्वा चतुर्थमुत्सृजेत, ऊर्जं द्वौ परा इष्ट्वा तृतीयमुत्सृजेत, ये वै त्रयः संवत्सरास्तेषा२ षट्त्रि२शत् पूर्णमासा, यौ द्वौ तयोश्चतुर्वि२शति,—स्त३व्येऽमी षट्त्रि२शन्त्यधि तानस्यां चतुर्वि२शत्यामुपसंपादय,—स्त्वेष वाव स त्रयोदशो मास,—स्तमेवैतत् संपादयति, तमभियजते, वैश्वदेवेन यजेत पशुकामो, न वरुणप्रघासैर्न साकमेधैः, सवो वै पुरुषः साहस्रो जायते, यावत्सर्व३स्त्वेवेति, प्रजननं२ वा एतद्वविर्यद्वैश्वदेवं२ यद्वैश्वदेवेन यजते प्रजननाय वा एतद्यजते, स्वां मात्रां गच्छानीति, स यदा सहस्रं पशून् गच्छेदथ वरुणप्रघासैर्यजेत, यदेवादः सहस्रमग२स्तस्यैवैद२होऽवयजति ॥८॥ ३१

यद्धविः प्रयाजेषु यजन्त्योषधीस्तद्यजति, यद्धविरनुयाजेषु फलं तद्, यद्धविर्वाजिना२ यदुवादः फलाद् प्रजायते यद्देवतद्यजति, यदूर्ग् उदस्यं तद्, यदुपासानक्ता व्युष्टिं चैव निम्रुक्तिं च, यज्जोष्ट्री यदेव जातं च जनिष्यमाणं च, यद्धोत्रा दैव्या हौ-तारेमे एव, यत्तिस्रो देवी,—र्वाग्वै तिस्रो देवी,—र्वाचं२ वा एतद्यजत्य,—थो छन्दा२सि वै वाक्, छन्दा२सि वा एतद्यजति, तनूनपाद्धि यज्ञोऽप्रसूतो, नराश२सः प्रसूत,—स्तस्मात् तनूनपातं प्रयाजेषु यज,—त्यप्रसूतो हि तर्हि यज्ञ,—स्तस्माद् नराश२समनुयाजेषु यजति, प्रसूतो हि तर्हि यज्ञो, वनस्पति२ यजति, सोमो वै वनस्पतिः, सौम्यो इमाः प्रजाः, प्रजास्वेव रसं दधाति, त्वष्टारं२ यजति, त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति, वाजिनो यजति, पशवो वै वाजिन,—स्तान् वा

[९] काठ. ३६,३-४ । तै. ब्रा. १,६,३ ।

एतद्यजत्य,—थो छन्दा२सि वै वाजिन,—श्छन्दा२सि वा एतद्यजति, पशवो वै वाजिन,—स्तान्त्सं२स्थाप्य२, यत्स२स्थापयेत् तानेव स२स्थापये,—दस२स्थिता३ह्येते सुदुदि प्रजायन्ते, न वा एष संयज्ञ इव, स२स्थिते हि प्रहृतेषु परिधिषु जुहोति, यदव्यवान२ यजति तेन यज्ञः क्रियते, ऽनुयजति समिष्ट्या एव प्रतिष्ठित्यै, बर्हिरनुप्रिश्रन् गृह्णात्यृ,—षभेष्वेव रेतो दधात्यु,—पाशुरासीनो यजत्यु,—पांशवो हि पशवः पशुषु रेतो दधत्य,—थो ऊर्ध्वं ह्येव प्रजापतिः प्रजा असृजत, दिग्भ्यो जुहोती,—मा एव दिशो रसेन व्यनक्ति, प्राचीमुत्तमां जुहोति, प्राचीमेव दिशं पुनरुपावर्तन्ते, समुपह्वयन्ते, सोमपीथ इव३ह्येषं, ऋत्विजः प्राश्नन्ति॥ वाजिनो मे यज्ञं२ वहान्॥ इति समावभ्यो भक्षगन्ति, समावभ्य एव वाजं२ विभजन्त, आत्मना प्राश्नात्या,—त्मन्नेव वाजं धत्ते ॥ ९ ॥ ३२-३४

तां वैश्वदेवेन सृष्टास्तस्मि२स्तरुणिमनि वरुणोऽगृह्णात्, तदाहुर,—ति वै ताः प्रजापतिमचर२,—स्ता अतिचरन्तीर्वरुणेनाग्राहयत्, तस्मात् पिता नातिचरितवा इति, वैश्वदेवेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत, तस्य मरुतो हव्यं२ व्यमथ्नत, ततोऽ२होगृहीता असृज्यन्त, ताभ्यो भेनुजमैच्छन्, तद्वा आत्मन्नेवैच्छन्, स एतत् पय आत्मनोऽधि निरमिमीत, तेनाभ्योऽ२होऽवायजत्, तदं२हसो वा एषावेष्टिर्यद्वरुणप्रघासा, यद्वरुणप्रघासैर्यजेत सर्वस्या२हसोऽवेष्ट्यै, जग्धाद्धि ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णात्, तस्माद्वरुणप्रघासा, यावत् कुमा३रेऽश्मो जातं एनस्तावदस्मिन्नेनो भवति यो वरुणप्रघासैर्यजते, सावि३त्रोऽष्टाकपालो भवति, गायत्रो वै देवाना२ सविता द्वादशकपाल ऐन्द्राग्नो देवतया, यद्वै तद्वरुणगृहीता अवेम्लीयन्तेव तदास्विन्द्राग्नी बलमधत्ता२, शिथिरा वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णात्, तास्विन्द्राग्नी बलमधत्ता,—मोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजो वा एतद्वीर्यं मध्यतः प्रजानां धीयते, न वै ताः प्राणं२,—स्ता अप्राणतीर्वरुणोऽगृह्णात्, प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी, प्राणापानौ वा एतन्मुखतः प्रजानां धीयते, अथैतानि पञ्च हवी२षि संतत्यै, निरवत्त्यै मारुती, निर्वरुणत्वाय वारुणी, कत्त्वाय कायो, यद्वै तद्वरुणगृहीताभ्यः कर्मभवत् तस्मात् कायः, प्रजापतिर्वै कः, प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयद्, यत् काय आत्मन्नेवैना वरुणान् मुञ्चति ॥१०॥ ३५

ऋतं२ वै सत्यं२ यज्ञो, ऽनृत२स्त्र्य,—नृतं२ वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरत्य,—नृतमेव निरवदाय ऋतं२ सत्यमुपैति यन्मिथुया प्रतिप्रब्रुयात्, प्रियतमेन याजयेद,—य

[१०] काठ. ३६,५ । तै. ब्रा. १,६,५ ।
[११] काठ. ३६,६ । मा. श्रौ १,७,४ । तै. ब्रा. १,६,५; १,४,४ ।

यद्वाचयुति मध्यामेवैनां करोत्या,—मपेषा भवन्ति सर्वस्याꣳहसोऽवेष्ट्यै, यद्धृज्येयुरनवेष्टमꣳहः स्यात्, पात्रेभ्यो वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाद्, यत् पात्राणि पात्रेभ्य एवैना वरुणान् मुञ्चति, प्रतिपुरुषं भवन्ति, प्रतिपुरुषमेवाꣳहोऽवयजत्यै,—कमधि भवति, गर्भेꣳस्तेन निरवदयते, ऽन्नाद्वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाच्छूर्पेणान्नं बिभ्रति, तस्माच्छूर्पेण जुहुतः, स्त्रीपुꣳसौ जुहुतो, मिथुना एवं प्रजा वरुणान् मुञ्चतः, पुरस्तात् प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतः, पुरस्ताद्वाꣳहोऽवयजतो, यत् पात्राणि, य एव द्विपादः पशवो मिथुनास्तेषामेतत् पुरस्तादꣳहोऽवयजतो, ऽथ यन्मेषश्च मेषी च, य एव चतुष्पादः पशवो मिथुनास्तेषामेतदुपरिष्टादꣳहोऽवयजत, उभयत एवाꣳहोऽवयजतः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च ॥ ११ ॥ ३६

यद्वै प्रजा वरुणो गृह्णाति शम्यं चैवं यवं चापि न गृह्णाति, हेमन्तो हि वरुणो, या एवावरुणगृहीता ताभ्यामेवैना वरुणान् मुञ्चति, वरुणो वै यवो वरुणदेवꣳत्यः, स्वेनैवैना भागधेयेन वरुणान् मुञ्चत्यं,—नृताद्वै ताः प्रजा वरुणोऽगृह्णाद्, यदेता अनृतपशू अनृतादेवैना वरुणान् मुञ्चतो, मिथुनौ भवतो, मिथुना एवं प्रजा वरुणान् मुञ्चतो, लोमशौ भवतो मेध्यत्वाय, ये हि पशवो लोम जगृहुस्ते मेधं प्रापुः, शमीपर्णानि भवन्ति शंत्वाय, भूर्जो वै नामैष वृक्षः, कार्या एतस्य स्रुचः, प्रजापतिर्वा अन्नाद्यमवरुन्धं नाशक्नोत्, त शतेध्मेनावरुन्द्ध, परःशतानि कार्याण्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, सहस्रेध्मो हꣳत्वेवाꣳहसोऽवेष्टिꣳ विव्याच, परःसहस्राणि कार्याणि सर्वस्याꣳहसोऽवेष्ट्यै, यदा पात्राणि जुहुत्यथाग्निꣳ समार्ष्टि, यस्मिन्नेवाꣳहोऽवायाक्षुस्तस्मिन्नुत्पूते देवता यजा, इतीन्द्रो वै यतीन्त्सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्, तेषाꣳ वा एतानि शीर्षाणि यत् खर्जूराः, सोमपीथो वा एꣳषोऽस्या उदैपद्, यत् करीराणि, सौम्यानि वै करीराणि, सौमी हꣳत्वेवाहुतिरमुतो वृष्टिं च्यावयति, यत् करीराणि भवन्ति वृष्ट्या अन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै ॥१२॥ ३७

प्रजापतेर्वा एतज्ज्येष्ठं तोकꣳ यत् पर्वता,—स्ते पक्षिण आसꣳ,—स्ते परापातमासत यत्र यत्राकामयन्ता,—ऽथ वा इयं तर्हि शिथिरासीत्, तेषामिन्द्रः पक्षानछिनत्, तैरिमामदृꣳहद्, ये पक्षा आसꣳस्ते जीमूता अभवꣳ,—स्तस्मादेते सदा पर्वतमुपप्लवन्ते, योनिर्ह्येषामेष, ततो यः प्रथमो रसः प्राक्षरत् तानि करीराण्यभवꣳ,—स्तदेतदुत प्रावृषि जीमूताः प्लवन्ते, यजन्ते वरुणप्रघासैः,

[१२] काठ. ३६,६-७। तै. ब्रा. १,६,४,५।
[१३] काठ. ३६,७। वा. २०,२३,३८,२५। काण्व. २२,७; ३८,२४।

करीराणि भवन्ति, वृष्टिं तैः संतनोति, तस्मात् तर्हि भूयिष्ठꣳ वर्षति, वृष्टिꣳ हि संतनोति, न वै वैश्वदेव उत्तरवेदिमुपवपन्त्यु,—पात्र वपन्ति, प्रजाताः प्रजाः प्रतिगृभ्णादिति, येयमुत्तरा वेदिर्या अत्रीः प्रजास्तासामेषा योनि,—स्ता एतामनुप्रजायन्ते, येयं दक्षिणा वेदिर्या आद्याः प्रजास्तासामेषा योनि,—स्ता एतामनुप्रजायन्त, उभयीरेव प्रजाः प्रजनयत्यत्रीश्चाद्याश्चा,—ऽयꣳ वाव हस्ता आसीन्नायं, तद्येयं दक्षिणा वेदिस्तयेममविन्दꣳ,—स्तस्मादेष एतस्य परिवेष्टा, कनीयान् हि, तस्मात् कनीयान् ज्यायाꣳसं परिवेवेष्टि, समे प्राची भवतः, समाꣳहीमौ प्राञ्चौ हस्ता असंभिन्ने भवतः सर्वस्याꣳहसोऽवेष्ट्यै, यत्संभिद्युरनवेष्टमꣳहः स्यादं,—कस्या पश्चात् संभिनत्त्यनुसंतत्या, उपेमाꣳ वपति, नैमामन्वभ्यारोहयत्, क्षत्रꣳ वा इन्द्रो, विण्मरुतो, नाना यजतः पापवसीयसस्य व्यावृत्त्यै, यदेवाध्वर्युः करोति तत् प्रतिप्रस्थाता करोति, तस्माद्यद्राजा करोति तद्विट्करोति, न वै वैश्वदेवे त्रिꣳशदाहुतयः सन्ति न साकमेधेषु, वरुणप्रघासेषु वाव त्रिꣳशदाहुतयो, वैराजो वै पुरुषो, दश हस्त्या अङ्गुल्यो दश पाद्या दश प्राणा, यत्तर्ह्यवभृथमभ्यववयन्ति यजमानस्य निर्वरुणत्वाय, यद्वै यज्ञस्य स्वगाकृतिं न प्राप्नोति तद्वरुणो गृह्णाति, यन्निष्कार्येणावभृथमभ्यववयन्ति, यदेवात्र वरुणस्य न्युक्तं तस्यैषा निरवत्ति,—रनपेक्षमाणा आयन्ति वरुणस्यानन्ववायाय, परोगोष्ठं मार्जयन्ते, परोगोष्ठमेव वरुणं निरवदयन्ता, एधोऽस्येधिषीमहीति, निर्वरुणा एवं भूत्वैधितुमुपयन्ति, समिदसि समेधिषीमहीं,—ति समिद्धया एवं ॥१३॥ ३८

प्रजाः सृष्ट्वाꣳहोऽवयज्य सोऽकामयत, वृत्रꣳ हन्यामिति, स एताभिर्देवताभिः सयुग्भूत्वा मरुद्भिर्विशाग्निनानीकेनोपप्लायत, स वृत्रमेत्य वृत्रं दृष्ट्वोरुस्कम्भगृहीतोऽनभिधृष्णुवन्नतिष्ठत्, तं मरुतोऽध्यैयन्त, तेऽत्यैषꣳ,—स्तस्य यदा मर्मागच्छन्नथाचेष्टत्, सꣳ वा एनं तदतपꣳ,—स्तस्मात् सांतपना, अग्निना वा अनीकेनेन्द्रो वृत्रमहꣳ,—स्तदनीकत्वायैवैषो, ऽथो अग्निर्वै देवानाꣳ सेनानी,—स्तत्सेनोत्थापनीयमेवैतदि,—न्द्रो वै वृत्राय वज्रमुद्यमं नाशक्नोत्, स एवं मरुद्भ्यो भागं निरवपत्, तꣳ वीर्याय समतपꣳ,—स्ते तेन वीꣳर्येणोदयच्छन् तसꣳ वा एनं तदतपꣳ,—स्तस्मात् सांतपना, मध्यंदिने चरुर्निरुप्य,—स्तर्हि भो अन्तो तपति, चरुः स्याद्, तꣳ हि सर्वतस्तपति, देवा वै वृत्रस्य मर्म नाविन्दꣳ,—स्ते मरुतः क्षुरपविना व्ययुः, सꣳ वा एनं तदतपꣳ,—स्तस्मात् सांतपनाः ॥१४॥ ३९

[एधोऽस्येधिषीय (महि) समिदसि समेधिषीय (महि)। अथर्व. ७,९४,४]
[१४] काठ. ३६,८। तै. ब्रा, १,६,६,३।

ते वै श्वो भूते वृत्रꣳ हनिष्यन्ता उपावसꣳ,—स्तेऽब्रुवन्, कस्य वाहेदꣳ श्वो भविता कस्य वा पचतेति, त एतमोदनमपचꣳ,—स्तेन पशूनाचिकयु,—स्तेऽविदु,—र्यतरान् वा इमं उपावत्स्यन्ति त इदं भविष्यन्तीति, तेभ्यो वा एतेन प्रातिष्ठꣳ,—स्तानेतेनायच्छꣳ,—स्तत् पशूनाꣳ वावैषा युति,—स्ते वै श्वोविजयिनोऽवसꣳ,—स्तेऽब्रुवन्, कस्य वाहेदꣳ श्वो भविता कस्य वा पचतेति, त एतमोदनमपचꣳ,—स्तेऽब्रुवन्, माहुतमशिष्मेति, तं मरुद्भ्यो गृहमेधेभ्योऽजुहवुः, पशवो वै मरुतो गृहमेधाः, पशुभ्यो वै ते तमजुहवु,—स्ते वै सꣳयत्ता आसꣳ,—स्तेऽसुरा देवेभ्यः क्षुधं प्राहिण्वꣳ,—स्तां देवाः प्रतिश्रुत्यैतमोदनमपचन्, त्सा देवेषु लोकमवित्ता पुनरसुरान् प्राविशत, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तथ एवꣳ विद्वानेतमोदनं पचति भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवत्य,—पि प्रतिवेशं पचेद्भ्रातृव्यायैव क्षुधं प्रहिणोति, यद्वै चातुर्मास्यानां पाकयज्ञस्येव तदेषां पशव्यं, पशव्यो गृहमेधो, न प्रयाजान् यजति नानुयाजान्, न सामिधेनीरन्वाहा,—ऽऽज्यभागौ यजति यज्ञताया, अग्नये समवद्यत्य,—ग्निर्वै समिष्टिर,—ग्निः प्रतिष्ठितिः, समिष्ट्या एवं प्रतिष्ठित्या, इडामुपह्वयन्ते, पशवो वा इडा, पशव्यो गृहमेध,—स्तस्मादिडामुपह्वयन्ते, निष्कार्यं निदधात्यनुसंतत्यै ॥१५॥ ४०

तेषाꣳ वा उभयेषामिन्द्रः प्रावसत्, ते देवा एतमिन्द्राय भागं न्यदधुर,—स्माञ् श्वो निहितभागो वृणता, इत्युपभर्ममाह्वयन्ती,—न्द्रꣳ वा एते निह्वयन्ते, रुवथो वषट्कारो, ऽथो असुराणाꣳ वा एतदुपभर्ममत्याह्वयन्त्य,—स्मान् प्रजनयादिति, संवत्सा गावो वसन्ति साकमेधत्वाय, यत्स्त्र्यश्नाति साकमेधत्वाय, यत्स्त्री नाश्नीयादसाकमेधाः स्युर,—थ यꣳत्स्त्र्यश्नाति साकमेधत्वाय, निर्ऋतिर्वा एतं यज्ञस्य गृह्णाति यꣳत्स्त्र्यश्नाति, निर्ऋतिर्हि स्त्री, निर्ऋतिगृहीता वै दर्वि,—स्तस्माꣳ ह्युवचरत्ये,—वं खलु वै स्त्रिया हस्तो यद्दर्वि,—र्यद्दर्व्या जुहोति निर्ऋतिगृहीतयैव निर्ऋतिं निरवदयते, स वै श्वो भूते वृत्रꣳ हन्तुमुपप्लायत, तं मरुतः परिक्रीडन्त आसꣳ,—स्तेऽस्याप्त्वा व्यनयꣳ३,—स्तेऽभ्युधर्षयꣳ,—स्तस्मात् क्रीडय,—स्ते वै सꣳयत्ता आसꣳ,—स्ते देवा असुराणां परमन्तं न परापश्यꣳ,—स्ते मरुतः क्रीडीन् क्रीडतोऽपापश्यꣳ,—स्तांजितमनसो वा इमं इति, तेभ्यो वा एतं भागं निरवपꣳ,—स्ततो वा अजयꣳ,—स्तांजित्वा एवैꣳषो, ऽसौ वा आदित्य इन्द्रो, रश्मयः क्रीडयः, साकꣳ रश्मिभिः प्रचरन्ति विजित्यै, देवा वै वृत्रꣳ हत्वा न व्य-

[१५] काठ. ३६,९। तै. ब्रा. १,६,६,४।
[१६] काठ. ३६,९-१०। तै. ब्रा. १,६,७।

जानꣳ,—स्ते मरुतः क्रीडयोऽभ्यक्रीडꣳ,—स्तस्मात् क्रीडयो, ऽथैतानि पञ्च हवीꣳषि संतत्या, अथैष ऐन्द्राग्न, इन्द्राग्नी एवास्मै वज्रमन्वबिभृतामि,—न्द्राग्नी अस्मै वज्रमभ्यवहतामं,—थैष ऐन्द्र, उद्धारꣳ वा एतमिन्द्र उदहरत, वृत्रꣳ हत्वा तदुद्धारं एवास्यैष भागं एवं, तस्माद् राजा संग्रामं जित्वोदाजमुदजते, ऽथैष वैश्वकर्मणो, विश्वानि मे कर्माणि कृतान्यासन्निति, विश्वकर्मा हि, सोऽभवद्वृत्रꣳ हत्वा,—ऽथैष आघारं आहुतीनाꣳ संतत्यै त्रिꣳशत्वाय ॥१६॥ ४१

प्रजाः सृष्ट्वाꣳहोऽवयज्य वृत्रꣳ हत्वा ते देवा अमृतत्वमेवाकामयन्त, स्वर्गो वै लोकोऽमृतत्वꣳ, संवत्सरः स्वर्गो लोको, यद् द्वादशाहुतयोऽमृतत्वमेव तेन स्पृणोत्या,—पद्वा एतत् संवत्सरमे,—ति वा एतत् संवत्सरमक्रमीद्, यद् द्वादशाहुतयः संवत्सरमेव पुनरभिपर्यावर्तता, आपद्वा एतत् संवत्सरꣳ, सꣳ वा एतत् संवत्सरमकक्षद्, यत् षट् षट् संपादयति, षड्वा ऋतव,—स्तान् वा एतत् संपादयति, तानेविपादयति, तानुपिपद्यमानानन्वापिपद्यता, आपद्वा एतत् संवत्सरं, पितरो वा ऋतव,—स्तान् वा एतत् प्रजनयति, तान् प्रजायमानाननु प्रजायते, ततः प्रजायत, एतद्वा अस्य संवत्स३रो३ऽभीष्टोऽभूद,—भीष्टा ऋतवो, ऽथ वा अस्य पितरोऽनभीष्टा, यदेष पितृयज्ञस्तेनैवास्य पितरोऽभीष्टाः प्रीता भवन्ति, दक्षिणतो निरुप्यं, दक्षिणा हि पितृणामं,—थो आहु,—रुभयत एवं निरुप्यामि,—त्युभये३हीज्यन्ते, तन्न सूक्ष्यं, दक्षिणत एवं निरुप्यं, दक्षिणा हि पितृणाꣳ, षट्कपालः पुरोडाशो भवति, षड्वा ऋतव,—स्त एवास्यैतेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, न वै धानाभिर्न मन्थेन यज्ञो, यदेष पुरोडाशस्तेन यज्ञो, ऽथैता धानाः, स्वधा वा एता अमुष्मिंल्लोके, ऽथो अपरिमिता वै संवत्सरस्य रात्रय,—स्ता एवास्यैताभिरभीष्टाः प्रीता भवन्ति, न वै धानाभिर्न पुरोडाशेन पितृयज्ञो, यदेष मन्थस्तेन पितृयज्ञो, ऽभिवान्याया गोर्दुग्धे स्यात्, सा हि पितृणां, नेदिष्ठं दक्षिणासीना उपमन्थति, दक्षिणा हि पितृणामि,—कयोपमन्थत्यें,—का हि पितृणा,—मिक्षुशलाकयोपमन्थति, सा हि पितृणां, न प्राच्युद्धत्या, पितृयज्ञो हि, न दक्षिणा, यज्ञो३खु,—भे दिशा अन्तरोद्धन्त्यु,—भये३हीज्यन्त, उपमूले बर्हिर्दाति, तेन पितृणाꣳ, यदुतमूलं तेन देवान्स,—मुभये३हीज्यन्ते, परिश्रयन्त्य,—न्तर्हिता वा अमुष्मादादित्यात् पितरो, ऽथो अन्तर्हिता हि देवेभ्यश्च मनुष्येभ्यश्च पितर,—स्तस्मात् परिश्रयन्ति, समन्तं, बर्हिः परिस्तृणाति, समन्तꣳ३हीमं ऋतवः परिविष्टा, अथो समन्तान्मा पितरोऽभिसमागच्छानि,—त्यमुष्मिन् वै पूर्वस्मिन्नितरा देवता

[१७] काठ. ३६, ११-१२। तै. ब्रा. १,६,८।

इज्यन्ते, यदत्र जुहुयादाहुती संसृजेत्, समदं कुर्यात्, गार्हपत्ये श्रृतं कुर्वन्ति यज्ञवाया, ओदनपचनादग्निमाहरन्ति, तत् स्विष्टान्यता आहरन्ति ॥१७॥ ४२

उशन्तस्त्वा हवामह उशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ ४३

इत्यन्वाहो,—शन्तो हि पितरो, ऽनुष्टुभमन्वाहा,—ऽन्तो वा अनुष्टुब,—न्तः पितर,—स्तस्मादनुष्टुभमन्वाह,—कामन्वाह,—कलोका हि पितरस्त्रि,—रन्वाह, तृतीये हि लोके पितरो, यदेकामन्वाह तेन पितॄणां, यन्त्रिस्तेन देवाना,—मुभये ह्रीज्यन्ते, न होतारं वृणीते नार्षेयं, मृत्योरेनेना उत्सृजत्य,—बर्हिषः प्रयाजान् यजति, प्रजा वै बर्हिः, प्रजा एव मृत्योरुत्सृजति, संव्ययते वै मनुष्येभ्यः करिष्यन्, दक्षिणतो देवेभ्या उपव्ययते, ऽथात्र प्राचीनावीतिन भव्य व्यावृत्त्यै, दक्षिणतोऽवदायोदङ्ङतिक्रम्य दक्षिणा तिष्ठन् जुहोति, दक्षिणा हि पितॄणां, सोममग्रे यजति, सोमो वै पितॄणां देवता, पितृदेवत्यः सोमो, यत् सोमं पितृमन्तं यजति सोमपांस्तत् पितॄन् यजति, यद्बर्हिषदो यजनुस्तद्, यदग्निष्वात्तान् गृहमेधिनस्तद्, यदग्निं कव्यवाहनं, द्वे वा अग्नेस्तन्वौ, हव्यवाहन्या देवेभ्यो हव्यं वहति कव्यवाहन्या पितृभ्यः, समिष्ट्या एव प्रतिष्ठित्यै, द्वे वै देवानां याज्यानुवाक्ये, श्रोण्यया यच्छति, गमयत्यन्यया,—ऽथात्र तिस्रः कार्याः, परे हि देवेभ्यः पितर,—स्तयैषा तृतीयात्येवैतया प्रादात्, पञ्च कृत्वोऽवद्यति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य ॥ स्वधा नमः ॥ इति वषट्करोति, स्वधाकारः पितॄणां, नमस्कारो देवाना,—मुभये ह्रीज्यन्ते, स्रक्तिषु निदधाति, देवान् वै पितॄन् मनुष्या अनुप्रपिबन्ते, देवानेव पितॄनुपात्, त्रीन्निदधाति, त्रींश्चेदीदं पुरुषानभि स्म,—स्त्रीन् परानन्वाचष्टे, त्रयो हि परे, पिता पुत्रः पौत्रोऽनुसंतत्यै, सर्वासु स्रक्तिषु निदधाति, सर्वासु हि दिक्षु पितरः, सर्वा एवैनं दिशो गमयति, नामुष्यां निदधाति, यदमुष्यां निदध्यान्मृत्युनैनाः परिवेशयेत्, तामेवानुद्यन्त्य,—थ यत्तस्यां निमार्ष्टि तामेव तेन प्रीणाति ॥१८॥

४४-४६

अत्र पितरो मादयध्वमि,—त्युक्त्वा परायन्ति, त आहवनीयमुपतिष्ठन्ते, सुसंदृशं त्वा वयमि,—त्या तमित्वोत्तिष्ठन्त्य,—मीमदन्त पितरा, प्रात्योपद्रष्टारं कृत्वान्तं प्राणस्य गच्छन्त्य,—मीमदन्त पितरा,

[१८] काठ. ३६, १२-१३ । तै. ब्रा. १,६,९ । वा. १९,७० । काण्व. २१,७० ।
[उशन्तस्त्वा ...... अत्तवे- ऋ. १०,१६,१२; अथर्व० १८,१,५६; १८,२,३४]
[१९] मै. १,१०,३ । काठ. ३६,१३ । तै. ब्रा. १,६,९,८ । वा. २,३१; ३,५२; १९,५८ । काण्व. २,५६; ३,६०; २१,५९ ।

इत्युक्त्वा प्रपद्यन्ते, त ऊर्णां दशां वा न्यस्यन्ति, यदेवात्र निर्गच्छन्ति तस्यैषा निरवत्तिः, परेतन पितरः सोम्यासा, इत्याहा,—ऽनुषक्ता वा एतान् पितरः स्युर्व्यावृत्त्यै, समन्तमपः परिषिञ्चन् पर्येति, मार्जनमेवैषां, तदपरिषिञ्चन् पुनः पर्ये,—त्यमुं वा एते लोकं निर्गच्छन्ति ये पितृयज्ञेन चरन्ति, प्रजापतिरस्त्वेवैनांस्तता उन्नेतुमर्हन्ति, यत् प्राजापत्यामृचमन्वाह प्रजापतिरेवैनांस्तता उन्नयत्य,—थ यदपरिषिञ्चन् पुनः पर्येत्यमुं वा एते लोकं पुनरुपावर्तन्ते, पितॄन् वा एतद्यज्ञोऽगन्, पाङ्क्तो यज्ञो, यत् पङ्क्त्या पुनरायन्ति सहैव यज्ञेनायन्ति, मनस्वतीभिरायन्ति, मन एव पुनरुपह्वयन्ते ॥१९॥ ४७

एतद्वा अस्य संवत्सरोऽभीष्टोऽभूदभीष्टा ऋतवो, ऽथ वा अस्य रुद्रा अनभीष्टा, यदेते त्र्यम्बकास्तेनैवास्य रुद्रा अभीष्टाः प्रीता भवन्त्यै,—ककपाला भवन्ति, न वै पुरुषः कपालैराप्य, एकधैवैनमाप्नोत्य,—यो एका वा इयं,—मस्यामेव प्रतितिष्ठत्य,—भिघार्या३ नाभिघार्या३, इति मीमांसन्ते, यदभिघारयेद् रुद्रायास्य पशूनपिदध्यात्, तन्न सृक्ष्य,—मभिघार्या एवं, न हि हविरनभिघृतमस्त्ये,—कोल्मुकं हरन्त्ये,—कोल्मुकं हि रुद्राणां, धूपायद्धरन्ति, धूपायद्धि रुद्राणामे,—तां दिशं हरन्त्ये,—षा हि रुद्राणां दिक्, पुराचीनं हरान्ति, पराञ्चमेव रुद्रं हरन्त्या,—खुं ते रुद्र पशुं करोमी,—त्याखुकिरा एकमुपवपति, पशुभ्यस्तेन निरवदयते, तस्मात् तान् पशुपतिर्घातुक,—श्चतुष्पथे याजये,—च्चतुष्पथे वै रुद्राणां गृहा, गृहेष्वेव रुद्रं निरवदयत, एष ते रुद्र भाग,—स्तं जुषस्व सह स्वस्राम्बिकया स्वाहेति, शरद्धि रुद्रस्य योनिः, स्वसाम्बिकै,—तां वा एषोऽन्वभ्यवचरति, तस्माच्छरदि भूयिष्ठं हन्ति, तयैवैनं सह निरवदयते, मध्यमपर्णेन जुहोति, तद्ध्यरक्षो हतमारण्येन जुहो,—त्यरण्य एवं रुद्रं निरवदयते, यत् पात्रेण जुहुयाद्रुद्रं प्रजास्वन्ववनयेत्, तस्मादारण्येन जुहोत्य,—म्ब रुद्रमदिमही,—त्युनूर्णा एवाब्रुवन्, भेषजं गवि अश्वाय पुरुषाय भेषजमि,—त्युनूर्णा एव भूत्वा भेषजमक्रत, त्र्यम्बकं यजामहा, इति परियन्ति, तत्रापि पतिकामा पर्येति, पतिवेदनमेवास्या,—स्तांतानूर्ध्वानुदस्य प्रतिलभन्ते, भगमेव प्रतिलभन्ते, तान् यजमानाय समावपन्ति, भगमेवास्मै समावपन्ति, या पतिकामा स्यात् तस्यै समावपेयु,—र्भगमेवास्यै समावपन्ति, तान् मूते कृत्वा वृक्ष आसजति ॥ रुद्रैष ते भाग,—स्तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि पिनाकहस्तः कृत्तिवासा अवततधन्वा ॥ इति गिरिर्वै रुद्रस्य योनिर,—तो वा एषोऽन्वभ्यवचारं प्रजाः शमायते, स्वेनैवैनं भागधेयेन स्वं योनिं गमयत्य,—नपेक्षमाणा आयन्ति रुद्रस्यानन्ववायाय, परोगोष्ठं

[२०] मै. १,१०,४ । काठ. ३६,१४ । तै. ब्रा. १,६,१० । वा. ३,५७-६१ । काण्व. ३,६५-७० ।

मार्जयन्ते, परोगोष्ठमेव रुद्रं निरवदयन्ते, ऽम्बा वै स्त्री भगनाम्नी, तस्मात् त्र्यम्बका, यस्य वै हविरप्रतिष्ठितमप्रतिष्ठितः सो, ऽप्रतिष्ठिता अस्य त्र्यम्बका, आदित्यं घृते चरुं निर्वपेत् पुनरेत्य गृहेष्वि,—यं वा अदितिरि,—यं प्रतिष्ठा, यदादित्येनोऽस्यामेव प्रतितिष्ठति ॥२०॥

४८-५० [६५६]

॥ इति प्रथमकाण्डे चातुर्मास्यानि नाम दशमः प्रपाठकः ॥१०॥

अथैकादशः प्रपाठकः ।

वाजपेयः ।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं पुनातु वाचस्पतिर्वाचमद्य स्वदातु नः ॥ १
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां देवः सविता धर्मं साविषत् ॥ २
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिषु । अश्वा भवत वाजिनः ॥ ३
वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः । ते अग्रे अश्वमयुञ्जंस्ते अस्मिन् जवमादधुः ॥ ४
अपां नपादाशुहेमन् य ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुद्मान् वाजसाः । तेन वाजं सेषम् ॥ ५
देवस्य सवितुः प्रसवे सत्यसवसो वर्षिष्ठं नाकं रुहेयम् ॥ ६
देवस्य वयं सवितुः प्रसवे सत्यसवनस्य बृहस्पतेर्वाजिनो वाजजितो वाजं जेष्म ॥१॥ ७
वाजं वाजिनो जयताध्वानं स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः ॥ ८
काष्ठां गच्छत ॥
९
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १०

[१] १,११,६-७ । तै. १,७,७ । काठ. १३,१४ । वा. ९,१, ११,७; ३०,१; ९,५; १८,३०; ९,६,७,१०, (९),१३ । काण्व. १०,१; ११,७; ३४,१; १०,७; २०,१; १०,९,१०,८; (१४), १८ । मा. श्री. १,७,१-२ ।
[वाजस्य नु० ...... साविषत् । अथर्व. ७,६,४ । अप्स्वन्तर० ...... सेषम् । ऋ. १,२३,१९; अथर्व. १,४,४]
[२] तै. १,७,८ । काठ. १३,१४ । वा. ९,१३,१६; २१,१०; ९,१८; २१,११; ९,१७,१४,१५ । काण्व. १०,१९,२२, २३,१०,१२; १०,२४,२३; २३,११; १०,२०,२१ । मा. श्री. ७,१,२ ।
[शं नो भवन्तु० ...... मीवाः । ऋ. ७,३८,७ ।]

वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११
ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धना समिथेषु जभ्रिरे ॥ १२
एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिपक्ष आसन् ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संसनिष्यदत् पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ १३
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥२॥ १४
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादा मा द्यावापृथिवी विश्वशंभूः ।
आ मा गन्त पितरो विश्वरूपा आ मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात् ॥ १५

इन्द्राय वाचं वदते,—न्द्राय वाचं संवदते,—न्द्रं वाजं जापयते,—न्द्र वाजं जये,—यं वः सा सत्या संधाभूद्यामिन्द्रेण समधद्ध्व,—मजीजपत वनस्पतया, इन्द्राय वाचं विमुच्यध्वं, वाजिनो वाजजितो वाजं जित्वा बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रतं, वाजिनो वाजजितो वाजं जित्वा बृहस्पतेर्भागे निमृज्येथां, स्वो रोहावेहि, स्वो रोहावेहि, स्वो रोहावा,—ऽऽयुर्यज्ञेन कल्पते, प्राणो यज्ञेन कल्पते, चक्षुर्यज्ञेन कल्पते, श्रोत्रं यज्ञेन कल्पते, मनो यज्ञेन कल्पते, वाग्यज्ञेन कल्पते, ब्रह्मा यज्ञेन कल्पते, पृष्ठं यज्ञेन कल्पते, स्वर्यज्ञेन कल्पते, यज्ञो यज्ञेन कल्पते, वाजाय स्वाहा, प्रसवाय स्वाहा,—ऽपिजाय स्वाहा, क्रतवे स्वाहा,—ऽहर्पतये स्वाहा, वाक्पतये स्वाहा, वसवे स्वाहा, स्वर्मूर्ध्ना वैयश्नो व्यश्नियआन्त्योऽन्त्यो भौवनो, भुवनस्य पतयेऽधिपतये स्वाहा,—श्राय त्वा, वाजाय त्वा, वाजजित्यायै त्वे,—यं त्वो,—र्जे त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा, स्वर्देवा अगामा,—ऽमृता अभूम, प्रजापतेः प्रजा अभूम ॥३॥
१६

[वाजे-वाजेऽवत० ...... देवयानैः । ऋ. ७,३८,८ । तेनो अर्वन्तो० ...... जभ्रिरे । ऋ. १०,६४,६ । एष स्य वाजी० ...... स्वाहा । ऋ. ४,४०,४ । उत स्मास्य० ...तरित्रतः । ऋ.४,४०,३,]
[३] मै. १,११,७-८ । तै. १,७, ८-९ । काठ. १४,१ । वा. ९,१९,११,१२,९,२१; १८,२९; २२,३३; ९,२०; १८,२८ २२,३२; ९,२१; १४,२२ । काण्व. १०,२५-२६, २५-२७,१३,२९,२८; १९,४२-४३; २४,४६; १०,२७; १९, ४०; २४,४५; १०,३१; १५,२४। मा. श्री. ७,१,३ ।

अग्ने अछा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव। प्र नो यछ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम्॥
प्र नो यछत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः। प्र देवाः प्रोत सूनृता प्र वाग्देवी ददातु नः॥
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय। वाचꣳ विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनम्॥
सोमꣳ राजानꣳ वरुणमग्निमन्वारभामहे। आदित्यान् विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥
इन्द्रवायू सुसंदृशा सुहवेह हवामहे। यथा नः सर्व इज्जनः संगमे सुमना असत्॥ १७-२१

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु।
स विराजं पर्येतु प्रजानन् प्रजां पुष्टिꣳ वर्धयमानो अस्मे॥ २२
वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवꣳ स ओषधीः समनक्तु घृतेन।
ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः॥ २३
वाजस्येदं प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः॥ २४
अदित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नियछतु॥ २५

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ सरस्वत्या वाचा यन्तुर्यन्त्रेण बृहस्पतिꣳ साम्राज्यायाभिषिञ्चामी,—न्द्रꣳ साम्राज्यायाभिषिञ्चाम्यु,—पयामगृहीतोऽसि, नृषदं त्वा नृषदमायुषदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रिन्द्राय त्वो,—पयामगृहीतोऽसि, पृथिवीषदं त्वान्तरिक्षसदं नाकसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रिन्द्राय त्वो,—पयामगृहीतोऽस्य,—प्सुषदं त्वा घृतसदं भूतसदमिन्द्राय जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रिन्द्राय त्वो,—पयामगृहीतोऽसि, ग्रह विश्वजनीन नियन्तर्विप्राय्याम ते॥ २६

यास्तिस्रः प्रथमजा दिव्यः कोशः समुक्षितः। तासाꣳ विशिश्नानामिषमूर्जꣳ समग्रभम्॥ २७

इन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रिन्द्राय त्वो,—पयामगृहीतोऽसि॥ २८

अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये शुक्रꣳ समाभृतम्। अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं ते गृह्णाम्युत्तमम्॥
२९

[४] तै. १,७,१०,१२। काठ. १४,२-३। वा. ९,२८,२९,२७,२६; ३३,८६; ९,२३-२५,३०,२,४,३; १०,३२; १९,६; २३,३८,९,४। काण्व. १०,३५,३७,३८,३६,३२-३४,३९, ९-५; ११,४५; २०,५;२५,४०,२,४। मा. श्रौ. ७,१, १.३; ७,२,५-६ [अग्ने अच्छा०। ऋ. १०.१४१.१; अथर्व० ३,२०,२। प्र नो यच्छ०। ऋ. १०, १४१,२, अथर्व.३,२०, ३। अर्यमणं बृहस्पति०। ऋ. १०.१४१,५; अथर्व. ३,२०,७। सोमꣳ राजा०। ऋ० १०,१४१,३; अथर्व. ३,२०,४; सा.९१। इन्द्रवायू सुसंदृशा०। ऋ. १०,१४१.४; अथर्व. ३,२०,६। अदि-(उतादि) त्सन्तं०। अथर्व. ३,२०,८। वाजस्य नु प्रसव०। अथर्व ३,२०,८। देवस्य त्वा- अथर्व.०१९,५१,२

इन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रिन्द्राय त्वा॥ ३०
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वꣳ वियूय।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषा नम उक्तिं न जग्मुः॥ ३१
उपयामगृहीतोऽसि, प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनिः, प्रजापतये त्वा॥ अयां
विष्ठा, प्रजापतये त्वा॥४॥ ३२-३३

देवा वै नाना यज्ञानपश्य,—न्नथ वा एतꣳ सर्वेऽपश्यꣳ,—स्तस्मिन् वा अयतन्त, तस्मिन् वाजिमुषु,—स्तं बृहस्पतिरुदजयद्, बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितो, यद्वै पुरोहितो ब्राह्मणꣳ शृणोति, तद्राजा, तेनेन्द्रमयाजयत्, स स्वाराज्यमगछत्, स एष स्वाराज्यो यज्ञः, स्वाराज्यं गछति य एतेन यजते, यद् बृहस्पतिरुदजयत् तस्माद् ब्राह्मणो यजेत, यदिन्द्रमयाजयꣳ स्तस्माद्राजन्यो, देवा वै नाना यज्ञानाहरन्नि,—ममहमिमं त्वमि,—त्यथ वा एतं प्रजापतिराहरत्, तस्मिन् वा अपित्वमैछन्त, तेभ्यश्छन्दाꣳस्युज्जितीः प्रायछद,—थ वा एतेन प्रजापतिरयजत, स स्वाराज्यमगछत्, स एष स्वाराज्यो यज्ञः, स्वाराज्यं गछति य एतेन यजते, ऽन्नꣳ वै वाज,—स्तद्य एवꣳ विद्वानन्नमत्ति वाजयति ह वा एनमन्नमद्यमानꣳ, सोमो वै वाजपेय,—स्तद्य एवꣳ विद्वान् त्सोमं पिबति वाजꣳ ह गछति, यावन्तो हि देवाः सोममपिबꣳस्ते वाजमगछꣳ,—स्तस्मात् सर्वः सोमं पिपासति, वाजꣳ ह गछति, वाग्घि वाजस्य प्रसवः, सा वै वाक् सृष्टा चतुर्धा व्यभव,—देषु लोकेषु त्रीणि तुरीयाणि, पशुषु तुरीयꣳ, या पृथिव्याꣳ साग्नौ सा रथन्तरे, यान्तरिक्षे सा वाते सा वामदेव्ये, या दिवि सा बृहति सा स्तनयित्नाव्, अथ पशुषु, ततो या वागत्यरिच्यत तां ब्राह्मणे न्यदधु,—स्तस्माद् ब्राह्मण उभयीꣳ वाचꣳ वदति यश्च वेद यश्च न, या बृहद्रथन्तरयोर्यज्ञादिनं तयागछति, या पशुषु तय ऋतेयज्ञं, तद्य एवꣳ वेदाह वा एनमप्रतिक्षातं गछति, यावती वाक्ताꣳ हि वेद, वाचा हि दीयते, वाचा प्रदीयते, यो गाथानाराशꣳसीभ्याꣳ सनोति न तस्य प्रतिगृह्य,—मनृतेन हि स तत् सनोति, न मत्तस्य, यदा हि तस्य मदो व्येत्यथ तं तत् तपति॥५॥ ३४

सप्तदश वा एते द्वया ग्रहाः प्राजापत्याः, सप्तदशः पुरुषः प्राजापत्यं,—श्चत्वार्यङ्गानि शिरो-ग्रीवमात्मा, वाक् सप्तमी, दश प्राणा, अङ्गेऽङ्गे वै पुरुषस्य पाप्मोपश्लिष्टो, यच्चतिषजन्

[कुविदङ्ग यवमन्तो०। ऋ. १०,१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२।]
[५] काठ. १४,५
[६] मै. १,११,१। काठ. १४,६-७। वा. ९,१; ११,७; ३०,१; ९,५-७। काण्व. १०,१; १२,७; ३४,१; १०,७,९-१०।

ग्रहान् गृह्णात्यङ्गादङ्गादेवैनं पाप्मनो मुञ्चति, श्रीर्वै सोमः, पाप्मा सुरोपयामा, आगते काले प्राञ्चः सोमैरुत्क्रामन्ति, प्रत्यञ्चः सुरोपयामैः, पाप्मनैवैनꣳ विपुनन्ति, तस्मादाहु,—र्वाजपेययाज्येव पूत इति, पाप्मना ह्येनꣳ विपुनन्ति, देव सवितः प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगायेति, परुषि परुषि जुहोत्यु,—त्सन्नयज्ञो वा एष, को ह तद्वेद यदेतस्य क्रियते यन्न, सर्वत्वायैव प्रसवाय, वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमि,—ति रथमुपावहरती,—यꣳ वा अदितिर,—स्यामेवैनं प्रसूतꣳ सवित्रा चोपावहरति वाजस्योज्जित्या, अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषज-मि,—त्यश्वान् त्स्नपयन्त्य,—प्सुजा वा अश्वा, स्वादेवैनान् योनेर्जनयन्ति, वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वे,—ति युनक्ति, न वा एतन्मनुष्या योक्तुमर्हन्ति, देवताभिरेवैनान् युनक्त्य,—पां नपादाशुहेम,—न्निति रराटानि प्रतिमार्ष्टि, पूर्वमेव यजुरुदितमनु वदति, दुन्दुभीन्निह्रादयन्ति, वाग्वा एषैकारण्यं प्राविशत्, तामेवोज्जयत्य,—थो या वनस्पतिषु वाक्तामेवावरुन्द्धे, सप्तदशः सर्वो भवति, प्रजापतिर्वै सप्तदशः, प्रजापतिमेवाप्नोत्यु,—त्सन्नयज्ञो वा एष, सꣳवत्स-
राद्धा अध्युत्सन्नयज्ञोऽवरुध्यते, सꣳवत्सरादेवैनमध्याप्त्वावरुन्द्धे॥६॥ ३५

देवस्य सवितुः प्रसवे सत्यसवसो वर्षिष्ठं नाकꣳ रुहेयमि,—ति ब्रह्मा रथचक्रꣳ सर्पति, सवितृप्रसूत एव यज्ञꣳ सर्पति वाजस्योज्जित्या, अथो प्रजापतिर्वै ब्रह्मा यज्ञस्य, प्रजापतिरेवे-नꣳ यज्ञादधि प्रसुवति वाजस्योज्जित्यै,—साम गायते, सत्यꣳ वै साम, सत्येनैवोज्जयत्यु,—न्नꣳ वै वाजो, ऽन्नाद्यस्योज्जित्यै, देवस्य वयꣳ सवितुः प्रसवे सत्यसवज्जितिर्वाजयत्य,—न्नꣳ वै वाजो, ऽन्नाद्यस्योज्जित्यै, सवितृप्रसूत एवं रथमभ्यातिष्ठति, वाजस्योज्जित्यै, वाजिनामृचोऽन्वाह वाजस्योज्जित्या, आजिं धावन्ति वाजस्योज्जित्या, यदनुदिष्टे रथैर्धावन्ति दक्षिणया त्या, अनुदिष्टे रथैर्धावन्ति, दक्षिणयैव स्वर्गं लोकमेति, देवा ओषधीषु पक्वास्वा-जिमयु,—स्तां बृहस्पतिरुदजयत्, स एतान्त्रिवारान् न्यवृणीत, तन्निवाराणां निवारत्वं, बृहस्पतिर्वै तामुदजयत्, तमेव भागिनं करोत्यहिꣳसायै, तमधश्चात्वालꣳ हरन्ती,—दं वा असावादित्य आसीत्, तमितोऽध्यमुं लोकमहरꣳ,—स्तद्यतोऽध्यमुं लोकमहरन् यच्चात्वालेऽव-दधति यजमानमेवं स्वर्गं लोकꣳ हरन्त्या, मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादि,—ति रथेषु पुनरासु वा एतद्यजमानः सह स्वर्गं लोकमे,—त्यथैष नैवारः सप्तदशशरावो, तेषु जुहोति, यमेव वाजमुदजैषुस्तमात्मन्धत्ते, ऽजीजपत वनस्पतया, इन्द्राय वाचꣳ विमु-

[७] मै. १,११,१,३। काठ. १४,७-८। वा. ९,९,१०,१३,१९,१२। काण्व. १०,१३ १४,१७,२५,२६।

च्यध्वमि,—ति रथविमोचनीयं जुहोति, यजुषैव युज्यन्ते, यजुषा विमुच्यन्ते, वाजिनो वाजजितो वाजं जित्वा बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रतमि,—ति भागिना एवैना अक,—र्वाजिनो वाजजितो वाजं जित्वा बृहस्पतेर्भागे निमृज्येथामि,—ति सर्वानेवैनान् प्रीणात्य,—र्धवशां च सुरोपयामाꣳश्च हरन्ति य आजिं धावन्ति, तेभ्यो यमेव वाजमुदजैषुस्तं परिक्रीणीते, मधुष्ठालं ब्रह्मणे, ब्रह्मण एव तेन परिक्रीणीते, कर्कुभो राजपुत्रः प्राश्नाति, वीर्यꣳ वै ककुब्, वीर्यमेवात्मन् धत्ते॥७॥
३६

स्वो रोहावेहि, स्वो रोहावेहि, स्वो रोहावेति, स्वर्वा एतद्रोक्ष्यन् पत्न्या सꣳवदते, ऽथो अन्वारम्भो वा एष यज्ञस्य, पत्न्या सह स्वर्गे लोके भवता, आयुर्यज्ञेन कल्पते, प्राणो यज्ञेन कल्पता, इत्येतावान् वै पुरुषो, यावानेव पुरुषस्तमाप्नोति, स सर्वो भूत्वा स्वर्गं लोकमेति, दर्भमयꣳ वासो भवति पवित्रत्वाय, गोधूमं चषालं, प्राजापत्या वै गोधूमा, अथो प्रत्यासामोषधीनाꣳ सहैवान्नाद्येनामुं लोकमेति, वाजाय स्वाहा, प्रसवाय स्वाहेति, त्रयोदश वा एता आहुतय,—स्त्रयोदश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरꣳ वावास्मा एतदुपदधाति स्वर्गे लोके, तस्मिन्नेव प्रतितिष्ठ,—त्यन्नाय त्वा, वाजाय त्वा, वाजजित्यायै त्वे,—त्यूषपुटैरर्पयन्ति, प्राजापत्या वा ऊषाः, श्वः श्वो भूयाꣳसो भवन्त्य,—न्नाद्येनैवैनमर्पयन्त्ये,—ति वा एषोऽस्माल्लोकादमुं लोकमेति, यदूषपुटैरर्पयन्ति तेनास्माल्लोकान्नैति, तेनास्मिल्लोके धृतो हिरण्यमभ्यवरोहति, तेजो वै हिरण्यं, तेजस्येव प्रतितिष्ठति, बस्ताजिनमभ्यवरोहति, पशवो वै बस्ताजिनं, पशुष्वेव प्रतितिष्ठ,—त्यन्नस्यान्नस्य जुहोति वाजप्रसव्याभि,—रन्नꣳ वै वाजो, ऽन्नाद्यस्यावरुद्धया, उभयं ग्राम्यं चारण्यं च जुहोत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुद्धया, औदुम्बरेण स्रुवेण जुहो,—त्यूर्ग्वा उदुम्बर, ऊर्जोऽवरुद्ध्यै, सप्तभिर्जुहोति, सप्त वै छन्दाꣳसि, छन्दोभिरेवास्मा अन्नाद्यमवरुन्द्धे, ऽथ वाग्वै छन्दाꣳसि, वाचैवास्मा अन्नाद्यं प्रयछति॥८॥
३७

अथैतेऽतिग्राह्या, यद्देवादः परमन्नाद्यमनवरुद्धं तस्यैतेऽवरुद्ध्यै गृह्यन्ते, ऽथैते पशवा आलभ्यन्ते यज्ञक्रतूनामवरुद्ध्यै, यदाग्नेयोऽग्निष्टोमं तेनावरुन्द्धे, यदैन्द्राग्न उक्थ्यं तेन, यदैन्द्रो वृष्णिः षोडशिनं तेन, यत् सारस्वती मेषी यद्देवादः सप्तदशꣳ स्तोत्रमनाप्तमनवरुद्धं तदे-

[८] मै. १,११,३। काठ. १४,८। वा. ९,२१; १८,२९; २२,३३; १८,२८; २२,३१। काण्व. १०,२८; १९,४१; २४,४३; १९,४०; २४,४५।
[९] मै. १,३,३१। काठ. १४,९-१० मा. श्रौ. ७,१ ' ६।

वैतदाप्नोति, तद्वाकुर्वन्, ऽयैषा वशा, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, नैमे देवा आसन्नेमेऽसुरा, स्ते देवा एतां वशामपश्यꣳ, स्तया लोकं द्वितीयमवृञ्जतासुरलोकꣳ, यस्यावद्यति स देवलोकोꣳ, यस्य नावद्यति सोऽसुरलोक, स्तं लोकमेवैतया द्वितीयꣳ यजमानो वृङ्क्ते भ्रातृव्यलोकमेव, सारस्वꣳत्यन्त्यैवानूत्तमा भवति, सारस्वत्यन्वेषां प्रथमा, वाग्वै सरस्वती, वाचा यज्ञः संततो, वाचैव यज्ञꣳ संतनोति, यद्वै यज्ञस्य विद्वांस्करोति यच्चाविद्वानन्तरेति तच्छिद्रं, तद्वाचैव सरस्वत्या कल्पय, त्यनिरुक्तः प्रातःसवः, प्रजापतिमेव तेनाप्नोति, विषोनिर्वै वाजपेयः प्राजापत्यः, स निरुक्तसामा, यदनिरुक्तः प्रातःसवस्तेन सयोनि रथन्तरꣳ साम भवत्योशीया, उज्जित्या, अयो इयꣳ वै रथन्तरम्, स्यामिव सूयते, वाजवतीर्माध्यन्दिने पवमाने भवन्त्य, न्नꣳ वै वाजो, ऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, चित्रवतीरार्भवे पवमाने भवन्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, शिपिविष्टवतीषु स्तुवत, एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठास्तनूर्यच्छिपिविष्टं, तस्माच्छिपिविष्टवतीषु स्तुवत, आष्टादꣳष्ट्रमुत्तममुक्थानां भव, त्युत्तरे एव स्तोत्रे अभिसंतनोति, यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यतेऽमुं तं लोकमभ्यतिरिच्यते, बृहꣳस्त्वेवामुं लोकमाप्तुमर्हती, न्द्रियꣳ वै वीर्यं बृहद्, यद् बृहता स्तुवत, इन्द्रियं वा एतद्वीर्यं तदो यज्ञस्य यजमानः प्रतितिष्ठति ॥९॥ ३८

अग्निरेकाक्षराꣳदजयद्, श्विनौ द्व्यक्षराꣳ, विष्णुस्त्र्यक्षराꣳ, सोमश्चतुरक्षराꣳ, सविता पञ्चाक्षरां, पूषा षडक्षरां, मरुतः सप्ताक्षरां, बृहस्पतिरष्टाक्षरां, मित्रो नवाक्षराꣳ, वरुणो दशाक्षरा, मिन्द्र एकादशाक्षराꣳ, विश्वे देवा द्वादशाक्षराꣳ, वसवस्त्रयोदशाक्षराꣳ, रुद्राश्चतुर्दशाक्षरा, मादित्याः पञ्चदशाक्षरा, मदितिः षोडशाक्षरां, प्रजापतिः सप्तद३शो, ऽग्निरेकाक्षरया वाचमुदजयद्, श्विनौ द्व्यक्षरया प्राणापानावुदजयताꣳ, विष्णुस्त्र्यक्षरया त्रीनिमाꣳल्लोकानुदजयद्, सोमश्चतुरक्षरया चतुष्पदः पशूनुदजयत्, सविता पञ्चाक्षरया पञ्च दिशा उदजयत्, पूषा षडक्षरया षड्ऋतूनुदजय, न्मरुतः सप्ताक्षरया सप्तपदाꣳ शक्वरीमुदजयन्, बृहस्पतिरष्टाक्षरयाष्टौ दिशा उदजय, च्चतस्रो दिशश्चतस्रोऽङ्कुशली, मित्रो नवाक्षरया नव प्राणानुदजयद्, वरुणो दशाक्षरया विराजमुदजय, दिन्द्र एकादशाक्षरया त्रिष्टुभमुदजयद्, विश्वे देवा द्वादशाक्षरया जगतीमुदजयन्, वसवस्त्रयोदशाक्षरया त्रयोदशं मासमुदजयन्, रुद्राश्चतुर्दशाक्षरया चतुर्दशं मासमुदजय, न्नादित्याः पञ्चदशाक्षरया पञ्चदशं मासमुदजय, न्नदितिः षोड-

[१०] तै. १,७,११। काठ. १४,४। वा. ९,३१-३४। काण्व. १०,५०-५३।

शाक्षरया षोडशं मासमुदजयत्, प्रजापतिः सप्तद३शो, ऽग्निरेकाक्षरयोदजयन्मामिमां पृथिवी, मश्विनौ द्व्यक्षरया प्रमामन्तरिक्षꣳ, विष्णुस्त्र्यक्षरया प्रतिमाꣳ स्वर्गं लोकꣳ, सोमश्चतुरक्षरयाश्रीवीर्नक्षत्राणि, सविता पञ्चाक्षरयाक्षरपङ्क्तिमुदजयद्, या३ह्यक्षरपङ्क्तिः सा पङ्क्ति, श्चतुर्धा ३ह्येतस्याः पञ्च पञ्चाक्षराणि, पूषा षडक्षरया गायत्रीमुदजय, च्चतुर्धा ३ह्येतस्याः षट् षडक्षराणि, मरुतः सप्ताक्षरयोष्णिहमुदजयꣳ, श्चतुर्धा ३ह्येतस्याः सप्त सप्ताक्षराणि, बृहस्पतिरष्टाक्षरयानुष्टुभमुदजय, च्चतुर्धा ३ह्येतस्या अष्टा अष्टा अक्षराणि, मित्रो नवाक्षरया बृहतीमुदजय, च्चतुर्धा ३ह्येतस्या नव नवाक्षराणि, वरुणो दशाक्षरया विराजमुदजय, च्चतुर्धा ३ह्येतस्या दश दशाक्षराणी, न्द्र एकादशाक्षरया त्रिष्टुभमुदजय, च्चतुर्धा ३ह्येतस्या एकादशैकादशाक्षराणि, विश्वे देवा द्वादशाक्षरया जगतीमुदजयꣳ, श्चतुर्धा ३ह्येतस्या द्वादश द्वादशाक्षराणि, वसवस्त्रयोदशाक्षरया त्रयोदशं मासमुदजयन्, रुद्राश्चतुर्दशाक्षरया चतुर्दशं मासमुदजय, न्नादित्याः पञ्चदशाक्षरया पञ्चदशं मासमुदजय, न्नदितिः षोडशाक्षरया षोडशं मासमुदजयत्, प्रजापतिः सप्तद३शो, ऽग्नये एकाक्षराय छन्दसे स्वाहा, ऽश्विभ्यां द्व्यक्षराय छन्दसे स्वाहा, विष्णवे त्र्यक्षराय छन्दसे स्वाहा, सोमाय चतुरक्षराय छन्दसे स्वाहा, सवित्रे पञ्चाक्षराय छन्दसे स्वाहा, पूष्णे षडक्षराय छन्दसे स्वाहा, मरुद्भ्यः सप्ताक्षराय छन्दसे स्वाहा, बृहस्पतयेऽष्टाक्षराय छन्दसे स्वाहा, मित्राय नवाक्षराय छन्दसे स्वाहा, वरुणाय दशाक्षराय छन्दसे स्वाहे, न्द्रायैकादशाक्षराय छन्दसे स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यो द्वादशाक्षराय छन्दसे स्वाहा, वसुभ्यस्त्रयोदशाक्षराय छन्दसे स्वाहा, रुद्रेभ्यश्चतुर्दशाक्षराय छन्दसे स्वाहा, ऽदित्येभ्यः पञ्चदशाक्षराय छन्दसे स्वाहा ऽदित्यै षोडशाक्षराय छन्दसे स्वाहा, प्रजापतिः सप्तदशः ॥१०॥

३९[६९५]

॥ इति प्रथमकाण्डे वाजपेयाभिधान एकादशः प्रपाठकः ॥११॥

॥ इति प्रथमकाण्डं समाप्तम् ॥

अथ द्वितीय काण्डम् ।

अथ प्रथमः प्रपाठकः।

काम्या इष्टयः ॥१॥

ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद्यस्य सजाता वीयायु, रोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनान् वीर्येण पुनरुपास्यत, ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवा, नोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनान् वीर्येणाभिभवत्यै, न्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् प्रजाकामो योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्देत, प्रजापतेर्वा इन्द्राग्नी प्रजामपगूहतां, ता एतेन भागधेयेनोपाधावत्, ता अस्मै प्रजां पुनरदत्ता, मिन्द्राग्नी खलु वा एतस्य प्रजामपगूहतो योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते, तो एव भागधेयेनोपासरद्, ता अस्मै प्रजां पुनर्दत्तो, विन्दद्वती याज्यानुवाक्ये भवतो विन्त्या एवै, न्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रया, नोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनꣳ वीर्येणाभिप्रयात्यै, न्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामꣳ सꣳयत्यो, जो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनꣳ वीर्येण जयति, स यदा संग्रामं जयेदैन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपे, दोजसा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यः संग्रामं जयत्यो, जो वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनꣳ वीर्येण समर्धयत, ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं जनतामभिप्रयं, नोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनाꣳ वीर्येणाभिप्रयाति, पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता, सोऽस्मै वीर्यमनुप्रयच्छत्यै, न्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेत् पौष्णं चरुं क्षेत्रस्य पतये चरुं क्षेत्रमध्यवस्य, न्नोजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवास्मै वीर्येण लोकꣳ विन्दतः, पूषा वीर्यस्यानुप्रदाता, सोऽस्मै वीर्यमनुप्रयच्छती, यं क्षेत्रस्य पत्न्य, स्यामेव प्रतितिष्ठति ॥१॥ १

अग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् कामाय, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सरे कामं आप्यते, सꣳवत्सरमेवाप्त्वा, सोऽस्मै काममाप्नोति यत्कामो भवत्य, ग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् समान्तममभिक्रोक्ष्यन्, त्सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सराय समम्यते, सꣳवत्सरमेवाप्त्वावरुन्धे काममभिद्रुघस्य, ग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् सनिं प्रेष्यन्, त्सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सराय प्रतिगृह्यते, सꣳवत्सरमेवाप्त्वा सताꣳ सनिꣳ वनुते, स यदा वन्वीतायाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्, सꣳवत्सरो वा अग्नि-

[१] तै. २,२,१। काठ. ९,१७।
[२] तै. २,२,६। काठ. १०,३-४।

वैश्वानरः, सꣳवत्सरमेव प्रयुङ्क्ते, सꣳवत्सरं एतस्मै वनुते, तमेव भागिनमक, स्तꣳ व्यृमाग्, यं द्विष्यात्तस्मै दक्षिणां दद्यात्, पाशेन वा एष चरति, तमेवास्मिन् प्रतिमुञ्चत्यै, कहायनो गौर्दक्षिणा, स हि सꣳवत्सरस्य प्रतिमा, ऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेदन्नमत्स्यन्, त्सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सरायैवैनदप्युधात्, स यदानन्नमद्यादथाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्, यदेवादोऽनन्नमत्ति तदस्मै सꣳवत्सरः स्वदयति, स्वदितमेवात्ति, सीसं दक्षिणा कृष्णꣳ वा वासो, ऽनन्नꣳ वै सीसम, न्नं कृष्णमु, न्नेनैवानन्नमुपहत्यान्नाद्यमात्मन् धत्ते, ऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् संग्राममभिप्रयान्, त्सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सरेणैवैनमभिप्रयात्य, ऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत् संग्रामꣳ सꣳयत्य, यतरो वै संगृभाणयोरायतनवत्तरो भवति स जयती, यꣳ वा अग्निर्वैश्वानरं, इमामेवायतनमकृता, ऽस्यां पराकꣳस्त, जयति संग्रामꣳ, स यदा संग्रामं जयेदथाग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेत्, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सरमेव प्रयुङ्क्ते, सꣳवत्सरं एतस्मै जयति, तमेव भागिनमक, स्तꣳ व्यृमाग्, ग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेता, ऽन्नेन राज्ञमान्यवान् व्रीहीन् वादुघीयेति, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्स३रोऽन्नाद्यस्य प्रदाता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छत्य, ग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं निर्वपेद्, वारुणꣳ यवमयं चरुमामयाविनꣳ याजयेद्, वरुणगृहीतो वा एष य आमयावी, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चत्य, सौ वा आदि३त्योऽग्निर्वैश्वान३रो, ऽमुना वा एनमेतं निगृहीतꣳ वरुणो गृह्णाति, तत एनं मुक्त्वा यावानेवास्यात्मा तꣳ वरुणान् मुञ्चति, वारुणं चरुं निर्वपेद्यत्रमेयमीयन्त, मग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं भूतिकामꣳ याजयेद्, वरुणगृहीतो वा एष यो भूतिकामो, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चती, याꣳश्चर्कभवत्ये, तावान् वा आत्मा, यावानेवास्यात्मा तꣳ वरुणान् मुक्त्वा, ऽसौ वा आदि३त्योऽग्निर्वैश्वान३रो, ऽमुमेनेमन्वारम्भयत्य, मुष्यैनमादित्यस्य मात्रां गमयति ॥२॥ २

अग्नये जातवेदसेऽष्टाकपालं निर्वपेद्दधिक्राव्णा एकादशकपालमग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालꣳ यः सर्ववेदसीं प्रथमामिष्टिमालभेता, ऽग्निर्वा एतस्य तद्वेद यत्रास्येष्टꣳ यत्र सुकृतम्, ग्निरेवास्मै तद्विन्दत्य, मेध्यो वा एष यः सर्वं ददाति, तद्दधिक्राव्णैवैनं मेध्यं करोति, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, सꣳवत्सरो वा एतस्य तद्वेद यत्रास्येष्टꣳ यत्र सुकृतꣳ, सꣳवत्सर एवास्मै तद्विन्दत्य, ग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपे, दभिशस्यमानꣳ याजयेद्, रथप्रोतꣳ वै दुग्धी-

[३] तै. २,२,३-५। का. ३,२। काव. ३,२। [अग्नये जातवेदसे। ऋ० ५,५,१]

मम्युश२स२,—स्तं कौलकावतीं अब्रूतां, तथा त्वा याजयिष्यावो यथा तेऽग्निमत्स्यन्ति, यत्र
ग्राम्यस्य पशोर्नोपशृणवस्तद्गच्छ, यस्त्वा कश्चोपायत् तूष्णींमिवास्वेति, त२ ह स्म वैन्याघ्रा उप-
घ्रायं तूष्णींमिवापक्रामन्ति, तौ वै तत्रैव श्वो भूते यज्ञायुधैरन्वेत्याग्निं मथित्वाग्नये सुरभिमतेऽष्टा-
कपालं निरवपतां, ततो वा एनं न पर्यग्नन्, यमभिश२सेयुस्तमेतया याजयेद्, दुरभि वा
एतमारयमभिश२सन्त्ये,—षा वा अग्नेर्भेषजा तनूर्यत्सुरभि,—र्भेषजमेवास्मा अकः, सुरभिमेन-
मकः, शमयत्येवां,—ऽग्नये पवमानायाष्टाकपालं निर्वपेद्धिक्राव्णा एकादशकपालमग्नये वैश्वानराय
द्वादशकपालं पुनरैत्य गृहेषु, पवमान एवैनं पुनात्य,—ग्निर्निष्पत्यं,—पूतो वा एष यमभिश२-
सन्ति, नैनं दधिक्रावा चन पावयांक्रियादि,—ति खलु वा आहु,—स्तद् दधिक्रावैवैनं पावयति,
स२वत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, स२वत्सर एवैन२ स्वदयत्या,—ग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदग्नीषोमीयमे-
कादशकपालं द्यावापृथिवीयं द्विकपाल२ यः संग्रामं जिगीषेन्नृज्याय२ वा जिज्यासेद्, ऋद्धया एवा-
ग्ने३यो, ऽग्नीषोमाभ्या२ वै वी३र्येणेन्द्रो वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वा एष हन्ति यः संग्रामं जयति
नृज्याय२ वा जिनाति, वंद्वाग्निमेवैतं,—दिन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत्, तं द्यावापृथिवी नान्वम-
न्येतां, तमेतेन भागधेयेनान्वमन्येता२, यद् द्यावापृथिवीयो वज्रस्यानुमत्या, अथो अनुमतवज्रो
ऽसदिति, स यदा संग्रामं जयेन्नृज्याय२ वा जिनीयादथाग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्राग्नमेकादशक-
पालं द्यावापृथिवीयं द्विकपालं, ऋद्धया एवाग्ने३यां, ऽग्नीषोमाभ्या२ वै वी३र्येणेन्द्रो वृत्रमहन्,
त्सं ओजसा वा वीर्येण व्याध्यत, स एतमैन्द्राग्नमपश्यत्, तेनौजो वीर्यमात्मन्नधत्ता,—जसा
वा एष वीर्येण व्यृध्यते यः संग्रामं जयति नृज्याय२ वा जिनात्यो,—जो वीर्यमिन्द्राग्नी, ओज-
सैवैन२ वीर्येण समर्धयतो, ऽथ यद् द्यावापृथिवीयो, या यं एवास्मै वज्रमन्वम२सातां ताभ्यामेष
भागः क्रियते ॥३॥ ३

अग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेद्ब्राह्मणः कामाया,—ऽग्नीषोमीयो वै ब्राह्मणो देवतया, स्वा-
मेवदेवतां कामाय भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै काम२ समर्धयतो यत्कामो भवत्य,—ग्नीषोमीयमे-
कादशकपालं निर्वपेद्ब्राह्मणो भूतिकाम२ याजयेद्, देवा वै सत्रमासत कुरुक्षे३त्रेऽग्निः सोमा इन्द्र,—
स्तेऽब्रुवन्, यतमं नः प्रथम२ यश ऋच्छात्तं नः सहेति, तेषा२ वै सोम यश आर्छत्, तम-
भिसमगच्छन्त, तस्मात्सोममभिसंगच्छन्ते, स हि यशस्वितम,—स्तद्ध सोमो न्यकामयत, स
गिरिमगच्छत्, तमग्निरन्वगच्छत्, तौ गिरा अग्नीषोमौ समभवतां, तस्मात्सदुदि गिरा अग्निर्दहति
गिरौ सोमः, स वा इन्द्रः शिथिर इवामन्यत, ३मोऽग्नीषोमा अन्वगच्छत्, तां अब्रवीद्,

[४] तै. २,३,३; २,४,४,३। काठ. १०,१।
मै० १४

याजयतं मेति, त२ वा एतयाग्नीषोमा अयाजयतां, तस्मि२स्तेजोऽग्निरदधादिन्द्रिय२ सोम,—स्ते-
ता इन्द्रोऽभवद्, यो भूतिकामः स्यात्तमेतया याजयेत्, तेज एवास्मिन्नग्निर्दधातीन्द्रिय२ सोमो,
भवत्येवा,—ऽग्नीषोमीयमेकादशकपालं निर्वपेत् श्यामाक२ वसन्ता ब्रह्मवर्चसकामो, ऽग्नीषोमौ वै
ब्रह्मवर्चसस्य प्रदातारौ, ता एव भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छतो, वसन्ता
यजेत, वसन्तो वै ब्राह्मणस्य ऋतुः, स्व एवास्मा ऋतौ ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छतो, यत्पुरोडाशस्ते-
नाग्नेयो, यत् श्यामाकस्तेन सौम्यः, सर्वमेवाग्नीषोमाभ्या२ हव्य२ संप्रादात्, ता अस्मै सर्वं
ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छतः, सौमाग्नी स२याज्ये स्यातां, तेजो वा अग्निरिन्द्रिय२ सोम,—स्तेजसा च
वावास्मा एतदिन्द्रियेण चोभयतो ब्रह्मवर्चसं परिगृह्णाति, सौमापौष्णं चरुं निर्वपेन्नेमपिष्टं पशु-
कामः, सोमो वै रेतोधाः, पूषा पशूनां प्रजनयिता, सोम एवास्मै रेतो दधाति, पूषा पशून्
प्रजनयति, सौमेन्द्रं चरुं निर्वपेत् पुरोधाकामः, सौम्यो वै ब्राह्मणो देवतय,—न्द्रो राजन्यो,
ऽनपदोष्यं खलु वै सोमः प्रयच्छति, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मा अनपदोष्य२ राष्ट्रं
प्रयच्छत्या,—ग्निवारुणं चरुं निर्वपेत् समान्तमभिद्रुह्यामयावी वा,—ऽनृत२ वा एष करोति यः समान्त-
मभिद्रुह्यति, देवता वा एष आरद्योऽनृतं करोत्य,—ग्निर्वै सर्वा देवता, अत्र वै सापि देवता
यामारत्तत एनं मुञ्चति, यद्वारुणो वरुणादेवैनं तेन मुञ्चति, तत् काजव२ वा एतत् क्रियते
सर्वस्याविष्टिः सर्वस्य प्रायश्चित्तिः ॥४॥ ४

सौमारौद्रं घृते चरुं निर्वपेच् शुक्लाना२ व्रीहीणां ब्रह्मवर्चसकामः, स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसा-
विध्यत्, त२ सोमारुद्रा अभिषज्यतां, तस्य वा एतेनैव शमलमपाहता,—मेतेनास्मि२स्तेजोऽध-
त्ता२, यो ब्रह्मवर्चसकामः स्यात्तमेतया याजयेच्, शमलमेवास्यापहन्ति, तेजोऽस्मिन् दधाती,—
या२श्वरुर्भवत्ये,—तावान् वा आत्मा, यावानेवास्यात्मा तावदस्मि२स्तेजो दधाति, शुक्ला व्रीहयो
भवन्ति, श्वेता गा आज्याय दुहन्ति, तेज एवैतत्संश्रियते, घृतं प्रोक्षणं भवति, घृतेन मार्जयन्ते,
घृते भवति, भूय एवास्मि२स्तेजो दधाति, यस्या रात्र्याः प्रातर्यक्ष्यमाणः स्यान्नास्य ता२रा-
त्रीमपो गृहान् प्रहरेयुरा,—पो वै शान्तिः, शमयेयुरेवं, परिश्रिते याजयन्ति तेजसः परिगृहीत्यै,
साक२ रश्मिभिः प्रचरन्ति, साकमेवास्य रश्मिभिः शमलमपघ्नन्ति, तिष्यापूर्णमासे याजयेत्, सो-
मो वै चन्द्रमा, रुद्रस्तिष्यः, संप्र३त्येवैना उपासरत्, प्राचीन२ वै सौमीरोषधयः, प्रतीचीन२
रौद्री,—र्न हि प्राचीन२ शुष्यन्ति, शुष्यन्ति प्रतीचीनं, मनोर्श्चो भवन्ति, मनुर्वै यत्कि-
चावदत्तद्भेषजमेवावदत्, तद्भेषजत्वायैवं,—ताः शंकरीर्भवन्ति शंक्त्यै, नाराश२सीर्भवन्ति

[५] तै. २,२,१०। काठ. ११,५।

शान्त्यै, फिलासत्वाद्वा एतस्य, भयमेति ह्युपहन्ति, सौमापौष्णं चरुं निर्वपेन्नेमपिष्टं पशुकामः,
सौम्यो वै ब्राह्मणो देवतया, पशवः पूषा, स्वा२ वा एतद्देवतां पशुभिर्व२हयते, त्वचमे-
वाकृत ॥५॥ ५

सौमारौद्रं चरुं निर्वपेत् कृष्णाना२ व्रीहीणामभिचरन्, त्सौमीर्वा ओषधय,—स्तत एनं निर्या-
च्य रुद्रायास्य पशूनपिदधाति, कृष्णा व्रीहयो भवन्ति, तमो वै कृष्णं, मृत्युस्तमो, मृत्यु-
नैवैनं ग्राहयति, शरमयं बर्हिर्भवति, वैभीदक इध्मः, शृणादिति शरमयं बर्हिर्भवति,
विभिन्त्यै वैभीदक इध्मः, सौमारौद्रं चरुं निर्वपेदुदश्रित्यविचितानां२ व्रीहीणा२ यः कामयेत द्वि-
तीयमस्य लोके जनेयामिति, सौमीर्वा इमाः प्रजा, द्वितीयमेवास्य लोके जनयति, नेम२
शरमयं बर्हिर्भवति नेमम शरमयं, नेमो वैभीदक इध्मो नेमोऽवैभीदको, द्वितीयमेवास्य लोके
जनयति, सौमारौद्रीमामिक्षां निर्वपेदामयाविन२ याजये,—दाग्नेयो वै प्रमीतः, सौम्यो जीव,—
शुभयत एवैनं निष्क्रीणाति, पयो वै पुरुषः, पय एतस्यामयति, पयसैवास्य पयो निष्क्री-
णात्य,—पिनद्धाक्षो होता स्यात्, तमरण्यं पराणीय विक्शापयेत, तस्मा अनड्वाहं दद्यात्, वे
मीत, तस्याश्नीयात, यत्तस्य नाश्नीयात् प्रमीयेत ॥६॥ ६

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचरन्नभिचर्यमाणो वा, सरस्वतीमप्याज्यस्य यजे,—द-
ग्निर्वै सर्वा देवता, देवताभिरेवास्य देवताः प्रतिचरति, विष्णुर्यज्ञो, यज्ञेन यज्ञ२, वा-
क्सरस्वती, वाचा वाचं, तद्भिचर्याभिप्रायुक्ता,—ऽयो प्रतिचर्यात्येव प्रायुक्ता,—ऽऽग्नावैष्णवं घृते
चरुं निर्वपेच्चक्षुष्कामो, ऽग्निर्वै मनुष्याणां चक्षुषः प्रदाता विष्णुर्देवाना,—मेतौ वै चक्षुषः प्रदातारौ,
ता एव भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै चक्षुः प्रयच्छतो, धेन्वा वै घृतं पयोऽनडुहस्तण्डुला,—स्त-
न्मिथुनं, मिथुनं चक्षु,—र्मिथुनेनैवास्मै मिथुनं चक्षुर्जनयतः, पयो वै घृतं, पयश्चक्षुः, पयसैवास्मै
पयश्चक्षुर्जनयत,—स्तेजो वै घृतं, तेजश्चक्षु,—स्तेजसैवास्मै तेजश्चक्षुर्जनयतो, हिरण्यं ददात्या,—
युर्वै हिरण्य,—मायुश्चक्षु,—रायुषैवास्मा आयुश्चक्षुर्दधाति, शतमानं भवति, शतायुर्वै पुरुषः
शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोत्या,—ग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणो, ऽग्निर्वै सर्वा
देवता, विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चास्तृत्यै मध्यतः प्रविशत्या,—ग्नावैष्णवमेकादशकपालं
निर्वपेत् संग्रामे, सरस्वतीमप्याज्यस्य यजे,—दग्निर्वै सर्वा देवता, देवताभिरेवास्य देवताः

[६] तै. २,२,१०। काठ. ११,५।
[७] तै. २,२,९। काठ. १०,१।

प्रणुदते, विष्णुर्यज्ञो, यज्ञेन यज्ञ२, वाक्सरस्वती, वाचा वाच२, यदि मन्येत,
प्रति पुरस्ताच्चरन्तीति, द्वे पुरोनुवाक्ये कुर्यादेका२ याज्या२, सममेव द्वाभ्यां क्रियते, ऽत्ये-
कया प्रयुङ्क्त, आग्नावैष्णवं प्रातरष्टाकपालं निर्वपेत् सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमा,—ग्नावैष्णव-
मेकादशकपालं मध्यंदिने सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुमा,—ग्नावैष्णवं द्वादशकपालमपराह्णे सार-
स्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरु२ यस्य भ्रातृव्यः सोमेन यजेता,—ऽग्निर्वै सर्वा देवता, देवताभिरेवास्य
देवता आप्नोति, विष्णुर्यज्ञो, यज्ञेन यज्ञ२, वाक्सरस्वती, वाचा वाचं, ब्रह्म बृहस्प-
ति,—र्ब्रह्मणैवास्य ब्रह्माप्नोति, कपालैश्छन्दा२सि, पुरोडाशैः सवनानि, मैत्रावरुणमेक-
कपालं निर्वपेत् पयस्या२ वा,—ऽनूबन्ध्यामेवैतेनाप्नोति, सैषाध्वरकल्पेष्टि,—र्यज्ञमेवैतयाप्नोति॥७॥
७

आग्निमारुतं चरुं निर्वपेद् वृष्टिकामः, समान्या मृदश्चरुं च कुर्युः कुम्भं च, यस्मिन्नेवाग्नौ
चरुं पचेयुस्तस्मिन् कुम्भं धूपयेयु,—र्धूमो वा अस्यामुं गच्छति नार्चि,—स्तस्मादेतं धूपयन्ति, न
पचन्ति, यदा हवी२ष्यासादयेयुरथ दक्षिणाया२ श्रोण्यां कुम्भमासाद्योदकेन पूरयेयु,—र्यदि पुरा
स२स्थानाद्धीयेता,—ऽद्य वर्षिष्यती,—ति ब्रूयाद्, यदि सं२स्थिते, श्वो वष्टे,—ति ब्रूयाद्, यदि
चिरमिव वीयेत, नाद्धा विद्म,—ति ब्रूया,—दग्निर्वा इतो वृष्टिमीट्टे, मरुतोऽमुतश्च्यावयन्त्ये,—
ते वै वृष्ट्याः प्रदातार,—स्तानेव भागधेयेनोपासरत्, तेऽस्मै वृष्टिं प्रयच्छन्ति, मारुतं चरुं निर्व-
पेत् पयसि प्रैयङ्गवं ग्रामकामो वा पशुकामो वा, पृश्नीनां गवां दुग्धे पृश्नीनां गवामाज्य२ स्यात्,
तत्रापि गोमूत्रस्याश्चोतयेयुः, पृश्निर्वै यददुहत् स प्रियङ्गुरभवदि,—य२ वै पृश्निर्गवा, तस्या वा
एतत् पयो यत् प्रियङ्गवः, स्वेनैवैनां पयसाच्छेति, प्रियवती याज्यानुवाक्ये भवतः, प्रियमेन२
सजातानां करोति, द्विपदा च चतुष्पदा च भवतो, द्विपदश्चैवास्मै चतुष्पदश्च पशूनवरुन्द्धे,
यथा वत्सं ऊधरभ्यायच्छति वत्स२ वा गौरेवमेन२ सजाता अभ्यायच्छन्ति, मारुतं त्रयोदशकपालं
निर्वपेद्यस्य यमौ पुत्रौ गावौ वा जायेयातां, निर्ऋता२ वै पुरुषो यमौ जातं आशास्तेऽपशूनां
गौ,—र्यत् त्रयोदश, प्रजापतिर्वै त्रयोदशो, प्रजापतिमेवाप्नोति, यद् द्वादश२ स२वत्सरात् तेन,
यद्वापृत्यनुवाक्या स२वत्सरात् तेन, यज्जगती याज्या पशुभ्यस्तेन, यन्मारुतीष्टिः पशुभ्यस्तेन,
मारुत२ सप्तकपालं निर्वपेद्यत्र विद्राजानं जिज्यासे,—दगस्त्यस्य कयाशुभीय२ सामिधेनीश्च स्युर्या-
ज्यानुवाक्याश्चा,—ऽगस्त्यो वै मरुद्भ्य उक्ष्णः प्रौक्षत्, तानिन्द्रायालभत, ते वज्रमादायाभ्यु-

[८] तै. २,२,११।

पशू२,—स्तान् वा एतेनाशमयद्, तेष् शमयत्येवैतेन, सप्तकपालो भवति, सप्त हि मरुतो,
विग्मरुतः, स्वेनैवैनान् भागधेयेन शमयति ॥८॥ ८

ऐन्द्रमेकादशकपालं निर्वपे,—न्मारुत२ सप्तकपाल२ राज३न्यं भूतिकाम२ याजये,—दैन्द्रो वै
राजन्यो देवतया, मारुती विं,—ड्डिन्द्रियेणैवास्मै विशमुपयुनक्त्य,—नुकामस्मै विशमविवादिनीं
करोत्यै,—न्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुत२ सप्तकपाल२ यः कामयेत, विशे च क्षत्राय च समदं
कुर्यामि,—त्यैन्द्रस्यैन्द्रीमनूच्य मारुत्या यजे,—न्मारुतस्य मारुतीमनूच्यैन्द्र्या यजेद्, स्व एवैभ्यो
भागधेये समदं करोति, यदि कामयेता,—ऽतुभुम२ स्यादिति, पूर्वा३र्धेऽन्यां जनतायां गां
निदुष्यांज्जघना३र्धेऽन्यामिति, ते संगच्छेते, तावदतुभुं भवति, यदि कामयेत, कल्पेते-
स्वे,—ति एव हविषी निरुप्य यथापूर्व२ यजेद्, कल्पतेऽहै,—न्द्रमेकादशकपालं निर्वपेन्मारुत२
सप्तकपालमभिचर,—न्नुपरिष्टादैन्द्रस्यावद्यैदुपस्तान्मारुतस्यो,—भयत एवैनानादीपयति ज्येष्ठतश्च
कनिष्ठतश्चै,—न्द्रमेकादशकपालं निर्वपे,—न्मारुतीमामिक्षा२ राज३न्यं ग्रामकाम२ याजये,—न्मध्य
आमिक्षायाः पुरोडाशं निधायोभयस्यावद्ये, क्षत्र२ वा इन्द्रो, विण्मरुतो, विश२ वा एत-
न्मध्यतः प्रविशति, पर्यूहमवद्यति, विशैवैनं पर्यूहति, मारुतमेकविं२शतिकपालं निर्वपेद-
भिचरन्, देवविशो वै मरुतो, न वै विशो घ्नन्ति, देवविश एवैनं निर्याच्य स्तृणुते,
सं बर्हिषदं कृत्वा समया स्फ्येन विहन्याद् ॥ इदमहमामुष्यायणस्येन्द्रवज्रेण शिरश्छिनद्मि ॥
इतीन्द्रवज्रेणैवास्य शिरश्छिनत्त्य,—ष यत्स्फ्यो, वज्रो वै स्फ्यो, वज्रेणैवैन२ स्तृणुते ॥
९-११

एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सि२हं नृजन्ति महते धनाय ।
महिषं नः सुभ्वं तस्थिवा२सं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनम३प्स्वन्तः ॥ १२
इति वज्रो वा आपो, यदुदप्सु मर्यज्जुमैति वज्रेणैवैन२ स्तृणुते ॥९॥ १३

अग्नये पथिकृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यस्य प्रज्ञातेष्टिरतिपद्येत, बहिष्पथ२ वा एष एति यस्य प्रज्ञा-
तेष्टिरतिपद्यते, ऽग्निर्वै देवानां पथिकृत्, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनं पन्थामपिनयत्य,—
नड्वान् दक्षिणा, स हि पन्थामभिवहत्य,—ग्नये व्रतपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन् प्रव-
सति प्रवसेद्, बहु वा एष व्रतमतिपादयति य आहिताग्निः सन् प्रवसति, व्रत्ये ह्यहनि स्त्रिय२ वोपैति
मा२स२ वाश्नात्य,—ग्निर्वै देवाना२ व्रतपति,—स्तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एन२ व्रतमालम्भय-

[९] तै. २,२,११। [एना व्याघ्रं......प्स्वन्तः। अथर्व. ४,८,७]
[१०] तै. २,२,२। काठ. १०,५-७।

त्य,—ग्नये व्रतभृतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्य आहिताग्निः सन्नश्रु कुर्या,—दानीतो वा एष देवाना२ य
आहिताग्नि,—स्तस्मादेतेनाश्रु न कर्तवै, न हि देवा अश्रु कुर्वन्त्य,—ग्निर्वै देवाना२ व्रतभृ,—द्व-
ग्निमेतस्य व्रतमग२,—स्तस्मादेवाधिव्रतमालभते, ऽग्नये यविष्ठायाष्टाकपालं निर्वपेदभिचर्यमाणो,
याभिरेवैनमितरः प्रयुक्तिभिरभिप्रयुङ्क्ते ता अस्माद्यविष्ठो यौयावा,—ऽग्नये वाजसृतेऽष्टाकपालं नि-
र्वपेत् संग्रामे, वाज२ वा एष सिसीर्षति यः संग्रामे जिगीषत्य,—ग्निर्वै देवाना२ वाजसृत्, तमेव
भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै वाजं धावत्य,—ग्नयेऽनीकवतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् संग्रामे, य३श्चग्वा
अग्नेरनीकमेति न तत् प्रतिधृषे, ऽग्निरेवास्मा अनीकानि जयति, विष्णुमप्याज्यस्य यजे,—देवो
वै विष्णुरिमाँल्लोकानुदजयद्, विष्णोरेवोज्जितिमन्विमाँल्लोकाननुजयति, एभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं
नुदते, ऽग्नये रुद्रवतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, रुद्रायास्य पशूनपिदध्यामित्य,—ग्निर्वै रुद्रो,
रुद्रायैवास्य पशूनपिदधाति, यदि कामयेत, शाम्येदित्य,—ग्नये सुरभिमतेऽष्टाकपालं निर्वपे,—
देषा वा अग्नेर्भेषजा तनूर्यत् सुरभि,—र्भेषजमेवास्मा अकः, सुरभिमेनमकः, शमयत्येवा,—
ऽग्नयेऽन्नवतेऽन्नादायान्नपतयेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यः कामयेता,—ऽन्नवानन्नादोऽन्नपतिः स्यामित्य,—
ग्निर्वै देवानामन्नवानन्नादोऽन्नपति,—स्तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनमन्नवन्तमन्नादमन्नपतिं
करोति ॥१०॥ १४

अग्नये रक्षो३घ्नेऽष्टाकपालं निर्वपेद्यो रक्षोभ्यो बिभीया,—दिन्द्र२ वै रक्षा२स्यसचन्त, ३सोऽ-
ग्निं प्राविशत्, तानि वा एनमभिसममृशन्, त्स एता विप्रुषोऽजनयत या इमाः स्कूयमानस्य वि-
प्रवन्ते, तानि वा अग्निनैवापाहता,—ऽग्निर्वै देवाना२ रक्षोहा, तेनैव रक्षा२स्यपहते, नक्त२
याजये,—न्नक्त२ वै रक्षा२सि प्रेरते, यह्येव प्रेरते तर्ह्येनान्यपहते, वामदेवस्य पञ्चदश सामि-
धेनीश्च स्युर्याज्यानुवाक्याश्च, वामदेवश्च वै कुसितायी चाजीमयातामात्मनोः, सा कुसितायी
वामदेवरथस्य कूबरमछिनत्, सापूरं न्यालवत, युग२ वा छेत्स्यामीषा२ वेति, ३सोऽग्नि-
मुख्यमवैक्षत, स एतं मन्त्रमपश्यत्, तामर्चिरुदौषत्, सार्चिषा दह्यमाना ह्रदं प्राविशत्, स
वाव कौसितो ह्रदो, रक्षा२सि वै स तेनापाहत, तद्रक्षा२स्येवैतेनापहत, आग्नेयमष्टाकपालं
निर्वपेद्यो राष्ट्रे स्पर्धेत यो वा कामयेता,—ऽन्नादः स्यादिति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, तान्
गायत्री सर्वमन्नं परिगृह्यान्तरातिष्ठत्, तेऽविदु,—र्यतरान् वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति,
तस्या२ वा उभय ऐछन्त, तां नाम्नोपैप्सन्॥ दाभि॥ इत्यसुरा आह्वयन्॥ विश्वकर्मन्॥ इति देवाः,

[११] तै. २,२,२। काठ. १०,५,७।

सा नान्यतर२श्चनोपावर्तत, तां देवा एतेन यजुषावृञ्जत ॥ ओजोऽसि, सहोऽसि, बलमसि,
भ्राजोऽसि, देवानां धाम नामासि, विश्वमसि विश्वायुः, सर्वमसि सर्वायुरभिभूः ॥ इति
स२वत्सरो वै गायत्री, स२वत्सरो वै तदतिष्ठत्, स२वत्सर२ वा एषां तदन्नाद्यमवृञ्जत, तत्
स२वत्सरमेवैतदन्नाद्य२ यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, सैषा गायत्रीष्टि,—र्यो आह, राष्ट्रस्य
सध्वर्गो इति ॥ ११ ॥ १५-२१

ऐन्द्राबार्हस्पत्य२ हविर्निर्वपेद्यो राष्ट्रीयो नैव प्रस्तिघ्नुया,—ददितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्,
सोच्छिष्टमाश्नात्, त२ वा इन्द्रमन्तरेव गर्भ२ सन्तमपश्ययेन दाम्नापौम्भत्, सोऽपोम्भोऽजायत,
त२ वा एतेन बृहस्पतिरयाजयदैन्द्राबार्हस्पत्येन, तस्य तद्दाम स्वयमेव व्यपद्यत्, स इमा दिशो
वज्रेणाभिपर्यावर्तत, यो राष्ट्रीयो नैव प्रस्तिघ्नुयात् तमेतेन याजयेदैन्द्राबार्हस्पत्येन, परितो
हि वा एष पाप्मना,—ऽथैष न प्रस्तिघ्नोति, बृहस्पतये निरुप्यता, इन्द्राय क्रियते, मुञ्चत
एवैनं द्रवति, वज्रेणेमा दिशोऽभिपर्यावर्तते ॥ १२ ॥ २२[७१७]

॥ इति मध्यमकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥

अथ द्वितीयः प्रपाठकः ।

आदित्या मार्ग२ वः करिष्याम्यहममुष्यायणमवगमयत ॥ इति ब्रूयाद्धविर्निर्वप्स्यन्, त्स
एतमादित्यं घृते चरुं निर्वपे,—दादित्या वा इमाः प्रजा,—स्ता एवोपासरत्, ता एनमवगम-
यन्ति, सुताश्वस्या मयूखा अन्तर्वेदि प्रमीर२,—स्तान त्स२स्थिते रथवाहनस्य मध्यमिषायाम-
विहन्याद् ॥ इदमहमादित्यान् बध्नाम्यामुष्यावगमः ॥ इत्यादित्यान् वा एतद्बध्नाति, त एनं
मोक्षमाणा अवगमयन्ति, विशो वी३र्यमपाक्रामत्, तदश्वत्थं प्राविशत्, स तेन वीर्येण भर्म-
गामवद्, तद्विश एवैतेन वी३र्यमवरुन्द्धे, यदि समम नावगच्छेदिध्मे तानपि कृत्वैतदेव हविर्नि-
र्वपे,—दादित्या वा इमाः प्रजा,—स्ता एवोपासरत्, ता एनमवगमयन्ति, यद्येव सप्तसु,
त्रिर्वै सप्त सप्तादित्या,—स्तानेवोपासरत्, ता एनमवगमयन्ति, यद्येकतयीषु द्वयीषु वावगच्छेद-
परोधुका एन२ स्यु,—रेष यत्सर्वास्ववगच्छति तथा ह्यनपरोध्योऽवगच्छति, स यदावगच्छेदादि-

[१२] तै. २,४,१३। काठ. ११,४। मा. श्री. ५,१,७।
[१] तै. २,३,१। काठ. ११,६।

त्येभ्यो धारयद्भ्यो घृते चरुं निर्वपे,—दादित्या वा अपरोद्धार, आदित्या अवगमयितार,—स्त
एनं दाधति ॥ १-४
अदितेऽनुमन्यस्व सत्याशीरिह मनः ॥ ५
इति निरुद्धस्य राज्ञः पदमाददीत, तद्यः पुरस्ताद् ग्राम्यवादीव स्यात् तस्य सभाया अभिवातं
परीत्य विध्य२सयेयुः ॥ ६
प्रेत मरुतः स्वतवस एना विश्पत्याभु२ राजानमर्भि ॥ ७
इति तस्य गृहाद् व्रीहीनाहरेयु,—स्ता२स्त्रेधा विचिनुयाद्, ये कृष्णास्तान् कृष्णाजिने उपनह्य
निदध्याद्, ये शुक्लास्तमादित्यं घृते चरुं निर्वपे,—दादित्या वा इमाः प्रजा,—स्ता एत्रोपासरत्, ता
एनमवगमयन्त्य,—थ येभ्योऽपि विचिनुयात् तानुदङ् परेत्य वल्मीकवपामुद्धृज्य जुहुयात्॥ ८
यदुग्रं ते घोरं आसन् जुहोम्येषां बन्धानां प्रमोचनाय ।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥ ९
इति निर्ऋतिगृहीतो वा एष यो निरुद्धो, निर्ऋत्या एवैनं तेन मुञ्चत्ये,—तद्वै विशमत्राग,—
थैष वा अस्य राज्यमन्ववगत्, त३श्चेऽमी कृष्णा व्रीहयस्त२ वारुणं घृते चरुं निर्वपेद्, वरुणो वै
देवाना२ राजा, स राज्यस्यावगमयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एन२ राज्यमवगमय-
त्ये,—तद्वै नानाविश्य,— मुमयीमेवैतेन विशमवगच्छति दैवीं च मानुषीं च ॥१॥ १०
सौर्यं घृते चरुं निर्वपेच्छुक्लाना२ व्रीहीणां ब्रह्मवर्चसकामः, शतमानो रुक्मो रज३तोऽधस्तात्
स्याच्, शतमानो रुक्मो हरित उपरिष्टा,—दिदं वा असा आदित्य आसीत्, तमाभ्यां परिगृह्यो-
परिष्टादासा प्रजानां न्यदधु,—रुपरिष्टाद्वा असा आदित्य इमाः प्रजा अधिपश्याती,—य२ वै रजता-
सौ हारिण्या,—भ्यामेवैनं परिगृह्योपरिष्टादासां प्रजानां निदधात्यु,—परिष्टादिमाः प्रजा अधिप-
श्याति, पञ्च कृष्णलान्यपि प्रयाजेषु जुहुया,—द्दैवी असा आदित्य इमान्, पञ्च ऋतूनन्व
तेजस्वी,—मा एवैनं पञ्च दिशोऽनु तेजस्विनं करोति, प्राजापत्यं घृते चरुं निर्वपेच्, शत-
कृष्णलमायुष्कामो, देवा असुरान् हत्वा मृत्योरबिभयु,—स्ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधाव२,—
स्तान् वा एतया प्रजापतिरयाजयत्, ततो देवा अमृतत्वमगछ,—न्नमृत२ वै हिरण्य,—ममृत-
मायु,—रमृतेनैवैष्वमृतमायुराप्स्यदधाद्, य आयुष्कामः स्यात् तमेतया याजये,—देतद्वै मनुष्य-
स्यामृतत्व२ यत् सर्वमायु,—रमृत२ वै हिरण्य,—ममृतमायु,—रमृतेनैवास्मिन्नमृतमायुराप्स्वा

[१] तै. २,३,१। काठ. ११,४।

दधाति, तेन स सर्वमायुरेति, न पुरायुषः प्रमीयते, शतकृष्णलो भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यो, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, चत्वारि चत्वारि कृष्णलान्यवद्यति समृद्ध्यै, सर्वं ब्रह्मणे परिहर्तवा आह, सर्वे ब्रह्मणि यज्ञं प्रतिष्ठापयति, सर्वमस्मिन् ब्रह्मा वायुं दधात्य,-थो ब्रह्म वै ब्रह्मा, ब्रह्मणैवास्मिन् ब्रह्मायुर्दधाति ॥ २ ॥ ११

बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत्, पुरोधाकाम,-स्तस्य बार्हस्पत्ये ज्योतिष्मती याज्यानुवाक्ये स्यातां, ब्रह्म वै बृहस्पति,-र्बार्हस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया, स्वामेव देवतां पुरोधाया उपासरत्, स्वैनं देवता पुरोधां गमयति, यद्वै लेलाय वीव भाति तज्ज्योति,-स्तस्माज्ज्योतिष्मती, यदि नैव पुरोधां गच्छेदथैन्द्राबार्हस्पत्यꣳ हविर्निर्वपेद्, ब्रह्म चैव क्षत्रं च सयुजा अक,-स्ताजगेनं पुरोदधते, बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेत् पयसि ग्रामकामो वा पशुकामो वा, तस्य बार्हस्पत्ये गणवती याज्यानुवाक्ये स्याताꣳ, यो बहुपुष्टस्तस्य गृहात् क्षीरमाहरेयुः, स्यात् स्वासां गवां दुग्धꣳ, स्यादुदकं, पुष्टिरेवैषा संभ्रियते, ब्रह्म वै बृहस्पति,-र्बृहस्पतिश्छन्दाꣳसि, छन्दोभिर्बृहस्पतिर्गणी, स्वाꣳ वा एतद्देवतां, भूयिष्ठेनार्पयति, सजातैरेनं गणिनं करोति, ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेत् संग्रामे, तस्य ब्राह्मणस्पत्ये वीरवती वयस्वती याज्यानुवाक्ये स्यातां, छदिर्दर्शे याजये,-दु-द्र्हिः प्रस्तरः स्याद्, बाणवन्तः परिधयो, वयाꣳसि परं ग्राममाविशन्ति, तथा विज्ञेयं, जेष्यामा इति, ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पति,-र्ब्रह्मैवोपासरद्, ब्राह्मणस्पत्यं चरुं निर्वपेद्यत्र कामयेत, ब्रह्मबलꣳ स्यादिति, तस्य ब्राह्मणस्पत्ये मरुत्वती याज्यानुवाक्ये स्यातां, ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पति,-र्विण्मरुतो, ब्रह्मणि वा एतद्विशमधि विनाशयति द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय ॥३॥ १२

बार्हस्पत्यं चरुं निर्वपेद्धार्मुतं पशुकामः, प्रजापतिः पशूनसृजत, तेऽस्मात् सृष्टाः पराञ्च आयꣳ,-स्तान् बृहस्पतिश्चान्वैतां, तौ यत्रावसꣳस्ततः शक्रो गर्मुदजायत, तꣳ वा अब्रवी,-दनेन मा याजयेति, तेन वा एनमयाजयत्, तं पशव उपावर्तन्त, यः पशुकामः स्यात्, तमेतेन याजये,-दुप हैनं पशवा आवर्तन्ते, यदा हि स तमेतेनायाजयदथ तं पशव उपावर्तन्त, सौमापौष्णं चरुं निर्वपेद्धार्मुतं पशुकामः, प्रजापतिः पशूनसृजत, तेऽस्मात् सृष्टाः पराञ्च आयꣳ,-स्तेषां पूषणमधिपामकरोत्, तौ यत्रावसꣳस्ततः शक्रो गर्मुदजायत, तꣳ वा आहर,-दनेन मे प्रतिष्ठेति, स सोमोऽब्रवी,-न्मम वा अकृष्टपच्यमिति, तꣳ सौमापौष्णं निरवपत्, तं पशव उपावर्तन्त, यः पशुकामः स्यात्, तमेतेन याजये,-दुप हैनं पशवा आव-

[३] तै. २,३,३; २,१,४।
[४] तै. २,२,४। काठ. १०,११।

र्तन्ते, यदा हि स तमेतेनायाजयदथ तं पशव उपावर्तन्त, सोमो वै रेतोधाः, पूषा पशूनां प्रजनयिता, सोम एवास्मै रेतो दधाति, पूषा पशून्, प्रजनयति, प्राजापत्यं चरुं निर्वपेद्धार्मुतं पशुकामः, पृश्नीनां गवां दुग्धे पृश्नीनां गवामाज्यꣳ स्यात्, तत्रापि गोमूत्रस्याश्चोतयेयुः, पृश्निर्वै यदद्रुहत्स गर्मुदभव,-दियꣳ वै पृश्निर्गावा, तस्या वा एतच्च, शिरो यद्दुग्ध-मुत,-स्तस्मादेतदाण्डमिव पीयूष इव, तं प्राजापत्यं चरुं निर्वपेत् पशुकामः, प्राजापत्या वै पशवः, प्रजापतिः पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै पशून् प्रजनयति, वास्त्वमयꣳ रौद्रं चरुं निर्वपेद्यत्र रुद्रः प्रजाः शमायेत, वास्तोर्वै वास्त्वं जातꣳ, वास्त्वमयं खलु वै रुद्रस्य, स्वेनैवैनं भागधेयेन शमयति, तया निषादस्थपतिꣳ याजयेत्, सा हि तस्येष्टिः, कूटं दक्षिणा कर्णो वा गर्दभः ॥४॥ १३

परमेष्ठिने द्वादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, परमेष्ठी स्यामिति, परमेष्ठी वा एष देवानाꣳ गः परमेष्ठी, परमेष्ठी राजन्यो मनुष्याणां, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनं परमेष्ठिनं करोति, तस्मै धनुश्च तिस्रश्च प्रयच्छेत् ॥ अग्निष्टे तेजः प्रयच्छत्विन्द्र इन्द्रियं पित्र्यां बन्धुताम् ॥ इत्यग्निरेवास्मै तेजः प्रयच्छती,-न्द्र इन्द्रियं पित्र्यां बन्धुताꣳ, वैश्वदेवं द्वादशकपालं निर्वपेद्भ्रातृव्यवाꣳ,-स्तं बर्हिषदं कृत्वा समया स्फ्येन व्यूहेत् ॥ इदमहं मां चामुं च व्यूहामि ॥ इति यं द्विष्यात्तꣳ, यदुधोऽवमृद्येत यच्च स्फ्य आश्लिष्येत् तद्विष्णव उरुक्रमायावद्येद्, विष्णुरेवैना अन्तरा विक्रमते, तं पुनः समूहेत् ॥ इदमहं मां चामुं च समूहामि ॥ इति योऽस्य प्रियः स्यात्तꣳ, वैश्वदेवीर्वा इमाः प्रजा,-स्ताभिरेवैतरꣳ व्यूहति, ताभिरात्मानꣳ समूहती,-न्द्राण्यं चरुं निर्वपेत् सेनाया-मुत्तिष्ठन्त्याꣳ, सेना वा इन्द्राणी, ब्रह्मणैवैनां पुरस्तान्मुखतो जित्यै सꣳश्यति, बल्बजा अपीध्मे स्युः, शक्रो वा एतेऽध्युत्थिता, न्यायेनैवैनामभिनयति, यत्तस्याꣳ सेनायाꣳ विन्देत् सा दक्षिणा, वाचस्पतये चरुं निर्वपेच्छ्रीकामो, यो वै वाचोऽध्यक्षः स वाचस्पति,-स्तच्छ्रीकरणमेवैतत् ॥ ५ ॥ १४-२०

अग्नये वसुमते सतीनानामष्टाकपालं निर्वपेत्, सोमाय रुद्रवते श्यामाकं चरु,-मिन्द्राय मरुत्वते नैवारमेकादशकपालꣳ, वरुणायादित्यवते यवमयं चरुं, देवा अ३न्योऽन्यस्य श्री,-र्हे

[५] काठ. १०,१०।
[६] तै. ब्रा. २,४,४। काठ. १०,११। वा. ३३,८६; १९,५८। काण्व. १३,५९।

विष्ठमानाश्चतुर्धा व्युदक्राम,-न्नग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैस्तान् वा एतया बृहस्पतिरयाजयत् संज्ञान्या,-तं इन्द्रमेवाभिसमावर्तन्ते,-न्द्रमभिसमजानत, तद्य एतया यजते तमेवाभिसमावर्तन्ते, तमभिसंजानते, तदाहु,-रैन्द्र एकादशकपालः का३र्या इती,-न्द्रꣳ हि तेऽभिसमावर्तन्ते,-न्द्रमभिसमजानत ॥ २१

संज्ञानं नो दिवा पशोः संज्ञानं नक्तमर्वतः ।
संज्ञानं नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः संज्ञानमाश्विना युवमिहास्मभ्यं नियच्छतम् ॥ २२
समिन्द्र रायो समिषा रभेमहि सꣳ वाजैः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वत्या रभेमहि ॥ २३
इन्द्रवायू सुसंदृशा सुहवेह हवामहे । यथा नः सर्वा इज्जनः संगमे सुमना असत् ॥ २४
सꣳ वो मनाꣳसि सꣳ व्रता समाकूतीरनꣳसत ।
अमी ये विव्रताः स्थ तान्वः संनमयामसि ॥ २५
समाना वा आकूतानि समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ २६
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानꣳ व्रतꣳ सह चित्तमेषाम् ।
समानं क्रतुमभिमन्त्रयध्वꣳ समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ २७
संगच्छध्वꣳ संजानीध्वꣳ सꣳ वो मनाꣳसि जानताम् ।
देवा भागꣳ यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ ६ ॥ २८

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत् सावित्रं चरुꣳ वायव्याꣳ यवागूं प्रतिधुग्वा भौममेककपालꣳ यस्य हिरण्यं नश्येद्यो वा हिरण्यꣳ विन्देद,-ग्निर्वा अग्रे हिरण्यमविन्दत्, स सवित्राऽनꣳत्रयत, न खलु वै हिरण्यं नश्येद्यो वा हिरण्यꣳ विन्दे,-दग्निर्वा अग्रे हिरण्यमविन्दत्, विश्वा एवाप्रियः, प्रसवाय सावि३त्रो, किं चन वायुनानभिगतमस्त्य,-स्याꣳ वै स तदविन्दद्, विश्वा एवाप्रियः, प्रसवाय सावि३त्रो, किं चन वायुनानभिगतमस्त्य,-स्याꣳ वै स तदविन्दद्,-स्याꣳ हि स तदविन्द,-देते वै प्रदातार,-स्तानेव ऽभिनीत्यै वायव्या,-ऽध यत्र३मो, ऽस्याꣳ हि स तदविन्द,-देते वै प्रदातार,-स्तानेव यैरेवाविन्दत्तान् भागधेयेनोपासरत्, तेऽस्मै प्रयच्छन्ति, स यदा विन्देदथैतेभ्य एव निर्वपेद्,

[संज्ञानं नः स्वेभ्यः.......नि यच्छतम् । ऋ. परि. ३६,२; अथर्व. ७,५२,१ । समिन्द्र रायो.......रभेमहि। ऋ. १,५३,५; अथर्व. २०,२१,५। इन्द्रवायू सुसंदृशा.......असत्। ऋ. १०,१४१,४; अथर्व. ३,२०,६। स ꣳ वो (वां) मनाꣳसि.......संनमयामसि । अथर्व. ६,९४,१ । समाना (...नी) वा (व).......सुसहासति । ऋ. १०,१९१,४; अथर्व. ६,६४,३। समानो मन्त्रः....... (अभिसंविशध्वम्) जुहोमि । ऋ. १०,१९१,३; अथर्व. ६,६४,२ । संगच्छध्वꣳ.......उपासते । ऋ. १०,१९१,२; अथर्व. ६,६४,१]

[७] तै. २,३,५। काठ. ११,२।

भागिनः करोत्यहिꣳसायै, प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितॄरददान्नक्षत्राणि, स रोहिण्यामेवावसन्नेतरासु, ता अनुपेयमानाः पुनरगच्छꣳ,-स्तꣳ राजयक्ष्मेणाग्राहयत्, स निरस्रवत्, तस्माद्राजयक्ष्मगृहीतो निःस्रवति, स वै प्रजापतिमेवोपाधावत्, तं प्रजापतिरब्रवीद्, ऋतं मृहीति, स ऋतमब्रवीद्, यथा सर्वास्वेव समावद्वसानीति, तस्मादेष सर्वास्वेव समावद्वसति, तस्मै वै प्रजापतिः प्रायश्चित्तिमैच्छत्, तस्मा अमावास्यायाꣳ वैश्वदेवं चरुं निरवपत्, तेनास्मै प्रायश्चित्तिमविन्द३त्, सोऽमुमाप्यायमानमन्वाप्यायत, वसीयानभवद्, यो राजयक्ष्मगृहीतः स्यात् तस्मा अमावास्यायाꣳ वैश्वदेवं चरुं निर्वपे,-देतेन वै स तस्मै प्रायश्चित्तिमाविन्दत्, तेनैवास्मै प्रायश्चित्तिꣳ विन्दत्य,-मुमेवाप्यायमानमन्वाप्यायते, वसीयान् भवति ॥७॥ २९

प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यकल्पयत्, स इन्द्रोऽब्रवीद्, यदतिरिच्यते तन्ममेति, तद्वा इन्द्रियमेवात्यरिच्यत, तदिमांल्लोकाननूर्ध्वमनूदश्रयत, तदेकेनाप्नो,-द्द्वाभ्यां, तत् तृतीयेनाप्त्वावारुन्द्ध, यत् त्रयः पुरोडाशा भवन्त्येभ्यो वा एतं लोकेभ्य इन्द्रियꣳ वीर्यमाप्त्वावरुन्द्धा, उत्तर उत्तरः पुरोडाशो ज्यायान् भवत्यु,-त्तर उत्तरो हि लोको ज्याया,-निन्द्राय राज्ञे प्रथम, इन्द्राय स्वराज्ञे मध्यम, इन्द्रायाधिराजायोत्तम, एतानि वै सर्वाणीन्द्रोऽभवद्राज्यꣳ स्वाराज्यमाधिराज्य,-मेतानि सर्वाणि भवति य एतैर्यजते, सर्वमेतद्भवति य एवꣳ वेद, प्रथमामनूच्य मध्यमया यजे,-न्मध्यमामनूच्योत्तमया यजे,-दुत्तमामनूच्य प्रथमया यजे,-देवमस्य सर्वा अनुवा३क्या भवन्ति सर्वा याज्या एषां लोकानां प्रतिप्रज्ञात्या अथो अनुसंतत्या, इन्द्राय घर्मवते सूर्यवता एकादशकपालं निर्वपेत्तेजस्काम,-स्तेजो वै घर्म,-स्तेजः सूर्य,-स्तेज एवावरुन्द्धा, इन्द्रायेन्द्रियवता एकादशकपालं निर्वपेत् पशुकाम, इन्द्रियꣳ वै पशवा, इन्द्र इन्द्रियस्य प्रदाता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मा इन्द्रियं पशून् प्रयच्छति ॥८॥ ३०

इन्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपे,-दभिरुद्धꣳ याजये,-दन्तꣳ वा एष गतो यो निरुद्धो, ऽन्तोऽर्को, ऽन्तोऽश्वमेधो, ऽन्तेनैवास्मा अन्ते कल्पयति, वशा दक्षिणा, वशं मा नयादिती,-न्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, जने म ऋध्येते-स्य,-न्तो वा एषा ऋद्धीनाꣳ यज्ञानां, ऽन्तो, ऽर्को, ऽन्तोऽश्वमेधो, ऽन्तेनैवास्मा अन्ते कल्पयति, वशा दक्षिणा, वशं मा नयादिती,-न्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद्-

[८] तै. २,३,६। काठ. १०,१०,८।
[९] तै. २,२,७-८। काठ. १०,८।

हन्त्री,—यदा वै श्रियोऽन्नं गच्छन्त्यथ पापीयान् भवत्य,—न्नोऽर्को, ऽन्नोऽश्वमेधो, ऽन्नमेवालब्ध न पापीयान् भवती,—न्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, महायज्ञो मोपनमे,—दित्येते वा इन्द्रस्य यज्ञिये तन्वा यदर्कश्चाश्वमेधश्च, ते एवालब्ध, ताभ्यां महायज्ञमालभता, इन्द्राय घर्मवते सर्ववता एकादशकपालं निर्वपे,—दिन्द्राय मन्युमते मनस्वता एकादशकपाल,—मिन्द्रायेन्द्रियवता एकादशकपाल,—मिन्द्रायार्कवतेऽश्वमेधवता एकादशकपालं भूतिकाम२ याजये,—द्विद२ वा इन्द्रस्य घर्मश्च सर्वश्चे,—दमस्य मन्युश्च मनश्चे,—दमस्यैन्द्रश्चेन्द्रियं चे,—दमस्यार्कश्चाश्वमेधश्च,—तानि वै सर्वाणीन्द्रोऽभव,—देतानि सर्वाणि भवति य एवं यजते, सर्वमेतद्भवति य एव२ वेद ॥९॥ 31

इन्द्रायां२होमुचा एकादशकपालं निर्वपे,—दामयाविन२ याजये,—द्देषा वा इन्द्रस्य भेषजा तन्र्यद२होमु,—क्तेनैव भागधेयेनोपासरत्, स एनमं२हसो मुञ्चती,—न्द्राय त्रात्र एकादशकपालं निर्वपेद्यो ज्यान्या मारणादपरोधाद्वा बिभीया,—दिन्द्रो वै त्राते,—न्द्रोऽपरोद्धा, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनं त्रायता, इन्द्रायान्वृजवा एकादशकपालं निर्वपेज्ज्येष्ठबन्धु,—रिन्द्रिय२ वै ज्येष्ठबन्धु,—रिन्द्रियेणैवैनानन्वृजून् कुरुता, इन्द्राय प्रवभ्रायैकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे, प्रवभ्रो वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्, प्रवभ्र एवैभ्यो वज्रं प्रहरती,—न्द्राय वै मृधायैकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे, मृधो वा एष विहन्ति यः संग्रामं जयति, मृध एव विहता, इन्द्रायाभिमातिघ्न एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रा३मे, ऽभिमातीर्वा एष हन्ति यः संग्रामं जयत्य,—भिमातीरेव हता, इन्द्रायाभिमातिषाहा एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, विपृहेया,—ऽभयं मे स्यादिती,—न्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत्, तं दानवा नान्वमन्यन्त, तमेतेन भागधेयेनान्वमन्यन्त, ततो वै३सोऽभिमातीरहन्, वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वा एष हन्ति यः संग्रामं जयति, तद्वार्त्रघ्नमेवैतत् ॥१०॥ 32

ऐन्द्रमेककपालं निर्वपे,—न्निरुद्ध२ याजये,—दा प्रेहि परमस्याः परावता, इति याज्यानुवाक्ये स्यातां, परावत२ वा एष गतो यो निरुद्धः, परावत एवैनमभ्याप्त्वावगमयत्यै,—न्द्रं त्रयोदशकपालं निर्वपे,—न्निरुद्ध२ याजये,—दतिरिक्त२ वै त्रयोदश,—मतिरिक्तो निरुद्धो, ऽतिरिक्तादेवैनमतिरिक्तमाप्त्वावगमयती,—न्द्राय वज्रिणा एकादशकपालं निर्वपे,—दिन्द्राय वृत्रघ्न एकादशकपाल,—मिन्द्राय वृत्रतुरा एकादशकपाल२ यस्य भ्रातृव्यः सोमेन यजेत, वज्र२ वा एष भ्रातृव्यायोच्छ्रयति यः सोमेन यजते, यद्वज्रिणे, वज्रेणैवास्य वज्र२ स्तृणुते, यद्वृत्रघ्ने,

[१०] तै. २,२,७-८। काठ. १०,९।

भ्रातृव्यो वै वृत्रो, हन्त्येवैन२, यद्वृत्रतुरे, भ्रातृव्यो वै वृत्रं,—स्तरत्येवैन,—मिन्द्राय क्षेत्रंजयायैकादशकपालं निर्वपेद्यः क्षेत्रे पशुषु वा विवदेते,—न्द्रो वै देवानां क्षेत्रंजयं,—स्तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै क्षेत्रं पशून् जयती,—न्द्रायाधिराजायैकादशकपालं निर्वपेद्यत्र राजानः सदृशा इव स्यु,—रिन्द्रो वै देवानामधिराजे,—स्तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनमाधिराज्यं गमयति ॥११॥ 33

इन्द्राय मन्युमते मनस्वता एकादशकपालं निर्वपेत् संग्रामे, मन्युना वै वीर्यं क्रियत, इन्द्रियेण जयति, वीर्यं चैवेन्द्रियं च जित्यै दधाति, मन्यवे चरुं निर्वपेत् संग्रामे, मन्युना वै वीर्यं क्रियते, वीर्यमेवैषु जित्यै दधाति, य जीवग्राहं गृह्णीयुस्त२ विकृन्तेयु,—र्मन्योः स्विदेवं सत्यमक,—रिन्द्राय मनस्वता एकादशकपालं निर्वपेद्यः कामयेत, पुण्यः स्यामनाधृष्य इति, मनो वै श्रीस्त्विषिः, श्रियमेवास्मि२स्त्विषिं दधाति, स२वत्सरं नु पुरा मनसो न कीर्तयेत्, स२वत्सरेण वा अनाप्तमाप्यते, स२वत्सरेणैवास्मा आप्त्वा तेजः श्रियं त्विषिं दधाति ॥१२॥ 34

यस्य साम्नाय्यं चन्द्रमा अभ्युदियात्त्रेधा पुरोडा३श्याः स्युस्ता२स्त्रेधा कुर्याद्, ये मध्यमास्तमग्नये दा३त्रेऽष्टाकपालं निर्वपेद्, ये स्थविष्ठास्तमिन्द्राय प्रदात्रे दधं२श्चरु२, ये क्षोदिष्ठास्त२ विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरु,—मग्निर्वै मध्यमस्य दाते,—न्द्रो ज्येष्ठस्य प्रदाता,—ऽथ यत् क्षोदिष्ठं तच् शिपिविष्टं, तदाप्नोति, पशूनेव, सोमो वा एतस्यातिरिच्यते यस्य साम्नाय्यं चन्द्रमा अभ्युदेति, स वै पशूनेवाभ्यतिरिच्यते, यः पशुकामः स्यात् सोऽमावास्यामिष्ट्वा वत्सानपाकुर्याद्, ये पुरोडा३श्याः स्युस्ता२स्त्रेधा कुर्याद्, ये क्षोदिष्ठास्तमग्नये सनिमतेऽष्टाकपालं निर्वपेद्, ये मध्यमास्त२ विष्णवे शिपिविष्टाय शृते चरु२, ये स्थविष्ठास्तमिन्द्राय प्रदात्रे दधं२श्चरु,—मग्निरेवास्मै तद्विन्दति यदीह, विष्णुस्तद्यदन्तरिक्षा, इन्द्रस्तद्यद्दिवि, संत्वानो गा इच्छन्ति, यदेते तण्डुला विभाज्यन्ते, संत्वानो वा एत एष्टारोऽभिरोद्धार एवा,—ऽऽग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेद्व्रतश्री,—स्तस्य गौर्धेनुर्दक्षिणा, स प्राङ् प्रयाय वैष्णवं त्रिकपालं, तस्य वडबा धेनुर्दक्षिणा, स प्राङ् प्रयाय गिरिं गत्वादो वा प्राजापत्यं घृते चरुं, तस्य पुरुषी धेनुर्दक्षिणा, यदाग्नेयं इमां तेनाक्रमते, यद्वैष्ण३वोऽन्तरिक्षं तेन, यत् प्राजाप३त्योऽमुं तेनु लोक२, यत् प्राङ् प्रयात्यभि स्विदेवाक्रमीद्, यद्गिरिं गच्छत्यपो वान्त२ स्विदेवागन्, यत् तिस्रो धेनवो

[१२] तै. २,२,८,२। काठ, १०,८।
[१३] तै. २,३,२,६,७। काठ. ११,१।

दक्षिणा, त्रयो वा इमे लोका, इमानस्मै लोकान् धेनुरक,—रिमानस्मै लोकान् प्रदापयति, प्रेशान्ह वा अस्मा इमांल्लोकान् दुहे य एव२ वेद, सोमेन्द्रं चरुं निर्वपेच्छ्यामाक२ सोमवामिना, इन्द्रो वै त्वष्टुः सोममपिबदनुपहूयमान,—स्तस्योर्ध्वः सोमपीथोऽपतत्, ते श्यामाका अभवन्, सोमपीथेन वा एष व्यृध्यते यः सोम२ वमिति, यत् सौम्यः, सोमपीथेनैवैन२ समर्धयती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यः सोम२ वमिति, यदैन्द्रं, इन्द्रियेणैवैन२ वीर्येण समर्धयति, शिथिरं इव हि वा एतस्य सोमपीथो, ऽथैष सोम२ वमिति, यच्च श्यामाकस्तण्डुलैः श्रीणाति सोमपीथस्य धृत्यै ॥१३॥ 35 [७०२]

॥ इति मध्यमकाण्डे द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः।

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेन्मैत्रावरुणीं पयस्यामामयाविन२ याजयेद्, क्रूद्धा एवाग्नेयो, ऽग्नो अस्यान्वन्तमेवैनं कृत्वा प्रतिष्ठापयती,—खरा वै पयस्या क्रूते पशोरशान्ता निर्मृजः, पशुरेप्यालब्धः शान्त्या अनिर्मार्गाये,—ते वै पशवो यद् व्रीहयश्च यवाश्च, यद् व्रीहिमयः पुरोडाशो भवति तेनैव पशुरालभ्यते शान्त्या अनिर्मार्गाय, मैत्रावरुणीं ब्राह्मणस्य स्या,—न्मैत्रावरुणो हि ब्राह्मणो देवतये,—न्द्रवारुणीं राजन्यस्य स्या,—दैन्द्रवारुणो हि राजन्यो देवतया,—ऽग्निवारुणीं वैश्यस्य स्या,—दग्निर्वै सर्वा देवता, अत्र वैश्यस्यापि देवता,—ऽऽमयाविन२ याजयेत्, स्वामेव देवतां प्रायश्चित्त्या उपासरद्, वरुणगृहीतो वा एष य आमयावी, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चति, पयो वै पुरुषः, पय एतस्यामयति, पयसैवास्य पयो निष्क्रीणाति, यद्यूहति, विकृन्त्य हि मन्थं मध्यतो निर्हरन्ति, तद्यथाम२ वा अस्यैतन्मध्यतो निर्हरन्त्य,—थ यत् पुनः समुद्धाग्नये समवद्यति यथा मन्थं निर्हृत्योपप्रयच्छ प्रैत्यन्त्येवं तद्भूतिकाम२ याजयेत्, स्वामेव देवतां प्रायश्चित्त्या उपासरद्, वरुणगृहीतो वा एष यो भूतिकामो, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चति, पयो वै पुरुषः, पय एष इच्छति यो भूतिमिच्छति, पयसैवास्मै पयोऽवरुन्द्धे, यद्व्यूहति यज्ञस्य गोपीथाया,—ऽथ यत् पुनः समूहति भूत्यैवैन२ समूहति, ग्रामकाम२ याजयेत्, स्वामेव देवतां प्रायश्चित्त्या उपासरद्, वरुणगृहीतो वा एष यो ग्रामकामो, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चति, पयो वै पुरुषः, पय एष इच्छति यो ग्राममिच्छति, पयसैवास्मै पयोऽवरुन्द्धे, यद्व्यूहति यज्ञस्य

[१] तै. २,३,१३। काठ, १२,१। ११,११।

गोपीथाया,—ऽथ यत् पुनः समूहति ग्रामेणैवैन२ समूहत्यै,—कपालान् जुहोत्यै,—त्रात्र वै वरुणस्य पाशा,—स्तेत एनं मुञ्चति, यन्नाग्ना जुहुयाद्, विकृष्टः स यज्ञस्या,—ऽग्नौ सर्वे होत३व्याः सम्मृद्ध्यै ॥ या वां मित्रावरुणा ओजस्या तनूस्तया वा२ विधेम, तयेमममुं मुञ्चतम२हसो, या वां मित्रावरुणौ सहस्या तनूस्तया वा२ विधेम, तयेमममुं मुञ्चतम२हसो, या वां मित्रावरुणौ यातव्या तनूस्तया वा२ विधेम, तयेमममुं मुञ्चतम२हसो, या वां मित्रावरुणौ रक्षस्या तनूस्तया वा२ विधेम, तयेमममुं मुञ्चतम२हसो, या वां मित्रावरुणा ओजस्या सहस्या यातव्या रक्षस्या तनूस्तया वामविधाम, तयेमममुममौक्तम२हसो, यस्ते राजन् वरुण देवेषु पाशस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा, यस्ते राजन् वरुणाप्सु पाशस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा, यस्ते राजन् वरुण द्विपात्सु चतुष्पात्सु पशुषु पाशस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा, यस्ते राजन् वरुणौषधीषु वनस्पतिष्वप्सु पृथिव्यां दिक्षु पाशस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा ॥ एते वै वरुणस्य पाशा,—स्तेत एनं मुञ्चति ॥ १ ॥ 1-3

वैश्वदेवं चरुं निर्वपेद्भ्रातृव्यवान्, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवाः संग्रहणेनायजन्त, ते यत्किंचासुराणा२ स्वमासीत् तत् समगृह्ण,—न्मना२सि वावैषां तत् समगृह्ण२,—स्तेऽमनसः पराभवन्, भ्रातृव्यवान् यजेत, मनोग्रहण२ वा एतं,—न्मना२सि वा एतद्भ्रातृव्याणा२ संगृह्णाति, तेऽमनसः पराभवन्ति, ग्रामकामो यजेत, मनोग्रहण२ वा एतं,—न्मना२सि वा एतत् सुजातानां२ संगृह्णाति, तेऽस्मान्मनोगृहीता नापयन्ति, सर्वेषा२ सजातानां गृहादाज्यमाहरेयु,—र्यावतामेव कियतां च गृहादाज्यमाहरन्ति तेषा२ सर्वेषां मना२सि संगृह्णाति, तेऽस्मान्मनोगृहीता नापयन्त्या,—मनेन जुहोत्या,—मनस एवैनान् करोति ॥ आमनस्य देव ये सुजाताः समनसस्तानहं कामये हृदा, ते मां कामयन्ता२ हृदा, तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा,—ऽऽमनस्य देव ये पुत्राः समनसस्तानहं कामये हृदा, ते मां कामयन्ता२ हृदा, तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा,—ऽऽमनस्य देव याः स्त्रियः समनसस्ता अहं कामये हृदा, ता मां कामयन्ता२ हृदा, तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा,—ऽऽमनस्य देव ये पशवः समनसस्तानहं कामये हृदा, ते मां कामयन्ता२ हृदा, तान्मा आमनसस्कृधि स्वाहा ॥ एते वै सुजाताः सुजाता इव पुत्रा इव स्त्रिय इव पशव इव, तैरात्मानमभिसं२युङ्क्ते, तैर्भवति, पृषती गौर्धेनुर्दक्षिणा, सा हि वैश्वदेव्य,—थ

[२] तै. २,३,९। काठ. १२,२।

यद्वैश्वदेव्यथ यद्वैश्वदेवीष्टि,—र्वैश्वदेवीर्वा इमाः प्रजा,—स्ता एवावारुन्द्ध, ता आद्या अकृत,
बहिरात्मं२ वै प्रयाजानुयाजा, आत्मा देवता, यत् प्रयाजानुयाजानां पुरस्ताद्वोपरिष्टाद्वा जुहुयां-
द्बहिरात्मं२ सुजातान् दधीता,—ऽथ यन्मध्यतो जुहोति, मध्यत एव सुजातानात्मन् धत्ते,
यदि कामयेत, ताजग्गेयुस्ताजक् परेयुरिति, दारुमयेण जुहुया,—च्चराचरा हि वनस्पतयो,
यदि कामयेत, ध्रुवाः स्युः कृच्छ्रादियुरिति, मृन्मयेन जुहुयात् ॥ ध्रुवा ३हीयं, ध्रुवोऽसि,
ध्रुवस्त्वं देवेष्वेधि, ध्रु३वोऽहं२ सुजातेषु भूयासं प्रियः सुजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवि,—दुग्रोऽस्यु,—
ग्रस्त्वं देवेष्वेध्यु,—३ग्रोऽहं२ सुजातेषु भूयासं प्रियः सुजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवि,—दभिभूरस्य,—
भिभूस्त्वं देवेष्वेध्य,—भिभूरहं२ सुजातेषु भूयासं प्रियः सुजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित्, परिभूरसि,
परिभूस्त्वं देवेष्वेधि, परिभूरहं२ सुजातेषु भूयासं प्रियः सुजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित्, सूरिरसि,
सूरिस्त्वं देवेष्वेधि, सूरिरहं२ सुजातेषु भूयासं प्रियः सुजातानामुग्रश्चेत्ता वसुवित् ॥ एते वै सुजा-
तास्तानस्मिन् दधाति, तानस्माद्दनपक्रामिणः करोति ॥ २ ॥　४-८

अथैषोऽश्वः प्रतिगृह्यते, स वा उभयतोदन् प्रतिगृहीतो निर्बभस्त्यस्येन्द्रियं च पशू२श्च,
वरुणो वा अश्वो वरुणदेव३त्यो, यो वा अश्वं प्रतिगृह्णाति वरुण२ स प्रसीदति, तदश्वहविषा
यष्टव्यं निर्वरुणत्वाय, चतुष्कपाला भवन्ति, चतुष्पाद्वा अश्वः, कपालैरेवैनमाप्नोति, या-
वन्तोऽश्वास्तावन्तः पुरोडाशा भवन्ति, सर्वत एवैनं मुञ्चत्यै,—कोऽधिभवति, यन्नोपस्मरति
तस्मा एव स, यः पुनः प्रतिग्रहीष्यन् त्स्यान्न स यजेत, यदि पुनः प्रतिगृह्णीयात् पुनर्वरुणं
प्रसीदे,—दथ यः पुनः प्रतिग्रहीष्यन् त्स्यात् तस्य वारुणा नेमाः स्युः सौर्यवारुणा नेमा, यद्वा-
रुणा, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चत्य,—थ यत्सौर्याः, स्वामेव देवतामुपप्रतिगृह्णात्यात्मनोऽहि२साया,
एकवि२शतिः सामिधेनीर्भवन्त्य,—सा आदित्य एकवि२शः, प्रजापतिरसा आदित्यः, प्राजा-
पत्योऽश्वो, यावानेवाश्वस्तमाप्नोति, सर्वे वा अन्ये पशवो योनिमन्तः पुरुषयोनयो, ऽयोनि-
रश्वोऽप्सुजा, यदेषोऽपोनप्त्रीयश्चरुर्भवति योनिमन्तमेवैनमकः, स्व एवैन२ योनौ प्रतिष्ठापयति ॥
यस्ते राजन् वरुण गायत्रच्छन्दाः पाशो ब्रह्मन् प्रतिष्ठितस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा,
यस्ते राजन् वरुण त्रिष्टुप्छन्दाः पाशः क्षत्रे प्रतिष्ठितस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा, यस्ते रा-
राजन् वरुण जगच्छन्दाः पाशो विशि प्रतिष्ठितस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा, यस्ते रा-
जन् वरुणानुष्टुप्छन्दाः पाशो दिक्षु प्रतिष्ठितस्तं त एतेनावयजे, तस्मै ते स्वाहा ॥ छन्दा२सि वै

[३] तै. २,३,१२ । काठ. १९,६ ।
मै० १६

वरुणस्य पाशा,—स्तैरेनं गृह्णाति, यैरेनं गृह्णाति तैरेनं मुञ्चत्य,—पोनप्त्रीयाभ्यां द्वाभ्यां जुहोति,
य एवाप्स३व्यो वरुणस्तत एनं मुञ्चति ॥ ३ ॥　९-११

अग्नेरायुरसि, तेनास्मा अमुष्मा आयुर्देही,—न्द्रस्य प्राणोऽसि, प्राणं देह्यमुष्मै यस्य ते प्राणः,
स्वाहा, पितॄणां प्राणोऽसि, प्राणं दत्तामुष्मै येषा२ वः प्राणः, स्वाहा, विश्वेषां देवानां
प्राणोऽसि, प्राणं दत्तामुष्मै येषा२ वः प्राणः, स्वाहा, बृहस्पतेः प्राणोऽसि, प्राणं देह्यमु-
ष्मै यस्य ते प्राणः, स्वाहा, प्रजापतेः प्राणोऽसि, प्राणं देह्यमुष्मै यस्य ते प्राणः स्वाहा ॥
१२

यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवद्यदसर्पत् तत् सर्पिः । यदध्रियत तद् घृतम् ॥　१३
घृतस्य पन्थाममृतस्य नाभिमिन्द्रेण दत्तं प्रयतं मरुद्भिः ।
तत्त्वा विष्णुरन्वपश्यत् तत्त्वेडा गव्यैरयत् ॥　१४

पावमानस्य त्वा स्तोमेन गायत्रस्य वर्तन्योपा२शोस्त्वा वी३र्येणोत्सृजे, बृहता त्वा रथंतरेण
त्रैष्टुभ्या वर्तन्या शुक्रस्य त्वा वी३र्येणोद्धरे, ऽग्निष्ट्वा मात्रया जागत्या वर्तन्या देवस्त्वा सविता-
न्नयतु जीवात्वै जीवनस्यायै ॥　१५

इदं२ वर्चो अग्निना दत्तमागान्महि राधः सह ओजो बल२ यत् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय प्रतिगृभ्णामि महते इन्द्रियाय ॥　१६
इममग्ना आयुषे वर्चसे कृधि तिग्ममोजो वरुण सोम राजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥　१७

अग्निरायु,—स्तस्य मनुष्या आयुष्कृत,—स्तेनायुषायुष्मानेधि, ब्रह्मायु,—स्तस्य ब्राह्मणा आ-
युष्कृत,—स्तेनायुषायुष्मानेधि, यज्ञ आयु,—स्तस्य दक्षिणा आयुष्कृत,—स्तेनायुषायुष्माने-
ध्य,—मृतमायु,—स्तस्य देवा आयुष्कृत,—स्तेनायुषायुष्मानेध्य,—श्विनोः प्राणोऽसि, तौ ते
प्राणं दत्तां, तेन जीव, मित्रावरुणयोः प्राणोऽसि, तौ ते प्राणं दत्तां, तेन जीव, बृह-

[४] तै. २,३,१० । काठ. ११,७ । वा. ३४,५१ । काण्व. ३३,४० [इदं२ वर्चो०... सहओजोवयो बलम् । इन्द्रियाय त्वा०... शतशारदाय । अथर्व० १९,३७,१-२ । इममग्न०। अथर्व० २,२८,५ । जरदष्टिर्यथासत् । ऋ० परि० २७,८। अथर्व० ८,५,२१ । दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । अथर्व० १,३५,१; ८,५,२१, १९,२,६]

स्पतेः प्राणोऽसि, स ते प्राणं ददातु, तेन जीव, प्रजापतेः परमेष्ठिनः प्राणोऽसि, स ते
प्राणं ददातु, तेन जीव ॥४॥　१८

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेत्, सारस्वतं चरुं बार्हस्पत्यं चरुं पूर्वेद्युरामयाविन२ याजये,—
दग्निर्वै सर्वा देवता, विष्णुर्यज्ञो, देवताभिश्चैवास्मिन् यज्ञेन चायुर्दधाति, वाक्सरस्वती,
ब्रह्म बृहस्पति,—र्वाचा चैवास्मिन् ब्रह्मणा चायुर्दधात्य,—थो प्राणा वै देवताः, प्राणान् वा एतत्
पूर्वेद्युर्गृहीत्वोपवसति, स श्वो भूत आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेत्, सौम्यं पयसि चरुमादित्यं घृते
चरु२ वारुणं चरु२ युवमयमियन्तमग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालमामयाविन२ याजयेद्, यो वै प्र-
मीयतेऽग्निं तस्य शरीरं गच्छति सोम२ रसो, यदाग्नेयः, शरीरमेवास्य तेन निष्क्रीणाति,
यत् सौम्यो, रसं तेन, यावानेव तं निष्क्रीये,—य२ वा अदिति,—रस्यामधि प्रजाः प्रजाय-
न्ते, ऽस्यामेवैनमधिप्रजनयती,—या२श्चरुर्भवत्ये,—तावान् वा आत्मा, यावानेवास्यात्मा
त२ वरुणान्मुक्त्वा, स२वत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, स२वत्सरं एवैनं प्रतिष्ठापयति, स२व-
त्सरायुपमेनं करोत्य,—ग्नेरायुरसि, तेनास्मा अमुष्मा आयुर्देहीत्य,—ग्निर्वै मनुष्याणामायुषः प्र-
दाता, सोऽस्मा आयुः प्रयच्छति, पञ्चभिर्जुहोति, पाङ्क्तः पुरुषो, यावानेव पुरुषस्त२
समीरयति, यावानेव पुरुषस्त२ समीरयित्वा,—ऽय२ वाव यः पवत एष प्राणं, आभ्यो वा
एष दिग्भ्योऽधिपवत, एतदेव३त्या वा इमा दिशो, यथादेवत२ वावैनमेतदाभ्यो दिग्भ्योऽधि
समीरयित्वा प्राणानस्मिन् दधाति ॥　१९

यन्नवमैत्तन्नवनीतमभवद्यदसर्पत् तत् सर्पिः । यदध्रियत तद् घृतम् ॥　२०

इति घृतस्य वा एतन्महिमानमुदाचष्टे, ऽथो महयत्येवैनन्, पावमानस्य त्वा स्तोमेन गाय-
त्रस्य वर्तन्योपा२शोस्त्वा वी३र्येणोत्सृजा, इति यथा वा इदं२ वध्यमुत्सृजत्युद्धरत्युन्नयत्येवं
त,—देतावद्वा अस्ति स्तोमा ग्रहाश्छन्दा२सि, यावदेवास्ति तेनास्मा आयुर्दधाति, यज्ञेनास्मा
आयुर्दधाति, सर्वे ऋत्विजः पर्याहुः, सर्वे वा एत एतस्मै चिकित्सन्ति, सर्व एवास्मा आ-
युर्दधाति, ब्रह्मणो हस्तमालभ्य पर्याहु,—र्ब्रह्म वै ब्रह्मा, ब्रह्मणैवास्मिन् ब्रह्मायुर्दधाति, हि-
रण्यादधि घृतं निष्पाययन्त्य,—मृत२ वै हिरण्य,—मायुर्घृत,—ममृतादेवैनमध्यायुर्निष्पाययन्ति
निरिव धयत्या,—युरेवात्मन् धत्ते, तदस्मा आबध्नात्या,—युषैन२ समर्धयत्या,—प्नेय्यावभात्य,—

[५] तै. २,३,११ । काठ. ११,८ ।

ग्निर्वै सर्वा देवता, सर्वाभिरेवास्मिन् देवताभिरायुर्दधात्य,—ग्निरायु,—स्तस्य मनुष्या आयुष्कृ-
त,—स्तेनायुषायुष्मानेधीति, यो वै देवानायुष्मतश्चायुष्कृतश्च वेद सर्वमायुरेति, न पुरायुषः
प्रमीयत, एते वै देवा आयुष्मन्तश्चायुष्कृतश्च यदिमे प्राणा,—स्तेऽस्मिन्नायुर्दधात्य,—श्विनोः प्राणो-
ऽसि, तौ ते प्राणं दत्तां, तेन जीवे,—तीमे वा एते प्राणा,—स्तानस्मिन् दधाति, तान-
स्माद्दनपक्रामिणः करोति, दश देया, दश३ह्यात्मन् प्राणाः, प्राणानस्मिन् दधात्यं,—श्वो
देयो, वासो देय२, हिरण्यं देयं, गौर्देयो, वरो देयो, वर्हु देयम् ॥५॥　२१

आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपेदैन्द्रं पञ्चकपालं दधि मधु घृतं धाना उदकं, तत्स२सृष्टं भवत्य,—
र्यम्णो चरुर्भवत्यृ,—द्धया एवाग्नेय, ऐन्द्रः पञ्चकपालः, पाङ्क्तो यज्ञः, पङ्क्ती याज्यानु-
वा३क्ये, पाङ्क्ताः पशवः, पाङ्क्तः पुरुषो, यावानेव पुरुषस्तमाप्नोति, स सर्वो भूत्वा
पशूनाप्नोति, पशव इव३ह्येतत् स२सृष्ट,—मथो यावन्त एव पशवस्तानस्मै स२सृजति, तदा-
हु,—रैन्द्रं एकादशकपालः का३र्या, इत्यैन्द्रा हि पशवो, ऽथो आहुः, प्राजापत्यं का३र्य-
मिति, प्राजापत्या हि पशवः, प्रजापतिः पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्,
सोऽस्मै पशून् प्रजनयत्य,—र्यम्णोऽर्यम्णो चरु,—र्यो ददाति सोऽर्यमा, दानमर्यमा, दानकामा
अस्मै प्रजा भवन्त्य,—ग्नये भ्राजस्वतेऽष्टाकपालं निर्वपेत् सौर्यं चरु,—मग्नये भ्राजस्वतेऽष्टाकपालं
चक्षुष्काम२ याजये,—दग्नेर्वै मनु३ष्या नक्तं चक्षुषा पश्यन्ति सूर्यस्य दिवा,—तौ वै चक्षुषः प्रदा-
तारौ, ता एव भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै चक्षुः प्रयच्छतः, समान२ वै चक्षुर्दधातु, यत्
समानी देवता चरुमभितो भवति नानानमेवास्मै चक्षुषी प्रतिदधाति, यावदन्यतरेणाक्ष्णा पश्य-
ति तावदुभाभ्यां पश्येद्यच्चरुरन्तरा न स्या,—दथ यच्चरुरन्तरा भवति, तस्मादिदमन्तरा चक्षुषो-
र्विधृत्यै, शुक्ला व्रीहयो भवन्ति, श्वेता गा आज्याय दुहन्त्ये,—वमिव३ह्यसा आदित्यः समृ-
द्ध्यै, पयसि भवति, पयो वै घृतं, पयश्चक्षुः, पयसैवास्मै पयश्चक्षुर्दधाति, सौरीभिरा-
दधाति, चक्षुरस्मिन् दधाति ॥६॥　२२

देवा असुराणा२ वेशत्वमुपाय,—न्निन्द्रस्तु नाप्युपैत्, तेषा२ वा इन्द्रियाणि वी३र्याण्यपाक्रा-
म,—न्नग्ने रथंतर,—मिन्द्रस्य बृहद्, विश्वेषां देवाना२ वैरूप२, सवितुर्वैराजं, त्वष्टू रेवती,

[६] तै. २,३,८ । काठ. ११,४-५ ।
[७] तै. २,३,७ । काठ. ११,५ ।

मुर्तारश्शर्करी, तानि वा इन्द्रोऽन्वपाक्रमत, तैरात्मानमभिसमयुङ्क्त, तैरभवद्, यो भूतिका-
मः स्यात् तमेतया याजये,—देतैरेवेन्द्रियैर्वीर्यैरात्मानमभिसंयुङ्क्ते, तैर्भवति, द्वादशकपालो
भवति वैश्वदेवत्वायो,—तानानि कपालान्युपदधाति, तस्त्विषुरसकृर्निर्दोहाया,—ऽभिशस्य-
मानं याजयेद्, यस्य वै देवा अन्नमदन्त्यदन्ति तस्य मनुष्या अन्नं, सर्वा वा एता देवताः,
सर्वा वावास्यैतद्देवता अन्नमजीघस,—दुदन्ति हास्य मनुष्या अन्नम् ॥ इन्द्राय राथंतरायानुब्रूहि॥
इति रथंतरस्या ऋचमनूच्य बृहत ऋचा यजेत् ॥ इन्द्राय बार्हतायानुब्रूहि ॥ इति बृहत ऋचमनूच्य
रथंतरस्य ऋचा यजेद् ॥ इन्द्राय वैरूपायानुब्रूहि ॥ इति वैरूपस्या ऋचमनूच्य वैराजस्य ऋचा य-
जेत् ॥ इन्द्राय वैराजायानुब्रूहि ॥ इति वैराजस्या ऋचमनूच्य वैरूपस्य ऋचा यजेत् ॥ इन्द्राय रैव-
तायानुब्रूहि ॥ इति रैवतीमनूच्य शक्वर्या यजेद् ॥ इन्द्राय शाक्वरायानुब्रूहि ॥ इति शक्वरीमनूच्य
रेवत्या यजे,—देतैरेवैनमिन्द्रियैरेताभिर्देवताभिर्व्यतिषजति, पर्यूहमेवास्ये,—तैरेवैनमिन्द्रियैरेता-
भिर्देवताभिः पर्यूहति, पशवो वै बृहत्य,—श्री रुद्रो, यद् बृहत्या वषट्कुर्याद्रुद्रायास्य पशू-
नपिदध्या,—देषो बृहतीं संपादयाम्नी पशवोऽनुप्रजायन्ते, ऽनुवाक्यायाश्चत्वार्यक्षराणि याज्या-
मभ्यूह्य,—नुष्टुभं च संपादयति पङ्क्तिं च, वाग्वा अनुष्टुप्, प्रजापतिः पङ्क्तिं,—र्वाचि
वा एतत् प्रजापतिमप्यस्रात् प्रजननाय, तन्मिथुनं, तस्मादेव मिथुनाद्यजमानः प्रजया च पशु-
भिश्च प्रजायते ॥७॥ २३-३५

स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेण शुक्रां शुक्रेण ।
देवीं देवेनामृतामृतेन सृजामि सं सोमेन ॥ ३६
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व, सरस्वत्यै पच्यस्वे,—न्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ ३७
पुनातु ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ३८
वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३९

[८] तै. १,८,२१; ३,२,८,३। तै. ब्रा. १,४,३; २,६,१,३। काठ. १२,९। वा. १९,१,४,३,६; १०,३१-३२; २३,३८; ७,४,८-१२,१६,२०,२५,३०-४०; ८,१,७-९,११,३३-३५,३८-४१,४४-४७; ९,२-४; १०,३२; १९,६,८; २०,३३; २३,२,४; २६,३-१०। १९,३५,७,४३। काण्व. २१,१,४,३,५; ११,४४-४५; २५,४०; ७, ४,७,८,१०, ११,१५,२१,२४,२७,३०-४०; ८,६-८,१२,१४-१६,१९-२९; १०,२-५; ११,४५; २१,५,७; २२,१८; २५,२,४; २८,४-११; २१,३५; २१,६,४९] [पुनातु (ति) ते०...तना। ऋ० ९,१,६। वायोः पूतः...सखा। अथर्व० ६,५१,१। इन्द्रस्य युज्यः सखा। ऋ० १,२२,१९; सा. १६७१]

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुत भोजनानि ये बर्हिषा नम उक्तिं न जग्मुः ॥ ४०
उपयामगृहीतोऽस्य,—च्छिद्रां त्वाच्छिद्रेणा,—ऽश्विभ्यां जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—रश्विभ्यां
त्वो,—पयामगृहीतोऽस्य,—च्छिद्रां त्वाच्छिद्रेण, सरस्वत्यै जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनिः, सरस्व-
त्यै त्वो,—पयामगृहीतोऽस्य,—च्छिद्रां त्वाच्छिद्रेणे,—न्द्राय सुत्राम्णे जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—
रिन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ४१
यदत्र शिष्टं रसिनः सुतस्य यमस्येन्द्रो अपिबच् शचीभिः ।
अहं तमस्य मनसा घृतेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ॥ ४२
नाना हि वां देवहितं सदस्कृतं मा संसृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिंसिष्टं स्वं योनिमाविशन्तौ ॥ ४३
द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
याभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४४
ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां विश्वकर्मा कृणोतु ॥ ४५
अयज्ञियान्यज्ञियान्मन्यमानः प्राणस्य विद्वान्त्समरे न धीरः ।
एनो महच्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्रमुञ्चा स्वस्तये ॥ ४६
यजमानमृष्या एनसाहुर्विहाय प्रजामनुतप्यमानाः ।
मधव्यौ स्तोका अप तौ रराध सं नस्ताभ्यां सृजतु विश्वकर्मा ॥८॥ ४७
कुवलसक्तुभिराश्विनं श्रीणाति, बदरसक्तुभिरैन्द्रं, कर्कन्धुसक्तुभिः सारस्वतं, वाग्वै
सरस्वती, वाचैवास्मिन्त्स्वादुमानं दधात्य,—थ यैनमसा अश्लीलं वाग्भिर्वदत्य,—त्युपविष्ट
व्याधिष्टेति, सैनं पुनः कल्याणं वदति, सिंहो अध्वर्युर्घ्यायति, व्याघ्रौ प्रतिप्रस्थाता,
वृकौ यजमान, एषा सुरा भवति, स यैरेव तदिन्द्रियैर्वीर्यैर्व्यृध्यते तान्यस्मिन्नाप्त्वा धत्तो,

[कुविदङ्ग यवमन्तो०...जग्मुः। ऋ. १०,१३१,२; अथर्व० २०,१२५,२ ।
ये भक्षयन्तो०। अथर्व० २,३५,१ । अयज्ञियान्य० (अदान्यान्त्सो०)—स्वस्तये। अथर्व० २,३५,३।
यजमानमृ० (यज्ञपतिमृ०—) विश्वकर्मा । अथर्व० २,३५,२]
[९] काठ. १२,१०,११।

ब्राह्मणस्य मूर्धन्त्साद्या मेध्यत्वाया,—ऽन्नं वै सुरा, मेध्यं वा अन्नं, तेन मेध्यं,—का पुरोरु-
ग्—का याज्या,—कधास्मिन् वीर्यं दधाति, ब्राह्मणः पावयितव्य,—स्तेन हविः क्रियत, आत्म-
नार्पया,—ऽऽत्मन्नेव वीर्यं धत्ते, ऽग्नौ सर्वा होतव्याः समृद्ध्यै, मध्यतो वा एष पाप्मना गृहीतो
यत् समया व्येति, मध्यत एवैनं पाप्मनो मुञ्चति, यदाहवनीये जुहुयाद्न पाप्मना व्यावर्तेत,
क्रियेत भेषजं,—मथ यद्दक्षिणे जुहोति वि पाप्मना वर्तते, क्रियते भेषजं,—मथ यद्विक्षारयन्त्य,—
थमिव ह्येष विक्षरति शतक्षरो भवति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोति,
यद्वा एतस्य व्यात्रि यत्प्राणापि पितॄन् वा एतस्य तद्गन, यत् पितृमतीभिरनुमन्त्रयन्ते पितृभ्य
एवैनं तेन समीरयन्ति, यत् त्रिस,—स्तृतीये हि लोके पितरो, ऽथ यथान्तरा, द्विरभ्य
एवैनं तेन समीरयन्ति ॥९॥ ४८[८००]

॥ इति मध्यमकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः ।

विश्वरूपो वै त्वाष्ट्र आसीत् त्रिशीर्षासुराणां स्वस्रीयः, स सोममेकेन शीर्ष्णापिबत् सुराम-
केना,—ऽन्नमेकेनादयत् स इन्द्रोऽमन्यता,—ऽयं वावेदं भविष्यती,—ति तेन समलभत, तेन
युगर्धं समपतद्, स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवी,—दायुवं,—मान्वस्य शीर्षाणि छिन्धी,—ति तस्य
तक्षोपस्कंद्य परशुना शीर्षाण्यच्छिनत्, तस्मात्तक्ष्णो शिरो धृतं, तस्मादुस्यान्नमन्नाद्यं, तस्य
यत् सोमपं शिर आसीत् स कपिञ्जलोऽभवद्, यत् सुरापं स कुलविङ्को, येनान्नमाव-
यत् स तित्तिरिः, स वै त्वष्टा पुत्रे हते सोममाहरद्द इन्द्रं, तमधः शतबलेऽसुनो,—देषो आहुः
सहस्रशला, इति तस्मिन् वा इन्द्र उपहवमैच्छत, तं नोपाह्वयत, तं प्रासहादाय नाड्या निर-
पिबत्, स सोमपीथेन व्यार्ध्यत, तस्मात् सोमो नानुपहूतेन पेयः, सोमपीथेन ह व्यृधुको
भवति, यदितोऽमुच्यत तौ सिंहा अभवतां, यदितस्तौ व्याघ्रौ, यदितस्तौ वृकौ,
यत् प्रथमं निरष्ठीवत्तत्कुवलमभवद्, यद् द्वितीयं तद्बदरं, यत्तृतीयं तत् कर्कन्धु,—र्यदधस्तात्
सा सुरा, तं वा एतयाश्विना अयाजयतां सौत्रामण्या, स वैरेव तदिन्द्रियैर्वीर्यैर्व्यृध्यत
तान्यस्मिन्नाप्त्वाधत्तां, सोमेनातिपूयमानं याजये,—दिन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यं
सोमोऽतिपवते, यावदेवेन्द्रियं वीर्यं तदस्मिन्नाप्त्वा दधाति, राजसूयेनाभिषिषिचानं

[१] तै. २,३,१। काठ. १२,१०।

याजये,—दिन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, यावदेवेन्द्रियं वीर्यं तद-
स्मिन्नाप्त्वा दधाति, भूतिकामं याजये,—दिन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते योऽलं भूत्यै सन्न
भवति, यावदेवेन्द्रियं वीर्यं तदस्मिन्नाप्त्वा दधाति, ज्योगामयाविनं याजये,—दिन्द्रि-
येण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यस्य ज्योगामयति, यावदेवेन्द्रियं वीर्यं तदस्मिन्नाप्त्वा दधा-
ति, नानार्तेन यष्टव्य,—मित्याहु,—रार्तयज्ञ इव ह्येष, तदाहु,—र्यष्टव्यमेव, सर्वो हि
पुरुष आर्तः, सर्वो बुभूषति, यदाश्विनस्य,—श्विनौ ह्यभिषज्यतां, यत् सारस्वती, वाग्वै
सरस्वती, वाचा ह्यभिषज्यतां, यदैन्द्री,—न्द्रे हि तौ तानीन्द्रियाणि वीर्याण्याप्त्वाधत्ताम्॥१॥ १
सीसेन क्लीबात् क्रायी,—ऽनृतं वै सीस,—मनृतं क्लीबो, ऽनृतं सुरा,—ऽनृतेनैवानृतादनृतं
क्रीणाति, तदाहुः, काश्या वडवा दक्षिणेति, स्त्वरी वडवा ह्येषा, स्त्वरी वडवा,—
ऽश्विनं प्रथममालभन्ते, ऽथ सारस्वती,—मथैन्द्र,—मेवमेव वपाभिश्चरती,—न्द्र एवैषु तदधिभ-
वत्य,—न्द्रः पुनः प्रचरतां प्रथमो भवती,—न्द्रं वा एतत् पुनरालभन्ते सेन्द्रियत्वाय,—न्द्री व-
पानामुत्तमा भवत्य,—न्द्रः पुरोडाशानां प्रथमो, वीर्यं वा इन्द्रो, वीर्य एवैनमभिसंधत्तः,
प्रसवाय सावित्रो, निर्वरुणत्वाय वारुणो, मध्यतो ह्येष वरुणगृहीतः, पश्चाद्वा एषा सृष्टा
प्रतीचीनशीर्ष्णी, यदुपरिष्टात् पुरोडाशो भवत्यपिहित्या अच्छिद्रत्वाय, सह समवत्तं भवति, सहे-
डामुपह्वयन्ते संहित्या, अथो इडाया अविदोहाय, यद्वै सांत्रामण्या व्यृद्धं तदस्याः समृद्धं,
यदन्यदेवत्याः पुरोडाशा भवन्त्यन्यदेवत्याः पशवस्तदस्या व्यृद्धं सत् समृद्धं,—मर्धं वै प्रजाप-
तेरात्मनो धैर्यमासी,—दर्धं माल्व्यं, यद्धैर्यं तत् पुरस्तादकुरुत, यन्माल्व्यं तत् पश्चात् पर्यौ-
हत, यद्धैर्यं, सोमो वै स, ततो ब्राह्मणमसृजत, तस्माद्ब्राह्मणः सर्व एव ब्रह्माभि धीरो,
यन्माल्व्यं, सुरा वै सा, ततो राजन्यमसृजत, तस्माज्ज्यायांश्च कनीयांश्च स्नुषा च
श्वशुरश्च सुरां पीत्वा विलालपत आसते, माल्व्यं हि तत्, पाप्मा वै माल्व्यं, तस्माद्ब्राह्मणः
सुरां न पिबेत्, पाप्मनात्मानं नेत्संसृजा इति, तदुतैतद्राष्ट्रीयाय ब्राह्मणं ब्रूयात्, तद्य एवं
विद्वान्त्सुरां पिबति न हैनं हिनस्ति,—रणात्ये,—षा वै प्रजापतेर्वीर्यवती तनूं,—र्वीर्यं प्रजापति,—र्वीर्यम-
स्मिन् दधाति ॥ २ ॥ २
ततो यः सोमोऽत्यरिच्यत तमग्ना उपप्रावर्तयत् । स्वाहिन्द्रशत्रुर्वर्धस्व ॥ ३

[२] काठ. १२,११-१२।
[३] तै. २,४,१२। काठ. १२,३। वा. २,१०। काण्व. २।१८।

इतीन्द्रस्याहिन२ शत्रुमचिकीर्षं,—दिन्द्रमस्य शत्रुमकरोत्, तथा वाक् स्वयमेव ३ध्येत्, स
ये२ सोमं प्रावर्तयद्यस्मि२श्चाग्रा उपप्रावर्तयत् ता अग्नीषोमा देवते प्राणापानौ अभिसमभवता२,
स यावदूर्ध्वबाहुः पराविध्यत् तावति व्यरमत, यदि वा प्रवणं तावदासीद्, यदि वाग्नेरधि
तावदासीत्, स वा इषुमात्रमेवाह्ना तिर्यङ्ङवर्धते,—षुमात्रमन्वङ्ङ्,—त्यथो आहु,—रहोरात्रे
एवेषुमात्रं तिर्यङ्ङवर्धते,—षुमात्रमन्वङ्ङ्,—त्यथो आहुरर्धमासं,—मथो मासं,—मथो स२वत्स-
रमिति, स वा इमाः सर्वाः स्रोत्याः पर्यशयत्, तस्माद्वा इन्द्रोऽबिभेत्, तस्माद् त्वष्टाबिभेत्,
तस्येन्द्रः प्रतिमैछत्, तमस्मै प्रायछत्, तस्मै त्वष्टा वज्रमसिञ्चत्, तपो वै स वज्र आसीत्,
तमुद्यमं नाशक्नो,—दथ वै तर्हि विष्णुरन्या देवतासीत्, सोऽब्रवीद्, विष्णा एही,—दमाहरि-
ष्यावो येनायमिदमिति, स त्रेधात्मान२ विन्युधत्ता,—ऽभिपर्यावर्तादबिभे,—दुस्यां तृतीय,—म-
न्तरिक्षे तृतीयं, दिवि तृतीय२, स यदस्यां तृतीयमासीत्, तेन वज्रमुदयछद्, विष्णवनुष्ठितः
स वज्रमुद्यतं दृष्ट्वाबिभेत्, सोऽब्रवी,—दस्ति वा इदं त्वयस्मिन्नन्तर्वी३र्यं, तत् ते प्रदास्यामि,
मा मा वधीरिति, तद्वा अस्मै प्रायछत्, तत् प्रत्यगृह्णात् ॥ अधा मा ॥ इति, तद्विष्णवेऽ-
तिप्रायछत्, तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णात् ॥ ४—६

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माक२ सन्त्वाशिषः ॥७

इति सोऽब्रवी,—दस्ति वा अस्मिन्नन्तर्वी३र्यमिति, स यदन्तरिक्षे तृतीयमासीत्, तेन वज्रमुदय-
छद्, विष्णवनुष्ठितः स वज्रमुद्यतं दृष्ट्वाबिभेत्, सोऽब्रवी,—दस्ति वा इदं त्वयस्मिन्नन्तर्वी३र्यं,
तत् ते प्रदास्यामि, मा मा वधीरिति, तद्वा अस्मै प्रायछत्, तत् प्रत्यगृह्णात्॥ द्विर्माधाः॥ इति
तद्विष्णवेऽतिप्रायछत्, तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णात् ॥ ८-१०

अस्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माक२ सन्त्वाशिषः॥११

इति सोऽब्रवी,—दस्ति वा अस्मिन्नन्तर्वी३र्यमिति, स यद्दिवि तृतीयमासीत् तेन वज्रमुदयछद्,
विष्णवनुष्ठितः स वज्रमुद्यतं दृष्ट्वाबिभेत्, सोऽब्रवी—दस्ति वा इदं त्वयस्मिन्नन्तर्वी३र्यं, तत् ते
प्रदास्यामि, मा मा वधीः॥ संधां नु संदधावहै यथा त्वामेव प्रविशानीति, सोऽब्रवीद्, यन्मां
प्रविशेः किं मे ततः स्यादिति, सोऽब्रवीत्, त्वामेवेन्धीय, तव भोगाय त्वां प्रविशेयमिति,
तद्वा अस्मै प्रायछत्, तत् प्रत्यगृह्णात् ॥ त्रिर्माधाः ॥ इति तद्वाव त्रैधातव्या, सहस्र२ वा
अस्मै तत् प्रायछदृचः सामानि यजू२षि, यद्वा इदं किं च तत् त्रैधात३व्या, तदाप्नोति पशू-
नेव ॥३॥ १२-१५

मै० १७

उदर२ वै वृत्रः, पाप्मा क्षुद्भ्रातृव्यः पुरुषस्य, यत् तप उपैति पाप्मान२ वा एतत्,
स्तृणुते भ्रातृव्यं क्षुधमेव, तस्मिन् वा अददेता२, सैषानस्या अध्यूध्नी वागवदत् ॥ १६
उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्र२ वि तदैरयेथाम् ॥ १७
इति सत्यमाहेत्य,—ब्रवीद्, द्वे एव तृतीये आहर्तुरेकं प्रतिग्रहीतुरिति, तौ वै तत्रैवाति-
ष्ठेतां, तस्मादैन्द्रावैष्णवं, त्रिरात्रस्य वा उपेप्सायै त्रैधातव्याह्रियते, यावद्वै त्रिरात्रेणोपाप्नोति
तावत् त्रैधात३व्ययावरुन्द्धे, तस्मादाहुः, सहस्रदक्षिणेत्यु,—ष्णिहाककुभा अन्वाह, गायत्री
वा उष्णिहा,—ऽथ यान्येतानि चत्वार्यक्षराण्युच्यन्धि, चतुष्पादो वा एते पशवो, यथा वा इदं
पुरोडाशे पुरोडाशोऽध्येव२ वा एतद्यदृच्यध्यक्षराणि, प्राणो वै गायत्री, प्राणेन पशवो यता,
यदुष्णिहाककुभा अन्वाह पशूना२ यत्यै ॥ १८
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुछन् ॥ १९
इति परिदधाति वीरताया, अथो रूपताया एव, यज्जगत्या परिदध्यादन्तं गछे,—दथ
यत् त्रिष्टुभा परिदधाति नान्तं गछत्यो,—जो वै वीर्यं त्रिष्टु,—बोजस्येव वी३र्ये प्रतितिष्ठति॥४॥
२०

सर्वाभ्यो देवताभ्यो यज्ञ आहृत्या, इत्याहुः, सर्वो वा एष यज्ञः, सर्वाभ्यो हि देवता-
भ्यो यज्ञ आह्रियते, सर्वाणि छन्दा२स्यन्वाह, सर्वाणि हि छन्दा२सि यज्ञे प्रयुज्यन्ते, ऽभि-
चरन्नाहरेत्, सर्वो वा एष यज्ञः, सर्वेणैवैन२ यज्ञेनाभिचरत्य,—दक्षिणस्तु स्या,—त्स्तस्त्विन्मे-
निमक,—मेनिर्ह्यदक्षिणो, ऽथ यो, यक्ष्य, इत्युक्त्वा न यजेत तमेतेन याजयेत्, सर्वो वा
एष यज्ञः, सर्वेणैवास्मै यज्ञेन प्रायश्चित्ति२ विन्दत्यु,—त्तर उत्तरः पुरोडाशो ज्यायान् भवत्यु,—त्तर
उत्तरो हि लोको ज्यायान्, यथा वा इयमेवमसा, अथ वा अन्तरिक्षं, नास्या रूपं नामु-
ष्या,—स्तस्माद्यवमयो मध्यतो, ऽथो एवमिव३ह्यन्तरिक्षस्य रूपं, द्वादशकपालो भवति, यद्वै
त्रिस्त्रिस्तत् त्रैधातव्यायाः समृद्ध्यै२, सर्वेणामतिघातमवद्यत्यछम्बट्कारायु, यावता हि न प्राप्नु-

[४] तै. २,४,१२,६,७; २,४,११; ३,२,११ । काठ. १२,३-४। [उभा जिग्यथुर्न०...येथाम्। ऋ० ६,६९,८; अथर्व० ७,४४,१। अग्ने त्री ते वाजिना०...अप्रयुच्छन्। ऋ० ३,२०,२।
[५] तै. २,४,११। काठ. १२,३-४।

यावत्तावता छम्बट्कुर्या,—देतद्वै तद्यदाहु,—श्छम्बण्णासा इति, वास इव वै यज्ञ ऊयते, यत्ता-
प्यानि विपीव्यन्ति यजुषा तद्रूप२, यद्वेनवो दीयन्त उक्थामदानां तद्, यद्धिरण्यं दीयते चन्द्रं
गीयता, इति वै सामाहुः, साम्नां तद्रूपं,—मेतेन वै सृञ्जया अयजन्त, ते श्रियोऽन्तमगछ२,—
स्तस्मान्नातिबहु यष्टव्य,—मीश्वरो हि पराङतिपत्तो,—र्यो वा एतेन यजते वि स छिनत्ति, पुत्रो
याजयितव्योऽनुसंतत्यै ॥५॥ २१
आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपे,—दैन्द्रमेकादशकपालं बार्हस्पत्यं चरुं भूतिकाम२ याजये,—दिन्द्रो वै
शिथिर इवामन्यत, ३सोऽग्निं च बृहस्पतिं चाब्रवीद्, याजयतं मेति, त२वा एतयाग्निश्च बृह-
स्पतिश्चायाजयतां, तस्मि२स्तेजोऽग्निरदधा,—दिन्द्रियमिन्द्रो, ब्रह्म बृहस्पति,—स्तता इन्द्रो-
ऽभवद्, यो भूतिकामः स्यात् तमेतया याजयेत्, तेज एवास्मिन्नग्निर्दधाती,—न्द्रियमिन्द्रो,
ब्रह्म बृहस्पति,—र्भवत्येव, यदस्मि२स्त्रीणि वी३र्याण्यधत्तां तस्मात् त्रिधातु,—रैन्द्र इतरा,
अभिस२श्लेषयन्ति सेन्द्रियत्वाय ॥६॥ २२
पुरोवात जिन्व रावट् स्वाहा, वातवान् वर्षन् भीम रावट् स्वाहा, स्तनयन् वर्षन्नुग्र रावट्
स्वाहा,—ऽतिरात्र२ ववर्ष्वान् पूर्त रावट् स्वाहा, बहु ह वा अयमवर्षीदिति, श्रुत रावट् स्वाहा,
तपति वर्षन् विराड् रावट् स्वाहा, ऽवस्फूर्जन् विद्युद्वर्ष२स्त्वेष रावट् स्वाहा, नशन्यवस्फूर्जन्
वर्षन् भूत रावट् स्वाहा ॥ २३
मान्दा वशा ज्योतिष्मतीरमस्वरीः शुन्ध्यो अप्रा उन्दतीः सुफेनाः ।
मित्रभृतः क्षत्रभृतः सुराष्ट्रा इह नोऽवत ॥ २४
वृष्णो अश्वस्य संदानमसि, वृष्ट्यै त्वोपनह्यामि ॥ २५
देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्यापो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यावत ॥ २६
देवाः शर्मण्या मित्रावरुणार्यमन्नपो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यावत ॥ २७
देवाः सपीतयोऽपां नपान्नराश२सापो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यावत ॥ २८
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवी२ व्युन्दन्ति ॥ २९

[७] तै. २,४,७-८। काठ ११,९। वा. १८,५५। कण्व. २०,२५। [दिवा चित्तमः०...व्युन्दन्ति। ऋ० १,३८,९।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
प्र पर्जन्यः सृजता२ रोदसी अनु धन्वना यन्तु वृष्टयः ॥ ३०
उदीरयता मरुतः समुद्रतो दिवो वृष्टि२ वर्षयता पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उपदस्यन्ति धेनवः शुभे कर्मन्नु रथा अवृत्सत ॥ ३१
सृजा वृष्टिं दिवं, आद्भिः समुद्रं पृण, ये देवा दिविभागाः स्थ ये अन्तरिक्षभागा ये
पृथिवीभागास्त इदं क्षेत्रमाविशत, त इदं क्षेत्रमनुविविशत ॥७॥ ३२
वृष्टिर्वै देवेभ्योऽन्नाद्यमपाक्रामत्, तत इद२ सर्वमशुष्यत्, ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधाव२,—
स्तान् वा एतया प्रजापतिरयाजयत् कारीर्या, तेभ्यो वृष्टिमन्नाद्यमवरुन्द्धे, यत्र पर्जन्यो न
वर्षेत्तदेतया ज्येष्ठ२ वा पुरोहित२ वा याजयेद्, वृष्टिर्वा एतेभ्योऽन्नाद्यमपक्रामति यत्र पर्जन्यो न
वर्षति, यत् कारीर्या याजयन्ति वृष्ट्या अन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, अष्टौ वातहोमा अष्टौ दिशा,
इति दिग्भ्य एवैवेवृष्टिमावर्तयन्ति, मान्दा वशा ज्योतिष्मतीरमस्वरी,—रित्येतानि वा अपां नाम-
धेयानि, यथा वा इदं नामग्राह,—मसा असा, इति ह्वयत्ये,—व२ वा एतदपो नामधेयैश्च्या-
वयति, वृष्णो अश्वस्य संदानमसीति, वृषा ह्यश्वो, वृषा पर्जन्यः, समृद्ध्यै वृष्ट्यै त्वोप-
नह्यामीति, वृष्ट्यै ह्युपनह्यति, देवा वसव्या अग्ने सोम सूर्ये,—ति देवताभिरेवान्वह२ वृष्टिमि-
छति, यदि न वर्षेत्त्रैव वसेयु,—रहोरात्राभ्यामेव वृष्टिं च्यावयन्ति, करीराणि भवन्ति वृष्ट्या
अन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, मधुयुतानि भवन्त्य,—पा२ वा एष ओषधीना२ रसो, ऽपामेवैना ओषधी-
ना२ रसेनाछैति, रसेनैनाश्च्यावयत्य,—ग्नये धामछदेऽष्टाकपालं निर्वपे,—न्मारुत२ सप्तकपाल२
सौर्यमेककपाल२ वृष्टिकाम२ याजये,—दग्निर्वा इतो वृष्टिमीट्टे, मरुतोऽमुतश्च्यावयन्ति, ता२
सूर्यो रश्मिभिर्वर्षत्ये,—ते वै वृष्ट्याः प्रदातार,—स्तानेव भागधेयेनोपासरत्, तेऽस्मै वृष्टिं प्रय-
छन्ति, सृजा वृष्टिं दिव आद्भिः समुद्रं पृण,—तीमाश्चैवामूश्च संसृजा,—ऽभिरमूरछैति, ये देवा
दिविभागाः स्थ ये अन्तरिक्षभागा ये पृथिवीभागास्त इदं क्षेत्रमाविशत, त इदं क्षेत्रमनुविवि-
शते,—तीमानेव लोकान् वृष्ट्यै संमृशति ॥८॥ ३३[८३१]

॥ इति मध्यमकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥

आ यं नरः०...वृष्टयः। ऋ० ५,५३,६। उदीरयता (था) मरुतः०...त्सत। ऋ० ५,५५,५]
[८] तै. २,४,९-१०। काठ. ११,१०।

अथ पञ्चमः प्रपाठकः।

काम्याः पशवः।

सौम्यं बभ्रुं लोमशं पिङ्गलमालभेत पशुकामः, सौमीर्वा ओषधयः, ओषधयः पशवो, यत्, सौम्यः, प्रत्यक्षमेवास्मै पशूनालभते, लोमशो भवत्ये,—तद्वै पुष्ट्या रूपं, पुष्टिमेवावरुन्द्धे, बभ्रुः पिङ्गलो भवति सोमस्य रूपं२ समृद्ध्यै, यस्त्रैतानामुत्तमो जायेत तं२ सौमापौष्णमालभेत पशुकामः, सोमो वै रेतोधाः, पूषा पशूनां प्रजनयिता, सोम एवास्मै रेतो दधाति, पूषा पशून्, प्रजनयति, स्तन२, वा एतेषां द्वा अभिजायेते, ऊर्जं तृतीया, ऊर्जं पशव, ऊर्जमेवास्या ऊर्जं पशूनाप्त्वावरुन्द्धे, त्रिर्वा एषा स२वत्सरस्यान्यान् पशून् परिविजायते, एतद्वै पुष्ट्या रूपं, पुष्टिमेवावरुन्द्धे, भागिनीर्वा अन्याः प्रजा, अभागा अन्या, यदौदुम्बरो यूपो भवत्यूर्ग्वा उदुम्बरो भागिनीः करोति, मासि मासि वा एषोऽवान्तरमन्येभ्यो वनस्पतिभ्यः पच्यत, एतद्वै पुष्ट्या रूपं, पुष्टिमेवावरुन्द्धे, प्राजापत्यं तूपरमालभेत पशुकामः, प्राजापत्या वै पशवः, प्रजापतिः पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै पशून्, प्रजनयति, योनिर्वै प्रजापति,—योनेरेव प्रजायते, सर्वेषा२ वा एष पशूना२ रूपाणि प्रति, पुरुषस्येव श्मश्रूण्य,—श्वस्येव शिरो, गर्दभस्येव कर्णौ, शुन इव लोमानि, गोरिव पूर्वौ पादा, अवेरिवापरा, अजः खलु वै सर्वाण्येव पशूना२ रूपाण्याप्त्वावरुन्द्धे, सर्वाण्येनं पशूना२ रूपाण्युपतिष्ठन्ते, हिरण्यगर्भेवस्याधारो, याः प्रजापतेः सामिधेनीस्ताः सामिधेनी,—याः प्रजापतेराप्रियस्ता आप्रियो, हिरण्यं देय२ सशुक्रत्वाय, तार्प्यं देय२ सयोनित्वाया,—ऽधीवासो देयो, यज्ञस्य तेन रूपाण्याप्त्वावरुन्द्ध, एतेन वा उपकेरू रराध, ऋध्नोति य एतेन यजते, द्वादशवा ह त्वै स प्राशित्रे परिजहार, तत्र द्वादश द्वादश वरान् ददौ, यद् द्वादश दीयन्ते तस्यैषा प्रतिमा, श्वेत२ वायव्या आलभेत, भूतिकाम२ याजयेद्, वायुर्वै देवानामोजिष्ठः क्षेपिष्ठः, स एनं भूत्यै निनयति, तदाहु,—रभृता देवतेश्वरा निर्मृज ईश्वरैनमार्तिं निनेतोरिति, तदेति सैवेनं भूत्यै निनयति, श्वेत२ वायवे नियुत्वता आलभेत, ग्रामकाम२ याजयेद्, वायुर्वा इमाः प्रजा नस्योता इत्थं चेत्थं च नेनीयते, यद्वायवे, वायुरेवास्मै नस्योता२ विशं निनयति, नियुत्वती याज्यानुवाक्ये भवतो, ग्राममस्मिन् दाधार, श्वेतो भवति, ब्रह्मणो रूपं२ समृद्ध्यै, श्वेत२ वायवे नियुत्वता आलभेता,—ऽमवार्तिन२ याजयेत्,

[१] तै. २,१,१। काठ. १२,१३; १३,१।

प्राणो वै वायुः, प्राणो हि वा एतस्यापक्रान्तो, ऽथैतस्यामयति, यद्वायवे, वायुरेवास्मै प्राणं निनयति, नियुत्वती याज्यानुवाक्ये भवतः, प्राणमस्मिन् दाधार, श्वेतो भवति, ब्रह्मणो रूपं२ समृद्ध्यै, श्वेत२ वायवे नियुत्वता आलभेत, पशुकाम२ याजयेत्, प्राणो वै वायुः, प्राण२ वा एतत् पशवः प्रतिधावान्ति यद्वर्षेषु वातं प्रतिजिघ्रति, यद्वायवे, वायुरेवास्मै पशून् निनयति, नियुत्वती याज्यानुवाक्ये भवतः, पशूनस्मिन् दाधार, श्वेतो भवति, ब्रह्मणो रूपं२ समृद्ध्यै ॥१॥
1

स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसाविध्यत्, तस्य देवास्तमोऽपाघ्नन्, यत् प्रथमं तमोऽपाघ्नन्त्साविः कृष्णाभवद्, यद् द्वितीय२ सा लोहिनी, यत् तृतीय२ सा वलक्षी, यदध्यस्थादुपाकृन्तत्साविर्वशाभवत्, तेऽब्रुवन्, देवपशुमिमं कामायालभामहा, इत्ययं वा इयं तर्ह्यक्षासीदुलोमिका, तेऽब्रुव२,—स्तस्मै कामायालभामहै यथास्यामोषधयश्च वनस्पतयश्च जायन्ता इति, ता२ वै तस्मै कामायालभन्त, ततोऽस्यामोषधयश्च वनस्पतयश्चाजायन्त, यः प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्यात् स एतामवि२ वशामालभेत, प्र प्रजया च पशुभिश्च जायते, ऽथो आहु,—र्यः प्रथमस्तमस्यपहते सूर्यस्य रश्मिर्यूपस्य चषाले वातनोत्साविर्वशाभवदिति, तदुभयेनैवं देवपशुरालभ्यते, यद्यस्यास्तज्जन्म यदि वेतरं तत् कामाय कामायैवाविर्वशालभ्यते, आग्नेयमजमालभेत, वारुणं पेत्वं भूतिकाम२ याजये,—दाग्नेयानि वै पुरुषस्यास्थानि, वारुणं मा२सं,—माग्नेयेनैवास्याग्नेयं निष्क्रीणाति, वारुणेन वारुणं, भवत्येवं, सारस्वतीं मेषीमालभेत यो वाचो गृहीत, वाग्वै सरस्वती, वाचैवास्य वाचं भिषज्यत्यं,—पन्नदती भवति सर्वत्वाया,—नाविस्कन्ना समृद्ध्यै, श्वेता मल्हा आलभेत ब्रह्मवर्चसकाम आग्नेयीं बार्हस्पत्या२ सौरी२, वसन्ता आग्नेयीं, प्रावृषि बार्हस्पत्या२, शिशिरे सौरी२, यदाग्नेयी, तेजस्तयावरुन्द्धे, यद्बार्हस्पत्या, ब्रह्मवर्चसं तया, यत् सौरी, रुचं तया, त्रिवृद्वावास्मा एतत् समृद्धं ब्रह्मवर्चसं दधाति, स२वत्सरं पर्यालभ्यन्ते, स२वत्सरेण वा अनाप्तमाप्यते, स२वत्सरेणैवास्मा आप्त्वा तेजो ब्रह्मवर्चसं दधाति, श्वेता भवति, ब्रह्मणो रूपं२ समृद्ध्यै, वायव्यामजामालभेत, सारस्वतीं मेषीमदित्या अजामभिशस्यमान२ याजयेद्, वायुर्वा एतस्याश्लीलं गन्धं जनता अनुविहरति यमभिश२सन्त्ये,—पश्हीद२ सर्वमुपगच्छति, यद्वायवे, वायुरेवास्य तं गन्धं२ सुरभिमकः, सोऽस्य सुरभिर्गन्धो जनता अनुवितिष्ठते, वाचा वा एतमभिश२सन्ति यमभिश२सन्ति, वाक्सरस्वती, यत् सारस्वती,

[२] तै. २,१,२। काठ. १२,१३; १३,१।

वाचैवैषा२ वाच२ शमयत्यं,—प्रतिष्ठितो वा एष यमभिश२सन्ती,—य२ वा अदिति,—रियं प्रतिष्ठा, यदादित्या,—ऽस्यामेव प्रतितिष्ठती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यमभिश२सन्ती,—न्द्रियं२ वी३र्यं गर्भो, यद्गर्भिणीर्भवन्तीन्द्रियेणैवैन२ वीर्येण समर्धयन्ति ॥२॥
2

देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते वै समावदेव यज्ञे कुर्वाणा आयन्, यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत, ते न व्यावृतमगच्छ२,—स्ते देवा एत२ वामनं पशुमपश्य२,—स्त२ वैष्णवमालभन्त, ततो वै विष्णुरिमाँल्लोकानुदजयत्, ततो देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त, ततो देवा अभवन्, परासुरा, यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात् स एत२ वामन२ वैष्णवमालभेता,—ऽतो वै विष्णुरिमाँल्लोकानुदजयद्, विष्णोरेवोज्जितिमन्विमाँल्लोकानुज्जयति, प्रैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदते, विषम इवालभेत, विषमानिव ३हीमाँल्लोकान् देवा उदजय,—न्निमानिव लोकानुज्जयती,—न्द्रो वै वृत्रमहन्, त्सं प्राऽपद्यत, स पद्यमाना इन्द्र२ सर्वैभिर्भोगैः पर्यगृह्णात्, तस्मादिष्वन्नः पशवो व्युदाय,—न्वृधेतो वैदेहीरुदाय२,—स्तस्मात् तासां पुरो जन्म पुर ओक,—स्तासां जघनतः ककुभो वैदे३हो ऽनूदैत्, तमचाय,—दयं२ वाव मास्माद२हसो मुञ्चेदिति, तमैन्द्रमालभेता,—ऽऽग्नेयं तु पूर्वमजमालभत, स वा अग्निनैव वृत्रस्य भोगानपिदह्यथैन्द्रेणेन्द्रियं२ वीर्यमात्मन्नधत्त, यः पाप्मना तमसा गृहीतो मन्येत स एतमैन्द्रमृषभमालभेता,—ऽऽग्नेयं तु पूर्वमजमालभेता,—ऽग्निनैव पाप्मनो भोगानपिदह्याथैन्द्रेणेन्द्रियं२ वीर्यमात्मन् धत्ता, इन्द्रो वै बलमपावृणोत्, ततः सहस्रमुदैत्, तस्य सहस्रस्याग्रतः कुब्र उदैत्, तस्मादेत२, साहस्री लक्ष्मी,—रि त्याहुर्यश्च वेद यश्च ना,—ऽथो आहु,—रिम२ वा एष लोकं पश्यन्नभ्युदैत्, स समैषत्, स एषं समीषितः कुब्र, इति तमैन्द्रमालभेत पशुकाम, ऐन्द्रा वै पशवा, इन्द्रः पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै पशून्प्रजनयति, स यदा सहस्रं पशून्गच्छेदथैत२ वामन२ वैष्णवमालभेतै,—तस्मिन्वै तत्सहस्रं प्रत्यतिष्ठत्, स तिर्यङ् व्यैषत्, तस्मादेष तिर्यङिव वीषित, एतेन वै स तत् सहस्रं पर्यगृह्णात्, तत् सहस्रस्य वा एष परिगृहीत्या अविक्षोभाय, देवाश्च वै पितरश्चास्मिँल्लोक आस२,—स्तद्यत् किंच देवाना२ स्वमासीत् तद्यमाऽवृणत्, ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधावन्, त्सं प्रजापतिरेतौ मिथुनौ पशू अपश्यदृषभं च वशां च, तावालभत, वैष्णववारुणीं तु पूर्वा२ वशामालभत, तान् वै वरुणेनैव ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्राणुदता,—

[३] तै. २,१,३-४। काठ. १३,३-४।

ऽथैन्द्रं देवेष्वालभत, तैनैष्विन्द्रियाणि वीर्याण्याप्त्वादधाद्यः सपत्नवान् भ्रातृव्यवान् वा स्यात् स एतौ मिथुनौ पशू आलभेत ऋषभं च वशां च, वैष्णववारुणीं तु पूर्वा२ वशामालभेत, वरुणेनैवैनान् ग्राहयित्वा विष्णुना यज्ञेन प्रणुदते, ऽथैन्द्रेणेन्द्रियं२ वीर्यमात्मन् धत्ते ॥३॥
3

सावित्रं पुनरुत्सृष्टमालभेत यः पुरा पुण्यः सन् पश्चात् पापत्वं गच्छेत्, सविता वै श्रियः प्रसविता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एन२ श्रियै प्रसुवति, पापो वा एष पुरा सन् पश्चात् श्रियमश्नुते यः पुरानुद्धान्त्सन् पश्चात्क्षत्त्वं गच्छति, यथैष श्रियमश्नुत एवमेवैन२ श्रियं गमयत्यो,—षधीभ्यो वेहतमालभेत प्रजाकामा, ओषधीना२ वा एषा श्रिये,—ता वा एता२ सुताः परिबान्ता, ओषधयः खलु वा एतस्य प्रजामपगूहन्ति योऽलं प्रजायै सन् प्रजां न विन्दते, ता (एवं भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै प्रजां पुनर्ददत्यां,—पो वा ओषधया, आपो ह३त्वेवासत् खनन्ति, ता अस्मै प्रजां खनन्ति, द्यावापृथिवीये धेनू संमातरा आलभेतान्नकामो, य३द्व्यसौ वर्षति तदस्यां प्रतितिष्ठति, द्यावापृथिवी वा अन्नस्येशाते, ते) एवं भागधेयेनोपासरद्, ते अस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छतः, स वत्से२ वायवा आलभेत, वायुर्वा अनयोर्वत्सो, वायुरिमे प्रदापयति, प्रत्ते ह वा इमे दुहे य एव२ वेदे,—न्द्री२ सूतवशामालभेत, राज३न्यं भूतिकाम२ याजये,—देतस्या वा अधीन्द्रोऽजायत, स जायमान एत२ योनिं निरवर्तयत्, सा सूतवशाभव,—दथो आहु,—रेतदेव सकृदिन्द्रियं२ वी३र्यं तेजो जनयित्वा नापुर२ सूता आश२सत्, सा सूतवशाभव,—दितीन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते योऽलं भूत्यै सन्न भवत्यै,—न्द्री भवती,—न्द्रियमस्मिन् दधात्यं,—थ यस्त२ विन्देय२ सूत्वा सूतवशा भवति तमैन्द्रमालभेत तेजस्काम,—स्तदेवेन्द्रियं२ वी३र्यं तेज आप्नोति, सारस्वतीं धेनुष्टरीमालभेत यः क्षेत्रे पशुषु वा विवदेत, वाग्वै सरस्वती, वाचैवैषा२ वाच२ वृङ्क्ते२, धेनुर्वा एषा सती न दुहे, तद्यमेवैषा२ वाचं करोति, द्यावापृथिवीयां धेनुं पर्यारिणीमालभेत यो राजन्योऽभ्यर्धो विशश्चरेद्, द्यावापृथिवीभ्या२ हि वा एष निर्मुक्तो, ऽथैषोऽभ्यर्धो विशश्चरति, द्यावापृथिवी एवैन२ विशि प्रतिष्ठापयतः, पर्यारिणी भवति, पर्यारीव३ह्येतद्राष्ट्र२, यदभ्यर्धो विशश्चरति द्यावापृथिवी एवैन२ विशि प्रतिष्ठाप्य, स श्वो भूते वत्से२ वायवा आलभेत, वायुर्वा अनयोर्वत्सो, वायुरिमौ क्षयी विशं च प्रदापयति, प्रत्तौ ह वा इमौ क्षयो विशं च दुहे य एव२ वेद ॥४॥ 4

[४] तै. २,१,५। काठ. १३,४-७।

(एष कोष्ठान्तर्गतो भागः केषुचित् लिखितेषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते।)

आग्नेयमजमालभेत, सौम्यं बभ्रुमृषभं पिङ्गलं भूतिकामं याजयेद्, —द्वया एवाग्नेयं, इन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते योऽलं भूत्यै सन्न भवति, यत् सौम्यः, स्वयैवास्मै देवतयेन्द्रियं वीर्यमाप्त्वावरुन्द्धे, भवत्येव, बभ्रुः पिङ्गलो भवति, सोमस्य रूपं समृद्ध्यै, गोमृगं वायवा आलभेता, —ऽभिशस्यमानं याजये, —दपूतो वा एष यमभिशंसन्ति, वायुर्वै देवानां पवित्रं, वायुनैवैनं पवित्रेण पुनाति, नैव वा एष ग्रामे नारण्ये यमभिशंसन्ति, नैव खलु वा एष ग्राम्यः पशुर्नैवारण्य, —स्तस्मादस्यैष देवतया पशूनां समृद्ध ऐन्द्राग्नमनुसृष्टमालभेत यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबे, —दिन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबति, यदैन्द्रं, इन्द्रियेणैवैनं वीर्येण समर्धयति, देवताभिर्वा एष व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबति, यदाग्ने३यो, ऽग्निर्वै सर्वा देवता, देवताभिरेवैनं समर्धयत्य, —नुसृष्टो भवत्य, —नुसृष्ट इव ३ह्येतस्य सोमपीथो यस्य पिता पितामहः सोमं न पिबति, तस्मादस्यैष देवतया पशूनां समृद्धस्त्वाष्ट्रमवलिप्तमालभेत पशुकाम, —स्त्वाष्ट्रा वै पशव, —स्त्वष्टा पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै पशून् प्रजनयति, सौमापौष्णं नपुंसकमालभेत, पण्डकं याजयेद्, यत्र तू भूमेर्जायेत तत् प्रजिज्ञासेता, —ऽत्र वा एतस्य जायमानस्येन्द्रियं वी३र्यमपाक्रामत्, तदेवास्मा इन्द्रियं वीर्यमाप्त्वा दधाति, सोमश्च वा एतस्य पूषा च जायमानस्येन्द्रियं वीर्यमयुवेता, —मियं वै पूषा, —पधयः सोमो, यत् सौमापौष्णः, स्वयैवास्मै देवतयेन्द्रियं वीर्यमाप्त्वावरुन्द्धे, भवत्येव, यान्यनवदानीयानि तैर्नैर्ऋतैः पूर्वैः प्रचरन्ति, निर्ऋतिगृहीता वा एषा स्त्री या पुंरूपा, निर्ऋतिगृहीत एष पुमान्यः स्त्रीरूपो, निर्ऋत्या एवैनं तेन मुञ्चति, न वै नैर्ऋत्याहुतिरग्निमानशे, यदङ्गारेषु जुहोति तत् स्विदग्नौ जुहोति तदु न, यत्र वा अद इन्द्रो वृषणश्वस्य मेनासीत् तदेनं निर्ऋतिः पाप्मागृह्णात्, स यं पाप्मानमपाहत स नपुंसकोऽभवद्, यः पाप्मना तमसा गृहीतो मन्येत स एतमैन्द्रं नपुंसकमालभेत, येनैवेन्द्रः पाप्मानमपाहत तेन पाप्मानमपहते, ऽथेन्द्रेणेन्द्रियं वीर्यमात्मन् धत्ते, प्रजापतिः पशूनसृजत, स वा एतमेवाग्रे नपुंसकमसृजत, तं पशवोऽन्वसृज्यन्ता, —ऽथो आहु, —रेतमेवाग्रे सृष्टं त्वष्ट्रे च पत्नीभ्यश्च नपुंसकमालभत, तेन प्रजा असृजतेति, यः प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्यात् स एतं त्वष्ट्रे च पत्नीभ्यश्च नपुंसकमालभेत,

[५] तै. २,१,५। काठ. १३,५।
मै॰ १८

मिथुनं वै त्वष्टा च पत्नीश्च, त्वष्टारं वा एतन्मिथुनेऽप्यसृजात् प्रजननाय, तन्मिथुनं,
तस्मादेवं मिथुनाद्यजमानः प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते ॥५॥ ५
प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता एनं सृष्टा अत्यमन्यन्त, ता अतिमन्यमाना वरुणेनाग्राहयत,
ता वरुणगृहीताः कृष्णः पेत्वोऽध्यस्कन्दत्, तस्यानुहाय पादमगृह्णात्, तस्य शफः प्रावृहत्, स
एकशितिपादभवत्, तमचाय, —दयं वावासां प्रजानामवरुणगृहीतो, ऽनेनेमाः प्रजा वरुणान्
मुञ्चानी, —ति तं वारुणमालभत, तत इमाः प्रजा वरुणात् प्रामुच्यन्त, तद्वरुणप्रमोचनीय
एवैष, यो ज्योगामयावी स्यात् तमेतेन याजयेद्, वरुणेन हि वा एष पाप्मना गृहीतो, ऽथै-
तस्य ज्योगामयति, यद्वारुणो, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चत्यै, —कशितिपाद्भवत्ये, —वमिव हि तस्य
रूपमासीत् समृद्ध्यै, द्वीपे याजये, —देता वै प्रत्यक्षं वारुणीर्यदापः, स्वे वा एतद्योनौ
प्रत्यक्षं वरुणमवयजति, समन्तमापः परिवहन्ति रक्षसामनन्ववायाय, वारुणं कृष्णं पेत्वमा-
लभेताभिचरन्, यद्वारुणो, वरुणेनैवैनं ग्राहयित्वा स्तृणुते, कृष्णो भवति, तमो वै कृष्णं,
मृत्युस्तमो, मृत्युनैवैनं ग्राहयत्ये, —तद्वै पाप्मनो रूपं यत् कृष्णं, कृष्णं इव हि पाप्मा,
पाप्मनैवैनमभिप्लवति, तं नियुञ्ज्यात् ॥ ६
पशुं बध्नामि वरुणाय राज्ञा इन्द्राय भागमृषभं केवलो हि।
गात्राणि देवा अभिसंविशन्तु यमो गृह्णातु निर्ऋतिः सपत्नान् ॥ ७
इत्येताभ्य एवैनं देवताभ्यो निर्याच्य, मृत्युर्वै यमो, मृत्युनैवैनं ग्राहयत्य, —ग्नये वैश्वानराय
कृष्णं पेत्वमालभेत समान्तमभिद्रोक्ष्यन्, त्संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, संवत्सराय सम-
र्ष्यते, संवत्सरमेवाप्त्वावृक्तं काममभिद्रुह्यत्या, —श्विनं कृष्णललाममालभेता, —ऽनुजावरं स्या-
जये, —दश्विनौ वै देवानामानुजावरा, अश्विना एतस्य देवते य आनुजावर, —स्तौ एव भागधेये-
नोपासरत्, ता एनमग्रं परिणयतः, कृष्णो भवति, पाप्मानमेवापहते, ललामो भवति, मुखतो
ऽस्मिंस्तेजो दधात्या, —श्विनं कृष्णललाममालभेता, —ऽऽमयाविनं याजये, —दश्विनौ वै देवानां
भिषजा, अश्विना एतस्य देवते य आमयावी, तौ एवं भागधेयेनोपासरत्, ता एनं भिषज्यतः,
कृष्णो भवति, पाप्मानमेवापहते, ललामो भवति, मुखतोऽस्मिंस्तेजो दधाति ॥६॥ ८
छन्दांसि वै यज्ञाय नातिष्ठन्त, स वषट्कारोऽभिहृत्य गायत्र्याः शिरोऽछिनत्, तस्माच्

[६] तै. २,१,२। काठ. १३,२,७।
[७] तै. २,१,७-८। काठ. १३,८।

शीर्ष्णश्छिन्नाया रसोऽक्षरत् वा वशा अभवं, —स्तद्वशानां वशात्वं, —मथो आहु, —र्वंशं वै ता अक्षरं, —स्ता वशा अभवं, —स्तद्वशानां वशात्वं, —मित्यथो आहु, —र्वसा वै सासीत्, तद्वसा वा एता इति, ततो यः प्रथमो रसः प्राक्षरत् तं बृहस्पतिरुपागृह्णात्, सा रोहिणी बार्हस्पत्या, ततो३योऽत्यक्षरत् तं मित्रावरुणौ, सा द्विरूपा मैत्रावरुणी, ततो३योऽत्यक्षरत् तं विश्वे देवाः, सा बहुरूपा वैश्वदेवी, ततो३योऽत्यक्षरत् तमग्निश्च मरुतश्च, सा पृश्निराग्निमारुत्य, —थो आहुः, कृष्णशबलीत्य, —थ या विप्रुषा आसंस्तानीमान्यन्यानि रूपाणि, ततो यः प्रथमो द्रप्सः परापतत् तं बृहस्पतिरभिहायाभ्यगृह्णात्, स उक्षाभवत्, तदुक्ष्ण उक्षत्वं, —मथो आहु, —र्यदेवता अनुव्यौक्षत स उक्षाभवत्, तदुक्ष्ण उक्षत्वमिति, तं ब्राह्मणस्पत्यमालभेत, ब्राह्मणं भूतिकामं याजयेद्, ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पति, —र्ब्राह्मणस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया स्वयैवास्मै देवतयेन्द्रियं वीर्यमाप्त्वावरुन्द्धे, भवत्येव, रोहिणीं बार्हस्पत्यामालभेत ब्रह्मवर्चसकामो, ब्रह्म वै बृहस्पति, —र्बार्हस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया, स्वयैवास्मै देवतयाप्त्वा तेजो ब्रह्मवर्चसं दधाति, रोहिणी भवति, ब्रह्मणो रूपं समृद्ध्यै, मैत्रावरुणीं द्विरूपामालभेत पशुकामो, ऽहोरात्रे वै मित्रावरुणा, अहोरात्रे अनु पशवः प्रजायन्ते, ता एव भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै पशून् प्रजनयत, —श्छन्दसां वा एष रस, —श्छन्दसामेवास्मै रसेन पशून् धत्ते, द्विरूपा भवति समृद्ध्यै, वैश्वदेवीं बहुरूपामालभेत यस्मै कामाय कामयेत, सर्वा वा एता देवता, सर्वा वा एतद्देवताः कामाय भागधेयेनोपासरत्, ता अस्मै कामं समर्धयन्ति यत् कामो भवति, छन्दसां वा एष रस, —श्छन्दसामेवास्मै रसेन दधति, बहुरूपा भवति समृद्ध्या, आग्निमारुतीं पृश्निमालभेत वृष्टिकामो, ऽग्निर्वा इतो वृष्टिमीट्टे, मरुतोऽमुतश्च्यावयन्त्य, —ते वै वृष्ट्याः प्रदातार, —स्तानेव भागधेयेनोपासरत्, तेऽस्मै वृष्टिं प्रयच्छन्ति, छन्दसां वा एष रसो, रसो वृष्टि, —श्छन्दसामेवास्मै रसेन रसं वृष्टिं निनयन्ति, पृश्निर्भवति, पृश्निमातरो हि मरुतो, भौमीं कृष्णशबलीमालभेतान्नकाम, इयं वा अन्नस्य प्रदात्रिका, तामेव भागधेयेनोपासरत्, सास्मा अन्नाद्यं प्रयच्छति, न चर्माप्याहरेयु, —रन्नं वै चर्मा, —ऽनन्नं कृष्णं, —मन्नेनैवानन्नमपहत्यान्नाद्यमात्मन् धत्ते, यद्वै तच् शीर्ष्णश्छिन्नात्तेज इन्द्रियं वीर्यं परापतत् सा बभ्रुर्वशाभवत्, तदेषा वशा, —ऽमुमेवतरा, —स्तां ब्राह्मणस्पत्यामालभेताभिचरन्, ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पति, —र्ब्राह्मणस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया, यावदेवं ब्रह्म तेनैनं सर्वेणाभिचरति, तेजसैनं प्रछिनत्ति, स्तृणुत एवं, बभ्रुर्भवति, ब्रह्मणो रूपं समृद्ध्यै, सौरीं श्वेतामालभेत ब्रह्मवर्चसकामो, ऽसौ वा आदित्यो ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छति, श्वेता भवति, ब्रह्मणो रूपं समृद्ध्यै, मैत्रा-

वरुणीं कृष्णकर्णीमालभेत वृष्टिकामो, ऽहोरात्रे वै मित्रावरुणा, अहोरात्रे अनुवर्षत्ये, —तद्वा अह्नो
रूपं यच् शुक्लं, यत् कृष्णं तद्रात्रे, —र्द्विरूपा भवति समृद्ध्यै ॥७॥ ९
इन्द्राय मन्युमते मनस्वते ललाममालभेत संग्रामे, मन्युना वै वीर्यं क्रियत, इन्द्रियेण ज-
यति, वीर्यं चैवैष्विन्द्रियं च जित्यै दधाति, ललामो भवति, पुरस्ता३द्धयर्यं मन्युं, —रथो
ब्रह्मणैवैनान् पुरस्तान्मुखतो जित्यै संश्यती, —न्द्रायाभिमातिघ्ने ऋषभमालभेत भ्रातृव्यवा, —न
भिमातिर्वै पाप्मा भ्रातृव्य, इन्द्रियेणैवाभिमातिं पाप्मानं भ्रातृव्यमपहते, स इन्द्राय वृत्रतुरा
आलभेता, —ऽभिमातिर्वै पाप्मा भ्रातृव्य, इन्द्रियेणैवाभिमातिं पाप्मानं भ्रातृव्यमपहत्य वृत्रतूरेवा-
भूत्, स्वाराज्यमेवं गछति, वृत्रतू, —रिति३ह्येतमाहुर्यः स्वाराज्यं गछत्यै, —न्द्रामारुतं पृश्नि-
सक्थमालभेत, राज३न्यं ग्रामकामं याजये, —दैन्द्रो वै राजन्यो देवतया, मारुती विं, —डि-
न्द्रियेणैवास्मै विशमुपयुनक्ति, पृश्निसक्थो भवति, पश्चादेवास्मै विशमुपदधात्यं, —नुकामस्मै
विशमविवादिनीं करोती, —न्द्राय वज्रिण ऋषभमालभेत, राज३न्यं भूतिकामं याजयेद्, यदा
वै राजन्यो वज्री भवत्यथ भूतिं गछति, यद्वज्रिणे, वज्रमेवास्मा आधात्, तेन विजितिं भूतिं
गछति, स एनं भूत्यै श्रेम्णं इन्द्धे, यद्वज्रिणा, इति तदस्याभिचरणीयं, यं द्विष्यात् तं
तर्हि मनसा ध्यायेद्, वज्रमेवास्मै प्रहरति, स्तृणुत एवं, सौम्यं बभ्रुमृषभं पिङ्गलमालभेत
योऽलं राज्याय सन् राज्यं न प्राप्नुयात्, सोमो वै राजितस्य देवता, सोमो हि राजा, स्वा-
मेव देवतां राज्यायोपासरत्, सैनं देवता राज्यं गमयति, बभ्रुः पिङ्गलो भवति, सोमस्य
रूपं समृद्ध्यै ॥८॥ १०
यः प्रथम एकाष्टकाया जायेत यस्तमालप्स्यमानः स्यात् स आग्नेयमष्टाकपालं निर्वपे, —दग्निर्वै
पशूनां योनिः, स्वादेवैनान् योनेर्निष्क्रीणात्यो मेध्यान्कृतो, —ग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालं
मासि मासि निर्वपेत्, संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, संवत्सरादेवैनं निष्क्रीणाति, स यदा
मेधं गच्छेदथैन्द्रायाभिमातिघ्ने आलभेता, —ऽभिमातिर्वै पाप्मा भ्रातृव्य, इन्द्रियेणैवाभिमातिं पाप्मा-
नं भ्रातृव्यमपहते, ऽश्वोऽच्युतवहो दक्षिणै, —ष वै व्यावृत्तः पाप्मना, पाप्मनैवैनं व्याव-
र्तयत्य, —थ योऽपरस्यामेकाष्टकायां जायेत तमेवमेवोत्सृज्याथैन्द्राय वृत्रतुरा आलभेता, —ऽभिमा-
तिर्वै पाप्मा भ्रातृव्य, इन्द्रियेणैवाभिमातिं पाप्मानं भ्रातृव्यमपहत्य वृत्रतूरेवाभूत्, स्वाराज्य-

[८] तै. २,१,३; २,५,३। काठ. १३,४।३।
[९] तै. २,१,३,५; २,५,३। काठ १३,३;४।

नमो महिम्नें चक्षुषे मरुतां पितस्तदहं गृणे ते ।
हुतो याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ १३
देवानामेष उपनाह आसीदपां पतिर्वृषभ ओषधीनाम् ।
सोमस्य द्रप्समवृणीत पूषा बृहन्नद्रिरभवद् यत् तदासीत् ॥ १४
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ १५
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामुतायं पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षामस्तु घृतमस्य योनिः ॥ १६
त्वां गावोऽवृणत राज्याय त्वां वर्धन्ति मरुतः स्वर्काः ।
वर्ष्मन् क्षत्रस्य ककुभिः शिश्रियाणस्ततो न उग्रो विभजा वसूनि ॥१०॥ १७

वायव्यमजमालभेतै,—न्द्रं वृष्णिं वृषभं वा वारुणं पेत्वं भूतिकामं याजयेद्, यद्वायव्ये, वायुरेवैनं भूत्यै निनयती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते योऽलं भूत्यै सन्न भवति, यदैन्द्र, इन्द्रियेणैवैनं वीर्येण समर्धयति, वरुणगृहीतो वा एष योऽलं भूत्यै सन्न भवति, यद्वारुणो, वरुणादेवैनं तेन मुञ्चत्ये,—तानेवाभिचरन्नालभेत, यद्वायवे, वायुरेवास्मै वज्रं संश्यत्यै,—न्द्रो वै वज्र, इन्द्रियेण खलु वै वज्रः प्रह्रियते, यदैन्द्रो, वज्रमेवास्मै प्रहरति, यद्वारुणो, वरुणेनैवैनं ग्राहयित्वा स्तृणुते, सौर्यं बलक्षं पेत्वमालभेत ब्रह्मवर्चसकामो, ऽसौ वा आदित्यो ब्रह्मवर्चसस्य प्रदाता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै ब्रह्मवर्चसं प्रयच्छति, यद्बलक्षः समृद्धस्तेन, यदलूनः समृद्धस्तेन, यत् पीवा समृद्धस्तेन, त्रिवृद्धावास्मा एतत् समृद्धं ब्रह्मवर्चसं दधात्यादित्यं बहुरूपमालभेत यस्याश्विने शस्यमाने सूर्यो नोदियात्, पराचीर्वा एतस्मै व्युच्छन्ति यस्याश्विने शस्यमाने सूर्यो नोदेति, यदादित्यो, ऽमुमेवास्मा उन्नयति, बहुरूपो भवति, बहूनि वै रश्मीनां रूपाणि, रश्मीनामेवास्मै रूपाण्याप्त्वोन्नयत्य,—मिवै सृष्टो न व्यरोचत, सोऽग्नये तेजस्विनेऽजं कृष्णग्रीवमालभत. तेन तेजस्व्यभवत्, सोऽकामयत,

[हुतो (दृता) याहि (त) पथिभिर्देवयानैः । ऋ० ७,३८,८; अथर्व. ९,४,३ । देवानामेष (-नां भाग) ...आसीत् (०च्छरीरम्)। अथर्व. ९,४,५ । द्रप्सश्चस्कन्द०...होत्राः । ऋ० १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८ । पिता वत्सानां०...योनिः (रेतः)। अथर्व. ९,४,४ । त्वां गावोऽवृणत०...वसूनि । अथर्व. ३,४,२।

[११] तै. २,१,४ ।

मेव गच्छति, वृत्रन्,—रिति होवमाहुर्यः स्वाराज्यं गच्छति, शतमेव्यूक्षवहा दक्षिणे,—तं वै व्यावृत्ताः पाप्मना, पाप्मनैवैनं व्यावर्तयन्ति, शतं भवन्ति, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, तेऽब्रुवन्, ब्रह्मणि नोऽस्मिन् विजयेषा,—मित्युत्तमस्तूपरश्चैत्रेयो देवानामासीत् श्वेतोऽयःशृङ्गः शैनेयोऽसुराणां, तेऽसुरा उक्षोदिनोऽचर,—न्नयंतोऽस्माकं तुव रेतोऽभीषामिति, तौ वै समलभेतां, तस्य देवाः क्षुरपवि शिरोऽकुर्वं,—स्तस्यान्तरा शृङ्गे शिरो व्यवधाय विष्वञ्चं व्युरुजद्, यासुरी वागवदत्तैमा प्राविशद्, योऽब्रुवत्, सा वनस्पतीं,—स्तस्माद्ब्राह्मणो मृन्मयेन न पिबे,—दसुर्या वाचाऽत्मानं नेत्संसृजा, इति तथ एवं विद्वानिमृत्पात्रयो भवत्युज्जितमेव वाचं उपैति, तं ब्राह्मणस्पत्यमालभेताभिचरन्, ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पति,—र्ब्राह्मणस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया, यावदेव ब्रह्म तेनैनं सर्वेणाभिचरति, तेजसैनं प्रछिनत्ति, स्तृणुत एवा,—ऽरुणस्तूपरो भवत्ये,—वमिव हि तस्य रूपमासीत्, समृद्ध्यै, देवा असुरान् हत्वेभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त, ते रात्रीं प्राविशं,—स्तानश्विना अनुप्राविशतां, तौ तमः पर्यगृह्णात्, तौ एतमाश्विनमजिंमालभेतां, तेन तमो ऽपामाता,—मुमा एना आदित्यः पुरस्ताज्ज्योतिषा प्रत्यागच्छत्, स आभ्यां तमोऽध्यपाहन्, यः पाप्मना तमसा गृहीतो मन्येत स एतमाश्विनमजिमालभेत, येनैवाश्विनौ तमोऽपामातां तेनु पाप्मानमपहते, ऽसा एनमादित्यः पुरस्ताज्ज्योतिषा प्रत्यागच्छति, सोऽस्मात्तमोऽध्यपहन्ति ॥ ९ ॥ ११

असौ वा आदित्यस्तेजोऽभिव्यौच्यत, तत् इदं सर्वं तमोऽभवत्, स प्रजापतिरेतान् दशऋषभानपश्य,—द्यो आह,—रिन्द्रोऽपश्यदिति, तानैन्द्रानालभत, तैरस्मिन्निन्द्रियाणि वीर्याण्याप्त्वादधाद्, यद्बहुलोमा आलभ्यन्त मुखतोऽस्मिंस्तैस्तेजोऽदधाद्, यच् शितिककुद उपरिष्टाचैं,—यच् श्वेतानूकाशाः पश्चाचैं,—स्ततो वा असा आदित्यः सर्वतस्तेजस्व्यभवद्, यस्तेजस्कामः स्यात् स एतानैन्द्रानृषभानालभेत, यद्बहुलोमा आलभ्यन्ते मुखतोऽस्मिंस्तैस्तेजो दधाति, यच् शितिककुद उपरिष्टाचैं,—यच् श्वेतानूकाशाः पश्चाचैः, सर्वत एवैनं तेजस्विनं करोत्य,—मुष्यैनमादित्यस्य मात्रां गमयति, प्राजापत्यं दकुमं द्वादशं मासा आलभेत, द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे, नवालभ्यन्ते, नव वै प्राणाः, प्राणाः खलु वै पुरुषे वीर्यं, प्राणानस्मिन् वीर्यं दधाति, दशालभ्यन्ते, दशाक्षरा विराड्, विराडेतान्येवेन्द्रियाणि वीर्याण्यात्मन्धित्वे,—यं विरा,—डस्यामेव प्रतितिष्ठति ॥ १२

[१०] तै. २,१,४; ३,१,९ । काठ. १३,७,९ । वा. १३,५९,१८ ३१,११ । काण्व. १४,५; १०,२४; ३३,११ ।

सर्वत्र विभवेयमिति, सोऽग्नये विभूतिमतेऽजं कृष्णग्रीवमालभत, तेन सर्वत्र व्यभवत्, सोऽकामयत, सर्वत्राविभागः स्यामिति, सोऽग्नये भागिनेऽजं कृष्णग्रीवमालभत, तेन सर्वत्राविभागोऽभवत्, सोऽकामयत, दानकामा मे प्रजाः स्युरिति, सोऽग्नये दात्रेऽजं कृष्णग्रीवमालभत, तेनास्मै दानकामाः प्रजा अभवन्, यः कामयेत, तेजस्वी स्यां, सर्वत्र विभवेयं, सर्वत्राविभागः स्यां, दानकामा मे प्रजाः स्युरिति, स एतानजान् कृष्णग्रीवानालभेत, तेजस्वी भवति, सर्वत्र विभवति, सर्वत्राविभागो भवति, दानकामा अस्मै प्रजा भवन्ति, प्राजापत्यं बहुरूपमालभेत पशुकामः, प्राजापत्या वै पशवः प्रजापतिः पशूनां प्रजनयिता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मै पशून् प्रजनयति, बहुरूपो भवति, बहूनि वै पशूनां रूपाणि, पशूनामेवास्मै रूपाण्याप्त्वावरुन्द्धे, याम्यं शुकहरिमालभेत शुण्ठं वा यः कामयेत, यमलोके ऋध्नुयामित्ये,—तेन वै यमोऽमुष्मिल्लोके आर्ध्नोद्, यमोऽमुष्य लोकस्याधिपत्यमानशे, तमेव भागधेयेनोपासरत्, स एनममुष्य लोकस्याधिपत्यं गमयत्ये,—र्ध्नोति वा एतेन यमलोके ऋध्नोति, परे वयसि यद्दृश्यं, ताजग्वै प्रमीयते, शुण्ठो वा भवति शुकहरिर्वा,—यो ह्येतस्य देवतया पशूनां समृद्धः ॥११॥ १८ [८१]

॥ इति मध्यमकाण्डे पशुबन्ध नाम पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥

अथ षष्ठः प्रपाठकः ।

राजसूयः ।

अनुमत्या अष्टाकपालं निर्वपन्ति ये प्रत्यञ्चः शम्यामतिशीयन्ते, तन्नैर्ऋतमेककपाल,—मुमां मुह कृत्वा कुर्वन्ति, नैर्ऋतेन पूर्वेण प्रचरन्ति, दक्षिणा परेत्य स्वकृता इरिण एकोल्मुकं निधाय बिल्वं समिकायाः कोण्डाभ्यां जुहोति ॥ कृष्णा निर्ऋतिर्वेतु स्वाहा ॥ वासः कृष्णं भिन्नान्तं दक्षिणा, पुनरेत्यानुमत्या अष्टाकपालेन प्रचरन्ति, धेनुर्दक्षिणा,—ऽथ ये उदञ्चः शम्यामतिशीयन्ते तानुदङ् परेत्य वल्मीकवपामुद्धृत्य जुहुयात् ॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमवयजे ॥ तत् पुनरपिदधाति ॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमपिदधामि ॥ श्वो भूते आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यो घृते चरुं,—वरो दक्षिणा, श्वो भूते आग्नावैष्णव एकादशकपालो, ऽनड्वान् वामनो दक्षिणा,

[१] तै. १,८,१ । काठ. १५,१ । वा. २९,६०; ३,१०;(९,३५) । काण्व. ३१,४९; ३,११-१९ । शत. ब्रा. ५,२,३,२ । मा. श्रौ. ९,१,१ ।

श्वो भूतेऽग्नीषोमीया एकादशकपालो, हिरण्यं दक्षिणा, श्वो भूत ऐन्द्राग्न एकादशकपालो, ऽनड्वानृषभो दक्षिणा, श्वो भूत आग्नेयोऽष्टाकपालो, माहेन्द्रं दधि, वासः क्षौमं दक्षिणा॥१॥ १-७

ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं निर्वपेदाग्नेन्द्रं वा, वैश्वदेवश्चरुः, सौम्यः श्यामाकश्चरुं,—र्द्यावापृथिवीया एककपालो, वत्सः प्रथमजो दक्षिणा, सीरं द्वादशायोगं दक्षिणोष्टारो वानड्वान्॥२॥८

आग्नेयोऽष्टाकपालो, वारुणो यवमयश्चरू, रौद्रो गावीधुकश्चरुं,—रैन्द्रं दधि, धेनुरनड्वाही दक्षिणा,—ऽपां न्ययनादपामार्गानाहरन्ति, तान् त्सक्तून् कृत्वा दक्षिणा परेत्य स्वकृता इरिण एकोल्मुकं निधाय पर्णमयेन स्रुवेण जुहोति ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामिन्द्रस्यौजसा, रक्षोहासि, स्वाहा, हतं रक्षो, ऽवधिष्म रक्षः ॥ वरो दक्षिणा॥ ये देवाः पुरःसदो अग्निनेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहा, ये देवा दक्षिणात्सदो यमनेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहा, ये देवाः पश्चात्सदो मरुन्नेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहा, ये देवा उत्तरात्सदो मित्रावरुणनेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहा, ये देवा उपरिषदोऽवस्वद्वन्तः सोमनेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहे,—दमहं रक्षोऽभिसमूहाम्य,—ग्ने संदह रक्षः, संदग्धं रक्षो, ऽग्नये पुरःसदे स्वाहा, यमाय दक्षिणात्सदे स्वाहा, मरुद्भ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा, मित्रावरुणाभ्यामुत्तरात्सद्भ्यां स्वाहा, सोमायोपरिषदेऽवस्वद्वते रक्षोघ्ने स्वाहा, रथः पञ्चवाही दक्षिणा ॥३॥ ९-१२

अनुमत्यै चरुं, राकायै चरुः, सिनीवाल्यै चरुः, कुह्वै चरुं,—र्धात्रे द्वादशकपालः, पष्ठौही दक्षिणा,—ऽग्नावैष्णव एकादशकपाल, ऐन्द्रावैष्णवश्चरुं,—र्वैष्णवस्त्रिकपालो, वामनो दक्षिणा, सौमापौष्ण एकादशकपाल, ऐन्द्रापौष्णश्चरुः पौष्णश्चरुः, श्यामो दक्षिणा,—ऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो, वारुणो यवमयश्चरुं,—र्हिरण्यं चाश्वश्च दक्षिणा ॥४॥ १३

बार्हस्पत्यश्चरुर्ब्रह्मणो गृहे, शितिपृष्ठो दक्षिणै,—न्द्र एकादशकपालो राज्ञो गृहे, ऋषभो

[२] तै. १,८,२; २,६,१ । काठ. १५,१ ।
[३] तै. १,८,७ । काठ. १५,१ । वा. ९,३५,३६,३८ । काण्व. ११,१-४ । शत. ब्रा. ५,२,४,५ । मा. श्रौ. ९,१,१ ।
[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]
[४] तै. १,८,८ । काठ. १५,३ । शत. ब्रा. ५,२,५ । मा. श्रौ. ९,१,१ ।
[५] तै. १,८,९ । काठ. १५,४ । शत. ब्रा. ५,३,१ । मा. श्रौ. ९,१,१ ।

दक्षिणा,—ऽऽदित्यश्चरुर्महिष्या गृहे, धेनुर्दक्षिणा, नैर्ऋतश्चरुर्नखावपूतानां परिवृक्तया गृहे,
श्येनी वण्डापुस्फुरा दक्षिणा,—ऽऽग्नेयोऽष्टाकपालः सेनान्यो गृहे, हिरण्यं दक्षिणा,—ऽश्विनो
द्विकपालः संग्रहीतुर्गृहे, सुव३त्यौ दक्षिणा, सावित्रोऽष्टाकपालः क्षत्तुर्गृहे, श्येतो दक्षिणा,
वारुणो यवमयो दशकपालः सूतस्य गृहे, बभ्रुर्महानिरष्टो दक्षिणा, मारुतः सप्तकपालो वैश्य-
स्य ग्रामण्यो गृहे, पृश्निः पष्ठौही दक्षिणा, पौष्णश्चरुर्भागदुघस्य गृहे, श्यामो दक्षिणा,
वैष्णवस्त्रिकपालस्तक्षरथकारयोर्गृहे, सर्वायसानि दक्षिणा, रौद्रो गावीधुकश्चरुरक्षावापस्य गृहे
गोविकर्तस्य च,—ऽसिर्वालापितस्थो दक्षिणा शबलो वा त्रिवत्सोऽभिधानी वा केसरपाशा ॥५॥
१४

इन्द्रायांहोमुच एकादशकपालं निर्वपेदि,—न्द्राय सुत्राम्ण एकादशकपाल,—मृषभो दक्षि-
णा, स्वयंरुग्णाया अश्वत्थशाखायाः पात्रं भवत्य,—थ श्वेतां श्वेतवत्सां दुहन्ति, तत् स्वयं
मूर्छति, स्वयं मथ्यते, स्वयंविलीनमाज्यं भवत्य,—थ मैत्राबार्हस्पत्यं हविर्निर्वपन्ति, ये
क्षौदिष्ठास्तण्डुलास्तं बार्हस्पत्यं चरुं शृतं कुर्वन्ति, तत्र तत् पात्रमपिधायाज्यमासिच्य ये स्थवि-
ष्ठास्तण्डुलास्तानावपन्त्यु,—भौ सह शृतौ कुर्वन्ति, मैत्रेण पूर्वेण प्रचरन्त्यं,—श्वो मैत्रस्य दक्षि-
णा, शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यस्या,—ऽग्नये गृहपतय आपतन्तानामष्टाकपालं निर्वपेत्, सोमाय व-
नस्पतये श्यामाकं चरुं, सवित्रे प्रसवित्रे सुतीनानामष्टाकपालं, बृहस्पतये वाचस्पतये नवारं
चरु,—मिन्द्राय ज्येष्ठाय हायनानामेकादशकपालं, मित्राय सत्यस्य पतये नाम्बानां चरुं,
वरुणाय धर्मस्य पतये यवमयं चरुं, रुद्राय पशुपतये गावीधुकं चरुम्॥ सविता त्वा प्रसवा-
नां सुवता,—मग्निर्गार्हपत्यानां, सोमो वनस्पतीनां बृहस्पतिर्वाचा,—मिन्द्रो ज्येष्ठानां,
मित्रः सत्यानां, वरुणो धर्मणां, रुद्रः पशूनां, ते देवा असपत्नमिमं सुवध्वममुमामु-
ष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यां विशि महते क्षत्राय महते जानराज्याय, शुक्रज्योतिश्च चित्रज्यो-
तिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च सत्यश्च ऋतपाश्चात्यंहा ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेण-
श्चान्तिमित्रश्च दूरेऽमित्रश्च गणं ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥६॥
१५-१६

देवीरापो अपां नपाद्राष्ट्रदाः स्थ, राष्ट्रं दत्त, स्वाहा, देवीरापो अपां नपाद्राष्ट्रदाः स्थ,
राष्ट्रममुष्मै दत्त, वृषोर्मिरसि, वृषसेनोऽस्य,—पां पतिरस्यं,—प्रवहावरीः स्थ, परिवाहिणीः

[६] तै. १,८,९-१० । काठ. १५,४-५ । वा. ९,३९-४०;१०,१८;१७,८०,८२,८३। काण्व. ११,९-१०,२६;१८,८०,
८२,८३। शत. ब्रा. ५,३,२,४;५,३,३,१ । मा. श्रौ. ९,१,१-२ ।
[७] तै. १,८,११ । काठ. १५,६ । वा. १०,१-४ । काण्व. ११,६-७ । शत. ब्रा. ५,३,४,४ । मा. श्रौ. ९,१,२ ।
मै० १९

स्था,—जस्विनीः स्थ, मान्दाः स्थ, व्रजक्षितः स्थ, सूर्यवर्चसः स्थ, सूर्यत्वचसः स्थ,
मरुतामोजः स्थ, वशाः स्थ, शक्वरीः स्थ, विश्वभृतः स्थ जनभृतोऽपामोषधीनां रसः,
श्रविष्ठाः स्थ, राष्ट्रदाः स्थ, राष्ट्रममुष्मै दत्त ॥७॥ १७
देवीरापो मधुमतीः संसृज्यध्वं महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वानाः ।
अनाधृष्टाः सीदतौजस्वतीर्महि वर्चः क्षत्रियाय दधतीः ॥ १८
अपो देवीर्मधुमतीरगृभ्णामूर्जस्वती राजसूयायाचिताना ।
याभिर्मित्रावरुणा अभ्यषिञ्चं स्ताभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ।
अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्तपोजाः सोमस्य दात्रम् ॥ १९
शुक्रा वः शुक्रेण पुनामि चन्द्रा वश्चन्द्रेण पुनामि ॥ २०
देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण । वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २१
स्वाहा राजसूयाः ॥ २२
सधमादो द्यु३म्न्या ऊर्जा एका अनाधृष्टा अप३स्यो वसानाः ।
पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपां शिशुर्मातृतमास्वन्तः ॥ २३
रुद्र यत्ते गिरिपरं नाम तस्मिन् हुतमसि, यमेष्टमसि, स्वाहा, सोमा इन्द्रो वरुणो मित्रो
अग्निस्ते देवा धर्मधृतो धर्मं धारयन्तु ॥८॥ २४
क्षत्रस्य योनिरसि, क्षत्रस्योल्बमसि, क्षत्रस्य नाभिरस्या,—वित्तो अग्निर्गृहपति,—रावित्ता
इन्द्रो वृद्धश्रवा, आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रता, आवित्ते द्यावापृथिवी ऋतावृधा, आवित्तः
पूषा विश्ववेदा, आवित्ता देव्यदिति,—रावित्तोऽयमसा आमुष्याय३णोऽमुष्याः पु३त्रोऽमुष्यां
विशि महते क्षत्राय महते जानराज्याय,—ष ते जनते राजा, सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजे,—
न्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्न,—स्त्वयायं वृत्रं वध्याच्, शत्रुबाधनाः स्थ, पात प्राञ्चं, पात
प्रत्यञ्चं, पात तिर्यञ्चं, पातान्वञ्चं, पातोर्ध्वं, दिग्भ्य एवैनं पात, मित्रोऽसि, वरुणो-
ऽसि ॥ २५
हिरण्यवर्णमुषसो व्युष्टा अयःस्थूणमुदितौ सूर्यस्य ।

[८] तै. १,८,१२ । काठ. १५,६। वा. १,१२,३१;४,४;१०,४,१,६,७,२०;१,१। काण्व. १,१६,४८;४,५;११,८,५,१३,
२४,३० १,१, । शत. ब्रा. ५,३,४,३,२७,२८;५,३,५,१६ । मा. श्रौ. ९,१,२-३ ।
[९] तै. १,८,१२ । काठ. १५,७ । वा. १०,८,९,२६;२०,१;९,४०;१०,२६,१८ । काण्व. ११,१५-१७,३६;२१,९३,
११,१०,२६,२४ । शत. ब्रा. ५,३,५,२० ।

आरोहथो वरुण मित्र गर्तं ततश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥९॥ २६
समिधमातिष्ठ, गायत्री त्वा छन्दसामवतु, त्रिवृत्स्तोमो, रथन्तरं साम,—ऽग्निर्देवता,
ब्रह्म द्रविण,—मुग्रामातिष्ठ, त्रिष्टुप्त्वा छन्दसामवतु, पञ्चदशः स्तोमो, बृहत् साम,—न्द्रो
देवता, क्षत्रं द्रविणं, प्राचीमातिष्ठ, जगती त्वा छन्दसामवतु, सप्तदशः स्तोमो, वै-
रूपं साम, विश्वे देवा देवता, विड् द्रविण,—मुदीचीमातिष्ठा,—ऽनुष्टुप्त्वा छन्दसामवत्वे,—
कविंशः स्तोमो, वैराजं साम, मित्रावरुणौ देवता, पुष्टं द्रविण,—मूर्ध्वामातिष्ठ, प
ङ्क्तिस्त्वा छन्दसामवतु, त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ, शाक्वररैवते सामनी, बृहस्पतिर्देव-
ता, फलं द्रविणं, सोमस्य त्विषिरसि, त्विषिमत्त्वेव मे त्विषिर्भूयात् ॥ २७
प्रत्यस्तं नमुचेः शिरोऽवेष्टा दन्दशूकाः । मृत्योः पाहि दिद्योः पाहि ॥१०॥ २८
अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, सवित्रे स्वाहा, सरस्वत्यै स्वाहा, पूष्णे स्वाहा, बृ-
हस्पतये स्वाहे,—न्द्राय स्वाहा, घोषाय स्वाहा, श्लोकाय स्वाहा,—ऽंशाय स्वाहा, भगाय
स्वाहा, क्षेत्रस्य पतये स्वाहा, सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेस्तेजसेन्द्रस्येन्द्रियेण विश्वेषां त्वा देवानां
क्रतुनाभिषिञ्चामी,—न्द्रस्य योनिरसि, जनयाति शून् पाहि ॥ २९
समाववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिं बु३ध्न्यमन्वीयमानाः ।
ताः पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावो वियन्ति सुसिचो न वाणीः ॥ ३०
इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसनि,—स्त्वयायं वाजं से—,न्मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा
युनज्मि, विष्णोः क्रमोऽसि, सपत्नहा मरुतां प्रसवे जया,—ऽऽप्तं मनः, समिन्द्रियेणे,—ष
वज्रो वाजसातम,—स्तेन नौ पुत्रो वाजं सेत् ॥११॥ ३१
इयुदस्या,—युरस्या,—युर्मे धेहि, युङ्ङसि, वर्चोऽसि, वर्चो मे धेह्यू,—र्गस्यू,—र्जं मयि

[१०] तै. १,८,१३-१४ । काठ. १५,७ । वा. १०,५,१०-१५ । काण्व. ११,१८-२३ । शत. ब्रा. ५,४,१,३-७ । मा.
श्रौ. ९,१,३ ।
[११] तै. १,८,१३-१५ । काठ. १५,७-८ । वा. १०,५,१९,२२,२३,९,५,२२,६,२०,२७;२९,१ । काण्व. ११,१२-१३,
१८,३२,३३;१४,६,३७;३९,१ । शत. ब्रा. ५,३,५,८-९;५,४,२,५ । मा. श्रौ. ९,१,३। [अग्नये स्वाहा । अथर्व.
१८,३२,३३;१४,६,३७;३९,१ । अथर्व. १९,४३,५ । इन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,४,३,६। समाववृत्र० (ता
१९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । इन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,२,४२। विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा । अथर्व
अधरागुदीचीरावृ०) न वाणीः (पुराणीः) । अथर्व. १९,२,४१। विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा । अथर्व
१०,५,२५-३५]
[१२] तै. १,८,१५-१६;१०,२;१४,२ । काठ. १५,८ । वा. १०,५,२५-२७,२३,२६-२८,२४,२०;२३,६५;२२,६,२०,
२७;३९,१,१२,१४ । काण्व. ११,१२-१३,३३,३५-४०,३४;१३,१५,११,२९;२५,६७;२४,६,३७,३९,१ । [इय-
दस्यायुर्मे धेहि (वाः) । अथर्व. २,१७,४]

धेहि, मित्रोऽसि, वरुणोऽसि, सदसि, समहं विश्वैर्देवै,—र्नमो मात्रे पृथिव्यै, मा मा
माता पृथिवी हिंसीत् ॥ ३२
प्रति त्यन्नाम राज्यमधायि स्वां त३न्वं वरुणोऽसुषोत् ।
शुचेर्मित्रस्य व्रत्या अभूमामन्महि महद्वतस्य नाम ॥ ३३
सर्वे व्राता वरुणस्याभूम नि मित्रयुररतीनतारीत् ।
अशूशुभन्त यज्ञिया ऋतेन नि त्रितो जरिमाणं न आनट् ॥ ३४
स्योनासि सुषदा, स्योनामासीद, सुषदामासीद ॥ ३५
निषसाद धृतव्रतो वरुणः प३स्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ ३६
अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहे,—न्द्रस्यौजसे स्वाहा, मरुतां बलाय स्वाहा ॥ ३७
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ३८
ब्रह्मा३ंस्त्वं ब्रह्मासि, सवितासि सत्यसवो, ब्रह्मा३ंस्त्वं ब्रह्मासि, मित्रोऽसि सुशेवो,
ब्रह्मा३ंस्त्वं ब्रह्मासी,—न्द्रोऽसि सत्यौजा, ब्रह्मा३ंस्त्वं ब्रह्मासि, वरुणोऽसि विश्वौजाः॥३९
एष वज्र,—स्तेन मे रध्य, दिशो अभ्यभूदयम् ॥ ४०
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यस्मै कं जुहुमस्तन्नो अस्तु॥४१
असा अमुष्य पु३त्रो, ऽमुष्यासौ पुत्रः ॥ ४२
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१२॥ ४३
अपां नप्त्रे स्वाहो,—र्जो नप्त्रे स्वाहा,—ऽग्नये गृहपतये स्वाहा॥ सावि३त्रोऽष्टाकपालः, श्येतो
दक्षिणा, सारस्वतश्चरु,—र्धेनुर्दक्षिणा, पौष्णश्चरुः, श्यामो दक्षिणा, बार्हस्पत्यश्चरुः,
शितिपृष्ठो दक्षिणै,—न्द्र एकादशकपाल, ऋषभो दक्षिणा, वारुणो यवमयो दशकपालो,
बभ्रुर्महानिरष्टो दक्षिणा, त्वा३ष्ट्रोऽष्टाकपालो, ऽंसेपाच् शुण्ठोऽधिरूढाकर्णो वा दक्षिणा,—
ऽऽग्ने३योऽष्टाकपालो, हिरण्यमष्टापुडं दक्षिणा, सौम्यश्चरु,—र्बभ्रुर्दक्षिणा, वैष्णवस्त्रिकपालो,

[निषसाद धृतव्रतो०...सुक्रतुः ऋ. १,२५,१० । अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा ।
अथर्व. १९,४३,५ । इन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,६ । हंसः शुचिषद्वसु०... ऋतम् । ऋ. ४,४०,५ ।
प्रजापते न त्वदेता०.. ...रयीणाम् । ऋ. १०,१२१, १० । अथर्व. ७,७९,४;८०,३]
[१३] तै. १,८,१६-१७,१९,२० । काठ. १५,८-९ । वा. १०,२३;२९,६० । काण्व. ११,३३;३१,४९ । शत. ब्रा. ५,
४,५,६ । मा. श्रौ. ९,१,५]

वामनी दक्षिणा,—ऽऽग्नेयोऽष्टाकपालो, हिरण्यं दक्षिणा, बार्हस्पत्यश्चरुः, शितिपृष्ठो दक्षि-
णा,—न्द्र एकादशकपाल, ऋषभो दक्षिणा, वैश्वदेवश्चरुः, पिशङ्गो दक्षिणा, मैत्रावरुण्या-
मिक्षा, वशा दक्षिणा,—ऽऽग्नेयोऽष्टाकपालः, सौम्यश्चरुः, सावित्रो द्वादशकपालो, बार्ह-
स्पत्यश्चरु,—र्वैश्वानरीय द्वादशकपाल,—स्त्वाष्ट्रोऽष्टाकपालो, दक्षिणो रथवाहनवाहो दक्षि-
णा, सारस्वतश्चरुः, पौष्णश्चरु,—र्मैत्रश्चरु,—र्वारुणश्चरु,—रदित्यै चरुः, क्षेत्रस्य पतये चरुः,
सव्यो रथवाहनवाहो दक्षिणा, मारुती पृश्निः, पष्ठौही गर्भिण्यादित्या,—जा मल्हा गर्भिणी
सवित्रे प्रसवित्रे, सतीनानामष्टाकपालोऽश्विभ्यां, पूष्ण एकादशकपालः, सरस्वत्यै सत्यवाचे
चरुर्दण्ड उपानहौ शुष्कदृतिः सा दक्षिणा ॥१३॥ ४४-४५ [८९६]

॥ इति मत्स्यमकाण्डे राजसूयो नाम षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥

अथ सप्तमः प्रपाठकः।

अग्निचितिः।

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्यै ॥ २
युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३
युञ्जते मनः ॥ ४
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरिः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमर्चतः।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ६
देव सवितः ॥ ७
इमं मे देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवायुवम्। वसुविदं सत्राजितं धनजितं स्वर्विदम्।
ऋचा स्तोमं समर्धय गायत्रेण रथन्तरम्। बृहद्गायत्रवर्तनि ॥ ८

[१] मै. ३,१,१-२। तै. ४,१,१। काठ. १५,११,१६,१। वा. ११,१-११,५,१४,३७,२,९,१,३०,१। काण्व. १२,१-- ११,५,१९,३७,२,१०,१ ३४,१। मा. श्रौ. ६,१,१। [युञ्जते मन०.......परिष्टुतिः। ऋ. ५,८१,१। युजे वां ब्रह्म०...तस्थुः। ऋ. १०,१३,१। अथर्व. १८,३,३९। यस्य प्रयाण०...महित्वना। ऋ. ५,८१,३]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे, नारिरसि, गायत्रेण
छन्दसा पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरा, त्रैष्टुभेन छन्दसा,—ऽभ्रिरसि, नारिरसि,
त्वया वयमग्निं शकेम खनितुं सधस्था आ जागतेन छन्दसा ॥ ९
हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिं हिरण्ययीम्।
अग्निं ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १०
आनुष्टुभेन छन्दसा ॥१॥ ११
प्रतूर्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम्।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२
युञ्जाथां रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू। अग्निं भरन्ता अस्मयुम् ॥ १३
योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥ १४
प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यान्मयोभूरेहि ॥ उर्वन्तरिक्षं वीहि ॥ स्वस्तिगव्यू-
तिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरा,—ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमो,
ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ अन्वग्निः ॥ १५-१९
आगत्य वाज्यध्वानं सर्वा मृधो विधूनुते। अग्निं सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषति॥ २०
आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्। भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम्॥ २१
द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः।
विख्याय चक्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यतः ॥ २२
उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन्।
वयं स्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥ २३
उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सु लोकं सुकृतं पृथिव्याः।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निं स्वो रुहाणा अधि नाक उत्तमे ॥ २४

[देवस्य त्वा० .. हस्ताभ्याम्। अथर्व. १९,५१,१।]
[२] मै. ३,१,३-४। तै. ४,१,२-३। काठ. १६,१-३। वा. ११,११,-२८। काण्व. १२,११-२८। मा. श्रौ. ६,१,१। [योगे-योगे०...मूतये। ऋ. १,३०,७; अथर्व. १९,२४,७;२०,२६,१, सा. १६३,७४३। (अन्वग्निः) प्रत्यग्निरुषसा०। ऋ. ४,१३,१, अथर्व. ७,८२,४-५;१८,१,२७-२८]

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नं रभसं दृशानम् ॥ २५
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषस्व।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्हृषाणः ॥ २६
परि वाजपतिः ॥ २७
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि। धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥ २८
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ २९
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां पृथिव्याः सधस्थे अग्निं पुरी-
ष्यमङ्गिरस्वत् खनामि, ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीद्यतं शिवं प्रजाभ्यो
ऽहिंसन्तं पृथिव्याः सधस्थे अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामः ॥ २ ॥ ३०
अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्।
वर्धमानो मह आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्व ॥ ३१
शर्म च स्थो वर्म च स्थो अछिद्रे बहुले उभे।
व्यचस्वती संवसेथां भर्तमग्निं पुरीष्यम् ॥ ३२
संवसेथां स्वर्विदा समीची उरसा त्मना। अग्निं भरिष्यन्ती अन्तर्ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३३
पुरीष्योऽसि विश्वभरा, अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ॥ ३४
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३५
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३६

[आ त्वा जिघर्मि०...दृशानम्। ऋ. २,१०,४। आ विश्वतः० जर्हृ (० र्भु) षाणः। ऋ. २,१०,५। परि वाजपति०...दाशुषे। ऋ. ४,१५,३; सा. ३०। परि त्वाग्ने०...भङ्गुरावताम्। ऋ. १०,८७,२२; अथर्व. ७,७१,१;८,३,२२। देवस्य त्वा०। अथर्व. १९,५१,२]
[३] मै. ३,१,५। तै. ४,१,३। काठ. १६,३। वा. ११,२९-३७;१३,२;१५,२२;३८,१७;३,१५;१५,२६;३३,६,३,१४; १२,४२;१५,४६। काण्व. १२,२९-३७;१४,२;१६,२३ ३८,१०;३,४२;१६,२०;३०,६;३,४०;१३,४३;१६,७८। [त्वामग्ने पुष्करा०...वाघतः। ऋ. ६,१६,१३; सा. ९। तमु त्वा दध्यङ्ङ०...पुरन्दरम्। ऋ. ६,१६,१४।

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनंजयं रणे रणे ॥ ३७
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३८
नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवां असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ ३९
संसीदस्व महां असि शोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने अरुषं मेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ४०
जनिष्व हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु।
दमे दमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता निषसाद यजीयान् ॥ ४१
अयमिह ॥ ४२
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव संमहेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४३
अयं ते ॥ ३ ॥ ४४
अपो देवीरुपसृजा मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ४५
सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ४६
सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो ॥ ४७
उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।
दृशा च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४८
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।

[तमु त्वा पाथ्यो०...रणे। ऋ. ६,१६,१५। सीद होतः स्व०...वयो धाः। ऋ. ३,२९,८। नि होता होतृ०...अग्निः। ऋ. २,९,१। संसीदस्व०...दर्शतम्। ऋ. १,३६,९। अयमिह०...विशेविशे। ऋ. ४,७,१। इमं स्तोम०......तव। ऋ. १,९४,१; अथर्व. २०,१३,३; सा. ६६,१०६४। अयं ते०...... रयिम्। ऋ. ३,२९,१०, अथर्व. ३,२०,१]
[४] मै. ३,१,५-६। तै. ४,१,४। काठ. १६,४। वा. ११,३८—४७। काण्व. १२,३८-४७। मा. श्रौ. ६,१,१। [उदु तिष्ठ०...सुशस्तिभिः। ऋ. ८,२३,५। ऊर्ध्व ऊ षु ण०...महे। ऋ. १,३६,१३। सा. ५७]

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४९
संजातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृता ओषधीषु ।
चित्रः शिशुष्परि तमांꣳस्यक्तः प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥ ५०
स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीष्यवाहनः ॥ ५१
शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी हिꣳसीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ५२
प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरी३ष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥ ५३
वृषाग्निꣳ वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्न आयाहि वीतये ॥ ५४
ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यं,—मग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ॥४॥ ५५
ओषधयः प्रतिगृभ्णीताग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मान् ।
व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥ ५६
ओषधयः प्रतिमोदध्वमेनं पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयꣳ वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥ ५७
वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व रिपून् रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ५८
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ५९
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ ६०
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ ६१
मित्रः सꣳसृज्या पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ६२
रुद्राः सꣳसृज्या पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥
६३

[स जातो गर्भो०......वभ्राः । ऋ. १०,१,२ । अग्न आयाहि वीतये । ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६० ।]
[५] मै. ३,१,६ । तै. ४,१,४-५ । काठ. १६,४-५ । वा. ११,४७-५७; ३६,१४-१६। काण्व. १२,४८-५८,३६,१४-१६ । मा. श्रौ. ६,१,२ । [वि पाजसा०...प्रणीतौ । ऋ. ३,१५,१; । आपो हि ष्ठा०...चक्षसे । ऋ. १०, ९,१; अथर्व. १,५,१; सा. १८३७ । यो वः शिवतमो०...मातरः । ऋ. १०,९,२; अथर्व. १,५,२; सा. १८३८ तस्मा अरं गमाम०...च नः । ऋ. १०,९,३; अथर्व. १,५,३; सा. १८३९]

सꣳसृष्टाꣳ वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्या३ं मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥
६४
सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वोपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां ददातु हस्तयोः ॥ ६५
उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रꣳ यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ ॥५॥ ६६
मखस्य शिरोऽसि, वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि, पृथिव्य-
सि, धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातानस्मै यजमानाय, रुद्रास्त्वा
कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवास्य,—न्तरिक्षमसि, धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं
गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातानस्मै यजमानाया,—ऽऽदित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवे,
ध्रुवासि, द्यौरसि, धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातानस्मै यजमानाय,
विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवे, ध्रुवासि, दिशोऽसि, धारया
मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातानस्मै यजमानाया,—ऽऽदित्या रास्नास्य,—दितिष्टे
बिलं गृभ्णातु ॥ ६७
कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीꣳ योनिमग्नये । तां पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥६८
वसवस्त्वा धूपयन्त्वङ्गिरस्व,—द्रुद्रास्त्वा धूपयन्त्वङ्गिरस्व,—दादित्यास्त्वा धूपयन्त्वङ्गिरस्व,—दि-
न्द्रस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वद्, वरुणस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वद्, विष्णुस्त्वा धूपयत्वङ्गिरस्वद्, बृहस्पतिष्ट्वा
धूपयत्वङ्गिरस्व,—ददितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् खनत्ववट, देवानां
त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखे, धिषणा त्वा देवी विश्वदेव्यवती
पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धामुखे, ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गि-
रस्वच्छ्रपयन्तूखे, वरूत्री त्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् पचतामुखे,
जनयस्त्वाछिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् पचन्तूखे ॥ ६९
मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ७०
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः । सुबाहुरुत शक्त्या ॥ ७१

[६] मै. ३,१,७,८ । तै. ४,१,५-६ । काठ. १६,५-६ । वा. ११,५७-६५;३७,८ । काण्व. १२,५९-६६;३७,८ । मा. श्रौ. ६,१,२ । [मित्रस्य चर्षणी०...स्तमम् । ऋ. ३,५९,६ । देवस्त्वा सविता० । ऋ. १,३१,७; अथर्व. ७,४६,२]

उत्तिष्ठ बृहती भवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । अव्यथमाना पृथिव्याशा दिश आपृण ॥ ७२
मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्त्या, एषा मा भेदि ॥ ७३
वसवस्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्, रुद्रास्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्-
ख, आदित्यास्त्वाछृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्, विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आछृन्दन्त्वा-
७४
नुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ॥६॥
आकूतमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा, मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा, चित्तꣳ विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ
स्वाहा, वाचो विधृतमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा, प्रजापतये मनवे स्वाहा,—ऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा॥
७५
विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नꣳ वृणीत पुष्यसे । स्वाहा ॥ ७६
मा सु भित्था मा सु रिषो दृꣳहस्व वीरयस्व सु । अम्ब धृष्णु वीरयस्वाग्निश्चेदं करिष्यथः ॥
७७
दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तये आसुरी माया स्वधया कृतासि ।
जुष्टं देवेभ्य इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन् ॥ ७८
द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ७९
परस्या अधि संवतोऽवरं अभ्यातर । यत्राहमस्मि तं अव ॥ ८०
परमस्याः परावतो रोहिदश्व इहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियो अग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ८१
यदग्ने यानि कानि चा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ८२
यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ८३
रात्रीꣳ रात्रीमप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ८४
नाभा पृथिव्याः समिधानो अग्निꣳ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।

[७] मै. ३,१,९ । तै. ४,१,९-१० । काठ. १६,७ । वा. ११,६६-८०,४,८,११,२१,२८,१,३४,१५ । काण्व. १२,६७-८३, ४,९,१४,२९;३०,१;३३,९। मा. श्रौ. ६,१,३। [विश्वो देवस्य०...(स्वाहा) । ऋ. ५,५०,१ । द्रवन्नः सर्पिरा० ...अद्भुतः । ऋ. २,७,६ । परस्या अधि०...अव । ऋ. ८,७५,१५ । यदग्ने या (का) नि कानि०...यविष्ठ्य। ऋ. ८,१०२,२०; अथर्व. १९,६४,३। यदत्त्युप० यविष्ठ्य। ऋ. ८,१०२,२१; अथर्व. १९,६४,३

इरंमदं बृहदुक्थꣳ यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ८५
याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताꣳस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥ ८६
ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्ताꣳस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ८७
दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लूनग्ने जम्भाभ्यां तस्करं उत ।
हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्ताꣳस्त्वं खाद सुखादितम् ॥ ८८
यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् दिप्साच्च सर्वाꣳस्तान् मस्मसा कुरु ॥ ८९
उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् ।
क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वां अहम् ॥ ९०
सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितꣳ वी३र्यं बलम् ।
सꣳशितं क्षत्रं मे जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ९१
ब्रह्म क्षत्रꣳ सयुजा न व्यथेते ब्रह्माह क्षत्रं जिन्वति क्षत्रियस्य ।
क्षत्रं ब्रह्म जिन्वति ब्राह्मणस्य यत् समीची कृणुतो वीर्याणि ॥७॥ ९२
दृशानो रुक्म उर्व्या विभाति दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतोऽभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत् सुरेताः ॥ ९३
नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥ ९४
विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति ॥ ९५
सुपर्णोऽसि गरुत्मांꣳ,—स्त्रिवृत्ते शिरो, गायत्रं चक्षु,—र्बृहद्रथन्तरे पक्षौ, स्तोम आत्मा,
छन्दाꣳस्यङ्गानि, यजूꣳषि नाम साम ते तनू,—र्वामदेव्यꣳ यज्ञायज्ञियं पुच्छं, धिष्ण्याः शफाः॥
९६

[सꣳशितं मे०...पुरोहितः । अथर्व. ३,१९,१]
[८] मै. ३,२,१। तै. ४,१,१०;४,२,१। काठ. १६,८। वा. १२,१-७,११-१७,२५;१७,७०;१२,११,३३;१०,२४। काण्व. १३,१-८,१२-१८,२६,१२,३४,१८,७०;११,३४ । मा. श्रौ. ६,१,३। [दृशानो रुक्म०...रेताः। ऋ. १०,४५, ८ । नक्तोषासा०...णोदाः। ऋ. १,९६,५ । विश्वा रूपाणि०...विराजति। ऋ. ५,८१,२;अथर्व. ७,७३,६]

सुपर्णोऽसि गरुत्मान्, दिवं गच्छ, स्वः पत ॥ विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा, गायत्रं छन्द
आरोह, पृथिवीमनुविक्रमस्व, विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा, त्रैष्टुभं छन्द आरोहा,ऽन्तरिक्ष-
मनुविक्रमस्व, विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता, जागतं छन्द आरोह, दिवमनुविक्रमस्व,
विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ता,ऽऽनुष्टुभं छन्द आरोह, दिशोऽनुविक्रमस्व ॥ ९७-९८

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ९९

अग्नेऽभ्यावर्तिन्,—अग्ने अङ्गिरः, पुनरूर्जा, सह रय्या ॥ १००

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् । विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मै राष्ट्राणि धारय ॥ १०१

उदुत्तमं२ वरुण पाशमस्मत् ॥ १०२

अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥ १०३

हꣳसः शुचिषत् ॥ १०४

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् ।
मैनामर्चिषा मा तपसाभिशोचीरन्तरस्या२ शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥ १०५

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः२ सदने स्वे । तस्यै त्व२ हरसा तपं जातवेदः शिवो भव ॥ १०६

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं२ योनिमिहासदः ॥८॥ १०७

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जनते स्वाधीः ॥ १०८

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते सद्म विभृतं पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं२ यत आबभूथ ॥ १०९

[विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा । अथर्व. १०,५,२५-३५ । अक्रन्ददग्नि०... ...भात्यन्तः ।
ऋ. १०,४५,४ । आ त्वाहार्षमन्त०...भ्रशत् । ऋ. १०,१७३,१; अथर्व. ६,८७,१ । उदुत्तमं वरुण०...
स्याम । ऋ. १,२४,१५; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; सा. ५८९ । अग्ने (प्र) बृहन्नुषसा०...न्यप्राः । ऋ. १०,
१,१ । हꣳसः शुचिषत्० । ऋ. ४,४०,५; तै. सं. १,८,१५,२; ४,२,१,५; तै. आ. १०,१०,२]
[९] मै. ३,२,२ । तै. ४,२,२ । काठ. १६,९ । वा. १२,२८-२९ । काण्व. १३,१९-३० । मा. श्रौ. ६,१,३ । [दिव-
स्परि०...स्वाधीः । ऋ. १०,४५,१ । विद्मा ते अग्ने० । ऋ. १०,४५,२; अथर्व. १,१३,३; १३,३,२१ ।

समुद्रे त्वा नृमणा अ३प्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवा२ समृतस्य योनौ महिषा अगृभ्णन् ॥ ११०

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा विभात्यग्र उषसामिधानः ॥ १११

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ ११२

अक्रन्ददग्निः ॥
विश्वस्य जज्ञे भुवनस्य राजा रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ ११३

नक्तोषासा ॥
यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं२ वस्यो अच्छाभि द्युम्नं देवहितं२ यविष्ठ्य ॥ ११४

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्था आभज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥ ११५

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ॥ ११६

अस्ताव्यग्निर्नृणा२ सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेष्ये द्यावापृथिवी हुवे देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥९॥ ११७

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वं२ सुप्रतीको विभावसुः ॥
११८

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ११९

[समुद्रे त्वा नृमणा० । ऋ. १०,४५,३ । श्रीणामुदारो० । ऋ. १०,४५,५ । उशिक्पावको० । ऋ. १०,४५,७ ।
अक्रन्ददग्निः० । ऋ. १०,४५,४ । विश्वस्य जज्ञे (केतु) भुवनस्य० । ऋ. १०,४५,६ । नक्तोषासा० । ऋ. १,
९६,५ यस्ते अद्य० । ऋ. १०,४५,९ । आ तं भज० । ऋ. १०,४५,१० । त्वामग्ने यजमाना० । ऋ. १०,
४५,११ । अस्ताव्यग्निर्नृणा२(०नरा२)० । ऋ. १०,४५,१२]
[१०] मै. ३,२,२ । तै. ४,२,३ । काठ १६,१० । कपि. २५, १ । वा. १२,३०-४३,९-१०,६,२१;३,११ ।

अक्रन्ददग्निः ॥ १२०

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १२१

प्र प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥ १२२

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत् स्योने कृणुध्वं२ सुरभा उ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृता स्वेनत् ॥ १२३

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ १२४

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् । गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥ १२५

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने । संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ १२६

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थे अन्तरस्या२ शिवतमः ॥ १२७

पुनरूर्जा, सह रय्या ॥ १२८

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
निन्दति त्वो अनु त्वो ववन्द वन्दारुं ते तन्वं२ वन्दे अग्ने ॥ १२९

स बोधि सूरिर्मघवा वसुदावा वसुपतिः ।
युयोध्यस्मद् द्वेषाꣳसि यानि कानि च चकृम ॥१०॥ १३०

अपेत वीत वि च सर्पतातो येऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः ।
अदादिदं२ यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ॥ १३१

अग्नेर्भस्मास्य,—अग्नेः पुरीषमसि, सञ्ज्ञानमसि कामधरणं, मयि ते कामधरणं भूयात् ॥ १३२

अयं२ सो अग्निर्यस्मिन् त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं२ वाजमत्यं न सप्तिं२ ससवान् त्सं२स्तूयसे जातवेदः ॥ १३३

अग्ने दिवो अर्णमच्छाजिगास्यच्छा देवा ऊचिषे धिष्ण्या ये ।

काण्व. १३,३१-४४,१०-१२,७,२२;३,१ । मा. श्रौ. ६,१,३ । [अक्रन्ददग्नि० । ऋ. १०,४५,४ । समिधाग्निं
दुवस्यत० । ऋ. ८,४४,१ । प्र प्रायमग्निर्भरत० । ऋ. ७,८,४ । अप्स्वग्ने सधिष्टव० । ऋ. ८,४३,९ । गर्भो अस्यो
षधीनां० । अथर्व. ५,२५,७; ६,९५,३ । बोधा मे अस्य० । ऋ. १,१४७,२ । स बोधि सूरिर्मघवा० । ऋ. ५,६,४]
[११] मै. ३,२,३ । तै. ४,२,४-५ । काठ. १६,११ । कपि. २५,२ । वा. १२,४४-४९,४७-६२;३,१४, १२,४६,५,३ ।
काण्व. १३,४६-५८,५८-६२,३,२०;१३,७८;५,३ । मा. श्रौ. ६,१,५ । अपेत वीत वि० । ऋ. १०,१४,९;
अथर्व. १८,१,५५ । अयं२ सो० । ऋ. ३,२२,१ । अग्ने दिवो० । ऋ. ३,२२,३]

याः परस्ताद्रोचनाः सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ १३४

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां२ यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ १३५

पुरीष्यासो अग्नयः प्रवणेन सजोषसः । जुषन्ता२ हव्यमाहुतमनमीवा इषो महीः ॥ १३६

इडामग्ने पुरुदꣳसं२ सनिं गोः शश्वत्तमं२ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ १३७

अयं ते ॥ चिदसि, तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, परिचिदसि, तया देवतयाङ्गिर-
स्वद् ध्रुवा सीद, चितः स्थ, परिचितः स्थो,—र्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ १३८-१३९

समितं२ सङ्कल्पेथा२ सम्प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि सꣳवसानौ ॥ १४०

सं२ वां मनाꣳसि सं२ व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं२ यजमानाय धेहि ॥ १४१

त्वमग्ने पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमा असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं२ योनिमिहासदः ॥
१४२

भवतं नः ॥ १४३

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं२ स्वे योना अभारुखा ।
तां२ विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः सꣳविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥११॥ १४४

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ १४५

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयꣳ विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं२ यम्या सꣳविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ १४६

यद्दस्य ते ॥ १४७

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथा जीवः पितुमद्धि प्रमुक्तः ॥ १४८

[अग्ने यत्ते दिवि० । ऋ. ३,२२,२ । पुरीष्यासो अग्नयः । ऋ. ३,२२,४ । इडामग्ने पुरुदꣳसं० । ऋ. ३,५,११,
६,११,१२,५; सा. ७६ । अयं ते० । ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१ । सꣳवां मना२सि० । अथर्व. ६,९४,१]
[१२] मै. ३,२,४ । तै. ४,२,५ । काठ. १६,१२ । कपि. २५,३ । वा. १२,६२-७१,७३ । काण्व. १३,६३-७२,७४ ।
मा. श्रौ ६,१,५ । [नमः सु ते निर्ऋते० । अथर्व. ६,६३,२-३;६,८४,३-४ । यं ते(यस्ते)देवी० । अथर्व. ६,६३,१]

यदुस्य पारे रजसो महश्चित्रं ज्योतिरजायत । तन्नः पर्षदति द्विषोऽग्ने वैश्वानर ॥ १४९
स्वाहा, भूत्यै नमः ॥ १५०
निवेशनः संगमनो वसूनाꣳ विश्वा रूपाण्यभिचष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ १५१
येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्येनादित्या वसवो येन रुद्राः ।
येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेन यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ १५२
पूषा युनक्तु सविता युनक्तु बृहस्पतिर्वो युनक्तु । अग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसा ॥ १५३
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ १५४
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीया इत्सृण्यः पक्वमायत् ॥ १५५
लाङ्गलं पवीरवꣳ सुशेवꣳ सोमपित्सरु ।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं प्रफर्व्यं च पीवरीम् ॥ १५६
शुनꣳ सुफाला वितुदन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशो अभ्येतु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मै ॥ १५७
शुनं नरो लाङ्गलेनानड्वद्भिर्भगः फालैः सीरपतिर्मरुद्भिः ।
पर्जन्यो बीजमीरयानो धिनोतु शुनासीरा कृणुतं धान्यं नः ॥ १५८
शुनासीरा प्रकृपतं कृणुतं धान्यं बहु । भूमिरियमृत्वियवती तां फाला उपजिघ्नतु ॥ १५९
घृतेन सीता मधुना समज्यताꣳ विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जो भागं मधुमत् पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्याववृत्स्व ॥ १६०
उद्योजनमन्तर्याममीषां खृगꣳल्यꣳ शत्रम् । अष्टां ताडं प्रतीनाहा उभे मण्डूक्यौ युजे ॥ १६१
उदस्याद्गोजिदश्वजिद्धिरण्यजित् सूनृतया परीवृतः ।

[निवेशनः सङ्गमनो०... पथीनाम् । ऋ. १०,१३९,३; अथर्व. १०,८,४२; तै. सं. ४,२,५,४ । सीरा युञ्जन्त०...सुम्नया (यौ) । ऋ. १०,१०१,४; अथर्व. ३,१७,१; तै. सं. ४,२,५,५ । युनक्त सीरा वि०... पक्वमेयात् । ऋ. १०,१०१,३; अथर्व. ३,१७,२; तै. सं. ४,२,५,५; नि. ५,२८ । लाङ्गलं पवी० । अथर्व. ३,१७,३ । शुनꣳ सु० ...कर्तनास्मै । ऋ. ४,५७,८; अथर्व. ३,१७,५; तै. सं. ४,२,५,६ । शुनं नरो (शुनं वाहाः शुनं नरो)० । ऋ. ४,५७,४; अथर्व. ३,१७,६; तै. आ. ६,६,२ । शुना सीरा० । ऋ. ४,५७,५; अथर्व. ३,१७,७; तै. आ. ६,६,२; नि. ९,४१ । घृतेन सीता० । अथर्व. ३,१७,९]

मै० २१

एकचक्रेण सविता रथेनोर्जो भागं पृथिव्या यात्यापृणन् ॥ १६२
इमामिन्द्र हस्तच्युतिꣳ संच्युतिं जयन्नच्युतिम् । संव्रतिमिन्द्र संगृभितिमूर्जꣳ संपीतिमुल्कवे ॥
१६३
उष्टारयोः पील्वयोरथो आबन्धनीययोः । सर्वेषाꣳ विद्म वो नाम वाहाः कीलालपेशसः ॥
विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अतारिष्ट तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम ॥ १२ ॥ १६४-१६५
या ओषधयः प्रथमजा देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मन्वे नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥
१६६
शतꣳ वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रतो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ १६७
पुष्पवतीः प्रसूवरीः फलिनीरफला उत । अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ १६८
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे । रपाꣳसि विघ्नतीरित रपश्चातयमानाः ॥ १६९
अश्वत्थे वो निवेशनं पर्णे वो वसतिः कृता । गोभाजा इत्किलासथ यत्सनवाथ पूरुषम् ॥
१७०
यदोषधयः संगच्छन्ते राजानः समिता इव । विप्रः स उच्यते कवी रक्षोहामीवचातनः ॥ १७१
निष्कृतिर्नाम वो माताथा त्वमसि संकृतिः । सराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृत ॥
१७२
अश्वावतीꣳ सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ १७३
यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ १७४
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते । धनꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ १७५
अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः । ओषधयः प्राचुच्यवुर्यत् किंच तन्वो रपः ॥
१७६

[१३] तै. ४,२,६ । काठ. १६,१३ । कपि. २५,४ । वा. १२,७५-८९,९१;३५,४ । कण्व. १३,७६-९०,९२;३५,३८ । मा. श्रौ. ६,१,६ । [या ओषधयः (ओषधीः)०...सप्त च । ऋ. १०,९७,१; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ९,२८ । शतꣳ वो अम्ब०...कृत । ऋ. १०,९७,२; तै. सं. ४,२,६,१ । (ओषधीः प्रतिमोदध्वं) पुष्पवतीः प्रसूवरीः० । ऋ. १०,९७,३; अथर्व. ८,७,२७; तै. सं. ४,२,६,१ । ओषधीरिति० । ऋ. १०,९७,४; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ६,३ । सनेयमश्वं०......पूरुष । अथर्व. ४,९,७ । अश्वत्थे वो०......पूरुषम् । ऋ. १०,९७,५; तै. सं. ४,२,६,२ । यदोषधयः (यत्रौषधीः)०...तनः । ऋ. १०,९७,६; तै. सं. ४,२,६,२ । निष्कृतिर्नाम०... निष्कृत (निष्कृथ) । ऋ. १०,९७,९; तै. सं. ४,५,६,२ । अश्वावतीꣳ सोमा०......तये । ऋ. १०,९७,७; अथर्व. ८,७,२७; तै. सं. ४,२,६,४ । यदिमा वाज०...यथा । ऋ. १०,९७,११; तै. सं. ४,२,६,२; नि. ३,१५ । उच्छुष्मा ओष०...पूरुष । ऋ. १०,९७,८; तै. सं. ४,२,६,३ । अति विश्वा०......रपः । ऋ. १०,९७,१०; तै. सं. ४,२,६,३ ।

यास्त आविविशुर्गात्मानꣳ या आतस्थुः परुः परुः ।
तास्ते यक्ष्मꣳ विबाधन्तामुग्रो मध्यमशीरिव ॥ १७७
साकꣳ यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीव्या । साकꣳ वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥
१७८
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः सꣳविदाना ओषधयः प्रावत वाचं मे ॥ १७९
याः फलिनीर्या अफला अकोशा याश्च कोशिनीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥
१८०
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ १८१
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिꣳ यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रान्नद्यो वेशन्ताꣳस्ते नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ १८२
ब्रूमो राजानꣳ वरुणं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ १३ ॥
१८३
मा नो हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् ।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १८४
अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥ १८५
अग्ने यत्ते शुक्रꣳ यच्चन्द्रꣳ यत् पूतꣳ यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १८६
इषमूर्जमहमित आदि घृतस्य धारां महिषस्य योनिम् ।
आ नो गोषु विशत्वौषधीषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १८७
कामं कामदुघे धुक्ष्व प्रजाभ्या ओषधीभ्यः । इन्द्रायाग्नये पूष्णे मित्राय वरुणाय च ॥ १८८

[यास्त० (यस्यौषधीः)......रिव । ऋ. १०,९७,१२ । साकꣳ यक्ष्म० ...कया । ऋ. १०,९७,१३; तै. सं. ४,२,६,४ । अन्या वो०... वाचं मे (वचः) । ऋ. १०,९७,१४; तै. सं. ४,२,६,३ । याः फलिनीर्या०...हसः । ऋ. १०,९७,१५; अथर्व. ६,९६,१;७,११२,१;८,७,२७;१४,२,४५; तै. सं. ४,२,६,४ । अवपतन्तो०... पूरुषः । ऋ. १०,९७,१७; अथर्व. ६,१०९,२; तै. सं. ४,२,६,५ । दिवं ब्रूमो०... हसः । अथर्व. ११,६,१० । ब्रूमो राजानꣳ०...हसः । अथर्व. ११,६,२-३ । ते नो मुञ्चन्त्वꣳहसः । ऋ. १०, ९७,१५; अथर्व. ११,६,१-८,१०-११]

[१४] मै. ३,२,५ । तै. ४,२,७ । काठ. १६,१४ । कपि. २५,५ । वा. १२,१०२-११३,७२;१३,४;१३,१,३;२५,१० -१३; २७,२५-२६;३२,६-७ । कण्व. १३,१०२-११२,७३;१४४;२५,१,३;२७,१४-१७;२९,३३-३६ । मा. श्रौ. ६,१,६ । [मा नो(मा) हिꣳसीज्जनिता० ... । ऋ. १०,१२१,९ तै. सं. ४,२,७,१ । कस्मै देवाय० ... । अथर्व. ४,२,१-८]

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्त्यर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुꣳक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १८९
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावस्योभे पृणासि रोदसी ॥ १९०
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिꣳ रयिम् ॥ १९१
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १९२
ऋतावानं महिषꣳ विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १९३
दुष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिꣳ वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं क्रतुम् ॥ १९४
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ १९५
सं ते पयाꣳसि समु यन्तु वाजाः संꣳ वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ १४ ॥ १९६
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ १९७

[अग्ने तव श्रवो०...कवे । ऋ. १०,१४०,१; सा. १८१६; तै. सं. ४,२,७,१ । पावकवर्चाः०...रोदसी(उभे) । ऋ. १०,१४०,२; सा. १८१७; तै. सं. ४,२,७,३ । इरज्यन्नग्ने०...रयिम् (क्रतुम्) । ऋ. १०,१४०,४; सा. १८१९; तै. सं. ४,२,७,२ । ऊर्जो नपाज्जात०... वामजाताः । ऋ. १०,१४०,३; सा. १८१८; तै. सं. ४,२,७,२ । ऋतावानं महिषꣳ...युगा । ऋ. १०,१४०,६; सा. १८२१; तै. सं. ४,२,७,३ । दुष्कर्तारमध्व० ... क्रतुम् (रयिम्) । ऋ. १०,१४०,५; सा. १८२०; तै. सं. ४,२,७,३ । आप्यायस्व समेतु०...सङ्गथे । ऋ. १,९१,१६; ९,३१,४; तै. सं. ३,२,५,३;४,२,७,४; ताण्ड्य ब्रा. १,५,८ । सं ते पयाꣳसि०...धिष्व । ऋ. १,९१,१८; सा. ६०३; तै. सं. ४,२,७,४]

[१५] मै. ३,२,६ । तै. ४,२,८-९;१२,१४ । काठ. १६,१५-१६ । वा. १३,३-१६,१८-२१,२३,१,२५,१०;३१,३; १५,२१,२३;५,१३,२७;१२,५३;१३,२५;१३,१९,२४,२५;१४,६,१२,१४-१६,२७;१५,५७-५८,६४;१७,४५; ६,३;३६,१५ । कण्व. १४,३-१६,१८-२१,२५,१;२७,१४;२९,३३;१६ ४२,४४;५,१८,३६,६,३;१३,५४;१४, २५-२६;१५,५,१५,१६,३१;१६,७९,८४;२९,५०;३५,१७; मा. श्रौ. ६,१,७ । [ब्रह्म जज्ञानं०...विवः । अथर्व. ४,१,१; ५,६,१]

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १९८
अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताधि ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १९९
द्रप्सश्चस्कन्द ॥ २००
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
२०१
य इषवो यातुधानानां ये वनस्पतीनाम् । येऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २०२
ये अमी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २०३
कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ २०४
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २०५
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ २०६
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्रां ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ २०७
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविः कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् ॥ २०८

[हिरण्यगर्भः समवर्त०... । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य. ९,९,१२; नि. १०,२३ । कस्मै देवाय०... ऋ. १०,१२१,१-९; अथर्व. ४,२,१-८ । द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी० ऋ. १०,१७, ११; अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३; ४,२,८,२; ९,५; तै. आ. ६,६,१ । नमो अस्तु सर्पेभ्यो०... । ऋ. परि. १५,११ । य (या) इषवो यातु०... नमः । ऋ. परि. १५,१० । ये अमी (येऽदो) रोचने०... नमः । ऋ. परि. १५,९ ये वामी० । व. व. १३,९ । कृणुष्व पाजः०...पिष्ठैः । ऋ. ४,४,१; तै. सं. १,२,१४,१; नि. ६,१२ । तव भ्रमास०... गुल्काः । ऋ. ४,४,२; तै. सं. १,२,१४,१ । प्रति स्पशो०...धर्षीत । ऋ. ४,४,३; तै. सं. १,२,१४,१ । उदग्ने तिष्ठ०...शुष्कम् । ऋ. ४,४,४; तै. सं. १,२,१४,१ । ऊर्ध्वो भव०... शत्रून् । ऋ. ४,४,५; अथर्व. ३,१,३; तै. सं. १,२,१४,२]

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २०९
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि, तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २१०
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २११
इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि, तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, ध्रुवासि धरुणास्तृता वि-
श्वकर्मणा सुभृता, मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णो,—ऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह, तेजोऽसि,
तेजो मे यच्छ, पृथिवीꣳ यच्छ, पृथिवीं दृꣳह, पृथिवीं मा हिꣳसीः, पृथिव्या मा पाहि,
ज्योतिरसि, ज्योतिर्मे यच्छा,—ऽन्तरिक्षꣳ यच्छा,—ऽन्तरिक्षं दृꣳहा,—ऽन्तरिक्षं मा हिꣳसी,—र-
न्तरिक्षान्मा पाहि, स्वरसि, स्वर्मे यच्छ, दिवꣳ यच्छ, दिवं दृꣳह, दिवं मा हिꣳसी,—
र्दिवो मा पाहि ॥ २१२
यास्ते अग्न आर्द्रा योनयो याः कुलायिनीर्ये ते अग्न इन्दवो या उ नाभयः ।
ताभिष्ट्वमुभयीभिः सꣳविदानः प्रजानꣳस्त३न्वेह निषीद ॥ २१३
काण्डात्काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥ २१४
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यै ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्॥१५॥२१५
यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २१६
या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धेहि बृहस्पते ॥ २१७
विराड् ज्योतिरधारयत्, स्वराड् ज्योतिरधारयत्, सम्राड् ज्योतिरधारयद्, भूरसि भुवनस्य
रेता इष्टका स्वर्गो लोको, मनसा त्वान्वारोहाम्य,—ग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नि,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद्
ध्रुवा सीद, भुवरसि, भुवनस्य रेता इष्टका स्वर्गो लोको, वाचा त्वान्वारोहामि, सूर्यो ज्यो-
तिर्ज्योतिः सूर्य,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, बृहस्पतिष्ट्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योति-
ष्मतीꣳ विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय, विश्वं ज्योतिर्यच्छा,—ऽग्नि-

[अयमग्निः सहस्रिणः०... रयीणाम् । ऋ. ८,७५,४ तै. सं. २,६ ११,१; ४,४,४,१ । भुवो यज्ञस्य०...हव्यवाहम् । ऋ. १०,८,६; तै. सं. ४,४,४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१ । विधेम हविषा वयम् । अथर्व. १,३१,१]
[१६] मै. ३,२,७ । तै. ४,२,९ । काठ. १६,१६; ३९,३ । वा. १३,१९-३२,५,१५;(१५,६२);११,२,१७,७०; १०,१६-१७; २०,२; १८,४६-४७; ८,३२ । काण्व. १४,११-३४,५,२०,(१६,८३); १३,२; १८,७०; ११,३६-३७, ११,९३ । २०,१६-१७,३१ । मा. श्रौ. ६,१,७

रेऽधिपति,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्यो-
तिष्मतीꣳ विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय, विश्वं ज्योतिर्यच्छ,
वायुष्टेऽधिपति,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योति-
ष्मतीꣳ विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय, विश्वं ज्योतिर्यच्छ, सूर्य-
स्तेऽधिपति,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २१८
अषाढासि सहमाना सहस्वारातीꣳ सहस्व पृतनायतः ।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व ॥ २१९
मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ २२०
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २२१
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमं अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २२२
अपां त्वा सद्मन्त्सादयामि समुद्रस्योद्वर्वतच्छायायां, नमः समुद्राय, नमः समुद्रस्य च-
क्षसे, अनु त्वा दिव्या वृष्टिः सचतां, मा त्वा सूर्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरो, ऽच्छिन्नपत्राः
प्रजा अनुवीक्षस्व ॥ २२३
त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम् ।
तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः पुरीषꣳ वसानः सुकृतस्य लोकम् ॥ २२४
मही द्यौः पृथिवी च न इमꣳ यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ २२५
इदꣳ विष्णुः ॥ २२६
अव स्मा ते वनस्पते वातो विवात्यग्रमित् । उतो न्विन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल॥२२७
नकोषासा ॥ २२८
स्मृता देवेभिरमृतेनागादुक्था स्वसाराणि वेदिमस्थात् ।
सर्वं पूर्वेभिरिभिः सꣳविदानो अग्निः पुरीषं इदं तद् कृणोतु ॥ २२९
पृथिवि पृथिव्याꣳ सीद मातुर्मातरि मातः ।

[मधु वाता०...षधीः । ऋ. १,९०,६; तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०, १०,२; श. ब्रा. १४,९ ३,११ । मधु नक्तमुतोषसो०......पिता । ऋ. १,९०,७; तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०, १०,२; श. ब्रा. १४,९,३,१२ । मधुमान्नो वनस्पति०...गावः । ऋ. १,९०,८; तै. सं. ४,२,९,३; तै. आ. १०,१०,२; श. ब्रा. १४,९,३,१३ । मही द्यौ०...भरीमभि । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२; ५,११,३; ४,२,९,३ । इदꣳ विष्णुः० ।... ऋ. १,२२,१७; सा. २२२; १६६९; अथर्व. ७,२६,४; तै. सं. १,२,१३,१; नि. १२,१९ । अव स्मा (स्म) ते । ऋ. ३,२२,७; ७,३,२; सा. १२२० । नक्तोषासा० । ऋ. १,९६,५; तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३]

स्योनासि सुषदा स्योनामासीद सुषदामासीद ॥ २३०
निषसाद धृतव्रतो वरुणः प३स्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २३१
क्रतुं देवानां महिमानमीमहे अग्निꣳ सधस्थे सदनेष्वद्भुतम् ।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसꣳ स्तोमस्य धामन्निदधे पुरीष्यम् ॥ २३२
न्यग्घुर्मात्रायां कवयो वयोधसो अग्निꣳ सधस्थे सदनेष्वच्युतम् ।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसꣳ स्तोमस्य धामन्निहितं पुरीष्यम् ॥ २३३
समिध्यमानꣳ समिधा समिन्धते अग्निꣳ सधस्थे सदनेषु सुक्रतुम् ।
वैश्वानरं ब्रह्मणा विश्वव्यचसꣳ स्तोमस्य धामन् पवमानमाभृतम् ॥ १६ ॥ २३४
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरꣳ वहन्त्याशवः ॥ २३५
युक्ष्वा हि देवहूतमं अश्वं अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ २३६
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥ २३७
ऋचे त्वा, रुचे त्वा, भासे त्वा, ज्योतिषे त्वा,—ऽभूदिदꣳ विश्वस्य भुवनस्य वाजिन-
मग्नेर्वैश्वानरस्य चा,—ऽग्निस्तेजसा तेजस्वान्, रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्, त्सहस्रदा असि,
सहस्राय त्वा ॥ २३८
आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमाꣳ विश्वरूपम् ।
परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ २३९
वातस्य जूतिꣳ वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सलिलस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ २४०
अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिꣳ विराजम् ॥ २४१

[निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,१; तै ब्रा. १,७,१०,२,२,६,५,१]
[१७] तै. ४,२,९-१० । काठ. १६,१६-१७ । कपि. २५,८ । वा. १३,३६-४५,४७-५१; ३३,४; १७,९४ । काण्व. १४ ३८-४७,४९-५३; ३२,४; १९,७ । मा. श्रौ. ६,१,७ । [अग्ने युक्ष्वा हि०...शवः । ऋ. ६,१६,४३; सा. २५; १३८१, तै. सं. ४,२,९,५ । युक्ष्वा हि देवहूतमं (मॉ)...सदः । ऋ. ८,७५ १; तै. सं. २,६,११,१ । समिध्यमान्ति (सम्यक्स्र०)...अग्नेः । ऋ. ४,५८,६; तै. सं. ४,२,९,४ । अजोरेश्य (? ह्य)न्न०...मेध्यासः । अथर्व. ४,१४,१; ९,५,१३]

त्वष्टुर्वरुत्रीꣳ वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ २४२
यो अग्निरग्नेस्तपसोऽधि जातः शोकात् पृथिव्या उत वा दिवस्परि ।
येन इमाः प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ २४३

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानो, मयुमारण्यमनु ते दिशामि, तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद, मयुं ते शुगृच्छतु, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्वि,—मं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदꣳ वाजिनꣳ वाजिनेषु, गौरमारण्यमनु ते दिशामि, तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद, गौरं ते शुगृच्छतु, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्वि,—मꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सꣳ व्यच्यमानꣳ सलिलस्य मध्ये घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ गवयमारण्यमनु ते दिशामि, तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद, गवयं ते शुगृच्छतु, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्वि,—मं-मूर्णायुꣳ वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदां त्वष्टुर्देवानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ मेषमारण्यमनु ते दिशामि, तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद, मेषं ते शुगृच्छतु, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्व,—जो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्, सो अपश्यज्जनितारमग्ने, तेन देवा देवतामग्रमायꣳ,—स्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः, शरभमारण्यमनु ते दिशामि, तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद, शरभं ते शुगृच्छतु, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१७॥ २४४-२४६

अपां त्वेमन्त्सादयाम्य,—पां त्वोद्मन्त्सादयाम्य,—पां त्वायने सादयाम्य,—पां त्वा ज्योतिषि सादयाम्य,—पां त्वा भस्मनि सादयामि, समुद्रे त्वा सदने सादयाम्य,—र्णवे त्वा सदने सादयामि, सलिले त्वा सदने सादयाम्य,—पां त्वा क्षये सादयाम्य,—पां त्वा सधिषु सादयाम्य,—पां त्वा सदने सादयाम्य,—पां त्वा सधस्थे सादयाम्य,—पां त्वा योनौ सादयाम्य,—पां त्वा पुरीषे सादयाम्य,—पां त्वा पाथसि सादयामि, गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि, त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि, जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्या,—नुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि, पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥१८॥ २४७

अयं पुरो भू,—स्तस्य प्राणो भौवायनो, वसन्तः प्राणायनो, गायत्री वासन्ती, गायत्र्या गायत्रं, गायत्रादुपाꣳशु,—रुपाꣳशोस्त्रिवृत्, त्रिवृतो रथन्तरꣳ, वसिष्ठ ऋषिः, प्रजा-

[१८] मै. ३,२,८ । तै. ४,३,२ । काठ. १६,१८ । कपि. २५,९ । वा. १३,५३ । काण्व. १४,५५ । मा. श्रौ. ६,१,८ । मै० २२

पतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि, प्रजाभ्योऽयं दक्षिणा विश्वकर्मा, तस्य मनो वैश्वकर्मणं, ग्रीष्मो मानसः,—स्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी, त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामो, ऽन्तर्यामात् पञ्चदशः, पञ्चदशाद् बृहद्, भरद्वाज ऋषिः, प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि, प्रजाभ्योऽयं पश्चाद् विश्वव्यचा,—स्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसꣳ, वर्षाणि चाक्षुषाणि, जगती वार्षी, जगत्या ऋक्समं,—मृक्समाच् छुक्रः, शुक्रात् सप्तदशः, सप्तदशाद्वैरूपं, जमदग्निरृषिः, प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि, प्रजाभ्य इदमुत्तरात्स्व,—स्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ, शरच्छ्रौत्र्य,—नुष्टुप् शारद्य,—नुष्टुभ ऐडं,—मैडान्मन्थी, मन्थिन एकविꣳशः, एकविꣳशाद्वैराजꣳ, विश्वामित्र ऋषिः, प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि, प्रजाभ्य इयमुपरि मति,—स्तस्या वाङ् मात्या, हेमन्तो वाच्यः, पङ्क्तिर्हैमन्ती, पङ्क्त्या निधनव,—न्निधनवत आग्रायणं, आग्रायणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ, त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते, विश्वकर्मा ऋषिः, प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥१९॥ २४८

प्राची दिग्, वसन्त ऋतु,—रग्निर्देवता, ब्रह्म द्रविणं, गायत्री छन्दो, रथन्तरꣳ साम, त्रिवृत् स्तोमः, स उ पञ्चदशवर्तनिः, सानुगा ऋषि,—स्त्र्यविर्वयः, कृतमयानां, पुरोवातो वातः, पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नोऽवन्तु, ते नः पान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यामाशिष्यस्यां देवहूतौ ॥ दक्षिणा दिग्, ग्रीष्म ऋतु,—रिन्द्रो देवता, क्षत्रं द्रविणं, त्रिष्टुप्छन्दो, बृहत्साम, पञ्चदशः स्तोमः, स उ सप्तदशवर्तनिः, सनातना ऋषि,—र्दित्यवाड् वय,—स्त्रेतायानां, दक्षिणाद्वातो वातः, पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नोऽवन्तु, ते नः पान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यामाशिष्यस्यां देवहूतौ ॥ प्रतीची दिग्, वर्षा ऋतु,—र्विश्वे देवा देवता, विड् द्रविणं, जगती छन्दो, वैरूपꣳ साम, सप्तदशः स्तोमः, स उ एकविꣳशवर्तनि,—रहभूना ऋषि,—स्त्रिवत्सो वयो, द्वापरोऽयानां, पश्चाद्वातो वातः, पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नोऽवन्तु, ते नः पान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यामाशिष्यस्यां देवहूतौ ॥ उदीची दिक्, शरदृतु,—र्मित्रावरुणौ देवता, पुष्टं द्रविण,—मनुष्टुप्छन्दो, वैराजꣳ सामैकविꣳशः स्तोमः, स उ त्रिणववर्तनिः, पुराणा ऋषि,—स्तुर्यवाड् वयो, ऽभिभवोऽयाना,—मुत्तराद्वातो वातः, पितरः

[१९] तै. ४,३,२ । काठ. १६,१९ । कपि. २५,९ । वा. १३,५४-५८ । काण्व. १४,५९-६५ ।
[२०] तै. ४,३,३। वा. १५,१०-१९;४,११;१६,६४-६६। काण्व. १६,१६-१७,१९-२०,२२-२३,२५-२६,२८-२९; ४,१६;१७,६४ । आसिन्ब्रह्म०... देवहूतौ (देवहूत्यां स्वाहा) । अथर्व. ५,२४,१-१७]

पितामहाः परेऽवरे ते नोऽवन्तु, ते नः पान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यामाशिष्यस्यां देवहूतौ ॥ ऊर्ध्वा दिं,—ग्घेमन्तशिशिरा ऋतू, बृहस्पतिर्देवता, फलं द्रविणं, पङ्क्तिश्छन्दः, शाक्वररैवते सामनी, त्रिणवः स्तोमः, स उ त्रयस्त्रिꣳशवर्तनिः, सुपर्णा ऋषिः, पष्ठवाड् वय, आस्कन्दोऽयाना,—मुपरिष्टाद्वातो वातः, पितरः पितामहाः परेऽवरे ते नोऽवन्तु, ते नः पान्त्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यामाशिष्यस्यां देवहूतौ ॥ २० ॥
२४९-२५३ [११४९]

॥ इति मध्यमकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः प्रपाठकः ।

लोकं पृण छिद्रं पृणाथा सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योना असीषदन् ॥१
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानाꣳ विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥२
ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवꣳ योनिमासीद साध्या ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३
कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विदं ब्रह्म पिपृहि सौभगाय ।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवः स्वावेशया तन्वा सꣳविशस्व ।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ६
अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीꣳ विष्टम्भनीं दिशाम् ।
भुवनस्याधिपत्नीमूर्मिर्द्रप्सो अपामसि । अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७

[१] मै. ३,२,८-९ । तै. ४,३,४ । काठ. १७,१ । कपि. २५,१० । वा. १२,५४-५५;१४,१-५,७;१५,५९-६० । काण्व. १३,५५-५६;१६,८०-८१;१५,१-६ । मा. श्रौ. ६,२,१ । [ता अस्य सूददो०...दिवः। ऋ. ८,६९,३; १,८४,११, अथर्व. २०,१०९,२; सा. १००६; तै. सं. ४,२,४,४; तै. ब्रा. ३,११,६,२ ।]

सजूरृतुभिः, सजूर्विधाभिः, सजूर्देवैः, सजूर्देवैर्वयुनाधै,—रग्नये त्वा वैश्वानराया,—ऽश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा, सजूरृतुभिः, सजूर्विधाभिः, सजूर्वसुभिः, सजूरृतुभिः, सजूर्विधाभिः, सजू रुद्रैः, सजूरृतुभिः, सजूर्विधाभिः, सजूरादित्यैः, सजूरृतुभिः, सजूर्विधाभिः, सजूर्विश्वैर्देवैर्वैश्वानरैः, सजूर्देवैर्वयुनाधै,—रग्नये त्वा वैश्वानराया,—ऽश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥ ८

प्राणं मे पाह्य,—पानं मे पाहि, व्यानं मे पाहि, चक्षुर्म उर्व्या विभाहि, श्रोत्रं मे श्लोकया,—ऽपः पिन्वौ,—षधीर्जिन्व, द्विपादव, चतुष्पात् पाहि, दिवो वा वृष्टिमेरय, क्षत्रꣳ, वयो, मयन्दं छन्दो, विष्टम्भो वयो, ऽधिपतिश्छन्दो, मूर्धा वयः, प्रजापतिश्छन्दो, विश्वकर्मा वयः, परमेष्ठी छन्द,—स्त्र्यविर्वय,—स्त्रिष्टुप्छन्दो, दित्यवाड् वयो, विराट् छन्दः, पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्द,—स्त्रिवत्सो वय, उष्णिहा छन्द,—स्तुर्यवाड् वयो, ऽनुष्टुप्छन्दः, पष्ठवाड् वयो, बृहती छन्द, उक्षा वयः, ककुप्छन्द, ऋषभो वयः, सतोबृहती छन्दो, ऽनड्वान्वयः, पङ्क्तिश्छन्दो, धेनुर्वयो, जगती छन्दो, बस्तो वयो, पुथलं छन्दो, वृष्णिर्वयो, विशालं छन्दः, पुरुषो वय,—स्तन्द्रं छन्दः, सिꣳहो वय,—श्छदिश्छन्दो, व्याघ्रो वयो, ऽनाधृष्यं छन्दः ॥२॥ ९

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतꣳ युवम् ।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी आपृणान्तरिक्षं च विबाधस्व ॥ १०

राज्ञ्यसि प्राची दिग्, विराडसि दक्षिणा दिक्, सम्राडसि प्रतीची दिक्, स्वराडस्युदीची दिं,—गधिपत्न्यस्यूर्ध्वा दि,—गायुर्मे पाहि, प्राणं मे पाह्य,—पानं मे पाहि, व्यानं मे पाहि, चक्षुर्मे पाहि, श्रोत्रं मे पाहि, मनो मे पिन्व, वाचं मे जिन्वा,—ऽऽत्मानं मे पाहि, ज्योतिर्मे यच्छ, मा छन्दः, प्रमा छन्दः, प्रतिमा छन्दो, ऽस्रीवीश्छन्दः, पङ्क्तिश्छन्द, उष्णिहा छन्दो, गायत्री छन्द,—स्त्रिष्टुप्छन्दो, जगती छन्दो, ऽनुष्टुप्छन्दो, विराट् छन्दो, बृहती छन्दः, पृथिवी छन्दो, ऽन्तरिक्षं छन्दो, द्यौश्छन्दो, नक्षत्राणि छन्दः, समा छन्दः, कृषिश्छन्दो, वाक्छन्दो, मनश्छन्दो, गौश्छन्दो, ऽश्वश्छन्दो, ऽजा छन्दो, हिरण्यं छन्दो, ऽग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता,

[१] तै. ४,३,४—५ । काठ. १७,१-२ । कपि. २५,१०,२६,१ । वा. १४,८—१० । काण्व. १५,७-१३ ।
[२] मै. ३,२,९ । तै. ४,३,६-७ । काठ. १७,३ । कपि. २६,२ । वा. १४,११,१३,१८—२२ । काण्व. १५,१४,१६, १७—२४ । मा श्रौ. ६,२,१ ।

वसवो देवता, रुद्रा देवता,—ऽदित्या देवता, मरुतो देवता,—न्द्रो देवता, वरुणो देवता,
बृहस्पतिर्देवता, विश्वे देवा देवता, मूर्धासि राड्, ध्रुवासि धरुणा, धर्त्र्यसि धरण्या,—
ऽऽयुषे त्वा, वर्चसे त्वा, कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, यन्त्री राड्, यन्त्र्यसि यमनी,
धर्त्र्यसि धरित्री,—षे त्वो,—र्जे त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा ॥ ३ ॥ ११

आशुस्त्रिवृद्,—भ्रान्तः पञ्चदशो, व्योमा सप्तदशः, प्रतूर्तिरष्टादश,—स्तपो नवदशो,
ऽभीवर्तः सविꣳशो, धरुण एकविꣳशो, वर्चो द्वाविꣳशः, संभरणस्त्रयोविꣳशो, योनि-
श्चतुर्विꣳशो, गर्भाः पञ्चविꣳशं, ओजस्त्रिणवो, विराट् त्रिꣳशः, क्रतुरेकत्रिꣳशो, वि-
धृतिर्द्वात्रिꣳशः, प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो, ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो, नाकः षट्त्रिꣳशो,
विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो, धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ ४ ॥ १२

अग्नेर्भागोऽसि, दीक्षाया आधिपत्यं, ब्रह्म स्पृतं, त्रिवृत्स्तोमा, इन्द्रस्य भागोऽसि,
विष्णोराधिपत्यं, क्षत्रं स्पृतं, पञ्चदशः स्तोमो, नृचक्षसां भागोऽसि, धातुराधिपत्यं,
जनित्रꣳ स्पृतꣳ, सप्तदशः स्तोमो, मित्रस्य भागोऽसि, वरुणस्याधिपत्यं, दिवो वृष्टिर्वातः
स्पृतं, एकविꣳशः स्तोमो, ऽदित्या भागोऽसि, पूष्ण आधिपत्य,—मोजः स्पृतं, त्रिणवः
स्तोमो, वसूनां भागोऽसि, रुद्राणामाधिपत्यं, चतुष्पात् स्पृतं, चतुर्विꣳशः स्तोम,
आदित्यानां भागोऽसि, मरुतामाधिपत्यं, गर्भाः स्पृताः, पञ्चविꣳशः स्तोमः, सवितुर्भागो-
ऽसि, बृहस्पतेराधिपत्यꣳ, समीचीर्दिशः स्पृता,—श्चतुष्टोमः स्तोमो, यवानां भागोऽस्य,—
यवानामाधिपत्यं, प्रजाः स्पृता,—श्चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोम, ऋभूणां भागोऽसि, विश्वेषां
देवानामाधिपत्यं, भूतं निशान्तꣳ स्पृतं, त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमः ॥ ५ ॥ १३

एकयास्तुवत, प्रजा अधीयन्त, प्रजानां पतिरधिपतिरासीत्, तिसृभिरस्तुवत, ब्रह्मासृ-
ज्यत, ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्, पञ्चभिरस्तुवत, भूतान्यसृज्यन्त, भूतानां पतिरधिपति-
रासीत्, सप्तभिरस्तुवत, सप्तऋषयोऽसृज्यन्त, धाताधिपतिरासी,—न्नवभिरस्तुवत, पितरोऽ-
सृज्यन्ता,—ऽदितिरधिपतिरासी,—देकादशभिरस्तुवता,—ऽऽर्तवा असृज्यन्त, ऋतवोऽधिपतय आ-
सꣳ,—स्त्रयोदशभिरस्तुवत, मासा असृज्यन्त, सꣳवत्सरोऽधिपतिरासीत्, पञ्चदशभिरस्तुवत,

[४] तै. ४,३,८ । काठ. १७,४ । कपि. २६,३ । वा. १४,२३ । काण्व. १५,२५—२६ । मा. श्रौ. ६,२,१ । [ब्रध्नस्य विष्टपं । अथर्व. ११,३,५०]
[५] मै. ३,२,१० । तै. ४,३,९ । काठ. १७,४ । कपि. २६,३ । वा. १४,२४—२६ । काण्व. १५,२७-३१ । मा. श्रौ. ६,२,१ ।
[६] मै. ३,२,१० । तै. ४,३,१० । काठ. १७,५ । कपि. २६,४ । वा. १४,२८—३१ । काण्व. १५,३२—३५ । मा. श्रौ. ६,२,१

क्षत्रमसृज्यते,—न्द्रोऽधिपतिरासीत्, सप्तदशभिरस्तुवत, ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त, बृहस्पतिर-
धिपतिरासी,—न्नवदशभिरस्तुवत, शूद्रार्यौ असृज्येता,—महोरात्रे अधिपत्नी आस्ता,—मेकविꣳ-
शत्यास्तुवते,—कशफमसृज्यत, वरुणोऽधिपतिरासीत्, त्रयोविꣳशत्यास्तुवत, क्षुद्राः पशवो
ऽसृज्यन्त, पूषाधिपतिरासीत्, पञ्चविꣳशत्यास्तुवता,—ऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त, वायु-
रधिपतिरासीत्, सप्तविꣳशत्यास्तुवत, वनस्पतयोऽसृज्यन्त, सोमोऽधिपतिरासी,—न्नव-
विꣳशत्यास्तुवत, द्यावापृथिवी व्यैताꣳ, वसवो रुद्रा अनुव्यायꣳ,—स्त उ एवाधिपतय आ-
स,—न्नेकत्रिꣳशतास्तुवत, प्रजा असृज्यन्त, यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसꣳ,—स्त्रयस्त्रिꣳशता-
स्तुवत, भूतान्यशाम्यन्, प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥६॥ १४

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडन् शर्मꣳस्ते स्याम त्रिवरूथा उद्भौ ॥ १५
सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ १६
चतुश्चत्वारिꣳशो स्तोमो, वर्चो द्रविणꣳ, षोडशी स्तोमा, ओजो द्रविणम् ॥ १७
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व ॥ १८

तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदै,—वश्छन्दो, वरिवश्छन्द, आछच्छन्दो, मनश्छन्दः,
शंभूश्छन्दः, परिभूश्छन्दः, सिन्धुश्छन्दो, व्यचश्छन्दः, समुद्रं छन्दः, सलिलं छन्दः,
ककुप्छन्द,—स्त्रिककुप्छन्दः, काव्यं छन्दो, ऽङ्कुपं छन्दो, ऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः, पदप-
ङ्क्तिश्छन्दो, विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः, क्षुरो भृजश्छन्दः, पक्षश्छन्दः, प्रच्छच्छन्दः, सꣳ-
यच्छन्दो, वियच्छन्दो, बृहच्छन्दो, रथन्तरं छन्दो, निकायं छन्दो, वीवधं छन्दो,
गिरश्छन्दो, भृजश्छन्दः, सꣳस्तुप्छन्दो, ऽनुष्टुप्छन्दा, एवश्छन्दो, वरिवश्छन्दो,
वयश्छन्दो, वयस्कृच्छन्दो, विशालं छन्दो, विष्पर्धाश्छन्द,—श्छदिश्छन्दो, दूरोहणं
छन्द,—स्तन्द्रं छन्दो, ऽङ्काङ्कं छन्दः ॥७॥ १९

रश्मिना क्षयाय क्षयं जिन्व, प्रेत्या धर्मणे धर्मं जिन्वा,—ऽन्वित्या दिवे दिवं जिन्व, संधि-

[७] मै. ३,२,१० । तै. ४,३,१२ । काठ. १७,६ । कपि. २६,५ । वा. १५,१-५। काण्व. १६,१—८। मा. श्रौ. ६,१,१।
[अग्ने जातान्प्रणुदा० । अथर्व. ७,३४,१ । सहसा जातान्प्रणु० । अथर्व. ७,३५,१]
[८] मै. ३,३,१ । तै. ४,४,१ । काठ. १७,७ । कपि. २६,६ । वा. १५,६,७,९ । काण्व. १६,९—१२,१४—१५ । मा. श्रौ ६,२,२ ।

नान्तरिक्षायान्तरिक्षं जिन्व, प्रतिधिना पृथिव्यै पृथिवीं जिन्व, विष्टम्भेन वृष्ट्यै वृष्टिं जिन्व,
प्रवयाह्नाऽहर्जिन्वा,—ऽनुयाया रात्र्यै रात्रीं जिन्वो,—शिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व, प्रकेतेन रुद्रेभ्यो
रुद्रान् जिन्व, सुदितिनादित्येभ्य आदित्यान् जिन्व, तन्तुना प्रजाभ्यः प्रजा जिन्वो,—जमा पि-
तृभ्यः पितॄन् जिन्व, पृतनाषाहा पशुभ्यः पशून् जिन्व, रेवतौषधीभ्य ओषधीर्जिन्वा,—ऽभि-
जिता युक्तग्राव्णेन्द्रायेन्द्रं जिन्वा,—ऽधिपतिना प्राणाय प्राणं जिन्व, धरुणेनापानायापानं जिन्व,
सꣳसर्पेण चक्षुषे चक्षुर्जिन्व, वयोधसाधीतायाधीतं जिन्व, त्रिवृता त्रिवृते त्रिवृज्जिन्व, प्रवृता
प्रवृते प्रवृज्जिन्व, सवृता सवृते सवृज्जिन्वा,—ऽनुवृतानुवृतेऽनुवृज्जिन्व, विरोहेण विरोहाय विरोहं
जिन्व, प्ररोहेण प्ररोहाय प्ररोहं जिन्व, सꣳरोहेण सꣳरोहाय सꣳरोहं जिन्वा,—ऽनुरोहेणानु-
रोहायानुरोहं जिन्व, वसुकेन वसुकाय वसुकं जिन्व, वेषश्रिया वेषश्रियै वेषश्रीं जिन्व, व-
स्पृष्ट्या वस्पृष्ट्यै वस्पृष्टिं जिन्वा,—ऽऽक्रान्त्याक्रान्त्या उत्क्रान्ति जिन्वो,—त्क्रान्त्योत्क्रान्त्या
आक्रान्ति जिन्व ॥८॥ २०

राडसि, प्राची दिग्, वसवस्ते देवा अधिपतयो, ऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता, त्रिवृत्त्वा स्तोमः
पृथिव्याꣳ श्रयत्वा,—ज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नोतु, रथन्तरꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षा, ऋ-
षयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु, विधर्ता चायमधिपतिश्च, ते त्वा सर्वे
सꣳविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु, विराडसि, दक्षिणा दिग्,
रुद्रास्ते देवा अधिपतया, इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता, पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु,
प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नोतु, बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षा, ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो
मात्रया वरिणा प्रथन्तु, विधर्ता चायमधिपतिश्च, ते त्वा सर्वे सꣳविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे
लोके यजमानं च सादयन्तु, सम्राडसि प्रतीची दि,—गादित्यास्ते देवा अधिपतयः, सोमो
हेतीनां प्रतिधर्ता, सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु, मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नोतु,
वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षा, ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु,
विधर्ता चायमधिपतिश्च, ते त्वा सर्वे सꣳविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च साद-
यन्तु, स्वराडस्युदीची दिङ्, मरुतस्ते देवा अधिपतयो, वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ते,—कविꣳशस्त्वा
स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु, निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नोतु, वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या अ-
न्तरिक्षा, ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु, विधर्ता चायमधिपतिश्च,
ते त्वा सर्वे सꣳविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्त्व,—धिपत्न्यस्यूर्ध्वा

[९] मै. ३,३,१ । तै. ४,४,२ । काठ. १७,८ । कपि. २६,७ । वा. १५,१०-१४ । काण्व. १६,१६—२० । मा. श्रौ. ६,२,२ ।

दिग्, विश्वे ते देवा अधिपतयो, बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता, त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ
पृथिव्याꣳ श्रयताꣳ, वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नुताꣳ, शाक्वररैवते सामनी प्रति-
ष्ठित्या अन्तरिक्षा, ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु, विधर्ता चायम-
धिपतिश्च, ते त्वा सर्वे सꣳविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥९॥ २१

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मि,—स्तस्य रथकृत्स्नश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ, पुञ्जिकस्थला च
क्रतुस्थला चाप्सरसौ, यातुधाना हेती, रक्षाꣳसि प्रहेति,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु,
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मो, ऽयं दक्षिणा विश्वकर्मा, तस्य रथस्वनश्च
रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ, मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ, दड्क्ष्णवः पशवो हेतिः, पौ-
रुषेयो वधः प्रहेति,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां
जम्भे दध्मो, ऽयं पश्चा विदद्वसु,—स्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्या, आम्लोचन्ती
च प्रम्लोचन्ती चाप्सरसौ, व्याघ्रा हेतिः, सर्पाः प्रहेति,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृड-
न्तु, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मो, ऽयमुत्तरात्सꣳयद्वसु,—स्तस्य सेनजिच्च
सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ, विश्वाची च घृताची चाप्सरसा आपो हेति,—र्वातः प्रहेति,—स्तेभ्यो
नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मो, ऽयमुपर्यर्वाग्वसु-
सु,—स्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्या, उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसा, अवस्फूर्जद्धे-
ति,—र्विद्युत्प्रहेति,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे
दध्मः ॥ १० ॥ २२

प्राच्या त्वा दिशा सादयाम्य,—ग्निना देवेन देवतया गायत्रेण छन्दसाग्नेः शिर उपदधामि,
गायत्रस्य छन्दसोऽग्नेः शीर्ष्णाग्नेः शिर उपदधामि, दक्षिणया त्वा दिशा सादयामी,—न्द्रेण
देवेन देवतया त्रैष्टुभेन छन्दसाग्नेः पक्षमुपदधामि, त्रैष्टुभस्य छन्दसोऽग्नेः पक्षेणाग्नेः पक्षमुपदधा-
मि, प्रतीच्या त्वा दिशा सादयामि, विश्वेभिर्देवेभिर्देवतया जागतेन छन्दसाग्नेः पुच्छमुपदधा-
मि, जागतस्य छन्दसोऽग्नेः पुच्छेनाग्नेः पुच्छमुपदधाम्यु,—दीच्या त्वा दिशा सादयामि, मित्रा-
वरुणाभ्यां देवाभ्यां देवतयानुष्टुभेन छन्दसाग्नेः पक्षमुपदधाम्या,—नुष्टुभस्य छन्दसोऽग्नेः पक्षेणाग्नेः
पक्षमुपदधाम्यू,—र्ध्वया त्वा दिशा सादयामि, बृहस्पतिना देवेन देवतया पाङ्क्तेन छन्दसाग्नेः
पृष्ठमुपदधामि, पाङ्क्तस्य छन्दसोऽग्नेः पृष्ठेनाग्नेः पृष्ठमुपदधामि ॥११॥ २३

[१०] मै. ३,३,१ । तै. ४,४,३ । काठ. १७,९ । कपि. २६,८ । वा. १५,१५—१९;१६,६४—६६ । काण्व. १६, २१—४०;१७,६४। मा. श्रौ. ६,२,२। [ते नो मृडन्तु (०डतु)...दध्मः। अथर्व. ३,२६,१—६;२७,१—६]
[११] मै. ३,३,१ । मा. श्रौ. ६,२,२ ।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिका ऋतू, अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि ॥ २४
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापा ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ २५
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ।
वासन्तिका ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु ॥ २६
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मा ऋतू, नभश्च नभस्यश्च वार्षिका ऋतू, इषश्चोर्जश्च शारदा ऋतू,
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिका ऋतू, तपश्च तपस्यश्च शैशिरा ऋतू, अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि ॥ २७
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापा ओषधयः ।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ॥ २८
ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ।
शैशिरा ऋतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु ॥१२॥ २९

पुरोवातसंनिरस्य,—भ्रसंनिरसि, विद्युत्संनिरसि, स्तनयित्नुसंनिरसि, वृष्टिसंनिरस्य,—
ग्नेर्योन्यस्य,—ग्नेरग्नेर्यान्यासि, वायोर्योन्यसि, वायोर्वायोर्यान्यासि, देवानांऽ योन्यसि, देवानां
देवयान्यसि, विश्वेषां देवानांऽ योन्यसि, विश्वेषां देवानां देवयान्यसि, संयान्यस्य,—न्त-
रिक्षसदस्यन्तरिक्षे सीदा,—ऽम्बा च वुला च नितत्नी च स्तनयन्ती चाभ्रयन्ती च मेघयन्ती च
चुपुणीका, सलिलाय त्वा, संदीकाय त्वा, संतीकाय त्वा, केताय त्वा, सुकेताय त्वा,
संकेताय त्वा, विवस्वते त्वा, दिवे त्वा ज्योतिष, आदित्येभ्यस्त्वा ॥ १३ ॥ ३०
उदपुरा नामास्यन्नेन विष्टा, तां त्वा प्रैम्यात्मना पुरुषैर्गोभिरश्वैरायुषा वर्चसा प्रजया
धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण, मनुष्यास्ते गोप्तारो, ऽग्निरधिपति,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद्
ध्रुवा सीदा,—ऽपराजिता नामासि, ब्रह्मणा विष्टा, तां त्वा प्रैम्यात्मना पुरुषैर्गोभिरश्वैरायुषा
वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण, मरुतस्ते गोप्तारो, वायुरधिपति,—स्तया दे-
वतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीदा,—ऽधिद्यौर्नामास्य,—मृतेन विष्टा, तां त्वा प्रैम्यात्मना पुरुषैर्गोभिर-

[१२] मै. ३,३,३ । तै. ४,४,११ । काठ. १७,१० । कपि. २६,९ । वा. १३,२५;१४,६,१५—१६,२७;१५,५७। काण्व. १४,२६;१५,५,१६,३१;१६,७९ ।
[१३] तै. ४,४.६ । मा. श्रौ. ६,२,२ ।
[१४] मै. ३,३,४ । तै. ४,४,५,२,११;४.४,३,३ । काठ. १७,१० । कपि. २६,९ । वा. १५,६२-६५;१२,७;२०,१२; १३,१७-१९,२४;१४,११,१४,१५,५८,६४;१७,२-३। काण्व. १६,८३-८५;१३,८;११,७,१४,१७-१९,२४-२५, १५,१५-१६,१८,१-४ । मा. श्रौ. ६,६,१ ।
मै० २१

श्वैरायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण, विश्वे ते देवा गोप्तारः, सूर्योऽधि-
पति,—स्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद, प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे, भूरसि,
भूमिरसि, प्रथोऽसि, पृथि३व्यस्य,—दितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री, पृथि-
वींऽ यच्छ, पृथिवीं दृंह, पृथिवीं मा हिंसीः, पृथिव्या मा पाहि विश्वस्मै प्राणायापानाय
व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राया,—ऽग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन,
विश्वकर्मा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृ३ष्ठे, ऽन्तरिक्षंऽ यच्छा,—ऽन्तरिक्षं दृंहा,—ऽन्तरिक्षं मा हिंऽ-
सी,—रन्तरिक्षान्मा पाहि विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय,
वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन, परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे व्यच-
स्वतीं प्रथस्वतीं भास्वतींऽ रश्मीवतीमा या दिवं भास्या पृथिवीमो३र्वन्तरिक्षं, दिवंऽ
यच्छ, दिवं दृंह, दिवं मा हिंसी,—र्दिवो मा पाहि विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायो-
दानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय, सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन ॥ ३१
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्मा ते व्रजनं कृष्णमस्तु ॥ ३२
आयोष्ट्वा सदने सादयामि समुद्रस्योद्मन्नवतश्छायायां, नमः समुद्राय, नमः समुद्रस्य च-
क्षसे, सहस्रस्य मासि, सहस्रस्य प्रमासि, सहस्रस्य प्रतिमासि, सहस्रस्य संमासि,
सहस्रस्योन्मासि, साहस्रोऽसि, सहस्राय त्वे,—मा मे अग्ना इष्टका धेनवः सन्त्वे,—का च शतं
च, शतं च सहस्रं च, सहस्रं चायुतं चा,—ऽयुतं च प्रयुतं च, प्रयुतं चायुतं चा,—ऽर्बुदं च
न्यर्बुदं च, समुद्रश्च मध्यं चा,—ऽन्तश्च परार्धश्चे,—मा मे अग्ना इष्टका धेनवः सन्तु षष्टिः सहस्र-
मयुतमक्षीयमाणा, ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधो घृतश्चुतो मधुश्चुता ऊर्जस्वतीः पयस्वतीः स्वधायिनीः
कुलायिनी,—स्ता मे अग्ना इष्टका धेनवः सन्तु विराजो नाम कामदुघा अमुत्रामुष्मिंल्लोके ॥ १४ ॥
३३ [११८९]

॥ इति मध्यमकाण्डेऽष्टमः प्रपाठकः ॥८॥

[वर्चसा प्रजया (च) धनेन । ऋ. १.२३,२३; अथर्व. १४,१,४८;१९.३१.७ । प्रोथदश्वो न०...मस्तु । ऋ. ७,३,२; सा. १२२०; सहस्रं च नियुतं चार्बुदं च । ऋ. परि. ३३,७ (द्वि. पा.) ।

अथ नवमः प्रपाठकः ।

आ त्वा वहन्तु हरयः सुचेतसः श्वेतैरश्वैरिह केतुमद्भिः ।
वातजवैर्बलवद्भिर्मनोजवैरस्मिन् यज्ञे मम हव्याय शर्व ॥ १
देवानां च ऋषीणां चासुराणां च पूर्वजम् । महादेवंऽ सहस्राक्षंऽ शिवमावाहयाम्यहम् ॥ २
तत् पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ३
तद्गाङ्गौच्याय विद्महे गिरिसुताय धीमहि । तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥ ४
तत् कुमाराय विद्महे कार्त्तिकेयाय धीमहि । तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात् ॥ ५
तत् कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ ६
तच्चतुर्मुखाय विद्महे पद्मासनाय धीमहि । तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ॥ ७
तत् केशवाय विद्महे नारायणाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ ८
तद्भास्कराय विद्महे प्रभाकराय धीमहि । तन्नो भानुः प्रचोदयात् ॥ ९
तत् सोमराजाय विद्महे महाराजाय धीमहि । तन्नश्चन्द्रः प्रचोदयात् ॥ १०
तज्ज्वलनाय विद्महे वैश्वानराय धीमहि । तन्नो वह्निः प्रचोदयात् ॥ ११
तद्ध्यानजपाय विद्महे महाजपाय धीमहि । तन्नो ध्यानः प्रचोदयात् ॥ १२
तत् परमात्माय विद्महे वैनतेयाय धीमहि । तन्नः सृष्टिः प्रचोदयात् ॥१॥ १३
नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः । नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १४
यां ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्त३न्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ १५
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ १६
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वा इज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥ १७
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वान् जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥ १८

[१] काठ. १७,११ । तै. आ. १०,१,५ । मा. श्रौ. ११,५ । [आ त्वा वहन्तु हरयो । ऋ. १,१६,१ ।]
[२] तै. ४,५,१ । काठ. १७,११ । कपि. २७,१ । वा. १६,१-१४ । काण्व. १७,१-१४ । मा. श्रौ. ६.१,४ । [यथा नः०...... असत् । ऋ. १०,१४१,४; अथर्व. ३,२०,६ । अहींश्च सर्वा० (अदृष्टान्स०) । ऋ. १,१९१, ८; अथर्व. ४,९,९]

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चेमे अभितो रुद्रा दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषांऽ हेड ईमहे ॥ १९
असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नुतैनमुदहार्यः ॥ २०
उतैनंऽ विश्वा भूतानि स दृष्टो मृडयातु नः ॥ २१
नमो नीलकपर्दाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वान इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥ २२
नमस्ता आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ २३
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ २४
अवतत्य धनुष्ट्वंऽ सहस्राक्ष शतेषुधे । प्रशीर्य शल्यानां मुखंऽ शिवो नः सुमना भव ॥ २५
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवं उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गथिः ॥ २६
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्निधेहि तम् ॥ २७
या ते हेतिर्मीढुष्टम शिवं बभूव ते धनुः । तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥२॥ २८
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो, नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये
नमो, नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमो, नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां
पतये नमो, नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नस्य पतये नमो, नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्रस्य
पतये नमो, नमो भवस्य हेत्यै जगतस्पतये नमो, नमः सूतायाहन्त्याय वनानां पतये नमो,
नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो, नमो मन्त्रिणे वाणिजाय, कक्षाणां पतये नमो,
नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौ,—षधीनां पतये नमो, नमः सहमानाय निव्याधिन, आ-
व्याधिनीनां पतये नमो, नम आक्रन्दयत उच्चैर्घोषाय सत्वानां पतये नमो, नमः कृत्स्नवीता-
य धावते पत्तीनां पतये नमो, नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो, नमो वञ्चते
परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो, नमो निचेरवे परिचराया,—ऽरण्यानां पतये नमो, नमो
निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो, नमः सृकायिभ्यो जिघांऽसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो,
नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः प्रकृन्तानां पतये नमो, नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां
पतये नमो नमः ॥ ३ ॥ २९
नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो, नमा इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो, नम आ-
तन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो, नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्च वो नमो, नमोऽस्यद्भ्यो

[३] तै. ४,५,२-३ । काठ. १७,१२ । कपि. २७,२ । वा. १६,१७-२१ । काण्व १७,१७-२१ ।
[४] तै. ४,५,३-४ । काठ. १७,१३ । कपि. २७,३ । वा. १६,२२-२० ... २-२६ । मा. श्रौ. ६,१,४ ।

विध्यद्भ्यश्च वो नमो, नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो, नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च
वो नमो, नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो, नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो,
नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो, नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो, नम
उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमो, नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो, नमो व्रातेभ्यो व्रात-
पतिभ्यश्च वो नमो, नमः कृत्स्नेभ्यः कृत्स्नपतिभ्यश्च वो नमो, नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च
वो नमो, नमः सेनाभ्यः सेनानीभ्यश्च वो नमो, नमो रथिभ्यो वरूथिभ्यश्च वो नमो,
नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो, नमो बृहद्भ्योऽर्भकेभ्यश्च वो नमो, नमो युवभ्य
आशीनेभ्यश्च वो नमो नमः ॥ ४ ॥ ३०

नमो ब्राह्मणेभ्यो राजन्येभ्यश्च वो नमो, नमः सूतेभ्यो विश्येभ्यश्च वो नमो, नमस्तक्ष-
भ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो, नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो, नमो निषादेभ्यः पुञ्जि-
ष्ठेभ्यश्च वो नमो, नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमो, नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो,
नमो भवाय च शर्वाय च, नमो रुद्राय च पशुपतये च, नमो व्युप्तकेशाय च कपर्दिने च,
नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च, नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च, नमो गिरिशाय च
शिपिविष्टाय च, नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च, नमो ह्रस्वाय च वामनाय च, नमो बृहते
च वर्षीयसे च, नमो वृद्धाय च सुवृध्वने च, नमोऽग्रीयाय च प्रथमाय च, नम आशवे
चाजिराय च, नमः शीभ्याय च शीघ्र्याय च, नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च, नमो द्वीप्या-
य च स्रोतस्याय च ॥ ५ ॥ ३१

नम आशुषेणाय चाशुरथाय च, नमो बिल्मिने च कवचिने च, नमो वर्मिणे च वरूथिने
च, नमः शूराय चावभिन्दते च, नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च, नमो ज्यायसे च कनी-
यसे च, नमः पूर्वजाय चापरजाय च, नमो मध्यमाय चापगल्भाय च, नमो जघन्याय
च बुध्न्याय च, नमः सोभ्याय च प्रतिसराय च, नमो याम्याय च क्षेम्याय च, नमो
ऽवसान्याय च श्लोक्याय च, नम उर्वर्याय च खल्याय च, नमो वन्याय च कक्ष्याय च,
नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च, नमः पथ्याय च सृत्याय च, नमो नाद्याय च वैशन्ताय
च, नमो नीप्याय च सिद्याय च, नमोऽवट्याय च कूप्याय च, नमः सूद्याय च
सरस्याय च ॥ ६ ॥ ३२

[५] तै. ४,५,४-५ । काठ. १७,१३-१४ । कपि. २७,३-४ । वा. १६,२७-३१ । काण्व. १७,२७-३१ ।
[६] तै. ४,५,६—७ । काठ. १७,१४—१५ । कपि. २७,४—५ । वा. १६,३२—३५ । काण्व १७,३२—३५ ।

नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च, नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च, नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते
च, नमस्तिग्मेषवे चायुधिने च, नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च, नमो मेघ्याय च वि-
द्युत्याय च, नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च, नमो वीध्रियाय चातप्याय च, नमो वात्याय
च रेष्मण्याय च, नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च, नमः सोमाय च रुद्राय च, नम-
स्ताम्राय चारुणाय च, नमः शङ्गवे च पशुपतये च, नम उग्राय च भीमाय च, नमो
ऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च, नमो हन्त्रे च हनीयसे च, नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो, नमस्ता-
राय, नमः शंभवे च मयोभवे च, नमः शंकराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च
शिवतराय च ॥ ७ ॥ ३३

नमः शिखण्डिने च पुलस्तिने च, नमः किꣳशिलाय च क्षेणाय च, नम इरिण्याय च
प्रपथ्याय च, नमो गृह्याय च गोष्ठ्याय च, नमो गेह्याय च तल्प्याय च, नमः कूल्याय
च तीर्थ्याय च, नमः पार्याय चावार्याय च, नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च, नमः प्रवा-
ह्याय च सिकत्याय च, नमः फेन्याय च शष्प्याय च, नमो नीविष्याय च ह्रद्याय च,
नमः काट्याय च गह्वरेष्ठ्याय च, नमः शुष्क्याय च हरित्याय च, नमः पाꣳसव्याय च
रजस्याय च, नमो लोप्याय चोलप्याय च, नम ऊर्म्याय च सूर्म्याय च, नमः पर्णाय च
पर्णशदाय च, नमोऽपगुरमाणाय चाभिघ्नते च, नम आखिदते च प्रखिदते च, नम
आखिदाय च प्रखिदाय च ॥ ८ ॥ ३४

नमो गिरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो, नमो विचिन्वत्केभ्यो, नम आक्षिणकेभ्यो, नम
आनृहतेभ्यः ॥ ३५

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
एषां पुरुषाणामासां प्रजानां मा भेर्मा रुङ् मो च नः किं चनाममत् ॥ ३६
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ।
यथा नः शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ ३७
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाह भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ३८

[७] तै. ४,५,७—८ । काठ. १७,१५ । कपि. २७,४—५ । वा. १६,३५—४१ । काण्व १७,३५—४१ ।
[८] तै. ४,५,८—९ । काठ. १७.१५ । कपि. २७,५ । वा. १६,४२—४६ । काण्व. १७,४२— ४६ ।
[९] तै. ४,५,९—१० । काठ. १७,१६ । कपि. २७,६ । वा. १६,४६—६६ । काण्व. १७,४६-६४ । मा. श्रौ. ६,१,४ ।
[मा भे (मे) मा०......मत् । अथर्व. ६,५७,३ । इमा रुद्राय०......तुरम् । ऋ. १,११४,१ ।]

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥ ३९
मीढुष्टम शिवतम शिवो न एधि सुमना भव ।
अवतत्य धनुष्ट्वमक्रुद्धः सुमना भव । पिनाकं बिभ्रदागहि कृत्तिꣳ वसाना उच्चर ॥ ४०
त्र्यम्बक विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः ।
यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यामस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ४१
सहस्राणि सहस्रशो हेतयस्तव बाह्वोः । तासामीशानो मघवन् पराचीना मुखा कृधि ॥ ४२
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
४३
ये अस्मिन् महत्यर्णवे अन्तरिक्षे भवा अधि । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ४४
ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा उपश्रिताः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
४५
ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
४६
ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
४७
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ४८
ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा यो युधः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ४९
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५०
ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५१
य एतावन्तो वा भूयाꣳसो वा दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥
५२
नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषाꣳ वर्षमिषव,—स्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश
प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा,—स्तेभ्यो नमो अस्तु ते नो मृडन्तु, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमे-
षां जम्भे दध्मो, नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये अन्तरिक्षे येषाꣳ वात इषव,—स्तेभ्यो दश प्राचीर्दश

[परि णो रुद्रस्य० । ऋ. २,३३,१४; अथर्व. ४,२१,७ । ते नोऽवन्तु० दध्मः । अथर्व. ३,२७,१-६ ।]

दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु, ते यं द्विष्मो
यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मो, नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्याꣳ येषामन्नमिषव,—स्तेभ्यो
दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा,—स्तेभ्यो नमो अस्तु, ते नो मृडन्तु,
ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ९ ॥ ५३
अघोरेभ्यो अथ घोरेभ्यो अघोरघोरतरेभ्यश्च ।
सर्वतः शर्वशर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र रूपेभ्यो नमः ॥ ५४
यः पथः समनुयाति स्वर्गं लोकं गामिव सुप्रणीती । तेन त्वं भगवान् याहि पथा ॥ ५५
इमे हिरण्यवर्णाः स्वꣳ योनिमाविशन्ता ॥ ५६
गच्छ त्वं भगवान् पुनरागमनाय पुनर्दर्शनाय सहदेव्याय सहवृषाय सहगणाय सहपार्षदाय
यथाहुताय नमोनमाय नमःशिवाय नमस्ते अस्तु, मा मा हिꣳसीः ॥ आवाहितमावाहित,
नमस्कृत नमस्कृत, विसर्जितꣳ विसर्जित, पथं गच्छ पथं गच्छ, दिवं गच्छ दिवं गच्छ,
स्वर्गच्छ स्वर्गच्छ, ज्योतिर्गच्छ ज्योतिर्गच्छ नमस्ते अस्तु, मा मा हिꣳसीः ॥१०॥ ५७-५८
[११४०]

॥ इति मध्यमकाण्डे नवमः प्रपाठकः ॥ ९ ॥

अथ दशमः प्रपाठकः ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्योऽधि संभृताम् ।
तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा, अश्मꣳस्ते क्षुं,—न्मयि त ऊ,—र्यं द्विष्मस्तं ते
शुगृच्छतु ॥ १
समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ३
उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि ।
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥ ४
अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ५

[१०] तै.-आ. १०,१९ ।
[१] मै. ३,३,५-६ । तै. ४,६,१ । काठ. १७,१७ । कपि. १८,१ । वा. १७,१,४-१५,११.८३;३६,२० । काण्व. १८,
१,५—१५,१९,८४;३६,२० । मा. श्रौ. ६,१,४ । [हिमस्य त्वा०......परिव्ययामसि । ऋ. परि. १०,१ ।
अथर्व. ६,१०६,३ । अपामिदं न्ययन०...भव । ऋ. १०,१४२,७; अथर्व. ६,१०६,१; तै. सं. ४,६,१,१ ।]

अग्ने पावक रोचिषा, स नः पावक दीदिवः ॥ ६
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न केतुना ।
आ यो घृणे न ततृषाणो अजरस्तूर्वन्य यामन्नेतशस्य नू रणे ॥ ७
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे नमः ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ८
द्रुषदे वण्, नृषदे वट्, अप्सुषदे वड्, बर्हिषदे वड्, वनसदे वट्, स्वर्विदे वट् ॥ ९
अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ १०
ये देवा देवानाꣳ यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते ।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ ११
ये देवा देवेभ्यो अधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुरएतारो अस्य ।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १२
प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याꣳस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ १ ॥ १३
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १४
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराꣳ आविवेश ॥ १५
किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ १६
किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १७

[अग्ने पावक रोचिषा । ऋ. ५,२६,१; सा. १५२१; तै. सं. १,३,१४,८;५,५,३;४,६,१,२ । स नः पावक दीदिवः । ऋ. १,१२,१०; तै. सं. १,३,१४,८;५,५,३;४,६,१,३ । पावकया यश्चित०... नू रणे (अजर।)। ऋ. ६,१५,५; तै. सं. ४,६,१,२]

[२] मै. ३,३,७ । तै. सं. ४,६,१—२ । काठ. १८,१—२ । कपि. २८,१ । वा. ८,४५;१७,१६—२३ । काण्व. ८,२६-२८;१८.१६-२४ । मा. श्रौ. ६,२,५ । [अग्निस्तिग्मेन०...रयिम् । ऋ. ६,१६,२८; अथर्व. ८,३,२३, सा. २२, तै. सं. ४,६,१,५, । य इमा विश्वा०...विवेश । ऋ. १०,८१,१, तै. सं. ४,६.२,१। किꣳ स्विद्वनं०। ऋ.१०, ८१,४, तै. सं. ४,६,२,५, तै. ब्रा. २,८,९,६ । किꣳ स्विदासी०...चक्षाः। ऋ. १०,८१,२, तै. सं. ४,६,२,४]
मै० २४

यो विश्वचक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्याममधमत्सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ १८
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयꣳ यजस्व तन्वं जुषाणः ॥ १९
विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त दैवीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ २०
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयꣳ यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ २१
वाचस्पतिꣳ विश्वकर्माणमूतये मनोयुजꣳ वाजे अद्या हुवेम ।
स नो नेदिष्ठा हवना जुजोष विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा ॥ २ ॥ २२
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्वा आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २३
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २४
त आयजन्त द्रविणा समस्मिन्नृषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ता सूर्ते रजसि निषत्ता ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २५
यो नः पिता जनिता यो विधाता यो नः सतो अभ्या सज्जजान ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ २६
परो दिवः पर एना पृथिव्याः परो देवेभ्यो असुरꣳ यदस्ति ।
कꣳ स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त सर्वे ॥ २७

[यो विश्वचक्षुरुत (०तश्चक्षु०) एकः । ऋ. १०,८१,३; अथर्व. १३,२,२६; तै. सं. ४,६,२,४, तै. आ. १०, १,३ । या ते धामानि०...जुषाणः (वृधानः)। ऋ. १०,८१.५; तै. सं. ४,६,२,५ । विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः०। ऋ. १०,८१,६; सा. १५८९, तै. सं. ४,६,२,६; नि. १०,२७। वाचस्पतिꣳ०...साधुकर्मा। ऋ. १०,८१,७; तै. सं. ४,६,२,५]

[३] तै. ४.६,२ । काठ. १८.२-१ । कपि. २८,२ । वा. १७.२५-३१ । काण्व. १८.२५—३१ । [चक्षुषः पिता०...ताम् । ऋ. १०,८२.१; तै. सं ४,६.२,४ । विश्वकर्मा विमने (०मना)...एकमाहुः । ऋ. १०,८२,२; तै. सं. ४,६,२,१; नि. १०,२६ । त आयजन्त०...निमानि । ऋ. १०,८२,४; तै, सं. ४,६,२,२; नि. ६,१५ । यो नः पिता०...यस्त्यन्या । ऋ. १०,८२,३, अथर्व. २,१.३; तै. सं. ४,६,२,१; तै. आ. १०,१,४ । परो दिव। (दिवा)०...सर्वे (पूर्वे) । ऋ. १०,८२,५, तै. सं. ४,६,२,२]

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ।
अजस्य नाभा अध्येकमर्पितꣳ यस्मिन् विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २८
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भꣳ व्यदधुः पुरुत्रा ॥ २९
न तꣳ विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३ ॥ ३०
उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत । समेनꣳ वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ३१
इन्द्रेमं प्रतरं नय सजातानामसद्वशी । रायस्पोषेण संꣳसृज देवेभ्यो भागदा असत् ॥ ३२
यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै देवा अधिब्रवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३३
आशुः शिशानो वृषभो न युध्मो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ ३४
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वꣳ युधो नरा इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३५
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यूर्ध्वधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३६
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ ३७
अभि गोत्राणि सहसा गाहमान आदायो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ३८

[तमिद्गर्भं०...तस्थुः । ऋ. १०,८२,६; तै. सं. ४,६,२,३ । न तं०... श्चरन्ति । ऋ. १०,८२,७; तै. सं. ४,६,२,२; नि. १४,१०]

[४] मै. ३,३,८ । तै. ४,६.३-४ । काठ. १८,३,५ । कपि. २८,३,५ । वा. १७,५०-५२,३३-४१,४३ । काण्व. १८, ५०-५२,३३-४१,४३ । मा. श्रौ. ६,२,५ । [उद्देनमुत्तरं (रां)... कृधि । अथर्व. ६,५,१ । इन्द्रेमं०... असत् । अथर्व. ६,५,२ । यस्य कुर्मो०... । ऋ. १०,१७३,३; अथर्व. ६,५,३;८७,३ । तस्मै देवा असत् । अथर्व. ६,५,२ । यस्य कुर्मो०... । ऋ. १०,१७३,३, अथर्व. ६,८७,३;५,३; तै. ब्रा. २,४,२,९ । आशुः (सोमो)० ... ब्रह्मणस्पतिः । ऋ. १०,१०३,१; सा. १८४९; अथर्व. १९,१३,२, तै. सं. ४,६,४,१; नि. १,१५ । संक्रन्दशिशानो०... । ऋ. १०,१०३,१; सा. १८५०; अथर्व. १९,१३,३; तै. सं. ४,६,४,१ । स इषुहस्तै०... नेना०... वृष्णा । ऋ. १०,१०३,२; सा. १८५०; अथर्व. १९,१३,४; तै. सं. ४.६,४,२ । बृहस्पते परि०...रथानाम् । रस्ता । ऋ. १०,१०३,३, सा. १८५१; अथर्व. १९,१३,४; तै. सं. ४,६,४,१ । अभि गोत्राणि०...युत्सु । ऋ. १०, ऋ. १०,१०३,४, सा. १८५२, अथर्व. १९,१३,८; तै. सं. ४,६,४,१ । १०३,७; सा. १८५५, अथर्व. १९,१३,७; तै. सं. ४,६,४,२]

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥ ३९
गोत्रभिदं गोविदꣳ वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनु संꣳरभध्वम् ॥ ४०
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ४१
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳ शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ४२
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकꣳ या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकꣳ वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मानु देवा अवता भरेष्वा ॥ ४ ॥ ४३
उदु त्वा ॥ ४४
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ ४५
समिद्धे अग्ना अधि मामहान उक्थपत्रा ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमशमन्त देवाः ॥ ४६
दैव्याय धात्रे देष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपात् । परिगृह्य यज्ञमायन् ॥ ४७
हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुरस्तात् सविता ज्योतिरुदयां अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्संपश्यन् विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ ४८
देवा देवेष्वध्वर्यन्तो अस्थुर्वीतꣳ शमित्रा शमितꣳ यजध्यै ॥ ४९
तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५०

[बलविज्ञायः०... गोवित् (गोविदन्) । ऋ. १०,१०३.५; सा. १८५३; अथर्व. ८,५,१. १९,१३,५। तै. सं. ४,६,४,२ । गोत्रभिदं०...रभध्वम् । ऋ. १०.१०३.६; सा. १८५४, अथर्व. ६.९७,३;१९,१३,६; तै. सं. ४,६,४,२ । इन्द्र एषां (आसां) नेता०...मध्ये । ऋ. १०,१०३,८; सा. १८५६, अथर्व. १९,१३,९; तै. सं. ४,६.४,३ । इन्द्रस्य वृष्णो०...मुदस्थात् । ऋ. १०,१०३,९, सा. १८५७; अथर्व. १९,१३,१०, तै. सं. ४,६.४,३ । अस्माकमिन्द्रः०...भरेष्वा (इषेषु)]

[५] मै. ३,३,८ । तै. ४,६,३ । काठ. १८,३ । कपि. २८,३,५ । वा. १७,५३-६३,२,१५;१२,३२,५६;१३,५८;१४, १०;१५,६१;२२,३२ । काण्व. १८,५३-६३;२,३०;१२,३२,५७;१६,८२; मा. श्रौ. ६,२,५ । [हरिकेशः सूर्यरश्मिः (सूर्यरश्मिर्हरि०)... गोपाः । ऋ. १०,१३९,१; तै. सं. ४,६,३,३]

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमꣳ रथीनाꣳ वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५१
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५२
उक्षा समुद्रे अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ५३
सहस्रहृदयेऽश्ना च वशाचक्षुदुरिद्रिवो देवं आ च वक्षत् ।
देवहृदये आ च वशाचक्षुदुरिद्रिवो देवं आ च वक्षत् ॥ ५४
वाजस्य मा प्रसवेनेति द्वे ॥ ५ ॥ ५५
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवः पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ ५६
प्राचीमनु ॥ ५७
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवायतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सह स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ५८
पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ५९
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याꣳ रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञꣳ ये विश्वतोधारꣳ सुविद्वाꣳसो वितेनिरे ॥ ६०
नक्तोषासा,—ऽग्ने सहस्राक्ष ॥ ६१
सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद् दृꣳह ॥ ६२

[इन्द्रं विश्वा० ...पतिम् । ऋ. १,११,१; सा. ३४३;८२७; तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५ । विमान (नृचक्षा) एष०...केतुम् । ऋ. १०,१३९,२; तै. सं. ४,६,३,३ । उक्षा समुद्रे (समुद्रो)०...त्यन्तौ । ऋ. ५,४७,३; तै. सं. ४,६,३,३]

[६] मै. ३,३,९ । तै. ४,६,५ । काठ. १८,४ । कपि. २८,४ । वा. १७,६५-७१;१२,१ । काण्व. १८,६५-७८;१३,१ । मा. श्रौ. ६,२,५ । [क्रमध्वमग्निना०...राध्वम् । अथर्व. ४,१४,२ । अग्ने प्रेहि०...स्वस्ति । अथर्व. ४,१४,५ । पृथिव्या अहमुदन्त०... महम् । अथर्व. ४,१४,३ । स्वर्यन्तो नापेक्षन्ता०— वितेनिरे । अथर्व. ४,१४,४ । अथर्व. ४,१४,५ । नक्तोषासा समनसा०। ऋ. १,९६,५; तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२,७,१२,३]

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वꣳ योनिमासीद साध्या ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६३
ताꣳ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहꣳ वृणे सुमतिꣳ विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनाꣳ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ६४
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजा तं प्र त्वे समिद्धे जुहुरे हवीꣳषि ॥ ६५
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । ताꣳ शश्वन्ता उपयन्ति वाजाः ॥ ६६
अग्ने तमद्य, सप्त ते अग्ने ॥ ६७
चित्तिं जुहोमि मनसा यथा देवा इहागमन् । वीतिहोत्रा ऋतावृधः ॥ ६८
समुद्रस्य वो वयुनस्य पत्मन् जुहोमि विश्वकर्मणे । विश्वाहादाभ्यꣳ हविः ॥६॥ ६९
[१३०९]

॥ इति मध्यमकाण्डे दशमः प्रपाठकः ॥ १० ॥

अथैकादशः प्रपाठकः ।

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च, सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माꣳश्च, सत्यश्च ऋतपाश्चात्यꣳहाः,
ऋतजिच्च सत्यजिच्च, सेनजिच्च सुषेणश्चा,—ऽन्तिमित्रश्च दूरेऽमित्रश्च, गणं ऋतश्च सत्यश्च,
ध्रुवश्च धरुणश्च, धर्ता च विधर्ता च विधारय, ईदृङ् चैतादृङ् च, सदृङ् च प्रतिसदृङ् च,
मितश्च संमितश्च संभरा, ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः, सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासा एतन,
मितासश्च संमितासो न ऊतये संभरसो मरुतो यज्ञे अस्मि,—न्निन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो,
यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्नेवमिमꣳ यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो
भवन्तु ॥ १ ॥ १
वाजश्च मे प्रसवश्च मे, प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे, धीतिश्च मे क्रतुश्च मे, स्वरश्च मे

[ताꣳ सवितुर्वरेण्य०... गाम् । अथर्व. ७,१५,१ । विधेम ते परमे०...हवीꣳषि । ऋ. १,९,३; तै. सं. ४,६,५,४ । प्रेद्धो अग्ने०...वाजाः । ऋ. ७.१,३; सा. १३७५; तै. सं. ४,६,५,४ । अग्ने तमद्य (०याश्वं) ०...ओहैः । ऋ. ४,१०,१; सा. ४३४,१७७७; तै. सं. ४,४,४,७]

[१] तै. ४,६,५ । काठ. १८,६ । कपि. २८,६ । वा. १७,८०-८४,८६ । काण्व. १८,८०-८४.८६ । मा. श्रौ. ६,१,५ ।
[२] मै. ३,४,१ । तै. ४,७,१-२ । काठ. १८,७ । कपि. २८,७ । वा. १८,१-४ । काण्व. १९,१३-१६ । मा. श्रौ. ६,२,५ ।

श्लोकश्च मे, श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे, ज्योतिश्च मे स्वश्च मे, प्राणश्च मेऽपानश्च मे, व्यानश्च मेऽसुश्च
मे, चित्तं च म आधीतं च मे, वाक् च मे मनश्च मे, चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे, दक्षश्च मे
बलं च म, ओजश्च मे सहश्च म, आयुश्च मे जरा च म, आत्मा च मे तनूश्च मे, शर्म
च मे वर्म च मे, ऽङ्गानि च मेऽस्थानि च मे, परूꣳषि च मे शरीराणि च मे,
ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे, मन्युश्च मे भामश्च मे, ऽमश्च मेऽम्भश्च मे, जेमा च मे
महिमा च मे, वरिमा च मे प्रथिमा च मे, वर्ष्मा च मे द्राघ्मा च मे, वृद्धं च मे वृद्धिश्च
मे ॥ २ ॥
२
सत्यं च मे श्रद्धा च मे, जगच्च मे धनं च मे, वशश्च मे त्विषिश्च मे, क्रीडा च मे मोदश्च
मे, सूक्तं च मे सुकृतं च मे, जातं च मे जनिष्यमाणं च मे, वित्तं च मे वेद्यं च मे,
भूतं च मे भव्यं च म, ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे, सुगं च मे सुपथं च मे, क्लृप्तं च मे
क्लृप्तिश्च मे, मतिश्च मे सुमतिश्च मे, शं च मे मयश्च मे, प्रियं च मेऽनुकामश्च मे,
कामश्च मे सौमनसश्च मे, भगश्च मे द्रविणं च मे, भद्रं च मे श्रेयश्च मे, वसीयश्च मे यशश्च
म, ऋतं च मेऽमृतं च मे, ऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे, जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मे,
ऽनमित्रं च मेऽभयं च मे, सुखं च मे शयनं च मे, सूषाश्च मे सुदिनं च मे ॥ ३ ॥ ३
यन्ता च मे धर्ता च मे, क्षेमश्च मे धृतिश्च मे, विश्वं च मे महश्च मे, संविच्च मे ज्ञात्रं
च मे, सूश्च मे प्रसूश्च मे, सीरं च मे लयश्च म, ऊर्क् च मे सूनृता च मे, पयश्च मे रसश्च
मे, घृतं च मे मधु च मे, सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे, कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे, जैत्रं च म औद्भिद्यं
च मे, रयिश्च मे रायश्च मे, पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे, विभु च मे प्रभु च मे, पूर्णं च मे
पूर्णतरं च मे, कुयवं च मेऽक्षितिश्च मे, ऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे, व्रीहयश्च मे यवाश्च मे,
माषाश्च मे तिलाश्च मे, ऽणवश्च मे प्रियङ्गवश्च मे, श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे, गोधूमाश्च
मे मसूराश्च मे, खल्वाश्च मे खलकुलाश्च मे ॥ ४ ॥
४
पर्वताश्च मे गिरयश्च मे, सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे, ऽश्मा च मे मृत्तिका च मे,
हिरण्यं च मेऽयश्च मे, सीसं च मे त्रपु च मे, श्यामं च मे लोहितायसं च मे, ऽग्निश्च म

[३] तै. ४,७,२-३ । काठ. १८,८-९ । कपि. २८,८-९ । वा. १८,५-६,८,११ । काण्व. १९,१७-१८,२०,२२ ।
[४] तै. ४,७,३-४ । काठ. १८,९ । कपि. २८,८-९ । वा. १८,७,९,१०,१२ । काण्व. १९,१९,२१,२३-२४ ।
[५] तै. ४,७,५-८ । काठ. १८,१०-११ । कपि. २८,१०-११ । वा. १८,१३-२१ । काण्व. १९,२५-३३ ।

आपश्च म, ओषधयश्च मे वीरुधश्च मे, कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे, ग्राम्याश्च मे पशव
आरण्याश्च यज्ञेन कल्पन्ताꣳ, वित्तं च मे वित्तिश्च मे, भूतं च मे भूतिश्च मे, ऽर्थश्च म एम
च म, इत्या च मे गतिश्च मे, कर्म च मे शक्तिश्च मे, वसु च मे वसतिश्च मे, ऽग्निश्च
म इन्द्रश्च मे, सोमश्च म इन्द्रश्च मे, सविता च म इन्द्रश्च मे, सरस्वती च म इन्द्रश्च
मे, पूषा च म इन्द्रश्च मे, ऽदितिश्च म इन्द्रश्च मे, धाता च म इन्द्रश्च मे, त्वष्टा च म
इन्द्रश्च मे, मित्रश्च म इन्द्रश्च मे, वरुणश्च म इन्द्रश्च मे, विष्णुश्च म इन्द्रश्च मे, बृहस्पतिश्च
म इन्द्रश्च मे, वसवश्च म इन्द्रश्च मे, रुद्राश्च म इन्द्रश्च म, आदित्याश्च म इन्द्रश्च मे,
मरुतश्च म इन्द्रश्च मे, पृथिवी च म इन्द्रश्च मे, ऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे, द्यौश्च म
इन्द्रश्च मे, नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे, समा च म इन्द्रश्च मे, कृषिश्च म इन्द्रश्च मे,
वृष्टिश्च म इन्द्रश्च मे, दिशश्च म इन्द्रश्च मे, विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे, ऽꣳशुश्च मे रश्मि-
श्च मे, ऽधिपतिश्च मेऽदाभ्यश्च म, उपाꣳशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म, ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुण-
श्च म, आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे, शुक्रश्च मे मन्थी च म, आग्रायणश्च मे वैश्वदेवश्च
म, ऐन्द्राग्नश्च मे क्षुल्लकवैश्वदेवश्च मे, ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे, मरुत्वतीयाश्च मे निष्केव-
ल्यश्च मे, सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे, पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे, स्रुचश्च मे
चमसाश्च मे, वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे, ऽधिषवणे च मे ग्रावाणश्च मे, पूतभृच्च मे
ऽपूतभृच्च मे, बर्हिश्च मे वेदिश्च मे, ऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे ॥ ५ ॥ ५
अग्निश्च घर्मश्चा,—ऽर्कश्च सूर्यश्च, प्राणश्चाश्वमेधश्चा,—ऽदितिश्च पृथिवी च, दितिश्च द्यौश्च,
शक्वरीरङ्गुलयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ता,—मृतश्च व्रतं च, सꣳवत्सरश्च तपश्चा,—ऽहोरात्रे
ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पेता,—मेका च तिस्रश्चा त्रयस्त्रिꣳशत,—श्चतस्रश्चाष्टौ चाष्टा-
चत्वारिꣳशत,—स्त्र्यविश्च त्र्यवी च, दित्यवाट् च दित्यौही च, पञ्चाविश्च पञ्चावी च, त्रिव-
त्सश्च त्रिवत्सा च, तुर्यवाट् च तुर्यौही च, पष्ठवाट् च पष्ठौही चो,—क्षा च वशा च,
ऋषभश्च वेहच्च, धेनुश्चानड्वाꣳश्च, स्तोमश्च यजुश्चा, ऋक् च साम च, दीक्षा च
तपश्च, बृहच्च रथन्तरं चौ,—षधयो वनस्पतयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ता,—मन्नाय त्वा,
वाजाय त्वा, वाजजित्यायै त्वे,—षे त्वो,—र्जे त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा ॥६॥ ६
[१३१५]

॥ इति मध्यमकाण्डे एकादशः प्रपाठकः ॥ ११ ॥

[६] मै. ३,४,१ । तै. ४,७,९-११ । काठ. १८,११-१२ । कपि. २८,११;२९,१ । वा. १८,२२-२९;१,२,१४, १९ । काण्व. १९,३४-३९,४१,४३,१५,२४;१,११ मा. श्रौ. ६,२,५ । [बृहच्च रथन्तरं (च) । अथर्व. ८,१०,६]

अथ द्वादशः प्रपाठकः।

विश्वे नो अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे नो देवा अवसागमन्निह विश्वमस्तु द्रविणꣳ वाजो अस्मे ॥ १
वाजो मे सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः। वाजो मा विश्वैर्देवैर्धनसाता इहावतु ॥ २
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवानृतुभिः कल्पयाति।
वाजस्य हि प्रसवे नन्नमीति विश्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३
वाजो मे अद्य प्रसुवाति दानꣳ वाजो देवान् हविषा वर्धयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ४
सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।
सोऽहꣳ वाजꣳ सनेयमग्ने ॥ ५
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ १ ॥ ६

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्व,—स्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदा नाम, स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु,
ता न इदं ब्रह्म क्षत्रं पान्तु, तस्मै स्वाहा वट्, ताभ्यः स्वाहा वट्, सꣳहितो विश्वसामा
सूर्यो गन्धर्व,—स्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम, सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व,—स्त-
स्य नक्षत्राण्यप्सरसो बेकुरयो नाम,—षिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्व,—स्तस्यापोऽप्सरसा ऊर्जो
नाम, भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्व,—स्तस्य दक्षिणा अप्सरसा एष्टयो नाम, बृहस्पतिर्विश्वकर्म-
न्द्रो गन्धर्व,—स्तस्य मरुतोऽप्सरसा ओजो नाम, प्रजापतिः परमेष्ठी मनो गन्धर्व,—स्तस्य
ऋक्सामान्यप्सरसः स्तवा नामा,—ऽमृडयो दूरेहेतिर्मृत्युर्गन्धर्व,—स्तस्य प्रजा अप्सरसो भीरवो
नाम, स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा विराट्पतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म
यछ, यस्य ते विश्वा आशा अप्सरसः प्लीया नाम स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु, ता न इदं ब्रह्म
क्षत्रं पान्तु, तस्मै स्वाहा वट्, ताभ्यः स्वाहा वट् ॥ २ ॥ ७
समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः, शंभूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा,—ऽवस्युरसि दुवस्वान्, शंभू-
र्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा, मारुतोऽसि मरुतां गणः, शंभूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा,

[१] मै. ३,४,३। तै. ४,७,१२। काठ. १८,१३। कपि. २९,२। वा. १८,३१-३६;३३,५२। काण्व. २०,२-७;३२,५२। मा. श्रौ. ६,२,५। [विश्वे (नो) अद्य मरुतो०...अस्मे। ऋ. १०,३५,१३; तै. सं. ४,७,१२,१]
[२] तै. ३,४,७। काठ. १८,१४। कपि. २९,३। वा. १८,३८-४४। काण्व. २०,८-१४। मा. श्रौ. ६,२,५।

सजूरब्दा आयवभिः, सजूरुषा अरुणीभिः, सजोषा अश्विना दꣳसोभिः, सजूः स्वरा
एतशेन, सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥ ८
अग्निꣳ युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसं बृहन्तम्।
तेन वयं पतेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाक उत्तमे ॥ ९
इमौ ते पक्षा अजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने।
ताभ्याꣳ वयं पतेम सुकृतामु लोकꣳ यत्रा ऋषयो जग्मुः प्रथमा ये पुराणाः ॥ १०
इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः।
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ११
दिवो मूर्धासि नाभिः पृथिव्या ऊर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः ॥ १२
समुद्रे ते हृदयमन्तरायुरपो दत्तोदधिं भिन्त।
दिवः पर्जन्यादन्तरिक्षात् पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्यावत ॥ १३
वि ते मुञ्चामि रशनाꣳ वि रश्मीन् वि योक्त्राणि परिचर्तनानि।
धत्तादस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्र मा ब्रूताद्भागदां देवतासु ॥ १४
इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्दा वसुभिः।
इष्टो अग्निराहुतः पिपर्तु न इष्टꣳ हविः स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥ ३ ॥ १५
येना ऋषयस्तपसा सत्रमासतेन्धाना अग्निꣳ स्वराभरन्तः।
यस्मादृमनवः स्तीर्णबर्हिषं तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निम् ॥ १६
तं पत्नीभिरनुगछेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ १७
आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुताꣳ ये पृतन्यवः ॥ १८
अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो ज्योततामप्रयुछन्।

[३] मै. ३,४,४-५। तै. ४,७,१२-१३। काठ. १८,१४;१५,१८। कपि. २९,३-४। वा. १८,४५;११,७४;१८,५१-५७। काण्व. २०,१५,१३,७५;२०,२१-२७। मा. श्रौ. ६,२,५-६। [वि ते मुञ्चामि०...देवतासु। अथर्व. ७,७८,१—२]

विभ्राजमानः सलिलस्य मध्या उप प्रयाहि दिव्यानि धामन् ॥ १९
अग्ने च्यवस्व समनुप्रयाह्याविष्पथो देवयानान् कृणुष्व।
इदमिदꣳ सुकृतमारभस्व यत्रा ऋषयो जग्मुः प्रथमा ये पुराणाः ॥ २०
संप्रच्यवध्वमुप संप्रयाताविष्पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
एभिः सुकृतैरनुगछेम देवा यत्र नः पूर्वे पितरः परेताः ॥ २१
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृह्येनमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
पुनः कृण्वन्तः पितरो युवानोऽन्वाताꣳसुस्त्वं तन्तुमेतम् ॥ २२
येन वहसि सहस्रꣳ येनाग्ने सर्ववेदसम्। तेनेमꣳ यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ २३
२४
अयं ते ॥ ४ ॥
समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु सꣳवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ २५
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २६
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने सꣳवरणे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद्भव स्वे गये जागृह्यप्रयुछन् ॥ २७
इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन् पूर्वचित्तो निकारिणः।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ २८
क्षत्रेणाग्ने स्वेन सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठेयाय राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ २९
अति निहो अति स्रिधो अत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यꣳ सहवीरꣳ रयिं दाः ॥ ३०

[४] तै. ४,७,१३। काठ. १८,१८। कपि. २९,६। वा. १५,४९-५६;१८,६१-६२;३,१४;१२,५२। काण्व. १६,७१-७८;२०,३१-३२,३,२०;१३,५३। मा. श्रौ. ६,२,६। [येन वहसि०...गन्तवे। अथर्व. ९,५,१७। अयं ते०। ऋ. ३,२९,१०; अथर्व. ३,२०,१; तै. सं. १,५,५,२;४,२,४,३;७,१३,५; तै. ब्रा. १,२,१,१६;२,५,८,८]
[५] मै. ३,४,६। तै. ४,१,७। काठ. १८,१६। कपि. २९,४। वा. २७,१—१०;२०,२१;३५,१४;३८,२४। काण्व. २९,१—१०;२२,६;३५,४७;३८,२४। [समास्त्वाग्न०...। अथर्व. २,६,१। सं चेध्यस्वाग्ने०...मान्य। अथर्व. २,६,२। त्वामग्ने वृणते०...प्रयुच्छन्। अथर्व. २,६,३। इहैवाग्ने अधि०......अनिष्टृतः। अथर्व. २,६,४। अति निहो०...दाः। अथर्व. २,६,५। अथर्व. ७,८२,३। क्षत्रेणाग्ने स्वायु०...दीदिहीह। अथर्व. २,६,४।]

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह।
व्यमीवाः प्रमुञ्चन्मानुषाणाꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे ॥ ३१
बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितं चित्संतरꣳ सꣳशिशाधि।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्वे चैनमनुमदन्तु देवाः ॥ ३२
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यूहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ३३
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ५ ॥ ३४
ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीꣳष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ३५
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेभ्यो देवयानान् पथो अनक्तु मध्वा घृतेन।
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रीणानः ॥ ३६
नराशꣳसो अग्निः सुकृद्देवः सविता विश्ववारः। अछायमेति शवसा घृतेन ॥ ३७
ईडानो वह्निर्नमसाग्निꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु। स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ॥ ३८
स ई मन्द्रा सुप्रयसा स्तरीमन्। बर्हिषो मित्रमहाः। वसुश्रेष्ठो वसुधातमश्च ॥ ३९
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वा व्रता ददन्ते अग्नेः। उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ ४०
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता। इमꣳ यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ ४१
दैव्या होतारा ऊर्ध्वमिममध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वाभिगृणीतम्। कृणुतं नः स्विष्टम् ॥ ४२

[अनाधृष्यो जातवेदा०...वृधे। अथर्व. ७,८४,१। शिवेभिरद्य०...वृधे। ऋ. ६,७१,३। बृहस्पते सवित०...देवाः। अथर्व. ७,१६,१। अमुत्रभूया०...शचीभिः। अथर्व. ७,५३,१। उद्वयन्तमसस्परि०...। ऋ. १,५०,१०; अथर्व. ७,५३,७; तै. सं. ४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,४,९;६,६,४; तै. आ. ६,३,२]
[६] मै. ३,४,६। तै. ४,१,८। काठ. १८,१७। कपि. २९,५। वा. २७, ११-२२। काण्व. २९,११-२२। [ऊर्ध्वा अस्य०...सूनोः। अथर्व. ५,२७,१। तनूनपादसुरो०...घृतेन। अथर्व. ५,२७,१-२। मध्वा यज्ञं०...। अथर्व. ५,२७,३। नराशꣳसो अग्निः०—घृतेन। अथर्व. ५,२७,३-४। ईडानो वह्निर्न०—मग्नेः। अथर्व. ५,२७,४-५। स ई (तरी) मन्द्रा०—वसुधातम(र) श्च। अथर्व. ५,२७,६। द्वारो देवी०—पत्यमाना। (ने)। अथर्व. ५,२७,७-८। आ सुष्वयन्ती यजते उपाके। ऋ. १०,११,६; अथर्व. ५,२७,८;११,९; तै. ब्रा. ३,६,१,३; नि. ८,११। ते अस्य०—नः। अथर्व. ५,२७,८। दैव्या (देवा) होतारा०स्विष्टम्। अथर्व. ५,२७,९]

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदꣳ स्योनमिडा सरस्वती मही । भारती गृणाना ॥ ४३

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टः सुवीर्यम् । रायस्पोषꣳ विष्य नाभिमस्मे ॥ ४४

वनस्पतेऽवसृजा रराणस्त्मना देवेभ्यः । अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥ ४५

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय देवेभ्यः । विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ ६ ॥ ४६

[१३६१]

॥ इति मध्यमकाण्डे द्वादशः प्रपाठकः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशः प्रपाठकः ।

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमु शुचिꣳ शुचयो दीदिवाꣳसमपां नपातं परितस्थुरापः ॥ १

हिरण्यवर्णः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्य हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ २

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ।
अग्निꣳ या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥ ३

यासाꣳ राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥ ४

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षꣳ या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥ ५

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोपस्पृशत त्वचं मे ।
सर्वाꣳ अग्नीꣳरप्सुषदो हुवे मयि वर्चो बलमोजो नि धत्त ॥ ६

यददः संप्रयतीरहावनदता हते ।

[तिस्रो देवी०—गृणाना । अथर्व. ५,२७,९ । तन्नस्तुरी०—मस्मे । अथर्व. ५,२७,१०। वनस्पतेऽव०... सूदयाति (स्वदयतु)। अथर्व. ५,२७,११ । अग्ने स्वाहा०—जुषन्ताम्। अथर्व. ५,२७,१२]

[१] तै. ५,६,१ । काठ. ३६,२ ; वा. ११,४०-४२;३६;१४-१६;४;१३,१७,५४३, काण्व. १२,५१-५३;३६,१४-१६; ४,१८,२३;५,५४ । मा. श्रौ. ६,१,६ । [समन्या यन्त्युप०...तस्थुरापः । ऋ. २,३५,३; सा. ६०७; तै. सं. २,५,१२,१ । हिरण्यवर्णः (०रूपः) स०... मस्मै । ऋ. २,३५,१०; नि. ३,१६ । हिरण्यवर्णाः शुचयः०.. भवन्तु । अथर्व. १,३३,१ । यासाꣳ राजा वरुणो०... । ऋ. ७,४९,३, अथर्व. १,३३,२,४ । तै. सं. ५,६, १,१ । यासां देवा दिवि०... भवन्तु । अथर्व. १,३३,३ । शिवेन मा चक्षुषा०... । १,३३,४ । मधुश्चुतः (घृतश्चुतः) शुचयो०। ऋ. ७,४९,३; अथर्व. १,३३,४ । यददः संप्रयती०...सिन्धवः। अथर्व. ३,१३,१]

तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥ ७

संप्रच्युता वरुणेन यच्च् शीभꣳ समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठन ॥ ८

अपकामꣳ स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद्वार्नाम वो हितम् ॥ ९

एको वो देवो अप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ॥ १०

आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्नासाम् ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसागन् ॥ ११

आपो देवीर्घृतमिन्वा ऊ आपो अग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपꣳ यदा वः ॥ १२

आपो हि ष्ठेति तिस्रः ॥ दिवि श्रयस्वा,—ऽन्तरिक्षे यतस्व, पृथिव्याः संभव, भ्राजं
गच्छ ॥ १ ॥ १३-१४

तपो योनिरसि, विश्वाभिस्त्वा धीभिरच्छिद्रामुपदधाम्यृ,—तꣳ योनिः, सत्यꣳ योनि,—
र्ब्रह्म योनिः, क्षत्रꣳ योनिः, पृथिवी योनि,—रन्तरिक्षꣳ योनि,—र्द्यौर्योनि,—र्दिशो
योनिः ॥ २ ॥ १५

प्राणादपानꣳ संतन्व,—पानाद्व्यानꣳ संतनु, व्यानाच्चक्षुः संतनु, चक्षुषः श्रोत्रꣳ संतनु,
श्रोत्रात् पृथिवीꣳ संतनु, पृथिव्या अन्तरिक्षꣳ संतन्व,—न्तरिक्षाद्दिवꣳ संतनु, दिवो दिशः
संतनु, दिग्भ्यः स्वर्गं लोकमनुसंतनु ॥ ३ ॥ १६

[संप्रच्युता (यत्प्रेषिता)०...अनुष्ठन । अथर्व. ३,१३,२ । अपकामꣳ स्यन्दमाना०... हितम्। अथर्व. ३,१३,३ । एको वो देवो०...मुच्यते । अथर्व. ३,१३,४ । आदित्पश्याम्युत०...साम् । अथर्व. ३,१३,६ (प्र. च.) । तीव्रो रसो०...सागन् (गमेत्) । अथर्व. ३,१३,५ (द्वि. च.) । आपो देवी (भद्रा) घृत ०...इत्ताः । अथर्व. ३,१३,५ (प्र. च.) । मन्ये भेजानो०...... यदा वः । अथर्व. ३,१३,६ (द्वि. च)। आपो हि ष्ठा०... चक्षसे । ऋ. १०,९,१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. ४,१,५,१;५,६,१,४;७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०,१,११; नि. ९,२७। यो व शिव०...मातरः। ऋ. १०,९,२; सा. १८३८; अथर्व. १,५,२; तै. सं ४,१,५,१;७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०,१,११ । तस्मा अरंगमाम०...यथाचनः। ऋ. १०,९,३; सा. १८३९; अथर्व. १,५,३; तै. सं. ४,१,५,१;५,६,१,४;७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०,१,११]

[२] मै. ३,२,६ । काठ. ३९,२ ।

[३] तै. आ. १,५,७ । काठ. ३९,८ ।

ऋचा त्वा छन्दसा सादयामि, वषट्कारेण त्वा छन्दसा सादयामि, हिंकारेण त्वा छन्दसा
सादयामि, प्रस्तावेन त्वा छन्दसा सादयाम्यु,—द्गीथेन त्वा छन्दसा सादयामि, प्रतिहारेण
त्वा छन्दसा सादयामि, स्तुतेन त्वा छन्दसा सादयामि, निधनेन त्वा छन्दसा साद-
यामि ॥ ४ ॥
१७

दूतꣳ वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १८

अगन्म महा नमसा यविष्ठꣳ यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुꣳ रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतꣳ विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १९

अयमिह ॥
२०

दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् । परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ २१

ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ५ ॥ २२

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ २३

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ २४

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ २५

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रꣳ वाणीरनूषत ॥ २६

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यꣳ रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ २७

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २८

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ २९

[५] मै. ब्रा. ३,११,६,३; तै. सं. ३,३,२,३; ४,१२,७; ४,४,४,६; ५,१३,७,८ काठ. १२,१५,३९,१३। वा. ३,१५; १५,३६;३३,६ । काण्व. ३,४१,१६,४७,३२,६ । [दूतꣳ यो विश्व०.. गिरा । ऋ. ४,८,१; सा. १२। अगन्म महा नमसा०...प्रत्यञ्चम्। ऋ. ७,१२,१; सा. १३०४; तै. ब्रा. ३,११,६,२ । अयमिह०...। ऋ. ४,७,१; तै. सं. १,५,५,१ । दधन्वे वा०...भुवत् । ऋ. २,५,३; सा. ९४ । ओभे (उभे) सुश्चन्द्र०...आभर । ऋ. ५,६,९; सा. १०४२]

[६] काठ. ३९,१२ । तै. ब्रा. १,५,८,१-२ । [इन्द्रो दधीचो०...नव । ऋ. १,८४,१३; सा. १७९;९१३; अथर्व. २०,४१,१ । अत्राह गोरमन्वत०...गृहे । ऋ. १,८४,१५; सा. १४७,९१५; अथर्व. २०,४१,३; नि. ४,२५ । इच्छन्नश्वस्य०...वति । ऋ. १,८४,१४; सा. ९१४, अथर्व. २०,४१,२ । इन्द्रमिद्गाथिनो०...नूषत । ऋ. १,७,१; सा. १९८,७९६; अथर्व. २०,३८,४;४७,४;७०,७; तै. सं. १६,१२,२; नि. ७,२ । इन्द्रो दीर्घाय०... रयत् । ऋ. १,७,३; सा. ७९९; अथर्व. २०,३८,६;४७,६;७०,९ । इन्द्रा (इन्द्र) इद्धर्यो०... । ऋ. १,७,२; सा. ५९७,७९७; अथर्व. २०,३८,५;४७,५;७०,८ । इन्द्र वाजेषु०...रूतिभिः । ऋ. १,७,४; सा. ५९८,७९८; अथर्व. २०,७०,१०]

तमिन्द्रꣳ वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ३०

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ३१

गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ६ ॥ ३२

अयमग्निः सहस्रिणो, ऽग्निर्मूर्धा, त्वामग्ने पुष्करादधि ॥ ३३

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ३४

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ ३५

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ ३६

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ ३७

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ् शिश्रियाणꣳ वने वने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ ३८

तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमꣳ वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शꣳ हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरापृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ३९

सꣳ समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ४०

[तमिन्द्रꣳ वाजयामसि०...भुवत् । ऋ. ८,९३,७; सा. ११९,१२२२, अथर्व. २०,४७,१,१३७,१२, तै. ब्रा. २,४,१,३ । इन्द्रः स दामने०...सोम्यः । ऋ. ८,९३,८; सा. १२२३; अथर्व. २०,४७,२;१३७,१३। गिरा वज्रो न०...अस्तृतः । ऋ. ८,९३,९; सा. १२२४, अथर्व. २०,४७,३,१३७,१४]

[७] तै. ४,४,४;१,८,२२,३ । काठ. ३९,१४, (२,१५;११,१२), वा. १५,२०-२२;२४—२५,२७-२८,३०-३१, ४१-४२;३,१२;१३,१४,११,३२,३६,७। काण्व. ३,१८;१४,१४;११,३२;१६,४१-४३,४६,४८-४९,५१,५३,६१-६४;३६,७ । [अयमग्निः सहस्रिणो०...। ऋ. ८,७५,४; तै. सं. २,६,११,१;४.४,४,१ । अग्निर्मूर्धा दिवः०। ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२; तै. सं. १,५,५,१;४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१ । त्वामग्ने पुष्करादधि०। ऋ. ६,१६,१३; सा. ९, तै. सं. ३,५,११,३;४,१,३,२;४,४,१ । अबोध्यग्निः समिधा०...मछ (०च्छ)। ऋ. ५, १,१; सा. ७३,१७४६; अथर्व. १३,२,४६; तै. सं. ४,४,४,१ । अवोचाम कवये०... । ऋ. ५,१,१२, तै. सं. ४, ४,४,१ । अबोधि होता०...मोचि । ऋ. ५,१,२; सा. १७४७; नि. ६,१३ । जनस्य गोपा०... शुचिः । ऋ. ५,११,१; सा. ९०७; तै. सं ४,४,४,२ । त्वामग्ने अङ्गिरसो०... मङ्गिरः । ऋ. ५,११,६; सा. ९०८; तै. सं. ४,४,४,२ । तुभ्येदमग्ने०... । ऋ. ५,११,५ । सꣳ समिद्युवसे० भर । ऋ. १०,१९१,१; अथर्व. ६,६३,४, तै. सं २,६,११,४;४,४,४]

अग्निं॑ वः पूर्व्यं गिरा देवमीडे वसूनाम् । सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ ४१
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ४२
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तꣳ यꣳ यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४४
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सꣳ यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ७ ॥ ४५
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमाहुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरꣳ विश्वस्य दूतममृतम् ॥
४६
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वꣳ होता नो अध्वरे । त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ४७
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णाꣳ विवष्ट्वासिचम् । उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥
४८
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४९
स इधानो वसुः कविरग्निरीडेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५०
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ५१
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ५२
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीरृतस्य बृहतो बभूथ ॥ ५३

[अग्निꣳ वः पूर्व्यं गिरा०...। ऋ. ८,३१,१४, तै. सं. १,८,२२,३ । त्वां चित्रश्रवस्तम०...वोढवे । १,४५,६; तै. सं. ४,४,४,३ । आ ते अग्न०...आभर । ऋ. ५,६,४; सा. ४१९,१०२१; अथर्व. १८,४,८८; तै. सं. ४,४,४,६ । अग्निं तं मन्ये०...आभर । ऋ. ५,६,१; सा. ४२५,१७३७ । सो अग्निर्यो०... आभर । ऋ. ५,६,२, सा. १७३९ । स्तोतृभ्या (०भ्य) आभर । ऋ. ५,६,१,२,९;८,९३,१९; सा. १५८६]
[८] तै. ४,४,४ । काठ. ३९,१५ । वा. १५,३२-३३,३५-३७,४४-४५,४७;१०,२४,१२,१४;४,२५;३,२५,१५,४८, २५,४७ । काण्व. १६,५४-५५,५७-५९,६६-६७,६९,११,३४;१३,१५;४,३४;३,३३;१६,७०;२७,४५ । [एना वो अग्नि०.. मृतम् । ऋ. ७,१६,१; सा. ४५,७४९; तै. सं. ४,४,४,४; नि. ३,२१ । त्वमग्ने गृहपति०... वार्यम् । ऋ. ७,१६,५; सा. ६१ । अग्ने वाजस्य गोमता (तः)० । ऋ. १,७९,४; सा. ९९,१५६१, तै. सं. ४,४,४,५। स इधानो०...दीदिहि । ऋ. १,७९,५; सा. १५६२, तै. सं. ४,४,४,५। क्षपो राजन्नुत०...प्रति। ऋ. १,७९,६; सा. १५६३; तै. सं. ४,४,४,५ । अग्ने तमद्याश्वं०...ओहैः । ऋ. ४,१०,१; सा. ४३४,१७७७, तै. सं. ४,४,४,७ । अधा ह्यग्ने०...बभूथ । ऋ. ४,१०,२; सा. १७७८, तै. सं. ४,४,४,७]

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्त शुष्माः ॥ ५४
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तꣳ वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसꣳ विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिषः ॥ ५५
आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ हꣳसः शुचिषत्,—दृभिं त्वं देवꣳ सवितर्,—अग्ने त्वं नो अन्तमः ॥
अधा ह्यग्ने, एना ह्यग्ने ॥ ८ ॥ ५६-५८
आयाहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ५९
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ६०
ब्रह्माणस्त्वा वयꣳ युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ६१
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ६२
न त्वावं अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ६३
त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः । त्वाꣳ वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥
६४
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ६५
कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ६६

[आभिष्टे अद्य०...शुष्मैः। ऋ. ४,१०,४; तै. सं. ४,४,४,७। अग्निꣳ होतारं मन्ये०...सर्पिषः। ऋ. १,१२७ १; सा. ४६५, १८१३; अथर्व २०,६७,३; तै. सं. ४.४.४,८; नि. ६.८ । हꣳसः शुचिषद्०। ऋ. ४,४०,५; तै. सं. १,८ १५,२;४.२,१,५; तै. आ. १०,१०.२। अभि त्वं देवꣳ० । अथर्व ७.१४,१ । अग्ने त्वं नो अन्तमः०। ऋ. ५ २४,१; सा. ४४८,११०७; तै. सं. १,५.६.२;४,४,४,८ । अधा ह्यग्न० । ऋ. ५,१६.४]
[९] मै. ४.१२,४ ५;४.९,२७; तै. २,४,१४,२-३;४.२,११.२;४.४,१२,५। तै. आ. ४,४२,३। काठ. ३९.१२। वा. २७ ३५ ४२,४४;३६.४-६ । काण्व. २९.४०-४८;३६,४ ६ । मा. श्रौ. ६,२.३ । [आयाहि शुषुमा०...। ऋ. ८,१७,१; सा. १९१ ६६६, अथर्व २०,३,१;३८,१;४७.७। आ त्वा ब्रह्मयुजा०...शृणु। ऋ. ८,१७,२, सा. ६६७ अथर्व. २०.३,२;३८,२;४७.८। ब्रह्माणस्त्वा वयꣳ०... महे ऋ. ८.१७,३; सा. ६६८, अथर्व. २०.३,३,३८,३;४७,९। अभि त्वा शूर०...तस्थुषः। ऋ. ७,३२,२२; सा. २३३,६८०; अथर्व. २०,१२१,१; तै. सं. २,४.१४ २ । न त्वावं (त्वावाँ) अन्यो०... महे। ऋ. ७,३२ २३; सा. ६८१; अथर्व. २०.१२१,२। त्वामिद्धि हवामह०... स्वर्वतः । ऋ. ६,४६,१; सा. २३४.८०९; अथर्व. २०.९८.१; तै. सं. २,४,१४.३। स त्वं नश्चित्र०... जिग्युषे। ऋ. ६,४६,२; सा. ८१०; अथर्व. २०.९८,२ । कया नश्चित्र०...वृता। ऋ. ४,३१ १; सा. १६९,६८२; अथर्व. २०,१२४.१; तै. सं. ४,२,११.२; तै. आ. ४,४२,२]

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ ६७
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६८
यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे ।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥ ६९
ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्ववितो भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ९ ॥ ७०
ऋतूनां पत्नी प्रथमेयमागादह्नां नेत्री जनित्र्युत प्रजानाम् ।
एका सती बहुधोषो व्युच्छाजीर्णा त्वं जरय सर्वमन्यत् ॥ ७१
को विराजो मिथुनत्वं प्रवेद ऋतून्को अस्याः क उ वेद रूपम् ।
दोहान्को वेद कतिधा विदुग्धाः कति धामानि कति ये विवासाः ॥ ७२
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत्साप्स्वन्तश्चरति प्रविष्टा ।
वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री त्रय एना महिमानः सचन्ते ॥ ७३
छन्दस्वती उषसा पेपिशाने समानꣳ योनिमनु संचरेते ।
सूर्यपत्नी विचरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ ७४
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मासो अनु रेतसागुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका क्षत्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ ७५
चतुष्टोममदधाद्या तुरीया यज्ञस्य पक्षा ऋषयो भवन्ती ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगती विराजमर्कꣳ युञ्जानाः स्वराभरन्निदम् ॥ ७६
पञ्चभिर्धाता विदधा इदं तासां स्वसृजनन्पञ्च पञ्च ।
तासामु यन्ति प्रयवेण पञ्च नाना रूपाणि क्रतवो वसानाः ॥ ७७
ऋतस्य धामन्प्रथमा व्युष्युपामेका महिमानं बिभर्ति ।
सूर्यस्यैका चरति निष्कृतानि घर्मस्यैका सवितैकां नियच्छते ॥ ७८

[कस्त्वा सत्यो मदानां०...वसु। ऋ. ४,३१,२; सा. ६८३; अथर्व. २०,१२४,२; तै. आ. ४,४२ ३। अभी षु णः०... भ्यूतिभिः (स्यूतये)। ऋ. ४ ३१,३; सा. ६८४; अथर्व. २०,१२४.३; तै. आ. ४.४२,३। यज्ञा यज्ञा वो०... ऋ. ६.४८.१; सा. ३५,७०३। ऊर्जो नपातꣳ०... ऋ. ६,४८ २;सा. ७०४] [को विराजो०...विवासाः (व्युष्टीः)। अथर्व. ८.९.१०। इयमेव सा
[१०] तै. ४,३.११। काठ ३९.१०। सा०... सचन्ते (जनित्री)। अथर्व. ८.९.११। छन्दस्वती (छन्दः पक्षे) उषसा (सा) रेतसा (०सा)। अथर्व. ८,९ १२। ऋतस्य पन्था०... यूनाम् अथर्व. ८९.१३। चतुष्टोम०(अग्नीषोमा०) ...भरन्निदम् (०न्तीम्। अथर्व. ८,९.१४]

इदꣳ श्रेयो मन्यमानो वा आगामहꣳ वो अस्मि सख्याय शेवः ।
समानजन्मा क्रतुरस्त्येकः सर्वः सर्वा विचरतु प्रजानन् ॥ ७९
भूयास्म ते सुमतौ विश्ववेदा आष्टाः प्रतिष्ठामविदो हि गाधम् ।
सत्यꣳ वदन्तीर्महिमानमापान्या वो अन्यामति मा प्रयुक्त ॥ ८०
रुशद्विधाना समना पुरस्तात्प्रजानती यामुमुषा अयासीत् ।
ब्रह्मद्विषस्तमसा देवनत्रूनभिवहन्ती विश्ववारा व्युवाट् ॥ ८१
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः समानमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ॥ ८२
त्रिꣳशत्स्वसारा उपयन्ति निष्कृतꣳ समानं केतुं प्रतिमुञ्चमानाः ।
ऋतूꣳस्तन्वते कवयः प्रजानतीर्मध्येछन्दसः परियन्ति भास्वतीः ॥ ८३
ज्योतिष्मतीः प्रतिमुञ्चते नभो देवी रात्री सूर्यस्य व्रतानि ।
विपश्यन्ति पशवो जायमाना नानारूपा मातुरस्या उपस्थे ॥ ८४
प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे ।
सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तराꣳ समाम् ॥ १० ॥ ८५
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ८६
त्वꣳ यविष्ठ दाशुषो नॄꣳष्पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ८७
अग्ने धामानि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनाꣳ विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ११ ॥ ८८
यवा अयवा ऊमा एवा अब्दः सगरः सुमेकौ, ऽग्ने कक्षां,—ग्ने किꣳशिला,—ऽग्ने दुधा,—ऽग्ने
वन्या,—ऽग्ने कक्ष्यं, या ता इषुर्युवा नाम तया विधेम, तस्यै ते नम,—स्तस्यास्त उप पत्सुवो
जीवा भूयास्म, तं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमस्या जम्भे दध्मः ॥ १२ ॥ ८९

[इदꣳ (इत्थं) श्रेयो०...प्रजानन । अथर्व. ८.९,२२ । पञ्च व्युष्टीरनु०... मेकम्। अथर्व. ८,९,१५ । प्रथमा ह व्युवास०... समाम्। अथर्व. २.१०.१]
[११] मै. ३,१६,४। तै. १,५,११,१। काठ. ४०.३;७,१६। वा. १८.७३,७७;१३,५२। काण्व. २०,४२,४६;१४,५४। [पृष्टो दिवि पृष्टो०...नक्तम्। ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. आ. ३.११.६,४। त्वꣳ यविष्ठ दाशुषो० त्मना। ऋ. ८.८४,३;सा. १२४६। अग्ने धामानि(भूरीणि)तव०... बन्धो। ऋ. ३,२०,३,तै. सं.३,१,११,६]
[१२] तै. ४.४.७.२;५,५,९। काठ. ४०,३। वा. १५,१५-१९;१६,६४-६६। काण्व. १६,३२,३४,३६,३८,४०;१७, ६४। मा. श्रौ. ६,२,३। [यं द्विष्मो०... दध्मः। अथर्व. ३,२७१-६]

यो अ३प्स्वन्तर्गग्नियों वृत्रे यः पुरुषे यो अश्मनि ।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतीꣳस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९०
यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्वयाꣳसि य आविवेश यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९१
येनेन्द्रस्य रथꣳ संबभूवुर्यो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
धीरो यः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२
विश्वादमग्निꣳ यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिग्रहीतारमाहुः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९३
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ९४
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ १३ ॥ ९५

मा छन्दः,—स्तत्पृथिवी छन्दः,—ग्निर्देवता, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा
सीद ॥ प्रमा छन्दः,—स्तदन्तरिक्षꣳ, वायुर्देवता, प्रतिमा छन्दः,—स्तद् द्यौः सूर्यो देवता,—
ऽस्त्रीवीश्छन्दः,—स्तद्दिशः, सोमो देवता, गायत्री छन्दः,—स्तदजा, बृहस्पतिर्देवता, त्रि-
ष्टुप्छन्दः,—स्तद्धिरण्यꣳ,—मिन्द्रो देवता, जगती छन्दः,—स्तद्गौः, प्रजापतिर्देवता,—ऽनुष्टुप्छन्दः,
—स्तदायुः,—मित्रो देवता,—ष्णिक्छन्दः,—स्तच्चक्षुः, पूषा देवता, विराट् छन्दः,—स्तदश्वो,
वरुणो देवता, बृहती छन्दः,—स्तत्कृषिः, पर्जन्यो देवता, पङ्क्तिश्छन्दः,—स्तत्पुरुषः, परमेष्ठी
देवता, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥ ९६–९७
पृथिव्यसि जन्मना वशा, साग्निं गर्भमधत्थाः, सा मया संभव,—ऽन्तरिक्षमसि जन्मना
वशा, सा वायुं गर्भमधत्थाः, सा मया संभव, द्यौरसि जन्मना वशा, सादित्यं गर्भम-
धत्थाः, सा मया संभव, नक्षत्राण्यसि जन्मना वशा, सा चन्द्रमसं गर्भमधत्थाः, सा
मया संभव, ऋगसि जन्मना वशा, सा साम गर्भमधत्थाः, सा मया संभव, विडसि

[१३] तै. ४,७,१४,७ । काठ. ४०,३,५ । [यो अप्स्वन्त० (ये अग्नयो०)...तत् । अथर्व. ३,२१,१ । यः सोमे अन्तर्यो०... । अथर्व. ३,२१,२ । येनेन्द्रस्य रथꣳ(य इन्द्रेण सरथं)... । अथर्व. ३,२१,३ । धीरो यः शक्रः (यो धीरः०) । अथर्व ३,२१,४ (द्वि. च.) । विश्वादमग्निꣳ यमु (यो देवो विश्वाद्यमु)० । अथर्व ३,२१,४ (प्र. च.) । यं जोहवीमि०...तत् । अथर्व. ३,२१,३ (द्वि. च.) । उक्षान्नाय वशान्नाय०...माग्नये । ऋ. ८,४३,११; अथर्व. ३,२१,६;२०,१,३; तै. सं. १,३,१४,७ । वैश्वानरज्येष्ठे०...तत् । अथर्व. ३,२१,६]
[१४] मै. २,८,३ । तै. ४,३,७,१ । काठ. ३९,४ । वा. १४,१८-२०;१९,५३;१३,१९,२४;१४,६,११,१४;१५,५८,६४ । काण्व. १५,१८-२२,१३,५४;१४,१९,२४;१५,५,१५,१६;१६,७२,८४]
[१५] काठ. ३९,८ । वा. ११,५८ । काण्व. १२,५६ । मा. श्रौ. ६,२,३]

जन्मना वशा, सा राजानं गर्भमधत्थाः, सा मया संभव, वागसि जन्मना वशा, सा
प्राणं गर्भमधत्थाः, सा मया संभवा,—ऽऽपोऽसि जन्मना वशा, सा यज्ञं गर्भमधत्थाः,
सा मया संभव ॥ १५ ॥
९८
या देव्यसीष्टके कुमार्युपशीवरी सा मोपशेष्व जायेव सदमित्पतिꣳ, या देव्यसीष्टके प्रफ-
र्व्युपशीवरी सा मोपशेष्व जायेव सदमित्पतिꣳ, या देव्यसीष्टके युवतिरुपशीवरी सा मोपशेष्व
जायेव सदमित्पतिꣳ, या देव्यसीष्टक आयुर्दाः प्राणदा अपानदा व्यानदाश्चक्षुर्दाः श्रोत्रदाः
पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवः पृष्ठ उपशीवरी सा मोपशेष्व जायेव सदमित्पतिꣳ, या देवीः स्थेष्टका
सुशेवा उपशीवरीस्ता मोपशेध्वं जाया इव सदमित्पतिम् ॥ १६ ॥
९९
संवयसे त्वा,—ऽभिवयसे त्वो,—र्ध्ववयसे त्वा, बृहद्वयसे त्वा, सहीयसे त्वा, सहमा-
नाय त्वा, सासह्यै त्वा, सहस्वते त्वा,—ऽभीषाहे त्वा,—ऽभिभ्वे त्वा,—ऽभिमातिषाहे त्वा,
—ऽभिमातिघ्ने त्वा ॥ १७ ॥
१००
भूयस्कृदसि, वरिवस्कृदसि, प्राच्यस्यू,—र्ध्वास्य,—न्तरिक्षसद्यो,—जोदा त्वौजसि साद-
यामि, पयोदा त्वा पयसि सादयामि, तेजोदा त्वा तेजसि सादयामि, यशोदा त्वा यशसि
सादयामि, वर्चोदा त्वा वर्चसि सादयामि, पृथिव्यास्त्वा द्रविणे सादयाम्य,—न्तरिक्षस्य
त्वा द्रविणे सादयामि, दिवस्त्वा द्रविणे सादयामि, दिशां त्वा द्रविणे सादयामि, द्रवि
णोदां त्वा द्रविणे सादयाम्य,—प्सुषदसि, गृध्रसदसि, श्येनसदसि, सुपर्णसदसि,
नाकसदसि ॥ १८ ॥
१०१
ज्योतिष्मतीं त्वा सादयामि, ज्योतिष्कृतं त्वा सादयामि, ज्योतिर्विदं त्वा सादयाम्यू,—
र्ध्वज्योतिषं त्वा सादयामि, बृहज्ज्योतिषं त्वा सादयामि, विश्वज्योतिषं त्वा सादयाम्य,—
जस्रां त्वा सादयामि, भास्वतीं त्वा सादयामि, दीप्यमानां त्वा सादयामि, रोचमानां
त्वा सादयामि, ज्वलन्तीं त्वा सादयामि, मल्मलाभवन्तीं त्वा सादयामि, जाग्रतीं त्वा
सादयामि, बोधयन्तीं त्वा सादयामि ॥ १९ ॥
१०२
कृत्तिका नक्षत्र,—मग्निर्देवता,—ऽग्ने रुचः स्थ, प्रजापतेः सोमस्य धातु,—ऋचे त्वा, रुचे
त्वा, भासे त्वा, ज्योतिषे त्वा, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा
सीद, रोहिणी नक्षत्रं, प्रजापतिर्देवता,—न्वगा नक्षत्रं, मरुतो देवता, बाहुर्नक्षत्रꣳ, रुद्रो

[१६] काठ. ३९,९ । मा. श्रौ. ६,२,३ ।
[१७] मा. श्रौ. ६,२,३ ।
[१८] तै. ४,४,७,६ । काठ. ३९,९ । वा. १३,५३ । काण्व. १४,५५ । मा. श्रौ. ६,२,३ ।
[१९] तै. १,४,३४ । तै. आ. ३,१९ । काठ. ४०,४ । वा. १३,५३ । काण्व. १४,५५ । मा. श्रौ. ६,२,३ ।

देवता, पुनर्वसू नक्षत्र,—मदितिर्देवता, तिष्यो नक्षत्रं, बृहस्पतिर्देवता,—ऽऽश्रेषा नक्षत्रꣳ,
सर्पा देवता, मघा नक्षत्रं, पितरो देवता, फल्गुनी नक्षत्रं, भगो देवता, फल्गुनी नक्षत्र,
—मर्यमा देवता, हस्तो नक्षत्रꣳ, सविता देवता, चित्रा नक्षत्रं, त्वष्टा देवता, निष्ट्या
नक्षत्रꣳ, वायुर्देवता, विशाखे नक्षत्र,—मिन्द्राग्नी देवता,—ऽनूराधा नक्षत्रं, मित्रो देवता,
ज्येष्ठा नक्षत्रꣳ, वरुणो देवता, मूलं नक्षत्रं, निर्ऋतिर्देवता,—ऽऽषाढा नक्षत्र,—मापो देवता,
—ऽऽषाढा नक्षत्रꣳ, विश्वे देवा देवता,—ऽभिजिन्नक्षत्रं, ब्रह्मा देवता, श्रोणा नक्षत्रꣳ, वि-
ष्णुर्देवता, श्रविष्ठा नक्षत्रꣳ, वसवो देवता, शतभिषं नक्षत्र,—मिन्द्रो देवता, प्रोष्ठपदा
नक्षत्र,—महिर्बुध्न्यो देवता, प्रोष्ठपदा नक्षत्र,—मज एकपाद्देवता, रेवती नक्षत्रं, पूषा देव-
ता,—ऽश्वयुजा नक्षत्र,—मश्विनौ देवता, भरणीर्नक्षत्रꣳ, यमो देवता, ब्राह्मणो नक्षत्रꣳ,
सोमो देवता,—ऽग्ने रुचः स्थ, प्रजापतेः सोमस्य धातु,—ऋचे त्वा, रुचे त्वा, भासे त्वा,
ज्योतिषे त्वा, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २० ॥ १०३
समीची नामासि, प्राची दिक्, तस्यास्तेऽग्निरधिपति,—रसितो रक्षिता, यश्च तेऽधिपति-
र्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु, तौ नो मृडतां, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेनयोर्जम्भे
दध्म, ओजस्विन्या नामासि, दक्षिणा दिक्, तस्यास्त इन्द्रोऽधिपति,—स्तिरश्चिराजी रक्षिता,
यश्च तेऽधिपतिर्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु, तौ नो मृडतां, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि
तमेनयोर्जम्भे दध्मः, प्राची नामासि, प्रतीची दिक्, तस्यास्ते सोमोऽधिपतिः, स्वजो
रक्षिता, यश्च तेऽधिपतिर्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु, तौ नो मृडतां, ते यं द्विष्मो यश्च
नो द्वेष्टि तमेनयोर्जम्भे दध्मः, सुषदा नामास्यु,—दीची दिक्, तस्यास्ते वरुणोऽधिपतिः,
पृदाकू रक्षिता, यश्च तेऽधिपतिर्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु, तौ नो मृडतां, ते यं
द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेनयोर्जम्भे दध्मो, ऽवस्था नामास्य,—वाची दिक्, तस्यास्ते विष्णु-
रधिपतिः, कल्माषग्रीवो रक्षिता, यश्च तेऽधिपतिर्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु, तौ नो
मृडतां, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेनयोर्जम्भे दध्मो, ऽधिपत्नी नामास्यू,—र्ध्वा दिक्,
तस्यास्ते बृहस्पतिरधिपति,—श्चित्रो रक्षिता, यश्च तेऽधिपतिर्यश्च रक्षिता ताभ्यां नमो अस्तु,
तौ नो मृडतां, ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेनयोर्जम्भे दध्मः ॥ २१ ॥ १०४

[२०] तै. ४,४,१० । काठ. ३९,१३ । वा. १३,३९;१४,५३;१३,१९,२२,१४,६,११,१४;१५,५७-५८,६४ । काण्व. १४,४२,१३,५४;१४,१९,२२;१५,५,१५-१६,१६,७२,८४ । मा. श्रौ. ६,२,३ ।
[२१] तै. ५,५,१० । [यं द्विष्म०...जम्भे दध्मः । अथर्व. ३,२७,१-६]

स्वयं कृण्वानः सुगमप्रयावं तिग्मशृङ्गो वृषभः शोशुचानः ।
प्रत्नꣳ सधस्थमनुपश्यमाना आ तन्तुमग्निर्दिव्यं ततान ॥ १०५
त्वं तन्तुरुत सेतुरग्ने त्वं पन्था भवसि देवयानः ।
त्वयाग्ने पृष्ठꣳ वयमारुहेम यत्र देवैः सधमादं मदेम ॥ १०६
अतिसर्गं ददतो मानवा योर्ध्वं पन्थामनुपश्यमानाः ।
अजुषन्त मरुतो यज्ञमेतꣳ वृष्टिद्यावानममृतꣳ स्वर्विदम् ॥ १०७
आवर्तमानो भुवनस्य मध्ये प्रजाः कृण्वन् जनयन् विरूपाः ।
सꣳवत्सरः परमेष्ठी धृतव्रतो यज्ञं नः पातु रजसः परस्मात् ॥ १०८
प्रजां ददातु परिवत्सरो नो धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
बह्वीः साकं बहुधा विश्वरूपा एकव्रता मामभिसंविशन्तु ॥ २२ ॥ १०९
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११०
यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।
ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १११
य ओजोदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषꣳ यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतꣳ यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११२
यस्येमे विश्वे गिरयो महित्वा समुद्रꣳ यस्य रसया सहाहुः ।
दिशो यस्य प्रदिशः पञ्च देवीः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११३

[२२] काठ. ४०,१२ । तै. ब्रा. २,४,२,५-६ । मा. श्रौ. ६,२,६ । [धाता दधातु सुमनस्यमानः । अथर्व. ७,१९,१;१३,१,३५]
[२३] मै. २,७,१५;३,१२,१६-१७ । तै. ४,१,८,३ । काठ. ४०,१, । वा. ११;१०१;१३,४;२३,१-३;२५,१०-१३, २७,२५-२६;११,३४;३२,३,६-७ । काण्व. १३,१०१;१४,४;२५,१,३;२७,१४-१७;२९,३३-३५;३१,४६ । मा. श्रौ. ६,२,३ । [हिरण्यगर्भः समवर्त०......विधेम । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७;११,५,१ तै. सं. ४,१,८,३;२,८,२; ताण्ड्य. ब्रा. ९,९,१२, नि. १०,२३ । यः प्राणतो०... विधेम । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४;७,५,१६,१ । य ओजोदा (आत्मदा)०...विधेम । ऋ. १०,१२१,२; अथर्व. ४, २,१,१३,३,२४; तै. सं. ४,१,८,४;७,५,१७,१ । यस्येमे विश्वे गिरयो (हिमवन्तो)०... । विधेम । ऋ. १०,१२१,४; अथर्व. ४,२,५; तै. सं. ४,१,८,४]

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितꣳ येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षꣳ विममे वरीयः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११४
यं इमे द्यावापृथिवी तस्तभाने अधारयद्रोदसी रेजमाने ।
यस्मिन्नधि विततः सूरा एति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११५
आपो ह यन्महतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां निरवर्ततासुः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११६
आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिर्धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
सꣳवत्सरं ऋतुभिः सꣳविदानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु ॥ २३ ॥ ११७

[१४७८]

॥ इति मध्यमकाण्डे त्रयोदशः प्रपाठकः ॥ १३ ॥

॥ इति मध्यकाण्डं समाप्तम् ॥

[येन द्यौरुग्रा०...विधेम । ऋ. १०,१२१,५; अथर्व. ४,२,४; तै. सं. ४,१,८,५ । य इमे द्यावा पृथिवी० । (यं क्रन्दसी अवसा) तस्तभाने०... ऋ. १०,१२०,९; अथर्व. ५,१२,९; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१४ । आपो ह यन्वहु० (-यत्बृह०)... विधेम । विधेम । ऋ. १०,१२१,६; अथर्व. ४,२,३; तै. सं. ४,१,८,५ । कस्मै देवाय०...विधेम । ऋ. १०,१२१,७; अथर्व. ४,२,६; तै. सं. २,२,१२,१;४,१,८,५; तै. आ. १,२३ ८ । आ नः प्रजां०... । ऋ. १०,८५,४३; अथर्व. १४,२,४०] ऋ. १०,१२१,१-९; अथर्व. ४,२,१-८ ।

अथ तृतीयं काण्डम् ।

अथ प्रथमः प्रपाठकः ।

अग्निचितिब्राह्मणम् ।

जुहूमग्रे संमार्ष्टि, जुहूर्वै यज्ञमुखं, मुखतो वा एतद्यज्ञमालभ्य, जुꣳह्वा वै देवा विराजम-
हयन्त, तज्जुह्वा जुहूत्वं,—मन्नꣳ वै विरा,—डन्नं जुहू,—रꣳकोऽग्नि,—र्यज्जुह्वा जुहोत्यन्नस्य
चार्कस्य चावरुद्ध्या, अष्टौ कृत्वो जुह्वां गृह्णात्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्री यज्ञमुखꣳ,
यज्ञमुखमेवालभ्य, यत्सावित्राणि हूयन्ते प्रसूत्या, अथो यजुषामेव नानावीर्यत्वाया,—ऽग्निर्वै
यत्र यत्रागछत् तꣳ सवितान्वपश्यद्यत्सावित्राणि हूयन्तेऽग्नेरेवानुख्यात्या, अग्निं ज्योतिर्निचाय्य
पृथिव्या अध्याभरदिति, सविता वा एतदग्रे ज्योतिः पृथिव्याः संभरत्, तस्मादेवमाह,
युक्तिमन्ति च जुहोति मनस्वती च, युक्तेन हि मनसा यज्ञस्तायते, षड्गृमाणि भवन्ति,
षड्वा ऋतव, ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठत्ये,—ति वा एष यज्ञमुखाद्ꣳयोऽन्यामाग्नेय्या अग्रे देवतामुपैति,
यत्सावित्राणि न स्युरियात्सावित्रात् प्रसवा,—दष्टौ वा एतानि यजूꣳष्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्री
यज्ञमुखं, तेन यज्ञमुखान्नैति, यदु सावित्राणि तेन सावित्रात् प्रसवान्नैति, छन्दोभिर्जुहोति,
छन्दोभिर्वा एतदग्नये बलिꣳ हारयति, बहवो हास्य बलिहृतो भवन्त्य,—ग्नै यज्ञस्य नेदीयो,
यजुर्यजमानस्य, यदि कामयेत, यज्ञꣳ यज्ञयशसेनार्पयेय,—मित्यृगुत्तमानि कुर्याद्, यज्ञꣳ
वा एतद्यज्ञयशसेनार्पयति, यदि कामयेत, यजमानꣳ यज्ञयशसेनार्पयेयमिति, यजुरुत्तमानि
कुर्याद्, यजमानꣳ वा एतद्यज्ञयशसेनार्पयत्या,—हुतीनाꣳ वा अभिक्रान्त्या यजमान ऋध्नोति,
यं कामयेत, ऋध्नुयादिति, तस्य सकृत्सर्वाण्यनुद्रुत्य जुहुयाद्, ऋध्नोत्ये,—व यं कामयेत,
पापीयान्त्स्यादिति, तस्य नाना जुहुयात्, पापीयान् भवत्यृ,—चा स्तोमꣳ समर्धये,—त्याह,
समृद्ध्या एव, गायत्रेण रथन्तरमिती,—यꣳ वै गायत्री,—यꣳ रथन्तर,—मसौ बृह,—दनयोर्वा
एषां लोकयोर्व्याप्त्या अन्ततः क्रियते, ऽष्टौ वा एतानि यजूꣳष्य,—ष्टाक्षरा गायत्र्य,—क्षरशो
वा एतद्गायत्रीं प्रीणात्य,—थ यदाहुतिर्नवमी तेन त्रिवृतो यज्ञमुखान्नै,—त्यथ यदेकामाहुतिमष्टा-
भिर्यजुर्भिर्जुहोति तस्मादेकस्मै सते बहवो बलिꣳ हरान्ति, बहवो हास्य बलिहृतो भवन्ति,

[१] मै. २,७,१ । तै. ५,१,१ । कपि. २९,७ । श. ब्रा. ६,३,१,१ ।

यजुरुत्तमानि भवन्ति, ब्रह्म वै यजु,—र्ब्रह्मणि वा एतदन्ततो यज्ञस्य यजमानः प्रतितिष्ठति ॥१॥ १
सावित्रैरभ्रिमादत्ते प्रसूत्यै, चतुर्भिरादत्ते, चत्वारि वै छन्दाꣳसि, छन्दोभिरेवादत्ते,
ऽथो ब्रह्म वै छन्दाꣳसि, ब्रह्मणैवादत्त, इयꣳ वै गायꣳत्र्य,—न्तरिक्षं त्रिष्टुब्, द्यौर्जगती,
दिशोऽनुष्टुप्, सवितृप्रसूतो वा एतदेभ्यो लोकेभ्यश्छन्दोभिर्दिग्भ्यश्चाग्निꣳ संभरति, यत्र वा
अꣳदोऽग्निर्होत्रादुदपाक्रामत्स सर्वेषु भूतेष्ववसद्, याꣳ वनस्पतिष्ववसत्ताꣳ वेणा अवसत्, स
यत्र निरदहत् तानि कल्माषाण्यभवन्, येन समचरत्तत्सुषिरꣳ, यत्रावसत् तत् पर्व, यद्वैणव्य-
भ्रिर्भवति स्वेनैवैनꣳ योनिना संभरति, यो वै वनस्पतीनां फलग्रहितमः स एषाꣳ वीर्यवत्तमो,
वेणुर्वै वनस्पतीनां फलग्रहितमः, स एषाꣳ वीर्यवत्तमो, ऽन्नꣳ वै फल,—मन्नमꣳर्को, ऽꣳर्को
ऽग्नि,—रर्केण वा एतदन्नमर्कमग्निꣳ संभरति, व्याममात्री काꣳर्य,—तावद्वै पुरुषे वीर्यꣳ, वीर्य-
संमिता क्रियते, ऽथो एतावान् वै पुरुषे महिमा, महिम्नोऽवरुद्ध्या, अरत्निमात्री कार्या
यज्ञपुरुषासंमिता, प्रादेशमात्री काꣳर्या विष्णुना यज्ञेन संमितो,—भयतःक्ष्णुत्काꣳर्याभयस्यान्ना
द्यस्यावरुद्ध्या, अन्यतःक्ष्णुत्कार्या, अन्यतःक्ष्णुद्धि फाल,—स्तावन्तमर्कं करोत्य,—न्नꣳ वा
अꣳर्को, ऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, औदुम्बरी कार्या,—र्ग्वा उदुम्बर, ऊर्जोऽवरुद्ध्या, अपरिमिता
कार्यापरिमितस्यावरुद्ध्यै, य एवं कश्च वृक्षः फलग्राहिस्तस्य काꣳर्यान्नाद्यस्यावरुद्ध्यै ॥२॥ २
अश्वेन वै देवा अग्रे विजितिꣳ व्युजयन्त, यदश्वेन यन्ति, विजित्या, अग्निर्वै यत्र यत्रा-
गछत् तं प्रजापतिरन्वपश्यत्, प्राजापत्योऽश्वो, यदश्वेन यन्त्यग्नेरेवानुख्यात्यै, प्रजापतिर्वा
अग्निꣳ संभरिष्यन्त्स एभ्यो लोकेभ्योऽश्वं निर्माय दिग्भ्यश्चाग्निꣳ समभरद्, यदाह, दिवि ते
जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरिदिति, यथादेवतꣳ वा एतदेभ्यो लोकेभ्यो
ऽश्वं निर्माय दिग्भ्यश्चाग्निꣳ संभरति, युञ्जाथाꣳ रासभꣳ युव,—मित्याह, युक्त्या एवं,
ऽग्निर्वा एतस्याग्रे सूर्यस्य योने रेतो निर-
गर्दभेन संभरत्ये,—ष हि पशूनामनुपजीवनीयतमो,
दहत्, तस्मादेष समावद्वन्यैः पशुभी रेतो धत्ते, ऽथ कनिष्ठो, ऽश्वं पूर्वं नयन्ति गर्दभमपरं
पापवसीयसस्य व्यावृत्त्यै, तस्माच्छ्रेयाꣳसं पूर्वꣳ यन्तं पापीयान् पश्चादन्वेति, यदि काम-
येत, पापवसीयसꣳ स्यादिति, गर्दभं पूर्वं नयेयुरपरमश्व,—मेतेन वै विपृजुनः सौराकिः
पापवसीयसं चकार, तत् पापवसीयसमेवैतेन करोति, योगे योगे तवस्तर,—मित्यूतिमत्या
वाजवत्या यन्त्य,—न्नꣳ वै वाजो, गातुरूति,—रन्नाय च खलु वै गातवे चाग्निश्चीयते,

[२] मै. २,७,१ । काठ. १९,१ । कपि. २९,८ । श. ब्रा. ६,३,१,३० ।
[३] मै. २,७,२ । तै. ५,१,२ । काठ. १९,२ । कपि. २९ ८ । श. ब्रा. ६,३,२,३,१-५ । वा. ११,१४-१६ । काण्व. १२, १४-१६ । [योगे-योगे तवस्त० । ऋ. १,३०,७; सा. १६३,७४३; अथर्व. २०,२६,१; मै. सं. ४,१,२,१]

यदूतिमत्या वाजवत्या यन्त्यन्नस्य च गातोश्चावरुद्ध्यै, भवति वा एष ꣳयोऽग्निं चिनुते, सर्वो वै
भवत इरस्यति, वज्री वा एष प्राजापत्यो यदश्वो, यदाह, प्रतूर्तं वाजिन्नावक्राम वज्रशस्तीरिति, वज्रेण
वा एतदशस्तीररातीयन्तमवक्रामति, रौद्रा वै पशवो, ऽग्नी रुद्रो, यद्रुद्रात् पशूननिर्याच्याग्निं
चिन्वीत रुद्रोऽस्य पशूनभिमानुकः स्याद्, यदाह, रुद्रस्य गाणपत्यान्मयोभूरेहीति, रुद्राद्वा
एतत् पशून्निर्याच्याग्निं चिनुते, ऽपातुकोऽस्य पशुपतिः पशून् भवत्यु,—ꣳर्वन्तरिक्षꣳ वीहीत्याहैषां
लोकानाꣳ विधृत्यै, रक्षाꣳसि वा एतं जिघाꣳसन्त्यग्निꣳ संभरिष्यन्तो, यदाह, स्वस्तिग-
व्यूतिरभयानि कृण्वन्निति, स्वस्तिमेवाभ्यामकः, पुरीषꣳ वा अग्नेरायतन,—मङ्गिरस एतमग्रे
समभरद्, यदाहा,—ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरेति, सायतनमेवैनं देवताभिः संभरति, येन
पुरुषेण संगछेत तमभिमन्त्रयेता,—ऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदछेमा इति, वाजमेव तेन तस्माद् वृङ्क्ते,
प्रजापतये प्रोच्याग्निश्चेतꣳव्या, इत्याहु,—र्यतः सूर्यस्योदयनं ततो वल्मीकवपामुपघ्नन् ब्रूया,—दग्निं
पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामा इती,—यꣳ वै प्रजापति,—स्तस्या एष कर्णो यद्वल्मीक,—स्तस्मा एव
प्रोच्याग्निं चिनुते, शृण्वन्ति हैनमग्निं चिक्यान,—मसा अग्निमचेष्टेति, तस्मात् पापीयाञ्छ्रेयस
कर्ण आह, कर्णः कर्णायाह ॥ ३ ॥ ३
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदित्या,—हा,—ऽनुख्यात्या एवा,—ऽऽगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधू-
नुता इति, मृध एव व्यास्थत्तछद्, वा एतं प्रजापतिः पूर्वयर्चा,—ऽविन्ददुत्तरयै,—षदेवैनं पूर्वय-
र्चा,—ऽविन्ददुत्तरया, द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमिति, द्यौꣳर्ह्येतस्य पृष्ठं, पृथिवी सधस्थ,—
मात्मान्तरिक्षꣳ, समुद्रो योनिरित्या,—त्मा ꣳह्येतस्यान्तरिक्षꣳ, समुद्रो योनि,—र्विख्याय च-
क्षुषा त्वमभितिष्ठ पृतन्यत इति, पृतन्यन्तमेवाभितिष्ठति, यं द्विष्यात्तं ब्रूयात् ॥ अमुमभितिष्ठ॥
इति तमेवाभितिष्ठत्यु,—त्क्रामेत्या,—हो,—त्क्रान्त्या एवं, यत्र वै यज्ञस्यानुरूपं क्रियते तद्यज-
मान ऋध्नोत्यु,—त्क्रामोदक्रमी,—दित्यनुरूपꣳ वा एतत् क्रियते यज्ञस्यावरुद्ध्यै, कृष्णो वै
भूत्वाग्निरश्वं प्राविशत्, स एतदगछद्यत्र मृगशफो,—यदश्वस्य पदे जुहोत्यग्निमत्येव जुहोत्यायतनव-
त्य,—न्धोऽध्वर्युः स्याद्यदनायतने जुहुया,—देतद्वै तद्यदाहु,—र्मृगशफमन्वराडिति, मनस्वती-
भ्यां जुहोति, मनसा ह्याहुतीराप्यन्ते, त्रिष्टुब्भ्यां जुहोतीन्द्रियस्यावरुद्ध्या, अन्नवतीभ्यां

[४] मै. २,७,२ । तै. ५,१,२-३ । काठ. १९,३-४ । कपि. ३०,१ । श. ब्रा. ६,३,३,१ । वा. ११,१७-२२ । काण्व. १२ १७-२२ । [अन्वग्निरुषसा० । अथर्व. ७,८२,४; १८,१,२७-२८]

जुहोत्यग्निश्चस्यावरुद्ध्यै, गायत्र्या परिलिखत्य,—स्यां एवैनं तेन परिगृह्णाति, त्रिष्टुभा,—ऽन्तरिक्षाचैना,—ऽनुष्टुभा परिलिखत्य,—नुष्टुब्वै सर्वाणि छन्दांसि परिभूः,—स्तस्मादनुष्टुभा परिलिखति, माविभ्रंशग्निर्मादसे प्रसूत्यै, द्वाभ्यां खनति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, शुन्वा अत्र प्रजा ऋछति यत्राग्निः खायते चीयते वा, यदाह, शिवं प्रजाभ्योऽहिंसन्तमिति, प्रजाभ्य एवैनं शिवमकः ॥ ४ ॥

४-६

अपां पृष्ठमसी,—त्याहा,—ऽपां ह्येतत् पृष्ठं, पृष्ठेनैवैनत् पृष्ठमकर्योनिरग्नेरिति, योनिर्वा एषोऽग्नेर्यत् पुष्करपर्णं, नाभिर्वक्कः, सयोनिमेवं सनाभिः संभ्रियते, दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्वे,—त्यनयोरेवैनं मात्रया वरिणा प्रथयति, शर्म च स्थो वर्म च स्था, इति कृष्णाजिनं च पुष्करपर्णं च संस्तृणाती,—मे एवास्मा एतद् द्यावापृथिवी संस्तृणाति, व्यचस्वती संवसेथामिति, न वा एतन्मनुष्या यन्तुमर्हन्त्या,—भ्यामेवैनं परिगृह्णाति, कृष्णाजिनेन संभरत्ये,—ष हि पशूनामनुपजीवनीयतमो, ऽथो आरण्यानेव पशूञ्छुचार्पयति, लोमतः संभरत्य,—तो वै कृष्णाजिनस्य मेध्यं, यज्ञेनैव यज्ञं संभरति, पुष्करपर्णेन संभरति, योनिर्वा एषोऽग्नेर्यत् पुष्करपर्णं, स्वेनैवैनं योनिना संभरति, गायत्रीभिर्ब्राह्मणस्य संभरति, गायत्रो हि ब्राह्मणो,—स्त्रिष्टुभा राजन्यस्य, त्रैष्टुभो हि राजन्यो, जगतीभिर्वैश्यस्य, जागतो हि वैश्यो यं कामयेत, ऋभ्रुयादिति, तस्य गायत्रीभिश्च त्रिष्टुब्भिश्च संभरेद्, ऋध्नोति, पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्न इति, प्रजापतिर्वा अथर्वा, स एतमग्रेऽमन्थत्, सोऽजनयत्, स्व एवैनं मन्थति, स जनयति, तिसृभिः संभरति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैनं लोकेभ्यः संभरति, यजुस्तुरीयं, दिग्भ्य एवैनं तेन संभरति, पुरोवातं वै वातं वर्षमनुप्रतितिष्ठति, वर्षमन्वोषधयो, ओषधीरनु पशवः, पशूननु मनुष्या, एता वै प्रतिष्ठा,—स्तां यजमानोऽवरुन्द्धे, ऽपो देवीरुपसृजा मधुमती,—रित्याहौषधीनां प्रतिष्ठित्यै, तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पला इति, तस्मादेतासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः, सं ते वायुर्मातरिश्वा दधात्विति, तस्मादेतस्या यत्कृष्यते यत् खायते तत् संधीयते, यद् घृतेन जुहुयाच् शुचैनामर्पये,—दप यदप उपसृजति शमयत्येवैनं, यो देवानां चरसि

[५] मै. २,७,३। तै. ५,१,४-५। काठ. १९,४-५। कपि. ३०,२-३। श. ब्रा. ६,४,१,६। वा. ११,२९-३२,३८-४३। काण्व. १२,२९-३२,३८-४३।

प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यमिति, षड्वा ऋतव, ऋतुषु वा एतद् वृष्टिं प्रतिष्ठापयति, तस्मात्सर्व ऋतवो वृष्टिमन्तः, सुजातो ज्योतिषेति, स्वर्ग्यमेवैनमक,—र्वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसा इति, छन्दांसि वा अग्नेर्वास,—श्छन्दांस्येव वस्ते, छन्दोभिरेवैनं परिददात्यागाम्मुकमेनमस्मिँल्लोके वासो भवत्य,—नग्नोऽमुष्मिँल्लोके भवति य एवं वेद, वरुणमेनिर्वा एष एत,—र्हि उदुतिष्ठ स्वध्वरे,—त्यूर्ध्वमेव वरुणमेनिमुत्सृजति, द्वाभ्यामुत्सृजति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, स जातो गर्भो असि रोदस्योरित्य,—नयोर्वा एष गर्भ, आभ्यामेषोऽधिजायत, आभ्यामेवैनमधिजनयत्य,—ग्ने चारुर्विभृता ओषधीष्विति, तस्मात् सर्वास्वोषधीष्वग्निः, प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गा इत्यो,—षधयो वा एतस्य मातर,—स्ताभ्या एवैनमधिप्रच्यावयतै,—छद्वा एवं प्रजापतिः पूर्वेणार्धकृचैना,—ऽनूत्तरेणातिष्ठतै,—पीदेवैनं पूर्वेणार्धकृचैना,—ऽनूत्तरेणास्थित ॥ ५ ॥

७

स्थिरो भव वीड्वङ्ग इति गर्दभ आदधाति, वीर्यमस्मिन् दधाति, तस्मात् सर्वेषां पशूनां गर्दभो वीर्यवत्तमो, वीर्यं ह्यस्मिन् दधाती,—श्वरो वा एषोऽन्तरिक्षसंक्रुत्वो प्रजा हिंसितो,—र्यदाह, शिवो भव प्रजाभ्य इति, प्रजाभ्य एवैनं शिवमक,—र्मा पार्थायुषः पुरेत्या,—युरेवास्मिन् दधाति समष्ट्यै, वृषाग्निं वृषणं भरन्निति, वृषा ह्येष वृषणं भर,—न्नपां गर्भं समुद्रियमित्य,—पां ह्येष गर्भः समुद्रियो, ऽग्न आयाहि वीतय इत्य,—ग्निना वै मुखेन देवा इमाँल्लोकानभ्युजय,—न्नग्निना वा एतन्मुखेन यजमान इमाँल्लोकानभिजयत्य,—तं सत्यमृतं सत्य,—मृते चैवं सत्ये च प्रतितिष्ठती,—यं वा ऋत,—मसौ सत्य,—मनयोरेव प्रतितिष्ठत्य,—हर्वा ऋतं, रात्रिः सत्य,—महोरात्रयोरेव प्रतितिष्ठत्यो,—षधयः प्रतिगृभ्णीताग्निमेतमित्यो,—षधीरेवैनं सम्यञ्चं दधाति, पुष्पवतीः सुपिप्पला इत्यो,—षधीरेव फलं ग्राहयति, तस्मादोषधयः शीर्षन् फलं गृह्णन्ति, वरुणमेनिर्वा एष एतर्ह्युपनद्धो, वि पाजसा पृथुना शोशुचाना इत्य,—नुरूपेणैव वरुणमेनिं विष्यति, द्वाभ्यां विष्यति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या, आपो हि ष्ठा मयोभुवा इत्य,—प उपसृजत्या,—पो वा अशान्तस्य शमयित्रिका,—स्तस्मादप उप-

[उदु तिष्ठ० । ऋ. ८,२३,५; तै. सं. ४,१,४,१। स जातो गर्भो० । १०,१,२; तै. सं. ४,१,४,१]
[६] मै. २,७,४-५। तै. ५,१,५-६। काठ. १९,५-६। कपि. ३० ४। श. ब्रा. ६,४,४,३। वा. ११,४४-५०,५३-५४; ३६,१४। काण्व. १२,४४-४७,४९-५१,५४—५५,३६,१४। [अग्ना (ग्न) आयाहि वीतये । ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६०; तै. सं. २,५,७,३;८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१ । वि पाजसा पृथुना० ऋ. ३,१५,१; तै. स. ४,१,५ १ । आपो हि ष्ठा० । ऋ. १०,९,१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१;५,६,१,४;७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०,१,११; नि. ९,२७]

सृजति शान्त्यै, तिसृभिरुत्सृजति, त्रिवृद्ध्यग्नि,—र्वरुणमेनिर्वा एष एतर्हि, मित्रः संसृज्या पृथिवीमिति, मित्रेणैव वरुणमेनिं संसृजति, रुद्राः संसृज्य पृथिवीमित्ये,—ता वा एतामग्रे देवताः प्रजापतये समसृजं,—स्ताभिरेवैनां संसृजति, पञ्चभिः संसृजति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य ॥ ६ ॥

८

मखस्य शिरोऽसी,—त्याह, यज्ञो वै मख,—स्तस्य वा एतच् शिरो यदुखा, मुखतो वा एतद्यज्ञमालभ्य, वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसेति, छन्दोभिश्च वा एषा देवताभिश्च क्रियते, छन्दोभिश्चैवैनां देवताभिश्च करोति, ध्रुवासि पृथिव्यसीति, छन्दसामेवैषाग्नी,—रदित्या रास्ना,—स्यदितिष्टे बिलं गृभ्णात्विति, यजुषा करोत्य,—यजुषा हि मनुष्याः कुर्वन्ति व्यावृत्त्यै, तां पुत्रेभ्यः प्रायछ,—ददितिः श्रपयानित्या,—दित्यां वा इदं सर्वो यन्मनुष्याः,—स्तेभ्य एवैनां संप्रादात, त्र्युद्धिः कार्या, त्रयो वा इमे लोका, एषां वा एषा लोकानामुखा प्रतिमा क्रियते, ऽष्टस्तना कार्या, गायत्र्या रूपं, चतुस्तना कार्यादित्या दोहाय, द्विस्तना कार्या,—ऽन्तरिक्षं वा उखे,—मौ लोकौ स्तनौ, प्रत्ती ह वा इमौ लोकौ दुहे य एवं वेद, व्याममात्री कार्यै,—तावद्वै पुरुषे वीर्यं, वीर्यसंमिता क्रियते, ऽथो एतावान् वै पुरुषे महिमा, महिम्नोऽवरुद्ध्या, अरत्निमात्री कार्या यज्ञपुरुषासंमिता, प्रादेशमात्री कार्या विष्णुना यज्ञेन संमिता,—ऽथो प्रजापतेरेवानतिवादाय सप्तभिर्धूपयति, सप्त वै शीर्षन् प्राणाः, शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा, शीर्षन् वा एतद् प्राणान् दधाति, सप्तभिर्धूपयति, सप्त वै छन्दांसि, छन्दोभिरेवैनां धूपयत्य,—थो ब्रह्म वै छन्दांसि, ब्रह्मणैवैनां धूपयति, वैष्णवं वा एतद् पात्रं, तस्मादेवं देवतया व्यर्धयति यदन्याभिर्देवताभिर्धूपयति, यदाह, विष्णुस्त्वा धूपयत्वाङ्गिरस्वदिति, स्वयैवैनं देवतया समर्धयत्य,—श्वशकेन धूपयति, वृषा ह्यश्वो वृषाग्निः समृद्ध्या, अथो प्राजापत्यो वा अश्वः, प्राजापत्योऽग्नि,—स्तस्मादश्वशकेन धूपयति सयोनित्वाय ॥ ७ ॥

९

प्रजापतिर्वा अमन्यत, यो वा अस्यां अग्नि विखनिष्यत्यार्तिं स आरिष्यतीति, स एतमपश्यद,—दितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्खनत्ववटेती,—यं वा अदितिर्देवी विश्वदेव्यवत्य,—नया वै स तदस्यामखनदहिंसायै, न हि स्वः स्वं हिनस्ति,

[७] मै. २,७,६। तै. ५,१,६-७। काठ. १९,६। कपि. ३०,४। श. ब्रा. ६,५,१,१, वा. ११,५७-६०;३७,८। काण्व. १२,५९-६१;३७,८]

देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतूखा इ,—त्योषधयो वै देवानां पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यवतीरोषधीष्वेवैनां प्रतिष्ठापयति, धिषणा त्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वदभीन्धतामुखा इति, वाग्वै धिषणा देवी विश्वदेव्यवती, वाचैवैनामभीन्द्धे, ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच् श्रपयन्तूखा इति, छन्दांसि वै ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यवती,—श्छन्दोभिरेवैनां श्रपयति, वरूत्री त्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचतामुखा इ,—त्यहोरात्रे वै वरूत्री देवी विश्वदेव्यवती, अहोरात्राभ्यामेवैनां पचति, जनयस्त्वाछिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तूखा इति, नक्षत्राणि वै जनयोऽछिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यवती,—र्नक्षत्रैरेवैनां पचत्ये,—ता वा एतामग्रे देवताः प्रजापतयेऽपच,—स्तस्मादेतानि पङ्क्तिमन्ति यजूंषि, तैरेवैनां पचति, द्वाभ्यां पचति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, वरुणमेनिर्वा एष एतर्ह्यभीद्धो, मित्रस्य चर्षणीधृता इति, मित्रेणैव वरुणमेनिमुपैति, देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिरिति, सवितृप्रसूत एवैनामुद्वपत्यात्मनोऽहिंसाया, उत्तिष्ठ बृहती भवे,—त्याह धृत्या एवा,—ऽव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृणेति, तस्मादग्निः सर्वा दिश आभाति ॥ मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्त्या, एषा मा भेदि ॥ इति मित्रायैवैनां परिददात्यभित्त्यै, यदि मित्रायापरित्ता भिद्येत पुनः कार्या स्याद्, वसवस्त्वाछृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसेति, छन्दोभिश्च वा एषा देवताभिश्च क्रियते, छन्दोभिश्चैवैनां देवताभिश्चाछृणत्ति, स्वेनायतनेनाजक्षीरेणाछृणत्त्या,—ग्नेयं वा एतत् पयो यदजक्षीर,—माग्नेयमेतत् पात्रं यदुखां, स्वेन वा एतत् पयसा स्वं पात्रमाछृणत्ति, परमं वा एतत् पयो यदजक्षीरं, परममेतत् पात्रं यदुखां, परमेण वा एतत् पयसा परमं पात्रमाछृणत्ति ॥ ८ ॥

१०-१२

षडेतान्याधीतयजूंषि जुहोति, षड्वा ऋतव, ऋतुभिर्वा एतत् पृथिव्या वीर्यं युछते, नाना जुहोति, नानावीर्या ह्येमे प्राणाः, प्राणानां विधृत्यै, यं कामयेत, बधिरः स्यादिति, तस्य सकृत्सर्वाण्यनुद्रुत्य जुहुयात्, प्राणानस्य संभिनत्ति, बधिरो भवति, तस्माद्बधिरो वाचा वदति, न शृणोति, वाचं ह्यस्येन्द्रियमनुपद्यते, प्राणा वा एतानीतराणि

[८] तै. ५,१,७। काठ. १९,७। कपि. ३०,५। श. ब्रा. ६,५,४। वा. ११,६१-६५। काण्व. १२,६१-६६।
[मित्रस्य चर्षणी० । ऋ. ३,५९,६; तै. सं. ३,४,११,५;४,१,६,३; तै. आ. ४,३,२,। सुपाणिः (सुबाहुः) स्वङ्गुरिः० । ऋ. २,३२,७; अथर्व. ७,४६,२, तै. सं. ३,१,११,४]
[९] मै. २,७,७। तै. ५,१,९-१०। काठ. १९,९-१०। कपि. ३०,७-८। श. ब्रा. ६,६,१,१५। वा. ११,६८-८१ काण्व. १२,६९—८२।

छन्दाꣳसि, वागनुष्टुब्, यदनुष्टुभा सप्तमं जुहोति वाचꣳ वा एतत् प्राणेषूपसंदधाति, तस्मादियꣳ वाक्सप्तमी प्राणानां, मा सु भित्था मा सु रिषा, इति प्रवृणक्त्य,—सुरमाया वा एषासीत्, तां देवा एतेन यजुषावृञ्जता,—ऽऽसुरीं माया स्वधया कृतासीति, तन्मायामेवैतेन यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, द्वाभ्यां प्रवृणक्ति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, प्रवृञ्ज्याद्भूतिकामस्य, भविष्यद्वा इदमुपजीवामो, भविष्यदेवोपैति, श्वः श्वः श्रेयान् भवति, जातमेवदध्याद्गतश्री,—र्जातो वा एष यो गतश्री,—र्जातिमेवैनं जनयति, श्रेष्ठादाहुरेयं कामयेता,—ऽन्नादः स्यादित्ये,—ष वा अग्नीनामन्नादो, ऽन्नकरणं श्रेष्ठ,—मन्नाद्यमस्मा अवरुन्द्धे, प्रदावादाहरेयं कामयेत, प्रसेनेनास्य राष्ट्रं जायुकꣳ स्यादिति, प्रसेनेनास्य राष्ट्रं जायुकं भवति, यतः कुतश्चाहृत्यावदध्याद्यं कामयेता,—ऽस्य पाप्मा भ्रातृव्यो द्वितीयो जायेतेत्ये,—तद्वै यजमानस्यायतनꣳ, स्वे वावास्मा एतदायतने पाप्मानं भ्रातृव्यं द्वितीयं जनयति, द्रवन्नः सर्पिरासुतिरिति, क्रुमुकं घृतान्वक्तमादधात्ये,—षा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यत्क्रुमुकं,—स्तेजो घृतं, प्रिययैवैनं तन्वा तेजसा च समर्धयति, परस्या अधि सꣳवता, इत्यौदुम्बरीं, देवा यत्रोर्जꣳ व्यभजन्त तत उदुम्बर उदतिष्ठद्, यदौदुम्बर्यू,—र्जमेवावरुन्द्धे, परमस्याः परावता, इति वैकङ्कती,—मेधं सृष्टस्य भा अपाक्रामत्, तद्विकङ्कतं प्राविशद्, यद्वैकङ्कती, भा एवावरुन्द्धे, यदग्ने यानि कानि चे,—ति शमीमयीꣳ शान्त्या, अग्नये वै न किंचनापरशुवृक्णमस्वदन्त, तस्मै वा एतया सृष्टः प्रयोगिः सर्वमस्वदयद्, यदग्ने यानि कानि चेति, तदग्नय एवैतया सर्वꣳ स्वदयति, सर्वमस्मै स्वदितं भवति, रात्रीꣳ रात्रीमप्रयावं भरन्त इत्या,—शिषमेवाशास्ते, नाभा पृथिव्याः समिधानो अग्निमिति, पृतनाजितमेवैनमक,—रग्निꣳ वै सृष्टꣳ रक्षाꣳस्यजिघाꣳसꣳ,—स्तानि वा एताभिरेवापाहत, याः सेना अभीत्वरीरिति, तदग्निरेवैताभी रक्षाꣳस्यपहन्त्ये,—ता एव समिधा आदध्यायत्र रक्षोभ्यो बिभीयाद्, रक्षसामपहत्या, अथो प्राहुका ह ताꣳ समाꣳ स्तेनान् भवन्ति, तैल्वकीमभिचरन्नादध्या,—देषं वै वनस्पतीनाꣳ वज्र,—स्तमेवाभ्यवजेत,—न्मनसा ध्याये,—न्मनो वा आशी,—र्यो वाचे आहुतिमेवैनं भूतमग्नयेऽपिदधाति,

[द्रवन्नः सर्पिरासुतिः० । ऋ. २,७,६; तै.सं. ४,१,९,१। परस्या अधि० । ऋ. ८,७५,१५; तै.सं.२,६,११,१; ४,१,९,१ । यदग्ने यानि (कानि) कानि० । ऋ. ८,१०२,२०; अथर्व. १९,६४,३; तै. सं. ४,१,१०,१ । सर्वं तदस्तु ते । ऋ. ८,१०२,२१; अथर्व. १९,६४,३; तै. सं. ४,१,१०,१; नि. ३,२०]

मै० १८

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जना इति, तस्मादग्निचितोऽश्लीलं न कीर्तयितवꣳ, नो
अग्निविदः, सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितꣳ वीर्यं बलमिति, ब्रह्मणा वा एतत् क्षत्रꣳ सꣳ
श्यति, क्षत्रेण ब्रह्मा,—ऽथो ब्रह्म चैवं क्षत्रं च सयुजा अक,—रेतद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ ब्रह्म क्षत्रꣳ
सयुजा न व्यथेते इति, ब्रह्माह क्षत्रं जिन्वति क्षत्रियस्य ।
क्षत्रं ब्रह्म जिन्वति ब्राह्मणस्य यत्समीचीं कृणुतो वीर्याणि ॥ ९ ॥ १३-१४
अग्निभ्यः ॥ इति कामायालभ्यन्ते, यत्कामो भवति सꣳ हास्मै स कामो नमत्या,—ग्नीणन्ति, यज्ञियानेवैनान्मेध्यान् कुर्वन्ति, पर्यग्निकृतानुत्सृजन्त्ययातयामत्वायै,—केन सꣳस्थापयन्ति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय, पुष्करा भवन्ति सेन्द्रियत्वाय, त्रिष्टुभो याज्यानुवाक्या भवन्तीन्द्रियस्यावरुद्ध्या, अथैष योऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालः, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरं, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः, प्रिययैवैनं तन्वा समर्धयत्य,—थो अयातयामत्वायैवा,—ऽयातयामा हि वैश्वानरः, श्वेतꣳ वायवे नियुत्वत आलभेत तेजस्कामो, वायुर्वा अग्नेस्तेज,—स्तस्माद्वायुमग्निरन्वेति, यद्वायवेऽग्नेः सतेजस्त्वाय, यद्वायव एकधा स्यादुन्मादुको यजमानः स्याद्, यन्नियुत्वते द्वितीयत्वाया,—ऽथो धृत्या अनुन्मादाय, सर्वेषाꣳ वा एष पशूनाꣳ रूपाणि प्रति, यद्वायव एकधा स्यादुन्मादुको यजमानः स्याद्, यदेष प्राजापत्यो द्वादशकपालो द्वितीयत्वाया,—ऽथो धृत्या अनुन्मादाया,—ऽथैष आग्नावैष्णव एकादशकपालो, ऽग्निर्वै सर्वा देवता, विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्धा,—ऽथैष आदित्यो घृते चरु,—रादित्या वा इत उत्तमाः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेभ्य एव प्रोच्य स्वर्गं लोकमेत्या,—दित्या वा अस्मिल्लोक ऋद्धा, आदित्या अमुष्मिन्, पुरोडाशेन वै देवा अस्मिल्लोक आर्ध्नुवꣳ,—श्चरुणामुष्मि,—न्नस्मिन्नेव लोके पुरोडाशेन ऋध्नोति, चरुणामुष्मि,—न्नथैष योऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालो,
देवायतनꣳ वा अग्निर्वैश्वानरो, देवायतन एवं प्रतिष्ठाप्याग्निं बिभर्त्यै,—षो कामो वै वैश्वानरो,
यत्कामो भवति सꣳ हास्मै स कामो नमति ॥ १० ॥ १५-१६
[१४९४]

॥ इत्युपरिकाण्डे शुक्लप्रमोगः प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

[सꣳशितं मे० । अथर्व. ३,१९,१]
[१०] तै. ५,१,८,१ । काठ. १९,८ । कपि. ३०,६ ।

अथ द्वितीयः प्रपाठकः।

दृशानो रुक्म उर्व्या विभाती,—ति रुक्मं प्रतिमुञ्चते, ऽमृतꣳ वै हिरण्यं, मृत्योरेतद्रूपꣳ यदग्नि,—र्यत् पाशोऽमृतेनैव मृत्युमन्तर्धत्ते, ऽथैते निर्बाधा, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा एतान्निर्बाधानपश्यꣳ,—स्तैरसुरानेभ्यो लोकेभ्यो निरबाधन्त, तन्निर्बाधानां निर्बाधत्वं, तदेतैरेव निर्बाधैर्यजमानो भ्रातृव्यमेभ्यो लोकेभ्यो निर्बाधता, एकविꣳशतिनिर्बाधो भवति प्रतिष्ठित्या, उपरिष्टान्निर्बाधं दिभर्त्य,—धस्तान्निर्बाधꣳ सादयति भ्रातृव्यस्य विनुत्त्यै, नक्तोषासा समनसा विरूपा इत्य,—होरात्राभ्यामेवाग्निमाधत्ते, धापयेते शिशुमेकꣳ समीची, इत्येतꣳ ह्येतेयो रुक्मो ह्येतं धापयेते शिशुमेकꣳ समीची, द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभातीत्ये,—ष ह्येतयो रुक्मो ऽन्तर्विभाति, देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदा इति, प्राणा वै देवा द्रविणोदाः, प्राणैरेवाग्निं धत्ते, विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविरिति, विश्वा हि रूपाण्यग्निः, प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदा, इत्याह प्रसूत्या एवं, वि नाकमख्यत्सविता वरेण्या इति, सवितृप्रसूत एवाग्निं बिभर्त्यै,—नु प्रयाणमुषसो विराजतीति, तस्मादुषसो व्युष्टिमन्वग्निराधीयते, सुपर्णोऽसि गरुत्मा,—न्स्त्रिवृत्ते शिरो, गायत्रं चक्षुरित्य,—ग्निर्वा एषा संभृति,—रग्निमेतत्संभरति, तस्मात्सर्वैरङ्गैः पशुर्जायते, पशुरूपोऽग्नि,—र्दिवं गच्छ स्वः पते,—त्याह स्वर्गस्य संभरति, तस्मात्सर्वैरङ्गैः पशुर्जायते, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा एतान् क्रमानपश्यꣳ,—स्तैरसुरानेभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त, तानेनपजय्यमजयꣳ,—स्तदेतैरेव क्रमैर्यजमानो लोकस्य समष्ट्या, अथैते क्रमा, भ्रातृव्यमेभ्यो लोकेभ्यः प्रणुदते, ऽनपजय्यꣳ ह जयति, यद्युपाꣳ शिक्यं भवति, यद्वा ऋतव, ऋतुभिरेवाग्निं परिगृह्णात्य,—परिनाभि बिभर्त्यु,—परिनाभि ह्यात्मनः संदेवꣳ, संदेव एवं देवता आत्मन् बिभर्ति, यदधोनाभि बिभृयाच्चोनिं निर्दहे,—दथोऽवधीनं घातुकꣳ स्यात्, प्रक्रामति, तस्माद् ग्राम्याः पशवः प्ररते, ऽथ यत् पुनरभ्यावर्तते तस्मात् पुनः समावर्तन्त, ऊर्जा वा एषा पशुभिरुत्क्रामन्त्सहोत्क्रामति, पुनरूर्जा निवर्तस्वेति, तदूर्जमेव पशून् पुनरेवारुन्द्धे, पुनर्वतीर्भवन्ति संमृद्ध्यै, चतसृभिरभ्यावर्तते, चतुष्पादो वै पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे,

[१] तै. ५,१,१०;९। काठ. १९,११। कपि. ३०,१। श. ब्रा. ६,६,४;७,१। वा. १२,१–४,९–१५,१५,४०–४१;१७,७०; [दृशानो रुक्म. ऋ. १०,४५,८; तै. १०,२४ । काण्व. १३,१–६,१०–१६,१६,४१–४२,१८,७०;११,३४। नक्तोषासा समनसा० (वर्णमा०)। ऋ. १,९६,५; तै. सं. ४,१,१०,४;५, सं. १,३,१४,५;४,१,१०,४,१,१,४। विश्वा रूपाणि० । ऋ. ५,८१,२; अथर्व. ७,७३,६; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३] ५,१,७,११,३।

वरुन्द्ध, इत्थं पर्यावर्तव, एवꣳ हि यज्ञः पर्यावर्तते, ऽथो अमुष्य वा एतदादित्यस्यावृतमनुपर्यावर्तता, आ त्वाहार्षमन्तरभूरित्यन्त ह्येष एतर्हि,—दुत्तमꣳ वरुण पाशमस्मदिति, वरुणपाशमेवोन्मुञ्चत आत्मनोऽहिꣳसाया, अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादिति, ज्योतिषैवैनꣳ समर्धयति, हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्,—दिति सादयति, सप्त एवैनꣳ होत्रासु प्रतिष्ठापयत्य,—थो सप्त वा एतेन सामान्यग्नेश्रेभोत्या,—ऽऽसप्तमात्पुरुषादन्नादो भवति, रेतो वा अग्नि,—रन्तरिक्षꣳ वै रेतोऽनुषिच्यते, यदुखो निदध्यादधृताः पशूनां गर्भाः प्रपादुकाः स्यु,—रथ यदुपरि सादयत्यन्तरिक्षसदमेवैनमकर्गर्भाणां धृत्यै, सूयते ५। एषोऽग्नीनाꣳ यच्छ्रीयते, तस्मादेष आसन्दीसद्, सीद त्वं मातुरस्या उपस्था इती,—यꣳ व। अग्नेर्योनिः, स्व एवैनꣳ
योनौ सꣳवेशयति, तिसृभिरुपतिष्ठते, त्रिवृद्ध्यग्निः ॥ १ ॥ १
अथैतद्वात्सप्र,—मेतेन वै वत्सप्रीर्भालन्दनोऽग्नेः प्रियं धामाराध्नोत्, तदग्नेरेवैतेन प्रियं धाम राध्नोत्या,—र्गोत्मकमेनं प्रियं भवति, वत्सप्रियꣳ वै भालन्दनमृषयोऽध्यवद,—न्स्तेना इति, स एतत् सूक्तमपश्यत्, तेनाधिवादमपाजयत्, तेनापचितिमगच्छत्, तदधिवादमेवैतेनापजयत्य,—पचितिमेव गच्छति, द्वादशभिरुपातिष्ठते, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे, त्रिष्टुभो भवन्तीन्द्रियस्यावरुद्ध्या, अन्येद्युः प्रक्रामयत्य,—न्येद्युरुपातिष्ठते, योगक्षेमꣳ वा एतत् प्रजानां दाधार, तस्माद्यायावरा अन्याः प्रजाः, क्षेम्या अन्या, अथ यत् प्रक्रम्योपतिष्ठते तस्माद्यायावरः क्षेम्यमभिप्रयाति, तस्माद्यायावरस्य क्षेम्योऽन्नं बभूव, यदहश्चेष्यमाणः स्यात्तदहरुभयꣳ समस्येत्, प्र च क्रामेदुप च तिष्ठेत, योगक्षेमꣳ वा एतदुभायꣳ यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ता, उदु त्वा विश्वे देवा इति, विश्वे ह्येदं देवाः स्मो यन्मनुष्या, अग्ने भरन्तु चित्तिभिरिति, यस्मा एवं चित्तायाग्निराधीयते तेनैनं चित्तेन समर्धयति, प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहीति, ज्योतिषैवैनꣳ समर्धयित्वा प्रवापयत्य,—क्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौरित्य,—नुब्रूयाद्, यद्यर्थक्षु उरक्षेद्देदीश्वरो वा एष उरक्षेदुन् यजमानस्य प्रजा

[आ त्वाहार्षं० । ऋ. १०,१७३,१; अथर्व. ६,८७,१; तै. सं. ४,२,१,४; तै. ब्रा. २,४,२,८ । उदुत्तमं वरुण० । ऋ. १,२४,१५; अथर्व. ७,८३,३;१८,४,६९; सा. ५८९; तै. सं. १,५,११,३;४,२,१,३; नि. २,१३। अग्ने(अग्ने) बृहन्नुषसा० । ऋ. १०,१,१; तै.सं. ४,२,१,४। हꣳसः शुचिषद्० । ऋ. ४,४०,५; तै. सं. १,८,१५,२;४, २,१,५; तै. आ. १०,१०,२]

[२] तै. ५,२,१–२ । काठ.-१९,१२। कपि. ३१,१। श. ब्रा. ६,७,४,६,६,४ । वा. १२,६,९,११,३०-३३,४०-४२; १७,५३ । काण्व. १३,७,१०,१२,३१–३३,४१–४३,१८,५३ । [भक्रामन्दति ०... । ऋ. १०,४५,४;

पशुभिश्चिनुत,—स्तेनक्रुदितमेवास्याक,—रथो ह्यनविरथैवाग्निपमाह्मास्ते, समिधाग्निं दुवस्यतेँ,—
ति गायत्र्या ब्राह्मणस्यादध्याद्, गायत्रो हिँ ब्राह्मणं,—स्त्रिष्टुभा राजन्यस्य, त्रैष्टुभो हिँ राज३-
न्यो, द्वाभ्यां गायत्रीभ्या२ वैश्यस्य, यँ हिँ द्वे गाय३त्र्यौ सा जगत्यं,—थो ब्रह्मणे वा
एतद्विशमनुकं करोति, यदि भस्म प्रतियदेताप्सु प्रवेशये,—दापो वा अग्नेर्योनिः, स्व एवैन-
योनौ दधाति, पुरीषं कुर्याद् पशुकामस्य, पशवो वैँ पुरीषं, पशुमान् भवती,—ष्टका वा
सं२युयान्, तेनास्य सर्वा आग्नेयीरिष्टका भवन्त्यु,—र्जी वा एषं पशुभिरुत्सीदन्त्सहोत्सीदति,
पुनरूर्जा निवर्तस्वेति, तदूर्जमेव पशून् पुनरवरुन्द्धे, बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठे,—ति बोधद्व-
तीभ्यामुपतिष्ठते, तस्माद् प्रजाः सुप्त्वा पुनः प्रबुध्यन्ते, द्वाभ्यामुपतिष्ठते, द्विपाद्यजमानः
प्रतिष्ठित्यै ॥ २ ॥
२
अपेत वीत वि च सर्पतात, इत्याह, यमदेव३त्यो वा अयं लोको, य३मोऽमुष्य
लोकस्याधिपत्यमानश, यद्यमादेवयजनमनियाच्याग्निं चिन्वीतायमदेवत्योऽस्याग्निः स्यादस्वर्ग्यो,
यदाहा,—ऽऽदादिदं२ यमोऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मा इति, यमाद्वा एतेना-
स्या देवयजनं निरयाचिष्ट, स्मृते देवयजनेऽग्निं चिनुते, यमदेवत्योऽस्याग्निर्भवति स्वर्ग्यं,
उद्घ्नन्ति, यदेवास्या अयज्ञियममेध्यं तदुद्घ्नन्ति, व्याममात्रमुद्घ्नन्त्ये,—तावद्वै पुरुषे
वीर्य२, वीर्यसम्मिते चीयते, ऽथो एतावान् वैँ पुरुषे महिमा महिम्नोऽवरुद्ध्या, अवो-
क्षति, यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरमक्र२स्तदक्रूरमक,—स्तच्च शमयत्यं,—थो आपो वा अग्नेर्यो-
निः, स्व एव योनौ चीयते, ऽग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसी,—ति सिकता निवपत्य,—ग्नेर्वा
एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकता, स्व एव भस्म२श्चीयते, योनिर्वै सिकता, रेत ऊषा,
यत्सिकता न्युप्योषानिर्वपति योनौ वा एतद्रेतो दधाति, तस्माद्योनौ रेतो हितं, तस्माद्योनि
रेतः प्रजायते, प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता वा ऊषेभ्य एव योनिरसृजत, प्रजनन२ वा
ऊषाः, प्रजनने वा एतदग्निं श्रीयत, इमे यँ सहास्तां, ते वियती अब्रूता,—मस्तु नौ प्रियं
धाम सहे,—त्यापो वा अम्या यज्ञिया मेध्या,—स्ता अमूं,—रूपा अमुष्या यज्ञिया मेध्या,—स्तं

तै. सं. १,३,१४,२,४,२,१,२,२,२ । समिधाग्निं० । ऋ. ८,४४,१; तै. सं.४,२,३,१; तै. ब्रा. १,२,१,९ ।
बोधा मे अस्य० ... । ऋ.१, १४७,२; तै. सं. ४,२,३,४; नि. ३,२०]
[३] तै. सं. ५,२,३ । काठ. २०,१ । कपि. ३२,३ । वा. १२,४५,६०—६१;५,३ । काण्व. १३,४६,६१—६२;५,३ ।
[अपेत वीत वि० ... । ऋ. १०,१४,९; अथर्व. १८,१,५५; तै. सं. ४,२,४,१; तै. ब्रा. १,२,१,१६; तै.आ.१,
२७,५ ६,६,१]

इमे, यदापश्चोषाश्च भवन्ति यदेवैनयोर्यज्ञियं मेध्यं तदवरुन्द्धे, ऽथो अनयोरेवैनं प्रियं धाम-
भिधत्ते, संज्ञान२ वा ऊषा, उभये वा एतान् पशवोऽभिसंजानते, ये ग्राम्याः पशवो ये
चारण्या, उभये हैनं पशवोऽभिसंजानते, चतस्रः प्राचीः सादयति, चत्वारि वै छन्दा२-
सि, छन्दोभिर्वै देवाः स्वर्गं लोकमाय२,—स्ते दिशा आक्रमन्त, ता अव्लीयन्त, ता
एताभिरदृ२हन्, यदेता उपधीयन्ते दिशां धृत्यै, पशवो वा इष्टका, गार्हपत्य२ वै पशवो
ऽनूपतिष्ठन्ते, द्वे समीची पुरस्तादुपदधाति, द्वे समीची पश्चा,—दुभयत एवास्मै समीचः
पशूननुपदधाति पशूनां परिगृहीत्या, अष्टौपदधात्यु,—ष्टाक्षरा गायत्री, गाय३त्रोऽग्नि,—
र्यावानेवाग्निस्तं चिनुता, एकवि२शतिः का३र्या प्रतिष्ठित्यै, प्रतिष्ठा ह्येकवि२शो, ऽथो
एकवि२शतिविधो हिं गार्हपत्य,—स्त्रिचितिकः का३र्य,—स्त्रयो वा इमे लोका, इमानेव
लोकानाप्नोति, पञ्चचितिकः का३र्यः, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, चतुर्भिः
संनिवपति, चत्वारि वै छन्दा२सि, छन्दोभिरेव संनिवपत्य,—थो ब्रह्म वै छन्दा२सि,
ब्रह्मणैव संनिवपति, क्षत्र२ वा एषोऽग्नीना२ यच्छ्रीयते, क्षत्र२ य उख्यो, ब्रह्म यजु,-
—र्यद्यजुषा संनिवपति ब्रह्मणा वा एतत् क्षत्र२ संनयति, तस्माद्ब्रह्मणा क्षत्र२ सं चैति वि च,
द्वौ वा एतौ व्याघ्रौ संपद्येते, ता ईश्वरा अशान्तौ यजमान२ हिं२सितो,—र्यदाह, भवतं नः
समनसौ समोकसौ सचेतसा अरेपसा इति, शमयत्येव, शान्त एव न्युप्यते यजमानस्या-
हिं२साया, ऋतुभिर्वै पृथिव्या वी३र्यमुद्धृतं, तदृतुभिः पुनर्विमुच्यते, यदाह, प्रजा-
पतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चत्विति, प्रजापतिरेवैना२ विश्वकर्मा विमुञ्चति ॥ ३ ॥ ३
अथैता नैर्ऋती,—स्तिस्रस्तुषपक्वा भवन्त्ये,—तद्वै नैर्ऋतमन्नस्य यत्तुषाः, कृष्णा भवन्त्ये,-
—तद्धि निर्ऋत्या रूपं,—मेतां दिश२ हरन्त्ये,—षा हि निर्ऋत्या दिक्, ताः स्वकृत इरिणे परा-
चीर्निदधात्ये,—तद्वै निर्ऋतिगृहीतं पृथिव्या, निर्ऋतिगृहीत एव निर्ऋतिं निरवदयते, प्राण-
मेवास्य प्रथमया मुञ्चत्यु,—पानं द्वितीयया, व्यानं तृतीयया,—ऽथो त्र्यक्षरो वै पुरुषो,
यावानेव पुरुषस्तं निर्ऋत्याः पाप्मनो मुञ्चति, निर्ऋतिर्वै कर्मण उपद्रष्ट्रिका, ता२ वा एते-
स्त्वेन भागधेयेन शमयित्वाथ सवितृप्रसूतोऽग्निं चिनुते, यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्धेति,

[४] तै ५,२,४,—५ । काठ. २०,२—३ । कपि. ३१,४-५ । वा. १२,६५—६६ । काण्व. १३,६६—६७ ।
[यं ते देवी० । ... अथर्व. ६,६३,१]

जालमिष्टकास्वभ्यस्यति, निर्ऋतिपाशमेवोन्मुञ्चत आत्मनोऽहिं२सायै ॥ ४
यदुस्यं पारे रजसो महश्चित्रं ज्योतिरजायत । तन्नः परिषदति द्विषोऽग्ने वैश्वानरः ॥ ५
त्वाहैस्यपः परिषिञ्चन् पर्येति निर्ऋत्या अनन्ववायाय, भूत्यै नमा, इत्युक्त्वावर्तते,
भूतिरेव भूत्वावर्तत आत्मनोऽहिं२साया, अनपेक्षमाणा आयन्ति निर्ऋत्या अनन्ववायाय,
परोगोष्ठं मार्जयन्ते, परोगोष्ठमेव निर्ऋतिं निरवदयन्त, इन्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते
यो नैर्ऋतीरुपधत्ते, निवेशनः संगमनो वसूना,—मित्यैन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठत, इन्द्रियेणै-
वात्मान२ समर्धयति, त्रिष्टुभोपतिष्ठता, ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुबो,—जस्येव वी३र्ये प्रतिति-
ष्ठति, गार्हपत्योऽग्रे चीयते प्रतिष्ठित्यै, गार्हपत्ये वै देवाः प्रतिष्ठाय प्राञ्चः स्वर्गं लोकमु-
भिजेयन्त आयन्, यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावता वेणुना विमिमीत, एतावद्वै पुरुषे वीर्य२,
वीर्येणैव विमिमीते, ऽथो एतावान् वै पुरुषे महिमा, महिम्नोऽवरुद्ध्यै, यो वै वनस्पतीनां
फलग्रहितमः स एषा२ वीर्यवत्तमो, वेणुर्वै वनस्पतीनां फलग्रहितमः, स एषा२ वीर्यवत्तमो,
ऽन्न२ वै फल,—मन्नम३र्को, ऽ३र्कोऽग्नि,—रर्केण वा एतदन्नमर्कमग्नि२ विमिमीते, सप्त
पुरुषान् प्रमिमीते, सप्तभ्य एव पुरुषेभ्यो लोक२ विन्दत्या,—ऽऽसप्तमात्पुरुषादन्नादो भवत्य,—
रत्निमात्रं पक्षयोरन्वुपदधाति, पक्षौ वृहद्वे वयः, पद्भिः कृषति, पड्वा ऋतव, ऋतु-
भिरेव कृषती,—त्यंमन्याववर्तन्त, कृषन्त्ये,—षा हि देवानामावृ,—दथो अमुष्य वा एतदादित्य-
स्यावृतमनुपर्यावर्तन्ते, तिस्रस्तिस्रः सीताः संपादयति, त्रिवृ३द्व्यग्नि,—र्द्वादश सीता भवन्ति,
द्वादश मासाः स२वत्सरः, स२वत्सरस्य वा एषं विधामनुविधीयत, इय२ वा अबिभे,—द्-
भिर्मातिधक्ष्यतीति, यत्कृषन्त्यस्या वा एतद् द्विगुणं क्रियतेऽनतिदाहाया,—ऽथो पृथिव्या वा
एतद् द्विगुणेनाश्वी३र्यमुत्सृजन्त, एषा दिग्वहत्सृजन्त्ये,—षा हि देवानां दिं,—गथो स्वर्गमे-
वैनं लोकमनुत्सृजन्ति ॥ ४ ॥
६
कृष्टे वपति, कृष्टे ह्योषधयः प्रतिष्ठिताः प्रतितिष्ठन्त्यं,—न्नस्यान्नस्य वपत्योषधीनामग्निं,—र्ब्रह्म
वा अन्न, ब्रह्मणैवास्मा अन्नाद्यमवरुन्द्धे, चतुर्दशभिर्वपति, द्वादश मासाः स२वत्सरो,
ऽन्न२ वै एते चतुर्दशे अहोरात्रे वैति, तत स२वत्सरेण च वावास्मा एतदहोरात्राभ्यां चान्नाद्य-
मवरुन्द्धे, ऽन्न२ वै फल,—मन्नम३र्को, ऽ३र्कोऽग्नि,—रर्केण वा एतदन्नमर्कमग्नि२ वपति,

[निवेशनः संगमनो० (रायो बुध्नः०) । ऋ. १०,१३९,३; अथर्व. १०,८,४२; तै. सं. ४,२,५,४]

यस्यान्नस्य निवपति यत्तस्याश्रीयाद्यान्यवरुद्धानि तैर्व्यृध्येते,—न्मे तस्यापिकुर्या,—दथो तन्मनसा
ध्यायेत, तेनैव तदवरुन्द्धे, यदि सर्वं न स२विन्देद्यद्ग्राम्यानुग्राम्धृग्धृतान् वपेद्, यद्वा ग्राम्यं
तेनान्नाद्यमवरुन्द्धे, यन्मध्वारण्यं तेन, तेनैव तदुभयमवरुन्द्धे, ऽथैते संभारा, दिग्भ्यो
वा एतत् पृथिव्या ऊर्ज२ संभरत्यु,—र्ज्यग्निः श्रीयते, यां जनतां कामयेत, क्षोधुका स्यादि-
ती,—षमूर्जमहमित आदीति, तस्या अर्धादाददीत, क्षोधुका ह सा जनता भवति, कामं
कामदुघे धुक्ष्वेत्य,—भिमृशति, तेनास्य सर्वा इष्टकाः कामदुघा भवन्त्यु,—त्तरवेदिं निवपत्यु-
त्तरवेदिर्मित्ये,—वास्याग्निः श्रीयते, ऽथो यज्ञपुरूपोऽनन्तर्हित्या, अग्निर्वा एष न्युप्यते यदुत्त-
रवेदि,—र्यदुत्तरवेदिं न्युप्याग्निं चिनोत्यग्नौ वा एतदग्निः श्रीयते, ऽग्ने तव श्रवो वया, इति
सिकता निवपत्ये,—ता वै वैश्वानरीरिष्टका अपरिमिता, एतदग्नेरपरिमितं चीयते, ऽग्नेर्वा
एतद्वैश्वानरस्य सूक्त,—मेषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः, प्रियाया२ वा एतत्तन्वामग्निः श्रीयते,
सतन्रकौ निधीयते, लोमश२ वा एतच्छन्दः पशव्युमनातिरिक्तं प्रजननायाशीत्यक्षर,—मेतेन
वै देवाः स्वर्गं लोकमाय२,—स्तदस्याशीत्यक्षरत्व२, समुद्र२ वा एतच्छन्दो, योनिः
समुद्रः, सोमो रेतोधा, यत्सौमीभ्या२ व्यूहति योनौ वा एतद्रेतो दधाति, तस्माद्योनौ
रेतो हितं,—माप्यायनवती भवत,—स्तस्माद्योनौ रेता आप्यायते, छन्दोभिर्वा अग्निरुत्तरवेदिम-
भिप्रह्रियते, या अग्नौ प्रह्रियमाणेऽन्वाहस्ता तर्हि मनसा ध्याये,—च्छन्दोभिरेवैनमुत्तरवेदिमभि-
प्रहरति, मनसान्वाहा,—ऽनिरुक्तमिव ३ह्येतदव्यावृत्त२, व्यावृतं पाप्मना भ्रातृव्येण गच्छत्य,-
—श्वं पुरस्तान्नयन्ति रक्षसामपहत्या, आक्रमयन्ति, य एवैनेन भ्रातृव्यः सदृङ् त२ वज्रेणाव-
बाधन्ते, प्राञ्चं प्रक्रमयन्ति, य एवैनं भ्रातृव्योऽति त२ वज्रेण प्रणुदते, प्रत्यञ्चमभ्याव-
र्तयन्ति, य एवैनं भ्रातृव्योऽनु त२ वज्रेण प्रतिनुदते, तद् भ्रातृव्यस्य वा एषं विनोदः,
कृष्णो वै भूत्वाग्निरश्वं प्राविशत, स एतद्गच्छद्यत्र मृगशफो, यदश्वमाक्रमयन्ति, यद्देवा-
त्राग्नेर्युक्तं तस्यावरुद्ध्यै ॥ ५ ॥ ७
तपो योनिरसीति, पुष्करपर्णमुपदधाति, योनिर्वा ए३षोऽग्नेर्यत्पुष्करपर्णं, नाभिर्वैधुका,
सयोनिरेव सनाभिः श्रीयत, इय२ वा अबिभे,—दग्निर्मातिधक्ष्यतीति, यत्पुष्करपर्णमुपदधात्यस्या

[५] मै. २,७,१३ । तै. ५,२,५—६ । काठ. १९,३—४ । कपि. ३१,५—७ । वा. १२,७१,१०६ । काण्व. १३,७१,
१०५ । [अग्ने तव श्रवो० ... । ऋ. १०,१४०,१; सा.१८१६; तै. सं. ४,२,७,१]

अनुविदाहाया,—ऽथस्तान्नाभि सादयत्योषधीनां प्रतिष्ठित्वा, अथो ३येऽ३ष्स्वग्नयस्तानेवा-
वरुन्द्धे, प्रजापतिः प्रजा असृजत, याः पुरा ब्रह्मणोऽसृजत ताभिर्नाराध्नो,—दथ या
ब्रह्ममुखा असृजत ताभिरराध्नोद्, यद् ब्रह्म, जज्ञानं प्रथमं पुरस्ता,—दिति रुक्ममुपदधात्यं,
द्धया, ऋष्नोत्येवा,—ऽथो मिथुनत्वाय, न पृथिव्यामग्निश्चेत३व्यो नान्तरिक्षे न दिवी,—
त्याहु,—रमृत२ वै हिरण्य,—ममृते वा एतदग्निश्चीयते, श्मशानचितो वा एते चीयन्ते,
चित्यां चित्या२ हिरण्यशकलमुपास्यति, तेन वा एषोऽश्मशानचित, तेन स्वर्गो, ऽथैष
पुरुषो हिरण्ययो, यजमानलोकमेवैष दाधारे,—ष ह ३त्वेव यजमानोऽग्निनामुष्मिल्लोके सम्यङ्
यस्यैष उपधीयते, ऽथो मध्ये ज्योतिरेव चीयते, द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामि,—त्यभि-
मृशति, होत्रास्वेवैनं प्रतिष्ठापयत्यं,—थैतानि सर्पनामानि, मृत्युर्वै सर्पनामानि, यदुपद-
ध्यात् प्रमायुकः स्यात्, तस्मादनुदिशति, सोमे वा एका त्विषि,—र्व्याघ्र एका, सर्प
एका, ता एवावरुन्द्धे, वामदेवस्य राक्षोघ्नेन व्याघारयत्ये,—तेन वै वामदेवः कुसिताय्याः
शिर आदीपयद्, रक्षसामपहत्यै, पञ्चभिर्व्याघारयति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्त-
मालब्धा,—ऽथो यावानेव यज्ञस्तस्माद्रक्षा२स्यपहन्त्यं,—थैते स्रुचौ, कार्ष्मर्यमयी दक्षिणतः
सादयति रक्षसामपहत्यै, दक्षिणतो वै देवाना२ यज्ञ२ रक्षा२स्यजिघा२स२,—स्तानि कार्ष्मर्ये-
णैवापाघ्नत, यत् कार्ष्मर्यमयीं दक्षिणतः सादयति, रक्षसामपहत्यै, घृतस्य पूर्णा भवत्ये,
—षा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद् घृतं, प्रिययैवैनं त३न्वा समर्धयति, गायत्र्या सादयति,
तेजो वै गायत्री ब्रह्मवर्चसं, तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्धा, औदुम्बरीमुत्तरतः सादयति दध्नः
पूर्णा,—मूर्ग्वा उदुम्बरो, ऽन्नं दध्यू३,—र्जमेवास्यान्नं दधाति, त्रिष्टुभा सादयत्यो,—जो वै
वीर्यं त्रिष्टु,—बोज एव वी३र्यमवरुन्द्धे, पूर्णे सादयत्यं,—क्षिते यजमानलोकमुपतिष्ठेते, मूर्ध-
न्वतीभ्या२ सादयति, मूर्धन्योऽसानीति, विराज्यग्निश्चेत३व्या, इत्याहुः, स्रुचौ वै
विराजौ, यत्स्रुचा उपदधाति विराजि वा एतदग्निश्चीयते, ऽथैषा स्वयमातृण्णे,—य२ वै
प्रथमा स्वयमातृण्णा,—ऽन्तरिक्षं द्वितीया,—ऽसौ तृतीये,—मानेव लोकानुपधत्ते, ऽश्ममुपघ्राय्य
सादयति, प्रजापतिचित एवास्य भवत्यं,—थो प्राणानामुत्सृष्ट्यै, भूरसी,—ति प्राचीमुदूहेय-

[६] मै. २,७,१५ । तै. ५,२,६–८ । काठ. २०,५–६ । कपि. ३१,७-८ । वा. १३,३,५,१८,२० । काण्व. १४,३,
५,१८,२० । [ब्रह्म जज्ञानं० । अथर्व. ४,१,१;५,६,१ । द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी० ... । ऋ.१०,१७,११;
अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३;४,२,८,२;९,५; तै. आ. ६,६,१]
मै० १९

येनं भ्रातृव्योऽतीव स्याद्, भूमिरसी,—ति प्रतीची२ यच्छन्वं,—दितिरसि भूमिरसी,—ति तिर-
श्ची२ यदि सदं,—इडियं२ वा अदिति,—रनया वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यं प्रभुतं प्रणुदते, ऽनया
प्रतिनुदते, ऽनया विनुदते, तद्भ्रातृव्यस्य वा एष विनोदः, काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती,—
ति दूर्वेष्टकामुपदधात्यो,—षधीनां प्रतिष्ठित्यै, काण्डात्काण्डा३द्ध्येषा प्रतितिष्ठतीति, पशवो
वा इष्टका, न वै पशवा आयवसे रमन्ते, यद्दूर्वेष्टकामुपदधात्यायतनमिव वा एतत् क्रियते,
पशूना२ यत्या, अथैषा वामभृद् द्वियजु,—र्यजमानलोकमन्येन दाधार, भ्रातृव्यलोक-
मन्येन वृङ्क्त, एतया वै देवा असुराणा२ वामं पशूनवृञ्जत, तद्वामभृतो वामभृत्त्वं,
छन्दा२सि वै देवाना२ वामं पशव,—श्छन्दा२स्येवैतया वामं पशून् यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते,
ऽथैते रेतःसिचा, इय२ विरा,—डसौ स्वरा,—डसा एव रेतः सिञ्चती,—यं प्रजनयत्य,—ग्नि-
रत्यन्नादो भवति यस्यैते उपधीयेते, यदि पुत्री चिन्वीत प्रथमायां चित्यामन्यामुपदध्या,—
दुत्तमायामन्या२, रेतसः सिक्तस्य परिगृहीत्यै, यद्यपुत्रः प्रथमायां चित्यामुभे उपधेये,
सम्यञ्चौ हि भूत्वा रेतः सिञ्चतः ॥ ६ ॥ ८
अथैता विश्वज्योतिष, एषु वा एतल्लोकेषु ज्योतिष्मन्तमग्निं निधत्ते, ऽथो प्राणाना२
विधृत्या, अथैषा त्र्यालिखिते,—मे वै लोकास्त्र्यालिखिते,—मानेव लोकानुपाधत्त, उभये
वा एतामुपादधत देवाश्च वा असुराश्चो,—परिष्टाल्लक्ष्माणं देवा उपादधता,—ऽधस्ताल्लक्ष्माणमसुरा,
—स्ततो देवा अभव,—न्परासुरा, उपरिष्टाल्लक्ष्माणमुपदधीत भ्रातृव्यवान्यो वास्य प्रियः स्यात्,
तस्य भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवत्ये,—षं वा असपत्नेष्टका,—ऽसपत्नो भवति य
एतामुपधत्ते, ऽथो देवलक्ष्म२ वा एषा, देवलक्ष्ममेवोपधत्ते, या सोपाया अधि मृदुच्
शिष्यते तस्या एतां कुर्यात्, तेनास्य सर्वा आग्नेयीरिष्टका भवन्त्यं,—थैष कूर्मः, श्मशानचितो
वा एते चीयन्ते, जीवः कूर्म उपधेय,—स्तेन वा एषोऽश्मशानचित्, तेनोत्पाती, पशू-
ना२ वा एष मेधु, एत२ वै मेधं पश्यन्त एनं पशवोऽमुष्मिल्लोक उपतिष्ठन्ते, प्रत्यञ्च२
सादयति, प्रत्यञ्चो हि पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते, द्यावापृथिवीयया सादयति, द्यावापृथिवी
हि पशवोऽनूपतिष्ठन्ते, पशुभिरेवैन२ सम्यञ्चं दधाति, विष्णोर्नाभ्यामग्निश्चेत३व्या,
इत्याहुः, प्रादेशमात्रमुलूखलं कार्य,—मेतावान् वै विष्णु,—र्विष्णोर्वा एतन्नाभ्यामग्निश्चीयत,

[७] तै. ५,२,८-९ । काठ. २०,६-७ । कपि. ३१,८-९ ।

ऊ३र्ज्यग्निश्चेत३व्या, इत्याहु,—रूर्ग्वा उदुम्बरो, यदौदुम्बरमुलूखलं भवत्यूर्जि वा एतदग्निश्ची-
यते, वैष्णव्या सादयति, वैष्णव२ ३ह्युलूखल२, स्वयैव देवतया,—ऽथैषोपा, पृथिव्यां
वा एतदोजो वी३र्य२ संश्रियता, ओजो वा एतद्वीर्यं मध्य३तोऽग्नेर्धीयते, ऽथो मध्ये ज्योति-
रेव चीयते, यद्रिक्तामवेक्षेत क्षोधुको यजमानः स्या,—दथ यत् पूर्णामवेक्षते तथा हाक्षोधुको
भवति, सिकताभिः पूरयित३व्या,—ऽग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत् सिकताः, स्वेनैवैना
भस्मना प्रीणाति, दध्नः पूरयितव्यो,—र्वै दध्यू,—र्जमेवावरुन्द्धे, घृतस्य पूरयित३व्ये,—
षा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद् घृतं, प्रिययैवैनं त३न्वा समर्धयति, मधोः पूरयितव्या,—ऽऽ
हास्य प्रजाया मधव्यो जायते व्यृध्यै,—न्द्रियाणि वै पशुशीर्षाण्ययज्ञियान्यमेध्यानि, यच्छि-
रोत्रेषु हिरण्यशकलान्यप्यस्यतीन्द्रियेणैवैनानि वीर्येण समर्धयति, मेध्यान्येनानि यज्ञियानि करो-
त्य,—धं२ वै पुरुषः सहस्रस्य, यच्छन्त्यर्धमितरे पशव,—स्तस्मादेतन्मध्यत उपदधात्य,—भिता
इतराणि, पशोः सवीर्यत्वाया,—ऽथो सायतनत्वाय, यं कामयेत, पशुमान्त्स्यादिति,
तस्य समीचीनानि पशुशीर्षाण्युपदध्यात्, समीच एवास्मै पशूनुपदधाति, पशुमान् भवत्यं,—
ध यं कामयेता,—ऽपशुः स्यादिति, तस्य विषूचीनानि पशुशीर्षाण्युपदध्याद्, विषूच एवा-
स्मै पशूननुपदधात्य,—पशुर्भवत्ये,—ता वै साहस्रीरिष्टकाः पश्विष्टका,—स्ताः सोमदक्षः कौश्रेयो
विदांचकार, ताः श्यापर्णायोपदधौ, स सहस्रं पशून् प्राप, प्र सहस्रं पशूनाप्नोति यस्यै-
ता उपधीयन्ते, यविष्ठो वै नाम३षोऽग्नि,—स्तस्मादिन्द्रवान्तरा न व्येतवै, यद्वीयान्
प्राणानस्य युवेतो,—त्सर्गैरुपतिष्ठत, आरण्यानेव पशूञ्छुचमनूत्सृजति ॥ ७ ॥ ९
पुरुषशीर्षमुपदधात्ये,—ष हि पशूना२ वीर्यवत्तमो, वीर्यमस्मिन् दधात्यं,—कुमुपदधात्ये,—
कर्धास्मिन् वीर्यं दधाति, सौर्या पुरुषशीर्षमभिजुहोति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, सौरी वा
एषा सती मैत्रावरुण्य,—हर्वै मित्रो, रात्रिर्वरुणो, ऽहोरात्रयोरेव प्रतितिष्ठत्य,—र्धर्चाभ्यां
जुहोती,—य२ वा अर्धर्च३चो, ऽसा अर्धर्च३चो, ऽनयोरेव प्रतितिष्ठत्यं,—थ यदेकय
ऋचा द्विर्जुहोति तस्मादेकः सन् पुरुषो द्विपाद्, यद्वा एतदृक्चाकृयोनि२ वा एतद्युक्,—यदेता
अपस्याः सादयति तस्मिन्नेव योनौ रेतो दधाती,—य२ वा अधिभे,—दग्निर्मातिधक्ष्यतीति,
सैता इष्टका अपश्य,—दथो आहुः, प्रजापतिरपश्यदिति, ता उपाधत्ते, यदेता उपधीयन्ते-

[८] मै. २,८,१ । तै. ५,२,९–१० । काठ. २०,८–९ । कपि. ३२,१०—११ । वा. १३,४४-४५,१५,४९—६० ।
काण्व. १३,४४-४६;१६,८०-८१ ।

ऽस्या अनुविदाहार्य, यदिदन्न,—मिति होवाचेय२, य एता उपदधाता इत्य,—न्नादो
भवति यस्यैता उपधीयन्ते, तस्माद्रेतसः सिक्तादिप पशुः संभवति, यदेताश्छन्दस्याः,
पशवो वै छन्दा२सि, यद्दक्षिणत उपदध्यादभीपतः प्रजा वरुणो गृह्णीया,—दथ यदुत्तरत उपदधा-
त्यपवाहत एवा,—ऽथैताः प्राणभृत,—स्तस्मिन् पशौ संभृते प्राणं चक्षुः श्रोत्र२ वाचं तानि दधा-
त्य,—क्ष्णया सादयति, पशु२ वा एतदाक्रमयति, तस्मात् पशवोऽक्ष्णयाङ्गानि प्रहरन्तो
यन्ति, दशभिर्दशभिर्वा अता इष्टकाभिर्ऋषय आर्ध्नुव२,—स्ता ऋद्धीर्ऋध्नोति यस्यैता उपधीयन्ते,
ऽथैताः स२यतो, रेतो वा एतत् सिच्यते यदग्निश्चीयते, यदेता उपधीयन्ते रेतसः सिक्तस्य
स२स्यत्यै, लोकं पृण छिद्रं पृणत्ये,—षा वा अछिद्रेष्टका, अछिद्रा वा एतया चितयश्चीयन्त,
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरित्यो,—जो वै वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसा वा एतद्वीर्येणाग्निश्चीयते, ता
अस्य सूददोहसा, इति परुषि परुष्येव रसं दधाति, सोम२ श्रीणन्ति पृश्नया इत्य,—न्न२
वै पृश्न्य,—न्नमेवावरुन्द्धे, जन्मन्देवाना२ विशा, इत्याह, प्रजात्या एव, त्रिष्वा
रोचने दिव इति, सवनानि वै त्रीणि रोचनानि, सवनचितमेवैनमकरनुष्टुब् वा एषा,
वाग्वा अनुष्टुप्, प्राणो वै वाग्, यदेषा सर्वा इष्टका अनुसंचरति तस्मात् प्राणः सर्वाण्य-
ङ्गान्यनुसंचरत्या,—ग्नेयी वा एषा वर्णेन स्वेन वा एतच्छन्दसाग्निश्चीयते, नाध्वर्युः सर्वार्ति-
मार्छति य एव२ वेद ॥ ८ ॥ १०
उत्सन्नयज्ञो वा एष यदग्निश्चित्यः, को ह तद्वेद यदेतस्य क्रियते यं,—न्नाश्विनौ वै देवाना-
भिषजा अक्लृप्तस्य कल्पयितारौ, यदेता आश्विनीरुपधीयन्तेऽक्लृप्तस्य क्लृप्त्यै, पञ्चोपदधाति,
पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालब्धा,—ऽथो यावानेव यज्ञस्तमचीक्लृप,—दथैता आश्विनी-
र्ऋतव्या अनूपधीयन्ते, रेतसे वा एतत्सिक्ताय ऋतूननुपाधात्, तस्मात् सर्वेष्वृतुषु रेतो हितं,
तस्मात् सर्वानृतून् रेतोऽनुप्रजायते, ऽथैता ऋतव्या वायव्या अनूपधीयन्ते, तस्मात् सर्वा-
नृतून् वायुरन्वावरीवर्त्यं,—थैता वायव्या अपस्या अनूपधीयन्ते, तस्मात् पशवो नानाव्रताः
सन्तोऽप एवाभि संव्रता,—श्चतस्रः पुरस्तादुपदधाति, चतुर्विध२ हि शिरः, प्राणश्चक्षुः श्रोत्र२
वाङ्, मूर्धन्वतीभिः सादयति, मूर्धन्योऽसानीति, पञ्च पश्चाभिता उपदधाति, पशोः
सवीर्यत्वाया,—ऽथो सायतनत्वाय, तस्मात् पशुः पश्चाद्वरीयाच् श्रोणिमुत्तर,—स्तस्मादु प्राङ्
स२हाना, इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां द२हत२ युवमित्य,—न्तरिक्ष२ वा एषा चिति,—

[ता अस्य सूददो० ... । ऋ. ८,६९,३; तै. सं. ४,२,४४; तै. ब्रा. ३,११,९,००]

न्तरिक्षमिमाः प्रजा, इन्द्राग्नी वै देवानामोजोभृता, ओजो वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजो वा एतद्वीर्यं मध्यतः प्रजानां धीयते, ऽथैता दिश्या, देवा वै स्वर्गं लोकमाय२,—स्ते दिशा आक्रमन्त, ता अब्लीयन्त, ता एताभिरदृ२हन्, यदेता उपधीयन्ते दिशां धृत्यै, पञ्चोपदधाति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, दशैताः पुरस्तात् सादयति, दशाक्षरा विराड्, विराट् खलु वै चक्षुर्ज्योतिश्छन्दसां चक्षुर्वा एतज्ज्योतिः पुरस्तात् पशोर्दधाति, तस्मादिदं पुरस्ताच्चक्षु,—रेषो अन्न२ वै विरा,—डन्न२ वा एतन्मुखतो दधाति, मा छन्दः, प्रमा छन्दः, प्रतिमा छन्दा इती,—यं२ वै मा, ऽन्तरिक्षं प्रमा, ऽसौ प्रतिमे,—मानेव लोकाननुपधत्ते, ऽथो देवछन्दसानि वा एतानि, देवछन्दसान्येवोपधत्ते, द्वादश द्वादशाभिता उपदधाति, तत् षट्त्रि२शत्, षट्त्रि२शदक्षरा बृहती, बृहती खलु वै छन्दसा२ स्वाराज्यमानशे, गच्छति स्वाराज्य२ यस्यैता उपधीयन्ते, पशवो वै बृहती, पशवो मध्यमा चिति,—स्तस्मादेतस्यां चित्यामेता उपधीयन्त, आदित्यधामानो वा उत्तरे प्राणा, अङ्गिरोधामानोऽधरे, मूर्धासि राडिति, य उत्तरे प्राणास्तानेताभिर्दाधार, यन्त्री राडिति, येऽधरे प्राणास्तानेताभिर्दाधार, तदेषा२ वा एताः प्राणाना२ विधृत्यै, समावद्भाजः सादयति, समावद्भाजो हीमे प्राणाः, प्राणाना२ विधृत्यै, यं द्विष्यात् तस्यान्यथा सादयेत्, प्राणानस्य मोहयति, प्रमायुको भवति, मूर्धन्वतीभिः सादयति, मूर्धन्योऽसानीति ॥ ९ ॥ १२

त्रिवृद्वतीं पुरस्तात् सादयति, त्रिवृद्धि यज्ञमुखं, मुखतो वा एतद्यज्ञमुखं दधाति, सप्तदशवतीं दक्षिणतो, ऽन्न२ वै सप्तदशो, ऽन्न२ वा एतद्दक्षिणतो दधाति, तस्माद्दक्षिणेन हस्तेनान्नमद्यते, तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यवत्तर,—स्तस्माद्दक्षिणमर्ध२ वया२स्यनुपर्यावर्तन्ते, पञ्चदशवतीमुत्तरत, ओजो वै पञ्चदश, ओजो वा एतदुत्तरतो दधात्ये,—कवि२शवतीं पश्चात् प्रतिष्ठित्यै, त्रिवृद्वतीं पुरस्तात् सादयति, त्रिवृद्धि यज्ञमुखं, मुखतो वा एतद्यज्ञमुखं दधाति, पञ्चदशवतीं दक्षिणतः सादयति, सप्तदशवतीमुत्तरतः, पक्षयोः सवीर्यत्वाया,—थो सायतनत्वाय, तस्मादुभाभ्या२ हस्ताभ्यामन्नमद्यते, ऽथो वज्रो वै पञ्च-

[९] मै. ३,८,१–३ । तै. ५,३,१–२ । काठ. २०,१०–११ । कपि. ३१,१२–१३ । वा. १४,११,१८,२१–२२ । काण्व. १५,१४,१८,२३–२४ ।
[१०] मै. ३,८,६–७ । तै. ५,३,३–५ । काठ. २०,१२–१३ । कपि. ३२,१४–१७ । वा. १४,२३–२४;१५,१–३ ।

दशो, वज्रेण वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यमुभयतो निर्भजत्ये,—कवि२शवतीं पश्चात् प्रतिष्ठित्यै, प्रतिष्ठा ह्येकवि२शो, ऽर्कस्य वा एष विधामनुविधीयते, ऽसावर्को, ऽन्नादो भवति यस्यैता उपधीयन्ते, ऽग्नेर्भागोऽसि, दीक्षाया आधिपत्यं, ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमा इति, स्पृतो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदकामयत तत्तदस्पृणोद्, यद्युदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तत्स्पृणोत्यृ,—तयास्तुवत, प्रजा अधीयन्तेति, सृष्टयो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदकामयत तत्तदसृजत, यद्युदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तत्सृजते, अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नानिति, पुरस्तात् सादयति, य एव जाताः सपत्नास्तानेतया प्रणुदते, प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्वे,—ति पश्चाद्, य एव जाताः सपत्नास्तानेतया प्रतिनुदते, तद्भ्रातृव्यस्य वा एष विनोद,—श्चतुश्चत्वारि२शी स्तोमो, वर्चो द्रविणमिति दक्षिणतः सादयति, षोडशी स्तोमा, ओजो द्रविण,—मित्युत्तरत,—श्चतुश्चत्वारि२शदक्षरा वै त्रिष्टुब्, वज्रस्त्रिष्टुब्, वज्रः षोडशी, सव्यापग्रहणो वै वज्रो दक्षिणाप्रहरणः, सव्यापग्रहण२ वा एतद्वज्रं दक्षिणाप्रहरण२ यजमानो भ्रातृव्याय प्रहरति, पुरीषवतीं मध्यतः सादयति, पुरीषमिव ह्यीदं मध्यतः पशोः, पुरीषं मध्यमात्मनः, सात्मानमेवाग्निं चिनुते, ऽथैता विराजो, वाग्वै विराट्, पशवो वा एता इष्टकाः, पशुषु वा एतदुत्तमा२ वाचं दधाति, तस्मात् पशुमानुत्तमा२ वाच२ वदति ॥ १० ॥ १२

[१५०६]

॥ इत्युपरिकाण्डे दाशनो नाम द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः।

अथैताः स्तोमभागा, एता२ वै बृहस्पतिरसुरेभ्योऽधि यज्ञस्य प्रतिष्ठामाहरद्, यदेता उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै, यज्ञो वै देवानामपद्यत, तं देवाः स्तोमभागाभिः प्रत्युदस्तभ्नुवन्, यदेता उपधीयन्ते यज्ञस्योत्तब्ध्यै, प्रजापतिर्वा एतत् पृथिव्या अग्नेस्तेजः समभरद्, तदग्नेरेवैतत्तेजः संभ्रियते, ऽथैता नाकसदो, नाक२ ह वा अस्मा अग्निं चिक्यानाय भवति,

काण्व. १५,२५–२८;१६,१–३ । [अग्ने जातान्प्रणुदा० । अथर्व ७,३४,१ । सहसा जातान्प्रणुदा० । अथर्व. ७,३५,१]
[१] मै. २,८,८–१० । तै. ५,३,५–७ । काठ. २१,१–३ । कपि. ३१,१७ ।

न वै तत्र किं चन जग्मुषे कं, तस्मान्नाकसदो, नाकसत्सु पञ्चचूडा अध्युपदधाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, एष ह वेलेव यजमानः पत्नीभिरग्निनामुष्मिँल्लोके सम्यङ् यस्यैता उपधीयन्ते, ऽथो मध्ये ज्योतिरेव चीयत, एता वा अमुष्मिँल्लोके यजमानस्य पत्नी,—स्तस्मादग्निचिता स्त्रीं नोपेया,—ष्टी हि सा, पश्चात् प्राचीमुत्तमामुपदधाति, पश्चाद्ध्येतं प्राची पत्न्यन्वास्ते, ऽथैताः क्लृप्तयः, प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता एन२ सृष्टा अत्यमन्यन्त, स प्रजापतिरेता इष्टका अपश्यद्, ता उपाधत्त, ततो वा अकल्पत, यदेता उपधीयन्ते प्रजानां क्लृप्त्या, अथैता वृष्टिसनयो, वृष्टिर्वै देवेभ्योऽन्नाद्यमपाक्रामत्, तत इद२ सर्वमशुष्यत्, ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधावन्, स प्रजापतिरेता इष्टका अपश्यत्, ता उपाधत्त, ताभ्यो वृष्टिमन्नाद्यमवारुन्द्ध, यदेता उपधीयन्ते वृष्ट्या अन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, आयवेन२ वा उत्तमां चिति,—रन्या अन्या इष्टका उपदधात्य,—न्यानन्यानेवास्मै पशून् प्रजनयति, प्राणो वै स्वयमातृण्णाया,—यव्या, समीची उपदधात्या,—युश्चैव प्राणं च सयुजा अक,—रथो समीचीनाभ्या२ ह्यायुषा च प्राणेन च भुङ्क्ते, प्राणो वै स्वयमातृण्णा, तामुत्तमामुपदधात्या,—युर्म२ ह्यायु,—र्यदन्यामुत्तरामुपदध्याद् प्राणमस्यापिदध्यात्, प्रमायुकः स्यात्, तस्मात्तामुत्तमामुपदधात्या,—युर्म२ ह्यायुः ॥ १ ॥ १

अथैषां छन्दश्चिति,—श्छन्दा२सि वै देवाना२ वामं पशव,—श्छन्दा२स्येवैतया वामं पशून् यजमानोऽवरुन्द्ध, एता२ वै यज्ञसेनश्चैत्र उपदध्रे, स आनर्ध, ऋध्नोति य एतामुपधत्ते, गायत्रीभिः पुरस्तात् सादयति, तेजो वै गायत्री ब्रह्मवर्चसं, तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्धे, तिस्र उपदधाति, त्रिवृद्ध्यग्नि,—र्मूर्धन्वतीभिः सादयति, मूर्धन्योऽसानीति, त्रिष्टुब्भिर्दक्षिणत, ओजो वै वीर्यं त्रिष्टु,—बोज एव वीर्यमवरुन्द्धे, जगतीभिः पश्चा,—ज्जागताः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, अनुष्टुब्भिरुत्तरतो, ऽनुष्टुब्वै सर्वाणि छन्दा२सि, सर्वाण्येवास्य छन्दा२स्युपहितानि भवन्त्ये,—षु पङ्क्ती,—रेषु बृहती,—रेषोष्णिहा, ऽथु ककुभौ, ऽथु विराज, एवमस्य यथापूर्वं छन्दा२स्युपहितानि भवन्ति, द्विपदा उत्तमाः सादयति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, छन्दा२सि वै देवाना२ वामं पशवो, यजमानायतन२ वा आहवनीयो, भ्रातृव्यायतनं धिष्ण्या, यत्पश्चादुपदध्याद् भ्रातृव्यायतने वामं पशून् दध्या,—देव यत्पुर उपदधाति यजमानायतने वा एतद्वामं पशून् दधात्य,—ष्टावुपदधात्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रोऽग्नि,—र्यावानेवाग्निस्तं चिनुते, ऽष्टौ गायत्रीभिः पुरस्ताद्बहिःपवमाने-

[२] मै. २,८,११ । तै. ५,३,८ । काठ. २१,४ । कपि. ३१,१९ ।

स्योपदध्याद्यद्येनं भ्रातृव्योऽतीव स्या,—देकादश त्रिष्टुब्भिः पुरस्तान्माध्यंदिनस्य पवमानस्य, द्वादश जगतीभिः पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्यै,—ता एव पश्चात् पवमानानामुपदध्याद्यद्येनं भ्रातृव्योऽतीव स्यात्, प्राणो वै पवमानो, ऽग्नेस्तेजः पवमान,—स्तेजसा वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यं प्रभूतं प्रणुदते, तेजसा प्रतिनुदते, तेजसा विनुदते, तद् भ्रातृव्यस्य वा एष विनोदो, जानुदघ्नं प्रथमं चिन्वानश्चिन्वीत गायत्रीचितं, नाभिदघ्नं द्वितीयं चिन्वानश्चिन्वीत त्रिष्टुप् चितं, चुबुकदघ्नं तृतीयं चिन्वानश्चिन्वीत जगच्चित२, यज्ज्याया२सं चित्वा कनीया२सं चिन्वीत कनीया२स२ यज्ञक्रतुमुपेयात्, कनीयसीं प्रजां, कनीयसः पशून्, कनीयोऽन्नाद्यं, पापीयान्त्स्या,—दथ यत्कनीया२सं चित्वा ज्याया२सं चिनुते ज्याया२समेव यज्ञक्रतुमुपैति, भूयसीं प्रजां, भूयसः पशून् भूयोऽन्नाद्य२, वसीयान् भवत्ये,—षा वा अग्नेरुत्तरवती नाम चिति,—रुत्तरमुत्तर२ श्वः श्वः श्रेयान् भवति य एव२ वेद ॥ २ ॥ २

पञ्चचितिकः कार्यः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशव,—स्तस्मात् पञ्चचितिकः, पञ्च चितयः, पञ्च पुरीषाणि, तद्विराज२ संपद्यते, तद्यद्विराज२ संपद्यते तदग्नेः स्तोत्रं कार्य२, यत् पञ्चचितिकः स्यादियाद्विराजो, यद्दशचितिक इयाद्यज्ञाच्च पशुभ्यश्च, यत्पञ्चचितिकस्तेन यज्ञाच्च पशुभ्यश्च नैत्य,—थ यत्पञ्च चितयः पञ्च पुरीषाणि तेन विराजो नैति, तदुभाभ्या२ वावास्मा एतद्वर्णाभ्यां पशूनवरुन्द्धे, यदेषा पाङ्क्त२ यच्च वैराजं, द्व्यक्षरं लोम, द्व्यक्षरा त्वग्, द्व्यक्षरं मा२सं, द्व्यक्षरमस्थि, द्व्यक्षरो मज्जा, तद्दश, दशाक्षरा विराड्, वैराजाः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, पञ्चचितिकः कार्य, इमे वै लोकास्तिस्रश्चितयो, यजमानो द्वे, यजमान२ वा एतदेषु लोकेषु प्रतिष्ठापयामुकः, का प्रथमा चितिः, किं पुरीषमि,—त्याह,—रियं२ वाव प्रथमा चिति,—रोषधयः पुरीषं, का द्वितीया चितिः, किं पुरीषमि,—त्याह,—रन्तरिक्ष२ वाव द्वितीया चिति,—र्वया२सि पुरीषं, का तृतीया चितिः, किं पुरीष,—मित्याह,—रसौ वाव तृतीया चिति,—र्नक्षत्राणि पुरीषं, का चतुर्थी चितिः, किं पुरीष,—मित्याह,—र्यज्ञो वाव चतुर्थी चिति,—र्दक्षिणा पुरीषं, का पञ्चमी चितिः, किं पुरीष,—मित्याह,—र्यजमानो वाव पञ्चमी चितिः, प्रजा पुरीष,—मेतावद्वा अस्ति, यावद्वेवास्ति तत् स्पृणोति, तदवरुन्द्धे, ऽथैता ऋतव्याः, स२वत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानर,—स्तस्य वा अहोरात्राण्येवेष्टका उपधीयन्ते, द्वे द्वे उपदधाति प्रति-

[३] मै. २,८,१२ । तै. ५,४,२ । काठ. २१,५ । कपि. ३१,२० ।

छिरया, अवकामुपास्य सादयति शान्त्या अनिर्दाहाय, चतस्रो मध्यमायां चित्यामुपदधात्यं,
—प्रतिष्ठितमिव ह्यन्तरिक्षं, प्रतिष्ठित्यै, द्वादशोपदधाति, द्वादश मासाः संवत्सरः,
संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः, प्रियायां वा एतत्तन्वाम-
ग्निश्रीयते, संतनूरक्षी निधीयते, ऽग्नेरन्तःश्ले३षोऽसीत्ये,—तस्य ह ३त्वेवाग्निः संश्लिष्टो
यस्यैता उपधीयन्ते, संश्लिष्टो वा एतस्याग्निर्यस्यैता उपधीयन्ते, कल्पेतां द्यावापृथिवी इति,
कल्पते ह वा अस्मा अग्निं चिक्यानाय, प्र समानानां ज्यैष्ठ्यमाप्नोति य एवं वेद, सं वा
एतदग्निमिन्द्धे यच्चिनोति, तं दीपयत्येवं ऋतव्याभिः ॥ ३ ॥ ३

तमो वै स्वर्गं लोकमन्तरा तिष्ठत्ये,—ता वै ज्योतिष्मतीरिष्टका यद्धिरण्यशकलैः प्रोक्षति,
विवासयति वा एतद्यजमानाय, ज्योतिरस्मिन् दधाति, सहस्रं भवन्ति, साहस्रो वै प्रजा-
पतिः, प्रजापतिमेवाप्नोति, यावद्वै सहस्रं तावदि३तोऽसौ लोकः, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या,
इमा मे अग्ना इष्टका धेनवः सन्त्विति, धेनवो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदका-
मयत तत्तददुह, यद्यदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तद्दुहे, ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधा इत्य,—तुष्ठा
एवैना अकृत ऋतावृधो, घृतश्चुतो मधुश्च्युता इति, घृतश्चुत एवैना अकृत मधुश्च्युता, ऊर्ज-
स्वतीः पयस्वतीरित्यू,—र्जस्वतीरेवैना अकृत पयस्वतीः, स्वधायिनीः कुलायिनीरिति, कुला-
यिनी३र्ह्येता विराजो नाम, कामदुघा इति, यत्र वा अदो देवेभ्यः कामदुघाः काममदुह्र तदेता
अपि दुदुह्रे, तत् पुष्टिमेवैताभिरवरुन्द्धे, ऽमुत्रामुष्मिँल्लोक इत्य,—मुष्मै हि लोकायाग्निश्चीयते,
रुद्रं वै देवा यज्ञादन्तरायं,—स्तानायतयाभिपर्यावर्तत, तस्माद्वा अबिभयु,—स्ते देवाः
प्रजापतिमेवोपाधाव,—न्त्स प्रजापतिरेवं शतरुद्रियमपश्यत, तेनैनमशमयत, तद्य एवं वेद
वेदाह वा एनं प्रजापति,—र्नैनमेष देवो हिनस्ति, यत्र रुद्रः प्रजाः शमायेत तदुदङ् परेत्ये,—
तदेव वदं श्चक्रम्येत, स्वायां वा एतद्दिशि स्वेन भागधेयेन रुद्रं शमयति, जानुदघ्ने प्रथमं
जुहोत्य,—स्या एवैनं तेन शमयति, नाभिदघ्ने द्वितीय,—मन्तरिक्षात्तेन, छुबुकदघ्ने तृतीयं,
दिवस्तेन, त्रिर्जुहोति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतं लोकेभ्यो रुद्रं शमयति,
त्रिरमुतः पुनः प्रत्यवहारं जुहोति, यानेवेतो रुद्रान् यजति तानमुतोऽवयजति, त्रिरितो
जुहोति, त्रिरमुत,—स्तत् षट्, षड्वा ऋतव, ऋतुभ्यो वा एतद्रुद्रमवयजति, समावच्छो
विभाजं जुहोति, समावद्भाजो हि रुद्राणां भागा, द्वासाहानि जुहोति, द्वासाहेवै स तमश-

[४] मै. २,८,१४ । तै. ५,४,२—३ । काठ. २१,६ । कपि. ३२,२१ । वा. १७,२—३ । काण्व. १८,२—४ ।

मयद्, द्वासाहेवैनं शमयत्य,—र्कपर्णेन जुहोत्य,—र्कैण वा एतदर्कमवयजति, यत् पात्रेण
जुहुयाद्रुद्रं प्रजास्वन्ववनयेत्, तस्मादारण्येन जुहोति, पशुर्वा अग्निः, स वै तर्ह्येव जायते यर्हि
चीयते, स भागधेयमिच्छति, यथा वत्सो जातः स्तनमिच्छति सोऽध्वर्युं च यजमानं च प्रेक्षते,
यच्छतरुद्रियं जुहोति स्वेनैवैनं भागधेयेन शमयति, यासा उत्तरार्धे जघनार्धे श्रोणिस्तस्या
होत३व्यं, स्वायां वा एतद्दिशि स्वेन भागधेयेन प्रतिहत्य रुद्रं शमयत्यं,—ङ्गिरसो वै
स्वर्यन्तोऽजायां घर्मं प्रासिञ्च,—न्त्सा शोचन्ती पर्णं परामृश३त्, सोऽर्कोऽभवद्, यदर्कपर्णेन
जुहोत्यर्केण वा एतदर्कमवयजति, यं द्विष्यात्तस्य पशूनां संचरे न्यस्येद्, यः प्रथम आक्रमति
स आर्तिमार्छति ॥ ४ ॥ ४

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणा,—मित्यपः परिषिञ्चन् पर्येति, प्रजापतेर्वा एष रसः, प्रजा-
पतेरेव रसेन परिषिञ्चत्यं,—श्म ते क्षुदित्यं,—श्मानमेव क्षुधार्पयति, मयि त ऊर्गित्या,—त्मे-
न्नेवोर्जं धत्ते, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्विति, यमेव द्वेष्टि तमग्नेः शुचार्पयति, त्रिः परिषिञ्चन्
पर्येति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतं लोकेभ्योऽग्नेः शुचं शमयति, त्रिः परिषिञ्चन्
पर्येति, त्रिरपरिषिञ्चं,—स्तत् षट्, षड्वा ऋतव, ऋतुभ्यो वा एतदग्नेः शुचं शमयति,
यद्यभिचरेद्वेतदेव यजुर्वदन्नपरिषिञ्चन् पुनः परीयाद्, यैवाग्नेः शुक्तयैनमर्पयति यद्यभिचरेत् ॥
इदमहममुष्यामुष्यायणममुष्मात् पुत्रममुष्या दिशि प्रक्षिणामि ॥ इति कुम्भं जघन्यायां श्रोण्यां
प्रक्षिणीयाद्, यत् प्रक्षिणाति तस्यैवार्तिमन्वार्तिमार्छत्यं,—थ यन्नामु गृह्णात्यायतनमेवास्य छिन-
त्त्या,—ग्नेयपावमान्यां गायत्रं गायते, प्राणो वै पवमानः, शिरो गायत्री, यदाग्नेयपावमान्यां
गायत्रं गायते शीर्षन्वा एतत् प्राणान् दधाती,—यं वै रथन्तर,—मन्तरिक्षं वामदेव्यं,—मसौ
बृहत्, त्रिधातुर्वा एतदर्को निधीयत, आत्मा वै वामदेव्यं, प्रतिष्ठा यज्ञायज्ञियं, बृहद्रथन्तरे
पक्षौ, यद्बृहद्रथन्तरे अभितो गायत आत्मन्नेव पक्षौ धत्ते, यज्ञं वै देवानां रक्षांस्यजिघांस-
न्,—स्तानि बृहद्रथन्तराभ्यामेवापाघ्नत, यद्बृहद्रथन्तरे अभितो गायते रक्षसामपहत्यै, प्रजा-
पतेर्हृदयमापिपक्षे गायते, तस्मादिदमपिपक्ष आत्मनो हृदयमनूचं गायते, तस्मादुनस्थूकं
हृदय,—म३कर्यैः सामभिरर्कं परिष्टुवन्ति, संतनूरक्षौ निधीयते ॥ ५ ॥ ५–७

वरुणमेनिर्वा एष एतदभीद्धस्तिष्ठति, स एनं तर्ह्यधीयात्, तस्य प्राणेन वीयान्, मण्डू-
केनाध्येति तस्यैव प्राणेन व्येति, न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नारण्या,—न्नवकया विकर्षत्य,
—पां वा एषा योनिर्यदवका,—ऽपां वा एतद्योनिनाग्नेः शुचं शमयत्य,—पां वा एतद्रूपं

[५] मै. २,१०,१ । तै. ५,४,४ । काठ. २१,७ । वा. १७,१ । काण्व. १८,१ ।

यदवका,—ऽपां वा एतद्रूपेणाग्नेः शुचं शमयति, वेतसेनाध्येत्य,—पां वा एतत् पुष्पं यद्वेत३सो,
ऽपां वा एतत् पुष्पेणाग्नेः शुचं शमयति, सप्तभिर्विकर्षति, सप्त वै छन्दांसि, छन्दो-
भिर्वा एतदग्नेः शुचं शमयत्यं,—थो ब्रह्म वै छन्दांसि, ब्रह्मणा वा एतदग्नेः शुचं शमयत्य,—
ग्निर्वै सृष्टो भागधेयमैच्छत्, स प्रजापतिमेवोपाधावत्, तस्मा अन्नं प्रायच्छत् कत्वाय, तदस्मि
न्नेव सृष्टो, —
कमभव,—दन्नं वै कं,—मन्नेन वा एतदग्निमुपचरति कत्वाय, कं हास्मा अग्निं चिक्यानाय
भवति, पराश्वमध्येति, पराङ् हि पशुः शान्तरथो, पराङ् हि पशुः पशौ रेतो दधात्य,—
न्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतय:, पावको अस्मभ्यं शिवो भवेत्यं,—न्नं वै पावकं,—मन्नेन वा
एतदग्नेः शुचमन्तर्धत्ते, हिरण्यशकलैर्व्याघारयत्य,—मृतं वै हिरण्यं, तेजोऽग्नि,—रमृतेन वा
एतत्तेजो व्याघारयति, पञ्चभिर्व्याघारयति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य,
द्वया वै देवा यजमानस्य गृहमागच्छन्ति, यद्भा मधुमंश्लिष्टेन व्यवोक्षति तानेव प्रीणाति,
सर्वमनु व्यवोक्षति, सर्वानेवैतान् प्रीणाति, तिसृभिर्व्यवोक्षति, त्रिवृ३द्ध्यग्नि,—स्त्रिष्टुब्भिर्व्य-
वोक्षतीन्द्रियस्यावरुद्ध्या, अन्नवतीभिर्व्यवोक्षत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, दर्भगुरुमुष्टिना व्यवोक्षति,
सं हि प्राजापत्यः, प्राणैर्वा एष व्यृध्यते ३योऽग्निमध्येति, यदाह, प्राणदा अपानदा
इति, प्राणानेवात्मन् धत्ते, प्रजया च वा एष पशुभिश्च व्यृध्यते ३योऽग्निमध्येति, प्रजां वै
वर्चः, पशवो वरिवो, यदाह, वर्चोधा वरिवोधा इति, प्रजां चैव पशूंश्चात्मन्धित्वा-
वरोहति ॥ ६ ॥ ८

इन्द्रो वै वृत्रमहन्,—न्त्स प्राहन्यत, स पद्यमाना इन्द्रं षोडशभिर्भोगैः पर्यगृह्णात्, स वा
अग्निनैव वृत्रस्य भोगानपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनस्तमसो निरमुच्यता,—ऽग्निस्तिग्मेन शोचिषे,-
—ति यज्जुहोत्यग्निना वा एतत् पाप्मनो भोगानपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनस्तमसो निर्मुच्यते,
नाना जुहोति सूक्तयोर्नानावीर्यत्वाय, षोडशगृहीतेन जुहोति, षोडशभिर्हि स तं भोगैः पर्य-
गृह्णा,—देतेन वै स वृत्रस्य भोगेभ्यो निरमुच्यत, तत् पाप्मन एवैतेन भोगेभ्यो निर्मुच्यते,
ऽथैतदप्रतिरथ,—मेतेन वै देवा असुरान् प्रत्यजयं,—स्तदप्रतिरथस्याप्रतिरथत्वं, तदप्र३त्ये-

[६] मै. २,१०,१ । तै. ५,४,४—५ । काठ. २१,७ । वा. १७,४ ५,७,११,१५,३६,२० । काण्व. १८,५ ६,८,
११,१५,३६,२० ।
[७] मै. २,१०,२–३ । तै. ५,४,५ । काठ. २१,८ । वा. १७,१६ । काण्व. १८,१६ । [अग्निस्तिग्मेन शोचिषा० ।
ऋ. ६,१६,२८, साम० २२; तै. सं. ४,६,१,५]

वैतेन यजमानो भ्रातृव्यं जयत्ये,—तेनैव याजयेत्, संग्रामे जयति संग्रामं,—मेतेनैव याजयेद्
भ्रातृव्यवन्तं यो वास्य प्रियः स्यात्तं, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवत्ये,—तेन वै
भरद्वाजः प्रतर्दनं दैवोदासिं समनह्यत्, स राष्ट्रमभवद्, यं कामयेत, राष्ट्रियमयं राष्ट्रं
स्यादिति, तमेतेन संनह्येद्, राष्ट्रं ह भवत्ये,—तेन वै देवा विराजमभ्यजयन्, दशा-
न्वाह, दशाक्षरा विराड्, विराजमेवैतेनाभिजयति, दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्
स्यजिघांसं,—स्तानि वा अप्रतिरथेनैवापाघ्नत, यद् ब्रह्माप्रतिरथं दक्षिणतो वदत्यथो
रक्षसामपहत्यै ॥ ७ ॥ ९

उदेनमुत्तरं नये,—ति समिधा आदधाति, प्रह्रियमाणायैवास्मै भागमक,—स्तिस्र आदधाति,
त्रिवृ३द्ध्यग्नि,—रुदु त्वा विश्वे देवा इति, विश्वे ३ह्येते देवाः स्मो यन्मनु३ष्या, अग्ने भरन्त
चित्तिभिरिति, यस्मा एवं चित्तायाग्निराधीयते तेनैनं चित्तेन समर्धयति, पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञ-
मवन्तु देवीरिती,—मा एवैनं पञ्च दिशोऽनु तेजस्विनं करोत्यु,—र्थपत्रा इडयो गृभीत इत्यु,—
र्थपत्रो ३ह्येष परिगृह्य यज्ञमावक्षिति, परिगृह्य ३ह्येतं यन्ति, हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुर-
स्तादित्य,—सौ वा आदित्यो हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुरस्तात्, सविता ज्योतिरुदयं अजस्र,—
मित्याह प्रसूत्या एवं, तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वानिति, पशवो वै पूषा, पशूनेवावरुन्द्धे,
ततो वाका आशिषो नो जुषन्तामित्या,—शिषां वा एष दोह, आशिष एवं दुहा, इन्द्रं
विश्वा अवीवृध,—न्निति वृधद्वत्या यन्ति, वृद्धिमेवोपयन्त्य,—नुष्टुभा यन्ति, वाग्वा अनुष्टुब्,
वैश्वदेवी वाग्, वैश्वदे३वोऽग्नि,—स्तस्मादनुष्टुभा यन्ति, पङ्क्तिभिराग्नीध्रायन्ति, षड्वा ऋतव,
ऋतुभिरेव यन्ति, विमान एष दिवो मध्य आस्ता, इत्यश्मानं सादयति, विमानो
३ह्यसा आदित्यः स्वर्गस्य लोकस्य, सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षद्, यक्षदग्निर्देवो देवं आ च
वक्षदित्या,—शीरेवैषा देवहूर्यज्ञ आ च वक्षद्, यक्षदग्निर्देवो देवं आ च वक्षदित्या,—शिष
एवैष परिग्रहो, वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजिग्रभदित्य,—सौ वा आदित्य उद्ग्राभ, एष
निग्राभ, उद्यन्वा एतद्यजमानमुद्गृह्णाति, निम्रोचन्नस्य भ्रातृव्यं निगृह्णात्यु,—द्ग्राभश्च निग्राभ-

[८] मै. २,१०,४—५ । तै. ५,४,६ । काठ. २१,८ । वा. १२,३१; १७,५०,५३—५९,६१—६४,११,५६; १५,६१।
काण्व. १३,३२; १८,५०,५३—५९,६१—६४,१३,५७,१६,८१ । [उदेनमुत्तरं (रां) ० । अथर्व. ६,५,१ ।
हरिकेशः सूर्यरश्मि० (सूर्यरश्मिर्हरिकेशः)० । ऋ. १०,१३९,१, तै. सं. ४,६,३,३। इन्द्रं विश्वा०...
पतिम् । ऋ. १,११,१; सा. ३४३,८२७, तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५ । विमान (नुचक्षा) एष०
। ऋ. १०,१३९,२; तै. सं. ४,६,३,३]

न्तरिक्षमिमाः प्रजा, इन्द्राग्नी वै देवानामोजोभृता, ओजो वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजो वा एतद्वीर्यं मध्यतः प्रजानां धीयते, ऽथैता दिश्या, देवा वै स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्ते दिशा आक्रमन्त, ता अव्लीयन्त, ता एताभिरदृꣳहन्, यदेता उपधीयन्ते दिशां धृत्यै, पञ्चोपदधाति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, दशैताः पुरस्तात् सादयति, दशाक्षरा विराड्, विराट् खलु वै चक्षुर्ज्योतिश्छन्दसां चक्षुर्वा एतज्ज्योतिः पुरस्तात् प्रशोदधाति, तस्मादिदं पुरस्ताच्चक्षु,—रयो अशुꣳ वै विरा,—डन्नꣳ वा एतन्मुखतो दधाति, मा छन्दः, प्रमा छन्दः, प्रतिमा छन्दा इती,—यꣳ वै मा, ऽन्तरिक्षं प्रमा, ऽसौ प्रतिमे,—मानेव लोकानुपधत्ते, ऽथो देवछन्दसानि वा एतानि, देवछन्दसान्येवोपधत्ते, द्वादश द्वादशाभिता उपदधाति, तत् षट्त्रिꣳशत्, षट्त्रिꣳशदक्षरा बृहती, बृहती खलु वै छन्दसाꣳ स्वाराज्यमानशे, गच्छति स्वाराज्यꣳ यस्यैता उपधीयन्ते, पशवो वै बृहती, पशवो मध्यमा चिति,—स्तस्मादेतस्यां चित्यामेता उपधीयन्त, आदित्यधामानो वा उत्तरे प्राणा, अङ्गिरोधामानोऽधरे, मूर्धासि राडिति, य उत्तरे प्राणास्तानेवाभिर्दाधार, यन्त्री राडिति, येऽधरे प्राणास्तानेताभिर्दाधार, तद्वेपाꣳ वायेताः प्राणानाꣳ विधृत्यै, समावद्वीर्याः सादयति, समावद्वीर्या ३हीमे प्राणाः, प्राणानाꣳ विधृत्यै, यं द्विष्यात्
तस्यास्वयां सादयेत्, प्राणानस्य मोहयति, प्रमायुको भवति, मूर्धन्वतीभिः सादयति,
मूर्धन्योऽसानीति ॥ ९ ॥ १२

त्रिवृद्वती पुरस्तात् सादयति, त्रिवृद्धै यज्ञमुखं, मुखतो वा एतद्यज्ञमुखं दधाति, सप्तदशवती दक्षिणतो, ऽन्नꣳ वै सप्तदशो, ऽन्नꣳ वा एतद्दक्षिणतो दधाति, तस्माद्दक्षिणेन हस्तेनान्नमद्यते, तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यवत्तर,—स्तस्माद्दक्षिणमर्धꣳ वयाꣳस्यनुपर्यावर्तन्ते, पञ्चदशवतीमुत्तरत, ओजो वै पञ्चदश, ओजो वा एतदुत्तरतो दधात्ये,—कविꣳशवती पश्चात् प्रतिष्ठित्यै, त्रिवृद्वतीं पुरस्तात् सादयति, त्रिवृद्धै यज्ञमुखं, मुखतो वा एतद्यज्ञमुखं दधाति, पञ्चदशवतीं दक्षिणतः सादयति, सप्तदशवतीमुत्तरतः, पक्षयोः सवीर्यत्वाया,—थो सायतनत्वाय, तस्मादुभाभ्याꣳ हस्ताभ्यामन्नमद्यते, ऽथो वज्रो वै पञ्च-

[९] मै. २,८,१—३ । तै. ५,३,१—२ । काठ. २०,१०—११ । कपि. ३१,१२—१३ । वा. १४,११,१८,२१—२२ । काण्व. १५,१४,१८,२३—२४ ।

[१०] मै. २,८,६—७ । तै. ५,३,३—४ । काठ. २०,१२—१३ । कपि. ३१,१४—१७ । वा. १४,२३—२४;१५,१-३ ।

दशो, वज्रेण वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यमुभयतो निर्भजत्ये,—कविꣳशवती पश्चात् प्रतिष्ठित्यै, प्रतिष्ठा ह्येकवि३ꣳशो, ऽर्कस्य वा एष विधामनुविधीयते, ऽन्नमर्को, ऽन्नादो भवति यस्यैता उपधीयन्ते, ऽग्नेर्भागोऽसि, दीक्षाया आधिपत्यं, ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमा इति, स्पृतो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदकामयत तत्तदस्पृणोद्, यद्युदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तत्स्पृणोत्ये,—कयास्तुवत, प्रजा अधीयन्तेति, सृष्टयो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदकामयत तत्तदसृजत, यद्युदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तत्सृजते, अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नानिति, पुरस्तात् सादयति, य एव जाताः सपत्नास्तानेतया प्रणुदते, प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्वे,—ति पश्चाद्, य एव जाताः सपत्नास्तानेतया प्रतिनुदते, तद्भ्रातृव्यस्य वा एष विनोद,—श्चतुश्चत्वारिꣳशी स्तोमो, वर्चो द्रविणमिति दक्षिणतः सादयति, षोडशी स्तोमा, ओजो द्रविण,—मित्युत्तरत,—श्चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा वै त्रिष्टुब्, वज्रस्त्रिष्टुब्, वज्रः षोडशी, सव्यापग्रहणो वै वज्रो दक्षिणाप्रहरणः, सव्यापग्रहणꣳ वा एतद्वज्रं दक्षिणाप्रहरणꣳ यजमानो भ्रातृव्याय प्रहरति, पुरीषवती मध्यतः सादयति, पुरीषमिव ३हीदं मध्यतः पशोः, पुरीषं मध्यमात्मनः, सात्मानमेवाग्निं चिनुते, ऽथैता विराजो, वाग्वै विराट्, पशवो वा एता इष्टकाः, पशुषु वा एतदुत्तमाꣳ वाचं
दधाति, तस्मात् पशुमानुत्तमाꣳ वाचꣳ वदति ॥ १० ॥ १२

[१५०६]

॥ इत्युपरिकाण्डे दाशतो नाम द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः ।

अथैताः स्तोमभागा, एताꣳ वै बृहस्पतिरसुरेभ्योऽधि यज्ञस्य प्रतिष्ठामाहरद्, यदेता उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै, यज्ञो वै देवानामपद्यत, तं देवाः स्तोमभागाभिः प्रत्युदस्तभ्नुवन्, यदेता उपधीयन्ते यज्ञस्योत्तब्ध्यै, प्रजापतिर्वा एतत् पृथिव्या अग्नेस्तेजः समभरत्, तदुमेरेवैतत्तेजः संभ्रियते, ऽथैता नाकसदो, नाकꣳ ह वा अस्मा अग्निं चिक्यानाय भवति,

काण्व. १५,२५—२८;१६,१—३ । [अग्ने जातान्प्रणुदा० । अथर्व ७,३४,१ । सहसा जातान्प्रणुदा० । अथर्व. ७,३५,१]

[१] मै. २,८,८—१० । तै. ५,३,५—७ । काठ. २१,१—३ । कपि. ३१,१७ ।

नो वै तत्र किं चन जग्मुषे कं, तस्मान्नाकसदो, नाकसत्सु पञ्चचूडा अध्युपदधाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, एषं ह ३त्वेव यजमानः पत्नीभिरमुष्मिँल्लोके सम्यङ् यस्यैता उपधीयन्ते, ऽथो मध्ये ज्योतिरेव चीयत, एता वा अमुष्मिँल्लोके यजमानस्य पत्नी,—स्तस्मादमिथिता स्त्री नोपेत्ये,—ष्या हि सा, पश्चात् प्राचीमुत्तमामुपदधाति, पश्चा३द्ध्येते प्राची पत्न्यन्वास्ते, ऽथैताः कल्पयः, प्रजापतिः प्रजा असृजत, ता एनꣳ सृष्टा अन्यमन्यन्त, स प्रजापतिरेता इष्टका अपश्यत्, ता उपाधत्त, ततो वा अकल्पत, यदेता उपधीयन्ते प्रजानां क्लृप्त्या, अथैता वृष्टिसनयो, वृष्टिर्वै देवेभ्योऽन्नाद्यमपाक्रामत्, तत इदꣳ सर्वमशुष्यत्, ते देवाः प्रजापतिमेवोपाधावन्, स प्रजापतिरेता इष्टका अपश्यत्, ता उपाधत्त, तेभ्यो वृष्टिमन्नाद्यमवारुन्द्ध, यदेता उपधीयन्ते वृष्ट्या अन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, आवपनꣳ वा उत्तमा चिति,—रन्या अन्या इष्टका उपदधात्य,—न्यानन्यानेवास्मै पशून् प्रजनयति, प्राणो वै स्वयमातृण्णायु,—र्वायव्या, समीची उपदधात्या,—युश्चैव प्राणं च सयुजा अक,—रथो समीचीनाभ्याꣳ ह्यायुषा च प्राणेन च भुङ्क्ते, प्राणो वै स्वयमातृण्णा, तामुत्तमामुपदधात्यु,—त्तमꣳ ह्यायु,—र्यदन्यामुत्तरामुपदध्यात् प्राणमस्यापिदध्यात्, प्रमायुकः स्यात्, तस्मात्तामुत्तमामुपद-
धात्यु,—त्तमꣳ ह्यायुः ॥ १ ॥ १

अथैषा छन्दश्चिति,—श्छन्दाꣳसि वै देवानाꣳ वामं पशव,—श्छन्दाꣳस्येवैतया वामं पशून् यजमानोऽवरुन्द्ध, एताꣳ वै यज्ञसेनश्चैत्र उपदधे, स आनर्ध, ऋध्नोति य एतामुपधत्ते, गायत्रीभिः पुरस्तात् सादयति, तेजो वै गायत्री ब्रह्मवर्चसं, तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्धे, तिस्र उपदधाति, त्रिवृ३द्ध्यग्नि,—र्मूर्धन्वतीभिः सादयति, मूर्धन्योऽसानीति, त्रिष्टुब्भिर्दक्षिणत, ओजो वै वीर्यं त्रिष्टु,—बोज एव वी३र्यमवरुन्द्धे, जगतीभिः पश्चा,—ज्जागताः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽनुष्टुब्भिरुत्तरतो, ऽनुष्टुब्वै सर्वाणि छन्दाꣳसि, सर्वाण्येवास्य छन्दाꣳस्युपहितानि भवन्त्य,—थ पङ्क्ती,—रथ बृहती,—रथोष्णिहो, ऽथ ककुभो, ऽथ विराज, एवमस्य यथापूर्वं छन्दाꣳस्युपहितानि भवन्ति, द्विपदा उत्तमाः सादयति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै, छन्दाꣳसि वै देवानाꣳ वामं पशवो, यजमानायतनꣳ वा आहवनीयो, भ्रातृव्यायतनं धिष्ण्या, यन्नश्चोपदध्याद् भ्रातृव्यायतने वामं पशून् दध्या,—दथ यत्पुर उपदधाति यजमानायतने वा एतद्वामं पशून् दधात्य,—ष्टावुपदधात्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रोऽग्नि,—र्यावानेवाग्निस्तं चिनुते, ऽष्टौ गायत्रीभिः पुरस्ताद्बहिःपवमाने-

[२] मै. २,८,११ । तै. ५,३,८ । काठ. २१,३ । कपि. ३१,१९ ।

स्योपदध्याद्यदेनं भ्रातृव्योऽतीव स्या,—देकादश त्रिष्टुब्भिः पुरस्तान्माध्यंदिनस्य पवमानस्य, द्वादश जगतीभिः पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्ये,—ता एव पश्चात् पवमानानामुपदध्याद्यदेनं भ्रातृव्योऽतीव स्यात्, प्राणो वै पवमानो, ऽग्नेस्तेजः पवमान,—स्तेजसा वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यं प्रभूतं प्रणुदते, तेजसा प्रतिनुदते, तेजसा विनुदते, तद् भ्रातृव्यस्य वा एष विनोदो, जानुदघ्नं प्रथमं चिन्वानश्चिन्वीत गायत्रीचितं, नाभिदघ्नं द्वितीयं चिन्वानश्चिन्वीत त्रिष्टुप् चितं, चुबुकदघ्नं तृतीयं चिन्वानश्चिन्वीत जगच्चितꣳ, यज्ज्यायाꣳसं चित्वा कनीयाꣳसं चिन्वीत कनीयाꣳसꣳ यज्ञक्रतुमुपेयात्, कनीयसीं प्रजां, कनीयसः पशून्, कनीयोऽन्नाद्यं, पापीयान्त्स्या,—दथ यत्कनीयाꣳसं चित्वा ज्यायाꣳसं चिनुते ज्यायाꣳसमेव यज्ञक्रतुमुपैति, भूयसीं प्रजां, भूयसः पशून् भूयोऽन्नाद्यꣳ, वसीयान् भवत्ये,—षा वा अग्ने-
रुत्तरवती नाम चिति,—रुत्तरमुत्तरꣳ श्वः श्वः श्रेयान् भवति य एवꣳ वेद ॥ २ ॥ २

पञ्चचितिकः का३र्यः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशव,—स्तस्मात् पञ्चचितिकः, पञ्च चितयः, पञ्च पुरीषाणि, तद्विराजꣳ संपद्यते, तद्यद्विराजꣳ संपद्यते तदुग्रैः स्तोत्रैः का३र्यꣳ, यत् पञ्चचितिकः स्याद्विराड्विराजो, यद्दशचितिक इयाद्यज्ञाच्च पशुभ्यश्च, यत्पञ्चचितिकस्तेनु यज्ञाच्च पशुभ्यश्च नैत्य,—थ यत्पञ्च चितयः पञ्च पुरीषाणि तेन विराजो नैति, तदुभाभ्याꣳ वावास्मा एतद्वर्णाभ्यां पशूनवरुन्द्धे, यदेषा पाङ्क्तꣳ यच्च वैराजं, द्व्यक्षरं लोम, द्व्यक्षरा त्वग्, द्व्यक्षरं माꣳसं, द्व्यक्षरमस्थि, द्व्यक्षरो मज्जा, तद्दश, दशाक्षरा विराड्, वैराजाः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, पञ्चचितिकः कार्य, इमे वै लोकास्तिस्रश्चितयो, यजमानो द्वे, यजमानꣳ वा एतदेषु लोकेषु प्रतिष्ठापयामुकः, का प्रथमा चितिः, किं पुरीषमि,—त्याहु,—रियꣳ वाव प्रथमा चिति,—रोषधयः पुरीषं, का द्वितीया चितिः, किं पुरीषमि,—त्याहु,—रन्तरिक्षꣳ वाव द्वितीया चिति,—र्वयाꣳसि पुरीषं, का तृतीया चितिः, किं पुरीष,—मित्याहु,—रसौ वाव तृतीया चिति,—र्नक्षत्राणि पुरीषं, का चतुर्थी चितिः, किं पुरीष,—मित्याहु,—र्यज्ञो वाव चतुर्थी चिति,—र्दक्षिणा पुरीषं, का पञ्चमी चितिः, किं पुरीष,—मित्याहु,—र्यजमानो वाव पञ्चमी चितिः, प्रजा पुरीष,—मेतावद्वा अस्ति, यावद्देवास्ति तत् स्पृणोति, तदवरुन्द्धे, ऽथैता ऋतव्याः, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरं,—स्तस्य वा अहोरात्राण्येवेष्टका उपधीयन्ते, द्वे द्वे उपदधाति प्रति-

[३] मै. २,८,१२ । तै. ५,४,१ । काठ. २१,५ । कपि. ३१,२० ।

छिरया, अवकामुपास्य सादयति शान्त्या अनिर्दाहाय, चतस्रो मध्यमायां चित्यामुपदधात्य,
—प्रतिष्ठितमिव ३ह्यन्तरिक्षं, प्रतिष्ठित्यै, द्वादशोपदधाति, द्वादश मासाः संवत्सरः,
संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानर, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद्वैश्वानरः, प्रियाया२ वा एतत्तन्वाम-
भिश्रीयते, संतनूरकौ निधीयते, ऽग्नेरन्तःश्ले३षोऽसीत्ये,—तस्य ह ३त्वेताभिः संश्लिष्टो
यस्यैता उपधीयन्ते, संश्लिष्टो वा एतस्याग्निर्यस्यैता उपधीयन्ते, कल्पेतां द्यावापृथिवी इति,
कल्पते ह वा अस्मा अग्निं चिक्यानाय, प्र समानानां ज्यैष्ठ्यमाप्नोति य एवं२ वेद, सं२ वा
एतदग्निमिन्द्धे यच्चिनोति, तं दीपयत्येव ऋतव्याभिः ॥ ३ ॥ ३

तमो वै स्वर्गं लोकमन्तरा तिष्ठत्ये,—ता वै ज्योतिष्मतीरिष्टका यद्धिरण्यशकलैः प्रोक्षति,
विवासयति वा एतद्यजमानाय, ज्योतिरस्मिन् दधाति, सहस्रं भवन्ति, साहस्रो वै प्रजा-
पतिः, प्रजापतिमेवाप्नोति, यावद्वै सहस्रं तावदि३तोऽसौ लोकः, स्वर्गस्य लोकस्य समष्टया,
इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्विति, धेनवो वै नामैता इष्टका, एताभिर्वै प्रजापतिर्यद्यदका-
मयत तत्तददुह, यद्यदेवैताभिर्यजमानः कामयते तत्तदुहे, ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधा इत्यृ,—तुष्ठा
एवैना अकृत ऋतावृधो, घृतश्चुतो मधुश्च्युता इति, घृतश्चुत एवैना अकृत मधुश्चुता, ऊर्ज-
स्वतीः पयस्वतीरित्यू,—र्जस्वतीरेवैना अकृत पयस्वतीः, स्वधायिनीः कुलायिनीरिति, कुला-
यिनी३र्ह्येता विराजो नाम, कामदुघा इति, यत्र वा अदो देवेभ्यः कामदुघाः काममदुह्र तदेता
अपि दुदुह्रे, तत् पुष्टिमेवैताभिरवरुन्द्धे, ऽमुत्रामुष्मिल्लोक इत्य,—मुष्मै हि लोकायाग्निश्चीयते,
रुद्रं२ वै देवा यज्ञादन्तराय२,—स्तानायतयाभिपर्यावर्तत, तस्माद्वा अबिभयु,—स्ते देवाः
प्रजापतिमेवोपाधाव,—न्त्स प्रजापतिरेतच्छतरुद्रियमपश्यत्, तेनैनमशमयत्, तद्य एवं२ वेद
वेदाह वा एनं प्रजापति,—नैनमेष देवो हिनस्ति, यत्र रुद्रः प्रजाः शमायेत तदुदङ् परेत्ये,—
तद्वै वद२श्वक्रम्येत, स्वाया२ वा एतद्दिशि स्वेन भागधेयेन रुद्रं२ शमयति, जानुदघ्ने प्रथमं
जुहोत्य,—स्यां एवैनं तेन शमयति, नाभिदघ्ने द्वितीय,—मन्तरिक्षात्तेन, छुबुकदघ्ने तृतीयं,
दिवस्तेन, त्रिर्जुहोति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतं लोकेभ्यो रुद्रं२ शमयति,
त्रिरमुतः पुनः प्रत्यवहारं जुहोति, यानेवैतो रुद्रान् यजति तानमुतोऽवयजति, त्रिरितो
जुहोति, त्रिरमुत,—स्तत् षट्, षड्वा ऋतव, ऋतुभ्यो वा एतद्रुद्रमवयजति, समावच्छो
विभाजं जुहोति, समावद्भाजो हि रुद्राणां भागा, द्वासाहानि जुहोति, द्वासाहेवै स तमश-

[४] मै. २,८,१४ । तै. ५,४,२—३ । काठ. २१,६ । कपि. ३२,२१ । वा. १७,२—३ । काण्व. १८,२—४ ।

मयद्, द्वासाहेरेवैनं२ शमयत्य,—र्कपर्णेन जुहोत्य,—र्केण वा एतदर्कमवयजति, यत् पात्रेण
जुहुयाद्रुद्रं प्रजास्वन्ववनयेत्, तस्मादारण्येन जुहोति, पशुर्वा अग्निः, स वै तर्ह्येव जायते यर्हि
चीयते, स भागधेयमिच्छति, यथा वत्सो जातः स्तनमिच्छति सोऽध्वर्युं च यजमानं च प्रेप्सते,
यच्छतरुद्रियं जुहोति स्वेनैवैनं भागधेयेन शमयति, यासा उत्तरार्धे जघनार्धे श्रोणिस्तस्या२
होत३व्य२, स्वाया२ वा एतद्दिशि स्वेन भागधेयेन प्रतिहृत्य रुद्रं२ शमयत्य,—ङ्गिरसो वै
स्वर्यन्तोऽजायां घर्मं प्रासिञ्च,—न्त्सा शोचन्ती पर्णं परामृश३त, सोऽर्कोऽभवद्, यदर्कपर्णेन
जुहोत्यर्केण वा एतदर्कमवयजति, यं द्विष्यात्तस्य पशूनां२ संचरे न्यस्येद्, यः प्रथम आक्रमति
स आर्तिमार्छति ॥ ४ ॥ ४

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणा,—मित्यपः परिषिञ्चन् पर्येति, प्रजापतेर्वा एष रसः, प्रजा-
पतेरेव रसेन परिषिञ्चत्य,—श्मं२स्ते क्षुदित्य,—श्मानमेव क्षुधार्पयति, मयि त ऊर्गित्या,—त्मे-
न्नेवोर्जं धत्ते, यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छत्विति, यमेव द्वेष्टि तमग्नेः शुचार्पयति, त्रिः परिषिञ्चन्
पर्येति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतं लोकेभ्योऽग्नेः शुचं२ शमयति, त्रिः परिषिञ्चन्
पर्येति, त्रिरपरिषिञ्चं२,—स्तत् षट्, षड्वा ऋतव, ऋतुभ्यो वा एतदग्नेः शुचं२ शमयति,
यद्यभिचरेद्देतदेवं यजुर्वदन्नपरिषिञ्चन् पुनः परीयाद्, यैवाग्नेः शुक्तयैनमर्पयति यद्यभिचरेत् ॥
इदमहममुष्यामुष्यायणममुष्मात् पुत्रममुष्या२ दिशि प्रक्षिणामि ॥ इति कुम्भं जघन्याया२ श्रोण्या
प्रक्षिणीयाद्, यत् प्रक्षिणाति तस्यैवार्तिमन्वार्तिमार्छत्य,—थ यन्नाम गृह्णात्यायतनमेवास्य छिन-
त्त्या,—ग्नेयपावमान्यां गायत्रं गायते, प्राणो वै पवमानः, शिरो गायत्री, यदाग्नेयपावमान्यां
गायत्रं गायते शीर्षन्वा एतत् प्राणान् दधाती,—यं२ वै रथन्तर,—मन्तरिक्ष२ वामदेव्य,—मसौ
बृहत्, त्रिधातुर्वा एतदर्को निधीयत, आत्मा वै वामदेव्यं, प्रतिष्ठा यज्ञायज्ञियं, बृहद्रथन्तरे
पक्षौ, यद्बृहद्रथन्तरे अभितो गायत आत्मन्नेव पक्षौ धत्ते, यज्ञं२ वै देवाना२ रक्षा२स्यजिघा२-
स२,—स्तानि बृहद्रथन्तराभ्यामेवापाघ्नत, यद्बृहद्रथन्तरे अभितो गायते रक्षसामपहत्यै, प्रजा-
पतेर्हृदयमापिपक्षे गायते, तस्मादिदमपिपक्षं आत्मनो हृदयमनूचं गायते, तस्मादुरस्युक२
हृदय,—म३र्क्यैः सामभिरर्कं परिष्टुवन्ति, संतनूरकौ निधीयते ॥ ५ ॥ ५-७

वरुणमेनिर्वा एष एतर्ह्यभीद्धस्तिष्ठति, स एनं तर्ह्यधीयात्, तस्य प्राणेन वीयान्, मण्डू-
केनाध्येति तस्यैव प्राणेन व्येति, न ग्राम्यान् पशून् हिनस्ति नारण्या,—नवकया विकर्षत्य,
—पा२ वा एषा योनिर्यदवका,—ऽपा२ वा एतद्योनिनाग्नेः शुचं२ शमयत्य,—पा२ वा एतद्रूपं२

[५] मै. २,१०,१ । तै. ५,४,४ । काठ. २१,७ । वा. १७,१ । काण्व. १८,१ ।

यदवका,—ऽपा२ वा एतद्रूपेणाग्नेः शुचं२ शमयति, वेतसेनाध्येत्य,—पां२ वा एतत् पुष्पं२ यद्वेत३सो,
ऽपा२ वा एतत् पुष्पेणाग्नेः शुचं२ शमयति, सप्तभिर्विकर्षति, सप्त वै छन्दांसि, छन्दो-
भिर्वा एतदग्नेः शुचं२ शमयत्यं,—ग्नो ब्रह्म वै छन्दांसि, ब्रह्मणा वा एतदग्नेः शुचं२ शमयत्य,—
ग्निर्वै सृष्टो भागधेयमैच्छत्, स प्रजापतिमेवोपाधावत्, तस्मा अन्नं प्रायच्छत् कत्वाय, तदस्मै
कमभव,—दन्नं२ वै कं,—मन्नेन वा एतदग्निमुपचरति कत्वाय, कं२ हास्मा अग्निं चिक्यानाय
भवति, पराङ्क्रमध्येति, पराङ् हि पशुः शान्तरथो, पराङ् हि पशुः पशौ रेतो दधात्य,—
न्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः, पावको अस्मभ्यं२ शिवो भवेत्य,—न्नं२ वै पावकं,—मन्नेन वा
एतदग्नेः शुचमन्तर्धत्ते, हिरण्यशकलैर्व्याघारयत्य,—मृतं२ वै हिरण्यं, तेजोऽग्नि,—रमृतेन वा
एतत्तेजो व्याघारयति, पञ्चभिर्व्याघारयति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य,
द्वया वै देवा यजमानस्य गृहमागच्छन्ति, यद्दध्ना मधुसंश्लिष्टेन व्युक्षति तानेव प्रीणाति,
सर्वमनु व्यवोक्षति, सर्वानेवैनान् प्रीणाति, तिसृभिर्व्यवोक्षति, त्रिवृ३द्ध्यग्नि,—स्त्रिष्टुब्भिर्व्य-
वोक्षतीन्द्रियस्यावरुद्ध्या, अन्नवतीभिर्व्यवोक्षत्यन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, दर्भगुरुमुष्टिना व्यवोक्षति,
सं२ हि प्राजापत्यः, प्राणैर्वा एष व्यृध्यते ३योऽग्निमध्येति, यदाह, प्राणदा अपानदा
इति, प्राणानेवात्मन् धत्ते, प्रजया च वा एष पशुभिश्च व्यृध्यते ३योऽग्निमध्येति, प्रजा वै
वर्चः, पशवो वरिवो, यदाह, वर्चोधा वरिवोधा इति, प्रजां चैव पशू२श्चात्मन्धित्वा- ८
वरोहति ॥ ६ ॥

इन्द्रो वै वृत्रमहन्,—न्त्स प्राह्नवयत, स पद्यमाना इन्द्रं२ षोडशभिर्भोगैः पर्यगृह्णात्, स वा
अग्निर्वै वृत्रस्य भोगानुपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनस्तमसो निरमुच्यता,—ऽग्निस्तिग्मेन शोचिषे,-
—ति यज्जुहोत्यग्निना वा एतत् पाप्मनो भोगानुपिदह्य वैश्वकर्मणाभ्यां पाप्मनस्तमसो निर्मुच्यते,
नाना जुहोति स्वर्क्योर्नानावीर्यत्वाय, षोडशगृहीतेन जुहोति, षोडशभिर्हि स तं भोगैः पर्य-
गृह्णा,—देतेन वै स वृत्रस्य भोगेभ्यो निरमुच्यत, तत् पाप्मन एवैतेन भोगेभ्यो निर्मुच्यते,
ऽथैतदप्रतिरथ,—मेतेन वै देवा असुरान् प्रत्यजय२,—स्तदप्रतिरथस्याप्रतिरथत्वं, तदप्र३त्ये-

[६] मै. २,१०,१ । तै. ५,४,४—५ । काठ. २१,७ । वा. १७,४ ५,७,११,१५,३६,२० । काण्व. १८ ५ ६,८,
१२,१५,३६,२० । [अग्निस्तिग्मेन शोचिषा० ।
[७] मै. २,१०,२-३ । तै. ५,४,५ । काठ. २१,८ । वा. १७,३६ । काण्व. १८,३६ । [... ऋ. ६,१६,२८, साम० २१, मै. सं. ४,६,१,५]

वैतेन यजमानो भ्रातृव्यं जयत्ये,—तेनैव याजयेत्, संग्रामे जयति संग्राम,—मेतेनैव याजयेद्
भ्रातृव्यवन्तं२ यो वास्य प्रियः स्यात्तं, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवत्ये,—तेन वै
भरद्वाजः प्रतर्दनं दैवोदासिं२ समनह्यत्, स राष्ट्रमभवद्, यं कामयेत, राष्ट्रियमयं२ राष्ट्रं२
स्यादिति, तमेतेन संनह्येद्, राष्ट्रं२ ह भवत्ये,—तेन वै देवा विराजमभ्यजयन्, दशा-
न्वाह, दशाक्षरा विराड्, विराजमेवैतेनाभिजयति, दक्षिणतो वै देवाना२ यज्ञं२ रक्षा२-
स्यजिघा२स२,—स्तानि वा अप्रतिरथेनैवापाघ्नत, यद् ब्रह्माप्रतिरथं दक्षिणतो वदत्येति
रक्षसामपहत्यै ॥ ७ ॥ ९

उदेनमुत्तरं नये,—ति समिधा आदधाति, प्रह्रियमाणायैवास्मै भागमक,—स्तिस्र आदधाति,
त्रिवृ३द्ध्यग्नि,—रुदु त्वा विश्वे देवा इति, विश्वे ३ह्येते देवाः स्मो यन्मनु३ष्या, अग्ने भरन्त
चित्तिभिरिति, यस्मा एव चित्तायाग्निराधीयते तेनैनं चित्तेन समर्धयति, पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञ-
मवन्तु देवीरिती,—मा एवैनं पञ्च दिशोऽनु तेजस्विनं करोत्यु,—त्थपत्रा इडयो गृभीत इत्यु,—
त्थपत्रो ३ह्येष परिगृह्य यज्ञमावक्षिति, परिगृह्य ३ह्येतं२ यन्ति, हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुर-
स्तादित्य,—सौ वा आदित्यो हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुरस्तात्, सविता ज्योतिरुदयं२ अजस्र,—
मित्याह प्रसूत्या एवं, तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वानिति, पशवो वै पूषा, पशूनेवावरुन्द्धे,
ततो वाका आशिषो नो जुषन्तामित्या,—शिषा२ वा एष दोह, आशिष एवं दुहा, इन्द्रं२
विश्वा अवीवृध,—न्निति वृधद्वत्या यन्ति, वृद्धिमेवोपयन्त्य,—नुष्टुभा यन्ति, वाग्वा अनुष्टुब्,
वैश्वदेवी वाग्, वैश्वदे३वोऽग्नि,—स्तस्मादनुष्टुभा यन्ति, षड्भिराग्नीध्रायन्ति, षड्वा ऋतव,
ऋतुभिरेव यन्ति, विमान एष दिवो मध्य आस्ता, इत्यश्मानं२ सादयति, विमानो
३ह्यसा आदित्यः स्वर्गस्य लोकस्य, सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षद्, यक्षदग्निर्देवो देवं२ आ च
वक्षदित्या,—शीरेवैषा देवहूर्यज्ञ आ च वक्षद्, यक्षदग्निर्देवो देवं२ आ च वक्षदित्या,—शिष
एवैष परिग्रहो, वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजिग्रभदित्य,—सौ वा आदित्य उद्ग्राभ, एष
निग्राभ, उद्यन्वा एतद्यजमानमुद्गृह्णाति, निम्रोचन्नस्य भ्रातृव्यं निगृह्णात्यु,—द्ग्राभश्च निग्राभ-

[८] मै. २,१०,४—५ । तै. ५,४,६ । काठ. २१,८ । वा. १२,३१;१७,५०,५३—५९,६१—६४,१२,५६;१५,६१।
काण्व. १३,३२;१८,५०,५३—५९,६१—६४,१३,५७;१६,८२ । [उदेनमुत्तरं (तां) ० । अथर्व. ६,५,१ ।
हरिकेश। सूर्यरश्मि० (सूर्यरश्मिर्हरिकेशः)० । ऋ. १०,१३९,१, तै. सं. ४,६,३,३। इन्द्रं विश्वा०...
पतिम् । ऋ. १,११,१; सा. ३४३,८२७, तै. सं. ४,६,३,४; तै. ब्रा. २,७,१५,५ । विमान (नुचक्षा) ष्व०
। ऋ. १०,१३९,२, तै. सं. ४,६,३,३]

क्षेति, ब्रह्म वा उद्ग्राभो, ब्रह्म निग्राभो, ब्रह्मणा वा एतद्यजमानमुद्गृह्णाति, ब्रह्मणास्य
भ्रातृव्यं निगृह्णात्यं,—या सुपर्णानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्युस्यतामित्यो,—जो वै वीर्यमिन्द्राग्नी,
ओजसा वा एतद्वीर्येण यजमानो भ्रातृव्य२ं विष्वञ्च२ं विनुदते, चतुर्भिराहवनीयायन्ति, चत्वारि
वै छन्दा२ंसि, छन्दोभिरेव यन्त्यं,—यो ब्रह्म वै छन्दा२ंसि, ब्रह्मणैव यन्ति ॥ ८ ॥ १०

क्रमध्वमग्निना नाकमित्त्या,—ह स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, दिवः पृष्ठ२ं स्वर्गत्वेति, पृष्ठेन
हि यन्त्यं,—त्रं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदा इति, द्विपात्सु चैवं चतुष्पात्सु च पशुपुर्जे दधाती,-
—पक्षमाणा भृगुभिः सहेति, भृगवो ह्येते यज्ञेनाभिवर्धन्ते, पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुह,
—मन्तरिक्षाद्दिवमारुहमित्ये,—षा२ं वा एषं लोकाना२ं समारोहः, पञ्चभिराक्रमते,
पाङ्क्तो यज्ञो, यज्ञेन वा एतद्यज्ञमन्यारोहत्यप्रतिनोदाय, कृष्णायाः श्वेतवत्सायाः पयसा
जुहोत्यं,—हर्वै वत्सो, रात्रिर्माता, ऽह्ने वा एतद्रात्रीं प्रदापयति, प्रत्ते ह वा अहोरात्रे दुहे य एव२ं
वेद, सर्वे वै पशवो नानारूपाः सन्तः पय एवं प्रत्येकरूपा, यदेव प्रत्येकरूपास्तदेनान् प्रत्यवरुन्द्धे,
नक्तोषासा, ऽग्ने सहस्राक्ष, सुपर्णोऽसि गरुत्मान्, पृष्ठे पृथिव्याः सीदे,—त्येषु वा एतं लोकेषु
ज्योतिष्मन्तमग्निं निधत्ते, ऽथो प्राणाना२ं विधृत्यै, द्वाभ्या२ं सादयति, द्विपाद्यजमानः
प्रतिष्ठित्या, आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादित्या,—ह स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, ता२ं
सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामिं३त्ये,—त२ं वै कण्वः श्रायस३सोऽग्नेर्दोह२ं विदांचकारा,—ऽग्नेर्वा एष दोहो,
ऽग्नि२ं वा एतेनाग्निचिद्दुहे, सर्वान् ह वा अस्मा अग्निर्दोहान्त्सर्वान् कामान् दुहे य एव२ं वेद,
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने, इत्याह, क्रद्धया एवं, प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो न इत्ये,—षा
वै कर्णकवती सुम्यजस्रं ज्योति,—रेतस्म२ं वावास्मा एतज्ज्योतिरप्यधा,—द्रुता२ं वै वासिष्ठः
सात्यहव्यः सत्रिणा आसीनान् पप्रछ, विद कर्णकवती२ं सूर्मीमिति, विद्मेति होतुर्वा वनेषु
ता२ं विद्मेति, पशवो वा एतस्याः कर्णाः, पशुमान्भवत्ये,—ता२ं वै वज्र२ं शतघ्नी२ं विघ्नीं
देवा असुरेभ्य उपप्रावर्तय२,—स्तैषा२ं शततर्हमत२ह२,—स्तदेतामेव वज्र२ं शतघ्नी२ं विघ्नी२ं

[९] मै. ३,१०,६ । तै. ५,४,७ । काठ. २१,९ । वा. १७,६४—६७,७०—७२; १९,२; १५,४४ । काण्व. १८,६५—६७,७०—७९; १३,२,१६,६६ । [क्रमध्वमग्निना० । अथर्व. ४,१४,२ । पृथिव्या अहमुदन्तरिक्ष० । अथर्व. ४,१४,३ । नक्तोषासा समनसा (वर्णमा०) । ऋ. १,९६,५; तै. सं. ४,१,१०,४;६,५,२;७,१२,३ । ता२ं सवितुर्वरेण्यस्य० । अथर्व. ७,१५,१ । विधेम ते परमे० । ऋ. २,९,३; तै. सं. ४,६,५,४ । प्रेद्धो अग्ने० । ऋ. ७,१,३; साम० १३७९; तै. सं. ४,६,५,४]

यजमानो भ्रातृव्यायोपप्रावर्तयति, शततर्ह२ं ह द२ंहत्यं,—ग्ने तमद्यें,—ति पङ्क्त्या जुहोति,
यजमानो वै पङ्क्ति,—र्यजमान२ं वा एतद्विराजि प्रतिष्ठापयामुक,—रथो पङ्क्तयै वाहुत्या यज्ञमा-
लभते, सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इत्ये,—तावतीर्वा अग्नेस्तन्वः षोढा सप्त सप्त, यो वा
अस्यैता अग्नि चिक्यानो वितर्पयति वि ह तृष्यति, ता एवास्य तर्पयति, चित्तिं जुहोमि मन-
सेत्ये,—षा वा अग्नेरदाभ्याहुतिर्वैश्वकर्मणी, नैनं भ्रातृव्यो दभ्नोत्य,—ग्निं चिक्यानं प्र समानानां
ज्यैष्ठ्यमाप्नोति य एव२ं वेदा,—ऽग्निर्वा अमन्यत, न वा अहमिदमभागधेयं,—स्तेजो य२ंस्यामी-
ति, तदेतेन भागधेयेनायछ,—देतद्वा अग्निरग्निहोत्रं,—मग्नि२ं वा एतेनाग्निचिद्यछति, सर्वान् ह
वा अस्मा अग्निर्दोहान्त्सर्वान् कामान् दुहे य एव२ं वेद, स२ं वा एतदग्निमिन्द्धे यच्चिनोति, तं
दीपयत्येवाग्निरग्निहोत्रेण ॥ ९ ॥ ११

अथै३षोऽग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालः, स२ंवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, स२ंवत्सरमेव
प्रीणात्यं,—थो प्राहुतायैवास्मै भागमुक,—राहुतीना२ं वै प्रतिष्ठित्या यजमानः प्रतितिष्ठत्या,—हु-
तीनामप्रतिष्ठित्या न प्रतितिष्ठति, यदेतं जुहोत्याहुतीनां प्रतिष्ठित्यै, ताः प्रतितिष्ठन्तीर्यज्ञोऽनु-
प्रतितिष्ठति, यज्ञ२ं यजमानो, ऽथो कामो वै वैश्वानरो, यत् कामो भवति स२ं हास्मै स
कामो नमति, यत्प्राङ् पर्यावर्तेत दैवीर्विशो मुखेयु,—र्यद्दक्षिणा यमदेवत्या स्याद्, यत्प्रत्यङ्
सौ३र्यो, यदुदङ् रौद्रं, ऋजु होत३व्यः प्रतिष्ठित्यै, सर्वहुतं करोति प्रतिष्ठित्यै, क्षत्र२ं वै
वैश्वानरो, विण्मारुता, यदेत२ं हुत्वा मारुतान् जुहोति विश२ं वा एतत् क्षत्राय नियुनक्त्यं,-
—थो विशमेव क्षत्रायानुकां करोत्य,—ग्निमुखान् वै प्रजापतिः पशूनसृजत, पशवो मारुता,
यदेत२ं हुत्वा मारुतान् जुहोत्यग्निमुखानेवास्मै प्रजापतिः पशून् प्रजनयति, सप्तकपाला भवन्ति,
सप्त सप्त मारुता गणा,—स्तस्मात् सप्तकपाला, गणेन गणेन जुहोति, गणश एव मरुतः
प्रीणाति, योऽरण्येऽनुवाक्यो गणस्तन्मध्यतो जुहुयात्, क्षत्र२ं वा एष, मरुता२ं विडितरे,
विशो वा एतत् क्षत्रं मध्यमेष्टं करोति, यदि कामयेत, विशा क्षत्र२ं हन्यामिति, योऽरण्ये
ऽनुवाक्यो गणस्तमितरैर्गणैर्मोहयेद्, विशा वा एतत् क्षत्र२ं हन्ति, यदि कामयेत, क्षत्रेण
विश२ं हन्यामिति, योऽरण्येऽनुवाक्यो गणस्तेनेतरान् गणान् मोहयेत, क्षत्रेण वा एतद्विश२ं
हन्ति, तस्य त्रिष्टुभौ याज्यानुवाक्ये स्याता,—मोजो वै वीर्यं त्रिष्टु,—बोजो वा एतद्वीर्य२ं विशि

[अग्ने तमद्याश्वं० । ऋ. ४,१०,१; साम. ४३४,१७७७; तै. सं. ४,४,४,७ ।]
[१०] काठ. २१,१० । वा. १७,८६ । काण्व. १८,८६ ।

आदाय क्षत्रायापिदधाति, यदि कामयेत, क्षत्रेणास्य क्षत्र२ं हन्यां, प्र स्वादायतनाच्च्यवे-
तेति, योऽरण्येऽनुवाक्यो गणस्तेनाग्निष्ठ२ं रथवाहन२ं व्युह्येत, क्षत्र२ं वा एष मरुतामग्निष्ठ२ं
रथवाहनं, क्षत्रियस्य क्षत्रं बिभर्ति, क्षत्रेणैवास्य क्षत्र२ं हन्ति, प्र स्वादायतनाच्च्यवता,
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानो इत्ये,—वैं देवानामनुवर्त्म, दैवीं च वावास्मा एतद्विशं मानुषीं
चानुवर्त्मानीं करोति, स२ं वा एतदग्निमिन्द्धे यच्चिनोति, तं दीपयन्त्येव मारुतैः ॥ १० ॥ १२
[१०१८]

॥ इत्युपरिकाण्डे स्तोमभागो नाम तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः ।

वसोर्धारां जुहोत्यस्तृतस्य क्लृप्त्या अक्षान्तस्य शान्त्या अनभिजितस्याभिजित्या अनवरुद्धस्या-
वरुद्ध्यै, संततं जुहोति प्राणाना२ं संतत्या एषां लोकाना२ं संतत्या अन्नाद्यस्य संतत्या, अवि-
छिन्नं जुहोत्यन्नाद्यस्याविछेदाय, यद्विछिन्द्यात् प्राणान् विछिन्द्याद्, यं द्विष्यात्तस्य विछिन्द्या,-
—दन्नाद्यमस्य विछिन्नत्यश्वबालं चेत्ये,—तानि वा अश्वस्य रूपाणि, रूपैरेवाश्वमवरुन्द्धेऽग्निश्चा-
पश्चेत्ये,—षा वा अश्वस्य योनिः, सयोन्येवाश्वमवरुन्द्धे, वसोर्मे धारास,—दिति वसोर्धारां
जुहोति, घृतस्य वा एषा धारा यजमानममुष्मिंल्लोके उपतिष्ठन्ते, द्वादश द्वादशाति जुहोति,
द्वादश मासाः स२ंवत्सरः, स२ंवत्सरमेवावरुन्द्धे, ऽथैन्द्राणि जुहोत्य,—थैन्द्रैर्वै देवा इन्द्रिय२ं
वी३र्यमसुराणामवृञ्जत,—न्द्रियमेवैतैर्वी३र्य२ं यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, देवाश्च वा असुराश्चा-
स्पर्धन्त, ते देवा इन्द्रमब्रुव२,—स्त्वया मुखेनेमान् जयामेति, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽ-
स्त्विति, वृणीध्वं,—त्यब्रुव,—न्सोऽब्रवी,—दु३ष्वो वा अहं देवतानामसानीति, ततो वा अज-
य२,—स्तस्माद्देवेषु उ धेनमं देवताना२ं, यदैन्द्राणि हूयन्ते विजित्या, इन्द्रोत्तमानि भवन्ती,—
न्द्रिय२ं वै वी३र्यमिन्द्र, इन्द्रियं वा एतद्वीर्ये ततो यज्ञस्य यजमानः प्रतितिष्ठन्य२,—द्युञ्च
रश्मिश्चेति, यज्ञमुख२ं वा अ२ंशुश्च रश्मिश्च, यज्ञमुखमेवावरुन्द्धेऽधिपतिश्चादाभ्यश्चेति, नैनं
भ्रातृव्यो दभ्नोत्यग्निं चिक्यानं, प्र समानानां ज्यैष्ठ्यमाप्नोति य एव२ं वेद,—तं ग्रहा भवन्त्ये,-
—तानि वै यज्ञस्य रूपाणि, रूपैरेव यज्ञमवरुन्द्धे, स्रुचश्च चमसाश्चे,—ति यज्ञायुधानि संभरति,

[१] मै. ३,१२,५ । तै. ५,४,८ । काठ. २१,११ । वा. १८,१६,२१ । काण्व. १९,३१,३३ ।

यज्ञायुधान्येवं संभृत्य यज्ञं प्रयुङ्क्ते, पात्राणि जुहोति, पात्रैर्वा अन्नमद्यते, ऽनुरूपेणैवान्ना-
द्यमवरुन्द्धे, बर्हिश्च वेदिश्चे,—त्याशीरेवैषा, ऽवभृथश्च स्वगाकारश्चे,—ति प्रतिष्ठित्यै ॥ १॥ १

अग्निश्च घर्मश्चेत्ये,—तद्वा अग्नेर्ब्रह्मवर्च३स्य२, रुचं चैवैतेन ब्रह्मवर्चसं चावरुन्द्धे, तेजस्वी
ब्रह्मवर्चसी भवत्यृ,—तुश्च व्रतं चेत्य,—होरात्रे वा ऋतुश्च व्रतं चा,—ऽहोरात्रे एवास्यैतेनाभीष्टे प्रीते
भवता, एका च तिस्रश्चेति, देवछन्दस२ं वा एका च तिस्रश्च, देवछन्दसमेवावरुन्द्धे,
चतस्रश्चाष्टौ चेति, मनुष्यछन्दस२ं वै चतस्रश्चाष्टौ च, मनुष्यछन्दसमेवावरुन्द्धे, देवलोके
एवं देवछन्दसेन क्रभ्नोति, मनुष्यलोके मनुष्यछन्दसेनै,—का च तिस्रश्च चतस्रश्चाष्टौ चेति,
रोहो वा एष एषां लोकाना२ं, संक्रान्तिः स्वर्गस्य लोकस्य, द्व्युत्तरेण वै स्तोमेनादित्याः
स्वर्गं लोकमाय२,—श्चतुरुत्तरेणाङ्गिरसो, यदेतौ स्तोमौ जुहोति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै,
युग्मदयुजौ वा एतौ स्तोमौ मिथुनौ प्रजननाय, रेत एवं द्व्युत्तरेण दधाति, रेतो हितं चतुरु-
त्तरेण प्रजनयत्यें,—का च तिस्रश्चे,—त्या त्रयस्त्रि२ंशतस्त्रयस्त्रि२ंशद्देवता,—स्ता एवास्यैतेनाभीष्टाः
प्रीता भवन्ति, चतस्रश्चाष्टौ चेत्य,—ष्टाचत्वारि२ंशतो, ऽष्टाचत्वारि२ंशदक्षरा जगती, जागताः
पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, त्र्यविश्च त्र्यवी चेत्ये,—तानि वै वया२ंसि पशूनां, पशव एव
पशूनेवरुन्द्धा, आयुर्यज्ञेन कल्पते, प्राणो यज्ञेन कल्पता इति, यज्ञस्य वा एषा क्लृप्ति,—
र्यज्ञमेवैतदचीक्लृपद्, वाजाय स्वाहा, प्रसवाय स्वाहेति, त्रयोदश वा एता आहुतय,—
स्त्रयोदश मासाः स२ंवत्सरः, स२ंवत्सर२ं वावास्मा एतदुपदधाति स्वर्गे लोके, तस्मिन्नेव
प्रतितिष्ठति, स्तोमश्च यजुश्चे,—त्यन्न२ं वै स्तोमश्च यजुश्चा,—ऽन्न२ं वा एतदात्मन्धित्वाश्नादो
भूत्वा देवक्षेत्रमन्ततः प्रावसत्य,—ग्निर्वै वसु,—स्तस्य वा एषा धारा, सर्वान् ह वा अस्मा
अग्निर्दोहान्त्सर्वान् कामान् दुहे य एव२ं वेद, स२ं वा एतदग्निरन्नाद्यमिन्द्धे यच्चिनोति, तं
दीपयत्येव वसोर्धारया ॥ २ ॥ २

वाजप्रसव्यं जुहोति, वाज२ं वा एतेनाग्निरन्नाद्यमुदजयद्वाजमेवैतेनान्नाद्य२ं यजमाना
उज्जयत्यं,—न्नस्यान्नस्य जुहोति वाजप्रसव्याभि,—रन्न२ं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, उभयं
ग्राम्यं चारण्यं च जुहोत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुद्ध्या, औदुम्बरेण स्रुवेण जुहोत्यू,—र्ग्वा उदुम्बर,

[२] मै. ३,११,६ । तै. ५,३,८ । काठ. २१,११ । वा. १८,२२-२९ । काण्व. १९,३४—४३ ।
[३] मै. २,१२,१—३ । तै. ५,४,९ । काठ. २१,१२ । वा. १८,३०,३७,३८—४३,४५ । काण्व. २०,१,७,८—१३,१५ ।

ऊर्जोऽवरुद्ध्यै, देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ सरस्वत्या
वाचो यन्तुर्यन्त्रेण बृहस्पतिꣳ साम्राज्यायाभिषिञ्चामीत्य,—भिषिञ्चेद्, यदि ब्राह्मणो
यजेत, बृहस्पतिसवो ह्येष, इन्द्रꣳ साम्राज्यायाभिषिञ्चामीत्य,—भिषिञ्चेद्, यदि राजन्यो
यजेते,—न्द्रसवो ह्येषं, कृष्णाजिनें ब्रह्मवर्चसकाममभिषिञ्चेद्, ब्रह्मणो वा एतदृक्सामयो
रूपं,—मृक्सामे ब्रह्मवर्चसं, ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्द्धे, बस्ताजिने पशुकामं, पशवो वै बस्ताजिनं,
पशूनेवावरुन्द्धे, सूयते वा एषोऽग्नीनाꣳ यश्चीयते, स्वेनैवैनꣳ सवेन समर्धयति, देवा
ओषधीषु पक्वास्वाजीमयु,—स्ता अग्निरुदजय,—दुग्रेवा एषोऽभिषेको, ऽन्नस्य वा एतत् सूयते,
सर्वानाꣳ वा एष एको, बृहस्पतिसवो वा एष बार्हस्पत्यो ब्राह्मणो देवतया, स्वेनैव सवेन
सूयते, तदाहु,—र्होतव्यमेवं, न हि सुपुवाणः कं चन प्रत्यवरोहतीति, सुपुवाणो वा एष
देवतया योऽग्निं चिनुते,—दृतवो वै सुपुवाणस्य राष्ट्रमनुविशन्ति, षड्वा ऋतव, ऋतवो राष्ट्रभृतो,
यत् षड्भिर्जुहोत्यृतुष्वेवास्य राष्ट्रं प्रतिष्ठापयति, तेऽस्मै राष्ट्रमनुविशन्ति, द्वादशगृहीतेन जुहोति,
द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे, मिथुना वा एता आहुतय,—स्तस्मै
स्वाहा वट्, ताभ्यः स्वाहा वडिति, तस्मिन्नेव मिथुने रेतो दधाति, रथशीर्षे सप्तमं जुहोति
दिशामभिजित्यै, दिश एवाभिजिता रथेन जीयन्ते, ऽथैते वातहोमा, अग्निचितो वा अमु-
त्राहोरात्रे, अग्निचितेऽयꣳ वायुः पवते, प्राणो वै वायुः, प्राणमेवावरुन्द्धे, ऽञ्जलिना जुहोति,
न ह्येतस्यावदानमस्त्यं,—यो परिगृहीत्या एवं, प्राणो वै वायु,—र्हस्तः प्राणायोपक्लृप्ततम,—
स्तस्मादञ्जलिना जुहोति, त्रिर्जुहोति, त्रयो वा इमे लोका, इम एवास्मै लोका वातं
धुन्वन्ति, समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुरित्ये,—तानि वै वायो रूपाणि, रूपैरेव वायुमवरुन्द्धे,
मारुतोऽसि, मरुतां गण इति, मारुतो हि वायुः, सꣳ वा एतदग्निमिन्द्धे यच्चिनोति,
तं दीपयत्येव वातहोमैः ॥ ३ ॥　　३
प्राणो वै गायत्री, गायत्रꣳ हविर्धान,—मपानो जगती, जागत ꣳसदो, व्यानस्त्रिष्टुप्,
त्रैष्टुभमाग्नीध्र,—मसुः पृश्नि,—र्मध्ये दिव्यो निहितः पृश्निरश्मे,—त्ययमुꣳ वावास्यैतन्मध्यतः
प्राणापानानाꣳ व्यवदधाति प्राणानां धृत्या, अश्मनवमा आग्नीध्रे सादयति, नव वै प्राणाः,
प्राणान् वावास्यैतद्यजमानलोके दधात्येकविꣳशतिꣳ होत्रिये प्रतिष्ठित्यै, प्रतिष्ठा ह्येकविꣳशं,

[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]
[४] मै. २,१२,३ । तै. ५,४,१० । काठ.२१,१२;२२,१। वा.१७,६० (तृ. पा.); १८,५१। काण्व. १८,६० (तृ. पा.);
२०,२१। [पृश्निर्मध्ये दिवो० (मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा)। ऋ. ५,४७,३; तै. सं. ४,६,३,२]

एकादश ब्राह्मणाच्छꣳस्या, एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्, वीर्यं त्रिष्टुप्, वीर्य एव प्रतितिष्ठत्य,—
ष्टाष्टा इतरेष्व,—ष्टाक्षरा गायत्री, ब्रह्म गायत्री, ब्रह्मण्येव प्रतितिष्ठति, षण्मार्जालीये,
षड्वा ऋतव, ऋतवो वा एतं दक्षिणतः पर्यहरन्त, पितरो वा ऋतवो, ऽथो षड्वै छन्दाꣳसि,
छन्दाꣳसि वावास्यैतद्यज्ञमुखे युनक्ति, सजूरब्दो आयवोभिरित्ये,—ता वा अग्नेर्देवताः पुरस्ता-
द्भागा,—स्ता एव प्रीणात्यं,—यो अत्र वै देवानां प्रियास्तन्व,—स्ता एवावरुन्द्धे, सजूरब्दो
आयवोभिरिति, संवत्सरो वा अब्द, ऋतवा आयवाना, संवत्सर एवास्यैतेना ऋतवो-
ऽभीष्टाः प्रीता भवन्ति, सजूरुषा अरुणीभिरित्यु,—षसमेव प्रीणाति, सजोषा अश्विना दꣳ-
सोभिरित्य,—होरात्रे वा अश्विना, ऽहोरात्रे एवास्यैतेनाभीष्टे प्रीते भवतः, सजूः सूर एतशेनेति,
सूर्यमेव प्रीणाति, सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहेति, संवत्सरो वै वैश्वानरः, पशवा
इडा, पशवो घृतꣳ, संवत्सरा एवास्यैतेन पशवोऽभीष्टाः प्रीता भवन्ति, दर्भस्तम्बे जुहो-
त्ये,—षा वा अस्यामृतचित्तनं,—रमृते वा एतदग्निश्चीयते, हिरण्यं निधाय जुहोत्य,—ग्निमत्येव
जुहोत्यायतनवत्य,—न्धोऽध्वर्युः स्यादनायतने जुहुयात्, स्वर्गाय वै लोकाय देवरथो युज्यते,
कामाय मनुष्यरथो, ऽग्निꣳ युनज्मि शवसा घृतेनेत्य,—ग्निꣳ वा एतद्युनक्ति, तेन युक्तेन
स्वर्गं लोकं गछति, यत् सर्वाभिर्युञ्ज्यायुक्तोऽस्य यज्ञः स्यादप्रतिष्ठिता आहुतयो, द्वाभ्यां
नापियुनक्त्याहुतीनां प्रतिष्ठित्यै, ताः प्रतितिष्ठन्तीर्यज्ञोऽनुप्रतितिष्ठति, यज्ञꣳ यजमानस्तिसृ-
भिर्युनक्ति, त्रिवृद्ध्यग्नि,—र्यावानेवाग्निस्तꣳ युनक्ति, तस्मिन् युक्ते सर्वꣳ हव्यꣳ समाधी-
यते, पञ्चभिर्युनक्ति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालब्ध, सꣳ वा एतमेतौ तपतो
यश्चीयते यश्च वैश्वानरो, यदप्सुमतीभ्यां पुरस्ताद्यज्ञायज्ञियस्य संमृशति शान्त्या, एषा वै
यज्ञस्य मात्रा यदग्निष्टोमो, भूम ह्येवास्यातु ऊर्ध्वं क्रियते ॥ ४ ॥　　४
यो वा अग्निꣳ योगा आगते न युङ्क्ते न युञ्जानेषु युङ्क्ते, ऽग्ने युक्ष्वा हि ये तवेत्य,—ग्निꣳ
वा एतद्योगा आगते युङ्क्ते, युङ्क्ते युञ्जानेषु, यो वा अग्निꣳ विमोक आगते न विमुञ्चते न
विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते, वि ते मुञ्चामि रशनाꣳ वि रश्मीनित्य,—ग्निꣳ वा एतद्विमोक आगते विमु-
ञ्चते, वि मुञ्चमानेषु मुञ्चते, यथा वै पुनराधेयमेवं पुनश्चितिं,—र्यो वा आर्षेयेन ऋध्नोति पुनः

[५] तै.५,४,१० । काठ. २२,२ । कपि. ३४।

स आधत्ते, ह्योऽग्निं चिक्यानो मन्येत, वि स्या ऋध्यता इति, स एतां पुनश्चितिमुपदधीता,
—ऽपि प्रथमं चिन्वानश्चिन्वीता ऋद्ध्या, ऋध्नोत्येवा,—ऽथो मिथुनत्वाय, याꣳ वा अग्निचिद्-
निष्टकां आहुतिं जुहोति स्रवति सा, ताꣳ स्रवन्तीꣳ यज्ञोऽनुस्रवति, यज्ञꣳ यजमानो,
यदेतां पुनश्चितिमुपदधात्याहुतीनां प्रतिष्ठित्यै, ताः प्रतितिष्ठन्तीर्यज्ञोऽनु प्रतितिष्ठति, यज्ञꣳ
यजमानो, ऽष्टावुपदधात्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रोऽग्नि,—र्यावानेवाग्निस्तं चिनुते,
ऽष्टौ लोकंपृणा उपधाय पुरीषेणाभ्यूहत्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, ब्रह्म गायत्री, गायत्र्यैवैनं छन्दसा
ब्रह्मणा चिनुता, एकादश लोकंपृणा उपधाय पुरीषेणाभ्यूहत्ये,—कादशाक्षरा त्रिष्टुप् वीर्यं,
त्रिष्टुभैवैनं छन्दसा वीर्येण चिनुते, द्वादश लोकंपृणा उपधाय पुरीषेणाभ्यूहति, द्वादशाक्षरा
जगती, जागताः पशवो, जगत्यैवैनं छन्दसा पशुभिश्चिनुत, एषा वा अग्नेरुत्तरवेदि,—रेतं-
दग्निरुत्तरवेदिमाꣳश्चीयते, योऽस्याग्निः पुरा चितः स्यात्तमन्ववसाय यजेत, यथा वा इदं
दीप्यमाने भूयोऽभ्यादधात्येवꣳ वावास्मिन्नेतदभिपूर्वं भूयस्तेजो दधाति, तदाहुः, कः श्रेयाꣳ-
सꣳ विपुसं बोधयिष्यतीति, यद्यजुता आहुत्यैवैनꣳ व्युर्धयति, गृहान्वा एष कुरुते ह्योऽग्निं
चिनुते, यद्वा अन्यतो विन्दते गृहाꣳस्तदाहरति, यं इष्ट्या वा पशुना वा सोमेन वा यजेत
योऽस्याग्निः पुरा चितः स्यात्समन्ववसाय यजेत, यथा वा इदमन्यतो वित्त्वा गृहानाहरत्येवं तत्त-
दाहुः, पुनर्वा स्वा एतद्यज्ञे क्रियते, यत्रैव क्व च यजेत तदेतां एकविꣳशतिमुपधाय यजेत
प्रतिष्ठित्यै, प्रतिष्ठा ह्येकविꣳश इति ॥ ५ ॥　　५
समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्त्विति, समाभिश्चैवैनमृतुभिश्च समिन्द्धे, सं दिव्येन दीदिहि
रोचनेनेति, ज्योतिष्मन्तमेवैनं चिनुते, विश्वा आभाहि प्रदिशश्चतस्रा इति, तस्मादग्निः
सर्वा दिशा आभात्य,—मुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चा, इत्यामयाविनः कुर्या,-
—न्मृत्युर्वै यमो, ब्रह्म बृहस्पति,—र्यावदेव ब्रह्म तेनैनं भिषज्यति, प्रत्यूहतामश्विना मृत्यु-
मस्मादित्य,—श्विनौ वै देवानां भिषजौ, ता अस्मान्मृत्युं प्रत्यूहता, उद्वयं तमसस्परीति,
पाप्मानमेवं तमोऽपहत्य स्वर्गं लोकमभ्यारोहत्या,—हुतो वै हैतनामनः सुर्वेतरापाग्नेरमश्वित्यस्य

[६] मै. २,१२,५–६ । काठ. २२,१ । वा. २७,१,९–१०;२०,२१;३५,१४,३८,२४ । काण्व. २९,१,९—१०;२२,
६,३५,४७,३८,२४ । [समास्त्वाग्न० (०न)। अथर्व. २,६,१ । अमुत्रभूयादध० । अथर्व.७,५३,१ ।
उद्वयन्तमसस्परि स्वः० । ऋ. १,५०,१०; अथर्व. ७,५३,७; तै. सं. ४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,४,९;६,६,४;
तै. आ. ६,३,१]

होतासीत्, तमब्रुवन्, या अप्सुमतीस्ता इछेति, तस्मै वा एता गन्धर्वाप्सरसः प्राब्रुवन्,
यदप्सुमतीः सामिधेनीर्भवन्ति शान्त्यै, चतुर्विꣳशतिमन्वाह, चतुर्विꣳशत्यक्षरा वै गायत्री,
गायत्री यज्ञमुखꣳ, यज्ञमुखमेवालब्धा,—ऽथो चतुर्विꣳशतिर्वा अर्धमासाः संवत्सरं, एषा वा
अस्थिता श्रीर्यत्संवत्सरो, न वा एष श्रियेलयति, न हास्य श्रीरिलयति, गायत्रीरन्वाह,
तेजो वै गायत्री ब्रह्मवर्चसं, तेज एवं ब्रह्मवर्चसमवरुन्द्धे, त्रिष्टुभोऽन्वाहौ,—जो वै वीर्यं त्रिष्टु,-
—बोज एवं वीर्यमवरुन्द्धे, यद्गायत्र्यश्च त्रिष्टुभश्च भवन्ति तेनैव तदुभयमवरुन्द्धे, या आग्ने-
यीरनिरुक्तास्ताः कार्या, अनिरुक्तमिव ह्येतदव्यावृत्तꣳ, व्यावृतं पाप्मना भ्रातृव्येण गछति,
ता अग्नीषोमीयस्य पशोः कुर्यात्, को हि देवक्षेत्रे द्विरभ्यारोक्ष्यतीति, तिस्रो रात्रीर्भृत्वाग्नि-
श्चेतव्या, इत्याहु,—स्त्रिपदा विराड्, विराजमेवाप्नोति षड्रात्रीर्भृत्वाग्निश्चेतव्या, इत्याहुः,
षड्वा ऋतवः संवत्सरः, संवत्सरमनु विराडायत्ता, विराजमेवाप्नोति, दश रात्रीर्भृत्वा-
ग्निश्चेतव्या, इत्याहु,—र्दशाक्षरा विराड्, विराजमेवाप्नोति, द्वादश रात्रीर्भृत्वाग्निश्चेत-
व्या, इत्याहु,—र्द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमनु विराडायत्ता, विराजमेवाप्नोति,
चतुर्विꣳशति रात्रीर्भृत्वाग्निश्चेतव्या, इत्याहु,—श्चतुर्विꣳशतिर्वा अर्धमासाः संवत्सरः,
संवत्सरमनु विराडायत्ता, विराजमेवाप्नोति, मासं भृत्वाग्निश्चेतव्या, इत्याहु,—र्मासशः
एवं संवत्सरमाप्नोत्य,—ष्टौ वा एतन्मासो वसवोऽबिभ्रु,—स्त इमं लोकमाजयन् गायत्रीं
छन्दा, एकादश रुद्रा,—स्तेऽन्तरिक्षं लोकमाजयꣳस्त्रिष्टुभं छन्दो, द्वादशादित्या,—
स्तेऽमुं लोकमाजयन् जगतीं छन्द,—स्त आर्भुव,—न्नृध्नोति य एवꣳ विद्वान्संवत्सरमग्निं बिभर्ति,
तस्मादाहुः, संवत्सरभृत एवाग्निरित्यु,—पैता आप्रियः प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचानोऽम-
न्यत, स एता आप्रीरपश्यद्, ताभिरात्मानमाप्रीणीता,—ऽग्निर्वै प्रजापति,—र्यदेता
आप्रियो भवन्त्यग्निमेवैताभिर्यजमाना आप्रीणाति, लोमशꣳ वा एतच्छन्दः पशव्यमूनातिरिक्तं
प्रजननाय, विराजो भवन्ति, विराड् वै सर्वाणि छन्दाꣳसि, सर्वाण्येवास्य छन्दाꣳस्युप-
हितानि भवन्ति, ता विश्वचितः कुर्यात्, प्राणा वा एता ज्यायसीरिव च कनीयसीरिव च
भवन्ति, ज्यायाꣳस इव च ह्येमे कनीयाꣳस इव च प्राणाः, प्राणानेवात्मन् धत्ते ॥ ६ ॥　　६
यस्याग्निरुख्योऽनुगछति यथा पुत्रो जातः प्रमीयत एवं तद्, यद्यनुगछेत् तामेवोषां पुनः

[७] तै. ५,४,११ । का. ३,५,३७,७,२९;८,५३;२२,८,३६,३ । काप. ३,५,४५;९,५,३७;२५,९;३६,३ ।

परान्धीत,—षा वा अग्नेर्योनिः, स्वदितेनां वैनेः प्रजनयती,—श्वरो वा एषो प्रजनितो३र्योऽग्निं
चिनुते ॥ ७

यास्ते अग्न आर्द्रा योनयो याः कुलायिनीर्ये ते अग्न इन्दवो या उ नाभयः ।

ताभिष्ट्वमुभयीभिः संविदानः प्रजानंस्त३न्वेह निषीद ॥ ८

इति यदुषाद्रां योनिमति शान्त्यै, प्रजा वै कुलायं, पशवः कुलायं, यत्कुलायिनीः
प्रजात्यै, हविर्भूतो वा एष ३योऽग्निं चिनुते, ३योऽग्निं चित्वान्यस्य स्त्रियमुपैति यथा हविः
स्कन्नमेवं स्याद्, यथा हविषि स्कन्ने प्रायश्चित्तिमिच्छन्त्येवमस्मै प्रायश्चित्तिमिच्छेयु,—र्यद्युपेया-
न्मैत्रावरुण्यामिक्षया यजेत, मैत्रावरुण्यामेवोपेत्यात्मनोऽस्कन्नत्वाय, पशुर्वा अग्नि,—र्यो वै पशुं
पुरस्तादुपचरति हिनस्ति वा एनं सं, तस्मात् पुरस्तात् प्रत्यञ्चं नाक्रामति, तस्माद् पश्चात्
प्राञ्चमुपचरत्यात्मनोऽहिंसायै, यो वै यथावृत्तमग्निं चिनुते यथारूपं प्रजाश्च ऋतवश्च कल्पन्ते,
या दक्षिणावृतस्ता दक्षिणत उपदधाति, याः सव्यावृतस्ता उत्तरत,—स्त्र्यालिखिताः पश्चात् प्राची-
रुपदधाति, यथावृत्तं वा एतदग्निं चिनुते यथारूपं प्रजाश्च ऋतवश्च कल्पन्ते, संसत्योऽग्निश्चेत३-
व्या, इत्याहुः॥ भूर्भुवः स्वः॥ इति पुरस्तात् स्वयमातृणां, यावदेतद्वै वाचः सत्यं संसत्यमेवाग्निं
चिनुते, प्राणो वै स्वयमातृण्णा, ऽमृतं हिरण्यं, यद्धिरण्येष्टकामुपधाय स्वयमातृण्णामुप-
दधात्य,—मृत एवास्य प्राणान् दधाति, तेजोऽसि तेजो मे यच्छे,—ति हिरण्येष्टका उपदधात्ये,—
ताभिर्वा इमे लोका विधृता, अथो एताभिरेवाग्निं चिनुत, इमे लोकाः प्रमान्ति, देवा असु-
रान् हत्वा मृत्योरबिभयु,—स्ते छन्दांस्यपश्यं,—स्तानि प्राविशं,—स्तेभ्यो यद्यदच्छदयंस्तेना-
त्मानमच्छादयन्त, तच्छन्दसां छन्दस्त्वं, चितिं चितिमुपधायाग्नेय्या धाम छन्दोऽभिमृशति,
स्वामेव देवतामुपप्रविशत्यात्मनोऽहिंसायै ॥ श्येनचितिं चिन्वीत स्वर्गकामः, श्येनो वै भूत्वा
गाय३त्र्यग्ने लोकमपतत् स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, रथचक्रचितिं चिन्वीत भ्रातृव्यवान्,
रथचक्रं वै वज्रं कृत्वा देवा असुरेभ्य उपप्रावर्तयं,—स्तेषां शततर्हमतृंहं,—स्तदेतामेव
वज्रं कृत्वा यजमानो भ्रातृव्यायोपप्रवर्तयति, शततर्हं ह तृंहति, प्रौगचितिं चिन्वीत
भ्रातृव्यवा,—नुभयतो वै देवानसुराः पर्ययत्ता आसन्, पुरस्तादन्ये, पश्चादन्ये, तान्वा
एतेन व्यनुदन्त, तद्भ्रातृव्यस्य वा एषं विनोदो, द्रोणचितिं चिन्वीतान्नकामो, द्रोणेन वा
अन्नमद्यते, ऽनुरूपेणैवान्नाद्यमवरुन्द्धे, पश्चादरुमवत्यनुरूपत्वाय, श्मशानचितिं चिन्वीत यः

कामयेता,—ऽञ्जसा पितृलोकमुपेयामित्यं,—ञ्जसा पितृलोकमुपैत्यु,—प चान्यं चिन्वीत ग्रामकामो,
यथैवैतमुपाचिनोत्येवमस्मै ग्राममुपचिनोति, समूह्यं चिन्वीत पशुकामो, यथैवैतं समूहत्येव-
मस्मै दिग्भ्यः पशून्त्समूहति ॥ ७ ॥
९-१२

प्रजापतिर्वा एतमग्रेऽग्निमचिनुत ऋतुभिः संवत्सरं, वसन्तेन पुरस्तादचिनुत, ग्रीष्मेण
दक्षिणं पक्षं, वर्षाभिरुत्तरं, शरदा पुच्छं, हेमन्तेन मध्यं, ब्रह्मणैव पुरस्तादचिनुत,
क्षत्रेण दक्षिणं पक्षं, विशोत्तरं, पशुभिः पुच्छ,—माशया मध्य,—मेतावद्वा अस्ति, यावदे-
वास्ति तत् स्पृणोति, तदवरुन्द्धे, स्वर्गाय वै लोकायाग्निश्चीयते, वज्र एकादशिनी, यदे-
कादशिनीं मिनुयाद्वज्रः पुरस्तादवगृह्णीया,—दस्वर्ग्यः स्याद्, यन्न मिनुयादपशुः स्यादेकयूपं,
एकादश पशवो नियुज्या,—स्तेन पशव्या,—स्तेन स्वर्गो, यत्पक्षसंमितां मिनुयात् कनीयां-
सं यज्ञक्रतुमुपेयात् कनीयसीं प्रजां कनीयसः पशून् कनीयोऽन्नाद्यं, पापीयान्त्स्या,—दथयद्वे-
दिसंमितां मिनोति ज्यायांसं चिनुते ज्यायांसमेव यज्ञक्रतुमुपैति भूयसीं प्रजां भूयसः पशून्
भूयोऽन्नाद्यं, वसीयान् भवत्ये,—षा वा अग्नेरुत्तरवती नाम चिति,—रुत्तरमुत्तरं श्वः श्वः
श्रेयान् भवति य एवं वेद, द्वेधा वा अग्निं चिक्यानस्य यश इन्द्रियं गच्छत्य,—ग्निं वा गच्छ-
त्यात्मानं वा ॥
१३

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु धारय ।

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ १४

इति यज्जुहोत्यात्मानं वा एतदग्नेर्यशसार्पयती,—श्वरो वा एष दुश्चर्मा भवितो३र्योऽग्निमध्येति॥
१५

तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंसमा न आयुः प्र मोषीः ॥ १६

इति यज्जुहोति शान्तिर्वा एषाग्नेर्गुप्तिरात्मनो, वयो वा अग्नि,—स्तस्मादग्निचिता पक्षिणो
नाशित३व्यं नो अग्निविदा, यदश्नीयात्तमेवाश्नीयात्, स एनमार्तिं निनयेत्, प्रजापतिर्वा
एतमग्रेऽग्निमचिनुत ज्यैष्ठ्यकामः, स ज्यैष्ठ्यं महिमानमगच्छ,—ज्ज्यैष्ठ्यं महिमानं गच्छति य
एवं विद्वानग्निं चिनुते, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा ता अनुप्राविशत्, सोऽब्रवीद्, यो मेतः

[८] तै. ५,५,७। काठ. २२,४। कपि. ३५,१-२। वा. १८,४८—४९:२२,२। काण्व. २०,१८—१९,२३,१।
[तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०। ऋ. १,२४,११: तै. २,१,११,६]

संचिनवदध्युवत्स इति, तं देवाः समाचिन्वं,—स्त आर्ध्नुवं,—स्तंचिन्यस्य चित्यत्वं, तथ्य
एवं विद्वानग्निं चिनोति प्रजापतिमेव संचिनोत्यृ,—ध्नोति, तस्मादाहुः, प्रजापतिचित एवा-
ग्निरिति ॥ ८ ॥
१७

देवेभ्यो वा अग्निं चिक्यानेभ्यो न व्यौछ३त, तेऽग्ना आहुतिमजुहवु,—स्तेभ्यमग्ने व्युछ,
तथास्मभ्यं विवस्स्वतीति, तयाग्नये व्यौछ३द्, व्यग्नया औछ,—दाहुत्यै व्यौछन्, तस्या
आहुत्यै यज्ञेन व्यौछद्, व्याहुत्या औछ,—द्यज्ञाय व्यौछन्, तस्मै यज्ञाय दक्षिणया व्यौछद्,
वि यज्ञायौछद्दक्षिणायै व्यौछन्, तस्यै दक्षिणायै ब्राह्मणेन व्यौछद्, वि दक्षिणाया औछद्
ब्राह्मणाय व्यौछन्, तस्मै ब्राह्मणाय ब्रह्मणा व्यौछद्, वि ब्राह्मणायौछ,—द्ब्रह्मणे व्यौछन्,
तस्मै ब्रह्मणे तपसा व्यौछ,—देता वै तपःपरार्ध्या व्युष्टयः, श्वोवसीयस्यस्मै व्युछति य एवं
विद्वान् व्युष्टीरुपधत्ते, यो वै यथापूर्वं व्युष्टीर्वेद यथापूर्वमस्मै व्युछत्यौ,—षसीं वाव प्रथमां
व्युष्टिर्व्यैश,—दिति वा आहु,—र्यदीषस्युदेति, यद् व्युछति, यदग्निरग्नीयते, यत्सूर्य उदेति,
यद्धस्ता अवनेनिक्ते, यदश्नाति, यत् पिबत्ये,—ता वै यथापूर्वं व्युष्टयो, यथापूर्वमस्मै
व्युछति य एवं विद्वान् व्युष्टीरुपधत्ते ॥ ९ ॥
१८

यो वा अग्निमयोनिमनायतनं चिनुतेऽयोनिरनायतनो भवत्यो,—पो वा अग्नेर्योनि,—र्यत् कुम्भेष्टका
उपदधाति योनिमन्तमेवायतनवन्तमग्निं चिनुते, योनिमानायतनवान् भवत्य,—घरसपत्नोऽग्निश्चेत-
३व्या, इत्याहु,—रापो वा अग्नेः सपत्नो, यत् कुम्भेष्टका उपदधात्यघरसपत्नमेवाग्निं चिनुते,
ऽघरोऽस्मात् पाप्मा भवत्य,—घरः सपत्नः, शुग्वा अग्नि,—रापः शान्ति,—र्यत् कुम्भेष्टका उपदधाति
शान्त्यै, यत्कुम्भाश्च कुम्भ्यश्च तन्मिथुनं, यद् द्वन्द्वं प्रजात्यै, द्वादशोपदधाति, द्वादश
मासाः संवत्सरः, संवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे, नैवारश्चरुस्त्रयोदशो भवत्य,—स्ति मासस्त्रयो-
दश,—स्तमेवैतेनाप्त्वावरुन्द्धे, पयसि भवति, यत्पयो, ग्राम्यं तेनान्नाद्यमवरुन्द्धे, यन्नीवा-
रा, आरण्यं तेन, तेनैव तदुभयमवरुन्द्धे ॥ १० ॥
१९

[१५३७]

॥ इत्युपरिकाण्डे वसोर्धारीयः चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

आ वा एष प्रजापतये वृश्चते यः शिर उपदधाति नैतुराण्यङ्कान्य,—स्थिचिदस्य श्मशानचिद्भव-
ति, यदेता पुरुषचितिमुपदधाति न प्रजापतया आवृश्चते, ऽनस्थिचिदस्याश्मशानचिद्भवति,
षट्त्रिंशतमेता उपदधाति, षट्त्रिंशदक्षरा बृहती, बार्हता: पशवो, बार्हतः पुरुषः,
पुरुषस्य प्रतिमोपधीयते, स ३ह्येष धीयत, एष ह ३त्वेव यजमानोऽमुं लोके नाति प्रमीयते
यस्यैता उपधीयन्ते ॥ १ ॥
१

अथैताः पश्चापश्चीनाः, शिथिरं इव वा अग्निश्चित्यो, यत्पश्चापश्चीना उपदधात्य,—मे-
धृत्या अशिथिरत्वाय, पञ्चोपदधाति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, भूय-
स्कृदसि, वरिवस्कृदसीत्य,—मा एव भूमानं दधाति, भूयाम् प्रजया पशुभिर्भवत्य,—प्सुषदसि,
गृध्रसदसीति, वयो वा अग्निः, समिक्ष्युमेवैनं वयः करोति, वयो भूत्वा स्वर्गं लोकमेति
यस्यैता उपधीयन्ते ॥ २ ॥
२

चितः स्थ परिचितः स्थेति, शर्कराः परिश्रयति, यच्च शर्करा अपरिश्रित्य सिकता निर्वपे-
द्रेतः सिक्तं परासिच्येता,—ऽथ यच्च शर्करा अपरिश्रित्य सिकता निर्वपति रेतसः सिक्तस्य परि-
गृहीत्यै ॥ ३ ॥
३

वि वा एष यज्ञश्छिद्यते यदसंस्थितं पशुमुत्सृजन्ति, सं ह स्म वा एतमाशोकेयः स्था-
पयत्या,—ज्येन संस्थाप्य यज्ञस्य संतत्या अविछेदाय ॥ ४ ॥
४

स्वर्गं वा एष लोकमन्वारोहति ३योऽग्निं चिनुते, यदन्वारोहान् जुहोति स्वर्गमेवैनं लोकं
गमयित्वाथ कर्म चरति ॥ ५ ॥
५

[१५४१]

॥ इत्युपरिकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः प्रपाठकः ।

अध्वरादीनां त्रयाणां विधिः ।

आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपे,—दग्निर्वै सर्वा देवता, विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं
चालभ्या,—ऽग्निर्वै यज्ञस्या३न्तोऽवस्ताद्, विष्णुः पुरस्ता,—दुभयत एव यज्ञस्यान्ता आलभ्य,
वदाहु,—र्न ऋतं इन्द्राय३श्नोऽस्तीवति, यदष्टाकपालस्तेनाग्नेयो, यत् त्रिकपालस्तेन वैष्णवो,

[१] काठ. २२,१३।

यदेकादशकपालः संपद्यते तेनैन्द्रो, ऽग्निर्वै यज्ञस्य पवित्रं, विष्णुर्यज्ञः, पवित्रपूतमेवं
यज्ञमालभ्य, मेधस्य वा एतद्यज्ञस्य रूपं यत्पुरोडाश,—स्तस्मात् पुरोडाश एवं कार्य,—श्चरू
कुर्वन्ति, धेन्वा वै घृतं पयो, ऽनडुहस्तण्डुला,—स्तन्मिथुनं, मिथुनमेवास्य यज्ञमुखं
दधाति, तेजो वै घृतं, तेजस एवं प्रजायते, पुरुषो वा एष मेधायालभ्यते, पुरुषस्येव
ह्येषा प्रतिमा, यत इव हि रूपं तस्माच्चरुरेवं कार्यो, वेदिमति दीक्षते, विन्दा, इति वै
वेदिमति दीक्षते, विन्दते ह वै यो वेदिमति दीक्षते, ऽथो यज्ञपथ एवादीक्षिष्ट, वेद्या वै
देवा इममसुराणामविन्दत,—मामेव विन्दते यो वेदिमति दीक्षते, ऽथो यज्ञपथमेवालभ्य,
प्राचीनवंशं कुर्वन्ति दिशो, यदिमाः व्यकल्पयन्निमामेव देवेभ्योऽकल्पय,—न्निमां पितृभ्य,
इमामसुरेभ्य, इमां मनुष्येभ्यो, देवतामेव उपैति यो दीक्षते, देवानामेव दिशमुपावर्तते,
प्राचीनामेव दिशमुपावर्तते, ऽथो देवक्षेत्रमेव प्रावस्यति परिश्रयन्त्य,—न्तर्हितो वै देवात्क्षया-
न्मानुषः क्षयो, मानुषादेवैनं क्षयादन्तर्दधत्य,—थो रक्षसामनन्ववायाये,—ति वा एषोऽस्मा-
ल्लोकाद्यो दीक्षते, जनं ह्येति, देवलोकमभ्यारोहति, परिश्रयन्त्यतिरोकान्कुर्वन्ति, तेना-
स्माल्लोकान्नैति, तेनास्मिल्लोके धृतः पुरस्तात् प्रायणं कुर्यात् स्वर्गकामस्या,—ऽसौ वा आदित्यः
स्वर्गो लोको, ऽमुष्यैनमादित्यस्य सामक्षं गमयति, दक्षिणतः प्रायणं कुर्याद्यं कामयेत,
पितृलोकं ऋध्नुयादित्ये,—षा वै पितृणां दिक्, पितृलोकं एवं ऋध्नोति, पश्चात् प्रायणं कुर्यात्
प्रजाकामस्य, पश्चाद्धि रेतो धीयते, रेतो दीक्षितो, रेतोऽस्मिन्दधात्यु,—त्तरतः प्रायणं
कुर्याद्यं कामयेत, मनुष्यलोकं ऋध्नुयादित्ये,—षा वै मनुष्याणां दिङ्, मनुष्यलोकं एवं ऋध्नोत्यु,-
—त्तरतः पुरस्तात् प्रायणं कुर्याद्यं कामयेतो,—भयोर्लोकयोर्ऋध्नुयादित्यु,—भयोर्वा एतल्लोकयो,—
रुभयोरेव लोकयोर्ऋध्नोति, सर्वतः प्रायणं कुर्याद्यं कामयेत, सर्वासु दिक्ष्वित्यृध्नुयादिति,
सर्वासु दिक्ष्वित्यृध्नोति ॥ १ ॥ १
केशश्मश्रु वपते, दतो धावते, नखानिकृन्तते, स्नाति, मृता वा एषा त्वं,—गमेध्यं वा
अस्यैतदात्मनि शमलं तदेवापहते, मेध्य एवं मेधमुपैत्य,—प्सु दीक्षां प्रवेशयित्वा देवाः स्वर्गं लोक-
मायन्, यदप्सु स्नाति तामेव दीक्षामालभते, ऽथ यदपोऽवभृथमभ्यवैति ता वा एतद्दीक्षां पुन-
रप्सु प्रवेशयत्यो,—षधे त्रायस्वैन,—मित्याह त्रात्या एवं, स्वधिते मैनं हिंसीरिति, वज्रो वै

[२] मै. १,२,१ । तै. ६,१,१। काठ. २२,१३; २३,१ । कपि. ३५,७ । मा. ४,१-२; ५,४२; ६,१५ । काण्व. ४,१-४;
५,५४, ६,२० ।

स्वधितिः, स ईश्वरोऽशान्तो यजमानं हिंसितो,—र्यत्तृणमन्तर्दधाति यजमानस्याहिंसायै,
देवश्रुदिमान् प्रवपा इति, देवश्रु ह्येतान् प्रवपते, स्वस्त्युत्तरं अशीयेति, स्व३स्त्यस्य यज्ञ-
स्योदृचमशीये,—ति वा एतदाहा,—ऽऽपो मा मातरः सूदयन्त्वित्या,—पो हि यज्ञो, घृतेन मा
घृतप्वः पुनन्त्विति, देवताभिरेवात्मानं पावयते, विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्तु देवीरिति, यदेवास्य
रिप्रममेध्यमात्मनि शमलं तदस्मादधि प्रवहन्त्यु,—दिदाभ्यः शुचिरा पूत एमीति, शुचिरेवाभ्यो
याज्ञियो मेध्यः पूत उदेति, हविर्वै दीक्षितो, यदा वै हविर्यजुषा प्रोक्षत्यथ हविर्भवति,
यद्यजुषा स्नपयति हविरेवैनमक,—रश्नाति, प्राणा वा अशनं, प्राणानेवात्मन्धित्वा दीक्षते,
सुषिरो वै पुरुषः, स वै तर्ह्येव सर्वो यर्ह्याशितो, यदाशितो भवति मेध्य एवं मेधमुपैति,
यथा वा इदं दीक्षितं एवं वा एषोऽमुष्मिल्लोकं एव वा अत्याशितस्य तिष्ठति, तस्मान्नात्या-
शितेन भवितव्यं, तन्न सूक्ष्य,—माशितेनैव भवितव्यं, यथैव कनीयः कनीयोऽश्नीया-
देवमश्नीयाद्, यद्धि दीक्षितः सन् कनीयोऽश्नाति तेन दीक्षित आङ्क्ते, ऽभ्यङ्क्ते, वासः
परिधत्त, एता वै पुरुषस्य तन्वः, सतनूरेव मेध्यमुपैति, नवनीतेनाभ्यङ्क्ते, घृतं देवाना,—
मायुतं मनुष्याणां, निष्पक्वं गन्धर्वाणां, स्वयंविलीनं पितृणां, सर्वदेवत्यं वा एतत्,
तस्मान्नवनीतेनाभ्यङ्क्ते, दर्भपिञ्जूलाभ्यां समायौति, तत्स्विदभ्यञ्जनमक,—रथो अङ्गेष्वेवैतद्
धारयति मेध्यत्वाय, महीनां पयोऽसीत्या,—ह, महीनां ह्येतत्पयो, ऽपामोषधीनां रसा
इत्य,—पां ह्येष ओषधीनां रसो, वर्चोधा असि, वर्चो मे धेहीत्याशिषमेवाशास्ते ॥२॥ २
प्रस्वाङ्क्ते प्रजात्या, ईषीकयाङ्क्ते, शलल्या हि मनुष्या आञ्जते, सतूलयाङ्क्ते,
ऽपतूलया हि मनुष्या आञ्जते, दक्षिणं पूर्वमाङ्क्ते, सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते,
त्रिरन्यत्त्रिरन्यदाङ्क्ते, ऽपरिमितं हि मनुष्या आञ्जते, न पुनर्निषेवयति, पुनरावर्तं हि
मनुष्या आञ्जता, इन्द्रो वै वृत्रमहं,—स्तस्य कनीनिका परापतत्, सा त्रिककुभमगछत्, तदा-
ञ्जनं त्रैककुभमाङ्क्ते, सत्यं वै चक्षु,—र्नैव वाचं श्रद्दधाति, सत्यमेवालभ्य दीक्षामुपैत्य,—
न्तरहं त्वया द्वेषो अन्तरारातीर्दधे महता पर्वतेनेति, पर्वतेन वा एतद् द्वेषोऽरातीरन्तर्धत्ते,
चक्षुःपा असि, चक्षुर्मे पाहीत्या,—शिषमेवाशास्त, ऊर्ध्वं चावाञ्चं च पावयत्यू,—र्ध्वश्च ह्ययमर्वा-
वाङ् च प्राणो, यं द्विष्यात्तमक्ष्णया पावयेत्, प्राणानस्य मोहयति, प्रमायुको भवति,

[३] मै. १,२,१ । तै. ६,१,१ । काठ. २३,१ । कपि. ३५,७ । मा. २,१६;१४,१७;१,१२,३१;४,४;१०,६ । काण्व. १,
३३;१५,१७;१,१६,४८।४,५;११,१३ । [चक्षुःपा असि० (चक्षुर०) ।अथर्व. २,१७,६]

चित्पतिस्त्वा पुनात्विति, यज्ञो वै चित्पति,—र्वाचस्पतिस्त्वा पुनात्विति, वाचस्पतिरेवैनं
यज्ञाय पावयति, देवस्त्वा सविता पुनात्विति, सवितृप्रसूत एवैताभिर्देवताभिर्मेधायात्मानं
पावयते, ऽछिद्रेण पवित्रेणेत्य,—सद्वा अछिद्रं पवित्रं यत्सूर्यस्य रश्मयो, ऽछिद्रेणैवैनं पवित्रेण
पुनाति, तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्येति, यज्ञो वै पवित्रपति,—र्यज्ञाय खलु वा एष कमा-
त्मानं पावयते ॥ यज्ञं शकेयम्॥ इतीन्द्रो वै वृत्रमप्स्वध्यहं,—स्तासां यद्यज्ञियं मेध्यमासीत्त-
दुदक्रामत्, ता इमा ओषधयोऽभवं,—स्तासां वा एतत्तेजो यद्दर्भा, एता वै शुष्का आपो,
यद्देवासां स्तेजस्तदवरुन्द्धे, त्रयीर्वा आपो, दिव्याः पार्थिवाः समुद्रिया,—स्ताः सर्वा दर्भा
विवस्थैत्, तस्माद्दर्भैः पवित्रं, द्वाभ्यां पावयति, द्वे पवित्रे, द्विपाद्यजमानो, यावानेवा-
स्यात्मा तं पावयति, त्रिः पावयति, त्रिषत्या हि देवा, अथो त्रयो वा इमे प्राणाः,
प्राणोऽपानो व्यानो, यावानेवास्यात्मा तं पावयति, सप्तभिः पावयति, सप्त वै छन्दांसि,
सि, छन्दोभिरेवैनं पावयत्य,—थो ब्रह्म वै छन्दांसि, ब्रह्मणैवैनं पावयत्ये,—कविंशत्या
पावयति, दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या, आत्मैकविंशो, यावानेवास्यात्मा तं पाव-
यति, त्रया वै नैर्ऋता, अक्षाः स्त्रियः स्वप्नो, यद्दीक्षते तेनाक्षैश्च स्त्रीभिश्च व्यावर्तते,
यो प्रथमो दीक्षितो रात्रीं जागर्ति तया स्वप्नेन व्यावर्तते, यो प्रथमो दीक्षितो वसति यज्ञं तया-
वरुन्द्धे, यां सोमे क्रीते प्रजा तया, यां श्वःसुत्यया पशूंस्तया ॥ ३ ॥ ३-५
आकूत्यै प्रयुजे अग्नये स्वाहेत्या,—कूत्या वा आकूतिर्यक्ष्यते स्य इति, प्रयुजः खलु वा एनं
यज्ञाय प्रयुञ्जते, मेधायै मनसे अग्नये स्वाहेति, मेधया हि मनसा यज्ञमश्नुते, दीक्षायै तपसे
अग्नये स्वाहेति, दीक्षया हि तपसा यज्ञमश्नुते, सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहेति, वाग्वै सर-
स्वती, वाचा व्याहरति, यक्ष्यते स्य इति, पूषा खलु वा एनं यज्ञं प्रापिपयिषत् एनमपूपुष,-
—दापो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवा इत्या,—पो हि यज्ञो, द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्षेति, द्यावा-
पृथिवी वा अन्वन्तरिक्षं यज्ञ उपश्रित,—स्तत एवं यज्ञमालभ्य, बृहस्पतिर्नो हविषा वृधातु
स्वाहेति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणा वा एतत् पुरस्तात् सर्वान् कामानाप्त्वा दीक्षामालभते,—
यत्र वा अस्य यज्ञः श्रितो यत्र यत्रोपश्रितस्ततस्ततो वा एतत् सर्वं ब्रह्मणा यज्ञं संभृत्यालभ्य,
न वा एकाहुतिर्दीक्षितं करोति, यदेतानि जुहोति द्वितीयत्वाय, प्रजापतिर्वै यत्किंच मनसा-

[४] मै. १,२,२ । तै. ६,१,२ । काठ. २३,२ । कपि. ३५,८ । मा. ४,७ । काण्व. ४,८ ।

दीधेत्तदाधीतयजुर्भिरेवाप्नोत्, तदाधीतयजुषामाधीतयजुष्ट्वं, तथ एवं विद्वानाधीतयजूंषि
जुहोति यदेव किंच मनसा दीध्यज्जुहोति तदाप्नोत्ये,—ते वै यज्ञस्य संभारा, एष ह त्वेवं
संभृतसंभारेण यज्ञेन यजते यस्यैतानि हूयन्त, एतद्ध स्म वा आहारुण औपवेशिः, किमु स
यज्ञेन यजेत यो यज्ञस्य संभारान्न विद्यादिति, पञ्चभिर्जुहोति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव
यज्ञस्तमालभ्य, षड्भिर्जुहोति, षड्वा ऋतव, ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति, यज्ञो वै सृष्टः, प्र
सामान्यलिनात्, प्र यजु,—स्तं वा ऋगेवायछ,—देका वा एनमृगयछद्, द्वादश यजूंषि,
नव सामानि, तस्मान्नवभिर्बहिष्पवमाने स्तुवते, नव ह्येनं सामान्ययछं,—स्तस्माद्वात्संव-
त्सरविदो द्वादशभिरौद्ग्रभणं जुह्वति, द्वादश ह्येनं यजूंष्यायछ,—न्नेतर्हि खलु वा एष सृज्यते
यर्हि दीक्षते, यदृचौद्ग्रभणं जुहोति यज्ञं वा एतत् सृष्टमृचायछति, तस्मादारुणिविद ऋचौ-
द्ग्रभणं जुह्वत्ये,—का ह्येनमृगयछत् ॥ ४ ॥ ६
यज्ञो वै प्रजापतिः, प्राजापत्यमेतच्छन्दो यदनुष्टुब्, यदनुष्टुभा जुहोति स्वेनैवैनं छन्दसा-
वरुन्द्धा, एकया जुहोत्ये,—को हि प्रजापति,—रनिरुक्तया जुहोत्य,—निरुक्तो हि प्रजापतिः,
पूर्णया जुहोति, पूर्णो हि प्रजापति,—र्यदूनया जुहुयाद्भ्रातृव्याय लोकमुच्छिंषे,—दथ यत्पूर्णया
जुहोति न भ्रातृव्याय लोकमुच्छिंषत्यू,—र्जो वा एतद्रूपं यत् पूर्णं, यत् पूर्णया जुहोति
यज्ञे वा एतदूर्जं दधाति, विश्वो देवस्य नेतु,—रिति सावित्रं, मर्तो वुरीत सख्य,—मिति
पितृदेवत्यं, विश्वो राय इषुध्यती,—ति वैश्वदेवं, द्युम्नं वृणीत,—ति बार्हस्पत्यं,
पुष्यसा, इति पौष्णं, सारस्वतः स्वाहाकारः, सर्वदेवत्या वा एषा ऋक्, तस्मादेषैका
सत्यौद्ग्रभणं परिबभूव, सर्वाभ्यो देवताभ्यो यज्ञ आलभ्या, इत्याहुः, सर्वदेवत्या वा
एषा ऋग्, यदेतया ऋचौद्ग्रभणं जुहोति सर्वाभ्यो वा एतद्देवताभ्यो यज्ञमालभते, ऽनुष्टुभो वा
एतस्याः सत्यास्त्रीण्यष्टाक्षराणि पदान्येकं सप्ताक्षरं, यत्सप्ताक्षरं तस्य चत्वार्यक्षराण्येकस्मिन्
पद उपयन्ति, त्रीण्येकस्मिन्, यत्र चत्वार्युपयन्ति सा जगती, यत्र त्रीणि सा त्रिष्टुब्,
यदष्टाक्षरं तेन गायत्री, यदनुष्टुप्तेनानुष्टुप्, सर्वैरेवास्य छन्दोभिर्हुतं भवति, छन्दःप्रतिष्ठानो
वै यज्ञ,—श्छन्दःसु वावास्यैतद्यज्ञं प्रतिष्ठापयामकः, स्वाहाकारेण खलु वा एषा पङ्क्तिः,
पाङ्क्तो यज्ञः पङ्क्तिप्रायणः पङ्क्त्युदयनः, पङ्क्तिप्रायणमेवास्य यज्ञं पङ्क्त्युदयनमक,—रथो

[५] मै. १,२,२ । तै. ६,१,२ । काठ. २३,२ । कपि. ३५,८ । वा. ४,८;११,६७;२२,२१ । काण्व. ४,९;१२,६८,२४,
२९ । [विश्वो देवस्य०... स्वाहा । ऋ. ५,५०,१; तै. सं. १,२,२,१;४,१,९,१]

यामैं छन्दांसि, वाचं वा एतन्मध्यत आप्त्वावरुन्द्धे. तस्मादियं वाङ् मध्यतो वदति,
मध्यतो ह्यीयं वाक्, प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्, तस्य रेतः परापतत्, तं देवा
अग्निसमगच्छन्त, तस्माद्दीक्षितो न ददाति. न पचत्य,—थैनमभिसंगच्छन्ते, तदुदगृभ्णं,-
—स्तदीद्धमग्नावाद्धमनस्य, तेन यज्ञमतन्वत, यज्ञो यदग्रे व्यभवत् स त्रेधा व्यभवत्, स वा
ऋक्षु तृतीयेनाश्रयत, सामसु तृतीयेन, यजुःषु तृतीयेन, या वा अस्य प्रिया तनूरासीत्
तया यजुरश्रयतो,—थर्चा क्रियेत, उच्चैः साम्नो,—पांशु यजुषा, यज्ञस्य ह्यत्र प्रिया तनू,-
—र्यद्यजुषोच्चैः कुर्याद्यज्ञस्य प्रियां तन्वमुद्धृतां कुर्या,—दब्रह्मवर्चसी स्याद्ब्रह्मभावुकः ॥ ५ ॥ ७
आहिताग्निर्वा एष सन्नाग्निहोत्रं जुहोति, न दर्शपूर्णमासौ यजते, तया आहुतिभाजो देवतास्ता
अनुध्यायिनीः करोति, कर्शयत आत्मानं, तेनैवास्य तद्धुतं भवति, देवा असुरान् हत्वेभ्यो
लोकेभ्यः प्राणुदन्त, तेषामेको मनुष्यान् प्राविश,—त्तदिदं रिप्रं पुरुषेऽन्त,—र्यो कृष्णमिव
चक्षुष्यन्त,—स्तस्मादीया,—दसुरमेवापहते, यदा वै पुरुषे न किंचनान्तर्भवति, यदास्य कृष्णं
चक्षुषोर्नश्यत्य,—थ मेध्यो, यदि कुर्यात्कं कुर्या,—दसुर्यो वै रात्रि,—रसूर्यमेवासुर्यं क्रियते,
वाचं वा एतद्दीक्षयन्ती,—ति ह स्माहारुण औपवेशि,—र्ये उतान्नानोऽन्यन्नानोऽथ दीक्षितवादं
वदति स वाव दीक्षित इति, सायं प्रातर्वै मनुष्याणां देवहितमशनमतिर्नाय सायमशनमतिर्नाय
प्रातरशनं व्रतं व्रतयति, शनुर्यस्य व्यावृत्त्या, अदन्ती,—ति वै गा आहु,—रक्षन्ती,—ति
मनुष्यान्, जुहुधी,—ति देवेभ्यो, ऽथवा एतमाहुः॥ व्रतमुपेहि व्रत्य॥ इति, व्रतं ह्येतस्य,
मेतेन यज्ञः संततो, व्रतेनैव यज्ञं संतनोत्य,—भ्यर्धो वा ऋक्सामे यज्ञादास्तां, तयोर्यो
महिमाना आस्तां तो अपनिधाय यज्ञमुपावर्तेतां, तौ महिमाना अहोरात्रे अभवतां, तयोर्वा
एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनस्य, यच्छुक्लं तदह्नो रूपं, यत् कृष्णं तद्रात्रे,—स्तौ वा एतन्म-
हिमाना अन्वारभते संपारणाय, स मा पारयता इत्य,—होरात्रे मिथुनं समभवतां, तयोस्ते-
जोऽपाक्रामत्, तत् कृष्णं प्राविशत्, तद्वा एतदन्वारभते, द्यावापृथिवी मिथुनं समभवतां,
तयोर्वीर्यमपाक्रामत्, तत् कृष्णं प्राविशत्, तद्वा एतदन्वारभते, यथा वा इदं नावं पारं
तरिष्यन्नारोहत्येवं वा एतदृक्सामे आरुक्षत्, ते एनमा यज्ञस्योदृचः संपारयतो, यतो वै
लोमानि कृष्णाजिनस्य ततो यज्ञो, यतो यज्ञस्ततो देवता, यद्बहिर्लोमं पर्यूर्णुवीतान्तर्हितो

[६] मै. १,२,२ । तै. ६,१,३ । काठ. २३,३ । कपि. ३५,८ । श. ३,१—१०; ३,६३;१८,५३;१९,७;१०,१,३६, २१,३७,१०,३८,१६ । काण्व. ४,१०-१३,२०,२३,२१,६,९३;३६,२१,३७,१९;३८,१६ ।

दीक्षितो यज्ञात्स्याद्, यदन्तर्लोममन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यो, द्वे विषूची प्रतिमुच्ये, अनन्त-
र्हितो दीक्षितो यज्ञाद्भवत्य,—नन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यो, यद्येकं स्यादन्तं प्रतिमुञ्चेत्,
तेनैव तदुभयमाप्नोति, हविर्वै दीक्षितो, यदन्यत्र कृष्णाजिनादासीत यथा हविः स्कन्नमेवं
स्याद्, यथा हविषे स्कन्नाय प्रायश्चित्तिमिच्छन्त्येवमस्मै प्रायश्चित्तिमिच्छेयु,—श्छन्दांसि च वा
एष देवताश्चाभ्यारोहति, तान्येनमीश्वराणि प्रतिनुदो, यदाह, नमस्ते अस्तु, मा मा हिं-
सीरिति, नमस्कारो वा एषोऽप्रतिनोदाय, देवता वै यज्ञस्य शर्म, यज्ञो यजमानस्य, यदाह,
विष्णोः शर्मासि, शर्म मे यच्छेति, देवता वा एतद्यज्ञस्य शर्माक,—र्यज्ञं यजमानस्य,
प्रोर्णुते, प्रावृत इव हि दीक्षितो, ऽथो एतद्धि दीक्षितस्य रूपं यत् प्रावृतं, तस्मात्
प्रोर्णुते, वासः परिधत्ते, सर्वदेवत्यं वै वासः, सर्वाभिर्वा एतद्देवताभिरात्मानं परि-
श्रयन्ति ॥ ६ ॥
८–१०
यज्ञस्य वै सृष्टस्योल्बमन्वलम्बत तद्वासः क्षौममभवत्, तस्मात् क्षौमेण दीक्षयन्ति यज्ञस्य
सयोनित्वाय, प्राचीनमात्रा पत्नी दीक्षयन्ती,—न्द्रस्य वै प्राचीनमात्रे,—न्द्रियं स्त्रियाः प्रजा,
यत् प्राचीनमात्रा पत्नी दीक्षयन्तीन्द्रियमस्यां दधाति, योनिर्वै दीक्षितस्य दीक्षितविमितं,
जरायु कृष्णाजिनं,—मुल्बं दीक्षितवासो, नाभिर्मेखला, गर्भो दीक्षितः, स्वं वा एतद्योनिं
दीक्षितं आशयेत्, तस्माद्दीक्षितेन दीक्षितविमितान्नानृतुभिः क्रम्यु,—मेष ह्येतस्य योनि,—
रेतो ह्येषोऽधि प्रजायते गर्भो दीक्षितो, यद्वत आविःकुर्वीत दुत्वन्तो गर्भा जायेरन्, यद्दनृतु
स्मयेत तेजोऽस्य परापातुकं स्यात्, तस्मान्नानृतु स्मेतव्यं तेजसोऽपरापाताया—ऽजातो वै
पुरुषः, स वै यज्ञेनैव जायते, स वै तर्ह्येव जायते यर्ह्यदः सोमे क्रीते प्रोर्णुता, इतोऽग्रे
प्रोर्णुते, ऽथो ह्यग्रे पुरुषो जायते, स वै तर्ह्येव सर्वो जायते यर्ह्युदोऽपोऽवभृथमभ्यवैति,
तर्हि स तस्मात् सर्वो निर्मुच्यते, त्रिवृता वै स्तोमेन प्रजापतिः प्रजा असृजत, यत् त्रिवृन्मे-
खला भवति प्रजननाय, त्रिवृद्धि वज्र उदरं वृत्रः पाप्मा क्षुद् भ्रातृव्यः पुरुषस्य, यन्मेखला
पर्यस्यते वज्रमेव सपत्नाय भ्रातृव्याय प्रहरति, यं द्विष्यात्तं तर्हि मनसा ध्यायेद्, वज्रमेवास्मै
प्रहरति, स्तृणुत एवा,—ऽङ्गिरसो वै स्वर्यन्तो यत्र मेखलाः संन्यास्यंस्ततः शरोऽजायत,
तस्माच्छरमय्यू,—र्गो औषधया, ऊर्जं वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते प्रजानां च, योक्त्रेण

[नमस्ते अस्तु । अथर्व. १,१३,१; ११,४,२]
[७] तै. ६,१,३ । काठ. २३,१—४ । कपि. ३६,१ ।

पत्नी संनह्यते, मेखलया दीक्षितो, ऽथो मिथुनत्वायो,—र्ध्वं वै पुरुषस्य नाभेर्मेध्य,—मवा-
चीनममेध्यं, यन्मेखलां पर्यस्यते मेध्यस्य चामेध्यस्य च विधृत्यै, देवताभ्यो वा एष मेधा-
यात्मानमालभते यो दीक्षते, बद्धोत इव वा एतदात्मानं यन्मेखलां पर्यस्यते, तस्माद्वा
एतस्याश्नमन्नाद्यं,—मार्त इव ह्येष बद्धं,—स्तस्माद् बद्धस्याश्नमन्नाद्यं, यथा वा इदं गरगीर्णं
वा एषोऽग्निमुखो यो दीक्षितस्याश्नमत्ति, यज्ञेन ह्येवास्य तता उन्मुक्ति,—र्हविर्वै दीक्षितो,
यदस्य जुहुयाद्धविरेव जुहुयात्, प्रमायुकः स्यात्, सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्य आवृश्चते यो
दीक्षते, यदस्य जुहुयाद्यज्ञमस्य विदुहा,—दुपघातोऽस्य यज्ञः स्यात्, तं वा एतदागते
काले सर्वं संस्कृतं यज्ञं देवताभ्यो दुहेत, त्रेधा वा एतस्य पाप्मानं विभजन्ते यो
दीक्षते, ह्योऽस्याश्नमत्ति स तृतीयं, योऽस्याश्लीलं कीर्तयति स तृतीयं, या एनं पिपी-
लिका दशन्ति तास्तृतीयं, तस्माद्वा एतस्याश्नमन्नाद्यं, तस्मादस्याश्लीलं न कीर्तयितव्यं,
तस्माद्दीक्षितवासोऽमत्र्यं,—मत्र हि ताः पिपीलिका या एनं दशन्ति ॥ ७ ॥ ११
दक्षिणा वै देवेष्वासीद्, यज्ञोऽसुरेषु, तां दक्षिणां यज्ञोऽभ्युदक्रामयत्, तामभिपर्या-
वर्तत, तां समभवत्, स इन्द्रोऽवेद्, यो वा अस्मायोनेः संभविष्यति स इदं भविष्यतीति
तामिन्द्रः प्राविशत्, तता इन्द्रः समभवत्, तता इन्द्रोऽजायत, स जायमानोऽवेद्, यो
वा अस्मायोनेरन्यो संभविष्यति मादृक्संभविष्यतीति, तया सहोपवेष्ट्यमजायत, यन्न्यवेष्टय-
त्तस्मादिर्विष्टिता, यान्निवेष्ट्यमाना श्यावाभवत् तस्मात् कृष्णा,—न्द्रं च वा एष प्रेप्सति दक्षिणां
च—न्द्रस्य च खलु वा एतद्योनिमालभ्य दक्षिणायाश्चात्मानं,—मथो सयोनिमेवं यज्ञमालभते,
कृषिं सुसस्यामकृषा इति, विषाणया भूम्यामुपहन्ति, कृषिमेवास्य सस्येन समर्धयति,
यजुषा कण्डूयते, यद्धस्ता हि मनुष्याः कण्डूयन्ते व्यावृत्त्यै, यजुषा कण्डूयते, तस्मात् प्रजा
अपामसविष्णवः, पामभविष्णवः प्रजाः स्युर्यद्यजुषा कण्डूयेत, सुपिप्पला ओषधीस्कृधी,—
ति, शिरः कण्डूयता, ओषधीरेव फलं ग्राहयति, तस्मादोषधयः शीर्षन् फलं गृह्णन्ति,
वाग्वै सृष्टा चतुर्धा व्यभवत्, ततो या अत्यरिच्यत सा वनस्पतीन् प्राविशत्, सैषा
याक्षे या दुन्दुभौ या तूणवे या वीणायां दुन्दं प्रयच्छति तामेवास्मै वाचं प्रयच्छत्य,—
थो वज्रमेवास्मै प्रयच्छति गोपीथाया,—ऽस्पद्मं प्रयच्छत्ये,—तावती ह्यीयं वाग्यदुत्यं,—थो

[८] मै. १,२,१ । तै. ६,१,३-४ । काठ. २३,४—५ । कपि. ३६,१—२ । श. २१,२९-४७,५३,६४,६८,१—११, २३—३४,४,६ । काण्व. २३,३०—४६,२५,६६;३०,१—११,२४,—३४,४,७ ।

एतावती हि वाचो वीर्यं क्रियते, यद्वर्षीयांसं प्रयच्छेत् स्वां वाचं मैत्रावरुणो विभुजेत,
तं श्वःसुत्यायां मैत्रावरुणाय प्रयच्छति, तां श्वो भूते मैत्रावरुण ऋत्विग्भ्यो विभजति ॥
होतर्यज पोतर्यज नेष्टर्यज ॥ इति सा सह वषट्कारेणाहवनीयं गच्छति, तां पुरोऽध्वर्यु-
र्विभजति ॥ होतर्यज पोतर्यज नेष्टर्यज ॥ इत्यध्वर्युः पुरो वाचं विभजति, मैत्रावरुणः
पश्चात् ॥ स्वाहा यज्ञं मनसा ॥ इति मनसा यज्ञमभिगच्छन्ति, तत एवं यज्ञमालभ्य,
स्वाहा दिवः स्वाहा पृथिव्या इति, द्यावापृथिवी वा अन्वन्तरिक्षं यज्ञं उपश्रित,—स्तत एवं
यज्ञमालभ्य, स्वाहोरोरन्तरिक्षादित्य,—न्तरिक्षं वै यज्ञो, यदि वातो यदि वा पर्शुस्तत
एवं यज्ञमालभ्य, स्वाहा वातात्परिगृह्णामि स्वाहेत्य,—यं वाव यः पवत एष यज्ञस्तमेवालभ्य,
वाचं यच्छति, यज्ञं वा एतद्यच्छति, यद्वाचं विसृजेद्यज्ञं विसृजेत, तदाहुः,
पुनर्दीक्षयित्वा वाग्यन्तव्येति, यत् पुनर्दीक्षयेदाहुतीरतिरेचयेद्, वैष्णवीमनूच्य वाग्यन्तव्या,
विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञमेवालभ्या,—ऽऽग्नावैष्णवीमनूच्य वाग्यन्तव्या, ऽग्निर्वै सर्वा देवता,
विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालभ्य, सारस्वतीमनूच्य वाग्यन्तव्या, वाग्वै सरस्वती.
वाचा यज्ञः संततो, वाचैव यज्ञं संतनोति, बार्हस्पत्यामनूच्य वाग्यन्तव्या, ब्रह्म वै
बृहस्पति,—र्ब्रह्मणा यज्ञः संहितो, ब्रह्मणैव यज्ञं संदधाति ॥ ८ ॥ १२–१८
दीक्षितोऽयमसा आमुष्यायणः ॥ इत्युद्वदति वा आह, प्रियो वै देवानां दीक्षितो,
देवेभ्य एवैनं प्राह, त्रिराह, त्रिषत्या हि देवा, अथो त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैनं
लोकेभ्य आवेदयति, तस्माद्दीक्षितं दूरात्च् शृण्वन्त्ये,—भ्यो ह्येनं लोकेभ्य आवेदयति,
नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं विसृजते, द्वौ वा ऋतू, अहश्च रात्रिश्चा,—ऽन्यमेवं ऋतुं संप्राप्य वाचं
विसृजते, व्रतं चरते,—ति वाचं विसृजते, व्रतं ह्येतस्य, व्रतेन यज्ञः संततो, व्रते-
नैव यज्ञं संतनोति, दैवीं धियं मनामहा, इति यजुषा हस्ता अवनेनिक्ते, यजुषा हि
मनुष्या अवनेनिजते व्यावृत्त्यै ब्रह्मणः सदेवत्वाया,—ऽथो आपो मे दीक्षां नैत्प्रमुष्णानित्य,—
न्नं वै मनुष्येभ्य उदक्रामत्सत्, तद्देवा मनुष्येष्वदिधीर्षं,—स्तदापोऽब्रुवन्, वयं व एतां
शुन्धामा,—ऽथोपावर्तस्वेति, ततोऽन्नं मनुष्यानुपावर्तन्त, तं इदमन्नं मनुष्येषु धृतं, तस्माद्
ब्राह्मणं आहार्या, आहुते हस्ता अवनेनिजीता,—ऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्या, अथो अन्नाय वा एत-

[९] मै. १,२,३ । तै. ६,१,४ । काण्व. २३,५—६ । बा. ४,११,१६;६,२७ । काण्व. ४,१५—१६,२१—२२;१, ३९—४० ।

दात्मानं पावयते, यं देवा मनुजाता मनोयुजा, इति व्रतं व्रतयत्ये,—ते वै देवा मनुजाता
मनोयुजो यदिमे प्राणा, एषा वा अस्मिन्नेतर्हि देवता, तां प्रीणाति, तस्यां हुतं व्रतयति,
यदैतोऽन्यथा व्रतयेत् प्राणैरेनं व्यर्धयेत्, प्रमायुकः स्यात्, त्वमग्ने व्रतपा असी,—ति
वदेत्स्वप्स्यन्त्सुप्त्वा वा प्रबुध्य, यदि वा दीक्षितवादं वदे,—दग्निर्वै देवानां व्रतपति,—
स्तस्मादेवाधि व्रतमालभते, नोत्तानः शयीत, यदुत्तानः शयीतेमे लोका ययेयु,—र्नाग्नेरधि
पराङ् पर्यावर्तेत, यत् पर्यावर्तेत यज्ञात् पर्यावर्तेत, नान्यत्रदीक्षितं दीक्षितविमितान्तसूर्योऽभिनि-
म्रोचे,—न्नाभ्युदियाद्, दीक्षितव्रतमेव तद्, यज्ञो वै देवानां न समभवत्, तं भूत्या समभाव-
यन्, यद्भूतिं वनुते यज्ञस्य संभूत्यै, रास्वेयत्सोमे,—ति यद्ब्रूया,—देतावदस्य स्या,—न्न भूयो,
यदाहा,—ऽऽभूयो भरेत्य,—परिमितस्यावरुद्ध्यै, देवः सविता वसोर्वसुदाव,—ति सवितृ-
प्रसूत एवै,—ताभिर्देवताभिरुप प्रतिगृह्णात्यात्मनोऽहिंसायै, वायुर्गोपास्त्वष्टाधिपतिः, पूषा
प्रतिग्रहीते,—ति वायुमेवासां गोप्तारमक,—स्त्वष्टारमधिपतिं, पूषणं प्रतिग्रहीतार,—मापो वै
यज्ञो, यदपो दीक्षितोऽवगाहेत यज्ञमेवक्रश्नीयाद्, यदाह, दैवीरापो अपां नपा,—दिति यदे-
वासां यज्ञियं मेध्यं तन्नाक्रामति, यदपो दीक्षितोऽवगाहेत विहृदिनीः स्यु,—स्तस्मान्नाव-
गाहेत, यद्यवगाहेत लोष्टं विमृणं स्तरेत्, तमेव सेतुमनुसंतरति, न वै दीक्षितं तरन्तं देवता
अनुतरन्त्य,—रणिभ्यां सह तरति, सहैव देवताभिस्तरति, न वै दीक्षितं तरन्तं यज्ञोऽनु-
तरति, रथाङ्गेन सह तरति, सहैव यज्ञेन तरति ॥ ९ ॥　१९-२०

अमुं वा आदित्यं सर्वा वाचो गछन्ति, ता उद्यति सर्वाः सृज्यन्ते, यदाह, याः पुशू-
नामृषभे वाचा इति, सृज्यमानां वा एतद्वाचं पुनरालभते, वायवे त्वे,—ति नष्टामनुदिशति,
वरुणाय त्वे,—त्यप्सु मग्नां, रुद्राय त्वे,—ति महादेवाहतां, निर्ऋत्यै त्वे,—त्यवसन्ना,—
मिन्द्राय त्वे,—ति श्लेष्कहुतां या वा सं शीर्येत, मरुद्भ्यस्त्वे,—ति ह्रादुनिहता,—मेते वै
देवा भूत्या स्कन्नभागा,—स्तानेव प्रीणाति, देवेभ्यो वा अन्या दक्षिणा दीयन्ते, मनुष्येभ्योऽ
न्या, एता वै देवेभ्यः प्रत्यक्षं दक्षिणा दीयन्त, एताभिर्वै भूयोऽवरुन्द्धे, यद् चैताभि,—
र्देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त,—तावान्वै तर्हि यज्ञ आसी,—दग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ चातुर्मास्यानि,

[त्वमग्ने व्रतपा असि० । ८,११,१; अथर्व. १९,५१,१, तै. सं. १,१,१४,४;२,३,१]

[१०] मै. १,२,३ । काठ. २३,७ । कपि. ३६,४ ।

मै० ३३

ते देवा यज्ञमपश्यं,—स्तेनादीक्षन्त, तेषां यदग्निहोत्रमासीत्तद्व्रतमुपायं,—स्तस्माद्विव्रतेन
भवितव्यं, द्विर्ह्यग्निहोत्रं हूयते, यदग्नीषोमीयं पूर्णमासे हविरासीत् तमग्नीषोमीयं पूर्वेद्युः पशु-
मालभन्त, यदैन्द्राग्नममावास्यायां तमाग्नेयं श्वो भूते पशुमालभन्त, वैश्वदेवं प्रातःसवनम-
कुर्वत, वरुणप्रघासान्माध्यंदिनं सवनं, साकमेधान् पितृयज्ञं, त्र्यम्बकास्तत्तृतीयसवनं,
तस्मात् तृतीयसवने विश्वं रूपं शस्यते, विश्वं ह्येतद्रूपं, तमेषां यज्ञमसुरा णान्वायं,—
स्तेन वा एनानपानुदन्त, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तय एवं वेद भवत्यात्मना,
परास्य भ्रातृव्यो भवति, तं, ऽध्वृतोऽयमभूदित्य,—पाक्राम,—स्तदध्वरस्याध्वरत्वं,
तस्मादेकव्रतेन भवितव्यं, सकृद्ध्यग्निहोत्रं हूयते ॥ १० ॥　२१
[१५६३]

॥ इत्युपरिकाण्डे आग्नावैष्णवं नाम षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः प्रपाठकः।

अक्लृप्तं वा इदमासीद्, दिशो वा इमा न प्रजानं,—स्तद्देवा अन्योऽन्यस्मिन्नैछं,—
स्तन्नाविन्दं,—स्ते देवा अदितिमब्रुवं,—स्त्वया मुखेनेमा दिशः प्रजानामेति, साब्रवीद्,
भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वेत्य,—ब्रुव,—न्त्सोऽब्रवी,—न्मद्देवत्यमेव प्रायणीयमस्त,—न्मद्देवत्यमुद-
यनीयं, मामेवानुप्रायाथ, मामनूद्यायेति, स एष आदित्यश्चरु,—रदितिं वा एतदनुप्रयन्त्य,-
—दितिमनूद्यन्ति, ततो वा इमा दिशः प्राजानन् पथ्यां यजुती,—मामेव तेन दिशः प्राजानन्,
यदग्निमिमां तेन, यत्सोममिमां तेन, यत्सवितारमिमां तेन, यददिति,—मियं वा अदिति,-
—रूर्ध्वां वा अस्यां दि,—गूर्ध्वामेव तेन दिशं प्राजानं,—स्ततो वा अकल्पता,—ऽक्लृप्तस्य वै
क्लृप्त्यै प्रायणीय,—स्तय एवं विद्वान् प्रायणीयेन चरति कल्पते, कल्पन्ते हास्मा ऋतव,—
स्ततो वा इमा दिशोऽन्वपश्यन्, यत् पथ्यां यजुतीमामेव तेन दिशमन्वपश्यन्, यदग्नी-
षोमौ, चक्षुषी वा अग्नीषोमा, अनु ताभ्यां समपश्यन्, यत्सवितारं, सवितृप्रसूता
एवेमा दिशोऽन्वपश्यन्, यददिति,—मियं वा अदिति,—रस्यां वै प्रतिष्ठाय देवा यज्ञ-
मतन्वत, यत् पथ्यां यजुति, वाग्वै पथ्या, वाचमेवावरुन्द्धे, यदग्निं देवतास्तेन,
यत् सोमं यज्ञं तेन, यत् सवितारं प्रसूत्यै, यददिति,—मादित्या वा इमाः प्रजा,—स्ता

[१] तै. ६,१,५ । काठ. २३,८—९ । कपि. ३६,५—६ ।

एवावरुद्ध, ता आद्या अकुत, यद्वै यज्ञस्यान्तर्यन्ति तच्छिद्रं, तेन यज्ञः स्रवति, तेन
यजमानोऽग्नये समवद्यत्य,—ग्निर्वै संमिति,—रग्निः प्रतिष्ठितिः, संमित्या एवं प्रतिष्ठित्या अग्नि
प्रथमं यजत्यग्निमुत्तमं, समानी वा एषा देवता पाङ्क्तत्वाय, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव
यज्ञस्तमालभ्य, स्वस्तिं यजति यज्ञस्य स्वस्त्यै, पथ्यां यजति, वाग्वै पथ्या, वाच-
मेवानुप्रयन्ति, तामुत्तमामुदयनीये यजति, वाग्वै पथ्या, वाचमेवानूद्यन्ति, मरुत्वतीः
पथ्याया ऋचो भवन्ति, देवविशो वै मरुतो, देवविशामेवाचीक्लृपत्, तां शान्तां क्लृप्तां
मनुष्यविशा अनुकल्पन्ते, स्तेनभविष्णुर्हविर्भवति ॥ १ ॥　१

जुषाणेनान्य आज्यभागा इज्यन्ते, ऽथात्र ऋचोभयतो यजति द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय,
सप्तदश सामिधेनीः कार्याः, पञ्च ऋतवो, द्वादश मासा, एष संवत्सरः, संवत्सरा-
द्देवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते, तदाहुः, पञ्चदश सामिधेनीः कार्या, न सप्तदश, संवत्सरी-
यस्यैवायनस्य, सप्तदश कार्याः संवत्सरस्या ऋद्ध्या इति, तन्न संस्थं, सप्तदशैव कार्याः,
प्रयाजवत् स्यात् प्रायणीयमननुयाज,—मनुयाजवत् स्यादुदयनीयमप्रयाज,—मुभयतो वा एतत्
प्रयाजानुयाजा यज्ञमभिसंधीयते, समानो ह्येष यज्ञो, निष्कार्यं च मेक्षणं च निदधाति,
तेन यज्ञः संतत, आत्मा वै प्रयाजाः, प्रयाजानुयाजा देवक्षेत्रं, यज्ञो देवक्षेत्रमाक्रममाणः
प्रजामन्तरियाद्, यदनुयाजानन्तरियात् प्रयाजवत् स्यात् प्रायणीयमनुयाजव,—दनुयाजवत्
स्यादुदयनीयं प्रयाजवत्, पयसि प्रायणीयः स्यात्, पयस्युदयनीयो, ऽपां वा एतच्
शुक्रिय,—मपामेव शुक्रियमवरुन्द्धे, पशवो वै शुक्रियं, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽथो प्रायणे च
वावास्मा एतदुदयने च पशून् दधात्या,—दित्यः प्रायणीयः स्या,—दादित्य उदयनीय, इयं
वा अदिति,—रस्यां वा एतद्यज्ञमुखेन प्रतितिष्ठत्य,—स्यामुपरिष्टाद्, यत्र वै यज्ञस्याग्रेऽग्रे समृद्धं
क्रियते क्रियमाणं क्रियमाणं ह वा अस्य समृध्यते, संस्थाप्यं प्रायणीयं यज्ञस्य समृद्ध्यै,
याः प्रायणीयेऽनुवाक्यास्ता उदयनीये याज्याः स्यु,—र्या उदयनीयेऽनुवाक्यास्ताः प्रायणीये
याज्याः स्युः, पथः प्रतिप्रज्ञात्या, अथो अनुसंतत्यै, यदतोऽन्यथा कुर्युश्छम्बट्कुर्युः ॥२॥
२

इयं वै कद्रू,—र्वाक् सुपर्णी, छन्दांसि सौपर्णानि गायत्री त्रिष्टुब्जगती, सा वै कद्रूः
सुपर्णीमात्मानमपजत्, साब्रवीत्, सोममाहर, तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेति, सा छन्दांसि

[२] तै. ६,१,५ । काठ. २३,९ । कपि. ३६,६ ।

[३] तै. ६,१,६ । काठ. २३,१० । कपि. ३७,१ ।

प्रैष्य,—दमुतः सोममाहरत, तेन मा निष्क्रीणीतेति, ततो जगत्युदपतत्, सा पशुभि-
श्चागछद्दीक्षया च, तस्मात् पशवा इति जगतीमाहु,—स्तस्माद्यदा पशून् विन्दतेऽथ दीक्षते,
ततस्त्रिष्टुबुदपतत्, सा दक्षिणया चागछत् तपसा च, तस्मात् त्रिष्टुभो लोके दक्षिणा दीयन्ते,
तस्माद् मध्यंदिने तपस्तपनीयमिति, ततो गायत्र्युदपतत्, सा सोममाहरत्, तमाह्रियमाणं
सामिगन्धर्वो विश्वावसुरामुष्णात्, स तिस्रो रात्रीरुपहृतोऽवसत्, तस्मात्तिस्रो रात्रीः क्रीतो वसति,
तेऽब्रुवन्, पुनर्याचामहा इति, ते देवा अब्रुव,—न्त्स्त्रीकामा वै गन्धर्वा, वाचमेव संभृत्य
यथा योषितमनपक्षेयतमेव तया निष्क्रीणामेति, तं वै निरक्रीणं,—स्तस्मादाहु,—र्वाग्वै
सोमक्रयणी, वाचं वा एतद्देवा निष्क्रीणातीति, तेऽब्रुव,—न्ननुतीयामहा इति, ताम-
न्वातीयन्त, तदनृतस्य जन्म, तय एवं विद्वान्त्सत्यानृता वाचं वदति न हैनं द्रुणाति,
तेऽब्रुवन्, विह्वयामहा इति, तां व्यह्वयन्त, गाथां देवा अगायन्, ब्रह्म गन्धर्वा अवद,-
—न्त्सा देवानुपावर्तत, तस्माद्विवाहे गाथा गीयते, तस्माद्गायन्त्स्त्रियाः प्रिय,—स्तय एवं
विद्वान् गाथां गायन् हस्तं गृह्णाति, सं हि जीवतः, सर्वमायुरितो, नार्तिं नीत,—स्त-
दाहु,—रा वै सा पुनरगछ,—न्नैव किं चन सोमक्रयणीति ॥ ३ ॥　३

या द्विरूपा सा वार्त्रघ्नी, यत्तया क्रीणीयाज्ज्यायुकमस्य राष्ट्रं स्या,—दथ यस्य तादृश्यनुस्तरणी
भवति ताजगेषामपुरः प्रमीयते, या रोहिणी कृष्णाक्षी कृष्णवाला कृष्णशफा सा पितृदेव-
त्या, यत्तया क्रीणीयात् प्रमायुको यजमानः स्या,—दथ यस्य तादृश्यनुस्तरणी भवत्यृतुमद्वेषा-
मपुरः प्रमीयते, यारुणा बभ्रुलोम्नी श्वेतोपकाशा शुच्यदक्षी तत्सोमक्रयण्या रूपं, स्वेनैव रूपेण
क्रीयते, काणा स्यादखर्वा श्रोणा सप्तशफा, तथा सर्वया क्रीयता, एकहायन्या क्रेतव्या,
वाग्वै सोमक्रयणी, तस्मात् प्रजाः संवत्सरे वाचं वदन्त्य,—प्सु क्रय्यां, ओषधयो वै
सोमा, आपा ओषधीनां रस,—स्तथा स रसः क्रियते, क्रये वा अह्नं सोमस्य तृतीयं
सवनमवरुन्द्धे, वेदे,—ति ह स्माहारुण औपवेशिः, पशवो वै तृतीयं सवनं, पशूनां चर्म,
यच्चर्मणि निवपति तेनैव तृतीयं सवनमवरुन्द्धे, रोहिते निवपति, तस्मात् पशूनां रोहित-
रूप,—मानडुहे निवपत्य,—नड्वान्वै सर्वाणि वयांसि पशूनां, सर्वाण्येव वयांसि पशूनामा-
प्त्वावरुन्द्धे, ऽथो वह्नेर्यज्ञस्यावरुन्द्धे, सोमं विचिन्वन्ति पापवसीयस्य व्यावृत्त्या, अथो

[४] मै. १,२,५ । तै. ६,१,६,१ । काठ. २४,१—२ । कपि. ३७,१-३ । वा. ४,२५ । काण्व. ४,३४ ।

देवैम्य एवैन२ शुन्धन्ति, नाध्वर्युः सोम२ विचिनुया,—द्यं यजमानो, न यजमानस्य पुरुषा नोपद्रष्टारो विचीयमानस्य स्युः,—यदुपद्रष्टारो विचीयमानस्य स्युः क्षुधं प्रजा नीयु,—र्वार्तियजमानं गृह्णीयाद्, क्षोधुकोऽध्वर्युः स्यात् ॥ शुन्ध सोममापक्व निरस्य ॥ इति ब्रूयाद्, ग्रसितं२ वा एतत् सोमस्य यदापक्वं, ग्रसितमेवं सोमस्य निष्खिदन्ति ये सोम२ विचिन्वन्ति, तस्मात् सोमविक्रयिणो बहु क्रीणन्तो बहु विन्दमानाः क्षोधुका, ग्रसितं२ ह्येते सोमस्य निष्खिदन्त्या,—स्मा३कोऽसीत्य,—भिस्मारं एवास्य,—पे शुक्रस्ते ग्रहा, इति शुक्रमेवास्य गृह्णात्य,—भि त्यं देवं२ सवितार,—मिति सवित्रप्रसूत एवं गृह्णात्य,—तिछन्दसा गृह्णाति, सर्वाणि वै छन्दा२स्यतिछन्दाः, सर्वैरेवैनं छन्दोभिर्गृह्णाति, वर्ष्म वा एषा छन्दसा२, वर्ष्मैन२ समानानां गमयति, पशुभिर्गृह्णाति, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य,—कैकामुत्सर्जं मिमीते, ऽयातयाम्न्यायातयाम्न्यैव मिमीत, एतावती वा आसामेकैकस्या वीर्यमाप्यते, तस्मादिमाः कामं प्रसारयति, कामं प्रन्युञ्चति, दश कृत्वो मिमीते, दशाक्षरा विराड्, विराजमेवाप्नोत्यं,—यो वैराजाः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, द्विर्गृह्णाति, द्वे हि सवने, यावान्वै सोमो गृहीतः स यजमानस्य, यमभ्यूहति स सदस्यानां, प्रजाभ्यस्त्वेत्य,—भ्यूहति, गोत्राद्गोत्राद्धि प्रसर्पन्त्यो,—पधयो वै सोमो, ऽपरिमितं जीवन२, यत्परिमितं गृह्णीयात् परिमितं जीवन२ स्या,—दथ यदभ्यूहत्यपरिमितस्यावरुद्ध्यै, यजमानो वै प्रजापतिः, प्रजा अ२शवो, यत्सोममुपनह्यति प्रजाना२ वा एतत् प्राणमुपनह्यति, यदाह, प्रजास्त्वानुप्राणन्त्विति, प्राणमासु दाधार, क्षौमेणोपनह्यत्यो,—षधे२ वै क्षौम,—मोषधयः सोमस्य योनिः, स्व एवैन२ योनौ दधाति, यज्ञो यदग्रे देवानामगच्छत२ रक्षा२स्यजिघा२स,—न्तसं देवता व्यवामर्पत्, सर्वदेवत्य२ वै वासो, यत्क्षौममुपनह्यति सर्वाभिर्वा एतद्देवताभिर्यज्ञाद्रक्षा२स्यपहन्त्यं,—थो सर्वाभिरेव देवताभिर्यज्ञ२ समर्धयति ॥ ४ ॥

४-६

चतुर्गृहीतमाज्यं भवति, चतुष्पादो वै पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, हिरण्यमवधाय जुहोत्या,—ग्नेर्वै घृत,—मग्निजं२ हिरण्य२, सतेनुरेव सतेजा हूयत, एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद् घृतं, तेजो हिरण्य२, यद्धिरण्यमवधाय जुहोत्यग्नेर्वा एतत् प्रियां त३न्वं तेजसा समर्धयत्यं,—थो रूपाण्येव ग्राहयति, पशवो वै घृत२, रेतो हिरण्य२, यद्धिरण्यमवधाय जुहोति पशुषु वा

[अभि त्यं देव९० । अथर्व. ७,१४,१; श्री. सू. अ. ४, सं ६,]
[५] मै. १,२,४ । तै. ६,१,९ । काठ. २४,३ । कपि. ३७,४ । वा. ४,१७—१९ । काण्व. ४,२३—२५ ।

एतद्रेतो दधाति, तस्मादनस्थकाद्रेतसोऽस्थन्वन्तः पशवः प्रजायन्ते, बद्धेन जुहोति, तस्मात् पशूनां गर्भा अप्रपादुकाः, प्रपादुकाः पशूनां गर्भाः स्युर्यदबद्धेन जुहुया,—ज्जूरसीति, यद्वाव जवत, इत्थमसा३दित्थमसा३दिति, तदस्या जूत्वं, धृता मनसेति, मनसा हि वाचं दाधार, जुष्टा विष्णवा इति, यज्ञायैवैनां जुष्टा२ विष्णवेऽक,—स्तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसव इति, वाचा हि प्रसूतं क्रियते, तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहेत्या,—ऽऽशिषमेवाशास्ते, शुक्रमसि, चन्द्रमसीत्यु,—द्धरति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, वाग्वै सोमक्रयणी, शास्ति वावैनामेतत्, तस्मात् प्रजाः सृष्टाः प्रजायन्ते, वत्सो जातः स्तनमिच्छति, स्तनं कुमार इच्छति, चिदसीति, यद्वाव चिकित्सत, इत्थमसा३दित्थमसा३दिति, तदस्याश्चित्त्वं, मनासीति, यद्धि मनसा मन्यते यन्मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति, धीरसीति, यद्वावध्यायती,—त्थमसा३दित्थमसा३दिति, तदस्या धीत्वं, दक्षिणासीति, यत्स्विद्वाचा दीयते तदस्या दाक्षिणात्वं२, यज्ञियासीति, वाग्घि यज्ञिया, क्षत्रियासीति, य२ हि वाग्जुषते स क्षत्रियो, ऽदितिरस्युभयतःशीर्ष्णीति, यत्स्विदादित्यः प्रायणीय आदित्य उदयनीयस्तदस्या उभयतःशीर्षत्वं२, सा नः सुप्राची सुप्रतीची भवेति, सुप्राची ३ह्येषा प्रायणीये सुप्रतीच्युदयनीये॥५॥

७

यत्कर्णगृहीतया क्रीणीयाद्वार्त्रघ्नी स्याद्, यच्च शृङ्गाभिहितया मनुष्यदेव३त्या, यत् पदि बद्धया पितृदेव३त्या, यदबद्धयायता स्याद्, यदाह, मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति, मित्रस्यैवैनां पाशेन यच्छति, पूषाध्वनः पात्विती,—य२ वै पूषे,—यमेवास्या अध्वान२ संभरती,—न्द्रायाध्यक्षायेती,—न्द्रो वै देवानामोजिष्ठ,—स्तमेवास्या अध्यक्षमक,—रनु त्वा माता मन्यतामनु पितेत्य,—नुमत एवैनं मात्रा पित्रा भ्रात्रा सख्या क्रीणाति, सा देवि देवमच्छेहीति, देवी ३ह्येषा, देवः सोमा, इन्द्राय सोममिती,—न्द्राय ३ह्येषा सोममच्छेति, रुद्रस्त्वावर्तयत्विति, रुद्रमेवास्याः पुरस्ताद्दधाति, स्वस्ति सोमसखा पुनरेहीति, प्रत्यक्षमेवालब्ध, रुद्राय वा एतत् पशूनपिदधाति, यदाह, रुद्रस्त्वावर्तयतु, यदाह, स्वस्ति सोमसखा पुनरेहीति, स्वस्तिमेवास्यै पुनरावृत्तायै दधाति, वाग्वै सोमक्रयणी, सा देवरूपाणि प्रविशति, यदाह, वस्व्यसि, रुद्रासीती,—दमसीदमसीति, वाग्वैनामेतदाह यद्यद्भवति, यद्वा एतत् किंच वदत्येता२ वा एतदाप्त्वावरुन्द्धे, षट् पदान्यनु निष्क्रामति, षड्वा अहानि वाग्विभज्यते, न वै

[६] मै. १,२,४ । तै. ६,१,७—८ । काठ. २४,३—४ । कपि. ३७,४—५ । वा. ४,१९—२२ । काण्व. ४,१६—१९ ।

षष्ठमहर्वागतिवदति, सर्वा वै षष्ठेऽहन्वागाप्यते, यावत्येव वाक्तामाप्नोति, दक्षिणेनार्धेन दक्षिणमर्धमनु निष्क्रामति, तस्माद्दक्षिणेन हस्तेनाक्रमयते, तस्माद्दक्षिणोऽर्ध आत्मनो वीर्यवत्तर,—स्तस्माद्दक्षिणमर्ध२ वया२स्यनु पर्यावर्तन्ते, सप्तमे पदे जुहोति, सप्त छन्दा२सि, छन्दा२सि वाग्, यावत्येव वाक्तामाहुत्याप्त्वावरुन्द्धे, सप्त छन्दा२सि, सप्त होत्राः, सप्त ग्राम्याः पशवः, पशू२स्तानेवावरुन्द्धे, बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णात्विति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणैवैना२ यच्छति, रुद्रो वसुभिराचिक्र इति, रुद्रमेवास्या वसुभिराक्रतारमकः, पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मीत्ये,—ष वै पृथिव्या मूर्धा यद्देवयजन,—मिडायास्पद इति, गौर्वा इडा, तस्या वा एतत् पदं, घृतवति स्वाहेति, स्वाहाकारेणैवैना२ यच्छति ॥ ६ ॥

८

हिरण्यं निधाय जुहोत्य,—ग्निमत्येव जुहोत्यायतनवत्य,—थोऽध्वर्युः स्यादयदनायतने जुहुयात्, पशवो वै घृतं, पशवः पद२, वज्र२ स्फ्यो, यत्स्फ्येन पदं परिलिखति वज्रेण वा एतद्यजमानाय पशून परिगृह्णाति, त्रिषाण्यानुपरिलिखति, सयोनीनेवास्मै पशून परिगृह्णाति, स्थाल्यां पद२ स२वपत्य,—स्यां वा एषाधिश्रियते, इय२ हि पशूना२ योनिः, स्व एवैनान योनौ दधाति, शोचन्ति वा एतत् पशवो योनेश्च्छिन्ना, यदुप उपसृजति शमयत्येवं, यजमानाय पदं प्रयच्छति, तदध्वर्युः पशुमेवति, यजमानाय हि पशून्त्संप्रादाद्, यदाह, तव रायो इति, तदध्वर्युः पशुभ्यामज्ञति, तेनाध्वर्युः पशुमान् गृहेषु पदं निदधाति, गृहेष्वेवास्य पशून दधाति, स्वर्गो वै लोक आहवनीयो, यदाहवनीय उपवपेदन्यलोकेऽस्य पशून दध्याद्, गार्हपत्या उपवपति, गार्हपत्य२ हि पशवोऽन्वपतिष्ठन्ते, पशुभिरेवैन२ समर्धं दधाति, पशवो वै पद,—मग्नी रुद्रो, यदग्निमत्युपवपेद्रुद्रायास्य पशून दध्याद्, यत्र शान्तं तदुपोप्यं पशूनामप्रदाहाय, यत्सोमक्रयण्या पत्नी२ संकशयन्ति मिथुनत्वाय, त्वष्टृमन्तस्त्वेति, त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति, संवमीति, संवाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते, सूर्यस्य चक्षुरारुहमित्ये,—ष वा अपरिपरः पन्था अरक्षस्यो येनामा आदित्य एत्य,—ष्ण्य वा एतदादित्यस्य पथ इति, वृणक्ति विन्दते वस्विति, वसो३ह्येष विन्दते यः सोमं क्रीणाति॥ सोमविक्रयिन्त्सोमं ते क्रीणानि महान्तं बहुं बहु शोभमानं, कल्यया ते क्रीणानि, कृष्ट्या ते क्रीणानि, शकेन ते क्रीणानि, पदा ते क्रीणानि ॥ इति, गौर्वा एतन्मुद्रिमानुमुदाचष्टे, ऽशो महयत्येवैना,—मेवो अक्षरशो वा एतद्गां मिमीते, सुवाहेनमार्हकारे वस्मारा इत्ये,—ते वै देवाना२ सोमरक्षय,

[७] मै. १,२,४—५। तै. ६,१,८-१०। काठ. २४,५-६। कपि. ३७,५,७। वा. ४,२७,२९,३२। काण्व. ४,३९,४१,४४।

एतेभ्यो वा अधि छन्दा२सि सोममाहर२,—स्तेभ्य एवैनानुदिशत्य,—थो यदेवात्र यज्ञस्योपश्लिष्टं तत् परिक्रीणीते, दशभिः क्रीणाति, दशाक्षरा विराट्, तथा वैराजः क्रियत, एकादशभिः क्रीणाति, दश वै पशोः प्राणा, आत्मैकादश,—स्तथा सर्वः क्रियते, धेन्वा क्रीणात्या,—शिरमेवास्य क्रीणात्य,—थो वाचमेव गृह्णाति, हिरण्येन क्रीणाति, शुक्रमेवास्य क्रीणात्य,—थो तेज एव गृह्णाति, वाससा क्रीणाति, सर्वदेवत्यमेवास्य क्रीणात्य,—जया क्रीणाति, तप एवास्य क्रीणाति, यत्र वा अदश्छन्दा२सि सोममाहर२स्तानि तमसा न प्राजान२,—स्ततो गाय३त्र्यजामादायोदपतत्, सा वा एभ्यः प्रारोचयत, ततो वै छन्दा२सि सोममाहर२,—स्तत् सोमं ना अजा,—मिति वावाजानडुहा क्रीणाति, वह्यैवास्य क्रीणात्यृ,—षभेण क्रीणाति, सैन्द्रमेव क्रीणाति, यदृषभेण क्रीणीयात् प्रजापतिना विक्रीणीते, वत्सतरेण साण्डेन क्रय्यस्यैन्द्रमहः क्रीणाति, न प्रजापतिना विक्रीणीते, मिथुनाभ्यां गोभ्यां क्रीणाति, मिथुनमेवास्य क्रीणाति ॥ ७ ॥

९-११

सोमो वा अमुत्रासीत्, तं देवा गायत्रीं प्राहिण्व,—न्नमु२ सोममाहरेति, सा वितत२ यज्ञमेवापश्यत, सैक्षत, यद्यज्ञस्यान्तरेण्याम्यात्मानमन्तरेष्यामीति, तस्यै वा एत२ सोमो जीवग्रहं प्राब्रवीत्, स्वजा असि, स्वंभूरसीति, सोमस्य वा एष जीवग्रहः, सोमस्य वा एतज्जीवग्रहं गृह्णीते, नाध्वर्युः संन्नार्तिमार्च्छति य एवं२ वेद, वरुणो वा एष एतर्हि वरुणदेव३त्यो यदेवनद्धो वरुण एनं भूत्वा प्रविशेद्, यदाह, मित्रो ना एहि सुमित्रधा इति, मित्रमेवैनमकः, शमयत्येवं,—न्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमित्यु,—न्द्रो वै यज्ञ, इन्द्रः सोमस्य योनिः, स्व एवैन२ योनौ दधाती,—न्द्रो वा एतमग्र आगतमूरू न्यगृह्णीत, ता२ वा एतदनुकृतिमूरा आसादयतेऽपोर्णुते, यथा श्रेयस्यायत्यपोर्णुत एवं तं,—दु३वन्तरिक्ष२ ३वीहीत्य,—न्तरिक्षदेव३त्यो वा एष एतर्हि, प्रच्युत इतोऽ[illegible]मुत्रादित्याः सदा आसीदेत्या,—दित्यो वै यज्ञो, ऽदितिः सोमस्य योनिः, स्व एवैन२ योनौ दधाति, वरुण२ वा एनमेतत्सन्तं मित्रमक,—स्तदेन२ स्वया देवतया व्यर्धयति यदाह ॥ १२

अस्तभ्नाद् द्यामृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड्विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ १३

[८] मै. १,२,६ । काठ. २४,७—८ । कपि. ३७,७—८ । वा. ४,२७,३०-३१,३३-३४,३६ । काण्व. ४,३८,४१-४३, ४५-४६,४८ । [अस्तभ्नाद् द्यामृषभो० । ऋ. ८,४२,१;३,३०,९, (प्र. पा.); तै. सं. १,२,८,१]

इति वरुणमेवैनमकः, स्वयैवैनं देवतया समर्धयति, वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेति वाससा पर्यौणह्यति, सर्वदेवत्यं वै वासः, सर्वाभिर्वा एतद्देवताभिर्यज्ञं क्रीतं परिश्रयति, धूरसि, ध्वर ध्वरन्तमित्याह रक्षसां ध्वरायै रक्षसामन्तरित्यै, वारुणमसि, वरुणस्त्वोत्तभ्नात्विति, वारुणं ह्येष एतर्हि वरुणदेवत्यं, मनसाछ यन्ति, महिमानमेवास्याछयन्त्यनसा वहन्ति, तस्मादनोवाह्यमोषधयः फलं पच्यन्ते, शीर्षाहार्यमोषधयः फलं पच्येरन्यत्सोमं क्रीतं शीर्ष्णा हरेयुस्तस्माद्विरा ओषधयः शीर्षाहार्यं फलं पच्यन्ते, शीर्ष्णा हि सोमं क्रीतं हरन्ति, प्रच्यवस्व भुवनस्पत इति, भूतानां ह्येष पतिर्विश्वान्यभि धामानीति, विश्वानि ह्येष धामान्यभि प्रच्यवते, मा त्वा परिपरिणो मा परिपन्थिनो मा त्वा वृका अघायवो विदन्निति, यत्र वा एनमद आह्रियमाणं सामिगन्धर्वा विश्वावसुरमुष्णात्ताद्दंशेभ्यो वावास्मा एतद्रक्षोभ्यो भीषां स्वस्तिमक, वरुणो वा एष क्रीतो यजमानस्य गृहमौक्षते, स ईश्वरोऽशान्तो यजमानं हिंसितोर्यदाह, नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसा इति, शमयत्येवं, शान्त एवौक्षते यजमानस्याहिंसायै, सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्या उक्षते, यदेकोल्मुकेन प्रतितिष्ठेत् पितृदेवत्योऽस्य यज्ञः स्यादग्निमुद्धत्समाधेयो, ऽग्निर्वै सर्वा देवताः, सर्वाभिर्वा एतद्देवताभिर्यज्ञमायन्तं प्रतितिष्ठत्यग्नीषोमौ वा एतौ संभवतो, यजमानं वा एता अभिसंभवेतां यजमानस्य वा पशूंस्तर्ह्य एष पशुर्धार्यते तमेव भागधेयमभिसंभवतो, देवता वा एतं पशुं धार्यमाणं नाभिप्राच्यवन्ताऽस्मिन् यज्ञ आशंसमाना३ग्नोऽयमितरस्तमग्नीषोमा उपप्राच्यवेतां, तस्मादेषोऽग्नीषोमीयो, ऽग्नीषोमाभ्यां वा एष मेधायाऽत्मानमालभते, यो दीक्षते स वा एतेनैव पशुनात्मानं निष्क्रीणीते, स्थूलः पीवा स्यादात्मनो निष्क्रीत्यै, तस्मादग्नीषोमीयस्य पशोर्नाशितव्यं, पुरुषो ह्येतेनात्मानं निष्क्रीणीते, तस्मादग्नीषोमीये संस्थिते यजमानस्य गृहेऽशितव्यं, तर्हि निष्क्रीतोऽनृणो, वार्त्रघ्नं वा एतद्, सोमो वै वृत्रः, पूर्वेद्युर्वा इन्द्रो वृत्रमहन्, पूर्वेद्युर्वावैनमेतत्सुत्वाथापरेद्युरभिषुणोति, वरुणपाशाभ्यां वा एषोऽभिधीयते यो दीक्षते, ऽहोरात्रे वरुणपाशौ, यर्हि वा सं स्थापयेदनुन्मुक्तो वरुणपाशाभ्यां स्यान्नक्तं संस्थाप्यो, वरुणपाशाभ्यामेवोन्मुच्यत आत्मनोऽहिंसायै ॥ ८ ॥ १४

[यनेषु व्यन्तरिक्षं० । ऋ. ५,८५,२; तै. सं. १,२,८,१]

युक्तोऽन्योऽनड्वान् भवति, विमुक्तोऽन्यो, ऽथातिथ्यं निर्वपति यज्ञस्य संतत्यै, पत्न्या हस्तान्निर्वपति, पत्नी वै पारिणह्यस्येशे, पत्न्यैव रातमनुमतं क्रियते, यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनं, मिथुनत्वाय वै पत्न्या हस्तान्निर्वपत्ये, य वै पत्न्या यज्ञस्यान्वारम्भो यद्यज्ञं करोत्यन्वारम्भाय वै पत्न्या हस्तान्निर्वपत्यग्नेस्तनूरसि, विष्णवे त्वेति, गायत्री तेन छन्दसा गृह्णाति, सोमस्य तनूरसि, विष्णवे त्वेति, त्रिष्टुभं तेना, ऽतिथेरातिथ्यमसि, विष्णवे त्वेति, जगतीं तेना, ऽग्नये त्वा रायस्पोषदे, विष्णवे त्वेत्यनुष्टुभं तेन, श्येनाय त्वा सोमभृते, विष्णवे त्वेति, गायत्री वै श्येनः सोमभृत्, तां वा एतत् पुनरालभतेऽयातयाम्नीं पाङ्क्तत्वाय, पाङ्क्तो यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालब्धे, तद्वै छन्दांस्यग्रहीत्, तैश्छन्दोभिर्गृहीतैर्यज्ञं गृह्णाति, यावन्तो वा अतिथिमन्वायन्त्यपि तेषां भाग, श्छन्दांसि वा एतममुतोऽन्वायन्ति, तेभ्य एष भागः क्रीयते, वरुणो वै यज्ञः क्रीतो, विष्णुः प्रततः, प्रततो वा एतर्हि यज्ञस्तस्माद्वैष्णवो नवकपालो भवति, त्रिवृतं वा एतद्यज्ञमुखे व्यायातयन्ति त्रिवृता प्रयन्ति, ते वै त्रयस्त्रिकपाला, स्त्रिकपालो वैष्णवो देवतया, विष्णुं वै देवा आनयन्वामनं कृत्वा, यावदयं त्रिर्विक्रमते तदस्माकमिति, स वा इदमेवाग्रे व्यक्रमता, ऽथेदमथादस्तस्मात् त्रिकपालो वैष्णवः, सोमस्य वा एतदातिथ्यं यदातिथ्यं, मथवा एतदग्नेरातिथ्यं यदग्ना अग्निं मन्थन्त्यथो यज्ञाय वा एतत् क्रीताय देवतां जनयन्त्यथो तेज एवास्मै जनयन्त्यथो उपसत्सु वावास्मा एतद्वीरं जनयन्त्या, ऽऽहास्य वीरो जायते, ये वै देवाः साध्या यज्ञमत्यमन्यन्त तेषां वा एतद्यदतिरिक्तं यज्ञे क्रियते, ऽतिरिक्तं वा एतद्यज्ञे क्रियते यद्वमा अग्निं जुहुति, यद्वपालादुपर्यूपस्य तदेवैनां स्पृशति, संस्थाप्या३म् संस्थाप्या३मिति मीमांसन्ते, यत्संस्थापयेद्यज्ञमुखे यज्ञं संस्थापये, दातिथ्यं वा उपसदां प्रयाजास्तान्नप्रमाशी, स्तस्मादिडान्तमेव कार्य, मातिथ्यं वा उपसदां प्रयाजा, स्तस्मात्ता अप्रयाजा, उपसदो वा आतिथ्यस्यानुयाजा, स्तस्मात्तास्तिस्र, स्त्रयो ह्यनुयाजा, शिरो वा आतिथ्यं, ग्रीवा उपसदो, ऽथैष इतरो यज्ञः संहितः, प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदश्ववारा, अस्य भ्रुवा इक्षुकाण्डे, यज्ञमुखं प्रजापति, र्यज्ञमुखादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते, ऽश्वो वै मेध्यो, यज्ञः प्रजापतिः, प्राजापत्योऽश्व, स्तस्मादाश्ववारः प्रस्तरः, कार्ष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै ॥ ९ ॥ १५

[९] मै. १,२,६। तै. ६,२,१। काठ. २४,८। कपि. ३८,१। वा. ५,१। काण्व. ५,१।

देवा अन्योन्यस्य श्रैष्ठ्ये तिष्ठमानाश्चतुर्धा व्युदक्रामन्नग्निर्वसुभिः, सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैस्तान्वा एतेन बृहस्पतिरयाजयत्, तेषामिन्द्रोऽभवत्, तद्य एतेन यजते भवति, ते वा अन्योन्यस्याभिद्रोहादबिभयुस्तेषां याः प्रियास्तन्व आसंस्ताः समवाद्यंस्ताः समवामृशन् ॥ यो नस्तदपाद्यो नोऽन्योन्यस्मै द्रुह्यादिति एव स निर्ऋच्छात्॥ इति, ते यदा समवामृशंस्ततो देवा अभवन् परासुरा, स्तद्य एवं विद्वांसः समवमृशन्ति भवन्त्यात्मना, परैषां भ्रातृव्या भवन्ति, यं कामयेत, ऋध्नुयादिति, तं प्रथममवमर्शयेद्, ऋध्नोति, यदि कामयेत, सर्वे सदृशाः स्युरिति, सर्वान्त्सहावमर्शयेत्, सर्वे ह सदृशा ऋध्नोति, यदि कामयेत, सर्वे सदृशाः स्युरिति, सर्वान्त्सहावमर्शयेत्, सर्वे ह सदृशा भवन्ति, ये वै ते समवामृशन्नपि वा इदानीं तेऽन्योन्यस्मै न द्रुह्यन्ति, तस्मात् तानूनप्त्रिणे न द्रोग्धवै, यद् द्रुह्येत् प्रियायै तन्वै द्रुह्येद्, ते वा अमुष्मिन्नादित्ये प्रियास्तन्वः संन्यदधत, तस्मादेष तेजिष्ठं तपति, तस्मात् सर्वदेवत्या हि सर्वे सौमा गृह्यन्ते, ऽथो अत्र वै देवानां प्रियास्तन्व, स्ता एवावरुन्द्ध, आपतये त्वा गृह्णामीत्यग्नये तेन वसुभ्यो गृह्णाति, परिपतये त्वेति, सोमाय तेन रुद्रेभ्यस्तनूनप्त्र इतीन्द्राय तेन मरुद्भ्यः, शक्मने शाक्वरायेति, वरुणाय तेनादित्येभ्य, एतेभ्यो वै तद्देवेभ्योऽग्रे गृह्यते, तेभ्य एवैनद्गृह्णाति, चतुर्गृह्णाति, चतुर्धा हि ते व्युदक्राम, न्नापतये त्वा गृह्णामीत्या, त्मानमेव तेन गृह्णाति, परिपतये त्वेति, प्रजां तेन, तनूनप्त्र इति, यज्ञं तेन, शक्मने शाक्वरायेति, पशूंस्तेन, यो वै देवान्त्साध्यान् वेद सिध्यति ह वा अस्मै, यत्र कामयेत, इदं मे सिध्येदिती, मे वै लोका देवाः साध्या, आत्मानमेव दीक्षया स्पृणोति, प्रजामवान्तरदीक्षया संवत्सरं सुलामायछते, कनीयो व्रतमुपैत्य, न्तरा ह्यात्मानं प्रजा, द्विव्रतेन भवितव्यं, द्वौ वा ऋतू अहश्च रात्रिश्च, यदकृत्वतः स्यात्पत्नीमन्तरियाद्, या ते अग्ने रुद्रिया तनूरिति व्रतं व्रतयत्ये, षा वा अस्मिन्नेतर्हि देवता, तां प्रीणाति, तस्यां हुतं व्रतयति, यदितोऽन्यथा व्रतयेद्रुद्र एनमभिमानुकः स्याद्, देवताभिर्वा एष सायुज्यं गच्छति, यो दीक्षते यच्च शीताभिर्मार्जयेत शमयेयुरथो स्यात्, अथो तेजो वै मदन्ती, यथेदमद्भिरग्निरुपसृष्ट एवं स्यादथ यत्तप्ताभिर्मार्जयते शान्त्या, १६–१८ [१५८१]
—स्तेज एवावरुन्द्धे ॥ १० ॥

॥ इत्युपरिकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥

[१०] मै. १,२,७। तै. ६,२,२। काठ. २४,९। कपि. ३८,२। वा. ५,५–६। का. ५,५–८।

अथाष्टमः प्रपाठकः।

असुराणां वा एषु लोकेषु पुर आस, न्नयस्मय्यस्मिंल्लोके, रजतान्तरिक्षे, हरिणी दिवि, ते देवाः संस्तम्भं संस्तम्भं पराजयन्ता, ऽनायतना ह्यासंस्त एताः प्रतिपुरोऽमिन्वत, हविर्धानं दिव्याग्नीध्रमन्तरिक्षे, सदः पृथिव्यां, तेऽब्रुवन्नुपसीदामो, पसदा वै महापुरं जयन्तीति, त उपासीदंस्तदुपसदामुपसत्त्वं, तानेभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त, त एभ्यो लोकेभ्यः प्रणुत्ता अहरश्रयन्त, यत्प्रातरुपसदमुपायन्नह्न एनांस्तेन प्राणुदन्त, तेऽह्नः प्रणुत्ता रात्रीमश्रयन्त, यत्सायमुपसदमुपायन्. रात्र्या एनांस्तेन प्राणुदन्त, ततो देवा अभवन् परासुरा, स्तद्य एवं विद्वानुपसदमुपैत्यहोरात्राभ्यामेव भ्रातृव्यमेभ्यो लोकेभ्यः प्रणुदते, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवत्य, थ वै तर्हि नेषुरासीत, ते देवा एतामिषुं समस्कुर्व, न्नग्निमनीकं, सोमं शल्यं विष्णुं कुल्मलं, तेऽब्रुवन्, क इमामिषुमस्यतीति, ते देवा अब्रुव, न्नयमेव रुद्र इति, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे, त्यब्रुवन् स सोऽब्रवी, देवमेकश्चनेषुमस्तामीमांसाता इति, तस्मादेतस्यैपुरस्तां न मीमांसितव्या ॥ सत्यं हम्॥ इत्येव ब्रूयात्, तां वै रुद्रो व्यसृज, देष हि देवानां क्रूरतम, स्तयेमाः पुरोऽभिन, दग्निना वै स तास्तेजसाभिनद्, तस्मादग्निः प्रथमं इज्यते, यदन्या देवताः पूर्वा यजेदवीर्यवतीः स्यु, रष्टौ कृत्वो जुह्वां गृह्णाति, चतुरुपभृति, पूर्वार्धो हीषोः समाहिततमः, सकृद्व पराङतिक्रामति, सकृद्ध्येषुः पराच्यपत, दतिक्रम्याश्रावयति, यज्ञस्याभिजित्यै, यदनतिक्रम्याश्रावयेदनभिजितोऽस्य यज्ञः स्यात्, स्रुवेणोपसदो जुहोति, पुरां वा एष जितानामन्वारोहं, एकामेकाहं जुहोत्ये, कामेकाहं, मेकां हि त एकाहमजयन्नेकामेकाहं, तिस्र उपसदो जुहोति, त्रयो वा इमे लोका, एषां लोकानामभिजित्या, अग्निना वै मुखेन देवा इमांल्लोकाननन्ववायन्नुपसद्भिरसुरान् पराणुदा, ऽग्निना वा एतन्मुखेन यजमान इमांल्लोकाननन्ववैत्युपसद्भिर्भ्रातृव्यं पराणुद, याः सायमनुवाक्यास्ताः प्रातर्याज्याः स्यु, र्याः प्रातरनुवाक्यास्ताः सायं याज्याः स्यु, स्तशोमयीवीर्यवतीर्भवन्ति ॥ १ ॥ १–३

अयः प्रथमायामवधाय जुहोति, रजतं मध्यमायां, हरितमुत्तमाया, मेतद्वै बृहस्पति-

[१] तै. ६,२,३। काठ. २४,१०;२५,१। कपि. ३८,३–४।
[२] मै. १,२,७। काठ. २५,१। कपि. ३८,४। वा. ५,७;११,३५। काण्व. ५,९–११;११,३५।

देवेभ्यः पूर्वमेनमकरोद्, यत्र पुरं पुष्पेषुस्तदेतामिषुंहुवाद, सुरो वा एषा यज्ञस्य, तस्माद्यत्किंच प्राचीनमग्नीषोमीयात्तदुपांशु चरन्त्य,—थ वा एतदग्नीषोमीयं प्रति वाचं विसृजन्ते, यज्ञमेवाप्त्वा वाचं विसृजन्ते, वृत्रं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्न,—न्स्रुची बाहू, तस्मात् स्रुची सौमीमाहुतिं नाश्नाते, अंशविषुची एतेन सोमं यदस्य स्रुचौ चाज्यं चान्तिकमभार्षु,—यदाहा,—ऽंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायतामिति, यदेवास्य मन्तः क्रूरमक्रंस्तदक्रूरमक,—स्तदाप्यायति, सर्वे ऋत्विजा आप्याययन्ति, सर्वे हि तान्तं भिषज्यन्ति, यन्ति वा एते ऽस्माल्लोकाद्ये सोममाप्याययितुमुद्यन्तु:, पराञ्चो हि यन्ती,—श्वराः प्रमेतो,—यदाहे,—ष्टा राया एष्टा वामानि प्रेषे भगायेति, तेनास्माल्लोकादेति, तेनास्मिँल्लोके धृता, अनयोर्वा एष गर्भ, आन्यामिव आवृश्चते यः सोमं हन्ति, यदाह, नमो दिवे नमः पृथिव्या इत्या,—भ्यामेव नमोऽक,—रातिथ्यं वा उपसदां प्रयाजा,—स्तानुनष्त्रमाशी,—स्तस्मान्न होतारं वृणीते नार्षेयम् ॥ सीद होतः ॥ इत्येवाह चतुर्व्रतस्त्रिस्र,—श्चत्वारिहीषोः पर्वाणि, त्रिव्रतस्तिस्र,—स्त्रिपन्धिहीषुः, मध्यं मुल्वः कुल्मुलं, द्विव्रतस्तिस्रो, द्विपन्धिहीषुः, शल्यश्च कुल्मुलं चै,—कव्रतस्तिस्र, एका ३थेदेषु,—रेषा वै परोवरीयसी दीक्षा कनीयो व्रतमुपैति, ज्यायांसं लोकमभिजयत्यं,—कव्रतस्तिस्रो, द्विव्रतस्तिस्र,—स्त्रिव्रतस्तिस्र,—श्चतुर्व्रतस्तिस्र, एषा वा उत्क्रामन्ती स्वर्गकामस्यो,—त्तरमुत्तरं श्वः श्वः श्रेयान्भवति य एवं वेद, यद् द्वादशाग्निष्टोमस्योपसदः स्युरशान्ता निर्दहेयु,—र्यद्द्वि३कोऽहीनस्य, यथा गरीयान् भारं उपजिहा निश्रिणात्येवं तद्, तस्मिन्न एवाग्निष्टोमस्योपसदः का३र्या, द्वादशाहीनस्य सवीर्यत्वाय ॥ २ ॥ ४—६

अम्बयो वै देवेभ्यो यज्ञ आसीद, तेनाविदु,—रिह वा स इहे, वेत्यं,—स्तिपर्श, इति त्वविदु,—स्तेन वै संसृष्टिमैछं,—स्तं प्रेषमैछं,—स्तमाविन्दं,—स्तं यथा स्पुर्पुपरि नात्यपतं,—स्तमिन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत्, तमचायत्, सोऽवे,—दचिकेद मेति, सोऽब्रवी३द, कोऽसा हन्त्य,—हं दुर्गे हन्तेत्यं,—थ कस्त्वमसीत्य,—हं दुर्गादाहर्तेति, सोऽब्रवीद्, दुर्गे वै हन्तावोचथा, अयं वराह आमुखं एकविंशत्याः पुरां पारेऽश्ममयीनां, तस्मिन्नसुराणां वसु वामं वन्दं,—स्तं जहीति, तस्येन्द्रो दर्भपुञ्जील्यां भ्यायत्य पुरस्तात्त्रिशां हृदयं प्रावृष,—देतद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ ७

[सीद होतः० । ऋ. ३,२९,८; तै. सं. ३,५,११,२,४,१,३,३]
[३] तै. ६,२,४ । काठ. २५,२ । कपि. ३८,५

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्ताऽत्रिःसप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ ८

इति सोऽब्रवीद्, दुर्गाद्वा आहर्तावोचथा, एतमाहरेति, तं वै विष्णुराहरद्, यज्ञो वै विष्णु,—र्यज्ञो वै तद्यज्ञमसुरेभ्योऽध्याहरद्, यज्ञेन वै तद्यज्ञं देवा असुराणामविन्दन्तै,—तद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ ९

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ १०

इति तद्वै देवा यज्ञमविन्दन्, यद्वै तद्यज्ञमविन्दंस्तद्देवयजनस्य देवयजनत्वं, यद्देवयजनमिच्छन्ति यज्ञमिच्छन्ति, यद्विन्दन्ति यज्ञं विन्दन्ति, यद्वाव यजमानो जोषयते तद्देवयजनं, यज्ञं वावैतद्यजमानो जोषयतेऽसुराणां वा इयमग्र आसीद्, यावन्निषद्य पराप्श्यंस्तद्देवानां, ते देवाः सलावृकीमब्रुवन्, यावदियं त्रिः समन्तं पर्येति तदस्माकमिति, सा वा इमां त्रिः समन्तं पर्यैत्तद्वै देवा इमामविन्दन्त, तद्वेद्या वेदित्वं, विष्णुं वै देवा आनयन्वामनं कृत्वा, यावदयं त्रिर्विक्रमते तदस्माकमिति, स वा इदमेवाग्रे व्यक्रमता,—ऽथेदमथाद,—स्तद्वै देवा इदं सर्वमविन्दन्त, तद्वेद्या वेदित्वं, सर्वा वा इयं पृथिवी वेदि,—रियं मेखल,—मिति ३त्वेवास्या यजमानः परिगृह्णीते, यावद्यावद्वै यजमानो वेद्याः कुरुते तावत्तावत्तत्पृथिव्या जयति, तस्मान्महती का३र्या ज्यायसी ज्यायसी, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, तद्यत्किंचासुराणां स्वमासीत् तद्देवा वेद्याविन्दन्त, तद्वेद्या वेदित्वं, तेषां यत् प्रियं वस्वासीत्तेनापाधाव,—न्ननेन चिन्मुच्यामहा इति, तद्देवा उत्तरवेद्याविन्दन्त, तदुत्तरं वै श्रेयो विदामहीति, तदुत्तरवेद्या उत्तरवेदित्वं, तद्य एवं विद्वान्वेदिं चोत्तरवेदिं च कुरुतेऽभिपूर्वमेव सपत्नस्य भ्रातृव्यस्य वसु वेदो वृञ्जानं एति ॥ ३ ॥ ११

षट्त्रिंशत् प्रक्रमाः प्राची, चतुर्विंशतिरग्रेण, त्रिंशज्जघनेन, तथा विराजा संमिता,—ऽथो छन्दांसि वै विराट्, छन्दांसि वावास्यैतद्यज्ञमुखे युनक्त्ये,—तद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ १२

[अतिविद्धा विथुरेणा०... चकार । ऋ. ८,९६,२ । विश्वेत्ता विष्णुराभरद्० । ऋ. ८,७७,१०; नि. ५,४]
[४] तै. ६,२,४,६ । काठ. २५,३ । कपि. ३८,६ ।

इन्द्राणी पत्या सुजितं जिगायोदंशेन पतिविद्ये बिभेद ।
त्रिंशद्यस्या जघनं योजनान्युपस्था इन्द्रं स्थविरं बिभर्ति ॥ १३

इति, यद्वाव प्राचीनप्रवणं तद्देवयजनं, प्राञ्चं हि तं श्रयानमविद,—न्नथ यत् प्राचीनप्रवणमुदीचीनापनतं तद्यजेत, यः कामयेता,—मयोर्लोकयोरभिजयामित्यु,—मयोर्वा एतल्लोकयो,—रुभयोरेव लोकयोरभिजोत्य,—थ यस्य देवयजनस्योत्तरादन्यद्देवयजनं तद्यजेत, यः कामयेता,—ऽभि मोत्तरो यज्ञो नमेदित्ये,—तद्वा उत्तरावत्याम् देवयजन,—मभ्येनमुत्तरो यज्ञो नमत्य,—थ यस्य देवयजनस्य मध्यतो बहुला ओषधयस्तत्पशुकामो यजेत, पशवो वा ओषधयः, पशुमान् भवति, यत्सम प्रतिष्ठितं तद्भूतश्रीर्यजेत, प्रतिष्ठितं वा एतत्, प्रतिष्ठित एष यो गतश्री,—स्तदेवैनं प्रतिष्ठापयति, पापो हि स, ततः प्रच्यवमानो, ऽथ यस्य देवयजनस्याप: पुरस्तात्तद्यजेत, यः कामयेता,—ऽभि मोत्तरो यज्ञो नमेदित्ये,—तद्वै पुरोहविर्नाम देवयजन,—मभ्येनमुत्तरो यज्ञो नमत्य,—थ यस्य देवयजनस्य पन्थाः पुरस्तादिरिणं वा कर्तो वा भ्रातृव्यवान् यजेतै,—तद्वा आर्तं देवयजनं सदेवं, यदि देवयजनाद्देवयजनमुच्छिंषेद्भ्रातृव्याय लोकमुच्छिंषे,—दथ यस्य देवयजनस्याहवनीयादन्या प्राचीरापो धावन्ति गार्हपत्यादन्याः प्रतीचीस्तद्यजेत यं तन्त्रे वा पात्रे वा मीमांसेर,—न्ननुषक्तो हि वा एष पाप्मना, ऽथैतं मीमांसन्त, एतद्वै व्यावृत्तं पाप्मना, पाप्मनैवैनं व्यावर्तयन्ति, यद्वै यज्ञः संतिष्ठते प्राचीनमस्य संमृद्धमेति प्रतीचीनं व्यृद्धं, पशवो वै यज्ञस्य संमृद्ध,—मापः खलु वै पशवो, यत् प्रत्यक्कूलमुपसम्भवेयापोऽयज्ञस्य व्यृद्धेन व्यृध्येता,—ऽथ यत् प्राङ्वमुपसम्भवैति यज्ञस्य वा एतत् संमृद्धेन संमृध्यते, यत्र प्सुवृतं तद्भ्रातृव्यवान् यजेत, यस्याहवनीयं च हविर्धानं चान्तरा स्याद्, यस्य हविर्धानं च सदश्चान्तरा स्याद्, यस्य सदश्च गार्हपत्यं चान्तरा स्याद्,—मतो वै विष्णुरिमांल्लोकानुदजयद, विष्णोरेवानुजितमन्विमांल्लोकानुज्जयति, प्रैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदते, ऽथ यस्य देवयजनस्य दक्षिणत उद्धतं तद्भ्रातृव्यवान् यजेतै,—तां वै दिशं देवा असुरान् प्रणुद्य स्वर्गं लोकमाय,—न्नसैभ्योऽमुमादित्यं पुरिधिं पर्यदधुरपुनरावाया,—तां वा एतद्दिशं यजमानो भ्रातृव्यं प्रणुद्य स्वर्गं लोकमेत्यं,—स्मा अमुमादित्यं पुरिधिं परिदधात्यपुनरावाय, स्थले यजेत यः कामयेतो,—भयेषां देवमनुष्याणां प्रकाशं गच्छेयमिति, प्रकाशो वै नामैतद्देवयजन,—मुभयेषां देवमनुष्याणां प्रकाशं गच्छत्य,—भिशस्यमानं याजयेत्, परोक्षं गुहा वने परोक्षं

पृष्ठान्यपेयुः, परोक्षं वा एष यमभिशंसन्ति, परोक्षमेवास्माद्दुहा पापीयां वाचं करोत्य,—थ यस्य होता प्रातरनुवाकमनुब्रुवन्नग्निमुपः सूर्यं तानि पश्येत्, तद् ब्रह्मवर्चसकामो यजेत, ब्रह्मवर्चसं वा अग्नि,—र्ब्रह्मवर्चसमापो, ब्रह्मवर्चसमसा आदित्यो ब्रह्मवर्चसमेव संदधाति, ब्रह्मवर्चसी भवत्य,—थ यस्य देवयजनस्यान्या अन्या मध्यतो बहुला ओषधयो, ऽतो वा अङ्गिरसः पशूनसृजन्त, तत् पशुकामो यजेता,—ऽथ यस्य देवयजनस्य मध्यत उद्धत,—मतो वा अङ्गिरसः स्वर्गं लोकमायं,—स्तत्स्वर्गकामो यजेत, निर्वस्केऽभिचरन् यजेत, यद्वैवैतं निर्णयत्येवं तं निर्णयति यमभिचरति, यत् कार्यमिव स्यात् तद्यजेत, यः कार्य इव स्या,—दात्मा वै देवयजनं, करोत्येवैनं, ये युवान आर्षेया ऋत्विजो वह्वयस्तद्देवयजनं, तस्मादाहु,—र्युवैवार्त्विजीना इत्य,—भिवीवं देवयजनं, तद्य एवं विद्वान् यत्रैव क्वचाग्निमाधाय यजते देवयजन एव यजते ॥ ४ ॥ १४

यद्वा अस्या यज्ञियं मेध्यं यत्सदेवं तदुत्क्रम्यातिष्ठदन्तरा देवासुरान्त्संयतान्त्सिंहीरूपमिव भूत्वा, तेऽविदु,—र्यतरान्वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति, तस्यां वा उभय ऐछन्त, सा नान्यतरांश्चनोपावर्तत, तां देवा अपाशासु,—रुप नः आवर्तस्वे,—ति साब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्साब्रवी,—न्मामेव पूर्वामग्नेर्व्याघारयात, स यत्कामो मां व्याघारयात्तमेव स काममश्नुवदिति, तां देवाः पूर्वामग्नेर्व्याघारयं,—स्ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तद्य एवं विद्वानेतां पूर्वामग्नेर्व्याघारयति भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, यद्वै तदुत्क्रम्यातिष्ठदन्तरा देवासुरान्त्संयत्तान्त्सिंहीरूपमिव भूत्वा, सा वा उत्तरवेदि,—स्तपनी मेऽसीति, तप्ता हि तं तामविन्दन्त, वित्तायनी मेऽसीति, वित्ता हि तं तामविन्दन्ता,—ऽवतान्मा नाथितमिति, नाथितां हि सा तानावद,—व्यताव्यथितमिति, व्यथितां हि सा तानावु,—देतद्देतद्वा एतया देवा असुराणामविन्दन्तै,—तदेतदेवैतया यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, उग्रे अङ्गिरो ३योऽस्यां पृथिव्यामध्यसीति, य एवैषु त्रिषु लोकेष्वग्नयस्तानेवावरुन्द्धे, विदेरग्ने नमो नाम यत्त इति, नमो हि नाम ३सोऽग्निरासीदानुदग्ने खेयु,—मेतावती वा अस्याः पृथिव्यां जीवं यज्ञियं, तदेवावरुन्द्धे, सिंहीरसि, महिषीरसीति, सिंहीरूप-

[५] मै. १,१,८ । तै. ६,२,७—८ । काठ. २५,६ । कपि. ३९,१—४ । वा. ५,९—१२;३२,३० । कण्व. ५, १३—१८;३२,३० ।

मिव हि तन्मुष्टिपीरूपमिव भूत्वातिष्ठद्, देवेभ्यः शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्वेति, देवेभ्य एवैना४ शुन्धन्ति, देवेभ्यः शुम्भन्ति, निःसारयति, यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरमक्र४स्तदक्रूरमक्,—स्तन्निःसारयती,—न्द्रघोषास्त्वा पुरस्ताद्वसुभिः पान्त्वित्ये,—तदेव३त्या वा इमा दिशो, यथादेवतमेवैनां प्रौक्षी,—देतो वै देवा असुरान्मनसा विनुद्य स्वर्गं लोकमाय४,—स्त एता देवता अन्ततोऽदधतासुराणामनन्वग्भावाया,—ऽतो वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यं मनसा विनुद्य स्वर्गं लोकमेति, स एता देवता अन्ततो धत्ते भ्रातृव्यस्यानन्वग्भावाय, तेऽकामयन्त, सपत्नं भ्रातृव्य४ सहेमहीति, सि४हीरसि सपत्नसाही स्वाहेति, तमेव तेन काममाश्नुवत, सपत्नं भ्रातृव्य४ साद्वा तेऽकामयन्त, पशवो नः स्युरिति, सि४हीरसि रायस्पोषवनिः स्वाहेति, तमेव तेन काममाश्नुवत, सपत्नं भ्रातृव्य४ साद्वा पशून् भित्त्वा तेऽकामयन्त, प्रजा नः स्यादिति, सि४हीरसि सुप्रजावनिः स्वाहेति, तमेव तेन काममाश्नुवत, सि४हीरस्यादित्यवनिः सजातवनिः स्वाहेत्या,—दित्याभिर्हि सा प्रजाभिः सह, तेऽकामयन्त, देवा नो यज्ञ४ विंद्युरिति, सि४हीरस्या,—वह देवान् देवायते यजमानाय स्वाहेति, तमेव तेन काममाश्नुवत, भूतेभ्यस्त्वे,—त्युद्दिशति, देवा ३ह्येते भूता, यत्र वा अ३दोऽग्निर्होत्रादिषापाक्रामत्स सर्वेषु भूतेष्ववसद्, यो पशुष्ववसत्तामनाच्छिन्नस्तुकस्यान्तराशृङ्गमवसद्, या४ वनस्पतिषु तां पूतुद्रौ, यामोषधीषु ता४ सुगन्धितेजने, यत्संभारान्त्संभरति यदेवात्राग्नेर्यक्तं तत्संभरति, यानि वा अ३दोऽग्निरस्थान्यधूनुत स पूतुद्रुरभवद्, यन्मा४सं तद्गुग्गुलु, यत् पूयितमुपश्लिष्ट४ स सुगन्धितेजनो, यदेते संभारा भवन्ति यदेवात्राग्नेर्यक्तं तस्यावरुद्ध्यै, विश्वायुरसि, पृथिवीं दृ४हेत्ये,—षा४ ३ह्येते लोकाना४ विधृत्यै परिधीयन्ते, ध्रुवक्षितिरस्य,—न्तरिक्षं दृ४हेत्य,—न्तरिक्ष४ हि यज्ञो, ऽच्युतक्षिदसि, दिवं दृ४हेति, दिवमेवैनमजीगम,—दग्नेर्भस्मास्य,—ग्नेः पुरीषमसीत्य,—ग्ने३र्होतद्भस्मा,—ऽग्नेः पुरीषं, देवपात्र४ वा उत्तरवेदिं, देवेभ्यो देवपात्रं प्रोच्य४, वैभ्राजा देवा, यदाह, विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्विति, देवेभ्यो वा एतद्देवपात्रं प्राह, प्र वसीयसः पात्रमाप्नोति, ब्राह्मणं तु पात्रे न मीमा४सेत यः पात्रिय इव स्याद् ॥ ५ ॥ १५

एतावती वा इयं पृथिवी यावती वेदि,—रपरिमिताद्वा एतद्भ्रातृव्यं निर्भज्य यजमानाय परिगृह्णात्य,—क्ष४ वा अमेध्यं,—मापो हवि,—र्यत्प्रोक्षति मेध्यमेवैनत्करोत्य,—क्ष४ वा अमेध्य४,

[विभ्राड् बृहत्पिबतु० ... । ऋ. १०,१७०,१; सा. ६२८,१४५३]
[६] काठ. २५,७ । कपि. ३९,२,५ । वा. २,२;९,२०,१८,१८,२२,३२ । काण्व. २,३;१०,२७;१९,४०;२४.४५ । मै० ३५

यद्बर्हिः स्तृणाति मेध्यामेवैनां करोत्ये,—तावती वा इयं पृथिवी यावती वेदिः, प्रजा बर्हि,—र्यद्बर्हिः स्तृणात्यस्या४ वा एतत् प्रजाः प्रतिष्ठापयति, यजमानो वै प्रस्तरः, प्रजा बर्हि,—र्यत्प्रस्तरमुत्तरं बर्हिषः सादयति यजमान४ वा एतदुपरिष्टादासां प्रजानां दधात्यं,—थ यत्तृणे अन्तर्दधाति तेन यजमानो यजमानेन व्यावर्तते, बहुलं बर्हिः स्तृणात्य,—क्षोधुका अस्य पशवो भवन्ति, प्राचीनं बर्हिः स्तृणाति, प्राङ् हि यज्ञो, यत्प्रतीचीन४ स्तृणीयात् प्रत्याढाज्यास्य राष्ट्र४ घातुक४ स्याद्, देवेषुवै वेदि,—र्यत्र वै देवेष्वा संनतया कामयते तद्धन्ति, यद्वेदिं कल्पयति देवेषु४ वा एतत्संनमति, तया संनतया यत्र यजमानः कामयते तद्धन्ति, त्रयो वै पूर्वेऽग्नयः प्राधन्वन् हव्यं देवेभ्यो वहन्तो, वषट्कारः प्रावृश्च,—दथ ३योऽयमिदानी४ स भीषापाद्रवदीदंगु स आरिष्यतीति, तं देवा अपाशासु,—रुप ना आवर्तस्वेति, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवीत्, त्रयो वै मे पूर्वे भ्रातरः प्राधन्वन् हव्यं देवेभ्यो वहन्तो, वषट्कारः प्रावृश्चत्तेषां मा३गोऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवीद्, यदेव किंचाहुतं बहिष्परिधि स्कन्देत्तदेव तेषां भागधेयमसदिति, तेषा४ वा एतद्भागधेय,—मस्थन्वन्तो हि वै त आस,—न्नथ ते प्राधन्व,—न्त्सोऽब्रवी,—दस्थानि नु धविष्ये, ऽथोपावर्त्स्यामीति, तं वा अन्वाय४,—स्ते समन्तं पर्यविशन् यज्ञस्य गोपीथाया,—ऽयं४ वाव यज्ञायोपधीयते, ऽयं४ यजमानाया,—ऽयं भ्रातृव्याये,—मौ प्रतरं करोती,—ममपतर४, यज्ञेन वा एतद्यजमानं प्रतरं करोति, यज्ञेनास्य भ्रातृव्यमपतरं करोति, संधिं प्रतिजुहोति, न ३ह्यग्निमाहुतिस्तरति, मुखत एवैनान् प्रीणात्यं,—थो सुतीर्थेन वा एतदाहुतीस्तारयत्य,—यं४ वाव भूपतिं,—रयं भुवनपतिं,—रयं भूतानां पतिं,—रथ ३योऽयमिदानी४ स भूति,—र्यदाहुतं बहिष्परिधि स्कन्देत्तदभिमन्त्रयेत॥ भूपतये स्वाहा, भुवनपतये स्वाहा, भूतानां पतये स्वाहा॥ इति भागधेय४ वावैषामेतद्, प्रीणात्येवैना,—नथो हविषा वा एतत् स्कन्नेन द्वितीयामाशिषमवरुन्द्ध, एतद्ध स्म वा आहारुणं औपवेशिः, किमु स यज्ञेन यजेत यो हविषा स्कन्नेन द्वितीयामाशिषमवरुन्धं न विद्यादिति, तद् द्वितीयामेवैतेनाशिषमवरुन्द्धे ॥ ६ ॥ १६-१८

ये पुरा ग्रन्थयो भवन्ति तान् विस्र४सयन्ति मानुषस्य व्यावृत्त्यै, प्रणेनिजति, यदेवैनयो-

[७] मै. १,२,९। तै. ६,२,९। काठ. २५,८। कपि. ४०,१। वा. ५,१४१८-२१;११,४;३७,१;५,। काण्व. ५,१९,२४-२७ १२,४;३७,१ ।

रभिनिष्पण४ शमलममेध्यं तच्च शुन्धन्ति, युञ्जते मन उत युञ्जते धियो, इति जुहोति, युक्त्या एवं, सावित्र्या जुहोति, सवितृप्रसूत एवं प्रवर्तेते, हविर्वै हविर्धाने, यदुपानक्ति युक्त्या एवं, सावित्र्या जुहोति, सवितृप्रसूते एवं प्रवर्तेते, हविर्वै हविर्धाने, यदुपानक्ति हविर्भूत एवं प्रवर्तेते, अथो अभिवृत्ते एवं पत्न्युपानक्ति, यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनं, मिथुनत्वाय वै पत्न्युपानक्त्ये,—ष वै पत्न्या यज्ञस्यान्वारम्भो यद्यज्ञे करोत्य,—न्वारम्भाय वै पत्न्युपानक्ति, प्राचीनमुपानक्ति, प्राङ् हि यज्ञ,—स्त्रिरन्यत्त्रिरन्यदुपानक्त्यं,—परिमित४ हि मनुष्या उपाञ्जन्ति, दक्षिणत उपानक्त्यु,—दीची ३ह्येते मनुष्यलोकमुपावर्तेते, निर्ऋतिगृहीतो वा एष उभयतः संदष्टः शुष्को, यदुपानक्ति शमयत्येवं, शुष्को वा एष दुर्योग्यजमानस्य गृहमावदति, स ईश्वरोऽशान्तो यजमान४ हि४सितो,—स्तदनुगृह्णन्तो यन्ति, यद्युत्क्ष्वेदेत्, सुवागावद देव दुर्यानिति वदेच्च, शमयत्येवा,—ऽथोऽशमयित्वैवाशिषमाशास्ते, हविर्वै हविर्धाने, स्तीर्णं वै बर्हिर्हविरासादयन्ति, तस्मात् प्रस्तर४ स्तीर्णं प्रवर्तयन्ति, हविर्वै हविर्धाने, अनूच्यमानासु वै सामिधेनीषु हविरासादयन्ति, तस्मात् प्रवर्त्यमानयोर्होतान्वाहे,—मे वा एते, इमे वा एतत् प्रवर्तयन्ति यद्धविर्धाने, तस्मात् पूर्वस्या जनताया अपरा जनता क्षेत्रमभ्यारोहुका, ते यर्हि प्रवर्तयेयुस्तर्हि होतानुब्रुवन्मनसा पदा तां जनतां प्रतिनुदे,—दपर्जन्यं भयं नुदेति, विड्वा एषा, विश४ वा एतत् प्रतिनुदते, ऽनभ्यवचारुकास्य विट् क्षेत्रं भवति, नीयान४ वै रक्षा४सि यज्ञमवयन्ति, यद्वर्त्मनि जुहोति रक्षसामपहत्यै, वैष्णव्या जुहोति, विष्णुर्वै यज्ञो, विष्णुनैव यज्ञेन यज्ञाद्रक्षा४स्यपहन्ति, यद्गायत्र्या जुहोतीमां तेनाक्रमते, यत्त्रिष्टुभान्तरिक्षं तेना,—ऽथ यदाहवनीयं गच्छतः स्वर्गं तेन लोकं, त्रीन् प्रक्रमान् प्रतिविक्रमते, त्रयो वा इमे लोका, इमानेव लोकान् यजमानायोच्छि४षति, वैष्णवमसि, विष्णुस्त्वोत्तभ्नात्विति, वैष्णव४ हि हविर्धानं, दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या, इति दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीमभिहन्ति, मुखत एवं यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे, यमध्वर्युः प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नाति तं प्रथमं४ विस्र४सयति, यदुन्यं पूर्व४ विस्र४सयेदमेहेन प्रमीयेत, विष्णोर्नु कं४ वीर्याणि प्रवोचमित्युत्तरस्य हविर्धानस्य मेथीमभिहन्ति वैष्णव्या, वैष्णव४ हि हविर्धान४, स्वयैव देवतया, यो अस्कभायदुत्तर४ सधस्थमित्य,—दो वा उत्तर४ सधस्थ,—ममुष्मिन्नेव हविर्धान४ संमिनोति॥ १९

[युञ्जते मन उत० ... । ऋ. ५,८१,१; तै. सं. १,२,१३,१ ४,१,१,१, तै. आ. ४,२,१ । दिवो (वा) विष्ण उत० ... । अथर्व. ७,२६,८ । विष्णोर्नु कं वीर्याणि० ... । ऋ. १,१५४,१; अथर्व. ७,२६,१; तै. सं. १,२,१३,२।]

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥ २०

इति य एवं देवा यज्ञियास्तान् हविर्धाना आसादयति, ता४ श्वो मू३तेऽभियजते, दण्डो वा एतदौपरो वषट्कारेण निरहन्, यच्छदिरभिनिदधात्यपिहित्या अच्छिद्रत्वाय, विष्णोः पृष्ठमसीत्य,—दं एवं, विष्णो रराटमसीत्य,—दं एवं, विष्णोः श्निप्त्रे स्था, इतीमे एवं, मुखतो वा एतत्, स्वया देवतया शिरो यज्ञस्य संभरति, विष्णोः स्यूरसीति, तस्मादिदं४ शिरः पोढाविष्कृतं, प्र तद्विष्णुः स्तवते वी३र्येणे,—ति प्राङुत्क्रम्य वदत्यं,—तो वै विष्णुरिमांल्लोकानुदजयद्, विष्णोरेवोज्जितिमन्विमांल्लोकानुज्जयति, एभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदते ॥

॥ ७ ॥ २१

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति, सवितृप्रसूत एवैनामादत्ते, ऽश्विनोर्बाहुभ्यामित्य,—श्विनौ वै देवानामध्वर्यू, पूष्णो हस्ताभ्यामिति, देवताभिरेवा,—ऽभ्रिरसि, नारिरसीति, क्रूरमिव वा एतद्यदभ्रिः, शमयत्येवे,—दमह४ रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामी,—त्याह रक्षसां ध्वरायै रक्षसामन्तरित्या, इदमह४ सोमि समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामीति, समानो वा ह्यसमानो वारातीयति सर्वमेवैतया पर्यापद्, प्राणा वा उपरवाः, शिरो हविर्धान४, शीर्षन्वा इमे प्राणा,—स्तस्माद्धविर्धाने, ऽन्तर्वा इमे शीर्षन् प्राणा,—स्तस्मादुन्त,—श्चत्वारो वा इमे शीर्षन् प्राणा,—स्तस्माच्चत्वारः संतृणाः परः, संतृणा हि परः प्राणा, विधृता उपरिष्टाद्, विधृता ३हीमे उपरिष्टात् प्राणाः, पूर्वार्धे वा इमे मुखस्य प्राणा, एतत् खलु वै हविर्धानस्य पूर्वार्ध४ यद्दक्षिण४ हविर्धानं, तस्माद्दक्षिणे हविर्धाने, बृहन्नसि बृहद्ग्रावा इति, देवा ३ह्येव बृहद्, बृहतीमिन्द्राय वाच४ वदेत्यै,—न्द्रो हि यज्ञो, रक्षोहण४ वलगहनमित्या,—ह रक्षसां ध्वरायै रक्षसामन्तरित्यै, वैष्णवीमिति, विष्णुर्हि यज्ञो, ऽसुरा वा एतान् वलगान् देवेभ्यः प्राणेषु न्यखन४,—स्तान् बाहुमात्रेऽन्वविन्द४,—स्तस्माद्बाहुमात्रे खेय४, यद्वाव कृत्या यच्च शफ४ यदभिचरितं तदेवैतदुद्वपति, प्राणा वा उपरवा, यदव-

[आ वामुपस्थमद्रुहा० ... पीतये। ऋ. १,४१.२१; नि. ९.३७ । प्र तद्विष्णुः स्तवते० ... विभ्वा । ऋ. १,१५४,२; अथर्व. ७,२६,२—३; तै. ब्रा. २,४,३,४; नि. १,२०]
[८] मै. १,२,१० । तै. ६,२,१०—११ । काठ. २५,९ । कपि. ४०,२ । वा. ५,२२—२३,२५—२८;६,१,३ । काण्व. ५,२८- २९.३१—३६;६,१,४ । [देवस्य त्वा सवितु० । अथर्व. १९.५१,२]

सिञ्चति तस्मादिम उदन्वन्तः प्राणाः, प्राणा वा उपरवा, यदवस्तृणाति तस्मादिमे लोमशाः प्राणा, अथ यदवसिञ्चत्यव च स्तृणाति मस्तिष्को वा एष क्रियते, हनू अधिषवणे, शिरो हविर्धानं३, शीर्षन्वा इमे हनू, तस्मादधिषवणे, ऽन्तर्वा इमे शीर्षन् हनू, तस्मादन्तरिमे वा एते यत्संतृन्द्या,—दिमे एव संतृन्द्यात्, तत्संपाद एव, व्यङ्गुलमन्तरं कार्यं, व्यङ्गुलं३ ह्यीदं,—मन्तरा वै नाकेव, शिरो हविर्धानं, पृष्ठमाग्नीध्र,—मुदर३ सदः, प्राङ् हि यज्ञः संहितो, हनू अधिषवणे, जिह्वाधिषवणं, ग्रावाणो दन्ता, मुखतो वा एतत् प्रजापतेः सोमं पिबन्ती,—न्द्रो वै वृत्रमह,—न्स इमां प्राविशत्, तं देवताः प्रैषमैछ३,—स्तंनाविदु३,—स्ते भुवान्युपारवन्त, यो नोऽधिपतिरभूत्तं विन्दामा इति, तदुपरवाणामुपरवत्वं३, यत्त-दुपारवन्त तच्चतुर्धीतस्मादुर्वैछ,—न्नेकधा पुरोऽन्वविन्द३,—स्तस्माच्चतुर्धा त्रिस्ता,—देकधा पुरो, यदुपरवानन्वमृशती,—न्द्रियस्यावरुद्ध्यै ॥ ८ ॥ २२

पृथिव्यै त्वा, ऽन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वे,—ति प्रोक्षत्ये,—षां३ ह्येषां लोकाना३ विधृत्यै मीयते, त्रिः प्रोक्षति, त्रिषत्या हि देवा, अथो त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैनां लोकेभ्यः प्रोक्षी,—र्द्द३ वै यवा, ऊर्गुदुम्बरो, यवमतीभिः प्रोक्षत्यूर्जो वा एतद्रूप३ समर्धयत्यू,—र्ध३ वा अमेध्य,—मापो हवि,—र्यदवसिञ्चति मेध्यमेवैनत् करोत्यू,—र्ध३ वा अमेध्यं३, यदवस्तृणाति मेध्यमेवैनद् करोति, पितृदेवत्य३ वै निखातममेध्यमन्यदेवत्य,—मस्यां खलु वा इमा उत्तमार्धं ओषधयो, यदवस्तृणात्यस्या एवैनामुत्तमार्धे मिनोत्य,—निखातैवा-मू,—र्द्द३ वै यवा, ऊर्गुदुम्बरो, यवमवास्यत्यन्नं वा एतदूर्जं दधाति, न ह्यन्नमृत ऊर्जो धिनोति, नो धुर्गतेऽध्यादिनोति, नितानस्त्वा मारुतो निहन्त्विति, मनो वै नितानः, प्राणा मारुता, मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणेति, मित्रमेवैनां दाधार, वरुणः कल्पयति, विधृत्यै च खलु वा एषा प्रजानां क्लृप्त्यै च मीयते, मित्रावरुणौ वै देवानां धर्मधारयौ, देव३ वा एतद्धर्मदाधरता३, यदौदुम्बरी, ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि पर्यूहामीत्या,—शीरेवैषा, ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहेत्या,—शिष एवैष परिग्रहो, घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेति, घृतेनैव द्यावापृथिवी व्युनत्त्यु,—दर३ वै सदो, ऊर्गुदुम्बरो, यदौदुम्बर्यू,—र्ज३ वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते प्रजानां च, प्रजापतेर्वा एतदुदर३ यत्सदः, प्राजापत्य उद्गाता, तस्मादुद्गातान्वारभते,

[९] मै. १,२,११ । तै. ६,२,११ । काठ. २५,१० । कपि. ४०,३ । वा. ५,२६,२८;६,१,१६ । कण्व. ५,३३,३६;१,२२ ।

यजमानो वा, औदुम्बरी वर्षिष्ठा का३र्या, वर्ष्मन३ समानानां गमयति, विश्वजनस्य छायासी,—ति छदिरभिनिदधाति, गोत्राद्गोत्राद्धि प्रसर्पन्त्यु,—दर३ वै सदो, यदन्येनान्येन संमिनोति तस्मादुदरमन्येनान् येनामेन संतत, उदर३ वै सदो, यदनूचीनं मिनुयात्पराचीनं जग्धमतीया,—दथ यत्तिरश्चीनं मिनोति तस्माज्जग्ध३, सर्वाण्यङ्गान्यनुवेति, प्रजा वा एतत् समीचीनं मिनोति, समीचीरेनं प्रजा अभिसमावर्तते, स३यात इव स भवति, समान३ सांकाशिनं कार्य३, समाना ३हीमे प्राणा, यं द्विष्यात्तस्याक्षणया मिनुयात्, प्राणानस्य मोहयति, प्रमायुको भवति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या इति, नीचैः सदो मिनुयाद्, वृष्टिमेव नियच्छति, यदि कामयेत, न वर्षेत् पर्जन्या इत्यु,—च्चैः सदो मिनुयाद्, वृष्टिमेवोपाग्रही,—न्नवच्छदिरग्निष्टोमे स्यात्, तेजसा त्रिवृता संमितं, पञ्चदशच्छदिरुक्थ्ये, पञ्चदशेन वज्रेण संमित३, सप्तदशच्छदिरतिरात्रे, सप्तदशो वै प्रजापतिः, प्राजापत्या रात्रिरानुष्टुभी, यज्ञक्रतूनामेवैषा व्यावृत्तिः, प्राचीनव३श३ हविर्धानं मिनोत्यू,—र्ध्वा हि द्यौः, प्राचीनव३शमाग्नीध्र,—मूर्ध्व३ ३ह्यन्तरिक्षं, तिरश्चीनव३श३ सद,—स्तिरश्ची ३हीय३, यजुषा हविर्धानं मिनोति, निरुक्ता हि द्यौ,—र्यजुषा सदो, निरुक्ता ३हीय,—मयजुषाग्नीध्र,—मनिरुक्तमिव ३ह्यन्तरिक्ष,—मर्धमाग्नीध्रस्यान्तर्वेदि मिनोत्य,—र्धं बहिर्वे३द्य,—र्ध३ ३ह्यन्तरिक्षस्यास्मिल्लो३के, ऽर्धममुष्मिन् ॥९॥ २३

सुवाङ्नभ्राडङ्घारे बम्भारा इत्ये,—ते वै देवाना३ सोमरक्षय, एतेभ्यो वा अधि छन्दा३सि सोममाहर३,—स्ते सोमपीथेन व्यार्ध्यत, त एतानि द्वितीयानि नामान्यधत्तमङ्गलेछाये, सोमपीथो ना उपनमादिति, तस्मादेते द्विनामान,—स्ते वा अन्वाय३,—स्ते न प्राप्नुव३,—स्तस्मादेतेऽतिहाय वषट् क्रियन्ते, न हि प्राप्नुव३,—स्तेषा३ वा एष लोको यावदुभि न्युप्यते, तयो ऽविद्वानाक्रामत्यार्तिमार्छेत्य,—थ य एव३ विद्वानाक्रामति न सद३स्यामार्तिमार्छति, तेषा३ वा एष भागो यद्व्याघारयन्ते, त एवास्मै तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, यज्ञमुख३ वै पवमानो, यत्पवमाने स्तु३ते३ऽग्नयो विह्रियन्ते यज्ञमुखादेवाधिविह्रियन्ते, जम्भो वै नामासुर आसीत्, स यज्ञमगिरत्, स आग्नीध्रं न प्राप्नोत्, तमाग्नीध्रात्पुनर्व्युरुज,—देतद्वै जीवं, तस्मादाग्नीध्राद्विह्रियन्ते, दक्षिणतो वै देवानसुरा यज्ञमजय३,—स्त उदञ्चा आग्नीध्र३ समातिष्ठ३,—स्तमाग्नीध्रात् पुनरभ्यजय,—न्नेतद्वा अनभिजितं, तस्मादाग्नीध्राद्विह्रियन्त, एतत् प्रति वै देवानसुरा यज्ञ-

[१०] तै. ६,३,१ । काठ. २६,१ । कपि. ४०,४ । वा. ५,३१ । कण्व. ५,४० ।

मजय३,—स्त आग्नीध्रादधि बहिष्पवमानेन यज्ञमभिजित्याग्नीनाधाय बर्हिरस्तृणत, पराजिज्ञाना वा एतत् सर्पन्ति यद्बहिष्पवमान३ स्तोष्यन्तः सर्पन्ति, यद्बहिष्पवमाने स्तुत आह ॥ अग्नीदग्नीन्विहर, बर्हिः स्तृणाति ॥ इत्याग्नीध्राद्वा एतदधि बहिष्पवमानेन यज्ञमभिजित्याग्नीनाधाय बर्हिः स्तृणते, ऽत्र वा एतर्हि यज्ञो यत्रास्तुत३ स्तोत्र३, यत्रैव यज्ञस्तदाभिपर्यावृत्य जुहोति, शुक्रवती वै पूर्वे सवने, अशुक्र तृतीय३ सवन३, यज्ज्योतिष्मतीस्तृतीयसवने व्याघारयन्ति तेन तृतीयसवन३ शुक्रवत्, स३वत्सरो वा अग्निष्टोम,—स्तस्य वा एतास्त३न्वो यद्धिष्ण्या,—स्ता वा अस्यैतत्समुद्दर्पयित्वा ज्योतिष्मतीः कृत्वायाग्निष्टोमेन स्तुवते, स३वत्सरो वा अग्निष्टोमो, द्वादश मासाः स३वत्सरो, यत् प्राचीराहुतयो हूयन्ते, प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्याघार्यन्ते स३वत्सरस्य विधृत्या, उभयतो वै देवानसुराः पर्यत्ता आसन् पुरस्तादन्ये, पश्चादन्ये, यद् प्राचीराहुतयो हूयन्ते, ये पुरस्तादास३स्ता३स्तेनापानुदन्त, यत् प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्याघार्यन्ते, ये पश्चादास३स्ता३स्तेनापानुदन्त, तद्भ्रातृव्यस्य वा एष विनोदो, ऽध्वर्युणा वै यज्ञो विधृत, इदमिव वा एतद्यज्ञस्य यद्धिष्ण्या, यदध्वर्युः प्रत्यङ् धिष्ण्यानतीयात् प्राणान्संकर्षेत, प्रमायुकः स्याद्, यदुतीयादग्रपर्यन्तीयादैन्द्रीमनुब्रूया,—दैन्द्र३ हि सदः, स्वयैवैनद्देवतयोपचरत्या,—त्मनोऽहि३साये, प्राचीन३ वै धिष्ण्येभ्योऽध्वर्योर्लोको, यदध्वर्युः प्रत्यङ् धिष्ण्यानतीयादन्यजनतास्य संत्रमभ्यारोहुका स्या,— ३न्न्यन्य उप्यन्ते, नान्ये, तदेषां मिथुनं प्रजात्यै, निरुक्ता अन्ये, ऽनिरुक्ता अन्ये, ये निरुक्ता३स्तेऽस्मै लोकाय, येऽनिरुक्ता३स्तेऽमुष्मै लोकाय, यथा वा इदं मेखलां पर्यस्यते मेध्यस्य चामेध्यस्य च विधृत्या, एव३ वा एते न्युप्यन्ते यज्ञस्य विधृत्यै, यत् प्राचीनं धिष्ण्येभ्यस्तद्देवाना३, यत् प्रतीचीनं तन्मनुष्याणां, तस्मात् सोमं विक्रीते प्राञ्चो धिष्ण्या नातिसृपे, जन३ हीति, देवलोकमभ्यारोहति, चात्वालाद्विह्रियन्त, एषा वा अग्नीना३ योनिः, स्वादेव योनेर्विह्रियन्ते, ऽस्कन्नत्वाय, तेषा३ वा एतदभ्यवायनं चोदयनं च, यदन्तरा चात्वालं चाग्नीध्रं चैतद्वै यज्ञस्य तीर्थं, तस्मादेतेन संचरति, तेन योऽविद्वान्संचरत्यार्तिमार्छेत्य,—थ य एव३ विद्वान्त्संचरति न सद३स्यामार्तिमार्छति ॥ १० ॥ २४-२६ [१६०७]

॥ इत्युपरिकाण्डे असुराणां नाम अष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥

अथ नवमः प्रपाठकः ।

यज्ञो वा एष संक्रामन्नेति प्रायणीयादध्यातिथ्य,—मातिथ्यादध्युपसद्, स उपसद्भ्योऽधि प्राङ् प्रणीयते, यदगृहीत्वाज्यानि प्रणयेयुरपघ्नीत यजमान,—मथ यद्गृहीत्वाज्यानि प्रणयन्ति यज्ञ३ वा एतद्यजमानोऽन्वारभते, प्राञ्चः सोमेन प्रयन्ति, प्राची पत्नी पूर्वमग्निमभ्युदेति, सोमेन वा एतद्राज्ञाभिजयन्तो यन्ति, यस्य वै मनुष्यराजो गृहमागच्छति तस्य वै तर्हि तदैश्वर्यं, यदा वै स ततः प्रायत्यथ तेषां तत्पुनर्भवति, तस्मादाहुरपिव्रता इत्य,—पि ह्येषां तस्मिन् व्रत३, सोमो वा एतद्राजा गृहं प्राप, तस्य वै तर्हि तदैश्वर्यं, यदा वै स ततः प्रच्यवतेऽथ स तेभ्यो विसृजते, तद्विसर्जनाना३ वैसर्जनत्वं, त्व३ सोम तनूकृद्भ्या इति, यदेव तनूकृतं चान्यकृतं चैनस्तदेतेनावयजति, द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या, आग्नेय्याग्नीध्रे, ऽन्तरिक्षमेव प्राप्यान्यदेव रूपमक,—र्वैष्णव्या हविर्धाने, ऽद एव प्राप्य, विष्णुर्वै यज्ञो, विष्णुमेव यज्ञमक,—रसुरा वा एतं देवानामादित्सन्त, तं देवा अमुं कृत्वामुं लोकमहरन्, यदमुमत्या जुहोत्यमुमेवैनं कृत्वामुं लोक३ हरन्ति, सर्वेभ्यो वा एष भूतेभ्य आह्रियते, यत्सौम्या जुहोति मनुष्येभ्यस्तेनाह्रियते, यदमुमत्या पितृभ्यस्तेन, यदाग्नेय्या देवेभ्यस्तेन, यद्वैष्णव्या यज्ञाय तेन, सर्वा वा एतत् प्रजा वरुणो गृह्णाति, यत् सौम्या जुहोति मनु३ष्या३स्तेन वरुणान्मुञ्चति, यदमुमत्या पितृ३स्तेन, यदाग्नेय्या देवा३स्तेन, यद्वैष्णव्या यज्ञं तेन, सर्वा वा एतत् प्रजा वरुणान्मुञ्चत्यग्निना वै मुखेन देवा इमाँल्लोकानभ्युजनयन्, गार्हपत्येनामुं लोकं,—माग्नीध्रेणान्तरिक्ष,—माहवनीयेनामुं लोकं, तस्मात् त्रेधा अग्नया आधीयन्त एषां लोकानामभिजित्या, इन्द्राग्नी वा अपरा अग्नी, अग्निरपरा, इन्द्रः पूर्वः, प्रजापतिराहवनीय,—स्तस्मादेष उपोप्ते सायता, उत्तरो हि पिता पुत्रा,—दुत्तरो भ्रातृव्याद्भवति य एव३ वेदा,—ऽग्रेण प्रणयेद्धतश्रीः श्रियं एव परिगृहीत्यै, सौम्यो वै ब्राह्मणो देवतया, स्वयैव देवतया, प्रजा वै पशवोऽ३श्रवो, रुद्र आहवनीयो, यदग्रेण प्रणयेद्रुद्रायास्य पशूनपिदध्यात्, पश्चादेव प्राङ् प्रणीयः पशूनां गोपीथाय, ३र्वन्तरिक्ष३ ३वीहीत्य,—न्तरिक्षदेव३त्यो वा एष एतर्हि, प्रच्युत इतोऽप्राप्तोऽमुत्रा,—ऽऽदित्याः सदा आसीदेत्या,—दित्यो वै यज्ञो, ऽदितिः सोमस्य योनिः, स्व एवैन३ योनौ दधाति, देव सवितरेष ते सोमा इति, मनुष्येषु वा एष पराभूद्, देवेभ्य एवैन३ संप्रादा,—देतत्त्वं देव सोम देवानुपावृता इति, देवो

[१] मै. १,२,१३ । तै. ६,३,२ । काठ. २६,२ । कपि. ४०,६ । वा. ५,३५,३९-४०;२,७ । काण्व. ५,४४,४८-५०;२,१० ।

३ह्येष देवानुपावर्तत, इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण प्रजया चोपावर्तता, इत्याशिषमेवा-
शास्ते, नमो देवेभ्यः, स्वधा पितृभ्या इति, नमस्कारो देवानाꣳ, स्वधाकारः पितृणां,
निर्वरुणस्य पाशादमुक्षीति, वरुणपाशादेव निर्मुच्यत आत्मनोऽहिꣳसायै स्वरभिव्यख्यमिति,
यज्ञो वै स्व,—र्यज्ञमेवाभिविपश्यति, ज्योतिर्वैश्वानरमित्य,—सौ वा आदित्यो ज्योतिर्वैश्वानरं,
—मग्निना वा एष तन्वꣳ विपरिधत्ते यो दीक्षते, ऽग्नी रुद्रो, यदग्निना पुनर्यथायथं त३न्वं न
विपरिदधीत रुद्र एनमभिमानुकः स्याद्, यदाहा,—ऽग्ने व्रतपते या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा
त्वयि,—ग्ने व्रतपते या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयीत्य,—ग्निना वा एतत् पुनर्यथायथं तन्वꣳ
विपरिधत्त आत्मनोऽहिꣳसायै ॥ १ ॥ १

न यूपमछैष्यता होत३व्यं, न हि दीक्षितस्याग्नौ जुहुति, वैष्णवीमन्वयाछेत्यो, वैष्णवो हि
यूप,—स्तदाहु,—र्होतव्यमेव, परुष्येव जुहोत्यायतना इति, तन्न सूक्ष्यꣳ, यूपस्यैवान्तेऽग्नि
मुपित्वाथ होत३व्यं, तत्स्विदुभयमक,—र्जुहोत्याह, न दीक्षितस्याग्नौ जुहोत्य,—त्यन्यानगां,
नान्यानुपागामित्य,—ती ३ह्यन्यानेति, नान्यानुपैत्य,—र्वाक् त्वा परेभ्यः परोऽवरेभ्योऽविदमि-
त्य,—र्वाग्घ्येनं परेभ्यः परोऽवरेभ्यो विन्दति, तं त्वा जुषामहे देवयज्याया इत्ये,—तꣳ ३ह्येष
जुषते, जुष्टꣳ विष्णवा इति, यज्ञायैवैनं जुष्टꣳ विष्णवेऽक,—र्विष्णुवे त्वे,—ति पर्यनक्ति,
हविर्भूतमेवैनꣳ घृश्रत्य,—थो अभिघृतमेव, य इत्थꣳ वेत्थवाहु,—र्णो मेधा३त्सोऽपावृत्तो, य
ऋजुरूर्ध्वशल्कः स वाव मेधमुपस्थितो, य ऋजुरुपरिष्टादुपावनतो, योऽधिशाख्यो योनिः स,
यो वा अस्या अधिजायते स योनि,—मानियꣳ हि वनस्पतीनाꣳ योनिः, परुषि व३श्च्यो,
यदुपरुषि वृश्चेद्यथा पुरुष्यवकृत्तमेवꣳ स्या,—दनक्षसंगꣳ स्थाणुरुच्छिष्यो, यदक्षसंगꣳ स्थाणुमु-
च्छिꣳषेद्वज्रो भूत्वा यजमानस्य पशून् प्रतिहन्यात्, पञ्चारत्निः कार्यः, पङ्क्त्या संमितः,
षडरत्निः कार्य, ऋतुभिः संमितः, सप्तारत्निः कार्यः, सप्तपदया शक्वर्या संमितो,
ऽष्टारत्निः कार्यो, गायत्र्या संमितो, नवारत्निः का३र्य,—स्तेजसा त्रिवृता संमितो, दशा-
रत्निः कार्यो, विराजा संमिता, एकादशारत्निः कार्यः, त्रिष्टुभा संमितो, द्वादशारत्निः का३र्यो,
जगत्या संमित,—स्त्रयोदशारत्निः कार्य,—स्त्रयोदशेन प्रजापतिना संमितः, पञ्चदशारत्निः कार्यः,
पञ्चदशेन वज्रेण संमितः, सप्तदशारत्निः कार्यः, सप्तदशेन प्रजापतिना संमिता, एकविꣳ-

[२] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,३ । काठ. २६,३—४ । कपि. ४१,१—२ । श. ५,४२ । काण्व. ५,५१—५३ ।
मै० ३६

शत्यरत्निः कार्य, एकविꣳशेन संमित,—स्त्रयोविꣳशत्यरत्निः कार्य,—स्त्रयोविꣳशेन संमितः,
पञ्चविꣳशत्यरत्निः कार्यः, पञ्चविꣳशेन संमितः, सप्तविꣳशत्यरत्निः कार्य,—स्त्रिणवेन
संमिता, एकत्रिꣳशदरत्निः कार्य, एकत्रिꣳशेन संमित,—स्त्रयस्त्रिꣳशदरत्निः कार्य,—स्त्र-
यस्त्रिꣳशेन संमितो, यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावान् का३र्यो यदि वा यावान् रथे तिष्ठन्,
यावान् वै पुरुष ऊर्ध्वबाहुः सैतस्यावमा मात्रा, ऽथ ततो वर्षीयान्वर्षीयानेव का३र्यो, यो
बहुशाखो बहुपर्णः स कार्यो भूम्न एव, भूमानꣳ ३ह्येष एतस्य जग्राह, भूमानमस्य गृह्णाति,
भूमानमस्य पशवोऽनूपतिष्ठन्ते ॥ २ ॥ २

ओषधे त्रायस्वैनमित्या,—ह त्राता एव, स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीरिति, वज्रो वै स्वधिति,-
—र्वज्राद्वावास्मा एतदन्तर्दधात्यहिꣳसायै, यो वा एतस्याभिहतस्याग्रे शकलः परापतति तमस्य
तेजोऽन्वपक्रामति, यच्च पुनराहरति सतेजस्त्वाय, प्राञ्चं प्रहापयति, मेधमेवैनमनुपर्यावर्त-
यति, वज्रो वै यूप,—स्तस्माद्वा इमे लोका नीयमानाद्बिभ्यती,—श्वरो ३ह्येषोऽशान्तो नीयमान
इमाँल्लोकान् हिꣳसितो,—र्यदाह, दिवमग्रेण मा हिꣳसीरन्तरिक्षं मध्येन पृथिव्याः संभव भ्राजं
गच्छेति, शमयत्येव, शान्त एव नीयत, एषां लोकानामहिꣳसायै, सर्वस्य वा एष मित्रꣳ
यो दीक्षितः, स एतमहिꣳसी,—दीश्वरा वनस्पतयोऽपिधिष्ण्या भवितो, यदाव्रश्चने जुहोति
पुनरेवैनं प्रजनयति, तस्मादाव्रश्चनाद्भूयाꣳसः प्रजायन्ते, पशुना संमितः का३र्यो, दश वै
पशोः प्राणा, आत्मैकाद३शो, ऽष्टाश्रयो व्रह्मणी दशमे, आत्मैकादशं,—स्तथा पशुना
संमितो, ऽष्टाश्रिः कार्यो, गायत्र्या रूपं, गायत्रो हि यूपो, गायत्र्या वै पतन्त्या यत्र
पर्णं परापतत्ततः पर्णोऽजायत, तस्मात् पर्णमयं, एतत् खलु वै पर्णस्य सारꣳ यत्खदिरं,—
स्तस्मात् खादिरं, इहं वा असा आदित्य आसीत्, तमितोऽध्यमुं लोकमहरꣳ,—स्तंततोऽध्यमुं
लोकमहरꣳस्तस्माज्ज्योतिषो बिल्वोऽजायत, तस्माद्बैल्वो, ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यो ब्रह्मवर्चसस्य
समष्ट्या, अथो ज्योतिषैव तमस्तरती,—न्द्रो वै यतीन्त्सालावृकेयेभ्यः प्रायछत्, तेषाꣳ वा
एष ब्रह्मचारी चमसाध्वर्युरासी३त्, योऽयꣳ हरिणस्तस्य यः सोमपीथ आसीत् स स्वजोऽभवत्,
तस्माद्धरिणः स्वजं खादति, सोमपीथो ह्यस्यैष स, यत्र चमसं न्यौब्जत्ततो रोहितकोऽजायत,
तस्माद्रौहीतक,—स्तस्माद्रौहीतके रोहितके स्वजः, पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वे,—ति
प्रोक्षत्ये,—षाꣳ ह्येष लोकानाꣳ विधृत्यै मीयते, त्रिः प्रोक्षति, त्रिषत्या हि देवा, अथो

[३] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,३ । काठ. २६,५ । कपि. ४१,३ । श. ४,१,१७;५,१६-१७,४२—४३;६,१-४,१५;
३७,११;१,१७—१८ । काण्व. ४,२,२३,५,३३,३५—३६,५४;६,१—५;३७,११,१,१८—१९;१३,३३ ।

त्रिपद्ययैवैनं गायत्र्या प्रौक्षीद्, वज्रो वै यूपो, ऽन्नꣳ यवो, यद्यवमीभिः प्रोक्षति वज्रेण वा
एतदन्नं जयति, तेजो वै यूप, एष खलु वा ओषधीनां तेजो यद्यव,—स्तस्मादेतꣳ शिशिरा
ओषधयोऽनुप्राणन्ति, यद्यवमवास्यति तेजसि वा एतत्तेजो दधात्य,—क्षꣳ वा अमेध्य,—मापो
हवि,—र्यदवसिञ्चति मेध्यमेवैनत्करोत्य,—क्षꣳ वा अमेध्यꣳ, यदवस्तृणाति मेध्यमेवैनत्करोति,
तक्षितो वा एष नग्नो यच्चशकमवास्यत्य,—नग्नमेवैनमकः, स्व एवैनꣳ स्थाने दधात्य,—वृक्ण
एवाभूद्, घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेति, घृतेनैव द्यावापृथिवी आपूरयति, यजमानो वा
अग्निष्ठास्तेजो घृतं,—मान्तमविछिन्नमनक्ति, यजमानमेव तेजसानक्ति, देवस्त्वा सविता
मध्वानक्त्वित्ये,—तद्वै देवानां मधु यद् घृतꣳ, सुविदुग्रप्त एवैनं मध्वानक्ती,—न्द्रस्य चषालम-
सीत्यै,—न्द्रꣳ हि चषालꣳ सुपिप्पला ओषधीस्कृधीत्यो,—षधीरेव फलं ग्राहयति, तस्मादोष-
धयः शीर्षन् फलं गृह्णन्ति, दिवमग्रेणोत्तभाना,—ऽन्तरिक्षं मध्येनापृण, पृथिवीमुपरेण दृꣳहेत्ये,-
—षाꣳ ३ह्येष लोकानाꣳ विधृत्यै मीयते, ता ते धामान्युश्मसि गमध्या, इत्यग्नेर्दधाति
वैष्णव्या, वैष्णवो हि यूपः, स्वयैव देवतया, विष्णोः कर्माणि पश्यते,—ति संकल्पयति
संमितत्वाय, ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं पर्यूहामी,—त्याशीरेवैषा, ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहेत्या,— ३
शिषु एवैष परिग्र३हो, ऽयोऽनुदरिविश्वति धृत्यै ॥ ३ ॥

वज्रो वै यूपो, यदन्तर्वेदि मिनुयान्निर्दहेद्, यद्बहिर्वेद्यनवरुद्धः स्या,—दर्धमन्तर्वेदि मिनो-
त्य,—र्धं बहिर्वेद्य,—वरुद्धो ह भवति, न निर्दहति, नोपरस्याविः कर्तवै, यदुपरस्याविः
स्यु,—र्धं बहिर्वेद्य,—वरुद्धो ह भवति, ... क्षुधं प्रजा नीयु,—र्नो
कुर्याद्वर्षिष्ठाः स्यात्, प्रमायुको यजमानो, नातिस्थूलः का३र्यः, क्षुधं प्रजा नीयु,—र्नो
अत्यणु,—रुभयमेवान्तरा, यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेऽमन्यन्ता,—ऽनेन वै नोऽन्ये
लोकमन्वारोक्ष्यन्तीति, तꣳ यूपेनायोपयꣳ,—स्तद्यूपस्य यूपत्वꣳ, यद्यूपः पुरस्तान्मीयेत
स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै, तद्विष्णोः परमं पदं,—मिति समुन्मार्ष्टि स्वर्गस्य लोकस्य
समष्ट्यै, नाभिदघ्ने परिव्ययत्यू,—र्ग्वा ओषधय, ऊर्जꣳ वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते
प्रजानां च, यदि कामयेत, क्षुधं प्रजा नीयुरित्य,—शनान्यूपान्मिनुयात्, क्षुधं प्रजा

[ता (या) ते (वां) धामान्यु (वास्तु०)० । ऋ. १,१५४,६; तै. सं. १,३,६,१; नि. २,७ ।
विष्णोः कर्माणि पश्यत० । ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१; अथर्व. ७,२६,६; तै. सं. १.३.६ २]
[४] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,४ । काठ. २६,६ कपि. ४१,४ । श. ६,५ । काण्व. ६,६ । [तद्विष्णोः परमं पदं० ।
ऋ. १,२२,२०; सा. १६७२, अथर्व. ७.२६,७; तै. सं. १,३,६,२,४,१,९,३]

नियन्ति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्य, ऊर्जा यजमानꣳ समर्धयेयमिति, परिवीयोर्ध्वा-
मुदूहेद्, वृष्ट्या एवेमां न्यूहत्यू,—र्जा यजमानꣳ समर्धयति, यदि कामयेत, न वर्षेत्
पर्जन्य, ऊर्जा यजमानꣳ व्यर्धयेयमिति, परिवीयावाचीमवोहेद्, वृष्टयैवेमां न्यूहत्य,—र्जा
यजमानꣳ व्यर्धयति, सर्वदेव३त्यो वै यूपो, यन्निखातं तत् पितृणाꣳ, यदूर्ध्वं तन्मनुष्याणाꣳ,
यत्र रशना तदोषधीनाꣳ, यदूर्ध्वꣳ रशनायास्तद्विश्वेषां देवाना,—मिन्द्रस्य चषालꣳ, ये वै
देवाः साध्या यज्ञमत्यमन्यन्त तेषाꣳ वा एतद्यदुपरिष्टाच्चषालस्याङ्गुलिमात्रं कार्य,—मङ्गुलिमात्रꣳ हि
तदग्रा आसीद्, यत्ततो वर्षीयः कुर्याद्वज्रो भूत्वा यजमानस्य पशूनवतिष्ठे,—दिन्द्रो वै वृत्राय
वज्रमुदयछत्, सोऽब्लीयत, तस्य वा एतदनुनद्ध्यै यच्चषालं पृथुमात्रं कार्यं, पृथुमात्रꣳ हि
तदग्रा आसीद्, यदणिमतोऽगृह्णात् तस्मादणिमतो, यदिन्द्र उदयछत् तस्मादैन्द्रꣳ, यदि
कामयेता,—ऽन्येऽस्य लोकमन्वारोहयेयुरित्य,—न्यस्य वृक्षस्य स्वरुं कुर्या,—दन्येऽस्य लोकमन्वा-
रोहन्ति, यदि कामयेत, प्रजामनुसंतनुया,—दिति यूपस्य स्वरुं कुर्यात्, प्रजामेवानुसंत-
नोति, यजमानो वा अग्निष्ठा,—स्तेजोऽग्नि,—र्यदित्थꣳ वेत्थꣳ वा मिनुयाद्यजमानं तेजसा
व्यर्धये,—दग्निना सदृशं मेत३व्या यजमानस्य सतेजस्त्वाया,—ऽऽवृह्य ह स्म वै पुरा संस्थिते य-
३ज्ञेऽग्नौ यूपं प्रास्यति, संभज्य स्रुचस्ते देवा अमन्यन्त, यज्ञवेशसमिदं कुर्या इति, तेऽब्रुवन्,
परिधिभिरेव नः स्रुचः स्वगाकृताः सन्तु, स्वरुणा यूपः, प्रस्तरेण सदा इति, तेषाꣳ
वा एष स्वगाकारो, न ह स्म वै पुरा पुरुषं महादेवो हन्ति, तत इदꣳ रु३द्रोऽन्ववातिष्ठत्,
तं देवा एताꣳ रुद्रस्यावेष्टिमपश्यꣳ,—स्त्रिः पुरस्तादनक्ति, त्रिरुपरिष्टात्, तत्षट्, षड्वा ऋतव,
ऋतुभ्यो वा एतद्रुद्रमवयजत्या,—हुतिभाजो वा ऋतवोऽस्तोमभाज,—स्त एवास्यैतेनाभीष्टाः
प्रीता भवन्ति, यद्यूपाज्जुहोति वनस्पतिभ्यस्तेनावयजति, यद्रशनाया ओषधीभ्यस्तेन,
यदात्मनो मनुष्येभ्यस्तेन, यदाह, दिवं ते धूमो गछत्विति, हविर्धानाच्चेना,—ऽन्तरिक्षं
ज्योतिरित्या,—ग्नीध्राच्चेन, पृथिवीं भस्म स्वाहेति, सदसस्तेन, सर्वतो वा एतद्रुद्रमवय-
जत्या,—हुत्या वा एतꣳ वनस्पतिभ्यः प्रच्यावयन्त्यु,—पयज्य मनु३ष्याः प्रयन्ति, तस्त्वाया
देवताया अन्तर्धीयते, यूपो वै यज्ञस्य दुरिष्टमामुञ्चते, यद्यूपमुपस्पृशेद्यज्ञस्य दुरिष्टमामुञ्चेत्,
तस्माद्यूपो नोपस्पृश्यः, शुग्वा एष मीयते, स ईश्वरोऽशान्त इमाँल्लोकाञ्छुचार्पयितो,—र्य-
देकः स्यात् ॥ एष ते वायो ॥ इति ब्रूयाद्, यदि बहवः ॥ एते ते वायो ॥ इति ब्रूयाद्,
पायुगोपा वै वनस्पतयः, स्वामेवैभ्यो देवतामपिसृजत्येषां लोकानामहिꣳसायै, यथा वै प्रोगꣳ

मिश्रंति तस्मादिमे उदन्वन्तः प्राणाः, प्राणा वा उपरवा, यदवस्तृणाति तस्मादिमे लोमशाः प्राणा, अथ यदवमिश्रन्त्यथ च स्तृणाति मस्तिष्को वा एष क्रियते, हनू अधिषवणे, शिरो हविर्धानं२, शीर्ष्ण्वा इमे हनू, तस्माद्धविर्धाने, ऽन्तर्वा इमे शीर्षन् हनू, तस्मादन्तरिमे वा एते यत्संतृन्द्या,—दिमे एव संतृन्द्यात्, तत्संपाद्य एव, यत्क्षुल्लमन्तरं कार्यं, यत्क्षुल्लं२ ३हीदं,—मन्तरा वै नाकेव, शिरो हविर्धानं, पृष्ठमाग्नीध्र,—मुदरं२ सदः, प्राङ् हि यज्ञः सं२हितो, हनू अधिषवणे, जिह्वाधिषवणं, ग्रावाणो दन्ता, मुखतो वा एतत् प्रजापतेः सोमं पिबन्ती,—न्द्रो वै वृत्रमहन्,—त्स इमां प्राविशत्, तं देवताः प्रैषमैछं२,—स्तमाविदं२,—स्तं भूतान्युपारवन्त, यो नोऽधिपतिरभूत्तं विन्दामा इति, तदुपरवाणामुपरवत्वं२, यत्त-दुपारवन्त तच्चतुर्धाविस्तादुदैछ,—न्नेकधा पुरोऽन्वविन्दं२,—स्तस्माच्चतुर्धाविस्ता,—देकधा पुरो, यदुपरवानतृन्दती,—न्द्रियस्यावरुद्ध्यै ॥ ८ ॥ २२

पृथिव्यै त्वा, ऽन्तरिक्षाय त्वा, दिवे त्वे,—ति प्रोक्षत्ये,—षां३ ह्येषां लोकाना२ं विधृत्यै मीयंते, त्रिः प्रोक्षति, त्रिषत्या हि देवा, अथो त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैनां लोकेभ्यः प्रोक्षी,—दन्न२ं वै यवा, ऊर्गुदुम्बरो, यवमतीभिः प्रोक्षत्यूर्जी वा एतदन्न२ं संमृ-धयत्यु,—द्धं२ वा अमेध्य,—मापो हवि,—र्यदवमिश्रति मेध्यमेवैनत् करोत्यु,—द्धं२ वा अमे-ध्यं२, यदवस्तृणाति मेध्यमेवैनत् करोति, पितृदेवत्य२ं वै निखातममेध्यमन्यदेवत्य,—मस्याः खलु वा इमा उत्तमाधि ओषधयो, यदवस्तृणात्यस्या एवैनामुत्तमाधि मिनोत्य,—निखातैवा-मू,—दन्न२ं वै यवा, ऊर्गुदुम्बरो, यवमवास्यत्यन्ने वा एतदूर्जं दधाति, न खन्नमृत ऊर्जी धिनोति, नो यूपं ताऽभ्याद्धिनोति, नितानस्त्वा मारुतो निहन्त्विति, मनो वै नितानः, प्राणा मारुता, मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणेति, मित्रमेवैनां दाधार, वरुणः कल्पयति, विधृत्यै च खलु वा एषा प्रजानां कॢप्त्यै च मीयते, मित्रावरुणौ वै देवानां धर्मधारयौ, देवं२ वा एतद्धर्ममदीधरता२ं, यदौदुम्बरी, ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि पर्यूहामीत्या,—शीर्वैषा, ब्रह्म ह्येह क्षत्रं ह्येहंत्या,—शिष एवैष परिग्रहो, घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेति, घृतेनैव द्यावा-पृथिवी व्युनत्त्यु,—दरं२ वै सदा, ऊर्गुदुम्बरो, यदौदुम्बर्यु,—र्ज२ं वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते प्रजानां च, प्रजापतेर्वा एतदुदर२ं यत्सदः, प्राजापत्यं उद्गाता, तस्मादुद्गातान्वारभते,

[९] मै. ३,२,११ । तै. ६,२,११ । काठ. २५,१० । कपि. ४०,३ । श. ५,२६,२८;६,१,१६ । कण्व. ५,३३,३६;१,२२ ।

यजमानो वा, औदुम्बरी वर्षिष्ठा का३र्या, वर्ष्मैन२ं समानानां गमयति, विश्वजनस्य छाया-सी,—ति छदिरभिनिदधाति, गोत्रांद्गोत्राद्धि प्रसर्पत्न्यु,—दरं२ वै सदो, यदन्येनान्येन संमि-नोति तस्मादुदरमन्येनान् येनामिन संतत, उदरं२ वै सदो, यदनूचीनं मिनुयात्पराचीनं जग्ध-मतीया,—दथ यत्तिरश्चीनं मिनोति तस्माज्जग्धं२, सर्वाण्यङ्गान्यनुवेति, प्रजा वा एतत् सध्री-चीनं मिनोति, सध्रीचीरेनं प्रजा अभिसमावर्तते, स२ंयात इव स भवति, समान२ं सांका-शिनं कार्यं२, समाना ३हीमे प्राणा, यं द्विष्यात्तस्याक्ष्णया मिनुयात्, प्राणानस्य मोहयति, प्रमायुको भवति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या इति, नीचैः सदो मिनुयाद्, वृष्टिमेव नियछति, यदि कामयेत, न वर्षेत् पर्जन्या इत्यु,—च्चैः सदो मिनुयाद्, वृष्टिमेवोपाग्रही,—नवछ-दिरग्निष्टोमे स्यात्, तेजसा त्रिवृता संमितं, पञ्चदशछदिरुक्थ्ये, पञ्चदशेन वज्रेण संमितं२, सप्तदशछदिरतिरात्रे, सप्तदशो वै प्रजापतिः, प्राजापत्या रात्रिरानुष्टुभी, यज्ञक्रतूनामेवैषा व्यावृत्तिः, प्राचीनवं२शं२ हविर्धानं मिनोत्यू,—र्ध्वा हि द्यौः, प्राचीनवं२शमाग्नीध्र,—मूर्ध्व२ं ३ह्यन्तरिक्षं, तिरश्चीनवं२शं२ सद,—स्तिरश्ची ३हीयं२, यजुषा हविर्धानं मिनोति, निरुक्ता हि द्यौ,—र्यजुषा सदो, निरुक्ता ३हीयं,—मयजुषाग्नीध्र,—मनिरुक्तमिव ३ह्यन्तरिक्ष,—मर्धमा-ग्नीध्रस्यान्तर्वेदि मिनोत्य,—र्धं बहिर्वे३द्य,—र्धं२ ३ह्यन्तरिक्षस्यास्मिंल्लो३के, ऽर्धममुष्मिन् ॥९॥ २३

सुव्राड्ङ्नभ्राडङ्घारे बम्भारा इत्ये,—ते वै देवाना२ं सोमरक्षय, एतेभ्यो वा अधि छन्दा२ंसि सोममाहरं२,—स्ते सोमपीथेन व्यार्ध्यत, त एतानि द्वितीयानि नामान्यधत्तमङ्गलेछायै, सोम-पीथो ना उपनमादिति, तस्मादेते द्विनामान,—स्ते वा अन्वायं२,—स्ते न प्राप्नुवं२,—स्तस्मा-देतेऽतिहाय वषट् क्रियन्ते, न हि प्राप्नुवं२,—स्तेषा२ं वा एष लोको यावुदभि न्युप्यते, तद्यो ऽविद्वानाक्रामत्यार्त्तिमार्छत्य,—थ य एवं२ विद्वानाक्रामति न सद३स्यामार्त्तिमार्छति, तेषा२ं वा एष भागो यद्व्याघारयन्ते, त एवास्मै तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, यज्ञमुखं२ वै पवमानो, यत्पवमाने स्तु३ते३भ्यो विहियन्ते यज्ञमुखादेवाधिविह्रियन्ते, जम्भो वै नामासुर आसीत्, स यज्ञमगिरत्, स आग्नीध्रं न प्राप्नोत्, तमाग्नीध्रात्पुनर्व्यरुज,—देतद्धि जीवं, तस्मादाग्नीध्राद्वि-ह्रियन्ते, दक्षिणतो वै देवानसुरा यज्ञमजयं२,—स्त उदञ्च आग्नीध्रं२ समातिष्ठं२,—स्तमाग्नीध्रात् पुनरभ्यजय,—न्नेतद्वा अनभिजितं, तस्मादाग्नीध्राद्विह्रियन्त, एतत् प्रति वै देवानसुरा यज्ञ-

[१०] तै. ६,३,१ । काठ. २६,१ । कपि. ४०,४ । श. ५,३१ । काण्व. ५,४० ।

मजयं२,—स्त आग्नीध्रादधि बहिष्पवमानेन यज्ञमभिजित्याग्नीनाधाय बर्हिरस्तृणत, पराजित्ताना वा एतत् सर्पन्ति यद्बहिष्पवमान२ं स्तोष्यन्तः सर्पन्ति, यद्बहिष्पवमाने स्तुत आह ॥ अग्नीदग्नीन्विहर, बर्हिः स्तृणाति ॥ इत्याग्नीध्राद्वा एतदधि बहिष्पवमानेन यज्ञमभिजित्याग्नीना-धाय बर्हिः स्तृणते, ऽत्र वा एतर्हि यज्ञो यत्रास्तुत२ं स्तोत्रं२, यत्रैव यज्ञस्तदभिपर्यावृत्य जुहोति, शुक्रवती वै पूर्वे सवने, अशुक्रं तृतीय२ं सवनं२, यज्ज्योतिष्मतीस्तृतीयसवने व्याघारयन्ति तेन तृतीयसवन२ं शुक्रवत्, स२ंवत्सरो वा अग्निष्टोम,—स्तस्य वा एतास्त३न्वो यद्धिष्ण्या,—स्ता वा अस्यैतत्समुद्दर्शयित्वा ज्योतिष्मतीः कृत्वाग्निष्टोमेन स्तुवते, स२ंवत्सरो वा अग्निष्टोमो, द्वादश मासाः स२ंवत्सरो, यत् प्राचीराहुतयो हूयन्ते, प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्याघा-र्यन्ते स२ंवत्सरस्य विधृत्या, उभयतो वै देवानसुराः पर्यायत्ता आसन् पुरस्तादन्ये, पश्चादन्ये, यद् प्राचीराहुतयो हूयन्ते, ये पुरस्तादास२ंस्ता२ंस्तेनापानुदन्त, यत् प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्या-घार्यन्ते, ये पश्चादास२ंस्ता२ंस्तेनापानुदन्त, तद्भ्रातृव्यस्य वा एष विनोदो, ऽध्वर्युणा वै यज्ञो विधृत, इदमिव वा एतद्यज्ञस्य यद्धिष्ण्या, यदध्वर्युः प्रत्यङ् धिष्ण्यानतीयात् प्राणान्संकर्षेत, प्रमायुकः स्याद्, यदुतीयाद्यज्ञपरुष्मतीयादिन्द्रीमनुब्रूया,—दैन्द्र२ं हि सदः, स्वयैवैनद्दे-वतयोपचरत्या,—त्मनोऽहि२ंसायै, प्राचीन२ं वै धिष्ण्येभ्योऽध्वर्योर्लोको, यदध्वर्युः प्रत्यङ् धिष्ण्यानतीयादन्यजनतास्य क्षेत्रमभ्यारोहुका स्या,— ३न्न्यन्ये उप्यन्ते, नान्ये, तदेषां मिथुनं प्रजात्यै, निरुक्ता अन्ये, ऽनिरुक्ता अन्ये, ये निरुक्ता३स्ते३ऽस्मै लोकाय, येऽनिरुक्ता३स्तेऽमुष्मै लोकाय, यथा वा इदं मंसलां पर्यस्यते मध्यस्य चामेध्यस्य च विधृत्या, एव२ं वा एते न्युप्यन्ते यज्ञस्य विधृत्यै, यत् प्राचीनं धिष्ण्येभ्यस्तद्देवाना२ं, यत् प्रतीचीनं तन्मनुष्याणां, तस्मात् सोमं विवृते प्राञ्चो धिष्ण्या नातिसृपे, जन२ं होति, देवलोकमभ्या-रोहति, चात्वालाद्विह्रियन्त, एष वा अग्नीना२ं योनिः, स्वादेव योनेर्विह्रियन्ते, ऽस्कन्न-त्वाय, तेषा२ं वा एतदभ्यवायनं चोदयनं च, यदन्तरा चात्वालं चाग्नीध्रं चैतद्वै यज्ञस्य तीर्थं, तस्मादेतेन संचरति, तेन योऽविद्वान्संचरत्यार्तिमार्छत्य,—थ य एव२ं विद्वान्संच-रति न सद३स्यामार्तिमार्छति ॥ १० ॥ २४-२६ [१६०७]

॥ इत्युपरिकाण्डे असुराणां नाम अष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥

अथ नवमः प्रपाठकः ।

यज्ञो वा एष संक्रामन्नेति प्रायणीयादध्यातिथ्य,—मातिथ्यादध्युपसदः, स उपसद्भ्योऽधि प्राङ् प्रणीयते, यदगृहीत्वाज्यानि प्रणयेयुरपघ्नीत यजमान,—मथ यद्गृहीत्वाज्यानि प्रणयन्ति यज्ञ२ं वा एतद्यजमानोऽन्वारभते, प्राञ्चः सोमेन प्रयन्ति, प्राची पत्नी पूर्वमग्निमभ्युदैति, सोमेन वा एतद्राज्ञाभिजयन्तो यन्ति, यस्य वै मनुष्यराजो गृहमागछति तस्य वै तर्हि तदैश्वर्यं, यदा वै स ततः त्रायतेऽथ तेषां तत्पुनर्भवति, तस्मादाहुरपिव्रता इत्य,—पि ह्येषां तस्मिन् व्रत२ं, सोमो वा एतद्राजा गृहं प्राप, तस्य वै तर्हि तदैश्वर्यं, यदा वै स ततः प्रच्यवतेऽथ स तेभ्यो विसृजते, तद्वैसर्जनाना२ं वैसर्जनत्वं, त्वं२ सोम तनुकृद्भ्या इति, यदेव तनुकृतं चान्यकृतं चैनस्तदेतेनावयजति, द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या, आग्नेय्याग्नीध्रे, ऽन्तरिक्षमेव प्राप्यान्यदेव रूपमक,—र्वैष्णव्या हविर्धाने, ऽद एव प्राप्य, विष्णुर्वै यज्ञो, विष्णुमेव यज्ञमक,—रसुरा वा एतं देवानामादित्सन्त, तं देवा अमुं कृत्वामुं लोकमहरन्, यदमुमत्या जुहोत्यमुमेवैनं कृत्वामुं लोक२ं हरन्ति, सर्वेभ्यो वा एष भूतेभ्य आह्रि-यते, यत्सौम्या जुहोति मनुष्येभ्यस्तेनाह्रियते, यदमुमत्या पितृभ्यस्तेन, यदाग्नेय्या देवेभ्यस्तेन, यद्वैष्णव्या यज्ञाय तेन, सर्वा वा एतत् प्रजा वरुणो गृह्णाति, यत् सौम्या जुहोति मनु३ष्या२ंस्तेन वरुणान्मुञ्चति, यदमुमत्या पितृ२ंस्तेन, यदाग्नेय्या देवा२ंस्तेन, यद्वैष्णव्या यज्ञं तेन, सर्वा वा एतत् प्रजा वरुणान्मुञ्चत्यग्निना वै मुखेन देवा इमाँल्लोकानभ्युजनयन्, गार्हपत्येनामुं लोक,—माग्नीध्रेणान्तरिक्ष,—माहवनीयेनामुं लोकं, तस्मात् त्रेधा अग्नय आधी-यन्त एषां लोकानामभिजित्या, इन्द्राग्नी वा अपरा अग्नी, अग्निरपुरा, इन्द्रः पूर्वः, प्रजापतिराहवनीय,—स्तस्मादेष उपोप्ते सायता, उत्तरो हि पिता पुत्रा,—दुत्तरो भ्रातृव्याद्भवति य एव२ं वेदा,—ऽग्रेण प्रणयेद्धतश्रीः श्रियं एव परिगृहीत्यै, सौम्यो वै ब्राह्मणो देवतया, स्वयैव देवतया, प्रजा वै पशवोऽ२ंशवो, रुद्र आहवनीयो, यदग्रेण प्रणयेद्रुद्रायास्य पशूनपि-दध्यात्, पश्चादेव प्राङ् प्रणीयः पशूनां गोपीथायो, ३र्वन्तरिक्ष२ं ३व्रीहीत्य,—न्तरिक्षदेव-३त्यो वा एष एतर्हि, प्रच्युत इतोऽप्राप्तोऽमुत्रा,—ऽऽदित्याः सदा आसीदेत्या,—दित्यो वै यज्ञो, ऽदितिः सोमस्य योनिः, स्व एवैन२ं योनौ दधाति, देव सवितरेष ते सोमा इति, मनु-ष्येषु वा एष पुराभूद्, देवेभ्य एवैन२ं संप्रादा,—देतत्त्वं देव सोम देवानुपावृता इति, देवा

[१] मै. १,२,१३ । तै. ६,३,२ । काठ. २६,२ । कपि. ४०,६ । श. ५,३५,३९-४०;१,७ । काण्व. ५,४४,४८-५०;१,१० ।

३होपं देवानुपावर्तत, इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण प्रजया चोपावर्तता, इत्याशिषमेवा-शास्ते, नमो देवेभ्यः, स्वधा पितृभ्या इति, नमस्कारो देवानाꣳ, स्वधाकारः पितॄणां, निर्वरुणस्य पाशादमुक्षीति, वरुणपाशादेवं निर्मुच्यत आत्मनोऽहिꣳसायै स्वरभिव्यख्यमिति, यज्ञो वै स्व,—र्यज्ञमेवाभिविपश्यति, ज्योतिर्वैश्वानरमित्य,—सौ वा आदित्यो ज्योतिर्वैश्वानरं, —मग्निना वा एषं तन्वꣳ विपरिधत्ते यो दीक्षते, ऽग्नी रुद्रो, यदग्निना पुनर्यथायथं तन्वं न विपरिदधीत रुद्र एनमभिमानुकः स्याद्, यदाहा,—ऽग्ने व्रतपते या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वय्य,—ग्ने व्रतपते या मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयीत्य,—ग्निना वा एतत् पुनर्यथायथं तन्वꣳ विपरिधत्त आत्मनोऽहिꣳसायै ॥ १ ॥ १

न यूपमच्छैष्यता होत३व्यं, न हि दीक्षितस्याग्नौ जुहुति, वैष्णवीमन्वाछैत्यो, वैष्णवो हि यूप,—स्तदाहु,—र्होतव्यमेवं, परुष्येव जुहोत्यायतना इति, तन्न सूक्ष्यꣳ, यूपस्यैवान्तेऽग्नि मथित्वाथ होत३व्यं, तत्स्विदुभयमक,—र्जुहोत्याह, न दीक्षितस्याग्नौ जुहोत्य,—त्यन्यानगां, नान्याननुपागामित्य,—ती ३ह्यन्यानेति, नान्याननुपैत्य,—र्वाक् त्वा परेभ्यः परोऽवरेभ्योऽविदमि-त्य,—र्वाग्घ्येनं परेभ्यः परोऽवरेभ्यो विन्दति, तं त्वा जुषामहे देवयज्याया इत्ये,—तꣳ ३होपं जुषते, जुष्टꣳ विष्णवा इति, यज्ञायैवैनं जुष्टꣳ विष्णवेऽक,—र्विष्णवे त्वे,—ति पर्यनक्ति, हविर्भूतमेवैनꣳ वृश्चत्य,—थो अभिघृतमेवं, य इत्थꣳ वेत्थैवाहु,—र्णो मेधा३त्सोऽपावृत्तो, य ऋजुरूर्ध्वशल्कः स वाव मेधमुपस्थितो, य ऋजुरुपरिष्टादुपावनतो, योऽधिशाख्यो योनिः स, यो वा अस्या अधिजायते स योनि,—मानियꣳ हि वनस्पतीनाꣳ योनिः, परुषि व्र३श्च्यो, यदुपरुपि वृश्चेद्यथा परुष्यवकृत्तमेवꣳ स्या,—दनक्षसंगꣳ स्थाणुरुच्छिष्यो, यदक्षसंगꣳ स्थाणुमु-च्छिꣳषेद्वज्रो भूत्वा यजमानस्य पशून् प्रतिहन्यात्, पञ्चारत्निः कार्यः, पङ्क्त्या संमितः, षडरत्निः कार्य, ऋतुभिः संमितः, सप्तारत्निः कार्यः, सप्तपदया शक्वर्या संमितो, ऽष्टारत्निः कार्यो, गायत्र्या संमितो, नवारत्निः का३र्य,—स्तेजसा त्रिवृता संमितो, दशा-रत्निः कार्यो, विराजा संमिता, एकादशारत्निः कार्यः, त्रिष्टुभा संमितो, द्वादशारत्निः का३र्यो, जगत्या संमित,—स्त्रयोदशारत्निः कार्य,—स्त्रयोदशेन प्रजापतिना संमितः, पञ्चदशारत्निः कार्यः, पञ्चदशेन वज्रेण संमितः, सप्तदशारत्निः कार्यः, सप्तदशेन प्रजापतिना संमिता, एकत्रिꣳ-

[२] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,३ । काठ. २६,३—४ । कपि. ४१,१—२ । श. ५,४२ । काण्व. ५,५२—५३ । मै० ३६

शत्यरत्निः कार्य, एकविꣳशेन संमित,—स्त्रयोविꣳशत्यरत्निः कार्य,—स्त्रयोविꣳशेन संमितः, पञ्चविꣳशत्यरत्निः कार्यः, पञ्चविꣳशेन संमितः, सप्तविꣳशत्यरत्निः कार्य,—स्त्रिणवेन संमिता, एकत्रिꣳशदरत्निः कार्य, एकत्रिꣳशेन संमित,—स्त्रयस्त्रिꣳशदरत्निः कार्य,—स्त्र-यस्त्रिꣳशेन संमितो, यावान् पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावान् का३र्यो यदि वा यावान् रथे तिष्ठन्, यावान् वै पुरुष ऊर्ध्वबाहुः सैतस्यावमा मात्रा, ऽथ ततो वर्षीयान्वर्षीयानेव का३र्यो, यो बहुशाखो बहुपर्णः स कार्यो भूम्न एवं, भूमानꣳ ३होपं एतस्य जग्राहु, भूमानमस्य गृह्णाति, भूमानमस्य पशवोऽनुप्रतिष्ठन्ते ॥ २ ॥ २

ओषधे त्रायस्वैनमित्या,—ह त्राता एवं, स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीरिति, वज्रो वै स्वधिति,-—र्वज्रादेवास्मा एतदन्तर्दधात्यहिꣳसायै, यो वा एतस्याभिहतस्याग्रे शकलः परापतति तमस्य तेजोऽन्वपक्रामति, यत्तं पुनराहरति सतेजस्त्वाय, प्राञ्चं प्रहापयति, मेधमेवैनमनुपर्यावर्त-यति, वज्रो वै यूप,—स्तस्माद्वा इमे लोका नीयमाणाद्बिभ्यती,—श्वरो ३होपोऽशान्तो नीयमान इमाँल्लोकान् हिꣳसितो,—र्यदाह, दिवमग्रेण मा हिꣳसीरन्तरिक्षं मध्येन पृथिव्याः संभव भ्राजं गच्छेति, शमयत्येव, शान्त एव नीयत, एषां लोकानामहिꣳसायै, सर्वस्य वा एष मित्रꣳ यो दीक्षितः, स एतमहिꣳसी,—दीश्वरा वनस्पतयोऽपिधिष्ण्यं भवितो, यदाव्रश्चने जुहोति पुनरेवैनं प्रजनयति, तस्मादाव्रश्चनाद्भूयाꣳसः प्रजायन्ते, पशुना संमितः का३र्यो, दश वै पशोः प्राणा, आत्मैकादश३शो, ऽष्टाश्रयो ब्रह्मणी दशमे, आत्मैकादश,—स्तथा पशुना संमितो, ऽष्टाश्रिः कार्यो, गायत्र्या रूपं, गायत्रो हि यूपो, गायत्र्या वै पतन्त्या यत्र पर्णं परापतत्ततः पर्णोऽजायत, तस्मात् पर्णमयु, एतत् खलु वै पर्णस्य सारꣳ यत्खदिरं,— स्तस्मात् खादिरं, इदं वा असा आदित्य आसीत्, तमितोऽध्यमुं लोकमहरꣳ,—स्तद्यतोऽध्यमुं लोकमहरꣳस्तस्माज्ज्योतिषो बिल्वोऽजायत, तस्माद्बैल्वो, ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यो ब्रह्मवर्चसस्य समष्ट्या, अथो ज्योतिषैव तमस्तरती,—न्द्रो वै यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत, तेषाꣳ वा एषं ब्रह्मचारी चमसाध्वर्युरासी३त्, योऽयꣳ हरिणस्तस्य यः सोमपीथ आसीत् स स्वजोऽभवत, तस्माद्धरिणः स्वजं खादति, सोमपीथो ह्यस्यैव स, यत्र चमसं न्यौब्जत्ततो रोहितकोऽजायत, तस्माद्रौहीतक,—स्तस्माद्रौहीतके रोहितके स्वजः, पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वे,—ति प्रोक्षत्ये,—षाꣳ होपं लोकानाꣳ विधृत्यै मीयते, त्रिः प्रोक्षति, त्रिषत्या हि देवा, अथो

[३] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,३ । काठ. २६,५ । कपि. ४१,३ । श. ३,१,२७;५,२६-२७,४१—४३,६,१-४,१५; ३७,११,१,१७—१८ । काण्व. ४,१,२३,५,३३,३५—३६,५४;६,१—५;३७,११,१,१८—१९;१३,३३ ।

त्रिपद्यैवैनं गायत्र्या प्रोक्षति, वज्रो वै यूपो, ऽन्नꣳ यवो, यद्यवमीभिः प्रोक्षति वज्रेण वा एतदन्नं जयति, तेजो वै यूप, एष खलु वा ओषधीनां तेजो यद्यव,—स्तस्मादेतꣳ शिशिरा ओषधयोऽनुप्राणन्ति, यद्यवमुपवास्यति तेजसि वा एतत्तेजो दधात्य,—क्षꣳ वा अमेध्य,—मापो हवि,—र्यदवसिञ्चति मेध्यमेवैनत्करोत्य,—क्षꣳ वा अमेध्यꣳ, यदवस्तृणाति मेध्यमेवैनत्करोति, तक्षितो वा एष नग्नो यच्छकमवास्यत्य,—नग्नमेवैनमकः, स्व एवैनꣳ स्थाने दधात्य,—वृक्ण एवाभूद्, घृतेन द्यावापृथिवी आपृणेति, घृतेनैव द्यावापृथिवी आपूरयति, यजमानो वा अग्निष्ठास्तेजो घृतं,—मान्तमविच्छिन्नमनक्ति, यजमानमेव तेजसानक्ति, देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्वित्ये,—तद्धि देवानां मधु यद् घृतꣳ, सुपिप्पला ओषधीस्कृधीत्यो,—षधीरेव फलं ग्राहयति, तस्मादोष-सीत्यै,—न्द्रꣳ हि चषालꣳ सुपिप्पला ओषधीस्कृधीत्यो,—षधीरेव फलं ग्राहयति, पृथिवीमुपरेण दृꣳहेत्ये,- धयः शीर्षन् फलं गृह्णन्ति, दिवमग्रेणोत्तभाना,—ऽन्तरिक्षं मध्येनापृण, पृथिवीमुपरेण दृꣳहेत्ये,- —षाꣳ ३होपं लोकानाꣳ विधृत्यै मीयते, ता ते धामान्युश्मसि गमध्या, इत्ययं दधाति वैष्णव्या, वैष्णवो हि यूपः, स्वयैव देवतया, विष्णोः कर्माणि पश्यते,—ति संकल्पयति संमितत्वाय, ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं पर्यूहामी,—त्याशिषैवैषा, ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहेत्या,— शिषु एवैष परिग्र३हो, ऽप्योऽनुदरि पिश्वति धृत्यै ॥ ३ ॥ ३

वज्रो वै यूपो, यदन्तर्वेदि मिनुयान्निर्दहेद्, यद्बहिर्वेद्यनवरुद्धः स्या,—दर्धमन्तर्वेदि मिनो-त्य,—र्धं बहिर्वेद्य,—वरुद्धो ह भवति, न निर्दहति, नोपरस्याविः कर्तवै, यदुपरस्याविः कुर्याद्र्रथेष्ठाः स्यात्, प्रमायुको यजमानो, नातिस्थूलः का३र्यः, क्षुधं प्रजा नीयु,—र्नो अत्यण,—रूमपुमेवान्तरा, यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेऽमन्यन्ता,—ऽनेन वै नोऽन्ये ऽत्यण,—रूममुपेवान्तरा, यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेऽमन्यन्ता,—ऽनेन वै नोऽन्ये लोकमन्वारोक्ष्यन्तीति, तꣳ यूपेनायोपयꣳ,—स्तद्यूपस्य यूपत्वꣳ, यद्यूपः पुरस्तान्मीयते लोकमन्वारोक्ष्यन्तीति, तद्विष्णोः परमं पदं,—मिति समुन्माष्टि स्वर्गस्य लोकस्य स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै, तद्विष्णोः परमं पदं,—मिति समुन्माष्टि स्वर्गस्य लोकस्य समृष्ट्यै, नाभिदघ्नं परिव्ययत्यू,—र्ग्वा ओषधय, ऊर्जꣳ वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते प्रजानां च, यदि कामयेत, क्षुधं प्रजा नीयुरित्य,—रशनान्यूपान्मिनुयात्, क्षुधं प्रजा

[ता (या) ते (वां) धामान्यु (वास्तु०)० । ऋ. १,१५४,६; तै. सं. १,३,६,१; नि. २,७ । तै. सं. १,३,६ २]
विष्णोः कर्माणि पश्यत० । ऋ. १,२२,१९; सा. १६७१; अथर्व. ७,२६,६; तै. सं. १,३,६ २]
[४] मै. १,२,१४ । तै. ६,३,४ । कठ. २६,६ कपि. ४१,४ । श. ६,५ । काण्व. ६,६ । [तद्विष्णोः परमं पदं० । ऋ. १,२२,२०; सा. १६७२, अथर्व. ७,२६,७; तै. सं. १,३,६,२,४,१,९,३]

नियन्ति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्य, ऊर्जा यजमानꣳ समर्धयेयमिति, परिवीयोर्ध्वा-मुदूहेद्, वृष्ट्या एवेमां न्यूहत्यू,—र्जा यजमानꣳ समर्धयति, यदि कामयेत, न वर्षेत् पर्जन्य, ऊर्जा यजमानꣳ व्यर्धयेयमिति, परिवीयावाचीमवोहेद्, वृष्टिमेवेमां न्यूहत्यू,—र्जा यजमानꣳ व्यर्धयति, सर्वदेव३त्यो वै यूपो, यन्निखातं तत् पितृणाꣳ, यदूर्ध्वं तन्मनुष्याणाꣳ, यत्र रशना तदोषधीनाꣳ, यदूर्ध्वꣳ रशनायास्तद्विश्वेषां देवाना,—मिन्द्रस्य चषालꣳ, ये वै देवाः साध्या यज्ञमत्यमन्यन्त तेषाꣳ वा एतद्यदुपरिष्टाच्चषालस्याङ्गुलिमात्रं कार्य,—मङ्गुलिमात्रꣳ हि तदग्रा आसीद्, यत्ततो वर्षीयः कुर्याद्वज्रो भूत्वा यजमानस्य पशूनवतिष्ठे,—दिन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत, सोऽव्लीयत, तस्य वा एतदनुनद्ध्यै यच्चषालं पृथुमात्रं कार्यं, पृथुमात्रꣳ हि तदग्रा आसीद्, यदणिमतोऽगृह्णात् तस्मादणिमतो, यदिन्द्र उदयच्छत् तस्मादैन्द्रꣳ, यदि कामयेता,—ऽन्येऽस्य लोकमन्वारोहयेयुरित्य,—न्यस्य वृक्षस्य स्वरुं कुर्या,—दन्येऽस्य लोकमन्वा-रोहन्ति, यदि कामयेत, प्रजामनुसंतनुया,—दिति यूपस्य स्वरुं कुर्यात्, प्रजामेवानुसंत-नोति, यजमानो वा अग्निष्ठा,—स्तेजोऽग्नि,—र्यदित्थꣳ वेत्थꣳ वा मिनुयाद्यजमानं तेजसा व्यर्धये,—दग्निना सदृशं मेत३व्या यजमानस्य सतेजस्त्वाया,—ऽऽवृह ह स्म वै पुरा संस्थिते य-३ज्ञेऽग्नौ यूपं प्रास्यति, संभज्य स्रुचस्ते देवा अमन्यन्त, यज्ञवेशसमिदं कुर्या इति, तेऽब्रुवन्, परिधिभिरेव नः स्रुचः स्वगाकृताः सन्तु, स्वरुणा यूपः, प्रस्तरेण सदा इति, तेषाꣳ वा एष स्वगाकारो, न ह स्म वै पुरा पुरुषं महादेवो हन्ति, तत इदꣳ रु३द्रोऽन्ववातिष्ठत, तं देवा एताꣳ रुद्रस्यावेष्टिमपश्यꣳ,—स्त्रिः परस्तादनक्ति, त्रिरवस्तात, तत्पद्, पड्वा ऋतव, ऋतुभ्यो वा एतद्रुद्रमवयजत्या,—हुतिभाजो वा ऋतवोऽस्तोमभाज,—स्त एवास्यैतेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, यद्यूपाज्जुहोति वनस्पतिभ्यस्तेनावयजति, यद्रशनाया ओषधीभ्यस्तेन, यदात्मनो मनुष्येभ्यस्तेन, यदाह, दिवं ते धूमो गच्छत्विति, हविर्धानाच्चैना,—ऽन्तरिक्षं ज्योतिरित्या,—ग्नीध्राच्चेन, पृथिवीं भस्म स्वाहेति, सदसस्तेन, सर्वतो वा एतद्रुद्रमवय-जत्या,—हुत्या वा एतꣳ वनस्पतिभ्यः प्रच्यावयन्त्यु,—पयज्य मनु३ष्याः प्रयन्ति, तस्त्वाया देवताया अन्तर्धीयते, यूपो वै यज्ञस्य दुरिष्टमामुञ्चते, यद्यूपमुपस्पृशेद्यज्ञस्य दुरिष्टमामुञ्चेत, तस्माद्यूपो नोपस्पृश्यः, शुग्वा एष मीयते, स ईश्वरोऽशान्त इमाँल्लोकाञ् शुचार्पयितो,—र्ये-यक्षः स्यात् ॥ एष ते वायो ॥ इति ब्रूयाद्, यदि बहवः ॥ एते ते वायो ॥ इति ब्रूयाद्, पायुगोपा वै वनस्पतयः, स्वामेवैभ्यो देवतामपिसृजत्येषां लोकानामहिꣳसायै, यथा वै प्रोगꣳ

रञ्जुभिर्ध्रुत्वमेवैमिमं लोकां पूर्वेभ्युना,—स्त्वं एनमार्ति निनयन्ति, यदाह ॥ नमः स्वरुभ्यः ॥ इति, तेभ्य एवं नमोऽक,—स्तेऽस्मै विजिहते, तेऽस्मै लोकं विन्दन्त्ये,—ते वै देवानामृडयाता अस्मिल्लोके मस्ताः स्वरवोऽभिरोहारो, यांश्च पश्यति ते मस्ता, अथ यान्पश्यति ते पृहन्त ऊर्जा, यदाह ॥ नमः स्वरुभ्यो वृहद्भ्यो मारुतेभ्यः, मरुतान्मावगाम् ॥ इति तानेवं परिवृणक्त्ये,—ते वा अमुष्मिल्लोकेऽमुस्य प्रदातार,—स्तेऽस्मा अंशुं प्रयच्छन्ति ॥ अपश्चाद्दघ्वांस्त्रं भूयासम् ॥ इत्यपश्चाद्दघ्वांस्त्रं भवति ॥ ४ ॥ ४-१४

साध्यां वै देवा आस,—न्नेव वै तर्हि नान्याहुतिरासीद्, ते देवा अग्निं मथित्वाग्ना अजुहवु,—स्ते वै तयैवाहुत्या पशून्त्सृष्ट्वाथ पशुमालभन्त, यदग्निं मथित्वाग्नौ जुहोति तया वा एतदाहुत्या पशून्त्सृष्ट्वाथ पशुमालभन्ते, ऽथो पशवो वा एतदालब्धा यद्देवतां जनयन्त्यं,—थो तेज एवास्मै जनयन्त्य,—ग्नेर्जनित्रमसीत्या,—यतनमिव एतत्क्रियते, वृषणौ स्था इति, रेत एवैतद्दधाति, न हि तस्य रेतो धीयते यस्यैतौ न भवत, उर्वश्यसीति, वाग्वा उर्वशी, पुरूरवा असीति, प्राण एवं तन्मिथुनं,—माद्धरसी,—ति समनक्ति, तस्मिन्नेव मिथुने रेतो दधाति, गायत्रमसि, त्रिष्टुबसि, जगदसीति, छन्दोभिरेवैनं प्रजनयति, सावित्रीं प्रथमामन्वाह प्रसूत्यै, सवितृप्रसूता हि प्रजाः प्रजायन्ते, ऽथ द्यावापृथिवीया,—मपि हि द्यावापृथिव्योः पशुष, द्यावापृथिवी हि पशवोऽनुप्रजायन्ते, गायत्रीरन्वाह, गायत्रो३ ह्यग्नि,—र्गायत्रं छन्दा, अपरिमिता अन्वाहा,—ऽपरिमिता ३ ह्यग्नेस्तु ३न्वो, ऽग्निना वा अनीकेनेन्द्रो वृत्रमह,—स्तस्य समांसमस्य मीतस्य यत्र व्याध्यत ततो भूम्नोऽसृज्यत, तस्माद्धमेवता नानूच्या, व्यृद्धा हि सा, रक्षसामेतन्ववजयाय, परिधयः परिधीयन्ते, यद् समर्या परिधीन्प्रहरेत्तदनु रक्षांसि यज्ञमवजयेयु,—रग्रेण परिधयः प्रहृत्या रक्षसामेतन्ववजयाय, क्रूरमिव वा एतद्यज्ञे क्रियते यदग्ना अग्निं जुहुति, यदाह, भवतं नः समनसौ समोकसौ सचेतसा अरपसा इति, शमयत्येवं, शान्त एवं प्रह्रियते यजमानस्याहिंसायै, स्रुवेणाभिजुहोति, संजग्मानाभ्यामेवाभ्यां भागधेयमपिदधाति, यः कूटो वाकर्णो वा काणो वा शुष्को वावर्तेत तस्य यातयामा, स योऽपन्नदन्मतं तत्पशूना,—माग्नेयः पशु,—रग्निष्टोम आलभ्य, आग्नेयो ह्यग्निष्टोम, ऐन्द्राग्नः पशुरुक्थ्य आलभ्य, ऐन्द्राग्नानि ३ ह्युक्थ्यान्यै,—न्द्रो वृष्णिः षोडशिन्यालभ्य ऐन्द्रो वै वृष्णि,—रैन्द्रः

[५] मै. १,१,७। तै. ६,३,५। काठ. २६,७-८। कपि. ४१,५। श. ५,२-३,१२,६०। काण्व. ५,२-३,१३,६१।

षोडशी, सारस्वतीं मेष्यु,—तिरात्र आलभ्या, वाग्वै सरस्वती, वागनुष्टु,—वानुष्टुभी रात्रि,—यज्ञक्रतूनामेवैषा व्यावृत्ति,—र्यथा वै मत्स्योऽविचितो जनमवधूनुत एवं वा एते प्रजायमाना जनमवधून्वते, यस्त्वा एतानेवं वेद तमेतेनावधून्वते, कथं सवनानि पशुमन्ति वेद,—ति पृच्छेद्, यद्वपया प्रातःसवने चरन्ति तेन प्रातःसवनं पशुमद्, यत्पुरोडाशेर्माध्यंदिने सवने तेन माध्यंदिनं सवनं पशुमद्, यदङ्गैस्तृतीयसवने तेन तृतीयसवनं पशुमत्, कियता तत्पशोश्चरन्ति यद्वपया चरन्ति, कियता तद्यत्पुरोडाशैः, कियता तद्यदवदानै, रूपेण तत् पशोश्चरन्ति यद्वपया चरन्त्या,—त्मना तद्यत्पुरोडाशैः, शरीरेण तद्यदवदानैः, कस्मै पशुः प्रत्यङ् नियुज्यता, उदङ् प्रणीयते, दक्षिणत उपसाद्यते, प्राङ् हूयता, इति पृच्छेद्, यत् प्रत्यङ् नियुज्यत इमां तेन दिशमभिजयति, यद्दक्षिणत उपसाद्यत इमां तेन, यत्प्राङ् हूयत इमां तेन, यदुदङ् प्रणीयते मनुष्यलोकं तेनाभिजयति, यद्दक्षिणत उपसाद्यते पितृलोकं तेन, यत् प्राङ् हूयते देवलोकं तेन, यदाहुत्या ऊर्ध्वो धूम उदयते स्वर्गं तेन लोकं, यदिडोपहूतं प्रत्यङ् हरन्तीमं तेन लोकं, सर्वा वा इमा दिशः पशुया३ज्यभिजयति सर्वांल्लोका,—न्त्सर्वा एवास्येमा दिशोऽभिजिता भवन्ति सर्वे लोकाः ॥ ५ ॥ १५

अथैता आप्रियः, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचानोऽमन्यत, स एता आप्रीरपश्यत, ताभिरात्मानमाप्रीणीत, यज्ञो वै प्रजापति,—र्यदेता आप्रियो भवन्ति यज्ञमेवैताभिर्यजमाना आप्रीणीते, वपया वै पशोर्देवाः प्रातःसवने स्वर्गं लोकमायन्, यद्वपया प्रातःसवने चरन्ति वपया वा एतत् पशोर्यजमानः प्रातःसवने स्वर्गं लोकमेति, ते वै स्वर्यन्तोऽस्थानि शरीराण्यधून्वत, यदङ्गैस्तृतीयसवने चरन्त्य,—स्थ्नां शरीराणां निष्क्रीत्यै, पशुं स्नपयन्ति, यदेवास्याभिनिषण्णं शमलममेध्यं तच्छुन्धन्ति, पशुमुपाकृत्याग्निं मन्थन्ति पशूनामवरुद्ध्यै, द्वौ वै वज्रो, घोर३रोऽन्यः, शि३वोऽन्यो, यः शुष्कः स घोरो, य आर्द्रः स शिवो, वज्रेण खलु वै वीर्यं क्रियते, वज्रं वा एतदादत्ते वीर्याये,—पे त्वेतो,—प एवैन,—मुपावीरसीत्यु,—प ३ह्येषोऽवत्यु,—पो देवान्दैवीर्विशः प्रागुरित्ये,—ता वै दैवीर्विशो यत् पशवो, वह्नय उशिजा इत्ये,—ते वै वह्नय उशिजो यदृत्विजश्च धिष्ण्याश्च, बृहस्पते धारया वसूनीति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणैवैना यच्छति, हव्या ते स्वदन्तामिति, स्वदितमेवैनमालभते, देवत्वष्टर्वसु रणा इति, त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति, रेवतीरमेध्यमिति, पशवो वै रेवती,—र्यन्नुत्ये-

[६] मै. १,२,१५। तै. ६,३,६;७,२-४। काठ. २६,३। कपि. ४१,६-७। श. ६,७-१०;४,१०। क.ष्व. ६, ८-१०,४ ३६।

वैना, देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति, सवितृप्रसूत एवैनामादत्ते, ऽश्विनोर्बाहुभ्यामित्य,—श्विनौ वै देवानामध्वर्यूः, पूष्णो हस्ताभ्या,—मिति देवताभिरेव, द्वौ वै पाशौ, घो३रोऽन्यः, शि३वोऽन्यो, यो वार्शियः स घोरो, योऽयार्शियः स शिवं, ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेनेति, य एवं यार्शियः पाशस्तेनैनमालभते, प्रतिमुञ्चामीत्य,—भि हि मनु३ष्या दधत्य,—धृष्टे त्वा जुष्टमिति, यस्या एवं देवतायै पशुमालभ्यते तस्या एनं जुष्टमक,—र्धर्षा मानुषा इति, मनु३ष्या हि धारयन्ति, शुष्को वा एषोऽमेध्यो, यत्पशुं नियुनक्त्यमेधा एवैनौ मेध्यौ करोति, प्रत्यञ्चं नियुनक्ति, प्रत्यञ्चो हि पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते, प्राणेषु वा एतस्य देवता उपन्धिता यत्पशुं नियुनक्ति, प्रतीचीरेवास्मै देवता नियुनक्त्य,—द्भ्यस्त्वौषधीभ्या इत्य,—द्भ्यो ३ह्येषं ओषधीभ्यो जुष्टं प्रोक्षामीति यस्या एवं देवतायै पशुरालभ्यते तस्या एनं जुष्टमक,—रनु त्वा माता मन्यतामनु पितेत्य,—नुमत एवैनं मात्रा पित्रा भ्रात्रा सख्यालभते, ऽनुमानाविह देवान् देवायते यजमानायेति, देवताभ्य एवैनं निर्दिशत्य,—पां पेरुरसीत्य,—पा३ ह्येष पेरुः, स्वात्तं सद्धविरापो देवीः स्वदन्त्विति, स्वदितमेवैनमालभते, ऽथ यदुप गृह्णात्युप च सिञ्चति सर्वत एवैनं मेधेन समर्धयति, सं ते वायुर्वातेन गच्छतामिति, वातमेवास्य प्राणमन्ववाच्छति, सं यजत्रैरङ्गानीति, यज्ञियमेवैनमक,—सं यज्ञपतिराशिषेति, यजमानमेव यज्ञस्याशिषा समर्धयति, शिरो वा आघार, आत्मा हवि,—र्यदाघारमाघार्य पशुना समनक्त्यात्मन्नेवा एतच्छिरो यज्ञस्य प्रतिदधाति, वज्रो वै स्वरु,—र्वज्रः स्वधिति,—र्यत्स्वधितिनानक्ति वज्रेणैवैनं स्तृणुते, यावान् तया मूर्धन्यावद्यति, हविर्भूता वा एषा, हविषैव हविषोऽवद्यति ॥ ६ ॥ १६

अग्निना वै मुखेन देवा इमांल्लोकानभ्यजयन्, यत्पर्यग्नि करोत्यग्निना वा एतन्मुखेन यजमान इमांल्लोकानभिजयति, रक्षांसि वा एतं जिघांसन्ति, यत्पर्यग्नि करोति रक्षसामपहत्यै, त्रिः पर्यग्नि करोति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतल्लोकेभ्यो यज्ञाद्रक्षांस्यपहन्ति, चात्वालमपि पर्येत्ये,—षा वा अग्नीनां योनिः, स्कन्दति वा एतद्धविर्यद्विश्रोतति यद्विलिप्यते, ऽग्निर्वै सर्वा देवता, अत्र वै सापि देवता यस्या आलभ्यते, यत्पर्यग्नि करोति तामेवैनद्गमयति, कियद्धविरस्पृशोः, कियद्धा यत् प्रयाजा, एतर्हि खलु वै सर्वो यज्ञोऽप्रीत,—स्तस्मादा-

[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]
[७] मै. १,२,१५। तै. ६,३,८। श. ६,११। काण्व. ६,१३-१५।

श्राव्योऽपप्रैष्यति, देवताभ्यो वै पूर्वमाशुश्रव,—दथ वा अत्र पशोराश्रावयति, तस्मादाश्राव्योऽपप्रैष्यत्यु,—भये वा एतं बध्यमानमनुबध्यन्ते ये ग्राम्याः पशवो ये चारण्या, ये बध्यमानमनु बध्यमाना अन्वैक्षन्त मनसे,—ति यज्जुहोति तेषां वा एषोन्मोक्षो; यन्न जुहुयादनुन्मुक्ताः स्युरु३र्वन्तरिक्षं ३वीहीत्य,—न्तरिक्षदेव३त्यो वा एष एतर्हि, रक्षांसि वा एतं जिघांसन्ति, प्रेच्युतमितोऽप्राप्तममुत्रा,—ऽग्निं पुरस्ताद्धरन्ति रक्षसां पराणुत्त्यै रक्षसामपहत्या, अथो हव्याय वा एतद् प्रणीयमानाय देवताः पुरस्ताद्धरन्त्य,—ग्निं पुरस्ताद्धिहरन्त्यस्कन्नत्वाय, पशोर्वै मारणायानीयमानस्याहवनीयं मेध्योऽभ्युपक्रामति, यो वै तर्हि पशुमन्वारभते तं यज्ञस्याशीर्गच्छति, यदाह, रेवति प्रेधा यज्ञपतिमाविशेति, यत्र वा एतत् क्व च यजमानं सन्तं यज्ञस्याशीर्गच्छति, वपाश्रपणीभ्यामन्वारभते, तत्स्विदुभयमक,—रुरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन वातेनेत्य,—न्तरिक्षं वै पशवो, वातः प्राणः, प्राणानस्मिन् दधाति, त्मनास्य हविषो यजेति, देवता एवं प्रीणाति, समस्य तन्वा भवेति, पुनरेवैनं संभावयति, वर्षीयो वर्षीयसा इति, तेन यजमानो वसीयान् भवति, यद्यज्ञे पशुमाहुर्यत्तमभिमन्यन्ते ३क तर्हि यज्ञो भवतीति, यदाह, यज्ञं यज्ञपतौ धा इति, यज्ञपतौ वा एतद्यज्ञं प्रतिष्ठाप्याथ पशुमालभन्ते, स्कन्दति वा एतद्धविर्यद्विश्रोतति यद्विलिप्यते यत्तृणमुपास्यत्यस्कन्नत्वाय, प्रत्यञ्चं संज्ञपयन्ति, प्रत्यञ्चो हि पशवो मेधमुपतिष्ठन्त उदीचीनपादं स्यावृत्त्यै ॥ ७ ॥ १७

ऋत्विजो वृणीते, छन्दांसि वा ऋत्विज,—श्छन्दांसि वा एतद्वृणीते, यद्धोतारं वृणीते जगतीं तद्वृणीते, यदध्वर्युं पङ्क्तिं तद्, यदग्नीधमतिच्छन्दसं तद्, यन्मैत्रावरुणं गायत्रीं तद्, यद् ब्राह्मणाच्छंसिनं त्रिष्टुभं तद्, यत्पोतारमुष्णिहं तद्, यन्नेष्टारं ककुभं तद्, यदाह ॥ अग्निर्दैवीनां विशां पुरएता ॥ इति, यजमानं वा एतद्वृणीते, स वृतो वषट्करोति, नाच्छावाकं वृणीते, पश्चाजेव वा एषा, होत्राः स्व३र्ग्या, यदच्छावाक्या द्विदेवत्याः शंसति, द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्या, अथ यदग्नीधं मध्यतो वृणीते तस्मादयमग्निर्मध्यत ओषधीनां, यदुत्तमः सं स्वयंजता संस्वयंजति तस्मादुपरिष्टान्मथ्यमानः प्रजायत, एतद्वा अस्य छन्दांसि वृतानि युक्तान्यभूवन्, यद्वृता वषट्कुर्युश्चीतृप्यं यज्ञस्याशीर्गच्छे,—दथ यद्वृता वषट्कुर्वन्त्येकधा वा एतद्यजमाने यज्ञस्याशीः प्रतितिष्ठति, तस्मादेकः पशोर्वषट्करोत्ये,—कं हि वृणुते,

[८] मै. ६,३,७,५। काठ. २६,९। कपि. ४१,७।

दश वै पशोर्देवता, दशास्मिन् प्राणा, यद्दश प्रयाजा, या एवास्मिन् देवतास्ता एतद्युनक्त्य,—थ य एष एकादशो, यस्या एव देवतायै पशुरालभ्यते तामेवैतद्युनक्त्य,—थ यदेकादशानुयाजा, या एवैतद्देवता अयाक्षीत् ता एतैरनुप्रीणाति, हतो वा एष मृ३तोऽमुत्र भूतो, दश वै पशो-र्देवता, दशास्मिन् प्राणाः, प्राणाः खलु वै पशोर्देवता, यद्दश प्रयाजाः प्राणानेवास्य प्रयज-त्या,—त्मा वै प्राणानामेकादशो, आत्मा वपा पशो,—र्यदेष एकादशः परिशय आत्मा वा एत-दात्मानं परिशये, ऽथ यदेकादशानुयाजाः प्राणानस्मिन् दधाति ॥ ८ ॥ १८ – २०

[१६२७]

॥ इत्युपरिकाण्डे संक्रान्ता नाम नवमः प्रपाठकः ॥ ९ ॥

अथ दशमः प्रपाठकः।

पत्नी वै प्रच्यवमानाममुष्यादित्यस्य लोकमभिप्रच्यवेत, हिनस्ति खलु वा एष तꣳ योऽस्य लोकमभिप्रच्यवते, यदाह, नमस्त आतानेत्य,—मुष्मा एव नमोऽक,—रनर्वा प्रेहीत्युनेनाः प्रेही,—ति वा एतदाह यजमानाय, घृतस्य कुल्यामनु सह रायस्पोषेणेत्या,—शिषमेवाशास्ते, देवीरापः शुद्धा यूयं देवान् युयुढ्वमित्य,—पो वा एतद्रूपन्ति, पूताभिराभिः पूताश्चरन्ति, तस्माद्वा एता बहु रिप्रममेध्यं चरन्तीमापो न हिꣳसन्ति, हतो वा एष मृ३तोऽमुत्र भू३तो,-ऽद्भ्यो वै प्रजाः प्रजायन्ते, पत्नी प्रजनयति, यदद्भिरभिषिञ्चति पुनरेवैनं प्रजनयति, सर्वान् प्राणान्त्संमृशति सर्वाण्यङ्गान्ये,—तावान् हि पशुः, पशोर्वै मार्यमाणस्य प्राणाञ्छुगृ-च्छति, यदाह, वाचमस्य मा हिꣳसीः, प्राणमस्य मा हिꣳसीरित्य,—द्भिर्वास्यैतत् प्राणाञ्छुचो मुञ्चति, यत्ते क्रूरꣳ यदास्थितं तद्देतेन शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्वेति, यदेवास्य गमयन्तः क्रूरमक्रꣳस्तदक्रूरमक,—स्तच्च शमयति, ये वा एते स्तोका अवपद्यन्ते त इमाम-शान्ता ऋच्छन्ति, तत इमाञ्छुगृच्छति, यदाह, शमद्भ्य इति, शमयत्येवै, शान्ता एवे-मामृच्छन्त्यहिꣳसाया, ओषधे त्रायस्वैनमित्या,—ह त्रात्या एवं, स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीरिति,

[१] मै. १,२,१६। तै. ६,३,८—९। वा. ६,१२-१३,१५-१६;५,१०;१,१,२१;७,३०;१४,२२;१,७,२९;६,११; २२,१८;३९,१३। काण्व. ६,१४—१५,१९—२२;५,१४;१,१,३७;७,३०;१५,१४;१,१०,४६,१४,३९।३९,२१। मै० ३७

वज्रो वै स्वधिति,—र्वज्रादेवास्मा एतदन्तर्दधात्यहिꣳसायै, सर्वाभ्यो वै देवताभ्यः पशुराल-भ्यते, यदाह, रक्षसां भा३गोऽसीत्ये,—तेन वा एतद्भागधेयेन रक्षाꣳसि पशोर्निर्भजती,—द-महꣳ रक्षोऽवबाध, इदमहꣳ रक्षोऽधमं तमो नयामीत्या,—ह रक्षसां ध्वरायै रक्षसाम-न्तरित्यै, पशवो वै वपा, यदुपतृन्द्यात् पशून् हिꣳस्याद्, यन्नोपतृन्द्यादयताः स्यु,—र्यत्र तन्निष्ठं तदुपतृन्द्यात् पशूनाꣳ यत्या, इषे त्वोर्जे त्वेती,—षे ३ह्येषोर्जे ३ह्येषा, देवेभ्यः शुन्धस्व, देवेभ्यः शुम्भस्वेति, देवेभ्य एवैनाꣳ शुन्धति, देवेभ्यः शुम्भति, घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवातामिति, घृतेनैव द्यावापृथिवी प्रोर्णोत्य,—मुष्मै त्वा जुष्टमिति, यस्या एव देवतायै पशुरालभ्यते तस्या एनं जुष्टमक,—र्नमः सूर्यस्य संदृशा इत्य,—मुष्मा एव नमोऽक,—रित्थं पर्यावर्तत, एवꣳ हि यज्ञः पर्यावर्तते, ऽथो अमुष्य वा एतदादित्यस्यावृतमनु पर्यावर्तत, उ३र्वन्तरिक्षꣳ ३वीहीत्य,—न्तरिक्षदेव३त्यो वा एष एतर्हि, रक्षाꣳसि वा एतं जिघाꣳसन्ति, प्रच्युतमितोऽप्राप्तममुत्र, काष्मर्यमयी वपाश्रपणी भवतो रक्षसामपहत्यै, यस्मा एवामुतोऽग्नि पुरस्ताद्धरन्ति तस्मा इतो देवता वा एतद्धव्यमनुपर्यावर्तमानमेति, चरमत उपप्रतिगृह्णात्यच्छम्ब-ट्काराय, यदतिहरे देतमेवातिहरेद्, विश्वतोमुखो ३ह्यग्निः, प्रत्युष्टꣳ रक्षः, प्रत्युष्टारातिः,—रित्याह रक्षसां ध्वरायै रक्षसामन्तरित्यै, वायोः स्तोकाना,—मिति तृणमुपास्यति स्तोकानाꣳ विधृत्यै, वायु३र्ह्येतानमुतो विसृजति प्रजानां क्लृप्त्या, अग्रꣳ वा एतद्ध-व्यस्या,—ऽग्रमोषधीना,—मग्रेणैवाग्रꣳ समर्धयत्य,—थो अग्राय वा एतद्धव्यस्याग्रमोषधीनामिध्मं चिनोति, हविषो वा एते स्तोकाः, स्कन्दति वा एतद्धविर्यद्विश्वोतति यद्विलिप्यते, यदाह ॥ १

जुषस्व सप्रथस्तमꣳ वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ २

इति तेनैवास्य ते हुता अस्कन्ना वषट्कृता भवन्ति, नानादेव३त्या वा एकाद-शिन्यां पशवा आलभ्यन्ते, ऽथात्राग्नेयी प्रथमानूच्यते, ऽग्निर्वै सर्वा देवता, अत्र वै सापि देवता यस्या आलभ्यते तामेवैनद्गमयति, यर्हि लोहिनीव शृता तर्हि रौद्री, यत्तर्हि जुहुया-द्रुद्रायास्य पशूनपिदध्याद्, यर्हि श्येनीव शृता तर्ह्याग्नेयी, तर्हि होत३व्या, तथास्य रुद्रः पशूननभिमानुको भवति, क्रूरꣳ वा एतर्हि पशुर्यर्ह्यभिशृतो, यद्वपामभिघारयै

[जुषस्व सप्रथस्तमꣳ... आसनि । ऋ. १,७५,१; तै. ब्रा. ३,६,७,१]

पृषदाज्यमभिघारयेद्रुद्रायास्य पशूनपिदध्या,—दथ यत् पृषदाज्यमभिघार्य वपामभिघारयति यथा-पूर्वꣳ वा एतत् पशुमुपैत्य,—थो एवमस्य रुद्रः पशूननभिमानुको भवति, पुरस्तात् स्वाहाकारा वा अन्ये देवा, उपरिष्टात् स्वाहाकारा अन्ये, त उभयेऽस्ये मेध्येऽवरुध्यन्ते ॥ स्वाहा देवेभ्यः ॥ इति पुरस्ताद्वपाया जुहुयात् ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ इत्युपरिष्टात्, तथास्य त उभयेऽवरुद्धा भवन्ति, पशोर्वै मार्यमाणस्य प्राणाञ्छुगृच्छति, प्राणान्त्संगृह्य वपा-मुपविसृजे,—दात्मा वपा पशो,—रात्मन्नेवास्य प्राणान् दधाति, दक्षिणस्य पूर्वपदस्यावदेय,—मिति ह स्माहुर्दाक्षायणा,—स्तथास्य सर्वस्य पशोरवत्तं भवतीति, स्वाहोर्ध्वनभसं मारुतं देवं गच्छत,—मिति वपाश्रपणी अनुप्रास्यत्य,—र्ध्वनभसो वा एते मारुतस्य भागधेयं, तमेवैनेन गमयती,—मे वा एते विषूची अनुप्रास्यत्य,—नयोर्विधृत्यै ॥ १ ॥ ३-७

पुरुषꣳ वै देवा मेधायालभन्त, तस्य मेधोऽपाक्रामत्, सोऽश्वं प्राविशत् तेऽश्वमालभन्त, तस्य मेधोऽपाक्रामत्, स गां प्राविशत्, ते गामालभन्त, तस्य मेधोऽपाक्रामत्, तस्य मेधोऽपाक्राम३त, सोऽजं प्राविश३त्, तेऽ-सोऽविं प्राविशत्, तेऽविमालभन्त, तस्य मेधोऽपाक्रामत्, स यवं प्राविशत्, ते यवमालभन्त, तस्य मेधो-जमालभन्त, तस्य मेधोऽपाक्रामत्, ते व्रीहिमालभन्त, तꣳ व्रीहा आप्नुवन्, ऽपाक्रामत्, स व्रीहिं प्राविशत्, सुषिरो वै तर्हि पशुर्यर्हि यद्व्रीहिमयः पुरोडाशो भवति मध्यतो वा एतत् पशोर्मेधो धीयते, द्वादशकपालो भवति, वपामुत्खिदन्ति, यद्व्रीहिमयः पुरोडाशो भवत्यपिहित्या असुषिरत्वाय, प्रजननायैकादशकपालः का३र्या, द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमनु पशवः प्रजायन्ते, पशुष्वेवास्य पशून् दधाति, एकादशाक्षरा त्रिष्टु,—बैन्द्रमेतच्छन्दो यत्त्रिष्टु,—बैन्द्राः पशवः, देवा अ३न्योऽन्यस्मै पशुमालभꣳ स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेऽमन्यन्ता,—ऽनेन वै नोऽन्ये लोकमन्वा-रोक्ष्यन्तीति, तस्य मेधं प्लाक्षारय,—न्त्स प्लक्षोऽभवत्, तत् प्लक्षस्य प्लक्षत्वं, क्लोम्नो वै तꣳ हृदयात् प्लाक्षारयꣳ,—स्तस्मादेतत् सुषिरꣳ यत् प्लक्षशाखाया अवद्यति, मेधादेवाध्यवद्यति, पृषदाज्यस्योपहत्य पृच्छति ॥ शृतꣳ हविः शमिता ॥ इति शृतत्वाय, त्रिराह त्रिषत्या हि देवा, अथो यथेदं ब्राह्मणेभ्य ओदनं पक्वं प्राहैवꣳ वा एतद्देवेभ्यो हविः शृतं प्राहो,—त्तरतः परीत्याभि-घारयति पशूनामवरुद्ध्यै, प्राणापानौ वै पृषदाज्यं,—मात्मा हृदयꣳ, यत्पृषदाज्येन हृदयमनक्ति मध्यतो वा एतत् पशोः प्राणापानौ दधाति, सोमस्य वा एतद्धविर्यद्धवि,—रथ वा एतत्

[२] तै. ६,३,९—१०।

पशोर्यदुत्तरबर्हिर्बर्हिः, श्रद्धा एतद्धव्यमुक,—रस्कन्नमविक्षुब्धं मे हव्यं देवता गच्छदिति, देवानाꣳ वै सर्वेषां मनाꣳसि गच्छति पशा आलभ्यमाने, मनो वै मनोता, यन्मनोताया अन्वाह मनाꣳ-स्येवैषाꣳ संभावयति, हतो वा एष मृ३तोऽमुत्र भूतो, मनो वै मनोता, यन्मनोताया अन्वाह पुनरेवैनꣳ संभावयति ॥ २ ॥ ८-१०

हृदयस्यावद्यति, मनस एव तेनावद्यत्य,—थो यावानेव पशुस्तस्यावत्तं भवति, जिह्वाया अवद्यति, वाच एव तेनावद्यत्य,—थो एतया ह्यग्रा ओषधीनाꣳ रसं प्राश्नाति, श्येनस्याव-द्यति, वक्षस एव तेनावद्यत्य,—थो अत्र हि स रसः प्रतितिष्ठति दोष्णोऽवदाय पार्श्वयोरवद्यति यज्ञस्य परिगृहीत्यै, यक्नोऽवद्यति, मध्यस्यैव तेनावद्यति, मतस्नयोरवद्यति, रूपस्यैव तेनावद्यति, श्रोण्या अवदाय गुदस्यावद्यति, तदुत्तमस्यावद्यत्य,—त्तमꣳ ह्यायु,—र्यदुन्यस्यो-त्तरस्यावद्येत प्राणमस्यापिदध्यात्, प्रमायुकः स्यात्, तस्मात्तस्योत्तमस्यावद्यत्य,—त्तमꣳ ह्यायु,—हृदयस्यावदाय जिह्वाया अवद्यति, यथापूर्वꣳ वा एतत् पशुमुपैत्य,—थो एवमस्य सर्वस्य पशो-रवत्तं भवत्ये,—कादश कृत्वोऽवद्यति, दश वै पशोः प्राणा, आत्मैकादशो,—स्तथास्य सर्वस्य पशोरवत्तं भवत्ये,—कादश वा एतान्यवदानानि, तानि द्विर्द्विरवद्यति, तद् द्वाविꣳशति,—स्त्रीणि त्र्यङ्गाणि, तत् पञ्चविꣳशतिः, पञ्चविꣳशेन वै स्तोमेन मनुः प्रजा असृजत, तन्म-नुस्तोमो वा एष प्रजननायै,—तद्धि सर्वस्य पशोरवत्त,—मथ वै प्राणस्यापानस्य व्यानस्य तेषाम-नवत्तꣳ, यत् त्र्यङ्गाणामवद्यति तेनैव प्राणस्यापानस्य व्यानस्य तेषामवत्तं भवति, विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पशूनभ्यवमत्, तस्मात् पशवो विश्वरूपा, अभिवान्तो वै पशुः पुरितं,—स्तस्मात् पृष्टीनां मज्जा नाद्यः, स वा अधस्तान्न प्राप्नो,—देतद्धि जीवं, तस्मादतोऽवद्यत्य,—क्ष्णयाङ्गानामवद्यति, पशुꣳ वा एतदाश्रुभयति, तस्मात् पशवोऽक्ष्णयाङ्गानि प्रहरन्तो यन्त्या,—ग्नेयो वै सर्वः पशु,—रथ वा उतान्यस्यै देवताया आलभ्यते, यद्दोष्णः पूर्वार्धादग्नयेऽवद्यति गुदस्य मध्यतः श्रोण्या जघानतस्तथास्य सर्वस्य पशोरग्नयेऽवत्तं भवति, त्रेधा गुदं करोति, त्रेधा ३ह्येतर्हि पशु,—३स्त्य-ङ्गाणि समवत्तमवदानानि, यावानेव पशुस्तस्मिन्नायुर्दधाति, त्रेधा मेदः करोति, मेदोरूपा हि पशवः, सर्वाणि वै पशोर्मेधतोऽङ्गानि मेद्यन्ति, यावानेव पशुस्तस्मिन् मेदो रूपं दधाति, बहुमर्या यज्ञकुणपीं,—ति ह स्माह यज्ञवचा राजस्तम्बायनः प्र वा इतो मनुष्याः पशुं च्यावयन्ति,

[३] तै. ६,३,१०।

नामुत्र गच्छन्तीति, यद्धिरण्यमवधाय जुहोति हिरण्यज्योतिषमेवैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयति ॥ ३ ॥
११
वसाहोमं प्रयौति, रसं वा एतत्प्रयौति, स्वधितिना प्रयौत्ये,—तेन हीतेरषामङ्गानामवद्यति,
तत्स्विददवदानमक,—रयो वज्रेणैवाहुतिमवरुन्द्धे, यूप एतयान्वितꣳ समर्पयन्त्यू,—र्ध्वं रसो गूरू,—
र्जो वा एतद्रसेन पशुꣳ समर्धयन्त्य,—थो यावानेव पशुस्तस्मिन्त्संदधाति, पार्श्वेनापिदधात्यूर्जः
परिगृहीत्यै, हतो वा एष पृ३क्षोऽमुत्र भूतो, यत्पशुꣳ संमृशति पुनरेवैनꣳ संभावयति,
हव्यं पूर्वं देवता गमयित्वाथ शरीरमन्वारोहयितु३न्य,—मित्याहुर्यदाहुतीर्हुत्वा पशुꣳ संमृशति
हव्यꣳ वा एतत् पूर्वं देवता गमयित्वाथ शरीरमन्वारोहयत्य,—र्धर्चे जुहोती,—यꣳ वा अर्ध-
ऋ३चो, ऽसा अर्धर्चो, ऽन्तरेमे अन्तरिक्ष,—मन्तरिक्षमिमाः प्रजाः, प्रजास्वेव रसं दधाति,
वनस्पतिꣳ यजति, सोमो वै वनस्पतिः, सौमीरिमाः प्रजाः, प्रजास्वेव रसं दधाति, प्राणा-
पानौ वै पृषदाज्य,—मात्मा हवि,—र्यत्पृषदाज्यं जुहोत्यात्मन्वा एतत् पशोः प्राणापानौ दधाति,
दिग्भ्यो जुहोती,—मा एव दिशो रसेन व्युनक्ति, प्राचीमुत्तमां जुहोति, प्राचीमेव दिशं पुनरुपा-
वर्तन्ते, ऽग्यूमीꣳ होत्रे हरन्ति, वैश्वदेवो वै होता, वैश्वदेवीरिमाः प्रजा, ऊवः खलु वै
प्रजा अनूपजीवन्ति, सर्वा एवैनाः पयस्विनीः करोति, गुदेनोपयजति, प्राणो वै गुदः,
प्राणादधि प्रजाः प्रजायन्ते प्रजननाय, स्थविमत उपयजति, स्थविमतो हि प्रजाः प्रजायन्ते,
यदणिमत उपयजेत् प्रजननमपिहन्याद्, तस्मात् स्थविमत उपयजत्य,—संभिन्दन्नुपयजति प्राणा-
नामसंभेदाय, यत्संभिन्द्याद् प्राणान्त्संभिन्द्याद्, यं द्विष्यात्तस्य संभिन्द्यात्, प्राणानस्य
संभिनत्ति, नोपयज्यꣳ, यदुपयजेत् प्राणानुपयजेत्, प्रमायुकः स्याद्, तदाहु,—रुपयज्यु-
मेव, प्रजननꣳ वा उपयजो, ऽपि ह स प्रजायते य उपयजतीत्याभारद्वाजो,—ति ह स्माह
शुचिवृक्षो गौपालायनः, किं तर्हि प्रजा आसन्यर्हि यज्ञो नानोपयद्भिरासी,—त्स प्रजाः प्राजा-
यन्त, नौषधयः फलमगृह्णन्, यदा वाव यज्ञ उपयद्भिः समभवदथ प्रजाः प्राजायन्ता,—ऽथौ-
षधयः फलमगृह्ण,—न्नेकादश प्रयाजा, एकादशानुयाजा, एकादशोपयज,—स्तत्त्रयस्त्रिꣳशत्,
त्रयस्त्रिꣳशद्देवता,—स्ता एवास्यैताभिरभीष्टाः प्रीता भवन्त्ये,—तद्वा अस्य पशोरन्तर्वाणिष्ठोऽन-
भीष्टोऽभूद्, यास्य मात्रा तामेनं गमयति, स्व३र्ग्यो वै सर्वः पशु,—र्यदन्यत्राहवनीयाज्जुहु-

[४] मै. १,१,१७ । तै. ६,३,११ ।

याद्स्वर्ग्यः स्याद्, पशुश्रपणादग्निमाहरन्ति तेन स्व३र्ग्यः सर्वः पशु,—र्यत एव पूर्वमवादात्ततोऽ-
परमवद्यति, तस्मात् समानाद्योनेर्नानारूपाः पशवः प्रजायन्ते, यज्ञो वै देवानामत्यने,—दत्
देवा उपयद्भिरभ्यवयन्ननतिनेदाय, यदेता उपयजो भवन्ति यज्ञमेवैताभिरपिवपन्त्यनतिनेदाय,
यदाथा वै पुरुषः प्रत्यङ् छिद्र एवꣳ यज्ञः प्रत्यङ् छिद्रं,—स्तं देवा उपयद्भिरप्यदधुरछिद्रत्वाय,
यदेता उपयजो भवन्ति यज्ञमेवैताभिरपिदधात्यछिद्रत्वाय ॥ ४ ॥ १२
ये केचावाचीनमेकादशिन्याः पशवस्तानुत्तरमर्धꣳ यूपस्य नियुञ्ज्याद्, रौद्रा वै पशवो,
ऽग्निर्विधृति,—र्दक्षिणे हविर्धाने सोममासादयन्ति, तथास्य रुद्रः पशूननभिमानुको भवति,
पात्रेषु वा अहमध्वर्युं चानध्वर्युं च विजानामी,—ति ह स्माहारुणं औपवेशिः, कति पात्राणी,-
—ति पृछेद्, द्वादश पात्राण्यु,—पाꣳशुसवनस्त्रयोदशꣳ, यत्तन्मीमाꣳसन्ते, पात्रा३न्न-
पात्रा३मिति, मीमाꣳसन्ते हि त्रयोदशं मासं, मासा३न्न मासा इति, पञ्च प्रातःसवने
पुरोडाशा,—श्चत्वारो माध्यंदिने सवने, चत्वारस्तृतीयसवने, इतो वा एता निरमिमीत
प्रजापति,—रात्मन एव, यत एवैता निरमिमीत तदेतैरपिधीयते, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्ध-
न्ता,—ऽऽयतनवन्तोऽसुरा आस,—न्ननायतना देवा, इमे लोका असुराणामायतनमासꣳ,—स्ते
देवाः सꣳस्तम्भꣳ सꣳस्तम्भं पराजयन्ता,—ऽनायतना ह्यासꣳ,—स्ते वै सवनान्येवायतनमचायꣳ,-
—स्तानि प्राविशꣳ,—स्तानि नाध्रियन्त, ते वै पुरोडाशानेव सवनानामायतनमचायꣳ,—स्ता-
न्निरवपꣳ,—स्तान्यध्रियन्त, ततो देवा अभवन्, परासुरास्त,—य एवꣳ वेदायतनवान्
भवति, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, तस्मादनुसवनं पुरोडाशा
निरूप्याः सवनानां धृत्यै, तस्मादनुसवनं पुरोडाशः प्राश्यः सोमपीथस्य धृत्यै, घृतꣳ वै
देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्न,—न्नभि खलु वा एतं घारयन्ति, यत् प्राश्नीयात् सोमपीथꣳ हन्याद्,
यन्न प्राश्नीयात् सोमपीथेन व्यृध्येत, यत्रानभिघृतं तत् प्राश्यः सोमपीथस्य धृत्यै, तन्न
स्कन्द्यं, प्राश्य एवे,—न्द्रो वै वृत्रमहꣳ,—स्तस्मै किं चनाधिनोत्, तं पुरोडाश एवाधिनोत्,
तस्मात् पुरोडाशः प्राश्यः सोमपीथस्य धृत्यै, पञ्च प्रातःसवने पुरोडाशाः, पुरोडाशः
परिवापो धानाः करम्भः पय३स्या, सा पुरोडाशपङ्क्ति,—र्द्विनाराशꣳसाः प्रातःसवने,

[५] काठ. २९,१ । वा. १९,२१ । काण्व. २१,२१ ।

द्विनाराशꣳसा माध्यंदिने सवना, एकनाराशꣳसास्तृतीयसवने, सा नाराशꣳसपङ्क्ति,—स्त्रीणि
सवनान्यवभृथो, ऽनुव३न्ध्या सवनानां पञ्चमी, सा सवनपङ्क्ति,—रेषा वै सा पङ्क्तिर्यामा-
हुर्ब्रह्मवादिनो, वेत्थ तां पङ्क्तिꣳ यया न स्तुवते न शꣳसन्त्य,—थ यज्ञꣳ वहन्त्य,—थ यज्ञꣳ
सꣳस्थापयन्ता इति ॥ ५ ॥ १३
देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, तेषाꣳ वा इन्द्रियाणि वीर्या३ण्यपाक्राम,—न्नृक्सामे वा एभ्य-
स्तदपाक्रामतां, पशवो वागिन्द्रियं प्राणापानौ, तैर्वा इन्द्रोऽकामयत, सायुज्यं गछेयमिति॥
हरिवꣳ इन्द्रो धाना अत्तु ॥ इत्यृक्सामे वा इन्द्रस्य हरी, ऋक्सामाभ्यामेव सायुज्यमगछत् ॥
पूषण्वान्करम्भः ॥ इति, पशवो वै पूषा, पशुभिरेव सायुज्यमगछत् ॥ सरस्वतीवान् भारती-
वान् परिवापः॥ इति, वाग्वै सरस्वती, वाचैव सायुज्यमगछत्॥ इन्द्रस्यापूपः॥ इतीन्द्रियꣳ वा
इन्द्र, इन्द्रियेणैव सायुज्यमगछत् ॥ मित्रावरुणयोः पयस्या ॥ इति प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ,
प्राणापानाभ्यामेव सायुज्यमगछत्, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तद्य एवꣳ वेदैतैरिन्द्रि-
यैर्वीर्यैरेताभिर्देवताभिः सायुज्यं गछति, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, दीर्घजिह्वी वै
देवानां प्रातःसवनमवालेद्, तदमायत्, सा पयस्याभवत्, तस्मात् पय३स्या विमदित-
रूपेव मैत्रावरुणी प्रातःसवने स्यात्, प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ, प्राणापानौ वा एतन्मुखतो
यज्ञस्य धीयेते, न पुरः पर्याकुर्यात्, यत्पुरः पर्याकुर्यादुदात्ततः प्रजा हन्यादृक्सामेनन्ववजयाय,
यूपः पुरस्तान्मीयते, यदेतेन यूपं पशुꣳ हरेयुस्तदनु रक्षाꣳसि यज्ञमवजयेयु,—रन्तराग्निं च यूपं
च हन्यो रक्षसामनन्ववजयाय ॥ ६ ॥
१४-२४
समुद्रं गछ स्वाहेत्यु,—दस्युꣳ वा एतद्गजन्त्य,—न्तरिक्षं गछ स्वाहेति, रेत एवैतद्दधाति,
देवꣳ सवितारं गछ स्वाहेत्या,—ह प्रसूत्या एवा,—होरात्रे गछ स्वाहेत्य,—होरात्रे ह्यनु प्रजाः
प्रजायन्ते, मित्रावरुणौ गछ स्वाहेति, प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ, प्राणापानावेवासु
दधाति, द्यावापृथिवी गछ स्वाहेत्याभ्यामेवैनाः सृष्टाः परिगृह्णाति, छन्दाꣳसि गछ
स्वाहेति, वाग्वै छन्दाꣳसि, वाचमेवासु दधाति, सोमं गछ स्वाहेत्य,—न्नꣳ वै सोमो,
ऽन्नमेवासु दधाति, यज्ञं गछ स्वाहेति, यज्ञिया एवैना अक,—र्दिव्यं नभो गछ स्वाहेति,

[६] काठ. २९,१—२ ।
[७] मै. १,२,१८ । तै. ६,४,१ । वा. ६,२१ । काण्व. ६,२८—२९ ।

वृष्टिमेवाभ्यो निनयन्त्य,—ग्निꣳ वैश्वानरं गछ स्वाहेति, सꣳवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः,
सꣳवत्सरं एवैनाः प्रतिष्ठापयति, सꣳवत्सरायुषमेनाः करोति, मनो हार्दिꣳ यछ,—त्याह
प्राणानां गोपीथायौ,—षधीभ्यस्त्वेत्यो,—षधीष्वेव रसं दधाति, यो वै विद्वान् वाविद्वान् वोप-
यजो मिथुनयोप यजति प्राणान् वा एतन्मिथुनयाकुरुते, यदाह, मनो हार्दिꣳ यछेति,
प्राणान् वा एतद्वशः कल्पयते, पशुर्वा आलब्धः शोचति, तस्य मध्यꣳ शुगभिसमेति,
सा हृदयेध्यागछति, यत् पुरुषमुपस्पृशेन्मनु३ष्यान्छुगृछेद्, यद्गामुपस्पृशेत् पशून्छुगृछेद्,
यदाऽऽरूपस्पृशेद्वनस्पतीꣳ शुगृछेद्, यत्तृणमुपस्पृशेदोषधीः शुगृछेद्, यदुदकमुपस्पृशेदपः शुगृछेद्,
यदार्द्रमनुदकं तच् शान्तं, तत्रोपोप्यं, तद्देवताꣳ शुचमवयजति ॥ ७ ॥ २५
[१६५१]

॥ इत्युपरिकाण्डे पात्नीवन्तो नाम दशमः प्रपाठकः ॥ १० ॥

अथैकादशः प्रपाठकः ।

सौत्रामणी ।

समिद्धा इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रꣳ वि दुरो ववार ॥ १
नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ २
ईडितो देवैर्हरिवाꣳ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्धमानः ।
पुरंदरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३
जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तꣳ वसुभिः सजोषाः ॥ ४
इन्द्रं दुरः कव३ष्यो धावमाना वृषाणꣳ यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥ ५

[१] काठ. ३८,६ । तै. ब्रा. २,६,८ । वा. २०,३६—४६ । काण्व. २२,११—३१ ।

उपासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
पेशस्वती तन्तुना सꣳवयन्ती देवानां देवꣳ यजतः सुरुक्मे ॥ ६

दैव्या मिमाना मनसा पुरुत्रा होतारा इन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ७

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा वृषणं न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥ ८

त्वष्टा दधदिन्द्राय शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ९

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदातु हव्यं मधुना घृतेन ॥ १०

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्त्स्वाहाकृतं जुषताꣳ हव्यमिन्द्रः ॥ १ ॥ ११

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्प३देऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधुशष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमदाभरन्नश्विनेन्द्राय वी३र्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वेत्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुराया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न च३न्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वी३र्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वेत्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजꣳ यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षद्दुरो दिशः कव३ष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशा इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वती शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना संजानाने सुपेशसा सम-

[२] तै. ब्रा. २,६,११ । वा. २१,२९—३९ । काण्व. २३,३०—४० ।
मै० ३८

ञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रेण भेषजꣳ, श्येनो न रंहसा हृदा पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वीतामाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वीतामाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रो हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षत्त्वष्टारꣳ रूपकृतꣳ सुपेशसꣳ वृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं नः सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियꣳ वृको न रभसो भिषग्यशः सुराया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वेत्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानꣳ व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु वेत्वाज्यस्य होतर्यज, होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहा ऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजैः स्वाहा सोममिन्द्रियैः स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारꣳ वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजैः स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥ १२

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः ।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ।
तनूपा भिषजा सु३तेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजाꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वह ॥ १३
इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ १४
आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विना इषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥ १५
अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ १६
कव३ष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ १७

[३] काठ. ३८,८ । तै. ब्रा. २,६,१२ । वा. २०,५५—६६ । २१,४१—५१ । [समिद्धो अग्निरश्विना०… । अथर्व. ७,७३,२]

उषासा नक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः । संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ १८
पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥ १९
तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ २०
अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते ॥ २१
ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ २२
गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधाताꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ ३ ॥ २३
अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ २४
यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।
स बिभेद बलं मघं नमुचा आसुरे सचा ॥ २५
तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियम् ॥ २६
य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः ।
स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ २७
सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ २८
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ २९
युवꣳ सुराममश्विना नमुचा आसुरे सचा । विपिपाना सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ३०

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिस्रुता शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुत,—स्तानश्विना सरस्वतीन्द्रो जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु, पिबन्तु, मदन्ताꣳ, व्यन्तु, होतर्यज ॥ ३१

[४] काठ. ३८,८—९ । वा. २०,६७—७९; २०,३३—३४; २१,४२ । काण्व. २२,५२—६४; २२,४६—४७, २३,४३ । तै. ब्रा. २,६,१२ । [युवꣳ सुराम०…पत । ऋ. १०,१३१,४; अथर्व. २०,१२५,४; तै. ब्रा. १,४,२,१ ।

पुत्रमिव पितरा अश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।
यत्सुरामꣳ व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३२
अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वी३र्यं बलम् । हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्धयन् ॥ ३३
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्रं कर्मस्ववतु ॥ ३४
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ३५
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥ ३६
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥ ४ ॥ ३७

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रायाश्विना तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज देवीर्द्वारो, अश्विना भिषजेन्द्रꣳ सरस्वती प्राणान्न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, यज देवी उषासा, अश्विना सुत्रामेन्द्रꣳ सरस्वती बलं न वाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य वीताꣳ, यज देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्, श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य वीताꣳ, यज देवी ऊर्जाहुती दुघे, सुदुघेन्द्रꣳ सरस्वत्यश्विना भिषजावतꣳ शुक्रं न ज्योतिः स्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य वीताꣳ, यज देवा देवाना भिषजा होतारा इन्द्रमश्विना वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳ होतृभ्यां दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य वीताꣳ, यज देवीस्तिस्रः,—स्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती शूषं न मध्ये नाभ्या इन्द्राय दधुरिन्द्रियꣳ, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, यज देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथो, रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि, वसु-

[पुत्रमिव पितरा० । ऋ. १०,१३१,५; अथर्व. २०,१२५,५; तै. ब्रा. १,४,२,१ । अहाव्यग्ने हविरास्ये० । ऋ. १०,९१,१५; तै. ब्रा. १,४,२,१ । यस्मिन्नश्वास० । ऋ. १०,९१,१४; तै. ब्रा. १,४,२,२]
[५] वा. २१,४८—५८; २८,१५—१६,१८—२१,३८—३९,४१,४४—४५ । काण्व. २३,४७—५७; ३०,१५—१६,१८—२१,३८—३९,४१,४४—४५ । तै. ब्रा. २,६,१४ ।

वने वसुधेयस्य वेतु, यज देवाँ देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्या२ सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय
पच्यते मध्वोजो न मूर्तिवृषभो न भाम२, वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि, वसुवने वसुधेयस्य वेतु,
यज देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सद ईशाया मन्यु२
राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं२, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्य-
थायथ२ होतारा इन्द्रमश्विना वाचा वाच२ सरस्वतीमग्नि२ सोम२ स्विष्टकृत्स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा
सविता वरुणो भिषग्,—इष्टो देवो वनस्पतिः, स्विष्टा देवा आज्यपाः, स्विष्टो अग्निरग्निना
होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिं२ स्वधां२, वसुवने वसुधेयस्य वेतु,
यज ॥ ५ ॥ ३८

सोमो राजामृत२ सुत ओषधीनामपा२ रसः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ३९
अद्भ्यः क्षीरं२ व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४०
अद्भ्यः सोम२ व्यपिबच्छन्दोभिर्ह२सः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४१
अन्नात्परिस्रुतो रस ब्रह्मणा क्षत्र२ व्यपिबत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४२
रेतो मूत्र२ विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ।
गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना ॥ ४३
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४४
दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा२ सत्ये प्रजापतिः ॥ ४५
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४६

[६] काठ. ३८,१ । वा. १९,७२—७९ । काण्व. २१,७२—७९ । तै. ब्रा. २,६,२ ।

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ४७
दृष्ट्वा परिस्रुतो रस२ शुक्रेण शुक्र२ व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं२ विपान२ शुक्रमन्धसः । इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ६ ॥ ४८
परीतो षिञ्चता सुत२ सोमो य उत्तम२ हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अ३प्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ ४९
सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ ५०
पुनातु ते परिस्रुत२ सोम२ सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ५१
वायुः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ५२
वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ५३
ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं२ सुरायाः सोमः सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्न२ यजमानाय धेहि ॥ ५४
कुविदङ्ग, नाना हि वाम् ॥ ५५
या व्याघ्रं२ विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति । श्येनं पतत्रिण२ सि२ह२ सेमं पात्व२हसः ॥ ५६
सुरावन्तं बर्हिषद२ सुवीर२ यज्ञ२ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्र२ यजमानाः स्वर्काः ॥ ५७
यस्ते रसः संभृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुराया२ सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विना इन्द्रमग्निम् ॥ ५८
यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं त२ शुक्रं मधुमन्तमिन्दु२ सोम२ राजानमिह भक्षयामि ॥ ५९

[७] काठ. ३८,२ । वा. १९,२—७,१०,३२—३५;६,४;१०,३१—३२;१३,३३;२३,३८ । काण्व. २१,१—६,९, ३१—३५;६,५,११,४४—४५;१४,३५;२५,४० । तै. ब्रा. २,६,१,३ । [परीतो षिञ्चता० । ऋ. ९,१०७,१; सा. ५१२,१३१३; तै. ब्रा. २,६,१,१ । पुनातु (०नाति) ते परिस्रुतं० । ऋ. ९,१,६; तै. सं. १.८,२१,१; तै. ब्रा. २,६,१,२ । वायुः (०योः) पूतः पवित्रेण० । अथर्व. ६,५१,१ । इन्द्रस्य युज्यः सखा । ऋ. १, २२,१९; सा. १६७१; अथर्व. ६,५१,१;७,२६,६; तै. सं. १,३,६,२। कुविदङ्ग यवमन्तो०। ऋ. १०,१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२; तै. सं. १,८,२१,१;५,२,११,२; तै. ब्रा. २,६,१,३]

यदत्र शिष्ट२ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोम२ राजानमिह भक्षयामि ॥ ७ ॥ ६०
देवस्य त्वा सवितुः प्रस३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ ६१
सर्वा देवा एकादश त्रयस्त्रि२शाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे देवा देवैरवन्तु त्वा ॥ ६२
प्रथमास्त्वा द्वितीयैरभिषिञ्चन्तु, द्वितीयास्त्वा तृतीयै,—स्तृतीयास्त्वा सत्येन, सत्यं त्वा
ब्रह्मणा, ब्रह्म त्वा यजुर्भि,—र्यजू२षि त्वा सामभिः, सामानि त्वा ऋग्भि,—र्ऋचस्त्वा
पुरोनुवाक्याभिः, पुरोनुवाक्यास्त्वा याज्याभि,—र्याज्यास्त्वा वषट्कारै,—र्वषट्कारास्त्वाहुतिभि-
रभिषिञ्चन्त्वा,—हुतयस्ते कामान्समर्धयन्तु,—सा अश्विनोस्त्वा तेजसा ब्रह्मवर्चसायाभिषि-
ञ्चामि, सरस्वत्यास्त्वा वीर्येण यशसेऽन्नाद्यायाभिषिञ्चामी,—न्द्रस्य त्वेन्द्रियेणौजसे बलायाभि-
षिञ्चामि, भूः स्वाहा ॥ ६३
शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणो अमृत२ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ६४
जिह्वा मे भद्र२ वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६५
बाहू मे बलमिन्द्रियं२ हस्तौ मे कर्म वीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ६६
पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरम२सौ ग्रीवाश्च श्रोणी ।
ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ६७
नाभिर्मे चित्त२ विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् ।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः ॥ ६८
लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म आनतिरागतिः ।
मा२सं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ॥ ६९
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ।
प्रति ब्रह्मन् प्रतितिष्ठामि क्षत्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु ॥ ७०

[८] काठ. ३८,४ । वा. २०,३,५—१३ । काण्व. २१,९३—९४,९६-१०६ । तै. ब्रा. २,६,५ ।
[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]

प्रति प्रजायां प्रतितिष्ठामि पुष्टे, प्रति प्राणेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्, द्यावापृथिव्योः प्रति-
तिष्ठामि यज्ञे ॥ ८ ॥ ७१
सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञ२ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूप२ वरुणो भिषज्यन् ॥ ७२
तदस्य रूपममृत२ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः स२रराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मा२समभवन्न लाजाः ॥ ७३
तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरं कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ७४
सरस्वती मनसा पेशल२ वसु नासत्याभ्या२ वयति दर्शत२ वपुः ।
रस परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ७५
पयसः शुक्रममृतं जनित्र२ सुराया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्य२ वातात्स३व्व्रं तदारात् ॥ ७६
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमान२ वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ७७
आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ७८
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुह्रे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ७९
मुख२ सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८०
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा घृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसित२ वसाते ॥ ८१
अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतं ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ८२
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्या२ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखे ॥ ८३

[९] काठ. ३८,३ । वा. १९,८०—९५ । काण्व. २१,७७—९२ । तै. ब्रा. २,६,४ ।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।
केशा न शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥ ८४
अङ्गैरात्मानं भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुः शुक्रं न ज्योतिरमृतं दधाना ॥ ८५
सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति ।
अपाꣳ रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रꣳ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ८६
तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वती सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९ ॥ ८७
पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः ।
पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ८८
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः ।
पवित्रेण शतायुषा सर्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ८९
अग्न आयूꣳषि पवसे ॥ ९०
पवमानः ३स्वर्जनः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥ ९१
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूता मा जातवेदः पुनाहि मा ॥ ९२
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ९३
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनाहि विश्वतः ॥ ९४
पवित्रेण पुनाहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूꣳरनु ॥ ९५

[१०] काठ. ३८,२,५ । वा. ३,४५,५४;१९,३७—४८;२०,१४-१८,२०,२३;६,२२;१२,९०;३५,१६ । काण्व. ३,५३,६२;२१,३८—५०;२२,१-५,८;६,३०;१३,९१;३५,४८ । तै. ब्रा. २,६,३,६ । [अग्ना (०ग्न) आयूꣳषि० । ऋ. ९,६६,१९;सा. ६२७,१४६४,१५१८; तै. ब्रा. १,६,३,४; तै. आ. २,५,१; तै. सं. १,३,१४,७;४, २९,१;५,५,१;६,६,२ । पवमानः ३स्वर्जनः (सो अद्य०)...मा । ऋ. ९,६७,२२ । पुनन्तु मा (मां) देवजनाः० । ऋ. ९,६७,२७; तै. ब्रा. १,४,८,१;२,६,३,४ । पवमानः पुनातु० (आ त पतु०)। [आ न पतु० । वा. य. ३,५४] । ऋ. १०,५७,४; अथर्व. १,६,३;. तै. सं. १,८,५,२ । क्रत्वे दक्षाय जीवसे । अथर्व. ६,१९,२ । उभाभ्यां देव सवितः । ऋ. ९,६७,२५; अथर्व. ६,१९,३ ।]

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥ ९६
वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्या बह्वयस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमाद्येषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ९७
वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयोभिर्ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥ ९८
बृहद्भिः सवितस्तिभिर्वर्षिष्ठैर्देव मन्मभिः । अग्ने दक्षैः पुनीमहे ॥ ९९
ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषाꣳ लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ १००
ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषाꣳ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिंल्लोके शतꣳ समाः ॥ १०१
द्वे सृती ॥ १०२
इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये ।
आत्मसनि प्रजासनि क्षेत्रसनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि ॥ १०३
अग्निः प्रजां बहुलां मे कृणोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धेहि ॥ १०४
यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १०५
यदि स्वपन्यदि जाग्रदेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १०६
यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १०७
धाम्नो धाम्नो ॥ यद्रामे ॥ १०८-१०९
पवित्रमसि यज्ञस्य पवित्रꣳ यजमानस्य ।
तन्मा पुनातु सर्वतो विश्वस्माद्देवकिल्बिषात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ ११०

[यत्ते पवित्रमर्चि० । ऋ. ९,६७,२३; तै. ब्रा. १,४,८,१ । वैश्वदेवी पुनती० । ऋ. परि. १९,२ । यद्देवा देवहेडनं० । अथर्व. ६,११४,१ । यदि (जाग्र०) स्वपन्यदि० । अथर्व. ६,११५,२ । यदि दिवा (०द्विद्वांसो)० । अथर्व. ६,११५,१ । धाम्नो धाम्नो० । अथर्व. ७,८३,२;१९,४४,९ । श्री. पू. अ. ३, खं. ६]

द्रुपदादिवेन्मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वी मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यꣳ विश्वे मुञ्चन्तु मैनसः ॥ १११
समावृतत् पृथिवी समुषाः समु सूर्यः ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासꣳ विभुं कामꣳ व्यशीय भूः स्वाहा ॥ १० ॥ ११२
समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ ११३
तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिक् छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ ११४
इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः । अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ ११५
सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः ।
बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ ११६
दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश्छन्द इन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ ११७
उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रियं पृष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ ११८
दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥
तिस्रो देवीरिडा मही भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द इन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥
त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥
शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् । ककुप्छन्द इहेन्द्रियमृषभो गौर्वयो दधुः ॥
स्वाहा यज्ञꣳ वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् । ११९-१२३
अतिछन्दा इन्द्रियं बृहद्वशा वेहद्वयो दधुः ॥ ११ ॥
वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥
ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥
वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतम् । १२४-१२६
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥

[द्रुपदादिवेन्मुमुचानः (०दिव०) । अथर्व. ६,११५,३]
[११] काठ. ३८,१० । वा. २१,१२—२२ । काण्व. २३,१३—२३ । तै. ब्रा. २,६,१८ ।
[१२] वा. २१,२३—२८ । काण्व. २३,२४—२९ । तै. ब्रा. २,६,१९ ।

शारदेन ऋतुना देवा एकविꣳश ऋभवः स्तुतम् ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ १२७
हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतः स्तुतम् । बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥
शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृतꣳ स्तुतम् ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ १२ ॥ १२८-१२९
[१७८१]

॥ इत्युपरिष्टाण्डे सौत्रामणीयो नाम एकादशः प्रपाठकः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशः प्रपाठकः ।

अश्वमेधः ।

इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वा आयुनि विदथेषु कव्या ।
सा नो अस्मिन्त्सुत आबभूव ऋतस्य सामन्त्सरमारपन्ती ॥ १
अभिधा असि, भुवनमसि, यन्तासि धर्ता, स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसं गच्छ स्वाहा-
कृतः, स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि, देवेभ्यः प्रजापतये, तेन
राध्यासं, तं बधान, देवेभ्यः प्रजापतये, तेन राध्नुहि, प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि,
वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्रा,—ऽग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि, विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि,
सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि ॥ २
यो अर्वन्तं जिघाꣳसति तमभ्यमीति वरुणः । परो मर्तः परः श्वा ॥ १ ॥ ३
अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, ऽपां मोदाय स्वाहा, वायवे स्वाहा, सवित्रे स्वाहा,
त्वष्ट्रे स्वाहा, बृहस्पतये स्वाहे,—न्द्राय स्वाहा, मित्राय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा ॥२॥ ४
हिंकाराय स्वाहा, हिंकृताय स्वाहा, क्रन्दते स्वाहा,—ऽवक्रन्दाय स्वाहा, प्रोथते स्वाहा,
प्रप्रोथाय स्वाहा, गन्धाय स्वाहा, घ्राताय स्वाहा, निविष्टाय स्वाहो,—पविष्टाय स्वाहा,

[१] तै. ७,१,११ । काठ. . ५,१,२; ५,४,४ । वा. २२,२—५ । काण्व. २४,२—५ ।
[२] तै. ७,१,१४ । काठ. ५,१,५ । वा. २०,५;२२,६,२७;३९,१ । काण्व. ११,१२;२४,६,३७;३९,१ । [अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । वायवे स्वाहा । अथर्व. १९,४३,२ । इन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,६]
[३] तै. ७,१,१३;१९ । काठ. ५,१,१०,४ । वा. २२,७-८ । काण्व. २४,७—१२ ।

संहिताय स्वाहा, वल्गते स्वाहा, ऽऽसीनाय स्वाहा, शयानाय स्वाहा, स्वपते स्वाहा,
जाग्रते स्वाहा, कूजते स्वाहा, प्रबुद्धाय स्वाहा, विचृताय स्वाहा, विजृम्भमाणाय स्वाहा,
जवाय स्वाहा, बलाय स्वाहा, ऽयनाय स्वाहा, प्रायणाय स्वाहा, यते स्वाहा, धावते
स्वाहो,—द्द्रावाय स्वाहो,—द्द्रुताय स्वाहा, शूकाराय स्वाहा, शूकृताय स्वाहो,—पस्थिताय
स्वाहा, सꣳस्थानाय स्वाहा, निषण्णाय स्वाहो,—त्थिताय स्वाहा, विष्ठिताय स्वाहा,
विवर्तमानाय स्वाहा, विवृत्ताय स्वाहा, विधून्वानाय स्वाहा, विधूताय स्वाहा, शृण्वते
स्वाहा, शुश्रूषमाणाय स्वाहे,—क्षिताय स्वाहा, वीक्षिताय स्वाहा, वीक्षमाणाय स्वाहा,
निमेषाय स्वाहा, यदत्ति तस्मै स्वाहा, यत् पिबति तस्मै स्वाहा, यन्मेहति तस्मै स्वाहा,
कुर्वते स्वाहा, कृताय स्वाहा ॥ ३ ॥ ५

विभूर्मात्रा, प्रभूः पित्रा,—ऽश्वोऽसि, हयोऽस्य,—त्योऽसि, मयोऽसि, नरोऽस्य,—र्वासि,
सप्तिरसि, वाज्यसि, वृषासि, नृमणा असि, ययुर्नामास्या,—दित्यानां पत्वान्विहि,
देवा आशापाला एतं देवेभ्यो अश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षते,—ह धृति,—रिह स्वधृति,—रिह रम,
इह रमन्ताम् ॥ ४ ॥ ६

काय स्वाहा, कस्मै स्वाहा, कतमस्मै स्वाहा, सवित्रे स्वाहा, सवित्रे प्रसवित्रे स्वाहा,
सवित्र आसवित्रे स्वाहा, ऽदित्यै स्वाहा, ऽदित्यै मह्यै स्वाहा, ऽदित्यै सुमृडीकायै स्वाहा,
सरस्वत्यै स्वाहा, सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा, सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा, पूष्णे स्वाहा,
पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा, पूष्णे नरंधिषाय स्वाहा, त्वष्ट्रे स्वाहा, त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा,
त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा, विष्णवे स्वाहा, विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा, विष्णवे निभूयपाय
स्वाहा ॥ ५ ॥ ७

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणस्तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी जायता,—मा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यो महारथो
जायतां, दोग्ध्री धेनु,—र्वोढानड्वा,—नाशुः सप्तिः, सभेयो युवा, पुरंधिर्योषा, जिष्णू
रथेष्ठा अस्य यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवतीर्न
ओषधयः पच्यन्ताꣳ, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ ६ ॥ ८

[४] तै. ७,१,१२ । काठ. ५,१,३ । वा. २२,१९ । काण्व. २४,२४-२५ ।
[५] काठ. ५,३,५ । वा. २२,२० । काण्व. २४,२६-२८ । मा. श्री. ९,२,२ ।
[६] तै. ७,५,१८ । काठ. ५,५,१४ । वा. २२,२२ । काण्व. २४,३०-३२ ।

अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहे,—न्द्राय स्वाहा, पृथिव्यै स्वाहा, ऽन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे
स्वाहा, दिग्भ्यः स्वाहा, ऽऽशाभ्यः स्वाहो,—र्व्यै दिशे स्वाहा, प्राच्यै दिशे स्वाहा,
नक्षत्रेभ्यः स्वाहा, नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा, ऽहोरात्रेभ्यः स्वाहा, ऽर्धमासेभ्यः स्वाहा, मासेभ्यः
स्वाहा, ऋतुभ्यः स्वाहा, ऽऽर्तवेभ्यः स्वाहा, सꣳवत्सराय स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा,
चन्द्रमसे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, रश्मिभ्यः स्वाहा, वसुभ्यः स्वाहा, रुद्रेभ्यः स्वाहा,
ऽऽदित्येभ्यः स्वाहा, मरुद्भ्यः स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, मूलेभ्यः स्वाहा, शाखाभ्यः
स्वाहा, वनस्पतिभ्यः स्वाहा, पुष्पेभ्यः स्वाहा, फलेभ्यः स्वाहौ, षधीभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ ९
प्राच्यै दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा, दक्षिणायै दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा,
प्रतीच्यै दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहो,—दीच्यै दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहो,—र्ध्वायै
दिशे स्वाहा, ऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ ८ ॥ १०
आयुषे स्वाहा, प्राणाय स्वाहा, ऽपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहो,—
दानाय स्वाहा, चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा, मनसे स्वाहा, वाचे स्वाहा ॥ ९ ॥ ११
पृथिव्यै स्वाहा, ऽन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा, चन्द्रमसे स्वाहा,
नक्षत्रेभ्यः स्वाहा, ऽद्भ्यः स्वाहौ,—षधीभ्यः स्वाहा, वनस्पतिभ्यः स्वाहा, परिप्लवेभ्यः
स्वाहा, सरीसृपेभ्यः स्वाहा, चराचरेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥ १२
अंशवे स्वाहा, वसवे स्वाहा, विभ्वे स्वाहा, विवस्वते स्वाहा, गणश्रिये स्वाहा, गण-
पतये स्वाहा, ऽभिषाहे स्वाहा, ऽभिभ्वे स्वाहा, ऽधिपतये स्वाहा, शूषाय स्वाहा, सꣳसर्पाय
स्वाहा, चन्द्राय स्वाहा, ज्योतिषे स्वाहा, मलिम्लुचाय स्वाहा ॥ ११ ॥ १३

[७] तै. ७,१,१५; ७,३,१९—२० । काठ. ५,१,५—६;५,३,९—१० । वा. २२,६,२४,२७-२९;१०,५;३९,१—२; काण्व. २४,६,३४,३७-४१,४३;११,१२;३९,१। [अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१। सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । इन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,६ । पृथिव्यै स्वाहा । अथर्व ५,९,२,६ । अन्तरिक्षाय स्वाहा । अथर्व. ५,९,३—४ । दिवे स्वाहा । अथर्व. ५,९,१;५ । चन्द्रमसे (चन्द्राय) स्वाहा । अथर्व १९,४३,४ । सूर्याय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,३]
[८] तै. ७,१,१५ । काठ. ५,१,६ । वा. २२,२४ । काण्व. २४,३४ ।
[९] तै. ७,१,१९ । काठ. ५,४,१० । वा. २२,२३,२३,१८;३९,३ । काण्व. २४,३३;२५,२०;३९,२ ।
[१०] तै. ७,१,१७ । वा. २२,२९ । काण्व. २४,४१ । [पृथिव्यै स्वाहा । अथर्व. ५,९,२;६ । अन्तरिक्षाय स्वाहा; दिवे स्वाहा । अथर्व. ५,९,३—४ । सूर्याय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,३ । चन्द्रमसे (चन्द्राय०) स्वाहा । अथर्व. १९,४३,४]
[११] वा. २२,२८-३०;३९,२ । काण्व. २४,३९,४१,४३;३९,१ । [चन्द्राय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,४]

धर्णसाय स्वाहा, द्रविणाय स्वाहा, प्रस्रवाय स्वाहो,—द्यामाय स्वाहा, सिन्धवे
स्वाहा, समुद्राय स्वाहा, काटाय स्वाहा, ऽर्णवाय स्वाहा, सरस्वत्यै स्वाहा, विश्वव्यचसे
स्वाहा, सुभूताय स्वाहा, ऽन्तरिक्षाय स्वाहा ॥ १२ ॥ १४
मधवे स्वाहा, माधवाय स्वाहा, शुक्राय स्वाहा, शुचये स्वाहा, नभसे स्वाहा,
नभस्याय स्वाहे,—षाय स्वाहो,—र्जाय स्वाहा, सहसे स्वाहा, सहस्याय स्वाहा, तपसे
स्वाहा, तपस्याय स्वाहा, सꣳसर्पोऽस्यꣳहस्पत्याय स्वाहा ॥ १३ ॥ १५
संवयसे स्वाहा, ऽभिवयसे स्वाहो,—र्ध्ववयसे स्वाहा, बृहद्वयसे स्वाहा, महीयसे स्वाहा,
सहमानाय स्वाहा, सासहये स्वाहा, सहस्वते स्वाहा, ऽभीषाहे स्वाहा, ऽभिभ्वे स्वाहा,
ऽभिमातिषाहे स्वाहा, ऽभिमातिघ्ने स्वाहा ॥ १४ ॥ १६
एकस्मै स्वाहा, द्वाभ्याꣳ स्वाहै,—कान्नशताय स्वाहा, शताय स्वाहै,—कशताय स्वाहा,
व्युष्ट्यै स्वाहा, स्वर्गाय स्वाहा ॥ १५ ॥ १७

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १८
उपयामगृहीतोऽसि, प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनिः, सूर्यस्ते महिमा ॥
॥ १६ ॥ १९
यः प्राणतो निमिषतश्च राजा पतिर्विश्वस्य जगतो बभूव ।
ईशे यो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २०
उपयामगृहीतोऽसि, प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्ये,—ष ते योनि,—श्चन्द्रमास्ते महिमा ॥
॥ १७ ॥ २१

[१२] तै. ७,४,१३ । वा. २२,२५ । काण्व. २४,३५ ।
[१३] वा. २२,३१ । काण्व. २४,४४ ।
[१४] वा. २२,३३ । काण्व. २४,४७ ।
[१६] तै. ७,५,१६ । काठ. ५,५,११ । वा. २३,१—२; १३,४; २५,१० । काण्व. २५,१-२; १४,४; २७,१४ । मा. श्री. ९,२,३ । [हिरण्यगर्भः सम०...विधेम । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२,७; (११,५,१)]
[१७] तै. ७,५,१६ । काठ. ५,५,१३ । वा. २३,३—४; २५,११ । काण्व. २५,३—४; २७,१५ । [यः प्राणतो०... विधेम । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,१-२]

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ २२
यद्वातोऽपो अगनीगन् प्रियामिन्द्रस्य तन्वम् ।
एतꣳ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्तयासि नः ॥ १८ ॥ २३
वसवस्त्वाञ्जन्तु गायत्रेण छन्दसा, रुद्रास्त्वाञ्जन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा, ऽऽदित्यास्त्वाञ्जन्तु
जागतेन छन्दसा, भूर्भुवः स्व,—र्लाजी३ शाची३ यव्ये गव्य, एतदन्नमत्त देवा,
एतदन्नमद्धि प्रजापते ॥ २४
कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किमावपनं महत् ॥ २५
सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ २६
का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत् पिलिप्पिला का स्विदासीत् पिशङ्गिला ॥ २७
द्यौरासीत् पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत् पिलिप्पिला रात्रिरासीत् पिशङ्गिला ॥ १९ ॥ २८
प्राणाय स्वाहा, ऽपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा ॥ २९
अम्बम्बिके अम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ ३०
गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनां त्वा निधि-
पतिꣳ हवामहे वसो मम,—ऽऽहमजानि गर्भधमा,—त्वमजासि गर्भधम् ॥ ३१
तौ सह चतुरः पदः संप्रसारयावः स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाताꣳ, वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु
॥ २० ॥ ३२
गायत्री त्रिष्टुब् जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुब् देवानां पत्नयो विशः सूचीभिः शमयन्तु त्वा ॥ ३३

[१८] तै. ७,४,२० । वा. २३,५,७ । काण्व. २५,५,७ । मा. श्री. ९,२,४;३ । [युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं०...दिवि । ऋ. १,६,१; साम. १४६८; अथर्व. २०,२६,४;४७,१०;६९,९; तै. सं. ७,४,२०,१]
[१९] तै. ७,४,२०;१८ । काठ. ५,४,९;७ । वा. २३,८—१२ । काण्व. २५,८—१३ । [कः स्विदेकाकी०... महत् । आ. सं. १०,९ । सूर्य एकाकी० ...महत् । आ. सं. १०,९,]
[२०] तै. ७,४,१९ । काठ. ५,४,८ । वा. २३,१८—२० । काण्व. २५,२०-२२ । मा. श्री. ९,२,४ । [गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे । ऋ. २,२३,१]
[२१] तै. ५,२,११ । काठ. ५,१०,५ । वा. २३,३३—३८;१०,३२;१९,६। काण्व. २५,३५—४०;११,८५;२१,५।

द्विपदा याश्चतुष्पदा त्रिपदा याश्च षट्पदा ।
विछन्दा याश्च सछन्दाः सूचीभिः शमयन्तु त्वा ॥ ३४
रजता: सीसा हरिणीर्युजो युञ्जन्तु कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि स्मिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥ ३५
महानाम्नी रेवतयो दिव्या आशाः प्रस्वरीः ।
मेघ्या विद्युतो वाचः सूचीभिः शमयन्तु त्वा ॥ ३६
योपास्ते पत्नयो लोम विचिन्वन्तु यथायथम् ।
सुपत्नीः पत्नयो वाजिन् प्रजया भक्षीमहि ॥ ३७
कुविदङ्ग ॥ २१ ॥ ३८

[१८१९]

॥ इत्युपरिकाण्डे द्वादशः प्रपाठकः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशः प्रपाठकः।

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारं हरन्निव ।
अथास्या मध्यमेधतां शीते वाते पुनन्निव ॥ १
यासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहतं पसो निचल्चलीति ॥ २
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता ॥ ३
यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ४
दधिक्राव्णो अकारिषम् ॥ १ ॥ ५

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः, कृष्णग्रीव आग्नेयो ललाटे पुरस्तात्, सारस्वती मेष्य-
धस्ताद्धन्वोः, श्यामः पौष्णो नाभ्या,—माश्विनावधोरामौ बाह्वो,—स्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ
सक्थ्योः, सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयो,—र्वायव्यः श्वेतः पुच्छ, इन्द्राय स्वपस्याय
वेहद्, वैष्णवो वामनः ॥ २ ॥ ६

[कुविदङ्ग यवमन्तो० । ऋ. १०,१३१,२, अथर्व. २०,१२५,२]
[१] तै. ७,४,१९ । वा. २३,२२—२७,३०—३२ । काण्व. २५,१४–२९,३२—३४ । [दधिक्राव्णो अकारिषम्। ऋ. ४,३९,६; साम. ३५८, अथर्व. २०.१३७,३ । तै. सं. १,५,११,४,७,४,१९,४; ताण्ड्य ब्रा. १,६,१७]
[२] तै. ५,५,२२—२३ । काठ. ५,८,२ । वा. २४,१ । काण्व. २६,१—३ । मा. श्रौ. ९,२,४ ।

बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणा, रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्याः,
शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः, शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः, पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ ३ ॥ ७
शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः, श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये,
कर्णा यामा, अवलिप्ता रौद्रा, नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ४ ॥ ८
पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः, फल्गूर्लोहितोर्णी बलक्षी ताः सारस्वत्यः,
प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽधिरूढाकर्णस्ते त्वाष्ट्राः, कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः,
कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ५ ॥ ९
शिल्पा वैश्वदेवी, रोहिणीस्त्र्यवयो वाचे, ऽविज्ञाता अदित्यै, सरूपा धात्रे, वत्सतर्यो
देवानां पत्नीभ्यः ॥ ६ ॥ १०
कृष्णग्रीवा आग्नेयाः, शितिभ्रवो वसूनां, रोहिता रुद्राणां, श्वेता अवरोकिण
आदित्यानां, नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ७ ॥ ११
उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्या, उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवाः,
शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः, श्यामाः पौष्णाः ॥ ८ ॥ १२
एता ऐन्द्राग्ना, द्विरूपा अग्नीषोमीया, वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा, अन्यतएन्यो मैत्री,
—र्वशा मैत्रावरुण्यः ॥ ९ ॥ १३
कृष्णग्रीवा आग्नेया, बभ्रवः सौम्याः, श्वेता वायव्या, अविज्ञाता अदित्यै,
सरूपा धात्रे, वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ १० ॥ १४
कृष्णा भौमा, धूम्रा आन्तरिक्षा, बृहन्तो दिव्याः, शबला वैद्युताः, सिध्मास्तारकाः ॥
॥ ११ ॥ १५

[३] तै. ५,६,११—१३ । काठ. ५,९,१—३ । वा. २४,२ । काण्व. २६,३—४ । मा. श्रौ. ९,२,४ ।
[४] तै. ५,६,१३;११;१५ । काठ. ५,९,३ । वा. २४,३ । काण्व. २६,५-६ ।
[५] तै. ५,६,१२;१६ । काठ. ५,९,२,६ । वा. २४,४ । काण्व. २६,६-८ ।
[६] तै. ५,६,१३ । वा. २४,५ । काण्व. २६,९ ।
[७] वा. २४,६ । काण्व. २६,१० ।
[८] तै. ५,६,१४,३,१३,३ । वा. २४,७ । काण्व. २६,११ ।
[९] तै. ५,६,११-२३ । वा. २४,८ । काण्व. २६,१२ ।
[१०] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,९ । काण्व. २६,१३ ।
[११] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,१० । काण्व. २६, १४ ।

कृष्णग्रीवा आग्नेया, बभ्रवः सौम्या, उपध्वस्ताः सावित्रा, वत्सतर्यः सारस्वत्यः,
श्यामाः पौष्णाः, पृश्नयो मारुताः, पिशङ्गा वैश्वदेवा, वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १२ ॥ १६
कृष्णग्रीवा आग्नेया, बभ्रवः सौम्या, उपध्वस्ताः सावित्रा, वत्सतर्यः सारस्वत्यः,
श्यामाः पौष्णा, एता ऐन्द्राग्नाः, पृश्नयो मारुताः, कृष्णा वारुणाः, कायास्तूपराः ॥
१७
॥ १३ ॥
अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते, मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यः सवात्यान्, मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो
बष्किहान्, मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः संसृष्टान्, मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १४ ॥ १८
कृष्णग्रीवा आग्नेया, बभ्रवः सौम्या, उपध्वस्ताः सावित्रा, वत्सतर्यः सारस्वत्यः,
श्यामाः पौष्णा, एता ऐन्द्राग्नाः, प्राशृङ्गा ऐन्द्रा, बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १५ ॥ १९
कृष्णग्रीवा आग्नेया, बभ्रवः सौम्या, उपध्वस्ताः सावित्रा, वत्सतर्यः सारस्वत्यः,
श्यामाः पौष्णाः, श्वेता वायव्याः, प्राशृङ्गा ऐन्द्राः, सौर्याः श्वेताः ॥ १६ ॥ २०
तुर्यवाह
त्र्यवयो गायत्र्यै, पञ्चावयस्त्रिष्टुभे, दित्यवाहो जगत्यै, त्रिवत्सा अनुष्टुभे,
२१
उष्णिहे ॥ १७ ॥ अनड्वाहः
पष्ठवाहो विराज, उक्षाणो बृहत्या, ऋषभाः ककुभे, धेनवो जगत्या,
२२
पङ्क्त्यै ॥ १८ ॥ २३
धूम्रा वसन्ताय, श्वेता ग्रीष्माय, कृष्णा वर्षाभ्यः ॥ १९ ॥ २४
अरुणाः शरदे, पृषन्तो हेमन्ताय, पिशङ्गाः शिशिराय ॥ २० ॥

[१८४३]

॥ इत्युपरिकाण्डे त्रयोदशः प्रपाठकः ॥ १३ ॥

[१२] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,१४ । काण्व. २६,१८ ।
[१३] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,१५ । काण्व. २६,१९ ।
[१४] तै. ५,६,११-२३ । वा. २४,१६ काण्व. २६,२० ।
[१५] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,१७ । काण्व. २६,२१ ।
[१६] तै. ५,६,११-२३ । वा. २४,१४ । काण्व. २६,१८ ।
[१७] तै. ५,६,११—२३ । वा. २४,१२ । काण्व. २६,१६ ।
[१८] वा. २४,१३ । काण्व. २६,१७ ।
[१९] वा. २४,११ । काण्व. २६,१५ ।
[२०] वा. २४,११ । काण्व. २६,१५ ।

अथ चतुर्दशः प्रपाठकः ।

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते, ग्रीष्माय कलविङ्कान्, वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्, शरदे वर्तिका,
हेमन्ताय ककरान् ॥ १ ॥ १
समुद्राय शिशुमारानालभते, पर्जन्याय मण्डूका,—नद्भ्यो मत्स्यान्, मित्राय पुलीकयान्,
वरुणाय नाक्रान् ॥ २ ॥ २
सोमाय हंसानालभते, वायवे बलाका, इन्द्राग्निभ्यां कुञ्चान्, मित्राय मद्गून्,
वरुणाय चक्रवाकान् ॥ ३ ॥ ३
अग्नये कुटरूनालभते, वनस्पतय उलूका,—नग्नीषोमाभ्यां चाषा,—नश्विभ्यां मयूरान्,
मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ ४ ॥ ४
सोमाय लबानालभते, त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादी,—र्देवानां पत्नीभ्यः पुलीका, अग्नये
गृहपतये पारुष्णान् ॥ ५ ॥ ५
अह्ने पारावतानालभते, रात्र्यै सीचापू,—रहः संधिभ्यां जतूः, संवत्सराय महतः सुप-
र्णान्, मासेभ्यो दात्यौहान् ॥ ६ ॥ ६
भूम्या आखूनालभते, ऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान्, दिवे कशान्, दिग्भ्यो नकुलान्,
बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ ७ ॥ ७
प्रजापतये पुरुषान् हस्तिना आलभते, वाचे प्लुषीं,—श्चक्षुषे मशकान्, श्रोत्राय भृङ्गाः
॥ ८ ॥ ८
वसुभ्य ऋश्यानालभते, रुद्रेभ्यो रुरू,—नादित्येभ्यो न्यङ्कून्, विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषता,—
न्त्साध्येभ्यः कुलङ्गान् ॥ ९ ॥ ९

[१] तै. ५,५,११-२४ । काठ. ५,१०,४ । वा. २४,२० । काण्व. २६,२४ । मा. श्रौ ९,२,४ ।
[२] वा. २४,२१ । काण्व. २६,२५ ।
[३] वा. २४,२२ । काण्व. २६,२६ ।
[४] वा. २४,२३ । काण्व. २६,२७ ।
[५] वा. २४,२४ । काण्व. २६,२८ ।
[६] वा. २४,२५ । काण्व. २६,२९ ।
[७] वा. २४,२६ । काण्व. २६,३० ।
[८] वा. २४,२९ । काण्व. २६,३३ ।
[९] वा. २४,२७ । काण्व. २६,३१ ।

ईशानाय परस्वत आलभते, मित्राय गौरान्, वरुणाय महिषान्, बृहस्पतये गवयां२,
—स्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ १० ॥ १०
प्रजापतये च वायवे च गोमृगौ, वरुणायारण्यौ मेषौ, यमाय कृष्णो, मनुराजाय
मर्कटः, शार्दूलाय रोहिद्, वृषभाय गवयी, क्षिप्रश्येनाय वर्तिका, नीलङ्गवे कृमिः,
समुद्राय शिशुमारो, हिमवते हस्ती ॥ ११ ॥ ११
मयुः प्राजापत्य, उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे, दिशां कङ्को, धुङ्क्षाग्नेयी,
कुलविङ्कः पुष्करसादो लोहिताहिस्ते त्वाष्ट्रा, वाचे क्रौञ्चः ॥ १२ ॥ १२
सोमाय कुलङ्ग, आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः, क्रोष्टा मायो,—रिन्द्रस्य
गौरमृगः, पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै, प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ १३ ॥ १३
सौरी बलाका, शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः, श्वाविद्भौमी, सरस्वत्यै शारिः पुरु-
षवाक्, शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे, सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ १४ ॥ १४
सुपर्णः पार्जन्य, आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे, ककवाकुः सावित्रो, हंसो वातस्य,
प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये, द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ १५ ॥ १५
पुरुषमृगश्चन्द्रमसो, गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां, बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्ग-
राजो, ऽलज आन्तरिक्षो, नाक्रो मकरः पुलीकयस्तेऽकूपारस्य, ह्रियै शल्यकः ॥१६॥ १६
एण्यह्नो, मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां, लोपाश आश्विनः, कृष्णो रात्र्या,
ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां, जहका वैष्णवी ॥ १७ ॥ १७
अन्यवापोऽर्धमासानां,—मृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणा,—मपामुद्रः, कश्यपो मासां२,
रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका ता अप्सरसां, मृत्यवेऽसितः ॥ १८ ॥ १८

[१०] वा. २४,२८। काण्व. २६,३३।
[११] तै. ५,५,११। काठ. ५,७,१। वा. २४,३०। काण्व. २६,३४।
[१२] तै. ५,५,१२। काठ. ५,७,२। वा. २४,३१। काण्व. २६,३५।
[१३] तै. ५,५,११। काठ. ५,७,७। वा. २४,३२। काण्व. २६,३६।
[१४] काठ. ५,७,४—६। वा. २४,३३। काण्व. २६,३७।
[१५] काठ. ५,७,३। वा. २४,३४। काण्व. २६,३८।
[१६] काठ. ५,७,५। वा. २४,३५। काण्व. २६,३९।
[१७] काठ. ५,७,५। वा. २४,३६। काण्व. २६,४०।
[१८] काठ. ५,७,६। वा. २४,३७। काण्व. २६,४१।

वर्षाहूर्ऋतूनां,—माखुः कशो मान्थालवस्ते पितॄणां२, वसुभ्यः कपिञ्जलो, बलायाजगरः,
कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै, रात्र्यै कृष्णः ॥ १९ ॥ १९
चित्रे आदित्यानां,—मुष्ट्रो घृणावान् वार्ध्रीनसस्ते मत्या, अरण्याय सृमरो, रुरू रौद्रः,
कुवयः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां, कामाय पिकः ॥ २० ॥ २०
खड्गो वैश्वदेव,—स्तरक्षुः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्ते रक्षसा,—मिन्द्राय सूकरः, सिंहो
मारुतः, कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै, विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतः ॥ २१ ॥ २१
[१८६४]

॥ इत्युपरिकाण्डे चतुर्दशः प्रपाठकः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशः प्रपाठकः।

शादं दद्भि,—रवकान्दन्तमूलै,—र्मृदं बर्स्वै,—स्तेगान् दंष्ट्राभ्या,—मवक्रन्देन तालु, वाजं२
हनुभ्यां२, सरस्वत्या अग्रजिह्वं, जिह्वाया उत्सादं,—मपं आस्येन, वृषणा आण्डाभ्या,-
—मादित्यान् श्मश्रुभिः, पन्थां भ्रूभ्यां, द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां२ विद्युतं कनीनिकाभ्यां,
कर्णाभ्यां२ श्रोत्रे, श्रोत्राभ्यां कर्णा, अवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः, पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या
इक्षवः ॥ १ ॥ १
वातं प्राणेना,—ऽपानेन नासिका,—मुपयाममधरेणौष्ठेन, सदुत्तरेण, शुक्लाय स्वाहा,
कृष्णाय स्वाहा, स्तनयित्नुं निर्बाधेन, मूर्धानं निवेष्येणा,—ऽशनिं मस्तिष्केण, विद्युतं
कनीनिकाभ्यां, प्रकाशेनान्तर,—मनुकाशेन बाह्यं, तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन, चित्तं
मन्याभि,—रदितिं२ शीर्ष्णा, निर्ऋतिं निर्जल्येन शीर्ष्णा, प्राणान्त्संक्रोशै, रेष्माणं२ स्तूपेन॥
॥ २ ॥ २
मशकान् केशै,—रिन्द्रं२ स्वपसा, वहेन बृहस्पतिं२, शकुनिसादेन कूर्मान्, शफैराक्रमणं२,
स्थूराभ्यां बलं, कुष्टाभ्यां जवं, जङ्घाभिरध्वानं, बाहुभ्यां जाम्बिलेनारण्यमग्निमुतीरुग्भ्यां२,
रुद्रं२ रोराभ्यां, पूषणं दोर्भ्या,—मश्विना अंसाभ्याम् ॥ ३ ॥ ३

[१९] काठ. ५,७—८। वा. २४,३८। काण्व. २६,४२।
[२०] काठ. ५,७,९। वा. २४,३९। काण्व. २६,४३।
[२१] काठ. ५,७। वा. २४,४०। काण्व. २६,४४।
[१] तै. ५,७,११-१२। काठ. ५,१३,१-२। वा. २५,१। काण्व. २७,१-२। मा. श्रौ. ९,२,५।
[२] तै. ५,७,१२-१४। काठ. ५,१३,२। वा. २५,२। काण्व. २७,३-४।
[३] तै. ५,७,११। काठ. ५,१३,३। वा. २५,३। काण्व. २७,५-६।

अग्नेः पक्षति,—र्वायोर्निपक्षतिः, सोमस्य तृतीया, ऽपां चतुर्थी,—दित्याः पञ्चमी,—ग्नी-
षोमयोः षष्ठी, मरुतां सप्तमी, बृहस्पतेरष्टमी, पूष्णो नवमी, त्वष्टुर्दशमी,—न्द्रस्यैकादशी,
वरुणस्य द्वादशी, यमस्य त्रयोदशी ॥ ४ ॥ ४
इन्द्राग्न्योः पक्षतिः, सरस्वत्या निपक्षति,—रिन्द्रस्य तृतीया, बृहस्पतेश्चतुर्थी, निर्ऋत्याः
पञ्चमी,—न्द्राण्याः षष्ठी, सुपर्णानां२ सप्तमी, विष्णोरष्टम्य,—र्यम्णो नवमी, धातुर्दशमी,—
न्द्रस्यैकादशी, वरुणस्य द्वादशी, यम्यास्त्रयोदशी, द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं२, विश्वेषां
देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥ ५
मरुतां२ स्कन्धा, विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा, रुद्राणां द्वितीया, ऽऽदित्यानां तृतीया,
वायोः पुच्छ,—मग्नीषोमयोर्भासदौ, क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यां, मित्रावरुणा ऊरुभ्या,—मिन्द्रावरुणा
अल्माभ्या,—माक्रमणं कुष्ठाभ्या,—मरुसराभिः कपिञ्जलान् ॥ ६ ॥ ६
इन्द्रस्य क्रोडो, ऽदित्याः पाजस्यं, दिशां जत्रवो, ऽदित्या भस,—ज्जीमूतान् हृदयौ-
पशाभ्या,—मन्तरिक्षं पुरीतता, नभ उदर्येण, वल्मीकान् क्लोम्ना, ग्लौभिर्गुल्मां२,—श्चक्र-
वाकौ मतस्नाभ्यां, दिवं२ वृक्काभ्यां२, हिराभिः स्रवन्ती,—र्गिरीन् प्लाशिभ्या,—मुपलान्
प्लीहा, हृदान् कुक्षिभ्यां२, समुद्रमुदरेण, वैश्वानरं भस्मना ॥ ७ ॥ ७
विधृतिं नाभ्या, घृतं२ रसेना,—ऽपो यूष्णा, मरीचीर्विप्रुषा, नीहारमूष्मणा, शीनं२
वसया, ह्रादुनीर्दूषीकाभिः, प्रुष्वा अश्रुभि,—रक्षां रक्षांसि, चित्राण्यङ्गै,—र्नक्षत्राणि रूपैः,
पृथिवीं त्वचा, जुम्बकाय स्वाहा ॥ ८ ॥ ८
पूषणं२ वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूरगुदया, सर्पान् गुदाभि,—र्विह्रुत आन्त्रै,—रपं आस्येन, वृषणा
आण्डाभ्यां२, शेपो वाजिनेन, प्रजां२ रेतसा, चाषान् पित्तेन, प्रदरान् पायुना, कूश्मान्
शकपिण्डैः ॥ ९ ॥ ९

[४] तै. ५,७,१९। वा. २५,४। काण्व. २७,७।
[५] तै. ५,७,२२। वा. २५,५। काण्व. २७,८।
[६] तै. ५,७,१५। काठ. ५,१३,४। वा. २५,६। काण्व. २७,९।
[७] तै. ५,७,१६। काठ. ५,१३,६। वा. २५,८। काण्व. २७,११—१२।
[८] तै. ५,७,२०। वा. २५,९। काण्व. २७,१३।
[९] तै. ५,७,१७। काठ. ५,१३,७। वा. २५,७। काण्व. २७,१०।

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तराय वासन्तिकाय पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपती,—न्द्राय त्रैष्टुभाय
पञ्चदशाय बार्हताय ग्रैष्माय पुरोडाशमेकादशकपालं२, विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो
वैरूपेभ्यो वार्षिकेभ्यः पुरोडाशं द्वादशकपालं, मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां२ वैरा-
जाभ्यां२ शारदाभ्यां पयस्यां, बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्कराय हैमन्तिकाय चरुं२,
सवित्र आतिछन्दसाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय शैशिराय पुरोडाशं द्वादशकपाल,—मनुमत्यै चरुं२,
वैश्वानरं द्वादशकपाल,—मदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुं, कायमेककपालम् ॥ १० ॥ १०
अग्नयेऽंहोमुचे पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपती,—न्द्रायांहोमुचे पुरोडाशमेकादशकपालं, मित्रा-
वरुणाभ्यामागोमुग्भ्यां पयस्यां२, वायुसवितृभ्यामागोमुग्भ्यां पयो, ऽश्विभ्यामागोमुग्भ्यां धाना,
मरुद्भ्य एनोमुग्भ्यः पुरोडाशं२ सप्तकपालं२, विश्वेभ्यो देवेभ्य एनोमुग्भ्यः पुरोडाशं द्वादशक-
पाल,—मनुमत्यै चरुं२ वैश्वानरं द्वादशकपालं, द्यावापृथिवीभ्यामंहोमुग्भ्यां पुरोडाशं द्विक-
पालम् ॥ ११ ॥ ११
[१८७५]

॥ इत्युपरिकाण्डे पञ्चदशः प्रपाठकः ॥ १५ ॥

अथ षोडशः प्रपाठकः।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूपा इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येतु पाथः ॥ २
एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं२ यत् पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनं२ सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३

[१०] तै. ७,५,१४। वा. २९,६०। काण्व. ३१,४९।
[११] तै. ७,५,२२।
[१] तै. ४,६,८—९। काठ. ५,६,४—५। वा. २५,२४—३९। काण्व. २७,१८—४३।
{मा नो मित्रो०...वीर्याणि। ऋ. १,१६२,१; तै. सं. ४,६,८,१; नि. ९,३। यन्निर्णिजा रेक्णसा०...पाथः। ऋ. १,१६२,२; तै. सं. ४,६,८,१। एष छागः०... (छाग०) ... जिन्वति। ऋ. १,१६२,३; तै सं. ४,६,८,१]

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४
उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेन२ विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ५
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्वम् ॥ ६
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषाल२ ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचन२ संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ७
यद्वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृण२ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच् छमितारः कृण्वन्तुत मेध२ शृतपाकं पचन्तु ॥ ९
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १०
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्व२ य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२
यन्नीक्षणं माꣳस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ॥ १३

[यद्धविष्यमृतुशो० । ऋ. १,१६२,४; तै. सं. ४,६,८,२ । उप प्रागात् सुमन्मे० । ऋ. १,१६२,७; तै. सं. ४,६,८,३; नि. ६,२२ । होताध्वर्युरावया० । ऋ. १,१६२,५; तै. सं. ४,६,८,२ । यूपव्रस्का उत ये० । ऋ. १,१६२,६; तै. सं. ४,६,८,२ । यद्वाजिनो दाम० । ऋ. १,१६२,८; तै. सं. ४,६,८,३ । यदूवध्यमुदरस्या० । ऋ. १,१६२,१०; तै. सं. ४,६,८,४ । यदश्वस्य क्रविषो० । ऋ. १,१६२,९; तै. सं. ४,६,८,३ । यत्ते गात्रादग्निना० । ऋ. १,१६२,११; तै. सं. ४,६,८,४ । ये वाजिनं परि० । ऋ. १,१६२,१२; तै. सं. ४,६,९,१ । यन्नीक्षणं माꣳस्पचन्या० । ऋ. १,१६२,१३; तै. सं. ४,६,९,१]

मै० ४१

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधिवास२ या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥ १४
निक्रमणं निषदनं विवर्तन२ यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १५
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्ट२ वीतमभिगूर्त२ वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १ ॥ १६
समिद्धो अञ्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवाना२ वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १७
तनूनपात् सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ता२ स्वधा देवैर्यजमानाय धेहि ॥ १८
ईड्यश्चासि वन्द्यश्चासि वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्चासि सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीत२ वह्नि२ वहतु जातवेदाः ॥ १९
स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिरक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ २०
एता उ वः सुभगा विश्ववारा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥ २१
अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुख२ यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वा२ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योना इह सादयामि ॥ २२
प्रथमा वा२ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ २३
आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञ२ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ २४

[यदश्वाय वास० । ऋ. १,१६२,१६; तै. सं ४,६,९,२ । निक्रमणं निषदनं० । ऋ. १,१६२,१४; तै. सं ४,६,९,१ । मा त्वाग्निर्ध(र्ध्व०) नयी० । ऋ. १,१६२,१५; तै. सं. ४,६,९,२]

[२] ५,१,११ । काठ. ५,६,१ । वा. २९,१—११ । कण्व. ३१,१—११ । मा. श्रौ. ९,२,५ ।

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेमा विश्वा भुवना जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ॥ २५
अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाꣳ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ २६
प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ २ ॥ २७
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ २८
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २९
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३०
जीमूतस्येव भवति प्रतीक२ यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व२ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ३१
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोतु धन्वना सर्वाः पृतना जयेम ॥ ३२
वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णं प्रिय२ सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते विततावधि धन्वञ् ज्या इय२ समने पारयन्ती ॥ ३३
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतः संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ३४
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ३५

[३] तै. ७,४,२०;४,६,६ । काठ. ५,६,१ । वा. २३,५—६;२९,३७—४४,५२—५४,४६—४७,४९,४८,५१,५०, ५५—५७ । कण्व. २५,५—६;३१,१२—१६,१८,२१,२०,१९,१७,२२—२३ । मा. श्रौ. ९,२,३—४ । अथर्व. २०,२६,४;४७,१०;६९,९; तै. सं. ७,४,२०,१ ।

[युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं० । ऋ. १,६,१; सा. १४६८; अथर्व. २०,२६,५;४७,११;६९,१०; तै. सं. ७,४,२०,१; तै. युञ्जन्त्यस्य काम्या० । ऋ. १,६,२; सा. १४६९; अथर्व. २०,२६,६;४७,१२;६९,११; तै. सं. ७,४,२०,१; तै. केतुं कृण्वन्नकेतवे० । ऋ. १,६,३; सा. १४७०; अथर्व. २०,२६,६;४७,१२;६९,११; तै. सं. ४,६,६,१ । धन्वना गा धन्वनाजिं० । ऋ. मा. ३,९,४,३ । जीमूतस्येव भवति० । ऋ. ६,७५,१; तै. सं. ४,६,६,१; नि. ९,१८ । वक्ष्यन्तीवेदागनी० । ऋ. ६,७५,३; तै. सं. ४,६,६,१; नि. ९,१७ । वक्ष्यन्तीवेदागनी० । ऋ. ६,७५,३; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,४० । बह्वीनां (०ह्वी०) पिता० । ऋ. ६,७५,५ तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,१४ । ते आचरन्ती० । ६,७५,४; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,४०]

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनुयच्छन्ति रश्मयः ॥ ३६
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रून् रनपव्ययन्तः ॥ ३७
वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत् सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ ३८
दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यः पर्याभृत२ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्र२ हविषा रथ२ यज ॥ ३९
इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ ४०
स्वादुष२सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ४१
ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघश२स ईशत ॥ ४२
ऋजीते परिवृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ४३
सुपर्ण२ वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म य२सन् ॥ ४४
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परिपातु विश्वतः ॥ ४५

[रथे तिष्ठन्नयति० । ऋ. ६,७५,६; तै. सं. ४,६,६,२; नि. ९,१६ । तीव्रान्घोषान्कृण्वते० । ऋ. ६,७५, ७; तै. सं. ४,६,६,३ । वनस्पते वीड्वङ्गो० । ऋ. ६,४७,२६; अथर्व. ६,१२५,१; तै. सं ४,६,६,५; नि. ९,५;९,१२ । दिवस्पृथिव्याः० । ऋ. ६,४७,२७; अथर्व. ६,१२५,२; तै. सं. ४,६,६,५ । इन्द्रस्य वज्रो० । ६,४७,२८; अथर्व. ६,१२५,३; तै. सं. ४,६,६,६ । स्वादुषꣳसदः पितरः० । ऋ. ६,७५,९; तै. सं. ४,६,६,३ । ब्राह्मणासः पितरः० । ऋ. ६,७५,१०; तै. सं. ४,६,६,३ । ऋजीते परि० । ऋ. ६, ७५,१२; तै. सं. ४,६,६,४ । सुपर्णं वस्ते० । ऋ. ६,७५,११; तै. सं. ४,६,६,४; नि. ९,५;९,१९ । अहि-रिव भोगैः० । ऋ. ६,७५,१४; तै. सं. ४,६,६,५; नि. ९,१५]

आजङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते । अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ४६
उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥ ४७
आक्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अपप्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ ४८
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३ ॥ ४९
समिद्दिशामाशया नः स्वर्विन्मधु रतो माधवः पात्वस्मान् ।
अग्निर्देवो दुष्टरीतुरदब्ध इदं क्षत्रं रक्षतु पात्वस्मान् ॥ ५०
रथन्तरं सामभिः पात्वस्मान् गायत्री छन्दसां विश्वरूपा ।
त्रिवृन्नो विष्टया स्तोमो अह्ना समुद्रो वात इदमोजः पिपर्तु ॥ ५१
उग्रा दिशामभिभूतिर्वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्नोजसीने ।
इन्द्राधिपत्यैः पिपृतादतो नो महि क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥ ५२
बृहत्साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्णं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् ।
इन्द्रः स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्षतु ॥ ५३
प्राची दिशां सहयशा यशस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाह्ना स्वर्वती ।
वैरूपे सामन्नधि तच्छकेयं जगत्येनं विक्ष्वावेशयामि ॥ ५४
इदं क्षत्रं दुष्टरमस्त्वोजोऽनाधृष्टं सहस्रियं सहस्वत् ।
विश्वे देवाः सप्तदशेन वर्च इदं क्षत्रं सलिलवातमुग्रम् ॥ ५५
धर्त्री दिशां क्षत्रमिदं दाधारोपस्थाशानां मित्रवदस्त्वोजः ।
मित्रावरुणा शरदाह्ना चिकित्तमस्मै राष्ट्राय महि शर्म यच्छतम् ॥ ५६

आजङ्घन्ति सान्वेषां० । ऋ. ६,७५,१३; तै. सं. ४,६,६,५; नि. ९,२० । उपश्वासय पृथिवी० । ऋ. ६,४७, २९; अथर्व. ६,१२६,१; तै. सं. ४,६,६,६; नि. ९,१३ । आक्रन्दय बलमोजो० । ऋ. ६,४७,३०; अथर्व. ६,१२६,२; तै. सं. ४,६,७,७; आमूरज प्रत्यावर्तये० । ऋ. ६,४७,३१; अथर्व. ६,१२६,३; तै. सं. ४,६,६,७]

[४] तै. ४,४,१२ । काठ. २२,१४ । वा. १४,८—९,१८,७२—७३,२६,८,२७,३०,३६,४ । काव. ३३,३,४०, ४१—४२,१८,८,२९,४४,३६,४ ।

वैराजे सामन्नधि मे मनीषानुष्टुभा संभृतं वीर्यं सहः ।
इदं क्षत्रं मित्रवदार्द्रदानु मित्रावरुणा रक्षतमाधिपत्यैः ॥ ५७
सम्राड् दिशां सहसाम्नी सहस्वत्यृतुर्हेमन्तो विष्ठया नः पिपर्तु ।
अवस्युवाता बृहती न शक्वरी दिशां तेव्युवतु नो घृताची ॥ ५८
स्वर्वती सुदुघा नः पयस्वतीमं यज्ञमवतु या घृताची ।
त्वं गोपाः पुरएतोत पश्चाद्बृहस्पते याम्यां युङ्ग्धि वाचम् ॥ ५९
ऊर्ध्वा दिशां रन्तिराशौषधीनां संवत्सरेण सविता नो अह्ना ।
रेवत्सामातिछन्दा उ छन्दोऽजातशत्रुः स्योना नो अस्तु ॥ ६०
स्तोमत्रयस्त्रिंशे भुवनस्य पत्नी विवस्वद्वाते अभि नो गृणीहि ।
घृतवती सवितुराधिपत्ये पयस्वती रन्तिराशा नो अस्तु ॥ ६१
अन्वद्य नो अनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥ ६२
अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६३
वैश्वानरो न ऊत्या प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा ॥ ६४
पृष्टो दिवि ॥ ६५
ध्रुवा दिशां विष्णुपत्न्यघोरास्येशाना सहसो या मनोता ।
बृहस्पतिर्मातरिश्वोत वायुः संध्वाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥ ६६
विष्टम्भो दिवो धरुणा पृथिव्या अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ।
व्यचस्वतीषयन्ती सुभूतिः शिवा नो अस्त्वदितिरुपस्थे ॥ ६७
कया नः ॥ ६८
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ४ ॥ ६९

[अन्वद्य (अनु) नो अनु० (०द्यानु०) । ऋ. परि. ३,३; अथर्व. ७,२०,१ । अन्विदनुमते त्वं० । ऋ. परि. ३,४; अथर्व. ७,२०,२ । वैश्वानरो न ऊत्या० । अथर्व. ६,३५,१; आ. श्रौ. सू. .२,११ । पृष्टो दिवि पृष्टो० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । विष्टम्भो दिवो धरुणा(०णः)० । ऋ. ९,८९,६ । कया नः० । ऋ. ४,३१,१; सा. १६९,६८२; अथर्व. २०,१२४,१; तै. सं. ४,२,११,२; तै. आ. ४,४२,२ । को अद्य युङ्क्ते० । ऋ. १,८४,१६; सा. ३४१; अथर्व. १८,१,६; तै. सं. ४,२,११,३; नि. १४,२५]

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्यामृतानां यं पाञ्चजन्यं बहवः समिन्धते ।
विश्वस्यां विशि प्रविविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७०
यस्येदं प्राणन्निमिषद्यदेजति यस्य जातं जनमानं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७१
इन्द्रस्य मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसो वृत्रघ्नः स्तोमा उप मामुपागुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमुप गन्ता स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७२
यः संग्रामं नयति सं वशी युधे यः पुष्टानि संसृजति त्रयाणि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ७३
मन्वे वां मित्रावरुणा तस्य वित्तं सत्यौजसा दृंहणा यं नुदेथे ।
या राजाना सरथं याथ उग्रा ता नो मुञ्चतमागसः ॥ ७४
यो वां रथ ऋजुरश्मिः सत्यधर्मा मिथुश्चरन्तमुपयाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ७५
वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद्विभृतो यौ च रक्षतः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ७६
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि वायुं सवितारं नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ७७
रथीतमौ रथीनामह्व ऊतये शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ।
ययोर्वां देवौ देवेष्वनिशितमोजस्तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ७८
यदयातं वहतुं सूर्यायास्त्रिचक्रेण संसदमिच्छमानौ ।
स्तौमि देवावश्विनौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमागसः ॥ ७९
मरुतां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ८०

[५] तै. ४,७,१५; काठ. २२,१५; वा. १२,३३,३४,८—९,१८,७२ ३६,८ । काव. १३,२४,३३,८,२०,४१,२८,८ २४,१ य: संग्रामं नयति० । अथर्व. ४,२३,७ । इन्द्रस्य मन्वे० । अथर्व. ४,
[अग्नेर्मन्वे प्रथमस्या० । ४,२३,१ । यस्येदं प्राणन्निमि० । अथर्व. ४,२३,७ ।
(ययोः) रथ ऋजु० (सत्य०) । अथर्व. ४,२९,७ । वायोः सवितुर्विदथानि० । अथर्व. ४,२५,१ । यो वा९ उप श्रेष्ठा न० । अथर्व. ४,२५,३ । रथीतमौ (प्र सुमतिं) रथीना० । अथर्व. ४,२५,६ । स्तौमि देवा (मयावर्षौ) ० । अथर्व. ४,२८,७ । मरुतां (देवानां) मन्वे० अथर्व. ४,२७,१]

तिग्ममायुधं वीडितं सहस्वद्दिव्यं शर्धः पृतनासु जिष्णु ।
स्तौमि देवान्मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ८१
देवानां मन्वे अधि नो ब्रुवन्तु प्रेमां वाचं विश्वामवन्तु विश्वे ।
आशून् हुवे सुयमानूतये ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ॥ ८२
यदिदं माभिशोचति पौरुषेयेण दैव्येन ।
स्तौमि विश्वान् देवान् नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वेनसः ।
अन्वद्य नो अनुमति,—रन्विदनुमते त्वं, वैश्वानरो न ऊत्या ॥ ८३
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ ८४
उर्वी रोदसी वरिवस्कृणोतं क्षेत्रस्य पत्नी अधि नो ब्रुवाथः ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ८५
ये अप्रथेताममितेभिरोजोभिर्ये प्रतिष्ठे अभवतां वसूनाम् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ८६
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा युविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्वस्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ८७
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ५ ॥ ८८

[१९६३]

॥ इत्युपरिकाण्डे षोडशः प्रपाठकः ॥ १६ ॥

॥ इत्युपरिकाण्डं समाप्तम् ॥

[तिग्ममायुधं (०मनीकं)० । अथर्व. ४,२७,७ । यदिदं माभिशोचति (०यन्मेदमभि०) । अथर्व. ४,२६,७ । अन्वद्य नो (०अनु नो०) । ऋ. परि. ३,३; अथर्व. ७,२०,१ । अन्विदनुमते० । ऋ. परि. ३,४ । अथर्व. ७,२०,२ । वैश्वानरो न ऊतय० । ६,३५,१; आ. श्रौ. सू. ९,११ । त्वमग्ने शोचिषा० । ऋ. ७,१३,२; तै. सं. १,५,११,२ । स्तौमि द्यावापृथिवी० । अथर्व. ४,२६,७ । ये अप्रथेताममिते० अथर्व. ४,२६,१—१ । यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा० । ऋ. ४,१२,४, तै. सं. ४,७,१५,६ । यथा ह त्यद्वसवो० । ऋ. ४,१२,६,१०, १२६,८; तै. सं. ४,७,१५,७]

अथ चतुर्थं काण्डम्।

अथ प्रथमः प्रपाठकः।

पुरोडाशब्राह्मणम्।

वनस्पतीन्वा उग्रो देवं उदौपत्, त२ शम्या अध्यशमय२,—स्तच्छम्याः शमीत्वं२, यच्छमीशाखया वत्सानपाकरोति शान्त्यै, पर्णवती कार्या, पशूना२ वा एतद्रूपं, पशुमान् भवति, यद्दुपर्णा स्याद्दण्डस्य तद्रूपं२, वज्रो दण्डो, वज्रेण पशूनभिप्रवर्तयेत्, तृतीयस्या२ वै दिवि सोम आसीत्, तं गायत्री श्येनो भूत्वाहरत्, तस्य पर्णमछिद्यत, ततः पर्णोऽजायत, तत् पर्णस्य पर्णत्वं, तस्मात् सर्वेऽन्ये वनस्पतयः पर्णिनो, ऽथैष पर्ण उच्यते, यत् पर्णशाखया वत्सानपाकरोति तमेव सोममवरुन्द्धे, देवा वै ब्रह्म समवदन्त, तत् पर्ण उपाशृणोत्, सुश्रवा वै नामैष, न बधिरो भवति य एव२ वेद, ब्रह्म वै पर्णो, यत् पर्णशाखया प्रार्पयति ब्रह्मणैवैनाः प्रार्पयती,—षे त्वो,—र्जे त्वे,—ति पयः२ यज्ञे च यज्ञपतौ चाधाद्, वायवः स्थेति, वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षो, ऽन्तरिक्षदेवत्याः पशवो, वायुरेवैनानन्तरिक्षाय परिददाति, प्र वा एनानेतदाकरोति, यद्वायवः स्थेत्याहा,—ऽरण्यस्येव हि वायु,—र्देवो वः सविता प्रार्पयत्विति, सवितृप्रसूत एवैनाः प्रार्पयति, श्रेष्ठतमाय कर्मण इति, यज्ञो वै श्रेष्ठतमो, यज्ञायैवैनाः प्रार्पयत्या,—प्यायध्वमघ्न्या देवेभ्य इति, वत्सेभ्यश्च वा एता मनुष्येभ्यश्च पुराप्यायन्ते, ऽथैतर्हि देवेभ्य एवैना आप्याययति, मा वः स्तेन ईशत माघशंसा इत्या,—शिषमेवाशास्ते,
ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीरिति, प्रैव जनयति ॥ १
शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ॥ २
इति पुनात्येवैनाः ॥ ३
रुद्रस्य हेतिः परि वो वृणक्तु ॥ ४
इति रुद्रादेवैनास्त्रायन्ते ॥ पूषा वः परस्पा अदितिः प्रेत्वरीया इन्द्रो वोऽध्यक्षोऽनष्टाः पुनरेत ॥ इति त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैना लोकेभ्यः पुनरावर्तयति, यजमानस्य पशून् पाही,—ति यजमानस्यैव पशूनां गोपीथायाहिंसायै ॥ प्रतीची२ शाखामुपगूहति तस्माद्ग्राम्याः पशवः
सायमरण्याद्ग्राममायन्ति, प्रत्यञ्च एनं पशवो भवन्ति य एव२ वेद ॥ १ ॥ ५–८

[१] मै. १,१,१, । तै. ब्रा. ३,२,१ । काठ. ३०,१० । कपि. ४६,८ । वा. १,१,१६,५० । काण्व. १,१—३:१७,५०।
[मा ध। स्तेन ईशत० । ४,२१,७]
मै. ४२

देवस्य त्वा सवितुः प्रसु३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा इति, सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिराददत्ते, प्रजापतिर्वा ओषधीः परुश्शो वेद, प्राजापत्योऽश्वो, यदश्वपरश्वा बर्हिर्दात्योषधीनामहिंसायै, गोषदसी,—ति रयिं२ यजमाने दधाति, प्रत्युष्ट२ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छेति, विद्या वै धिषणा विद्ययैवैनदच्छैति, मनुना कृता स्वधया वितष्टेति, मनुना३ह्येषा कृता स्वधया वितष्टा तया वहन्ते कवयः पुरस्तादिति, ब्राह्मणाः
कवया,• ऋषयः कवयः ॥ ९
देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासदे ॥ १०
इति देवेभ्य एवैनं जुष्टं करोति, देवानां परिषूतमसीति, यद्वा इदं किंच तद्देवानां परिषूतं२, यथा श्रेयसे प्रोच्य कर्म करोत्येवं२ वा एतद्देवेभ्यः प्रोच्य बर्हिर्दाति, यावत् परिदिशति तत् सर्वं दाति, यत्तत्सर्वं न दाति यज्ञस्य तदतिरेचयति, यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते भ्रातृव्यं तेन वर्धयत्यं,—रु२ स्तम्बं परिदिशति, त२ सर्वं दाति यज्ञस्यानतिरेचाय, विष्णोः स्तुप इति, विष्णोर्वै स्तुपोऽछिद्यत, स पृथिवीं प्राविशद्, यत् प्रथमं नोत्सृजेदार्तिमार्छेद्, देवस्य त्वा सवितुः प्रसु३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां बर्हिर्देवसदनं दामीति, सवितृप्रसूत एवैनद्देवताभिर्दाति ॥ मा घो मोपरि परुस्त ऋध्यासम् ॥ इत्योषधीनामहिंसायै ॥ आछेत्ता ते मारिषम् ॥ इति यावद्यायदेवमविद्वानध्वर्युर्बर्हिर्दाति तावदस्यात्मनो मीयते, नास्यात्मनो मीयते य एव२ वेदा,—ऽतस्त्वं बर्हिः शतवल्शं२ विरोहे,—त्योषधीष्वेव भूमानं दधाति, सहस्रवल्शा वि वयं२ रुहेमे,—त्याशिषमेवाशास्ते, ऽदित्या रास्नासीती,—यं२ वा अदिति,—रस्या एवैनद्रास्नां करोती,—न्द्राण्याः संनहनमिती,—न्द्राणी वा अग्रे देवताना२ समनह्यत ऋद्धिकामा, साभ्यर्ध्नुवा, ऋध्नोति य एव२ वेद, बर्हिः संनह्यति, प्रजा वै बर्हिः, प्रजाना२ संतत्यै प्रजानामपरावापाय, तस्मात् स्नान्ना प्रजाः संतताः, पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नात्विति, पुष्टिर्वै पूषा,
पुष्टिं२ यजमाने दधाति, स ते मास्था,—दिति यजमानस्याहिंसायै ॥ ११–१५
आपस्त्वामश्विनौ त्वामृषयः सप्त मामृजुः । बर्हिः सूर्यस्य रश्मिभिरुषसां केतुमारभे ॥ १६
इत्यश्विनौ वै देवानां भिषजौ, तौ एनाद्भिषज्यता, इन्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छा इती,—न्द्र-

[२] मै. १,१,२ । तै. ब्रा. ३,२,२ । काठ. ३१,१ । कपि. ४७,१ । वा. १,१०,११,२४;२,११;५,२२,२६;६,१,९,३०; ९,३०,३८;११,९,२८;१८,३७;२०,३;३७,१;३८,१,१,७,२९ । काण्व. १,१३,३६,४०,२,२२;५,२८,३३;६,१, १०,४३;१०,३९;११,४;१२,९,२८;२०,७;२१,९३;३७,१,३८,१,१,१०,४६ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]

स्यैवैनद्बाहुभ्यामुद्यच्छते, बृहस्पतेर्मूर्ध्ना हरामीति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणैवैनद्धरत्यु,—३र्वन्तरिक्ष,—मिति संमिष्टया एवा,—ऽऽदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयामीती,—यं२ वा अदितिरस्यामेवैनदसीदत् ॥ बर्हिरसि देवंगमम् ॥ इत्यासन्नमभिमन्त्रयते, बहु वा एतस्य पूर्वेद्युराह्रियमाणस्येह चेह
च स्कन्दत्यं,—स्कन्नमेनद्देवताभ्यः संप्रादायजमानस्याहिंसायै ॥ २ ॥ १७–१९
पू३र्वेद्युरिध्मा बर्हिः कुर्वन्ति, यज्ञमेवारभ्योपवसति, प्रजापतिः प्रजा असृजत, तस्योखे अस्रंसेता२, स एताभ्यामुखाभ्यां प्रत्यधत्त, यदेते उखे भवतः, प्रजापतेरेवोखे प्रतिदधाति, शुन्धध्वं दैव्याय कर्मणा, इति देवेभ्य एवैनानि शुन्धति, वसूनां पवित्रमसीति, वसूना२ वा एतद्भागधेयं, तेभ्य एवैनत् करोति, पवित्रमपिदधात्यो,—षधीनां च पशूनां च पयः सं२सृजति, वाच२ यच्छति यज्ञस्य धृत्यै, धारयन्नास्ते, धारयन्त इव हि दुहन्ति, द्यौरसि पृथि३व्यसीत्या,—स्यामेवैनां प्रवृणक्ति, मातरिश्वनो घर्म इत्य,—न्तरिक्ष२ वै मातरिश्वनो घ३र्मो, ऽन्तरिक्षस्य धृत्यै, कामधुक्षः, सा विश्वायुः, सा विश्वभूः, सा विश्वकर्मेत्य,—सौ वाव विश्वायु,—रन्तरिक्ष२ विश्वभू,—रियं२ विश्वकर्मे,—मान्वा एतल्लोकान् यथापूर्वं प्रदापयत, इमाल्लोकान् यथापूर्वं प्रत्तान् दुहे य एव२ वेद, तिस्रो यजुषाभिमन्त्रयते, त्रयो वा इमे लोका, एषु वा एतं लोकेषु रसं दधाति, तस्मादिमाल्लोकान् प्रजा उपजीवन्ति, इन्द्राय देवेभ्यो हविर्विहं दुग्धि ॥ इति हुतः स्तोको हुतो द्रप्स, इत्यभिमन्त्रयतेऽस्कन्दाय ॥ इन्द्राय देवेभ्यो हविर्विहं दुग्धि ॥ इति
हुतः स्तोको हुतो द्रप्स, इत्यभिमन्त्रयतेऽस्कन्दाय ॥ इति त्रिरुद्धदति, त्रिषत्या हि देवा, न दारुपात्रेण दुह्या,—दग्निमद्वै दारुपात्रं२, यातयामेन हविषा यजेत, तद्धि स्यादुदत्रियाः पुरोडाशमुख२ हवि,—र्नै वा इतं इतः पुरोडाश२ हविषो यामोऽस्ति, दोग्धव्यमेवेति, न शूद्रो दुह्या,—दसतो वा एष संभूतो, ऽमन्तस्याद्,
यद्वै पवित्रमत्येति तद्धवि,—रग्निहोत्रमेव शूद्रो न दुह्यात्, तद्धि नोत्पुनन्ति ॥ २०–२२
संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिणा मधुमत्तमाः । पृश्नतीः पयसा पयो मन्द्रा धनस्य सातये ॥ २३
इति प्रतिनयति शृतत्वाय, शृतकामा हि देवा, इन्द्राय त्वा भाग२ सोमेनातनच्मीति, अदस्तसोममेवैनत् करोति, तस्य ह त्वै सोमपीथः संततो य एव२ विद्वान्त्सांनाय्यं पिबति ॥ अदस्तसौम्यमेवैनत् करोति, विष्णो हव्य२ रक्षस्वे-मसि विष्णवे त्वा ॥ इति, यज्ञो वै विष्णु,—र्यज्ञायैवैनदस्तं करोति, विष्णो हव्य२ रक्षस्वे-ति, यथाहैष ते भागस्त२ रक्षस्वेत्ये,—व२ वा एतद्विष्णुमाहे,—तन्ते हव्यं, तद्रक्षस्वेति,

[३] मै. १,१,३ । तै. ब्रा. ३,२,३ । कठ. ३१,२ । कपि. ४७,२ । वा. १,२,४ । काण्व. १,४,७ ।

न मृत्पात्रेणापिदध्यात्, पितृदेवत्य२ हविः स्याद्, दारुपात्रेणापिदध्या,—दग्निमद्वै दारुपात्र,—मग्निरेव हव्य२ रक्षत्यु,—दन्वत्का३र्य,—मापो वै रक्षोघ्नी,—रपो रक्षा२सि न तरन्ति, रक्षसामपहत्यै ॥ ३ ॥ २४–२६
यो वै श्रद्धामनालभ्य यजते नास्य देवमनुष्या इष्टाय श्रद्दधत्य,—पः प्रणयत्या,—पो वै श्रद्धा, श्रद्धामेवालभ्य यजता, आपो यज्ञो, यज्ञं तत्वा प्रचरत्या,—पो देवानां प्रियं धाम, देवानां प्रियं धाम प्रणीय प्रचरत्या,—पः सत्यं२, सत्यमेवालभ्य यजता, आपो रक्षोघ्नी, रक्षसामपहत्या, आपो वज्रो, वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति स्तृत्या, आपः श्रद्धा, श्रद्धास्य देवाः श्रन्मनुष्या इष्टाय दधते यस्यैवं२ विदुष एवं२ विद्वानपः प्रणयति, दैवीरापोऽग्रेगुवा, इति यज्ञमेव प्रणयति, देवस्य त्वा सवितुः प्रसु३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा, इति सवितृप्रसूत एवैनद्देवताभिराददत्त उ३र्वन्तरिक्ष,—मिति संमिष्टया एवं, प्रत्युष्ट२ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, धूरसि, ध्वर ध्वरन्तमिति, धुर्यो वै नामै३षोऽग्निर्यदनालभ्यातीयाद्, यजमान२ शुचार्पयेद्, द्वौ वाव पुरुषस्य भ्रातृव्यौ, यं द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि, तौ एवं शुचार्पयति ॥
॥ ४ ॥ २७
देवानामसि वह्नितम२ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतम,—मिति देवेभ्य एवैनद्वह्नितम२ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमं करोत्य,—हुतमसि हविर्धानं, दृंहस्व, मा ह्वा,—रिति दृंहत्येवैनद्, विष्णोः क्रमोऽस्य,—रु वातायेति, यद्वै किंच वातो नाभिवाति तद्वरुणस्या,—वरुण्यमेवैनत् करोति, मित्रस्य वश्चक्षुषा प्रेक्षा, इति मित्रमेवैनान् कुरुते ॥ ऊर्जे गृह्णीत ॥ इत्यूर्ज२ यजमाने दधाति ॥ प्रभूत्यै वः ॥ इति प्रैवैनान् भावयति, देवस्य वः सवितुः प्रसु३वेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्या२, यच्छन्तु पञ्च, गोपीथाय वो नारातये, ऽग्नये वो जुष्टान्निर्वपामी,—ति सवितृप्रसूत एवैनान् देवताभिर्निर्वपति, यच्छन्तु पञ्चेति, पञ्च वा ऋतव, ऋतून् वा एतद् प्रीणाति, तेऽस्मै प्रीताः कल्पन्ते, गोपीथाय वो नारातया, इति रक्षसामपहत्या, अग्नये वो जुष्टानित्य,—ग्नय एवैनान् जुष्टान् करोत्य,—थो यस्यै देवतायै निर्वपति तस्या एनान् जुष्टान् करोती,—दं देवानामिदमु नः सहे,—ति व्यावृत्त्यै, दृंहन्तां दुर्या, इति

[४] मै. १,१,४ । तै. ब्रा. ३,२,४,१ । काठ. ३१,३ । कपि. ४७,३ । वा. १,७—८,१०,१२,११,२४,२९,३१। काण्व. १,१०—११,१३,१७,३६,४०,४३,४९ ।
[५] मै. १,१,५ । तै. ब्रा. ३,२,४,४ । काठ. ३१,३ । कपि. ४७,३ । वा. १,७—११ । काण्व. १,१०,१२—१५ ।

हविषो गृहीतादिमे लोका उदवेपन्त, तान्देवा एतेन यजुषादृꣳहन्, यदेतद्यजुर्वदत्येषां लोकानां धृत्यै, निर्ऋत्यस्य पाशादमुक्षी,—ति वरुणपाशादेवैनं निर्मुच्यत आत्मनोऽहिꣳसायै, स्वरभिव्यख्य,—मिति तम इव वा एष प्रपद्यते परीणहꣳ, स्वरेवाभिविपश्यति, ज्योतिर्वैश्वानरमित्य,—सौ वा आदित्यो ज्योतिर्वैश्वानरम् ॥ उरुवन्तरिक्षमन्वेमि ॥ इति यदूरीहीति ब्रूयात्प्रायुकोऽध्वर्युः स्यात् ॥ उरुवन्तरिक्षमन्वेमि ॥ इत्यप्रायुकोऽध्वर्युर्भवत्य,—दित्या च उपस्थे सादयामीती,—यꣳ वा अदिति,—रस्यामेवैनानसीषदत् ॥ अग्ने हव्यꣳ रक्षस्व ॥ इति पुर उपसादयत्य,—ग्निरेव हव्यꣳ रक्षते ॥ ५ ॥ २८--३८

विष्णोर्मनसा पूते स्थः ॥ इति, यज्ञो वै विष्णु,—र्यज्ञायैवैने पुनाति, देवो वः सवितोत्पुनात्वि,—ति सवितृप्रसूत एवैना उत्पुनात्य,—यये वो जुष्टा,—नित्ययमेव एवैनान् जुष्टान् करोत्य,—थो यस्यै देवतायै प्रोक्षति तस्या एनान् जुष्टान् करोति, यद्वोऽशुद्ध आलेभे तच्छुन्धध्व,—मिति शुन्धत्येवैनान्, अदित्यास्त्वगसीती,—यꣳ वा अदिति,—रस्या एवैनस्त्वचं करोत्य,—वधूतꣳ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, प्रतीचीनग्रीवं कृष्णाजिनमुपस्तृणाति, तस्मात् प्रत्यञ्चः पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते, पृथुग्रावासि वानस्पत्य, इति ग्रावाणमेवैनत् करोत्य,—ग्नेर्जिह्वासि वाचो विसर्जनमित्य,—ग्नेर्ह्येषा जिह्वा वाचो विसर्जनꣳ, यदा हि पशवा ओषधीनामश्नन्त्यथ वाचꣳ विसृजन्ता, आयुषे वा, इत्यायुर्यजमाने दधाति, बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यं, इति ग्रावाणमेवैनत् करोति, देवेभ्यो हव्यꣳ शमीष्वे,—ति देवेभ्य एवैनत् करोति ॥ अपहतꣳ रक्षः ॥ इति रक्षसामपहत्यै ॥ हविष्कृदेहि ॥ इति यो देवानाꣳ हविष्कृत्तꣳ ह्वयति, त्रिर्ह्वयति, त्रिषत्या हि देवा, मनोर्वै श्रद्धादेवस्य यजमानस्यासुरघ्नी वाग्यज्ञायुधानि प्रविष्टासीत्, तस्या यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वꣳस्तावन्तस्तदहनीयन्त,—क्षेवꣳ विद्वान् ब्राह्मणो भ्रातृव्याणां मध्येऽवसाय यजेत, यावन्त एवास्य भ्रातृव्या यज्ञायुधानामुपशृण्वन्ति तेषां तेन इन्द्रियꣳ वीर्यꣳ वृङ्क्ते, कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वस्त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्मेति, संघातꣳसंघातꣳ वावैतेन यजमानो भ्रातृव्यं जयतीष,—मावद,—ऊर्जमावद, रायस्पोषमावदेत्या,—शिषमेवाशास्ते ॥६॥ ३९-४४

[६] मै. १,१,६ । तै. ब्रा. ३,२,५,१ । काठ. ३१,४ । कपि. ४७,४ । वा. १,१२—१६ । काण्व. १,१६,१८—२१, २३—२४,२६ ।

वर्षवृद्धमसि, प्रति त्वा वर्षवृद्धꣳ वेत्वि,—ति प्रतिष्ठित्या, असुरा वै देवाः पशुभ्यो रक्षाꣳसि निरवादयन्त तुषैरोषधीभ्यो, यदाह, परापूतꣳ रक्षः, परापूता अराति,—रित्येतावुतैव यज्ञस्य रक्षाꣳसि निरवदयते ॥ देवो वः सविता विविनक्तु ॥ इति सवितृप्रसूत एवैनान् विविनक्ति ॥ सुविचा विविच्यध्वम् ॥ इत्याशिषमेवाशास्ते, सुफलीकृतान् कुर्यान्, मेध्यानेनान् यज्ञियान् करोति, त्रिः फलीकरोति, त्रिषत्या हि देवा, अदित्यास्त्वगसीती,—यꣳ वा अदिति,—रस्या एवैनस्त्वचं करोत्य,—वधूतꣳ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, प्रतीचीनग्रीवं कृष्णाजिनमुपस्तृणाति, तस्मात् प्रत्यञ्चः पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते, ऽदित्याः स्कम्भोऽसी,—ति शम्यामुपदधाती,—मे वै सहास्तां, ते शम्यामात्रꣳ शम्यामात्रꣳ व्यैताꣳ, यच्छम्यामुपदधात्यनयोरेव विधृत्यै, धान्यमसि, धिनुहि देवानित्ये,—तस्य वै यजुषो वीर्येण यावदेका देवता काम्यते, यावदेका तावदस्या आहुतिः प्रथते, प्रथते प्रजया पशुभिर्य एवꣳ वेद, प्राणाय त्वापानाय त्वा व्यानाय त्वे,—ति प्राणमपानꣳ व्यानं तान् यजमाने दधाति, दीर्घामनु प्रसितिꣳ सꣳस्पृशेथा,—मायुषे वा, इत्यायुरस्मिन् दधाति, मित्रस्य वश्चक्षुषावेक्षा, इति मित्रमेवैनान् कुरुते, देवो वः सविता हिरण्यपाणिरुपगृह्णात्वि,—ति सवितृप्रसूत एवैनानुपगृह्णाति ॥ ७ ॥ ४५-४९

निर्दग्धꣳ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, यदधस्तादङ्गारमुपवर्तयत्यस्मिꣳस्तेन लोके ज्योतिर्धत्ते, यदुपरिष्टादन्तरिक्षे तेना,—ऽसा अस्मा आदित्योऽमुष्मिल्लोके ज्योतिर्भवत्य,—थो दिवैवास्मा अमुष्मिल्लोके भवति सर्वेऽस्मा इमे लोका ज्योतिष्मन्तो भवन्ति य एवꣳ वेद, त्रीणि समीचीनान्युपदधाति, त्रयो वा इमे लोका, एषां लोकानां धृत्या, अपाग्नेऽग्निमामादं जही,—ति य आमात् क्रव्यात्तमुपहत्य देवयजने यज्ञिया उपदधाति, ध्रुवमसि, पृथिवीं दृꣳहे,—ति पृथिवीमेव दृꣳहति, धरुणमस्य,—न्तरिक्षं दृꣳहे,—त्यन्तरिक्षमेव दृꣳहति, धर्त्रमसि, दिवं दृꣳहे,—ति दिवमेव दृꣳहति, धर्मासि, विश्वा विश्वानि दृꣳहे,—ति दिश एव दृꣳहति, प्रजापतिर्वै यत् समभवत् स एतावच्छ एव समभव,—देकꣳ वा अग्रे शीर्ष्णः कपालꣳ संभवत्य,—थ द्वितीयमथ तृतीयमथ चतुर्थमथ पञ्चममथ षष्ठमथ सप्तममथाष्टमꣳ, यदष्टा उपदधात्यात्मानꣳ वा एतद्यजमानः सꣳस्कुरुते, तꣳ सꣳस्कृतममुष्मिल्लोकेऽनुपरैति, यदष्टा उपदधाति

[७] मै. १,१,७ । तै. ब्रा. ३,२,५,१० । काठ. ३१,४—५ । कपि. ४७,४—५ । वा. १,१६,१९—२० । काण्व. १, २५,३१—३४ ।

[८] मै. १,१,८ । तै. ब्रा. ३,२,६—७ । काठ. ३१,६ । कपि. ४७,६ । वा. १,१७—१८ । काण्व. १,२७—३० ।

गायत्रीं तेन छन्द आप्नोति, यदेकादश त्रिष्टुभं तेन, यद् द्वादश जगतीं तेना,—ऽथो सर्वाण्येव छन्दःसंमितान्युपदधाति ॥ चितः स्थ, परिचितः स्थ ॥ इति यजुष्मन्ति करोति, वसूनाꣳ रुद्राणामादित्यानां भृगूणामङ्गिरसां घर्मस्य तपसा तप्यध्व,—मित्येतासामेतानि देवतानां तपसा तपति ॥ ५०-५२

यानि घर्मे कपालान्युपचिन्वन्ति वेधसः । पूष्णस्तान्यपि व्रत इन्द्रवायू विमुञ्चताम् ॥ ५३

इति यजुषैव युज्यन्ते, यजुषा विमुच्यन्ते ॥ ८ ॥ ५४

देवस्य वः सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याꣳ संवपामी,—ति सवितृप्रसूत एवैना देवताभिः संवपति, पवित्रवत्सꣳवपति, हविः करोति, देवो वः सवितोत्पुनात्वि,—ति सवितृप्रसूत एवैना उत्पुनात्य,—प उपसृजत्य,—मृतꣳ वा आपो, ऽमृतमेव हविः करोति, समापा ओषधीभिर्गच्छन्ताꣳ, समोषधयो रसेन, सꣳ रेवतीर्जगतीभिरि,—त्यापो वा एतासामन्या जिन्वन्त्या,—पा ओषधीर्जिन्वन्त्यो,—षधीरपः, शिवाः शिवाभिः समसृक्षतापा इत्या,—पो वै रेवती,—रोषधयो मधुमतीः, पशवो जगती,—रप ओषधीः पशूꣳस्तानसꣳसृज्यैकधा मधुमतः करोति ॥ मखस्य शिरोऽसि ॥ इत्याह यज्ञो वै मख,—स्तस्य वा एतच्छिरः क्रीयते, सीदन्तु विशो, जनयत्यै त्वे,—ति मिथुनमेव करोति, घर्मोऽसि विश्वायु,—रुरु प्रथस्वो,—रु प्रथस्वो,—रु ते यज्ञपतिः प्रथतामिति, प्रथयत्येवैनं ॥ प्रति प्रथस्व पृथिवीमुत द्याम् ॥ इतीमे एव प्रथयति, घर्मो वा एषोऽर्धमासेऽर्धमासे प्रवृज्यते, स ईश्वरोऽशान्तस्तेजसा यजमानस्य पशून्निर्दहो यत् पर्यग्नि करोति पशुमेव करोति शान्त्या अनिर्दाहाय, त्रिः पर्यग्नि करोति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति, पुरोडाशꣳ वा अधिश्रितꣳ रक्षाꣳस्यजिघाꣳस,—न्स नाको नाम दिवि रक्षोहाग्निः, सोऽस्माद्रक्षाꣳस्यपाहन्न, यदाह, देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाके पृथिव्या, इति रक्षसामपहत्यै, शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत् पुरोडाशः, केशा वेदो, यथा शीर्ष्णः कपालान्येवं कपालानि, यथा मस्तिष्क एवं पुरोडाशः, संभृतः कार्यो मेध्यत्वाय, यत् पुरोडाशं नाभिवासयेदाविर्मस्तिष्कः स्याद्, यदभिवासयति तस्माद्गुहा मस्तिष्कस्त्वचं ग्राहयति, तस्मान्मस्तिष्कः परिवृतो भस्मनाभ्यूहति, तस्मान्माꣳसेनास्थि छिन्नं ज्वालैरभिवासयति, तस्मात् केशैः शिरश्छिन्नꣳ, यत्त्वचमग्राहयित्वा

[९] मै. १,१,९ । तै. ब्रा. ३,२,८ । काठ. ३१,७ । कपि. ४७,७ । वा. १,२१—२२ ११,५७,३७,८ । काण्व. १, ३६—३८,१२,५९,३७,८ ।

भस्मनाभिवासयेत् पलितंभावुकोऽध्वर्युः स्या,—ज्ज्वालैरभिवासयत्यपलितंभावुकोऽध्वर्युर्भवति, ते वै देवास्तं नाविन्दन् यस्मिन् यज्ञस्य क्रूरमाक्ष्यामहा इति, सोऽग्निरब्रवी,—दहꣳ वस्तं जनयिष्यामि यस्मिन् यज्ञस्य क्रूरमाक्ष्यध्वा इति, सोऽपोऽङ्गारेणाभ्युपातयत्, तत एकतोऽजायत, द्वितीयं, ततो द्वित,—स्तृतीयं, ततस्त्रितो, यदद्भ्योऽधिनिरमिमीत तदाप्त्यानामाप्त्यत्वꣳ, यदात्मनोऽधिनिरमिमीत तदात्मेयानामात्मेयत्वं,—मन्तर्वेदि जुहोति, तदेवावरुन्द्ध, उपरिष्टादभिघारयति श्रतत्वाय, श्रतकामा हि देवा,—स्ते देवा अतिमृजाना आय,—न्त्सूर्याभ्युदिते तेऽमृजत, यꣳ सुप्तꣳ सूर्योऽभ्युदेति सूर्याभ्युदितः, सूर्याभिनिम्रुक्ते सूर्याभिनिम्रुक्तः, श्यावदति श्यावदन्, कुनखिनि कुनख्य,—ग्रेदधुष्यग्रेदधुः, परिवित्ते परिवित्तः, परिविविदाने परिविविदानो, वीरहणि वीरहा, भ्रूणहनि भ्रूणहनमेनो नात्येति ॥ ९ ॥ ५५-५९

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददा इति, सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिरादत्ते, सहस्रभृष्टिः शततेजा इति, वज्रꣳ वा एतत् सꣳश्यति भ्रातृव्याय प्रहरिष्यन्, पृथिवि देवयजनि मा हिꣳसिषं ता ओषधीनां मूल,—मित्योषधीनामहिꣳसायै, व्रजं गच्छ गोस्थानमिति, छन्दाꣳसि वै व्रजो गोस्थान,—श्छन्दाꣳस्येवास्मै व्रजं गोस्थानं करोति, वर्षतु ते पर्जन्या इति, पर्जन्यादेव वृष्टिꣳ वनुते, बधान देव सवितः शतेन पाशैः परमस्यां परावतीति, द्वौ वाव पुरुषस्य भ्रातृव्यौ यं द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि, तावेव बध्नाति परमस्यां परावति, यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमत्र बधान, सोऽतो मा मोची,—त्याशिषमेवाशास्ते, द्रप्सस्ते दिवं मा स्कानिति, यो वा अस्या रसः स द्रप्सं,—स्तमिमं प्रजा उपजीवन्ति, तमस्याꣳ सक्त्यस्कन्दाय ॥ अररुस्ते द्यां मा पप्तत् ॥ इत्यररुर्वै नामासुर आसीत्, स पृथिवीमुपमुच्याशयत्, तमिन्द्रोऽजायत, तं,—मपारकं पृथिव्या अदेवयजन,—मित्यपाह,—न्त्स दिवमपिपतिषत्, तम् ॥ अररुस्ते द्यां मा पप्तत् ॥ इति दिवः प्रत्यनुदत, य एवꣳ विद्वाꣳस्तम्बयजुर्हरत्ये,—भ्यो वा एतल्लोकेभ्यो यजमानो भ्रातृव्यं निर्भजति, त्रिः कृत्वो हरति, त्रयो वा इमे लोका, एभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यं निर्भजति, तूष्णीं चतुर्थꣳ हरति, यो लोको निरुक्तोऽपरिमितस्तस्माद् भ्रातृव्यं निर्भजत्य,—सुराणाꣳ वा इयं पृथिव्यासीत्, ते देवा अब्रुवन्, दत्त नोऽस्याः पृथिव्या इति, ते वै स्वयमेव वृण्वामिति, ततो वै वसवः प्राचीं दिशमुदजयन्,

[१०] मै. १,१,१० । तै. ब्रा. ३,२,९ । काठ. ३१,८ । कपि. ४७,८ । वा. १,२४—२६ । काण्व. १,४०—४३ ।

रुद्रा दक्षिणा,—मादित्याः प्रतीचीं, मरुता उदीचीं, ततो वै देवा इमाममसुराणामविन्दन्त,
ततो देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो निरभजꣳ,—स्ततो देवा अभवन्, परासुरा, यदेवमेताभि-
र्देवताभिर्वेदिं परिगृह्णातीमाꣳ वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, ऽस्या भ्रातृव्यं निर्भजति,
भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, पृथिव्या वै मेध्यं चामेध्यं च व्युदक्रामत्, प्राची-
नमुदीचीनं मेध्यमुदक्रामद्, दक्षिणा प्रतीचीनममेध्यं, प्राचीमुदीचीꣳ वेदिं प्रवणां कुर्या,—
न्मेध्यानेनान् यज्ञियान् करो,—त्यथो यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरमक्रꣳस्तदक्रूरमक,—स्तच्छमयत्य,-
—थो मेध्यस्य चैवामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै, प्राञ्चौ बाहू नयत्या,—हवनीयं तेन परिगृह्णाति,
प्रतीची श्रोणी, गार्हपत्यं परिगृह्णाति, मूलꣳ वै रक्षाꣳस्यनूत्पिबन्ति, यन्नखेन छिन्द्यात्
कुनखी स्यात्, स्फ्येन छिनत्ति, वज्रो वै स्फ्यो, वज्रेणैव रक्षाꣳसि हन्ति ॥१०॥ ६०-६४

यो वै स्रुचाꣳ योगमविद्वानध्वर्यो इति हूतः प्रतिशृणोत्या देवताभ्यो वृश्चते, ऽपशुर्भवत्य,-
—थ यः स्रुचाꣳ योगꣳ विद्वानध्वर्यो इति हूतः प्रतिशृणोति न देवताभ्य आवृश्चते, पशुमान्
भवति, द्यौर्जुहू,—रन्तरिक्षमुपभृत्, पृथिवी ध्रुवा, दिश आज्यधान्य,—सा आदित्यः स्रुवः,
स यत् ॥ ओ श्रावय ॥ इत्याह जुहूं तेन युनक्ति ॥ अस्तु श्रौषट् ॥ इत्युपभृतम् ॥ यजेति ध्रु-
वाम् ॥ ये यजामहे ॥ इत्याज्यधानीꣳ, वषट्कारेण स्रुवं, जुह्वा अधि ध्रुवामभिघारयति,
ध्रुवाया अधि जुह्व,—मसौ ह्यस्यै प्रयच्छती,—यममुष्यै, संततमस्मा अन्नाद्यमव्यवछिन्नं प्रदी-
यतेऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च, पूर्वास्य जनतामायतः कीर्तिरागछति य एवꣳ वेद ॥ ११ ॥
६५-७२

घृतं च वै मधु च प्रजापतिरासीद्, यतो मध्वासीत् ततः प्रजा असृजत, तस्मान्मधोः प्र-
जननमस्ति, तस्मान्मधुना न प्रचरन्ति, यातयामꣳ हि तदाज्येन प्रचरन्त्य,—यातयामꣳ वा
एतत् प्राजापत्यं घृतं,—मयातयामा देवानां प्रजापतिर्गार्हपत्येऽधिश्रयति, पत्न्यवेक्षते, ऽन्वा-
रम्भो वा एष यज्ञस्य यत् पत्न्या, यज्ञमेनामन्वारम्भयत्य,—थो यत् पत्नी यज्ञे करोति मिथुनꣳ
वा एतत् क्रियते प्रजात्या, अमेध्यꣳ वा एतदयज्ञियꣳ यत् पत्न्यवेक्षत, आहवनीयेऽधि-
श्रयति, पुनात्येवैनान्, मेध्यमेनद्यज्ञियं करोति, स्फ्यस्य वर्त्म सादयति रक्षसामपहत्यै,

[११] तै. ब्रा. ३,२,१ । कपि. ४७,९ ।
[१२] मै. १,१,११ । तै. ब्रा. ३,३,४ । काठ. ३१,९ । कपि. ४७,९ । वा. ५,१५;१,२९ । काण्व. ५,२०;१,४६ ।

देवस्त्वा सवितोत्पुनात्विति, सवितृप्रसूत एवैनदुत्पुनाति, हविरसि वैश्वानरमिति, द्वादश वा व्या-
हृतयो, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरेण वा एतत्तेज इन्द्रियꣳ वीर्यꣳ यजमानो भ्रातृव्यस्य
वृङ्क्त, उभयतो वैश्वानरं भवत्यु,—भयतो वैश्वानरꣳ ह्येत,—द्विष्टेजा अस्य निर्वीर्यो भ्रातृव्यो
जायते, ऽथो मृध्रतर एव भवति, देवाश्च वा असुराश्च सꣳयत्ता आस,—न्तस इन्द्र एतमवका-
शमपश्यत्, तेनासुरानभ्यभव,—दभि भ्रातृव्यꣳ यज्ञेन भवति य एवꣳ विद्वान् यजता, आ-
ज्येनान्यानि हवीꣳष्यभिघारयन्ति केनाज्य,—मिति ब्रह्मवादिनो वदन्ति सत्येन वा आज्यमभि-
घृतं, यदाह, सत्येन त्वाभिघारयामीति, चक्षुर्वै सत्यं, चक्षुर्यजमानः प्रदधाति, समी-
स्यैतद्यजुर्वदति, न चक्षुः प्रदधात्या,—ज्यꣳ वै यज्ञो, यज्ञो विष्णुः ॥ ७३

इदꣳ विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा । समूढमस्य पाꣳसुरे ॥ ७४

इति यदोदनपचनेऽधिश्रित्याथ गार्हपत्येऽथाहवनीयेऽधिश्रयत्येतद्वाव तत् त्रिर्विष्णुर्विक्रमते,
प्रत्युष्टꣳ रक्षा, इति रक्षसामपहत्यै, स्रुचः संमार्ष्टि, पुनात्येवैना, मेध्या एना यज्ञियाः
करोति ॥ अनिशिताः सपत्नक्षयणीः ॥ इत्यनिशिता ह्येताः सपत्नक्षयणीः, स्रुवꣳ संमार्ष्टि,
पुमाꣳसꣳ वा आसां तदग्रे सꣳश्यत्य,—थ जुहू,—मथोपभृत,—मथ ध्रुवा,—मसा आदित्यः
स्रुवो, द्यौर्जुहू,—रन्तरिक्षमुपभृत्, पृथिवी ध्रुवे,—मान्वा एतल्लोकान् यथापूर्वꣳ संमाष्टर्ये,—
भ्यो लोकेभ्य आत्मानं परिदत्तेऽहिꣳसायै, जुहूमग्रे संमाष्ट्या,—त्मा वै जुहू,—रात्मानमेवो-
पैत्य,—थोपभृतं, प्रजा वा उपभृत्, प्रजामेवोपैति, परेव ह्यात्मनः प्रजा, ऽथ ध्रुवां,
पशवो वै ध्रुवा, पशूनेवोपैति, पर इव हि प्रजायाः पशवो, यदुत्तानाः संमृज्यादप्रतिष्ठायुकꣳ
रेतः स्याद्, यन्नीचीरप्रतिष्ठायुकꣳ रेतः स्यात्, तिरश्चीः संमार्ष्टि, तिर्यग्वै रेतः सिच्यते,
प्रतिष्ठायुकꣳ रेतो भवति, यदग्रेण मुखं दण्डं च संमृज्याद्रक्षोभ्यश्चाभुवेभ्यश्च समदं दध्या,—द-
ग्रेण मुखꣳ संमार्ष्टि, जघनेन दण्डꣳ, न रक्षोभ्यश्चाभुवेभ्यश्च समदं दधात्य,—न्तरतो जुहूं
प्राचीꣳ संमार्ष्टि बहिष्टात् प्रतीचीं, बहिष्टादुपभृतं प्राचीमन्तरतः प्रतीचीꣳ, सर्वतः समाहाय
ध्रुवां प्राणानेवास्य यथापूर्वं कल्पयति, यजमानदेवत्या वै जुहूर्भ्रातृव्यदेवत्योपभृ,—च्चतुर्गृह्य
जुह्वां भूया आज्यं गृह्णात्य,—ष्टौ गृह्णात्युपभृति कनीय, उपरिस्ति भ्रातृव्यमकृत ॥ १२ ॥
७५-७७

[इदं विष्णुर्वि चक्रमे० । ऋ. १,२२,१७; सा. २२२,१६६९; अथर्व. ७,२६,४; तै. सं. १,२,१३,१; नि. १२,१९]

बर्हीरासादयेद्, यावतीर्वै प्रोक्षणीरासादयति तावतीरस्यामुष्मिंल्लोक आप,—स्तस्माद्बर्हीरा-
सादया, अग्नेर्मेधोऽपाक्रामत्, स कृष्णो भूत्वा वनस्पतीन् प्राविशद्, यदाह, कृष्णोऽस्या-
खरेष्ठो, अग्नये घृतं भवेति, तमेव मेधमवरुन्द्धे, वेदिरसि, बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति,
प्रजा वै बर्हिः, पृथिवी वेदि,—रस्याꣳ वा एतत् प्रजा स्वगाकरोति, यदुपरिष्टात् प्रोक्ष्याध-
स्तात् प्रोक्षति तस्मादुपरिष्टाद्वृष्टादधस्तादोषधयो जायन्ते ॥ ऊर्जा पृथिवीꣳ यछत ॥ इत्यस्यामू-
र्जमदधात्, तस्मादिमां प्रजा उपजीवन्ति, विष्णोः स्तूपोऽसी,—ति मुखतः प्रस्तरं गृह्णाति
मुख्यमेनं तेन शीर्षण्यं करोति, यावद्धस्तेन पर्याप्नुयात्तावन्तं गृह्णीया,—दक्षोधुको यजमानो
भवति, नोर्ध्वमुन्मृज्याद्, यदस्य वित्तꣳ वेद्यं तत् प्रमृज्या,—न्नावाचीनमवमृज्याद्,
यदेनमागमिष्यत् तत् प्रतिनुदेत, न विधूनुयात्, प्रजा पशून् विधूनुयाद्, यदुपतिष्ठित्तदुपसं-
गृह्णीयाद्, यथाशितायोपचिनोत्येवमेव तद्दक्षिणतः शुल्बꣳ स्तृणाति, तस्माद्दक्षिणतो नीवी,—
रुरु प्रथस्वोर्णम्रदसमिति, प्रथयत्येवैनद्, स्वासस्थं देवेभ्या इति, देवेभ्य एवैनत् करोति,
प्रस्तरं धारयन् परिधीन् परिदधाति, स्वयꣳ वा एतद्यजमान आत्मानं परिधत्तेऽहिꣳसायै,
न पुरस्तात् परिदधात्यु,—द्यन्वा असा आदित्यो रक्षाꣳस्यपाहतो,—द्यन्नेवास्मा असा आदित्यो
रक्षाꣳस्यपहन्त्यू,—र्ध्वे समिधा आदधात्यु,—परिष्टादस्मात्तेन रक्षाꣳस्यपहन्ति, द्वे आदधाति
मिथुनत्वाय, विधृती स्था इति, विधृती एवैने करोति ॥ अदित्यास्त्वोपस्थे सादयामि ॥
इती,—यꣳ वा अदिति,—रस्यामेवैनमसीषदद्, वसूनाꣳ रुद्राणामादित्यानाꣳ सदोऽसीत्ये,—ता
वा एतामग्रे देवतामभ्युजयꣳ,—स्ताभ्य एवैनत्सदः करोति, द्यौरसि जन्मना जुहूर्नाम प्रिया
देवानां प्रियेण नाम्ना ध्रुवे सदसि सीदेत्ये—तद्वा आसां प्रियं नाम यद् घृतवत्, सदेवा-
वरुन्द्धे, ता विष्णो पाहि, पाहि यज्ञं, पाहि यज्ञपतिं, पाहि माꣳ यज्ञन्यमिति,
यथा हैप ते भागस्तꣳ रक्षस्वेत्ये,—वꣳ वा एतद्विष्णुमाहै,—तत्ता आज्यं, तद्रक्षस्वेति,
वेदिर्देवेभ्योऽपाक्रामत्, तां देवा वेदेनाविन्दꣳ,—स्तद्वेदस्य वेदत्वꣳ, स्त्री वेदिः, पुमान्
वेदो, यद्वेदेन वेदिꣳ संमार्ष्टि मिथुनत्वाय, संततमाहवनीयात् स्तृणन्नेति यज्ञस्य संतत्यै,
तꣳ संततमुत्तरेऽर्धमासेऽभियजते, वनस्पतिनाꣳ वा एष परिवेष्टा यदुपवेष, ऋद्धा अस्य
वेशा भवन्ति य एवꣳ वेद, पुरस्तात् प्रत्यञ्चमुपहन्ति, तस्मात् प्रतीचीनावसिता वेशाः,

[१३] मै. १,१,११—१२ । तै. ब्रा. ३,३,६ । कठ. ३१,१० । कपि. ४७,१० । वा. २,१–३,६ । काण्व. २,१–२, ४,७–९ ।

स्थविमत उपहन्त्य,—नतिवादिन एनꣳ वेशा भवन्ति, सर्वस्मै वै यज्ञे क्षीयते, सर्पा वा
उपवेषो, वल्मीक उत्करो, यदुपवेषमुत्कर उपहन्ति तस्मात् सर्पाणाꣳ वल्मीको गृहाः ॥
॥ १३ ॥ ७८-८२

भुवनमसि ॥ इति भूतिमाशास्ते ॥ विप्रथस्व ॥ इति प्रथयत्येवैन,—दिवं इन्द्रास्तिष्ठन् वीर्यमकृ-
णोद्देवताभिः समारभ्येत्य,—तो हीन्द्रस्तिष्ठन् वीर्यमकृणोद्देवताभिः समारभ्य ॥ जुहे,—ह्यग्निष्ट्वा
ह्वयति, देवान् यक्ष्यावो देवयज्याया, उपभृदेहि, देवस्त्वा सविता ह्वयति, देवान्
यक्ष्यावो देवयज्यायै ॥ इति, न वा एते अविदुषा स्वादाने इव वरुणपाशान् ह्याक्रामत्येता-
भिरेने देवताभिरादत्ते वरुणपाशानामनाक्रमाय, विष्णोः क्रमोऽसीत्य,—तिक्रामति यज्ञस्यान-
वक्रामायो,—र्वो अध्वरो दिविस्पृगह्रुतो यज्ञो यज्ञपत,—रित्यृजुमूर्ध्वमाघारमाघारयति यज्ञस्या-
ह्रुत्यै,—न्द्रवान्त्स्वेवा,—निति सेन्द्रꣳ यज्ञमकृता,—ऽथो इन्द्रियं तेनावरुन्द्धे ॥ वसुमवस्ते छाया-
मुपस्थेयम् ॥ इत्यग्निर्वै वसुमा,—नग्नेरेव छायामुपतिष्ठत, ऋजुमूर्ध्वमाघारमाघारयेत्, प्राणो वा
आघारः, सर्वमायुर्यजमान एति, यं द्विष्यात्तस्याघारं कुब्जं छिन्द्यात्, प्राणमस्य छिनत्ति,
ताजक् प्रमीयते, शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघारं, आत्माज्यꣳ, यदाघारमाघार्योपभृता समं-
ज्याच्छिरो, यज्ञस्य प्रछिन्द्या,—दाज्यधान्या समनक्ति ॥ ८३-९०

समक्तमग्निना हविः समक्तꣳ हविषा घृतम् ॥ इत्यात्मन् यज्ञस्य शिरः प्रत्यधा,—दथो मनु
एवं यज्ञे प्रतिदधाति, स्तनꣳ स्तनिनीः प्रजा उपजीवन्ति, किमस्तना, इति ब्रह्मवादिनो
वदन्त्य,—मुमी रिहाणा व्यन्तु वया इत्ये,—तद्वाव ता उपजीवन्ति, वशा पृश्निर्भूत्वा मरुतो
गछति, मरुतो वै वृष्ट्या ईशते, तेऽस्मै वृष्टिं निनयन्ति, ततो नो वृष्ट्यावतेति, मरुद्भ्य
एवं वृष्टिꣳ वनुते, चक्षुष्पा अग्नेऽसि, चक्षुर्मे पाहीति, चक्षुरेवास्य पाति, श्रोत्रपा अग्ने-
ऽसि, श्रोत्रं मे पाहीति, श्रोत्रमेवास्य पाति, तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाहीति, तन्व-
मेवास्य पाति, यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्मा आपृणेत्या,—शिषमेवाशास्ते ॥ ९१-९२

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्वीयमानः ।
तं त एतमनु जोषं भरामि नेदेष युष्मदपचेतयातै ॥ ९३

[१४] मै. १,१,१३ । तै. ब्रा. ३,३,७,५—११ । कठ. ३१,११ । कपि ४७,११ । वा. २२,३,५,४२,१२,५,२,८, १६-१८,२१,१४,१७,३,१७ । काण्व २४,३,५,५३,१३,६,२,१२,३२-३५,३९,१५,१७,३,१३—२४ ।
[विष्णोः क्रमोऽसि । अथर्व. १०,५,२५-३५]

इति यजुर्भिर्वै पुञ्ज्यन्ते, यजुषा विमुच्यन्ते, सꣳस्रावभागाः स्थेषा बृहन्ता, इति पारिधीन् प्रहृत्याभिजुहोत्य,—भंगो वा एते तान् प्रीणाति, तान्शमयति भागधेयेन, ब्रह्मवादिनो वदन्ति, स त्वा अध्वर्युः स्याद्, यो यतो यज्ञं प्रयुङ्क्ते तद् प्रतिष्ठापयतीति, देवा गातुविदो गातुꣳ वित्त्वा गातुमित, मनसस्पते सुधात्विमꣳ यज्ञं दिवि देवेषु वाते धाः स्वाहेत्य,—तो वा अध्वर्युर्यज्ञं प्रयुङ्क्ते, तदुवेनं प्रतिष्ठापयति ॥ १४ ॥ ९४

[२०५७]

॥ इति खिलकाण्डे प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः प्रपाठकः ।

गोनामिकः ।

प्रजापतिर्वा एक आसीत्, सोऽकामयत, बहुः स्यां, प्रजायेयेति, स मनसात्मानमध्यायत्, सोऽन्तर्वानभवत्, स विजायमानो गर्भेणाताम्यत्, स तान्तः कृष्णः श्यावोऽभवत्, तस्मात्तान्तः कृष्णः श्याव इव भवति, तस्य वा असुरेवाजीवत्, तेनासुनासुरानसृजत, तदसुराणामसुरत्वꣳ, स यस्तदसुराणामसुरत्वꣳ वेदासुमान् ह भवति, नैनमसुर्जहाति, सोऽसुरान्त्सृष्ट्वा पितेवामन्यत, तेन पितॄनसृजत, तत् पितॄणां पितृत्वꣳ, स यस्तत् पितॄणां पितृत्वꣳ वेद पितेव ह समानानां भवति, यन्त्यस्य पितरो हवं, तस्मै पितॄन्त्ससृजानाय दिवाभवत्, तेन देवानसृजत, तद्देवानां देवत्वꣳ, स यस्तद्देवानां देवत्वꣳ वेद दिवा ह वा अस्मै देवत्रा भवति, यन्त्यस्य देवा देवहूतिꣳ, स देवान्त्सृष्ट्वामनस्यतेव, तेन मनुष्यानसृजत, तन्मनुष्याणां मनुष्यत्वꣳ, स यस्तन्मनुष्याणां मनुष्यत्वꣳ वेद मनस्वान् ह भवति, नैनं मनो जहात्यु,—ते यदतीव वदुल्वांति वा चरति विछन्तेऽस्य मनुष्या मनुर्ये ततो यो योनिरुदशिष्यत सा गौरभवद्, योनिर्वै नामैषा,—ऽद्धा अस्याः प्रत्यक्षं नाम,—ऽथो आहुः, परोक्षमिति, प्र सहस्रं पशूनाप्नोति य एवꣳ वेद, तस्याꣳ वै पयः पर्यपश्यꣳ,—स्तां देवा अदुह्र हरितेन पात्रेणामृतं, दुहेऽमृतꣳ य एवꣳ वेदा,—ऽथ पितरोऽदुह्र रजतेन पात्रेण स्वधां, दुहे स्वधाꣳ य एवꣳ वेदा,—ऽथ मनुष्या अदुह्र दारुपात्रेणान्नꣳ वप्रं, दुहेऽन्नꣳ वप्रं य एवꣳ वेदा,—ऽथासुरा अदुहायस्पात्रेण संवता सुरां, तेऽभव,—न्त्संवत्यस्य भ्रातृव्यो य एवꣳ वेद, तस्मात् संवता न हस्ता अवनेनिजीत, न पिबे,—देते वा अस्या दोहाः, सर्वैरेवास्या दोहैः सर्वैः

कामैर्भुङ्क्ते य एवꣳ वेद चत्वारि वै नभाꣳसि, देवाः पितरो मनुष्या असुराः, सर्वेषु ह वा एतेष्वम्भो नभ इव भवति य एवꣳ वेद, ताꣳ वा अकामयन्त, मयि स्यान्मयि स्यादिति, तां देवाः काम्ये ॥ इत्याह्वयन्त्सा वा एनानभ्यकामयतो,—भये ह वा एनं देवमनुष्या अभिकामयन्ते वारुका एनमार्त्विज्ये भवन्ति य एवꣳ वेद ॥ श्रव्ये ॥ इति मनुष्याः, सा वा एनानशुश्रूषतो,—भये ह वा एनं देवमनुष्याः शुश्रूषन्ते पूर्वास्य जनतामायतः कीर्तिरागच्छति य एवꣳ वेद ॥ इलान्दे ॥ इति पितर,—स्तेभ्यो वा अतिष्ठत, तिष्ठन्त्यस्मिन् पशवो य एवꣳ वेदा,—ऽथ यथासुरा आह्वयꣳस्तेभ्यो वा अत्रसद्, यो द्विष्यात्तस्य तथा गोष्ठ आह्वयेद्रसन्त्यस्मात् पशव, एतैरेव जुहुयात् ॥ गोनामैः सꣳशृङ्ग्या गोर्मूर्धन् पशुकामः ॥ काम्यायै स्वाहा श्रव्यायै स्वाहेलान्दायै स्वाहा ॥ इति गोष्ठो वै नामैषा लक्ष्मीः, स्वे वा एतद्गोष्ठे यजमानो भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्त, एतैर्वै ते ता अवृञ्जत, तैरेवैना वृङ्क्ते, सꣳशृङ्गी भवति पशूनां परिगृहीत्यै, यो वै चक्षुषो विभक्तिꣳ वेद चक्षुष्मान् ह भवति, नैनं चक्षुर्जहाति, यद्दिवा पश्यामस्तद्देवानां चक्षुषा पश्यामो, ऽसौ वा आदित्यो देवानां चक्षुः, पश्यन् ह वै देवत्रा करोति, प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवꣳ वेद, यज्ज्योत्स्नायां पश्यामस्तत् पितॄणां चक्षुषा पश्याम,—श्चन्द्रमा वै पितॄणां चक्षु,—र्नै ह वा एनममुष्मिंल्लोके चक्षुर्जहाति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवꣳ वेद, यत्तमिस्रायां पश्यामस्तन्मनुष्याणां चक्षुषा पश्याम, एतावद्वाव नः स्वं चक्षु,—र्नै ह वा एनमस्मिंल्लोके चक्षुर्जहाति, सर्वमायुरेति य एवꣳ वेद, यदग्नेरन्ते पश्यामस्तदसुराणां चक्षुषा पश्यामा, उग्रं वा एष दीप्यते नि च रिष्यति, दीप्यमानं भ्रातृव्यस्य गृहाद्धरेद्, रयिमेवास्य पुष्टिꣳ हर,—त्यां तु सूर्यस्योदेतोर्जागृयाद, यत्सत्यादार्तिमार्छेत्तज्जागरितव्यꣳ, रयिमेव पुष्टिमनुजागर्ति ॥ १ ॥ १-९

यो वा इडां धेनुꣳ वेद सर्वा ह वा अस्मै दिशो धेनवो भवन्ति, सर्वे प्रतिजना दानकामा,—स्तामिष्वाशनीरामित्रशोचनिर्विदाचकार, तस्मै सर्वा दिशो धेनवो भवन्ति सर्वे प्रतिजना दानकामा,—स्तस्मात् स सर्वैः प्रतिजनैर्व्यवहतोपजनन्त्सर्वा ह्यस्मै दिशो धेनवो भवन्ति सर्वे प्रतिजना दानकामा,—स्तद्य एवꣳ वेद सर्वा एवास्मै दिशो धेनवो भवन्ति सर्वे प्रतिजना दानकामा,—स्तस्या वा इयमेव पादो, ऽन्तरिक्षं पादो, द्यौः पादः, समा पादो, ऽथो आहुः, कृषिः पादा इति, तेन प्रति त्वदानीं तिष्ठति न त्वदानी, यदा

सुमस्यै भवत्येषु प्रतितिष्ठति, यदा न सर्वं भवत्येषु न प्रतितिष्ठति, भवति ह वा अस्य सर्वं नास्य सर्वꣳ व्यृध्यते य एवꣳ वेद, तस्या वा अद एव पृष्ठ—मन्तरिक्षमात्मा,—यमुरो, दिशः पार्श्वे, समुद्रौ कुक्षी, असा आदित्यः शिरो, ऽग्निराश्यꣳ, वातः प्राणो, गायत्र्यभिधानी, सर्वमायुरेति य एवꣳ वेदा,—वरुणरेवादिः, पवमानो वत्स, एष वा एनां प्रस्तौति, प्रत्तान् ह वा इमांल्लोकान् दुहे य एवꣳ वेद, बृहद्रथन्तरे द्वौ स्तनौ, वामदेव्यं च यज्ञायज्ञियं च द्वौ, ओषधीरेव देवेभ्यो रथन्तरेणादुह, पशून् बृहता,—ऽऽपो वामदेव्येन, यशꣳ यज्ञायज्ञियेन, तद्य एवꣳ वेदौषधीरेवास्मै रथन्तरेण दुहे, पशून् बृहता,—ऽऽपो वामदेव्येन, यशꣳ यज्ञायज्ञियेने,—डा वा इदꣳ सर्वꣳ, स सहस्रं पशून् प्राप, प्र सहस्रं पशूनाप्नोति य एवꣳ वेद ॥ २ ॥ १०

यत्र प्राचीनप्रवणꣳ समूलं भूम्या स्यात् तदुपोदये सूर्यस्य हस्ता अवनिज्य दर्भस्तम्बं उदग्रार्वं निनयेद्, कामंकामं मा आवर्तय ॥ इति कामिनैवास्मै काममावर्तयति यत्कामो भवति, यो वै कामꣳ साक्षाद्वेद तावत्य वा एनꣳ स कामा आगच्छति यत्कामो भवति, पशुषु वा अस्यार्ध कामः, पशूनामोषधीष्वो,—षधीनामप्स्वो,—षधीरेव कामेन समसाद्, ता अस्मै कामꣳ समर्धयन्ति यत्कामो भवत्या,—प एवा,—ऽस्यां वा एष व्रिक्रुत्सृष्टश्चरति लोमशो लोमशाया,—स्तस्मादेषा श्रोषसत्त्वेत्य,—ग्निरेवास्या आस्यꣳ, वातः प्राणो, यत्र गोभिः संगच्छेत तद्दूयाद् ॥ प्रशस्ताः स्थ कल्याण्यः ॥ ईतीयꣳ वा एवे,—माꣳ वा एतत् समागमयत, यत्रासुका अस्मात् पशवो भवन्ति य एवꣳ वेद, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्ता,—ऽदितिर्देवेष्वासीत्कुस्त्वासुरेषु, ते देवा अमन्यन्त, यद्यमिजेष्यामः कुस्तायाः शिर आहनिष्यामा इति, यद्यमिजेष्यामा, इत्यसुरा अमन्यन्ता,—ऽदित्याः शिर आहनिष्यामा इति, ता देवा अभिजित्याभत, यस्य वै जितꣳ यस्य विजितं तस्यैषा गृहं हन्यत, एषा वै क्षुत, क्षुधꣳ वा एतद्धते, तद्य एवꣳ विद्वानिकाद्रुकायां गोꣳ हते सꣳवत्सरायैव क्षुधꣳ हते, प्रजापतिर्वा एक आसीत्, सोऽकामयत, बहु स्यां प्रजायेयेति, स आत्मानमैक्षत्, स मनोऽसृजत, तन्मन एकधासीत्, तदात्मानमैक्षत्, तद्वाचमसृजत, सा वागेकधासीद्, सात्मानमैक्षत्, सा विराजमसृजत, सा विराडेकधासीद्,

[३] मा. श्रौ. ९,५,१ ।

सात्मानमैक्षत्, सा गामसृजत, सा गौरेकधासीत्, सात्मानमैक्षत्, सेडामसृजत, सेडेकधासीत्, सात्मानमैक्षत्, सेमान् भोगानसृजत, यैरस्या इदं मनुष्या भुञ्जत एते वा अस्या भोगाः, सर्वैरेवास्या भोगैः सर्वैः कामैर्भुङ्क्ते य एवꣳ वेद, गौर्वै वाग्, गौर्विराड्, गौरिडा, गौः खल्वेव गौ,—र्गौरिदꣳ सर्वꣳ, सर्वा ह वा एनमेताः श्रयन्ते य एवꣳ वेद, यद्वै तदात्मानमैक्षत् सेडाभवत्, तदिडाया इडात्वꣳ, स यस्तदिडाया इडात्वꣳ वेदेद्धे ह वै स्वमात्मानं भूत्यै ॥ ३ ॥ ११-१४

या रोहिणी तामरुणा, ता गौरी, ता बभ्रूः ॥ तदिन्द्रा उदाजत वसुर्नाम रूपं पशूनाम् ॥ विन्दते वसु, न वसु रुणद्धि य एवꣳ वेद, या शितिपृष्ठा ता मन्दि,—स्ता मैत्री, ताꣳ शबली, ताꣳ शितिबाहु,—स्ताꣳ शुद्धवाला ॥ तद्बृहस्पतिरुदाजतेडा नाम रूपं पशूनाम् ॥ बह्वीर्ह वा एनमिडाः श्रयन्ते य एवꣳ वेद, या पृषती ता पिशङ्गी, ताꣳ सारङ्गी, ता कल्माषी, ता पृश्नि,—स्ताꣳ श्वेता ॥ तन्मरुता उदाजन्त ज्योतिर्नाम रूपं पशूनाम् ॥ ज्योतिष्मान् भवति य एवꣳ वेद, या सुरूपा ताꣳ श्यामा, ताꣳ श्येनी, ता कृष्णा ॥ तद् प्रजापतिरुदाजतायुर्नाम रूपं पशूनाम् ॥ आयुष्मान् भवति य एवꣳ वेद, चतस्रः प्रथमा,—श्चतस्र उत्तमा, द्विः पञ्चभ्युतं,—स्ता द्विदश, दशाक्षरा विराड्, वैराजाः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे ॥ वस्व्यै हिंकुरु, तस्यै प्रस्तुहि, तस्यै मेऽवरुद्ध्यै ॥ इति पुरस्ताद्बहिःपवमानस्य वदेत् ॥ इडायै हिंकुरु, तस्यै प्रस्तुहि, तस्यै मेऽवरुद्ध्यै ॥ इति पुरस्तादाज्यानाꣳ वदेत् ॥ ज्योतिषे हिंकुरु, तस्यै प्रस्तुहि, तस्यै मेऽवरुद्ध्यै ॥ इति पुरस्तान्माध्यंदिनस्य पवमानस्य वदेत् ॥ आयुषे हिंकुरु, तस्यै प्रस्तुहि, तस्यै मेऽवरुद्ध्यै ॥ इति पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्य वदेत् ॥ यज्ञो वै पशूनामायतनꣳ, स्वे वा एतदायतने यजमानो भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्ते, ऽनपक्रामुका अस्मात् पशवो भवन्ति ॥ ४ ॥ १५-३२

वसीयस्येहि, श्रेयस्येहि, भूयस्येहि, चित्ता एहि, दधृष्यैही,—डा एहि, सूनृता एहि, इचेदसि, मनासि, धीरसि वस्वी रन्तिः सुमनाः ॥ सूनरि विश्वा त्वा भूतानुप्राणन्तु, विश्वा त्वं भूतानुप्राण, भूयस्यायुरसी,—ष्टिरसि, सरूपवर्णा एहि ॥ ३३-३४

एमामनु सर्पतेमां भद्रां धुर्या अभि । नीव शीर्षाणि मृद्ध्वम् ॥ ३५

[५] वा. ४,१९ । काण्व. ४,२५ । मा. श्रौ. ९,५,१ ।

सा नः सुप्रतूर्तिः प्रिया नः सुहार्णः प्रियवनिर्मघवनिरन्ता एहि, जुष्टा एही,—डा एद्यं,-
—दिता एद्यु,—पहूत उपहवं तेऽशीय, सुहवा ना एहि सह रायस्पोषेण, देवीर्देवीरभि मा
निवर्तध्वम् ॥ ३६
स्योना स्योनेन घृतेन मा समुक्षत ॥ ३७
नमे तदुपदम्भिषर्धृपिब्रह्मा यद्ददौ । समुद्रादुदजनि वः स्रुचा ॥ ३८
वारेग्रे विप्रस्य तिष्ठति शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशम् ॥ ५ ॥ ३९
वसीयस्येहीति, ब्रह्म वै वसीयो, ब्रह्म वा एतदुत्याह्वयति, श्रेयस्येहीति, क्षत्रꣳ वै
श्रेयः, क्षत्रꣳ वा एतदुत्याह्वयति, भूयस्येहीति, विड्वै भूयसी, विशꣳ वा एतदुत्याह्वयति,
चित्ता एहीति, मनो वै चित्तं, मनो वा एतदुत्याह्वयति, दधृष्येहीति, वाग्वै दधृषि,
वाचꣳ वा एतदुत्याह्वयती,—डा एहीति, पशवो वा इडा, पशून् वा एतदुत्याह्वयति, सूनृता
एहीत्यं,—न्नꣳ वै सूनृता,—न्नꣳ वा एतदुत्याह्वयत्ये,—ता वै सप्त देवगव्य,—स्ताः क्रीतो वैतहोत्रो
विदांचकार, ताभिरदः कुरूणां कौन्तो पशूनत्याह्वयत्, ताः कुरवो ब्राह्मणेष्वन्वैछꣳ,—स्ताः
कुमारवत्यांश्वदक्षिणा अविन्द,—न्त्सोऽब्रवी,—न्मा संक्ष्यते,—ताभिर्वा अहमेता अत्याह्वयिष्यामी,-
—तराभिरितरा, यानि खलु वा एतासां प्रियाणि धामानि तानि क्रीतो न वेदेति, स संयत्ते
संग्रामे छदिर्दर्शी, एताभिरेवैता अत्याह्वयिष्यामी,—तराभिरितरा, यतरत्र खलु वा एता
अत्याहूयन्ते तत् पशवोऽभिसंक्रामन्ति, यत्र पशवस्तद्देवा, यत्र देवास्तदिन्द्रो, यतरान्वा
एतेऽभिसंक्रामन्ति ते जयन्ति, जयति संग्रामम् ॥ ६ ॥ ४०
सा वै सृष्टाभयान् देवमनुष्यानन्यमन्यत, तां देवा दर्शपूर्णमासाभ्यामुपप्रास्तृणत, ताꣳ
वा एतदाप्नुवन् यदिडां, ताꣳ वा एतदाप्त्वा हरन्तो मन्यन्ते यदिडामुपह्वयन्ते, यर्हि तूष्णी-
मुपह्वयेत तर्ह्येताः सप्त वदेद्, यर्ह्युच्चैस्तर्ह्युत्तराः सप्त, धाम धामासाꣳ वर्णꣳ वर्णमुपगछ,-
—त्या ह वा एनमप्रतिख्यातं गछति य एवꣳ वेद, यत्र स मूला ओषधीरुपगछेत् पशून् वा
तदेता एव सप्त वदेद्, धाम धामासाꣳ वर्णꣳ वर्णमुपगछ,—त्या ह वा एनमप्रतिख्यातं गछति
य एवꣳ वेद, सप्त स्थवीर्येण याजयेद्, यस्य सप्त स्थविराश्चरमामन्तमा स्यु,—र्वसीयस्येहि,
श्रेयस्येही,—त्येतदेतद्देवास्मा अत्याह्वयति, यो वैश्यः शूद्रो वा बहुपुष्टः स्यात्तस्य गवाꣳ सान्दꣳ

[६] मा. श्री. ९,५,१ ।
[७] वा. ३७,१२;२,२६;१०,२५ । काण्व. ३७,१२;२,४८;११,३५ । मा. श्री. ९,५,१ ।

वत्सतरमपमयेत ॥ इलान्दाः स्थ ॥ इतीलान्दा हि पशवः पुष्णा नक्षत्रं पोषयिष्णु ॥ इति विश्येषु
वा एतच्चरति पुष्णा नक्षत्रं पोषयिष्णु, तद्देवोपधापयते, तमपाकुर्वीत ॥ आयुर्मे दा, वर्चो
मे दा, रयिं मे दाः, पुष्टिं मे दाः ॥ इति रयिमेवास्य पुष्टिꣳ हरति, तमितोऽभिसृज्याथे-
तोऽत्याह्वयेद्, वसीयस्येहि, श्रेयस्येही,—त्येतदेतद्देवास्या अत्याह्वयति, नास्य किंचनो-
दशिषद्, ग्रामकामꣳ याजयेत् सारस्वत ऋग्भ्याꣳ, संवत्सरो वै सरस्वा,—न्त्संवत्सरेणैवास्मै
ग्रामं च्यावयति, वसीयस्येहि, श्रेयस्येही,—त्येतदेतद्देवास्या अत्याह्वयति, पशुकामꣳ याज-
येत् सारस्वत ऋग्भ्याꣳ, संवत्सरो वै सरस्वा,—न्त्संवत्सरेणैवास्मै पशूꣳश्च्यावयति, वसी-
यस्येहि, श्रेयस्येही,—त्येतदेवदेवास्मा अत्याह्वयति, सर्वासां दुग्धे चतुःशरावमोदनं पचेद्
ब्राह्मणेभ्यः पशुकामो, यच्चतुःशरावो दिग्भ्य एवास्मै तेन पशूनवरुन्द्धे, यद् ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्म-
णस्तेन, न छिन्नं देयं, पशुकाम इव ह्येषं, वासो हिरण्यꣳ वा देय,—मीजानस्यास्य
पशवो भूयाꣳसो भवन्ति ॥ ७ ॥ ४१-४६
प्रजापतिर्वै न व्याहरत्, स आत्मन्येव पुण्यमायछ,—दात्मनः पुण्यं न निरवद,—देतद्वै तद्य-
जुर्वेदन्नान्यथा ब्रूयात् ॥ पुण्यं प्रशस्तम् ॥ इति ब्रूया,—दात्मन्येव पुण्यꣳ यछत्या,—त्मनः पुण्यं
न निर्वदति, यामदानीयाय ददाति तामस्य पशवोऽन्वपक्रामन्ति, यदि मन्येता,—दानीया-
यादामित्येतदेव यजुर्वदे,—न्नमे तदुपदम्भिषर्धृपिब्रह्मा यद्ददा इति, तदेवैतेनापूरयति, तदाप्या-
ययति, समुद्र इव ह वा अस्य व्यच्यमानो न क्षीयते य एवꣳ वेद ॥ वीरवतीर्भूयास्त या नो
वीरवतोऽकर्त ॥ इति पुमाꣳसं जातमभिमन्त्रयेत ॥ भूयसीर्भूयास्त या नो भूयसोऽकर्त ॥ इति
स्त्रियं जाताम् ॥ अन्नादा भूयास्त ये नोऽन्नादानकर्त ॥ इति वलिहृतोऽभिमन्त्रयेत ॥ भूयाꣳसो
भूयास्त ये नो भूयसोऽकर्त ॥ इति सभासदः, पादौ प्रत्यवहरे,—देतं वै पशवा, उपोप ह
वा एनं पशवो यन्ति नापयन्ति य एवꣳ वेद ॥ पुण्या पुण्यमस्थ,—चित्रा चित्रमस्थ,—देडो मे
भगवोऽजनिष्ठा मैत्रावरुण, ऊर्जा मे भगवः सह जनिष्ठाः, सꣳविदं मे विन्द ॥ इति पुमाꣳसं
जातमभिमन्त्रयेतो,—र्जवास्मै सह जायते, गछति पशूनाꣳ संविदम् ॥ पुण्या पुण्यामस्थ,—
चित्रा चित्रामस्थ,—डेडी मे भगवत्यजनिष्ठा मैत्रावरुणी, रायस्पोषेण मे भगवती सह जनिष्ठा,
गात्रं मे विन्द ॥ इति स्त्रियं जाताꣳ, रायस्पोषेणैवास्मै सह जायते, गछति पशूनां गात्रꣳ,

[आयुर्मे दा० । अथर्व. २,१७,४]
[८] मा. श्री. ९,५,२ ।

ये प्राचीनमेकाष्टकाया जायन्ते पूर्वस्य ते सस्यस्योत्तमा, ये प्रतीचीनमपरस्य ते सस्यस्य प्रथ-
मा,—स्तानुभयान्त्सहाभिमन्त्रयेतो,—भयानेनान्त्सहावरुन्द्धे ॥ ८ ॥ ४७-६१
यो वै शक्तिꣳ वेद स तच् शक्नोति यच् शिक्षती,—यꣳ वै शक्ति,—र्यो वा अस्या भूयिष्ठ-
भाग्भवति स तच् शक्नोति यच् शिक्षति, भूयिष्ठभाग्घ वा अस्या भवति य एवꣳ वेद, पशवो
वै शक्ति,—र्यो वै पशूनां भूयिष्ठभाग्भवति स तच् शक्नोति यच् शिक्षति, भूयिष्ठभाग्घ वै पशुमान्
भवति य एवꣳ वेद, तस्या व्रतं न हते,—ति ब्रूयात् ॥ कुरुत, इति ब्रूया,—त्सान्तवत्नी,-
—ति ब्रूया,—द्विजन्या, इति ब्रूयाद्, भुवनमसि सहस्रमिन्द्राय त्वा सृमोऽददात् ॥ इति
सृमो वै नामासुर आसीत्, तस्येयं पृथिवी पशुभिः पूर्णासीत्, तानिन्द्रोऽवृङ्क्त, तस्मा-
दाहु,—रैन्द्राः पशवा इति, यावतीनामिदं करोमि भूयसीनामुत्तराꣳ समां क्रियासम् ॥ इति
गवां लक्ष्म कुर्याद्, भूयसीनामेवोत्तराꣳ समां करोति, पशवो वै सृष्टा एकैकं नक्षत्रमुपाति-
ष्ठन्त, तेन प्राजायन्त, न भूमानमगछꣳ,—स्ते रेवतीमुपातिष्ठन्त, रेवत्यां प्राजायन्त,
रेवत्यां भूमानमगछꣳ,—स्तस्माद्यत्किंच पशूनां कुर्वीत तद्रेवत्यां कुर्वीता,—प ह्येनं पशवस्तिष्ठन्ति,
प्रास्य पशवो भवन्ति य एवꣳ वेद, यस्य दक्षिणतः प्रतिभिन्नं दक्षिणत उपाश्चरत्तत्स्वष्टुलक्ष्म
देवलक्ष्मꣳ यज्ञियꣳ यज्ञकामः कुर्वीता,—प ह्येनꣳ यज्ञो नमति, यस्योभयतः प्रतिभिन्नमुभयत
उपाश्चरत् तद्गायत्रं लक्ष्म पशव्यं पशुकामः कुर्वीत, पशुमान् भवति, यस्योभयतः प्रतिभि-
न्नमुभयत उपाश्चरत् तत् त्रैष्टुभं लक्ष्म पूतस्य रूपं प्रतिष्ठाकामः कुर्वीत, गछति प्रतिष्ठाꣳ,
यत्स्थूणाकर्णीः कुरुते वसिष्ठस्य स्थूणाकर्ण्यो, वसिष्ठो वै रयिमपश्यत्, तामात्मन्नधत्त,
पशुष्वेव रयिं धत्ते, जमदग्नेः कर्करिकर्ण्यो, जमदग्निर्वै पुष्टिमपश्यत्, तामात्मन्नधत्त,
यत्कर्करिकर्णीः कुरुते पशुष्वेव पुष्टिं धत्ते, ऽसुराणाꣳ सास्नाकृत्यः, क्षिप्रं वह्वीर्भवन्ति क्षिप्रं
पराभवन्त्य,—मेध्याः कर्णाः, क्षिप्रं वह्वीर्भवन्ति, यज्ञस्त्वेनाननूपनमतीव, निर्ऋत्याः
छिद्रकर्ण्यो, यच्छिद्रकर्णीः कुर्वीत निर्ऋतिरस्य पशोर्निगृह्णीया,—न्न प्रछिन्द्या कर्ण्यः कार्या
न दात्राकर्ण्यः, पराचीनमिव हि तन्निकृत्त,—मगस्त्यस्य विष्टयकर्ण्यः, कश्यपस्य कम्बुन्युद्ध-
स्ता, इन्द्रस्याकलस्ता, अथो आहुः, प्रजापते,—रित्युभयं ज्येष्ठलक्ष्म ज्यैष्ठ्यकामः कुर्वीत,
प्र समानानां ज्यैष्ठ्यमाप्नोति, प्रजापतिः पशूनसृजत, स वा असृगेव नासृजता,—ऽसृष्टꣳ वा
एतत्, तदुस्रोऽसृक्त्वं, क्रूरं पशूनां कर्ण्या, इति वै सोऽसृग्नासृजत, क्रूरं वा एषं पशूनां
कुरुते योऽक्ष्णुते, यदक्षितास्तेनाक्षिता, अथ यदनक्षिता इति श्रूयन्ते तेनाक्षिता,—स्तदाहु,-

[९] मा. श्री. ९,५,३ ।

—र्न वा एतमेता अमुत्रागछन्ति या अनक्षिता इति, तस्मादक्षितꣳव्या, न तेजनेनाक्ष्णुयाद्,
वज्रो वै तेजनꣳ, यत्तेजनेनाक्ष्णुयाद्वज्रेण पशूनर्पये,—न्न श्यामिनायसा क्रूरं, तदशान्त,—मि-
क्षुकाण्डमप्सु वासयित्वा तेनाक्षितꣳव्या,—स्तद्धि शिवं, तच् शान्तं,—मथो आहु,—र्लोहितेना-
यसेति, तद्धि शिवं, तच् शान्तम् ॥ ९ ॥ ६२-६५
इह प्रजा विश्वरूपा रमन्तामस्मिन् गोष्ठे विश्वभृतो जनित्रीः ।
अग्निं कुलायमभि संविशन्तीः समासृजन्तु पयसा घृतेन ॥ ६६
इति गाः सायमावतीरभिमन्त्रयेता,—ऽग्निर्वा एतासाꣳ योनि,—रग्निः कुलायꣳ, स्व एवैना
योनौ स्वे कुलाये संवेशयति, नास्य पशवो नक्तमार्तिमार्छन्ति य एवꣳ वेद ॥ ६७
सꣳ वः सृजत्वर्यमा सं पोषा सं बृहस्पतिः । समिन्द्रो यो धनंजयः ॥ ६८
संजग्माना अविह्रुता अस्मिन् गोष्ठे पुरीषिणीः । स्वावेशा ना आगत ॥ ६९
इति गाः संसृजेद्या अस्य पुरा स्युर्याश्चान्यतो विन्देत, पशवो वै घृत,—मग्नी रुद्रो,
यज्जुहुयाद्रुद्रायास्य पशूनपिदध्यात्, तत्संसृज्या एवो,—भयीहि, भूयसीर्भवन्ति, सꣳ वः
सृजत्वर्यमेति, यज्ञो वा अर्यमा, यज्ञेनैवैनाः संसृजति, सं पूषेति, पुष्टिर्वै पूषा,
पुष्ट्यैवैनाः संसृजति, सं बृहस्पतिरिति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणैवैनाः संसृजति,
समिन्द्रो यो धनंजय इती,—न्द्रियꣳ वा इन्द्र, इन्द्रियेणैवैनाः संसृजति, रेवती तन्तिः
पृथिवी माता, रेवतीरापा ओषधयः ॥ ता नो हिन्वन्तु सातये धिये जुषे ॥ इति तन्तिꣳ वित-
नुयात्, तामनुमृज्यात् ॥ रय्या त्वा पुष्ट्यानुमार्ज्मि ॥ इति रय्यैवैनां पुष्ट्यानुमार्ष्टि, तस्या
व्रतं न रिक्ता स्या,—न्नोपर्युपरि संचरेयु,—र्नाभिवर्षेन्नाभितपे,—देतद्वै वस्तो रामकायनो विदां-
चकार तन्त्या वितनुनꣳ, स सहस्रं पशून् प्राप, प्र सहस्रं पशूनाप्नोति य एवꣳ वेद ॥
७०-७४
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामुतायं पिता महतां गर्गराणाम् ।
रेतोधा त्वा यशोधाꣳ रायस्पोषायोत्सृजेत् ॥ ७५
इत्यृषभस्य कर्णं उत्सृजमानो वदेद्, रेतोधामेवैनꣳ यशोधाꣳ रायस्पोषायोत्सृजते, यो

[१०] मा. श्री. ९,५,३ ।
[सꣳ वः सृजत्वर्यमा० । अथर्व. ३,१४,२ । संजग्माना अविह्रुता० अथर्व. ३,१४,३ । पिता वत्सानां० । अथर्व. ९,४,२ (प. पा.) ९,४,४ (पूर्वार्धः)]

वैश्यः शूद्रो वा बहुपुष्टः स्यात्तस्य गवां गोष्ठादेकविंशतिं प्रक्रान्याहुत्यैकविंशतिमाहुतीर्जुहुया,-देकविंशतिर्वै मनुष्यलोका, मनुष्यलोकमेव एवास्मै पशूनवरुन्द्ध, एतैरेव जुहुयाद्गोनामैरग्रे-त्वया गोमेदि पशुकामो, मुखं वा एष पशूनां, मुखत एवास्मै पशूञ्जिनयति ॥ १० ॥
७६

यासामिन्द्र उदाजत वसु नाम रूपं पशूनामुपसं धाम पश्यमानः ॥ तासामयं योनिरयं गोष्ठ इह रयिः पुष्टिः । स्वाहा ॥ इति जुहुयात् ॥ यासां बृहस्पतिरुदाजतेडा नाम रूपं पशूनां संगवे धाम पश्यमानः ॥ तासामयं योनिरयं गोष्ठ इह रयिः पुष्टिः । स्वाहा ॥ इति जुहुयात्॥ यासां मरुत उदाजन्त ज्योतिर्नाम रूपं पशूनां मध्यंदिने धाम पश्यमानाः ॥ तासामयं योनिरयं गोष्ठ इह रयिः पुष्टिः । स्वाहा ॥ इति जुहुयात् ॥ यासां प्रजापतिरुदाजतायुर्नाम रूपं पशूनामपराह्णे धाम पश्यमानः ॥ तासामयं योनिरयं गोष्ठ इह रयिः पुष्टिः । स्वाहा ॥ इति जुहुया,-देतानि वा अह्नो रूपाण्ये,-तेषु वा अह्नो रूपेषु देवाः पशूना रूपाण्यवृञ्जत, तदेतेष्वेवाह्नो रूपेषु यजमानो भ्रातृव्यस्य पशून् वृङ्क्ते, घृतेन जुहोति, पशवो वै घृतं, पशुभिरेव पशून् वृङ्क्ते, तस्मै वस्यै, प्रातरेवान्तर्गोष्ठासु गोषु होतव्यं, सर्वा एनाः सहावरुन्द्ध, एतैरेव जुहुयाद्गोष्वाकृतासु, योनिर्वा एतत् पशूनग्रही,-दविहीनाः परिपरिणस्कृण्वन्त्ये,-तैरेव जुहुयात्संग्रामे, ऽर्धाश्वानभिमन्त्रयेत ॥ मित्रभृतः क्षत्रभृता ओजोभृतो बलभृतो वयं जयेम वयं सहेम, वयं भवेम, वयं पुषेम ॥ इति जयति संग्रामम् ॥ रोहिणीर्वो वृञ्जे गायत्रेण छन्दसा, ऽरुणा वो वृञ्जे त्रैष्टुभेन छन्दसा, गौरीर्वो वृञ्जे जागतेन छन्दसा, बभ्रवो वो वृञ्ज आनुष्टुभेन छन्दसा गर्भान्वो वृञ्जे पाङ्क्तेन छन्दसा, रूपाणि वो वृञ्जे शाक्करेण छन्दसा, सर्वान् वो वृञ्जेऽनाप्तेन छन्दसा, तत् सर्वं, सर्वपदा शक्वरी, शाक्वराः पशवः पशूनेवावरुन्द्धे, गायत्री प्रथमा, गायत्र्युत्तमा, तेजो वै गायत्री ब्रह्मवर्चसं, तेजसा च वा अस्मा एतद् ब्रह्मवर्चसेन चोभयतः पशून् परिगृह्णाति ॥ ११ ॥
७७-९१

प्रजापतिर्वै अग्निमङ्गिरसोऽसृजताग्निं वायुं सूर्यं, ते चत्वारः पितापुत्राः सत्रमासत, ते स्वेदं समवीयुं,-स्तदेमवन्, तद्वा अस्यैतन्नामाभूदिति, सर्वमभूदिति, तद्वा अस्यैते नामनी क्रूरे अशान्ते, तस्मादेते न ग्रहीतव्ये, क्रूरे ह्येते अशान्ते, प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यकामयतोषसं, सा रोहिदभवत्, तामृश्यो भूत्वाध्यैत्, तस्मा अप-

व्रतमच्छदयत, तमायतयाभिपर्यावर्तत, तस्माद्वा अबिभेत्, सोऽब्रवीत्, पशूनां त्वा पतिं करोम्य,-थ मे मा स्था इति, तद्वा अस्यैतन्नाम पशुपतिरिति, तमभ्यायत्याविध्यत्, सोऽरोदीत्, तद्वा अस्यैतन्नाम रुद्र इति, ते वा अस्यैते नामनी शिवे शान्ते, तस्मादेते कामं ग्रहीतव्ये, शिवे ह्येते शान्ते, ततो यत् प्रथमं रेतः परापतत् तदग्निना पर्यैन्द्, तदासामघ्न्यात्वं, ततो यदुत्यस्रवत्तद् बृहस्पतिरुपागृह्णात्, तदासामुस्रियात्वं,-मशक्रामेति, तदासां शक्करीत्वं, गातुमविदामेति, तदासां गोत्वं,-मेतानि वा आसां नामानि, सर्वैरेवासां नामभिः सर्वैः कामैर्भुङ्क्ते य एवं वेद, पशवो वै सृष्टा एतानि नक्षत्राण्यन्वपाक्रामन् पौर्णमासीमष्टकाममावास्यां चित्रामश्वत्थं, तस्मात्तेषु गोनापाकृत्या, यामपाकुर्यात्तामस्य पशवोऽन्वपक्रामेयुः ॥ १२ ॥
९२

देवा वै सर्वे सहान्तर्वन्तोऽभवं,-स्ते सर्वे सह व्यजायन्त, तदेकवृदशयत् संवृत्तं, तदेवा इत्थं चेत्थं च व्यत्यचरंस्तन्मित्रावरुणा अचायतां, स्याद्वै य एनद्विकुर्यादिति, तद्वा द्विपदीमकुरुतां, सा न प्रत्यतिष्ठत्, तस्या अन्यत आहृत्येमौ प्रत्यधत्तां, तस्मादेवा अबद्धा अस्थं,-न्त्सा चतुष्पदी भूत्वा प्रत्यतिष्ठत्, प्रति प्रजया च पशुभिश्च तिष्ठति य एवं वेद, तस्यां वै पयः पर्यपश्यं,-स्तां देवा अदुह्र हरितेन पात्रेण यज्ञं चामृतं च, दुहे यज्ञं चामृतं च य एवं वेदा,-ऽथ पितरोऽदुह्र रजतेन पात्रेणोर्जं च स्वधां च, दुह ऊर्जं च स्वधां च य एवं वेदा,-ऽथ मनुष्या अदुह्र दारुपात्रेणान्नं च प्रजां च, दुहेऽन्नं च प्रजां च य एवं वेदा,-था ऋषयोऽदुह्र चमसेन छन्दांसि च पशूंश्च, दुहे छन्दांसि च पशूंश्च य एवं वेदा,-ऽथ गन्धर्वाप्सरसोऽदुह्र पुष्करपर्णेन पुण्यं गन्धं, दुहे पुण्यं गन्धं य एवं वेदा,-ऽथ सर्पा अदुह्रालाबुना विषं, दुहे भ्रातृव्याय विषं य एवं वेदा,-ऽथासुरा अदुह्रायस्पात्रेण संवर्ता भूतिं च पराभूतिं च, दुहे भ्रातृव्यायाभूतिं च पराभूतिं च य एवं वेद, तां वा इन्द्रोऽनयेवोपासीदते,-दं सर्वमदुहद्यदिदं किंच, तां दुग्ध्वा प्रत्यनुदत, सा प्रतिनुत्ता कुमना अतिष्ठद् ध्यायन्ती, तां प्रजापतिरचायद्, ध्यायति वा इति, सोऽब्रवीत्, किं ध्यायसीति, साब्रवीद्, ये माधुक्षत ते मा प्रत्यनुदन्तेति, सोऽब्रवी,-न्मा मृक्ष,-स्तथा वै त्वा कर्ष्यामि यथोभयेषां देवमनुष्याणां प्रिया भविष्यसीति, तस्या घृतं पद्भ्योऽक्षरत्, तस्य घृतस्यादाय मुखं व्यमार्ट् ॥ उभयेषां त्वा देवमनुष्याणां प्रियां करोमि ॥ इति तस्मादेषोभयेषां देवमनुष्याणां प्रियै,-तेनैव श्रोत्रियस्य मुखं विमृज्या,-दुभये ह्येतं देवमनुष्या विदु,-रेतेन

कुमार्या, एतेन पतिकामाया, एतद्वै गोवर्चसं न सर्वस्मा इव कुर्याद्, यस्मै तु कुर्वीत तेजस्वी स्यात् ॥ १३ ॥
९३-९५

यो ललामः शितिपात् शितिककुत् शितिभसत् शितिबाहुः, सांशारिः सामक्ताष्टयूथा, प्राष्टी यूपान्वाप्नोति यस्य तादृक्वृषभो भवति, यस्य वालतुषः प्रतिष्ठितः स प्रतिष्ठिता, प्रति प्रजया च पशुभिश्च तिष्ठति यस्य तादृक्वृषभो भवति, यः समन्तः शितिबाहुः सा समन्ता, समन्तः प्रजया च पशुभिश्च भवति यस्य तादृक्वृषभो भवति, यः शितिपृष्ठः सा तुन्दिः, पशुमान् भवति यस्य तादृक्वृषभो भवत्य,-थ यस्यैकरूपस्य सतो लक्ष्म भवति सोदारस्,-त्वास्यामित्रो गा विधावति यस्य तादृक्वृषभो भवति, याजलोम्नी सा पोषयिष्णु,-रजा इव प्रजायन्ते यस्य तादृक्वृषभो भवति, या श्यामा सा पोषयिष्णुः, क्षिप्रं वृद्धाभवन्त्यपनिषादुकास्तु, यारुणा सा पोषयिष्णुः, क्षिप्रं वृद्धाभवन्ति हिमेरवस्तु, या श्वेता सा पोषयिष्णुः, क्षिप्रं वृद्धाभवन्ति दुश्चर्माणस्तु, नाक्षिः काश्यो न पृश्नि,-रमिथुनं त,-दसौ व्याघ्ररूपं वै पृश्नि,-र्बिभ्यत्यस्मात् पशवः, कनीयांसोऽस्य पशवो भवन्ति यस्य तादृक्वृषभो भवति, तदाहु,-र्बीजमेवोत्सृज्यमित्ये,-तद्वा आसां बीजं यद्रोहिनं रूपं, पशुमान् भवति यस्य तादृक्वृषभो भवति, यो धूम्रस्ताम्रबभ्रुः स प्रजापतिः, प्र प्रजया च पशुभिश्च जायते यस्य तादृक्वृषभो भवति, यस्य लोमशा ककुत्स स्तम्बी, स्तम्बीव प्रजया च पशुभिश्च भवति यस्य तादृक्वृषभो भवति, यस्योर्ध्वा ककुत्सा ऊर्ध्वा आप्यायन्त ऊर्ध्वा अस्य पशव आप्यायन्ते यस्य तादृक्वृषभो भवति, यस्य दक्षिणतः पक्षं सा पापी सा संवन्त्य,-थ यस्य सव्यत उक्षतं सा पुण्या सोपाहरन्ती, या उत्पृष्टिस्ता ऊर्ध्वा आप्यायन्त, ऊर्ध्वा अस्य पशव आप्यायन्ते यस्य तादृक्वृषभो भवति, यस्य सव्यतः पक्षं सा पापी सा संवन्त्य,-थ यस्य दक्षिणत उक्षतं सा पुण्या सोपाहरन्ती, या सव्यसाचिनी सा पुण्या सोपाहरन्ती, या सश्रृङ्गी सा गोष्ठं,-स्ता न प्रछिन्द्यादनुसृष्टस्य गोषु स्याता,-मेतौ वै पशूनामस्कन्नं हवि,-रस्कन्नमस्य हविर्भवति यस्यानुसृष्टिर्गोषु भवत्य,-था चास्य वेहद्गोषु स्याता,-मेतौ वै पशूनामृतं विमृतौ, स्थोधुका अस्य पशवो भवन्ति यस्योक्षा च वेहद्गोषु भवतः ॥ १४ ॥
९६ [१२०३]

॥ इति खिलकाण्डे गोनामिको द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

अथ तृतीयः प्रपाठकः।

राजसूयब्राह्मणम्।

अरातीयन्ति वा अन्ये पुरुषाय नान्ये, येऽरातीयन्ति सा निर्ऋति,-र्ये नारातीयन्ति सानुमति,-स्ताभ्य उभयेभ्यः सह निर्वपन्त्य,-भौ सह शृतौ कुर्वन्ति, नैर्ऋतेन पूर्वेण प्रचरन्ति दक्षिणा परेत्य स्वकृता इरिण, एतद्वै निर्ऋतिगृहीतं पृथिव्यां, निर्ऋतिगृहीत एव निर्ऋतिं निरवदयत, एकोल्मुकं निधाय विस्रंसिकायाः काण्डाभ्यां जुहोति, जुषाणा निर्ऋतिर्वेतु, स्वाहा, वासः कृष्णं भिन्नान्तं दक्षिणैत्ये,-तद्धि निर्ऋत्या रूपं,-मर्धं वै पुरुषस्य निर्ऋतिगृहीत,-मर्धमनिर्ऋतिगृहीतं, यन्निर्ऋतिगृहीतं तदेवास्मात्तेन निरवदयते, पुनरेत्यानुमत्या अष्टाकपालेन प्रचरन्ति निर्ऋतिमेव निरवदाये,-यं वा अनुमतिर्वाग्वा, ऽनुमतमेवैनं सर्वमाक्रमयत्य,-ष्टाकपालो भवति, गायत्री ह्येषा, गायत्री वाग्, धेनुर्दक्षिणे,-तद्ध्यनुमत्या रूपं,-मथ य उदञ्चः शम्यामतिशीयन्ते तानुदङ् परेत्य वल्मीकवपामुद्धृज्य जुहुया,-दिदमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमवयजा इति, तत् पुनरपिदधाती,-दमहममुष्यामुष्यायणस्य क्षेत्रियमपिदधामीति, क्षेत्रियं वा एतं गृह्णाति, यं चैनमन्वियं क्षेत्रस्य पत्न्य,-स्यामेव क्षेत्रियमुवयज्याथैनं सर्वमाक्रमयति, श्वो भूत आदित्येभ्यो भुवद्वद्भ्यो घृते चरुरित्या,-दित्या वा इत उत्तमाः स्वर्गं लोकमायं,-स्तेभ्य एव प्रोच्य स्वर्गं लोकमेत्या,-दित्या वा अस्मिल्लोक ऋद्धा, आदित्या अमुष्मि,-न्नुभयोरेव लोकयोरृध्नोति, वरो दक्षिणा, वरेणैव स्वर्गं लोकमभ्यारोहति, श्वो भूत आग्नावैष्णवं एकादशकपाला इत्य,-ग्निर्वै सर्वा देवता, विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्धा,-ऽग्निर्वै यज्ञस्यान्तोऽवस्ता,-द्विष्णुः परस्ता,-दुभयत एव यज्ञस्यान्ता उदग्रही,-दुभयत एव यज्ञस्यान्ता उद्गृह्य यथोत्सङ्गं आवपेते,-यं वा एतद्यज्ञमावपते, तस्य यथाकामं निर्वपमाण एत्य,-नड्वान् वामनो दक्षिणा, यद्वही तेनाग्नेयो, यद्वामनस्तेन वैष्णवो, रूपेणैवैनं समर्धयति, श्वो भूतेऽग्नीषोमीया एकादशकपाला इत्य,-ग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमहन्, वृत्रं खलु वा एष हन्ति यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, तद्वा त्रिप्रमेवैतद्धिरण्यं दक्षिणा, सत्यं वै हिरण्यं, सत्येनैव हन्ति, श्वो भूत ऐन्द्राग्नं एकादशकपाला इत्य,-ग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमह,-न्त्स ओजसा वीर्येण व्यार्ध्यत, स एतमैन्द्राग्नमपश्यत्, तेनौजो वीर्यमात्मन्नधत्ता,-जसा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चता, ओजो

[१] मै. २,६,१। तै. ब्रा. १,६,१,१—२।

वीर्यमिन्द्राग्नी, ओजसैवैनꣳ वीर्येण समर्धयतो, ऽनड्वानृषभो दक्षिणा, यद्वही तेनाग्नेयो,
यन्मुष्करस्तेनैन्द्रो, रूपेणैवैनꣳ समर्धयति, श्वो भूत आग्ने३योऽष्टाकपालो माहेन्द्रं दधी,—
त्यृद्धया एवाग्नेयं, इन्द्रो वै वृत्रमहन्३,—न्त्सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत, स महेन्द्रोऽभवत्,
स एवमुद्धारमुदहरद् वृत्रꣳ हत्वा, तदुद्धार एवा,—ऽस्यैष भाग एव, तस्माद्राजा संग्रामं
जित्वोदाजमुदजयत्, पयसा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, यत् पयः,
पयसैवैनꣳ समर्धयती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, यदैन्द्र,—मि-
न्द्रियेणैवैनꣳ वीर्येण समर्धयति, देवताभिर्वा एष व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, सर्व-
देव३त्यꣳ वै वासो, यद्वासः क्षौमं दक्षिणा देवताभिरेवैनꣳ समर्धयति ॥ १ ॥ १

देवा ओषधीषु पक्वास्वाजिमयुः, स इन्द्रोऽवे,—दग्निर्वाविमाः प्रथम उज्जेष्यतीति, सोऽब्रवीद्,
यतरो नौ पूर्व उज्जयेत्तन्नौ सहेति, ता अग्निरुदजयत्, तदिन्द्रोऽनूदजयत्, तस्मादैन्द्राग्न,—मथो
आहु,—राग्नेन्द्रं का३र्यमित्य,—ग्निर्हि ता अग्र उदजयत्, तदुज्जित्या एवा,—ऽऽग्रायणो द्वादशक-
पालो भवति, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सराद्धि तदध्यभवत्, सप्तदश सामिधेनीः
का३र्याः, पञ्च ऋतवो द्वादश मासा एष सꣳवत्सरः, सꣳवत्सराद्धि तदधि भवत्यै,—का वै तर्हि
यवस्य मुष्टिरासी,—देका व्रीहे,—रेका माषस्यै,—का तिलस्य, तद्विश्वे देवा अब्रुवन्, वयꣳ वा
एतत् प्रथयिष्यामो, भागो नोऽस्त्विति, तद्विश्वे देवा अप्रथयꣳ,—स्तद्ब्रह्म एव वैश्वदेवो, ऽथो
प्रथयत्येवै,—तेन पयसि स्याद्वैश्वदेवो, वैश्वदेवꣳ हि पयो, ऽथ वा इयमब्रवीन्मयि वा एतद-
ध्यसौ वृष्ट्या पचति, नैतदितोऽध्युज्जेष्यथ, भागो ना अस्त्विति, तद्द्याभ्याꣳ वावैष भागः
क्रियता उज्जित्या, अथो प्रतिष्ठित्या एव, यद् द्यावापृथिवीयः, सौमीर्वा ओषधयः, सोमा
ओषधीनामधिराजं,—स्तस्य वा एष भागो यदकृष्टपच्यो, तदुद्धार एवा,—ऽस्यैष भाग एव,
तस्माद्राजा संग्रामं जित्वोदाजमुदजते, ग्राम्या वा अन्या ओषधय आरण्या अन्या,—स्ता एवा-
स्यैतेनोभयीरवेष्टा भवन्ति, याः फालकृष्टास्तासामेतेनाग्रायणं करोति, या आरण्यास्तासामु-
त्तरेणा,—ऽऽनीतो वा एष देवानाꣳ य आहिताग्नि,—र्यदकृत्वाग्रायणं नवस्याश्नीयाद् देवानां भागं
प्रतिक्लृप्तमश्नीया,—दार्तिमार्छेत्, सर्वेभ्यो वा एषोऽन्येभ्योऽभिषिच्यते यो राजसूय, आग्राय-
३णोऽन्नाद्यस्यावरुद्ध्यै, वत्सः प्रथमजो दक्षिणा, रेत इव ३ह्येषोऽप्रजातः, प्रजात्यै ॥२॥ २
अथैतानि चातुर्मास्यानि, सꣳवत्सरꣳ वै चातुर्मास्यानि परीज्यन्ते, सꣳवत्सरादेवैनान्य-

[२] मै. २,६,२ । तै. ब्रा. १,६,१,१० ।
[३] तै. ब्रा. १,७,१,१ ।
मै. ४५

ध्याप्त्वावरुन्द्ध, उत्सन्नयज्ञो वा एष, सꣳवत्सराद्वा अध्युत्सन्नयज्ञोऽवरुध्यते, सꣳवत्सरा-
देवैनमध्याप्त्वावरुन्द्धे, पशवो वा एते चातुर्मास्येभ्योऽध्यतिरिच्यन्ते, यच् छुनासी३र्यं तेने-
वाप्नोति, वर्ष्य उदके यजेते,—दद्धि पशूनां नेदिष्ट,—मथैतानि पञ्च हवीꣳषि संतत्यै ग्रामकामो
यजेत, वायुर्वा इमाः प्रजा नस्योता इत्थं चेत्थं च नेनीयते, यद्वायवे, वायुरेवास्मै नस्यो-
ताꣳ विशं निनयत्य,—न्नकामो यजेत, सꣳवत्सरो वा इन्द्रः शुनासीरः, सꣳवत्स३रोऽन्ना-
द्यस्य प्रदाता, तमेव भागधेयेनोपासरत्, सोऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छति, वर्ष्य उदके यजेते,—
त३द्धयन्नाद्यस्य नेदिष्टꣳ वृष्टिकामो यजेत, वायुर्वा इमं समीरयति, स आप्याययति, ततो
वर्षति, सꣳवत्सरो वा इन्द्रः शुनासीरः, सꣳवत्सरमनुवर्षति ॥३॥ ३

देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, स वृत्र इन्द्रमब्रवीत्, त्वं देवानाꣳ श्रेष्ठो, ऽस्म्यहमसुराणाꣳ,
सꣳशक्नवाव, मा ना अ३न्योऽन्यꣳ ऽवधीदिति, तौ वै समामेतामनभिद्रोहाय, तं देवा वृत्र-
ममन्यन्ता,—ऽयꣳ वावेदं भविष्यतीति, त इन्द्र ऐछन्, हनामेममिति, सोऽब्रवीत्, संधा वै
मे सꣳहितानभिद्रोहायेति, तमग्निरब्रवी,—दहमेव त्वेतः पास्यामीति पृथिव्या, अहमन्तरिक्षा-
दिति वरुणो, ऽहं दिव इति रुद्र,—स्ततो वै देवा वृत्रमघ्नन्, वृत्रं खलु वा एष हन्ति यो राज-
सूयेनाभिषिञ्चते, तद्वात्रिघ्नमेवैतद्, देवाश्च वा असुराश्च समयतन्त, तानग्निस्त्रेधात्मानं कृत्वा
प्रत्ययतता,—ऽग्निरेवास्मिंल्लोके भूत्वा, वरुणोऽन्तरिक्षे रुद्रो दिवि, स इन्द्रोऽमन्यता,—ऽयꣳ
वावेदं भविष्यतीति, सोऽब्रवी,—दहꣳ विश्वाभ्या आशाभ्या इति, ततो वा अजयꣳ,—स्तज्जि-
त्या एवैत,—देतेनैव याजयेत् संग्रामे, जयति संग्राम,—मेतेनैव याजयेद्, भ्रातृव्यवन्तꣳ,
यो वास्य प्रियः स्यात्तं, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, यद्वै वदिन्द्रस्तुरीय उप-
समपद्यत तस्मादिन्द्रतुरीयं, धेनुरनड्वाही दक्षिणा, यद्वहिनी तेनाग्नेयी, यद्धेनुः सती
दान्ता तेन वारुणी, यद्गौस्तेन रौद्री, यत् पयस्तेनैन्द्री, रूपैरेवैनाꣳ समर्धयती,—न्द्रो वै
नमुचिं नालभत, स रश्मीन् कुलायं कृत्वान्वारोहदमुमादित्यं, तꣳ वा अन्वमन्त्रयत, संधापा
असाविति, सोऽब्रवी,—न्नाहꣳ हनिष्यामीति, सोऽब्रवीत्, संधां वै संदधे यथा त्वा न दिवा
हनानि न नक्तं न शुष्केण नार्द्रेणेति, तस्य वा उपोदये सूर्यस्य नीहारꣳ, संवत्यापां फेनेन

[४] मै. २,६,३ । तै. ब्रा. १,७,१,१ । पा. ९,३६,१९,७१;४,११ । काण्व. ११,१,११,७१;४,१६ । [अपां फेनेन नमुचेः । ऋ. ८,१४,१३; सा. २११; अथर्व. १०,१९,३]

शिरोऽछिनत्, तद्वा एनमन्ववर्तत, मित्रद्रुगसीति, पाप्मा वै नमुचेः शिरः, पाप्मा वा
एनं तदन्ववर्तत, पाप्मानꣳ वै स तेनापाहत, वत पाप्मानमेवैतेनापहते, ऽपां न्ययनादपामा-
र्गानाहरन्त्या,—पो वै रक्षोघ्नी,—रपो रक्षाꣳसि न तरन्ति रक्षसामपहत्यै, वरो दक्षिणा, वरे-
णैव वरꣳ स्पृणोत्या,—त्मा हि वर, आत्मानꣳ हि तस्य तदन्ववर्तत, ये देवाः पुरःसदो
अग्निनेत्रा रक्षोहणस्ते नोऽवन्तु, ते नः पान्तु, तेभ्यः स्वाहेत्ये,—तद्देव३त्या वा इमा दिशो,
यथादेवतꣳ वा एतदाभ्यो दिग्भ्योऽधि रक्षाꣳस्यपहन्त्य,—नुपरिक्रामं जुहोति, संवीम्य एवं
दिग्भ्योऽधि रक्षाꣳस्यपहन्ती,—दमहꣳ रक्षोभिः समूहाम्य,—ग्ने संदह रक्षः, संदग्धꣳ रक्षा,
इत्याह रक्षसां घ्वरायै रक्षसामन्तरित्या, अथ यत् पुनः सनृह्य जुहोति याम्य एव दिग्भ्योऽधि
रक्षाꣳस्यपानुधीत्वा भागिनीः करोत्यहिꣳसायै, रथः पञ्चवाही दक्षिणा, पञ्च दिशः पञ्च देवताः
संमृद्ध्यै ॥ ४ ॥ ४

सौमेनेजानꣳ याजयेत्, सꣳवत्सरꣳ वा एतस्य छन्दाꣳसि यातयामानि भवन्ति यः
सौमेन यजते, छन्दाꣳसि वै देविका,—श्छन्दाꣳसि वावास्मा एतदयातयामानि पुनर्यामाणि
करोति, राजसूयेनाभिषिषिचानꣳ याजयेत्, पष्ठौही दक्षिणा, ऽऽशाꣳ वा एष उपाभिषिञ्चत,
आशा पष्ठौ३ह्या,—शामेवास्मा अकः, पशुकामꣳ याजयेच्, छन्दाꣳसि वै देविकाः, पशव-
श्छन्दाꣳसि, गायत्र्यनुमति,—स्त्रिष्टुब्राका, जगती सिनीवाली, कुहूरनुष्टुब्, धाता
वषट्कारो, या पूर्वा पौर्णमासी सानुमति,—र्योत्तरा सा राका, या पूर्वामावा३स्या सा
सिनीवाली, योत्तरा सा कुहू,—श्चन्द्रमा एव धाता, यद् द्वे अवरे द्वे परे तन्मिथुनꣳ, यत
पूर्यतेऽन्या नान्या तन्मिथुनꣳ, यत् पश्यन्त्यन्या नान्या तन्मिथुनꣳ, यदमावास्याया अधि
चन्द्रमाः प्रजायते तन्मिथुनं, तस्मादेवास्मै मिथुनात् पशून् प्रजनयति, प्रजाकामꣳ याजयेद्,
धातारमुत्तमं कुर्यात्, स्त्रियो वै देविकाः, पुमान् धाता, पराचीर्वै प्रजा रेतो दधते,
पराचीष्वेवासु रेतो दधाति, तदाहु,—र्न वै तेन पराधत्ते यदन्तरा प्रवीयवा, इति व्यवदध्या-
द्धातारं मध्यतः, सर्वा एवैना वृषमोदिनीः करोति, तदाहु,—र्जीयत एव, पश्चावर इव तु
भवति, स्त्रीम्यो ह्येनं पश्चात् परिणयन्तीति, स यदा जायेताथ धात्रे पुरस्तान्निर्वपे,—दग्रꣳ वै ५
धाता, ऽग्रमेवैनं परिणयति ॥ ५ ॥

[५] मै. २,६,४ । तै. ब्रा. १,७,२ ।

आमयाविनꣳ याजयेद्, धातारं मध्यतः कुर्यात्, सꣳवत्सरो वै धाता, सꣳवत्सरो हि
वा एतस्य मुग्धो, ऽथैतस्यामयति, सꣳवत्सरꣳ वावास्मा एतन्मध्यतोऽचीक्लृप,—दथैनमेत-
स्मान्मिथुनात् प्रजनयती,—श्चरीणि वा एतमेतानि छन्दाꣳस्यृते पशोरशान्तानि निर्मृजः,
पशुरप्यालभ्यः शान्त्या अनिर्मार्गाये,—ते वै पशवो यद्व्रीहयश्च यवाश्च, यद्व्रीहिमयः पुरोडाशो
भवति तेनैव पशुरालभ्यते शान्त्या अनिर्मार्गाय, वीरस्था वा अन्ये पशवोऽवीरस्था अन्ये,
ये पुरस्तात् पुरोडाशास्ते वीरस्था, ये पश्चात् पुरोडाशास्तेऽवीरस्था, ये पुरस्तात् पुरोडाशा
भुञ्जतस्त उपतिष्ठन्ते, प्रजापतिꣳ ३ह्येते प्रतिष्ठामभ्यसृज्यन्त, ये पश्चात् पुरोडाशाः परा ते
भवन्ति, यासु स्थालीषु सौमाः स्युस्ते चरवः स्युः, सोमो वै रेतोधाः प्रजननाय, सर्व-
वेदसेनेजानꣳ याजयेत्, पशुभिर्वा एष व्यृध्यते यः सर्वं ददात्य,—त्र वा एष जघन्यं पशून्
पश्यति यत्रैनान् विभजति, यत्रैवैनान् विभजति तत एनान् पुनरवरुन्द्धे, य एवं कश्च
सौमेन यजेत तꣳ याजयेत्, सꣳवत्सरꣳ वा एतस्य छन्दाꣳसि यातयामानि भवन्ति यः
सौमेन यजते, छन्दाꣳसि वै देविका,—श्छन्दाꣳसि वावास्मा एतदयातयामानि पुनर्यामाणि
करोति ॥ ६ ॥ ६

अथैतत् त्रिषꣳयुक्तꣳ, यत् पूर्वं त्रिषꣳयुक्तमित एवास्मै तेनोर्ध्वानिमाँल्लोकान् दाधार,
यदुत्तरं त्रिषꣳयुक्तममुत एवास्मै तेनार्वाच इमाँल्लोकान् दाधार, तदेषाꣳ वावैते लोकानाꣳ
विधृत्यै, यत् पूर्वं त्रिषꣳयुक्तꣳ वीरजननं तद्, यदुत्तरं पशुजननं तद्, यत् पूर्वं त्रिषꣳयुक्तꣳ
वीरानेवास्मै तेन जनयति, यदुत्तरं पशूꣳस्तेन, यत् पूर्वं त्रिषꣳयुक्तꣳ रेत एव तेन दधाति,
यदुत्तरं प्र तेन जनयति, यत् पूर्वं त्रिषꣳयुक्तं तेन यज्ञकामो यजेता,—ऽग्निर्वै सर्वा देवता,
विष्णुर्यज्ञो, देवताश्चैव यज्ञं चालब्ध,—न्द्रो वै यज्ञो, विष्णुर्यज्ञ,—स्तद्यज्ञस्यैवैष आरम्भो, ऽथ
यद्वैष्णवो, विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञ एव प्रतितिष्ठति, यदुत्तरं त्रिषꣳयुक्तं तेन पशुकामो यजेत,
सोमो वै रेतोधाः, पूषा पशूनां प्रजनयिता, सोम एवास्मै रेतो दधाति, पूषा पशून् प्रजन-
यती,—न्द्रियेण वै पशवः प्रजायन्ते, पूषा प्रजनयती,—न्द्रियेणैवास्मै पूषा पशून् प्रजनयत्य,—
थ यत् पौष्णः, पशवो वै पूषा, पशुष्वेव प्रतितिष्ठत्य,—थैतद्वैश्वानरवारुणꣳ, सꣳवत्सरो वा
अग्निर्वैश्वानर,—स्तस्य वा एते स्वा यद्दत्व,—स्तेषाꣳ वा ए३षोऽभिषिक्तो राजा, ऽभिषिक्तो वै
देवानाꣳ वरुण, एतौ वै देवानाꣳ सूता, एतौ सर्वपती, एतौ सर्वस्येशाते, ता एनꣳ

सुवाते, यावन्तो वा एतस्य स्वा अनुका वै त एते,—मनुका देवा वरुण२, यावन्त एवास्य
स्वास्तानस्मा अनुकानविवादिनः करोती,—वा२श्चरुर्भवत्ये,—तावान्वा आत्मा, यावानेवा-
स्यात्मा त२ वरुणान्मुक्त्वा, स२वत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः, स२वत्सर एवैनं प्रतिष्ठापयति,
स२वत्सरायुषमेनं करोति, तस्माद्राजसूयाभिषिक्तस्य जरसा दन्ता अवशीयन्ते, स२वत्सरे
ह्येनं प्रतिष्ठापयति, स२वत्सरायुषमेनं करोति, यो ज्योगामयावी स्यात्तमेतेन याजयेद्, वरु-
णेन हि वा एष पाप्मना गृहीतो, ऽथैतस्य ज्योगामयति, यद्वारुणो, वरुणादेवैनं तेन
मुञ्चती,—वा२श्चरुर्भवत्ये,—तावान्वा आत्मा, यावानेवास्यात्मा त२ वरुणान्मुक्त्वा, स२वत्सरो
वा अग्निर्वैश्वानरः, स२वत्सर एवैनं प्रतिष्ठापयति, स२वत्सरायुषमेनं करोति ॥ ७ ॥ ७

अथैते रत्निनः, क्षत्रस्य वा एतान्यङ्गानि, यस्य वा एतान्योजस्वीनि भवन्ति तद्राष्ट्रमोजस्वी
भवति, तान्येवास्यौजस्वीनि करोति, क्षत्रस्य वा एतान्यङ्गानि, यस्य वा एतानि तेजस्वीनि
भवन्ति तद्राष्ट्रं तेजस्वी भवति, तान्येवास्य ब्रह्मणा तेजस्वीनि करोति, बार्हस्पत्यश्चरुर्ब्रह्मणो
गृह इति, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्बृहस्पतिपुरोहित खलु वै राष्ट्रमृध्नोति, ब्रह्म वा एतत् पुरस्ताद्रा-
ष्ट्रस्यात्यीही,—दधो ब्रह्मण एवं राष्ट्रमनुकं करोत्यै,—न्द्र एकादशकपालो राज्ञो गृह इती,—न्द्रियं२
वा इन्द्र, इन्द्रियं एव प्रतितिष्ठत्या,—दित्यश्चरुर्महिष्या गृह इती,—यं२ वा अदिति,—रस्या
एवैनं मात्रां गमयती,—मामेवैनं प्रजाभ्य उपजीवनीयं करोति, धेनुर्दक्षिणै,—तद्ध्यदित्या रूपं,
नैर्ऋतश्चरुर्नखावपूतानां परिवृक्त्या गृह इति, निर्ऋतिगृहीता हि वा एषा, ऽथैतां परिव्रजन्ति
निर्ऋतिमेव निरवदाये,—यं२ वा अनुमति,—रस्या एवैनं मात्रां गमयती,—मामेवैनं प्रजाभ्य उप-
जीवनीयं करोति, श्येनी कूटापस्फुरा दक्षिणै,—तद्धि निर्ऋत्या रूप,—माग्ने३योऽष्टाकपालः से-
नान्यो गृह इत्य,—ग्निर्वै सर्वा देवता, देवताभिरेवास्य सेनामुखं जित्यै स२श्यति, हिरण्यं
दक्षिणा, सत्य२ वै हिरण्य२, सत्येनैव जयत्या,—श्विनो द्विकपालः संग्रहीतुर्गृह इति, रथे-
ष्ठमेवास्मात्तेन निरवदयते, सव३त्सौ दक्षिणेति, सवत्सा इव हि सव्यस्थसारथी रथमभि,
सावि३त्रोऽष्टाकपालः क्षत्तुर्गृहे प्रसूत्या, अथो सवितैव ३खेष प्रजाभ्यः प्रसुवति, वारुणो यवमयो
दशकपालः सूतस्य गृहे, मारुतः सप्तकपालो वैश्यस्य ग्रामण्यो गृह इति, सूतमुखा वै विट्
क्षत्रमुपतिष्ठते, सूतमुखा२ वावास्मा एतद्विशं मुख३तोऽन्वाद्यायोपदधाति, पौष्णश्चरुर्भागदुघस्य
गृह इति, पुष्टिर्वै पूषा, पुष्टिमेवास्य भागे दधाति, वैष्णवस्त्रिकपालस्तक्षरथकारयोर्गृह इति,

[८] मै. २,६,५ । तै. ब्रा. १,७,३,१—७ ।

विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञ एव प्रतितिष्ठति, रौद्रो गावीधुकश्चरुरक्षावापस्य गृहे गोविकर्तस्य चैत्य,—
न्तत एवास्मात्तेन रुद्रं निरवदयते, ऽथो रुद्र इव ३ह्येतौ पशू अभिमन्येते, एकादश वा एतानि
हवीं२ष्ये,—कादशाक्षरा त्रिष्टुब्, वीर्यं त्रिष्टुब्, वीर्य एव प्रतितिष्ठति, नाना वा एत एतेषा-
माशिषोऽवरुन्धते, यत्सह निर्वपेयुररत्निनः स्यु,—रैन्द्रं एकादशकपालो राज्ञो गृह इती,—न्द्रि-
यं२ वा इन्द्र, एकधा वा एतद्यजमाने यज्ञस्याशीः प्रतितिष्ठत्यै,—न्द्रो हि यजमानः ॥८॥ ८

इन्द्राया२होमुचा एकादशकपालं निर्वपेद्, यदेव किंचार्वाचीनं जनितोरेनः करोति तत एन-
म२होमुङ् मुञ्चती,—न्द्राय सुत्राम्णा एकादशकपाल२, यं एवोपवादी योऽभिदासति तत एन२
सुत्रामा त्रायते, ऽथैतन्मैत्राबार्हस्पत्य२, सत्य२ वै मित्रो, ब्रह्म बृहस्पतिः, सत्यं चैव ब्रह्म
चालभ्य दीक्षते, क्षत्र२ वै मित्रो, ब्रह्म बृहस्पतिः क्षत्रं चैव ब्रह्म चालभ्य दीक्षते, यस्य
राष्ट्र२ शिथिरमिव स्यात्तमेतेन याजयेन्मैत्राबार्हस्पत्येन, क्षत्र२ वै मित्रो, ब्रह्म बृहस्पति,—र्ब्र-
ह्मणि वा एतत् क्षत्रं प्रतिष्ठापयति द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाया,—ऽथैते देवस्व, एते वै देवाना२ सुता,
एते सत्वपतय, एते सर्वस्येशते, त एन२ सुवते, तस्माद्वा एतमाहुः, पूर्वेद्युर्वा एष सूयते-
ऽभितश्च सिच्यता इत्य,—थैष मारुत एकवि२शतिकपाल,—स्त्रिर्वै सप्त सप्त मरुतो, विण्मरुतो,
विशो वा एतन्मध्यतः सूयते, तस्माद्वा एष विशः प्रियो, विशो हि मध्यतः सूयते, वरुणस्य
वा अभिषिच्यमानस्येन्द्रियं२ वी३र्यमपाक्रामत्, तत् त्रेधाभवद्, भृगुस्तृतीयमभवच्, श्रायन्तीयं
तृतीय२, सरस्वती तृतीयं प्राविशद्, यद्भार्गवो होता भवति श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम२ सारस्वती-
रापस्तदेवेन्द्रियं२ वी३र्यं तेज आप्नोति, वाचा वा एतमभिषिञ्चन्ति यमभिषिञ्चन्ति, वाक्
सरस्वती, सारस्वतीरापो, यत्सारस्वतीभिः सूयते यावत्येव वाक् तया सूयते ॥ ९ ॥ ९

अपा२ वा एतानि चित्राण्य,—पा२ वा एतच्चित्राणि संभरन्त्य,—पामेनं चित्रैरभिषिञ्चन्ति,
चित्रमस्मिन् दधति, तस्माद्वा ए३षोऽभिषिक्तश्चित्र२ राजेति श्रूयते, ऽपा२ ह्येनं चित्रैरभि-
षिञ्चन्ति, चित्रमस्मिन् दधति, यथा वा इदं मधुकृतो मधु संभरन्त्येव२ वा एतदपामोषधीना२
रस२ संभरन्त्य,—पामेनमोषधीना२ रसेनाभिषिञ्चन्ति, रसमस्मिन् दधति, तस्माद्वा एतमाहु,—
रसी राजा पुण्या इत्य,—पा२ ह्येनमोषधीना२ रसेनाभिषिञ्चन्ति, रसमस्मिन् दधति, वरुणसवो
वा एष, वारुणीरापो, यदद्भिरभिषिञ्चति वरुणमेवैनमक,—र्विपुत्रान्वै सरस्वती, सारस्वती-

[९] मै. २,६,६ । तै. ब्रा. १,७,३,७ । [१०] तै. ब्रा. १,७,५,५, ।

रापो, यत्सारस्वतीभिः सूयते विपुत्रान् भवति, षोडश ग्रहा गृह्यन्ते, षोडश होमा हूयन्ते,
तद् द्वात्रि२शद्, द्वात्रि२शदक्षरानुष्टुब्, वागनुष्टुब्, यावत्येव वाक् तया सूयते ॥१०॥ १०

[२१६३]

॥ इति खिलकाण्डे तृतीयः प्रपाठकः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः प्रपाठकः ।

प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यत्यन्वीपमन्यो मिथुनत्वाय, यच्चास्य गृह्णाति यः प्रतीप२ युध्यत्योजसा
वा एष वीर्येण प्रतीप२ युध्यत्यो,—जसा वा एतद्वीर्येण राष्ट्र ओजो वीर्यं दधात्य,—थ यच्चास्य
गृह्णाति योऽन्वीपमीरयति माहिषं तेन तोकं प्रजनयत्य,—थ यन्नदीपतेरपा२ वा एतन्मिथुनं,—म-
पा२ वा एतन्मिथुनेन राष्ट्रे मिथुनं दधात्य,—थ यदेमहावरीणां मध्यमेष्टेयं तेनावरुन्द्धे, ऽथ यन्
परिवाहिणीनां पतेरस्यन्त्यास्तेन तोकं प्रजनयत्य,—थ या आपोऽश्नैरा, ओजसा वा एता
वी३र्येणापोऽश्नैरा, ओजसा वा एतद्वीर्येण राष्ट्र ओजो वीर्यं दधात्य,—थ यत् कूप्यानामुभयीस्ते-
नापोऽवरुन्द्धे, याश्च समुद्रिया याश्चासमुद्रिया ईश्वरो वा एतमेता स्रोत३स्या आपोऽशान्ता निर्मृ-
जो, यत्स्थावराणां गृह्णाति, शान्त्या अनिर्मार्गाय, या आतपति वर्षति याश्च परिदहन्ति ता आपो
ब्रह्मवर्च३स्या,—स्वामी राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसं दधात्य,—थ यद्धारदेनीना२ विशस्तेन वी३र्यमवरुन्द्धे,
ऽथ यद् पुष्पाणामारण्यं तेनाथ यदुल्व्याना२, वज्रो वै पशवो, वज्रा उल्व्या, वज्रेण वा
एतद्राष्ट्रे वज्रं दधात्य,—थ यत् पयसः, पयसा वा एतद्राष्ट्रे पयो दधात्य,—थ यद् घृतस्य,—ता
वा आपोऽनाधृष्या,—स्वामी राष्ट्रमनाधृष्यं करोत्य,—थ यन्मधो,—रपा२ वा एष ओषधीना२
रसो, ऽपा२ वा एतदोषधीना२ रसेन राष्ट्रे रसं दधाति, षोडश वा एते ग्रहाः प्राजापत्याः,
समानीतः सप्तदशः, प्रजापतिः सप्तदशः, प्रजापतिमेवाप्नोति ॥ १ ॥ १

देवीरापो मधुमतीः स२सृज्यध्वं महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना इत्ये,—ता हि क्षत्रस्य वन्त्री,—
रनाधृष्टाः सीदतौर्जस्वतीर्महि वर्चः क्षत्रियाय दधतीरित्ये,—ता हि क्षत्रस्य धात्री,—रनिभृष्टमसीत्य,-
—निसृष्ट२ ३ह्येव राष्ट्रमक,—रपोजा इति, तपोजा हि राष्ट्र२, सोमस्य दात्रमसीति, सोमस्य

[१] मै. २,६,७ । तै. ब्रा. १,७,५,५ ।
[२] मै. २,६,८ । तै. ब्रा. १,७,६,१-४ । श. १०,४,६-७;१,१०,३१,४,४ । काण्व. ११,८,१३-१४;१,१५,
४८,४,५ ।

३ह्येतद्दात्र२, शुक्रा वः शुक्रेण पुनामि, चन्द्रा वश्चन्द्रेण पुनामीत्या,—युर्वै हिरण्य,—मायुष्या
एवैना अक,—र्वर्चो वै हिरण्य२, वर्चस्या एवैना अक,—र्देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रे-
णेत्ये,—तद्वा अच्छिद्रं पवित्र२ यत्सूर्यस्य रश्मयो, ऽच्छिद्रेणैवैनाः पवित्रेण पुनाति, स्वाहा राजसूया
इति, राजसूया ३ह्येताः सधमादो द्यु३म्न्या ऊर्जा एका, इति व्यानयति वारुण्या, वारुणी-
र्ह्यापः, स्वैर्येव देवतया, रुद्र यत्ते गिरिपरं नामेति, रुद्रमेवास्मात्तेन निरवदयते, तस्मिन्
हुतमसि, यमेष्टमसि, स्वाहेति, मृत्युर्वै यमो, मृत्युमेवास्मात्तेन निरवदयते, सोमा
इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निस्ते देवा धर्मधृतो धर्मं धारयन्त्वित्ये,—ते वै देवा धर्मधृतो यदिमे प्राणा,
यदेनमेतेभ्योऽप्रोच्याभिषिञ्चेयुरपरोधुका एन२ स्यु,—रथ यदेनमेतेभ्यः प्रोच्याभिषिञ्चन्ति तथा
हैनमनपरोधुका भवन्ति, पर्णस्य वा अग्रेऽन्ते ब्रह्म समवदन्त, तद्वाव सुश्रवा यत्तदशृणोत्,
पर्णमयेनाभिषिञ्चति, ब्रह्माभिषिञ्चति, ब्रह्मवर्चसेनैवैनमभिषिञ्चत्य,—थो ब्रह्म वै ब्रह्मा,
ब्रह्मणैवैनं ब्रह्माभिषिञ्चत्याश्वत्थेन वैश्यो, विशो वी३र्यमपाक्रामत्, तदश्वत्थं प्राविशत्,
स तेन वीर्येण मरुरांभवत्, तद्विश एवैतेन वी३र्यमवरुन्द्धा, औदुम्बरेण भ्रातृव्या, ऊर्ग्वा
उदुम्बरा, ऊर्ज२ वा एतदन्नाद्य२ यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, यो जन्यो मित्र२ स नैयग्रो-
धेन, मित्रेण वै क्षत्र२ व्यवतत,—मवरोधैर्न्यग्रोधो, मित्रेण वा एतत् क्षत्र२ व्यवतनोति
द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय ॥ २ ॥ २

क्षत्रस्य योनिरसि, क्षत्रस्योल्बमसि, क्षत्रस्य नाभिरसीती,—न्द्रो वै यदजायत तस्य वा
एष योनिरासीद्यत्ताप्यमुल्बं पाण्डरं, नाभिरुष्णीषः, सूतवशाया अध्यजायत, सूना चतुः-
प्यूपरासी,—श्रीवागः पीयूष,—स्तस्मान्निवारः पुरोडाशः, पश्चाशतमन्यस्मिन्नक्षण्यानक्त्येकप-
ञ्चाशतमन्यस्मिन्, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोत्य,—प उपस्पृशत्य,—
मृत२ वा आपो, ऽमृतेनैवैन२ स२स्पर्शयत्या,—विन्नो अग्निर्गृहपतिरिति, गार्हपत्यायै-
वैनमावेदयत्या,—विन्ना इन्द्रो वृद्धश्रवा इती,—न्द्रियं२ वा इन्द्र, इन्द्रियायैवैनमावेदयत्या,—
विन्नौ मित्रावरुणौ धृतव्रता इत्य,—होरात्रे वै मित्रावरुणा, अहोरात्राभ्यामेवैनमावेदयत्या,—
विन्ने द्यावापृथिवी ऋतावृधा इति, द्यावापृथिवीभ्यामेवैनमावेदयत्या,—विन्नः पूषा विश्ववेदा
इति, पशवो वै पूषा, पशुभ्य एवैनमावेदयत्या,—विन्ना देव्यदितिरित्या,—दित्या
वा इमाः प्रजा,—स्ताभ्य एवैनमावेदयत्या,—विन्नोऽयमसा आमुष्याय३णोऽमुष्याः पु३त्रो-

[३] मै. २,६,९ । तै. ब्रा. १,७,६,४ । श. १०,८-९ । काण्व. ११,१५,१७ ।

ऽमुष्याꣳ विशीति, विश एवैनमावेदयति, तस्माद्वा एष विशः प्रियो, विशे ह्येनमा-
वेदयत्ये,—ष ते जनते राजेति, जनताया एवैनमावेदयति, सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ
राजे,—ति, ब्रह्मोद्धरति, सर्वेभ्य एवैनमन्येभ्यो भूतेभ्य आवेदयति, ब्रह्मोद्धरति,
तस्मादाहु,—र्ब्रह्मोद्धृतमिति, ब्रह्म३ब्रुद्धरती,—न्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्न,—स्त्वयायꣳ वृत्रꣳ
वध्या,—दिति धनुः प्रयच्छति, वज्रो वै धनु,—र्वज्रो राज३न्यो, वज्रेणैव वज्रꣳ
समर्धयति, शत्रुबाधना स्थे,—ति बाणवतो, ऽन्तो वै बाणवन्तो, ऽन्तो राजन्यो,
ऽन्तेनैवान्तꣳ समर्धयति, त्रीन् प्रयच्छति, तिस्रो वै शरव्या, दिव्या पार्थिवा समुद्रिया,
ता अस्माघोयाव, पात प्राञ्चं, पात प्रत्यञ्चं, पात तिर्यञ्चं, पातान्वञ्चं, पातोर्ध्वं,
दिग्भ्य एनं पातेति, दिग्भ्य एनं पान्ति, मि३त्रोऽसी,—तीममभिमन्त्रयते, मित्रस्य ३ह्येत-
द्रूपꣳ, वरुणोऽसी,—तीमꣳ, वरुणस्य ३ह्येतद्रूपꣳ, हिरण्यवर्णमुषसो व्युष्टा, इत्युग्रता
अभिमन्त्रयेतो,—र्ध्वबाहुस्तिष्ठन्तमभिषिञ्चति, बृहत्साम भवति, स्वर्गमेवैनं लोकमभिसंतनोति ॥
॥ ३ ॥ ३

दिश एनꣳ व्यास्थापयति, वज्रेण वा एतदिमा दिशोऽभिजयति, तस्माद्वा एतस्य सर्वा दिशो-
ऽभिजिता याꣳस्यामभिपर्यावर्तते, दिशो वै स्वर्गो लोकं, एतदेव३त्या वा इमा दिशो, यथा-
देवतꣳ वा एतदाभ्यो दिग्भ्योऽधि स्वर्गं लोकमेति, सोमस्य त्विषिरसि त्विषिमत्, तवेव मे त्विषि-
र्भूया,—दिति व्याघ्रचर्मꣳ विवेष्टयति, सोमे वा एका त्विषि,—र्व्याघ्रे एका, सर्पे एका, ता
एवावरुन्द्धे, प्रत्यस्तं नमुचेः शिरा, इति सीसं पण्डगाय प्रत्यस्यति, पाप्मा वै नमुचेः शिरः,
पाप्मानꣳ वावास्मा एतत् प्रत्यस्यति स्वर्गं लोकमभ्यारोह,—न्नवेष्टा दन्दशूका, इति लोहितायसं
केशवापाय, दन्दशूकानेवास्मात्तेन निरवदयते, तस्माद्वा एतस्य नाभिचारोऽस्ति, यावन्तो हि
मृत्यवस्तानस्माभिरवदयते, मृत्योः पाही,—ति रजतꣳ रुक्ममधस्तादुपोहते, मृत्योर्वा एतद्रूपꣳ
यद् व्या३घ्रो, ऽमृतꣳ हिरण्य,—ममृतेनैव मृत्युमन्तर्धत्ते, दिदिवः पाही,—ति हरितꣳ रुक्म-
मुपरिष्टाद्व्यूहते, दिव्याया एवैनमशन्या योयावे,—यꣳ वै रजता,—ऽसौ हरिण्या,—भ्यामे-
वैनं परिगृह्णा,—ऽऽयुर्वै हिरण्य,—मायुष्या एवैनमभ्यतिक्षरन्ति, वर्चो वै हिरण्यꣳ, वर्चस्या
एवैनमभ्यतिक्षरन्ति, वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियꣳ वी३र्यं निरघ्नन्, यद्रुक्ममन्त-
र्दधातीन्द्रियस्य वी३र्यस्यानिर्घाताय, शतमानो भवति शतक्षरः, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या,

[४] मै. २,६,१० । तै. ब्रा. १,७,७,१-३;१,७,८ । वा. १०,१०,१४-१५ । काण्व. ११,१८,२२—२३ ।

आयुरेव वीर्यमाप्नोति ॥ ४ ॥ ४
अथैतानि पार्थानि, सꣳवत्सरो वै पार्थानि, सꣳवत्सरꣳ वा एतन्मध्यतः प्रविशति, तस्माद्वा
एष दुःपराणोदः, सꣳवत्सरꣳ हि मध्यतः प्रविशति, गिरी वा एतौ राजसूयस्य, बार्हस्प-
त्यमन्येषामुत्तमं भवत्यैन्द्रमन्येषां प्रथमꣳ, वी३र्यꣳ वै बृहस्पति,—र्वी३र्यमिन्द्रो, वीर्य एवैन-
मभिसंधत्त, आदित्यनामानि वा एतान्या,—दित्या वा इमाः प्रजा,—स्ताभ्य एवं सूयते, सो-
मस्य त्वा द्युम्नेनाग्नेस्तेजसेन्द्रस्येन्द्रियेण विश्वेषां त्वा देवानां क्रतुनाभिषिञ्चामीत्ये,—तैरेवैनमिन्द्रियै-
रेताभिर्देवताभिरभिषिञ्चती,—न्द्रस्य योनिरसि, जनयेत्य,—तो वा अधीन्द्रोऽजायत, स्वादे-
वैनꣳ योनेर्जनयत्य,—ति धून् पाहीत्या,—ह स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, समाववृत्रन्नधरागुदक्ता,
इति समुन्मार्ष्टी,—न्द्रियꣳ वा एतद्वीर्यमभिषिच्यमानस्य व्यवैति, तदेव समुन्मार्ष्टि, तेनैनꣳ
समर्धयत्यै,—न्द्रया त्रिष्टुभा ब्रह्मान्वेत्यै,—न्द्रो वै राजन्यस्त्रिष्टुप्छन्दाः, स्वेनैवैनं छन्दसान्वेत्य,-
—थो प्रजापतिर्वै ब्रह्मा यज्ञस्य, प्रजापतेरधीन्द्रोऽसूयत, प्रजापतेरेवाधि सूयता, इन्द्रस्य
वज्रोऽसि वाजसनि,—स्त्वयायꣳ वाजꣳ से,—दिति रथमुपावहरति, स्वयैव देवतया, मित्रा-
वरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मी,—ति युनक्ति, स्वयैव देवतया, विष्णोः क्रमोऽसि
सपत्नहे,—ति रथमभ्यातिष्ठत्य,—तो वै विष्णुरिमांल्लोकानुदजयद्, विष्णो रेवोज्जितिमन्विमांल्लो-
कानुज्जयति, एभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदते, मरुतां प्रसवे जयेति, मारुत एव गणो भूत्वो-
ज्जयति, राजन्यं जिनात्य,—न्तमेवाक्रमीत्, तदस्य न कश्चनाज्येयं उच्छिष्यते, तस्मै वा-
मिषुमस्यति, तदस्यामोघायास्तमभू,—दापं मनः समिन्द्रियेणेत्यु,—क्त्वा वर्तते, ऽन्तमेव
गत्वावर्तत आत्मनोऽहिꣳसाया, एष वज्रो वाजसातम,—स्तेन नौ पुत्रो वाजꣳ से,—दिति पत्न्यै
धन्वार्ति प्रयच्छत्ये,—ष वै पत्न्या यज्ञस्यान्वारम्भः, सह स्वर्गे लोके भवतः ॥ ५ ॥ ५
इयदस्या,—युरस्या,—युर्मे धेहीत्या,—युरेवास्मिन् दधाति, युङ्ङसि, वर्चोऽसि, वर्चो
मे धेही,—ति वर्च एवास्मिन् दधात्यू,—र्गस्यू,—र्जं मयि धेहीती,—यꣳ वै रजता,—ऽसौ हरिणी,-
—मे एवालभ्यो,—र्ग्वा उदुम्बरा, ऊर्जꣳ वा एतन्मध्यत आत्मनो धत्ते, प्रजानां च मि३त्रो

[५] मै. २,६,११ । तै. ब्रा. १,७,७,४;१,७,८,१ । वा. ९,५;१०,१७,१९—२१;१२,५;(२३,६५)। काण्व. १,७;११, २५,२८—२९,३१;१३,६;(१५,६७) ।
[विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा० । अथर्व. १०,५,२५-३५]
[६] मै. २,६,१२ । तै. ब्रा. १,७,९,५—६;१,७,१० । वा. ९,२२;१०,५,२३-२८;११,६,२७;३९,१;२०,१,१२,१४। काण्व. १०,३१;११,१२,३३-४०;१३,१५; २१,९३,२४,६,३७;३९, १ ।
[आयुरस्यायुर्मयि (०र्मे) धेहि (त्वाः) । अथर्व. २,१७,४ ।]

ऽसी,—तीममुपावहरति, मित्रस्य ३ह्येतद्रूपꣳ वरुणोऽसी,—तीमꣳ, वरुणस्य ३ह्येतद्रूपꣳ,
संदसि, समहꣳ विश्वैर्देवै,—रिति हस्ता आमिक्षामभ्यवहरति, सद्धा आमिक्षा, सदेवाभ्यव-
हरति, तत्र ते हिरण्ये ददाति, सा दक्षिणा, हिनस्ति खलु वा एष पशून् पृथिवीमभ्यव-
रोह,—न्नमो मात्रे पृथिव्या इति, वाराही उपानहा अभ्यवरोहत्या,—रण्यानेव पशूनभ्यवरोहति,
वराह३स्त्वेवैतꣳ संग्धुमर्हति, तद्वराह एवैनꣳ सम्नोति, प्रति त्यन्नाम राज्यमधायि स्वां
त३न्वꣳ वरुणोऽसुषोदिति, वरुणसवो वा एष, वरुणायैवैनं प्राह, नि त्रितो
जरिमाणं न आनडिति, जरिमाणमेवास्मिन् युनक्ति, स्योनासि सुषदेति, स्योना ३ह्येषा
सुषदा, स्योनामासीद, सुषदामासीदेति, सुषदेवैनꣳ सादयति ॥ ६
७
निषसाद धृतव्रतो वरुणः प३स्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥
इति, वरुणसवो वा एष, वरुणमेवैनमक,—रग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहे,—न्द्रस्यौजसे
स्वाहा, मरुतां बलाय स्वाहे,—ति रथविमोचनीयं जुहोति, यजुषैव युज्यन्ते, यजुषा विमु-
च्यन्ते, हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसदिति, रथꣳ वा एतत् परिवदन्ति, सह सारथिना रथ-
वाहने रथमादधाति, सर्वत्वायैव प्रसवाय, ब्रह्मा३ꣳस्त्वं ब्रह्मासीति, किमभूꣳकिमभू,—मिति
वा एतदाह, सवितासि सत्यसवा इती,—दमसीदमसी,—ति वावैनमेतदाह यद्यद्भत्ये,—षं
वज्र,—स्तेन मे रध्ये,—ति स्फ्यं प्रयच्छति, वज्रो वै स्फ्यो, वज्रेण वा एतद्राष्ट्रꣳ रन्धयते,
तमवरस्परं प्रयच्छति, तेनावरस्परꣳ राष्ट्रꣳ रन्धयमाण एति, तस्माद्वा एत एतस्मा अवरस्परꣳ
रुद्धा, बलिꣳ हरन्ति, तेन स्फ्येनाधिदेवनं कुर्वन्ति, तत्र पष्ठौहीꣳ विदीव्यन्त, आशाꣳ वा
एष उपाभिषिञ्चत, आशा पष्ठौ३ह्या,—शामेवास्मा अक,—स्तन्तश्चतुःशतमक्षाणवोवाह ॥
उद्भिन्नꣳ राज्ञः ॥ इति, चत्वारो वै पुरुषा, ब्राह्मणो राज३न्यो वैश्यः शूद्र,—स्तेषामेवैनमु-
क्लेदयति, ततः पञ्चाक्षान् प्रयच्छन्नाह, दिशो अभ्यभूदयमिती,—मा एवास्मै पञ्च दिशो-
ऽक्षाघाय प्रयच्छति, क्षेत्रं ददाति, तेन क्षेत्री धृतो भवति, वरꣳ वृणीते, सोऽस्मै कामः
समृध्यते यत् कामो भवति, मङ्क्ल्युनाम्नो ह्वयति, यत् पूर्वꣳ व्याहार्षं तन्मेऽमोघमसदित्य,-

[निषसाद धृतव्रतो० । ऋ. १,२५,१०; तै. सं. १,८,१६,१; तै. ब्रा. १,७,१०,२;२,६,५,१ । अग्नये स्वाहा । अथर्व. १९,४३,१ । सोमाय स्वाहा । अथर्व. १९,४३,५ । हꣳसः शुचिषद्वसु० । ऋ. ४,४०,५; तै. सं. १,८,१५,२;४,२,१,५। तै. आ. १०,१०,२]

—सा अमुष्य पु३त्रोऽमुष्यासौ पुत्र, इति नामनी व्यतिषजति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥
॥ ६ ॥ ८-१०
समानो वा एष यज्ञक्रतुः सꣳवत्सरं भवति, वि वा एतद्यज्ञपर्यच्छिद्यते यदवभृथमवयन्ति,
यदपां नप्त्रे स्वाहोर्जो नप्त्रे स्वाहाग्नये गृहपतये स्वाहे,—ति जुह्वत आयन्ति यज्ञस्य संतत्या अवि-
च्छेदाय, यज्ञो वै देवेभ्यस्तिरोऽभवत्, तं देवाः सꣳसृप्स्वन्वैच्छन्, यत् सावित्रः,
सवितृप्रसूता एवान्वैच्छन्, यत् सारस्वतो, वाग्वै सरस्वती, वा३च्येवान्वैच्छन्, यत्
पौष्णः, पशवो वै पूषा, पशुष्वेवान्वैच्छन्, यद्बार्हस्पत्यो, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्म-
ण्येवान्वैच्छन्, यदैन्द्र, इन्द्रियꣳ वा इन्द्र, इन्द्रिय एवान्वैच्छन्, यद्वारुणो, वरुण एवा-
न्वैच्छन्, यत्त्वाष्ट्रः, सꣳवत्सरो वै त्वष्टा, सꣳवत्सर एवान्वैच्छन्, यदाग्ने३यो, ऽग्निर्वै
सर्वा देवता, देवतास्वेवान्वैच्छन्, यत् सौम्यः, सौमीर्वा ओषधया, ओषधीष्वेवान्वैच्छन्,
यद्वैष्णवो, विष्णुर्वै यज्ञो, यज्ञ एवान्वैच्छꣳ,—स्तꣳ विष्णा अविन्दन् दशमे, तस्मादेष
दशमो, दशमे ह्यविन्दन्, दश चमसा, दश चमसाध्वर्यवो, दश दश चमसाननुभिता आ
दशमात् पुरुषादन्वाचष्टे समृद्ध्यै, दशसमृद्धो ३ह्येष यज्ञ, एतꣳ वै ते तं यज्ञमन्वैच्छꣳ,—स्तं
आभुवꣳ,—स्तद्य एतेन यजत ऋध्नोति, सप्तदशः सर्वो भवति, प्रजापतिर्वै सप्तदशः,
प्रजापतिमेवाप्नोत्यु,—त्सन्नयज्ञो वा एष, सꣳवत्सराद्वा अभ्युत्सन्नयज्ञोऽवरुध्यते, सꣳवत्सरादे-
वैनमध्याप्त्वावरुन्द्धा, इन्द्रो वै वृत्रमहꣳ,—स्तस्येमे रूपाण्युपैतो, चित्राणीयं नक्षत्राण्यसौ,
नक्षत्राणाꣳ वा अवकाशे पुण्डरीकं जायते, क्षत्रस्य वा एतद्रूपं, क्षत्रस्यैव रूपं प्रतिमुञ्चते,
द्वादशपुण्डरीका भवन्ति, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरमेवाप्त्वावरुन्द्धे ॥ ७ ॥ ११
रुक्मो होतु,—राग्नेयो वै होता, न वा एतस्मै व्युच्छति, ३व्येवास्मै वासयति, सौमु-
द्गातुः, सौर्यो वा उद्गाता,—ऽसौ अमुमेवास्मा आदित्यमाप्त्वोन्नयति, प्रावेपा अध्वर्योऽर्यमा
इव क्षुध्ययुः ॥ अश्वः प्रस्तोतुः, प्राजापत्यो वा अश्वः, प्राजापत्यः प्रस्तोता,—ऽथो प्रेव ३ह्येष
प्रोथति, प्रेव प्रस्तोता, धेनुः प्रतिहर्तुः, प्रतीव ३ह्येषा हरति, प्रतीव प्रतिहर्ता, वशा
मैत्रावरुणस्य, वशं मा नयादित्यृ,—षभो ब्राह्मणाच्छꣳसिनः सेन्द्रियत्वाय, वासः पोतुः पवि-
त्रत्वाया,—ऽनड्वान्नेष्टु,—रग्नीधोऽन्यो, युक्त्या एवं, स्थूरि यवाचितमच्छावाकस्य, स्थूरीरिव

[७] मै. २,६,१३ । तै. ब्रा. १,७,१०,६, १,८,१ । वा. १०,२३,३० । काण्व. ११,३३,४३ ।
[८] तै. ब्रा. १,८,२ ।

शेषो होत्रा स्वꣳरग्या यदच्छावाक्या, ऽथो निर्वरुणत्वायैव यद्वा, न वा अस्यै तर्हि सदस्येभ्यो
दक्षिणा दीयन्ते, त एवास्य तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, द्वादश पष्ठौहीर्गर्भिणीर्ब्रह्मणो, वाग्
वै धेनु,—र्गर्भो मन्त्रो, वाꣳश्येवास्य मन्त्रं दधात्या,—मन्त्रणीयो ह भवति, धेनुर्भव्या भ-
वन्ति, द्वादश वै पयाꣳसि, तान्यस्मिन् दधाति, तस्माद्वा एतमाहुः, पयस्वी राजा
पुण्या इति, यावद्धि पयस्तदस्मिन् धीयते ॥ ८ ॥ १२-१३

श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवत्य,—नुष्टुप्सु यज्ञायज्ञियं प्रोहन्ति, वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम,—मिन्द्रो
वै वृत्रमहꣳ,—स्तं ओजसा वीर्येण व्यार्ध्यत, स एतत् सामापश्यत्, तेनात्मानꣳ समश्रयत,—
ऽत्ता वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, तदेतेनैवात्मानꣳ सꣳश्रयते, ब्रह्म वै यदग्रे
व्यभुवदर्कसाम यज्ञ,—स्तस्य वा एष रसो यद्यज्ञायज्ञियꣳ, यद्यज्ञायज्ञियं गायते ब्रह्मण्येव रसं दधाति,
वाचा वा एष व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, वागनुष्टुब्, यदनुष्टुप्सु यज्ञायज्ञियं भवति
वाꣳश्येवास्य रसं दधाती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चत, इन्द्रियꣳ
वीर्यꣳ वारवन्तीयꣳ, यद्वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियस्य वीꣳर्यस्यावरुद्ध्या, अश्रयन्वात्र
श्रायन्तीयेना,—ऽवारयन्त वारवन्तीयेन, तदिन्द्रियस्यैवैतद्वीर्यस्य परिगृहीत्यै, यत्र वा एन-
मदो दिशो व्यास्थापयति तत् स्व॰ लोकमभ्यारोहति, यदिमं लोकं पुनर्नोपावरोहेदतिजनꣳ वा
गच्छेदुद्वा माद्येद्, यदेता दिशामवेष्टय, इमꣳ वा एतं लोकं पुनरुपावरोहत्य,—कामो यजे-
तै,—तदेवꣳत्या वा इमा दिशो, यथादेवतꣳ वा एतदाभ्यो दिग्भ्योऽध्यन्नाद्यमवरुन्द्धे, यदि
ब्राह्मणो यजेत बार्हस्पत्यं मध्ये निधायाहुतिमाहुतिꣳ हुत्वाभिघारयेद्, यदि वैश्यो वैश्वदेवꣳ,
यदि राजन्य ऐन्द्र,—मेकधैवास्मिन्नन्नाद्यं प्रतिष्ठापयति, समानो वा एष यज्ञक्रतुः सꣳवत्सरं भ-
वति, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यत्संतिष्ठते, यदेताः प्रयुज उपैति सायमन्याः प्रातरन्या, द्वौ
वा ऋतू अहश्च रात्रिश्च, ता एव प्रयुङ्क्ते, षडन्याः षडन्याः, षड्वा ऋतव, ऋतूनेव प्रयुङ्क्ते,
ता उभयीर्द्वादश, द्वादश मासाः सꣳवत्सरः, सꣳवत्सरमेव प्रयुङ्क्ते, ऽनड्वाही दक्षिणा,
पुंस्त्या एव, मारुती पृश्निः पष्ठौही गर्भिणीति, विड्वै मरुतो, विशो वा एनमेतद्गर्भं करोति,
तस्माद्वा एष विशः प्रियः, प्रियो हि गर्भ, आदित्याजा मलिहा गर्भिणीती,—यꣳ वा अदिति,-
—रस्या वा एनमेतद्गर्भं करोति, तस्माद्वा एष दुःपराणोदो, ऽस्यो हि गर्भो, ऽथैते सत्यदूताः,

[९] तै. ब्रा. १,८,२,५; १,८,३।

प्रसवाय सावित्रो, देवा असुरैर्विजयमुपयन्तोऽश्विनोः पूषणि सत्यं न्यदधत, वाग्वै सरस्वती,
वाचा सत्यं प्रहिणोति ॥ अभ्युषिक्षि राजाभूम् ॥ इति, श्रद्धास्मै सुषुवाणाय दधति, सꣳ-
वत्सरमग्निहोत्रं जुहोत्यनुसंतत्यै ॥ ९ ॥ १४-१६

अग्निष्टोममग्रे ज्योतिष्टोममाहरति, यज्ञमुखꣳ वा अग्निष्टोमो, यज्ञमुखमेवालभ्य सर्वमाक्रम-
ते, ऽथैष त्रिष्टोम,—स्तस्य त्रिवृत् प्रातःसवनं पञ्चदशं माध्यंदिनꣳ सवनं, तेजो वै त्रिवृत्,
क्षत्रं पञ्चदश,—स्तेज एवास्य क्षत्रे दधाति, न वा अत्रापि सप्तदशस्तायते, प्रजापतिर्वै सप्त-
दशो, यज्ञः प्रजापति,—र्यद्यज्ञस्तायते तेन सप्तदशोऽनन्तरितः, पञ्चदशं माध्यंदिनꣳ सवन,—
मेकविꣳशं तृतीयसवनमिति, विड्वा एकविꣳशः, क्षत्रं पञ्चदशो, विशि वावास्यैतत् क्षत्रं प्र-
तिष्ठापयामुकः, सर्वे चतुस्त्रिꣳशाः पवमाना अभिषेचनीयस्य, त्रयस्त्रिꣳशद्देवता,—स्ता एवा-
स्यैतेनाभीष्टाः प्रीता भवन्त्य,—थ य एष चतुस्त्रिꣳशः, प्रजापतिर्वै चतुस्त्रिꣳशः, प्रजापति-
मेवाप्नोति, सꣳशरो वा एष स्तोमानामयथापूर्वꣳ, यद्विषमाः स्तोमा यत्समाः पवमानास्तेनै-
वासꣳशरस्तेन यथापूर्वं,—मात्मना वा अग्निष्टोमेन ऋध्नोत्या,—त्मना पुण्यो भवति, प्रजा वा
उक्थानि, पशव उक्थानि, यदुक्थ्योऽनुसंतत्ये, यो वै सर्वादिति नैनꣳ सर्व उपनमति,
यः सामभ्य एति पापीयान्त्सुषुवाणो भवति, यानि देवराजानाꣳ सामानि यत्तेभ्यो नैति तेनैव
सर्वाप्तत्ये,—तानि वै सामानि यत् पृष्ठानि, यत् पृष्ठान्युपयन्ति तेनैव सामभ्यो नैति, यानि
देवराजानाꣳ सामानि तैरस्मिँल्लोक ऋध्नोति, यानि मनुष्यराजानाꣳस्तैरमुष्मिꣳ,—स्तदुभयोरेवैतै-
र्लोकयोरृध्नोत्यस्मिꣳश्चामुष्मिꣳश्चो,—द्वतीषु स्तुवता, उद्वद्वा अनुष्टुभो रूप,—मानुष्टुभो राजन्य,-
—स्तस्मादुद्वतीषु स्तुवते, ऽनुष्टुप् प्रथमा भवत्य,—नुष्टुबुत्तमा, वाग्वा अनुष्टुब्, वाचा वा
एतत् प्रयन्ति, वाचोद्यन्ति, सौर्यनुष्टुबुत्तमा भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, एकविꣳशं
केशवपनीयस्य बहिष्पवमानमेकविꣳशमभिषेचनीयस्योत्तममिति, विड्वा एकविꣳशः, क्षत्रꣳ सप्त-
दशो, विशो वा एतन्मध्यतः सूयते, तस्माद्वा एष विशः प्रियो, विशो हि मध्यतः सूयते
यत्र वा एनमदो दिशो व्यास्थापयति तत्स्वर्गं लोकमभ्यारोहति, यदिमं लोकं पुनर्नोपावरोहेद-
तिजनꣳ वा गच्छेदुद्वा माद्येद्, यदेष प्रतीचीनस्तोम, इमꣳ वा एतं लोकं पुनरुपावरोहति॥१०॥
१७ [२१८०]

॥ इति खिलकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

[१०] तै. ब्रा. १,८,७—८।

अथ पञ्चमः प्रपाठकः।

अध्वरादीनां ग्रहाणां विधिः।

अपो वै वृत्रः पर्यशयत्, ततो या अत्यमुच्यन्त ता जीवा यज्ञिया, गिरिर्वै वृत्रो या अतिमु-
च्यन्ता धावन्ति ता जीवा यज्ञिया, यद्वहन्तीनां गृह्णाति या एव जीवा यज्ञियास्तासामेव
गृह्णाति, प्रतीपमुपमारयत्यक्रम्बट्काराय, सर्वस्यावकाशं गृह्णाति, सेन्द्रा एव गृह्णाति,
हविष्मतीरिमा आप इति, हविष्मतीरेव गृह्णात्या,—विःसूर्यं गृह्य, उत्तरमेव यज्ञक्रतुम-
भिगृह्णात्य,—नुष्टुभा गृह्णात्य,—नुष्टुब् वै सर्वाणि छन्दाꣳसि, सर्वैरेवैनाश्छन्दोभिर्गृह्णाति, वर्ष्म
वा एषा छन्दसाꣳ, वर्ष्मैनꣳ समानानां गमयति, चतुर्भिर्गृह्णाति, त्रिभिः सादयति,
तत् सप्त, सप्तपदा शक्वरी, शाक्वराः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽपो वै रात्रिर्दिवा भूतं
प्रविशति, तस्मादापो दिवा कृष्णा, अपोऽहर्नक्तं, तस्मादापो नक्तꣳ शुक्ला, यद्दिवा
गृह्णात्युभे एवाहोरात्रे गृह्णाति, दिवा वै मनुष्या यज्ञेन चरन्ति, नक्तं देवा,—स्तस्माद्रात्रिभिः
श्वस्यते, सꣳस्थाप्य वै मनुष्या यज्ञं निःप्रयन्त्या, आपः खलु वै विश्वे देवा, यदपः परि-
हरन्त्यच्छया वा एतद्यज्ञꣳ संप्रादा,—दन्यस्तेऽस्य यज्ञे क्रियते, यद्वै यज्ञस्यान्तर्यन्ति तच्छिद्रं,
तदनु रक्षाꣳसि यज्ञमवयन्त्यापो वै रक्षोघ्नी,—रपो रक्षाꣳसि न तरन्ति, यदपः परिहरन्ति रक्ष-
सामनन्ववायाय, या दिवा गृह्णाति या अत्रीः प्रजास्तासामेता योनि,—स्ता एता अनुप्रजायन्ते,
या नक्तं गृह्णाति या आद्याः प्रजास्तासामेता योनि,—स्ता एता अनुप्रजायन्त, उभयीरिदं प्रजाः
प्रजनयत्यत्त्रीश्चाद्याश्चा,—ऽग्नीध्रे सादयन्त्ये,—तद्वा अनभिजित,—मथो अत्र हि ताꣳ रात्रिं देवता
उपवसन्ति, देवा वै यज्ञस्य श्वस्तनं नापश्यꣳ,—स्ते वा एतदेव यज्ञस्य श्वस्तनमपश्यन् यद्व-
सतीवरी,—र्यद्वसतीवरीर्गृहीत्वोपवसन्ति श्वस्तनꣳ वा एतद्यज्ञस्यालभ्योपवसन्त्य,—थो आपो वै
विश्वे देवाः, सर्वा वा एतद्देवता आलभ्योपवसन्ति यस्यागृहीताः सर्वोऽभिनिम्रोचेद्, य आ-
हिताग्निः सोमयाजी तस्य कुम्भाद्गृह्य,—स्तस्य हि गृहीता अग्निमुपरिष्टाद्धारयेयु,—र्य गृहीया,—
ज्ज्योतिष्मतीरेवैना गृह्णाति, हिरण्यꣳ हस्ते भवत्य,—थ गृह्णाति, सत्यꣳ वै हिरण्यꣳ,
सत्येनैवैना गृह्णाति, वरो दक्षिणा, वरेणैवैना गृह्णाति, यत्तत्र धनमदास्यन्त्स्यात्तद्दयम्॥१॥ १
प्रचरꣳण्यामग्रे गृह्णात्ये,—षा ह्यग्रे प्रचरत्य,—पो वै सोमस्य रसः प्रविष्टो, ऽग्निः सर्वा देवता,
वैश्वदेवीरापो, यज्ञमुखं ग्रावाणः, सवितृप्रसूतो वा एतद् सर्वाभिर्देवताभिरपाꣳ सोमस्य

[१] मै. १,३,१ : तै. सं. ६,४,२ । श. ब्रा. ३,९,२ । का. ६,२३ । काठ. ६,३३ ।
[२] मै. १,३,१ : तै. सं. ६,४,३ : श. ब्रा. ३,९,३,२३ । का. ६,२६—२८ । काठ. ६,३८—३९,३१ ।

रसमर्छति, शृणोत्वग्निः समिधा हवं मा इति, यस्मिन्नेवाग्नौ जुहोति तमेतदाह, शृण्वन्त्वापा
इति, या एवापोऽर्छति ता एतदाह, धिषणा च देवीति, वाग्वै धिषणा देवी, वाचꣳ वा
एतदाह, शृणोत ग्रावाणो विदुषो नु यज्ञमिति यज्ञमुखꣳ हि ग्रावाणः, शृणोतु देवः सविता
हवं मा, इत्याह, प्रसूत्या एव ॥ अप इष्य होतः ॥ इति यज्ञं प्रेष्ये,—ति वा एतदाह॥ प्र
ब्रह्मणा इति, ब्रह्मणैव यज्ञमर्छति, मैत्रावरुणस्य चमसेनार्छत्ये,—ष ह्यग्रे प्रचरत्य,—थो मित्राव-
रुणौ ह्यपामीशाते, यज्ञमुखꣳ वै मित्रावरुणौ, यज्ञमुखमापो, यज्ञमुखेनैव यज्ञमुखमर्छति, यत्र
होतुः प्रातरनुवाकमनुब्रुवत उपशृणुयात्तदपोऽध्वर्युर्गृह्णीयाद्, यन्नोपशृणुयाद्बधिरः स्याद्, वाचो
हि छिद्येते, ऽथ यज्जुहोति हविर्भूता एवैना गृह्णात्य,—थो अभिघृता एव तृणं प्रास्य जुहोत्य,-
—ग्निमत्येव जुहोत्या,—यतनवत्यन्योऽध्वर्युः स्याद्, यदनायतने जुहुयाद्, घृतꣳ वै देवा वज्रं
कृत्वा सोममघ्न,—न्नभि खलु वा एता घारयन्ति, तस्मादाहुतिमपप्लावयत्य,—थो आहुतिं नै-
द्वराणीति, कार्ष्यसीत्या,—हुतिमपप्लावयति, समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नय, इत्युपमारयत्य,-
—पामेवाक्षित्या, अपां वै सोमस्य रसः प्रविष्टः, सोममपाꣳ रसो, ऽपाꣳ खलु वै नपाना-
पाꣳ सोमस्य रसस्येशाते, तौ वा एतदाहुत्या भागधेयेनापाꣳ सोमस्य रसं निरयाचिष्टो,—भे
अहोरात्रे वसतीवरीषु ग्रहीतꣳव्ये, इत्याहुः, पूर्वेद्युरन्यां गृह्णाति, पुरान्याः सूर्यस्योदितो,—
स्तथास्योभे अहोरात्रे वसतीवरीषु गृहीते भवतः, पूर्वेद्युरन्या गृह्णाति, पुरान्याः सूर्यस्योदितो,—
रुभयीरेवैनाः सर्वा गृहीता अक,—र्ऋत्व्या वा एता गृह्यन्ते या मैत्रावरुणस्य चमसे याश्च निग्राꣳ-
भ्या,—स्ता उभयीरुपरिष्टाच्चात्वालस्य संमनक्ति, संज्ञानमाभ्यः करोति, मित्रमाभ्यो ददाति,
चात्वालान्निर्गृह्णन्त, एष वा अपाꣳ योनिः, स्वादेव योनेर्निगृह्णन्तेऽस्कन्नत्वाय॥ अध्वर्योऽध्व-
र्योꣳ ओम् ॥ इत्य,—विदो यज्ञा३,—मिति वा एतदाह ॥ उतमेनन्नमु,—रुतेमे पश्य ॥ अयं मे
रुद्धे, इति वा एतदाह, यदग्निष्टोमो जुहोति, न वा अग्निमग्निष्टोमस्य स्तोत्रेण न शस्त्रेणा-
तियन्त्य,—ग्निष्टोममेव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, यद्युक्थ्यः, परिधिमनक्ति, परे वा अग्नेः परि-
धयः, पराणि परिधिभ्य उक्थान्य,—क्थान्येव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, यद्यतिरात्रे, एतद्देव
यजुर्वदन् हविर्धानं प्रपद्येत, परꣳ वै परिधिभ्यो हविर्धानं, परोक्थेभ्यो रात्री,
रात्रीमेव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, स्तेन मनो, ऽनृतवादिनी वा,—गथ केन सोमा गृह्यन्ते केन
हूयन्ता, इति पृच्छे,—दृतꣳ वै सत्यꣳ हिरण्य,—मृतेनैव सत्येन गृह्यन्त, ऋतेन हूयन्ते ॥२॥
२-९

देवेभ्यो वै मनुष्येभ्यः स्वर्गाय लोकाय यज्ञ आह्रियते, यद्वदे त्वेति, तेन देवेभ्यो, यन्मनसे त्वेति, तेन मनुष्येभ्यो, यदाह, दिवे त्वा सूर्याय त्वेति, तदनु यज्ञꣳ स्वर्गं लोकꣳ समारोहयति, विं वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यस्मै कमाह्रियते, तद्धोत्रेणमनु स्वर्गं लोकꣳ समारोहयति, यदाह, दिवि देवेषु होत्रा यच्छेति, होत्राभिर्वै यज्ञः संततो, होत्राभिरेव यज्ञꣳ संतनोति ॥ देवेभ्यः प्रातर्यावभ्योऽनुब्रूहि ॥ इति, छन्दाꣳसि वै देवाः प्रातर्यावाण,—श्छन्दोभ्यो वा एतदनुवाच आह, पुरा वाचः प्रवदितोः प्रातरनुवाकमन्वाह, यजमानायैव वाचं गृह्णाति, न वा एतर्हि यजमानो हस्ता अवनेनिक्ते, यदप्सुमतीं प्रथमामन्वाह, प्रातरवनेनेगो वा एष यजमानस्य, यत्र वा अ३दोऽपः परिहरन्त्य,—श्नो वा एतद्यज्ञꣳ संप्रादा,—द्यदप्सुमतीं प्रथमामन्वाहाश्नो वा एतद्यज्ञं पुनरालभते, सर्वेषाꣳ वै देवानां प्रातरनुवाक, आपः खलु वै विश्वे देवा, यदप्सुमतीं प्रथमामन्वाह सर्वा वा एतद्देवता आप्नोति, सर्वा व्यश्नोति, यथा वै सामिधेनीरेवं प्रातरनुवाक, आसाद्य वै हविः सामिधेनीरन्वाहु,—रेतद् खलु वा एतर्हि हविर्यत्सोम,—स्तस्मात् सोममुपावहृत्यान्वाह, गायत्रीं च संपादयति जगतीं च, तद् द्वे छन्दसी, एकं छन्दोऽभिसंपादयति बृहतीं, त्रिष्टुभं च ककुभं च, तद् द्वे छन्दसी, एकं छन्दोऽभिसंपादयति बृहतीं,—मनुष्टुभं च पङ्क्तिं च, तत् षट् छन्दाꣳस्यै,—कं छन्दोऽभिसंपादयति बृहतीं,—मनुष्टुप्प्रतिपत्कानि छन्दाꣳसि कुर्याद्यज्ञावकीर्णस्य, वाग्वा अनुष्टुब्, वाचैवैनं भिषज्यति, समया त्रिष्टुभं च जगतीं चानुब्रूयात् पशुकामस्य, पशवो वै जगती, पशुमान् भवति, सर्वाणि छन्दाꣳस्यन्वाह, प्रजापतिर्वै छन्दाꣳसि, प्रजापतिमेवाप्नोति, प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत् प्रातरनुवाको, व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोरनुब्रूया,—देष हि प्रजापतेर्लोकः, पवित्रꣳ वै प्रातरनुवाको, यजमानमेवैतेन पुनाति, शतमनुब्रूयादायुःकामस्य, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या, आयुरेव वीर्यमाप्नोति, सप्त च शतानि विꣳशतिं चानुब्रूयात् पशुकामस्यै,—तावन्ति वै सꣳवत्सरस्याहोरात्राणि, सꣳवत्सरेणैवास्मै पशूनवरुन्द्धे, सहस्रमनुब्रूयात् स्वर्गकामस्य, यावद्वै सहस्रं तावदि३तोऽसौ लोकः, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, अपरिमिता अन्वाहा,—परिमितस्यावरुद्ध्यै, पङ्क्त्या परिदधात्यु,—त्तरमेव यज्ञक्रतुमभिगृह्णाति ॥ ३ ॥ १०-१२

[३] मै. १,३,१ । तै. सं. ६,४,३,१—२ । श. ब्रा. ३,९,३,४ । वा. ६,२५ । काण्व. ६,३६ । मे. ४७

यज्ञस्य वा एताः पत्नीजनीः, पुꣳसामग्नीत्, स्त्रीणां नेष्टा, यदग्नीन्नेष्टुरुपस्थमासीदति, मिथुनꣳ वा एतत् संभवतो, यत्तर्हीषं उपप्रवर्तयति तस्मिन्नेव मिथुने रेतो दधाति, पत्न्युपप्रवर्तयति, पत्न्या हि प्रजाः प्रजायन्त, ऊरुणोपप्रवर्तयत्यु,—रुꣳ ह्यनु प्रजाः प्रजायन्ते, दक्षिणेनोरुणोपप्रवर्तयति, दक्षिणꣳ ह्यूरुमनु प्रजाः प्रजायन्ते, ऽन्तरत उपप्रवर्तयत्य,—न्तरतो हि प्रजाः प्रजायन्ते, यद्दक्षिणा प्रवर्तयेत् पितृलोक एना निधुवे,—दथ यदुदीचीरुपप्रवर्तयति मनुष्यलोकमेवैना उपप्रजनयति, प्राजापत्यो वा उद्गाता, संख्याप्यमानो वा उद्गाता पत्न्या रेत आदत्ते, यदाह, वामी ते संदृशि विश्वꣳ रेतो धेषीयेति, तथा ह नादत्ते, द्वादशे स्तोत्र उपप्रवर्तयति, द्वादश मासाः सꣳवत्सरो, द्वादशाग्निष्टोमे स्तोत्राण्या,—पः शान्ति,—र्यत्तर्हीषं उपप्रवर्तयति, शमयत्येव, देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति, सवितृप्रसूत एवैनमादत्ते, ऽश्विनोर्बाहुभ्यामित्य,—श्विनौ वै देवानामध्वर्यू, पूष्णो हस्ताभ्यामिति, देवताभिरेव, ग्रावासीति, रातं ३ह्येष देवेभ्यः सोम,—मध्वरकृद्देवेभ्यो इत्य,—ध्वरꣳ ३ह्येष देवेभ्यः करोती,—न्द्राय त्वा सुषुत्तमं मधुमन्तं पयस्वन्तमित्यै,—न्द्रो हि यज्ञ, इन्द्रं खलु वा एतर्ह्यन्या देवता अन्वि,—न्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इति, वसवश्च ह्येनमेतर्हि रुद्राश्चान्वि,—न्द्राय त्वादित्यवत इत्या,—दित्या ह्येनमेतर्ह्यन्व,—ग्नये त्वा रायस्पोषद इत्य,—ग्निर्वै सर्वा देवता, एता ह्येनमेतर्हि देवता अनु, विष्णवे त्वेति, विष्णुर्हि यज्ञो, व्यानो वा उपाꣳशुसवनः, प्रजा अꣳशवो, व्यानꣳ वा एतत् प्रजासु दधाति, श्वात्राः स्थ वृत्रतुरा इत्ये,—ष वा अपाꣳ वै सोमपीथ, एतꣳ वै विश्वामित्रोऽपाꣳ सोमपीथꣳ विदांचकार, तस्मै सिन्धवो घोक्षमनमन्ता,—ऽपाꣳ वा एष सोमपी३थो, ऽपो वा एतत् सोमपीथेन समर्धयति, यो वा अपाꣳ सोमपीथꣳ वेद न ह वा आस्वार्तिमार्छति, करोत्यासु वी३र्यꣳ, यत्ते सोम दिवि ज्योतिरिति, सोमो वै वाज,—स्तस्य चन्द्रमास्तृतीय,—मयꣳ यः पवते स तृतीयꣳ, येन यजन्ते स तृतीयं, गर्भानमुना दाधार, प्राणानेनेन यच्छत्य,—यꣳ यः पवतेऽन्नमनेन दाधार, येन यजन्ते तस्य वै वाजस्य सत्यꣳ वाजिन,—मन्नꣳ वाजिनं, दक्षिणा वाजिनं, ता वा अस्यैतत्तन्वः संभृत्य तꣳ सर्वꣳ संतनु भूतमाप्याययन्ति, वज्रो वै ग्रावा, हन् अधिषवणे, क्रूरमिव वा एतद्यज्ञे क्रियते, यदाह, धिषणे ईडिते ईडेथामिति, शमयत्येव ॥ ४ ॥ १३

[४] मै. १,३,१—३ । तै. सं. ६,४,४ । श. ब्रा. ३,९,४ । वा. ६,३०,३२—३४ । काण्व. ६,४३,४५—४७ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]

वसतीवरीभिः सोममाप्याययन्ति, न हि सोमेन सोम आप्यायते, ऽद्भिर्हि सोम आप्यायते, निग्राभ्याभिरुपाꣳशु,—मतो हीतरे सोमा गृह्यन्ते, प्राणो वा उपाꣳशु,—रङ्गानीतरे ग्रहा, यदन्यत आप्याययेयुः प्राणेन यज्ञꣳ विछिन्द्यु,—रष्टौ कृत्वः प्रातरभिषुणोत्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रीꣳ वा एतत् प्रातःसवने व्यायातयन्ति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा उपाꣳशौ यज्ञꣳ सꣳस्थाप्यमपश्यꣳ,—स्तमुपाꣳशौ समस्थापयꣳ,—स्तदुपाꣳशा एव यज्ञः सꣳस्थाप्यो, ऽष्टौ कृत्वः प्रातरभिषुणोत्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रीमेवाप्नोति, यदेकादश, त्रिष्टुभं तेन, यद् द्वादश, जगतीं तेन, त्रिर्विगृह्णाति, त्रीणि वै सवनानि, सवनान्येवाप्नोत्ये,—तद्वा उपाꣳशौ यज्ञꣳ समतिष्ठिपꣳ,—स्तेन सꣳस्थितेनारिष्टेन भूतेन प्रचरन्ति, त्रिर्विगृह्णाति, त्रयो ३हीमे प्राणाः, प्राणोऽपानो व्यानो, ऽथो त्रयो वा इमे लोका, इमानेव लोकानाप्नोत्य,—सौ वा उपाꣳशुरन्तरिक्षमन्तर्याम, इयमुपयामो, यदुपयामगृहीता गृह्यन्तेऽनया वा एतद्गृह्यन्ते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्ते, यत्स्थाल्या गृह्यन्ते, ऽनया वा एतद्गृह्यन्ते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्ते, यद्दारुमयेण गृह्यन्ते, ऽस्या वा एषाधिक्रियते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्तेऽनया वा एतद्गृह्यन्त, इयꣳ हि वनस्पतीनाꣳ योनि,—स्तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्त, एष ते योनि,—रिति सादयती,—यꣳ वै सोमस्य योनि,—रस्याः सोमोऽधि जायते, स्व एवैनꣳ योनौ दधाती,—यꣳ वै देवपात्रं, तद्य एवꣳ वेद प्र वसीयसः पात्रमाप्नोति, ब्राह्मणं तु पात्रे न मीमाꣳसेत यः पात्रिय इव स्या,—दनुपयामगृहीतो गृह्यते, ऽनुपयामगृहीतꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—सन्नो हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—पवित्रपूतो गृह्यते, ऽपवित्रपूतꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्ति, पवित्रपूता वा अन्ये सोमा, अथ वा एष वाहूयते, ऽसन्नꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्ति, पवित्रपूता वा अन्ये सोमा, अथ वा एष वाक्पूतो ३ह्ये३षो, ऽꣳशुभिः पावयति, क्पूतो यदुपाꣳशु,—स्तस्माद्वाचस्पतये पवस्वे,—त्याह, वाक्पूतो ३ह्ये३षो, ऽꣳशुभिः पावयति, द्वौ द्वौ ३हीमे प्राणा, प्राणा वा अꣳशवः, प्राणैरेवैनं पावयति, द्वाभ्यां द्वाभ्यां पावयति, द्वौ द्वौ ३हीमे प्राणा, प्राणा वा अꣳशवः, प्राणैरेवैनं पावयति, स्वांकृतोऽसीति, प्राणमेव स्वमकृत, मनस्त्वाष्टिति, मनसैव प्राणमाप्नोति, स्वाहा त्वा सुभव सूर्यायेति, सूर्यदेव३त्या हि देवो देवानां पवित्रमसीति, यत्स्वित्सोमꣳ सोमेन पुनाति, स्वाहा त्वा सुभव सूर्यायेति, सूर्यदेव३त्या हि

[५] मै. १,३,४ । तै. सं. ६,४,५ । श. ब्रा. ४,१,१;४,१,२,२१ । कपि. ४१,९;४२,१—२ । वा. ७,१,३,६ । काण्व. ७. १—३,५ ।

सर्वे सोमा हूयन्ते, ऽथो अत्र वै देवानां प्रियास्त३न्व,—स्ता एवावरुन्द्धे, देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्या इति, रश्मयो वै देवा मरीचिपाः, परिधयो रश्मयो, ऽसा आदित्य आहवनीय,—स्तानेव प्रीणात्यु,—र्ध्वस्तिष्ठन् जुहोत्यू,—र्ध्वो हि तिष्ठन् वीर्यवत्तरो, यं द्विष्यात्तस्य जिह्मस्तिष्ठन् जुहुयात्, प्राणानस्य व्लिनाति, जिह्मारुको भवति, यमभिचरेदा तमितोस्तिष्ठे,—दग्निराहुतिमभित्वरमाणस्ताजगनुगच्छति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या, इति परिमृज्योर्ध्वमुन्मृज्या,—दोषधीभ्यो वा ए३षोऽमुतो वर्षत्यो,—षधीरेव नेदीयो वृष्ट्या अक,—र्यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या, इति परिमृज्यावाचीनमवमृज्याद्, वैश्वानरेणैव वृष्टिमपि हन्ति, नापिदध्यो, यदपिदध्यात् प्राणमस्यापिदध्यात, प्रमायुकः स्याद्, यं द्विष्यात्तस्यापिदध्यात्, प्राणमेवास्यापिदधाति, यमभिचरेत् ॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य प्राणमपिदधामि ॥ इत्यपिदध्यात्, प्राणमेवास्यापिदधाति॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य प्राणं सादयामि॥ इत्यभिचरन्त्सादयेत्, प्राण एवास्य सादयति, प्रमायुको भवति, प्राणाय त्वेत्य,—नभिचरन्त्सादयेत् ॥ ५ ॥ १४-१८

पवित्रꣳ वितन्वन्ति प्राणापानयोर्विधृत्या, उपयामगृहीतो गृह्यते, ऽपानेन वै प्राणो धृतः, प्राणस्य धृत्या, अन्तरिक्षꣳ वा अन्तर्या३मो, ऽन्तरिक्षमिमाः प्रजा, यदेतत् पात्रꣳ सदवत्सादयति प्रजास्वेव रसं दधाति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा उपाꣳशुमपश्यꣳ,—स्तमगृह्णत, तं पुरा स्तोत्रात् पुरा शस्त्राद्धोतुमुपोदतिष्ठꣳ,—स्तेऽसुरा अचिकयु,—र्जुहति वा इति, तं वज्रमादायाभ्युपतꣳ,—स्ते देवा अन्तर्याममपश्यꣳ,—स्तमगृह्णत, तेनासुरानेभ्यो लोकेभ्यो ऽन्तरदधत, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तथ एवꣳ विद्वानन्तर्यामं गृह्णीते, ऽन्तर्यामेणैव भ्रातृव्य,—मेभ्यो लोकेभ्योऽन्तर्धत्ते, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, प्राणापानौ वा उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳशुसवनो, यदेष ग्रावान्तरेते पात्रे सार्यते, प्राणापानयोर्विधृत्यै, यो वा एता ईजते, येनैतौ विधृता एष वाव स उपाꣳशुसवनो ग्रावा, प्राणापानौ वा उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳशुसवनो, यदेते पात्रे एतं ग्रावाणमा तृतीयात् सवनात्र जुहोति,—स्तस्मात् सुप्तस्य सर्वाण्यन्यानि श्रोत्राण्यपक्रामन्ति प्राणापानौ त्वेनं न जहीतो, ऽथ यत् पुनरदयति, तस्मात् सुप्त्वा पुनः प्रबुध्यन्ते, प्राणापानौ वा उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳशुसवनो, यदेते पात्रे एतं ग्रावाणमा तृतीयात् सवनान्न जुहोतस्तस्मात् पक्षिणो वियत्सु पक्षा-

[६] मै. १,३,५ । तै. सं. ६,४,६ । श. ब्रा. ४,१,२ । कपि ४१,९; ४२,१ ।

रेत्येषां होत्रा स्वशन्या यदुद्गावाक्यां, ऽथो निर्वरुणत्वायैव यथा, न वा अस्यै तर्हि सदस्येभ्यो दक्षिणा दीयन्ते, त एवास्य तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, द्वादश पष्ठौहीर्गर्भिणीर्ब्रह्मणो, वाग् वै धेनु,—र्गर्भो मन्त्रो, वाचमेवास्य मन्त्रं दधात्या,—मन्त्रणीयो ह भवति, धेनुर्भव्या भवन्ति, द्वादश वै पयांसि, तान्यस्मिन् दधाति, तस्माद्वा एतमाहुः, पयस्वी राजा पुण्या इति, यावद्धि पयस्तदस्मिन् धीयते ॥८॥
१२-१३

श्रायन्तीयं ब्रह्मसामं भवत्य,—नुष्टुप्सु यज्ञायज्ञियं प्रोहन्ति, वारवन्तीयमग्निष्टोमसामं,—मिन्द्रो वै वृत्रमहं,—स्तं ओजसा वीर्येण व्यार्ध्यत, स एतद् सामापश्यत्, तेनात्मानं समश्रयतौ,—जसा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, तदुतेनैवात्मानं संश्रयते, ब्रह्म वै यदग्रे व्यंभुवदेकसाम यजु,—स्तस्य वा एष रसो यद्यज्ञायज्ञियं, यद्यज्ञायज्ञियं गायते ब्रह्मण्येव रसं दधाति, वाचा वा एष व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चते, वागनुष्टुब्, यदनुष्टुप्सु यज्ञायज्ञियं भवति वाच्येवास्य रसं दधाती,—न्द्रियेण वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिञ्चत, इन्द्रियं वीर्यं वारवन्तीयं, यद्वारवन्तीयमग्निष्टोमसामं भवतीन्द्रियस्य वीर्यस्यावरुद्ध्या, अश्रयन्वा इत्रे श्रायन्तीयेना,—ऽवारयन्त वारवन्तीयेन, तदिन्द्रियस्यैवैतै वीर्यस्य परिगृहीत्यै, यत्र वा एनमदो दिशो व्यास्थापयति तत्र स्व. लोकमभ्यारोहति, यदिमं लोकं पुनर्नोपावरोहेदति जनं वा गच्छेदुद्वा माद्येद्, यदुता दिशामवेष्टय, इमं वा एतं लोकं पुनरुपावरोहत्य,—ऽकामो यजेते,—तदेवर्त्या वा इमा दिशो, यथादेवतं वा एतदाभ्यो दिग्भ्योऽध्यन्नाद्यमवरुन्द्धे, यदि ब्राह्मणो यजेत बार्हस्पत्यं मध्ये निधायाहुतिमाहुतिं हुत्वाभिघारयेद्, यदि वैश्यो वैश्वदेवं, यदि राजन्य ऐन्द्रं,—मेकधैवास्मिन्नन्नाद्यं प्रतिष्ठापयति, समानो वा एष यज्ञक्रतुः संवत्सरं भवति, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यत्संतिष्ठते, यदुवाः प्रयुज उपैति सायमन्याः प्रातरन्या, द्वौ वा ऋतू अहश्च रात्रिश्च, तौ एवं प्रयुङ्क्ते, षडन्याः षडन्याः, षड्वा ऋतव, ऋतूनेव प्रयुङ्क्ते, ता उभयीर्द्वादश, द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरमेव प्रयुङ्क्ते, ऽनड्वाहौ दक्षिणा, युक्त्या एवं, मारुती पृश्निः पष्ठौही गर्भिणीति, विड्वै मरुतो, विशो वा एनमेतद्गर्भं करोति, तस्माद्वा एष विशः प्रियः, प्रियो हि गर्भ, आदित्याजा मलिहा गर्भिणीती,—यं वा अदिति,—रस्या वा एनमेतद्गर्भं करोति, तस्माद्वा एष दुःपराणोदो, ऽस्या हि गर्भो, ऽथैते सत्यदूताः,

[९] तै. ब्रा. १,८,२,५; १,८,३ ।

प्रसवाय सावित्रो, देवा असुरैर्विजयमुपयन्तोऽश्विनोः पूषणि सत्यं न्यदधत, वाग्वै सरस्वती, वाचा सत्यं प्रहिणोति ॥ अभ्युषिक्षि राजाभूम् ॥ इति, श्रद्धास्मै सुपुत्राणाय दधति, संवत्सरमग्निहोत्रं जुहोत्यनुसंतत्यै ॥ ९ ॥
१४-१६

अग्निष्टोममग्रे ज्योतिष्टोममाहरति, यज्ञमुखं वा अग्निष्टोमो, यज्ञमुखमेवालभ्य सर्वमाकुप्तं, ऽथैष त्रिष्टोम,—स्तस्य त्रिवृत् प्रातःसवनं पञ्चदशं माध्यंदिनं सवनं, तेजो वै त्रिवृत्, क्षत्रं पञ्चदश,—स्तेज एवास्य क्षत्रे दधाति, न वा अत्रापि सप्तदशस्तायते, प्रजापतिर्वै सप्तदशो, यज्ञः प्रजापति,—र्यद्यज्ञस्तायते तेन सप्तदशोऽनन्तरितः, पञ्चदशं माध्यंदिनं सवन,—मेकविंशं तृतीयसवनमिति, विड्वा एकविंशः, क्षत्रं पञ्चदशो, विशि वावास्यैवत् क्षत्रं प्रतिष्ठापयामुकः, सर्वे चतुस्त्रिंशाः पवमाना अभिषेचनीयस्य, त्रयस्त्रिंशद्देवता,—स्ता एवास्यैतेनाभीष्टाः प्रीता भवन्त्य,—थ य एष चतुस्त्रिंशः, प्रजापतिर्वै चतुस्त्रिंशः, प्रजापतिमेवाप्नोति, संशरो वा एष स्तोमानामयथापूर्वं, यद्विषमाः स्तोमा यत्समाः पवमानास्तेनैवासंशरस्तेन यथापूर्व,—मात्मना वा अग्निष्टोमेन ऋध्नोत्या,—त्मना पुण्यो भवति, प्रजा वा उक्थानि, पशव उक्थानि, यदुक्थ्योऽनुसंतत्ये, यो वै सर्वादेति नैनं सर्व उपनमति, यः सामभ्या एति पापीयान्त्सुपुत्राणो भवति, यानि देवराजानां सामानि यत्तेभ्यो नैति तेनैव सर्वाप्नोत्ये,—तानि वै सामानि यत् पृष्ठानि, यत् पृष्ठान्युपयन्ति तेनैव सामभ्यो नैति, यानि देवराजानां सामानि तैरस्मिंल्लोके ऋध्नोति, यानि मनुष्यराजानांस्तैरमुष्मिं,—स्तदुभयोरेवैतैर्लोकयोर्ऋध्नोत्यस्मिंश्चामुष्मिंश्चो,—द्वतीषु स्तुवता, उद्वद्वा अनुष्टुभो रूप,—मानुष्टुभो राजन्य,—स्तस्मादुद्वतीषु स्तुवते, ऽनुष्टुप् प्रथमा भवत्य,—नुष्टुबुत्तमा, वाग्वा अनुष्टुब्, वाचा वा एतन् प्रयन्ति, वाचोद्यन्ति, सौर्यनुष्टुबुत्तमा भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, एकविंशं केशवपनीयस्य बहिष्पवमानमेकविंशमभिषेचनीयस्योत्तममिति, विड्वा एकविंशः, क्षत्रं सप्तदशो, विशो वा एतन्मध्यतः सूयते, तस्माद्वा एष विशः प्रियो, विशो हि मध्यतः सूयते यत्र वा एनमदो दिशो व्यास्थापयति तत्स्वर्गं लोकमभ्यारोहति, यदिमं लोकं पुनर्नोपावरोहेदति जनं वा गच्छेदुद्वा माद्येद्, यदेष प्रतीचीनस्तोम, इमं वा एतं लोकं पुनरुपावरोहति॥१०॥
१७　[२१८०]

॥ इति खिलकाण्डे चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

[१०] तै. ब्रा. १,८,७—८ ।

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

अध्वरादीनां त्रयाणां विधिः ।

अपो वै वृत्रः पर्यशयत्, ततो या अत्यमुच्यन्त ता जीवा यज्ञिया, गिरिर्वै वृत्रो या अतिमुह्यानां धावन्ति ता जीवा यज्ञिया, यद्वहन्तीनां गृह्णाति या एव जीवा यज्ञियास्तासामेव गृह्णाति, प्रतीपमुपमारयन्त्यछम्बट्कारायं, सर्वस्यावकाशं गृह्णाति, सेन्द्रा एव गृह्णाति, हविष्मतीरिमा आप इति, हविष्मतीरेव गृह्णात्या,—विःसूर्ये गृह्णा, उत्तरमेव यज्ञक्रतुमभिगृह्णात्य,—नुष्टुभागृह्णात्य,—नुष्टुब् वै सर्वाणि छन्दांसि, सर्वैरेवैनाश्छन्दोभिर्गृह्णाति, वर्ष्म वा एषा छन्दसां, वर्ष्मैनं समानानां गमयति, चतुर्भिर्गृह्णाति, त्रिभिः सादयति, तत् सप्त, सप्तपदा शक्वरी, शाक्वराः पशवः, पशूनेवावरुन्द्धे, ऽपो वै रात्रिर्दिवा भूतं प्रविशति, तस्मादापो दिवा कृष्णा, अपोऽहर्नक्तं, तस्मादापो नक्तं शुक्ला, यद्दिवा गृह्णात्युभे एवाहोरात्रे गृह्णाति, दिवा वै मनुष्या यज्ञेन चरन्ति, नक्तं देवा,—स्तस्माद्रात्रिभिः श्वसन्ते, संस्थाप्य वै मनुष्या यज्ञं निःप्रयन्ता, आपः खलु वै विश्वे देवा, यदपः परिहरन्त्यच्छयो वा एतद्यज्ञं संप्रादा,—दन्वस्तेऽस्य यज्ञे क्रियते, यद्वै यज्ञस्यान्तर्यन्ति तच्छिद्रं, तदनु रक्षांसि यज्ञमवयन्त्यापो वै रक्षोघ्नी,—रपो रक्षांसि न तरन्ति, यदपः परिहरन्ति रक्षसामनन्ववायाय, या दिवा गृह्णाति या अग्रीः प्रजास्तासामेता योनि,—स्ता एता अनुप्रजायन्ते, या नक्तं गृह्णाति या आद्याः प्रजास्तासामेता योनि,—स्ता एता अनुप्रजायन्त, उभयीरेव प्रजाः प्रजनयत्यग्रीश्चाद्याश्चा,—ऽग्नीध्रे सादयन्त्ये,—तद्वा अनभिजित,—मथो अत्र हि तां रात्रिं देवता उपवसन्ति, देवा वै यज्ञस्य श्वस्तनं नापश्यं,—स्ते वा एतदेव यज्ञस्य श्वस्तनमपश्यन् यद्वसतीवरी,—र्यद्वसतीवरीर्गृह्णन्त्योपवसन्ति श्वस्तनं वा एतद्यज्ञस्यालभ्योपवसन्त्य,—थो आपो वै विश्वे देवाः, सर्वा वा एतद्देवता आलभ्योपवसन्ति यस्यागृहीताः सूर्योऽभिनिम्रोचेद्, य आहिताग्निः सोमयाजी तस्य कुम्भाद्गृह्णा,—त्तस्य हि गृहीता अग्निमुपरिष्टाद्धारयेयु,—रथ गृहीत्वा,—ज्योतिष्मतीरेवैना गृह्णाति, हिरण्यं हस्ते भवत्य,—थ गृह्णाति, सत्यं वै हिरण्यं, सत्येनैवैना गृह्णाति, वरो दक्षिणा, वरेणैवैना गृह्णाति, यत्तत्र धनमदास्यन्त्स्यात्तद्देयम्॥१॥ १

प्रचरण्यामग्रे गृह्णात्ये,—पो ह्यग्रे प्रचरन्त्य,—पो वै सोमस्य रसः प्रविष्टो, ऽग्निः सर्वा देवता, वैश्वदेवीरापो, यज्ञमुखं ग्रावाणः, सवितृप्रसूतो वा एतद् सर्वाभिर्देवताभिरपां सोमस्य

[१] तै. १,३,१ । तै. ब्रा. ६,४,२ । श. ब्रा. ३,९,२ । का. ६,२३ । काण्व. ६,२३ ।
[२] तै. १,३,१ । तै. सं. ६,४,३ । श. ब्रा. ३,९,३,२४ । का. ६,२६—२८ । काण्व. ६,३८—३९,४१ ।

रसमच्छैति, शृणोत्वग्निः समिधा हवं मा इति, यस्मिन्नेवाग्नौ जुहोति तमेतदाह, शृण्वन्त्वापा इति, या एवापोऽच्छैति ता एतदाह, धिषणा च देवीति, वाग्वै धिषणा देवी, वाचं वा एतदाह, शृणोत ग्रावाणो विदुषो नु यज्ञमिति यज्ञमुखं हि ग्रावाणः, शृणोतु देवः सविता हवं मा, इत्याह, प्रसूत्या एवं ॥ अप इष्य होतः ॥ इति यज्ञं प्रेष्ये,—ति वा एतदाह॥ प्र ब्रह्मणा इति, ब्रह्मणैव यज्ञमच्छैति, मैत्रावरुणस्य चमसेनाच्छैत्ये,—प ह्यग्रे प्रचरत्य,—थो मित्रावरुणा उ ह्यपामीशाते, यज्ञमुखं वै मित्रावरुणौ, यज्ञमुखमापो, यज्ञमुखेनैव यज्ञमुखमच्छैति, यत्र होतुः प्रातरनुवाकमनुब्रुवत उपशृणुयात्तदपोऽध्वर्युर्गृह्णीयाद्, यन्नोपशृणुयाद्बधिरः स्याद्, वाचो हि छिद्यते, ऽथ यज्जुहोति हविर्भूता एवैना गृह्णात्य,—थो अभिघृता एव तृणं प्रास्य जुहोत्य,—ग्निमत्येव जुहोत्या,—यतनवत्यन्योऽध्वर्युः स्याद्, यदनायतने जुहुयाद्, घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्न,—न्नभि खलु वा एता घारयन्ति, तस्मादाहुतिमपप्लावयत्य,—थो आहुतिं नेद्धराणीति, कार्ष्यसीत्या,—हुतिमपप्लावयति, समुद्रस्य वोऽक्षित्या उन्नय, इत्युपमारयत्य,—पामेवाक्षित्या, अपो वै सोमस्य रसः प्रविष्टः, सोममपां रसो, ऽपां च खलु वै नपाच्चापां सोमस्य रसस्येशाते, तौ वा एतदाहुत्या भागधेयेनापां सोमस्य रसं निरयाचिष्टो,—भे अहोरात्रे वसतीवरीषु ग्रहीतव्ये, इत्याहुः, पूर्वेद्युरन्या गृह्णाति, पुरान्याः सूर्यस्योदितो,—स्तथास्योभे अहोरात्रे वसतीवरीषु गृहीते भवतः, पूर्वेद्युरन्या गृह्णाति, पुरान्याः सूर्यस्योदितो,—रुभयीरेवैनाः सद्योगृहीता अक,—र्ऋतव्या वा एता गृह्यन्ते या मैत्रावरुणस्य चमसे याश्च निग्राभ्या,—स्ता उभयीरुपरिष्टाचात्वालस्य समनक्ति, संज्ञानमाभ्यः करोति, मित्रमाभ्यो ददाति, चात्वालान्निर्गृह्णन्त, एष वा अपां योनिः, स्वादेव योनेर्निर्गृह्णन्तेऽस्कन्नत्वाय॥ अध्वर्योऽवेरपा३ ओम् ॥ इत्य,—विदो यज्ञा३,—मिति वा एतदाह ॥ उतमेनन्नमु,—रुतेमं पश्य ॥ अयं मे रुद्धं, इति वा एतदाह, यद्यग्निष्टोमो जुहोति, न वा अग्निमग्निष्टोमस्य स्तोत्रेण न शस्त्रेणातियन्त्य,—ग्निष्टोममेव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, यद्युक्थ्यः, परिधिमनक्ति, परे वा अग्नेः परिधयः, पराणि परिधिभ्य उक्थान्यु,—क्थान्येव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, यद्यतिरात्रं, एतदेव यजुर्वदन् हविर्धानं प्रपद्येत, परं वै परिधिभ्यो हविर्धानं, परोक्थेभ्यो रात्री, रात्रीमेव यज्ञक्रतुमनुसंतनोति, स्तेनं मनो, ऽनृतवादिनी वा,—गथ केन सोमा गृह्यन्ते केन हूयन्ता, इति पृष्ठे,—र्ऋतं वै सत्यं हिरण्य,—मृतेनैव सत्येन गृह्यन्त, ऋतेन हूयन्ते ॥२॥
२-९

देवेभ्यो वै मनुष्येभ्यः स्वर्गाय लोकाय यज्ञ आह्रियते, यद्वदे त्वेति, तेन देवेभ्यो, य-
न्मनसे त्वेति, तेन मनुष्येभ्यो, यदाह, दिवे त्वा सूर्याय त्वेति, तदनु यज्ञꣳ स्वर्गं लोकꣳ
समारोहयति, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यस्मै कमाह्रियते, तद्यथेनमनु स्वर्गं लोकꣳ समारोहयति,
यदाह, दिवि देवेषु होत्रा यच्छेति, होत्राभिर्वै यज्ञः संततो, होत्राभिरेव यज्ञꣳ संतनोति ॥
देवेभ्यः प्रातर्यावभ्योऽनुब्रूहि ॥ इति, छन्दाꣳसि वै देवाः प्रातर्यावाण,—श्छन्दोभ्यो वा
एतदनुवाच आह, पुरा वाचः प्रवदितोः प्रातरनुवाकमन्वाह, यजमानायैव वाचं गृह्णाति,
न वा एतर्हि यजमानो हस्ता अवनेनिक्ते, यदप्सुमतीं प्रथमामन्वाह, प्रातरवनेग्यो वा एष य-
जमानस्य, यत्र वा अ३दोऽपः परिहरन्त्य,—श्नौ वा एतद्यज्ञꣳ संप्रादा,—द्यदप्सुमतीं प्रथमा-
मन्वाहाश्नौ वा एतद्यज्ञं पुनरालभते, सर्वेषाꣳ वै देवानां प्रातरनुवाकं, आपः खलु वै विश्वे
देवा, यदप्सुमतीं प्रथमामन्वाह सर्वा वा एतद्देवता आप्नोति, सर्वा व्यश्नोति, यथा वै सा-
मिधेनीरेवं प्रातरनुवाकं, आसाद्य वै हविः सामिधेनीरन्वाह,—रतेव खलु वा एतर्हि हविर्यत्सो-
म,—स्तस्मात् सोममुपावहृत्यान्वाह, गायत्रीं च संपादयति जगतीं च, तद्द्वे छन्दसी,
एकं छन्दोऽभिसंपादयति बृहतीं, त्रिष्टुभं च ककुभं च, तद्द्वे छन्दसी, एकं छन्दोऽभि-
संपादयति बृहतीं,—मनुष्टुभं च पङ्क्तिं च, तत् षट् छन्दाꣳस्ये,—कं छन्दोऽभिसंपादयति
बृहतीं,—मनुष्टुप्प्रतिपत्कानि छन्दाꣳसि कुर्याद्यज्ञावकीर्णस्य, वाग्वा अनुष्टुब्, वाचैवैनं भिषज्यति,
समया त्रिष्टुभं च जगतीं चानुब्रूयात् पशुकामस्य, पशवो वै जगती, पशुमान् भवति,
सर्वाणि छन्दाꣳस्यन्वाह, प्रजापतिर्वै छन्दाꣳसि, प्रजापतिमेवाप्नोति, प्रजापतेर्वा एतदुक्थं
यत् प्रातरनुवाको, व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोरनुब्रूया,—देष हि प्रजापतेर्लोकः, पवित्रꣳ वै
प्रातरनुवाको, यजमानमेवैतेन पुनाति, शतमनुब्रूयादायुःकामस्य, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्या,
आयुरेव वीर्यमाप्नोति, सप्त च शतानि विꣳशतिं चानुब्रूयात् पशुकामस्यै,—तावन्ति वै संꣳ-
वत्सरस्याहोरात्राणि, संꣳवत्सरेणैवास्मै पशूनवरुन्द्धे, सहस्रमनुब्रूयात् स्वर्गकामस्य, यावद्वै
सहस्रं तावदितोऽसौ लोकः, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, अपरिमिता अन्वाहा,—परिमितस्या-
वरुद्धये, पङ्क्त्या परिदधात्यु,—त्तरमेव यज्ञक्रतुमभिगृह्णाति ॥ ३ ॥ १०-१२

[३] मै. १,३,१ । तै. सं. ६,४,३,१—२ । श. ब्रा. ३,९,३,४ । वा. ६,२५ । काण्व. ६,३६ ।
मै. ४७

यज्ञस्य वा एताः पत्नीजनीः, पुꣳसामग्नीत्, स्त्रीणां नेष्टा, यदग्नीन्नेष्टुरुपस्थमासीदति,
मिथुनꣳ वा एतत् संभवतो, यत्त्वष्टारं उपप्रवर्तयति तस्मिन्नेव मिथुने रेतो दधाति, पत्न्युपप्र-
वर्तयति, पत्न्या हि प्रजाः प्रजायन्त, ऊरुणोपप्रवर्तयत्यू,—रुꣳ ह्यनु प्रजाः प्रजायन्ते, दक्षि-
णेनोरुणोपप्रवर्तयति, दक्षिणꣳ ह्यूरुमनु प्रजाः प्रजायन्ते, ऽन्तरतं उपप्रवर्तयत्य,—न्तरतो हि
प्रजाः प्रजायन्ते, यद्दक्षिणा प्रवर्तयेत् पितृलोकं एना निधुवे,—दथ यदुदीचीरुपप्रवर्तयति मनुष्य-
लोकमेवैना उपप्रजनयति, प्राजापत्यो वा उद्गाता, संख्याप्यमानो वा उद्गाता पत्न्या रेता
आदत्ते, यदाह, वामी ते संदृशि विश्वꣳ रेतो धेषीयेति, तथा ह नादत्ते, द्वादशं स्तोत्रं
उपप्रवर्तयति, द्वादश मासाः संꣳवत्सरो, द्वादशाग्निष्टोमे स्तोत्राण्या,—पः शान्ति,—र्यत्त्व-
ष्टारं उपप्रवर्तयति, शमयत्येवं, देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति, सवितृप्रसूत एवैनमादत्ते,
ऽश्विनोर्बाहुभ्यामित्य,—श्विनौ वै देवानामध्वर्यू, पूष्णो हस्ताभ्यामिति, देवताभिरेवं, ग्रो-
वासीति, रातꣳ ह्येषं देवेभ्यः सोम,—मध्वरकृद्देवेभ्यो इत्य,—ध्वरꣳ ह्येषं देवेभ्यः करोती,—
न्द्राय त्वा सुषुत्तमं मधुमन्तं पयस्वन्तमित्यै,—न्द्रो हि यज्ञ, इन्द्रं खलु वा एतर्ह्यन्या देवता
अन्वि,—न्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवता इति, वसवश्च ह्येनमेतर्हि रुद्राश्चान्वि,—न्द्राय त्वादित्यवता
इत्या,—दित्या ह्येनमेतर्ह्यन्व,—ग्नये त्वा रायस्पोषद इत्य,—ग्निर्वै सर्वा देवता, एता ह्येनमेतर्हि
देवता अनु, विष्णवे त्वेति, विष्णुर्हि यज्ञो, व्यानो वा उपाꣳशुसवनः, प्रजा अꣳशवो,
व्यानꣳ वा एतत् प्रजासु दधाति, श्वात्राः स्थ वृत्रतुरा इत्ये,—ष वा अपाꣳ वै सोमपीथं,
एतꣳ वै विश्वामित्रोऽपाꣳ सोमपीथꣳ विदांचकार, तस्मै सिन्धवो घोक्षमनमन्ता,—ऽपाꣳ वा एष
सोमपी३थो, ऽपो वा एतत् सोमपीथेन समर्धयति, यो वा अपाꣳ सोमपीथꣳ वेद न ह वा
आस्वार्तिमार्छति, करोत्यासु वी३र्यꣳ, यत्ते सोम दिवि ज्योतिरिति, सोमो वै वाज,—
स्तस्य चन्द्रमास्तृतीय,—मयꣳ यः पवते स तृतीयꣳ, येन यजन्ते स तृतीयं, गर्भानमुना
दाधार, प्राणानिनेन यच्छत्य,—यꣳ यः पवतेऽन्नममुनेन दाधार, येन यजन्ते तस्य वै वाजस्य
सत्यꣳ वाजिन,—मन्नꣳ वाजिनं, दक्षिणा वाजिनं, ता वा अस्यैतत्तन्वः संभृत्य तꣳ सर्वꣳ
संतनु भूतमाप्याययन्ति, वज्रो वै ग्रावा, हनू अधिषवणे, क्रूरमिव वा एतद्यज्ञे क्रियते,
यदाह, धिषणे ईडिते ईडेथामिति, शमयत्येवं ॥ ४ ॥ १३

[४] मै. १,३,१—३ । तै. सं. ६,४,४ । श. ब्रा. ३,९,४ । वा. ६,३०,३१—३४ । काण्व. ६,४३,४५—४७ ।
[देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]

वसतीवरीभिः सोममाप्याययन्ति, न हि सोमेन सोम आप्यायत, ऽद्भिर्हि सोम आप्यायते,
निग्राभ्याभिरुपाꣳशु,—मतो हीतरे सोमा गृह्यन्ते, प्राणो वा उपाꣳशु,—रश्नानीतरे ग्रहा, यदन्यत
आप्याययेयुः प्राणेन यज्ञꣳ विछिन्द्यु,—रष्टौ कृत्वः प्रातरभिषुणोत्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रीꣳ
वा एतत् प्रातःसवने व्यायातयान्ति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा उपाꣳशौ यज्ञꣳ
संꣳस्थाप्यमपश्यꣳ,—स्तमुपाꣳशौ समस्थापयꣳ,—स्तदुपाꣳशा एव यज्ञः संꣳस्थाप्यो, ऽष्टौ
कृत्वः प्रातरभिषुणोत्य,—ष्टाक्षरा गायत्री, गायत्रीमेवाप्नोति, यदेकादश, त्रिष्टुभं तेन,
यद् द्वादश, जगतीं तेन, त्रिर्विगृह्णाति, त्रीणि वै सवनानि, सवनान्येवाप्नोत्ये,—तद्वा
उपाꣳशौ यज्ञꣳ समतिष्ठिपꣳ,—स्तेन संꣳस्थितेनारिष्टेन भूतेन प्रचरन्ति, त्रिर्विगृह्णाति, त्रयो
३हीमे प्राणाः, प्राणोऽपानो व्यानो, ऽथो त्रयो वा इमे लोका, इमानेव लोकानाप्नोत्य,—
सौ वा उपाꣳशुरन्तरिक्षमन्तर्याम, इयमुपयामो, यदुपयामगृहीता गृह्यन्तेऽनया वा एत-
द्गृह्यन्ते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्ते, यत्स्थाल्या गृह्यन्ते, ऽनया वा एतद्गृ-
ह्यन्ते, ऽस्या वा एषाधिक्रियते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि गृह्यन्ते, यद्दारुमयेण गृ-
ह्यन्ते, ऽस्या वा एषाधिक्रियते, तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि
ह्यन्तेऽनया वा एतद्गृह्यन्त, इयꣳ हि वनस्पतीनाꣳ योनि,—स्तदस्कन्ना वा ए३ते, ऽनया हि
गृह्यन्त, एष ते योनि,—रिति सादयती,—यꣳ वै सोमस्य योनि,—रस्याः सोमोऽधि जायते,
स्व एवैनꣳ योनौ दधाती,—यꣳ वै देवपात्रं, तद्य एवꣳ वेद प्र वसीयसः पात्रमाप्नोति,
ब्राह्मणं तु पात्रे न मीमाꣳसेत यः पात्रिय इव स्या,—दनुपयामगृहीतो गृह्यते, ऽनुपयामगृहीतꣳ
हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—पवित्रपूतो गृह्यते, ऽपवित्रपूतꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—सन्नो
हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—पवित्रपूतो गृह्यते, ऽपवित्रपूतꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्त्य,—सन्नो
ह्यते, ऽसन्नꣳ हि प्रजाः प्राणमुपजीवन्ति, पवित्रपूता वा अन्ये सोमा, अथ वा एष वा-
क्पूतो यदुपाꣳशु,—स्तस्माद्वाचस्पतये पवस्व,—त्याह, वाक्पूतो ह्ये३षो, ऽꣳशुभिः पावयति,
प्राणा वा अꣳशवः, प्राणैरेवैनं पावयति, द्वाभ्यां द्वाभ्यां पावयति, द्वौ द्वौ ३हीमे प्राणा,
देवो देवानां पवित्रमसीति, यत्स्वित्सोमꣳ सोमेन पुनाति, स्वांकृतोऽसीति, प्राणमेव स्वम-
कृत, मनस्त्वाष्ट्विति, मनुसैव प्राणमाप्नोति, स्वाहा त्वा सुभव सूर्यायेति, सूर्यदेव३त्या हि

[५] मै. १,३,४ । तै. सं. ६,४,५ । श. ब्रा. ४,१,१;४,१,१,२१ । कपि. ४२,९;४२,१—२ । वा. ७,१,३,६ । काण्व. ७,
१—३,५ ।

सर्वे सोमा हूयन्ते, ऽथो अत्र वै देवानां प्रियास्त३न्व,—स्ता एवावरुन्द्धे, देवेभ्यस्त्वा मरीचि-
पेभ्या इति, रश्मयो वै देवा मरीचिपाः, पुरिधयो रश्मयो, ऽसा आदित्य आहवनीय,—स्तानेव
प्रीणात्यू,—र्ध्वस्तिष्ठन् जुहोत्यू,—र्ध्वो हि तिष्ठन् वीर्यवत्तरो, यं द्विष्यात्तस्य जिह्मस्तिष्ठन् जुहु-
यात्, प्राणानस्य व्लिनाति, जिह्मारुको भवति, यद्यभिचरेदा तमितोस्तिष्ठे,—दभिराहुति-
मभित्वरमाणस्ताजगनुगच्छति, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या, इति परिमृज्योर्ध्वमुन्मृज्या,
—दोषधीभ्यो वा ए३षोऽमुतो वर्षत्यो,—षधीरेव नेदीयो वृष्ट्या अक,—र्यदि कामयेत, वर्षेत्
पर्जन्या, इति परिमृज्यावाचीनमवमृज्याद्, वैश्वानरेणैव वृष्टिमपि हन्ति, नाविधेयो, य-
दपिदध्यात् प्राणमस्यापिदध्यात्, प्रमायुकः स्याद्, यं द्विष्यात्तस्यापिदध्यात्, प्राणमेवा-
स्यापिदधाति, यद्यभिचरेत् ॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य प्राणमपिदधामि ॥ इत्यपिदध्यात्,
प्राणमेवास्यापिदधाति॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्य प्राणं सादयामि॥ इत्यभिचरन्त्सादयेत्, प्राणं
एवास्य सादयति, प्रमायुको भवति, प्राणाय त्वेत्य,—नभिचरन्त्सादयेत् ॥ ५ ॥ १४–१८

पवित्रꣳ वितन्तान्ति प्राणापानयोर्विधृत्या, उपयामगृहीतो गृह्यते, ऽपानेन वै प्राणो धृतः,
प्राणस्य धृत्या, अन्तरिक्षꣳ वा अन्तर्या३मो, ऽन्तरिक्षमिमाः प्रजा, यदेतत् पात्रꣳ संदवत्सा-
दयति प्रजास्वेव रसं दधाति, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा उपाꣳशुमपश्यꣳ,—स्त-
मगृह्णत, तं पुरा स्तोत्रात् पुरा शस्त्राद्धोतुमुपोदतिष्ठꣳ,—स्तेऽसुरा अचिकयु,—र्जुह्वति वा इति,
तं वज्रमादायाभ्युपतꣳ,—स्ते देवा अन्तर्याममपश्यꣳ,—स्तमगृह्णत, तेनासुरानेभ्यो लोकेभ्यो
ऽन्तरदधत, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तय एवꣳ विद्वानन्तर्यामं गृह्णीते, ऽन्तर्यामेणैव
भ्रातृव्यं,—मेभ्यो लोकेभ्योऽन्तर्धत्ते, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, प्राणापानौ वा
उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳशुसवनो, यदेष ग्रावान्वेतेते पात्रे सायते, प्राणापानयोर्वि-
धृत्यै, यो वा एता ईजुते, येनैतौ विधृता एष वाव स उपाꣳशुसवनो ग्रावा, प्राणापानौ
वा उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳशुसवनो, यदेते पात्रे एवं ग्रावाणमा तृतीयात् सवनाच्च जु-
हीतस्तस्मात् सुप्तस्य सर्वाण्यन्यानि श्रोत्राण्यपक्रामन्ति प्राणापानौ त्वेनं न जहीतो, ऽथ यत्
पुनरर्दयति, तस्मात् सुप्त्वा पुनः प्रबुध्यन्ते, प्राणापानौ वा उपाꣳश्वन्तर्यामौ, व्यान उपाꣳ-
शुसवनो, यदेते पात्रे एतं ग्रावाणमा तृतीयात् सवनाच्च जहीतस्तस्मात् पक्षिणो विपर्यसु पक्षा-

[६] मै. १,३,५ । तै. सं. ६,४,६ । श. ब्रा. ४,१,२ । कपि ४१,९; ४२,१ ।

नीरयन्तो नावपद्यन्ते, ऽथ यत् पुनरुदैयति तस्मात् पुनरभ्यावृत्यते, प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ, व्यान उपांशुसवनो, यदेते पात्रे पुनः प्रयुज्येते तस्मादिमौ द्वा अर्धस्तात् प्राणौ, भान्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्त्य,—ध्वर्युः प्रथमोऽभिषुणोति, व्यर्धुको भवति, यत्र मूलं तदुन्निर्धृत्य, एतद्वा अस्य विदेवतमं, तथा हान्यर्धुको ह भवति, यो वै देवक्षेत्रं विद्वांसमर्पयत्यार्तिमार्छति, पात्राणि वाव देवक्षेत्रं, यत्र वा अग्रेऽध्वर्युः सोमं जुहोति तदेनं देवताः प्रत्यासत, इदं नो पुरमा ह रिप्सतीति, यत्तोऽन्यत्र जुहुयाद्यदस्य स्वं तदन्येभ्यः प्रयच्छे,—दस्वो ह भवत्ये,—तद्वा अध्वर्योः स्वं यदाश्रावयति, यदाश्राव्याहुत्वा प्रच्यवेत यदस्य स्वं तस्मात् प्रच्यवेता,—स्वो ह भवत्ये,—तद्वा अध्वर्योः स्वं यद्वायव्यं, यद्वायव्यमनालभ्याश्रावये-द्यदस्य स्वं तस्माच्छिद्येता,—स्वो ह भवति, तद्य एवं विद्वानाश्राव्य हुत्वा वाहुत्वा वा प्रच्यवते यद्वस्य स्वं भवति, न स्वाच्छिद्यते, वायव्यमालभ्याश्रावयति, स्ववानेव भवति ॥ ॥ ६ ॥ १९

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, किं तद्यज्ञे क्रियते यस्मादस्तादाना अन्ये पशवो मुखादाना अन्य इति, यदुपांशुं हस्तेन गृह्णते तस्मान्मर्कटः पुरुषो हस्ती ते हस्तादाना, मुखं वै वायव्यं यद्वायव्ये नेतरे ग्रहा गृह्यन्ते तस्मादितरे पशवो मुखादाना. ब्रह्मवादिनो वदन्ति, किं तद्यज्ञे क्रियते यस्मात् सद्यो जाताः पशवः प्रतितिष्ठन्ति संवत्सरे पुरुषा इत्यु,—पांश्वन्तर्यामौ वा अन्वन्ये पशवः, पुरुषस्त्वे यज्ञेन संमितः, प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ, यदेतौ ग्रहा असन्नौ हूयेते तस्मात् सद्यो जाताः पशवः प्रतितिष्ठन्ति, संवत्सरो वा अग्निष्टोमो, द्वादश मासाः संवत्सरो, यदेत इतरे ग्रहाः साद्यन्ते तस्मात् पुरुषो जातः संवत्सरे प्रतितिष्ठति, यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवीत्ये,—ष वै सोमस्य सोमपीथः, सोमं वा एतत् सोमपीथेन समर्धयति, यो वै सोमस्य सोमपीथं वेद न सोमपीथाच्छिद्यते, सोमो वा इमा दिशोऽभ्यकामयत, प्रागपागधरागुदगित्वा,—भिरेनं दिग्भिः समूहत्या,—भिः समर्धयति, काममेनं गमयेत्, कामं ह गच्छति, कामुका एनं स्त्रियो भवन्ति, यां कामयेत तां तर्हि मनसा ध्यायेत्, सो हैनं कामयते, ऽम्बु निम्नेति, स्मरे,—ति वा एतदाह, संमरिविद्यामिति, संमनेनु वित्स्वे,—ति वा एतदाह, चत्वारो वै पृक्षेः स्तना आसं,—स्तत्त्रिभिर्देवेभ्यो-

[७] मै. १,३,४। तै. सं. ६,४,४—६। कपि. ४२,२—३। श. ७,२,६,३६। काण्व. ७,१-२,६,४९।
[प्रागपागधरा (गुदगध०) गुदग० । अथर्व. २०,१३४,१—६]

ऽदुहत्, कुशीभिरेकोऽनुनद्ध आसीत्, तं वा इन्द्र एवापश्यत्, तेनैन्द्रायैवादुहत्, तद्ध अस्य कौशिकत्वं, यदाह ॥ ब्राह्मण कौशिका इव ॥ इति चतुर्निग्राभमुपैति, चत्वारि हि पयांसि, यावदेव पयस्तदाप्नोति, त्रिः संभरति, तस्मादेतस्यां त्रयो भागाः प्रातर्मध्यंदिने सायं, चतुर्निग्राभमुपैति, त्रिः संभरति, तत् सप्त, सप्तपदा शक्करी, शाक्कराः पशवः पशूनेवावरुन्द्धे, नव कृत्वो निग्राभमुपैति, त्रिः संभरति, तद् द्वादश, द्वादश मासाः संवत्सरो, द्वादशाग्निष्टोमे स्तोत्राण्ये,—षा यज्ञस्य मात्रा, स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसाविध्यत्, तस्य देवास्तमोऽपाघ्नन्, यत् प्रथमं तमोऽपाघ्नन्त्सावि: कृष्णाभवद्, यद् द्वितीयं सा लोहिनी, यत्तृतीयं सा बलक्षी, स स्वेन रूपेण निरमुच्यत, यद्बलक्षः पवित्रं भवति ततः शुक्रो गृह्यते, यजमानस्य वा एतत् पवित्रं, यजमानमेवैतेन पुनात्य,—मोतं स्या,—दात्मन एवैनदकृत, यदन्यत्रोतमपवित्रं तद्यजमानस्य ॥ ७ ॥ २०-२२

वाग्वा ऐन्द्रवायवः, सा वै वागिकधावदद्यावदव्यावृत्तासीत्, स इन्द्रोऽब्रवी,—न्मह्यमपि सोमं गृहीता,—ऽहं व एतां वाचं व्यावर्तयिष्यामीति, स वै वाचैव वाचं व्यावर्तयद्, यदैन्द्रवायवो गृह्यते, वाचो व्यावृत्त्यै, वायवे प्रथमं गृह्णाति, वायव उत्तमं, मध्यत इन्द्राये,—न्द्रियेण वा इयं वाङ् मध्यतो विधृते,—न्द्रियवतीं वाचं वदति य एवं वेद, देवा वै सोममजिघांसं,—स्तं नाशक्नुवन् हन्तुं, वायुर्ह्यस्मिन्नन्तरासीत् प्राण,—स्तं देवा अपाशासु,—रुप ना आवर्तस्वेति, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवी,—न्मद्देवत्यान्येव पात्राण्यासन्निति, तस्मादपतुरीयं वायोः पात्र,—मथ वायव्यान्युच्यन्ते, ततो वै देवाः सोममघ्न,—न्त्स हतोऽपूयत्, तस्माद्देवा उदबीभत्सन्त, स वायुरब्रवी,—दहं व एतं सोमं स्वदयिष्यामि, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवी,—न्मदग्रा एव ग्रहा गृह्यान्ता इति, तं वायुर्मध्यतो व्यवात्, तमस्वदयत्, तस्माद्वाय्वग्रा ग्रहा गृह्यन्ते, तस्मादु शुक्तं प्रवाते विषजन्ति, देवा वै प्रातःसवनमुद्यमं नाशक्नुवं,—स्तृतीयसवनं तर्हि वायुरासीत्, तं देवाः प्रातःसवनमभिपर्यौहं,—स्तेन प्रातःसवनमुदयच्छन्त, यदैन्द्रवायवः प्रातःसवने गृह्यते, प्राणो वै वायुः, प्राणेन वा एतन्मुखतो यज्ञमुद्यच्छन्ते, देवा वै वृत्रमजिघांसं,—स्तं मित्रोऽब्रवी,—न्मित्रोऽहमस्मि, नाहं हनिष्यामीति,

[८] मै. १,३,६—७। तै. सं. ६,४,७-८। श. ब्रा. ४,७,३—४। कपि. ४२,३-४।

तेऽब्रुवन्, जहीवेति, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवीत्, पयसैव मे सोमं श्रीणानिति, तस्मात् पशवोऽपाक्राम,—न्मित्रः सन्क्रूरो ह्यभूदिति, पशूनां हि पयो यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति, पशुभिरेवैनं समर्धं दधाति यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति, द्विदेवत्यत्वाय, यच्च शीतं तेन मैत्रं, यत्तप्तं तेन वारुणं, ब्रह्म वै मित्रः, क्षत्रं वरुणो, ब्रह्मणि च वा एतत् क्षत्रे च पयो दधाति, तस्माद्ब्रह्म च क्षत्रं च पयस्वितमे, ब्रह्म वै ब्राह्मणस्य देवता, अग्निः सोमः सविता बृहस्पतिः सरस्वती, तस्माद्ब्राह्मणमन्ये मनुष्या उपधावन्त्ये,—तस्य हि भूयिष्ठा देवता,—स्तासां त्रिसोऽधान्तरं श्रोत्रियस्या,—ऽग्निर्बृहस्पतिः सरस्वती, तस्माच्छ्रोत्रियमश्रोत्रिया उपधावन्त्ये,—तस्य ह्यवान्तरं भूयिष्ठा देवता,—स्ता मैत्रावरुणं प्रति न्यागच्छन्ति, यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति तास्वेव पयो दधाति, नाना वै पुरा मित्रावरुणाभ्यां सोमा अगृह्यं,—स्ताः प्रजा अन्योन्यस्याः परिहायमाददत, ततो मित्रावरुणाभ्यां सह सोममगृह्यं,—स्ततो वा अकल्पत, यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति, मित्रेण वा एतद्वरुणं कल्पयति, वरुणेन मित्रं, मित्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं वरुणोऽगृह्णात्, स दुःख्यनाथत, तेऽब्रुवन्, वरुणे नाथस्वेति, स वरुणेऽनाथत, सोऽब्रवीद्, भागो मेऽस्त्विति, वृणीष्वे,—त्यब्रुव,—न्त्सोऽब्रवीत्, सहैव नौ पयसा सोमं श्रीणानिति, यन्मैत्रावरुणं पयसा श्रीणाति, यजमानस्य निर्वरुणत्वाय, यद्येनं भ्रातृव्योऽतीव स्यादङ्गुल्याङ्गुष्ठमवगृह्णीयाद्, यद्यन्त्वङ्गुष्ठेनाङ्गुलिम् ॥ २३

यो नो मित्रावरुणा अभिदासात् सपत्नो भ्रातृव्य उत्सिपीते बृहस्पते ।
इदमहं तमधरं पादयामि यथाहमुत्तमश्चेतयानि ॥ २४
इत्युत्तमो ह चेतयति ॥ ८ ॥ २५

देवा वै सत्त्रमासत कुरुक्षेत्रे, ऽग्निर्मखो वायुरिन्द्र,—स्तेऽब्रुवन्, यतमो नः प्रथमं क्रामेत् तं नः सहेति, तेषां वै मखं आर्त्त, तं न्वकामयत, तं न समसृजत, तदस्य प्रासहादित्सन्त, स इदं एवं त्रिसोऽजनयते,—तौ धनु,—स्तत्त्रिसृणां च धन्वनश्च जन्म, स प्रतिधायापाक्रामद् तं नाभ्यधृष्णुवन्, स धन्वार्ति प्रतिष्कभ्यातिष्ठत्, स इन्द्रो वम्रीरब्रवी,—देता ज्यामप्यत्तेति, ता अब्रुव,—न्नभिमृताबाह्नं वा अस्या न शक्ष्यामो जीवितुं, भागो नोऽस्त्विति, सोऽब्रवीद्, रसमेवास्या उपजीवाथेति, तस्माद्देवाः शुष्कादार्द्रमुद्विहन्ति, रसं ह्यस्या

[९] तै. आ. ५,१।

उपजीवन्ति, तां वै ज्याम्प्यादं,—स्तस्य धन्वार्तिरुद्यम्य शिरोऽच्छिनत्, स सम्राडभव,—दथैतं त्रेधा व्यगृह्णता,—ऽग्निः पूर्वार्धं,—मिन्द्रो मध्यं, वायुर्जघनार्धं, तस्मादाग्नेयं प्रातःसवन—मैन्द्रं माध्यंदिनं सवनं, वैश्वदेवं तृतीयसवनं, वायुर्हि विश्वे देवाः, प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ, व्यान उपांशुसवनो, वागिन्द्रवायवो, दक्षक्रतू मैत्रावरुणं, आश्विनः श्रोत्रं, चक्षुषी शुक्रामन्थिना, आत्माग्रायणो, ऽङ्गान्युक्थ्या, आयुर्ध्रुवः, स्तना ऋतुपात्रे, मूर्धा द्रोणकलशः, कुक्षी कलशौ, हनू अधिषवणे, जिह्वाधिषवणं, ग्रावाणो दन्ता, अंशाः परिधयो, नासिकोत्तरवेदिः, शिखा यूपः, शिरो हविर्धानं, पृष्ठमाग्नीध्र,—मुदरं सदो, यदन्तरुदरे तद्धिष्ण्याः पाणी, आग्नीध्रश्च मार्जालीयश्च पार्ष्णी, गार्हपत्यः प्रतिष्ठा वेदि,—रेष वै प्रजापतिः पात्रीयः, स ह त्वा एनं वेद य एवं वेद ॥ ९ ॥ २६

[११०१]

॥ इति खिलकाण्डे पञ्चमः प्रपाठकः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः प्रपाठकः।

नवैते प्रातर्ग्रहा गृह्यन्त, इमे वा एते गृह्यन्ते नव प्राणा, आश्विनो दशमो गृह्यते, व्यानो वा एष गृह्यते, नाभिरेव दशमो गृह्यते, तृतीयो हूयते, तृतीयो ह्ययं प्राणः, प्राणानां संतत्यै, सर्वे वा एते ग्रहाः स्तोत्रवन्तः शस्त्रवन्तो निदानवन्तो, निदानवान् भवति य एवं वेद, होता वा अयं प्रातरुपांशुमयजत्, तेनैत उक्थवन्तो, ऽथ यं होता तूष्णींशंसं शंसति तेनैवैत उक्थवन्तो, नवैते प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते, नवभिर्बहिष्पवमाने स्तुवते, तेनैते सामन्वन्तो, हिंकारेणाश्विनः सामन्वा,—नैन्द्रवायवेणैन्द्रवायवो, मैत्रावरुणेन मैत्रावरुणं, ऐन्द्रेण शुक्रामन्थिनौ, वैश्वदेवेनाग्रायणं, उक्थायोक्थ्यो गृह्यत, उक्थाय ध्रुवः, संतत्या ऐन्द्राग्नः, संतत्यै मरुत्वतीया, अध्वर्युर्जुहोति, होता वषट्करोति, प्राणान्वा एतत् प्रयच्छो, येन मन्त्रेणाध्वर्युः प्रयच्छति तेन होता प्रतिगृह्णाति, प्राणानां गोपीथाय, प्रजापतिर्वै स्वयं होतासीत्, सोऽताम्यत्, तं देवा द्विदेवत्यैरभ्यधावन्, प्राणा वै द्विदेवत्या, यदध्वर्युर्द्विदेवत्यान् हुत्वा क्षिप्रं होतारमभ्याद्रवति प्राणैर्वा एतद्धोतारमभिधिनोति,

[१] मै. १,३,८। तै. सं. ६,४,९। काठ. २७,५। कपि. ४२,५।

वषट्कारे वषट्कारे वै होता प्राणस्यान्तं गच्छति, प्राणा वै द्विदेवत्या, यदध्वर्युर्द्विदेवत्यान्
हुत्वा क्षिप्रं होतारमभ्याद्रवति, प्राणैर्वा एतद्धोतारमभिधिनोति, प्राणा वै द्विदेवत्याः,
पशवा इडा, यद् द्विदेवत्यानभक्षयित्वेडामुपह्वयेत पशुभिः प्राणानन्तरियाद्, अथ यद् द्विदेव-
त्यान् भक्षयित्वेडामुपह्वयते प्राणान्वा एतदात्मन्धित्वाथ पशूनुपह्वयत, इन्द्रियं वै सोमः,
पशव इन्द्रियं, यत् सोमं भक्षयतीन्द्रियमेवात्मन् धत्ते, सर्वत आश्विनं परिहारं भक्षयति,
तस्मात् सर्वा दिशः शृणोति ॥ १ ॥ 1

यद्वै पात्रं रिक्तमनुन्मुक्तं तदनु रक्षांसि यज्ञमवयन्ति, यदैन्द्रवायवे पुरोडाशमवदधाति
मैत्रावरुणे पयस्यामाश्विने धाना, अरिक्तत्वाय, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यत् सवनानि संतिष्ठन्ते,
यदेतानि पात्राण्या तृतीयात् सवनात् परिशेरे, यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय, वायव्यायां ग्रस्य-
मानायां पात्राणि विमुञ्चति, प्राणो वै वायुः, प्राणेन यज्ञः संततः, प्राणेनैवं यज्ञं संतनो-
ति ॥ एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियु-
द्भिर्वाय इह ता विमुञ्च ॥ इत्याह, विमुक्त्या एवा, अथागतं अध्वर्युपात्रं, निरुद्धं प्रतिप्रस्था-
नं, यदि कामयेत, यो बहिस्तं ग्रामे कुर्यां, यो ग्रामे तं बहिरिति ॥ इदमहममुमामुष्या-
यणममुष्याः पुत्रममुष्या विशो निरूहामि ॥ इत्यध्वर्युपात्रं निरुह्य ॥ इदमहममुमामुष्यायणममुष्याः
पुत्रममुष्यां विशि सादयामि ॥ इति प्रतिप्रस्थानं सादयेद्, यो बहिस्तं ग्रामे करोति, यो
ग्रामे तं बहिर्, अध्वर्युपात्रं वै यजमानस्य पात्रं, प्रतिप्रस्थानं भ्रातृव्यस्य, यदि कामयेत,
समावद्वीर्यमेनं भ्रातृव्येण कुर्यामिति, प्रवाहुग्गृह्णीयातां, प्रवाहुक् सादयेतां, प्रवाहुग्जुहुया-
तां, समावद्वीर्यमेवैनं भ्रातृव्येण करोत्य, अध्वर्युपात्रं वै पात्रं, पापीयः प्रतिप्रस्थानं,
यदि कामयेत, पापवसीयसं स्यादिति, पूर्वो गृह्णीयात्, पूर्वः सादयेत्, पूर्वो जुहुया, देन
तेन वै विपूजनः सौराकिः पापवसीयसं चकार, तत् पापवसीयसमेवैतेन करोति, यज्ञस्य वै
सृष्टस्य शिरोऽछिद्यत, तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैछ, अथ वा एतौ तर्हि देवानां भिषजा आस्ता-
मश्विना असोमपौ, ता उपाधावन्, यथा भिषजमुपधावन्त्येवमिदं यज्ञस्य शिरः प्रतिधत्तामि-
ति, ता अब्रूतां, भागो ना अस्त्वित्ति, वृणाथामित्य, अब्रुवं, अस्ता अब्रूतां, ग्रह नौ
गृह्णन्तु, सोमपीथमश्नवावहा इति, तद्वा अश्विनौ प्रत्यधत्तां, तस्मादाश्विनीभिरभिष्टुवन्त्य,

[२] तै. सं. ६,४,९। काठ. २७,५-६। कपि. ४२,४—५। वा. २७,३३,९,४०;१०,१८। काण्व. २९,२८;१०,१०,२६।
मै० ४८

अश्विनौ हि प्रत्यधत्तां, तौ वै बहिष्पवमानेनैव पावयित्वा ताभ्यां पूताभ्यां यज्ञियाभ्यां
भूताभ्यां ग्रहमगृह्णं, अस्तस्माद्बहिष्पवमाने स्तुत आश्विनौ गृह्येते, तस्माद्ब्राह्मणेन बहिष्पवमान-
मभिसृप्यं, पवित्रं हि तत्, तस्माद्यं द्विष्यात् तं परिबाधेत, तद्वै भेषजं त्रेधा व्यदधु, रग्नौ
तृतीयं, ब्राह्मणे तृतीय, मप्सु तृतीयं, तद्य एवं विद्वान्ब्रैरन्ते ब्राह्मणाय प्रोच्याप्सु भेषजं
करोति समर्धुकं ह भवति, यावद्धि भेषजं तत् क्रियते वास्तुहानि वा एतत् पात्राणि भवन्ति,
यद् ग्रहान् गृहीत्वा बहिष्पवमानं सर्पन्ति वैष्णव्य ऋचा पुनरेत्य संमृशति, विष्णुर्वै यज्ञो, विष्णु-
नैवैनानि यज्ञेन स्वर्गं लोकं समारोहयति ॥ २ ॥ २-८

प्रजापतेर्वा एते चक्षुषी यच्च शुक्रामन्थिना, असा आदित्यः शुक्र, अश्चन्द्रमा मन्थी, तस्य
वै प्रजापतेः सव्यं चक्षुरश्वयत्, ततो ये स्तोका अवापद्यन्त ते रिदं वर्षत्यं, कविश्शतिर्वै ते
ऽवपेद्, अस्तान्वायुरमुतो विसृजति, प्रजानां क्लृप्त्यै, तस्य या कनीनिका परापतत् स यवो-
ऽभवद्, यन्मन्थिनं सक्तुभिः श्रीणाति चक्षुरेवास्य संभावयति, मिथुनं वै सोमश्च सक्तवश्च,
यन्मन्थिनं सक्तुभिः श्रीणाति, मिथुनत्वाया, ऽऽर्तं वा एतत् पात्रं यन्मन्थिपात्रं, यं
द्विष्यादृत्विजां तस्मै हरे, दार्तिमार्छति, षण्डामर्का वा असुराणां पुरोहिता आस्तां, तान्
देवा नाशक्नुवन् हन्तुं, ब्राह्मणवन्तो ह्यासं, अस्तौ देवा अपाशासु, रूप ना आवर्तेथामिति,
ता अब्रूतां, भागो ना अस्त्वित्ति, वृणाथामित्य, अब्रुवं, अस्ता एतौ शुक्रामन्थिना अवृणातां,
ते देवा अमन्यन्त, यदिमा असुरयौ सोमौ होष्याम, अस्तदन्वसुरा आभविष्यन्ति, यन्न होष्या-
मस्तदन्वाभविष्यन्तीति, ता अपनुद्याथेन्द्रायाजुहवु, अस्तस्मादेता अन्यदेवत्यौ गृह्येते, अथै-
न्द्राय हूयेते, अपनुत्तौ षण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्म इति, षण्डामर्कयोरेवैनं सहापनोदेना-
पनुदते ॥ आयुः पाहि, प्रजां पाह्य, मुष्य वीरतां पाहि ॥ इति सादयेद्, योऽस्य प्रियः
स्यात्तस्य, शुक्रं वै प्रति राष्ट्रं मन्थिनं निरुद्धं मध्यता, इति ३ह्येतद्राष्ट्रमाहुर्यन्निरुद्धं भवति,
यदि कामयेत, यो बहिस्तं ग्रामे कुर्यां, यो ग्रामे तं बहिरिति ॥ इदमहममुमामुष्यायणममु-
ष्याः पुत्रममुष्या विशो निरूहामि ॥ इति शुक्रपात्रं निरुह्य ॥ इदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्र-
ममुष्यां विशि सादयामि ॥ इति मन्थिपात्रं सादयेद्, यो बहिस्तं ग्रामे करोति, यो ग्रामे

[३] मै. १,३,१०,११—१२। तै. सं. ६,४,१०। काठ. २७,७-८। कपि. ४३,१। वा. ७,१२-१३,१७—१८।
काण्व. ७,१२,१७।

तं बहिर्, आर्तं वा एतत् पात्रं यन्मन्थिपात्रं, यच्च शुक्रपात्रं पुनः प्रयुज्यते तस्मादिमे समा-
वद्वीर्ये, तस्मादुभ्यां समावत् पश्यत्य, असौ वा आदित्यः शुक्र, अश्चन्द्रमा मन्थी, यदु-
पिधाय प्राञ्चा हुतस्तस्मादेतौ प्राञ्चौ यन्तौ न पश्यन्त्यं, अथ यदनपिधाय प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुत-
स्तस्मात् प्रत्यञ्चौ यन्तौ पश्यन्ति, यदुपिधाय प्राञ्चा हुतस्तस्मात् पराङ् प्राणो, ऽथ यदन-
पिधाय प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतस्तस्मात् पुनरपानो, यदुपिधाय प्राञ्चा हुतस्तस्मात् पराञ्चो गर्भा
धीयन्ते, ऽथ यदनपिधाय प्रत्यञ्चौ तिष्ठन्तौ जुहुतस्तस्मात् प्रत्यञ्चः प्रजायन्ते, चक्षुषी वै
शुक्रामन्थिनौ, नासिकोत्तरवेदि, अर्यदङ्गुष्ठाभ्यामाक्रमेते, चक्षुषी वा एतत् प्रधत्तो, ऽथ यदु-
परिष्टादाक्रमेते तस्मादिमे उपरिष्टाच्चक्षुषी, तुथोऽसि जनधाया, देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वि-
ति, या अत्त्रीः प्रजास्तासामेष योनि, अस्ता एतमनुप्रजायन्ते, तुथोऽसि जनधाया, देवास्त्वा
मन्थिपाः प्रणयन्त्विति, या आद्याः प्रजास्तासामेष योनि, अस्ता एतमनुप्रजायन्त, उभयीरेव
प्रजाः प्रजनयत्यत्त्रीश्चाद्याश्च, शुक्रमन्वारभन्ते, तेजो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चसं, तेज एवं ब्रह्मवर्च-
समन्वारभन्ता, इन्द्रेण मन्युना युजे, अति शुक्रेण परियन्ति, मन्युना वै युजेन्द्रोऽसुरानबाधा-
धत, मन्युना वा एतद्युजा यजमानो भ्रातृव्यमवबाधते, संजग्मानौ दिवा पृथिव्ये, अयुरत्नी
संधत्त, इमानि वा एतत् संधत्तो यत् पात्रे संदध्यातां, नेदमन्तरा स्या, अदथ यदरत्नी संध-
त्तस्तस्मादिदमन्तरा चक्षुषोर्विधृत्यै, पुमांसं गर्भमाधत्तं गवी३न्योरिति, तदनु स्त्री३ण्यो यज-
मानस्य गावो भवन्ति, वीरं पत्नी जनयति, शुक्रस्याधिष्ठानमसि, मन्थिनोऽधिष्ठानमसी, अ-
ति शकुलौ प्रास्यतः, समिद्धा एषोतयो, अरथो आहुतीनां प्रतिष्ठित्यै, निरस्तः षण्डो, निरस्तो
मर्कः सह तेन यं द्विष्म, इति शकुलौ निरस्यत, एतावांल्लोको यावदुद्धतं, यावानेव लोक-
स्तस्माद्यजमानो भ्रातृव्यं निर्भजति, श्रीणन्त्यन्यान्त्सोमा, अन्यांन्, अस्तत् सोमानां मिथुनं,
यान्श्रीणन्ति ताननुवीध्रति, दारुमयान्यन्यानि पात्राणि,
मृन्मयान्यन्यानि, तत् पात्राणां मिथुनं, यो वै सोमस्य च पात्राणां च मिथुनं वेद मिथुना
एनं पशवा उपतिष्ठन्ते ॥ ३ ॥ ९-१५

ये देवा दिव्येकादश स्थेत्ये, अतावन्तो वै देवा, यावन्त एवं देवा-
प्रजापतिर्वा आग्रायणो, ये देवा दिव्येकादश स्थेत्ये, अतावन्तो वै देवा, यावन्त एवं देवा-

[४] मै. १,३,१३। तै. आ. ६,४,११। काठ. २७,९। वा. ७,१९-२०;३३,५९। काण्व. ७,२०—२१;३२,५९।
[ये देवा (०सो) दिव्येकादशस्थ०। ऋ. १,१३९,११; तै. सं. १,४,१०,१]

स्तेभ्यो गृह्यत, आग्रायणं वै गृहीत्वा देवाः स्वर्गं लोकमाय, अन्पासुरा अभ्रंशन्त ततो देवा
अभवन्, परासुरा, अस्तद्य एवं विद्वानाग्रायणं गृह्णीते, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति,
य आनुजावरः स्यात् स आग्रायणाग्रान् ग्रहान् गृह्णीता, ऽग्रं ह्याग्रायणो, यद्युभिर्चरेत॥ १६

विदद्यदि सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ १७

इति पुरोरुचं कुर्याद्, रुजेति हैवा, ऽथो वाग्वै सरमा, वाचमेवैषां युङ्क्ते, त्सरो वा
एषा यज्ञस्य, तस्माद्यत्किंच प्राचीनमाग्रायणात्तदुपांशु चरन्त्य, अथ वा एतदाग्रायणं प्रति वाचं
विसृजन्ते, यज्ञमेवाप्त्वा वाचं विसृजन्ते, वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामत्, ते देवास्तूष्णीं यज्ञ-
मतन्वत, सा वागमन्यता, ऽन्तर्यन्ति मा यज्ञाद्यन्तीति, साग्रायणं प्रति न्यद्रवत्, तस्मादा-
ग्रायणं प्रति वाचं विसृजन्ते, हिंकृत्य वाचं विसृजन्ते, प्राणो वै हिंकारो, वाक् प्राणं,
स्तद्वाचं एवैषां युङ्क्ति, त्रिर्हिंकरोति, त्रेधा ३हीयं वाग्वदति, शनैरुच्चैरथ स्वे, यावत्येवे
वाक् सास्य युज्यते, त्रयो वै प्राजापत्या ऋत्विज, उद्गाता प्रस्तोता प्रतिहर्ता, ते वा अस्यै-
तर्ह्यवृत्ता अयुक्ता, यद्धिंकरोति तेनैवास्य ते वृत्ता युक्ता भवन्ति, वाक् च मनश्चावदेता, अहं
श्रेयानस्म्यहं श्रेयानस्मीति, तौ प्रजापतिं प्रश्नमैतां, सा वागब्रवी, अत्रैव मया किं चनान-
भ्युदितं क्रियता इत्य, अथ मनोऽब्रवी, अत्रैव मया किं चनानभिगतं क्रियता इति, स मनसे-
ऽन्वब्रवीत्, सा वागब्रवी, अदहव्यवाडेवाहं तुभ्यमसानीति, तस्मादेषा प्रजापतयेऽहव्यवाद्,
तस्माद्यत्किंचोपांशु क्रियते तदाहुः कृतमेतत् क्रियता इति, प्रजापतये हि क्रियते, द्वाभ्यां
धाराभ्यां प्रातःसवने गृह्णाति, तिसृभ्यो माध्यंदिने सवने, चतसृभ्यस्तृतीयसवने, तन्नव,
नव प्राणा, आत्माग्रायणः, प्राणानेवात्मन् धत्ते, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यत् सवनानि संति-
ष्ठन्ते, ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थाप्सुक्षितो महिनैकादश स्थेति, देवता-
भिर्वै यज्ञः संततो, देवताभिरेव यज्ञं संतनोति, प्रजापतिर्वा आग्रायणो, यत् सर्वेषु सवनेष्व-
भिप्रस्कन्दयति प्रजापतिर्वा एतत् प्रजा अभिजिघ्रति, प्रजापतिर्वा आग्रायणो, यत् सर्वेषु सव-
नेषु गृह्णात्यात्मनैव यज्ञं संतनोति, प्रजापतिर्वा आग्रायणो, यदेषोऽतिरिच्यते तस्मात् पुरुषः
पशूना दविष्ठमेत्या, अग्रायणो वै गायत्र्या वत्सं, अस्तं वा एतदा तृतीयात् सवनादभिप्रतिधा-
वति, गायत्र्या वा एते लोके सर्वे सोमा गृह्यन्ते, तां वा एतत् सर्वाणि सवनान्यभिप्रति-

[विदद्यदि सरमा०। ऋ. ३,३१,६; तै. ब्रा. २,५,८,१०]

धावन्त्य,—य यत् स्थाल्या गृह्णतो विज्ञातस्थाल्या होप्यन्ती३ दारुमय्या३ इति, तस्मादविज्ञातेन गर्भेण भ्रूणहा,—ऽथ यत् स्थालीं रिञ्चन्ति न दारुमयं तस्मात् पुमान्दायादः स्त्र्यदाया,—दथ यत् स्थालीं परास्यन्ति न दारुमयं तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसं,—मथ स्त्रिय एवातिरिच्यन्ते ॥ ४ ॥
१८

इन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत्, स वज्रमुद्यतं दृष्ट्वाबिभेत्, सोऽब्रवी,—दस्ति वा इदं वीर्यस्मिन्नन्तवीर्ये३, तत्ते प्रदास्यामि, मा मा वधीरिति, तद्वा अस्मै प्रायच्छद्, यज्ञं वा अस्मै तत् प्रायच्छत् पशूनुक्थ्यमेव, यदुक्थ्यो गृह्यते यज्ञस्य च पशूनां चावरुद्ध्या, एतावान्वै यज्ञो यावानुक्थ्यो, ऽन्तः श्लेष्मणमेवान्ये ग्रहाः, उर्वो वा एष यज्ञस्य यदुक्थ्यो, यथा वा इदं मुर्व२ सन्तय प्रस्नात्येवं२ वा एतदुक्थ्यमालभ्य प्रस्नाति, स एनमा यज्ञस्योदृचः संपारयत्य,—क्थानि वा उक्थ्यो, यज्ञस्य संतत्यै गृह्यते, तस्मै त्वा विष्णवे त्वेति, विष्णुर्वै यज्ञो, विष्णुना यज्ञः संततो, विष्णुनैव यज्ञेन यज्ञं संतनोत्ये,—तेन वा इदमुक्थानि संततानि, तस्मात् पुरुषः स्नावभिरनुसंततः, सद आलभ्यावनयति, यज्ञं वा एतत् संतत्य संप्राप्यावनयति, चक्षुर्वै शुक्र,—श्चक्षुरुक्थ्य,—श्चक्षुषी एतत् पुरस्ताद् ध्रियेते, ऽथो यथेदं पुरस्तात् पश्चात् पश्यन्नेवैनं तं,—दथ यदेकः तंस्त्रेधा क्रियते तस्मादेकः श्रेष्ठः पूर्वार्धेऽवस्यति, यदेतौ ग्रहौ भूयिष्ठाः सोमा अनु हूयन्ते, पापवसीयसस्य व्यावृत्त्यै, यदेतत् पात्रं भूयिष्ठाः सोमा अन्वायन्ति, तस्मादेकं श्रेष्ठं यन्तं बहवः पश्चादनुयन्ति, पात्राणि वा अध्वर्युं पुरो विदुर्, उक्थामदानि पूर्वं,—न्द्रयो सदा उपचरत्या,—ग्नीध्राग्नीध्रं२, वैष्णव्या हविर्धानं२, यथादेवतमेवैनान्युपचरति, तथा हैनं न विदुर्, ऽन्तराहवनीयं च हविर्धानं चाध्वर्यौ लोको,—ऽन्तरा हविर्धानं च सदश्च यजमानस्य, सदः सदस्याना२, यदि कामयेता,—ऽध्वर्युं२ यश ऋच्छेदित्य,—न्तराहवनीयं च हविर्धानं चावनयेत्, सोमो वै यश, एषोऽध्वर्योर्लोको, ऽध्वर्युमेव यशसार्पयति, यदि कामयेत, यजमानं२ यश ऋच्छेदित्य,—न्तरा हविर्धानं च सदश्चावनयेत्, सोमो वै यश, एष यजमानस्य लोको, यजमानमेव यशसार्पयति, यदि कामयेत, सदस्यान् यश ऋच्छेदित्य,—न्तः सदस्यावनयेत्, सोमो वै यश, एष सदस्यानां लोकः, सदस्यानेव यशसार्पयति, सद आलभ्यावनयत्यै,—न्द्रं२ वै सद, ऐन्द्राण्युक्थान्यु,—क्थाना२

[५] मै. १,३,१४ । तै. सं. ६,५,१ । काठ. २७,१० । श. ७,१,२२,३५—४०,८,३३—३५,३९,४४—४६ । काण्व ७,८,२४,३५—३६,३८—४०; ८,१३-१६,२१,२५—२८।

संतत्या, उक्थानामनपच्छेदाय ॥ उपयामगृहीतोऽसि, मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ इति गृह्णाति प्रातःसवने मैत्रावरुणाय ॥ इन्द्राय त्वा ॥ इति ब्राह्मणाच्छंसिने ॥ इन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ इत्यच्छावाकाय ॥ उपयामगृहीतोऽसी,—न्द्राय त्वेन्द्राय त्वा ॥ इति गृह्णाति सर्वेभ्यो माध्यंदिने सवने ॥ उपयामगृहीतोऽसीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ इति गृह्णाति तृतीयसवने मैत्रावरुणाय ॥ इन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा ॥ इति ब्राह्मणाच्छंसिने ॥ इन्द्राविष्णुभ्यां त्वा इत्यच्छावाकाय,—वमस्य यथोकथं२ यथादेवतं गृहीता भवन्ति ॥ ५ ॥
१९-३२

आयुर्वै ध्रुवं,—स्तमुत्तमं गृह्णात्यु,—त्तमं२ ह्यायुः, स्थाल्या गृह्णात्या,—युषो धृत्यै, पूर्णं गृह्णाति, सर्वमायुरेति, प्राणो वै गायत्र्या,—यूर्ध्रुवो, यदेष आ तृतीयात् सवनात् परिशयेत् तस्मायावदायुस्तावान् प्राणं, आयुर्वै ध्रुवो, यदग्निष्टोममास्ता आयुरेवाप्त्वा निः सर्पन्त्या,—युर्वै ध्रुवो, यत् केवलं जुहुयादायुः प्रजानां प्रदध्यात्, परिधानीयाया२ शस्यमानायामवनयति, स हन्तो, होतुश्चमसेऽवनयति, वैश्वदेवो वै होता, वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः, सर्वासु वा एतत् प्रजास्वायुर्दधाति, जनानामित्या,—हुः, सर्वासां२ वा एतत् प्रजानामायुः सर्वाभ्य एव प्रजाभ्यो गृह्यत, उभयतो वैश्वानरो गृह्यत, उभयतो वैश्वानरो ३ह्ययं प्रा३णो, ऽयं२ वाव वैश्वानरो ३योऽयमवाङ् प्राणो, यदेष केवला उत्तरे हविर्धाने साद्यते तस्मादेषोऽर्धभाक् प्राणाना,—मर्धभाजा इतरे, हिरण्येऽधि सादयेदायुःकामस्या,—ऽमृतं२ वै हिरण्य,—मायुर्ध्रु३वो, ऽमृत एवास्यायुर्दधात्यु,—पोप्तेऽन्ये ग्रहाः साद्यन्ते, ऽनुपोप्ते ध्रुवं,—स्तस्मादस्थन्यान्ये पशवः प्रतितिष्ठन्ति, मांसेन पुरुषः, प्राणा वा उपरवा, यदेत उपोप्ते ग्रहाः साद्यन्ते स्वे वा एतद्योनौ साद्यन्ते, पूर्वार्धे वा इमे मुखस्य प्राणा, एतत् खलु वै हविर्धानस्य पूर्वार्धं२ यद्दक्षिणं२ हविर्धानं, तस्माद्दक्षिणे हविर्धाने, प्राणा वा एते इतरे ग्रहा, आयुर्ध्रुवो, नव वै प्राणा, आयुर्दशमं, तस्मादेष दशमो गृह्यते, दशमं२ ह्यायू, राजपुत्रो ध्रुवं गोपायति, सर्वासां२ वा एतत् प्रजानामायुर्गोपायति, तस्माद्राजपुत्रो वीर्यवत्तमो, यद्यभिचरेत् ॥ इदमहममुष्यामुष्यायणस्यायुः प्रवर्तयामि ॥ इति ध्रुवं प्रवर्तये,—दायुरेवास्य प्रवर्तयति, यत् प्रवर्तयेत् सर्वासां प्रजानामायुः प्रवर्तयेच्, शुक् प्रजा ऋच्छे,—दवर्तिर्यजमानं गृह्णीयात्, क्षोधुकोऽध्वर्युः स्यात्, तद्धैच्य एव ॥ ध्रुवं त्वा ध्रुवक्षितिममुमास्थानाच्च्यावयामि ॥ इत्यास्थानादेवैनं च्यावयति, प्रमायुको

[६] मै. १,३,१५ । तै. सं. ६,५,२ । काठ. २८,१ । कपि. ४४,१ । श. २,२६;३,२७;१०,२५ । काण्व. ३,२३;११,३५;२,४८ ।

भवति, ध्रुवं२ वै प्रच्यवमानं२ विश्वा भूताऽनु प्रच्यवन्ते, प्र यजमान आस्थानाच्च्यवते, तदभिमृश्यो, दिवि दिव्यान् दृंहान्तरिक्षे अन्तरिक्ष्यान् पृथिव्यां पार्थिवानिति, यथास्थानं वा एतत् प्रजा दृंहति, स्वे आयतने यजमान,—मायुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यस्य ध्रुवः स्कन्दत्या,—युर्वै ध्रुवं,—स्तदभिमृश्य ॥ आयुर्धा असि ध्रुवा,—ऽऽयुर्मे धेहि ॥ इत्यायुरेवास्मिन् दधाति, वरो दक्षिणा, परैव वरं२ स्तृणोत्या,—त्मा हि वरः, पुत्रसेनस्य ह वै मैमसेने ध्रुव उपददास, तं२ मृण्वानः स्थैरब्रह्मणं ऋतेनैभ्यो लोकेभ्य आप्याययांचकार ॥ स्वाहा दिवं आप्यायस्व ॥ इति स तृतीयं बभूव ॥ स्वाहान्तरिक्षादाप्यायस्व ॥ इति स द्विभागं बभूव ॥ स्वाहा पृथिव्या आप्यायस्व ॥ इति स पुनरे, तदेतेनैवेभ्यो लोकेभ्यो ध्रुवं आप्याययितव्यो, द्वादशे स्तोत्रेऽवनयति ॥ द्वादश मासाः संवत्सरः, संवत्सरो यज्ञो, यज्ञः प्रजापतिः, प्राजापत्यः पुरुषो, यावानेव पुरुषस्तस्मिन्नायुर्दधाति, यत् स्तूयमानेऽवनयेद्गर्भाः प्रपादुकाः स्यु,—र्यच्च शस्यमाने युवानः प्रमीयेरन्, यच्च शस्त्रे बहिः प्राणान् दध्यात्, सकृच्च शस्त्रायां मध्यतोऽवनीयो, मध्यतो वा एतत् प्रजानामायुर्दधाति ॥ स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिः प्रियो देवानां२ संसदनीयः ॥ तं त्वा सुभव देवा अभिसंविशन्तु ॥ आयुर्धा असि ध्रुवा,—ऽऽयुर्मे धेहि ॥ इत्यायुरेवास्मिन् दधाति ॥ वर्चोधा असि ध्रुव, वर्चो मे धेहि ॥ इति वर्च एवास्मिन् दधाति ॥ इषोऽसि, त्वेषोऽसि, नृम्णोऽसि, व्रतोऽसि, दक्षोऽसि, तस्य त इषस्य त्वेषस्य नृम्णस्य व्रतस्य दक्षस्य भक्षीय, स्वस्य चारणस्य च शूद्रस्य चार्यस्य च, यथा त्वं२ सर्वेषु विश्वदर्शत एवमहं२ विश्वदर्शतो भूयासम् ॥ इति विश्वदर्शतो ह भवत्य,—सौ वा आदित्यः स्वयंभूः श्रेष्ठो रश्मि,—रेतस्य स्वयंभवदेवं२ स्वयं भवति य एवं२ वेद ॥ ६ ॥
३३-५४

अथैते ऋतुग्रहाः, संवत्सरस्य वा एते विधृत्यै गृह्यन्ते, द्वादश मासाः संवत्सरं,—स्तस्माद् द्वादश ऋतुग्रहा, मधुश्च माधवश्च वासन्तिका ऋतू, असम्भा हूयन्ते, ऽसम्भा ३हीमे ऋतवो, नान्योऽन्यमभिप्रपद्यते, यद३न्योऽन्यमभिप्रपद्येत ऋता ऋतुरमीया,—दथ यदन्योऽन्यः प्रपद्यते तस्मादिदमृता ऋतुर्नानिहिताः परिप्लवन्त, उभयतोमुखमृतुपात्र,—मुभयतोमुखा ३हीमे

[आयुर्धा असि (आयुरस्या०) ध्रुवायुर्मे धेहि (दाः) । अथर्व. ३,१७,४]
[७] मै. १,३,१६ । तै. सं. ६,५,३ । काठ. २८,१ । कपि. ४४,१ । श. १३,५५ । काण्व. १४,३६ ।

ऋतवो, न वै तद्विद्म यत् ऋतूनां मुखं२, सह प्रथमं गृह्णाते, सहोत्तमं२, सह युज्येते, सह विमुच्येते, चतुर्दश वा एतत् कुरुतो, ऽति वा एतत्रेचयतो, ऽस्ति मासस्त्रयोदश,—स्तमेवैतेनाप्त्वावरुन्द्ध, ऋतुभ्यो वै प्रजाः प्रजायन्ते, यत् षड्ऋतुना चतुर्ऋतुभि,—र्ऋतुभ्यो वावास्मा एतच्चतुष्पदः पशून् प्रजनयतो, ऽथ यच्चतुर्ऋतुभिर्द्विर्ऋतुन, ऋतुभ्यो वावास्मा एतद् द्विपदः पशून् प्रजनयतो, यद् द्विर्ऋतुना, द्वौ ३हीमा ऋतू, अथ यद् द्वे ऋतुपात्रे, द्वौ द्वौ ३हीमे ऋतवो, नानुयजति, वैश्वानरो वषट्कारो, यदनुयजेद्वैश्वानरमृतुष्वन्ववसृजे,—दन्यो वा इदमासीदव्यावृत्त,—महरासीन्न रात्रि,—स्तद्देवा ऋतुग्रहैर्व्यावर्तयन्, यदृतुग्रहा गृह्यन्ते, ऽहोरात्रयोर्व्यावृत्त्यै, संवत्सरो वै स्वर्गो लोकं,—स्तस्य वा एत आक्रमा यदृतुग्रहा, यदृतुग्रहा गृह्यन्ते, स्वर्गस्य लोकस्याक्रान्त्यै ॥ ७ ॥
५५

आदित्या वा इत उत्तमाः स्वर्गं लोकमायं२,—स्ते वा इतः प्रतिसंहिताः पुरस्तादेवान् यत् सर्वं२, संवत्सरो वै स्वर्गो लोकः, संवत्सरमेतौ कल्पयितुं प्लायेते यदध्वर्यू, यदैन्द्राग्नमृतुपात्रेण गृह्णाति, संवत्सरं२ वा एतदन्वारभते स्वर्गाय लोकाया,—ऽथो ज्योतिरुपरिष्टाद्दधाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्या, असौ वा आदित्यः शुक्रः, पुरुषो वैश्वदेवो, यच्च शुक्रपात्रेण वैश्वदेवं गृह्णाति तस्मात् पुरुष एवाभ्रु प्रत्यङ्, सर्वेऽन्ये न्यञ्चः पशवो, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवाः प्रातःसवने वैश्वदेवे यज्ञं२ संस्थाप्यमपश्यं२,—स्तं प्रातःसवने समस्थापयन्, यद्वैश्वदेवः प्रातःसवने गृह्यते, प्रातःसवने वा एतद्वैश्वदेवे यज्ञं२ संस्थापयति, तेन संस्थितेनाग्निष्टेन भूतेन प्रचरन्ति, देवा वै सर्वे प्रातःसवनमभ्यायच्छ,—न्नोत्तराभ्यां२ सवनाभ्यामतिष्ठन्त, यद्वैश्वदेवः प्रातःसवने हूयते, प्रातःसवने वा एतद्वैश्वदेवे देवतास्तर्पयन्ति, तास्तृप्ता उत्तरे सवने अभिसृज्यमाना यन्ति, वज्रो वै मरुत्वतीया, वज्र एव प्रथमो, ऽपगूर्तिर्द्वितीयः, स्तृतिरुत्तमो, वज्रो वै धनु,—र्धनुरेव प्रथमः, प्रतिहितिर्द्वितीयो, विसृष्टस्तृतीय,—श्चक्रियो वा एते यज्ञस्य यन्मरुत्वतीया, अक्षो मध्यमः, पक्षसी अभितो, मरुद्भिर्वै वी३र्येणेन्द्रो वृत्रमहन्, न ऋते मरुद्भ्योऽशक्नोद्वी३र्यं कर्तुं२, यन्मरुत्वतीयो ग्रहो गृह्यते मरुत्वतीयं२ शस्यते तेन माध्यंदिनं२ सवनं२ वीर्यवत् कथं२ सवनान्युत्तमन्ति वेच्छे,—ति पृच्छेद्, ऋतुग्रहैः प्रातःसवनमुत्तमं,—न्मरुत्वतीयैर्माध्यंदिनं२ सवनं२, सावित्रेण तृतीयसवनं, मरुत्वतीययोः सत्त्रयोर्दक्षिणा दीयन्ते,

[८] मै. १,३,१७—२१ । तै. सं. ६,४,४—५ । काठ. २८,२—३ । कपि. ४४,२—३ ।

स्त्वे वा एतंद्योनी दक्षिणा दीयन्ते, परिधयो वा एते यज्ञस्य यन्मरुत्वतीया,—स्तस्मान्मरुत्वतीं-
यान् दक्षिणा नातिदीयन्ते, यदतिदुर्याद्, यथा बहिष्परिधि स्कन्नमेवꣳ स्याद्, यदि काम-
येत, विडोजीयसी स्यादबलीयः क्षत्रमिति, यस्या मरुत्वतीयः पूर्वोऽर्धर्चस्तां पुरोरुचं कु-
र्याद्, विशꣳ वा एतदोजीयसीमकरबलीयः क्षत्रꣳ, यदि कामयेत, क्षत्रमोजीयः स्यादबली-
यसी विडिति, यस्या ऐन्द्रः पूर्वोऽर्धर्चस्तां पुरोरुचं कुर्यात्, क्षत्रꣳ वा एतदोजीयोऽकरबली-
यसीꣳ विशं, जामि वा एतद्यज्ञे क्रियते यन्मरुत्वतीयो ग्रहो गृह्यते मरुत्वतीयꣳ शस्यते, पशवो
वै मरुतो, ऽजामि पशव,—स्तेन तदजाम्यृतुपात्रमालभ्य प्रतिगृह्णात्यृ,—तवो वै मरुतः, सꣳ-
वत्सरं ऋतवा, आयुः सꣳवत्सरं, आयुषि वा एतदध्वर्युः श्रयते, वृत्रꣳ वा एष हन्ति यो
मरुत्वतीयान् ग्रहान् गृहीत्वे, माहेन्द्रे सर्वे कामाः, सर्वान् वा एतत् कामानाप्नोति, सर्वान्
व्यश्नोती,—न्द्रो वै वृत्रमह३,—न्त्सोऽन्यान् देवानत्यमन्यत, स महेन्द्रोऽभवत्, स एतमु-
द्धारमुदहरत वृत्रꣳ हत्वा, तदुद्धार एवा,—ऽस्यैष भाग एव, तस्माद्राजा संग्रामं जित्वोदाज-
मुदजते, शुक्रपात्रेण माहेन्द्रं गृह्णाति, वदन्ति ग्रावाणो, वदन्त्यौलूखला, मन्थन्त्याशिर,-
—मिन्द्रे वा एतदग्रा आगुते घोषमकुर्वता,—ऽथो यजमान एव तेजो दधति ॥ ८ ॥ ५६
एतद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ ५७

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्त३न्वस्परि । देवाꣳ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत ॥५८॥
इत्येष वाव स उपाꣳशुसवनो ग्रावा, तस्य वा एष सोमपीथो यदादित्यं मेक्षयन्ति ॥ विव-
स्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः ॥ इति सोमपीथेनैवैनꣳ समर्धयति, व्यानो वा उपाꣳशुसवनः,
प्रजा आदित्यो, व्यानꣳ वा एतत् प्रजासु दधाति, पशवो वा आदित्यो, यदभ्रा मध्यतः
श्रीणाति, मध्यतो वा एतत् पशूनां पयो दधात्यं,—थ यत्तत्पात३ङ्क्यं तस्मादामा सती पक्वं
दुहे, यदि कामयेत, वर्षेत् पर्जन्या इति ॥ या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामि ॥ इति दभ्रो-
परिष्टादादित्यꣳ श्रीणीयात्, पशवो वा आदित्यः, पशुभ्य ए३षोऽमुतो वर्षति, पशूनेव
वृष्ट्याभिजिघर्ति, यदि कामयेत, गर्भाः श्रीण्येयुरित्यु,—द्धृत्यादित्यमवेक्षेत, गर्भा ह श्रेवुका
भवन्ति, शुक्रवतीवै पूर्वे सवने, अशुक्रꣳ तृतीयꣳ सवनꣳ, यद् द्विदेवत्यानाꣳ सꣳस्रवानवन-
यत्याग्रायणमभिप्रस्कन्दयति, तेन तृतीयसवनꣳ शुक्रवद्, देवा असुरान् हत्वा मृत्योरबिभ-

[९] मै. १,३,१६ । तै. सं. ६,५,६ । काठ. २८,६ ।
मै. ४९

यु,—स्तेनायंविणो न्यश्नन्नेर्षिण एता देवता भूयिष्ठाः प्राविशन्, यद् द्विदेव३त्याꣳस्तस्माद् द्विदे-
वत्येभ्य आदित्यो निर्गृह्यते, बृहतीभ्यां गृह्णाति, पशवो वै बृहतीः, प्रजा आदित्य, एता-
वांलोको यावद्दृतꣳ, यत् संप्रसारयित्वा गृह्णाति लोकꣳ वा एतदुन्नाधं यजमानो भ्रातृव्यस्य
वृङ्क्ते, ऽथो इमा एव प्रजा अन्नाद्यायावरुन्द्धे, यद्यस्य भ्रातृव्यो यजेत बहिर्वेदि तिष्ठेत्,
तथा हैनं नावरुन्द्धे, पशवो वा आदि३त्यो, ऽग्नी रु३द्रो, ऽग्नेरेवास्त३न्वो यद्धिष्ण्या,
यत् संप्रसारयित्वा गृह्णाति रुद्राद्वा एतत् पशूनन्तर्दधात्यपिधायोप निष्क्रामति, पशूनां गोपी-
थाया,—ऽऽदित्यो वै द्विदेवत्यानामनुयाज,—स्तस्मात्तान्नानुयजति, द्विदेव३त्या वा आदित्यस्य
प्रयाजा,—स्तस्मात्तान्नानुयजति, पशवो वा आदि३त्यो, ऽग्नी रुद्रो, ब्राह्मणं उपद्रष्टा,
यदीक्षमाणो जुहुयात् प्रथीयमानानामेषामुपद्रष्टा स्या,—दुन्यत्रेक्षमाणेन होत३व्य,—मनुपद्रष्टैषां
भवति ॥ ९ ॥ ५९-६३ [११६९]

॥ इति खिलकाण्डे षष्ठः प्रपाठकः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः प्रपाठकः ।

गायत्रो वै देवानाꣳ सविता, गायत्र्या एष लोके सोमो गृह्यते, यदाग्रायणं,—स्तस्मा-
दाग्रायणात् सावित्रो निर्गृह्यते, ३सोऽर्द आ तृतीयात् सवनात् परिशयेत् क्रियमाणस्य क्रियमा-
णस्य प्रसवाया,—ऽन्तरिक्षꣳ वा अन्तर्या३मो, ऽन्तरिक्षमिमाः प्रजा, यदन्तर्यामपात्रेण सावित्रं
गृह्णाति, सविता वा एतत् प्रजाः प्रसुवति प्रजननाया,—ऽसन्नो हूयते, ऽसन्ना३हीमाः प्रजा
नेलयन्ति, नानुयजति, यदनुयजेत् सृष्टिं प्रजानाꣳ विछिन्द्या,—दथो समानपात्रौ ३ह्येतौ सोमौ
गृह्येते तस्मान्नानुयजति, देवा वै तृतीयसवनमुद्यमं नाशक्नुवन्, प्रातःसवने तर्हि सवितासीत्,
तं देवास्तृतीयसवनमभिपर्यौहꣳ,—स्तेन तृतीयसवनमुदयच्छन्त, यत् सावित्रस्तृतीयसवने गृह्यते
सवितृप्रसूता वा एतत् तृतीयꣳ सवनमुद्यच्छन्ते, सावित्रस्य सꣳस्रवे वैश्वदेवमभिगृह्णाति, वैश्व-
देवीरिमाः प्रजाः, सवितृप्रसूताः खलु वै प्रजाः प्रजायन्ते, मनो वै सविता, वैश्वदेवीरिमाः
प्रजाः, सर्वासु वा एतत् प्रजासु मनो दधात्या,—ग्रीमतः सवनस्य गृह्णाति, वैश्वदेवत्वाय,

[१] मै. १,३,२७—२८ । तै. सं. ६,५,७ । काठ. २८,७ । कपि. ४४,७ ।

सुशर्मासि सुप्रतिष्ठान इति, यत्स्वित्सोमः सोमे प्रतितिष्ठति, बृहदुक्षे नम इति, यद्बृहदिति
तेन देवेभ्यो, यन्नम इति तेन पितृभ्य, उक्थभाजो वै पितरोऽस्तोमभाज, उक्थायैष गृह्यते
न स्तोत्राय, यत्र गृह्यते तच्च शस्यते स्व आयतने ॥ १ ॥ १
घृतस्य यजत्ये,—ष वै प्रथमो धिष्ण्यानाꣳ यदाहवनीय,—स्तꣳ वा एतदग्रे व्याघारयत्या,—
ग्नावैष्णव्या व्याघारयति, पराङ् वा एतर्हि य३ज्ञो, ऽग्निः सर्वा देवता, विष्णुर्यज्ञो,
देवताश्चैव यज्ञं चालब्ध, घ्नन्ति वा एतत् सोमꣳ यदभिषुण्वन्ति, यत् सौम्यः, सोमꣳ वा
एतत् संभावयन्ति, सोममाप्याययन्त्यं,—वधिपुर्वा एतत् सोमꣳ यदुम्यसुपुवु,—रनुस्तरणी वा
एषा सोमस्य, यत् सौम्यः पितृणामनुस्तरणी, तस्मात् पितृमत्या यजति, दक्षिणा तिष्ठन्
जुहोति, दक्षिणा हि पितृणा,—मुपसदाꣳ वा एतेऽनुयाजा, आग्नावैष्णव्या घृतस्य यजति,
सौम्या सोमस्य, या एवाद उपसत्सु देवता अयाक्षीत्ता एत,—दुमुत्र वा एष भूताय क्रियते,
यद्वा एतस्य व्याधि यत् प्रामायि तदस्यामुं लोकं गच्छत्यं,—थ पूत एवोच्छिष्यते, पवित्रꣳ वै
सौम्यो, यजमानमेवैतेन पुनाति, सामदेव३त्यो वै सोमः, सोमस्य खलु वै सौम्यः,
साम्ने वा एतद् ध्रियते॥ सत्रा त एतद्यदु त इदं ॥ इति परिपश्यति, योऽगतासुः स परिपश्यति, २-४
यो गतासुर्न स परिपश्यति, यदि न परिपश्येदथ वदेत् ॥
यन्मे मनो यमं गतꣳ यद्वा मे अपरागतम् । राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासु धारयामसि ॥ ५
हृदिस्पृक् क्रतुस्पृग्वर्चोधा असि, वर्चो मे धेहि ॥ इत्याशिषमेवाशास्ते ॥ २ ॥ ६-७
अथैतेऽतिग्राह्या, देवा वै सोममगृह्णता,—ऽथ वा एतानिन्द्रोऽगृह्णात्, सोऽवे,—न्न वा अहमि-
मानृते ब्रह्मणः सविष्यामीति, स ब्रह्मोपाधावत्, तान् ब्रह्मणासन्नोद्, ब्रह्म वै गायत्री, तस्मा-
द्गायत्रीभिर्गृह्यन्ते, यद्देवादः परमन्नाद्यमनवरुद्धं तस्यैतेऽवरुद्ध्यै गृह्यन्ते, ये वा अमी वैराजस्य
स्तोमा अतिरिक्तास्तैरेते सामन्वन्तः, सर्वे वा एत ऐन्द्रा, य ऐन्द्र ऐन्द्रः ३सो, ऽसा आदित्य
इन्द्रः, समानमग्निश्चासौ चादित्यो, विराजो वै तेज आग्नेयः, शक्वरीणामैन्द्रो, रेवतीनाꣳ
सौर्यो, यत्र पृष्ठानि युज्येरꣳस्तदेतान् जुहुयात्, साम्नाꣳ सतेजस्त्वाय, सꣳ वा एतद्यज्ञः पश्चात्
स्तोत्रेण च शस्त्रेण चाधीयते, यदतिग्राह्याः, प्रत्युत्तब्ध्यै, चक्रियो वा एते यज्ञस्य यत्

[२] तै. सं. ६,६,७ । कपि. ४५,३ । मा. १,२६; ३,१७; ४,३ । काण्व. २,४८; ३,१३; ४,४।
[३] मै. १,३,३१—३३ । तै. सं. ६,६,८ । कपि. ४६,१—३ । मा. ८,३८—४० । काण्व. ८,१९—२४ ।

पृष्ठान्यु,—पस्तम्भनमतिग्रा३ह्या,—स्तस्मात् प्रातःसवने गृह्याः, प्रत्युत्तब्ध्यै, यदाग्नेयस्तेज-
स्तेनावरुन्द्धे, यदैन्द्र इन्द्रियं तेन, यत् सौर्यो रुचं तेन, त्रिवृद्वावास्मा एतत् समृद्धं ब्रह्म-
वर्चसं दधाति, तेजो वा अग्नि,—रिन्द्रियमिन्द्रो, ब्रह्मवर्चसमसा आदित्यं,—स्तेजसा च वावा-
स्मा एतद्ब्रह्मवर्चसेन चोभयत इन्द्रियं परिगृह्णाति ॥ अग्नेश्च त्वा ब्रह्मणश्च तेजसा जुहोमि तेजोदा,
तेजो मा मा हासी,—न्माहं तेजो हासिषꣳ, स्वाहे,—न्द्रस्य च त्वा क्षत्रस्य चौजसा जुहोम्यो-
जोदा,—मोजो मा मा हासी,—न्माहमोजो हासिषꣳ, स्वाहा, सूर्यस्य च त्वौषधीनां च वर्चसा
जुहोमि वर्चोदाꣳ, वर्चो मा मा हासी,—न्माहꣳ वर्चो हासिषꣳ, स्वाहा,—ऽग्न आयुःकारायु-
ष्माꣳस्त्वं तेजस्वान् देवेभ्येध्या,—युष्मन्तं मा तेजस्वन्तं मनुष्येषु कुर्वि,—न्द्रौजस्कारौजस्वाꣳस्त्वꣳ
सहस्वान् देवेभ्येध्यो,—जस्वन्तं माꣳ सहस्वन्तं मनुष्येषु कुरु, सूर्य भ्राजस्कार भ्राजस्वाꣳस्त्वꣳ
वर्चस्वान् देवेभ्येधि, भ्राजस्वन्तं माꣳ वर्चस्वन्तं मनुष्येषु कुरु ॥ एते होमा भक्षंकाराश्च भव-
न्त्ये,—तेषाꣳ वै वीर्येण बभ्रुविश्ववयसा इमांल्लोकाननर्वाचश्च पराचश्च प्राजानीताꣳ, सꣳ ह वा
अस्मा इमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च भान्ति य एवꣳ वेद, सुप्रज्ञाना वा इत इत्थं लोका,
अमुतस्त्या अर्वाञ्चो दुःप्रज्ञाना, एष ह ३त्वेवामुतोऽर्वाच इमांल्लोकान् प्रजानाति यस्यैते हूयन्ते
॥ ३ ॥ ८-१०
उपाꣳशुपात्रेण पात्नीवतं गृह्णाति, प्राणो वा उपाꣳशुः, प्राणेन वा एतत् प्रयन्ति,
प्राणेनोद्यन्त्यं,—थो प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्या, अथो यत् प्रथमं पात्रꣳ युज्यते तदुत्तमꣳ विमु-
च्यते, प्राणानां गोपीथाय, होता वा अग्र प्रातरुपाꣳशुमयजद्, यदेतꣳ होता वषट्कुर्या-
द्यत् पुरोऽक्रुस्तत् पश्चात् परिहरेत्, प्रमायुकः स्यात्, तस्मादेतमग्नीद्वषट्करोति, पुरो३ह्यग्नीत्,
प्राणो वा उपाꣳशुः, प्राणादधि प्रजाः प्रजायन्ते, यदुपाꣳशुपात्रेण पात्नीवतं गृह्णाति,
प्रजननाया,—ऽसन्नो हूयते, ऽसन्ना हि प्रजाः प्रजायन्ते, नानुयजति, यदनुयजेत्
प्रजननमपिहन्या,—दथो समानपात्रौ ३ह्येतौ सोमौ गृह्येते, तस्मान्नानुयजति, मिथुनꣳ वै
घृतं च सोमश्च, यत् पात्नीवतं घृतेन श्रीणाति, मिथुनत्वाय, बृहस्पतिसुतस्य ता इति,
ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणो वै योनिः प्रजापतिः प्रजा असृजत, ब्रह्मणो वा एतद्योनेर्यजमानः

[४] मै. १,३,२९-३० । तै. सं. ६,५,८-९ । काठ. २८,८-९ । कपि. ४४,८-९; ४६,४ । वा. ८,९-११;९,११ ।
का.प. ८,८—१०,१२;१०,११ ।

प्रजायता, इन्द इन्द्रियावता इती,—न्द्रियं हि गर्भो, ऽग्ना३इ पत्नीवा३निति, मिथुनꣳ वा अग्निश्च पत्नीश्च, मुखंस्त्वष्टा सोमं पिबति, त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति, घृतꣳ वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्न,—न्नपि खलु वा एतं घातयन्ति, यत् पात्नीवतं घृतेन श्रीणाती,—न्द्रियेण वा एतत् पत्नी व्यर्धयति, तस्मान्निरिन्द्रिया स्त्री, पुमानिन्द्रियवाꣳ,—स्तस्मात् पुमाꣳसः सभाꣳ यन्ति, न स्त्रियो, यदित्वग्न्स्सोमात् श्रीणीयुर्न पात्नीवतꣳ, स्त्रियः सभामीयु,—र्न पुमाꣳसा, इन्द्रो वै वृत्रमहꣳ,—स्तस्य यन्मूर्धानमुदरुजत् स द्रोणकलशोऽभवत्, ततो यः सोमः समस्रवत् स हारियोजनं,—स्तस्मादेतं द्रोणकलशेन जुहोति, योनिर्ह्यस्यैष, इन्द्रो वृत्रꣳ हत्वा तस्य यत् क्रोष्ठो हृदयाद् सोमꣳ समसिस्रवत् स हारियोजनोऽभवत्, स इन्द्रोऽमन्यत, यद्विममु३ष्ठेꣳ सोमꣳ होष्यामि तदन्वसुरा आभविष्यन्ति, यत्र होष्यामि तदन्वभविष्यन्तीति, तꣳ सꣳस्थिते प्रहृतेषु परिधिष्वजुहोद्यत् सꣳस्थिते प्रहृतेषु परिधिषु जुहोति तस्त्विदुभयमक,—र्जुहोत्यह, सꣳस्थिते जुहोत्य,—तिरिक्तो वा एष ऋत्विजाꣳ य उन्नेता, तस्मादेतं न वृणते, न वषट्करोत्य,—त्येष सोमोऽरेचि, स वा उन्नेतारमेवाभ्यतिरिच्यन्ते, ऽध्वर्युर्वै पर्वान्त्सोमान् जुहोति, यदेतमध्वर्युर्जुहुयादाहुतीः सꣳसृजेत, समदं कुर्यात्, तस्मादेतमुन्नेता जुहोति, प्रजापतिर्वा एतममन्यत सोमꣳ होष्यꣳ,—स्तमग्निरब्रवी,—न्मे मयि स्वमेतममु३ष्ठेꣳ सोमꣳ होष्यस्यमृतमद्वितीयं, द्वितीयमस्त्विति, यद्धानाभिः श्रीणाति, भूतस्वाया,—ऽथो द्वितीयत्वाया,—ऽथैता धाना, यत्र वा अदो देवेभ्यः कामदुघाः काममदुह तदेता अपिदुदुह्रे, तद् पुष्टिमेवैताभिरवरुन्धे, प्रजापतिर्वा आग्रायणो, यदेषोऽतिरिच्यते तस्मादुपर्यतिरिक्तोऽपरिमित इमाः प्रजा अभिप्रवत, ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी, तयोः परिधय आधानं, निराधानाद् खलु वा अश्वाय घासमपिदधाति, यत् सꣳस्थिते प्रहृतेषु परिधिष्वजुहोद्, यत् सꣳस्थिते प्रहृतेषु परिधिषु जुहोति निराधानाभ्यामेवाभ्यां घासमपिदधाति, पशवो वै धाना, यत् संखादेत् पशवः हिꣳस्याद्, यन्न संखादेदयताः स्युः, संदश्य, रथ्यै स्वा पोषाय त्वेत्यु,—पवपति, तस्त्विदुभयमकः, पशूनाꣳ यत्यै, भुञ्जन्त एनं पशवा उपतिष्ठन्ते ॥ ४ ॥ ११

यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तेऽमन्यन्ता,—ऽनेन वै नोऽन्ये लोकमन्वारोक्ष्यन्तीति, ते छन्दाꣳस्यपश्यꣳ,—स्तानि व्यत्यषजन्त्स्वर्गस्य लोकस्याननुख्यात्यै, यच्छन्दाꣳसि व्यतिषजति,

[५] तै. सं. ६,६,११,५—६ ।

लोकꣳ वा एतच्छन्दाꣳसि यजमानो भ्रातृव्यस्य मोहयति स्वर्गस्य लोकस्याननुख्यात्यै, देवेषु वा अन्यानि छन्दाꣳस्यास,—न्नसुरेष्वन्यानि, कनीयाꣳसि देवेष्वासन्, ज्यायाꣳस्यसुरेषु, ते देवाः कनीयोभिश्छन्दोभिर्ज्यायाꣳसि छन्दाꣳस्यसुराणामवृञ्जत, यत् कनीयोभिश्छन्दोभिर्ज्यायाꣳसि छन्दाꣳसि विशꣳसति लोकꣳ वा एतच्छन्दाꣳसि यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, लोकमेनमछन्दस्कमकरनुष्टुभꣳ सर्वाणि छन्दाꣳस्यभिसꣳशꣳसति, वाग्वा अनुष्टु,—बानुष्टुभः पुरुष,—स्तस्मात् पुरुषः सर्वा वाचो वदति, पशवो वै छन्दाꣳसि, वागनुष्टु,—बानुष्टुभः पुरुषो, यत् सर्वाणि छन्दाꣳसि सꣳशस्यानुष्टुभमुत्तमाꣳ शꣳसति तस्मात् पुरुष उपरिष्टाद्वाचः पशूनत्ति, सर्वाणि छन्दाꣳसि सꣳशꣳसति, प्रजापतिर्वै छन्दाꣳसि, प्रजापतिमेवाप्नोति, षडक्षराणि स्तोत्राददतिरिच्यन्ते, षड्वा ऋतव, ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति, ततश्चत्वारि शस्त्रे पुनरुपावर्तन्ते, चतुष्पदस्तेन पशूनवरुन्द्धे, ऽथ द्वे एवातिरिच्येते, द्वे विराजमति सत्यं चानृतं च, विराजमेवाप्नोति ॥ ५ ॥ १२

प्रजापतिर्वै देवेभ्यो यज्ञान् व्यकल्पयत्, सोऽमन्यता,—ऽऽत्मानमन्तरगामिति, तेषाꣳ वा इन्द्रियाणि वीर्याणि पुनः समवृङ्क्त, स षोडश्यभव,—दथ वै तर्हीन्द्रो देवानामासीदवमतमः शिथिरतम,—स्तस्मै वा एतꣳ षोडशिनं प्रायच्छत्, तेनेन्द्रोऽभवत्, ततो देवा अभवन्, परासुरा,—स्तद्य एवꣳ विद्वानेतꣳ षोडशिनं गृह्णीते, भवत्यात्मना, परास्य भ्रातृव्यो भवति, प्रजापतिर्वै देवेभ्यस्तनूर्व्यकल्पयत्, तासाꣳ या हरिवत्यासीत् तामात्मन्नशिꣳषत् प्रेष्णा, यद्धरिवती पुरोरुग्ग्रहस्य भवति, यैवास्य हरिवती प्रिया तनूस्तामेवाप्नोति, न षोडशी नाम य३ज्ञोऽस्तीत्या,—हु,—रथ कस्मात् षोडशीति, यत् स्तोत्रेण च शस्त्रेण च संपद्यते तस्मात् षोडशी,—यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमाय,—न्त्सं एषां न प्राभवत्, तस्मिन्वा एतꣳ षोडशिनं प्रत्यग्रथ्नꣳ,—स्तेनामुं लोकꣳ व्याप्नुवꣳ,—स्तदमुष्य वाव लोकस्य व्याप्त्यै षोडशी गृह्यते, ऽमुष्य लोकस्य समष्ट्या, अग्निष्टोमे राजन्यस्य गृह्णीया,—दशान्त एनꣳ वज्रो भूत्वा इन्द्धे, ऽतिरात्रे ब्राह्मणस्य, वज्रो वै षोडशीश्वरोऽशान्तो यजमानꣳ हिꣳसितो, रात्रिरेव वज्रꣳ शमयति, प्रातःसवने गृह्य,—स्तेजो वै प्रातःसवनं, तेजस एव वज्रं निर्मिमीते, माध्यंदिने सवने गृह्य, ओजो वै माध्यंदिनꣳ सवन,—मोजस एव वज्रं निर्मिमीते, तृतीयसवने गृह्यः, पशवो वै

[६] मै. १,३,३४ । तै. सं. ६,६,११,१।

तृतीयसवनं, पशुभ्य एव वज्रं निर्मिमीते, यत् प्रातःसवने गृह्णीयाद्वज्रा उत्तरे सवने अभ्यतिरिच्यते, यन्माध्यंदिने सवने, मध्यतो वज्रो निर्हन्याद्, तृतीयसवने गृह्य,—स्तत् सर्वेषु सवनेषु गृह्णाति, न पूर्वे सवने आर्ति नीतः, पञ्चदशः कार्यो, वज्रो वै पञ्चदशो, वज्रमेवास्मा आधात्, तेन विद्विषि भूतिं गच्छति, षोडशी कार्यो, यजमानो वै पञ्चदशो, वज्रः षोडशी, वज्रमेवास्मा आधात्, स एनं भूत्यै श्रेष्ठ्यं इन्द्धे, सप्तदशः कार्यः, प्रजापतिर्वै सप्तदशः, प्राजापत्यः षोडशी, स्व एवैनꣳ योनौ दधात्ये,—कविꣳशः कार्यो, एकविꣳशतिधाम्नी वा अनुष्टु,—बानुष्टुभः षोडश्ये,—तद्वा अस्यायतनतमं, तस्मादेकविꣳशः कार्यो, मध्यमेऽहꣳस्त्रिरात्रस्य गृह्यो, मध्यमꣳ वा अहस्त्रिरात्रस्य शिथिरं,—मह्यो द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय, चतुर्थेऽहꣳश्चतूरात्रस्य गृह्य,—श्चतुर्थꣳ वा अहश्चतूरात्रस्य शिथिरं,—मह्यो द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय, चतुर्थे चतुर्थेऽहन्नहीनस्य गृह्य,—श्चतुर्थं चतुर्थꣳ वा अहरहीनस्य शिथिरं,—मह्यो द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय, न द्विरात्रेऽवकल्पते, द्वे वा एते छन्दसी गायत्रं च त्रैष्टुभं चा,—ऽऽछन्दस्कमनायतनं गृह्णीते, ऽनायतनो यजमानो भवत्यु,—त्तरेऽहन् द्विरात्रस्य गृह्यो, रात्रिमेवायतनमभ्यतिरिच्यते ॥ ६ ॥ १३

बर्हिषोऽदाभ्यो, देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त, ते देवा एतमपश्यꣳ,—स्तमगृह्णत, तानसुरा नादभ्नुवꣳ,—स्तदंदाभ्यस्यादाभ्यत्वं, नैनं भ्रातृव्यो दभ्नोति य एवं गृह्णीते, घ्नन्ति वा एतत् सोमꣳ यदभिषुण्वन्त्ये,—षा वै सोमस्यातिमोक्षिणी तनू,—र्यैनितानꣳशून् प्रवृहन्त्ये,—वꣳ वा एवं लोकꣳ यजमानोऽन्वतिमुच्यते, वि वा एतद्यज्ञश्छिद्यते यत् सवनानि संतिष्ठन्ते, यदेतानꣳशून् पुनरुपर्यस्यति, यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय, वृष्ट्यै वा एष गृह्यते, मरुत्सामानि हि, वर्षति पर्जन्यो यत्रैष गृह्यते, ऽग्निः प्रातः सवनात् पात्वस्मानिति, सवनानि वा एतेन देवा असुराणामवृञ्जत, सवनान्येवैतेन यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, ऽग्ने त्वा प्रवृहामि गायत्रेण छन्दसेति, छन्दाꣳसि च वा एतेन देवताश्च देवा असुराणामवृञ्जत, छन्दाꣳसि चैवैतेन देवताश्च यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, चतुरꣳशून् प्रवृहति, दिशो वा एतेन देवा असुराणामवृञ्जत, दिश एवैतेन यजमानो भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते, जीवग्रहो वा एष सोमस्या,—हुतस्य संनिधुतस्य गृह्यते, यजुषा च वा आहुत्या च यज्ञः संततो, यदेतर्जुर्वदन्नाहुतिं जुहोति यजुषा

[७] मै. १,३,३६ । तै. सं. ६,६,९-१० ।

चैवाहुत्या च यज्ञꣳ संतनोति, देवा वै सोममगृह्णत, स प्रजापतिरवेद्, यो वा इदं प्रथमः सोमं ग्रहीष्यते स इदं भविष्यतीति, स एतमगृह्णीत सोऽभवद्, यो भूतिकामः स्यात् स एवं गृह्णीत, भवति, यदि शक्नोति ग्रहीतुमुभौ भवतो, यदि न शक्नोति ग्रहीतुमुभौ न भवता, पराचीनेन प्राणता ग्रहीत३व्यः, पराङ् हि स प्राणैः श्रियोऽन्तमगच्छ,—दपानता ग्रहीत३व्यो, ऽपानꣳ हि स तमगृह्णीत, प्राण्यापान्याव्यवानता ग्रहीतव्यो, ऽव्यवानꣳ हि स तमगृह्णीत, यद्व्यवानेत् प्राणान्विच्छिन्द्याद्, यदि व्यवानेद्धिरण्येनापिदध्या,—दमृतꣳ वै हिरण्य,—ममृतेनैव प्राणान्त्संदधाति, सकृदभिपुणोति, सकृद्गृह्णात्ये,—को वै प्रजापतिः, प्रजापतिमेवाप्नोति, चतुःस्रक्तिना ग्रहीत३व्य,—श्चतुःस्रक्तिना वा एतं प्रजापतिरगृह्णीत, स सर्वासु दिक्ष्वाभ्नोत्, स सर्वासु दिक्ष्वृध्नोति य एवꣳ विद्वानेतं चतुःस्रक्तिना गृह्णी३ते, ऽपां वै सोमस्य रसः प्रविष्टः, सोममपाꣳ रसो, यथा वा इदं गावौ संजग्माने अन्यान्याꣳ हत एवꣳ वा एतौ संजग्मानौ अ३न्योऽन्यस्येन्द्रियꣳ वीर्यꣳ विनिहत,—स्तयोर्वा एष रसो यद्दधि, यद्दध्ना जुहोति स्वेनैवैनौ रसेन शमयति ॥ ७ ॥ १४

कृष्णग्रीवाग्नेयो, मेषी सारस्वती, बभ्रुः सौम्यः, श्यामः पौष्णः, शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः, पिशङ्गो वैश्वदेवो, वृष्णिरैन्द्रः, कल्माषो मारुतः, सꣳहित ऐन्द्रा३ग्नो, ऽधोरामः सावित्रः, पेत्वो वारुणः, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचानोऽमन्यत, स एतामेकादशिनीमपश्यत्, तयात्मानमाप्रीणीत, यज्ञो वै प्रजापति,—स्तद्य एवꣳ विद्वानेतामेकादशिनीꣳ विसृजते यदेवास्यात्मन ऊनं तदाप्रीणीते, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा रिरिचानोऽमन्यत, स एतानीन्द्रियाणि वीर्याण्यपश्यत्, तानि द्वन्द्वमात्मानमभिसमबध्नीता,—ऽऽत्माग्नेयो, वाक्सरस्वती,—न्द्रियꣳ सोमो वाचं चैवेन्द्रियं चात्मानमभिसमबध्नीत, पुष्टिः पौष्णो, ब्रह्म बृहस्पतिः, पुष्टिं चैव ब्रह्म चात्मानमभिसमबध्नीत, बलꣳ विश्वे देवा, वी३र्यमिन्द्रो, बलं चैव वीर्यं चात्मानमभिसमबध्नीतौ,—जो मरुतः, सह इन्द्राग्नी, ओजश्चैव सहश्चात्मानमभिसमबध्नीत, प्रसवाय सावित्रो, निर्वरुणत्वाय वारुण, आग्नेयाय सर्वा उपबध्यन्ते, ऽग्निर्वै सर्वा देवताः, सर्वाभ्य एव देवताभ्या उपबध्यन्ते, मिथुनत्वायैव सारस्वत्य,—थ यत् सौम्यः, सोमो वै रेतोधा रेतोऽस्मिन् दधात्य,—थ यत् पौष्णः, प्रजननꣳ वै पूषा, प्रजननाय, ब्रह्म बृहस्पति,—र्वैश्वदेवीरिमाः प्रजा, ब्रह्म वा एतत् पुरस्तादासां प्रजानामत्याद्धा,—दथो ब्रह्मण एवैमाः

[८] तै. सं. ६,६,५।

प्रजा अनुकाः करोति, क्षत्रमिन्द्रो, विण्मरुतो, विश॒ं वा एतत् क्षत्राय नियुनक्त्यं,—थो विशु-
मेवं क्षत्रायानुकां करोत्यो,—ज इन्द्राग्नी, ओजसा वा एतद्विशं क्षत्राय परिगृह्णात्या,—लभ्य
आग्नेयं, आलभ्य ऐन्द्रो, ऽथैष ऐन्द्राग्न आलभ्यते, ब्रह्म चैवं क्षत्रं च सयुजा अक,—र्यद-
ग्निश्चेन्द्रश्च भूयिष्ठभाजौ देवतानां तस्माद्ब्राह्मणश्च राजा च भूयिष्ठभाजौ मनुष्याणां, प्रसवाय
सावित्रो, निर्वरुणत्वाय वारुणः, समुद्रो वै वरुणो, दक्षिणा समुद्रो, यद्वारुणो दक्षिणार्ध
आलभ्यते, यजमानस्य निर्वरुणत्वायै,—तद्वा एषाभ्यनूक्ता ॥ १५

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः । अनुक्षरन्ति काकुदꣳ सूर्म्यꣳ सुषिरामिव ॥
इति ॥ ८ ॥ १६

ये देवानां बलपतयस्तेभ्यो दक्षिणार्ध आलभ्यन्ते, तस्मात् प्रजा दक्षिणाभिजंखन्तीर्यन्ति,
यदाग्नेयः सौम्यो बार्हस्पत्यस्ते सार्धमालभ्यन्ता ओज एवैतत् संधीयते, यदाग्नेयश्च बार्हस्पत्यश्च
सौम्यमभितस्तेजसा च वावास्मा एतद्ब्रह्मवर्चसेन चोभयत इन्द्रियं परिगृह्णात्ये,—कादश वा एतेषां
पशूनां देवता, मेषी सारस्वती देवतानां द्वादशी, यदेषातिरिच्यते तस्मात् स्त्रियः पुꣳसोऽति-
रिच्यन्ते, ऽथ द्वे एकस्य रशने, द्वे एकस्य, तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति, न पुमाꣳस,-
—मथ स्त्रिय एवातिरिच्यन्ते, यꣳ वा अमुमिन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत् स त्रेधाभवद्, यदग्रं
तेजा आसीत् स स्फ्योऽभवद्, यन्मध्यꣳ स रथो, यज्जघनꣳ स यूपः, स्फ्येन परिलिखति,
रथाक्षेण विमिमीते, यूपो भवति, वज्र एवैष संभ्रियत, एतावती वा इयं पृथिवी यावती
वेदि,—र्यज्ञ एकादशिनी, तिरश्चीं मिनोति, वज्रेण वा एतदिमां जयति, दक्षिणत उन्नता
मेतव्या, देवयजनस्य रूपं,—मथो वज्रꣳ वा एतद्यजमानो भ्रातृव्यायोच्छ्रयति, त्रयो मध्यतः
समा मेतव्याः, समत्वाय, समꣳ हि पशवोऽनुपतिष्ठन्ते, पशुभिरेवैनꣳ सम्यञ्चं दधाति,
यं कामयेत, पितृलोकं ऋध्नुयादिति, तस्यौपरसंमितां मिनुयात्, पितृलोकं एवं ऋध्नोत्यं,-
—थ यं कामयेत, मनुष्यलोकं ऋध्नुयादिति, तस्य मध्यसंमितां मिनुया,—न्मनुष्यलोकं एवं
ऋध्नोत्यं,—थ यं कामयेत, देवलोकं ऋध्नुयादिति, तस्य चषालसंमितां मिनुयाद्, देव-
लोकं एवं ऋध्नोति, तासाꣳ वा एषा समृद्धतमा या चषालसंमिता, तस्माच्चषालसंमिता
मेतव्या, समृद्धत्वाय, यस्य पश्चादुपस्थः पुरस्तान्निर्णतं तं मिनुयाद्, यं कामयेत, भ्रातृ-

[सुदेवो असि वरुण० । ऋ. ८,६९,१२, अथर्व. २०,९२,९, नि. ५,२७]
[९] तै. सं. ६,६,४ ।
मै० ५०

व्याय लोकं कुर्याद्, यजमानं निर्बाधेतेति, भ्रातृव्यायैव लोकं करोति, यजमानं निर्बाधते,
ऽथ यस्य पुरस्तादुपस्थः पश्चान्निर्णतं तं मिनुयाद्, यं कामयेत, यजमानाय लोकं कुर्याद्
भ्रातृव्यं निर्बाधेतेति, यजमानायैव लोकं करोति, भ्रातृव्यं निर्बाधते, सर्वेऽग्निष्ठाः कार्या,
या अग्निष्ठा अश्रयस्ता अग्निष्ठाः कार्या,—स्तेन सर्वेऽग्निष्ठा, अथ यदग्निष्ठादधि रशना विहि-
यन्ते तेन सर्वेऽग्निष्ठा, नाना वा एतेषां पशवो, नाना देवता, अथ य एष द्वादशो यज-
मान एवैतस्य पशुं,—र्यदस्मै पशुं न निर्दिशेत् तत् प्रमायुको यजमानः स्याद्, यं द्विष्यात् तं
ब्रूयात् ॥ असौ ते पशुः ॥ इति, तमेवास्मै पशुं निर्दिशति, प्रमायुको भवति, यद्यभिचरेत् ॥
इदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमिन्द्रवज्रेणाभिनिदधामि ॥ इत्यभिनिदध्या,—दिन्द्रवज्रेणैवैनम-
भिनिदधाति, प्रमायुको भवत्यं,—थो द्वादशस्यैवैष मासोऽवरुद्ध्यै ॥ ९ ॥ १७-२१
[२११०]

॥ इति खिलकाण्डे सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः प्रपाठकः ।

मनोर्ह पात्राण्यासꣳ,—स्तेषाꣳ समाहन्यमानानाꣳ यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वꣳस्तावन्तस्तदहनी-
भुव,—न्नथ वा एतौ तर्ह्यसुराणां ब्राह्मणा आस्तां तृष्टावरुत्री, तौ अब्रुवꣳ,—श्चिकित्सतं ना
इति, तौ अब्रूतां, मनो यज्वा वै श्रद्धादेवोऽसी,—मानि नौ पात्राणि देहीति, तानि वा
आभ्यामददात्, तान्यग्निना समक्षापयतां, तान् ज्वालानृषभः संमुलेद्, तꣳ सा मेनिरन्व-
पद्यत, तस्य रुवतो यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वꣳस्तावन्तस्तदहनीभुवꣳ,—स्तौ अब्रूतां, मनो
यज्वा वै श्रद्धादेवोऽस्य,—नेन त्व ऋषभेण याजयावेति, तेन वा एनमयाजयतां, तस्य श्रोणि-
मनवत्ताꣳ सुपर्णी उदमथ्नात्, सा मनाया उपस्थमापद्यत, ताꣳ सा मेनिरन्वपद्यत, तस्या
वदन्त्या यावन्तोऽसुरा उपाशृण्वꣳस्तावन्तस्तदहनीभुवꣳ,—स्तौ अब्रूतां, मनो यज्वा वै श्रद्धा-
देवोऽस्य,—नया त्वा पत्न्या याजयावेति, तां प्रोक्ष्य पर्यग्निं कृत्वेध्माबर्हिरछैताꣳ, स इन्द्रो-
ऽवे,—दिमे वै तं असुरमायेमं मनुं पत्न्या व्युर्धयता इति, तमिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्, सो
ऽब्रवी,—न्मनो यज्वा वै श्रद्धादेवोऽसि, याजयानि त्वा, कतमस्त्वमसि ब्राह्मणः ॥ १

[१] तै. सं. ६,६,६ । कपि. ४६,४ ।

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरम्। श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यꣳ स पिता स पितामहः॥
२
केनेत्या,—भ्यां ब्राह्मणाभ्या,—मितीशेऽहं ब्राह्मणयो,—रितीशिषे हीत्य,—ब्रवी,—दतिथिपति-
वावातिथीनामीष्टा इति, स द्वितीयाꣳ वेदिमुद्धन्तुमुपापद्यत, तौ इध्माबर्हिर्विभ्रता एतां, तौ
अब्रूतां, किमिदं करोषी,—तीमं मनुꣳ याजयिष्यामीति, केनेति, युवाभ्यामिति, तौ
अविता,—मिन्द्रो वावेति, तौ न्यस्येध्माबर्हिः फलायेतां, तौ यद्धावतां परस्तादेवेन्द्रः प्रत्यैत्॥
तौ शृशथैवापश्याभवतां, तद्वृशस्य चैवापस्य च जन्म, स मनुरिन्द्रमब्रवीत्, स मे यज्ञꣳ
स्थापय, मा मे यज्ञो विकृष्टोऽभूदिति, सोऽब्रवीर्यत्काम एतामालब्धाः स ते कामः समृध्यता,-
—मथोत्सृजेति, ताꣳ वा उदसृजत्, तद्वध्या एवं, पात्नीवतस्त्वाष्ट्रः स्यात्, त्वाष्ट्रा हि
पशवो, ऽवाचीनं नाभ्याः कार्यो, ऽवाचीनꣳ हि नाभ्याः स्त्रिया वीर्यवद्, व्यवच्छिनाति वा
३-४
एकादशिनी यज्ञꣳ, यत् पात्नीवतः, प्रत्युत्तब्ध्यै ॥ १ ॥

अमुष्मिन्वै लोके यजमानो बुभूषत्य,—मुष्य खलु वा आदित्यस्यासौ लोको, यत् सौरीभ्यां
जुहोत्यमुष्मिन् वा एतल्लोके यजमानो भवति, द्वाभ्यां जुहोति, द्विपाद्यजमानः, प्रतिष्ठित्यै,
हिरण्यमवधाय जुहोति, हिरण्यज्योतिषमेवैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयति, बद्धेन जुहोति, दक्षि-
णानाꣳ वा एषोऽन्वारम्भो, द्यां गच्छ स्वर्गच्छेत्यु,—द्रवति, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, रूपꣳ
वो रूपेणाभ्येमीति, रूपꣳ हिरण्यꣳ, रूपं पशव,—स्तुथो वो विश्ववेदा विभजत्वित्ये,—षं
वै तुथो विश्ववेदा यदग्नि,—रेषं वै तꣳ वेद या दक्षिणीयो, योऽदक्षिणीयं, एतत्ते अग्ने राध
एति सोमच्युतमित्य,—ग्नीधे वा एतद्दीयते, तत् सोमश्च्यावयति, तन्मित्रस्य पथा नयेत्ये,—षं
वै मित्रस्य पन्था यद्यज्ञ, आग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्या,—ग्नेयꣳ ह्याग्नीध्रꣳ, वारुण्या द्वितीयया,
यद्धेनो वा रथो वा दीयते वारुणꣳ हि तद्, ऋतस्य पथा प्रेतेत्ये,—षं वा ऋतस्य पन्था यद्यज्ञ-
श्चन्द्रदक्षिणा इति, चन्द्रꣳ हि दीयते, ब्राह्मणमद्य ऋध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमित्ये,—षं वै
ब्राह्मणः पितृमान् पैतृमत्यो य आर्षेयः शुश्रुवा,—न्त्सुधातुदक्षिणमिति, सुधात्वेवास्य यज्ञे दधाति,
वि स्वः पश्य, व्यन्तरिक्षमित्य,—द एवं प्राप्य वदति, यतस्व सदस्यैरित्य,—रातीयन्ति
वा एवं एतस्मै ददत, ईश्वरा ब्राह्मणाः सोमपाश्चधुषापहन्तो,—स्तानेवं शमयत्य,—स्मद्राता
मधुमतीर्देवत्रा गच्छत, प्रदातारमाविशतेति, तथा हैनममुत्रागच्छन्ति, बहुमया यज्ञकुणपी,—

[२] मै. १,३,३७ । तै. सं. ६,६,१ । कपि. ४४,४ । वा. ७,४५-४६ । काण्व. ९,१०—११ ।

ति ह स्माह यज्ञवचा राजस्तम्बायनः, प्र वा इतो मनुष्या दक्षिणाश्च्यावयन्ति, नामुत्र
गछन्तीति, यदाहा,—ऽनवहायास्मान् देवयानेन पथा सुकृतां लोके सीदत, तन्नः सꣳस्कृत-
५
मिति, तथा हैनमिहं चामुत्र चागछन्ति ॥ २ ॥

घ्नन्ति वा एतत्सोमꣳ यदभिषुण्वन्ति, यज्ञꣳ वा एतद् घ्नन्ति, यद्दक्षिणा दीयन्ते यज्ञꣳ
वा एतद्दक्षयन्ति, तद्दक्षिणानां दक्षिणात्वꣳ, यच्चदक्षयन्ति, स्वर्गो वै लोको माध्यंदिनꣳ
सवनꣳ, यन्माध्यंदिने सवने दक्षिणा दीयन्ते, स्वर्गस्य लोकस्याक्रान्त्यै, बहु देयꣳ,
सेतुꣳ वा एतत् कुरुते, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, हिरण्यꣳ हस्ते भवत्यं,—ग्र नयति,
सत्यꣳ वै हिरण्यꣳ, सत्येनैवैना नयत्यं,—ग्रेण गार्हपत्यं, जघनेन सद,—स्ता उदीचीरुत्सृ-
जन्त्यन्तरा चात्वालं चाग्नीध्रं चै,—तेन वा अङ्गिरसः स्वर्गं लोकमायꣳ,—स्तमेवैना पन्थामपिन-
यति, द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोती,—मां तेनाक्रमत, आग्नेय्याग्नीध्रे, ऽन्तरिक्षं तेना,—ऽथ यद्द-
क्षिणा दीयन्ते स्वर्गं तेन लोकं,—मग्नीधेऽग्रे ददाति, यज्ञमुखꣳ वा अग्नीद्, यज्ञमुखमेवं नापा-
रा,—दथो अग्निर्वै सर्वा देवता, देवता एवास्य तयाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, ब्रह्मणे ददाति,
प्राजापत्यो वै ब्रह्मा, प्रजापतिमेवं तया प्रीणात्यृ,—त्विग्भ्यो ददाति, होत्रा एवं तया प्रीणाति,
याꣳ सदस्येभ्यो ददाति सोमपीथं तया निष्क्रीणीते, यामार्षेयाय शुश्रुवुषे ददाति छन्दाꣳसि तया
प्रीणाति, न हि तस्मादर्हन्ति सोमपीथं निष्क्रीयꣳ, यामार्षेयाय शुश्रुवुषे ददाति देवलोके तया
ऋध्नोति, यामनार्षेयाय शुश्रुवुषे मनुष्यलोके तया, यामप्रसृप्ताय ददाति वनस्पतयस्तया प्रथन्ते,
याꣳ याचमानाय ददाति भ्रातृव्यं तया जिन्वति, यां भीषा क्षत्रे तया नह्याति, यां प्रविनुदते
सा व्याघ्री दक्षिणा, यत्तां पुनः प्रतिगृह्णीयाद् व्याघ्र्येनं भूता प्रव्लिनीया,—दन्यया सह
प्रतिगृह्या, तथा हैनं न प्रव्लिनाति, यदजं ददात्या,—ग्नेयो वा अजो, ऽग्नेरेवं तेन प्रियं
धामोपैति, यदवि ददात्यन्तरिक्षं तेनापजयति, यद्गां ददाति, वैश्वदेवी गौ,—र्विश्वेषां
देवानां तया प्रियं धामोपैति, यद्वासो ददाति, सर्वदेवत्यꣳ वै वासो, देवता एवास्य
तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति, यत् कृतान्नं ददाति माꣳसं तेन निष्क्रीणीते, यदनो वा रथꣳ वा
शरीरं तेन, यद्धिरण्यं ददात्यायुस्तेन वर्षीयः कुरुते, यदश्वं ददाति, प्राजापत्यो वा अश्वः,
प्रजापतेरेवं तेन प्रियं धामोपैत्यं,—थो अमुष्यादित्यस्य लोकं जयत्य,—न्तश्चः प्रतिहर्त्रे देयꣳ,
रौद्रो वै प्रतिहर्ता, यन्मध्यतः प्रतिहर्त्रे दद्यान्मध्यतो रुद्रमन्ववनयेत्, तस्मादन्ततः, प्रतिहर्त्रे

[३] मै. १,३,३७ । तै. सं. ६,६,१ । कपि ४४,४—५ ।

देवा२, स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसाविध्यत्, तमत्रिरन्वपश्यद्, यदात्रेयाय हिरण्यं
ददाति तम एवापहत्य, ऽथो ज्योतिरुपरिष्टाद्दधाति, स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै ॥ ३ ॥ ६

विश्वरूपो वा एतन्त्वाष्ट्रो यज्ञस्य व्यृद्धममन्यत, यदृक्सामे व्युह्येते स एतान्यपश्यद्, यज्ञस्य
निष्कृत्यै, यदेवात्र यज्ञस्य व्यृद्धं तस्यैतानि निष्कृत्यै हूयन्ते, षडृग्म्याणि भवन्ति, षड्वा
ऋतव, ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति, त्रीणि यजू२षि, त्रीणि वै सवनानि, सवनान्येवा-
प्नोति, नवैतानि समिष्टयजू२षि जुहोति, नवभिर्बहिष्पवमाने स्तुवते, तन्नव, नव
प्राणाः, प्राणानेवात्मन् धत्त, ऊर्ध्वस्तिष्ठन् जुहोत्यू,—र्ध्वो हि तिष्ठन् वीर्यवत्तरो, यं द्विष्यात्
तस्य तूष्णीं तिष्ठन् जुहुयाद्, प्राणानस्यान्तरेति, संततं जुहोति, प्राणाना२ संतत्या,
अविच्छिन्दन् जुहोति, प्राणानामविच्छेदाय, यद्विच्छिन्द्यात् प्राणान् विच्छिन्द्याद्, यं द्विष्यात्तस्य
विच्छिन्द्यात्, प्राणानस्य विच्छिनत्ति, समानेन विग्राहं जुहोति, समानो ३ह्यमे प्राणा, यज्ञस्य
वा एता आर्णी, एतौ वै विश्वामित्रो यज्ञस्यार्णी अपश्यत्, तद् यज्ञस्यैवैता आर्णी क्रियेते,
यतो यज्ञ आदीयेत तत् पुनर्निधेया, इति ह स्माह भरद्वाजो, यतो वा एतद्यज्ञ आदीयते
तत् पुनर्निधीयते ॥ ४ ॥ ७

पञ्चसवनो वै यज्ञ,—स्त्रीणि सवनान्यवभृथो, ऽनूब३न्ध्या सवनानां पञ्चमी, पाङ्क्तो
यज्ञो, यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते तद्वरुणो गृह्णात्य,—तिरिक्त२ वा एत-
द्यज्ञस्य यदृजीषो, ऽधिषवणमाधिषवणे, तस्मात्तेनावभृथमभ्यवयन्त्य,—३पोऽभ्यवयन्त्या,—पो
हि वरुणः, स्थावरा अभ्यवयन्ति, ता हि साक्षाद्वरुणो, यद्वहन्तीरभ्यवेयुः पशून्निर्वहेयु,—
रथ यत् स्थावरा अभ्यवयन्ति, पशूनामनिर्वाहाया,—ऽपो वै वरुणो, वातो वरुणो, यदु-
दञ्चोऽवभृथमभ्यवेयुरमीयतः प्रजा वरुणो गृह्णीया,—दथ यद्दक्षिणावभृथमभ्यवयन्ति यजमानस्य
निर्वरुणत्वायो,—रु२ हि राजा वरुणश्चकारे,—ति चात्वालात् प्रयन्तो वदन्त्ये,—ष वा अपरिपरः
पन्था अरक्षस्यो येनासा आदित्य एत्य,—ध्व वा एतदादित्यस्य पथ इति, शतं ते राजन्
भिषजः सहस्रमित्य,—पः पुरा दध्य वदन्त्य,—पो वा एतद्रूपन्ति, पूताभिराभिः पूताश्चरन्त्ये,-
—ककपाला भवन्ति, न वै पुरुषः कपालैराप्य, एकधैवैनमाप्नोत्य,—थो एका वा इयं,—

[४] मै. १,३,३८ ; तै. सं. ६,६,१ ।
[५] मै. १,३,३९ ; तै. सं. ६,६,३ ; कपि. ४५,५ ; का. ८,२३,२४,२७ ; १०,१९,२३ ; ३८,२५ । काण्व. ९,२३,
२५—२६ ; २२,४,७ ; ३८,२४ ।
[उरुं हि राजा० । म. १,२४,८. तै. सं. १,४,४५,१]

मस्यामेव प्रतितिष्ठति, तृणं प्रास्य जुहोत्य,—ग्निमत्येव जुहोत्यायतनवत्य,—न्धोऽध्वर्युः स्याद्,
यदनायतने जुहुया,—दपबर्हिषः प्रयाजान् यजति, प्रजा वै बर्हिः, प्रजा एव मृत्योरुत्सृजत्या,-
—ज्यभागौ यजति, यज्ञतायै, वरुण२ यजति, निर्वरुणताया, अग्नीवरुणौ यजत्यु,—
भयत एवैन२ वरुणान् मुञ्चति, नानुयाजान् यजति, न स२स्थापयन्त्य,—तिरिक्तमिव हि
तन्मन्यन्ते, समुद्रे ते हृदयम३प्स्वन्त,—रिति सह स्रुचोपमारयति, यदेवात्र क्रूरं क्रियते तच्
शमयत्य,—वभृथ निचुङ्कुणेत्य,—वभृथ एवास्यैष, ततो य ऋजीष उत्प्लवते तं भक्षयन्ति,
सोमपीथमिव हि तन्मन्यन्ते, वरुणो वा ऋजीषो, यद्भक्षयेद्वरुणमात्मन्यञ्जीत, तदाहु,—र्भ-
क्षयितव्यमेव, पशवो वा ऋजीषः, पशूनेवात्मन्यङ्क्ता इति, विचृत्तो वरुणस्य पाशा इति,
वरुणपाशमेव विष्यति, प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशा इति, वरुणपाशमेव प्रत्यस्यति, नमो वरु-
णस्य पाशायेति, वरुणपाशायैव नमोऽक,—रङ्गिरसो वा उत्तिष्ठतो रक्षा२स्यनूदतिष्ठ२,—स्तान्वा
एतेन बृहस्पतिरन्ववैत्, तेनैभ्यो रक्षा२स्यपाहन्, यदेतेनान्ववैति, रक्षसामपहत्यै, यद्-
ध्वस्तोभं तेन बार्हस्पत्यं,—मथ यत् त्रिस्तोभं, त्रयो वा इमे लोका, एभ्यो वा एतल्लोकेभ्यो
यज्ञाद्रक्षा२स्यपहन्ति, यदतिछन्दसा, सर्वाणि वै छन्दा२स्यतिछन्दाः, सर्वैर्वा एतच्छन्दो-
भिर्यज्ञाद्रक्षा२स्यपहन्ति, यदाग्नेय्या,—ग्निर्वै सर्वा देवताः, सर्वाभिर्वा एतद्देवताभिर्यज्ञाद्रक्षा२-
स्यपहन्त्य,—३पोऽभ्यवयन्त्या,—पो वै रक्षोघ्नी,—रपो रक्षा२सि न तरन्ति, रक्षसामपहत्या,
अनपेक्षमाणा आयन्ति, वरुणस्याननववायाय, परोगोष्ठं मार्जयन्ते, परोगोष्ठमेव वरुणं निर-
वदयन्ता, एधोऽस्येधिषीमहीति, निर्वरुणा एव भूत्वैधितमुपयन्ति, समिदसि, समेधिषी-
महीति, समिद्ध्या एव ॥ ५ ॥ ८

यः कामयेत, सर्वो मे यज्ञः स्यात् सरसा इति, स एतास्तिस्रो वशा आलभेत, यज्ञस्य
सर्वत्वाया,—ऽथो सरसत्वाय, वैश्वदेवीं मध्यत आलभेत, रेतो वा एतन्मध्यतो दधाति,
मध्यतो हि रेतोऽनिरुक्तया प्रचरन्त्य,—निरुक्तमिव हि रेतो, यातयाम२ वा एतस्य देवताश्च ब्रह्म
च, यद्वैश्वदेवीं च बार्हस्पत्यां च वशे भवतो, देवतानां च ब्रह्मणश्चायातयामत्वाय, दुग्धानि
वा एतस्य छन्दा२सि यातयामानि भवन्ति, छन्दस्येव रसं दधाति, बार्हस्पत्यामन्तत आल-
भेत, ब्रह्म वै बृहस्पति,—र्ब्रह्मणि वा एतदन्ततो यज्ञस्य यजमानः प्रतितिष्ठति, यद्वै यज्ञः
संतिष्ठते मित्रोऽस्य स्विष्ट२ युवते, वरुणो दुरिष्ट२, यन्मैत्रावरुण्यनूब३न्ध्या भवति मित्रेण वा

[६] कपि. ४५, ६ ।

एतन्मित्राद्यज्ञस्य स्विष्टं मुञ्चति, वरुणेन वरुणाद्दुरिष्ट,—मुभयत एनं मुक्त्वा यजमानाय प्रयच्छति,
यथा वै लाङ्गलेनोर्वरां प्रभिन्दन्त्येवमृक्सामे यज्ञं प्रभिन्दन्ति, यथा मत्यमन्ववास्यत्येवमेषा
यज्ञस्य, यदुष्टुत२ यदशस्त२ यद्विलोमं यदुदृता कल्पयति, विदेशे वा ईजानः, सदेवोऽनी-
जाना, आ ह्यनीजाने देवता श२सन्ते, यथा वा अनड्वान् विमुक्तोऽपक्रामत्येवमीजानाद्देवता
अपक्रामन्ति, यदाग्नेय उदवसानीयो भवत्य,—ग्निर्वै सर्वा देवता, देवता एव पुनरालभते,-
ऽष्टाकपालो भवति, गायत्री३ह्यग्निर्गायत्रछन्दाः, पञ्चकपालः का३यः, पाङ्क्तो यज्ञो,
यावानेव यज्ञस्तमालभ्य, यत्र वा अ३दोऽग्नौ पुरुषं प्रमीतमादधति तदेनमभि सत्य२, सर्वा
एनमन्या देवता जहत्य,—ग्निरेनं देवतानां न जहाति ॥ ६ ॥ ९

प्र वा ऋचा ह प्रयच्छति, यजुषा गमयति ग्रहेण, स्तोत्राय वा ऋक्, शस्त्राय यजुः,
संवद्धे वै स्तोत्रं च शस्त्रं च, संवद्धे ऋक् च यजुश्चो,—च्चैरृचा क्रियत, उच्चैः साम्नो,—पा२शु
यजुषा, ते देवा अमन्यन्त,—द२ यज्ञस्य शिथिरमिति, तत् पुरोरुचमुपादधु,—रशिथिरत्वाय,
देवता वै सर्वा आश२सन्ते ग्रहे गृह्यमाणे, मह्यं गृह्णाति मह्यं गृह्णातीति, यत् पुरोरुग, देव-
ताना२ व्यावृत्त्यै ॥ जीवा नाम स्थ, ता इमं जीवयत, जीविका नाम स्थ, ता इमं
जीवयत, संजीवा नाम स्थ, ता इम२ संजीवयत ॥ इति यवानेकवि२शतिं दर्भपिञ्जूलानि
चात्वाले परिहृत्य,—दशाभिमन्त्रयेत ॥ प्राणापानौ त उपा२श्वन्तर्यामौ पाता२, व्यानं
त उपा२शुसवनः पातु, वाचं त ऐन्द्रवायवः पातु, दक्षक्रतू ते मैत्रावरुणः पातु, श्रोत्रं त
आश्विनः पातु, चक्षुषी ते शुक्रामन्थिनौ पाता,—मात्मानं त आग्रायणः पात्व,—ङ्गानि त
उक्थ्यः पात्वा,—युस्ते ध्रुवः पातु, स्तनौ त ऋतुपात्रे पातां, मूर्धानं ते द्रोणकलशः पातु,
कुक्षी ते कलशौ पातां, पृष्टपते चक्षुषे चक्षुः सने सानि२ वाचे वाचं प्राणाय प्राणं पुनर्देह्यस्मै
स्वाहा ॥ इति जुहुया,—देतद्ध स्म वा आह वासिष्ठः सात्यहव्यः, पात्रेषु वा अहं तद्ब्राह्मण२
वेद, यथा पुरुषः सकृदाहितमादधीत सर्व२स्यैव कुर्यात् ततः पुरा, यत् पुनः कुर्वीत प्रमीयेत,
यद्यु म्रियेरन्देवदेवे यज्ञक्रतुत्वायाभिमन्त्रयेत ॥ पुनस्तिरश्चा ॥ ७ ॥ १०-१५

पुनरन्यानि पात्राणि प्रयुज्यन्ते, नान्यानि, यानि पुनः प्रयुज्यन्ते तान्यस्मै लोकाय,
यानि न पुनः प्रयुज्यन्ते तान्यमुष्मै लोकाया,—ऽथैतदुक्थ्यपात्रं पुनः प्रयुज्यत, आरण्यान्वा

[८] तै. सं. ६,५,११ ।

एतत् पशून् प्रत्या,—रण्यानेवैतेन पशून् दाधार, यदेतत् पुनः प्रयुज्यते तस्मादेतान् पश्यतः
परीत्य मन्त्य,—थैतदृतुपात्रं पुनः प्रयुज्यते, ऽश्व२ वा एतत् प्रत्य,—श्वमेवैतेन दाधार, यदे-
तत् पुनः प्रयुज्यते तस्मादेतस्याश्वस्येवाधस्ताच् शफौ, ऽथैतदादित्यपात्रं पुनः प्रयुज्यते, गा२
वा एतत् प्रति, गामेवैतेन दाधार, यद्भूयिष्ठाभिर्ऋग्भिर्भूयिष्ठः सोमो गृह्यते तस्माद्गौर्हन्यमा-
नाद्यमाना पशूनां भूयिष्ठा,—ऽथैतच्छुक्रपात्रं पुनः प्रयुज्यते, पुरुष२ वा एतत् प्रति,
पुरुषमेवैतेन दाधारा,—ऽसौ वा आदित्यः शुक्रो, रश्मय ऋतवो, ऽन्तरमृतुपात्र२, शुक्रपात्रं
पुनः प्रयुज्यते, ऽन्तरे३ह्यमुष्मादादित्याद्रश्मयो, ऽथैतदुपा२शुपात्रं पुनः प्रयुज्यते, ऽवि२ वा
एतत् प्रत्य,—विमेवैतेन दाधारा,—ऽथैतदन्तर्यामपात्रं पुनः प्रयुज्यते, ऽजा२ वा एतत् प्रत्य,-
—जामेवैतेन दाधार, प्रजापतिर्वा आग्रायणो, यदेष पुनः प्रयुज्यते तस्मात् प्रजापतिः प्रजा
वेद, प्रजापतेर्वा एतत् पात्र२ यद् द्रोणकलशो, यदेष पुनः प्रयुज्यते तस्मादयं क्षयोऽस्ति,
सप्त वै पात्राणि पुनः प्रयोगमर्हन्ति, तानि हि बन्धुमन्ति सप्त छन्दा२सि, छन्दा२सि वाग्,
यावत्येव वाक्तामाप्नोति, सप्त छन्दा२सि, सप्त होत्राः, सप्त ग्राम्याः पशव,—स्तानेवाव-
रुन्द्धे, त्रीणि वै पात्राणि प्रत्यक्षबन्धूनि, परोक्षबन्ध्वेवान्यत् सर्वं, गायत्र्यैन्द्रवायवं,—स्त्रिष्टुप्
शुक्रो, जगत्याग्रायणो, ऽछिद्र२ स्रावयितव्यः, कामो हास्य समर्धुको भवत्य,—थो
अञ्जीमूतवर्षी पर्जन्यो भवति, न चमसमभ्युपाकुर्याद्, यच्चमसमभ्युपाकुर्याद्गर्भमृतः प्रजाः स्यु,-
—र्यैनैवाग्रे सर्पन्ति तेन पुनः सर्पेयु,—र्यदन्येन सर्पेयुर्गर्भा वेष्टुकाः स्यु,—र्यूपेन वा आहुतयः स्वर्गं
लोक२ यन्त्य,—ध्वर्युणा दक्षिणा, ऊर्ध्वो यूपो मीयत, ऊर्ध्वस्तिष्ठन् प्रतिगृणाति,
स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥ ८ ॥ १६

यो ज्येष्ठबन्धुः स्यात् स ऐन्द्रवायवाग्रान् ग्रहान् गृह्णीता,—ऽग्र२ ह्यैन्द्रवायवो, य आमयावी स
मैत्रावरुणाग्रान्, प्राणापानौ हि मित्रावरुणौ, यः पश्चात् सोमपीथः स आश्विनाग्रान्, पश्चेव
३ह्येतौ सोमपीथमाश्नुवाता२, यो ब्रह्मवर्चसकामः स शुक्राग्रा२,—स्तेजो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चस२,
योऽभिचरेत् स मन्थ्यग्रा,—नार्त२ वा एतत् पात्र२ यन्मन्थिपात्र२, य आनुजावरः स आग्रा-
यणाग्रा,—नग्र२ ह्याग्रायणं, एति वा एष यज्ञमुखाद्य ऐन्द्रवायवाग्रेभ्यो ग्रहेभ्योऽन्याग्रान् ग्रहान्
गृह्णीते, धारयेयुस्त२ यं कामाय गृह्णीया,—दैन्द्रवायव२ सादयेद्, यथापूर्व२ वा एतद्

[९] कपि. ४६,६ ; का. २,११;१३,५;१०,३०;१९,६,२३,१८ । काण्व. २,१९,१४;५,११,४५;११,५;२५,४० ।

क्रियते, न यज्ञमुखादिति, यद्याग्रायणः स्कन्देदेषु वा दस्येदितरेभ्यो ग्रहेभ्यो निर्गृह्णीयाद्, यथा पिता पुत्रान् क्षित उपधावत्येवं तद्, यदीतरे ग्रहाः स्कन्देयुरेषु वा दस्येयुराग्रायणान्निर्गृह्णीयाद्, यथा पुत्राः पितरं क्षित उपधावन्त्येवं तद् द्रोणकलशान्निर्गृह्णन्त, एष वा एतेषाꣳ योनिः, स्वादेव योनेर्निर्गृह्णन्ते, ऽस्कन्नत्वाय, सोमः स्कन्त्स्यति, तमितो ग्रहीष्यामीति, तस्य वा एष परिशये, यदा वा एतमुवनयत्यथैष उभयतःशुक्रो, ऽथो सर्वतःशुक्रः, पशुभिर्वा एष व्यृध्यते यस्य सोमः स्कन्दति, व्यस्य यज्ञश्छिद्यते, पशवो वै पृषदाज्यꣳ, यत् पृषदाज्यं जुहोति, पशुभिरेवैनꣳ समर्धयति, मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य विच्छिन्नꣳ यज्ञꣳ समिमं दधात्विति, यज्ञमेव संदधाति ॥ वर्धतां भूतिर्दध्ना घृतेन मुञ्चतु यज्ञꣳ यज्ञपतिमꣳहसः । स्वाहा ॥ इति जुहुया,—दिर्यꣳ वा एतद्यज्ञस्य गृह्णाति यदाछेती,—यं भूति—रस्या एवैनदधि मुञ्चति, द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामित्य,—भिमृशति, होत्रास्वेवैनत् प्रतिष्ठापयति, त्रयस्त्रिꣳशद्३पोऽन्वतिपिञ्चत्या,—पो हि यज्ञो, यज्ञꣳ वा एतस्य विभ्रशते यस्य पशुꣳ विभ्रशते, व्यस्य यज्ञश्छिद्यते, यदुवदानं न विन्देत्तदाज्यस्यावद्येत्, सर्वा वा अन्या देवता यातयाम्नीः, प्रजापतिरेवायातयामा, प्राजापत्यमाज्यं, प्राजापत्या देवाः, प्रजापतिहुतमेवास्य भवति, यदि कामयेत, यं पशुꣳ व्यमाथिषत तं आर्तिमार्छेयुरिति, कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिदिति, नमउक्तिमत्य ऋचाग्नीध्रे जुहुया,—न्नमउक्तीरेवैषाꣳ वृङ्क्ते, ताजगार्तिमार्छन्त्यं,—थैषाष्टापदी, यद्गर्भस्यावद्येद्वदानान्यतिरेचयेद्, यन्नावद्येत् प्रोक्षितस्य हविषो नावद्येद्, रसेन जुहोत्यं,—त्र प्रोक्षितस्य हविषो यति, नावदानान्यतिरेचयति॥९॥१७-१९

यथा वै शालैवꣳ सꣳवत्सरं,—स्तस्य यथा पक्षसी एवं पक्षसी, यथा मध्यमो वꣳशं एवं दिवाकीर्त्यꣳ, यथा वा इदꣳ शालायाः पक्षसी मध्यमꣳ वꣳशमभिसमागच्छन्त्येवꣳ वा एतत् सꣳवत्सरस्य पक्षसी, दिवाकीर्त्यमभिसंतनोति, यथा मध्यमो वꣳशं एवं दिवाकीर्त्यꣳ, यदेषं शिथिरः स्यादवशीर्येत, यदेतस्मिन्नहन्येते ग्रहा गृह्यन्ते, ऽह्नो द्रढिम्नेऽशिथिरत्वाय, शुक्राग्रा एतदहर्ग्रहा भवन्ति, त्रैष्टुभो वै शुक्र,—स्त्रैष्टुभमेतदहः प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्त्वाय, सौर्यो ग्रहो गृह्यते, सौर्यः पशुरालभ्यते, ऽसा आदित्य एतदह,—स्तꣳ साक्षादाप्नोति, षड् ग्रहा गृह्यन्ते,

[द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवी० । ऋ. १०,१७,११; अथर्व. १८,४,२८; तै. सं. ३,१,८,३; ४,२,८,२,९,५; तै. आ. ६,६,१ । कुविदङ्ग यवमन्तो० । ऋ. १०,१३१,२; अथर्व. २०,१२५,२; तै. सं. १,८,२१,१;५,२,११,२; तै. ब्रा. २,६,१,३]

पशुः सप्तम आलभ्यते, सप्त वै शीर्षन् प्राणा, असा आदित्यः शिरः, शीर्षन् वा एतत् प्राणान् दधाती,—न्द्रो वै वृत्रमह,—न्त्स इमं लोकमभ्यजय,—दमुं तु लोकं नाभ्यजयत्, तꣳ विश्वकर्मा भूत्वाभ्यजयद्, यद्वैश्वकर्मणो ग्रहो गृह्यते, ऽमुष्य लोकस्याभिजित्यै, यन्ति वा ए३तेऽस्माल्लोकाद्ये वैश्वकर्मणं ग्रहं गृह्णते, पराञ्चो हि यन्तीश्वराः प्रमेतोः, श्वो भूत आदित्यं गृह्णीर,—न्नियꣳ वा अदितिरियं प्रतिष्ठा, यदादि३त्यो, ऽस्यामेव प्रतितिष्ठन्ति, तयोरन्यमन्यमा पुरोधात् पक्षसा गृह्णीरन्, विश्वमन्येन कर्म कुर्वाणा यन्ती,—यꣳ वा अदिति,—रस्यामन्येन प्रतितिष्ठन्ति, ता उभौ सहार्के गृह्णीरन्नन्तं गत्वा, ऽन्तमेव गत्वोभयोर्लोकयोः प्रतितिष्ठन्त्या,—दित्येनास्मिल्लोके, वैश्वकर्मणेनामुष्मिन् ॥१०॥ २०

[२३१०]

॥ इति खिलकाण्डे अष्टमः प्रपाठकः ॥ ८ ॥

अथ नवम प्रपाठकः

प्रवर्ग्यः ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे३ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ अभ्रिरसि नारिरसि ॥
२-३
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ ४
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥५
देवी द्यावापृथिवी अनु मेऽमꣳसाथा,—मृध्यासमद्य मखस्य शिरः ॥ मखाय त्वा ॥ मखस्य
त्वा शीर्ष्णे, देवीर्वम्रीरस्य भुवनस्य प्रथमजा ऋतावरी,—र्ऋध्यासमद्य मखस्य शिरः ॥ मखाय
त्वा ॥ मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ इयत्यग्र आसीदतो देव्य,—ध्यासमद्य मखस्य शिरः॥ मखाय त्वा॥

[१] तै. आ. ४,२-३ । वा. ५,१४;११,४;३७,२;१,१०,२१,२४,२,११,५,२१,२६,६,१,९,३०,९,३०,३८—४०;११, ९,२८;१८,३७,२०,३;३७,१;३८,१,११,१०,३४,५६;३३,८९,३७,३—१९,११,६०—६३,५७,६५;३८,१७ । कान्व. ५,१९;१२,४;३७,२,१,१३,३६,४०;२,२२,५,२८,३३;६,१,१०,४३;१०,३९,११,४;१२,९,२८;२०,७; २१,९३,३७,१;३८,१;१२,२०;३३,४४;३७,३-१०; ११,५९,६१-६६;३८,१७ । [युञ्जते मन उत० । ऋ. ५, ८१,१; तै. सं. १,२,१३,१; ४,१,१,१; तै. आ. ४,२,१ । देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२ । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० । ऋ. १,४०,१; तै. आ. ४,२,२ । प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः० । ऋ. १,४०,३; सा. ५६; तै. आ. ४,२,१]

मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ इन्द्रस्यौजोऽसि प्रजापते रेतः ॥ ऋध्यासमद्य मखस्य शिरः ॥ मखाय त्वा ॥
मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ मधु त्वा मधुला कृणोतु ॥ मखस्य शिरोऽसि ॥ यज्ञस्य पदे स्थः ॥ गायत्रो
ऽसि ॥ त्रैष्टुभोऽसि ॥ जागतोऽसि ॥ मखस्य रास्नासि ॥ सूर्यस्य रसा आश्रयस्व ॥ वृष्णो अश्वस्य
निष्पदासि, वृष्णस्त्वाश्वस्य निष्पदा धूपयामासि ॥ वरुणस्त्वा धृतव्रतो धूपयतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण
धर्मणा ॥ अदितिष्ट्वा देवी विश्वदेव्यवती पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्खनत्ववट, देवानां त्वा
पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यवतीः पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वद्दधतु महावीरान् ॥ ६-२८
अर्चिषे त्वा शोचिषे त्वा ज्योतिषे त्वा हरसे त्वा ।
अभीमान्महिना दिवो मित्रो बभूव सप्रथाः ॥ २९
३०
उत श्रवस आ पृथिवीम् ॥
मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ३१
देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः । सुबाहुरुत शक्त्या ॥ ३२
ऋजवे त्वा, साधवे त्वा, सुक्षित्यै त्वा ॥ इदमहममुमामुष्यायणं तेजसा ब्रह्मवर्चसेन पर्यूहामि ॥ इदमहममुमामुष्यायणꣳ विशा क्षत्रेण पर्यूहामि ॥ इदमहममुमामुष्यायणं प्रजया पशुभिः पर्यूहामि ॥ छृणत्तु त्वा वाक्, छृणत्तु त्वोर्क्, छृणत्तु त्वा हविः ॥ देवपुरश्चरस, ऋध्यासं
३३-३८
त्वा ॥ १ ॥
नमो वाचे, नमो वाचस्पतये, या चोदिता या च नोदिता तस्यै वाचे नमो, नमा ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो, मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्रादु,—र्दैवीꣳ वाचमुद्यासं जुष्टां देवेभ्यः स्वधावरीं पितृभ्योऽनुमतान्मनुष्येभ्य,—स्तन्मा देवा अवन्तु शोभायि, पितरोऽनुमदन्तु ॥ गायत्रीं छन्दः प्रपद्ये, त्रिष्टुभं छन्दः प्रपद्ये, जगतीं छन्दः प्रपद्ये, ऽनुष्टुभं छन्दः प्रपद्ये, पङ्क्तिं छन्दः प्रपद्ये, छन्दाꣳसि छन्दः प्रपद्ये ॥ तानि नोऽवन्तु, तानि नः पालयन्तु, तानि सा ऋच्छतु यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ ब्रह्मन् प्रवर्ग्येण प्रचरिष्यामो, होतर्घर्ममभिष्टु,—ह्याग्नीद्रौहिणौ पुरोडाशावधिश्रय, प्रतिप्रस्थातर्विहर, प्रस्तोतः सामानि
३९-४२
गाय ॥

[मित्रस्य चर्षणीधृतः० । ऋ. ३,५९,६; तै. सं. ३,४,११,५;४,१,६,३; तै. आ. ४,३,१]
[२] तै. आ. ४,१-४ । वा. ६,२१;२०,१९;३५,१२,३६,२३;३८,१३ । कान्व. ६,३१;२२,४;३५,४५;३६,२३;३८,१३।
[यो अस्मान् (ऽस्मान्) द्वेष्टि० । अथर्व १०,५,१५—२१,२५—३५,१६,७,५]

यजुर्युक्तꣳ सामभिराक्तखं त्वा विश्वाभिर्धीभिः संभृतं दक्षिणाभिः ।
प्रततं पारयिष्णुꣳ स्तुभो वहन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ४३
भूर्भुवः स्व,—र्देवस्य सवितुः प्रसवे, बृहस्पतिप्रसूता ॥ ४४
ओमिन्द्रवन्तः प्रचरत ॥ २ ॥ ४५
यमाय त्वा ॥ मखाय त्वा ॥ सूर्यस्य हरसे त्वा ॥ देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु ॥ पृथिव्याः
संपृचस्पाहि ॥ अर्चिषे त्वा, शोचिषे त्वा, ज्योतिषे त्वा, तपसे त्वा ॥ अर्चिरसि, शोचिरसि, ज्योतिरसि, तपोऽसि, सूर्यस्य तपस्तप ॥ ४६-५२
सꣳसीदस्व महाꣳ असि शोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषं मेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम्॥ ५३
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तो नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठा आ घर्मो अग्निरमृतो न सादि ॥ ५४
अनाधृष्टासि पुरस्ता,—दग्नेराधिपत्या, आयुर्मे दाः, पुत्रवती दक्षिणत, इन्द्रस्याधिपत्ये, प्रजां मे दाः॥ सुषदा पश्चात्, सवितुराधिपत्ये, चक्षुर्मे दाः ॥ आश्रुतिरुत्तरतो, मित्रावरुणयोराधिपत्ये, श्रोत्रं मे दाः ॥ विधृतिरुपरिष्टाद्, बृहस्पतेराधिपत्ये, वाचं मे दाः ॥ ब्रह्म मे दाः, क्षत्रं मे दाः, पयो मे दाः ॥ मनोरश्वासि भूरिपुत्रा सुपसदना, विश्वाभ्यो मा दुꣳश्राभ्यस्पाहि
॥ ३ ॥ ५५-६०
चिदसि ॥ स्वाहा मरुद्भ्यः परिश्रयस्व ॥ मासि ॥ प्रमासि ॥ प्रतिमासि ॥ विमासि ॥ संमासि ॥ उन्मासि ॥ अन्तरिक्षस्यान्तर्धिरसि ॥ दिवः संपृचस्पाहि ॥ ६१-७०
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वा । अर्हन्निष्कꣳ यजतꣳ विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमा धन्वा । ओजीयो रुद्रस्तदस्ति ॥ ७१
गायत्रोऽसि ॥ त्रैष्टुभोऽसि ॥ जागतमसि ॥ मधु । मधु । मधु ॥ रुचितो घर्मः ॥४॥ ७२-७६

[३] तै. आ. ४,५,१—५। वा. ७,४७,३—१२;३८,९,१७;११,३७ । काण्व. ९,१३;३७,३-१३,३८,९,१७;११,३७।
[सꣳसीदस्व महां (महाँ) असि० । ऋ. १,३६,९; तै. सं. ४,१,३,३, तै. आ. ४,५,२, । अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो० । ऋ. ५,४३,७; तै. आ. ४,५,१ । आयुर्मे दाः । अथर्व. २,१७,४ । चक्षुर्मे दाः । अथर्व. २,१७, ६ । श्रोत्रं मे दाः । अथर्व २,१७,५]
[४] तै. आ. ४,५,५—७ । वा. ४,१९;१९,५३;३७,१३ । काण्व. ४,२५;१३,५४;३७,१३ । [अर्हन् बिभर्षि सायकानि० । ऋ. २,३३,१०; तै. आ. ४,५,७]

दश प्राचीर्दश भासि दक्षिणा, दश प्रतीचीर्दश भास्युदीची,—र्दशोर्ध्वा भासि सुमनस्यमानः ॥ सा नः प्रजां पशून् पाह्यरणीयमानः ॥ अग्निष्ट्वा वसुभिः पुरस्ताद्रोचयतु, स मा रुचितो रोचय ॥ पितरस्त्वा यमराजानः पितृभिर्दक्षिणतो रोचयन्तु, स मा रुचितो रोचय ॥ सविता त्वादित्यैः पश्चाद्रोचयतु, स मा रुचितो रोचय ॥ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतो मरुद्भी रोचयेता२, स मा रुचितो रोचय ॥ बृहस्पतिष्ट्वा विश्वैर्देवैरुपरिष्टाद्रोचयतु, स मा रुचितो रोचय ॥ देव घर्म रुचितस्त्वं देवेष्वा, सुरुचितं मा देवमनुष्येषु कुरु, रुचं मयि धेहि, रुचिरसि, रुचोऽसि, स यथा त्व२ रुच्या रोचस एवमह२ रुच्या रोचिषीय, तवेव मे रोचमानस्य रोचो भूयासु,—र्भ्राजिरसि, भ्राजोऽसि, स यथा त्वं भ्राज्या भ्राजस एवमहं भ्राज्या भ्राजिषीय, तवेव मे भ्राजमानस्य भ्राजो भूयासु,—र्भ्राजिरसि, भ्राजोऽसि, स यथा त्वं भ्राज्या भ्राजस एवमहं भ्राज्या भ्राजिषीय, तवेव मे भ्राजमानस्य भ्राजो भूयासुः ॥ ५ ॥ ७७-८४

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ८५

गर्भो देवानां जनिता मतीनां पतिः कवीनां पतिः प्रजानां धर्ता क्षत्रस्य ॥ सं देवो देवेन सवित्रा यजत्र सं२ सूर्येण रोचते ॥ इदं त्वा, मनसे त्वा, दिवे त्वा, सूर्याय त्वा ॥ ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ॥ धर्ता दिवो रजसो विभाति धर्ता, पृथिव्या धर्तोरोरन्तरिक्षस्य धर्ता ॥ देवो देवानाममर्त्यस्तपोजा अप्सु प्रावीः ॥ विश्वासां भुवां पते विश्वस्य भुवनस्पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते विश्वस्य ब्रह्मणस्पते ॥ देवश्रुत्त्वं देव घर्म देवान् पाहि तपोजान् ॥ वाजमस्मिन्नियंसिहि देवायुवम् ॥ मधु माध्वीभ्यां, मधु माधूचीभ्यां, मधुमान् देववीतये ॥ सममिरग्निनागत, सं देवो देवेन सवित्रा यजत्र, सं२ सूर्येणारोचिष्ट स्वाहा ॥ सममिस्तपसागत, सं देवो देवेन सवित्रा यजत्र, सं२ सूर्येणायुक्था,—ऽऽयुर्दास्त्वमस्मभ्यं घर्म वर्चोदा असि, पितासि पिता नो बोधिषीमहि त्वा, नमस्ते अस्तु, मा मा हि२सीः ॥ त्वष्ट्रिमन्तस्त्वा सपेम ॥ ६ ॥
८६-९८

[५] तै. आ. ४,६ । वा १६,६४—६६ । काण्व. १७,६४ ।
[६] तै. आ. ४,७,१—५ । वा. ३७,१४—२०,३,६३;१८,४३,२०,१,३८,१६ । काण्व. ३७,१४—१९;२०;२३;२१, ९३;३८,१६ । [अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा० । ऋ. १,१६४,३१; १०,१७७,३, अथर्व. ९,१०,११; ऐ. आ. २,६; तै. आ. ४,७,१. नि. १४,३]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे३ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥ अदित्यै रास्नासि ॥ इडा एह्य,—सावेह्य,—दिता एह्य,—सावेहि, सरस्वत्येहु,—सावेहि ॥ ९९-१०१
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ॥ १०२

अदित्या उष्णीषमसि ॥ पूषा त्वोपावसीदतु ॥ वायुरस्य,—श्विभ्यां प्रधापय ॥ घर्माय शंक्ष्व ॥ बृहस्पतिष्ट्वोपसीदतु ॥ दानवः स्थ ॥ पेरवः स्थ ॥ अश्विभ्यां पिन्वस्व ॥ सरस्वत्यै पिन्वस्वे,—न्द्राय पिन्वस्वे,—न्द्राय पिन्वस्व ॥ उप मेहि सहोजो भागेन ॥ मधुहविरसि, स्वाहा त्वा वाताय सूर्यस्य रश्मये सिता वृष्टिसनये संजुहोमि स्वाहा ॥ इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत्रा वेट् ॥ गायत्रमसि ॥ त्रैष्टुभमसि ॥ जागतासि ॥ द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिगृह्णामि ॥ अन्तरिक्षेणोपयच्छामि ॥ दिविस्पृङ् मा मा हि२सीः ॥ अन्तरिक्षस्पृङ् मा मा हि२सीः ॥ पृथिवीस्पृङ् मा मा हि२सीः ॥ तेजोऽसि, तेजोऽनुप्रेहि ॥ ७ ॥ १०३-१२३

सलिलाय त्वा वाताय स्वाहा, ऽर्णवाय त्वा वाताय स्वाहा, सिन्धवे त्वा वाताय स्वाहा, समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा, शिमिद्वते त्वा वाताय स्वाहा, कुमुद्वते त्वा वाताय स्वाहा, ऽवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा, दुवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा, ऽनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा, ऽप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा, ऽग्नये त्वा वसुमते स्वाहा, सोमाय त्वा रुद्रवते स्वाहे,—न्द्राय त्वा मरुत्वते स्वाहा, यमाय त्वा पितृमतेऽङ्गिरस्वते स्वाहा ॥ सवित्रे त्वर्भुमते विभुमते वाजवते बृहस्पतिवते विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ अहः केतुना जुषता२, स्वर्ज्योतिर्जुषता२ स्वाहा ॥ रात्रिः केतुना जुषता२, स्वर्ज्योतिर्जुषता२ स्वाहा ॥ ८ ॥ १२४-१२७

दिवि धा इमं२ यज्ञ,—मिमं२ यज्ञं दिवि धाः, स्वस्ति घर्माय, स्वस्ति घर्मपित्रे ॥ विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान् देवानयाडिह ॥ ओं श्रावय ॥ अस्तु श्रौषट् ॥ घर्मस्य यज ॥ अश्विना घर्मं पिबत२ हार्द्वानु,—मनु मां द्यावापृथिवी अनु मेऽम२साता,—मिहैव रातयः सन्ति सं२ यजुर्भिः, स्वाहेन्द्राय, स्वाहेन्द्राय वेट् ॥ स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मध्वः पिबतमश्विना, घर्ममपातमश्विना, वहद्दिव्याभिरूतिभिः स्वं पेद्रेव२ यथा वेट् ॥ इषे पिपीहि ॥ ऊर्जे पिपीहि ॥ अस्मै ब्रह्मणे पिपीहि ॥ अस्मै क्षत्राय पिपीहि ॥ इष ऊर्जे पिपीहि ॥ सुभूताय पिपीहि ॥ ब्रह्मवर्चसाय पिपीहि ॥ अस्यै विशे

[७] तै. आ. ४,८ । वा. ३८,१—६ । काण्व. ३८,१—६ । [देवस्य त्वा सवितुः० । अथर्व. १९,५१,२]
[८] तै. आ. ४,९ । वा. ३७,२१;३८,७—९,१६ । काण्व. ३७,२०;३८,७—९,१६ ।
[९] तै. आ. ४,९,३; ४,१० । वा. ३,६३;१८,५३,३७,२०;३८,८—१६;९,२०;१८,२८ । काण्व. ३८,८—१६;१०; २७;१९,४०;२०,२३;३७,१९ ।

मह्यं ज्यैष्ठ्याय पिपीहि घर्मोऽसि, घर्मोऽस्म्य,—स्मे ब्रह्माणि धारय ॥ क्षत्रं धारय ॥ विशं धारय ॥ पूष्णे शरसे स्वाहा ॥ ग्रावभ्यः स्वाहा ॥ प्रतिरवेभ्यः स्वाहा ॥ द्यावापृथिवीभ्या२ स्वाहा, पितृभ्यो घर्मपेभ्यः स्वाहा ॥ रुद्राय रुद्रहोत्रे स्वाहा ॥ इन्द्र२ हविर्मधुहविरसी,—न्द्रतमेऽग्नौ स्वाहा ॥ अश्याम ते देव घर्म ऋभुमतो विभुमतो वाजवतो बृहस्पतिवतो विश्वदेव्यावतः पितृमतोऽङ्गिरस्वत, उशीमहि त्वा, नमस्ते अस्तु, मा मा हि२सीः ॥ स२साद्यमानायानुब्रूहि ॥ अह्ने स्वाहा ॥ रात्र्यै स्वाहा ॥ ९ ॥ १२८-१५५

पशूनां ज्योतिरसि विभूतं, देवत्रा ज्योतिर्मा असि ॥ वनस्पतीनामपामोषधीना२ रसो, वाजिनं त्वा वाजिन्यवनयाम्यू,—र्ध्वं मनः स्वर्ग्यम् ॥ पयोऽसि, पयस्वी भूयासम् ॥ घर्म या ते दिवि शुग्या दिवि या बृहति या स्तनयित्नौ या जागते छन्दसि या ते तामवयजे, तस्यै ते स्वाहा ॥ घर्म या तेऽन्तरिक्षे शुग्यान्तरिक्षे या वाते या वामदेव्ये या त्रैष्टुभे छन्दसि या ते तामवयजे, तस्यै ते स्वाहा ॥ घर्म या ते पृथिव्या२ शुग्या पृथिव्या२ याग्नौ या रथन्तरे या गायत्रे छन्दसि या ते तामवयजे, तस्यै ते स्वाहा ॥ प्रस्तोतः साम गाय ॥ अन्वस्य न, इत्येषा, ब्रह्मणस्त्वा परस्पाय क्षत्रस्य तन्वस्पाहि ॥ विशस्त्वा धर्मणा वयमनु परिक्रामाम सुविताय नव्यसे ॥ प्रस्तोतः साम गाय ॥ अन्वस्य न, इत्येषा, प्राणस्य त्वा परस्पाय चक्षुषस्तन्वस्पाहि ॥ श्रोत्रस्य त्वा धर्मणा वयमनु परिक्रामाम सुविताय नव्यसे ॥ प्रस्तोतः साम गाय ॥ अन्वस्य न, इत्येषा, दिवस्त्वा परस्पाय ॥ अन्तरिक्षस्य तन्वस्पाहि ॥ पृथिव्यास्त्वा धर्मणा वयमनु परिक्रामाम सुविताय नव्यसे, चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य नाभिः सदो घर्मो विश्वायुः शर्म सप्रथाः ॥ अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम, बन्धुरसि म२स्योर्धायाः ॥ शिशुर्जनधायाः ॥ शं च वक्षि ॥ परि च वक्षि ॥ घर्मैतत्तेऽन्नमेतत् पुरीषम् ॥ तेन वर्धस्व चाप्यायस्व, वर्धिषीमहि च वयमा च प्यायिषीमहि च, प्यासी यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १० ॥ १५६-१७७

रन्तिर्नामासि दिव्यो गन्धर्वे,—स्तस्य ते पद्वद्धविर्धानु,—मग्निरध्यक्षो, रुद्रो अधिपति,—र्विश्वावसु२ सोम गन्धर्वमापो दद्दृशुषीस्तदृतेनान्वायन्२,—स्तदिन्द्रस्य वै रुद्रो रारहाण आसां परि

[१०] तै. आ. ४,११ । वा. ३८,१८—२१,२३ ६,२२,२०,२९,३४,१२;३६,२३ । काण्व. ३८,१८—२१,२३,६,३२; ३२ ४,३५,३४,३६,२३ ।
[११] तै. आ. ४,११,१ । वा. १८,५३;३९,९—१०,४०—४१;७,४१—४२;८,४१,३३,३१; १३,४६;२०,१९,३३; काण्व. २०,२३; २३,१०—११,४१—४२; ८,२३—२४;९,६—७,३५,३१,१४,४८,४१,२०५;२२,८ ।
[विश्वावसु२ सोम गन्धर्वम्० । ऋ. १०,१३९,४; तै. आ. ४,११,७]

सूर्यस्य परिधी२रपोर्णु, वीरेभिरधि तन्नो गृणानो रजसो विमानो यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ॥ धिय इन्वानो धिय इन्नो अव्यात् ॥ सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अस्मव्रजानाम् ॥ प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचत् ॥ इन्दुं दक्षं परिदधाहीनाम् ॥ वार्षाहर२ साम गाय ॥ विदसि समुद्रयोनिः ॥ १७८-१८४

इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हि२सीः ॥ १८५

सोमपीथानु मेहि ॥ इडाहोत्रीय२ साम गाय ॥ पुनरूर्जा सह रय्ये,—त्येके, श्यैत२ साम गाय ॥ उदु त्यं चित्र,—मित्येके ॥ वामदेव्य२ साम गाय ॥ इममु षु त्वमस्माक२ सनिं गायत्रं नव्या२सम् ॥ अग्निर्देवेषु प्र वोच ॥ भूः स्वाहा ॥ ११ ॥ १८६-१९३

मा नो घर्म व्यथितो विव्यथीन्मा न आयुः परमवरं मानुवोनैः ।
मो ष्वन्त्वमस्मान्तरावान्मा रुद्रियासो अभि गुल्वधानः ॥ १९४

मा नः क्रतुभिर्हीडितेभिरस्मद्द्विषः सुनीथो मा परा दैः ।
मा नो अग्ने निर्ऋतिर्मा न आष्टान्मा नो द्यावापृथिवी हीडिषेथाम् ॥ १९५
उता नो मित्रावरुणा इहागतं मन्मा दीध्याना उत नः सखायो ।
आदित्यानां प्रसृतिर्हेतिरुग्रा शरा वाष्टांद्वविषा वार्णीः ॥ १९६

विधुं दद्राण२ समने बहूना२ युवान२ सन्तं पलितो जगाद ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्यामममार स ह्यः समानः ॥ १९७
जरि चेतीदभिशिषः पुरा चकृत्या आतृद ।
संधाता संधिमघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ १९८

[वीरेभिरधि (विश्वावसुरभि) तन्नो० । ऋ. १०,१३९,५; तै. आ. ४,११,७ । सस्निमविन्दच्चरणे० । ऋ. १०,१३९,६; तै. आ. ४,११,८; नि. ५,१ । पुनरूर्जा निवर्तस्व० । सा. १८३२ । सह रय्या निवर्तस्वाग्ने० । सा. १८३३ । उदु त्यं जातवेदसं० । ऋ. १,५०,१, सा. ३१; अथर्व. १३,२,१६;२०,४७,१३, तै. सं. १,२,८,२; ४,४३,१; नि. १२,१५ । चित्रं देवानां० । ऋ. १,११५,१; ऐ. आ. ३,९; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१,२,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; तै. आ. १,७,६;२,१३,१; नि. १२,१६]
[१२] तै. आ. ४,२० । वा. ११,४१—४२;१२,९—१०,४०—४१;२०,१२,३३;२२,३२ । काण्व. १२,४१—४२;१३, १०-११,४१-४२;२१,१०५;२२,८,२४,३५ । [विधुं दद्राण२ समने० । ऋ. १०,५५,५, सा. ३२५,१७८१, अथर्व. ९,१०,९; तै. आ. ४,२०,१; नि. १४,१८ । जरि चेतीदभि० (य ऋते चिद०) । ऋ. ८,१,१२, सा. २४४; अथर्व. १४,२,४७; तै. आ. ४,२०,१, कात्या. श्रौ. सू. २५,५,३०; ताण्ड. ब्रा. ९,१०,१;]

उदु तिष्ठ स्वध्वर, ऊर्ध्व ऊ षु ण, इत्येके ॥ पुनरूर्जा सह रय्ये,—त्येके ॥ उदु त्यं चित्र,
—मित्येके ॥ भूः स्वाहा ॥ भुवः स्वाहा ॥ ३स्वः स्वाहा ॥ भूर्भुवः ३स्वः स्वाहा ॥ १२ ॥
१९९-२०५

भूर्भुवः ३स्व,—र्मयि तदिन्द्रियꣳ वीर्यं, मयि रायो, मयि रक्षो, मयि दक्षो, मयि
क्रतु,—र्मयि धेहि सुवीर्यम् ॥ २०६

तिसृभिर्घर्मो विभात्याकूत्या मनसा सह, विराजा ज्योतिषा सह, तपसा ब्रह्मणा सह,
तस्य दोहमशीमहि, तस्य भक्षमशीमहि, तस्य ता उपहूता उपहूतस्य भक्षयामि ॥ १३ ॥
२०७

उदस्य शुष्माद्भानोर्नार्ण्यो बिभर्ति भारं पृथिवी न भूमीः ॥ २०८
प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाणीः ॥ १४ ॥ २०९

चिदसि ॥ बृहस्पतिष्ट्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे, तेन ऋषिणा तेन विधिना तेन छन्दसा तेन
ब्रह्मणा तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १५ ॥ २१०-२११

प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे तेन ऋषिणा तेन विधिना तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया
देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १६ ॥ २१२

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्चाꣳश्च सहसावाꣳश्च सहीयसः॥ विक्षिपः॥ विजयं विच्यं विक्षिपेत् ।
॥ १७ ॥ २१३-२१५

सꣳवत्सरोऽसि, परिवत्सरोऽसी,—दावत्सरोऽस्यु,—द्वत्सरोऽसि, वत्सरोऽसि ॥ तस्य ते

[उदु तिष्ठ स्वध्वर०। ऋ. ८,२३,५; तै. सं. ४,१,४,१ । ऊर्ध्व ऊ षु ण० । ऋ. १,३६,१३; सा. ५७; तै. सं. ४,१,४,२; तै. ब्रा. ३,६,१,२ । पुनरूर्जा निवर्तस्व० । सा. १८३२ । सह रय्या निवर्तस्वाग्ने० । सा. १८३३]
[१३] तै. आ. ४,११ । वा. ८,१२;३८,२७—२८ । काण्व. ८,१३;३८,२६-२७ ।
[१४] तै. आ. ४,१७ । [उदस्य शुष्माद्भानो॰ (०नुः) । ऋ. ७,३४,७ । प्र शुक्रैतु देवी मनीषा० । ७,३४,१]
[१५] वा. ४,१९;११,५३;१४,६,११,१४—१६,२७;१५,५७—५८,६४;२७,४५ । काण्व. ४,२५;१३,५४;१५.५,१५—१६,३१;१६,७९.८४;२९,५० ।
[१६] वा. १५,६४ । काण्व. १६,८४ ।
[१७] तै. आ. ४,२४-२५ । वा. ३९,७ । काण्व. ३९,६ ।
[१८] तै. आ.४,१९ । मा. श्री. १,६,४ । वा. २७,४५ । काण्व. २९,४९ । [सꣳवत्सरोऽसि० । अथर्व. ६, ५५,३]

मै० ५२

वसन्तः शिरो, ग्रीष्मो दक्षिणं पक्षꣳ, वर्षा उत्तरꣳ, शरत्पुच्छम् ॥ हेमन्तो मध्यꣳ, शिशिरं
प्रतिष्ठानꣳ, तस्य ते मासाश्चार्धमासाश्च ऋतवः परिवत्सराः ॥ अहोरात्रे ते कल्पेता,—मेहि,
प्रेहि, वीहि, समिहुदीची ॥ १८ ॥ २१६-२१९

असृङ्मुखो रुधिरेणाभ्यक्तो यमस्य दूतश्च वाग्विधावति ॥ गृध्रः सुपर्णः कुणपं निषेवति, यम-
स्य दूतः प्रहित एष एति, व्यसौ यो अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १९ ॥ २२०-२२१

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, प्रब्रवाम
शरदः शतꣳ, शृणुयाम शरदः शतम् ॥ २० ॥ २२२-२२३

निधायो वा३ निधायो वा३ निधायो वा३ ओं वा३ ओं वा३ ओं वा३ ए ऐ ओं स्वर्णज्योतिः
॥ २१ ॥ २२४

बृहद्भा३ बृहद्भा३ बृहद्भा३ बृहद्भा ईम् बृहद्भा ईम् बृहद्भा ईम् ॥ इम् इम् इम् स्वर्णज्योतिः
॥ २२ ॥ २२५-२२६

पृथिवी समित्, तामग्निः समिन्द्धे, साग्निꣳ समिन्द्धे, तामहꣳ समिन्धे, सा मा समि-
द्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धताꣳ स्वाहा ॥ अन्तरिक्षꣳ समित्, ताꣳ वायुः समि-
न्द्धे, सा वायुꣳ समिन्द्धे, तामहꣳ समिन्धे, सा मा समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन
समिन्धताꣳ स्वाहा ॥ द्यौः समित्, तामादित्यः समिन्द्धे, सादित्यꣳ समिन्द्धे, तामहꣳ
समिन्धे, सा मा समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धताꣳ स्वाहा ॥ दिशः समित्,
तां प्रजापतिः समिन्द्धे, सा प्रजापतिꣳ समिन्द्धे, तामहꣳ समिन्धे, सा मा समिद्धा सुस-
मिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धताꣳ स्वाहा ॥ २३ ॥ २२७-२३०

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि, तन्मे गोपाय, तच्छकेयं, तेन शकेयं,
तेन राध्यासम् ॥ वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि, तन्मे गोपाय, तच्छकेयं,

[१९] तै. आ. ४,२९ । वा. १,२५—२६;२,१५,२५;६,२२,२०,१९,३५.१२;३६,२३,३८,२३ । काण्व. १,४२-४३; २,३०,४६;६,३१;२२,४;३५,४५;३६,२३;३८.२३ । [या अस्मान् (ऽस्मान्) द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । अथर्व. ३,२७,१—६;१०,५,१६—२१,२५—३५;१६,७,५]
[२०] वा ३६,२४ । काण्व ३६,२४ । [तच्चक्षुर्देवहितं० । ऋ. ७,६६,१६;अथर्व. १९,६७,१—२; तै. आ. ४, ४२.५ । पश्येम शरदः...शतात् । ऋ. ७,६६,१६ (उत्तरार्धः); अथर्व. १९,६७,१—८]
[२१] तै. आ. ४,४० ।
[२३ तै. आ. ४ ४१,१—३ ।
[२४] तै. आ. ४,४१,३—४ । वा. १,५;२,२८ । काण्व. १,८;२,५३ ।

तेन शकेयं, तेन राध्यासम् ॥ सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि, तन्मे गोपाय,
तच्छकेयं, तेन शकेयं, तेन राध्यासम् ॥ व्रतानाꣳ व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तत्ते प्रब्रवीमि,
तन्मे गोपाय, तच्छकेयं, तेन शकेयं, तेन राध्यासम् ॥ २४ ॥ २३१-२३४
पृथिवी समित्, तामग्निः समिन्धिष्ट, साग्निꣳ समिन्धिष्ट, तामहꣳ समिन्धिष्ट, सा मा
समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धिषताꣳ स्वाहा ॥ अन्तरिक्षꣳ समित, ताꣳ वायुः
समिन्धिष्ट, सा वायुꣳ समिन्धिष्ट, तामहꣳ समिन्धिष्ट, सा मा समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा
ब्रह्मवर्चसेन समिन्धिषताꣳ स्वाहा ॥ द्यौः समित, तामादित्यः समिन्धिष्ट, सादित्यꣳ समिन्धिष्ट,
तामहꣳ समिन्धिष्ट, सा मा समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धिषताꣳ स्वाहा ॥
दिशः समित, तां प्रजापतिः समिन्धिष्ट, सा प्रजापतिꣳ समिन्धिष्ट, तामहꣳ समिन्धिष्ट,
सा मा समिद्धा सुसमिद्धा तेजसा ब्रह्मवर्चसेन समिन्धिषताꣳ स्वाहा ॥ २५ ॥ २३५-२३८
अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं, तत्ते प्राबोचं, तदशकं, तेनाशकं, तेनारात्स्यम् ॥ वायो व्रत-
पते व्रतमचारिषं, तत्ते प्राबोचं, तदशकं, तेनाशकं, तेनारात्स्यम् ॥ सूर्य व्रतपते व्रतमचारिषं,
तत्ते प्राबोचं, तदशकं, तेनाशकं, तेनारात्स्यम् ॥ व्रतानाꣳ व्रतपते व्रतमचारिषं, तत्ते प्राबोचं,
तदशकं, तेनाशकं, तेनारात्स्यम् ॥ २६ ॥ २३९-२४२
२४३
शं नो वातोऽभिवातु शं नस्तपतु सूर्यः ॥ २४४
अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्री प्रतिधीयताम् ॥
शं नो वातोऽभिवातु... शान्ति,—स्वद्वायुना शान्ति,—द्यौः शान्तिः,
पृथिवी शान्तिः, सौषधीभिः शान्ति,—रन्तरिक्षꣳ शान्ति,—स्वद्वायुना शान्ति,—द्यौः शान्तिः,
पृथिवी शान्तिः, सौषधीभिः शान्ति,—रन्तरिक्षꣳ शान्ति,—वनस्पतयः शान्ति,—विश्वे देवाः शान्ति,
सा वृष्ट्या शान्ति,—रापः शान्ति,—रोषधयः शान्ति,—वनस्पतयः शान्ति,—विश्वे देवाः शान्ति,
सा वृष्ट्या शान्ति,—रापः शान्ति,—रोषधयः शान्ति, शान्तिः सर्वशान्ति,—स्त्वयाहꣳ शान्त्या सर्वशान्त्या मह्यं
—ब्रह्म शान्ति,—ब्राह्मणाः शान्तिः, शान्तिः सर्वशान्ति,—स्त्वयाहꣳ शान्त्या सर्वशान्त्या मह्यं
द्विपदे च चतुष्पदे च शान्तिं करोमि, शान्तिरभूत्, शान्तिरसि, शान्तिर्नो अस्त्वं,—भयं
२४५
नो अस्तु ॥ २४६
आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥

[२५] तै. आ. ४,४१,४ । वा. १,५;२,२८ । काण्व. १,८;२,५३ ।
[२६] तै. आ. ४,४१,६ ।
[२७] तै. आ. ४,४२ । वा. ३६,४-६,१०-११,१४-१८;११,५०-५२;२७,१०,३९-४१;२०,२२.५०;३५,१९;३५,१४;३८,२४ । काण्व. ३६ ४-६,१०-११,१४-१८;१२,४१-५३.२९,१०.४४-४६;२२,६ ३५,२७,२३;३५,४८; ३८.२४ । [शं नो वातोऽभिवातु० (०वातु) । अथर्व. ७,६९.१ । अहानि शं भवन्तु० । अथर्व. ७,६९.१ । आपो हि ष्ठा० । ऋ. १०,९.१; सा. १८३७; अथर्व. १,५,१; तै. सं. ४,१,५,१.५,६,१.४,७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०,१.१०; नि. ९ २७] पृथिवी शान्तिः (द्यौः शान्तिः०) अथर्व. १९,९,१,१४।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ २४७
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ॥ २४८
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजं ता नः कृण्वन्तु भेषजम्॥ २४९
कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ २५०
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिदारुजे वसु ॥ २५१
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ २५२
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ २५३
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २५४
यथादित्या अꣳशुमाप्याययन्ति यथाक्षितिमक्षितयः पिबन्ति ।
एवास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ २५५
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्ता उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २५६
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षध्वम् ॥ २५७-२५८
ब्रह्मण उपस्तरणमसि, ब्रह्मणे त्वोपस्तृणामि ॥ २७ ॥ २५९
[२५९१]

॥ इति खिलकाण्डे नवमः प्रपाठकः ॥ ९ ॥

[यो वः शिवतमो० । ऋ. १०,९,२; सा. १८३८; अथर्व. १,५,२; तै. सं. ४,१,५,१;७,४,१९,४; तै. आ. ४, ४२,४;५,६.१,४;१०,१,११ । तस्मा अर गमाम वो० । ऋ. १०,९,३; सा. १८३९; अथर्व. १,५,३; तै. सं. ४,१,५,१;५.६,१,४;७,४,१९,४; तै. आ. ४,४२,४;१०.१,१२ । ईशाना वार्याणां० । ऋ. १०,९,५; अथर्व. १, ५,४; तै. ब्रा. २,५.८,५, तै. आ. ४,४२.४, । कया नश्चित्र आभुवदूती० । ऋ. ४,३१,१; सा. १६९,६८२; अथर्व. २०,१२४,१; तै. सं. ४,२,११,२; तै. आ. ४,४२,२ । कस्त्वा सत्यो मदानां० । ऋ. ४,३१,२; सा. ६८३; अथर्व. २०,१२४,२; तै. आ. ४,४२,२ । अभी षु णः सखीनां० । ऋ. ४,३१,३, सा. ६८४; अथर्व. २०,१२४,३; तै. आ. ४,४२.३ । त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ० । ऋ. ६,४७,११; सा. ३३३; अथर्व. ७.८६,१; तै. सं. १,६,१२,५ । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः० । ऋ. १,८९.६; सा. १८७५; तै. आ. १,१,१;११,३;१०, १,९ । उद्वयं तमसस्परि स्वः० । ऋ. १,५०.१०; अथर्व. ७,५३,७; तै. सं. ४,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,४,९; ३,६,४; तै. आ. ६,३,९]

अथ दशमः प्रपाठकः ।

याज्यानुवाक्याः ।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १
त्वꣳ सोमासि सत्पतिस्त्वꣳ राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ २
अग्निर्मूर्धा, भुवो यज्ञस्य ॥ ३
पिप्रीहि देवाꣳ उशतो यविष्ठ विद्वाꣳ ऋतूꣳरृतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वꣳ होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥ ४
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वꣳ हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ ५
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ६
तꣳ सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आचक्रुरग्निमूतये ॥ ७
अग्ने रक्षा णो अꣳहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ ८
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ९
वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्टो दिवि ॥ १०

[१] वा. ३३,९;३,११;१३,१४—१५;१५,२०,२३;१८,७२—७३;२६,८;२०,८४;१७,७६;१९,३८;३५,१६;२६,९; १७,८—९,३३,१५,२१,५—६ । काण्व. ३२,९,३,१८;१४,१४—१५;१६,४१,४४;२०,४२—४२;२८,८;२२, ६९;१८,७६,८,१९,११,३८;२९,३७,३५,४८,२८,१२,२९,३१;१८,९ १०;२४,१९;२३,५-६ ।
[अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्० । ऋ. ६,१६,३४; सा. ४,१३९६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २, १४,२०,१४ । त्वꣳ सोमासि सत्पति० । ऋ. १,९१,५; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । अग्निर्मूर्धा दिव० । ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२; तै. सं. १,५,५,१,४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७, १ । भुवो यज्ञस्य रजसश्च० । ऋ. १०,८,६; तै. सं. ४,४,४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१ । पिप्रीहि देवं (देवाँ) उशतो० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५;६,११,४; काठ. २,१५;१८,२१;२०,१५ । अग्ने यदद्य विशो० । ऋ. ६,१५,१४; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,६;६,१२,२ । पृथुपाजा अमर्त्यो० ऋ. ३,२७,५; तै. ब्रा. ३,६,१,३; काठ. ४०,१४ । तꣳ सबाधो यतस्रुच० । ऋ. ३,२७,६; तै ब्रा. ३,६,१, ३; काठ. ४०,१४ । अग्ने रक्षा णो अꣳहसः० । ऋ. ७,१५,१३; सा. २४; तै. ब्रा. २,४,१,६; काठ. २,१४ । त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा० । ऋ. १,९१,८; तै. सं. २,३,१४,१; काठ. २,१४ । वैश्वानरो न ऊत्या० (ऊतय) । अथर्व. ६,३५,१; आ. श्रौ. सू. २,११ । पृष्टो दिवि पृष्टो० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; ४,४,१२,५; तै. ब्रा. ३,११,६,४; काठ ११,१३]

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणा३नोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ११
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शꣳ योः ॥ १२
अग्नाविष्णू सजोषसेमा वर्धन्तु वां गिरः । द्युम्नैर्वाजेभिरागतम् ॥ १३
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियꣳ वां पाथो घृतस्य गुह्यानि नाम ।
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यत् ॥ १४
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञꣳ वष्टु धियावसुः ॥ १५
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ १६
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेषां ते सुम्नमीमहे ॥ १७
यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतमुपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टिपतिर्निविष्टस्तꣳ सरस्वन्तमवसे हुवेम ॥ १८
अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्व३ꣳ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १९
सोम गीर्भिष्ट्वा वयꣳ वर्धयामो वचोविदः । सुमृडीको न आविश ॥ २०
त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥ २१
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २२

[विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः (जातवेदा)० । ऋ. ५,४,९; तै. ब्रा. २,४,१,५; तै. आ. १०,१०,२ । अग्ने त्वं पारया नव्यः० । ऋ. १,१८९,२; तै. सं. १,१,१४,४; तै. ब्रा. २,८,२,५; तै. आ. १०,२,१ । अग्नाविष्णू महि धाम प्रियꣳ (तद्वां महित्वं०) । अथर्व. ७,२९,१-२; तै. सं. १,८,२२,१; काठ ४,१६; श्रौ. सू. अ. २, खं. ८ । पावका नः सरस्वती० । ऋ. १,३,१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४,३,१ नि. ११.२६; काठ. ४,१६ । आ नो दिवो बृहतः० । ऋ. ५,४३,११; तै. सं. १,८,२२,१;२,५,१२,१;३,१,११,२; काठ. ४, १६; २०,१५ । ये ते सरस्व ऊर्मयो० । ऋ. ७,९६,५; तै. सं. ३,१,११,३; नि. १०,२४; काठ. १९,१४, । यस्य व्रतं पशवो० । अथर्व. ७,४०,१; तै. सं. ३,१,११,३; श्रौ. सू. अ. ३, खं. ८ । अग्निः प्रत्नेन मन्मना० । ऋ. ८,४४,१२; सा. १७११; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । सोम गीर्भिष्ट्वा वयꣳ० । ऋ. १,९१,११; तै. ब्रा. ३,५,६,१; ताण्ड्य ब्रा. १,५,७; काठ. २,१४ । त्वमग्ने वीरवद्यशो० । ऋ. ७,१५,१२ । त्वं भगो ना (न) आ हि० । ऋ. ६,१३,२]

प्रेद्धो अग्ने ॥ २३
इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईꣳ सुरभीणि व्यन्तु ॥ २४
अग्न आयूꣳषि पवसे, ऽग्निर्ऋषिः ॥ २५
तꣳ हि शश्वन्त ईडते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निꣳ हव्याय वोढवे ॥ २६
अग्निमग्निꣳ हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २७
अग्ने पावक रोचिषा, स नः पावक दीदिवो, ऽग्निः शुचिव्रततमः, उदग्ने शुचयस्तव ॥ २८
स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २९
अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ ३०
किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ३१
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शꣳसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ३२
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ३३

[प्रेद्धो अग्ने० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै. सं. ४,६,५,४,५,४,७,३; काठ. २,१५;१८,४;२०,१४; कपि. २८,४; ४८,२ । इमो अग्ने वीततमानि० ऋ. ७,१,१८; तै. सं. ४,३,१३,६; काठ० २,१५;१९,१४;३५,२; कपि. ४८,३ । अग्न आयूꣳषि पवसे० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४,१५१८; तै. सं. १,३,१४,७;४,२९,१;५,५,२; ६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१; काठ. ४,११;११,१३; कपि. ३,९;८५ । अग्निर्ऋषिः० । ऋ. ९,६६,२०; सा. १५११; तै. ब्रा. २,५,२ । तꣳ हि शश्वन्ता (०श्वन्त) ईडते (०ळते) । ऋ०५,१४,३; तै. सं. ४,३,१३,८; काठ. १९,१४ । अग्निमग्निꣳ हवीमभिः० । ऋ. १,१२,२; सा. ७९१; अथर्व. २०,१०१,२; तै. सं. ४,३,१३,८ । अग्ने पावक रोचिषा० । ऋ०५,२६,१; सा. १५४२; तै. सं. १,३,१४,८;४,५,३;४,६ १,२; काठ. १७,१७;१९,१४; कपि. २८,१ । स नः पावक दीदिवो० । ऋ. १,१२,१०; तै. सं. १,३,१४,८;५,५,३;४,६,१,३; काठ. १९,१४ । अग्निः शुचिव्रततमः० (तमः) । ऋ. ८,४४,२१; तै. सं. १,३,१४,८;५,५,३; काठ. १९,१४ । उदग्ने शुचयस्तव० । ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३;४,४,१४,४; काठ. २,१४;१९,१४; ४०,१४ । स हव्यवाड (०वाळ०) मर्त्यः० । ऋ. ३,११,२; तै. सं. ४,१,११,४; काठ. १९,१४ । अग्निꣳ स्तोमेन बोधय० । ऋ. ५,१४,१; तै. सं. ४,१,११,४ । किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं० । ऋ. ७,१००,६; सा. १६२५; तै. सं. २,२,१२,५; नि. ५,८ । प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट० । ऋ. ७,१००,५; सा. १६२६; तै. सं. २,२,१२,५; नि. ५,९ । सुत्रामाणं पृथिवीं० । ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५; तै. आ. १,१३,१; काठ. २,३]

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥ ३४
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ३५
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवꣳ सिन्धूꣳरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमा अमुञ्चतं गृभीतान् ॥ १ ॥ ३६
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ ३७
अग्निं दूतꣳ वृणीमहे होतारꣳ विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३८
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ३९
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्,—अग्निꣳ स्तोमेन बोधय,—ऽग्न आयूꣳषि पवसे, ऽग्ने तमद्या,—ऽऽमिष्टे अद्य । ४०
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ४१
अधा ह्यग्ने ॥ ४२
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ ४३

[महीमू षु मातरꣳ० । तै. सं. १,५,११,५;७,१,१८,२; तै. ब्रा. ३,१,२,३; तै. आ. १,२१,२; मा. श्रौ. ७,२,६; काठ. ३०,४-५; कपि. ४६,७ । अग्नीषोमा सवेदसा० । ऋ. १,९३,९; तै. सं. २,३,१४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,२; काठ. ४,१६ । युवमेतानि दिवि० । ऋ. १,९३,५; तै. सं. २,३,१४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,२; काठ. ४,१६]
[२] वा. ४,१६,११,४६;३३,९,३७;२२,१५;१९,३८,३५,१६;१५,४४-४६,२१,१-२;१८,४९;५,३६;७,४३,४०,१६; १२,२,६,२३,२१,३३;१७,७०,७७ । काण्व. ४,२१,१२,४७;३१,९,३७,२४,१९;८,१९,२१,४०;२९,३७;३५,४८; १६,६६—६८;२३,१—२;२०,१९;५,४५;९,८;४०,१८;१३,२,७,१४,२२,३४;१८,७०,७७ । [अग्न (०ग्ना) आयाहि वीतये० । ऋ. ६,१६,१०; सा. १,६६०; तै. सं. २,५,७,३;८,१; तै. ब्रा. ३,५,२,१; काठ. १९,५; १६,४;२०,१४; कपि. ३०,३ । अग्निं दूतꣳ वृणीमहे० । ऋ. १,१२,१; सा. ३,७९०; अथर्व. २०,१०१,१; तै. सं. २,५,८,५; तै. ब्रा. ३,५,२,३; काठ. २०,१४ । अग्निनाग्निः समिध्यते० । ऋ. १,१२,६; सा. ८४४; तै. सं. १,४,४६,३;३,५,११,५; तै. ब्रा. २,७,१२,३; काठ. १५,१२;२०,१४;३४,१९ । अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्० । ऋ. ६,१६,३४; सा. ४,१३९६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४;२०,१४ । अग्निꣳ स्तोमेन बोधय० । ऋ. ५,१४,१; तै. सं. ४,१,११,४ । अग्ना (०ग्न) आयूꣳषि पवसे० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४,१५१८; तै. सं. १,३,१४,७;४,२९,१;५,५,१;६,६,२; तै. ब्रा. २,६,३,४; तै. आ. २,५,१ । अग्ने तमद्याश्वं० । ऋ. ४,१०,१; सा. ४,३४;१७७७; तै. सं. ४,४,४,७ । आमिष्टे अद्य० । ऋ. ४,१०,४; तै. सं. ४,४,४,७ । एभिर्नो अर्कैर्भवा० ऋ. ४,१०,३; सा. १७७९; तै. सं. ४,४,४,७. काठ. २०,१४ । अधा ह्यग्ने० । ऋ. ४,१०,२; सा. १७७८; तै. सं. ४,४,४,७; काठ. २०,१४ । अग्नेः स्तोमं मनामहे० । ५,१३,२; सा. १४०५; तै. सं. ५,५,६,१; काठ. २०,१४]

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषꣳ वुरीतावसे ॥ ४४
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञꣳ वितन्वते ॥ ४५
वृषा सोम द्युमाꣳ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ ४६
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यून् ज्योतिषा तमः । अविन्दद्गा अपः स्वः ॥ ४७
अग्ने बृहन् ॥ ४८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ ४९
तत्त्वा याम्य,—ग्निनाग्निः ॥ ५०
त्वꣳ ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ ५१
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमꣳहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ ५२
अनमीवास इडया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ५३
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततꣳ संजभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ५४
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यान्ति सद्यः ॥ ५५
त्वमग्ने व्रतपा असि ॥ ५६

[अग्ना यो मर्त्यो दुवो०। ऋ. ६,१४,१; काठ. २०,१४। त्वमग्ने सप्रथा असि०। ऋ. ५,१३,४; सा. १४०७, तै. ब्रा. २,४,१,६; नि. ६,७, काठ. २,१४;२०,१५। वृषा सोम द्युमं (द्युमाँ) असि०। ऋ. ९.६४,१; सा. ५०४, ७८१; तै. सं. ४,२,११,३;४,३,१३,३; काठ. २,१४;२०,१५। अग्निर्जातो अरोचत०। ऋ. ५, १४,४। अग्ने (अग्ने) बृहन्०। ऋ. १०,१,१; तै सं. ४,२,१,४; काठ. १६,८;१९,११; कपि. ३२, १। इमं मे वरुण श्रुधी०। ऋ. १,२५.१९; सा. १५८५; तै. सं. २,१,११,६;२.५,१२,१;४,२.११.३। तै. ब्रा. ३, ७,११,३;१२,६; तै. आ. २,४,४;४,२०,३। काठ. ४,१६;११,१२—१३,१२,१५;२१,१३। तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०। ऋ. १,२४,११। तै. सं. २,१,११,६; काठ. ४,१६। अग्निनाग्निः०। ऋ. १,१२,६; सा. ८४४; तै. सं. १,४,४६,३;३,५,११,५; तै. ब्रा. २,७,१२,३। त्वꣳ ह्यग्ने अग्निना०। ऋ. ८,४३,१४; तै. सं. १,४,४६,३; ३,५,११,५; काठ. १५.१२। प्र स मित्र मर्तो अस्तु०। ऋ. ३,५९,२; तै. सं. ३,४,११.५; नि २.१३। काठ. २३,१२। अनमीवास० (०वास) इडया० (इळ०)। ऋ. ३,५९,३; तै. सं. २,८,७,५; तै. ब्रा. २,८, ७,४। तत्सूर्यस्य देवत्वं०। ऋ. १,११५,४; अथर्व. २०,१२३,१; तै. ब्रा. २,८,७,१; नि. ४, ११। भद्रा अश्वा हरित०। ऋ. १,११५,३; तै. ब्रा. २,८,७,१। त्वमग्ने व्रतपा असि०। ऋ. ८,११,१, अथर्व. १९,५९,१; तै. सं. १,१,१४,४;१,२,३,१; काठ. २,४;६,१०; कपि. ४८,१०]

मै. ५३

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमापृणाति विद्वान् येभिर्देवाꣳ ऋतुभिः कल्पयाति ॥ ५७
अग्ने नय ॥ ५८
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ५९
अग्निः शुचिव्रततमा, उदग्ने शुचयस्तवा,—ऽक्रन्ददग्नि,—र्नक्तोषासा ॥ ६०
आयाहि तपसा जनिष्वग्ने पावको अर्चिषा । उपेमाꣳ सुष्टुतिं मम ॥ ६१
आ नो याहि तपसा जनिष्वग्ने पावक दीद्यत् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ २ ॥ ६२
अभि त्वा देव सवितरीशानꣳ वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ॥ ६३
मही द्यौः पृथिवी च न,—स्त्वामग्ने पुष्करादधि, तमु त्वा दध्यङ्ङृषि,—स्तमु त्वा पाथ्यो ६४
वृषा ॥
उत ब्रुवन्तु जन्तवा उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणे रणे ॥ ६५

[यद्वो वयं प्रमिनाम०। ऋ. १०,२,४; अथर्व. १९,५९,२; तै. सं. १,१,१४,४; काठ. ६,१०; कपि. ४८,१०। अग्ने नय०। ऋ. १,१८९,१; तै. सं. १,१,१४,३;४,४३,१; तै. ब्रा. २,८,२,३; तै. आ. १,८,८; शत. ब्रा.१४,८, ३,१, काठ. ६,१०;३,१; कपि. २,८। आ देवानामपि०। ऋ. १०,२,३, अथर्व. १९,५९,३, तै. सं. १,१,१४,३, काठ. १८,२१.२,१५। अग्निः शुचिव्रततमा०। ऋ. ८,४४,२१; तै. सं. १,३,१४,८;१,५,५,३; काठ. १९,१४; ४०,१४। उदग्ने शुचयस्तव०। ऋ. ८,४४,१७; सा. १५३४; तै. सं. १.३,१४,८; ४,१,१०,४; ५,५,३;२, ४,१४,४। अक्रन्ददग्नि०। ऋ. १०,४५,४; तै. सं. १,३,१४,२,४,२,१;२,२,२; काठ. २,१४; १९,१४;४०, १४. १६.८—१०;१९,११—१२; कपि. ३२,१—२। नक्तोषासा०। ऋ. १,९६,५; तै. सं. ४,१,१०,४; ६,५,२; ७,१२,३]

[३] तै. सं. ३,५,११;४,१,११; तै. ब्रा. ३,५,५,९। वा. ८,३२,१३,१४—१५,३२;११,३२-३४;१५,२०,२२—२३; ३१,१६;३,१२;३,३५;२२,९,१५—१६;३०,२;३६,३;१०,८४;११.१२—१२,२९—४०,४८-५८;१८,१-२२, २४-४५;९,१६,१८.२१,१०-११। काण्व. ९,३१;१४,१४-१५,३४।१२,३२-३४;१६,४१,४३-४४;३५,१६;२३, १०,१२-२३,३०—४१,४७-५७;३०,१—२२,२४-४५;१०,२२,२४,३,१८,४३,२४,१३;३४,२,३६,३;२२,६९। [अभि त्वा देव सवितः०। ऋ. १,२४,३; तै. सं. ३,५,११,३; काठ. १५,१२;२८,७; कपि. ४४,७। मही द्यौः पृथिवी च नः०। ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२;५,११,३;४,२,९,३; काठ. १३,९—१०;१५,१२;१६,१६; २०.१,३९,३। त्वामग्ने पुष्करादधि०। ऋ. ६,१६,१३; सा. ९; तै. सं. ३,५,११,३;४,१,३.२,४,४,१, काठ. १५,१२,१६,३। तमु त्वा दध्यङ् ऋषि०। ऋ. ६,१६,१४, तै.सं. ३,५,११,३;४,१,३,२, काठ. १५,१२;१९,४। तमु त्वा पाथ्यो वृषा०। ऋ. ६,१६,१५; तै. सं. ३,५,११,४;४,१.३,३। काठ. १५,१२,१६,३; कपि. ३०,२। उत ब्रुवन्तु जन्तवा (०न्तवः)०। ऋ. १,७४,३; सा. १३८२, तै. सं. ३,५,११,४, काठ. १५,१२;८,१६]

आ यꣳ हस्ते न खादिनꣳ शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निꣳ स्वध्वरम् ॥ ६६
प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ निषीदतु ॥ ६७
आ जातं जातवेदसि प्रियꣳ शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥ ६८
अग्निनाग्नि,—स्त्वꣳ ह्यग्ने अग्निना ॥ ६९
७०
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ७१
समिधो अग्ना आज्यस्य व्यन्तु, तनूनपादग्ना आज्यस्य वेत्वि,—डो अग्ना आज्यस्य व्यन्तु, बर्हिरग्ना आज्यस्य वेतु, दुरो अग्ना आज्यस्य व्यन्तू,—षासानक्ताग्ना आज्यस्य वीतां, दैव्या होताराग्ना आज्यस्य वीतां, तिस्रो देवीरग्ना आज्यस्य व्यन्तु स्वाहा, ऽग्निꣳ स्वाहा, सोमꣳ स्वाहा, ऽग्निꣳ स्वाहा, ऽग्निꣳ होत्रात् स्वाहा, देवा आज्यपा जुषाणा अग्ना आज्यस्य ७२
व्यन्तु ॥ ७३
अग्ने यꣳ यज्ञमध्वरꣳ विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ७४
त्वं नः सोम विश्वतो, ऽग्निर्मूर्धा, भुवो यज्ञस्य ॥ ७५
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्याꣳ या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ७६

[आ यꣳ हस्ते न०। ऋ. ६.१६,४०, तै. सं. ३,५,११,४। प्र देवं देववीतये०। ऋ. ६ १६.४१; तै. सं. ३,५,११,४; काठ. १५.१२। आ जातं जातवेदसि०। ऋ. ६,१६,४२, तै. सं. ३,५,११,४। अग्निनाग्निः०। ऋ. १,१२.६; सा. ८४४; तै. सं. १,४,४६.३,३,५,११.५, तै. ब्रा. २,७.१२,३; काठ. १५,१२, २०,१४। त्वꣳ ह्यग्ने अग्निना०। ऋ. ८,४३,१४; तै. सं. १,४,४६.३; ३,५,११.५; काठ. १५,१२। तं मर्जयन्त सुक्रतु०। ऋ. ८,८४,८, तै. सं. ३,५.११,५; काठ. १५,१२। यज्ञेन यज्ञमयजन्त०। ऋ. १,१६४.५०; १०.९०,१६; अथर्व. ७,५,१; तै सं. ३,५,११,५, तै. आ. ३,१,७; श. ब्रा. १०,२,२,२; काठ. १५,१२। अग्ने यꣳ यज्ञमध्वरꣳ०। ऋ. १,१,४; तै. सं. ४,१,११,१; काठ. २,१४। त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा०। ऋ. १,९१.८; तै. सं. २,३.१४,१;४,१,११,१; काठ. २,१४। अग्निर्मूर्धा दिवः०। ऋ. ८,४४,१६; सा. २७,१५३२, तै. सं.१,५,५,१; ४,४,१,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१; काठ. ६,९;१२.१४; २०,१४। भुवो यज्ञस्य०। ऋ. १०.८.६; तै. सं. ४,४,४,२; तै. ब्रा. ३,५,७.१, काठ. १६,१५;२०,१५। सोम यास्ते मयोभुव०। ऋ. १,९१,९, तै. सं. ४,१,११,१; तै. सं. २,३,१४,१; ४,१,११.१; तै. ब्रा. २,८,३,२; काठ. २,१४। या ते धामानि दिवि०। ऋ. १.९१,४; काठ. १३.१५]

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ७७
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥ ७८
पावका नः सरस्व,—त्या नो दिवः ॥ ७९
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजꣳ सनोतु नः ॥ ८०
शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ८१
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुता आवृणे ॥ ८२
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहाꣳसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ८३
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्ताꣳ युज्यं पयः ॥ ८४
विश्वे देवासो अस्रिधा एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ८५
द्यावा नः पृथिवी इमꣳ सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ ८६
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वꣳ सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वाꣳ वरूथम् ॥ ८७
स हव्यवा,—डग्निꣳ स्तोमेन ॥ ८८
देवं बर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु, देवीर्द्वारो वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, देवी उषासानक्ता

[तत्सवितुर्वरेण्यम्०। ऋ. ३,६२,१०; सा. १४६२, तै. सं. १,५,६,४;४,१,११,१, तै. आ. १,११,२। अचित्ती यच्चकृमा०। ऋ. ४,५४,३; तै. सं. ४,१,११,१। पावका नः सरस्वती०। ऋ. १,३.१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४.३,१; नि. ११,२६; काठ.४,१६। आ नो दिवः०। ऋ. ५,४३,११ तै. सं. १,८.२२,१; काठ.४.१६;२०,१५। पूषा गा अन्वेतु नः०। ऋ. ६,५४,५; तै. सं. ४.१.११,२; तै. ब्रा. २,४,१,५; काठ. ४,१५;२०,१५। शुक्रं ते अन्यद्०। ऋ. ६,५८,१; सा. ७५; तै. सं. ४,१,११,२, तै. आ. १.२,४;१०,१;४,५,६; नि. १२,१७; काठ. ४,१५;२०,१५। इहेह वः स्वतवसः०। ऋ. ७,५९.११; तै. आ. १,४,३; काठ. १०,१५। प्र चित्रमर्कं गृणते०। ऋ. ६,६६,९। तै. सं. ४,१,११,३; तै. ब्रा. २,८,५,५; नि. ३,२१। काठ. १०,१५। विश्वे देवा ऋतावृधः०। ऋ. ६,५२,१०; तै. सं. २,४.१४,५; ४,१,११,४। काठ. १३,१५। विश्वे देवासो अस्रिधा०। ऋ. १,३,९। द्यावा नः पृथिवी०। ऋ. २,४१,२०; तै. सं. ४,१,११,४; नि. ९,३८। प्र पूर्वजे पितरा०। ऋ. ७,५३,२; तै. सं. ४,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,४,७। स हव्यवाड्०। ऋ. ३,११,२; तै. सं. ४,१,११,४; काठ. १९,४। अग्निꣳ स्तोमेन०। ऋ. ५,१४,१, तै. सं. ४,१,११,४]

वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवी जोष्ट्री वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवी ऊर्जाहुती वसुवने वसु-
धेयस्य वीतां, देवा दैव्या होतारा वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु, देवो नराशꣳसो वसुवने वसुधेयस्य वेतु, देवो अग्निः स्विष्टकृत्सुद्रविणा
मन्द्रः कविः सत्यमन्मायजी होता होतुर्होतुरायजीयान्,—अग्ने यान् देवानयाडयाꣳ अपिप्रेर्ये ते होत्रे
अमत्सत ताꣳ ससनुषीꣳ होत्रां देवंगमां दिवि देवेषु यज्ञमेरयेमꣳ, स्विष्टकृच्चाग्ने होताभूर्वसुवने
वसुधेयस्य नमोवाके वीहि ॥ वाजे वाजे शं नो भवन्तु ॥ ३ ॥ ८९-९०

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ ९१
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते । रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ९२
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः । सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः ॥ ९३
इडायास्त्वा पदे वयम् ॥ ९४
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तꣳ सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ ९५
सीद होतः,—नि होता ॥ ९६
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वꣳ वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन् दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ ९७
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे । यशसꣳ वीरवत्तमम् ॥ ९८
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ ९९

[वाजे वाजेऽवत० । ऋ. ७,३८,८; तै. सं. १,७,८,२;४,७,१२,१ । शं नो भवन्तु० । ऋ. ७,३८,७; तै. सं. १,७,८,१; नि. १२,४४]

[४] तै. सं. ३,५,११; १,५,११; २,५,१२ । वा. ३४,१५,११,३५-३६;१७,३६,१२,३,२९,०१,१-४;१८,४९;२७,३९; १६,४ । काण्व. ३३,९,१२,३५-३६,१३,१३,३,२७,२३,१-४,२०,१९,२९,४४,३६,४,१३,३७; । [प्र देवं देव्या धिया० । ऋ. १०,१७६,२; तै. सं. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । अयमु ष्य प्र देवयुः० । ऋ. १०,१७६,३; तै. सं. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । अयमग्निरुरुष्यति० । ऋ. १०,१७६,४; तै. सं. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । इडा (०ळा) यास्त्वा पदे वयं० । ऋ. ३,२९,४; तै. सं. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । अग्ने विश्वेभिः स्वनीक० । ऋ. ६,१५,१६; तै. सं. ३,५,११,२; काठ. १५,१२ । सीद होतः० । ऋ. ३,२९,८; तै. सं. ३,५,११,२; ४,१,३,३; काठ. १५,१२;१९,४;१६,३; कपि. ३०,२। नि होता० । ऋ. २,९,१; तै. सं. ३,५,११,२;४,१,३,३ । त्वं दूतस्त्वमु न:० । ऋ. २,९,२; तै. सं. ३,५,११,२ । अग्निना रयिमश्नवत्० । ऋ. १,१,३; तै. सं. ३,१,११,१;४,३,१३,५ । गयस्फानो (यो रेवान्यो) अमीवहा० । ऋ. १,९१,१२;१,१८,२; तै. सं. ४,३,१३,५; नि. ३,२१; काठ. ९,१४]

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १००
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ १०१
मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उपगन्तन ॥ १०२
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १०३
इमं मे वरुण, तत्त्वा यामि, कया नः, को अद्य, पिप्रीहि देवा,—अग्ने यद्द्या,—
ऽप्स्वग्ने सधिष्टव ॥ १०४
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । आपश्च विश्वशंभुवः ॥ १०५
उदुत्तमꣳ वरुण पाशमस्मत् ॥ १०६
अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनाꣳसि शिश्रथः कृतानि ॥ १०७
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ १०८
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि ॥ ४ ॥ १०९

[इन्द्राग्नी रोचना दिवः० । ऋ. ३,१२,९; सा. १६९३; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३; काठ ४,१५ । प्र चर्षणिभ्यः पृतना० । ऋ. १,१०९,६; तै. सं. ४,२,११,१; काठ. ४,१५ । मरुतो यद्ध वो० । ऋ. ८,७,११; तै. सं. १,५,११,४; काठ. ९,१९;८,१७;२१,१३ । या वः शर्म शशमानाय० । ऋ. १,८५,१२; तै. सं. १,५,११,५; तै. ब्रा. २,८,५,६; काठ. ८,१७;२१,१३ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. सं. २,१,११,६; काठ. ११,१२;१२,१५ । तत्त्वा यामि० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६; काठ. १२,१५ । कया नश्चित्र० । ऋ. ४,३१,१; सा. १६९,६८२; अथर्व. २०,१२४,१; तै. सं. ४,२,११,२; तै. आ. ४,४२,१; काठ. २१,१३ । को अद्य युङ्क्ते० । ऋ. १,८४,१६; सा. ३४१; अथर्व. १८,१,६; तै. सं. ४,२,११,३; नि. १४,२५ । पिप्रीहि देवान्० (०देवाँ) । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५;६,११,४ । अग्ने यद्द्य० । ऋ. ६,१५,१४; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,६;६,१२,२ । अप्स्वग्ने सधिष्टव० । ऋ. ८,४३,९; तै. सं. ४,२,३,२;१२,३; काठ. २,१४ । अप्सु मे सोमो अब्रवीत्० । ऋ. १,२३,२०;१०,९,६; अथर्व. १,६,२; तै. ब्रा. २,५,८,६; काठ. २,१४ । उदुत्तमꣳ वरुण० । ऋ. १,२४,१५; सा. ५८९; अथर्व. ७,८३,३;१८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३;४,२,१,३; नि. २,१३; काठ. ११,१३ । अव ते हेडो (०ळो) वरुण० । ऋ. १,२४,१४; तै. सं. १,५,११,३; काठ. ४०,११ । त्वं नो अग्ने वरुणस्य० । ऋ. ४,१,४; तै. सं. २,५,१२,३; काठ. ३४,१९ । स त्वं नो अग्नेऽवमो० । ऋ. ४,१,५; तै. सं. २,५,१२,३; काठ. ३४,१९; कपि. ४८,१]

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्, त्वꣳ सोमासि सत्पतिः ॥ ११०
अनीकैर्द्वेषो अर्दयाग्ने विश्वाभिरूतिभिः । रयिं नो धेहि यज्ञियम् ॥ १११
सेनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाꣳ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ ११२
पिप्रीहि देवा,—नां देवानाम् ॥ ११३
सांतपना इदꣳ हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ११४
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघाꣳसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ११५
अग्निः प्रत्नेन मन्मना, सोम गीर्भिष्ट्वा वयम् ॥ ११६
गृहमेधास आगत मरुतो माप भूतन । इमा हव्या जुजुष्टन ॥ ११७
प्र बुध्न्या व ईरते महाꣳसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ ११८
मेद्धो अग्न, इमो अग्ने ॥ ११९
अग्निमीडे पुरोहितꣳ यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारꣳ रत्नधातमम् ॥ १२०
वृषा सोम द्युमाँ असि ॥ १२१

[५] तै. सं. ४,३,१३ । वा. ३३,९;१७,७६,२२-२३,८,४५ । काण्व. ३२,९;१८,७६,२२-२३,८,२६-२७ । [अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्० । ऋ. ६,१६,३४; सा. ४,१३७६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१ । त्वꣳ सोमासि सत्पतिः० । ऋ. १,९१,५; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । सेनानीकेन सुविदत्रो० । ऋ. २,९,६; तै. सं. ४,३,१३,२; काठ. २१,१३ । पिप्रीहि देवान्० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५;६,११,४; काठ. २,१५;१८,२१;२०,१५ । आ देवानाम्० । ऋ. १०,२,३; अथर्व. १९,५९,३; तै. सं. १,१,१४,३; काठ. २,१५;१८,२१;३५,९ । सांतपना इदꣳ० । ऋ. ७,५९,९; अथर्व. ७,७७,१; तै. सं. ४,३,१३,३; काठ. २१,१३ । यो नो मरुतो अभि० । ऋ. ७,५९,८; अथर्व. ७,७७,२; तै. सं. ४,३,१३,३; काठ. २१,१३ । अग्निः प्रत्नेन मन्मना० । ऋ. ८,४४,१२; सा. १७११; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । सोम गीर्भिष्ट्वा० । ऋ. १,९१,११; तै. ब्रा. ३,५,६,१; आप्श्र. ४,५,७; काठ. २,१४ । गृहमेधास (०स) आगत० । ऋ. ७,५९,१०; तै. सं. ४,३,१३,५ । प्र बुध्न्या व ईरते० । ऋ. ७,५६,१४; तै. सं. ४,३,१३,६; काठ. २१,१३ । मेद्धो अग्न० । ऋ. ७,१,३; सा. १३७५; तै. सं. ४,६,५,४ । इमो अग्ने० । ऋ. ७,१,१८; तै. सं. ४,३,१३,६; काठ. २,१५;१९,१४; कपि. ४८,३ । अग्निमीडे (०ळे) पुरोहितꣳ० । ऋ. १,१,१; तै. सं. ४,३,१३,३; नि. ७,१५; काठ. २,१४ । वृषा सोम द्युमं० (०माँ) । ऋ. ९,६४,१; सा. ५०४,७८१; तै. सं. ४,२,११,३;३,१३,३; काठ. २,१४;२०,१५]

क्रीडꣳ वः शर्धो मारुतमनर्वाणꣳ रथेशुभम् । कण्वा अभि प्रगायत ॥ १२२
अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीडिनः पयोधाः ॥ १२३
तꣳ हि शश्वन्तो, ऽग्निमग्निम् ॥ १२४
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ १२५
श्रथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १२६
तमिन्द्रꣳ वाजयामसि ॥ १२७
युजे रथं गवेषणꣳ हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ १२८
विश्वकर्मन्, वाचस्पतिम् ॥ ५ ॥ १२९
उशन्तस्त्वा हवामहे ॥ १३०
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिꣳ विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ १३१
त्वꣳ सोम महे भगं त्वꣳ यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ १३२
त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १३३

[क्रीडꣳ (०ळं) वः शर्धो० । ऋ. १,३७,१; तै. सं. ४,३,१३,६; नि. ७,२; काठ. २१,१३ । अत्यासो न ये मरुतः० । ऋ. ७,५६,१६; तै. सं. ४,३,१३,७ । तꣳ हि शश्वन्तो० । ऋ. ५,१४,३; तै. सं. ४,३,१३,८; काठ. १९,१४ । अग्निमग्निं० । ऋ. १,१२,२; सा. ७९१; अथर्व. २०,१०१,२; तै. सं. ४,३,१३,८ । इन्द्राग्नी नवतिं पुरो० । ऋ. ३,१२,६; सा. १५७६;१७०४; तै. सं. १,१,१४,१; काठ. ४,१५ । श्रथद्वृत्रमुत सनोति० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१;४,३,१३,८; तै. ब्रा. ३,५,७,३; काठ. २१,१३;४,१५;२३,११ । तमिन्द्रꣳ वाजयामसि० । ऋ. ८,९३,७; सा. ११९,१२२२; अथर्व. २०,४७,१;१३७,१२; तै. ब्रा. १,५,८,३;२,४,१,३; काठ. ३०,१२ । युजे रथं गापवणꣳ० (गवेषणं) । ऋ. ७,२३,३; अथर्व. २०,१२,३; तै. ब्रा. २,४,१,३;८,२,५ । विश्वकर्मन् हविषा० । ऋ. १०,८१,६; सा. १५८९; तै. सं. ४,६,२,६;४,३,१३,८; नि. १०,२७ । वाचस्पतिं विश्वकर्माणं० । ऋ. १०,८१,७; तै. सं. ४,६,२,५; काठ. २१,१३; कपि. २८,२]

[६] तै. सं. २,६,१२ । वा. १९,७०,५२-५७,५९,६८,४९,६१;३३,३६,५५;२७,२७ । काण्व. २१,७०;५१-५८,६१,६७; २९,२६;३२,३६,५५ । [उशन्तस्त्वा हवामहे० । ऋ. १०,१६,१२; अथर्व. १८,१,५६;२,३४; तै. सं. २,६,१२,१; तै. ब्रा. २,६,१६; काठ. २१,१४;३६,१२ । आ नो अग्ने सुचेतुना० (०तना) । ऋ. १,७९,९; सा. १५१६; तै. ब्रा. २,४,५,३; काठ. २,१४ । त्वꣳ सोम महे भगं० । ऋ. १,९१,७; तै. ब्रा. २,४,५,३; काठ. २,१४;२०,१५ । त्वꣳ सोम प्रचिकितो० । ऋ. १,९१,१; तै. सं. २,६,१२,१; काठ. २१,१४]

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीꣳरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ १३४

त्वꣳ सोम पितृभिः सꣳविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३५

बर्हिषदः पितर ऊ३त्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आगतावसा शंतमेनाथा नः शꣳ योररपो दधातन ॥ १३६

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ १३७

आहं पितॄन्त्सुविदत्रं अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदः स्वधया ये सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ १३८

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥ १३९

उदीरतामवरा उत्परासा उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुꣳ य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १४०

अग्निष्वात्ता ऋतावृधः पितरो मृडता सु नः । दीर्घायुत्वाय जीवसे ॥ १४१

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नराशꣳसे सोमपीथꣳ य आशुः ।
ते नो विप्रासः सुहवा मृडन्तु शं नो भवन्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४२

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवीꣳषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥ १४३

[त्वया हि नः पितरः० । ऋ. ९,९६,११; तै. सं. २,६,१२,१; काठ. २१,१४ । त्वꣳ सोम पितृभिः० । ऋ. ८,४८,१३; तै. सं. २,६,१२,२; काठ. २१,१४ । बर्हिषदः पितर ऊति० । ऋ. १०,१५,४; अथर्व. १८,१,५१; तै. सं. २,६,१२,२; नि. ४,२१; काठ. २१.१४ । उपहूताः पितरः० । ऋ. १०,१५ ५, अथर्व. १८,३,४५; तै. सं. २,६,१२,२; काठ. २१,१४ । आहं पितॄन्त्सुविदत्रं० (आँ०) । ऋ. १०,१५,३; अथर्व. १८,१,४५; तै. सं. २,६,१२,३; काठ. २१,१४ । इदं पितृभ्यो नमो० । ऋ. १०,१५,२; अथर्व. १८,१,४६; तै. सं. २,६, तै. सं. २,६.१२,३; काठ. २१.१४ । इदं पितृभ्यो नमो० । ऋ. १०,१५,२; अथर्व. १८,१,४६; तै. सं. २,६,१२,३; नि. ११,१८। १२,४ । उदीरतामवरा० (०र) । ऋ. १०,१५,१; अथर्व. १८,१,४४; तै. सं. २,६,१२,३; नि. ११,१८। १२,४ । अग्निष्वात्ता ऋतावृधः० । काठ. २१,१४ । अग्निष्वात्तानृतुमतो० । वा. य. १९,६१; काठ. २१,१४ , अग्निष्वात्ता पितरा० (०रः) । ऋ. १०,१५,११; अथर्व. १८,३,४४; तै. सं. २,६.१२,२; काठ. २१,१४]

मै० ५४

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १४४

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १४५

ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥ १४६

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिꣳ विश्ववारꣳ रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ १४७

प्र याभिर्यासि दाश्वाꣳसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिꣳ सुभोजसꣳ युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ १४८

इन्द्रꣳ वयꣳ शुनासीरमस्मिन् यज्ञे हवामहे । स नः पर्षदति द्विषः ॥ १४९

सोऽहोरात्रैः सोऽर्धमासैः स मासैः स ऋतुभिः परि यज्ञे बभूव ।
सꣳवत्सरस्य महिमानमेतꣳ शुनासीरमिन्द्रमद्याहुवेम ॥ १५०

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिःकेशं पुरुप्रिय ॥ १५१

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ६ ॥ १५२

[२४६२]

॥ इति खिलकाण्डे दशमः प्रपाठकः ॥१०॥

[स प्रत्नथा सहसा० । ऋ. १,९६,१। स पूर्वया निविदा० । ऋ. १,९६,२; काठ. २१,१४। ये तातृपुर्देवत्रा० । ऋ. १,१०५ ९; अथर्व. १८,३,४७; तै. ब्रा. २,६,१६,२; नि. ६,१४ । प्र वायुमच्छा बृहती० । ऋ. ६,४९,४। तै. ब्रा. २,८,१,१ । प्र याभिर्यासि० । ऋ. ७,९२,३; तै. सं. २,२,१२,७; तै. ब्रा. २,८,१,१; काठ. १०,१२। स नः पर्षदति द्विषः० (दुर्गाणि विश्वा) ऋ. परि. ३५,१,२६,१९, (च. पा.) काठ. २१,१४। सप्त त्वा हरितो रथे० । ऋ. १,५०,८; अथर्व. १३,२,२३;२०,४७,२०; सा. ६४०; तै. स. १,४,१४,४; काठ. ९,१९; ११,१ । तरणिर्विश्वदर्शतो० । ऋ. १,५०,४; अथर्व. १३,२,१९;२०,४७,१६; तै. सं. १,४,३१,१; तै. आ. ३,१६,१, काठ. १०,१३]

अथैकादशः प्रपाठकः ।

इन्द्राग्नी रोचना दिवः, प्र चर्षणिभ्या, इन्द्राग्नी नवतिं पुरः, श्नथद्वृत्रम् ॥ १
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामाभरा भोजनानि ॥ २
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महाꣳसि ॥ ३
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इषा आवृणे ॥ ४
उपो ह यद्विदथꣳ वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिछमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ५
अग्निर्ददाति सत्पतिꣳ सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यꣳ रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् । अतूर्तꣳ श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ७
या वाꣳ सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम् ॥ ८
शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वाꣳ सुहवा जोहवीमि ता वाजꣳ सद्य उशते धेष्ठा ॥ ९
पूषा गा अन्वेतु नः, शुक्रं ते अन्यत् ॥ १०

१२;१३,१२;१५,२९-३०;१८,७२-७३;२६,६-८;१२,५१;३४,१५,२३,३२;८.३२;१३,३०,३४,३५। क०१.१२,
[१] पा. ३३,१२;१५,२९-३०;१८,७२-७३;२६,६-८;१२,५१;३३,९;०५,३४,९,३२;१४,३४;३३,३२। [इन्द्राग्नी रोचना १२;१६,५०-५१;२०,४१-४२,२८,६-९;१३,५२;३३,९;०५,३४,९,३२;१४,३४;३३,३२। तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. ३,५,७,३; काठ. ४,१५ । प्र चर्षणिभ्या० दिवः० । ऋ. ३,१२,९; सा. १६९३, तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ४,१५ । इन्द्राग्नी नवतिं पुरः० । (०भ्यः) । ऋ. १,१०९,६; तै. सं. ४,२,११,१; काठ.४,१५। श्नथद्वृत्रम्० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११, ऋ. ३,१२,६; सा. १५७६,१७०४; तै. सं. १,१,१४,१; काठ. ४,१५। जुष्टो दमूना अतिथिः० । ऋ. ५,४,५; अथर्व. ७,७३,९; तै. ब्रा. १; तै. ब्रा. २,८,५.१;३,५,७,३; काठ. ४,१५। अग्ने शर्ध महते० । ऋ. ५,२८,३; अथर्व. ७,७३,१०; तै. ब्रा. २,४,१,१; २,४,१,१; नि. ४,५; काठ २,१५। उपो ह यद्विदथꣳ० । ऋ. ३,१२,५; सा. १५७५,१७०३ । प्र वामर्चन्त्युक्थिनो० । ऋ. ५,१,४; काठ. ४,१५। अग्निर्ददाति सत्पतिꣳ० । ऋ. ५,२५,६; काठ.२,१५। अग्निस्तुविश्रवस्तमं० । ७,९३,३, तै. ब्रा.३.६,१२,१। शुचिं नु स्तोमं० । ७,९३.१; तै. सं. ५,२५,५; काठ. २,१५ । या वाꣳ सन्ति० । ऋ. ६,६०.८; काठ. ४,१५ । पूषा गा अन्वेतु नः० । ऋ. ६,५४,५; तै. सं. ४,१, १,१.१४,२ तै. ब्रा. २,४,८,३; काठ. १३,१५;२१,१३ । शुक्रं ते अन्यत्० । ऋ. ६,५८,१; सा. ७५; तै. सं. ४,१, ११,२; तै. ब्रा. २,४,१,५; काठ. ४,१५,२० १५ । तै. आ. १,२,४,१०, ४,५,६, नि. १२,१७; काठ. ४,१५;२०,१५]
११,२; तै. ब्रा. २,८,५,३;

क्षेत्रस्य पतिना वयꣳ हितेनेव जयामसि । गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृडातीदृशे ॥ ११
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ १२
सꣳ समित् ॥ १३
सखायः सꣳ वः सम्यञ्चमिषꣳ स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामू३र्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ १४
वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्टो दिवि ॥ १५
ऋतावानꣳ वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १६
वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १७
इडामग्ने ॥ १८
त्वं नो अग्ने सनये धनानाꣳ यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १९
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदꣳ विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ २०
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरꣳ सुवीरम् ।
वयं जयेम शतिनꣳ सहस्रिणꣳ वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ २१
विश्वꣳ विव्याच पृथिवीं पृष्टमन्यमन्यत् प्रतिगृभ्णात्यायत् ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना स्योनमन्नं मधुमन्मे कृणोमि ॥ २२

[क्षेत्रस्य पतिना० । ऋ. ४,५७,१; तै. सं. १,१,१४,२; नि. १०,१५; काठ. ४,१५ । मधुमतीरोषधीः० । ऋ. ४,५७,३; अथर्व. २० १४३,८ । सꣳ समित्० । ऋ. १०.१९१,१; अथर्व. ६,६३,४; तै. सं. २,६,११,४;४, ४,४,४; काठ. २,१५ । सखायः सꣳ वः० । ऋ. ५,७.१; तै. सं. २,६,११,४;४,४,४,३; काठ. २,१५ । वैश्वानरो न ऊत्या० (ऊतय०) अथर्व. ६.३५,१; तै. सं. १.५,११,१; काठ. ४.१६;२०,१५; आ. श्री. सू. २,११ । पृष्टो दिवि० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३.११,६.४; काठ. ११,१३ । ऋतावानꣳ वैश्वानरं० । अथर्व. ६.३६,१; तै. सं. १.५,११,१; काठ. ४,१६;६.१०;७.१६ । वैश्वानर तव धामानि० । ऋ ३.३,१० । इडामग्ने० (०ळा०) । ऋ. ३.१ २३;५.११;६.११;७.११;१५,७;२१,५;२३, ५; सा. ७६; तै. सं. ४,२,४,३; काठ. १६.११,१८,२१; कपि. २५.२ । त्वं नो अग्ने सनये० । ऋ. १.३१,८। वैश्वानरस्य सुमतौ० । ऋ १.९८.१; तै. सं. १,५,११.३; नि. ७,२२; काठ. ४,१६ । अस्माकमग्ने मघवत्सु० । ऋ. ६,८,६; तै. सं. १,५,११,२; काठ. ४,१६]

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥ २३

यथा ह त्यद् ॥ २४

अग्न्यावृꣳषि तव जातवेदस्त्रिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शंꣳ योः ॥ २५

त्व१ग्ने जातवेदसꣳ होत्रवाहꣳ यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ २६

इडायास्त्वा पदे वयं, दधिक्राव्णो अकारिषम् ॥ २७

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसꣳ सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मꣳश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥ २८

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ २९

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्यम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥ ३०

यच्चिद्धि ते ॥ ३१

महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शंꣳ योः ॥ ३२

मही द्यौः पृथिवी च नः ॥ ३३

[स जायमान परमे० । ऋ. ६,८,२ । यथा ह त्यद्० । ऋ. ४,१२,६;१०,१२६,८; तै. सं. ४,७,१५,७; काठ. २,१५;९,१९ । अग्न्यावृꣳषि तव० । ऋ. ३,१७,३; तै. सं. ३,२,११,२; काठ. २,१५;११,१४ । त्वमग्ने जातवेदसं० । ऋ. ५,२६,७; काठ. २,१३ । इडा (०ळा०) यास्त्वा पदे वयं० । ऋ. ३,२९,४; तै. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । दधिक्राव्णो अकारिषम्० । ऋ. ४,३९,६; सा. ३५८; अथर्व. २०,१३७,३; तै. सं. १,५,११,४; ७,४,१९,४; ताण्ड्य ब्रा. १,६,१७; तै. ब्रा. ३,९,७,५; मै. १,५,१;१,५,६;३,१३,१; काठ.६,९;७,४;५,४,८; कपि. ४,८;५,३ । दधिक्रावाणं बुबुधानो० । ऋ. ७,४४,३ । अग्निर्होता न्यसीदद्० । ऋ. ५,१६; तै. ब्रा. १,३,१४,१; काठ. २,१५;७,१६ । साध्वीमकर्देववीतिं० । ऋ. १०,५३,३; तै. सं. १,३,१४,२; काठ. २,१५ । यच्चिद्धि ते० । ऋ. ४,१२,४;१,२५,१; तै. सं. २,४,११,५;४,७,१५,६ । महश्चिदग्ना (०ग्न) एनसो० । ऋ. ४,१२,५; काठ. २,१५ । मही द्यौः पृथिवी च न:० । ऋ. १,२२,१३; तै. सं. ३,३,१०,२;५,११,३;४,२,९,३; काठ. ११,९-१०;१५,१२;१६,१६;२०,७;३९,३; कपि. ३२,९]

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥ ३४

पृथुपाजा,—स्तꣳ सबाधः ॥ ३५

ईडे अग्निꣳ विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ ३६

अग्ने शकेम ते वयꣳ यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषाꣳसि तरेम ॥ ३७

उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३८

उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ ३९

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्, त्वꣳ सोमासि सत्पति,—रग्नीषोमा युवमेतानि, श्रीणामुदारः ॥ ४०

सोमस्य मा तवसꣳ वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवं अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिꣳ शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ ४१

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४२

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमाꣳसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ ४३

उत नो ब्रह्मन् हविष उक्थेषु देवहूतमः । शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ४४

[घृतवती भुवनानां० । ऋ. ६,७०,१; सा. ३७८]
[२] तै. सं. १,८,२२;२,१,११; वा. ३३,९;१२,२२;२१,३–४,८–९;२०,८४ । काण्व. ३२,९;१३,२३;२३,३-४, ८–९,२२,६९ । [पृथुपाजास्तꣳ सबाधः० । ऋ. ३,२७,५–६; तै. ब्रा. ३,६,१,३; काठ. ४०,१४ । ईडे (०ळे) अग्निꣳ विपश्चितं० । ऋ. ३,२७,२; तै. ब्रा. २,४,२,४; काठ. ४०,१४ । अग्ने शकेम ते वयं० । ऋ. ३,२७,३; तै. ब्रा. २,४,२,५; काठ. ४०,१४ । उप त्वा रण्वसंदृशं० । ऋ. ६,१६,३७; सा. १७०५; काठ. ४०,१४ । उप छायामिव घृणेः० । ऋ. ६,१६,३८; तै. ब्रा. २,४,४,६; काठ. ४०,१४ । अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्० । ऋ. ६,१६,३४; सा. ४,१३९६; तै. सं. ४,३,१३,१;५,५,६,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ २,१४;२०,१४ । त्वꣳ सोमासि सत्पतिः० । ऋ. १,९१,५; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । अग्नीषोमा० । ऋ. १,९३,१–४,७,९–१२;१०,६६,७; तै. सं. २,३,१४,१–२; तै. ब्रा. २,८,७,९–१०;३,५,७,१ । युवमेतानि० । ऋ. १,९३,५; तै. सं. २,३,१४,१; तै. ब्रा. ३,५,७,१; काठ. ४,१६ । श्रीणामुदारः० । ऋ. १०,४५,५; तै. सं ४,२,२,३; काठ. १,१५;१६,९ । सोमस्य मा तवसं० । ऋ. ३,१,१; काठ. २,१५ । सोमापूषणा जनना० । ऋ. २,४०,१; तै. सं. १,८,२२,५; तै. ब्रा. २,८,१,५; काठ. ८,१७ । इमौ देवौ जायमानौ० । ऋ. २,४०,२; तै. सं. १,८,२२,५; तै. ब्रा. २,८,१,५; काठ. ८,१७ । उत नो ब्रह्मन् हविष (०ह्यविष)० । ऋ. ३,१३,६; काठ. २,१५]

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्यꣳ वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ४५

त्वां युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ ४६

अदुदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयꣳ यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ ४७

त्वं नो अग्ने, स त्वं नो अग्ने, ऽग्निꣳ वः पूर्व्यं गिरा ॥ ४८

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासुचित् ।
देवानाꣳ य इन्मनो यजमाना इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ४९

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानाꣳ य इन्मनो यजमाना इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ५०

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानाꣳ य इन्मनो यजमाना इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ५१

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानाꣳ य इन्मनो यजमाना इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ ५२

उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ५३

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अवस्यतं मुञ्चतꣳ यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ५४

[नू नो रास्व० । ऋ. ३,१३,७; काठ. २,१५ । त्वां युजा तव तत्सोम० । ऋ. ४,२८,१ । अदुदरेण सख्या० । ऋ. ८,४८,१०; तै. सं. २,२,१२,३; नि. ६,४ । त्वं नो अग्ने० । ऋ. ४,१,४;१,३१,८; तै. सं. २,५,१२,३;४, २,११,३; तै. ब्रा ३,७,११,३;१२,६; तै. आ. २,४,४;४,२०,३; काठ. ३४,१९ । स त्वं नो अग्नेऽवमो० । ऋ. ४,१,५; तै सं. २,५,१२,३; काठ. ३४,१९; कपि. ४८,१ । अग्निꣳ वः पूर्व्यं गिरा० । ऋ. ८,३१,१४; तै. सं. १,८,२२,३; काठ. ११,१२ । मक्षू देववतो रथः० । ऋ. ८,३१,१५; तै. सं. १,८,२२,३; काठ. ११,१२ । न यजमान रिष्यसि० । ऋ. ८,३१,१६; तै. सं. १,८,२२,४; काठ. ११,१२ । नकिष्टं कर्मणा० । ऋ. ८, ३१,१७; तै. सं. १,८,२२,४; काठ. ११,१२ । असदत्र सुवीर्यम्० । ऋ. ८,३१,१८; तै. सं. १,८,२२,४; काठ. ११,१२ । उपक्षरन्ति सिन्धवो० । ऋ. १,१२५,४; तै. सं. १,८,२२,४; काठ. ११,१२;११,५ । सोमारुद्रा युवमेतानि० । ऋ. ६,७४,३; अथर्व. ७,४२,२; तै. सं. १,८,२२,५; काठ. ११,१२]

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्य१ं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ५५

सोमारुद्रा वि वृहतꣳ विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ ५६

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्रा विह सु मृडतं नः ।
प्र मुञ्चतमस्मान् प्रसितान्नमीके प्रयच्छतꣳ वृषणा शंतमानि ॥ ५७

अग्नाविष्णू सजोषसा, ऽग्नाविष्णू महि धाम प्रियꣳ वाम् ॥ ५८

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वꣳ वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा ।
दमेदमे सुष्टुती वावृधाना प्रति वां जिह्वा घृतमाचरण्यत् ॥ ५९

पावका नः सरस्वती ॥ ६०

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापस्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ ६१

आ नो दिवः ॥ ६२

बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ६३

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६४

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥ ६५

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतꣳ युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ६६

[सोमारुद्रा धारयेथाम्० । ऋ. ६,७४,१; काठ. ११,१२ । सोमारुद्रा विवृहतꣳ० । ऋ. ६,७४,२; अथर्व. ७,४२,१; तै. सं. १,८,२२,१; काठ. ११,१२ । तिग्मायुधौ तिग्महेती० । ऋ. ६,७४,४ । अग्नाविष्णू सजोषसा० । तै. सं. ४,७,१;५,७,३,१; तै. ब्रा. ३,११,३ । अग्नाविष्णू महि (तद्वां) धाम० । अथर्व. ७,२९,१–२; तै. सं. १,८,२२,१;२,५,१२,१; काठ. ४,१६ । पावका नः सरस्वती० । ऋ. १,३,१०; सा. १८९; तै. ब्रा. २,४,३,१, नि. ११,२६; काठ. ४,१६ । सरस्वत्यभि नो नेषि० । ऋ. ६,६१,१४; तै. सं. ७,१,७,४; तै. ब्रा. २,४,३,१;८,२,८; काठ. १७,१८;३०,३ । आ नो दिवः० । ऋ. ५,४३,११; तै. सं. १,८,२२,१;२,५,१२, १;३,१,११,२; काठ. ४,१६;२०,१५ । बृहस्पते जुषस्व नो० । ऋ. ३,६२,४; तै. सं. १,८,२२,२; काठ. ४,१६;२६ २६,११ । एवा पित्रे विश्वदेवाय० । ऋ. ४,५०,६; अथर्व. २०,८८,६, तै. सं. १,८,२२,२; तै. ब्रा. २,८,२,८; काठ १७,१८ । आ नो मित्रावरुणा० । ऋ. ३,६२,१६ सा. २२०.६६३; तै. सं. १,८,२२,३ । प्र बाहवा सिसृतं० । ऋ. ७,६२,५; तै. सं. १,८, २२,३; तै. ब्रा. २,७,१५,६;८,६,७; काठ. ११,१४]

और्वभृगुवच् शुचिमप्नवानवदाहुवे। अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥ ६७
आ सवꣳ सवितुर्यथा भगस्येव भुजिꣳ हुवे। अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥ ६८
हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यꣳ सहः। अग्निꣳ समुद्रवाससम् ॥ ६९
वृषा सोम द्युमाँ असि ॥ ७०
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ७१
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिꣳ ये विश्वे मरुतो जुनन्ति।
अयꣳ यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ७२
यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥ ७३
अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षाꣳसि सेध।
अस्मात् समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥ ७४
प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानः ॥ ७५
श्रियसे कं भानुभिः संमिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ७६
मरुतो यद्ध वो दिवः ॥ ७७
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीडयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ २ ॥ ७८
कया शुभा सवयसः सनीडाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मꣳ वृषणो वसूया ॥ ७९

[और्वभृगुवच् शुचिम्०। ऋ. ८,१०२,४; सा. १८; तै. सं. ३,१,११,८; कठ. ४०,१४। आ सवꣳ सवितुर्यथा०। ऋ. ८,१०२,६; तै. सं. ३,१,११,८; काठ. ४०,१४। हुवे वातस्वनं कविं०। ऋ. ८,१०२,५; तै. सं. ३,१,११,८; काठ. ४०,१४। वृषा सोम द्युमं० (०माँ)। ऋ. ९,६४,१; सा. ५०४,७८१; तै. सं. ४,२,११,३; ३,१३,३; काठ. २,१४; २०,१५,। आ ये तन्वन्ति रश्मिभि०। ऋ. १,१९,८। आ वो यन्तूदवाहासो०। ऋ. ५,५८,३; तै. ब्रा. २,५,५,३। यं त्वा देवापिः०। ऋ. १०,९८,८; कठ. २,१५; कपि. २५,३; ३२,४। अग्ने बाधस्व वि मृधो०। ऋ. १०,९८,१२; तै. ब्रा. २५,८,११; काठ. २,१५। प्रिया वो नाम हुवे०। ऋ. ७,५६,१०; तै. सं. २,१,११,१; काठ. ८,१७। श्रियसे क भानुभिः०। ऋ. १,८७,६; तै. सं. २,१,११,२; ४,२,११,२; नि. ४,१६; काठ. ३,१७। मरुतो यद्ध वो दिवः०। ऋ. ८,७,११; तै. सं. १,५,११,४; २,१,११,१; काठ. ८,१७; ९,१९; २१,१३। प्रैषामज्मेषु विथुरेव०। ऋ. १,८७,३; तै. सं. ४,३,१३,७]
[३] वा. ३३,२७,७८—७९; ३४,४८। काण्व. ३२,२७,७८—७९; ३३,३६। [कया शुभा सवयसः०। ऋ. १,१६५,१; काठ. ९,१८।

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुता आववर्त।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ ८०
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
संपृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ८१
ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आशासते प्रतिहर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ८२
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः।
महोभिरेकाꣳ उपयुज्महे न्विन्द्रः स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ८३
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकꣳ समधत्ताहिहत्ये।
अहꣳ ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमꣳ वधस्नैः ॥ ८४
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौꣳस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ८५
वधीꣳ वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८६
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाꣳ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ८७
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा।
अहꣳ ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्रा ईदीश एषाम् ॥ ८८
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यꣳ सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ८९
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रवा एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ ९०

[कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः०। ऋ. १,१६५,२; काठ. ९,१८। कुतस्त्वामिन्द्र माहिनः०। ऋ. १,१६५,३; काठ. ९,१८। ब्रह्माणि मे मतयः०। ऋ. १,१६५,४; काठ. ९,१८। अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः०। ऋ. १,१६५,५; काठ. ९,१८। क्वस्या वो मरुतः०। ऋ. १,१६५,६; तै. ब्रा. २,८,३,५; काठ. ९,१८। भूरि चकर्थ युज्येभिः०। ऋ. १,१६५,७; नि. ६,७; काठ. ९,१८; २३,११। वधीꣳ वृत्रं मरुत०। ऋ. १,१६५,८; तै. ब्रा. २,८,३,६; कठ. ९,१८; २३,११। अनुत्तमा ते मघवन्०। ऋ. १,१६५,९; काठ. ९,१८। एकस्य चिन्मे०। १,१६५,१०; काठ. ९,१८। अमन्दन्मा मरुतः०। ऋ. १,१६५,११; काठ. ९,१८। एवेदेते प्रति मा०। ऋ. १,१६५,१२; काठ. ९,१८]

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्रयातन सखीꣳरच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ ९१
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारुरस्माꣳश्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ ९२
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयाꣳ विद्यामेषꣳ वृजनं जीरदानुम् ॥ ३ ॥ ९३
इन्द्रꣳ वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ ९४
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नꣳ स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९५
मरुतो यद्ध वो दिवो, या वः शर्म ॥ ९६
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमागहि। महान्महीभिरूतिभिः ॥ ९७
त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यꣳ ह क्षा अनु क्षत्रं मꣳहना मन्यत द्यौः।
त्वꣳ वृत्रꣳ शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूꣳरहिना जग्रसानान् ॥ ९८
मरुतो यद्ध वो बलं जनं अचुच्यवितन। गिरीꣳरचुच्यवीतन ॥ ९९
ऋष्टयो वो मरुतो अꣳसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलꣳ हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु नो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ १००
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः। समत्सु त्वा हवामहे ॥ १०१
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥ १०२

[को न्वत्र मरुतो०। ऋ. १,१६५,१३; काठ. ९,१८। आ यद् दुवस्याद् दुवसे०। ऋ. १,१६५,१४; कठ. [को न्वत्र मरुतो०। ऋ. १,१६५,१५; १६६,१५; १६७,११; १६८,१०; काठ. ९,१८] ९,१८। एष वः स्तोमो मरुत०। ऋ. १,१६५,१५; १६६,१५; १६७,११; १६८,१०; काठ. ९,१८। काण्व. ३२,६५; ४,२१; ५,
[४] वा. ३३,६५; ४,१६; ५,१५,२०,३६—३७; ७,४३—४४, ४०,१६; ३७,९। [इन्द्रꣳ वो विश्वतस्परि०। ऋ. १,७,१०, स. १६२०, २०,२६,४५—४६, ९,८—९, ४०,१८, १८,१०। आ ते अथर्व. २०,३९,१; ७०,१६, तै. सं. १,६,१२,१; २,३,१४,१, ३,१,११,१, ४,३,१३,८; कठ. ८,१७। शुष्मो वृषभ०। ऋ. ६,१९,९; तै. ब्रा. २,५,८,१; ८,५,९। मरुतो यद्ध वो दिवः०। ऋ. ८,७,११; तै. सं. १,५,११.४; २,१,११,१; ३,१४,४, काठ. ८,१७; ९,१९; २१,१३। या वः शर्म०। ऋ. १,८५,१२; तै. सं. १,५,११,५; २,१,११,१; ३,१४,४; तै. ब्रा. २,८,५,६, कठ. ८,१७; २१,१३। आ तू न इन्द्र वृत्रहन्०। ऋ. ४,३२,१; सा. १८१; काठ. ६,१०, २१,१३। त्व महं (०हाँ) इन्द्र तुभ्यं०। ऋ. ४,१७,१, काठ. ६,१०। मरुतो यद्ध वो बलं०। ऋ. १,३७,१२। ऋष्टयो वो मरुतो०। ऋ. ५,५७,६। पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि०। ऋ. ८,११,८; ४३,२१; सा. ११६७; तै. ब्रा. २,४,४,४। समत्स्वग्निमवसे०। ऋ. ८, १,९; सा. ११६८, तै. ब्रा. २,४,४,४]

अग्ने नया,—ऽऽ देवानां, त्वमग्ने व्रतपा असि, यद्वो वयम् ॥ १०३
त्वमग्ने व्रतभृच्छुचिरग्ने देवाꣳ इहावह। उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ १०४
व्रता नु बिभ्रद् व्रतपा अदब्धो यजानो देवो अजरः सुवीरः।
दधद्रत्नानि सुमृडीको अग्ने गोपाय नो जीवसे जातवेदः ॥ १०५
श्रेष्ठꣳ यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमाभर। वसो पुरुस्पृहꣳ रयिम् ॥ १०६
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात्।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥ १०७
त्वामग्ने वाजसातमꣳ विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम्। स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १०८
अयं नो अग्नि,—रनीकेद्वेषो अदेय, सैनानीकेने,—दꣳ विष्णुः, प्र तद्विष्णुः ॥ १०९
आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳ सत्ययजꣳ रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ११०
काद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभꣳये।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ १११
उक्षान्नाय वशान्नाय ॥ ११२
वातोपधूत इषितो वशाꣳ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक् शर्धाꣳस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥ ४ ॥ ११३

[अग्ने नय सुपथा०। ऋ. १,१८९,१; तै. सं. १,१,१४,३; ४,४३,१; तै. ब्रा. २,८,२,३; तै. आ, १,८,८; शत. ब्रा. १४,८,३,१; काठ. ६,१०; ३,१, कपि. २,८। आ देवानां०। ऋ. १०,२,३; अथर्व. १९,५९,३; तै. सं १,१,१४,३; काठ. २,१५;१८,२१;३५,९। त्वमग्ने व्रतपा असि०। ऋ. ८,११,१; अथर्व. १९,५९,१; तै. सं. १,१,१४,४; २,३,१; काठ. २,४; ६,१०; २३,५। यद्वो वयम्०। ऋ. १०,२,४; अथर्व. १९,५९,२; तै. सं. १,१,१४,४; काठ. ६,१०; कपि. ४८,१०। त्वमग्ने व्रतभृच्छुचि० (स नः पावक दीदिवो०)। ऋ. १,१२,१०; तै. सं. १,३,१४,८; ५,५,३;४,६,१,३; तै. ब्रा. २,४,१,११। व्रता नु बिभ्रद् व्रतपा०। तै. ब्रा. २,४,१,११। श्रेष्ठꣳ यविष्ठ भारताग्ने०। ऋ. २,७,१; तै. सं. १,३,१४,३। तुभ्यं भरन्ति क्षितयो०। ऋ. ५,१,१०; तै. ब्रा. २,४,७,९; कठ. ७,१६। त्वामग्ने वाजसातमꣳ०। ऋ. ५,१३,५; तै. सं. १,४,४६,३; काठ. ६,१०। अयं नो अग्निः०। तै. सं. १,३,४,१; ४,४६,३, काठ. ४,९; ६,१०; कपि. ३,७। अनीकेद्वेषो अदेय०। तै. सं. ४,३,१३,२; कठ. २१,१३। इदꣳ विष्णुर्वि चक्रमे०। ऋ. १,२२,१७, सा. २२२,१६६९, अथर्व. ७,२६,४; तै. सं. १,२,१३,१; तै. ब्रा. ३,१,३,३; नि. १२,१९; काठ. २,१०; कपि. ३,४। प्र तद्विष्णु स्तवते०। ऋ. १, १५४,२; अथर्व. ७,२६,२—३; तै. ब्रा. २,४,३,४; नि. १,२०, कठ. २,१०;२५,८; कपि. २,४; ४०, १। आ वो राजानमध्वरस्य०। ऋ. ४,३,१; सा. ६९; तै. सं. १,३,१४,१, तै. ब्रा. २,८,६,९; काठ. ७,१६। काद्धिष्ण्यासु वृधसानो०। ऋ. ४,३,६, काठ. ७,१६। उक्षान्नाय वशान्नाय०। ऋ. ८,४३,११,; अथर्व. ३,२१,६, २०,१३, तै. सं. १,३,१४,७, काठ. ७,१६, ४०,५। वातोपधूत इषितो०। ऋ. १०,९१,७, सा. ९८३]

कृणुष्व पाजा इति पञ्च ॥ ११४

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभिद्यौत् ॥ ११५

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ११६

अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ११७

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ११८

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥ ११९

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ १२०

अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२१

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ १२२

त्वया वयं सधन्यस्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १२३

[५] तै. सं. १,२,१४ । वा. १३,९—१३ । काण्व. १४,९—१३ । [कृणुष्व पाजा (०जः) प्रसितिं० । ऋ. ४,४, १—५; तै. सं. १,२,१४,१—२; नि. ६,१२; काठ. ६,११; १०,५; १६,१५; कपि. २५,५; १३,९ । स ते जानाति सुमतिं० । ऋ. ४,४,६; तै. सं. १,२,१४,२; काठ. ६,११ । सेदग्ने अस्तु सुभगः० । ऋ. ४,४,७; तै. सं. १,२,१४,३; काठ. ६,११ । अर्चामि ते सुमतिं० । ऋ. ४,४,८; तै. सं. १,२,१४,३; काठ. ६,११ । इह त्वा भूर्याचरेदुप० । ऋ. ४,४,९; तै. सं. १,२,१४,४; काठ. ६,११ । यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो० । ऋ. ४,४,१०; तै. सं. १,२,१४,४; काठ. ६,११ । महो रुजामि बन्धुता० । ऋ. ४,४,११; तै. सं. १,२,१४,४; काठ. ६,११ । अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा० । ऋ. ४,४,१२; तै. सं. १,२,१४,५; काठ. ६,११ । ये पायवः मामतेयं० । ऋ. १,१४७,३; ४,४,१३; तै. सं. १,२,१४,५; काठ. ६,११ । त्वया वयं सधन्यस्त्वोता । ऋ. ४,४,१४; तै. सं. १,२,१४,६; नि. ५,१५; काठ. ६,११; १६,१]

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ १२४

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥ १२५

त्वं नः सोम विश्वतः ॥ ५ ॥ १२६

युक्ष्वा हि देवहूतमान् ॥ १२७

उत नो देव देवं अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ १२८

त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सून आहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ १२९

अयमग्निः सहस्रिणः ॥ १३०

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ १३१

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ १३२

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ १३३

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ १३४

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमावधीत् ॥ १३५

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १३६

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १३७

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ १३८

मा नो अस्मिन् महाधने परा वग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥ १३९

[अया ते अग्ने समिधा० । ऋ. ४,४,१५; तै. सं. १,२,१४,६; नि. ३,२१; काठ. ६,११ । अग्नी रक्षांसि सेधति० । ऋ. ७,१५,१०; अथर्व. ८,३,२६; तै. ब्रा. २,४,१,६; काठ. १५,१२ । त्वं नः सोम विश्वतः० । ऋ. १,९१,८; ८,४८,१५; १०,२५,७; तै. सं. २,३,१४,१; ४,१,११,१; काठ. २,१४]

[६] तै. सं २,६,११ । काठ. ७,१७ । वा. १३,३७; ३३,४; १५,२१ । काण्व. १४,३९; ३२,४; १६,४२ । [युक्ष्वा हि देवहूतमान्० (०तमाँ) । ऋ. ८,७५,१ तै. सं. २,६,११,१; काठ. ७,१७, २२,५—६; कपि. ३४ । उत नो देव देवं (०वान्) ऋ. ८,७५,२; तै. सं. २,६,११,१; काठ. ७,१७ । त्वं ह यद्यविष्ठ्य० । ऋ. ८,७५,३; तै. सं. २,६,११,१; काठ. ७,१७ । अयमग्निः सहस्रिणः० । ऋ. ८,७५,४; तै. सं. २,६,११,१; ४,४,४,१; काठ. ७,१७; १६,१५ । तं नेमिमृभवो यथा० । ऋ. ८,७५,५; तै. सं. २,६,११,१ । तस्मै नूनमभिद्यवे० । ऋ. ८,७५,६; तै. सं. २,६,११, २ । कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेः० । ऋ. ८,७५,७; तै. २,६, ११,२; काठ. ७,१७ । मा नो देवानां विशः । ऋ. ८,७५,८; तै. सं. २,६,११,२; काठ. ७,१७ । मा नः समस्य दूढ्यः० । ऋ. ८,७५,९; तै. सं. २,६,११,२; नि. ५,२३ । नमस्ते अग्न(०ग्ने) ओजसे० । ऋ. ८, ७५,१०; सा. ११, १६४८; तै. सं. २,६,११,२ काठ. ७,१७ । इमं यज्ञमिदं वचो० । ऋ. १,९१,१०; काठ. २,१४ । कुवित्सु नो गविष्टये० (वि०) । ऋ. ८,७५,११; सा. १६४९; तै. सं. २,६,११,३; काठ. ७,१७ । मा नो अस्मिन्० । ऋ ८,७५,१२; सा. १६५०; तै. सं. २,६,११,३; काठ. ७,१७]

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥ १४०

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥ ६ ॥ १४१

॥ इति खिलकाण्डे एकादशः प्रपाठकः ॥११॥　　[२६०३]

अथ द्वादशः प्रपाठकः ।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १

अयं इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ २

एवा पु ब्रवाणि तेऽग्ने इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ३

इमं यज्ञमिदं वचः ॥ ४

त्यान्नु क्षत्रियां अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृडीकां अभिष्टये ॥ ५

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥ ६

धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ७

श्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ८

तन्वंपस्य, भद्रा अश्वा, हिरण्यगर्भो, यः प्राणतः ॥ ९

[यस्याजुषन्नमस्विनः० । ऋ. ८,७५,१४; तै. सं. २,६,११,३ । अन्यमस्मद्भिया० । ऋ. ८,७५,१३; तै. सं. २,६,११,३]

[१] वा. २६,१३; ३३,३७,५३; १३,४; २३,१,३; २५,१०—१३; ३२,५३,५८,५६; २६,१,४८; ५,१५ । काण्व. ३२,३७, ५३; १४,४; २५,१,३; २७,१४—१५; ३३,४१,४४,५६; २७,१,४८; ५,२० । [इदं वामास्ये हविः० । ऋ. ४,४९,१; तै. सं. ३,३,११,१; अयं इन्द्राबृहस्पती० । ऋ. ४,४९,४; तै. सं. ३,३,११,१ । एवा पु ब्रवाणि० । ऋ. ६,१६,१६; सा. ७,७०५; काठ. २,१४; ४०,१४ । इमं यज्ञमिदं० । ऋ. १,९१,१०; १०,१५०,१; काठ. २,१४ । त्यान्नु क्षत्रियां अव० । ऋ. ८,६७,१; तै. सं. २,१,११,५ । येभ्यो माता मधुमत्० । ऋ. १०, ६३,३ । धारयन्त आदित्यासो० । ऋ. २,२७,४; तै. सं. २,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ. ११,१२ । श्री रोचना दिव्या० । ऋ. २,२७,९ । तन्वूर्पस्य० । ऋ. १,११५,४; अथर्व. २०,१२३,१; तै. ब्रा. २,८,७,१; नि. ४,११ । भद्रा अश्वा० । ऋ. १,११५,३; तै. ब्रा. २,८,७,१ । हिरण्यगर्भो० । ऋ. १०,१२१,१; अथर्व. ४,२, ७; तै. सं. ४,१,८,३; २,८,२; ताण्ड्य ब्रा. ९,९,१२; नि. १०,२३; काठ. ५,५,११; १६,१५; २०,५; ४०,१; कपि. ३२,७; ४८,१३ । यः प्राणतः० । ऋ. १०,१२१,३; अथर्व. ४,२,२; तै. सं. ४,१,८,४; ७,५,१६,१; काठ. ४,१६; ८,१७; १०,१३; २२,१४; ४०,१; ५,५,१३]

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ १०

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ ११

बृहस्पतिं हवामहे विश्वतः सगणं वयम् । उप नो यज्ञमागमत् ॥ १२

स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ १३

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १४

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वीरां उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥ १५

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १६

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवां अवो वरेण्यम् ॥ १७

नमस्ते रुद्र मन्यव, इमा रुद्राय ॥ १८

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ १९

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ २०

[बृहस्पतिः प्रथमं० । ऋ. ४,५०,४; अथर्व. २०,८८,४; तै. ब्रा. २,८,२,७; काठ. १७,१८ । यदा वाजमसनद्० । ऋ. १०,६७,१०; अथर्व. २०,९१,१० । स सुष्टुभा स ऋक्वता० । ऋ. ४,५०,५; अथर्व. २०,८८,५; तै. सं. २,३,१४,४; काठ. १०,१३ । ब्रह्मणस्पते त्वमस्य० । ऋ. २,२३,१९; २४,१६; तै. ब्रा. २,८,५,१ । ब्रह्मणस्पते सुयमस्य० । ऋ. २,२४,१५; तै. ब्रा. २,८,५,२ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते० । ऋ १,४०,१; तै. आ ४,२,१; काठ. १०,१३ । अग्निरुक्थे पुरोहितो० । ऋ. ८,२७,१; सा. ४८; काठ. १०,१३ । नमस्ते रुद्र मन्यव० । तै. सं. ४,५,१,१; काठ. १७,११; कपि. २७,१ । इमा रुद्राय० । ऋ. १,११४,१; तै. सं. ४,५,१०,१; काठ. १७,१६; कपि. २७,६ । को अद्धा वेद क इह० । ऋ. १०,१२९,६; तै. ब्रा. २,८,९,५ । इयं विसृष्टिर्यत आबभूव० । ऋ. १०,१२९,७; तै. ब्रा. २,८,९,६]

इदं विष्णुर्विचक्रमे ॥ २१

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ २२

विश्वे देवा ऋतावृधः ॥ २३

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ २४

इन्द्राणीं पत्या सुजितं जिगाय सेना ह नाम पृथिवी धनंजया विश्वव्यचा अदितिः सूर्यत्वक् ।
इन्द्राणी प्रासहा संजयन्ती तस्यै त एना हविषा विधेम ॥ २५

उपप्रेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसुपते विरमय मय्येव तन्वं मम ॥ २६

ये त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽद्य दधातु मे ॥ १ ॥ २७

अग्निः प्रथमो वसुभिर्नो अव्यात् सोमो रुद्रैरभिरक्षतु त्मना ।
इन्द्रो मरुद्भिरृतुथा कृणोत्वादित्यैर्नो वरुणः शर्म य सत् ॥ २८

समग्निर्वसुभिर्नो अव्यात् सꣳ सोमो रुद्रियाभिस्तनूभिः ।
समिन्द्रो रातहव्यो मरुद्भिः समादित्यैर्वरुणो विश्ववेदाः ॥ २९

अग्ने दा दाशुषे रयिꣳ वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ३०

दा नो अग्ने शतिनो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजꣳ श्रुत्या अपावृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि ꣳस्वर्ण शुक्रमुषसो विदिद्युतः ॥ ३१

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ३२

[इदꣳ विष्णुर्वि चक्रमे० । ऋ. १,२२,१७; सा. २२२,१६६९; अथर्व. ७,२६,४; तै. सं. १,२,१३.१; तै. ब्रा. ३,१,३.३; नि. १२,१९; काठ. २,१०; कपि. २,४ । तदस्य प्रियमभि पाथो० । ऋ. १ १५४,५; तै. ब्रा. २, ४,६,२, ८,३,२ । विश्वे देवा ऋतावृधः० । ऋ. ६,५२,१०; तै. सं. २,४,१४,५;४,१.११,४; काठ. १३,१५ । विश्वे देवा शृणुतेमꣳ० । ऋ. ६ ५२,१३; तै. सं. २,४.१४,५, ४,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,६.५]

[१] वा. ११,१०; ८,६; ३३,५५, २७,२७; ३५ ११; ३६ १३ । काण्व. ११,१४; ८,५; ३१,५५, २९,२६; ३५,५४; ३६,१३ । [अग्निः प्रथमो वसुभिः । तै. सं. २,१.११.२, कठ. १०,१२ । समग्निर्वसुभिर्नो० । तै. सं. २,१, ११,२, काठ. १०.१२ । अग्ने दा दाशुषे० । ऋ. ३,२४,५; तै. सं. २.२,१२,६; काठ. ६,१० । हिरण्यपाणि- मूतये० । ऋ. १,२२ ५, तै. सं. १,४,२५,१, २,२,१२,२]

मै० ५६

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ३३

प्र वायुं, प्र याभिः ॥ ३४

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ ३५

बडित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि । प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना हिनोषि महिनि ॥ ३६

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवना विचष्ट ऋतूꣳरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ ३७

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥ ३८

यथादित्या अꣳशुमाप्याययन्ति यथाक्षितिमक्षितयः पिबन्ति ।
एवास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिराप्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ ३९

प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्याꣳ वृत्रहन् वृत्रहासि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभो हव्य एधि ॥ ४०

अस्येदेव प्ररिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ४१

त्वमिन्द्रास्यधिराजस्त्वं भवाधिपतिर्जनानाम् ।
दैवीर्विशस्त्वमुता विराजौजस्वत्क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ ४२

आ यस्मिन्त्सप्त वासवा रोहन्ति पूर्व्या रुहः ।
ऋषिर्ह दीर्घश्रुत्तम इन्द्रस्य घर्मो अतिथिः ॥ ४३

[वाममद्य सवितर्वाममु० । ऋ. ६,७१,६, तै. सं. १,४,२३.१, २,२,१२,२ । प्र वायुं० । ऋ. ६,४९,४; तै. ब्रा. २,८,१.१ । प्र याभिः । ऋ. ७,९२,३, तै. सं. २,२,१२,७; तै. ब्रा. २.८,१.१; काठ. १०,१२ । स्योना पृथिवि० (नो) । ऋ. १,२२,१५; अथर्व. १८,२,१९; तै. आ. १०,१,१०; नि. ९,३२; काठ. ३८,१३ । बडि(०ळि)त्था पर्वतानां० । ऋ. ५,८४,१; तै. सं. २,२,१२,२; नि. ११,३७; काठ. १०,१२ । पूर्वापरं चरतो० । ऋ. १०,८५ १८; अथर्व. ७,८१,१: १३,२,११; १४,१,२३; तै. ब्रा. २,७,१२,२; ८,९,३ । नवो नवो भवति जायमानो० । ऋ. १०,८५,१९, अथर्व. ७,८१,२, १४,१,२४; तै. सं. २.३,५,३; ४,१४, १; नि. ११,६ । प्राच्यां दिशि त्वमिन्द्रासि० । तै. सं. १,४,१४,१, काठ. ८, १७ । अस्येदेव प्ररिरिचे० । ऋ. १,६१,९; अथर्व. २०,३५,९, तै. सं. २,४,१४,२; काठ. ८,१७ । आ यस्मिन्त्सप्त वासवा० । तै. सं. १,६.१२,२; तै. आ. १,८,८; काठ ८,१६]

मदो न यः सोम्यो बोधिचक्षा वातश्च नु च्यवन इन्दुविक्षाः ।
स तमुः शुचते न धरः स स्वेदयुः शुशुचानो न घर्मः ॥ ४४

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥ ४५

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ४६

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४७

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ २ ॥ ४८

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अꣳहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ ४९

अꣳहोमुचे प्रभरेमा मनीषां भूयिष्ठदाव्ने सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं जुषस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ५०

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ५१

मा ते अस्याꣳ सहसावन् परिष्टा अघाय भूम हरिवः परादैः ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ५२

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ ५३

[इन्द्रियाणि शतक्रतो० । ऋ. ३,३७,९; अथर्व. २०,२०,२; ५७,२, तै. सं. १,६,१२,१; २,५,१२,५; काठ. ८,१६ । अनु ते दायि मह० । ऋ. ६,२५,८; तै. सं. १,६,१२,१; तै. ब्रा. २,८,५,७, काठ. ८,१६ । अन०. ८,१६ । अनु ते दायि मह० । ऋ. ६,२५,८; सा. ४३९,४४०; तै. सं. १.६,१२,६; तै. ब्रा. २,८,४,३; काठ. ८,१६ । यस्ते रथमश्वाय० । ऋ. ५,३१,४; तै. सं. १,६,१२,६; तै. ब्रा. २,८,४,३; काठ. ८,१६]

वृष्णे यत्ते वृषणो० । ऋ. ५,३१,५; तै. सं. १,६,१२,६; तै. ब्रा. २,८,४,३; काठ. ८,१६

[३] वा. १२,४४,५१; २०,५०; ८,४४; १८,७०-७१; ३४,१३; २१,३ । काण्व. १२,८१, १३,४१,५२, २२,३५; ८,२५, २०,३९-४०; ३३,७, १३,३ । [विवेष यन्मा धिषणा० । ऋ. ३,३२,१४; तै. सं. १,६,१२,३; २, ५,१२,५; तै. ब्रा. २,६,९,१, काठ. ८,१६; ३८,७ । अꣳहोमुचे प्रभरेमा० । तै. सं. १,६,१२,३, २,५,१२,५; काठ. ८,१६ । त्रातारमिन्द्रमविता० । ऋ. ६,४७,११; सा. ३३३; अथर्व. ७,८६,१, तै. सं. १,६,१२,५, काठ. ८,१६ । मा ते अस्याꣳ सहसावन्० । ऋ. ७,१९,७; अथर्व. २०,३७,७; तै. सं. १,६,१२,५ । अनु त्वाहिघ्ने अध देव० । ऋ. ६,१८,१४, काठ. ८,१६]

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतꣳ यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ ५४

अभि प्रभर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ५५

अस्मा इदु प्रभरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व विरदा तिरश्चेष्यन्नर्णाꣳस्यपां चरध्यै ॥ ५६

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ॥ ५७

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मꣳ वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ५८

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनꣳ स्तुहि ॥ ५९

त्वꣳ सपत्नान् पृतनासु जिष्णुरिन्द्राभिषाडभिमातीरपघ्नन् ।
पिबा सोमꣳ वज्रबाहो विषह्यास्मभ्यं पूर्णा रवैस्त्वांसुखाय ॥ ६०

पुरुष्टुतस्य नामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीसहः ॥ ६१

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ६२

अर्वावतो ना आगहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ६३

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आगहि ॥ ६४

ऐन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳ सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ६५

[अनु द्यावापृथिवी तत्त० । ऋ. ६ १८,१५; काठ. ८,१६ । अभि प्रभर धृषता० । ऋ. ८,८९ ४, काठ. ८,१६ । अस्मा इदु प्रभरा० । ऋ. १.६१,१२; अथर्व. २० ३५ १२; नि. ६.२०; काठ. ८,१६ । वि न इन्द्र मृधो० । ऋ. १०,१५२.४, सा. १८७८; अथर्व. १.२१,२; तै. सं. १,६.१२,४; २,५,१२,५; नि. ७,२ । मृगो न भीमः कुचरो० । ऋ. १०, १८०,२; सा. १८७३; अथर्व. ७,८४ ३, तै. सं. १.६.१२,४, काठ. ८,१६ । आकरे वसोर्जरिता० । ऋ. ३.५१.३ । पुरुष्टुतस्य धा(ना०)मभिः० । ऋ. ३,३७ ४, अथर्व. २०, १९.४ । नामानि ते शतक्रतो० । ऋ. ३,३७ ३, अथर्व. २०.१९.३ । अर्वावतो ना (न) आगहि० । ऋ. ३,४०.८; अथर्व. २०,६.८ । यदन्तरा परावतम्० । ऋ. ३.४० ९, अथर्व. २०,६.९ । एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ० । ऋ. १,८.१; सा. १२९; अथर्व. २०,७०,१७, तै. सं. ३,४.११,३; तै. ब्रा. ३,५,७,३]

प्रसुसाहिषे पुरुहूत शत्रून् ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रामुर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥ ६६
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ६७
इदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ६८
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥ ६९
तमिन्द्रं वाजयामसि, युजे रथम् ॥ ७०
वृत्रतरं मघवानं शचीपतिमिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवे दिवे ॥ ७१
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ७२
अभितिष्ठ पृतन्यतोऽधरे सन्तु शत्रवः । इन्द्र इव दस्युहा भवापः क्षेत्राणि संजय ॥ ७३
आशीर्ण ऊर्जमुत सुप्रजास्त्वमिषं दधातु द्रविणं सवर्चसम् ।
संजयन् क्षेत्राणि सहसाहमिन्द्र कृण्वानो अन्यं अधरान्सपत्नान् ॥ ७४
त्वमिन्द्रास्यधिराजः ॥ ७५
इन्द्रो जयति न पराजयते अधिराजो राजसु राजयते ।
विश्वा अभिष्टिः पृतना जयत्युपसद्यो नमस्यो यथासत् ॥ ७६

[प्रससाहिषे पुरुहूत० । ऋ. १०,१८०,१; तै. सं. ३,४,११,४; तै. ब्रा. २,६,९,१; ३,५,७,४; काठ. ३८,७; १०,१२ । इन्द्रं नरो नेमधिता० । ऋ. ७,२७,१; सा. ३१८; तै. सं. १,६,१२,१; तै. ब्रा. २,८,२,५ । इदं न हि त्वा० । ऋ. १,५२,७ । अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य० । ऋ. १,५२,५ । तमिन्द्रं वाजयामसि० । ऋ. ८,९३,७; सा. ११९,१२२२; अथर्व. २०,४७,१; १३७,१२; तै. ब्रा. १,५,८,३; २,४,१,३; काठ. ३९,१२ । युजे रथम्० । ऋ. ७,२३,३; अथर्व. २०,१२,३; तै. ब्रा. २,४,१,३; ८,२,५ । अहन् वृत्रं वृत्रतरं० । ऋ. १,३२,५; तै. ब्रा. २,५,४,३; नि. ६,४ । अभितिष्ठ पृतन्यतो० । तै. ब्रा. २,४,२,९ । आशीर्ण ऊर्जमुत० । तै. सं. ३,२,८,५; काठ. ५,२ । त्वमिन्द्राधिराजः० । काठ. ८,१७ । इन्द्रो जयति न० । तै. सं. २,४, १४,२]

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्विचारीत् ॥ ७७
यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ ७८
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो विश्ववेदाः ।
मन्युं विश ईडते मानुषीर्या अवा नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ ७९
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावान्त्सं हूयमानो अमृताय गछत् ॥ ८०
इडामग्ने, त्वं नो अग्ने, किमित्ते विष्णो, प्र तत्ते अद्य ॥ ८१
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयछसि । यजमानाय सुन्वते ॥ ८२
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ३ ॥ ८३
इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यछतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ ८४
सम्राडन्यः स्वराडन्य उच्यते वां महान्ता इन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ ८५

[आ ते मह इन्द्रोत्युग्र० । ऋ. ७,२५,१; तै. सं. १,७,१३,२; तै. ब्रा. ३,८,३,३; काठ. ८,१६ । यो जात एव प्रथमो० । ऋ. २,१२,१; अथर्व. २०,३४,१; तै. सं. १,७,१३,२; तै. ब्रा. २,८,३,३; नि. ३,११; १०,१०; काठ. १६ । मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास० । ऋ. १०,८३,२; अथर्व. ४,३२,२; तै. ब्रा. २,४,१,११ । त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः० । ऋ. १०,८३,४; अथर्व. ४,३२,४ । इडा (०ळा०) मग्ने० । ऋ. ३,१,२३; ५,११; ६,११; ७,११; १५,७; २२,५; २३,५; सा. ७६; तै. सं. ४,२,४,३; काठ. १६,११; १८,२१; कपि. २५,१ । त्वं नो अग्ने० । ऋ. ४,१,४; १,३१,८; तै. सं. २,५,१२,३; काठ. ३४,१९ । किमित्ते विष्णो० । ऋ. ७,१००,६; सा. १६२५; तै. सं. २,२,१२,५; नि. ५,८ । प्र तत्ते अद्य० । ऋ. ७,१००,५; सा. १६२६; तै. सं. २,२,१२, ५; नि. ५,९ । दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो० । ऋ. ८,१७,१०; अथर्व. २०,५,४; काठ. ६,१० । भद्रा ते हस्ता० । ऋ. ४,२१,९]

[४] वा. ३३,३६-३७,४२; १९,३८; ३५,१६; ३,२९,५२; ४,३७; ११,१—२,५-६; १८,७२-७३; १६,८; १७, ३५,३७; ३६,८; १५,५२ । काण्व. ३२,३६-३७,४२; ८,१९; ११,४०; २९,३७; ३५,४८; ३,३७,६०; ४,४९; २३,१-२,५-६; २०,४१-४२; २८,८; २९,४०,४२; ३६,८; १६,७४ । [इन्द्रावरुणा युवमध्वराय० । ऋ. ७, ८२,१; तै. सं. २,५,१२,२; तै. ब्रा. २,८,४,५; नि. ५,२ । सम्राड(०ळ)न्यः स्वराड(०ळ)न्यः । ऋ. ७,८२,२]

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८६
एना मुखेन वायुमिन्द्रवन्तोऽचिम्नाम वृजने विश्व ऊती ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८७
कुशाचिद्यस्य संमृतौ रण्वा नरो नृषदने । अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ ८८
सं यद्दिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमाददे ॥ ८९
यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ ९०
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ९१
उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ ९२
समन्या यन्ति ॥ ९३
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यह्वीः ॥ ९४
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ९५
अग्न आयूंषि पवसे ॥ ९६

[विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो० । ऋ. १,१००,१९; १०२,११; काठ. १३,११ । तन्नो मित्रो वरुणो० । ऋ. १,९४,१६; ९५,११; ९६,९; ९८,३; १००,१९; १०१,११; १०२,११; १०३,८; १०५,१९; १०६,७; १०७,३; १०८,१३; १०९,८; ११०,९; १११,५; ११२,२५; ११३,२०; ११४,११; ११५,६; नि. ५,११; तै. ब्रा. २,८, ७,२; तै. आ. ४,४२,३; काठ. १३,११ । एना मुखेन (मुखेन) वायुम्० । ऋ. १,१०५,१९; नि. ५,११ । कुशाचिद्यस्य समृतौ० । ऋ. ५,७,२; तै. सं. २,११,१,३ । सं यद्दिषो० । ऋ. ५,७,३; तै. सं. २,१,११,३ । यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा० । ऋ. ७,६०,१ । उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो० । ऋ. ७,६०,४ । उपेमसृक्षि वाजयु:० । ऋ. २,३५,१; काठ. १२,१५ । समन्या यन्ति० । ऋ. २,३५,३; सा. ६०७; ऋ. २,३५,९; तै. सं. २,५,१२,१; कपि. ४८,४ । अपां नपादा० । ऋ. २,३५,९; तै. सं. २,५,१२,१ । तमस्मेरा युवतयो० । ऋ. २,३५,४; तै. सं. २,५,१२,२ । अग्न आयूंषि० । ऋ. ९,६६,१९; सा. ६२७,१४६४, १५१८; तै. ब्रा. १,३,१३,७; ४,२९,१; ५,५,१; ६,६,२; काठ. ४,११; कपि. ३,९,८,५]

आयुर्दा देव जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पिबन्नमृतं चारु गव्यं पितेव पुत्रं जरसे म एमम् ॥ ९७
गयस्फानो अमीवहा ॥ ९८
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान् ॥ ९९
सुत्रामाणं, महीमूष्विं,—मं मे वरुण, तत्त्वायामि, वैश्वानरो न ऊत्या, पृष्टो दिव-
व्य,—भि त्वा शूर नोनुम,—स्त्वामिद्धि हवामहे ॥ १००
आपप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्मं अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ १०१
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ १०२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १०३
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ १०४
आ नो अग्ने सुचेतुना ॥ १०५
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ १०६

[आयुर्दा देव जरसं० । काठ. ११,१३ । गयस्फानो अमीवहा० । ऋ. १,९१,१२; तै. सं. ४,३,१३,५ । या ते धामानि हविषा० । ऋ. १,९१,१९; तै. सं. १,२,१०,१; तै. ब्रा. २,८,३,१; काठ. ११,३ । सुत्रामाणं पृथिवीं० । ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५; काठ. २,३ । महीमू षु मातरं० । तै. सं. १,५,११,५; काठ. ३०,४—५; कपि. ४६,७ । इमं मे वरुण० । ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५; तै. सं. २,१, ११,६; काठ. ४,१६ । तत्त्वायामि ब्रह्मणा० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६; काठ. ४,१६ । वैश्वानरो न ऊत्या० (ऊतय) । तै. सं. १,५,११,१; काठ. ४,१६ । पृष्टो दिवि० । ऋ. १,९८,२; तै. सं. १,५,११, १; तै. ब्रा. ३,११,६,४ । अभि त्वा शूर नोनुमः० । ऋ. ७,३२,२२; सा. २३३,६८०; अथर्व. २०,१२१,१; तै. सं. २,४,१४,२; काठ. १२, १५ । त्वामिद्धि हवामहे० । ऋ. ६,४६,१; सा. २३४,८०९; अथर्व. २०,९८,१; तै.सं. २,४,१४,३; काठ. १२,१५ । आपप्राथ महिना० । ऋ. ८,७०,६; सा. ८६३; अथर्व. २०,८१,२; ९२,२१ । बोधा सु मे मघवन्० । ऋ. ७,२२,३; सा. ९९९; अथर्व. २०,११७,३; काठ. १२,१५ । रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे० । ऋ. १,३०,१३; सा. १५३; १०८४; अथर्व. २०,१२२,१; तै. सं. १,७,१३,५; २,२,१२,८; ४,१४,४; काठ. ८,१७; १०,१२; १२,१५ । प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्० । ऋ. १०,१३३,१; सा. १८०१; अथर्व. २०,९५,२; तै. सं. १,७,१३,५; तै. ब्रा. २,५,८,१ । आ नो अग्ने सुचेतु(०त)ना० । ऋ. १,७९,९; सा. १५१६; तै. ब्रा. २,४,५,३; काठ. २,१४ । आ नो अग्ने रयिं भर० । ऋ. १,७९,८; सा. १५१५; काठ. १०,११]

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १०७
मदे मदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।
संगृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आभर ॥ १०८
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १०९
ता अस्य पृशनायुवः सोमँ श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रँ हिन्वन्ति सायकँ वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११०
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम्। तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ १११
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते ॥ ११२
आर्यमा याति वृषभस्तुराषाड् दाता वसूनि विदुषे तनूपाः।
सहस्राक्षो गोत्रभिद्वज्रबाहुरस्मासु देवो द्रविणं दधातु ॥ ११३
ये तेऽर्यमन् बहवो देवयानाः पन्थानो राजन् दिव आचरन्ति।
तेभिर्नो देव महि शर्म यच्छ शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ११४
उदग्ने शुचयस्तवा,—ऽयमग्निर्वीरतम,—स्तत् सूर्यस्य, भद्रा अश्वाः, सप्त त्वा हरितो रथे,
तरणिर्विश्वदर्शतः ॥ ११५

[इन्द्रो मदाय वावृधे०। ऋ. १,८१,१; सा. ४११.१००२; अथर्व. २०,५६,१। मदे मदे हि नो ददि:०। ऋ. १,८१,७; अथर्व. २०,५६,४; तै. ब्रा. २,४,४,७; काठ. १०.१२। ता अस्य नमसा सह:०। ऋ. १.८४. १२; सा. १००७; अथर्व. २०,१०९,३; काठ. १२,१५। ता अस्य पृशनायुव:०। ऋ.१,८४.११; सा. १००६; अथर्व. २०,१०९,२। घृतं न पूतं तनू:०। तै. सं. १.२,१२,७। आभे (उभे) सुश्चन्द्र विश्पते० (सर्पिषो)। ऋ. ५,३,९; सा. १०२४; मै. २,१३,५; तै. सं. २ २,१२,७; ४ ४.४,६। आर्यमा याति वृषभ:०। तै. सं. २,३,१४,४। ये तेऽर्यमन् बहवो०। तै. सं. २,३,१४.४। उदग्ने शुचयस्तव०। ऋ. ८, ४४.१७; सा. १५३४; तै. सं. १,३,१४,८; ५.५.३; २.४,१४,४। अयमग्निर्वीरतम:०। तै. सं ४,७,१३, ४; काठ. १८,१८; कपि. २९,६। तत्सूर्यस्य देवत्वं०। ऋ. १,११५,४; अथर्व. २०.१२३,१; तै. ब्रा. २.८,७, १; नि. ४.११। भद्रा अश्वा:०। ऋ. १.११५,३; तै. ब्रा. २ ८.७ १। सप्त त्वा हरितो रथे०। ऋ. १, ५०,८; सा. ६४०; अथर्व. १३,२,२३; २० ४७,२०; तै. सं. २,४,१४,४; काठ. ९.१९; ११.१। तरणिर्विश्वदर्शत:०। ऋ. १,५०,४; सा. ६३५; अथर्व. १३,२.१९; २०,४७,१६; तै. सं. १,४,३१,१; तै. आ. ३,१६,१; काठ. १०,१३।

मै. ५७

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदँ वि च पश्येम ॥ ११६
सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य। वि पश्येम नृचक्षसः ॥ ४ ॥ ११७
युवँ सुराममश्विना ॥ ११८
होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रँ सुराम्णाँ सोमानां पिबतु मदन्ताँ व्यन्तु होतर्यज।
पुत्रमिव पितरौ ॥ ११९
इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२०
तस्य वयँ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववां इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १२१
अग्ने वाजस्य गोमतः ॥ १२२
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १२३
सँ समिं,—देनां वो अग्निं,—मा ते अग्ना इधीमहि,—ग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था ॥ १२४
त्रिरग्निर्बलभिद्वलं भित्त्वा सहस्रमैरयत्। शूरो जैतापराजितः ॥ १२५
त्रिरह्नः पवते वृषा सोमः शुक्राभिरूतिभिः। वाजी सहस्रसातमः ॥ १२६
सँ वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य।
जुषेथाँ यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १२७

[चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे०। ऋ. १०,१५८,४; काठ. ९,१९। सुसंदृशं त्वा वयं प्रति०। ऋ. १०,१५८,५; १, ८२,३; तै. सं. १,८,५,१; काठ. ९,६; ९,१९; ३६,१३; कपि. ८,९]

[५] तै. ३,२,११; ३,१,११। वा. १०,३३; २०,५१—५२,७६; २१,४१—४३; १५,३०-३२,३५,३८-४९; १८, ६६; १२,१९। काण्व. ११,४६; २२,३६-३७,६१; २३,४२—४४; १६,५१,५३-५४,५७,६०-६१; १३,२०।
[युवँ सुराममश्विना०। ऋ. १०,१३१,४; अथर्व. २०,१२५,४; तै. ब्रा. १,४,२,१; काठ. १७,१९। होता यक्षदश्विनौ०। तै. ब्रा. २,६,११,१०। इन्द्रः सुत्रामा स्वव (०वाँ)। ऋ. ६.४७,१२; १०,१३१,६; अथर्व. ७,९१,१; २०,१२५,६; तै. सं. १,७,१३,४; काठ. ८,१६। तस्य वयँ सुमतौ०। ऋ. ६,४७,१३; १०,१३१,७; अथर्व. ७.९२,१; २०,१२५,७; तै. सं. १,७,१३,५; नि. ६,७। अग्ने वाजस्य गोमत:०। ऋ. १,७९,४; सा. ९९,१५६१; तै. सं. ४.४.४,५; काठ. ३९,१५। भद्रो नो अग्निराहुतो०। ऋ. ८,१९,१९; सा. १११,१५५९; काठ ३९,१५। सँ समित्०। ऋ. १०,१९१,१; अथर्व. ६,६३,४; तै. सं. २,६,११,४; ४,४, ४,४; काठ. २,१५। एना वो अग्निम्०। ऋ. ७,१६,१; सा. ४५,७४९; तै. सं. ४.४,४,४; नि. ३,२१; काठ. ३९,१५। आ ते अग्ना (०ग्न) इधीमहि०। ऋ. ५,६,४; सा. ४१९,१०२२; अथर्व. १८,४,८८; तै. सं. ४, ४४.६; काठ. ९,६; ३९,१४। अग्ने त्री ते वाजिना०। ऋ. ३,२०,२; तै. सं. २,४,११,२; ३,२,११,१। सँ वां कर्मणा समिषा०। ऋ. ६,६९,१; तै. सं. ३,२,११,१; काठ. १२,१४; २३,११]

१२८
उभा जिग्यथुः ॥
इन्द्राविष्णू दृँहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतँ वर्चिनः सहस्रं च साकँ हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ १२९
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरँ विक्रमस्व ॥ १३०
१३१
त्रीण्यायूँषि तव जातवेदः ॥
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ १३२
१३३
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि।
वर्षन् पृथिव्या ईमहे अग्ने हव्याय वोढवे। ॥ १३४
वृषणं त्वा त्रिककुभं त्रिमूर्धानं त्रिसंदृशम्। १३५
अतिविद्धा, ऽस्येदेवा ॥ १३६
पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीढुषे। स नो यवसमिच्छतु ॥
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवीँ रेतसावति ॥ १३७
यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १३८
विभिद्या पुरँ शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत्।
बृहस्पतिरुषसँ सूर्यं गामर्कँ विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ १३९

[उभा जिग्यथु:०। ऋ. ६.६९,८; अथर्व. ७,४४,१; तै. सं. ३,२,११,२; ७,१,६,७; काठ. १२,१४। इन्द्राविष्णू दृँहिता:०। ऋ. ७,९९,५; तै. सं. ३,२,११,३। उत माता महिषम्०। ऋ. ४,१८,११; तै. सं. ३,२,११,२; काठ. १,१५; १२,१४। त्रीण्यायूँषि तव जातवेद:०। ऋ. ३,१७,३; तै. सं. ३.२,११,२; काठ. २,१५; १२,१४। अग्निरस्मि जन्मना०। ऋ. ३,२६.७; नि. १४,२। विद्मा ते अग्ने त्रेधा०। ऋ. १०,४५,२; तै. सं. ४,२, २,१; काठ. ९,१९; १६,९। अतिविद्धा विथुरेणा०। मै. ३,८,३; ऋ. ८,९६,२; काठ. ९,१९। अस्येदेवा (०व)। मै. ४,१२,२; ऋ. १,६१,९-१०; अथर्व. २०,३५,९-१०; तै. सं. ३,३,१४,२; काठ. ८,१७। पर्जन्याय प्रगायत०। ऋ. ७ १०२,१; तै. ब्रा. २.४,५,५; तै. आ. १,२९,१; काठ. २०,१५। प्र वाता वान्ति पतयन्ति०। ऋ. ५,८३,४; तै. आ. ६,६,२। यस्तस्तम्भ सहसा०। ऋ. ४,५०,१; अथर्व. २०, ८८,१; काठ. ९,१९। विभिद्या पुरँ शयथा०। ऋ. १०,६७,५; अथर्व. २०.९१,५; काठ. ९,१९]

कृष्णं नियानँ हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ १४०
आ ते सुपर्णा अमिनन्त एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ १४१
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषाँ वृष्टिरसर्जि ॥ १४२
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीडथ मरुत ऋष्टिमन्ता आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ १४३
सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थाँ सूर्याय यातवे। ते भानुभिर्वितस्थिरे ॥ १४४
बर्हिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ १४५
सूर्यो अपो विगाहते रश्मिभिर्वाजसातमः। बोधात् स्तोमैर्वयो दधत् ॥ ५ ॥ १४६
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ १४७
प्र वा एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवँ शशास।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ १४८
आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १४९
याभ्याँ स्वरजनन्नग्र एव या आतस्थतुर्भुवनानि विश्वा।
प्र चर्षणी वृषणा वज्रबाहूअग्निमिन्द्रँ वृत्रहणँ हुवेम ॥ १५०
अग्ना इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोपयातम्। अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा॥ १५१

[कृष्णं नियानँ हरय:०। ऋ. १,१६४,४७; अथर्व. ६,२२,१; ९,१०,२२; १३,३,९; तै. सं. ३,१,११,४; नि. ७,२४; काठ. ११.९; ११,१३। आ ते सुपर्णा०। ऋ. १,७९.२; तै. सं. ३,१,११,५; काठ. ११,१३। वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं०। ऋ. १,३८,८; तै. सं. ३,१,११,५; तै. आ. १,१२,५; काठ. ११,१३। पर्वतश्चिन्महि वृद्धो०। ऋ. ५,६०,३; तै. सं. ३,१,११,५। सृजन्ति रश्मिमोजसा०। ऋ. ८,७,८]

[६] तै. ३.३,११; ३,४,११। वा. ३३,५१; ७,३१; ३३,२४,४३; ३४,८—१०, ३१,११,६३; १६,१६; १७,१७; १२,३; १०,२०; २३.६५। काण्व. ३२,२४,४३,५१; ७.१२; १२,३,१७,६५; १८,१७; ३३,३—४,१५; १७, १६; ११,२९; १५,६७। [अर्वाञ्चो अद्या भवता०। ऋ. २,२९,६। प्रवा (व) एको मिमय०। ऋ. २, २९,५। आ घा ये अग्निमिन्धते०। ऋ. ८,४५,१; सा. १३३,१३३८; तै. ब्रा. २,४,५,७; नि. ६,१४; काठ. १३.१५। याभ्याँ स्वरजनन्नग्र०। तै. ब्रा. २,४,५.७। अग्ना (०ग्न) इन्द्रश्च दाशुषो०। ऋ. ३,२५,४; तै. ब्रा. २,४,५,७]

अन्वद्य नो अनुमति,—रन्विदनुमते त्वम् ॥ १५२

राकामहꣳ सुहवाꣳ सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।

सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरꣳ शतदायमुक्थ्यम् ॥ १५३

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।

ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषꣳ सुभगे रराणा ॥ १५४

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १५५

या सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।

तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ १५६

कुहूमहꣳ सुकृतꣳ विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि ।

सा नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्यै ते देवि हविषा विधेम ॥ १५७

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषः शृणोतु ।

सं दाशुषे किरतु भूरि वामꣳ रायस्पोषं चिकितुषे दधातु ॥ १५८

धाता दधातु नो रयिं प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।

वयं देवस्य धीमहि सुमतिꣳ सत्यधर्मणः ॥ १५९

धाता ददातु दाशुषे वसूनि प्रजाकामाय मीढुषे दुरोणे ।

तस्मै देवा अमृताः सꣳव्ययन्ताꣳ विश्वे देवासो अदितिः सजोषाः ॥ १६०

[अन्वद्य (अनु नोऽद्या०) नो अनुमतिः० । ऋ. परि. ३,३; अथर्व. ७,२०,१; कपि. ३६,२ । अन्विदनुमते त्वम्० । ऋ. परि. ३,४; अथर्व. ७,२०,२; तै. सं. ३,३,११,३; ४,४,१२,५; ७,१५,५; तै. ब्रा. ३,१,३,३; तै. आ. ४,११,२; काठ. १३,१६; २२,१४—१५ । राकामहꣳ सुहवाꣳ० । ऋ. २,३२,४; अथर्व. ७,४८,१; तै. सं. ३,३,११,५; नि. ११,३१; काठ. १३,१६ । यास्ते राके सुमतयः । ऋ. २,३२,५; अथर्व. ७,४८,२; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६ । सिनीवालि पृथुष्टुके० ऋ. २,३२,६; अथर्व. ७,४६,१; २०,२; ६८,१; तै. सं. ३,१,११,३; ३,११,५; नि. ११,३२; काठ. १३,१६ । या सुपाणिः (सुबाहुः) स्वङ्गुरिः० । ऋ. २,३२,७; अथर्व. ७,४६,२; तै. सं. ३,१,११,४; ३,११,५; काठ. १३,१६ । कुहूमहꣳ (कुहूं देवीं०) सुकृतꣳ० । अथर्व. ७,४७,१; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६ । कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी० । अथर्व. ७,४७,२; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६ । धाता दधातु नो रयिं० । अथर्व. ७,१७,१-२; तै. सं. ३,३,११,३; काठ. १३,१६ । धाता (विश्वा वार्या) ददातु (०धा०) दाशुषे० । अथर्व. ७,१७,२—३; तै. सं. ३,३,११,३]

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।

उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ १६१

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।

प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्रशꣳसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १६२

इन्द्रा नु पूषणा वयꣳ सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ १६३

यन्निर्णिजा ॥ १६४

त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १६५

हव्यवाडग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।

सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्म३द्र्यक् संमिमीहि श्रवाꣳसि ॥ १६६

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ १६७

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।

श्येनो गृध्राणाꣳ स्वधितिर्वनानाꣳ सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १६८

आ विश्वदेवꣳ सत्पतिꣳ सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवꣳ सवितारम् ॥ १६९

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवना विपश्यन् ॥ १७०

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।

गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिम३भ्यर्का अनावन् ॥ १७१

हꣳसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।

बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाꣳ अगायत् ॥ १७२

[प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत० । ऋ. ५,७७,२; तै. ब्रा. २,४,३,१३; नि. १२,५ । प्रातर्यावाणा प्रथमा० । ऋ. ५,७७,१; तै. ब्रा. २,४,३,१३ । इन्द्रा नु पूषणा वयꣳ० । ऋ. ६,५७,१; सा. २०२; काठ. २३,११ । यन्निर्णिजा रेक्णसा० । ऋ. १,१६२,२; तै. सं. ४,६,८,१; काठ. ५,६,३ । त्वमग्ने बृहद्वयो० । ऋ. ८,१०२,१; तै. सं. ३,४,११,१ । हव्यवाड (ळ) ग्निरजरः पिता० । ऋ. ५,४,२; तै. सं. ३,४,११,१ । त्वं च सोम नो वशो० । ऋ. १,९१,६; तै. सं. ३,४,११,१; काठ. २३,१२ । ब्रह्मा देवानां पदवीः० ऋ. ९,९६,६; सा. ९४४; तै. सं. ३,४,११,१; तै. आ. १०,१०,१; नि. १४,१३; काठ. २३,१२ । आ विश्वदेवꣳ सत्पतिꣳ० । ऋ. ५,८२,७; तै. सं. ३,४,११,२ । आ कृष्णेन रजसा० । ऋ. १,३५,२; तै. सं. ३,४,११,२ । उदप्रुतो न वयो० । ऋ. १०,६८,१; अथर्व. २०,१६,१; तै. सं. ३,४,११,३; काठ. २३,१२ । हꣳसैरिव सखिभिः० । ऋ. १०,६७,३; अथर्व. २०,९१,३; तै. सं. ३,४,११,३]

त्वꣳ सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ १७३

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणो महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।

भुवो नॄꣳश्च्यौत्नो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥ १७४

प्र समिथानमीवासः ॥ १७५

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १७६

यत्किं चेदꣳ वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुꣳष्याश्चरामसि ।

अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ १७७

यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ १७८

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तो नमसा विधेम ते ॥ १७९

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥ १८०

विश्वा रूपाणि ॥ १८१

अश्विना यज्ञमागतं दाशुषः पुरुदꣳससा । पूषा रक्षतु नो रयिम् ॥ १८२

इमꣳ यज्ञमश्विना वर्धयन्तेमौ रयिꣳ यजमानाय धत्ताम् ।

इमौ पशून् रक्षताꣳ विश्वतो नः पूषा नः पातु सदमप्रयुच्छन् ॥ १८३

प्र ते महे सरस्वति सुभगे वाजिनीवति । सत्यवाचे भरे मतिम् ॥ १८४

इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वति सत्यवाचे प्रभृतेमा हवीꣳषि ।

इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयꣳ सुभगासः स्याम ॥ ६ ॥ १८५

[२७८८]

॥ इति खिलकाण्डे द्वादशः प्रपाठकः ॥१२॥

[त्वꣳ सुतस्य पीतये० । ऋ. १,५,६; अथर्व. २०,६९,४; तै. सं. ३,४,११,४; काठ. २३,१२ । भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणो (ब्रह्मणा) ० । ऋ. १०,५०,४; तै. सं. ३,४,११,४; काठ. २३,१२ । प्र समिथानमीवासः० । ऋ. ३,५९,१—३; तै. सं. ३,४,११,५; २,८,७,५; नि. २,१३ । यच्चिद्धि ते विशो यथा० । ऋ. १,२५,१; तै. सं. ३,४,११,५—६ । यत्किं चेदꣳ वरुण दैव्ये० । ऋ. ७,८९,५; अथर्व. ६,५१,३; तै. सं. ३,४,११,६; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ २३,१२ । यथा नो अदितिः० । ऋ. १,४३,२; तै. सं. ३,४,११,२; काठ. २३,१२ । मा नस्तोके तनये० । ऋ. १,११४,८; तै. सं. ३,४,११,२; ४,५,१०,३; तै. ब्रा. २,८,६,९; तै. आ. १०,५३; काठ. २३,१२ । य इमा विश्वा जातानि० । ऋ. ५,८२,९ । विश्वा रूपाणि० । ऋ. ५,८१,२; तै. सं. ४,१,१०,४; नि. १२,१३; काठ. १६,८; १०,१२; कपि. ३२,१ । अश्विना यज्ञमागतं० । तै. ब्रा. २,५,४,५ । इमꣳ यज्ञमश्विना० । तै. ब्रा. २,५,४,६ । इदं ते हव्यं घृतवत्० । तै. ब्रा. २,५,४,६]

अथ त्रयोदशः प्रपाठकः ।

प्र देवं देव्या धियेत्यष्टौ ॥ १

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।

यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ २

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।

सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरꣳ सुवीरम् ।

आरे अस्मदमतिं बाधमाना उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ ४

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ॥ ५

ऊर्ध्वो नः पाह्यꣳहसो नि केतुना विश्वꣳ समत्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ ६

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नाꣳ समर्य आ विदथे वर्धमानः ।

पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्रा उदियर्ति वाचम् ॥ ७

युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।

तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वा३ध्यो मनसा देवयन्तः ॥ ८

अभि त्वा देव सवित,—रिति त्रयोदश ॥ १ ॥ ९

होता यक्षदग्निꣳ समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्याः संगथे वामस्य वर्ष्मन् दिव इडस्पदे, वेत्वाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षत्तनूनपातमदितेर्गर्भं भुवनस्य गोपाम्, मध्वाद्य देवो

[१] तै. ब्रा. ३,६,१; काठ. १५,१२ । वा. ४,१०; ९,३७; ११,४२ । काण्व. ४,१३; ११,३; १२,४२ । [प्र देवं देव्या धिया० । ऋ. १०,१७६,२; तै. सं. ३,५,११,१; काठ. १५,१२ । अञ्जन्ति त्वामध्वरे० । ऋ. ३,८,१; तै. ब्रा. ३,६,१,१; नि. ८,१८; काठ. १५,१२ । उच्छ्रयस्व वनस्पते० । ऋ. ३,८,३; तै. ब्रा. ३,६,१,१; काठ. १५,१२ । समिद्धस्य श्रयमाणः० । ऋ. ३,८,२; तै. ब्रा. ३,६,१,१; काठ. १५,१२ । ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये० । ऋ. १,३६,१३; सा. ५७; तै. सं. ४,१,४,२; ५,१,५,३; तै. ब्रा. ३,६,१,२; तै. आ. ४,२०,१; काठ. १५,१२; १६,४ । ऊर्ध्वो नः पाह्यꣳहसो० । ऋ. १,३६,१४; तै. ब्रा. ३,६,१,२; काठ. १५,१२ । जातो जायते सुदिनत्वे० । ऋ. ३,८,५; तै. ब्रा. ३,६,१,३ । युवा सुवासाः परिवीता(त)० । ऋ. ३,८,४; तै. ब्रा. ३,६,१,३; तै. आ. १,२७,२; काठ. १५,१२ । अभि त्वा देव सवितः० । ऋ. १,२४,३; तै. सं. ३,५,११,३; काठ. १५,१२; २८,७; कपि. ४४,७]

[२] तै. ब्रा. ३,६,२ । वा. २८,१—१०,२४—३४; २१,२९—४० । काण्व. ३०,१—१०,२४-३४; ३३,३०-४१ ।

देवेभ्यो देवयानान् पथो अनक्तु, वेत्वाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षन्नराशंसं नृशस्तं नॄंःप्र-
णेत्रं, गोभिर्वपावान्त्स्यादीरैः शक्तीवान् रथैः प्रथमयावा हिरण्यैश्चन्द्री, वेत्वाज्यस्य, होतर्यज,
होता यक्षदग्नि,—मिड ईडितो देवो देवाँ आ च वक्षद्, दूतो हव्यवाडमूरा उपेमं यज्ञमुपेमां
देवो देवहूतिमवतु, वेत्वाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षद्बर्हिः सुष्टरीमोर्णम्रदा, अस्मिन् यज्ञे वि च
प्र च प्रथतां स्वासस्थं देवेभ्या, एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः स्वदन्तु, प्रियमिन्द्रस्यास्तु,
वेत्वाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षद्दुर ऋष्वाः कवष्यो कोशधावनी,—रुदाताभिजिहतां,
वि पक्षोभिः श्रयन्तां, सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो, व्यन्त्वाज्यस्य, होत-
र्यज, होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नॄंःपतिभ्यो योनिं कृण्वाने, संस्मयमाने इन्द्रेण
देवैरेदं बर्हिः सीदतां, वीतामाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षद्दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा
कवी प्रचेतसा, स्विष्टमद्यान्यः करदिषा स्वभिगूर्तमन्य ऊर्जा, संतवसेमं यज्ञं दिवि देवेषु
धत्तां, वीतामाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षत्तिस्रो देवीरपसामपस्तमा, अच्छिद्रमद्येदमप-
स्तन्वतां, देवेभ्यो देवीर्देवमपो, व्यन्त्वाज्यस्य, होतर्यज, होता यक्षत्त्वष्टारमचिष्टमपाकं
रेतोधां विश्रवसं यशोधां पुरुरूपमकामकर्शनं, सुपोषः पोषैः स्यात् सुवीरो वीरैः,—वेत्वाज्यस्य,
होतर्यज, होता यक्षद्वनस्पतिमुपावस्रक्षद्धियो जोष्टारं, शशमन्नरः, स्वदात्स्वधिति,—ऋतु-
थाद्य देवो देवेभ्यो हव्यावाड्, वेत्वाज्यस्य, होतर्यज ॥ २ ॥ १०

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ ११

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ १२

नराशंसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्तु देवा उभयानि हव्या ॥ १३

[३] तै. ब्रा. ३,६,३ । काठ. १६,२० । वा. २९,२५—३५ । काण्व. ३१,३७—४७ । [समिद्धो अद्य मनुषो० । ऋ. १,११०,१; अथर्व. ५,१२,१; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,५; काठ. १६,२० । तनूनपात् पथ ऋतस्य० । ऋ. १०,११०,२; अथर्व. ५,१२,२; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,६; काठ. १६,२० । नराशंसस्य महिमानम्० । ऋ. ७,२,२; तै. ब्रा. ३,६,३,१; नि. ८,७; काठ. ३७,४]

आजुह्वाना ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ॥ १४

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ १५

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ १६

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ १७

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ १८

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ १९

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ २०

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३ ॥ २१

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परिणीयते। देवो देवेषु यज्ञियः ॥ २२

[आजुह्वाना ईड्यो वन्द्यश्चा०(श्च) । ऋ. १०,११०,३; अथर्व. ५,१२,३; तै. ब्रा. ३,६,३,२; नि. ८,८; काठ. १६,२० । प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा० । ऋ. १०,११०,४; अथर्व. ५,१२,४; तै. ब्रा. ३,६,३,२; नि. ८,९; काठ. १६,२० । व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां० । ऋ. १०,११०,५; अथर्व. ५,१२,५; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,१०; काठ. १६,२०; आ सुष्वयन्ती यजते० । ऋ. १०,११०,६; अथर्व. ५,१२,६; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,११; काठ. १६,२० । दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा० । ऋ. १०,११०,७; अथर्व. ५,१२,७; तै. ब्रा. ३,६,३,३; नि. ८,१२; काठ. १६,२० । आ नो यज्ञं भारती० । ऋ. १०,११०,८; अथर्व. ५,१२,८; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१३; काठ. १६,२० । य इमे द्यावापृथिवी जनित्री० । ऋ. १०,११०,९; अथर्व. ५,१२,९; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१४, काठ. १६,२० । उपावसृज त्मन्या समञ्जन्० । ऋ. १०,११०,१०; अथर्व. ५,१२,१०; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,१७; काठ. १६,२०]

[४] तै. ब्रा. ३,६,४-६ । वा. ११,२५; ४,२०;१,१५ । काण्व. १२,२५; ४,२६; १,२३ । [अग्निर्होता नो अध्वरे० । ऋ. ४,१५,१; तै. ब्रा. ३,६,४,१; काठ. १६,२१;३८,१२]

परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव। आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २३
परि वाजपतिः कविः ॥ अजैदग्निरसनद्वाजं, नि देवो देवेभ्यो हव्यावाड्, प्राञ्जोभिर्हिन्वा-
नो धेनाभिः कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यो, दैव्याः शमितार उत
मनुष्या आरभध्व,—मुपनयत मेध्यादुर आशासाना मेधपतये मेधं, प्रास्मा अग्निं भरत, स्तृ-
णीत बर्हि,—रन्वेनं माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य, उदीचीनां
अस्य पदो निधत्तात्, सूर्यं चक्षुर्गमयताद्, वातं प्राणमन्ववसृजता,—दन्तरिक्षमसुं, पृथिवीं
शरीर,—मेकधास्य त्वचमाछयतात्, पुरा नाभ्या अपिशसो वपामुत्खिदता,—दन्तरेवोष्माणं
वारयताच्, श्येनमस्य वक्षः कृणुतात्, प्रशसा बाहू, शला दोषणी, कश्यपेवांसां,—च्छिद्रे
श्रोणी, कवषोरू स्रे, कपर्णाष्ठीवन्ता, षड्विंशतिरस्य वङ्क्रय,—स्ता अनुष्ठ्योच्च्यावयताद्,
गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुता,—दूवध्यगोहं पार्थिवं खनता,—दस्रा रक्षः संसृजताद्, वनिष्टु-
मस्य मा राविष्टो,—रूकं मन्यमाना नेद्वस्तोके तनये रविता रव,—दध्रिगो शमीध्वं, सुशमि
शमीध्वं, शमीध्वमध्रिगो ॥ २४-२५
अध्रिगुश्च विपापश्च देवानां शमितारौ। २६
ता एनं प्रविद्वांसौ श्रपयतं यथास्य श्रपणं तथा ॥ ४ ॥ २७
जुषस्व सप्रथस्तमम् ॥
इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व। २८
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः। २९
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥

[परित्रिविष्ट्यध्वरं० । ऋ. ४,१५,२; तै. ब्रा. ३,६,४,१; १६,२१ । परि वाजपतिः कविः० । ऋ. ४,१५, ३; वा. ३०; तै. सं. ४,१,२,५; तै. ब्रा. ३,६,४,१; काठ. १६,२,२१; १९,३;३८,१२; कपि. ३०,१ । अजैदग्नि-रसद्वाजं० । तै. ब्रा. ३,६,५; काठ. १६,२१ । स्तृणीत बर्हिः० । ऋ. २,२३,५ । अन्वेनं माता मन्यता-मनु० । काठ. १६,२१ । उदीचीनां० । ऐ. ब्रा. २,६]

[५] तै. ब्रा. ३,६,७-९ । काठ. १६,२०-२१ । वा. ३,१३, २१,४०—४१,४३-४७; २९,३६; ३३,९, १२,५१ । काण्व. ३,१९; २३,४१-४६; ३१,४८; ३२,९; १३,५२ । [जुषस्व सप्रथस्तमम्० । ऋ. १,७५,१; तै. ब्रा. ३,६,७,१; काठ. १६,२१ । घृतवन्तः पावक ते० । ऋ. ३,२१,१; तै. ब्रा. ३,६,७,१; काठ. १६,२१ । इमं नो यज्ञममृतेषु० । ऋ. ३,२१,२; तै. ब्रा. ३,६,७,१ २; काठ. १६,२१]

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३०

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ३१

ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ ३२

होता यक्षदग्निं स्वाहा, ऽऽज्यस्य स्वाहा, मेदसः स्वाहा, स्तोकानां स्वाहा, स्वा-
हाकृतीनां स्वाहा, हव्यसूक्तीनां स्वाहा, देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु,
होतर्यज ॥ ३३

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ ३४

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत् ॥ होता यक्षदग्निमाज्यस्य, जुषतां हवि,—होतर्यज ॥ त्वं सो-
मासि सत्पतिः ॥ होता यक्षत्सोममाज्यस्य, जुषतां हवि,—होतर्यज ॥ शुचिं नु स्तोमम् ॥
होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य वपाया मेदसो, जुषेतां हवि,—होतर्यज ॥ श्नथद् वृत्र,—मुभा वामि-
न्द्राग्नी ॥ होता यक्षदिन्द्राग्नी पुरोडाशस्य, जुषेतां हवि,—होतर्यज ॥ प्र चर्षणिभ्या, इडामग्ने,
होता यक्षदग्निं पुरोडाशस्य, जुषतां हवि,—होतर्यज ॥ ३५-४३

[तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो० । ऋ. ३,२१,३; तै. ब्रा. ३,६,७,२; काठ. १६,२१ । तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो० । ऋ. ३,२१,४; तै. ब्रा. ३,६,७,२; काठ. १६,२१ । ओजिष्ठं ते मध्यतो० । ऋ. ३,२१,५; तै. ब्रा. ३,६,७,२; काठ. १६,२१ । सद्यो जातो व्यमिमीत० । ऋ. १०,११०,११; अथर्व. ५,१२,११; तै. ब्रा. ३,६,३,४; नि. ८,२१; काठ. १६,२० । अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्० । ऋ. ६,१६,३४; सा. ४,१३९६; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४; २०,१४ । त्वं सोमासि सत्पतिः० । ऋ. १,९१,५; तै. सं. ४,३,१३,१; तै. ब्रा. ३,५,६,१; काठ. २,१४ । शुचिं नु स्तोमम्० । ऋ. ७,९३,१; तै. सं. १,१,१४,१; तै. ब्रा. २,४,८,३; काठ. १३,१५; २१,१३ । श्नथद् वृत्रम्० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१; ३,१३,८; तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ३,५,७,३; काठ. ४,१५; २१,१३; २३,११ । उभा वामिन्द्राग्नी० । ऋ. ६,६०,१३; तै. सं. १,१,१४,१; ५, ५,२; तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ६,९; ७,४-५; कपि. ४,८; ५,३-४ । प्र चर्षणिभ्या० (भ्यः) । ऋ. १,१०९,६; तै. सं. ४,२,११,१; तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ४,१५ । इडा(ळा)मग्ने० । ऋ. ३,१,२३; ५,११; ६,११; ७,११; १५,७. २२,५; २३,५; सा. ७६; तै. सं. ४,२,४,३]

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४४

इडोपहूता,—उपहूतेडो,—पास्मां इडा ह्वयताम्,—इडोपहूता मानवी घृतपदी मैत्रावरुणी ॥ ब्रह्म देवकृतमुपहूतं, दैव्या अध्वर्यव उपहूताः, उपहूता मनुष्या य इमं यज्ञमवान् ये च यज्ञपतिं वर्धान्,—उपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजे ऋतावरी देवी देवपुत्रे, उपहूतोऽयं यजमान उत्तरस्यां देवयाज्यायाम्,—उपहूतो भूयसि हविःकरणे, दिव्ये धामन्नुपहूतो, देवा म इदं हविर्जुषन्तामिति, तस्मिन्नुपहूतः ॥ ५ ॥ ४५-४६

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ ४७

अधा होता न्यसीदो यजीयानिडस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥ ४८

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ४९

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ५०

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५१

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर्होता मन्द्रो निषसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ५२

[अग्निं सुदीतिं० । ऋ. ३,१७,४; तै. ब्रा. ३,६,९,१; काठ. १८,२१]

[६] तै. ब्रा. ३,६,१०; काठ. १८,२० । [त्वं ह्यग्ने प्रथमो० । ऋ. ६,१,१; तै. ब्रा. ३,६,१०,१; काठ. १८,२० । अधा होता न्यसीदो० । ऋ. ६,१,२; तै. ब्रा. ३,६,१०,१; काठ. १८,२० । वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे० । ऋ. ६,१,३; तै. ब्रा. ३,६,१०,१; काठ. १८,२० । पदं देवस्य नमसा० । ऋ. ६,१,४; तै. ब्रा. ३,६,१०,१; नि. ४,१९ । त्वां वर्धन्ति क्षितय० । ऋ. ६,१,५; तै. ब्रा. ३,६,१०,२; काठ. १८,२० । सपर्येण्यः स प्रियो० । ऋ. ६,१,६; तै. ब्रा. ३,६,१०,३; काठ. १८,२०]

तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ५३

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ५४

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ॥ ५५

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ ५६

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ५७

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ ५८

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ ६ ॥ ५९

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्नी अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ६०

होता यक्षदिन्द्राग्नी छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेअज्राणां यवसप्रथमानां सुमत्क्षराणां शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवेन्द्राग्नी जुषेतां हविर्होतर्यज ॥ ६१

[तं त्वा वयं सुध्यो० । ऋ. ६,१,७; तै. ब्रा. ३,६,१०,३; काठ. १८,२० । विशां कविं विश्पतिं० । ऋ. ६,१,८; तै. ब्रा. ३,६,१०,३; काठ. १८,२० । सो अग्न ईजे शशमे० । ऋ. ६,१,९; तै. ब्रा. ३,६,१०,४; काठ. १८,२० । अस्मा उ ते महि महे० । ऋ. ६,१,१०; तै. ब्रा. ३,६,१०,४ । आ यस्ततन्थ रोदसी० । ऋ. ६,१,११; तै. ब्रा. ३,६,१०,५; काठ. १८,२० । नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे० । ऋ. ६,१,१२; तै. ब्रा. ३,६,१०,५; काठ. १८,२० । पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया० । ऋ. ६,१,१३; तै. ब्रा. ३,६,१०,५; काठ. १८,२०]

[७] तै. ब्रा. ३,६,११-१२ । श. २१,४३-४७ । काण्व. २३,४४-४६ । [आ वृत्रहणा वृत्रहभिः० । ऋ. ६,६०,३; तै. ब्रा. ३,६,८,१ । एवेन्द्राग्नी जुषेतां० । तै. ब्रा. ३,६,११,१]

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ६२

देवेभ्यो वनस्पते हवींषि हिरण्यपर्ण प्रदिवस्ते अर्थम् ।
प्रदक्षिणिद्रशनया नियूय ऋतस्य वक्षि पथिभी रजिष्ठैः ॥ ६३

होता यक्षद्वनस्पतिम्,—अभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित यत्राग्नेराज्यस्य प्रिया धामानि यत्र सोमस्याज्यस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्राग्न्योश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतं प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयांसमिव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्,—जुषतां हविर्,—होतर्यज ॥ ६४

वनस्पते रशनया नियूय पिष्टतमया वयुनानि विद्वान् ।
वहा देवत्रा दधिषो हवींषि प्र च दातारममृतेषु वोचः ॥ ६५

पिप्रीहि देवान् ॥ होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतम्,—अयाडग्निरग्नेः प्रिया धामान्य,—याट् सोमस्याज्यस्य हविषः प्रिया धामान्य,—याडिन्द्राग्न्योश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्य,—याड् वनस्पतेः प्रिया पाथांस्य,—याड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि, यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि, यक्षत्स्वं महिमानम्,—आयजतामेज्या इषः, कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा, जुषतां हविर्,—होतर्यज ॥ अग्ने यदद्य,—होपहूता ॥ ७ ॥ ६६-६७

देवं बर्हिः सुदेवं देवैः स्यात्, सुवीरं वीरैर्,—वस्तोर्वृज्येता,—ऽक्तोः प्रभ्रियेता,—ऽत्यन्यान् राया बर्हिष्मन्तो मदेम, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज, देवीर्द्वारः संघाते वीड्वीर्यामञ्छिथिरा ध्रुवा देवहूतौ, वत्स ईमेना तरुणा आमिमीयात् कुमारो वा नवजातो, मैना अर्वा रेणुककाटः प्रणग्, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, यज, देवीर्द्वारो, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, देवी उषासानक्तायास्मिन् यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्,—अपि नूनं दैवीर्विशः प्रायासिष्टां सुप्रीते सुधिते, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, यज, देवी उषासानक्ता, वसुवने

[गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमाना० । ऋ. ७,९३,४; तै. ब्रा. ३,६,९,१; काठ. ४,१५ । देवेभ्यो वनस्पते हवींषि० । तै. ब्रा. ३,६,११,२; काठ. १८,२१ । देवो वनस्पतिर्जुषतां० । तै. ब्रा. ३,६,११,४ । वनस्पते रशनया नियूय० । ऋ. १०,७०,१०; तै. ब्रा. ३,६,१२,१; नि. ६,७ । पिप्रीहि देवान्० । ऋ. १०,२,१; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,५; ६,११,४; काठ. २,१५; १८,२१; २०,१५ । अग्ने यदद्य० । ऋ. ६,१५,१४; तै. सं. ४,३,१३,४; तै. ब्रा. ३,५,७,६; ६,११,४]

[८] तै. ब्रा. ३,६,१३ । वा. २१,४८-५८; २८,१२-२४ । काण्व. २३,५७-६७; ३०,१२-२१ ।

वसुधेयस्य वीतां, देवी जोष्ट्री वसुधिती ययोरन्याघा द्वेषांसि यूयवदान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, यज, देवी जोष्ट्री, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवी ऊर्जाहुती, इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिं सपीतिमन्या, नवेन पूर्वं दयमानाः स्याम पुराणेन नवं, तामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने अधातां, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, यज, देवी ऊर्जाहुती, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवा दैव्या होतारा पोतारा नेष्टारा हताघशंसा आभरद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां, यज, देवा दैव्या होतारा, वसुवने वसुधेयस्य वीतां, देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरिडा सरस्वती भारती, द्यां भारत्यादित्यैरस्पृक्षत् सरस्वतीमं रुद्रैर्यज्ञमावी,—दिहैवेडया वसुमत्या सधमादं मदेम, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, यज, देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवी,—र्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, देवो नराशंसस्त्रिशीर्षा षडक्षः, शतमिदेनं शितिपृष्ठा आदधति, सहस्रमीं प्रवहन्ति, मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो, बृहस्पतिः स्तोत्र,—मश्विनाध्वर्यवं, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज, देवो नराशंसो वसुवने वसुधेयस्य वेतु, देवो वनस्पतिर्वर्षप्रावा घृतनिर्णिग् द्यामग्रेणास्पृक्ष,—दान्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृंहीद्, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज, देवो वनस्पतिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु, देवं बर्हिर्वारितीनां निधेधासि प्रच्युतीनामप्रच्युतं निकामधरणं पुरुस्पार्हं यशस्व,—देना बर्हिषान्या बर्हींष्यभिष्याम, वसुवने वसुधेयस्य वेतु, यज, देवं बर्हिर्वारितीनां वसुवने वसुधेयस्य वेतु, देवो अग्निः स्विष्टकृद्, यज, देवो अग्निः स्विष्टकृत् ॥ ८ ॥ ६८

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं गृह्णन्नग्नये आज्यं गृह्णन्त्सोमायाज्यं बध्नन्निन्द्राग्निभ्यां छागं, सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदग्नये आज्येन सोमायाज्येनेन्द्राग्निभ्यां छागेना,—ऽघस्तां तं, मेदस्तः प्रतिपचता,—ऽग्रभीष्टा,—मवीवृधेतां पुरोडाशेन, त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो, बहुभ्य आ संगतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति, ता या देवा देवदानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्वा च गुरस्वे,—षितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो, मानुषः सूक्तवाकाय, सूक्ता ब्रूही,—दं द्यावापृथिवी भद्रमभू,—दार्ध्म सूक्तवाकमुत नमोवाकम्,—ऋध्यास्म सूक्तोच्य,—मग्ने त्वं सूक्तवागस्युपश्रुति दिवस्पृथिव्यो,—रोमन्वती तेऽस्मिन् यज्ञे यजमान द्यावापृथिवी स्तां शंगवी जीरदानू अत्रस्नू अप्रवेदे उरुगव्यूती अभये कृतं, वृष्टिद्यावा रीत्यापा शंभुवौ मयोभुवा ऊर्जस्वती च पयस्वती च, सूपचरणा च स्वधिचरणा च,

---

[९] तै. ब्रा. ३,६,१४; ३,५,१० । वा. २१,५९-६१; २८,२३,४६ । काण्व. २३,५८-६०; ३०,२३,४६ ।

उरुगव्यूती अभयंकृतौ वृष्टिद्यावा रीत्यापा शंभुवौ मयोभुवा ऊर्जस्वती च पयस्वती च सूपचरणा च स्वधिचरणा च, तयोराविद्यग्निरिदंँ हविरजुषता,—ऽवीवृधत, महो ज्यायोऽकृत, सोम इदंँ हविरजुषता,—ऽवीवृधत, महो ज्यायोऽकृते,—न्द्राग्नी इदंँ हविरजुषेता,—मवीवृधेतां, महो ज्यायोऽक्राताँ, वनस्पतिरिदंँ हविरजुषता,—ऽवीवृधत, महो ज्यायोऽकृत, देवा आज्यपा आज्यमजुषन्ता,—ऽवीवृधन्त, महो ज्यायोऽकृता,—ऽग्निर्होत्रेणेदंँ हविरजुषता,—ऽवीवृधत, महो ज्यायोऽकृता,—ऽस्यामृधद्धोत्रायां देवंगमायामाशास्तेऽयंँ यजमाना, आयुरा-शास्ते, सुप्रजास्त्वमाशास्ते, विश्वं प्रियमाशास्ते, यदनेन हविषाशास्ते तदश्यात्, तदृ-ध्यात्, तदस्मै देवा रासन्तां, तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनुताँ, वयमग्नेर्मानुषा इष्टं च वीतं
चो,—भे च नो द्यावापृथिवी अंँहसस्पातामि,—ह गतिर्वामस्ये,—दं नमो देवेभ्यः ॥ ९ ॥ ६९

तच्छं२योरावृणीमहे गातुंँ यज्ञाय गातुंँ यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः।
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजंँ शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ७०

आप्यायस्व, सं ते पयांँसि ॥ ७१

इह त्वष्टारमग्रियंँ विश्वरूपमुपह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥ ७२
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ७३
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यछत ॥ ७४
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्रा३ण्यग्नाय्यश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ७५

[१०] तै. ब्रा. ३,५,११—१२। वा. ११,६३; १२,११२-११४; २७,२०; ३४,२०। काण्व. १२,६५; १३,११?— ११३; २९,२०; ३३,४। [तच्छंँयोरावृणीमहे०। तै. सं. २,६,१०,२; तै. ब्रा. ३,५,११; तै. आ. १,९, ७; ३,१। आप्यायस्व०। ऋ. १,९१,१६-१७; ९,३१,४; तै. सं. १,४,३२,१; ३,२,५,३; ४,२,७,४; तै. ब्रा. ३,५,११; ७,१३,४; तै. आ. ३,१७,१; ६,६,३; ताण्ड्य ब्रा. १,५,८; काठ. १६,१४; ३५,१३; ३७,५; कपि. २५,५। सं ते पयांँसि०। ऋ. १,९१,१८; तै. सं. ४,२,७,४; काठ. १६,१४; ३५,१३; ३७,५; कपि. २५,५। इह त्वष्टार-मग्रियँ०। ऋ. १,१३,१०; तै. सं. ३,१,११,१; तै. ब्रा. ३,५,१२,१। तन्नस्तुरीपमध०। ऋ. ३,४,९; ७,२,९; तै. सं. ३,१,११,१। देवानां पत्नीरुशतीः०। ऋ. ५,४६,७; तै. ब्रा. ३,५,१२,१। उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीः०। ऋ. ५,४६,८; अथर्व. ७,४९,२; तै. ब्रा. ३,५,१२,१; नि. १२,४६]

मै. ५९

राकामहंँ, यास्ते राके, सिनीवालि, या सुपाणिः, कुहूमहं, कुहूर्देवानाम् ॥ ७६
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानांँ यजिष्ठः स प्रयजतामृतावा ॥ ७७
हव्यवाडग्नि,—रिडोपहूता ॥ १० ॥ ७८

[१८६६]

॥ इति खिलकाण्डे त्रयोदशः प्रपाठकः ॥१३॥

अथ चतुर्दशः प्रपाठकः।

सोमो धेनुंँ सोमो अर्वन्तमाशुंँ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
सादन्यंँ विदथ्यंँ सभेयं पितृश्रवणंँ यो ददाशदस्मै ॥ १
अषाढंँ युत्सु पृतनासु पप्रिंँ स्वर्षामप्सांँ वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजांँ सुक्षितिंँ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ २
त्वंँ सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वंँ वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ ३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्याम् ॥ ४
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमाततन्थोर्३वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ५

[राकामहंँ०। ऋ. २,३२,४; अथर्व. ७,४८,१; तै. सं. ३,३,११,५; नि. ११,३१; काठ. १३,१६। यास्ते राके०। ऋ. २,३२,५; अथर्व. ७,४८,२; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६। सिनीवालि०। ऋ. २,३२,६; अथर्व. ७,४६,१; तै. सं. ३,१,११,३; ३,११,५; नि. ११,३२; काठ. १३,१६। या सुपाणिः०। ऋ. २,३२, ७; अथर्व. ७,४६,२; तै. सं. ३,१,११,४; ३,११,५; काठ. १३,१६। कुहूमहं(०देवीं)। ऋ. परि. ३,१; अथर्व. ७,४७,१; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६। कुहूर्देवानाम्०। ऋ. परि. ३,२; अथर्व. ७,४७,२; तै. सं. ३,३,११,५; काठ. १३,१६। अग्निर्होता गृहपतिः०। ऋ. ६,१५,१३; तै. ब्रा. ३,५,१२,१। हव्यवाड(ळ)-ग्निः०। ऋ. ५,४,२; तै. सं. ३,४,११,१]

[१] तै. ब्रा. २,८,३; २,८,१। वा. ३४,२०-२२; ४,३७; १०,२०; २३,६५। काण्व. ३३,१४-१६; ४,४९; ११,२९। २५,६७। [सोमो धेनुंँ सोमो०। ऋ. १,९१,२०; तै. ब्रा. २,८,३,१। अषाढंँ युत्सु पृतनासु०। ऋ. १,९१,२१; तै. ब्रा. २,४,३,८; २,८,३,१; ७,४,१। त्वंँ सोम क्रतुभिः०। ऋ. १,९१,२; तै. ब्रा. २,४,३,८; २,८,३,१। या ते धामानि दिवि०। ऋ. १,९१,४; तै. सं. २,३,१४,१, ४,१,११,१; तै. ब्रा. २,८,३,२; काठ. १३,१५। त्वमिमा ओषधीः सोम०। ऋ. १,९१,२२; तै. ब्रा. २,८,३,१]

या ते धामानि हविषा यजन्ति, सोमापूषणे,—मौ देवौ ॥ ६
सोमापूषणा रजसो विमानंँ सप्तचक्रंँ रथमविश्वमिन्वम्।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ७
दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुंँ रायस्पोषंँ विष्यतां नाभिमस्मे ॥ ८
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिंँ सोमो रयिपतिर्दधातु।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति।
सोमापूषणा अवतं धियं मे युवाभ्यांँ विश्वाः पृतना जयेम ॥ १०
प्रजापते नहि त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयंँ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ११
रयीणां पतिंँ यजतं बृहन्तमस्मिन् भरे नृतमंँ वाजसातौ।
प्रजापतिं प्रथमजामृतस्य यजाम देवमधि नो ब्रवीतु ॥ १२
प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणो देवानां पिता जनिता प्रजानाम्।
पतिर्विश्वस्य जगतः परस्पा हविर्नो देव विहवे जुषस्व ॥ १३
तवेमे लोकाः प्रदिशो दिशश्च परावतो निवत उद्वतश्च।
प्रजापते विश्वसृग् जीवधन्य इदं नो देव प्रतिहर्य हव्यम् ॥ १४
प्रजापतिं प्रथमंँ यज्ञियानां देवानामग्रे यजतंँ यजध्वम्।
स नो ददातु श्रवणं पितृणां तस्मै ते देव हविषा विधेम ॥ १५

[या ते धामानि हविषा०। ऋ. १,९१,१९; तै. सं. १,२,१०,१; तै. ब्रा. २,८,३,१; काठ. ११,१३। सोमा-पूषणा०। ऋ. २,४०,१,३; तै. सं. १,८,२२,५; २,६,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,५; काठ. ८,१७। इमौ देवौ०। ऋ. २,४०,२; तै. सं. १,८,२२,५; २,६,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,५; काठ. ८,१७। सोमापूषणा रजसो०। ऋ. २,४०,३; तै. सं. १,८,२२,५; तै. ब्रा. २,८,१,५। दिव्य१न्यः सदनं चक्र०। ऋ. २,४०,४; तै. ब्रा. २,८,१,६। विश्वान्यन्यो भुवना०। ऋ. २,४०,५; १,५। धियं पूषा जिन्वतु०। ऋ. २,४०,६; तै. ब्रा. २,८,१,६। प्रजापते नहि त्वदेतान्यन्यो०। ऋ. १०,१२१,१०; अथर्व. ७,७९,४; ८०,३; तै. सं. १,८,१४,२; ३,२,५,६; तै. ब्रा. २,८,१,२; ३,५,७,१; तै. आ. १०,५४; नि. १०,४३; काठ. १५,८। रयीणां पतिंँ यजतं०। तै. ब्रा. २,८,१,३। प्रजापते त्वं निधिपाः०। तै. ब्रा. २,८,१,३। तवेमे लोकाः प्रदिशो०। तै. ब्रा. २,८,१,३। प्रजापतिं प्रथमंँ०। तै. ब्रा. २,८,१,४]

यो राय ईशे शतदाय उक्थ्यो यः पशूनांँ रक्षिता विष्ठितानाम्।
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य सहस्रधामा जुषतांँ हविर्नः ॥ १ ॥ १६
वायो शतंँ हरीणांँ युवस्व पोष्याणाम्।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आयातु पाजसा ॥ १७
ईशानाय प्रहुतिंँ यस्त आनट् शुचिंँ सोमंँ शुचिपास्तुभ्यंँ वायो।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातो जातो जायते वाज्यस्य ॥ १८
युक्ष्वा हि त्वंँ रथासहा युवस्व पोष्या वसो।
आन्नो वायो मधु पिबास्माकंँ सवनागहि ॥ १९
कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसंँ सूर्येण ॥ २०
आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे।
वयंँ हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २१
सं ते वायुः ॥ २२
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ २३
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतंँ वसुधितिं निरेके ॥ २४
आ वायो, प्र वायुं, प्र याभिः ॥ २५

[यो राय ईशे०। तै. ब्रा. २,८,१,४]

[२] तै. ब्रा. २,८,१। वा. २१,३९; २७,२३-२४,२७-२८; ७,७; ३३,५५; १५,१५,२१-२२; ४,५; ३१,१६। काण्व. १२,३९; २९,२३—२४,०६,३२; ७,६; ३२,५५; २७.१९,२५-२६; ४,६; ३५,१६। [वायो शतंँ हरीणांँ०। ऋ. ४,४८,५; तै. सं. २,२,१२,७। ईशानाय प्रहुतिंँ०। ऋ. ७,९०,२। युक्ष्वा हि त्वंँ रथासहा०। ऋ. ८,२६,२०। कुविदङ्ग नमसा०। ऋ. ७,९१,१। आ नो वायो महे०। ऋ. ८,४६,२५। सं ते वायुः०। तै. सं. ४,१,४; ५,१,५,१; काठ. १६,४; १९,५; कपि. ३०,३। पीवोअन्नाँ (०न्नां) रयिवृधः०। ऋ. ७,९१,३; तै. ब्रा. २,८,१,१। राये नु यं जज्ञतू०। ऋ. ७,९०,३; तै. ब्रा. २,८,१,१। आ वायो०। ऋ. ७,९२,१; तै. सं. १,४,४,१; ३,४,२,१; तै. ब्रा. १,८,११; काठ. ४,२; १३,११—१२; कपि. ३,२। प्र वायुं०। ऋ. ६,४९,४; तै. ब्रा. २,८,१,१। प्र याभिः०। ऋ. ७, ९२,३; तै. सं. २,२,१२,७; तै. ब्रा. २,८,१,१; याज्ञ. १०,१०]

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २६
देवानां भद्रा सुमतिरृजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानाꣳ सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २७
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितꣳ यदायुः ॥ २८
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ २९
आ यो देवास ईमहे ॥ ३०
उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः । उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥ ३१
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः ॥ २ ॥ ३२
अग्ने नय ॥ ३३
प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वꣳ हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूꣳष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ ३४
अग्ने त्वं पारय ॥ ३५
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निꣳ यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशꣳ सुप्रतीकꣳ स्वञ्चꣳ हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३६
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यꣳ सुवितायं देव क्षांꣳ विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३७

[आ नो नियुद्भि० । ऋ. ७,९२,५; तै. ब्रा. २,८,१,२। देवानां भद्रा सुमति० । ऋ. १,८९,२; नि. १२,३९। भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम० । ऋ. १,८९,८; सा. १८७४; तै. आ. १,१,१; काठ. ३५,१; कपि. ४८,१ । शतमिन्नु शरदो० । ऋ. १,८९,९; तै. आ. १,२७,६; काठ. ३५,१; कपि. ४८,२ । आ यो देवास० । तै. सं. १,१,१,२ । उत देवा अवहितं० । ऋ. १०,१३७,१; अथर्व. ४,१३,१ । यज्ञेन यज्ञमयजन्त० । ऋ. १,१६४,५०; १०,९०,१६; अथर्व. ७,५,१; तै. सं. ३,५,११,५; तै. आ. ३,१,७; शत. ब्रा. १०,२,२,२]

[३] तै. ब्रा. २,८,२ । वा. ५,३६; ७,४३; ४०,१६; १२,१२; ४,३०; १८,४२; २१,२; ३८,५ । काण्व. ५,४५; ९,८; ४०,१८; १३,१३; ४,३०; २०,१९; २३,२; ३८,५ । अग्ने नय सुपथा० । ऋ. १,१८९,१; तै. सं. १, १,१४,१; ४,४३,१; तै. ब्रा. २,८,२,३; तै. आ. १,८,८; शत. ब्रा. १४,८,३,१; काठ. ३,१; ६,१०; कपि. २,८। प्र वः शुक्राय भानवे० । ऋ. ७,४,१; तै. ब्रा. २,८,२,३; काठ. ७,१६ । अग्ने त्वं पारय० । ऋ. १,१८९,२; तै. सं. १,१,१४,४; तै. ब्रा. २,८,२,५; तै. आ. १०,२,१ । अच्छा (च्छा) गिरो मतयो० । ऋ. ७,१०,३; तै. ब्रा. २,८,२,४ । अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा० । १,१८९,३; तै. ब्रा. २,८,२,४]

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ ३८
उदुत्तमं,—मस्तभ्नाद् द्यां,—मिमां धियम् ॥ ३९
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाथा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ४०
अव ते हेडो वरुण, तत्त्वायामि ॥ ४१
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रꣳ शरणꣳ सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यꣳसत् ॥ ४२
आ नो दिवः ॥ ४३
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमꣳ सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ४४
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४५
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्य, इदं ते हव्यम् ॥ ३ ॥ ४६

[प्र कारवो मनना० । ऋ. ३,६,१; तै. ब्रा. २,८,२,५ । उदुत्तमं वरुण पाश० । ऋ. १,२४,१५; सा. ५८९; अथर्व. ७,८३,३; १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; ४,२,१,३; तै. ब्रा. २,७,१६,४; ८,१,६; तै. आ. २,४,४; नि. २,१३; काठ. ३,८; १६,८; १९,११; २१,१३; कपि. २,१५; ३२,१ । अस्तभ्नाद् द्याम्० । ऋ. ८,४२,१; तै. सं. १,२,८,१; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ. २,६; ११,१२; कपि. १,१९ । इमां धियम्० । ऋ. ८,४२,३; १०,६७,१; अथर्व. २०,९१,१; तै. सं. १,२,२,२; ६,१,३,२; काठ. २,३; कपि. १,१५ । कितवासो यद्रिरिपु:० । ऋ. ५, ८५,८; तै. सं. ३,४,११,६; तै. ब्रा. २,८,१,५; काठ. २३,१२ । अव ते हेडो(ळो) वरुण० । ऋ. १,२४,१४; तै. सं. १,५,११,३; तै. ब्रा. २,७,१६,४; ८,१,६; तै. आ. २,४,४; काठ. ४०,११ । तत्त्वायामि ब्रह्मणा० । ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ. ४,१६; ११,१३; १२,१५; १७,१९; २१,१३; ४०,११ । पावीरवी कन्या चित्रायु:० । ऋ. ६,४९,७; तै. सं. ४.१,११,२; तै. ब्रा. २,८,२,८ । आ नो दिवः० । ऋ. ५,४३,११; ७,२४,३; तै. सं. १,८,२२,१; २,५,१२.१; ३,१,११,२; काठ. ४,१६; २०,१५ । इमा जुह्वाना युष्मदा० । ऋ. ७,९५,५; तै. ब्रा. २,४,६,१; काठ. ४,१६ । यस्ते स्तनः शशयो० । ऋ. १,१६४,४९; अथर्व. ७,१०,१; तै. ब्रा. २,८,२,८; तै. आ. ४,८,२; ५,७,३; शत. ब्रा. १४,२,१,१५; ९,४,२८ । सरस्वत्यभि नो नेषि० । ऋ. ६, ६१,१४; तै. सं. ७,२,७,४; तै. ब्रा. २,४,३,१; २,८,२,८; काठ. १७,१८; ३०,३ । इदं ते हव्यम । तै. ब्रा. २,५,४,६]

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिꣳ सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवाꣳसꣳ हिरण्यवर्णमरुषꣳ सपेम ॥ ४७
स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ४८
बृहस्पतिः, स सुष्टुभा ॥ ४९
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ ५०
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे ॥ ५१
सूर्यो देवीमुषसꣳ रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ ५२
भद्रा अश्वा,—स्तन्मित्रस्य ॥ ५३
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५४
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५५

[४] तै. ब्रा. २,८,२; २,८,७ । वा. २६,३; ३३,३७-३८,४२; ७,४२; १३,४६; २१,५-६; २५,२३; २९,४ । काण्व. २,२१; २८,३; ३२,३७-३८,४२; ८,२३,१,७; १४,४८; २३,५-६; २७,२७; ३१,३ [आ वेधसं नीलपृष्ठं० । ऋ. ५,४३,१२; तै. ब्रा. २,५,५,३; २,८,२,७ । स हि शुचिः शतपत्र:० । ऋ. ७,९७,७; तै. ब्रा. २,५,५,४; ८,२,७ । बृहस्पतिः० । ऋ. ४,५०,४; ६,७३,१; १०,४२,११; ४३,११; ४४,११; १८२,१; अथर्व. ७,५१,१; २०,१७,११; ८८,४; ८९,११; ९०,३; ९४,११; तै. सं. ३,३,११,१; तै. ब्रा. २,८,२,७—८; काठ. १७,१८ । स सुष्टुभा० । ऋ. ४,५०,५; १,६२,४; अथर्व. २०,८८,५; तै. सं. २,३,१४,४; काठ. १०,१३ । बृहस्पते अति यदर्यो० । ऋ. २,२३,१५; तै. सं. १,८,२२,२; काठ. ४,१६; ४०,११ । एवा पित्रे विश्वदेवाय० । ऋ. ४,५०,६; अथर्व. २०,८८,६; तै. सं. १,८,२२,२; तै. ब्रा. २,८,२,८; काठ. १७,१८ । सूर्यो देवीमुषसं० । ऋ. १,११५,२; अथर्व. २०,१०७,१५; तै. ब्रा. २,८,७,१ । भद्रा अश्वा:० । ऋ. १,११५,३; तै. ब्रा. २,८,७,१ । तन्मित्रस्य० । ऋ. १,११५,४; अथर्व. २०,१२३,१; तै. ब्रा. २,८,७,१; नि. ४,११ । तन्मित्रस्य वरुणस्य० । ऋ. १,११५,५; अथर्व. २०,१२३,२; तै. ब्रा. २,८,७,२ । अद्या देवा उदिता० । ऋ. १,११५,६; तै. ब्रा. २,८, ७,२]

चित्रं देवानामुदगादनीकꣳ, सुत्रामाणं, महीमू षु,—दितिः पाशान् ॥ ५६
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ ५७
विष्टम्भो दिवः, स्तीर्णं बर्हिः ॥ ४ ॥ ५८
विष्णोर्नु कं, तदस्य, प्र तद्विष्णुः ॥ ५९
परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ ६०
विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिꣳ सुजनिमा चकार ॥ ६१
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एताꣳ वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषꣳ ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ६२
इन्द्रं नरो नेमधिता, युजे रथम् ॥ ६३
जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तꣳ वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिꣳ शूर गोनामस्मभ्यं चित्रꣳ वृषणꣳ रयिं दाः ॥ ६४

[चित्रं देवानाम्० । ऋ. १,११५,१; अथर्व. १३,२,३५; २०,१०७,१४; तै. सं. १,४,४३,१; २,४,१४,४; तै. ब्रा. २,८,७,३; ऐ. आ. ३,२; तै. आ. १,७,६; २,१३,१; नि. १२,१६; काठ. ४,६; १०,१३; १३,१६; २१, १४; २२,५-६,८; कपि. ३,४,७; ३५,२ । सुत्रामाणं पृथिवीं० । ऋ. १०,६३,१०; अथर्व. ७,६,३; तै. सं. १,५,११,५; ७,१,१८,२; तै. आ. १,१३,२; काठ. २,३ । महीमू षु० । तै. सं. १,५,११,५; ७,१,१८,२; तै. ब्रा. ३,१,३,२; तै. आ. १,१३,२; काठ. ३०,४—५; कपि. ४६,७ । अदितिः पाशान्० । तै. सं. ३,१, ४,४; काठ. ३०,८ । अदितिर्द्यौरदिति:० । ऋ. १,८९,१०; अथर्व. ७,६,१; तै. आ. १,१३,२; नि. ४,२३ । विष्टम्भो दिवः० । ऋ. ९,८९,६; तै. सं. ४,४,१२,५; काठ २२,१४ । स्तीर्णं बर्हि:० । ऋ. १,१३५,१; तै. सं. ५,१,११,२; काठ. ५,६,२]

[५] तै. ब्रा. २,८,२-३ । वा. ५,१८,२०; १९,८१; ८,१५ । काण्व. ५,२४,२६; २१,७८; ९,१५ । [विष्णोर्नु कं० । ऋ. १,१५४,१; अथर्व. ७,२६,१; तै. सं. १,२,१३,२; तै. ब्रा. २,८,३,२; काठ. २,१०; २५,८; कपि. २,४; ४०,१ । तदस्य० । ऋ. १,१५४,५; १०३,५; २,३५,११; तै. ब्रा. २,४,६,२; ८,३,२ । प्र तद्विष्णु:० । ऋ. १,१५४,२; अथर्व. ७,२६,२—३; तै. ब्रा. २,४,३,४; ८,३,२; ३,१,२,३; नि. १,२०; काठ. २,१०; २५,८; कपि २,४; ४०,१ । परो मात्रया तन्वा० । ऋ. ७,९९,१; तै. ब्रा. २,८,३,२ । विचक्रमे पृथिवीमेष० । ऋ. ७,१००,४; तै. ब्रा. २,४,३,५; ८,३,३ । त्रिर्देवः पृथिवीमेष० । ऋ. ७,१००,३; तै. ब्रा. २,४,३,५; ८,३,३ । इन्द्रं नरो नेमधिता० । ऋ. ७,२७,१; सा. ३१८; तै. सं. १,६,१२,१; तै. ब्रा. २,८,२,५ । युजे रथम्० । ऋ. ७,२३,३; अथर्व. २०,१२,३; तै. ब्रा. २,४,१,३; ८,२,५। जगृभ्मा(०म्मा०) ते दक्षिणमिन्द्र० । ऋ. १०, ४७,१; सा. ३१७; तै. ब्रा. २,८,२,५]

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६५

समिन्द्र नः ॥ ६६

आराच्छत्रुमपबाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ६७

इन्द्रो बलं रक्षितारं दुघानां करेणेव विचकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६८

अध्वर्यवो यो दभीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ६९

इन्द्रा ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीꣳरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद बलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ ७०

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान सꣳवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ७१

अभि स्ववृष्टिम् ॥ ७२

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दꣳहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधाꣳसि कृत्रिमान्येषाꣳ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥ ७३

विष्णुं देवं वरुणमूतये भगं मेदसा देवा वपया यजध्वम् ।
ता नो यज्ञमागतं विश्ववेदा प्रजावदस्मे द्रविणेह धत्तम् ॥ ७४

[तवेदं विश्वमभितः० । ऋ. ७,९८,६; अथर्व. २०,८७,६; तै. ब्रा. २,८,२,६ । समिन्द्र नः० (णो०) । ऋ. ५,४२,४; अथर्व. ७,९७,२; तै. सं. १,४,४४,१; तै. ब्रा. २,८,२,६; काठ. ४,१२; कपि. ३,१० । आराच्छत्रुमपबाधस्व० । ऋ. १०,४२,७; अथर्व. २०,८९,७; तै. ब्रा. २,८,२,७; नि. ५,२४ । इन्द्रो बलं (व०) रक्षितारं० । १०,६७,६; अथर्व. २०,९१,६ । अध्वर्यवो यो दभीकं० । ऋ. २,१४,३ । इन्द्रा (०न्द्र) ओषधीरसनो० । ऋ. ३,३४,१०; अथर्व. २०,११,१० । यो हत्वाहिमरिणात् सप्त० । ऋ. २,१२,३; अथर्व. २०,३४,३ । अभि स्ववृष्टिम्० । ऋ. १,५२,५ । भिनद्वलमङ्गिरोभिः० । ऋ. २,१५,८; तै. सं. २,३, १४,५]

[६] तै. ब्रा. २,८,४,६ । वा. ८,६,५९; ३३,४३; ३४,३१; १२,७५,७८,८१,८४,८८ । काण्व. ८,५; ९,४५; ३२, ४३; ३३,२५; १३,७६,७९,८२,८५,८९ । [विष्णुं देवं वरुणमूतये० । तै. ब्रा. २,८,४,४]

मै० ६०

मेदसा देवा वपया यजध्वं विष्णुं च देवं वरुणं च रातिम् ।
ता नो अमीवामपबाधमाना इमं यज्ञं जुषमाणा उपेतम् ॥ ७५

विष्णूवरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्यू हविषा वृधाना ज्योतिषारातीर्दहतं तमाꣳसि ॥ ७६

ययोरोजसा स्कभिता रजाꣳसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा ।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन् वरुणा पूर्वहूतिम् ॥ ७७

विष्णूवरुणा अभिशस्तिपावा देवा यजन्त हविषा घृतेन ।
अपामीवाꣳ सेधतꣳ रक्षसश्चाया धत्तꣳ यजमानाय शंयोः ॥ ७८

अꣳहोमुचा वृषभा सुप्रतूर्ती देवानां देवतमा शविष्ठा ।
विष्णूवरुणा प्रतिहर्यतं न इदं नरा प्रयतमूतये हविः ॥ ७९

आ देवो याति सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयश्च प्रसुवंश्च भूम ॥ ८०

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपꣳ हिरण्यशम्यꣳ यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथꣳ सविता चित्रभानुः कृष्णा रजाꣳसि तविषीं दधानः ॥ ८१

स घा नो देवः सविता सहावासाविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ८२

आ कृष्णेन रजसा, याममद्य ॥ ८३

भगं धियꣳ वाजयन्तः पुरन्धिं नराशꣳसो ग्नास्पतिर्नो अव्यात् ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ ८४

[मेदसा देवा वपया० । तै. ब्रा. २,८,४,४ । विष्णुवरुणा युवम्० । तै. ब्रा. २,८,४,५ । ययोरोजसा स्कभिता० । अथर्व. ७,२५(२६),१; तै. ब्रा. २,८,४,५ । विष्णुवरुणा अभि० । तै. ब्रा. २,८,४,६ । अꣳहोमुचा वृषभा० । तै. ब्रा. २,८,४,६ । आ देवो याति (नु०) सविता० । ऋ. ७,४५,१; तै. ब्रा. २,८,६,१; काठ. १७,१९ । अभीवृतं कृशनैः० । ऋ. १,३५,४; तै. ब्रा. २,८,६,१ । स घा नो देवः सविता० । ऋ. ७,४५, ३; तै. ब्रा. २,८,६,१ । आ कृष्णेन रजसा० । ऋ. १,३५,२; तै. सं. ३,४,११,२ । याममद्य० । ऋ. ६,७१,६; तै. सं. १,६,२३,१; २,२,१२,२ । भगं धियं वाजयन्तः० । ऋ. २,३८,१० तै. ब्रा. २,८,६,३]

या ओषधयो, ऽश्वावती,—मोषधीरिति मातरो, ऽति विश्वाः परिष्ठा, यदोषधयः ८५
संगच्छन्ते, ऽन्या वो अन्याम् ॥ ६ ॥

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवताꣳ शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीꣳ वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ ८६
 ८७
प्र पूर्वजे ॥

स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवꣳशे धीरः शच्या समैरत ॥ ८८

भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८९

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषꣳ वृजनं जीरदानुम् ॥ ९०

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उपब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ९१

इन्द्रो भूतस्य भुवनस्य राजेन्द्रो दाधार पृथिवीमुतेमाम् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवना श्रितानीन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥ ९२

इन्द्रः पृणन्तं पपुरिं चेन्द्रा इन्द्रः स्तुवन्तꣳ स्तवितारमिन्द्रः ।
इन्द्रः पृणन्तं ... ९३
दधाति शक्रः सुकृतस्य लोक इन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥

इन्द्रो द्यौरुरꣳव्युत भूमिरिन्द्रा इन्द्रः समुद्रो अभवद्गभीरः ।
इन्द्रो द्यौरुरꣳव्युत ... ९४
उरꣳवन्तरिक्षꣳ स जनास इन्द्रा इन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥

[या ओषधयः० (०षधीः) । ऋ. १०,९७,१; तै. सं. ४,२,६,१; नि. ९,२८; काठ. १३,१६; १६,१३; कपि. २५,४ । अश्वावतीम्० । ऋ. १०,९७,७; तै. सं. ४,२,६,४; तै. ब्रा. २,८,४,८; काठ. १३,१६; १६, १३; कपि. २५,४ । ओषधीरिति मातरः० । ऋ. १०,९७,४; तै. सं ४,२,६,१; तै. ब्रा. २,८,४,८; नि. ६,३; काठ. १६, १३; कपि. २५,४ । अति विश्वाः परिष्ठाः० । ऋ. १०,९७,१०; तै. सं ४,२,६,३; तै. ब्रा. २,८,४,८; काठ. १६, १३; कपि. २५,४ । अन्या वो अन्याम्० । ऋ. १०,९७,१४, तै. सं. ४,२,६,२; कपि. २५,४ । यदोषधयः संगच्छन्ते० । तै. सं. ४,२,६,३; तै. ब्रा. २,८,४,८; काठ. १६,१३; कपि. २५,४]

[७] तै. ब्रा. २,८,४,७-८; २,८,२,८ । वा. २०,५४; २७,२८,३४ ४० । काण्व. २२,३९; २९,३१ । [मही द्यावापृथिवी० ऋ. ४,५६,१ । प्र पूर्वजे० । ऋ. ७,५३,२; तै. सं. ४,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,४,७ । स इत् स्वपा भुवनेष्वास० ऋ. ४,५६,३ तै. ब्रा. २,८,४,७ । भूरि द्वे अचरन्ती० । ऋ. १,१८५,२; तै. ब्रा. २,८,४,८ । इदं द्यावापृथिवी० । ऋ. १,१८५,११; तै. ब्रा. २,८,४,८ । उर्वी पृथ्वी (पृथिवी) बहुले० । ऋ. १,१८५,७; तै. ब्रा. २,८,४,८]

इन्द्रो वृत्रं वज्रेणावधीदिन्द्रो व्यꣳसमुत शुष्णमिन्द्रः ।
इन्द्रः पुरः शम्बरस्याभिनदिन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥ ९५

इन्द्रो बभूव ब्रह्मणा गभीर इन्द्रा आभूतः परिभूर्विन्द्रः ।
इन्द्रो भविष्यदुत भूतमिन्द्रा इन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥ ९६

इन्द्रोऽस्मे अवतु वज्रबाहुरिन्द्रे भूतानि भुवनानीन्द्रे ।
अस्माकमिन्द्रो भवतु प्रसाह इन्द्रं मन्ये पितरं मातरं च ॥ ९७

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ९८

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र बाधमाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ ९९

एकाचेतत् सरस्वती नदीनाꣳ शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ १००

इदमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १०१

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारा ऋतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १०२

इयꣳ शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः ॥७॥ १०३

शुचिं नु स्तोमꣳ, श्रथद्वृत्रं,—मुभा वामिन्द्राग्नी, प्र चर्षणिभ्या, आ वृत्रहणा,

[उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप० । ऋ. ७,९५,४ । प्र क्षोदसा धायसा० । ऋ. ७,९५,१ । एकाचेतत् सरस्वती० । ऋ. ७,९५,२ । अयमु ते सरस्वति० । ऋ. ७,९५,६ । इयꣳ शुष्मेभिर्बिसखा० । ऋ. ६, ६१,२; मै. ब्रा. २,८,२,८; नि. २,२४; काठ. ४,१६]

[८] तै. ब्रा. २,८,७,४ । वा. ३,१३ २०,४४; २७,२० २९,९; ६,१० । काण्व. ३,१९; २२,२९; २९,२०; ३१,९; ३,२७ । [शुचिं नु स्तोमं० । ऋ. ७,९३,१; तै. सं. १,१,१४,१; तै. ब्रा. २,४,८,३; काठ १३,१५; ११,१३ । श्रथद् वृत्रम्० । ऋ. ६,६०,१; तै. सं. ४,२,११,१; ३,१३,८; तै. ब्रा. २,८,५,१; ३,५,७,३; काठ.४,१५; ११, १३,०३,११ । उभा वामिन्द्राग्नी० । ऋ. ६,६०,१३ तै. सं. १,१,१४,१; ५,५,१; तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ७,४,७,५; ९,१; कपि. ४,८; ५,३—४ । प्र चर्षणिभ्या० (०भ्यः) । ऋ. १,१०९,६ तै. सं ४,२,११,१ तै. ब्रा. २,८,५,१; काठ. ४,१५ । आ वृत्रहणा० । ऋ. ६,६०,३ तै. ब्रा. ३,६,८,१]

गोर्भिर्विप्र,—स्त्वष्टा दधत्, तन्नस्तुरीपं, त्वष्टा वीरम् ॥ १०४

विश्वरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ १०५

देव त्वष्टः ॥ १०६

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रतिजोषयेते ॥ १०७

अगृभ्णा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम् ॥ १०८

सुब्रह्माणं देववन्तं महान्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १०९

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः । ११०

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ १११

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ११२

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥ ८ ॥ ११३

[गोर्भिर्विप्र० । ऋ. ७,९३,४; तै. ब्रा. २,८,५,१; ३,६,९,१; काठ. ४,१५ । त्वष्टा दधत्० । तै. ब्रा. २,६,८, ४; ८,७,४; काठ. ३८,६ । तन्नस्तुरीपं० । ऋ. १,१४२,१०; ३,४,९; ७,२,९; तै. सं. ४,१,८,३; ३,१,११,१; नि. ६,२१; काठ. १८,१७; कपि. २९,५ । त्वष्टा वीरम्० । मै. सं. ५,१,११,३; तै. ब्रा. २,८,७,४; काठ. ५, ६,१ । विश्वरूपः सुभरो० । ऋ. २,३,९; मै. सं. ३,१,११,२; तै. ब्रा. २,८,७,४ । देव त्वष्ट:० । ऋ. १०, ७०,९; तै. सं. ५,१,१०,१; ६,३,११,२; काठ. ३,५; कपि. २,१४ । आविष्ट्यो वर्धते० । ऋ. १,९५,५; तै. ब्रा. २,८,७,४; नि. ८,१५ । अगृभ्णा (०म्मा) ते दक्षिणम्० । ऋ. १०,४७,१; स. ३१७; तै. ब्रा. २,८, २,५ । सुब्रह्माणं देववन्तं० । ऋ. १०,४७,३; तै. ब्रा. २,५,६,१ । वनीवानो मम दूतास(स)० । १०, ४७,७ । स्वायुधं स्ववसं सुनीथं० । ऋ. १०,४७,२ । अश्वावन्तं रथिनं० । ऋ. १०,४७,५ । सनद्वाजं विप्रवीरं० । ऋ. १०,४७,४]

त्वष्टा पत्नीभिरिह नः सजोषा देवो देवीभिर्हविषो जुषाणः ।
उप नो रयिं बहुलं विष्यता नः शृणोतु नः सुमतिं यज्ञियासः ॥ ११४

रेतोधा यस्य भुवनस्य देवः ससाद योनौ जनिता जनित्रः ।
रूपाणि कृण्वन् विदधद्वपूंषि त्वष्टा पत्नीभिश्चरति प्रजानन् ॥ ११५

त्वष्टा पत्नीभिरनु मंहनेवाग्रेयावा धिषणे यं दधाते ।
विश्वा वसु हस्तयोरादधानोऽन्तर्मही रोदसी याति साधन् ॥ ११६

आ नो वीरैर्जनिता मतीनां गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्वसूयन् ।
समञ्जानो धामभिर्विश्वरूपैस्त्वष्टा पत्नीभिश्चरति प्रजानन् ॥ ११७

त्वष्टा रेतो भुवनस्य पत्नीर्विकृण्वानास्तनुयं भूरि पश्वः ।
ग्रां वो देवी रोदसी तच्छृणोता नो रयिं जनत विश्ववारम् ॥ ११८

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां च रयिं च नो जनत विश्वरूपम् ।
योनौ रेतो दधुदस्मै नु त्वष्टा देवीः पत्नीर्जनत जीवसे नः ॥ ११९

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ १२०

पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो वीरान् वरुण तासु शाधि ॥ १२१

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राडृतावोऽनु नो गृभाय ।
दामेव वत्साद्विमुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ १२२

यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ १२३

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टा एनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ १२४

[९] वा. ७,२४; ३३,८; १८,७३; २६,७ । काण्व. ७,९६; ३२,८; २०,४२; २८,९ । [यज्ञं च नस्तन्वं च० । ऋ. १०,१५७,२; साम. ११११; अथर्व. २०,६३,१; १२४,४; तै. आ. १,२७,१ । वि मच्छ्रथाय रशनाम्० । ऋ. २,२८,५ । पर ऋणा सावीरध० । ऋ. २,२८,९ । अपो सु म्यक्ष० । ऋ. २,२८,६; नि. १३,१ । यो मे राजन् युज्यो० । ऋ. २,२८,१० । मा नो वधैर्वरुण० । ऋ. २,२८,७]

क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ १२५

मूर्धानं दिवः, पृष्टो दिवि, वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम, त्वमग्ने शोचिषा शोशुचानो,
ऽग्निः प्रातः सवनात्, विश्वं विष्याच ॥ ९ ॥ १२६

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोढा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १२७

स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥ १२८

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानोऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥ १२९

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ १३०

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥ १३१

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ १३२

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता ॥ १३३

[क्व त्यानि नौ सख्या० । ऋ. ७,८८,५ । मूर्धानं दिवः० । ऋ. ६,७,१; सा. ६७,११४०; तै. सं. १,४, १३,१; ६,५,०,१; काठ. ४,५; ४८,१; कपि. ३,४ । पृष्टो दिवि० । ऋ. १,९८,२; ७,५,२; तै. सं. १,५,११,१; तै. ब्रा. ३,११,६,४; काठ. ४,१६; ४०,३ । वैश्वानरस्य सुमतौ० । ऋ. १,९८,१; तै. सं. १,५,११,३; नि. ७,२२; काठ. ४,१६ । त्वमग्ने शोचिषा० । ऋ. ७,१३,२; तै. सं. १,५,११,२ । अग्निः प्रातः सवनात्० । मै. १,३,३६; तै. सं. ३,१,९,१; काठ. ३०,६—७]

[१०] तै. ब्रा. २,८,७; २,८,५—६ । वा. ३१,९; ३४,५८ । काण्व. ३३,९; ३३,४६ । आ वां रथो रोदसी० । ऋ. ७,६९,१; तै. ब्रा. २,८,७,६ । स पप्रथानो अभि पञ्च० । ७,६९,२; तै. ब्रा. २,८,७,७ । स्वश्वा यशसा यातम्० । ऋ. ७,६९,३; तै. ब्रा. २,८,७,७ । यो ह स्य वां रथिरा० । ऋ. ७,६९,५; तै. ब्रा. २,८,७,८; काठ. १७,१८ । युवोः श्रियं परि योषा० । ऋ. ७,६९,४; तै. ब्रा. २,८,७,८; नि. ६, ४ । युवं भुज्युमवविद्धं० । ऋ. ७,६९,७; तै. ब्रा. २,८,७,८ । ब्रह्मणस्पते त्वमस्य० । ऋ. २,२३,१९; २४,१६; तै. ब्रा. २,८,५,१]

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ १३४

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥ १३५

इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३६

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा ॥ १३७

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ १३८

आयातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ १३९

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १४०

को नु वां मित्रावरुणा ऋतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १४१

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरावर्त ॥ १४२

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणा अविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ १४३

प्र बाहवा ॥ १० ॥ १४४

[स ईं सत्येभिः सखिभिः० । ऋ. १०,६७,७; अथर्व. २०,९१,७; तै. ब्रा. २,८,५,१; नि. ५,४ । ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथा० । ऋ. २,२४,१४; तै. ब्रा. २,८,५,२ । इन्धानो अग्निं वनवद्० । ऋ. २,२५,१; तै. ब्रा. २, ८,५,२ । ब्रह्मणस्पते सुयमस्य० । ऋ. २,२४,१५; तै. ब्रा. २,८,५,२ । स इज्जनेन स विशा० । ऋ. २,२६, ३; तै. सं. २,३,१४,३; तै. ब्रा. २,८,५,३ । आयातं मित्रावरुणा० । ऋ. ६,६७,३ । युवं वस्त्राणि पीवसा० । ऋ. १,१५२,१; तै. ब्रा. २,८,६,६ । को नु वां मित्रावरुणा० । ऋ. ५,४१,१ । तत्सु वां मित्रावरुणा० । ऋ. ५,६२,२; तै. ब्रा. २,८,६,६ । यद्बंहिष्ठं नातिविधे० । ऋ. ५,६२,९; तै. ब्रा. २,८,६,७ । प्र बाहवा० । ऋ. ७,६२,५; तै. सं. १,८,२२,३; २,५,१२,३; तै. ब्रा. २,७,१५,६; ८,६,७; काठ. ११,१४]

आ नो विश्वा आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ १४५
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शꣳ सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ १४६
ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः।
ते सौभगꣳ वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥ १४७
सुगा वो देवा, विश्वे देवाः ॥ १४८
द्यौः पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृडता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यꣳ शर्म बहुलꣳ वियन्त ॥ १४९
ईडे अग्निꣳ स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो विचयत् कृतं नः।
रथैरिव प्रभरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुताꣳ स्तोममृश्याम् ॥ १५०
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १५१
अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥ १५२
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय ॥ १५३
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषाꣳ साकं नृम्णैः पौꣳस्येभिश्च भूवन् ॥ १५४

[११] तै. ब्रा. २,८,६। वा. ८,१८,५५,५८; ३३,५३। काण्व. ९,१८,४१.४३; ३२,५३। [आ नो विश्वा आस्क्रा०। ऋ. १,१८६,२। तै.ब्रा. २.८,६.३। शं नो देवा विश्वदेवा०। ऋ. ७,३५,११; अथर्व.१९,११.२। तै. ब्रा. २.८,६,३। ये सवितुः सत्यसवस्य०। ऋ.१०,३६,१३; तै.ब्रा. २,८,६,४। सुगा वो देवा०। काठ. ४,१२; कपि.३,१०। विश्वे देवाः०। ऋ. ५,५१,१३;६,९,५; ५१,१०,५२,१३—१४; ९,५,११। १०,२४,५; ५२,१; ६५,१४; तै. सं. २.४ १४,५; ४,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,६,५; शत. ब्रा. १,५,१,२६। द्यौः पितः (०ष्पि०) पृथिवि०। ऋ. ६,५१,५; तै. ब्रा. २,८,६,५। ईडे अग्निꣳ स्ववसं०। ऋ. ५ ६०,१; अथर्व. ७,५०,३; तै. ब्रा. २,७,१२,४। त्विषीमन्तो अध्वरस्येव०। ऋ. ६,६६,१०। अग्ने याहि दूत्यं मा०। ऋ. ७,९,५; तै. ब्रा. २,८,६,४। प्र चित्रमर्कं गृणते०। ऋ. ६,६६.९; तै. सं. ४,१,११,३; तै. ब्रा. २,८,५,५; नि. ३,२१; काठ. २०,१५। ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना०। ऋ. ६,६,६,२]

मै. ६१

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य ॥ १५५
सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञाः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भुवनस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १५६
असंबाधा या मध्यतो मानवेभ्यो यस्या उद्वतः प्रवतः समं महत्।
नानारूपा ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथताꣳ राध्यतां नः ॥ १५७
याꣳ रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु घृतं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ १५८
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेयं दधातु ॥ १५९
यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्याश्च भूम्यधराग्याश्च पश्चा।
शिवास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा निपप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥ १६०
विश्वंभरा वसुधानी पुरुक्षुर्हिरण्यवर्णा जगतः प्रतिष्ठा।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणं नो दधातु ॥ ११ ॥ १६१
आ वां मित्रावरुणा हव्यदातिं नमसा देवा अवसा ववृत्याम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकꣳ वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ १६२
ऋतस्य गोपा अधितिष्ठथो रथꣳ सत्यधर्माणा परमे व्योमन्।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः ॥ १६३
वाचꣳ सु मित्रावरुणा ऋतावरीं पर्जन्यश्चित्राꣳ वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसथ मरुतः सु मायया द्याꣳ वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ १६४

[आ वो यन्तूदवाहासो०। ऋ. ५,५८.३; तै. ब्रा. २,५,५,३। सत्यं बृहदृतमुग्रं०। अथर्व. १२,१,१। असंबाधा (०धं) या मध्यतो० (य०)। अथर्व. १२,१,२। याꣳ रक्षन्त्यस्वप्ना०। अथर्व. १२.१,७। यस्यां पूर्वे पूर्वजना०। अथर्व १२,१,५ (पूर्वार्धः); १२,१,४ (उत्तरार्धः)। यास्ते प्राचीः प्रदिशो०। अथर्व. १२,१,३१। विश्वंभरा वसुधानी०। अथर्व १२,१,६,]

[१२] तै. ब्रा. २,८,६; २,८,३—४। वा. १७,३९; २१,८; २०,५२; २९,३४। काण्व. १८,३९; २३,८; २२,१७; ३१,४६। [आ वां मित्रावरुणा०। ऋ. १,१५२,७; तै. ब्रा. २,८,६,५। ऋतस्य गोपा अधितिष्ठथो०। ऋ. ५,६३,१। वाचꣳ सु मित्रावरुणा०। ऋ. ५,६३,६; तै. ब्रा. २,४,५,४]

सम्राजा अस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।
वृष्टिꣳ वाꣳ राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी विचरन्ति तन्यवः ॥ १६५
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिडाभिः।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ १६६
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुपतिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥ १६७
आ ते महो, यो जातं एवा,—ऽभि गोत्राणि ॥ १६८
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः ॥ १६९
अयꣳ शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्रकृणुते युधा गाः।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृढं भयत एजदस्मात् ॥ १७०
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ १७१
इन्द्रस्तरस्वानभिमातिहोग्रो हिरण्यवर्ण इषिरः स्वर्षाः।
तस्य वयꣳ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ १७२
हिरण्यवर्णो अभयं कृणोत्वभिमातिहेन्द्रः पृतनासु जिष्णुः।
स नः शर्म त्रिवरूथꣳ वियꣳसद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १७३
इन्द्रꣳ स्तुहि वज्रिणꣳ सोमपृष्ठं पुरोडाशस्य जुषताꣳ हविर्नः।
हत्वाभिमातीः पृतनाः सहस्वानथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ १७४

[सम्राजा अस्य भुवनस्य०। ऋ. ५,६३,२। आ नो मित्रावरुणा०। ऋ. ७,६५,४; तै. ब्रा. २,८,६,७। सम्राजा उग्रा वृषभा०। ऋ. ५,६३,३। आ ते महो०। ऋ. ७,२५,१; तै. सं. १,७,१३,२। यो जात एव०। ऋ. २,१२,१; अथर्व. २०,३४,१; तै. सं. १,७,१३,२; तै. ब्रा. २,८,३,३; नि. ३,२१; १०,१०; काठ. ८,१६। अभि गोत्राणि०। ऋ. १०,१०३,७; सा. १८५५; अथर्व. १९,१३,७; तै. सं. ४,६,४,२। आभिः स्पृधो मिथतीः०। ऋ. ६,२५,२; तै. ब्रा २,८,३,२। अयꣳ शृण्वे अध०। ऋ. ४,१७,१०; तै. ब्रा. २,८,३,२। अनु स्वधामक्षरन्नापो०। ऋ. १,३३.११; तै. ब्रा. २,८,३,४। तस्य वयꣳ सुमतौ०। ऋ. ६.४७,१३; १०,१३१,७; अथर्व. ७,९२,१; २०,१२५.७; तै. सं. १,७,१३,५; तै. ब्रा. २,८,४.१; नि. ६,७। हिरण्यवर्णो अभयं०। तै. ब्रा. २,८,४,१। इन्द्रꣳ स्तुहि वज्रिणꣳ०। तै. ब्रा. २,८,४,१]

स्तुहि शूरꣳ वज्रिणमप्रतीकꣳ वृत्रहणं पुरुहूतमिन्द्रम्।
य एको ईच् शतपतिर्जनेषु तस्मा इन्द्राय हविषा जुहोत ॥ १७५
इन्द्रो देवानामधिपाः पुरोहितो विशां पतिरभवद् वाजिनीवान्।
अभिमातिहा तविषस्तुविष्मानस्मभ्यं चित्रꣳ वृषणꣳ रयिं दात् ॥ १७६
य इमे द्यावापृथिवी महित्वा बलेनाꣳहदभिमातिहेन्द्रः।
स नो हविः प्रतिगृभ्णातु रातये देवानां देवो निधिपा नो अव्यात् ॥ १२ ॥ १७७
इन्द्रो वृत्रमतरद् वृत्रतूर्येऽनाधृष्यो मघवा शूर इन्द्रः।
अन्वेनꣳ विशो अमदन्त पूर्वीरयꣳ राजा जगतश्चर्षणीनाम् ॥ १७८
स एव वीरः स उ वीर्यावान्त्स एकराजो जगतः परस्पाः।
यदा वृत्रमतरच्छूर इन्द्रो अथैकराजो अभवज्जनानाम् ॥ १७९
इन्द्रो यज्ञꣳ वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशस्य जुषताꣳ हविर्नः।
वृत्रं तीर्त्वा दानवꣳ वज्रबाहुर्दिशोऽदृꣳहद् दृꣳहिता दृꣳहणेन ॥ १८०
इमꣳ यज्ञꣳ वर्धयन् विश्ववेदाः पुरोडाशं प्रतिगृभ्णात्विन्द्रः।
यदा वृत्रमतरच्छूर इन्द्रो अथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १८१
अहन् वृत्रम् ॥ १८२
इन्द्रो देवाञ्छम्बरहत्य आवदिन्द्रो देवानामभवत् पुरोगाः।
इन्द्रो यज्ञे हविषा वावृधानो वृत्रतूर्नो अभयꣳ शर्म यꣳसत् ॥ १८३
इन्द्रस्य वृष्णो, जनिष्ठा उग्र, इन्द्र एषां नेता, भूरि चकर्थ ॥ १८४

[स्तुहि शूरꣳ वज्रिणम्०। तै. ब्रा. २,८,४,२। इन्द्रो देवानामधिपाः०। तै. ब्रा. २,८४,२। य इमे द्यावापृथिवी०। तै. ब्रा. २,८,४,३]

[१३] तै. ब्रा. २.८,३—४। वा. १७,४० - ४१; ३३,६४; २०,३६। काण्व. १८,४०—४१; ३२,६४; २२,११ [इन्द्रो वृत्रमतरद् वृत्रतूर्ये०। तै. ब्रा. २,८ ३.६। स एव वीरः स उ०। तै ब्रा. २,८,३,७। इन्द्रो यज्ञꣳ वर्धयन्०। तै. ब्रा. २,८,३,७। इमꣳ यज्ञꣳ वर्धयन्०। तै. ब्रा २,८.३,८। अहन् वृत्रम्०। ऋ. १,३२.५; तै. ब्रा. २,५,४,३; नि. ६,४। इन्द्रो देवाञ्छम्बरहत्ये०। तै. ब्रा. २,८.३.८। इन्द्रस्य वृष्णो०। ऋ. १०,१०३.९; सा. १८५७; अथर्व. १९,१३ १०; तै. सं. ४,६,४,३; काठ. १८,५; कपि. २८,५। जनिष्ठा उग्र०। ऋ. १०,७३,१; तै. ब्रा. २,८,३,४; काठ. ४,८; कपि. ३,६। इन्द्र एषां (आसां) नेता०। ऋ. १०,१०३,८; सा. १८५६; अथर्व. १९,१३.९; तै. सं. ४,६,४,३; काठ. १८,५; कपि. २८,५। भूरि चकर्थ०। ऋ. १.१६५,७; नि. ६,७; काठ. ९,१८ २३,११]

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवस इन्द्र देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १८५

यः सप्त सिन्धूꣳरदधात् पृथिव्याꣳ यः सप्त लोकानकृणोद्दिशश्च ।
इन्द्रो हविष्मान्त्सगणो मरुद्भिर्वृत्रहणो यज्ञमिहोपयासत् ॥ १८६

समिद्धा इन्द्रो. ऽनवस्ते ॥ १८७

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचꣳ यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १८८

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रꣳ स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमवजग्मुरापः ॥ १८९

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥ १९०

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सꣳ वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥ १९१

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृढमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनाꣳ साकꣳ सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ १९२

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपꣳ यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १९३

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १९४

[त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या० । ऋ. १,१६९,८ । समिद्धा इन्द्रो० । तै. ब्रा. ३,६,८, कठ. ३८,६ । अनवस्ते० । ऋ. ५,३१ ते. सा. ४३२, ४४० तै. सं. १,६,१२,६; तै. ब्रा. २,८,४,३; काठ. ८,१६ । इन्द्रस्य नु वीर्याणि० । ऋ. १,३२,१; सा. ६१०; अथर्व. २,५,५; तै. ब्रा. २,५,४,१; ८,४,३ । अहन्नहिं पर्वते० । ऋ. १,३२,२; अथर्व. २,५,६; तै. ब्रा. २,५,४,२; ८,४,३ । इन्द्रो यातोऽवसितस्य० । ऋ. १,३२,१५; तै. ब्रा. २,८,४,३ । अभि सिध्मो अजिगादस्य० । ऋ. १,३३,१३; तै. ब्रा. २,८,४,४; नि. ६,१६]

[१४] तै. ब्रा. २,८,१,६ । वा. १७,४२; ८,४. ३३,६८; काण्व. १८,४२;८,३; ३२,६८ । [त्वमपो वि दुरो विषूची:० । ऋ. ६,३०,५ । इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम्० । ऋ. ७,२७,३; अथर्व. १९,५,१; तै. ब्रा. २, ८५,८ । स्वादोरित्था विषूवतो० । ऋ. १,८४,१० सा. ४०९, १००५, अथर्व. २०,१०९,१]

युष्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्रः श्रुतस्य महतो महानि ॥ १९५

इदं नमो वृषभाय स्वराजे उक्थशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १९६

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु ॥ १९७

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमꣳ यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १९८

न दक्षिणा विचिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ १९९

धारयन्तः ॥ २००

तिस्रो भूमीर्धारयꣳस्त्रीन् रुत द्यूꣳस्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ २०१

यज्ञो देवानां प्रत्येतु सुम्नम् ॥ २०२

शुचिरपः सूयवसा अदब्धा उपक्षयन्ति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ २०३

आदित्यो देव उदगात् पुरस्ताद्विश्वा भूतानि प्रति मोदमानः ।
तस्य देवाः प्रसवꣳ यन्ति सर्वे यत्रास्य नाम परमं गुहा विदुः ॥ २०४

यस्य भान्ति केतवो यस्य रश्मयो यस्येमा विश्वा भुवनानि सर्वा ।
तस्यादित्यस्य प्रसवं मनामहे यस्तेजसा प्रथमजा विभाति ॥ २०५

[युष्मस्य ते वृषभस्य० । ऋ. ३,४६,१ । इदं नमो वृषभाय० । ऋ. १,५१,१५ । अस्माकमिन्द्रः समृतेषु० । ऋ. १०,१०३,११; सा. १८५९; अथर्व. १९,१३,११; तै. सं. ४,६,४,३; काठ. १८,५; कपि. २८,५ । आदित्यानामवसा० । ऋ. ७५१,१; तै. सं. २,१,११,६; तै. ब्रा. २,८,१,६ । न दक्षिणा विचिकिते० । ऋ. २,२७,११; तै. सं. २,१,११,५; तै. ब्रा. २,८,१,६ । धारयन्त:० । ऋ. २,२७,४; तै. सं. २,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ ११,१२ । तिस्रो भूमीर्धारयꣳस्त्रीन्० । ऋ. २,२७,८; तै. सं. २,१,११,५; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ. ११,१२ । यज्ञो देवानां प्रत्येतु (०ति०) । ऋ. १,१०७,१; तै. सं. १,४,२२,१, २,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,६; काठ. ४,१०; कपि. ३,८ । शुचिरपः सूयवसा० । ऋ. २,२७,१३; तै. सं. २,१,११,४; तै. ब्रा. २,८,१,६ । यस्य भान्ति केतवो० । तै. ब्रा. ३,१,१,१]

विभाति केतुरक्तः पुरस्तादादित्यो विश्वा भुवनानि सर्वा ।
सर्वं नु पन्थामन्वेति प्रजानन् पिता देवानामसुरो विपश्चित् ॥ २०६

व्रतेन यꣳ व्रतिनो वर्धयन्ति देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे ।
तस्यादित्यस्य प्रसवं मनामहे यस्तेजसा प्रथमजा विभाति ॥ २०७

आदित्यः शुक्र उदगात् पुरस्ताज्ज्योतिः कृण्वन् वि तमो बाधमानः ।
आशासमानः प्रदिशो नु सर्वा भद्रस्य कर्ता रोचमाना आगात् ॥ २०८

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुना अभूतामादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥ २०९

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सꣳशिशाधि ॥ २१०

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमꣳहः ॥ २११

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ २१२

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यꣳ युवानꣳ स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥ २१३

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ २१४

स इदस्तेव प्रतिधादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजꣳहाः ॥ २१५

हव्यवाडग्निरजरः पिता नः ॥ २१६

[यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो० । ऋ. १०,८८,११; नि. ७,२९]

[१५] [वयमु त्वा गृहपते० । ऋ. ६,१५,१९; तै. ब्रा. २,४,१२,१ । अग्ने स क्षेषदृतपा० । ऋ. ६,३,१ । तेजिष्ठा यस्यारतिः० । ऋ. ६,१२,३ । आ यदिषे नृपतिं० । ऋ. १,७१,८; तै. सं. १,३,१४,६ । स तेजीयसा मनसा० । ऋ. ३,१९,३; तै. सं. १,३,१४,६ । स इदस्तेव प्रतिधाद्० । ऋ. ६,३,५ । हव्यवाड(ळ)ग्निरजर:० । ऋ. ५,४,२; तै. सं. ३,४,११,१]

मथीद्यदीꣳ विष्टो मातरिश्वा होतारꣳ विश्वाप्सुꣳ विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु ३स्वर्णं चित्रꣳ वपुषे विभावम् ॥ २१७

अयꣳ स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिरृषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥ २१८

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥ २१९

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २२०

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिरृतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥ २२१

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तꣳ वीतात् ॥ २२२

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ २२३

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजꣳ समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ २२४

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलꣳ संतरुत्रꣳ सुवाचं भागꣳ यशसं कृधी नः ॥ २२५

कुर्मस्त आयुरजरꣳ यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥ २२६

[मथीद्यदीꣳ विष्टो० । ऋ. १,१४८,१ । अयꣳ स यस्य शर्मन्० । ऋ. १,६,१ । अदिद्युतत्स्वपाको० । ऋ. ६,११,४; अथर्व. ३,३,१ । स नो विभावा चक्षणिर्न० । ऋ. ६,४,२ । यो भानुभिर्विभावा विभाति० । ऋ. १०,६,२ । यदग्न एषा समिति० । ऋ. १०,११,८; अथर्व. १८,१,२६ । एता ते अग्न उचथानि० । ऋ. १,७३,१० । वि पृक्षो अग्ने मघवानो० । ऋ. १,७३,५ । आ नो गहि सख्येभि:० । ऋ. ३,१,१९ । कुर्मस्त आयुरजर०० । ऋ. १०,५१,१७]

हविषीव यजमानो ना आभाग् देवेभ्यः शिक्षुत मानुषेभ्यः ।
त्वं देवानामासि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ १५ ॥ २२७

अग्ने दा, दा नो अग्ने, ऽग्निर्दुदात्यं,—न्नपते अन्नस्य नो देह,—ग्निना रयिमश्नवत्,
सꣳ समिद्युवसे वृषन्, यास्ते ॥ २२८

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥ २२९
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥ २३०
अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तꣳ हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ २३१
इमꣳ यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः सꣳविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥ २३२
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याꣳश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥ २३३
परेयिवाꣳसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतꣳ संगमनं जनानाꣳ यमꣳ राजानꣳ हविषा दुवस्य ॥ २३४

[१६] तै. सं. २,६,१२। तै. ब्रा. २,८,५। वा. ११,८३; १५,३०; १३,११; १८.४६। काण्व. १२,८४; १६,५१; १४,२२; २०.१६। [अग्ने दा०। ऋ.३,२४,५। तै. सं. २,२,१२,६; काठ. ६,१०। दा नो अग्ने०। मै. ४,१२,१; ऋ. ७,१,५; २,२,७; तै. सं. २,२,१२,६। अग्निर्ददाति०। ऋ. ५,२५,६; काठ. १,१५। अन्नपते अन्नस्य०। तै. सं. ४,२,३,१; तै. ब्रा. ३,११,४; काठ. १६.१२; १६,१०, कपि. २५,१; ३२,२। अग्निना रयिमश्नवत्०। ऋ. १,१,३; तै. सं. ३,१,११.१। ४,३,१३,५। सꣳ समिद्युवसे वृषन्०। ऋ.१०,१९१,१; अथर्व.६.६३,४; तै. सं. १,६,११.४। ४,४,४,४; काठ. २,१५। यास्ते०। मै. २,७,१६; ऋ. १,४३,९। २,३२,५; ६,५८,३। तै. सं. ३,३,११,५। ४,२,९,४। ५,७,७,३। तै. ब्रा. २,५,५,५। काठ. ९,६२,७; सा. ९७९; अथर्व. ७,४८.२, यमो नो गातुं प्रथमो०। ऋ. १०,१४,२। अथर्व. १८,१,५०। प्रेहि प्रेहि पथिभि:०। ऋ. १६,१६। ४०,१३। अङ्गिरोभिरागहि०। ऋ.१०,१४,५; अथर्व. १८,१,५९; तै. सं. २,६,१२,६। १०,१४,७; अथर्व. १८,१,५४। मातली कव्यैर्यमो०। ऋ. इमꣳ यम प्रस्तरमा०। ऋ. १०,१४,४; अथर्व. १८,१,६०; तै. सं. २,६,१२,६। परेयिवाꣳसं प्रवतो०। ऋ. १० १०,१४,३। अथर्व. १८,१,४७; तै. सं. २,६,१२,५; तै. ब्रा. २,६,१६,२। १४,१। अथर्व. १८,१,४९; तै. आ. ६,१,१; नि. १०,२०]

मै० ६१

यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यꣳ सूर्यस्य कामेन कृतः श्रव इच्छमानः ॥ २३५
शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यत् ॥ २३६
पूषेमा आशा अनुवेद सर्वाः सो अस्माꣳ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २३७
प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ २३८
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इडस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसꣳ स्वञ्चम् ॥ २३९
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ १६ ॥ २४०
यद्देवा देवहेडनꣳ यद्वाचानृतमोदिम । आदित्यास्तस्मान्मुञ्चतर्तस्य त्वेनमाहुतः ॥ २४१
देवा जीवनकाम्या यद्वाचानृतमोदिम । तस्मान्न इह मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ २४२
ऋतेन द्यावापृथिवी ऋतेन त्वꣳ सरस्वति ।
कृतान्नः पाह्यꣳहसो यत् किंचानृतमोदिम ॥ २४३
इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ सोमो धाता बृहस्पतिः ।
ते नो मुञ्चन्त्वेनसो यत् किंचानृतमोदिम ॥ २४४
संजातशꣳसादुत जामिशꣳसाज्ज्यायसः शꣳसादुत वा कनीयसः ।
अनाधृष्टं देवकृतꣳ यदेनस्तस्मात्त्वमस्मान् जातवेदो मुमुग्धि ॥ २४५

[यास्ते पूषन्नावो अन्तः०। ऋ. ६,५८,३। तै. ब्रा. २,५,५,५; ८,५,३। शुक्रं ते अन्यद्यजतं०। ऋ. ६, ५८,१; सा. ७५; तै. सं. ४,१,११,२; तै. ब्रा. २,८,५,३। तै. आ. १,२,४; १०,१; ४,५,६। नि. १२,१७; काठ. ४,१५; २०,१५। पूषेमा आशा अनुवेद०। ऋ. १०,१७,५; अथर्व. ७,९,२; तै. ब्रा. २,८,५,३; ४,१,५। तै. आ. ६,१,१। प्रपथे पथामजनिष्ट०। ऋ. १०,१७,६; अथर्व. ७,९,१; तै. ब्रा. २,८,५,३। पूषा सुबन्धुर्दिव आ०। ऋ. ६,५८,४; तै. ब्रा. २,८,५,४। अजाश्वः पशुपा०। ऋ. ६,५८,२; तै. ब्रा. २,८,५,४]
[१७] तै. आ. २,३-४। वा. २०,१४-१६; २१,१-४; १२,११; १८४९; १,२४। ८,१४,१६। काण्व. २२,१-३। २३,१-४। १३,१३; २०,१९; २,४४; ९,१६। [देवा जीवनकाम्या०। तै. ब्रा. ३,७,१२,१; तै. आ. २,३,१। ऋतेन द्यावापृथिवी०। तै. ब्रा. ३,४,१२,२; तै. आ. २,३,१। सजातशꣳसादुत०। तै. ब्रा. ३,७,१२,२: तै. आ. २,३]

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्याꣳ यन्मातरं पितरꣳ वा जिहिꣳसिम ।
अग्निर्नस्तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरितानि यानि कानि च चकृम ॥ २४६
येन त्रितो अर्णवान्निर्बभूव येन सूर्यं तमसो निरमोचि ।
येनेन्द्रो विश्वा अजहादरातीस्तेनाहं ज्योतिषा ज्योतिरानशान अक्षि ॥ २४७
यद्धेन्यमृणमहं बभूव धिप्स्यꣳ वा संचकर जनेभ्यः ।
अग्निर्नस्तस्मादिन्द्रश्च सꣳविदानौ प्रमुञ्चताम् ॥ २४८
यत् कुसीदमप्रतीतं मयेह येन यमस्य निधिना चरावः ।
एतत्तदग्ने अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रति हस्तानृणानि ॥ २४९
यद्धस्ताभ्यां चकर किल्बिषाण्यक्षाणाꣳ वग्नुमुपजिघ्नमानः ।
उग्रं पश्याद राष्ट्रभृच्च तान्यप्सरसामनुदत्तानृणानि ॥ २५०
उग्रं पश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत् ।
नेन्न ऋणानृणवानीप्समानो यमस्य लोके निधिरजराय ॥ २५१
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥ २५२
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ २५३
उदुत्तमꣳ वरुण पाशमस्मदवाधमꣳ वि मध्यमꣳ श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ २५४

[यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत०। तै. सं. १,८,५,३; तै. ब्रा. ३,७,१२,४; तै. आ. २,६,२। काठ. ९,६; कपि.८,१०। येन त्रितो अर्णवान्निः०। तै. आ. २,३। यत् कुसीदमप्रतीतं०। तै. सं. ३,३,८,१। तै. आ. २,३। यद्धस्ताभ्यां चकर०। तै. ब्रा. ३,७,१२,३; तै. आ. २,४। उग्रं पश्येद्राष्ट्रभृत्०। तै. आ. २,४। इमं मे वरुण श्रुधी०। ऋ. १,२५,१९; सा. १५८५। तै. सं. ६,१,११,६। तै. ब्रा. ३,७,११,३; १२,३; तै. आ. २,४,४। काठ. ४,१६; ११,१२। तत्त्वा यामि ब्रह्मणा०। ऋ. १,२४,११; तै. सं. २,१,११,६; तै. ब्रा. २,८,१,६। ३,७, ११,३; १२,६; तै. आ, २,४; काठ. ४,१६। ११,१३। उदुत्तमꣳ वरुण पाशम्०। ऋ. १,२४,१५। सा. ५८९, अथर्व. ७,८३,३। १८,४,६९; तै. सं. १,५,११,३; २,५,१२,१; ४,२,१,३; तै. ब्रा. २,७,१६,४। ८,१,६। नि. २,१३। काठ. ३,८; १६,८; कपि. २,१५; ३२,१]

अव ते हेडो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनाꣳसि शिश्रथः कृतानि ॥ २५५
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ २५६
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अवयक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि ॥ २५७
संकुसुको विकुसुको निर्ऋतो यश्च निस्वनः। तेऽस्मद्यक्ष्ममनागसो दूराद्दूरमचीचतम्॥ २५८
निर्यक्ष्ममचीचते कृत्या निर्ऋतिं चकार ।
तेन योऽस्मत् समृच्छाति तमस्मै प्रसुवामसि ॥ २५९
दुःशꣳसानुशꣳसाभ्यां घणेनानुघणेन च ।
तेन योऽस्मत् समृच्छाति तमस्मै प्रसुवामसि ॥ २६०
सꣳ वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१७॥ २६१
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनाꣳ शुचिꣳ हिनोम्यध्वरꣳ शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ २६२
या वः शर्म शशमानाय सन्ति ॥ २६३
अꣳसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ २६४

[अव ते हेडो (०ळो) वरुण०। ऋ. १,२४,१४; तै. सं. १,५,११,३; २,५,१२,१; तै. ब्रा. २,७,१६,४; ८,१,३; तै. आ. २,४,४। काठ. ४०,११। त्वं नो अग्ने वरुणस्य०। ऋ. ४,१,४; तै. सं. २,५,१२,३; तै. ब्रा. ३,७,११,३; १२,६; तै. आ. २,४,४; ४,२०,३; काठ. ३४,१९। स त्वं नो अग्नेऽवमो०। ऋ. ४,१,५; तै.सं. २,५,१२,३; काठ. ३४,१९; कपि. ४८,१। संकुसुको विकुसुको०। अथर्व. १२,२,१४; तै. आ, २,४। निर्यक्ष्ममचीचते०। तै. आ. २,४। सꣳ वर्चसा पयसा०। अथर्व. ६,५३,३; तै. सं. १,४,४४,१; तै. आ. २,४,८; काठ. ४,१२; कपि. ३,१०]
[१८] तै. ब्रा. २,८,५; ७। [शुची वो हव्या मरुतः०। ऋ. ७,५६,१२; तै. ब्रा. २,८,५,५। या वः शर्म०। ऋ. १,८५,१२; तै. सं. १,५,११,५; २,१,११,१; ३,१४,४; तै. ब्रा. २,८,५,६; काठ. ८,१७; ११,१३। अꣳसेष्वा मरुतः०। ऋ. ७,५६,१३; तै. ब्रा. २,८,५,५]

ऋष्वयो वो मरुतो अ२सुबोधि ॥ २६५

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आनमन्ति ।

इमे शं२सं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ २६६

अरा इवेदचरमा अहेव प्र प्रजायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः संमिमिक्षुः ॥ २६७

अग्नीषोमा इमं२, युवमेतानि ॥ २६८

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं२ वचः सपर्यात् ।

तस्मै धत्त२ सुवीर्यं गवां पोषं२ स्वश्व्यम् ॥ २६९

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।

अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरु२ यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ २७०

अग्नीषोमा य आहुतिं२ यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं२ विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ २७१

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं२ हर्यतं२ वृषणा जुषेथाम् ।

सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्त२ यजमानाय शं२योः ॥ २७२

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां२ राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।

स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणायाह्यर्वाङ् ॥ २७३

विवेष यन्मा धिषणा जजान ॥ २७४

तं२ सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौं२स्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।

समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आविशन्ति ॥ २७५

सत्यमित्तन्न त्वावाँ२ अन्योऽस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।

अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ २७६

[ऋष्वयो वो मरुतो० । ऋ. ५,५७,६ । इमे तुरं मरुतो० । ऋ. ७,५६,१९; तै. ब्रा. २,८,५,६ । अरा इवे-दचरमा० । ऋ. ५,५८,५; तै. ब्रा. २,८,५,७ । तमग्नीषोमा यो अद्य० । ऋ. १,९३,२; तै. ब्रा. २,८,७,९ । आन्यं दिवो मातरिश्वा० । ऋ. १,९३,६; तै. सं. २,३,१४,२; कठ. ४,१६ । अग्नीषोमा य आहुतिं० । ऋ. १,९३,३; तै. ब्रा. २,८,७,१० । अग्नीषोमा हविषः० । ऋ. १,९३,७; तै. सं. २,३,१४,२; तै. ब्रा. २,८,७,१० । आ चर्षणिप्रा वृषभो० । ऋ. १,१७७,१; तै. ब्रा. २,४,३,११; काठ. ३८,७ । विवेष यन्मा धिषणा० । ऋ. ३,३२,१४; तै. सं. १,६,१२,३; २,५,१२,५; तै. ब्रा. २,६,९,१; काठ. ८,१६; ३८,७ । तं२ सध्रीचीरूतयो० । ऋ. ६,३६,३ । तै. ब्रा. २,४,५,७; ६,९,१ । सत्यमित्तन्न त्वावां० (०वाँ०) । ऋ. ६,३०,४; तै. ब्रा. २,६,९,१]

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून् ॥ २७७

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यम् ।

रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥ २७८

[३१४४]

॥ इति खिलकाण्डे चतुर्दशः प्रपाठकः ॥१४॥

॥ इति खिलकाण्डं समाप्तम् ॥

इति मैत्रायणी-संहिता समाप्ता ।

[प्र ससाहिषे पुरुहूत० । ऋ. १०,१८०,१; तै. सं. ३,४,११,४; तै. ब्रा. २,६,९,१; ३,५,७,४; काठ. ३८,७, १०,११ । स शेवृधमधि धा० । ऋ. १,५४,११; तै. ब्रा. २,६,९,१; काठ. ३८,७]

कपिष्ठलकठ संहिता

अथ कपिष्ठलकठसंहितायां

प्रथममष्टकम्

इषे त्वोर्जे त्वा। वायव स्थोपायव स्थ। देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। आप्यायध्वमघ्न्या देवभागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः। मा व स्तेन ईशत माघशंसः। परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु। ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीः। यजमानस्य पशून्पाहि। वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारम् ॥१॥

घोपदसि। निष्टप्तं रक्षः। प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छ मनुना कृता स्वधया वितष्टा। उर्वन्तरिक्षं वीहि। इन्द्रस्य परिपूतमसि। माघो मोपरि परुस्त ऋध्यासम्। आच्छेत्ता ते मा रिषत्। देव बर्हिः शतवल्शं विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम। अदित्या रास्नासीन्द्राण्याः संनहनम्। पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नातु। स ते मा स्थात्। इन्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छे बृहस्पतेस्त्वा मूर्ध्नाहरामि। देवङ्गममसि। तदाहरन्ति कवयः पुरस्ताद्देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासदे ॥२॥

मातरिश्वनो घर्मोऽसि। द्यौरसि पृथिव्यसि। विश्वधाया परेण धाम्ना। अहुतासि मा ह्वाः। सा विश्वायुः सा विश्वव्यचाः सा विश्वधायाः। हुत स्तोको हुतो द्रप्सः। अग्नये बृहते नाकाय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याम्॥

संपृच्यध्वमृतावरीरूर्मिला मधुमत्तमाः।
मन्द्रा धनस्य सातये॥

इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनातनच्मि। अदस्तमसि विष्णवे। विष्णो हव्यं रक्षस्व ॥३॥

कर्मणे वाम्। वानस्पत्यमसि। निष्टप्तं रक्षः। उर्वन्तरिक्षं वीहि। धूरसि धूर्व धूर्वन्तं यो ऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामस्तं च धूर्व। देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्। विष्णोः क्रमो ऽसि। अहुतमसि हविर्धानम्। मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्षे। उरु त्वा वाताय। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं निर्वपामि। यच्छन्तु त्वा पञ्च। रक्षायै त्वा नारात्यै। इदं देवानामिदं नः सह। स्वरभिव्यख्यम्। दृंहन्तां दुर्याः स्वाहा पृथिव्याम्। उर्वन्तरिक्षं प्रेहि। अग्ने हव्यं रक्षस्व ॥४॥

विष्णोर्मनसा पूते स्थः। देवो वः सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। शुन्धन्तां पात्राणि देवयज्यायै। यद्वो ऽशुद्धः पराजघान तद्व एतेन शुन्धन्ताम्। अवधूतं रक्षो ऽवधूतारातिः। अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु। अधिषवणमसि वानस्पत्यं प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु। अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनम्। देववीतये त्वा गृह्णामि। बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः। स देवेभ्यो हव्यं शमीष्व। सुशमि शमीष्व। अद्रिरसि श्लोककृत्। अपहतं रक्षो ऽपहतारातिः। वयं संघातंसंघातं जयेम। वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु। परापूतं रक्षः परापूतारातिः। निरस्तो अघशंसः। वायुर्व इप ऊर्जे विविनक्तु ॥५॥

अवधूतं रक्षो ऽवधूतारातिः। अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वा पृथिवी वेत्तु। धिषणासि पार्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु। पृथिवीं दृंह। धिषणासि पार्वतियी प्रति त्वा पार्वती वेत्तु। दिवं दृंह। दिवः स्कम्भन्यसि। धान्यमसि। धिनुहि देवान्।

प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिम्। आयुषे त्वा। देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णातु। अदब्धेन वश्चक्षुषावपश्यामि ॥६॥

निर्दग्धं रक्षः। अपाग्ने अग्निमामादं जहि निः क्रव्याद सेध। आ देवयजन वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृंह। आयुर्देहि प्राणं देहि। सजातानस्मै यजमानाय परिवह। धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह। चक्षुर्देहि श्रोत्रं देहि। सजातानस्मै यजमानाय परिवह। धर्त्रमसि दिवं दृंह। ओजो देहि बलं देहि। सजातानस्मै यजमानाय परिवह। धर्मासि दिशो दृंह। रयिं देहि पोषं देहि। सजातानस्मै यजमानाय परिवह। यन्त्रमस्याशा दृंह। रूपं देहि वर्णं देहि। सजातानस्मै यजमानाय परिवह। चित स्थ परिचितो यजमानस्य सजाताः। भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥७॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं संवपामि। समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन मधुना मधुमतीः पृच्यन्ताम्। यद्वो रेवती रेवत्यं यद्वो हविष्या हविष्यं यद्वो जगतीर्जगत्यं तेनास्मै यज्ञपतय आशासाना मधुना मधुमतीः संपृच्यध्वम्। जनयत्यै त्वा। मखस्य शिरोऽसि। घर्मोऽसि विश्वायुः। उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्। प्रत्युष्टं रक्षः। देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे ऽधि नाके। अग्निस्ते तन्वं मा हिंसीत्। अग्ने ब्रह्म गृह्णीष्व। एकताय स्वाहा। द्विताय स्वाहा। त्रिताय स्वाहा ॥८॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः। वायुरसि तिग्मतेजाः। पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषम्। व्रजं गच्छ गोष्ठानम्। वर्षतु ते द्यौः। बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्यो अस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन्। व्रजं गच्छ गोष्ठानम्। वर्षतु ते द्यौः। बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्यो अस्मान्दिप्सति यं वयं दिप्सामस्तमतो मा मौक्। अररुर्द्यां मा पप्तत्। व्रजं गच्छ गोष्ठानम्। वर्षतु ते द्यौः। बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्यो अस्मान्दिप्सति यं वयं दिप्सामस्तमतो मा मौक्। अपाररुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहि॥

इमां नरः कृणुत वेदिमेत देवेभ्यो जुष्टामदित्या उपस्थे।
इमां देवा अजुषन्त विश्वे रायस्पोषा यजमानं विशन्तु॥

वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण च्छन्दसा। रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसा। आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन च्छन्दसा।

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीरदानुम्।
तामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तां धीरासो अनुदृश्यायजन्त ॥९॥

पृश्न्याः पयो ऽसि। तस्य ते ऽक्षीयमाणस्य पिन्वमानस्य पिन्वमानं निर्वपामि। इषे त्वा। अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि। ऊर्जे त्वा। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यः। धाम्नेधाम्ने त्वा यजुषेयजुषे। हविरसि वैश्वानरमुन्नीतशुष्मं सत्यौजाः। सहो नामासि सहस्वारातिं सहस्व पृतनायतः। सहस्रवीर्यमसि तन्मा जिन्व। तेजो ऽसि शुक्रमसि ज्योतिरसि। धामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनम्। देववीतये त्वा गृह्णामि। निष्टप्तं रक्षः। अनिशिता स्थ सपत्नक्षयणीः। प्राणं वाचं मा निर्मृक्षम्। वाजिनं त्वा वाजिन्वाजजित्यायै संमार्ज्मि। चक्षुः श्रोत्रं मा निर्मृक्षम्। वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजजित्यायै संमार्ज्मि। प्रजां योनिं मा निर्मृक्षम्। वाजिनीं त्वा वाजिनि वाजजित्यायै संमार्ज्मि ॥१०॥

देवीरापो अग्रेग्वः प्रेमं यज्ञं नयत। प्र यज्ञपतिं तिरत। युष्मानिन्द्रो ऽवृणीत वृत्रतूर्ये। यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये। प्रोक्षिता स्थ। कृष्णो ऽस्याखरेष्ठो ऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। पितॄणां भागधेयी स्थ। ऊर्जा पृथिवीं गच्छत। विष्णो स्तुपो ऽसि। ऊर्णम्रदं प्रथस्व स्वासस्थं देवेभ्यः। गन्धर्वो ऽसि विश्वावसुर्विश्वस्माद्‌भयतो यजमानस्य परिधिरिड ईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिण इड ईडितः। मित्रावरुणौ

त्वा परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा॥

वीतिहोत्रं त्वाग्ने द्युमन्तः समिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे।
सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्याः।
वर्षिष्ठे ऽधि नाके।

सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणी। वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदनमसि। जुहेहि घृताची द्यौर्जन्मनादितिरच्छि-
न्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद। उपभृदेहि घृताच्यन्तरिक्षं जन्मनादितिरच्छिन्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये
प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद। ध्रुव एहि घृताची पृथिवी जन्मनादितिरच्छिन्नपत्रा प्रिया देवानां प्रियेण धाम्ना प्रिये सदसि सीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ। ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥११॥
भुवनमसि विप्रथस्व। अग्निर्यष्टेदं नमः। जुह्वेह्यग्निस्त्वाह्वयतु देवयज्यायै। उपभृदेहि देवस्त्वा सविताह्वयतु देवयज्यायै। अङ्घ्रिणा विष्णू मा वामवक्रमिषम्। पाहि माग्ने दुश्चरितादा मा सुचरिते भज। विजिहाथां मा मा संताप्तम्। लोकं मे लोककृतौ कृणुतम्। विष्णो स्थाम्नः। इत इन्द्रो वीर्यमकृणोत्॥

ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगहुतो यज्ञो यज्ञपतेः।
इन्द्रवान्बृहद्भाः स्वाहा॥

सं ज्योतिषा ज्योतिः। वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयोर्जयामि। वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयामुं प्रतिनुदामि।

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा। अक्तं रिहाणा व्यन्तु वयः॥

मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ।
ततो नो वृष्टिमेरय॥
अहीनः प्राणः। चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहि॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिरिध्यमानः।
तं त एतमनु जोषं भराम्येष त्वन्नेदपचेतयातै॥

यजमानं प्रथत॥

संस्रावभागास्तविषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः।
यज्ञस्य गोपा उत रक्षितारः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्॥

अग्ने ऽदब्धायो ऽशीततनो पाहि दिवः पाहि प्रसित्याः पाहि दुरिष्ट्याः पाहि दुरद्मन्याः। अविषं नः पितुं कृधि। सुधान्योनीन्सुषदां पृथिवीम्॥

घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम्।
वेदो वाजं ददातु नः॥

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देवयज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः ॥१२॥
आर्द्रदानव स्थ जीवदानव स्थ। आप उन्दन्तु जीवसे दीर्घायुत्वाय वर्चसे। ओषधे त्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः। देवायुरिमान्प्रवपेत्। स्वस्त्युत्तरानशीय॥

आपो अस्मान्मातरः सूदयन्तु घृतेन मा घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्तु देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि॥

शं न आपो धन्वन्याः शं नः सन्त्वनूप्याः
शं नः समुद्रियाः सन्तु शमु नः सन्तु कूप्याः॥

सोमस्य दात्रमसि तनूरसि तन्वं मे पाहि। महीनां पयो ऽस्यपामोषधीनां रस। वर्चोधा असि वर्चो मे धेहि। वृत्रस्यासि कनीनिकान्तरहं त्वया द्वेषमन्तररातीर्दधे। चक्षुर्धा असि चक्षुर्मे धेहि। चित्पतिस्त्वा पुनातु। वाक्पतिस्त्वा पुनातु॥

देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण।
सूर्यस्य रश्मिभिः॥
तस्य ते पवित्रपते पवित्रेण यस्मै कं पुने तच्छकेयम् ॥१३॥

आकूत्यै प्रयुजे ऽग्नये स्वाहा। मेधायै मनसे ऽग्नये स्वाहा। दीक्षायै तपसे ऽग्नये स्वाहा। सरस्वत्यै पूष्णे ऽग्नये स्वाहा॥ आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी उरो अन्तरिक्ष। बृहस्पतये हविषा विधेम ॥स्वाहा॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वुरीत पुष्यतु स्वाहा॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी आप ओषधय उरो अन्तरिक्षानु मे दीक्षां दीक्षापतयो मन्यध्वमनु तपस्तपस्पतयो ऽग्निश्च। देव सूर्येषमूर्जं दधातन। देव सवितस्त्वं दीक्षाणां दीक्षापतिरसि। इत्थं मा सन्तं पाहि। आ मोदृचः पाहि ॥१४॥
ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे। आ मोदृचः पातम्।
शर्मासि शर्म यजमानस्य। नमस्ते अस्तु। मा मा हिंसीः॥
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेयम्॥
इमां सु नावमारुहमरिष्टां पारयिष्णुम्।
शतारित्रां स्वस्तये॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि। मा मा हिंसीः। सोमस्य नीविरसि मा मा हिंसीः। इन्द्रस्य योनिरसि मा मा हिंसीः। कृष्यै त्वा सुसस्यायै। उत्कृधि। विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्य। नमस्ते अस्तु। मा मा हिंसीः। नक्षत्राणां मातिकाशात्पाहि। सूपस्थावा वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्योदृचः ॥१५॥

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहा दिवः स्वाहा पृथिव्याः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा वातात्प्रतिगृह्णामि। व्रतं कृणुतेदं शकेयम्।

दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये।
वर्चोधां विश्वधायसं सुतीर्था नो असद्वशे॥

ये देवा मनुजाता मनोयुजः सुदक्षा दक्षपितरस्ते नः पान्तु। तेभ्यः स्वाहा॥

अग्ने त्वं सु जागृहि वयं सु मन्दिषामहे।
गोपाय नो अप्रयुच्छन्प्रबुधे नः पुनस्कृधि॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥

पूषा सनीनां सोमो राधसाम्। रास्वेयत्सोम। आ भूयो भर। देवः सविता वसोर्वसुदावा। मा पृणन्पूर्त्या विराधिष्ट। माहमायुषा वर्चसा विराधिषि। देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्यं इन्द्रियावांस्तं वो मा क्रमिषम्। सक्षेहि या ते यज्ञिया तनूस्तयारोह॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आरोह ततो नो वर्धया रयिम्॥
एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवा अजुषन्त विश्वे।

ऋक्सामाभ्यां संतरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥१६॥

इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्चस्तया संभव भ्राजं गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे। तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा। शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवं हविरसि। चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि यज्ञियासि क्षत्रियास्यदितिरस्युभयतःशीर्ष्णी। सा नः सुप्राची सुप्रतीची भव। मित्रस्त्वा पदि बध्नातु। पूषाध्वनस्पातु। इन्द्रायाध्यक्षाय। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहि। इन्द्राय सोमम्। रुद्रस्त्वावर्तयतु। स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥१७॥

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि चन्द्रासि शुक्रासि। बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु। रुद्रो वसुभिराचिकेतु। पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजन इडायास्पदे घृतवति स्वाहा। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। अस्मे रमस्व। अस्मे ते रायः। मे रायः। माहं रायस्पोषेण वियोषम्। सं देवि देव्योर्वश्याख्यत। सुरेता रेतो दधानास्त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम ॥१८॥

अस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रहः॥
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥

प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु। सोम ते क्रीणाम्यूर्जस्वन्तं पयस्वन्तं वीर्यवन्तं बह्वर्षम्। शुक्रं ते शुक्रेण चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणामि। शग्म यते गोः। अस्मे ते चन्द्राणि। तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः। सहस्रपोषं पुष्यन्ती। परमेण पशुना क्रीयसे। अस्मे ते बन्धुः। मित्रो न एहि सुमित्रधाः। इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तं स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन्॥
उदायुषा स्वायुषोद्रसेनौषधीनाम्।
उत्पर्जन्यस्य शुष्मेणोदस्थाममृतां अनु।
उर्वन्तरिक्षं वीहि।
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु।
अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद।
अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि।
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्न्यासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ।
सूर्यस्य चक्षुरारुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकाम्।
यदेतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥१९॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां प्रथमोऽध्यायः

उस्रावेतं धूर्षाहावनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। वारुणमसि वरुणस्य स्कम्भनमसि।
प्रच्यवस्व भुवनस्पते विश्वान्यभि धामानि।

मा त्वा परिपरिणो विदन्मा परिपन्थिनो मा त्वा वृका अघायवो विदन्॥
श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य नो गृहे संस्कृतम्॥
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शसत॥

वारुणमसि वरुणस्त्वोत्तभ्नातु। वरुणस्य स्कम्भसर्जन्यसि। प्रमुक्तो वरुणस्य पाशः। वरुणोऽसि धृतव्रतो ऽच्छिन्नपत्रः प्रजा उपावरोह। वरुणस्यर्तसदनमसि। अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद। वारुणमसि वरुणाय त्वा॥१॥

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वा। अतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा। अग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा। श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि। तनूनप्त्रे शक्मने शाक्वराय। शक्मन्नोजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम्। अञ्जसा सत्यमुपगेषम्। सुविते मा धाः। अग्ने व्रतपा अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या मम तनूरेषा सा त्वयि या तव तनूरियं सा मयि। सह नौ व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या ते अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि। तस्यै ते स्वाहा। अंशुरंशुस्ते देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधन। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्यायय सखीन्सन्या मेधया। स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा राय एष्टा वामानि प्रेषे भगायर्तमृतवादिभ्यः। नमो दिवे नमः पृथिव्यै॥२॥

या ते अग्नेऽयाशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचोऽपावधीत्त्वेषं वचोऽपावधीत्स्वाहा। या ते अग्ने रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचोऽपावधीत्त्वेषं वचो ऽपावधीत्स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। नार्यसीदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। तप्तायन्यसि वित्तायन्यस्यवतान्मा नाथितमवतान्मा व्यथितम्। अग्ने अङ्गिरो यो ऽस्यां पृथिव्यामस्यायुना नाम्नेहि। यत्ते ऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे। अग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामस्यायुना नाम्नेहि। यत्तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे। विदेदग्निर्नभो नाम। सिंह्यसि महिष्यसि देवेभ्यः प्रथस्व देवेभ्यः कल्पस्व देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्व॥
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षतु त्मना प्रजां पिपर्ति बहुधा विराजति॥

पितृणां भागधेयी स्थ। इन्द्रघोषास्त्वा पुरस्ताद्वसवः पान्तु। मनोजवसस्त्वा दक्षिणतः पितरः पान्तु। प्रचेतास्त्वा पश्चाद्रुद्रैः पातु। विश्वकर्मा त्वोत्तरादादित्यैः पातु। सिंह्यसि सपत्नसाही स्वाहा। सिंह्यसि रायस्पोषवनिः स्वाहा। सिंह्यसि सुप्रजावनिः स्वाहा। सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा। सिंह्यस्यावह देवान्देवायते यजमानाय स्वाहा। भूतेभ्यस्त्वा। विश्वायुरसि पृथिवीं स्कभान। अच्युतक्षिदस्यन्तरिक्षं स्कभान। ध्रुवक्षिदसि दिवं स्कभान। अग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसि। यज्ञः प्रत्यष्ठात् ॥३॥
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषेथाम्॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे॥
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्ये।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः॥

वैष्णवमसि विष्णुस्त्वोत्तभ्नातु॥
दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या महो वा विष्णवुरोरन्तरिक्षात्।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्।
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥

विष्णोः पृष्ठमसि। विष्णो रराटमसि। विष्णोः श्नप्त्रे स्थः। विष्णोः स्यूरसि। विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा।
प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥४॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। इदमहं यो नः समानो योऽसमानोऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्ग्रावा। बृहतीमिन्द्राय वाचं वद रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम्। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः समानो योऽसमानो निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः सबन्धुर्योऽसबन्धुर्निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः सनाभिर्योऽसनाभिर्निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः स्वो योऽरणो निचखान। सम्राडसि सपत्नहा स्वराडस्यभिमातिहा सत्राराडसि रक्षोहा विश्वाराडस्यरातीयतो हन्ता। गायत्रेण च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मः। त्रैष्टुभेन जागतेनानुष्टुभेन पाङ्क्तेन च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मः। किमत्र भद्रं तन्नौ सह। निरस्तो वलगोऽवबाढो दुरस्तु। रक्षोघ्नो वलगघ्नः प्रोक्षामि वैष्णवान्। रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवसिञ्चामि वैष्णवान्। रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवस्तृणामि वैष्णवान्। रक्षोहणी वलगहनी प्रोक्षामि वैष्णवी। रक्षोहणी वलगहनावुपदधामि वैष्णवी। रक्षोहणी वलगहनी पर्यूहामि वैष्णवी। रक्षोहा त्वा वलगहा स्तृणामि वैष्णवम् ॥५॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः। यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातिम्। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामि। उद् दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्याम्। नितानस्त्वा मारुतो निहन्तु मित्रावरुणयोर्ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि देववनि सजातवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह प्रजां दृंह रायस्पोषं दृंह। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणाथाम्। विश्वजनस्य छायासि। इन्द्रस्य स्यूरसि। इन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसीन्द्राय त्वा ॥६॥

विभूरसि प्रवाहणः। वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेताः। तुथोऽसि विश्ववेदाः। उशिगसि कविः। अङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्युरसि दुवस्वान्। शुन्ध्युरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः। परिषद्योऽस्यासन्द्यः। नभोऽसि प्रतक्वा। असंमृष्टोऽसि हव्यसूदः। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः। समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। कव्योऽसि कव्यवाहनः। रौद्रेणानीकेन पाहि माग्ने पिपृहि माग्ने। नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥७॥
ज्योतिरसि विश्वरूपं मरुतां पृषती। देवेभ्यस्त्वा यज्ञियेभ्यो गृह्णामि।
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥स्वाहा॥
जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु । स्वाहा॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम।
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर॥ स्वाहा ॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद। देव सवितरेष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवानुपागाः। इदमहं मनुष्यान्सह प्रजया सह रायस्पोषेण। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः। निर्द्रुहो निर्वरुणस्य

पाशान्मुक्षीय। स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरम्। अग्ने व्रतपा अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपाः पुनर्व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या मम तनूस्त्वय्यभूदियं सा मयि। या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि। यथायथं नो व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। स्वाहा यज्ञं मनसि स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहोर्वन्तरिक्षे स्वाहा वाते वाचि विसृजे ॥८॥
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतवने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥स्वाहा॥

अत्यन्यानगां नान्यानुपागाम्। यात्राजुजोषं परि तानवृजम्। अर्वाक्त्वा परेभ्यो ऽविदं परो ऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे वनस्पते देवयज्यायै जुष्टं विष्णवे। विष्णवे त्वा। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु। ओषधे त्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः। द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव। वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम॥
यं त्वायं स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अच्छिन्नरायः सुवीरः ॥९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः। यवो ऽसि यवयास्मद्द्वेषं यवयारातिम्। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामि। स्वावेशो ऽस्यग्रेगा नेतृणां। वनस्पतिस्त्वाधिष्ठास्यति। तस्य वित्तात्। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणाताम्। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु। सुपिप्पला ओषधीस्कृधि। द्यामग्रेणास्तभ्नीरान्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमपरेणादृंहीः॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥
ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं देववनिं सजातवनिं रायस्पोषवनिं पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह प्रजां दृंह रायस्पोषं दृंह॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

परिवीरसि। परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्। परीमं रायो मनुष्यम्। अन्तरिक्षस्य सानूपेष। द्यां ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षमर्चिः पृथिवीं भस्म स्वाहा ॥१०॥

इषे त्वा। उपावीरसि। उप देवान्दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नीरुशिजः। बृहस्पते धारया वसूनि। हव्या ते स्वदन्। देवत्वष्टर्वसु रण्व। रेवती रमध्वम्। अग्नेर्जनित्रमसि। वृषणौ स्थः। उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि। गायत्रं छन्दो ऽनुप्रजायस्व। त्रैष्टुभं छन्दो ऽनुप्रजायस्व। जागतं छन्दो ऽनुप्रजायस्व॥
भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ।
मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥
ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषो अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः।
इमा हव्या वहते कल्पयामो मा देवानां मूमुहो भागधेयम् ॥११॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि। अमुष्मै जुष्टम्। धर्षा मानुषाः। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्यो ऽनु सखा सयूथ्यः। आवह देवान्देवायते यजमानाय। अपां पेरुरसि। स्वात्तं हव्यं देवेभ्यो घृतवत्। सं ते वायुः प्राणेन गच्छतां सं यजत्रैरङ्गानि सं यज्ञपतिराशिषा ॥१२॥

घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथाम्। रेवति प्रेधा यज्ञपतिमाविश। उरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज

समस्य तन्वा भव। वर्षीयो वर्षीयसो यज्ञं यज्ञपतौ धाः। नमस्त आतान। अनर्वाकृप्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण। देवीरापः शुद्धा यूयं देवान्युयुध्वम्। शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारो भूयास्म। प्राणं ते मा हिंसिषम्। चक्षुस्ते मा हिंसिषम्। श्रोत्रं ते मा हिंसिषम्। वाचं ते मा हिंसिषम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त एतेन कल्पताम्। तत्ते मा हिंसिषम्। चरित्रांस्ते मा हिंसिषम्। नाभिं ते मा हिंसिषम्। मेढ्रं ते मा हिंसिषम्। पायुं ते मा हिंसिषम्। देवेभ्यः शुन्धस्व। समुद्धयः। ओषधे त्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः। रक्षसां भागो ऽसीदमहं रक्षो ऽवबाधे। इदमहं रक्षोऽधमं तमो नयामि। इषे त्वोर्जे। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाताम्। देवेभ्यः शुन्धस्व। देवेभ्यः शुम्भस्व। अमुष्मै त्वा जुष्टाम्। उर्वन्तरिक्षं वीहि। वायो वे ष्टोकानाम्। प्रत्युष्टं रक्षः। देवेभ्यः स्वाहा। स्वाहा देवेभ्यः। प्रयुता द्वेषांसि स्वाहा। ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१३॥

रेडसि। अग्निस्त्वा श्रीणातु। आपः समरिणन्। वातस्य त्वा धाज्यै पूष्णो रंह्या ऊष्मणो ऽव्यथिष्या अपामोषधीनां रोहिष्यै। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्। ऐन्द्रो व्यानो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्। ऐन्द्रो ऽपानो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्॥
देव त्वष्टर्भूरि ते संसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं बभूव।
देवत्रा यन्तमवसे सखायमनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥

घृतं घृतपावानः पिबत। वसां वसापावानः पिबत। अन्तरिक्षस्य हविरसि। स्वाहा त्वा वाताय। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिशः। स्वाहा दिग्भ्यः। नमो दिग्भ्यः ॥१४॥

समुद्रं गच्छ स्वाहा। अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा। देवं सवितारं गच्छ स्वाहा। अहोरात्रे गच्छ स्वाहा। मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा। द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा। छन्दो गच्छ स्वाहा। सोमं गच्छ स्वाहा। यज्ञं गच्छ स्वाहा। नभो गच्छ स्वाहा। अग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा। मनो मे हार्दि यच्छ। पुत्रं नप्तारमशीय। ओषधीभ्यः स्वाहा॥
धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥

सुमित्रिया न आप ओषधयो भवन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु [यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च] वयं द्विष्मः॥
द्वीपे राज्ञो वरुणस्य गृहो हिरण्ययो मितः।
ततो धृतव्रतो राजा धाम्नोधाम्न इह मुञ्चतु ॥१५॥
हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान्देवो अध्वरः।
हविष्मां आविवासति हविष्मां अस्तु सूर्यः॥

अग्नेर्वो ऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि। सुम्नायवः सुम्नाय सुम्नं धत्त। इन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ। मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ। विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। सोमस्य वसतीवरीः॥
हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा॥
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥
सोम राजन्विश्वाः प्रजा उपावरोह। विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु॥
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः।
शृणोत ग्रावाणो विदुषो न यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवं मे॥
देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दात शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा॥
कर्षिरसि। समुद्रस्य वो ऽक्षित्या उन्नये॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीरिषः॥

वसूनां रुद्राणामादित्यानां पत्नेजनी स्थ। वसवो रुद्रा आदित्या एता वः पत्नेजनीः। समुद्रं गन्धर्वेष्ठामन्वातिष्ठत। वातस्य पत्मनेडिता। वाम्या ते संदृशि विश्वं रेतो धिषीय तव वाम्यनु संदृशि ॥१६॥

निग्राभ्या स्थ देवश्रुतः शुक्राः शुक्रभृतः। आयुर्मे तर्पयत। प्राणं मे तर्पयत। व्यानं मे तर्पयत। अपानं मे तर्पयत। चक्षुर्मे तर्पयत। श्रोत्रं मे तर्पयत। वाचं मे तर्पयत। आत्मानं मे तर्पयत। प्रजां मे तर्पयत। पशून्मे तर्पयत। गृहान्मे तर्पयत। गणान्मे तर्पयत। ते मे मा वितृषन्॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। ग्रावास्यध्वरकृद्देवेभ्यः। ऊर्ध्वमिममध्वरं कृधि। उत्तमेन पविनेन्द्राय सुषुत्तमं मधुमन्तं पयस्वन्तम्। इन्द्राय त्वाभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा सहोद इन्द्राय त्वा वसुमत इन्द्राय त्वा रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवते ऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे तेनास्मै यज्ञपतय उरु राये कृधि। अधि धात्रे वोचः॥
श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः। ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं धत्तोपहूताः सोमस्य पिबत॥

मा भैः। मा संभित्थाः। धिषणे ईडिते ईडयेथाम्। ऊर्जं दधाथाम्। ऊर्जमस्मासु धत्तम्। मा वां हिंसिषम्। मा युवमस्मान्हिंसिष्टम्। प्रागपागुदगधराक्तास्त्वा दिश आधावन्तु। अम्ब निस्वर। समरीर्विदम् ॥१७॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः

वाचस्पतये पवस्व। वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः। देवो देवानां पवित्रमसि। येषां भागो ऽसि। मधुमतीर्ण इषस्कृधि। स्वांकृतो ऽसि। उर्वन्तरिक्षं वीहि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः। मनस्त्वाष्टु। स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः। प्राणाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि॥
अन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोममुरुष्य रायः समिषो यजस्व।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजोषा देवैरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन्मादयस्व॥

मधुमतीर्ण इषस्कृधि। स्वांकृतोऽसि। उर्वन्तरिक्षं वीहि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः। मनस्त्वाष्टु। स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः। अपानाय त्वा ॥१॥
आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम्॥
उपयामगृहीतोऽसि। वायवे त्वा॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि॥

उपयामगृहीतोऽसि। वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वा। एष ते योनिः। सजोषोभ्याम् त्वा॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
ममेदिह श्रुतं हवम्॥

उपयामगृहीतोऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। एष ते योनिः। ऋतायुभ्यां त्वा॥
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥

उपयामगृहीतोऽसि। अश्विभ्यां त्वा। एष ते योनिः। माध्वीभ्यां त्वा। उपयामगृहीतोऽसि। वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे। उपयामगृहीतोऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे।

उपयामगृहीतोऽसि। अश्विभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे। तं रक्षस्व। मा त्वा दभन्। दुश्चक्षास्ते मावक्षत् ॥२॥
अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति॥
उपयामगृहीतोऽसि। शण्डाय त्वा। एष ते योनिः। वीरतायै त्वा॥
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मर्काय त्वा। एष ते योनिः। प्रजाभ्यस्त्वा॥
अपनुत्ता शण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्मः। तृथो ऽसि जनधाया देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु। तृथो ऽसि जनधाया देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु। आयुः संधत्तं प्राणं संधत्तं चक्षुः संधत्तं श्रोत्रं संधत्तं वाचं संधत्तम्। अनाधृष्टासि। जिन्वेथां स्वपत्या मध्वा। सुवीराः प्रजाः प्रजनयन्परीहि। सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीहि॥
संजग्माना दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा मन्थी मन्थिशोचिषा। शुक्रो ऽसि शुक्रशोचिः। मन्थ्यसि मन्थिशोचिः। अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य दधितारः स्याम। निरस्ता शण्डामर्कौ सह तेन यं द्विष्मः।
शुक्रस्याधिष्ठानमसि। मन्थिनो ऽधिष्ठानमसि॥
या संस्कृतिः प्रथमा विश्वकर्मा यो मध्यमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्।
यः परमो वरुणो मित्रो अग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोत॥
स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः ॥३॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुषदो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥
उपयामगृहीतो ऽस्याग्रयणः। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिम्। अभि सवनानि पाहि। विष्णुस्त्वां पात्विन्द्रियेण। विशं त्वं पाहीन्द्रियेण। एष ते योनिः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यम्। यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा। विष्णवे त्वा। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। पुनर्हविरसि। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राय त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा। पुनर्हविरसि। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राय त्वा। इन्द्राय त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्रावरुणाभ्यां त्वा। इन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा। इन्द्राविष्णुभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राविष्णुभ्यां त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे ॥४॥
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥

उपयामगृहीतो ऽसि वैश्वानरः। ध्रुवो ऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमः। एष ते योनिः। वैश्वानराय त्वा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मधवे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। माधवाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। शुक्राय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। शुचये त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। नभसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। नभस्याय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। इषाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। ऊर्जाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। सहसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। सहस्याय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। तपसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। तपस्याय त्वा॥
इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पातं धियेषिता॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। एष ते योनिः। इन्द्राग्निभ्यां त्वा॥
ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः। एष ते योनिः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥५॥
जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥
मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥
महां इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमां इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। महेन्द्राय त्वा। एष ते योनिः। महेन्द्राय त्वा॥
महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। महेन्द्राय त्वा। एष ते योनिः। महेन्द्राय त्वा ॥६॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

द्यां गच्छ स्वर्गच्छ। रूपं वो रूपेणाभ्यागां वयसा वयः। तुथो वो विश्ववेदा विभजतु वर्षिष्ठे अधि नाके। एतत्ते अग्ने राध एति सोमच्युतम्। तन्मित्रस्य पथा नय। ऋतस्य पथाप्रेत चन्द्रदक्षिणाः। ब्राह्मणमद्यर्ध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम्॥
अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्।

ब्रह्मसामाभ्यां संचरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम॥१६॥

इय ते शुक्र तनूरिदं वर्चस्तया संभव भ्राजं गच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे। तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा। शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवं हविरसि। चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि यज्ञियासि क्षत्रियास्यदितिरस्युभयतश्शीर्ष्णी। सा मा सुप्राची सुप्रतीची भव। मित्रस्त्वा पदि बध्नातु। पूषाध्वनस्पातु। इन्द्रायाध्यक्षाय। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्यो ऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहि। इन्द्राय सोमम्। रुद्रस्त्वावर्तयतु। स्वस्ति सोमसखा पुनेहि ॥१७॥

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि चन्द्रासि शुक्रासि। बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वातु। रुद्रो वसुभिराचके। पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मि देवयजन इडायास्पदे घृतवति स्वाहा। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। अस्मे रमस्व। अस्मे ते रायः। मे रायः। माहं रायस्पोषेण वियोषम्। सं देवी देव्योर्वश्याख्यत। सुरेता रेतो दधानास्त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम ॥१८॥

आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रहः॥
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्॥
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥

प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु। सोमं ते क्रीणाम्यूर्जस्वन्तं पयस्वन्तं वीर्यवन्तं वह्मर्थम्। शुक्रं ते शुक्रेण चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणामि। शग्म यत्ते गोः। अस्मे ते चन्द्राणि। तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः। सहस्रपोषं पुष्यन्ती। परमेण पशुना क्रीयसे। अस्मे ते बन्धुः। मित्रो न एहि सुमित्रधाः। इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तं स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन्॥
उदायुषा स्वायुषोद्रसेनौषधीनाम्।
उत्पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थाममृताँ अनु।
उर्वन्तरिक्षं वीहि।
अपि पन्थामगस्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥
अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद॥
अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि॥
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयो अघ्न्यासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ॥
सूर्यस्य चक्षुरारुहमग्नेरक्ष्णः कनीनिकाम्।
यदेतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ॥१९॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां प्रथमोऽध्यायः

उस्रावेतं धूर्षाहावनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। वारुणमसि वरुणस्य स्कम्भनमसि।
प्रच्यवस्व भुवनस्पते विश्वान्यभि धामानि।

मा त्वा परिपरिणो विदन्मा परिपन्थिनो मा त्वा वृका अघायवो विदन्॥
श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य नो गृहे संस्कृतम्॥
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शसत॥

वारुणमसि वरुणस्त्वोत्तभ्नातु। वरुणस्य स्कम्भसर्जन्यसि। प्रमुक्तो वरुणस्य पाशः। वरुणोऽसि धृतव्रतो ऽच्छिन्नपत्रः प्रजा उपावरोह। वरुणस्यर्तसदनमसि। अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद। वारुणमसि वरुणाय त्वा॥१॥

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वा। अतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा। अग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा। श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि। तनूनप्त्रे शक्मने शाक्वराय। शक्मन्नोजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यम्। अञ्जसा सत्यमुपगेषम्। सुविते मा धाः। अग्ने व्रतपा अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या मम तनूरेषा सा त्वयि या तव तनूरियं सा मयि। सह नौ व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या ते अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि। तस्यै ते स्वाहा। अंशुरंशुस्ते देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधन। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्यायय सखीन्सन्या मेधया। स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा राय एष्टा वामानि प्रेषे भगायर्तमृतवादिभ्यः। नमो दिवे नमः पृथिव्यै॥२॥

या ते अग्नेऽयाशया तनूर्वर्षिष्ठा गहनेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचोऽपावधीत्त्वेषं वचोऽपावधीत्स्वाहा। या ते अग्ने रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा गहनेष्ठा वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठोग्रं वचोऽपावधीत्त्वेषं वचो ऽपावधीत्स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। नार्यसीदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। तप्तायन्यसि वित्तायन्यस्यवतान्मा नाथितमवतान्मा व्यथितम्। अग्ने अङ्गिरो यो ऽस्यां पृथिव्यामस्यायुना नाम्नेहि। यत्ते ऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे। अग्ने अङ्गिरो यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामस्यायुना नाम्नेहि। यत्तेऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे। विदेदग्निर्नभो नाम। सिंह्यसि महिष्यसि देवेभ्यः प्रथस्व देवेभ्यः कल्पस्व देवेभ्यः शुन्धस्व देवेभ्यः शुम्भस्व॥
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षतु त्मना प्रजां पिपर्ति बहुधा विराजति॥

पितृणां भागधेयी स्थ। इन्द्रघोषास्त्वा पुरस्ताद्वसवः पान्तु। मनोजवसस्त्वा दक्षिणतः पितरः पान्तु। प्रचेतास्त्वा पश्चाद्रुद्रैः पातु। विश्वकर्मा त्वोत्तरादादित्यैः पातु। सिंह्यसि सपत्नसाही स्वाहा। सिंह्यसि रायस्पोषवनिः स्वाहा। सिंह्यसि सुप्रजावनिः स्वाहा। सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा। सिंह्यस्यावह देवान्देवायते यजमानाय स्वाहा। भूतेभ्यस्त्वा। विश्वायुरसि पृथिवीं स्कभान। अच्युतक्षिदस्यन्तरिक्षं स्कभान। ध्रुवक्षिदसि दिवं स्कभान। अग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसि। यज्ञः प्रत्यष्ठात् ॥३॥
युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥
देवश्रुतौ देवेष्वाघोषेथाम्॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे॥
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्ये।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः॥

वैष्णवमसि विष्णुस्त्वोत्तभ्नातु॥
दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या महो वा विष्णवुरोरन्तरिक्षात्।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥
विष्णोः पृष्ठमसि। विष्णो रराटमसि। विष्णोः श्नप्त्रे स्थः। विष्णोः स्यूरसि। विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥
प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥४॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। इदमहं यो नः समानो यो ऽसमानो ऽरातीयति तस्य ग्रीवा अपिकृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्ग्रावा। बृहतीमिन्द्राय वाचं वद रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम्। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः समानो यानसमानो निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः सबन्धुर्यानसबन्धुर्निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः सनाभिर्यानसनाभिर्निचखान। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः स्वो यानरणो निचखान। सम्राडसि सपत्नहा स्वराडस्यभिमातिहा सत्रराडसि रक्षोहा विश्वाराडस्यरातीयतो हन्ता। गायत्रेण च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मः। त्रैष्टुभेन जागतेनानुष्टुभेन पाङ्क्तेन च्छन्दसावबाढो यं द्विष्मः। किमत्र भद्रं तन्नौ सह। निरस्तो वलगोऽवबाढो दुरस्युः। रक्षोघ्नो वलगघ्नः प्रोक्षामि वैष्णवान्। रक्षोघ्नो वलगघ्नो ऽवसिञ्चामि वैष्णवान्। रक्षोघ्नो वलगघ्नोऽवस्तृणामि वैष्णवान्। रक्षोहणी वलगहनी प्रोक्षामि वैष्णवी। रक्षोहणी वलगहनावुपदधामि वैष्णवी। रक्षोहणी वलगहनी पर्यूहामि वैष्णवी। रक्षोहा त्वा वलगहा स्तृणामि वैष्णवम् ॥५॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः। यवो ऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातिम्। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामि। उद् द्यां स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्याम्। मितानस्त्वा मारुतो निहन्तु मित्रावरुणयोर्ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि देववनि सजातवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह प्रजां दृंह रायस्पोषं दृंह। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणाताम्। विश्वजनस्य छायासि। इन्द्रस्य स्यूरसि। इन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसीन्द्राय त्वा ॥६॥

विभूरसि प्रवाहणः। वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेताः। तुथो ऽसि विश्ववेदाः। उशिगसि कविः। अङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्युरसि दुवस्वान्। शुन्ध्युरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः। परिषद्यो ऽस्यासत्व्यः। नभोऽसि प्रतक्वा। असंमृष्टोऽसि हव्यसूदनः। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः। समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजो ऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। कव्योऽसि कव्यवाहनः। रौद्रेणानीकेन पाहि माग्ने पिपृहि माग्ने। नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ॥७॥

ज्योतिरसि विश्वरूपं मरुतां पृषती। देवेभ्यस्त्वा यज्ञियेभ्यो गृह्णामि।
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्यो ऽन्यकृतेभ्यः।
उरु यन्तासि वरूथम् ॥स्वाहा॥
जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु। स्वाहा॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतवने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर। स्वाहा ॥

अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीद। देव सवितरेष ते सोमस्तं रक्षस्व। मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवानुपागाः। इदमहं मनुष्यान्सह प्रजया सह रायस्पोषेण। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः। निर्दुहो निर्वरुणस्य

पाशान्मुक्षीय। स्वरभिव्यख्यं ज्योतिर्वैश्वानरम्। अग्ने व्रतपा अस्मे व्रतपास्त्वे व्रतपाः पुनर्व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। या मम तनूस्त्वय्यभूदियं सा मयि। या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि। यथायथं नो व्रतपा व्रतिनां व्रतानि। स्वाहा यज्ञं मनसि स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहोरावन्तरिक्षे स्वाहा वाते वाचि विसृजे ॥८॥
उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतवने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥स्वाहा॥

अत्यन्यानगां नान्यानुपागाम्। यात्राजुजोष परि तानवृजम्। अर्वाक्त्वा परेभ्यो ऽविदं परो ऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे वनस्पते देवयज्यायै जुष्टं विष्णवे। विष्णवे त्वा। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु। ओषधे त्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः। द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभव। वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम॥
यं त्वायं स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय।
अच्छिन्नरायः सुवीरः ॥९॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामि। पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनाः। यवो ऽसि यवयास्मद्द्वेषं यवयारातिम्। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामि। स्वावेशो ऽस्यग्रेगा नेतृणां। वनस्पतिस्त्वाधिष्ठास्यति। तस्य वित्तात्। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणाताम्। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु। सुपिप्पला ओषधीस्कृधि। द्यामग्रेणास्तम्भीरान्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमपरेणादृंहीः।
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥
ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं देववनिं सजातवनिं रायस्पोषवनिं पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह प्रजां दृंह रायस्पोषं दृंह॥
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

परिवीरसि। परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्। परीमं रायो मनुष्यम्। अन्तरिक्षस्य सानूपेष। द्यां ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षमर्चिः पृथिवीं भस्म स्वाहा ॥१०॥

इषे त्वा। उपावीरसि। उप देवान्दैवीर्विशः प्रागुर्वह्नीरुशिजः। बृहस्पते धारया वसूनि। हव्या ते स्वदम्। देवत्वष्टर्वसु रण। रेवती रमध्वम्। अग्नेर्जनित्रमसि। वृषणौ स्थः। उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि। गायत्रं छन्दो ऽनुप्रजायस्व। त्रैष्टुभं छन्दो ऽनुप्रजायस्व। जागतं छन्दो ऽनुप्रजायस्व॥
भवतं नः समनसौ समोकसावरेपसौ।
मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥
ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषो ऽग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः।
इमा हव्या वहते कल्पयामो मा देवानां मूमुहो भागधेयम् ॥११॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि। अमुष्मै जुष्टम्। धर्षा मानुषाः। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्यो ऽनु सखा सयूथ्यः। आवह देवान्देवायते यजमानाय। अपां पेरुरसि। स्वात्तं हव्यं देवेभ्यो घृतवत्। सं ते वायुः प्राणेन गच्छतां सं यजत्रैरङ्गानि सं यज्ञपतिराशिषा ॥१२॥

घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथाम्। रेवति प्रेधा यज्ञपतिमाविश। उरो अन्तरिक्ष सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज

समस्य तन्वा भव। वर्षीयो वर्षीयसो यज्ञं यज्ञपतौ धाः। नमस्त आतान। अनर्वाकृप्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण। देवीरापः शुद्धा यूयं देवान्युयुध्वम्। शुद्धा वयं परिविष्टाः परिवेष्टारो भूयास्म। प्राणं ते मा हिंसिषम्। चक्षुस्ते मा हिंसिषम्। श्रोत्रं ते मा हिंसिषम्। वाचं ते मा हिंसिषम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त एतेन कल्पताम्। तत्ते मा हिंसिषम्। चरित्रांस्ते मा हिंसिषम्। नाभिं ते मा हिंसिषम्। मेढ्रं ते मा हिंसिषम्। पायुं ते मा हिंसिषम्। देवेभ्यः शुन्धस्व। समुद्धयः। ओषधे त्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीः। रक्षसां भागो ऽसीदमहं रक्षो ऽवबाधे। इदमहं रक्षोऽधमं तमो नयामि। इषे त्वोर्जे। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाताम्। देवेभ्यः शुन्धस्व। देवेभ्यः शुम्भस्व। अमुष्मै त्वा जुष्टाम्। उर्वन्तरिक्षं वीहि। वायो वे ष्टोकानाम्। प्रत्युष्टं रक्षः। देवेभ्यः स्वाहा। स्वाहा देवेभ्यः। प्रयुता द्वेषांसि स्वाहा। ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥१३॥

रेडसि। अग्निस्त्वा श्रीणातु। आपः समरिणन्। वातस्य त्वा धाज्यै पूष्णो रंह्या ऊष्मणो ऽव्यथिष्या अपामोषधीनां रोहिष्यै। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्। ऐन्द्रो व्यानो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्। ऐन्द्रो ऽपानो अङ्गेअङ्गे निदीध्यत्॥

देव त्वष्टर्भूरि ते संसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं बभूव।
देवत्रा यन्तमवसे सखायमनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥

घृतं घृतपावानः पिबत। वसां वसापावानः पिबत। अन्तरिक्षस्य हविरसि। स्वाहा त्वा वाताय। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिशः। स्वाहा दिग्भ्यः। नमो दिग्भ्यः ॥१४॥

समुद्रं गच्छ स्वाहा। अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा। देवं सवितारं गच्छ स्वाहा। अहोरात्रे गच्छ स्वाहा। मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा। द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा। छन्दो गच्छ स्वाहा। सोमं गच्छ स्वाहा। यज्ञं गच्छ स्वाहा। नभो गच्छ स्वाहा। अग्निं वैश्वानरं गच्छ स्वाहा। मनो मे हार्दि यच्छ। पुत्रं नप्तारमशीय। ओषधीभ्यः स्वाहा॥

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण नो मुञ्च।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥

सुमित्रिया न आप ओषधयो भवन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु [यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च] वयं द्विष्मः॥

द्रुपे राज्ञो वरुणस्य गृहो हिरण्ययो मितः।
ततो धृतव्रतो राजा धाम्नोधाम्न इह मुञ्चतु ॥१५॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्मान्देवो अध्वरः।
हविष्मां आविवासति हविष्मां अस्तु सूर्यः॥

अग्नेर्वो ऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि। सुम्नायवः सुम्नाय सुम्नं धत्त। इन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ। मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ। विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। सोमस्य वसतीवरीः॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा॥
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ।
सोम राजन्विश्वाः प्रजा उपावरोह। विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु॥
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः।
शृणोत ग्रावाणो विदुषो न यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवं मे॥
देवीरापो अपां नपाद्य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दात शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा॥
कर्षिरसि। समुद्रस्य वो ऽक्षित्या उन्नये॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीरिषः॥

वसूनां रुद्राणामादित्यानां पन्नेजनी स्थ। वसवो रुद्रा आदित्या एता वः पन्नेजनीः। समुद्रं गन्धर्वेष्ठामन्वातिष्ठत। वातस्य पत्मनेडिता। वाम्या ते संदृशि विश्वं रेतो धिषीय तव वाम्यनु संदृशि ॥१६॥

निग्राभ्या स्थ देवश्रुतः शुक्राः शुक्रभृतः। आयुर्मे तर्पयत। प्राणं मे तर्पयत। व्यानं मे तर्पयत। अपानं मे तर्पयत। चक्षुर्मे तर्पयत। श्रोत्रं मे तर्पयत। वाचं मे तर्पयत। आत्मानं मे तर्पयत। प्रजां मे तर्पयत। पशून्मे तर्पयत। गृहान्मे तर्पयत। गणान्मे तर्पयत। ते मे मा वितृषन्॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे। ग्रावास्यध्वरकृद्देवेभ्यः। ऊर्ध्वमिममध्वरं कृधि। उत्तमेन पविनेन्द्राय सुषुत्तमं मधुमन्तं पयस्वन्तम्। इन्द्राय त्वाभिमातिघ्न इन्द्राय त्वा सहोद इन्द्राय त्वा वसुमत इन्द्राय त्वा रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवते ऽग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे तेनास्मै यज्ञपतय उरु राये कृधि। अधि धात्रे वोचः॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः। ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं धत्तोपहूताः सोमस्य पिबत॥

मा भैः। मा संभित्थाः। धिषणे ईडिते ईडयेथाम्। ऊर्जं दधाथाम्। ऊर्जमस्मासु धत्तम्। मा वां हिंसिषम्। मा युवमस्मान्हिंसिष्टम्। प्रागपागुदगधराक्तास्त्वा दिश आधावन्तु। अम्ब निस्वर। समरीर्विदम् ॥१७॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः

वाचस्पतये पवस्व। वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूतः। देवो देवानां पवित्रमसि। येषां भागो ऽसि। मधुमतीर्ण इषस्कृधि। स्वांकृतो ऽसि। उर्वन्तरिक्षं वीहि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः। मनस्त्वाष्टु। स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः। प्राणाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि॥

अन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोममुरुष्य रायः समिषो यजस्व।
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
सजोषा देवैरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन्मादयस्व॥

मधुमतीर्ण इषस्कृधि। स्वांकृतोऽसि। उर्वन्तरिक्षं वीहि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः। मनस्त्वाष्टु। स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः। अपानाय त्वा ॥१॥

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम्॥
उपयामगृहीतोऽसि। वायवे त्वा॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरागतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि॥

उपयामगृहीतोऽसि। वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वा। एष ते योनिः। सजोषोभ्याम् त्वा॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।
ममेदिह श्रुतं हवम्॥

उपयामगृहीतोऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। एष ते योनिः। ऋतायुभ्यां त्वा॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥

उपयामगृहीतोऽसि। अश्विभ्यां त्वा। एष ते योनिः। माध्वीभ्यां त्वा। उपयामगृहीतोऽसि। वायव इन्द्रवायुभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे। उपयामगृहीतोऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे।

उपयामगृहीतोऽसि। अश्विभ्यां त्वा। एष ते योनिः। विष्णोरुरुक्रमे। तं रक्षस्व। मा त्वा दभन्। दुश्चक्षास्ते मावक्षत् ॥२॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति॥
उपयामगृहीतोऽसि। शण्डाय त्वा। एष ते योनिः। वीरतायै त्वा॥
तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मर्काय त्वा। एष ते योनिः। प्रजाभ्यस्त्वा॥

अपनुत्ता शण्डामर्को सह तेन यं द्विष्मः। तूथो ऽसि जनधाया देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु। तूथो ऽसि जनधाया देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु। आयुः संधत्तं प्राणं संधत्तं चक्षुः संधत्तं श्रोत्रं संधत्तं वाचं संधत्तम्। अनाधृष्टासि। जिन्वेथां स्वपत्या मध्वा। सुवीराः प्रजाः प्रजनयन्परीहि। सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन्परीहि॥

संजग्माना दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा मन्थी मन्थिशोचिषा। शुक्रो ऽसि शुक्रशोचिः। मन्थ्यसि मन्थिशोचिः। अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य दधितारः स्याम। निरस्ता शण्डामर्को सह तेन यं द्विष्मः। शुक्रस्याधिष्ठानमसि। मन्थिनो ऽधिष्ठानमसि॥

या संस्कृतिः प्रथमा विश्वकर्मा यो मध्यमो बृहस्पतिश्चिकित्वान्।
यः परमो वरुणो मित्रो अग्निस्तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोत तस्मै सूर्याय सुतमाजुहोत॥
स्वाहा त्वा सुभो सूर्याय। देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यः ॥३॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुषदो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥

उपयामगृहीतो ऽस्याग्रयणः। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिम्। अभि सवनानि पाहि। विष्णुस्त्वां पात्विन्द्रियेण। विशं त्वं पाहीन्द्रियेण। एष ते योनिः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यम्। यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा। विष्णवे त्वा। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। मित्रावरुणाभ्यां त्वा। पुनर्हविरसि। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राय त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा। पुनर्हविरसि। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतोऽसि। इन्द्राय त्वा। इन्द्राय त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्रावरुणाभ्यां त्वा। इन्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा। इन्द्राविष्णुभ्यां त्वा। उक्थेभ्यस्त्वोक्थाव्यं गृह्णामि। एष ते योनिः। इन्द्राविष्णुभ्यां त्वा। देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं पृणच्मि यज्ञस्यायुषे ॥४॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥

उपयामगृहीतो ऽसि वैश्वानरः। ध्रुवो ऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमः। एष ते योनिः। वैश्वानराय त्वा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। मधवे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। माधवाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। शुक्राय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। शुचये त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। नभसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। नभस्याय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। इषाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। ऊर्जाय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। सहसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। सहस्याय त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। तपसे त्वा। उपयामगृहीतो ऽसि। तपस्याय त्वा॥

इन्द्राग्नी आगतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पातं धियेषिता॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राग्निभ्यां त्वा। एष ते योनिः। इन्द्राग्निभ्यां त्वा॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः। एष ते योनिः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥५॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्यते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा मरुत्वते॥

महां इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमां इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥

उपयामगृहीतो ऽसि। महेन्द्राय त्वा। एष ते योनिः। महेन्द्राय त्वा॥

महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। महेन्द्राय त्वा। एष ते योनिः। महेन्द्राय त्वा ॥६॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

द्यां गच्छ स्वर्गच्छ। रूपं वो रूपेणाभ्यागां वयसा वयः। तूथो वो विश्ववेदा विभजतु वर्षिष्ठे ऽधि नाके। एतत्ते अग्ने राध एति सोमच्युतम्। तन्मित्रस्य पथा नय। ऋतस्य पथाप्रेत चन्द्रदक्षिणाः। ब्राह्मणमद्यर्ध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम्॥

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्।

अयं शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणो ऽयं वाजं जयतु वाजसातौ।
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान॥

वि स्वः पश्य व्यन्तरिक्षम्। यतस्व सदस्यैः। अस्मद्दात्रा मधुमती देवत्रा गच्छ। प्रदातारमाविश। अनवहायास्मान्देवि दक्षिणे देवयानेन पथा यतो सुकृतां लोके सीद। तन्नौ संस्कृतम् ॥७॥

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥
उपयामगृहीतो ऽसि। आदित्येभ्यस्त्वा॥
कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी।
तुरीयादित्य सवनं त इन्द्रियमातस्थावमृतं दिवि॥
उपयामगृहीतो ऽसि। आदित्येभ्यस्त्वा॥
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः।
आ वो ऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। आदित्येभ्यस्त्वा। विवस्व आदित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्मन्दस्व। या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामि॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥

उपयामगृहीतो ऽसि। देवाय त्वा सवित्रे। उपयामगृहीतो ऽसि। सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानः। बृहदुक्षे नमः। एष ते योनिः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥८॥

उपयामगृहीतो ऽसि बृहस्पतिसुतस्य त इन्द इन्द्रियावतः पत्नीवन्तं ग्रहमृध्यासम्। अग्ना३इ पत्नीवा३न्सजूस्त्वष्ट्रा सोमं पिब॥

उपयामगृहीतो ऽसि। हरिरसि हारियोजनो हर्योः स्थाता। हरिभ्यां त्वा। सुतस्तोमस्य ते देव सोम शस्तोक्थस्येष्टयजुषो हरिवन्तं ग्रहमृध्यासम्। हर्योः स्थ हरिवन्तो धानाः सहसोमा इन्द्रस्य॥

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। अग्नये त्वा तेजस्वते। एष ते योनिः। अग्नये त्वा तेजस्वते॥

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वौजस्वते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वौजस्वते॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥

उपयामगृहीतो ऽसि। सूर्याय त्वा भ्राजस्वते। एष ते योनिः। सूर्याय त्वा भ्राजस्वते॥

इन्द्रमिद्धरी वहतो ऽप्रतिधृष्टशवसम्।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। इन्द्राय त्वा हरिवते। एष ते योनिः। इन्द्राय त्वा हरिवते ॥९॥

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु॥
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्त्या।

सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम्॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो ऽनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥
सुगा वो देवाः सदनेदमस्तु य आजग्मुः सवनेदं जुषाणाः।
जक्षिवांसः पपिवांसश्च विश्वे ऽस्मे धत्त वसवो वसूनि॥
यानावह उशतो देव देवांस्तान्प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे।
वहमाना भरमाणा हवींष्यसुं घर्मं दिवमातिष्ठतानु॥
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह।
ऋधगयाडृधगुताशमिष्ट विद्वान्प्रजानन्नुपयाहि साधु॥

यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वं योनिं गच्छ स्वाहा। एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सुवीरः स्वाहा। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञं स्वाहा वाचि स्वाहा वाते धाः ॥१०॥

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवे ऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्॥
शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
आरे बाधस्व निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥
अग्नेरनीकमप आविवेशापां नपात्प्रतिरक्षन्नसुर्यम्।
दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्येत्॥
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तवाके नमोवाके विधेम ॥स्वाहा॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव नो देवैर्देवकृतमेनो यक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्। उरोरा नो देव रिषस्पाहि। देवीराप एष वो गर्भः। तं वः सुप्रीतं सुभृतमभारिषम्। देवेषु णः सुकृतो ब्रूत। अभिष्ठितो वरुणस्य पाशः। अप्सु धौतस्य ते देव सोम नृभिः स्तुतस्य यो भक्षो गोसनिर्यो ऽश्वसनिस्तस्य त उपहूत उपहूतस्य भक्षं कृणोमि। प्रत्यस्तो वरुणस्य पाशः। नमो वरुणस्य पाशाय॥

गायत्रीं छन्दांस्यनु संरभन्तामस्मात्राय उत यज्ञाः सचन्ताम्॥
सुप्रीतः शिशुरप आविवेश॥
उन्नेतर्वस्यो ऽध्युन्नया नः॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
आयुष्मानग्न आगमं तं मा संसृज वर्चसा॥

एधो ऽस्येधिषीमहि। समिदसि समेधिषीमहि। तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि ॥११॥

प्रजापतिर्वा इदमासीत्। तस्मादग्निरध्यसृज्यत। सो ऽस्य मूर्ध्न ऊर्ध्व उदद्रवत्। तस्य यल्लोहितमासीत्तदपामृष्ट। तद्भूम्यां न्यमार्ट्। तत उदुम्बरो ऽजायत। तस्मात्स लोहितं पच्यते। स प्राङ् प्राद्रवत्। तं स्वा वागैट्ट जुहुधीति। स इतः पर्यमृष्ट। तत्स्वाहेत्यजुहोत्। तस्मादेवैवमाहुतिः। स्वा ह्येनं वागैट्ट। तस्मान्न ललाटे लोमास्ति न पाण्योः। तस्मादरत्निमात्री स्रुग्भवति। चक्षुर्वाव स तत्स्वमजुहोत्। अमुमेव स तदादित्यमजुहोत्। एष ह्येवाग्निहोत्रम्। श्वःश्वो वसीयान्भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते॥

न वै पुराहोरात्रे आस्ताम्। ते एतया हुत्योभे सहासृज्येताम्। यत्सायं जुहोति तेन भ्रातृव्याय पराचीं विवासयति यत्प्रातस्तेनात्मने प्रतीचीम्। अग्नेर्वै गुप्त्या अग्निहोत्रं हूयते। यत्सायं जुहोति तेनैनं रात्र्यै रमयति यत्प्रातस्तेनाह्ने। एषा

या अग्रयाहुतिः प्रथमा हुता यदग्निहोत्रम्। तस्मात्सर्वा एवाग्रयाहुतयो हूयन्ते। अथैषा वा अग्निहोत्रमुच्यते। अग्निहोत्रं ह वै नाम नास्मादन्यः। समानेषु वसीयान्भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ॥१२॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां तृतीयो ऽध्यायः

स नारमत। स प्राद्रवत्। तस्मिन्नजुहोत्। तस्या आहुत्याः पुरुषो ऽजायत। स नारमत। स प्राद्रवत्। तस्मिन्नजुहोत्। तस्या आहुत्या अश्वो ऽजायत। तस्मात्पुरुषश्चाश्वश्च नाना प्रत्यञ्चौ न सु विज्ञायेते इव। स नारमत। स प्राद्रवत्। तस्मिन्नजुहोत्। तस्या आहुत्या गौरजायत। अविरजायत। अजाजायत। यवो ऽजायत। व्रीहिरजायत। एताभ्यो वै सप्तभ्य आहुतिभ्यः सप्तैव ग्राम्याः पशवो ऽसृज्यन्त। स नारमत। स प्राद्रवत्। तस्मिन्नजुहोत्। तस्या आहुत्या वसन्तो ऽजायत। ग्रीष्मो ऽजायत। वर्षा अजायन्त। शरदजायत। हेमन्तो ऽजायत। स ऋतोदश्यामाहुत्यामुद्यतायामबिभेत्। तं प्रत्यङ्ङुपाद्रवत्। तं पाणिः प्राविशत्। तस्मात्पाण्योर्लोम नास्ति। अग्निधानं ह्येतत्। तस्माद्धस्ताभ्यामग्निर्मथ्यमानो जायते। तस्माद्धन्यमानो हस्तौ प्रसार्य गृह्णाति। अग्नावेव तत्प्राणि मिच्छते। अग्निं वै पशवो ऽनूपतिष्ठन्ते पशूनग्निः। प्रैनं पशवो विशन्ति [प्र पशून्विशति] य एवं वेद। तामाहुतिमप्सु प्रासिञ्चत्। ततः शिशिरमजायत। तस्मात्तत्क्रूरतमम्। यदि तद्धुताहुत्या अजायत। साहुतिरपो दग्धुमुपाक्रमत। तत आपो ऽप्रवेव्यो ऽभवन्। तस्मादप्स्वग्निं न प्रास्येत्। यत्प्रास्येद्भुतेन यजेत। तामाहुतिमोषधिषु न्यदधात्। तस्मादोषधयो ऽप्यदग्धा रभन्ते। ओषधिभ्यो ऽधि पशवः पशुभ्यो ऽधि प्रजाः। तदेतच्छिशिर आज्यं श्यायति। अग्नये तस्माच्छिशिरे कक्ष उपादुत्यः। प्रियमेव धामाग्नये प्रादात्। सो ऽस्मा अन्नाद्यं प्रयच्छति। अन्नादो भवति य एवं वेद ॥१॥

समाने वै योनावास्तां सूर्यश्चाग्निश्च। ततः सूर्य ऊर्ध्व उदद्रवत्। तस्य रेतः परापतत्। तदग्निर्योनावगृह्णात्। अपमा तदकृडयत्। तदकृश्यमानं गवि न्यदधात्। तदिदं पयः। तस्मादत्र पयस्यत्र प्रतिधुक्कुर्वन्ति। यत्पयसाग्निहोत्रं जुहोत्यमुमेव तदादित्यं जुहोति। एष ह्येवाग्निहोत्रम्। अनड्वाहो वै पयस्तण्डुलाः। असावादित्यो ऽनड्वान्। यदनड्वाग्निहोत्रं जुहोत्यमुमेव तदादित्यं जुहोति। एष ह्येवाग्निहोत्रम्। यच्चक्रवृत्तं तदसुर्यं यदचक्रवृत्तं तद्देवपात्रम्। तस्मादचक्रवृत्तमग्निहोत्रस्थालीं कुर्वीत॥

न क्षीरेण प्रतिषिञ्चेन्नोदकेन। यत्क्षीरेण प्रतिषिञ्चेत् प्रतिषिक्तं स्यात्। यदुदकेन शमयेत्। दोहने संस्रावमुच्छिष्य तेनोदकमिश्रेण प्रतिषिञ्चेत्। तत्र क्षीरेण प्रतिषिक्तं भवति नोदकेन। स्कन्नमेव तत्। परि चेदाकरोति या स्थाल्यग्निहोत्रस्थानी तया दुह्यात्। इयं वै सा। न वा इममिह नेहास्कन्दति। अनयैवोपसीदति। तदस्यास्कन्नं भवति। अद्भिः प्रतिषिञ्चति। आपो हि प्रतिषेचनाय तस्मिन्। सम्मिथुनमापश्च पयश्च। यदि दुह्यमानावभिनृद्यादन्यया स्थाल्या दुह्यात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यद्यधिश्रितं स्कन्देदन्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यद्युन्नीयमानं स्कन्देदुन्नयनीयमन्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यदि पुर उपसन्नमहुतं स्कन्देदुन्नयनीयमन्यामभिदुह्याधिश्रित्योन्नीय जुहुयात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यत्र स्कन्देत्तदपो निनयेत्। आपो वै यज्ञस्य निष्कृतिः। अद्भिरेव निष्करोति। प्रतिषिक्तमन्यदप्रतिषिक्तमन्यत्। प्रतिषिक्तं पशुकामस्याप्रतिषिक्तं ब्रह्मवर्चसकामस्य। घर्मो वा एष प्रवृज्यते यदग्निहोत्रम्। यदप्रतिषिक्तेन जुहोति ब्रह्मवर्चसी भवति। यदि पयो न विन्देदाज्येन जुहुयात्। तद्धि पयःकस्मन्नशान्तमश्रमस्तस्मात् शुचा पशून्निर्दहेत्। प्रतिषिक्तं पशुकामस्य। तच्छान्तं मिथुनं पशव्यमापश्च पयश्च। यदि पयो न विन्देद्यवाग्वा जुहुयात्। तद्धि प्रतिषिक्तं शान्तं मिथुनं पशव्यमापश्च तण्डुलाश्च ॥२॥

अग्निहोत्रं वै जायापती व्यभिचरेते। यत्प्राचीनमुद्वासयेत्पूर्वः प्रमीयेत। यत्प्रतीचीनमुद्वासयेज्जाया पूर्वा प्रमीयेत। यदुदीचीनमुद्वासयेत्समेव जीयेत। पूर्णमग्र उन्नयेदथ संमितमथ संमितमथ संमिततममुत्तमम्। अनुज्येष्ठमस्य पुत्रा ऋध्नुवन्ति। संमितमग्र उन्नयेदथ भूयो ऽथ भूयो ऽथ पूर्णमुत्तमम्। भूयोभूय एवान्नाद्यमभ्युत्क्राम-

ति। कनिष्ठस्त्वस्य पुत्राणामर्धुको भवति। [सर्वान्समावदुन्नयेद्यः कामयेत सर्वे मे पुत्राः समावदृध्नुयुरिति। सर्वेषां वै पिता पुत्राणामृद्धिं कामयते। सर्व एव समावदृध्नुवन्ति। नान्यो ऽन्यमतिक्रामति।] चतुरुन्नयति। चतुष्पद एवास्मै पशून्गृह्णाति। द्विः पुरो जुहोति। द्विपद एवास्मै पशून्गृह्णाति। पशून्मे यच्छेति पश्चादुपसादयेत्। पशवो वै गार्हपत्यः। पशवः पयः। पशूनामेवैषा यतिः। न पश्चादुपसादयेत्। हविर्वा एतद्यदग्निहोत्रम्। यजमानो हविः। हविर्भूतमेव यजमानमपनुदते। उत्तरादुपसादयेत्। अनुत्पूतं वा एतद्यदग्निहोत्रम्। अग्निः पवित्रम्। यत्समयाग्निं हरति तेनैवैनत्पुनाति। अनु वा एष एतद्ध्यायति यत्पश्चाधिश्रित्य पुरो जुहोति। यत्समयाग्निं हरति तेनैवैनं प्राणात्यननुध्यायिनं करोति। अस्माद्वै गार्हपत्यादसौ पूर्वो ऽग्निरसृज्यत। अयं वाव प्रजापतिरसौ पूर्वो ऽग्निः। तदयमित आदाय प्राङनुद्रुत्या जुहोत्। तस्मादग्निहोत्रं पश्चाधिश्रित्य पुरो जुहोति। पुर एवान्यानि हवींषि शृतानि कुर्वन्ति। पुरो जुह्वति ॥३॥

इध्मो वा एषो ऽग्निहोत्रस्य यत्समित्। यत्समिधमादधातीध्ममेवैतदग्निहोत्रस्य करोति। रुद्र ओषधीर्विषेणालिम्पत्। ताः पशवो नालिशन्त। ताभ्यो देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन्। स प्रजापतिरब्रवीद्वार्यं वृणा अहं व एताः स्वदयिष्यामीति। स एतां समिधमवृणीत। तस्मादेकैको हि प्रजापतिस्ता अग्निनोपासृजत्। ता अग्निरस्वदयत्। एतस्यां वा आहितायामग्निहोत्रिणे वीरुधः स्वदन्ति। बह्वीं करोत्युभे आहुती समिद्धे जुहवानीति। एकैव कार्या। सकृद्ध्येव सर्वस्मै यज्ञाय समिध्यते। आयुर्मे यच्छ वर्चो मे यच्छ प्रजां मे यच्छेति पुर उपसादयेत्। सृष्टिर्वा एतद्यदग्निहोत्रम्। यत्रोपसादयेत्पराचीः प्रजा इयुः। युदपसादयति तस्मादिदं प्रजा यतास्तस्मादुपतिष्ठन्ते। अग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्नाविति सायमग्निहोत्रं जुहुयात्। गर्भिण्या वाचा गर्भं दधाति। मिथुनया वाचा गर्भं दधाति। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति प्रातः। गर्भिण्यां वाचा मिथुनया प्रजनयति। यन्निरुक्तं चानिरुक्तं च तन्मिथुनम्। यद्यजुषा च मनसा च तन्मिथुनम्। तदजाम्याहुत्योः। आग्नेयी सायमाहुतिः सौरी प्रातः। अग्निः प्रवापयिता सूर्यः प्रजनयिता। अप्नः सूर्ये निम्रुक्ते सायमग्निहोत्रं जुहुयात्। उपोदयं सूर्यस्य प्रातः। अग्निरेव प्रवापयित्वा सूर्यं रात्र्यै गर्भं दधाति। तं गर्भिण्या वाचा मिथुनया प्रातः प्रजनयति। एतं वै प्रजायमानं प्रजा अनुप्रजायन्ते। प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते। एषा वा अग्निहोत्रस्य स्थाणुर्या पूर्वाहुतिः। तामतिहाय जुहुयात्। तमेव परिवृणक्ति। अभिक्रामं सायं होतव्यम्। गर्भमेव दधाति। प्रतिक्रामं प्रातः। प्रैव जनयति। अभिक्राममेव होतव्यम्। अभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति। यज्जुहोति तद्देवानाम्। यन्निमार्ष्टि तत्पितॄणाम्। यत्प्राश्नाति तन्मनुष्याणाम्। तस्मादग्निहोत्रं वैश्वदेवमुच्यते ॥४॥

प्रैयमेधा वै नाम ब्राह्मणा आसन्। ते सर्वमेवाविदुः। तत्सह्याविदुः। ते ऽग्निहोत्र एव न समराधयन्। तेषां सकृदेको ऽग्निहोत्रमजुहोद्द्विरेकस्त्रिरेकः। तेषां यः सकृदजुहोत्तमितरावपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीति। प्रजापतय एव जुहोमीति। एकधैवेदमित्यब्रवीत्प्रजापतिः। तेषां यो द्विरजुहोत्तमितरावपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीति। अग्नये चैव सायमित्यब्रवीत्प्रजापतये च सूर्याय प्रातः प्रजापतये चेति। तेषां यस्त्रिरजुहोत्तमितरावपृच्छतां कस्मै त्वं जुहोषीति। अग्नये सूर्याय प्रजापतये तेभ्य एवं सायमित्यब्रवीत्तेभ्यः प्रातरिति। तेषां यो द्विरजुहोत्स आर्ध्नोत्। स भूयिष्ठो ऽभवत्प्रजया। अतीतरौ श्रियाक्रामत्। तस्य प्रजामितरयोः प्रजे सजातत्वमुपैताम्। तस्माद् द्विर्होतव्यम्। यजुषा च मनसा च। यामेव स ऋद्धिमार्ध्नोत्तामृध्नोति॥

यदि सायमहुते ऽग्निहोत्रे पूर्वो ऽग्निरनुगच्छेदग्निहोत्रमधिश्रित्योन्नीयाग्निना पूर्वेणोद्धृत्याग्निहोत्रेणानुद्रवेत्। आहुत्यैवैनं च्यावयति। यो ब्राह्मणो बहुवित्स्यात्स उद्धरेत्। सर्वेणैवैनं ब्रह्मणोद्धरति। यत्पुरा धनमदायो स्यात्तद्द्यात्। तत्र प्रायश्चित्तिः। यदि त्वरेत पूर्वमग्निमन्ववसाय ततः प्राञ्चमुद्धृत्य जुहुयात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यदि प्रातरहुते ऽग्निहोत्रे ऽपरो ऽग्निरनुगच्छेदनुगमयित्वा पूर्वं मथित्वापरमुद्धृत्य जुहुयात्। सैव पूर्वो ऽग्निः। तं पश्चा करोति। अन्यत्रैवावसायाग्निं मथित्वोद्धृत्य जुहुयात्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। जामि नु तद्यो ऽस्य जनद्वते पावकवत इष्टिं निर्वपेत्। यदा वा अग्निः संतप्यते [ऽथ जायते। ओषधयः पावकाः। ओषधीरेवास्मै पावका

भागधेयमपिदधाति। न गार्हमनुबुध्यते। यदा ह्येवास्मै नापिदधात्यथैषो ऽनुगच्छति। यौ पन्थानावभितस्तौ दर्शपूर्णमासौ। या मध्ये सृतिस्तदग्निहोत्रम्। एवं वा अग्निहोत्रिणे दर्शपूर्णमासिने स्वर्गो लोको ऽनुभाति।।

[मनसा वा इमां प्रजापतिर्वेदिं पर्यगृह्णादग्निहोत्रिणे। तत्र यत्किंच ददाति तद्बर्हिष्यम्। यथा सत्रेषु नाराशंसेषु ददात्येवमेष ददाति। यत्किंच ददाति मध्य एव यज्ञस्य। द्यावापृथिवी एतस्य सदोहविर्धाने। अहोरात्राणीध्मः दिशः परिधयः। प्रुष्वाः प्रोक्षणीः। ओषधयो बर्हिः। यजमानो यूपः। न संभवन्वदेत्। पशुरेव भूत्वा संभवति। अहरहर्वै] पशवः संभवन्तो ऽथ मेध्याः। न राजन्यस्याग्निहोत्रमस्ति। अव्रत्यो हि स हन्ति। व्रतं न विच्छिन्द्यात्। पौर्णमासीं च रात्रीममावस्यां च जुहुयात्। ते हि व्रतं गोपायति। यान्यहानि न जुहुयात्तानि ब्राह्मणायाग्रे ऽस्य गृह उपहरेयुः। अग्निर्वै ब्राह्मणः। अग्नावेव तज्जुहोति। तदस्य स्वदितमेष्टं भवति ।।५।।

वाचा वै सह मनुष्या अजायन्त। ऋते वाचो देवाश्चासुराश्च। ते यन्मनुष्या अवदंस्तदेवाभवन्। ते देवाश्चासुराश्च प्रजापतिमब्रुवन्निमे वावेदमभूवन्निति। स वाचः सत्यं निरमिमीत भूर्भुवः स्वरिति। यत्तुरीयमनृतं तन्मनुष्येषु न्यदधात्। एतद्वै वाचो ऽनृतं यन्मनुष्या वदन्ति। भूरितीमामसृजताग्निं रथन्तरं त्रिवृतं गायत्रीम्। भुव इत्यन्तरिक्षं वातं वामदेव्यं त्रिष्टुभ पञ्चदशम्। स्वरिति दिवं सूर्यं बृहदेकविंशं जगतीम्। भूर्भुवः स्वरग्नौ ज्योतिर्ज्योतिरग्नावित्यग्निहोत्रं जुहुयात्। एतद्वै वाचः सत्यमेतन्मिथुनमेतद्ब्रह्म। तेनैव जुहोति। इमा एवैतदिष्टका उपधत्ते। इमा एवैतदिष्टका उपधायोत्तमं नाकं रोहति। उत्तमः समानानां भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते।।

वाचं यच्छेदग्निहोत्र उन्नीयमाने। तपसा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत। स यत्र व्यवहरत्तदेवातप्यत। सृष्टिर्वा एतद्यदग्निहोत्रम्। सृष्टिरेतद्व्रतम्। ता उद्भव स्थेत्युदभावयत्। यर्हि विन्दव इव स्युस्तर्ह्यवेक्षेतोद्भव स्थोदहं प्रजया प्र पशुभिर्भूयासमिति। उद्भूतिर्वा एतत्प्रभूतिर्यदग्निहोत्रम्। उत्प्रजया प्र पशुभिर्भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते। अग्निनावेक्षते। प्रजननं वा एतद्यग्निहोत्रम्। अग्निः प्रजनयिता। प्रैव जनयति। रेतो वा एतद्धीयते यदग्निहोत्रम्। न सुशृतं कुर्यादितः क्रूडयेत्। नो अशृतम्। अन्तरेवैव स्यात्। रुद्र मृडानार्भव मृड धूर्ते नमस्ते ऽस्त्विति हुत्वोदङ्ङुद्दिशेत्। एतानि वै रुद्रस्य क्रूराणि नामानि। तैरेष प्रजा हिनस्त्यग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानः। तान्येवास्य प्रतिनुदति तानि शमयति। यर्ह्ययं देवः प्रजा अभिमन्येत सजूर्जातवेदो दिवा पृथिव्या हविषो वीहि स्वाहेत्यग्निहोत्रं जुहुयात्। या वा अग्नेर्जातवेदास्तनूस्तयैष प्रजा हिनस्त्यग्निहोत्रे भागधेयमिच्छमानः। तामेवास्य शमयति। तस्यै तज्जुहोति। तदजाम्याहुत्योराग्नेय्येषाग्नेयीतरा। संवत्सरं वा एतमिन्धते ऽग्निं वैश्वानरम्। न वा एतस्य संवत्सरे ऽप्यस्ति न वैश्वानरे यो ऽनाहिताग्निः। यानि दारूणि ते मासाः। ये स्थूला अङ्गारास्त ऋतवः। ये ऽणीयांसस्ते ऽर्धमासाः। मुर्मुरा अहोरात्राणि। यत्सुवर्णं ज्योतिस्तद्बार्हस्पत्यम्। यत्र सुवर्णं न लोहितं तन्मैत्रम्। यल्लोहितं तद्वारुणम्। यत्सहधूमं तद्वैश्वदेवम्। यत्राङ्गारेभ्योग्निर्लेलायेव तदस्यास्यमाविर्नाम। तद्ब्रह्म। तस्मिन्होतव्यम्। मुखेन वा अश्नात्यङ्गान्यवत्याविः प्रजासु भवति श्वःश्वो वसीयान्भवति यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ।।६।।

ओदनपचनो गार्हपत्य आहवनीयो मध्याधिदेवनमामन्त्रणमेषा वै विराट् पञ्चपदा। तामेवाप्नोति तामवरुन्द्धे। यस्य ह्येषावरुद्धा स मनुष्याणां श्रेष्ठो भवति। यदि सायमग्निहोत्रस्य कालो ऽतिपद्येत दोषा वस्तोः स्वाहेति जुहुयात्। सैव तत्राहुतिः। तेनास्य तदनतिपन्नं भवति। यदि प्रातरग्निहोत्रस्य कालो ऽतिपद्येत दिवा वस्तोः स्वाहेति जुहुयात्। सैव तत्राहुतिः। तेनास्य तदनतिपन्नं भवति। न स्वाहाकुर्यात्। स्वाहाकारो वा अग्निहोत्रस्याहुतिं युवते। यर्हि वाक्प्रवदेत्तर्हि जुहुयात्। स ह्यग्निहोत्रस्य वषट्कारः। सजूरग्निर्दिवा पृथिव्येति द्यावापृथिवी अग्निं तानेव प्रीणाति तानवरुन्द्धे। सजूर्देवेन सवित्रेति। न हि सवितुर्ऋत आहुतिरस्ति। सजूः पूष्णान्तरिक्षेणेति। पशवो वै पूषा पशवो ऽन्तरिक्षम्। पशूनेवावरुन्द्धे। सजू रात्र्येन्द्रवत्या स्वाहेति रात्रीमेवैतदभिजुहोति। न ह्येन्द्रादृत आहुतिरस्ति। देवा वै पुराग्निहोत्रमहोषुः। तस्मात्पुरा बृहन्महानजनि। सजूरह्नेन्द्रवता स्वाहेति। बार्हतं वा अहर्बार्हतः सूर्यः। अहश्चैवास्यैतत्सूर्यश्चाभिजितावभिहुतौ भवतः। आनुष्टुभी वै रात्री त्रैष्टुभमहः। रात्रीं चैवैतदहश्चाभिजुहोति। अग्ने गृहपते जुषस्व

स्वाहेत्युत्तरामाहुतिं जुहोति। यथाग्रये समवद्यत्येवमेव तत्। अपिप्रेरग्रे स्वां तन्वमयाड् द्यावापृथिवी ऊर्जमस्मासु धेहीति तृणमक्त्वानुप्रहरति। संस्थितिरेवैषा स्वगाकृतिः। अग्निहोत्रस्य वा एषो ऽशान्तमनु प्रजा हिनस्ति यत्तृणमनुप्रहरति। तेनैवैनच्छमयति। अग्ने गृहपते ऽदाभ्य जुषस्व स्वाहेति स्रुवेण गार्हपत्ये जुहोति। यथा पत्नीः संयाजयत्येवमेव तत्। अनु वा एष एतद्ध्यायति यत्पश्चादधिश्रित्य पुरो जुहोति। यत्स्रुवेण गार्हपत्ये जुहोति तेनैवैनं प्रीणात्यननुध्यायिनं करोति। आस्याग्निहोत्री प्रजायां जायते यस्यैवमग्निहोत्रं हूयते ।।७।।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
आरे अस्मे च शृण्वते।।
अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम्।।
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति।।
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दाताराविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्।।
अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे।।
अयं ते योनिर्ऋत्वियः।।
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत्।।

त्वमग्ने सूर्यवर्चाः सं मामायुषा वर्चसा सृज। सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथाः। समृषीणां स्तुतेन सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मीय।।
इन्धानास्त्वा शतं हिमा द्युमन्तः समिधीमहि।
वयस्वन्तो वयस्विनं यशस्वन्तो यशस्विनम्।
सुवीरासो अदाभ्यमग्ने सपत्नदम्भनम्।।

आयुर्धा अग्ने ऽस्यायुर्मे धेहि। वयोधा अग्ने ऽसि वयो मे धेहि। वर्चोधा अग्ने ऽसि वर्चो मे धेहि। तनूपा अग्ने ऽसि तन्वं मे पाहि। यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्म आपृण। अग्नेः समिदस्यभिशस्त्या मा पाहि। सोमस्य समिदसि परस्पा म एधि। यमस्य समिदसि मृत्योर्मा पाहि। अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अग्ने यत्ते शोचिस्तेन तं प्रतिशोच यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अग्ने यत्ते तेजस्तेन तं प्रतितितिग्धि यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अग्ने यत्ते ऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अग्ने यत्ते हरस्तेन तं प्रतिहर यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अग्ने रुचां पते नमस्ते रुचे मयि रुचं धेहि। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय। अर्वाग्वसो स्वस्ति ते पारमशीय ।।८।।

इति कपिष्ठलकठसंहितायां चतुर्थो ऽध्यायः।।

अम्भ स्थाम्भो वो भक्षीय। मह स्थ महो वो भक्षीय। ऊर्ज स्थोर्जं वो भक्षीय। रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय। रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन्गोष्ठे। अयं वो बन्धुः। इतो मापगात। मा मा हासिष्ट। बह्वीर्मे भवन्तु। संहितासि विश्वरूपा मोर्जा विशा गौपत्येना प्रजया रायस्पोषेण। मयि ते रायः श्रयन्ताम्। सहस्रपोषं ते पुष्यासम्।। संपश्यामि प्रजा अहमिडप्रजसो मानवीः।

बह्वीर्भवन्तु नो गृहे।।
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।।
राजन्तमध्वराणा गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे।।
स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्।।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्।। इडा स्थ मधुकृतः स्योना ऊर्जा वः पश्याम्यूर्जा मा पश्यत। रायस्पोषेण वः पश्यामि रायस्पोषेण मा पश्यत। इडा स्थ मधुकृतः स्योना

मा विशतेरंमदः। मयि वो रायः श्रयन्ताम्। सहस्रपोषं वः पुष्यासम् ।।१।।
महि त्रीणामवो ऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।
दुराधर्षं वरुणस्य।।
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु।
ईशे रिपुरघशंसः।।
यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्।।
सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।
कक्षीवन्तं य औशिजः।।
यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः।
स नः सिषक्तु यस्तुरः।।
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते।।
कदा चन स्तरीरसि।।
परि ते दूडभो रथो ऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः।
येन रक्षसि दाशुषः।।

अच्छिन्नो दैव्यस्तन्तुर्मा मनुष्यश्छेदि। निम्रदो ऽसीदमहं तं निमृणामि यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अभिभूरस्यभ्यहं तं भूयासं यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। प्रभूरसि प्राहं तमतिभूयासं यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। पूषा मा प्रपथे पातु। पूषा मा पशुपाः पातु। पूषा माधिपतिः पातु। प्राची दिगग्निर्देवता। अग्निं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। दक्षिणा दिगिन्द्रो देवता। इन्द्रं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। प्रतीची दिक्सोमो देवता। सोमं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। उदीची दिङ् मित्रावरुणौ देवता। मित्रावरुणौ स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिर्देवता। बृहस्पतिं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। इयं दिगदितिर्देवता। अदितिं स ऋच्छतु यो मैतस्या दिशो ऽभिदासति। ज्योतिषे तन्तव आशिषमाशासे ऽसावनु मा तनु।।
धनं मे शंस्य पाहि। तन्मे गोपाय।।

मम नाम प्रथमं जातवेदो माता पिता च दधन्तुर्वग्रे।
तत्त्वं गोपाया पुनर्मदैतोस्तवाहमग्ने बिभराणि नाम।।
प्रजां मे नर्य पाहि। तां मे गोपाय।।
इमान्मे मित्रावरुणौ गृहान्गोपायतं युवम्।
अविनष्टानविहुतान्पूषैनानभिरक्षत्वास्माकं पुनरागमात्।।
अन्नं मे पुरीष्य पाहि। तन्मे गोपाय।।
धनं मे शंस्याजुगुपः। तन्मे पुनर्देहि।।
मम च नाम तव च जातवेदो वाससी इव विवसानौ चरावः।
ते बिभृवो महसे जीवसे च यथायथं नौ तन्वौ जातवेदः।।
अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेजः शतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।
साहस्रो वाजो ऽसि। तस्य नो रास्व। तस्य ते भक्तिवानो भूयास्म।।

प्रजां मे नर्याजुगुपः। तां मे पुनर्देहि। अग्ने गृहपते सुगृहपतिरहं त्वया गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिर्मया त्वं गृहपतिना भूयाः। अस्थूरि णौ गार्हपत्यं दीदायच्छतं हिमाः।।
अन्नं मे पुरीष्याजुगुपः। तन्मे पुनर्देहि ।।२।।

अग्निहोत्रे स्तोमो योक्तव्यः। यस्य वा अग्निहोत्रे स्तोमो युज्यते वसीयान्भवति। उपप्रयन्तो अध्वरमिति। प्रजा वा इमा उप। ताः सत्सत्स्तोमः। ता एवोपयुनक्ति। अस्य प्रत्नामनु द्युतमिति। देवा वै प्रत्नम्। ते सत्सत्स्तोमः। तानेव प्रायुङ्क्त स्वर्गाय। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु त इति। इयं वा उप। स्वर्गमेवेत्वास्यां प्रतितिष्ठति। या वै प्रजा आभविष्यन्तीस्ता उप। ता एवोपयुनक्ति। परि ते दूडभो रथ इति स्तोममेवैतया युक्तं परिगृह्णाति। अग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्येषा मिथुना रेतस्वती पशव्या। यासौ धुरां गायत्री प्रथमा सैषा गायत्र्योपास्थित। उभा वामिन्द्राग्नी इति। सूर्यो वा इन्द्रः। सो ऽग्निं नक्तं प्रविशति। उभा वेवैनौ सहेट्टे। यासौ धुरां त्रिष्टुप्प्रथमा सैषा त्रिष्टुभोपास्थित। अयमिह प्रथमो धायीति। अग्निर्ह्येवास्मिंल्लोक इह प्रथमो ऽधीयत। यासौ धुरां जगती प्रथमा सैषा जगत्योपास्थित। अयं ते योनिर्ऋत्विय इति। इयं ह्यग्नेर्योनिरग्निः। सूर्यस्य। यासौ धुरामनुष्टुप्प्रथमा सैषानुष्टुभोपास्थित।।

दधिक्राव्णो अकारिषमिति। एषा वा अग्नेः पशव्या तनूर्या दधिक्रावती। तामेवास्य गृह्णाति। तयस्थायुका एनं पशवो भवन्ति। पशुर्वा अग्निः। यथा वै गोर्जीर्यति यथाश्व एवमेष आहितो जीर्यति। अग्न्याधेयस्याग्निभिरुपस्थेयः। तन्वो वा अस्यैताः। ताभिरेवैनं पुनर्णवं करोति। यच्छन्दोभिरुपतिष्ठते तैरेवैनं पुनर्णवं करोति। यथाग्र आहित एवमस्य भवति। उपतिष्ठते। योग एवास्यैषः। याच्ञ एवास्यैषः। यथा श्रेयस आहृत्य नमस्यत्येवमेव तत् ।।३।।

अग्नीषोमीयया पूर्वपक्ष उपतिष्ठेत। अग्नीषोमयोर्वा एतद्भागधेयं यत्पौर्णमासम्। ताभ्यामेवैनं परिददाति। तावेनमनुपक्रामन्तौ गोपायतः। ऐन्द्राग्न्यापरपक्षे। इन्द्राग्न्योर्वा एतद्भागधेयं यदमावस्या। ताभ्यामेवैनं परिददाति। तावेनमनुपक्रामन्तौ गोपायतः। अग्नीषोमावेवैनं पूर्वपक्षाय परिदत्तः। इन्द्राग्नी अपरपक्षाय। संप्रदायं ह वा एनं देवा अनुपक्रामन्तो गोपायन्ति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते। कस्मै कमग्निरुपस्थीयत इत्याहुः। अशित्रं वा एतदग्नेर्यदग्निमुपतिष्ठते। अग्नय एवैतदशित्रं क्रियते। सायमुपतिष्ठते न प्रातः। तस्मात्सायमतिथये प्रत्येनसो नोत तथा प्रातः। यज्ञस्ययज्ञस्य वा आशीरस्ति यदग्निमुपतिष्ठते। अग्निहोत्रस्यैवैतामाशिषमाशास्ते। प्रजापतिः प्रजा असृजत। सो ऽग्निमेवाग्रे ऽसृजत। सो ऽस्मा एतद्भागधेयमपश्यद्यदग्न्युपस्थानम्। यदग्निमुपतिष्ठते स्वेनैवैनं भागधेयेन समर्धयति। अग्निर्वै प्रयुक्तिमभ्यकामयत यथाश्वो रथकाम्यति। यदग्निमुपतिष्ठते प्रैवैनं युङ्क्ते। काममस्यर्ध्नोति। मनुष्यस्येन्नु यः काममृध्नोति स वसीयान्भवति। ऋध्नोति वसीयान्भवति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते। उपेति संभवत्येवैतया।

अग्निर्मूर्धेति रेत एवैतया प्रसिञ्चति। उभा वामिन्द्राग्नी इति प्राणापानावेवैतया दधाति। अयमिह प्रथमो धायीति गर्भमेवैतया दधाति। अस्य प्रत्नामनुद्युतमित्युप एवैतया करोति। अयं ते योनिर्ऋत्विय इति जनयति चैवैतया वर्धयति च। कल्पता ह वा अस्य प्रजा जायते य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते ॥४॥

अहर्वै देवानामासीद्रात्र्यसुराणाम्। ते देवास्तमसो ज्यसो मृत्यो रात्र्या अध्यात्स्वमानादबिभयुः। ते छन्दोभिरग्निमन्वारभन्त गायत्र्या वसवस्त्रिष्टुभा रुद्रा जगत्यादित्या। अभ स्थेति पशव इन्धाना इति मनुष्याः। ते देवास्तमसो ज्यसो मृत्यो रात्र्याः पारमायन्। यच्छन्दोभिरग्निमुपतिष्ठते तमस एवैतज्यसो मृत्यो रात्र्याः पारतीर्तिः। त्वमग्ने सूर्यवर्चा इत्यग्नय एवैतामाशिषमाशास्ते। सं मामायुषा वर्चसा सृजेत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते। सं त्वमग्ने सूर्यस्य ज्योतिषागथा इत्यग्नय एवैतामाशिषमाशास्ते। [समृषीणा स्तुतेनेति। छन्दांसि वा ऋषीणां स्तुतम्। छन्दोभिरेवैनं समर्धयति। सं प्रियेण धाम्नेति। पशवो वा अग्नेः प्रियं धाम। पशुभिरेवैनं समर्धयति।] समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मीयेत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते। [इन्धानास्त्वा शतं हिमा इति। एतद्ध वै दाशर्म आरुणिमुवाचाग्निमादधिवांस्समुद्गाता केनाग्निमुपस्थेय इति। तस्मै हैतदग्न्युपस्थानमुवाच। स होवाचानयोपस्थेय इन्धानास्त्वा शतं हिमा इति। यो वा एतयोपतिष्ठते पापीयानस्माद्भ्रातृव्यो भवति पापीयान्सपत्नः। सर्वमायुरेति। आ जीवितोरश्नुते। आयुर्दा अग्ने ज्यायुर्मे धेहीत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते। वयोधा अग्ने ऽसि वयो मे धेहीत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते। तनूपा अग्ने ऽसि तन्वं मे पाहीत्यात्मन एवैतामाशिषमाशास्ते।] यन्मे अग्न ऊनं तन्वस्तन्म आपृणेति यदेवास्योनमात्मनस्तदापूरयते। अग्नेः समिदस्यभिशस्त्या मा पाहीति सर्वस्मादेवैनमेताः पान्तु। अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रतितप यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति तेनैवैनं प्रतितपति प्रतिशोचति प्रतितित्यक्ति प्रत्यर्चति प्रतिहरति। एतद्ध वा आरुणिरुवाचैतेन वाह सर्वान्सपत्नान्सर्वान्भ्रातृव्यानभ्यभवमिति। श्रेयाञ्छ्रेयानात्मना [भवति पापीयान्पापीयान्य एनं द्वेष्टि यो ऽस्मा अरातीयति य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते। ... ॥५॥]

... [यत्पुत्रं ह्वयति] प्रजामेवानुसंतनोति। नास्यात्मनः प्रजा पापीयसी भवति। मानुषमिव वा एतदुपावर्तते यत्पुत्रं ह्वयति। अच्छिद्रो दैव्यस्तन्तुर्मा मनुष्यश्छेदीति देवलोकं चैव मनुष्यलोकं च संतनोति। उभौ लोकावाजयति। निम्रदो ऽसीत्यव तं गृह्णाति यो ऽस्य पश्चाद्भ्रातृव्यः। अभि तं भवति य एनेन सदृङ्। अति तं क्रामति यो ऽस्मात्पूर्वः। पूषा मा प्रपथे पात्विति। इयं वै पूषा प्रपथे। अन्तरिक्षं पशुपाः। द्यौरधिपतिः। इम एवैनं लोकाः पान्तु। अग्निं समिन्धे ऽनुमत्यै। प्राची दिगग्निर्देवतेत्येता एव स देवता आच्छिनि य एनमेताभ्यो दिग्भ्यो ऽभिदासति। ज्योतिषे तन्तव आशिषमाशास इत्याशिषमेवाशास्ते। यो ऽस्य प्रियः पुत्रः स्यात्तस्य नाम गृह्णीयात्। तस्मिन्नेव ता आशिषो दधाति ॥८॥

अहर्वावासीन्न रात्रिः। सा यमी भ्रातरं मृतं नामृष्यत। तां यदपृच्छन्यमि कर्हि ते भ्रातामृतेत्यद्येत्येवाब्रवीत्। ते देवा अब्रुवन्नन्तर्दधामेद रात्रिं करवामेति। ते रात्रिमकुर्वन्। ते रात्र्यां भूतायां पशूनपश्यन्। सावेत्र वै पश्यन्तीति। सा न व्यौच्छदेकस्त्वस्त्पशु। तान्देवा इच्छन्तः पर्यायन्त। तांश्छन्दोभिरन्वपश्यन्। तस्माच्छन्दोभिर्नक्तमग्निरुपस्थेयः पशूनामनुख्यात्यै। नास्मात्पशवस्तिरोभवन्ति। सावेदनु मा स्वप्स्यन्तीति। सा व्यौच्छत्। ते देवा अब्रुवन्नमा वै नो वस्वभूदिति। सामावस्या। अमा ह वा अस्य वसु भवति विन्दते ऽन्यस्य वसु नास्यान्यो वसु विन्दते य एवं विद्वानग्निमुपतिष्ठते।

देवा वा अह्नो रक्षांसि निरघ्नन्। तानि रात्रिं प्राविशन्। तां देवा न व्येतुमधृष्णुवन्। त इन्द्रमब्रुवंस्त्वं वै न ओजिष्ठो ऽसि त्वमिमां वीहीति। स्तुत मेत्यब्रवीत्तमस्तुतो वीर्यं कर्तुमर्हामीति। ते ऽब्रुवन्नय ते ऽग्निर्नैदिष्ठमेष त्वा स्तौत्विति। तमग्निरस्तौत्। स स्तुतः सर्वा मृधः सर्वाणि रक्षांस्यतरत्। इन्द्रो यजमानः। यदग्निमुपतिष्ठते सर्वा एव मृधः सर्वाणि रक्षांसि तरति। नास्य नक्तं रक्षांसीशते य एवं वेद। त्वष्टा वै भूत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत। त्वष्टा यजमानः। यद्वै

वाचा वदति तद्भवति। यद्यदेवैतदुद्वदति तत्तद्भवति तत्तत्सृजते ॥९॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां पञ्चमो ऽध्यायः॥

धनं मे शंस्य पाहीति। आहवनीयो वै शंस्यः। तस्मा एव धनं परिददाति प्रवत्स्यन्। सो ऽस्य धनं प्रवसतो गोपायति। मम नाम प्रथमं जातवेद इति तन्वावेवैतेन विपरिदधाते विप्रवसन्तौ। न ह प्रवसन्नार्तिमार्छति य एवं विद्वानग्निमुपस्थाय प्रवसति। प्रजां मे नर्य पाहीति। गार्हपत्यो वै नर्यः। तस्मा एव प्रजां परिददाति प्रवत्स्यन्। सो ऽस्य प्रजां प्रवसतो गोपायति। इमान्मे मित्रावरुणाविति। अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ। इयं पुषा। तेभ्य एव गृहान् परिददाति प्रवत्स्यन्। ते ऽस्य गृहान्प्रवसतो गोपायन्ति। अन्नं मे पुरीष्य पाहीति। ओदनपचनो वै पुरीष्यः। तस्मा एवान्नं परिददाति प्रवत्स्यन्। सो ऽस्यान्नं प्रवसतो गोपायति।

धनं मे शंस्याजुगुप इत्याहवनीयं पुनरेत्यापान्योपतिष्ठते। आहवनीयो वै शंस्यः। तेनैव धनं गुप्तम्। तदपानेनात्मन्धत्ते। मम च नाम तव च जातवेद इति तन्वावेवैतेन व्याकरोत्यात्मनश्चाग्नेश्च यौ विप्रवसन्तौ विपरिदधातो। अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेज इति। सर्वेण वा एतौ तेजसा सर्वैः प्राणैः सर्वेणेन्द्रियेण व्यृध्येते विप्रवसन्तौ। तान्येवैतेनात्मन्श्चाग्नौ च दधाति। प्रजां मे नर्याजुगुप इति गार्हपत्यं पुनरेत्योपतिष्ठते। गार्हपत्यो वै नर्यः। तेनैव प्रजा गुप्ता। तामपानेनात्मन्धत्ते। अग्ने गृहपत इति शतं समा जीवतो नार्तिमार्छतः। अन्नं मे पुरीष्याजुगुप इत्योदनपचनं पुनरेत्यापान्योपतिष्ठते। ओदनपचनो वै पुरीष्यः। तेनैवान्नं गुप्तम्। तदपानेनात्मन्धत्ते ॥१॥

यो अश्वत्थः शमीगर्भ आरुरोह त्वयपि।
तं ते हरामि यज्ञियैः केतुभिः सह॥
मयि गृह्णाम्यहमग्रे अग्निं रायस्पोषेण सह वर्चसेह देवाः।
मयि प्रजां मयि पुष्टिं दधामि मदेम शतहिमाः सुवीराः॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तरमर्त्यो मर्त्यां आविवेश।
तमात्मनि परिगृह्णीमहे वयं मैषो अस्मानवहाय परागात्॥
सं वः सृजामि हृदयं संसृष्टं मनो अस्तु वः।
संसृष्टास्तन्वः सन्तु वः संसृष्टः प्राणो अस्तु वः।
सं वः प्रियास्तन्वः संप्रिया हृदयानि वः।
आत्मा वो अस्तु संप्रियः संप्रियास्तन्वो मम॥
यत्पृथिव्या अनामृतं संबभूव त्वे सचा।
तदग्निरग्नये ददत्तस्मिन्नाधीयतामयम्॥
यदन्तरिक्षस्य यद्दिवो अनामृतं संबभूव त्वे सचा।
तदग्निरग्नये ददत्तस्मिन्नाधीयतामयम्॥

अग्ने गृहपते उद्वे बुध्न्य परिषद्य दिवः पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाल्लोकं विन्द यजमानाय पृथिव्या मूर्धन्सीद यज्ञिये लोके यो। नो अग्ने निष्ट्यो यो ऽनिष्ट्यो ऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि। ..... यजमानाय पृथिव्या मूर्धन्सीद यज्ञिये लोके। यो नो अग्ने निष्ट्यो यो ऽनिष्ट्यो ऽभिदासतीदमहं तं त्वयाभिनिदधामि॥
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन्हव्या जुहोतन॥
उदग्ने तव तद्घृतादर्ची रोचत आहुतम्।
निसानं जुह्वो मुखे॥

घृतेनाग्निः समिध्यते मधुप्रतीक आहुतः।
रोचमानो विभावसुः॥
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवि याः पृथिव्याम्।
ताभिः संभूय सगणः सजोषा हिरण्ययोनिर्वह हव्यमग्ने ॥२॥

या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः पशुषु पवमाना तामावह। तया मा जिन्व। या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूरप्सु पावका तामावह। तया मा जिन्व। या वाजिन्नग्नेः प्रिया तनूः सूर्ये शुक्रा शुचिमती तामावह। तया मा जिन्व। ओजसे बलाय त्वोद्यच्छे वृष्णे शुष्माय। सपत्नतूरसि वृत्रतूः॥
प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्ने भवेह।
विश्वा आशा दीद्यद्विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥
नाको ऽसि ब्रध्नो ऽसि प्रतिष्ठा संक्रमणः॥

सं त्वमग्ने दिव्येन ज्योतिषा भाहि समन्तरिक्ष्येण सं पार्थिवेन। वैश्वानर्या समिधा दीदिहि न ऊर्जस्वत्या वर्चस्वत्या भान्वत्या रश्मिवत्या ज्योतिष्मत्या॥
ये अग्नयो दिवो ये अन्तरिक्षाद्
पृथिव्याः समाजग्मुरिषमूर्जं वसानाः।
ते अस्मा अग्नये द्रविणानि दत्त्वा
तृप्ताः प्रीताः पुनरस्तं परेत॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥
ये अग्नयः समनसः सचेतस ओषधीष्वप्सु प्रविष्टाः।
ते सत्राज्ञमभिसंयन्तु सर्वे ऊर्जं नो धत्त द्विपदे चतुष्पदे॥

या ते अग्ने पवमाना तनूः पृथिवीमन्वाविवेश याग्नौ या रथन्तरे या गायत्रे छन्दसि या त्रिवृति स्तोमे तां त एतदवरुन्धे। तस्यै स्वाहा। या ते अग्ने पावका तनूरन्तरिक्षमन्वाविवेश या वाते या वामदेव्ये या त्रैष्टुभे छन्दसि या पञ्चदशे स्तोमे तां त एतदवरुन्धे। तस्यै स्वाहा। या ते अग्ने शुचिस्तनूर्दिवमन्वाविवेश या सूर्ये या बृहति या जागते छन्दसि या सप्तदशे स्तोमे तां त एतदवरुन्धे। तस्यै स्वाहा ॥३॥

वातः प्राणः। तदयमात्मा। पुरीष्यमसि संप्रियः पशुभिः। चक्षुः तोकाय तनयाय शं योः। घर्मः शिरः। तदयमग्निः। पुरीष्यमसि संप्रियः पशुभिः। स्वदितं नः पितुं पच। अर्कश्चक्षुः। तदसौ सूर्यः। पुरीष्यमसि संप्रियः पशुभिः। यत्ते शुक्र शुक्रं धाम शुक्रा तनूः शुक्रं ज्योतिरजस्रं यत्ते ऽनाधृष्टं नामानाधृष्यं तेन त्वादधे॥
धर्मणासि भूमिर्भूम्ना। तस्यास्ते देव्यदिते ऽपस्थे ऽन्नादमन्नाद्यायात्स्यादधे॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥
अस्य प्राणादपानत्यन्तश्चरति रोचना।
व्यख्यन्महिषो दिवम्॥
त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गो अशिश्रयुः।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥४॥

अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्। तमुच्छिष्टमाश्नात्। सा गर्भमधत्त। तत आदित्या अजायन्त। य एष ओदनः पच्यत आरम्भणमेवैतद्। आक्रमणमेव। प्रादेशमात्रीः समिधो भवन्ति। एतावानुह्यात्मा प्रजापतिना संमितः। अग्नेर्वै

या यज्ञिया तनूरश्वत्थे तया समगच्छत। एषास्य घृत्या तनूर्यद्घृतम्। यद्घृतेन समिधो ऽनक्ति ताभ्यामेवैनं तनूभ्यां संगमयति। निर्मार्गस्यादधाति। अपगूर्त्यां वै वीर्यं क्रियते। यन्निर्मार्गस्यादधात्यपगूर्त्या एव। संवत्सरो वै प्रजननमग्निः प्रजनयिता। तत्प्रजननं यत्पुरा संवत्सरादग्नौ समिध आदधाति। प्रजननादेवैनं प्रजनयिता प्रजनयति। अभक्तर्तुर्वै पुरुषः। न हि तद्वेद यमृतुमभिजायते यन्नक्षत्रम्। यत्समिध आदधाति य एवास्यर्तुर्यन्नक्षत्रं तदाप्नोति। य एष ओदनः पच्यते योनिरेवैष क्रियते। यत्समिध आधीयन्ते रेत एवैतद्धीयते। संवत्सरे वै रेतो हितं प्रजायते। यत्संवत्सरे पर्येतेऽग्निमाधत्ते प्रजातमेवैनमाधत्ते। द्वादशसु रात्रीषु पुराधेयाः। ता हि संवत्सरस्य प्रतिमा। अथो तिसृष्वथो द्वयोरथो पूर्वेद्युराधेयास्त एवाग्निमादधानेन। आदित्या वा इत उत्तमा अमुं लोकमायन्। ते पथिरक्षयः। त इयक्षमाणं प्रतिनुदन्ते। उच्छेषणभागा वा आदित्याः। यदुच्छिष्टेन समिधो ऽनक्ति तेभ्य एव प्रावोचत। तेभ्य एव प्रोच्य स्वर्गं लोकमारोहति ॥५॥

दिशो वै नाकल्पन्त न प्राज्ञायन्त। तत एतामग्नये प्राचीं दिशमरोचयन्यत्कृत्तिकाः। यत्कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते प्राच्यामेवैनं दिश्याधत्ते। एष वावैकः प्राङवस्यति य आहिताग्निः। प्रत्यञ्चो ऽन्ये। आग्नेयमेतन्नक्षत्रं यत्कृत्तिकाः। यत्कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते स्व एवैनं नक्षत्र आधत्ते। प्रजापतेर्वा एतच्छिरो यत्कृत्तिकाः। यत्कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते शीर्षण्यो मुख्यो भवति। सप्त वै कृत्तिकाः। सप्त शीर्षण्याः प्राणाः। प्राणा इन्द्रियाणि। प्राणानेवेन्द्रियाण्याप्नोति। [रोहिण्यामाधेयः]। रोहिण्यां वा एतं देवा आदधत। तया रोहमरोहयन्। तद्रोहिण्या रोहिणीत्वम्। रोहिण्यां वा एतं प्रजापतिराधत्त। तया रोहमरोहयत्। तद्रोहिण्या रोहिणीत्वम्। एष वै मनुष्यस्य स्वर्गो लोको यदस्मिंल्लोके वसीयान्भवति। ऋद्ध्या एव रोहिण्यामाधेयः॥

कालकाञ्जा वै नामासुरा आसन्। त इष्टका अचिन्वत। तदिन्द्र इष्टकामप्युपाधत्त। तेषां मिथुनौ दिवमाक्रमेताम्। ततस्तामावृहत्। ते ऽवाकीर्यन्त। तावेतौ दिव्यौ श्वानौ। यो व्यवृह्यत स एष ऊर्णवाभिः स्वैरान्तैः संतितंसति। ओजो वावैषां तद्वीर्यमाधत्त। ओज एव वीर्यं भ्रातृव्यस्याधत्ते यच्चित्रायामग्निमाधत्ते। तदेतदैन्द्रं नक्षत्रमभिभूतिमत्। पूर्वासु फल्गुनीष्वादधीत यः कामयेत भगी स्यामिति। भगस्य वा एतन्नक्षत्रम्। भगी भवति। उत्तरास्वादधीत यः कामयेत दानकामा मे प्रजाः स्युरिति। अर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रम्। एषो ऽर्यमा यो ददाति। दानमिमाः प्रजा उपजीवन्ति। दानकामा अस्मै भवन्ति। राजन्यस्यादध्यात्। राजन्यो हि दानमुपजीवति। वसन्ते ब्राह्मणेनाधेयः। वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः। स्व एवैनमृतावाधत्ते। तेजो ब्रह्मवर्चसमुपाधत्ते। ग्रीष्मे राजन्येनाधेयः। ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुः। स्व एवैनमृतावाधत्ते। ओजो वीर्यमुपाधत्ते। शरदि वैश्येनाधेयः। शरद्वै वैश्यस्यर्तुः। स्व एवैनमृतावाधत्ते। ऊर्जं पशूनुपाधत्ते। सोमेन यजा इति वा अग्निमाधत्ते। यस्मिन्नेव कस्मिंश्चर्तावादधीत सोमेन यक्ष्यमाणः। एतद्ध्यवर्धयद्यः सोमेन यजते। फल्गुनीपूर्णमास आधेयः। एतद्वा ऋतूनां मुखम्। ऋतुमुख एवैनमाधत्ते। [शिशिर आधेयः। शिशिरं वा अग्नेर्जन्म। प्रजातमेवैनमाधत्ते।] सर्वासु दिक्ष्वृध्नवानीति वा अग्निमाधत्ते। सर्वासु दिक्ष्वग्निः शिशिरे। सर्वास्वेव दिक्ष्वृध्नोति यः शिशिरे ऽग्निमाधत्ते। पूर्णमासे वामावस्यायां वादधीत। एतद्वै पुण्याहम्। पुण्याह एवैनमाधत्ते। तस्मादिष्ट्या वाग्रायणेन वा पशुना वा सोमेन वा पूर्णमासे वामावस्यायां वा यजेत। एष वै यज्ञः। यज्ञमेव प्रति यज्ञमालभते ॥६॥

यद्वा इमे व्यैतां यदमुष्या यज्ञियं तदिमामभ्यसृज्यतोषाः। यदूषा भवन्त्यनयोरेवैनं यज्ञिय आधत्ते। प्राजापत्या वा एते। श्वःश्वो भूयांसो भवन्ति। प्रजननायैवैते। पशूनां वा एतत्प्रियं धाम। यदूषा भवन्ति पशूनामेव प्रियं धामोपाप्नोति। अलेलेद्वा इयं पृथिवी। साबिभेदग्निर्मातिधक्ष्यतीति। अबिभेदग्निर्हरो मे विनेक्ष्यतीति। आर्द्रेव हीयमासीत्। तां देवाः शर्कराभिरदृंहन्। तेजो ऽस्यावदधुः। यच्छर्करा भवन्तीमामेव दृंहति। तेजो ऽग्नौ दधाति। अभिमृता वा इयं वृत्रेण। वम्रियस्त्वै तद्विदुर्यत्रास्या जीवं यज्ञियम्। यद्वल्मीकवपा भवत्यस्या एवैनं जीवे यज्ञिय आधत्ते। आपो वा इदमासन्। सलिलमेव स प्रजापतिर्वराहो भूत्वोपन्यमज्जत्। तस्य यावन्मुखमासीत्तावतीं मृदमुदहरत्। सेयमभवत्। यद्वराहविहतं भवत्यस्यामेवैनं प्रत्यक्षमाधत्ते। वराहो वा अस्यामन्नं पश्यति। तस्मा इयं विजिहीते। यद्वराहविहतं भवति

तदेवान्नमवरुंद्धे। यत्तदादत्त तददितिर्यदप्रथत तत्पृथिवी यदभवत्तद्भूमिः। यद्गृहविहतं भवति प्रथत एव प्रजया पशुभिः। नाना वै पशूनामन्नान्यन्यद्गोरन्नमन्यदश्वस्यान्यदवेरन्यदजाया अन्यत्पुरुषस्य। आपोऽन्नम्। यदप उपसृजति यावदेवान्नं तदवरुंद्धे। पञ्चैते संभाराः। पञ्च वै पुरुषे वीर्याणि। करोत्यनया वीर्यं करोत्यनया करोत्यननेन। यावदेव वीर्यं तदाप्नोति। पञ्चैते संभाराः। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुंद्धे। न वा ऋत ऊर्जो ऽन्नं धिनोति। ऊर्गुदुम्बरः। यदौदुम्बराणि भवन्त्यत्र एवोर्जं दधाति। शमीमयानि भवन्ति मिथुनत्वाय। अग्निं वै सृष्टं प्रजापतिस्तं शम्याग्रे समैंद्ध। यच्छमीमयानि भवन्ति स्वयैवैनं समिधा समिंद्धे। अश्वो वै भूत्वाग्निर्देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। स यत्रातिष्ठत्तदश्वत्थः समभवत्। तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम्। यदाश्वत्थानि भवन्ति यदेवास्य तत्र न्यक्तं ततः संभरति। अग्निर्वै मनुष्यैर्देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। तं देवा अमन्यन्तायं वावेदं भविष्यतीति। तस्य मरुत स्तनयित्नुना हृदयमाच्छिन्दन्। सा दिव्याशनिरभवत्। यद्वृक्षस्याशनिहतस्य भवन्ति यदेवास्य तत्र न्यक्तं ततः संभरति। पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति पाङ्क्तत्वाय ।।७।।

अष्टसु प्रक्रामेषु ब्राह्मणेनाधेयः। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रच्छन्दा ब्राह्मणः। स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते। यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेनं स्वं छन्दो जिन्वति। एकादशसु प्रक्रामेषु राजन्येनाधेयः। एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्। त्रिष्टुप्छन्दा राजन्यः। स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते। यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेनं स्वं छन्दो जिन्वति। [द्वादशसु प्रक्रामेषु वैश्येनाधेयः। द्वादशाक्षरा जगती। जगच्छन्दा वैश्यः। स्वस्यैवैनं छन्दसः प्रात्येनस्य आधत्ते। यथा पिता पुत्रं जिन्वत्येवमेनं छन्दो जिन्वति।] अपरिमितमवरुणधा इति वा अग्निमाधत्ते। अपरिमित आधेयो ऽपरिमितस्यावरुद्ध्ये यावति चक्षुषा मन्येत तावत्यादधीत। सत्यं वै चक्षुः। सत्य एवैनमाधत्ते। पूर्वाह्ण आधेयः। एतद्वै पुण्याहम्। पुण्याह एवैनमाधत्ते। व्युष्टायां पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः। एतस्मिन्वै लोके प्रजापतिः प्रजा असृजत। ताः प्राजायन्त। प्रजननायैवमाधेयः। आग्नेयी वै रात्र्यैन्द्रमहः। यदुदिते सूर्य आदधीताग्नेयाद्वर्णादियात्। यदनुदित ऐन्द्रात्। अनुदिते ऽपर आधेय उदिते पूर्वः। उभावेवेन्द्राग्न्योर्वर्णावाप्नोति। असुर्या वै रात्री वर्णेन शुक्रियमहः। शुक्रिय आधत्ते यदुदिते सूर्य आधत्ते। नक्तं वा अनुदितेन दिवोदितेन। दिवाधत्ते यदुदिते सूर्य आधत्ते। न वै सु विदुरिव मनुष्या नक्षत्रम्। मीमांसन्त इव ह्युदितेन वाव पुण्याहम्। पुण्याह आधत्ते यदुदिते सूर्य आधत्ते।।

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तर्षयः सप्त धाम प्रियाणि।

सप्त होत्रा अनु विद्वान्सप्त योनीरापृणस्व घृतेन।।

इति यावतीर्वा अग्नेस्तन्वः। यो वा अस्य ता आदधानो वितर्पयति वि ह तृप्यति। एतावतीर्वा अग्नेस्तन्वः षोढा सप्तसप्त। ता एवास्य प्रीणाति। न वितृप्यति। पूर्णया स्रुचा जुहोति। पूर्णः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति ।।८।।

अङ्गिरसां त्वा देवानां व्रतेनादध इति ब्राह्मणेनाधेयः। ये वै देवानामङ्गिरसस्ते ब्राह्मणस्य प्रत्येनसोऽग्निर्वायुर्वाग्बृहस्पतिः। ततोबंधुरस्य यज्ञस्ततआयनः। यतोबन्धुरेवास्य यज्ञो यतआयनः। तत एनं प्रतीच्छति। इन्द्रस्य त्वा मरुत्वतो व्रतेनादध इति राजन्येनाधेयः। ये वै देवानां राजानस्ते राजन्यस्य प्रत्येनस इन्द्रो वरुणो धाता त्वष्टा। ततो बन्धुरस्य यज्ञस्ततआयनः। यतोबंधुरेवास्य यज्ञो यतआयनः। तत एनं प्रतीच्छति। मनोस्त्वा ग्रामण्यो व्रतेनादध इति वैश्येनाधेयः। मरुतो वै देवानां विशः। ते वैश्यस्य प्रत्येनसः। ततोबन्धुरस्य यज्ञस्ततआयनः। यतोबन्धुरेवास्य यज्ञो यतआयनः। तत एनं प्रतीच्छति।

इडा वै मनावासीत्। सासुरानग्निमादधानानगच्छत्। त आहवनीयमग्र आदधताथ गार्हपत्यमथौदनपचनम्। तानब्रवीदाप्त्वा श्रियं प्रत्यवारुक्षन्पुण्या भविष्यन्ति परा [तु] भविष्यन्तीति। सा देवानग्निमादधानानगच्छत्। त ओदनपचनमग्र आदधताथ गार्हपत्यमथाहवनीयम्। तानब्रवीदापत्रुछ्रियं थीमं लोकमच्छिन्दन्पुण्या भविष्यन्ति प्रजास्त्वेषां न भविष्यन्तीति। सेडैव मनोरादधात्। साब्रवीत्तथा वै ते ऽग्निमाधास्यामि। यथा मनुष्या देवानुप प्रजास्त्वेषां न भविष्यन्तीति। सा गार्हपत्यमग्र आदधादथौदनपचनमथाहवनीयमनयोर्लोकयोर्व्यवगृहीत्यै। ततो मनुष्या देवानुप प्रजनिष्यन्त इति। सा गार्हपत्यमग्र आदधादथौदनपचनमथाहवनीयमनयोर्लोकयोर्व्यवगृहीत्यै। ततो मनुष्या देवानुप प्राजायन्त। प्रजननायैवमाधेयः । अथो अनयोरेव लोकयोर्व्यवगृहीत्यै।।

प्रजापतिर्वै यदग्रे व्याहरत्स सत्यमेव व्याहरत्। एतद्वाव स त्रिर्व्याहरद्भूर्भुवः स्वरिति। एतद्वै वाचः सत्यम्। यदेव वाचः सत्यं तेनाधत्ते। भूष्णु वै सत्यम्। य एवं विद्वानेतेनाधत्ते भवत्येव। अयं वा अपरो भूरसौ पूर्वो भुवः। भूर्भुव इत्यपर आधेयः सत्यस्याननुगत्यै। भूर्भुवः स्वरिति पूर्वः। तत्पुरः सर्वमाप्यते। वाग्वै देवतां निरवदत। निरुदितदेवता हि वै वाक्। अथ तत्सर्वं न सत्यं यद्वाचा शपते यत्प्राशूर्भवति। यां वै तां वाग्देवतां निरवदतैषा वाव सा यदेता व्याहृतयः। एतद्वै वाचः सदेवम्। यदेव वाचः सदेवं तेनाधत्ते। अयं वा अपरो भूरसौ पूर्वो भुवः। भूर्भुव इत्यपर आधेयः। उभावेवैनो सहाधत्ते। एव ह्येतस्य योनिः। एतस्माद्ध्येषोऽधिसृज्यते। यद्द्वितीयं ज्योतिस्तदेव तत्। भुर्भूवः स्वरिति पूर्व आधेयः। उभावेवैनो सहाधत्ते। एष ह्येतस्य योनिः। एतस्माद्ध्येषोऽधि प्रह्रियते। अयं वावाग्निर्यो ऽयमन्तरग्निः। यो ऽसौ पूर्वो ऽसावेवैष आदित्यो यो ऽसावमुष्मादधि प्रह्रियते। यत्तृतीयं ज्योतिस्तदेव तेनाप्यते। असौ वावैष आदित्यः प्रत्यङ्ङाधीयते। तस्मादेष सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ्। अग्निना वै देवा अन्नमदन्ति। प्रत्यञ्चा अन्नमद्यते। यत्प्रत्यङ्ङाधीयते ऽन्नाद्याय। प्राचो वै देवान्प्रजापतिरसृजतापाचो ऽसुरान्। सो ऽसुरान्ब्रह्मणापानुदत। अग्निर्ब्रह्म। यत्प्रत्यङ्ङाधीयते भ्रातृव्यस्यापनुत्त्यै। इममर्धमग्निना परियन्तीममर्धमुपचरन्ति। देवानामेवार्धं परियन्ति देवानामर्धमुपचरन्ति। इमां दिशमभ्यावृत्य जुहोति। एतस्यां हि देवा दिशि। यस्यामेव देवा दिशि तां दिशमभ्यावृत्य जुहोति ।।९।।

इति कपिष्ठलकठसंहितायां षष्ठो ऽध्यायः।।

अग्निर्वै प्राङुदेतुं नोपाकामयत। तमश्वेनोदवहन्। यत्पूर्वमुदवहंस्तत्पूर्ववाहः पूर्ववाट्त्वम्। अग्निर्वै प्रजापतिः। तस्याश्वश्चक्षुः। यदश्वं पुरो नयन्ति स्वमेव तच्चक्षुः पश्यन्ननूदेति। स्तोमपुरोगा वै देवा एभ्यो लोकेभ्यो ऽसुरान्प्राणुदन्त। स्तोमादश्वः संभूतः। यदश्वं पुरो नयन्ति स्तोमपुरोगा एवैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदते। अग्निं वै जातं रक्षांस्यधूर्वन्। तान्येनमभिसमलभन्त। तान्यश्वेनापाहत। यदश्वं पुरो नयन्ति रक्षसामपहत्यै। अश्वो वै भूत्वा यज्ञो मनुष्यानत्यक्रामत्। तमेतमतिक्रामन्तं मन्यन्ते। यदश्वमभ्यावर्तयन्ति यज्ञमेवैतद्यजमानमभ्यावर्तयन्ति। अग्निर्वा अश्वं प्राविशत्। कृष्णो भूत्वा सो ऽत्रागच्छद्यत्रैष मृगशफः। तस्मादाक्रम्यः। यदश्वमाक्रमयति तमेवावरुंद्धे। वास्तु वा एतत्। अथो अन्तर्हितमिव। तस्मान्नाक्रम्यम्। इन्द्रो वै यतीन्सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्। तेषामद्यमानानां स्यूमरश्मिरृषिरश्वं प्राविशत्। तस्मादश्वः स्वं शकृदुपजिघ्रति कच्चिदृषिं चाग्निं च न निरास्थामिति। अग्निं वै विभाजं नाशक्नुवन्। तमश्वेन व्यभजन्। यदश्वं पुरो नयन्त्यग्नेरेव विभक्त्यै। यौ वाव तावृषिश्चाग्निश्च ते एवैनं तद्देवते विभजतः। अश्वो देयः। प्राजापत्यो वा अश्वः। यदश्वं ददाति सर्वा एवास्य देवता अभीष्टाः प्रीता भवन्ति। परमा वा एषा दक्षिणा यदश्वः। यदश्वं ददाति पर्याप्त्यै। वही देयः। वहिनो वै पशवो भुञ्जन्ति। यज्ञो ऽग्नेर्वही। भुनक्त्येनमग्निराहितः। हिरण्यं देयं सतेजस्त्वाय। शतमानं वीरं वा एष जनयति यो ऽग्निमाधत्ते। शतदायो वीरः। त्रिंशन्माने पूर्वयोर्हविषोर्देयं। चत्वारिंशन्मानमुत्तमे ऽभिक्रान्त्यै। अभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्धोति। आत्मा वै हविः। पवित्रं हिरण्यम्। सर्वेष्वेवैनं हविःषु पुनाति। अग्निर्वै वरुणानीरभ्यकामयत। तस्य तेजः परापतत्। तद्धिरण्यमभवत्। यद्धिरण्यमुपास्यति स्वेनैवैनं तेजसा सधर्मयति। नोपास्य पुनरादधीत। ग्रसितमस्य निष्खिदति क्षोधुको भवति। अग्निं वै वरुणानीरभ्यकामयन्त। आपो वरुणानीः। ताः समभवत्। यदग्ने रेतोऽसिच्यत तद्धरितमभवत्। यदपां तद्रजतम्। तस्माद्धरितरजताभ्यामुभयाहिरण्यः। यद्गर्भस्य शमलं तद्दुर्वर्णम्। तस्माद् ब्राह्मणेन दुर्वर्णं न भर्तव्यम्। शमलं हि तत्। यद्धिरण्यमुपास्यति स्वेनैवैनं रेतसा समर्धयति ।।१।।

सह वा इमा अग्नेस्तन्वः। इयमोदनपचनो ऽन्तरिक्षं गार्हपत्यो द्यौराहवनीयः। यो वा अस्यैता अव्याकृत्याधत्ते न पाप्मना व्यावर्तते घातुको ऽस्य रुद्रः पशून्भवति। ता एवैतद्व्याकृत्य यथायोनि प्रतिष्ठाप्याधत्ते वि पाप्मना वर्तते ऽघातुको रुद्रः पशून्भवति। द्यौर्महासीति महानग्निमाधाय भवति। भूमिर्भूम्नेति श्वःश्वो भूयान्भवति। तस्यास्ते देव्यदित उपस्थे ऽन्नादमन्नाद्यायान्नपत्यायादध इत्यन्नादमेवैनमन्नाद्यायान्नपत्यायाधत्ते। अत्यन्नं य एवं विद्वानग्निमाधत्ते। आयं गौः पृश्निरक्रमीदित्येताः सर्पराज्ञ्या ऋचः। इयं वै सर्पराज्ञी। अन्नं सार्पराज्ञम्। अन्नाद्यायाग्निमाधत्ते। अत्यन्नं य एवं

विद्वानग्निमाधत्ते। वसन्तो वा इमाः प्रजा उपरुणद्धि ग्रीष्माय। ग्रीष्मो वर्षाभ्यः। वर्षाः शरदे। शरद्धेमन्ताय। हेमन्तः शिशिराय। शिशिरमग्नये। अग्निर्यजमानाय। अत्यन्नं य एवं विद्वानग्निमाधत्ते।।

अजो देयः सयोनित्वाय। वासो देयम्। सर्वदेवत्यं वासः। देवतानामभीष्ट्यै वर्धमाना दक्षिणा देया। दक्षिणाया वै वृद्धिं यजमानो ऽनुवर्धते। उपाहरन्ती दक्षिणा देया। धेनुर्वा उपाहरन्ती। उप ह्येषा पय आहरति। नास्याग्निमादधानस्य कनीयो भवति। धेनुं होत्रे दद्यादाशिषामवरुद्ध्या अनड्वाहमध्वर्यवे। वह्वयेव यज्ञस्यावरुंद्धे। रथो देयः। देवरथो वा एष प्रयुज्यते यद्यज्ञः। मनुष्यरथेनैव देवरथमभ्यातिष्ठति। मिथुनौ गावौ देयौ मिथुनस्यावरुद्ध्यै। षड् देयाः। षड्वा ऋतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। द्वादश देयाः। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरस्याप्त्यै। यदि द्वादशातिप्रच्यवेत चतुर्विंशतिं दद्यात्। चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री। गायत्री यज्ञमुखम्। गायत्रीमेव यज्ञमुखं नातिक्रामति ।।२।।

त्रीणि हवींषि भवन्ति। त्रय इमे लोकाः। इमानेव लोकानाप्नोति। त्रिर्विराड् व्यक्रमत। विराज एवैनं विक्रान्तमनु विक्रमयति। यत्पवमानं पुनात्येवैनं तेन। यत्पावकमन्नमेवास्मै तेन प्रयच्छति। यच्छुचये मेध्यमेवैनं यज्ञियं तेन करोति। पशुमानसानि प्रजावानसानि तेजस्व्यसानीति वा अग्निमाधत्ते। प्राणो वै पवमानः। प्राणादधि पशवः प्रजायन्ते। यदग्नये पवमानाय पशूनेवास्मै तेन प्रजनयति। आपो वै पावकाः। अद्भ्यः प्रजाः प्रजायन्ते। यदग्नये पावकाय प्रजामेवास्मै तेन प्रजनयति। असौ वा आदित्यः शुचिः। एष तेजसः प्रदाता। यदग्नये शुचये ऽसावेवास्मा आदित्यस्तेजः प्रयच्छति। देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। सो ऽग्निर्विजयमुपयत्सु त्रेधा तन्वो विन्यधत्त पशुषु तृतीयमप्सु तृतीयममुष्मिन्नादित्ये तृतीयम्। यदेतानि हवींषि निरुप्यन्ते ता एवास्यैतत्तन्वः संभरति। [सतनूरेवैतत्सतेजा आधीयते। इमे वै लोका एतानि हवींषि। ना] नाबर्हींषि भवन्ति। इमानेव लोकानाप्नोति। यन्नानाबर्हींषि लोकं प्रजननाय। नोच्छिन्नष्टि। ऊनं वै प्रजा उपप्रजायन्ते। समानबर्हिषी उत्तरे कार्ये। लोकमेव प्रजननायाकः। तमुपप्रजायते। विद्म वा अमुं लोकं विद्मेमं नामुं पश्यामो वा न वा। तस्मात्समानबर्हिषी उत्तरे कार्ये। पशवो वा एतानि हवींषि। घृतं पुरोडाशः। रुद्रो ऽग्निः। यदग्नो ऽनुनिर्वपेद्रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुः स्यात्। संवत्सरे ऽनुनिरुप्याणि। संवत्सरेणैवैनं शमयति। शिथिलं वा एतद्यज्ञस्य क्रियते ऽसयोनि यत्संवत्सरे ऽनुनिर्वपति। अग्न एवानुनिरुप्याण्यशिथिलत्वाय सयोनित्वाय ।।३।।

निरुप्तं हविरुपसन्नमप्रोक्षितं भवति। अथ मध्याधिदेवनमवोक्ष्याक्षान्न्युप्य

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा।

साम्राज्याय सुक्रतुः।।

इति मध्याधिदेवने जुहोति। त्रिर्वै विराड् व्यक्रमत गार्हपत्यमाहवनीयं मध्याधिदेवनम्। विराज एवैनं विक्रान्तमनुविक्रमयति। प्रत्येव तिष्ठति। गच्छति प्रतिष्ठाम्। धर्मधृत्या जुहोति। धर्मधृतमेवैनं करोति सवितारं धारयितारम्। गां घ्नन्ति। तां विदीव्यन्ति। तां समासद्य उपहरन्ति। तेनास्य सो ऽभीष्ट प्रीतो भवति।।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।

यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे।।

इत्यामन्त्रणे जुहोति मन्त्रवत्या वैश्वदेव्या। मन्त्रमेवास्मै गृह्णाति। तमभिसमत्य मंत्रयन्ते। सह वै देवाश्च मनुष्याश्चौदनपचन आसन्। ते मनुष्या देवानत्यचरन्। तेभ्यो देवा अन्नं प्रत्युह्य गार्हपत्यमभ्युदक्रामन्। तांस्तस्मिन्नन्वागच्छन्। ते मनुष्या एव देवानत्यचरन्। [तेभ्यो देवाः] पशून्प्रत्युह्याहवनीयमभ्युदक्रामन्। तांस्तस्मिन्नन्वागच्छन्। ते मनुष्या एव देवानत्यचरन्। तेभ्यो देवा यज्ञं प्रत्युह्य सभामभ्युदक्रामन्। तांस्तस्यामन्वागच्छन्। ते मनुष्या एव देवानत्यचरन्। तेभ्यो देवा विराजं प्रत्युह्यामन्त्रणमभ्युदक्रामन्। तांस्ततो नानुप्राच्यवन्त। एते वै देवानां संक्रामाः। श्रेयांसंश्रेयांसं लोकमभ्युत्क्रामति य एवं वेद। एतद्वै देवानां सत्यमनभिजितं यदामन्त्रणम्। तस्मात्सुप्रातरामन्त्रणं गच्छेत्। सत्यमेव गच्छति। तस्मादामंत्रणं नाहूत यायात्। तस्मादामन्त्रणे नानृतं वदेत्। वह्निर्वै

नामौदनपचनः। आस्य वह्निर्जायते य एवं वेद। गृहा गार्हपत्यः। गृहवान्भवति य एवं वेद। धिष्ण्या आहवनीयः। उपैनं यज्ञो नमति य एवं वेद। सप्रथा मध्याधिदेवनम्। प्रथते प्रजया च पशुभिश्च य एवं वेद। अनाप्त आमन्त्रणम्। नैनमाप्नोति य ईप्सति य एवं वेद ।।४।।

अग्निर्वा इमं लोकं नोपाकामयत। यदस्मिन्नामं मांसं पचन्ति यत्पुरुषं दहन्ति यत्स्तेयं पचन्ति तदभीमं लोकं नोपाकामयत। स यदिमं लोकमुपावर्तत या अस्य यज्ञियास्तन्व आसंस्ताभिरुदक्रामत्। ता एताः पवमाना पावका शुचिः। तस्य या पवमाना तनूरासीत्पशूंस्तया प्राविशद्या पावकापस्तया प्राविशद्या शुचिरमुं तयादित्यं प्राविशत्। प्राणो वै पवमानः। प्राणेन पशवो यताः। यदग्नये पवमानाय पशूनेवास्मै तेन यच्छति। एषा वा अस्य सा तनूर्या पशून्प्राविशत्। यदिदं घृते हुते प्रतीवार्चिरुज्ज्वलत्येषा वा अस्य सा तनूर्यापः प्राविशत्। यदिदमप्सु परीव ददृशे यद्धस्ताववनिज्य स्नात्वा श्रदिव धत्ते य एवाप्स्वग्निः स एवैनं तत्पावयति स स्वदयति। यदग्नये पावकाय सपशुमेवैनं पावयति। एषा वा अस्य सा तनूर्यापः प्राविशत्। यदिदं घृते हुते शोणमिवार्चिरुज्ज्वलत्येषा वा अस्य सा तनूर्यामुमादित्यं प्राविशत्। यदिदमुपरिष्टाद्दीव भाति यज्ज्योतिरभवद्यदग्नये शुचय आविर्भूत्या एव घोषायैव श्लोकायैव रुच एव। एषा वा अस्य सा तनूर्यामुमादित्यं प्राविशत्। यदिदं घृतं हुते सुवर्णमिवार्चिरुज्ज्वलति यदेतानि हवींषि निरुप्यन्ते सतनूरेवैतत्सतेजा आधीयते। इमे वै लोका एतानि हवींषि। नानाबर्हींषि भवन्ति। नाना हीमे लोकाः प्रतिष्ठिताः ।।५।।

गायत्रीः संयाज्या भवन्ति। गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः। आग्नेयमेतत्क्रियते यदग्न्याधेयम्। अग्नावेवैतदग्निः प्रतितिष्ठत्रेति यदाग्नेयानि हवींषि। अग्निनाग्निः समिध्यत इत्युत्तरयोर्हविषोरनुवाक्यां कुर्यात्तेजस आयतनाय। उर्वशी देवी पुरूरवस्यासीत्। सान्तर्वती देवान्पुनः परैत्। सो ऽदो देवेष्वायुरजायत। तामन्वागच्छत्। तां पुनरयाचत। तामस्मै न पुनरददुः। तस्मा आयुं प्रायच्छन्नेष आयुरिति। अग्निं चोख्यम्। उखायां समुष्यैतमाधत्स्व तेन प्रजनिष्यस इति। स वृक्षस्य शाखायामग्निमासज्यायुना ग्राममभ्यवैत्। स पुनरैमीत्येद्वृक्षस्याग्रेऽग्निं ज्वलन्तम्। सो ऽचिकेदयं वाव सो ऽग्निरिति। तस्यारणी आदायाग्निं मथित्वाधत्त। तेन प्राजायत। यदारोहस्यारणी भवतः प्रजननाय। अदित्यै घृते चरुं पशुकामो ऽनुनिर्वपेत्। इयं वा अदितिः। अस्यामधि पशवः प्रजायन्ते। यज्ञमुखमग्न्याधेयम्। यज्ञमुखमेवालभ्य पशूनवरुंद्धे। चातुष्प्राश्यो भवति। आचतुरं हीमे पशवो द्वंद्वं मिथुनाः। ते वीर्यकृतः। अग्नीषोमीयमेकादशकपालं ऽनुनिर्वपेत्। आग्नेयो वै ब्राह्मणः। देवतया सोमराजा। यज्ञमुखमग्न्याधेयम्। यज्ञमुखमेवाक्रम्य स्वाराज्यमुपैति। देवान्वै यज्ञो नाभ्यनमत्। ते ऽश्राम्यन्यज्ञो नो नाभिनमतीति। सो ऽग्नीषोमावेवाग्रे यज्ञो ऽभ्यनमत्। ते ऽविदुरग्नीषोमौ वै नो ऽग्रे यज्ञो ऽभ्यनांस्तयोर्यज्ञस्याभिनतिमिच्छामहा इति। ते ऽब्रुवन्युवां वै नो ऽग्रे यज्ञो ऽभ्यनान्युवयोर्नो ऽधि यज्ञो ऽभिनमत्विति। तावब्रूतां वार्यं वृणावहा आवामेवाग्र आज्यभागौ यजानिति। तस्मादग्नीषोमावेवाग्र आज्यभागौ यजन्ति। वार्यवृतं ह्यनयोः। यदग्नीषोमीयमनुनिर्वपति यज्ञस्याभिनत्यै। अतो हि देवानग्रे यज्ञो ऽभ्यनमत्। यदन्यदनुनिर्वपेद्देवतया यज्ञमन्तर्दध्यात्। मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च। सोमो रेतोधा अग्निः प्रजनयिता। अग्निर्वा इदं सर्वम्। आप ओषधयो वनस्पतयः। तदेव सोमः। एतौ वै नो देवानां नेदिष्ठम्। एतौ हि पश्यामः। यथा वा इदं मनुष्या उपासत एवमेतं देवा उपासत। ते ऽचिकयुरुद्धृतेन वा अनेनाभिजयेमेति। तमुदहरन्त। तेनाभ्यजयन्। अभिजित्या एवैष उद्ध्रियते। अग्निर्वै निराधानादबिभेत्। नातिदूर आधेयो निराधानाय ।।६।।

आधेयो ऽग्नी३ नाधेया३ इति मीमांसन्ते। श्वो ऽग्निमाधास्यमानेनेति। आधेय एव। अयज्ञो ह्येष यो ऽनग्निः। अजो बद्धस्तां रात्रीं वसेत्। अग्नितेजसं वा अजः। तदेव तमग्निमाधत्ते। कल्माषः स्यात्। स हि सर्वदेवत्यः। यस्तं श्वो ऽग्निमाधास्यन्स्यात्स तां रात्रीं व्रतं चरेत्। न मांसमश्नीयात्। न स्त्रीमुपेयात्। सर्वो वै पुरुषो ऽग्निमान्। अग्निरस्मादपक्रामेत्। एष ह्येतस्य योनिः। एतस्माद्ध्येषो ऽधि सृज्यते यस्तमुद्धरति। यो दक्षिणो ब्रह्मवर्चसायैवैष मथ्यते। अथो अग्निभ्यामेवैनं सयोनिं करोति। दुर्गोपस्तु। अहरहरस्य मन्थेयुः। यत एव कुतश्चाहरेत्। एषा वा

अस्यामवरुद्धा तनूः तामेवावरुंद्धे। यत्र दीप्यमानं स्यात्तत आहरेत्। देवता वा एता आविर्भवन्ति। ता एवावरुंद्धे। भृज्जनादाहरेदन्नकामस्य। एषा वा अन्नादी तनूः तामेवावरुंद्धे। यो ब्राह्मणो वा वैश्यो वा पुष्टो ऽसुर इव स्यात्तस्य गृहादाहरेत्। सैव सा पुष्टिस्तामवरुंद्धे। गृहे त्वस्य ततो नाश्नीयात्। श्रियमुच्छते। त्रय इमे लोकाः। इमानेव लोकानाप्नोति। यदुद्यच्छत इमं तेन लोकमाप्नोति। यत्परादुद्द्रवत्यन्तरिक्षं तेन। यदादधात्यमुं तेन। नाधाय पुनरुद्गृह्णीयात्। अपक्रमः सः। पापीयान्भवति। प्राणेभ्यो वै प्रजापतिः प्रजा असृजत। ताः प्राजायन्त। तया मात्रयोद्गृह्णीयात्प्रजननाय। नात्युद्गृह्णीयात्। अग्निरस्य प्राणानुदहेत्प्रमीयेत। नाधो दम्युयात्। अपक्रमः सः। पापीयान्भवति ॥७॥

अग्निं वै सृष्टमग्निहोत्रमन्वसृज्यत। तस्मादग्निमाहितमग्निहोत्रेणानुद्द्रवन्ति। आग्नेयी सायमाहुतिः सौरी प्रातः। यदाग्नेय्या प्रातर्जुहुयात्प्रजननं पुरस्तात्परिहरेत्। अयथापूर्वं कुर्यात्। पूर्णया स्रुचा मनसा प्रजापतये जुहोति। पूर्णः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति। पूर्णो वै प्रजापतिः समृद्धिभिरूनो व्यृद्धिभिः। पूर्णः पुरुषः कामैरूनः समृद्धिभिः। पूर्णैव पूर्णः समृद्धीरवरुंद्धे। आनीता वा अन्येषां देवानां स्तो ऽनानीता अन्येषाम्। संस्पर्शेनान्येषां जीवामः सकाशेनान्येषाम्। पृथिव्या वात्स्याया देवमानीताः स्तस्तेषां संस्पर्शेन जीवामः। अग्नेः सूर्यस्य दिवस्तेषामनानीताः स्तस्तेषां सकाशेन जीवामः। तानेवैतदालब्धा त एनमानेयत। श्रेयसो भ्रातस्य भवति। नास्य मनुष्याः पापवसीयसस्तोशते। यदात्मनालभेत प्रमायुकः स्यात्। आज्येन चौषधीभिश्चालभते ऽप्रमायुको भवति। आनीतो वा एष देवानां य आहिताग्निः। अदत्स्वत्यान्नम्। पूर्णया स्रुचा जुहोति। पूर्णयाग्नये ऽलमकः। अलमस्मै भवति। ओषधयश्च वै वनस्पतयश्च दिवा समदधुः। त इतो ऽन्यत्सर्वमबाधन्त। स प्रजापतिरमन्यतेमे वावेदमभूवन्निति। सो ऽग्निं सृष्ट्वा तमाधत्त। तेनैनानभावयत्। भ्रातृव्यसहनो वावैष आधीयते हुताद्याय। एष वा अहुताद्यो ऽलमग्न्याधेयाय सन्नाहिताग्निः। हुतमेवैतेन स्वदितमत्ति ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां सप्तमो ऽध्यायः

अहुतादो वा एतस्य पुरा देवाः। अथैतद्धुताद उपावर्तेते। ते ऽस्योर्जमपक्रामन्ति। ऊर्जमेवावरुंद्धे। तानेव भागिनः करोति। यजत्यमुष्मिंल्लोकेऽस्मिन्यजत्यमुष्मिन्नन्तरयायैतस्य। अथो वैश्वानरतायामेवैनमुपातिष्ठिपत्। ये वै यज्ञेनायजन्त भूयांसो। न वै सु विदुरिव मनुष्या यज्ञम्। तस्मान्न सर्वं इवर्ध्नोति। यद्दक्षिणां ददाति यज्ञस्यार्धः। दक्षिणावद्भ्यां ह स्म वै पुरा दर्शपूर्णमासाभ्यां यजन्ते। य एष ओदनः पच्यते दक्षिणामेवैतां ददाति यज्ञस्यर्द्ध्यै। इष्टी वा एतेन यद्यजते। य एष ओदनः पच्यते तेन पूर्णो एव वावेष्टापूर्ती य एतं पचति। प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यादिशत्। यज्ञमेव सो ऽमन्यतात्मानमन्तरगामिति। स एतमोदनमपश्यत्। तमात्मने भागमकल्पयत्। प्रजापतेर्वावैष भागः। महान्तमपरिमितं पचेत्। अपरिमितः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति। देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त। ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्त। अन्यो ऽन्यस्मिन्नसुरा अजुहवुः। ते देवा एतमोदनमपश्यन्। तं प्रजापतये भागमनुनिरवपन्। तं भागं पश्यन्प्रजापतिर्देवानुपावर्तत। ततो देवा अभवन्पराऽसुरा अभवन्। य एवं विद्वानन्वाहार्यमाहरति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। ईड्या वा अन्ये देवाः सपर्येण्या अन्ये। देवा ईड्या ब्राह्मणाः सपर्येण्याः। यज्ञेनैवेड्यान्प्रीणात्यन्वाहार्येण सपर्येण्यान्। तस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्ति। प्रजापतेर्भागो ऽस्यूर्जस्वान्। अक्षितो ऽस्यक्षित्यै त्वा। अक्षितो नामासि मा मे क्षेष्ठाः। प्राणापानौ मे पाहि। उदानरूपे मे पाहि। ऊर्गस्यूर्जं मयि धेहि। प्रजापति त्वया समक्षमृध्यासमिति तमेव समक्षमृध्नोति ॥१॥

यत्ते मन्युपरोप्तस्य पृथिवीमनुदध्वसे।
आदित्या विश्वे तद्देवा वसवः पुनराभरन्॥
यत्त्वा क्रुद्धः परोवप मन्युना यदवर्त्या।
सुकल्पमग्ने तत्तव पुनस्त्वोद्दीपयामसि॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुधीतिमग्ने।
इहैव धेह्यधि दक्षमुग्रमश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम्॥
पुनस्त्वा मित्रावरुणौ पुनरिन्द्रः पुनर्भगः।
पुनस्त्वा विश्वे देवा ब्राह्मणा उददीदिपन्॥
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा।
पुनर्नः पाह्यंहसः॥
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥

केतः सकेतः सुकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा। सलिलः सलिगः सगरस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा। दिवो ज्योतिर्विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु सत्यां देवहूतिमासुवध्वम्। आदित्येभ्यः स्वाहा ॥२॥

अग्नेर्वै भागः पुनराधेयम्। तं भागं प्रेप्सन्व्यर्धयति। यद्याधाय मन्येत व्यृध्यते स्य इति पुनरादधीत। यं भागं प्रेप्सन्व्यर्धयति तं प्राप्यार्धयत्येव। सर्वमाग्नेयं क्रियते। यदेव किंच सर्वमग्नये भागं प्रादात्सर्वामृद्धिमृध्नोति। न संभाराः संभृत्या इत्याहुर्न यजुः कार्यमिति। संभृतसंभारो ह्येष कृतयजुः। तत्तत्र सूक्ष्यम्। संभृत्या एव संभाराः कार्यं यजुः। पुनरुत्स्यूतं वासो देयं पुनरुत्सृष्टो ऽनड्वान्पुनर्निष्कृतो रथः। एतानि वै पुनराधेयस्य रूपाणि। रूपैरेवैनत्समर्धयति। अग्निर्वा उत्सीदन्नप ओषधीरनूत्सीदति। एता वा आप ओषधयो यद्दर्भाः। यद्दर्भा उपोलपा भवन्त्यद्भ्य एवैनमोषधीभ्यो ऽध्यवरुंद्धे॥

देवाश्च वा असुराश्चास्पर्धन्त। ते देवा विजयमुपयन्तो ऽग्नौ प्रियास्तन्वः संन्यदधत। यदि जयेमेमा उपावर्तेमहि यदि नो जयेयुरिमा अभ्युपधावेमेति। ते ऽभिजित्यान्वैच्छन्सर्वेषां नः सहेति। सो ऽग्निरब्रवीद्यो मा मद्देवत्यमादधातै स एताभिस्तनूभिः संभवादिति। तं देवा आदधत। त एताभिस्तनूभिः समभवन्। एताभिरेव तनूभिः संभवति य एवं विद्वानेतमाधत्ते। त्वष्टा पशुकाम आधत्त। त इमे त्वाष्ट्राः पशवः। तेनर्द्धाः। मनुः पुष्टिकाम आधत्त। स इमान्पोषानपुष्यत्। तेनर्द्धाः। प्रजापतिः प्रजाकाम आधत्त। ता इमाः प्राजापत्याः प्रजाः प्राजायन्त। तेनर्द्धाः। यो वै तमाधत्त स तेन वसुना समभवत्। तस्मात्पुनर्वसुः। तस्मात्पुनर्वसावाधेयः। आर्ध्नोद्धि स यस्तमाधत्त। तस्मादनूराधाः। तस्मादनूराधास्वाधेयः ॥३॥

अग्निर्वा उत्सीदन्संवत्सरमनूत्सीदति। सप्तदश सामिधेनीः कार्याः। पञ्चर्तवः। द्वादश मासाः। एष वाव स संवत्सरः। संवत्सरादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते। तदाहुः पञ्चदशैव कार्या न सप्तदशेति। एतद्धि संवत्सरस्य संक्रमणतरं यत्पञ्चदश। पञ्चदश सामिधेनीरनूच्यन्ते। पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयः। ताभिरेव ता आप्यन्ते। यावन्ति वै सामिधेनीनामक्षराणि तावन्ति संवत्सरस्याहानि। तैरेव तान्याप्यन्ते। अग्निर्वा उत्सीदन्संवत्सरमनूत्सीदति। षड्वा ऋतवः संवत्सरः। यत्षड्विभक्तयः संवत्सरादेवैनमध्यवरुन्द्धे। संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः। षडृतवः। तस्मात्षड्विभक्तयः यद् द्व्यक्षराः सतीश्चतुरक्षराः क्रियन्त आचतुरं हीमे पशवो द्वंद्वं मिथुनाः। यद्वा इदमग्निं बहुधा विहरन्ति यदिमान्पोषान्पुपोष तस्मादग्निरेवैतावतीर्विभक्तीरश्नुते नान्या देवता। यज्ञमुखं वै प्रयाजाः। यत्प्रयाजानन्तर्याद्यज्ञमुखमन्तर्यात्। अन्नं वै प्रयाजाः। यत्प्रयाजानान्तर्यादन्नमन्तर्यात्। यः कामयेतर्ध्नुयामित्युपरिष्टात्प्रयाजानां विभक्तीः कुर्यात्। वीर्यं वै विभक्तयः। वीर्यादेवाधि वषट्करोति। अजिरमृद्धिमभिक्रामति। नानाग्नेयं क्रियत इत्याहुः। कस्मात्सविभक्तयः प्रयाजा भवन्तीति। संवत्सरं वा एते परीज्यन्ते यत्प्रयाजाः। तेनाग्नेयं तेन नानाग्नेयं क्रियते॥
पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा।
पुनर्नः पाह्यंहसः॥

इति पुरस्तात्प्रयाजानां जुहुयात्।
सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥

इत्युपरिष्टादनुयाजानां जुहुयात्। ऊर्जा वा एष पशुभिरुत्सीदन्सहोत्सीदति। पुनरेवोर्जं पशूनवरुंद्धे। अथो उभयत एव यज्ञस्याशिषमृध्नोति ॥४॥

नानाग्नेयं क्रियत इत्याहुः। कस्मादाज्यभागौ यजन्तीति। चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ। यदाज्यभागावन्तर्यात् चक्षुषी यज्ञस्यान्तर्यात्। अग्न आयूंषि पवस इत्येतां सोमस्याज्यभागस्य लोके कुर्यात्। यदाग्नेयं तेनाग्नेयी यत्पवमाने तेन सौमी। नानाग्नेयं क्रियते। न सोममन्तरेति। अग्निर्मूर्धा दिवः ककुदित्येतां सोमस्याज्यभागस्य लोके कुर्यात्प्रजाकामस्य वा पशुकामस्य वा। यन्मिथुना तेन प्रजननवती यद्रेतस्वती तेन सौमी। नानाग्नेयं क्रियते। न सोममन्तरेति॥

वीरहा वा एष देवानां यो ऽग्निमुत्सादयते। शतदायो वीरः। यदेताः शताक्षरा अपरपङ्क्तयो वीरमेवैतद्देवानामवदयते। अन्यस्मै वै प्रमाय आधेयो ऽन्यस्मै पुनराधेयः। न वै तामाधेयेन स्पृणोति यस्मै पुनराधेयः। पुनराधेयेन वाव तां स्पृणोति। जरा वै देवहितमायुः। तावदीर्हि समा जीवति। तस्मादाहुः शतदायो वीरः। यदेताः शताक्षरा अक्षरपङ्क्तयो भवन्ति यावदेव वीर्यं तदाप्नोति तत्स्पृणोति। आयुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्सादयते। शतायुः पुरुषः शतवीर्यः। आयुर्वीर्यं हिरण्यम्। यद्धिरण्यं शतमानं ददात्यायुरेव वीर्यं पुनरालभते ॥५॥

यज्ञेन वा एष वीर्येण व्यृध्यते यो ऽग्निमुत्सादयते। पाङ्क्तो यज्ञः। यत्पञ्चकपालो यज्ञमेवालभते। तदाहुरष्टाकपाल एव कार्यो न पञ्चकपाल इति। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रो ऽग्निर्गायत्रच्छन्दाः। आग्नेयमेतत्क्रियते यत्पुनराधेयम्। तस्मादष्टाकपालः। तत्तत्र सूक्ष्यम्। पञ्चकपाल एव कार्यः। अग्निर्वा उत्सीदन्संवत्सरमनूत्सीदति। पञ्च वा ऋतवः संवत्सरः। पञ्चधा ह्यध्यतः षष्ठ ऋतुर्बभूव। समानमेतद्यत्पञ्चषडृतुः षष्ठश्च। यत्पञ्चकपालः संवत्सरादेवैनमाप्नोति। पाङ्क्तश्च। प्रजननमृतवः। यत्पञ्चकपालः प्रजननाय। प्रजननं वा ऋतवो ऽग्निः प्रजनयिता। यत्पञ्चकपालः प्रजननादेवैनं प्रजनयिता प्रजनयति॥

आदित्या वा इतः सर्व एव सहामुं लोकमायन्। ते व्यतृष्यन्। ते ऽविदुरमुतःप्रदानाद्वा इहागमामेति। त एतं पुनरादधत। तेनार्ध्नुवन्। आदित्या वा अस्मिंल्लोके ऋद्धा आदित्या अमुष्मिन्। पशवो ऽस्मिन्नृतवो ऽमुष्मिन्। उभयोरेव लोकयोरृध्नोति य एवं विद्वानेतया यजते॥

केतः सकेतः सुकेतस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा। सलिलः सलिगः सगरस्ते न आदित्या जुषाणा अस्य हविषो व्यन्तु स्वाहा। दिवो ज्योतिर्विवस्व आदित्य ते नो देवा देवेषु सत्यां देवहूतिमासुवध्वम्। आदित्येभ्यः स्वाहेत्येतैर्वै ते तमादधत। यदेतैरेवाधत्ते ऽर्ध्नुवन्। आदित्यो हि पुनराधेयः ॥६॥

आग्नेयो ऽष्टाकपालः। सौम्यश्चरुः। सावित्रो द्वादशकपालः। सारस्वतश्चरुः। पौष्णश्चरुः। मारुतः सप्तकपालः। वैश्वदेव्यामिक्षा। द्यावापृथिव्य एककपालः। आग्नेयो ऽष्टाकपालः। सौम्यश्चरुः। सावित्रो ऽष्टाकपालः। सारस्वतश्चरुः। पौष्णश्चरुः। ऐन्द्राग्नो द्वादशकपालः। मारुत्यामिक्षा।

वारुण्यामिक्षा। काय एककपालः॥

नमस्त आतान। अनर्वा प्रेहि घृतस्य कुल्यामनु सह प्रजया सह रायस्पोषेण॥
प्रघासिनो हवामहे मरुतो यज्ञवाहसः।
करम्भेण सजोषसः॥
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवा अस्तु ष्म ते शुष्मिन्नवयाः।

मही देवस्य मीढुषो ऽवया हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥
यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयं यदप्सश्चकृमा वयम्।
यदेकस्यापि धर्मणीदं तदवयजामहे ॥स्वाहा॥
अक्रन्कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सुदानवः ॥७॥

अग्नये ऽनीकवते प्रातरष्टाकपालः। मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यो मध्यंदिने चरुः। मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यः सर्वासां दुग्धे सायमोदनः॥

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो॥
देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारमिन्नि मे हर निहारं निहरामि ते॥

मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातः सप्तकपालः पुरोडाशः। आग्नेयो ऽष्टाकपालः। सौम्यश्चरुः। सावित्रो ऽष्टाकपालः। सारस्वतश्चरुः। पौष्णश्चरुः। ऐन्द्राग्न एकादशकपालः। ऐन्द्रश्चरुः। वैश्वकर्मण एककपालः॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम्। ऊर्ध्वो ऽध्वरे ऽस्थाः। अवतां त्वा द्यावापृथिवी। अव त्वं द्यावापृथिवी। स्विष्टकृदिन्द्राय देवेभ्यो भव। जुषाणो अस्य हविषो घृतस्य वीहि स्वाहा ॥८॥

सोमाय पितृमत आज्यम्। पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः षट्कपालः पुरोडाशः। पितृभ्यो ऽग्निष्वात्तेभ्यो धानाः। अग्नये कव्यवाहनाय मन्थः। एतत्ते तत ये च त्वानु। एतत्ते पितामह ये च त्वानु। एतत्ते प्रपितामह ये च त्वानु। अत्र पितरो मादयध्वम्॥
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो याहि वशां अनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥
परेत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः।
दत्त्वायास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छत॥
अमीमदन्त पितरः॥
अया विष्ठा जनयन्कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः।
स प्रत्युदैद्धरुणं मध्वो अग्रं स्वां यत्तनूं तन्वमैरयत॥
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥

नमो वः पितरो मन्यवे। नमो वः पितरः शुष्माय। नमो वः पितरो जीवाय। नमो वः पितरो रसाय। नमो वः पितरो बलाय। नमो वः पितरो यत्क्रूरं तस्मै। नमो नमो वः पितरः। स्वधा वः पितरः। यत्र पितरः स्वधा यत्र यूयं स्थ सा युष्मासु तया यूयं यथाविभागं मादयध्वम्। येह पितर ऊर्ग्यत्र वयं स्मः सास्मासु। तस्यै वयं ज्योग्जीवन्तो भूयास्म॥
मनो न्वाहुवामहे नाराशंसेन स्तोमेन।
पितॄणां च मन्मभिः॥
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक्च सूर्यं दृशे।
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः।

जीवं व्रातं सचेमहि ॥९॥
यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यत्पितरं मातरं वा जिहिंसिम।
अग्निर्नस्तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्रमुञ्चतु दुरितानि यानि चकृम॥

रुद्राखुं ते पशुं करोमि। एष ते रुद्र भागः। सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा॥
अवाम्ब रुद्रमदिमह्यव देवं त्र्यम्बकम्।
यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयस्करद्यथा नो व्यवसाययात्॥
भेषजं गवे ऽश्वाय पुरुषाय सुभगं मेषाय मेष्यै।
अथो अस्मभ्यं भेषजं सुभेषजं यथासति॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं रयिपोषणम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

भगोऽसि। भगस्य ते लप्सीय। एष ते रुद्र भागः। तेनावसेन परो मूजवतो ऽतीहि कृत्तिवासाः पिनाकहस्तो ऽवततधन्वा। एधो ऽस्येधिषीमहि। समिदसि समेधिषीमहि। तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि ॥१०॥

चित्तिः स्रुक्। चित्तमाज्यम्। वाग्वेदिः। आधीतं बर्हिः। केतो अग्निः। विज्ञातमग्नीत्। वाचस्पतिर्होता। मन उपवक्ता। प्राणो हविः। सामाध्वर्युः। इन्द्रं गच्छ स्वाहा। पृथिवी होता। द्यौरध्वर्युः। त्वष्टाग्नीत्। मित्र उपवक्ता। वाचस्पते वाचो वीर्येण संभृततमेनायक्षसे। यज्ञपतये वीर्यमा स्वस्करः। वाचस्पतिः सोमं पिबतु। जजनदिन्द्रमिन्द्रियाय स्वाहा। सोमः सोमस्य पुरोगः। शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः। श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापयो हवनश्रुतः स्वाहा। अग्निर्होता। अश्विनाध्वर्यू। रुद्रो ऽग्नीत्। बृहस्पतिरुपवक्ता। वाचस्पते हृद्विधे नामन्वाचस्पतिः सोममपात्। आस्मासु नृम्णं धात्स्वाहा। सोमः सोमस्य पुरोगाः। शुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः। श्रातास्त इन्द्र सोमा वातापयो हवनश्रुतः स्वाहा ॥११॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे। यमायाश्वम्। तेनामृतत्वमशीय। वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे। देवस्य त्वा। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे। अग्नये हिरण्यम्। रुद्राय गाम्। ग्रास्त्वाकृन्तन्नपसो ऽतन्वत वरुत्रीरवयन्। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे। बृहस्पतये वासः। तेनामृतत्वमशीय। वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे॥

क इदं कस्मा अदात्। कामः कामाय। कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता। कामः समुद्रमाविशत्। कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि। कामैतत्ते॥

महाहविर्होता। सत्यहविरध्वर्युः। अचित्तपाजा अग्नीत्। अचित्तमना उपवक्ता। अनाधृष्यश्चाप्रतिधृष्यश्चाभिगरौ। अयास्य उद्गाता। वाचस्पते विधे नामन्विधेम ते नाम। विधेस्त्वमस्माकं नाम। मा देवानां तन्तुश्छेदि मा मनुष्याणाम् ॥१२॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामष्टमो ऽध्यायः।

चतुर्थमष्टकम्

ओम्॥
उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः।
स नो भव शिवस्त्वं सुप्रतीको विभावसुः॥
प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम्।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन्मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः।
अक्रन्ददग्निः॥
अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥
समिधाग्निं दुवस्यत॥
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः॥
आपो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वं सुरभावु लोके।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृता स्वेनम्॥
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे।
गर्भे संजायसे पुनः॥
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि॥
प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान्पुनरासदः॥
पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने।
शेषे मातुर्यथोपस्थे ऽन्तरस्यां शिवतमः॥
पुनरूर्जा॥ सह रय्या॥
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुदावा वसुपतिः।
युयोध्यस्मद्द्वेषांसि ॥१॥ ॥
अपेत वीत वि च सर्पतातो ये ऽत्र स्थ पुराणा ये च नूतनाः।
अदाद्यमो ऽवसानं पृथिव्या अक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै॥

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात्। अग्नेर्भस्मासि। अग्नेः पुरीषमसि। चित्त स्थ परिचित ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्॥
अयं सो अग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्सन्स्तूयसे जातवेदः॥
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवां ऊचिषे धिष्ण्या ये।
याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपो या वा परो रोचने सूर्यस्य॥
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां हव्यमाहुतमनमीवा इषो महीः॥
इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियः॥

चिदसि। तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद। परिचिदसि। तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥
समितं संकल्पेथां संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ। इषमूर्जमभिसंवसानौ॥
सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि॥
अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान्पुष्टिमां असि।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥
भवतं नः समनसौ॥
मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा।
तां विश्वे देवा ऋतुभिः संविदानाः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥२॥
यदस्य पारे रजसश्चित्रं ज्योतिरजायत।
तन्नः पर्षदति द्विषो अग्ने वैश्वानर द्युमत्॥
असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यां तस्करस्यान्विहि।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥
यत्ते अस्मिन्घोर आसन्जुहोम्येषां बंधानामवसर्जनाय कम्।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद विश्वतः॥
नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजो ऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम्॥
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचर्त्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो नु मध्ये ऽधा विषितः पितुमद्धि प्रमुक्तः॥
निवेशनः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनिर्वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्॥
पूषा युनक्तु सविता युनक्तु बृहस्पतिः सविता देवो अग्निः॥
शुनं सुफाला वितुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहान्।
शुनासीरा हव्यजुष्टिं जुषाणेदं बीजमवतमुप्यमानम्॥
लाङ्गलं पवीरवं सुशेवं सोमपित्सरु।
उदिद्वपति गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं प्रफर्व्यं च पीवरीम्॥
घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमतं मरुद्भिः।
ऊर्जो भागं मधुमत्पिन्वमानास्मान्सीते पयसाभ्याववृत्स्व॥
विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारम्।
ज्योतिरापाम॥
कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥३॥
या ओषधयः प्रथमजा देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रतो यूयमिमं मे अगदं कृत॥
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥
ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे।
रपांसि विघ्नतीरित रक्षश्चातयमानाः॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्॥
अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥
यदोषधयः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः॥
उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥
अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधयः प्राचुच्यवुर्यत्किंच तन्वो रपः॥
यास्त आतस्थुरात्मानमाविविशुः परुष्परुः।
तास्ते यक्ष्मं विबाधन्तामुग्रो मध्यमशीरिव॥
यदहं वाजयन्निमा ओषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥
निष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः।

सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ।
साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया।
अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः॥
अपवतन्तीरवदन्दिवो ज्नोषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥४॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
अभ्यावर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह।
वपां ते अग्निरिषितो अरोहत्॥
अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्।
तद्देवेभ्यो भरामसि॥
इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्।
आ नो गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम्॥
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे॥
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रः पितरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे विश्वे संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः॥
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं रयिम्॥
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुतकर्णं सप्रथस्तमं त्वा युजा विप्रासो मानुषा युगा॥
निष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसे महे।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं पृणक्षि दर्शतं क्रतुम्॥
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे॥
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व [॥५॥]
अपां पृष्ठमसि।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

द्रप्सश्चस्कन्द।
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिव्यामधि।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
य इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँरनु।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
ये वादो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
ये अप्सु सदांसि चक्रिरे तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥
कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवां इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसंदितो विसृज विष्वगुल्काः॥
प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत्॥
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्रां ओषतात्तिग्महेते।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्॥
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्॥
अग्नेस्त्वा तेजसा सादयामि। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि॥
अयमग्निः [सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः।
मूर्धा कवी रयीणाम्॥ ...... ॥६॥]
यो अग्निरग्नेस्तपसोऽधि जातः शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु॥
इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशूनां सहस्राक्ष मेध आचीयमानः।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद॥
मयुं ते क्षुत्। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥
इयं मा हिंसीरेकशफं पशूनां कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद॥
गौरं ते क्षुत्। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥
इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद॥
गवयं ते क्षुत्। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥
इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्।
मेषमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद॥
मेषं ते क्षुत्। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्रमायंस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वं निषीद॥
शरभं ते क्षुत्। यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥८॥

अपां त्वेमन्सादयामि। अपां त्वोद्मन्सादयामि। अपां त्वा भस्मन्सादयामि। अपां त्वा ज्योतिषि सादयामि। अपां त्वायने सादयामि। अर्णवे त्वा सदने सादयामि। समुद्रे त्वा सदने सादयामि। सरिरे त्वा सदने सादयामि। अपां त्वा क्षये सादयामि। अपां त्वा सधिषि सादयामि। अपां त्वा सदने सादयामि। अपां त्वा सधस्थे सादयामि। अपां त्वा योनौ सादयामि। अपां त्वा पुरीषे सादयामि। अपां त्वा पाथसि सादयामि। गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि। त्रैष्टुभेन जागतेनानुष्टुभेन पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि॥

अयं पुरो भुः। तस्य प्राणो भौवायनः। वसन्तः प्राणायनः। गायत्री वासन्ती। गायत्र्या गायत्रम्। गायत्रादुपांशुः। उपांशोस्त्रिवृत्। त्रिवृतो रथन्तरम्। वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः। अयं दक्षिणा विश्वकर्मा। तस्य मनो वैश्वकर्मणम्। ग्रीष्मो मानसः। त्रिष्टुब् ग्रैष्मी। त्रिष्टुभः स्वारम्। स्वारादन्तर्यामः। अन्तर्यामात्पञ्चदशः। पञ्चदशाद्बृहत्। भरद्वाज ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः। अयं पश्चाद्विश्वव्यचाः। तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्। वर्षाणि चाक्षुषाणि। जगती वार्षी। जगत्या ऋक्समम्। ऋक्समाच्छुक्रः। शुक्रात्सप्तदशः। सप्तदशाद्वैरूपम्। जमदग्निर्ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः। इदमुत्तरात्स्वः। तस्य श्रोत्रं सौवम्। शरच्छ्रौत्री। अनुष्टुप् शारदी। अनुष्टुभ ऐडम्। ऐडान्मन्थी। मन्थिन एकविंशः। एकविंशाद्वैराजम्। विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः। इयमुपरि मतिः। तस्या वाङ् मात्या। हेमन्तो वाच्यः। पङ्क्तिर्हैमन्ती। पङ्क्त्या निधनवत्। निधनवत आग्रायणः। आग्रायणात्त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ। त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते। विश्वकर्मर्षिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन्योनावसीषदन्॥
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥९॥
ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साध्या।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
कुलायिनी घृतवती पुरंधिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुम्ने बृहते रणाय।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवः स्वावेशया तन्वा संविशस्व।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व।
अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशाम्।
अधिपत्नीं भुवनानामूर्मिर्द्रप्सो अपामसि।

विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः।
अग्नये त्वा वैश्वानराय। अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह वा॥
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजू रुद्रैः सजूरादित्यैः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैः। अग्नये त्वा वैश्वानराय। अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥
प्राणं मे पाहि व्यानं मे पाह्यपानं मे पाहि चक्षुर्म उर्विया विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दिवो वा वृष्टिमेरय ॥१०॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां पञ्चविंशतितमो ऽध्यायः॥

त्र्यविर्वयो गायत्री छन्दः। दित्यवाड् वयस्त्रिष्टुप्छन्दः। पञ्चाविर्वयो विराट् छन्दः। त्रिवत्सो वय उष्णिहा छन्दः। तुर्यवाड् वयो ऽनुष्टुप्छन्दः। षष्ठवाड्वयो बृहती छन्दः। उक्षा वयः ककुप्छन्दः। धेनुर्वयो जगती छन्दः। अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दः। ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः। बस्तो वयो युवलं छन्दः। वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः। व्याघ्रो वयो ऽनाधृष्यं छन्दः। सिंहो वयश्छदिश्छन्दः। पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दः। क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दः। विष्टम्भो वयो ऽधिपतिश्छन्दः। मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः। विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दः ॥१॥
इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधसे॥
राज्ञ्यसि प्राची दिक्। विराडसि दक्षिणा दिक्। सम्राडसि प्रतीची दिक्। स्वराडस्युदीचो दिक्। अधिपत्न्यसि बृहती दिक्। आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाहि। व्यानं मे पाह्यपानं मे पाहि। चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि। मनो मे पिन्व वाचं मे जिन्व। आत्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ। मा छन्दः। प्रमा छन्दः। प्रतिमा छन्दः। अस्रीवयश्छन्दः। पङ्क्तिश्छन्दः॥ उष्णिहा छन्दः। अनुष्टुप्छन्दः। विराट् छन्दः। बृहती छन्दः। गायत्री छन्दः। त्रिष्टुप्छन्दः। जगती छन्दः। पृथिवी छन्दः। अन्तरिक्षं छन्दः। द्यौश्छन्दः। समा छन्दः। नक्षत्राणि छन्दः। वाक् छन्दः। मनश्छन्दः। कृषिश्छन्दः। हिरण्यं छन्दः। गोश्छन्दः। अजा छन्दः। अश्वश्छन्दः। अग्निर्देवता। वातो देवता। सूर्यो देवता। चन्द्रमा देवता। वसवो देवता। रुद्रा देवता। आदित्या देवता। मरुतो देवता। विश्वे देवा देवता। इन्द्रो देवता। वरुणो देवता। बृहस्पतिर्देवता। मूर्धासि राट्। ध्रुवासि धरुणा। धर्त्र्यसि धरणी। आयुषे त्वा। वर्चसे त्वा। कृष्यै त्वा। क्षेमाय त्वा। यन्त्री राट्। यंत्र्यसि यमनी। ध्रुवासि धरित्री। इषे त्वा। ऊर्जे त्वा। रय्यै त्वा। पोषाय त्वा ॥२॥
आशुस्त्रिवृत्। भान्तः पञ्चदशः। व्योमा सप्तदशः। प्रतूर्तिरष्टादशः। तपो नवदशः। अभीवर्तः सविंशः। धरुण एकविंशः। वर्चो द्वाविंशः। संभरणस्त्रयोविंशः। योनिश्चतुर्विंशः। गर्भाः पञ्चविंशः। ओजस्त्रिणवः। क्रतुरेकत्रिंशः। प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः। ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः। नाकः षट्त्रिंशः। वीवर्तो अष्टाचत्वारिंशः। धर्त्रं चतुष्टोमः॥
अग्नेर्भागो ऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः॥
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रं स्पृतं पञ्चदश स्तोमः॥
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रं स्पृतं सप्तदश स्तोमः॥
मित्रस्य भागो ऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविंश स्तोमः॥
वसूनां भागो ऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात्स्पृतं चतुर्विंशः स्तोमः॥
आदित्यानां भागो ऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चविंश स्तोमः॥
आदित्या भागो ऽसि पूष्ण आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः॥
देवस्य सवितुर्भागो ऽसि बृहस्पतेराधिपत्यं समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥
यवानां भागो ऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिंश स्तोमः॥

ऋभूणां भागो ऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतं निशान्तं त्रयस्त्रिंश स्तोमः ॥३॥

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्तर्षयो ऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्। नवभिरस्तुवत पितरो ऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्। एकादशभिरस्तुवतार्तवा असृज्यन्तर्तवो ऽधिपतय आसन्। त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरो ऽधिपतिरासीत्। पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रो ऽधिपतिरासीत्। सप्तदशभिरस्तुवत पशवो ऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत्। नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्। एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणो ऽधिपतिरासीत्। त्रयोविंशत्यावस्तुवत क्षुद्राः पशवो ऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन्। नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयो ऽसृज्यन्त सोमो ऽधिपतिरासीत्। एकत्रिंशतास्तुवत प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन्। त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥४॥

अग्ने जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमना अहेडञ्छर्मंस्ते स्याम त्रिवरूथ उद्भौ॥
सहसा जातान्प्रणुदा नः सपत्नान्प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयं स्याम प्रणुदा नः सपत्नान्॥
षोडश स्तोम ओजो द्रविणम्।
चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम्॥
पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः॥
स्तोमापृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्व॥

एवश्छन्दः। वरिवश्छन्दः। शम्भूश्छन्दः। परिभूश्छन्दः। आच्छच्छन्दः। मनश्छन्दः। व्यचश्छन्दः। सिन्धुश्छन्दः। समुद्रं छन्दः। सरिरं छन्दः। ककुप्छन्दः। त्रिककुप्छन्दः। काव्यं छन्दः। अङ्कुपं छन्दः। क्षुरो भ्रजश्छन्दः। अक्षरपंक्तिश्छन्दः। पदपंक्तिश्छन्दः। विष्टारपंक्तिश्छन्दः। आच्छच्छन्दः। प्रच्छच्छन्दः। संयच्छन्दः। वियच्छन्दः। बृहच्छन्दः। रथन्तरं छन्दः। निकायश्छन्दः। वीवधश्छन्दः। गिरश्छन्दः। भ्रजश्छन्दः। संस्तुप्छन्दः। अनुष्टुप्छन्दः। एवश्छन्दः। वरिवश्छन्दः। वयश्छन्दः। वयस्कृच्छन्दः। विशालं छन्दः। विष्पर्धाश्छन्दः। छदिश्छन्दः। दूरोहणं छन्दः। तन्द्रं छन्दः। अङ्काङ्कं छन्दः ॥५॥

रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्व। प्रेतिरसि धर्मणे त्वा धर्मं जिन्व। अन्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व। संधिरस्यन्तरिक्षाय त्वान्तरिक्षं जिन्व। प्रतिधिरसि पृथिव्यै त्वा पृथिवीं जिन्व। विष्टम्भो ऽसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व। प्रवास्यह्ने त्वाहर्जिन्व। अनुवासि रात्र्यै त्वा रात्रीं जिन्व। उशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसूञ्जिन्व। प्रकेतो ऽसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व। सुदितिरस्यादित्येभ्यस्त्वादित्याञ्जिन्व। ओजो ऽसि पितृभ्यस्त्वा पितॄञ्जिन्व। तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्व। पृतनाषाडसि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्व। रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्जिन्व। अभिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रं जिन्व। अधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणं जिन्व। धरुणो ऽस्यपानाय त्वापानं जिन्व। संसर्पो ऽसि चक्षुसे त्वा चक्षुर्जिन्व। वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व। त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा। सवृदसि सवृते त्वा। प्रवृदसि प्रवृते त्वा। अनुवृदस्यनूवृते त्वा। संरोहो ऽसि। विरोहो ऽसि। प्ररोहो ऽसि। अनुरोहो ऽसि। वसुको ऽसि। वस्यष्टिरसि। वेषश्रीरसि। देवस्य सवितुः प्रसवे बृहस्पतये स्तुत ॥६॥

राज्ञ्यसि प्राची दिक्। वसवस्ते देवा अधिपतयः। अग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता। त्रिवृत्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु। आज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। रथन्तरं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षम्। ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा

प्रथन्तु। विधर्ता चायमधिपतिः। ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु।

विराडसि दक्षिणा दिक्। रुद्रास्ते देवा अधिपतयः। सोमो हेतीनां प्रतिधर्ता। पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु। प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षम्। ऋषयस्त्वा प्रथमजाः॥

सम्राडसि प्रतीची दिक्। आदित्यास्ते देवा अधिपतयः। इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता। सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु। मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। वैरूपं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षम्। ऋषयस्त्वा प्रथमजाः॥

स्वराडस्युदीची दिक्। मरुतस्ते देवा अधिपतयः। वरुणो हेतीनां प्रतिधर्ता। एकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु। निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु। वैराजं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षम्। ऋषयस्त्वा प्रथमजाः॥

अधिपत्न्यसि बृहती दिक्। विश्वे ते देवा अधिपतयः। बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्ता। त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्यां श्रयताम्। वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम्। शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षम्। ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिणा प्रथन्तु। विधर्ता चायमधिपतिः। ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥७॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिः। तस्य रथकृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च कृतस्थला चाप्सरसौ। यातुधाना हेतिः। रक्षांसि प्रहेतिः। ते नः पान्तु। ते नो ऽवन्तु। ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा। तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ। दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः। पौरुषेयो वधः प्रहेतिः। ते नः पान्तु॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचाः(?) — अयं पश्चाद्विददद्वसुः। तस्य रथप्रोथश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ। व्याघ्रा हेतिः। सर्पाः प्रहेतिः। ते नः पान्तु।

अयमुत्तरात्संयद्वसुः। तस्य ताक्ष्र्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ। आपो हेतिः। वातः प्रहेतिः। ते नः पान्तु।

अयमुपर्यर्वाग्वसुः। तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ। अवस्फूर्जन् हेतिः। विद्युत्प्रहेतिः। ते नः पान्तु। ते नो ऽवन्तु। ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥८॥

आयोस्त्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायाम्। नमः समुद्राय। नमः समुद्रस्य चक्षसे॥
प्रोथदश्वो न यवसे ऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनमस्तु कृष्णम्॥

बृहस्पतिस्त्वा सादयतु पृथिव्याः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानाय। विश्वं ज्योतिर्यच्छ। अग्निष्टे ऽधिपतिः। विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानाय। विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टे ऽधिपतिः। प्रजापतिस्त्वा सादयतु दिवः पृष्ठे ज्योतिष्मतीं विश्वस्मै प्राणाय व्यानायापानाय। विश्वं ज्योतिर्यच्छ। सूर्यस्ते ऽधिपतिः।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥
ये अग्नयः समनसो ऽन्तरा द्यावापृथिवी।
इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु॥
शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेताम्॥

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेताम्॥
इषश्चोर्जश्च शारदावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेताम्॥
सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेताम्॥
तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। अग्नेरन्तःश्लेषो ऽसि॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः।
कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः॥
ये अग्नयः समनसो ऽन्तरा द्यावापृथिवी।
इमे शैशिरावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु॥

सहस्रस्य प्रमासि। सहस्रस्य प्रतिमासि। सहस्रस्योन्मासि। साहस्रो ऽसि। सहस्राय त्वा। इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु॥

एका च दश च। शतं च सहस्रं च। अयुतं च प्रयुतं च। नियुतं चार्बुदं च। अर्बुदं च न्यर्बुदं च। समुद्रश्च मध्यं च। अन्तश्च परार्धश्च। ता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्तु॥

ऋतवः स्थर्तावृधः। ऋतुष्ठा स्थर्तुस्पृशो घृतश्च्युतो मधुश्च्युत ऊर्जस्वतीः स्वधायिनीर्विराजो नाम कामदुघाः ॥९॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां षड्विंशतितमोऽध्यायः।

नमस्ते रुद्र मन्यवे बाहुभ्यामुत ते नमः।
उतो त इषवे नमः॥
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्सर्वाश्च यातुधान्यो ऽधराचीः परासुव॥
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः।
ये चेमे रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो ऽवैषां हेड ईमहे॥
असौ यो ऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अदृश्रन्नुतैनमुदहार्यः।
स दृष्टः किं करिष्यति॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानो ऽहं तेभ्यो अकरं नमः॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्।

याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवानुत।
अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गधिः॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मेण परिभुज॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम्॥
नमांसि त आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥
अवतत्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखं शिवो नः सुमना भव॥
या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः।
शिव शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे॥१॥

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमः। नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमः। नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमः। नमो बभ्लुशाय व्याधिने ऽन्नानां पतये नमः। नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः। नमो भवस्य हेत्यै जगतस्पये नमः। नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमः। नमः सूतायाहन्त्वाय वनानां पतये नमः। नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमः। नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमः। नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमः। नम आक्रन्दयत उच्चैर्घोषाय सत्त्वानां पतये नमः। नमः कृत्स्नवीताय धावते पत्तीनां पतये नमः। नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमः। नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतेय नमः। नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमः। नमोः निचराय परिचरायारण्यानां पतये नमः। नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमः। नमः सृगायुभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमः। नमो ऽसिमद्भ्यो नक्तं चरेभ्यः प्रकृन्तानां पतये नमः। नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमः॥2॥

नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमः। नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमः। नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः। नम आयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः। नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमः। नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः। नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमः। नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः। नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः। नमो ऽश्वेभ्यो ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः। नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यद्भ्यश्च वो नमः। नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः। नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः। नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः। नमः कृच्छ्रेभ्यः कृच्छ्रपतिभ्यश्च वो नमः। नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः। नमः सेनाभ्यः सेनानीभ्यश्च वो नमः। नमो रथिभ्यो वरूथिभ्यश्च वो नमः। नमो महद्भ्यो ऽर्भकेभ्यश्च वो नमः। नमः क्षत्तृभ्यःसंग्रहीतृभ्यश्च वो नमः। नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः। नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः। नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमः। नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः। नमो भवाय च रुद्राय च। नमः शर्वाय च पशुपतये च। नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च। नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च ॥३॥

नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च। नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च। नमो ह्रस्वाय च वामनाय च। नमो बृहते च वर्षीयसे च। नमो वृद्धाय च सुवृद्धिने च। नमो ऽग्र्याय च प्रथमाय च। नम आशवे चाजिराय च। नमः शीभ्याय च शीघ्राय च। नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च। नमो नाद्याय च द्वीप्याय च। नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च। नमः पूर्वजाय चापरजाय च। नमो मध्यमाय चापगल्भाय च। नमो बुध्न्याय च जघन्याय च। नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च। नम

आशुषेणाय चाशुरथाय च। नमो बिल्मिने च कवचिने च। नमो वर्मिणे च वरूथिने च। नमः शूराय चावभेदिने च।
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च। नमो याम्याय च क्षेम्याय च। नम उर्वर्याय च खल्याय च। नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय
च। नमः श्लोक्याय चावसान्याय च। नमो कक्ष्याय च वन्याय च। नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च। नमो धृष्णवे च
प्रमृशाय च। नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च। नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च। नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥४॥
नम स्रुत्याय च पथ्याय च। नमः काट्याय च नीप्याय च। नमो नाद्याय च वैशन्ताय च। नमः कुल्याय च
सरस्याय च। नमः कूप्याय चावट्याय च। नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च। नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च। नमो वीध्रियाय
चातप्याय च। नमो वात्याय च रेष्म्याय च। नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च। नमः सोमाय च रुद्राय च। नमस्ताम्राय
चारुणाय च। नमः शंगवे च पशुपतये च। नम उग्राय च भीमाय च। नमो हन्त्रे च हनीयसे च। नमो ऽग्रेवधाय च
दूरेवधाय च। नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। नमस्ताराय। नमः शम्भवे च मयोभवे च। नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च। नमः किंशिलाय च क्षयणाय च। नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च। नमः पुलस्तिने च
कपर्दिने च। नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च। नमस्तल्प्याय च गेह्याय च। नमः पार्याय चावार्याय च। नमः प्रतरणाय
चोत्तरणाय च। नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च। नमः फेन्याय च शष्प्याय च। नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च। नमो
ह्रदय्याय च निवेष्प्याय च। नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च। नमः शुष्क्याय च हरित्याय च। नमो लोप्याय चोलप्याय
च। नमः पांसव्याय च रजस्याय च। नमः सूर्म्याय चोर्म्याय च। नमः पर्णाय च पर्णशदाय च। नम आखिदते च
प्रखिदते च। नमो ऽभिघ्नते चापकुम्बताय च। नम आखिदाय च विखिदाय च ॥५॥

नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यः। नमो विचिन्वत्केभ्यः। नमो विक्षिणत्केभ्यः। नम आनिर्हतेभ्यः॥
द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित।
आसां प्रजानामेषां पुरुषाणामेषां पशूनाम्।
मा भेर्मा रुरो मा नः किंचनाममत्।
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा नः शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥
या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाह भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान उच्चर पिनाकं बिभ्रदुच्चर॥
विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः।
यास्ते सहस्रं हेतयो ऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः॥
सहस्रधा सहस्राणि हेतयस्तव बाह्वोः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कुरु॥
असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये अस्मिन्महत्यर्णवे अन्तरिक्षे भवा अधि।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः।

तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये नीलग्रीवा शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये वनेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये ऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये पथीनां पथिरक्षय ईलमृडा यवधः।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकावन्तो निषङ्गिणः।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥
य एतावन्तो वा भूयांसो वा दिशो रुद्रा वितस्थिरे।
तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि॥

नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु। ते नो मृडयन्तु। ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि॥

नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये ऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु। ते नो मृडयन्तु। ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि॥

नमो अस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु। ते नो मृडयन्तु। ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दधामि ॥६॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां सप्तविंशतितमो ऽध्यायः॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य
ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि संभृताम्।
तां न ऊर्जं धत्त मरुतः संरराणा
अश्मंस्ते क्षुद्द्विष्मस्ते ते शुगृच्छतु।
समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव॥
हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव॥
उप ज्मन्नुप वेतसे ऽवतर नदीष्वा।
अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि।
सेमं नो यज्ञं पावकवर्णं शिवं कृधि।
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य विमोचनम्।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव॥
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।

आ देवान्वक्षि यक्षि च।
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः॥
नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव॥
नृषदे वडप्सुषदे वड्वनसदे वड् बर्हिषदे वट् स्वर्विदे वट्॥
ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानां संवत्सरीणमुप भागमासते।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य॥
ये देवा देवेभ्यो अधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य।
येभ्यो नर्ते पवते धाम किं चन न ते दिवो पृथिव्या अधि स्नुषु॥
प्राणदा व्यानदा अपानदा वर्चोदा वरिवोदाः।
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ॥१॥
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्।
अग्निर्नो वनते रयिम्॥
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां आविवेश॥
विश्वकर्मा विमना यो व्योमा धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्र सप्तर्षीन्पर एकमाहुः॥
त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ता ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता यो नः सतो अभ्या सन्निनाय।
यो देवानां नामधा एको अस्ति तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त सर्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं तस्मिन्विश्वं भुवनमधि श्रितम्॥
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेतामादिदन्ता अददृहन्त पूर्वे॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीद्यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥
किं स्विदासीदारम्भणमधिष्ठानं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥

यो विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन्देव एकः॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं जुषाणः॥
विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वं स्वा हि ते।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥
विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्याहुवेम।
स नो नेदिष्ठं हवनान्यागमद्विश्वशंभूरवसे साधुकर्मा॥२॥
उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत।
रायस्पोषेण संसृज प्रजा च बहुं कृधि।
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद्वशी।
समेनं वर्चसा सृज देवेभ्यो भागदा असत्॥
यस्य कुर्मो गृहे हविरग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः॥
उदु त्वा विश्वे देवाः॥
पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात्॥
समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृहीतः।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः॥
दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपाः।
परिगृह्य यज्ञमयान्॥
हरिकेशः सूर्यरश्मिः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयां अजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति देवः संपश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः॥
देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुर्वीतं शमितं शमिता यजध्यै।
तुर्यो यज्ञो यत्र हव्यमेति ततो पाका आशिषो नो जुषन्ताम्॥
विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम्।
स विश्वाची अभिचष्टे घृताची अन्तरा पूर्वमपरं च केतुम्॥
उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश।
मध्ये दिवो निशितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसः पात्यन्तौ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥
सुब्रह्मर्यज्ञ आ च वक्षत्। यक्षदग्निर्देवो देवां आ च वक्षत्॥
वाजस्य मा प्रसवेनोद्ग्राभेणोदजीगृभम्।
अथा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधरां अकः॥

उद्ग्राभश्च निग्राभश्च ब्रह्म देवां अवीवृधत्।
अथा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥३॥
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यं हस्तेषु बिभ्रतः।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम्॥
प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वान्॥
पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम्।
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम्।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति॥
नक्तोषासा॥
अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छततेजः शतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः।
त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा॥
सुपर्णो ऽसि गरुत्मान्पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृंह॥
आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्व योनिमासीद साध्या।
अस्मिन्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥
तां सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम्।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनां सहस्रधारां पयसा महीं गाम्॥
अग्ने विधेम ते परमे जन्मन्विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजा तं प्र त्वे हवींषि जुहुमः समिद्धे॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वां शश्वन्त उपयन्ति वाजाः॥
सप्त ते अग्ने समिधः ॥४॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनो ऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्।
बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्॥
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा।

इमं सजाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु संरभध्वम्॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानो ऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाऽयुध्यो ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु॥
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मां उ देवा अवता हवेषु ॥५॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च। सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च। सत्यश्चर्तपाश्चात्यंहाः। ईदृङ् चान्यादृङ् च। सदृङ् च प्रतिसदृङ् च। मितश्च संमितश्च सभराः। ऋतश्च सत्यश्च। ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्ता च विधर्ता च विधारय। ऋतजिच्च सत्यजिच्च। सेनजिच्च सुषेणश्च। अन्त्यमित्रश्च दूरेअमित्रश्च गणः। ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः। सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन। मितासश्च संमितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन्। इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतो ऽनुवर्त्मानो ऽभवन्। यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतो ऽनुवर्त्मानो ऽभवन्नेवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥६॥

वाजश्च मे प्रसवश्च मे। प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे। धीतिश्च मे क्रतुश्च मे। स्वरश्च मे श्लोकश्च मे। श्रावश्च मे श्रुतिश्च मे। ज्योतिश्च मे स्वश्च मे। प्राणश्च मे व्यानश्च मे। अपानश्च मे ऽसुश्च मे। चित्तं च म आधीतं च मे। वाक् च मे मनश्च मे। चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे। दक्षश्च मे बलं च मे। ओजश्च मे सहश्च मे। आत्मा च मे तनूश्च मे। शर्म च मे वर्म च मे। अङ्गानि च मे ऽस्थीनि च मे। परूंषि च मे शरीराणि च मे। आयुश्च मे जरा च मे। ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे। मन्युश्च मे भामश्च मे। अमश्च मे ऽम्भश्च मे। जेमा च मे महिमा च मे। वरिमा च मे प्रथिमा च मे। वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे। वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे ॥७॥

सत्यं च मे श्रद्धा च मे। जगच्च मे धनं च मे। क्रीडा च मे मोदश्च मे। वशश्च मे त्विषिश्च मे। सूक्तं च मे सुकृतं च मे। जातं च मे जनिष्यमाणं च मे। वित्तं च मे वेद्यं च मे। भूतं च मे भविष्यश्च मे। सुगं च मे सुपथ्यं च मे। ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे। क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे। मतिश्च मे सुमतिश्च मे। शं च मे मयश्च मे। प्रियं च मे ऽनुकामश्च मे। कामश्च मे सौमनसश्च मे। भगश्च मे द्रविणं च मे। भद्रं च मे श्रेयश्च मे। वस्यश्च मे यशश्च मे। यन्ता च मे धर्ता च मे। क्षेमश्च मे धृतिश्च मे। विश्वं च मे महश्च मे। संविच्च मे ज्ञात्रं च मे। सूश्च मे प्रसूश्च मे। सीलं च मे लायश्च मे ॥८॥

ऋतं च मे ऽमृतं च मे। अयक्ष्मं च मे ऽनामयच्च मे। जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मे। अनमित्रं च मे ऽभयं च मे। सुगं च मे शयनं च मे। सूषाश्च मे सुदिनं च मे। ऊर्क् च मे सूनृता च मे। पयश्च मे रसश्च मे। घृतं च मे मधु च मे। सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे। कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे। जैत्रं च म औद्भिदं च मे। रयिश्च मे रायश्च मे। पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे। विभु च मे प्रभु च मे। पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे। कुयवं च मे ऽक्षितिश्च मे। अन्नं च मे ऽक्षुच्च मे। व्रीहयश्च मे यवाश्च मे। माषाश्च मे तिलाश्च मे। नीवाराश्च मे श्यामाकाश्च मे। अणवश्च मे प्रियङ्गवश्च मे। गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे। मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे ॥९॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे। गिरयश्च मे पर्वताश्च मे। सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे। हिरण्यं च मे ऽयश्च मे। सीसं च मे त्रपु च मे। श्यामं च मे लोहितायसं च मे। अग्निश्च म आपश्च मे। वीरुधश्च म ओषधयश्च मे। कृष्टपच्यं च मे ऽकृष्टपच्यं च मे। ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे। वित्तं च मे वित्तिश्च मे। भूतं च मे भूतिश्च मे। वसु च मे वसतिश्च मे। कर्म च मे शक्तिश्च मे। अर्थश्च म एमश्च मे। इत्या च मे गतिश्च मे। अग्निश्च म इन्द्रश्च मे। सोमश्च म इन्द्रश्च मे। सविता च म इन्द्रश्च मे। सरस्वती च म इन्द्रश्च मे। पूषा च म इन्द्रश्च मे। बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे। मित्रश्च म इन्द्रश्च मे।

वरुणश्च म इन्द्रश्च मे। धाता च म इन्द्रश्च मे। त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे। मरुतश्च म इन्द्रश्च मे। विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे। पृथिवी च म इन्द्रश्च मे। अन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे। द्यौश्च म इन्द्रश्च मे। समाश्च म इन्द्रश्च मे। नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे। दिशश्च म इन्द्रश्च मे ॥10॥

अंशुश्च मे रश्मिश्च मे। अदाभ्यश्च मे ऽधिपतिश्च मे। उपांशुश्च मे ऽन्तर्यामश्च मे। ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च मे। आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे। शुक्रश्च मे मन्थी च मे। आग्रयणश्च मे क्षुल्लकवैश्वदेवश्च मे। ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे। ऐन्द्राग्नश्च मे वैश्वदेवश्च मे। मरुत्वतीयश्च मे महेन्द्रीयश्च मे। सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे। पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे। स्रुचश्च मे चमसाश्च मे। वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे। पूतभृच्च मे ऽपूतभृच्च मे। ग्रावाणश्च मे ऽधिषवणे च मे। अवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे। अग्निश्च मे घर्मश्च मे। अर्कश्च मे सूर्यश्च मे। प्राणश्च मे ऽश्वमेधश्च मे। पृथिवी च मे ऽदितिश्च मे। दितिश्च मे द्यौश्च मे। शक्करीरङ्गुलयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। व्रतं चर्तुश्च। संवत्सरश्च तपश्च। अहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पेताम् ॥११॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामष्टाविंशतितमोऽध्यायः

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे। दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे। पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे। त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे। तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे। पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे। उक्षा च मे वशा च मे। अनड्वांश्च मे धेनुश्च मे। ऋषभश्च मे वेहच्च मे। एका च मे तिस्रश्च मे। तिस्रश्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे। चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे। अष्टौ च मे ऽष्टाचत्वारिंशच्च मे॥

वाजश्च प्रसवश्च। अपिजश्च क्रतुश्च। वाक्पतिश्च वसुश्च। स्वर्मूर्ध्नो मूर्धा। वैयशनो व्यश्नान्। आन्त्योऽन्त्यः। भौवनो भुवनस्पतिः। प्रजापतिरधिपतिः। इयं ते राट्। मित्राय यन्तासि यमनः। ऊर्जे त्वा। वृष्ट्यै त्वा। प्रजानां त्वाधिपत्याय। आयुर्यज्ञेन कल्पताम्। यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। ऋक् च साम च। स्तोमश्च यजुश्च। बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्म प्रजापतेः प्रजा अभूवन्नमृता अभूम वट् स्वाहा ॥१॥
आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यात्॥
वाजस्य नु प्रसवः सुषुवे ऽग्रे॥
वाजस्येदं प्रसव आबभूव॥
वाजस्य नु प्रसवः शिश्रिये देवी॥
सोमं राजानमवस इन्द्रं दानाय चोदय।
विष्णुं वाचं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम्॥
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः।
प्र वाग्देवी ददातु नः॥
अग्ने अच्छा वदेह नः॥
विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः।
विश्वे मा देवा अवसागमन्निह विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीम्॥
वाजो मे सप्त प्रदिशः॥
वाजो मे अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवान्हविषा वर्धयाति।
वाजस्य हि प्रसवे नन्नमीति विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्॥
वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवानृतुभिः कल्पयाति।
वाजस्य हि प्रसवे नन्नमीति सर्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्॥

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।
सो ऽहं वाजं सनोम्यग्ने॥
पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥२॥

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वः। तस्यौषधयो ऽप्सरसो मुदा नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु। तस्मै स्वाहा वट्। ताभ्यः स्वाहा वट्। सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः। तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो वेकुरयो नाम। स न इदम्। संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः। तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। स न इदम्। भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वः। तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तवा नाम। स न इदम्।
इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वः। तस्यापो ऽप्सरस ऊर्जो नाम। स न इदम्। प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वः। तस्यर्क्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु। तस्मै स्वाहा वट्। ताभ्यः स्वाहा वट्॥
स नो भुवनस्य पते यस्य त उपरि गृहा विराट्पते।
अस्मै ब्रह्मणे ऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा॥

समुद्रो ऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शंभूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा। अवस्युरसि दुवस्वाञ्छंभूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा। मारुतोऽसि मरुतां गणः शंभूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥३॥
अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसा बृहन्तम्।
तेन वयं पतेम ब्रध्नस्य विष्टपं स्वो रुहाणा अधि नाक उत्तमे॥
इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्यपहंस्यग्ने।
ताभ्यां वयं पतेम सुकृतामु लोकं यत्रर्षयो जग्मुः प्रथमाः पुराणाः॥
इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः।
महान्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः॥
दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे विश्वस्य मूर्धन्नधितिष्ठसि श्रितः॥
समुद्रे ते हृदयमन्तरायुरपो देह्युदधिं भिन्धि।
दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो मा वृष्ट्याव॥
समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आभाहि प्रदिशः पृथिव्याम्॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये॥
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणो भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजित्स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्॥
इहैवाग्ने अधिधारया रयिं मा त्वा निक्रन्पूर्वचितो निकारिणः।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृता॥
क्षत्रेणाग्ने स्वेन संरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठेयाय राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह॥
अति निहो अति स्रिधो अत्यचित्तिमति निर्ऋतिमद्य।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः॥

अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृतो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन्मानुषीभ्यः शिवेभिरद्य परिपाहि नो वृधे॥
अमुत्रभूयादध यद्यमस्य बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः॥
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥
बृहस्पते सवितर्बोधयैनं संशितं चित्सन्तरां संशिशाधि।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनुमदन्तु देवाः॥
क्षत्रभृदग्निभृष्टतेजाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
वर्ष्मन्पृथिव्या अधि जातवेदा उदन्तरिक्षमारुहदगन्द्याम् ॥४॥
ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः॥
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन॥
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रीणानो नराशंसो अग्निः।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः॥
अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा।
अग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु।
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च॥
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः॥
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः॥
दैव्या होतारोर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभिगृणीतमुक्तम्।
कृणुतं नः स्विष्टिम्॥
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं स्योनमिडा सरस्वती मही।
भारती गृणाना॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम्।
रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे॥
वनस्पतेऽवसृजा रराणस्त्मना देवेषु।
अग्निर्हव्यं शमिता सूदयाति॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥५॥
येनर्षयस्तपसा सत्रमासतेन्धाना अग्निं स्वराभरन्तः।
तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनवः स्तीर्णबर्हिषम्॥

तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः।
आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः॥
अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उपप्रयाहि दिव्यानि धाम॥
संप्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान्कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वन्ता पितरा युवानान्वातांसीत्त्वयि तन्तुमेतम्॥
उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयं च।
अस्मिन्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥
अयं ते योनिर्ऋत्वियः॥
येन सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे॥
इष्टो यज्ञो भृगुभिर्द्रविणोदा यतिभिराशीर्दा वसुभिराशीर्वा अथर्वभिः।
इष्टो अग्निराहुतः स्वाहाकृतः पिपर्तुमिष्टं हविः स्वगेदं देवेभ्यो नमः ॥६॥

जुहूं संमार्ष्टि। यज्ञमुखं वै जुहूः। यज्ञमुखमेवालभते। जुह्वा वै देवा विराजमह्वयन्। तज्जुह्वा जुहूत्वम्। अग्निर्वै विराट्। अग्निमेवैतद्विराजं ह्वयति। छन्दांसि देवेभ्योऽपाक्रामन्यज्ञे भागधेयमिच्छमानानि न वो भागधेयानि हव्यं वक्ष्याम इति। तेभ्य एतच्चतुर्गृहीतं प्रायच्छन्ननुवाक्यायै याज्यायै देवतायै च वषट्काराय। यच्चतुर्गृहीतेन जुहोति च्छन्दांस्येव भागधेयवन्ति करोति। सावित्राणि जुहोति प्रसूत्यै। एति वा एतद्यज्ञमुखाद्यदनाग्नेयमग्रे यज्ञस्य क्रियते। यदष्टौ कृत्वो गृहीत्वाष्टावेतानि जुहोति। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रोऽग्निः। तेन यज्ञमुखान्नैति। प्रसूत्यै सावित्राणि। युञ्जते मन इति मनस्वन्ति। मनो ह्यग्रे युज्यते। मनसा यज्ञस्तायते। अग्निर्ज्योतिरिति ज्योतिष्मत्। सविता वा एतत्पृथिव्या ज्योतिः समभरत्। यदेवास्यात्र न्यक्तं तदेतेन संभरति। षड्चो भवन्ति। षड्तवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। द्वे यजुषी। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। यदि कामयेत देवतां यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयेयमित्यृचमन्ततः कुर्यात्। देवतामेव यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयति। यदि कामयेत यजमानं यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयेयमिति यजुरन्ततः कुर्यात्। यजमानमेव यज्ञयशसेनाहुत्यार्पयति। ऋचा स्तोमं समर्धयेति समृद्ध्यै। गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्तनीति। इयं वै रथन्तरमसौ बृहत्। व्यष्ट्यै। आहुत्या वा अभिक्रममन्वभिक्रम्य यजमानो वसीयान्भवति। आहुत्या अपक्रममन्वपक्रम्य पापीयान्भवति। सकृत्सर्वाण्यनुद्रुत्योत्तमेन जुहुयात्। आहुत्या एवाभिक्रममन्वभिक्रामति यजमानो वसीयान्भवति। एकमेकं जुहुयाद्यदि कामयेत सदृशो यजमानः स्यादिति। यजूंष्येव नानावीर्याणि करोति। अष्टावेतानि भवन्ति। आहुतिर्नवमी। त्रिवृतमेव यज्ञमुखं संपादयति। त्रिवृद्धि यज्ञमुखम्। पूर्णया स्रुचा जुहोति। पूर्णः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति। ऊर्ध्वस्तिष्ठञ्जुहोति। ऊर्ध्वो हि तिष्ठन्वीर्यवत्तरः ॥७॥

सावित्रैरभ्रिमादत्ते प्रसूत्यै। इयं वै गायत्र्यन्तरिक्षं त्रिष्टुब्द्यौर्जगती दिशोऽनुष्टुप्। छन्दोभिरेवैनामेभ्यो लोकेभ्य आवर्तयति। उभयतःक्ष्णुद्भवति। अन्यतःक्ष्णुतेन्वै फालेनैयदन्न क्रियते। अन्नमर्कोऽर्कोऽग्निः। अन्नस्यैवार्कस्यावरुद्ध्यै। अरत्निमात्रीं कुर्यात्। पुरुषेण वै यज्ञः संमितः। यज्ञपुरुषासंमितां व्याममात्रीं कुर्यात्। एतावद्वै पुरुषे वीर्यम्। वीर्येण संमितामपरिमितां कुर्यादपरिमितस्यावरुद्ध्यै। यो वृक्षः फलग्रहिस्तस्य कुर्यात्। एष वै वनस्पतीनां वीर्यवत्तमः। सवीर्यत्वाय। कल्माषीं वैणवीं सुषिरां कुर्यात्। अग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत्। स वेणुं प्राविशत्। स एतानि वर्माण्यनह्यत यानि पर्वाणि। स एतं लोकमन्वचरद्यः सुषिरः। स यत्रयत्रावसत्तन्निरदहत्। तत्कल्माषमभवत्। यत्कल्माषी वैणवी

सुषिरा भवति। स ह्यग्नेर्योनिः। समृद्ध्यै। अथो यदेवास्यात्र न्यक्तं तस्यावरुद्ध्यै॥

अग्निर्वै देवेभ्योऽपाक्रामत्। स वरुणमाविशत्। प्रजापतिरन्वपश्यत्। प्राजापत्योऽश्वः। यदश्वेन यन्त्यग्नेरेवानुख्यात्यै। एतेन वै देवा असुराननुतममभ्यभवन्। यदश्वेन यन्ति भ्रातृव्यस्याभिभूत्यै। एतं वै रक्षांसि नातरन्। यदश्वेन यन्ति रक्षसामतीत्यै। अश्वं पूर्वं नयन्ति गर्दभमपरं पापवसीयसस्य व्यावृत्त्यै। तस्मात्पुण्यं पूर्वं यन्तं पापीयान्पश्चादन्वेति। गर्दभेन संभरति। तस्मादेष समावत्सु रेतो दधानो कनिष्ठः। अग्निर्ह्यस्य रेतो निरदहत्। यदेतेनास्यामुत्रमर्कं संभरति तस्मादेषा प्रजा जीवितृतमा। प्रतूर्तं वाजिन्नाद्रव। युञ्जाथां रासभं युवमित्यश्वगर्दभयोरेव॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये॥

इति। ऊर्ध्वी हि वा अग्निमिश्चैषते। प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीरिति। बहुर्वै भवतो भ्रातृव्यः। भवत्येव योऽग्निं चिनुते। अनुद्भवः। पापमानमभिभूत्यै। वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमवक्रामति। रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहीति। रौद्रा वै पशवः। रुद्रेण पशुभ्यो ह्यस्मे कर्म कुरुते। उर्वन्तरिक्षं वीहि। स्वस्ति गव्यूतिरभयानि कृण्वन्पूष्णा सयुजा सहेति। पूषा वा अध्वनां संनेता। समष्ट्यै। पृथिव्याः सधस्थादग्निं [पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभरेति। पुरीष्यायतनो वा अग्निः।] अङ्गिरस एतमग्रे देवताभिः समभरन्। तायतमेवैनं देवताभिः संभरति। अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम इत्याह येन संगच्छते। सर्वा वै पुरुषे वीर्याणि। वाजमेवास्य वृङ्क्ते। प्रजापतये प्रोच्याग्निश्चेतव्यो राज्ञे प्रोच्य। स हि प्राजापत्यतमः। इयं वै प्रजापतिः। तस्या एष कर्णो यद्वल्मीकः। यद्वल्मीकवपामुद्धत्याभिमन्त्रयते प्रजापतय एव प्रोच्याग्निं चिनुते। शृण्वन्त्वेनमग्निं चिक्यानम्। अस्मादग्निमचैष्टेति। कर्णो हि वल्मीकः ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहिता नवविंशतितमोऽध्यायः॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदित्यनुख्यात्यै। आगत्य वाज्यध्वानं सर्वा मृधो विधूनुत इति मृध एवैतयापहते। आक्रम्य वाजिन्पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वमिति। ऐच्छद्वा एतं पूर्वया प्रजापतिरविन्ददुत्तरया। इच्छत्येव पूर्वया विन्दत्युत्तरया। द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमिति। वज्रो वा अश्वः प्राजापत्यः। लोमभिरभयादतः पशूनिति दद्भिरन्यतोदतः। वज्रेणैव भ्रातृव्यमवक्रामति। यत्र वै यज्ञस्यानुरूपं क्रियते तत्पशवोऽनुरूपा जायन्ते। उत्क्राम। उदक्रमीदित्यनुरूपाभ्यामुत्क्रमयति। तस्मात्पशवोऽनुरूपा जायन्ते। द्वाभ्याम्। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। यो वा अनग्रावध्वर्युराहुतिं जुहोत्यन्धोऽध्वर्युर्भवति। रक्षांसि यज्ञं घ्नन्ति। अग्निर्वै यस्मान्नीरध्यक्रामयत। तस्य तेजः परापतत्। तद्धिरण्यमभवत्। यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्नावेव जुहोति समृद्ध्यै। नान्धोऽध्वर्युर्भवति। न रक्षांसि यज्ञं घ्नन्ति। जिघर्म्यग्निं मनसा घृतेनेति। मनो वै वाचः श्रेयः। मनसैवाहुतिमाप्नोति। प्रतिक्ष्यन्तं भुवनानि विश्वेति। तस्मादेष सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ् ङेति। व्यचिष्ठमन्नं रभसं विदानमित्यन्नमेवास्मै स्वदयति। आ त्वा जिघर्मि वचसा घृतेनेति पूर्वमेवोदितमनुवदति। अरक्षसा मनसा तज्जुषेत इति रक्षसामपहत्यै। मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराण इत्यपरिवर्गमेवास्मिन्दधाति। द्वाभ्यां जुहोति। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। यज्ञमुखेयज्ञमुखे वै यज्ञं रक्षांसि जिघांसन्ति। यत्परिलिखति रक्षसामपहत्यै। तिसृभिः परिलिखति। त्रय इमे लोकाः। एभ्य एव लोकेभ्यो रक्षांस्यपहन्ति। परि वाजपतिः कविरिति गायत्र्या परिलिखति। ब्रह्म वै गायत्री। ब्रह्मणैवैनं परिगृह्णाति। परि त्वाग्ने पुरं वयमित्यनुष्टुभा। वाग्वा अनुष्टुप्। अनुष्टुप्सर्वाणि च्छन्दांसि परिभूः। वाचैव सर्वाणि च्छन्दांसि परिगृह्णाति। त्वमग्ने द्युभिरिति त्रिष्टुभा। वीर्यं वै त्रिष्टुप्। वीर्येणैवैनं परिगृह्णाति। अनुष्टुभा मध्यतः परिलिखति। वाग्वा अनुष्टुप्। वाचमेव मध्यतो दधाति। तस्मान्मध्यतो वाग्वदति। तेजो वै गायत्री। यज्ञोऽनुष्टुप्। इन्द्रियं त्रिष्टुप्। तेजसा वीर्येन्द्रियेण च यज्ञमुभयतः परिगृह्णाति ॥१॥

सावित्राभ्यां खनति प्रसूत्यै। धृष्णुर्भव पृथुं विन्दति ज्योतिष्मन्तम्। द्वाभ्याम्। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेरिति पुष्करपर्णमादत्ते। अपां ह्येतत्पृष्ठं योनिरग्नेः। यत्पुष्करपर्णेन संभरति स्वेनैवैनं योनिना संभरति। शान्त्या अनिर्दाहाय। कृष्णाजिनेन संभरति। यज्ञो वै कृष्णाजिनम्। यज्ञेनैव यज्ञं संभरत्यस्कन्दाय। न हि यज्ञे यज्ञ

स्कन्दति। एतद्वै ब्रह्मणो रूपं यत्कृष्णाजिनम्। ब्रह्मणा चैवैनमृक्सामाभ्यां च संभरति। शर्म च स्थो वर्म च स्थ इति संस्तृणाति। इयं वै पुष्करपर्णमसौ कृष्णाजिनम्। इमे एवैतत्संस्तृणाति। अच्छिद्रे बहुले उभे इत्यच्छिद्रे हीमे बहुले उभे। व्यचस्वती इति। तस्मादिमे व्यचस्वती। भर्तमग्निं पुरीष्यमिति। पुरीष्यो ह्येषः। संवसाथां स्वर्विदा समीची उरसा त्मनेति। तस्मादिमे नाना सती समीची। अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमिदिति ज्योतिरेवास्मिन्नजस्रं दधाति। पुरीष्योऽसि विश्वभरा इति। पुरीष्यो ह्येष विश्वभराः। अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्न इति। प्रजापतिर्वा अथर्वा। प्रजापतिरेतमग्रेऽमन्थत्। प्रजापतिरेवैनं जनयति। तमु त्वा दध्यङ्ङृषिरिति। दध्यङ् वा आथर्वणस्तेजस्व्यासीत्। तेनैवैनं संभरति। तमु त्वा पाथ्यो वृषेति। पूर्वमेवोदितमनुवदति। चतसृभिः संवपति। चत्वारि वै छन्दांसि। छन्दोभिरेवैनं संवपति। गायत्रीभिर्ब्राह्मणस्य संवपेत्। गायत्रो हि ब्राह्मणः। त्रिष्टुब्भी राजन्यस्य। त्रैष्टुभो हि राजन्यः। जगतीभिर्वैश्यस्य। जागतो हि वैश्यः। यथाछन्दसमेवोभयीभिः संवपेद्य कामयेत वसीयान्स्यादिति। तेजो वै गायत्री। इन्द्रियं त्रिष्टुप्। तेजश्चैवास्मिन्निन्द्रियं च समीची दधाति। अष्टाभिः संवपति। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रोऽग्निः। यावानेवाग्निस्तं संभरति। सीद होतरिति देवता एवास्मिन्संसादयति। नि होतेति मनुष्यानेव। संसीदस्वेति वयांस्येव। जनिष्व हि जेन्यो अग्रे अह्नामिति देवमनुष्यानेवास्मिन्संसन्नान्प्रजनयति ॥२॥

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरित्योषधीनां प्रतिष्ठित्यै। तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पला इति। तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्ति। सं ते वायुर्मातरिश्वा दधात्विति। तस्माद्वायुर्वृष्टिं वहति। प्राणो वै वायुः। प्राणमेवास्मिन्दधाति। तस्मै देव वषडस्तु तुभ्यमिति। षड् वा ऋतवः। ऋतुष्वेव वृष्टिं दधाति। तस्मादृतुमृतुं वर्षति। यत्प्रत्यक्षं वषट् कुर्याद्यातयामा वषट्कारः स्यात्। यत्र वषट् कुर्याद्रक्षांसि यज्ञं हन्युः। तस्मै देव वषडस्तु तुभ्यमिति परोक्षम्। न यातयामा वषट्कारो भवति न रक्षांसि यज्ञं घ्नन्ति। यदाज्येन जुहुयाच्छुचा पृथिवीमर्पयेत्। अपो निनयति शान्त्या अनिर्दाहाय॥
सुजातो ज्योतिषा शर्म वरूथमासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूपं संव्ययस्व विभावसो॥

इति छन्दांसि वा अग्नेर्वासः। छन्दोभिरेवैनं परिददाति। अनुष्टुभा। अनुष्टुब्वा अग्नेः प्रिया तनूः। प्रिययैवैनं तन्वा परिददाति। वेदुको वासो भवति य एवं वेद। वरुणमेनिर्वा एष उपनद्धः। उदु तिष्ठ स्वध्वर॥ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतय इत्यूर्ध्वमेव वरुणमेनिमुत्सृजति। द्वाभ्यामुपावहरति। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीष्विति। तस्मादग्निः सर्वा अन्वोषधीः। प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गा इति। ओषधयो वा एतस्य मातरः। ताभ्य एवैनं परिणयति। स्थिरो भव वीड्वङ्ग इति गर्दभ एव स्थेमानं दधाति। तस्मादेष पशूनां भारभारितमः। शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिर इति। अभि वा एष एतर्हि प्रजाः शोचयति शान्त्यै। मा द्यावापृथिवी अभि शुचो मान्तरिक्षं मा वनस्पतीनित्येभ्य एवैनं लोकेभ्यः शमयति। प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वेति समष्ट्यै। भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरेत्यायुरेवास्मिन्दधाति। तस्माद्गर्दभः सर्वमायुरेति। तस्माद्गर्दभे प्रमीते बिभ्यति। वृषाग्निं वृषणं भरन्निति। वृषा ह्येष वृषाणं भरति। अपां गर्भं समुद्रियमिति। अपां ह्येष गर्भः। अग्न आयाहि वीतय इति। अग्निना वै देवा इदमग्रे व्यायन्। वीत्यै। प्रच्युतो वा एष एतर्ह्यायतनादगतः प्रतिष्ठाम्। स यजमानं चैवाध्वर्युं चाध्यायति। ऋतं सत्यमृतं सत्यमिति। इयं वा ऋतमसौ सत्यम्। अनयोरेवैनं प्रतिष्ठापयति। ओषधयः प्रतिगृह्णीताग्निमेतं शिवमायन्तमभ्यत्र युष्मानिति। ओषधयो वा एतस्य भागधेयम्। ताभिरेवैनं सम्यञ्चं दधाति। अथो याभ्य एनं प्रच्यावयति तास्वेनं प्रतिष्ठापयति। पुष्पवतीः सुपिप्पला इति। तस्मादोषधयः फलं गृह्णन्ति। द्वाभ्यामुपावहरति द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। वि पाजसेति विस्रसयति। वरुणमेनिमेव विष्यति। आपो हि ष्ठा मयोभुव इत्यप उपसृजति। आपः शान्ताः। शान्ताभिरेवास्य शुचं शमयति। तिसृभिः। त्रिवृद्ध्यग्निः। यावानेवाग्निस्तस्य शुचं शमयति। अजलोमैः संसृजति। एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यदजा। प्रिययैवैनं तन्वा संसृजति। शर्कराभिः संसृजति

धृत्यै। अर्म्यैः कपालैः संसृजति। आरण्यानेव पशूञ्शुचार्पयति। तस्मादेते समावत्पशूनां प्रजायमानानां कनिष्ठाः। शुचा ह्येत ऋताः ॥३॥

मित्रः संसृज्य पृथिवीमिति। वरुणमेनिर्वा एषा। मित्रेणैव वरुणमेनिमुपैति। रुद्राः संसृज्य पृथिवीम्। संसृष्टां वसुभी रुद्रैरिति। एताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिः समसृजत्। ताभिरेवैनां संसृजति। प्रान्यैर्यच्छति। अन्वन्यैर्मन्त्रयते। मिथुनमेव करोति। अथो मध्यत एव यज्ञस्याशिषमवरुंद्धे। मखस्य शिरो ऽसीति। यज्ञो वै मखः। यज्ञस्यैव शिरः करोति। वसवस्त्वा कुर्वन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वदिति। एताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिरकरोत्। ताभिरेवैनां करोति। त्रयुद्धिं करोति। त्रय इमे लोकाः। इमानेव लोकानाप्नोति। धारया मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यमित्याशीरेवैषा छन्दसां दोहः। अरत्निमात्रीं कुर्यात्। पुरुषेण वै यज्ञः संमितः। यज्ञपुरुषासंमिताम्। यावद्बाहुभ्यां पर्याप्नुयात्तावतीं कुर्यात्। एतावद् वै पुरुषे वीर्यम्। वीर्येण संमिताम्। प्रादेशमात्रीं कुर्यात्। एतावद्वै मुखम्। मुखं देवानामग्निः। मुखेन संमिताम्। अपरिमितां कुर्यादपरिमितस्यावरुद्ध्यै। चतुस्तनां कुर्याददित्या दोहाय। अष्टास्तनां गायत्र्या दोहाय। षट्स्तनां कुर्यादृतूनां दोहाय। द्विस्तनां कुर्याद् द्यावापृथिव्योर्दोहाय। नवाश्रिमभिचरणीयां कुर्यात्। त्रिवृद्वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। आदित्या रास्नास्यदितिस्ते बिलं गृह्णात्विति यजुषा बिलं करोति। अयजुषा हि मनुष्याः कुर्वन्ति। मानुषेणैवैनां पात्रेण व्यावर्तयन्ति। यद्वा एषा पुरा पक्तोर्भिद्येतार्तिं यजमान आर्छेद्धन्येतास्य यज्ञः। कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नय इति देवताभ्य एवैनां संप्रयच्छति गोपीथाय। वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वदिति। एताभिर्वा एतां देवताभिः प्रजापतिरधूपयत्। ताभिरेवैनां धूपयति। अश्वशकेन धूपयति। प्राजापत्यो वा अश्वः। यज्ञः प्रजापतिः। सयोनित्वाय। सप्तभिर्धूपयति। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदुखा। सप्त प्राणाः। शीर्षण्येव प्राणान्दधाति। तस्मात्सप्त शीर्षण्याः प्राणाः ॥४॥

अदितिस्त्वा देवी विश्वदेव्यावतीति। इयं वा अदितिः। अदित्यैवादित्यां खनत्यस्या अक्रूरंकाराय। न हि स्वः स्वं हिनस्ति। देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीरिति। देवानां वा एतां पत्नीरग्रे ऽत्रादधुः। ताभिरेवैनां दधाति। धिषणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीरिति। विद्या वै धिषणा। विद्ययैवैनामभींद्धे। वरूत्रीस्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीरिति। होत्रा वै वरूत्रः। होत्राभिरेवैनां श्रपयति। ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीरिति। छन्दांसि वै ग्नाः। छन्दोभिरेवैनां पचति। जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीरिति। देवानां वै पत्नीर्जनयः। ताभिरेवैनां पचति। द्विः पचन्त्वित्याह। तस्माद्द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते। षड्भिः पचति। षड्वा ऋतवः। ऋतुभिरेतां देवानां पत्न्यो ऽपचन्। तैरेवैनां पचति। वरुणमेनिर्वा एषाभीद्धा। मित्रस्य चर्षणीधृत इति। मित्रेणैव वरुणमेनिमुपैति। देवस्त्वा सवितोद्वपत्विति। सावित्र्योद्वपति प्रसूत्यै। अव्यथमाना पृथिव्यमाशा दिश आपृणेति। तस्मादग्निः सर्वा दिशो विभाति। उत्तिष्ठ बृहती भवोर्ध्वा तिष्ठ ध्रुवा त्वमिति। दृंहत्येवैनाम्। यद्वा एषा भिद्येतार्तिं यजमान आर्छेद्धन्येतास्य यज्ञः। मित्रैतां त उखां परिददामीति। ब्रह्म वै मित्रः। ब्रह्मण एवैनां परिददाति। यदि भिद्येत तैः कपालैः संसृज्यान्यां कुर्यात्। सैव ततो यज्ञस्य निष्कृतिः। वसवस्त्वाच्छृन्दन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वदिति। छन्दोभिर्वा एषा क्रियते छन्दोभिर्धूप्यते छन्दोभिः पच्यते। छन्दोभिराच्छृणत्ति स्वेनायतनेन। असुर्यं वै पात्रमनाच्छृण्णम्। यदाच्छृणत्ति देवत्रैव करोति। अजक्षीरेणाच्छृणत्ति। सा ह्याग्नेयीतमा। अथो परमेणैव पयसा ॥५॥

अथैते ऽग्निभ्यः कामेभ्यः पशव आलभ्यन्ते। कामा वा अग्नयः। सवनिवैतैः कामानभिजयति सर्वान्कामान्स्पृणोति। यत्पशून्नालभेतानवरुद्धा अस्य पशवः स्युः। यत्संस्थापयेद्यातयामानि शीर्षाणि स्युः। यन्न संस्थापयेद्यज्ञं विच्छिंद्यात्। यत्पशूनालभते तेनैव पशूनवरुंद्धे। यत्पर्यग्निकृतानुत्सृजति [शीर्ष्णामयातयामत्वाय ।... ॥६॥]

.... [यदग्नये वैश्वानराय नि] र्वपत्यश्नुते तं कामं यस्मै कामाय दीयते। यद्द्वादशकपालो द्वादशमासाः संवत्सरः। या वै प्रजा भ्रंशन्ते संवत्सरात्ता भ्रंशन्ते। याः प्रतितिष्ठन्ति संवत्सरे ताः प्रतितिष्ठन्ति। संवत्सर एव प्रतिष्ठायामग्निं बिभर्ति ॥७॥

षडाधीतयजूंषि जुहोति। षड्वा ऋतवः। ऋतुभिरेवैनं दीक्षयत्यृतुभिरस्या वीर्यमुद्यच्छते। सप्तैतानि जुहोति। सप्त

प्राणाः। प्राणैरेवैनं दीक्षयति। नाना जुहोति। तस्मान्नानावीर्याः प्राणाश्चक्षुः श्रोत्रं वाक्। अनुष्टुभोत्तमं जुहोति। वाग्वा अनुष्टुप्। वाचमेवोत्तमां दधाति। तस्माद्वाक्प्राणानामुत्तमा विहितं वदति। अनुष्टुब्वै सर्वाणि छन्दांसि। पशवश्छन्दांसि। अन्नं पशवः। पशूनेवान्नाद्यमवरुंद्धे। यज्ज्योतिषि प्रवृणक्ति भूतं तेनावरुंद्धे। यदङ्गारेषु भविष्यत्तेन। अङ्गारेषु प्रवृज्या। भविष्यद्धि भूयो भूतात्। मा सु भित्था मा सु रिष इति दृंहत्येवैनाम्। अरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे अस्मिन्निति समष्ट्यै। द्वाभ्यां प्रवृणक्ति। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। परीध्या बुभूषतः। गर्भो वै दीक्षितः। अत इव वा एष भवत्यत एवैनं जनयति। मथित्वा गतश्रेरवदध्यात्। भूतो हि सः। स्वामेव देवतामुपैति। अन्यत आहृत्यावदध्याद्यं कामयेत भ्रातृव्यमस्मै जनयेयमिति। भ्रातृव्यमेवास्मै जनयति। भृज्जनादाहृत्यावदध्यादन्नकामस्य। भृज्जने वा अन्नं क्रियते। सयोन्येवान्नमवरुंद्धे। यो वृक्ष उपरि दीप्येत तस्यावदध्यात्स्वर्गकामस्य। एष वा अग्नीनां स्वर्ग्यः। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। द्रवन्नः सर्पिरासुतिरिति क्रमुकं लिखितं घृतेनाक्त्वावदध्यात्। अग्नेर्वै या प्रिया तनूस्तया क्रमुकं प्राविशत्। तेजो घृतम्। प्रियामेवास्य तन्वं तेजसा समनक्ति। मुञ्जानवदधाति। ऊर्ग्वै मुञ्जाः। ऊर्जमेवास्मा अपिदधाति। परस्या अधि संवत इत्यौदुम्बरीम्। देवा वै यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरो ऽजायत। जातायैवास्मा ऊर्जमपिदधाति। परमस्याः परावत इति वैकङ्कतीम्। अग्नेर्वै सृष्टस्य विकङ्कतं भा आर्छत्। तदेवावरुंद्धे। यदग्ने कानि कानि च। यदत्त्युपजिह्विकेति। न ह स्म वै पुराग्निरपरशुवृक्णं दहति। तदस्मा एताभिः प्रयोग ऋषिरस्वदयत्। यदेताभिः समिधमादधातीध्ममेवास्मै स्वदयति। स्वदितमस्यान्नं भवति। छन्दांसि वा अग्नेर्योनिः। यच्छन्दोभिरादधाति स्वेनैवैनं योनिनानुबिभर्ति। रात्रींरात्रीमप्रयावं भरन्त इत्याशिषमेवाशास्ते। नाभा पृथिव्याः समिधानो अग्निमिति। पृतना एवैतया जयति। यः सेना अभीत्वरीरिति। अग्निं वै जातं रक्षांस्यजिघांसन्। ते देवा एता ऋचो ऽपश्यन्। ताभिरस्माद्रक्षांस्यपाघ्नन्। यदेताभिः समिध आदधाति रक्षसामपहत्यै। देवा असुराश्चस्पर्धन्त। ते देवा एतन्मालिम्लवमपश्यन्। तेनासुरानभ्यभवन्। यदेतेन समिधमादधाति भ्रातृव्यस्याभिभूत्यै। तस्माद्यां समामग्निं चिन्वन्ति ग्राहुका स्तेनं भवन्ति। यः सेना अभीत्वरीरित्यौदुम्बरीम्। ऊर्जमेवास्मा अपिदधाति। दंष्ट्राभ्यां मलिम्लूनग्न इत्याश्वत्थीम्। एष वै वनस्पतीनां सपत्नसाहः। विजित्यै। यर्हि दंष्ट्राभ्यामिति। ब्रूयाद्यं द्विष्यात्तं मनसा ध्यायेत्। मनो वै वाचः क्षेपीयः। आहुतिमेवैनं भूतामग्नये ऽपिदधाति। ये जनेषु मलिम्लव इति वैकङ्कतीम्। अग्नेर्वै सृष्टस्य विकङ्कतं भा आर्छत्। तदेवावरुंद्धे। यो अस्मभ्यमरातीयादिति शमीमयीं शान्त्यै। निन्दाद्यो अस्मान्दिप्साच्चेति। तस्मादग्निचितो नाश्लीलं कीर्तयेत्। संशितं मे ब्रह्मेति। ब्रह्मणैव क्षत्रं संश्यति क्षत्रेण ब्रह्म। तस्माद्ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रमत्यन्यानि क्षत्राणि। तस्माद्ब्रह्म क्षत्रवदत्यन्यान्ब्राह्मणान्। उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलमित्याशिषमेवाशास्ते। क्षिणोमि ब्रह्मणामित्राननुन्नयामि स्वां अहमिति यथायजुः ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां त्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौदिति रुक्मं प्रतिमुञ्चते। मृत्युर्वा अग्निः। अमृतं हिरण्यम्। अमृतेनैव मृत्योरन्तर्धत्ते। एकविंशतिनिर्बाधो भवति प्रतिष्ठित्यै। एकविंशतिर्देवलोकाः। तेभ्य एव भ्रातृव्यं निर्बाधते। बहिष्टान्निर्बाधं कुर्यात्। अस्मादेवैनं लोकान्निर्बाधते। उभयतः पर्यस्यति प्रतिमुञ्चमानः। उभाभ्यामेवैनं लोकाभ्यां निर्भजति। नक्तोषासेत्यहोरात्राभ्यामेवैनं परिगृह्णाति। देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदा इति। प्राणा वै देवा द्रविणोदाः। प्राणैरेवैनं दाधार। षडुद्यामं शिक्यं भवति। षड्वा ऋतवः। ऋतुभिरेवैनं परिगृह्णाति। द्वादशोद्यामं भवति। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरेणैवैनं परिगृह्णाति। मौञ्जं भवति। ऊर्ग्वै मुञ्जाः। ऊर्जैवैनं परिगृह्णाति। नाधोनाभि बिभृयात्। अग्निरस्य रेतो निर्दहेत्। ऊर्ध्वं नाभ्या बिभृयात्। ऊर्ध्वं वै नाभ्याः सदेवम्। अग्निः सर्वा देवताः। सदेव एव देवता बिभर्ति। विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविरिति सावित्र्या प्रतिमुञ्चते प्रसूत्यै। आसीनः प्रतिमुञ्चते। तस्मादासीनाः प्रजाः प्रजायन्ते। सुपर्णोऽसि गरुत्मानिति। अग्नेर्वा एते संभाराः। अग्निमेवैतैः संभरति। एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम। तदेवावरुंद्धे। दिवं गच्छ स्वः पतेति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। असुराणां वा इमे लोका आसन्। ते देवा विष्णुमब्रुवन्यावदयं कुमारो

विक्रमते तावन्नो दत्तेति। स सकृदेवेमां व्यक्रमत गायत्रीं छन्दः सकृदन्तरिक्षं त्रिष्टुभं छन्दः सकृद्दिवं जगतीं छन्दः सकृद्दिशो ऽनुष्टुभं छन्दः। ते देवा इमांल्लोकानसुराणामवृञ्जत। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वान्प्रक्रामान्प्रक्रामतीमानेव लोकान्भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौरित्येतया वै वत्सप्रीर्भालन्दनो ऽग्नेः प्रियं धामावरुंद्ध। अग्नेरेवैतया प्रियं धामावरुंद्धे। अग्ने ऽभ्यावर्तिन्॥ अग्ने अङ्गिरः॥ पुनरूर्जा॥ सह रय्येति पुनरेति। तस्माद्ग्राम्याः पशवः सायमरण्याद्ग्राममायन्ति। चतसृभिः। चतुष्पादो हि पशवः। दक्षिणा पर्यावर्तते। तस्माद्दक्षिणो ऽर्ध आत्मनो वीर्यवत्तरः। आ त्वाहार्षमिति। आ ह्येनं हरति। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वस्मे राष्ट्रमधिश्रयेति। यं कामयेत राष्ट्रं स्यादिति तं मनसा ध्यायेत्। राष्ट्रमेव भवति। उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदिति। शुनःशेपो वा एतामाजीगर्तिर्वरुणगृहीतो ऽपश्यत्। तया वै स वरुणपाशादमुच्यत। वरुणपाशमेवैतया प्रमुञ्चते। अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थादिति। पाप्मा वै तमः। पाप्मानमेवैतयापहते। हंसः शुचिषदिति। साप्तान्येवैतया प्रीणाति। सदित्यभिपूर्वमेवैनं सति प्रतिष्ठापयति। आसन्द्यां सादयति। सृयते वा एषो ऽग्नीनां य उखायां भ्रियते। तस्मादासंद्यां सादयति। यदधः सादयेत्प्रपादुका गर्भाः स्युः। उपरि सादयति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय। तिसृभिरुपतिष्ठते। त्रयो वै प्राणाः प्राणो व्यानो ऽपानः। तानेव यजमाने दधाति। त्रय इमे लोकाः। एष्वेव लोकेष्वृध्नोति ॥१॥

अथैतद्वात्सप्रम्। एतेन वै वत्सप्रीर्भालन्दनो ऽग्नेः प्रियं धामावरुंद्ध। अग्नेरेवैतेन प्रियं धामावरुंद्धे। एतेन वै स ऋषीणामधिवादमपाजयत्। पाप्मानमेवैतेनाधिवादमपजयति। एतेन वै सो ऽभिशस्तीरजयत्। अभिशस्तीरेव जयति य एवं विद्वानेतेनोपतिष्ठते। यत्प्रक्रमान्प्रक्रामति यामं तेन दाधार। यदुपतिष्ठते क्षेमं तेन। पूर्वेद्युः प्रक्रामत्यपरेद्युरुपतिष्ठते। तस्माद्यामे ऽन्यासां प्रजानां मनः क्षेमे ऽन्यासाम्। तस्माद्यायावरः क्षेमस्येशे। तस्माद्यायावरः क्षेम्यमध्यवस्यति। एकेषं वै पुरान आसीत्। तत एतद्व्यो एकादशं भवति। एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्। [वीर्यं त्रिष्टुप्।] वीर्यमेवावरुंद्धे। उदु त्वा विश्वे देवा ऽग्नये द्वीपमाधानमपश्यन्। तस्माद्द्वीपमग्नय आधानं कुर्वन्ति। तामिदमनुकृति द्वीपमनः क्रियते। अग्ने भरन्तु इति। प्राणा वै विश्वे देवाः। प्राणैरेवैनमुद्यच्छते। मनुष्या वै विश्वे देवाः। मनुष्यैरेवैनमुद्यच्छते। प्रेदग्ने ज्योतिष्मान्याहीति। अभि वा एष एतर्हि प्रजाः चित्तिभिरिति। यस्मा एवैनं चित्तायोद्यच्छते तेनैनं समर्धयति। क्रन्दतैव ह्यनसा वहन्ति। तस्मादनस्वी च रथी शोचयति। शान्त्यै। अक्रन्ददग्निरिति यदि क्षुवेदत्। अनमीवस्य शुष्मिण इत्ययक्ष्मस्येत्येवैतदाह। चातिथीनामपचिततमौ। अन्नपते अन्नस्य नो देहीत्यन्नमेवास्मै स्वदयति। समिधाग्निं दुवस्यतेति घृतेनाक्त्वा प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पद इत्याशिषमेवाशास्ते। गायत्र्या ब्राह्मणस्यादध्यात्। गायत्रो हि ब्राह्मणः। त्रिष्टुभा राजन्यस्य। त्रैष्टुभो हि राजन्यः। जगत्या वैश्यस्य। जागतो हि वैश्यः। यथाछन्दसमेव। समिधमादधाति। यथा ब्राह्मणायातिथये सर्पिष्मन्तं पचत्येवमेव तत्। आपो देवीः प्रतिगृह्णीत भस्मैतदित्यप्सु भस्म प्रवपति। आपो वा अग्नेर्योनिः। स्वमेवैनं योनिं गमयति। तिसृभिः प्रवपति। त्रिवृद्वा अग्निः। यावानेवाग्निस्तं प्रतिष्ठां गमयति। परा वा एषो ऽग्निं वपति यो ऽप्सु भस्म प्रवपति।

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।

संसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान्पुनरासदः॥

इति ज्योतिरेवास्मिन्दधाति। ऊर्जा वा एष पशुभिर्व्यृध्यते यो ऽप्सु भस्म प्रवपति। पुनरूर्जा॥ सह रय्येति पुनरेवोर्जं पशूनवरुंद्धे। बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठेति। तस्मात्प्रजाः सुषुपुषीः प्रबुध्यन्ते। स बोधि सूरिर्मघवा वसुदावा वसुपतिरिति। तस्मात्पशवः प्रेत्वानिश्चरित्वा पुनरेत्य यथालोकं निषीदन्ति। द्वाभ्याम्। द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै॥२॥

अपेत वीत वि च सर्पतात इति देवयजनमध्यवस्यति। यो वा अस्या अधिपतिं देवयजनमनिर्याच्याग्निं चिनुते यमाय ते ऽग्नयश्चीयन्ते। यमो ऽस्या अधिपतिः। यममेवास्या अधिपतिं देवयजनं निर्याच्यात्मने ऽग्निं चिनुते। इन्द्राग्नेण ह वा अस्या अनामृतमिच्छन्तो न विविदुः। यदेतेन देवयजनमध्यवस्यत्यस्या एवानामृते ऽग्निं चिनुते। उवाच ह

सनाच्छ्व एतन्मा कतिपयथं यजुरायतनादचुच्यवदिति। दिवः प्रिये धामन्नग्निश्चेतव्यः। ऊषा वै दिवः प्रियं धाम। यदूषान्निवपति दिव एव प्रिये धामन्नग्निं चिनुते। इष्टका वा एता वैश्वानरीरपरिमिता यत्सिकताः। यत्सिकता उपवपति ता एवावरुंद्धे। अयं सो अग्निर्यस्मिन्सोममिन्द्र इत्येतद्विश्वामित्रस्य सूक्तम्। एतेन वै विश्वामित्रो ऽग्नेः प्रियं धामावरुंद्ध। अग्नेरेवैतेन प्रियं धामावरुंद्धे। चतस्रः प्राचीरुपदधाति। चत्वारि वै छन्दांसि। छन्दोभिर्देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तेषां दिशः समव्लीयन्त। त एता दिश्या अपश्यन्। ताभिर्दिशो ऽदृंहन्। यद्द्वे पुरस्तात्समीची उपदधाति द्वे पश्चात्समीची दिशां विधृत्यै। अष्टावेता उपदधाति। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्री स्वर्गं लोकमञ्जसा वेद। स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै। अष्टावेता उपदधाति। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रो वा अग्निः। यावानेवाग्निस्तं चिनुते। अष्टावेता उपधाय त्रयोदश लोकंपृणयो [पदधाति।] ता एकविंशतिः संपद्यन्ते। एकविंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठा गार्हपत्यः। एकविंशस्यैव प्रतिष्ठामनु गार्हपत्येन प्रतितिष्ठति। प्रत्यग्निं चिक्यानस्तिष्ठति य एवं वेद। पञ्चचितीकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः। पाङ्क्तो वै यज्ञः। पाङ्क्ताः पशवः। यज्ञं चैव पशूंश्चावरुंद्धे। त्रिचितीकं चिन्वीत द्वितीयं चिन्वानः। त्रय इमे लोकाः। एष्वेव लोकेष्वृध्नोति। एकचितीकं चिन्वीतोत्तमं चिन्वानः। एकवृदेव स्वर्गं लोकमेति। पञ्च चितयो भवन्ति पञ्च पुरीषाणि। तद्दश। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति। अस्थि वा इष्टका मांसं पुरीषम्। यत्पुरीषेणाभ्यूहति तस्मादस्थि मांसेन च्छन्नम्। न दुश्चर्माभवति य एवं वेद। समितं संकल्पेथामिति संनिवपति। क्षत्रं समेति। ब्रह्म यजुः। ब्रह्मणैवैनौ संनिवपति। चतुर्भिः संनिवपति। चत्वारि वै छन्दांसि। छन्दोभिरेवैनौ संनिवपति। यत्संन्युप्य विहरति तस्माद्ब्रह्मणा क्षत्रं समेति ब्रह्मणा व्येति। मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा। तां विश्वे देवा ऋतुभिः संविदाना इति। ऋतुभिरेवैनं दीक्षयित्वर्तुभिर्विमुञ्चति। प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चत्विति प्रजापतिमेवास्या विमोक्तारं करोति ॥३॥

अथैता नैर्ऋतीस्तिस्रः कृष्णाः। तुषपक्वा यत्कृष्णाः। एष हि तं वर्णः सचते यं निर्ऋतिर्गृह्णाति। यत्तुषपक्वा एतद्वै निर्ऋत्या भागधेयम्। भागधेयेन च निरवदयते। यदस्य पारे रजस इति वैश्वानर्यादत्ते। स्वदयत्येव। इमां दिशं हरन्ति। एतां दिशं हरन्ति यं निर्ऋतिर्गृह्णाति। एषा वै निर्ऋत्या दिशाम्। स्वायामेव दिशि निर्ऋतिं निरवदयते। स्वकृत इरिण उपदधाति। एतद्वा अस्या निर्ऋतिगृहीतम्। यत्रैवास्या निर्ऋतिगृहीतं निर्ऋतिं निरवदयते। पराचीरुपदधाति। पराचीमेव निर्ऋतिं निरवदयते। तिस्र उपदधाति। त्रेधाविहितो वै पुरुषः। यावानेवास्यात्मा तस्मान्निर्ऋतिं निरवदयते। यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्धेति शिक्यमधिन्यस्यति। नैर्ऋतो वै पाशः। निर्ऋतिपाशादेवैनं मुञ्चति। पितृलोकं वा एते निगच्छन्ति ये दक्षिणा नैर्ऋतीभिश्चरन्ति। देवलोक आहवनीयः। यदाहवनीयमुपतिष्ठते देवलोकमेवोपावर्तते। त्रिष्टुभोपतिष्ठते। वीर्यं त्रिष्टुप्। वीर्यमेवास्मिन्दधाति। एकयैकधैवास्मिन्वीर्यं दधाति ॥४॥

यावान्पुरुष ऊर्ध्वबाहुस्तावता वेणुना विमिमीते। एतावद्वै पुरुषे वीर्यम्। वीर्येणैवैनं विमिमीते। त्रीन्पुरुषान्प्राञ्चं मिमीते चतुरस्तिर्यञ्चम्। तस्मात्सप्त पुरुषानभ्यग्निचिदन्नमत्ति त्रीन्पुरस्तात्त्रीनधस्तादात्मा सप्तमः। अरत्निमात्रं पक्षयोरुपदधाति प्रादेशमात्रं पुच्छे। पुरुषेण वै यज्ञः संमितः। यज्ञपुरुषासंमितम्। तस्मात्पक्षप्रवयांसि वयांसि। षड्गवेन कृषति। षड्वा ऋतवः। ऋतुभिरेव। तिस्रस्तिस्रः सीताः संपादयति। त्रिवृद्वा अग्निः। ता द्वादश संपद्यन्ते। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरस्यैव विधामनुविधीयते। अथो ऋतुभिरेव कृष्ट्वा संवत्सरे प्रतितिष्ठति। इयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत्। सैतद्द्विगुणं कृष्टं चाकृष्टं चाकुरुत। यत्कृष्टं चाकृष्टं च भवत्यस्या अनतिदाहाय। अथो द्विगुणेनैवास्या वीर्यमुद्यच्छते। एतावन्तो वै पशवो द्विपादश्च चतुष्पादश्च। तानेतदग्नौ प्रतिदधाति। यदुदीच उत्सृजेद्रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुः स्यात्। यद्दक्षिणा पितृभ्यो निधूवेत्। यत्प्रतीचो रक्षांसि हन्युः। दक्षिणा प्राचः सूर्यमभ्युत्सृजति। सूर्यो वै पशूनां प्राणः। प्राणमेवैनानभ्युत्सृजति। ओषधीनामृग्भिः। ओषधीनां फलानि वपति। रूपेणैवान्नमवरुंद्धे। अन्नस्यान्नस्य वपति। सर्वमेवान्नमवरुंद्धे। यस्य न वपति तेन व्यृध्यते। यस्य न वपेत्तदिध्मे ऽपि प्रोक्षेत्। तेनैव तदवरुंद्धे। चतुर्दशभिर्वपति। सप्त वै ग्राम्या ओषधयः सप्तारण्याः। ता एवावरुंद्धे। अर्को वा

अग्निरन्नमर्कः। अर्कं एवैतदर्कं धीयते। कृष्टे वपति। कृष्टे ह्योषधयः प्रतितिष्ठन्ति। अनुसीतं प्रजात्यै। द्वादशसु सीतासु वपति। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरेणैवास्मा अन्नं पचति ॥५॥

दिग्भ्यो लोष्टान्समस्यति। दिग्भ्य ऊर्जं संभरति। ऊर्ज्येवाग्निं चिनुते। यां जनतां द्विष्यात्तस्या दिश आहरेत्। इषमूर्जमहमित आदमिति। इषमेवास्या ऊर्जमादत्ते क्षोधुका भवति। उत्तरवेदिं निवपति। उत्तरवेद्यां ह्यग्निश्चीयते। अथो यज्ञपरुरेव नान्तरेति। पशवो वा उत्तरवेदिः। पशूनेवावरुन्द्धे। अन्नं सव श्रवो वपतीति षड्वेन निवपति। षड्वा ऋतवः संवत्सरः। संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः। साक्षादेव वैश्वानरमवरुन्द्धे। अष्टाक्षरा प्रथमा। अष्टाशफाः पशवः। पशूनेवावरुन्द्धे। उत्तरोत्तरिणा मिथुनाः प्रजात्यै। समुद्रं वै नामैतत्प्रजापतेश्छन्दः। समुद्रात्पशवः प्रजायन्ते। पशूनां प्रजात्यै। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधाभवत्स्फ्यस्तृतीयं यूपस्तृतीयं रथस्तृतीयम्। यदशीर्यंत ताः शर्कराः। पशुर्वा अग्निः। वज्रः शर्कराः। यच्छर्कराभिः परिमिनोति वज्रेणैवास्मै पशून्परिगृह्णाति। तस्मात्पशवो वज्रेण विधृताः। तस्मात्स्थेयानस्थेयसो नादत्ते। दशभिर्दशभिः परिमिनुयादन्नकामस्य। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति। नवभिर्नवभिरभिचरतः। त्रिवृद्वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। सप्तभिः सप्तभिः पशुकामस्य। सप्त वै प्राणाः। प्राणेभ्यः पशवः प्रजायन्ते। पशूनां प्रजात्यै। अपरिमित्य शर्कराः सिकता व्यूहेद्यं कामयेतापशुः स्यादिति। अपरिगृहीतमेवास्य रेतः परासिच्यत्यपशुर्भवति। परिमित्य शर्कराः सिकता व्यूहेद्यं कामयेत पशुमान्स्यादिति। परिगृहीतमेवास्मै रेतः सिञ्चति पशुमान्भवति। छन्दांसि वा अग्नेर्योनिः सोमो रेतोधाः। यच्छन्दोभिर्व्युप्य सौम्या व्यूहति योनावेव रेतो दधाति। व्यूहति तस्माद्योनौ गर्भा वर्धन्ते। नानाप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्काः। तस्मात्समानाद्योनेर्नानारूपाः प्रजायन्ते। गायत्र्या ब्राह्मणस्य व्यूहेत्। गायत्रो हि ब्राह्मणः। त्रिष्टुभा राजन्यस्य। त्रैष्टुभो हि राजन्यः। जगत्या वैश्यस्य। जागतो हि वैश्यः। यथाछन्दसमेव ॥६॥

उपांश्वन्वाह। अनिरुक्तो वा एतर्हि यज्ञो यर्ह्यव्यावृत्तः। तस्मादुपांश्वन्वाह। छन्दांस्यन्वाह। छन्दोभिर्वा अग्निरुत्तरवेदिमानशे। तस्माच्छन्दांस्यन्वाह। सुपर्णीचैतदधाना यन्ति यदश्वं प्राञ्चं च प्रत्यञ्चं चाक्रमयन्ति। तस्मादसावादित्यः प्राङ् चैति प्रत्यङ् च। प्राजापत्यो ऽश्वः। यदश्वमाक्रमयति प्रजापतिनैवैनं चिनुते। अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेरिति पुष्करपर्णमुपदधाति। अपां ह्येतत्पृष्ठं योनिरग्नेः। यत्पुष्करपर्णमुपदधाति स्व एवैनं योनौ चिनुते। शान्त्या अनिर्दाहाय। वर्धमानो महाँ आ च पुष्कर इति। वर्धते ह्येष यो भवति। दिवो मात्रया वरिणा प्रथस्वेति प्रथयत्येव। ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तादिति रुक्ममुपदधाति। ब्रह्ममुखाभिर्वै प्रजापतिः प्रजाभिरार्ध्नोत्। ऋद्ध्यै। एकविंशतिनिर्बाधो भवति प्रतिष्ठित्यै। एकविंशतिर्वै देवलोकाः। तेभ्य एव भ्रातृव्यं निर्बाधते। अधस्तान्निर्बाधान्करोति भ्रातृव्यस्यैव निगृहीत्यै। न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्निश्चेतव्यः। यत्पृथिव्यां चिन्वीतौषधीः शुचा निर्दहेत्। यदन्तरिक्षे वयांसि यद्दिवि दिवम्। अमृतं हिरण्यम्। यद्रुक्ममुपदधात्यमृत एवाग्निं चिनुते। हिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इति पुरुषं हिरण्मयमुपदधाति। यजमानलोकमेवैतेन दाधार। अथो मध्येज्योतिषमेवाग्निं चिनुते। द्रप्सश्चस्कन्देत्यभिमृशति। होत्रास्वेवैनं सत्ये प्रतिष्ठापयति। सर्पशीर्षैरुपतिष्ठते। मृत्यव एवैनं परिददाति। अथो या सर्पे त्विषिस्तामेवावरुन्द्धे। यदुपदध्यात्प्रमायुकः स्यात्। यत्समीचीनमीक्षेत शीर्षण्वदध्याद् ग्राम्यान्पशून्दशुकाः स्युः। यद्विषूचीनमारण्यान्। यजुरेव वदेत्। तेनैव तां त्विषिमवरुन्द्धे। तेन शान्तम्। एतस्माद्ध वै पुराग्निचितमदिदृक्षन्त। सर्वा ह्येतास्त्विषीरवारुन्द्ध याग्नौ या सर्पे या सूर्ये। अथैतद्वामदेव्यस्य राक्षोघ्नम्। यज्ञमुखे यज्ञमुखे वै यज्ञं रक्षांसि जिघांसन्ति। रक्षसामपहत्यै। पञ्चैते भवति। पाङ्क्तो ऽग्निः। यावानेवाग्निस्तस्माद्रक्षांस्यपहन्ति। सर्वा दिशो ऽनुपरिचारं जुहोति। दिग्भ्य एव रक्षांसि हन्ति। स्रुचावुपदधाति। इमे एवैतदुपधत्ते। तूष्णीमुपदधाति। न ह्येमे यजुषाप्तुमर्हति। आत्मा वै पुरुषो बाहू स्रुचौ। यत्स्रुचावुपदधाति सात्मत्वाय। दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्याहुतीर्निष्कावमादन्। तानि कार्ष्मर्येणापाघ्नत। यत्कार्ष्मर्यमयीं दक्षिणत उपदधाति रक्षसामपहत्यै। घृतेन पूरयति। वज्रो वै कार्ष्मर्यो वज्रो घृतम्। वज्र एव वज्रं दधाति। गायत्र्योपदधाति। गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः। स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयति। दध्नौदुम्बरीं पूरयति। अन्नं वै

दध्यूर्गुदुम्बरः। अन्न एवोर्जं दधाति। त्रिष्टुभोपदधाति। ऐन्द्री वै त्रिष्टुप्। अन्नमिन्द्रियम्। इन्द्रियमेवान्नाद्यमवरुन्द्धे। इयं वै कार्ष्मर्यमय्यसावौदुम्बरी। यदौदुम्बरीमुत्तरामुपदधाति तस्मादसावस्या उत्तरा मूर्धन्वती। मूर्धैवैताभ्यां क्रियते। विराज्यग्निश्चेतव्यः। स्रुग्वै विराट्। यत्स्रुचावुपदधाति विराज्येवाग्निं चिनुते ॥७॥

यां वा अविद्वानध्वर्युरिष्टकां प्रथमामुपदधाति तया यजमानस्य प्राणमपिदधाति प्रजायाश्च पशूनां च। स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै। प्राजापत्यो ऽश्वः। यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुते। इयं वै स्वयमातृण्णा। इमामेवैतदुपधत्ते। यदि मन्येत पूर्वो मातिक्रान्तो भ्रातृव्य इति प्राचीमुदूहेत्। य एवैनं पूर्वो ऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तमनया प्रणुदते। यदि मन्येत पश्चादिव मा भ्रातृव्य इति प्रतीचीमपोहेत्। य एवैनं पश्चाद्भ्रातृव्यस्तमनयापनुदते। यदि मन्येत सदृङ् मयेति विचालयेत्। या वा इयं प्रजा व्यधूनुत परा ता अभवन्। इयमेवैनं विधूनुते। अथैषा दूर्वेष्टका। पशुर्वा अग्निः। न पशव आयवसे रमन्ते। पशुभ्य एवैतदायतनं करोति। पशूनां धृत्यै। काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्तीति प्रतिष्ठित्यै। सहस्रेण शतेन चेति। सहस्रवती प्रजापतिना संमिता। गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनां य एवं विद्वानेतामुपधत्ते। अथैषा वामभृत्। एतया वै देवा असुराणां वामं पशूनवृञ्जत। वाममेवैतया पशून्भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते। द्वियजुर्भवति। भ्रातृव्यलोकमेव द्वियजुषा वृङ्क्ते। द्वितीये हि लोके भ्रातृव्यो हिरण्यशीर्ष्णी भवति। हिरण्यज्योतिरिव स्वर्गं लोकमेति। प्रबाहुक्काचावाहतौ भवतः। तस्मात्प्रबाहुगक्ष्यौ। अथैते रेतःसिचौ। असौ वै स्वराडियं विराट्। उत्तानायां स्त्रियां पुमान्रेतः सिञ्चति। असावस्यां रेतः सिञ्चतीयं प्रजनयति। अग्निरत्ति। संरेतसमग्निं चिनुते। प्रजायते ऽन्यत्र य एवं विद्वानेते उपधत्ते स्वराडसीति दक्षिणत उपदधाति। तस्माद्दक्षिणतः पुमांस्त्रियमुपशये। यदि पूर्ववयसे चिन्वीतोभे सह प्रथमायां चित्यामुपदध्यात्। समीची एवास्मै रेतः सिञ्चतः। अन्यतरामुपदध्याद्यं द्विष्यात्तस्य। रेतसैवैनं व्यर्धयति। यद्युत्तरवयसे चिन्वीत प्रथमायामन्यां चित्यामुपदध्यादुत्तमायामन्याम्। रेत एव सिक्तमाभ्यां परिगृह्णाति। ऋतव्ये उपदधात्यृतूनां विधृत्यै। द्वे द्वे उपदधाति। द्वौ द्वौ ह्यृतवः। अथैषा त्र्यालिखिता। देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। ते देवा एतां त्र्यालिखितामपश्यन्। तामुत्तरलक्ष्माणमुपादधत। तदसुरा नान्ववायन्। ततो देवा अभवन् [परासुरा अभवन्।] य एवं विद्वानेतामुत्तरलक्ष्माणमुपधत्ते भ्रातृव्यस्यानन्ववायाय। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। अधरलक्ष्माणमुपदध्याद्यं द्विष्यात्तस्य। असुरयोनिमेवैनमनुपराभावयति। इमे वै लोकास्त्र्यालिखिता। इमानेवैतया लोकानाप्नोति। यस्या मृद उखां कुर्वन्ति तस्या एतां कुर्यात्। तेनैवास्य सर्वा इष्टका ज्योतिष्मतीर्यजुष्मतीर्भवन्ति ॥८॥

मेधो वा एष पशूनां यत्कूर्मः। यत्कूर्ममुपदधात्येतमेवैनं मेधमभिसंजानानाः पशव उपतिष्ठन्ते। जीवन्तमुपदधाति। स हि मेध्यः। चतुष्पाद्भवति। चतस्रो दिशः। दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति। मही द्यौः पृथिवी च न इति। द्यावापृथिव्योरेवैतया रूपे दाधार। दध्ना च मधुना चाभ्यनक्ति। अपां वा एष ओषधीनां रसो यन्मधु। यन्मधुनाभ्यनक्त्यपामेवौषधीनां रसमवरुन्द्धे। मेधो वा एष पशूनामूर्द्धिः। यद्दध्नाभ्यनक्ति पशूनामेव मेध ऊर्जं दधाति। इष्टकचिद्वा अन्यो ऽग्निः पशुचिदन्यः। यज्जीवन्तं कूर्ममुपदधाति तेनैवैनं पशुचितं करोति। एष वै स्वर्गस्य लोकस्योत्तमपदी। यथा प्रजानन्क्षेत्रविदञ्जसान्यात्रयत्येवमेवैनमेष स्वर्गं लोकमभिनयति। विष्णोर्नाभावग्निश्चेतव्यः। यो वा अनाभिमग्निं चिनुते यजमानस्य नाभिमनुप्रविशति। स एनं निर्दहति। एषा वै विष्णोर्नाभिर्यदुलूखलमुपदधाति। विष्णोरेव नाभावग्निं चिनुते। औदुम्बरं भवति। ऊर्ग्वा उदुम्बरः। ऊर्जमेव मध्यतो दधाति। तस्मान्मध्यतः ऊर्गूर्जयति। प्रादेशमात्रं भवति एतावती हि विष्णोर्नाभिः। वैष्णव्या कर्मण्यभ्योपदधाति। कर्म ह्येतत्क्रियते। अथैषोखा ओजो वा एतद्वीर्यं संभ्रियते यदुखा। ओज एव वीर्यं मध्यतो दधाति। एषां वा एतल्लोकानां ज्योतिरवरुन्द्धे। ज्योतिरेव मध्यतो दधाति। मध्येज्योतिषमग्निं चिनुते। तस्मान्मध्यतो ज्योतिरुपासते। सिकताभिः पूरयति स्वेनायतनेन। अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः। रूपेणैव वैश्वानरमवरुन्द्धे। यदूनामुपदध्यात्क्षोधुको यजमानः स्यात्। पूर्णामुपदधात्यक्षोधुको यजमानो भवत्यनुपदस्यदन्नमत्ति। घृतेन पूरयति। एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद्घृतम्। प्रियेणैवैनं धाम्ना समर्धयति ॥९॥

एकविंशतिं माषान्प्रीन्युप्य पुरुषशीर्षमाहरति। अमेध्या वै माषा अमेध्यं पुरुषशीर्षम्। अमेध्येनैवामेध्यं क्रीणाति। एकविंशतिर्भवन्ति। एकविंशो वै पुरुषः। यावानेवास्यात्मा तं क्रीणाति। सप्तधातृण्णां वल्मीकवपां प्रतिनिदधाति। व्युद्धं वा एतत्प्राणैः। सप्त शीर्षन्याः प्राणाः। प्राणैरेवैनत्समर्धयति। यमगाथा गायति। यमलोकादेवैनद्वृङ्क्ते। तिस्रो गायति। त्रय इमे लोकाः। एभ्य एवैनल्लोकेभ्यो वृङ्क्ते। तस्माद्गायते न देयम्। गाथा ह्येव तद्वृङ्क्ते। अप वा एतस्मादिन्द्रियं क्रामति प्राणाः शीर्षं वीर्यं चक्षुः श्रोत्रं वाक्। व्यृद्धेन्द्रियं वा एतदमेध्यम्। मृतशीर्षमिति वा एतदाहुः। मेध्यं हिरण्यम्। यद्धिरण्यशल्कैः प्रत्यस्यति मेध्यमेवैनद्यज्ञियं करोति। उखायामपिधाय प्रत्यस्यति। प्रतिष्ठामेवैनद्गमयित्वा प्राणैः समर्धयति। सहस्रदा असि सहस्राय त्वेति पुरुषशीर्षमुपदधाति। पुरुषो ह वै सहस्रं पशून्यच्छति। सहस्रमन्ये पशवः। यन्मध्ये पुरुषशीर्षमुपदधाति समत्वाय। अथैतानि पशुशीर्षाणि। एता ह वै साहस्रीरिष्टकाः सोमदक्षः कौश्रेयः श्मशानीयोपदधौ। ततो ह वै स साहस्रीं पुष्टिं पशूनामगाम्। गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनां य एवं विद्वानेता उपधत्ते। पुरस्तात्प्रतीचीनमश्वस्य शिर उपदधाति पश्चात्प्राचीनमृषभस्य। गोऽश्वानेवास्मिन्समीचो दधाति। समीचीनान्युपदध्याद्यं कामयेत पशुमान्स्यादिति। समीच एवास्मिन्पशून्दधाति। विषूचीनान्युपदध्याद्यं कामयेतापशुः स्यादिति। विमुखानेवास्मात्पशून्करोति। नान्तरा पशुशीर्षाणि व्यवेयादध्वर्युः। यविष्ठो वै नामैषो ऽग्निः। प्राणानस्य वृञ्जीत प्रमीयेत। एकमुपधायैतैः सर्वैरुपतिष्ठते। तद्वा सर्वतो ऽनुपरिहारं सादयेत्। तेनैव सर्वाण्युपधीयन्ते। नार्तिमार्छत्यध्वर्युर्न प्रेमं न्येति। एतावन्तो वै पशवो द्विपादश्च चतुष्पादश्च। तानेतच्छुचार्पयति। अमुमारण्यमनु ते दिशामि ते ते शुगृच्छत्विति। ग्राम्येभ्य एव पशुभ्य आरण्यान्पशूञ्छुचमनूत्सृजति। तस्मादेते समावत्पशूनां प्रजायमानानां कनिष्ठाः। शुचा ह्येत ऋताः ॥१०॥

पशुर्वा एष यदग्निः। पशोरेष योनिर्विक्रियते रेतोऽपस्याः। यदपस्या उपधीयन्ते योनावेव रेतो दधाति। यदा वै पशुः संभवति अथ जायते। पशवश्छन्दस्याः। यदपस्या अनु छन्दस्या उपदधाति पशूनां प्रजात्यै। पञ्चैता उपदधाति। पाङ्क्ताः पशवः। यावानेव पशुस्तं प्रजनयति। इयं वा अग्नेरतिदाहादबिभेत्। सैता अपस्या असृजत। ता उपाधत्त। यदस्या उपधीयन्ते ऽस्या अनतिदाहाय। उवाच हैतमदितिर्ब्रह्मणात्र यस्यैता उपधीयन्त इति। अति ब्रह्मणात्र य एवं विद्वानेता उपधत्ते। पञ्च पुरस्तात्प्रतीचीरुपदधाति। तस्मात्पुरस्तात्प्रत्यङ् पशुर्जायते। पञ्च दक्षिणत उदीचीः। तस्माद्दक्षिणतः पुमांसमुपशये। पञ्च पश्चात्प्राचीः। तस्मात्पश्चात्प्राचीनं रेतो धीयते। पञ्चोत्तराच्छन्दस्याः। पशवो वै छन्दस्याः। उत्तरादायतनाः पशवः। पशूनेव प्रजातान्स्वमायतनमभिपर्यूहति। पशूनामहिंसायै। नोत्तरादपस्या उपदध्यात्। यदुपदध्याद्दमीयेत प्रजा वरुणो गृह्णीयात्। अपस्या अनु प्राणभृत उपदधाति। रेतस्येव सिक्ते प्राणं मनश्चक्षुः श्रोत्रं वाचं दधाति। तस्मात्प्राणन्पश्यञ्छृण्वन्वदन्पशुर्जायते। अयं पुरो भूरिति याः प्राणवतीस्ताः पुरस्तादुपदधाति। प्राणमेव पुरस्ताद्धाति। तस्मात्प्राङ् पशुः प्राणिति। अयं दक्षिणा विश्वकर्मेति या मनस्वतीस्ता दक्षिणतः। मन एव दक्षिणतो दधाति। तस्माद्दक्षिणो ऽर्धो मनस्वितरस्तस्माद्दक्षिणतो मन उपचरन्ति। अयं पश्चाद्विश्वव्यचा इति याश्चक्षुष्मतीस्ताः पश्चात्। चक्षुरेव पश्चाद्धाति। तस्मात्प्राङ् पश्यति। इदमुत्तरात्स्वरिति याः श्रोत्रवतीस्ता उत्तरात्। श्रोत्रमेवोत्तरतो दधाति। तस्मादुत्तरतस्पृशः शृणोति। इयमुपरि मतिरिति या वाङ्मतीस्ता मध्ये। वाचमेव मध्यतो दधाति। तस्मान्मध्यतो वाग्वदति। अक्ष्णयोपदधाति। तस्मादक्ष्णया पदः पशवः प्रहरन्तो यन्ति। याः पुरस्तात्ताभिर्वसिष्ठ आर्ध्नोत्। या दक्षिणतस्ताभिर्भरद्वाजः। याः पश्चात्ताभिर्जमदग्निः। या उत्तरतस्ताभिर्विश्वामित्रः। या मध्ये ताभिर्विश्वकर्मा। य एवमेतासामृद्धिं वेदर्ध्नोति। य एवमासां क्लृप्तिं वेद कल्पते ऽस्मै। य एवमासां बन्धुतां वेद बन्धुमान्भवति। य एवमासां निदानं वेद निदानवान्भवति। य एवमासामायतनं वेदायतनवान्भवति। य एवमासां प्रतिष्ठां वेद गच्छति प्रतिष्ठाम् ॥११॥

अथैता आश्विनीः। उत्सन्नयज्ञो वा एष यदग्निः। को ह तद्वेद यावदेतस्य न क्रियते यावत्र चीयते। अश्विनौ देवानां भिषजौ। यदेवास्यात्र न क्रियते यत्र चीयते तदेताभिः कल्पयति भिषज्यति। पञ्चैता उपदधाति। पाङ्क्तो ऽग्निः।

यावानेवाग्निस्तस्मै भेषजं करोति। अग्नेरेवैताभिर्दिशः कल्पयते। अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयामीति। इमानेवैतया लोकान्दाधार। ऋतव्या उपदधात्यृतूनां विधृत्यै। पञ्चोपदधाति। पञ्च वा ऋतवः। यावन्त एवर्तवस्तान्कल्पयति। समानप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्काः। समानप्रभृतयो ह्यृतवः समानोदर्काः। एकया व्याहृत्या व्यावर्तयति। तस्मादृतवो व्यावर्तन्ते। तस्मात्समानस्य संवत्सरस्य नाना रूपाणि। आश्विनीरन्वृतव्या उपदधाति। रेतस्येव हित ऋतूनुपदधाति। तस्माद्रेतो हितमृतूननु प्रजायते। ऋतव्या अनु वायव्या उपदधाति। ऋतुष्वेव प्राणं दधाति। तस्मादेते समानाः परियन्तो न जीर्यन्ति। तस्मादृतूननु वायुरावरीवर्ति। वायव्या अन्वपस्या उपदधाति। तस्माद्वायुर्वृष्टिं वहति। वृष्टिमेवैताभिरवरुन्द्धे। यदेकधोपदध्यादेकमृतुं वर्षेत्। अनुपरिहारं सादयति। तस्मादृतुमृतुं वर्षति। अपस्या अनु वयस्या उपदधाति। पशवो वै वयस्याः। यदपस्या अनु वयस्या उपदधाति तस्मान्नानामनसः पशवो नानाव्रता अप एवाभि समनसः। अपस्या उपधाय वयस्या उपदध्याद्यं कामयेत पशुमान्स्यादिति। संज्ञानं वा एतत्पशूनां यदापः। संज्ञान एव पशूनामग्निं चिनुते। पशुमान्भवति। वयस्या उपधायापस्या उपदध्याद्यं कामयेतापशुः स्यादिति। पशूनामेवासंज्ञाने ऽग्निं चिनुते। अपशुर्भवति। चतस्रः पुरस्तादुपदधाति। तस्मात्पुरस्तात्पशुरणीयान्। तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे। मूर्धन्वतीः। तस्मात्पुरस्तात्पशूनां मूर्धा। पञ्चपञ्चाभितः पशोः सयत्वाय। तस्मात्प्राङ्पशुः प्रवणः। बस्तो वय इति दक्षिणत उपदधाति। वृष्णिर्वय इत्युत्तरात्। अंसावेवास्योपदधाति। व्याघ्रो वय इति दक्षिणे पक्षे। सिंहो वय इत्युत्तरस्मिन्। पक्षयोरेव वीर्यं दधाति। व्याघ्रो वय इति पूर्वाम्। सिंहो वय इत्यपराम्। तस्मात्पुरो व्याघ्रो जायते पश्चात्सिंहः। पुरुषो वय इति मध्ये। तस्मात्पुरुषः पशूनामधिपतिः ॥१२॥

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिति। ओजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी। अन्तरिक्षमेषा चितिः। शिथिलमिवान्तरिक्षम्। प्रजा अन्तरिक्षम्। प्रजास्वेवौजो वीर्यं दधाति। स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै। प्राजापत्यो ऽश्वः। यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुते। अथैता दिश्याः। देवानां वै स्वर्गं लोकं यतां तेषां दिश समव्लीयन्त। त एता दिश्या अपश्यन्। ताभिर्दिशो ऽदृंहन्। यदेता उपधीयन्ते दिशां विधृत्यै। राज्ञ्यसि प्राची दिगिति। तस्मादेषा दिशां राज्ञी। विराडसि दक्षिणा दिगिति। तस्मादेषा दिशां विराजति। सम्राडसि प्रतीची दिगिति। तस्मादत्र साम्राज्यम्। स्वराडस्युदीची दिगिति। तस्मादत्र स्वाराज्यम्। अधिपत्न्यसि बृहती दिगिति। तस्मादेषा दिशामधिपत्नी। एतान्येव सर्वाणि भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। आयुर्मे पाहीति दश पुरस्तादुपदधाति। नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी। प्राणानेवास्मिन्दधाति। ज्योतिर्मे यच्छेत्युत्तमाम्। ज्योतिरेवोत्तमं दधाति। तस्माद्वाक्प्राणानां ज्योतिरुत्तमम्। दशैता उपदधाति। दशाक्षरा विराट्। विराट् छन्दसां ज्योतिः। चक्षुर्ज्योतिः। चक्षुरेव प्रजानां पुरस्ताद्धाति। मा छन्द इति दक्षिणतः। तस्माद्दक्षिणावृतो मासाः। पृथिवी छन्द इति पश्चात्प्रतिष्ठित्यै। अग्निर्देवतेत्युत्तरात्। ओजो वा अग्निः। ओज एवोत्तराद्धाति। तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति। द्वादश दक्षिणत उपदधाति। द्वादश पश्चाद्द्वादशोत्तरात्। ताः षट्त्रिंशत्संपद्यन्ते। षट्त्रिंशदक्षरा बृहती। बृहती छन्दसां स्वाराज्यमानशे। स्वाराज्यं गच्छति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। षट्त्रिंशदेताः। षट्त्रिंशदक्षरा बृहती। बार्हताः पशवः। अन्तरिक्षमेषा चितिः। पशवो ऽन्तरिक्षम्। पशुष्वेव पशून्दधाति। राडसीति पुरस्तादुपदधाति। य आदित्यधामानः प्राणास्तांस्तद्दाधार। यन्त्री राडिति पश्चात्। ये ऽङ्गिरोधामानः प्राणास्तांस्तद्दाधार। आदित्यधामानो वा अन्ये प्राणा अङ्गिरोधामानो ऽन्ये। ये पुरस्तात्त आदित्यधामानो ये पश्चात्ते ऽङ्गिरोधामानः। मूर्धासि राडिति पुरस्तादुपदधाति। सप्त पुरस्तादुपदधाति सप्त पश्चात्। तस्मादधरः प्राण उत्तरेषां प्राणानामर्धभाक्। प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा तासामकामयत मूर्धा स्यामिति। स एता मूर्धन्या अपश्यत्। ताभिर्निरजिहीत। तासां मूर्धाभवत्। तन्मूर्धन्यानां मूर्धन्यत्वम्। मूर्धैव समानानां भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते ॥१३॥

आशुस्त्रिवृदिति पुरस्तादुपदधाति। यज्ञमुखं वै त्रिवृत्। यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्वियातयति। व्योमा सप्तदश इति दक्षिणतः। अन्नं वै सप्तदशः। सप्तदशं वै संवत्सरमन्नमनुप्रजायते। अन्नमेव दक्षिणतो दधाति। तस्माद्दक्षिणेन हस्तेन पुरुषो ऽन्नमत्ति। यत्सप्तदशवतीं दक्षिणत उपदधाति तस्माद्दक्षिणं पक्षं वयांस्यनुपरिप्लवन्ते। एकविंशवतीं

पश्चात्प्रतिष्ठित्यै। पश्चाद्धि वयांसि प्रतितिष्ठन्ति। पञ्चदशवतीमुत्तरात्। ओजो वै पञ्चदशः। ओज एवोत्तराद्धाति। तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति। प्रतूर्तिरष्टादश इति पुरस्तात्। द्वौ त्रिवृतावभिपूर्वमेव यज्ञमुखे वियातयति। पञ्चदशवती दक्षिणतः सप्तदशवतीमुत्तरात्पक्षयोः सयत्वाय। अन्नं वै सप्तदशः। यत्सप्तदशवतीमुभयत उपदधात्यन्नमेवोभयतो दधाति। तस्मादुभाभ्यां हस्ताभ्यां परिगृह्य पुरुषो ऽन्नमत्ति। एकविंशवतीं पश्चात्प्रतिष्ठित्यै। अग्नेर्भागो ऽसि दीक्षाया आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोम इत्येतत्। एतद्वै देवा एताभिरस्पृण्वन्। एतदेतदेवैताभि स्पृणोति। ता एता स्पृतयो नामेष्टकाः। एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्तेत्येतत्। एतद्वै देवा एताभिरसृजन्त। एतदेवैताभिः सर्वमवरुंद्धे। अर्कस्य वा एषा विधामनु विधीयते। अन्नमर्को ऽर्को ऽग्निः। अत्त्यन्नं यस्यैवं विदुषो विधीयते ॥१४॥

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। ते देवा एतां चतुर्थीं चितिमपश्यन्। तामन्यथानूच्यान्यथोपादधत। तदसुरा नान्ववायन्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यस्यैवं विदुष उपधीयते यश्चैवं विद्वानुपदधाति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। आशुस्त्रिवृदिति पुरस्तादुपदधाति। यज्ञमुखं वै त्रिवृत्। यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्धाति। व्योमा सप्तदश इति दक्षिणतः। अन्नं वै सप्तदशः। अन्नमेव दक्षिणतो ऽवरुंद्धे। एकविंशवतीं पश्चात्प्रतिष्ठित्यै। पञ्चदशवतीमुत्तरात्। ओजो वै पञ्चदशः। ओज एवोत्तराद्धाति। तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति। .. [॥१५॥]

.... [यवानां भागो ऽसीति दक्षिणतः। मा] सा वै यवाः। अन्नं मासाः अन्नमेव दक्षिणतो ऽवरुंद्धे। ऋभूणां भागो ऽसीति पश्चात्। त्रयस्त्रिंशद्देवताः। देवतास्वेव प्रतितिष्ठति। वीवर्तोऽष्टाचत्वारिंश इत्युत्तरात्। तस्माद्धस्तौ समावद्वीर्यौ। अर्कस्य वा एषा विधामनु विधीयते। अन्नमर्को ऽर्को ऽग्निः। अत्त्यन्नं यस्यैवं विदुषो विधीयते। या मुख्यास्ताः पुरस्तादुपदधाति। आस्य मुख्यो जायते य एवं वेद। या अन्नवतीस्ता दक्षिणतः। आस्यान्नादो जायते य एवं वेद। या प्रतिष्ठावतीस्ताः पश्चात्। गच्छति प्रतिष्ठां य एवं वेद। या ओजस्वतीस्ता उत्तरात्। आस्य बली जायते य एवं वेद। एवमेतासां क्लृप्तिं वेद कल्पते ऽस्मै ॥१६॥

अग्ने जातान्प्रणुदा नः सपत्नानिति पुरस्तादुपदधाति। य एवैनं पूर्वो ऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तया प्रणुदते। सहसा जातानिति पश्चात्। य एवैनं पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तयापनुदते। षोडश स्तोम इत्युत्तरात्। चतुश्चत्वारिंश स्तोम इति दक्षिणतः। वज्रो वै षोडशः। वज्रस्त्रिष्टुप्। त्रैष्टुभश्चतुश्चत्वारिंशः। सव्यापग्रहणो वै वज्रो दक्षिणाविसर्जनः। भ्रातृव्यमेव प्रणुद्य तस्मै वज्रमनुविसृजति। चतुश्चत्वारिंश स्तोम इति दक्षिणतः। ब्रह्मवर्चसं वै चतुश्चत्वारिंशः। ब्रह्मवर्चसमेव दक्षिणतो ऽवरुंद्धे। षोडश स्तोम इत्युत्तरात्। ओजो वै षोडशः। ओज एवोत्तराद्धाति। तस्मादुत्तरादभिप्रयायी जयति। पृथिव्याः पुरीषमसीति मध्ये। पुरीषं वा आत्मनो मध्यम्। सात्मानमेवाग्निं चिनुते। ता एता अभ्रातृव्या नामेष्टकाः। नास्य भ्रातृव्यो भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। अथैता विराजः। विराजमेव पशुषूत्तमां दधाति। तस्मात्पशुमानुत्तमां वाचं वदति। दशदशोपदधाति सयत्वाय। देवा वै स्वर्गं लोकं यन्तस्तेषां यानि च्छन्दांस्यनिरुक्तानि स्वर्ग्याण्यासंस्तैः सह स्वर्गं लोकमायन्। तान्यृषयो ऽनुप्राजिज्ञासन्त। तानीष्टकाभिर्निरमिमत। तानीमानि च्छन्दांसि यान्ययज्ञवाहानि। यान्येव देवानां छन्दांस्यानिरुक्तानि स्वर्ग्याणि तैः सह स्वर्गं लोकमेति य एवं विद्वानेता उपधत्ते॥ बृहस्पतिर्वा

अथैते स्तोमभागाः। बृहस्पतिर्वा एतां यज्ञस्य प्रतिष्ठामाहरत्। यदेत उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै। बृहस्पतिर्वा एततेजो यज्ञस्य समभरत्। यदेतउपधीयन्ते सतेजसमेवाग्निं चिनुते। प्रजापतिः प्रजा असृजत। ता स्तोमभागैरेवासृजत। यदेत उपधीयन्ते प्रजननाय। दक्षिणतो वै देवानां यज्ञोऽव्लीयत। तं स्तोमभागैः प्रत्युदस्तभ्नुवन्। यदेते दक्षिणत उदञ्च उपधीयन्ते यज्ञस्य प्रत्युत्तब्ध्यै। सप्त सप्तोपदधाति सवीर्यत्वाय। श्रोण्मध्ये प्रतिष्ठित्यै। अथैता नाकसदः। नाकसद्भिर्वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। यदेता उपधीयन्ते स्वर्गस्य लोकस्याभिजित्यै। न वा अमुं लोकं जग्मुषे किञ्चनाकम्। तन्नाकसदां नाकसत्त्वम्। ता एताः सर्वपृष्ठा नामेष्टकाः। यदेव किञ्च पृष्ठानां तेजस्तदवरुंद्धे य एवं विद्वानेता उपधत्ते। अथैताः पञ्चचूडाः। यजमानायतनं वै पत्न्यः। यन्नाकसत्सु पञ्चचूडा उपदधाति नाक एव यजमानं

प्रतिष्ठापयति। अप्सरसो वा एता एतद्रूपं कृत्वा पत्न्यो भूत्वामुष्मिंल्लोके यजमानमुपशेरते। पश्चात्प्राचीमेकामुपदधाति। तस्मात्पश्चात्प्राची पत्न्यन्वास्ते। तनूपानीर्वा एता यजमानस्य। सर्वमायुरेति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एता वै देवता अभिचरणीयाः। यं द्विष्यात्तं ब्रूयादमुं वो जम्भे दधामीति। एताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजकुप्रधन्वति ॥१७॥

आयोस्त्वा सदने सादयामीत्यायुरेवोत्तमं दधाति। तस्मादायुः प्राणानामुत्तमम्। स्वयमातृण्णा भवति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै। प्राजापत्यो ऽश्वः। यदश्वमुपघ्रापयति प्रजापतिनैवैनं चिनुते। अथैषा विकर्णी। देवानां वा एषा विक्रान्तिर्यद्विकर्णी। देवानामेवैनं विक्रान्तिमनु विक्रमयति। वायुमती। प्राणो वै वायुः। आयुः स्वयमातृण्णा। आयुश्चैवास्मिन्प्राणं च समीची दधाति। सं वा एनमेतदि द्धे यच्चिनोति। दीपयति वायुमत्या। संवत्सरमेवाग्निं चिन्वीत। संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः। तस्याहोरात्राणीष्टकाः। आप्तेष्टकमेवैनं चिनुते। ऋध्नोति। यन्नैवं चिन्वीत प्रिययैन तन्वा व्यर्धयेत्। यदेवं चिनुते प्रिययैवैनं तन्वा समर्धयति। सतनूरेवैतद्वैश्वानरश्चीयते। ऋतव्या उपदधात्यृतूनां विधृत्यै। द्वे द्वे उपदधाति। द्वौ द्वौ ह्यृतवः। चतस्रो मध्यमायां चित्यामुपदधाति। अन्तरिक्षमिव वा एषा मध्यमा चितिः। शिथिलमिवान्तरिक्षम्। चतस्रो दिशः। दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति। ऋतुभ्यो वा एता देवा निरमिमत। तदृतव्यानामृतव्यात्वम्। आयन्तमायन्तमृतुं प्रतितिष्ठति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। नानाप्रभृतयो भवन्ति समानोदर्काः। तस्मात्समानस्य संवत्सरस्य नाना रूपाणि। अवकामुपधायेष्टकामुपदधाति। अग्नेर्वा एषा वैश्वानरस्य योनिर्यदवका। स्व एवैना योनावुपदधाति। शान्त्या अनिर्दाहाय। ऋध्नोति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। अथैता विश्वज्योतिषः। प्राणभृतो वा एता यजमानस्य। प्राणमेव प्रथमया दाधार व्यानं द्वितीययापानं तृतीयया। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एता वै देवता ज्योतिष्मतीः। अग्निरेवास्मा अस्मिंल्लोके ज्योतिर्भवति वायुरन्तरिक्षे सूर्यो दिवि। सर्वे ऽस्मा इमे लोका ज्योतिष्मन्तो भवन्ति। अधिपतिवतीर्भवन्ति। आधिपत्यमेवैताभिर्गच्छति। लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्। इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरिति। ओजो वै वीर्यमिन्द्राग्नी। ओजसैवैनं वीर्येण चिनुते। ता अस्य सूददोहस इति। तस्मात्परुषिपरुषि सूदः। सोमं श्रीणन्ति पृश्नय इति। अन्नं पृश्नि। अन्नमेवावरुंद्धे। त्रिष्वा रोचने दिव इति। त्रीणि सवनानि। सवनेष्वेवैनं चिनुते। अनुष्टुबनुचरा भवति। प्राणो वा अनुष्टुप्। तस्मात्प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनुसंचरति। वाग्वा अनुष्टुप्। यदेवास्यात्र न क्रियते यत्र चीयते तद्वाचा कल्पयति तद्भिषज्यति ॥१८॥

या आग्नेयीर्गायत्रीर्मूर्धन्वतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रः पूर्वार्ध उपदध्यात्। अथ त्रिष्टुब्भिरथ जगतीभिरथानुष्टुब्भिरथ पङ्क्तिभिरथ यत्किञ्चाग्नेयं छन्दः। तिस्र एकेन च्छन्दसा तिस्र एकेन। सर्वमग्निमनूपदध्यात्। एतां ह वै यज्ञसेनश्चैत्रश्चितिं विदांचकार। तया ह वै स आनर्ध। ऋध्नोति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। पशवो वै छन्दांसि वामं देवानाम्। पशूनेव वामं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते। आत्मा वा आहवनीयो भ्रातृव्यो धिष्ण्यः। यद्गार्हपत्य उपदध्याद्भ्रातृव्ये वामं पशून्दध्यात्। आहवनीय उपदधाति। आत्मन्नेव वामं पशून्धत्ते। सैषोत्तरवेदिर्नाम चितिः। तस्मादेता उत्तमायां चित्यामुपधीयन्ते। उत्तमः समानानां भवति य एवं विद्वानेता उपधत्ते। पशुर्वा अग्निः। अग्निमुखान्प्रजापतिः पशूनसृजत। यत्पञ्च चितयस्तस्मात्पाङ्क्ताः पशव उच्यन्ते। यत्तिस्रश्चितयस्त्रिवृद्ध्यग्निः। यद्द्वे द्विपाद्यजमानः। प्रतिष्ठित्यै। द्व्यक्षरं लोम द्व्यक्षरं चर्म द्व्यक्षरं मांसं द्व्यक्षरमस्थि द्व्यक्षरो मज्जा। तद्दश। दशाक्षरा विराट्। तस्माद्वैराजाः पशव उच्यन्ते॥

यो जानुदघ्नः स गायत्रचिद्यो नाभिदघ्नः स त्रिष्टुप्चिद्यः पुरुषमात्रः स जगच्चित्। श्येनचितं पक्षिणं चिन्वीत स्वर्गकामः। श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। अलजचितं पक्षिणं चिन्वीत प्रतिष्ठाकामः। चतस्रो दिशः। दिक्ष्वेव प्रतितिष्ठति। कङ्कचितं शीर्षण्वन्तं चिन्वीत यः कामयेत सशीर्षामुष्मिंल्लोके स्यामिति। सशीर्षैवामुष्मिंल्लोके भवति। प्रउगचितं चिन्वीत यदि मन्येत पूर्वो मातिक्रान्तो भ्रातृव्य इति। प्रउगचिता वै देवा असुरान्प्राणुदन्त य एनान्पूर्वं ऽतिक्रान्ता आसन्। य एवैनं पूर्वो ऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदते। उभयतः प्रउगं

चिन्वीत यदि मन्येत पश्चान्मे भ्रातृव्य इति। य एवास्य पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेनापनुदते प्र श्रेयांसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते। रथचक्रचितं चिन्वीताभिचरन्। रथचक्रचितं ह स्म वै देवा असुरेभ्यो वज्रमियद्धयस्त्वेत्यभ्यवसृजन्ति। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति स्तृणुत एनम्। समूह्यं चिन्वीत पशुकामः। पशवो वै पुरीषम्। पशूनेवावरुंद्धे। परिचाय्यं चिन्वीत सजातकामः। परीव वै सजाता विशन्ति। सजातैरेवैनं परिचिनोति। द्रोणचितं चिन्वीतान्नकामः। पात्रेण वा अन्नमद्यते। तेनैव मुखेनान्नमत्ति। श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोक ऋध्नुयामिति। श्मशानचिता वै यमो ऽमुष्मिंल्लोक आर्ध्नोत्। पितृलोक एवर्ध्नोति। गायत्रचितं पक्षिणं चिन्वीत स्वर्गकामः। अग्निर्वै तत्पक्षी भूत्वा स्वर्गं लोकमपतत्। यदाहुर्गायत्री पक्षिणी भूत्वा स्वर्गं लोकमपतदिति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। ऊर्ध्वा वा अन्ये ऽग्नयश्चीयन्ते न्यञ्चोऽन्ये। य ऊर्ध्वाश्चीयन्ते ते ऽमुष्मै लोकाय ये न्यञ्चस्ते ऽस्मै। यदूर्ध्वस्तिष्ठन्हिरण्यशल्कैः प्रोक्षति तेनैवोर्ध्वं चिनुते। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१९॥

षड्रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। षड्वा ऋतवः संवत्सरः। संवत्सरो विराट्। विराजमेवाप्नोति। त्रयोदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। त्रयोदश मासाः संवत्सरः। संवत्सरो विराट्। विराजमेवाप्नोति। दीक्षया विराडाप्तव्या। तिस्रो रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। त्रिपदा विराट्। विराजमेवाप्नोति। दश रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। दशाक्षरा विराट्। विराजमेवाप्नोति। द्वादश रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरो विराट्। विराजमेवाप्नोति। पञ्चदश रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। पञ्चदशार्धमासस्य रात्रयः। अर्धमासशः संवत्सर आप्यते। संवत्सरो विराट्। विराजमेवाप्नोति। चतुर्विंशतिं रात्रीर्दीक्षितः स्यात्। चतुर्विंशतिः संवत्सरस्यार्धमासाः। अर्धमासशः संवत्सर आप्यते। संवत्सरो विराट् विराजमेवाप्नोति। मासं दीक्षितः स्यात्। यो मासः स संवत्सरः। संवत्सरो विराट्। विराजमेवाप्नोति। चतुरो मासो दीक्षितः स्यात्। चतुरो वा एतं मासौ वसवो ऽबिभरुः। ते पृथिवीमाजयन्गायत्रीं छन्दः। अष्टौ रुद्राः। ते ऽन्तरिक्षमाजयंस्त्रिष्टुभं छन्दः। द्वादशादित्याः। ते दिवमाजयञ्जगतीं छन्दः। ततो वै ते व्यावृतमगच्छञ्श्रैष्ठ्यं देवानाम्। द्वादश मासो भृत्वाग्निं चिन्वीत। द्वादश मासाः संवत्सरः। तस्याहोरात्राणीष्टकाः। आप्तेष्टकमेवैनं चिनुते। ऋध्नोति। व्यावृतमेव गच्छति श्रैष्ठ्यं समानानाम्॥

गायत्रं पुरस्ताद्गायति। शिरो वै देवानां गायत्रम्। गायत्रो ऽग्निः। तस्माद्गायत्रं पुरस्ताद्गायत्याग्निपावमान्याम्। अयं वाव यः पवते स प्राणः। मुखं देवानामग्निः। मुखत एव प्राणं दधाति। तस्मान्मुखतः प्राणः। रथन्तरमुत्तराद्गायति बृहद्दक्षिणतः। पक्षावेवास्योपदधाति। इयं वै रथन्तरमसौ बृहत्। आभ्यामेवैनं परिगृह्णाति। यज्ञायज्ञियं पुच्छे गायति श्रोण्यां वामदेव्यम्। आत्मा वै यज्ञायज्ञियं तनूर्वामदेव्यम्। सात्मानमेवैनं सतनूं चिनुते। हृदयमपिकक्षे। तस्मादपिकक्षे हृदयमनृचं भवति। तस्मादनस्थकं हृदयम्। अर्क्यैः परिगायति। अर्को वा अग्निः। अर्कमेवार्क्यैः परिगायति शान्त्यै॥२०॥

संवत्सरो वा अन्तरा तमः स्वर्गं लोकम्। ज्योतिष्मतीरेताः साहस्रीरिष्टकाः। यद्धिरण्यशल्कैः प्रोक्षति ज्योतिषैवास्मै संवत्सरं विवासयति। सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासीति। सहस्रसंमिता हीमे लोकाः। घ्नन्ति वा एतदग्नेर्यदस्यात्र न क्रियते यत्र चीयते। अमृतं हिरण्यम्। यद्धिरण्यशल्कैः प्रोक्षत्यमृतेनैवास्य तन्वं पृणक्ति। रुद्रं वै देवान्निरभजन्। स देवानायतयाभिपर्यावर्तत। ते देवा एतच्छतरुद्रियमपश्यन्। तेनैनमशमयन्। यच्छतरुद्रियं जुहोति तेनैवैनं शमयति। जानुदघ्ने ऽग्रे जुहोत्यस्या एव रुद्रमवयजते। अथ नाभिदघ्ने ऽन्तरिक्षादेव रुद्रमवयजते। अथ पुरुषमात्रे ऽमुष्या एव रुद्रमवयजते। इत एवोर्ध्वं रुद्रमवयजते। अथ पुरुषमात्रे ऽथ नाभिदघ्ने ऽथ जानुदघ्ने ऽमुत एवार्वाञ्चं रुद्रमवयजते। तत्षट् संपद्यते। षड्वा ऋतवः। ऋतुभ्य एव रुद्रं निरवयजते। गवेधुका सक्तुभिर्वा जर्तिलैर्वा कुसयसर्पिषा वा मृगक्षीरेण वा जुहोति। यद्ग्राम्येण जुहुयाद्ग्रामावतारिणं रुद्रं कुर्यात्। आरण्येनैवारण्यमभि रुद्रं निरवयजते। अर्कपर्णेन जुहोति। अर्को वा अग्निः। अर्केणैवैनमर्कादधि निरवयजते। उत्तरस्य पक्षस्य या चरमेष्टका तस्यां जुहोति। एषा वै रुद्रस्य दिक्। स्वायामेव दिशि रुद्रं प्रतिहृत्यावयजते। पशुर्वा अग्निः। एतर्हि वा एष जायते यर्हि चीयते। यथा वत्सो जात स्तनं प्रेप्सत्येवं वा एष एतर्हि भागधेयं प्रेप्सति। स यजमानं चैवाध्वर्युं च ध्यायति।

यच्छतरुद्रियं जुहोति भागधेयेनैवैनं शमयति। अङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते ऽजायां घर्मं प्रासिञ्चन्। सा शोचन्ती पर्णं परामृशत्। सो ऽर्को ऽभवत्। तदर्कस्यार्कत्वम्। यदर्कपर्णेन जुहोति सयोनित्वाय। यं द्विष्यात्तस्य संचरे पशूनां न्यस्येत्। यः प्रथमः पशुराक्रामति स आर्तिमार्छति। या उत्तमास्ता यजमानं वाचयेत्। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एता वै देवता अभिचरणीयाः। यं द्विष्यात्तं ब्रूयादमुं वो जम्भे दधामीति। एताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजकुप्रधन्वति ॥२१॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥

पञ्चममष्टकम्

[सजूरब्द आयवोभिरिति संवत्सरो वा अब्दः। मासा आयवाः। उषा अरुणीः। सूर] एतशः। इमे अश्विना। संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः। पशव इडा। पशवो घृतम्। संवत्सरं पशवो ऽनु प्रजायन्ते। संवत्सरादेवास्मै पशून्प्रजनयति। दर्भस्तम्बे जुहोति। यदेवास्या अनामृतं यद्वीर्यं तदेतदुत्सर्पति। यदेवास्या अनामृतं यद्वीर्यं तदवरुन्द्धे। नाग्निं चिक्यानः प्रमीयते यस्यैवं जुह्वति। चित्रं देवानामुदगादनीकमिति पुरुषशीर्षे जुहोति। अहर्वै मित्रो रात्री वरुणः। एतावद्वावास्ति। यावदेवास्ति तदवरुन्द्धे। सौर्यर्चा जुहोति। तस्मात्पुरुष एव पशूनां सूर्यं प्रत्यङ् न्यञ्चो ऽन्ये। यत्समान्यर्चा द्विर्जुहोति तस्मात्समानस्य पुरुषस्य द्वौ पादौ। यो ह वा अग्निं योगे आगते न युनक्ति न युञ्जानेषु युङ्क्ते। युक्ष्वा हि देवहूतमान्॥ अश्वाँ अग्ने रथीरिव सत्सि होता पूर्व्यः सदः॥ युक्ष्वा हि ये तवेत्यग्निमेवैतद्योगे आगते युनक्ति। युङ्क्ते युञ्जानेषु य एवं वेद। द्वाभ्यां युनक्ति। अस्थूरीत्याह। यो ह वा अग्निं विमोक आगते न विमुञ्चति न विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा।

तां विश्वे देवा ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु॥

इत्यग्निमेवैतद्विमोक आगते विमुञ्चति विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते य एवं वेद। अथैताः संयानीः। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एषा वै गायत्री ज्योतिष्पक्षा। तयैव स्वर्गं लोकमेति य एवं वेद। यथा नावोदकादुदकमभिसंयात्येवं वा एताभिरग्निंचिदमुत्र यथालोकं संयाति। तत्संयानीनां संयानीत्वम्। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। अथैतान्यृतुनामानि। ऋतूनेवावरुन्द्धे। सुमेक इति। संवत्सरो वै सुमेकः। संवत्सरमेवावरुन्द्धे। अथैता आदित्येष्टकाः। आदित्या वा एतस्य तेज आददते यो ऽग्निं चिक्यानो नेव रोचते। यदेता उपधीयन्ते यथा दीयमाने भूयो ऽभ्यादधात्येवमेवास्मिंस्तदभि पूर्वं तेजो दधाति। नास्यादित्यास्तेज आददते। यथासौ देवेष्वेवं मनुष्येषु भवति। अथैता घृतेष्टकाः। तेजो वा अग्निस्तेजो घृतम्। तेजस्येव तेजो दधाति। अथैता वृष्टिसनयः। वृष्टिमेवैताभिरवरुन्द्धे। एताभिर्वा अग्निचिदमुत्र यथाकामं वर्षति। तद्वृष्टिसनीनां वृष्टिसनित्वम्। अथैता आत्मा। एतद्ध वा उवाच शङ्कुः कौष्यः पुत्रमग्निं चिकिवांसमकैरग्नो ऽसित्यचैष हो ऽस्यथ कथा न सर्वात्मागा इति तद्धि नूनं न विदाचकृमेति। यस्यैता उपधीयन्ते सात्मानमेवाग्निं चिनुते। पुनर्नितुन्ना भवन्ति। प्राण एव प्राणमुपसंदधाति। अथैषा षष्ठी चितिः। यो ऽग्निं चिक्यानो नेव प्रतितिष्ठेत्स एतां षष्ठीं चितिमुपदधीत। षड्वा ऋतवः संवत्सरः। ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतितिष्ठति। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एता वै देवता अभिचरणीयाः। यं द्विष्यात्तं वृषदमुं वो जम्भे दधामीति। एताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजक्प्रधन्वति ॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

अग्निना वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तान्पराच आवृतान्पश्चादन्वेत्य रक्षांस्यजिघांसन्। ते देवा एता वितृण्णीरपश्यन्। ताभी रक्षांस्यपाघ्नत। यद्द्वे पुरस्तादुपदधाति द्वे पश्चाच्चक्षुरेवोभयतो दधाति रक्षसामपहत्यै। स्वयमातृण्णा भवन्ति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै। चतस्रः। तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे। स्वर्गाय वै लोकायाग्निश्चीयते। यदेकादशिनीं कुर्याद्यज्ञेन पुरस्तादवगृह्णीयादस्वर्ग्यः स्यात्। यदनेकादशिनीम-

नवरुद्धा अस्य पशवः स्युः। एकयूप एकादश पशूनालभेत। तेनैव स्वर्ग्यस्तेन पशूनवरुन्द्धे॥

न पक्षसंमितां मिनुयात्। यत्पक्षसंमितां मिनुयात्कनीयांसं यज्ञक्रतुमुपेयात्पापीयस्यस्य प्रजात्मनः स्यात्। वेदिसंमितां मिनुयात्। ज्यायांसमेव यज्ञक्रतुमुपैति नास्यात्मनः प्रजा पापीयसी भवति। एतद्ध वा उवाच दिवा जातः शाकायन्यः शङ्कुं कौष्यं पक्षसंमितामेकादशिनीममेष्टेति श्रुत्वा कनीयांसं यज्ञक्रतुमुपागात्पापीयस्यस्य प्रजात्मनो भविष्यतीति। ततो वै तं पराभूतं मन्यन्ते। कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः। देवा मा वेदन्निति वा अग्निश्चीयते। य एवं विद्वानेतं चिनुते विदुरेतं देवाः। कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः। अन्नमदानि गृहा मे ऽसन्निति वा अग्निश्चीयते। य एवं विद्वानग्निं चिनुते ऽत्यन्नं गृहवान्भवति॥

सहस्रेष्टकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः। सहस्रसंमितो ह्ययं लोकः। द्वे सहस्रे द्वितीयं चिन्वानः। अन्तरिक्षेण संमितम्। त्रीणि सहस्राणि तृतीयं चिन्वानः। एभिर्लोकैः संमितम्। व्रतं चरेदग्निं [चित्वा। प्रथमं चित्वा न रामामुपेयात्। द्वितीयं चित्वा नान्येषां स्त्रियः। तृतीयं चित्वा न कांचन। रेतो वा एतन्निधत्ते यदग्निं] चिनुते। यदुपेयाद्रेतसा व्यृध्येत। तदाहुर्ये एवामू रेतः सिचाविष्टके ते अग्निचितो रेतो बिभृतः। तस्मादुपेत्यैति। प्रजापतिर्वा उख्यमाग्नमबिभः। स इमाः प्रजा अनुप्राविशत्। सो ऽब्रवीत्स एव मे प्रजानामृध्नवद्यो मेतः संचिनवदिति। अग्निः प्रजापतिः। यदग्निं चिनुते प्रजापतिमेव संचिनोति। ऋध्नोति। तच्चित्यस्य चित्यत्वम्। तं वसुभ्यः प्रायच्छत्। तेन वसवस्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त। ते वसवो रुद्रेभ्यः प्रायच्छन्। तेन रुद्रास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त तं रुद्रा आदित्येभ्यः प्रायच्छन्। तेनादित्यास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त। उखा सहस्रतमी। य एवं वेदोखां सहस्रतमीं गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनाम् ॥१॥

यथारूपमग्निश्चेतव्यः। यो वै यथारूपमग्निं चिनुते नास्यापरूपमात्मञ्जायते। गायत्र्या प्रथमां चितिं संचितामभिमृशेत्त्रि [ष्टुभा द्वितीयां जगत्या तृतीयाम] नुष्टुभा चतुर्थीं पङ्क्त्या पञ्चमीम्। यथारूपमेवाग्निं चिनुते। नास्यापरूपमात्मञ्जायते। प्राणो वै प्रथमा चितिर्व्यानो द्वितीयापानस्तृतीया। प्राणापानैरेवैनं समिन्द्धे। इडाया वा एषा विभक्तिः। पशव इडा। पशुभिरेवैनं चिनुते। प्रजापतये प्रोच्याग्निश्चेतव्यः। यो वै प्रजापतये ऽप्रोच्याग्निं चिनुत आर्तिमार्छति। अश्वावभितस्तिष्ठेतां श्याव उत्तरार्द्धेतो दक्षिणतः। तावालम्भम्। इष्टकामिष्टकामुपदध्यात्। एतद्वै प्रजापते रूपम्। प्राजापत्यो ऽश्वः। प्रजापतय एव प्रोच्याग्निं चिनुते। नार्तिमार्छति॥

हिरण्यपात्रं मधोः पूर्णं ब्रह्मणो ददाति। मधव्यो भवति। शतमानम्। शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः। आयुरेव वीर्यमात्मन्धत्ते। चित्रं देवानामिति चित्रवत्यावेक्षते। चित्रमेव भवति मध्यन्दिने। अश्वमुपघ्रापयति। असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः। प्राजापत्यो ऽश्वः। प्रत्यक्षमेवैनमृध्नोति। यो ऽग्नेराप्तिं वेदाप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते। प्रयास्यन्नग्निं चितमुपतिष्ठेत दीक्षया त्वापं तपसा त्वापं सुत्यया त्वापमवभृथेन त्वापं वशया त्वापमिति। तत्पञ्च संपद्यते। पञ्च वा ऋतवः। आप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते॥

एकेष्टकेत्याहुर्ब्रह्मवादिनो वागेवैकेष्टकेति ब्राह्मण एवैकेष्टकेतीम एव लोकाः। एतद्ध स्म वा आहुः शर्कराख्यास्तिस्र एव वयमिष्टका अग्निं चित्यं विद्मेमानेव लोकानिति। ससत्यो ऽग्निश्चेतव्यः। भूरिति प्रथमां वितृण्णीमुपदध्याद्भुव इति द्वितीयां स्वरिति तृतीयाम्। एतद्वै वाचः सत्यम्। ससत्यमेवाग्निं चिनुते। ब्रह्मवादिनो वदन्ति ससत्यमग्निमचेष्टापसत्यमिति। स ह त्वा अग्निं ससत्यं चिनुते य एवं चिनुते। कस्यै देवतायै अग्निश्चीयत इत्याहुर्ब्रह्मवादिनः। प्रजापतय एव। तस्य किं हविरिति। आत्मैव ॥२॥

आपो वा इदमासन्सलिलमेव। स प्रजापतिः पुष्करपर्णे वातो भूतो ऽलेलीयत। स प्रतिष्ठां नाविन्दत। स एतमपां कुलायमपश्यत्। तमाहरत्। तमुपाधत्त। सेयमभवत्। ततः प्रत्यतिष्ठत्। इयं वावाग्निः। त [स्माद्यद] स्यां खनन्त्यभीष्टकां तृन्दन्त्यभि शर्कराम्। यां पुरस्तादुपादधात्तच्छिरो ऽभवत्। सा प्राची दिक्। यां दक्षिणत उपादधात्स दक्षिणः पक्षो ऽभवत्। सा दक्षिणा दिक्। यां पश्चादुपादधात्तत्पुच्छमभवत्। सा प्रतीची दिक्। यामुत्तरादुपादधात्स

उत्तरः पक्षो ऽभवत्। सोदीची दिक्। यां मध्य उपादधात्तत्पृष्ठमभवत्। सोर्ध्वा दिक्। इयं वावाग्निः पञ्चेष्टकः। य एवं वेद प्रजायते गच्छति प्रतिष्ठाम्। आग्नेयो वै ब्राह्मणः। तस्माद् ब्राह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुकम्। स्वां ह्येव दिशमन्वेति। सर्वां ह वा इयं वयोभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते। तस्मादिमां वयांसि नक्तं नाध्यासते। अयं वा एष कुलायः। तस्मादेतमापः प्रहारुकाः। अयं ह्येष कुलायः ॥३॥

यदि मन्येत पूर्वो माभिक्रान्तो भ्रातृव्य इत्यष्टावुपदध्याल्लोकंपृणया पुरस्ताद्बहिष्पवमानस्यैकादश पुरस्तान्माध्यन्दिनस्य पवमानस्य द्वादश पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्य। अयं वाव यः पवते स पवमानः। वायुरग्नेस्तेजः। य एवैनं पूर्वो ऽभिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेजसा प्रणुदते। यदि मन्येत पश्चादिव भ्रातृव्य इति पश्चादुपदध्यात्स पवमानानाम्। अयं वाव यः पवते स पवमानः। वायुरग्नेस्तेजः। य एवैनं पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेजसापनुदते [प्र श्रेयांसं] भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते। स एष सवनचित्। प्रजापतिर्वा उख्यमग्निमबिभः। तस्य शिरः प्रावर्तत। तेन देवा अश्राम्यन्। सवितेतिच्छन्दः प्रत्यदधुर्यद्युखा। तत्संवत्सरमरोहत्। अग्निः प्रजापतिः। यत्संवत्सरमुख्यं बिभर्ति प्रजापतेरेव शिरः प्रतिदधाति। तस्मात्संवत्सरमुख्यो भर्तव्यः। यदर्वाक्संवत्सरादर्वाक्छिद्रेव सः॥

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्येनादित्या वसवो येन रुद्राः।

येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानः स्वस्ति॥

इति घृतेनाक्त्वा समिधमादधाति। समिद्धिरेवैषा। अथो यजमानस्यैवैतत्स्वस्त्ययनं क्रियते॥

ये अग्नयः पुरीषिण आविष्टाः पृथिवीमनु।

तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥

इति स्वमग्निं चितमुपतिष्ठेत। सर्वमायुरेति। उप त्वाग्ने दिवेदिव इत्येतेन त्र्यृचेनान्येषाम्। आशीरेव सा ॥४॥

यर्हि धिष्ण्या उपधीयन्ते [तर्हि] बार्हस्पत्याभि [स्तिसृभि] स्तिस्रो दक्षिणत उपदध्यात्। अथ याम्याभिस्तिसृभिस्तिस्रो ऽथ रौद्रीभिस्तिसृभिस्तिस्रो ऽथ वारुणीभिस्तिसृभिस्तिस्रः। दक्षिणतो वै देवानां रक्षांसि यज्ञमभिजिघांसन्। तानि बार्हस्पत्याभिरघ्नत यद्बार्हस्पत्या दक्षिणत उपधीयन्ते रक्षसामपहत्यै। अथ याम्यः। एताभिर्वा असितायं दैवताः इमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च प्राभुः। यस्यैता उपधीयन्ते समस्ता इमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च भान्ति। अथ रौद्रीः। अग्निर्वै रुद्रः। ईश्वरो वा एष एतमतो ऽनूत्थाय हन्तोः। यद्रौद्री रुद्रमेव निरवदयते। अथ वारुणीः। आपो वै वरुणः। ईश्वरो वा एतमवभृथादनूदेत्य वरुण उद्ग्रहीतोः। यद्वारुणीर्वरुणमेव निरवदयते॥

यद्युखे भ्रियमाणे ऽथ देवः प्रजा अभिमन्येत या आग्रेयीर्गायत्रीर्भिषग्वतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्र आदध्यात्। एष वावैतत्प्रजा अभिमन्यते। यद्भिषग्वतीभिरादधाति भेषजमेव करोति। यद्युखे भ्रियमाणे कामयेत वर्षेदिति याः सौरी रश्मिवतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रः समिध आदध्यात्। असौ वा आदित्यस्तर्हि प्रजाः शुचार्पयति य [र्हि पर्जन्यो न वर्षति ...... ॥५॥]

...[न वहन्तीभि] स्नायात्। यद्वहन्तीभिः स्नायात्तत्र यस ऋच्छेत्। न कूप्याभिः स्नायात्। यत्कूप्याभिः स्नायाद्विशं यश ऋच्छेत्। स्थावराभिः स्नेयम्। एता वा अपां दीक्षिताः यत्सुवरीयाः स्थावराः। [लोमशाः संतताः।] लोमशाः पशवः। यजमानमेव यशसार्पयति ॥६॥

हविर्वै दीक्षितः। न हविरनभिघृतं मेधमश्नुते। यदभ्यनक्त्यभ्यैवैनं घारयति मेध्यत्वाय। घृतं देवानां निष्पक्वं मनुष्याणामायुतं गन्धर्वाणां स्वं विलीनमादित्यानाम्। नैतद्देवत्रा न मनुष्यत्रा यन्नवनीतम्। नैष देवत्रा न मनुष्यत्रा यो दीक्षितः प्रच्युतो ऽस्माल्लोकात्। यन्नवनीतेनाभ्यङ्क्ते समृद्ध्यै॥

वासः परिधत्ते। अग्नेस्तूषः पितॄणां नीविरोषधीनां प्रघातो वायोर्वातपा विश्वेषां देवानामोतवश्च तन्तवश्च नक्षत्राणामतीकाः। सर्वदेवत्यं वासः। सर्वदेवत्यो दीक्षितः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति॥

आङ्क्ते। इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं रक्षांस्यसचन्त। तान्यक्ष्णागिरिणान्तरधत्त। रक्षांसीदं सचन्ते यो दीक्षते। भवति हि

यदाङ्क्ते। रक्षसामन्तर्हित्यै। इन्द्रो वै वृत्रमहन्। तस्य चक्षुः परापतत्। तत्त्रिककुभं प्राविशत्। यदाङ्क्ते तस्यैव चक्षुषो ऽवरुद्ध्यै। द्विर्दक्षिणमाङ्क्ते सकृत्सव्यम्। त्रिवृद्यज्ञः। मुखत एव यज्ञमालभते। त्रिर्दक्षिणमाङ्क्ते द्विः सव्यम्। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुन्द्धे। दक्षिणं पूर्वमाङ्क्ते। सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। यजुषाङ्क्ते। अयजुषा हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। पराचीनमानक्ति न निधावति। आचपराचं हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। इषीकयाङ्क्ते। शलल्या हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। सतूला भवति। मैत्री वै सतूला वारुणी परिशीर्णा। मैत्रो दीक्षितः। समृद्ध्यै। ऊनमिव वा एतच्छिद्रमिव यच्चक्षुः। यदाङ्क्ते तदेवापूरयति। अच्छिद्रत्वाय ॥

पावयति। इन्द्रो वै वृत्रमहन्। तमप्स्वेवाभ्यहन्। तासां या यज्ञिया मेध्या आसंस्ता उदक्रामन्। ता ओषधयो ऽभवन्। यत्तेजस्ते दर्भाः। तस्मात्ते पवित्रम्। तस्माद्दर्भैरपः पुनन्ति। यद्दर्भपिञ्जूलैः पावयत्यपामेवैनं तेजसा पावयति। द्वाभ्यां पावयति। द्वे सत्यं चानृतं च। सत्येनैवास्यानृतं पावयति। द्वौ प्राणश्चापानश्च। त्रिभिः पावयति। [त्रयो हि] प्राणाः प्राणो व्यानो ऽपानः। तानेव यजमाने दधाति। पञ्चभिः पावयति। पाङ्क्तः पुरुषः। यावानेवास्यात्मा तं पावयति। [सप्तभिः पावयति। सप्त वै छन्दांसि। छन्दोभिरेवैनं पावयति। नवभिः पावयति।] नव हि प्राणाः। प्राणैरेवैनं पावयति। एकविंशत्या पावयति। एकविंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः। यावानेवास्यात्मा तं पावयति। चित्पतिस्त्वा पुनात्विति। ब्रह्म वै चित्पतिः। ब्रह्मणैवैनं पावयति। वाक्पतिस्त्वा पुनात्विति। स हि पावयिता। देवस्त्वा सविता पुनात्विति। सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिः पावयति। अच्छिद्रेण पवित्रेणेति। अच्छं वषट्कारमेवैतत्पुनीते। सूर्यस्य रश्मिभिरित्यादित्यस्यैवैनं तन्वा पावयति। तस्य ते पवित्रपते पवित्रेणेति। यज्ञो वै पवित्रपतिः। यज्ञायैवैतत्पुनीते। यस्मै कं पुने तच्छकेयमिति। यज्ञं शकेयमित्येवैतदाह। अन्वञ्चं पावयति। अन्वाङ्वै पुरुषं प्राणः। यदा वै प्राणस्तिर्यङ् भवत्यथ प्रमीयते। यत्तिर्यञ्चमस्य प्राणं कुर्यात्प्रमीयेत। अन्वात्ममेवास्य प्राणं करोति। बहिष्पावयति। मनुष्यलोक एवैनं पावयित्वा पूतं देवलोकं प्रणयति ॥७॥

गर्भो दीक्षितो योनिर्दीक्षितविमितमुल्वं दीक्षितवसनं जरायु कृष्णाजिनम्। एतस्माद्वै योनेरिन्द्रो ऽजायत। कुलायमेवैतदासीवनं कृत्वोपचरति। तस्माद्दीक्षितम्। नान्यत्र दीक्षितविमितात्सूर्यो ऽभिनिम्रोचेन्नान्यत्राभ्युदियात्। स्वादेव योनेः प्रजायते। आकूत्यै प्रयुजे ऽग्नये स्वाहेति। आकूय वै यज्ञः प्रयुज्यते। यत्रैव यज्ञमाकुवते तदेनमालभते। मेधायै मनसे ऽग्नये स्वाहेति। मेधया वै मनसाभिगच्छति यजतां स्य इति। यज्ञमेवावरुन्द्धे। दीक्षायै तपसे ऽग्नये स्वाहेति। दीक्षया वै तपसा यज्ञं प्राप्नोति। यज्ञमेवावरुन्द्धे। सरस्वत्यै पूष्णे ऽग्नये स्वाहेति। वाग्वै सरस्वती पशवः पूषा। वाचा पशुभ्यो ऽधियज्ञमालभते। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इति। आपो वै यज्ञः। दिवि यज्ञो ऽन्तरिक्षे पृथिव्याम्। ब्रह्म बृहस्पतिः। अत्रात्र वै यज्ञः। यत्र यत्रैव यज्ञस्तत एनं ब्रह्मणालभते। पञ्चैतानि जुहोति। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुन्द्धे। यज्ञस्य वा एते संभारा यदेतानि यजूंषि। यदेतानि न जुहुयादसंभृतो ऽस्य यज्ञः स्यात्। यदेतानि जुहोति यावानेव यज्ञस्तं संभरति। अदीक्षितो वा एकयाहुत्या। अर्दन्ति ह स्म वा एतस्य पुरात्र यस्यैतानि न हूयन्ते। यदेतानि [जुहोति] दीक्षितत्वायैव द्वितीयत्वायैव। अग्नये स्वाहाग्नये स्वाहेति जुहोति। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे। पञ्चैतानि जुहोति। औद्ग्रहणं षष्ठम्। षडृतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। यज्ञः सृष्टः प्र यजुरक्लिनात्र साम। तमृगेवायच्छत्रव सामानि द्वादश यजूंषि। तस्मात्त्रवभिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्ति। ऋचौद्ग्रहणं जुह्वति। यदृचौद्ग्रहणं जुहोति यज्ञमेव सृष्टं प्रत्युदृचा यच्छति। द्वादशभिर्हस्म वै पुरा कारुद्वेषिण औद्ग्रहणं जुह्वति। एतदेव द्वादशगृहीतं कृत्वा जुहुयात्। तेनैव तदाप्नोति। पूर्णया स्रुचा जुहोति। पूर्णः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति। यदूनया जुहुयाद् भ्रातृव्याय लोकं कुर्यात्। कामातं वै पूर्णम्। यं हि कामं कामयते तं पूर्णस्य कुरुते। यमेव कामं कामयते तमवरुन्द्धे॥

स्वे छन्दसि यज्ञः प्रतिष्ठाप्यः। अनुष्टुब्वै प्रजापतेः स्वं छन्दः। यज्ञः प्रजापतिः। यदनुष्टुभौद्ग्रहणं जुहोति स्व एव च्छन्दसि यज्ञं प्रतिष्ठापयते। छन्दःप्रतिष्ठानो वै यज्ञः। स यथाछन्दसं छन्दःसु प्रतिष्ठाप्यः। सैषानुष्टुप्। तस्याः सप्ताक्षरमेकं पदमष्टाक्षराणि त्रीणि। तेषां सप्तानां यानि त्रीणि तान्यष्टावुपयन्ति। तान्येकादश। सा त्रिष्टुप्। यानि

चत्वारि तान्यष्टा वुपयन्ति। तानि द्वादश। सा जगती। यान्यष्टौ सा गायत्री। अविभक्तानुष्टुप्। स्वाहाकारेण पङ्क्तिः। एतावन्ति वै छन्दांसि। यज्ञमेव यथाछन्दसं छन्दःसु प्रतिष्ठापयते॥

यज्ञः सृष्टो देवताभिरालभ्यः। विश्वो देवस्य नेतुरिति यत्रेतृमती तेन सावित्री। मर्त इति पितृदेवत्या। विश्व इति वैश्वदेवी। द्युम्नमिति बार्हस्पत्या। पुष्यत्विति पौष्णी। सारस्वतः स्वाहाकारः। एतावतीर्वै देवताः। यज्ञमेवैतत्सृष्टं देवताभिरालभते। यज्ञश्च सृष्टो हुतस्त्रेधा प्रावि [शदृचं तृतीयेन साम तृतीयेन यजुस्तृतीयेन। .... ॥८॥]
... [यद्येकं स्यात्पा] दं प्रतिपीव्येत्। अनन्तर्हितो यजमानो यज्ञाच्च देवताभ्यश्च भवत्यनन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यः। विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येति। विष्णुर्वै यज्ञः। वैष्णवो यजमानः। विष्णुनैव यज्ञेनात्मानमुभयतः सयुजं कुरुते। यज्ञो यदसृज्यत तस्योल्बमन्ववेष्टत। तद्दीक्षितवसनमभवत्। गर्भो दीक्षितः। यद्दीक्षितवसनं परिधत्ते स्वेनैव योनिनात्मानमोर्णुते। तस्मान्महत्कार्यम्। एवमिव ह्युल्बेन गर्भ आवृत इव च्छन्न इव। न प्रत्यक्षं वदेद्वाचो ऽयातयामत्वाय ॥९॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायां पञ्चत्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

अङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते मेखलाः संन्यकिरन्। ततः शर उदतिष्ठत्। यच्छरमयी मेखला भवति तामेव मेखलामालभते। देवा वै यत्रोर्जं व्यभजन्त ततः शर उदतिष्ठत्। यच्छरमयी मेखला भवति तामेवोर्जमालभते। ऊर्ग्वै मेखला। मध्यं प्रति परिव्ययति। ऊर्जमेव मध्यतो दधाति यजमानेषु च प्रजासु च। तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयति। नाभिं प्रति परिव्ययति। ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्या मेध्यमवाचीनममेध्यम्। मेध्यस्य चामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै। त्रिवृद्भवति। त्रिवृता वै स्तोमेन प्रजापतिः प्रजा असृजत। त्रिवृद्वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। तस्य यत्प्राशीर्यत स शरोऽभवत्। तच्छरस्य शरत्वम्। वज्रो वै शरः। यच्छरमयी मेखला भवति वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। यं द्विष्यात्तं परिव्ययन्ध्यायेत्। वज्रेणैवैनं समर्पयति। मेखला पुंसो भवति योक्त्रं स्त्रियाः। स्त्री वै मेखला पुमान्योक्त्रम्। मिथुनमेव यज्ञमुखे विपर्यूहति प्रजननाय। वज्रो वै मेखला। क्षुदुदरं पाप्मा भ्रातृव्यः। यन्मेखलां परिव्ययते वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमहपते॥

यज्ञो वै देवेष्वासीद्दक्षिणा पितृषु। स यज्ञो दक्षिणामभ्यकामयत। तं पितरोऽब्रुवन्देवेषु णो भागधेयमिच्छेति। ते ऽब्रुवंस्तृतीयसवनभागा असन्निति। तस्मात्पितृभ्यस्तृतीयसवनं क्रियते। तमह्वयत्। तां हूतोऽधावत्। तस्मात्पुमांस्त्रीहूतो धावति। तस्माच्छ्रोत्रिय स्त्रीकामतमः। स हि यज्ञस्य नेदिष्ठी। तां समभवत्। तदिन्द्रो ऽचायत्। सो ऽमन्यत यो वा इतो जनिष्यते स एवेदं भविष्यतीति। तं योनिं प्राविशत्। तस्मादजायत। स पुनः प्रत्यवैक्षत। सो ऽमन्यत यो वा इतोऽपरो जनिष्यते स मे भ्रातृव्यो भविष्यतीति। तमववृज्य प्राच्छिनत्। सा विषाणाभवत्। यद्विषाणा भवति यज्ञस्यैव रेत इन्द्रस्य योनिं दक्षिणाया योनिमालभते। पञ्चावृद्भवति। पञ्चभिर्हि स तां निवेष्टयाच्छिनत्। इन्द्रस्य योनिरसीति। इन्द्रस्य ह्येषा योनिः। कृष्यै त्वा सुसस्याया इति। तस्मात्कृष्टं पच्यते। उत्कृषीति। तस्मादूर्ध्वा ओषधय उत्पच्यन्ते। यजुषा कण्डूयते। अयजुषा हि मनुष्याः कण्डूयन्ते। व्यावृत्त्यै। यदयजुषा कण्डूयेत वरुणवत्कण्डूयेत। अपि गर्भाः पामना जायेरन्॥

वाग्वै देवान्मनुष्यान्प्रविशन्त्यैत्। तस्या यदत्यरिच्यत तद्वनस्पतीन्प्राविशत्। सैषा वनस्पतिषु वाग्वदति या दुन्दुभौ या नाड्यां या तूणवे। यद्दण्डो वाच एवातिरिक्तमवरुन्द्धे। तं मैत्रावरुणाय प्रयच्छति। वाचमेवास्मै तत्प्रयच्छति। तां शश्वदृत्विग्भ्यो विभजति। तस्मादस्य वाङ्‌ नोपदस्यति। आस्यदघ्नः कार्यः। तावती ह्ययं वाग्वदति। अथो एतावती वाचा वीर्यं क्रियते। यो वृक्षः फलग्रहिस्तस्य कुर्यात्फलग्रहिरसानीति ॥१॥

स्वाहा यज्ञं मनस इति। मनसा वै यज्ञ आलभ्यते। वातयोनिर्यज्ञः। दिवि यज्ञो ऽन्तरिक्षे पृथिव्याम्। अत्रात्र वै यज्ञः। यत्रयत्रैव यज्ञस्तत एनं मनसालभते। तं यत्वास्ते। यज्ञमेव तद्यत्वास्ते। यदि विसृजेद्यज्ञं विसृजेत्। यद्विसृजेत्पुनर्दीक्षयेत्। यत्पुनर्दीक्षयेदाहुतीरतिरेचयेत्। गायत्रीं वैष्णवीमनुब्रूयात्। वाग्वै गायत्री यज्ञो विष्णुः। वाचैव

यज्ञं संतनोति। बार्हस्पत्यामुत्तरामनुब्रूयात्। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणा यज्ञस्यार्तं निष्क्रियते। ब्रह्मणैव यज्ञस्यार्तं निष्करोति। त्वमग्ने व्रतपा असीत्यग्नये व्रतपतये ऽनुब्रूयात्। व्रतपतिं वा एतस्य व्रतं गच्छति यो दीक्षितः सन्न व्रतं चरति। अग्निर्देवानां व्रतपतिः। व्रतपतेरेवाधि व्रतमालभते। अदीक्षिष्टायमसावामुष्यायण इति त्रिरुपांश्वाह त्रिरुच्चैः। देवेभ्यश्चैव मनुष्येभ्यश्च यज्ञं प्राह। नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं विसृजते। दि [वा वै मनुष्या यज्ञेन चरन्ति नक्तं देवाः। ..... ॥२॥]

.....[देवता] भिश्चैव यज्ञेन च सह तरति। आ पारादृगन्तोर्लोष्टं विमृणन्नासीत। तेनास्या नैतै। सक्षेहि ॥ अयं ते योनिर्ऋत्विय इति यथायजुः। एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या इति देवयजनमध्यवस्यति। [ऋक्सामाभ्यां संचरन्तो यजुर्भिरिति] ऋक्सामाभ्यां चैव देवताभिश्च देवयजनमनुसंचरति ॥३॥

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। अग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ चातुर्मास्यान्येष वाव तर्हि यज्ञ आसीत्। ते देवा एतं सौम्यमध्वरमपश्यन्। तमाहरन्। ते ऽदीक्षयन्। ते ऽग्निहोत्रमेव व्रतमकुर्वत। अग्निहोत्रं वाव व्रतम्। तस्माद्यदग्निहोत्रस्य स्कन्नस्य प्रायश्चित्तिः सा व्रतस्य स्कन्नस्य प्रायश्चित्तिः। तस्माद् द्विव्रतो दीक्षितः स्यात्। द्विर्ह्यग्निहोत्रं जुह्वति। तेषां यत्पौर्णमासमासीत्तमग्नीषोमीयं पशुमकुर्वत यः पूर्वेद्युरालभ्यते। यद्दार्शं तमाग्नेयं यो ऽनुसवनमालभ्यते। वैश्वदेवमेव प्रातःसवनमकुर्वत वरुणप्रघासान्माध्यन्दिनं सवनं साकमेधांस्तृतीयसवनम्। तृतीयसवने पितृयज्ञमवाकल्पयंस्तृतीयसवने त्र्यम्बकान्। ते ऽसुरा अपक्रामन्तो अब्रुवन्न वा इमे ध्वर्तवा अभवन्निति। तदध्वरस्याध्वरत्वम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वान्दीक्षते यमेवं विद्वान्दीक्षयति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति ॥४॥

स्वर्गं वा एतेन लोकं प्रयन्ति यत्प्रायणीयम्। तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम्। छिद्यते वा एषो ऽस्माल्लोकाद्यो ऽमुं लोकं गच्छति। यदादित्यमुदयनीयं भवत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति। देवा वा असुरान्हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते दिशो ऽमोहयन्नेत्र इद [मन्यो ऽनु प्रजानादिति। तदाहुः साध्या वै नाम देवा आसन्पूर्वे देवेभ्यः। ते दिशो मोहयित्वा स्वर्गं लोकमायन्नेत्र इ] मं लोकमन्यो ऽनु प्रजानादिति। ता इमे ऽवरे देवा अनु प्राजिज्ञासन्त। ता न प्राजानन्। सादितिरब्रवीद्वार्यं वृणै मत्प्रायण एव यज्ञोऽसन्मदुदयन इति। तस्मादादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। वार्यवृतं ह्यस्याः। पथ्यां स्वस्तिं यजतेत्यब्रवीत्तया प्राचीं दिशं प्रज्ञास्यथेति। अग्निं यजतेत्यब्रवीत्तेन दक्षिणाम्। सोमं यजतेत्यब्रवीत्तेन प्रतीचीम्। सवितारं यजतेत्यब्रवीत्तेनोदीचीम्। अहमेवेमावित्यब्रवीत्। ..... [॥५॥]

..... [वा] चैव प्रयन्ति वाचोद्यन्ति। आदित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। अस्मिंश्चैव लोके ऽमुष्मिंश्च यज्ञमुखेन प्रतितिष्ठति। दिशो वै स्वर्गो लोकः। एतद्देवत्या दिशः। यत्प्रायणीयेन यजते दिश एव स्वर्गं लोकमभ्यातिष्ठति। यथा वै तेजन्यूयत एवं यज्ञ ऊयते। यदादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयं बर्सविवैतावन्ततो नह्यति द्रढिम्ने ऽप्रस्रंसाय। याः प्रायणीयस्यानुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्या या याज्यास्ता अनुवाक्याः। येनैव प्रयन्ति तेनोद्यन्ति प्रतिपदत्वाय प्रतिप्रज्ञात्यै। व्यतिषजेद्याज्यानुवाक्या यं द्विष्यात्तस्य। प्रैनमस्माल्लोकाच्च्यावयति नामुं प्राप्नोति। यथा पथ उदेत्येवं तत्। उभयत एवैनं छिनत्ति। अननुयाजं प्रायणीयं स्यादप्रयाजमुदयनीयम्। समानं वा एतद्धविः संतत्यै। आत्मा वै प्रयाजाः प्रजानुयाजाः। यदेवं कुर्यादात्मानं च प्रजां चान्तरियादप्रजाः प्रमीयेत। प्रयाजवती एवानुयाजवती स्याताम्। समानं वा एतद्धविः समानी देवता समानं मेक्षणम्। तेनैव यज्ञं संतनोति। नात्मानं न प्रजामन्तरेति।

संस्थाप्यन्न संस्थाप्यमिति मीमांसन्ते। स्रवति वै यज्ञो ऽसंस्थितः। तं स्रवन्तं यजमानो ऽनु परास्रवति प्रजया च पशुभिश्च। संस्थाप्यमेव। पत्नीं तु न संयाजयेत्। अमेध्या वा एषापूता नेश्वरा स्वर्गं लोकं गन्तोः। तामुदयनीये संयाजयति। यथा प्रवासी स्वमायतनमागच्छत्येवमेवैतत्पत्नीं यजमानो ऽस्मिंल्लोकेऽधि प्रतितिष्ठति। दीक्षितात्रं हि वा ईजाना अदन्त्यथ न वसीयांसो भवन्ति। दीक्षितो वै तर्हि यर्हि प्रायणीयेन यजते। दीक्षित एतर्हि यर्ह्यवभृथादुदेति।

प्रायणीयस्य निष्काष उदयनीयमभिनिर्वपति। उदयनीयस्यैव नाश्नीयात्। दीक्षितान्नमेव परिवृणक्ति। वसीयान्भवति ॥६॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायां षट्त्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

कद्रूश्च वै सुपर्णी चात्मरूपयोरस्पर्धेताम्। सा कद्रूः सुपर्णीमात्मरूपमजयत्। इयं वै कद्रूर्द्यौः सुपर्णी। छन्दांसि सौपर्णानि। सा कद्रूः सुपर्णीमब्रवीत्तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमाहर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेति। सा सुपर्णी छन्दांस्यब्रवीदेतस्मै वै पितरौ पुत्रान्बिभृत ईदृशान्मा स्पृणवानितो मा निष्क्रीणीतेति। सा जगत्युदपतच्चतुर्दशाक्षरा सती। साप्राप्य न्यवर्तत। तस्या द्वे अक्षरे अहीयेताम्। सा पशूंश्च दीक्षां चादायापतत्। तस्मात्पशुमन्तं दीक्षोपनमति। तस्मादाहुर्जगती छन्दसां पशव्यतमेति। सा त्रिष्टुबुदपतत्त्रयोदशाक्षरा सती। साप्राप्य न्यवर्तत। तस्या द्वे अक्षरे अहीयेताम्। सा दक्षिणां च तपश्चादायापतत्। तस्मात्त्रिष्टुभो लोके दक्षिणा नीयन्ते। एतद्वाव तपो यत्स्वं ददाति। तस्मादाहुर्माध्यन्दिनं सवनानां तपस्वितममिति। सा गायत्र्युदपतच्चतुरक्षरा सती। साजया कर्णगृह्योदपतत्। तमस्या अजाभ्यारुणत्। तदजाया अजात्वम्। सा तानि च चत्वार्यक्षराणि सोमं चादायापतत्। साष्टाक्षराभवत्। ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद्गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं पर्यायाय कस्मात्तेजस्वितमेति। यदेवादः सोममाहरत्तस्माद्गायत्री यज्ञमुखं तस्मात्तेजस्वितमा। सा पद्भ्यां द्वे सवने आहरन्मुखेन तृतीयम्। यन्मुखेनाहरत्तदधयत्। तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती धीतमिव तृतीयं सवनम्। तस्मादृजीषं तृतीयसवने ऽभिषुण्वन्ति। यत्तृतीयसवन आशिरमवनयन्ति तृतीयसवनमेव तत्संभरन्तो मन्यन्ते ॥१॥

या श्येताक्षी कृष्णवाला कृष्णशफा न तया क्रीणीयात्। हतं वा अस्या एतत्परिपिष्टम्। पितृदेवत्या सा। प्रमायुकः स्यात्। या द्विरूपा न तया क्रीणीयात्। वार्त्रघ्नी सा। जिनाति वा जीयते वा। उत तया राजन्यस्य क्रीणीयात्। न हि तस्यान्तरास्ति। जिनाति वा हि स जीयते वा। याधीलोधकर्णी तया षोडशिनं क्रीणीयात्। अतिरिक्तं वा एतद्रूपाणामतिरिक्तः षोडशी। अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति। या बभ्रुरेकहायनी तया क्रीणीयात्। वाग्वै सोमक्रयणी एतद्रूपाणामतिरिक्तः षोडशी। अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति। या बभ्रुरेकहायनी तया क्रीणीयात्। वाग्वै सोमक्रयणी पुरुषो वाक्। यदेकहायन्या क्रीणाति तस्मादेकहायनः पुरुषो वाचं वदति। यज्ज्यायस्या क्रीणाति तस्माज्ज्यायान्वदति॥ पुरुषो वाक्। यदेकहायन्या क्रीणाति तस्मादेकहायनः पुरुषो वाचं वदति। यज्ज्यायस्या क्रीणाति तस्माज्ज्यायान्वदति॥

छन्दांसि वा अमुष्माल्लोकात्सोममाहरन्गायत्री श्येनो भूत्वा। तं गन्धर्वा अन्तरा पर्यमुष्णन्विश्वावसुः। स तिस्रो रात्रीरुपहृतो ऽवसत्। तस्मात्तिस्रो रात्रीः सोमः क्रीतो वसति। तं देवाः पुनरयाचन्त। तमेभ्यो न पुनरददुः। ते ऽब्रुवन्गावा निष्क्रीणामेति। ते ऽमन्यन्त यज्ञेन विक्रेष्यामहे यद्गवा निष्क्रेष्यामहा इति। ते ऽब्रुवन्स्त्रीकामा वै गन्धर्वा वाचं स्त्रियं कृत्वा मायामुपावसृजामेति। ते वाचं स्त्रियं कृत्वा मायामुपावासृजन्। ते ऽमन्यन्त प्रजया व्यक्रेष्महि ये वाचा व्यक्रेष्महीति। ते ऽन्वार्तीयन्तास्माकं सोमो ऽस्माकं सोमक्रयणीति। ते गन्धर्वा अब्रुवन्विह्वयामहा इति। ते ब्रह्म गन्धर्वा अवदन्नगायन्देवा। सा देवान्गायत उपावर्तत। तस्माद्गायन्तं स्त्री कामयते न ब्रह्म वदन्तम्। अदुह्यद्धि सा ब्रह्मणे। तस्मादाहुरक्रीतः सोमो न सोमक्रयण्यस्ति। देवान्हि सा पुनरुपावर्ततेति। ते ऽब्रुवन्स्त्रीकामा वै गन्धर्वा बहु वै गन्धर्वेषु मिथुनीभवन्ती संभवन्त्यचारीरपः प्रविश्योदेहीति। तस्या यद्धतं परिपिष्टमासीत्तज्जरती कूटा भूत्वोदैत्। ते ऽब्रुवन्पितृदेवत्या वा इयमिति। तस्मात्तां पितृभ्यो घ्नन्ति। ते ऽब्रुवन्पुनः प्रविश्योदेहीति। सा पष्ठौही वार्त्रघ्नी द्विरूपा भूत्वोदैत्। सा तेन रूपेणापासृणुत। तस्मात्सा वरोऽप्रतिवरेण्यः। य एवं विद्वान्वरं वृणीते नैनं वरो हिनस्ति। ते ऽब्रुवन्पुनः प्रविश्योदेहीति। सा बभ्रुरेकहायनी भूत्वोदैत्। तयाक्रीणन्। तस्मात्सा सोमक्रयणी। तदस्या रूपम् ॥२॥

सोमक्रयण्या तृतीयसवनमवरुद्धम्। पशवो वै तृतीयसवनम्। यद्गवा क्रीणाति तेनैव तृतीयं सवनमवरुन्द्धे। रोहिते चर्मन्मिमीते। तस्माद्रोहितरूपं पशवो भूयिष्ठाः। न विचेतवा अनुमन्येत न विचीयमानस्योपद्रष्टा स्यात्। सोम ओषधीनामधिराजः। ग्रसितमस्य निष्खिदति क्षोधुको भवति। तस्मात्सोमविक्रयी क्षोधुकः। अपामन्ते क्रीणाति सरसमेवैनं क्रीणाति। हिरण्येन क्रीणाति सतेजसमेवैनं क्रीणाति। अजया क्रीणाति सतपसमेवैनं क्रीणाति। धेन्वा क्रीणाति साशिरमेवैनं क्रीणाति। अनडुहा क्रीणाति वहृयेव यज्ञस्यावरुन्द्धे। वत्सतरेण च वत्सतर्या च क्रीणाति

मिथुनमेवावरुन्द्धे। ऋषभेण क्रीणाति सेन्द्रमेवैनं क्रीणाति। तदाहुः प्रजापतिना वा एष विक्रीणीते य ऋषभेण विक्रीणीत इति। य एव धूर्षाट् तेन क्रीणीयात्। तेनैव तं क्रीणीयान्न प्रजापतिना विक्रीणीते। दशभिः क्रीणाति। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति ॥३॥

जूरसीति वाग्वै सोमक्रयणी। जवते हि वाचेत्थं चेत्थं च। पश्यन्सोमक्रयणीं जुहोति। वाग्वै सोमक्रयणी। पश्यन्नेवैनां यच्छति। धृता मनसेति। मनसा हि वाग्धृता। [जुष्टा विष्णव इति। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञायैवैनां जुष्टां करोति। तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यंत्रमशीय स्वाहेति। यो वा एतस्यास्तन्वो यंत्रमश्नुते भवति सः। सवितृप्रसूत एवास्यास्तन्वो यन्त्रमश्नुते। स्वाहाकारेणैवैनां यच्छति। अमुष्मा आदित्याय प्रोच्य सोमः क्रेतव्यो देव सूर्य सोमं क्रेष्याम इति। अमुष्मा एवादित्याय प्रोच्य सोमं क्रीणाति। चिदसीति। वाग्वै सोमक्रयणी। शास्त्येवैनाम्। तस्माच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते। मनांसीति। मनसा हि वाग्धृता।] धीरसीति। ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च। दक्षिणासीति। दक्षिणा ह्येषा। यज्ञियासीति। यज्ञिया ह्येषा। क्षत्रियासीति। क्षत्रिया ह्येषा। अथो यं ह्येषा जुषते स क्षत्रियो भवति। अदितिरस्युभयतः शीर्ष्णीति। अदितिर्ह्येषोभयतः शीर्ष्णी। उभयतो ह्येषा यज्ञं परिभूः। आदित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। सा मा सुप्राची सुप्रतीची भवेति सुप्राचीमेवैनां सुप्रतीचीं कुरुते। मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति। यत्पदि बद्धा स्यात्पितृदेवत्या स्यात्। वाग्वै सोमक्रयणी। वरुण्यः पाशः। वाग्वरुणगृहीता न वदेत्। यत्कर्णगृहीता स्यात्पितृदेवत्या स्याद्वार्त्रघ्नी स्यात्। यदनालब्धायता। मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति। ब्रह्म वै मित्रः। ब्रह्मणैवैनां पदि बध्नाति। पूषाध्वनस्पात्विति। इयं वै पूषा। अस्या एवैनां परिददाति। इन्द्रायाध्यक्षायेति। इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठः। तमेवास्या अध्यक्षं करोति। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितेति। पिता च ह्येतस्या माता चानुमन्तारौ। सा देवि देवमच्छेहीति। इन्द्राय सोममिति। देवी ह्येषा देवमच्छैति। इन्द्राय सोमम्॥ रुद्रस्त्वावर्तयत्विति। रुद्रो वै देवानां क्षोदिष्ठः। तमेवास्याः परस्तात्करोत्यपरानंशाय। स्वस्ति सोमसखा पुनरेहीति पुनरेवास्या आवृत्तायै स्वस्ति करोति ॥४॥

दक्षिणेन पदा दक्षिणानि पदान्यनुनिष्क्रामति। तस्माद्दक्षिणार्ध आत्मनो वीर्यावत्तरः। षट् पदान्यनुनिष्क्रामति। षडृतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। षट् पृष्ठानि। तान्येवावरुन्द्धे। सप्तमं पदमभिगृह्णीते। सप्त ग्राम्याः पशवः। तानेवावरुन्द्धे। सप्तधेयं वाग्वदति। तामेवाप्नोति। वस्व्यसि रुद्रासीति। देवनामानि वा एवैतानि प्रपद्यते। इयमसीयमसीत्येवैतदाह। यद्यद्धवत्यथो वाच एवैतत्सम्यगुद्यते। बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वातु॥ रुद्रो वसुभिराचक इति। ब्रह्मवै बृहस्पतिः। रुद्रो देवानामोजिष्ठः। यावेव देवानामोजिष्ठौ ताभ्यामेनामन्ततो नह्यति। पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मीति। एष हि पृथिव्या मूर्धा यद्देवयजनम्। इडायास्पदे घृतवति स्वाहेति। इडा वा एषा। तस्या एतद् घृतवत्पदम्। स्वाहाकारेणैवैनां यच्छति। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। स्थाल्यां पदं संवपति। आदित्या वै पशवः पृथिव्यदितिः। पृथिव्या स्थाली संभृता। स्व एवैनान्योनौ दधाति। अस्मे रमस्वास्मे ते राय इति। यत्त्वे राय इति ब्रूयादितरस्मै पशून्संप्रयच्छेदध्वर्युरपशुः स्यात्। मे राय इत्यात्मन्नेव पशून्यच्छते॥

व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोति। यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति समृद्ध्यै। अनग्नौ वा एतामाहुतिं जुहोति। तामीश्वराणि रक्षांस्यनूदय्य हन्तोः। यत्परिजुहोति शान्त्या एव रक्षसामपहत्यै। यावद् घृतं विधावेत्तावदभिपरिलिखेत्। पशवो वै घृतम्। पशूनेवावरुन्द्धे। अयोनीन्वा एतत्पशूञ्छुचार्पयति यदेषां पदं परिखायाहरति। यदपो निनयति पशूनेव शुचो मुञ्चति। सोमक्रयण्या पत्नीं संख्यापयति। पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेति। अतो हीमाः प्रजाः प्रजायन्ते। प्रजननाय ॥५॥

हस्ते हिरण्यं कृत्वा मिमीते। सत्यं वै हिरण्यम्। सत्येनैवैनं मिमीते। अमृतं वै हिरण्यम्। अमृतेनैवैनं मिमीते। आस्माकोऽसीति स्वमेवैनं कुरुते। शुक्रस्ते ग्रह इति शुक्रमेवास्य गृह्णाति। अभित्यं देवं सवितारमिति सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिर्मिमीते। अतिच्छन्दसा मिमीते। वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दाः। वर्ष्मैवैनौ गमयति यज्ञं च

पञ्चममष्टकम्

[मजूरध्द आयवोभिरिति। संवत्सरो वा अब्दः। मासा आयवाः। उषा अरुणोः। सूर] एतशः। इमे अश्विना। संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः। पशव इडा। पशवो घृतम्। संवत्सरं पशवो ऽनु प्रजायन्ते। संवत्सरादेवास्मै पशून्प्रजनयति। दर्भस्तम्बे जुहोति। यदेवास्या अनामृतं यद्वीर्यं तदेतदुत्सर्पति। यदेवास्या अनामृतं यद्वीर्यं तदवरुंद्धे। नाग्निं चिक्यानः प्रमीयते यस्यैवं जुह्वति। चित्रं देवानामुदगादनीकमिति पुरुषशीर्षे जुहोति। अहर्वै मित्रो रात्री वरुणः। एतावद्वावास्ति। यावदेवास्ति तदवरुंद्धे। सौर्यर्चा जुहोति। तस्मात्पुरुष एव पशूनां सूर्यं प्रत्यङ् न्यञ्चो ऽन्ये। यत्समान्यर्चा द्विर्जुहोति तस्मात्समानस्य पुरुषस्य द्वौ पादौ। यो ह वा अग्नि योग आगते न युनक्ति न युञ्जानेषु युङ्क्ते। युक्ष्वा हि देवहूतमान्॥ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवेत्यग्निमेवैतद्योग आगते युनक्ति। युङ्क्ते युञ्जानेषु य एवं वेद। द्वाभ्यां युनक्ति। अस्थूरीत्याह। यो ह वा अग्निं विमोक आगते न विमुञ्चति न विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा।

तां विश्वे देवा ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु॥

इत्यग्निमेवैतद्विमोक आगते विमुञ्चति। विमुञ्चमानेषु विमुञ्चते य एवं वेद। अथैताः संयानीः। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एषा वै गायत्री ज्योतिष्पक्षा। तयैव स्वर्गं लोकमेति य एवं वेद। यथा नावोदकादुदकमभिसंयात्येवं वा एताभिरग्निचिदमुत्र यथालोकं संयाति। तत्संयानीनां संयानीत्वम्। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। अथैतान्यृतुनामानि। ऋतूनेवावरुंद्धे। सुमेक इति। संवत्सरो वै सुमेकः। संवत्सरमेवावरुंद्धे। अथैता आदित्येष्टकाः। आदित्या वा एतस्य तेज आददते यो ऽग्निं चिक्यानो नेव रोचते। यदेता उपधीयन्ते यथा दीप्यमाने भूयो ऽभ्यादधात्येवमेवास्मिंस्तदभि पूर्वं तेजो दधाति। नास्यादित्यास्तेज आददते। यथासौ देवेष्वेवं मनुष्येषु भवति। अथैता घृतेष्टकाः। तेजो वा अग्निस्तेजो घृतम्। तेजस्येव तेजो दधाति। अथैता वृष्टिसनयः। वृष्टिमेवैताभिरवरुंद्धे। एताभिर्वा अग्निचिदमुत्र यथाकामं वर्षति। तद्वृष्टिसनीनां वृष्टिसनित्वम्। अथैता आत्मा। एतद्ध वा उवाच शङ्खः कौष्यः पुत्रमग्निं चिकित्वांसमचैरयो ऽमित्यचैषं हो३इत्यथ कथा न सर्वात्मागा इति तद्धि नूनं न विदाञ्चकर्मेति। यस्यैता उपधीयन्ते सात्मानमेवाग्निं चिनुते। पुनर्नितुन्ना भवन्ति। प्राण एव प्राणमुपसंदधाति। अथैषा षष्ठी चितिः। यो ऽग्निं चिक्यानो नेव प्रतितिष्ठेत्स एतां षष्ठीं चितिमुपदधीत। षड्वा ऋतवः संवत्सरः। ऋतुष्वेव संवत्सरे प्रतितिष्ठति। एता वै देवताः स्वर्ग्याः। ताभिरेव स्वर्गं लोकमेति। एता वै देवता अभिचरणीयाः। यं द्विष्यात्तं ब्रूयादमु वो जम्भे दधामीति। एताभ्य एवैनं देवताभ्य आवृश्चति ताजक्प्रधन्वति ॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

अग्निना वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तान्पराच आवृतान्पश्चादन्ववेत्य रक्षांस्यजिघांसन्। ते देवा एता वितृण्णीरपश्यन्। ताभी रक्षांस्यपाघ्नत। यद्द्वे पुरस्तादुपदधाति द्वे पश्चाच्चक्षुरेवोभयतो दधाति रक्षसामपहत्यै। स्वयमातृण्णा भवन्ति प्राणानामुत्सृष्ट्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै। चतस्रः। तस्माच्चत्वारि चक्षुषो रूपाणि द्वे शुक्ले द्वे कृष्णे। स्वर्गाय वै लोकायाग्निश्चीयते। यदेकादशिनीं कुर्याद्वज्रेण पुरस्तादवगृह्णीयादस्वर्ग्यः स्यात्। यदनेकादशिनीम-

नवरुद्धा अस्य पशवः स्युः। एकयूप एकादश पशूनालभेत। तेनैव स्वर्ग्यस्तेन पशूनवरुंद्धे॥

न पक्षसंमितां मिनुयात्। यत्पक्षसंमितां मिनुयात्कनीयांसं यज्ञक्रतुमुपेयात्पापीयस्यस्य प्रजात्मनः स्यात्। वेदिसंमितां मिनुयात्। ज्यायांसमेव यज्ञक्रतुमुपैति नास्यात्मनः प्रजा पापीयसी भवति। एतद्ध वा उवाच दिवा जातः शाकायन्यः शङ्खं कौष्यं पक्षसंमितामेकादशिनीममेष्टेति श्रुत्वा कनीयांसं यज्ञक्रतुमुपागात्पापीयस्यस्य प्रजात्मनो भविष्यतीति। ततो वै तं पराभूतं मन्यन्ते। कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः। देवा मा वेदन्निति वा अग्निश्चीयते। य एवं विद्वानेतं चिनुते विदुरेतं देवाः। कस्मै कमग्निश्चीयत इत्याहुः। अन्नमदानि गृहा मे ऽसन्निति वा अग्निश्चीयते। य एवं विद्वानग्निं चिनुते ऽत्यन्नं गृहवान्भवति॥

सहस्रेष्टकं चिन्वीत प्रथमं चिन्वानः। सहस्रसंमितो ह्ययं लोकः। द्वे सहस्रे द्वितीयं चिन्वानः। अन्तरिक्षेण संमितम्। त्रीणि सहस्राणि तृतीयं चिन्वानः। एभिर्लोकैः संमितम्। व्रतं चरेदग्निं [चित्वा। प्रथमं चित्वा न रामामुपेयात्। द्वितीयं चित्वा नान्येषां स्त्रियः। तृतीयं चित्वा न कांचन। रेतो वा एतन्निधत्ते यदग्निं] चिनुते। यदुपेयाद्रेतसा व्यृध्येत। तदाहुर्ये एवामू रेतः सिचाविष्टके ते अग्निचितो रेतो बिभृतः। तस्मादुपेत्यैति। प्रजापतिर्वा उख्यमाग्नमबिभः। स इमाः प्रजा अनुप्राविशत्। सो ऽब्रवीत्स एव मे प्रजानामृध्नवद्यो मेतः संचिनवदिति। अग्निः प्रजापतिः। यदग्निं चिनुते प्रजापतिमेव संचिनोति। ऋध्नोति। तच्चित्यस्य चित्यत्वम्। तं वसुभ्यः प्रायच्छत्। तेन वसवस्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त। ते वसवो रुद्रेभ्यः प्रायच्छन्। तेन रुद्रास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त तं रुद्रा आदित्येभ्यः प्रायच्छन्। तेनादित्यास्त्रीणि च शतानि त्रयस्त्रिंशतं चासृजन्त। उखा सहस्रतमी। य एवं वेदोखां सहस्रतमीं गच्छति साहस्रीं पुष्टिं पशूनाम् ॥१॥

यथारूपमग्निश्चेतव्यः। यो वै यथारूपमग्निं चिनुते नास्यापरूपमात्मञ्जायते। गायत्र्या प्रथमां चितिं संचितामभिमृशेत्त्रि[ष्टुभा द्वितीयां जगत्या तृतीयाम] नुष्टुभा चतुर्थीं पङ्क्त्या पञ्चमीम्। यथारूपमेवाग्निं चिनुते। नास्यापरूपमात्मञ्जायते। प्राणो वै प्रथमा चितिर्व्यानो द्वितीयापानस्तृतीया। प्राणापानैरेवैनं समिंद्धे। इडाया वा एषा विभक्तिः। पशव इडा। पशुभिरेवैनं चिनुते। प्रजापतये प्रोच्याग्निश्चेतव्यः। यो वै प्रजापतये ऽप्रोच्याग्निं चिनुत आर्तिमार्छति। अश्वावभितस्तिष्ठेतां श्याव उत्तराच्छ्वेतो दक्षिणतः। तावालम्भ्यम्। इष्टकामिष्टकामुपदध्यात्। एतद्वै प्रजापते रूपम्। प्राजापत्यो ऽश्वः। प्रजापतय एव प्रोच्याग्निं चिनुते। नार्तिमार्छति॥

हिरण्यपात्रं मधोः पूर्णं ब्रह्मणे ददाति। मधव्यो भवति। शतमानम्। शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः। आयुरेव वीर्यमात्मन्धत्ते। चित्रं देवानामिति चित्रवत्यावेक्षते। चित्रमेव भवति मध्यन्दिने। अश्वमुपघ्रापयति। असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः। प्राजापत्यो ऽश्वः। प्रत्यक्षमेवैनमृध्नोति। यो ऽग्नेराप्तिं वेदाप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते। प्रयास्यन्नग्निं चितमुपतिष्ठेत दीक्षया त्वापं तपसा त्वापं सुत्यया त्वापमवभृथेन त्वापं वशया त्वापमिति। तत्पञ्च संपद्यते। पञ्च वा ऋतवः। आप्नोति तं कामं यस्मै कामायाग्निश्चीयते॥

एकेष्टकेत्याहुर्ब्रह्मवादिनो वागेवैकेष्टकेति ब्राह्मण एवैकेष्टकेतीम एव लोकाः। एतद्ध स्म वा आहुः शर्कराख्यास्तिस्र एव वयमिष्टका अग्निं चित्यं विद्मेमानेव लोकानिति। ससत्यो ऽग्निश्चेतव्यः। भूरिति प्रथमां वितृण्णीमुपदध्याद्भुव इति द्वितीयां स्वरिति तृतीयाम्। एतद्वै वाचः सत्यम्। ससत्यमेवाग्निं चिनुते। ब्रह्मवादिनो वदन्ति ससत्यमग्निमचेष्टापसत्यमिति। स ह त्वा अग्निं ससत्यं चिनुते य एवं चिनुते। कस्यै देवतायै अग्निश्चीयत इत्याहुर्ब्रह्मवादिनः। प्रजापतय एव। तस्य किं हविरिति। आत्मैव ॥२॥

आपो वा इदमासन्सलिलमेव। स प्रजापतिः पुष्करपर्णे वातो भूतो ऽलेलीयत। स प्रतिष्ठां नाविन्दत। स एतमपां कुलायमपश्यत्। तमाहरत्। तमुपाधत्त। सेयमभवत्। ततः प्रत्यतिष्ठत्। इयं वावाग्निः। त [स्माद्यद] स्यां खनन्त्यभीष्टकां तृन्दन्त्यभि शर्कराम्। यां पुरस्तादुपादधात्तच्छिरो ऽभवत्। सा प्राची दिक्। यां दक्षिणत उपादधात्स दक्षिणः पक्षो ऽभवत्। सा दक्षिणा दिक्। यां पश्चादुपादधात्तत्पुच्छमभवत्। सा प्रतीची दिक्। यामुत्तरादुपादधात्स

उत्तरः पक्षो ऽभवत्। सोदीची दिक्। यां मध्य उपादधात्तत्पृष्ठमभवत्। सोर्ध्वा दिक्। इयं वावाग्निः पञ्चेष्टकः। य एवं वेद प्रजायते गच्छति प्रतिष्ठाम्। आग्नेयो वै ब्राह्मणः। तस्माद् ब्राह्मणाय सर्वासु दिक्ष्वर्धुकम्। स्वां ह्येव दिशमन्वेति। सर्वा ह वा इयं वयोभ्यो नक्तं दृशे दीप्यते। तस्मादिमां वयांसि नक्तं नाध्यासते। अपां वा एष कुलायः। तस्मादेतमापः प्रहारुकाः। अपां ह्येष कुलायः ॥३॥

यदि मन्येत पूर्वो माऽतिक्रान्तो भ्रातृव्य इत्यष्टावुपदध्याल्लोकंपृणया पुरस्ताद्बहिष्पवमानस्यैकादश पुरस्तान्माध्यन्दिनस्य पवमानस्य द्वादश पुरस्तादार्भवस्य पवमानस्य। अयं वाव यः पवते स पवमानः। वायुरग्रेस्तेजः। य एवैनं पूर्वो ऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेजसा प्रणुदते। यदि मन्येत पश्चादिव भ्रातृव्य इति पश्चादुपदध्यात्स पवमानानाम्। अयं वाव यः पवते स पवमानः। वायुरग्नेस्तेजः। य एवैनं पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेजसानुदते [प्र श्रेयांसं] भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते। स एष सवनचित्। प्रजापतिर्वा उख्यमग्निमबिभः। तस्य शिरः प्रावर्तत। तेन देवा अश्राम्यन्। तस्यैतच्छिरः प्रत्यदधुर्यदुखा। तत्संवत्सरमरोहत्। अग्निः प्रजापतिः। यत्संवत्सरमुख्यं बिभर्ति प्रजापतेरेव शिरः प्रतिदधाति। तस्मात्संवत्सरमुख्यो भर्तव्यः। यदर्वाक्संवत्सरादर्धादिव सः॥

येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन्येनादित्या वसवो येन रुद्राः।

येनाङ्गिरसो महिमानमानशुस्तेनैतु यजमानः स्वस्ति॥

इति घृतेनाक्त्वा समिधमादधाति। समिद्धिरेवैषा। अथो यजमानस्यैवैतत्स्वस्त्ययनं क्रियते॥

ये अग्नयः पुरीषिण आविष्टाः पृथिवीमनु।

तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥

इति स्वमग्निं चितमुपतिष्ठेत। सर्वमायुरेति। उप त्वाग्ने दिवेदिव इत्येतेन त्र्यृचेनान्येषाम्। आशीरेव सा ॥४॥

यर्हि धिष्ण्या उपधीयन्ते [तर्हि] बार्हस्पत्याभि [स्तिसृभि] स्तिस्रो दक्षिणत उपदध्यात्। अथ याम्याभिस्तिसृभिस्तिस्रो ऽथ रौद्रीभिस्तिसृभिस्तिस्रो ऽथ वारुणीभिस्तिसृभिस्तिस्रः। दक्षिणतो वै देवानां रक्षांसि यज्ञमभिजिघांसन्। तानि बार्हस्पत्याभिरघ्नत यद्बार्हस्पत्या दक्षिणत उपधीयन्ते रक्षसामपहत्यै। अथ याम्यः। एताभिर्वा असिताय दैवलायेमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च प्राभुः। यस्यैता उपधीयन्ते समस्मा इमे लोका अर्वाञ्चश्च पराञ्चश्च भान्ति। अथ रौद्रीः। अग्निर्वै रुद्रः। ईश्वरो वा एष एतमतोऽनूत्थाय हन्तोः। यद्रौद्री रुद्रमेव निरवदयते। अथ वारुणीः। आपो वै वरुणः। ईश्वरो वा एतमवभृथादनूदेत्य वरुण उद्ग्रहीतोः। यद्वारुणीर्वरुणमेव निरवदयते॥

यदुख्ये ध्रियमाणे ऽथ देवः प्रजा अभिमन्येत या आग्नेयीर्गायत्रीभिर्यवतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्र आदध्यात्। एष वा एतत्प्रजा अभिमन्यते। यद्भिषग्वतीभिरादधाति भेषजमेव करोति। यदुख्ये ध्रियमाणे कामयेत वर्षेदिति याः सौरी रश्मिवतीस्ताभिस्तिसृभिस्तिस्रः समिध आदध्यात्। असौ वा आदित्यस्तर्हि प्रजाः शुचार्पयति य [र्हि पर्जन्यो न वर्षति ...... ॥५॥]

...[न वहन्तीभि] स्नायात्। यद्वहन्तीभिः स्नायात्तत्र यज्ञ ऋच्छेत्। न कूप्याभिः स्नायात्। यत्कूप्याभिः स्नायाद्विशं यज्ञ ऋच्छेत्। स्थावराभिः केवम्। एता वा अपां दीक्षिताः पशुवतीर्यः स्थावराः। [लोमशाः संतताः।] लोमशाः पशवः। यजमानमेव पशुमर्पयति ॥६॥

हविर्वै दीक्षितः। न हविरनभिघृतं मेध्यमश्नुते। यदभ्यनक्त्यभ्येवैनं घारयति मेध्यत्वाय। घृतं देवानां निष्पक्वं मनुष्याणामायुतं गन्धर्वाणां स्वयं विलीनमादित्यानाम्। नैतद्देवत्रा न मनुष्यत्रा यन्नवनीतम्। नैव देवत्रा न मनुष्यत्रा यो दीक्षितः प्रच्युतोऽस्माल्लोकात्। यन्नवनीतेनाभ्यङ्क्ते समृद्ध्यै॥

वासः परिधत्ते। अग्नेस्तूषः पितॄणां नीविरोषधीनां प्रघातो वायोर्वातपा विश्वेषां देवानामोतवश्च तन्तवश्च नक्षत्राणामतीकाः। सर्वदेवत्यं वासः। सर्वदेवत्यो दीक्षितः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति॥

आङ्क्ते। इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं रक्षांस्यसचन्त। तान्यञ्जनेनगिरिणान्तरधत्त। रक्षांस्येतं सचन्ते यो दीक्षते। भवति हि

यदाङ्क्ते। रक्षसामन्तर्हित्यै। इन्द्रो वै वृत्रमहन्। तस्य चक्षुः परापतत्। तत्त्रिककुभं प्राविशत्। यदाङ्क्ते तस्यैव चक्षुषो ऽवरुद्ध्यै। द्विर्दक्षिणमाङ्क्ते सकृत्सव्यम्। त्रिवृद्यज्ञः। मुखत एव यज्ञमालभते। त्रिर्दक्षिणमाङ्क्ते द्विः सव्यम्। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुंद्धे। दक्षिणं पूर्वमाङ्क्ते। सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। यजुषाङ्क्ते। अयजुषा हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। पराचीनमानक्ति न निधावति। आचपराचं हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। इषीकयाङ्क्ते। शलल्या हि मनुष्या आञ्जते। व्यावृत्त्यै। सतूला भवति। मैत्री वै सतूला वारुणी परिशीर्णा। मैत्रो दीक्षितः। समृद्ध्यै। ऊनमिव वा एतच्छिद्रमिव यच्चक्षुः। यदाङ्क्ते तदेवापूरयति। अच्छिद्रत्वाय ॥

पावयति। इन्द्रो वै वृत्रमहन्। तमप्स्वेवाध्यहन्। तासां या यज्ञिया मेध्या आसंस्ता उदक्रामन्। ता ओषधयो ऽभवन्। यत्तेजस्ते दर्भाः। तस्मात्ते पवित्रम्। तस्माद्दर्भैरपः पुनन्ति। यद्दर्भपिञ्जूलैः पावयत्यपामेवैनं तेजसा पावयति। द्वाभ्यां पावयति। द्वे सत्यं चानृतं च। सत्येनैवास्यानृतं पावयति। द्वौ प्राणश्चापानश्च। त्रिभिः पावयति। [त्रयो हि] प्राणाः प्राणो व्यानो ऽपानः। तानेव यजमाने दधाति। पञ्चभिः पावयति। पाङ्क्तः पुरुषः। यावानेवास्यात्मा तं पावयति। [सप्तभिः पावयति। सप्त वै छन्दांसि। छन्दोभिरेवैनं पावयति। नवभिः पावयति।] नव हि प्राणाः। प्राणैरेवैनं पावयति। एकविंशत्या पावयति। एकविंशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः। यावानेवास्यात्मा तं पावयति। चित्पतिस्त्वा पुनात्विति। ब्रह्म वै चित्पतिः। ब्रह्मणैवैनं पावयति। वाक्पतिस्त्वा पुनात्विति। स हि पावयिता। देवस्त्वा सविता पुनात्विति। सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिः पावयति। अच्छिद्रेण पवित्रेणेति। अच्छं वषट्कारमेवैतत्पुनीते। सूर्यस्य रश्मिभिरित्यादित्यस्यैवैनं तन्वा पावयति। तस्य ते पवित्रपते पवित्रेणेति। यज्ञो वै पवित्रपतिः। यज्ञायैवैतत्पुनीते। यस्मै कं पुने तच्छकेयमिति। यज्ञं शकेयमित्येवैतदाह। अन्वञ्चं पावयति। अन्वङ्ङ्वै पुरुषं प्राणः। यदा वै प्राणस्तिर्यङ् भवत्यथ प्रमीयते। यत्तिर्यञ्चमस्य प्राणं कुर्यात्प्रमीयेत। अन्वात्ममेवास्य प्राणं करोति। बहिष्पावयति। मनुष्यलोक एवैनं पावयित्वा पूतं देवलोकं प्रणयति ॥७॥

गर्भो दीक्षितो योनिर्दीक्षितविमितमुल्बं दीक्षितवसनं जरायु कृष्णाजिनम्। एतस्माद्वै योनेरिन्द्रो ऽजायत। कुलायमेवैतदासीवनं कृत्वोपचरति। तस्माद्दीक्षितम्। नान्यत्र दीक्षितविमितात्सूर्यो ऽभिनिम्रोचेन्नान्यत्राभ्युदियात्। स्वादेव योनेः प्रजायते। आकूत्यै प्रयुजे ऽग्नये स्वाहेति। आकूय वै यज्ञः प्रयुज्यते। यत्रैव यज्ञमाकुवते तदेनमालभते। मेधायै मनसे ऽग्नये स्वाहेति। मेधया वै मनसाभिगच्छति यजतां स्य इति। यज्ञमेवावरुंद्धे। दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहेति। दीक्षया वै तपसा यज्ञं प्राप्नोति। यज्ञमेवावरुंद्धे। सरस्वत्यै पूष्णे ऽग्नये स्वाहेति। वाग्वै सरस्वती पशवः पूषा। वाचा पशुभ्यो ऽधियज्ञमालभते। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुव इति। आपो वै यज्ञः। दिवि यज्ञो ऽन्तरिक्षे पृथिव्याम्। ब्रह्म बृहस्पतिः। अत्रात्र वै यज्ञः। यत्र यत्रैव यज्ञस्तत एनं ब्रह्मणालभते। पञ्चैतानि जुहोति। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुंद्धे। यज्ञस्य वा एते संभारा यदेतानि यजूंषि। यदेतानि न जुहुयादसंभृतोऽस्य यज्ञः स्यात्। यदेतानि जुहोति यावानेव यज्ञस्तं संभरति। अदीक्षितो वा एकयाहुत्या। अदन्ति ह स्म वा एतस्य पुरान्नं यस्यैतानि न हूयन्ते। यदेतानि [जुहोति] दीक्षितत्वायैव द्वितीयत्वायैव। अग्नये स्वाहाग्नये स्वाहेति जुहोति। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवता अवरुंद्धे। पञ्चैतानि जुहोति। औद्ग्रहणं षष्ठम्। षडृतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। यज्ञः सृष्टः प्र यजुरव्लिनात्र साम। तमृगेवायच्छत्रव सामानि द्वादश यजूंषि। तस्मात्रवभिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्ति। ऋचौद्ग्रहणं जुह्वति। यदृचौद्ग्रहणं जुहोति यज्ञमेव सृष्टं प्रत्युद्यच्छति। द्वादशभिर्हस्म वै पुरा कारुद्वेपिण औद्ग्रहणं जुह्वति। एतदेव द्वादशगृहीतं कृत्वा जुहुयात्। तेनैव तदाप्नोति। पूर्णया स्रुचा जुहोति। पूर्णः प्रजापतिः। प्रजापतिमेवाप्नोति। यदूनया जुहुयाद् भ्रातृव्याय लोकं कुर्यात्। कामार्तं वै पूर्णम्। यं हि कामं कामयते तं पूर्णस्य कुरुते। यमेव कामं कामयते तमवरुंद्धे॥

स्वे छन्दसि यज्ञः प्रतिष्ठाप्यः। अनुष्टुब्वै प्रजापतेः स्वं छन्दः। यज्ञः प्रजापतिः। यदनुष्टुभौद्ग्रहणं जुहोति स्व एव च्छन्दसि यज्ञं प्रतिष्ठापयते। छन्दःप्रतिष्ठानो वै यज्ञः। स यथाछन्दसं छन्दःसु प्रतिष्ठाप्यः। सैषानुष्टुप्। तस्याः सप्ताक्षरमेकं पदमष्टाक्षराणि त्रीणि। तेषां सप्तानां यानि त्रीणि तान्यष्टावुपयन्ति। तान्येकादश। सा त्रिष्टुप्। यानि

चत्वारि तान्यष्टा वुपयन्ति। तानि द्वादश। सा जगती। यान्यष्टौ सा गायत्री। अविभक्तानुष्टुप्। स्वाहाकारेण पङ्क्तिः। एतावन्ति वै छन्दांसि। यज्ञमेव यथाछन्दसं छन्दःसु प्रतिष्ठापयते॥

यज्ञः सृष्टो देवताभिरालभ्यः। विश्वो देवस्य नेतुरिति यन्नेतृमती तेन सावित्री। मर्त इति पितृदेवत्या। विश्व इति वैश्वदेवी। द्युम्नमिति बार्हस्पत्या। पुष्यत्विति पौष्णी। सारस्वतः स्वाहाकारः। एतावतीर्वै देवताः। यज्ञमेवैतत्सृष्टं देवताभिरालभते। यज्ञश्च सृष्टो हुतस्त्रेधा प्रावि [शदृचं तृतीयेन साम तृतीयेन यजुस्तृतीयेन। .... ॥८॥]

.... [यद्येकं स्यात्पा] दं प्रतिपीव्येत्। अनन्तर्हितो यजमानो यज्ञाच्च देवताभ्यश्च भवत्यनन्तर्हितो यज्ञो देवताभ्यः। विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येति। विष्णुर्वै यज्ञः। वैष्णवो यजमानः। विष्णुनैव यज्ञेनात्मानमुभयतः सयुजं कुरुते। यज्ञो यदसृज्यत तस्योल्बमन्ववेष्टत। तद्दीक्षितवसनमभवत्। गर्भो दीक्षितः। यद्दीक्षितवसनं परिधत्ते स्वेनैव योनिनात्मानमोर्णुते। तस्मान्महत्कार्यम्। एवमिव ह्युल्बेन गर्भ आवृत इव च्छत्र इव। न प्रत्यक्षं वदेद्वाचो ऽयातयामत्वाय ॥९॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायां पञ्चत्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

अङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते मेखलाः संन्यकिरन्। ततः शर उदतिष्ठत्। यच्छरमयी मेखला भवति तामेव मेखलामालभते। देवा वै यत्रोर्जं व्यभजन्त ततः शर उदतिष्ठत्। यच्छरमयी मेखला भवति तामेवोर्जमालभते। ऊर्ग्वै मेखला। मध्यं प्रति परिव्ययति। ऊर्जमेव मध्यतो दधाति यजमानेषु च प्रजासु च। तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयति। नाभिं प्रति परिव्ययति। ऊर्ध्वं वै पुरुषस्य नाभ्या मेध्यमवाचीनममेध्यम्। मध्यस्य चामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै। त्रिवृद्भवति। त्रिवृता वै स्तोमेन प्रजापतिः प्रजा असृजत। त्रिवृद्वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। तस्य यत्प्राशीर्यत स शरोऽभवत्। तच्छरस्य शरत्वम्। वज्रो वै शरः। यच्छरमयी मेखला भवति वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। यं द्विष्यात्तं परिव्ययन्ध्यायेत्। वज्रेणैवैनं समर्पयति। मेखला पुंसो भवति योक्त्रं स्त्रियाः। स्त्री वै मेखला पुमान्योक्त्रम्। मिथुनमेव यज्ञमुखे विपर्यूहति प्रजननाय। वज्रो वै मेखला। क्षुदुदरं पाप्मा भ्रातृव्यः। यन्मेखलां परिव्ययते वज्रेणैव पाप्मानं भ्रातृव्यमहपते॥

यज्ञो वै देवेष्वासीद्दक्षिणा पितृषु। स यज्ञो दक्षिणामभ्यकामयत। तं पितरोऽब्रुवन्देवेषु णो भागधेयमिच्छेति। ते ऽब्रुवंस्तृतीयसवनभागा असन्निति। तस्मात्पितृभ्यस्तृतीयसवनं क्रियते। तमह्वयत्। तां हूतोऽधावत्। तस्मात्पुमांस्त्रीहूतो धावति। तस्माच्छ्रोत्रिय स्त्रीकामतमः। स हि यज्ञस्य नेदिष्ठी। तां समभवत्। तदिन्द्रो ऽचायत्। सो ऽमन्यत यो वा इतो जनिष्यते स एवेदं भविष्यतीति। तं योनिं प्राविशत्। तस्मादजायत। स पुनः प्रत्यवैक्षत। सो ऽमन्यत यो वा इतोऽपरो जनिष्यते स मे भ्रातृव्यो भविष्यतीति। तमववृज्य प्राच्छिनत्। सा विषाणाभवत्। यद्विषाणा भवति यज्ञस्यैव रेत इन्द्रस्य योनि दक्षिणाया योनिमालभते। पञ्चावृद्भवति। पञ्चभिर्हि स तां निवेष्टयाच्छिनत्। इन्द्रस्य योनिरसीति। इन्द्रस्य ह्येषा योनिः। कृष्यै त्वा सुसस्याया इति। तस्मात्कृष्टं पच्यते। उत्कृधीति। तस्मादूर्ध्वा ओषधय उत्पच्यन्ते। यजुषा कण्डूयते। अयजुषा हि मनुष्याः कण्डूयन्ते। व्यावृत्त्यै। यदयजुषा कण्डूयेत वरुणवत्कण्डूयेत। अपि गर्भाः पामना जायेरन्॥

वाग्वै देवान्मनुष्यान्प्रविशन्त्यैत्। तस्या यदत्यरिच्यत तद्वनस्पतीन्प्राविशत्। सैषा वनस्पतिषु वाग्वदति या दुन्दुभौ या नाड्यां या तूणवे। यद्दण्डो वाच एवातिरिक्तमवरुंद्धे। तं मैत्रावरुणाय प्रयच्छति। वाचमेवास्मै तत्प्रयच्छति। तां शश्वदृत्विग्भ्यो विभजति। तस्मादस्य वाङ् नोपदस्यति। आस्यदघ्नः कार्यः। तावती हीयं वाग्वदति। अथो एतावती वाचा वीर्यं क्रियते। यो वृक्षः फलग्रहिस्तस्य कुर्यात्फलग्रहिरसानीति ॥१॥

स्वाहा यज्ञं मनस इति। मनसा वै यज्ञ आलभ्यते। वातयोनिर्यज्ञः। दिवि यज्ञो ऽन्तरिक्षे पृथिव्याम्। अत्रात्र वै यज्ञः। यत्रयत्रैव यज्ञस्तत एनं मनसालभते। तं यत्वास्ते। यज्ञमेव तद्यत्वास्ते। यदि विसृजेद्यज्ञं विसृजेत्। यद्विसृजेत्पुनर्दीक्षयेत्। यत्पुनर्दीक्षयेदाहुतीरतिरेचयेत्। गायत्रीं वैष्णवीमनुब्रूयात्। वाग्वै गायत्री यज्ञो विष्णुः। वाचैव

यज्ञं संतनोति। बार्हस्पत्यामुत्तरामनुब्रूयात्। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणा यज्ञस्यार्तं निष्क्रियते। ब्रह्मणैव यज्ञस्यार्तं निष्करोति। त्वमग्ने व्रतपा असीत्यग्नये व्रतपतये ऽनुब्रूयात्। व्रतपतिं वा एतस्य व्रतं गच्छति यो दीक्षितः सन्न व्रतं चरति। अग्निर्देवानां व्रतपतिः। व्रतपतेरेवाधि व्रतमालभते। अदीक्षिष्टायमसावामुष्यायण इति त्रिरुपांश्वाह त्रिरुच्चैः। देवेभ्यश्चैव मनुष्येभ्यश्च यज्ञं प्राह। नक्षत्रं दृष्ट्वा वाचं विसृजते। दि [वा वै मनुष्या यज्ञेन चरन्ति नक्तं देवाः। ..... ॥२॥]

..... [देवता] भिश्चैव यज्ञेन च सह तरति। आ पारादगन्तोर्लोष्टं विमृणन्नासीत। तेनास्या नैतो। सक्षेहि ॥ अयं ते योनिर्ऋत्विय इति यथायजुः। एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या इति देवयजनमध्यवस्यति। [ऋक्सामाभ्यां संचरन्तो यजुर्भिरिति] ऋक्सामाभ्यां चैव देवताभिश्च देवयजनमनुसंचरति ॥३॥

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। अग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ चातुर्मास्यान्येष वाव तर्हि यज्ञ आसीत्। ते देवा एतं सौम्यमध्वरमपश्यन्। तमाहरन्। ते ऽदीक्षयन्। ते ऽग्निहोत्रमेव व्रतमकुर्वत। अग्निहोत्रं वाव व्रतम्। तस्माद्यामग्निहोत्रस्य स्कन्नस्य प्रायश्चित्तिः सा व्रतस्य स्कन्नस्य प्रायश्चित्तिः। तस्माद् द्विव्रतो दीक्षितः स्यात्। द्विर्ह्यग्निहोत्रं जुह्वति। तेषां यत्पौर्णमासमासीत्तमग्नीषोमीयं पशुमकुर्वत यः पूर्वेद्युरालभ्यते। यद्दार्शं तमाग्नेयं यो ऽनुसवनमालभ्यते। वैश्वदेवमेव प्रातःसवनमकुर्वत वरुणप्रघासान्माध्यन्दिनं सवनं साकमेधांस्तृतीयसवनम्। तृतीयसवने पितृयज्ञमवाकल्पयंस्तृतीयसवने त्र्यम्बकान्। ते ऽसुरा अपक्रामन्तो अब्रुवन्न वा इमे ध्वर्तवा अभवन्निति। तदध्वरस्याध्वरत्वम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वान्दीक्षते यमेवं विद्वान्दीक्षयति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति ॥४॥

स्वर्गं वा एतेन लोकं प्रयन्ति यत्प्रायणीयम्। तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम्। छिद्यते वा एषो ऽस्माल्लोकाद्यो ऽमुं लोकं गच्छति। यदादित्यमुदयनीयं भवत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति। देवा वा असुरान्हत्वा वैरदेयादीपमाणास्ते दिशो ऽमोहयन्नेत्र इद [मन्यो ऽनु प्रजानादिति। तदाहुः साध्या वै नाम देवा आसन्पूर्वे देवेभ्यः। ते दिशो मोहयित्वा स्वर्गं लोकमायन्नेत्र इ] मं लोकमन्यो ऽनु प्रजानादिति। ता इमे ऽवरे देवा अनु प्राजिज्ञासन्त। ता न प्राजानन्। सादितिरब्रवीद्वार्यं वृणै मत्प्रायण एव यज्ञोऽसन्मदुदयन इति। तस्मादादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। वार्यवृतं ह्यस्याः। पथ्यां स्वस्तिं यजतेत्यब्रवीत्तया प्राचीं दिशं प्रज्ञास्यथेति। अग्निं यजतेत्यब्रवीत्तेन दक्षिणाम्। सोमं यजतेत्यब्रवीत्तेन प्रतीचीम्। सवितारं यजतेत्यब्रवीत्तेनोदीचीम्। अहमेवेमावित्यब्रवीत्। ..... [॥५॥]

..... [वा] चैव प्रयन्ति वाचोद्यन्ति। आदित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। अस्मिंश्चैव लोके ऽमुष्मिंश्च यज्ञमुखेन प्रतितिष्ठति। दिशो वै स्वर्गो लोकः। एतद्देवत्या दिशः। यत्प्रायणीयेन यजते दिश एव स्वर्गं लोकमभ्यातिष्ठति। यथा वै तेजन्यूयत एवं यज्ञ ऊयते। यदादित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयं वर्सावेवैतावन्ततो नह्यति द्रढिम्ने ऽप्रस्त्रंसाय। याः प्रायणीयस्यानुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्या या याज्यास्ता अनुवाक्याः। येनैव प्रयन्ति तेनोद्यन्ति प्रतिपदत्वाय प्रतिप्रज्ञात्यै। व्यतिषजेद्याज्यानुवाक्या यं द्विष्यात्तस्य। प्रैनमस्माल्लोकाच्च्यावयति नामुं प्राप्नोति। यथा पथ उदेत्येवं तत्। उभयत एवैनं छिनत्ति। अननुयाजं प्रायणीयं स्यादप्रयाजमुदयनीयम्। समानं वा एतद्धविः संतत्यै। आत्मा वै प्रयाजाः प्रजानुयाजाः। यदेवं कुर्यादात्मानं च प्रजां चान्तरियादप्रजाः प्रमीयेत। प्रयाजवती एवानुयाजवती स्याताम्। समानं वा एतद्धविः समानी देवता समानं मेक्षणम्। तेनैव यज्ञं संतनोति। नात्मानं न प्रजामन्तरेति।

संस्थाप्यन्न संस्थाप्यमिति मीमांसन्ते। स्रवति वै यज्ञो ऽसंस्थितः। तं स्रवन्तं यजमानो ऽनु परास्रवति प्रजया च पशुभिश्च। संस्थाप्यमेव। पत्नीं तु न संयाजयेत्। अमेध्या वा एषापूता नेश्वरा स्वर्गं लोकं गन्तोः। तामुदयनीये संयाजयति। यथा प्रवासी स्वमायतनमागच्छत्येवमेवैतत्पत्नीं यजमानो ऽस्मिंल्लोकेऽधि प्रतितिष्ठति। दीक्षितान्नं हि वा ईजाना अदन्त्यथ न वसीयांसो भवन्ति। दीक्षितो वै तर्हि यर्हि प्रायणीयेन यजते। दीक्षित एतर्हि यर्ह्यवभृथादुदेति।

प्रायणीयस्य निष्काष उदयनीयमभिनिर्वपति। उदयनीयस्यैव नाश्नीयात्। दीक्षितान्नमेव परिवृणक्ति। वसीयान्भवति ॥६॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां षट्त्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

कद्रूश्च वै सुपर्णी चात्मरूपयोरस्पर्धेताम्। सा कद्रूः सुपर्णीमात्मरूपमजयत्। इयं वै कद्रूर्द्यौः सुपर्णी। छन्दांसि सौपर्णानि। सा कद्रूः सुपर्णीमब्रवीत्तृतीयस्यामितो दिवि सोमस्तमाहर तेनात्मानं निष्क्रीणीष्वेति। सा सुपर्णी छन्दांस्यब्रवीदेतस्मै वै पितरौ पुत्रान्बिभृत ईदृशान्मा स्पृणवानितो मा निष्क्रीणीतेति। सा जगत्युदपतच्चतुर्दशाक्षरा सती। साप्राप्य न्यवर्तत। तस्या द्वे अक्षरे अहीयेताम्। सा पशूंश्च दीक्षां चादायापतत्। तस्मात्पशुमन्तं दीक्षोपनमति। तस्मादाहुर्जगती छन्दसां पशव्यतमेति। सा त्रिष्टुबुदपतत्त्रयोदशाक्षरा सती। साप्राप्य न्यवर्तत। तस्या द्वे अक्षरे अहीयेताम्। सा दक्षिणां च तपश्चादायापतत्। तस्मात्तित्रिष्टुभो लोके दक्षिणा नीयन्ते। एतद्वाव तपो यत्स्वं ददाति। तस्मादाहुर्माध्यन्दिनं सवनानां तपस्वितममिति। सा गायत्र्युदपतच्चतुरक्षरा सती। साजया कर्णगृह्योदपतत्। तमस्या अजाभ्यारुणत्। तदजाया अजात्वम्। सा तानि च चत्वार्यक्षराणि सोमं चादायापतत्। साष्टाक्षराभवत्। ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद्गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयाय कस्मात्तेजस्वितमेति। यदेवादः सोममाहरत्तस्माद्गायत्री यज्ञमुखं तस्मात्तेजस्वितमा। सा पद्भ्यां द्वे सवने आहरन्मुखेन तृतीयम्। यन्मुखेनाहरत्तदधयत्। तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती धीतमिव तृतीयं सवनम्। तस्मादृजीषं तृतीयसवने ऽभिषुण्वन्ति। यत्तृतीयसवन आशिरमवनयन्ति तृतीयसवनमेव तत्संभरन्तो मन्यन्ते ॥१॥

या श्येताक्षी कृष्णवाला कृष्णशफा न तया क्रीणीयात्। हतं वा अस्या एतत्परिपिष्टम्। पितृदेवत्या सा। प्रमायुकः स्यात्। या द्विरूपा न तया क्रीणीयात्। वार्त्रघ्नी सा। जिनाति वा जीयते वा। उत तया राजन्यस्य क्रीणीयात्। न हि तस्यान्तरास्ति। जिनाति वा हि स जीयते वा। याधीलोधकर्णी तया षोडशिनं क्रीणीयात्। अतिरिक्तं वा एतद्रूपाणामतिरिक्तः षोडशी। अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति। या बभ्रुरेकहायनी तया क्रीणीयात्। वाग्वै सोमक्रयणी पुरुषा वाक्। यदेकहायन्या क्रीणाति तस्मादेकहायनः पुरुषो वाचं वदति। यज्ज्यायस्या क्रीणाति तस्माज्ज्यायान्वदति॥

छन्दांसि वा अमुष्माल्लोकात्सोममाहरन्गायत्री श्येनो भूत्वा। तं गन्धर्वा अन्तरा पर्यमुष्णन्विश्वावसुः। स तिस्रो रात्रीरुपहृतो ऽवसत्। तस्मात्तिस्रो रात्रीः सोमः क्रीतो वसति। तं देवाः पुनरयाचन्त। तमेभ्यो न पुनरददुः। ते ऽब्रुवन्गवा निष्क्रीणामेति। ते ऽमन्यन्त यज्ञेन विक्रेष्यामहे यद्गवा निष्क्रेष्यामहा इति। ते ऽब्रुवन्स्त्रीकामा वै गन्धर्वा वाचं स्त्रियं कृत्वा मायामुपावसृजामेति। ते ऽमन्यन्त प्रजया व्यक्रेष्महि ये वाचा कृत्वा मायामुपावासृजन्। ते वाचं स्त्रियं कृत्वा मायामुपावासृजन्। ते गन्धर्वा अब्रुवन्विह्वयामहा इति। ते ब्रह्म गन्धर्वा व्यक्रेष्महीति। ते ऽन्वार्तीयन्तास्माकं सोमो ऽस्माकं सोमक्रयणीति। ते गन्धर्वा अब्रुवन्विह्वयामहा इति। ते ब्रह्म गन्धर्वा अवदन्नगायन्देवाः। सा देवान्गायत उपावर्तत। तस्माद्गायन्तं स्त्री कामयते न ब्रह्म वदन्तम्। अदुह्यद्धि सा ब्रह्मणे। तस्मादाहुरक्रीतः सोमो न सोमक्रयण्यस्ति। देवान्हि सा पुनरुपावर्ततेति। ते ऽब्रुवन्स्त्रीकामा वै गन्धर्वा बहु वै गन्धर्वेषु मिथुनीभवन्ती संभवन्त्यचारीरपः प्रविश्योदेहीति। तस्या यद्धतं परिपिष्टमासीत्तज्जरती कृष्टा भूत्वोदैत्। ते ऽब्रुवन्पितृदेवत्या वा इयमिति। तस्मात्तां पितृभ्यो घ्नन्ति। ते ऽब्रुवन्पुनः प्रविश्योदेहीति। सा पष्ठौही वार्त्रघ्नी द्विरूपा भूत्वोदैत्। सा तेन रूपेणापास्पृणुत। तस्मात्सा वरोऽतिवरेण्यः। य एवं विद्वान्वरं वृणीते नैनं वरो हिनस्ति। ते ऽब्रुवन्पुनः प्रविश्योदेहीति। सा बभ्रुरेकहायनी भूत्वोदैत्। तयाक्रीणन्। तस्मात्सा सोमक्रयणी। तदस्या रूपम् ॥२॥

सोमक्रयण्या तृतीयसवनमवरुद्धम्। पशवो वै तृतीयसवनम्। यद्गवा क्रीणाति तेनैव तृतीयं सवनमवरुंद्धे। सोम रोहिते चर्मन्मिमीते। तस्माद्रोहितरूपं पशवो भूयिष्ठाः। न विचेतवा अनुमन्येत न विचीयमानस्योपद्रष्टा स्यात्। सोम ओषधीनामधिराजः। ग्रसितमस्य निष्खिदति क्षोधुको भवति। तस्मात्सोमविक्रयी क्षोधुकः। अपामन्ते क्रीणाति सरसमेवैनं क्रीणाति। हिरण्येन क्रीणाति सतेजसमेवैनं क्रीणाति। अजया क्रीणाति सतपसमेवैनं क्रीणाति। धेन्वा क्रीणाति साशिरमेवैनं क्रीणाति। अनडुहा क्रीणाति वह्नेव यज्ञस्यावरुंद्धे। वत्सतरेण च वत्सतर्या च क्रीणाति

मिथुनमेवावरुन्द्धे। ऋषभेण क्रीणाति सेन्द्रमेवैनं क्रीणाति। तदाहुः प्रजापतिना वा एष विक्रीणीते य ऋषभेण विक्रीणीत इति। य एव धूर्षाट् तेन क्रीणीयात्। तेनैव तं क्रीणीयान्न प्रजापतिना विक्रीणीते। दशभिः क्रीणाति। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति ॥३॥

जूरसीति वाग्वै सोमक्रयणी। जवते हि वाचेत्थं चेत्थं च। पश्यन्सोमक्रयणीं जुहोति। वाग्वै सोमक्रयणी। पश्यन्नेवैनां यच्छति। धृता मनसेति। मनसा हि वाग्धृता। [जुष्टा विष्णव इति। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञायैवैनां जुष्टां करोति। तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यंत्रमशीय स्वाहेति। यो वा एतस्यास्तन्वो यंत्रमश्नुते भवति सः। सवितृप्रसूत एवास्यास्तन्वो यन्त्रमश्नुते। स्वाहाकारेणैवैनां यच्छति। अमुष्मा आदित्याय प्रोच्य सोमः क्रेतव्यो देव सूर्य सोमं क्रेष्याम इति। अमुष्मा एवादित्याय प्रोच्य सोमं क्रीणाति। चिदसीति। वाग्वै सोमक्रयणी। शास्त्येवैनाम्। तस्माच्छिष्टाः प्रजा जायन्ते। मनांसीति। मनसा हि वाग्धृता।] धीरसीति। ध्यायते हि वाचेत्थं चेत्थं च। दक्षिणासीति। दक्षिणा ह्येषा। यज्ञियासीति। यज्ञिया ह्येषा। क्षत्रियासीति। क्षत्रिया ह्येषा। अथो यं ह्येषा जुषते स क्षत्रियो भवति। अदितिरस्युभयतः शीर्ष्णीति। अदितिर्ह्येषोभयतः शीर्ष्णी। उभयतो ह्येषा यज्ञं परिभूः। आदित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्। सा मा सुप्राची सुप्रतीची भवेति सुप्राचीमेवैनां सुप्रतीचीं कुरुते। मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति। यत्पदि बद्धा स्यात्पितृदेवत्या स्यात्। वाग्वै सोमक्रयणी। वरुण्यः पाशः। वाग्वरुणगृहीता न वदेत्। यत्कर्णगृहीता स्यात्पितृदेवत्या स्याद्वार्त्रघ्नी स्यात्। यदनालब्धायता। मित्रस्त्वा पदि बध्नात्विति। ब्रह्म वै मित्रः। ब्रह्मणैवैनां पदि बध्नाति। पूषाध्वनस्पात्विति। इयं वै पूषा। अस्या एवैनां परिददाति। इन्द्रायाध्यक्षायेति। इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठः। तमेवास्या अध्यक्षं करोति। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितेति। पिता च ह्येतस्या माता चानुमन्तारौ। सा देवि देवमच्छेहीति। इन्द्राय सोममिति। देवी ह्येषा देवमच्छैति। इन्द्राय सोमम्॥ रुद्रस्त्वावर्तयत्विति। रुद्रो वै देवानां क्षोदिष्ठः। तमेवास्याः परस्तात्करोत्यपरानंशाय। स्वस्ति सोमसखा पुनरेहीति पुनरेवास्या आवृत्तायै स्वस्ति करोति ॥४॥

दक्षिणेन पदा दक्षिणानि पदान्यनुनिष्क्रामति। तस्माद्दक्षिणार्ध आत्मनो वीर्यावत्तरः। षट् पदान्यनुनिष्क्रामति। षड्तवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। षट् पृष्ठानि। तान्येवावरुंद्धे। सप्तमं पदमभिगृह्णीते। सप्त ग्राम्याः पशवः। तानेवावरुंद्धे। सप्तधेयं वाग्वदति। तामेवाप्नोति। वस्व्यसि रुद्रासीति। देवनामानि वा एवैतानि प्रपद्यते। इयमसीयमसीत्येवैतदाह। यद्यद्भवत्यथो वाच एवैतत्सम्यगुद्यते। बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रम्णातु॥ रुद्रो वसुभिराचक इति। ब्रह्मवै बृहस्पतिः। रुद्रो देवानामोजिष्ठः। यावेव देवानामोजिष्ठौ ताभ्यामेनामन्ततो नह्यति। पृथिव्यास्त्वा मूर्धन्नाजिघर्मीति। एष हि पृथिव्या मूर्धा यद्देवयजनम्। इडायास्पदे घृतवति स्वाहेति। इडा वा एषा। तस्या एतद् घृतवत्पदम्। स्वाहाकारेणैवैनां यच्छति। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। स्थाल्यां पदं संवपति। आदित्या वै पशवः पृथिव्यदितिः। पृथिव्या स्थाली संभृता। स्व एवैनान्योनौ दधाति। अस्मे रमस्वास्मे ते राय इति। यत्ते राय इति ब्रूयादितरस्मै पशून्संप्रयच्छेदध्वर्युरपशुः स्यात्। मे राय इत्यात्मन्नेव पशून्यच्छते॥

व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोति। यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति समृद्ध्यै। अनग्नौ वा एतामाहुतिं जुहोति। तामीश्वराणि रक्षांस्यनूदय्य हन्तोः। यत्परिजुहोति शान्त्या एव रक्षसामपहत्यै। यावद् घृतं विधावेत्तावदभिपरिलिखेत्। पशवो वै घृतम्। पशूनेवावरुंद्धे। अयोनीन्वा एतत्पशूञ्शुचार्पयति यदेषां पदं परिखायाहरति। यदपो निनयति पशूनेव शुचो मुञ्चति। सोमक्रयण्या पत्नीं संख्यापयति। पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेति। अतो हीमाः प्रजाः प्रजायन्ते। प्रजननाय ॥५॥

हस्ते हिरण्यं कृत्वा मिमीते। सत्यं वै हिरण्यम्। सत्येनैवैनं मिमीते। अमृतं वै हिरण्यम्। अमृतेनैवैनं मिमीते। आस्माकोऽसीति स्वमेवैनं कुरुते। शुक्रस्ते ग्रह इति शुक्रमेवास्य गृह्णाति। अभित्यं देवं सवितारमिति सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिर्मिमीते। अतिच्छन्दसा मिमीते। वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दाः। वर्ष्मैवैनौ गमयति यज्ञं च

यजमाने च। एकैकया मिमीते। आत्मन्येव वीर्याण्यवरुन्धे। तस्मादिमा कामं न्यचामः कामं प्रसारयामः। यत्सर्वाभिः सह मिमीते हस्तमात्रा वीर्यमभिसमियात्। अङ्गुष्ठेन परिमिमीते। तस्मादेव एतासां वीर्याणि प्रत्युदेव सृजेन्न न्यचेत्। यदव्येष्यास्त्कुर्यात्। वरुण्यः पाशः। वरुण एनं ग्राहुको भवति। यदुत्सृजति वरुणपाशादेवात्मानं परिवृणक्ति। द्विर्मिमीते। द्वे हि शुक्रिये सवने। दश कृत्वो मिमीते। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति। यत्परिमितं मिमीत परिमितं जीवनं स्यात्। अपरिमितं मिमीते। तस्मादिदमपरिमितं जीवनम्। यत्परिमितं मिमीत यजमानायैव स्यात्। अपरिमितं मिमीते। तेन सदस्येभ्योऽपि क्रीयते। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्त्विति। प्रजा वा अंशवः। प्रजास्वेव प्राणं दधाति। चतुर्गृहीतमाज्यं भवति। चतुष्पादः पशवः। पशूनेवास्मै गृह्णाति। एतद्रूपा वै पशवः। यद् घृते सत्यानेव पशूनवरुन्धे।

इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्च इति हिरण्यं घृते ऽवदधाति। एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद् घृतम्। तेजो हिरण्यम्। प्रियामेवास्य तन्वं तेजसा समनक्ति। रेतो वै हिरण्यं पशवो घृतम्। यद्धिरण्यं घृते ऽवदधाति पशुष्वेव रेतो दधाति। तस्मादन्यस्यकादेतसो ऽस्यन्वन्तो गर्भाः प्रजायन्ते। बद्ध्वावदधाति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय। निष्टर्क्यं बध्नाति। तस्माद्योनेर्गर्भामुच्यन्ते। यदनिष्टर्क्यं बध्नीयात्र योनेर्गर्भा मुच्येरन्। यजुषावदधाति यजुषोद्धरति यजुषैव युनक्ति यजुषा विमुञ्चति। तस्मात्पराचीः प्रजा रेतो दधते ऽर्वाचीः प्रजायन्ते ॥६॥

न पूर्वस्मिन्पदमुपवपेत्। देवानां वा एष प्रत्याहुतीनाम्। रुद्रो ऽग्निः पशवः पदम्। रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुः स्यात्। गार्हपत्य उपवपति। गार्हपत्ये वै पशवो ऽनूपतिष्ठन्ते। एष पशूनां योनिः। स्व एवैनान्योनौ दधाति। यत्र शार्त्समिकानक्षारं स्यात्तदुपवपेच्छान्त्या अनिर्मार्गाय। सोमं ते क्रीणामीति सोमस्यैवैतद्राज्ञो वीर्याणि महिमानं व्याचष्टे। न कलाशः पण्ते। यत्कलाशः पण्ते सोमस्य राज्ञो वीर्यमवतिरति यजमानस्यार्तिं व्याचष्टे क्षोधुको भवति। इयमिति ब्रूयात्तस्या आत्मा तस्या रूपं तस्याः प्रजा तस्याः पय इति। न सोमस्य राज्ञो वीर्यमवतिरति न यजमानस्यार्तिं व्याचष्टे ऽक्षोधुको भवति।

शुक्रं ते शुक्रेण चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणामीति शुक्रमेवास्य शुक्रेण क्रीणाति चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणाति। शक्म यत्ते गोरस्मे ते चन्द्राणीत्यात्मन्नेवास्य वीर्यं धत्ते। तेन निर्वीर्येण भूतेन विक्रीणीते। तपसस्तनूरसीति। तपसो ह्येषा तनूः। प्रजापतेर्वर्ण इति। अग्निर्वै प्रजापतेरग्निजा अजा। सहस्रपोषं पुष्यन्तीति। एषा हि पशूनां सहस्रपोषं पुष्यति। अतो ह्येषा त्रीञ्जनयत्यथो द्वौ। परमेण पशुना क्रीयस इति। परमो ह्येषा पशूनाम्। अस्मे ते बन्धुरित्यात्मन्नेवास्य वीर्यं धत्ते। तया निर्वीर्यया भूतया विक्रीणीते।

छन्दांसि वा अमुष्माल्लोकात्सोममाहरन्। तस्मिन्नन्तराधीयत। सा गायत्र्यजया ज्योतिषोदपतत्। सास्मै प्रारोचयत्। एतर्हि वा एष एतस्मा आह्रियते यर्हि क्रीयते। तम इदमन्तरा। यदजया क्रीणाति प्रैवास्मै रोचयति। मित्रो न एहि सुमित्रधा इति। वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्यैति। मित्रमेवैनं कुरुते। अपोर्णुते। यथा श्रेयांसमायन्तं पापीयान्प्रत्यपोर्णुत एवमेव तत्। इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमिति। इन्द्रो वा एतमग्र ऊरावाधत्त। ऐन्द्रो यजमानः। स्व एवैनं योनौ दधाति। स्वान भ्राजेति सोमक्रयणाननुदिशति। एते वा एतं देवा अगोपायन्नमुष्मिँल्लोके। तं गायत्र्याहरत्। नेष्टापोत्रोः प्रति गोपीथम्। तस्मादेते होत्रे व्यृद्धे व्यृद्धसोमपीथे। तस्मान्न नेष्ट्रा न पोत्रा भवितव्यम्। तस्मादेतौ संसचन्तावेव यजतः। तमेते ऽन्वायन्। एते वा एतस्य गन्धर्वाः पुष्टिं हरन्ति। तस्मात्सोमविक्रयी न पुष्यति। यदि कच्छ्रायेतायैव हरेत्। एतेभ्यो ह्येष गन्धर्वेभ्यो ऽधि क्रीयते। उदायुषेति यथायजुः। उर्वन्तरिक्षं वीहीति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि। अपि पन्थामगस्महीति। रक्षांसि वा एतमेतर्हि सचन्ते प्रच्युतमितो ऽप्राप्तममदः। रक्षांस्येव वृञ्जान एति। अनसाच्छा यन्ति। महिमानमेवास्याच्छा यन्ति। [अनसा वहन्ति।] तस्मादनोवाह्यमोषधयः पच्यन्ते। यच्छीर्ष्णा हरेयुः शीर्षहार्यमोषधयः पच्येरन्। अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीदेति। आदित्यो वै सोमः पृथिव्यदितिः। पृथिव्या अनः संभृतम्। स्व एवैनं योनौ दधाति। वारुणो वै सोमः। तं देवतया व्यर्धयति यन्मैत्रं करोति। यद्वारुण्या सादयति स्वयैवैनं

देवतया समर्धयति। वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेति वाससा पर्याणह्यति। सर्वदेवत्यं वै वासः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति। सूर्यस्य चक्षुरारुहमिति कृष्णाजिनं पुरस्तात्प्रत्यानह्यति। रक्षांसि वा एतमेतर्हि जिघांसन्ति स्वर्गं लोकमारोहन्तम्। असावादित्यो ऽपरिपरः पन्थाः। तमेवैनमभ्यारोहयति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। ॥७॥

प्रच्यवस्व भुवनस्पत इति। भूतानां ह्येष पतिः। विश्वान्यभि धामानीति। देवता वै विश्वा धामानि। देवता एवैनमुप प्रच्यावयति। श्येनो भूत्वा परापतेति। श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः। श्येनमेवैनं कृत्वा रक्षांस्यपिसृजति। यजमानस्य नो गृहे संस्कृतमिति यजमानायतनमेवैनं करोति। अथो यजमानस्यैव गृहे देवताभिः संस्कृतं कुरुते। नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षस इति। वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्येति। मित्रमेवैनं कुरुते। आसन्दीमुद्गृह्णन्ति। यथा मनुष्यराजायावस्थितायासन्दीमुद्गृह्णन्त्येवमेवैतत्। अग्निना प्रतितिष्ठते। अग्निः सर्वा देवताः। देवताभिरेवैनं प्रतितिष्ठते। अग्नीषोमौ वा एतर्हि यजमानमभि संधत्तः। यत्पशुना प्रतितिष्ठते तमेवाभ्यामपिदधाति। अग्नीषोमाभ्यां वा एष आत्मानं मेधायालभते यो दीक्षते। यत्पशुमालभत आत्मानमेव तेन निष्क्रीणाति। यस्तूपरः श्मश्रुणो द्विदेवत्यस्य रूपं लोमशः पीवा पुरुषरूपस्तमालभेत। तस्य यो ऽश्नाति पुरुषमत्ति। तस्मात्तस्य नाशितव्यम्। [क्षुध्यति वै दीक्षितः। क्षुध एष निष्क्रयण आलभ्यते। तस्य यो ऽश्नाति क्षोधुको भवति। तस्मात्तस्य ना] शि [तव्य] म्। अग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमहन्। स एष वार्त्रघ्नः पशुर्विजित्या आलभ्यते। तस्मादस्याशितव्यम्। देवता वा एनं पूर्वेद्युरालभ्यमानं नाभिप्राच्यवन्त परस्माद्यज्ञक्रतोर्निररिष्याम इति। तमग्नीषोमावेवाभिप्राच्यवेतां परार्चारितरा यज्ञमभ्यत्यसृजन्त। तस्मादेषो ऽग्नीषोमीय आलभ्यते। तस्मादग्नीषोमाभ्यां ग्रहो न गृह्यते। तौ देवान्पुनरुपावर्तमानौ तयोर्यत्प्रियं धामासीत्तदपन्यदधाताम्। तद्देवा अन्वेष्टुमध्रियन्त। ते प्रवाहुगिच्छन्त आयन्। ते नवं वा इदं सृप्तमित्यभ्यवायन्। यन्नवमित्यब्रुवंस्तन्नवनीतस्य नवनीतत्वम्। यत्सृप्तमिति तत्सर्पिषः सर्पिष्ट्वम्। यदजो ऽविन्दत्तदाज्यस्याज्यत्वम्। स घृङ्ङकरोत्। तद् घृतस्य घृतत्वम्। तस्मादजो घृङ्ङ्ख्रिच्चरति। तत्पशूनन्वाकुर्वन्। तत्पशवः समभरन्। तेनानेन पशुभ्यो ऽधिजायन्ते। तावब्रूतां वार्यं वृणावहा अयमेव नौ भागधेयमस्तु यो नौ प्रियं धामाविददिति। तस्मादेषो ऽग्नीषोमीय आलभ्यते। तस्मादस्याशितव्यम्। वार्यवृतो हि ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां सप्तत्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

विमुक्तो ऽन्यो ऽनड्वान्भवत्यविमुक्तो ऽन्यः। अथातिथ्यं निरूप्यते यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय। यदुभौ विमुक्तौ स्यातां पितृदेवत्यं हविः स्याद्विच्छिन्नो यज्ञो ऽसंततो ऽनवरुद्धः। यदुभावविमुक्तौ वार्त्रघ्नं हविः स्यात्संततो यज्ञो ऽविच्छिन्नो ऽवरुद्धः। यद्विमुक्तो ऽन्यो भवत्यविमुक्तो ऽन्यो वार्त्रघ्नं हविर्भवत्यपितृदेवत्यं संततो यज्ञो ऽविच्छिन्नो ऽवरुद्धः। पत्नीमन्वारम्भयित्वा निर्वपति। पत्नी वै पारीणह्यस्येशे। अनुमतमेव प्रसृतं देवेभ्यो हविर्निर्वपति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय॥

यावन्तो वै पुण्यमन्वायन्ति सर्वेभ्यस्तेभ्य आतिथ्यं क्रियते। छन्दांसि ह सोमं राजानं क्रीतमन्वायन्ति। अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वेति त्रिष्टुभैतन्निर्वपति। अति [थेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेति जगत्यैतन्निर्वपति। अग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वेत्यनुष्टुभैतन्निर्वपति।] श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति। गायत्री वा एतमाहरदमुष्माल्लोकात्। तस्मात्सा पुनर्याम्णी। तस्मात्पुनः प्रयुज्यते। पञ्च कृत्वो निर्वपति। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुन्द्धे। यच्छन्दोभिर्निर्वपति च्छन्दांस्येव भागधेयवन्ति करोति। विष्णवे त्वा विष्णवे त्वेति। विष्णुर्ह्येतर्हि यज्ञो यर्ह्यनिरुक्तः। तस्माद्वैष्णवः पुरोडाशो भवति। त्रिकपालः कार्यः। स हि वैष्णवः। यन्नवकपालस्तेनैव त्रिकपालः। त्रयो हि ते त्रिकपालाः। नवकपालो भवति। नव प्राणाः। प्राणैरेव यज्ञमुखे प्रैति। अथो तेज एव त्रिवृतं यज्ञमुखे ऽधिवियातयति। यत्त्रिकपालस्तेन वैष्णवो यत्पट् तेन च्छन्दसाम्। तेनोभयस्मान्नैति॥

पशुरालभ्यः सोमाय राज्ञे। मनुष्यराजायेन्वै पशुरालभ्यते। यदग्निं मन्थन्ति। आग्नेया वै पशवः। तदेवास्मै पशुरालभ्यते। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवताः सोमाय च च्छन्दोभ्यश्चागतेभ्यो जनयति। आश्ववालः प्रस्तरो

भवत्यैक्षवावुद्यावौ। अश्व इव वै प्रजापतिरासीत्। तस्येमे वाला आसन्यदश्ववाला एतौ बाहू यावुद्यावौ। तं देवा अन्वारभ्य स्वर्गं लोकमायन्। यदाश्ववालः प्रस्तरो भवत्यैक्षवावुद्यावौ प्रजापतिमेवान्वारभते। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदाश्ववालाः। यदाश्ववालः प्रस्तरो भवति प्रजापतेरेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते॥

रक्षांसि वै देवानां यज्ञमजिघांसन्। तानि कार्ष्मर्येणापाघ्नत। यत्कार्ष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै। यद्वै देवा एतेनाकुर्वत तेनार्ध्नुवन्। तदस्य कर्मण्यत्वम्। कर्मण्यो वै नामैषः। यज्ञमुख एवैतेनर्ध्नोति। सप्तदश सामिधेनीर्भवन्ति। सप्तदशो वै संवत्सरः। पञ्चर्तवो द्वादश मासाः। एष वाव स संवत्सरः। संवत्सरादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं ग्रीवा उपसदः। यत्संस्थापये [न्मुखतो यज्ञं संस्थापये] त्। शिरो ग्रीवाभ्यो यज्ञस्यावच्छिन्द्यात्। इडान्तं भवति। शिर एव ग्रीवासु यज्ञस्य प्रतिदधाति। नवकपालो भवति। तस्मान्नवधा पुरुषस्य शिरो विष्यूतम्। उपसदो वा एतस्यानुयाजास्तानूनप्त्रमाशीः। तस्मादननुयाजं भवति ॥१॥

देवा वा अन्योऽन्यस्मै श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त। ते चतुर्धा व्युदक्रामन्नग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैः। ते देवाः पापीयांसो ऽभवन्वसीयांसो ऽसुराः। ते ऽविदुः पापीयांसो वै त्वे भवन्ति वसीयांसो ऽसुरा इति। ते प्रियास्तन्वः समवाद्यन्त। ते ऽब्रुवन्नेवं नस्तत्र परवाद्यो नो ऽन्योऽन्यस्मै द्रुह्यादिति। तस्मात्सतनूनप्त्रिणे न द्रोग्धवै। यद् द्रुह्यति प्रियायै तन्वै द्रुह्यति। यत्तन्वः समवाद्यन्त तत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वांस्तानूनप्त्रमुपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। असौ वा आदित्य इन्द्रः। तस्य ते श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त। तिष्ठन्ते ऽस्य समानाः श्रैष्ठ्याय य एवं वेद। एतस्मिन्वै ते तास्तन्वः संन्यदधत। तस्माद्ध तेभ्यस्तेजिष्ठ भवति। तस्मात्सूर्यदेवत्याः सोमा भूयिष्ठा हूयन्ते। आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन्। स्रुग्भ्यां बाहुभ्याम्। सोमो वृत्रः। घ्नन्ति वा एतत्सोमं यदस्याज्येनान्तिकं जुह्वति। अंशुरंशुस्ते देव सोमाप्यायतामिति यदेवास्य घ्नन्ति यन्मितमर्यन्ति तदाप्याययन्ति। यन्ति वा एते ऽस्माल्लोकाद्ये सोममाप्याययन्ति। एष्टा रायः॥ प्रेषे भगायेत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठन्ति। पितरं च वा एष मातरं च हिनस्ति यो गर्भं हन्ति। अनयोर्गर्भः सोमो राजा। नमो दिवे नमः पृथिव्या इत्याभ्यामेव निह्नुते। किं दीक्षया स्पृणोतीत्याहुः किमवान्तरदीक्षयेति। आत्मानमेव दीक्षया स्पृणोति प्रजामवान्तरदीक्षया। संतरां मेखलामायच्छते। कनीयो व्रतमुपैति। तस्मादात्मनः प्रजा हीयसी। यत्परः सत्यां विसृजते तस्मात्परोवरीयः प्रजया पुत्रेण पौत्रेण प्रथते। अग्निर्वै दीक्षितः। शमयत्यग्निमापः। मदन्तीना मार्जयते। मदन्तीनां व्रतयत्यशान्त्यै। शान्तिर्ह्यापः। अथो तेज एवाभ्यनूय समाधत्ते। न वा एतेन हुतं व्रतयितव्यं नाहुतं यो दीक्षितः। अग्निर्वै रुद्रः। अग्निमेव तन्वं विपरिधत्ते तानूनप्त्रे। या ते अग्ने रुद्रिया तनूरिति व्रतयति। स्वायामेव देवतायां हुतं व्रतयति। तेनास्य न हुतं भवति नाहुतम् ॥२॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। तेषामसुराणामिमाः पुर आसन्नयस्मयीयं रजतान्तरिक्षं हरिणी द्यौः। ते देवाः संयासंयाते पराजयन्त। ते ऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात्पराजयामह इति। त एताः पुरः प्रत्यकुर्वत हविर्धानं दिव आग्नीध्रमन्तरिक्षात्सदः पृथिव्याः। ते ऽब्रुवन्नुपसदमुपायामोपसदा वै महापुरं जयन्तीति। त उपसदमुपायन्। तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो निरघ्नन्। तस्मादाहुरुपसदा वै महापुरं जयन्तीति। [त एभ्यो लोकेभ्यो निर्हता ऋतून्प्राविशन्।] ते षडुपायन्। तानुपसद्भिरेवर्तुभ्यो निरघ्नन्द्वाभ्याममुष्माल्लोकाद् द्वाभ्यामन्तरिक्षाद् द्वाभ्यां पृथिव्याः। त ऋतुभ्यो निर्हताः संवत्सरं प्राविशन्। ते द्वादशोपायन्। तानुपसद्भिरेव संवत्सरान्निरघ्नंश्चतसृभिरमुष्माल्लोकाच्चतसृभिरन्तरिक्षाच्चतसृभिः पृथिव्याः। ते संवत्सरान्निर्हता अहोरात्रे प्राविशन्। ते यत्सायमुपायंस्तेनैनानह्नो ऽनुदन्त यत्प्रातस्तेनाह्नः। तस्माद्गौः सायं प्रातस्तनमाप्यायते प्रातः सायन्तनम्। तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो नुदमाना आयन्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वानुपसदमुपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति।

न द्वादशाग्निष्टोमस्य कुर्यात्। अशान्ता निर्मृज्युः। न तिस्रो ऽहीनस्य। उपरिष्टाद्यज्ञक्रतुर्गरीयानभिर्वदेद्ग्रीवा

निःश्रृणायादार्तिमार्छेत्। द्वादशाहीनस्य कुर्याच्छान्त्या अनिर्मार्गाय। तिस्रो ऽग्निष्टोमस्य प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय। देवा वा असुर्यानिमांल्लोकान्नान्ववैतुमधृष्णुवन्। तानग्निना [मुखेनान्ववायन्। यदग्निमन्त्युपसदां प्रतीकानि भवन्ति यथा क्षेत्रपतिः क्षेत्रे ऽन्ववनयत्येवमेवैतत्। अग्निना] मुखेनेमांल्लोकानभिजयन्तो यन्ति। यो ह वै देवान्साध्यान्वेद सिध्यत्यस्मै। इमे वाव लोका देवाः साध्याः। सिद्धं ह्यस्मै सिद्धमस्मै सिद्धममुष्मै। य एवं वेद सिध्यत्यस्मै ॥ ३ ॥

इषुं वा एतां देवाः समस्कुर्वन्यदुपसदो ऽग्निं शृङ्गं सोमं शल्यं विष्णुं तेजनम्। ते ऽब्रुवन्को न ओजिष्ठः स इमां विसृजत्विति। ते रुद्रमब्रुवंस्त्वं वै न ओजिष्ठो ऽसि त्वमिमां विसृजेति। सो ऽब्रवीद्वार्यं वृणा अहमेव पशूनामीशा इति। ते ऽमन्यन्त यदयं पशूनामीशिष्यते सर्वान्निर्णेष्यतीति। ते ऽब्रुवन्सप्ताहानीशासै न पराचीनमिति। तस्मात्सप्ताहानि रुद्रः पशूनामीशे। रक्षांसि पराचीनं घ्नन्ति। तां व्यसृजत्। तया पुरः समरुजत्। यत्समरुजत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्। विसृष्टिमेव भ्रातृव्याय विसृजति य एवं विद्वानुपसदमुपैति। न पुनरपक्रामेत्। यतरो वै संयत्तयोः पुनरपक्रामति परा स जयते। समेष एतर्हि यतते य उपसदमुपैति। सकृदेव पराङतिक्रम्याश्रावयति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै। न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजाः। पुरो वा एते यज्ञस्य यत्प्रयाजानुयाजाः। यत्प्रयाजानुयाजान्कुर्यात्पुरो यज्ञस्य कुर्याद् दुरतिव्यथं स्यादतीक्ष्णामिषुं कुर्यात्। चतुर्व्रतो भवति। चत्वारि हीष्वाः पर्णानि। त्रिव्रतो भवति। त्रिषन्धिर्हीषुः शृङ्गं शल्यस्तेजनम्। द्विव्रतो भवति। द्विषन्धिर्हीषुः शल्यश्च तेजनं च एकव्रतो भवति। एका ह्येवेषुः। इषुमेवैतां संस्कृत्य तां श्वो भ्रातृव्याय विसृजति। अथो व्रतमेवाप्नोति॥

ग्रीवा वा एता यज्ञस्य यदुपसदः। न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजाः। तस्माद् ग्रीवाः प्रति पुरुषस्याणिष्ठम्। ताः सवीर्याः प्रयुज्यन्ते। तस्माद् ग्रीवा अणिष्ठाः सतीर्वीर्यावत्तमाः। तिस्र उपसदो भवन्ति। त्रय इमे लोकाः। तस्मात्पुरुषस्य त्रय स्कन्दाः। अतिपक्ताभिर्यजति। तस्माद् ग्रीवा अतिपक्ताः। अथो अयातयाम्नी। अयातयाम्न्यैव यजति। सच्छन्दसो याज्यानुवाक्याः कुर्यात्। यद्विच्छन्दसः स्युरपचितो होतारं हन्युः। भिद्वतीः पुरां भित्त्यै ॥ ४ ॥

देवाश्च वा असुराश्च यज्ञे संयत्ता आसन्। स यज्ञो ऽविभेद्यतरे ऽभिजेष्यन्ति ते मा विमथिष्यन्त इति। स न्यलयत। तं देवा अभिजित्यान्वैच्छन्। ते प्रवाहुगिच्छन्त आयन्। तमिन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत्। सो ऽब्रवीत्को मायमुपर्युपर्यत्यक्रमीदिति। अहमेष कृच्छ्रे हन्तेति। अथ कस्त्वमिति। अहमेष कृच्छ्रादाहर्तेति। एमूषो नामायं वराह इत्यब्रवीदेकविंशत्याः पुरामश्ममयीनां पारे यत्किंचासुराणां वामं वसु तेन तिष्ठति तं जहि य एष कृच्छ्रे हन्तावोचथा इति। [तमिन्द्रो दाल्भ्याभिविसृज्य पराभिनत्। सो ऽब्रवीदेष हतः। तमाहर य एष कृच्छ्रादाहर्तावोचथा इति।] तं विष्णुरुपासङ्गं आहरत्। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञेनैवैषां तद्यज्ञमवृञ्जत पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञेनैवैतद्यज्ञं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियम्। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। देवयजनमिच्छन्ति। यज्ञमेवेच्छन्ति। यद्विन्दन्ति यज्ञमेव विन्दन्ति॥

यदुदीचीनं प्राचीनं प्रवणं स्यात्तस्मिन्यजेत यज्ञकामः। एवमिव हि स यज्ञो ऽशयत्। यज्ञस्यानुवित्त्यै। यत्समं प्रतिष्ठितं तस्मिन्यजेत गतश्रीः। प्रतिष्ठा वा एतस्मा एष्टव्या यो गतश्रीः। एतद् भूम्याः प्रतिष्ठितं यत्समम्। प्रतिष्ठामेवास्मै विन्दति गच्छति प्रतिष्ठाम्। त्र्युन्नते यजेत भ्रातृव्यवान्। त्र्युन्नतेन वै विष्णुरिमांल्लोकानुदजयत्। स एभ्यो लोकेभ्यो ऽसुरान्प्राणुदत। इमानेव लोकानुज्जयत्येभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदते। यस्यैकधा मध्य उन्नतं स्यात्तस्मिन्यजेत स्वर्गकामः। अतो वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। यत्रौषधयो बहीरन्या अन्या इव स्युस्तस्मिन्यजेत पशुकामः। ओषधयो वै पशवः। भूमानमेव पशूनामुपैति। यत्रौषधयः कृच्छ्रशः पर्यायशः परीयुस्तस्मिन्यजेत पशुकामः। अतो वै देवाः पशूनुदसृजन्त। पशूनेवोत्सृजते। यद्दृक्षमलोमकं तस्मिन्याजयेद्यं द्विष्यात्। व्यृद्धं वा एतदोषधिभिर्यद्दृक्षमलोमकम्। ओषधयः पशवः। पशुभिरेवैनं व्यर्धयति। यत्समया देवयजनं पन्था विधावेत्तस्मिन्याजयेद्यं कामयेत व्येनं प्रजया पशुभिश्छिनद्यामिति। एतद्वै विच्छिन्नं नाम देवयजनम्। व्येनं प्रजया पशुभिश्छिनत्ति। यदन्तरापश्च देवयजनं च पन्था विधावेत्तस्मिन्याजयेद्यं कामयेत नैनमपरो यज्ञ उपनमेदिति। एतद्वै

परिवर्त्म नाम देवयजनम्। पर्येणमपरो यज्ञो वृणक्ति। यत्रापः सर्वतः समवद्रवेयुस्तस्मिन्यजेतान्नकामः। दिग्भ्यो वा एतस्मा अन्नं हरन्ति यस्मै हरन्ति। आपो ऽन्नम्। सर्वाभ्य एव दिग्भ्यो ऽन्नाद्यमवरुन्द्धे। तदेतत्समापं नाम देवयजनम्। नीपतममिव [र्तं] समानानां भवति ॥५॥

यत्रापः प्राचीराहवनीयात्प्रतीचीर्गार्हपत्याद्व्यवद्रवेयुस्तस्मिन्याजयेद्यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमांसेरन्। पाप्मना वा एषो ऽनुषक्तो यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमांसन्ते। पाप्मनैवैनं व्यावर्तयति। यत्रापो दक्षिणा परिप्लूय पश्चात्प्राची रमेरंस्तस्मिन्यजेत बुभूषन्। आपो वै सर्वा देवताः। एतद्देवताभिर्जुष्टं देवयजनम्। यदेवं देवताभिरेव जुष्टे देवयजने यजते भवत्येव। यत्रापो दक्षिणत उदीची रमेरंस्तस्मिन्यजेत सजातकामः। आपो वै सर्वा देवताः। देवताः सजाताः। सजातानामेवैनं प्रार्धं करोति। कृत्रिमे यजेत बुभूषन्। आत्मा वै देवयजनम्। करोत्येवैनम्। यत्राग्निं चापश्च पश्यन्प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्तस्मिन्यजेत यः कामयेत यज्ञो मापर उपनमेदिति। अग्निः सर्वा देवता आपो यज्ञः। उपैनमपरो यज्ञो नमति। देवताश्च हि यज्ञं च पश्यन्यजते। यत्राग्निमपः सूर्यं पश्यन्प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्तस्मिन्यजेत ब्रह्मवर्चसकामः। एतद्वै त्रिशुक्रियं नाम देवयजनम्। ब्रह्मवर्चसी भवति। यत्पुरस्तादाप्तं स्याद्देवयजनं तस्मिन्यजेत भ्रातृव्यवान्। भ्रातृव्याय वा एष लोक उच्छिष्यते यत्पुरस्ताद्देवयजनस्योच्छिष्यते। एतावन्तमेवास्मै लोकमुच्छिंषति। अलोकमेनं करोति। यो ह वै विद्वान्देवयजनं यजत ऋध्नोति। अग्निर्वाव देवयजनम्। अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते। यत्रैव क्वचाग्निमाधाय यजेत तेनैवर्ध्नोति। ब्राह्मणा वाव देवयजनम्। यत्र ब्राह्मणा बहवः संराधयेयुस्तस्मिन्यजेत। तेनैवर्ध्नोति ॥६॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामष्टात्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

वेदिं विमिमीते। त्रिंशता पश्चात्प्रक्रमैर्मिमीते षट्त्रिंशता प्राचीं चतुर्विंशत्या पुरस्तात्। विराजैवैनां पश्चात्परिमिमीते बृहत्या प्राचीं गायत्र्या पुरस्तात्। छन्दोभिरेवैनां सर्वतः परिमिमीते। विराज्येव प्रतितिष्ठति यद्विराजमभिसंपादयति। स्फ्येन स्तम्बयजुर्हरति। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधाभवत्स्फ्यस्तृतीयं यूपस्तृतीयं रथस्तृतीयम्। वज्रो वै स्फ्यः। एतावती पृथिवी यावती वेदिः। वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भजति। त्रिर्हरति। त्रय इमे लोकाः। एभ्य एवैनं लोकेभ्यो निर्भजति। तूष्णीं चतुर्थं हरति। अपरिमितादेवैनं निर्भजति। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा तमनयाभिन्यदधात्। यत्तूष्णीं चतुर्थं हरत्यनयैव भ्रातृव्यमभिनिदधाति। मूलं छिनत्ति। भ्रातृव्यस्यैव मूलं छिनत्ति। उद्धन्ति। तस्माच्छिशिर ओषधयः पराभवन्ति। बर्हिं स्तृणाति। तस्माद्वसन्ते पुनराभवन्ति। अपारुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहोति। भ्रातृव्यो वा अररुः। भ्रातृव्यमेव पृथिव्या निर्भजति। द्रप्सस्ते द्यां मा स्कनिति। यो वा अस्या रसः स द्रप्सः। तमिमाः प्रजा उपजीवन्ति। तमेवास्यां यच्छति तस्यास्कन्दाय। अररुर्द्यां मा पप्तदिति। भ्रातृव्यो वा अररुः। भ्रातृव्यमेव स्वर्गाल्लोकात्प्रतिनुदते॥

विषाद्वै नामासुर आसीत्। स पृथिवीं विषेणावालिम्पत्। तस्या न [कश्चनाश्नात्। य आ] श्नात्सो ऽरुप्यत्। यदुद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यं यदयज्ञियं तदपहन्ति। अपि मूलमनुखनेदाविद्धस्य निष्कृत्यै। अधो दूरं खनेत्। अधो वा अस्या वीर्यम्। वीर्यस्याभिक्लृप्त्यै। तस्मात्सुकृष्टे व्रीहियवाः पच्यन्ते। तदाहुरुत्तरार्धे वा अस्या वीर्यम्। तदिमाः प्रजा उपजीवन्ति। तस्मान्नातिखेयेति। आ प्रतिष्ठायाः खनेद्यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै। दक्षिणत उद्धनं कुर्यात्। देवयजनस्य रूपम्। रक्षसामपहत्यै। पुरीषवतीं कुर्यात्। पशवो वै पुरीषम्। पशूनेवावरुन्द्धे ॥ १ ॥

स्फ्येन वेदिं परिगृह्णाति। वज्रो वै स्फ्यः। एतावती पृथिवी यावती वेदिः। वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भज्य छन्दोभिरात्मने परिगृह्णाति। वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसेति दक्षिणतः। तेजो वै ब्रह्म गायत्री। तेजसैवैनां दक्षिणतः परिगृह्णाति। रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसेति पश्चात्। ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुप्। ओजसैवैनां पश्चात्परिगृह्णाति। आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसेत्युत्तरात्। जागता वै पशवः। उत्तरादायतनाः पशवः। पशुभ्य एवैतदायतनं करोति। पशूनां धृत्यै। अथो तेजसा चैवौजसा चोभयतः

पशून्परिगृह्णाति। पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्निति। यद्वा अस्यास्तेजो यज्ञियं तददश्चन्द्रमसि। तदेवावरुन्द्धे॥

इध्माबर्हिषी प्रोक्षति। शुष्काणि वा एतान्यमेध्यान्यारण्यादाहृतानि। आपो मेध्या यज्ञियाः। यदद्भिः प्रोक्षति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति। वेदिं प्रोक्षति। मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोति। अथो यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। बर्हिं स्तृणाति। प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदिः। प्रजा एव पृथिव्यां प्रतिष्ठापयति। सर्वां वेदिमनुस्तृणाति। तस्मात्पृथिवीं सर्वामन्वोषधयः। बहुलं स्तृणीयात्। अक्षोधुको यजमानो भवत्यनग्नंभावुको ऽध्वर्युः। बर्हिषि प्रस्तरं सादयति। यजमानो वै प्रस्तरः प्रजा बर्हिः। यजमानमेव प्रजास्वधिसादयति। उत्तरं सादयति। उत्तरो हि यजमानो ऽयजमानात्। व्यावृत्तं सादयति। व्यावृत्तो हि यजमानो ऽयजमानेन। अक्त्वा प्रस्तरं प्रहरति। यजमानो वै प्रस्तरः। हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। नात्यग्रं प्रहरेत्। यदत्यग्रं प्रहरेद् वृक्णकेशीर्जनयः स्युरत्यासारिणीर्नशुकाः। अग्रमग्र आदीपयति। अग्रेणैवाग्रं समर्धयति। ऋजुं प्रहरेत्स्वर्गकामस्य। ऋजुमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। यं द्विष्यात्तस्य ह्रूर्छयेत्। स्वर्गादेवैनं लोकाद्ध्रूर्छयति। न्यञ्चं प्रहरेद् वृष्टिकामस्य। या वा इत आहुतिरुदयते सामुतो वृष्टिं च्यावयति। अनयैवाहुत्या दिवो वृष्टिं [नि] नयति। ऊर्ध्वं प्रहरेद्यदि कामयेत पुमानस्य पुत्रो जायेतेति। ऊर्ध्व एव हि पुमान्। प्रथयित्वा प्रहरेद्यदि कामयेत स्त्री जायेतेति। एवमेव हि स्त्री प्रथितेव। यजमानो वै प्रस्तरः। हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। एति वा एषो ऽस्माल्लोकाद्यत्प्रस्तरं प्रहरति। यत्तृणमुपगृह्णात्यस्मिन्नेवैनं लोके यच्छति। अनुप्रहरति। यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरं कुर्वन्ति यद्विच्छिन्दन्तस्तच्छमयति। अगा३नग्नी३दित्यगन्स्वर्गं लोकमित्येवैतदाह। श्रावय श्रौषडिति स्वर्गमेवैनं लोकं गतं श्रावयति ॥ २ ॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। तान्यदस्यास्तेजो यज्ञियमासीत्तत्सिंहीरूपमिव महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठत्। ते ऽविदुर्यतरान्वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति। तां देवा उपामन्त्रयन्त। साब्रवीद्वार्यं वृणै मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयं सर्वान्कामान्व्यश्नवाथेति। सा देवानुपावर्तत। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्न्युप्यते यश्चैवं विद्वान्निवपति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। दश पश्चात्तिरश्ची पदानि भवन्ति दशोभयतः प्राच्यपरिमिता पुरस्ताद्विराजा संमिता। यद्वा असुराणां वित्तमासीत्तद्देवा वेद्याविन्दन्त। तद्वेद्या वेदित्वम्। यद्वेद्यं तदुत्तरवेद्या। तदुत्तरवेद्या उत्तरवेदित्वम्। यस्यैवं विदुषो वेदिश्च क्रियत उत्तरवेदिश्च न्युप्यते वित्तं चैव वेद्यं च भ्रातृव्यस्य विन्दते। प्रजापतेर्वै नासिका शीर्यत। सोत्तरवेदिरभवत्। यज्ञः प्रजापतिः। यदुत्तरवेदिं निवपति प्रजापतेरेव नासिकां मुखतः प्रतिदधाति। चत्वारि वा एतस्या नामानि नासिका कशारिः सिंह्युत्तरवेदिः। तप्तायन्यसीति। तप्ता ह्येनानैत्। वित्तायन्यसीति। वित्ता ह्येनानैत्। अवतान्मा नाथितमिति। नाथितान्ह्येनानावत्। अवताद्व्यथितमिति। व्यथितान्ह्येनानावत्। अग्ने अङ्गिरो यो ऽस्यां पृथिव्यामसि॥ यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यामिति यदेवास्यैषु लोकेषु श्लिष्टं यन्न्यक्तं तदवरुन्द्धे। विदेदग्निर्नभो नामेति। यद्वा अग्नेर्वामं वसु तन्नभः। तेनेमां पृथिवीं प्राविशज्जानुदघ्नमधः। तस्माज्जानुदघ्नं खेयम्। तस्यैव वामस्य वसोरनुवित्त्यै। सिंह्यसि महिष्यसीति। सिंहीरूपमिव महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठत्। देवेभ्यः प्रथस्वेति प्रथयत्येवैनाम्। देवेभ्यः कल्पस्वेति कल्पयत्येवैनाम्। देवेभ्यः शुन्धस्वेति शुन्धत्येवैनाम्। देवेभ्यः शुम्भस्वेति शुम्भत्येवैनाम्। विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्विति अन्तान्कल्पयति। देवपात्रं वा उत्तरवेदिः। देवपात्रेणैव देवतास्तर्पयति। अथो देवताभ्य एव देवपात्रं निवेदयति ॥ ३ ॥

यतीन्वै सालावृकेया आदन्। त आदीयमानाः संमृश्यमाना उत्तरवेदिं समुदक्रामन्। तान्नाभ्यधृष्णुवन्। तेषामेको ऽस्मयत। तत एनानभ्यधृष्णुवन्। तेषामेकैकमावर्हमादन्। तस्मान्न मोघहासिना भव्यम्। यन्निःसारयति यदेवास्या अभिमृतममेध्यं यदयज्ञियं तन्निःसारयति। प्रोक्षति। एतावती वा इयं पृथिव्यासीद्यावत्युत्तरवेदिः। तां समन्तं रक्षांसि संप्राकम्पन्त। तानि देवा विनुद्यैताभिरेव देवताभिः समन्तं पर्यन्यदधुः। यत्प्रोक्षति। एतद्देवत्या वा इमा दिशः। रक्षांस्येव विनुद्यैताभिरेव देवताभिः समन्तमात्मानं परिनिदधाति। गोपीथाय। एतद्वा एतां पूर्वामग्नेराहुतिरश्नुते यद्व्याघारयति। अथादो ऽब्रवीन्मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयं सर्वान्कामान्व्यश्नवाथेति। अथ वा एतेषां

तर्ह्यसुराः सपत्ना आसन्। ते ऽकामयन्त सपत्नान्सहेमहीति। सिंह्यसि सपत्नसाही स्वाहेति। सपत्नांस्तेनासहन्त। ते ऽकामयन्त पशून्विन्देमहीति। सिंह्यसि रायस्पोषवनिः स्वाहेति। पशूंस्तेनाविन्दन्त। ते ऽकामयन्त प्रजां विन्देमहीति। सिंह्यसि सुप्रजावनिः स्वाहेति। प्रजां तेनाविन्दन्त। ते ऽकामयन्तादित्याः स्यामेति। सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहेति। आदित्यास्तेनाभवन्। तस्मादिमा आदित्याः प्रजाः। ते ऽकामयन्त यज्ञियाः स्यामेति। सिंह्यस्यावह देवान्देवायते यजमानाय स्वाहेति। यज्ञियास्तेनाभवन्। ते ऽकामयन्त स्वर्गं लोकमियामेति। भूतेभ्यस्त्वेति। देवा वै भूताः। स्वर्गमेव तेन लोकमायन्। यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्व्याघार्यते यश्चैवं विद्वान्व्याघारयति सवनिवैतया कामान्व्यश्नोति। इमे वै लोका अविधृता आसन्। ते संप्राकम्पन्त। तान्देवा एतैर्यजुर्भिर्व्यष्टभ्नुवन्। यदेतैः परिधीन्परिदधात्येषां लोकानां विधृत्यै। अग्निर्वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। स यां प्रथमां प्रावसत्तां पशुष्ववसद् वृष्णेरन्तराशृङ्गम्। तस्मादूर्णास्तुका भवति। यां द्वितीयां तां वनस्पतिषु पीतुदारौ। तस्मात्पीतुदारुर्भवति। यां तृतीयां तामोषधिषु सुगन्धितेजने। तस्मात्सुगन्धितेजनो भवति। यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यन्न्यक्तं तदेतैः संभरति। स पुनरुपावर्तमानः शरीरमधूनुत। तस्य यन्मांसमासीत्तद्गुल्गुल्वभवद्यदस्थि स पीतुदारुर्यानि लोमानि स सुगन्धितेजनः। तस्मात्सुगन्धितेजनो भवति। यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यन्न्यक्तं तदेतैः संभरति। अग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसीति। कुलायमिव ह्येतत्पुरीषमिव। यज्ञः प्रत्यष्ठादिति यज्ञस्यैव प्रतिष्ठित्यै ॥ ४ ॥

चत्वारो वै देवानां होतार आसन्भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिर्भूतः। तेषां त्रयो होत्रेण प्रामीयन्त। अथो यद्भूत उदशिष्यत स प्रमयादबिभेत्। स न्यलयत। स समुद्रं प्राविशत्। स यत्समुद्रे भस्माकुरुत स एष कर्दमः। तं मत्स्यः प्राब्रवीत्। तमशपदभिगन्ता त्वा हतादिति। तस्मान्मत्स्यमभिगन्ता हन्ति। शप्तो हि सः। तत उद्द्रुत्य नडं प्राविशत्। तस्मान्नडो दग्धः क्रूर इव वर्वरः। तमश्वः श्वेतो ऽवमृशन्नन्वविन्दत्। तं प्रत्यौषत्। तस्मात्स प्रत्युष्टमुखः। सो ऽक्रन्दत्। सा या वागासीत्स सुश्लोकः शकुनिरभवत्। तस्माद्य स नष्टैषमभ्यवक्रन्दति विन्दत्येव। तं देवा अनुविद्यानयन्निदं नो होता भविष्यतीति। स प्रमयादबिभेत्। तं भ्रातरः प्रमीता अब्रुवन्वयं त इतो वर्म भविष्यामो देवेषु णो भागधेयमिच्छेति। ते ऽब्रुवन्यत्किंच हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्देत्तदेषां भागधेयमिति। एते वाव ते परिधयः। यदि हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्देद् भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहेत्यनुमन्त्रयेत। एते वै देवा स्कन्नभागाः। य एव देवा स्कन्नभागास्तानेतद्गमयति। यज्ञो वा एतेषां मध्यमो यजमानो दक्षिणार्ध्यो भ्रातृव्य उत्तरार्ध्यः। स्थविष्ठं मध्यमं कुर्याद्वर्षिष्ठं दक्षिणार्ध्यं क्रधिष्ठमुत्तरार्ध्यम्। स्थविष्ठं प्रथमं परिदधाति। प्रथमो हि यज्ञः। वर्षिष्ठं दक्षिणार्ध्यम्। यथा यजमानो दक्षिणतो यज्ञ उपसीदत्येवं तत्। पश्चेवोत्तरार्ध्यम्। पश्चेव हि भ्रातृव्यः। अक्त्वा दक्षिणार्ध्यं प्रहरति। मुखत एव यजमानं प्रीणाति। यज्ञेनैवैतद्यजमानं प्रतरां करोति। यज्ञेन भ्रातृव्यमपनुदते। अथो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। उपवपत्युत्तरार्ध्यम्। भ्रातृव्यमेव तदुपवपति। अथ ह स्माहायलः क्रफोडिः किमु स यजेत यो यज्ञस्य स्कन्नेन न वसीयानि [व] स्यादिति। यत्रस्कन्देत्तदपो निनीय भूपतये स्वाहेति प्राक् प्रादेशेन मिमीत भुवनपतये स्वाहेति दक्षिणा भूतानां पतये स्वाहेति प्रत्यक्। जनं वा एतद्यज्ञस्यैति यत्स्कन्दति। इयं वाव जनः। यो वा इमामेति न स पुनरागच्छति। जनमेवैतस्य यज्ञस्य यां कामयत आशिषं तामवरुन्द्धे। दिशो मिमीते। दिशो वै यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति। दिग्भ्य एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे। प्रादेशेन मिमीते। एतावद्वै पुरुषे वीर्यं यावदस्य प्राणा अभि। यावदेवास्मिन्वीर्यं तेनैनत्संभरति। अपो निनयति। म्रियते वा एतद्यज्ञस्य यत्स्कन्दति। अद्भिस्तान्तमभिषिञ्चन्ति। आपः सर्वा देवताः। देवता एवैनत्प्रवेशयति। यदि प्रातःसवने स्कन्देद्देवाञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। यदि मध्यन्दिने ओषधीर्जनमगन्यज्ञ- [स्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत।] यदि तृतीयसवने पितॄञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। यदि तिरोह्न्येषु यदि नक्तं द्यावापृथिवी जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। एता वै देवता यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति। गन्धर्वाञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य [यज्ञस्य] द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। एता वै देवता यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति।

एता एव देवता यथादेवतं प्रत्युपसृत्य यां कामयते यज्ञस्याशिषं तामवरुन्द्धे। यस्यैवं विदुषो यज्ञस्य स्कन्नमनुमन्त्रयन्ते यश्चैवं विद्वाननुमन्त्रयते वसीयान्भवति ॥ ५ ॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायामेकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

हविर्धाने प्रणेनेक्ति। मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति। ग्रन्थीन्विवृञ्जन्ति। देवग्रन्थीनेव ग्रन्थिष्यन्तो मनुष्यग्रन्थीन्विवृञ्जन्ति। हविर्वै हविर्धाने। स्तीर्णे बर्हिषि हविरासादयन्ति। तस्मात्स्तीर्णे बर्हिषि हविर्धाने प्रवर्तयन्ति। पत्न्युपानक्ति। पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति। प्रजननाय। त्रिः प्राचीनमुपानक्ति। असंख्यातं हि तिरश्चीनं मनुष्या उपाञ्जन्ति। व्यावृत्त्यै। यजुषोपानक्ति। अयजुषा हि मनुष्या उपाञ्जन्ति। व्यावृत्त्यै। दक्षिणत उपानक्ति। दक्षिणतो ह्येते उदीची मनुष्यलोकमुपावर्तेते। मानुषमेवैनयोरुत्तरं करोति। यदुत्तरादुपाञ्ज्यान्नान्यतरं चन लोकमुपावर्तेयाताम्। स्वर्गाय वा एते लोकाय प्रवर्तेते यद्धविर्धाने॥

युञ्जते मन इति सावित्र्या जुहोति। सवितृप्रसूते एवैने स्वर्गं लोकं गमयति। हविर्वै हविर्धाने। न हविरनभिघृतं मेधमश्नुते। यदभ्यनक्त्यभ्येवैने घारयति। मेध्यत्वाय। शुष्को वा एष निर्ऋतिगृहीतो यदक्षो नभ्याभ्यामुभयतो बद्ध उपधिभ्यां संदष्टः। यदुपानक्ति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। घोषो वै नामासुर आसीत्। स वनस्पतीन्प्राविशत्। तं देवा गृहीत्वोभयतो ऽवघ्नन्। यत्क्षुवेदेदसुर्या वाग्यज्ञमववदेद्रक्षांसि यज्ञमन्ववेत्य हन्युः। अनुगृह्णन्तो यन्ति रक्षसामनन्ववायाय। वर्त्मना वै यज्ञं रक्षांस्यन्ववेत्य जिघांसन्ति। वैष्णव्या वर्त्मञ्जुहोति। विष्णुर्वै यज्ञः। विष्णुनैव यज्ञाद्रक्षांस्यपहन्ति। व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोति। यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति। समृद्ध्यै। स्वर्गं वा एते लोकं प्रेतो यद्धविर्धाने। गायत्र्या दक्षिणस्य वर्त्मञ्जुहोति। अस्यामेवैने आक्रमयति। त्रिष्टुभोत्तरस्य। अन्तरिक्ष एवैने आक्रमयति। आहवनीयं गमयति। स्वर्गमेवैने लोकं गमयति। स्वर्गो हि लोक आहवनीयः। त्रीन्पुरस्तात्प्रक्रामानुच्छिंषति। त्रय इमे लोकाः। इमानेवास्मै लोकानुच्छिंषति॥

दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या इति दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीमुपमिनोति। विष्णुर्वै यज्ञः। मुखत एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे। तां परुषिपरुष्याशासान एति। विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचमित्युत्तरस्य। वैष्णवं वै हविर्धानम्। स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति। विष्णोः पृष्ठमसीति च्छदिरुपरिष्टादभिनिदधाति। इदमेव तेन करोति यदिदमुत्तरार्धं शीर्ष्णः। विष्णो रराटमसीति पुरस्ताद्रराटमेव तेन करोति। विष्णोः श्नप्त्रे स्थ इत्यभितः। श्नप्त्रे एव तेन करोति। तिर्यञ्चं पुरस्ताद्वंशं विषीव्यन्ति। तस्मात्तिरश्ची पुरुषस्य भ्रुवौ। विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसीति। वैष्णवं हि हविर्धानम्। स्वयैव देवतया सीव्यति। स्वया देवतया ग्रन्थिं ग्रथ्नाति। यं प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नीयात्तं प्रथमं विवृजेदात्मनो गोपीथाय। यदन्यं पूर्वं विवृजेदमेहेनाध्वर्युः प्रमीयेत। उपरिष्टाच्छम्याः संनह्यन्ति पश्चादुपमिन्वन्ति। अधस्ताद्धि मनुष्या युञ्जन्ति पुरस्तादुपमिन्वन्ति। व्यावृत्त्यै। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानम्। पुरस्ताद्वर्षीयो भवति पश्चात्क्रधीयः। तस्मात्पुरस्तात्पुरुषस्य शिरो वर्षीयः पश्चात्क्रधीयः। वैष्णवमसि विष्णवे त्वेति संमितमभिमन्त्रयते। वैष्णवं वै हविर्धानम्। स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति। प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येणेति त्रीन्प्रक्रमान्यजमानं प्राञ्चं प्रक्रमयति। विष्णुमेवैनं भूतमिमांल्लोकान्गमयति ॥1॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवाः। दक्षिणस्य हविर्धानस्याधस्तात्परिलिखति। एतद्वा एतयोः पूर्वम्। मुखत एव यज्ञस्य प्राणान्प्रतिदधाति। तस्मान्मुखतः प्राणाः। चतुरः परिलिखति। चत्वारो हि प्राणाः। प्रादेशं-प्रादेशं परिलिखति। एतावदेतावद्धीमे ऽभि प्राणाः। असंभिन्दन्तः खनन्ति प्राणानामसंभेदाय। यत्संभिन्द्या [त्प्राणान्संभिन्द्या] त्प्रमीयेत। तान्पर एकधा संतृन्दन्ति। तस्मात्प्राणाः पर एकधा संतृण्णाः॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभिमादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। इदमहं यो नः समानो योऽसमानो ऽरातीयति तस्य ग्रीवा

यजमानं च। एकैकया मिमीते। आत्मानमेव वीर्यवन्तं करोति। तस्मादिमाः कामं न्यञ्चामः कामं प्रसारयामः। यत्सर्वाभिः सह मिमीते हस्तमात्रा वीर्यमभिसर्जमियात्। अङ्गुष्ठेन परिमिमीते। तस्मादेष एतासां वीर्याणि प्रत्युदेव सृजेत्र न्यचेत्। यन्न्यचेत्पाशं कुर्यात्। वरुण्यः पाशः। वरुण एनं ग्राहुको भवति। यदुत्सृजति वरुणपाशादेवात्मानं परिवृणक्ति। द्विर्मिमीते। द्वे हि शुक्रिये सक्नी। दश कृत्वो मिमीते। दशाक्षरा विराट्। अन्नं विराट्। विराज्येवान्नाद्ये प्रतितिष्ठति। यत्परिमितं मिमीत परिमितं जीवनं स्यात्। अपरिमितं मिमीते। तस्मादिदमपरिमितं जीवनम्। यत्परिमितं मिमीत यजमानायैव स्यात्। अपरिमितं मिमीते। तेन सदस्येभ्योऽपि क्रीयते। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्त्विति। प्रजा वा अंशवः। प्रजास्वेव प्राणं दधाति। चतुर्गृहीतमाज्यं भवति। चतुष्पादः पशवः। पशूनेवास्मै गृह्णाति। एतद्रूपा वै पशवः। यद् घृतं सरूपानेव पशूनवरुन्द्धे॥

इयं ते शुक्र तनूरिदं वर्च इति हिरण्यं घृते ऽवदधाति। एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यद् घृतम्। तेजो हिरण्यम्। प्रियामेवास्य तनूं तेजसा समनक्ति। रेतो वै हिरण्यं पशवो घृतम्। यद्धिरण्यं घृते ऽवदधाति पशुष्वेव रेतो दधाति। तस्मादनस्थकाद्रेतसो ऽस्थन्वन्तो गर्भाः प्रजायन्ते। बद्ध्वावदधाति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय। निष्टर्क्यं बध्नाति। तस्माद्योनेर्गर्भा मुच्यन्ते। यदनिष्टर्क्यं बध्नीयात योनेर्गर्भा मुच्येरन्। यजुषावदधाति यजुषोद्धरति यजुषैव युनक्ति यजुषा विमुञ्चति। तस्मात्प्राचीः प्रजा रेतो दधते ऽर्वाचीः प्रजायन्ते ॥६॥

न पूर्वस्मिन्पदमुपवपेत्। देवानां वा एष प्रदग्धाहुतीनाम्। रुद्रो ऽग्निः पशवः पदम्। रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुः स्यात्। गार्हपत्य उपवपति। गार्हपत्यं वै पशवो ऽनूपतिष्ठन्ते। एष पशूनां योनिः। स्व एवैनान्योनौ दधाति। यत्र शान्तमिवानङ्गारं स्यात्तदुपवपेच्छान्त्या अनिर्दाहाय। सोमं ते क्रीणामीति सोमस्यैवैतद्राज्ञो वीर्याणि महिमानं व्याचष्टे। न कलाशः पणते। यत्कलाशः पणते सोमस्य राज्ञो वीर्यमवतिरति यजमानस्यार्तिं व्याचष्टे क्षोधुको भवति। इयमिति ब्रूयात्तस्या आत्मा तस्या रूपं तस्याः प्रजा तस्याः पय इति। न सोमस्य राज्ञो वीर्यमवतिरति न यजमानस्यार्तिं व्याचष्टे ऽक्षोधुको भवति॥

शुक्रं ते शुक्रेण चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणामीति शुक्रमेवास्य शुक्रेण क्रीणाति चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन क्रीणाति। शक्म यत्ते गोरस्मे ते चन्द्राणीत्यात्मन्नेवास्य वीर्यं धत्ते। तेन निर्वीर्येण भूतेन विक्रीणीते। तपसस्तनूरसीति। तपसो ह्येषा तनूः। प्रजापतेर्वर्ण इति। अग्निर्वै प्रजापतेरग्निजा अजा। सहस्रपोषं पुष्यन्तीति। एषा हि पशूनां सहस्रपोषं पुष्यति। अतो ह्येव श्रीडुत्पत्स्यते हि। परमेण पशुना क्रीयस इति। परमो ह्येष पशूनाम्। अस्मे ते बन्धुरित्यात्मन्नेवास्य वीर्यं धत्ते। तया निर्वीर्यया भूतया विक्रीणीते॥

छन्दांसि वा अमुष्माल्लोकात्सोममाहरन्। तस्मा ऽन्तरधीयत। सा गायत्र्यजया ज्योतिषोदपतत्। सास्मै प्रारोचयत्। एतर्हि वा एष एतस्मा आह्रियते यर्हि क्रीयते। तम इदमन्तरा। यदजया क्रीणाति प्रैवास्मै रोचयति। मित्रो न एहि सुमित्रधा इति। वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्यैति। मित्रमेवैनं कुरुते। अपोर्णुते। यथा श्रेयांसमायन्तं पापीयान्प्रत्यपोर्णुत एवमेव तत्। इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमिति। इन्द्रो वा एतमग्र ऊरावाधत्त। ऐन्द्रो यजमानः। स्व एवैनं योनौ दधाति। स्वान भ्राजेति सोमक्रयणाननुदिशति। एते वा एतं देवा अगोपायन्नमुष्मिँल्लोके। तं गायत्र्याहरत्। नेष्टापोत्रे प्रति गोपेथम्। तस्मादेते होत्रे व्यृद्धे व्यृद्धसोमपीथे। तस्मान्न नेष्टा न पोता भवितव्यम्। तस्मादेतौ संसदन्ताविव यजतः। समेते ऽन्यायन्। एते वा एतस्य गन्धर्वाः पुष्टिं हरन्ति। तस्मात्सोमविक्रयी न पुष्यति। यदि कृच्छ्रायेतापैव हरेत्। एतेभ्यो ह्येष गन्धर्वेभ्यो ऽधि क्रीयते। उदायुषेति यथायजुः। उर्वन्तरिक्षं वीहीति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि। अपि पन्थामगस्महीति। रक्षांसि वा एतमेतर्हि सचन्ते प्रच्युतमितो ऽप्राप्तममुतः। रक्षांस्येव वृञ्जान एति। अनसाच्छ यन्ति। महिमानमेवास्याच्छ यन्ति। [अनसा वहन्ति।] तस्मादनोवाह्यमोषधयः पच्यन्ते। यच्छीर्ष्णा हरेयुः शीर्षहार्यमोषधयः पच्येरन्। अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीदेति। आदित्यो वै सोमः पृथिव्यदितिः। पृथिव्या अनः संभृतम्। स्व एवैनं योनौ दधाति। वारुणो वै सोमः। तं देवतया व्यर्धयति यन्मैत्रं करोति। यद्वारुण्या सादयति स्वयैवैनं

देवतया समर्धयति। वनेषु व्यन्तरिक्षं ततानेति वाससा पर्यणह्यति। सर्वदेवत्यं वै वासः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति। सूर्यस्य चक्षुरारुहमिति कृष्णाजिनं पुरस्तात्प्रत्यानह्यति। रक्षांसि वा एतमेतर्हि जिघांसन्ति स्वर्गं लोकमारोहन्तम्। असावादित्यो ऽपरिपरः पन्थाः। तमेवैनमभ्यारोहयति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। ॥७॥

प्रच्यवस्व भुवनस्पत इति। भूतानां ह्येष पतिः। विश्वान्यभि धामानीति। देवता वै विश्वा धामानि। देवता एवैनमुप प्रच्यावयति। श्येनो भूत्वा परापतेति। श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः। श्येनमेवैनं कृत्वा रक्षांस्यपिसृजति। यजमानस्य नो गृहे संस्कृतमिति यजमानायतनमेवैनं करोति। अथो यजमानस्यैव गृहे देवताभिः संस्कृतं कुरुते। नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षस इति। वरुणो वा एष भूत्वा यजमानमभ्येति। मित्रमेवैनं कुरुते। आसन्दीमुद्गृह्णन्ति। यथा मनुष्यराजायावस्थितायासन्दीमुद्गृह्णन्त्येवमेवैतत्। अग्निना प्रतितिष्ठते। अग्निः सर्वा देवताः। देवताभिरेवैनं प्रतितिष्ठते। अग्नीषोमौ वा एतर्हि यजमानमभि संधत्तः। यत्पशुना प्रतितिष्ठते तमेवाभ्यामपिदधाति। अग्नीषोमाभ्यां वा एष आत्मानं मेधायालभते यो दीक्षते। यत्पशुमालभत आत्मानमेव तेन निष्क्रीणाति। यस्तूपरः श्मश्रुणो द्विदेवत्यस्य रूपं लोमशः पीवा पुरुषरूपस्तमालभेत। तस्य यो ऽश्नाति पुरुषमत्ति। तस्मात्तस्य नाशितव्यम्। [क्षुध्यति वै दीक्षितः। क्षुध एष निष्क्रयण आलभ्यते। तस्य यो ऽश्नाति क्षोधुको भवति। तस्मात्तस्य ना] शि [तव्य] म्। अग्नीषोमाभ्यां वै वीर्येणेन्द्रो वृत्रमहन्। स एष वार्त्रघ्नः पशुर्विजित्या आलभ्यते। तस्मादस्याशितव्यम्। देवता वा एनं पूर्वेद्युरालभ्यमानं नाभिप्राच्यवन्त परस्माद्यज्ञक्रतोर्निररिष्याम इति। तमग्नीषोमावेवाभिप्राच्यवेतां पराचीरितरा यज्ञमभ्यत्यसृजन्त। तस्मादेषो ऽग्नीषोमीय आलभ्यते। तस्मादग्नीषोमाभ्यां ग्रहो न गृह्यते। तौ देवान्पुनरुपावर्तमानौ तयोर्यत्प्रियं धामासीत्तदपन्यदधाताम्। तद्देवा अन्वेष्टुमध्रियन्त। ते प्रबाहुगिच्छन्त आयन्। ते नवं वा इदं सृप्तमित्यभ्यवायन्। यन्नवमित्यब्रुवंस्तन्नवनीतस्य नवनीतत्वम्। यत्सृप्तमिति तत्सर्पिषः सर्पिष्ट्वम्। यदजो ऽविन्दत्तदाज्यस्याज्यत्वम्। स घृङ्ङकरोत्। तद् घृतस्य घृतत्वम्। तस्मादजो घृङ्ङ्खिक्रिच्चरति। तत्पशूनन्वाकुर्वन्। तत्पशवः समभरन्। तेनानेन पशुभ्यो ऽधिजायन्ते। तावब्रूतां वार्यं वृणावहा अयमेव नौ भागदेयमस्तु यो नौ प्रियं धामाविददिति। तस्मादेषो ऽग्नीषोमीय आलभ्यते। तस्मादस्याशितव्यम्। वार्यवृतो हि ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां सप्तत्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

विमुक्तो ऽन्यो ऽनड्वान्भवत्यविमुक्तो ऽन्यः। अथातिथ्यं निरूप्यते यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय। यदुभौ विमुक्तौ स्यातां पितृदेवत्यं हविः स्याद्विच्छिन्नो यज्ञो ऽसंततो ऽनवरुद्धः। यदुभावविमुक्तौ वार्त्रघ्नं हविः स्यात्संततो यज्ञो ऽविच्छिन्नो ऽवरुद्धः। यद्विमुक्तो ऽन्यो भवत्यविमुक्तो ऽन्यो वार्त्रघ्नं हविर्भवत्यपितृदेवत्यं संततो यज्ञो ऽविच्छिन्नो ऽवरुद्धः। पत्नीमन्वारम्भयित्वा निर्वपति। पत्नी वै पारीणह्यस्येशे। अनुमतमेव प्रसूतं देवेभ्यो हविर्निर्वपति पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय॥

यावन्तो वै पुण्यमन्वायन्ति सर्वेभ्यस्तेभ्य आतिथ्यं क्रियते। छन्दांसि ह सोमं राजानं क्रीतमन्वायन्ति। अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वेति त्रिष्टुभैतन्निर्वपति। अति [थेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेति जगत्यैतन्निर्वपति। अग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वेत्यनुष्टुभैतन्निर्वपति।] श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वेति गायत्र्यैतन्निर्वपति। गायत्री वा एतमाहरदमुष्माल्लोकात्। तस्मात्सा पुनर्याम्णी। तस्मात्पुनः प्रयुज्यते। पञ्च कृत्वो निर्वपति। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुन्द्धे। यच्छन्दोभिर्निर्वपति च्छन्दांस्येव भागधेयवन्ति करोति। विष्णवे त्वा विष्णवे त्वेति। विष्णुर्ह्येतर्हि यज्ञो यर्ह्यनिरुक्तः। तस्माद्वैष्णवः पुरोडाशो भवति। त्रिकपालः कार्यः। स हि वैष्णवः। यन्नवकपालस्तेनैव त्रिकपालः। त्रयो हि ते त्रिकपालाः। नवकपालो भवति। नव प्राणाः। प्राणैरेव यज्ञमुखे प्रैति। अथो तेज एव त्रिवृतं यज्ञमुखे ऽधिवियातयति। यत्त्रिकपालस्तेन वैष्णवो यत्षट् तेन च्छन्दसाम्। तेनोभयस्मान्नैति॥

पशुरालभ्यः सोमाय राज्ञे। मनुष्यराजायेन्वै पशुरालभ्यते। यदग्निं मन्थन्ति। आग्नेया वै पशवः। तदेवास्मै पशुरालभ्यते। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवताः सोमाय च च्छन्दोभ्यश्चागतेभ्यो जनयति। आश्ववालः प्रस्तरो

भवत्यैक्षवावुद्यावौ। अश्व इव वै प्रजापतिरासीत्। तस्येमे वाला आसन्यदश्ववाला एतौ बाहू यावुद्यावौ। तं देवा अन्वारभ्य स्वर्गं लोकमायन्। यदाश्ववालः प्रस्तरो भवत्यैक्षवावुद्यावौ प्रजापतिमेवान्वारभते। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। प्रजापतेर्वा एतानि पक्ष्माणि यदाश्ववालाः। यदाश्ववालः प्रस्तरो भवति प्रजापतेरेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते॥

रक्षांसि वै देवानां यज्ञमजिघांसन्। तानि कार्ष्मर्येणापाघ्नत। यत्कार्ष्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै। यद्वै देवा एतेनाकुर्वत तेनार्ध्नुवन्। तदस्य कर्मण्यत्वम्। कर्मण्यो वै नामैषः। यज्ञमुख एवैतेनर्ध्नोति। सप्तदश सामिधेनीर्भवन्ति। सप्तदशो वै संवत्सरः। पञ्चर्तवो द्वादश मासाः। एष वाव स संवत्सरः। संवत्सरादेवाधि यज्ञमुखं प्रतनुते॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं ग्रीवा उपसदः। यत्संस्थापये [न्मुखतो यज्ञं संस्थापये] त्। शिरो ग्रीवाभ्यो यज्ञस्यावच्छिन्द्यात्। इडान्तं भवति। शिर एव ग्रीवासु यज्ञस्य प्रतिदधाति। नवकपालो भवति। तस्मान्नवधा पुरुषस्य शिरो विस्यूतम्। उपसदो वा एतस्यानुयाजास्तानुत्तरत्रमाशीः। तस्मादननुयाजं भवति ॥१॥

देवा वा अन्योऽन्यस्मै श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त। ते चतुर्धा व्युदक्रामन्नग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैः। ते देवाः पापीयांसो ऽभवन्वसीयांसो ऽसुराः। ते ऽविदुः पापीयांसो वै त्वे भवन्ति वसीयांसो ऽसुरा इति। ते प्रियास्तन्वः समवाद्यन्त। ते ऽब्रुवन्नेषां नस्तत्र परयाद्यो नो ऽन्योऽन्यस्मै द्रुह्यादिति। तस्मात्सतनूनप्त्रिणे न द्रोग्धव्यं। यद् द्रुह्यति प्रियायै तन्वै द्रुह्यति। यत्तन्वः समवाद्यन्त तत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वांस्तानूनप्त्रमुपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। असौ वा आदित्य इन्द्रः। तस्य ते श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त। तिष्ठन्ते ऽस्य समानाः श्रैष्ठ्याय य एवं वेद। एतस्मिन्वै ते तास्तन्वः संन्यदधत। तस्माद्धि तेभ्यस्तेजिष्ठं भवति। तस्मात्सूर्यदेवत्याः सोमा भूयिष्ठा हूयन्ते। आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन्। स्रुग्भ्यां बाहुभ्याम्। सोमो वृत्रः। घ्नन्ति वा एतत्सोमं यदस्याज्येनान्तिकं जुह्वति। अंशुरंशुस्ते देव सोमाप्यायतामिति यदेवास्य घ्नन्ति यत्क्षितमयन्ति तदाप्याययन्ति। यन्ति वा एते ऽस्माल्लोकाद्ये सोममाप्याययन्ति। एष्टा रायः। प्रेषे भगायेत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठन्ति। पितरं च वा एष मातरं च हिनस्ति यो गर्भं हन्ति। अनयोर्गर्भः सोमो राजा। नमो दिवे नमः पृथिव्या इत्याभ्यामेव निह्नुते। किं दीक्षा स्पृणोतीत्याहुः किमवान्तरदीक्षेति। आत्मानमेव दीक्षया स्पृणोति प्रजामवान्तरदीक्षया। संतरां मेखलामायच्छते। कनीयो ह्यत्युर्वेति। तस्मादात्मनः प्रजा श्रेयसी। यदपरः सत्यां विसृजते तस्मात्परोवरीयः प्रजया पुत्रेण पौत्रेण प्रथते। अग्निर्वै दीक्षितः। शमयन्त्यग्निमापः। मदन्तीना मार्जयते। मदन्तीनां व्रतयत्यशान्त्यै। शान्तिर्ह्यापः। अथो तेज एवात्मन्धत्ते। समाधत्ते। न वा एतेन हुतं व्रतयितव्यं नाहुतं यो दीक्षितः। अग्निर्वै रुद्रः। अग्निनैष तन्वं विपरिधत्ते तानूनप्त्रे। या ते अग्ने रुद्रिया तनूरिति व्रतयति। स्वायामेव देवतायां हुतं व्रतयति। तेनास्य न हुतं भवति नाहुतम् ॥२॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। तेषामसुराणामिमाः पुर आसन्नयस्मयीयं रजतान्तरिक्षं हरिणी द्यौः। ते देवाः संयत्तसंयत्ते पराजयन्त। ते ऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात्पराजयामह इति। त एताः पुरः प्रत्यकुर्वत हविर्धानं दिव आग्नीध्रमन्तरिक्षात्सदः पृथिव्याः। ते ऽब्रुवन्नुपसदमुपायामोपसदा वै महापुरं जयन्तीति। त उपसदमुपायन्। तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो निरघ्नन्। तस्मादाहुरुपसदा वै महापुरं जयन्तीति। [त एभ्यो लोकेभ्यो निर्हता ऋतून्प्राविशन्।] ते षडुपायन्। तानुपसद्भिरर्तुभ्यो निरघ्नन्द्वाभ्याममुष्माल्लोकाद् द्वाभ्यामन्तरिक्षाद् द्वाभ्यां पृथिव्याः। त ऋतुभ्यो निर्हताः संवत्सरं प्राविशन्। ते द्वादशोपायन्। तानुपसद्भिरेव संवत्सरान्निरघ्नन्चतसृभिरमुष्माल्लोकाच्चतसृभिरन्तरिक्षाच्चतसृभिः पृथिव्याः। ते संवत्सरान्निर्हता अहोरात्रे प्राविशन्। ते यत्सायमुपायंस्तेनैनान्रात्र्या अनुदन्त यत्प्रातस्तेनाह्नः। तस्माद्गौः सायं प्रातस्तनमाप्यायते प्रातः सायंस्तनम्। तानुपसद्भिरेभ्यो लोकेभ्यो नुदमाना आयन्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वानुपसदमुपैति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति।

न द्वादशाग्निष्टोमस्य कुर्यात्। अशान्ता निर्मृग्युः। न तिस्रो ऽहीनस्य। उपरिष्टाद्यज्ञक्रतुर्गरीयानभिधाविद्ग्रीवा

निःश्रृणायादार्तिमार्छेत्। द्वादशाहीनस्य कुर्याच्छान्त्या अनिर्मार्गाय। तिस्रो अग्निष्टोमस्य प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय। देवा वा असुर्यानिमाँल्लोकान्नान्ववैतुमधृष्णुवन्। तानग्निना [मुखेनान्ववायन्। यदग्निमन्त्युपसदां प्रतीकानि भवन्ति यथा क्षेत्रपतिः क्षेत्रे ऽन्ववनयत्येवमेवैतत्। अग्निना] मुखेनेमाँल्लोकानभिजयन्तो यन्ति। यो ह वै देवान्साध्यान्वेद सिध्यत्यस्मै। इमे वाव लोका देवाः साध्याः। सिद्धं ह्यस्मै सिद्धमस्मै सिद्धममुष्मै। य एवं वेद सिध्यत्यस्मै ॥ ३ ॥

इषुं वा एतां देवाः समस्कुर्वन्यदुपसदोऽग्निं शृङ्गं सोमं शल्यं विष्णुं तेजनम्। ते ऽब्रुवन्यो न ओजिष्ठः स इमां विसृजत्विति। ते रुद्रमब्रुवंस्त्वं वै न ओजिष्ठो ऽसि त्वमिमां विसृजेति। सो ऽब्रवीद्वार्यं वृणा अहमेव पशूनामीशा इति। ते ऽमन्यन्त यदयं पशूनामीशिष्यते सर्वान्निर्णेष्यतीति। ते ऽब्रुवन्सप्ताहानीशासै न पराचीनमिति। तस्मात्सप्ताहानि रुद्रः पशूनामीशे। रक्षांसि पराचीनं घ्नन्ति। तां व्यसृजत्। तया पुरः समरुजत्। यत्समरुजत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्। विसृष्टिमेव भ्रातृव्याय विसृजति य एवं विद्वानुपसदमुपैति। न पुनरपक्रामेत्। यतरो वै संयत्तयोः पुनरपक्रामति परा स जयते। समेष एतर्हि यतते य उपसदमुपैति। सकृदेव पराङतिक्रम्याश्रावयति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै। न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजाः। पुरो वा एते यज्ञस्य यत्प्रयाजानुयाजाः। यत्प्रयाजानुयाजान्कुर्यात्पुरो यज्ञस्य कुर्याद् दुरतिव्यथं स्यादतीक्ष्णामिषुं कुर्यात्। चतुर्व्रतो भवति। चत्वारि हीषोः पर्णानि। त्रिव्रतो भवति। त्रिषन्धिर्हीषुः शृङ्गं शल्यस्तेजनम्। द्विव्रतो भवति। द्विषन्धिर्हीषुः शल्यश्च तेजनं च एकव्रतो भवति। एका ह्येवेषुः। इषुमेवैतां संस्कृत्य तां श्वो भ्रातृव्याय विसृजति। अथो व्रतमेवाप्नोति॥

ग्रीवा वा एता यज्ञस्य यदुपसदः। न प्रयाजा भवन्ति नानुयाजाः। तस्माद् ग्रीवाः प्रति पुरुषस्याणिष्ठम्। ताः सर्वीर्याः प्रयुज्यन्ते। तस्माद् ग्रीवा अणिष्ठाः सतीर्वीर्यावत्तमाः। तिस्र उपसदो भवन्ति। त्रय इमे लोकाः। तस्मात्पुरुषस्य त्रय स्कन्दाः। अतिषक्ताभिर्यजति। तस्माद् ग्रीवा अतिषक्ताः। अथो अयातयाम्नी। अयातयाम्न्यैव यजति। सच्छन्दसो याज्यानुवाक्याः कुर्यात्। यद्विच्छन्दसः स्युरपचितो होतारं हन्युः। भिद्वतीः पुरां भित्त्यै ॥ ४ ॥

देवाश्च वा असुराश्च यज्ञे संयत्ता आसन्। स यज्ञो ऽविभेद्यतरे ऽभिजेष्यन्ति ते मा विमथिष्यन्त इति। स न्यलयत। तं देवा अभिजित्यान्वैच्छन्। ते प्रबाहुगिच्छन्त आयन्। तमिन्द्र उपर्युपर्यत्यक्रामत्। सो ऽब्रवीत्को मायमुपर्युपर्यत्यक्रमीदिति। अहमेष कृच्छ्रे हन्तेति। अथ कस्त्वमिति। अहमेष कृच्छ्रादाहर्तेति। एमूषो नामायं वराह इत्यब्रवीदेकविंशत्याः पुरामश्ममयीनां पारे यत्किंचासुराणां वामं वसु तेन तिष्ठति तं जहि य एष कृच्छ्रे हन्तावोचथा इति। [तमिन्द्रो दाल्भ्यभिविसृज्य पराभिनत्। सो ऽब्रवीदेष हतः। तमाहर य एष कृच्छ्रादाहर्तावोचथा इति।] तं विष्णुरपासङ्ग आहरत्। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञेनैवैषां तद्यज्ञमवृञ्जत पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियम्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञेनैवैतद्यज्ञं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते पशुभिः पशूनिन्द्रियेणेन्द्रियम्। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। देवयजनमिच्छन्ति। यज्ञमेवेच्छन्ति। यद्विन्दन्ति यज्ञमेव विन्दन्ति॥

यदुदीचीनं प्राचीनं प्रवणं स्यात्तस्मिन्यजेत यज्ञकामः। एवमिव हि स यज्ञो ऽशयत्। यज्ञस्यानुवित्त्यै। यत्समं प्रतिष्ठितं तस्मिन्यजेत गतश्रीः। प्रतिष्ठा वा एतस्मा एष्टव्या यो गतश्रीः। एतद् भूम्याः प्रतिष्ठितं यत्समम्। प्रतिष्ठामेवास्मै विन्दति गच्छति प्रतिष्ठाम्। त्र्युन्नते यजेत भ्रातृव्यवान्। त्र्युन्नतेन वै विष्णुरिमाँल्लोकानुदजयत्। स एभ्यो लोकेभ्यो ऽसुरान्प्राणुदत। इमानेव लोकानुज्जयत्येभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुदते। यस्यैकधा मध्य उन्नतं स्यात्तस्मिन्यजेत स्वर्गकामः। अतो वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। यत्रौषधयो बह्वीरन्या अन्या इव स्युस्तस्मिन्यजेत पशुकामः। ओषधयो वै पशवः। भूमानमेव पशूनामुपैति। यत्रौषधयः कृच्छ्रशः पर्यायशः पर्येयुस्तस्मिन्यजेत पशुकामः। अतो वै देवाः पशूनुदसृजन्त। पशूनेवोत्सृजते। यदृक्षमलोमकं तस्मिन्याजयेद्यं द्विष्यात्। व्यृद्धं वा एतदोषधिभिर्यदृक्षमलोमकम्। ओषधयः पशवः। पशुभिरेवैनं व्यर्धयति। यत्समया देवयजनं पन्था विधावेत्तस्मिन्याजयेद्यं कामयेत व्येनं प्रजया पशुभिश्छिनद्यामिति। एतद्वै विच्छिन्नं नाम देवयजनम्। व्येनं प्रजया पशुभिश्छिनत्ति। यदन्तरापथ देवयजनं च पन्था विधावेत्तस्मिन्याजयेद्यं कामयेत नैनमपरो यज्ञ उपनमेदिति। एतद्वै

परिवर्त्म नाम देवयजनम्। पर्येणमपरो यज्ञो वृणक्ति। यत्रापः सर्वतः समवद्रवेयुस्तस्मिन्यजेतान्नकामः। दिग्भ्यो वा एतस्मा अन्नं हरन्ति यस्मै हरन्ति। आपो ऽन्नम्। सर्वाभ्य एव दिग्भ्यो ऽन्नाद्यमवरुन्द्धे। तदेतत्समापं नाम देवयजनम्। नीपतममिव [र्त] समानानां भवति ॥५॥

यत्रापः प्राचीराहवनीयात्प्रतीचीर्गार्हपत्याद्व्यवद्रवेयुस्तस्मिन्याजयेद्यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमांसेरन्। पाप्मना वा एषो ऽनुषक्तो यमुदके वा पात्रे वा विवाहे वा मीमांसन्ते। पाप्मनैवैनं व्यावर्तयति। यत्रापो दक्षिणा परिप्लूय पश्चात्प्राची रमेरंस्तस्मिन्यजेत बुभूषन्। आपो वै सर्वा देवताः। एतद्देवताभिर्जुष्टं देवयजनम्। यदेवं देवताभिरेव जुष्टे देवयजने यजते भवत्येव। यत्रापो दक्षिणत उदीची रमेरंस्तस्मिन्यजेत सजातकामः। आपो वै सर्वा देवताः। देवताः सजाताः। सजातानामेवैनं प्रार्धे करोति। कृत्रिमे यजेत बुभूषन्। आत्मा वै देवयजनम्। करोत्येवैनम्। यत्राग्निं चापश्च पश्यन्प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्तस्मिन्यजेत यः कामयेत यज्ञो मापर उपनमेदिति। अग्निः सर्वा देवता आपो यज्ञः। उपैनमपरो यज्ञो नमति। देवताश्च हि यज्ञं च पश्यन्यजते। यत्राग्निमपः सूर्यं पश्यन्प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्तस्मिन्यजेत ब्रह्मवर्चसकामः। एतद्वै त्रिशुक्रियं नाम देवयजनम्। ब्रह्मवर्चसी भवति। यत्पुरस्तादाप्तं स्याद्देवयजनं तस्मिन्यजेत भ्रातृव्यवान्। भ्रातृव्याय वा एष लोक उच्छिष्यते यत्पुरस्ताद्देवयजनस्योच्छिष्यते। एतावन्तमेवास्मै लोकमुच्छिंषति। अलोकमेनं करोति। यो ह वै विद्वान्देवयजनं यजत ऋध्नोति। अग्निर्वाव देवयजनम्। अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते। यत्रैव क्वचाग्निमाधाय यजेत तेनैवर्ध्नोति। ब्राह्मणा वाव देवयजनम्। यत्र ब्राह्मणा बहवः संराधयेयुस्तस्मिन्यजेत। तेनैवर्ध्नोति ॥६॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामष्टात्रिंशत्तमो ऽध्यायः॥

वेदिं विमिमीते। त्रिंशता पश्चात्प्रक्रमैर्मिमीते षट्त्रिंशता प्राचीं चतुर्विंशत्या पुरस्तात्। विराजैवैनां पश्चात्परिमिमीते बृहत्या प्राचीं गायत्र्या पुरस्तात्। छन्दोभिरेवैनां सर्वतः परिमिमीते। विराज्येव प्रतितिष्ठति यद्विराजमभिसंपादयति। स्फ्येन स्तम्बयजुर्हरति। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधाभवत्स्फ्यस्तृतीयं यूपस्तृतीयं रथस्तृतीयम्। वज्रो वै स्फ्यः। एतावती पृथिवी यावती वेदिः। वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भजति। त्रिर्हरति। त्रय इमे लोकाः। एभ्य एवैनं लोकेभ्यो निर्भजति। तूष्णीं चतुर्थं हरति। अपरिमितादेवैनं निर्भजति। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा तमनयाभिन्यदधात्। यत्तूष्णीं चतुर्थं हरत्यनयैव भ्रातृव्यमभिनिदधाति। मूलं छिनत्ति। भ्रातृव्यस्यैव मूलं छिनत्ति। उद्धन्ति। तस्माच्छिशिर ओषधयः पराभवन्ति। बर्हिः स्तृणाति। तस्माद्वसन्ते पुनराभवन्ति। अपाररुमदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहीति। भ्रातृव्यो वा अररुः। भ्रातृव्यमेव पृथिव्या निर्भजति। द्रप्सस्ते द्यां मा स्कनिति। यो वा अस्या रसः स द्रप्सः। तमिमाः प्रजा उपजीवन्ति। तमेवास्यां यच्छति तस्यास्कन्दाय। अररुर्द्यां मा पप्तदिति। भ्रातृव्यो वा अररुः। भ्रातृव्यमेव स्वर्गाल्लोकात्प्रतिनुदते॥

विषाद्वै नामासुर आसीत्। स पृथिवीं विषेणावालिम्पत्। तस्या न [कश्चनाश्नात्। य आ] श्नात्सो ऽरुप्यत्। यदुद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यं यदयज्ञियं तदपहन्ति। अपि मूलमनुखनेदाविद्धस्य निष्कृत्यै। अधो दूरं खनेत्। अधो वा अस्या वीर्यम्। वीर्यस्याभिक्लृप्त्यै। तस्मात्सुकृष्टे व्रीहियवाः पच्यन्ते। तदाहुरुत्तरार्धं वा अस्या वीर्यम्। तदिमाः प्रजा उपजीवन्ति। तस्मान्नातिखेयेति। आ प्रतिष्ठायाः खनेद्यजमानस्य प्रतिष्ठित्यै। दक्षिणत उद्वनं कुर्यात्। देवयजनस्य रूपम्। रक्षसामपहत्यै। पुरीषवतीं कुर्यात्। पशवो वै पुरीषम्। पशूनेवावरुन्द्धे ॥ १ ॥ वज्रेणैव पृथिव्या भ्रातृव्यं निर्भज्य

स्फ्येन वेदिं परिगृह्णाति। वज्रो वै स्फ्यः। एतावती पृथिवी यावती वेदिः। छन्दोभिरात्मने परिगृह्णाति। वसवस्त्वा परिगृह्णन्तु गायत्रेण छन्दसेति दक्षिणतः। तेजो वै ब्रह्म गायत्री। तेजसैवैनां दक्षिणतः परिगृह्णाति। रुद्रास्त्वा परिगृह्णन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसेति पश्चात्। ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुप्। ओजसैवैनां पश्चात्परिगृह्णाति। आदित्यास्त्वा परिगृह्णन्तु जागतेन छन्दसेत्युत्तरात्। जागता वै पशवः। उत्तरादायतनाः पशवः। पशुभ्य एवैतदायतनं करोति। पशूनां धृत्यै। अथो तेजसा चैवौजसा चोभयतः

पशून्परिगृह्णाति। पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्निति। यद्वा अस्यास्तेजो यज्ञियं तदद्श्चन्द्रमसि। तदेवावरुन्द्धे॥

इध्माबर्हिषी प्रोक्षति। शुष्काणि वा एतान्यमेध्यान्यारण्यादाहृतानि। आपो मेध्या यज्ञियाः। यदद्भिः प्रोक्षति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति। वेदिं प्रोक्षति। मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोति। अथो यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। बर्हिः स्तृणाति। प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदिः। प्रजा एव पृथिव्यां प्रतिष्ठापयति। सर्वां वेदिमनुस्तृणाति। तस्मात्पृथिवीं सर्वामन्वोषधयः। बहुलं स्तृणीयात्। अक्षोधुको यजमानो भवत्यनग्नंभावुको ऽध्वर्युः। बर्हिषि प्रस्तरं सादयति। यजमानो वै प्रस्तरः प्रजा बर्हिः। यजमानमेव प्रजास्वधिसादयति। उत्तरं सादयति। उत्तरो हि यजमानो ऽयजमानात्। व्यावृत्तं सादयति। व्यावृत्तो हि यजमानो ऽयजमानेन। अक्त्वा प्रस्तरं प्रहरति। यजमानो वै प्रस्तरः। हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। नात्यग्रं प्रहरेत्। यदत्यग्रं प्रहरेद् वृकणकेशीर्जनयः स्युरत्यासारिणीर्नशुकाः। अग्रमग्र आदीपयति। अग्रेणैवाग्रं समर्धयति। ऋजुं प्रहरेत्स्वर्गकामस्य। ऋजुमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। यं द्विष्यात्तस्य हूर्छयेत्। स्वर्गादेवैनं लोकादधूर्छयति। न्यञ्चं प्रहरेद् वृष्टिकामस्य। या वा इत आहुतिरुदयते सामुतो वृष्टिं च्यावयति। अनयैवाहुत्या दिवो वृष्टिं [नि] नयति। ऊर्ध्वं प्रहरेद्यदि कामयेत पुमानस्य पुत्रो जायेतेति। ऊर्ध्व एव हि पुमान्। प्रथयित्वा प्रहरेद्यदि कामयेत स्त्री जायेतेति। एवमेव हि स्त्री प्रथितेव। यजमानो वै प्रस्तरः। हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। एति वा एषो ऽस्माल्लोकाद्यत्प्रस्तरं प्रहरति। यत्तृणमुपगृह्णात्यस्मिन्नेवैनं लोके यच्छति। अनुप्रहरति। यदेवास्या उद्घ्नन्तः क्रूरं कुर्वन्ति यद्विच्छिन्दन्तस्तच्छमयति। अगा३नग्नी३दित्यगन्स्वर्गं लोकमित्येवैतदाह। श्रावय श्रौषडिति स्वर्गमेवैनं लोकं गतं श्रावयति ॥ २ ॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। तान्यदस्यास्तेजो यज्ञियमासीत्तत्सिंहीरूपमिव महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठत्। ते ऽविदुर्यतरान्वा इयमुपावर्त्स्यति त इदं भविष्यन्तीति। तां देवा उपामन्त्रयन्त। साब्रवीद्वार्यं वृणे मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयं सर्वान्कामान्व्यश्नवाथेति। सा देवानुपावर्तत। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्न्युप्यते यश्चैवं विद्वान्निवपति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। दश पश्चात्तिरश्ची पदानि भवन्ति दशोभयतः प्राच्यपरिमिता पुरस्ताद्विराजा संमिता। यद्वा असुराणां वित्तमासीत्तद्देवा वेद्याविन्दन्त। तद्वेद्या वेदित्वम्। यद्वेद्यं तदुत्तरवेद्या। तदुत्तरवेद्या उत्तरवेदित्वम्। यस्यैवं विदुषो वेदिश्च क्रियत उत्तरवेदिश्च न्युप्यते वित्तं चैव वेद्यं च भ्रातृव्यस्य विन्दते। प्रजापतेर्वै नासिका शीर्यत। सोत्तरवेदिरभवत्। यज्ञः प्रजापतिः। यदुत्तरवेदिं निवपति प्रजापतेरेव नासिकां मुखतः प्रतिदधाति। चत्वारि वा एतस्या नामानि नासिका कशारिः सिंह्युत्तरवेदिः। तप्तायन्यसीति। तप्ता ह्येनानैत्। वित्तायन्यसीति। वित्ता ह्येनानैत्। अवतान्मा नाथितमिति। नाथितान्ह्येनानावत्। अवताद्व्यथितमिति। व्यथितान्ह्येनानावत्। अग्ने अङ्गिरो यो ऽस्यां पृथिव्यामसि॥ यो द्वितीयस्यां यस्तृतीयस्यामिति यदेवास्यैषु लोकेषु श्लिष्टं यत्र्यक्तं तदवरुन्द्धे। विदेदग्निर्नभो नामेति। यद्वा अग्नेर्वामं वसु तन्नभः। तेनेमां पृथिवीं प्राविशज्ज्ञानुदघ्नमधः। तस्माज्जानुदघ्नं खेयम्। तस्यैव वामस्य वसोरनुवित्त्यै। सिंह्यसि महिष्यसीति। सिंहीरूपमिव महिषीरूपमिव भूत्वान्तरातिष्ठत्। देवेभ्यः प्रथस्वेति प्रथयत्येवैनाम्। देवेभ्यः कल्पस्वेति कल्पयत्येवैनाम्। देवेभ्यः शुन्धस्वेति शुन्धत्येवैनाम्। देवेभ्यः शुम्भस्वेति शुम्भत्येवैनाम्। विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वित्यन्तान्कल्पयति। देवपात्रं वा उत्तरवेदिः। देवपात्रेणैव देवतास्तर्पयति। अथो देवताभ्य एव देवपात्रं निवेदयति ॥ ३ ॥

यतीन्वै सालावृकेया आदन्। त आदीयमानाः संमृश्यमाना उत्तरवेदिं समुदक्रामन्। तान्नाभ्यधृष्णुवन्। तेषामेको ऽस्मयत। तत एनानभ्यधृष्णुवन्। तेषामेकैकमावर्हमादन्। तस्मान्न मोघहासिना भव्यम्। यन्निःसारयति यदेवास्या अभिमृतममेध्यं यदयज्ञियं तन्निःसारयति। प्रोक्षति। एतावती वा इयं पृथिव्यासीद्यावत्युत्तरवेदिः। तां समन्तं रक्षांसि संप्राकम्पन्त। तानि देवा विनुद्यैताभिरेव देवताभिः समन्तं परिन्यदधुः। यत्प्रोक्षति। एतद्देवत्या वा इमा दिशः। रक्षांस्येव विनुद्यैताभिरेव देवताभिः समन्तमात्मानं परिनिदधाति। गोपीथाय। एतद्वा एतां पूर्वामग्नेराहुतिरश्नुते यदव्याघारयति। अथादो ऽब्रवीन्मामेव पूर्वामग्नेराहुतिरश्नवाता अथ मया यूयं सर्वान्कामान्व्यश्नवाथेति। अथ वा एतेषां

तर्ह्यसुराः सपत्ना आसन्। ते ऽकामयन्त सपत्नान्सहेमहीति। सिंह्यसि सपत्नसाही स्वाहेति। सपत्नांस्तेनासहन्त। ते ऽकामयन्त पशून्विन्देमहीति। सिंह्यसि रायस्पोषवनिः स्वाहेति। पशूंस्तेनाविन्दन्त। ते ऽकामयन्त प्रजां विन्देमहीति। सिंह्यसि सुप्रजावनिः स्वाहेति। प्रजां तेनाविन्दन्त। ते ऽकामयन्तादित्याः स्यामेति। सिंह्यस्यादित्यवनिः स्वाहेति। आदित्यास्तेनाभवन्। तस्मादिमा आदित्याः प्रजाः। ते ऽकामयन्त यज्ञियाः स्यामेति। सिंह्यस्यावह देवान्देवायते यजमानाय स्वाहेति। यज्ञियास्तेनाभवन्। ते ऽकामयन्त स्वर्गं लोकमियामेति। भूतेभ्यस्त्वेति। देवा वै भूताः। स्वर्गमेव तेन लोकमायन्। यस्यैवं विदुष उत्तरवेदिर्व्याघार्यते यश्चैवं विद्वान्व्याघारयति सवनिवैतया कामान्व्यश्नोति। इमे वै लोका अविधृता आसन्। ते संप्राकम्पन्त। तान्देवा एतैर्यजुर्भिर्व्यष्टभ्नुवन्। यदेतैः परिधीन्परिदधात्येषां लोकानां विधृत्यै। अग्निर्वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। स यां प्रथमां प्रावसत्तां पशुष्ववसद् वृष्णेरन्तराशृङ्गम्। तस्मादूर्णास्तुका भवति। यां द्वितीयां तां वनस्पतिषु पीतुदारौ। तस्मात्पीतुदारुर्भवति। यां तृतीयां तामोषधिषु सुगन्धितेजने। तस्मात्सुगन्धितेजनो भवति। यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यत्र्यक्तं तदेतैः संभरति। स पुनरुपावर्तमानः शरीरमधूनुत। तस्य यन्मांसमासीत्तद्गुल्गुल्वभवद्यदस्थि स पीतुदारुर्यानि लोमानि स सुगन्धितेजनः। तस्मात्सुगन्धितेजनो भवति। यदेते संभारा भवन्ति यदेवास्यात्र श्लिष्टं यत्र्यक्तं तदेतैः संभरति। अग्नेः कुलायमस्यग्नेः पुरीषमसीति। कुलायमिव ह्येतत्पुरीषमिव। यज्ञः प्रत्यष्ठादिति यज्ञस्यैव प्रतिष्ठित्यै ॥ ४ ॥

चत्वारो वै देवानां होतार आसन्भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिर्भूतः। तेषां त्रयो होत्रेण प्रामीयन्त। अथो यद्भूत उदशिष्यत स प्रमयादबिभेत्। स न्यलयत। स समुद्रं प्राविशत्। स यत्समुद्रे भस्माकुरुत स एष कर्दमः। तं मत्स्यः प्राब्रवीत्। तमशपदभिगन्ता त्वा हतादिति। तस्मान्मत्स्यमभिगन्ता हन्ति। शप्तो हि सः। तत उद्द्रुत्य नडं प्राविशत्। तस्मान्नडो दग्धः क्रूर इव बर्बरः। तमश्वः श्वेतो ऽवमृशन्नन्वविन्दत्। तं प्रत्योषत्। तस्मात्स प्रत्युष्टमुखः। सो ऽक्रन्दत्। सा या वागासीत्स सुश्लोकः शकुनिरभवत्। तस्माद्य स नष्टैषमभ्यवक्रन्दति विन्दत्येव। तं देवा अनुविद्यानयन्निदं नो होता भविष्यतीति। स प्रमयादबिभेत्। तं भ्रातरः प्रमीता अब्रुवन्वयं त इतो वर्म भविष्यामो देवेषु णो भागधेयमिच्छेति। ते ऽब्रुवन्यत्किंच हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्देत्तदेषां भागधेयमिति। एते वाव ते परिधयः। यदि हविर्भूतं बहिष्परिधि स्कन्देद् भूपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहेत्यनुमन्त्रयेत। एते वै देवा स्कन्नभागाः। य एव देवा स्कन्नभागास्तानेतद्गमयति। यज्ञो वा एतेषां मध्यमो यजमानो दक्षिणार्ध्यो भ्रातृव्य उत्तरार्ध्यः। स्थविष्ठं मध्यमं कुर्याद्वर्षिष्ठं दक्षिणार्ध्यं क्रधिष्ठमुत्तरार्ध्यम्। स्थविष्ठं प्रथमं परिदधाति। प्रथमो हि यज्ञः। वर्षिष्ठं दक्षिणार्ध्यम्। यथा यजमानो दक्षिणतो यज्ञ उपसीदत्येवं तत्। पश्चेवोत्तरार्ध्यम्। पश्चेव हि भ्रातृव्यः। यज्ञेनैवैतद्यजमानं प्रतरं करोति। यज्ञेन भ्रातृव्यमपनुदते। अक्त्वा दक्षिणार्ध्यं प्रहरति। मुखत एव यजमानं प्रीणाति। अथो हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। उपवपत्युत्तरार्ध्यम्। भ्रातृव्यमेव तदुपवपति। अथ ह स्माहायलः काफोडिः किमु स यजेत यो यज्ञस्य स्कन्नेन न वसीयान् [व] स्यादिति। यत्रस्कन्देत्तदपो निनीय भूपतये स्वाहेति प्राक् प्रादेशेन मिमीत भुवनपतये स्वाहेति दक्षिणा भूतानां पतये स्वाहेति प्रत्यक्। जनं वा एतद्यज्ञस्यैति यत्स्कन्दति। इयं वाव जनः। यो वा इमामेति न स पुनरागच्छति। जनमेवैतस्य यज्ञस्य यां कामयत आशिषं तामवरुन्द्धे। प्रादेशेन मिमीते। एतावद्वै पुरुषे मिमीते। दिशो वै यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति। दिग्भ्य एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे। प्रादेशेन मिमीते। वीर्यं यावदस्य प्राणा अभि। यावदेवास्मिन्वीर्यं तेनैनत्संभरति। अपो निनयति। म्रियते वा एतद्यज्ञस्य यत्स्कन्दति। अद्भिस्तान्तमभिषिञ्चन्ति। आपः सर्वा देवताः। देवता एवैनत्प्रवेशयति। यदि प्रातःसवने स्कन्देद्देवाञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। यदि मध्यन्दिन ओषधीर्जनमगन्यज्ञ- [स्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत।] यदि तृतीयसवने पितॄञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। यदि तिरोह्नयेषु यदि नक्तं द्यावापृथिवी जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य यज्ञस्य द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत। एता वै देवता यज्ञस्य स्कन्नस्याशीर्गच्छति। गन्धर्वाञ्जनमगन्यज्ञस्तस्य मेष्टस्य [यज्ञस्य] द्रविणेहागम्या इत्यनुमन्त्रयेत।

एता एव देवता यथादेवतं प्रत्युपसृत्य यां कामयते यज्ञस्याशिषं तामवरुन्द्धे। यस्यैवं विदुषो यज्ञस्य स्कन्नमनुमन्त्रयन्ते यश्चैवं विद्वाननुमन्त्रयते वसीयान्भवति ॥ ५ ॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायामेकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

हविर्धाने प्रणेनेक्ति। मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति। ग्रन्थीन्विवृञ्जन्ति। देवग्रन्थीनेव ग्रन्थिष्यन्तो मनुष्यग्रन्थीन्विवृञ्जन्ति। हविर्वै हविर्धाने। स्तीर्णे बर्हिषि हविरासादयन्ति। तस्मात्स्तीर्णे बर्हिषि हविर्धाने प्रवर्तयन्ति। पत्न्युपानक्ति। पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति। प्रजननाय। त्रिः प्राचीनमुपानक्ति। असंख्यातं हि तिरश्चीनं मनुष्या उपाञ्जन्ति। व्यावृत्त्यै। यजुषोपानक्ति। अयजुषा हि मनुष्या उपाञ्जन्ति। व्यावृत्त्यै। दक्षिणत उपानक्ति। दक्षिणतो ह्येते उदीची मनुष्यलोकमुपावर्तेते। मानुषमेवैनयोरुत्तरं करोति। यदुत्तरादुपाञ्ज्यान्नान्यतरं चन लोकमुपावर्तेयाताम्। स्वर्गाय वा एते लोकाय प्रवर्तेते यद्धविर्धाने॥

युञ्जते मन इति सावित्र्या जुहोति। सवितृप्रसूते एवैने स्वर्गं लोकं गमयति। हविर्वै हविर्धाने। न हविरनभिघृतं मेधमश्नुते। यदभ्यनक्त्यभ्येवैने घारयति। मेध्यत्वाय। शुष्को वा एष निर्ऋतिगृहीतो यदक्षो नभ्याभ्यामुभयतो बद्ध उपधिभ्यां संदष्टः। यदुपानक्ति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। घोषो वै नामासुर आसीत्। स वनस्पतीन्प्राविशत्। तं देवा गृहीत्वोभयतो ऽवघ्नन्। यत्क्षवेदेदसुर्या वाग्यज्ञमववदेद्रक्षांसि यज्ञमन्ववेत्य हन्युः। अनुगृह्णन्तो यन्ति रक्षसामनन्ववायाय। वर्त्मना वै यज्ञं रक्षांस्यन्ववेत्य जिघांसन्ति। वैष्णव्या वर्त्मञ्जुहोति। विष्णुर्वै यज्ञः। विष्णुनैव यज्ञाद्रक्षांस्यपहन्ति। व्यृद्धा वा एषाहुतिर्यामनग्नौ जुहोति। यद्धिरण्यमुपास्य जुहोत्यग्निमत्येव जुहोति। समृद्ध्यै। स्वर्गं वा एते लोकं प्रेतो यद्धविर्धाने। गायत्र्या दक्षिणस्य वर्त्मञ्जुहोति। अस्यामेवैने आक्रमयति। त्रिष्टुभोत्तरस्य। अन्तरिक्ष एवैने आक्रमयति। आहवनीयं गमयति। स्वर्गमेवैने लोकं गमयति। स्वर्गो हि लोक आहवनीयः। त्रीन्पुरस्तात्प्रक्रामानुच्छिंषति। त्रय इमे लोकाः। इमानेवास्मै लोकानुच्छिंषति॥

दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या इति दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीमुपमिनोति। विष्णुर्वै यज्ञः। मुखत एव यज्ञस्याशिषमवरुन्द्धे। तां परुषिपरुष्याशासान एति। विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचमित्युत्तरस्य। वैष्णवं वै हविर्धानम्। स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति। विष्णोः पृष्ठमसीति च्छदिरुपरिष्टादभिनिदधाति। इदमेव तेन करोति यदिदमुत्तरार्धं शीर्ष्णः। विष्णो रराटमसीति पुरस्ताद्रराटमेव तेन करोति। विष्णोः श्नप्त्रे स्थ इत्यभितः। श्नप्त्रे एव तेन करोति। तिर्यञ्चं पुरस्ताद्वंशं विषीव्यन्ति। तस्मात्तिरश्ची पुरुषस्य भ्रुवौ। विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवो ऽसीति। वैष्णवं हि हविर्धानम्। स्वयैव देवतया सीव्यति। स्वया देवतया ग्रन्थिं ग्रथ्नाति। यं प्रथमं ग्रन्थिं ग्रथ्नीयात्तं प्रथमं विवृजेदात्मनो गोपीथाय। यदन्यं पूर्वं विवृजेदमेहेनाध्वर्युः प्रमीयेत। उपरिष्टाच्छम्याः संनह्यन्ति पश्चादुपमिन्वन्ति। अधस्ताद्धि मनुष्या युञ्जन्ति पुरस्तादुपमिन्वन्ति। व्यावृत्त्यै। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानम्। पुरस्ताद्वर्षीयो भवति पश्चात्क्रधीयः। तस्मात्पुरस्तात्पुरुषस्य शिरो वर्षीयः पश्चात्क्रधीयः। वैष्णवमसि विष्णवे त्वेति संमितमभिमन्त्रयते। वैष्णवं वै हविर्धानम्। स्वयैवैनद्देवतया समर्धयति। प्र तद्विष्णु स्तवते वीर्येणेति त्रीन्प्रक्रमान्यजमानं प्राञ्चं प्रक्रमयति। विष्णुमेवैनं भूतमिमांल्लोकान्गमयति ॥1॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवाः। दक्षिणस्य हविर्धानस्याधस्तात्परिलिखति। एतद्वा एतयोः पूर्वम्। मुखत एव यज्ञस्य प्राणान्प्रतिदधाति। तस्मान्मुखतः प्राणाः। चतुरः परिलिखति। चत्वारो हि प्राणाः। प्रादेशं-प्रादेशं परिलिखति। एतावदेतावद्धीमे ऽभि प्राणाः। असंभिन्दन्तः खनन्ति प्राणानामसंभेदाय। यत्संभिन्द्या [त्प्राणान्संभिन्द्या] त्प्रमीयेत। तान्पर एकधा संतृन्दन्ति। तस्मात्प्राणाः पर एकधा संतृण्णाः॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभ्रिमादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। इदमहं यो नः समानो यो ऽसमानो ऽरातीयति तस्य ग्रीवा

अपिकृन्तामीति। प्राणा उपरवाः। प्राणेभ्य एवैनमन्तरेति ताजक्प्रधन्वति। बृहन्नसि बृहद्ग्रावा बृहतीमिन्द्राय वाचं वदेति। बृहतीं ह्येष इन्द्राय वाचं वदति। रक्षोहणो वलगहनो वैष्णवीमिति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवीमिति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैनां देवतया समर्धयति। देवाश्च वा असुराश्च व्यस्पर्धन्त। ते ऽसुरा देवानां प्राणेषु वलगान्न्यखनन्। तान्बाहुमात्रे ऽन्वविन्दन्। तस्माद्बाहुमात्रः खेयः। प्राणानामनुवित्त्यै। इदमहं तान्वलगानुद्वपामि यान्नः समानो यानसमानो निचखानेति। यदेवास्यात्र शत्रुं यदभिचरितं तदनुविद्योद्वपति। तस्मादेते भिषज्याः। तस्मादामयाविनमनुमर्शयन्ति। सम्राडसि स्वराडसीति साम्राज्यमेवैनैति। गायत्रेण च्छन्दसावबाढो यो द्विष्मः। त्रैष्टुभेन जागतेनेति। एतावन्ति वै च्छन्दांसि। छन्दोभिरेव भ्रातृव्यमवबाधते। किमत्र भद्रं तन्नौ सहेत्याशिषमेवाशास्ते। निरस्तो वलगो ऽवबाढो दुरस्युरिति यथायजुः। रक्षोघ्नो वलगघ्नः प्रोक्षामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवानिति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैनान्देवतया समर्धयति। रक्षोघ्नो वलगघ्नो ऽवसिञ्चामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्यै। अथो यदेवैषां खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। यद्वैष्णवानिति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैनान्देवतया समर्धयति। रक्षोघ्नो वलगघ्नो ऽवस्तृणामि वैष्णवानिति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवानिति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैनान्देवतया समर्धयति। अथावसिञ्चत्यव च स्तृणाति। तस्मात्प्राणा अन्तरतो लोमशा उदन्वन्तः। रक्षोहणौ वलगहनौ प्रोक्षामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवी इति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैने देवतया समर्धयति। रूक्षे वा एते तष्टे अमेध्ये। आपो मेध्या यज्ञियाः। यदद्भिः प्रोक्षति मेध्ये एवैने यज्ञिये करोति। हनू वा एते यज्ञस्य यदधिषवणे। अवितृण्णे भवतः। तस्माद्धनू अवितृण्णे। पुरस्ताद्वरीयसी भवतः पश्चाद्वरीयसी। एवमेव हि हनू। द्व्यङ्गुलमन्तराधिषवणे भवति। तस्मादियमन्त [रा हनू] रालाकेव। रक्षोहणौ वलगहनावुपदधामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवी इति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैने देवतया समर्धयति। रक्षोहणौ वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी इति रक्षसामपहत्यै। यद्वैष्णवी इति। यज्ञो वै विष्णुः। स्वयैवैने देवतया समर्धयति। पर्यूहति। तस्माद्धनू अन्ते अमुषिते बर्स्वैरोष्ठाभ्यां सृक्वाभ्यां श्मश्रुभिः। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं प्राणा उपरवा हनू अधिषवणे दन्ता ग्रावाणो जिह्वाधिषवणं चर्म मूर्धा द्रोणकलशः। यज्ञः प्रजापतिः। मुखतो वा इदं प्रजापतेः सोमं निष्पिबन्ति। तस्मादूर्जं जग्धमिव प्सातमिव। एवमिव हि दद्भिः प्सातं भवति। यो विराजं यज्ञमुखे दोह्यां वेद दुह एनाम्। इयं वाव विराट्। तस्या एतदूधो यदधिषवणे स्तना उपरवा वत्सा ग्रावाणस्त्वगधिषवणं चर्म। ऋत्विजो दुहन्ति। य एवं विराजं यज्ञमुखे दोह्यां वेद दुह एनाम् ॥२॥

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानं ग्रीवा आग्नीध्रमुदरं सद ऊर्गुदुम्बरः। यत्सदस्यौदुम्बरीं मिनोत्यूर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च। तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्जं जयति। अस्मै वै लोकायौदुम्बरी मीयते ऽमुष्मै यूपः। तस्मादितः पराञ्चं यूपं प्रोक्षत्यमुतो ऽर्वाचीमौदुम्बरीम्। अनयोर्लोकयोर्विजित्यै। ऊर्ग्वा उदुम्बरः। यदमुतो ऽर्वाचीमौदुम्बरीं प्रोक्षत्यमुत एवार्वाचीमूर्जं च्यावयति। अस्मिन्नेव लोक ऊर्जं न्यनक्ति। प्रजापतेर्वा उद्गातौदुम्बरी। उद्गायति। प्रजास्वेवोर्जं न्यनक्ति।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभिमादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना इति शुन्धत्येवैनाम्। अथो यदेवास्य खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। यवमसीत्यवसिञ्चति। अन्नं वै यवा ऊर्गुदुम्बरः। अन्न एवोर्जं दधाति। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामीति। यद्वा एतामबर्हिषं मिनुयुर्गर्तमित्स्यात्। अस्या उत्तरार्ध ओषधयः। अस्या एवैनामुत्तरार्धे मिनोति। अगर्तमितमेवाकः। उद्दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्यामिति दृंहत्येवैनाम्। नितानस्त्वा मारुतो निहन्त्विति। मनो वै नितानः प्राणा मारुताः। स्वयैवैनां देवतयावहरति। नितानो ह स्म वै मारुतो देवानामौदुम्बरीं मिनोति। तेनैवैनां मिनोति। मित्रावरुणयोर्ध्रुवेण धर्मणेति। मित्रेण वा इमाः प्रजाः शान्ता वरुणेन विधृताः। क्लृप्त्या एव विधृत्यै। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनिमित्याशिषमेवाशास्ते। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहेत्याशिषमेवास्मा आशिष्टां दृंहति। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणाथामिति घृतेन द्यावापृथिवी व्युनत्ति। तस्मादोषधयो ऽनभ्यक्ता रेभन्ते। घृतेनौदुम्बरीमभिजुहोति। तेजो वै

घृतमन्नमुदुम्बरः। अन्न एव तेजो दधाति। आन्तमन्ववस्रावयति। आन्तमेव वनस्पतिषु चौषधिषु च रसं दधाति। विश्वजनस्य च्छायासीति। विश्वजनस्य ह्येषा छाया। गोत्राद्गोत्राद्ध्येतत्संप्रसर्पन्ति। औदुम्बरीमभि च्छदींषि संमुखानि कुर्यात्। दैवीर्वा एता विशो यदोषधयः। ओषधयश्छदींषि। यजमान औदुम्बरी। यजमानमेव प्रजा अभि संमुखाः करोति। छदिर्भवति। अथान्तर्वर्तः। तस्मात्पुरुषस्य मांसम्। अथ पर्शुः। उदरं वा एतद्यज्ञस्य यत्सदः। तिर्यङ् मिनोति। तस्मात्पुरुषे ऽशितं ध्रियते। पुरुषेण वै यज्ञः संमितो यज्ञेन पुरुषः। यत्सद उभयतश्छिद्रं। तस्मात्पुरुष उभयतश्छिद्रः। विषीव्यन्ति। तस्मात्पुरुषो ऽन्तरतो विष्यूतः। इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवो ऽसीति। ऐन्द्रं वै सदः। स्वयैव देवतया सीव्यति। स्वया देवतया ग्रन्थिं ग्रथ्नाति। ऐन्द्रमसीन्द्राय त्वेति संमितमभिमन्त्रयते। ऐन्द्रं वै सदः। स्वयैवैनं देवतया समर्धयति॥

नव च्छदींषि कुर्याद्यद्यग्निष्टोमः स्यात्। तेजसा त्रिवृता संमितम्। पञ्चदश यद्युक्थ्यः। पञ्चदशेन संमितम्। वज्रः पञ्चदशः। वज्रेण संमितम्। सप्तदश यद्यतिरात्रः। सप्तदशेन संमितम्। प्रजापतिः सप्तदशः। प्रजापतिना संमितम्। एकविंशतिं प्रतिष्ठाकामस्य कुर्यात्। एकविंशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठित्यै। अथो यज्ञक्रतूनामेव व्यावृत्त्यै। या अन्तत स्थूणास्ताः ऋधिष्ठाः कुर्याद्यदि कामयेत वर्षेदिति। नीचैरिव हि द्यौर्वर्षिष्यन्ती भवति। ता वर्षिष्ठाः कुर्याद्यदि कामयेत न वर्षेदिति। उच्चैरिव हि द्यौरवर्षिष्यन्ती भवति। यानि दक्षिणानि च्छदींषि तान्युत्तराणि कुर्यात्। यजमानलोके वा एतानि यानि दक्षिणानि भ्रातृव्यलोक उत्तराणि। उत्तरमेव यजमानमयजमानाद् भ्रातृव्यात्करोति। उत्तरो हि यजमानो ऽयजमानात् ॥३॥

धिष्ण्या न्युप्यन्ते ऽनयोर्लोकयोर्विधृत्यै। न्यन्य उप्यन्ते नान्ये। ये न्युप्यन्त इमं तैर्लोकं दाधार। ये न न्युप्यन्ते ऽमुं तैः। पराङ् ह्यसौ लोको ऽनिरुक्तः। अग्निर्वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। स पृथिवीं प्राविशत्। तं जानुदघ्ने ऽन्वविन्दन्। तस्माज्जानुदघ्नं खेयम्। अनुविद्यैवैतान्निवपति। चात्वालान्निवपति। एषा वा अग्नेर्योनिः। स्वादेवैनान्योनेर्निवपति। यो वेद्यास्तीर्थं [वेद न सदस्यामार्तिमार्छति। प्राचीनमाग्नीध्रात्प्रतीचीनं चात्वालात्तेन संचरेत्। एतद्वै वेद्यास्तीर्थम्। य] एवं वेद न सदस्यामार्तिमार्छति। न प्रत्यङ् सदो ऽतीयादध्वर्युः। उदरं वा एतद्यज्ञस्य यत्सदः। उदरं यज्ञस्य संकर्षेत्प्रमीयेत। जनो वा एषो ऽध्वर्योर्जनमेति जनता जनतामभीत्य जिनाति। यद्यतीयादैन्द्र्या संचरेत्। ऐन्द्रं वै सदः। स्वयैव देवतया संचरति। न प्राङ् हविर्धानमतीयादध्वर्युः। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धानम्। शिरो यज्ञस्य संकर्षेत्प्रमीयेत। यद्यतीयाद्वैष्णव्या संचरेत्। वैष्णवं वै हविर्धानम्। स्वयैव देवतया संचरति। तदाहुः क्षैत्रपत्ययैव संचरेदिति। इयं क्षेत्रस्य पतिः। तेनास्या नैति॥

अमुष्मिन्वै लोके सोम आसीत्। तं धिष्ण्या अगोपायन्। तं गायत्र्याहरत्। नेष्टापोत्रोः प्रति गोपीथम्। तस्मादेते होत्रे व्यृद्धे व्यृद्धसोमपीथे। तस्मान्न नेष्ट्रा न पोत्रा भवितव्यम्। तस्मादेतौ संसचन्ताविव यजतः। तमेते ऽन्वायन्द्वितीयानि नामानि कृत्वा। तस्माद्ब्राह्मणो द्विनामार्धुकः। तं पर्यविशन्भागधेयमिच्छमानाः। तेभ्य एतद्भागधेयमकल्पयत्। यद्धिष्ण्यान्व्याघारयति स्वेनैवैनान्भागधेयेन समर्धयति। तेषां ये नेदिष्ठं पर्यविशंस्ते सोमपीथं प्राप्नुवन्नाहवनीय आग्नीध्रो होत्रीयः। तस्मादेत उपर्युपरि वषट्कुर्वन्तं न हिंसन्ति। प्रीता हि। न प्रत्यङ् धिष्ण्यानतिसर्पेदध्वर्युः। प्राणा वै धिष्ण्याः। प्राणान्संकर्षेत्प्रमीयेत। न प्रत्यङ् होतारम्। नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद्धोता। ऊर्ध्वं वै नाभ्याः प्राणो ऽवाचीनमपानः। अपाने प्राणं दध्यात्प्रमीयेत॥

दक्षिणतो वै देवानां रक्षांसि यज्ञमभ्यजयन्। तमाग्नीध्रात्पुनरपाजयन्। यदाग्नीध्राद्धिष्ण्यान्विहरन्ति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै। जम्भो वै नामासुर आसीत्। स देवानां यज्ञमगिरत्। स आग्नीध्रमपि नागिरत्। यदाग्नीध्राद्धिष्ण्यान्विहरन्ति तेन यज्ञो जीवस्तेन मेध्यः। अङ्गारान्पूर्वयोः सवनयोर्विहरन्ति। शुक्रवती हि ते। शलाकान्दीप्यमानांस्तृतीयसवने। तेन तच्छुक्रवत्। सर्वाण्यस्य सवनानि शुक्रवन्ति भवन्ति य एवं वेद॥

प्राचीभिर्वा आहुतिभिर्देवा अन्यानसुरान्प्राणुदन्त प्रतीचीभिरन्यान्। प्रत्यञ्चो धिष्ण्या व्याघार्यन्ते प्राचीरन्या आहुतयो हूयन्ते भ्रातृव्यस्य वितृत्त्यै। अग्नेर्वा एता वैश्वानरस्य प्रियास्तन्वो यद्धिष्ण्याः। यद्धिष्ण्यान्व्याघारयति ता

एवैतत्समुद्दर्शयति। अग्निर्वा एष वैश्वानर उपावसृज्यते यदग्निष्टोमः। स ईश्वरो ऽशान्तो यजमानं च सदस्यांश्चाभ्युषः। प्रोर्णुवीत यजमान आत्मनो ऽनतिदाहाय। तृतीयसवने वै यजमानशिर कुरुते। यत्प्रोर्णुवीत ताभ्य आत्मानमन्तर्दध्यात्। नाभि वै पितरो ऽभिसंजानते। आविर्नाभिं कुर्वीत। अभीव कर्णौ प्रोर्णुवीत। नाशीर्भ्य आत्मानमन्तर्दधाति। आनन्त्येन पितरः। घ्नन्ति वा एतत्सोमं यदभिषुण्वन्ति। यावन्तः प्रसृताः स्युस्ते सर्वे ऽग्निष्टोममुपगायेयुः। अन्तो वा अग्निष्टोमः। अन्तमेवैनमागत्य समीरयन्ति। इन्द्रियाय वै कं ब्राह्मणः सोमं पिबति। यदुपगायेदिन्द्रियं निःस्वरेत्। तस्मान्नोपगेयम्॥

संवत्सरो वा अग्निष्टोमः। द्वादशाग्निष्टोमस्य स्तोत्राणि। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरं प्रजा अनुप्रजायन्ते। यदग्निष्टोमस्य स्तोत्रे ऽप उपप्रवर्तयति प्रजननाय। यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनम्। यत्पत्न्याप उपप्रवर्तयति मिथुन एव रेतः प्रसिञ्चति। उद्गात्रा पत्नीं संख्यापयति। वृषा वा उद्गाता। पत्न्यः प्रजाः प्रजायन्ते। वृषाणमेवास्यामपिसृजति प्रजननाय। ऊरुभ्यां प्रवर्तयति। ऊरुभ्यां हि प्रजाः प्रजायन्ते। प्रजननाय। अन्तरत इव नु देवता। अन्तरतो ह्येषा वीर्यं करोति। दुरमुष्युदुहेत। अहीतमुख्यस्या जायते। न दक्षिणा प्रवर्तयेत्। यद्दक्षिणा प्रवर्तयेत्पितृभ्यः प्रजा निधूवेत्। उदीचीः प्राचीः प्रवर्तयति। एषा वै मनुष्याणां दिक्। मनुष्यलोक एवैना उपप्रजनयति ॥४॥

उपसद्भिर्वै देवा इमाँल्लोकानभ्यजयन्। तान्वैसर्जनैरभिव्यसृजन्त यथा ग्रामः संग्रामादिसृज्यते। तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वम्। प्राञ्चं सोमं प्रणयन्ति। प्राचीं पत्नीमुदानयन्ति। इमानेवैतल्लोकानभिप्रयन्ति। अग्निना वै मुखेन देवा इमाँल्लोकानभ्यजयन्गार्हपत्येनेममाग्नीध्रेणान्तरिक्षमाहवनीयेनामुम्। यद्गार्हपत्य इमं तेन लोकमभिजयति यदाग्नीध्रे ऽन्तरिक्षं तेन यदाहवनीये ऽमुं तेन। स्वर्गाय वा एष लोकाय प्रह्रियते। द्वाभ्यां गार्हपत्ये जुहोति। द्विपाद्यजमानः। अन्यामेवैनमाक्रमयति। यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवैनमाक्रमयति। यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति। स्वर्गो हि लोक आहवनीयः। रक्षांसि वा एतमेतर्हि जिघांसन्ति प्रच्युतमितो ऽप्राप्तमदः॥

त्वं सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति। सौमीरिमाः प्रजाः। प्रजाभ्य एवैनं प्राह। जुषाणो अप्तुरित्यप्तुमेवैनं कृत्वेमामतिनयति। यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोत्यग्निमेवैनं कृत्वान्तरिक्षमतिनयति। यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति। स्वर्गो हि लोक आहवनीयः। सर्वेभ्यो वा एष आह्रियते मनुष्येभ्यः पितृभ्यो देवेभ्यः। त्वं सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति। सौमीरिमाः प्रजाः। प्रजाभ्य एवैनं प्राह। जुषाणो अप्तुरिति पितृभ्य एवैनं प्राह। यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोति। अग्निः सर्वा देवताः। देवताभ्य एवैनं प्राह। वैष्णवो वै सोमः। तं देवतया व्यर्धयति यदन्यामन्यां देवतां करोति। यद्वैष्णव्याहवनीये जुहोति स्वयैवैनं देवतया समर्धयति। सर्वान्वा एतद्वरुणो गृह्णाति यद्दीक्षिते मनुष्यान्पितॄन्देवान्। त्वं सोमेति सौम्या गार्हपत्ये जुहोति। सौमीरिमाः प्रजाः। प्रजा एव वरुणपाशान्मुञ्चति। [जुषाणो अप्तुरिति पितॄनेव वरुणपाशान्मुञ्चति। यदाग्नेय्याग्नीध्रे जुहोति। अग्निः सर्वा देवताः। देवता एव वरुणपाशान्मुञ्चति।] सो ऽनृण इमाँल्लोकानभिविसृजमान एति। तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वम्। तस्मादाहुरपि वा एष देवतापितृभ्य आरण्येभ्यः पशुभ्यो विसृजत इति॥

आग्नीध्रे ग्रावकलशान्सादयति। प्राञ्चं सोमं प्रणयति। एतेषां एतं घ्नन्ति। हनूभिरेवैनं व्यावर्तयति। न हन्वोरभिपद्यते य एवं वेद। न पुरस्तात्प्रतिसंधेत। रुद्रो वा अग्निः पशवो ऽशवः। रुद्राय पशूनपिदध्यादपशुः स्यात्। पश्चात्प्राङ् प्रपद्यते। श्रीर्वै सोमः। पश्चादेव प्राङ् श्रियमाप्नोति। तस्मात्पश्चात्प्राचीः प्रजाः क्षेत्राण्यभिजयन्तीर्यन्ति। पुरस्ताद्गतश्रीः प्रपद्येत। पुरस्तादेव प्रत्यङ् श्रियमाप्नोति। इममेव लोकमभि प्रतितिष्ठति। पश्चात्सोमं प्रपादयन्ति पुरस्ताद्यजमानः प्रपद्यते। उभयत एवास्मै श्रियं परिगृह्णाति॥

उर्वन्तरिक्षं वीहीति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि। अदित्यास्त्वगस्यदित्याः सदने सीदेति। आदित्यो वै सोमः पृथिव्यदितिः। पृथिव्या अनः संभृतम्। स्व एवैनं योनौ दधाति। देव सवितरेष ते सोम इति। सविता वै देवानामधिपतिः। मनुष्या एनमतः प्राञ्चं गोपायन्ति। तस्मा एवैनं संप्रयच्छति गोपीथाय। एतत्त्वं देव सोम देवानुपागा इति। देवो ह्येष देवानुपैति। इदमहं मनुष्यान्सह प्रजया सह रायस्पोषेणेति सहैव प्रजया पशुभिरिम

लोकमुपावर्तते। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्य इति। नमो हि देवानां स्वधा पितृणाम्। निर्द्रुहो निर्वरुणस्य पाशान्मुक्षीयेति द्रुह एवैनं वरुणपाशान्मुञ्चति। स्वरभिव्यख्यमिति। इमे वै लोकाः स्वः। इमानेव लोकानभिविपश्यति। अग्ने व्रतपा इति। अग्निना वा एष तन्वं विपरिधत्ते तानूनप्त्रे। सैनमीश्वरा हिंसितोः। अग्निनैवैतत्तन्वं यथायथं कुरुते। एतर्हि वा एष देवैस्तन्वं विसृजते। तद्वैसर्जनानां वैसर्जनत्वम्। यात्मनस्तां पूर्वां ब्रूयात्। यदितरस्य पूर्वां ब्रूयादीश्वरो निकमः। यं द्विष्यात्तस्योत्तरां ब्रूयात्। अग्निर्वै रुद्रः। रुद्रायैवैनमपिदधाति ताजक्प्रधन्वति ॥५॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां चत्वारिंशत्तमो ऽध्यायः॥

षष्ठमष्टकम्

...[जुष्टं विष्णव इति।] यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञायैवैनं जुष्टं करोति। देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति। घृतं वै देवानां मधु। मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। श्रोषधे त्रायस्वैनमिति वर्मैव करोति। स्वधिते मैनं हिंसीरिति। वज्रो वै स्वधितिः। अहिंसायै। यः प्रथमः शकलः परापतति तमाहरेत्। एतं वा एतस्य परापतन्तं तेजो ऽनुपरापतति। सतेजसमेवैनं मिनोति। यो दक्षिणावृत्त तं वृश्चेत्। गर्त्यः सः। य उदङ्ङावृत्तो न तम्। स्थूण्यः सः। य ऊर्ध्वशाख ऊर्ध्वशकलस्तं वृश्चेत्। एष वै यूप्यः। य एव यूप्यस्तं वृश्चति। यो ऽशुष्काग्रो बहुशाखो बहुपर्णस्तं वृश्चेत्। श्रोषधयो वै वनस्पतयः पशव श्रोषधयः। पशुभिरेवैनं समर्धयति। यः शुष्काग्रोऽशाखो ऽपर्णस्तं वृश्चेद्यं द्विष्यात्तस्य। श्रोषधयो वै वनस्पतयः पशव श्रोषधयः। पशुभिरेवैनं व्यर्धयति। य उदङ् प्राङुपनतस्तं वृश्चेत्। एष वै मेधमभ्युपनतः। य एव मेधमभ्युपनतस्तं वृश्चति। द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या संभवेति। वज्रो वै यूपः। एषां लोकानामहिंसायै। उदञ्चं प्राञ्चं प्रश्रयति। एष वै देवलोकः। देवलोकमेवैनमुपप्रश्रयति। वनस्पते शतवल्शो विरोहेत्याव्रश्चने जुहोति। वनस्पतिष्वेव भूमानं दधाति। तस्मादेत आव्रश्चनाद् भूयांसो जायन्ते। सहस्रवल्शा वि वयं रुहेमेत्याशिषमेवाशास्ते। यं त्वायं स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगायेति। महते ह्येष सौभाग्याय प्रणीयते यद्यज्ञाय प्रणीयते। य आरोहस्तं वृश्चेद्यं द्विष्यात्तस्य। अयोनिर्वा एषो ऽनायतनो य आरोहः। अयोनिमेवैनमनायतनं करोति। यः स्वारुस्तं वृश्चेत्। एष वै योनिमानायतनवान्यः स्वारुत्। योनिमन्तमेवायतनवन्तं यजमानं करोति। गुल्फदघ्ने वृश्चेत्। परुर्हि गुल्फः। यज्ञपरुषा संमितम्। जानुदघ्ने वृश्चेत्। परुर्हि जानु। यज्ञपरुषा संमितम्। यावत्यनक्षसङ्गः स्यात्तावति वृश्चेत्। यज्ञपरुषा संमितम्। पशूनामप्रतिनोदाय ॥१॥

पशुसंमितो व्रष्टव्यो दशारत्निः। दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशः। अष्टाश्रयो द्वे परुषी आत्मैकादशः। पशुसंमितमेव वृश्चति। स्तोमसंमितो व्रष्टव्यो नवारत्निः। तेजसा त्रिवृता संमितः। पञ्चदशारत्निर्व्रष्टव्यः पञ्चदशेन संमितः। वज्रः पञ्चदशः। वज्रेण संमितः। सप्तदशारत्निर्व्रष्टव्यः सप्तदशेन संमितः। प्रजापतिः सप्तदशः। प्रजापतिना संमितः। एकविंशत्यरत्निर्व्रष्टव्य एकविंशेन संमितः। असावादित्य एकविंशः। आदित्येन संमितः। सप्तविंशत्यरत्निर्व्रष्टव्यः सप्तविंशेन संमितः। त्रिणवा इमे लोकाः। एभिर्लोकैः संमितः। त्रयस्त्रिंशदरत्निर्व्रष्टव्यस्त्रयस्त्रिंशेन संमितः। त्रयस्त्रिंशद्देवताः। देवताभिः संमितः। छन्दःसंमितो व्रष्टव्यः। पञ्चारत्निः पङ्क्त्या छन्दसा संमितः। षडरत्निरतिच्छन्दसा संमितः। सप्तारत्निः शक्वर्या संमितः। अष्टारत्निर्गायत्र्या संमितः। नवारत्निर्बृहत्या संमितः। दशारत्निर्विराजा संमितः। एकादशारत्निस्त्रिष्टुभा संमितः। द्वादशारत्निर्जगत्या संमितः। त्रयोदशारत्निः साध्यैर्देवैः संमितः। बृहन्नपरिमितो व्रष्टव्यः। यूपाद्वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। य एव कश्च पुरुषाद्वर्षीयान्स्यात्तं वृश्चेत्। एषा वै यूपस्य मात्रा। यावानेव यूपस्तं वृश्चति। चषालं भवति। चषालाद्वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। इन्द्रो वै वृत्राय वज्रं प्राहरत्। तस्य यावदालब्धमासीत्तत्प्राशीर्यत। तच्चषालं प्रत्यवृञ्जन्। यच्चषालं भव [ति द्राढम्न एवालब्ध्या अ] शिथिलत्वाय। इयद्भवति। एतावद्धि तदाहुर्लब्धमासीत्। न यूपस्यातिरेचयेत्। यद्वै यदतिरेचयेदर्बुदिनोर्जनयः स्युः। यावदुत्तममङ्गुलिकाण्डं तावदतिरेचयेत्। यज्ञपरुषा संमितम्। पशूनामप्रतिनोदाय। यद्वै

यज्ञस्यातिरिच्यते साध्यांस्तद्देवानभ्यतिरिच्यते। यज्ञस्यैतदतिरिच्यते यद्यूपस्यातिरिच्यते। साध्यानेव तेन देवान्प्रीणाति। अन्यस्य वृक्षस्य चषालं कुर्याद्यस्य च यूपः स्याद्यं कामयेत भ्रातृव्यमस्मै जनयेयमिति। भ्रातृव्या वा एतस्यान्ये वनस्पतयः। भ्रातृव्यमेवास्य लोकमभ्यारोहयत्यलोकमेनं करोति ॥२॥

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेति यूपं प्रोक्षति। एभ्य एवैनं लोकेभ्यः प्रोक्षति। अस्मै वै लोकायौदुम्बरी मीयते ऽमुष्मै यूपः। तस्मादितः पराञ्चं यूपं प्रोक्षत्यमुतो ऽर्वाचीमौदुम्बरीमनयोर्लोकयोर्विधृत्यै। देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इत्यभिमादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते। इदमहं रक्षसो ग्रीवा अपिकृन्तामीति। भ्रातृव्यो वै रक्षः। भ्रातृव्यस्यैव ग्रीवा अपिकृन्तति। शुन्धन्तां लोकाः पितृषदना इति शुन्धत्येवैनम्। अथो यदेवास्य खनन्तः क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। यवमतीरवसिञ्चति। अन्नं वै यवास्तेजो यूपः। अन्न एव तेजो दधाति। अन्नं वै यवा वज्रो यूपः। अन्न एव वज्रं दधाति। पितृषदनं त्वा लोकमास्तृणामीति। यद्वा एतमपबर्हिषं मिनुयुर्गर्तमित्स्यात्। अस्या उत्तरार्धमोषधयः। अस्या एवैनमुत्तरार्धे मिनोत्यगर्तमितमेवाकः। स्वावेशो ऽस्यग्रेगा नेतृणामिति यूपशकलमवास्यति। ऋक्षो वा एष तष्टो ऽमेध्यो ऽपशव्यः। सत्वचसमेवैनं मिनोति। घृतेन द्यावापृथिवी आपृणातामिति घृतेनैव द्यावापृथिवी व्युनत्ति। तस्मादोषधयो ऽनभ्यक्ता रेभन्ते। देवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति। घृतं वै देवानां मधु। मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। सुपिप्पला श्रोषधीस्कृधीति चषालं प्रतिमुञ्चति। श्रोषधीरेव फलं ग्राहयति। तस्मादेता अकृष्टपच्याः पच्यन्ते। घृतेनाग्निष्ठामनक्ति। तेजो वै घृतं यजमानो ऽग्निष्ठाः। तेजसैव यजमानं समर्धयति। आन्तं संततमनक्ति तेजसः संतत्या अविच्छेदाय। यं द्विष्यात्तस्य विच्छिन्द्यात्। तेजसैवैनं व्यर्धयति। सर्वतो ऽनक्ति। सर्वत एवैनं तेजसा समर्धयति। द्यामग्रेणास्तम्भीरान्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमपरेणादृंहीरिति। वज्रो वै यूपः। एषां लोकानां विधृत्यै। ता वां वास्तूनीति वैष्णव्यावहरति। वैष्णवो वै यूपः। स्वयैवैनं देवतयावहरति। विष्णोः कर्माणि पश्यतेति वैष्णव्या कल्पयति। वैष्णवो वै यूपः। स्वयैवैनं देवतया कल्पयति। अग्निं प्रत्यग्निष्ठां कुर्यात्। तेजो वा अग्निर्यजमानो ऽग्निष्ठाः। तेजसैव यजमानं समर्धयति। यं द्विष्यात्तस्येत्थं वेत्थं वा नमयेत्। तेजसैवैनं व्यर्धयति। ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिमित्याशिषमेवाशास्ते। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहेत्याशिषमेवास्मा आशिष्टां दृंहति। तद्विष्णोः परमं पदमिति वैष्णव्योदीक्षते। वैष्णवो वै यूपः। स्वयैवैनं देवतयोदीक्षते ॥३॥

अर्धं वेद्यां यूपावटस्य कुर्यादर्धं बहिर्वेदि परिमितस्य चापरिमितस्य चावरुद्ध्यै। नाविरूपरस्य कुर्यात्। यदाविरूपरस्य कुर्याद्गर्तमित्स्यात्। नापरिवीतमवसृजेत्। यदपरिवीतमवसृजेत्क्षोधुको यजमानो भवति नग्नंभावुको ऽध्वर्युः। ऊर्ग्वै रशना। मध्यं प्रतिपरिव्ययति। ऊर्जमेव मध्यतो दधाति यजमाने च प्रजासु च। तस्मान्मध्यतः प्रजा ऊर्गूर्जयति। अरशनं मिनुयाद्यं द्विष्यात्तस्य। ऊर्ग्वै रशना। ऊर्जैवैनं व्यर्धयति। ऊर्ध्वामुदूहेदवाचीं यं द्विष्यात्तस्य। ऊर्ग्वै रशना। ऊर्जैवैनं व्यर्धयति। उपरि दूरे परिव्ययेद्यदि कामयेत वर्षेदिति। अद्भ्यो वा एष श्रोषधिभ्यो वर्षति यर्हि वर्षति। श्रोषधयो रशना। श्रोषधीरेव [नेदीयो वृष्ट्याः करोति ताजक्प्रवर्षति। अधो दूरे परिव्ययेद्यदि कामयेत न वर्षेदिति। अद्भ्यो वा एष श्रोषधिभ्यो वर्षति यर्हि वर्षति। श्रोषधयो रशना। श्रोषधीरेव] दवीयो वृष्ट्याः करोति चिरं प्रवर्षति। परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तामिति। दैवीर्वा एता विशो यदोषधयः। श्रोषधयो रशना। यजमानो यूपः। यजमानमेव प्रजा अभिसंमुखीः करोति। परीमं रायो मनुष्यमिति। पशवो वै रायः। पशुभिरेवैनं समर्धयति। अन्तरिक्षस्य सानूपेषेति स्वरुमुपोहति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्ह्युपरीवास्माल्लोकादधो ऽमुष्मात्। स्वयैवैनं देवतयोपोहति। पितॄणामुपरं मनुष्याणामूर्ध्वमुपरादोषधीनां रशनां प्रति विश्वेषां देवानामूर्ध्वं रशनाया इन्द्रस्य चषालं साध्यानामतिरिक्तम्। एवमिव वा एषु लोकेषु पितरो मनुष्या देवाः। सर्वदेवत्यो यूपः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति। अग्रेरर्धादुपनतं यूपस्य कुर्याद्बहिष्टान्निर्णतम्। अग्रेर्वा अर्धादुपनतेन यजमानाय लोकं करोति बहिष्टान्निर्णतेन भ्रातृव्यं यज्ञान्निर्णुदते। यज्ञेन वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। ते ऽकामयन्तेमं नो लोकमन्यो नानुप्रजानीयादिति। ते दिशो ऽयोपयन्। यद्दिशो ऽयोपयंस्तद्यूपस्य यूपत्वम्। ते ऽमुं लोकं गत्वा व्यतृष्यन्। ते

ऽविदुरमुतःप्रदानाद्वा इहाजगामेति। त एतं पुनः प्रायच्छन्। तेनार्ध्नुवन्। एष वै यज्ञस्य तन्तुरेष उत्तमपदी। यथा वै मयूखात्तन्तुं तायत एवमतो यज्ञस्तायते। तं ह स्म वा एतं पुरावृश्चैव जुह्वति। यत्स्वरुं जुहोत्येतस्यैव निष्क्रीत्यै। सो ऽस्य निष्क्रीतः प्रीतः स्वगाकृत इमांल्लोकानुपतिष्ठते। द्यां ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्षमर्चिः पृथिवीं भस्म स्वाहेतीमानेवैनं लोकान्गमयति ॥४॥

साध्या वै नाम देवा आसन्पूर्वे देवेभ्यः। तेषां न किंचन स्वमासीत्। ते ऽग्निं मथित्वाग्नौ जुह्वत आसत। तस्माद्धव्यो पशवो ऽजायन्त। तस्मादाग्नेयाः सर्वे पशव उच्यन्ते। यदग्निं मथित्वा पशुमालभते प्रजातमेवैनमालभते। अथो यथापूर्वमेव करोति। तदाहुः पशुमालभ्याग्निर्मथितव्य इति। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवताः पशवः। यद्वपया प्रातःसवने चरन्ति तेन आलब्धाय जनयति। पशुना सर्वाणि सवनानि पशुमन्ति वीर्यावन्ति कर्तव्यानि। यद्वपया प्रातःसवने चरन्ति तेन तत्पशुमद्वीर्यावत्। यत्पुरोडाशेन मध्यन्दिने चरन्ति तेन तत्पशुमद्वीर्यावत्। यदितरेण पशुना तृतीयसवने चरन्ति तेन तत्पशुमद्वीर्यावत्। सर्वाण्यस्य सवनानि पशुमन्ति वीर्यावन्ति भवन्ति य एवं वेद। सर्वाभ्यो वा एष दिग्भ्य ऋद्ध्या आलभ्यते यत्पशुः। यत्प्राचीनं प्रीणन्ति देवलोकं तेनाभिजयति। यदुदञ्चमाप्रीतं नयन्ति मनुष्यलोकं तेनाभिजयति। यत्प्रतीचीनं समवत्तं हरन्त्येतां तेन दिशमभिजयति। यद्दक्षिणतः परिहृत्यावद्यन्ति पितृलोकं तेनाभिजयति। यदूर्ध्वास्तिष्ठञ्जुहोति स्वर्गं तेन लोकमभिजयति॥

पशुना वै देवाः स्वर्गं लोकमायन्। ते शरीरमधून्वत। स्वर्गो वपा। यद्वपया प्रातःसवने चरन्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। यदितरेण पशुना तृतीयसवने शरीरस्य निष्क्रीत्यै। यार्द्रा बहुपर्णा तयोपाकुर्यात्। श्रोषधयो वै वनस्पतयः पशव श्रोषधयः। पशुभिरेवैनं समर्धयति। या शुष्कापर्णा तयोपाकुर्याद्यं द्विष्यात्तस्य। श्रोषधयो वै वनस्पतयः पशव श्रोषधयः। पशुभिरेवैनं व्यर्धयति। घोरो वा अन्यो वज्रः शिवो ऽन्यः। यः शुष्कः स घोरो य आर्द्रः स शिवः। य एव शिवस्तेनोपाकरोति। बर्हिषोपाकरोति। पशवो वै बर्हिः। पशुभिरेवास्मै पशूनुपाकरोति। उपावीरसीत्युप ह्येषो ऽवति। पशूनेवास्मा उपाकरोति। वह्नीनुशिज इति। ऋत्विजो वै वह्नय उशिजः। ऋत्विग्भ्य एवैनानुपाकरोति। उप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरिति। दैवीर्वा एता विशो यत्पशवः। पशूनेवास्मा उपाकरोति। बृहस्पते धारया वसूनीति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। ब्रह्मणैवैनाः प्रजनयति। देव त्वष्टर्वसु रण्वेति। त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता। सो ऽस्मै रूपाणि विकरोति। रेवती रमध्वमिति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः पशवो रेवतीः। ब्रह्मणैवास्मै पशून्यच्छति। अग्नेर्जनित्रमसीति। अग्नेर्ह्येतज्जनित्रम्। वृषणौ स्थ इति। न ह्यमुष्काः प्रजा प्रजायन्ते। प्रजननाय। उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असीति। माता वा उर्वश्यायुर्गर्भः पिता पुरूरवा रेतो घृतम्। घृतेनारणी यत्समनक्ति मिथुन एव रेतो दधाति। गायत्रं छन्दो ऽनुप्रजायस्व। त्रैष्टुभम्॥ जागतमिति। एतावन्ति वै छन्दांसि। छन्दोभी रेतो हितं प्रजायते। छन्दोभिरेवास्मै रेतो हितं प्रजनयति। दक्षिणा वर्तयति। एषा वा आदित्यस्य प्रजनिष्णुस्तनूः। तामेवानुप्रजायते। अग्नौ वा एतर्हि यजमानमभिसंधत्तः। भवतं नः समनसाविति समनसावेवैनौ करोति। मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा यज्ञं जातवेदसावित्यात्मनो ऽहिंसायै। शिवौ भवतमद्य न इति शिवावेवैनौ कुरुते। रक्षसां वा एते ऽनवजयाय परिधीयन्ते यत्परिधयः। यदुपर्युपरि प्रहरेद्रक्षोभ्यस्तीर्थं कुर्यात्। संधिना वा प्रहरत्यग्रेण वा। अतीर्थेनैव स्रुवेण जुहोति। संजग्मानाभ्यामेवाभ्यां भागधेयमपिदधाति ॥५॥

सावित्रीमन्वाह। सवितृप्रसूत एवैनं प्रजनयति। एकदेवत्यामन्वाह। एकधैवैनं प्रजनयति। यद्द्विदेवत्यामनुब्रूयाद्भ्रातृव्यमस्मै द्वितीयं जनयेत्। द्यावापृथिव्यामन्वाह प्रजानां प्रजातानां परिगृहीत्यै। न धूमवतीमनुब्रूयात्। इन्द्रो वै यद्वृत्रमहंस्तस्य यत्रयत्र व्यृद्धमासीत्ततो धूम उदायत। व्यृद्धाद्वा एष जातः। व्यर्धुकमस्मै भवति। यदि मथ्यमानो न प्रजायेत रक्षोघ्नीमनुब्रूयाद्रक्षसामपहत्यै। अनवानमनुब्रूयात्। अवानं वा अनु यज्ञं रक्षांसि जिघांसन्ति। रक्षोभ्य एवातीर्थं करोति। गायत्रीं ब्राह्मणस्यानुब्रूयात्। गायत्रो हि ब्राह्मणः। त्रिष्टुभं राजन्यस्य। त्रैष्टुभो हि राजन्यः। जगतीं वैश्यस्य। जागतो हि वैश्यः। यथाछन्दसमेव॥

ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति रशनामादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनां देवताभिरादत्ते।

प्रतिमुञ्चामीति। यो वै यज्ञियो मेध्यः स ऋतस्य पाशः। तेनैवैनमालभते। अमुष्मै जुष्टमिति यस्या देवताया आलभते तस्या एनं जुष्टं करोति। धर्षा मानुषा इति। वज्रो वै यूपः पशवो मानुषाः। वज्रेणैवास्मै पशून्यच्छति। ऋक्षो वा एष तष्टो ऽमेध्यः। यत्पशुं नियुनक्ति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। पुरस्ताद्वै पशवो मेधमुपतिष्ठन्ते। देवता एतस्मिन्प्राणाः। यत्पुरस्तात्प्रत्यञ्चमाप्रीणन्ति देवतानामेवैनमाप्रीणन्ति। अद्भ्यस्त्वौषधीभ्य इति। अद्भ्यो वा एष श्रोषधिभ्य आलभ्यते यत्पशुः। अद्भ्य एवैनमोषधिभ्यः प्रोक्षति। अनु त्वा माता मन्यतामनु पितेति। पिता च ह्येतस्य माता चानुमन्तारौ। आपो वै सर्वा देवताः। सर्वदेवत्यः पशुः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति। बहु वा एषो ऽमेध्यमेवैनमयज्ञियं निगच्छति यत्पशुः। आपो मेध्या यज्ञियाः। यदद्भिः प्रोक्षति मेध्यमेवैनं यज्ञियं करोति। अपां पेरुरसीत्यप उपगृह्णाति। यान्यन्तरतो ऽवदानानि तानि तन्मेध्यानि करोति। स्वात्तं हव्यं देवेभ्यो घृतवदित्युरः प्रत्युपोक्षति। यान्यधस्तादवदानानि तानि तन्मेध्यानि करोति। सर्वत उपोक्षति। सर्वत एवैनं मेधेन समर्धयति। शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघार आत्मा पशुः। यदाघारमाघार्य पशुं समनक्ति शिर एव यज्ञस्यात्मन्प्रतिदधाति। सं ते वायुः प्राणेन गच्छतामिति वायुमेवास्य प्राणं गमयति। सं यजत्रैरङ्गानीति। देवता यजत्राः। देवता एवास्याङ्गानि गमयति। सं यज्ञपतिराशिषेत्याशिषैव यजमानं समर्धयति ॥६॥

ऋत्विजो वृणीते। छन्दांसि वा ऋत्विजः। छन्दांस्येव तद् वृणीते। तैरस्य वृतैर्युक्तैर्वषट्काराः पुरा युज्यन्ते। होतारं वृणीते। जगतीं तच्छन्दसां वृणीते। अग्नीधं वृणीते। पङ्क्तिं तच्छन्दसां वृणीते। अध्वर्युं वृणीते। अतिच्छन्दसं तच्छन्दसां वृणीते। अन्तरा होतारं चाध्वर्युं चाग्नीधं वृणीते। तस्मादग्निर्मध्यत श्रोषधीः प्रविष्टः। यदुत्तमः संयजति तस्मादुपरिष्टान्मथ्यमानो जायते। मैत्रावरुणं वृणीते। गायत्रीं तच्छन्दसां वृणीते। ब्राह्मणाच्छंसिनं वृणीते। त्रिष्टुभं तच्छन्दसां वृणीते। पोतारं वृणीते। उष्णिहं तच्छन्दसां वृणीते। नेष्टारं वृणीते। ककुभं तच्छन्दसां वृणीते॥

पश्चाजमिव वा एतच्छन्दो यदनुष्टुप्। पश्चाजेवैषा होत्रा यदच्छावाक्या। तस्मादच्छावाकमुपैव ह्वयन्ते न वृणते। अथैता आप्रियः। प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा स रिरिचान इवामन्यत। स एता आप्रीरपश्यत्। ताभिरात्मानमाप्रीणीत। यज्ञः प्रजापतिर्यज्ञात्मा यजमानः। यदेताः पूर्वार्धे यज्ञस्य क्रियन्ते मुखत एव यजमानमाप्रीणाति। प्रयाजान्यजति। प्राणा वै प्रयाजाः। प्राणानेव तत्प्रयजति। तत्प्रयाजानां प्रयाजत्वम्।ताननुयाजैरन्वाप्रीणाति। तदनुयाजानामनुयाजत्वम्। अनवानमाप्रीणीयाद्यं कामयेत सर्वमायुरियादिति। प्राणा वै प्रयाजाः। अविच्छिन्नानेवास्मिन्प्राणान्प्रतिदधाति सर्वमायुरेति। आत्मा वै पशोर्वपात्मा यजमानस्याप्रीः। यदुत्तमाप्रीर्वपां परिशय आत्मैवात्मानं परिशये यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय। एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयजः। एतावतीर्वै देवताः। सर्वदेवत्यः पशुः। सर्वाभिरेवैनं देवताभिः समर्धयति।

त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपाः। अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या वषट्कारश्च प्रजापतिश्च ते सोमपाः। प्रयाजा अनुयाजा उपयजस्ते ऽसोमपाः। तस्मात्ते बहिर्यज्ञं क्रियन्ते। सोमेनैव तद्देवान्सोमपान्प्रीणाति पशुनासोमपान्। ते ऽस्योभये प्रीता यज्ञे भवन्ति। एतद्ध वा उवाच श्यापर्णः सायकायनो ऽथाहं कैशिनं यत्रैनमदः सोमान्नयति यदि वै मा सोमान्नेष्यस्युभयैर्मा देवैः सह नेष्यसि सोमपैश्चासोमपैश्च। विदेवस्ते यज्ञो ऽवहास्यते। अथो यद्यञ्चं मा नेष्यन्ति ततस्त्वाभीत्य ज्यास्यन्तीति। ते मीमांसित्वेतो नो भयं नास्तीति दक्षिणा प्रत्यञ्चं निन्युः। ततः कुन्तयः पञ्चालानभीत्य जिनन्ति। य एवंविदं सोमान्नयत्युभयैरेनं देवैः सह नयति सोमपैश्चासोमपैश्च। विदेवो ऽस्य यज्ञो ऽवहीयते। अथो यद्यञ्चमेनं नयन्ति तत एनमभीत्य जिनन्ति ॥७॥

देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। ते देवा एतमुपांशुमपश्यन्। त एतस्मिन्यज्ञं संस्थाप्यमपश्यन्। त एतस्मिन्नेव यज्ञं समस्थापयन्। अष्टौ कृत्वो ऽभ्युषुण्वन्। गायत्रीं तच्छन्द आप्नुवन्। एकादश कृत्वः। त्रिष्टुभं तत्। द्वादश कृत्वः। जगतीं तत्। त्रिर्व्यगृह्णन्। सवनान्येव तदाप्नुवन्। ते देवा यावानेव यज्ञस्तं परिगृह्योपोदतिष्ठन्होतुम्। ते ऽसुरा अपश्यञ्जुह्वति वै देवा इति। तान्वज्रमुद्यत्याभ्यपतन्। ते देवा

अन्तर्यामेणान्तर्दधात्येभ्यो लोकेभ्यः। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वानुपांशुं जुहोति यश्चैवं विद्वानुभाभ्यो एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तर्धत्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। अथ ह स्माहारुण औपवेशिः किमु स यजेत य उपांशौ यज्ञं संस्थाप्य न विद्यादिति। षट् कृत्वो ऽभिषुणोति। गायत्रीं तच्छन्द आप्नोति। एकादश कृत्वः। त्रिष्टुभं तत्। द्वादश कृत्वः। जगतीं तत्। त्रिर्निगृह्णाति। सवनान्येव तदाप्नोति। उपांशावेवैतद्यज्ञं संस्थाप्य तेन सौम्येनारिष्टेनाकालेन प्रचरति। अष्टावष्टावभिषुणुयाद्ब्रह्मवर्चसकामस्य। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रीमेव यज्ञमुखे ऽधि विधातयति। गायत्र्यामेवैतत्तेजसि स्वे योनौ स्वर्गे लोके यज्ञमुखं तायते। मुख्यो भवति य एवं वेद। नोपयामगृहीतो ऽसीति ब्रूयात्। इयं वा उपयामः। अनया प्राणानपिहन्यात्। न पवित्रं वितन्वन्ति। अन्तरिक्षं वै पवित्रम्। अन्तरिक्षेण प्राणान्परिगृह्णीयात्प्रमीयेत। अयं वाव यः पवते स प्राणः। तस्येदमनप्राहं प्राणिमः। यन्नोपयामगृहीतो ऽसीत्याह न पवित्रं वितन्वन्ति। तस्मादयमपरिगृहीतः। कामामित्थं चेत्थं च पवते। तस्मात्कामं प्राणिमः। प्राणपवित्रो वा उपांशुः। प्राणैरेवैनं पावयति। षडंशून्परिगृह्णाति। तस्मात्षट्प्राणाः। द्वंद्वं पावयति। तस्मात्प्राणा द्वंद्वम्। उपांशुसवनादुपांशुं निगृह्णाति। प्राणो वा उपांशुसवनः प्राण उपांशुः। प्राणादेव प्राणं निगृह्णाति। उत्तर उपांशुसवनो भवत्यधो ऽशवः। प्राणो वा उपांशुसवनः प्रजा अशवः। प्रजास्वेव प्राणं [दधाति।] तस्मात्प्राण उत्तमः ॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायामेकचत्वारिंशत्तमो ऽध्यायः॥

वाचस्पतये पवस्वेति वाच आधिपत्याय पवस्वेत्येवैतदाह। तस्मादेतया कामं वदामश्च प्र चानिमः। प्रजापतिर्वा इदमासीत्। तस्य वाग्द्वितीयासीत्। तां मिथुनं समभवत्। सा गर्भमधत्त। सास्मा [दपाक्रामत्। सेमाः प्रजा असृजत। सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्। वाचस्पतये पवस्वेति। एतस्मा] देव मिथुनात्प्रजया च पशुभिश्च प्रजायते। वाचस्पतये पवस्वेति। ब्रह्म वै वाचस्पतिः। ब्रह्मणैवैनं पावयति। वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिपूत इति। इन्द्रो वै वृषा। तस्य हस्तौ गभस्ती। ताभ्यामेवैनं [पावयति। देवो देवानां पवित्रमसीति देवताभ्य एवैनं निदिशति। मधुमतीर्न इष इति सोमेन हि सोमं पुनन्ति। येषां भागो ऽसीति देवताभ्य एवैनं निदिशति।] मधुमतीर्न इषस्कृधीति। देवता वा इषः। देवेभ्य एवैनं मधुमन्तं करोति। स्वांकृतो ऽसीति प्राणमेव स्वं कुरुते। उर्वन्तरिक्षं वीहीति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्य इति देवेषु चैव मनुष्येषु च प्राणं दधाति। मनस्त्वाष्ट्विति। मनसा हि प्राणो धृतः। स्वाहा त्वा सुभो सूर्यायेति। सोमो वै सुभूः। अमुष्मिन्नादित्ये देवानां प्रियास्तन्वः। ता एव तर्पयति। अथो स्वाहाकारेणैवास्मिन्नाहुतीः श्रीणाति॥

सर्वहुतं जुहोति। तस्मात्सर्वाङ् प्राणः। [ऋजुस्तिष्ठञ्जुहोति। पुरुषेण] वै यज्ञः संमितः। प्राणापानाभ्यां पुरुषः संततः। प्राणापानयोरसंभेदाय। नाध्वर्युर्विह्वलति य एवं वेद। उत्तरादुपांशुं जुहुयाद्दक्षिणतो ऽन्तर्यामम्। देवरथो वा एष यद्यज्ञः। तस्यैतौ रश्मी यदुपांश्वन्तर्यामौ। देवरथस्यैव पुरस्ताद्रश्मी विहरति संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै। तामनुकृति मनुष्यरथस्य रश्मी विह्रियेते। ऋजू होतव्यौ प्राणानामव्यतिहाराय। ऊर्ध्वमुन्मृज्याद्यदि कामयेत न वर्षेदिति। अमुत्रैव वृष्टिं परिगृह्णाति। अवाचीनमवमृज्याद्यदि कामयेत वर्षेदिति। या वा इतराहुतिरुदयते सामुतो वृष्टिं च्यावयति। अनयैवाहुत्या दिवो वृष्टिं निनयति।

देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य इति परिधौ निमार्ष्टि। प्राणा वै देवा मरीचिपाः। तानेव प्रीणाति। अथो परिधीनामेवैष सोमपीथः। अन्तरतो निमार्ष्टि। तस्मात्प्राणा अन्तरतः। वि वा एतद्यज्ञं छिनत्ति यत्पुराभिषोतोः संस्थां गमयति। यदंशूननभिषुतानपिसृजति यज्ञस्य संतत्या अविच्छेदाय। षडसंश्लिष्टानंशूनपिसृजति। तस्मात्षट् प्राणाः। द्वंद्वं पावयति। तस्मात्प्राणा द्वंद्वम्। आर्द्राः सन्तो ऽसंश्लिष्टा भवन्ति। तस्मात्प्राणा आर्द्राः सन्तो ऽसंश्लिष्टाः। यो ह वै सोमस्य सोमपीथं वेद न सोमपीथाच्छिद्यते नास्य प्रजा। यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहेति। एष वै सोमस्य सोमपीथः। सोममेवैतत्सोमस्य तर्पयति। न सोमपीथाच्छिद्यते नास्य प्रजा य एवं वेद। यद्यभिचरेद् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे इत्याददीत। अहर्निणो मदिरस्य मदे मृषासावस्त्वय त्वा

होष्यामीति मृधैवैनं करोति। सर्वदेवत्यो वै सोमः। सर्वा वा एतर्ह्येतस्मिन्देवता आशंसन्ते मह्यं होष्यति मह्यं होष्यतीति। देवता एवैनमाहुतिमभीप्सन्तीरुद्दहन्ति। आ तमितोस्तिष्ठति। प्राणस्यैवास्यान्तं गच्छति। यद्यजुर्वदति देवेभ्य एवैनमावृश्चति। उपांशुनाभिचरति। प्राणो वा उपांशुः। प्राणेनैवास्य प्राणमभिचरति ताजक्प्रधन्वति ॥१॥

देवा वै सोमायाभिषुताय पात्रं नाविन्दन्त येनेमं विगृह्णीमहीति। त इमामेव देवपात्रमपश्यन्। तमनयैव व्यगृह्णत। इयं वाव देवपात्रम्। अस्या स्थालीं कुर्वन्त्यस्या वायव्यानि। प्र श्रेयसः पात्रमाप्नोति य एवं वेद। ब्राह्मणं पात्रे न मीमांसेत। तद्व्रतम्। उपयामगृहीतो ऽसीति। इयं वा उपयामः। यदत्र स्कन्दत्यनया तद्यतम्। नास्य सोम स्कन्दति य एवं वेद। उपयामगृहीतो ऽसीति। उपयामगृहीता ह्यतः सोमा भवन्ति। पवित्रं वितन्वन्ति। पवित्रपूता ह्यतः सोमा भवन्ति। स्वर्भानुर्वा असुरः सूर्यं तमसाविध्यत्। स न व्यरोचत। तस्माद्देवास्तमो ऽपालुम्पन्। यत्प्रथममपालुम्पन्सावि कृष्णाभवत्। यद्द्वितीयं सा फलू यत्तृतीयं सा बलक्षी। तस्मात्तस्याः पवित्रं कुर्वन्ति। आदित्यस्यैवैनं तन्वा पावयति। अन्तर्यच्छ मघवन्पाहि सोममित्येभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तर्धत्ते। मधुमतीर्न इषस्कृधीति। देवता वा इषः। देवेभ्य एवैनं मधुमन्तं करोति। स्वांकृतो ऽसीत्यपानमेव स्वं कुरुते। उर्वन्तरिक्षं वीहीति। अन्तरिक्षदेवत्यो ह्येष एतर्हि। विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्य इति देवेषु चैव मनुष्येषु चापानं दधाति। मनस्त्वाष्ट्विति। मनसा ह्यपानो धृतः। स्वाहा त्वा सुभो सूर्यायेति। सोमो वै सुभूः। अमुष्मिन्नादित्ये देवानां प्रियास्तन्वः। ता एव तर्पयति। अथो स्वाहाकारेणैवास्मिन्नाहुतीः श्रीणाति॥

सूदि कुर्यादन्तर्यामपात्रम्। ऊर्वं सोमरसो ऽन्तरिक्षमन्तर्यामः। अन्तरिक्ष एव रसं दधात्यूर्जं पशुषु। उपांश्वन्तर्यामौ वै पशवो ऽनुप्रजायन्त इतरान्ग्रहानन्वन्याः प्रजाः। तावसन्नौ जुहोति। तस्मादसन्नाः पशवः सददि प्रजायन्ते। तस्मात्सद्यो जाताः पशवः प्रतितिष्ठन्ति। संवत्सरे पुरुषः। प्राणाय त्वेत्युपांशुपात्रं सादयति। व्यानाय त्वेत्युपांशुसवनम्। अपानाय त्वेत्यन्तर्यामपात्रम्। व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ प्राङ् च प्रत्यङ् च न क्षीयेते। नायमूर्ध्व उत्क्रामति नेतरो ऽवाङ् संक्रामति। व्यानमेव मध्यतो दधाति प्राणापानयोर्विधृत्यै॥

शृङ्गमुपांशुरेतो ऽन्तर्याम इन्द्रियं प्रजाः सोमपीथः। एतौ ह स्म वै तद्रजनः कौणेयो ग्रहौ धयन्मन्यते यच्छृङ्गं धयति। यदेतौ पूर्वार्धे यज्ञस्य क्रियेते मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय। तस्मादाहुः प्राणापानौ वै प्रजा अनुप्रजायन्त इति। पुरुषेण वै यज्ञः संमितः। प्राणापानाभ्यां पुरुषः संततः। यदेते प्रातःसत्रे आ तृतीयसवनाच्छ्यते प्राणापानाभ्यामेव यज्ञं संतनोति। तस्मात्पुरुषात्सुप्तात्प्राणापानौ नापक्रामतः। ते पुनस्तृतीयसवने प्रयुज्येते। तस्मात्सुप्त्वा प्रबुध्यते। तस्माद् द्वाववाञ्चौ प्राणौ ॥२॥

प्राण उपांशुरपानो ऽन्तर्यामो वागैन्द्रवायवः। यदुपांश्वन्तर्यामावैन्द्रवायवो ऽनुगृह्यते प्राणापानयोरेव वाचमुपरिष्टाद्दधाति। तस्मात्प्राण्यापान्य पुरुषो वाचं वदति। देवा वै प्रातःसवनमुद्यमं नाशक्नुवन्। तृतीयसवने तर्हि वायुरासीत्। तं देवाः प्राञ्चं पर्यहरन्। प्राणो वायुरैन्द्रो यज्ञः। यदैन्द्रवायवः प्रातःसवने गृह्यते प्राणेनैव यज्ञं परिगृह्य पुरस्तादुद्यच्छन्ते। वायव्यो वा एष पुरासीत्। सा वाक्सृष्टा न व्यावर्तताध्वनदेव। स इन्द्रो ऽब्रवीन्मह्यमत्रापि गृह्यतामहमेतां व्यावर्तयिष्यामीति। तत एतमैन्द्रवायवमगृह्णन्। सेयं वागिन्द्रियेण व्यावृत्ता वदति। स एष सोमो वाचो व्यावृत्त्यै गृह्यते। व्यावृत्तं पापीयसा वदति य एवं वेद। प्रजानां सृष्टानां प्राणापानौ समभिद्येताम्। ता न प्राण्यापानमशक्नुवन्नापान्य प्राणितुम्। स इन्द्रो ऽब्रवीन्मह्यमत्रापि गृह्यतामहमेतौ प्राणापानौ विदधिष्या इति। तत एतमैन्द्रवायवमगृह्णन्। वायव इन्द्रवायुभ्यामनुब्रूहीतीन्द्रं मध्ये करोति वायुमभितः प्राणापानयोर्विधृत्यै। इन्द्रियं वै व्यानः। व्यानेन वा इमौ प्राणापानौ विधृतौ प्राङ् च प्रत्यङ् च न क्षीयेते। नायमूर्ध्व उत्क्रामति नेतरो ऽवाक्संक्रामति। व्यानमेव मध्यतो दधाति प्राणापानयोर्विधृत्यै॥

त्रिर्विगृह्णाति। तस्मात्त्रिर्वाग्वदति शनकैरुच्चैरथ सूच्चैः। देवा वै वायुमब्रुवंस्त्वया मुखेन वृत्रं हनामेति। सो ऽब्रवीद्वार्यं वृणै मदग्रा एव ग्रहा गृह्यन्ता इति। तस्माद्वाय्वग्रा ग्रहा गृह्यन्ते। वार्यवृता ह्यस्य। स इन्द्रो ऽब्रवीन्मह्यमत्रापि

गृह्यतामथ त्वै तरिष्यामह इति। तत एतमैन्द्रवायवमगृह्णन्। ततो वृत्रमघ्नन्। स एष सोमो वार्त्रघ्नो विजित्यै गृह्यते। सोमो वै वृत्रः। स हतो ऽपूयत्। ते देवा वायुमब्रुवन्निमं नो विवाहीति। सो ऽब्रवीद्वार्यं वृणै मद्देवत्यान्येव पात्राण्युच्यान्ता इति। ते ऽब्रुवन्। तस्माद्गन्धमपाहन्। स एव पशौ प्रमीतः। तस्मात्तस्मात्रापिगृह्यम्। सोमस्य हि स राज्ञो गन्धः। नैनं राजयक्ष्मो विन्दति य एवं वेद। तस्मात्कुले विषजन्ति। तस्मादपि तृतीयं वायोः पात्रम्। अथ वायव्यान्युच्यन्ते। वार्यवृतानि ह्यस्य ॥३॥

नाना वा एतौ पुरा सोमावगृह्णन्मित्राय च वरुणाय च। ताः प्रजा अशान्ता अविधृता अन्यान्यां प्रतीरचरन्। ते देवा अब्रुवन्सहेमं गृह्णाम मित्रेण वरुणं शमयाम वरुणेन मित्रमिति। ततो वा एतं सहागृह्णन्। ते मित्रेणैव वरुणमशमयन्वरुणेन मित्रम्। ता इमाः प्रजा मित्रेण शान्ता वरुणेन विधृताः। यन्मैत्रावरुणो गृह्यते क्लृप्त्या एव विधृत्यै। देवा वै मित्रमब्रुवन्वृत्रं हनामेति। नेत्यब्रवीन्मित्रो ऽहमस्मि न हिनस्मीति। हनामैवेत्यब्रुवन्। सो ऽब्रवीद्वार्यं वृणै पयसा मे सोमं श्रीणन्निति। तस्मात्पयसा मैत्रावरुणं श्रीणन्ति। वार्यवृतं ह्यस्य। ततो वृत्रमघ्नन्। तस्माद्राजन्येनाध्यक्षेण वैश्यं घ्नन्ति। तं मित्रः सक्रूरमकरिति वरुणो ऽगृह्णादप पशवो ऽक्रामन्। स मित्रो वरुण एवानाधत्त। सो ऽब्रवीत्सहानेव सोमं गृह्णामथ त्वातो मोक्ष्यामीति। ततो वा एतं सहागृह्णन्। तेनैनं वरुणादमुञ्चन्। यन्मैत्रावरुणो गृह्यते निर्वरुणत्वाय। पशवो वै पयः। पशूनां हि पयः। यत्पयसा मैत्रावरुणं श्रीणाति पशुभिरेवैनं समर्धयति। असोमो वा एष इत्याहुर्यदध्य एतः पय एव सोम इति। यत्पयसा मैत्रावरुणं श्रीणाति सोममेवैनं करोति। अथो यदेवास्याभिषुण्वन्तो घ्नन्ति यत्क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। शृतेन श्रीणाति। मैत्रं वै शृतं वारुणं प्रतिधुक्। स्वेनैवैनौ भागधेयेन समर्धयति। मैत्रो ब्राह्मणो वारुणो राजन्यः। यदेष मैत्रावरुणो गृह्यते तस्माद्ब्रह्मपुरोहितं क्षत्रम्॥

यज्ञस्य वै शिरो ऽच्छिद्यत। अथ तर्ह्यश्विनावसोमपौ भिषजौ देवानामास्ताम्। तौ देवा अब्रुवन्भिषजौ वै स्थ इदं यज्ञस्य शिरः प्रतिधत्तमिति। तावब्रूतां वार्यं वृणावहै सोमपीथो नौ देवेष्वस्तु ग्रहो नौ गृह्यतामिति। तौ देवा बहिष्पवमानेन पावयित्वा ताभ्यां शुचिभ्यां मेध्याभ्यां पूताभ्यां ग्रहमगृह्णन्। तस्मात्स्तुते बहिष्पवमान आश्विनो गृह्यते। तस्माद्ब्राह्मणो बहिष्पवमानमासीत। पवित्रं हि तत्। तस्माद्ध द्विष्यन्तं बहिष्पवमानात्परिबाधेत। पवित्रादेवैनं परिबाधते। तौ देवानुपावर्तमानौ तयोर्याभिषज्या तनूरासीत्तां त्रेधा विन्यदधातामग्नौ तृतीयं ब्राह्मणे तृतीयमप्सु तृतीयम्। य कामयेतामयाविनं जीवेदित्यप्रेत्ये ब्राह्मणाय प्रोच्यापः परिब्रूयात्। एतावद्वै भेषजम्। यावदेव भेषजं तदस्मै करोति जीवति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते ॥४॥

प्राणा वै द्विदेवत्या एकपात्रा गृह्यन्ते। तस्मात्प्राणा एकनामानस्ते द्विपात्रा हूयन्ते। तस्मात्प्राणा द्वंद्वम्। येन यजुषा प्रयच्छति तेन प्रतिगृह्णाति प्राणानां संतत्यै प्रतिज्ञात्यै। नानुवषट्करोति। यदनुवषट्कुर्यात्प्राणान्संस्थापयेत्प्रमीयेत। यन्नानुवषट्करोति तस्मात्प्राणा असंस्थिता आ च परा च चरन्ति। द्विदेवत्याः पूर्वे भक्षयितव्या 3 इडोपहूया 3 इति मीमांसन्ते। इडैव पूर्वोपहूया यज्ञस्य यथापूर्वत्वाय। प्राणा वै द्विदेवत्याः पशव इडा। यदेवं कुर्यात्पशुभिः प्राणानन्तरियात्प्रमीयेत। द्विदेवत्या एव पूर्वे भक्षयितव्याः। अन्तरे वै प्राणाः परे पशवः। प्राणानेवात्मन्धित्वा पशूनुपह्वयति। ये वा इमे पुरुषे प्राणास्ते द्विदेवत्या वाक्च प्राणश्चैन्द्रवायवश्चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः श्रोत्रं चात्मा चाश्विनः। अग्निर्होतासीत्। स वषट्कृत्यातप्यत्। आहितास्येडासीत्। तस्य देवा द्विदेवत्यैरन्वैन्दन्। प्राणा वै द्विदेवत्याः। प्राणैरेवैनं तदभ्यैन्वन्। स इडोपहूतोपहूतेति प्रत्यपद्यत। प्राणा वै द्विदेवत्याः। यद्द्विदेवत्यान्भक्षयति प्राणैरेवात्मानमभिधिनोति। तस्माद्द्विदेवत्या एव पूर्वे भक्षयितव्याः। ते हि पूर्वे भक्षिताः। आश्विनो दशमो गृह्यते। दश हि प्राणाः। तं तृतीयं जुहोति। शिर एव प्राणानभिसंदधाति। समन्तं परिगृह्य भक्षयति। श्रोत्रं वा आश्विनः। तस्मात्पुरुषः सर्वतः शृणोति।

रक्षांसि वा एतत्पात्रं सचन्ते यद्यज्ञे रिक्तविमुक्तं भवति। पुरोडाशमैन्द्रवायवस्य पात्रे ऽवदधाति पयसा मैत्रावरुणस्य धानामाश्विनस्य रक्षसामपहत्यै। तस्मात्प्राणा अदता अरिक्ताः। दक्षिणस्य हविर्धानस्याधस्तात्सादयति।

एतद्वा एतयोरग्निमद्वीर्यवत्। यदेवाग्निमद्वीर्यवत्तस्मिन्सादयति। पुरुषेण वै यज्ञः संमितः। प्राणापानैः पुरुषः संततः। यदेतानि प्रातःसत्रान्या तृतीयसवनाच्छेरे प्राणापानैरेव यज्ञं संतनोति। एकया च दशभिश्चेत्येतां प्रति विमुञ्चति। यदर्वाग्विमुञ्चेत्प्राणान्विच्छिन्द्याद्यत्परः प्राणानतिरिचयेत्प्रमीयेत। प्राणो वै वायुः प्राणा द्विदेवत्याः। प्राणेनैव प्राणान्विमुञ्चति। बहु वायव्यं प्रातः सवने शस्यत एकैव तृतीयसवने। तस्माद्बहवो मुखे प्राणा एको ऽवाङ्। यदि कामयेतावगतमपरुन्ध्युरपरुद्धो ऽवगच्छेदितीदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्या विश उदूहामीत्यध्वर्योः पात्रमुदूहेत्। इदमहममुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्यां विश्यध्यूहामीति प्रतिप्रस्थातुः पात्रमध्यूहेत्। अध्वर्युर्वै श्रेयान्पापीयान्प्रतिप्रस्थाता। अवगतः श्रेयान्पापीयानपरुद्धः। अवगतमेवापरुणद्ध्यपरुद्धमवगमयति। ताजग्व्यवगच्छेत्। व्यत्यूहेत्पात्राणि। यदि कामयेत पापवसीयसं स्यादित्यध्वर्योः पात्राणां लोके प्रतिप्रस्थातुः। पात्राणि सादयेत्प्रतिप्रस्थातुः पात्राणां लोके ऽध्वर्योः पात्राणि सादयेत्। अध्वर्युर्वै श्रेयान्पापीयान्प्रतिप्रस्थाता। पापीयांसमेव वसीयसो लोके सादयति वसीयांसं पापीयसः। पापवसीयसं करोति। एतद्ध वै विपूजनः सौराकिः पापवसीयसं विदांचकार ॥५॥

यदि कामयेत यजमानादयजमानं भ्रातृव्यं पूर्वं कुर्यामिति प्रतिप्रस्थाता पूर्वो गृहीत्वा स पूर्वो निरूहेत्। यजमानो वै श्रेयान्पापीयान्प्रतिप्रस्थाता भ्रातृव्यः। तस्माद्भ्रातृव्यो ऽयजमानः। भ्रातृव्यमेव तस्मात्पूर्वं करोति। अध्वर्योर्लोके तिष्ठञ्जुहोति। अध्वर्युर्वै श्रेयान्पापीयान्प्रतिप्रस्थाता। भ्रातृव्यमेवास्य लोकमध्यारोहयति। अलोकमेनं करोति। नयत्राश्रावयेदध्वर्युरप्रतिष्ठानः स्यात्। नानालभ्य पात्रमाश्रावयेत्। एतद्वा अध्वर्योः स्वम्। अस्वः स्यात्। यत्राग्र आहुतिं जुहोति तदुत्तरा जुहुयात्। यत्र वा अग्र आहुतिं जुहोति तद्देवताः परिविशन्ति। यदन्यत्र जुहुयाद्देवताभ्यः समदं कुर्यात्। साक्षादेव देवेभ्यो भागधेयं संप्रयच्छति। नाना वा एतौ पुराग्नी आस्तां पशोश्चाहवनीयश्च। तस्मात्पुरा रुद्रः पशूनघातुक आसीत्। पशवो वै पशवः पशवो ऽशंवो रुद्रो ऽग्निः। यदाहुतीः संसृजति रुद्राय पशूनपिदधात्यपशुर्भवति। तस्मादिदानीं रुद्रः पशून्यातुकः। मध्ये ऽग्नेर्जुहुयादाज्याहुतीश्च पश्चाहुतीश्चाभितः सोमाहुतीः। रुद्रमेव पशुभिः परिवृणक्ति। अघातुकस्तत्र रुद्रः पशून्भवति यत्रैवंविदध्वर्युर्भवति ॥६॥

॥इति कपिष्ठलकठसंहितायां द्वाचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

........[आयुः] प्रजानां प्रदध्यात्प्रमायुकाः स्युः। होतुश्चमसे ऽवनयति। वैश्वदेवो वै होता वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः। प्रजास्वेवायुर्दधाति। अध्रुवं वा एनमेतत्करोति यदवनयति। एतस्य वा अध्रुवत्वमनु प्रजाभ्यो न कल्पते। दृंहन्तां दैवीर्विशः कल्पन्तां मनुष्या दिवि दिव्यानि सन्त्वन्तरिक्षे वयांसि पृथिव्यां पार्थिवानीति ध्रुवमवनयति। यथायतनमेव प्रजा दृंहति। आहूत उक्थे ऽवनयेत्। स्तुतेनैव शस्त्रमभिसंतनोति। यदाहूते ऽवनयेदुक्थमतिरेचयेद्यच्छस्ते ग्रहमतिरेचयेत्। या मध्यमा परिधानीया तस्यामवनयति। अङ्गानि वा एतानि यज्ञस्य यदुक्थामदानि। आयुर्ध्रुवः। अर्धं वै पुरुषस्यात्मनो ऽङ्गान्यर्धमायुः। अन्तावेवाभितः संधायायुर्मध्यतो दधाति। कस्मात्सत्यादित्याहुर्ब्रह्मवादिन आपस्त्वरमाणा न क्षीयन्ते न प्रदस्यन्तीति। एतमेव सोमपीथं प्रतीक्षमाणा यद्ध्रुवः। एष ह्येना अपनुदते। प्रत्यङ्ङासीनो ऽवनयति। अन्वीपमेवैना अवार्जति। न सामि प्रस्रावयेत। अग्निष्टोममेवासीत। आयुर्वै ध्रुवः। आयुर्व्यवस्रावयेत। एतावान्वै यज्ञो यावानग्निष्टोमः। यदाग्निष्टोममास्ते प्राणस्यैवास्यान्तं गच्छति सर्वमायुरेति। उदरं वा एतद्यज्ञस्य यत्सदः। तद्द्रवन्ति निःसर्पन्तः। यज्ञः प्रजापतिः। यदाग्निष्टोममास्ते प्रजापतेरेवोदरं न रिणक्त्यक्षोधुको भवति ॥१॥

देवा वा असुरान्हत्वा वैरदेयाद्दीयमानास्त ऋतून्संवत्सरममोहयन्। तस्य देवाः क्लृप्तिमैच्छन्। तमृतुग्रहैरेवाकल्पयन्। यदृतुग्रहा गृह्यन्ते संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै। उभौ सह प्रथमं गृह्णाते। उभौ ह्येतौ सह संवत्सरं कल्पयितुमुपप्रेतः। उभौ सहोत्तमम्। संवत्सरमेव कल्पयित्वोभौ सहविमुच्येते। उभयतोमुखे ऋतुपात्रे भवतः उभयतोमुखा ह्यृतवः। न हि तद्विद्म यतरत ऋतूनां मुखम्। नान्यो ऽन्यमभिप्रपद्येयाताम्।

यदभिप्रपद्येयातामृतुर्ऋतुमभ्यायुकः स्यात्। यद्व्यतीतस्तस्मादाहुरश्वाविवर्तू समघ्रातामिति। द्वादशैते गृह्यन्ते। द्वादश मासाः संवत्सरः। संवत्सरस्य क्लृप्त्यै। संवत्सरो वै स्वर्गो लोकः। तस्यैत आक्रामाः संक्रामा यदृतुग्रहाः। रोहमेवैते रोहति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। षडन्ये भवन्ति षडन्ये। असौ वा आदित्य ऋतुः। तस्मादेष षण्मास उदङ्ङेति षड् दक्षिणा। षडृतुना। षड्वा ऋतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। चतुर्ऋतुभिः। चतुष्पदाः पशवः। संवत्सरं पशवो ऽनुप्रजायन्ते। संवत्सरादेवास्मै पशून्प्रजनयति। द्विऋतुना पुनः। द्विपाद्यजमानः। पशुष्वेवोपरिष्टात्प्रतितिष्ठति॥

सोमपा वा एते। सोमपा इन्द्रस्य सजाता यदृतुग्रहाः। ऋतुना सोमं पिबत्विति ह्याह। नर्तवे जुह्वति। तेषामेते स्वे पात्रे याभ्यामेनाञ्जुह्वति। तस्मात्सजातः स्वेन पात्रेणा बलिं हरति। आस्मै बलिं हरन्ति य एवं वेद। व्यतिहारं भक्षयन्त्ययातयामत्वाय। तस्मादृतुमृतु वर्षति। ते देवाः संवत्सरं कल्पयित्वा स्वर्गं लोकं प्रज्ञाय त एतद्यज्ञस्य ज्योतिरुपरिष्टाददधुः। यदैन्द्राग्नो गृह्यते ज्योतिरेव मुखतो यज्ञस्य दधाति संवत्सरस्य क्लृप्त्यै स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै। तस्मात्संवत्सरं ज्योतिरुपर्युपरि चरति। ऋतुपात्रेणैन्द्राग्नं गृह्णाति। क्षत्रं वा इन्द्राग्नी विडृतवः। विश्येव क्षत्रमध्यूहति। विश्वे वै देवास्तृतीयसवनभागाः सन्तस्ते प्रातःसवनमभ्यकामयन्त। तान्प्रजापतिरेतस्मिन्ग्रहे तर्पयितव्यानपश्यत्। यद्वैश्वदेवः प्रातःसवने गृह्यते विश्वानेव देवान्प्रातःसवने तर्पयति। तानस्य तृप्तान्प्रीतानुत्तरे सवने अभिविसृज्येते। शुक्रपात्रेण वैश्वदेवं गृह्णाति। असौ वा आदित्यः शुक्रो वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः। तस्मादेष सर्वाः प्रजाःप्रत्यङ्। मां प्रति मां प्रतीति हि मन्यन्ते ॥२॥

माध्यन्दिनेन वै सवनेनेन्द्रो वृत्रमहन्मरुद्भिर्वीर्येण। मरुत्वतीयं स्तोत्रं भवति मरुत्वतीयमुक्थं मरुत्वतीया ग्रहाः। सर्वत एव यजमानं वीर्येण समर्धयति सर्वतो वृत्रं हन्ति। प्रतिहितिरेव प्रथमो मरुत्वतीयो ऽपायतिर्द्वितीयः। विसृष्टमु तृतीयेन विसृजति। वज्रमेव प्रथमेन मरुत्वतीयेनोद्यच्छति। प्र द्वितीयेन हरति स्तृणुते तृतीयेन। यं द्विष्यादमरुत्वतीयांस्तस्य गृह्णीयात्। वीर्यं वै मरुतः। वीर्येणैवैनं व्यर्धयति। इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन्प्रदानं देवेभ्यः प्रायच्छद्दक्षिणाः। स मरुत्वतीयैरेव वृत्रमहन्। तस्मान्मरुत्वते ऽनूक्ते न देयम्। हतो हि तर्हि वृत्रो विजितं भवति। नो प्रतिगृह्णीयात्। प्रतिष्ठितान्पशून्प्रच्यावयति। अपशुर्भवति। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा स महेन्द्रो ऽभवत्। सो ऽन्यान्देवानत्यमन्यत। स एतं ग्रहमुद्धारमुदहरत महेन्द्रीयम्। तस्माद्राजा संग्रामं जित्वा निराजं निरजते। ते तं देवा अब्रुवन्सर्वं वा अवोचथा अस्तु नो ऽत्रापीति कथं वो ऽपि स्यादिति। विराजैतस्य ग्रहस्य यजत्विति। देवपात्रं वै विराट्। यद्विराजा यजति देवपात्रेणैव देवतास्तर्पयति। तस्माद्यद्राजा संग्रामं जयत्यपि तत्र सूतग्रामणीनाम्। गायत्र्या वै त्रिवृदायतनवांस्त्रिष्टुभा पञ्चदशो जगत्यैकविंशः। अथैषा विराडायतनमेव यत्सप्तदशः। यद्विराजा यजति सप्तदशमेवायतनवन्तं यजमानं करोति। यं द्विष्यात्त्रिष्टुभा तस्य यजेत्। ओजो वै वीर्यं त्रिष्टुप्। ओजसैवैनं वीर्येणायतनाच्छिनत्ति। सो ऽनायतनः पराभवति। देवा वा असुरान्हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते यज्ञं मध्यतः प्राविशन्। एतां वाव तदृचं प्राविशन्विराजमेव। यद्विराजा यजति देवतानामभीष्ट्यै। आदित्या वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते ऽङ्गिरसो ऽस्मिंल्लोके सह यज्ञेन प्रत्यौहन्। ते ऽङ्गिरस आदित्यानब्रुवन्कतिभ्यो हव्यं वक्ष्याम इति। त्रयस्त्रिंशत इत्यब्रुवन्। दश वसव इन्द्र एकादशो दश रुद्रा इन्द्र एकादशो दशादित्या इन्द्र एकादशः। त्रिंशदेता देवतास्त्रिंशदक्षरा विराट्। तेनैता देवतास्तर्पयति यास्त्रिंशत्। द्व्यक्षरो वषट्कार एकाक्षरा वाक्। तेनैन्द्रम्। कल्पन्ते ऽस्य देवता हव्ये। यथादेवतमस्य हव्यं गच्छति। वृणत एनमार्त्विज्याय य एवं वेद। यावतीर्हि देवतास्ता हव्यं गमयति ॥३॥

माध्यन्दिनाद्वै सवनाद्देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तेषामेत आक्रामाः संक्रामा यद्दक्षिणाः। यद्दक्षिणा ददाति सेतुमेव कीर्त्वा स्वर्गं लोकमेति। यावद्वा इह प्राणद्ददाति तावन्तो ऽमुष्मिंल्लोके प्राणाः। तस्माद्बहु देयम्। तस्मादिह बहु दत्तं प्रशंसन्ति। ज्यायांसमेव सेतुं किरते। एतर्हि वै देवता नेदिष्ठान्त्यानमन्ति। तस्मादेष एतर्हि तेजिष्ठं तपति यावन्नेदिष्ठादेव स्वर्गं लोकमारोहति। सौरीभ्यां जुहोति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। द्वाभ्याम्। द्विपाद्यजमानः। अस्यामेवैनमाक्रमयति। यदाग्नय्याग्नीध्रे जुहोत्यन्तरिक्ष एवैनमाक्रमयति। यद्ददाति स्वर्गमेवैनं लोकं गमयति। द्यां गच्छ स्वर्गच्छेति स्वर्गस्य

लोकस्य समष्ट्यै। रूपं वो रूपेणाभ्यागां वयसा वय इति। एतद्वै पशूनां रूपं यद् घृतं यद्धिरण्यम्। रूपमेवैषां रूपेणाभ्यैति वयसा वयः। तुथो वो विश्ववेदा विभजत्विति। सत्यं वै तुथो विश्ववेदाः। सत्येनैवैनां ब्रह्मणा विभजति। एतत्ते अग्ने राध एति सोमच्युतमिति। आग्नेया वै पशवः। ते सोमे दीयन्ते। तन्मित्रस्य पथा नयेति मित्रस्यैवैनाः पथा नयति। अन्तराग्नीध्रं च सदश्च नयति। एतेन वै पथा देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तमेवैना अपिपादयति।

दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्यभ्यजयन्। तमाग्नीध्रात्पुनरपाजयन्। यदाग्नीध्राद्दक्षिणा दक्षिणा नयन्ति यज्ञस्याभिजित्यै रक्षसामपहत्यै। आग्नेय्याग्नीध्रे जुहोति। आग्नेया वै पशवः। पशूनां निष्क्रीत्यै। वारुण्या द्वितीयया जुहुयाद्यद्यश्वं वानो वा रथं वा दास्यन्स्यात्। वारुणा ह्यश्वा वारुणा वनस्पतयः। अग्नीध्रे ऽग्रे ददाति। अग्निः सर्वा देवताः। देवतानामभीष्ट्यै। उपबर्हणं ददाति। एतद्वै छन्दसां रूपम्। रूपेणैव च्छन्दांस्यवरुन्द्धे। हिरण्यं ददाति। हिरण्यज्योतिष एवैनाः स्वर्गं लोकं गमयति। अस्मद्राता मधुमती देवत्रा गच्छेति स्वर्गमेवैना लोकं गमयति। प्रदातारमाविशेति। तस्मादमुष्मिंल्लोक आगामुकाः। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्र दक्षिणा इति। यो वै यज्ञियो मेध्यः स ऋतस्य पन्थाः। तेनैवैना नयति। ब्राह्मणमद्यध्यासं पितृमन्तं पैतृमत्यमिति। यो वै श्रोत्रिय आर्षेयः स पितृमान्पैतृमत्यः। तं विदेयमित्येवैतदाह। स हि सुधातुदक्षिणः। यामब्राह्मणाय ददाति वनस्पतयस्तया प्रथन्ते। यां कण्वकश्यपेभ्यो ददाति नीहारस्तया प्रथते। यां ब्राह्मणायाश्रोत्रियाय ददाति मरीचयस्तया प्रथन्ते। यां श्रोत्रियायार्षेयाय ददाति तयामुष्मिंल्लोक ऋध्नोति। अस्मिंश्चास्य लोके पुनर्भोगाय भवति। तस्मात्स एवेष्टव्यः। वि स्वःपश्य व्यन्तरिक्षमिति सदः प्रेक्षते। सोमपा वा एते ब्राह्मणाः। तेषां तेजस्वीनि चक्षूंषि। अरातीयन्ति वा एते ददते। त एनमीश्वराः प्रतिनुदः। तेभ्य एव नमस्करोत्यप्रतिनोदाय। अत्रिर्हिरण्यं ददाति। स्वर्भानुर्वा असुरः सूर्यं तमसाविध्यत्। तमत्रिरेवान्वविन्दत्। यदत्रिर्हिरण्यं ददाति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै। यद्यात्रेयं न विन्देद्य आर्षेयः संहितस्तस्मै दद्यात्। तेनैवर्ध्नोति। असुरा वै देवेभ्यो दक्षिणामनयन्। तां प्रत्यनुदन्त। ते ऽब्रुवन्नत्रिहदेषेति। तेभ्यो ऽपरामनयन्। तां [प्रत्यनुदन्त। ते ऽब्रुवन्नृम्णमेषा] गादिति। तेभ्यो ऽपरामनयन्। तां प्रत्यनुदन्त। ते ऽब्रुवन्नद्राप्सीदेषेति। एतां ह वै तदृषिरभ्यनूवाच॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।

आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणामदधाम्॥

इति। सा सालावृकी संभूयासुरान्प्राविशत्। सैनानिरदहत्। तस्माद्दक्षिणा प्रतिनुत्ता न प्रतिगृह्या। न गोषु चारयेत्। सालावृक्येवैनं भूत्वा प्रविशति। सैनं निर्दहति ॥४॥

यद्गां ददात्यायुस्तेन स्पृणोति। यद्वासो ददाति दीर्घं तेनायुः कुरुते। यदश्वं ददाति सूर्यभ्राजमेवैनं करोति। यदनो यद्रथं ददाति शरीराणि तेन स्पृणोति। यदविं यदजां ददाति मांसानि तेन स्पृणोति। यदोदनं यन्मन्थं ददाति यदेवास्यान्तरात्मं तत्तेन स्पृणोति। यद्वरं ददात्यात्मानं तेन स्पृणोति। आत्मा हि वरः। यद्ब्रह्मणे ददाति बार्हस्पत्यो वै ब्रह्मा बृहस्पतिमेव तेन प्रीणाति। यदुद्गात्रे ददाति प्राजापत्यो वा उद्गाता प्रजापतिमेव तेन प्रीणाति। यद्धोत्रे ददाति वैश्वदेवो वै होता सर्वा एवास्य तेन देवता अभीष्टाः प्रीता भवन्ति। यदध्वर्युभ्यां ददात्याश्विनौ वा अध्वर्यू अश्विनावेव तेन प्रीणाति। यदृत्विग्भ्यो ददाति होत्रा वा ऋत्विजो होत्रा एवास्य तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति। यत्सदस्येभ्यो ददाति यमेव ते सोमं पिबन्ति तं तेन निष्क्रीणाति। यां ब्राह्मणाय श्रोत्रियायानृत्विजे प्रसृप्ताय ददाति यामेव स विद्यां वेद सास्य तेनाभीष्टा प्रीता भवति। यामब्राह्मणायाश्रोत्रियायानृत्वजे प्रसृप्ताय ददाति यामेव स विद्यां वेद सास्य तेनाभीष्टा प्रीता भवति। यामकामो ददाति तस्मात्क्षत्रं ब्रह्मात्ति। यां याचितो ददाति भ्रातृव्यं तया जिन्वति। यां बहिर्वेदि ददाति नैनं सा गच्छति। यां ज्ञातये ऽनृत्विजे प्रसृप्ताय ददाति पाप्मानं तन्निधत्ते। यां ज्येष्ठाय यां श्रोत्रियाय ददाति येनैव स तदिन्द्रियेण भवति तदस्याभीष्टं प्रीतं भवति ॥५॥

आदित्या वा असुरान्हत्वा वैरदेयादीषमाणास्ते देवान्प्राविशन्। द्विदेवत्यान्वाव तत्प्राविशन्। एते हि देवानां सह भूयिष्ठाः। तस्मादादित्यो द्विदेवत्येभ्यो गृह्यते। उच्छिष्टाद्वा आदित्या जाताः। तस्मादेष उच्छिष्टः सोमो गृह्यते

[उच्छेषणभागा वा आदित्याः। तस्मादेष उच्छिष्टः सोमो गृह्यते।] परिश्रिते गृह्णाति। रुद्रो वा अग्निः पशव आदित्याः। पशूनां गोपीथाय। रुद्रं वै देवा यज्ञान्निरभजन्। ते समवादिशन्नेष ते मातरि भाग इत्यादित्यान्तमेतावदागमयित्यैतत्प्रति यज्ञादन्तरदधुः। यत्परिश्रित आदित्यं गृह्णाति रुद्रमेव यज्ञादन्तर्दधाति। पशवो वा आदित्यः। यदेष भूयिष्ठः सोमो गृह्यते तस्मात्पशवो ऽद्यमाना न क्षीयन्ते। यदा बहवो ऽन्तर्वेदि स्युरथ गृह्णीयात्। एष वै यजमानस्य स्वो लोको यद्वेदिः। पशवस्तानेवात्रान्नाद्यमवरुन्द्धे। यदास्य भ्रातृव्यो ऽन्तर्वेदि स्यादथ गृह्णीयात्। बृहतीः पुरोरुचो भवन्ति। पशवो वै बृहतीःपशव आदित्यः। पशुष्वेव आदित्यः। स्व एव लोके भ्रातृव्यस्य पशून्वृङ्क्ते। ऊर्जं वै दधि पशव आदित्यः। ऊर्जमेव पशुषु मध्यतो दधाति। पशून्दधाति। सोममग्रे गृह्णाति। अथ दध्यथ सोमम्। यदि कामयेत वर्षेदिति या दिव्या वृष्टिस्तया त्वा श्रीणामीति शृंतातङ्क्यं भवति। तस्मादामा पक्वं दुहे। पशव आदित्यः। पशुभ्य एव वर्षति यर्हि वर्षति। पशुभ्य एव वृष्टिं निनयति। दध्नोपरिष्टाच्छ्रीणीयात्। पशवो वै दधि पशव आदित्यः। पशुष्वेव प्राणं दधाति। विवस्व आदित्यैष ते उपांशुसवनेन मेक्षयति। प्राणो वा उपांशुसवनः पशव आदित्यः। पशुष्वेव प्राणं दधाति। यद्युद्गृहीतस्य स्तोको ऽवपद्यते सोमपीथ इति। एष वाव स उपांशुसवनः। साक्षादेवैनं सोमपीथेन समर्धयति। यद्युद्गृहीतस्य स्तोको ऽवपद्यते ताजक्प्रवर्षति। गृहीत्वापिदधाति गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय। तं दशमे स्तोत्रे प्रच्यावयति। तस्माद्दशमे मासि गर्भा हिताः प्रजायन्ते। अन्यत्रेक्षमाणो जुहोति। रुद्रो वा अग्निः पशव आदित्यः। पशूनां गोपीथाय। यदीक्षेत ब्राह्मण उपद्रष्टा पशून्गृह्णीयात्। पशूनामेव प्रदीयमानानामनुपद्रष्टा भवति ॥६॥

अन्तर्यामपात्रेण सावित्रं गृह्णाति। पशवो वा अन्तर्यामः। सवितृप्रसूताः पशवः प्रजायन्ते। सवितृप्रसूत एवैनान्प्रजनयति। तमसन्नं जुहोति। तस्मादसन्नाः पशव सदर्दि प्रजायन्ते। देवा वै तृतीयसवनमुद्यमं नाशक्नुवन्। प्रातःसवने तर्हि सवितासीत्। तं देवा अब्रुवंस्त्वयेदमुद्यच्छामहा इति। नेत्यब्रवीन्मुख्यो ऽहमस्मि न प्रत्यङ्ङुपक्रमिष्यामीति। मुख्य एवात्रास इत्यब्रुवन्मुख्य इहाथ त्वयोद्यच्छामहा इति। तत्सवित्रोदयच्छन्त। यत्सावित्रो गृह्यते तृतीयसवनस्योद्यत्यै। अभि त्वा देव सवितरित्येतया प्रातःसवने मुख्यः। समन्तं वै तत्सविता यज्ञं पर्यभवत्। समन्तं भ्रातृव्यं परिभवति य एवं वेद। अन्तर्यामपात्रेणाग्रायणात्सावित्रं तृतीयसवने गृह्णाति। प्रातर्वा एष गृह्यते गायत्र्या लोके यदाग्रायणः। तं तृतीयसवने विगृह्णाति जगत्या लोके। तस्मादाग्रायणात्सवित्रो गृह्यते। सविता हि देवानां गायत्रः। सावित्रस्य संस्रावे वैश्वदेवमभिगृह्णाति। समानो वा एष ग्रहः। संतत्यै। वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः। सवितृप्रसूता प्रजाः प्रजायन्ते। सवितृप्रसूता एवैनाः प्रजनयति। सुशर्मासि सुप्रतिष्ठान इति। सोमे हि सोममभिगृह्णाति। अथो सुशर्माणमेवोत्तरमधरस्मै करोति सुप्रतिष्ठानमधरमुत्तरस्मै। बृहदुक्षे नम इति। बृहद्धि देवानां नमः पितॄणाम्। उक्थभागा वै पितरो ऽसोमभाजः। यत्रैवैभ्य उक्थं शंसति तदेभ्यो ग्रहं गृह्णाति ॥ ७ ॥

प्रजननं वै पात्नीवतः। यद्वै किंच यज्ञे पात्नीवतं क्रियते प्रजननमेव तत्। उपांशुपात्रेण गृह्णाति। प्राणो वा उपांशुः। प्रजननं वै पात्नीवतः। यद्वै किंच यज्ञे पात्नीवतं क्रियते प्रजननमेव तत्। उपांशुपात्रेण गृह्णाति। प्राणो वा उपांशुः। प्राणेनैव प्रयन्ति प्राणात्प्रजाः प्रजायन्ते। प्रजननाय। उपांशुना प्रयन्त्युपांशुपात्रेणोद्यन्ति। प्राणो वा उपांशुः। प्राणेनैव प्रयन्ति प्राणेनोद्यन्ति। बृहस्पतिसुतस्य त इति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। ब्रह्मणैवैनाः प्रजनयति। इन्द इति प्राणेनोद्यन्ति। बृहस्पतिसुतस्य त इति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। ब्रह्मणैवैनाः प्रजनयति। इन्द इति रेत एव दधाति। इन्द्रियावत इति। इन्द्रियं वै प्रजाः सोमपीथः। अग्ना३इ पत्नीवा३निति मिथुनमेव करोति। सजूस्त्वष्ट्रा सोमं पिबेति। त्वष्टा वै रूपाणां विकर्ता। सो ऽस्मै रूपाणि विकरोति। एष वै ग्रहः पत्नीभ्यो नातिष्ठत। तं देवा आज्यं वज्रं कृत्वाघ्नन्। यत्पात्नीवतं श्रीणाति स्तृत्यै। संपातेन श्रीणाति संतत्यै। उपरिष्टाच्छ्रीणाति। तस्मात्स्त्र्यखलतिर्भावुका। शृत वा एतं सोमं जुहोत्यशृतानितरान्। तस्मात्स्त्री निर्वीर्यानिर्वीर्यः पुमान्। नैतस्य होता यजति। पश्चेव हि सः। पुरः प्राणाञ्ञनुयजति। यदनुयजेदग्निना प्राणातन्तरियात्प्रमीयेत। शृतं पश्चात्प्राणान्परिहरेत्। अग्नीद्यजति। पुरो हि सः। पुरः प्राणाञ्ञनुयजति। तस्माद्बहुपशुर्भावुकः। सह पात्रेण वा एतं सोमं भक्षयति। तस्मादग्नीत्पण्डको भावुकः। प्रजननं वै पात्नीवतः। तस्माद्बहुपशुर्भावुकः। सह पात्रेण वा एतं सोमं भक्षयति। तस्मादग्नीत्पण्डको भावुकः। नोपस्थ आसीत। यदुपस्थ आसीत पण्डकः स्यात्। अन्तरा नेष्टारं च नेष्टारमभिसर्पति। पत्नीरेव सोमपीथं गमयति। नोपस्थ आसीत। यदुपस्थ आसीत पण्डकः स्यात्। अन्तरा नेष्टारं च धिष्ण्यं च व्यवसर्पति। स्त्रीणां वै नेष्टा पुमानग्निधिष्ण्यः। मिथुन एव रेतो दधाति ॥८॥

इन्द्रो वै वृत्रमहन्। तस्य मूर्धानमुदरुजत्। स द्रोणकलशो ऽभवत्। ततो यः सोमः समस्रवत्स हारियोजनो ऽभवत्। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा तस्य क्लोम्नो हृदयात्सोमं समसिञ्चत्। स हारियोजनो ऽभवत्। सो ऽमन्यत यदिममशृतमद्वितीयं होष्यामि तदन्वसुरा आभविष्यन्ति यत्र होष्यामि तदन्वाभविष्यन्तीति। संस्थितः सोम आसीत्प्रहृताः परिधयः। अथोपोदतिष्ठद्धोतुम्। तमग्निरब्रवीन्न मय्येतमशृतमद्वितीयं होष्यसीति। तस्मिन्धाना आवपत्। तं शृतं द्वितीयवन्तमजुहोत्। यद्धाना आवपति शृतत्वायैव द्वितीयत्वाय। ये वै ते वृत्रे पशव आसंस्त एवैते। पशूनेवैतत्कामदुघो ऽवरुन्द्धे। कामंकामं ह्येतेषां कुरुते। ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी। तयोरेतद्भागधेयं यद्धारियोजनः। आधानानि परिधयः। यत्प्रहृतेषु परिधिषु हारियोजनं जुहोति निराधानाभ्यामेवाभ्यां घासमपिदधाति। प्रजापतिर्वा आग्रायणः। आग्रायणादेष सोमो ऽतिरिच्यते। यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते प्रजापतिं तदभ्यतिरिच्यते। यदेतमतिरिक्तं सोमं जुहोति तस्मादयमतिरिक्तः प्रजापतिः प्रजा अभिपवते। द्रोणकलशेनोन्नेता हारियोजनं जुहोति। अतिरिक्तं वा एतत्पात्राणां यद्द्रोणकलशो ऽतिरिक्त एष ऋत्विजां यदुन्नेतातिरिक्त एष सोमानां यद्धारियोजनः। अतिरिक्तेनैवातिरिक्तमाप्नोति। उन्नेतर्युपहवमिच्छन्ति य एव तत्र सोमपीथस्तस्यावरुद्ध्यै। ये वै ते वृत्रे पशव आसंस्त एवैते। यत्संभिन्द्यात्संशारुका एनमल्पाः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठेरन् हिनस्ति हि। यन्न संभिन्द्यादसंशारुका एनं बहवः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठेरन्। न हि हिनस्ति। समवगृह्णीयात्। उभयमेव करोति। असंशारुका एनं बहवः पशवो भुञ्जन्त उपतिष्ठन्ते। निरवधयेद्य एव तत्र सोमपीथस्तस्यावरुद्ध्यै। उत्तरवेद्यां निवपति। पशवो वा उत्तरवेदिः पशवो हारियोजनीः। पशुष्वेव पशून्दधाति ॥९॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

पात्राणि प्रयुज्यन्ते ऽनयोर्लोकयोर्विधृत्यै। प्रान्यानि युज्यन्ते नान्यानि। यानि प्रयुज्यन्त इमं तैर्लोकं दाधार। यानि न प्रयुज्यन्ते ऽमुं तैः। पराङ् ह्यसौ लोको ऽनिरुक्तः। उपांशुपात्रं प्रयुज्यते। अजा एव तत्पशूनामनुप्रजायन्ते। त्रिर्विगृह्णाति। तस्मात्सा त्रीञ्जनयति। अथो द्वौ। यदुपांशुपात्रं प्रयुज्यते ऽजा एव तेन पशूनां दाधार। अन्तर्यामपात्रं प्रयुज्यते। अवय एव तत्पशूनामनुप्रजायन्ते। यदन्तर्यामपात्रं प्रयुज्यते ऽवीरेव तेन पशूनां दाधार। ऋतुपात्रे प्रयुज्येते। अश्वा एव तत्पशूनामनुप्रजायन्ते। तस्मात्तयोरश्वस्येव शफो ऽधस्तात्। यदृतुपात्रे प्रयुज्येते अश्वानेव तेन पशूनां दाधार। उक्थ्यपात्रं प्रयुज्यते। आरण्या एव तत्पशवो ऽनुप्रजायन्ते। तस्मात्तान्धृतान्ग्राममागतान्घ्नन्ति। यदुक्थ्यपात्रं प्रयुज्यत आरण्यानेव तेन पशून्दाधार। शुक्रपात्रं प्रयुज्यते। अत्तीरेव तत्प्रजा अनुप्रजायन्ते। मन्थिपात्रं प्रयुज्यते। आद्या एव तत्प्रजा अनुप्रजायन्ते। यदेते प्रयुज्येते उभयीरेवैतदत्त्रीश्चाद्याश्च प्रजा दाधार। ऋतुपात्रे शुक्रपात्रात्पूर्वे प्रयुज्येते। असौ वा आदित्यः शुक्रो रश्मय ऋतवः। तस्मादेते पूर्वे प्रयुज्येते। पूर्वे ह्येते। एतस्मादवरमादित्यपात्रं शुक्रपात्रात्प्रयुज्यते। गाव एव तत्पशूनामनुप्रजायन्ते। यदादित्यपात्रं प्रयुज्यते गा एव तेन पशूनां दाधार। आग्रायणपात्रं प्रयुज्यते। सर्वा एव तत्प्रजा अनुप्रजायन्ते। यदाग्रायणपात्रं प्रयुज्यते सर्वा एव तेन प्रजा दाधार। द्रोणकलशः प्रयुज्यते। प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः। यद्द्रोणकलशः प्रयुज्यते तस्मादिदं प्रजापतिः प्रजा वेद तस्मादयं क्षयो ऽस्ति। एतावन्तो वै प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते। ते स्तोत्रवन्त उक्थवन्तो निदानवन्त आयतनवन्तः कर्तव्याः। नवैतान्गृहीत्वा नवभिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्ति। तेन ते स्तोत्रवन्तः। यत्पुनरेत्याश्विनं गृह्णाति। स्तोमेनैव स स्तोत्रवान्। यदुपांश्वन्तर्यामौ हुतौ होतानुमन्त्रयते तेन तावुक्थवन्तौ। यदैन्द्रवायवं तेनैन्द्रवायव उक्थवान्। यन्मैत्रावरुणं तेन मैत्रावरुण उक्थवान्। यदाश्विनं तेनाश्विन उक्थवान्। यत्त्रिष्कैवल्यं तेन शुक्रामन्थिनावुक्थवन्तौ। यद्वैश्वदेवं तेनाग्रायण उक्थवान्। यदाग्निमारुतं तेन ध्रुव उक्थवान्। यदुक्थान्युक्थशंसिनः शंसन्ति तेनोक्थ्य उक्थवान्। एतावन्तो वै प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते। तानेतत्स्तोत्रवत उक्थवतो निदानवत आयतनवतः करोति। निदानवानायतनवान्भवति य एवं वेद ॥१॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। ते देवाः संघातं-संघातं पराजयन्त। ते ऽविदुरनायतना हि वै स्मस्तस्मात्पराजयामहा इति। त एताः पुरो ऽकुर्वत। ता एषामनायतना नाधियन्त। त एतान्पुरोडाशानपश्यन्।

तानुसवनं निरवपन्। तैः पुरो ऽदृंहन्। सवनानि वाव ते पुरो ऽकुर्वत। यत्पुरो ऽदृंहंस्तत्पुरोडाशानां पुरोडाशत्वम्। यदनुसवनं पुरोडाशान्निर्वपति सवनानां धृत्यै विधृत्यै। तस्मादनुसवनं पुरोडाशस्य प्राश्नीयात्सोमपीथस्य धृत्यै। यतो घृतानक्तं स्यात्ततः प्राश्नीयात्। आज्येन वै वज्रेण देवा वृत्रमघ्नन्। सोमो वृत्रः सोमपीथस्याघाताय। तदाहुर्न वा अन्येनाज्यादर्हीने सम्मृष्टुमर्हतीति। सर्वमेतद्धविर्भूतं यत्किंचोत्पुनन्ति। यदेवानुत्पूतं स्यात्तस्य नाश्नीयात्। दीर्घजिह्वी वै देवानां यज्ञमवालेट्। प्रातःसवनं तद्धमात्। यस्मा पयस्याभवत्तस्मादामिक्षा किमदितेव। यत्पयस्या प्रातःसवने भवति प्रातःसवनस्य समृद्ध्यै। मैत्रावरुणी प्रातःसवने भवति नोत्तरे सवने ऽश्नुते। प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ। प्राणापानावेव मुखतः परिहरते। तस्मान्मुखतः प्राणापानौ। न वै स्तोत्रेण न शस्त्रेण पङ्क्तिर्यज्ञे ऽवकल्पते। पञ्चैतानि हवींषि। पङ्क्तिमेवैतद्यज्ञे ऽवकल्पयति। हविष्पङ्क्तिर्वै यज्ञो नाराशंसपङ्क्तिः पाङ्क्तः। पञ्चैतानि हवींषि। तेन हविष्पङ्क्तिः। द्विनाराशंसा प्रातःसवने द्विनाराशंसा माध्यन्दिन एकनाराशंसा तृतीयसवने। तेन नाराशंसपङ्क्तिः। अग्नीषोमीयः पशुस्त्रीणि सवनानि वशानूबन्ध्या तेन पाङ्क्तः। य एवमेतानि यज्ञस्य रूपाण्यनुवेदर्ध्नोति॥

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्। ते देवेभ्यो महिमानो ऽपाक्रामन्। ते ऽसुरानगच्छन्। ते ऽसुरा देवानां बहूनि शतान्यघ्नन्। तानीमानि च्छन्दांसि यान्यदृश्यावहानि। ते देवा अबिभयुरित्थं वाव नः सर्वानसुरा अवपत्स्यन्तीति। तान्युपामन्त्रयन्त। ते ऽब्रुवन्वार्यं वृणामहा इति। ते परिवापपुरोडाशमवृणत। तद्भागधेयमभ्यायन्। ऋक्सामे वा ऐभ्यस्तदपाक्रामताम्। पशवो वा इन्द्रियं प्राणापानौ। स इन्द्रो ऽमन्यतेमे वावेदमभूवन्निति। तेषां सायुज्यमगच्छत्। हरिवां इन्द्रो धाना अत्त्विति। ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी। ऋक्सामयोरेव तत्सायुज्यमगच्छत्। पूषण्वान्करम्भमिति। पशवो वै पूषा। पशूनामेव तत्सायुज्यमगच्छत्। सरस्वतीवान्भारतीवान्परिवाप इति। वाग्वै सरस्वती। वाच एव तत्सायुज्यमगच्छत्। इन्द्रस्यापूप इति। इन्द्रियं वा इन्द्रः। इन्द्रियस्यैव तत्सायुज्यमगच्छत्। मित्रावरुणयोः पयस्येति। प्राणापानौ वै मित्रावरुणौ। प्राणापानयोरेव तत्सायुज्यमगच्छत्। एतेषामेव महिम्नां सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति पशुमान्भवति न यज्ञियामार्तिमार्छति य एवं वेद ॥२॥

नीडं वा एतद्यज्ञस्य क्रियते यदाशुषा क्रियते। उच्चैर्ऋचा च साम्ना च क्रियते। यदृचः पुरोरुचो भवन्ति द्रढिम्न एव प्रत्युत्तब्ध्या अशिथिलत्वाय। प्रैवर्चा प्र यजुषा यच्छति गमयति ग्रहेण। ऋचा वै स्तोत्राय गृह्यते यजुषा शस्त्राय। तस्मादेते संहिते। संहिते हि स्तोत्रं च शस्त्रं च। पराङ् वा एतर्हि यज्ञः पराचीर्देवतास्तृतीयसवने यजमानात्। आग्नेय्या पुरस्तात्सौम्यं परियजति वैष्णव्योपरिष्टात्। अग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञः। देवताश्चैव यज्ञं चालभते। घ्नन्ति वा एतत्सोमं यदभिषुण्वन्ति। तस्यैतदनुस्तरणी यत्सौम्यः। दक्षिणार्धे ऽग्नेर्जुहोति। दक्षिणा हि पितॄणाम्। सकृदवद्यति। सकृदवत्तं हि पितॄणाम्। यस्क्षेत्रेण द्वितीयमवद्यति तेनैव सकृदवत्तं भवति। उद्गातृभ्यो हरन्ति। सोमदेवत्यं वै साम। साम्नः सवीर्यत्वाय सतनुत्वाय। प्राश्यो न प्राश्य इति मीमांसन्ते। यत्प्राश्नीयात्प्राकालुकः स्याद्यन्न प्राश्नीयादहविः स्यात्। अवजिघ्रेत्। उभयमेव करोति। यो ऽलमन्नाद्याय सन्नन्नं नाद्यात्स प्राश्नीयात्। परं वा एतदन्नं यत्पितरः। परेणैवान्नेनावरमन्नाद्यमवरुन्द्धे। भेषजं वा एतद्देवा यज्ञायाकुर्वन्। यत्सौम्यस्तदेष भिषज्यः। तस्मादामयाविना प्राश्यः।

पितरो मन्दन्तां सोमप्रतीका मन्दन्तां व्यशेम देवहितं यदायुः। इन्द्रपीतो विचक्षणो व्यशेम देवहितं यदायुः। हृदिस्पृक् [क्रतुस्पृग्] वर्चोधा असि वर्चो मे धेहि।

यन्मे मनो यमं गतं यद्वा मे अपरागतम्।
राज्ञा सोमेन तद्वयमस्मासु धारयामसि॥

इति सौम्यमवेक्षेत। यद्वा इह प्राकरोति यदस्यात्मनो मीयते पितॄंस्तद्गच्छति। यत्सौम्यमवेक्षते तदेवात्मन्यच्छते। परीव पश्येत्। यत्परिपश्यत्यात्मानमेव परिपश्यति। स ह त्वा अमुष्मिंल्लोके सर्वतनूर्य एवं विद्वान्सौम्यमवेक्षते। वीर्यं वा उपसदो निर्वीर्यं तृतीयसवनम्। ता बहिर्यज्ञं क्रियन्ते। यत्सौम्येन [तृतीयसवने चरन्ति] तृतीयसवन एव वीर्यं

दधाति। एता हि देवता उपसत्स्विज्यन्ते। आग्नेय्या पुरस्तात्सौम्यं परियजति हतो नेद्यज्ञमभिप्रपद्याता इति। वैष्णव्योपरिष्टादग्निष्टोमे नेत्सौम्यमभिप्रपद्याता इति। उभयत एव परिस्तृणात्यनभिप्रपादाय। आग्नेय्या घृतस्य यजति सौम्या सौम्यस्य वैष्णव्योपरिष्टाद्घृतस्य। यथापूर्वमेव देवतास्तर्पयति ॥३॥

प्राणा वै संस्थितयजूंषि। नवैतानि यजूंषि। नवभिर्बहिष्पवमानं स्तुवन्ति। नव प्राणाः। प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणैरुद्यन्ति। संततं जुहोति प्राणानां संतत्या अविच्छेदाय। यं कामयेत प्रमीयेतेति नव कृत्वो गृहीत्वायजुष्केणैकैकं जुहुयात्। प्राणा वै संस्थितयजूंषि। प्राणेभ्य एवैनमन्तरेति ताजक्प्रधन्वति। विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रो यज्ञस्य व्यृद्धं च समृद्धं चापश्यत्। षडेतान्यृग्म्याणि। यदेवास्य व्यृद्धं तत्तैः समर्धयति। त्रीणि यजूंषि। समृद्धमेव तत्। षडृग्म्याणि। षड्वा ऋतवः। ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठति। त्रीणि यजूंषि। त्रय इमे लोकाः। एष्वेव लोकेष्वृध्नोति॥

यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते वरुणस्तद्गृह्णाति। यज्ञस्यैतदतिरिच्यते यदृजीषं यदौदुम्बरी यदधिषवणे। तेनाप्सु ऽवभृथमवयन्ति। आपो वै वरुणः। निर्वरुणत्वाय। न वहन्तीष्वभ्यवेयुः। पशवो वा ऋजीषम्। पशूनस्य निर्मृज्युरपशुः स्यात्। नोदञ्चो ऽभ्यवेयुः। यदुदञ्चो ऽभ्यवेयुरभीपतः प्रजा वरुणो गृह्णीयात्। न दक्षिणा। यद्दक्षिणा पितृभ्यः प्रजा निधूवेयुः। उदञ्चः प्राञ्चो ऽभ्यवयन्ति। पश्चाद्धि प्राङ् यज्ञो वरुणपाशादुन्मुच्यमान एति। स्थावरास्ववयन्ति। स्थावरा वै प्रत्यक्षं वरुणः। वरुण एव वरुणमवयजते। उरुं हि राजा वरुणश्चकार॥ शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमिति यथायजुः। अग्नेरनीकमप आविवे [शेत्याघारमाघारयति समिद्ध्या एवोद्दीप्त्यै।.....॥४॥

[यज्ञस्य वै शिरो ऽच्छिद्यत। ततो यो रसो ऽस्रवत्सा वशाभवत्। यद्वशानूबन्ध्या भवति यज्ञस्य सरसत्वाय। मित्रो वै यज्ञस्य स्विष्टं] गृह्णाति वरुणो दुरिष्टम्। यन्मैत्रावरुणी वशानूबन्ध्या भवत्युभयत एव यज्ञं प्रमुच्य यजमानाय संप्रयच्छति मित्राच्च वरुणाच्च। यथा लाङ्गलेनोर्वरां प्रभिनेत्त्येवमृक्सामाभ्यां यज्ञः प्रभिद्यते। यथा मत्यमन्ववास्यत्येवं तत् यद्वशानूबन्ध्या यज्ञस्य शान्त्या अनुबध्यते। यत्प्रथममस्रवत्तद्बृहस्पतिरुपायद्यद्द्वितीयं तन्मित्रावरुणौ यत्तृतीयं तद्विश्वे देवाः। यदि तिस्रो ऽनूबन्ध्याःस्युर्मैत्रावरुणीं प्रथमां कुर्यादथ वैश्वदेवीमथ बार्हस्पत्यां यज्ञस्य सर्वत्वाय सरसत्वाय। अत्रात्र हि यज्ञस्य रसः। यातयामा वा एतस्य देवताश्च ब्रह्म च यः सोमेन यजते। यदेते वैश्वदेवी च बार्हस्पत्या च भवतो देवतानां चैव ब्रह्मणश्चायातयामत्वाय। वैश्वदेवी मध्ये भवति। वैश्वदेवीरिमाः प्रजाः। प्रजास्वेव रेतो दधाति। उपांशु यजति। अनिरुक्तं हि रेतः। बार्हस्पत्योत्तमा भवति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। अन्तमेवागत्य ब्रह्मवर्चसे प्रतितिष्ठति। यथा वा अनड्वान्यथाश्वो विमुक्तो ऽपक्रामत्येवं सोमेनेजानाद्देवताश्च यज्ञश्चापक्रामन्ति। आग्नेयं पञ्चकपालमुदवसानीयं निर्वपति। अग्निर्वै सर्वा देवताः पाङ्क्तो यज्ञः। देवताश्चैव यज्ञं चालभते। गायत्रो वा अग्निर्गायत्रच्छन्दाः। तं छन्दसा व्यर्धयति यत्पञ्चकपालं करोति। अष्टाकपालः कार्यः। अष्टाक्षरा गायत्री। गायत्रो ऽग्निर्गायत्रच्छन्दाः। स्वेनैवैनं छन्दसा समर्धयति। पाङ्क्ते याज्यानुवाक्ये भवतः। पाङ्क्तो यज्ञः। तेन यज्ञान्नैति ॥५॥

उपयामगृहीतो ऽसि। प्रजापतये त्वा ज्योतिष्मते ज्योतिष्मन्तं गृह्णामि दक्षाय दक्षवृधम्। अग्निजिह्वेभ्यस्त्वर्तायुभ्यो वातापिभ्य पर्जन्यात्मभ्यः इन्द्रज्येष्ठेभ्यो वरुणराजभ्यः। पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वा। सते त्वासते त्वा भूताय त्वा भव्याय त्वा। यतः प्रजा अखिद्रा अजायन्त तस्मै त्वा प्रजापतये विभुदाम्ने जुहोमि स्वाहा॥

अभि सोमो ऽपःकामयते ऽभि सोममापः। यथा गावःसंजानानाः संगत्यान्यान्यां घ्नन्त्येवं वा एतौ संजानानौ संगत्यान्यो ऽन्यस्येन्द्रियं वीर्यं निर्हतः। उभयमेतत्प्राजापत्यं यत्सोमश्चापश्च। अपामेष ओषधीनां रसो यद्दधि। यद्वै पुत्रौ युध्येते पिता ताभ्यां कल्पयति। स्व एवैनौ लोके स्वेन भागधेयेन पिता शमयति। सह त्वै यज्ञेन समृद्धेन यजते यस्यैष गृह्यते। दध्ना सर्वाणि सवनानि पशुमन्ति वीर्यवन्ति कर्तव्यानि। यत्पयस्यया प्रातःसवने चरन्ति तेन तत्पशुमद्वीर्यवत्। यद्दधिघर्मेण मध्यन्दिने तेन तत्पशुमद्वीर्यवत्। यदाशिरा तृतीयसवने तेन तत्पशुमद्वीर्यवत्। सर्वाण्यस्य सवनानि पशुमन्ति वीर्यवन्ति भवन्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥

देवा वा असुरान्यज्ञमभिजित्य ते प्रबाहुग्ग्रहान्गृह्णाना आयन्। स प्रजापतिरमन्यत यः प्रथमो ग्रहीष्यते स एवेदं

भविष्यतीति। स एतमंशुमपश्यत्। तं पराङ् प्राणन्नगृह्णीत। स पराङ् श्रियो ऽन्तमगच्छत्। बुभूषन्नेतं गृह्णीत। पराङेव प्राण्यात्प्रानन्यात्। पराङेव श्रियो ऽन्तं गच्छति। यदानिन्यादार्तिमार्छेत् प्र वा मीयते सर्वज्यानिं वा जीयते। यदि कामयेत सदृङ् यजमानः स्यादिति न प्राण्यात्प्रानन्यात्। सदृङ्ङेव भवति। चतुःस्रक्ति पात्रं भवति। चतस्रो दिशः। सर्वास्वेव दिक्ष्वृध्नोति। हिरण्येन संस्पर्शयति। अमृतं वै हिरण्यम्। अमृतेनैवैनं संदधाति। स [कृदभिषुतस्य गृह्णाति। न वै प्रजापतिं सवनैराप्तुमर्हति। एकधैवैनमाप्नोति। नर्चमन्वाह न यजुर्वद]ति। न वै प्रजापतिं वाचाप्तुमर्हति। मनसैवैनमाप्नोति। यो ऽंशोरायतनं वेदायतनवान्भवति। वामदेव्यमेवांशुं गृह्णन्वामदेव्यं मनसा ध्यायेत्। एतद्वा अंशोरायतनम्। आयतनवान्भवति य एवं वेद। हिरण्यमभिव्यनिति। आयुर्वै हिरण्यम्। आयुरेवात्मन्नभिधिनोति। अद्भिः प्रत्युक्षति। अमृतं वा आपः। अमृते [नैवैनं] संभरति ॥७॥

अथैते अतिग्राह्या यदेव परमोजो वीर्यमनरुद्धं तत्तावरुन्द्ध्यै। यदाग्नेयस्तेजो वा अग्निस्तेज एव तेन पुरस्ताद्धत्ते। यदैन्द्र इन्द्रियं वा इन्द्र इन्द्रियमेव तेन मध्यतो धत्ते। यत्सौर्यो ब्रह्मवर्चसमसावादित्य उपरिष्टादेव तेन ब्रह्मवर्चसं धत्ते। तेजो वा अग्निरिन्द्रियमिन्द्रो ब्रह्मवर्चसमसावादित्यः। तेजसा चैव ब्रह्मवर्चसेन चेन्द्रियमुभयत आत्मन्परिगृह्णाति। उपस्तम्भनं वा एतद्यज्ञस्य यदतिग्राह्याः। चक्रियौ पृष्ठानि। यदेते न गृह्येरन्नुपरिष्टाद्गरीयांसि पृष्ठानि प्राञ्चं यज्ञं संमृणुः। यदेते गृह्यन्ते पुरस्तादेव यज्ञमुपस्तभ्य चक्रियावुपास्यति सयत्वाय। प्रातःसवने गृह्णीयात्। एतद्वै सवनानां वीर्यवत्तमम्। वीर्यादेवैनानधिगृह्णाति॥

देवा वै सर्वे एव सदृशा आसन्। न व्यावृतमगच्छन्। तत एत एतान्ग्रहानपश्यन्नग्निराग्नेयमिन्द्र ऐन्द्रं सूर्यः सौर्यम्। ततो वै ते व्यावृतमगच्छञ्छ्रैष्ठ्यं देवानाम्। यस्यैते गृह्यन्ते व्यावृतमेव गच्छति श्रैष्ठ्यं समानानाम्। प्रजापतिर्वै देवेभ्यो भागधेयानि व्यादिशत्। यज्ञमेव सो ऽमन्यतात्मानमन्तरगामिति। तस्य याः प्रियास्तिलस्तन्व आसंस्ता अपन्यधत्त। एतान्वाव तद्ग्रहानपन्यधत्त। येन यज्ञेनैतैर्नाभिगृह्णीयात्। सर्वमेवैनं सवीर्यं सयोनिं सतनूमृद्ध्यै संभरति॥

वृत्रे वा एते पुरासन्। स इन्द्रो वृत्रं हत्वा स एतमाग्नेयमविन्दत। तमग्नये प्रायच्छदेतं मे धारयेति। स सौर्यमविन्दत। तं सूर्याय प्रायच्छदेतं मे धारयेति। स ऐन्द्रं विलेतरौ पुनरयाचत। तावस्मै न पुनरदत्ताम्। त इमाल्लोकान्व्यभजदग्निरिममिन्द्रो ऽन्तरिक्षं सूर्यो ऽमुम्। एतैर्वै ते ग्रहैरेषु लोकेष्वार्ध्नुवन्नेतैरेषां लोकानामाधिपत्यं पर्यायन्। सर्वेष्वेवेषु लोकेष्वृध्नोत्येषां लोकानामाधिपत्यं पर्येति यस्यैते गृह्यन्ते ॥

यद्वै विराजस्तेजस्तदा [ग्नेयो यच्छ्रव्यवर्यास्तदैन्द्रो यद्वेत्रस्तत्सौर्यः.........॥८॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां पञ्चचत्वारिंशत्तमो ऽध्यायः॥

.........अथ सौम्यः। सोमो रेतोधाः। मिथुन एव रेतो दधाति। अथ [पौष्णः ....अथ] पौष्णो ऽथ बार्हस्पत्यः। पशवो वै पूषा ब्रह्म बृहस्पतिः। पशूंश्चैव ब्रह्म चात्मन्ननुनियुङ्क्ते। अथ वैश्वदेवो ऽथैन्द्रः। वीर्यं वै विश्वे देवाः सह इन्द्रः। वीर्यं चैव सहश्चात्मन्ननुनियुङ्क्ते। अथ मारुतो ऽथैन्द्राग्नः। बलं वै मरुत ओज इन्द्राग्नी। बलं चैवौजश्चात्मन्ननुनियुङ्क्ते। प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः ॥ २ ॥

आग्नेयं सारस्वतीं सौम्यं बार्हस्पत्यं तान्त्सहालभेत ब्रह्मवर्चसकामः प्रजाकामः [पशुकामः] पुरोधाकामः। यदाग्नेय आग्नेयो हि ब्राह्मणः। यत्सारस्वती वाग्वै सरस्वती। वाचं हि वदति। यत्सौम्यः सोमं हि पिबति। यद्बार्हस्पत्यो ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मण्येव चतुष्पात्संवत्सरं प्रतिष्ठापयति। ब्रह्मवर्चसी भवति। अथ पौष्णः। पशवो वै पूषा। पशूनेव ब्रह्मन्ननुनियुनक्ति। अथैन्द्रः। क्षत्रं वा इन्द्रः। क्षत्रमेव संपाद्य प्रतिष्ठापयति। अथो क्षत्रेणैव पशून्ब्रह्मण उपोहति। आग्नेयो मध्ये भवत्यैन्द्राग्नमितः। आग्नेयो वै ब्राह्मण ऐन्द्रो राजन्यः। ब्रह्मणैव क्षत्रं मध्यतो व्यवसर्पति। प्र पुरोधामाप्नोति य एवं वेद। इन्द्राग्नी पशूनां भूयिष्ठभाजौ करोति। अग्नेरग्नेय इन्द्रस्येन्द्र ऐन्द्राग्नः सह। तस्माद्ब्राह्मणश्च राजन्यश्च प्रजानां भूयिष्ठभाजौ। अथ वैश्वदेवो ऽथ मारुतः। विड्वै विश्वे देवा विण्मरुतः। विशमेव संपाद्य तां क्षत्रायानुनियुनक्ति। ब्रह्ममुखमेव क्षत्रं कृत्वा तस्मै विशमनुनियुनक्ति। प्रसवायैव सावित्रो निर्वरुणत्वाय वारुणः।

सम्यगेव ब्रह्म समूहति सम्यक्क्षत्रं समीचीं विशम्। यत्रैव क्लृप्तैकादशिन्यालभ्यते कल्पते तत्र प्रजाभ्यः। ब्राह्मण एव ब्राह्मणो भवति राजन्यो राजन्यो वैश्यो वैश्यः। एकादशिन्या वा इदमक्लृप्तमनु प्रजाभ्यो न कल्पते। एषा वावैकादशिनी। तामेतां कापेया विदुः। तामेतामतिरात्रचरम आलभेत। सत्रियेयमितरा यामिदं प्रजा आपद्य चरन्ति। अह्नामेवैषा विधा। एतद्देवत्यान्यहानि ॥३॥

प्रजननं वै पात्नीवतः। यद्वै किंच यज्ञे पात्नीवतं क्रियते प्रजननमेव तत्। पराङ् वा एतर्हि यज्ञः पराचीर्देवताः। त्वाष्ट्रो भवति। पराचीष्वेव देवतासु त्वष्टारं वृषाणमपिसृजति। सो ऽस्मै मिथुनं करोति। वज्रो वा एष पुरस्तात्संमीयते यदेकादशिनी। स ईश्वरः प्रत्यञ्चं यज्ञं संपुरः। यत्पात्नीवतो मीयते प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय। मनोर्वै कपालान्यासन्। तैर्यावतोयावतो ऽसुरानभ्युपादधात्ते पराभवन्। अथ तर्हि त्वष्टावरुत्री आस्तामसुरब्रह्मौ। तावसुरा अब्रुवन्निमानि मनुकपालानि याचेथामिति। तौ प्रातरित्वानावभिप्रापद्येतां वायवे ऽग्ना३ इ वायव इन्द्रा३ इति। किंकामौ स्थ इत्यब्रवीत्। इमानि नौ कपालानि देहीति। तान्याभ्यामददात्। तान्यरण्यं पराहृत्य समपिंष्टाम्। तन्मनोर्गावो ऽभिव्यतिष्ठन्त। तान्वृषभः समलेट्। तस्य रुवतो यावन्तो ऽसुरा उपाशृण्वंस्ते पराभवन्। तौ प्रातरित्वानावभिप्रापद्येतां वायवे ऽग्ना३ इ वायव इन्द्रा३ इति। किंकामौ स्थ इत्यब्रवीत्। अनेन त्वर्षभेण याजयावेति। तत्पत्नी यजुर्वदन्ती प्रत्यपद्यत। तस्या द्यां वागातिष्ठत्। तस्या वदन्त्या यावन्तो ऽसुरा उपाशृण्वंस्ते पराभवन्। तस्मात्तक्तं स्त्री चन्द्रतरं वदति। तौ प्रातरित्वानावभिप्रापद्येतां वायवे ऽग्ना३ इ वायव इन्द्रा३ इति। किंकामौ स्थ इत्यब्रवीत्। अनया त्वा पत्न्या याजयावेति। सा पर्यग्निकृतासीत्। अथेन्द्रो ऽचायन्मनुं श्रद्धादेवं त्वष्टावरुत्री असुरब्रह्मौ जायया व्यर्धयत इति। स आगच्छत्। सो ऽब्रवीदाभ्यां त्वा याजयानीति। नेत्यब्रवीत्। न वा अहमनयोरीश इति। अतिथिपतिर्वा अतिथेरीश इत्यब्रवीत्। तावस्मै प्रायच्छत्। स प्रतिवेशो वेदिं कुर्वन्नास्त। तावपृच्छतां को ऽसीति। ब्राह्मण इति। कतमो ब्राह्मण इति॥

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरम्।
श्रुतं चेदस्मिन्वेद्यं स पिता स पितामहः॥

इति। तावविन्तामिन्द्रो वा इति। तौ प्रापतताम्। तयोर्याः प्रोक्षणीराप आसंस्ताभिरनुविसृज्य शीर्षे अच्छिनत्। तौ वृषश्च यवाषश्चाभवताम्। तस्मात्तौ वर्षेषु शुष्यतः। अद्भिर्हि हतौ। तां पर्यग्निकृतामुदसृजत्। तयार्ध्नोत्। ता इमा मनाव्याः प्रजाः। यत्पर्यग्निकृतं पात्नीवतमुत्सृजति यामेव मनुर्ऋद्धिमार्ध्नोत्तामृध्नोति। संस्थाप्यां३ न संस्थाप्या३ मिति मीमांसन्ते। स्रवति वै यज्ञो ऽसंस्थितः। तं स्रवन्तं यजमानो ऽनु परास्रवति प्रजया च पशुभिश्च। संस्थाप्यमेव यज्ञस्य प्रतिष्ठित्यै। यदि संस्थापयेद्यावन्ति पशोरवदानानि तावन्त्याज्यस्यावद्येत्। अयातयामं ह्येतत्प्राजापत्यं यदाज्यम्। अयातयामो देवानां प्रजापतिः। तदेव संस्थापयति तदु न संस्थापयति। उभयमेव करोति ॥ ४ ॥

ऐन्द्रवायवाग्रा अग्रे गृह्यन्ते ऽथ शुक्राग्रा अथाग्रायणाग्राः। गायत्रो वा ऐन्द्रवायवस्त्रैष्टुभः शुक्रो जागत आग्रायणः। एतावन्ति वै छन्दांसि। छन्दोभिर्देवाः स्वर्गं लोकमायन्। छन्दोभिरेव स्वर्गं लोकमेति। आग्रायणश्चतुर्थे ऽहन्। जागतो वा आग्रायणः। जगन्मुख एष त्रिरात्रः। यदेव च्छन्द आप्नोति तेनोत्तरं त्रिरात्रं प्रतनुते। ऐन्द्रवायवाग्राः पञ्चमे ऽहन्। गायत्रो वा ऐन्द्रवायवः। प्राणो गायत्री। प्राणमेव मध्यतो दधाति। तस्मान्मध्यतः प्राणः। शुक्राग्रा एव षष्ठे ऽहन्। त्रैष्टुभो वै शुक्रः। त्रिष्टुबन्त एष त्रिरात्रः। अन्तमेवैनमभ्युदूहति। शुक्राग्रा एव सप्तमे ऽहन्। त्रैष्टुभो वै शुक्रः। त्रिष्टुम्मुख एष च्छन्दोमः प्रत्युत्तब्ध्यै सयत्वाय। अथो यदेव च्छन्द आप्नोति तेनोत्तरं त्रिरात्रं प्रतनुते। आग्रायणाग्रा अष्टमे ऽहन्। जागतो वा आग्रायणः। जगन्मध्य एष च्छन्दोमः। छन्दसामेव व्यूहमनुव्यूहति ऐन्द्रवायवाग्राः प्रायणीय ऐन्द्रवायवाग्रा उदयनीये। प्राणो वा ऐन्द्रवायवः। प्राणेनैव प्रयन्ति प्राणेनोद्यन्ति। प्राणा वै ग्रहाः। तानेतन्मोहयति यद्व्यतिहारं गृह्णाति। यदग्रान्यदग्रान्गृह्णीयात्तं घारयन्ना सादयितोरासीत। प्राणा वै ग्रहाः। प्राणानेवायतनश आपादयति। अथोत्तरं प्रसृता गृह्यन्ते। एवं ह वै केशिनो दाल्भ्यस्य वंशव्रश्चने ग्रहाञ्जगृहुः। स होवाच लुशाकपिः खार्गलिः कथं

ग्रहानग्रहीष्टेति। इत्थमित्थमिति हास्मा ऊचुः। स होवाच त्र्यनीकमस्य प्रजा भविष्यतीति। ततः पञ्चालास्त्रेधाभवन्। यस्यैवं ग्रहा गृह्यन्ते त्र्यनीकमस्य प्रजा भवति ॥ ५ ॥

ऐन्द्रवायवाग्रान्गृह्णीत यः कामयेत यथापूर्वं प्रजाभ्यः कल्पेतेति। यज्ञस्य वै क्लृप्तमनु प्रजाभ्यः कल्पते। यज्ञस्याक्लृप्तमनु न कल्पते। यथापूर्वमेव प्रजाभ्यः कल्पयति। न कनीयाञ्ज्यायांसमतिक्रामति। ऐन्द्रवायवाग्रान्गृह्णीयादामयाविनः। प्राणेन वा एष व्यृध्यते यस्यामयति। प्राण ऐन्द्रवायवः। प्राणेनैवैनं समर्धयति। मैत्रावरुणाग्रान्गृह्णीरन्येषां दीक्षितानां प्रमीयेत। प्राणापानाभ्यां वा एते व्यध्यन्ते येषां दीक्षितानां प्रमीयते। प्राणापानौ मित्रावरुणौ। प्राणापानावेव मुखतः परिहरन्ते। तस्मान्मुखतः प्राणापानौ। आश्विनाग्रान्गृह्णीतानुजावरः। अश्विनौ वै देवानामानुजावरौ। तावग्रं पर्यैताम्। अश्विनावेतस्य देवता य आनुजावरः। तावेवान्वारभते। तावेनमग्रं परिणयतः। शुक्राग्रान्गृह्णीत गतश्रीः। असौ वा आदित्यः शुक्रः। एषो ऽन्तः। अन्तं मनुष्यः श्रियो गत्वा निवर्तते। अन्तादेवान्तमालभते। न ततः पापीयान्भवति यादृङ् सन्यजते। मन्थ्यग्रान्गृह्णीताभिचरन्। आर्तपात्रं वा एतद्यन्मन्थिपात्रम्। मृत्युनैवैनं ग्राहयति। उक्थ्याग्रान्गृह्णीताभिचर्यमाणः। सर्वेषां वा एतत्पात्राणामिन्द्रियं वीर्यं यदुक्थ्यपात्रम्। सर्वेणैवैनमिन्द्रियेणातिप्रयुङ्क्ते॥

मा त्वक्षेत्राण्यरणानि गन्म मापस्फरीः पयसा मा न आधक्।
मा वयमेनो ऽन्यकृतं भुजेम सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यः॥

इति। मृत्योर्वै क्षेत्राण्यरणानि। तेनैव मृत्योः क्षेत्राणि न गच्छति। आग्रायणाग्रान्गृह्णीत यस्य पिता पितामहः पुण्यः स्यात्। अथ तत्र प्राप्नुयात्। वाचा वा एष इन्द्रियेण व्यृध्यते यस्य पिता पितामहः पुण्यो भवति। अथ तत्र प्राप्नोति। उर इवैतद्यज्ञस्य वागिव यदाग्रायणः। वाचैवैनमिन्द्रियेण समर्धयति। पूर्णान्ग्रहान्गृह्णीयादामयाविनः। प्राणान्वा एतस्य शुगृच्छति यस्यामयति। प्राणा ग्रहाः। प्राणानेवास्य शुचो मुञ्चति। पूर्णान्ग्रहान्गृह्णीयाद्यर्हि पर्जन्यो न वर्षेत्। प्राणान्वा एतर्हि प्रजानां शुगृच्छति यर्हि पर्जन्यो न वर्षति। प्राणा ग्रहाः। प्राणानेव प्रजानां शुचो मुञ्चति ताजक्प्रवर्षति ॥ ६ ॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्तु॥

उपयामगृहीतो ऽसि। अदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै॥

उदीरयत मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उपदस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥

उपयामगृहीतो ऽसि। अदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै॥

महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्॥

उपयामगृहीतो ऽसि। अदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै॥

एष ते योनिः॥
अदित्यै त्वा चतुरूध्न्यै॥

वृष्टिर्वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। सैषु लोकेष्वश्रयत। तां देवा अन्वेष्टुमध्रियन्त। त एतं ग्रहमपश्यन्। तमगृह्णत। तेनैभ्यो लोकेभ्यो वृष्टिं संप्राच्यावयन्। तमेतं वृष्टिकामो गृह्णीत। क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिमिति। असौ वै क्षेत्रस्य पतिरमुतो वर्षति। उदीरयत मरुतः समुद्रत इति। मरुतः सृष्टां वृष्टिं नयन्ति। महीमू षु मातरं सुव्रतानामिति। इयमदितिः। अस्यां वर्षति। एता वै देवता वर्षस्येशते। ता एवोपधावति। एभ्य एव लोकेभ्यो वृष्टिं संप्रच्यावयति। चतुस्तनं पात्रं भवति। चतस्रो दिशः। दिग्भ्य एव वृष्टिं संप्रच्यावयति। यं प्रथमं स्तनमनुपद्यते तस्या दिशो ऽभ्येतद्वर्षति। अपि पात्रे क्रियमाणे वर्षति। मृन्मयेन गृह्णाति। दारुमयेण जुहोति। न हि मृन्मयमाहुतिमानशे ॥७॥

तृतीयस्यां वै दिवि सोम आसीत्। तं गायत्र्याहरत्। तस्य पर्णमच्छिद्यत। स पर्णो ऽभवत्। तत्पर्णस्य पर्णत्वम्। तस्मात्सर्वे वृक्षाः पर्णवन्तः। अथैष एव पर्ण उच्यते यत्पर्णशाखा भवति। तमेव सोममवरुन्द्धे। देवा वै ब्रह्मन्समवदन्त। तत्पर्ण उपाशृणोत्। सुश्रवा वै नामैषः। न बधिरो भवति य एवं वेद। यत्पर्णशाखया प्रार्पयति ब्रह्मणैवैनाः प्रार्पयति। प्रजापतिः पशूनसृजत। तानयं देवो ऽभ्यमन्यत। तं शम्याशमयत्। तच्छम्याः शमीत्वम्। यच्छमीशाखया प्रार्पयति शान्त्यै। अपां वा एतदोषधीनां तेजो यद्दर्भाः। यद्दर्भपिञ्जूलैः प्रार्पयत्यपामेवैना ओषधीनां तेजसा प्रार्पयति। इषे त्वोर्जे त्वेति। इषमेवोर्जं यज्ञे दधाति। वायव स्थेति। वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षः। अन्तरिक्षदेवत्याः पशवः। वायुरेवैनानन्तरिक्षाय परिददाति। प्र वा एनानेतदाकरोति यद्वायव स्थेत्याह। अरण्यस्येव हि वायुः। उपायव स्थेति यजमानायैव पशूनपाकरोति। देवो वः सविता प्रार्पयत्विति प्रसूत्यै। श्रेष्ठतमाय कर्मण इति। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। आप्यायध्वमघ्न्या देवभागमिति। वत्सेभ्यश्च वा एता मनुष्येभ्यश्च पुराप्यायन्ते। अथैतर्हि देवेभ्य एवैना आप्याययति। प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा इति। प्रजावतीरेवैना अनमीवा अयक्ष्माः करोति। मा व स्तेन ईशत माघशंस इत्याशिषमेवाशास्ते। परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्त्विति रुद्रमेव पशुभिः परिवृणक्ति। अयातुको ऽस्य रुद्रः पशून्भवति यस्यैवं विदुषो यश्चैवं विद्वान्हविषे गाः प्रार्पयति। ध्रुवा अस्मिन्गोपतौ स्यातेति दृंहत्येवैनाः। बह्वीरिति भूमानमेवैना गमयति। यजमानस्य पशून्पाहीति यजमानस्य पशूनां गोपीथाय। वसोः पवित्रमसि शतधारं वसूनां पवित्रमसि सहस्रधारमिति। वसूनां वा एतद्भागधेयं यत्पवित्रम्। तेभ्य एवैनत्करोति। प्रतीचीं शाखामुपगूहति। तस्माद्ग्राम्याः पशवः सायमारण्याद्ग्राममायन्ति। यत्पराचीमुपगूहेदरण्ये ह्रीयेरन् ॥८॥

॥ इति कपिष्ठलकठसंहितायां षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥

प्रजापतिर्वा ओषधीः परुःशो वेद। प्राजापत्यो ऽश्वः। यदश्वपर्शा बर्हिर्दात्योषधीनामहिंसायै। घोषदसीति रयिमेव यजमाने दधाति। निष्टप्तं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षांस्यपहन्ति। प्रेयमगाद्धिषणा बर्हिरच्छेति। विद्या वै धिषणा। विद्ययैवैनदच्छैति। मनुना कृता स्वधया वितष्टेति। मनुना ह्येषा कृता स्वधया वितष्टा। उर्वन्तरिक्षं वीहीति समष्ट्यै। इन्द्रस्य परिपूतमसीति। यद्वा इदं किंच तदिन्द्रस्य परिपूतम्। यथा श्रेयसे प्रोच्य कर्म करोत्येवमेवैतदिन्द्राय प्रोच्य बर्हिर्दाति। यावत्परिदिशति तत्सर्वं दाति। यत्तत्सर्वं न दाति यज्ञस्य तदतिरिच्यते। यद्वै यज्ञस्यातिरिच्यते भ्रातृव्यं तेन वर्धयति। एकं स्तम्बं परिदिशेत्। तं सर्वं दायाद्यज्ञस्यानतिरेकाय। यत्सर्वं दायात्र पशुभ्यो जीवनमुच्छिंषेत्। एकां वा श्रुष्टिं द्वे वोच्छिंषेत्। न यज्ञस्यातिरेचयति। उत्पशुभ्यो जीवनं शिंषति। माधो मोपरि परुस्त ऋध्यासमित्यृद्ध्यै। आच्छेत्ता ते मा रिषदिति। यावद्यावद्वा अविद्वानध्वर्युर्बर्हिषो दाति तावदस्यात्मनो मीयते। नास्यात्मनो मीयते य एवं वेद। देव बर्हिः शतवल्शं विरोहेत्योषधिष्वेव भूमानं दधाति। सहस्रवल्शा वि वयं रुहेमेत्याशिषमेवाशास्ते। अदित्या रास्नासीति। इयमदितिः। अस्या एवैनद्रास्नां करोति। इन्द्राण्याः संनहनमिति। इन्द्राणी वा अग्रे देवतानां समनह्यत। साध्नोत्। ऋद्ध्यै। बर्हिः संनह्यति। प्रजा वै बर्हिः। प्रजानामपरावापाय। तस्मात्स्नाव्ना प्रजाः संतताः। पूषा ते ग्रन्थिं ग्रथ्नात्विति। पुष्टिर्वै पूषा। पुष्टिमेव यजमाने दधाति। स ते मा स्थादित्यहिंसायै। इन्द्रस्य त्वा बाहुभ्यामुद्यच्छ इतीन्द्रस्यैवैनद्बाहुभ्यामुद्यच्छते। बृहस्पतेस्त्वा मूर्ध्ना हरामीति। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्मणैवैनद्धरति। देवंगममसीति। बहु वा एतस्य पूर्वेद्युराह्रियमाणस्य स्कन्दति। अस्कन्नमेवैनद्देवेभ्यः संप्रयच्छति। तदाहरन्ति कवयः पुरस्तादिति। ब्राह्मणा वै कवयः। ब्राह्मणा ह्येतदाहरन्ति। देवेभ्यो जुष्टमिह बर्हिरासद इति देवेभ्य एवैनज्जुष्टं करोति ॥१॥

प्रजापतिः प्रजा असृजत। तस्योखे अस्रंसेताम्। स एते उखे अपश्यत्। ताभ्यामादत्त। यदेते उखे भवतः प्रजापतेरेवोखे प्रतिदधाति। अयक्ष्मा वः प्रजया संसृजामीत्ययक्ष्मा एवैनाः करोति। रायस्पोषेण बहुला भवन्तीरिति भूमानमेवैना गमयति। मधुमद्घृतवत्पिन्वमाना इति मधुमदेव घृतवद्देवेभ्यो हव्यं करोति। जीवा जीवन्तीरुप वःसदेमेत्याशिषमेवाशास्ते। मातरिश्वनो घर्मो ऽसीति। अन्तरिक्षं वै मातरिश्वनो घर्मः। द्यौरसि पृथिव्यसीति दिवमेवैनां पृथिवीमकः। विश्वधायाः परेण धाम्नाहुतासि मा ह्वारिति दृंहत्येवैनाम्। पवित्रमपिदधाति। ओषधीनां चैव पशूनां च

पयः संसृजति। सा विश्वायुः सा विश्वव्यचाः सा विश्वधाया इति। असौ वै विश्वायुरन्तरिक्षं विश्वव्यचा इयं विश्वधायाः। इमानेव लोकान्यथापूर्वं प्रदापयति। इमे ऽस्मै लोका यथापूर्वं प्रत्ता दुहे। तिस्रो यजुषाभिमन्त्रयते। त्रय इमे लोकाः। एष्वेवे लोकेषु रसं दधाति। तस्मादिमांल्लोकान्प्रजा उपजीवन्ति। उपजीवनीयो भवति य एवं वेद। हुत स्तोको हुतो द्रप्स इत्यनुमन्त्रयते ऽस्कन्दाय। अग्नये बृहते नाकायेति। इयं वा अग्निर्बृहन्नाकः। बहु वा एतस्य दुह्यमानस्य स्कन्दति। अस्यामेवैनत्प्रतिष्ठापयति। अस्कन्दाय। न दारुपात्रेण दुह्यात्। अग्निमद्वै दारुपात्रम्। यातयाम्ना हविषा यजेत। तदु ह स्माहुदत्रियाः पुरोडाशमुखं वै हविर्न वा इतइतः पुरोडशं हविषो यामो ऽस्ति दोग्धव्यमेवेति। न शूद्रो दुह्यात्। असतो वा एष संभूतः। असतस्यात्। यद्वाव पवित्रमत्येति तद्धविः। अग्निहोत्रमेव शूद्रो न दुह्यात्। तद्धि नोत्पुनन्ति। संपृच्यध्वमृतावरीरिति प्रत्यानयति शृतत्वाय। शृतकामा हि देवाः। इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनातनच्मीति सोममेवैनं करोति। सोमो वै देवानां परोक्षं सान्नाय्यम्। तस्य ह त्वै सोमपीथः संततो य एवं विद्वान्सान्नाय्येन यजते। अदस्तमसि विष्णव इति। यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञायैवैनददस्तं करोति। न मृत्पात्रेणापिदध्यात्। यन्मृत्पात्रेणापिदध्यात्पितृदेवत्यं हविः स्यात्। दारुपात्रेणापिदधाति। अग्निमद्वै दारुपात्रम्। अग्निरेव हव्यं रक्षते। उदन्वत्कुर्यात्। आपो रक्षोघ्नीः। रक्षसामपहत्यै। ताभ्य एवैनत्परिददाति ॥२॥

विष्णो हव्यं रक्षस्वेति विष्णुरेव हव्यं रक्षते। आपो जागृतेति। आपो यज्ञस्य गोप्त्रीः। आपो देवानां प्रियं धाम। देवानामेव प्रियं धाम प्रणीय प्रचरति। अपः प्रणयति। आपो वै यज्ञः। यज्ञमेव तत्वा प्रचरति। आपो वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। आपः श्रद्धा। श्रद्धास्मै देवाः प्रचरति। आपो रक्षोघ्नी रक्षसामपहत्यै। आपो वज्रः। वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति। आपः श्रद्धा। श्रद्धास्मै देवा अन्मनुष्या दधते यस्यैवं विदुषो यस्यैवं विद्वानपः प्रणयति। कर्मणे वामिति हस्तावनेनिक्ते। कर्म ह्येतत्क्रियते। उर्वन्तरिक्षं वीहीति समष्ट्यै। धूरसि वानस्पत्यमसीति स्रुक्शूर्पमादत्ते। निष्टप्तं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षांस्यपहन्ति। द्वौ वै पुरुषस्य भ्रातृव्यौ यं च द्वेष्टि यश्चैनं धूर्व धूर्वन्तमिति। धुर्यो वा एषो ऽग्निः। यदनालभ्यातीयाद्यजमानं शुचार्पयेत्। धूर्व धूर्वन्तमिति। धुर्यो वा एषो ऽग्निः। यदनालभ्यातीयाद्यजमानं शुचार्पयेत्। देवानामसि वह्नितममिति देवेभ्य एवैनद्वह्नि करोति। विष्णोः क्रमो ऽस्यहुतमसि द्वेष्टि। तावेवास्य शुचार्पयति। देवानामसि वह्नितममिति देवेभ्य एवैनद्वह्नि करोति। उरु त्वा वातायेति। यद्वै किं च वातो हविर्धानमिति दृंहत्येवैनत्। मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रेक्ष इति मित्रमेवैनत्कुरुते। उरु त्वा वातायेति। यद्वै किं च वातो नाभिवाति तद्वरुणस्य। अवरुण्यमेवैनत्करोति। देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति सवितृप्रसूत एवैनद्देवताभ्यो निर्वपति। यच्छन्तु त्वा पञ्चेति। पञ्च वा ऋतवः। ऋतूनेव अमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै निर्वपति तस्या एनज्जुष्टं करोति। यच्छन्तु त्वा पञ्चेति। पञ्च वा ऋतवः। ऋतूनेव प्रीणाति। ते ऽस्मै प्रीताः कल्पन्ते। कल्पन्ते ऽस्मा ऋतवो य एवं वेद। रक्षायै त्वा नारात्या इति रक्षसामपहत्यै। इदं देवानामिदं नः सहेति व्यावृत्त्यै। स्वरभिव्यख्यमिति। तम इव वा एष प्रपद्यते परीणहम्। स्वरेवाभिविपश्यति। इमे वै लोका हविषो गृहीतादुद्वेपन्त। तान्देवा एतेन यजुषादृंहन्। दृंहन्तां दुर्या इतीमानेव लोकान्दृंहति। उर्वन्तरिक्षं वीहीति ब्रूयाद्व्यायुको ऽध्वर्युः स्यात्। उर्वन्तरिक्षं प्रेहीत्यव्यायुको ऽध्वर्युर्भवति य एवं वेद। अग्ने हव्यं रक्षस्वेत्युपसादयति। अग्निरेव हव्यं रक्षते ॥३॥

विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति पुनात्येवैने। देवो वः सविता पुनात्विति सवितृप्रसूत एवैना देवताभिरुत्पुनाति। अमुष्मै जुष्टमिति यस्या एव देवतायै प्रोक्षति तस्या एनज्जुष्टं करोति। शुन्धन्तां पात्राणि देवयज्याया इति देवेभ्य एवैनानि शुन्धति। अवधूतं रक्षो ऽवधूता अरातिरिति रक्षसामपहत्यै। अदित्यास्त्वगसीति। इयमदितिः। अस्या एवैनत्त्वचं करोति। अधिषवणमसि वानस्पत्यमित्यधिषवणमेवैनत्करोति। अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनमिति। अग्नेर्ह्येषा तनूर्वाचो विसर्जनम्। यदा हि पशव ओषधीरश्नन्त्यथ वाचं विसृजन्ते। बृहद्ग्रावासि वानस्पत्य इति ग्रावाणमेव कृत्वा हविष्करोति। हविष्कृदाद्रवेति य एव देवानां हविष्कृत्तं ह्वयति। त्रिर्ह्वयति। त्रिसत्या हि देवाः। अद्रिरसि श्लोककृदपहतं रक्षो ऽपहता अरातिरिति रक्षसामपहत्यै। वयं संघातंसंघातं जयेमेति संघातंसघातमेव भ्रातृव्यं जयति॥

मनोर्वै श्रद्धादेवस्य यजमानस्यासुरघ्नी वाग्यज्ञायुधानि प्रविष्टासीत्। तेषां यावन्तो ऽसुरा उपाशृण्वंस्ते पराभवन्। य एवं विद्वान्भ्रातृव्याणां मध्ये ऽवसाय यजेत यावन्तो ऽस्य भ्रातृव्या यज्ञायुधानामुपशृण्वन्ति तेषामिन्द्रियं वीर्यं वृङ्क्ते। वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्त्विति मिथुनमेव करोति। असा वै देवाः भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति।

पशुभ्यो रक्षांसि निरवादयन्त तुषैरोषधिभ्यः परापूतं रक्षः परापूता अरातिरित्येतावतैव यज्ञाद्रक्षांसि निरवदयते। निरस्तो अघशंस इति। भ्रातृव्यो वा अघशंसः। भ्रातृव्यमेव निरस्यति। वायुर्व इष ऊर्जे विविनक्त्विति। वायुर्वै देवानां पवित्रम्। पुनात्येवैनान्। सुफलीकृतान्करोति। मेध्यानेवैनान्यज्ञियान्करोति। त्रिः फलीकरोति। त्रिषत्या हि देवाः ॥४॥

अवधूतं रक्षो ऽवधूता अरातिरिति रक्षसामपहत्यै। अदित्यास्त्वगसीति। इयमदितिः। अस्या एवैनं त्वचं करोति। धिषणासि पार्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु पृथिवीं दृंहेति पृथिवीमेव दृंहति। धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पार्वती वेत्तु दिवं दृंहेति दिवमेव दृंहति। दिव स्कम्भन्यसीति शम्यामुपदधाति। इमे वै सहास्ताम्। ते शम्यामात्रंशम्यामात्रं व्यैताम्। वज्रः शम्या। यच्छम्यामुपदधात्यनयोरेव विधृत्यै। धान्यमसि धिनुहि देवानिति। एतस्य वै यजुषो वीर्येण यावदेका देवता कामयेत। यावदेका तावदस्या अहुतिः प्रथते। प्राणाय त्वा व्यानाय त्वापानाय त्वेति प्राणं व्यानमपानं तानेव यजमाने दधाति। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे त्वेत्यायुरेवास्मिन्दधाति। देवो वःसविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृह्णात्विति प्रेव वा एते स्कन्दन्ति प्रतिष्ठित्यै। अदब्धेन वश्चक्षुषावपश्यामीति चक्षुषो गोपीथाय ॥५॥

निर्दग्धं रक्ष इति रक्षसामपहत्यै। अपाग्ने अग्निमामादं जहीति य आमात्क्रव्यात्तमपहत्य यज्ञिये देवयजन उपदधाति। यदधस्तादङ्गारमुपवर्तयत्यस्मिंस्तेन लोके ज्योतिर्धत्ते। यदुपरिष्टादधिवर्तयत्यन्तरिक्षे तेन ज्योतिर्धत्ते। असावेवास्यादित्यो ऽमुष्मिंल्लोके ज्योतिर्भवति। त्रीणि समीचीनान्युपदधाति। त्रयो वै प्राणाः प्राणो व्यानो ऽपानः। तानेव यजमाने दधाति। त्रय इमे लोकाः। एष्वेव लोकेष्वृध्नोति॥

ध्रुवमसि पृथिवीं दृंहेति पृथिवीमेव दृंहति। आयुर्देहि प्राणं देहीत्याशिषमेवाशास्ते। धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंहेत्यन्तरिक्षमेव दृंहति। चक्षुर्देहि श्रोत्रं देहीत्याशिषमेवाशास्ते। धर्त्रमसि दिवं दृंहेति दिवमेव दृंहति। ओजो देहि बलं देहीत्याशिषमेवाशास्ते। धर्मासि दिशो दृंहेति दिश एव दृंहति। रयिं देहि पोषं देहीत्याशिषमेवाशास्ते। चन्नमस्याशा दृंहेत्याशा एव दृंहति/ रूपं देहि वर्णं देहीत्याशिषमेवाशास्ते ॥

प्रजापतिर्वै यदग्रे समभवत्स एतावच्छ एव समभवत्। एकं वा अग्रे शीर्ष्णः कपालं संभवत्यथ द्वितीयमथ तृतीयमथ चतुर्थमथ पञ्चममथ षष्ठमथ सप्तममथाष्टमम्। यदष्टौ समीचीनान्युपदधात्यात्मानमेवैतद्यजमानः [संस्कुरुते.......... ॥६॥]

....[पुरोडाशं वा अधिश्रि] तं रक्षांस्यजिघांसन्। स नाको नाम दिवि रक्षोहाग्निः। सो ऽस्माद्रक्षांस्यपाहन्। देवस्त्वा सविताश्रपयतु वर्षिष्ठे ऽधि नाक इति रक्षसामपहत्यै। अग्निस्ते तन्वं मा हिंसीदित्यहिंसायै त्वचं ग्राहयति। तस्मान्मस्तिष्कः परिततः। यानि वा इमानि शीर्ष्णः कपालानि तानि कपालानि। यो मस्तिष्कः स पुरोडाशः। यन्नाभिवासयेदाविर्मस्तिष्कः स्यात्। यदभिवासयति तस्माद्गुहा मस्तिष्कः। भस्मनाभिवासयति। तस्मादस्थि मांसेन च्छन्नम्। वेदेनाभ्यूहति। तस्माच्छिरः केशैश्छन्नम्। ते देवास्तन्नाविन्दन्त यस्मिन्यज्ञस्य क्रूरं माक्ष्यामह इति। सो ऽग्निरब्रवीदहं वस्तं जनयिष्यामि यस्मिन्यज्ञस्य क्रूरं माक्ष्यध्व इति। सो ऽपो ऽङ्गारेणाभ्यपातयत्। तत एकतो ऽजायत। द्वितीयम्। ततो द्वितः। तृतीयम्। ततस्त्रितः। यदात्मनो निरमिमीत तदात्मेयानामात्मेयत्वम्। यदद्भ्यो निरमिमीत तदाप्येयानामाप्येयत्वम्। अन्तर्वेदि निनयति। तद्देवावरुन्द्धे। उल्मुकेनाभिघारयति शृतत्वाय। शृतकामा हि देवाः। ते ऽतिमृजाना आयन्। सूर्याभ्युदिते ते ऽमृजत। सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिम्रुक्ते। सूर्याभिनिम्रुक्तः कुनखिनि। कुनखी श्यावदति। श्यावदन्परिवित्ते। परिवित्तः परिविविदाने। परिविविदानो ऽग्रेदिधिषौ। अग्रेदिधिषुर्दिधिषूपतौ। दिधिषूपतिर्वीरहणि। वीरहा ब्रह्महणि। ब्रह्महा भ्रूणहनि। भ्रूणहनमेनो नात्येति ॥७॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसव इति स्फ्यमादत्ते। सवितृप्रसूत एवैनं देवताभिरादत्ते। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा इति। वज्रो वै स्फ्यः। वज्रमेव संश्यति भ्रातृव्याय प्रहरिष्यन्। वायुरसि तिग्मतेजा इत्यधस्तादनुमार्ष्टि। पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषमित्योषधीनामहिंसायै। व्रजं गच्छ गोष्ठानमिति। छन्दांसि वै व्रजो गोष्ठानः। छन्दांस्येवास्मै व्रजं गोष्ठानं करोति। वर्षतु ते द्यौरिति वृष्टिमेव निनयति। बधान देव सवितः

परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैरिति। द्वौ वै पुरुषस्य भ्रातृव्यौ यं च द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि। तावेवास्य बध्नाति। द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन्निति। यो वा अस्या रसः स द्रप्सः। तमिमाः प्रजा उपजीवन्ति। तमेवास्यां यच्छति तस्मात्सुताय। अररुर्दां मा पप्तदिति। भ्रातृव्यो वा अररुः। भ्रातृव्यमेव स्वर्गाल्लोकादभिनुदति। अररुर्वै नामासुर आसीत्। सो ऽबिभेद्यज्ञेन नो देवा अभिभविष्यन्तीति। स पृथिवीं बिल्वालिम्पदमेध्यां कुर्वन्। इन्द्रो वै वज्रमहन्। तस्येमां लोहितमनुव्यधाव [त्। तदमेध्यमभव] त्। यदुद्धन्ति यदेवास्या अमेध्यमवजिनं तदपहन्ति। अररुर्वै नामासुर आसीत्। सो ऽबिभेद्देवा मा पृथिव्या नोत्स्यन्त इति। [स] पृथिवीमुदकुप्यदाशयत्। तमिन्द्रो ऽन्वायत्। तमपारस्मदेवयजनं पृथिव्या देवयजनाज्जहीति पृथिव्या अपाहन्। स दिवमपतत्। अररुर्दां मा पप्तदिति तं दिवः प्रत्यनुदत। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। यत्रैव विद्वान्त्स्तम्बयजुर्हियते यत्रैव विद्वान्हरत्येभ्य एव लोकेभ्यो भ्रातृव्यमन्तर्धत्ते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भव [ति। असुराणां वा इयं पृथिव्यासीत्। ते देवा अब्रुवन्द] न नो ऽस्या इति। ते वै स्वयं कृष्यामित्यब्रुवन्। सो ऽग्निरेव प्राचीं दिशमुदजयद्वसवो दक्षिणां रुद्राः प्रतीचीमादित्या उदीचीम्। ते देवा इमामसुराणामविन्दन्। ततो देवा अभवन् [परासुरा अभवन्।] य एवं विद्वानेताभिर्देवताभिर्वेदिं परिगृह्णातीमामेव भ्रातृव्यस्य विन्दते भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति।

पृथिव्या वै मेध्यं चामेध्यं च व्युदक्रामत्। प्राचीनमुदीचीनं मेध्यमुदक्रामत्प्रतीचीनं दक्षिणामेध्यम्। प्राचीमुदीचीं वेदिं प्रवणां कुर्यात्। मेध्यामेवैनां यज्ञियां करोति। अथ मेध्यस्य चामेध्यस्य च व्यावृत्त्यै। प्राञ्चौ बाहू उन्नयति। आहवनीयमेव परिगृह्णाति। प्रतीची श्रोणी। गार्हपत्यमेव परिगृह्णाति। मूलं वै रक्षांस्यनूत्पिबन्ति। न नखेन छिन्द्यात्। यन्नखेन छिन्द्यात्कुनखी स्यात्। स्फ्येन छिनत्ति। वज्रो वै स्फ्यः। वज्रेणैव रक्षांस्यपहन्ति ॥८॥

घृतं च वै मधु च प्रजापतावास्ताम्। यतो मध्वासीत्ततः प्रजा असृजत। तस्मान्मधोः प्रजननमिवास्ति। तस्मान्मधुना न प्रचरन्ति। यातयाम हि तत्। घृतेन प्रचरन्ति। अयातयामं ह्येतत्प्राजापत्यं यदाज्यम्। अयातयामा देवानां प्रजापतिर्गार्हपत्ये ऽधिश्रयति। पत्न्यवेक्षते। पत्न्या एवैष यज्ञस्यान्वारम्भः। अथो मिथुनमेव यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय। यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनम्। यत्पत्न्यवेक्षते मिथुनमेव करोति। अमेध्यं वा एतदयज्ञियं यत्पत्न्यवेक्षते। आहवनीये ऽधिश्रयति। मेध्यमेवैनद्यज्ञियं करोति। देवाश्च वा असुराश्च समावदेव यज्ञे ऽकुर्वत। यदेव देवा अकुर्वत तदसुरा अकुर्वत। स इन्द्र एतमवकाशमपश्यत्। तेनावैक्षत। तेनासुरानभ्यभवत्। ततो देवा अभवन्परासुरा अभवन्। य एवं विद्वांस्तेनाज्यमवेक्षते ऽभ्येव भ्रातृव्यं भवति भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति। प्रत्युष्टं रक्ष इति यज्ञमुखादेव रक्षांस्यपहन्ति। अनिशिता स्थ सपत्नक्षयणीरित्यनिशिता एवैनाः करोति। स्रुचः संमार्ष्टि पुनात्येवैनाः। स्रुवमग्रे संमार्ष्टि। पुमांसमेवासामग्रे संश्यति। अथ जुहूमथोपभृतमथ ध्रुवाम्। असौ वै जुहूरन्तरिक्षमुपभृदियं ध्रुवा। इमानेव लोकाननुपूर्वं संमार्ष्टि। यजमानदेवत्या वै जुहूर्भ्रातृव्यदेवत्योपभृत्। चतुर्जुह्वां गृह्णन्भूय आज्यं गृह्णाति। अष्टौ गृह्णन्नुपभृति कनीयः। भ्रातृव्यमेवास्मा उपस्तिं करोति ॥९॥

देवीरापो अग्रेग्व इति यज्ञमेव प्रणयति। इमं यज्ञं नयत प्र यज्ञपतिं तिरतेत्याशिषमेवाशास्ते। अग्नेर्वै मेधो ऽपाक्रामत्। कृष्णो भूत्वा स वनस्पतीन्प्राविशत्। प्रोक्षिता स्थ। कृष्णो ऽस्याखरेष्ठो ऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति तमेव मेधमवरुन्द्धे। आपो वस्य एव देवताये प्रोक्षति तस्या एनं जुष्टं करोति। वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति। प्रजा वै बर्हिः पृथिवी वेदिः। प्रजा एव पृथिव्यां प्रतिष्ठापयति। ऊर्जा पृथिवीं गच्छतेति पृथिव्यामेवोर्जं दधाति। तस्मात्पृथिवीं प्रजा उपजीवन्ति। उपजीवनीयो भवति य एवं वेद।

बर्हिरासादयेत्। यावतीर्वै प्रोक्षणीरासादयति तावतीरस्यामुष्मिंल्लोक आपः। तस्माद्बर्हिरासाद्याः। पुरस्तात्प्रस्तरं गृह्णाति। मुख्यमेव यजमानं करोति। यावद्धस्तेन पर्यामृशेत्तावन्तं गृह्णीयात्। अक्षोधुको यजमानो भवत्यनग्नंभावुको ऽध्वर्युः। न विधूनुयात्। यद्विधूनुयात्प्रजां चास्य पशूंश्च विधूनुयात्। न प्रमृज्यात्। यदेवास्य स्वं [यद्विन्नं] यद्देव तत्प्रमार्ष्टि। न प्रमृज्यात्। यदेवैनमागमिष्यद्भवति तत्प्रतिनुदते।

दक्षिणतः संनहनं स्तृणाति। तस्माद्दक्षिणतो नीविः। प्रस्तरं धारयन्परिधीन्परिदधाति। यजमानो वै प्रस्तरः। स्वयमेवैतद्यजमान आत्मानं परिदधाति रक्षसामपहत्यै। संहितान्परिधीन्परिदधाति रक्षसामनन्ववायाय। न पुरस्तात्परिदधाति। असावेवास्मादादित्य उद्यन्पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्ति। ऊर्ध्वे समिधावादधाति। उपरिष्टादेव रक्षांस्यपहन्ति। द्वे आदधाति। मिथुनमेव करोति। सवितुर्बाहू स्थो देवजनानां विधरणी इति। सवितुर्ह्येतौ बाहू देवजनानां विधरणी। वसूनां रुद्राणामादित्यानां सदनमसीति या एव देवता अभ्यजयंस्ताभ्य एनत्सदनं करोति। जुह्वेहि घृताचीति। एतद्वा आसां प्रियं धाम यद्घृतवत्। प्रियेणैवैना धाम्ना समर्धयति। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ॥ ता विष्णो पाहीति। यथाहैष ते भागस्तं गोपायस्वेत्येवैतद्विष्णुमाहैतत्त आज्यं तद्गोपायस्वेति ॥१०॥

भुवनमसि विप्रथस्वेति प्रथयत्येव। अग्निर्यष्टेदं नम इति। नमस्कृत्य हि श्रेयांसमुपचरन्ति। जुह्वेह्यग्निस्त्वाह्वयतु देवयज्याया इति। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे। उपभृदेहि देवस्त्वा सविताह्वयतु देवयज्याया इति। सवितृप्रसूत एव प्रचरति नार्तिमार्छति। अङ्घ्रिणाविष्णू मा वामवक्रमिषमिति यथायजुः। पाहि माग्ने दुश्चरितादा मा सुचा रिते भजेति पाप्मानमेवापहते। विजिहाथां मा मा संताप्तमित्यात्मनो ऽहिंसायै। लोकं मे लोककृतौ कृणुतमित्याशिषमेवाशास्ते। विष्णो स्थाम्न इति प्रतिष्ठित्यै। ऊर्ध्वो अध्वरो दिविस्पृगिति। यज्ञो वा अध्वरः। यज्ञस्योर्ध्वत्वाय। अह्रुतो यज्ञो यज्ञपतेरिति समृद्ध्यै। इन्द्रवान्बृहद्भाः स्वाहेति। ऐन्द्रो वै यज्ञः। मुखत एवेन्द्राय यज्ञं संप्रयच्छति। सेन्द्रो ऽस्य यज्ञो भवति। सं ज्योतिषा ज्योतिरिति। ज्योतिर्वै यज्ञः। यज्ञ एव यज्ञमनुसंतनोति। वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयोर्जयामीति य एवैनं पूर्वो ऽतिक्रान्तो भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदते। वाजस्याहं प्रसवेनाग्नीषोमाभ्यां देवतयामुं प्रतिनुदामीति य एवैनं पश्चाद्भ्रातृव्यस्तं तेनापनुदते प्र श्रेयांसं भ्रातृव्यं नुदते प्रति पापीयांसं नुदते।

पृथिव्यै त्वान्तरिक्षाय त्वा दिवे त्वेति। इमानेवैनं लोकान्गमयति। अक्तं रिहाणा व्यन्तु वय इति स्वदयत्येव। मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छेति। [यजमानो वै प्रस्तरः। हविर्भूतमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। ततो नो वृष्टिमेरयेति] वृष्टिमेवावरुन्द्धे। अहीनः प्राण इति प्राणानेवैतदध्वर्युर्मुखतः कल्पयति। चक्षुष्पा असि चक्षुर्मे पाहीति चक्षुषो गोपीथाय। यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिरिध्यमान इति। अग्निः सर्वा देवताः। सर्वा एव देवता अवरुन्द्धे। यजमानं प्रथतेति प्रथयत्येव। अथो यजमानमेवैनं स्वर्गं लोकं गमयति। संस्रवभागस्तविषेति परिधीनभिजुहोति स्वेनैवैनान्भागधेयेन समर्धयति।

अग्ने ऽदब्धायो ऽशीततन इति यदेवान्तर्यन्ति यत्क्रूरं कुर्वन्ति तच्छमयति। अविषं नः पितुं कृणोत्यन्नमेवास्मै स्वदयति। सुषीन्योनीन्सुषदां पृथिवीमिति सुषदेवैनं सादयति। वेदिर्वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्। तां वेदेनान्वविन्दन्। तद्वेदस्य वेदत्वम्। यद्वेदो भवति वेद्या अनुवित्त्यै। स्त्री वै वेदिः पुमान्वेदः। यद्वेदो वेद्यां स्तृणाति मिथुनमेवावरुन्द्धे ॥११॥

इति कपिष्ठलकठसंहितायां सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः॥
अग्निनाग्निः समिध्यते॥
सप्त ते अग्ने समिधः॥
मनो ज्योतिर्जुषतामाज्यस्य विच्छिन्नं यज्ञं समिमं तनोतु। [बृहस्पतिः प्रतनोतु प्रविद्वान्] अच्छिन्नं तन्तुं तनुतां पुनर्णः।
या व्युष्टा उषसो याश्च निम्रुचस्ताः संदधातु हविषा घृतेन॥
त्रयस्त्रिंशत्तन्तवः॥
यन्मे मनसश्छिद्रं यद्वाचो यच्च मे हृदः।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तत्सिञ्चतु राधसा॥
विश्वकर्मा हविरिदं जुषाणः संतानैर्यज्ञं समिमं दधातु।

बृहस्पतिः प्रतनोतु प्रविद्वानच्छिन्नं तन्तुं तनुतां पुनर्णः।
या व्युष्टा उषसो याश्च निम्रुचस्ताः संदधातु हविषा घृतेन॥
अयाश्चाग्ने ऽस्यनभिशस्तिश्च॥
त्वं नो अग्ने॥
स त्वं नो अग्ने ॥ १ ॥
भद्रं कर्णेभिः॥
स्वस्ति न इन्द्रः॥
पृषदश्वा मरुतः॥
शतमिन्नु शरदः॥
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि।
अग्रेणीय कवये वेद्याय वचोभिर्लोकमुपयामि शंसन्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वग्ने देवानामव हेड इक्षुव॥
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः॥
घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्निर्घृताहवनो घृतमस्य धाम।
घृतप्रुषो हरितस्त्वावहन्तु घृतं पिबन्यजतादिह देवान् ॥ २ ॥
इमो अग्ने वीततमानि हव्या॥
सप्त ते अग्ने समिधः॥
त्रयस्त्रिंशत्तन्तवः॥
यन्मे मनसः॥
विश्वकर्मा॥
अग्निं युनज्मि॥
इन्धानास्त्वा॥

अग्निर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैः पार्थिवैः पातु। वायुर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैरान्तरिक्ष्यैः पातु। सूर्यो न ईडित ईडितव्यैर्देवैर्दिव्यैः पातु। विष्णुर्न ईडित ईडितव्यैर्देवैर्दिश्यैः पातु। अग्निर्यजुर्भिः सविता स्तोमैः पूषा स्वगाकारैः। त इमं यज्ञमवन्तु ते मामवन्तु। अनु व आरभे ऽनु मारभध्वम् ॥ ३ ॥

पृथिवि विभूवरि सिनीवाल्युरुघ्न आचिते मनसे भुवो विवस्तो य ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावांस्तं व ऋध्यासम्। सोमस्यान्नमसि हविषो हविर्ज्योतिषो ज्योतिः। विश्वेषां देवानां भागधेयी स्था देववीतये वो गृह्णामि॥
सं वः सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं धाता समिन्द्रः सं बृहस्पतिः।
सं वो ऽयमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च॥
आयुष्मन्तं कृणोतु मा॥
मान्दा वशाः॥
आपो देवीर्घृतम्॥
आदित्यवर्णामुत वा मृणोमि मा पोषो गच्छति वाहम आसाम्।
मेने भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः॥
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः॥

आपो हि ष्ठेति तृचः॥
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णो ऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष॥
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणो रायस्पोषः प्रजायताम्॥
अयं यज्ञो वर्धतां गोभिरश्वैरियं वेदिः स्वपत्या सुवीरा।
इदं बर्हिरति बर्हींष्यन्येमं यज्ञं विश्वे अवन्तु देवाः॥
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते विभाति ॥४॥
स्कन्ना द्यौ स्कन्ना पृथिवी स्कन्नं विश्वमिदं जगत्।
स्कन्नादो विश्वा भूतानि प्र स्कन्नं जायतां हविः॥
इह गावः॥
अयं यज्ञः॥
पयस्वतीरोषधयः पयस्वद्वीरुधां पयः।
अपां पयसो यत्पयस्तेन ते सह वर्धताम्॥
यदवामृक्षच्चक्षुर्निर्मुखेन निर्ऋते तव।
अग्निष्टत्सर्वं शुन्धतु हव्यवाड् घृतसूदनः॥
यदवामृक्षच्छ्वयान्मुखेन निर्ऋते तव।
वायुष्टत्सर्वं शुन्धतु हव्यवाड् घृतसूदनः॥
भूतिर्दध्ना घृतेन वर्धताम्। यज्ञं यज्ञाय मुञ्चतु स्वाहा।
घृतेन वर्धतां भूतिः। मुञ्चेमं यज्ञं मुञ्च यज्ञपतिमंहसः स्वाहा॥
यास्ते अग्ने समिधो अप्स्वन्तर्वर्मन्पृथिव्या उप सूर्ये याः।
तास्ते वर्धन्त्वाहुतीर्घृतस्य देवायते यजमानाय शर्म ॥५॥
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजाविन्द्राग्नी कल्पना युवम्।
हुताहुतस्य तृम्पतमहुतस्य हुतस्य च॥
हुतस्य चाहुतस्य चाहुतस्य हुतस्य च।
पीतापीतस्य सोमस्यास्य हव्यस्येन्द्राग्नी वीतं पिबतमागतम्॥
मेमं यज्ञं तमो विदन्मार्तिजो मो इमाः प्रजाः।
मा यः सोमं पिबादिमं संसृष्टमुभयं कृतम्॥
मा नो श्वारिषुः पितरो मोत देवा मा नः सबन्धुरुत वान्यबन्धुः।
मा नो दुःशंसो अघशंस ईशताहुतो ऽयं यज्ञो अप्येतु देवान्॥
सप्तर्त्विजः सप्त सदांस्येषां दश क्षिपो अश्विना पञ्च वाजाः।
प्राणो व्यानो ऽपानो मन आकूतमग्निः स्वाहा देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥६॥
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः।
प्रत्नं निपाति काव्यम्॥
गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत।

आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य योनिरमृतं विजायते।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमवमेहन्ति पेरवः।

देवा देवेषु श्रयन्ताम्। प्रथमा द्वितीयेषु श्रयन्ताम्। द्वितीयास्तृतीयेषु श्रयन्ताम्। ये स्थ त्रय एकादशास्त्रयश्च त्रिंशच्च त्री च शतास्त्रयश्च त्री च सहस्रास्त इमं यज्ञमवन्तु ते मामवन्तु। अनु व आरभे ऽनु मारभध्वम् ॥७॥

असवे स्वाहा। वसवे स्वाहा। विभवे स्वाहा। विवस्वते स्वाहा। शूषाय स्वाहा। संसर्पाय स्वाहा। मलिम्लुचाय स्वाहा। गणश्रिये स्वाहा। शुक्राय स्वाहा। शुचये स्वाहा। अभिभवे स्वाहा। अधिपतये स्वाहा। दिवापतये स्वाहा ॥८॥

असवे स्वाहा। वसवे स्वाहा। वसुधेयाय स्वाहा। भूपतये स्वाहा। भुवनपतये स्वाहा। भूतानां पतये स्वाहा। भूताय स्वाहा॥

द्रप्सश्चस्कन्द॥
यस्ते द्रप्सः पतति यस्ते अंशुः॥
यो अंशुर्द्रप्सः पतितः पृथिव्याम्॥
यस्ते द्रप्सो मधुमां इन्द्रियावान्॥
यस्ते द्रप्स स्कन्नः॥

वसवस्त्वोदीरयन्तु गायत्रेण च्छन्दसा। रुद्रास्त्वोदीरयन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसा। आदित्यास्त्वोच्छ्रयन्तु [जागतेन च्छन्दसा।]

विश्वे त्वा देवा दृंहन्तु॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
देवा ह धर्मणा ध्रुवा यजमानः पशुभिर्ध्रुवः॥
दिवि दिव्यान्दृंह। अन्तरिक्षे ऽन्तरिक्ष्यान्दृंह। पृथिव्यां पार्थिवान्दृंह॥
आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलत्।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्यज्ञो अधिभ्रशत्॥
ध्रुवं ध्रुवेण हविषा हविरव सोमं नयामसि।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत्॥

स्वाहा दिव आप्यायस्व। स्वाहान्तरिक्षादाप्यायस्व। स्वाहा पृथिव्या आप्यायस्व। आयुर्धा असि ध्रुवायुर्मे धेहि। वयोधा असि ध्रुव वयो मे धेहि। वर्चोधा असि ध्रुव वर्चो मे धेहि। तनूपा असि ध्रुव तन्वं मे पाहि॥

अध्वर्यो ऽयं यज्ञो अस्तु देवा ओषधीभ्यः पशुभ्यो मे धनाय।
विश्वस्मै भूताय ध्रुवो अस्तु देवाः स पिन्वस्व घृतवद्देव यज्ञ॥
इहैवैधि मापच्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा हविः।
तस्मै सोमो अधिब्रुवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामसि ॥९॥
विसृष्टधेनाः सरिरा घृतश्चुतो वसन्तो ग्रीष्मो मधुमन्ति वर्षाः।
शरद्धेमन्त ऋतवो मयोभुव उदप्रुतो नभसी संवसन्ताम्॥

आ नः प्रजाम्॥
आ देवानाम्॥
त्वमग्ने व्रतपा असि॥
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इ[षश्चोर्जश्च शारदावृतू। सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।] त इमं यज्ञमवन्तु ते मामवन्तु। अनु व आरभे ऽनु मारभध्वम् ॥१०॥

द्यौश्च त्वा पृथिवी च श्रीणीताम्। अहश्च त्वा रात्री च श्रीणीताम्। आपश्च त्वौषधयश्च श्रीणन्तु। वाक् च त्वा मनश्च श्रीणीताम्। चक्षुश्च त्वा श्रोत्रं च श्रीणीताम्। ब्रह्म च त्वा क्षत्रं च श्रीणीताम्। दक्षश्च त्वा बलं च श्रीणीताम्। ओजश्च त्वा सहश्च श्रीणीताम्। ऋक् च त्वा साम च श्रीणीताम्। स्तोमश्च त्वा यजुश्च श्रीणीताम्। बृहच्च त्वा रथंतरं च श्रीणीताम्। यज्ञश्च त्वा दक्षिणा च श्रीणीताम्। सूर्यश्च त्वा चन्द्रमाश्च श्रीणीताम्। दर्शश्च त्वा पौर्णमासश्च श्रीणीताम्। अर्कश्च त्वाश्वमेधश्च श्रीणीताम्। श्रीतस्त्वं श्रीतो ऽहम्। इन्दुरिन्दुमवागात्। उभे सोमाः समस्त्विक्षत। तस्य त इन्द इन्द्रपीतस्येन्द्रियावतः सर्वगणस्य सर्वगण [उपहूत] उपहूतस्य भक्षयामि ॥११॥

इन्द्रस्य ग्रहो ऽस्यगृहीतो ग्राह्यः। देवानां पूरसि। तां त्वा प्रविशामि तां त्वा प्रपद्ये सह गृहैः सह प्रजया सह पशुभिः सहर्त्विग्भिः सह सोम्यैः सह सदस्यैः सह दक्षिणीयैः सह यज्ञेन सह यज्ञपतिना॥

इन्द्राग्नी परिधी मम वातो देवपुरा कृता। तत्त्वेन्द्रग्रह प्रपद्ये सगुः साश्वः सपूरुषः सह यन्मे अस्तु तेन॥

अरिष्ट्या [अव्यथ्यै] सवेशायोपवेशाय गायत्र्यै छन्दसे ऽभिभुवे स्वाहा। अरिष्ट्या अव्यथ्यै संवेशायोपवेशाय त्रिष्टुभे जगत्या अनुष्टुभे छन्दसे ऽभिभुवे स्वाहा।

विश्वा अग्ने त्वया वयं धारा उदन्या इव।
अतिगाहेमहि द्विषः॥
या देव्यष्टकास्वपसामपस्तमा स्वपा असि।
तस्यै त एना हविषा विधेम त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय॥
अनुमते ऽनुमन्यस्व न इदं यद्देयजं कृणुमहे तनूषु।
यद्वो तोकेषु तनुषु प्रजासु यद्गोष्वश्वेष्वोषधीष्वप्सु ॥१२॥
हिरण्यगर्भः॥
तदित्पदं न विचिकेत विद्वान्यन्मृतः पुनरप्येति जीवान्।
त्रिवृद्भुवनं यद्रथवृज्जीवो गर्भो न मृतः स्वाहा॥
आप्यायस्व॥
सं ते पयांसि॥
आप्यायस्व मदिन्तम्॥
स्वर्गे सधिष्टव॥
तपो ष्वग्ने अन्तरां अमित्रान्तपा शंसमररुषः परस्य।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः॥
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।

तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥
स स्मा कृणोतु केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते।
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः।
नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः।
कपिर्बभस्ति तेजनं पुनर्जरायु गौरिव॥
मेष इव यदुप च वि च चर्वति यदप्सरद्रूरुपरस्य खादति।
शीर्ष्णा शिरो वक्षसा वक्ष एजयन्नंशु बभस्ति हरितेभिरासभिः॥
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः।
न्यङ् नियन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः।
य आविष्टः॥

अग्निना तपो ऽन्वाभवत्सूर्येण तेजो वायुना प्राणाः ॥१३॥

यस्य द्रोणकलश उपदस्यति कलशमेव तस्योपवायन्तं प्राणेनोपदस्यति। प्राणो हि सोमः। तदाहुः पयो ऽवनयेदिति। अथो खल्वाहुरन्तर्हितमिव वा एतद्यत्पयः। हिरण्यमेवापो ऽभ्यवनयेत्। हिरण्यमभ्युन्नयेत्। अमृतं वा आप आयुर्हिरण्यम्। अमृतादेवाध्यायुरात्मन्धत्ते। चत्वारो वरा देया ब्रह्मण उद्गात्रे होत्रे ऽध्वर्यवे। एते वै यज्ञस्येन्द्राः। तानेव प्रीणाति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यस्य चमस उपदस्यति चमसमेव तस्योपवायन्तं प्राणेनोपदस्यति। प्राणो हि सोमः। यमध्वर्युरन्तमं ग्रहं गृह्णीयात्तस्य संपातमवनयेत्। प्रायश्चित्त्यै वै सोमो गृह्यते। प्रायश्चित्त्यैवास्मै प्रायश्चित्तिं करोति। सर्वमायुरेति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यस्य ग्रावावशीर्यते पशुभिर्व्यृध्यते। पशवो हि ग्रावाणः। द्युतानस्य मारुतस्य ब्रह्मसामेन स्तुवीरन्। पशवो वै द्युतानो मारुतः। स्वेनैवैनं साम्ना संदधाति। पशुमान्भवति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। प्रजापतये स्वाहेत्यभक्षणीयानुपरवेष्ववनयेत्। प्राजापत्यो वै सोमः। प्रतिष्ठामेवैनं गमयति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यस्य सोममभिदहेद्ग्रहानध्वर्युः पाशयेत। स्तोत्राण्युद्गाता शस्त्राणि होता। यथापूर्वं यज्ञेन चरेयुः। पञ्च वरा देयाः। पाङ्क्तो यज्ञः। यज्ञमेवावरुन्द्धे। अवभृथं गत्वा पुनरुदेत्य पुरा द्वादश्याः पुनर्दीक्षेत। यद्द्वादशीमतिनयेदन्तर्धीयेत। तत्र ता दक्षिणा दद्याद्याः पूर्वस्मिन्दास्यन्भवति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१४॥

सर्वान्वा एषो ऽग्नौ कामान्प्रवेशयते यो ऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति। स यदनिष्ट्वा प्रयायादकामप्रीता एनं कामा नानु प्रयायुः। अतेजा अवीर्यः स्यात्। स प्रयास्यञ्जुहुयात्॥
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक्।
अग्ने कामाय येमिरे॥
इति कामानेवास्मिन्दधाति। कामप्रीता एवं कामा अनु प्रयान्ति। तेजस्वी वीर्यवान्भवति। संततिर्वा एषा यज्ञस्य यो ऽग्निमन्वाधाय व्रतमुपैति। स यदनिष्ट्वा उद्वायाद्विच्छिन्निरेवास्य सा। प्राञ्चमुद्धृत्य मनसोपतिष्ठेत। मन इव वै प्रजापतिः। प्राजापत्यो यज्ञः। यज्ञमेव संतनोति। भूरिति व्याहरेत्। भूतो वै प्रजापतिः। भूतिमेवोपैति। आयुषा वा एष वीर्येण व्यृध्यते यद्याहिताग्नेरग्निरपक्षायति। स यावच्छम्यया पराविध्येद्यदि तावदपक्षायेत्तं संभरेत्॥
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।
संवेशनस्तन्वे चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे॥
इति ब्रह्मणैवैनं संभरति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यदि परस्तरामपक्षायेदनुप्रयाय वसेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। ओषधीर्वा एतस्य पयः पशून्प्रविशति यस्य हविषे ऽपाकृता वत्सा धयन्ति। वायव्यां यवागूं निर्वपेत्। वायुर्वै पयसः प्रदाता। तमेव भागधेयेनोपधावति। सो ऽस्मै पयः प्रयच्छति। अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१५॥

अर्धं वा एतस्य यज्ञस्य मीयते यस्य सायं दुग्धं हविरार्तिमार्छति। इन्द्राय व्रीहीन्निरुप्योपवसेत्। पयो वा ओषधयः। पय एवारभ्योवसति। यत्प्रातः स्यात्तच्छृतं कुर्युः। ऐन्द्र इतरः पुरोडाशः स्यात्। पयो वा ओषधयः। पयसैवास्मै पयः प्रदापयति। अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। उभयान्वा एष देवान्भागधेयेन व्यर्धयति ये यजमानस्य सायं च प्रातश्च गृहमागच्छन्ति। यस्य सायं प्रातर्दुग्धं हविरार्तिमार्छेत्योदनं पञ्चशरावं निर्वपेत्। अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत्। अग्निमुखा एव देवताः प्रीणाति। अग्निं वा अन्वन्या देवता इन्द्रमन्याः। ता एवोभयीः प्रीणाति। अथोत्तरस्मै हविषे वत्सानपावर्तयेत्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात्। यदनायतने निनयेदनायतनः स्यात्। मध्यमेन पर्णेन द्यावापृथिव्यर्चान्तःपरिधि निनयेत्। द्यावापृथिवी वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठामेवैनं गमयति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यत्प्रयाजेष्वनिष्टेषु प्राङ्ङ्गार स्कन्देदध्वर्यवे च यजमानाय चार्कं स्यात्। यद्दक्षिणा ब्रह्मणे च यजमानाय चार्कं स्यात्। यत्प्रत्यङ् होत्रे च पत्न्यै चार्कं स्यात्। यदुदङ्ङग्निधे च यजमानस्य च पशुभ्यो ऽर्कं स्यात्। तं प्रहरेत्॥
सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा स्तोमपृष्ठो घृतवान्सुप्रतीकः।
मा मा हासीन्नाथितो नेत्त्वा जहामि सहस्रपोषं मे गोपोषं च यच्छ॥
इति ब्रह्मणैवैनं प्रहरति। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। अर्धं वा एतस्य यज्ञस्य मीयते यस्य व्रत्ये ऽहन्पत्न्यनालम्भुका भवति। तामपरुध्य यजेत। सर्वेणैव यज्ञेन यजते। तामिष्ट्वोपह्वयेत॥
द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वम्।
अमो ऽहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमो ऽहम्।
तावेहि संरभावहै पुंसे पुत्राय कर्तवे॥
इत्यर्ध एवैनामुपह्वयते। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१६॥
यदववृष्टेन जुहुयादपरूपमस्यात्मञ्जायेत। यत्प्रत्येयात्पापीयान्स्यात्। यत्र जुहुयादार्तिमार्छेत्॥
मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत॥
इति मैत्र्यर्चा समिधमाधाय होतव्यम्। मित्रो वै यज्ञस्य शान्तिः। मित्रेणैवैनं शमयति। तद्धुत्वाथान्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात्। यत्र जुहुयादार्तिमार्छेत्। प्राजापत्ययर्चा वल्मीकवपायामवनयेत्। प्राजापत्यो वै वल्मीकः यज्ञः प्रजापतिः। यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति। तद्धुत्वाथान्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः। यदि पूर्वस्यामाहुत्यां हुतायामुत्तराहुतिं स्कन्देद् द्विपाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यृध्येत। यदभिजुहुयाच्चतुष्पाद्भिः पशुभिर्यजमानो व्यृध्येत॥
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि।
तत्र हव्यानि गामय ॥
इति वानस्पत्ययर्चा समिधमाधाय होतव्यम्। वनस्पतिर्वैनैवास्यार्तां चानार्तां चाहुतीं विदाधार। तद्धुत्वाथान्यां दुग्ध्वा पुनर्होतव्यम्। सैव तत्र प्रायश्चित्तिः ॥१७॥
देवाश्च वा असुराश्चास्मिंल्लोक आसन्। स प्रजापतिरकामयत परासुराननुदेय प्रजाः सृजेयेति। स एतानि चातुर्मास्यान्यपश्यत्। तैश्चातुर्मास्यैरेतानसुरान्प्राणुदत चातुर्मास्यैः प्रजा असृजत। य एवं विद्वांश्चातुर्मास्यैर्यजते परा भ्रातृव्यं नुदते प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते। अग्निष्टोमाद्वैश्वदेवं यज्ञक्रतुं निर्माय प्रजापतिः प्रजा असृजत। उक्थ्याद्वरुणप्रघासान्यज्ञक्रतुं निर्माय प्रजा वरुणेनाग्राहयत्। अतिरात्रात्साकमेधान्यज्ञक्रतुं निर्मायेन्द्रो वृत्रमहन्। वैश्वदेवेन वै सो ऽसुरान्प्राणुदत वैश्वदेवेन प्रजा असृजत। सृष्टा वा अन्याः प्रजा आसन्नसृष्टा अन्याः। अथ प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेयेति। संवत्सरो वै यज्ञो यज्ञः प्रजापतिः। स एते आत्मनो ऽधि पयसो निरमिमीतोधन्यं

स ब्रह्म च। अथैताभ्यो देवताभ्य एतानि हवींषि भागं निरवपत्। तै प्रजा असृजत। ऋतुभ्यो वै ताः प्रजाः प्राजायन्त। ऋतव एतानि पञ्च हवींषि। पञ्च ह्यृतवः। तत एव प्रजायते अग्निरेव प्राजायत्। सोमो रेतो ऽदधात्। मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च। सविता प्रासुवत्। संवत्सरो वै सविता। द्वादश मासाः संवत्सरः। तस्माद् द्वादशकपालः। अथो वैश्वदेवत्वायैव द्वादशकपालः। उपांशु यजति। अनिरुक्तो हि संवत्सरः। सरस्वत्येव सृष्टासु वाचमदधात्। पूषणं प्रतिष्ठामभ्यसृज्यन्त। यान्वै सरस्वती पशवः पूषा। मिथुनं वाक् च पशवश्च। मध्यतो वै प्रजा विसृज्यन्ते। अन्ततो मिथुनाद्विपृचीः प्रजायन्ते। तदेतत्प्रजायन्तेऽभितोऽधि मध्यतः प्रजा विसृज्यन्ते। अथादो ऽन्ततो मिथुनादुभयतो विपृचीः प्रजायन्ते। वार्त्रघ्नानि वा एतानि हवींषि। अग्निना वा अग्नीकेनेन्द्रो वृत्रमहन्। सोमेन राज्ञा सवित्रा प्रसूतः सरस्वत्या वाचा पूषा वीर्येणान्वतिष्ठत। विजितिरेवैतानि हवींषि ॥१८॥

॥ इति कपिष्ठलकठसंहितायामष्टाचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥

सामवेद संहिता

ॐ

राणायनीयाना कौथुमाना च

सामवेद-संहिता।

पूर्वार्चिकः (छन्द आर्चिकः)

आग्नेयं काण्डम्।

अथ प्रथमोऽध्यायः।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः।

[१]

(१-१०) १-२, ४, ७, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ३ मेधातिथिः काण्वः, ५ उशनाः काव्यः, ६ सुदीति-पुरुमीढावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः, ८ वत्सः काण्वः, १० वामदेवः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ ६।१६।१० ६६०

२ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥ ६।१६।१ १४७४

३ अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥ १।१२।१ ७९०

४ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥ ६।१६।३४ १३९९

५ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥ ८।८४।१ १२४४

६ त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥ ८।७१।१
१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

७ एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥ ६।१६।१६ ७०५

८ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥ ८।११।७ ११६६

९ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥ ६।१६।१३

१० अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे।
देवो ह्यसि नो दृशे ॥१०॥ (१) (न ऋग्वेदीयः)

स्वरिताः ९। उ० ना०। धा० ३७। वे ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ प्रथमः खण्डः ॥१॥

[२]

(१-१०) १ आयुङ्क्ष्वाहिः (ऋ० विरूप आङ्गिरसः), २ वामदेवो गौतमः, ३, ८-९ प्रयोगो भार्गवः, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, ५, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः, ६ मेधातिथिः काण्वः, १० वत्सः काण्वः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

११ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ८।७५।१० १६४८

१२ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा। ॥ २ ॥ ४।८।१

१३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥ ८।१०२।१३ १५७०

१४ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥ १।१।७

१५ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥ १।२७।१० १६६३

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥ १।१९।१

१७ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥ १।२७।१ १६३४

१८ और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे।
अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥ ८।१०२।४

१९ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥ ८।१०२।२२

२० आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवि ॥१०॥ ८।६।३०

स्व० ६। उ० २। धा० ५२। खा ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ द्वितीयः खण्डः ॥२॥

[३]

(१-१४) १ प्रयोगो भार्गवः, २, ५ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ३, १० वामदेवो गौतमः, ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ७ विरूप आङ्गिरसः, ८ शुनःशेप आजीगर्तिः, ९ गोपवन आत्रेयः, ११ प्रस्कण्वः काण्वः, १२ मेधातिथिः काण्वः, १३ सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आप्त्यो वा, १४ उशना काव्यः ॥ अग्निः ॥ गायत्री ॥

२१ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ८।१०२।७ ९४६

२२ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्यत्रिणम्।
अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥ २ ॥ ६।१६।२८

२३ अग्ने मृड महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम्। ॥ ३ ॥ ४।९।१

२४ अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥ ७।१५।१३

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२५ अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥ ६।१६।४३

२६ नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।
सुवीरमग्न आहुत ॥ ६ ॥ ७।१५।७

२७ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ ७ ॥ ८।४४।१६

२८ इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥ १।२७।४ १४९७

२९ तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥ ८।७४।११

३० परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०॥ ४।१५।३

३१ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११॥ १।५०।१

३२ कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीवचातनम् ॥१२॥ १।१२।७

३३ शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३॥ १०।९।४

३४ कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४॥ ८।८४।७

स्व० ९। उ० २। धा० ५७। वे ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ तृतीयः खण्डः ॥३॥

[४]

(१-१०) १,३,७ शंयुर्बार्हस्पत्यः (७ तृणपाणिः); २,५,८-९ भर्गः प्रागाथः; ४ वसिष्ठः मैत्रावरुणिः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; १० सोभरिः काण्वः ॥ अग्निः ॥ बृहती ॥

३५ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥ ६।४८।१ ७०३

३६ पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ २ ॥ ८।६०।९ १५४४

३७ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥ ३ । ६।४८।७

३८ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥ ७।१६।७

३९ अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ ५ ॥ ८।६०।१९

४० अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ ६ ॥ १।४४।१ १७८०

४१ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ७ ॥ ६।४८।९ १६२३

४२ त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥ ८।६०।५

४३ आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥ ८।६०।११

४४ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥१०॥ ८।१०३।६ १५६३

स्व० ९ । उ० ३ । धा० ८३ । ही ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ चतुर्थः खण्डः ॥४॥

[५]

(१-१०) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २ भर्गः प्रागाथः; ३, ७ सौभरिः काण्वः; ४ मनुर्वैवस्वतः; ५ सुदीतिपुरुमीळ्हावांगिरसौ; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ८ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० कण्वो घौरः ॥ अग्निः, ८ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

४५ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ७।१६।१ ७४९

४६ शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥ २ ॥ ८।६०।१५

४७ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ८।१०३।१ १५१५

४८ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥ ८।२७।१

४९ अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥ ८।७१।१४

५० श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥ ६ ॥ १।४४।१३

५१ प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥ ८।१०३।२ १५१७

५२ अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ ८ ॥ ८।१।१८

५३ कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥ ९ ॥ ३।९।२

५४ नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१०॥ १।३६।१९

स्व० उ० ६ धा० ७१ । पा ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ पञ्चमः खण्डः ॥५॥

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ १ ॥

[६]

(१-८) १, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २, ३, ५ कण्वो घौरः; ४ सौभरिः काण्वः; ६ उत्कीलः कात्यः; ८ विश्वामित्रो गाथिनः ॥ अग्निः, २ ब्रह्मणस्पतिः; ३ यूपः ॥ बृहती ॥

अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ १ ॥

५५ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥ ७।१६।११ १५१३

५६ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥ १।४०।३

५७ ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ३ ॥ १।३६।१३

५८ प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥ ८।१०३।४

५९ प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥ ५ ॥ १।३६।१

६० अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥ ३।१६।१

६१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥ ७।१६।५

६२ सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥ ३।९।१

॥ स्व०११ । उ०२ । धा० ५७ । ख ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

[७]

(१-१०) १ श्यावाश्वो वामदेवो वा, २ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः; ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ४ कुत्स आंगिरसः; ५-६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ॥ १,३,५,९ त्रिष्टुप्; २, ४ जगती; १० त्रिपाद्विराड्गायत्री ॥

६३ आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

६४ चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यां३ चरन् ॥२॥१०।११५।१

६५ इदं त एकं पर उ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशनस्तन्वे३चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥ १०।५६।१

६६ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥४ ॥ १।९४।१

६७ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥ ६।७।१।११४०

६८ वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः॥ ६ ॥६।२४।६

६९ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥ ४।३।१

७० इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥ ८ ॥ ७।८।१

७१ प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९ ॥ १०।८।१

७२ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१० । ७।१।१,१३७१

स्व० १५ । उ० ८ । धा० १०४ ॥ षी ॥

इति सप्तमी दशतिः । सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[८]

(१-८) १ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; २, ५ वत्सप्रिर्भालन्दनः; ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४, ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ पायुर्भारद्वाजः ॥
अग्निः, ३ पूषा ॥ त्रिष्टुप् ॥

७३ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥ ५।१।१　१७४६
७४ प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥ १०।४६।५
७५ शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ ६।५८।१
७६ इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥ ३।६।११
७७ प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीदद्पां विवर्ते ।
दधद्यो धायि सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥ १०।४६।१
७८ प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥ ७।६।१
७९ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥ ३।२९।२
८० सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥ १०।८७।१९
स्व० १३ । उ० १ । धा० ६ ॥ टो ॥
इति अष्टमी दशतिः ॥८॥ अष्टमः खण्डः ॥८॥

२

[९]

(१-१०) १ गय आत्रेयः; २ वामदेवः; ३, ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः; ६ वसूयव आत्रेयाः; ७, ९ गोपवन आत्रेयः; ८ पुरुरात्रेयः; १० वामदेवः, कश्यपो वा मारीचो, मनुर्वा वैवस्वत, उभौ वा ॥ अग्निः ॥ अनुष्टुप् ॥

८१ अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥ ५।१०।१
८२ यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः ।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
८३ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं च्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥ ६।२।६
८४ त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥ ६।२।१
८५ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥ ५।१८।१
८६ यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥ ५।२५।७
८७ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥ ८।७४।१　१५६४
८८ बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः । ॥ ८ ॥ ५।१६।१
८९ अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
य स्म श्रुतर्वन्नार्क्ष्ये बृहदनीक इध्यते । ॥ ९ ॥ ८।७४।४
९० जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥१०॥ (न ऋग्वेदीयः)
स्व० १४ । उ० ७ । धा० ५१ ॥ य ॥
इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

[१०]

(१-६) १ अग्निस्तापसः; २, ३ वामदेवः कश्यपः, असितो देवलो वा; ४ सोमाहुतिर्भार्गवः; ५ पायुर्भारद्वाजः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ अग्निः, १ विश्वेदेवाः; २ अङ्गिराः ॥ अनुष्टुप् ॥

९१ सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥ १०।१४१।३
९२ इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
९३ राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
९४ दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥ ४ ॥ २।५।३
९५ प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम् ॥ ५ ॥ १०।८७।२५
९६ त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥ १।४५।१
॥ स्व० ४ । उ० ३ । धा० २० । वौ ।
॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥१॥
इति दशमी दशतिः ॥१०॥ दशमः खण्डः ॥१०॥

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥

[१]

(१-१०) दीर्घतमा औचथ्यः; २, ४ विश्वामित्रो गाथिनः, ३ गोतमो राहूगणः; ५ त्रित आप्त्यः; ६ इरिम्बिठिः काण्वः; ७, ८, १० विश्वमना वैयश्वः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः ॥ अग्निः; ५ पवमानः सोमः; ६ अदितिः; ९ विश्वे देवाः ॥ उष्णिक् ॥

९७ पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥ १।१५०।१
९८ प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥ ३।१०।५

९९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशान सहसो यहो ।　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥ १।७९।४　१५६१
१०० अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥ ३।१०।७
१०१ जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥ ९।१०२।४
१०२ उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥ ६ ॥ ८।१८।७
१०३ ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम् ।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥ ८।२३।१
१०४ न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥ ८।२३।१५
१०५ अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥ ६।५१।१३
१०६ श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥ ८।२३।१४
स्व० ९ । उ० ३ । धा० ४२ ॥ वा ॥
इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ एकादशः खण्डः ॥११॥

[२]

(१-८) १ प्रयोगो भार्गवः (ऋ० सौभरिः काण्वः), २, ३, ५-७ सौभरिः काण्वः, ४ प्रयोगो भार्गवः सौभरिः काण्वो वा; ८ विश्वमना वैयश्वः ॥
अग्निः ॥ उष्णिक् ॥

१०७ प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥ ८।१०३।८　८७८

१०८ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥ २ ॥ ८।१९।३० १८२२
१०९ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥ ८।१९।१ १६८७
११० मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥ ८।१०३।१२
१११ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥ ८।१९।१९ १५५२
११२ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥ ८।१९।३
११३ तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम् ।
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥ ८।१९।१५
११४ यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥ ८।२३।१३
स्व० १२ । उ० २ । धा० ४४ । छी ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ द्वादशः खण्डः ॥१२॥

इत्याग्नेयं पर्व काण्डम् वा ॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥ इति प्रथमं पर्व ॥

अग्नेयकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११४

गायत्र्यः	३४	(१-३४)
बृहत्यः	२८	(३५-६२)
त्रिष्टुभः	१८	(६३-८०)
अनुष्टुभः	१६	(८१-९६)
उष्णिहः	१८	(९७-११४)
	११४	

अथ ऐन्द्रं काण्डम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[३]

(१-१०) १ शंयुर्बार्हस्पत्यः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः; ३ हर्यतः प्रागाथः; ४, ५ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा, ५ सुकक्षः) आंगिरसः; ६ देवजामय इन्द्रमातरः ऋषिकाः; ७, ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; ९, १० मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः ॥ इन्द्रः (ऋ०३ अग्निर्हवींषि वा)
॥ गायत्री ॥

११५ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ ६।४५।२२ १६६६
११६ यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥ ८।९२।१६
११७ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥ ८।७२।१२ १६०२
११८ अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ८।९२।२५
११९ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥ ८।९३।७ १२२२
१२० त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं सन्वृषन्वृषेदसि ॥ ६ ॥ १०।१५३।२
१२१ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥ ८।१४।५ १६३९
१२२ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥ ८।१४।१ १८३७

१२३ पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥ ८।२।२५ १६५७
१२४ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥१०॥ ८।२।१ ७३४
स्व० १० । उ० ४ । धा० ४६ । भू ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ प्रथमः खण्डः ॥१॥

(४)

(१-१०) १, २ सुकक्षश्रुतकक्षौ (ऋ० सुकक्ष आंगिरसः); ३ भारद्वाजः (ऋ० शंयुर्बार्हस्पत्यः); ४ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा आंगिरसः); ५, ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७, ९, १० त्रिशोकः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः (९ ऋ० अग्नीन्द्रौ) ॥ गायत्री ॥

१२५ उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ ८।९३।१ १४५०
१२६ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥ ८।९३।४
१२७ य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥ ६।४५।१
१२८ मा न इन्द्राभ्या३ दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥ ८।९२।३१
१२९ एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ ५ ॥ १।८।१
१३० इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥ १।७।५
१३१ अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥ ८।४५।२६

१३२ वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
विद्धी त्वा३स्य नो वसो ॥ ८ ॥ ७।३१।४
१३३ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥ ८।४५।१ १३३८
१३४ भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥१०॥ ८।४५।४० १०७०
स्व० ८ । उ० ३ । धा० ३२ । डा ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

॥ ५ ॥

(१-१०) १ कण्वो घौरः; २ त्रिशोकः काण्वः; ३ वत्सः काण्वः; ४ कुसीदी काण्वः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षः) आंगिरसः ७ श्यावाश्व आत्रेयः; ८ प्रगाथः काण्वः; ९ वत्सः काण्वः; १० इरिंबिठिः काण्वः ॥ इन्द्रः (ऋ० १ मरुतः; ४ विश्वे देवाः; ५ ब्रह्मणस्पतिः; ७ सविता) ॥ गायत्री ॥

१३५ इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥ १।३७।३
१३६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥ ८।४५।१६
१३७ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥ ८।६।४ १६५१
१३८ देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥ ८।८३।१
१३९ सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥ १।१८।१ १४६३
१४० बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥ ८।९३।१८

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४१ अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुःष्वप्न्यं सुव   ॥ ७ ॥ ५।८२।४

१४२ क्वऽ३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति   ॥ ८ ॥ ८।६४।७

१४३ उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत   ॥ ९ ॥ ८।६।२८

१४४ प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम्   ॥१०॥ ८।१६।१

स्व० ९ । उ० ना । धा० ४४ । ली ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥१॥

[६]

(१-१०) १ श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षः) आङ्गिरसः, २ मेधातिथिः (ऋ० शंयुर्बार्हस्पत्यः) काण्वः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५ बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः, ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा (ऋ० सुकक्षः) आङ्गिरसः; ८ वत्सः काण्वः, ९ शुनःशेप आजीगर्तिः, १० शुनःशेपो आजीगर्तिः, वामदेवो वा ॥ इन्द्रः, (४ ऋ० इन्द्रापूषणौ) ५ मरुतः ॥ गायत्री ॥

१४५ अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः   ॥ १ ॥ ८।९२।४

१४६ इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः ।
गावो वत्सं न धेनवः   ॥ २ ॥ ६।४५।२५

१४७ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे   ॥ ३ ॥ १।८४।१५   २१५

१४८ यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभुवत्सचा   ॥ ४ ॥ ६।५७।४

१४९ गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
युक्ता वह्नी रथानाम्   ॥ ५ ॥ ८।९४।१

२

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१५० उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम्   ॥ ६ ॥ ८।९३।३१   १७९०

१५१ इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा   ॥ ७ ॥ ८।९३।२३

१५२ अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि   ॥ ८ ॥ ८।६।१०   १५००

१५३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम   ॥ ९ ॥ १।३०।१३   १०८४

१५४ सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम् ।
देवत्रा रथ्योर्हिता   ॥ १० ॥ (न ऋग्वेदीयः)

स्व० ८ । उ० ५ । धा० ४४ । णी ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ चतुर्थः खण्डः ॥४॥

[७]

(१-१०) १, ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ३ मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चांगिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः, ६. १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ त्रिशोकः काण्वः, ८ कुसीदी काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

१५५ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्   ॥ १ ॥ ८।९२।१   ७१३

१५६ प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने   ॥ २ ॥ ७।३१।१   ७१६

१५७ वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते   ॥ ३ ॥ ८।२।१६   ७१९

१५८ इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः   ॥ ४ ॥ ८।९२।१९   ७२२

१५९ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब   ॥ ५ ॥ ८।१७।११   ७२५

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६० सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि   ॥ ६ ॥ १।४।१   १०८७

१६१ अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम्   ॥ ७ ॥ ८।४५।२२   ७३१

१६२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे   ॥ ८ ॥ ८।८२।७

१६३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये   ॥ ९ ॥ १।३०।७   ७४३

१६४ आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः   ॥१०॥ १।५।१   ७४०

स्व० ५ । उ० २ । धा० ३९ । फो ॥

इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ पञ्चमः खण्डः ॥५॥

[८]

(१-१०) १ विश्वामित्रो गाथिनः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ कुसीदी काण्वः, ४ प्रियमेध आंगिरसः, ५, ८ वामदेवो गौतमः; ६, ९ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः (९ ऋ० सुकक्ष आंगिरसः), ७ मेधातिथिः काण्वः; १० बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः ॥ इन्द्रः (ऋ० ७ सदसस्पतिः; १० मरुतः) ॥ गायत्री ॥

१६५ इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्वाऽ३स्य गिर्वणः   ॥ १ ॥ ३।५१।१०   ७३७

१६६ महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः   ॥ २ ॥ १।८।५

१६७ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन   ॥ ३ ॥ ८।८१।१   ७२८

१६८ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्   ॥ ४ ॥ ८।६९।४   १४८९

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६९ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता   ॥ ५ ॥ ४।३१।१   ६८२

१७० त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये   ॥ ६ ॥ ८।९२।७

१७१ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम्   ॥ ७ ॥ १।१८।६

१७२ ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
उत श्रोषन्तु नो भुवः   ॥ ८ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१७३ भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः   ॥ ९ ॥ ८।९३।२८

१७४ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना   ॥१०॥ ८।९४।४   १७८५

स्व० १२ । उ० १ । धा० ४० ॥ चौ ॥

इति अष्टमी दशतिः ॥८॥ षष्ठः खण्डः ॥६॥

[९]

(१-१०) १ देवजामय इन्द्रमातरः, २ गोधा ऋषिका; ३ दध्यङ्ङाथर्वणः; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ वामदेवो गौतमः; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेप आजीगर्तिः। १० उलो वातायनः ॥ इन्द्रः (ऋ० ४ अश्विनौ; १० वायुः) ॥ गायत्री ॥

१७५ ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
वन्वानासः सुवीर्यम्   ॥ १ ॥ १०।१५३।१

१७६ नकि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि   ॥ २ ॥ १०।१३४।७

१७७ दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।
स्तुहि देवं सवितारम्   ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१७८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥ १।४६।१

१७९ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥ १।८४।१३ ९१३

१८० इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥ १।९।१

१८१ आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥ ४।३२।१

१८२ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥ ८।६।५

१८३ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥ १।३०।४ १५९९

१८४ वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥ १०।१८६।१ १८४०

स्व० १० । उ० २ । धा० ४५ । फु ॥

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

[१०]

(१-९) १ कण्वो घौरः; २, ३, ९ वत्सः (ऋ० २, ९ शशोऽद्भ्यः) काण्वः; ४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ हरिम्बिठिः काण्वः; ८ सत्यधृति वारुणिः ॥ इन्द्रः (ऋ० १ वरुणमित्रार्यमणः; ८ आदित्यः) गायत्री ॥

१८५ यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥ १।४१।१

१८६ गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥ ८।४६।१०

१८७ इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥ ८।६।१९

१८८ अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत ।
यत्सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥ ८।९३।१७

१८९ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥ १।३।१०

१९० क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसून्या भरात् ॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१९१ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥ ८।१७।१ ६६६

१९२ महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥ १०।१८५।१

१९३ त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥ ८।४६।१

स्व० ६ । उ० ४ । धा० ३५ । घु ॥

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[१]

(१-१०) १ प्रगाथः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३, १० वामदेवो गौतमः; ४, ६ श्रुतकक्ष आङ्गिरसः (ऋ० ४ सुकक्षो वा; ६ सुकक्ष आंगिरसः); ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८, ९ भरद्वाजः (ऋ०- ८ शंयुः) बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रः (९ ऋ० इन्द्रापूषणौ) ॥ गायत्री ॥

१९४ उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ८।६४।१ १३५४

१९५ गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥ ३।४०।६

१९६ सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१९७ आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥ ८।९२।२२ १६६०

१९८ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥ १।७।१ ७९६

१९९ इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥ ८।९३।३४

२०० इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥ २।४१।१०

२०१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ ६।४५।२८

२०२ इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥ ६।५७।१

२०३ न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥१०॥ ४।३०।१

स्व० ८ । उ० ७ । धा० ३५ । टु ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ नवमः खण्डः ॥९॥

[२]

(१-१०) १, ४ त्रिशोकः काण्वः; २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ वत्सः काण्वः; (ऋ० वशोऽश्व्यः); ५ सुकक्ष आङ्गिरसः; ६, ९, वामदेवो गौतमः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः । ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२०४ तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
समानमु प्र शंसिषम् ॥ १ ॥ ८।४५।२८

२०५ असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत ।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥ १।९।४

२०६ सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥ ८।४६।४

२०७ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥ ८।४५।४१ १०७२

२०८ श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥ ८।९३।२६

२०९ अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
अरं शक्र परेमणि ॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

२१० धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥ ३।५२।१

२११ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥ ८।१४।१३

२१२ इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

२१३ तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ १० ॥ ८।९३।२५

स्व० ८ । उ० २ । धा० ३३ । ठि ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ दशमः खण्डः ॥१०॥

[३]

(१-९) १ शुनःशेप आजीगर्तिः; २ श्रुतकक्ष आंगिरसः (ऋ० सुकक्षो आंगिरसो वा;) ३ त्रिशोकः काण्वः; ४ मेधातिथिः काण्वः; ५ गोतमो राहूगणः; ६ ब्रह्मातिथिः काण्वः; ७ विश्वामित्रो गाथिनो जमदग्निर्वा; ८ प्रस्कण्वः काण्वः (ऋ० कण्वो घौरः); ९ मेधातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः (ऋ० ५ विश्वेदेवाः); ६ अश्विनौ; मित्रावरुणौ; ८ मरुतः; ९ विष्णुः) ॥ गायत्री ॥

२१४ आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥ १।३०।१

२१५ अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥ ८।९२।१०

२१६ आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥ ८।४५।४

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२१७ वृषवुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥ ८।३२।१०

२१८ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥ १।९०।१

२१९ दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वधातनत् ॥ ६ ॥ ८।५।१

२२० आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥ ३।६२।१६ ६६३

२२१ उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥ १।३७।१०

२२२ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले ॥ ९ ॥ १।२२।१७

स्व० ६। उ० १। धा० ३९। को ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ एकादशः खण्डः ॥११॥

[४]

(१-१०) १, ७, ८ मेधातिथिः काण्वः, २ वामदेवो गौतमः, ३, ५ मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, ४ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ दुर्मित्रः (सुमित्रो वा) कौत्सः, ९ विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद् उदलो वा, १० श्रुतकक्षः (ऋ० सुकक्षो वा) आंगिरसः ॥ इन्द्रः ॥ गायत्री ॥

२२३ अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।
अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥ ८।३२।२१

२२४ कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते।
तदिध्यस्य वर्धनम् ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२२५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥ ८।२।१४ १८०५

२२६ इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः।
हरिवांत्सुतानां सखा ॥ ४ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

२२७ आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।
महां इव युवजानिः ॥ ५ ॥ ८।२।१९

२२८ कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥ १०।१०५।१

२२९ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूंरनु।
तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥ १।१५।५

२३० वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥ ८।३२।७

२३१ एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

२३२ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥ ८।९२।२८ ८२४

स्व० १२। उ० ना। धा० ३०। यी ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ द्वादशः खण्डः ॥१२॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

इत्येकसामि समाप्तम् ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

[५]

(१-१०) १, ६, ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २ भरद्वाजः (ऋ० शंयुः) बार्हस्पत्यः ३ प्रस्कण्वः काण्वः, ४ नोधा गौतमः, ५ कलिः प्रागाथः। ७ मेधातिथिः काण्वः, ८ भर्गः प्रागाथः, १० प्रगाथो घौरः काण्वः ॥ इन्द्रः, ९ मरुतः ॥ बृहती ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२३३ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ७।३२।२२ ६८०

२३४ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥ ६।४६।१ ८०९

२३५ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ ३ ॥ ८।४९।१ ८११

२३६ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥ ८।८८।१ ६८५

२३७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ५ ॥ ८।६६।१ ६८७

२३८ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥ ७।३२।२० ८६७

२३९ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ ७ ॥ ८।३।१ १४२१

२४० त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८ ॥ ८।६१।७ १५८१

२४१ न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥ ९ ॥ ७।५९।३

२४२ मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १० ॥ ८।१।१ १३६०

स्व० १२। उ० ५। धा० ७३। जि ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ प्रथमः खण्डः ॥१॥ इति तृतीय प्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥१॥

[६]

(१-१०) १ पुरुहन्मा आंगिरसः, २, ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, ४ विश्वामित्रो गाथिनः, ५ गोतमो (गौतमो वा) राहूगणः, ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ; ७, ८, ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः, १० देवातिथिः काण्वः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२४३ नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥ १ ॥ ८।७०।३ ११५५

२४४ य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ २ ॥ ८।१।१२

२४५ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥ ८।१।२४ १३४१

२४६ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥४॥ ३।४५।१ १७१८

२४७ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥ १।८४।१९ १७२३

२४८ त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥ ८।९०।५

२४९ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥ ८।३।५ १५८७

२५० इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ॥ ८ ॥ ८।३।३ १६०७

२५१ उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥ ८।३।१५

२५२ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥१०॥ ८।४।३ १७२१

स्व० ११। उ० ७। धा० ७२। खा ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ द्वितीयः खण्डः ॥२॥

[७]

(१-१०) १ भर्गः प्रागाथः; २, ८ रेभः काश्यपः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४, ९ मेधातिथिः काण्वः; (ऋ० मेध्यातिथिः काण्वः); ५, ६ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० भरद्वाजः (ऋ० शंयुः) बार्हस्पत्यः ॥ इन्द्रः, ३ मित्रावरुणादित्याः ॥ बृहती ॥

२५३ शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि　॥ १ ॥ ८।६१।५　१५७९
२५४ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः　॥ २ ॥ ८।९७।१
२५५ प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत　॥ ३ ॥ ८।१०१।५
२५६ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्　॥ ४ ॥ ८।३।७　१५७३
२५७ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा　॥ ५ ॥ ८।८९।३
२५८ बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि　॥ ६ ॥ ८।८९।१
२५९ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥७॥ ७।३२।२६
२६० मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक्　॥ ८ ॥ ८।९७।७
२६१ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते　॥ ९ ॥ ८।३३।१　८६४
२६२ यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥१०॥ ६।४६।७
॥ स्व० १० । उ० १ । धा० ६२ । पा ॥
इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ १० ॥

[८]

(१-१०) १ मेधातिथिः (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः; २ रेभः काश्यपः; ३ वत्सः (ऋ० वशोऽश्व्यः); ४ भरद्वाजः (शंयुः) बार्हस्पत्यः; ५ नृमेध आंगिरसः; ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; ७ नृमेध-पुरुमेधावांगिरसौ; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; १० कलिः प्रागाथः ॥ इन्द्रः ॥ बृहती ॥

२६३ सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः　॥ १ ॥ ८।३३।१०
२६४ यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥२॥ ८।९७।४
२६५ अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा　॥ ३ ॥ ८।४६।१४
२६६ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः　॥ ४ ॥ ६।४६।९
२६७ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ५ ॥ ८।९९।३　१३१९
२६८ न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते　॥ ६ ॥ ८।७०।७
२६९ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम　॥ ७ ॥ ८।९०।१　१४९२
२७० तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥ ७।३२।१६
२७१ क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः　॥ ९ ॥ ८।१।७

२७२ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते　॥१०॥ ८।६६।७　१६९१
स्व० १४ । उ० १ । धा० ७४ । ती ॥
इति अष्टमी दशतिः ॥ ८ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[९]

(१-१०) १, ६ पुरुहन्मा आंगिरसः; २ भर्गः प्रागाथः; ३ इरिम्बिठिः काण्वः; ४ जमदग्निर्भार्गवः; ५, ७ देवातिथिः काण्वः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १० मेध्यः काण्वः ॥ इन्द्रः (ऋ० ३ वास्तोष्पतिर्वा; ४ सूर्यः; ९ इन्द्राग्नी) ॥ बृहती ॥

२७३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे　॥ १ ॥ ८।७०।१　९३३
२७४ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ २ ॥ ८।६१।१३　१३२१
२७५ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा　॥ ३ ॥ ८।१७।१४
२७६ बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि　॥ ४ ॥ ८।१०१।११　१७८८
२७७ अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप　॥ ५ ॥ ८।४।९
२७८ यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी　॥ ६ ॥ ८।७०।५　८६२
२७९ यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे　॥ ७ ॥ ८।४।१　१२३१
२८० कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ ८ ॥ ७।३२।१४　१६८२

२८१ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत्　॥ ९ ॥ ६।५९।६
२८२ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः　॥१०॥ ८।५३।५
स्व० १६ । उ० ५ । धा० ७२ । ञ ॥
इति नवमी दशतिः ॥९॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

[१०]

(१-१०) १ नृमेध आंगिरसः; २, ३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ४ भरद्वाजः (ऋ० शंयुः) बार्हस्पत्यः; ५ परुच्छेपो दैवोदासिः; ६ वामदेवो गौतमः; ७ मेध्यातिथिः काण्वः; ८ भर्गः प्रागाथः; ९, १० मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ ॥ इन्द्रः (५ ऋ० आश्विनौ) ॥ बृहती ॥

२८३ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्　॥ १ ॥ ८।९९।७
२८४ मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि　॥ २ ॥ ७।३२।१　१६७५
२८५ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः　॥ ३ ॥ ७।३२।८
२८६ यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥ ६।४६।३
२८७ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदाचनास्मद्रातिः कदाचन　॥ ५ ॥ १।१३९।५
२८८ यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम्　॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
२८९ पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥ ८।३३।४

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२९० उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८॥ ८।६१।१ १२३२
२९१ महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥ ८।१।५
२९२ वस्यां इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥१०॥ ८।१।६
स्व० १५ । उ० ४ । धा० ७६ । भू ॥

इति दशमी दशतिः ॥ १० ॥ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥
इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ।

[१]

(१-१०) १ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ६, ७ वामदेवो गौतमः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, विश्वामित्र इत्येके; ४ नोधा गौतमः; ५ मेधातिथिः (ऋ० मेध्यातिथिः) काण्वः; ८ श्रुष्टिगुः काण्वः; ९ मेध्यातिथिः (मेधातिथिर्वा) काण्वः; १० नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः; ७ वसुः ॥ बृहती ॥

२९३ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ १ ॥ ७।३२।४
२९४ इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
२९५ आ त्वा३द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ ३ ॥ ८।१।१०
२९६ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच्छिक्षासि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते ॥ ४ ॥ ८।८८।३
२९७ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ५ ॥ ८।३३।७ १६९६
२९८ यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन्पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

२९९ त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥ ७ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
३०० कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ८ ॥ ८।५१।७
३०१ युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ ९ ॥ ८।३।१७
३०२ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०॥ ८।९९।१ ८१३
स्व० १३ । उ० २ । धा० ८२ । ठि ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ सप्तमः खण्डः ॥७॥

[२]

(१-१०) १,२,७,८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ अश्विनौ वैवस्वतौ; ४ प्रस्कण्वः काण्वः; ५ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ देवातिथिः काण्वः; ९ नृमेध आंगिरसः; १० नोधाः गौतमः ॥ इन्द्रः; १ उषाः; २, ३ (ऋ० ४) अश्विनौ ॥ बृहती ॥

३०३ प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥ ७।८१।१ ७५१
३०४ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ २ ॥ ७।७४।१ ७५३
३०५ कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्मया क्षपमाणोंऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
३०६ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥ १।४७।१
३०७ आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ ५ ॥ ८।१।२०

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

३०८ अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥ ८।४।११
३०९ अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ ७ ॥ ७।३२।२४
३१० यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ ८ ॥ ७।३२।१८ १७२६
३११ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥ ८।९९।५ १६३७
३१२ प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ ॥१०॥ ८।८८।५
स्व० १० । उ० ३ । धा० ७५ । ये ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ अष्टमः खण्डः ॥८॥
इति बृहती समाप्ता ।

[३]

(१-१०) १, २, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ गातुरात्रेयः; ४ पृथुर्वैन्यः; ५ सप्तगुरांगिरसः; ७ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ८ वेनो भार्गवः; ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा; १० सुहोत्रो भारद्वाजः ॥ इन्द्रः; (ऋ० ५ इन्द्रो वैकुण्ठः) ८ वेनः ॥ त्रिष्टुप् ॥

३१३ असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥ ७।२१।१
३१४ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ २ ॥ ७।२४।१
३१५ अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान्हन् ॥ ३ ॥ ५।३२।१
३१६ सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥ ४ ॥ १०।१४८।१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

३१७ जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥ १०।४७।१
३१८ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥६॥ ७।२७।१
३१९ वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥ १०।७३।११
३२० नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥ १०।१२३।६
३२१ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९॥ (न ऋग्वेदीयः)
३२२ अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥ ६।३२।१
स्व० १३ । उ० ६ । धा० ९१ । ट ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ इति नवमः खण्डः ॥९॥

[४]

(१-२) १, २, ४ द्युतानो मारुतः (ऋ० तिरश्चीराङ्गिरसः); ३ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ९ गौरिवीतिः शाक्त्यः ॥ इन्द्रः ॥ त्रिष्टुप्, (६ ऋ० विराट्) ॥

३२३ अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१॥ ८।९६।१३
३२४ वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥ ८।९६।७
३२५ विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥ १०।५५।५ १७८२
३२६ त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥४॥ ८।९६।१६

३२७ मंहिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
३२८ प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥ ७।३१।१० १७९३
३२९ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानि ॥ ७ ॥ ३।३०।२२
३३० उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ ८॥ ७।२३।१
३३१ चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ९ ॥ १०।७३।९

स्व० १६ । उ० ६ । धा० ७३ ॥ क्रि

इति चतुर्थी दशतिः ॥ ४ ॥ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

[५]

(१-१०) १ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः; २ भरद्वाजः (ऋ० गर्गो भारद्वाजः); ३ विमद ऐन्द्रः,वसुकृद्वा वासुक्रः (ऋ० प्राजापत्यो वा); ४-६, ९ वामदेवो गौतमः (९ ऋ० यमी वैवस्वती) ७ विश्वामित्रो गाथिनः; ८ रेणुर्वैश्वामित्रः; १० गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः (ऋ० १ तार्क्ष्यः; ७ पर्वतेन्द्रौ, ९ यमो वैवस्वतः) ॥ त्रिष्टुप् ॥

३३२ त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥ १०।१७८।१
३३३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥ ६।४७।११
३३४ यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां३ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा॥३॥१०।२३।१
३३५ सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः॥४॥ ४।१७।८

३३६ यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥(न ऋग्वेदीयः)
३३७ यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥(न ऋग्वेदीयः)
३३८ इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥ ३।५३।१
३३९ इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥१०।८९।४
३४० आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन्क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥ १०।१०।१
३४१ को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१०॥ १।८४।१६

स्व० १८ । उ० ४ । धा० ८६ । दू ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ एकादशः खण्डः ॥११॥
इति त्रिष्टुप् समाप्ता ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥१॥

[६]

(१-१०) १ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; २ जेता माधुच्छन्दसः; ३, ६ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५, ८ तिरश्चीराङ्गिरसः; ७ नीपातिथिः काण्वः; ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० तिरश्चीरांगिरसः शंयुर्बार्हस्पत्यो वा ॥ इन्द्रः ॥ अनुष्टुप् ॥

३४२ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥ १।१०।१ १३४४
३४३ इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥ १।११।१ ८२७
३४४ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥ १।८४।४ ९४९

३४५ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥ ५।३९।१ ११७२
३४६ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ५ ॥ ८।९५।४ ८८३
३४७ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ६ ॥ १।८४।१ १०२८
३४८ एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥ ८।३४।१ १८०७
३४९ आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥ ८।९५।१
३५० एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ ९ ॥ ८।९५।७ १४०२
३५१ यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥ ६।४४।१

स्व० ४ । उ० ४ । धा० ५४ ॥ धी ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ द्वादशः खण्डः ॥१२॥
इति तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[७]

(१-८) १ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ वामदेवो गौतमः, शाकपूतो वा; ३ प्रियमेध आङ्गिरसः; ४ प्रगाथः काण्वः; ५ श्यावाश्व आत्रेयः; ६ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ७ वामदेवो गौतमः; ८ जेता माधुच्छन्दसः ॥ इन्द्रः; ५ मरुतः; ७ दधिक्रा वा ॥ अनुष्टुप् ॥

३५२ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरः ॥ १ ॥ ६।४२।१ १४४०
३५३ आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं पूर्विणेष्ठाम्
उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

३५४ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥ ८।६८।१ १७७१
३५५ स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥ ४ ॥ ८।६३।१
३५६ यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥ ५ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
३५७ त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् । ॥ ६ ॥ ६।४४।४
३५८ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥ ४।३९।६
३५९ पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥ १।११।४ १२५०

स्व० ५ । उ० २ । धा० ४५ । पु ॥

इति सप्तमी दशतिः ॥ ७ ॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १॥

[८]

(१-१०) १,३,५ प्रियमेध आङ्गिरसः; २,१० वामदेवो गौतमः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ७ अत्रिर्भौमः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः; ९ त्रित आप्त्यः (ऋ० कुत्स आंगिरसो वा)॥ इन्द्रः; (६ ऋ० अग्निः), ८ उषाः; ९ विश्वेदेवाः ॥ अनुष्टुप् ॥

३६० प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति । ॥ १ ॥ ८।६९।१
३६१ कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
३६२ अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥ ८।६९।८

(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)

३६३ उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिःषिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च　॥ ४ ॥ १।१०।५

३६४ विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ।　॥ ५ ॥ ८।६८।४

३६५ स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति　॥ ६ ॥ ६।२।४

३६६ विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय　॥ ७ ॥ ५।३८।१

३६७ वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि　॥ ८ ॥ १।४९।३

३६८ अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः　॥ ९ ॥ १।१०५।५

३६९ ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः　॥ १० ॥ (न ऋग्वेदीयः)

स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५४ । जी ॥

इति अष्टमी दशतिः ॥८॥ द्वितीयः खण्डः ॥२॥ इत्यनुष्टुभः ॥

[९]

(१-११) १ रेभः काश्यपः, २ सुवेदाः शैलूषिः, ३ वामदेवो गौतमः, ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरसः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ कृष्ण आङ्गिरसः, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, १० मेधातिथिः काण्वः (ऋ० मान्धाता यौवनाश्वः), ११ कुत्स आङ्गिरसः ॥ इन्द्रः, ९ द्यावापृथिव्यौ ॥ जगती, १ अति जगती, १० महापङ्क्तिः ॥

३७० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्　॥ १ ॥ ८।९७।१०　९३०

३७१ श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥२॥ १०।१४७।१

(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)

३७२ समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्तनीरनु वावृत एक इत्　॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

३७३ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४॥ १।५७।४

३७४ चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे　॥ ५ ॥ ३।५१।१

३७५ अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥६॥ १०।४३।१

३७६ अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥७॥ १।५१।१

३७७ त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥८॥ १।५२।१

३७८ घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥९॥ ६।७०।१

३७९ उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्　॥१०॥ १०।१३४।१　१०९०

३८० प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि　॥११॥ १।१०१।१

स्व० १४ । उ० ७ । धा० ९३ । थि ॥

इति नवमी दशतिः ॥९॥ तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इति जगत्यः ॥

[१०]

(१-१०) १ नारदः काण्वः, २, ३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, ४ पर्वतः काण्वः, ५-७, १० विश्वमना वैयश्वः, ८ नृमेध आङ्गिरसः, ९ गोतमो राहूगणः ॥ इन्द्रः ॥ उष्णिक् ॥

(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)

३८१ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः　॥ १ ॥ ८।१३।१　७४६

३८२ तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत　॥ २ ॥ ८।१५।१

३८३ तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्　॥ ३ ॥ ८।१५।४　८८०

३८४ यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः　॥ ४ ॥ ८।१२।१६

३८५ एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ।　॥ ५ ॥ ८।२४।१६—१६८४

३८६ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधांसि चोदयते महित्वना　॥ ६ ॥ ८।२४।१३　१५०९

३८७ एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत्　॥ ७ ॥ ८।२४।१९

३८८ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे　॥ ८ ॥ ८।९८।१　१०२५

३८९ य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग　॥ ९ ॥ १।८४।७　१३४१

३९० सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे　॥१०॥ ८।२४।१

स्व० १० । उ० ४ । धा० ६२ । खा

इति दशमी दशतिः ॥१०॥ चतुर्थः खण्डः ॥४॥

इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, चतुर्थः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥

अथ पञ्चमः प्रपाठकः ।

[१]

(१-८) १ प्रगाथो घौरः काण्वः, २ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ३ नृमेध आङ्गिरसः, ४ पर्वतः काण्वः, ५, ७ इरिम्बिठिः काण्वः, ६ विश्वमना वैयश्वः, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ इन्द्रः, ५,७ आदित्याः ॥ उष्णिक्, ८ विराडुष्णिक् ॥

(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)

३९१ गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते　॥ १ ॥ ८।६२।८

३९२ यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब　॥ २ ॥ ६।४३।१

३९३ एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः　॥ ३ ॥ ८।९८।४　१२४७

३९४ य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्या३त्रिणं तमीमहे　॥ ४ ॥ ८।१२।१

३९५ तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः समहसः कृणोतन　॥ ५ ॥ ८।१८।१८

३९६ वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव　॥ ६ ॥ ८।२४।२४

३९७ अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः　॥ ७ ॥ ८।१८।१०

३९८ पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा　॥ ८ ॥ ७।२२।१　९२७

स्व० ५ । उ० २ । धा० ५१ । फ ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥१॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ इत्युष्णिहः ।

[२]

(१-१०) सौभरिः काण्वः, ७, ८ नृमेध आंगिरसः ॥ इन्द्रः, ३, ६ मरुतः ॥ ककुप् ॥

३९९ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे　॥ १ ॥ ८।२१।१३　१३८९

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४०० यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥ ८।२१।९

४०१ आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥ ८।२०।१

४०२ आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ४ ॥ ८।२१।३

४०३ त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥ ८।२१।११

४०४ गावश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥ ८।२०।२१

४०५ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥ ८।९८।१० १२६९

४०६ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥ ८।९८।७ ८१०

४०७ सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥ ८।२१।५

४०८ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥१०॥ ८।२१।१ ७०८

स्व० २ । उ० २ । धा० ४१ । छ ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥२॥ षष्ठः खण्डः ॥६॥ इति ककुभः ॥

[३]

(१-१०) १-८ गोतमो (सम्मदो वा) राहूगणः; ९ त्रितः आप्त्यः (ऋ० कुत्स आंगिरसो वा); १० अवस्युरात्रेयः ॥ इन्द्रः; ९ विश्वेदेवाः; १० अश्विनौ ॥ पंक्तिः ॥

४०९ स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
१।८४।१० १००५

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४१० इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
१।८०।१

४११ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥
१।८१।१ १००२

४१२ इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्मायायावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
१।८०।७

४१३ प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥
१।८०।३

४१४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥ ६ ॥
१।८१।३ १००४

४१५ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ७ ॥
१।८२।२

४१६ उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥
१।८२।१

४१७ चन्द्रमा अप्स्वाऽ३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
१।१०५।१

४१८ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १० ॥
५।७५।१ १७४३

स्व० १३ । उ० ५ । धा० ७५ । णु ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ सप्तमः खण्डः ॥७॥

[४]

(१-८) १,७ वसुश्रुत आत्रेयः; २, ४ विमद ऐन्द्रः (ऋ० प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः); ३ सत्यश्रवा आत्रेयः; ५, ६ गोतमो राहूगणः; ८ अंहोमुग्वामदेव्यः; (ऋ० कुस्मलबर्हिषः शैलूषिर्वा;) ॥ अग्निः; ३ उषाः; ४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विश्वेदेवाः ॥ पंक्तिः; ८ बृहती ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४१९ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥ ५।६।४

४२० आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे ॥२॥ १०।२१।१

४२१ महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥ ५।७९।१-१७४०

४२२ भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥४॥ १०।२५।१

४२३ क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५॥ १।८१।१

४२४ स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥६॥ १।८२।४

४२५ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥
५।६।१ १७३७

४२६ न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः ॥ ८ ॥ १०।१२६।१

स्व० ७ । उ० ३ । धा० ५७ । जे ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ अष्टमः खण्डः ॥८॥

इति पंक्तयः ॥

[५]

(१-१०) ऋण-त्रसदस्यू, (ऋ० १, ३-५, १० अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः, २, ६, त्र्यरुणत्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः) ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ८ वामदेवो गौतमः ॥ पवमानः सोमः; ७ मरुतः; ८ अग्निः ९ वाजिनः ॥ द्विपदा विराट्; ८ पदपंक्तिः; ९ पुरउष्णिक्;
२, ६ त्रिपदा अनुष्टुप्पिपीलिकामध्या ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४२७ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥ ९।१०९।१ १३६७

४२८ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥ ९।११०।१ १३६४

४२९ पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥ ३ ॥ ९।१०९।४ १२४१

४३० पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥ ९।१०९।१० १३३२

४३१ इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥ ५ ॥ ९।१०९।१३

४३२ अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥ ९।११०।२ १३६६

४३३ क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥ ७।५६।१

४३४ अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥ ४।१०।१ १७७७

४३५ आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सवम् ।
स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

४३६ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः ॥ १० ॥ ९।१०९।७

स्व० ८ । उ० २ । धा० ३५ । ठु ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ इति नवमः खण्डः ॥९॥

इति पंचमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥१॥

[६]

(१-१०) त्रसदस्युः; ७ संवर्त आंगिरसः॥ इन्द्रः; ६ विश्वेदेवाः; ७ उषाः ॥
द्विपदा विराट् ॥

४३७ विश्वतोदावन्विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१॥ (न ऋग्वेदीयः)

४३८ एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः) १७६८

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४३९ ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ३ ॥ ५।३१।४
४४० अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ॥ ४ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४४१ शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम् ॥५॥ (न ऋग्वेदीयः)
४४२ सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४४३ आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥ ७ ॥ १०।१७२।१
४४४ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥८॥ (न ऋग्वेदीयः) १११५
४४५ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥९॥ (न ऋग्वेदीयः) १११४
४४६ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१०॥ (न ऋग्वेदीयः) १११३
स्व० ७ । उ० २ । धा० ४२ । ष्ठा ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥ ६ ॥ दशमः खण्डः ॥१०॥

[७]

(१-१०) १ पृषध्रः काण्वः; २, ३, ४ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा, ५ संवर्त आंगिरसः, ६ भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः, ७ कवष ऐलूषः, ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ आत्रेयः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ॥ अग्निः; ५ उषाः; ६, ७, ९ विश्वे देवाः; ३, ४, ८, १० इन्द्रः ॥ द्विपदा विराट्, १० एकपदा ॥

४४७ अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्‌ सुमद्रथः ॥ १ ॥ ८।५६।५
४४८ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ २ ॥ ५।२४।१ ११०७
४४९ भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४५० विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन्यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४५१ उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥ ५ ॥ १०।१७२।४
४५२ इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥ १०।१५७।१ १११०
४५३ वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वयन्तु रातयः ॥ ७ ॥ (न ऋग्वेदीयः) १७७०
४५४ अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥ ६।१७।१५
४५५ ऊर्जो मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९॥ (न ऋग्वेदीयः)
४५६ इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥ (न ऋग्वेदीयः)
स्व० ५ । उ० ४ । धा० ४१ । भ ॥

इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ एकादशः खण्डः ॥११॥

७

[८]

(१-१०) १, १० गृत्समदः शौनकः; २ गौरांगिरसः, ३, ५, ९, परुच्छेपो दैवोदासिः; ४ रेभः काश्यपः; ६ एवयामरुदात्रेयः, ७ अनानतः पारुच्छेपिः; ८ नकुलः ॥ १,३,४,१० इन्द्रः, २ सूर्यः; ५ विश्वेदेवाः; ६ मरुतः, ७ पवमानः सोमः; ८ सविता, ९ अग्निः ॥ १,१० अष्टिः (१० अतिशक्वरी वा), ३,५, ७-९ अत्यष्टिः, २, ४, ६ अतिजगती (अष्टिर्वा ?) ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४५७
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१॥
२।२२।१ १४८६

४५८ अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः
सचेतसः स्वसरे मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४५९ एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा
विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न
पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥ १।१३०।१
४६० तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं श्रवांसि भूरि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त
राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥ ८।९७।१३
४६१ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु
त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः ॥ ५ ॥ १।१३९।१
४६२ प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे
भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥ ५।८७।१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४६३ अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिरृक्वभिः ॥ ७ ॥ ९।१११।१
४६४ अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतु
मर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ८ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
४६५ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ९ ॥ १।१२७।१ १८१३
४६६ तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥१०॥ २।२२।४
स० ३ । उ० ६ । धा० १० । ट ॥

इति अष्टमी दशतिः ॥८॥ द्वादशः खण्डः ॥१२॥ इत्यैन्द्रं पर्व काण्डं वा समाप्तम् ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ऐन्द्रकाण्डे ।

गायत्र्यः १९५—२३२ (११८)
तत्र १५५ 'पान्तं' इत्यनुष्टुप् ।
बृहत्यः २३३—३१२ (८०)
त्रिष्टुभः ३१३—३४१ (२९)
तत्र ३२८ 'प्र वो' इति त्रिपाद्विराट् ।
अनुष्टुभः ३४२—३६९ (२८)
जगत्यः ३७०—३८० (११)
तत्र ३७९ 'उभे यदिन्द्रे'ति महापंक्तिः ।
उष्णिहः ३८१—३९८ (१८)
तत्र ३९८ 'पिबे'ति विराट् ।
ककुभः ३९९—४०८ (१०)
पंक्तयः ४०९—४२६ (१८)
तत्र ४२६ 'नतमि'त्युपरिष्टाद्बृहती ।
द्विपदाः ४२७—४५५ (२९)
[तत्र ४२८, ४३२, ४३४; ४३५ अनुष्टुबादयस्तत्रैवोक्ताः]
अत्यष्ट्यः ४५६—४६६ (११)
तत्र ४६६ 'इन्द्रो विश्वस्ये'त्येकपदा ।
३५२

ऐन्द्रकाण्डस्य	मन्त्रसंख्या	३५२
आग्नेयकाण्डस्य	,, ,,	११४
	सर्वयोगः	४६६

अथ पावमानं काण्डम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

(९)

(१-१०) १, ४ अमहीयुराङ्गिरसः, २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, ३ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा, ५ त्रित आप्त्यः, ६ कश्यपः मारीचः, ७ जमदग्निर्भार्गवः, ८ दृढच्युत आगस्त्यः, ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४६७ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ९।६१।१० ६७२
४६८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥ ९।१।१ ६८९
४६९ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥ ९।६५।१० ८०३
४७० यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥ ४ ॥ ९।६१।१९ ८१५
४७१ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥ ९।३३।४ ८६९
४७२ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥ ९।६४।२२ १०७६
४७३ असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥ ९।६२।४ १००८
४७४ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥ ९।२५।१ ९१९

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४७५ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥ ९।१८।१ १०९३

४७६ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥ ९।९।१ ९३५

स्व० ६ । उ० ३ । धा० ४२ । गा ॥

इति नवमी दशतिः ॥९॥ प्रथमः खण्डः ॥१॥

[१०]

(१-१०) १ (कविर्मेधावी) श्यावाश्व आत्रेयः; २ त्रित आप्त्यः; ३, ८ अमहीयुराङ्गिरसः; ४ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ५, ६ कश्यपो मारीचः; ७ निध्रुविः काश्यपः; ९, १० असितः काश्यपो देवलो वा ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४७७ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ९।३२।१ ७६९

४७८ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ २ ॥ ९।३३।१ ७६४

४७९ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ ९।६१।२८

४८० वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥ ९।६५।४ ७८४

४८१ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।
सृजदश्वं रथीरिव ॥ ५ ॥ ९।६४।१०

४८२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥ ९।६४।४ १०३४

४८३ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ ७ ॥ ९।६३।२२ १२१५

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

४८४ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥ ९।६१।१६ ८८९

४८५ परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥ ९।१०।४

४८६ परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ९।१४।१

स्व० ११ । उ० ना । धा० ४९ । हो ॥

इति दशमी दशतिः ॥ द्वितीयः खण्डः ॥
इति पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः, पञ्चमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५ ॥

[१]

अथ षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥६॥

(१-१०) १, ८, ९ अमहीयुरांगिरसः; २ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ३ जमदग्निर्भार्गवः; ४ प्रभूवसुरांगिरसः; ५ मेध्यातिथिः काण्वः; ६, ७ निध्रुविः काश्यपः; १० उचथ्य आंगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४८७ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ९।६१।१३; ७६२, १३३५

४८८ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥ ९।४०।१ ९२४

४८९ आविशन्कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥ ९।६२।१९

४९० असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
कार्ष्मन्वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥ ९।३६।१

४९१ प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥ ९।४१।१ ८९२

४९२ अपघ्नन्पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥ ९।६३।२४

४९३ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥ ९।६३।७ १२१६

४९४ स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥ ८ ॥ ९।६१।२२

४९५ अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥ ९।६१।१ १२१०

४९६ परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ९।५२।१

स्व० ९ । उ० ६ । धा० ३५ । तु ॥

इति प्रथमा दशतिः ॥ १ ॥ तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

[२]

(१-१४) १ मेधातिथिः काण्वः; २, ७ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ उचथ्य आङ्गिरसः; ४ अवत्सारः काश्यपः; ५ निध्रुविः काश्यपः; ६, १० असितः काश्यपो देवलो वा; ८, ९ कश्यपो मारीचः; ११ कविर्भार्गवः; १२ जमदग्निर्भार्गवः; १३ अयास्य आंगिरसः; १४ अमहीयुरांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥ गायत्री ॥

४९७ अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥ ९।२।६ १०४२

४९८ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥ ९।६५।२८

४९९ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥ ९।५१।१ १२२५

५०० तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ ९।५८।१ १०५५

५०१ आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥ ५ ॥ ९।६३।१

५०२ अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥ ९।२३।२

५०३ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥ ९।६५।१९ ९९४

५०४ वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥ ९।६४।१ ७८१

५०५ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥ ९।६४।१३ ८४१

५०६ मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०॥ ९।६।१

५०७ अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।
मन्दान इद्वृषायसे ॥११॥ ९।४७।१

५०८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२॥ ९।६२।१०

५०९ प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥१३॥ ९।४४।१

५१० अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥ ९।६१।२५

स्व० १५ । उ० २ । धा० ५७ । फो ॥

इति द्वितीया दशतिः ॥ २ ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ इति गायत्र्यः ॥

[३]

(१-१२) सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) ॥ पवमानः सोमः ॥ बृहती ॥

५११ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१॥ ९।१०७।४ ६७५

५१२ परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥ ९।१०७।१
५१३ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥ ९।१०७।१० १६८९
५१४ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४॥ ९।१०७।१२ ७६७
५१५ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥ ९।१०७।८ ९९७
५१६ तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥६॥ ९।१०७।१९ ९२२
५१७ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥ ९।१०७।२१ १०७९
५१८ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥ ९।१०७।१४ ८५६
५१९ पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः ॥९॥ ९।१०७।६
५२० इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०॥ ९।१०७।१७
५२१ पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्म देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११॥ ९।१०७।२३
५२२ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२॥ ९।१०७।२५

स्व० १९ । उ० ३ । धा० ९१ । द ॥

इति तृतीया दशतिः ॥३॥ पञ्चमः खण्डः ॥५॥ इति बृहत्यः ॥

[४]

(१-१०) १, ९ उशना काव्यः; २ वृषगणो वासिष्ठः; ३, ७ पराशरः शाक्त्यः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५, १० प्रतर्दनो दैवोदासिः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

५२३ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥ ९।८७।१ ६७७
५२४ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२॥ ९।९७।७ ११९६
५२५ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३॥
९।९७।३४ ८५९
५२६ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४॥ ९।९७।१ १३९९
५२७ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥५॥ ९।९६।५ ९४३
५२८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥६॥ ९।९०।२ १४०८
५२९ अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७॥ ९।९७।४०,१२५३
५३० कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥८॥ ९।९५।१
५३१ एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥९॥ ९।८७।४
५३२ पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥१०॥ ९।९६।१३

स्व० १८ । उ० ३ । धा० ८७ । डे ॥

इति चतुर्थी दशतिः ॥४॥ षष्ठः खण्डः ॥६॥

[५]

(१-१२) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, १० पराशरः शाक्त्यः; ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः; ४ वासिष्ठो मैत्रावरुणिः; ५ कर्णश्रुद्वासिष्ठः; ६ नोधा गौतमः; ७ कण्वो घौरः; ८ मन्युर्वासिष्ठः; ९ कुत्स आङ्गिरसः; ११ कश्यपो मारीचः; १२ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ पवमानः सोमः ॥ त्रिष्टुप् ॥

५३३ प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥ ९।९६।१
५३४ प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥ ९।९७।३१
५३५ प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥ ९।९७।४
५३६ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥४॥ ९।९०।१
५३७ तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके ।
आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५॥ ९।९७।२२
५३८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥ ९।९३।१ १४१८
५३९ अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७ ॥ ९।९४।१
५४० इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥ ९।९७।१० १०१२
५४१ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥ ९।९७।५२ ११०४
५४२ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०॥ ९।९७।४१ १२५५

५४३ असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११॥ ९।९१।१
५४४ अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥ ९।९५।३

स्व० १९ । उ० ३ । धा० ८२ । द ॥

इति पञ्चमी दशतिः ॥५॥ सप्तमः खण्डः ॥७॥ इति त्रिष्टुभः ॥ इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥६॥

[६]

(१-९) १ अन्धीगुः श्यावाश्विः; २ नहुषो मानवः; ३ ययातिर्नाहुषः; ४ मनुः सांवरणः; ५, ८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; ६, ७ रेभसूनू काश्यपौ; ९ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ पवमानः सोमः ॥ अनुष्टुप्, ७ बृहती ॥

अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥६॥

५४५ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥ ९।१०१।१ ६९७
५४६ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥ ९।१०१।७ ८१८
५४७ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ३ ॥ ९।१०१।४ ८७२
५४८ सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥ ९।१०१।१० ११०१
५४९ अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ५ ॥ ९।९८।१ १२३८
५५० अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ६ ॥ ९।१००।१
५५१ आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥ ७ ॥ ९।९९।१

५५२ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ ८ ॥ ९।९८।७ १३२९

५५३ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥ ९।१०१।१३ ७७४,१३८६

स्व० १० । उ० ५ । धा० ६१ । म ॥

इति षष्ठी दशतिः ॥६॥ अष्टमः खण्डः ॥८॥ इत्यनुष्टुभः (एका बृहती)॥

[७]

(१-१२) १-३,५ कविर्भार्गवः; ४, ६ सिकता निवावरी; ७ रेणुर्वैश्वामित्रः; ८ वेनो भार्गवः;
९ वसुर्भारद्वाजः; १० वत्सप्रिर्भालन्दः; ११ गृत्समदः शौनकः; १२ पवित्र आङ्गिरसः ॥
पवमानः सोमः ॥ जगती ॥

५५४ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥ ९।७५।१ ७००

५५५ अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः॥२॥९।७९।१

५५६ एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः॥३॥९।७७।१

५५७ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥४॥९।८६।१६; ११५२

५५८ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा॥५॥९।७६।१ १२२८

५५९ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः॥६॥
९।८६।१९ ८२१

५६० त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥७॥ ९।७०।१ १४२३

५६१ इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः॥८॥ ९।८५।१

५६२ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥९॥ ९।८२।१

५६३ प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०॥ ९।६८।१

५६४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुऽच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥११॥
९।८६।४३ १६१४

५६५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१२॥ ९।८३।१ ८७५

स्व० १५ । उ० ११ । धा० १३७ । पे ॥

इति सप्तमी दशतिः ॥७॥ नवमः खण्डः ॥९॥ इति जगत्यः ॥

[८]

(१-१२) १,७, ११ अग्निश्चाक्षुषः; २ चक्षुर्मानवः; ३, ४, ९, १० पर्वतनारदौ काण्वौ (३, १०
शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यप्यौ वा); ५ त्रित आप्त्यः; ६ मनुराप्सवः; ८,१२ द्वित आप्त्यः; ॥
पवमानः सोमः ॥ उष्णिक् ॥

५६६ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥ ९।१०६।१ ६९४

५६७ प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥ ९।१०६।४

५६८ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥ ९।१०४।१ ११५७

५६९ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥ ९।१०५।१ १०९८

५७० प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥ ९।१०२।१ १०१३

५७१ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥ ९।१०६।७ १३२६

५७२ सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ ९।१०६।१० ९३०

५७३ प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥ ९।१०३।१

५७४ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥ ९।१०५।४ १६११

५७५ अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥ ९।१०४।४

५७६ पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥ ९।१०६।१३ ७७३

५७७ परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥ १२ ॥ ९।१०३।३

स्व० ८ । उ० ३ । धा० ४६ । ट ॥

इत्यष्टमी दशतिः ॥८॥ दशमः खण्डः ॥१०॥

[९]

(१-८) १ गौरिवीतिः शाक्त्यः; २ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः; ३, ८ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ४ कृतयशा आंगिरसः;
५ ऋणंचयो राजर्षिः; ६ शक्तिर्वासिष्ठः; ७ ऊरुरांगिरसः ॥ पवमानः सोमः ॥
ककुप्, ५ यवमध्या गायत्री ॥

५७८ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥ ९।१०८।१ ६९२

५७९ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥ ९।१०८।९ १०११

५८० आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ३ ॥ ९।१०८।७ १३९४

५८१ एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥ ९।१०८।११

५८२ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥ ९।१०८।१३ १०९६

५८३ त्वं ह्या३ङ्ग दैव्यं पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥ ९।१०८।३ ९३८

५८४ एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥ ९।१०८।५

५८५ य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ।
ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ८ ॥ ९।१०८।६

स्व० ७ । उ० १ । धा० ४३ । त्रि ॥

इति नवमी दशतिः ॥ ९ ॥ एकादशः खण्डः ॥११॥ इत्युष्णिक्ककुभः ॥
इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः षष्ठप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ६ ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
इति छन्दोगप्रकृतिश्छन्दः समाप्ता ॥ इति सौम्यं पावमानं काण्डं पर्व वा समाप्तम् ॥

॥ इति पूर्वार्चिकः (छन्द आर्चिकः) समाप्तः ॥

पावमानकाण्डस्य मन्त्रसंख्या ११९

तत्र गायत्र्यः	४६७—५१०	(४४)
बृहत्यः	५११—५२२	(१२)
त्रिष्टुभः	५२३—५४४	(२२)
अनुष्टुभः	५४५—५५३	(९)
[तत्र 'आहर्यत' इति ५५१ बृहती]		
जगत्यः	५५४—५६५	(१२)
उष्णिक्ककुभः	५६६—५८५	(२०)
		११९

ऐन्द्रकाण्डस्य मन्त्रसंख्या	३५२
आग्नेयकाण्डस्य ,, ,,	११४
सर्वयोगः	५८५

अथ आरण्यं काण्डम् ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[१]

(१-९) १ शंयुर्बार्हस्पत्यः (भरद्वाजः); २ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३, ६ वामदेवो गौतमः; ४ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो देवरातो वैश्वामित्रो वा; ५ कुत्स आंगिरसः (गृत्समदः); ७, ८ अमहीयुरांगिरसः; ९आत्मा ॥ इन्द्रः; ४ वरुणः; ५, ७, ८ पवमानः सोमः; ६ विश्वे देवाः; ९ अन्नम् ॥
१ बृहती; २, ४, ५, ९ त्रिष्टुप्; ३, ७-८ गायत्री; ६ एकपाज्जगती ॥

५८६ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥ १ ॥ ६।४६।५

५८७ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२॥ ७।२७।३

५८८ यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

५८९ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ १।२४।१५

५९० त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ ९।९७।५८

५९१ इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

५९२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥ ९।६१।१२ ६७३

५९३ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥ ९।६१।११ ६७४

५९४ अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ॥ ९ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

इति प्रथमा दशतिः ॥ प्रथमः खण्डः ॥१॥

९

[२]

(१-७) १ धृतकक्ष आङ्गिरसः; २ पवित्र आङ्गिरसः; ३, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५ प्रयो वासिष्ठः; ६ गृत्समदः शौनकः; ७ नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ ॥ इन्द्रः; २ पवमानः सोमः; ५ विश्वे देवाः; ६ वायुः ॥ गायत्री, २ जगती, ५ त्रिष्टुप्, ७ अनुष्टुप् ॥

५९५ त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥ ८।९३।१३

५९६ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥२॥ ९।८३।३ ८७७

५९७ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ३ ॥ १।७।२ ७९७

५९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥ १।७।४ ७९८

५९९ प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥५॥ १०।१८१।१

६०० नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥ २।४१।२

६०१ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥ ८।८९।५ १४२९

इति द्वितीया दशतिः ॥ द्वितीय खण्डः ॥ २ ॥

[३]

(१-१३) १, ५, ७, १० वामदेवो गौतमः; २, ३, गोतमो राहूगणः; ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ६ गृत्समदः शौनकः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ ऋजिश्वा भारद्वाजः; ११ हिरण्यस्तूप आंगिरसः; १२, १३ विश्वामित्रो गाथिनः (१२ ब्रह्म) ॥ १ प्रजापतिः; २, ३ सोमः; ४, ५, ८, १३ अग्निः; ६ अपांनपात्; ७ रात्रिः; ९ विश्वे देवाः; १० लिंगोक्ता; ११ इन्द्रः; १२ आत्मा अग्निर्वा ॥ त्रिष्टुप्; १, ७ अनुष्टुप्; ४ गायत्री; ८, ९ जगती; १० महापङ्क्तिः ॥

६०२ मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६०३ सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥२॥ १।९१।१८

६०४ त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥ १।९१।२२

६०५ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । ॥ ४ ॥ १।१।१
होतारं रत्नधातमम्

६०६ ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥ ५ ॥ ४।१।१६

६०७ समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ॥ ६ ॥ २।३५।३

६०८ आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ ७ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६०९ प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जातवेदसे ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥ ६।८।१

६१० विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥ ६।५२।१४

६११ यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्राबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
यशसाऽस्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् । ॥१०॥ (न ऋग्वेदीयः)

६१२ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥११॥ १।३२।१

६१३ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥१२॥ ३।२६।७

६१४ पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥ ३।५।५

इति तृतीया दशतिः ॥ तृतीयः खण्डः ॥३॥

[४]

(१-१२) वामदेवो गौतमः; ३-७ नारायणः ॥ १-२ अग्निः; ३-७ पुरुषः; ८ द्यावापृथिवी; ९-११ इन्द्रः; १२ गावः ॥ अनुष्टुप्; १-२ पंक्तिः; ८, ११, १२ त्रिष्टुप् ॥

६१५ भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि ।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६१६ वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६१७ सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ३ ॥ १०।९०।१

६१८ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥ ४ ॥ १०।९०।४

६१९ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ५ ॥ १०।९०।२

६२० तावानस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥ १०।९०।३

६२१ ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥ १०।९०।५

६२२ मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥ ८ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६२३ हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥ ९ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

६२४ यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा संसृजामसि ॥१०॥ (न ऋग्वेदीयः)

६२५ सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः॥११॥ (न ऋग्वेदीयः)

६२६ सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥ (न ऋग्वेदीयः)

इति चतुर्थी दशतिः ॥ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

[५]

(१-१४) १ शतं वैखानसाः; २ विभ्राट् सौर्यः; ३ कुत्स आङ्गिरसः; ४-६ सार्पराज्ञी;७-१४ प्रस्कण्वः काण्वः ॥ सूर्यः; १ अग्निः पवमानः; ४-६ आत्मा वा ॥ गायत्री; २ जगती; ३ त्रिष्टुप् ॥

६२७ अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥ ९।६६।१९;१५१८,१४६४

६२८ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति॥२॥१०।१७०।१;१४५३

६२९ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३॥ १।११५।१

६३० आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥ १०।१८९।१ १३७६

६३१ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥ १०।१८९।२ १३७७

६३२ त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥ १०।१८९।३ १३७८

६३३ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥ १।५०।२

६३४ अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥ १।५०।३

६३५ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ९ ॥ १।५०।४

६३६ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०॥ १।५०।५

६३७ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥११॥ १।५०।६

६३८ उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२॥ १।५०।७

६३९ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३॥ १।५०।९

६४० सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण । ॥१४॥ १।५०।८

इति पञ्चमी दशतिः॥ पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ इति सामवेद-संहितायामारण्यं काण्डं पर्व वा समाप्तम् ॥

अथ महानाम्न्यार्चिकः ।

(१-१०) प्रजापतिः ॥ इन्द्रस्त्रैलोक्यात्मा ॥ त्रिकं = [१ प्रथमं द्विपदा+ (२) ततस्त्रयः शाक्वराः पादाः+ (३) तत उपसर्गौ+ (४) उभयं (शाक्वरोपसर्गौ)+ (५) ततः शाक्वरास्त्रयः पादाः+(६) उपसर्गः ।]

६४१ (१) विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
(२) शिक्षा शचीनां पते । पूर्वीणां पुरूवसो ॥ ॥ १ ॥

६४२ आभिष्ट्वमभिष्टिभिः । (३) स्वाऽ३र्णांशुः ।
प्रचेतन प्रचेतये-(४)- न्द्र द्युम्नाय न इषे । ॥ २ ॥

६४३ एवा हि शक्रो । (५) राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे । मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे ।
(६) आ याहि पिब मत्स्व ॥ ३ ॥

६४४ (१) विद्मा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
(२) मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे । यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥

६४५ यो मंहिष्ठो मघोनाम् । (३) अंशुर्न शोचिः ।
चिकित्वो अभि नो नय । (४) इन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥

६४६ ईशे हि शक्रस् । (५) तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः । (६) क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥ ६ ॥

६४७ (१) इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
(२) स नः स्वर्षदति द्विषः । स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥

६४८ पूर्वस्य यत्ते अद्रिवो-(३)- ऽंशुर्मदाय ।
सुम्न आ धेहि नो वसो । (४) पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।
वशी हि शक्रो । (५) नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥ ८ ॥

६४९ प्रभो जनस्य वृत्रहन् त्समर्येषु ब्रवावहै ।
(६) शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

६५० एवाह्योऽ३ऽ३ऽ३ वे । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।
एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॥१०॥

इति पञ्च पुरीषपदानि ॥

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥

पूर्वार्चिकस्य मन्त्रसंख्या

१ आग्नेयस्य काण्डस्य	(१—११४)	११४
२ ऐन्द्रस्य ,,	(११५—४६६)	३५२
३ पावमानस्य ,,	(४६७—५८५)	११९
४ आरण्यकस्य ,,	(५८६—६४०)	५५
५ महानाम्न्यार्चिकस्य	(६४१—६५०)	१०
सर्वयोगः		६५०

सामवेदसंहिता।

(उत्तरसंहिता) उत्तरार्चिकः।

अथ प्रथमोऽध्यायः।

अथ प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥१॥

[१]

(१-२३) १ असितः काश्यपो देवलो वा; २ कश्यपो मारीचः ३ शतं वैखानसः, ४, २१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ५,७ विश्वामित्रो गाथिनः; ५ जमदग्निर्वा; ६ इरिम्बिठिः काण्वः;८ अमहीयुरांगिरसः; ९ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १० उशना काव्यः; ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, १२ वामदेवो गौतमः, १३ नोधा गौतमः, १४ कलिः प्रागाथः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ गौरवीतिः शाक्त्यः, १७ अग्निश्चाक्षुषः; १८ अन्धीगुः श्यावाश्विः; १९ कविर्भार्गवः;२० शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः)२२ सोभरिः काण्वः;२३ नृमेध आङ्गिरसः॥१-३, ८-१०, १५-१९ पवमानः सोमः; ४,२०,२१ अग्निः; ५ मित्रावरुणौ; ७ इन्द्राग्नी; ६, ११-१४, २२-२३ इन्द्रः॥ १-८, १२ (१-२),१५, १८ (२-३), २१ गायत्री; ९, ११,१३, १४, २० प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतो बृहती), १० त्रिष्टुप्, १२ (३) पादनिचृत्, १६,२२ काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतो बृहती) १७ उष्णिक्; १८ (१) अनुष्टुप्, १९ जगती, २३ (१) ककुप्, (२) उष्णिक्, (३) पुर उष्णिक् ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

६५१ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥ ९।११।१ ७६३

६५२ अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥ ९।११।२

६५३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥ ॥१(ती)॥ ९।११।३

६५४ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥ ९।६४।२८

६५५ हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥ ९।६४।२९

१०

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

६५६ ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥ ॥२ (यि)॥ ९।६४।३०

६५७ पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥ ९।६६।१०

६५८ अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये।
अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥ ९।६६।११

६५९ अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥ ॥३ (कौ)॥ ९।६६।१२

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

६६० अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥ ६।१६।१० १

६६१ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥ ६।१६।११

६६२ स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ ६।१६।१२

६६३ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १ ॥ ३।६२।१६ २२०

६६४ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः।
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ २ ॥ ३।६२।१७

६६५ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्।
पातं सोममृतावृधा ॥ ३ ॥ ॥ ५ (यि)॥ ३।६२।१८

६६६ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥ ८।१७।१ १९१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

६६७ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥ ८।१७।२

६६८ ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ ॥६(फौ)॥ ८।१७।३

६६९ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥ ३।१२।१

६७० इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।
अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥ ३।१२।२

६७१ इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥ ॥७(ता)॥ ३।१२।३

॥इति द्वितीयः खण्डः॥२॥

६७२ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥ ९।६१।१० ४६७

६७३ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ २ ॥ ९।६१।१२ ५९२

६७४ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥ ॥८(ठी)॥ ९।६१।११ ५९३

६७५ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥ १ ॥ ९।१०७।४ ५११

६७६ दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥९(लु)॥ ९।१०७।५

६७७ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१॥ ९।८७।१ ५२३

(ऋग्वेदे)(सामवेदे)

६७८ स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥२॥ ९।८७।२

६७९ ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम्॥३॥१०(हु)॥ ९।८७।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

६८० अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥ ७।३२।२२ २३३

६८१ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥२॥११(यी)॥ ७।३२।२३

६८२ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ४।३१।१ १६९

६८३ कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ४।३१।२

६८४ अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ ॥१२(टा)॥ ४।३१।३

६८५ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥ ८।८८।१ २३६

६८६ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे॥२॥१३(ही)॥ ८।८८।२

६८७ तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥ ८।६६।१ २३७

६८८ न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्॥२॥१४(जु)॥ ८।६६।२

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

६८९ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥ ९।१।१ ४६८
६९० रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥ ९।१।२
६९१ वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥ ॥१५(पौ)॥९।१।३
६९२ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥ ॥९।१०८।१ ५७८
६९३ यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥ ॥१६(प)॥९।१०८।२
६९४ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥ ९।१०६।१ ५६६
६९५ अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥ ९।१०६।२
६९६ अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत्समप्सुजित् ॥ ३ ॥ ॥१७(कि)॥ ९।१०६।३
६९७ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥ ९।१०१।१ ५४५
६९८ यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ॥ २ ॥ ९।१०१।२
६९९ तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥ ॥१८(यि)॥ ९।१०१।३
७०० अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥९।७५।१ ५५४

७०१ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥२॥९।७५।२
७०२ अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये ।
अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥३॥१९(दि)॥ ९।७५।३

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

७०३ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥ ६।४८।१ ३५
७०४ ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥ ॥२०(यु)॥६।४८।२
७०५ एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥ ६।१६।१६ ७
७०६ यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥ ६।१६।१७
७०७ न हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते ।
अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥ ॥२१(यी)॥ ६।१६।१८
७०८ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १ ॥ ८।२१।१ ४०८
७०९ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥२॥२२(च)॥ ८।२१।२
७१० अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ १ ॥ ८।९८।७ ४०६
७११ वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥ ८।९८।८

७१२ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥३॥ ॥२३(यि)॥ ८।९८।९

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

इति प्रथमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥१॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

[२]

अथ प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥१॥

(१-२२) १,४ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः, २,८, १३-१५ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ३ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः; ५ इरिम्बिठिः काण्वः; ६ कुसीदी काण्वः; ७ त्रिशोकः काण्व ९ विश्वामित्रो गाथिनः; १० मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ११ शुनःशेप आजीगर्तिः; १२ नारदः काण्वः; १६ अवत्सारः काश्यपः, १७ (१) शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; १७ (२–३) मेध्यातिथिः काण्वः; १८ (१, ३) असितः काश्यपो देवलो वा; १८ (२) अमहीयुराङ्गिरसः; १९ त्रित आप्त्यः; २० सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); २१ श्यावाश्व आत्रेयः; २२ (१-२) अग्निश्चाक्षुषः; २२ (३) प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ॥ १—१२ इन्द्रः; १३ अग्निः; १४ उषाः; १५ अश्विनौ; १६-२२ पवमानः सोमः ॥ १(२-३)—११; १६-१९, २१; गायत्री; १२, २२ (१-२) उष्णिक्; १३-१५,२० प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १ (१), २२ (३) अनुष्टुप् ॥

७१३ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥ ८।९२।१ १५५
७१४ पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां३ सनश्रुतम् ।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥ ८।९२।२
७१५ इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः ।
महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥ ॥१(वा)॥ ८।९२।३
७१६ प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥ ७।३१।१ १५६
७१७ शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥ ७।३१।२

७१८ त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥ ॥२(गौ)॥ ७।३१।३
७१९ वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥ ८।२।१६ १५७
७२० न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥ ८।२।१७
७२१ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥ ॥३(पा)॥ ८।२।१८
७२२ इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥ ८।९२।१९ १५८
७२३ यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥ ८।९२।२०
७२४ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥ ॥४(ला)॥ ८।९२।२१

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

७२५ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥ ८।१७।११ १५९
७२६ शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥ ८।१७।१२
७२७ यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिं दध्र आ मनः ॥ ३ ॥ ॥५(द्रि)॥ ८।१७।१३
७२८ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥ ८।८१।१ १६७

(ऋग्वेद) (सामवेद)

७२९ विभ्रा हि त्वा तुविकूर्मि तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥ ८।८१।२

७३० न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥ ॥ ६ (के) ॥ ८।८१।३

७३१ अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥ ८।४५।२२ १६१

७३२ मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥ ८।४५।२३

७३३ इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥ ॥ ७ (या) ॥ ८।४५।२४

७३४ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥ ८।२।१ १२४

७३५ नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥ ८।२।२

७३६ तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥ ॥ ८(धौ)॥ ८।२।३

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

७३७ इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥ ३।५१।१० १६५

७३८ यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥ ३।५१।११

७३९ प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥ ॥ ९ (पी)॥ ३।५१।१२
११

(ऋग्वेद) (सामवेद)

७४० आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥ १ ॥ १।५।१ १६४

७४१ पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥ १।५।२

७४२ स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या ।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥ ॥ १० (टी) ॥ १।५।३

७४३ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥ १।३०।७ १६३

७४४ अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥ १।३०।९

७४५ आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥ ॥ ११ (ला) ॥ १।३०।८

७४६ इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥ ८।१३।१ ३८१

७४७ स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥ ८।१३।२

७४८ तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥ ॥ १२ (वा) ॥ ८।१३।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

७४९ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥ ७।१६।१ ४५

७५० स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥ ॥१३(तु)॥ ७।१६।२

(ऋग्वेद) (सामवेद)

७५१ प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥ ७।८१।१ ३०३

७५२ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥ ॥१४ (वा)॥ ७।८१।२

७५३ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥ ७।७४।१ ३०४

७५४ युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥ ॥१५(चा)॥ ७।७४।२

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

७५५ अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥ ९।५४।१

७५६ अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥ ९।५४।२

७५७ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ ॥१६(ते)॥ ९।५४।३

७५८ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥ ९।३।९

७५९ एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥ ९।४२।२

७६० दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥ ४ ॥ ॥ १७(हा)॥ ९।४२।४

७६१ उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे ।
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥ ९।१९।६

(ऋग्वेद) (सामवेद)

७६२ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥ ९।६१।१३ ४८७; १३३५

७६३ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥ ॥१८(वौ)॥ ९।११।१ ६५१

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

७६४ प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥ ९।३३।१ ४७८

७६५ अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥ ९।३३।२

७६६ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥ ॥१९(वि)॥ ९।३३।३

७६७ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१॥ ९।१०७।१२ ५१४

७६८ आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥२०(रू)॥ ९।१०७।१३

७६९ प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥ ९।३२।१ ४७७

७७० आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥ ९।३२।३

७७१ आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥ ॥२१(ली)॥ ९।३२।२

७७२ अया पवस्व देवयु रेभन्पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।
मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥ ९।१०६।१४

७७३ पवने हर्येनो हरिरति हरांसि रंह्या ।　　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥　　९।१०६।१३　　५७६

७७४ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ ॥२२(लि)॥　　९।१०१।१३; ५५३; १३८६

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[१]

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

(१-१९) १ जमदग्निर्भार्गवः; २, ५, १५ अमहीयुराङ्गिरसः; ३ कश्यपो मारीचः; ४, १० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६-७ मेधातिथिः काण्वः; ८ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ उपमन्युर्वासिष्ठः; १२ शंयुर्बार्हस्पत्यः; १३ वालखिल्याः, प्रस्कण्वः काण्वः; १४ नृमेध आङ्गिरसः; १६ नहुषो मानवः; १७ (१-२) सिकता निवावरी; १७ (३) पृश्नयोऽजाः; १८ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; १९ जेता माधुच्छन्दसः ॥ १-५, १०-११, १५-१७ पवमानः सोमः; ६ अग्निः; ७ मित्रावरुणौ; ८, १२-१४, १८-१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १-१०, १५, १८ गायत्री; ११ त्रिष्टुप्; १२-१४ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥　　९।६२।२५

७७६ त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥　　९।६२।२६

७७७ तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥　　॥ १ (यी)॥　　९।६२।२७

७७८ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।　　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥　　९।६१।२८

७७९ यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥　　९।६१।२९

७८० या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥　　॥२ (हृ)॥　　९।६१।३०

७८१ वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥　　९।६४।१　　५०४

७८२ वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥　　९।६४।२

७८३ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥　　॥ ३(लु)॥　　९।६४।३

७८४ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥　　९।६५।४　　४८०

७८५ यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥　　९।६५।६

७८६ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥　　॥४ (यौ)॥　　९।६५।५

७८७ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥　　९।६१।४

७८८ ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ ४ ॥　　९।६१।५

७८९ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।　　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ५ ॥　　॥ ५(ला)॥　　९।६१।६

इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

७९० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥　　१।१२।१　　३

७९१ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥　　१।१२।२

७९२ अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥　　॥ ६(यौ)॥　　१।१२।३

७९३ मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥　　१।२३।४

७९४ ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥　　१।२३।५

७९५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥　　॥ ७(वा)॥　　१।२३।६

७९६ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥　　१।७।१　　१९८

७९७ इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥　　१।७।२　　५९७

७९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥　　१।७।४　　५९८

७९९ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥　　॥ ८(वा)॥　　१।७।३

८०० इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।　　(ऋग्वेदे)　(सामवेदे)
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥　　७।९४।४

८०१ ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥　　७।९४।५

८०२ ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥　　॥ ९(हु)॥　　७।९४।६

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

८०३ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥　　९।६५।१०　　४६९

८०४ तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् ।
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥　　९।६५।११

८०५ अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥　　॥१०(ट)॥　　९।६५।१२

८०६ वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥　　९।९७।१३

८०७ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥　　९।९७।१४

८०८ एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥३॥ ॥११(रि)॥　　९।९७।१५

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥　　६।४६।१　　२३४

(ऋग्वेद) (सामवेद)

८१० स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥ ॥१२(फु)॥ ६।४६।२
(धा० १० । उ० २ । स्व० ५)

८११ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥ ८।४९।१ २३५

८१२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥२॥१३(हि)॥ ८।४९।२
(धा० १६ । उ० ना० । स्व० ३)

८१३ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ८।९९।१ ३०२

८१४ मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः॥२॥ ॥१४(ल)॥ ८।९९।२
(धा० १९ । उ० ना० । स्व० १)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

८१५ यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।
देवावीरघशंसहा ॥ १ ॥ ९।६१।१९ ४७०

८१६ जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
गोषातिरश्वसा असि॥ २ ॥ ९।६१।२०

८१७ सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः।
सीदं छ्येनो न योनिमा ॥३॥ ॥१५(चौ)॥ ९।६१।२१
(धा० १२ । उ० १ । स्व० नास्ति.)

८१८ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥ ९।१०१।७ ५४६

८१९ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥ ९।१०१।८

१२

(ऋग्वेद) (सामवेद)

८२० य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥३॥ ॥१६(थु)॥ ९।१०१।९
(धा० १९ । उ० २ । स्व० ५)

८२१ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः ॥१॥ ९।८६।१९ ५५९

८२२ मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत्।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥२॥ ९।८६।२०

८२३ अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥३॥१७गी॥
(धा० ३६ । उ० ३ । स्व० ४ ॥)

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥ ९।८६।२१

८२४ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥१॥ ८.९२.२८ २३२

८२५ एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।
अधा चिदिन्द्र नः सचा॥ २ ॥ ८।९२।२९

८२६ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० ३) ॥१८(ति)॥ ८।९२।३०

८२७ इन्द्रं विश्वा अवीवृधंत्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥ १ ॥ १।११।१ ३४३

८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम्॥ २ ॥ १।११।२

८२९ पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूतयः।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्॥३॥ ॥१९(री)॥ १।११।३
(धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ४)

इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ ॥ इति द्वितियप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

[२]

अथ द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

(१-१९) १ जमदग्निर्भार्गवः; २ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ कविर्भार्गवः; ४ कश्यपो मारीचः; ५, मेधातिथिः काण्वः; ६-७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १० पराशरः शाक्त्यः; ११ पुरुहन्मा आङ्गिरसः, १२ मेध्यातिथिः काण्वः १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ त्रित आप्त्यः, १५ ययातिर्नाहुषः, १६ पवित्र आंगिरसः; १७ सोभरिः काण्वः; १८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १९ तिरश्चीरांगिरसौ ॥ १-४, ९, १०, १४-१६ पवमानः सोमः; ५, १७ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ, ७ मरुतः, ७ (१,३) इन्द्रश्च; ८ इन्द्राग्नी; ११-१३,१८-१९ इन्द्रः ॥ १-८, १४ गायत्री; ९ (३) द्विपदा विराट्; १० त्रिष्टुप्; ९ (१-२) ११, १३ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १२ बृहती; १५, १९ अनुष्टुप्, १६ जगती, १७ प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)। १८ उष्णिक् ॥

(ऋग्वेद) (सामवेद)

८३० एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥ ९।६२।१

८३१ विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः।
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥ ९।६२।२

८३२ कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्।
इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥ (धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥१ (या)॥ ९।६२।३

८३३ राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥ ९।६५।१६

८३४ आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥ ९।६५।१८

८३५ आ न इन्द्रो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्।
वहा भगत्तिमूतये ॥३॥ (धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥२ (ला)॥ ९।६५।१७

(ऋग्वेद) (सामवेद)

८३६ तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः।
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥ ९।४८।१

८३७ संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥ ९।४८।२

८३८ अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः।
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥ ९।४८।३

८३९ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥ ९।४८।५

८४० विश्वस्मा इ स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।
गोपामृतस्य विर्भरत्॥५॥ (धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ६) ॥३(हृ)॥ ९।४८।४

८४१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥ ९।६४।१३ ५०५

८४२ पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः।
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥ ९।६४।१४

८४३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्।
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥३॥ (धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥४(या)॥ ९।६४।१५

इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

८४४ अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥ १ ॥ १।१२।६

८४५ यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥ १।१२।८

८४६ यो अग्निं देववीतये हविष्मां आविवासति।
तस्मै पावक मृडय ॥३॥ (धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३)॥५ (रि)॥ १।१२।९

७७३ पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या ।	(ऋग्वेदे)	(सामवेदे)
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥	९।१०६।१३	५७६
७७४ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।		
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ३ ॥ ॥२२(लि)॥	९।१०१।१३; ५५३; १३८६	

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इति प्रथमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः प्रथमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ १ ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

[१]

अथ द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

(१-१९) १ अमहीयुरांगिरसः २, ५, १५ अमहीयुराङ्गिरसः; ३ कश्यपो मारीचः; ४, १० भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६-७ मेधातिथिः काण्वः; ८ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ उपमन्युर्वासिष्ठः; १२ शंयुर्बार्हस्पत्यः; १३ वालखिल्याः, प्रस्कण्वः काण्वः; १४ नृमेध आङ्गिरसः; १६ नहुषो मानवः; १७ (१-२) सिकता निवावरी; १७ (३) पृश्नयोऽजाः; १८ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; १९ जेता माधुच्छन्दसः ॥ १-५, १०-११, १५-१७ पवमानः सोमः; ६ अग्निः; ७ मित्रावरुणौ; ८, १२-१४, १८-१९ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी ॥ १-१०, १५, १८ गायत्री; ११ त्रिष्टुप्; १२-१४ प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६, १९ अनुष्टुप्; १७ जगती ॥

७७५ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः	
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥	९।६२।२५
७७६ त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।	
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥	९।६२।२६
७७७ तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।	
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥ ॥ १ (यी)॥	९।६२।२७

७७८ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।	(ऋग्वेदे)	(सामवेदे)
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १ ॥	९।६१।२८	
७७९ यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।		
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ २ ॥	९।६१।२९	
७८० या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।		
रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥ ॥२ (हु)॥	९।६१।३०	
७८१ वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।		
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥	९।६४।१	५०४
७८२ वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।		
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥	९।६४।२	
७८३ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः ।		
वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥ ॥ ३(लु)॥	९।६४।३	
७८४ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।		
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥	९।६५।४	४८०
७८५ यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।		
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥	९।६५।६	
७८६ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।		
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥ ॥४ (यौ)॥	९।६५।५	
७८७ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।		
सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥	९।६१।४	
७८८ ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।		
तेभिर्नः सोम मृडय ॥ ४ ॥	९।६१।५	

७८९ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।	(ऋग्वेदे)	(सामवेदे)
ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥ ॥ ५(ला)॥	९।६१।६	

इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

७९० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।		
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥	१।१२।१	३
७९१ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।		
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥	१।१२।२	
७९२ अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।		
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ ॥ ६(यौ)॥	१।१२।३	
७९३ मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।		
या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥	१।२३।४	
७९४ ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।		
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥	१।२३।५	
७९५ वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।		
करतां नः सुराधसः ॥ ३ ॥ ॥ ७(वा)॥	१।२३।६	
७९६ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।		
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥	१।७।१	१९८
७९७ इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।		
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥	१।७।२	५९७
७९८ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।		
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥	१।७।४	५९८
७९९ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।		
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥ ॥ ८(स्वा)॥	१।७।३	

८०० इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।	(ऋग्वेदे)	(सामवेदे)
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥	७।९४।४	
८०१ ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये ।		
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥	७।९४।५	
८०२ ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।		
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥ ॥ ९(हु)॥	७।९४।६	

॥इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

८०३ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।		
विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥	९।६५।१०	४६९
८०४ तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम् ।		
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥	९।६५।११	
८०५ अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।		
युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥ ॥१०(ट)॥	९।६५।१२	
८०६ वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत द्याम् ।		
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥	९।९७।१३	
८०७ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।		
पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥	९।९७।१४	
८०८ एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्वधस्नुम् ।		
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥ ॥११(रि)॥	९।९७।१५	

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

८०९ त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।		
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥	६।४६।१	२३४

८१० स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥ ॥१२(फु)॥ ८।४६।२
(धा॰ १० । उ॰ २ । स्व॰ ५)

८११ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥ ८।४९।१ २३५

८१२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥२॥१३(हि)॥८।४९।२
(धा॰ १६ । उ॰ ना॰ । स्व॰ ३)

८१३ त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥ ८।९९।१ ३०२

८१४ मत्स्वा सुशिप्रिन्हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः॥२॥ ॥१४(ल)॥ ८।९९।२
(धा॰ १९ । उ॰ ना॰ । स्व॰ १)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

८१५ यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥ १ ॥ ९।६१।१९ ४७०

८१६ जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे ।
गोषातिरश्वसा असि॥ २ ॥ ९।६१।२०

८१७ सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
सीदं च्छ्येनो न योनिमा ॥३॥ ॥१५(र्चा)॥ ९।६१।२१
(धा॰ १२ । उ॰ १ । स्व॰ नास्ति)

८१८ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥ ९।१०१।७ ५५६

८१९ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥ ९।१०१।८
१२

८२० य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् । (ऋग्वेद) (सामवेद)
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥३॥ ॥१६(शु)॥ ९।१०१।२
(धा॰ १९ । उ॰ २ । स्व॰ ५)

८२१ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषिभिः ॥१॥
९।८६।१९ ५५९

८२२ मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥२॥ ९।८६।२०

८२३ अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥३॥१७गी॥
(धा॰ ३६ । उ॰ ३ । स्व॰ ४ ॥)

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥ ९।८६।२१

८२४ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
एवा ते राध्यं मनः ॥१॥ ८।९२।२८ २३२

८२५ एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र नः सचा॥ २ ॥ ८।९२।२९

८२६ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥३॥ (धा॰ १४ । उ॰ १ । स्व॰ ३) ॥१८(ति)॥ ८।९२।३०

८२७ इन्द्रं विश्वा अवीवृधंत्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥ १ ॥ १।११।१ ३४३

८२८ सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम्॥ २ ॥ १।११।२

८२९ पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यंत्यूतयः ।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्॥३॥ ॥१९(री)॥ १।११।३
(धा॰ १८ । उ॰ नास्ति । स्व॰ ४)

इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ ॥ इति द्वितीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

[२]

अथ द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥

(१-१९) १ जमदग्निर्भार्गवः; २ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३ कविर्भार्गवः; ४ कश्यपो मारीचः। ५, मेधातिथिः काण्वः; ६-७ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ९ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १० पराशरः शाक्त्यः; ११ पुरुहन्मा आङ्गिरसः; १२ मेध्यातिथिः काण्वः १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ त्रित आप्त्यः; १५ ययातिर्नाहुषः; १६ पवित्र आंगिरसः; १७ सोभरिः काण्वः; १८ गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ; १९ तिरश्चीरांगिरसौ ॥ १-४, ९, १०, १४-१६ पवमानः सोमः; ५, १७ अग्निः; ६ मित्रावरुणौ; ७ मरुतः, ७ (१,३) इन्द्रश्च; ८ इन्द्राग्नी; ११-१३,१८-१९ इन्द्रः ॥ १-८, १४ गायत्री; ९ (३) द्विपदा विराट्; १० त्रिष्टुप्; ९ (१-२) ११, १३ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १२ बृहती; १५, १९ अनुष्टुप्; १६ जगती, १७ प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १८ उष्णिक् ॥

८३० एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥ ९।६२।१

८३१ विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥ ९।६२।२

८३२ कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इडामस्मभ्यं संयतम् ॥३॥ (धा॰ ७ । उ॰ नास्ति । स्व॰ २) ॥१ (या)॥ ९।६२।३

८३३ राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥ ९।६५।१६

८३४ आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥ ९।६५।१८

८३५ आ न इन्द्रो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ॥३॥ (धा॰ १४ । उ॰ नास्ति । स्व॰ २) ॥२ (ला)॥ ९।६५।१७

८३६ तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
चारुं सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥ ९।४८।१

८३७ संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥ ९।४८।२

८३८ अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः ।
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥ ९।४८।३

८३९ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥ ९।४८।५

८४० विश्वस्मा इ स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपामृतस्य विर्भरत्॥५॥ (धा॰ २६ । उ॰ नास्ति । स्व॰ ६) ॥३(हृ)॥ ९।४८।४

८४१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥ ९।६४।१३ ५०५

८४२ पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥ ९।६४।१४

८४३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥३॥(धा॰ १७ । उ॰ नास्ति । स्व॰ २)॥४(या)॥ ९।६४।१५

इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

८४४ अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥ १ ॥ १।१२।६

८४५ यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥ १।१२।८

८४६ यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
तस्मै पावक मृडय ॥३॥ (धा॰ १३ । उ॰ नास्ति । स्व॰ ३)॥५ (रि)॥ १।१२।९

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

८४७ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ १ ॥ १।२।७

८४८ ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥ १।२।८

८४९ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
दक्षं दधाते अपसम् ॥३॥ (धा० १० । उ० नास्ति । स्व० १) ॥६(च)॥ १।२।९

८५० इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥ १।६।७

८५१ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥ १।६।४

८५२ वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥३॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० ३) ॥७(ति)॥ १।६।५

८५३ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १ ॥ ६।६०।४

८५४ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥ ६।६०।५

८५५ हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती ।
हथो विश्वा अप द्विषः ॥३॥ (धा० १० । उ० १ । स्व० ४) ॥८(पी)॥ ६।६०।६

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

८५६ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१॥ ९।१०७।१४ ५१८

८५७ तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥ ९।१०७।१५

(ऋग्वेदे)(सामवेदे)

८५८ नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥३॥ ९ (चु)॥ ९।१०७।१६
(धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ५)

८५९ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निरृतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥१॥ ९।९७।३४ ५२५

८६० सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥२॥ ९।९७।३५

८६१ एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम्॥३॥१०(पी)॥ ९।९७।३६
(धा० ३० । उ० १ । स्व० ४)

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

८६२ यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१॥ ८।७०।५ २१८

८६३ आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः॥२॥११(ली)॥८।७०।६
(धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ४)

८६४ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥ ८।३३।१ २६१

८६५ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२॥ ८।३३।२

८६६ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३॥ ॥१२(छा)॥ ८।३३।३
(धा० २७ । उ० २ । स्व० २)

८६७ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ १ ॥ ७।३२।२० २३८

८६८ न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवं तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥१३(यि)॥ ७।३२।२१

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥ (धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३)

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

८६९ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् । ॥ १ ॥ ९।३३।४ ४७१

८७० अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीरृतस्य मातरः ।
मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ॥ २ ॥ ९।३३।५

८७१ रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥ (धा० १८ उ० १ । स्व० २) ॥ १४(टा) ॥ ९।३३।६

८७२ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ १ ॥ ९।१०१।४ ५४७

८७३ इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ॥ २ ॥ ९।१०१।५

८७४ सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे । ३ ॥ ॥ १५ (लि)॥ ९।१०१।६
(धा० २९ । उ० नास्ति । स्व० २)

८७५ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १ ॥ ९।८३।१ ५६५

८७६ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहन्ति तेजसा ॥२॥ ९।८३।२

८७७ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥३॥१६(टु)॥
(धा० ३८ । उ० १ । स्व० ५) ९।८३।३ ५९६

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

८७८ प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥ ८।१०३।८ १०७

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

८७९ आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥२॥१७(या)॥ ८।१०३।९
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २)

८८० तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥१॥ ८।१५।४ ३८३

८८१ येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥ ८।१५।५

८८२ तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥ ॥ १८ (हृ) ॥ ८।१५।६
(धा० २१ । उ० नास्ति । स्व० १)

८८३ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ १ ॥ ८।९५।४ ३४६

८८४ यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ २ ॥ ८।९५।५

८८५ तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥ ॥१९(फा)॥ ८।९५।६
(धा० १५ । उ० २ । स्व० २)

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

इति द्वितीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः ॥२॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

[१]

अथ तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥

(१-२२) १ अकृष्टा माषाः; २ अमहीयुराङ्गिरसः; ३ मेध्यातिथिः काण्वः; ४, १२ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ५ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ६ सुतंभर आत्रेयः; ७ गृत्समदः शौनकः; ८, २१ गोतमो राहूगणः; ९, १३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० दृढच्युत आगस्त्यः; ११ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः; ४ अत्रिर्भौमः; ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः) १४ रेभः काश्यपः; १५ पुरुहन्मा आङ्गिरसः; १६ असितः काश्यपो देवलो वा; १७ (१) शक्तिर्वासिष्ठः, १७ (२) ऊरुरांगिरसः; १८ अग्निश्चाक्षुषः; १९ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २० प्रयोगो भार्गवः; २१ पावकोऽग्निर्वार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः पुत्रावन्यतरो वा; २२. ॥ १-५, १०-१२, १६-१९ पवमानः सोमः; ६, २० अग्निः; ७ मित्रावरुणौ; ८, १३-१५, २१ इन्द्रः; ९ इन्द्राग्नी; २२ ॥ १, ६ जगती; २-५, ७-१०, १२, १६, २० गायत्री; ११, १५ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १३ विराट्; १४ (१) अति जगती, १४ (२-३) उपरिष्टाद् बृहती; १७ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १८ उष्णिक्; १९ त्रिष्टुप्; २१ अनुष्टुप् ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

८८६ प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥१॥
९।८६।४

८८७ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥२॥
९।८६।६

८८८ विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥३॥ ॥१(वी)॥
(धा० ३५ । उ० नास्ति । स्व० ४) ९।८६।५

८८९ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥ ९।६१।१६ ४८४

८९० पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥ ९।६१।१८

१३

८९१ पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ३ ॥ ॥२(पा)॥ ९।६१।१७
(धा २० । उ० १ स्व० २)

८९२ प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥ ९।४१।१ ४९१

८९३ सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् ।
साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥ ९।४१।२

८९४ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥ ९।४१।३

८९५ आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥ ९।४१।४

८९६ पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥ ९।४१।५

८९७ परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥ ॥३ (भी)। ९।४१।६
(धा० ३५ । उ० ४ । स्व० ४)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

८९८ आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥ ९।३९।१

८९९ परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।
वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥ ९।३९।२

९०० अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।
सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥ ९।३९।४

९०१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥ ९।३९।३

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९०२ आविवासन्परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥ ९।३९।५

९०३ समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥ ॥ ४ (जी) ॥ ९।३९।६
(धा० ३२ । उ० ३ । स्व० ४)

९०४ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥ ९।६५।१

९०५ पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः ।
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥ ९।६५।२

९०६ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥५ (ह)॥ ९।६५।३

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

९०७ जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१॥ ५।११।१

९०८ त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥२॥ ५।११।६

९०९ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥३॥ ॥६(वे)॥
(धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० ७) ५।११।२

९१० अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ १ ॥ २।४१।४

९११ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥ २।४१।५

९१२ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥ (धा० १५ । उ० १ । स्व० ३) ॥ ७ (पि) ॥ २।४१।६

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९१३ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥ १।८४।१३ १७९

९१४ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥ १।८४।१४

९१५ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥ (धा० १३ । उ० २ । स्व० ४) ॥८ (त्री)॥ १।८४।१५ १४७

९१६ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥ ७।९४।१

९१७ शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥ ७।९४।२

९१८ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधतं निदे ॥३॥ (धा० १२ । उ० १ । स्व० २) ॥९(ना)॥ ७।९४।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

९१९ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥ ९।२५।१ ४७४

९२० सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥ ९।२५।३

९२१ पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० २ । स्व० १) ॥१०(ब)॥ ९।२५।२

९२२ तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥१॥ ९।१०७।१९ ५१६

९२३ तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥ ॥११(ति)॥ ९।१०७।२०
(धा० १४ । उ० १ । स्व० ३)

९२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥ ९।४०।१ ४८८

९२५ आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ९।४०।२

९२६ नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥ ॥ १२ (चा) ॥ ९।४०।३
(धा० १२ । उ० १ । स्व० २)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

९२७ पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥ ७।२२।१ ३९८

९२८ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥ ७।२२।२

९२९ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ ॥१३(चा)॥ ७।२२।३
(धा० १२ । उ० १ । स्व० २)

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥ ८।९७।१० ३७०

९३१ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥ ८।९७।१२

९३२ समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वःपतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥ ॥१४(नी)॥ ८।९७।११
(धा० २२ । उ० १ । स्व० ४)

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥ ८।७०।१ २७३

९३४ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥ १५(चि)॥ ८।७०।२
(धा० १७ । उ० १ । स्व० ३)

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

९३५ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥ ९।९।१ ४७६

९३६ स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥ ९।९।३

९३७ प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥ (धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३) ॥१६(रि)॥ ९।९।२

९३८ त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥ ९।१०८।३ ५८१

९३९ येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥१७(पौ)॥ ९।१०८।४
(धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति)

९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥ ९।१०६।१० ५७२

९४१ धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥ ९।१०६।११

९४२ असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ ॥ १८ (फा) ॥ ९।१०६।१२
(धा० १० । उ० २ । स्व० २)

९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥ ९।९६।५ ५२७

९४४ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥ ९।९६।६

९४५ प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९(क्रू) ॥
(धा० ३० । उ० २ । स्व० ६) ९।९६।७

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

९४६ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ८।१०२।७ २१

९४७ अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥ ८।१०२।८

९४८ अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ ॥ २० (डा) ॥ ८।१०२।९
(धा० ८ । उ० ३ । स्व० २)

९४९ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥ १।८४।४ ३४४

९५० न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥ २ ॥ १।८४।६

९५१ इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ३ ॥ ॥२१(र)॥ १।८४।५
(धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १)

९५२ इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

९५३ इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥२॥ (न ऋग्वेदीयः)

९५४ इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥२२(ङ)॥ (न ऋग्वेदीयः)
(धा० ११ । उ० ५ । स्व० १)

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥
॥ इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥
॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[२]

अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ३ ॥

(१-२३) १ (अकृष्टा माषादयः) त्रयः ऋषयः; २ कश्यपो मारीचः; ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा, ५ अवत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अरुणो वैतहव्यः; ८ उरुचक्रिरात्रेयः; ९ कुरुसुतिः काण्वः; १० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १४,१५,२३ गोतमो राहूगणः; १७ (१) ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १७ (२) कृतयशा आङ्गिरसः; १८ त्रित आप्त्यः, १९ रेभसूनू काश्यपौ; २० मन्युर्वासिष्ठः; २१ वसुश्रुत आत्रेयः; २२ नृमेध आङ्गिरसः ॥ १-६, ११-१३, १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ९, १४-१५, २२-२३ इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ बृहती; १४,१५,२१ पंक्तिः; १७ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतो बृहती); १८, २२ उष्णिक्; १९,२३ अनुष्टुप्; २० त्रिष्टुप् ॥

९५५ गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः । (ऋग्वेदे)
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१॥ ९।८६।३९

९५६ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥ ९।८६।३८

९५७ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥१(र्वा)॥
(धा० ४१ । उ०२ । स्व० ४) ९।८६।३७

९५८ पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥ ९।६४।७

९५९ केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । (ऋग्वेद) (सामवेद)
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥ ९।६४।८
९६० जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ (धा० १५। उ० १। स्व० २) ॥२ (पा)॥ ९।६४।९
९६१ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥ ९।२४।१
९६२ अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥ ९।२४।२
९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥ ९।२४।३
९६४ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ९।२४।५
९६५ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥ ९।२४।४
९६६ पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥ ९।२४।६
९६७ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ (धा० ४१। उ० नास्ति। स्व० ८) ॥३(है)॥ ९।२४।७

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

९६८ प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥ ९।२०।१
९६९ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ९।२०।२

१४

९७० परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती । (ऋग्वेद) (सामवेद)
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥ ९।२०।३
९७१ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ९।२०।४
९७२ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥ ९।२०।५
९७३ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥ ९।२०।६
९७४ क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ॥ ४(को)॥ ९।२०।७
(धा० २१। उ० १। स्व० ९)

९७५ यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥ ९।५५।१
९७६ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥ ९।५५।२
९७७ उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥ ९।५५।३
९७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३)॥५(हि)॥ ९।५५।४

९७९ यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ९।६२।७
९८० सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ९।६२।८

९८१ त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३) ॥६ (हि)॥ ९।६२।९

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

९८२ तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥१॥ १०।९१।५
९८३ वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्योऽयथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥२॥ १०।९१।७
९८४ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम् ।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥७(तु)॥ १०।९१।८
(धा० ३५। उ० ३। स्व० ५)

९८५ पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥ ५।७०।१
९८६ ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥ ५।७०।२
९८७ पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥ ३ ॥ (धा० १२। उ० नास्ति। स्व० १,॥८(ग)॥ ५।७०।३

९८८ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ८।७६।१०
९८९ अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥ ८।७६।११
९९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् ।
इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ४) ॥९ (ही)॥ ८।७६।१२

९९१ इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥

९९२ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । (ऋग्वेद) (सामवेद)
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ २ ॥ ६।६०।८
९९३ ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० २) ॥१०(हा)॥ ६।६०।९

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

९९४ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥ ९।६५।१९ ५०३
९९५ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥ ९।६५।२०
९९६ इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥ (धा० १४। उ० नास्ति। स्व० २) ॥११(ला)॥ ९।६५।२१

९९७ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥ ९।१०७।८ ५१५
९९८ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥ ॥१२(फ)॥ ९।१०७।९
(धा० १५। उ० २। स्व० १)

९९९ यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥ ९।१९।१
१००० वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि ।
हरिः सन्योनिमासदः ॥ २ ॥ ९।१९।३
१००१ युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥ (धा० १५। उ० १। स्व० ५) ॥ १३ (पु) ॥ ९।१९।२

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

९२४ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥ ९।४०।१ ४८८
९२५ आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥ ९।४०।२
९२६ नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥ ॥ १२ (चा) ॥ ९।४०।३
(धा० १२ । उ० १ । स्व० २)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

९२७ पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥ ७।२२।१ ३९८
९२८ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥ ७।२२।२
९२९ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ ॥१३(चा)॥ ७।२२।३
(धा० १२ । उ० १ । स्व० २)

९३० विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥ ८।९७।१० ३५०
९३१ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ २ ॥ ८।९७।१२
९३२ समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वःपतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥ ॥१४(ची)॥ ८।९७।११
(धा० २२ । उ० १ । स्व० ४)

९३३ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥ ८।७०।१ २७३

९३४ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः ॥२॥ १५(चि)॥ ८।७०।२
(धा० १७ । उ० १ । स्व० ३)

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

९३५ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥ ९।९।१ ४७६
९३६ स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥ ९।९।३
९३७ प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥ (धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० ३) ॥१६(रि)॥ ९।९।२
९३८ त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥ ९।१०८।३ ५८३
९३९ येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ॥२॥१७(पौ)॥ ९।१०८।४
(धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति)

९४० सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥ ९।१०६।१० ५७२
९४१ धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥ ९।१०६।११
९४२ असर्जि कलशां अभि मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥ ॥ १८ (फा) ॥ ९।१०६।१२
(धा० १० । उ० २ । स्व० २)
९४३ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥ ९।९६।५ ५२७

९४४ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥ ९।९६।६
९४५ प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान्पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥ १९(फ़) ॥
(धा० ३० । उ० २ । स्व० ६) ९।९६।७

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

९४६ अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥ ८।१०२।७ २१
९४७ अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥ ८।१०२।८
९४८ अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥ ॥ २० (डा) ॥ ८।१०२।९
(धा० ८ । उ० ३ । स्व० २)
९४९ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥ १।८४।४ ३४४
९५० न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥ २ ॥ १।८४।६
९५१ इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ३ ॥ ॥२१(र)॥ १।८४।५
(धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १)
९५२ इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
९५३ इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्युः ॥२॥ (न ऋग्वेदीयः)

९५४ इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥२२(ङ)॥ (न ऋग्वेदीयः)
(धा० ११ । उ० ५ । स्व० १)

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥
॥ इति तृतीयप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ३ ॥
॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

[२]

अथ तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ३ ॥

(१-२३) १ (अकृष्टा माषादयः) त्रयः ऋषयः, २ कश्यपो मारीचः; ३, ४, १३ असितः काश्यपो देवलो वा; ५ अवत्सारः काश्यपः; ६, १६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ अरुणो वैतहव्यः; ८ उरुचक्रिरात्रेयः; ९ कुरुसुतिः काण्वः; १० भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १४,१५,२३ गोतमो राहूगणः; १७ (१) ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १७ (२) कृतयशा आङ्गिरसः; १८ त्रित आप्त्यः; १९ रेभसून् काश्यपौ; २० मन्युर्वासिष्ठः; २१ वसुश्रुत आत्रेयः; २२ नृमेध आङ्गिरसः ॥ १-६, ११-१३, १६-२० पवमानः सोमः; ७, २१ अग्निः; ८ मित्रावरुणौ; ९, १४-१५, २२-२३ इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी ॥ १,७ जगती; २-६, ८-११, १३, १६ गायत्री; १२ बृहती; १४,१५,२१ पंक्तिः; १७ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतो बृहती), १८, २२ उष्णिक्; १९,२३ अनुष्टुप्, २० त्रिष्टुप् ॥

९५५ गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः । (ऋग्वेदे)
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१॥ ९।८६।३९
९५६ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥२॥ ९।८६।३८
९५७ ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥३॥१(र्वा)॥
(धा० ४१ । उ० २ । स्व० ४) ९।८६।३७
९५८ पवमानस्य विश्ववित्प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥ ९।६४।७

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९५९ केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥ ९।६४।८
९६० जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि।
क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥ (धा० १५। उ० १। स्व० २) ॥२ (पा)॥ ९।६४।९
९६१ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः।
श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥ ९।२४।१
९६२ अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः।
पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥ ९।२४।२
९६३ प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः।
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥ ९।२४।३
९६४ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥ ९।२४।५
९६५ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः।
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥ ९।२४।४
९६६ पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥ ९।२४।६
९६७ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान्।
देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥ (धा० ४१। उ० नास्ति। स्व० ८) ॥३(है)॥ ९।२४।७

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

९६८ प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥ ९।२०।१
९६९ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति।
पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥ ९।२०।२

१४

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९७० परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥ ९।२०।३
९७१ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥ ९।२०।४
९७२ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥ ९।२०।५
९७३ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः।
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥ ९।२०।६
९७४ क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि।
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥ ॥ ४(को)॥ ९।२०।७
(धा० २१। उ० १। स्व० ९)

९७५ पवस्व नो अन्धसा पुष्टपुष्टं परि स्रव।
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥ ९।५५।१
९७६ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥ ९।५५।२
९७७ उत नो गोविदश्वविस्पवस्व सोमान्धसा।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥ ९।५५।३
९७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३) ॥५(हि)॥ ९।५५।४

९७९ यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥ ९।६२।७
९८० सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ९।६२।८

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९८१ त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ३ ॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३) ॥६ (हि)॥ ९।६२।९

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

९८२ तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥१॥ १०।९१।५
९८३ वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्योऽयथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥२॥ १०।९१।७
९८४ मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम्।
त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां महो वृणते नान्यं त्वत् ॥३॥७(नु)॥ १०।९१।८
(धा० ३५। उ० ३। स्व० ५)

९८५ पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥ ५।७०।१
९८६ ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च।
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥ ५।७०।२
९८७ पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥ ३ ॥ (धा० १२। उ० नास्ति। स्व० १,॥८(य)॥ ५।७०।३

९८८ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १ ॥ ८।७६।१०
९८९ अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम्।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥ ८।७६।११
९९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्।
इन्द्रात्परितन्वं ममे ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ४) ॥९ (ही)॥ ८।७६।१२

९९१ इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

९९२ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ २ ॥ ६।६०।८
९९३ ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० २) ॥१०(द्रा)॥ ६।६०।९

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

९९४ अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥ ९।६५।१९ ५०२
९९५ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥ ९।६५।२०
९९६ इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥ (धा० १४। उ० नास्ति। स्व० २) ॥११(ला)॥ ९।६५।२१

९९७ सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥१॥ ९।१०७।८ ५१५
९९८ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥ ॥१२(फ)॥ ९।१०७।९
(धा० १५। उ० २। स्व० १)

९९९ यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु।
तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥ ९।१९।१
१००० वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि।
हरिः सन्योनिमासदः ॥ २ ॥ ९।१९।३
१००१ युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥३॥ (धा० १५। उ० १। स्व० ५) ॥ १३ (पु) ॥ ९।१९।२

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥४॥

१००२ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१॥ १।८१।१ ४११
१००३ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥ १।८१।२
१००४ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥३॥१४(खु)॥
(धा० २६। उ० २। स्व० ५) १।८१।३ ४१४

१००५ स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
१।८४।१० ४०९
१००६ ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
१।८४।११
१००७ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥३॥ १५(व)॥
(धा० १५। उ० नास्ति। स्व० १) १।८४।१२

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

१००८ असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥ ९।६२।४ ४७३
१००९ शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम्।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥ ९।६२।५
१०१० आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय।
मधो रसं सधमादे ॥ ३ ॥ (धा० १२। उ० १। स्व० ५) ॥ १६ (चु) ॥ ९।६२।६

१०११ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥ ९।१०८।९ ५७९

१०१२ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ २ ॥ १७ (डा) ॥
(धा० १८। उ० ३। स्व० २) ९।१०८।१०

१०१३ प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥ ९।१०२।१ ५७०
१०१४ उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद्गुहा पदम्।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥ ९।१०२।२
१०१५ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम्।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ॥ १८ (री) ॥ ९।१०२।३
(धा० ८। उ० नास्ति। स्व० ४)

१०१६ पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥ ९।१००।६
१०१७ त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥ २ ॥ ९।१००।७
१०१८ त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ३ ॥ १९ (ता) ॥ ९।१००।९
(धा० २४। उ० १। स्व० २)

१०१९ इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १ ॥ ९।९७।१० ५४०
१०२० अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ २ ॥ ९।९७।११
१०२१ अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥३॥२०(पी)॥
(धा० २० । उ० १ स्व० ४) ९।९७।१२

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

१०२२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥ ५।६।४
१०२३ आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥
[५।६।५]
१०२४ ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥२१(रा)॥
(धा० २८। उ० नास्ति। स्व० २) ५।६।९

१०२५ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥ ८।९८।१ ३८८
१०२६ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥ ८।९८।२
१०२७ विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥३ (धा० १५। उ० नास्ति। स्व० १) २२(व)॥ ८।९८।३

१०२८ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥ १।८४।१ ३४७
१०२९ आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २ ॥ १।८४।३
१०३० इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥३॥ ॥ २३ (पा) ॥ १।८४।२
(धा० १०। उ० १। स्व० २)

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥७॥
॥ इति तृतीयप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ २ ॥
॥ तृतीयः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥३॥
॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

[१]

अथ चतुर्थप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ४ ॥

(१-२४) १ (अकृष्टमाषादयः) ऋषयः; २,११ कश्यपो मारीचः; ३ मेधातिथिः काण्वः; ४ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः; ५ अवत्सारः काश्यपः; ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७, २१ कुत्स आङ्गिरसः; ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ९ त्रिशोकः काण्वः; १० श्यावाश्व आत्रेयः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः; ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः), १३ अमहीयुरांगिरसः; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १६ (१,३,२-पूर्वार्धः) मान्धाता यौवनाश्वः, १६ (२ उत्तरार्धः) गोधा ऋषिका; १७ असितः काश्यपो देवलो वा; १८ (१) ऋणंचयो राजर्षिः, १८ (२) शक्तिर्वासिष्ठः; १९ पर्वतनारदौ काण्वौ; २० मनुः सांवरणः, २२ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गौपायना लौपायना वा; २३ भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः ॥ १-६, ११-१३, १७-२१ पवमानः सोमः; ७, २२ अग्निः, ८ आदित्यः, ९, १४-१६ इन्द्रः; १० इन्द्राग्नी; २३ विश्वे देवाः, २४ ॥ १, ७ जगती; २-६, ८-११, १३-१५, १७ गायत्री; १२ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६ महापंक्तिः; १८ (१) यवमध्या गायत्री, १८ (२) सतो बृहती; १९ उष्णिक्; २० अनुष्टुप्; २१ त्रिष्टुप्; २२ द्विपदा विराट्, २३ द्विपदा त्रिष्टुप्; २४ ॥

१०३१ ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१॥ ९।८६।१०
१०३२ अभिक्रन्दन्कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२॥ ९।८६।११
१०३३ अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि।
अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥१(लु)॥
(धा० २९। उ० नास्ति। स्व० ५) ९।८६।१२
१०३४ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥ ९।६४।४ ४८२
१०३५ शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः।
पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥ ९।६४।५
१०३६ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥ (धा० २०। उ० नास्ति। स्व० ४) ॥ २(बी) ॥ ९।६४।६

१०३७ पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । (ऋग्वेद) (सामवेद)
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥ ९।२।१
१०३८ आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥ ९।२।२
१०३९ अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥ ९।२।३
१०४० महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥ ९।२।४
१०४१ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥ ९।२।५
१०४२ अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥ ९।२।६ ४९१
१०४३ गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥ ९।२।७
१०४४ तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥ ९।२।८
१०४५ गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥ ९।२।१०
१०४६ अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १० ॥ (धा० ५१ । उ० १ । स्व० ८) ॥३(कै)॥ ९।२।९

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

१०४७ सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥ ९।४।१

१०४८ सना ज्योतिः सना स्व३र्विश्वा च सोम सौभगा । (ऋग्वेद) (सामवेद)
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥ ९।४।२
१०४९ सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥ ९।४।३
१०५० पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥ ९।४।४
१०५१ त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥ ९।४।५
१०५२ तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक्पश्येम सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥ ९।४।६
१०५३ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥ ९।४।७
१०५४ अभ्य३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥ ९।४।८
१०५५ त्वां यज्ञैरवीवृधन्पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥ ९।४।९
१०५६ रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥१०॥ (धा० २२ । उ० १ । स्व० २) ॥४(चा)॥ ९।४।१०
१०५७ तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥ ९।५८।१ ५००
१०५८ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥ ९।५८।३
१०५९ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ ९।५८।२

१०६० आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥ (धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥५(हा)॥ ९।५८।४
१०६१ एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥ ९।६२।२२
१०६२ अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥ ९।६२।२३
१०६३ उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥ (धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ३)॥६(वि)॥ ९।६२।२४
१०६४ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥ १।९४।१
१०६५ भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२॥ १।९४।४
१०६६ शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥७(छौ)॥
(धा० ३७ । उ० २ । स्व० १०) १।९४।३

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥४॥

१०६७ प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
अर्यमणं रिशादसम् ॥ १ ॥ ७।६६।७
१०६८ राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।
इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥ ७।६६।८
१०६९ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषं स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २)॥८(हा)॥ ७।६६।९

१०७० भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥ ८।४५।४० १३४
१०७१ यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥ ८।४५।४२
१०७२ यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥ (धा० १२ । उ० १ । स्व० ६) ॥ ९(नू) ॥ ८।४५।४१ २०७
१०७३ यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥ ८।३८।१
१०७४ तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥ ८।३८।२
१०७५ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥(धा० ८ । उ० १ । स्व० २)॥१०॥(टा)८।३८।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१०७६ इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥ ९।६४।२२ ४७२
१०७७ तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥ ९।६४।२३
१०७८ रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥ (धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥११(ल)॥ ९।६४।२४
१०७९ मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥ ९।१०७।२१ ५१७
१०८० पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥२॥१२(ति)॥
(धा० २४ । उ० १ । स्व० ३) ९।१०७।२२

१०८१ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥ ९।६१।७
१०८२ समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥ ९।६१।८
१०८३ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥ (धा० ८ । उ० १ । स्व० ३) ॥१३ (टि) ॥ ९।६१।९

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥ १।३०।१३ १५३
१०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥ १।३०।१४
१०८६ आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ (धा० १८ । उ० २ । स्व० ४) ॥१४ (टी)॥ १।३०।१५

१०८७ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥ १।४।१ १६०
१०८८ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥ १।४।२
१०८९ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० १ । स्व० नास्ति) ॥१५(कौ)॥ १।४।३

१०९० उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥ १०।१३४।१ ३७९

१०९१ दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
पूर्वेण मघवन्पदा वयामजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥ १०।१३४।६
१०९२ अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥१६(यौ)॥ १०।१३४।२
॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥ (धा० ४२ । उ० नास्ति । स्व० १०)

१०९३ परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥ ९।१८।१ ४७५
१०९४ त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥ ९।१८।२
१०९५ त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० २ । स्व० २) ॥ १७(त्वा)॥ ९।१८।३

१०९६ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥ ९।१०८।१३ ५८२
१०९७ यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥२॥ ॥१८(ली)॥ ९।१०८।१४
(धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४)
१०९८ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥ ९।१०५।१ ५६९
१०९९ सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥ ९।१०५।२
११०० अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥ ॥ १९(गि) ॥ ९।१०५।३
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३)

११०१ सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥ ९।१०१।१० ५४८
११०२ ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ २ ॥ ९।१०१।१२
११०३ सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥॥ २०(वा) ॥ ९।१०१।११
(धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २)

११०४ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥ १ ॥ ९।९७।५२ ५४१
११०५ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ॥ २ ॥ ९।९७।५३
११०६ महीमे अस्य वृष नाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥३॥ २१(कि)॥
(धा० १६ । उ० १ । स्व० ३ ।) ९।९७।५४

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥

११०७ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ १ ॥ ५।२४।१ ४४८
११०८ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ २ ॥ ५।२४।२
११०९ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥३॥२२(बा)॥
(धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २) ५।२४।४

१११० इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥ १ ॥ १०।१५७।१ ४५२
११११ यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु ॥२॥ १०।१५७।२
१११२ आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ॥३॥२३(छा)॥
(धा० १२ । उ० २ । स्व० २) १०।१५७।३

१११३-१५ प्र वोऽर्चोप ॥२४॥ (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
[१११३ प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥१॥](न ऋग्वेदीयः)४४६
[१११४ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥२॥](न ऋग्वेदीयः)४४५
[१११५ उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥३॥ २४(य)॥]
(धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १) (न ऋग्वेदीयः) ४४४

इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥ इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ७ ॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

[२]

अथ चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ ४ ॥

(१-१४) १ (१-३) वृषगणो वासिष्ठः; १ (४-१२), २ (१-९) असितः काश्यपो देवलो वा; २ (१०-१२), ११ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा; ३, ६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ४ यजत आत्रेयः; ५ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ७ सिकता निवावरी; ८ पुरुहन्मा आंगिरसः; ९ पर्वतनारदौ काण्वौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा; १० अग्नये धिष्ण्यो ऐश्वराः १२ वत्सः काण्वः; १३ नृमेध आंगिरसः; १४ अत्रिर्भौमः ॥ १-२, ७, ९-११ पवमानः सोमः; ३, १२ अग्निः; ४ मित्रावरुणौ; ५, ८, १३-१४ इन्द्रः; ६ इन्द्राग्नी ॥ (१-३,), ३ त्रिष्टुप्; १ (४-१२), २, ४-६, ११-१२ गायत्री; ७ जगती; ८ प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतो बृहती); ९ उष्णिक्; १० द्विपदा विराट्; १३ (१-२) ककुप्, १३ (३) पुर उष्णिक्; १४ अनुष्टुप् ॥

१११६ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥१॥ ९।९७।७ ५२४
१११७ प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥२॥ ९।९७।८
१११८ स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥३॥ ९।९७।९
१११९ प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥४॥ ९।१०।१

११२० हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः। (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
भरासः कारिणामिव ॥५॥ ९।१०।२

११२१ राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६॥ ९।१०।३

११२२ परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।
मधो अर्षन्ति धारया ॥७॥ ९।१०।४

११२३ आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥ ९।१०।५

११२४ अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥ ९।१०।६

११२५ समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः।
पदमेकस्य पिप्रतः ॥१०॥ ९।१०।७

११२६ नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे।
कवेरपत्यमा दुहे ॥११॥ ९।१०।८

११२७ अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥१२॥ (धा० ५७। उ० ४। स्व० ८) ॥ १(ध्रै)॥ ९।१०।९

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

११२८ असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।
विदाना अस्य योजना ॥ १ ॥ ९।७।१

११२९ प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते।
हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥ ९।७।२

११३० प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥ ९।७।३

१६

११३१ परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥ ९।७।४

११३२ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति।
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥ ९।७।५

११३३ अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति।
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥ ९।७।६

११३४ स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति।
रणा यो अस्य धर्मणा ॥ ७ ॥ ९।७।७

११३५ आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥ ९।७।८

११३६ अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये।
श्रवो वसूनि सञ्जितम् ॥ ९ ॥ ९।७।९

११३७ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१०॥ ९।६५।२८

११३८ आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥११॥ ९।६५।२९

११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥१२॥ (धा० ३८। उ० ५। स्व० ११) ॥२ (ण)॥ ९।६५।३०

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

११४० मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥ ६।७।१ १७

११४१ त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥ ६।७।४

११४२ नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥३(कु)॥ ६।७।२
(धा० २६। उ० १। स्व० ५)

११४३ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥ ५।६८।१

११४४ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥ ५।६८।२

११४५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥(धा० १३। उ० नास्ति। स्व० १) ॥४(र)॥ ५।६८।३ १४६५

११४६ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥ १।३।४

११४७ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥२॥ १।३।५

११४८ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३॥ (धा० १६। उ० नास्ति। स्व० ४) ॥५ (ही)॥ १।३।६

११४९ तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१॥ ६।६०।१०

११५० य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥२॥ ६।६०।११

११५१ ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः।
ऐन्द्रमग्निं च वोढवे ॥३॥ (धा० ७ उ० नास्ति। स्व० १) ॥६(ग)॥ ६।६०।१२

॥इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

११५२ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ॥ ९।८६।१६ ५५

११५३ प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः ॥२॥ ९।८६।१७

११५४ आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम् ॥३॥ ॥७(ठि)॥
(धा० २८। उ० २। स्व० ३) ९।८६।१८

११५५ न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥ ८।७०।३ २४३

११५६ अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः ॥२॥॥८(ही)॥ ८।७०।४
(धा० १६। उ० नास्ति। स्व० ४)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

११५७ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्रगायत।
शिशुं नः यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥ ९।१०४।१ ५६८

११५८ समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यं३मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥ ९।१०४।२

११५९ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।
यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥ ॥ ९(पि) ॥ ९।१०४।३
(धा० १५। उ० १। स्व० ३)

११६० प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥१॥ ९।१०९।१६

११६१ स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥२॥ ९।१०९।१७

११६२ प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥३॥ ॥१०(पु)॥
(धा० १५। उ० १। स्व० ५।) ९।१०९।१८

११६३ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे।
ये वादः शर्यणावति ॥१॥ ९।६५।२२

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

११६४ ये आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥   ९।६५।२३

११६५ ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥ (धा० ७ उ० १ स्व० ३) ॥ (चि)॥ ९।६५।२४

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

११६६ आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१॥   ८।११।७   ८

११६७ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।
समत्सु त्वा हवामहे ॥२॥   ८।११।८

११६८ समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।
वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥ (धा० १३। उ० २। स्व० २) ॥१२ (ठा)॥ ८।११।९

११६९ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥१॥   ८।९८।१०   ४०

११७० त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥२॥   ८।९८।११

११७१ त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥ (धा० १४।उ० ना० । स्व० १) ॥१३॥(ल)॥ ८।९८।१२

११७२ यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥   ५।३९।१   ३४

११७३ यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२॥   ५।३९।२

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

११७४ यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥ ॥१४(पी)॥ ५।३९।३
(धा० २५ । उ० १ । स्व० ४)

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

इति चतुर्थप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥२॥ चतुर्थप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ४ ॥
॥ इति अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

[१]

अथ पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽध्यायः ॥५॥

(१-२०) १ प्रतर्दनो दैवोदासिः; २, ३, ४ असितः काश्यपो देवलो वा; ५, ११ उचथ्य आंगिरसः; ६, ७ अमहीयुराङ्गिरसः; ८, १५ निध्रुविः काश्यपः; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० सुकक्ष आंगिरसः; १२ कविर्भार्गवः; १३ देवातिथिः काण्वः; १४ भर्गः प्रागाथः; १६ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १७ अग्नये धिष्ण्या ऐश्वराः; १८ उशना काव्यः; १९ नृमेध आंगिरसः; २० जेता माधुच्छन्दसः॥ १-८, ११-१२, १५-१७ पवमानः सोमः; ९, १८ अग्निः; १०, १३, १४, १९-२० इन्द्रः ॥ १-९ त्रिष्टुप्; २-८,१०-११, १५, १८ गायत्री; १२ जगती १३,१४ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १६, २० अनुष्टुप्; १७ द्विपदा विराट् ; १९ उष्णिक् ॥

११७५ शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥ ९।९६।१७

११७६ ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥२॥ ९।९६।१८

११७७ चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥१(लु)॥
(धा० २४ । उ० ना० । स्व० ५।) ९।९६।१९

११७८ एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१॥   ९।८।१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

११७९ पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२॥   ९।८।२

११८० इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
देवानां योनिमासदम् ॥३॥   ९।८।३

११८१ मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४॥   ९।८।४

११८२ देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः ।
सं गोभिर्वासयामसि ॥५॥   ९।८।५

११८३ पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥६॥   ९।८।६

११८४ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥   ९।८।७

११८५ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥   ९।८।९

११८६ वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः॥९॥(धा० ३९ । उ० १ । स्व० १३) ॥(ति)२॥ ९।८।८

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

११८७ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥   ९।१३।१

११८८ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥   ९।१३।२

११८९ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥   ९।१३।३

११९० उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥   ९।१३।४

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

११९१ अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥   ९।१३।६

११९२ ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥   ९।१३।५

११९३ वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥   ९।१३।७

११९४ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥   ९।१३।८

११९५ अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥ (धा० ३९ । उ० ३ । स्व० ६) ॥ (दू) ३॥ ९।१३।९

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

११९६ सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥   ९।१२।१

११९७ अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥   ९।१२।२

११९८ मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥   ९।१२।३

११९९ दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यो वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥   ९।१२।४

१२०० यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥   ९।१२।५

१२०१ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन्कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥   ९।१२।६

१२०२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघाम्। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥ ९।१२।७

१२०३ आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम्।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥ ९।१२।९

१२०४ अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः।
सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥ (धा० ४०। उ०४। स्व० ७) ॥ ४ (भे) ॥ ९।१२।८

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥३॥

१२०५ उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥ ९। ०।१

१२०६ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥ ९।५०।२

१२०७ अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ ९।५०।३

१२०८ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥ ९।५०।४

१२०९ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥ (धा० ३१। उ०१। स्व० २) ॥ ५ (का) ॥ ९।५०।५

॥ इति चतुर्थ खण्डः ॥४॥

१२१० अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा।
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥ ९।६१।१ ४९५

१२११ पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम्।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥ ९।६१।२

१२१२ परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३) ॥६(हि)॥ ९।६१।३

१७

१२१३ अपघ्नन्पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ९।६१।२५

१२१४ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥ ९।६१।२६

१२१५ न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥ (धा० ११। उ० २। स्व० २) ॥७(त्वा)॥ ९।६१।२७

१२१६ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥ ९।६३।७ ४९३

१२१७ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥ ९।६३।८

१२१८ उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे।
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥ (धा० ११। उ० १। स्व० २) ॥ ८ (का) ॥ ९।६३।९

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

१२१९ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥ ७।३।१

१२२० प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥ ७।३।२

१२२१ उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥९(टी)॥
(धा० १८। उ० १। स्व० ४) ७।३।३

१२२२ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥ ८।९३।७ ११९

१२२३ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥ ८।९३।८

१२२४ गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः। (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥ (धा० १७। उ० २। स्व० ७) ॥१०(छे)॥ ८।९३।९

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

१२२५ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥ ९।५१।१ ४९९

१२२६ तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत।
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥ ९।५१।३

१२२७ दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥ (धा० ११। उ० २। स्व० २)॥११(त्वा)॥९।५१।२

१२२८ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ॥१॥ ९।७६।१ ५५८

१२२९ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥२॥ ९।७६।२

१२३० इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश।
प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः॥३॥१२(चा)॥
(धा० २७। उ० १। स्व० २)९।७६।३

१२३१ यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥ ८।४।१

१२३२ यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥१३(कि)॥
(धा० ११। उ० १। स्व० ३) ८।४।२

१२३३ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१॥ ८।६१।१ २९०

१२३४ तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः। (सामवेदे)(ऋग्वेदे)
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२॥१४(ची)॥
(धा० १७। उ० १। स्व० ४।) ८।६१।२

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥७॥

१२३५ पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।
वायुमा रोह धर्मणा ॥ १ ॥ ९।६३।२२ ४८३

१२३६ पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।
इन्दो समुद्रमा विश ॥ २ ॥ ९।६३।२३

१२३७ अपघ्नन्पवसे मृधः [क्रतुवित्सोम मत्सरः।
नुदस्वादेवयुं जनम्] ॥ ३ ॥ (धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ३)॥१५(लि)॥९।६३।२४ ४९२

१२३८ अभी नो वाजसातमं [रयिमर्ष शतस्पृहम्।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्] ॥ १ ॥ ९।९८।१ ५४९

१२३९ वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ २ ॥ ९।९८।५

१२४० परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥ ३ ॥१६(ली)॥ ९।९८।३
(धा० १४। उ० नास्ति। स्व० ५)

१२४१ पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ १ ॥ ९।१०९।४ ४२९

१२४२ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः॥ २॥ ९।१०९।५

१२४३ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी पवस्व ॥ ३ ॥ १७ (हि)॥
(धा० ११। उ० नास्ति। स्व० ३) ९।१०९।६

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

१२४४ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥ ८।८४।१ ५

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१२४५ कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता ।
नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥ ८।८४।२

१२४६ त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुही गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥३॥ (धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४)॥१८(यी)॥ ८।८४।३

१२४७ एन्द्र नो गधि प्रियं सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥ ८।९८।४ ३९३

१२४८ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥ ८।९८।५

१२४९ त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥३॥ (धा० २० । उ० २ । स्व० ७)॥१९(फे)॥८।९८।६

१२५० पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥ १।११।४ ३५९

१२५१ त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ २ ॥ १।११।५

१२५२ इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥ २०(ही)॥ १।११।८
(धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४)

इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

इति पञ्चमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ५-१ ॥

॥ नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

[२]

अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥ ५ ॥

(१-२३) १ पराशरः शाक्त्यः; २ शुनःशेप आजीगर्तिः स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः; ३ असितः काश्यपो देवलो वा; ४,७, राहूगण आंगिरसः; ५ (१-४), ५ (प्रथम पादः) प्रियमेध आंगिरसः; ५ (शेषास्त्रयः पादाः) ६ (प्रथम पादः) १४ नृमेध आंगिरसः; ६ (शेषास्त्रयः पादाः) इध्मवाहो दार्ढच्युतः; ८ पवित्र आंगिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा; ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १० वत्सः काण्वः; ११ शतं वैखानसः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः; ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः); १३ वसुर्भारद्वाजः; १५ भर्गः प्रागाथः; १६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १७ मनुराप्सवः; १८ अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १९ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः, २० अमहीयुरांगिरसः, २१ त्रिशोकः काण्वः; २२ गोतमो राहूगणः, २३ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः ॥ १-७, ११-१३, १६-२० पवमानः सोमः, ८ पवमानाध्येता, ९, १४-१५, २१ (२-३), २२-२३ इन्द्रः; ९ अग्निः, २१ (१) अग्नीन्द्रौ ॥
१,९ त्रिष्टुप्; २-७, १०-११, १६, २०-२१ गायत्री; ८, १८, २३ अनुष्टुप्;
१२ (१-२), १४,१५ प्रगाथः=(बृहती, सतोबृहती); १३ (३),
१९ द्विपदा विराट्, १३ जगती, १७, २२ उष्णिक् ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१२५३ अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ।
९।९७।४० ५२९

१२५४ मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥२॥ ९।९७।४२

१२५५ महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥ १ (टै) ॥
(धा० २८ । उ० १ । स्व० ८) ९।९७।४१ ५४२

१२५६ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥ ९।३।१

१२५७ एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥ ९।३।६

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१२५८ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥ ९।३।४

१२५९ एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥ ९।३।५

१२६० एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥ ९।३।३

१२६१ एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥ ९।३।२

१२६२ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥ ९।३।७

१२६३ एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः ।
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥ ९।३।८

१२६४ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥ ९।३।९

१२६५ एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
धारया पवते सुतः ॥१०॥ (धा० २४ । उ० ३ । स्व० ६) ॥ २ (दू) ॥ ९।३।१०

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

१२६६ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥ ९।१५।१

१२६७ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥ ९।१५।२

१२६८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥ ९।१५।७

(ऋग्वेदे)(सामवेदे)

१२६९ एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥ ९।१५।३

१२७० एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥ ९।१५।५

१२७१ एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥ ९।१५।४

१२७२ एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ८ ॥ ९।१५।६

१२७३ एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥ (धा० ३१ । उ० १ । स्व० ७) ॥३(के)॥ ९।१५।८

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१२७४ एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरव्यत ।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥ ९।३८।१

१२७५ एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥ ९।३८।२

१२७६ एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।
गच्छं जारो न योषितम् ॥ ३ ॥ ९।३८।४

१२७७ एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥ ९।३८।५

१२७८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।
क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥ ९।३८।६

१२७९ एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥ (धा० २९ । उ० ८ । स्व० ४) ॥४(बी)॥ ९।३८।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१२८० एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥ ९।२८।१

१२८१ एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः।
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥ ९।२८।२

१२८२ एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः।
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥ ९।२८।३

१२८३ एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः।
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥ ९।२८।४

१२८४ एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥ ९।२८।५ (प्रथमः पादः) ९।२७।४ (त्रयः पादाः)

१२८५ एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता।
पतिर्वाचो अदाभ्यः॥ ६ ॥ (धा० २६। उ० १। स्व० ७) ॥५(के)॥ ९।२७।५ (प्रथमः पादः)
९।२६।४ (त्रयः पादाः)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

१२८६ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते।
पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥ ९।२७।१

१२८७ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते।
पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥ ९।२७।२

१२८८ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥ ९।२७।३

१२८९ एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥ ९।२७।४

१२९० एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥ ९।२७।६

१२९१ एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥ (धा० ३१। उ० ३। स्व० ५) ॥६(गु)॥ ९।२८।६

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

१२९२ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति।
विघ्नन्रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥ ९।३७।१

१२९३ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ ॥ ९।३७।२

१२९४ स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥ ९।३७।३

१२९५ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥ ९।३७।४

१२९६ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः।
सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥ ९।३७।५

१२९७ स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति।
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥ ६ ॥ (धा० २१। उ० २। स्व० ७) ॥७(खे)॥ ९।३७।६

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

१२९८ यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ ॥ ९।६७।३१

१२९९ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥ ९।६७।३२

१३०० पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ ३ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१३०१ पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१३०२ येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१३०३ पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥ ८ (ती)॥ (न ऋग्वेदीयः)
(धा० ४४। उ० १। स्व० ४)

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

१३०४ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥ ७।१२।१

१३०५ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥२॥ ७।१२।२

१३०६ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥९(ही)॥ ७।१२।३
(धा० २१। उ० नास्ति। स्व० ४)

१३०७ महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥ ८।६।१

१३०८ कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥ ८।६।३

१३०९ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥ (धा० ८। उ० १। स्व० ३) ॥१०(टि)॥ ८।६।२

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

१३१० पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥ ९।६६।२५

१३११ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥ ९।६६।२६

१३१२ पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥ (धा० ११। उ० नास्ति। स्व० १) ॥११(ह)॥ ९।६६।२७

१३१३ परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१॥ ९।१०७।१

१३१४ नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः।
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥२॥ ९।१०७।२

१३१५ परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥३॥ १२(खा)॥ ९।१०७।३
(धा० १६। उ० २। स्व० २)

१३१६ असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥१॥ ९।८२।१

१३१७ पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे॥२॥ ९।८२।३

१३१८ कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि।
अपसेधन्दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि निर्णिजम्॥३॥१३(गू)॥
(धा० २६। उ० ३। स्व० ६) ९।८२।२

॥ इति नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

१३१९ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१॥ ८।९९।३ २६७

१३२० अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥२॥१४(लू)॥ ८।९९।४
(धा० १९। उ० नास्ति। स्व० ६)

१३२१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवन्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥ ८।६१।१३ २७७

१३२२ त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥२॥१५(या)॥ ८।६१।१४
(धा० २०। उ० ३। स्व० २)

॥ इति दशमः खण्डः ॥ १० ॥

१३२३ त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १॥ ९।६७।१

१३२४ त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२॥ ९।६७।२

१३२५ त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥३॥ (धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ४) ॥१६(ली)॥ ९।६७।३

१३२६ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ १ ॥ ९।१०६।७ ५७१

१३२७ तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥ ९।१०६।८

१३२८ आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥ ॥१७(वौ)॥ ९।१०६।९
(धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति)

१३२९ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥ १ ॥ ९।९८।७ ५५२

१३३० द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥ ९।९८।६

१३३१ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥ ॥१८(जी)॥ ९।९८।१० १६७२
(धा० २२ । उ० ३ । स्व० ४)

१३३२ पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १ ॥ ९।१०९।१० ४३०

१३३३ प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ २ ॥ ९।१०९।११

१३३४ शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥१९(का)॥
(धा० ११ । उ० १ । स्व० २) ९।१०९।१२

१३३५ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥ ९।६१।१३ ४८७,७६२

१३३६ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥ २ ॥ ९।६१।१४

१३३७ अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४) ॥२०(ही)॥ ९।६१।१५

॥ इति एकादशः खण्डः ॥११॥

१३३८ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥ ८।४५।१ १३३

१३३९ बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥ ८।४५।२

१३४० अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥ (धा० ३ । उ० २ । स्व० १) ॥२१(ठ)॥ ८।४५।३

१३४१ य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥ १।८४।७ ३८९

१३४२ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥ १।८४।९

१३४३ कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥ (धा० ११ । उ० १ । स्व० ३) ॥२२(कि)॥
१।८४।८

१३४४ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥ १।१०।१ ३४२

१३४५ यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥ १।१०।२

१३४६ युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥२३(षी)॥ १।१०।३
(धा० २५ । उ० ३ । स्व० ४)

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥१२॥

॥ इति पञ्चमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः, पञ्चमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ५-२ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ।

[१]

अथ षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६ ॥

(१-११) मेधातिथिः काण्वः, २, १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ३ प्रगाथः काण्वः, ४ पराशरः शाक्त्यः, ५ प्रगाथो घौरः काण्वः; ६ मेध्यातिथिः काण्वः; ७ त्र्यरुणत्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः, ८ अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः; ९ हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः; १० सार्पराज्ञी ॥ १ आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः); २ आदित्याः ३, ५-६ इन्द्रः, ४, ७-९ पवमानः सोमः; १० अग्निः; ११ आत्मा, सूर्यो वा । १-३ ११ गायत्री; ४ त्रिष्टुप्; ५-६ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्; ८ द्विपदा विराट्; ९ जगती; १० विराट् ॥

१३४७ सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥ १।१३।१

१३४८ मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुह्यूतये ॥ २ ॥ १।१३।२

१३४९ नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥ १।१३।३

१३५० अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह ।
असि होता मनुर्हितः ॥४॥ (धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० २)॥१(रा)॥ १।१३।४

१३५१ यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ ७।६६।४

१३५२ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ २ ॥ ७।६६।५

१३५३ उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
महो राजान ईशते ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० २ । स्व० ३) ॥२(ग्वि)॥ ७।६६।६

१३५४ उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥ ८।६४।१ १९४

१३५५ पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
न हि त्वा कश्च न प्रति ॥ २ ॥ ८।६४।२

१३५६ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥ (धा० १३ । उ० २ । स्व० ३) ॥३(ठि)॥ ९।९७।३७

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

१३५७ आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥ ९।९७।३७

१३५८ स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥२॥ ९।९७।३८

१३५९ स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावित् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥ ४(तै)॥
(धा० १९ । उ० १ । स्व० ८) ९।९७।३९

१३६० मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥ ८।१।१ २४२

१३६१ अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥ ५(यी)॥ ८।१।२
(धा० १७ । उ० ना० । स्व० ४)

१३६२ उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥ ८।३।१५

१३६३ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥ ६(ला)॥
(धा० १४। उ० नास्ति। स्व० २) ८।३।१६

१३६४ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ १ ॥ ९।११०।१ ४२८
१३६५ अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ २॥ ९।११०।३
१३६६ अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि [महे समर्यराज्ये।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे] ॥ ३ ॥ ७ (ल) ॥ ९।११०।२ ४३२
(धा० ९। उ० नास्ति। स्व० १)

१३६७ परि प्र धन्व[इन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय] ॥ १ ॥ ९।१०९।१ ४२७
१३६८ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ २ ॥ ९।१०९।३
१३६९ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥३॥८(ला)॥
(धा० ९। उ० नास्ति। स्व० २) ९।१०९।२

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥२॥

१३७० सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ॥१॥ ९।६९।६
१३७१ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि।
पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति॥२॥९।६९।२
१३७२ उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥३॥९(ग)॥
(धा० २६। उ० ३। स्व० १) ९।६९।४

१३७३ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥ ७।१।१ ७२
१९

१३७४ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्। (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥ ७।१।२
१३७५ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३॥ (धा० २८। उ० ३। स्व० ४)॥१०(डी)॥ ७।१।३
१३७६ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥ १०।१८९।१ ६३०
१३७७ अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥ १०।१८९।२ ६३१
१३७८ त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥ (धा० १७। उ० २। स्व० ३) ॥११(छि)॥ १०।१८९।३ ६३२
॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ इति षष्ठप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ६-१ ॥
॥ एकादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः।

[२]

अथ षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६-२ ॥

(१-२०) १ (१-२) गोतमो राहूगणः; १ (३), ८, ११ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; २, ७ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा; ४,१३ सोभरिः काण्वः; ५ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ (१) ऋजिश्वा भारद्वाजः; ६ (२) ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः, ९ तिरश्चीराङ्गिरसः; १० सुतंभर आत्रेयः; १२,१९ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ; १४ शुनःशेप आजीगर्तिः; १५ नोधा गौतमः १६ मेध्यातिथिः काण्वः; १७ रेणुर्वैश्वामित्रः; १८ कुत्स आङ्गिरसः; २० अगस्त्यो मैत्रावरुणः॥
१-२, ७, १०, १३-१४ अग्निः; ३, ६, ८, ११, १५,१७-१८ पवमानः सोमः; ४,५,९,१२, १६,१९,२० इन्द्रः ॥ १-२,७,१०,१४, गायत्री; ३,९,१९ (१-२) २० (२-३) अनुष्टुप्; ४, ६ १३ काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); ५, १९ (३), बृहती; ८, ११, १५, १८ त्रिष्टुप्; १२, १६ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १७ जगती; २० (१) स्कन्धोग्रीवी बृहती ॥

१३७९ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥ १।७४।१

१३८० यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥ १।७४।२
१३८१ स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः।
उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥ ७।१५।३
१३८२ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।
धनञ्जयो रणेरणे ॥ ४ ॥ (धा० १९। उ० १। स्व० ३) ॥ १ (ति) ॥ १।७४।३
॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

१३८३ अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥ ६।१६।४३
१३८४ अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ २ ॥ ६।१६।४४
१३८५ उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
शोचा वि भाह्यजर ॥३॥ (धा० १७। उ० नास्ति। स्व० ४)॥२(यी)॥ ६।१६।४५

१३८६ प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥ ९।१०१।१३ ५५३;७७४
१३८७ आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ २ ॥ ९।१०१।१४
१३८८ स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ ३ ॥ ३ (खै) ॥ ९।१०१।१५
(धा० २१। उ० २। स्व० ८।)

१३८९ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥ ८।२१।१३ ३९९
१३९० न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ २ ॥४(पि)॥ ८।२१।१४
(धा० १५। उ० १। स्व० ३)

१३९१ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ १ ॥ ८।१।२४ २४५
१३९२ आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥ २ ॥ ८।१।२५
१३९३ पिबा त्व३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥३ ॥५(प)॥ ८।१।२६
(धा० २०। उ० १। स्व० १)

१३९४ आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥ ९।१०८।७ ५८०
१३९५ सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥२॥६(या)॥ ९।१०८।८
(धा० १२। उ० नास्ति। स्व० २)
॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१३९६ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥ ६।१६।३४ ४
१३९७ गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥ ६।१६।३५
१३९८ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३॥ (धा० १० । उ० नास्ति। स्व० १) ॥३(व)॥ ६।१६।३६
१३९९ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥ ९।९७।१ ५२६
१४०० भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्निवचनानि शंसन्।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥२॥ ९।९७।२
१४०१ समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥८(रि)॥
(धा० १८। उ० नास्ति। स्व० ३) ९।९७।३

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४०२ एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु ॥ १ ॥ ८।९५।७ ३५०

१४०३ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥ २ ॥ ८।९५।८

१४०४ इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ३ ॥ ९ (यी) ॥ ८।९५।९

॥ इति तृतीय खण्डः ॥ ३ ॥ (धा० १२ । उ० नास्ति । स्व० ४)

१४०५ अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥ ५।१३।२

१४०६ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥ ५।१३।३

१४०७ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥३॥ (धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० ३) ॥१०(रि)॥ ५।१३।४

१४०८ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥ ९।९०।२ ५२८

१४०९ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्पृतनासु शत्रून् ॥२॥ ९।९०।३

१४१० उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्वऽ३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥३॥११(पू)॥
(धा० ३० । उ० १ । स्व० ६) ९।९०।४

१४११ त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः
त्वं वृत्राणि हं स्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ॥ १ ॥ ८।९०।५

१४१२ तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥२॥१२(न)॥
(धा० १४ । उ० १ स्व० १) ८।९०।६

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४१३ यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥ ८।१९।३

१४१४ अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥२॥१३(ना)॥
(धा० १४ । उ० १ । स्व० २) १।२२।७

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ५ ॥

१४१५ यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥ १।२७।७

१४१६ न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥ १।२७।८

१४१७ स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥ (धा० १८ । उ०२ । स्व० २) ॥१४(ठा)॥ १।२७।९

१४१८ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥ ९।९३।१ ५३८

१४१९ सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥२॥ ९।९३।२

१४२० उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥३॥१३(वू)॥
(धा० ३० । उ० नास्ति । स्व० ६) ९।९३।३

१४२१ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥ ८।३।१ २३९

१४२२ भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माँ चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२॥१६(ल)॥
(धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० १) ८।३।२

१४२३ त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥ ९।७०।१ ५६०

१४२४ स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥
९।७०।२

१४२५ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥३॥१७(चे)॥
(धा०३२ । उ०१ । स्व०७) ९।७०।३

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

१४२६ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥ ९।९७।४९

१४२७ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ १ ॥ ९।९७।५०

१४२८ अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥३॥१८(त्वे)॥
(धा० २१ । उ०२ । स्व०७) ९।९७।५१

१४२९ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् । ॥ १ ॥ ८।८९।५

१४३० तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ २ ॥ ८।८९।६

१४३१ आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥३॥१९(पे)॥
(धा० ३० । उ० १ । स्व० ७) ८।८९।७

१४३२ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः । ॥ १ ॥ १।१७५।१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४३३ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥ १।१७५।२

१४३४ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३॥२०(थि) १।१७५।३
(धा० २५ । उ० ३ । स्व० ३)

॥ इति षष्ठ खण्डः ॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ६-२ ॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

[३]

अथ षष्ठप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ६-३ ॥

(१-२०) १ कविर्भार्गवः; २,९,१६ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ३ आसतः काश्यपो देवलो वा, ४ सुकक्ष आंगिरसः; ५ विभ्राट्सौर्यः; ६,८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १०-१७ भार्गवः प्रागाथः, १०, १७ विश्वामित्रो गाथिनः; ११ मेधातिथिः काण्वः; १२ शतं वैखानसाः; १३ यजत आत्रेयः; १४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; १५ उशना काव्यः; १८ हर्यतः प्रागाथः; १९ बृहद्दिव आथर्वणः, २० गृत्समदः शौनकः ॥ १, ३, १५ पवमानः सोमः; २,४,६,७,१४,१९,२० इन्द्रः; ८ सरस्वान्, ९ सरस्वती, १० सविता, ११ ब्रह्मणस्पतिः; १२ अग्निः पवमानः; १३ मित्रावरुणौ, १६—१८ अग्निः; १८ हवींषि वा; ५ सूर्यः ॥ १, ३-४, ८-१४,१६ (२-३) १८ गायत्री; २ (१-३) अनुष्टुप्, २ (४) बृहती, ६,७ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १६ (१) वर्धमाना, १९ त्रिष्टुप्, २० (१) अष्टिः; २० (२-३) अतिशक्वरी, ५ जगती ॥ १५

१४३५ पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥ ९।४९।१

१४३६ तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥ ९।४९।२

१४३७ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥ ९।४९।३

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४३८ स न ऊर्जे व्य३ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥ ९।४२।४

१४३९ पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥ ५ ॥ (धा० २२ । उ० १ । स्व० ४) ॥ १ (ची) ॥ ९।४९।५

१४४० प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाददध्वने नरः ॥ १ ॥ ६।४२।१ ३५२

१४४१ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥ ६।४२।२

१४४२ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥ ६।४२।३

१४४३ अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥ ४ ॥२(ठ)॥ ६।४२।४
(धा० २३ । उ० २ । स्व० १)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१४४४ बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।
सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥ ९।११।४

१४४५ हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।
मधावा धावता मधु ॥ २ ॥ ९।११।५

१४४६ नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥ ९।११।६

१४४७ अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥ ९।११।७

१४४८ इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥ ९।११।८
२०

१४४९ पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥ (धा० ३२ । उ० नास्ति । स्व०६) ॥३(यू)॥ ९।११।९

१४५० उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥ ८।९३।१ १२५

१४५१ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥ ८।९३।२

१४५२ स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥ (धा० ९ । उ० १ । स्व० ४) ॥ ४ (ती)॥ ८।९३।३

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१४५३ विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१॥
१०।१७०।१ ६२८

१४५४ विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥ १०।१७०।२

१४५५ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥५(जि)॥
(धा० २७ । उ० ३ । स्व० ३) १०।१७०।३

१४५६ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥१॥ ७।३२।२६

१४५७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ ६(ल)॥ ७।३२।२७
(धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १)

१४५८ अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१॥ ८।६१।१७

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४५९ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥२॥७(वी)॥ ८।६१।१८
(धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० ४)

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१४६० जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥ (धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति) ॥८(रौ)॥ ७।९६।४

१४६१ उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥(धा० १। उ० नास्ति । स्व० नास्ति) ॥९(हौ)॥ ६।६१।१०

१४६२ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ३।६२।१०

१४६३ सोमानां स्वरणं [कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।]
[कक्षीवन्तं य औशिजः] ॥ २ ॥ १।१८।१ १३९

१४६४ अग्न आयूंषि पवसे [आसुवोर्जमिषं च नः ।]
[आरे बाधस्व दुच्छुनाम्]॥३॥(धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १)॥१०(य)॥ ९।६६।१९ ६२७। १५१८

१४६५ ता नः शक्तं पार्थिवस्य [महो रायो दिव्यस्य ।]
[महि वां क्षत्रं देवेषु] ॥ १ ॥ ५।६८।३ ११६५

१४६६ ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ २ ॥ ५।६८।४

१४६७ वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ३ ॥ (धा० ५ । उ० १ । स्व० २) ॥११(पा)॥ ५।६८।५

१४६८ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥ १।६।१

१४६९ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥ १।६।२

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१४७० केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥ (धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥१२(य)॥ १।६।३

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

१४७१ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥ ९।८८।१

१४७२ स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥२॥ ९।८८।२

१४७३ शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥३॥१३(घी)॥
(धा० २६ । उ० ४ । स्व० ४) ९।८८।७

१४७४ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ ६।१६।१ २

१४७५ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥ ६।१६।२

१४७६ वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३॥ (धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति) ॥१४(हौ)॥ ६।१६।३

१४७७ होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥ ३।२७।७

१४७८ वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥ ३।२७।८

१४७९ धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥ (धा० १३ । उ० नास्ति । स्व० २)१५(रा)॥ ३।२७।९

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

१४८० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥ ८।७२।१३

१४८१ ते जानत स्वमोक्यं३ सं वत्सासो न मातृभिः ।　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ २ ॥　८।७२।१४

१४८२ उप स्रक्केषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥ (धा० १२ । उ० १ । स्व० १) ॥१६(च)॥　८।७२।१५

१४८३ तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥　१०।१२०।१

१४८४ वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥　१२।१२०।२

१४८५ त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः॥३॥१७(णी)॥
(धा० २३ । उ० ५ । स्व० ४)　१०।१२०।३

१४८६ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोममपिबद्विष्णुना
सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥　२।२२।१　४५७

१४८७ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु
प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥　२।२२।३

१४८८ अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥
(धा० ५४ । उ० २ । स्व० १३) ॥ (१८) थि ॥　२।२२।२

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥६॥ इति षष्ठप्रपाठकेः तृतीयोऽर्धः षष्ठः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥६॥
॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ७ ॥

(१-१६) १, ९ प्रियमेध आङ्गिरसः; २ नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ, ३, ७ त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः; ४ शुनःशेप आजीगर्तिः; ५ वत्सः काण्वः; ६ अग्निस्तापसः; ८ विश्वमना वैयश्वः; १० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ११ सौभरिः काण्वः; १२ शतं वैखानसः; १३ वसूयव आत्रेयः; १४ गोतमो राहूगणः; १५ केतुराग्नेयः; १६ विरूप आङ्गिरसः ॥ १-२, ५, ८-९ इन्द्रः; ३, ७ पवमानः सोमः; ४, १०-११, १३-१६ अग्निः; ६ विश्वे देवाः, १२ अग्निः पवमानः ॥ १, ४-५, १२-१६ गायत्री; २, १० प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ३,७ ऊर्ध्वा बृहती; ६. अनुष्टुप्, ८-९ उष्णिक्; ११ बृहती ॥

१४८९ अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥　८।६९।४　१६८

१४९० आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥　८।६९।५

१४९१ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥१(हा)॥　८।६९।६

१४९२ आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन्परमज्या ऋचीषम ॥ १ ॥　८।९०।१　२६९

१४९३ त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥२॥ २(या)॥　८।९०।२
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २)

१४९४ प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ १ ॥　९।११०।८

१४९५ आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ॥ २ ॥　९।११०।६

१४९६ अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना। (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ॥ ३ ॥ ३(स्रु)॥　९।११०।९
(धा० १६ । उ० २ । स्व० ६)

१४९७ इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ १ ॥　१।२७।४　२८

१४९८ विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥　१।२७।६

१४९९ आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥ (धा० १३ । उ० १ । स्व० २) ॥४(टा)॥　१।२७।५

१५०० अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥　८।६।१०　१५२

१५०१ अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥　८।६।११

१५०२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुरृषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ (धा० १४ । उ० २ । स्व० ५) ॥ ५ (शु)॥　८।६।१२

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥१॥

१५०३ अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥ १ ॥　(न ऋग्वेदीयः)

१५०४ प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः ।
तनये तोके अस्मदा सम्यङ्वाजैः परीवृतः ॥ २ ॥　(न ऋग्वेदीयः)

१५०५ त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥ ६ (हि) ॥　१०।१४१।६
(धा० १८ । उ० ३ । स्व० ३)

१५०६ त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ १ ॥　९।११०।७

१५०७ अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।　(ऋग्वेदे)(सामवेदे)
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ २ ॥　९।११०।५

१५०८ अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥ ७ (ले) ॥　९।११०।४
(धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ७)

१५०९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥　॥　८।२४।१३　३८९

१५१० उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥　८।२४।१४

१५११ न ह्यं३ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।
न की राया नैवथा न भन्दना ॥ ३ ॥ ८ (चा) ॥　८।२४।१५
(धा० १७ । उ० १ । स्व० २)

१५१२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ १ ॥ ९ (व) ॥　८।६९।२
(धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १)

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१५१३ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ १ ॥　७।१६।११　५५

१५१४ तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥२॥१०(लि)॥　७।१६।१२
(धा० १४ । उ० ना० । स्व० ३)

१५१५ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ १ ॥　८।१०३।१　४७

१५१६ यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत ॥ २ ॥　८।१०३।३

१५१७ प्र दैवोदासो अग्नि[र्देव इन्द्रो न मज्मना ।] (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
[अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि] ॥३॥११(हा)॥
(धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २) ८।१०३।२ ५१

१५१८ अग्न आयूंषि पवस [आसुवोर्जमिषं च नः ।] ६२७
[आरे बाधस्व दुच्छुनाम्] ॥ १ ॥ ९।६६।१९ १४६४

१५१९ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥ ९।६६।२०

१५२० अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥ (धा० १० । उ० २ । स्व० १) १२ (फ)॥ ९।६६।२१

१५२१ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥ ५।२६।१

१५२२ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥ ५।२६।२

१५२३ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३॥ (धा० १८ । उ० १ । स्व० नास्ति ।)॥१३(टौ)॥५।२६।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१५२४ अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥ १।७९।७

१५२५ आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥ १।७९।८

१५२६ आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥३॥ (धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति) ॥१४(वौ)॥ १।७९।९

२१

१५२७ अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
तेन जेष्म धनंधनम् ॥ १ ॥ १०।१५६।१

१५२८ यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥ १०।१५६।२

१५२९ आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्धि खं वर्तया पविम् ॥ ३ ॥ १०।१५६।३

१५३० अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥ १०।१५६।४

१५३१ अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत ॥५॥ (धा० १९ । उ० २ । स्व० २) ॥१५(धा)॥ १०।१५६।५

१५३२ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १ ॥ ८।४४।१६

१५३३ ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥ ८।४४।१८

१५३४ उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ॥३॥ (धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ४)॥१६(ली)॥ ८।४४।१७

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः॥ ७-१ ॥

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

[२]

अथ सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥

(१-१४) १, ११ गोतमो राहूगणः; २, ९ विश्वामित्रो गाथिनः; ३ विरूप आङ्गिरसः; ४, ७ भर्गः प्रागाथः, ५ त्रित आप्त्यः; १० सोभरिः काण्वः; १२ गोपवन आत्रेयः; १३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा; १३ प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रवान्यतरो वा ॥ अग्निः ॥ १-३, ६, ९, १४ गायत्री; ४, ७, ८ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ५ त्रिष्टुप्; १० काकुभः प्रगाथः= (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); ११ उष्णिक्; १२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः = (अनुष्टुप्+गायत्र्यौ); १३ जगती ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१५३५ कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥ १।७५।३

१५३६ त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ २ ॥ १।७५।४

१५३७ यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ (धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० ५) ॥ १(रु) ॥१।७५।५

१५३८ ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥ ३।२७।१३

१५३९ वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
तं हविष्मन्त ईळते ॥ २ ॥ ३।२७।१४

१५४० वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ (धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ३) ॥ २(लि)॥ ३।२७।१५

१५४१ उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।
अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥ ८।४४।४

१५४२ उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥ ८।४४।५

१५४३ मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥३॥ (धा० ६ । उ० नास्ति । स्व० १)॥३(हृ)॥ ८।४४।६

१५४४ पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥ ८।६०।९ ११

१५४५ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥२॥४(यि) ॥ ८।६०।१०
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१५४६ इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥ १०।३।१

१५४७ कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥ १०।३।२

१५४८ भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥५(यो)॥ १०।३।३
(धा० २७ । उ० नास्ति । स्व० ९)

१५४९ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥ ८।८४।४

१५५० दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥ ८।८४।५

१५५१ अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥ (धा० १८ । उ० १ । स्व० १) ॥ ६ (ट) ॥ ८।८४।६

१५५२ अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ १ ॥ ८।६०।१

१५५३ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे । (ऋग्वेद) (सामवेद)
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥ ७(या) ॥ ८।६०।२
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २)

१५५४ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १ ॥ ८।७१।१०
१५५५ अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥ ८(हा) ॥ ८।७१।११
(धा० ८ । उ० १ । स्व० २)

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१५५६ अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥ ३।११।५
१५५७ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥ २ ॥ ३।११।७
१५५८ साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥ ॥ ९(वि) ॥ ३।११।६
(धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ३)

१५५९ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥ ८।१९।१९ १११
१५६० भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ २ ॥ १०(लि) ॥ ८।१९।२०
(धा० ४ । उ० नास्ति । स्व० ३)

१५६१ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥ १।७९।४ ९९
१५६२ स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥ १।७९।५

१५६३ क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥ ११ ॥ (धा० १३ । उ० १ । स्व० २) १।७९।६

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१५६४ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥ ८।७४।१ ८७
१५६५ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥ ८।७४।२
१५६६ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥ (धा० १३ । उ० १ । स्व० २) ॥ १२(टा) ॥ ८।७४।३
१५६७ समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥ ६।१५।७
१५६८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ २ ॥ ६।१५।८
१५६९ विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥ १३(या) ॥
(धा० २२ । उ० नास्ति । स्व० २) ६।१५।९

१५७० उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥ ८।१०२।१३ १३
१५७१ यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् ।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥ ८।१०२।१४
१५७२ पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥ (धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० ५) ॥ १४(हु) ॥ ८।१०२।१५

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥
॥ इति सप्तमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ७-२ ॥
॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

[१]

अथ सप्तमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ७-३ ॥

(१-२१) १, ८, १८ मेध्यातिथिः काण्वः; २ विश्वामित्रो गाथिनः; ३-४ भर्गः प्रागाथः; ५ सोभरिः काण्वः; ६, १५ शुनःशेप आजीगर्तिः; ७ सुकक्ष आङ्गिरसः; ९ विश्वकर्मा भौवनः; १० अनानतः पारुच्छेपिः; ११ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; १२ गोतमो राहूगणः; १३ ऋजिश्वा भारद्वाजः; १४ वामदेवो गौतमः; १७ देवातिथिः काण्वः; १९ वालखिल्यः (श्रुष्टिगुः काण्वः); २० पर्वतनारदौ; २१ अत्रिर्भौमः ॥ १, ३-४, ७-८, १५, १७-१९ इन्द्रः; २ इन्द्राग्नी; ६ वरुणः; ९ विश्वकर्मा; १०, २०, २१ पवमानः सोमः; ११ पूषा; १२ मरुतः; १३ विश्वे देवाः; १४ द्यावापृथिव्यौ; १६ अग्निः हवींषि वा ॥ १, ३-५, ८, १७-१९ प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); २, ६-७, ११-१६ गायत्री; ९ त्रिष्टुप्, १० अत्यष्टिः, २० उष्णिक्, २१ जगती ॥

१५७३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥ ८।३।७ २५६
१५७४ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ १(रि) । ८।३।८
(धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३)

१५७५ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ १ ॥ ३।१२।५ १७०३
१५७६ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥ ३।१२।६ १७०४
१५७७ इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ३ ॥ ३।१२।७ १६९४
१५७८ इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ४ ॥ (धा० १३ । उ० १ । स्व० २) ॥ २(टा) ॥ ३।१२।८ १६९५
१५७९ शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ १ ॥ ८।६१।५ २४३

१५८० पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः । (ऋग्वेद) (सामवेद)
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ २ ॥ ३(छु) ॥ ८।६१।६
(धा० १७ । उ० १ । स्व० ५)
१५८१ त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ १ ॥ ८।६१।७ २४०
१५८२ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥ ४(फौ) ॥ ८।६१।८
(धा० १५ । उ० २ । स्व० नास्ति)

१५८३ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ॥ १ ॥ ८।१०३।६ ४४
१५८४ अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ २ ॥ ५(पु) ॥ ८।१०३।७
(धा० १५ । उ० १ । स्व० ५)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१५८५ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥ (धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥ ६(ब) ॥ १।२५।१९

१५८६ कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥ (धा० २ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥ ७(य) ॥ ८।९३।१९

१५८७ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ८।३।५ २४९
१५८८ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥ ८(वा) ॥
(धा० १५ । उ० नास्ति । स्व० २) ८।३।६
१५८९ विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वं३ स्वा हि ते ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १ ॥ ९(ला) ॥
(धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २) १०।८१।६

१५९० अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥ ९।१११।१ ४६३
१५९१ प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो
रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥ ९।१११।३
१५९२ त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम
ऋतस्य धीतिभिर्दमे।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥३॥ १०(के)॥ ९।१११।२
(धा० ४१ । उ० ५ । स्व० ७)

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१५९३ उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुह्यूतये ॥ (धा० २ । उ० नास्ति । स्व०नास्ति) ॥ ११(यौ) ॥ ६।५३।१०
१५९४ शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः।
विदा कामस्य वेनतः ॥ (धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥१२(व)॥ १।८६।८
१५९५ उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः॥ (धा० ३ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति) ॥१३(रौ)॥ ६।५२।९
१५९६ प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे।
शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥ ४।५६।५
१५९७ पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥ ४।५६।६
२२

१५९८ मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥३॥ (धा० ६ । उ० १ । स्व० २) ॥१४(का)॥ ४।५६।७
१५९९ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥ १।३०।४ १८३
१६०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥ १।३०।५
१६०१ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ (धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥१५(ह)॥ १।३०।६

१६०२ गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥ ८।७२।१२ ११७
१६०३ अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु।
अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥ ८।७२।११
१६०४ सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।
नीचीनबारमक्षितम् ॥ ३ ॥ (धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० २) ॥१६(रा) ८।७२।१०

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१६०५ मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥ ८।४।७
१६०६ सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥२॥१७(वी)॥ ८।४।८
(धा० १० । उ० नास्ति । स्व० ४)

१६०७ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥ ८।३।३ २५०

१६०८ अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥२॥१८(रि)॥
(धा० १८ । उ० नास्ति । स्व० ३) ८।३।४
१६०९ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥ ८।५१।९
१६१० तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥ १९(त)॥
(धा० १४ । उ० १ । स्व० १) ८।५१।१०
१६११ गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥ ९।१०५।४ ५७४
१६१२ स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ २ ॥ ९।१०५।५
१६१३ सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम्।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥३॥२० (ल)॥ ९।१०५।६
(धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० १)
१६१४ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥१॥
९।८६।४३ ५६४
१६१५ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२॥ ९।८६।४४
१६१६ अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥३॥२ (ले)॥
(धा० ३९ । उ० नास्ति । स्व० ७) ९।८६।४५

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः, सप्तमः प्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ७-३ ॥
॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः।

[१]

अथाष्टमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥

(१-१४) १, ७ शुनःशेप आजीगर्तिः, २ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ३ शंयुर्बार्हस्पत्यः, (तृणपाणिः) ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ५ वामदेवो गौतमः; ६ रेभसूनू काश्यपौ; ८ नृमेध आंगिरसः; ९, ११ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः, १२ विरूप आंगिरसः; १३ वत्सः काण्वः ॥ १, ३, ७, १२ अग्निः, २, ८—११, १३ इन्द्रः; ४ विष्णुः; ५ (१) वायु, ५ (२-३) इन्द्रवायू; ६ पवमानः सोमः॥ १-२, ७, ९, १०, १२, १३ गायत्री; ३, ८ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ४ त्रिष्टुप्; ५, ६ अनुष्टुप्; ११ उष्णिक्।

१६१७ विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
चनो धाः सहसो यहो ॥ १ ॥ १।२६।१०
१६१८ यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।
त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥ १।२६।६
१६१९ प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४)॥१(ही)॥ १।२६।७
१६२० इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥ १।७।१०
१६२१ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥ १।७।६
१६२२ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥ (धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १)॥२(र)॥ १।७।८
१६२३ त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१॥ ६।४८।९ ४१
१६२४ पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥२॥३(की)॥ ६।४८।१०
(धा० ११ । उ० १ । स्व० ४)

१६२५ किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ १ ॥ ७।१००।६
१६२६ प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥२॥ ७।१००।५
१६२७ वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥४(ते)॥
(धा० ४४ । उ० १ । स्व० ७) ७।१००।७

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१६२८ वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ १ ॥ ४।४७।१
१६२९ इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २ ॥ ४।४७।२
१६३० वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥ ५ (ता) ॥
(धा० १९ । उ० १ । स्व० २) ४।४७।३

१६३१ अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ १ ॥ ९।९९।२
१६३२ तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ २ ॥ ९।९९।३
१६३३ तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥ ६ (लु) ॥
(धा० १४ । उ० नास्ति । स्व० ५) ९।९९।४

१६३४ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥ १।२७।१ १७

१६३५ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥ १।२७।२
१६३६ स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३॥ (धा० १३ । उ० १ । स्व० ३) ॥७(टि)॥ १।२७।३

१६३७ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १ ॥ ८।९९।५ ३११
१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥२॥ ८ (टा)॥
(धा० १८ । उ० १ । स्व० २) ८।९९।६

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१६३९ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥ ८।१४।५ १२१
१६४० व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥ ८।१४।७
१६४१ उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥३॥ (धा० २० । उ० १ । स्व०४) ॥९(पी)॥ ८।१४।८
१६४२ त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥१॥ ८।९२।७
१६४३ युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥ ८।९२।८
१६४४ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥३॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० २) ॥१०(ता)॥ ८।९२।९

१६४५ तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥ ८।१५।७

१६४६ तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥ ८।१५।८
१६४७ त्वां विष्णुर्बृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥ (धा०१३ । उ० २ । स्व० ४)॥११(ठी)॥ ८।१५।९

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१६४८ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥ ८।७५।१० ११
१६४९ कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् ।
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥ ८।७५।११
१६५० मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा ।
संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥ (धा० १५ । उ० १ । स्व० १) ॥१२(प)॥ ८।७५।१२

१६५१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥ ८।६।४ १३७
१६५२ वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥ ८।६।६
१६५३ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥ (धा०१४ । उ० १ । स्व० नास्ति) ॥१३(तौ)॥ ८।६।५

१६५४ सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदे)
१६५५ सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदे)
१६५६ नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥ (धा०७ । उ० नास्ति । स्व० ३)॥१४(पि)॥ (न ऋग्वेदे)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥ इत्यष्टम-प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः ॥ ८-१ ॥
॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

[२]

अथाष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

(१-१९) १ मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः; २ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः; ३ शुनःशेप आजीगर्तिः; ४ शंयुर्बार्हस्पत्यः; ५ मेधातिथिः काण्वः; ६, ९ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; ७ वालखिल्यम् (आयुः काण्वः); ८ अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च; १० विश्वमना वैयश्वः; ११ सोभरिः काण्वः; १२ सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ अत्रिर्भौमः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः), १३ कलिः प्रागाथः; १४, १७ विश्वामित्रः प्रागाथः; १५ मेध्यातिथिः काण्वः, १६ निध्रुविः काश्यपः; १८ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः ॥ १-२, ४, ६-७, ९-१०, १३, १५ इन्द्रः; ३, ११ १८ अग्निः; ५ विष्णुः, ५ (६) देवो वा; ८, १२, १६ पवमानः सोमः; १४, १७ इन्द्राग्नी ॥ १-५, १४ १६-१८ गायत्री; ६, ७, ९, १२, १३ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ८ अनुष्टुप् १० उष्णिक्, ११ काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १५ बृहती ॥

१६५७ पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥ ८।२।२५ १२३
१६५८ एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥ ८।२।२७
१६५९ पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
नि यमते शतमूतिः ॥३॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० ३) ॥ १ (ति) ८।२।२८
१६६० आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥ ८।९२।२२ १९७
१६६१ विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥ ८।९२।२३
१६६२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥ (धा० ११ । उ० १ । स्व० १) ॥२ (क)॥ ८।९२।२४

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६६३ जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥ १।२७।१० १५

१६६४ स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
धियें वाजाय हिन्वतु ॥ २ ॥ १।२७।११

१६६५ स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० १)॥३(हृ)॥ १।२७।१२

१६६६ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥ ६।४५।२२ ११५

१६६७ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः।
यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥ २ ॥ ६।४५।२३

१६६८ कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ (धा० १५ । उ० २ । स्व० ४) ॥४(फी)॥ ६।४५।२४

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१६६९ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले ॥ १ ॥ १।२२।१७

१६७० त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥ १।२२।१८

१६७१ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥ १।२२।१९

१६७२ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥ १।२२।२०

१६७३ तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥ १।२२।२१

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६७४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥ (धा० ३३ । उ० २ । स्व० ६) ॥५(ट्र)॥ १।२२।१६

१६७५ मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥७।३२।१ २८४

१६७६ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥६(डी)॥ ७।३२।२
(धा १३ । उ० ४ । स्व० ४)

१६७७ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥ ८।५२।९

१६७८ समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः॥२॥७(ठा)॥ ८।५२।१०
(धा० १३ । उ० २ । स्व० २)

१६७९ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥ ९।९८।१० १३३१

१६८० तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ २ ॥ ९।९८।१२

१६८१ परि त्यं हर्यतं हरिं [बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति] ॥३॥ ८ (हा) ॥ ९।९८।७ १३२९ ५५२।
(धा० १६ । उ० नास्ति । स्व० २)

१६८२ कस्तमिन्द्र त्वा वसु[वा मर्त्यो दधर्षति। (वसो। आ)
श्रद्धा हि ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति] ॥ १ ॥ ७।३२।१४ २८०

१६८३ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ २ ॥ ९(यि)॥ ७।३२।१५
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० ३)

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६८४ एवु मघोर्मदिन्तरं सिश्चाध्वर्यो अन्धसः।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ १ ॥ ८।२४।१६ १८५

१६८५ इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥ २ ॥ ८।२४।१७

१६८६ तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ३ ॥ ॥१०(क)॥ ८।२४।१८
(धा० १६ । उ० १ । स्व० १)

१६८७ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥ ८।१९।१ १०९

१६८८ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥२॥११(या)॥ ८।१९।२
(धा० १७ । उ० नास्ति । स्व० २)

१६८९ आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥ १ ॥ ९।१०७।१० ५१३

१६९० स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥२॥१२(तु)॥
(धा० १४ । उ० १ । स्व० ५ ।) ९।१०७।११

१६९१ वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥ ८।६६।७ २७२

१६९२ वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥२॥ १३(खा) ॥
(धा० १६ । उ० २ । स्व० २) ८।६६।८

१६९३ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥ ३।१२।९

(ऋग्वेदे) (सामवेदे)

१६९४ इन्द्राग्नी अपसस्परि [उप प्र यन्ति धीतयः।
ऋतस्य पथ्या३ अनु] ॥ २ ॥ (ईपरि। उप) ३।१२।७ १५७७

१६९५ इन्द्राग्नी तविषाणि वां [सधस्थानि प्रयांसि च।
युवोरप्तूर्यं हितम्] ॥३॥ (धा० ६ । उ० १ । स्व० १) ॥ १४(क) ॥ ३।१२।८ १५७८

१६९६ क ईं वेद सुते सचा [पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः] ॥ १ ॥ ८।३३।७ २९७

१६९७ दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २ ॥ ८।३३।८

१६९८ य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥३॥१५(ही)॥ ८।३३।९
(धा० ११ । उ० नास्ति । स्व० ४)

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१६९९ पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः।
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥ ९।६३।२५

१७०० पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत।
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥ ९।६३।२७

१७०१ पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥ (धा० १५ । उ० २ । स्व० १)।१६(क)॥ ९।६३।२६

१७०२ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥ ३।१२।४

१७०३ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो [नीथाविदो जरितारः।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे] ॥ २ ॥ (नेः।) ३।१२।५ १५७५

१७०४ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो [दासपत्नीरधूनुतम् ।　　(असुरः)
साकमेकेन कर्मणा] ॥३॥ (धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० १) ॥१७(र)॥ ३।१२।६　　१५७६

१७०५ उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥　　६।१६।३७

१७०६ उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥　　६।१६।३८

१७०७ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥ (धा० ७ । उ० नास्ति । स्व० १)॥१८(य)॥६।१६।३९

१७०८ ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।　　(न ऋग्वेदीयः)
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

१७०९ य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥　　(न ऋग्वेदीयः)

१७१० अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥ ३ ॥ (धा० ११ । उ० १ । स्व० २) ॥१९(का)॥ (न ऋग्वेदीयः)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

॥ इत्यष्टमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ८-२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

[३]

अथ अथाष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ८-३ ॥

(१--१८) १ द्विरूप आङ्गिरसः; २, १८ अवत्सारः काश्यपः; ३ विश्वामित्रो गाथिनः; ४ देवातिथिः काण्वः; ५,८,९,१६ गोतमो राहूगणः; ६ वामदेवो गौतमः, ७ प्रस्कण्वः काण्वः; १० वसुश्रुत आत्रेयः; ११ सत्यश्रवा आत्रेयः; १२ अवस्युरात्रेयः; १३ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ; १४ कुत्स आङ्गिरसः; १५ अत्रिर्भौमः, १७ दीर्घतमा औचथ्यः ॥ १,१०,१३ अग्निः; २,१८ पवमानः सोमः; ३-५ इन्द्रः; ६,८,११,१४ (१ उत्तरार्धः रात्रिश्च), १६ उषाः; ७, ९, १२, १५, १७ अश्विनौ ॥ १-२, ६-७, १८ गायत्री; ३, १३-१५ त्रिष्टुप्; ४-५ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ८-९ उष्णिक् १०-१२ पङ्क्तिः; १६, १७ जगती ॥

१७११ अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्व३ स्वाम् ।　　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥　　८।४४।१२

१७१२ ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥　　८।४४।१३

१७१३ स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥३॥ (धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४) ॥१(ली)।　　८।४४।१४

१७१४ उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥　　९।५३।१

१७१५ अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥२॥　　९।५३।२

१७१६ अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥३॥　　९।५३।३

१७१७ तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥४॥ (धा० २० । उ० १ । स्व० ४) ॥२(पी)॥　　९।५३।४

१७१८ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥ ३।४५।१　　२४६

१७१९ वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।　　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ॥ २ ॥　　३।४५।२

१७२० गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥ ३ (छा)॥
(धा० १३ । उ० २ । स्व० २)　　३।४५।३

१७२१ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ १ ॥　　८।४।३　　२५२

१७२२ मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥२॥४(घ)॥　　८।४।४
(धा० २१ । उ० ४ । स्व० १)

१७२३ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १ ॥　　१।८४।१९　　२४७

१७२४ मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२॥५(का)॥
(धा० २१ । उ० १ । स्व० २)　　१।८४।२०

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१७२५ प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥　　४।५२।१

१७२६ अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥　　४।५२।२

१७२७ उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥ (धा०९ । उ० नास्ति । स्व० ३)॥६(लि)॥　　४।५२।३

१७२८ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥　　१।४६।१

१७२९ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।　　(ऋग्वेदे) (सामवेदे)
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥　　१।४६।२

१७३० वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥ (धा०१४ । उ० नास्ति । स्व०३) ॥७(लि)॥　　१।४६।३

१७३१ उपस्तचित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥　　१।९२।१३

१७३२ उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥　　१।९२।१४

१७३३ युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥ ८ (हि) ॥　　१।९२।१५
(धा० ६ । उ० ना० । स्व० ३)

१७३४ अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥　　१।९२।१६

१७३५ एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ २ ॥　　१।९२।१८

१७३६ यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥ ९ (भा) ॥　　१।९२।१७
(धा० २० । उ० ४ । स्व० २)

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१७३७ अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥　　४२५

१७३८ अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।　　५।६।१
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥　　५।६।२

१७३९ सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥१०(घु)॥
(धा० १६ । उ० ४ । स्व० ५)　५।६।२

१७४० महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥ ५।७९।१　४२१
१७४१ या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥ ५।७९।२
१७४२ सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३(तु)११॥
(धा० १९ । उ० १ । स्व० ५)　५।७९।३

१७४३ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥
५।७५।१　४१८
१७४४ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥
५।७५।२
१७४५ आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥(था)१२॥
(धा० १० । उ० नास्ति । स्व० २)　५।७५।३

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१७४६ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥१॥ ५।१।१　७३
१७४७ अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशदर्दर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥२॥ ५।१।२

१७४८ यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३॥१३(लि)॥
(धा० १९ । उ० नास्ति । स्व० ३)　५।१।३

१७४९ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥　१।११३।१
१७५० रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥　१।११३।२
१७५१ समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३॥१४(म)॥
(धा० ३० । उ० ५ । स्व० १)　१।११३।३

१७५२ आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥　५।७६।१
१७५३ न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२॥　५।७६।२
१७५४ उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥१५(लो)॥
(धा० २४ । उ० नास्ति । स्व० ९)　५।७६।३

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

१७५५ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥
१।९२।१
१७५६ उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥　१।९२।२

१७५७ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥१६(कि)॥
(धा० २६ । उ० १ । स्व० ३)　१।९२।३

१७५८ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥
१।१५७।१
१७५९ यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
१।१५७।२
१७६० अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥१७(छा)॥
(धा० २२ । उ० २ । स्व० २) १।१५७।३

१७६१ प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥　९।५७।१
१७६२ अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥　९।५७।२
१७६३ स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥　९।५७।३
१७६४ स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दवा भर ॥४॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० ४) ॥१८(नी)॥　९।५७।४

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इति अष्टमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः, अष्टमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ८ ॥

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः ।

[१]

अथ नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

(१-१८) १ नृमेध आङ्गिरसः; २ ... ३ प्रियमेध आङ्गिरसः; ४ दीर्घतमा औचथ्यः; ५ वामदेवो गौतमः; ६ प्रस्कण्वः काण्वः; ७ बृहदुक्थो वामदेव्यः; ८ बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः; ९,१७ जमदग्निर्भार्गवः; १० सुकक्ष आंगिरसः; ११-१३ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः; १४ सुदाः पैजवनः; १५ मेधातिथिः काण्वः; १६ नीपातिथिः काण्वः; १८ परुच्छेपो दैवोदासिः ॥ १, १७ पवमानः सोमः; ३, ७, १०, १६ इन्द्रः; ४-६, १८ अग्निः; ९ मरुतः; १० सूर्यः ॥ २...... ॥ १, ८, १०, १५-१७ गायत्री; (१७ नित्यपदा) २...... ; ३ अनुष्टुम्मुखा प्रगाथः (१ अनुष्टुप्+गायत्री); ४, ११, १३ विराट्; ५ पदपंक्तिः; ६, ९, १२ प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतो-बृहती); ७ त्रिष्टुप्, १४ शक्वरी, १८ अत्यष्टिः ॥

१७६५ प्रास्य धारा अक्षरन्वृष्णः सुतस्यौजसः ।　(ऋग्वेदे)(सामवेदे)
देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥　९।२९।१
१७६६ सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥　९।२९।२
१७६७ सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥३॥ (धा० १२ । उ० नास्ति । स्व०२) ॥१(पि)॥　९।२९।३
१७६८ एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ १ ॥　(न ऋग्वेदीयः)　४३८
१७६९ त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥ २ ॥　(न ऋग्वेदीयः)
१७७० वि स्रुतयो यथा पथा [इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः] ॥ ३ ॥ २ (प) ॥ (न ऋग्वेदीयः)　४५३
(धा० ५ । उ० १ । स्व० १)
१७७१ आ त्वा रथं यथोतये [सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम्] ॥ १ ॥　८।६८।१　३५४
१७७२ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥　८।६८।२

१७७३ यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३॥ (धा०१० । उ० नास्ति । स्व०१) ॥३(ब)॥ ८।६८।३

१७७४ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ १ ॥ १।१४९।३

१७७५ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ २ ॥ १।१४९।४

१७७६ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ३ ॥ ४ (छ) ॥ १।१४९।५
(धा० १२ । उ० २ । स्व० १)

१७७७ अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥ ४।१०।१ ४३४

१७७८ अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीरृतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥ ४।१०।२

१७७९ एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्ण३ ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥ ५ (चि) ॥ ४।१०।३
(धा० ७ । उ० १ । स्व० ३)

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

१७८० अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥ १।४४।१ ४०

१७८१ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२॥६(ला)॥
(धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० २) १।४४।२

१७८२ विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ १ ॥ १०।५५।५ ३२५

१७८३ शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीडः ।(ऋग्वेदे)(सामवेदे)
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥२॥ १०।५५।६

१७८४ ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥३॥७(घे)॥
(धा० ३१ । उ० ४ । स्व० ७) १०।५५।७

१७८५ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥ ८।९४।४ १७४

१७८६ पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥ ८।९४।५

१७८७ उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥३॥ (धा० ९ । उ० नास्ति । स्व० ४) ॥८(ली)॥ ८।९४।६

१७८८ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ १ ॥ ८।१०१।११ २७६

१७८९ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥२॥९(त)॥
(धा० १४ । उ० १ । स्व० १) ८।१०१।१२

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

१७९० उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥ ८।९३।३१ १५०

१७९१ द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥ ८।९३।३२

१७९२ त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥३॥(धा०१३ । उ० नास्ति । स्व० ४) ॥१०(री)॥ ८।९३।३३

१७९३ प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ १ ॥ ७।३१।१० ३२८

१७९४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ २ ॥ ७।३१।११

१७९५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ ३ ॥ ॥ ११ (हि) ॥ ७।३१।१२
(धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ३)

१७९६ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥ १ ॥ ७।३२।१८ ३१०

१७९७ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ॥३॥१२(ना)॥
(धा० १४ । उ० १ । स्व० २) ७।३२।१९

१७९८ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ १ ॥ ७।२२।४

१७९९ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥ ७।२२।५

१८०० भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥३॥ (धा० १५ । उ० ३ । स्व० २) ॥१३(या)॥ ७।२२।६

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

१८०१ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधि धन्वसु ॥ १ ॥ १०।१३३।१

१८०२ त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥ १०।१३३।२

१८०३ वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥(टि)१४॥
(धा० ४३ । उ० ६ । स्व० ३) १०।१३३।३

१८०४ रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः ।
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥ ८।२।१३

१८०५ उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीयमानम् ॥२॥ ८।२।१४ २२५

१८०६ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥३॥ (धा० १४ । उ० १ । स्व० ३) ॥१५(ति)॥ ८।२।१५

१८०७ एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥ ८।३४।१ ३४८

१८०८ अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥ ८।३४।३

१८०९ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥१६(व)॥ ८।३४।२
(धा० ५ । उ० नास्ति । स्व० १)

१८१० पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १ ॥ ९।६७।१६

१८११ ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ २ ॥ ९।६७।१८

१८१२ असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥३॥१७(रौ)॥ ९।६७।१७
(धा० ८ । उ० नास्ति । स्व० नास्ति)

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

१८१३ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१॥ १।१२७।१ ४६५

१८१४ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२॥ १।१२७।२

१८१५ स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
निष्पहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३॥१८(ठी)॥ १।१२७।३
(धा० ४३। उ० २। स्व० ४)

॥ इति नवमप्रपाठके प्रथमोऽर्धः ॥ ९-१ ॥

[२]

अथ नवमप्रपाठके द्वितीयोऽर्धः ॥ ९-२ ॥

(१-१३) १ अग्निः पावकः; २ सोभरिः काण्वः, ३ अरुणो वैतहव्यः, ५-६ अवत्सारः काश्यपः, ९ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, १० त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा; ११ उलो वातायनः, १३ वेनो भार्गवः, ४, ७, ८, १२। १-४, ७-८, १२ अग्निः; ५-६ विश्वे देवाः; ९ इन्द्रः; १० आपः; ११ वायुः १३ वेनः १ (१-२) विष्टारपंक्तिः, १ (३-५) सतोबृहती, १ (६) उपरिष्टाज्ज्योतिः, २ काकुभः प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती)। ३ जगती, ५-६, १३ त्रिष्टुप्। ४,७,-११ गायत्री, ४, ७, ८, १२।

१८१६ अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे ॥१॥ १०।१४०।१

१८१७ पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥ १०।१४०।२

१८१८ ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥ १०।१४०।३

९५

१८१९ इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४॥ १०।१४०।४

१८२० इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥ १०।१४०।५

१८२१ ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥१(वि)॥ १०।१४०।६
(धा० ५९। उ० ३। स्व० ३)

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥ ५॥

१८२२ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥१॥ ८।१९।३० १०८

१८२३ तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्ण[illegible] दृदे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥२॥२(यी)॥ ८।१९।३१
(धा० १२। उ० नास्ति। स्व० ४)

१८२४ तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥१॥३(रि)॥
(धा० १३। उ० नास्ति। स्व० ३) १०।९१।६

१८२५ अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति।
महिषीव वि जायते ॥१॥ (धा० ७। उ० नास्ति। स्व[illegible] ४ (या)॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८२६ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु [illegible] यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्[illegible] ओकाः ॥५(या)॥
(धा० ७। उ० नास्ति। स्व० २) ५।४४।१४

१८२७ अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥६(वा)॥
(धा० १०। उ० नास्ति। स्व० २) ५।४४।१५

१८२८ नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
युञ्जे वाचं शतपदीम् ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८२९ युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८३० गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥३॥(धा० १२। उ० नास्ति। स्व० ५)॥७(यु)॥(न ऋग्वेदीयः)

१८३१ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८३२ पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा।
पुनर्नः पाह्यंहसः ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८३३ सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥(धा० ८। उ० २। स्व० २)॥८(ठा)॥(न ऋग्वेदीयः)

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

१८३४ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥ ८।१४।१ १२२

१८३५ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥ ८।१४।२

१८३६ धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥(धा० १५। उ० १। स्व० ३)॥९(पि)॥ ८।१४।३

१८३७ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥ १०।९।१

१८३८ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥ १०।९।२

१८३९ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
आपो जनयथा च नः ॥३॥(धा० १०। उ० नास्ति। स्व० २)॥१०(वा)॥ १०।९।३

१८४० वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ १ ॥ १०।१८६।१ १८४

१८४१ उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥ १०।१८६।२

१८४२ यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा।
तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥ (धा० १०। उ० १। स्व० नास्ति) ॥११(पौ)॥ १०।१८६।३

१८४३ अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं बिभ्रदत्कं सुपर्णः।
सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८४४ अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥
(न ऋग्वेदीयः)

१८४५ अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥३॥१२(पु)॥
(धा० २०। उ० १। स्व० ५) (न ऋग्वेदीयः)

१८४६ नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥ १०।१२३।६ १२०

१८४७ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥२॥ १०।१२३।७

१८४८ द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥१३(खु)॥
(धा० २६। उ० २। स्व० ५) १०।१२३।८

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥ ७॥ इति नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः ॥९-२॥

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

[१]

अथ नवमप्रपाठके तृतीयोऽर्धः ॥ ९-३ ॥

(१-९) १-४, ५ (१-२), अप्रतिरथ ऐन्द्रः; ५ (३), ६ (३), ८ (१, ३) पायुर्भारद्वाजः; ७
(१-२) शासो भारद्वाजः; ९ (१) जय ऐन्द्रः; ९ (२-३) गोतमो राहूगणः; ४ (३) ६ (१-२)-?
७ (१) ... ८ (२) ... ॥ १, २ (२-३), ३-४, ५ (२), ६, ७, ९ (१) इन्द्रः;
५ (२) इन्द्रो मरुतो वा; २ (१) बृहस्पतिः; ५ (१) अप्वा देवी, ५ (३)
इषवः; ६ (३) (संग्रामाशिषः) युद्धभूमि-कवच-ब्राह्मणस्पत्यादितयः; ८
(१, ३) [संग्रामाशिषः १ वर्म-सोम-वरुणाः, ३ देवब्रह्माणि];
९ सोमावरुणौ । (२-३) विश्वे देवाः; ८ (३)... ॥ ३ ॥ १-४, ५
(१), ६(१) ८ (१) ९ (१-२) त्रिष्टुप्; ५ (२-३), ६ (२)
७ (१-२), ८ (२) अनुष्टुप्; ६ (३) पंक्तिः; ९ (३)
विराट्स्थाना; ७ (३) विराड् जगती ८ (२)...॥

१८४९ आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।(ऋग्वेदे)(सामवेदे)
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥ १०।१०३।१
१८५० संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥ १०।१०३।२
१८५१ स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥१(फे)॥
(धा० ४० । उ० २ । स्व० ७) १०।१०३।३

१८५२ बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥१॥ १०।१०३।४
१८५३ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥२॥
१०।१०३।५
१८५४ गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥२(हे)॥
(धा० २६ । उ० नास्ति । स्व० ७) १०।१०३।६

१८५५ अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः । (ऋग्वेदे)(सामवेदे)
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥१॥ १०।१०३।७
१८५६ इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥ १०।१०३।८
१८५७ इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥३(च)॥
(धा २७ । उ० १ । स्व० १) १०।१०३।९

१८५८ उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१॥ १०।१०३।१०
१८५९ अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥ १०।१०३।११
१८६० असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात् ॥३॥५(चु)॥ (न ऋग्वेदीयः)
(धा० ३२ । उ० १ । स्व० ५)

१८६१ अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१॥ १०।१०३।१२
१८६२ प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ २ ॥ १०।१०३।१३
१८६३ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ॥३॥ ५ (ठा)॥ ६।७५।१६
(धा० १८ । उ० २ । स्व० २)

१८६४ कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥१॥ (न ऋग्वेदीयः)

१८६५ अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
१८६६ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु
विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥ ६ (गा) ॥ (धा० २७ । उ० नास्ति । स्व० २) ६।७५।१७

१८६७ वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ १ ॥ १०।१५२।३
१८६८ वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ २ ॥ १०।१५२।४
१८६९ इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥३॥७(थि)॥
(धा० २९ । उ० २ । स्व० ३) (न ऋग्वेदीयः)

१८७० मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥ ६।७५।१८
१८७१ अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥ २ ॥ (न ऋग्वेदीयः)
१८७२ यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥३॥८(वी)॥
(धा० २५ । उ० नास्ति । स्व० ४) ६।७५।१९

१८७३ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥१॥ १०।१८०।२
१८७४ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ १।८९।८

१८७५ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । (ऋग्वेदे) (सामवेदे)
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥३॥ (धा० २६ । उ० १ । स्व० ६) ॥ ९(कू) ॥ १।८९।६

॥ इति नवमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः, नवमप्रपाठकश्च समाप्तः ॥ ९-३ ॥

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इत्युत्तरार्चिकः समाप्तः ॥

॥ इति सामवेदसंहिता समाप्ता ॥

अथ महानाम्न्यार्चिकः।

६४१ विदा मघवन् विदा गातुमनुशँसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो ॥ १ ॥
६४२ आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वऽ३र्नांशुः। प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥ २ ॥
६४३ एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मँहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसँ
आ याहि पिब मत्स्व (धा० २२। स्व० २। उ० २) ॥ ३ (छा) ॥
६४४ विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।
मँहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥ ४ ॥
६४५ यो मँहिष्ठो मघोनामँशुर्न शोचिः।
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥ ५ ॥
६४६ ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् (धा० १४। स्व० ३। उ० २) ॥६ (ठी)॥
६४७ इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः। स नः स्वर्षदति द्विषः ॥ ७ ॥
६४८ पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोऽँशुर्मदाय। सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते।
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ॥ ८ ॥
६४९ प्रभो जनस्य वृत्रहन् त्समर्येषु ब्रवावहै
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ९ ॥

अथ पञ्च पुरीषपदानि ॥

६५० एवाह्ये ३ऽ३ऽ३ व। एवा ह्यग्ने। एवाहीन्द्र।
एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः। ओं। एवा हि देवाः। ओम् ॥ १०(त्वी) ॥

॥ इति पञ्च पुरीषपदानि ॥ इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः ॥ (धा० २४। स्व० ६। उ० २)

[अस्माभिस्तु महानाम्न्यार्चिकः पूर्वं पादविच्छेदपूर्वकं मुद्रितः (पृष्ठे ७१—७२ मन्त्रसंख्या ६४१—६५० द्रष्टव्या)। अत्र तु वैदिकानां यथा पठनपाठनपरंपराऽस्ति तथैव संहिता मुद्रितेति ज्ञातव्यम्।]

शुद्धि-पत्रकम्

(कोष्ठाद्बहिरशुद्धम्, कोष्ठान्तर्गतं शुद्धं ज्ञातव्यम्)

मन्त्रक्रमाङ्कः= ४३ पुरस्पृहं (पुरुस्पृहं); यशा (यशा), ४६ शेपे वनेषु (शेपे वनेषु); ६६ तव (तव); ६९ मवसे (मवसे); ७७ धायि (धायी); १०१ माशा (माशा); ११३ साहा (सह); १२८ मत (मत्); २०८-८।९३।२६ (८।९३।१६); २१६ के हा (के ह); २४५-१३४१ (१३९१); २८२ स्वापे-(स्वापे); ३६० मिपे (मिपे); ४६६ विदद्विषन् (विदद्विषम्); ६१७ शीर्षा (शीर्षा), दशाङ्गुलम्....(दशाङ्गुलम्); ६१८ उदैत्पुरुष (उदैत्पुरुष); ६२३ पुरुपासो (परुपासो); ६२५ न्द्र दध्योज ई (न्द्र दध्योज ई); ८६५ गमदिन्द्र (गम इन्द्र); ८९९ घृष्टि (घृष्टि); ९०५ वा देव (वा देव); १२३९ सम्रे (सुम्ने); १४१४-१।२२।७ (८।१९।४); १८१५ पुरु (पुरू)

गणना-शुद्धिः।

२१० पृष्ठे (प्रथम-मण्डलस्य) सर्वयोगः २०५+पुनरुक्ताः ३१=२३६ ॥ २१२ पृष्ठे-(चतुर्थ-मण्डलस्य) सर्वयोगः २४+ पुनरुक्ताः ३=२७ ॥ २१२ पृष्ठे-(पञ्चम-मण्डलस्य) सर्वयोगः- ५३+पु० ८= ६१ ॥ २१६ पृष्ठे-(अष्टम-मण्डलस्य) सर्वयोगः ३६४+पु० ८८=४५२ ॥ २१९ पृष्ठे (नवम-मण्डलस्य) सर्वयोगः ५४७+पु० ९६=६४३ ॥ २२० पृष्ठे (दशम-मण्डलस्य) सर्वयोग १०१+पु० ९ = ११० ॥ एतेन सामवेदान्तर्गतानामृग्वेदमन्त्राणां गणनैवं भवति-

मण्डलं	मन्त्रसंख्या		पुनरुक्ताः		सर्व-योग
१	२०५		३१		२३६
२	११		१		१२
३	४२		७		४९
४	२४		३		२७
५	५३		८		६१
६	८१		१०		९१
७	७६		१४		९०
८	३६४		८८		४५२
९	५४७		९६		६४३
१०	१०१		९		११०
सर्वयोगः	१५०४	+	२६७	=	१७७१
,,	९९	+	५	=	१०४
,,	१६०३	+	२७२	=	१८७५

२२१ पृष्ठे चतुर्थ-प्रपाठकस्य द्वितीयार्धस्य मन्त्रसंख्या=४६ स्थाने '४९ अस्ति।'

२२४ पृष्ठे सामगानसूच्यां **प्रथमं, द्वितीयं** आदि पदानां अग्रे '**पृष्ठं**' पठनीयम्, यथा '**प्रथमं पृष्ठं, द्वितीयं पृष्ठं**' इ० ॥

जैमिनीय संहिता

सामवेदीया

जैमिनीयसंहिता

१.१

ऋ ६.१६.१०	अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
	नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥
६.१६.१	त्वम् अग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
	देवेभिर् मानुषे जने ॥ २ ॥
१.१२.१	अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
	अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥
६.१६.३४	अग्निर् वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर् विपन्यया ।
	समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥
८.८४.१	प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रम् इव प्रियम् ।
अग्नि...	अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥
८.७१.१	त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।
	उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥
६.१६.१६	एह्य् ऊ षु ब्रवाणि ते अग्न इत्थेतरा गिरः ।
	एभिर् वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥
८.११.७	आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच् चित् सधस्थात् ।
• त्वांकामया •	अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥
६.१६.१३	त्वाम् अग्ने पुष्करा्द् अध्य् अथर्वा निर् अमन्थत ।
	मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	अग्ने विवस्वद् आ भरास्मभ्यम् ऊतये महे ।
	देवो ह्य् असि नो दृशे ॥ १० ॥ ॥१॥

१.२

ऋ ८.७५.१०	नमस् ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
...अर्दय (एवं कौ)	अमैर् अमित्रम् अर्दया ॥ १ ॥
४.८.१	दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहम् अमर्त्यम् ।
	यजिष्ठम् ऋञ्जसे गिरा ॥ २ ॥
८.१०२.१३	उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर् हविष्कृतः ।
	वायोर् अनीके अस्थिरन् ॥ ३ ॥
१.१.७	उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर् धिया वयम् ।
	नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥

१.२७.१०	जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
	स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥
१.१९.१	प्रति त्यं चारुम् अध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
	मरुद्भिर् अग्न आ गहि ॥ ६ ॥
१.२७.१	अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
	सम्राजन्तम् अध्वराणाम् ॥ ७ ॥
८.१०२.४	और्वभृगुवच् छुचिम् अप्नवानवद् आ हुवे ।
	अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ८ ॥
८.१०२.२२	अग्निम् इन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
• ईधे •	अग्निम् इन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥
८.६.१०	आद् इत् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् ।
...दिवा	परो यद् इध्यते दिवि ॥ १० ॥ ॥२॥

१.३

ऋ ८.१०२.७	अग्निं वो वृधन्तम् अध्वराणां पुरूतमम् ।
	अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥
६.१६.२८ 'वासद्...	अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यंसद् विश्वं न्य् अत्रिणम् ।
...वनते •	अग्निर् नो वंसते रयिम् ॥ २ ॥
४.९.१ 'य इम् आ • •	अग्ने मृळ महं अस्य् अय आ देवयुं जनम् ।
	इयेथ बर्हिर् आसदम् ॥ ३ ॥
७.१५.१३ ...ष्म • रिषतः	अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रिषतः ।
	तपिष्ठैर् अजरो दह ॥ ४ ॥
६.१६.४३ • युक्ष्वा ...	अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
• • मन्यवे	अरं वहन्त्य् आशवः ॥ ५ ॥
७.१५.७ '• देव धीमहि ।	नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।
	सुवीरम् अग्न आहुत ॥ ६ ॥
८.४४.१६	अग्निर् मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
	अपां रेतांसि जिन्वति ॥ ७ ॥
१.२७.४	इमम् ऊ षु त्वम् अस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
	अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥
८.७४.११ यं...वनिष्ठद् • •	तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठद् अग्ने अङ्गिरः ।
	स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥
४.१५.३	परि वाजपतिः कविर् अग्निर् हव्यान्य् अक्रमीत् ।
	दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥
१.५०.१	उद् उ त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
	दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥
१.१२.७	कविम् अग्निम् उप स्तुहि सत्यधर्माणम् अध्वरे ।

	देवम् अमीवचातनम् ॥ १२ ॥
१०.९.४ 'आपो • •	शं नो देवीर् अभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
	शंयोर् अभि स्रवन्तु नः ॥ १३ ॥
८.८४.७ • • परीणसो • • दंपते	कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
	गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥ ॥३॥

१.४

ऋ ६.४८.१	यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
	प्रप्र वयम् अमृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥
८.६०.९	पाहि नो अग्न एकया पाह्य् उत द्वितीयया ।
	पाहि गीर्भिस् तिसृभिर् ऊर्जां पते पाहि चतसृभिर् वसो ॥ २ ॥
६.४८.७ [दीदिहि	बृहद्भिर् अग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
'रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक	भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि ॥ ३ ॥
७.१६.७ त्वे (एवं कौ)...	त्वय्य् अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
	यन्तारो ये मघवानो जनानाम् ऊर्वं दयन्त गोनाम् ॥ ४ ॥
८.६०.१९ ...तेपानो • •	अग्ने अरितर् विश्पतिस् तपानो देव रक्षसः ।
• गृहपतिर् ...	अप्रोषिवान् गृहपते महं असि दिवस् पायुर् दुरोणयुः ॥ ५ ॥
१.४४.१ ...अमर्त्यं (एवं कौ)	अग्ने विवस्वद् उषसश् चित्रं राधो अमर्त्यम् ।
	आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वम् अद्या देवं उषर्बुधः ॥ ६ ॥
६.४८.९ ...चोदय (एवं कौ)	त्वं नश् चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदया ।
	अस्य रायस् त्वम् अग्ने रथीर् असि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ७ ॥
८.६०.५ ...ऋतस् •	त्वम् इत् सप्रथा अस्य् अग्ने त्रातर् ऋतः कविः ।
	त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ८ ॥
८.६०.११	आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
...स्वयशस्तरम्	रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥ ९ ॥
८.१०३.६	यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
...यन्त्य	मधोर् न पात्रा प्रथमान्य् अस्मै प्र स्तोमा यन्त्व् अग्नये ॥ १० ॥ ॥४॥

१.५

ऋ ७.१६.१	एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातम् आ हुवे ।
	प्रियं चेतिष्ठम् अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतम् अमृतम् ॥ १ ॥
८.६०.१५ • • मात्रोः ...	शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।

• हव्या ...	अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आद् इद् देवेषु राजसि ॥ २ ॥
८.१०३.१	अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्य् आदधुः ।
...नक्षन्त •	उपो षु जातम् आर्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥
८.२७.१	अग्निर् उक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिर् अध्वरे ।
...पतिं देवाँ (ओ पते देवा) • •	ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस् पते देवं अवो वरेण्यम् ॥ ४ ॥
८.७१.१४	अग्निम् ईडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
...ऽग्निं • •	अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरो अग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ५ ॥
१.४४.१३	श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर् देवैर् अग्ने सयावभिः ।
• सीदन्तु...प्रातर्यावाणो अध्वरम्	आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिर् अध्वरे ॥ ६ ॥
८.१०३.२ 'देवाँ अच्छा • •	प्र दैवोदासो अग्निर् देव इन्द्रो न मज्मना ।
...नाकस्य सानवि	अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ७ ॥
८.१.१८	अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनाद् अधि ।
...वृण (एवं कौ)	अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृणा ॥ ८ ॥
३.९.२	कायमानो वना त्वं यन् मातॄर् अजगन्न् अपः ।
...इहाभवः	न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्न् इहाभुवः ॥ ९ ॥
१.३६.१९	नि त्वाम् अग्ने मनुर् दधे ज्योतिर् जनाय शश्वते ।
	दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १० ॥ ॥५॥

१.६

ऋ ७.१६.११ ...विवष्ट्य् •	देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्व् आसिचम् ।
	उद् वा सिञ्चध्वम् उप वा पृणध्वम् आद् इद् वो देव ओहते ॥ १ ॥
१.४०.३	प्रैतु ब्रह्मणस् पतिः प्र देव्य् एतु सूनृता ।
	अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ २ ॥
१.३६.१३	ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
	ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यद् अञ्जिभिर् वाघद्भिर् विह्वयामहे ॥ ३ ॥
८.१०३.४ • यं • निनीषसि ...	प्र यो राये निनीषति मर्तो यस् ते वसो दाशत् ।
	स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥
१.३६.१	प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
• • • ईमहे • सीमिदन्य ईळते	अग्निं सूक्तेभिर् वचोभिर् वृणीमहे यं सम् इद् अन्य इन्धते ॥ ५ ॥
३.१६.१ • • • महः •	अयम् अग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य ।

	राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ६ ॥
७.१६.५	त्वम् अग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।
...वेषि • •	त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥ ७ ॥
६.१.१	सखायस् त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
• • • सुदीदितिं...	अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रदूर्तिम् अनेहसम् ॥ ८ ॥ ॥६॥
	१.७
ऋग्वेदे नास्ति	आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
	इडस् पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥
ऋ १०.११५.१	चित्र इच् छिशोस् तरुणस्य वक्षथो न यो मातराव् अन्वेति धातवे ।
अन्वेति •	
• यदि जीजनद् • च नु ववक्ष • •	अनूधा यद् अजीजनद् अधा चिद् आ ववक्षत् सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥ २ ॥
१०.५६.१	इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्...	संवेशनस् तन्वे चारुर् एधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ ३ ॥
१.९४.१	इमं स्तोमम् अर्हते जातवेदसे रथम् इव सं महेमा मनीषया ।
कौ ...रिषाम	भद्रा हि नः प्रमतिर् अस्य संसद्य् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
ऋ ६.७.१	मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरम् ऋत आ जातम् अग्निम् ।
...आसन्ना • •	कविं सम्राजम् अतिथिं जनानाम् आसन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥
६.२४.६ 'उक्थेभिरिन्द्रजनयन्त यज्ञैः {	वि त्वद् आपो न पर्वतस्य पृष्ठाद् उक्थेभिर् अग्ने जनयन्त देवाः ।
• त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त • • { आजुर्गिर्वाहो • {	तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्य् आजिं न गिर्ववाहो जिग्युर् अश्वाः ॥ ६ ॥
४.३.१	आ वो राजानम् अध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
	अग्निं पुरा तनयित्नोर् अचित्ताद् धिरण्यरूपम् अवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥
७.८.१	इन्धे राजा सम् अर्यो नमोभिर् यस्य प्रतीकम् आहुतं घृतेन ।
...सबाध अग्निर् (एवं कौ) अग्र •	नरो हव्येभिर् ईडते सबाधो अग्निर् अग्रम् उषसाम् अशोचि ॥ ८ ॥
१०.८.१	प्र केतुना बृहता यात्य् अग्निर् आ रोदसी वृषभो रोरवीति ।
• • अन्तॉं उपमॉं...	दिवश् चिद् अन्ताद् उपमाम् उद् आनड् अपाम् उपस्थे

• ववर्ध (एवं कौ)	महिषो ववर्धा ॥ ९ ॥
७.१.१ ...हस्तच्युती जनयन्त	अग्निं नरो दीधितिभिर् अरण्योर् हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।
...अथर्युम्	दूरेदृशं गृहपतिम् अथव्युम् ॥ १० ॥ ॥७॥
	१.८
ऋ ५.१.१	अबोध्य् अग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुम् इवायतीम् उषासम् ।
...सिस्रते •	यह्वा इव प्र वयाम् उज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकम् अच्छा ॥ १ ॥
अच्छ (एवं कौ)	
१०.४६.५ ...मूरं • • •	प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैर् अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं [नार्वाणं धनर्चम्	नयन्तं गीर्भिर् वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥
६.५८.१	शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौर् इवासि ।
• • • • स्वधावो ...	विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्न् इह रातिर् अस्तु ॥ ३ ॥
३.१.२३	इळाम् अग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
	स्यान् नः सूनुस् तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर् भूत्व् अस्मे ॥ ४ ॥
१०.४६.१ ...नृषद्वा • • उपस्थे	प्र होता जातो महान् नभोविन् नृषद्मा सीदद् अपां विवर्ते ।
दधिर् • • स ते वयांसि...	दधद् यो धायि सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥
७.६.१ • सम्राजो • प्रशस्ति...	प्र सम्राजम् असुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनाम् अनुमाद्यस्य ।
'वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि	इन्द्रस्येव प्र तवसः कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥
३.२९.२ 'गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु	अरण्योर् निहितो जातवेदा गर्भ इवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः ।
	दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर् हविष्मद्भिर् मनुष्येभिर् अग्निः ॥ ७ ॥
१०.८७.१९	सनाद् अग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
• • • क्रव्यादो...	अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥ ॥ ८ ॥
	१.९
ऋ ५.१०.१ • • • भर (एवं कौ)...	अग्न ओजिष्ठम् आ भरा द्युम्नम् अस्मभ्यम् अध्रिगो ।
• • राया परीणसा...	प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	यदि वीरो अनुष्याद् अग्निम् इन्धीत मर्त्यः ।

	आजुह्वद् धव्यम् आनुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥
ऋ ६.२.६ ...दिवि षन्छुक •	त्वेषस् ते धूम ऋण्वति दिवि सं शुक्र आततः ।
	सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥
६.२.१	त्वं हि क्षैतवद् यशो अग्ने मित्रो न पत्यसे ।
	त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥
५.१८.१ [स्पति	प्रातर् अग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु	विश्वे यस्मिन्न् अमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥ ५ ॥
५.२५.७	यद् वाहिष्ठं तद् अग्नये बृहद् अर्च विभावसो ।
	महिषीव त्वद् रयिस् त्वद् वाजा उद् ईरते ॥ ६ ॥
८.७४.१	विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
	अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥
५.१६.१	बृहद् वयो हि भानवे अर्चा देवायाग्नये ।
• • • प्रशस्तिभिर्...	यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥ ८ ॥
८.७४.४ आगन्म...	अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठम् अग्निम् आनवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते	यः स्म श्रुतर्वन्न् आर्क्ये बृहद् अनीक इध्यते ॥ ९ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः ।
	पिता यत् कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः ॥ १० ॥
	१.१०
[ईमहे	
ऋ १०.१४१.३ • • अवसे अग्नि गीर्भि-	सोमं राजानं वरुणम् अग्निम् अन्वारभामहे ।
आदित्यान्...	आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ १ ॥
{	इत एत उद् आरुहन् दिवः पृष्ठान्य् आरुहन् ।
ऋग्वेदे न सन्ति {	प्र भूर्जयो यथा पथो द्याम् अङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥
{	राये अग्ने महे त्वा दानाय सम् इधीमहि ।
{	ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी ॥ ३ ॥
२.५.३ ...ब्रह्माणि वेद तद्	दधन्वे वा यद् ईम् अनु वोचद् ब्रह्मेति वेर् उतत् ।
...इवाभवत्	परि विश्वानि काव्या नेमिश् चक्रम् इवाभुवत् ॥ ४ ॥
१.४५.१	त्वम् अग्ने वसुंर् इह रुद्रं आदित्यं उत ।
[अध्वरम्परि	यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ५ ॥
१०.८७.२५ ...शृणीहि • । कौ ...वि-	प्रत्य् अग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतः प्रति ।
• • • वि रुज •	यातुधानस्य रक्षसो बलं न्य् उब्ज वीर्यम् ॥ ६ ॥
	१.११
[द्रविणं) वोचे ...	
'ऋ १.१५०.१ • • दाश्वान् (कौ	पुरु त्वा दाशिवं वोचेद् अरिर् अग्ने तव स्विद् आ ।
...महस्य (एवं कौ)	तोदस्येव शरण आ महस्या ॥ १ ॥
१.१०.५	प्र होत्रे पूर्व्यं वचो ऽग्नये भरता बृहत् ।
	विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥

१.७९.४	अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
• धेहि...	अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥
१.१०.७	अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
[शासत •	होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥
९.१०२.४ जज्ञानं • मातरो वेधाम-	जज्ञानः सत मातृभिर् मेधाम् आशासत श्रिये ।
...चिकेत यत्	अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतद् आ ॥ ५ ॥
८.१८.७	उत स्या नो दिवा मतिर् अदितिर् ऊत्या गमत् ।
• शंताति • करद् (एवं कौ)...	सा शंताता मयस् कराद् अप स्रिधः ॥ ६ ॥
८.२३.१ ईळिष्वा (एवं कौ)...	ईळिष्व हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् ।
	चरिष्णुधूमम् अगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥
८.२३.१५ ...घन (एवं कौ)...	न तस्य मायया चना रिपुर् ईशीत मर्त्यः ।
...हव्यदातिभिः	यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥
६.५१.१३	अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनम् अग्ने दुराध्यम् ।
	दविष्ठम् अस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ९ ॥
८.२३.१४	श्रुष्ट्य् अग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
• • तपुषा...	नि मायिनस् तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥ ॥११॥
	१.१२
ऋ ८.१०३.८	प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
	उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥
८.१९.३० ...तिरते वाजभर्मभिः	प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस् तरति वाजकर्मभिः ।
...आवरः	यस्य त्वं सख्यम् आविथ ॥ २ ॥
८.१९.१	तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवम् अरतिं दधन्विरे ।
...ओहिरे	देवत्रा हव्यम् ऊहिषे ॥ ३ ॥
८.१०३.१२ • • हृणीतामतिथिर्...	मा नो हृणीया अतिथिं वसुर् अग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
	यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥
८.१९.१९ ...सुभग (एवं कौ) • •	भद्रो नो अग्निर् आहुतो भद्रा रातिः सुभगा भद्रो अध्वरः ।
	भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥
८.१९.३	यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारम् अमर्त्यम् ।
	अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥
८.१९.१५ ...सासहद् (कौ सासाहा) [• • •	तद् अग्ने द्युम्नम् आ भर यत् सासह सदने कं चिद् अत्रिणम् ।
...दूढ्यः	मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥
८.२३.१३ ...विशि	यद् वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
	विश्वेद् अग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । तै १.५.१०.२ का ७.१४	अयम् अग्निः श्रेष्ठतमो अयं वां मधुमत्तमः ।
[(उभे संहिते नाना)	अयं सहस्रसातमो अस्मिन्न् अस्तु सुवीर्यम् ॥ ९ ॥

ऋग्वेदे नास्ति । मै ४.१४.१४	आदित्यः शुक्र उद् अगात् पुरस्ताज् ज्योतिः कृण्वन्
	वि तमो बाधमानः ।
मै ... रोचमाना आगात् }	आभासमानः प्रदिशो नु सर्वा भद्रस्य कर्ता रुचयन्
	न आगात् ॥ १० ॥ ॥१२॥

इत्याग्नेयं पर्व समाप्तम् ॥

१.१३

ऋ ६.४५.२२	तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
	शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥
८.९२.१६	यस् ते नूनं शतक्रतव् इन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
[यवावटे) ..	तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥
८.७२.१२ • उपावतावतं (कौ उप	गाव उपा यवावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
	उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥
८.९२.२५ • • गायति श्रुतकक्षो	अरम् अश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
[अरं •	अरम् इन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥
८.९३.७	तम् इन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
	स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥
१०.१५३.२ ... सहसो (एवं कौ) • •	त्वम् इन्द्र बलाद् अधि सहसा जात ओजसः ।
त्वं वृषन् • •	त्वं सन् वृषन् वृषेद् असि ॥ ६ ॥
८.१४.५	यज्ञ इन्द्रम् अवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
	चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥
८.१४.१	यद् इन्द्राहं यथा त्वम् ईशीय वस्व एक इद् ।
... गोषखा •	स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥
८.२.२५	पन्यंपन्यम् इत् सोतार आ धावत मद्याय ।
	सोमं वीराय शूराय ॥ ९ ॥
८.२.१	इदं वसो सुतम् अन्धः पिबा सुपूर्णम् उदरम् ।
	अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥ ॥१॥

१.१४

ऋ ८.९३.१	उद् घेद् अभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
	अस्तारम् एषि सूर्य ॥ १ ॥
८.९३.४	यद् अद्य कच् च वृत्रहन्न् उदगा अभि सूर्य ।

	सर्वं तद् इन्द्र ते वशे ॥ २ ॥
६.४५.१	य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
	इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥
८.९२.३१ ... यमन्	मा न इन्द्राभ्य् आदिशः सूरो अक्तुष्व् आ यमत ।
	त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥
१.८.१	एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
कौ ... भरा	वर्षिष्ठम् ऊतये भर ॥ ५ ॥
ऋ १.७.५	इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रम् अर्भे हवामहे ।
	युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥
८.४५.२६	अपिबत् कद्रुवः सुतम् इन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
अत्रादेदिष्ट •	तत्राददिष्ट पौंस्यम् ॥ ७ ॥
७.३१.४ ... णोनुमो •	वयम् इन्द्र त्वायवो ऽभि प्र नोनुमो वृषन् ।
	विद्धी त्व् अस्य नो वसो ॥ ८ ॥
८.४५.१	आ घा ये अग्निम् इन्धते स्तृणन्ति बर्हिर् आनुषक् ।
	येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥
८.४५.४०	भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
.. भर (एवं कौ)	वसु स्पार्हं तद् आ भरा ॥ १० ॥ ॥२॥

१.१५

ऋ १.३७.३	इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् ।
• यामन् (कौ यामं) ..	नि यामं चित्रम् ऋञ्जते ॥ १ ॥
८.४५.१६	इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
	पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥
८.६.४	सम् अस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
	समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥
८.८३.१	देवानाम् इद् अवो महत् तद् आ वृणीमहे वयम् ।
	वृष्णाम् अस्मभ्यम् ऊतये ॥ ४ ॥
१.१८.१ सोमानं ...	सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस् पते ।
	कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥
८.९३.१८ बोधिन्मना ...	बोधन्मना इद् अस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।
	शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥
५.८२.४ अद्या ...	अद्य नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् ।
... सुव (एवं कौ)	परा दुष्ष्वप्न्यं सुवा ॥ ७ ॥
८.६४.७ क १ स्य ...	कास्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
	ब्रह्मा कस् तं सपर्यति ॥ ८ ॥
८.६.२८ • • संगये ...	उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् ।
	धिया विप्रो अजायता ॥ ९ ॥

८.१६.१	प्र सम्राजं चर्षणीनाम् इन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
	नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १० ॥ ॥३॥

१.१६

ऋ ८.९२.४	अपाद् उ शिप्रिय् अन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
६.४५.२५ • • • शतक्रतो ऽभि (कौ पुरूवसो ऽभि) • णोनुवुर (कौ नोनवुर्) • }	इन्दोर् इन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥
	इमा उ त्वा पुरोवसो अभि प्र नोनुवुर् गिरः ।
इन्द्र • • मातरः	गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥
१.८४.१५	अत्राह गोर् अमन्वत नाम त्वष्टुर् अपीच्यम् ।
	इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥
६.५७.४	यद् इन्द्रो अनयद् रितो महीर् अपो वृषन्तमः ।
• पूषाभवत् •	तत्र पूषाभुवत् सचा ॥ ४ ॥
८.९४.१	गौर् धयति मरुतां श्रवस्युर् माता मघोनाम् ।
	युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ५ ॥
८.९३.३१	उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
	उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥
८.९३.२३ ... वृधासो •	इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
	अच्छावभृथम् ओजसा ॥ ७ ॥
८.६.१० ... जग्रभ	अहम् इद् धि पितुः परि मेधाम् ऋतस्य जग्रह ।
	अहं सूर्य इवाजनि ॥ ८ ॥
१.३०.१३	रेवतीर् नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
	क्षुमन्तो याभिर् मदेम ॥ ९ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	सोमः पूषा च चेततुर् विश्वासां सुक्षितीनाम् ।
कौ .. हिता	देवत्रा रथ्योर् हितः ॥ १० ॥ ॥४॥

१.१७

ऋ ८.९२.१	पान्तम् आ वो अन्धस इन्द्रम् अभि प्र गायत ।
	विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
७.३१.१ ... गायत (एवं कौ)	प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायता ।
	सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥
८.२.१६	वयम् उ त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
	कण्वा उक्थेभिर् जरन्ते ॥ ३ ॥
८.९२.१९	इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
	अर्कम् अर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥
८.१७.११	अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
	एहीम् अस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
१.४.१	सुरूपकृत्नुम् ऊतये सुदुघाम् इव गोदुहे ।

	जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥
८.४५.२२	अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
	तृम्पा व्य् अश्नुही मदम् ॥ ७ ॥
८.८२.७	य इन्द्र चमसेष्व् आ सोमश् चमूषु ते सुतः ।
	पिबेद् अस्य त्वम् ईशिषे ॥ ८ ॥
१.३०.७	योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
	सखाय इन्द्रम् ऊतये ॥ ९ ॥
१.५.१	आ त्व् एता नि षीदतेन्द्रम् अभि प्र गायत ।
	सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥ ॥५॥

१.१८

ऋ ३.५१.१०	इदं ह्य् अन्व् ओजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा (एवं कौ) ..	पिब त्व् अस्य गिर्वणः ॥ १ ॥
१.८.५ • • परश् • नु ..	महं इन्द्रः पुरश् च नो महित्वम् अस्तु वज्रिणे ।
	द्यौर् न प्रथिना शवः ॥ २ ॥
८.८१.१ ... ग्राभं (एवं कौ) • •	आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं राभं सं गृभाय ।
	महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥
८.६९.४ • • • गिरेन्द्रम् (एवं कौ)	अभि प्र गोपतिं गिर इन्द्रम् अर्च यथा विदे ।
[• • •	सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
४.३१.१	कया नश् चित्र आ भुवद् ऊती सदावृधः सखा ।
	कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥
८.९२.७	त्यम् उ वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्व् आयतम् ।
	आ च्यावयस्य् ऊतये ॥ ६ ॥
१.१८.६	सदसस् पतिम् अद्भुतं प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम् ।
	सनिं मेधाम् अयासिषम् ॥ ७ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । ८.'श्री ७.५५.१ ये ते पन्था-	ये ते पन्था अधो दिवो येभिर् व्य् अश्वम् ऐरयः ।
[नो ऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः	उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥
८.९३.२८	भद्रंभद्रं न आ भरेषम् ऊर्जं शतक्रतो ।
	यद् इन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥
८.९४.४	अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्य् अस्य मरुतः ।
	उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥ ॥६॥

१.१९

ऋ १०.१५३.१	ईङ्खयन्तीर् अपस्युव इन्द्रं जातम् उपासते ।
भेजानासः • [नकिरा •	वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥
१०.११४.७ नकिर् • मिनीमसि	न कि देवा इनीमसि न क्य् आ योपयामसि ।
	मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

ऋग्वेदे नास्ति	दोषो आगाद् बृहद् गाय द्युमद्गामाथर्वण ।
	स्तुहि देवं सवितारम् ॥ ३ ॥
१.४६.१	एषो उषा अपूर्व्या व्य् उच्छति प्रिया दिवः ।
	स्तुषे वाम् अश्विना बृहद् ॥ ४ ॥
१.८४.१३	इन्द्रो दधीचो अस्थभिर् वृत्राण्य् अप्रतिष्कुतः ।
	जघान नवतीर् नव ॥ ५ ॥
१.९.१	इन्द्रेहि मत्स्य् अन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
	महं अभिष्टिर् ओजसा ॥ ६ ॥
४.३२.१	आ तू न इन्द्र वृत्रहन्न् अस्माकम् अर्धम् आ गहि ।
	महान् महीभिर् ऊतिभिः ॥ ७ ॥
८.६.५	ओजस् तद् अस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
	इन्द्रश् चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥
१.३०.४	अयम् उ ते सम् अतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
	वचस् तच् चिन् न ओहसे ॥ ९ ॥
१०.१८६.१	वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ।
• ण...	प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ १० ॥ ॥७॥

१.२०

ऋ १.४१.१	यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नू चित् • • •	न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥
८.४६.१०	गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्य महामह	वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥
८.६.१९	इमास् त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
	एनाम् ऋतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥
८.९३.१७	अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
... आभुवः	यत् सोमेसोम आभुवः ॥ ४ ॥
१.३.१०	पावका नः सरस्वती वाजेभिर् वाजिनीवती ।
	यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ५ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । कौ... तर्पयाद	क इमं नाहुषीष्व् आ इन्द्रं सोमस्य तर्पयत् ।
कौ... भरात्	स नो वसून्य् आ भरत् ॥ ६ ॥
ऋ ८.१७.१	आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
	एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
१०.१८५.१ • • अस्तो अस्तु...	महि त्रीणाम् अवर् अस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
	दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥
८.४६.१ • पुरूवसो (एवं कौ)...	त्वावतः पुरूवसो वयम् इन्द्र प्रणेतः ।
	स्मसि स्थातर् हरीणाम् ॥ ९ ॥ ॥८॥

१.२१

ऋ ८.६४.१ उत् • • सोमाः...	उ त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
	अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
३.४०.६	गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर् धाराभिर् अज्यसे ।
[उपानसः •	इन्द्र त्वादातम् इद् यशः ॥ २ ॥
१०.१०५.४ सचायोरिन्द्रश्चकृष औँ	सदा व इन्द्रश् चर्कृषद् आ उपो नु स सपर्यन् ।
नदमोर्वित्रतयोः • • (कौ न देवो वृतः)	न देव वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥
८.९२.२२	आ त्वा विशन्त्व् इन्दवः समुद्रम् इव सिन्धवः ।
	न त्वाम् इन्द्राति रिच्यते ॥ ४ ॥
१.७.१	इन्द्रम् इद् गाथिनो बृहद् इन्द्रम् अर्केभिर् अर्किणः ।
	इन्द्रं वाणीर् अनूषत ॥ ५ ॥
८.९३.३४	इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणम् ऋभुं रयिम् ।
	वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥
२.४१.१०	इन्द्रो अङ्ग महद् भयम् अभी षद् अप चुच्यवत् ।
	स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥
६.४५.२८	इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।
वत्सं गावो • •	गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥
६.५७.१	इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
[ज्यायाँ • •	हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥
४.३०.१ नकिर् • • उत्तरो •	न कि इन्द्र त्वद् उत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा • •	न क्य् एवं यथा त्वम् ॥ १० ॥ ॥९॥

१.२२

ऋ ८.४५.२८	तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः ।
	समानम् उ प्र शंसिषम् ॥ १ ॥
१.९.४	असृग्रम् इन्द्र ते गिरः प्रति त्वाम् उद् अहासत ।
अजोषा...	सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥
८.४६.४	सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यम् अर्यमा ।
मित्रः (कौ मित्राम्)...	मित्रा पान्त्य् अद्रुहः ॥ ३ ॥
८.४५.४१	यद् वीडाव् इन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
	वसु स्पार्हं तद् आ भर ॥ ४ ॥
८.९३.१६	श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आ शुषे • •	आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
	अरं शक्र परेमणि ॥ ६ ॥
३.५२.१	धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तम् उक्थिनम् ।
	इन्द्र प्रातर् जुषस्व नः ॥ ७ ॥

८.१४.१३	अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोद् अवर्तयः ।
	विश्वा यद् अजयः स्पृधः ॥ ८ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
	तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥
८.९३.२५ • सोमा सुता इमे • • •	तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर् विभावसो ।
• इन्द्रमा वह (कौ इन्द्र मृडय)	स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ १० ॥ ॥१०॥

१.२३

ऋ १.३०.१ । कौ • • • कृविं...	आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
	मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥
८.९२.१० • • • • न...	अतश् चिद् इन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
	इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥
८.४५.४	आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद् वि मातरम् ।
	क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥
८.३२.१०	वृषदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नम् ऊतये ।
साधु...	साधः कृण्वन्तम् अवसे ॥ ४ ॥
१.९०.१ ... मयतु •	ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
	अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥
८.५.१ • • • मर्ता...	दूराद् इहेव यत् सतो अरुणप्सुर् अशिश्वितत् ।
• • विश्वथा°	वि भानुं विश्वधातनत् ॥ ६ ॥
३.६२.१६	आ नो मित्रावरुणा घृतैर् गव्यूतिम् उक्षतम् ।
	मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ७ ॥
१.३७.१० ... काष्ठेष्व् •	उद् उ त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्व् अत्नत ।
	वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥
१.२२.१७	इदं विष्णुर् वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
... पांसुरे	समूढम् अस्य पांसुले ॥ ९ ॥ ॥११॥

१.२४

ऋ ८.३२.२१ उपारणे	अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसम् उपेरया ।
इमं रातं...	अस्य राती सुतं पिब ॥ १ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	कद् उ प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
	तद् इद् ध्य् अस्य वर्धनम् ॥ २ ॥
८.२.१४ • • • अगोररिर् • •	उक्थं चन शस्यमानं नागो रयिर् आ चिकेत ।
	न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	इन्द्र उक्थेभिर् मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।
	हरिवान् सुतानां सखा ॥ ४ ॥
१.१५.५	ब्राह्मणाद् इन्द्र राधसः पिबा सोमम् ऋतूंर् अनु ।
तवेदं • •	तवेदं सख्यम् अस्तृतम् ॥ ५ ॥

८.३२.७ ...ष्मसि • • •	वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
	त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ६ ॥
८.२.१९ ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा	आ याह्य् उप नः सुतं वाजेभिर् मा हृणीयथाः ।
[हृणीथा अभ्यस्मान्	महं इव युवजानिः ॥ ७ ॥
१०.१०५.१ • • • • आव • • •	कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद् वाः ।
• • वाताप्याय(एवं कौ)	दीर्घं सुतं वाताप्याया ॥ ८ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	एन्द्र पृक्षु कासु चिन् नृम्णं तनूषु धेहि नः ।
	सत्राजिद् उग्र पौंस्यम् ॥ ९ ॥
१.९.२ एमेनं सृजता सुते • • •	अयम् एनं सचतां सुतो मन्दिम् इन्द्राय मन्दिने ।
	चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ १० ॥ ॥ १२ ॥ ॥१॥

१.२५

ऋ ७.३२.२२	अभि त्वा शूर नोनुमो अदुग्धा इव धेनवः ।
	ईशानम् अस्य जगतः स्वर्दृशम् ईशानम् इन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
६.४६.१ ... साता • •	त्वाम् इद् धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
	त्वां वृत्रेष्व् इन्द्र सत्पतिं नरस् त्वां काष्ठास्व् अर्वतः ॥ २ ॥
८.४९.१	अभि प्र वः सुराधसम् इन्द्रम् अर्च यथा विदे ।
...पुरूवसुः (एवं कौ) • •	यो जरितृभ्यो मघवा पुरोवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ ३ ॥
८.८८.१	तं वो दस्मम् ऋतीषहं वसोर् मन्दानम् अन्धसः ।
	अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर् नवामहे ॥ ४ ॥
८.६६.१	तरोभिर् वो विदद्वसुम् इन्द्रं सबाध ऊतये ।
	बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ५ ॥
७.३२.२०	तरणिर् इत् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
	आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ ६ ॥
८.३.१	पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
• • • °मायो...	आपिर् नो बोधि सधमाद्ये वृधे अस्मं अवन्तु ते धियः ॥ ७ ॥
८.६१.७	त्वं ह्य् एहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
...इन्द्राश्वमिष्टये (एवं कौ)	उद् वावृषस्व मघवन् गविष्टय उद् इन्द्रो अश्वमिष्टये ॥ ८ ॥
७.५९.३	न हि वश् चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
...पिबत •	अस्माकम् अद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥ ९ ॥
८.१.१	मा चिद् अन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
	इन्द्रम् इत् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुर् उक्था च शंसत ॥ १० ॥ ॥१॥

१.२६

ऋ ८.७०.३	नकिष् टं कर्मणा नशद् यश् चकार सदावृधम् ।
...रुप्योजसम् {	इन्द्रं न यज्ञैर् विश्वगूर्तम् ऋभ्वसम् अधृष्टं धृष्णुम् ओजसा ॥१॥

[८.१.१२ / ...पुरूवसुर् (एवं कौ) इष्कर्ता • • / ८.१.२८]
य ऋते चिद् अभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरोवसुर् निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ २ ॥
आ त्वा सहस्रम् आ शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥
[३.४५.१ / • • • • • यमन् विं (कौ येमुर् [इन्]...)]
आ मन्द्रैर् इन्द्र हरिभिर् याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन् नि येमुर् विं न पाशिनो अति धन्वेव तं इहि ॥ ४ ॥
[१.८४.१९]
त्वम् अङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वद् अन्यो मघवन्न् अस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ ५ ॥
[८.९०.५ ...पते / ...एक इदनुत्ता चर्षणीधृता]
त्वम् इन्द्र यशा अस्य् ऋजीषी शवसस् पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्य् अप्रतीन्य् एक इत् पुरुनुत्तश् चर्षणीधृतिः ॥ ६ ॥
[८.३.५]
इन्द्रम् इद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्य् अध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ७ ॥
[८.३.३ • • • पुरूवसो (एवं कौ)...]
इमा उ त्वा पुरोवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो अभि स्तोमैर् अनूषत ॥ ८ ॥
[८.३.१५ / ...इव (एवं कौ) / ८.४.३]
उद् उ त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इवा ॥ ९ ॥
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्न् एत्य् अवेरिणम् ।
[पिब (एवं कौ)]
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयम् आ गहि कण्वेषु सु सचा पिबा ॥ १० ॥ ॥२॥

१.२७

[ऋ ८.६१.५]
शग्ध्य् ऊ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिर् ऊतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदम् अनु शूर चरामसि ॥ १ ॥
[८.९७.१]
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः ।
स्तोतारम् इन् मघवन्न् अस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥
[८.१०१.५ / वरूथ्यं...]
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यम् ऋतावसो ।
वरूथ्ये वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥
[८.३.७]
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिर् आयवः ।
समीचीनास ऋभवः सम् अस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ४ ॥
[८.८९.३]
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर् वज्रेण शतपर्वणा ॥ ५ ॥
[८.८९.१]
बृहद् इन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

[...जागृवि (एवं कौ)]
येन ज्योतिर् अजनयन्न् ऋतावृधो देवं देवाय जागृवीम् ॥ ६ ॥
[७.३२.२६]
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिर् अशीमहि ॥ ७ ॥
[८.९७.७ । कौ ...सधमाद्ये / • • ऊती (एवं कौ)...]
मा न इन्द्र परा वृणग् भवा नः सधमाद्यः ।
त्वं न ऊतिस् त्वम् इन् न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥ ८ ॥
[८.३३.१]
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥
[६.४६.७]
यद् इन्द्र नाहुषीष्व् आ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नम् आ भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ १० ॥ ॥३॥

१.२८

[* ८.३३.१० ...ऽवृतः]
सत्यम् इत्था वृषेद् असि वृषजूतिर् नोऽविता ।
वृषा ह्य् उग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १ ॥
[८.९७.४]
यच् छक्रासि परावति यद् अर्वावति वृत्रहन् ।
अतस् त्वा गीर्भिर् द्युगद् इन्द्र केशिभिः सुतावं आ विवासति ॥ २ ॥
[८.४६.१४ • • • अन्धसो (एवं कौ)...]
अभि वो वीरम् अन्धसा मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥
[६.४६.९ ...स्वस्तिमत्]
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर् यच्छ मघवद्भ्यश् च मह्यं च यावया दिद्युम् एभ्यः ॥ ४ ॥
[८.९९.३ / • जाते जनमान... / दीधिम]
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेद् इन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्य् ओजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ ५ ॥
[८.७०.७ • • • आपदिवं • • / • • • एतशा • हरी इन्द्रो •]
न सीम् अदेव आप तद् इषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद् य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ॥ ६ ॥
[८.९०.१ • • • हव्य इन्द्रः • भूषतु / • • • वृत्रहा • ऋचीषमः (कौ ऋचीषम)]
आ नो विश्वासु हव्यम् इन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥ ७ ॥
[७.३२.१६]
तवेद् इन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष् ट्वा गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥
[८.१.७]
क्वेयथ क्वेद् असि पुरुत्रा चिद् धि ते मनः ।

अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥९॥
[८.६६.७ / • • • समना...]
वयम् एनम् इदा ह्यो ऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १० ॥ ॥४॥

१.२९

[ऋ ८.७०.१ / • • • ज्येष्ठो...]
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिर् अध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥
[८.६१.१३ / • • • • • ऊतिभिर्...]
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवन् शग्धि तव तन् न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ २ ॥
[८.१७.१४ / • भेत्ता पुरां...]
वास्तोष् पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनाम् इन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥
[८.१०१.११ / • • • • पनस्यते ऽद्धा • • •]
बण् महं असि सूर्य बड् आदित्य महं असि ।
महस् ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महं असि ॥ ४ ॥
[८.४.१]
यद् इन्द्र प्राग् अपाग् उदङ् न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्य् आनवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ५ ॥
[७.३२.१४ ...त्वावसुं • • दधर्षति (एवं कौ) / • इत्...]
कस् तम् इन्द्र त्वावसव् आ मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ ६ ॥
[८.४.९ • • सुरूप इद् गोमाँ (एवं कौ) इद् • • • / ...चन्द्रो • •]
अश्वी रथी सुरूपयु गोमं यद् इन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर् याति सभाम् उप ॥ ७ ॥
[८.७०.५]
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीर् उत स्युः ।
न त्वा वज्रिन् सहस्रं सूर्या अनु न जातम् अष्ट रोदसी ॥ ८ ॥
[६.५९.६ / हित्वी • • वावदत्...]
इन्द्राग्नी अपाद् इयं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच् चरत् त्रिंशत् पदा न्य् अक्रमीत् ॥ ९ ॥
[८.५३.५]
इन्द्र नेदीय एद् इहि मितमेधाभिर् ऊतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिर् अभिष्टिभिर् आ स्वापे स्वापिभिः ॥ १० ॥ ॥५॥

१.३०

[ऋ ८.९९.७]
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारम् अप्रहितम् ।
आशुं जेतारं होतारं रथीतमम् अतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥ १ ॥
[७.३२.१ / • चिद्...]
मो षु त्वा वाघतश् चनारे अस्मन् नि रीरमन् ।
आरात्ताद् वा सधमादं न आ गहीह वा सन्न् उप श्रुधि ॥२॥

[७.३२.८ सुनोता...]
सुनोत सोमपाव्ने सोमम् इन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीर् अवसे कृणुध्वम् इत् पृणन्न् इत् पृणते मयः ॥ ३ ॥
[६.४६.३ / सहस्रमुष्क...]
यः सत्राहा विचर्षणिर् इन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ४ ॥
[१.१३९.५ ...दशस्यतम्]
शचीभिर् नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वां रातिर् उप दसत् कदा चनास्मद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥
[ऋग्वेदे नास्ति]
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आद् इद् वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥ ६ ॥
[८.३३.४ • गायान्धसो... / • • • यः सुते सचा वज्री रथो •]
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर् यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ७ ॥
[८.६१.१]
उभयं शृणवच् च न इन्द्रो अर्वाग् इदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ ८ ॥
[८.१.५ • • त्वामद्रिवः • • देयाम्]
महे चन त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ९ ॥
[८.१.६]
वस्यं इन्द्रासि मे पितुर् उत भ्रातुर् अभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १० ॥ ॥६॥

१.३१

[ऋ ७.३२.४]
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
तं आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्य् ओक आ ॥ १ ॥
[ऋग्वेदे नास्ति]
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश् चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ॥ २ ॥
[८.१.१०]
आ त्व् अद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघाम् अन्याम् इषम् उरुधाराम् अरंकृतम् ॥३॥
[८.८८.३ / • दित्ससि...]
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः ।
यच् छिक्षसि स्तुवते मावते वसु नकिष् टद् आ मिनाति ते ॥ ४ ॥
[८.३३.७... पिबन्तं (एवं कौ) • • दधे (एवं कौ)]
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तः कद् वयो दधुः ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्य् ओजसा मन्दानः शिप्रिय्

अन्धसः (एवं कौ)
अन्धसा ॥ ५ ॥
ऋग्वेदे नास्ति
यद् इन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस् परि ।
अस्माकम् अंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि
कौ बर्हय
बर्हया ॥ ६ ॥
ऋग्वेदे नास्ति ; शौ ६.४.१
त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस् पतिः ।
पुत्रैर् भ्रातृभिर् अदितिर् नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं
वचः ॥ ७ ॥
ऋ ८.५१.७
कदा चन स्तरीर् असि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
...पृच्यते (एवं कौ)
उपोपेन् नु मघवन् भूय इन् नु ते दानं देवस्य पृच्यसे ॥८॥
८.३.१७ युक्ष्वा ...
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन् सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिर् आ
गहि ॥ ९ ॥
८.९९.१
त्वाम् इदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
• • स्तोमवाहसाम्
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्य् उप स्वसरम् आ
गहि ॥ १० ॥ ॥७॥

१.३२

ऋ ७.८१.१ प्रत्यु अदर्श्य् (एवं कौ)
प्रति षो अदर्दर् आयत्य् उच्छन्ती दुहिता दिवः ।
• महि च्यवति चक्षसे ...
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष् कृणोति
सूनरी ॥ १ ॥
७.७४.१
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वाम् अह्वे ऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ २ ॥
ऋग्वेदे नास्ति
कु ह्यः को वाम् अश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वाम् अश्मया क्षपमाणो ऽंशुनेत्थम् उ आद् व्
अन्यथा ॥ ३ ॥
१.४७.१ • • • • • • ऋतावृधा
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
तम् अश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥
८.१.२० मा ... अहं गिरा
आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्न् अहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ ५ ॥
८.४.११
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोमम् इन्द्रः पिपासति ।
उप ...
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ६ ॥
७.३२.२४
अभी षतस् तद् आ भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर (एवं कौ) • • सनादसि ...
पुरोवसुर् हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥ ७ ॥
७.३२.१८
यद् इन्द्र यावतस् त्वम् एतावद् अहम् ईशीय ।
• • दिधिषेय ... रासीय (कौ रंसिषम्)
स्तोतारम् इद् दिधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषः ॥ ८ ॥
८.९९.५
त्वम् इन्द्र प्रतूर्तिष्व् अभि विश्वा असि स्पृधः ।
• • विश्वतूर् ...
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूर् असि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ९ ॥

८.८८.५ • हि ... अन्तेभ्यस् •
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस् परि ।
... अनु स्वधां
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवम् अति विश्वं
ववक्षिथ ॥ १० ॥ ॥८॥

१.३३

ऋ ७.२१.१
असावि देवं गोऋजीकम् अन्धो न्य् असिन्न् इन्द्रो
जनुषेम् उवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर् बोधा नः स्तोमम् अन्धसो
मदेषु ॥ १ ॥
७.२४.१
योनिष् ट इन्द्र सदने अकारि तम् आ नृभिः पुरुहूत
प्र याहि ।
• • • • वृधे च ...
असो यथा नो ऽविता वृधश् चिद् ददो वसूनि ममदश् च
सोमैः ॥ २ ॥
५.३२.१
अदर्दर् उत्सम् असृजो वि खानि त्वम् अर्णवान् बद्बधानं
अरम्णाः ।
... सृजो वि धारा अव दानवं •
महान्तम् इन्द्र पर्वतं वि यद् वः सृजद् धारा अव यद्
दानवान् हन् ॥ ३ ॥
१०.१४८.१ ... ससवांसश् च •
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश् चित् तुविनृम्ण
वाजम् ।
• • • • • याकन् त्मना तना सनुयाम •
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्यामा
त्वोताः ॥ ४ ॥
१०.४७.१ जगृभ्मा ...
जगृह्मा ते दक्षिणम् इन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसू-
नाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम् अस्मभ्यं चित्रं वृषणं
रयिं दाः ॥ ५ ॥
७.२७.१ ... युनजते (एवं कौ) • •
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजन्ते धियस् ताः ।
• • शवसश्चकान आ ...
शूरो नृषाता श्रवसश् च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं
नः ॥ ६ ॥
१०.७३.११
वयः सुपर्णा उप सेदुर् इन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तम् ऊर्णुहि पूर्धि चक्षुर् मुमुग्ध्य् अस्मान् निध-
येव बद्धान् ॥ ७ ॥
१०.१२३.६
नाके सुपर्णम् उप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्य् अचक्षत
त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्
॥ ८ ॥
ऋग्वेदे नास्ति
कौ ... आवः (एवमितरासु संहितासु)
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन
आवत् ।

स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश् च योनिम् असतश्
च विवः ॥ ९ ॥
१.३२.१
अपूर्व्या पुरुतमान्य् अस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
... भाम्मा • तक्षम्
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्य् अस्मै स्थविराय
तक्षुः ॥ १० ॥ ॥१॥

१.३४

ऋ ८.९६.१३ • • • • इयानः ...
अव द्रप्सो अंशुमतीम् अतिष्ठद् ईयानः कृष्णो दशभिः
सहस्रैः ।
... स्नेहितीर् • अधत्त
आवत् तम् इन्द्रः शच्या धमन्तम् अप स्नीहितिं नृमणा
अधद्राः ॥ १ ॥
८.९६.७
वृत्रस्य त्वा श्वसथाद् ईषमाणा विश्वे देवा अजहुर्
ये सखायः ।
मरुद्भिर् इन्द्र सख्यं ते अस्त्व् अथेमा विश्वाः पृतना
जयासि ॥ २ ॥
१०.५५.५
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः सम्
आन ॥ ३ ॥
८.९६.१६
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानो ऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुर्
इन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्व् अविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो
रण धाः ॥ ४ ॥
ऋग्वेदे नास्ति
मेळिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिर-
प्स्नुम् ।
करोष्य् अर्यस् तरुषीर् दुवस्युर् इन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं
गृणीषे ॥ ५ ॥
७.३१.१० • • • महिवृधे ...
प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
• • • चरा
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ६ ॥
३.३०.२२
शुनं हुवेम मघवानम् इन्द्रम् अस्मिन् भरे नृतमं वाज-
सातौ ।
शृण्वन्तम् उग्रम् ऊतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं
धनानाम्
धनानि ॥ ७ ॥
७.२३.१
उद् उ ब्रह्माण्य् ऐरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
• • • शवसा ...
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो
वचांसि ॥ ८ ॥
१०.७३.९
चक्रं यद् अस्याप्स्व् आ निषत्तम् उतो तद् अस्मै मध्व्
इच् चच्छद्यात् ।

पृथिव्याम् अतिषितं यद् ऊधः पयो गोष्व् अदधा
ओषधीषु ॥ ९ ॥ ॥२॥

१.३५

ऋ १०.१७८.१ ... सहावानं • •
त्यम् ऊ षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजम् आशुं स्वस्तये तार्क्ष्यम् इहा
हुवेम ॥ १ ॥
६.४७.११
त्रातारम् इन्द्रम् अवितारम् इन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरम्
इन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं • • स्वस्ति नो • धात्व्
हुवे नु शक्रं पुरुहूतम् इन्द्रम् इदं हविर् मघवा वेत्व्
इन्द्रः ॥ २ ॥
१०.२३.१
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
• श्मश्रु • ऊर्ध्वया भुद् • •
दुधमानो • •
प्र श्मश्रुभिर् दोधुवद् ऊर्ध्वधा भुवद् वि सेनाभिर्
भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥
४.१७.८
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रम् इन्द्रं महाम् अपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा
सुराधाः ॥ ४ ॥
यो नो वनुष्यन्न् अभिदाति मर्त उगणा वा मन्य-
मानस् तुरो वा ।
ऋग्वेदे न सन्ति
क्षिधी युधा शवसा वा तम् इन्द्राभी ष्याम वृषमणस्
त्वोताः ॥ ५ ॥
यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यम् अपाम् उपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते
स इन्द्रः ॥ ६ ॥
१.५३.१ [?]
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीर् इष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्य् अध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिर् इडया
मदन्ता ॥ ७ ॥
१०.८९.४ ... प्रैरयं •
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य
बुध्नात् ।
• • चक्रिया ...
यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर् विष्वक् तस्तम्भ पृथिवीम्
उत द्याम् ॥ ८ ॥
१०.१०.१ ओ चित् सखायं • ववृत्यां • • • अर्णवं जगन्वान्
आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस् तिरः पुरू चिद् अर्णवां
जगम्याः ।
... वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः
पितुर् नपातम् आ दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां
दीद्यानः ॥ ९ ॥
१.८४.१६
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो
दुर्हृणायून् ।

आसन्निपून् हव्वसो मयो'...	आसन्न् एषाम् अप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्याम्
	ऋणधन् स जीवात् ॥ १० ॥ ॥२॥
	१.३६
ऋ १.१०.१	गायन्ति त्वा गायत्रिणो अर्चन्त्य् अर्कम् अर्किणः ।
	ब्रह्माणस् त्वा शतक्रत उद् वंशम् इव येमिरे ॥ १ ॥
१.११.१	इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः ।
	रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ २ ॥
१.८४.४	इमम् इन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठम् अमर्त्यं मदम् ।
	शुक्रस्य त्वाभ्य् अक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ३ ॥
५.३९.१ • • • मेहनास्ति...	यद् इन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातम् अद्रिवः ।
...भर (एवं कौ)	राधस् तन् नो विदद्वस उभयाहस्त्य् आ भरा ॥ ४ ॥
८.९५.४	श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस् त्वा सपर्यति ।
	सुवीर्यस्य गोमतो रायस् पूर्धि महं असि ॥ ५ ॥
१.८४.१	असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णव् आ गहि ।
	आ त्वा पृणक्त्व् इन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥६॥
८.३४.१	एन्द्र याहि हरिभिर् उप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो (एवं कौ)...	देवा अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥
८.९५.१	आ त्वा गिरो रथीर् इवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
• • • • इन्द्र • • मातरः	अभि त्वा सम् अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥
८.९५.७	एतो न्व् इन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
• • • शुद्ध...	शुद्धैर् उक्थैर् वावृध्वांसं शुद्धैर् आशीर्वान् ममत्तु ॥ ९ ॥
६.४४.१ • रयिवो रयितमो...	यो रयिं वो रयिंतमो यो द्युम्नैर् द्युम्नवत्तमः ।
	सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १० ॥ ॥ ४ ॥
	१.३७
ऋ ६.४२.१	प्रत्य् अस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
...नरे	अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	आ नो वयोवयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
	महान्तं पूर्विनेष्ठाम् उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥
८.६८.१	आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
...इन्द्र • सत्पते	तुविकूर्मिम् ऋतीषहम् इन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥ ३ ॥
८.६३.१ • • महानां...	स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिर् आनजे ।
	यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे ॥ ४ ॥
५.६१.११ य ईं वहन्त आशुभिः {	यदी वहन्त्य् आशवो भ्राजमाना रथेष्व् आ ।
पिबन्तो • मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे {	पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥ ५ ॥
६.४४.४	त्वम् उ वो अप्रहणं गृणीषे शवसस् पतिम् ।

• विश्वासाहं (एवं कौ) • मंहिष्ठं } विश्वचर्षणिम् }	इन्द्रं विश्वासहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥ ६ ॥
४.३९.६	दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोर् अश्वस्य वाजिनः ।
कौ ...न • •	सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ७ ॥
१.११.४	पुरां भिन्दुर् युवा कविर् अमितौजा अजायत ।
	इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ८ ॥
	॥५॥
	१.३८
ऋ ८.६९.१ ...मन्दद्वी	प्रप्र वस् त्रिष्टुभम् इषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
	धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । कौ • • याव्...	कश्यपस्य स्वर्विदो य आहुः सयुजाव् इति ।
कौ ...व्रतं • • निचाय्य	ययोर् विश्वम् अपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्या ॥ २ ॥
८.६८.४	विद्वानरस्य वस् पतिम् अनानतस्य शवसः ।
[शशमते	एवैश् च चर्षणीनाम् ऊती हुवे रथानाम् ॥ ३ ॥
६.२.४ ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः	स वा यस् ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
• व...	ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥
८.६९.८ नरः नास्ति	अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
...पुरं न • •	अर्चन्तु पुत्रका उत पुरम् इद् धृष्ण्व् अर्चत ॥ ५ ॥
१.१०.५	उक्थम् इन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
	शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ६ ॥
५.३८.१ उरोष्... [मंहय)	विभोष् ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा • • द्युम्ना सुक्षत्र मंहय (कौ अपि	अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहया ॥ ७ ॥
१.४९.३ ... द्विपच् चतुष्पद् •	वयश् चित् ते पतत्रिणो द्विपाच् चतुष्पाद् अर्जुनि ।
[• •	उषः प्रारन्न् ऋतुं अनु दिवो अन्तेभ्यस् परि ॥ ८ ॥
१.१०५.५ ...त्रिष्वा (कौ मध्य आ)	अमी ये देवाः स्थन मध्ये ये रोचने दिवः ।
• • • • अनृतं क • • आहुतिर्विसं मे	कद् व ऋतं कद् अमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥ ९ ॥
शौ ७.५४.१ ...कुर्वते [अस्य रोदसी	ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
एते सदसि...यच्छतः	वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥ ॥६॥ ॥३॥
	१.३९
ऋ ८.९७.१० • • • नरं...	विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस् ततक्षुर् इन्द्रं
	जजनुश् च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिम्... { तवसं • {	क्रत्वे वरे स्थेमन्य् आमुरीम् उतोग्रम् ओजिष्ठं तरसं तर-
	स्विनम् ॥ १ ॥
१०.१४७.१ ... वृत्रं	श्रत् ते दधामि प्रथमाय मन्यवे अहन् यद् दस्युं नर्यं
	विवेर् अपः ।
• यत् त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते •	उभे यत्वा रोदसी धावताम् अनु भ्यसात् ते शुष्मात्

	पृथिवी चिद् अद्रिवः ॥ २ ॥
शौ ७.२१.१ • विश्वे वचसा • दिव { एको विभूर् • • {	समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूर्
	अतिथिर् जनानाम् ।
• • • आविवासत् • वर्तनिर् • •	स पूर्व्यो नूतनम् आजिगीषं तं वर्तनीर् अनु वावृत
एकमित् पुरु	एक इत् ॥ ३ ॥
ऋ १.५७.४	इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि
	प्रभूवसो ।
	नहि त्वद् अन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीर् इव
प्रति नो हर्यं तद् •	प्रति तद् धर्य नो वचः ॥ ४ ॥
३.५१.१	चर्षणीधृतं मघवानम् उक्थ्यम् इन्द्रं गिरो बृहतीर्
	अभ्य् अनूषत ।
	वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिर् अमर्त्यं जरमाणं दिवे-
	दिवे ॥ ५ ॥
१०.४३.१ • म • • स्वर्विदः...	अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर् विश्वा उश-
	तीर् अनूषत ।
• स्वजन्ते...	परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघ-
	वानम् ऊतये ॥ ६ ॥
१.५१.१ • • • • ऋग्मियम् (एवं कौ)...	अभि त्यं मेषं पुरुहूतम् ऋग्म्यम् इन्द्रं गीर्भिर् मदता
	वस्वो अर्णवम् ।
• • • • मानुषा...	यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठम् अभि
	विप्रम् अर्चत ॥ ७ ॥
१.५२.१ ...सुन्वः •	त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकम्
	ईरते ।
	अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथम् एन्द्रं ववृत्याम् अवसे
	सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥
६.७०.१	घृतवती भुवनानाम् अभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
	द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरि-
	रेतसा ॥ ९ ॥
१०.१३४.१	उभे यद् इन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
	महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
	देवी जनित्र्य् अजीजनद् भद्रा जनित्र्य् अजीजनत् ॥ १० ॥
१.१०१.१	प्र मन्दिने पितुमद् अर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निर-
	हन्न् ऋजिश्वना ।
...हवामहे	अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि ॥
	॥ ११ ॥ ॥१॥
	१.४०
	स्वादोर् इत्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः ।
ऋ १.८४.१० ...मध्वः • •	

...शोभसे •	या इन्द्रेण सयावरीर् वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीर्
	अनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
१.८०.१ ...मदे ब्रह्मा • •	इत्था हि सोम इन् मदो ब्रह्म चकार वर्धनम् ।
	शविष्ठ वज्रिन्न् ओजसा पृथिव्या निः शशा अहिम् अर्चन्न्
	अनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
१.८१.१	इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
• • • अभिष्टुतेम्...	तम् इन् महत्स्व् आजिषूतिम् अर्भे हवामहे स वाजेषु
	प्र नो ऽविषत् ॥ ३ ॥
१.८०.७	इन्द्रं तुभ्यम् इद् अद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
• • • • • तमु त्वं मायया वधीर्...	यद् ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन् माययावधीर् अर्चन्न्
	अनु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
१.८०.३	प्रेह्य् अभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
	इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो ऽर्चन्न्
	अनु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥
१.८१.३ ...धना	यद् उदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युक्ष्वा...	युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्मां इन्द्र
	वसौ दधः ॥ ६ ॥
१.८२.२...	अक्षन्न् अमीमदन्त ह्य् अव प्रिया अधूषत ।
	अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्व् इन्द्र
	ते हरी ॥ ७ ॥
१.८२.१	उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा • • • अर्थ...	कदा नः सूनृतावतः कर इद् अर्थयास इद् योजा न्व् इन्द्र
	ते हरी ॥ ८ ॥
१.१०५.१	चन्द्रमा अप्स्व् अन्तर् आ सुपर्णो धावते दिवि ।
	न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे
	अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
५.७५.१	प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
• • • • स्तोमन प्रति भूषति	स्तोता वाम् अश्विनाव् ऋषिः स्तोमेभिर् भूषति प्रति
	माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १० ॥ ॥२॥
	१.४१
ऋ ५.६.४	आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
	यद् ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य
	आ भर ॥ १ ॥
१०.२१.१	आग्निं न स्ववृक्तिभिर् होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे { शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे {	शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं
	विवक्षसे ॥ २ ॥

५.७९.१	महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
	यथा चिन् नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
	अश्वसूनृते ॥ ३ ॥
१०.२५.१ [• •	भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षम् उत क्रतुम् ।
अधा • • अन्धसो (एवं कौ) ... रणन्	अधा ते सख्ये अन्धसा वि वो मदे रणा गावो न
	यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥
१.८१.४ • • अनुष्वधं (एवं कौ) } • • वावृधे • }	क्रत्वा महाँ अनुष्वधो भीम आ वावृते शवः ।
	श्रिय ऋष्व उपाकयोर् नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्
	वज्रम् आयसम् ॥ ५ ॥
१.८२.४	स घा तं वृषणं रथम् अधि तिष्ठाति गोविदम् ।
	यः पात्रं हारियोजनं पूर्णम् इन्द्र चिकेतति योजा न्व्
	इन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥
५.६.१	अग्निं तं मन्ये यो वसुर् अस्तं यं यन्ति धेनवः ।
	अस्तम् अर्वन्त आशवो ऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य
	आ भर ॥ ७ ॥
१०.१२६.१	न तम् अंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
कौ ... नयति • •	सजोषसो यम् अर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति
	द्विषः ॥ ८ ॥ ॥१॥

१.४२

क ९.१०९.१	परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर् मित्राय पूष्णे भगाय ॥१॥
९.११०.१	पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
...ईयसे	द्विषस् तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ २ ॥
९.१०९.४	पवस्व सोम महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि
	धाम ॥ ३ ॥
९.१०९.१० • • कार्ये ...	पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ ४ ॥
९.१०९.१२	इन्दुः पविष्ट चारुर् मदायापाम् उपस्थे कविर् भगाय ॥ ५ ॥
९.११०.२	अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
	वाजं अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥
७.५६.१ ... अधा (कौ अधा)	क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या यथा स्वश्वाः ॥ ७ ॥
४.१०.१	अग्ने तम् अद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
	ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	आविर् मर्या आ वाजं वाजिनो ग्मं देवस्य सवितुः
कौ सवम्	सवे ।
कौ स्वर्गाँ	स्वर्गां अर्वन्तो जयत ॥ ९ ॥
क ९.१०९.७ • • • • • • महाम् (कौ } महाँ) अवीनाम् • • }	पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महीनाम् अनु पूर्व्यः
	॥ १० ॥ ॥४॥

१.४३

८.१३.१ इन्द्रः ... पुनीत •	इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
• • दक्षसो ...	विदे वृधस्य दक्षस्य महां हि षः ॥ १ ॥
८.१५.१	तम् व् अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
... विवासत (एवं कौ)	इन्द्रं गीर्भिस् तविषम् आ विवासता ॥ २ ॥
८.१५.४ ... पृत्सु •	तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
	उ लोककृत्नुम् अद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥
८.१२.१६ • • • विष्णवि (एवं कौ) ...	यत् सोमम् इन्द्र विष्णवे यद् वा घ त्रित आप्त्ये ।
	यद् वा मरुत्सु मन्दसे सम् इन्दुभिः ॥ ४ ॥
८.२४.१६ • मध्वो • सिञ्च वा- } ध्वर्यो अन्धसः (कौ अपि अन्धसः) }	एद् उ मधोर् मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसा ।
	एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥
८.२४.१३ ... पिबाति (एवं कौ) • •	एन्दुम् इन्द्राय सिञ्चत पिबत सोम्यं मधु ।
• राधसा चोदयाते (कौ चोदयते) •	प्र राधांसि चोदयता महित्वना ॥ ६ ॥
८.२४.१९	एतो न्व् इन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
	कृष्टीर् यो विश्वा अभ्य् अस्त्य् एक इत् ॥ ७ ॥
८.९८.१	इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते ...	ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥
१.८४.७	य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
	ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
८.२४.१ • • शिषामहि ...	सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
	स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १० ॥ ॥५॥

१.४४

क ८.९८.४ ... प्रियः • अगोह्यः (कौ [अगोह्य)	एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिद् अगोह्य ।
	गिरिर् न विश्वतः पृथुः पतिर् दिवः ॥ १ ॥
६.४३.१ ... रन्धयः	यस्य त्यच् छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
... पिब (एवं कौ)	अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिबा ॥ २ ॥
८.६२.८ ... उपमं •	गृणे तद् इन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
... शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः	यद् धंसि वृत्रम् ओजसा शचीपते ॥ ३ ॥
८.१२.१	य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
	येना हंसि न्य् अत्रिणं तम् ईमहे ॥ ४ ॥
८.१८.१८ • तनाय ...	तुचे तुनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर् जीवसे ।
• सुमहसः •	आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥ ५ ॥
८.२४.२४	वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
	अहरहः शुन्ध्युः परिपदाम् इव ॥ ६ ॥
८.१८.१०	अपामीवाम् अप स्रिधम् अप सेधत दुर्मतिम् ।
	आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ ७ ॥

७.३२.२	पिबा सोमम् इन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
	सोतुर् बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥ ॥६॥

१.४५

क ८.२१.१३	अभ्रातृव्यो अना त्वम् अनापिर् इन्द्र जनुषा सनाद् असि ।
	युधेद् आपित्वम् इच्छसे ॥ १ ॥
८.२१.९	यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तम् उ वः स्तुषे ।
	सखाय इन्द्रम् ऊतये ॥ २ ॥
८.२०.१ ... स्थाता •	आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः ।
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः (कौ दृढा ...	दृढाश् चिद् यमयिष्णवः ॥ ३ ॥
८.२१.६ • याहीम इन्दवो ...	आ याह्य् अयम् इन्दवे ऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
	सोमं सोमपते पिब ॥ ४ ॥
८.२१.११	त्वया ह स्विद् युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
	संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥
८.२०.२१	यावश् चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
	रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥
८.९८.१० • • • भर ...	त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
• • पृतनाषहम्	आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥
८.९८.७ ... कामान्महः ससृज्महे	अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
• यन्त •	उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥
८.२१.५ ... गोश्रीते मधौ मदिरे [विवक्षणे (एवं कौ)	सीदन्तस् ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणः ।
	अभि त्वाम् इन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥
८.२१.१	वयम् उ त्वाम् अपूर्व्य स्थूरं न कच् चिद् भरन्तो ऽवस्यवः ।
वाजे ...	वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ १० ॥ ॥७॥

१.४६

ऋग्वेदे न स्तः	विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठम्
	ईमहे ॥ १ ॥
	एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥ २ ॥
५.३१.४[१,२]	ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैर् अवर्धयन्न् अहये
	हन्तवा उ ॥ ३ ॥
५.३१.४[३,४] • • • • तक्षद् ...	अनवस् ते रथम् अश्वाय तक्षुस् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत
	द्युमन्तम् ॥ ४ ॥
	शं पदं मघं रयीषिणे न कामम् अव्रतो हिनोति न
ऋग्वेदे न स्तः	स्पृशद् रयिम् ॥ ५ ॥
	सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरे-
	पसः ॥ ६ ॥

१०.१७२.१	आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यद्
	ऊधभिः ॥ ७ ॥
	उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र
	॥ ८ ॥
ऋग्वेदे न सन्ति	अर्चन्त्य् अर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा
	स इन्द्रः ॥ ९ ॥
	प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं
	जुजोषते ॥ १० ॥ ॥८॥

१.४७

क ८.५६.५[१,२] • • चिकितुर्हव्यवाट् } स (कौ हव्यवाड् न) • }	अचेत्य् अग्निश् चिकितिर् हव्यवाण् ण सुमद्रथः ॥ १ ॥
५.२४.१[१,२] ... भवा •	अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ २ ॥
ऋग्वेदे न स्तः	भगो न चित्रो अग्निर् महोनां दधाति रत्नम् ॥ ३ ॥
	विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥ ४ ॥
१०.१७२.४ • • स्वसुस्तमः ...	उषा अप स्वसुष् टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥ ५ ॥
१०.१५७.१ • • • • सीषधामेन्द्रश् ...	इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश् च विश्वे च देवाः ॥ ६ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । कौ ... कृणुही •	ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेळाः पीवरीम् इषं कृणुहि न
	इन्द्र ॥ ७ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः ॥ ८ ॥
६.१७.१५	अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ९ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥ १० ॥ ॥९॥

१.४८

क २.२२.१ ... तृपत् •	त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस् तृम्पत् सोमम्
... यथावशत्	अपिबद् विष्णुना सुतं यथावशम् ।
... स एनं • [... इन्द्रम्	स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महाम् उरुं सैनं सश्चद्
• • सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः (कौ	देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यम् इन्द्रः ॥ १ ॥
ऋग्वेदे नास्ति । कौ ७.२२.१	अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर् ज्योतिर् विधर्म ।
कौ ७.२२.२	ब्रध्नः समीचीर् उषसः सम् ऐरयद् अरेपसः सचेतसः
	स्वसरे मन्युमन्तश् चिता गोः ॥ २ ॥
क १.१३०.१ ... विदथानीव (एवं कौ)	एन्द्र याह्य् उप नः परावतो नायम् अच्छा विदथान् एव
• अस्तं ...	सत्पतिर् अस्ता राजेव सत्पतिः ।
• • वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा • • •	हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्व् आ पुत्रासो न पितरं
	वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ ३ ॥
८.९७.१३	तम् इन्द्रं जोहवीमि मघवानम् उग्रं सत्रा दधानम्
अप्रतिष्कुतं (एवं कौ) श्रवांसि [भूरि	अप्रतिष्कृतं श्रवांसि भूरि ।
... ववर्तद् • • • [नास्ति)	मंहिष्ठो गीर्भिर् आ च यज्ञियो ववर्त राये नो विश्वा

	सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥
ऋग्वेदे नास्ति	अभि त्यं देवं सवितारम् ओण्योः कविक्रतुम् अर्चामि
	सत्यसवं रत्नधाम् अभि प्रियं मतिम् ।
	ऊर्ध्वा यस्यामतिर् भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिर्
	अमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ५ ॥
२.२२.४	तव त्यन् नर्यं नृतो ऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद् … । कौ …असु • •	यो देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्न् अपः ।
भुवद् • • अदेवम् • विदाद् • •	भुवो विश्वम् अभ्य् अदेवम् ओजसा विदेद् ऊर्जं शतक्रतुर्
विदाद् •	विदेद् इषम् ॥ ६ ॥
१.१३९.१ …तच् •	अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच् छर्धो
	दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
…विवस्वति • संदायि नव्यसी	यद् ध क्राणा विवस्वते नाभा संदाय नव्यसे ।
• • सू न उप यन्तु • • अच्छा…	अध प्र नूनम् उप यन्ति धीतयो देवं अच्छ न धीतयः
	॥ ७ ॥
५.८७.१	प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवया-
	मरुत् ।
	प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनि-
	व्रताय शवसे ॥ ८ ॥
९.१११.१	अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति
स्वयुग्वभिः • • स्वयुग्वभिः	सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
• सुतस्य ..	धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
• • • परियास्य्…	विश्वा यद् रूपा परियास्य् ऋक्वभिः सप्तास्येभिर्
	ऋक्वभिः ॥ ९ ॥
१.१२७.१ • • • • यमुं • सहसो	अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसा जातवेदसं
[(एवं कौ) •	विप्रं न जातवेदसम् ।
	य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
• • अनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य	घृतस्य विभ्राष्टिम् अनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य
	सर्पिषः ॥ १० ॥ ॥१०॥ ॥४॥ ॥२॥
	१.४९
ऋ ९.६१.१० • • • • अन्धसो (एवं कौ)	उच्चा ते जातम् अन्धसा दिवि सद् भूम्य् आ ददे ।
[• यद् ..	उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥
९.१.१	स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
	इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २ ॥
९.६५.१०	वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
	विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥
९.६१.१९	यस् ते मदो वरेण्यस् तेना पवस्वान्धसा ।

	देवावीर् अघशंसहा ॥ ४ ॥
९.३३.४	तिस्रो वाच उद् ईरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
	हरिर् एति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥
९.६४.२२	इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
ऋतस्य • •	अर्कस्य योनिम् आसदम् ॥ ६ ॥
९.६२.४	असाव्य् अंशुर् मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
	श्येनो न योनिम् आसदत् ॥ ७ ॥
९.२५.१	पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
	मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥
९.१८.१ • सुवानो …अक्षाः	परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
	मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥
९.९.१	परि प्रिया दिवः कविर् वयांसि नप्त्योर् हितः ।
सुवानो • •	स्वानैर् याति कविक्रतुः ॥ १० ॥ ॥१॥
	१.५०
ऋ ९.३२.१ …मघोनः	प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
	सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥
९.३३.१ • • • ऽर्षा • यन्त्य् •	प्र सोमासो विपश्चितो ऽपो नयन्त ऊर्मयः ।
…इव (एवं कौ)	वनानि महिषा इवा ॥ २ ॥
९.६१.२८	पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
	विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥
९.६५.४[१.१]	वृषा ह्य् असि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
• स्वाध्यः	पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥
९.६४.१० …मती	इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।
	सृजद् अश्वं रथीर् इव ॥ ५ ॥
९.६४.४	असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
	शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ६ ॥
९.६३.२२	पवस्व देव आयुषग् इन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
	वायुम् आ रोह धर्मणा ॥ ७ ॥
९.६१.१६	पवमानो अजीजनद् दिवश् चित्रं न तन्यतुम् ।
	ज्योतिर् वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥
९.१०.४ • सुवानास ..	परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
सुता • •	मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥
९.१४.१	परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोर् ऊर्मांव् अधि श्रितः ।
कारं…	कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥ ॥२॥

	१.५१
ऋ ९.६१.१३[१.१]	उपो षु जातम् अप्तुरं गोभिर् भङ्गं परिष्कृतम् ।
	इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥
९.४०.१	पुनानो अक्रमीद् अभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
	शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥
९.६२.१९	आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्न् अभि श्रियः ।
शूरो न गोषु तिष्ठति	इन्दुर् इन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥
९.३६.१	असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
	कार्ष्मन् वाजी न्य् अक्रमीत् ॥ ४ ॥
९.४१.१ • ये…	प्र यद् गावो न भूर्णयस् त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
	घ्नन्तः कृष्णाम् अप त्वचम् ॥ ५ ॥
९.६३.२४	अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः ।
	नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥
९.६३.७	अया पवस्व धारया यया सूर्यम् अरोचयः ।
	हिन्वानो मानुषीर् अपः ॥ ७ ॥
९.६१.२२	स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
	ववियांसं महीर् अपः ॥ ८ ॥
९.६१.१ • वीती (एवं कौ) ..	अया पीती परि स्रव यस् त इन्दो मदेष्व् आ ।
• • नव (एवं कौ)	अवाहन् नवतीर् नवा ॥ ९ ॥
९.५२.१ • द्युक्षः सनद्रयिर् …	परि द्युक्षं सनद् रयिं भरद् वाजं नो अन्धसा ।
सुवानो…	स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥ ॥३॥
	१.५२
	अचिक्रदद् वृषा हरिर् महान् मित्रो न दर्शतः ।
ऋ ९.२.६	सं सूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥
• • रोचते	आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निम् अद्या वृणीमहे ।
९.६५.२८	पान्तम् आ पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥
९.५१.१ …सृज (कौ नय)	अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनीहीन्द्राय •	पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥
९.५८.१	तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
	तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥
९.६३.१	आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् ।
अस्मे (एवं कौ) • धारय (एवं कौ)	अस्मे श्रवांसि धारया ॥ ५ ॥
९.२३.२	अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
	रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥
९.६५.१९	अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।

• श्येनो न योनिमा	सीदन् योनौ वनेष्व् आ ॥ ७ ॥
९.६४.१	वृषा सोम द्युमं असि वृषा देव वृषव्रतः ।
…दधिषे	वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥
९.६४.१३	आ पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
	इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ ९ ॥
९.६.१	मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्यो वारेष्व् •	अव्या वारेभिर् अस्मयुः ॥ १० ॥
९.४७.१ • सोमः • महश्चिदभ्यव-	अया सोम सुकृत्यया महान् सन्न् अभ्य् अवर्धथाः ।
• उद् वृषायते [र्धत	मन्दान इद् वृषायसे ॥ ११ ॥
९.६२.१०	अयं विचर्षणिर् हितः पवमानः स चेतति ।
	हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥
९.४४.१ • ण • • तन • • • •	प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रद् अर्षसि ।
	अभि देवं अयास्यः ॥ १३ ॥
९.६१.२५	अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराव्णः ।
	गच्छन्न् इन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥ ॥४॥
	१.५३
ऋ ९.१०७.४	पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
.. देव	आ रत्नधा योनिम् ऋतस्य सीदस्य् उत्सो देवो
	हिरण्ययः ॥ १ ॥
१ परीतः…	परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
	दधन्वान् यो नर्यो अप्स्व् अन्तर् आ सुषाव सोमम्
	अद्रिभिः ॥ २ ॥
१० • • सुवानो…	आ सोम स्वानो अद्रिभिस् तिरो वाराण्य् अव्यया ।
…दधिषे	जनो न पुरि चम्वोर् विशद् धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३॥
१२	प्र सोम देववीतये सिन्धुर् न पिप्ये अर्णसा ।
	अंशोः पयसा मदिरो न जागृविर् अच्छा कोशं मधु-
	श्चुतम् ॥ ४ ॥
८ • • पुनानः…	सोम उ ष्वाणः सोतृभिर् अधि ष्णुभिर् अवीनाम् ।
	अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥५॥
१९	तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
	पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति माम् अव परिधींर् अति तं
	इहि ॥६॥
२१ • सुहस्त्य…	मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचम् इन्वसि ।
	रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्य् अर्षसि ॥ ७ ॥
१४	अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
• विष्टपि • • स्वर्विदः	समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

१ अव्यो वारे • •	पुनानः सोम जागृविर् अव्या वारैः परि प्रियः ।
• • • ऽङ्गिरस्तमो … कौ … मः	त्वं विप्रो अभवो ऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ९ ॥
२५	पवमाना असृक्षत पवित्रम् अति धारया ।
	मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधाम् अभि प्रयांसि च ॥ १० ॥
२३ • वाजसातये • • काव्या	पवस्व वाजसातमो ऽभि विश्वानि वार्या ।
• समुद्रे प्रथमो वि धारयो • • •	त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥
१० [कौ • • • विधर्मे …	इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
	सहस्रधारो अत्य् अव्यम् अर्षति तम् ईं मृजन्त्य् आयवः ॥ १२ ॥ ॥५॥

१.५४

* १.८०.१	प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजम् अर्ष ।
	अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो अच्छा बर्ही रशनाभिर् नयन्ति ॥ १ ॥
१.९७.७	प्र काव्यम् उशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
	महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्य् एति रेभन् ॥ २ ॥
१.९७.३४	तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर् ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
	गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥
१.९७.१	अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः सम् अपृक्त रसम् ।
…पशुमन्ति • {	सुतः पवित्रं पर्य् एति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥
१.९७.४० कौ • • • विधर्मे … राजा	अक्रान् समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
सुवान इन्दुः	वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ५ ॥
१.९५.१	कनिक्रन्ति हरिर् आ सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
…मा • मतीर् •	नृभिर् यतः कृणुते निर्णिजं गाम् अतो मतिं जनयत स्वधाभिः ॥ ६ ॥

१.८७.४ …वृष्णे • •	एष स्य ते मधुमं इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा …	सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिर् आ वाज्य् अस्थात् ॥ ७ ॥
१.९६.१३ …साना	पवस्व सोम मधुमं ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये ।
• • • सीद • • •	अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ ८ ॥
१.९६.५	सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
	जनिताग्नेर् जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ९ ॥
१.९०.२ …आङ्गूषाणाम् • •	अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधाम् अङ्गोषिणम् अवावशन्त वाणीः ।
…सिन्धुर् • • •	वना वसानो वरुणो न सिन्धुर् वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १० ॥ ॥६॥

१.५५

* १.९६.१	प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्न् एति हर्षते अस्य सेना ।
	भद्रान् कृण्वन्न् इन्द्रहवान् सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा 'रभसानि दत्ते ॥ १ ॥
१.९७.३१ …वारान् • • • अव्यान्	प्र ते धारा मधुमतीर् असृग्रन् वारं यत् पूतो अत्येष्य् अव्यम् ।
…जज्ञानः • •	पवमान पवसे धाम गोनां जनयन् सूर्यम् अपिन्वो अर्कैः ॥ २ ॥
१.९७.४ …हिनोत (एवं कौ) • धनाय (एवं कौ) }	प्र गायताभ्य् अर्चाम देवान् सोमं हिनोता महते धनाय ।
• पवाते …सीदाति • देवयुर्नः	स्वादुः पवताम् अति वारम् अव्यम् आ सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥ ३ ॥
१.९०.१ सनिष्यन्	प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्न् अयासीत् ।
	इन्द्रं गच्छन्न् आयुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोर् आदधानः ॥ ४ ॥
१.९७.२२ …ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोर्	तक्षद् यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोर् अनीके ।
	आद् ईम् आयन् वरम् आ वावशाना जुष्टं पतिं कलशे

	गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥
१.९३.१	साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
	हरिः पर्य् अद्रवज् जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥
१.९७.१०	इन्दुर् वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
• • • • मरातीर् …	हन्ति रक्षो बाधते पर्य् अरातिं वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ ७ ॥
१.९१.१ …सूर्ये	अधि यद् अस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
• • • कवीयन्	अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ८ ॥
१.९७.४१	महत् तत् सोमो महिषश् चकारापां यद् गर्भो ऽवृणीत देवान् ।
	अदधाद् इन्द्रे पवमान ओजो ऽजनयत् सूर्ये ज्योतिर् इन्दुः ॥ ९ ॥
१.९५.३	अपाम् इवेद् ऊर्मयस् तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोमम् अच्छ ।
	नमस्यन्तीर् उप च यन्ति सं चा च विशन्त्य् उशतीर् उशन्तम् ॥ १० ॥
१.९७.५२ …धन्व (एवं कौ)	अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
• • अत्र • • सूत्र पुरुमेधश् … • दात्	ब्रध्नश् चिद् यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश् चित् तकवे नरं धात् ॥ ११ ॥
१.९१.१ …प्रथमो मनीषी {	असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा ।
…ऽजन्ति • सदनान्य्	दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्व् अच्छ ॥ १२ ॥ ॥७॥

१.५६

* १.१०१.१	पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
	अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ १ ॥
१.१०१.७	अयं पूषा रयिर् भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
	पतिर् विश्वस्य भूमनो व्य् अख्यद् रोदसी उभे ॥ २ ॥
१.९९.१ …धनुस्तन्वन्ति •	आ हर्यताय धृष्णवे धनुष् टन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्य् • निर्णिजं …	शुक्रा वि यन्त्य् असुराय निर्णिजे विपाम् अग्रे महीयुवः ॥ ३ ॥

१.९८.७	परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
	यो देवान् विश्वां इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ४ ॥
१.१०१.४	सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
कौ • अक्षरं …	पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ५ ॥
* १.१०१.१०	सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
• सुवाना …	मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ६ ॥
१.९८.१ अभि … पुरुस्पृहम्	अभी नो वाजसातमं रयिम् अर्ष शतस्पृहम् ।
…विश्वासहम्	इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ७ ॥
१.१००.१	अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियम् इन्द्रस्य काम्यम् ।
	वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ८ ॥
१.१०१.१३ • सुन्वानस्यान्धसो • } • वृत …	प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद् वचः ।
	अप श्वानम् अराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥ ॥८॥

१.५७

* १.७५.१	अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
	आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्न् अधि रथं विष्वञ्चम् अरुहद् विचक्षणः ॥ १ ॥
१.७९.१ …सुवानासो • दिवेषु	अचोदसो नो धन्वन्त्व् इन्दवः प्र स्वानासो बृहद् देवेषु हरयः ।
• च नशन्न इषो • • नशन्त सनिषन्त	वि चिद् अश्नाना इषयो अरातयो ऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥
१.७७.१ वपुष्टरः	एष प्र कोशे मधुमं अचिक्रदद् इन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।
…पयसेव धेनवः : कौ अभ्य् ऋतस्य … {	अभीम् ऋतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥
१.८६.१६	प्रो अयासीद् इन्दुर् इन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर् न प्र मिनाति संगिरम् ।
…शतयाम्ना	मर्य इव युवतिभिः सम् अर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥
१.७६.१ • • • कृत्व्यो (एवं कौ)	धर्ता दिवः पवते कृत्वियो रसो दक्षो देवानाम् अनुमाद्यो नृभिः ।
कृणुते • •	हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर् वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्व् आ ॥ ५ ॥
१.८६.१९ …अह्नः प्रतरीतोषसो • {	वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

क्राणा • • अचीवशद् ...	प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रदद् इन्द्रस्य हार्दि आविशन् मनीषिभिः ॥ ६ ॥
९.८२.१	असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
• • पर्य् एष्य् ... • आसदम्	पुनानो वारम् अत्य् एष्य् अव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तम् आसदत् ॥ ७ ॥
९.६८.१	प्र देवम् अच्छा मधुमन्त इन्दवो ऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
	बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतम् उस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ ८ ॥
९.७०.१ ...दुदुह्रे • • पूर्व्ये •	त्रिर् अस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्याम् आशिरं परमे व्योमनि ।
	चत्वार्य् अन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यद् ऋतैर् अवर्धत ॥ ९ ॥
९.८५.१ ... स्रवापामीवा (एवं कौ) • •	इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवा अपामीवा भवतु रक्षसा सह ।
	मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्व् इन्दवः ॥ १० ॥
९.८६.४३ ...मधुनाम्य् •	अञ्जते व्य् अञ्जते सम् अञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्य् अञ्जते ।
	सिन्धोर् उच्छ्वासे पतयन्तम् उक्षणं हिरण्यपावाः पशुम् अप्सु गृभ्णते ॥ ११ ॥
आसु • ९.८३.१	पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस् पते प्रभुर् गात्राणि पर्य् एषि विश्वतः ।
तत्समाशत	अतप्ततनूर् न तद् आमो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तद् आशत ॥ १२ ॥ ॥९॥

१.५८

ऋ ९.१०६.१	इन्द्रम् अच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी ...	श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
९.१०६.४	प्र धन्वा सोम जागृविर् इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
...भरा •	द्युमन्तं शुष्मम् आ भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥
९.१०४.१	सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
	शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥
९.१०५.१	तं वः सखायो मदाय पुनानम् अभि गायत ।
• • यज्ञैः ...	शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥
९.१०२.१ क्राणा ...	प्राणा शिशुर् महीनां हिन्वन्न् ऋतस्य दीधितिम् ।

...द्विता (एवं कौ)	विश्वा परि प्रिया भुवद् अध द्विता ॥ ५ ॥
९.१०६.७	पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिर् ओजसा ।
	आ कलशं मधुमान् सोम नः सदः ॥ ६ ॥
९.१०६.१० • • ऊर्मिणाव्यो ...	सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
	अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
९.१०३.१ ... उद्यतम्	प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
	भृतिं न भरा मतिभिर् जुजोषते ॥ ८ ॥
९.१०५.४ ...धन्व (कौ धनिव)	गोमन् न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव ।
• ते ...दीधरम्	शुचिं च वर्णम् अधि गोषु धारय ॥ ९ ॥
९.१०४.४	अस्मभ्यं त्वा वसुविदम् अभि वाणीर् अनूषत ।
	गोभिष् टे वर्णम् अभि वासयामसि ॥ १० ॥
९.१०६.१३	पवते हर्यतो हरिर् अति ह्वरांसि रंह्या ।
• अर्षन् ...	अभ्य् अर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥ ११ ॥
९.१०३.३ • • • अव्यये वारे •	परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
...सप्त •	अभि वाणीर् ऋषीणां सप्ता नूषत ॥ १२ ॥ ॥१०॥

१.५९

ऋ ९.१०८.१	पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
	महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
९ ... देवयुः	अभि द्युम्नं बृहद् यश इषस् पते दिदीहि देव देवयुम् ।
	वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥
७	आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोमम् अप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षम् •	वनप्रक्षम् उदप्रुतम् ॥ ३ ॥
११ ...दिवो दुहुः	एतम् उ त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।
	विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ४ ॥
१३	स सुन्वे यो वसूनां यो रायाम् आनेता य इडानाम् ।
	सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥
३ • • • दैव्या ...	त्वं ह्य् अङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
• घोषयः (कौ घोषयन्)	अमृतत्वाय घोषयत् ॥ ६ ॥
५ • • • • ऽव्यो	एष स्य धारया सुतो ऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
...इव (एवं कौ)	क्रीळन्न् ऊर्मिर् अपाम् इवा ॥ ७ ॥
६ • • अप्या अन्तरश्मनो ...	य उस्रिया अपि या अन्तर् अश्मनि निर् गा अकृन्तद् ओजसा ।
	अभि व्रजं तत्निषे गव्यम् अश्व्यं वर्मीव धृष्णव् आ रुज ॥ ८ ॥ ॥ ११ ॥

२.१

ऋ ७.२७.३ ...क्षमि विषुरूपं • अस्ति	इन्द्रो राजा जगतश् चर्षणीनाम् अधि क्षमा विश्वरूपं यद् अस्य ।
...उपस्तुतश् •	ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतं चिद् अर्वाक् ॥ १ ॥
१.९१.१८	सं ते पयांसि सम् उ यन्तु वाजाः सं वृष्णियान्य् अभिमातिषाहः ।
	आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्य् उत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥
१.९१.२२	त्वम् इमा ओषधीः सोम विश्वास् त्वम् अपो अजनयस् त्वं गाः ।
• आ ततन्थ ... ववर्थ (एवं कौ)	त्वम् आतनोर् उर्व् अन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्था ॥ ३ ॥
आ • • • यशो ...	मयि वर्चो अथो भगम् अथो यज्ञस्य यत् पयः ।
	परमेष्ठी प्रजापतिर् दिवि द्याम् इव दृंहतु ॥ ४ ॥
	इदं छन्दो जमदग्ने ऋतावृधो येन देवासो अमृतत्वम् आयन् ।
	तत्र द्यावापृथिवी धत्तम् अस्मान् यत्र देवानां गुह्यं निधाम ॥ ५ ॥
ऋ २.३५.३	सम् अन्या यन्त्य् उप यन्त्य् अन्याः समानम् ऊर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं (एवं कौ) • • • परि तस्थुर्	तमोपुचं शुचयो दीदिवांसम् अपां नपातम् उप यन्त्य् आपः ॥ ६ ॥
४.१.१६ • • • • धेनोस् • • मातुः परमाणि विन्दन्	ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
तज् • • • व्रा • भुवद् • • गोः	ता जानतीर् अभ्य् अनूषत क्षा आविर् भुवन्न् अरुणी यशसा गावः ॥ ७ ॥
	सहर्षभाः सहवत्सा उद् एत विश्वा रूपाणि बिभ्रतीर् द्व्यूध्नीः ।
	उरुः पृथुर् अयं वो अस्तु लोक इमा आपस् सुप्रपाणा इह स्त ॥ ८ ॥
	आरत् सुपर्णः पततुम् आश्वानम् आशितं करत् ।

	तीर्थानि सुप्रपाणानि सुगं गोयवनं करत् ॥ ९ ॥
ऋ १.१.१	अग्निम् ईळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम् ।
	होतारं रत्नधातमम् ॥ १० ॥ ॥१॥

२.२

आ • • • सुभोजसौ ...	मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसा ये अप्रथेथाम् अमितम् अभि योजनम् ।
	द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥ १ ॥
आ यशो • • यशो मेन्द्रबृहस्पती	यशसा मा द्यावापृथिवी भगेनेन्द्रबृहस्पती ।
	यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रति मुच्यताम् ।
आरण्यसंहितायां अहं भूयासम् उत्तमः इति न विद्यते	यशस्व्य् अस्याः संसदो ऽहं प्रवदिता स्याम् अहं भूयासम् उत्तमः ॥ २ ॥
आ ...नो वचो •	प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नु वोचो विदथा जातवेदसे ।
	वैश्वानराय मतिर् नव्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुर् अग्नये ॥ ३ ॥
ऋ ६.५२.१४ • • • • यज्ञिया ...	विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञम् उभे रोदसी अपां नपाच् च मन्म ।
	मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्व् इद् वो अन्तम् आ मदेम ॥ ४ ॥
ऋ ८.९२.२८	एवा ह्य् असि वीरयुर् एवा शूर उत स्थिरः ।
	एवा ते राध्यं मनः ॥ ५ ॥
आ ...ईप्सति	आ प्रागाद् भद्रा युवतिर् अह्नः केतून् सम् ईप्सति ।
आ • • • • • रात्री (उग्रं • • इति नास्ति)	अभूद् भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्रिर् उग्रं वाजिन्य् अक्रमीत् ॥ ६ ॥
ऋ ३.२६.७	अग्निर् अस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुर् अमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातु • • ऽजस्रो घर्मो • • नाम	त्रिधातुर् अर्को रजसो विमानो ऽजस्रं ज्योतिर् हविर् अस्मि सर्वम् ॥ ७ ॥
ऋ ३.५.५ पाति प्रियं रिपो ...	पात्य् अग्निर् विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश् चरणं सूर्यस्य ।
	पाति नाभा सप्तशीर्षाणम् अग्निः पाति देवानाम् उपमादम् ऋष्वः ॥ ८ ॥
	भ्राजन्त्य् अग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्य् अन्तर् आसनि ।
	स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद् रयिं वर्चो दृशे दाः ॥ ९ ॥ ॥२॥

२.३

ऋ १.३२.१ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्न् अहिम् अन्व् अपस् ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥
१०.१७०.१ विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्व् आयुर् दधद् यज्ञपताव् अविह्रुतम् ।
• • • • • पुपोष पुरुधा वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥ २ ॥
ऋग्वेदे नास्ति वसन्त इन् नु रन्त्यो ग्रीष्म इन् नु रन्त्यः ।
वर्षाण्य् अनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन् नु रन्त्यः ॥ ३ ॥
१.१८७.५ तव त्ये पितो ददतस् तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
• स्वाद्मानो प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ४ ॥
८.६१.१५ इन्द्रः स्पळ् उत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच् चरमं स मध्यमं स पश्चात् पातु नः पुरः ॥ ५ ॥
१०.९०.१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
• • विश्वतो स भूमिं सर्वतो वृत्वात्य् अतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ ६ ॥
४ त्रिपाद् ऊर्ध्व उद् ऐत् पुरुषः पादो ऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततः साशनानशने • तथा विष्वङ् व्य् अक्रामद् अशनानशने अभि ॥ ७ ॥
२ • • • यद् भूतं • • भव्यं पुरुष एवेदं सर्वं भव्यं यच् च भाव्यम् ।
३ • • विश्वा पादो ऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपाद् अस्यामृतं दिवि ॥ ८ ॥
३ एतावान् • • अतो तावान् अस्य महिमा ततो ज्यायांश् च पूरुषः ।
२ उतामृतत्वस्येशानो यद् अन्नेनातिरोहति ॥ ९ ॥
५ तस्माद् ततो विराड् अजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्य् अरिच्यत पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः ॥ १० ॥ ॥ ३ ॥

२.४

ऋ १०.९०.६ यद् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञम् अतन्वत ।
• अस्यासीद् वसन्त एषाम् आसीद् आज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् धविः ॥ १ ॥
१०.९०.१५ सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
पशुम् देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं हविः ॥ २ ॥
ॠ हरिती • हरी त इन्द्र श्मश्रूण्य् उतो ते हरिता हरी ।
• • • कवय तं त्वा स्तुवन्ति कारवः पुरुषासो वनर्गवः ॥ ३ ॥
ऋभ्वास इन्द्र भुङ्ग इति मघवन्न् इन्द्र भुङ्ग इति ।
इन्द्रस् प्रसर्पतः ॥ ४ ॥

यद् वर्चो हिरण्यस्य यद् वा वर्चो गवाम् उत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस् तेन मा सं सृजामसि ॥ ५ ॥
ऋ १.११५.१ चित्रं देवानाम् उद् अगाद् अनीकं चक्षुर् मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश् च ॥ ६ ॥
यद् इतस् तन्वो मम दोषा रसस्य भेजिरे ।
नराशंसेन सोमेनाहं तत् पुनर् आ ददे ।
युष्मद् अप्सरसस् परि ॥ ७ ॥
यस्येदम् आ रजो युजस् तुजे जने वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ८ ॥
सहस् तन् न इन्द्र दध्य् ओज ईशे ह्य् अस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून् सुहना कृधी नः ॥ ९ ॥
ऋ ६.४६.५ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र • • ओभे • प्राः यद् दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र आ प्राः ॥ १० ॥
॥ ४ ॥

२.५

ऋ १.२४.१५ उद् उत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते • • • अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥ १ ॥
९.९७.५८ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २ ॥
इमं वृषणं कृणुतैकम् इन् माम् ॥ ३ ॥
९.६१.१२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परि स्रव ॥ ४ ॥
९.६१.११ एना विश्वान्य् अर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ५ ॥
८.९३.१३ त्वम् एतद् अधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
परुष्णीषु रुशत् पयः ॥ ६ ॥
१०.१८१.१ प्रथश् च यस्य सप्रथश् च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर् यत् ।
धातुर् द्युतानात् सवितुश् च विष्णो रथन्तरम् आ जभारा वसिष्ठः ॥ ७ ॥

१.७.२ इन्द्र इद् धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥
१.७.४ इन्द्र वाजेषु नो ऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिर् ऊतिभिः ॥ ९ ॥
९.८३.३ ... बिभर्ति भुवनानि • { अरूरुचद् उषसः पृश्निर् अग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भम् आ दधुः ॥ १० ॥ ॥ ५ ॥

२.६

ऋ ८.८९.५ ... वृत्रहत्याय (एवम् आ) यज् जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
... क्षाम् (आ उतो दिवम्) तत् पृथिवीम् अप्रथयस् तद् अस्तभ्ना उत दिवम् ॥ १ ॥
९.६६.१९ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जम् इषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ २ ॥
१०.१८९.१ आयं गौः पृश्निर् अक्रमीद् असदन् मातरं पुनः ।
पितरं च प्रयन् स्वः ॥ ३ ॥
२ अन्तश् चरति रोचनास्य प्राणाद् अपानती ।
व्य् अख्यन् महिषो दिवम् ॥ ४ ॥
३ त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोर् अह द्युभिः ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥

२.७

विद्मा मघवन् विद्मा गातुम् अनु शंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरोवसो ॥
आभिष् ट्वम् अभिष्टिभिः । प्रचेतन प्रचेतया । इन्द्र द्युम्नाय न इषे । एवा हि शक्रः । राये वाजाय वज्रिवः । शविष्ठ वज्रिन्न् ऋञ्जसे । मंहिष्ठ वज्रिन्न् ऋञ्जसे । आ याहि पिब मत्स्व ॥ १ ॥
विद्मा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर् वशां अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्न् ऋञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ।
यो मंहिष्ठो मघोनां चिकित्वो अभि नो नय ।
इन्द्रो विदे तम् उ स्तुहि ॥
ईशे हि शक्रस् तम् ऊतये हवामहे जेतारम् अपराजितम् ।
स नः पर्षद् अति द्विषः क्रतुश् छन्द ऋतं बृहत् ॥ २ ॥
इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारम् अपराजितम् ।
स नः पर्षद् अति द्विषः स नः पर्षद् अति द्विषः ॥

पूर्व्यस्य यत् ते अद्रिवः ॥
सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते ।
वशी हि शक्रो नूनं तन् नव्यं सन्यसे ॥
प्रभुर् जनस्य वृत्रहन् सम् अर्येषु स्तवामहे ।
शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ॥ ३ ॥
एवा ह्य् एवा । एवा ह्य् अग्ने । एवा हीन्द्र ।
एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॥ ४ ॥ ॥ ७ ॥

३.१

नमः पितृभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषद्भ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीं गये सहस्रवर्तनि ॥ १ ॥
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि संभृतम् ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ २ ॥
क ९.११.१ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवं इयक्षते ॥ ३ ॥
२ अभि ते मधुना पयो ऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।
• • देवयु (एवं कौ) देवं देवाय देवयुम् ॥ ४ ॥
३ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शम् अर्वते ।
शं राजन्न् ओषधीभ्यः ॥ ५ ॥
९.६४.२८ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ ६ ॥
२९ हिन्वानो हेतृभिर् हित आ वाजं वाज्य् अक्रमीत् ।
सीदन्तो वनुषो यथा ॥ ७ ॥
३० ...दिवः कविः ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ८ ॥
९.६६.१० पवमानस्य ते कवे वाजिन् सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ ९ ॥
११ अच्छा कोशं मधुश्चुतम् असृग्रं वारे अव्यये ।
• धीतयः (एवं कौ) अवावशन्त धीतये ॥ १० ॥
१२ अच्छा समुद्रम् इन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्न् ऋतस्य योनिम् आ ॥ ११ ॥ ॥१॥

३.२

ख ६.१६.१० अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥
११ तं त्वा समिद्भिर् अङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच् छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥
१२ स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव विवाससि ।
बृहद् अग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥
३.६२.१६ आ नो मित्रावरुणा घृतैर् गव्यूतिम् उक्षतम् ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ ४ ॥

३.६२.१७ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ ५ ॥
१८ गृणाना जमदग्निना योनाव् ऋतस्य सीदतम् ।
पातं सोमम् ऋतावृधा ॥ ६ ॥
८.१७.१ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
२ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहताम् इन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥
३ • त्वा वयं युजा ... ब्रह्माणस् त्वा युजा वयं सोमपाम् इन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥
३.१२.१ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर् नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥ १० ॥
२ इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातम् इमं सुतम् ॥ ११ ॥
३ इन्द्रम् अग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ १२ ॥ ॥२॥

३.३

क ९.६१.१० • • • अन्धसो (एवं कौ) [• • भूमिर् • • उच्चा ते जातम् अन्धसा दिवि सद् भूम्य् आ ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥
१२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
• • स्रव (एवं कौ) वरिवोवित् परि स्रवा ॥ २ ॥
११ • विश्वान्य् (एवं कौ) ... एना विश्वन्य् अर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥
९.१०७.४ पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
...देव आ रत्नधा योनिम् ऋतस्य सीदस्य् उत्सो देवो
हिरण्ययः ॥ ४ ॥
५ दुहान ऊधर् दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थम् आसदत् ।
...अर्षति • धूतो • आ पृच्छ्यं धरुणं वाज्य् अर्षसि नृभिर् धौतो विचक्षणः
॥ ५ ॥
९.८७.१ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजम्
अर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो ऽच्छा बर्ही रशनाभिर्
नयन्ति ॥ ६ ॥
२ ...वृजनं • स्वायुधः पवते देव इन्दुर् अशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः
पृथिव्याः ॥ ७ ॥

३ ऋषिर् विप्रः पुरएता जनानाम् ऋभुर् धीर उशना काव्येन ।
स चिद् विवेद निहितं यद् आसाम् अपीच्यं गुह्यं नाम
गोनाम् ॥ ८ ॥ ॥ ३ ॥

३.४

क ७.३२.२२ अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानम् अस्य जगतः स्वर्दृशम् ईशानम् इन्द्र त-
स्थुषः ॥ १ ॥
२३ न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्न् इन्द्र वाजिनो गव्यन्तस् त्वा हवा-
महे ॥ २ ॥
४.३१.१ कया नश् चित्र आ भुवद् ऊती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३ ॥
२ कस् त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सद् अन्धसः ।
दृढा चिद् आरुजे वसु ॥ ४ ॥
३ अभी षु णः सखीनाम् अविता जरितॄणाम् ।
• • ऊतिभिः शतं भवास्य् ऊतये ॥ ५ ॥
८.८८.१ तं वो दस्मम् ऋतीषहं वसोर् मन्दानम् अन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर् नवामहे ॥ ६ ॥
२ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिर् आवृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तम् ईमहे ॥ ७ ॥
८.६६.१ तरोभिर् वो विदद्वसुम् इन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ ८ ॥
२ ...मदे सुशिप्रम् • न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रम् अन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्
॥ ९ ॥ ॥ ४ ॥

३.५

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
क ९.१.१ इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
रक्षोहा विश्वचर्षणिर् अभि योनिम् अयोहते ।
२ ...अयोहतम् द्रोणे सधस्थम् आसदत् ॥ २ ॥
द्रुणा • • वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
३ • भव ... पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥
९.१०६.१४ (द्वितीयतृतीयपादयोर् विपर्यासः) { अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्य् एषि विश्वतः ।
मधोर् धारा असृक्षत ॥ ४ ॥
११ पवते हर्यतो हरिर् अति ह्वरांसि रंह्या ।

अभ्यर्षन् स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥ ५ ॥
९.१०१.१ पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥ ६ ॥
२ यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुर् अश्वो न कृत्वियः ॥ ७ ॥
३ तं दुरोषम् अभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
यज्ञं हिन्वन्त्य् अद्रिभिः यज्ञाय सन्त्व् अद्रयः ॥ ८ ॥
९.७५.१ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु
वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्न् अधि रथं विष्वञ्चम् अरुहद्
विचक्षणः ॥ ९ ॥
२ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर् धियो अस्या
अदाभ्यः ।
...रोचने दधाति पुत्रः पित्रोर् अपीच्यं नाम तृतीयम् अधि रोचनं
दिवः ॥ १० ॥
३ ... येमानः • अव द्युतानः कलशां अचिक्रदन् नृभिर् यमाणः कोश
आ हिरण्यये ।
अभीम्... अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि
राजति राजसि ॥ ११ ॥
६.४८.१ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
...शंसिषम् (एवं कौ) प्रप्र वयम् अमृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषः ॥ १२ ॥
२ ऊर्जो नपातं स हिनायम् अस्मयुर् दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्व् अविता भुवद् वृध उत त्राता तनू-
नाम् ॥ १३ ॥ ॥५॥

३.६

क ९.१६.१६ एष्ष् ऊ षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर् वर्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥
१७ यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्रासदः • तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥
१८ ...वसो नहि ते पूर्तम् अक्षिपद् भुवन् नेमानां पते ।
अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥
८.२१.१ वयम् उ त्वाम् अपूर्व्य स्थूरं न कच् चिद् भरन्तो
ऽवस्यवः ।
वाजे • • वज्रिं चित्रं हवामहे ॥ ४ ॥
उप त्वा कर्मन्न् ऊतये स नो युवोग्रश् चक्राम यो धृषत् ।
त्वाम् इद् ध्य् अवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र

	सानसिम् ॥ ५ ॥
८.९८.७ अधा (एवं कौ)...कामाद्	अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
• • यन्त • [महः ससृग्महे	उद् एव ग्मन्त उदभिः ॥ ६ ॥
८	वार् ण त्वा यव्याभिर् वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
	वावृध्वांसं चिद् अद्रिवो दिवेदिवे ॥ ७ ॥
९ ...उरुयुगे (वचोयुजा इति नास्ति) ॥ {	युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ {	इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ८ ॥
	इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
	पिबा सुतस्य मतिर् न मधोश् चकानश् चारुर् मदाय ॥ ९ ॥
ऋग्वेदे न सन्ति	इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर् दिवो न ।
	अस्य सुतस्य स्वर् णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ १० ॥
	इन्द्रस् तुराषाण् मित्रो न जघान वृत्रं यतिर् न ।
	बिभेद वलं भृगुर् न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य ॥ ११ ॥
	॥ ६ ॥

३.७

ऋ ८.९२.१	पान्तम् आ वो अन्धस इन्द्रम् अभि प्र गायत ।
	विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
२	पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या सनश्रुतम् ।
	इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
३ • • • महानां...	इन्द्र इन् नो महानां दाता वाजानां नृतुः ।
महाँ अभिज्ञ्व् आ (एवं कौ) •	महं अभिज्ञुवा यमत् ॥ ३ ॥
७.३१.१	प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
	सखायः सोमपाव्ने ॥ ४ ॥
२	शंसेद् उक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
	चकृमा सत्यराधसे ॥ ५ ॥
३	त्वं न इन्द्र वाजयुस् त्वं गव्युः शतक्रतो ।
	त्वं हिरण्ययुर् वसो ॥ ६ ॥
८.२.१६	वयम् उ त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
	कण्वा उक्थेभिर् जरन्ते ॥ ७ ॥
१०	न घेम् अन्यद् आ पपन वज्रिन्न् अपसो नविष्टौ ।
...स्तोमं •	तवेद् उ स्तोमैश् चिकेत ॥ ८ ॥
१८	इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
	यन्ति प्रमादम् अतन्द्राः ॥ ९ ॥
८.९२.१९	इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
	अर्कम् अर्चन्तु कारवः ॥ १० ॥

२०	यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
	इन्द्रं सुते हवामहे ॥ ११ ॥
२१	त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञम् अत्नत ।
	तम् इद् वर्धन्तु नो गिरः ॥ १२ ॥ ॥७॥

३.८

ऋ ८.१७.११	अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
...पिब (एवं कौ)	एहीम् अस्य द्रवा पिबा ॥ १ ॥
१२	शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः ।
	आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥
१३ • • • नपाद्...	यस् ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
	न्य् अस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ३ ॥
८.८१.१	आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
	महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ४ ॥
२	विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।
	तुविमात्रम् अवोभिः ॥ ५ ॥
३	नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
	भीमं न गां वारयन्ते ॥ ६ ॥
८.४५.२२	अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
	तृम्पा व्य् अश्नुही मदम् ॥ ७ ॥
२३	मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
• ब्रह्मद्विषो •	माकीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ ८ ॥
२४ • • गोपरीणसा...	इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे ।
	सरो गौरो यथा पिब ॥ ९ ॥
८.२.१	इदं वसो सुतम् अन्धः पिबा सुपूर्णम् उदरम् ।
	अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १० ॥
२ • धूतः • • अव्यो...	नृभिर् धौतः सुतो अश्नैर् अव्या वारैः परिपूतः ।
	अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ ११ ॥
३	तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुम् अकर्म श्रीणन्तः ।
	इन्द्र त्वास्मिन् सधमादे ॥ १२ ॥ ॥८॥

३.९

ऋ ३.५१.१०	इदं ह्य् अन्व् ओजसा सुतं राधानां पते ।
	पिबा त्व् अस्य गिर्वणः ॥ १ ॥
१२	प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
...राधसे	प्र बाहू शूर राधसा ॥ २ ॥
११	यस् ते अनु स्वधाम् असत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।

...सोम्यम्	स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ ३ ॥
१.५.१	मा त्व् एता नि षीदतेन्द्रम् अभि प्र गायत ।
	सखायः स्तोमवाहसः ॥ ४ ॥
२	पुरूतमं पुरूणाम् ईशानं वार्याणाम् ।
	इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ५ ॥
३ ...पुरन्ध्याम्	स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या ।
	गमद् वाजेभिर् आ स नः ॥ ६ ॥
१.३०.७	योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
	सखाय इन्द्रम् ऊतये ॥ ७ ॥
८	आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिर् ऊतिभिः ।
	वाजेभिर् उप नो हवम् ॥ ८ ॥
९	अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
	यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
८.१३.१ इन्द्रः...पुनीत •	इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
• • दक्षसो ...	विदे वृधस्य दक्षस्य महान् हि षः ॥ १० ॥
२	स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।
	सुपारः सुश्रवस्तमः सम् अप्सुजित् ॥ ११ ॥
३ • अह्वे ...	तम् उ हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
	भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ १२ ॥ ॥९॥

३.१०

ऋ ७.१६.१	एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातम् आ हुवे ।
	प्रियं चेतिष्ठम् अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतम् अमृतम् ॥ १ ॥
२	स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
(कौ) • •	सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥
७.८१.१ प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती (एवं	प्रति षो दृश्यायत्य् उच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे • • •	अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष् कृणोति
	सूनरी ॥ ३ ॥
२	उद् उस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन् नक्षत्रम् अर्चिवत् ।
	तवेद् उषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ ४ ॥
७.७४.१	इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
• • अह्व अवसे (एवं कौ) • • • •	अयं वाम् अह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥५॥
२	युवं चित्रं ददथुर् भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
	अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥
	॥१०॥

३.११

ऋ ९.५४.१	अस्य प्रत्नाम् अनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।

	पयः सहस्रसाम् ऋषिम् ॥ १ ॥
२	अयं सूर्य इवोपदृग् अयं सरांसि धावति ।
	सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
३	अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
	सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥
९.३.९	एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
	हरिः पवित्रे अर्षति ॥४॥
९.४२.२[१]	एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस् परि ।
८.४४.१२[२]	कविर् विप्रेण वावृधे ॥ ५ ॥
९.४२.४ • प्रत्नमिद (एवं कौ)...	दुहानः प्रत्नवित् पयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
• • अजीजनत्	क्रन्दन् देवं अजीजनः ॥ ६ ॥
९.१९.६ ...शत्रुषु	उप शिक्षापतस्थुषो भियसम् आ धेहि शत्रवे ।
	पवमान विदा रयिम् ॥ ७ ॥
९.६१.१३	उपो षु जातम् अप्तुरं गोभिर् भङ्गं परिष्कृतम् ।
	इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ ८ ॥
९.११.१	उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
	अभि देवं इयक्षते ॥ ९ ॥ ॥११॥

३.१२

ऋ ९.३३.१ • • • अपां न यन्त्य •	प्र सोमासो विपश्चितो अपो नयन्त ऊर्मयः ।
	वनानि महिषा इव ॥ १ ॥
२	अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।
	वाजं गोमन्तम् अक्षरन् ॥ २ ॥
३	सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
• अर्षन्ति •	सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥
९.१०७.१२	प्र सोम देववीतये सिन्धुर् न पिप्ये अर्णसा ।
	अंशोः पयसा मदिरो न जागृविर् अच्छा कोशं मधुश्चु-
	तम् ॥ ४ ॥
१३ • • अर्जुने	आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर् न मर्ज्यः ।
	तम् ईं हिन्वन्त्य् अपसो यथा रथं नदीष्व् आ
	गभस्त्योः ॥ ५ ॥
९.३२.१ ...मघोनः	प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
	सुता विदथे अक्रमुः ॥ ६ ॥
९.१०६.१३	पवते हर्यतो हरिर् अति ह्वरांसि रंह्या ।
	अभ्यर्षन् स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः ॥ ७ ॥
९.१०१.१३ • सुन्वानस्यान्धसो }	प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद् वचः ।
• • हत • • }	अप श्वानम् अराधसं हता मखं न भृगवः ॥ ८ ॥ ॥१२॥

३.१३

ऋ ९.६२.२५	पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिर् ऊतिभिः ।
	अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
२६	त्वं समुद्रिया अपो ऽग्रियो वाच ईरयन् ।
• विश्वमेजय	पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥
२७	तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
• अर्षन्ति सिन्धवः	तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥
९.६१.२८	पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।
	विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ४ ॥
२९ अस्य ... (द्वितीयतृतीयपादयोर् विपर्यासः)	यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
	तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥ ५ ॥
३०	या ते भीमान्य् आयुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
	रक्षा समस्य नो निदः ॥ ६ ॥
९.६४.१	वृषा सोम द्युमं असि वृषा देव वृषव्रतः ।
• • दधिषे	वृषा धर्माणि दधिषे ॥ ७ ॥
२ ... मदः	वृष्णस् ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
सत्यं • • •	स त्वं वृषन् वृषेद् असि ॥ ८ ॥
३ • • चक्रदो (एवं कौ) ...	अश्वो न चक्रदद् वृषा सं गा इन्दो सम् अर्वतः
	वि नो राये दुरो वृधि ॥ ९ ॥
९.६५.४[१.१]	वृषा ह्य् असि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
११[१]	पवमान स्वर्दृशम् ॥ १० ॥
६ • • • मृज्यमानो गभस्त्योः	यद् अद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
द्रुणा ...	द्रोणे सधस्थम् अश्नुषे ॥ ११ ॥
५	आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
	इहो ष्व् इन्दव् आ गहि ॥ १२ ॥
९.६१.४	पवमानस्य ते वयं पवित्रम् अभ्युन्दतः ।
	सखित्वम् आ वृणीमहे ॥ १३ ॥
५	ये ते पवित्रम् ऊर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया ।
... मृळय (कौ मृडय)	तेभिर् नः सोम मृडया ॥ १४ ॥
६	स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीम् इषम् ।
	ईशानः सोम विश्वतः ॥ १५ ॥ ॥१३॥

३.१४

ऋ १.१२.१	अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
	अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥
२	अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।

	हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥
३	अग्ने देवां इहावह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
	असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥
१.२३.४ (जाता •	मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
जज्ञाना (या नास्ति) पूतदक्षसा । कौ •	या जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥
५	ऋतेन याव् ऋतावृधाव् ऋतस्य ज्योतिषस् पती ।
	ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥
६	वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिर् ऊतिभिः ।
	करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
१.७.१	इन्द्रम् इद् गाथिनो बृहद् इन्द्रम् अर्केभिर् अर्किणः ।
	इन्द्रं वाणीर् अनूषत ॥ ७ ॥
२	इन्द्र इद् धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
	इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥
४ • • मो ऽव (एवं कौ) ...	इन्द्र वाजेषु णो अव सहस्रप्रधनेषु च ।
	उग्र उग्राभिर् ऊतिभिः ॥ ९ ॥
७.९४.४	इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिम् एरयामहे ।
	धिया धेना अवस्यवः ॥ १० ॥
५	ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।
	सबाधो वाजसातये ॥ ११ ॥
६ • • • विपन्यवः ...	ता वां गीर्भिर् विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
	मेधसाता सनिष्यवः ॥ १२ ॥ ॥ १४ ॥

३.१५

ऋ ९.६५.१०	वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
	विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥
११	तं त्वा धर्तारम् ओण्योः पवमान स्वर्दृशम् ।
	हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥
१२	अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
• • चोदय (एवं कौ)	युजं वाजेषु चोदया ॥ ३ ॥
९.९७.१३	वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्न् एषि पृथिवीम् उत द्याम् ।
... प्रचेतयन्नर्षति	इन्द्रस्येव वग्नुर् आ शृण्व आजौ प्रचोदयन्न् अर्षसि वाचम् एमाम् ॥ ४ ॥
१४	रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्न् एषि मधुमन्तम् अंशुम् ।
पवमानः ...	पवमान संतनिम् एषि कृण्वन्न् इन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ ५ ॥

१५ ... वधस्नैः	एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम् ।
	परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर् नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ६ ॥
६.४६.१ ... साता • •	त्वाम् इद् धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
	त्वां वृत्रेष्व् इन्द्र सत्पतिं नरस् त्वां काष्ठास्व् अर्वतः ॥ ७ ॥
२	स त्वं नश् चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
	गाम् अश्वं रथ्यम् इन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ८ ॥
८.४९.१	अभि प्र वः सुराधसम् इन्द्रम् अर्च यथा विदे ।
	यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ ९ ॥
२	शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
	गिरेर् इव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ १० ॥
८.९९.१	त्वाम् इदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
• • स्तोमवाहसाम् ...	स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्य् उप स्वसरम् आ गहि ॥११॥
२ • सुशिप्र • तद् ...	मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस् तम् ईमहे त्वय् आ भूषन्ति वेधसः ।
• • • उक्थ्या ...	तव श्रवांस्य् उपमान्य् उक्थ्य सुतेष्व् इन्द्र गिर्वणः ॥ १२ ॥ ॥१५॥

३.१६

ऋ ९.६१.१९	यस् ते मदो वरेण्यस् तेना पवस्वान्धसा
	देवावीर् अघशंसहा ॥ १ ॥
२०	जघ्निर् वृत्रम् अमित्रियं सस्निर् वाजं दिवेदिवे ।
गोषा उ • •	गोषातिर् अश्वसा असि ॥ २ ॥
२१ • • मव ...	संमिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर् न धेनुभिः ।
	सीदन् श्येनो न योनिम् आ ॥ ३ ॥
९.१०८.१	पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
	महि द्युक्षतमो मदः ॥ ४ ॥
९.१०६.१	इन्द्रम् अच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी ...	श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ ५ ॥
९.१०१.७	अयं पूषा रयिर् भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
	पतिर् विश्वस्य भूमनो व्य् अख्यद् रोदसी उभे ॥६॥
८	सम् उ प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
	सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ७ ॥
९	य ओजिष्ठस् तम् आ भर पवमान श्रवाय्यम् ।
... वनामहै	यः पञ्च चर्षणीर् अभि रयिं येन वनामहे ॥ ८ ॥
९.८६.१९ ... अह्नः •	वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।

प्राणा • • अचिक्रदत् ...	प्राणा सिन्धूनां कलशं अचिक्रदद् इन्द्रस्य हार्दं आविशन् मनीषिभिः ॥ ९ ॥
२० / अचिक्रदत्	मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर् नृभिर् यतः परि कोशां असिष्यदत् ।
... क्षरद् • वायोः • / वर्धय	त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरन्न् इन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ॥ १० ॥
२१ • • • वि रोचयद् ...	अयं पुनान उषसो अरोचयद् अयं सिन्धुभ्यो अभवद् उ लोककृत् ।
	अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ११ ॥
८.९२.२८	एवा ह्य् असि वीरयुर् एवा शूर उत स्थिरः ।
	एवा ते राध्यं मनः ॥ १२ ॥
२९	एवा रातिस् तुवीमघ विश्वेभिर् धायि धातृभिः ।
• • • मे •	अधा चिद् इन्द्र नः सचा ॥ १३ ॥
३०	मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर् भुवो वाजानां पते ।
	मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ १४ ॥
१.११.१	इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः ।
	रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १५ ॥
२	सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस् पते ।
• • • णोनुमो ...	त्वाम् अभि प्र नोनुमो जेतारम् अपराजितम् ॥ १६ ॥
३	पूर्वीर् इन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्य् ऊतयः ।
यदी ...	यदा वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ १७ ॥ ॥१६॥

३.१७

ऋ ९.६२.१	एते असृग्रम् इन्दवस् तिरः पवित्रम् आशवः ।
	विश्वान्य् अभि सौभगा ॥ १ ॥
२	घ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
तना • अर्वते	त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥
	कृण्वन्तो वरिवो गवे ऽभ्य् अर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
	इडाम् अस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥
९.६५.१६	राजा मेधाभिर् ईयते पवमानो मनाव् अधि ।
	अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ४ ॥
१८	आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
	सुष्वाणो देववीतये ॥ ५ ॥
१७ • • • शतग्विनं ...	आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
	वहा भगत्तिम् ऊतये ॥ ६ ॥

९.४८.१ तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
• सुकृत्ययेमहे (एवं कौ) चारुं सुकृत्ययेमहि ॥ ७ ॥
२ संवृक्तधृष्णुम् उक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ ८ ॥
३ • • रयिमभि राजानं • • अतस् त्वा रयिर् अभ्य् अयद् राजानं सुक्रतो दिवः ।
• अव्ययीर् • सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ९ ॥
४ विश्वस्मा इत् स्वर् दृशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपाम् ऋतस्य विर् भरत् ॥ १० ॥
५ अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वम् आनशे ।
अभिष्टिकृद् विचर्षणिः ॥ ११ ॥
९.६४.१३ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १२ ॥
१४ पुनानो वरिवस् कृध्य् ऊर्जं जनाय गिर्वणः ।
हरे सृजान आशिरम् ॥ १३ ॥
१५ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।
• • यतः द्युतानो वाजिभिर् हितः ॥ १४ ॥ ॥ १७ ॥

३.१८

ऋ १.१२.६ अग्निनाग्निः सम् इध्यते कविर् गृहपतिर् युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ १ ॥
८ यस् त्वाम् अग्ने हविष्पतिर् दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥
९ यो अग्निं देववीतये हविष्मं आविवासति ।
• • मृळय (कौ मृडय) तस्मै पावक मृडया ॥ ३ ॥
१.२.७ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ४ ॥
८ ऋतेन मित्रावरुणाव् ऋतावृधाव् ऋतस्पृशा ।
• • आशाथे (एवं कौ) क्रतुं बृहन्तम् आशाथे ॥ ५ ॥
९ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ६ ॥
१.६.७ इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
४ आद् अह स्वधाम् अनु पुनर् गर्भत्वम् एरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ८ ॥
५ वीळु (कौ वीडु)... वीडु चिद् आरुजत्नुभिर् गुहा चिद् इन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ९ ॥

६.६०.४ ता हुवे ययोर् इदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ १० ॥
५ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ईदृशे ॥ ११ ॥
६ हतो • • हतो • • हथो वृत्राण्य् आर्या हथो दासानि सत्पती ।
हतो ... हथो विश्वा अप द्विषः ॥ १२ ॥ ॥१८॥

३.१९

ऋ ९.१०७.१४ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
• विष्टपि • • स्वर्विदः समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥ १ ॥
१५ तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्... अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥२॥
१६ • येमानो... नृभिर् येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ॥ ३ ॥
९.९७.३४ तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर् ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ४ ॥
३५ सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
• • पूयते अज्यमानः... सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास् त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ५ ॥
३६ एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
• • • • रवेण... इन्द्रम् आ विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ६ ॥
८.७०.५ यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीर् उत स्युः ।
न त्वा वज्रिन् सहस्रं सूर्या अनु न जातम् अष्ट रोदसी ॥ ७ ॥
६ आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्मं अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन् चित्राभिर् ऊतिभिः ॥ ८ ॥
८.३३.१ वयं घ त्वा सुतावन्तः आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ ९ ॥
२ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
... गमः • • कदा सुतं तृषाण ओक आ गमद् इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १० ॥

२ कण्वेभिर् धृष्णव् आ धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तम् ईमहे ॥ ११ ॥
७.३२.२० तरणिर् इत् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ १२ ॥
२१ • दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु • • • • } न दुष्टुतिर् द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर् नशत् ।
सुशक्तिर् इन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि ॥ १३ ॥ ॥१९॥

३.२०

ऋ ९.३३.४ तिस्रो वाच उद् ईरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिर् एति कनिक्रदत् ॥ १ ॥
५ अभि ब्रह्मीर् अनूषत यह्वीर् ऋतस्य मातरः ।
मर्मृज्यन्ते • • मर्मृज्यन्तीर् दिवः शिशुम् ॥ २ ॥
६ रायः (एवं कौ)... रायः समुद्रांश् चतुरो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
...सहस्रिणः (एवं कौ) आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
९.१०८.७ आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोमम् अप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनक्रक्षम् • वनप्रक्षम् उदप्रुतम् ॥ ४ ॥
९.१०५.१ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ५ ॥
९.१०१.४ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ६ ॥
५ इन्दुर् इन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
• • मखस्यते (एवं कौ) ... (कौ ... ओजसा) वाचस् पतिर् मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ७ ॥
६ सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमस् पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ८ ॥
९.८३.१ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस् पते प्रभुर् गात्राणि पर्य् एषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर् न तद् आमो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः
तद् सम् (विपर्यासः) • सं तद् आशत ॥ ९ ॥
२ कौ • • • • अर्चन्तो... तपोष् पवित्रं विततं दिवस् पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्य् अस्थिरन् ।
• • पवीतारम् अवन्त्य् अस्य पवीतारम् आशवो दिवः पृष्ठम् अधि
• चेतसा (कौ रोहन्ति • तिष्ठन्ति चेतसा ॥ १० ॥
३ • • • • • • बिभर्ति भुवनानि } कौ ... सिमेति • } अरूरुचद् उषसः पृश्निर् अग्रिय उक्षा मिमाति भुवनेषु वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भम् आ दधुः ॥ ११ ॥

८.१०३.८ प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ १२ ॥
९ ...द्युम्न्य् (एवं कौ) • आ वसते मघवा वीरवद् यशः समिद्धो द्युम्न्य् आहुतः ।
...नवीयस्य् • • कुविन् नो अस्य सुमतिर् भवीयस्य् अच्छा वाजेभिर् आगमत् ॥ १३ ॥
८.१५.४ ...पृत्सु • तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुम् अद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १४ ॥
५ येन ज्योतींष्य् आयवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ १५ ॥
६ तद् अद्या चित् त उक्थिनो अनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीर् अपो जया दिवेदिवे ॥ १६ ॥
८.९५.४ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस् त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस् पूर्धि महं असि ॥ १७ ॥
५ इन्द्र यस्ते (विपर्यासेन)... यस् त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्राम् अजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नाम् ऋतस्य पिप्युषीम् ॥ १८ ॥
६ तम् उ ष्टवाम यं गिर इन्द्रम् उक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्य् अस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ १९ ॥ ॥२०॥

३.२१

ऋ ९.८६.४ • • • • • धीजुवो ... प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस् ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्य् ऋषिषाण वेधसः ॥ १ ॥
प्रान्तऋक्षय: स्थाविरीरसृक्षत • • • ऋषिषाण •
५ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
योना • यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥
६ ... प्रभोस्ते • • विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष् टे सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः • • धर्मभिः ... व्यानशी पवसे सोम धर्मणा पतिर् विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥
९.६१.१६ पवमानो अजीजनद् दिवश् चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर् वैश्वानरं बृहत् ॥ ४ ॥
१७ पवमानस्य ते रसो मदो राजन्न् अदुच्छुनः ।
कौ पवमानस्थयोः विपर्यासः } वि वारम् अव्यम् अर्षति ॥ ५ ॥
१८ पवमान रसस् तव दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर् विश्वं स्वर् दृशे ॥ ६ ॥

९.४१.१ • ये ...	प्र यद् गावो न भूर्णयस् त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
	घ्नन्तः कृष्णाम् अप त्वचम् ॥ ७ ॥
२ • मनामहे • • दुराव्यम्	सुवितस्य मनामहे अति सेतुं दुराव्यम् ।
साह्वांसो ...	साह्याम दस्युम् अव्रतम् ॥ ८ ॥
३	शृण्वे वृष्टेर् इव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
	चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ९ ॥
४	आ पवस्व महीम् इषं गोमद् इन्दो हिरण्यवत् ।
• वाजवत् सुतः	अश्ववत् सोम वीरवत् ॥ १० ॥
५ स पवस्व विचर्षण • • • पृण (एवं कौ)	पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृणा ।
	उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ११ ॥
६ कौ • नः ...	परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
	सरा रसेव विष्टपम् ॥ १२ ॥
९.३९.१	आशुर् अर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
	यत्र देवा इति ब्रुवन् ॥ १३ ॥
२	परिष्कृण्वन्न् अनिष्कृतं जनाय यातयन्न् इषः ।
	वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ १४ ॥
४	अयं स यो दिवस् परि रघुयामा पवित्र आ ।
	सिन्धोर् ऊर्मा व्य् अक्षरत् ॥ १५ ॥
३	सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।
	विचक्षाणो विरोचयन् ॥ १६ ॥
५	आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।
	इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ १७ ॥
६	समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्य् अद्रिभिः ।
योनावृतस्य सीदत	इन्दुम् इन्द्राय पीतये ॥ १८ ॥
९.६५.१	हिन्वन्ति सूरम् उस्रयः स्वसारो जामयस् पतिम् ।
	महाम् इन्दुं महीयुवः ॥ १९ ॥
२ • रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि	पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः ।
... विशा (एवं कौ)	विश्वा वसून्य् आ विश ॥ २० ॥
३	आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
	इषे पवस्व संयतम् ॥ २१ ॥ ॥२१॥
	३.२२
क ६.१६.३४	अग्निर् वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर् विपन्यया ।
	समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥
३५	गर्भे मातुः पितुष् पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
	सीदन्न् ऋतस्य योनिम् आ ॥ २ ॥
३६	ब्रह्म प्रजावद् आ भर जातवेदो विचर्षणे ।

	अग्ने यद् दीदयद् दिवि ॥ ३ ॥
५.११.१	जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर् अग्निः सुदक्षः सुविताय
	नव्यसे ।
	घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् वि भाति भर-
	तेभ्यः शुचिः ॥ ४ ॥
६	त्वाम् अग्ने अङ्गिरसो गुहा हितम् अन्व् अविन्दन्
	शिश्रियाणं वनेवने ।
	स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वाम् आहुः सहसस्
	पुत्रम् अङ्गिरः ॥ ५ ॥
२	यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितम् अग्निं नरस् त्रिषध-
• • ईधिरे	स्थे सम् इन्धते ।
	इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय
	सुक्रतुः ॥ ६ ॥
२.४१.४	अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
	ममेद् इह श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥
५	राजानाव् अनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्य उत्तमे ।
• आसाते	सहस्रस्थूण आशाते ॥ ८ ॥
६	ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस् पती ।
	सचेते अनवह्वरम् ॥ ९ ॥
१.८४.१३	इन्द्रो दधीचो अस्थभिर् वृत्राण्य् अप्रतिष्कुतः ।
	जघान नवतीर् नव ॥ १० ॥
१४	इच्छन्न् अश्वस्य यच् छिरः पर्वतेष्व् अपश्रितम् ।
	तद् विदच् छर्यणावति ॥ ११ ॥
१५	अत्राह गोर् अमन्वत नाम त्वष्टुर् अपीच्यम् ।
	इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १२ ॥
७.९४.१	इयं वाम् अस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
	अभ्राद् वृष्टिर् इवाजनि ॥ १३ ॥
२	शृणुतं जरितुर् हवम् इन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
	ईशाना पिप्यतं धियः ॥ १४ ॥
३	मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
	मा नो रीरधतं निदे ॥ १५ ॥ ॥२२॥
	३.२३
क ९.२५.१	पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
	मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥
२	सं देवैः शोभते वृषा कविर् योनाव् अधि प्रियः ।

	पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥
वृत्रहा देववीतमः	पवमान धिया हितो ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
२	धर्मणा वायुम् आ रुह ॥ ३ ॥
... विशा (कौ) • • आरुहः	तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
९.१०७.१९	पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति माम् अव परिधींर् अति तां इहि ॥४॥
	तवाहं नक्तम् उत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
२० उताहं • • • • • सख्याय • •	घृणा तपन्तम् अति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ ५ ॥
... पप्तिम (एवं कौ)	पुनानो अक्रमीद् अभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
९.४०.१	शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ ६ ॥
	आ योनिम् अरुणो रुहद् गमद् इन्द्रो वृषा सुतम् ।
२ ... इन्द्रं • सुतः	ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ ७ ॥
... सीदति	नू नो रयिं महाम् इन्दो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
३	आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ८ ॥
	पिबा सोमम् इन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
७.२२.१	सोतुर् बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ ९ ॥
	बोधा सु मे मघवन् वाचम् एमां यां ते वसिष्ठो अर्चति
३	प्रशस्तिम् ।
	इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ १० ॥
... जुषस्व (एवं कौ)	यस् ते मदो युज्यश् चारुर् अस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व
२	हंसि ।
	स त्वाम् इन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ ११ ॥
	विश्वा पृतना अभिभूतरं नरः सजूस् ततक्षुर् इन्द्रं जजनुश्
८.९७.१०	च राजसे ।
	क्रत्वे वरे स्थेमन्य् आमुरीम् उतोग्रम् ओजिष्ठं तरसं तर-
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिम् • • तवसं •	स्विनम् ॥ १२ ॥
	नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
१२ ... अभिस्वरा	सुदीतयो वो अद्रुहो ऽपि कर्णे तरस्विनः सम् ऋक्वभिः ॥ १३ ॥
	सम् उ रेभासो अस्वरन्न् इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
११ • ई ...	स्वःपतिर् यदी वृधे धृतव्रतो ह्य् ओजसा सम् ऊतिभिः ॥१४॥
स्वर्पतिं यदीं ...	यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिर् अध्रिगुः ।
८.७०.१	विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १५ ॥
• • • ज्येष्ठः ...	इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्न् अवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
२	हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान् देवो न सूर्यः
हस्ताय ... महो दिवे • •	॥ १६ ॥ ॥२३॥
	३.२४
	परि प्रिया दिवः कविर् वयांसि नप्त्योर् हितः ।
क ९.९.१	

सुवानो ...	स्वानैर् याति कविक्रतुः ॥ १ ॥
२ ... अद्रुहे	प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
• • वनिष्ठया	वीत्य् अर्ष पनिष्टये ॥ २ ॥
३	स सूनुर् मातरा शुचिर् जातो जाते अरोचयत् ।
	महान् मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
९.१०८.३ • • • दैव्या ...	त्वं ह्य् अङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
• घोषयः	अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ४ ॥
४ • नवग्वो ...	येना नवग्वा दध्यङ्ङ् अपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
... आनशुः	देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्य् आशत ॥ ५ ॥
९.१०६.१० • • ऊर्मिणाव्यो (कौ	सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
[ऊर्मिणाव्यं) • • •	अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
११ • हिन्वन्ति ...	धीभिर् मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तम् अत्यविम् ।
	अभि त्रिपृष्ठं मतयः सम् अस्वरन् ॥ ७ ॥
१२ • • • मीळ्हं ...	असर्जि कलशां अभि मीढ्वान् सप्तिर् न वाजयुः ।
	पुनानो वाचं जनयन्न् असिष्यदत् ॥ ८ ॥
९.९६.५	सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता
	पृथिव्याः ।
	जनिताग्नेर् जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः
	॥ ९ ॥
६	ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनाम् ऋषिर् विप्राणां महिषो
	मृगाणाम् ।
	श्येनो गृध्राणां स्वधितिर् वनानां सोमः पवित्रम् अत्य्
	एति रेभन् ॥ १० ॥
७ ... सोमः •	प्रावीविपद् वाच ऊर्मिं न सिन्धुर् गिरः स्तोमान् पवमानो
	मनीषाः ।
	अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्य् आ तिष्ठति वृषभो गोषु
	जानन् ॥ ११ ॥
८.१०२.७	अग्निं वो वृधन्तम् अध्वराणां पुरूतमम् ।
	अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १२ ॥
८	अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
	अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ १३ ॥
९	अयं विश्वा अभि श्रियो अग्निर् देवेषु पत्यते ।
	आ वाजैर् उप नो गमत् ॥ १४ ॥
१.८४.४	इमम् इन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठम् अमर्त्यं मदम् ।
	शुक्रस्य त्वाभ्य् अक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ १५ ॥
६	नकिष् ट्वद् रथीतरो हरी यद् इन्द्र यच्छसे ।

नकिष् ट्वद्य मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ १६ ॥
५ इन्द्राय नूनम् अर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुर इन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ १७ ॥ ॥२४॥

३.२५

* ९.८६.३९ गोवित् पवस्व वसुविद् धिरण्यविद् रेतोधा इन्दो भुवनेष्व् अर्पितः ।
कौ ...तर • • त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित् तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ १ ॥
३८ त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि ।
स नः पवस्व वसुमद् धिरण्यवद् वयं स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥
३७ कौ • • • ईयसे... ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास् ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस् तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥
९.६४.७ पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ४ ॥
८ केतुं कृण्वन् दिवस् परि विश्वा रूपाभ्य् अर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ५ ॥
• हिन्वानो... जज्ञानो वाचम् इष्यसि पवमान विधर्मणि ।
अचान् • • • क्रन्दं देवो न सूर्यः ॥ ६ ॥
९.२४.१ प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
• • मृजत श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ ७ ॥
२ अभि गावो अधन्विषुर् आपो न प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रम् आशत ॥ ८ ॥
३ • • • • • पवते प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
नृभिर् यतो वि नीयसे ॥ ९ ॥
५ ...परिधावसि इन्दो यद् अद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
अरम् इन्द्रस्य धाम्ने ॥ १० ॥ ॥ २५ ॥

३.२६

* ९.२४.४ ...चर्षणीसहे त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
सस्निर् यो अनुमाद्यः ॥ १ ॥
६ • वृत्रहन्तमोक्थेभिर् • पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिर् अनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ २ ॥
७ • • • • सुतस्य मधवः शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।

देवावीर् अघशंसहा ॥ ३ ॥
९.२०.१ • • • ऽव्यो • अर्षति प्र कविर् देववीतये ऽव्या वारेभिर् अव्यत ।
साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः ॥ ४ ॥
२ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तम् इन्वति ।
• महश्रिवम् (एवं कौ) पवमानः सहस्रिणम् ॥ ५ ॥
३ • • • मृजसे... परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥ ६ ॥
४ अभ्य् अर्ष बृहद् यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥
५ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ८ ॥
६ स वह्निर् अप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश् चमूषु सीदति ॥ ९ ॥
७ क्रीळुर्मखो ... । कौ क्रीडुर् ... क्रीडुर् मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १० ॥ ॥ २६ ॥

३.२७

* ९.५५.१ यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
सोम विश्वा च • विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥
२ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातम् अन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥
३ उत नो गोविद् अश्ववित् पवस्व सोमान्धसा ।
मक्षूतमेभिर् अहभिः ॥ ३ ॥
४ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुम् अभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥
९.६२.७ यास् ते धारा मधुश्चुतो असृग्रम् इन्द ऊतये ।
ताभिः पवित्रम् आसदः ॥ ५ ॥
८ ...गोमाण्य् • सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्य् अव्यया ।
सीदन्योना वनेष्वा सीदन्न् ऋतस्य योनिम् आ ॥ ६ ॥
९ • इन्दो ... त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ७ ॥ ॥ २७ ॥

३.२८

* ५.१३.२ • • मनामहे (एवं कौ)... अग्नेः स्तोमं वनामहे सिध्रम् अद्य दिविस्पृशः ।
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥
३ अग्निर् जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्व् आ ।
स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ २ ॥
४ त्वम् अग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।

त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥
१०.९१.५ विश्राण् • • कौ • • • • अर्चिश्रिंक्त • तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतो अग्ने चिकित्र उषसाम् इवेतयः ।
न केतवः यद् ओषधीर् अभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नम् आसनि ॥ ४ ॥
• आस्ये
७ वातोपधूत वातोपजूत इषितो वशां अनु तृषु यद् अन्ना वेविषद् वितिष्ठसे ।
...अजराणि आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक् शर्धांस्य् अग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ ५ ॥
८ कौ परिभूतम् मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम् अग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या • • समिन्मही • त्वाम् अर्भस्य हविषः समानम् इत् त्वां महो वृणते नान्यं त्वद् ॥ ६ ॥
५.७० १ पुरूरुणा चिद् ध्य् अस्त्य् अवो नूनं वां वरुण ।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ ७ ॥
२ • • • • • • आशये ता वां सम्यग् अद्रुह्वाणेषम् अश्याम धाम च ।
• ते रुद्रा • वयं वां मित्रा स्याम ॥ ८ ॥
३ • • रुद्रा पातं नो मित्रा पायुभिर् उत त्रायेथां सुत्रात्रा ।
तुर्याम • • कौ • दस्यूं • साह्याम दस्यून् तनूभिः ॥ ९ ॥
८.७६.१० • • • पीत्वी उत्तिष्ठन्न् ओजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
सोमम् इन्द्र चमू सुतम् ॥ १० ॥
११ • • • • • अस्पर्धमानमदुहेताम् (कौ अदर्हेताम्) अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानम् अददाताम् ।
• • भव (एवं कौ) इन्द्र यद् दस्युहाभुवः ॥ ११ ॥
१२ ...ऋतावृधम् वाचम् अष्टापदीम् अहं नवस्रक्तिम् ऋतावृधम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥
६.६० ४ इन्द्राग्नी युवाम् इमे ऽभि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शंभुवा सुतम् ॥ १३ ॥
८ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिर् आ गतम् ॥ १४ ॥
९ ताभिर् आ गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ १५ ॥ ॥ २८ ॥

३.२९

* ९.६२.१९ अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
• श्येनो न योनिमा सीदन् योनौ वनेष्व् आ ॥ १ ॥
२० अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

सोमो अर्षति • सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥
२१ इषं तोकाय नो दधद् अस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
९.१०७.८ • • पुनाणः... सोम उ ष्वाणः सोतृभिर् अधि ष्णुभिर् अवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ४ ॥
९ अनूपे गोमान् गोभिर् अक्षाः सोमो दुग्धाभिर् अक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्य् अग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ ५ ॥
९.१९.१ यत् सोम चित्रम् उक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।
तन् नः पुनान आ भर ॥ ६ ॥
३ • • आयुषु... वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्न् अधि बर्हिषि ।
...आसदत् हरिः सन् योनिम् आसदः ॥ ७ ॥
२ • • • स्वर्पती... युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश् च सोम गोपती ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ८ ॥
१.८१.१ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
• • • आजिषूतेम्... तम् इन् महत्स्व् आजिषूतिम् अर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नो ऽविषत् ॥ ९ ॥
२ असि हि वीर सेन्यो ऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ १० ॥
३ ...धना यद् उदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।
युक्ष्वा... युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥ ११ ॥
१.८४.१० • • • मध्वः... स्वादोर् इत्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
...शोभसे • या इन्द्रेण सयावरीर् वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीर् अनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
११ ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीर् अनु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥
१२ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्य् अस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीर् अनु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥ ॥ २९ ॥

३.३०

* ९.६२.४ असाव्य् अंशुर् मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
श्येनो न योनिम् आसदत् ॥ १ ॥
५ ...धूतो • सुतः शुभ्रम् अन्धो देववातम् अप्सु धूतं नृभिः सुतम् ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

६ • ईम् (एवं कौ) • • हेतारो…	अद् ईद् अश्वं न हेतारम् अशूशुभन्न् अमृताय ।
मध्वो…	मधो रसं सधमादे ॥ ३ ॥
९.१०८.९ …दिदीहि (एवं कौ) • देवयुः	अभि द्युम्नं बृहद् यश इषस् पते दीदिहि देव देवयुम् ।
	वि कोशं मध्यमं युवा ॥ ४ ॥
१०	आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर् न विश्पतिः ।
… अपां जिन्व •	वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिम् अपो जिन्वन् गविष्टये धियः ॥ ५ ॥
९.१०२.१ क्राणा…	प्राणा शिशुर् महीनां हिन्वन्न् ऋतस्य दीधितिम् ।
	विश्वा परि प्रिया भुवद् अध द्विता ॥ ६ ॥
२ …एरय •	त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्व् एरयद् रयिम् ।
	मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ७ ॥
३	उप त्रितस्य पाष्योर् अभक्त यद् गुहा पदम् ।
	यज्ञस्य सप्त धामभिर् अध प्रियम् ॥ ८ ॥
९.१००.६ • वाजसातमः…	पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
कौ…मधुमत्तरः	इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ९ ॥
७ • • मातरो…	त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
• • • धेनवः पवमान •	वत्सं जातं न मातरः पवमाना विधर्मणि ॥ १० ॥
९	त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
	प्रति द्रापिम् अमुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥ ११ ॥
९.९७.१०	इन्दुर् वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
• • • • अरातीर्…	हन्ति रक्षो बाधते पर्य् अरातिं वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ १२ ॥
११	अध धारया मध्वा पृचानस् तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
	इन्दुर् इन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ १३ ॥
१२ • प्रियाणि…	अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
	इन्दुर् धर्माण्य् ऋतुथा वसानो दश क्षिपो ऽव्यत सानो अव्ये ॥ १४ ॥
५.६.४	आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
	यद् ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १५ ॥
५ …शोचिषस् •	आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस् पते ।
	सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १६ ॥

१ उभे • सर्पिरो…	ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
	उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस् पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १७ ॥
८.९८.१	इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते	ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १८ ॥
२	त्वम् इन्द्राभिभूर् असि त्वं सूर्यम् अरोचयः ।
	विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ १९ ॥
३ विभ्राजन्…	विभ्राजं ज्योतिषा स्वर् अगच्छो रोचनं दिवः ।
	देवास् त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ २० ॥
१.८४.१	असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णव् आ गहि ।
	आ त्वा पृणक्त्व् इन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ २१ ॥
३	आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
	अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ २२ ॥
२	इन्द्रम् इद् धरी वहतो ऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च सुष्टुतीर् • • • •	ऋषीणां सुष्टुतीर् उप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २३ ॥ ॥३०॥
	३.३१
क ९.८६.१०	ज्योतिर् यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
	दधाति रत्नं स्वधयोर् अपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥
११	अभिक्रन्दन् कलशं वाज्य् अर्षति पतिर् दिवः शतधारो विचक्षणः ।
	हरिर् मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानो ऽविभिः सिन्धुभिर् वृषा ॥ २ ॥
१२ • • • अर्षस्…	अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्य् अग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।
• • भजसे महाधनं • •	अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥
पूयते वृषा	
९.६४.४	असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
	शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥
५	शुम्भमाना ऋतायुभिर् मृज्यमाना गभस्त्योः ।
	पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥
६	ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
	पवन्ताम् आन्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥
९.२.१	पवस्व देववीर् अति पवित्रं सोम रंह्या ।
	इन्द्रम् इन्दो वृषा विश ॥ ७ ॥

२	आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
	आ योनिं धर्णसिः सदः ॥ ८ ॥
३	अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
	अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ९ ॥
४	महान्तं त्वा महीर् अन्व् आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
	यद् गोभिर् वासयिष्यसे ॥ १० ॥
५	समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
	सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ११ ॥
६	अचिक्रदद् वृषा हरिर् महान् मित्रो न दर्शतः ।
• • रोचते	सं सूर्येण दिद्युते ॥ १२ ॥
७	गिरस् त इन्द्र ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
	याभिर् मदाय शुम्भसे ॥ १३ ॥
८	तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुम् ईमहे ।
	तव प्रशस्तये महे ॥ १४ ॥
• प्रशस्तयो महीः	गोपा इन्दो नृपा अस्य् अश्वसा वाजसा उत ।
१०	आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १५ ॥
९ • • इन्द्रयुर् मध्वः • •	अस्मभ्यम् इन्दव् इन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
	पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ १६ ॥
	सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
९.४.१	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ १७ ॥
	सना ज्योतिः सना स्वर् विश्वा च सोम सौभगा ।
२	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ १८ ॥
	सना दक्षम् उत क्रतुम् अप सोम मृधो जहि ।
३	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ १९ ॥
	पवीतारः पुनीतन सोमम् इन्द्राय पातवे ।
४	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २० ॥
	त्वं सूर्ये ण आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
५ • • न (एवं कौ)…	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २१ ॥
	तव क्रत्वा तवोतिभिर् ज्योक् पश्येम सूर्यम् ।
६	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २२ ॥
	अभ्य् अर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
७	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २३ ॥
	अभ्य् अर्षानपच्युतो वाजिन् समत्सु सासहिः ।
८ • • रयिं • •	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २४ ॥
	त्वां यज्ञैर् अवीवृधन् पवमान विधर्मणि ।
९	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २५ ॥

१०	रयिं नश् चित्रम् अश्विनम् इन्दो विश्वायुम् आ भर ।
	अथा नो वस्यसस् कृधि ॥ २६ ॥
९.५८.१	तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
	तरत् स मन्दी धावति ॥ २७ ॥
२	उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्य् अवसः ।
	तरत् स मन्दी धावति ॥ २८ ॥
३	ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योर् आ सहस्राणि दद्महे ।
	तरत् स मन्दी धावति ॥ २९ ॥
४	आ ययोस् त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
	तरत् स मन्दी धावति ॥ ३० ॥
९.६२.२२	एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
	मदिन्तमस्य धारया ॥ ३१ ॥
२३	अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
	सनद्वाजः परि स्रव ॥ ३२ ॥
२४	उत नो गोमतीर् इषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
	गृणानो जमदग्निना ॥ ३३ ॥ ॥३१॥
	३.३२
क १०.१८७.१	प्राग्नये वाचम् ईरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
	स नः पर्षद् अति द्विषः ॥ १ ॥
२	यः परस्याः परावतस् तिरो धन्वातिरोचते ।
	स नः पर्षद् अति द्विषः ॥ २ ॥
४	यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
	स नः पर्षद् अति द्विषः ॥ ३ ॥
१.९४.१	इमं स्तोमम् अर्हते जातवेदसे रथम् इव सं महेमा मनीषया ।
	भद्रा हि नः प्रमतिर् अस्य संसद्य् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
४	भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
• प्रतरं …	जीवातवे प्रतरं साधया धियो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥
३	शकेम त्वा समिधं साधया धियस् त्वे देवा हविर् अदन्त्य् आहुतम् ।
	त्वम् आदित्याँ आ वह तान् ह्य् उश्मस्य् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥
७.६६.७	प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।

अर्यमणं रिशादसम् ॥ ७ ॥
राया हिरण्यया मतिर् इयम् अवृकाय शवसे ।
इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषं स्वश् च धीमहि ॥ ९ ॥
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तद् आ भर ॥ १० ॥
यस्य ते विश्वम् आनुषग् भूरेर् दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तद् आ भर ॥ ११ ॥
यद् वीडाव् इन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तद् आ भर ॥ १२ ॥
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १३ ॥
इदं वां मदिरं मध्व् अधुक्षन्न् अद्रिभिर् नरः ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १४ ॥
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १५ ॥ ॥३२॥

३.३३

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिम् आसदम् ॥ १ ॥
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष् कृण्वन्ति धर्णसिम् ।
सं त्वा मृजन्त्य् आयवः ॥ २ ॥
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचम् इन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्य् अर्षसि ॥ ४ ॥
पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद् वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिर् अञ्जानो अर्षसि ॥ ५ ॥
एतम् उ त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
सम् आदित्येभिर् अख्यत ॥ ६ ॥
सम् इन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
चारुर् मित्रे वरुणे च ॥ ८ ॥
रेवतीर् नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।

क्षुमन्तो याभिर् मदेम ॥ ९ ॥
आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णव् ईयानः ।
ऋणोर् अक्ष न चक्र्योः ॥ १० ॥
आ यद् दुवः शतक्रतव् आ कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोर् अक्षं न शचीभिः ॥ ११ ॥
सुरूपकृत्नुम् ऊतये सुदुघाम् इव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १२ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ १३ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥ १४ ॥
उभे यद् इन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्य् अजीजनद् भद्रा जनित्र्य् अजीजनत् ॥ १५ ॥
दीर्घं ह्य् अङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन् पदा वयाम् अजो यथा यमः ।
देवी जनित्र्य् अजीजनद् भद्रा जनित्र्य् अजीजनत् ॥ १६ ॥
अव त्या बृहतीर् इषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुय इन्द्र विश्वाभिर् ऊतिभिः ।
देवी जनित्र्य् अजीजनद् भद्रा जनित्र्य् अजीजनत् ॥ १७॥ ॥३३॥

३.३४

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥
त्वं विप्रस् त्वं कविर् मधु प्र जातम् अन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिम् आशत ।
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥
स सुन्वे यो वसूनां यो रायाम् आनेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ४ ॥
यस्य त इन्द्रः पिबाद् यस्य मरुतो यस्य वार्यम्णा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रम् अवसे महे ॥ ५ ॥
तं वः सखायो मदाय पुनानम् अभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ६ ॥
सं वत्स इव मातृभिर् इन्दुर् हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर् मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ ७ ॥

अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ८ ॥
सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १० ॥
सुष्वाणासो व्य् अद्रिभिश् चिताना गोर् अधि त्वचि ।
इषम् अस्मभ्यम् अभितः सम् अस्वरन् वसुविदः ॥ ११ ॥
अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश् चिद् यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश् चित् तकवे नरं धात् ॥ १२ ॥
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद् रणाय ॥ १३ ॥
महीमे अस्य वृषनाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच् चापामित्रं अपाचितो अचेतः ॥ १४ ॥
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ॥ १५ ॥
वसुर् अग्निर् वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ १६ ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनम् ईमहे सखिभ्यः ॥ १७ ॥
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश् च विश्वे च देवाः ॥ १८ ॥
यज्ञं च नस् तन्वं च प्रजां चादित्यैर् इन्द्रः सह सीषधातु ॥ १९ ॥
आदित्यैर् इन्द्रः सगणो मरुद्भिर् अस्मभ्यं भेषजा करत् ॥ २० ॥
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ॥ २१ ॥
अर्चन्त्य् अर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ॥ २२ ॥
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ॥ २३ ॥ ॥३४॥

३.३५

प्र काव्यम् उशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्य् एति रेभन् ॥ १ ॥

प्र हंसासस् तृपला मन्युम् अच्छामाद् अस्तं वृषगणा अयासुः ।
अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥
स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर् ददृशे नक्तम् ऋज्रः ॥ ३ ॥
प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरासः कारिणाम् इव ॥ ५ ॥
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिर् अञ्जते ।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥
आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥
नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।
कवेर् अपत्यम् आ दुहे ॥ १० ॥ ॥३५॥

३.३६

समीचीनास आशत होतारः सप्तजामयः ।
पदम् एकस्य पिप्रतः ॥ १ ॥
अभि प्रियं दिवस् पदम् अध्वर्युभिर् गुहा हितम् ।
सूरः पश्यति चक्षसा ॥ २ ॥
असृग्रम् इन्दवः पथा धर्मन्न् ऋतस्य सुश्रियः ।
विदाना अस्य योजना ॥ ३ ॥
प्र धारा मधो अग्रियो महीर् अपो वि गाहते ।
हविर् हविःषु वन्द्यः ॥ ४ ॥
प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद् वने ।
सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ५ ॥
परि यत् काव्या कविर् नृम्णा पुनानो अर्षति ।
स्वर् वाजी सिषासति ॥ ६ ॥
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
यद् ईम् ऋण्वन्ति वेधसः ॥ ७ ॥

६ अव्यो ... अव्या वारे परि प्रियो हरिर् वनेषु सीदति ।
...मती (एवं कौ) रेभो वनुष्यते मती ॥ ८ ॥
७ स वायुम् इन्द्रम् अश्विना साकं मदेन गच्छति ।
...धर्मभिः रणा यो अस्य धर्मणा ॥ ९ ॥
८ • मित्रावरुणा भगं मध्वः • • आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।
विदाना अस्य शक्मभिः ॥ १० ॥ ॥३६॥

३.३७

* ९.७.९ अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।
श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ १ ॥
९.६५.२८ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निम् अद्या वृणीमहे ।
पान्तम् आ पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥
२९ आ मन्द्रम् आ वरेण्यम् आ विप्रम् आ मनीषिणम् ।
पान्तम् आ पुरुस्पृहम् ॥ ३ ॥
३० आ रयिम् आ सुचेतनम् आ सुक्रतो तनूष्व् आ ।
पान्तम् आ पुरुस्पृहम् ॥ ४ ॥ ॥३७॥

३.३८

वैश्वानरो अजीजनद् अग्निर् नो नव्यसीं मतिम् ।
क्षमया वृधा न ओजसा ॥ १ ॥
अन्यत्र संहितासु न सन्ति — दिवि पृष्टो अरोचताग्निर् वैश्वानरो बृहत् ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥
स नः पावक दीदिह्य् अग्ने वैश्वानर द्युमान् ।
जमदग्नेर् भरद्धुतः ॥ ३ ॥
* ६.७.१ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरम् ऋत आ जातम् अग्निम् ।
• • • • आसन्ना .. कविं सम्राजम् अतिथिं जनानाम् आसन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ४ ॥
४ त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिर् अमृतत्वम् आयन् वैश्वानर यत् पित्रोर् अदीदेः ॥ ५ ॥
२ नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महाम् आहावम् अभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यम् अध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ६ ॥
५.६८.१ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।

महिक्षत्राव् ऋतं बृहत् ॥ ७ ॥
२ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश् चोभा वरुणश् च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ ८ ॥
३ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ९ ॥
१.३.४ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस् तना पूतासः ॥ १० ॥
५ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ११ ॥
६ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश् चनः ॥ १२ ॥ ॥३८॥

३.३९

* ९.८६.१६ प्रो अयासीद् इन्दुर् इन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर् न प्र मिनाति संगिरम् ।
...शतयाम्ना मर्य इव युवतिभिः सम् अर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १ ॥
१७ ...संवसनेषु प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्व् अक्रमुः ।
सोमं मनीषा • • • • • पयसेम् हरिं क्रीडन्तम् अभ्य् अनूषत स्तुभो ऽभि धेनवः पयसेद् अशिश्रयुः ॥ २ ॥
१८ आ नः सोम संयतं पिप्युषीम् इषम् इन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा ।
अस्रिधम् या नो दोहते त्रिर् अहन्न् असश्चुषी क्षुमद् वाजवन् मधुमत् सुवीर्यम् ॥ ३ ॥
८.७०.१ नकिष् टं कर्मणा नशद् यश् चकार सदावृधम् ।
...धृष्णवोजसम् इन्द्रं न यज्ञैर् विश्वगूर्तम् ऋभ्वसम् अधृष्टं धृष्णुम् ओजसा ॥ ४ ॥
४ अषाढम् उग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीर् उरुज्रयः ।
• • • • द्यावः क्षामो (कौ द्यावः क्षामीर्) • सं धेनवो जायमाने अनोनवुर् द्याव क्षामीर् अनोनवुः ॥ ५ ॥ ॥३९॥

३.४०

* ९.१०८.५ • • • • उव्यो ... एष स्य धारया सुतो ऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीडन्न् ऊर्मिर् अपाम् इव ॥ १ ॥
६ • • अप्या अन्तरश्मनो • • • य उस्रिया अपिया अन्तर् अश्मनि निर् गा अकृन्तद् ओजसा ।

अभि व्रजं तत्निषे गव्यम् अश्व्यं वर्मीव धृष्णव् आ रुजा ॥ २ ॥
रुजा (एवं कौ)
९.१०४.१ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥
२ ...गयसाधनम् (एवं कौ) सम् ई वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
देवाव्यं मदम् अभि द्विशवसम् ॥ ४ ॥
३ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये ।
...शंतमः यथा मित्राय वरुणाय शंतमम् ॥ ५ ॥
९.१०९.१६ • सुवानो ... प्र वाज्य् अक्षाः सहस्रधारस् तिरः पवित्रं वि वारम् अव्यम् ॥ ६ ॥
१७ स वाज्य् अक्षाः सहस्ररेता अद्भिर् मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ ७ ॥
१८ ...येमानो • प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर् येमाणो अद्रिभिः सुतः ॥ ८ ॥
९.६५.२२ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
ये वादः शर्यणावति ॥ ९ ॥
२३ य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।
ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ १० ॥
२४ ते नो वृष्टिं दिवस् परि पवन्ताम् आ सुवीर्यम् ।
सुवाना ... स्वाना देवास इन्दवः ॥ ११ ॥
८.११.७ आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच् चित् सधस्थात् ।
• त्वांकामया • अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १२ ॥
८ • • • • विशो ... पुरुत्रा हि सदृङ्ङ् असि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ १३ ॥
९ समत्स्व् अग्निम् अवसे वाजयन्तो हवामहे ।
वाजेषु चित्रराधसम् ॥ १४ ॥
८.९८.१० त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
• • पृतनाषहम् आ वीरं पृतनासहम् ॥ १५ ॥
११ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अथा ... अथा ते सुम्नम् ईमहे ॥ १६ ॥
१२ ...शतक्रतो त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तम् उप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १७ ॥
५.३९.१ • • • मंहनास्ति • • यद् इन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातम् अद्रिवः ।
राधस् तन् नो विदद्वस उभयाहस्त्य् आ भर ॥ १८ ॥
यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
२ • • दित्सु ... तेन दृढा चिद् अद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ १९ ॥

२ यन् मन्यसे वरेण्यम् इन्द्र द्युक्षं तद् आ भर ।
कौ ...दावनः विद्याम तस्य ते वयम् अकूपारस्य दावने ॥ २० ॥ ॥४०॥

३.४१

* ९.९६.१७ ... वह्नि • • शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर् गीर्भिः काव्येन कविः सन् सोमः पवित्रम् अत्य् एति रेभन् ॥ १ ॥
१८ ...सहस्रनीथः • • ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन् सोमो विराजम् अनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥
१९ चमूषच् छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर् द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपाम् ऊर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥
९.८.१ एते सोमा अभि प्रियम् इन्द्रस्य कामम् अक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ ४ ॥
२ पुनानासश् चमूषदो गच्छन्तो वायुम् अश्विना ।
• • धान्व • ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
३ इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
ऋतस्य • • देवानां योनिम् आसदम् ॥ ६ ॥
४ मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ७ ॥
५ देवेभ्यस् त्वा मदाय कं सृजानम् अति मेष्यः ।
सं गोभिर् वासयामसि ॥ ८ ॥
६ पुनानः कलशेष्व् आ वस्त्राण्य् अरुषो हरिः ।
परि गव्यान्य् अव्यत ॥ ९ ॥
७ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायम् आ विश ॥ १० ॥ ॥४१॥

३.४२

* ९.८.९ नृचक्षसं त्वा वयम् इन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजाम् इषम् ॥ १ ॥
८ वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ २ ॥
९.१३.१ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
वायोर् इन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ ३ ॥
२ पवमानम् अवस्यवो विप्रम् अभि प्र गायत ।

सुष्वाणं देववीतये ॥ ४ ॥
३ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥ ५ ॥
४ उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीर् इषः ।
द्युमद् इन्दो सुवीर्यम् ॥ ६ ॥
५ ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्ताम् आ सुवीर्यम् ।
सुवाना • • स्वाना देवास इन्दवः ॥ ७ ॥
६ अत्या हियाना न हेतृभिर् असृग्रं वाजसातये ।
वि वारम् अव्यम् आशवः ॥ ८ ॥
७ ...धेनवः वाश्रा अर्षन्तीन्दवो ऽभि वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ९ ॥
८ जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ १० ॥ ॥४२॥

३.४३

क ९.१३.१ अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनाव् ऋतस्य सीदत ॥ १ ॥
९.१०.१ ...सादने सोमा असृग्रम् इन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ २ ॥
२ ...मातरः अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
३ मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोर् ऊर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ४ ॥
४ • • • अव्यो ... दिवो नाभा विचक्षणो ऽव्या वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ५ ॥
५ यः सोमः कलशेष्व् आ अन्तः पवित्र आहितः ।
तम् इन्दुः परि षस्वजे ॥ ६ ॥
६ प्र वाचम् इन्दुर् इष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ७ ॥
७ • • • धीनाम् • सबर्दुघः ...युगा नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर् धेनाम् अन्तः सबर्दुघाम् ।
हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ८ ॥
९ आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥
८ अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ...वो हितोयस्मिन् पाद विप्रः स • • अभि प्रिया दिवः कविर् विप्रस्य धारया सुतः ।
सोमो हिन्वे परावति ॥ १० ॥ ॥४३॥

३.४४

क ९.५०.१ उद् ते शुष्मास ईरते सिन्धोर् ऊर्मेर् इव स्वनः ।

वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥
२ प्रसवे त उद् ईरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
यद् अव्य एषि सानवि ॥ २ ॥
३ अव्यो वारे... अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्य् अद्रिभिः ।
पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥
४ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिम् आसदम् ॥ ४ ॥
५ स पवस्व मदिन्तम गोभिर् अञ्जानो अक्तुभिः ।
इन्दविन्द्राय पीतये एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥
९.६१.२२ स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीर् अपः ॥ ६ ॥
२४ ...आयुरः त्वोतासस् तवावसा स्याम वन्वन्तः किकरः ।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥ ७ ॥
२३ त्वीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः ।
पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ ८ ॥
२५ अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्न् इन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ ९ ॥
२७ न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तम् आ मिनन् ।
यत् पुनानो मखस्यसे ॥ १० ॥ ॥४४॥

३.४५

क ९.६१.२८ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।
रास्वेन्दो वीरवद् यशः ॥ १ ॥
१ अया वीती परि स्रव यस् त इन्दो मदेष्व् आ ।
अवाहन् नवतीर् नव ॥ २ ॥
२ पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम् ।
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ ३ ॥
३ • णो परि नो अश्वम् अश्वविद् गोमद् इन्दो हिरण्यवत् ।
क्षरा सहस्रिणीर् इषः ॥ ४ ॥ ॥४५॥

३.४६

क ८.४३.१४ त्वं ह्य् अग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् सता ।
सखा सख्या समिध्यसे ॥ १ ॥
१५ स त्वं विप्राय दाशुषे • • • त्वं सुन्वते यजमानाय रयिं देहि सहस्रिणम् ।
अग्ने वीरवतीम् इषम् ॥ २ ॥
१६ अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत ।
...मे इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ ३ ॥

७.१६.१ अग्निं वो देवम् अग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतम् अध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर् ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ ४ ॥
२ प्रोथद् अश्वो न यवसे ऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्य् अस्थात् ।
आद् अस्य वातो अनु वाति शोचिर् अध स्म ते व्रजनं कृष्णम् अस्ति ॥ ५ ॥
३ उद् यस्य ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्य् अजरा इधानाः ।
• • • • एति... अच्छा द्याम् अरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ६ ॥
७.६६.४ यद् अद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ ७ ॥
५ सुप्रावीर् अस्तु स क्षयः प्र नु यामन् सुदानवः ।
यो नो अंहो ऽतिपिप्रति ॥ ८ ॥
६ उत स्वराजो अदितिर् अदब्धस्य व्रतस्य ये ।
महो राजान ईशते ॥ ९ ॥
८.९३.७ तम् इन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १० ॥
८ ...मदे • इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ११ ॥
९ गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
• कृष्वो • ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ १२ ॥ ॥४६॥

३.४७

क ९.५१.१ ...सुत अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनीहीन्द्राय • पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
२ ...आसते तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर् व्य् आशत ।
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥
२ दिवः पीयूषम् उत्तमं सोमम् इन्द्राय वज्रिणे ।
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥
९.७२.१ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानाम् अनुमाद्यो नृभिः ।
...कृणुते हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर् वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्व् आ ॥ ४ ॥
२ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु ।

इन्द्रस्य शुष्मम् ईरयन्न् अपस्युभिर् इन्दुर् हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ ५ ॥
३ इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्व् आ विश ।
वो • नः न • • वो माहि • प्र णः पिन्व विद्युद् अभ्रेव रोदसी धिया नो वाजं उप मासि शश्वतः ॥ ६ ॥
८.४.१ यद् इन्द्र प्राग् अपाग् उदङ् न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्य् आनवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ ७ ॥
२ यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
• • ब्रह्मभिः स्तोमवाहस... कण्वासस् त्वा स्तोमेभिर् ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्य् आ गहि ॥ ८ ॥
८.६१.१ उभयं शृणवच् च न इन्द्रो अर्वाग् इदं वचः ।
• मघवा... सत्राच्या मघवान् सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ ९ ॥
२ ...ओजसे • • तं हि स्वराजं वृषभं तम् ओजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ १० ॥ ॥४७॥

३.४८

क ९.६३.२२ • देवायुवग्... पवस्व देव आयुषग् इन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुम् आ रोह धर्मणा ॥ १ ॥
२३ पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
प्रियः... इन्दो समुद्रम् आ विश ॥ २ ॥
२४ अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ३ ॥
९.९८.१ अभि... पुरुस्पृहम् ...विश्वासहम् अभी नो वाजसातमं रयिम् अर्ष शतस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥ ४ ॥
३ • ष्य सुवानो अक्षाः... परि ष्य स्वानो अक्षरद् इन्दुर् अव्ये मदच्युतः ।
• • • • • मेति • धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ॥ ५ ॥
५ • • • • वृत्रहन्त्वसो वस्वः • यं ते अस्य राधसो वसोर् वसो पुरुस्पृहः ।
• • • • सुम्नस्याध्रिगो नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥ ६ ॥
९.१०९.४ पवस्व सोम महान् समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ७ ॥
५ ...प्रजायै शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥ ८ ॥
६ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ९ ॥

८.८४.१ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रम् इव प्रियम् ।
अग्नि... अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ १० ॥
२ • • प्रचेतसं • • अथ • कविम् इव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता ।
नि मर्त्येष्व् आदधुः ॥ ११ ॥
३ ...श्रुधी • त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि श्रृणुही गिरः ।
रक्षा तोकम् उत त्मना ॥ १२ ॥
८.९८.४ ...प्रियः • अगोह्य एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिद् अगोह्य ।
• • विश्वतस्... गिरिर् न विश्वतः पृथुः पतिर् दिवः ॥ १३ ॥
५ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर् दिवः ॥ १४ ॥
६ ...दर्ता • • त्वं हि शश्वतीनाम् इन्द्र धर्ता पुराम् असि ।
हन्ता दस्योर् मनोर् वृधः पतिर् दिवः ॥ १५ ॥
१.११.४ पुरां भिन्दुर् युवा कविर् अमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १६ ॥
५ त्वं वलस्य गोमतो ऽपावर् अद्रिवो बिलम् ।
• देवा (एवं कौ)... त्वां देवासो अबिभ्युषस् तुज्यमानास आविषुः ॥ १७ ॥
६ तवाहं शूर रातिभिः प्रत्य् आयं सिन्धुम् आवदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष् टे तस्य कारवः ॥ १८ ॥ ॥४८॥

३.४९

क ९.९७.४० अक्रान् समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
राजा
...सुवान वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥
इन्दुः
४१ महत् तत् सोमो महिषश् चकारापां यद् गर्भो ऽवृणीत देवान् ।
अदधाद् इन्द्रे पवमान ओजो ऽजनयत् सूर्ये ज्योतिर् इन्दुः ॥ २ ॥
४२ • • • • च • • • मत्सि वायुम् इष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ ३ ॥
९.३.१ ...दीयति एष देवो अमर्त्यः पर्णवीर् इव दीयते ।
अभि द्रोणान्य् आसदम् ॥ ४ ॥
२ एष देवो विपा कृतो अति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदाभ्यः ॥ ५ ॥
३ एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर् वाजाय मृज्यते ॥ ६ ॥

४ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्न् इव सत्वभिः ।
पवमानः सिषासति ॥ ७ ॥
५ ...दशस्यति एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
आविष् कृणोति वग्वनुम् ॥ ८ ॥
६ एष विप्रैर् अभिष्टुतो ऽपो देवो वि गाहते ।
दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ९ ॥
७ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।
पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥ ॥४९॥

३.५०

क ९.३.८ एष दिवं व्य् आसरत् तिरो रजांस्य् अस्तृतः ।
पवमानः स्वध्वरः ॥ १ ॥
९ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ २ ॥
१० एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्न् इषः ।
धारया पवते सुतः ॥ ३ ॥
९.१५.१ एष धिया यात्य् अण्व्या शूरो रथेभिर् आशुभिः ।
गच्छन्न् इन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ ४ ॥
२ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
• आसते यत्रामृतास आशत ॥ ५ ॥
३ ...शुभ्रावता • एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ६ ॥
५ एष रुक्मिभिर् ईयते वाजी शुभ्रेभिर् अंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ७ ॥
४ एष शृङ्गाणि दोधुवच् छिशीते यूथ्यो वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ॥ ८ ॥
६ • • पिब्दना... एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवं अति ।
अव शादेषु गच्छति ॥ ९ ॥
७ एतं मृजन्ति मर्ज्यम् उप द्रोणेष्व् आयवः ।
प्रचक्राणं महीर् इषः ॥ १० ॥ ॥५०॥

३.५१

ख ९.१५.८ • • • • • मृजन्ति सप्त (धीतयः एतम् उ त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ १ ॥
९.२७.१ एष कविर् अभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
...स्रिधः पुनानो घ्नन्न् अप स्रिधः ॥ २ ॥
२ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते ।

पवित्रे दक्षसाधनः ॥ ३ ॥
३ एष नृभिर् वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ४ ॥
४ एष गव्युर् अचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिद् अस्तृतः ॥ ५ ॥
९.२८.६ • • • सोमः पुनानो (अर्षति (एवं कौ) एष शुष्म्य् अदाभ्यः सोमो वाजम् इवासरत् ।
देवावीर् अघशंसहा ॥ ६ ॥
९.२७.६ एष शुष्म्य् असिष्यदद् अन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इन्दुर् इन्द्रम् आ ॥ ७ ॥
९.२८.१ ...विश्वविन् (एवं कौ) • • एष वाजी हितो नृभिर् विश्वाविन् मनसस् पतिः ।
अव्यो... अव्यं वारं वि धावति ॥ ८ ॥
२ एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।
• धामान्य् (एवं कौ) • विश्वा वसून्य् आविशन् ॥ ९ ॥
३ एष देवः शुभायते ऽधि योनाव् अमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥ १० ॥ ॥५१॥

३.५२

क ९.२८.४ एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर् जामिभिर् यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥ १ ॥
९.२७.५ कौ एष सूर्यमरोचयत् • • • एष सूर्येण हासते पवमानो अधि दिवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ २ ॥
एष सूर्यम् अरोचयत् पवमानो विचर्षणिः ।
९.२८.५ विश्वा वसूनि विश्ववित् ॥ ३ ॥
• धामानि • एष उ स्य वृषा रथो ऽव्या वारेभिर् अर्षति ।
९.३८.१ ...ऽव्यो • • गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
२ एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्य् अद्रिभिः ।
इन्दुम् इन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
३ याभिर् मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥
एष स्य मानुषीष्व् आ श्येनो न विक्षु सीदति ।
४ गच्छन् जारो न योषितम् ॥ ७ ॥
एष स्य पीतये सुतो हरिर् अर्षति धर्णसिः ।
६ क्रन्दन् योनिम् अभि प्रियम् ॥ ८ ॥
एष स्य मद्यो रसो ऽव चष्टे दिवः शिशुः ।
५ य इन्दुर् वारम् आविशत् ॥ ९ ॥
स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
९.३७.१ विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १० ॥ ॥५२॥

३.५३

क ९.३७.१ स पवित्रे विचक्षणो हरिर् अर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ १ ॥
३ • • रोचना... स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारम् अव्ययम् ॥ २ ॥
४ स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥ ३ ॥
५ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविद् अदाभ्यः ।
सोमो वाजम् इवासरत् ॥ ४ ॥
६ स देवः कविनेषितो ऽभि द्रोणानि धावति ।
• • मंहना इन्दुर् इन्द्राय मंहयन् ॥ ५ ॥
९.६६.१० पवमानस्य ते कवे वाजिन् सर्गा असृक्षत ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ ६ ॥
११ अच्छा कोशं मधुश्चुतम् असृग्रं वारे अव्यये ।
अवावशन्त धीतयः ॥ ७ ॥
१२ अच्छा समुद्रम् इन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः ।
अग्मन्न् ऋतस्य योनिम् आ ॥ ८ ॥ ॥५३॥

३.५४

क ८.१९.१७ उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥
१८ उप छायाम् इव घृणेर् अगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥
१९ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥
७.१२.१ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तर् उर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ ४ ॥
२ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान् अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरिताद् अवद्याद् अस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥ ५ ॥
३ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर् वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
७.६६.१ प्र मित्रयोर् वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः ।

समस्वान् तुविजातयोः ॥ ७ ॥
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा ।
असुर्याय प्रमहसा ॥ ८ ॥
ता नः स्तिपा तनूपा वरुणा जरितॄणाम् ।
मित्र साधयतं धियः ॥ ९ ॥
महं इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमं इव ।
स्तोमैर् वत्सस्य वावृधे ॥ १० ॥
कण्वा इन्द्र यद् अक्रत स्तोमैर् यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ ११ ॥
प्रजाम् ऋतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ १२ ॥ ॥५४॥

३.५५

पवमानस्य जिघ्नतो हरेश् चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥
पवमान व्य् अश्नुहि रश्मिभिर् वाजसातमः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥
परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वां यो नर्यो अप्स्व् अन्तर् आ सुषाव सोमम् अद्रिभिः ॥ ४ ॥
नूनं पुनानो ऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिर् उत्तरम् ॥ ५ ॥
परि स्वानश् चक्षसे देवमादनः क्रतुर् इन्दुर् विचक्षणः ॥ ६ ॥
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारम् अत्य् एष्य् अव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तम् आसदत् ॥ ७ ॥
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उद् आसरन् सं ग्रावभिर् वसते वीते अध्वरे ॥ ८ ॥
कविर् वेधस्या पर्य् एषि माहिनम् अत्यो न निक्तो अभि वाजम् अर्षसि ।
अपसेधं दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः परि यासि

निर्णिजम् ॥ ९ ॥
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेद् इन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्य् ओजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥ १० ॥
अलर्षिरातिं वसुदाम् उप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ११ ॥
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवन् शग्धि तव तन् न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १२ ॥
त्वं हि राधसस् पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।
तं त्वा वयं मघवन्न् इन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १३ ॥ ॥५५॥

३.५६

त्वं सोमासि धारयुर् मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।
पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥
त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान् मत्सरिन्तमः ।
इन्दुः सत्राजिद् अस्तृतः ॥ २ ॥
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिर् अभ्य् अर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्मम् आ भर ॥ ३ ॥
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिर् ओजसा ।
आ कलशं मधुमान् सोम नः सदः ॥ ४ ॥
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ५ ॥
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ६ ॥
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वं इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥
द्विर् यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियम् इन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ ८ ॥
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ९ ॥
पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ ११ ॥

प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ १२ ॥
उपो षु जातम् अप्तुरं गोभिर् भङ्गं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥
अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीम् इषम् ।
वर्धा समुद्रम् उक्थ्य ॥ १४ ॥
तम् इद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीर् इव ।
य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १५ ॥
भद्रो नो अग्निर् आहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १६ ॥
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये ॥ १७ ॥
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १८ ॥
यश् चिद् धि त्वा बहुभ्य आ सुतावां आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ १९ ॥
कदा मर्तम् अराधसं पदा क्षुम्पम् इव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ २० ॥
गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्य् अर्कम् अर्किणः ।
ब्रह्माणस् त्वा शतक्रत उद् वंशम् इव येमिरे ॥ २१ ॥
यत् सानोः सान्व् आरुहो भूर्य् अस्पष्ट कर्त्वम् ।
तद् इन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिर् एजति ॥ २२ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिराम् उपश्रुतिं चर ॥ २३ ॥ ॥५६॥

३.५७

सुषमिद्धो न आ वह देवं अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥
नराशंसम् इह प्रियम् अस्मिन् यज्ञ उप ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
अग्ने सुखतमे रथे देवं ईडित आ वह ।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ५ ॥
ऋतम् ऋतेन सपन्तेषिरं दक्षम् आशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ६ ॥

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस् पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तम् आशाते ॥ ७ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नम् अरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ८ ॥
युञ्जन्त्य् अस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ९ ॥
केतुं कृण्वन्न् अकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
सम् उषद्भिर् अजायथाः ॥ १० ॥
तम् ईडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ ११ ॥
य इद्ध आविवासति सुम्नम् इन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ १२ ॥
ता नो वाजवतीर् इष आशून् पिपृतम् अर्वतः ।
एन्द्रम् अग्निं च वोढवे ॥ १३ ॥ ॥५७॥

३.५८

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यद् उक्थ्यं महो गाहाद् दिव आ निर् अधुक्षत ।
इन्द्रम् अभि जायमानं सम् अस्वरन् ॥ १ ॥
अध यद् इमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ २ ॥
आद् ईं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्य् अनूषत ।
वारं न देवः सविता व्य् ऊर्णुते ॥ ३ ॥
आ जागृविर् विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच् चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ४ ॥
स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वी ष आवः ।
प्रिया चिद् यस्य प्रियसास ऊती सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ५ ॥
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वं अभि नो ज्योतिषावीत् ।
यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिम् इष्णुः ॥ ६ ॥
मा चिद् अन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रम् इत् स्तोता वृषणं सचा सुत मुहुर् उक्था
च शंसत ॥ ७ ॥
२ • • यथाजुर... अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुवं गां न चर्षणीसहम् ।
• संवननोभयंकरं... विद्वेषणं संवननम् उभयंकरं मंहिष्ठम् उभयाविनम् ॥ ८ ॥
८.३.१५ उद् उ त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ ९ ॥
१६ ...आनशुः कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वम् इद् धीतम् आशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर् महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्
॥ १० ॥ ॥५८॥

३.५९

क ९.१०८.१ पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥
२ ...पीता • यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायते ऽस्य पीत्वा स्वर्विदः ।
...ऽच्छा (एव का) • • स सुप्रकेतो अभ्य् अक्रमीद् इषो ऽच्छा वाजं नैतशः ॥ २ ॥
९.१०६.१ इन्द्रम् अच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टी... श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ ३ ॥
२ अयं भराय सानसिर् इन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ ४ ॥
३ ...गृभ्णीत • अस्येद् इन्द्रो मदेष्व् आ ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
• • वृषणं • समप्सुजित् (एव का) वज्रं च वृषणं भरत् ॥ ५ ॥
९.११०.१ पर्य् ऊ षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
...इयसे द्विषस् तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ ६ ॥
३ अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ ७ ॥
२ अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ८ ॥
९.१०९.१ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर् मित्राय पूष्णे भगाय ॥९॥
३ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ १० ॥
२ • • • • पेयाः... इन्द्रस् ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च
देवाः ॥ ११ ॥
९.६९.६ ...प्रसुपः • सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकम्
ईरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्राद् ऋते पवते धाम
किं चन ॥ १२ ॥
२ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तर्
आसनि ।

• • प्रघ्नताम्... पवमानः संतनिः सुन्वताम् इव मधुमान् द्रप्सः परि वारम्
अर्षति ॥ १३ ॥
४ • मिमाति... उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीर् उप यन्ति
निष्कृतम् ।
अत्य् अक्रमीद् अर्जुनं वारम् अव्ययम् अत्कं न निक्तं परि
सोमो अव्यत ॥ १४ ॥
७.१.१ ...हस्तच्युती जनयन्त अग्निं नरो दीधितिभिर् अरण्योर् हस्तच्युतं जनयत
प्रशस्तम् ।
...अथर्युम् दूरेदृशं गृहपतिम् अथर्युम् ॥ १५ ॥
३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ १६ ॥
२ तम् अग्निम् अस्ते वसवो न्य् ऋण्वन् सुप्रतिचक्षम् अवसे
कुतश् चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ १७ ॥
१०.१८९.१ आयं गौः पृश्निर् अक्रमीद् असदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन् स्वः ॥ १८ ॥
२ अन्तश् चरति रोचनास्य प्राणाद् अपानती ।
व्य् अख्यन् महिषो दिवम् ॥ १९ ॥
३ त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोर् अह द्युभिः ॥ २० ॥ ॥५९॥

४.१

क ९.१११.१ ...स्वयुग्वभिः • • स्वयुग्वभिः अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति सयु-
ग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
• सुतस्य... धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
• • • परियास्य्... विश्वा यद् रूपा परियास्य् ऋक्वभिः सप्तास्येभिर्
ऋक्वभिः ॥ १ ॥
प्राचीम् अनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर् यतते
३ पूर्वाम्... दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्न् उक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश् च यद् भवथो अनपच्युता समत्स्व् अनपच्युता
॥ २ ॥
२ त्वं ह त्यत् (ह नास्ति)... त्वं ह त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर् मर्जयसि स्व
आ दम ऋतस्य धीतिभिर् दमे ।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिर् अरुषीभिर् वयो दधे रोचमानो वयो दधे
॥ ३ ॥
प्रोष्व् अस्मै पुरोरथम् इन्द्राय शूषम् अर्चत ।
१०.१३३.१ अभीके चिद् उ लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्ताम् अन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥ ४ ॥
त्वं सिन्धूंर् अवासृजो ऽधराचो अहन्न् अहिम् ।
२ अशत्रुर् इन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्ताम् अन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥ ५ ॥
वि षु विश्वा अरातयो ऽर्यो नशन्त नो धियः ।
३ अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति ।
या ते रातिर् ददिर् वसु नभन्ताम् अन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ॥ ६ ॥
प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या ।
१.२७.१ देवाञ् जिगाति सुम्नयुः ॥ ७ ॥

२ ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ ८ ॥
३ अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः ।
अति द्वेषांसि तरेम ॥ ९ ॥
१.५०.१ उद् उ त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १० ॥ ॥१॥

४.२

क १.५०.४ तरणिर् विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृद् असि सूर्य ।
विश्वम् आ भासि रोचनम् ॥ १ ॥
५ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङ् उद् एषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर् दृशे ॥ २ ॥
८.९३.१ उद् घेद् अभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
अस्तारम् एषि सूर्य ॥ ३ ॥
२ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ ४ ॥
३ स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।
उरुधारेव दोहते ॥ ५ ॥
३.१२.९ इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद् वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ६ ॥
८ इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोर् अप्तूर्यं हितम् ॥ ७ ॥
७ इन्द्राग्नी अपसस् पर्य् उप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या अनु ॥ ८ ॥
१०.१७०.१ विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्व् आयुर् दधद् यज्ञपताव्
अविह्रुतम् ।
.. पुपोष पुरुधा • वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि
राजति ॥ ९ ॥
२ विभ्राड् बृहत् सुभृतं वाजसातमं धर्मन् दिवो धरुणे सत्यम्
अर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर् जज्ञे असुरहा सप-
त्नहा ॥ १० ॥ ॥२॥

४.३

क १०.१७०.३ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिर् उत्तमं विश्वजिद् धनजिद्
उच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो
अच्युतम् ॥ १ ॥

८.१०१.११ बण् महाँ असि सूर्य बड् आदित्य महाँ असि ।
• • • • पस्यते अद्रा • • • महस् ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ २ ॥
१२ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानाम् असुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिर् अदा-
भ्यम् ॥ ३ ॥
८.१०२.१३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर् हविष्कृतः ।
वायोर् अनीके अस्थिरन् ॥ ४ ॥
७.९६.५ • • मादय ये ते सरस्वन्न् ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः ।
तेभिर् नो ऽविता भव ॥ ५ ॥
६.६१.१० उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ ६ ॥
१.१८.१ सोमानं... सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस् पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ७ ॥
३.६२.१० तत् सवितुर् वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ८ ॥
९.६६.१९ अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जम् इषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ९ ॥
२० अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
• रयिं मयि पोषम् (एवं कौ) दधत् पोषं रयिं मयि ॥ १० ॥ ॥३॥

४.४

* ९.६६.२० अग्निर् ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तम् ईमहे महागयम् ॥ १ ॥
९.८८.१ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वम् अस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम्
॥ २ ॥
२ स ईं रथो न भुरिषाळ् अयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आद् ईं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त
॥ ३ ॥
७ शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा
विट् ।
कौ ... पृतनाषाड् न आपो न मक्षू सुमतिर् भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण् न
यज्ञः ॥ ४ ॥
६.१६.१ त्वम् अग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर् मानुषे जने ॥ ५ ॥
२ स नो मन्द्राभिर् अध्वरे जिह्वाभिर् यजा महः ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ६ ॥

३ वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश् च देवाञ्जसा ।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ७ ॥
९.१.८ तम् ईं हिन्वन्त्य् अग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् ।
• वारणं • त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥
९ अभीमम् अघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् ।
सोमम् इन्द्राय पातवे ॥ ९ ॥
१० अस्येद् इन्द्रो मदेष्व् आ विश्वा वृत्राणि जिघ्नते ।
शूरो मघा च मंहते ॥ १० ॥ ॥४॥

४.५

* ८.१६.८ स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः ।
... अभिभूतिः एकश् चित् सन्न् अभिभूतिः ॥ १ ॥
९ तम् अर्केभिस् तं सामभिस् तं गायत्रैश् चर्षणयः ।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ २ ॥
१० प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ ३ ॥
११ स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ४ ॥
१०.१२०.१ तद् इद् आस भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस् त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून् अनु यं विश्वे मदन्त्य्
ऊमाः ॥ ५ ॥
२ वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर् दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच् च व्यनच् च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता
मदेषु ॥ ६ ॥
३ त्वे क्रतुम् अपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर् यद् एते त्रिर् भवन्त्य्
ऊमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा सम् अदः सु मधु मधु-
नाभि योधीः ॥ ७ ॥ ॥५॥

४.६

* ८.८८.५ • हि • • • अन्तेभ्यस् • प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस् परि ।
...अनु स्वधां • न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवम् अति विश्वं ववक्षिथ
॥ १ ॥
६ नकिः परिष्टिर् मघवन् मघस्य ते यद् दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्य् उचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये
॥ २ ॥
८.६०.१३ शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥ ३ ॥

१४ नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद् वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष् कृधि वंस्वा नो वार्या
पुरु ॥ ४ ॥
८.१०२.१३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर् हविष्कृतः ।
वायोर् अनीके अस्थिरन् ॥ ५ ॥
१४ यस्य त्रिधात्व् अवृतं बर्हिस् तस्थाव् असंदिनम् ।
आपश् चिन् नि दधा पदम् ॥ ६ ॥
१५ पदं देवस्य मीढुषो ऽनाधृष्टाभिर् ऊतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ ७ ॥
६.१६.२८ • • • वासद्... अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यंसद् विश्वं न्य् अत्रिणम् ।
• • वसते • अग्निर् नो वंसते रयिम् ॥ ८ ॥
२९ सुवीरं रयिम् आ भर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ ९ ॥
३० त्वं नः पाह्य् अंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस् कवे ॥ १० ॥ ॥६॥

४.७

* ९.५३.१ उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥
२ अया निजघ्निर् ओजसा रथसङ्गे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥
३ ...दूढ्या (एवं कौ) अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य पूर्व्या ।
रुज यस् त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥
४ तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
...मत्सरम् (एवं कौ) इन्दुम् इन्द्राय मत्सरः ॥ ४ ॥
९.५७.१ प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।
अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ ५ ॥
२ अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।
हरिस् तुञ्जान आयुधा ॥ ६ ॥
३ ...सुव्रतः (एवं कौ) स मर्मृजान आयुभिर् इभो राजेव सुव्रतम् ।
श्येनो न वंसु षीदति ॥ ७ ॥
४ • • • • • वसूनो (एवं कौ) • • स नो विश्वा दिवो वसु उत पृथिव्या अधि ।
पुनान इन्दव् आ भर ॥ ८ ॥
८.६४.१ • • • सोमाः... उत् त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ ९ ॥
२ कौ • पर्णीन्... पदा पर्णीर् अराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
न हि त्वा कश् चन प्रति ॥ १० ॥ ॥७॥

४.८

* ८.६४.३ त्वम् ईशिषे सुतानाम् इन्द्र त्वम् असुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ १ ॥
८.६.४ सम् अस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ २ ॥
६ कौ द्वितीयतृतीयपादयोर् विपर्यासः { वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥
५ ओजस् तद् अस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश् चर्मेव रोदसी ॥ ४ ॥
१.३६.१९ नि त्वाम् अग्ने मनुर् दधे ज्योतिर् जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥५॥
२० त्वेषासो अग्नेर् अमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदम् इद् यातुमावतो विश्वं सम् अत्रिणं
दह ॥ ६ ॥
८.९३.४ यद् अद्य कच् च वृत्रहन्न् उदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तद् इन्द्र ते वशे ॥ ७ ॥
५ यद् वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तत् सत्यम् इत् तव ॥ ८ ॥
६ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस् तां इन्द्र गच्छसि ॥ ९ ॥
१.२२.१७ इदं विष्णुर् वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
...पांसुरे समूळ्हम् अस्य पांसुले ॥ १० ॥ ॥८॥

४.९

* १.२२.१८ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर् गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १ ॥
१९ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २ ॥
२० तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुर् आततम् ॥ ३ ॥
१.२७.१० जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ४ ॥
११ स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
• • हिन्वतु (एवं कौ) धिये वाजाय हिन्वति ॥ ५ ॥
१२ स रेवाँ इव विश्पतिर् दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैर् अग्निर् बृहद्भानुः ॥ ६ ॥
६.४५.२२ तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।

शं यद् गवे न शाकिने ॥ ७ ॥
२३ न घा वसुर् नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत् सीम् उप श्रवद् गिरः ॥ ८ ॥
२४ कुविल्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिर् अप नो वरत् ॥ ९ ॥
८.१२.१६ यत् सोमम् इन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद् वा मरुत्सु मन्दसे सम् इन्दुभिः ॥ १० ॥ ॥९॥

४.१०

ऋ ८.१२.१७ यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकम् इत् सुते रणा सम् इन्दुभिः ॥ १ ॥
१८ यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि सम् इन्दुभिः ॥ २ ॥
शौ ६.४९.१ तथा ६.१०.१ न हि ते अग्ने तन्वै क्रूरं चिचेद् मर्त्यः ।
कपिर् बभस्ति तेजनं पुनर् जरायु गौर् इव ॥ ३ ॥
शौ २ त्वेप तु येत् सं च वि चैव क्रण्यसि यद् उत्तराद्रा उपरेषु खादसि ।
शीर्ष्णा शिरो वक्षसा वक्षो अर्धयन् अंशुं बिभर्षि हरितेभिर् आसभिः ॥ ४ ॥
ऋ ८.१.७ कयथ कद् असि पुरुत्रा चिद् धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरंदर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥ ५ ॥
८ प्रास्मै गायत्रम् अर्चत वावातुर् यः पुरंदरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिर् आसदं यासद् वज्री भिनत् पुरः ॥ ६ ॥
९ ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस् तेभिर् नस् तूयम् आ गहि ॥ ७ ॥
८.९४.१ गौर् धयति मरुतां श्रवस्युर् माता मघोनाम् ।
युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ ८ ॥
२ यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते ।
सूर्यामासा दृशे कम् ॥ ९ ॥
३ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥ १० ॥ ॥१०॥

४.११

ऋ ४.१७.८ सत्राहणं दाधृषिं तुम्रम् इन्द्रं महाम् अपारं वृषभं सुवज्रम् ।

हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ १ ॥
९ अयं वृतश् चातयते समीचीर् य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्य् अस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ २ ॥
१० अयं शृण्वे अध जयन्न् उत घ्नन्न् अयम् उत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युम् इन्द्रो विश्वं दृढं भयत एजद् अस्मात् ॥ ३ ॥
८.७७.१० विश्वेत् ता विष्णुर् आ भरद् उरुक्रमस् त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकम् ओदनं वराहम् इन्द्र एमुषम् ॥ ४ ॥
११ तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर् बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिद् ऋदूवृधा ॥ ५ ॥
८.१०३.६ यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
...वन्त्य् ० मधोर् न पात्रा प्रथमान्य् अस्मै प्र स्तोमा यन्त्व् अग्नये ॥ ६ ॥
७ अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥
१.४४.१ अग्ने विवस्वद् उषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वम् अद्या देवां उषर्बुधः ॥ ८ ॥
२ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽग्ने रथीर् अध्वराणाम् ।
सजूर् अश्विभ्याम् उषसा सुवीर्यम् अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
१.२७.४ इमम् ऊ षु त्वम् अस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ १० ॥ ॥११॥

४.१२

ऋ १.२७.५ आ नो भज परमेष्व् आ वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ १ ॥
६ विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोर् ऊर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥
८.६.१० ...जग्रभ अहम् इद् धि पितुष् परि मेधाम् ऋतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ ३ ॥
११ कौ ०० जन्मना... अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्मम् इद् दधे ॥ ४ ॥

ये त्वाम् इन्द्र न तुष्टुवुर् ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
१२ ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ५ ॥
अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जम् इषं च नः ।
९.६६.१९ आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ६ ॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
२१ दधत् पोषं रयिं मयि ॥ ७ ॥
० रयिं मयि पोषम् (एवं कौ) अग्निर् ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
२० तम् ईमहे महागयम् ॥ ८ ॥
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
५.२६.१ आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ९ ॥
स नः पावक दीदिवो ऽग्ने देवां इहा वह ।
१.१२.१० उप यज्ञं हविश् च नः ॥ १० ॥
यो अग्निं देववीतये हविष्मां आविवासति ।
९ तस्मै पावक मृडय ॥ ११ ॥
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर् विप्रः शुचिः कविः ।
८.४४.२१ शुची रोचत आहुतः ॥ १२ ॥
उद् अग्ने शुचयस् तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
१७ तव ज्योतींष्य् अर्चयः ॥ १३ ॥
शुचिः पावक वन्द्यो ऽग्ने बृहद् वि रोचसे ।
२.७.४ त्वं घृतेभिर् आहुतः ॥ १४ ॥
कस् ते जामिर् जनानाम् अग्ने को दाश्वध्वरः ।
१.७५.३ को ह कस्मिन्न् असि श्रितः ॥ १५ ॥ ॥१२॥

४.१३

त्वं जामिर् जनानाम् अग्ने मित्रो असि प्रियः ।
ऋ १.७५.४ सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देव ऋतं बृहत् ।
५ अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ २ ॥
ईळेन्यो नमस्यस् तिरस् तमांसि दर्शतः ।
३.२७.१३ सम् अग्निर् इध्यते वृषा ॥ ३ ॥
वृषो अग्निः सम् इध्यते ऽश्वो न देववाहनः ।
१४ तं हविष्मन्त ईळते ॥ ४ ॥
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः सम् इधीमहि ।
१५ अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ५ ॥
उत् ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः ।
८.४४.४ अग्ने शुक्रास ईरते ॥ ६ ॥
उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर् यन्तु हर्यत ।
५

अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ ७ ॥
६ मन्द्रं होतारम् ऋत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।
अग्निम् ईळे स उ श्रवत् ॥ ८ ॥
१०.३.१ इनो राजन्न् अरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमं अदर्शि ।
चिकिद् वि भाति भासा बृहतासिक्नीम् एति रुशतीम् अपाजन् ॥ ९ ॥
२ कृष्णां यद् एनीम् अभि वर्पसा भूज् जनयन् योषां बृहतः पितुर् जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिर् अरतिर् वि भाति ॥ १० ॥
३ भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्य् एति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर् द्युभिर् अग्निर् वितिष्ठन् रुशद्भिर् वर्णैर् अभि रामम् अस्थात् ॥ ११ ॥ ॥१३॥

४.१४

ऋ ८.६०.९ पाहि नो अग्न एकया पाह्य् उत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस् तिसृभिर् ऊर्जां पते पाहि चतसृभिर् वसो ॥ १ ॥
१० पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नो ऽव ।
त्वाम् इद् धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥
८.८४.४ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपाद् उपस्तुतिम् ।
वराय देव मन्यवे ॥ ३ ॥
५ दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कद् उ वोच इदं नमः ॥ ४ ॥
६ अधा त्वं हि नस् करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।
वाजद्रविणसो गिरः ॥ ५ ॥
८.७१.१० अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
००० पुरूवसु (एवं कौ).. अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तम् ऊतये ॥ ६ ॥
११ अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूद् अमृतो मर्त्येष्व् आ होता मन्द्रतमो विशि ॥ ७ ॥
१४ अग्निम् ईळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
...अग्निं ०० अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरो ऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥ ८ ॥
१५ अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्य् अग्निं शं योश् च दातवे ।

विश्वासु विक्षु अवितेव इव्यो भुवद् वस्तुर् ऋषूणाम् ॥ ९ ॥ ॥१४॥

४.१५

ऋ ३.११.४ अदाभ्यः पुरएता विशाम् अग्निर् मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥
६ साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर् देवानाम् अमृक्तः ।
अग्निस् तुविश्रवस्तमः ॥ २ ॥
७ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वां अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥ ३ ॥
१.७९.४ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
• देहि ... अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
५ स इधानो वसुष् कविर् अग्निर् ईडेन्यो गिरा ।
रेवद् अस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
६ क्षपो राजन् उत त्मनाग्ने वस्तोर् उतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥
८.७४.१ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥
२ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिर् आसुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ ८ ॥
३ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्य् उद्यता ।
हव्यान्य् ऐरयद् दिवि ॥ ९ ॥
३.१५.७ समिद्धम् अग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारम् अद्रुहं कविं सुम्नैर् ईमहे जातवेदसम् ॥ १० ॥ ॥१५॥

४.१६

ऋ ६.१५.८ त्वां दूतम् अग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुम् ईड्यम् ।
देवासश् च मर्तासश् च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ १ ॥
९ विभूषन्न् अग्न उभयं अनु व्रता दूतो देवानां रजसी सम् ईयसे ।
यत् ते धीतिं सुमतिम् आवृणीमहे ऽध स्मा नस् त्रिवरूथः शिवो भव ॥ २ ॥
• • भव (सं बो)
८.१०२.९ आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।

अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो ऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ३ ॥
१० वेत्य् अध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ ४ ॥
८.२.४ इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर् देवान् मर्त्यांश् च ॥ ५ ॥
५ न यं शुक्रो न दुराशीर् न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ६ ॥
६ गोभिर् यद् ईम् अन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते ।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ७ ॥
७ त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ८ ॥
८ त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश् चम्वः सुपूर्णाः ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ९ ॥
९ शुचिर् असि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर् मध्यत आशीर्तः ।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ १० ॥ ॥१६॥

४.१७

ऋ ९.९८.१० इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
• • • देवाय • नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥
११ स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर् जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ २ ॥
१२ • • पुरोरुचं... । नी... वयं यूयं [• • तं सखायः पुरूरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ ३ ॥
८.४५.१ आ घा ये अग्निम् इन्धते स्तृणन्ति बर्हिर् आनुषक् ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ४ ॥
२ बृहन्न् इद् इध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ५ ॥
३ अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ६ ॥
८.२४.१९ एतो न्व् इन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर् यो विश्वा अभ्य् अस्त्य् एक इत् ॥ ७ ॥
२० अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश् च वोचत ॥ ८ ॥
२१ यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर् न विश्वम् अभ्य् अस्ति दक्षिणा ॥ ९ ॥
कौ • • • • सरूप... सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी सुरूप वृषन्न् आ गहि ।

इमौ भद्रौ धुर्याव् अभि तान् इमा उप सर्पतः ॥ १० ॥
इमौ मन्त्रावृग्वेदे न स्तः
नीच शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर् दशभिर् दिशन् ॥ ११ ॥ ॥१७॥

४.१८

ऋ ५.२६.४ अग्ने विश्वेभिर् आ गहि देवेभिर् हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥ १ ॥
५ यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैर् आ सत्सि बर्हिषि ॥ २ ॥
६ समिधानः सहस्रजिद् अग्ने धर्माणि पुष्यसि ।
देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ३ ॥
५.७१.२ विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ४ ॥
१ आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा ।
उपेमं चारुम् अध्वरम् ॥ ५ ॥
३ उप नः सुतम् आ गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
८.४९.३ आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्व् अद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्व् आ ये अर्वावतीन्दवः ॥ ७ ॥
४ विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्व् आ वसु ।
शीष्टेषु चित् ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ८ ॥
८.९०.१ • • • हव्य इन्द्र • भूषतु • • • वृत्रहा • ऋचीषमः (कौ ऋचीषम) आ नो विश्वासु हव्यम् इन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषमा ॥ ९ ॥
२ त्वं दाता प्रथमो राधसाम् अस्य् असि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ १० ॥ ॥१८॥

४.१९

ऋ ८.५१.९ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश् चिद् अर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥
१० तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कम् आनृचुः ।
— सुवानास • अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो ऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥
१.३६.५ मन्द्रो होता गृहपतिर् अग्ने दूतो विशाम् असि ।

त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ३ ॥
६ त्वे इद् अग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वम् आ हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान् सुवीर्या ॥ ४ ॥
४.८.१ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहम् अमर्त्यम् ।
यजिष्ठम् ऋञ्जसे गिरा ॥ ५ ॥
२ स हि वेदा वसुधितिं महां आरोधनं दिवः ।
स देवं एह वक्षति ॥ ६ ॥
३ स वेद देव आनमं देवं ऋतायते दमे ।
दाति प्रियाणि चिद् वसु ॥ ७ ॥
९.८९.२ राजा सिन्धूनाम् अवसिष्ट वास ऋतस्य नावम् आरुहद् रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर् जाम् ॥ ८ ॥
३ सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिम् अरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्य् उक्षा ॥ ९ ॥
४ मधुपृष्ठं घोरम् अयासम् अश्वं रथे युञ्जन्त्य् उरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनम् ऊर्जयन्ति ॥ १० ॥ ॥१९॥

४.२०

ऋ ८.४.७ मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥
८ सव्याम् अनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
. पिब (सं बो) मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस् तूयम् एहि द्रवा पिब ॥ २ ॥
८.३३.१० सत्यम् इत्था वृषेद् असि वृषजूतिर् नो ऽवृतः ।
वृषा ह्य् उग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ ३ ॥
११ वृषणस् ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ४ ॥
१२ वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्न् ऋजीपिन्न् आ भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्व् आ तुभ्यं स्थातर् हरीणाम् ॥ ५ ॥

८.३.१ • • • पुरूवसो (एवं कौ)... इमा उ त्वा पुरोवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैर् अनूषत ॥ ६ ॥
४ अयं सहस्रम् ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ७ ॥
९.८६.४३ ...मधुनाभ्य् अञ्जते व्य् अञ्जते सम् अञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्य् अञ्जते ।
सिन्धोर् उच्छ्वासे पतयन्तम् उक्षणं हिरण्यपावाः पशुम् अप्सु गृभ्णते ॥ ८ ॥
आसु •
४५ अग्रेगो राजाप्यस् तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्व् अर्पितः ।
हरिर् घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ९ ॥
४४ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्य् अन्धो अर्षति ।
अहिर् न जूर्णाम् अति सर्पति त्वचम् अत्यो न क्रीडन्न् असरद् वृषा हरिः ॥ १० ॥ ॥२०॥

४.२१

ऋ ७.१६.११ .. विवष्ट्व् • देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्व् आसिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वम् उप वा पृणध्वम् आद् इद् वो देव ओहते ॥ १ ॥
१२ तं होतारम् अध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यम् अग्निर् जनाय दाशुषे ॥ २ ॥
८.१०३.१ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्य् आदधुः ।
...नक्षन्त • • उपो षु जातम् आर्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

३ यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
...सपर्यत सहस्रसां मेधसाताव् इव त्मनाग्निं धीभिर् नमस्यत ॥ ४ ॥
२ • • • • अच्छा • • प्र दैवोदासो अग्निर् देवं इन्द्रो न मज्मना ।
...सानवि अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ५ ॥

९.१७.८ मधोर् धाराम् अनु क्षर तीव्रः सधस्थम् आसदः ।
चारुर् ऋताय पीतये ॥ ६ ॥
१ प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रम् आशवः ॥ ७ ॥
२ • सुवानास ... अभि स्वानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीम् इव ।

• • अक्षरन् (एवं कौ) इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ ८ ॥
८.२.१० इमे त इन्द्र सोमास् तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ ९ ॥
११ तं आशिरं पुरोडाशम् इन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ १० ॥ ॥२१॥

४.२२

ऋ ८.२.१२ इत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊधर् न नग्ना जरन्ते ॥ १ ॥
९.६६.२४ पवमान ऋतं बृहच् छुक्रं ज्योतिर् अजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २ ॥
२६ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ ३ ॥
२७ • • अश्नवद् ... पवमान व्य् अश्नुहि रश्मिभिर् वाजसातमः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
८.१६.१ प्र सम्राजं चर्षणीनाम् इन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ ५ ॥
२ यस्मिन्न् उक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपाम् अवो न समुद्रे ॥ ६ ॥
३ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ७ ॥
३.१२.५[१.१] प्र वाम् अर्चन्त्य् उक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
४[१] इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ८ ॥
६ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीर् अधूनुतम् ।
साकम् एकेन कर्मणा ॥ ९ ॥
७ इन्द्राग्नी अपसस् पर्य् उप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या अनु ॥ १० ॥ ॥२२॥

४.२३

ऋ ३.१२.४ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥
८.८९.३ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर् वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
४ अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश् चित् ते असद् बृहत् ।
अर्षन्त्व् आपो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ३ ॥

८.३.५ इन्द्रम् इद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्य् अध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ४ ॥
६ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच् छव इन्द्रः सूर्यम् अरोचयत् ।
...सुवानास • इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ ५ ॥
७.१००.५ • • • • • नामार्यः • • प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट हव्यम् अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसम् अतव्यान् क्षयन्तम् अस्य रजसः पराके ॥ ६ ॥
६ कौ • • • • परिचक्षि नाम • • • • किम् इत् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मद् अप गूह एतद् यद् अन्यरूपः समिथे बभूथा ॥ ७ ॥
बभूथ (एवं कौ) वषट् ते विष्णव् आस आ कृणोमि तन् मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
४.४७.१ वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ९ ॥
२ इन्द्रश् च वायव् एषां सोमानां पीतिम् अर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नम् आपो न सध्र्यक् ॥१०॥ ॥२३॥

४.२४

ऋ ४.४७.३ वायव् इन्द्रश् च शुष्मिणा सरथं शवसस् पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ १ ॥
९.९९.२ अध (एवं कौ) ... गाहते अधा क्षपा परिष्कृतो वाजां अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥
३ तम् अस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर् दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥
४ तं गाथया पुराण्या पुनानम् अभ्य् अनूषत ।
• कृपन्त (एवं कौ)... उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥
१.२७.१ अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तम् अध्वराणाम् ॥ ५ ॥
२ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वां अस्माकं बभूयात् ॥ ६ ॥
३ स नो दूराच् चासाच् च नि मर्त्याद् अघायोः ।
पाहि सदम् इद् विश्वायुः ॥ ७ ॥

जे ४.१०.३ न हि ते अग्ने तन्वै क्रूरं चिकेत मर्त्यः ।
कपिर् बभस्ति तेजनं पुनर् जरायु गौर् इव ॥ ८ ॥
३.२४.४ अग्ने विश्वेभिर् अग्निभिर् देवेभिर् महया गिरः ।
यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ९ ॥
५ अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥ १० ॥ ॥२४॥

४.२५

ऋ ३.२४.१ अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीर् अपास्य ।
दुष्टरस् तरन्न् अरातीर् वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
८.६९.२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनाम् इषुध्यसि ॥ २ ॥
३ ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विशस् त्रिष्व् आ रोचने दिवः ॥ ३ ॥
८.६०.१ अग्न आ याह्य् अग्निभिर् होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वाम् अनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिर् आसदे ॥ ४ ॥
२ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्य् अध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशम् ईमहे ऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ५ ॥ ॥२५॥

४.२६

ऋ ९.१०१.१३ • सुन्वानस्यान्धसो • • प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद् वचः ।
(वृत • • अप श्वानम् अराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥
१४ आ जामिर् अत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज् जारो न योषणां वरो न योनिम् आसदम् ॥ २ ॥
१५ स वीरो दक्षसाधनो वि यस् तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिम् आसदम् ॥ ३ ॥
७.३२.१ मो षु त्वा वाघतश् चनारे अस्मन् नि रीरमन् ।
• चिद्... आरात्ताद् वा सधमादं न आ गहीह वा सन्न् उप श्रुधी ॥ ४ ॥
श्रुधि (एवं कौ)
२ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादम् आ दधुः ॥ ५ ॥

८.५२.९ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर् ऋतस्य बृहतीर् अनूषत स्तोतुर् मेधा असृक्षत ॥ ६ ॥

विश्वासु विक्ष्व् अवितेव हव्यो भुवद् वस्तुर् ऋषूणाम्
॥ ९ ॥ ॥१४॥

४.१५

ऋ ३.११.५ अदाभ्यः पुरएता विशाम् अग्निर् मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥
६ साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर् देवानाम् अमृक्तः ।
अग्निस् तुविश्रवस्तमः ॥ २ ॥
७ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वां अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ॥ ३ ॥
१.७९.४ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
• देहि ... अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
५ स इधानो वसुष् कविर् अग्निर् ईडेन्यो गिरा ।
रेवद् अस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
६ क्षपो राजन्न् उत त्मनाग्ने वस्तोर् उतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥
८.७४.१ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ ७ ॥
२ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिर् आसुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ ८ ॥
३ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्य् उद्यता ।
हव्यान्य् ऐरयद् दिवि ॥ ९ ॥
६.१५.७ समिद्धम् अग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारम् अद्रुहं कविं सुम्नैर् ईमहे जातवेदसम् ॥ १० ॥ ॥१५॥

४.१६

ऋ ६.१५.८ त्वां दूतम् अग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुम् ईड्यम् ।
देवासश् च मर्तासश् च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ १ ॥
९ विभूषन्न् अग्न उभयां अनु व्रता दूतो देवानां रजसी सम् ईयसे ।
यत् ते धीतिं सुमतिम् आवृणीमहे ऽध स्मा नस् त्रिवरूथः शिवो भवा ॥ २ ॥
• • अव (नव कौ)
८.१०१.९ आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।

अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानो ऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ३ ॥
१० वेत्य् अध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ ४ ॥
८.२.४ इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।
अन्तर् देवान् मर्त्यांश् च ॥ ५ ॥
५ न यं शुक्रो न दुराशीर् न तृप्रा उरुव्यचसम् ।
अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ६ ॥
६ गोभिर् यद् ईम् अन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते ।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ७ ॥
७ त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।
स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥ ८ ॥
८ त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश् चम्वः सुपूर्णाः ।
समाने अधि भार्मन् ॥ ९ ॥
९ शुचिर् असि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर् मध्यत आशीर्तः ।
दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ १० ॥ ॥१६॥

४.१७

ऋ ९.९८.१० इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
• • • देवाय • नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥
११ स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर् जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन्तं तुविष्वणि ॥ २ ॥
१२ • • पुरोरुचं... । कौ... वयं यूयं [• • तं सखायः पुरूरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ ३ ॥
८.४५.१ आ घा ये अग्निम् इन्धते स्तृणन्ति बर्हिर् आनुषक् ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ४ ॥
२ बृहन्न् इद् इध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ५ ॥
३ अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।
येषाम् इन्द्रो युवा सखा ॥ ६ ॥
८.२४.१९ एतो न्व् इन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर् यो विश्वा अभ्य् अस्त्य् एक इत् ॥ ७ ॥
२० अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश् च वोचत ॥ ८ ॥
२१ यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर् न विश्वम् अभ्य् अस्ति दक्षिणा ॥ ९ ॥
कौ • • • • सरूप... सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी सुरूप वृषन्न् आ गहि ।

इमौ मन्त्रावृग्वेदे न स्तः {
इमौ मही चुर्यात् अभि तान् इमा उप सर्पतः ॥ १० ॥
नीचा शीर्षाणि मृद्ध्व मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर् दशभिर् दिशन् ॥ ११ ॥ ॥१७॥ }

४.१८

ऋ ५.२६.४ अग्ने विश्वेभिर् आ गहि देवेभिर् हव्यदातये ।
होतारं त्वा वृणीमहे ॥ १ ॥
५ यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह ।
देवैर् आ सत्सि बर्हिषि ॥ २ ॥
६ समिधानः सहस्रजिद् अग्ने धर्माणि पुष्यसि ।
देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ३ ॥
५.७१.२ विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ४ ॥
१ आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा ।
उपेमं चारुम् अध्वरम् ॥ ५ ॥
३ उप नः सुतम् आ गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
८.५३.३ आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्व् अद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्व् आ ये अर्वावतीन्दवः ॥ ७ ॥
४ विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्व् आ वसु ।
शीष्टेषु चित् ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ८ ॥
८.९०.१ • • • हव्य इन्द्रः • भूषतु • • • वृत्रहा • ऋचीषमः (कौ ऋचीषम) आ नो विश्वासु हव्यम् इन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषमा ॥ ९ ॥
२ त्वं दाता प्रथमो राधसाम् अस्य् असि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ १० ॥ ॥१८॥

४.१९

ऋ ८.५१.९ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश् चिद् अर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥ १ ॥
१० तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कम् आनृचुः ।
... सुवानास • अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो ऽस्मे स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥
१.३६.५ मन्द्रो होता गृहपतिर् अग्ने दूतो विशाम् असि ।

त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ३ ॥
६ त्वे इद् अग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वम् आ हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान् सुवीर्या ॥ ४ ॥
४.८.१ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहम् अमर्त्यम् ।
यजिष्ठम् ऋञ्जसे गिरा ॥ ५ ॥
२ स हि वेदा वसुधितिं महां आरोधनं दिवः ।
स देवां एह वक्षति ॥ ६ ॥
३ स वेद देव आनमं देवां ऋतायते दमे ।
दाति प्रियाणि चिद् वसु ॥ ७ ॥
९.८९.२ राजा सिन्धूनाम् अवसिष्ट वास ऋतस्य नावम् आरुहद् रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर् जाम् ॥ ८ ॥
३ सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिम् अरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्य् उक्षा ॥ ९ ॥
४ मधुपृष्ठं घोरम् अयासम् अश्वं रथे युञ्जन्त्य् उरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनम् ऊर्जयन्ति ॥ १० ॥ ॥१९॥

४.२०

ऋ ८.४.७ मा स्रेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ १ ॥
८ सव्याम् अनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
..पिब (नवं कौ) मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस् तूयम् एहि द्रवा पिब ॥ २ ॥
८.३३.१० सत्यम् इत्था वृषेद् असि वृषजूतिर् नो ऽवृतः ।
वृषा ह्य् उग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ ३ ॥
११ वृषणस् ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ४ ॥
१२ वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्न् ऋजीपिन्न् आ भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्व् आ तुभ्यं स्थातर् हरीणाम् ॥ ५ ॥

८.३.३ • • • पुरूवसो (एवं कौ)... इमा उ त्वा पुरोवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैर् अनूषत ॥ ६ ॥
४ अयं सहस्रम् ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ७ ॥
९.८६.४३ ...मधुनाभ्य् अञ्जते व्य् अञ्जते सम् अञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्य् अञ्जते ।
सिन्धोर् उच्छ्वासे पतयन्तम् उक्षणं हिरण्यपावाः पशुम्
आसु • अप्सु गृभ्णते ॥ ८ ॥
४५ अग्रेगो राजाप्यस् तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्व् अर्पितः ।
हरिर् घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ९ ॥
४४ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्य् अन्धो अर्षति ।
अहिर् न जूर्णाम् अति सर्पति त्वचम् अत्यो न क्रीडन्न् असरद् वृषा हरिः ॥ १० ॥ ॥२०॥

४.२१

ऋ ७.१६.११ ...विवष्ट्व् • देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्व् आसिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वम् उप वा पृणध्वम् आद् इद् वो देव ओहते ॥ १ ॥
१२ तं होतारम् अध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यम् अग्निर् जनाय दाशुषे ॥ २ ॥
८.१०३.१ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्य् आदधुः ।
...नक्षन्त • • उपो षु जातम् आर्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ ३ ॥
३ यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
...सपर्यत सहस्रसां मेधसाताव् इव त्मनाग्निं धीभिर् नमस्यत ॥ ४ ॥
२ • • • • अच्छा • • प्र दैवोदासो अग्निर् देवं इन्द्रो न मज्मना ।
...सानवि अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥ ५ ॥
९.१७.८ मधोर् धाराम् अनु क्षर तीव्रः सधस्थम् आसदः ।
चारुर् ऋताय पीतये ॥ ६ ॥
१ प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः ।
सोमा असृग्रम् आशवः ॥ ७ ॥
२ • सुवानास... अभि स्वानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीम् इव ।

• • अक्षरन् (एवं कौ) इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ ८ ॥
८.२.१० इमे त इन्द्र सोमास् तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्त ॥ ९ ॥
११ तं आशिरं पुरोडाशम् इन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ १० ॥ ॥२१॥

४.२२

ऋ ८.२.१२ इत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।
ऊधर् न नग्ना जरन्ते ॥ १ ॥
९.६६.२४ पवमान ऋतं बृहच् छुक्रं ज्योतिर् अजीजनत् ।
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २ ॥
२५ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ ३ ॥
२७ • • अश्नवद्... पवमान व्य् अश्नुहि रश्मिभिर् वाजसातमः ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
८.१६.१ प्र सम्राजं चर्षणीनाम् इन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ ५ ॥
२ यस्मिन्न् उक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपाम् अवो न समुद्रे ॥ ६ ॥
३ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ७ ॥
३.१२.५[१,२] प्र वाम् अर्चन्त्य् उक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
४[१] इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ८ ॥
६ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीर् अधूनुतम् ।
साकम् एकेन कर्मणा ॥ ९ ॥
७ इन्द्राग्नी अपसस् पर्य् उप प्र यन्ति धीतयः ।
ऋतस्य पथ्या अनु ॥ १० ॥ ॥२२॥

४.२३

ऋ ३.१२.४ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥
८.८९.३ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर् वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
४ अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश् चित् ते असद् बृहत् ।
अर्षन्त्व् आपो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ३ ॥

८.३.५ इन्द्रम् इद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्य् अध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ४ ॥
६ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच् छव इन्द्रः सूर्यम् अरोचयत् ।
...सुवानास • इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ ५ ॥
७.१००.५ • • • • • • नामार्यः • • प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट हव्यम् अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसम् अतव्यान् क्षयन्तम् अस्य रजसः पराके ॥ ६ ॥
६ कौ • • • • परिचक्षि नाम • • • • किम् इत् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मद् अप गूह एतद् यद् अन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ७ ॥
बभूथ (एवं कौ) वषट् ते विष्णव् आस आ कृणोमि तन् मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥
वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
४.४७.१ आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ९ ॥
इन्द्रश् च वायव् एषां सोमानां पीतिम् अर्हथः ।
२ युवां हि यन्तीन्दवो निम्नम् आपो न सध्र्यक् ॥ १० ॥ ॥२३॥

४.२४

वायव् इन्द्रश् च शुष्मिणा सरथं शवसस् पती ।
ऋ ४.४७.३ नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ १ ॥
अया क्षपा परिष्कृतो वाजं अभि प्र गाहसे ।
९.९९.२ अध (एवं कौ)... गाहते यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥
तम् अस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
३ यं गाव आसभिर् दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥
तं गाथया पुराण्या पुनानम् अभ्य् अनूषत ।
४ उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥
• कृपन्त (एवं कौ)... अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
१.२७.१ सम्राजन्तम् अध्वराणाम् ॥ ५ ॥
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
२ मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ ६ ॥
स नो दूराच् चासाच् च नि मर्त्याद् अघायोः ।
३ पाहि सदम् इद् विश्वायुः ॥ ७ ॥

जे ४.१०.१ न हि ते अग्ने तन्वै क्रूरं चिकेत मर्त्यः ।
कपिर् बभस्ति तेजनं पुनर् जरायु गौर् इव ॥ ८ ॥
३.२४.४ अग्ने विश्वेभिर् अग्निभिर् देवेभिर् महया गिरः ।
यज्ञेषु ये उ चायवः ॥ ९ ॥
५ अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥ १० ॥ ॥२४॥

४.२५

ऋ ३.२४.१ अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीर् अपास्य ।
दुष्टरस् तरन्न् अरातीर् वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
८.६९.२ नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनाम् इषुध्यसि ॥ २ ॥
३ ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विशस् त्रिष्व् आ रोचने दिवः ॥ ३ ॥
८.६०.१ अग्न आ याह्य् अग्निभिर् होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वाम् अनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिर आसदे ॥ ४ ॥
२ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्य् अध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशम् ईमहे ऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ५ ॥ ॥२५॥

४.२६

ऋ ९.१०१.१३ • सुन्वानस्यान्धसो • • प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद् वचः ।
[वृत • • अप श्वानम् अराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १ ॥
१४ आ जामिर् अत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज् जारो न योषणां वरो न योनिम् आसदम् ॥ २ ॥
१५ स वीरो दक्षसाधनो वि यस् तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिम् आसदम् ॥ ३ ॥
७.३२.१ मो षु त्वा वाघतश् चनारे अस्मन् नि रीरमन् ।
• चिद्... आरात्ताद् वा सधमादं न आ गहीह वा सन्न् उप
श्रुधि (एवं कौ) श्रुधी ॥ ४ ॥
२ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादम् आ दधुः ॥ ५ ॥
८.५२.९ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर् ऋतस्य बृहतीर् अनूषत स्तोतुर् मेधा असृक्षत ॥ ६ ॥

१० सम् इन्द्रो रायो बृहतीर् अधूनुत सं क्षोणी सम् उ
सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रम् अमन्दिषुः
॥ ७ ॥
१.१७.७ होता देवो अमर्त्यः पुरस्ताद् एति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ॥ ८ ॥
८ वाजी वाजेषु धीयते ऽध्वरेषु प्र णीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ९ ॥
९ धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भम् आ दधे ।
दक्षस्य पितरं तना ॥ १० ॥ ॥२६॥

४.२७

* ८.९२.७ त्यम् उ वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्व् आयतम् ।
आ च्यावयस्य् ऊतये ॥ १ ॥
८ युध्मं सन्तम् अनर्वाणं सोमपाम् अनपच्युतम् ।
नरम् अवार्यक्रतुम् ॥ २ ॥
९ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वं ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥ ३ ॥
९.१२.१ ... मघोनः प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥ ४ ॥
३ आद् ईं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन् मतिम् ।
अत्यो न गोभिर् अज्यते ॥ ५ ॥
४ आद् ईं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्य् अद्रिभिः ।
इन्दुम् इन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥
७.३२.१४ ● ● ● त्वावसुम् ... कस् तम् इन्द्र त्वावसव् आ मर्त्यो दधर्षति ।
● इद ... श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति
॥ ७ ॥
१५ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर् विश्वा तरेम दुरिता ॥ ८ ॥
८.६८.१० तं त्वा यज्ञेभिर् ईमहे तं गीर्भिर् गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिद् आविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ ९ ॥
११ यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिर् अद्रिवः ।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ १० ॥ ॥२७॥

४.२८

* ८.६८.१२ उरु णस् तन्वे तन उरु क्षयाय नस् कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १ ॥

५.२५.७ यद् वाहिष्ठं तद् अग्नये बृहद् अर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस् त्वद् वाजा उद् ईरते ॥ २ ॥
८ तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर् यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ३ ॥
९ एवाँ ... एवो अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन् नावेव सुक्रतुः ॥ ४ ॥
९.६३.७ अया पवस्व धारया यया सूर्यम् अरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीर् अपः ॥ ५ ॥
८ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनाव् अधि ।
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ ६ ॥
९ ● ● ● दश ... [उत त्या हरितो रथं सूरो अयुक्त यातवे ।]
इन्दुर् इन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ७ ॥
८.६०.३ अग्ने कविर् वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्व् ईड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः
॥ ८ ॥
४ अद्रोघम् आ वहोशतो यविष्ठ्य देवं अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्
हितः ॥ ९ ॥
१०.९.४ शं नो देवीर् अभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योर् अभि स्रवन्तु नः ॥ १० ॥ ॥२८॥

४.२९

* १०.९.५ ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश् चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ १ ॥
७ आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २ ॥
८.१९.१ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवम् अरतिं दधन्विरे ।
● ● ओहिरे देवत्रा हव्यम् ऊहिषे ॥ ३ ॥
२ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषम् अग्निम् ईळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेम् अध्वराय पूर्व्यम्
॥ ४ ॥
७.१६.५ त्वम् अग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥
६ कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वम् ऋत्विजं सुशंसो यश् च
दक्षते ॥ ६ ॥

७.३१.१० ● ● ● महिवृधे प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
... चरा ● विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः ॥ ७ ॥
११ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिम् इन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ८ ॥
१२ इन्द्रं वाणीर् अनुत्तमन्युम् एव सत्रा राजानं दधिरे
सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया सम् आपीन् ॥ ९ ॥
९.४९.० तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।
... गृहम् (स्व को) जन्यास उप नो गृहान् ॥ १० ॥ ॥२९॥

४.३०

* ९.४९.३ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिम् आ पव ॥ १ ॥
४ स न ऊर्जे व्य् अव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन् हि कम् ॥ २ ॥
१०.१८६.१ वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ।
● न ... प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥
३ वी ● ● ● ● ● ● अमृतं निहितं गुहा यद् अदो वात ते गृहे ऽमृतस्य निधिर् हितः ।
● ● देहि ● । वो तस्य ततो नो धेहि जीवसे ॥ ४ ॥
२ उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥ ५ ॥
७.३२.२६ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिर् अशी-
महि ॥ ६ ॥
२७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीर् अपो अति शूर तरामसि
॥ ७ ॥ ॥३०॥

॥ इति जैमिनीयसंहिता समाप्ता ॥

अथर्ववेद संहिता

ॐ

शौनकीयानां

अथर्ववेद-संहिता ।

प्रथमं काण्डम् ।

(१) मेधाजननम् ।

१-४ अथर्वा । वाचस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

[अथ प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥]

अनुवाकाङ्कः [१] ॐ ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे १
पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् २
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ३
उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् ।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ४ (४)

(२) रोगोपशमनम् ।

१-४ अथर्वा । पर्जन्यः(१, ४ पृथिवी, ३ इन्द्रः, [चन्द्रमाश्च])। अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् १
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि २
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् ।
शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ३
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् ।
एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ४ (८)

(३) मूत्रमोचनम् ।

१-९ अथर्वा । १ पर्जन्यः, २ मित्रः, ३ वरुणः, ४ चन्द्रः, ५ सूर्यः, (१-९ मूत्रमोचनम्)।
अनुष्टुप्, १-५ पथ्यापङ्क्तिः ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति १
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति २
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ३
विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ४
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम् ।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ५
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम् ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ६
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ७
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ८
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ९ (१७)

(४) अपां भेषजम् ।

१-४ सिन्धुद्वीपः । (अपांनपात्, सोमः,) आपः । गायत्री, ४ पुरस्ताद्बृहती ।

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः १
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् २
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ३
अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ४ (२१)

(५) अपां भेषजम् ।

१-४ सिन्धुद्वीपः । (अपांनपात्, सोमः,) आपः । गायत्री, ४ वर्धमाना ।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे १
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः २
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ३
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ४ (२५)

(६) अपां भेषजम् ।

१-४ सिन्धुद्वीपः । (अथर्वा कृतिर्वा) । (अपांनपात्,) आपः, २ आपः सोमोऽग्निश्च । गायत्री, ४ पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः १
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशंभुवम् २
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ३
शं न आपो धन्वन्या३ः शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ४ (२९)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

(७) यातुधाननाशनम् ।

१-७ चातनः । अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्रौ । अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

[२] स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ १
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय २
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ३
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ४
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ५ (३४)

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ६
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह ।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ७ (३६)

(८) यातुधाननाशनम् ।

१-४ चातनः । १-२ बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च; ३-४ अग्निः (जातवेदाः)।
१-३ अनुष्टुप्, ४ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः १
अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् २
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ३
यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ४ (४०)

(९) विजयाय प्रार्थना ।

१-४ अथर्वा । १ वसवः, इन्द्रः, पूषा, वरुणः, मित्रः, अग्निः, आदित्याः, विश्वे देवाः,
२ देवाः, सूर्यः, अग्निः, हिरण्यं, ३-४ अग्निः (जातवेदाः) । त्रिष्टुप् ।

अस्मिन् वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः ।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु १
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम् ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् २
येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ३
ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ४ (४४)

(१०) पाश-विमोचनम् ।

१-४ अथर्वा । १ असुरः, २-४ वरुणः । त्रिष्टुप्, ३ ककुम्मती अनुष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि १
नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् ।
सहस्रमन्यान् प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् २
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ३
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि ।
सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः । ४ (४८)

(११) नारी-सुखप्रसूतिः ।

१-६ अथर्वा । पूषा, अर्यमा, वेधाः, दिशः, देवाः । पङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४-६ पथ्यापङ्क्तिः ।

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः ।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ १
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे २
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ३
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम् ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ४
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके ।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ५
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः ।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायु पद्यताम् ६ (५४)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(१२) यक्ष्मनाशनम् ।

१-४ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । जगती (त्रिष्टुप् ?), ४ अनुष्टुप् ।

[३] जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे १
अङ्गेअङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत् पर्वास्या ग्रभीता २
मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ३
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे ।
शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ४ (५८)

(१३) विद्युत् ।

१-४ भृग्वङ्गिराः । विद्युत् । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराड् जगती, ४ त्रिष्टुप्परा बृहतीगर्भा पङ्क्तिः ।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि १
नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहसि ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि २
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ३
यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ४ (६२)

(१४) कुलपा कन्या ।

१-४ भृग्वङ्गिराः । (वरुणो), यमो (वा) । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती अनुष्टुप्, ३ चतुष्पाद्विराट् ।

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम् ।
महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् १
एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम ।
सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः २ (६४)

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि ।
ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ३
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च ।
अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ४ (६६)

(१५) पुष्टिकर्म ।

१-४ अथर्वा । सिन्धवः, (वाताः, पतत्रिणः) । अनुष्टुप्, १-२ भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः ।

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि १
इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः २
ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ३
ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ४ (७०)

(१६) शत्रुबाधनम् ।

१-४ चातनः । १ अग्निः, २ इन्द्रः, वरुणः, (३-४ दधत्यं सीसम्) । अनुष्टुप्, ४ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

येऽमावास्यां रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः ।
अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् १
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदङ्ग यातुचातनम् २
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ३
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ४ (७४)

[इति प्रथमः प्रपाठकः ॥१॥] ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(१७) रुधिरस्रावनिवृत्तये धमनीबन्धनम् ।

[अथ द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥] १-४ ब्रह्मा । योषितः धमन्यश्च । अनुष्टुप्, १ भुरिगनुष्टुप्, ४ त्रिपदार्षी गायत्री ।

[४] अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः १ (७५)

तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही २
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ३
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत् । तिष्ठतेलयता सु कम् ४ (७८)

(१८) अलक्ष्मीनाशनम् ।

१-४ द्रविणोदाः । विनायकः (२ सविता, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, देवाः, ३ सविता) ।
१ विराडुपरिष्टाद्बृहती, २ निचृज्जगती, ३ विराडास्तारपङ्क्तिस्त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

निर्लक्ष्म्यं ललाम्यं निररातिं सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि १
निररणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय २
यत् त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ३
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं ता अस्मन्नाशयामसि ४ (८१)

(१९) शत्रुनिवारणम् ।

१-४ ब्रह्मा । ईश्वरः, (१ इन्द्रः, २ दैवीः मनुष्येषवः, ३ रुद्रः, ४ देवाः) ।
अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद्बृहती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् ।
आराच्छरव्या अस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय १
विष्वञ्चो अस्मच्छरवः पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः ।
दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत २
यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् वि विध्यतु ३
यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ४ (८४)

(२०) शत्रुनिवारणम्।

१-४ अथर्वा। १ सोमः, मरुतः; २ मित्रावरुणौ, ३ वरुणः, ४ इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्।

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या १
यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते।
युवं तं मित्रावरुणावस्मद्यावयतं परि २
इतश्च यदमुतश्च यद् वधं वरुण यावय।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ३
शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ४ (९०)

(२१) शत्रुनिवारणम्।

१-४ अथर्वा। इन्द्रः। अनुष्टुप्।

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः १
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति २
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ३
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ४ (९४)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(२२) हृद्रोग-कामिला-नाशनम्।

१-४ ब्रह्मा। सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च। अनुष्टुप्।

[५] अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि १
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत् २
या रोहिणीर्देवत्या गावो या उत रोहिणीः।
रूपंरूपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ३ (९७)

शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ४ (९८)

(२३) श्वेतकुष्ठनाशनम्।

१-४ अथर्वा। वनस्पतिः (असिक्निः)। अनुष्टुप्।

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् १
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय २
असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ३
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ४ (१०२)

(२४) श्वेतकुष्ठनाशनम्।

१-४ ब्रह्मा। आसुरी वनस्पतिः। अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः।

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् १
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम्।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् २
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ३
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता।
इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ४ (१०६)

(२५) ज्वर-नाशनम्।

१-४ भृग्वङ्गिराः। यक्ष्मनाशनोऽग्निः। त्रिष्टुप्, २-३ विराड्गर्भा, ४ पुरोऽनुष्टुप्।

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् १
यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् २ (१०८)

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् ३
नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ४ (११०)

(२६) शर्मप्राप्तिः।

१-४ ब्रह्मा। १ देवाः; २ इन्द्रः, भगः, सविता, ३-४ मरुतः। गायत्री; २ त्रिपदा एकावसाना साम्नी त्रिष्टुप्, ४ एकावसाना पादनिचृत्।

आरे३ऽसावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ १
सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्रराधाः २
यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः। शर्म यच्छाथ सप्रथाः ३
सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ४ (११४)

(२७) स्वस्त्ययनम्।

१-४ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः)। (चन्द्रमाः,) इन्द्राणी (च)। अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः।

अमूः पारे पृदाक्वस्त्रिषप्ता निर्जरायवः।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः १
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक् पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः २
न बहवः समशकन् नार्भका अभि दाधृषुः।
वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ३
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्।
इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ४ (११८)

(२८) रक्षोघ्नम्।

१-४ चातनः। १-२ अग्निः, ३-४ यातुधान्यः। अनुष्टुप्, ३ विराट्पथ्याबृहती, ४ पथ्यापङ्क्तिः।

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः १
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः।
प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः २ (१२०)

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
पुत्रमत्तु यातुधानीः स्वसारमुत नप्त्यम्।
अधा मिथो विकेश्यो३ वि घ्नतां यातुधान्यो३ वि तृह्यन्तामराय्यः ४ (१२२)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(२९) राष्ट्राभिवर्धनम्, सपत्नक्षयणं च।

१-६ वसिष्ठः। ब्रह्मणस्पतिः, अभीवर्तमणिः। अनुष्टुप्।

[६] अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय १
अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति २
अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत्।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ३
अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः।
राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ४
उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः।
यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ५
सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ६ (१२८)

(३०) दीर्घायुःप्राप्तिः।

१-४ अथर्वा (आयुष्कामः)। विश्वे देवाः (१ वसवः, आदित्याः, १-४ देवाः)। त्रिष्टुप्, ३ शाक्वरगर्भा विराड्जगती।

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः १
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम्।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ २
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ३ (१३१)

येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः ।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान् वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ४ (१३२)

(३१) पाशमोचनम् ।

१-४ ब्रह्मा । आशापालाः (वास्तोष्पतिः) । अनुष्टुप्, ३ विराट् त्रिष्टुप्, ४ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् १
य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसोअंहसः २
अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ३
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ४ (१३६)

(३२) महद्ब्रह्म ।

१-४ ब्रह्मा । द्यावापृथिवी । अनुष्टुप्, २ ककुम्मत्यनुष्टुप् ।

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः । १
अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव ।
आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा २
यद् रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् ।
आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ३
विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ४ (१४०)

(३३) आपः ।

१-४ शन्तातिः । (चन्द्रमाः) आपः (च) । त्रिष्टुप् ।

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु १
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु २ (१४२)

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ३
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ४ (१४४)

(३४) मधुविद्या ।

१-५ अथर्वा । मधुवनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि ।
मधोरधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि १
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि २
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ३
मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ४
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ५ (१४९)

(३५) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-४ अथर्वा (आयुष्कामः) । हिरण्यम्, इन्द्राग्नी, विश्वे देवाः ।
जगती, ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा त्रिष्टुप् ।

यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय १
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः २
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि ।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ३
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ४ (१५३)

[इति द्वितीयः प्रपाठकः ॥२॥] ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

॥ इति प्रथमं काण्डं समाप्तम् ॥

[प्रथमकाण्डस्य मन्त्र-संख्या १५३]

द्वितीयं काण्डम् ।

(१) परमं धाम ।

[अथ तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥] १-५ वेनः । ब्रह्म, आत्मा । त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

[१] वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः १
प्र तद् वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् २
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ३
परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेषो अग्निः ४
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ५ (५)

(२) भुवनपतिसूक्तम् ।

१-५ मातृनामा । गन्धर्वाप्सरसः । त्रिष्टुप्, १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री, ५ भुरिगनुष्टुप् ।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् १
दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वगवयाता हरसो दैव्यस्य ।
मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवाः २
अनवद्याभिः समु जग्म आभिरप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत् ।
समुद्र आसां सदनं म आहुर्यतः सद्य आ च परा च यन्ति ३
अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत् कृणोमि ४
याः क्लन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ५ (१०)

(३) आस्रावस्य भेषजम् ।

१-६ अङ्गिराः । भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः । अनुष्टुप्, ६ त्रिपदा स्वराडुपरिष्टान्महाबृहती ।

अदो यदवधावत्यवत्कमधि पर्वतात् ।
तत् ते कृणोमि भेषजं सुभेषजं यथाससि १
आदङ्गा कुविदङ्गा शतं या भेषजानि ते ।
तेषामसि त्वमुत्तममनास्रावमरोगणम् २
नीचैः खनन्त्यसुरा अरुस्राणमिदं महत् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ३
उपजीका उद् भरन्ति समुद्रादधि भेषजम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत् ४
अरुस्राणमिदं महत् पृथिव्या अध्युद्भृतम् ।
तदास्रावस्य भेषजं तदु रोगमनीनशत् ५
शं नो भवन्त्वप ओषधयः शिवाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षस आराद् विसृष्टा इषवः पतन्तु रक्षसाम् ६ (१६)

(४) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-६ अथर्वा । (चन्द्रमाः,) जङ्गिडः । अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् १
जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः २
अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः ३
देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ४
शणश्च मा जङ्गिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः ५
कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः ।
अथो सहस्वान् जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६ (२२)

(५) इन्द्रस्य वीर्याणि।

१–७ भृगुराथर्वणः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्, १ उपरिष्टान्निचृद्बृहती, २ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ विराट्पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्।

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम्।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय १
इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वर्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः २
इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् मदे सोमस्य ३
आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ४
इन्द्रस्य नु प्रा वोचं वीर्याणि यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ५
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ६
वृषायमाणो अवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ७ (२९)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(६) सपत्नहाऽग्निः।

१–५ शौनकः (सम्पत्कामः)। अग्निः। त्रिष्टुप्, ४ चतुष्पदार्षी पङ्क्तिः, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः।

[२] समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः १
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये २
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् ३
क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ४
अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तीरति द्विषः।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ५ (३४)

(७) शापमोचनम्।

१–५ अथर्वा। भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः। अनुष्टुप्, १ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद्बृहती।

अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत् सर्वान् मच्छपथाँ अधि १
यश्च सापत्नः शपथो जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात् सर्वं तन्नो अधस्पदम् २
दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः ३
परि मां परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम्।
अरातिर्नो मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ४
शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि ५ (३९)

(८) क्षेत्रियरोगनाशनम्।

१–५ भृग्वङ्गिराः। वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः, ४ विराट्, ५ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः।

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् १
अपेयं रात्र्युच्छत्वपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु २
बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिञ्ज्या।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ३
नमस्ते लाङ्गलेभ्यो नम ईषायुगेभ्यः।
वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ४
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यो नमः संदेश्येभ्यः।
नमः क्षेत्रस्य पतये वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु ५ (४४)

(९) दीर्घायुःप्राप्तिः।

१–५ भृग्वङ्गिराः। वनस्पतिः, यक्ष्मनाशनम्। अनुष्टुप्, १ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय १ (४५)

आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात्।
अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः २
अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन्।
शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ३
देवास्ते चीतिमविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः।
चीतिं ते विश्वे देवा अविदन् भूम्यामधि ४
यश्चकार स निष्करत् स एव सुभिषक्तमः।
स एव तुभ्यं भेषजानि कृणवद् भिषजा शुचिः ५ (४९)

(१०) पाशमोचनम्।

१–८ भृग्वङ्गिराः। १–८ द्यावापृथिवी, ब्रह्म, २ अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः, ३ वातः, दिशः, ४–८ वातपत्नीः, सूर्यः, यक्ष्मं, निर्ऋतिः। १ त्रिष्टुप्, २ सप्तपदाष्टिः, ३–५, ७–८ सप्तपदा धृतिः, ६ सप्तपदात्यष्टिः, ८ (२, ३) द्वौ पादौ उष्णिहौ।

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् १
शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् २
शं ते वातो अन्तरिक्षे वयो धाच्छं ते भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ३
इमा या देवीः प्रदिशश्चतस्रो वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ४
तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ५
अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ६ (५५)

अहा अरातिमविदः स्योनमप्यभूर्भद्रे सुकृतस्य लोके।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ७
सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेणसः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम्। ८ (५७)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(११) श्रेयःप्राप्तिः।

१–५ शुक्रः। कृत्यादूषणम्। १ चतुष्पदा विराट् गायत्री, २–५ त्रिपदा परोष्णिक्, ४ पिपीलिकमध्या निचृत्।

[३] दूष्या दूषिरसि हेत्या हेतिरसि मेन्या मेनिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम १
स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम २
प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ३
सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ४
शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि। आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ५ (६२)

(१२) शत्रुनाशनम्।

१–८ भरद्वाजः। १ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, २ देवाः, ३ इन्द्रः, ४ आदित्या वसवोऽङ्गिरसः पितरः, ५ सोम्यासः पितरः, ६ मरुतः, ७ यमसादनम्, ब्रह्म, ८ अग्निः। त्रिष्टुप्, २ जगती, ७-८ अनुष्टुप्।

द्यावापृथिवी उर्वन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्युरुगायोऽद्भुतः।
उतान्तरिक्षमुरु वातगोपं त इह तप्यन्तां मयि तप्यमाने १
इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति।
पाशे स बद्धो दुरिते नि युज्यतां यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति २
इदमिन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ३
अशीतिभिस्तिसृभिः सामगेभिरादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः।
इष्टापूर्तमवतु नः पितृणामामुं ददे हरसा दैव्येन ४
द्यावापृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वे देवासो अनु मा रभध्वम्।
अङ्गिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता ५ (६७)

अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति ६
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ७
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ८ (७०)

(१३) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-५ अथर्वा । अग्निः, २-३ बृहस्पतिः, ४-५ विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप्, ५ विराड्जगती ।

आयुर्दा अग्ने जरसं वृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम् १
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ २
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ३
एह्यश्मानमा तिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः ।
कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ४
यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां बहवः सुजातम् ५ (७५)

(१४) दस्युनाशनम् ।

१-६ चातनः । शालाग्निर्देवत्यम् । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः १
निर्वो गोष्ठादजामसि निरक्षान्निरुपानसात् ।
निर्वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश्चातयामहे २
असौ यो अधराद् गृहस्तत्र सन्त्वराय्यः ।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः ३
भूतपतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु ४ (७९)

यदि स्थ क्षेत्रियाणां यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ५
परि धामान्यासामाशुर्गाष्ठामिवासरन् ।
अजैषं सर्वानाजीन्वो नश्यतेतः सदान्वाः ६ (८१)

(१५) अभयप्राप्तिः ।

१-६ ब्रह्मा । प्राणः, अपानः, आयुः । त्रिपाद्गायत्री ।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः १
यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः २
यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ३
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ४
यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ५
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ६ (८७)

(१६) सुरक्षा ।

१-५ ब्रह्मा । प्राणः, अपानः, आयुः । (एकावसानम्) १, ३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४-५ एकपदासुरी गायत्री ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा १
द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा २
सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ३
अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ४
विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ५ (९२)

(१७) बलप्राप्तिः ।

१-७ ब्रह्मा । प्राणः, अपानः, आयुः । (एकावसानम्) १-६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक् ।

ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा १ सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा २
बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ३ आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ४
श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ५ चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ६
परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ७ (९९)

[इति तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥] ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(१८) शत्रुनाशनम् ।

१-५ चातनः । अग्निः । (द्वैपदम्) साम्नी बृहती ।

[अथ चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥]

[४] भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा १
सपत्नक्षयणमसि सपत्नचातनं मे दाः स्वाहा २
अरायक्षयणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा ३
पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं मे दाः स्वाहा ४
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वाचातनं मे दाः स्वाहा ५ (१०४)

(१९) शत्रुनाशनम् ।

१-५ अथर्वा । अग्निः । (एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ (१०९)

(२०) शत्रुनाशनम् ।

१-५ अथर्वा । वायुः । (एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

वायो यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
वायो यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
वायो यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
वायो यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
वायो यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ (११४)

(२१) शत्रुनाशनम् ।

१-५ अथर्वा । सूर्यः । (एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

सूर्य यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
सूर्य यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
सूर्य यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३ (११७)

सूर्य यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
सूर्य यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ (११९)

(२२) शत्रुनाशनम् ।

१-५ अथर्वा । चन्द्रः । (एकावसानम्) १-४ निचृद्विषमा गायत्री, ५ भुरिग्विषमा ।

चन्द्र यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
चन्द्र यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
चन्द्र यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
चन्द्र यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
चन्द्र यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ (१२४)

(२३) शत्रुनाशनम् ।

१-५ अथर्वा । आपः । (एकावसानम्) १-४ समविषमा, ५ स्वराड्विषमा ।

आपो यद् वस्तपस्तेन तं प्रति तपत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः १
आपो यद् वो हरस्तेन तं प्रति हरत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २
आपो यद् वोऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्चत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ३
आपो यद् वः शोचिस्तेन तं प्रति शोचत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ४
आपो यद् वस्तेजस्तेन तमतेजसं कृणुत योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५ (१२९)

(२४) शत्रुनाशनम् ।

१-८ ब्रह्मा । आयुष्यम् । पङ्क्तिः, १-२ पुरउष्णिक्, ३-४ पुरोदेवत्या पङ्क्तिः (१-४ विराट्), ५-८ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः (५ भुरिक्, ६-७ निचृत्, ५ चतुष्पदा बृहती, ७-८ भुरिक्)।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त १
शेवृधक शेवृध पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त २
म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ३
सर्पानुसर्प पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ४ (१३३)

जूर्णि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ५
उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ६
अर्जुनि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ७
भरूजि पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो वः प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्यत्त ८ (१३७)

(२५) पृश्निपर्णी ।

१-५ चातनः । पृश्निपर्णी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् ।

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तामभक्षि सहस्वतीम् १
सहमानेयं प्रथमा पृश्निपर्ण्यजायत ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो वृश्चामि शकुनेरिव २
अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च ३
गिरिमेनाँ आ वेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तांस्त्वं देवि पृश्निपर्ण्यग्निरिवानुदहन्निहि ४
पराच एनान् प्र णुद कण्वान् जीवितयोपनान् ।
तमांसि यत्र गच्छन्ति तत् क्रव्यादो अजीगमम् । ५ (१४१)

(२६) पशुसंवर्धनम् ।

१-५ सविता । पशवः । त्रिष्टुप्, ३ उपरिष्टाद्विराड् बृहती, ४ भुरिगनुष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

एह यन्तु पशवो ये परेयुर्वायुर्येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिन् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु १
इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु बृहस्पतिरा नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्वाग्रमेषामाजग्मुषो अनुमते नि यच्छ २ (१४४)

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।
सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ३
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ४
आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ५ (१४७)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(२७) शत्रुपराजयः ।

१-७ कपिञ्जलः । १-५ वनस्पतिः, ६ रुद्रः, ७ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

[५] नेच्छत्रुः प्राशं जयाति सहमानाभिभूरसि ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे १
सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे २
इन्द्रो ह चक्रे त्वा बाहावसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ३
पाटामिन्द्रो व्याश्नादसुरेभ्य स्तरीतवे ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ४
तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ५
रुद्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे ६
तस्य प्राशं त्वं जहि यो न इन्द्राभिदासति ।
अधि नो ब्रूहि शक्तिभिः प्राशि मामुत्तरं कृधि ७ (१५४)

(२८) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-५ शम्भुः । १, ३ जरिमा, आयुः, २ मित्रावरुणौ, ३-५ द्यावापृथिव्यादयो देवाः । त्रिष्टुप्, १ जगती, ५ भुरिक्

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः १
मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति २ (१५६)

त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा ये जनित्राः ।
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ३
द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ४
इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ५ (१५९)

(२९) दीर्घायुष्यम् ।

१-७ अथर्वा । १ अग्निः, सूर्यः, बृहस्पतिः; २ जातवेदाः, सविता, ३ इन्द्रः, ४-५ द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुतः, आपः; ६ अश्विनौ, ७ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ४ पराबृहती निचृत्प्रस्तारपङ्क्तिः ।

पार्थिवस्य रसे देवा भगस्य तन्वो३ बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः १
आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् २
आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं दक्षं धत्तं द्रविणं सचेतसौ ।
जयं क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ३
इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत् ४
ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ५
शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ६
इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां सा त एषा ।
तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस्ते अक्रन् ७ (१६६)

(३०) कामिनीमनोऽभिमुखीकरणम् ।

१-५ प्रजापतिः । १ मनः, २ अश्विनौ, ३-४ औषधिः, ५ दम्पती । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ३ भुरिक् ।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति ।
एवा मथ्नामि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः १ (१६७)

सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता २
यत् सुपर्णा विवक्षवो अनमीवा विवक्षवः ।
तत्र मे गच्छताद्धवं शल्य इव कुल्मलं यथा ३
यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ४
एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम् ।
अश्वः कनिक्रदद् यथा भगेनाहं सहागमम् ५ (१७१)

(३१) क्रिमिजम्भनम् ।

१-५ कण्वः । मही, चन्द्रमाः । अनुष्टुप्; २, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव १
दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् ।
अलगण्डून्त्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि २
अलगण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टानशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिरुच्छिषातै ३
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ४
ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ५ (१७६)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(३२) क्रिमिनाशनम् ।

१-६ कण्वः । आदित्यः । अनुष्टुप्, १ त्रिपाद्भुरिग्गायत्री, ६ चतुष्पान्निचृदुष्णिक् ।

[६] उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि १
विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः २ (१७८)

अस्थ्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्वुवज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ३
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ४
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ५
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः ६ (१८२)

(३३) यक्ष्मविबर्हणम् ।

१-७ ब्रह्मा । यक्ष्मविबर्हणं, चन्द्रमाः, आयुष्यम् । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती, ४ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ६ उष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप्, ७ पथ्यापङ्क्तिः ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यंमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते २
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ३
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ४
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ५
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ६
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ७ (१८९)

(३४) पशवः ।

१-५ अथर्वा । १ पशुपतिः, २ देवाः, ३ अग्निः विश्वकर्मा, ४ वायुः प्रजापतिः, ५ आशीः । त्रिष्टुप् ।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् १
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः ।
उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः २
ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ३
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः ।
वायुष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवः प्रजापतिः प्रजया संरराणः ४
प्रजानन्तः प्रति गृह्णन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ५ (१९४)

(३५) विश्वकर्मा ।

१-५ अङ्गिराः । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप्, १ बृहतीगर्भा, ४-५ भुरिक् ।

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधुर्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा १
यज्ञपतिमृषय एनसाहुर्निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम् ।
मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध सं नष्टेभिः सृजतु विश्वकर्मा २
अदान्यान्त्सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान्त्समये न धीरः ।
यदेनश्चकृवान् बद्ध एष तं विश्वकर्मन् प्र मुञ्चा स्वस्तये ३
घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ४
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ५ (१९९)

(३६) पतिवेदनम् ।

१-८ पतिवेदनः । १ अग्निः, २ सोमः, अर्यमा, धाता, ३ अग्नीषोमौ, ४ इन्द्रः, ५ सूर्यः, ६ धनपतिः, ७ भगः, ८ औषधिः । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, २, ५-७ अनुष्टुप्, ८ निचृत्पुरउष्णिक् ।

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुरोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै १
सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् २
इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ३
यथाखरो मघवंश्चारुरेष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्याविराधयन्ती ४
भगस्य नावमा रोह पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय यो वरः प्रतिकाम्यः ५
आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः ६
इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ७
आ ते नयतु सविता नयतु पतिर्यः प्रतिकाम्यः ।
त्वमस्यै धेह्योषधे ८ (२०७)

[इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥४॥]　　॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

॥ इति द्वितीयं काण्डं समाप्तम् ॥२॥

मन्त्रसंख्या
प्रथमकाण्डस्य १५३
द्वितीयकाण्डस्य २०७
सर्वयोगः ३६०

तृतीयं काण्डम् ।

(१) शत्रुसेनासंमोहनम् ।

१-६ अथर्वा । सेनामोहनम्, १ अग्निः, २ मरुतः, ३-६ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ विराड्गर्भा भुरिक्, ३-६ अनुष्टुप्, ५ विराट्पुरउष्णिक् ।

[अथ पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

[१] अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः १
यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् २
अमित्रसेनां मघवन्नस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ३
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् ४
इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ५
इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ६ (६)

(२) शत्रुसेनासंमोहनम् ।

१-६ अथर्वा । सेनामोहनम्, १-२ अग्निः, ३-४ इन्द्रः, ५ द्यौः, ६ मरुतः । त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप् ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः १
अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः २ (८)

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ३
व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्यैषां हृदि तदेषां परि निर्जहि ४
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् ५
असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ६ (१२)

(३) स्वराज्ये राज्ञः पुनः स्थापनम् ।

१-६ अथर्वा । १ अग्निः, २ इन्द्रः, ३ वरुणः सोमः इन्द्रः, ४ श्येनः अश्विनौ, ५ इन्द्राग्नी विश्वे देवाः, ६ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा भुरिक्पङ्क्तिः, ५-६ अनुष्टुप् ।

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् १
दूरे चित् सन्तमरुपास इन्द्रमा च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीमर्कमस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः २
अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ३
श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता अभिसंविशध्वम् ४
ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्ते विशि क्षेममदीधरन् ५
यस्ते हवं विवदत् सजातो यश्च निष्ट्यः ।
अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वाथेममिहाव गमय ६ (१८)

(४) प्रजाभी राज्ञः संवरणम् ।

१-७ अथर्वा । इन्द्रः, २ पञ्च प्रदिशः, ३ अग्निः, ४ अश्विनौ, मित्रावरुणौ, विश्वे देवाः, मरुतः, ५ द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ जगती, ४-५ भुरिक् ।

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोदिहि प्राङ् विशां पतिरेकराट् त्वं वि राज ।
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह १ (१९)

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि २
अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चराते ।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ३
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ४
आ प्र द्रव परमस्याः परावतः शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तदयं राजा वरुणस्तथाह स त्वायमह्वत् स उपेदमेहि ५
इन्द्रेन्द्र मनुष्याः३ः परेहि सं ह्यज्ञास्था वरुणैः संविदानः ।
स त्वायमह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ६
पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः संगत्य वरीयस्ते अक्रन् ।
तास्त्वा सर्वाः संविदाना ह्वयन्तु दशमीमुग्रः सुमना वशेह ७ (२५)

(५) राष्ट्रस्य राजा राजकृतश्च ।

१-८ अथर्वा । सोमः । १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्, २-३, ५-७ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराडुरोबृहती ।

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् १
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः २
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ३
सोमस्य पर्णः सह उग्रमागन्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ४
आ मारुक्षत् पर्णमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसान्यर्यम्ण उत संविदः ५
ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ६ (३१)

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ७
पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ८ (३३)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(६) शत्रुनाशनम् ।

१-८ जगद्बीजं पुरुषः । वानस्पत्योऽश्वत्थः । अनुष्टुप् ।

[२]

पुमान् पुंसः परिजातोऽश्वत्थः खदिरादधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् १
तानश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् वैबाधदोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदी मित्रेण वरुणेन च २
यथाश्वत्थ निरभनोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
एवा तान्त्सर्वान् निर्भङ्ग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् ३
यः सहमानश्चरसि सासहान इव ऋषभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि ४
सिनात्वेनान् निर्ऋतिर्मृत्योः पाशैरमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ५
यथाश्वत्थ वानस्पत्यानारोहन् कृणुषेऽधरान् ।
एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग् भिन्द्धि सहस्व च ६
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न वैबाधप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ७
प्रैणान् नुदे मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामहे ८ (४१)

(७) यक्ष्मनाशनम् ।

१-७ भृग्वङ्गिराः । १-३ हरिणः, ४ तारके, ५ आपः, ६-७ यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, ६ भुरिक् ।

हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम् ।
स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत् १
अनु त्वा हरिणो वृषा पद्भिश्चतुर्भिरक्रमीत् ।
विषाणे वि ष्य गुष्पितं यदस्य क्षेत्रियं हृदि २ (४३)

अदो यदवरोचते चतुष्पक्षमिव छदिः ।
तेना ते सर्वं क्षेत्रियमङ्गेभ्यो नाशयामसि ३
अमू ये दिवि सुभगे विचृतौ नाम तारके ।
वि क्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ४
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ५
यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ६
अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ७ (४८)

(८) राष्ट्रधारणम् ।

१-६ अथर्वा । १ मित्रः, पृथिवी, वरुणः, वायुः, अग्निः २ धाता, सविता, इन्द्रः, त्वष्टा, अदितिः; ३ सोमः, सविता, आदित्यः, अग्निः ४ विश्वे देवाः, ५-६ सांमनस्यम् । त्रिष्टुप्, २, ६ जगती, ४ चतुष्पदा विराड् बृहतीगर्भा, ५ अनुष्टुप् ।

आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः ।
अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बृहद् राष्ट्रं संवेश्यं दधातु १
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तामिन्द्रस्त्वष्टा प्रति हर्यन्तु मे वचः ।
हुवे देवीमदितिं शूरपुत्रां सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि २
हुवे सोमं सवितारं नमोभिर्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ३
इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत् ।
अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु ४
सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ५
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ६ (५४)

(९) दुःखनाशनम्।

१-६ वामदेवः। द्यावापृथिवी, देवाः। अनुष्टुप्, ४ चतुष्पदा निचृद्बृहती, ६ भुरिक्।

कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास्तथाप कृणुता पुनः १
अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम् ।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव २
पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदा बध्नन्ति वेधसः ।
श्रवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ३
येना श्रवस्यवश्चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिरिव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ४
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उदाशवो रथा इव शपथेभिः सरिष्यथ ५
एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीमनु ।
तेषां त्वामग्र उज्जहरुर्मणिं विष्कन्धदूषणम् ६ (६०)

(१०) रायस्पोषप्राप्तिः।

१-१३ अथर्वा। अष्टका, १ धेनुः, २-४ रात्रिः, धेनुः; ५ एकाष्टका, ६ जातवेदाः, पशवः; ७ रात्रिः, यज्ञाः; ८ संवत्सरः, ९ ऋतवः, १० धातविधातारौ, ऋतवः; ११ देवाः, १२ इन्द्रः, देवाः; १३ प्रजापतिः। अनुष्टुप्, ४-६, १२ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना षट्पदा विराड्गर्भातिजगती।

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् १
यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली २
संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ३
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ४
वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ५ (६५)

इडायास्पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु ६
आ मा पुष्टे च पोषे च रात्रि देवानां सुमतौ स्याम ।
पूर्णा दर्वे परा पत सुपूर्णा पुनरा पत ।
सर्वान् यज्ञान्त्संभुञ्जतीषमूर्जं न आ भर ७
आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव ।
सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ८
ऋतून् यज ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यजे ९
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे १०
इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ११
एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् ।
तेन देवा व्यसहन्त शत्रून् हन्ता दस्यूनामभवच्छचीपतिः १२
इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे दुहितासि प्रजापतेः ।
कामानस्माकं पूरय प्रति गृह्णाहि नो हविः १३ (७३)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(११) दीर्घायुःप्राप्तिः।

१-८ ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च। इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम्। त्रिष्टुप्, ४ शक्वरीगर्भा जगती, ५-६ अनुष्टुप्, ७ उष्णिग्बृहतीगर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ८ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती।

[३] मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् १
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय २
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३ (७६)

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ५
इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम् ।
शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः ६
जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि धुवामि त्वा ।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्यन्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् छतम् ७
अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद् बृहस्पतिः ८ (८१)

(१२) शालानिर्माणम्।

१-९ ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पतिः। त्रिष्टुप्, २ विराड् जगती, ३ बृहती, ६ शक्वरीगर्भा जगती, ७ आर्षी अनुष्टुप्, ८ भुरिक्, ९ अनुष्टुप्।

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम १
इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय २
धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ।
आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः ३
इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ४
मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस्त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ५
ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून् ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणां शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः ६
एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह ।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ७ (८८)

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम् ।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ८
इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ९ (९०)

(१३) आपः।

१-७ भृगुः। वरुणः, सिन्धुः, आपः, २-३ इन्द्रः। अनुष्टुप्, १ निचृत्, ५ विराड्जगती, ६ निचृदनुष्टुप्।

यददः संप्रयतीरहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः १
यत् प्रेषिता वरुणेनाच्छीभं समवल्गत ।
तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनु ष्ठन २
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वः शक्तिभिर्देवीस्तस्माद् वार्नाम वो हितम् ३
एको वो देवोऽप्यतिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते ४
आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ५
आदित् पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम् ।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ६
इदं व आपो हृदयमयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थमेत शक्वरीर्यत्रेदं वेशयामि वः ७ (९७)

(१४) गोष्ठः।

१-६ ब्रह्मा। गोष्ठः, अहः; १ अर्यमा, पूषा, बृहस्पतिः, इन्द्रः; १-६ गावः, ५ गोष्ठश्च। अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप्।

सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि १
सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद् वसु २ (९९)

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ३
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ४
शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ५
मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ६ (१०३)

(१५) वाणिज्यम् ।

१-८ अथर्वा (पण्यकामः) । विश्वे देवाः, इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, ४ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा विराडत्यष्टिः, ५ विराड्जगती, ७ अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु ।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् १
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि २
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ३
इमामग्ने शरणिं मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम् ।
शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ४
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध ५
येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः ।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ६
उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः ।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ७
विश्वाहा ते सदमिद् भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ८ (१११)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

[इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥५॥]

(१६) स्वस्त्ययं प्रार्थना ।

१-७ अथर्वा । १ अग्निः, इन्द्रः, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, भगः, पूषा, ब्रह्मणस्पतिः, सोमः, रुद्रः; २-३, ५ भगः, आदित्यः; ४ इन्द्रः; ६ दधिक्रावा, अश्वाः; ७ उषाः । त्रिष्टुप्, १ आर्षी जगती, ४ भुरिक् पङ्क्तिः ।

[अथ षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥]

[४] प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे १
प्रातर्जितं भगमुग्रं हवामहे वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह २
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ४
भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुरएता भवेह ५
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं मे रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ६
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ (११८)

(१७) कृषिः ।

१-९ विश्वामित्रः । सीता । अनुष्टुप्, १ आर्षी गायत्री, २, ५, ९ त्रिष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः, ७ विराट् पुर उष्णिक्, ८ निचृत् ।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ १
युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन् २
लाङ्गलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु ।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्व्यम् ३
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ४ (१२२)

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान् ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ५
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् । शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ६
शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम् । यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ७
सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव । यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ८
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ९ (१२७)

(१८) वनस्पतिः ।

१-६ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्; ४ अनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदा उष्णिक्, ६ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः ।

इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् १
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा णुद पतिं मे केवलं कृधि २
नहि ते नाम जग्राह नो अस्मिन् रमसे पतौ ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ३
उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ४
अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै ५
अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ (१३३)

(१९) अजरं क्षत्रम् ।

१-८ वसिष्ठः । विश्वे देवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ पथ्याबृहती, ३ भुरिग्बृहती, ५ त्रिष्टुप्, ६ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्ककुम्मतीगर्भातिजगती, ७ विराडास्तारपङ्क्तिः, ८ पथ्यापङ्क्तिः ।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः १
समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् २ (१३५)

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ३
तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ४
एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ५
उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ६
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ७
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन ८ (१४१)

(२०) रयिसंवर्धनम् ।

१-१० वसिष्ठः । १-२ अग्निः, ३ अर्यमा, भगः, बृहस्पतिः, देवीः; ४ सोमः, अग्निः, आदित्यः, विष्णुः, ब्रह्मा, बृहस्पतिः; ५ अग्निः, ६ इन्द्रवायू, ७ अर्यमा, बृहस्पतिः, इन्द्रः, वातः, विष्णुः, सरस्वती, सविता, वाजी; ८ विश्वा भुवनानि, ९ पञ्च प्रदिशः, १० वायुस्त्वष्टा । अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ८ विराड् जगती ।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् १
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् २
प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ३
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ४
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ५ (१४६)

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ६
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ७
वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ८
दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम् ।
प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ९
गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे १० (१५१)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(२१) शान्तिः ।

१-१० वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पुरोनुष्टुप्, २, ३, ८ भुरिक्, ५ जगती, ६ उपरिष्टाद्विराड्बृहती, ७ विराड्गर्भा, ९ निचृदनुष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।

[५] ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशौषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् १
यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २
य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ३
यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ४
यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ५
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ६
दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ७ (१५८)

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् ८
शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम् ९
ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन् १० (१६१)

(२२) वर्चःप्राप्तिः ।

१-६ वसिष्ठः । वर्चः, बृहस्पतिः, विश्वे देवाः । अनुष्टुप्, १ विराट् त्रिष्टुप्, ३ पञ्चपदा परानुष्टुप् विराडतिजगती, ४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्व१ः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः १
मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु । देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा २
येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्ये३ष्वप्स्व१न्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ३
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ४
यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ५
हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ६ (१६७)

(२३) वीर-प्रसूतिः ।

१-६ ब्रह्मा । चन्द्रमाः, योनिः, द्यावापृथिवी । अनुष्टुप्, ५ उपरिष्टाद् भुरिग्बृहती, ६ स्कंधोग्रीवी बृहती ।

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत् ।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि १
आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः २ (१६९)

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ३
यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ४
कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते ।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ५
यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ६ (१७३)

(२४) समृद्धि-प्राप्तिः ।

१-७ भृगुः । वनस्पतिः, प्रजापतिः । अनुष्टुप्, २ निचृत्पथ्यापङ्क्तिः ।

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अथो पयस्वतीनामा भरेऽहं सहस्रशः १
वेदाहं पयस्वन्तं चकार धान्य१ं बहु ।
संभृत्वा नाम यो देवस्तं वयं हवामहे योयो अयज्वनो गृहे २
इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ३
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम् ।
एवास्माकेदं धान्य१ं सहस्रधारमक्षितम् ४
शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्य कार्य१स्य चेह स्फातिं समावह ५
तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः ।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि ६
उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते ।
ताविहा वहतां स्फातिं बहुं भूमानमक्षितम् ७ (१८०)

(२५) कामस्य इषुः ।

१-६ भृगुः । मित्रावरुणौ, कामेषुः । अनुष्टुप् ।

उत्तुदस्त्वोत् तुदतु मा धृथाः शयने स्वे ।
इषुः कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि १ (१८१)

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं संकल्पकुल्मलाम् ।
तां सुसंनतां कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि २
या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसंनता ।
प्राचीनपक्षा व्यो३षा तया विध्यामि त्वा हृदि ३
शुचा विद्धा व्यो३षया शुष्कास्याभि सर्प मा ।
मृदुर्निमन्युः केवली प्रियवादिन्यनुव्रता ४
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथो पितुः ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ५
व्य१स्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम् ।
अथैनामक्रतुं कृत्वा ममैव कृणुतं वशे ६ (१८६)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(२६) दिक्षु आत्मरक्षा ।

१-६ अथर्वा । रुद्रः, दिशः, १ साग्नयो हेतयः, २ सकामा अविष्यवः, ३ वैराजः, ४ सवाताः प्रविध्यन्तः, ५ सौषधिका निलिम्पाः, ६ बृहस्पतियुता अवस्वन्तः । त्रिष्टुप्; २, ५, ६ जगती, ३, ४ भुरिक्, १-६ पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा ।

[६] ये३ऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा १
ये३ऽस्यां स्थ दक्षिणायां दिश्यविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा २
ये३ऽस्यां स्थ प्रतीच्यां दिशि वैराजा नाम देवास्तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ३
ये३ऽस्यां स्थोदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास्तेषां वो वात इषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ४
ये३ऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ५
ये३ऽस्यां स्थोर्ध्वायां दिश्यवस्वन्तो नाम देवास्तेषां वो बृहस्पतिरिषवः ।
ते नो मृडत ते नोऽधि ब्रूत तेभ्यो वो नमस्तेभ्यो वः स्वाहा ६ (१९१)

(२७) शत्रुनिवारणम् ।

१-६ अथर्वा । दिशः, रुद्रः; १ अग्निः असितः, आदित्याः; २ इन्द्रः, तिरश्चिराजी, पितरः; ३ वरुणः, पृदाकुः, अन्नं; ४ सोमः, स्वजः, अशनिः; ५ विष्णुः, कल्माषग्रीवो वीरुधः; ६ बृहस्पतिः, श्वित्रं, वर्षम् ।
१-६ पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः, (२ अत्यष्टिः, ५ भुरिक्) ।

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः १
दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः २
प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ३
उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ४
ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ५
ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ६ (१९८)

(२८) पशुपोषणम् ।

१-६ ब्रह्मा । यमिनी । अनुष्टुप्, १ अतिशक्वरीगर्भा चतुष्पदातिजगती, ४ यवमध्या विराट् ककुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः ।

एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः ।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती १
एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी ।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात् २ (२००)

अगले० ७

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा ।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ३
इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव । पशून् यमिनि पोषय ४
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ५
यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः ।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ६ (२०४)

(२९) अविः ।

१-८ उद्दालकः । शितिपाद् अविः, ७ कामः, ८ भूमिः । अनुष्टुप्, १, ३ पथ्यापङ्क्तिः; ७ त्र्यवसाना षट्पदा उपरिष्टाद्दैवी बृहती ककुम्मतीगर्भा विराड्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः ।
अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा १
सर्वान् कामान् पूरयत्याभवन् प्रभवन् भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति २
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसे ३
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति पितॄणां लोकेऽक्षितम् ४
पञ्चापूपं शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
प्रदातोप जीवति सूर्यामासयोरक्षितम् ५
इरेव नोप दस्यति समुद्र इव पयो महत् ।
देवौ सवासिनाविव शितिपान्नोप दस्यति ६
क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमा विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ७
भूमिष्ट्वा प्रति गृह्णात्वन्तरिक्षमिदं महत् ।
माहं प्राणेन मात्मना मा प्रजया प्रतिगृह्य वि राधिषि ८ (२१२)

(३०) सांमनस्यम् ।

१-७ अथर्वा । चन्द्रमाः, सांमनस्यम् । अनुष्टुप्, ५ विराड्जगती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७ त्रिष्टुप् ।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या १
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् २
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ३
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ४
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ५
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ६
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ७ (२१९)

(३१) यक्ष्मनाशनम् ।

१-११ ब्रह्मा । पाप्महा । १ अग्निः, २ शक्रः, ३ पशवः, ४ द्यावापृथिवी, ५ त्वष्टा, ६ अग्निः, इन्द्रः; ७ देवाः, सूर्यः; ८-१० आयुः, ११ पर्जन्यः । अनुष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा १
व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा २
वि ग्राम्याः पशव आरण्यैर्व्यापस्तृष्णयासरन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ३
वीमे द्यावापृथिवी इतो वि पन्थानो दिशंदिशम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ४ (२२३)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं युनक्तीतीदं विश्वं भुवनं वि याति ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ५
अग्निः प्राणान्त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ६
प्राणेन विश्वतोवीर्यं देवाः सूर्यं समैरयन् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ७
आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ८
प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव मा मृथाः ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ९
उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा १०
आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।
व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ११ (२३०)

[इति षष्ठः प्रपाठकः ॥६॥]

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

॥ इति तृतीयं काण्डं समाप्तम् ॥ ३ ॥

मन्त्रसंख्या—

द्वितीयकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	३६०
तृतीयकाण्डस्य...	२३०
सर्वयोगः	५९०

चतुर्थं काण्डम् ।

(१) ब्रह्मविद्या ।

१-७ वेनः । बृहस्पतिः, आदित्यः । त्रिष्टुप्, २, ५ पुरोऽनुष्टुप् ।

[अथ सप्तमः प्रपाठकः ॥७॥]

[१] ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १
इयं पित्र्या राष्ट्र्येत्वग्रे प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारमह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे २
प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ ३
स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था मही क्षेमं रोदसी अस्कभायत् ।
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः ४
स बुध्न्यादाष्ट्र जनुषोऽभ्यग्रं बृहस्पतिर्देवता तस्य सम्राट् ।
अहर्यच्छुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथ द्युमन्तो वि वसन्तु विप्राः ५
नूनं तदस्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम ।
एष जज्ञे बहुभिः साकमित्था पूर्वे अर्धे विषिते ससन् नु ६
योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुं बृहस्पतिं नमसाव च गच्छात् ।
त्वं विश्वेषां जनिता यथासः कविर्देवो न दभायत् स्वधावान् ७ (७)

(२) आत्मविद्या ।

१-८ वेनः । आत्मा । त्रिष्टुप्, ६ पुरोऽनुष्टुप्, ७ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम १
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम २ (९)

यं क्रन्दसी अवतश्चस्कभाने भियसाने रोदसी अह्वयेथाम् ।
यस्यासौ पन्था रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ३
यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्व१न्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ४
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रे यस्य रसामिदाहुः ।
इमाश्च प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ५
आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः ।
यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ६
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ७
आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद्धिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ८ (१५)

(३) शत्रुनाशनम् ।

१-७ अथर्वा । रुद्रः, व्याघ्रः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ३ गायत्री, ७ ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद्बृहती ।

उदितस्त्रयो अक्रमन् व्याघ्रः पुरुषो वृकः ।
हिरुग्घि यन्ति सिन्धवो हिरुग् देवो वनस्पतिर्हिरुङ् नमन्तु शत्रवः १
परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु २
अक्ष्यौ च ते मुखं च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ३
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं यातुधानमथो वृकम् ४
यो अद्य स्तेन आयति स संपिष्टो अपायति ।
पथामपध्वंसेनैत्विन्द्रो वज्रेण हन्तु तम् ५
मूर्णा मृगस्य दन्ता अपिशीर्णा उ पृष्टयः ।
निम्रुक् ते गोधा भवतु नीचायच्छशयुर्मृगः ६
यत् संयमो न वि यमो वि यमो यन्न संयमः ।
इन्द्रजाः सोमजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम् ७ (२२)

(४) वाजीकरणम् ।

१-८ अथर्वा । वनस्पतिः, १-२ सूर्यः, प्रजापतिः, ४ इन्द्रः, ५ आपः, सोमः, ६ अग्निः, सरस्वती, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक्, ६-७ भुरिक् ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् १
उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ।
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना २
यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ३
उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ४
अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ५
अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ६
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ७
अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च ।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ८ (३०)

(५) स्वापनम् ।

१-७ ब्रह्मा । स्वापनं, वृषभः । अनुष्टुप्, २ भुरिक्, ७ पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् ।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि १
न भूमिं वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन ।
स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन् २
प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धयस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ३ (३३)

एजदेजदजग्रभं चक्षुः प्राणमजग्रभम् ।
अङ्गान्यजग्रभं सर्वा रात्रीणामतिशर्वरे ४
य आस्ते यश्चरति यश्च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो अक्षीणि यथेदं हर्म्यं तथा ५
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः ६
स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन सर्वं नि ष्वापया जनम् ।
ओत्सूर्यमन्यान्त्स्वापयाव्युषं जागृतादहमिन्द्र इवारिष्टो अक्षितः ७ (३७)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(६) विषघ्नम् ।

१-८ गरुत्मान् । तक्षकः, १ ब्राह्मणः, २ द्यावापृथिवी, सप्तसिन्धवः, ३ सुपर्णः, ४-८ विषम् । अनुष्टुप् ।

[२] ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् १
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् २
सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत् ।
नामीमदो नारूरुप उतास्मा अभवः पितुः ३
यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम् ४
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः ।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम् ५
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम् ६
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयः कृता वध्रिर्विषगिरिः कृतः ७
वध्रयस्ते खनितारो वध्रिस्त्वमस्योषधे ।
वध्रिः स पर्वतो गिरिर्यतो जातमिदं विषम् ८ (४५)

(७) विषनाशनम् ।

१-७ गरुत्मान् । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ स्वराट् ।

वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि ।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम् १
अरसं प्राच्यं विषमरसं यदुदीच्यम् ।
अथेदमधराच्यं करम्भेण वि कल्पते २
करम्भं कृत्वा तिर्यं पीबस्पाकमुदारथिम् ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रुरुपः ३
वि ते मदं मदावति शरमिव पातयामसि ।
प्र त्वा चरुमिव येषन्तं वचसा स्थापयामसि ४
परि ग्राममिवाचितं वचसा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्यभ्रिखाते न रुरुपः ५
पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन् दूर्शेभिरजिनैरुत ।
प्रक्रीरसि त्वमोषधेऽभ्रिखाते न रुरुपः ६
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ७ (५१)

(८) राज्याभिषेकः ।

१-७ अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः, आपः, राज्याभिषेकः; १ राजा, २ देवाः, ३ विश्वरूपः, ४-५ आपः ।
अनुष्टुप्; १, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ५ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानामधिपतिर्बभूव ।
तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यतामिदम् १
अभि प्रेहि माप वेन उग्रश्चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रवन् २
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियं वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ३
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ४ (५६)

या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्यन्तरिक्ष उत वा पृथिव्याम् ।
तासां त्वा सर्वासामपामभि षिञ्चामि वर्चसा ५
अभि त्वा वर्चसासिचन्नापो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस्तथा त्वा सविता करत् ६
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्व१न्तः ७ (५९)

(९) आञ्जनम् ।

१-१० भृगुः । त्रैककुदाञ्जनम् । अनुष्टुप्, २ ककुम्मती, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

एहि जीवं त्रायमाणं पर्वतस्यास्यक्ष्यम् ।
विश्वेभिर्देवैर्दत्तं परिधिर्जीवनाय कम् १
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवामसि ।
अश्वानामर्वतां परिपाणाय तस्थिषे २
उतासि परिपाणं यातुजम्भनमाञ्जन ।
उतामृतस्य त्वं वेत्थाथो असि जीवभोजनमथो हरितभेषजम् ३
यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस उग्रो मध्यमशीरिव ४
नैनं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धमश्नुते यस्त्वा बिभर्त्याञ्जन ५
असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्याद् दुष्कृताच्छमलादुत ।
दुर्हार्दश्चक्षुषो घोरात् तस्मान्नः पाह्याञ्जन ६
इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ७
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन्नाम ते पिता ८
यदाञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस्परि ।
यातूंश्च सर्वाञ्जम्भयत् सर्वाश्च यातुधान्यः ९
यदि वासि त्रैककुदं यदि यामुनमुच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्याञ्जन १० (६९)

(१०) शङ्खमणिः ।

१-७ अथर्वा । शङ्खमणिः, कृशनः । अनुष्टुप्, ६ पथ्यापङ्क्तिः, ७ पञ्चपदा परानुष्टुप्शक्वरी ।

वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः १
यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे २
शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः ३
दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः ।
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ४
समुद्राज्जातो मणिर्वृत्राज्जातो दिवाकरः ।
सो अस्मान्त्सर्वतः पातु हेत्या देवासुरेभ्यः ५
हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूंषि तारिषत् ६
देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु ७ (७६)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(११) अनड्वान् ।

१-१२ भृग्वङ्गिराः । अनड्वान्, इन्द्रः । त्रिष्टुप्; १, ४ जगती, २ भुरिक्, ७ व्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जागतानिचृच्छक्वरी, ८-१२ अनुष्टुप् ।

[३] अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमा विवेश १
अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ्छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि २
इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ३
अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ४ (८०)

यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ५
येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ६
इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत ।
सोऽदृंहयत सोऽधारयत ७
मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ८
यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ९
पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः १०
द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः ।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद् वा अनडुहो व्रतम् ११
दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि ।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः १२ (८८)

(१२) रोहणी-वनस्पतिः ।

१-७ ऋभुः । रोहणी-वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा गायत्री, ६ त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री, ७ बृहती ।

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोहयेदमरुन्धति १
यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि ।
धाता तद् भद्रया पुनः सं दधत् परुषा परुः २
सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु ३
मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु ।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ४ (९१)

लोम लोम्ना सं कल्पया त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
असृक् ते अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे ५
स उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः ।
प्रति तिष्ठोर्ध्वः ६
यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान ।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत् परुषा परुः ७ (९५)

(१३) रोगनिवारणम् ।

१-७ शंतातिः । चन्द्रमाः, विश्वे देवाः, १ देवाः, २-३ वातः, ४ मरुतः, ६-७ हस्तः । अनुष्टुप् ।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः १
द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद् रपः २
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ३
त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ४
आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ५
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ६
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ७ (१०२)

(१४) स्वर्ज्योतिःप्राप्तिः ।

१-९ भृगुः । आज्यं, अग्निः । त्रिष्टुप्, २, ४ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपङ्क्तिः, ७, ९ जगती, ८ पञ्चपदातिशक्वरी ।

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः १
क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् २ (१०४)

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ३
स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ४
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ५
अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ६
पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ७
प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेह्युत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्यजस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यमन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य ८
शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत् तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ९ (१११)

(१५) वृष्टिः ।

१-१६ अथर्वा । १ दिशः, २-३ वीरुधः, ४ मरुत्पर्जन्यौ, ५-१० मरुतः आपः, ११ प्रजापतिः, स्तनयित्नुः, १२ वरुणः, १३-१५ मण्डूकाः पितरश्च, १६ वातः । त्रिष्टुप्, १-२, ५ विराड् जगती, ४ विराट् पुरस्ताद्बृहती, ७, १३ अनुष्टुप्, ९ पथ्यापङ्क्तिः, १० भुरिक्, १२ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक्, १५ शंकुमत्यनुष्टुप् ।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु १
समीक्षयन्तु तविषाः सुदानवोऽपां रसा ओषधीभिः सचन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तामोषधयो विश्वरूपाः २
समीक्षयस्व गायतो नभांस्यपां वेगासः पृथगुद् विजन्ताम् ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् जायन्तां वीरुधो विश्वरूपाः ३
गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ४ (११५)

उदीरयत मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत् पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ५
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्षमाशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ६
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ७
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ८
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ९
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि १०
प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नुदधिमर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेहि ११
अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः श्वसन्तु गर्गरा अपां वरुणाव नीचीरपः सृज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु १२
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः १३
उपप्रवद मण्डूकि वर्षमा वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुरः पदः १४
खण्वखाइ खैमखाइ मध्ये तदुरि ।
वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत १५
महान्तं कोशमुदचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीरोषधयो भवन्तु १६ (१२७)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(१६) सत्यानृतसमीक्षकः ।

१-९ ब्रह्मा । वरुणः, सत्यानृतान्वीक्षणम् । त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ७ जगती, ८ त्रिपान्महाबृहती, विराण्नाम त्रिपाद्गायत्री ।

[४] बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति ।
य स्तायन्मन्यते चरन्त्सर्वं देवा इदं विदुः १
यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः २
उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरेअन्ता ।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ३
उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम् ४
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ५
ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिता रुशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ६
शतेन पाशैरभि धेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ७
यः समाम्यो३ वरुणो यो व्याम्यो३ यः संदेश्यो३ वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः ८
तैस्त्वा सर्वैरभि ष्यामि पाशैरसावामुष्यायणामुष्याः पुत्र ।
तानु ते सर्वाननुसंदिशामि ९ (१३६)

(१७) अपामार्गः ।

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

ईशानां त्वा भेषजानामुज्जेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सर्वस्मा ओषधे त्वा १
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वाः समह्व्योषधीरितो नः पारयादिति २ (१३८)

या शशाप शपनेन याघं मूरमादधे ।
या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्तु सा ३
यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस्तया कृत्याकृतो जहि ४
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ५
क्षुधामारं तृष्णामारमगोतामनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ६
तृष्णामारं क्षुधामारमथो अक्षपराजयम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ७
अपामार्ग ओषधीनां सर्वासामेक इद् वशी ।
तेन ते मृज्म आस्थितमथ त्वमगदश्चर ८ (१४४)

(१८) अपामार्गः ।

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ६ बृहतीगर्भा ।

समं ज्योतिः सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यमूतयेऽरसाः सन्तु कृत्वरीः १
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हरादविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुरिव मातरं तं प्रत्यगुप पद्यताम् २
अमा कृत्वा पाप्मानं यस्तेनान्यं जिघांसति ।
अश्मानस्तस्यां दग्धायां बहुलाः फट् करिक्रति ३
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवां छायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ४
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ५
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमात्मने तपनं तु सः ६
अपामार्गोऽप मार्ष्टु क्षेत्रियं शपथश्च यः ।
अपाह यातुधानीरप सर्वा अराय्यः ७ (१५१)

अपमृज्य यातुधानानप सर्वा अराय्यः ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ८ (१५२)

(१९) अपामार्गः ।

१-८ शुक्रः । अपामार्गो वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः ।

उतो अस्यबन्धुकृदुतो असि नु जामिकृत् ।
उतो कृत्याकृतः प्रजां नडमिवा छिन्धि वार्षिकम् १
ब्राह्मणेन पर्युक्तासि कण्वेन नार्षदेन ।
सेनेवैषि त्विषीमती न तत्र भयमस्ति यत्र प्राप्नोष्योषधे २
अग्रमेष्योषधीनां ज्योतिषेवाभिदीपयन् ।
उत त्रातासि पाकस्याथो हन्तासि रक्षसः ३
यददो देवा असुरांस्त्वयाग्रे निरकुर्वत ।
ततस्त्वमध्योषधेऽपामार्गो अजायथाः ४
विभिन्दती शतशाखा विभिन्दन् नाम ते पिता ।
प्रत्यग् वि भिन्धि त्वं तं यो अस्माँ अभिदासति ५
असद् भूम्याः समभवत् तद् यामेति महद् व्यचः ।
तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु ६
प्रत्यङ् हि संबभूविथ प्रतीचीनफलस्त्वम् ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया वधम् ७
शतेन मा परि पाहि सहस्रेणाभि रक्ष मा ।
इन्द्रस्ते वीरुधां पत उग्र ओज्मानमा दधत् ८ (१६०)

(२०) पिशाचक्षयणम् ।

१-९ मातृनामा । मातृनामा । अनुष्टुप्, १ स्वराट्, ९ भुरिक् ।

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति ।
दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति १
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः षट् चेमाः प्रदिशः पृथक् ।
त्वयाहं सर्वा भूतानि पश्यानि देव्योषधे २
दिव्यस्य सुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिमा रुरोहिथ वह्यं श्रान्ता वधूरिव ३ (१६१)

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ४
आविष्कृणुष्व रूपाणि मात्मानमप गूहथाः ।
अथो सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्याः किमीदिनः ५
दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
पिशाचान्त्सर्वान् दर्शयेति त्वा रभ ओषधे ६
कश्यपस्य चक्षुरसि शुन्याश्च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस्करः ७
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम् ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्यम् ८
यो अन्तरिक्षेण पतति दिवं यश्चातिसर्पति ।
भूमिं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं प्र दर्शय ९ (१६९)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

[इति सप्तमः प्रपाठकः ॥७॥]

(२१) गावः ।

१-७ ब्रह्मा । गावः । त्रिष्टुप्, २-४ जगती ।

[अथाष्टमः प्रपाठकः ॥८॥]

[५] आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः १
इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् २
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित् ताभिः सचते गोपतिः सह ३
न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ४
गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ५
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ६ (१७५)

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ७ (१७६)

(२२) अमित्रक्षयणम् ।

१-७ वसिष्ठः, अथर्वा वा । क्षत्रियो राजा, इन्द्रश्च । त्रिष्टुप् ।

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु १
एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै २
अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ३
अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम् ४
युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते ।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् ५
उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि ६
सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि ७ (१८३)

(२३) पाप-मोचनम् ।

१-७ मृगारः । प्रचेता अग्निः । त्रिष्टुप्, ३ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, ४ अनुष्टुप् ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः १
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः २
यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः ३ (१८६)

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ४
येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः ५
येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवाः स्व१राभरन्त्स नो मुञ्चत्वंहसः ६
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ७ (१९०)

(२४) पापमोचनम् ।

१-७ मृगारः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ शाक्वरीगर्भा पुरःशक्वरी ।

इन्द्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः १
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुर्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिन्धवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः २
यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ३
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ४
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ५
यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ६
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ७ (१९७)

(२५) पापमोचनम् ।

१-७ मृगारः । सविता, वायुः । त्रिष्टुप्, ३ अतिशक्वरी, ७ पथ्याबृहती ।

वायोः सवितुर्विदथानि मन्महे यावात्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः ।
यौ विश्वस्य परिभू बभूवथुस्तौ नो मुञ्चतमंहसः १ (१९८)

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ नो मुञ्चतमंहसः २
तव व्रते नि विशन्ते जनासस्त्वय्युदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ३
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतमप रक्षांसि शिमिदां च सेधतम् ।
सं ह्यू१र्जया सृजथः सं बलेन तौ नो मुञ्चतमंहसः ४
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस्तनू दक्षमा सुवतां सुशेवम् ।
अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तं तौ नो मुञ्चतमंहसः ५
प्र सुमतिं सवितर्वाय ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः ।
अर्वाग् वामस्य प्रवतो नि यच्छतं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर्धामन्नस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ (२०४)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(२६) पाप-मोचनम् ।

१-७ मृगारः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्, १ अष्टिः, २-३ जगती, ७ शाक्वरगर्भातिमध्येज्योतिः ।

[६] मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ सचेतसौ ये अप्रथेथाममिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतमंहसः १
प्रतिष्ठे ह्यभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः २
असंतापे सुतपसौ हुवेऽहमुर्वी गम्भीरे कविभिर्नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ३
ये अमृतं बिभृथो ये हवींषि ये स्रोत्या बिभृथो ये मनुष्यान् ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ४
ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन् ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ५
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृतेन याभ्यामृते न किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ६
यन्मेदमभिशोचति येनयेन वा कृतं पौरुषेयान्न दैवात् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चतमंहसः ७ (२११)

(२७) पापमोचनम् ।

१-७ मृगारः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄंस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योनास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३
अपः समुद्राद् दिवमुद् वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५
यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृतेस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ६
तिग्ममनीकं विदितं सहस्वन्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ७ (२१८)

(२८) पापमोचनम् ।

१-७ मृगारोऽथर्वा वा । भवाशर्वौ रुद्रो वा । त्रिष्टुप्, १ अतिजागतगर्भा भुरिक् ।

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर्वामिदं प्रदिशि यद् विरोचते ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः १
ययोरभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताविषुभृतामसिष्ठौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः २
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवेऽहं दूरेगव्यूती स्तुवन्नेम्युग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ३
यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्र चेदस्राष्ट्रमभिभां जनेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ४
ययोर्वधान्नापपद्यते कश्चनान्तर्देवेषूत मानुषेषु ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ५ (२२३)

यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानो नि तस्मिन् धत्तं वज्रमुग्रौ ।
यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमंहसः ६
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ (२२५)

(२९) पापमोचनम् ।

१-७ मृगारः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, ७ शाक्वरीगर्भातिजगती ।

मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानमवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतमंहसः १
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानमवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसौ बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतमंहसः २
यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् ।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः ३
यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम् ।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः ४
यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ५
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः ६
ययो रथः सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर्मिथुया चरन्तमभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतमंहसः ७ (२३२)

(३०) राष्ट्रदेवी ।

१-८ अथर्वा । सर्वरूपा सर्वात्मिका सर्वदेवमयी वाक् । त्रिष्टुप्, ६ जगती ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा १
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः २ (२३४)

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ३
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ४
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ५
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या३ यजमानाय सुन्वते ६
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ७
अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ८ (२४०)

[इति अष्टमः प्रपाठकः ॥८॥]   ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

(३१) सेनानिरीक्षणम् ।

१-७ ब्रह्मा स्कन्दः । मन्युः । त्रिष्टुप्, २, ४ भुरिक्, ५-७ जगती ।

[अथ नवमः प्रपाठकः ॥९॥]

[७] त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणा हृषितासो मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः १
अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व २
सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मै रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयासा एकज त्वम् ३
एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशंविशं युद्धाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि ४
विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ५
आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ६ (२४६)

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं धत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ७ (२४७)

(३२) सेनासंयोजनम् ।

१-७ ब्रह्मा स्कन्दः । मन्युः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहस्वता १
मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युर्विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः २
अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ३
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहीयानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ४
अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीडाहं स्वा तनूर्बलदावा न एहि ५
अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्नभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ६
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नोऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभावुपांशु प्रथमा पिबाव ७ (२५४)

(३३) पाप-नाशनम् ।

१-८ ब्रह्मा । पाप्मनाशनोऽग्निः । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् २
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ४
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ७
स नः सिन्धुमिव नावाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ८ (२६२)

(३४) ब्रह्मौदनम् ।

१-८ अथर्वा । ब्रह्मौदनं । त्रिष्टुप्, ४ उत्तमा भुरिक्, ५ त्र्यवसाना सप्तपदा कृतिः, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७ भुरिक्शक्वरी, ८ जगती ।

ब्रह्मास्य शीर्षं बृहदस्य पृष्ठं वामदेव्यमुदरमोदनस्य ।
छन्दांसि पक्षौ मुखमस्य सत्यं विष्टारी जातस्तपसोऽधि यज्ञः १
अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम् ।
नैषां शिश्नं प्र दहति जातवेदाः स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् २
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनानवर्तिः सचते कदा चन ।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ३
विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति नैनान् यमः परि मुष्णाति रेतः ।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ४
एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश ।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ५
घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ६
चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ७
इममोदनं नि दधे ब्राह्मणेषु विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् ।
स मे मा क्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु ८ (२७०)

(३५) मृत्युसंतरणम् ।

१-७ प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप्, ३ भुरिग्जगती ।

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात् तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् १ (२७१)

येनातरन् भूतकृतोऽति मृत्युं यमन्वविन्दन् तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् २
यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन ।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ३
यस्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः ।
अहोरात्रा यं परियन्तो नापुस्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ४
यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव यस्मै लोका घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मतीः प्रदिशो यस्य सर्वास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ५
यस्मात् पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव ।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ६
अव बाधे द्विषन्तं देवपीयुं सपत्ना ये मेऽप ते भवन्तु ।
ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि शृण्वन्तु मे श्रद्दधानस्य देवाः ७ (२७७)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

(३६) सत्यौजा अग्निः ।

१-१० चातनः । सत्यौजा अग्निः । अनुष्टुप्, ९ भुरिक् ।

[८] तान्त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा ।
यो नो दुरस्याद् दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् १
यो नो दिप्सददिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् २
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये ।
क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान्त्सहसा सहे ३
सहे पिशाचान्त्सहसैषां द्रविणं ददे ।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिरृध्यताम् ४
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् ।
नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे ५
तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ६ (२८३)

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे ७
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते ८
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव ।
तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव ९
अभि तं निर्ऋतिर्धत्तामश्वमिवाश्वाभिधान्या ।
मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते १० (२८७)

(३७) कृमिनाशनम् ।

१-१२ बादरायणिः । अजशृङ्गी, १ अप्सरसः, १-२, ६,१० ओषधी अजशृङ्गी, ३-५ अप्सरसः,
७-१२ गन्धर्वाप्सरसः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप्, ५ प्रस्तारपङ्क्तिः,
७ परोष्णिक्, ११ षट्पदा जगती, १२ निचृत् ।

त्वया पूर्वमथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्योषधे ।
त्वया जघान कश्यपस्त्वया कण्वो अगस्त्यः १
त्वया वयमप्सरसो गन्धर्वांश्चातयामहे ।
अजशृङ्ग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय २
नदीं यन्त्वप्सरसोऽपां तारमवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्यौ३क्षगन्धिः प्रमन्दनी ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ३
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ४
यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ५
एयमगन्नोषधीनां वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्यराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्यृषतु ६
आनृत्यतः शिखण्डिनो गन्धर्वस्याप्सरापतेः ।
भिनद्मि मुष्कावपि यामि शेपः ७ (२९४)

भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीरयस्मयीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ८
भीमा इन्द्रस्य हेतयः शतमृष्टीर्हिरण्ययीः ।
ताभिर्हविरदान् गन्धर्वानवकादान् व्यृषतु ९
अवकादानभिशोचानप्सु ज्योतय मामकान् ।
पिशाचान्त्सर्वानोषधे प्र मृणीहि सहस्व च १०
श्वेवैकः कपिरिवैकः कुमारः सर्वकेशकः ।
प्रियो दृश इव भूत्वा गन्धर्वः सचते स्त्रियस्तमितो नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ११
जाया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप धावतामर्त्या मर्त्यान् मा सचध्वम् १२ (२९९)

(३८) वाजिनीवान् ऋषभः ।

१-७ बादरायणिः । १-४ अप्सराः, ५-७ ऋषभः । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा त्र्यवसाना जगती,
५ भुरिगत्यष्टिः, ६ त्रिष्टुप्, ७ त्र्यवसाना पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती ।

उद्भिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे १
विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे २
यायैः परिनृत्यत्याददाना कृतं ग्लहात् ।
सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया ।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम् ३
या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती ।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे ४
सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति ।
यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सद्यः सर्वान् लोकान् पर्येति रक्षन् ।
स न ऐतु होममिमं जुषाणो३ऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान् ५
अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वाङियं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु ६ (३०५)

अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन् ।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः । यथानाम व ईश्महे स्वाहा ७ (३०६)

(३९) संनतिः ।

१-१० अङ्गिराः, ९-१० ब्रह्मा च । १-२ पृथिव्यग्नी, ३-४ वाय्वन्तरिक्षे, ५-६ दिवादित्यौ, ७-८ दिक्चन्द्रमसः,
९-१० जातवेदसोऽग्निः । संनतिः । पङ्क्तिः, १,३,५,७ त्रिपदा महाबृहती,
२,४,६,८ संस्तारपङ्क्तिः, ९-१० त्रिष्टुप् ।

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नये समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु १
पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा २
अन्तरिक्षे वायवे समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथान्तरिक्षे वायवे समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ३
अन्तरिक्षं धेनुस्तस्या वायुर्वत्सः । सा मे वायुना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ४
दिव्यादित्याय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिव्यादित्याय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ५
द्यौर्धेनुस्तस्या आदित्यो वत्सः । सा म आदित्येन वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ६
दिक्षु चन्द्राय समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा दिक्षु चन्द्राय समनमन्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु ७
दिशो धेनवस्तासां चन्द्रो वत्सः । ता मे चन्द्रेण वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ८
अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् ९
हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् १० (३१६)

(४०) शत्रुनाशनम् ।

१-८ शुक्रः । ब्रह्म; १ अग्निः, २ यमः, ३ वरुणः, ४ सोमः, ५ भूमिः, ६ वायुः, ७ सूर्यः,
८ दिशः । त्रिष्टुप्, २ जगती, ८ पुरोऽतिशक्वरी पादयुग्जगती ।

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि १
ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि २
ये पश्चाज्जुह्वति जातवेदः प्रतीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वरुणमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ३
य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ४
येऽधस्ताज्जुह्वति जातवेदो ध्रुवाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
भूमिमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ५
येऽन्तरिक्षाज्जुह्वति जातवेदो व्यध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
वायुमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ६
य उपरिष्टाज्जुह्वति जातवेद ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सूर्यमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ७
य दिशामन्तर्देशेभ्यो जुह्वति जातवेदः सर्वाभ्यो दिग्भ्योऽभिदासन्त्यस्मान् ।
ब्रह्मर्त्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ८ (३२४)

[इति नवमः प्रपाठकः ॥९॥]

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥८॥

॥ इति चतुर्थं काण्डं समाप्तम् ॥४॥

मन्त्रसंख्या—

तृतीयकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	५९०
चतुर्थकाण्डस्य ...	३२४
सर्वयोगः	९१४

पञ्चमं काण्डम् ।

(१) अमृतासुः ।

१-९ बृहद्दिवोऽथर्वा । वरुणः । त्रिष्टुप्, ५ पराबृहती त्रिष्टुप्, ७ विराट्, ९ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

[अथ दशमः प्रपाठकः ॥१०॥]

[१] ऋधङ्मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा ।
अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि १
आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि ।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत २
यस्ते शोकाय तन्वं रिरेच क्षरद्धिरण्यं शुचयोऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते अमृतानि नामास्मे वस्त्राणि विश एरयन्ताम् ३
प्र यदेते प्रतरं पूर्व्यं गुः सदःसद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविः शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिमेरयेथाम् ४
तदू षु ते महत् पृथुज्मन् नमः कविः काव्येना कृणोमि ।
यत् सम्यञ्चावभियन्तावभि क्षामत्रा मही रोधचक्रे वावृधेते ५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ६
उतामृतासुर्व्रत एमि कृण्वन्नसुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गुः ।
उत वा शक्रो रत्नं दधात्यूर्जया वा यत् सचते हविर्दाः ७
उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे ज्येष्ठं मर्यादमह्वयन्त्स्वस्तये ।
दर्शन् नु ता वरुण यास्ते विष्ठा आवर्वततः कृणवो वपूंषि ८
अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे असुर ।
अविं वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमदित्या इषिरम् ।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा ९ (९)

(२) भुवनेषु ज्येष्ठः ।

१-९ बृहद्दिवोऽथर्वा । वरुणः । त्रिष्टुप्, ९ भुरिक् परातिजागता त्रिष्टुप् ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः १ (१०)

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु २
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ३
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ४
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ५
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ६
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ७
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ८
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ९ (१८)

(३) विजयाय प्रार्थना ।

१-११ बृहद्दिवोऽथर्वा । १-२ अग्निः, ३-४ देवाः, ५ द्रविणोदाः, ६ देवीः, ७ सोमः, ८,११ इन्द्रः, ९ धाता, विधाता, सविता, आदित्याः, रुद्राः, अश्विनौ, १० आदित्याः, रुद्राः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्, १० विराड्जगती ।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम १
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवोऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् २
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामायास्मै ३
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह ४ (११)

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैवा होतारः सनिषन्न एतदरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ५
देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ६
तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ७
उरुव्यचा नो महिषः शर्म यच्छत्वस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षु ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ८
धाता विधाता भुवनस्य यस्पतिर्देवः सविताभिमातिषाहः ।
आदित्या रुद्रा अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथात् ९
ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामह एनान् ।
आदित्या रुद्रा उपरिस्पृशो न उग्रं चेत्तारमधिराजमक्रत १०
अर्वाञ्चमिन्द्रममुतो हवामहे यो गोजिद् धनजिदश्वजिद् यः ।
इमं नो यज्ञं विहवे शृणोत्वस्माकमभूर्हर्यश्व मेदी ११ (२९)

(४) कुष्ठतक्मनाशनम् ।

१-१० भृग्वङ्गिराः । कुष्ठो, यक्ष्मनाशनम् । अनुष्टुप्, ५ भुरिक्, ६ गायत्री, १० उष्णिग्गर्भा निचृत् ।

यो गिरिष्वजायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठेहि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः १
सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरभि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् २
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ३
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ४
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययीरासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ५
इमं मे कुष्ठ पूरुषं तमा वह तं निष्कुरु । तमु मे अगदं कृधि ६ (३५)

देवेभ्यो अधि जातोऽसि सोमस्यासि सखा हितः ।
स प्राणाय व्यानाय चक्षुषे मे अस्मै मृड ७
उदङ् जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि वि भेजिरे ८
उत्तमो नाम कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता ।
यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसं कृधि ९
शीर्षामयमुपहत्यामक्ष्योस्तन्वो३ रपः ।
कुष्ठस्तत् सर्वं निष्करद् दैवं समह वृष्ण्यम् १० (३९)

(५) लाक्षा ।

१-९ अथर्वा । लाक्षा । अनुष्टुप् ।

रात्री माता नभः पितार्यमा ते पितामहः ।
सिलाची नाम वा असि सा देवानामसि स्वसा १
यस्त्वा पिबति जीवति त्रायसे पुरुषं त्वम् ।
भर्त्री हि शश्वतामसि जनानां च न्यञ्चनी २
वृक्षंवृक्षमा रोहसि वृषण्यन्तीव कन्यला ।
जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती स्परणी नाम वा असि ३
यद् दण्डेन यदिष्वा यद् वारुर्हरसा कृतम् ।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः सेमं निष्कृधि पूरुषम् ४
भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात् खदिराद्धवात् ।
भद्रान्न्यग्रोधात् पर्णात् सा न एह्यरुन्धति ५
हिरण्यवर्णे सुभगे सूर्यवर्णे वपुष्टमे ।
रुतं गच्छासि निष्कृते निष्कृतिर्नाम वा असि ६
हिरण्यवर्णे सुभगे शुष्मे लोमशवक्षणे ।
अपामसि स्वसा लाक्षे वातो हात्मा बभूव ते ७
सिलाची नाम कानीनोऽजबभ्रु पिता तव ।
अश्वो यमस्य यः श्यावस्तस्य हास्नास्युक्षिता ८
अश्वस्यास्नः संपतिता सा वृक्षाँ अभि सिष्यदे ।
सरा पतत्रिणी भूत्वा सा न एह्यरुन्धति ९ (४८)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(६) ब्रह्मविद्या ।

१-१४ अथर्वा । सोमारुद्रौ । १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगणाः, ५-८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०-१४ सर्वात्मा रुद्रः । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती, ५-७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ८ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, १० प्रस्तारपङ्क्तिः, ११-१३ पङ्क्तिः, १४ स्वराट्पङ्क्तिः ।

[२] ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः   १
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे   २
सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे   ३
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः   ४
न्वेऽतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः   ५
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः   ६
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः   ७
मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम्   ८
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येऽस्माँ अभ्यघायन्ति   ९
योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा   १०
इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन   ११
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन   १२   (६०)

इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन   १३
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन   १४   (६१)

(७) अरातिनाशनम् ।

१-१० अथर्वा । बहुदैवत्यम्, १-३, ६-१० अरातयः, ४-५ सरस्वती । अनुष्टुप्, १ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः, ४ पथ्याबृहती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये   १
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम   २
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये   ३
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु   ४
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा   ५
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत   ६
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते   ७
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च   ८
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः   ९
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः   १०   (७१)

[इति दशमः प्रपाठकः ॥१०॥]

(८) शत्रुनाशनम् ।

१-९ अथर्वा । नानादैवत्यं, १, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४-९ इन्द्रः । अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३-४ भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ द्व्युष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ९ त्र्यवसाना षट्पदा द्व्युष्णिग्गर्भा जगती ।

[अथ एकादशः प्रपाठकः ॥११॥]

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम्   १
इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस्तनूवशिन्   २
यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन   ३
अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत   ४
यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे   ५
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि   ६
यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम्   ७
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वेऽहमधरांस्तथामूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः   ८
अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्यहं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव   ९   (८१)

(९) आत्मा ।

१-८ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः, आत्मा । १, ५ दैवी बृहती, २, ६ दैवी त्रिष्टुप्, ३, ४ दैवी जगती, ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती, ८ पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती ।

दिवे स्वाहा   १   पृथिव्यै स्वाहा   २   अन्तरिक्षाय स्वाहा   ३
अन्तरिक्षाय स्वाहा   ४   दिवे स्वाहा   ५   पृथिव्यै स्वाहा   ६   (८७)

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय   ७
उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम्   ८   (८९)

(१०) आत्मरक्षा ।

१-८ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः । १-६ यवमध्या त्रिपदा गायत्री, ७ यवमध्या ककुप्, ८ पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती ।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   १
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   २
अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   ३
अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   ४
अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   ५
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   ६
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात्   ७
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा   ८   (९७)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(११) संपत्कर्म ।

१-११ अथर्वा । वरुणः (प्रश्नोत्तरम्) । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, ३ पङ्क्तिः, ६ पञ्चपदा अतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

[३] कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः   १
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः   २
सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये   ३   (१००)

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ४
त्वं ह्यङ्ग वरुण स्वधावन् विश्वा वेत्थ जनिमा सुप्रणीते ।
किं रजस एना परो अन्यदस्त्येना किं परेणावरममुर ५
एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ६
त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणीँरभ्ये३तावतो भून्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ७
मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि ।
स्तोत्रं मे विश्वमा याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ८
आ ते स्तोत्राण्युद्यतानि यन्त्वन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ।
देहि नु मे यन्मे अदत्तो असि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ९
समा नौ बन्धुर्वरुण समा जा वेदाहं तद् यन्नावेषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि युज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि १०
देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः ११ (१०८)

(१२) ऋतस्य यज्ञः ।

१-११ अङ्गिराः । जातवेदाः । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः १
तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः २
आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ३
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ४ (११२)

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ५
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ६
दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ७
आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वतीः स्वपसः सदन्ताम् ८
य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ९
उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन १०
सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रशिष्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ११ (११९)

(१३) सर्पविषनाशनम् ।

१-११ गरुत्मान् । तक्षकः । जगती, २ आस्तारपङ्क्तिः, ४, ७, ८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्
६ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १०, ११ निचृद्गायत्री ।

ददिर्हि मह्यं वरुणो दिवः कविर्वचोभिरुग्रैर्नि रिणामि ते विषम् ।
खातमखातमुत सक्तमग्रभमिरेव धन्वन् नि जजास ते विषम् १
यत् ते अपोदकं विषं तत् त एतास्वग्रभम् ।
गृह्णामि ते मध्यममुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते २
वृषा मे रवो नभसा न तन्यतुरुग्रेण ते वचसा बाध आदु ते ।
अहं तमस्य नृभिरग्रभं रसं तमस इव ज्योतिरुदेतु सूर्यः ३
चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम् ।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम् ४
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मे सख्युः स्तामानमपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ५
असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्याहं मन्योरव ज्यामिव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ६ (१२५)

आलिगी च विलिगी च पिता च माता च ।
विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ७
उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ८
कर्णा श्वावित् तदब्रवीद् गिरेरवचरन्तिका ।
याः काश्चेमाः खनित्रिमास्तासामरसतमं विषम् ९
ताबुवं न ताबुवं न घेत् त्वमसि ताबुवम् । ताबुवेनारसं विषम् १०
तस्तुवं न तस्तुवं न घेत् त्वमसि तस्तुवम् । तस्तुवेनारसं विषम् ११ (१३०)

(१४) कृत्यापरिहरणम् ।

१-१३ शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्, ३, ५, १२ भुरिक्, ८ त्रिपदा विराट्,
१० निचृद्बृहती, ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्, १३ स्वराट् ।

सुपर्णस्त्वान्वविन्दत् सूकरस्त्वाखनन्नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तमव कृत्याकृतं जहि १
अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि ।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे २
रिश्यस्येव परीशासं परिकृत्य परि त्वचः ।
कृत्यां कृत्याकृते देवा निष्कमिव प्रति मुञ्चत ३
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
समक्षमस्मा आ धेहि यथा कृत्याकृतं हनत् ४
कृत्याः सन्तु कृत्याकृते शपथः शपथीयते ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ५
यदि स्त्री यदि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
तामु तस्मै नयामस्यश्वमिवाश्वाभिधान्या ६
यदि वासि देवकृता यदि वा पुरुषैः कृता ।
तां त्वा पुनर्णयामसीन्द्रेण सयुजा वयम् ७
अग्ने पृतनाषाट् पृतनाः सहस्व ।
पुनः कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ८ (१३८)

कृतव्यधनि विध्य तं यश्चकार तमिज्जहि ।
न त्वामचक्रुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ९
पुत्र इव पितरं गच्छ स्वज इवाभिष्ठितो दश ।
बन्धमिवावक्रामी गच्छ कृत्ये कृत्याकृतं पुनः १०
उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव । कृत्या कर्तारमृच्छतु ११
इष्वा ऋजीयः पततु द्यावापृथिवी तं प्रति ।
सा तं मृगमिव गृह्णातु कृत्या कृत्याकृतं पुनः १२
अग्निरिवैतु प्रतिकूलमनुकूलमिवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः १३ (१४३)

(१५) रोगोपशमनम् ।

१-११ विश्वामित्रः । मधुला वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्बृहती, ५, ७-९ भुरिक् ।

एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः १
द्वे च मे विंशतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः २
तिस्रश्च मे त्रिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ३
चतस्रश्च मे चत्वारिंशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ४
पञ्च च मे पञ्चाशच्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ५
षट् च मे षष्टिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ६
सप्त च मे सप्ततिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ७
अष्ट च मेऽशीतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ८ (१५१)

(६) ब्रह्मविद्या ।

१-१४ अथर्वा । सोमारुद्रौ । १ ब्रह्म, २ कर्माणि, ३-४ रुद्रगणाः, ५-८ सोमारुद्रौ, ९ हेतिः, १०-१४ सर्वात्मा रुद्रः । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती, ४ अनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती, ५-७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ८ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, १० प्रस्तारपङ्क्तिः, ११-१३ पङ्क्तिः, १४ स्वराट्पङ्क्तिः ।

[२] ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः १
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरान् नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे २
सहस्रधार एव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवे ३
पर्यू षु प्र धन्वा वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तदध्यर्णवेनेयसे सनिस्रसो नामासि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः ४
न्वे३तेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ५
अवैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ६
अपैतेनारात्सीरसौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृडतं नः ७
मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम् ८
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते तपसश्च हेते ।
मेन्या मेनिरस्यमेनयस्ते सन्तु येऽस्माँ अभ्यघायन्ति ९
योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्त्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ।
त्वं तानग्ने मेन्यामेनीन् कृणु स्वाहा १०
इन्द्रस्य गृहोऽसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन ११
इन्द्रस्य शर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन १२ (६०)

इन्द्रस्य वर्मासि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन १३
इन्द्रस्य वरूथमसि । तं त्वा प्र पद्ये तं त्वा प्र विशामि सर्वगुः सर्वपूरुषः
सर्वात्मा सर्वतनूः सह यन्मेऽस्ति तेन १४ (६१)

(७) अरातिनाशनम् ।

१-१० अथर्वा । बहुदैवत्यम्, १-३, ६-१० अरातयः, ४-५ सरस्वती । अनुष्टुप्, १ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः, ४ पथ्याबृहती, ६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

आ नो भर मा परि ष्ठा अराते मा नो रक्षीर्दक्षिणां नीयमानाम् ।
नमो वीर्त्साया असमृद्धये नमो अस्त्वरातये १
यमराते पुरोधत्से पुरुषं परिरापिणम् ।
नमस्ते तस्मै कृण्मो मा वनिं व्यथयीर्मम २
प्र णो वनिर्देवकृता दिवा नक्तं च कल्पताम् ।
अरातिमनुप्रेमो वयं नमो अस्त्वरातये ३
सरस्वतीमनुमतिं भगं यन्तो हवामहे ।
वाचं जुष्टां मधुमतीमवादिषं देवानां देवहूतिषु ४
यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या मनोयुजा ।
श्रद्धा तमद्य विन्दतु दत्ता सोमेन बभ्रुणा ५
मा वनिं मा वाचं नो वीर्त्सीरुभाविन्द्राग्नी आ भरतां नो वसूनि ।
सर्वे नो अद्य दित्सन्तोऽरातिं प्रति हर्यत ६
परोऽपेह्यसमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते ७
उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ८
या महती महोन्माना विश्वा आशा व्यानशे ।
तस्यै हिरण्यकेश्यै निर्ऋत्या अकरं नमः ९
हिरण्यवर्णा सुभगा हिरण्यकशिपुर्मही ।
तस्यै हिरण्यद्रापयेऽरात्या अकरं नमः १० (७१)

[इति दशमः प्रपाठकः ॥१०॥]

(८) शत्रुनाशनम् ।

१-९ अथर्वा । नानादैवत्यं, १, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४-९ इन्द्रः । अनुष्टुप्, २ त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ३-४ भुरिक्पथ्यापङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ द्व्युष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, ९ त्र्यवसाना षट्पदा द्व्युष्णिग्गर्भा जगती ।

[अथ एकादशः प्रपाठकः ॥११॥]

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् १
इन्द्रा याहि मे हवमिदं करिष्यामि तच्छृणु ।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् २
यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन ३
अति धावतातिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि प्राणमस्यापि नह्यत ४
यममी पुरोदधिरे ब्रह्माणमपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ५
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ६
यानसावतिसरांश्चकार कृणवच्च यान् ।
त्वं तानिन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः पुनरा कृधि यथामुं तृणहां जनम् ७
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वे३हमधरांस्तथामूञ्छश्वतीभ्यः समाभ्यः ८
अत्रैनानिन्द्र वृत्रहन्नुग्रो मर्मणि विध्य । अत्रैवैनानभि तिष्ठेन्द्र मेद्य१हं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ९ (८२)

(९) आत्मा ।

१-८ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः, आत्मा । १, ५ दैवी बृहती, २, ६ दैवी त्रिष्टुप्, ३, ४ दैवी जगती, ७ विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदा जगती, ८ पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भा चतुष्पदा त्र्यवसाना जगती ।

दिवे स्वाहा १ पृथिव्यै स्वाहा २ अन्तरिक्षाय स्वाहा ३
अन्तरिक्षाय स्वाहा ४ दिवे स्वाहा ५ पृथिव्यै स्वाहा ६ (८७)

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं नि दधे द्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ७
उदायुरुद् बलमुत् कृतमुत् कृत्यामुन्मनीषामुदिन्द्रियम् ।
आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ गोपा मे स्तं गोपायतं मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मा मा हिंसिष्टम् ८ (८९)

(१०) आत्मरक्षा ।

१-८ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः । १-६ यवमध्या त्रिपदा गायत्री, ७ यवमध्या ककुप्, ८ पुरोधृत्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसाना चतुष्पदातिजगती ।

अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् १
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् २
अश्मवर्म मेऽसि यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् ३
अश्मवर्म मेऽसि यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् ४
अश्मवर्म मेऽसि यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् ५
अश्मवर्म मेऽसि यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् ६
अश्मवर्म मेऽसि यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् । एतत् स ऋच्छात् ७
बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम् ।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ८ (९७)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(११) संपत्कर्म ।

१-११ अथर्वा । वरुणः (प्रश्नोत्तरम्) । त्रिष्टुप्, १ भुरिक्, ३ पङ्क्तिः, ६ पञ्चपदा अतिशक्वरी, ११ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः ।

[३] कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः १
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निमेतामुपाजे ।
केन नु त्वमथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः २
सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ३ (१००)

न त्वद॒न्यः क॒वित॑रो॒ न मे॒धया॒ धीर॑तरो वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता विश्वा॒ भुव॑नानि वेत्थ॒ स चि॒न्नु त्वज्ज॑नो मा॒यी बि॑भाय ४
त्वं ह्य॑ङ्ग वरुण स्वधाव॒न् विश्वा॒ वेत्थ॒ जनि॑मा सुप्रणीते ।
किं रज॑स ए॒ना प॒रो अ॒न्यद॑स्त्ये॒ना किं पर॑ेणाव॑रममुर ५
एकं॒ रज॑स ए॒ना प॒रो अ॒न्यद॑स्त्ये॒ना प॒र एके॑न दु॒र्णशं॑ चिद॒र्वाक् ।
तत् ते॑ वि॒द्वान् वरु॑ण॒ प्र ब्र॑वीम्य॒धोव॑चसः प॒णयो॑ भवन्तु
नी॒चैर्दा॒सा उप॑ सर्पन्तु भूमि॑म् ६
त्वं ह्य॑ङ्ग वरु॒ण ब्रवी॑षि॒ पुन॑र्मघेष्वव॒द्यानि॒ भूरि॑ ।
मो षु प॒णीँर॒भ्ये॒तावतो॒ भून्मा त्वा॑ वोचन्नरा॒धसं॒ जनासः ७
मा मा॑ वोचन्नरा॒धसं॒ जना॑सः॒ पुन॑स्ते॒ पृश्नि॑ जरितर्ददामि ।
स्तो॒त्रं मे॒ विश्व॒मा या॑हि॒ शची॑भिर॒न्तर्विश्वा॑सु॒ मानु॑षीषु दि॒क्षु ८
आ ते॑ स्तो॒त्राण्युद्य॑तानि यन्त्व॒न्तर्विश्वा॑सु मानु॑षीषु दि॒क्षु ।
दे॒हि नु मे॒ यन्मे॒ अद॑त्तो॒ असि॒ युज्यो॑ मे स॒प्तप॑दः सखा॑सि ९
स॒मा नौ॒ बन्धु॑र्वरुण स॒मा जा वेदा॒हं तद् यन्ना॑वे॒षा स॒मा जा ।
ददा॒मि तद् यत् ते॒ अद॑त्तो॒ अस्मि॒ युज्य॑स्ते स॒प्तप॑दः सखा॑स्मि १०
दे॒वो दे॒वाय॑ गृण॒ते व॑यो॒धा विप्रो॒ विप्रा॑य स्तुव॒ते सु॑मे॒धाः ।
अजी॑जनो॒ हि व॑रुण स्वधाव॒न्नथ॑र्वाणं पि॒तरं॑ दे॒वब॑न्धुम् ।
तस्मा॑ उ॒ राधः॑ कृणुहि सुप्रश॒स्तं सखा॑ नो असि पर॒मं च॒ बन्धुः॑ ११ (१०८)

(१२) ऋतस्य यज्ञः ।

१-११ अङ्गिराः । जातवेदाः । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः ।

समि॑द्धो अ॒द्य मनु॑षो दुरो॒णे दे॒वो दे॒वान् य॑जसि जातवेदः ।
आ च॒ वह॑ मित्रमहश्चिकि॒त्वान् त्वं दू॒तः क॒विर॑सि॒ प्रचे॑ताः १
तनू॑नपात् प॒थ ऋ॒तस्य॒ याना॒न् मध्वा॑ सम॒ञ्जन्त्स्व॑दया सुजिह्व ।
मन्मा॑नि धी॒भिरु॒त य॒ज्ञमृ॒न्धन् दे॑व॒त्रा च॑ कृणुह्यध्व॒रं नः॑ २
आ॒जुह्वा॑न॒ ईड्यो॒ वन्द्य॒श्चा या॑ह्यग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ।
त्वं दे॒वाना॑मसि यह्व॒ होता॒ स ए॑नान् यक्षीषि॒तो यजी॑यान् ३
प्रा॒चीनं॑ ब॒र्हिः प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्या वस्तो॑र॒स्या वृ॑ज्यते॒ अग्रे॒ अह्ना॑म् ।
व्यु॒ प्रथते वित॒रं वरी॑यो दे॒वेभ्यो॒ अदि॑तये स्यो॒नम् ४ (१११)

व्यच॑स्वतीरुर्वि॒या वि श्र॑यन्ता॒ं पति॑भ्यो॒ न जन॑यः॒ शुम्भ॑मानाः ।
देवी॑र्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा दे॒वेभ्यो॑ भवत सुप्राय॒णाः ५
आ सु॒ष्वय॑न्ती यज॒ते उ॒पाके॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ सद॒तां नि योनौ॑ ।
दि॒व्ये योष॑णे बृह॒ती सु॑रु॒क्मे अधि॒ श्रियं॑ शुक्र॒पिशं॒ दधा॑ने ६
दैव्या॒ होता॑रा प्रथ॒मा सु॒वाचा॒ मिमा॑ना य॒ज्ञं मनु॑षो॒ यज॑ध्यै ।
प्र॒चो॒दय॑न्ता वि॒दथे॑षु का॒रू प्रा॒चीनं॒ ज्योतिः॑ प्र॒दिशा॑ दि॒शन्ता॑ ७
आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स्यो॒नं सर॑स्वतीः॒ स्वप॑सः सदन्ताम् ८
य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपिं॑शद् भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान् दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ९
उ॒पाव॑सृज॒ त्मन्या॑ सम॒ञ्जन् दे॒वाना॒ं पाथ॑ ऋतु॒था ह॒वींषि॑ ।
वन॒स्पतिः॑ शमि॒ता दे॒वो अ॒ग्निः स्वद॑न्तु ह॒व्यं मधु॑ना घृ॒तेन॑ १०
स॒द्यो जा॒तो व्य॑मिमीत य॒ज्ञम॒ग्निर्दे॒वाना॑मभवत् पुरो॒गाः ।
अ॒स्य होतुः॑ प्र॒शिष्यृ॒तस्य॑ वा॒चि स्वाहा॑कृतं ह॒विर॑दन्तु दे॒वाः ११ (११९)

(१३) सर्पविषनाशनम् ।

१-११ गरुत्मान् । तक्षकः । जगती, २ आस्तारपङ्क्तिः, ४, ७, ८ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप्
६ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १०, ११ निचृद्गायत्री।

द॒दिर्हि मह्यं॒ वरु॑णो दि॒वः क॒विर्वचो॑भिरु॒ग्रैर्नि रि॑णामि ते वि॒षम् ।
खा॒तमखा॑तमु॒त स॒क्तम॑ग्रभ॒मिरे॑व॒ धन्व॒न् नि ज॑जास ते वि॒षम् १
यत् ते॒ अपो॑दकं वि॒षं तत् त॑ ए॒तास्व॑ग्रभम् ।
गृ॒ह्णामि॑ ते मध्य॒ममु॑त्त॒मं रस॑मु॒ताव॒मं भि॒यसा॑ नेशदा॒दु ते २
वृषा॑ मे॒ रवो॒ नभ॑सा॒ न त॑न्य॒तुरु॒ग्रेण॑ ते॒ वच॑सा बा॒ध आदु॑ ते ।
अ॒हं तम॑स्य॒ नृभि॑रग्रभं॒ रसं॒ तम॑स इ॒व ज्योति॒रुदे॑तु॒ सूर्यः॑ ३
चक्षु॑षा ते॒ चक्षु॑र्हन्मि वि॒षेण॑ हन्मि ते वि॒षम् ।
अहे॑ म्रि॒यस्व॒ मा जी॑वीः प्र॒त्यग॒भ्ये॑तु त्वा वि॒षम् ४
कैरा॑त॒ पृश्न॒ उप॑तृण्य॒ बभ्र॒ आ मे॑ शृणु॒तासि॑ता॒ अली॑काः ।
मा मे॒ सख्युः॑ स्ता॒मान॒मपि॑ ष्ठाताश्रा॒वय॑न्तो॒ नि वि॒षे र॑मध्वम् ५
अ॒सित॑स्य तैमा॒तस्य॑ ब॒भ्रोरपो॑दकस्य च ।
सा॒त्रा॒सा॒हस्या॒हं म॒न्योर॑व॒ ज्यामि॑व॒ धन्व॑नो॒ वि मु॑ञ्चा॒मि रथाँ॑ इव ६ (१२५)

आलि॑गी च॒ विलि॑गी च पि॒ता च॑ मा॒ता च॑ ।
वि॒द्म वः॑ स॒र्वतो॒ बन्ध्वर॑साः॒ किं क॑रिष्यथ ७
उ॒रु॒गू॒ला॑या दुहि॒ता जा॒ता दा॒स्यसि॑क्न्या ।
प्र॒तङ्कं॑ द॒द्रुषी॑णां॒ सर्वा॑सामर॒सं वि॒षम् ८
क॒र्णा श्वा॒वित् तद॑ब्रवीद् गि॒रेर॑वचरन्ति॒का ।
याः का॒श्चेमाः ख॑नि॒त्रिमा॒स्तासा॑मर॒सत॑मं वि॒षम् ९
ता॒बु॒वं न ता॒बु॒वं न घेत् त्वम॑सि ता॒बु॒वम् । ता॒बु॒वेना॑र॒सं वि॒षम् १०
त॒स्तु॒वं न त॒स्तु॒वं न घेत् त्वम॑सि त॒स्तु॒वम् । त॒स्तु॒वेना॑र॒सं वि॒षम् ११ (१३०)

(१४) कृत्यापरिहरणम् ।

१-१३ शुक्रः । वनस्पतिः, कृत्यापरिहरणम् । अनुष्टुप्, ३, ५, १२ भुरिक्, ८ त्रिपदा विराट्,
१० निचृद्बृहती, ११ त्रिपदा साम्नी त्रिष्टुप्, १३ स्वराट् ।

सु॒प॒र्णस्त्वान्व॑विन्दत् सूक॒रस्त्वा॑खनन्न॒सा ।
दिप्सौ॑षधे॒ त्वं दिप्स॑न्त॒मव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि १
अव॑ जहि यातु॒धाना॒नव॑ कृत्या॒कृतं॑ जहि ।
अथो॒ यो अ॒स्मान् दिप्स॑ति॒ तमु॒ त्वं ज॑ह्योषधे २
रि॒श्यस्ये॑व परीश॒ासं प॑रि॒कृत्य॒ परि॑ त्व॒चः ।
कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ देवा॒ निष्क॑मि॒व प्रति॑ मुञ्चत ३
पुनः॑ कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ हस्त॒गृह्य॒ परा॑ णय ।
स॒म॒क्षम॑स्मा॒ आ धे॑हि॒ यथा॑ कृत्या॒कृतं॒ हन॑त् ४
कृ॒त्याः स॑न्तु कृत्या॒कृते॑ श॒पथः॑ शपथीय॒ते ।
सु॒खो रथ॑ इव वर्ततां कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुनः॑ ५
यदि॒ स्त्री यदि॑ वा॒ पुमा॑न् कृ॒त्यां च॒कार॑ पा॒प्मने॑ ।
ताम॒ तस्मै॑ नयाम॒स्यश्व॑मिवाश्वा॒भि॒धान्या॑ ६
यदि॒ वासि॑ दे॒वकृ॑ता॒ यदि॑ वा॒ पुरु॑षैः कृ॒ता ।
तां त्वा॒ पुन॑र्णयाम॒सीन्द्रे॑ण स॒युजा॑ व॒यम् ७
अग्ने॑ पृतना॒षाट् पृत॑नाः सहस्व ।
पुनः॑ कृ॒त्यां कृ॑त्या॒कृते॑ प्रति॒हर॑णेन हरामसि ८ (१३८)

कृत॑व्यधनि॒ विध्य॒ तं यश्च॒कार॒ तमिज्ज॑हि ।
न त्वामच॑क्रुषे व॒यं व॒धाय॒ सं शि॑शीमहि ९
पु॒त्र इ॑व पि॒तरं॑ गच्छ स्व॒ज इ॑वा॒भिष्ठि॑तो दश ।
ब॒न्धमि॑वावक्रा॒मी ग॑च्छ॒ कृत्ये॑ कृत्या॒कृतं॒ पुनः॑ १०
उदे॒णीव॑ वा॒रण्य॑भि॒स्कन्दं॑ मृ॒गीव॑ । कृ॒त्या क॒र्तार॑मृच्छतु ११
इष्वा॒ ऋजी॑यः पततु॒ द्यावा॑पृथि॒वी तं प्रति॑ ।
सा तं मृ॒गमि॑व गृह्णातु कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुनः॑ १२
अ॒ग्निरि॑वैतु प्रति॒कूल॑मनु॒कूल॑मिवोद॒कम् ।
सु॒खो रथ॑ इव वर्ततां कृ॒त्या कृ॑त्या॒कृतं॒ पुनः॑ १३ (१४३)

(१५) रोगोपशमनम् ।

१-११ विश्वामित्रः । मधुला वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ पुरस्ताद्बृहती, ५, ७-९ भुरिक् ।

एका॑ च मे॒ दश॑ च मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः १
द्वे च॑ मे विंश॒तिश्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः २
ति॒स्रश्च॑ मे त्रिं॒शच्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ३
चत॑स्रश्च मे चत्वारिं॒शच्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ४
प॒ञ्च च॑ मे पञ्चा॒शच्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ५
षट् च॑ मे ष॒ष्टिश्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ६
स॒प्त च॑ मे सप्त॒तिश्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ७
अ॒ष्ट च॑ मेऽशी॒तिश्च॑ मेऽपव॒क्तार॑ ओषधे ।
ऋत॑जात॒ ऋता॑वरि॒ मधु॑ मे मधु॒ला क॑रः ८ (१५१)

नवं च मे नवतिश्च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः   ९
दश च मे शतं च मेऽपवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः   १०
शतं च मे सहस्रं चापवक्तार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः   ११   (१५४)

[इति एकादशः प्रपाठकः ॥११॥]   ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(१६) वृषरोगशमनम् ।

१-११ विश्वामित्रः । एकवृषः । एकावसानं द्विपदम्, १, ४, ५, ७-१० साम्नी उष्णिक्, २, ३, ६, आसुरी अनुष्टुप्, ११ आसुरी गायत्री ।

[अथ द्वादशः प्रपाठकः ॥१२॥]

[४] यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि   १   यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि   २
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि   ३   यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि   ४
यदि पञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि   ५   यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि   ६
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि   ७   यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि   ८
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि   ९   यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि   १०
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि   ११   (१६५)

(१७) ब्रह्मजाया ।

१-१८ मयोभूः । ब्रह्मजाया । अनुष्टुप्, १-६ त्रिष्टुप् ।

तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य   १
सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय   २
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेति चेदवोचत् ।
न दूताय प्रहेया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य   ३
यामाहुस्तारकैषा विकेशीति दुच्छुनां ग्राममवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया वि दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान्   ४   (१६९)

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः   ५
देवा वा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसा ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन्   ६
ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते
वीरा ये तृह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान्   ७
उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे अब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा   ८
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो न वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्यः   ९
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या अददुः ।
राजानः सत्यं गृह्णाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः   १०
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायमुपासते   ११
नास्य जाया शतवाही कल्याणी तल्पमा शये ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १२
न विकर्णः पृथुशिरास्तस्मिन् वेश्मनि जायते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १३
नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः सूनानामेत्यग्रतः ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १४
नास्य श्वेतः कृष्णकर्णो धुरि युक्तो महीयते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १५
नास्य क्षेत्रे पुष्करिणी नाण्डीकं जायते बिसम् ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १६
नास्मै पृश्निं वि दुहन्ति येऽस्या दोहमुपासते ।
यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या   १७
नास्य धेनुः कल्याणी नानड्वान्त्सहते धुरम् ।
विजानिर्यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया   १८   (१८३)

(१८) ब्रह्मगवी ।

१-१५ मयोभूः । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्, ५, ८-९, १३ त्रिष्टुप् ।

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्   १
अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः   २
आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या   ३
निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य   ४
य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम्   ५
न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः   ६
शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते   ७
जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः   ८
तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्   ९
ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्   १०
गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्याँ अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन्   ११
एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्   १२
देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम्   १३   (१९६)

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते ।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः   १४
इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः   १५   (१९८)

(१९) ब्रह्मगवी ।

१-१५ मयोभूः । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप्, १ विराट्पुरस्ताद्बृहती, ७ उपरिष्टाद्बृहती ।

अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन् ।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराभवन्   १
ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत्   २
ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मिञ्छुल्कमीषिरे ।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते   ३
ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा   ४
क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते ।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद् वै पितृषु किल्बिषम्   ५
उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते   ६
अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य   ७
तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम् ।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना   ८
तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद् धनमभि नारद मन्यते   ९
विषमेतद् देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत् ।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन   १०
नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्   ११   (२०९)

यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम् ।
तद् वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन् १२
अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् १३
येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दते ।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् १४
न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् १५ (२१३)

(२०) शत्रुसेनात्रासनम् ।

१-१२ ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्वनायन् वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिः ।
वाचं क्षुणुवानो दमयन्त्सपत्नान्त्सिंह इव जेष्यन्नभि तंस्तनीहि १
सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः २
वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ३
संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः ४
दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ५
पूर्वो दुन्दुभे प्र वदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः ।
अमित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ६
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी ७
धीभिः कृतः प्र वदाति वाचमुद्धर्षय सत्वनामायुधानि ।
इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व मित्रैरमित्राँ अव जङ्घनीहि ८ (२११)

संक्रन्दनः प्रवदो धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि हर द्विराजे ९
श्रेयःकेतो वसुजित् सहीयान्त्संग्रामजित् संशितो ब्रह्मणासि ।
अंशूनिव ग्रावाधिषवणे अद्रिर्गव्यन् दुन्दुभेऽधि नृत्य वेदः १०
शत्रूषाण् नीषाडभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भित् ।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषमुद् वदेह ११
अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद्धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् १२ (२२५)

(२१) शत्रुसेनात्रासनम् ।

१-१२ ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः, १०-१२ आदित्यादयः । अनुष्टुप्, १, ४-५ पथ्यापङ्क्तिः, ६ जगती, ११ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, १२ त्रिपदा यवमध्या गायत्री ।

विहृदयं वैमनस्यं वदामित्रेषु दुन्दुभे ।
विद्वेषं कश्मशं भयममित्रेषु नि दध्मस्यवैनान् दुन्दुभे जहि १
उद्वेपमाना मनसा चक्षुषा हृदयेन च ।
धावन्तु बिभ्यतोऽमित्राः प्रत्रासेनाज्ये हुते २
वानस्पत्यः संभृत उस्रियाभिर्विश्वगोत्र्यः ।
प्रत्रासममित्रेभ्यो वदाज्येनाभिघारितः ३
यथा मृगाः संविजन्त आरण्याः पुरुषादधि ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ४
यथा वृकादजावयो धावन्ति बहु बिभ्यतीः ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ५
यथा श्येनात् पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा ।
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्र त्रासयाथो चित्तानि मोहय ६
परामित्रान् दुन्दुभिना हरिणस्याजिनेन च ।
सर्वे देवा अतित्रसन् ये संग्रामस्येशते ७
यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह ।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः ८ (२३३)

ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभि क्रोशन्तु या दिशः ।
सेनाः पराजिता यतीरमित्राणामनीकशः ९
आदित्य चक्षुरा दत्स्व मरीचयोऽनु धावत ।
पत्सङ्गिनीरा सजन्तु विगते बाहुवीर्ये १०
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
सोमो राजा वरुणो राजा महादेव उत मृत्युरिन्द्रः ११
एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा १२ (२३७)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ।४।।

(२२) तक्मनाशनम् ।

१-१४ भृग्वङ्गिराः । तक्मनाशनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ५ विराट् पथ्याबृहती ।

[५] अग्निस्तक्मानमप बाधतामितः सोमो ग्रावा वरुणः पूतदक्षाः ।
वेदिर्बर्हिः समिधः शोशुचाना अप द्वेषांस्यमुया भवन्तु १
अयं यो विश्वान् हरितान् कृणोष्युच्छोचयन्नग्निरिवाभिदुन्वन् ।
अधा हि तक्मन्नरसो हि भूया अधा न्यङ्ङधराङ् वा परेहि २
यः परुषः पारुषेयोऽवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुवा ३
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वा तक्मने ।
शकम्भरस्य मुष्टिहा पुनरेतु महावृषान् ४
ओको अस्य मूजवन्त ओको अस्य महावृषाः ।
यावज्जातस्तक्मंस्तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः ५
तक्मन् व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीमिच्छ तां वज्रेण समर्पय ६
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम् ।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ७
महावृषान् मूजवतो बन्ध्वद्धि परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो अन्यक्षेत्राणि वा इमा ८
अन्यक्षेत्रे न रमसे वशी सन्मृडयासि नः ।
अभूदु प्रार्थस्तक्मा स गमिष्यति बल्हिकान् ९ (२४६)

यत् त्वं शीतोऽथो रूरः सह कासावेपयः ।
भीमास्ते तक्मन् हेतयस्ताभिः स्म परि वृङ्ग्धि नः १०
मा स्मैतान्त्सखीन् कुरुथा बलासं कासमुद्युगम् ।
मा स्मातोऽर्वाङैः पुनस्तत् त्वा तक्मन्नुप ब्रुवे ११
तक्मन् भ्रात्रा बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण सह गच्छामुमरणं जनम् १२
तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् १३
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः ।
प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परि दद्मसि १४ (२५१)

(२३) क्रिमिघ्नम् ।

१-१३ कण्वः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति १
अस्येन्द्र कुमारस्य क्रिमीन् धनपते जहि ।
हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम २
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति ।
दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ३
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ४
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः ।
ये के च विश्वरूपास्तान् क्रिमीन् जम्भयामसि ५
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ६
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः ।
दृष्टश्च हन्यतां क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम् ७
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत ।
सर्वान् नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ८ (२५९)

त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ९
अत्रिवद् वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् १०
हतो राजा क्रिमीणामुतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ११
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः १२
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम् ।
भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् १३ (२६४)

(२४) ब्रह्मकर्म ।

१-१७ अथर्वा । ब्रह्मकर्मात्मा, १ सविता, २ अग्निः, ३ द्यावापृथिवी, ४ वरुणः, ५ मित्रावरुणौ, ६ मरुतः, ७ सोमः, ८ वायुः, ९ सूर्यः, १० चन्द्रमाः, ११ इन्द्रः, १२ मरुतां पिता, १३ मृत्युः, १४ यमः, १५ पितरः, १६ तताः, १७ ततामहाः । अतिशक्वरी, १-१०, १२-१४ चतुष्पदातिशक्वरी, ११ शक्वरी, १५-१६ त्रिपदा भुरिग्जगती, १७ त्रिपदा विराट् शक्वरी ।

सविता प्रसवानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १
अग्निर्वनस्पतीनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा २
द्यावापृथिवी दातृणामधिपत्नी ते मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ३
वरुणोऽपामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ४
मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपती तौ मावताम् ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ५ (२६९)

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ६
सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ७
वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ८
सूर्यश्चक्षुषामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ९
चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १०
इन्द्रो दिवोऽधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ११
मरुतां पिता पशूनामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १२
मृत्युः प्रजानामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १३
यमः पितृणामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १४ (२७८)

पितरः परे ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १५
तता अवरे त मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १६
ततस्ततामहास्ते मावन्तु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा १७ (२८१)

(२५) गर्भाधानम् ।

१-१३ ब्रह्मा । योनिगर्भः, पृथिव्यादयो देवताः । अनुष्टुप्, १३ विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम् ।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् १
यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे २
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ३
गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ४
विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ५
यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकरणं पिब ६
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ७
अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ८
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम् ।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ९ (२९०)

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १०
त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ११
सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १२
प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे १३ (२९४)

(२६) नवशालाया घृतहोमः ।

१-१२ ब्रह्मा । वास्तोष्पतिः, १ अग्निः, २ सविता, ३,११ इन्द्रः, ४ निविदः ५ मरुतः, ६ अदितिः ७ विष्णुः, ८ त्वष्टा, ९ भगः, १० सोमः, १२ अश्विनौ, बृहस्पतिः । १, ५ द्विपदार्ची उष्णिक्, २,४,६,७,८,१०,११ द्विपदा प्राजापत्या बृहती, ३ त्रिपदा विराड् गायत्री, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक्, (१-११ एकावसाना) १२ परातिशक्वरी चतुष्पदा जगती ।

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहाग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु १
युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा २
इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ३
प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः ४
छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ५
एयमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर्यज्ञं तन्वानादितिः स्वाहा ६
विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ७
त्वष्टा युनक्तु बहुधा नु रूपा अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ८
भगो युनक्त्वाशिषो न्वस्मा अस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ९
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा १०
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ११
अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं यजमानाय स्वाहा १२ (३०६)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(२७) अग्निः ।

१-१२ ब्रह्मा । अग्निः । १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्, ३ द्विपदार्ची बृहती, ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती, ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ६ द्विपदा विराण्नाम गायत्री, ७ द्विपदा साम्नी बृहती, ८ संस्तारपङ्क्तिः, ९ षट्पदानुष्टुब्गर्भा परातिजगती, १०-१२ पुरउष्णिक् (२-७ एकावसाना) ।

[६] ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस्तनूनपादसुरो भूरिपाणिः १
देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन २
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः ३
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ४
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः ५
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च ६
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा ७
उरुव्यचसाग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः ८
दैवा होतार ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वयाभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तामिडा सरस्वती मही भारती गृणाना ९
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य १०
वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर्हव्यं शमिता स्वदयतु ११
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् १२ (३१८)

(२८) दीर्घायुः ।

१-१४ अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादयः । त्रिष्टुप्, ६ पञ्चपदातिशक्वरी, ७, ९-१०, १२ ककुम्मत्यनुष्टुप्, १३ पुरउष्णिक् ।

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
हरिते त्रीणि रजते त्रीण्ययसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि १
अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च ।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २
त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ३ (३२१)

इममादित्या वसुना समुक्षतेममग्ने वर्धय वावृधानः ।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणास्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु ४
भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ५
त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव
सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् ।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ६
त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् ७
त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ८
दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ९
इमास्तिस्रो देवपुरास्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद् वर्चस्व्युत्तरो द्विषतां भव १०
पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणोम्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे ११
आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि १२
ऋतुभिष्ट्वार्तवैरायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि १३
घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय १४ (३३२)

(२९) रक्षोघ्नम् ।

१-१५ चातनः । जातवेदाः, मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री, ५ पुरोऽतिजगती विराड्जगती, १२-१५ अनुष्टुप् (१२ भुरिक्, १४ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती ।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम १ (३३३)

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति २
यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ३
अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि ४
यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः ५
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ६
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ७
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ८
दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु ९
क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः १०
सनादग्ने मृणासि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानन्तु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ११
समाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् ।
गात्राण्यस्य वर्धन्तामंशुरिवा प्यायतामयम् १२
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यमयक्ष्मं कृणु जीवतु १३
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः ।
तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः १४
ताष्टार्चीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा ।
जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति १५ (३४७)

(३०) दीर्घायुष्यम् ।

१-१७ उन्मोचनः (आयुष्कामः) । आयुष्यम् । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः, ९ भुरिक्, १२ चतुष्पदा विराड्जगती, १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः, १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् १
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यदरणो जनः । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते २
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ३
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् । उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ४
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जतः । प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह । दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ६
अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः । आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोऽयनम् ७
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा । निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ८
अङ्गभेदो अङ्गज्वरो यश्च ते हृदयामयः । यक्ष्मः श्येन इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम् ९
ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः । तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम् १०
अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते । उदेहि मृत्योर्गम्भीरात् कृष्णाच्चित् तमसस्परि ११
नमो यमाय नमो अस्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तमग्निं पुरो दधेऽस्मा अरिष्टतातये १२
ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुरथो बलम् । शरीरमस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्रति तिष्ठतु १३
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं समीरय तन्वा३ सं बलेन ।
वेत्थामृतस्य मा नु गान्मा नु भूमिगृहो भुवत् १४
मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते । सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः १५
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा । त्वया यक्ष्मं निरवोचं शतं रोपीश्च तक्मनः १६
अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः । यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः १७ (३६४)

(३१) कृत्यापरिहरणम् ।

१-१२ शुक्रः । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप्, ११ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्, १२ पथ्याबृहती ।

यां ते चक्रुरामे पात्रे यां चक्रुर्मिश्रधान्ये ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् १ (३६५)

यां ते चक्रुः कृकवाकावजे वा यां कुरीरिणि ।
अव्यां ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् २
यां ते चक्रुरेकशफे पशूनामुभयादति ।
गर्दभे कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ३
यां ते चक्रुरमूलायां वलगं वा नराच्याम् ।
क्षेत्रे ते कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ४
यां ते चक्रुर्गार्हपत्ये पूर्वाग्नावुत दुश्चितः ।
शालायां कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ५
यां ते चक्रुः सभायां यां चक्रुरधिदेवने ।
अक्षेषु कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ६
यां ते चक्रुः सेनायां यां चक्रुरिष्वायुधे ।
दुन्दुभौ कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ७
यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः ।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ८
यां ते चक्रुः पुरुषास्थे अग्नौ संकसुके च याम् ।
म्रोकं निर्दाहं क्रव्यादं पुनः प्रति हरामि ताम् ९
अपथेना जभारैणां तां पथेतः प्र हिण्मसि ।
अधीरो मर्याधीरेभ्यः सं जभाराचित्त्या १०
यश्चकार न शशाक कर्तुं शश्रे पादमङ्गुरिम् ।
चकार भद्रमस्मभ्यमभगो भगवद्भ्यः ११
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम् ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेनाग्निर्विध्यत्वस्तया १२ (३७६)

[इति द्वादशः प्रपाठकः ॥१२॥]		॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

॥ इति पञ्चमं काण्डं समाप्तम् ॥५॥

मन्त्रसंख्या—
चतुर्थकाण्डस्यान्तपर्यन्तं ९१४
पञ्चमकाण्डस्य... ३७६
सर्वयोगः १२९०

षष्ठं काण्डम् ।

(१) अमृतप्रदाता ।

१-३ अथर्वा । सविता । उष्णिक्, १ त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नी जगती, २-३ पिपीलिकमध्या पुरउष्णिक् ।

[अथ त्रयोदशः प्रपाठकः ॥१३॥]

[१] दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद् धेहि । आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् १
तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः । सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम् २
स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि । उभे सुष्टुती सुगातवे ३ (१)

(२) जेता इन्द्रः ।

१-३ अथर्वा । सोमः, वनस्पतिः । परोष्णिक् ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत । स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे १
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः । विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः २
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे । युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ३ (४)

(३) आत्मगोपनम् ।

१-३ अथर्वा । १ इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः, अपां नपात्, सिन्धवः, विष्णुः, द्यौः, २ द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः, ३ अश्विनौ, उषासानक्ता, अपां नपात्, त्वष्टा । जगती, १ पथ्याबृहती ।

पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः १
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः २
पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिह्रुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ३ (९)

(४) आत्मगोपनम् ।

१-३ अथर्वा । १ त्वष्टा, पर्जन्यः, ब्रह्मणस्पतिः, अदितिः, २ अंशः, भगः, वरुणः, मित्रः, अर्यमा, अदितिः, मरुतः, ३ अश्विनौ, द्यौष्पिता । पथ्याबृहती, २ संस्तारपङ्क्तिः, ३ त्रिपदा विराड्गायत्री ।

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः १
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिह्रुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् २
धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या ण उरुज्मन्नप्रयुच्छन् ।
द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या ३ (१२)

(५) वर्चःप्राप्तिः ।

१-३ अथर्वा । १ अग्निः, २ इन्द्रः, ३ अग्निः, सोमः, ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, २ भुरिक् ।

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत । समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि १
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी । रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय २
यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ३ (१५)

(६) शत्रुनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । १ ब्रह्मणस्पतिः, २-३ सोमः । अनुष्टुप् ।

योऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेऽदेवो अभिमन्यते । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते १
यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति । वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति २
यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः । अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ३ (१८)

(७) असुरक्षयणम् ।

१-३ अथर्वा । सोमः, अदितिः, ३ देवाः । गायत्री, १ निचृत् ।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः । तेना नोऽवसा गहि १
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः । तेना नो अधि वोचत २
येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् । तेना नः शर्म यच्छत ३ (२१)

(८) कामात्मा ।

१-३ जमदग्निः । कामात्मा, २ सुपर्णः, ३ द्यावापृथिवी, सूर्यः । पथ्यापङ्क्तिः ।

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः १ (२२)

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः २
यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ३ (२४)

(९) कामात्मा ।

१-३ जमदग्निः । कामात्मा, ३ गावः । अनुष्टुप् ।

वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु १
मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् । यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि २
यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् । गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ३ (२७)

(१०) संप्रोक्षणम् ।

१-३ शन्तातिः । १ पृथिवी, श्रोत्रं, वनस्पतिः, अग्निः; २ प्राणः, अन्तरिक्षं, वयः, वायुः; ३ द्यौः, चक्षुः, नक्षत्राणि, सूर्यः । द्विपदम्, १ साम्नी त्रिष्टुप्, २ प्राजापत्या बृहती, ३ साम्नी बृहती ।

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योऽग्नयेऽधिपतये स्वाहा १
प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेऽधिपतये स्वाहा २
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ३ (३०)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(११) पुंसवनम् ।

१-३ प्रजापतिः । रेतः, ३ प्रजापतिः, अनुमतिः, सिनीवाली । अनुष्टुप् ।

[२] शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् । तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि १
पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते । तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् २
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत् । स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ३ (३३)

(१२) सर्प-विष-निवारणम् ।

१-३ गरुत्मान् । तक्षकः । अनुष्टुप् ।

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम् । रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् १
यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा । यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् २
मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु । मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ३ (३६)

(१३) मृत्युजयः ।

१-३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । मृत्युः । अनुष्टुप् ।

नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्यः । अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोऽस्तु ते १
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नमः । सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः २
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः । नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ३ (३९)

(१४) बलासनाशनम् ।

१-३ बभ्रुपिङ्गलः । बलासः । अनुष्टुप् ।

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु १
निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा । छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव २
निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा । अथो इट इव हायनोप द्राह्यवीरहा ३ (४२)

(१५) शत्रुनिवारणम् ।

१-३ उद्दालकः । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति १
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः २
यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः । तलाशा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः ३ (४५)

(१६) अक्षिरोगभैषजम् ।

१-४ शौनकः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्तदेवताः । अनुष्टुप्, १ निचृत्त्रिपदा गायत्री, ३ बृहतीगर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप्, ४ त्रिपदा प्रतिष्ठा ।

आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो । आ ते करम्भमद्मसि १
विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता । स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः २
तौविलिकेऽवेलयावायमैलब ऐलयीत् । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ३
अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा । नीलागलसाला ४ (४९)

(१७) गर्भदृंहणम् ।

१-४ अथर्वा । गर्भदृंहणम्, पृथिवी । अनुष्टुप् ।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे १
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे २
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ३ (५२)

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् । एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ४ (५३)

(१८) ईर्ष्याविनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । ईर्ष्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम् । अग्निं हृदय्यं शोकं तं ते निर्वापयामसि १
यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा । यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः २
अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् । ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ३ (५६)

(१९) पावमानम् ।

१-३ शन्तातिः । चन्द्रमाः, १ देवजनाः, मनवः, विश्वा भूतानि, पवमानः, २ पवमानः, ३ सविता । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया । पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा १
पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे । अथो अरिष्टतातये २
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । अस्मान् पुनीहि चक्षसे ३ (५९)

(२०) यक्ष्मनाशनम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम् । १ अतिजगती, २ ककुम्मतीप्रस्तारपङ्क्तिः, ३ सतः पङ्क्तिः ।

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिण उतेव मत्तो विलपन्नपायति ।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने १
नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः २
अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेऽरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ३ (६२)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(२१) केशवर्धनी औषधिः ।

१-३ शन्तातिः । चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

[३] इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा । तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् १
श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा २
रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ । उत स्थ केशदृंहणीरथो ह केशवर्धनीः ३ (६५)

(२२) भैषज्यम् ।

१-३ शन्तातिः । १ आदित्यरश्मिः, २-३ मरुतः । त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा भुरिग्जगती ।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः १
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु २
उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ३ (६८)

(२३) अपां भैषज्यम् ।

१-३ शन्तातिः । आपः । १ अनुष्टुप्, २ त्रिपदा गायत्री, ३ परोष्णिक् ।

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः । वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये १
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये । सद्यः कृण्वन्त्वेतवे २
देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः । शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ३ (७१)

(२४) अपां भैषज्यम् ।

१-३ शन्तातिः । आपः । अनुष्टुप् ।

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् १
यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत् ।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः २
सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहे ३ (७४)

(२५) मन्याविनाशनम् ।

१-३ शुनःशेपः । मन्याविनाशनम् । अनुष्टुप् ।

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव १
सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव २ (७६)

नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ३ (७७)

(२६) पाप्मनाशनम् ।

१-३ ब्रह्मा । पाप्मा । अनुष्टुप् ।

अव मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविह्रुतम् १
यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेऽन्यं पाप्मानु पद्यताम् २
अन्यत्रास्मन्न्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः ।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ३ (८०)

(२७) अरिष्टक्षयणम् ।

१-३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे १
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु २
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने ।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ३ (८३)

(२८) अरिष्टक्षयणम् ।

१-३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । १ त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ जगती ।

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः १
परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति २
यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ३ (८६)

(२९) अरिष्टक्षयणम् ।

१-३ भृगुः । यमः, निर्ऋतिः । (बृहती) १-२ विराण्नाम गायत्री, ३ त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः ।

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् । यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति 1
यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोऽप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः । कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु । 2
अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरतया इदमा ससद्यात् । पराङेव परा वद पराचीमनु संवतम् ।
यथा यमस्य त्वा गृहेऽरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ३ (८९)

(३०) पापशमनम् ।

१-३ उपरिबभ्रवः । शमी । जगती, २ त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पाच्छंकुमत्यनुष्टुप् ।

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः ।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः 1
यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह 2
बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ३ (९१)

(३१) गौः ।

१-३ उपरिबभ्रवः । गौः । गायत्री ।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः 1
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः 2
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ३ (९५)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(३२) यातुधानक्षयणम् ।

(१-३) १-२ चातनः, ३ अथर्वा । १ अग्निः, २ रुद्रः, ३ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, २ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

[४] अन्तर्दावे जुहुता स्वेतद् यातुधानक्षयणं घृतेन ।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि 1
रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् । 2
अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोऽर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ३ (९८)

(३३) इन्द्रस्तवः ।

१-३ जाटिकायनः । इन्द्रः । गायत्री, २ अनुष्टुप् ।

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् 1
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः । पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः 2
स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् । इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ३ (१०१)

(३४) शत्रुनाशनम् ।

१-५ चातनः । अग्निः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः 1
यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः 2
यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः 3
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः 4
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः ५ (१०६)

(३५) वैश्वानरः ।

१-३ कौशिकः । वैश्वानरः । गायत्री ।

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप 1
वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप । अग्निरुक्थेष्वंहसु 2
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् । ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् ३ (१०९)

(३६) वैश्वानरः ।

१-३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । अग्निः । गायत्री ।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे 1
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत् सृजते वशी । यज्ञस्य वय उत्तिरन् 2
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको वि राजति ३ (११२)

(३७) शापनाशनम् ।

१-३ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । चन्द्रमाः । अनुष्टुप् ।

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्त्वा शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् १ (११३)

परि णो वृङ्धि शपथ ह्रदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि दिवो वृक्षमिवाशनिः 2
यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ३ (११५)

(३८) वर्चस्यम् ।

१-४ अथर्वा (वर्चस्कामः) । त्विषिः, (बृहस्पतिः) । त्रिष्टुप् ।

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना 1
या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना 2
रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना 3
राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ४ (११९)

(३९) वर्चस्यम् ।

१-३ अथर्वा (वर्चस्कामः) । (बृहस्पतिः), २ इन्द्रः, ३ इन्द्रः, अग्निः, सोमः । १ जगती,
२ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

यशो हविर्वर्धतामिन्द्रजूतं सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम् ।
प्रसर्स्राणमनु दीर्घाय चक्षसे हविष्मन्तं मा वर्धय ज्येष्ठतातये 1
अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम 2
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ३ (१२२)

(४०) अभयम् ।

१-३ अथर्वा । १ द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं, सप्तऋषयः; २ सविता, इन्द्रः;
३ इन्द्रः । १-२ जगती, ३ अनुष्टुप् ।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु ।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु १ (१२३)

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु ।
अशत्र्विन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः 2
अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ३ (१२५)

(४१) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-३ ब्रह्मा । १ चन्द्रमाः, २ सरस्वती, ३ दैव्या ऋषयः । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् 1
अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् 2
मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ३ (१२८)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(४२) परस्परचित्तैकीकरणम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युः । १-२ भुरिक्, ३ अनुष्टुप् ।

[५] अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै 1
सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः 2
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ३ (१३१)

(४३) मन्युशमनम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः (परस्परचित्तैकीकरणकामः) । मन्युशमनम् । अनुष्टुप् ।

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते 1
अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते 2
वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यं नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ३ (१३४)

(४४) रोगनाशनम् ।

१-३ विश्वामित्रः । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्रिपदा महाबृहती ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव   १
शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम्   २
रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी   ३   (१३७)

(४५) दुःष्वप्ननाशनम् ।

१-३ अङ्गिराः प्रचेता, यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ पथ्यापङ्क्तिः, २ भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः   १
अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु   २
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पात्वंहसः   ३   (१४०)

(४६) दुःष्वप्ननाशनम् ।

१-३ अङ्गिराः प्रचेता यमश्च । दुःष्वप्ननाशनम् । १ विष्टारपङ्क्तिः, २ त्र्यवसाना शक्करीगर्भा पञ्चपदा जगती, ३ अनुष्टुप् ।

यो न जीवोऽसि न मृतो देवानाममृतगर्भोऽसि स्वप्न ।
वरुणानी ते माता यमः पितारुरुर्नामासि   १
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि   २
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि   ३   (१४३)

(४७) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-३ अङ्गिराः प्रचेताः । १ अग्निः, २ विश्वे देवाः, ३ सुधन्वा । त्रिष्टुप् ।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम   १
विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम   २
इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु   ३ (१४६)

(४८) स्वस्तिवाचनम् ।

१-३ अङ्गिराः, प्रचेताः । १ श्येनः, २ ऋभुः, ३ वृषा । उष्णिक् ।

श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा १
ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा   २
वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे । स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा   ३ (१४९)

(४९) अग्निस्तवः ।

१-३ गार्ग्यः । अग्निः । १ अनुष्टुप्, २ जगती, ३ विराड्जगती ।

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव   १
मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः   २
सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः   ३ (१५२)

(५०) अभययाचना ।

१-३ अथर्वा (अभयकामः) । अश्विनौ । १ विराड्जगती, २-३ पथ्यापङ्क्तिः ।

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय   १ (१५३)

तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित   २
तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि   ३   (१५५)

(५१) एनोनाशनम् ।

१-३ शन्तातिः । आपः, ३ वरुणः । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा   १
आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि   २
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति ।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः   ३   (१५८)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[इति त्रयोदशः प्रपाठकः ॥१३॥]

(५२) भैषज्यम् ।

१-३ भागलिः । १ सूर्यः, २ गावः, ३ भेषजम् । अनुष्टुप् ।

[अथ चतुर्दशः प्रपाठकः ॥१४॥]

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन् । आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा   १
[६] नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत । न्यूर्मयो नदीनां न्यदृष्टा अलिप्सत   २
आयुर्ददं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् । आभारिषं विश्वभेषजीमस्यादृष्टान् नि शमयत् ३
(१६१)

(५३) सर्वतो रक्षणम् ।

१-३ बृहच्छुक्रः । १ द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः, सविता, १ भगः, २ वैश्वानरः, ३ त्वष्टा । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च   १
पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा   २   (१६३)

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद् विरिष्टम्   ३   (१६४)

(५४) अमित्रदम्भनम् ।

१-३ ब्रह्मा । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये । अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् १
अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम्   २
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ३(१६७)

(५५) सौमनस्यम् ।

१-३ ब्रह्मा । १ विश्वे देवाः, २-३ रुद्रः । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे   १
ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम   २
इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम   ३   (१७०)

(५६) सर्पेभ्यो रक्षणम् ।

१-३ शन्तातिः । १ विश्वे देवाः, २-३ रुद्रः । १ उष्णिग्गर्भा पथ्यापङ्क्तिः, २ अनुष्टुप्, ३ निचृत् ।

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् ।
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः   १
नमोऽस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये ।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः   २
सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू ।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्नाह आस्यम्   ३   (१७३)

(५७) जलचिकित्सा ।

१-३ शन्तातिः । रुद्रः । १-२ अनुष्टुप्, ३ पथ्याबृहती ।

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत्   १   (१७४)

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत ।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे २
शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ३ (१७६)

(५८) यशःप्राप्तिः ।

१-३ अथर्वा (यशस्कामः) । बृहस्पतिः, १-२ इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता; ३ अग्निः, इन्द्रः, सोमः ।
१ जगती, २ प्रस्तारपङ्क्तिः, ३ अनुष्टुप् ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम् १
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम २
यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ३ (१७९)

(५९) ओषधिः ।

१-३ अथर्वा । रुद्रः, अरुन्धती ओषधिः । अनुष्टुप् ।

अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे १
शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती ।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् २
विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम् ।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ३ (१८२)

(६०) पतिलाभः ।

१-३ अथर्वा । अर्यमा । अनुष्टुप् ।

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्रुवै पतिमुत जायामजानये १
अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती ।
अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति २
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम् ।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ३ (१८५)

(६१) विश्वस्रष्टा ।

१-३ अथर्वा । रुद्रः । १ त्रिष्टुप्, २-३ भुरिक् ।

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् १
अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च २
अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूँरजनयं सप्त सिन्धून् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ३ (१८८)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

(६२) पावमानम् ।

१-३ अथर्वा । रुद्रः, वैश्वानरः, वातः, द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

[७] वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् १
वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् २
वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ३ (१९१)

(६३) वर्चोबलप्राप्तिः ।

१-४ द्रुह्वणः । १ निर्ऋतिः, २ यमः, ३ मृत्युः, ४ अग्निः । १-३ जगती, २ अतिजगतीगर्भा, ४ अनुष्टुप् ।

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् ।
तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः १
नमोऽस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे २
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ३
संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ४ (१९५)

(६४) सांमनस्यम् ।

१-३ अथर्वा । सांमनस्यम्, १ विश्वे देवाः । अनुष्टुप्, (२ त्रिष्टुप्) ।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते १
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् ।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् २
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ३ (१९८)

(६५) शत्रुनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । (चन्द्रमाः), इन्द्रः, पराशरः । अनुष्टुप्, १ पथ्यापङ्क्तिः ।

अव मन्युरवायताव बाहू मनोयुजा ।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्ममर्दयाधा नो रयिमा कृधि १
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् २
इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ३ (२०१)

(६६) शत्रुनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः १
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोऽद्य पराशरीत् २
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ३ (२०४)

(६७) शत्रुनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् १ (२०५)

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाण इवाहयः । तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् २
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ३ (२०७)

(६८) वपनम् ।

१-३ अथर्वा । १ सविता, आदित्याः, रुद्राः, वसवः; २ अदितिः, आपः, प्रजापतिः; ३ सविता, सोमः, वरुणः । १ पुरोविराडतिशाक्करगर्भा चतुष्पदा जगती, २ अनुष्टुप्, ३ अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः १
अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे २
येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ३ (२१०)

(६९) वर्चःप्राप्तिः ।

१-३ अथर्वा । बृहस्पतिः, अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः । सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि १
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती । यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु २
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः । तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ३ (२१३)

(७०) अघ्न्या ।

१-३ काङ्कायनः । अघ्न्या । जगती ।

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् १
यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् २
यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि ।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः ।
एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ३ (२१६)

(७१) अन्नम् ।

१-३ ब्रह्मा । अग्निः, ३ वैश्वानरः, देवाः । जगती, ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु १
यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु २
यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ३ (२१९)

(७२) वाजीकरणम् ।

१-३ अथर्वाङ्गिराः । शेपोऽर्कः । १ जगती, २ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् ।

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया ।
एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु १
यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः २
यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ३ (२२२)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

(७३) सांमनस्यम् ।

१-३ अथर्वा । सांमनस्यम्, वरुणसोमाग्निबृहस्पतिवसवः, ३ वास्तोष्पतिः । १, ३ भुरिक्, २ त्रिष्टुप् ।

[८] एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः १
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु २
इहैव स्त माप याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ३ (२२५)

(७४) सांमनस्यम् ।

१-३ अथर्वा । सांमनस्यम्, नाना देवताः, त्रिणामा । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् १
संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः २
यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ३ (२२८)

(७५) सपत्नक्षयणम् ।

१-३ कबन्धः । इन्द्रः । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा जगती ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति । नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् १
परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा । यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः २
एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ३ (२३१)

(७६) आयुष्यम् ।

१-४ कबन्धः । सान्तपनाग्निः । अनुष्टुप्, ३ ककुम्मती ।

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि १
अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः २
यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ३
नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति । अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे ४ (२३५)

(७७) प्रतिष्ठापनम् ।

१-३ कबन्धः । जातवेदाः । अनुष्टुप् ।

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिव्यस्थाद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् १
य उदानट् परायणं य उदानण् न्यायनम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे २
जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ३ (२३८)

(७८) दम्पत्यो रयिप्राप्तये प्रार्थना ।

१-३ अथर्वा । १-२ चन्द्रमाः, ३ त्वष्टा । अनुष्टुप् ।

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् १
अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ २
त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम् ।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ३ (२४१)

(७९) ऊर्जःप्राप्तिः ।

१-३ अथर्वा । संस्फानम् । गायत्री, ३ त्रिपदा प्राजापत्या गायत्री ।

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु । असमातिं गृहेषु नः १
त्वं नो नभसस्पत ऊर्जं गृहेषु धारय । आ पुष्टमेत्वा वसु २
देव संस्फान सहस्रापोषस्येशिषे ।
तस्य नो रास्व तस्य नो धेहि तस्य ते भक्तिवांसः स्याम ३ (२४४)

(८०) अरिष्टक्षयणम् ।

१-३ अथर्वा । चन्द्रमाः । १ भुरिक्, २ अनुष्टुप्, ३ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम १
ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेऽस्मा अरिष्टतातये २
अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ३ (२४७)

(८१) गर्भाधानम् ।

१-३ अथर्वा । आदित्यः, ३ त्वष्टा । अनुष्टुप् ।

यन्तासि यच्छसे हस्तावप रक्षांसि सेधसि । प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो अभूदयम् १
परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय धातवे । मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे २
यं परिहस्तमबिभरदितिः पुत्रकाम्या । त्वष्टा तमस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं जनादिति ३ (२५०)

(८२) जायाकामना ।

१-३ भगः । इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः १
येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा । तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति २
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः । तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ३ (२५३)

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥८॥

(८३) भैषज्यम् ।

१-४ भगः । १ सूर्यः, चन्द्रमाः, २ रोहिणी, ३ रामायणी । अनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ।

[९] अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोऽपोच्छतु १
एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन २
असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ३
वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ४ (२५७)

(८४) निर्ऋतिमोचनम् ।

१-४ भगः । निर्ऋतिः । १ भुरिग्जगती, २ त्रिपदार्षी बृहती, ३ जगती, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् (जगती) ।

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः १
भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा २
एवो ष्वस्मन्निर्ऋतेऽनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ३
अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ४ (२६१)

(८५) यक्ष्मनाशनम् ।

१-३ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः । यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् १
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च । देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे २
यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः । एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ३ (२६४)

(८६) वृषकामना ।

१-३ अथर्वा । एकवृषः । अनुष्टुप् ।

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् । वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव १
समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी । चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव २
सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम् । देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव ३ (२६७)

(८७) राज्ञः संवरणम् ।

१-३ अथर्वा । ध्रुवः । अनुष्टुप् ।

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रशत् १
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् ।
इन्द्रेवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय २
इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ३ (२७०)

(८८) ध्रुवो राजा ।

१-३ अथर्वा । ध्रुवः । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् १
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् २
ध्रुवोऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ्छत्रूयतोऽधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ३ (२७३)

(८९) प्रीतिसंजननम् ।

१-३ अथर्वा । (रुद्रः) १ सोमः, २ वातः, ३ मित्रावरुणौ । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि १
शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः २
मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ३ (२७६)

(९०) इषुनिष्कासनम् ।

१-३ अथर्वा । रुद्रः । अनुष्टुप्, ३ आर्षी भुरिगुष्णिक् ।

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च । इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि १
यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः । तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि २
नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै । नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ३(२७९)

(९१) यक्ष्मनाशनम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, ३ आपः । अनुष्टुप् ।

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः । तेना ते तन्वो३ रपोऽपाचीनमप व्यये १
न्य१ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः । नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः २
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ३(२८२)

(९२) वाजी ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः, वाजी । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु १
जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वात उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः २
तनूष्टे वाजिन् तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ३ (२८५)

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥९॥

(९३) स्वस्त्ययनम् ।

१-३ शन्तातिः । रुद्रः, १ यमः, मृत्युः, शर्वः, २ भवः, शर्वः, ३ विश्वे देवाः, मरुतः, अग्नीषोमौ, वरुणः, वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।

[१०] यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् १
मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मदघविषा नयन्तु २
त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ३ (२८८)

(९४) सांमनस्यम् ।

१-३ अथर्वाङ्गिराः । सरस्वती । अनुष्टुप्, २ विराड् जगती ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि १
अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत ।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत २
ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती ।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च ऋध्यास्मेदं सरस्वति ३ (२९१)

(९५) कुष्ठौषधिः ।

१-३ भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत १
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत २
गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत । गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ३ (२९४)

(९६) चिकित्सा ।

१-३ भृग्वङ्गिराः । वनस्पतिः, ३ सोमः । अनुष्टुप्, ३ त्रिपादविराण्नाम गायत्री ।

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः १
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् २ (२९६)

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ३ (२९७)

(९७) अभिभूर्वीरः ।

१-३ अथर्वा । १, ३ देवाः, २ मित्रावरुणौ । १ त्रिष्टुप्, २ जगती, ३ भुरिक् ।

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः १
स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम् ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् २
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ३ (३००)

(९८) अजरं क्षत्रम् ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, २ बृहतीगर्भास्तारपङ्क्तिः ।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह १
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु २
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ३ (३०३)

(९९) संग्रामजयः ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः, सोमः, सविता च । अनुष्टुप्, ३ भुरिग्बृहती (सौम्या सावित्री)।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे । ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् १
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते । इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः २
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ३ (३०६)

(१००) विषदूषणम् ।

१-३ गरुत्मान् । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात् ।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् १ (३०७)

यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम्। तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् २
असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा। दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ३ (३०९)

(१०१) वाजीकरणम्।

१-३ अथर्वाङ्गिराः। ब्रह्मणस्पतिः। अनुष्टुप्।

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च। यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि १
येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्। तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः २
आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि। क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ३ (३१२)

(१०२) अभिसांमनस्यम्।

१-३ जमदग्निः। अश्विनौ। अनुष्टुप्।

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते। एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् १
आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव। रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः २
आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च। तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद् भरे ३ (३१५)

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥१०॥

[इति चतुर्दशः प्रपाठकः ॥१४॥]

(१०३) शत्रुनाशनम्।

१-३ उच्छोचनः। इन्द्राग्नी, १ बृहस्पतिः, सविता, मित्रः, अर्यमा, भगः, अश्विनौ, २-३ इन्द्रः, अग्निः। अनुष्टुप्।

[अथ पञ्चदशः प्रपाठकः ॥१५॥]

[११] संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत्।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना १
सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान्।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् २
अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ३ (३१८)

(१०४) शत्रुनाशनम्।

१-३ प्रशोचनः। इन्द्राग्नी, ३ इन्द्राग्नी, सोम इन्द्रश्च। अनुष्टुप्।

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि। अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् १
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम्। अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् २ (३२०)

ऐनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ३ (३२१)

(१०५) कासशमनम्।

१-३ उन्मोचनः। कासा। अनुष्टुप्।

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत मनसोऽनु प्रवाय्यम् १
यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् २
यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत्। एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ३ (३२४)

(१०६) दूर्वाशाला।

१-३ प्रमोचनः। दूर्वाशाला। अनुष्टुप्।

आयने ते परायणे दूर्वा रोहतु पुष्पिणीः। उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् १
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्। मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि २
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि। शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ३ (३२७)

(१०७) विश्वजित्।

१-४ शन्तातिः। विश्वजित्। अनुष्टुप्।

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् १
त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् २
विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि।
कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ३
कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि।
सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ४ (३३१)

(१०८) मेधावर्धनम्।

१-५ शौनकः। मेधा, ४ अग्निः। अनुष्टुप्, २ उरोबृहती, ३ पथ्याबृहती।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि। त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया १
मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्। प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे २ (३३३)

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः। ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ३
यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ४
मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यंदिनं परि। मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ५ (३३६)

(१०९) पिप्पली-भैषज्यम्।

१-३ अथर्वा। पिप्पली-भैषज्यं, आयुः। अनुष्टुप्।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३ तातिविद्धभेषजी। तां देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् १
पिप्पल्य१ः समवदन्तायतीर्जननादधि। यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः २
असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः। वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ३ (३३९)

(११०) दीर्घायुःप्राप्तिः।

१-३ अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्, १ पङ्क्तिः।

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १
ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २
व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ३ (३४२)

(१११) उन्मत्ततामोचनम्।

१-४ अथर्वा। अग्निः। अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्।

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति १
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम्। कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि २
देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि। कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति ३
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः। पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽससि ४ (३४६)

(११२) पाशमोचनम्।

१-३ अथर्वा। अग्निः। त्रिष्टुप्।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे। १ (३४७)

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन्।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् २
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ३ (३४९)

(११३) पापनाशनम्।

१-३ अथर्वा। पूषा। त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः।

त्रिते देवा अमृजतैतदेनस्त्रित एनन्मनुष्येषु ममृजे।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु १
मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान्।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व २
द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ३ (३५२)

॥ इत्येकादशोऽनुवाकः ॥११॥

(११४) उन्मोचनम्।

१-३ ब्रह्मा। विश्वे देवाः। अनुष्टुप्।

[१२] यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत १
ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम २
मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ३ (३५५)

(११५) पापमोचनम्।

१-३ ब्रह्मा। विश्वे देवाः। अनुष्टुप्।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः १
यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्योऽकरम्।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम्। २
द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ३ (३५८)

(११६) मधुमदनम् ।

१-३ जाटिकायनः । विवस्वान् । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् १
वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे २
यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ३ (३६१)

(११७) आनृण्यम् ।

१-३ कौशिकः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् १
इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्यं१ यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि २
अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ३ (३६४)

(११८) आनृण्यम् ।

१-३ कौशिकः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः १
उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् २
यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ३ (३६७)

(११९) आनृण्यम् ।

१-३ कौशिकः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् १ (३६८)

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम २
वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ३ (३७०)

(१२०) सुकृतस्य लोकः ।

१-३ कौशिकः । अन्तरिक्षं, पृथिवी, द्यौः, अग्निः । १ जगती, २ पङ्क्तिः, ३ त्रिष्टुप् ।

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् १
भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् २
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः१ स्वायाः ।
अश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ३ (३७३)

(१२१) सुकृतलोकप्राप्तिः ।

१-४ कौशिकः । अग्निः, ३ तारके । १-२ त्रिष्टुप्, ३-४ अनुष्टुप् ।

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् १
यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २
उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके ।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ३
वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ४ (३७७)

(१२२) तृतीयो नाकः ।

१-५ भृगुः । विश्वकर्मा । त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य ।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम १
ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव २ (३७९)

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ३
यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ४
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ५ (३८२)

(१२३) सौमनसम् ।

१-५ भृगुः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा साम्न्यनुष्टुप्, ४ एकावसाना द्विपदा प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप् ।

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् १
जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै २
देवाः पितरः पितरो देवाः । यो अस्मि सो अस्मि ३
स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ४
नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु ।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ५ (३८७)

(१२४) निर्ऋत्यपस्तरणम् ।

१-३ अथर्वा । दिव्या आपः । त्रिष्टुप् ।

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन १
यदि वृक्षादभ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः २
अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।
सर्वा पवित्रा वितताध्यस्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ३ (३९०)

॥ इति द्वादशोऽनुवाकः ॥१२॥

(१२५) वीरस्य रथः ।

१-३ अथर्वा । वनस्पतिः । त्रिष्टुप्, २ जगती ।

[१३] वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि १
दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज २
इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ३ (३९३)

(१२६) दुन्दुभिः ।

१-३ अथर्वा । दुन्दुभिः । भुरिक् त्रिष्टुप्, ३ पुरोबृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् १
आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व २
प्रामूं जयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु ।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ३ (३९६)

(१२७) यक्ष्मनाशनम् ।

१-३ भृग्वङ्गिराः । यक्ष्मनाशनम्, वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते । विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन १
यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपश्रितौ । वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् २
यो अङ्ग्यो यः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः । वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।
परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ३ (३९९)

(१२८) राजा ।

१-४ अङ्गिराः । सोमः, शकधूमः । अनुष्टुप् ।

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत । भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति १
भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः । भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः २
अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् । भद्राहमस्मभ्यं राजञ्छकधूम त्वं कृधि ३
यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा । तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ४ (४०३)

(१२९) भगप्राप्तिः ।

१-३ अथर्वाङ्गिराः । भगः । अनुष्टुप् ।

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना । कृणोमि भगिनं माप द्रान्त्वरातयः १
येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः २
यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः । तेन मा भगिनं कृण्वप द्रान्त्वरातयः ३ (४०६)

(१३०) स्मरः ।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । स्मरः । अनुष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद्बृहती ।

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु १
असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु २
यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ३
उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ४ (४१०)

(१३१) स्मरः ।

१-३ अथर्वाङ्गिराः । स्मरः । अनुष्टुप् ।

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो३ नि तिरामि ते । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु १
अनुमतेऽन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः । देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु २
यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम् । ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ३ (४१३)

(१३२) स्मरः ।

१-५ अथर्वाङ्गिराः । स्मरः । अनुष्टुप्, १ त्रिपदा अनुष्टुप्; २, ४, ५ बृहती; ३ भुरिक् ।

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा १
यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा २
यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ३
यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ४ (४१७)

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ५ (४१८)

(१३३) मेखलाबन्धनम् ।

१-५ अगस्त्यः । मेखला । १ भुरिक् २, ५ अनुष्टुप्; ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स स उ नो वि मुञ्चात् १
आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले २
मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ३
श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ४
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ५ (४२३)

(१३४) शत्रुनाशनम् ।

१-३ शुक्रः । वज्रः । १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप्, ३ भुरिक् त्रिपदा गायत्री ।

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा वृत्रस्येव शचीपतिः १
अधरोऽधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत् सृपत् । वज्रेणावहतः शयाम् २
यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ३ (४२६)

(१३५) बलप्राप्तिः ।

१-३ शुक्रः । वज्रः । अनुष्टुप् ।

यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमा ददे । स्कन्धानमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः १
यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः । प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् २
यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः । प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ३ (४२९)

(१३६) केशदृंहणम् ।

१-३ वीतहव्यः । नितत्नी वनस्पतिः । अनुष्टुप्, २ एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे । तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि १
दृंह प्रत्नान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि २
यस्ते केशोऽवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते । इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ३ (४३२)

(१३७) केशवर्धनम् ।

१-३ वीतहव्यः । वनस्पतिः । अनुष्टुप् ।

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् । तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः १
अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि २
दृंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे । केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ३ (४३५)

(१३८) क्लीबत्वम् ।

१-५ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्तिः ।

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे । इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि १
क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि । अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ २
क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ३
ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस्तिष्ठति वृष्ण्यम् । ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः ४
यथा नडं कशिपुने स्त्रियो भिन्दन्त्यश्मना । एवा भिनद्मि ते शेपोऽमुष्या अधि मुष्कयोः ५ (४४०)

(१३९) सौभाग्यवर्धनम् ।

१-५ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, १ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् जगती ।

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम । शतं तव प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते १
शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् । अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर २
संवननी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद । अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि ३
यथोदकमपपुषोऽपशुष्यत्यास्यम् । एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ४
यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः । एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ५ (४४५)

(१४०) सुमङ्गलौ दन्तौ ।

१-३ अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, दन्ताः । (अनुष्टुप् ?) १ उरोबृहती, २ उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्, ३ आस्तारपङ्क्तिः ।

यौ व्याघ्राववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं च ।
यौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः १
व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम् ।
एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च २
उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्व१ः परैतु दन्तौ मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ३ (४४८)

(१४१) गोकर्णयोर्लक्ष्यकरणम् ।

१-३ विश्वामित्रः । अश्विनौ । अनुष्टुप् ।

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् । इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु १
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि । अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु २
यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत । एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ३ (४५१)

(१४२) अन्नसमृद्धिः ।

१-३ विश्वामित्रः । वायुः । अनुष्टुप् ।

उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव । मृणीहि विश्वा पात्राणि मा त्वा दिव्याशनिर्वधीत् १
आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि । तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः २
अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्तु राशयः । पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ३ (४५४)

॥ इति त्रयोदशोऽनुवाकः ॥१३॥

[इति पञ्चदशः प्रपाठकः ॥१५॥]

॥ इति षष्ठं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या-

पञ्चमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	१२९०
षष्ठकाण्डस्य...	४५४
सर्वयोगः	१७४४

सप्तमं काण्डम् ।

(१) आत्मा ।

१-२ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप्, २ विराड् जगती ।

[अथ षोडशः प्रपाठकः ॥१६॥]

[१] धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः १
स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् २ (२)

(२) आत्मा ।

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः १ (३)

(३) आत्मा ।

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुर्वराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत १ (४)

(४) विश्वप्राणः ।

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । वायुः । त्रिष्टुप् ।

एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च १ (५)

(५) आत्मा ।

१-५ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । आत्मा । त्रिष्टुप्, ३ पङ्क्तिः, ४ अनुष्टुप् ।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः १
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु २ (७)

यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ३
यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे ४
मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ५ (१०)

[६ (६-७)] अदितिः ।

१-४ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । अदितिः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्, ३-४ विराड् जगती ।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १
महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् २ (६)
सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ३
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ४ (७) (१४)

[७ (८)] आदित्याः ।

१ अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकामः) । अदितिः । आर्षी जगती ।

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमव देवानां बृहतामनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन १ (१५)

[८ (९)] शत्रुनाशनम् ।

१ उपरिबभ्रवः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् १ (१६)

[९ (१०)] स्वस्तिदा पूषा ।

१-४ उपरिबभ्रवः । पूषा । त्रिष्टुप्, ३ त्रिपदा आर्षी गायत्री, ४ अनुष्टुप् ।

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् १ (१७)

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् २
पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ३
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ४ (२०)

[१० (११)] सरस्वती ।

१ शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः १ (२१)

[११ (१२)] सरस्वती ।

१ शौनकः । सरस्वती । त्रिष्टुप् ।

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य १ (२२)

[१२ (१३)] राष्ट्रसभा ।

१-४ शौनकः । सभा, १-२ सभा, पितरः, ३ इन्द्रः, ४ मनः । अनुष्टुप्, १ भुरिक् त्रिष्टुप् ।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु १
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः २
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ३
यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ४ (२६)

[१३ (१४)] शत्रुनाशनम् ।

१-२ अथर्वा (द्विषो वर्चो हर्तुकामः) । सूर्यः । अनुष्टुप् ।

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे । एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे १
यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ । उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे २ (२८)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

[१४ (१५)] सविता ।

१-४ अथर्वा । सविता । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ जगती ।

[२] अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् १
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः २
सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै ।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः ३
दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ४ (३२)

[१५ (१६)] सविता ।

१ भृगुः । सविता । त्रिष्टुप् ।

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय १ (३३)

[१६ (१७)] सविता ।

१ भृगुः । सविता । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः १ (३४)

[१७ (१८)] द्रविणार्थं प्रार्थना ।

१-४ भृगुः । धाता, सविता, ४ अग्निः, त्वष्टा, विष्णुः । १ त्रिपदा आर्षी गायत्री, २ अनुष्टुप्, ३-४ त्रिष्टुप् ।

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः । स नः पूर्णेन यच्छतु १
धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम् ।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः २
धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ३
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ४ (३८)

[१८ (१९)] वृष्टिः ।
१-२ अथर्वा । पृथिवी, पर्जन्यः । १ चतुष्पदा भुरिगुष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धी३दं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या दृतिम् १
न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः ।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् २ (४०)

[१९ (२०)] प्रजाः ।
१ ब्रह्मा । प्रजापतिः । जगती ।

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु १ (४१)

[२० (२१)] अनुमतिः ।
१-६ अथर्वा । अनुमतिः । १-२ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप्, ४ भुरिक्, ५ जगती, ६ अतिशाक्वरगर्भा जगती ।

अन्वद्य नोऽनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम १
अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः २
अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्तं रयिमक्षीयमाणम् ।
तस्य वयं हेडसि मापि भूम सुमृडीके अस्य सुमतौ स्याम ३
यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीतेऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ४
एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम् ।
भद्रा ह्यस्याः प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा ५
अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ६ (४७)

[२१ (२२)] एको विभुः ।
१ ब्रह्मा । आत्मा । शक्वरी विराड्गर्भा जगती ।

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु १ (४८)

[२२ (२३)] ज्योतिः ।
१-२ ब्रह्मा । ब्रध्नः । १ द्विपदा एकावसाना विराड्गायत्री, २ त्रिपदा अनुष्टुप् ।

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि १
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन् ।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः २ (५०)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

[२३ (२४)] दुःष्वप्ननाशनम् ।
१ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

[३] दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि १ (५१)

[२४ (२५)] सविता ।
१ ब्रह्मा । इन्द्रः, अग्निः, विश्वे देवाः, मरुतः, सविता, प्रजापतिः अनुमतिः । त्रिष्टुप् ।

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।
तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् १ (५२)

[२५ (२६)] विष्णुः ।
१-२ मेधातिथिः । विष्णुः, वरुणः । त्रिष्टुप् ।

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा ।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः १
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः २ (५४)

[२६ (२७)] विष्णुः ।
१-८ मेधातिथिः । विष्णुः । १, ८ त्रिष्टुप्, २ त्रिपदा विराड्गायत्री, ३ त्र्यवसाना षट्पदा विराट् शक्वरी, ४-७ गायत्री ।

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः १
प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः २ (५६)

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ३
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदा । समूढमस्य पांसुरे ४
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । इतो धर्माणि धारयन् ५
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ६
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ७
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ८ (६१)

[२७ (२८)] इडा ।
१ मेधातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् ।

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी १ (६२)

[२८ (२९)] स्वस्ति ।
१ मेधातिथिः । वेदः । त्रिष्टुप् ।

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् १ (६४)

[२९ (३०)] अग्नाविष्णू ।
१-२ मेधातिथिः । अग्नाविष्णू । त्रिष्टुप् ।

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् १
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् २ (६६)

[३० (३१)] अञ्जनम् ।
१ भृग्वङ्गिराः । द्यावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च । बृहती ।

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम् ।
स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् १ (६७)

[३१ (३२)] शत्रुनाशनम् ।
१ भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु १ (६८)

[३२ (३३)] दीर्घायुः ।
१ ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे १ (६९)

[३३ (३४)] दीर्घायुः ।
१ ब्रह्मा । मरुतः, पूषा, बृहस्पतिः, अग्निः । पथ्यापङ्क्तिः ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे १ (७०)

[३४ (३५)] शत्रुनाशनम् ।
१ अथर्वा । जातवेदाः । जगती ।

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागसस्ते वयमदितये स्याम १ (७१)

[३५ (३६)] सपत्नीनाशनम् ।
१-३ अथर्वा । जातवेदाः । १ जगती, २ अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः १
इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम् २
परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि ३ (७४)

[३६ (३७)] अञ्जनम् ।
१ अथर्वा । अक्षि, मनः । अनुष्टुप् ।

अक्ष्यौ३ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति १ (७५)

[३७ (३८)] वासः ।
१ अथर्वा । वासः । अनुष्टुप् ।

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा ।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन १ (७६)

[३८ (३९)] केवलः पतिः ।
१-५ अथर्वा । वनस्पतिः । अनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक् ।

इदं खनामि भेषजं मांपश्यमभिरोरुदम् । परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम् १
येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि । तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया २
प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् । प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ३
अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद । ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ४
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः । इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ५ (८१)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

[३९ (४०)] आपः ।
१ प्रस्कण्वः । आपः, सुपर्णः, वृषभः । त्रिष्टुप् ।

[४] दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति १ (८२)

[४० (४१)] सरस्वान् ।
१-२ प्रस्कण्वः । सरस्वान् । १ भुरिक्, २ त्रिष्टुप् ।

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः ।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे १
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् २ (८४)

[४१ (४२)] सुपर्णः ।
१-२ प्रस्कण्वः । श्येनः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

अति धन्वान्यत्यपस्ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् १
श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः ।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् २ (८६)

[४२ (४३)] पापमोचनम् ।
१-२ प्रस्कण्वः । सोमारुद्रौ । त्रिष्टुप् ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् १
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् २ (८८)

[४३ (४४)] वाक् ।
१ प्रस्कण्वः । वाक् । त्रिष्टुप् ।

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् १ (८९)

[४४ (४५)] इन्द्राविष्णू ।
१ प्रस्कण्वः । इन्द्रः, विष्णुः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् १ (९०)

[४५ (४६-४७)] ईर्ष्यानिवारणम् ।
१-२ प्रस्कण्वः, २ अथर्वा । ईर्ष्यापनयनं, भेषजम् । अनुष्टुप् ।

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम् । दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् १
अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् । एतामेतस्येर्ष्यामुद्नाग्निमिव शमय २ (९१)

[४६ (४८)] सिनीवाली ।
१-३ अथर्वा । सिनीवाली । अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः १
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी । तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन २
या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ३ (९५)

[४७ (४९)] कुहूः ।
१-२ अथर्वा । कुहूः । १ जगती, २ त्रिष्टुप् ।

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् १ (९६)

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु २ (९७)

[४८ (५०)] राका ।
१-२ अथर्वा । राका । जगती ।

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् १
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा २ (९९)

[४९ (५१)] देवपत्न्यः ।
१-२ अथर्वा । देवपत्नीः । १ आर्षी जगती, २ चतुष्पदा पङ्क्तिः ।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु १
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् २ (१०१)

[५० (५२)] विजयः ।
१-९ अङ्गिराः (कितववधकामः) । इन्द्रः । अनुष्टुप्, ३, ७ त्रिष्टुप्, ४ जगती, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ।

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति । एवाहमद्य कितवानक्षैर्बध्यासमप्रति १
तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् । समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम २
ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ३
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४
अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।
अवि वृको यथा मथदेवा मथ्नामि ते कृतम् ५
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ६
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ७ (१०८)

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ८
अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ९ (११०)

[५१ (५३)] परिपाणम् ।
१ अङ्गिराः । इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु १ (१११)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

[५२ (५४)] सांमनस्यम् ।
१-२ अथर्वा । सांमनस्यं, अश्विनौ । १ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती ।

[५] संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् १
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते २ (११३)

[५३ (५५)] दीर्घायुः ।
१-७ ब्रह्मा । आयुः, बृहस्पतिः अश्विनौ च । १-२ त्रिष्टुप्, ३ भुरिक्, ४ उष्णिग्गर्भार्षी पङ्क्तिः, ५-७ अनुष्टुप् ।

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः १
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः २
आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ३
मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु ४
प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् । अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ५
आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते । आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ६
उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ७ (११०)

[५४ (५६, ५७-१)] अध्यापकविघ्नशमनम् ।

(१-२) १ ब्रह्मा, २ भृगुः । १ ऋक्सामनी, २ इन्द्रः । अनुष्टुप् ।

ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते । एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः १
ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम् । एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते २ (१२२)

[५५ (५७-२)] मार्गस्वस्त्ययनम् ।

१ भृगुः । इन्द्रः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः । तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो १ (१२३)

[५६ (५८)] विषभैषज्यम् ।

१-८ अथर्वा । वृश्चिकादयः, २ वनस्पतिः, ४ ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, ४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः ।

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् । तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् १
इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुन्मधुला मधूः । सा विह्रुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी २
यतो दष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि । अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ३
अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।
तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ४
अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः । विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ५
न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः । अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ६
अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः । सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ७
य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च । आस्ये न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत् ८ (१३१)

[५७ (५९)] सरस्वती ।

१-२ वामदेवः । सरस्वती । जगती ।

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन १
सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि ।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः २ (१३३)

[५८ (६०)] अन्नम् ।

१-२ कौरुपथिः । इन्द्रावरुणौ । जगती, २ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये १ (१३४)

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् २ (१३५)

[५९ (६१)] शाप-मोचनम् ।

१ बादरायणिः । अरिनाशनम् । अनुष्टुप् ।

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु १ (१३६)

[इति षोडशः प्रपाठकः ॥१६॥] ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[६० (६२)] रम्यं गृहम् ।

१-७ ब्रह्मा । गृहाः, वास्तोष्पतिः । अनुष्टुप्, १ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।

[अथ सप्तदशः प्रपाठकः ॥ १७ ॥]

[६] ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत् १
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः । पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः २
येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ३
उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः । अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ४
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः । अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ५
सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः । अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ६
इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत । ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ७
(१४३)

[६१ (६३)] तपः ।

१-२ अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः । प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः १
अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः । श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः २ (१४५)

[६२ (६४)] शत्रुनाशनम् ।

१ मरीचिः काश्यपः । अग्निः । जगती ।

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः १ (१४६)

[६३ (६५)] दुरितनाशनम् ।

१ मरीचिः काश्यपः । जातवेदाः । जगती ।

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः १ (१४७)

[६४ (६६)] पापमोचनम् ।

१-२ यमः । आपः, अग्निः, निर्ऋतिः । १ भुरिगनुष्टुप्, २ न्यङ्कुसारिणी बृहती ।

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः १
इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।
अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु २ (१४९)

[६५ (६७)] दुरितनाशनम् ।

१-३ शुक्रः । अपामार्गवीरुत् । अनुष्टुप् ।

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ । सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः १
यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया । त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे २
श्यावदता कुनखिना बण्डेन यत् सहासिम । अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ३ (१५२)

[६६ (६८)] ब्रह्म ।

१ ब्रह्मा । ब्रह्म । त्रिष्टुप् ।

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु १ (१५३)

[६७ (६९)] आत्मा ।

१ ब्रह्मा । आत्मा । पुरःपरोष्णिग्बृहती ।

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च । पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव १
(१५४)

[६८ (७०, ७१)] सरस्वती ।

१-३ शन्तातिः । सरस्वती । १ अनुष्टुप्, २ त्रिष्टुप्, ३ गायत्री ।

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः १
इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं यत् ।
इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम २
शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति । मा ते युयोम संदृशः ३ (१५७)

[६९ (७२)] सुखम् ।

१ शन्तातिः । सुखम् । पथ्यापङ्क्तिः ।

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु १ (१५८)

[७० (७३)] शत्रुदमनम् ।

१-५ अथर्वा । श्येनः, देवाः । १ त्रिष्टुप्, २ अतिजगतीगर्भा जगती, ३-५ अनुष्टुप्
(३ पुरःककुम्मती) ।

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य १
यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति २
अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव । आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ३
अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ४
अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् । अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेऽवधिषं हविः ५ (१६३)

[७१ (७४)] अग्निः ।

१ अथर्वा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः १ (१६४)

[७२ (७५, ७६)] इन्द्रः ।

१-३ अथर्वा । इन्द्रः । १ अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप् ।

उत् तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् । यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन १
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् २
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ३ (१६७)

[७३ (७७)] घर्मः ।

१-११ अथर्वा । घर्मः, अश्विनौ । त्रिष्टुप्, १, ४, ६ जगती, २ पथ्याबृहती ।

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः १ (१६८)

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः २
स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ३
यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् ।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ४
तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ५
उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनुप्रयाणमुषसो वि राजति ६
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ७
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ८
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ९
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि १०
सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ११ (१७८)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

[७४ (७८)] गण्डमालाचिकित्सा ।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः, ४ जातवेदाः । अनुष्टुप् ।

[७] अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम । मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् १
विध्याम्यासां प्रथमां विध्याम्युत मध्यमाम् । इदं जघन्यामासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव २
त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि त ईर्ष्याममीमदम् । अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ३
व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ४ (१८९)

[७५ (७९)] अघ्न्याः ।

१-२ उपरिबभ्रवः । अघ्न्याः । १ त्रिष्टुप्, २ त्र्यवसाना पञ्चपदा भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः ।

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु १
पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः । उप मा देवीर्देवेभिरेत ।
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत २ (१८४)

[७६ (८०, ८१)] गण्डमालाचिकित्सा ।

१-६ अथर्वा । १, २ अपचिद्भैषज्यं, ३-६ जायान्यः, इन्द्रः । अनुष्टुप्, १ विराट्, २ परोष्णिक्, ५ भुरिगनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः । सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः १
या ग्रैव्या अपचितोऽथो या उपपक्ष्याः । विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः २
यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति । निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ३
पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम् । तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ४
विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे । कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ५
धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ६ (१९०)

[७७ (८२)] शत्रुनाशनम् ।

१-३ अङ्गिराः । मरुतः । १ त्रिपदा गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । अस्माकोती रिशादसः १
यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् २
संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः ।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ३ (१९३)

[७८ (८३)] बन्धमोचनम् ।

१-२ अथर्वा । अग्निः । १ परोष्णिक्, २ त्रिष्टुप् ।

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् । इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने १
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।
दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु

[७९ (८४)] अमावास्या ।

१-४ अथर्वा । अमावास्या । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् १
अहमेवास्म्यमावास्या३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे २
आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ३
अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ४ (१९९)

[८० (८५)] पूर्णिमा ।

१-४ अथर्वा । पौर्णमासी, ३ प्रजापतिः । त्रिष्टुप्, २ अनुष्टुप् ।

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम १
वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् २
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ३
पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ४ (२०३)

[८१ (८६)] सूर्याचन्द्रमसौ ।

१-६ अथर्वा । सावित्री, सूर्यः, चन्द्रमाः । त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्, ४ आस्तारपङ्क्तिः, ५ सम्राडास्तारपङ्क्तिः ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः १
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः २ (२०५)

सोमस्यांशो युधां पतेऽनूनो नाम वा असि ।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च ३
दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ४
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व ।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ५
यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति ।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ६ (२०९)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

[८२ (८७)] अग्निः ।

१-६ शौनकः (संपत्कामः) । अग्निः । त्रिष्टुप्, २ ककुम्मती बृहती, ३ जगती ।

[८] अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् १
मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् २
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ३
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ४
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान ५
घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ६ (२१५)

[८३ (८८)] पाशमोचनम् ।

१-४ शुनःशेपः । वरुणः । अनुष्टुप्, २ पथ्यापङ्क्तिः, ३ त्रिष्टुप्, ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु १ (२१६)

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः ।
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः २
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ३
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ४ (२२१)

[८४ (८९)] क्षत्रभृदग्निः ।

१-३ भृगुः । १ जातवेदा अग्निः, २-३ इन्द्रः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् १
इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् २
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ३ (२२२)

[८५ (९०)] अरिष्टनेमिः ।

१ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । तार्क्ष्यः । त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम १ (२२३)

[८६ (९१)] त्राता इन्द्रः ।

१ अथर्वा (स्वस्त्ययनकामः) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु १ (२२४)

[८७ (९२)] व्यापको देवः ।

१ अथर्वा । रुद्रः । जगती ।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये १ (२२५)

[८८ (९३)] सर्पविषनाशनम् ।

१ गरुत्मान् । तक्षकः । त्र्यवसाना बृहती ।

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि । विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः ।
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि १ (२२६)

[८९ (९४)] दिव्या आपः ।

१-४ सिन्धुद्वीपः । अग्निः । अनुष्टुप्, ४ त्रिपदा निचृत् परोष्णिक् ।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा १
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा । विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २
इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ३
एधोऽस्येधिषीय समिदसि समेधिषीय । तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ४ (२३०)

[९० (९५)] शत्रुबलनाशनम् ।

१-३ अङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः । १ गायत्री, २ विराट् पुरस्ताद् बृहती, ३ त्र्यवसाना षट्पदा भुरिग्जगती ।

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् । ओजो दासस्य दम्भय १
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहे । म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते २
यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः । अवस्थस्य क्नदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः
यदाततमव तत् तनु यदुत्ततं नि तत् तनु ३ (२३३)

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥८॥

[९१ (९६)] सुत्रामा इन्द्रः ।

१ अथर्वा । चन्द्रमाः (इन्द्रः ?) । त्रिष्टुप् ।

[९] इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम १ (२३४)

[९२ (९७)] सुत्रामा इन्द्रः ।

१ अथर्वा । चन्द्रमाः (इन्द्रः?) । त्रिष्टुप् ।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम १ (२३५)

[९३ (९८)] शत्रुनाशनम् ।

१ भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति १ (२३६)

[९४ (९९)] सांमनस्यम् ।

१ अथर्वा । सोमः । अनुष्टुप् ।

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि ।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् १ (२३७)

[९५ (१००)] शत्रुनाशनम् ।

१-३ कपिञ्जलः । गृध्रौ । अनुष्टुप्, २-३ भुरिक् ।

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः । उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः १
अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव । कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव २
आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत । अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभार ३ (२४०)

[९६ (१०१)] शत्रुनाशनम् ।

१ कपिञ्जलः । वयः । अनुष्टुप् ।

असदन् गावः सदनेऽपप्तद् वसतिं वयः ।
आस्थाने पर्वता अस्थुः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् १ (२४१)

[९७ (१०२)] यज्ञः ।

१-८ अथर्वा । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदार्षी भुरिग्गायत्री, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ त्रिपदा साम्नी भुरिग्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् १
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् २
यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ३
सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः ।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ४
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ५
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ६
वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ७
मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ८ (२४९)

[९८ (१०३)] हविः ।

१ अथर्वा । इन्द्रः, विश्वे देवाः । विराट् त्रिष्टुप् ।

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा १ (२५०)

[९९ (१०४)] वेदी ।

१ अथर्वा । वेदी । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम् ।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके १ (२५१)

[१०० (१०५)] दुःष्वप्ननाशनम् ।

१ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः १ (२५२)

[१०१ (१०६)] दुःष्वप्ननाशनम् ।

१ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । अनुष्टुप् ।

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा १ (२५३)

[१०२ (१०७)] आत्मनोऽहिंसनम् ।

१ प्रजापतिः । द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्, मृत्युः । विराट् पुरस्ताद् बृहती ।

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मा हिंसिषुरीश्वराः १ (२५४)

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥९॥

[१०३ (१०८)] क्षत्रियः ।

१ ब्रह्मा । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

[१०] को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन् ।
को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः १ (२५५)

[१०४ (१०९)] गौः ।

१ ब्रह्मा । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति १ (२५६)

[१०५ (११०)] दैव्यं वचः ।
१ अथर्वा । मन्त्रोक्ता । अनुष्टुप् ।

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह १ (२५७)

[१०६ (१११)] अमृतत्वम् ।
१ अथर्वा । जातवेदा वरुणश्च । बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ।

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः ।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः १ (२५८)

[१०७ (११२)] संतरणम् ।
१ भृगुः । सूर्यः आपः च । अनुष्टुप् ।

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शल्यमसिस्रसन् १ (२५९)

[१०८ (११३)] शत्रुनाशनम् ।
१-२ भृगुः । अग्निः । १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २ त्रिष्टुप् ।

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् १
यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः २ (२६१)

[१०९ (११४)] राष्ट्रभृतः ।
१-७ बादरायणिः । अग्निः । अनुष्टुप्, १ विराट् पुरस्ताद् बृहती, २, ३, ५-६ त्रिष्टुप् ।

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे १
घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या २
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ३
आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ४
यो नो द्युवे धनमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणं च ।
स नो देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ५ (२६६)

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्य१क्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ६
देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे ७ (२६८)

[११० (११५)] शत्रुनाशनम् ।
१-३ भृगुः । इन्द्राग्नी । १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् ।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति । उभा हि वृत्रहन्तमा १
याभ्यामजयन्त्स्व१रग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् २
उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ३ (२७१)

[१११ (११६)] आत्मा ।
१ ब्रह्मा । वृषभः । पराबृहती त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधान आत्मा देवानामुत मानुषाणाम् ।
इह प्रजा जनय यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्ते रमन्ताम् १ (२७२)

[११२ (११७)] पापनाशनम् ।
१-२ वरुणः । आपः, वरुणश्च । अनुष्टुप्, १ भुरिक् ।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते । आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः १
मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् २ (२७४)

[११३ (११८)] शत्रुनाशनम् ।
१-२ भार्गवः । तृष्टिका । १ विराडनुष्टुप्, २ शंकुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ।

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके । यथा कृतद्विष्टासोऽमुष्मै शेप्यावते १
तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि । परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव २ (२७६)

[११४ (११९)] शत्रुनाशनम् ।
१-२ भार्गवः । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे । आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे १
प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः । अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः २ (२७८)

[११५ (१२०)] पापलक्षणनाशनम् ।
१-४ अथर्वाङ्गिराः । सविता, जातवेदाः । अनुष्टुप्, २-३ त्रिष्टुप् ।

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि १
या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः २
एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा३ जनुषोऽधि जाताः ।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ३
एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ४ (२८२)

[११६ (१२१)] ज्वरनाशनम् ।
१-२ अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः । १ पुरोष्णिक्, २ एकावसाना द्विपदा आर्च्यनुष्टुप् ।

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे ।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने १
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्ववव्रतः २ (२८४)

[११७ (१२२)] शत्रुनिवारणम् ।
१ अथर्वाङ्गिराः । इन्द्रः । पथ्याबृहती ।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिद् वि यमन् विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि १ (२८५)

[११८ (१२३)] वर्मधारणम् ।
१ अथर्वाङ्गिराः । चन्द्रमाः, वरुणः, देवः । त्रिष्टुप् ।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु १ (२८६)

[इति सप्तदशः प्रपाठकः ॥१७॥] ॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥१०॥

॥ इति सप्तमं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

षष्ठकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	१७४४
सप्तमकाण्डस्य ...	२८६
सर्वयोगः	२०३०

अष्टमं काण्डम् ।

(१) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-२१ ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्; १ पुरोबृहती त्रिष्टुप्, २-३, १७-२१ अनुष्टुप्; ४, ९, १५-१६ प्रस्तारपङ्क्तिः; ७ त्रिपदा विराड् गायत्री; ८ विराट् पथ्याबृहती; ११ त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती; १३ त्रिपदा भुरिङ्महाबृहती; १४ एकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती ।

[अथाष्टादशः प्रपाठकः ॥१८॥]

[१] अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके १
उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये २
इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ३
उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ४
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ५
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ६
मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ७
मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ८
श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ९
मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् १० (१०)

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्व१न्ता रक्षतु त्वा मनुष्या३ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ११
मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः १२
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् १३
ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा १४
जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः ।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेऽनु ह्वयामसि १५
मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये १६
उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् । उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् १७
अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः । इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि १८
उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः । मा त्वा व्यस्तकेश्यो३ मा त्वाघरुदो रुदन् १९
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् २०
व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत्तमो अक्रमीत् ।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि २१ [२] (२१)

(२) दीर्घायुःप्राप्तिः ।

१-२८ ब्रह्मा । आयुः । त्रिष्टुप्, १-२, ७ भुरिक्; ३, २६ आस्तारपङ्क्तिः, ४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ६, १५ पथ्यापङ्क्तिः; ८ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती; ९ पञ्चपदा जगती; ११ विष्टारपङ्क्तिः; १२, २२, २८ पुरस्ताद्बृहती; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १९ उपरिष्टाद्बृहती; २१ सतः पङ्क्तिः; ५, १०, १६-१८, २०, २३-२५, २७ अनुष्टुप् (१७ त्रिपाद्)।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः १
जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि २
वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ३ (२४)

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेऽकरम् ४
अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि ।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ६
अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ७
अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु ।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् ८
देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत् त्वा मृत्योरपीपरम् ।
आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ९
यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।
पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि १० [३]
कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोऽप सेधामि सर्वान् ११
आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवाप हन्मसि १२
अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम् १३
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः १४
शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा १५
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे३ तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते १६ (३७)

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः १७
शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः १८
यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं१ कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि १९
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत २० [४]
शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः २१
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः २२
मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् । तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद् भरामि स मा बिभेः २३
सोऽरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः । न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः २४
सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् २५
परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् २६
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि २७
अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहासि सपत्नहा ।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् २८ [५] (४९)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(३) शत्रुनाशनम् ।

१-२६ चातनः । अग्निः । त्रिष्टुप्, ७, १२, १४-१५, १७, २१ भुरिक्; २५ पञ्चपदा बृहतीगर्भा जगती; २२-२३ अनुष्टुप्; २६ गायत्री ।

[२] रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् १
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् २ (५१)

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ३
अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ४
यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ५
यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ग्ध्येषाम् ६
उतारब्धान्त्स्पृणुहि जातवेद उतारेभाणाँ ऋष्टिभिर्यातुधानान् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ७
इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ८
तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः ९
नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च १० [६]
त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि युङ्ग्धि ११
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् १२
परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि १३
पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः १४
यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च १५
विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् १६ (६५)

संवत्सरीणं पयं उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मणि १७
सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः १८
त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु १९
पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः २० [७]
तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष २१
परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः २२
विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः २३
वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्षे २४
ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निक्ष्व २५
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः २६ [८] (७५)

(४) शत्रुदमनम् ।

१-२५ चातनः । इन्द्रासोमौ । जगती; ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्; २०, २३ भुरिक्, २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः १
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने २
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ३ (७८)

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ४
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ५
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ६
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ८
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ९
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च १० [९]
परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् १२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते १३
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् १४
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह १५
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट १६
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः १७ (९१)

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३भि जहि रक्षसः पर्वतेन १९
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः २० [१०]
इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः २१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र २२
मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् २३
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् २४
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः २५ [११] (१००)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(५) प्रतिसरो मणिः ।

१-२२ शुक्रः । कृत्यादूषणम्, मन्त्रोक्तदेवताः । अनुष्टुप्; १, ६ उपरिष्टाद्बृहती; २ त्रिपदा विराड् गायत्री; ३ चतुष्पदा भुरिग्जगती; ५ भुरिक्संस्तारपङ्क्तिः; ७-८ ककुम्मती; ९ पुरस्कृतिर्जगती; १० त्रिष्टुप्; ११ पथ्यापङ्क्तिः; १४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; १५ पुरस्ताद्बृहती; १९ जगतीगर्भा त्रिष्टुप्; २० विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः; २१ विराट् त्रिष्टुप्; २२ त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक्शक्वरी ।

[३] अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते । वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः १
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः । प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः २
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ३
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ४ (१०४)

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ५
अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ६
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते । सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ७
स्राक्त्येन मणिन ऋषिणेव मनीषिणा । अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ८
याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः ।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति ९
अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे १० [१२]
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ११
स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा । अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् १२
नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः । सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् १३
कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत १४
यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा १५
अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः १६
असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् । इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि १७
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे १८
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासानि १९
आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे २० (११०)

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वायं शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् २१
स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः । २२ [१३] (१२२)

[इत्यष्टादशः प्रपाठकः ॥१८॥]

(६) गर्भदोषनिवारणम् ।

१-२६ मातृनामा । मन्त्रोक्ताः, मातृनामा, १५ ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप्, २ पुरस्ताद्बृहती, १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ११, १२, १४, १६, पथ्यापङ्क्तिः, १५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी, १७ त्र्यवसाना सप्तपदा जगती ।

[अथैकोनविंशः प्रपाठकः ॥१९॥]

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः १
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् २
मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ३
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ४
यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि ५
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम् ।
अरायांश्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ६
यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ७
यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ८
यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ९ (१३१)

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय १० [१४]
ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ११
ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।
अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि १२
य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय १३
ये पूर्वे वध्वोऽ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेष्ठाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि १४
येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय १५
पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम् १६
उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौरिव स्पन्दना १७
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते । पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् १८
ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते । स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु १९
परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् । गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ २० [१५]
पवीनसात् तङ्गल्वाइच्छायकादुत नग्नकात् । प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः २१
द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः । वृन्तादभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् २२
य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि २३
ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेऽधि नि विध्यताम् २४ (१४६)

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः २५
अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् २६ [१६] (१४८)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(७) ओषधयः ।

१-२८ अथर्वा । भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । अनुष्टुप्; २ उपरिष्टाद् भुरिग्बृहती; ३ पुरउष्णिक्; ४ पञ्चपदा परानुष्टुबतिजगती; ५-६, १०, २५ पथ्यापङ्क्तिः (६ विराड्गर्भा भुरिक्); ९ द्विपदार्ची भुरिगनुष्टुप्; १२ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १४ उपरिष्टान्निचृद् बृहती; २६ निचृत्; २८ भुरिक् ।

[४] या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि १
त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि ।
यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव २
आपो अग्रं दिव्या ओषधयः । तास्ते यक्ष्ममेनस्यमङ्गादङ्गादनीनशन् ३
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ४
यद् वः सहः सहमाना वीर्यं यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ५
जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेऽस्मा अरिष्टतातये ६
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ७
अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः । ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ८
अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः । व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ९
उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषधीः १० [१७]
अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः । त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम् ११
मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् १२ (१६०)

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः । ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः १३
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिशस्तिपाः ।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत् १४
सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या एतु स्रोत्याः १५
मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि । भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः १६
या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च । ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे १७
याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा । अज्ञाता जानीमश्च या यासु विद्म च संभृतम् १८
सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम । यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि १९
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः । व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ २० [१८]
उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः । यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति २१
तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि । अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः २२
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् । सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे २३
याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः । वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे २४
यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्न्या यावतीनामजावयः
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः २५
यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः । तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि २६
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत । संमातर इव दुह्रामस्मा अरिष्टतातये २७
उत् त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् २८ [१९] (१७६)

(८) शत्रुपराजयः ।

१-२४ भृग्वङ्गिराः । इन्द्रः, वनस्पतिः परसेनाहननं च । अनुष्टुप्, २, ८-१०, २३ उपरिष्टाद्बृहती, ३ विराड् बृहती, ४ बृहती पुरस्तात्प्रस्तारपङ्क्तिः, ६ आस्तारपङ्क्तिः, ७ विपरीतपादलक्ष्मा चतुष्पदातिजगती, ११ पथ्याबृहती, १२ भुरिक्, १९ पुरस्ताद्विराड् बृहती, २० पुरस्तान्निचृद्बृहती, २१ त्रिष्टुप्, २२ चतुष्पदा शक्वरी, २४ त्र्यवसाना त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भा पराशक्वरी पञ्चपदा जगती ।

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः । यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः १
पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् । धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् २ (१७८)

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ३
परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ४
अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ५
बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्जि यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ६
बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ७
अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ८
सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ९
मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा १० [२०]
नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ११
साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा । रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः १२
विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा । मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् १३
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् १४
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् । दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् १५
इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे । अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः १६
घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः । भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् १७
मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् । इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् १८
पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन १९ (१९५)

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि २०
सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् २१
दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् २२
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः २३
इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि २४[२१](१००)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(९) विराट् ।

१-२६ अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसि च, विराट् । त्रिष्टुप्, २ पङ्क्तिः, ३ आस्तारपङ्क्तिः, ४-५, २३, २५-२६ अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ भुरिक्, १४ चतुष्पदातिजगती ।

[५] कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा १
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः २
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ३
बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ४
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ५
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ६ (१०६)

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ७
यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ८
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ९
को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः १० [२२]
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ११
छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा १२
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् १३
अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् १४
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् १५
षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः १६
षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः १७
सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् १८
सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि १९
कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः २० [२३] (११०)

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति २१
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् २२
अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्याइनोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे २३
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ असुरानुत ऋषीन् २४
को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः २५
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते २६ [२४] (११६)

(१०) विराट् ।

१-१३ अथर्वाचार्यः । विराट् । (षट् पर्यायाः) ।
[१] १-१३, १ त्रिपदार्ची पङ्क्तिः; २-७ याजुषी जगती; ३, ९ साम्न्यनुष्टुप्; ५ आर्च्यनुष्टुप्; ७, १३ विराड् गायत्री; ११ साम्नी बृहती ।

[१] विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति १
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् २
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ३
सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ४
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ५
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ६
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ८
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ९
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् १०
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ११ (११७)

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् १२(६)
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद १३(७)[२५] (२३९)

[९] (१-१०) १ त्रिपदा साम्नी अनुष्टुप्, २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ एकपदा याजुषी गायत्री, ४ एकपदा साम्नी पङ्क्तिः, ५ विराड् गायत्री, ६ आर्च्यनुष्टुप्, ७ साम्नी पङ्क्तिः, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्, १० साम्नी बृहती ।

[२] सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् १ (८)
तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप
ह्वयामहा इति २ (९)
तामुपाह्वयन्त ३(१०)
ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ४(११)
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ५(१२)
बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ६(१३)
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ७(१४)
अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ८(१५)
ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ९(१६)
अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद १०(१७)[२६](२४९)

[३] (१-८) १ चतुष्पदा विराडनुष्टुप्, २ आर्ची त्रिष्टुप्, ३,५,७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्तिः, ४,६,८ आर्ची बृहती ।

[३] सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत् १
तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद २(१८)
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ३
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ४(१९)
सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ५
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट्कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ६(२०)
सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ७
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ८(२१)[२७](२५७)

[४-५] (१-१६; १-१६) २२-२३,२६,२९(प्र०) चतुष्पदा साम्नी जगती, २२-२४,२८-२९(द्वि०) साम्नी बृहती, २२, २६ (तृ०) साम्नी उष्णिक्; २२-२३, २६, २९ (च०) आर्च्यनुष्टुप्, २३ (तृ०) आर्ची गायत्री, २४-२५, २८ (प्र०) चतुष्पदा उष्णिक्, २४ (तृ०) प्राजापत्यानुष्टुप्; २४-२५, २७ आर्ची त्रिष्टुप्; २५-२६ (द्वि०) साम्नी उष्णिक्; २५, २७-२८ (तृ०) विराड् गायत्री; २७ (प्र०) चतुष्पदा प्राजापत्या जगती; २७ (द्वि०) साम्नी बृहती त्रिष्टुप्, २८ (च०) त्रिपदा ब्राह्मी भुरिग्गायत्री; २९ (तृ०) साम्नी अनुष्टुप् ।

[४] सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति १
तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् २
तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ३
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ४ (२२)
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ५
तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ६
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ७
तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ८ (२३)
सोदक्रामत् सा मनुष्या३नागच्छत् तां मनुष्या३ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ९
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् १०
तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ११
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १२ (२४)
सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति १३
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् १४
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् १५
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १६(२५)[२८] (२७३)

[५] सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति १
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् २ (२७५)

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ३
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ४ (२६)
सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त
पुण्यगन्ध एहीति ५
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ६
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ७
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद ८ (२७)
सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ९
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् १०
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ११
तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १२ (२८)
सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति १३
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् १४
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् १५
तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद १६(२९)[२९](२८९)

[६] (१-४) १ द्विपदा विराड् गायत्री, २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदार्च्युष्णिक् ।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् १
न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् २
यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ३
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ४ (३०)[३३](२९३)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[इत्येकोनविंशः प्रपाठकः ॥१९॥]

॥ इत्यष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

सप्तमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	२०३०
अष्टमकाण्डस्य ...	२९३
सर्वयोगः	२३२३

नवमं काण्डम् ।

(१) मधुविद्या ।

१-२४ अथर्वा । मधु, अश्विनौ । त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुग्गर्भा पङ्क्तिः; ३ परानुष्टुप्; ६ यवमध्या अतिशक्करीगर्भा महाबृहती; ७ यवमध्या अतिजागतगर्भा महाबृहती; ८ बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः; ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्तिः; १० परोष्णिक्पङ्क्तिः; ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप्; १४ पुर उष्णिक्; १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; २० भुरिग्विष्टारपङ्क्तिः; २१ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्, २२ त्रिपदा ब्राह्मी पुर उष्णिक्, २३ द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः; २४ त्र्यवसाना षट्पदाष्टिः ।

[अथ विंशः प्रपाठकः ॥२०॥]

[१] दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः १
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् २
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ३
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ४
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ५
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ६
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ७
हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ८ (८)

अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्त्वेनान् वधको वधैः ३
परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु हन्त्वेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ४
अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ५
बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ६
बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ७
अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ८
सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना ।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ९
मृत्यवेऽमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा १० [२०]
नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्वेनान् मत्यं भवस्य ११
साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा । रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः १२
विश्वे देवा उपरिष्टादुब्जन्तो यन्त्वोजसा । मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् १३
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । द्विपाच्चतुष्पादिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् १४
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् । दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् १५
इम उप्ता मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे । अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः १६
घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः । भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम् १७
मृत्योराषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् । इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्व सेनाममूं हतम् १८
पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन १९ (१९५)

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि २०
सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् २१
दिशश्चतस्रोऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाः शफा अन्तरिक्षमुद्धिः ।
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवोऽभीशवोऽन्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् २२
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम् ।
संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः २३
इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः ।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि २४[२१](२००)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(९) विराट् ।

१-२६ अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसि च; विराट् । त्रिष्टुप्, २ पङ्क्तिः, ३ आस्तारपङ्क्तिः, ४-५, २३, २५-२६ अनुष्टुप्, ८, ११-१२, २२ जगती, ९ भुरिक्, १४ चतुष्पदातिजगती ।

[५] कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा १
यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः २
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ३
बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ४
बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ५
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ६ (२०६)

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ७
यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ८
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ९
को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः १० [२२]
इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ११
छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा १२
ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् १३
अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदर्कीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् १४
पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनु पञ्च ।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् १५
षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति ।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः १६
षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः १७
सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् १८
सप्त छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि ।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि १९
कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः २० [२३] (२१०)

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति २१
इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् २२
अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्यानोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे २३
केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ असुरानुत ऋषीन् २४
को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः २५
एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते २६ [२४] (२१६)

(१०) विराट् ।

१-१३ अथर्वाचार्यः । विराट् । (षट् पर्यायाः) ।
[१] १-१३, १ त्रिपदार्ची पङ्क्तिः; २-७ याजुषी जगती; ३, ९ साम्न्यनुष्टुप्, ५ आर्च्यनुष्टुप्; ७, १३ विराड् गायत्री; ११ साम्नी बृहती ।

[१] विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति १
सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् २
गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ३
सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ४
यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ५
सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ६
यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ७
सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ८
यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ९
सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् १०
यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ११ (२१७)

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् १२(६)
यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद १३(७)[२५] (२३९)

[९] (१-१०) १ त्रिपदा साम्नी अनुष्टुप्, २ उष्णिग्गर्भा चतुष्पदोपरिष्टाद्विराड्बृहती, ३ एकपदा याजुषी गायत्री, ४ एकपदा साम्नी पङ्क्तिः, ५ विराड् गायत्री, ६ आर्च्यनुष्टुप्, ७ साम्नी पङ्क्तिः, ८ आसुरी गायत्री, ९ साम्नी अनुष्टुप्, १० साम्नी बृहती ।

[२] सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् १ (८)
तां देवमनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुप
ह्वयामहा इति २ (९)
तामुपाह्वयन्त ३(१०)
ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ४(११)
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ५(१२)
बृहच्च रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ६(१३)
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुह्रन् व्यचो बृहता ७(१४)
अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ८(१५)
ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ९(१६)
अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद १०(१७)[२६](२४९)

[२] (१-८) १ चतुष्पदा विराडनुष्टुप्, २ आर्ची त्रिष्टुप्, ३,५,७ चतुष्पदा प्राजापत्या पङ्क्तिः, ४,६,८ आर्ची बृहती ।

[३] सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत सा संवत्सरे समभवत् १
तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद २(१८)
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ३
तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ४(१९)
सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत सार्धमासे समभवत् ५
तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट्कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ६(२०)
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ७
तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुप हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ८(२१)[२७](२५७)

[४-५] (१-१६; १-१६) १२-१३,२६,२९(प्र०) चतुष्पदा साम्नी जगती, १२-१४,१८-१९(द्वि०) साम्नी बृहती, १२, १६ (तृ०) साम्नी उष्णिक्, ११-१३, १६, १९ (च०) आर्च्यनुष्टुप्, १३ (तृ०) आर्ची गायत्री, १४-१५, १८ (प्र०) चतुष्पदा उष्णिक्, १४ (तृ०) प्राजापत्यानुष्टुप्; १४-१५, १७ आर्ची त्रिष्टुप्; १५-१६ (द्वि०) साम्नी उष्णिक्; १५, १७-१८ (तृ०) विराड् गायत्री; १७ (प्र०) चतुष्पदा प्राजापत्या जगती; १७ (द्वि०) साम्नी बृहती त्रिष्टुप्, १८ (च०) त्रिपदा ब्राह्मी भुरिग्गायत्री; १९ (तृ०) साम्नी अनुष्टुप् ।

[४] सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति १
तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् २
तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ३
तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ४ (२२)
सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ५
तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ६
तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाधोक् ७
तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ८ (२३)
सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ९
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् १०
तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ११
ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १२ (२४)
सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति १३
तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् १४
तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् १५
तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १६(२५)[२८] (२७३)

[५] सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति १
तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् २ (२७५)

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ३
तामूर्जां देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ४ (२६)
सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त
पुण्यगन्ध एहीति ५
तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ६
तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ७
तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद ८ (२७)
सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरोध एहीति ९
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् १०
तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ११
तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो
भवति य एवं वेद १२ (२८)
सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति १३
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् १४
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् १५
तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद १६(२९)[२९](२८९)

[६] (१-४) १ द्विपदा विराड् गायत्री, २ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, ४ द्विपदार्च्युष्णिक् ।

तद् यस्मा एवं विदुषेऽलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् १
न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् २
यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ३
विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ४ (३०)[३३](२०३)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[इत्येकोनविंशः प्रपाठकः ॥१९॥]

॥ इत्यष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—
सप्तमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं २०३०
अष्टमकाण्डस्य ... २९३
सर्वयोगः २३२३

नवमं काण्डम् ।

(१) मधुविद्या ।

१-२४ अथर्वा । मधु, अश्विनौ । त्रिष्टुप्; २ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः; ३ परानुष्टुप्; ६ यवमध्या अतिशाक्करीगर्भा महाबृहती; ७ यवमध्या अतिजागतगर्भा महाबृहती; ८ बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः; ९ पराबृहती प्रस्तारपङ्क्तिः; १० परोष्णिक्पङ्क्तिः; ११-१३, १५-१६, १८-१९ अनुष्टुप्; १४ पुर उष्णिक्; १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; २० भुरिग्विष्टारपङ्क्तिः; २१ एकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप्; २२ त्रिपदा ब्राह्मी पुर उष्णिक्; २३ द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः; २४ त्र्यवसाना षट्पदाष्टिः ।

[अथ विंशः प्रपाठकः ॥२०॥]

[१] दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः १
महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् २
पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ३
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ४
मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ५
कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ६
स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ७
हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ८ (८)

यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ९
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः १० (१)
यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ११
यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् १२
यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् १३
मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा १४
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः १५
यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् १६
यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् १७
यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि १८
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु १९
स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति २०
पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः २१
यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति ।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् २२ (११)

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद २३
यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद २४ (२) (२४)

(२) कामः ।

१-२५ अथर्वा । कामः । त्रिष्टुप्; ५ अतिजगती; ७; १४-१५, १७-१८, २१-२२ जगती; ८ द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः; ११,२०,२३ भुरिक्; १२ अनुष्टुप्; १३ द्विपदार्ची अनुष्टुप्; १६ चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगती ।

सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण १
यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोदहं भिदेयम् २
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ३
नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ४
सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ५
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ६
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ७
इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव ८
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ९ (३३)

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः १० (३)
अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्मह्यमेधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रो मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु ११
तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् १२
अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् १३
असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् १४
च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् १५
यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु १६
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् १७
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् १८
कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि १९
यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि २०(४)
यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि २१
यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि २२
ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि २३ (४७)

न वै वातश्चन काममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि २४
यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः २५ (५) (४९)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(३) शाला ।

१-३१ भृग्वङ्गिराः । शाला । अनुष्टुप्; ६ पथ्यापङ्क्तिः; ७ परोष्णिक्; १५ त्र्यवसाना पञ्चपदातिशक्वरी; १७ प्रस्तारपङ्क्तिः; २१ आस्तारपङ्क्तिः; २५, ३१ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप्; २७-३० प्रतिष्ठानाम गायत्री; (२५-३१ एकावसाना त्रिपदा) ।

[२] उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि १
यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् २
आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान् ।
परूंषि विद्वाञ्छस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ३
वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ४
संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।
इदं मानस्य पत्न्या नद्धानि वि चृतामसि ५
यानि तेऽन्तः शिक्यान्याबेधू रण्याय कम् ।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव ६
हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।
सदो देवानामसि देवि शाले ७
अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।
अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ८
यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।
उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ९ (५८)

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।
यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः १० (६)

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन्
प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ११

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः १२

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि १३

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।
विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि १४

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेऽहमुदरं शेवधिभ्यः ।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै १५

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः १६

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती १७

इटस्य ते वि चृताम्यपिनद्धमपोर्णुवन् ।
वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु १८

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः १९

कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते २० (७)

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये २१

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रैम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्य१न्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः २२ (७१)

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना २३

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि २४

प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः २५
दक्षिणाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः २६
प्रतीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः २७
उदीच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः २८
ध्रुवाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः २९
ऊर्ध्वाया दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ३०
दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः ३१ (८) (८०)

(४) ऋषभः ।

१-२४ ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप्, ८ भुरिक्, ६, १०, २४ जगती; ११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप्, १८ उपरिष्टाद्बृहती; २१ आस्तारपङ्क्तिः ।

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् १

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु २

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ३

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ४

देवानां भाग उपनाह एषो३पां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ५

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ६

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ७ (८७)

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत् ।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ८

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ९

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः ।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् १० (९)

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ११

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति १२

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः १३

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् १४

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् १५

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् १६

शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः १७

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति १८

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः ।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते १९

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने २०

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः २१ (१०

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् २२

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् २३

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् २४ (१०)(१०४)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(५) पञ्चौदनो अजः ।

१-३८ भृगुः । पञ्चौदनोऽजः; मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा पुरोतिशक्वरी जगती, ४, १० जगती; १४, १७, २७-३० अनुष्टुप् (३० ककुम्मती); १६ त्रिपदानुष्टुप्, १८, ३७ त्रिपदा विराड् गायत्री; २३ पुर उष्णिक्; २४ पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्विराड् जगती; २०-२२, २६ पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिक्; ३१ सप्तपदाष्टिः; ३२-३५ दशपदा प्रकृतिः; ३६ दशपदाऽऽकृतिः; ३८ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

[३] आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् १

इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।
ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः २

प्र पदोऽव नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ३

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्व१सिना माभि मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम् ४

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ५

उत् क्रामातः परि चेदतप्तस्तप्ताच्चरोरधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेरग्निरधि सं बभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम् ६

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ७ (१११)

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ८
अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ९
अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका १० (११)
एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ११
ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु १२
अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु १३
अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम् ।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः १४
एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेऽधि सप्तरश्मौ १५
अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन् । तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् १६
येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे १७
अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः ।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम १८
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य ।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् १९
अजो वा इदमग्ने व्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी २० (१२)
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः २१
अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २२ (१३६)

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् २३
इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २४
पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २५
पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति ।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २६
या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम् ।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः २७
समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति २८
अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् २९
आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ३० (१३)
यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद । एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३१
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद । कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३२
यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद । संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ॥
एष वै संयन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३३ (१३७)

यो वै पिन्वन्तं नामर्तुं वेद । पिन्वतींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३४
यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद । उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा उद्यन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३५
यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद ।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ३६
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ३७
तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ३८ (१४) (१४२)

[इति त्रिंशः प्रपाठकः ॥३०॥]

(६) अतिथि-सत्कारः ।

१-६२ (पर्यायाः) ब्रह्मा । अतिथिः, विद्या । (१) १-१७; १ नागीनाम त्रिपदा गायत्री, २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ३, ७ साम्नी त्रिष्टुप्; ४, ९ आर्च्यनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ त्रिपदा साम्नी जगती; ८ याजुषी त्रिष्टुप्; १० साम्नी भुरिग्बृहती; ११, १४-१६ साम्न्यनुष्टुप्; १२ विराड् गायत्री; १३ साम्नी निचृत्पङ्क्तिः; १७ त्रिपदा विराड् भुरिग्गायत्री ।

[अथैकत्रिंशः प्रपाठकः ॥३१॥]

(१) यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् १
सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः २
यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ३
यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ४
या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ५
यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ६ (१४८)

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ७
यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ८
यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ९
यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते १०
यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ११
यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ १२
यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति १३
ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेऽंशव एव ते १४
यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते १५
शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः १६
स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि
पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् १७ (१५) (१४९)

[१] १८-३० (१-१३) = १ विराट् पुरस्ताद्बृहती; २, १२ साम्नी त्रिष्टुप्; ३ आसुरी अनुष्टुप्; ४ साम्नी उष्णिक्; ५, ११ साम्नी बृहती (११ भुरिक्); ६ आर्च्यनुष्टुप्; ७ त्रिपदा स्वराडनुष्टुप्; ८ आसुरी गायत्री; ९ साम्नी अनुष्टुप्; १० त्रिपदाऽऽर्ची त्रिष्टुप्; १३ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः (७ पञ्चपदा विराट् पुरस्ताद्बृहती; ८ साम्न्यनुष्टुप् वा) ।

(२) यजमानब्राह्मणं वा एतद्यदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि
प्रेक्षत इदं भूयाइ इदा३मिति १ । १८
यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते २ । १९
उप हरति हवींष्या सादयति ३ । २०
तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ४ । २१
स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ५ । २२
एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ६ । २३
स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयान्न
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ७ । २४
सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ८ । २५ (१६७)

सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ९ । २६
सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो विततांध्वर
आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति १० । २७
प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ११ । २८
प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते य उपहरति १२ । २९
योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो
यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः १३ । ३० (१६)(१७९)

[३] ३१-३९ (१-९)= १-६, ९ त्रिपदा पिपीलिकमध्या गायत्री; ७ साम्नी बृहती, ८ पिपीलिकमध्योष्णिक् ।

(३) इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति १ । ३१
पयश्च वा एष रसं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति २ । ३२
ऊर्जां च वा एष स्फातिं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ३ । ३३
प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ४ । ३४
कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ५ । ३५
श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ६ । ३६
एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ७ । ३७
अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ८ । ३८
एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ९ । ३९(१७) (१८१)

[४] ४०-४४ (१-१०) = १-४ प्राजापत्यानुष्टुप् । २-५ त्रिपदा गायत्री, ९ भुरिक्; १० चतुष्पदा प्रस्तारपङ्क्तिः ।

(४) स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति १
यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे २ । ४०
स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ३
यावदतिरात्रेणेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ४ । ४१
स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ५ (१८६)

यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ६ । ४२
स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ७
यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसमृद्धेनावरुन्धे तावदेनेनाव रुन्धे ८ । ४३
स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ९
प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति
य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति १० । ४४ (१८) (१९१)

[५] ४५-४८ (१-१०) = १ साम्नी उष्णिक्, २ पुर उष्णिक्, ३ साम्नी भुरिग्बृहती, ४. ६, ९ साम्नी अनुष्टुप्, ५ त्रिपदा निचृद्विषमा नाम गायत्री, ७ त्रिपदा विराड् विषमा नाम गायत्री, ८ त्रिपदा विराडनुष्टुप् ।

(५) तस्मा उषा हिङ् कृणोति सविता प्र स्तौति १
बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् २
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ३ । ४५
तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ् कृणोति संगवः प्र स्तौति ४
मध्यंदिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन् निधनम्
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ५ । ४६
तस्मा अभ्रो भवन् हिङ् कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ६
विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ७
अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ् कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ८ । ४७
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ९
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद १० । ४८(१९)(२०१)

[६] ४९-६२ (१-१४) = १ आसुरी गायत्री, २ साम्नी अनुष्टुप् । ३, ५ त्रिपदार्ची पङ्क्तिः, ४ एकपदा प्राजापत्या गायत्री, ६-११ आर्ची बृहती; १२ एकपदाऽऽसुरी जगती, १३ याजुषी त्रिष्टुप्; १४ एकपदाऽऽसुरी उष्णिक् ।

(६) यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् १ । ४९
यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् २ । ५० (२०३)

यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ३ । ५१
तेषां न कश्चनाहोता ४ । ५२
यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ५ । ५३
यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ६ । ५४
स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ७ । ५५
स उपहूतोऽन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ८ । ५६
स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ९ । ५७
स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् १० । ५८
स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ११ । ५९
१२ । ६०
स उपहूत उपहूतः
१३ । ६१
आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम्
१४ । ६२ (२०)(२१५)
ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(७) गौः ।

१-२६ (एकः पर्यायः) ब्रह्मा । गौः । १ आर्ची बृहती, २ आर्च्युष्णिक्, ३, ५ आर्च्यनुष्टुप्, ४, १४-१६ साम्नी बृहती; ६, ८ आसुरी गायत्री; ७ त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री; ९, १३ साम्नी गायत्री; १० पुर उष्णिक्; ११-१२, १७, २५ साम्न्युष्णिक्, १८, २२ एकपदाऽऽसुरी जगती, १९ एकपदाऽऽसुरी पङ्क्तिः; २० याजुषी जगती, २१ आसुर्यनुष्टुप्; २३ एकपदाऽऽसुरी बृहती; २४ साम्नी भुरिग्बृहती; २६ साम्नी त्रिष्टुप् (७, १८-१९, २२-२३ आभ्योऽतिरिक्ता द्विपदा) ।

१
[४] प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् २
सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ३
विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ४
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ५
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ६
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ७ (२२२)
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ८
ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ९
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः १०
चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ११
क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः १२
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः १३
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः १४
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् १५
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् १६
रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् १७
अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् १८
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना १९
इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः २०
प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता २१
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा २२
मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः २३
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् २४
एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् २५
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद २६ (२१) (२४१)

(८) यक्ष्मनिवारणम् ।

१-२२ भृग्वङ्गिराः । सर्वशीर्षामयाद्यपाकरणम् । अनुष्टुप् । ११ अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पदोष्णिक् । १५ विराडनुष्टुप्; २१ विराट् पथ्याबृहती; २२ पथ्यापङ्क्तिः ।

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे १
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे २ (२४३)

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ३
यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ४
अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्गं विसल्पकम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ५
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं विश्वशारदं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ६
य ऊरू अनुसर्पत्यथो एति गवीनिके ।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ७
यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ८
हरिमाणं ते अङ्गेभ्योऽप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ९
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १० (२२)
बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ११
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १२
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १३
या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १४
याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १५
यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १६ (९५७)

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १७
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् १८
ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् १९
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् २०
पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् २१
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः २२(२३)(९६३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(९) आत्मा ।

१-२२ ब्रह्मा । वामः, अध्यात्मं, आदित्यः । त्रिष्टुप्; १२, १४, १६, १८ जगती ।

[५] अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् १
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः २
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नाम ३
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ४
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ५
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ६ (९६९)

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ७
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ८
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ९
तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् १० (२४)
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिद्यते सनाभिः ११
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् १२
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः १३
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा १४
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् १५
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः १६
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् १७
अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् १८
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति १९
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति २० (९८३)

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद् यः पितरं न वेद २१
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश २२ (२५) (९८५)

(१०) आत्मा ।

१-२८ ब्रह्मा । गौः, विराट्, अध्यात्मम्, २३ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप्, १,७,१४,१७-१८ जगती; २१ पञ्चपदातिशक्वरी; २४ चतुष्पदा पुरस्कृतिर्भुरिगतिजगती; २, १६-२७ भुरिक् ।

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः १
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः २
जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ३
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ४
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ५
गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ६
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ७
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ८
विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ९
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश १० (९९५)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ११
द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् १२
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम १३
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम १४
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः १५
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् १६
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः १७
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते १८
ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः १९
सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती २० (२७)
गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा
अधि वि क्षरन्ति २१
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः २२
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति २३ (३०८)

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे
स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु २४
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् २५
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् २६
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति २७
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः २८ (२८) (३१३)

[इत्येकविंशः प्रपाठकः ॥२१॥]　　॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

॥ इति नवमं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

अष्टमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	१३२३
नवमकाण्डस्य ...	३१३
सर्वयोगः	१६३६

दशमं काण्डम्।

(१) कृत्यादूषणम्।

१-३२ प्रत्यङ्गिरसः। कृत्यादूषणम्। अनुष्टुप्, १ महाबृहती; २ विराण्नाम गायत्री; ९ पथ्यापङ्क्तिः; १२ पङ्क्तिः, १३ उरोबृहती, १५ चतुष्पदा विराड्जगती, १७, २०, २४ प्रस्तारपङ्क्तिः (२० विराट्), १६, १८ त्रिष्टुप्, १९ चतुष्पदा जगती, २२ एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक्; २३ त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री; २८ त्रिपदा गायत्री, २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती, ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदातिजगती।

[अथ द्वाविंशः प्रपाठकः ॥२२॥]

[१] यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् १
शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सारादेत्वप नुदाम एनाम् २
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ३
अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ४
अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ५
प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ६
यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम्।
तं कृत्येऽभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ७
यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ८
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ९ (२)

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु १० (१)
यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः।
संदेश्या३त् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ११
देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात्।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् १२
यथा वातश्च्यावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति १३
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता १४
अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी १५
पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व।
परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि १६
वात इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम्।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय १७
यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् १८
उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम्।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् १९
स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि २० (२)
ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती २१
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु २२
भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते। दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् २३
यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतो३ष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने २४ (१४)

अन्य॒त्रास्मत् स्व॒रकृता स॒र्वं भर॑न्ती दुरि॒तं प॑रेहि ।
जा॒नीहि कृ॑त्ये क॒र्तारं॑ दुहि॒तेव॑ पि॒तरं॒ स्वम् २५
परे॑हि कृत्ये॒ मा ति॑ष्ठो वि॒द्धस्ये॑व प॒दं न॑य । मृ॒गः स मृ॑ग॒यु॒स्त्वं न त्वा॒ निक॑र्तु॒मर्ह॑ति २६
उ॒त ह॑न्ति पूर्वा॒सिनं॑ प्रत्या॒दाया॑पर॒ इष्वा॑ । उ॒त पूर्व॑स्य नि॒घ्नतो॒ नि ह॒न्त्यप॑रः॒ प्रति॑ २७
ए॒तद्धि शृ॒णु मे॒ वचोऽथे॑हि॒ यत॑ ए॒यथ॑ । यस्त्वा॑ च॒कार॒ तं प्रति॑ २८
अ॒ना॒गो॒ह॒त्या वै भी॒मा कृ॑त्ये॒ मा नो॒ गाम॑श्वं॒ पुरु॑षं वधीः ।
यत्र॑यत्रासि॒ निहि॑ता त॒तस्त्वोत्था॑पयामसि प॒र्णाल्लघी॑यसी भव २९
यदि॒ स्थ तम॒सावृ॑ता जाले॑न॒ाभिहि॑ता इव । सर्वाः॑ सं॒लुप्ये॒तः कृ॒त्याः पुन॑ः
क॒र्त्रे प्र हि॑ण्मसि ३०
कृ॒त्या॒कृतो॑ व॒लगि॒नोऽभिनि॒ष्का॒रिणः॑ प्र॒जाम् ।
मृ॒णीहि कृ॑त्ये॒ मोच्छि॑षो॒ऽमून् कृ॑त्या॒कृतो॑ जहि ३१
यथा॒ सूर्यो॑ मु॒च्यते॒ तम॑स॒स्परि॒ रात्रिं॒ जहा॑त्यु॒षस॑श्च के॒तून् ।
ए॒वाहं सर्वं॑ दुर्भू॒तं कर्त्रं॑ कृत्या॒कृता॑ कृ॒तं ह॒स्तीव॒ रजो॑ दुरि॒तं ज॑हामि ३२(३)(३२)

(२) ब्रह्मप्रकाशनम् ।

१-३३ नारायणः । पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् । अनुष्टुप्; १-४, ७-८ त्रिष्टुप्;
६, ११ जगती; २८ भुरिग्बृहती ।

केन॒ पार्ष्णी॒ आभृ॑ते॒ पूरु॑षस्य॒ केन॑ मां॒सं संभृ॑तं॒ केन॑ गु॒ल्फौ ।
केना॒ङ्गुलीः॒ पेश॑नीः॒ केन॒ खानि॒ केनो॑च्छ्ल॒ङ्खौ म॑ध्य॒तः कः प्र॑ति॒ष्ठाम् १
कस्मा॒न्नु गु॒ल्फावध॑राव॒कृण्व॑न्नष्ठी॒वन्ता॒वुत्त॑रौ॒ पूरु॑षस्य ।
जङ्घे॑ नि॒र्ऋत्य॒ न्य॒दधुः॒ क्व॒ स्वि॒ज्जानु॑नोः॒ संधी॒ क उ॒ तच्चि॑केत २
च॒तु॒ष्टयं॑ युज्यते॒ संहि॑तान्तं॒ जानु॑भ्यामू॒र्ध्वं शि॑थि॒रं कब॑न्धम् ।
श्रोणी॒ यदू॒रू क उ॒ तज्ज॑जान॒ याभ्यां॒ कुसि॑न्धं॒ सुदृ॑ढं ब॒भूव॑ ३
कति॑ दे॒वाः क॑त॒मे त आ॑सन्॒ य उरो॑ ग्री॒वाश्चि॒क्युः पूरु॑षस्य ।
कति॒ स्तनौ॒ व्य॒दधुः॒ कः क॑फो॒डौ कति॑ स्क॒न्धान् कति॑ पृ॒ष्टीर॑चिन्वन् ४
को अ॑स्य बा॒हू सम॑भर॒द् वी॒र्यं॒ क॒रवा॒दिति॑ ।
अंसौ॒ को अ॑स्य॒ तद् दे॒वः कुसि॑न्धे॒ अध्या द॑धौ ५
कः स॒प्त खानि॒ वि त॑तर्द शी॒र्षणि॒ कर्णा॑वि॒मौ नासि॑के॒ चक्ष॑णी॒ मुख॑म् ।
येषां॑ पु॒रु॒त्रा वि॑ज॒यस्य॑ म॒ह्मनि॒ चतु॑ष्पादो॒ द्विप॑दो॒ यन्ति॒ याम॑म् ६ (३८)

हन्वो॒र्हि जि॒ह्वामद॑धात् पु॒रू॒चीमधा॑ म॒हीमधि॑ शिश्राय॒ वाच॑म् ।
स आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तर॒पो वसा॑नः॒ क उ॒ तच्चि॑केत ७
म॒स्ति॒ष्कम॑स्य यत॒मो ल॒लाटं॑ क॒का॒टिकां॑ प्रथ॒मो यः क॒पाल॑म् ।
चि॒त्वा चित्यं॒ हन्वोः॒ पूरु॑षस्य॒ दिवं॑ रुरोह कत॒मः स दे॒वः ८
प्रि॒याप्रि॒याणि॑ बहु॒ला स्वप्नं॑ संबाधत॒न्द्र्य॑ः ।
आ॒न॒न्दानु॒ग्रो नन्दां॑श्च॒ कस्मा॑द् वहति॒ पूरु॑षः ९
आर्ति॒रव॑र्ति॒र्निर्ऋ॑ति॒ः कुतो॒ नु पुरु॒षेऽम॑तिः ।
राद्धिः॒ समृ॑द्धि॒रव्यृ॑द्धिर्म॒ति॒रुदि॑तयः॒ कुतः॑ १० (४)
को अ॑स्मि॒न्नापो॒ व्य॒दधा॒द् वि॒षू॒वृतः॑ पु॒रू॒वृतः॑ सिन्धु॒सृत्या॑य जा॒ताः ।
ती॒व्रा अ॑रु॒णा लोहि॑नीस्ताम्रधू॒म्रा ऊ॒र्ध्वा अवा॑चीः॒ पुरु॑षे ति॒रश्चीः॑ ११
को अ॑स्मिन् रू॒पम॑दधा॒त् को म॒ह्मानं॑ च॒ नाम॑ च ।
गा॒तुं को अ॑स्मि॒न् कः के॒तुं कश्च॒रित्रा॑णि॒ पूरु॑षे १२
को अ॑स्मिन् प्रा॒णम॑वय॒त् को अ॑पा॒नं व्या॒नमु॑ ।
स॒मा॒नम॑स्मि॒न् को दे॒वोऽधि॑ शिश्राय॒ पूरु॑षे १३
को अ॑स्मिन् य॒ज्ञम॑दधा॒देको॑ दे॒वोऽधि॒ पूरु॑षे ।
को अ॑स्मिन्त्स॒त्यं कोऽनृ॑तं॒ कुतो॑ मृ॒त्युः कुतो॒ऽमृत॑म् १४
को अ॑स्मै॒ वासः॒ पर्य॑दधा॒त् को अ॒स्यायु॑रकल्पयत् ।
बलं॒ को अ॑स्मै॒ प्राय॑च्छ॒त् को अ॑स्याकल्पयज्ज॒वम् १५
केनापो॒ अन्व॑तनुत॒ केनाह॑रकरोद्॒ रु॒चे ।
उ॒षसं॒ केनान्वै॑न्द्ध॒ केन॑ सायंभ॒वं द॑दे १६
को अ॑स्मि॒न् रेतो॒ न्य॒दधा॒त् तन्तु॒रा ताय॑ता॒मिति॑ ।
मे॒धां को अ॑स्मि॒न्नध्यौ॑ह॒त् को बा॒णं को नृतो॑ दधौ १७
केने॒मां भूमि॑मौर्णो॒त् केन॒ पर्य॑भव॒द् दिव॑म् । केना॒भि म॒ह्ना पर्व॑ता॒न् केन॒ कर्मा॑णि॒ पूरु॑षः १८
केन॑ प॒र्जन्य॒मन्वे॑ति॒ केन॒ सोमं॑ विचक्ष॒णम् । केन॑ य॒ज्ञं च॑ श्र॒द्धां च॒ केना॑स्मि॒न् निहि॑तं॒ मनः॑ १९
केन॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ केने॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म् । केने॒मम॒ग्निं पूरु॑षः॒ केन॑ संवत्स॒रं म॑मे २०(५)
ब्रह्म॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ ब्रह्मे॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म् । ब्रह्मे॒मम॒ग्निं पूरु॑षो॒ ब्रह्म॑ संवत्स॒रं म॑मे २१
केन॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ केन॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑ । केने॒दम॒न्यन्नक्ष॑त्रं॒ केन॒ सत् क्ष॒त्रमु॑च्यते २२
ब्रह्म॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ ब्रह्म॒ दैव॑जनी॒र्विशः॑ । ब्रह्मे॒दम॒न्यन्नक्ष॑त्रं॒ ब्रह्म॒ सत् क्ष॒त्रमु॑च्यते २३(५५)

केने॒यं भूमि॒र्विहि॑ता॒ केन॒ द्यौरुत्त॑रा हि॒ता । केने॒दमू॒र्ध्वं ति॒र्यक् चा॒न्तरि॑क्षं॒ व्यचो॑ हि॒तम् २४
ब्रह्म॑णा॒ भूमि॒र्विहि॑ता॒ ब्रह्म॒ द्यौरुत्त॑रा हि॒ता । ब्रह्मे॒दमू॒र्ध्वं ति॒र्यक् चा॒न्तरि॑क्षं॒ व्यचो॑ हि॒तम् २५
मू॒र्धान॑मस्य सं॒सीव्याथ॑र्वा॒ हृद॑यं च॒ यत् । म॒स्ति॒ष्कादू॒र्ध्वः प्रैर॑य॒त् पव॑मा॒नोऽधि॑ शीर्ष॒तः २६
तद् वा अथ॑र्वणः॒ शिरो॑ देवको॒शः समु॑ब्जितः । तत् प्रा॒णो अ॒भि र॑क्षति॒ शिरो॒ अन्न॒मथो॒ मनः॑ २७
ऊ॒र्ध्वो नु सृ॒ष्टा३स्ति॒र्यङ् नु सृ॒ष्टा३ः सर्वा॒ दिशः॒ पुरु॑ष॒ आ ब॑भूवाँ३ ।
पुरं॒ यो ब्रह्म॑णो॒ वेद॒ यस्याः॒ पुरु॑ष उ॒च्यते॑ २८
यो वै तां ब्रह्म॑णो॒ वेदा॒मृते॒नावृ॑तां॒ पुर॑म् । तस्मै॒ ब्रह्म॑ च ब्रा॒ह्माश्च॒ चक्षुः॑ प्रा॒णं प्र॒जां द॑दुः २९
न वै तं चक्षु॑र्जहाति॒ न प्रा॒णो ज॒रसः॑ पु॒रा । पुरं॒ यो ब्रह्म॑णो॒ वेद॒ यस्याः॒ पुरु॑ष उ॒च्यते॑ ३०
अ॒ष्टाच॑क्रा॒ नव॑द्वारा दे॒वानां॒ पूर॑यो॒ध्या । तस्यां॑ हिर॒ण्ययः॒ कोशः॑ स्व॒र्गो ज्योति॒षावृ॑तः ३१
तस्मि॒न् हि॑र॒ण्यये॒ कोशे॒ त्र्य॒रे त्रिप्र॑तिष्ठिते । तस्मि॒न् यद् य॒क्षमा॑त्म॒न्वत् तद् वै ब्र॑ह्म॒विदो॑ विदुः ३२
प्र॒भ्राज॑मानां॒ हरि॑णीं॒ यश॑सा सं॒परी॑वृताम् । पुरं॑ हिर॒ण्ययीं॒ ब्रह्मा वि॑वे॒शाप॑राजिताम् ३३ (६) (६५)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(३) सपत्नक्षयणो वरणमणिः ।

१-२५ अथर्वा । वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः । अनुष्टुप्; २-३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्;
८, १३-१४ पथ्यापङ्क्तिः; ११, १६ भुरिक्; १५, १७-२५ षट्पदा जगती ।

[२] अ॒यं मे॑ वर॒णो म॒णिः स॑पत्न॒क्षय॑णो॒ वृषा॑ ।
तेना र॑भस्व॒ त्वं शत्रू॒न् प्र मृ॑णीहि दुरस्य॒तः १
प्रैणा॑ञ्छृणीहि॒ प्र मृ॒णा र॑भस्व म॒णिस्ते॑ अस्तु पुरए॒ता पु॒रस्ता॑त् ।
अवा॑रयन्त वर॒णेन॑ दे॒वा अ॑भ्याचा॒रमसु॑राणां॒ श्वःश्वः॑ २
अ॒यं म॒णिर्व॑र॒णो वि॒श्वभे॑षजः सहस्रा॒क्षो हरि॑तो हिर॒ण्ययः॑ ।
स ते॒ शत्रू॒नध॑रान् पादयाति पूर्व॒स्तान् द॑भ्नुहि॒ ये त्वा॑ द्वि॒षन्ति॑ ३
अ॒यं ते॑ कृ॒त्यां वित॑तां॒ पौरु॑षेयाद॒यं भ॒यात् ।
अ॒यं त्वा॒ सर्व॑स्मात् पा॒पाद् व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ४
व॒र॒णो वा॑र॒याता॒ अ॒यं दे॒वो वन॒स्पतिः॑ ।
यक्ष्मो॒ यो अ॒स्मिन्नावि॑ष्ट॒स्तमु॑ दे॒वा अ॑वीवरन् ५
स्वप्नं॑ सु॒प्त्वा यदि॒ पश्या॑सि पा॒पं मृ॒गः सृ॒तिं यति॒ धावा॒दजु॑ष्टाम् ।
प॒रि॒क्ष॒वाच्छ॒कुनेः॑ पापवा॒दाद॒यं म॒णिर्व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ६
अरा॑त्यास्त्वा॒ निर्ऋ॑त्या अभिचा॒राद॑थो॒ भ॒यात् ।
मृ॒त्योरोजी॑यसो व॒धाद् व॑र॒णो वा॑रयिष्यते ७ (७१)

यन्मे॑ मा॒ता यन्मे॑ पि॒ता भ्रात॑रो॒ यच्च॑ मे॒ स्वा यदेन॑श्चकृ॒मा व॒यम् ।
ततो॑ नो वारयिष्यते॒ऽयं दे॒वो वन॒स्पतिः॑ ८
व॒र॒णेन॒ प्रव्य॑थिता॒ भ्रातृ॑व्या मे॒ सब॑न्धवः । अ॒सूर्तं॒ रजो॒ अप्य॑गु॒स्ते य॑न्त्वध॒मं तमः॑ ९
अरि॑ष्टो॒ऽहमरि॑ष्टगु॒रायु॑ष्मा॒न्त्सर्व॑पूरुषः । तं मा॒यं व॑र॒णो म॒णिः परि॑ पातु दि॒शोदि॑शः १०(७)
अ॒यं मे॑ वर॒ण उर॑सि॒ राजा॑ दे॒वो व॒नस्पतिः॑ । स मे॒ शत्रू॒न् वि बा॑धता॒मिन्द्रो॒ दस्यू॑नि॒वासु॑रान् ११
इ॒मं बि॑भर्मि वर॒णमायु॑ष्मा॒ञ्छतशा॑रदः । स मे॑ रा॒ष्ट्रं च॑ क्ष॒त्रं च॑ प॒शूनोज॑श्च मे दधत् १२
यथा॒ वातो॒ वन॒स्पती॒न् वृ॒क्षान् भ॒नक्त्योज॑सा ।
ए॒वा स॒पत्ना॑न् मे भङ्ग्धि॒ पूर्वा॑न् जा॒ताँ उ॒ताप॑रान् वर॒णस्त्वा॒भि र॑क्षतु १३
यथा॒ वात॑श्चा॒ग्निश्च॑ वृ॒क्षान् प्सा॒तो वन॒स्पती॑न् ।
ए॒वा स॒पत्ना॑न् मे प्साहि॒ पूर्वा॑न् जा॒ताँ उ॒ताप॑रान् वर॒णस्त्वा॒भि र॑क्षतु १४
यथा॒ वाते॑न॒ प्रक्षी॑णा वृ॒क्षाः शेरे॒ न्य॑र्पिताः ।
ए॒वा स॒पत्ना॑स्त्वं मम॒ प्र क्षि॑णीहि॒ न्य॑र्पय॒ पूर्वा॑न् जा॒ताँ
उ॒ताप॑रान् वर॒णस्त्वा॒भि र॑क्षतु १५
तांस्त्वं प्र छि॑न्द्धि वरण पु॒रा दि॒ष्टात् पु॒रायु॑षः ।
य ए॑नं प॒शुषु॒ दिप्स॑न्ति॒ ये चा॑स्य राष्ट्रदि॒प्सवः॑ १६
यथा॒ सूर्यो॑ अति॒भाति॒ यथा॑स्मि॒न् तेज॒ आहि॑तम् ।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भू॒तिं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ समु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा १७
यथा॒ यश॑श्च॒न्द्रम॑स्यादि॒त्ये च॑ नृ॒चक्ष॑सि ।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भू॒तिं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ समु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा १८
यथा॒ यशः॑ पृथि॒व्यां यथा॒स्मिन् जा॒तवे॑दसि ।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भू॒तिं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ समु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा १९
यथा॒ यशः॑ क॒न्या॒यां यथा॒स्मिन्त्संभृ॑ते॒ रथे॑ ।
ए॒वा मे॑ वर॒णो म॒णिः की॒र्तिं भू॒तिं नि य॑च्छतु
तेज॑सा मा॒ समु॑क्षतु॒ यश॑सा॒ सम॑नक्तु मा २०(८)(७९)

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २१
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २२
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २३
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २४
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २५ (९) (९०)

(४) सर्पविषदूरीकरणम् ।

१-२६ गरुत्मान्। तक्षकः। अनुष्टुप्; १ पथ्यापङ्क्तिः; २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री; ३-४ पथ्याबृहती; ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्; १२ भुरिग्गायत्री; १६ त्रिपदा प्रतिष्ठागायत्री; २१ ककुम्मती; २३ त्रिष्टुप्; २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथ स्थाणुमारदथार्षत् १
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् २
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ३
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ४
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् । पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ५
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि । अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ६
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् । इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ७ (१७)

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ८
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ९
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् १० (१०)
पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः । इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ११
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा । जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् १२
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि १३
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् । हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु १४
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः । स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च १५
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा १६
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् । स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् १७
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव । तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः १८
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् १९
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः २० (११)
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् २१
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् । कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् २२
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम २३
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि । अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् २४
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय । अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते २५
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत २६ (१२) (११६)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(५) विजयप्राप्तिः ।

[३] १-२४ सिन्धुद्वीपः। आपः, चन्द्रमाः। अनुष्टुप्; १-५ त्रिपदा पुरोऽभिकृतिककुम्मतीगर्भा पङ्क्तिः; ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती; ७-१४ त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती (११, १४ पथ्यापङ्क्तिः); १५-२१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुब्गर्भातिधृतिः (१९-२० कृतिः; २४ त्रिपदा विराड् गायत्री)

[३] (१) इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि १ (११७)

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि २
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ३
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ४
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ५
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ६
(२) अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ७
इन्द्रस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ८
सोमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ९
वरुणस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १० (१३)
मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ११
यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १२
पितॄणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १३
देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १४
(३) यो व आपोऽपां भागोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १५ (१३१)

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १६
यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १७
यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १८
यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १९
यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या २० (१४)
ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः । इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या २१
(४) यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः २२
समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् २३
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु २४ (१४०)

अन्यं१ काक्ता स्व१रिकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् २५
परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय । मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति २६
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा । उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति २७
एतद्धि शृणु मे वचोऽथेहि यत एयथ । यस्त्वा चकार तं प्रति २८
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव २९
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव । सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः
कर्त्रे प्र हिण्मसि ३०
कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ३१
यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ३२(३)(३२)

(२) ब्रह्मप्रकाशनम् ।

१-३३ नारायणः । पार्ष्णिसूक्तम्, पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम् । अनुष्टुप्; १-४, ७-८ त्रिष्टुप्; ६, ११ जगती; २८ भुरिग्बृहती ।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् १
कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य ।
जङ्घे निर्ऋत्य न्य१दधुः क्व१ स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत २
चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् ।
श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ३
कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्य१दधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन् ४
को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं१ करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ५
कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम् ।
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ६ (३८)

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ७
मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ८
प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्य१ः ।
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ९
आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः १० (४)
को अस्मिन्नापो व्य१दधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ११
को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च ।
गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे १२
को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोऽधि शिश्राय पूरुषे १३
को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् १४
को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् १५
केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे १६
को अस्मिन् रेतो न्य१दधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ १७
केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् । केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः १८
केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् । केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः १९
केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् । केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे २०(५)
ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् । ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे २१
केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः । केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते २२
ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः । ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते २३(५५)

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता । केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् २४
ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता । ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् २५
मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् । मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः २६
तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः । तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः २७
ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते २८
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् । तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः २९
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा । पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ३०
अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या । तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्य१रे त्रिप्रतिष्ठिते । तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ३२
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् । पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ३३ (६) (६५)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(३) सपत्नक्षयणो वरणमणिः ।

१-२५ अथर्वा । वरणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः । अनुष्टुप्; २-३, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्; ८, १३-१४ पथ्यापङ्क्तिः; ११, १६ भुरिक्; १५, १७-२५ षट्पदा जगती ।

[२] अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः १
प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात् ।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः २
अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति ३
अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ४
वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ५
स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ६
अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ७ (७२)

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ८
वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः । असूतं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ९
अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः । तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः १०(७)
अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः । स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ११
इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान्छतशारदः । स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् १२
यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १३
यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १४
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्य१र्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्य१र्पय पूर्वान् जाताँ
उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु १५
तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः १६
यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १७
यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १८
यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा १९
यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २०(८)(८१)

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २१
यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २२
यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २३
यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २४
यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा २५ (९) (१०)

(४) सर्पविषदूरीकरणम् ।

१-२६ गरुत्मान्। तक्षकः। अनुष्टुप्; १ पथ्यापङ्क्तिः; २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री; ३-४ पथ्याबृहती; ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्, १२ भुरिग्गायत्री; १६ त्रिपदा प्रतिष्ठागायत्री; २१ ककुम्मती; २३ त्रिष्टुप्; २६ त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा ककुम्मती भुरिक् त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथं स्थाणुमारदथार्षत् १
दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः । रथस्य बन्धुरम् २
अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ३
अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् । उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ४
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम् । पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाक्वाः ५
पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि । अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ६
इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् । इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ७ (१७)

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ८
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ९
अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् १० (१०)
पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः । इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ११
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा । जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् १२
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः । दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि १३
कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् । हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु १४
आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः । स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च १५
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च । वातापर्जन्योभा १६
इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् । स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् १७
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव । तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः १८
सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् । सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम् १९
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः । हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः २० (११)
ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम् २१
यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत् । कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम् २२
ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम २३
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि । अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम् २४
अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय । अधा विषस्य यत् तेजोऽवाचीनं तदेतु ते २५
आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि । अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत २६ (१२) (११६)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(५) विजयप्राप्तिः ।

[१] १-२४ सिन्धुद्वीपः। आपः, चन्द्रमाः। अनुष्टुप्; १-५ त्रिपदा पुरोऽभिकृतिककुम्मतीगर्भा पङ्क्तिः; ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती; ७-१४ त्र्यवसाना पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहती (११, १४ पथ्यापङ्क्तिः); १५-२१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुब्गर्भातिधृतिः (१९-२० कृतिः), २४ त्रिपदा विराड् गायत्री)

[३] (१) इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि १ (११७)

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि २
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ३
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ४
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ५
इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्य स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता म आप स्थ ६
(२) अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ७
इन्द्रस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ८
सोमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ९
वरुणस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १० (१३)
मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ११
यमस्य भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १२
पितॄणां भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १३
देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये १४
(३) यो व आपोऽपां भागोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १५ (१३१)

यो व आपोऽपामूर्मिरप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १६
यो व आपोऽपां वत्सोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १७
यो व आपोऽपां वृषभोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १८
यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या १९
यो व आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्वन्तर्यजुष्यो देवयजनः । इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या २० (१४)
ये व आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या देवयजनाः । इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या २१
(४) यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः २२
समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन ।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् २३
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु २४ (१४०)

(५) [२] २५-३५ (१-११) कौशिकः । विष्णुक्रमः, मन्त्रोक्ताः ।
२५-३५ त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्यतिशक्वर्यौ ।

(५) विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २५ । १
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २६ । २
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २७ । ३
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २८ । ४
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु २९ । ५
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३० । ६ (१५)
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३१ । ७
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३२ । ८
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३३ । ९ (१८९)

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः ।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वय द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३४ । १०
विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः ।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ३५ । ११ (१५१)

(६) [३] ३६-४१ (१-६) ब्रह्मा । मन्त्रोक्ताः । ३६ मार्त्वी पञ्चपदातिशाकरातिजागतगर्भाष्टिः; ३७ विराट् पुरस्ताद्बृहती; ३८ पुर उष्णिक्; ३९, ४१ आर्षी गायत्री; ४० विराड्विषमा गायत्री ।

(६) जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ३६ । १
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ३७ । २
दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते । ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ३८ । ३
सप्तऋषीनभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ३९ । ४
ब्रह्माभ्यावर्ते । तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ४० । ५ (१६)
ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ४१ । ६ (१५७)

(७) [४] ४२-५० (१-९) विहव्यः । प्राजापत्या अनुष्टुप्; ४४ त्रिपदा गायत्रीगर्भानुष्टुप्; ५० त्रिष्टुप् ।

(७) यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै । व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ४२
वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि । इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ४३
राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि । सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ४४
यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु । तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ४५
अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ४६
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ४७
यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ४८ (१६४)

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवां छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ४९
अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ५० (१७) (१६६)

(६) मणिबन्धनम् ।

१-३५ बृहस्पतिः । फालमणिः, वनस्पतिः, ३ आपः । अनुष्टुप्, १, ४, २१ गायत्री; ५ षट्पदा जगती; ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी; ७-१० त्र्यवसाना अष्टपदाऽष्टिः (१० नवपदा धृतिः); ११, २०, २३-२७ पथ्यापङ्क्तिः; १२-१७ त्र्यवसाना षट्पदा शक्वरी; ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ३५ पञ्चपदा त्र्यनुष्टुब्गर्भा जगती ।

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः । अपि वृश्चाम्योजसा १
वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति । पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा २
यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ३
हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् । गृहे वसतु नोऽतिथिः ४
तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ८
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ९ (१७५)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १० (१८)
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ११
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः
स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १४
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।
सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन् ।
स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे । तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।
स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि १७
ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत । संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति १८
अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत । प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः १९
अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि २० (१९)
तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् । तेन त्वं द्विषतो जहि २१
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा २२
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह २३
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह २४ (१९०)

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह २५
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह २६
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह २७
यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् । स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह २८
तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये । अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् २९
ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ३० (२०)
उत्तरं द्विषतो माम्यं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३१
यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा । स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ३२
यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति । एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ३३
यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ३४
एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ३५ (२१) (२०१)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(७) सर्वाधारवर्णनम् ।

१-४४ अथर्वा । स्कम्भः आत्मा वा । त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती; २, ८ भुरिक्; ७, १३ परोष्णिक्; १०, १४, १६, १८-१९ उपरिष्टाद् बृहती; ११-१२, १५, २०, २२, ३९ उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती; १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; २१ बृहतीगर्भानुष्टुप्, २३-३०, ३७, ४० अनुष्टुप्; ३१ मध्येज्योतिर्जगती; ३२, ३४, ३६ उपरिष्टाद्विराड्बृहती; ३३ पराविराडनुष्टुप्; ३५ चतुष्पदा जगती; ३८, ४२-४३ त्रिष्टुप्; ४१ आर्षी त्रिपदा गायत्री; ४४ एका० आर्च्यनुष्टुप्

[४] कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम् ।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् १ (२०२)

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा ।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् २
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम् ।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ३
क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ४
क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ५
क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ६
यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ७
यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ८
कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ९
यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १० (२२)
यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ११
यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १२
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १३
यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १ १४
यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १५ (२१६)

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १६
ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः १७
यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १८
यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः १९
यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः २० (२३)
असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते २१
यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः २२
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ २३
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् २४
बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः २५
यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् । एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः २६
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे । तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः २७
हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः । स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा २८
स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम् ।
स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् २९
इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम् ।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ३० (२४) (२३१)

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ३१
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३२
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३३
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् । दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३४
स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ३५
यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे । सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३६
कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः । किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ३७
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ३८
यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा ।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ३९
अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना ।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ४०
यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद । स वै गुह्यः प्रजापतिः ४१
तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम् ।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ४२
तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात् ।
पुमानेनद् वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ४३
इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ४४ (२५) (२४५)

(८) ज्येष्ठब्रह्मवर्णनम् ।

१-४४ कुत्सः । आत्मा । त्रिष्टुप्; १ उपरिष्टाद्विराड्बृहती; २ बृहतीगर्भानुष्टुप्; ५ भुरिगनुष्टुप्, ६, १४, १९-२१, २३, २५, २९, ३१-३४, ३७-३८, ४१, ४३, अनुष्टुप्; ७ पराबृहती; १० अनुष्टुब्गर्भा; ११ जगती; १२ पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भाऽऽर्षी पङ्क्तिः; १५, २७ भुरिग्बृहती; २२ पुर उष्णिक्; २६ द्व्युष्णिग्गर्भानुष्टुप्; ३० भुरिक्; ३९ बृहतीगर्भा; ४२ विराड् गायत्री ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति । स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः १
स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः । स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् २ (२४७)

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्य१न्या अर्कमभितोऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ३
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ४
इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ५
आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ६
एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व१ तद् बभूव ७
पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः ८
तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ९
या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः ।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् १० (२६)
यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव । ११
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य १२
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः १३
ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्य१म् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः १४
दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति १५
यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन १६ (२६१)

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् १७
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा १८
सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् १९
यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् २० (२७)
अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्व१राभरत् । चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् २१
भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु । यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् २२
सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः २३
शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् २४
बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया २५
इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः २६
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः २७
उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः २८
पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते २९
एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्यु१षसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ३०(२८)
अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता ।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ३१
अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ३२(१७७)

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ३३
यत्र देवाश्च मनुष्या३श्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ३४
येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ३५
इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ३६
यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ३७
वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ३८
यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्य१ः ।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वे३वासीन्मातरिश्वा तदानीम् ३९
अप्स्वा३सीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ४०
उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे । साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व१ ४१
निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ४२
पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् । तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ४३
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ४४ (२९) (१८९)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(९) शतौदना गौः ।

१-३७ अथर्वा । शतौदना । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्, १२ पथ्यापङ्क्तिः, २५ द्व्युष्णिग्गर्भाऽनुष्टुप्, २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भा जगती, २७ पञ्चपदातिजागतानुष्टुब्गर्भा शक्वरी ।

[५] अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः १ (१९०)

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु २
बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ३
यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ४
स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ५
स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ६
ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ७
वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ८
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ९
अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः ।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् १० (३०)
घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति । पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु १२
यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु १३
यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु १४
यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका । आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु १५
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः। आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु १६
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु १७(३०६)

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   १८
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   १९
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   २० (३१)
यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   २१
यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   २२
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   २३
यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु   २४
क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह   २५
उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु २६
अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत् काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् २७(३२)(३१६)

(१०) वशा गौः ।

१-३४ कश्यपः । वशा । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती; ५ पञ्चपदा० स्कन्धोग्रीवी बृहती, ६, ८, १० विराट्,
२३ बृहती; २४ उपरिष्टाद्बृहती, २६ आस्तारपङ्क्तिः, २७ शंकुमती,
२९ त्रिपदा विराड्गायत्री; ३१ उष्णिग्गर्भा;
३२ विराट्पथ्याबृहती ।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः   १   (३१७)

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात्   २
वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम्   ३
यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि   ४
शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा   ५
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा   ६
अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे   ७
अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम्   ८
यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे   ९
यदनूचीन्द्रमैरात् त्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद् वशे   १० (३३)
यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति   ११
त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये   १२
सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह   १३
सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती   १४
सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती   १५   (३३१)

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि ।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा   १६
तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये   १७
वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव ।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत   १८
ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत   १९
आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव   २० (३४)
ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः   २१
यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव   २२
सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः   २३
युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा   २४
वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह   २५
वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः   २६
य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन्   २७
तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा   २८
चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम्   २९   (३४५)

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये   ३०
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते   ३१
सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः   ३२
ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः   ३३
वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति   ३४ (३५) (३५०)

[इति त्रयोविंशः प्रपाठकः ॥२३॥]

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

॥ इति दशमं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या–

नवमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	१६३६
दशमकाण्डस्य	३५०
सर्वयोगः	१९८६

एकादशं काण्डम् ।

(१) ब्रह्मौदनम् ।

१-३७ ब्रह्मा । ओदनः । त्रिष्टुप्; १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक्पङ्क्तिः; २ बृहतीगर्भा विराट्; ३ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती; ४, १२-१३ भुरिक्; ५ बृहतीगर्भा विराट्; ६ उष्णिक्; ८ विराड् गायत्री; ९ शाक्वरातिजागतगर्भा जगती; १० विराट् पुरोतिजगती विराड्जगती; ११ जगती; १७, २१, २४-२६, २९ (भुरिक्); ३७ विराड् जगती; १८ अतिजागतगर्भा परातिजागता विराडतिजगती; २० अतिजागतगर्भा परा शाक्वरा चतुष्पदा भुरिग्जगती; २७ अतिजागतगर्भा जगती; ३१ भुरिक्; ३२ चतुष्पदा ककुम्मत्युष्णिक्; ३६ पुरोविराट् (व्याप्तादिष्ववगन्तव्या);

[अथ चतुर्विंशः प्रपाठकः ॥२४॥]

[१] अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह   १
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून्   २
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ   ३
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्   ४
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति   ५
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु   ६
साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति   ७
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्   ८ (८)

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह   ९
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि   १० (१)
इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ   ११
उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि   १२
परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात्   १३
एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय   १४
ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु   १५
अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु   १६
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्   १७
ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम्   १८
उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि   १९
सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव   २० (२)
उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि   २१
अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज   २२ (११)

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम्   २३
अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु   २४
शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः   २५
सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि   २६
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे   २७
इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः   २८
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूका अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम्   २९
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम   ३० (३)
बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः   ३१
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः   ३२
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम्   ३३
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम   ३४
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्   ३५
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ   ३६ (३६)

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्   ३७ (४) (३७)

(२) रुद्रः ।

१-३१ अथर्वा । भव-शर्वौ रुद्राः । त्रिष्टुप्; १ परातिजागता विराड्जगती; २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा पथ्याजगती; ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्; ४-५, ७, १३, १५-१६, २१ अनुष्टुप्; ६ आर्षी गायत्री; ८ महाबृहती; ९ आर्षी; १० पुरोकृति त्रिपदा विराट्; ११ पञ्चपदा विराड्जगतीगर्भा शाक्वरी; १२ भुरिक्; १४, १७-१९, २३, २६-२७ विराड्गायत्री; २० भुरिग्गायत्री; २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती; २४, २९ जगती; २५ पञ्चपदातिशाक्वरी; ३० चतुष्पदा उष्णिक्; ३१ त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा (जगती ?) ।

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः   १
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त   २
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः । नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य   ३
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत । अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः   ४
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव । त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः   ५
अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः   ६
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना । रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि   ७
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै   ८
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः   ९
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु   १० (५)
उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ११ (४८)

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः १२
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव १३
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः १४
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः १५
नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः १६
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् १७
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै १८
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु १९
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि २० (६)
मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि २१
यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै २२
योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून्
तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः २३
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे २४ (६१)

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि
पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे २५
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् २६
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः २७
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड २८
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः २९
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ३०
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ३१(७)(६८)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(३) ओदनः ।

[१] १-३१ अथर्वा । ओदनः (बार्हस्पत्यौदनः ।) (त्रयः पर्यायाः) । १, १४ आसुरी गायत्री; २ त्रिपदा समविषमा गायत्री; ३, ६, १० आसुरी पङ्क्तिः; ४, ८ साम्न्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५ साम्न्युष्णिक्; ७, १९-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ९, १७-१८ आसुर्यनुष्टुप्, ११ भुरिगार्च्यनुष्टुप् ; १२ याजुषी जगती; १६, २३ आसुरी बृहती; २४ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, २६ आर्च्युष्णिक्; २७-२९ साम्नी बृहती, (२८-२९ भुरिक्); ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ अल्पशः पङ्क्तिश्च याजुषी ।

[२] (१) तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् १
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः २
चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ३ (७१)

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ४
अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ५
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ६
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ७
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ८
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ९
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः १०
इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ११
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् १२
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् १३
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता १४
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा १५
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः १६
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते १७
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे १८
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः १९
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः २०
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः २१
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् २२
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् २३
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति २४
यावद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् २५
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति २६
त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति २७
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २८
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह २९
नैवाहमोदनं न मामोदनः ३०
ओदन एवौदनं प्राशीत् ३१(१) (९९)

[२] ३२-४९ मन्त्रोक्ताः । ३२,३८,४१ (प्रथमा), ३२-४९ (सप्तमी) साम्नी त्रिष्टुप्; ३२, ३५, ४२ (द्वितीया), ३२-४९ (तृतीया) ३३-३४,४४-४८ (पञ्चमी) एकपदाऽऽसुरी गायत्री, ३२,४१,४३,४७ दैवी जगती; ३८,४४,४६ (द्वि०), ३२,३५-४३,४९ (पञ्च०) एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्; ३२-४९ (षष्ठी) साम्न्यनुष्टुप्; ३३-४९ (प्र०) आर्च्यनुष्टुप्, ३७ (प्र०) साम्नी पङ्क्तिः; ३३,३६,४०,४७-४८ (द्वि०) आसुरी जगती, ३४,३७,४१,४३,४५ (द्वि०) आसुरी पङ्क्तिः; ३४ (च०) आसुरी त्रिष्टुप्, ३५,४६,४८ (च०) याजुषी गायत्री, ३६-३७,४० (च०) दैवी पङ्क्तिः; ३८-३९ (च०) प्राजापत्या गायत्री; ३९ (द्वि०) आसुर्युष्णिक्; ४२,४५,४९ (च०) दैवी त्रिष्टुप्; ४९ (द्वि०) एकपदा भुरिक्साम्नी बृहती ।

(२) ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥२॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
बृहस्पतिना शीर्ष्णा ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३२
ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३३
ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३४
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
ब्रह्मणा मुखेन ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३५ (१०३)

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
अग्नेर्जिह्वया ॥४॥ तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३६

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
ऋतुभिर्दन्तैः ॥४॥ तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३७

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्॥३॥
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः ॥४॥ तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३८

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
अन्तरिक्षेण व्यचसा ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ३९

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्॥३॥
दिवा पृष्ठेन ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४० (१०८)

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
पृथिव्योरसा ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४१

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
सत्येनोदरेण ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४२

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
समुद्रेण वस्तिना ॥४॥ तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४३

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४४

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४५ (११३)

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
अश्विनोः पादाभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४६

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
सवितुः प्रपदाभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४७

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ॥२॥ तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
ऋतस्य हस्ताभ्याम् ॥४॥ ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४८

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ॥१॥
अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ॥२॥
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ॥३॥
सत्ये प्रतिष्ठाय ॥४॥ तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ॥५॥
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ॥६॥
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥७॥ ४९ (९) (११७)

[३] ५०-५६ मन्त्रोक्ताः । ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५२ त्रिपदा भुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ द्विपदा भुरिक्साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती ।

एतद् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ५०
ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ५१
एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ५२
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ५३ (१२१)

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ५४
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ५५
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ५६ (१०) (१२४)

(४) प्राणः ।

१-२६ भार्गवो वैदर्भिः । प्राणः । अनुष्टुप्, १ शङ्कुमती, ८ पथ्यापङ्क्तिः; १४ निचृत्, १५ भुरिक्, २० अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; २१ मध्येज्योतिर्जगती; २२ त्रिष्टुप्; २६ बृहतीगर्भा ।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् १
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते २
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः । प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ३
यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः । सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ४
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ५
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् । आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ६
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते । नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ७
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ८
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी । अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ९
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न १० (११)
प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ११
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् १२
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते १३
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा । यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः १४
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् १५ (१२९)

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत । ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि १६
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् । ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः १७
यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः । सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे १८
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः । एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः १९
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः २० (१२)
एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन २१
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः २२
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः । अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते २३
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः । अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु २४
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते । न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन २५
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि २६(१३)(१५०)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(५) ब्रह्मचर्यम् ।

१-२६ ब्रह्मा । ब्रह्मचारी । त्रिष्टुप्; १ पुरोऽतिजागता विराड्गर्भा; २ पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ३ उरोबृहती; ६ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती; ७ विराड्गर्भा; ८ पुरोऽतिजागता विराड् जगती; ९ बृहतीगर्भा; १० भुरिक्; ११.१३ जगती; १२ शाक्वरगर्भा चतुष्पदा विराडतिजगती; १५ पुरस्ताज्ज्योतिः; १४. १६-२२ अनुष्टुप्; २३ पुरोबार्हतातिजागतगर्भा; २५ एकावसानार्च्युष्णिक्; २६ मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भा ।

[३] ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति १
ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति २ (१५२)

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ३
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ४
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ५
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ६
ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ७
आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ८
इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ९
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् १० (१४)
अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ११
अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः १२
अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः १३
आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् १४
अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः १५
आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी १६ (१६६)

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते १७
ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति १८
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् १९
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः । संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः २० (१५)
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये । अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः २१
पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति । तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् २२
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् २३
ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् २४
चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् २५
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते २६(१६) (१७६)

[इति चतुर्विंशः प्रपाठकः ॥२४॥]

(६) पापमोचनम् ।

१-२३ शन्तातिः । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताः । अनुष्टुप्; २३ बृहतीगर्भा ।

[अथ पञ्चविंशः प्रपाठकः ॥२५॥]

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः । इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १
ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् । अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २
ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् । अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४
अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा । विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५
वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः । आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ६
मुञ्चन्तु मा शपथ्याद्दहोरात्रे अथो उषाः । सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ७
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ८ (१८४)

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः । इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ९
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १० (१७)
सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् । पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ११
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये । पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १२
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः । अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १३
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा । यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १४
पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १५
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १६
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १७
एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १८
विश्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः । विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १९
सर्वान् देवानिदं ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः । सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २०
भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी । भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २१
या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तवः । संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः २२
यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् । तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् २३(१८)(१९९)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(७) उच्छिष्ट ब्रह्म-सूक्तम् ।

१-२७ अथर्वा । अध्यात्मं, उच्छिष्टः । अनुष्टुप्; ६ पुर उष्णिग्बार्हतपरा; २१ स्वराट्; २२ विराट् पथ्याबृहती ।

[४] उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् १
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः २ (२०१)

सम्रुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ३
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ४
ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ५
ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ६
राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ७
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ८
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ९
एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया १० (१९)
चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ११
प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि १२
सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः १३
नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि १४
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता १५
पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः १६ (२३५)

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च । भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले १७
समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः । संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः १८
चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः । उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः १९
अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही २० (२०)
शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता २१
राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता २२
यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः २३
ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः २४
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः २५
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः २६
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः २७ (२१)(२२६)

(८) अध्यात्मम् ।

१-३४ कौरुपथिः । अध्यात्मं, मन्युः । अनुष्टुप्, ३३ पथ्यापङ्क्तिः ।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् १
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् २
दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ३ (१११)

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ४
अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ५
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ६
येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ७
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ८
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ९
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते १०
यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ११
कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् १२
संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् १३
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः १४
शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही १५
यत् तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् १६
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् १७ (२४३)

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् १८
स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् १९
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् २०
भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् २१
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् २२
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः २३
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् २४
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः २५
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते २६
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् २७
आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् २८
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् २९
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ३०
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ३१ (२५७)

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ३२
प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ३३
अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिंछवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ३४ (२४) (२६०)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(९) शत्रुनिवारणम् ।

१-२६ काङ्कायनः । अर्बुदिः । अनुष्टुप्; १ सप्तपदा विराट् शक्वरी त्र्यवसाना; ३ परोष्णिक्; ४ त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भा परा त्रिष्टुप् षट्पदा तिजगती; ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापङ्क्तिः; १५, २२, २४-२५, त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी; १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १७ त्रिपदा गायत्री ।

[५] ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च। असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय १
उत् तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् । संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे २
उत् तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् । अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ३
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः । याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ४
उत् तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ५
सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् । तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ६
प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु । विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ७
संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती । पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ८
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ९
अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव १० (२५)
आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ११ (२७१)

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज । उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे १२
मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि । मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव १३
प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव १४
श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे । अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय १५
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि १६
चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः १७
उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ १८
प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया १९
तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन २० (२६)
उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान्मोत मित्रिणः २१
ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय २२
अर्बुदिश्च त्रिषंधिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः २३
वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः । गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय २४
ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव २५ (१८५)

तेषां सर्वेषामीशाना उत् तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् २६ (२७) (१८६)

(१०) शत्रुनाशनम् ।

१-२७ भृग्वङ्गिराः । त्रिषन्धिः । अनुष्टुप्; १ विराट् पथ्याबृहती; २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भातिजगती; ३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ४ विराट्; ८ विराट् त्रिष्टुप्; ९ पुरोविराट् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्; १२ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; १३ षट्पदा जगती; १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप्त्रिष्टुब्गर्भा शक्वरी; १७ पथ्यापङ्क्तिः; २१ त्रिपदा गायत्री; २२ विराट्पुरस्ताद्बृहती; २५ ककुप्; २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ।

उत् तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह । सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत १
ईशां वो वेद राज्यं त्रिषंधे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषंधेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् २
अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषंधिना ३
अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु । त्रिषंधेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ४
उत् तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह । अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ५
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी । कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषंधेः सह सेनया ६
धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु । त्रिषंधेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ७
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ८
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ९
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः । असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् १० (२८)
येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः । त्रिषधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ११
सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् १२
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा १३ (१९९)

सर्वे देवा अत्यायन्ति ते अश्नन्ति वषट्कृतम् । इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः १४
सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषंधेराहुतिः प्रिया । संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः १५
वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु । इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् १६
यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि १७
क्रव्यादानुवर्तयन्मृत्युना च पुरोहितम् । त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व १८
त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय । पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन १९
शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे २० (२९)
मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् । अनया जहि सेनया २१
यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि । ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् २२
ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः । सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् २३
ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः २४
सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता २५
मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति २६
यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषंधिना २७ (३०) (११३)

[इति पञ्चविंशः प्रपाठकः ॥२५॥]

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

॥ इत्येकादशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या-

दशमकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	१९८६
एकादशकाण्डस्य...	३१३
सर्वयोगः	२२९९

द्वादशं काण्डम् ।

(१) भूमिसूक्तम् ।

१-६३ अथर्वा । भूमिः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक्, ४-६, १०, ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती; ७ प्रस्तारपङ्क्तिः; ८, ११ त्र्यव० षट्० विराडष्टिः; ९ परानुष्टुप्, १२-१३, ३७ पञ्चपदा शक्वरी (१२-१३ त्र्यव०); १४ महाबृहती; १५, २१ एकाव० साम्नी त्रिष्टुप्; १६ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी; १९-२० पुरोबृहती (२० विराट्); २२ त्र्यव० षट्० विराडतिजगती; २३ पञ्चपदा विराडतिजगती; २४ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भा जगती; २५ त्र्यव० सप्त० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा शक्वरी; २६-२८, ३३, ३५, ३९-४१, ५०, ५३-५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुप् (५३ पुरोबार्हता); ३० विराड् गायत्री; ३१ पुरस्ताज्ज्योतिः; ३२ त्र्यव० षट्० त्रिष्टुब्बृहतीगर्भातिजगती; ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; ३७ त्र्यव० पञ्च० शक्वरी; ४१ षट्० ककुम्मती शक्वरी; ४२ स्वराडनुष्टुप्; ४३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ४४-४५, ४९ जगती; ४६ षट्पदानुष्टुब्गर्भा परा शक्वरी; ४७ षट्प० उष्णिगनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी; ४८ पुरोऽनुष्टुप्; ५१ त्र्यव० षट्० अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी; ५२ पञ्च० अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती; ५७ पुरोतिजागता जगती; ५८ पुरस्ताद्बृहती; ६१ पुरोबार्हता; ६२ परा विराट् ।

[अथ षड्विंशः प्रपाठकः ॥२६॥]

[१] सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु १
असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः २
यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ३
यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ४
यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ५
विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ६
यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ७ (१)

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ८
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ९
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः १० (१)
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ११
यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु १२
यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना १३
यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि १४
त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति १५
ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् १६
विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा १७
महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन १८
अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु । अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः १९ (१९)

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् २० (२)
अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु २१
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् । भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु २२
यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः ।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन २३
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन २४
यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः । यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा नो द्विक्षत कश्चन २५
शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता । तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः २६
यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा । पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि २७
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः । पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् २८
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे २९
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ३० (३)
यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ३१
मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तराद्धरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ३२
यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना । तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ३३
यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् । उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ३४
यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु । मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ३५
ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ३६ (३६)

याप सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ३७
यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ३८
यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः । सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ३९
सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ४० (४)
यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ४१
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ४२
यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ४३
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ४४
जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ४५
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ४६
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ४७
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ४८
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ४९ (४९)

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ५० (५)
यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ५१
यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ५२
द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ५३
अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ५४
अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ५५
ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ५६
अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ५७
यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ५८
शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ५९
यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं१ पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ६०
त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ६१
उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ६२ (६१)

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ६ (६३) (६३)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

१-५५ भृगुः । अग्निः; मन्त्रोक्ताः; २१-३३ मृत्युः । त्रिष्टुप्; २, ५, १२-२०, ३४-३६, ३८-४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुप् (१६ ककुम्मती पराबृहती, १८ निचृत्, ४० पुरस्तात् ककुम्मती); ३ आस्तारपङ्क्तिः; ६ भुरिगार्षी पङ्क्तिः; ७, ४५ जगती। ८, ४८-४९ भुरिक्; ९ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः। ३७ पुरस्ताद्बृहती; ४२ त्रिपदा एकावसाना भुरिगार्ची गायत्री; ४४ एकावसाना द्विपदाऽऽर्ची बृहती; ४६ एकावसाना द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती; ५० उपरिष्टाद्विराड् बृहती; ५२ पुरस्ताद्विराड् बृहती; ५५ बृहतीगर्भा ।

[२] नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि १
अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि २
निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ३
यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ४
यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद् दीपयामसि ५
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ६
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ७
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ८
क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ९ (७१)

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् १० (७)
समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ११
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः १२
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् १३
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् १४
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः १५
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः १६
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह १७
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे १८
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे १९
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः २० (८)
परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु २१
इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम २२
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन २३ (८६)

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय २४
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् २५
अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् २६
उत् तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् २७
वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम २८
उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभिः ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन २९
मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ३० (९)
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ३१
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१हं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ३२
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ३३
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ३४
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ३५
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ३६
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ३७ (१००)

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ३८
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् ३९
यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ४० (१०)

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ४१
अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ४२
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ४३
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ४४
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ४५
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ४६
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ४७
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ४८
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ४९
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ५० (११)

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ५१
प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ५२ (११५)

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ५३
इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ५४
प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ५५ (१२) (११८)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(३) स्वर्गौदनः ।

१-६० यमः । स्वर्गः, ओदनः, अग्निः । त्रिष्टुप्; १, ४२-४३, ४७ भुरिक्; ८, १२, २१-२२, २४ जगती; १३, १७ स्वराडार्षी पङ्क्तिः, ३४ विराड्गर्भा; ३९ अनुष्टुब्गर्भा; ४४ परा बृहती; ५५-६० त्र्यवसाना सप्तपदा शङ्कुमत्यतिजागतशाकराति-शाक्वरधात्यंगर्भातिधृतिः (५५, ५७-६० कृतिः,)।

[३] पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् १
तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः २
समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ३
आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ४
यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ५
उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ६
प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ७
दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ८ (११६)

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ९
उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम १० (१३)

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ११
पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु १२
यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद् वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः १३
अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् १४
वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम १५
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् १६
स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः १७
ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् १८
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु १९
त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् २० (१४)
पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा २१
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि २२ (१४०)

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता २३
अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद् धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै २४
पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् २५
आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु २६
उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः २७
संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः ।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् २८
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः २९
उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ३० (१५)
प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ३१
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ३२
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ३३
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ३४
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ३५
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ३६ (१५४)

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ३७
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिंछ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ३८
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ३९
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ४० (१६)
वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ४१
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ४२
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ४३
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ४४
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ४५
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ४६
अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रो३ऽन्वारभेथां वय उत्तरावत् ४७
न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ४८
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ४९
समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून् ।
यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव ५०(१७)(१६८)

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य ५१
यदक्षेषु वदा यत् समित्यां यद् वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः ५२
वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत् पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ५३
तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ५४
प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५५
दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५६
प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५७
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५८
ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ५९
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ६०
(१८)(१७८)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(४) वशा गौः ।

१-५३ कश्यपः । वशा । अनुष्टुप्, ७ भुरिक्; २० विराट्; ३२ उष्णिग्बृहतीगर्भा, ४२ बृहतीगर्भा ।

[४] ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् १
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति २
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ३
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्यु१च्यसे ४
पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ५
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ६
यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ७
यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ८
यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ९
जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १० (१९)
य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ११
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे १२
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति १३ (१९१)

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते १४
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् १५
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः १६
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः १७
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् १८
दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति १९
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः २० (२०)
हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते २१
यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा २२
य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता २३
देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत २४
अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते २५
अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् २६
यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् २७ (१०५)

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः ॥ ३०(२१)

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२

वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः ।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥ ३३

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४०(२२) (११८)

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ ४३

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४४

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४६

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५०

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२

यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ (२३) (१११)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(५) ब्रह्मगवी ।

१-७३ (कश्यपः ?) अथर्वाचार्यः । ब्रह्मगवी । (सप्त पर्यायाः) (१-६) १ प्राजापत्यानुष्टुप्, २,६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्, ४ आसुर्यनुष्टुप्, ५ साम्नी पङ्क्तिः ।

[५] (१) श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता १
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता २
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ३
ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोऽधिपतिः ४
तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ५
अप क्रामति सूनृता वीर्य१ पुण्या लक्ष्मीः ६(२४)(१३७)

(७-११) ७-९ आर्च्यनुष्टुप् (७ भुरिक्); १० उष्णिक्; (७-१० एकपदा); ११ आर्ची निचृत्पङ्क्तिः ।

(२) ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ७
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ८
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ९
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च १०
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ११(२५)(१४२)

(१२-२७) १२ विराड् विषमा गायत्री; १३ आसुर्यनुष्टुप्, १४, २६ साम्नी उष्णिक्; १५ गायत्री; १६-१७, १९-२० प्राजापत्यानुष्टुप्; १८ याजुषी जगती; २१, २५ साम्न्यनुष्टुप्; २२ साम्नी बृहती; २३ याजुषी त्रिष्टुप्; २४ आसुरी गायत्री; २७ आर्च्युष्णिक् ।

(३) सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता १२
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः १३
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः १४
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या१दीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति १५
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा १६
तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता १७
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता १८
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३ऽपेक्षमाणा १९ (१५०)

क्षुरपविरीक्ष॑माणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति २०
मृत्युर्हिङ्कृण्वत्यु१ग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती २१
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती २२
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा २३
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा २४
शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना २५
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता २६
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य २७(२६) (१५८)

(२८-३८) २८ आसुरी गायत्री; २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्न्यनुष्टुप्; ३१ याजुषी त्रिष्टुप्; ३२ साम्नी गायत्री; ३३-३४ साम्नी बृहती; ३५ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्; ३६ साम्न्युष्णिक्; ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।

(४) वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना २८
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता २९
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ३०
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ३१
अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ३२
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ३३
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ३४
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ३५
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ३६
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ३७
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ३८(२७) (१६९)

(३९-४६) ३९ साम्नी पङ्क्तिः; ४० याजुष्यनुष्टुप्, ४१, ४६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ४२ आसुरी बृहती; ४३ साम्नी बृहती; ४४ पिपीलिकमध्यानुष्टुप्; ४५ आर्ची बृहती ।

(५) तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ३९
अस्वगता परिह्णुता ४०
अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ४१ (१७२)

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ४२
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ४३
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य
क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ४४
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ४५
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ४६(२८) (२७७)

(४७-६१) ४७, ४९, ५१-५३ ५७-५९, ६१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४८ आर्च्यनुष्टुप्; ५० साम्नी बृहती; ५४-५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६ आसुरी गायत्री; ६० गायत्री ।

(६) क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ४७
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ४८
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ४९
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ५०
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ५१
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ५२
वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ५३
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ५४
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ५५
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ५६
आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ५७
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ५८
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ५९
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ६०
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ६१(२९) (२९२)

(६२-७३) ६२-६४, ६६, ६८-७० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ६५ गायत्री; ६७ प्राजापत्या गायत्री; ७१ आसुरी पङ्क्तिः; ७२ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ७३ आसुर्युष्णिक् ।

(७) वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ६२
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ६३
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ६४ (२९५)

एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ६५
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ६६
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ६७
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ६८
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ६९
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ७०
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ७१
अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ७२
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ७३ (३०) (३०४)

[इति सप्तविंशः प्रपाठकः ॥२७॥] ॥इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

॥ इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या-

एकादशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं	३२९९
द्वादशकाण्डस्य ……	३०४
सर्वयोगः	३६०३

त्रयोदशं काण्डम् ।

(१) अध्यात्म-प्रकरणम् ।

१-६० ब्रह्मा । अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम् (३ मरुतः, २८-३१ अग्निः, ३१ बहुदेवताः)। त्रिष्टुप्; ३-५, ९, १२, १५ जगती (१५ अतिजागतगर्भा परा); ८ भुरिक्; १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती; १३ अतिशाक्वरगर्भाऽतिजगती; १४ त्रिपदा पुरः परशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः; १८-१९ पञ्चपदा ककुम्मत्यतिजगती (१८ परशाक्वरा भुरिक्, १९ परातिजागता); २१ आर्षी निचृद्गायत्री; २२-२३, २७ प्रकृता; २६ विराट् परोष्णिक्; २८ ३० (२८ भुरिक्), ३२, ३९-४०, ४५-५६, ५८ अनुष्टुप्; (५१,५५ पथ्यापङ्क्तिः, ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा,); ३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती; ३५ उपरिष्टाद्बृहती; ३६ निचृन्महाबृहती, ३७ परशाक्वरा विराडतिजगती; ४२ विराड्जगती; ४३ विराण्महाबृहती; ४४ परोष्णिक्; ५७ ककुम्मती ५९-६० गायत्री ।

[अथाष्टाविंशः प्रपाठकः ॥२८॥]

[१] उदेहि वाजिन् यो अप्स्व१न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु १
उद् वाज आ गन् यो अप्स्व१न्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो याः ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह २
यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ३
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ४
आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ५
रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ६
रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वः स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ७
वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ८ (८)

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ९
यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः १० (१)
ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ११
सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि १२
रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु १३
रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि १४
आ त्वा रुरोह बृहत्यु१त पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह १५
अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे १६
वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु १७
वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु १८
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यहमायुषा वर्चसा दधामि १९
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् २० (२)
यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित । शुभा यासि रिणन्नपः २१
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम २२ (११)

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् २३
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश २४
यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते २५
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् । सर्वा रुरोह रोहितो रुहः २६
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व २७
समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम २८
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि २९
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ३० (३)
अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ३१
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ३२
वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ३३
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ३४
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ३५
उत त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ३६ (३६)

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ३७
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ३८
अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ३९
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ४० (४)
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ४१
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ४२
आरोहन् द्यामृतः प्राव मे वचः ।
उत त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ४३
वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि । यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ४४
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति । सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ४५
उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत । तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ४६
हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् । वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ४७
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते । तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ४८
ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ४९
सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ५० (५)
यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ५१
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ५२
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैमान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ५३
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ५४ (५४)

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ५५
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ५६
यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ५७
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ५८
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः । मान्त स्थुर्नो अरातयः ५९
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ६० (६) (६०)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(२) अध्यात्मम् ।

१-४६ ब्रह्मा । अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम् । त्रिष्टुप्; १, १२-१५, ३९-४१ अनुष्टुप्; २-३,८, ४३ जगती; १० आस्तारपङ्क्तिः; ११ बृहतीगर्भा; १६-२४ आर्षी गायत्री; २५ ककुम्मत्या-स्तारपङ्क्तिः; २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिग्जगती; २७ विराड् जगती; २९ बार्हत-गर्भाऽनुष्टुप्; ३० पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भाऽतिजगती; ३४ आर्षी पङ्क्तिः; ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती; ४४-४५ जगती (४४ चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिक्, ४५ अतिजागतगर्भा) ।

[२] उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः १
दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वाः २
यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ३
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ४
मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ५ (६५)

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ६
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ७
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ८
उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ९
उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः १० (७)
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ११
दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् १२
उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वेतदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः १३
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः १४
तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते १५
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १६
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे १७
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा १८
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन १९
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे २० (८)
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि २१
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य २२
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् २३ (९)

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः 　२४
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव 　२५
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः ।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः 　२६
एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्व१ं समासते 　२७
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि 　२८
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि 　२९
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्व१न्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् 　३० (९)
अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् 　३१
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि 　३२
तिग्मो विभ्राजन् तन्व१ं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः 　३३
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः 　३४
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च 　३५
उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः 　३६
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम 　३७　(९७)

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा 　३८
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्व१राभरत् 　३९
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् 　४० (१०)
सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः ।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति 　४१
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति 　४२
अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः 　४३
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि 　४४
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि 　४५
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ 　४६(११)(१०६)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(३) अध्यात्मम् ।

१-२६ ब्रह्मा । अध्यात्मम्, रोहितादित्यदैवत्यम् । त्रिष्टुप्, १ चतुरवसानाऽष्टपदाऽऽकृतिः, २-४ त्र्यव० षट्पदा (२-३ अष्टिः, २ भुरिक् ४ अतिशाक्करगर्भा धृतिः); ५-७ चतुर० सप्तपदा (५-६ शाक्वरातिशाक्वरगर्भा प्रकृतिः, ७ अनुष्टुब्गर्भाऽतिधृतिः); ८ त्र्यव० षट्प० अत्यष्टिः, ९-१९ चतुरव० ९-११,१५,१७ सप्तपदा भुरिगतिधृतिः १५ निचृत्, १७ कृतिः, १३-१४,१६,१८-१९ अष्टपदा (१३-१४ विकृतः,१६.१८-१९ आकृतः. १९ भुरिक्), २०, २२ त्र्यव० षट्प० अत्यष्टिः, २१, २३-२५ चतुरव० अष्टपदा (२४ सप्तपदा कृतिः, २३,२५ विकृतिः)।

[३] य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१　(१०७)

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　२
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　३
यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　४
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः ।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　५
यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　६
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　७
अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　८
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　९　(११५)

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१० (१२)
बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथंतरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　११
बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवास्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१२
स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवं तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१३
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१४
अयं स देवो अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१५
शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् 　१६　(१२१)

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् १७
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् १८
अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् १९
सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २०(१३)
निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः ।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २१
वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २२
त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितो ऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि ।
किमभ्यार्चन् मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवास्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २३
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २४ (१३०)

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानस्तस्य देवस्य ।
क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् २५
कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः २६ (१४)(१३२)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(४) अध्यात्मम् ।

१-५६ ब्रह्मा । अध्यात्मम्, रोहितादित्यदैवत्यम् । त्रिष्टुप्; (षट् पर्यायाः) । [१-१३ प्रथमः पर्यायः ।]
१-११ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १२ विराड्गायत्री; १३ आसुरी उष्णिक् ।

[४] (१) स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् १
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः २
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ३
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ४
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ५
तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ६
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति । रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ७
तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः ८
रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ९
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः १०
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ११
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव १२
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति १३ (१५) (१४५)

(५) अध्यात्मम् ।

१-८ [१४-२१ द्वितीयः पर्यायः] १४ भुरिक्साम्नी त्रिष्टुप्; १५ आसुरी पङ्क्तिः,
१६, १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १७ १८ आसुरी गायत्री ।

(२) कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च १४
य एतं देवमेकवृतं वेद १५
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद १६ (१४८)

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद १७
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद १८
स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । य एतं देवमेकवृतं वेद १९
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । य एतं देवमेकवृतं वेद २०
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । य एतं देवमेकवृतं वेद २१ (१६) (१५३)

(६) अध्यात्मम् ।

१-७ [२२-२८ तृतीयः पर्यायः] २२, २४ भुरिक्प्राजापत्या त्रिष्टुप्; २३ आर्ची गायत्री;
२५ एकपदाऽऽसुरी गायत्री; २६ आर्ची अनुष्टुप्; २७-२८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् ।

(३) ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ।
य एतं देवमेकवृतं वेद २२
भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च २३
य एतं देवमेकवृतं वेद २४
स एव मृत्युः सो ऽमृतं सोऽभ्वं स रक्षः २५
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः २६
तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते २७
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह २८ (१७)(१६०)

(७) अध्यात्मम् ।

१-१७ [२९-४५ चतुर्थः पर्यायः] २९, ३३, ३९-४०, ४५ आसुरी गायत्री; ३०, ३२, ३५-३६, ४२
प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३१ विराड् गायत्री; ३४, साम्नी उष्णिक्; ३७-३८ साम्नी उष्णिगनुष्टुप्,
४१ साम्नी बृहती, ४३ आर्ची गायत्री; ४४ साम्नी अनुष्टुप् ।

(४) स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत २९
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ३०
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ३१
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ३२
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ३३
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ३४
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ३५
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ३६
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ३७
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ३८ (१७०)

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ३९
स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ४०
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ४१
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ४२
यद् वा कृणोष्योषधीर्यद् वा वर्षसि भद्रया यद् वा जन्यमवीवृधः ४३
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ४४
उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ४५ (१८) (१७७)

(८) अध्यात्मम् ।

१-६ [४६-५१ पञ्चमः पर्यायः] ४६ आसुरी गायत्री; ४७ यवमध्या गायत्री; ४८ साम्नी
उष्णिक्; ४९ निचृत्साम्नी बृहती; ५० प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५१ विराड्गायत्री ।

(५) भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ४६
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति त्वोपास्महे वयम् ४७
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ४८
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ४९
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते० । अन्नाद्येन० ५०
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते० । अन्ना० ५१ (१९) (१८३)

(९) अध्यात्मम् ।

१-५ [५२-५६ षष्ठः पर्यायः] ५२-५३ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५४ द्विपदाऽऽर्ची गायत्री ।

(६) उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते० । अन्नाद्येन० ५२
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् । नमस्ते० । अन्नाद्येन० ५३
भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ५४
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ५५
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ५६ (२०) (१८८)

[इत्यष्टाविंशः प्रपाठकः ॥२८॥]

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

॥ इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—
द्वादशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं ३६०३
त्रयोदशकाण्डस्य ... १८८
सर्वयोगः ३७९१

चतुर्दशं काण्डम् ।

(१) विवाह-प्रकरणम् ।

१-६४ सूर्या सावित्री । आत्मा; १-५ सोमः, ६ स्वविवाहः, २३ सोमार्कौ, २४ चन्द्रमाः, २५ नृणां विवाहमन्त्राशिषः; २५, २७ वधूवासःसंस्पर्शमोचनम् । अनुष्टुप्, १४ विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः, १५ आस्तारपङ्क्तिः, १९-२०, २३-२४, ३१-३३, ३७, ३९-४०, ४५, ४७, ४९-५०, ५३, ५६-५७, ५८-५९, ६१ त्रिष्टुप् (२३, ३१, ४५ बृहतीगर्भा); २१, ४६, ५४, ६४ जगती (५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुप्); २९, ५५ पुरस्ताद्बृहती; ३४ प्रस्तारपङ्क्तिः, ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक्; (४८ पथ्यापङ्क्तिः) ६० पराऽनुष्टुप् ।

[अथैकोनत्रिंशः प्रपाठकः ॥२९॥]

[१] सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः । ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही । अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः २
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः ३
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ४
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ५
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् । द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ६
रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ७
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ८
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा । सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ९
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् १० (१)
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् । श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ११
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः । अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् १२
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् । मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते १३ (१३)

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः १४
यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा १५
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः । अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः १६
अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः १७
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् । यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति १८
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै १९
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि २० (२)
इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि २१
इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ २२
पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः २३
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः २४
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् २५
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते २६
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद् वध्वो वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते २७
आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति २८ (२८)

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति २९
स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ३० (३)
युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु ।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ३१
इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ३२
इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ३३
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ३४
यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् । यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ३५
येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ३६
यो अनिध्मो दीदयदप्स्व1न्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ३७
इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि । यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ३८
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च ३९
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ४० (४)
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो । अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ४१
आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् । पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ४२
यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा । एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ४३
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु । ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः ४४
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ४५ (४५)

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ४६
स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ४७
येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ४८
देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ४९
गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ५० (५)
भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् । पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ५१
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ५२
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ५३
इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ५४
बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ५५
इदं तद् रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ५६
अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ५७
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ५८
उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ५९ (५९)

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ६०
सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ६१
अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ६२
मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ६३
ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ६४ (६) (६४)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(२) विवाह-प्रकरणम् ।

१–७५ सूर्या सावित्री । आत्मा, १० यक्ष्मनाशनी, ११ दम्पत्योः परिपन्थिनाशनी, ३६ देवाः ।
अनुष्टुप्, ५-६, १२, ३१, ३७, ३९–४० जगती (३७, ३९ भुरिक् त्रिष्टुप्); ९ त्र्यवसाना
षट्पदा विराडत्यष्टिः; १३-१४, १७-१९, ३४, ३६, ३८, ४१-४२, ४९, ६१, ७०, ७४-७५
त्रिष्टुप्; १५, ५१ भुरिक्, २० पुरस्ताद्बृहती; २३, २४-२५, ३२-३३ पुरोबृहती
(२६ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री); ३३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ३५ पुरोबृहती
त्रिष्टुप्; ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः; ४४ प्रस्तारपङ्क्तिः; ४७ पथ्या-
बृहती; ४८ सतः पङ्क्तिः, ५० उपरिष्टाद्बृहती निचृत्;
५२ विराट् पुर उष्णिक्; ५९-६०, ६२ पथ्यापङ्क्तिः;
६८ पुर उष्णिक् ६९ त्र्यवसाना षट्पदाऽतिशक्वरी;
७१ बृहती ।

[२] तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह । स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह १
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा । दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् २
सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ३
सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये । रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ४
आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ५
सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम् ६ (७०)

या ओषधयो या नद्यो३ यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ७
एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् । यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ८
इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वाममश्नुतः
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ९
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः १० (७)
मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती । सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ११
सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु १२
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु १३
आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः १४
प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् १५
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् १६
अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना १७
अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य १८
उत् तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः १९
यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु २० (८) (८४)

---

१ 'देवृकामा' इति पाठभेदोऽत्र केषुचित्पुस्तकेषु दृश्यते । ऋग्वेदे (१०।८५।४४), पैप्पलादे (१४।१७) च 'देवकामा' इत्येव पाठः । पैप्पलादे (१४।१८ इत्यत्र) 'देवृकामा' इति पाठः ।

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् २१
यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् २२
उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु २३
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः २४
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् २५
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् २६
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव २७
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन २८
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्व१स्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन २९
रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ३० (९)
आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ३१
देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ३२
उत् तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ३३
अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ३४ (१८)

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ३५
राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ३६
सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ३७
तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ३८
आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ३९
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४० (१०)
देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ४१
यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ४२
स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ४३
नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ४४
शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ४५
सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ४६
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ४७
अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्य१स्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ४८ (११९)

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ४९
या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ५०(११)
ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१
उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ५२
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५३
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५४
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ५५
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५६
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ५७
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ५८
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ५९
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६० (१२)
यज्जामयो यद् युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६१
यत् ते प्रजायां पशुषु यद् वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ६२
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ६३
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती । प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ६४
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् । विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ६५
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् । तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ६६
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् । अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ६७
(१११)

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ६८
अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्व१न्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ६९
सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ७० (१३)
अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ७१
जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ७२
ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन् ।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ७३
येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा ।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ७४
प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ७५ (१४) (१३९)

[इत्येकोनत्रिंशः प्रपाठकः ॥२९॥] ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

॥ इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

त्रयोदशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं—	३७९१
चतुर्दशकाण्डस्य	१३९
सर्वयोगः	३९३०

पञ्चदशं काण्डम् ।

(१) अध्यात्म- प्रकरणम् ।

[अष्टादश पर्यायाः ।]

१–८ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १ साम्नी पङ्क्तिः; २ द्विपदा साम्नी बृहती, ३ एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्; ४ एकपदा विराड् गायत्री; ५ साम्नी अनुष्टुप्; ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती, ७ आसुरी पङ्क्तिः, ८ त्रिपदा अनुष्टुप् ।

[अथ त्रिंशः प्रपाठकः ॥३०॥]

[१](१) व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् २
तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्माभवत्
तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ३
सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ४
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ५
स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ६
नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ७
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन
द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ८ (८)

[२] १–३१ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, ६, ९, १७, २५, ३० साम्न्यनुष्टुप्; २, १८, २६ साम्नी त्रिष्टुप्, ३ द्विपदाऽऽर्षी पङ्क्तिः; ४,१०,१८ द्विपदा ब्राह्मी गायत्री, ५,१३,२१,२९ द्विपदाऽऽर्षी गायत्री; १४ साम्नी पङ्क्तिः; २२ आसुरी गायत्री, ७, १५, २३, ३१ पदपङ्क्तिः; ८, १६, २४,३२ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्, १० एकपदा उष्णिक्, ११ द्विपदाऽऽर्षी भुरिक् त्रिष्टुप्; १२ आर्षी पराऽनुष्टुप्; १९ द्विपदा विराडार्षी पङ्क्तिः, २७ निचृदार्षी पङ्क्तिः ।

(२) स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥२॥ २
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥ ३
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां
प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥४॥ ४ (११)

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥ ५
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥ ६
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७॥ ७
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८॥ ८
स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ ९
तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥२॥ १०
यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥ ११
यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च
प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥४॥ १२
उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥ १३
अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥ १४
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७॥ १५
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८॥ १६
स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १७
तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥२॥ १८
वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥ १९
वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥४॥ २०
इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥ २१
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥ २२
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७॥ २३
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८॥ २४
स उदतिष्ठत् स उदीची दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ २५
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२॥ २६ (१४)

श्यैतायं च वै स नौधसायं च सप्तर्षिभ्यंश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते
य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥३॥ २७
श्यैतस्यं च वै स नौधसस्यं च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः
प्रियं धामं भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥४॥ २८
विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥ २९
भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥६॥ ३०
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥७॥ ३१
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥८॥ ३२ (४०)

[३] १-११ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १ पिपीलिकमध्या गायत्री; २ साम्नी उष्णिक्; ३ याजुषी जगती; ४ द्विपदाऽऽर्च्युष्णिक्; ५ आर्ची बृहती; ६ आसुर्यनुष्टुप्; ७ साम्नी गायत्री; ८ आसुरी पङ्क्तिः; ९ आसुरी जगती; १० प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ११ विराड् गायत्री ।

(३) स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति १
सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥२॥ तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ३
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ४
बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये५ ५
ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥६॥ वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ७
सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥८॥ तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ९
तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः १०
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ११ (५१)

[४] १-१८ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, १३, १६ दैवी जगती; ४, ७, १० प्राजापत्या गायत्री; २,८ आर्ची अनुष्टुप्; ३,१२ द्विपदा प्राजापत्या जगती; ५ प्राजापत्या पङ्क्तिः; ६ आर्ची गायत्री; ९ भौमार्ची त्रिष्टुप्; ११ साम्नी त्रिष्टुप्; १४ प्राजापत्या बृहती; १५, १८ द्विपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः; १७ आर्ची उष्णिक् ।

(४) तस्मै प्राच्या दिशः ॥१॥ १
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥२॥ २
वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ ३
तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥१॥ ४
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ॥२॥ ५ (५६)

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ ६
तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥१॥ ७
वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥२॥ ८
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ ९
तस्मा उदीच्या दिशः ॥१॥ १०
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥२॥ ११
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ १२
तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥१॥ १३
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥२॥ १४
हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ १५
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥१॥ १६
शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥२॥ १७
शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो
य एवं वेद ॥३॥ १८ (६९)

[५] १-२१ अथर्वा । रुद्रः । १ त्रिपदा समविषमा गायत्री; २ त्रिपदा भुरिगार्ची त्रिष्टुप्; ३,६,९,१२,१५,१८,२१ द्विपदा प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ४ त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः; ५,८,११,१७ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री; ७,१०,१६ त्रिपदा ककुप्; १३, १९ भुरिग् विषमा गायत्री; १४ निचृद्ब्राह्मी गायत्री; २० विराट् ।

(५) तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥ १
भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ २
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ ३
तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥ ४
शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ ५
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ ६ (७५)

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्॥१॥ ७
पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ ८
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ ९
तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥ १०
उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ ११
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ १२
तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्॥१॥ १३
रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ १४
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ १५
तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥ १६
महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ १७
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ १८
तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१॥ १९
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु तिष्ठति
नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥२॥ २०
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥३॥ २१ (९०)

[६] १-२७ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, ४ आसुरी पङ्क्तिः; ७, १०, १३, १६, २५ आसुरी बृहती; २२-२३ परोष्णिक्; २,१७ आर्ची पङ्क्तिः; १९ आर्च्युष्णिक्; ५,११ साम्नी त्रिष्टुप्; ८ साम्नी पङ्क्तिः; १४,२४ आर्ची त्रिष्टुप्; २० साम्न्यनुष्टुप्; २६ आर्च्यनुष्टुप्; ३ आर्ची पङ्क्तिः; ६, १२ निचृद्बृहती; ९ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; १५,१८ विराट् जगती; २१ आर्ची बृहती; २७ विराड् बृहती ।

(६) स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥२॥ २
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां
च वीरुधां च प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ ३ (९३)

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ ४
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥२॥ ५
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च
प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ ६
स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ ७
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥२॥ ८
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ ९
स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १०
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ॥२॥ ११
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ १२
स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १३
तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन्॥२॥ १४
आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च
प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ १५
सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥१॥ १६
तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥२॥ १७
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च
प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ १८
सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥१॥ १९
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥२॥ २०
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ २१
स दिशोऽनु व्यचलत् ॥१॥ २२
तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२॥ २३
विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धामं भवति य एवं वेद॥३॥ २४
स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥१॥ २५
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२॥ २६
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धामं भवति य एवं वेद ॥३॥ २७(११७)

[७] १-५ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ त्रिपदा निचृद् गायत्री; २ एकपदा विराड् बृहती; ३ विराडुष्णिक्; ४ एकपदा गायत्री; ५ पङ्क्तिः।

(७) स महिमा सद्रुर्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् १
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च
वर्षं भूत्वानुव्यवर्तयन्त २
ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ३
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ४
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं
गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ५ (१२२)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

[८] १-३ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ साम्नी उष्णिक्, २ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३ आर्ची पङ्क्तिः।

[२] (८) सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत १
स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् २
विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ३ (१२५)

[९] १-३ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ आसुरी जगती; २ आर्ची गायत्री; ३ आर्ची पङ्क्तिः।

(९) स विशोऽनु व्यचलत् १
तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् २
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ३ (१२८)

[१०] १-११ अथर्वा अध्यात्मं. व्रात्यः। १ द्विपदा साम्नी बृहती; २ त्रिपदाऽऽर्ची पङ्क्तिः ३ द्विपदा प्राजापत्या पङ्क्तिः; ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री; ५ त्रिपदा साम्नी बृहती; ६, ८, १० द्विपदा आसुरी गायत्री; ७, ९ साम्नी उष्णिक्, ११ आसुरी बृहती।

(१०) तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् १
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते २
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ३
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ४
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ५
इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ६ (१३४)

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ७
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ८
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ९
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति १०
य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ११ (१३९)

[११] १-११ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ दैवी पङ्क्तिः; २ द्विपदा पूर्वात्रिष्टुबतिशक्वरी; ३-६, ८, १० निचृदाऽऽर्ची बृहती (१० भुरिक्); ७, ९ द्विपदा प्राजापत्या बृहती। ११ द्विपदाऽऽर्च्यनुष्टुप्।

(११) तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् १
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं
तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति २
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ३
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ४
यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ५
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ६
ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ७
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ८
ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ९
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे १०
ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ११ (१५०)

[१२] १-११ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ त्रिपदा गायत्री; २ प्राजापत्या बृहती; ३-४ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप् (४ साम्नी); ५-६, ९-१० आसुरी गायत्री; ८ विराड् गायत्री; ७, ११ त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्।

(१२) तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् १
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्याति सृज होष्यामीति २
स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ३
स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ४
प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ५ (१५५)

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ६
पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ७
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ८
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ९
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति १०
नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ११ (१६१)

[१३] १-१४ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ साम्नी उष्णिक्; २, ६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ३, ५, ७ आसुरी गायत्री; ४, ८ साम्नी बृहती; ९ द्विपदा निचृद्गायत्री; १० द्विपदा विराड् गायत्री; ११ प्राजापत्या पङ्क्तिः; १२ आसुरी जगती; १३ सतः पङ्क्तिः, १४ अक्षरपङ्क्तिः।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति १
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे २
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ३
येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ४
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ५
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ६
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ७
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ८
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ९
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे १०
अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ११
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् १२
अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां
परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् १३
तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद १४ (१७५)

[१४] १-२४ अथर्वा। अध्यात्मं, व्रात्यः। १ त्रिपदा अनुष्टुप्; २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २२, २४ द्विपदा आसुरी गायत्री (१२, १४, १६, १८, भुरिक् प्राजापत्या अनुष्टुप्); ३, ९ पुर उष्णिक्; ५ अनुष्टुप्; ७ प्रस्तारपङ्क्तिः; ११ स्वराड् गायत्री; १३, १५ आर्ची पङ्क्तिः; १९ भुरिङ्नागी गायत्री; २१ प्राजापत्या त्रिष्टुप्।

(१४) स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन्मनोऽन्नादं कृत्वा १
मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद २
स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ३
बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ४
स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ५
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ६
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ७
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ८
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ९
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद १०
स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ११
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद १२
स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा १३
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद १४
स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा १५
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद १६
स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा १७
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद १८
स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा १९
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद २०
स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा २१
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद २२
स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा २३
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद २४ (१९९)

[१५] १-९ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १ दैवी पङ्क्तिः; २ आसुरी बृहती; ३ ४, ७-८ प्राजापत्या-ऽनुष्टुप् (४, ७-८ भुरिक्); ५-६ द्विपदा साम्नी बृहती; ९ विराड् गायत्री ।

(१५) तस्य व्रात्यस्य १
सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः २
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ३
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ४
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ५
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ६
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः ७
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ८
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ९ (२०८)

[१६] १-७ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, ३ साम्नी उष्णिक्; २, ४-५ प्राजापत्या उष्णिक्; ६ याजुषी त्रिष्टुप्; ७ आसुरी गायत्री ।

(१६) तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी १
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका २
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपानः सामावास्या ३
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ४
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपानः सा दीक्षा ५
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपानः स यज्ञः ६
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणाः ७ (२१५)

[१७] १-१० अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १, ५ प्राजापत्या उष्णिक्; २, ७ आसुरी अनुष्टुप्; ३ याजुषी पङ्क्तिः; ४ साम्नी उष्णिक्; ६ याजुषी त्रिष्टुप्; ८ त्रिपदा प्रतिष्ठाऽऽर्ची पङ्क्तिः; ९ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; १० साम्नी अनुष्टुप् ।

(१७) तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः १
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् २
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ३
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ४
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ५ (२२०)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवाः ६
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ७
तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा
एतदृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ८
तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ९
तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव १० (२२५)

[१८] १-५ अथर्वा । अध्यात्मं, व्रात्यः । १ दैवी पङ्क्तिः; २-३ आर्ची बृहती; ४ आर्ची अनुष्टुप्; ५ साम्नी उष्णिक् ।

(१८) तस्य व्रात्यस्य १
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः २
योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः ३
अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः ४
अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ५ (२३०)

[इति त्रिंशः प्रपाठकः ॥३०॥]

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

॥ इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

चतुर्दशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं—	३९३०
पञ्चदशकाण्डस्य	२३०
सर्वयोगः	४१६०

षोडशं काण्डम् ।

(१) दुःखमोचनम् ।

[१] १-१३ अथर्वा । प्रजापतिः (नव पर्यायाः) । १, ३ द्विपदा साम्नी बृहती; २, १० याजुषी त्रिष्टुप्; ४ आसुरी गायत्री; ५, ८ साम्नी पङ्क्तिः (५ द्विपदा); ६ साम्नी अनुष्टुप्; ७ निचृद् विराड् गायत्री; ९ आसुरी पङ्क्तिः; ११ साम्नी उष्णिक्; १२-१३ आर्ची अनुष्टुप् ।

[अथैकत्रिंशः प्रपाठकः ॥३१॥]

[१] (१) अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः १
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् २
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ३
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ४
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ५
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ६
योऽप्स्वन्तरग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ७
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ८
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ९
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् १०
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुष्वप्न्यं वहन्तु ११
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे १२
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः १३ (१३)

[२] १-६ अथर्वा । वाक् । १ आसुरी अनुष्टुप्; २ आसुरी उष्णिक्; ३ साम्नी उष्णिक्; ४ त्रिपदा साम्नी बृहती; ५ आर्ची अनुष्टुप्; ६ निचृद् विराड् गायत्री ।

(२) निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् १
मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् २
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ३
सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ४
सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ५
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ६ (१९)

[३] १-६ ब्रह्मा । आदित्यः । १ आसुरी गायत्री; २-३ आर्ची अनुष्टुप्; ४ प्राजापत्या त्रिष्टुप्; ५ साम्नी उष्णिक्; ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् ।

(३) मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् १
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् २
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ३
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ४
बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ५
असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ६ (२५)

[४] १-७ ब्रह्मा । आदित्यः । १, ३ साम्नी अनुष्टुप्; २ साम्नी उष्णिक्; ४ त्रिपदा अनुष्टुप्; ५ आसुरी गायत्री; ६ आर्ची उष्णिक्; ७ त्रिपदा विराड्गर्भाऽनुष्टुप् ।

(४) नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् । १ । स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा २
मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात् ३
सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ४
प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ५
स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ६
शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ७ (३२)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

[५] १-१० यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । १-६ (प्रथमा) विराड् गायत्री; [५ (प्रथमा) भुरिक्; ६ प्रथमा) स्वराट्]; १-६ (द्वितीया) प्राजापत्या गायत्री; १-६ (तृतीया) द्विपदा साम्नी बृहती ।

[२] (५) विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥ १
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ २। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ २
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ ४
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ ५
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ ६
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ १ ॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ ७

विघ्न ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥१॥ ८
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥२॥ ९
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥३॥ १० (४२)

[६] १-११ यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । १-४ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ५ साम्नी पङ्क्तिः; ६ निचृदार्षी बृहती; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ आसुरी जगती; ९ आसुरी बृहती; १० आर्ची उष्णिक्; ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वा आर्ची अनुष्टुप् ।

(६) अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् १
उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु २
द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ३
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ४
उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्यु१षसा संविदाना ५
उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ६
तेऽ३मुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ७
कुम्भीका दूषीकाः पीयकान् ८
जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ९
अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् १०
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ११ (५३)

[७] १-१३ यमः । दुःष्वप्ननाशनं, उषा । १ पङ्क्तिः; २ साम्नी अनुष्टुप्; ३ आसुरी उष्णिक्; ४ प्राजापत्या गायत्री; ५ आर्ची उष्णिक्; ६, ९, ११ साम्नी बृहती; ७ याजुषी गायत्री; ८ प्राजापत्या बृहती; १० साम्नी गायत्री; १२ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १३ आसुरी त्रिष्टुप् ।

(७) तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि १
देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि २
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ३
एवानेवाव सा गरत् ४
योऽ३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ५
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ६
सुयामंश्चाक्षुष ७ (६०)

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ८
यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ९
यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् १०
यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ११
तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि १२
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु १३ (६६)

[८] १-२७ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । १-२७ (प्रथमा) एकपदा यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप्; १-२७ (द्वितीया) त्रिपदा निचृद्गायत्री; १ (तृतीया) प्राजापत्या गायत्री; १-२७ (चतुर्थी) त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्; २-४,९,१७,१९,२४ (तृतीया) आसुरी जगती, ५,७-८,१०-११,१३,१८ (तृतीया) आसुरी त्रिष्टुप्; ६,१२,१४-१६, २०-२३,२७ (तृतीया) आसुरी पङ्क्तिः; २५-२६ (तृतीया) आसुरी बृहती ।

(८) जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ १
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ २
स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥ ३
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ४। १

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ५। २

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ६। ३ (७२)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ७। ४

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ८। ५

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥४॥ ९। ६

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १०। ७

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ११। ८ (७७)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १२। ९

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १३। १०

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १४। ११

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।२। स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।३।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १५। १२

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १६। १३

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽ३स्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १७। १४ (८१)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।३।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १८। १५
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १९। १६
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ स ऋतूनां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २०। १७
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २१। १८
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स मासानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २२। १९
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २३। २० (८९)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २४। २१
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।२। सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।३।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २५। २२
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २६। २३
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २७। २४
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २८। २५
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २९। २६ (९५)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ ३०
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ ३१
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३॥ ३२
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ३३ २७ (९९)

[९] १-४ यमः । १ प्रजापतिः; २ अग्निः, सोमः, पूषा; ३-४ सूर्यः । १ प्राजापत्या आर्च्यनुष्टुप्; २ आर्च्युष्णिक्; ३ साम्नी पङ्क्तिः; ४ परोष्णिक् ।

(९) जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः १
तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके २
अगन्म स्व१: स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ४ (१०३)

[इत्येकत्रिंशः प्रपाठकः ॥३१॥]

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—
पञ्चदशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं ४१६०
षोडशकाण्डस्य ... १०३
सर्वयोगः ४२६३

सप्तदशं काण्डम् ।

(१) अभ्युदयाय प्रार्थना ।

१-३० ब्रह्मा । आदित्यः । १ जगती; १-८ त्र्यवसाना; १-३ अतिजगती; ६-७, १९ अत्यष्टिः; ८, ११, १४ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्वरी; १०-१३, १६, १८-१९, २४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १८ भुरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३, १६, १८-१९, २४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७, ३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप् ।
[अथ द्वात्रिंशः प्रपाठकः ॥३२॥]

[१] विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद्विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ७ (७)

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ८

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ९

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १० (१)

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १२

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १३

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुरृषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १४

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १५

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १६ (१६)

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १७

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १८

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १९

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २० (२)

रुचिरसि रोचोऽसि ।
स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २३

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् २४

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय २५

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय २६

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८ (१८)

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ३० (३) (३०)

[इति द्वात्रिंशः प्रपाठकः ॥३२॥]

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

षोडशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं—	४२६३
सप्तदशकाण्डस्य	३०
सर्वयोगः	४२९३

अष्टादशं काण्डम् ।

(१) पितृमेधः ।

१-६१ अथर्वा। यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० रुद्रः, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरः। त्रिष्टुप्; ८, १५ आर्षी पङ्क्तिः; १४, ४९-५० भुरिक्, १८-२०, २१-२३ जगती, ३७-३८ परोष्णिक्, ५६-५७, ६१ अनुष्टुप्; ५९ पुरोबृहती।

[अथ त्रयस्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३३॥]

[१] ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः १
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् २
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ३
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ४
गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ६
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ७
यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ८
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ९
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि १० (१) (१०)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।३।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १८। १५
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ १९। १६
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ स ऋतूनां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २०। १७
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स आर्तवानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २१। १८
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स मासानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २२। १९
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २३। २० (८९)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः॥२॥ सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २४। २१
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।२। सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।३।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २५। २२
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥४॥ २६। २३
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २७। २४
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २८। २५
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ॥३॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ २९। २६ (९५)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं
यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥१॥ ३०
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥२॥ ३१
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३॥ ३२
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥४॥ ३३ २७ (९९)

[९] १-४ यमः । १ प्रजापतिः, २ अग्निः, सोमः, पूषा, ३-४ सूर्यः । १ प्राजापत्या आर्च्यनुष्टुप्; २ आर्च्युष्णिक्; ३ साम्नी पङ्क्तिः; ४ परोष्णिक् ।

(९) जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः १
तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके २
अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ३
वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ४ (१०३)

[इत्येकत्रिंशः प्रपाठकः ॥३१॥]

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

॥ इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—
पञ्चदशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं ४१६०
षोडशकाण्डस्य ... १०३
सर्वयोगः ४२६३

सप्तदशं काण्डम् ।

(१) अभ्युदयाय प्रार्थना ।

१-३० ब्रह्मा । आदित्यः । १ जगती; १-८ त्र्यवसाना; १-३ अतिजगती; ६-७, १९ अत्यष्टिः; ८, ११, १६ अतिधृतिः; ९ पञ्चपदा शक्वरी; १०-१३, १६, १८-१९, २४ त्र्यवसाना; १० अष्टपदा धृतिः; १२ कृतिः; १३ प्रकृतिः; १४-१५ पञ्चपदा शक्वरी; १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी; १८ भुरिगष्टिः; २४ विराडत्यष्टिः; १-५ षट्पदा; ११-१३, १६, १८-१९, २४ सप्तपदा; २० ककुप्; २१ चतुष्पदा उपरिष्टाद्बृहती; २२ याजुषी अनुष्टुप्; २३ निचृद्बृहती (२२-२३ द्विपदा); २५-२६ अनुष्टुप्; २७, ३० जगती; २८-२९ त्रिष्टुप्।

[अथ द्वात्रिंशः प्रपाठकः ॥३२॥]

[१] विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् १
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् २
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ३
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ४
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ५
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
द्विषंश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ६
उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ७ (७)

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्व१न्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ८

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ९

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १० (१)

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ११

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १२

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।
ययेन्द्र तन्वा३न्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १३

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १४

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १५

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १६ (१६)

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १७

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १८

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् १९

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् २० (२)

रुचिरसि रोचोऽसि ।
स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय २१

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २२

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः २३

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् २४

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय २५

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये । रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय २६

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय २८ (१८)

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः २९
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ३० (३) (३०)

[इति द्वात्रिंशः प्रपाठकः ॥३२॥]

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

॥ इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

षोडशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं— ४९६३
सप्तदशकाण्डस्य … … ३०
सर्वयोगः ४९९३

अष्टादशं काण्डम् ।

(१) पितृमेधः ।

१-६१ अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः, ४० रुद्रः, ४१-४३ सरस्वती, ४४-४६, ५१-५२ पितरः । त्रिष्टुप्; ८, १५ आर्षी पङ्क्तिः; १४, ४९-५० भुरिक्, १८-२०, २१-२३ जगती, ३७-३८ परोष्णिक्, ५६-५७, ६१ अनुष्टुप्; ५९ पुरोबृहती ।

[अथ त्रयस्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३३॥]

[१] ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः १
न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् २
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ३
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ४
गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ६
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ७
यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ८
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ९
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि १० (१) (१०)

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ११
किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद् रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि १२
न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् १३
न वा उ ते तनूं तन्वा३ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय १४
बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् १५
अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् १६
त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि १७
वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून् १८
रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति १९
सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् २० (२)
अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत २१
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो३ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः २२
उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती २३
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् २४ (२४)

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः २५
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् २६
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश २७
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान २८
द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् २९
देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ३० (३)
अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ३१
स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ३२
किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ३३
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ३४
यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ३५
यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ३६
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ३७
शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ३८ (३८)

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ३९
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ४० (४)
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ४१
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४२
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ४३
उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ४४
आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ४५
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ४६
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिरृक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ४७
स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ४८
परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ४९
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ५० (५)
बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाधा नः शं योररपो दधात ५१
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता कराम ५२ (५२)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ५३
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानौ स्वधया मदन्तौ यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ५४
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ५५
उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ५६
द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ५७
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ५८
अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ५९
इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ६०
इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् । प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ६१ (६)(६१)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(२) पितृमेधः ।

१-६० अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः; ३, ३४ अग्निः; ५ जातवेदाः; २९ पितरः । त्रिष्टुप्; १-३, ६, १४-१८, २०, २२-२३, २५, ३०, ३४, ३६, ४३, ४८, ५०-५२, ५६ अनुष्टुप्; ४, ७, ९, १३ जगती; ५, २६, ३९, ५७ भुरिक्; १९ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २४ त्रिपदा समाविषमाऽऽर्षी गायत्री; ३७ विराड् जगती; ३८-४४ आर्षी गायत्री; (४०, ४१-४४ भुरिक्) ४९ ककुम्मती अनुष्टुप् ।

[२] यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः १
यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः २
यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन ।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ३ (६४)

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृँरुप ४
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ५
त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ६
सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ७
अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ८
यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
अजं यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ९
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः १० (७)
अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अधा पितॄन्त्सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ११
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि १२
उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १३
सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् १४
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः । ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः । तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १६
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः । ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् १७
सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् । ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १८
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः १९
असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व । स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः २० (८)
(८१)

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजुषाण एहि ।
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्माः २१
उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुतः । अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति २२
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे । स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव २३
मा ते मनो मासोर्माङ्गानां मा रसस्य ते । मा ते हास्त तन्वः किं चनेह २४
मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही । लोकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु २५
यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा वेशयन्तु २६
अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परि ग्रामादितः ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार २७
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् २८
सं विशन्त्विह पितरः स्वा नः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः २९
यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः ३० (९)
अश्वावतीं प्र तर या सुशेवार्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ३१
यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान ३२
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ३३
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे ३४
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ३५
शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं तपः ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ३६ (१०)

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ३७
इमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ३८
प्रेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ३९
अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४० (१०)
वीमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४१
निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४२
उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४३
समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै । शते शरत्सु नो पुरा ४४
अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् । यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ४५
प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय । अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ ४६
ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ४७
उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ४८
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ४९
इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् । माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ५० (११)
इदमिद् वा उ नापरं जरस्यन्यदितोऽपरम् । जाया पतिमिव वाससाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ५१
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्रं तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ५२
अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहात्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र गच्छतम् ५३
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ५४
आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ५५ (११६)

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् ५६
एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ५७
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयाति ५८
दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम ५९
धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ६० (१२) (१११)

[इति त्रयस्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३३॥] ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(३) पितृमेधः ।

१-७३ अथर्वा । यमः, ४४, ४६ मन्त्रोक्ताः, ५-६ अग्निः, ५० भूमिः, ५४ इन्दुः, ५६ आपः । त्रिष्टुप्; ४,८,११,१३ सतः पङ्क्तिः, ५ त्रिपदा निचृद्गायत्री; ६,५६,६८,७०,७२ अनुष्टुप् (५६ आर्षी); १८ २५-२९, ४४, ४६ जगती; (१८ भुरिक्, २९ विराट्) ३० पञ्चपदा अतिजगती; ३१ विराट् शक्वरी, ३२-३५ ४७, ४९, ५२ भुरिक्; ३६ एकावसाना आसुरी अनुष्टुप्, ३७ एकावसाना आसुरी गायत्री, ३९ परा त्रिष्टुप् पङ्क्तिः; ५० प्रस्तारपङ्क्तिः; ५४ पुरोऽनुष्टुप्, ५८ विराट्, ६० त्र्यवसाना षट्पदा जगती, ६४ भुरिक् पथ्यापङ्क्तिः; ६७ पथ्या-बृहती; ६९, ७१ उपरिष्टाद् बृहती ।

[अथ चतुस्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३४॥]
[३] इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम् ।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि १
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ २
अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम् ३
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ४
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् । अग्ने पित्तमपामसि ५ (११६)

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ६
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ७
उत् तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ८
प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ९
वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु १० (१३)
वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनैः पुनन्तु ११
मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु १२
यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत १३
परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिं च नः सर्ववीरं दधात १४
कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः १५
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः १६
कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतरं नवीयः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु १७
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते १८
यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।
ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः १९ (१४०)

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् २०(१४)
अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः ।
शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् २१
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन् २२
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः ।
मर्तानांश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः २३
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः २४
इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २५
धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २६
अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २७
सोमो मा विश्वैर्देवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २८
धर्ता ह त्वा धरुणो धारयाता ऊर्ध्वं भानुं सविता द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २९
प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३०(१५)
दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३१
प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३२
उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३३(१५४)

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३४
ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ३५
धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ३६
उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ३७
इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।
प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वमु लोकं विदाने ३८
स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः ।
वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास एतत् ३९
त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैतद् व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ४० (१६)
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व१मा रिरेच ४१
त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ४२
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ४३
अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयिं च नः सर्ववीरं दधात ४४
उपहूता नः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ४५
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ४६
ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः सत्यैः कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ४७
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ४८ (१६२)

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ४९
उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ५० (१७)
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ५१
उत् ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते कृणोतु ५२
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ताम् ५३
अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम् ५४
यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ५५
पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।
अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ५६
इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ५७
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ५८
ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्व१न्तरिक्षम् ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति ५९
शं ते नीहारो भवतु शं ते प्रुष्वाव शीयताम् ।
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्य१प्सु शं भुव इमं स्व१ग्निं शमय ६० (१८)
विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम् ६१ (१८१)

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः ६२

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ६३

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ६४

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ६५

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ६६

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ६७

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ६८

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ६९

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ७०

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ७१

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ७२

एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितृणां लोकं प्रथमो यो अत्र ७३ (१९) (१९४)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(४) पितृमेधः ।

१-८९ अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः, ८१ पितरः, ८८ अग्निः, ८९ चन्द्रमाः । त्रिष्टुप्; १, ४, ७, १४, ३६, ६० भुरिक्; २, ५, ११. २९. ५०-५१, ५८ जगती; ३ पञ्चपदा भुरिगतिजगती; ६, ९, १३ पञ्चपदा शाक्वरी (९ भुरिक्. १३ त्र्यवसाना); ८ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; १२ महाबृहती; १६-२४ त्रिपदा भुरिङ् महाबृहती; २६, ३३, ४३, उपरिष्टाद्बृहती (२६ विराट्); २७ याजुषी गायत्री; २५, ३१-३२, ३८, ४१-४२, ५५-५७, ५९, ६१ अनुष्टुप् (५६ ककुम्मती); ३९, ६२-६३ आस्तारपङ्क्तिः (३९ पुरोविराट्, ६२ भुरिक्, ६३ स्वराट्); ४९ अनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप्; ५३ पुरोविराट् सतः पङ्क्तिः; ६६ त्रिपदा स्वराड् गायत्री; ६७ द्विपदाऽऽर्ची अनुष्टुप्; ६८, ७१ आसुरी अनुष्टुप्; ७२-७४, ७९ आसुरी पङ्क्तिः; ७५ आसुरी गायत्री; ७६ आसुरी उष्णिक्; ७७ दैवी जगती; ७८ आसुरी त्रिष्टुप्; ८० आसुरी जगती; ८१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; ८२ साम्नी बृहती; ८३-८४ साम्नी त्रिष्टुप्; ८५ आसुरी बृहती; (६७-६८, ७१-८६ एकावसाना); ८६-८७ चतुष्पदा उष्णिक्. (८६ ककुम्मती, ८७ शंकुमती); ८८ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्तिः; ८९ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः ।

[४] आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ रोहयामि ।
अवाड्ढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त लोके १

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् २

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ३

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ४

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः कामंकामं यजमानाय दुह्राम् ५

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्ष्वाहृणीयमानः ६

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ७

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि शग्मः ८ (२०१)

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्यः ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशोदिशो
अग्ने परि पाहि घोरात् ९

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं मदन्ति १० (२०)

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् ।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतामु लोके ११

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् १२

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् १३

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः १४

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् १५

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ १६

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ १७

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ १८

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ १९

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २० (२१)

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २१ (२१५)

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २२

अपूपवान् रसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २३

अपूपवानपवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ २४

अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः २५

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् २६

अक्षितिं भूयसीम् २७

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः २८

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् २९

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ३० (२२)

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ३१

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ३२

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।
एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र ३३

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः ३४

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति पिन्वमानः ३५ (११९)

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ३६
इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ३७
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः । इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ३८
पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ३९
आपो अग्निं प्र हिणुत पितॄँरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि यच्छान् ४० (२३)
समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् । स वेद निहितान्निधीन् पितॄन् परावतो गतान् ४१
यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते । ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ४२
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ४३
इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृतामु लोकम् ४४
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ४५
सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ४६
सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ४७
पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु ४८
आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ मम ४९
एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधाः ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य उपसंपराणयादिमान् ५० (२४) (१४४)

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ५१
एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्वं सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ५२
पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो विदधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ५३
ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ५४
यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः । एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ५५
इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा । स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ५६
ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ५७
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ५८
त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंछुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ५९
प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्य इव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ६० (२५)
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ६१
आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ६२
परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तुं सुप्रजसः सुवीराः ६३
यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयं जातवेदाः ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गाः स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ६४ (१५८)

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभिः ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ६५
असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः । अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ६६
शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ६७
येऽस्माकं पितरस्तेषां बर्हिरसि ६८
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ६९
प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अधा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणाः ७० (२६)
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ७१
सोमाय पितृमते स्वधा नमः ७२
पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ७३
यमाय पितृमते स्वधा नमः ७४
एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ७५
एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ७६
एतत् ते तत स्वधा ७७
स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ७८
स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ७९
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ८० (२७)
नमो वः पितर ऊर्जे नमो वः पितरो रसाय ८१
नमो वः पितरो भामाय नमो वः पितरो मन्यवे ८२
नमो वः पितरो यद् घोरं तस्मै नमो वः पितरो यत् क्रूरं तस्मै ८३
नमो वः पितरो यच्छिवं तस्मै नमो वः पितरो यत् स्योनं तस्मै ८४ (१७८)

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः ८५
येऽत्र पितरः पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्माँस्तेऽनु यूयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ८६
य इह पितरो जीवा इह वयं स्मः ।
अस्माँस्तेऽनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म ८७
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ८८
चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ८९ (२८) (१८३)

[इति चतुस्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३४॥]

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

॥ इत्यष्टादशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

सप्तदशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं— ४२९३
अष्टादशकाण्डस्य २८३
सर्वयोगः ४५७६

एकोनविंशं काण्डम् ।

(१) यज्ञः ।

१-३ ब्रह्मा । यज्ञः, चन्द्रमाश्च । १-२ पथ्याबृहती, ३ पङ्क्तिः ।

[अथ पञ्चत्रिंशः प्रपाठकः ॥३५॥]

[१] सं सं स्रवन्तु नद्यं१ः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि १
इमं होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि २
रूपंरूपं वयोवयः संरभ्यैनं परि ष्वजे ।
यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशो वर्धयन्तु संस्राव्येण हविषा जुहोमि ३(३)

(२) आपः ।

१-५ सिन्धुद्वीपः । आपः । अनुष्टुप् ।

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः १
शं त आपो धन्वन्या३ः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः २
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः । भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ३
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् । अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ४
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ५(८)

(३) जातवेदाः ।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । अग्निः । त्रिष्टुप्, २ भुरिक् ।

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि १
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः ।
अग्ने सर्वास्तन्व१ः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः २
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथेऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ३(११)

श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्वव देवानां यज हेडो अग्ने ४ (१२)

(४) आकूतिः ।

१-४ अथर्वाङ्गिराः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ पञ्चपदा विराडतिजगती, २ जगती ।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा १
आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् २
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ३
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ४ (१६)

(५) जगतो राजा ।

१ अथर्वाङ्गिराः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् १ (१७)

(६) जगद्बीजः पुरुषः ।

१-१६ नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप् ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् १
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङशनानशने अनु २
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ३
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ४
यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ५ (२२)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ६
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ७
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ८
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ९
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः १०
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः । तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ११
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः १२
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत १३
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये १४
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद् यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् १५
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः । राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि १६ (३३)

(७) नक्षत्राणि ।

१-५ गार्ग्यः । नक्षत्राणि । त्रिष्टुप्, ४ भुरिक् ।

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् १
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे २
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ३
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ४
आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ५(३८)

(८) नक्षत्राणि ।

१-७ गार्ग्यः । नक्षत्राणि, ९ ब्रह्मणस्पतिः । त्रिष्टुप्, १ विराड् जगती ।

यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु १
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे ।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु २
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ३
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम् । सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितः सुव ४
अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ५
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते । सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ६
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ७ (४५)

(९) शान्तिः ।

१-१४ वसिष्ठः [शन्तातिः ?] शान्तिः, बहुदैवत्यम् । अनुष्टुप्, १ विराडुरोबृहती, ५ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ९ पञ्चपदा ककुम्मती, १२ त्र्यवसाना सप्तपदाऽष्टिः, १४ चतुष्पदा संकृतिः ।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः १
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः २
इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता । ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ३
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् । येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ४
इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ५
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ६
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ७ (५२)

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ८
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ९
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः १०
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ११
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु १२
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु १३
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः ।
ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं
यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः १४ (५९)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(१०) शान्तिः ।

१-१० वसिष्ठः । बहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ।

[२] शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ १
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु २
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ४ (६३)

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ५
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ७
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः १० (६९)

(११) शान्तिः ।

१-६ वसिष्ठः । बहुदैवत्यम् । त्रिष्टुप् ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु १
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः २
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ३
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ४
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ६ (७५)

(१२)

१ वसिष्ठः । उषा । त्रिष्टुप् ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः १ (७६)

(१३) एकवीरः ।

१-११ अप्रतिरथः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्, ३-६, ११ भुरिक् ।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्व१र्यत् १
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः २
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ३
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू१ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ४
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदन् ५
इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ६
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ७
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ८
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ९
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् १०
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ११ (८७)

(१४) अभयम् ।

१ अथर्वा । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु १ (८८)

(१५) अभयम् ।

१-६ अथर्वा । १-४ इन्द्रः; मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप्; १ पथ्याबृहती; २,५ जगती; ३ विराट् पथ्यापङ्क्तिः ।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि १
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय २
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ३
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ४
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ५
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ६ (९४)

(१६) अभयम् ।

१-२ अथर्वा । मन्त्रोक्ताः । १ अनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भाऽतिशक्वरी ।

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म २ (९६)

(१७) सुरक्षा ।

१-१० अथर्वा । मन्त्रोक्ताः । जगती; ५, ७, १० अतिजगती; ६ भुरिक्; ९ पञ्चपदाऽतिशक्वरी ।

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा १ (९७)

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा २
सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ३
वरुणो मादित्यैरेतस्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ४
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ५
आपो मौषधीमतीरेतस्यां दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मां रक्षन्तु ता मां गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा
विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ७
इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्यां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ८
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवायां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा ९
बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वायां दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मां रक्षतु स मां गोपायतु तस्मां आत्मानं परि ददे स्वाहा १० (१०६)

(१८) सुरक्षा ।

१-१० अथर्वा । मन्त्रोक्ताः । १,८ साम्नी त्रिष्टुप्; २-६ आर्च्यनुष्टुप् । (५ सम्राडार्च्यनुष्टुप्); ७,९-१० (द्विपदा) प्राजापत्या त्रिष्टुप् ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्यां दिशोऽभिदासात् १
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात् २
सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ३
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात् ४
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्यां दिशोऽभिदासात् ५
अपस्त ओषधीमतीर्ऋच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात् ६
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ७ (११३)

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्यां दिशोऽभिदासात् ८
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवायां दिशोऽभिदासात् ९
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वायां दिशोऽभिदासात् १० (११६)

(१९) शर्म ।

१-११ अथर्वा । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताश्च । पङ्क्तिः; १,३,९ भुरिग्बृहती; १० स्वराट्; २,४-८,११ अनुष्टुब्गर्भा ।

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु १
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु २
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ३
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ४
सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ५
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ६
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ७
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ८
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ९
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु १०
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ११ (१२७)

(२०) सुरक्षा ।

१-४ अथर्वा । बहुदैवत्यम् । १ त्रिष्टुप्; २ जगती; ३ पुरस्ताद्बृहती; ४ अनुष्टुब्गर्भा ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः १
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु २
यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ३
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रतीचिका ४ (१३१)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(२१) छन्दांसि ।

१ ब्रह्मा । छन्दांसि । एकावसाना द्विपदा साम्नी बृहती ।

[३] गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै १ (१३२)

(२२) ब्रह्मा ।

१-२१ अङ्गिराः । मन्त्रोक्ताः । १ साम्नी उष्णिक्; ३, १९ प्राजापत्या गायत्री; ८, ७, ११, १७ दैवी जगती; ५, १२-१३ दैवी त्रिष्टुप्; २, ६, १४-१६, २० दैवी पङ्क्तिः; ८-१० आसुरी जगती; १८ आसुर्यनुष्टुप्; २१ चतुष्पदा त्रिष्टुप् (१-२० एकावसानाः)।

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा १ पृष्ठाय स्वाहा २
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ३ नीलनखेभ्यः स्वाहा ४
हरितेभ्यः स्वाहा ५ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ६
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ७ प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ८
द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ९ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा १०
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ११ उत्तमेभ्यः स्वाहा १२
उत्तरेभ्यः स्वाहा १३ ऋषिभ्यः स्वाहा १४
शिखिभ्यः स्वाहा १५ गणेभ्यः स्वाहा १६
महागणेभ्यः स्वाहा १७ सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा १८
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा १९ ब्रह्मणे स्वाहा २०
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः २१ (१५३)

(२३) अथर्वाणः ।

१-३० अथर्वा । चन्द्रमाः, मन्त्रोक्ताश्च । १ आसुरी गायत्री; २-७; २०, २३, २७ दैवी त्रिष्टुप्; ८,१०-१२, १४-१६ प्राजापत्या गायत्री; १७, १९, २१, २४-२५, २९ दैवी पङ्क्तिः; ९, १३, १८, २२, २६, २८ दैवी जगती; (१-२९ एकावसानाः)।

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा १ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा २
षळृचेभ्यः स्वाहा ३ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ४
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ५ नवर्चेभ्यः स्वाहा ६
दशर्चेभ्यः स्वाहा ७ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ८
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ९ त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा १०
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ११ पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा १२
षोडशर्चेभ्यः स्वाहा १३ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा १४
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा १५ एकोनविंशतिः स्वाहा १६
विंशतिः स्वाहा १७ महत्काण्डाय स्वाहा १८
तृचेभ्यः स्वाहा १९ एकर्चेभ्यः स्वाहा २०
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा २१ एकानृचेभ्यः स्वाहा २२
रोहितेभ्यः स्वाहा २३ सूर्याभ्यां स्वाहा २४
व्रात्याभ्यां स्वाहा २५ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा २६
विषासह्यै स्वाहा २७ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा २८
ब्रह्मणे स्वाहा २९
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ३० (१८३)

(२४) राष्ट्रम् ।

१-८ अथर्वा । ब्रह्मणस्पतिः, बहुदैवत्यम् । अनुष्टुप्, ४-६, ८ त्रिष्टुप्, ७ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् । तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन १
परीममिन्द्रमायुषे महे क्षत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् क्षत्रेऽधि जागरत् २
परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन । यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ३
परि धत्त धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ४ (१८७)

जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ५
परीदं वासो अधिथाः स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर्वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ७
हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ८ (१९१)

(२५) अश्वः ।

१ गोपथः । वाजी । अनुष्टुप् ।

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् १ (१९२)

(२६) हिरण्यधारणम् ।

१-४ अथर्वा । अग्निः, हिरण्यं च । त्रिष्टुप्; ३ अनुष्टुप्; ४ पथ्यापङ्क्तिः ।

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति १
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति २
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ३
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्यं भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ४ (१९६)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(२७) सुरक्षा ।

१-१५ भृग्वङ्गिराः । त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च । अनुष्टुप्; ३,९ त्रिष्टुप्; १० जगती(?); ११ आर्ची उष्णिक्; १२ आर्च्यनुष्टुप्; १३ साम्नी त्रिष्टुप् (११-१३ एकावसानाः) ।

[४] गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः १
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु २ (१९८)

तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ३
त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् । त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ४
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन् । अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ५
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन् । भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ६
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः । प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ७
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः । प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ८
देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ९
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व१न्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि १०
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ११
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १२
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् १३
असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम् ।
सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः १४
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म १५ (२११)

(२८) दर्भमणिः ।

१-१० ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः) । दर्भमणिः, मन्त्रोक्ताश्च । अनुष्टुप् ।

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे । दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः १
द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः । दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभिन्त्संतापयन् २
घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे । हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजं बलम् ३
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे । उद्यन्त्वचमिव भूम्याः शिर एषां वि पातय ४
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ५ (२१६)

छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दान् छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ६
वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ७
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्दो कृन्त मे द्विषतो मणे ८
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ९
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे १० (२२१)

(२९) दर्भमणिः ।

१-९ ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

निक्ष दर्भ सपत्नान् मे निक्ष मे पृतनायतः । निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे १
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः । तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे २
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायतः । रुन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ३
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ४
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायतः । मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ५
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः । पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ६
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः । ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ७
दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ८
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ९ (२३०)

(३०) दर्भमणिः ।

१-५ ब्रह्मा । दर्भमणिः । अनुष्टुप् ।

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः १
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः २
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ३
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ४ (२३४)

यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ५ (२३५)

(३१) औदुम्बरमणिः ।

१-१४ सविता (पुष्टिकामः) । औदुम्बरमणिः । अनुष्टुप्; ५, १२ त्रिष्टुप्; ६ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः; ११, १३ पञ्चपदा शक्वरी; १४ विराडास्तारपङ्क्तिः ।

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा । पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् १
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या २
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ३
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ४
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ५
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ६
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ७
देवो मणिः सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ८
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ९
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः १०
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत् सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ११
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि १२ (२४७)

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् १३
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् १४ (२४९)

(३१) दर्भः।

१-१० भृगुः (आयुष्कामः)। दर्भः। अनुष्टुप्; ८ पुरस्ताद्बृहती; ९ त्रिष्टुप्; १० जगती।

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः। दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे १
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति २
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ३
तिस्रो दिवो अत्यतृणत् तिस्र इमाः पृथिवीरुत। त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ४
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्। उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीवहि ५
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः। सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ६
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्।
तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ७
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ८
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ९
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः १० (२५९)

(३२) दर्भः।

१-५ भृगुः। दर्भः। १ जगती, २, ५ त्रिष्टुप्; ३ आर्षी पङ्क्तिः; ४ आस्तारपङ्क्तिः।

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम्।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः १ (२६०)

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण २
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ३
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ४
दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः।
अतिष्ठाया वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ५ (२६४)

॥इति चतुर्थोऽनुवाकः॥४॥

(३४) जङ्गिडमणिः।

१-१० अङ्गिराः। वनस्पतिः, लिङ्गोक्ताः। अनुष्टुप्।

[५] जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः। द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः १
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये। सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् २
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः। अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ३
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः। अथो सहस्वां जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ४
स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः। विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ५
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि। तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ६
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः। विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ७
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य। पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ८
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ। अमीवाः सर्वाश्चातयं जहि रक्षांस्योषधे ९
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्। तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् १० (२७४)

(३५) जङ्गिडः।

१-५ अङ्गिराः। वनस्पतिः। अनुष्टुप्; ३ पथ्यापङ्क्तिः; ४ शकरी निचृत् त्रिष्टुप्।

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः।
देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् १
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव।
देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् २ (२७६)

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम्।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ३
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ४
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः।
सर्वांस्तान् विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ५ (२७९)

(३६) शतवारो मणिः।

१-६ ब्रह्मा। शतवारः। अनुष्टुप्।

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा। आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः १
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः। मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति २
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः। सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ३
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्। दुर्णाम्नः सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ४
हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ५
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ६ (२८५)

(३७) बलप्राप्तिः।

१-४ अथर्वा। अग्निः। १ त्रिष्टुप्; २ आस्तारपङ्क्तिः; ३ त्रिपदा महाबृहती; ४ पुर उष्णिक्।

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे १
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय २
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ३
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ४ (२८९)

(३८) यक्ष्मनाशनम्।

१-३ अथर्वा। गुल्गुलुः। १ अनुष्टुप्; २ चतुष्पदा उष्णिक्; ३ एकावसाना प्राजापत्याऽनुष्टुप्।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते १ (२९०)

विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् २
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ३ (२९२)

(३९) कुष्ठनाशनम्।

१-१० भृग्वङ्गिराः। कुष्ठः। अनुष्टुप्; २, ३ त्र्यवसाना पथ्यापङ्क्तिः; ४ षट्पदा जगती; ५ सप्तपदा शक्वरी; ६-८ अष्टिः (५-८ चतुरवसाना)।

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः १
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा २
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ३
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ४
त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि। त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ५
अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ६
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ७
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः। तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ८
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः।
यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ९
शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव १० (३०२)

(४०) मेधा ।

१-४ ब्रह्मा । बृहस्पतिः, विश्वे देवाश्च । १ पराऽनुष्टुप् त्रिष्टुप्; २ पुरःककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती; ३ बृहतीगर्भा; ४ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री ।

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः १
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी २
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ३
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ४ (३०६)

(४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

१ ब्रह्मा । तपः । त्रिष्टुप् ।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु १ (३०७)

(४२) ब्रह्मयज्ञः ।

१-४ ब्रह्मा । ब्रह्म । १ अनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना ककुम्मती पथ्यापङ्क्तिः; ३ त्रिष्टुप्; ४ जगती ।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः १
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा २
अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इममिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ३
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ४ (३११)

(४३) ब्रह्मा ।

१-८ ब्रह्मा । ब्रह्म. बहुदैवत्यम् । त्र्यवसाना शङ्कुमती पथ्यापङ्क्तिः ।

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे । अग्नये स्वाहा १ (३१२)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा २
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ३
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ४
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ५
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे । इन्द्राय स्वाहा ६
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु । अद्भ्यः स्वाहा ७
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ८ (३१९)

(४४) भैषज्यम् ।

१-१० भृगुः । आञ्जनम्, ८-९ वरुणः । अनुष्टुप्; ४ चतुष्पदा शङ्कुमत्युष्णिक्; ५ निचृद्विषमा त्रिपदा गायत्री ।

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे । तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् १
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः । सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् २
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् । कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ३
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड । निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ४
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् । वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ५
देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः । न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ६
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः । अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ७
बह्वीदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ८
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ९
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः १० (३२९)

(४५) आञ्जनम् ।

१-१० भृगुः । आञ्जनम्, मन्त्रोक्ताः । १-२ अनुष्टुप्; ३-५ त्रिष्टुप्; ६-१० एकावसाना महाबृहती (६ विराट्, ७-१० निचृत्) ।

ऋणादृणमिव संनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन १
यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् २
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ३
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु ।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ४
आक्ष्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम् ।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ५
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ६
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ७
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ८
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ९
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा १०(३३९)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(४६) अस्तृतमणिः ।

१-७ प्रजापतिः । अस्तृतमणिः । त्रिष्टुप्; १ पञ्चपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्; २ षट्पदा भुरिक्शक्वरी; ३,७ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः; ४, ५ अतिजगती (४ चतुष्पदा, पञ्चपदा); ६ पञ्चपदोष्णिग्गर्भा विराड् जगती पङ्क्तिः ।

[१] प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु १
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दमन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून् वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु २
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ३ (३४२)

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव ।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ४
अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ५
घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ६
यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ७ (३४६)

(४७) रात्रिः ।

१-९ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्; १ पथ्याबृहती; २ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा पराऽतिजगती; ६ पुरस्ताद्बृहती; ७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः १
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि २
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ३
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ४
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ५
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत । मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ६
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ७
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ८
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि । गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ९(३५५)

(४८) रात्रिः ।

१-६ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप्; १ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; २ त्रिपदा विराडनुष्टुप्; ३ बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्; ५ पथ्यापङ्क्तिः ।

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि १
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि २ (३५७)

यत् किं चेदं पतयति यत् किं चेदं सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्वं तस्मात् त्वं रात्रि पाहि नः ३
सा पश्चात् पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ४
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ५
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वां भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ६ (३६९)

(४९) रात्रिः ।

१-१० गोपथः, भरद्वाजश्च । रात्रिः । अनुष्टुप्; १-५, ८ त्रिष्टुप्; ६ आस्तारपङ्क्तिः; ७ पथ्यापङ्क्तिः; १० त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा १
अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः २
वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ३
सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ४
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ५
स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
आसाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ६
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न विद्यते ७
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ८
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ९ (३७०)

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति १० (३७१)

(५०) रात्रिः ।

१-७ गोपथः । रात्रिः । अनुष्टुप् ।

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि १
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा २
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ३
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ४
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ५
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान् भोजय यथेदन्यानुपायसि ६
उपसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ७ (३७८)

(५१) आत्मा ।

१-२ ब्रह्मा । १ आत्मा, २ सविता च । १ एकपदा ब्राह्म्यनुष्टुप्; २ त्रिपाद् यवमध्योष्णिक् (१-२ एकावसाना) ।

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः १
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे २ (३८०)

(५२) कामः ।

१-५ ब्रह्मा । कामः । त्रिष्टुप्, ३ चतुष्पदा उष्णिक्, ५ उपरिष्टाद्बृहती ।

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि १
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि । २
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ३
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ४
यत् काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ५ (३८१)

(५३) कालः ।

१-१० भृगुः । कालः । अनुष्टुप्, १-४ त्रिष्टुप्, ५ निचृत् पुरस्ताद्बृहती ।

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा १
सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः २
पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ३
स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ४
कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत । काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ५
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ७
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ८
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ९
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत १०
(३९५)

(५४) कालः ।

१-५ भृगुः । कालः । अनुष्टुप्, २ त्रिपदाऽऽर्षी गायत्री; ५ त्र्यवसाना षट्पदा विराडष्टिः ।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः । कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः १
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता २
कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा । कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ३
कालो यज्ञं समैरयद् देवेभ्यो भागमक्षितम् । काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ४
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ५ (४००)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

(५५) रायस्पोषप्राप्तिः ।

१-६ भृगुः । अग्निः । त्रिष्टुप्; २ आस्तारपङ्क्तिः; ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती ।

[७] रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम १
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २
सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ३
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ४
अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ५
त्वामिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् ।
अहरहर्बलिमित् ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ६ (४०६)

(५६) दुःष्वप्ननाशनम् ।

१-६ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । त्रिष्टुप् ।

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ १
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः २
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ३
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ४
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ५
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ६ (४१२)

(५७) दुःष्वप्ननाशनम् ।

१-५ यमः । दुःष्वप्ननाशनम् । १ अनुष्टुप्; २-३ त्रिष्टुप् (त्र्यवसाना); ४ षट्पदा उष्णिग्बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी; ५ त्र्यवसाना पञ्चपदा परशाक्वरातिजगती ।

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं यथ॒र्णं सं॒नय॑न्ति ।
ए॒वा दु॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॑मप्रि॒ये सं न॑यामसि १
सं राजा॑नो अगुः॒ सम॒णान्य॑गुः॒ सं कु॒ष्ठा अ॑गुः॒ सं क॒ला अ॑गुः ।
सम॒स्मासु॒ यद् दु॒ष्वप्न्यं॒ निर्द्वि॑ष॒ते दु॒ष्वप्न्यं॑ सुवाम २
देवा॑नां पत्नी॑नां गर्भ॒ यम॑स्य कर॒ यो भ॒द्रः स्व॑प्न ।
स मम॒ यः पा॒पस्तद् द्वि॑ष॒ते प्र हि॑ण्मः । मा तृ॒ष्टाना॑मसि कृष्णशकु॒नेर्मुख॑म् ३
तं त्वा॑ स्वप्न॒ तथा॒ सं वि॑द्म॒ स त्वं स्वप्ना॑श्व इव॒ काय॑मश्व॑ इव नीना॒हम् ।
अ॒नास्मा॒कं दे॑वपी॒युं पिया॑रुं वप॒ यद॒स्मासु॑ दु॒ष्वप्न्यं॒ यद् गोषु॒ यच्च॑ नो गृ॒हे ४
अ॒नास्मा॒कस्तद् दे॑वपी॒युः पिया॑रुर्नि॒ष्कमि॑व॒ प्रति॑ मुञ्चताम् ।
नवा॑र॒त्नीनप॑मया अ॒स्माकं॑ त॒तः परि॑ ।
दु॒ष्वप्न्यं॒ सर्वं॑ द्वि॒ष॒ते निर्द॑यामसि ५(४१७)

(५८) यज्ञः ।

१-६ ब्रह्मा । यज्ञः, बहुदेवत्यम् । त्रिष्टुप्; २ पुरोऽनुष्टुप्; ३ चतुष्पदाऽतिशक्वरी; ५ भुरिक् ।

घृ॒तस्य॑ जू॒तिः सम॑ना॒ सदे॑वा संवत्स॒रं ह॒विषा॑ व॒र्धय॑न्ती ।
श्रोत्रं॒ चक्षुः॑ प्रा॒णोऽच्छि॑न्नो नो अ॒स्त्वच्छि॑न्ना व॒यमायु॑षो॒ वर्च॑सः १
उ॒पास्मान् प्रा॒णो ह्व॑यता॒मुप॑ व॒यं प्रा॒णं ह॑वामहे ।
वर्चो॑ जग्राह पृथि॒व्य॑१न्तरि॑क्षं॒ वर्चः॒ सोमो॒ बृह॒स्पति॑र्विध॒त्ता २
वर्च॑सो॒ द्यावा॑पृथि॒वी सं॒ग्रह॑णी बभू॒वथु॒र्वर्चो॑ गृही॒त्वा पृ॑थि॒वीमनु॒ सं च॑रेम ।
य॒शसं॒ गावो॒ गोप॑तिमुप॑ तिष्ठन्त्याय॒तीर्यशो॑ गृही॒त्वा पृ॑थि॒वीमनु॒ सं च॑रेम ३
व्र॒जं कृ॑णुध्वं॒ स हि वो॑ नृ॒पाणो॒ वर्मा॑ सीव्यध्वं बहु॒ला पृ॒थूनि॑ ।
पुरः॑ कृणुध्व॒माय॑सी॒रधृ॑ष्टा॒ मा वः॑ सुस्रोच्चम॒सो दृं॑हता॒ तम् ४
य॒ज्ञस्य॒ चक्षुः॒ प्रभृ॑ति॒र्मुखं॑ च वा॒चा श्रोत्रे॑ण॒ मन॑सा जुहोमि ।
इ॒मं य॒ज्ञं वित॑तं वि॒श्वक॑र्म॒णा दे॒वा य॑न्तु सुमन॒स्यमा॑नाः ५
ये दे॒वाना॑मृ॒त्विजो॒ ये च॑ य॒ज्ञिया॒ येभ्यो॑ ह॒व्यं क्रि॒यते॑ भाग॒धेय॑म् ।
इ॒मं य॒ज्ञं स॒ह पत्नी॑भि॒रेत्य॒ याव॑न्तो दे॒वास्त॑वि॒षा मा॑दयन्ताम् ६(४२३)

(५९) यज्ञः ।

१-३ ब्रह्मा । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ गायत्री ।

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा । त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ १
यद् वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ दे॒वा अवि॑दुष्टरासः ।
अ॒ग्निष्टद् वि॒श्वादा पृ॑णातु वि॒द्वान्त्सोम॑स्य॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ २
आ दे॒वाना॒मपि॒ पन्था॑मगन्म॒ यच्छ॒क्नवा॑म॒ तद॑नु॒प्रवो॑ढुम् ।
अ॒ग्निर्वि॒द्वान्त्स य॑जा॒त् स इद्धोता॒ सो॑ऽध्व॒रान्त्स ऋ॒तून् क॑ल्पयाति ३ (४२६)

(६०) अङ्गानि ।

१-२ ब्रह्मा । वाक्, अङ्गानि च । १ पथ्याबृहती; २ ककुम्मती पुर उष्णिक् ।

वाङ् म॑ आ॒सन् न॒सोः प्रा॒णश्चक्षु॑र॒क्ष्णोः श्रोत्रं॒ कर्ण॑योः ।
अप॑लिताः केशा॒ अशो॑णा॒ दन्ता॑ ब॒हु बा॒ह्वोर्बल॑म् १
ऊ॒र्वोरोजो॒ जङ्घ॑योर्ज॒वः पाद॑योः । प्र॒तिष्ठा॒ अरि॑ष्टानि मे॒ सर्वा॒त्मानि॑भृष्टः २ (४२८)

(६१) पूर्णायुः ।

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराट् पथ्याबृहती ।

त॒नूस्त॒न्वा॑ मे सहे द॒तः सर्व॒मायु॑रशीय ।
स्यो॒नं मे॑ सीद पु॒रुः पृ॑ण॒स्व पव॑मानः स्व॒र्गे १ (४२९)

(६२) सर्वप्रियत्वम् ।

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । अनुष्टुप् ।

प्रि॒यं मा॑ कृणु दे॒वेषु॑ प्रि॒यं राज॑सु मा कृणु ।
प्रि॒यं सर्व॑स्य॒ पश्य॑त उ॒त शू॒द्र उ॒तार्ये॑ १ (४३०)

(६३) आयुर्वर्धनम् ।

१ ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराडुपरिष्टाद्बृहती ।

उत् ति॑ष्ठ ब्रह्मणस्पते दे॒वान् य॒ज्ञेन॑ बोधय ।
आयुः॑ प्रा॒णं प्र॒जां प॒शून् की॒र्तिं यज॑मानं च वर्धय १ (४३१)

(६४) दीर्घायुत्वम् ।

१-४ ब्रह्मा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

अग्ने॑ स॒मिध॒माहा॑र्षं बृह॒ते जा॒तवे॑दसे । स मे॑ श्र॒द्धां च॑ मे॒धां च॑ जा॒तवे॑दाः॒ प्र य॑च्छतु १
इ॒ध्मेन॑ त्वा जातवेदः स॒मिधा॑ वर्धयामसि । त॒था त्वम॒स्मान् व॑र्धय प्र॒जया॑ च॒ धने॑न च २
यद॑ग्ने॒ यानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑ । सर्वं॒ तद॑स्तु मे शि॒वं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ३
ए॒तास्ते॑ अग्ने स॒मिध॒स्त्वमि॒द्धः स॒मिद् भ॑व । आयु॑र॒स्मासु॑ धेह्यमृत॒त्वमा॑चा॒र्या॑य ४ (४३५)

(६५) अयनम् ।

१ ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यश्च । जगती ।

हरिः॑ सुप॒र्णो दिव॒मारु॑होऽ॒र्चिषा॒ ये त्वा॒ दिप्स॑न्ति॒ दिव॑मु॒त्पत॑न्तम् ।
अव॒ तां ज॑हि॒ हर॑सा जातवे॒दोऽबि॑भ्यदु॒ग्रोऽर्चिषा॒ दिव॒मा रो॑ह सूर्य १ (४३६)

(६६) असुरक्षयणम् ।

१ ब्रह्मा । जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च । अतिजगती ।

अयो॑जाला॒ असु॑रा मा॒यिनो॑ऽय॒स्मयैः॒ पाशै॑र॒ङ्किनो॒ ये चर॑न्ति ।
तांस्ते॑ रन्धयामि॒ हर॑सा जातवेदः स॒हस्र॑ऋष्टिः स॒पत्ना॑न् प्रमृ॒णन् पा॑हि॒ वज्रः॑ १ (४३७)

(६७) दीर्घायुत्वम् ।

१-८ ब्रह्मा । सूर्यः । प्राजापत्या गायत्री ।

पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तम्	१	जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तम्	२
बुध्ये॑म श॒रदः॑ श॒तम्	३	रोहे॑म श॒रदः॑ श॒तम्	४
पूषे॑म श॒रदः॑ श॒तम्	५	भवे॑म श॒रदः॑ श॒तम्	६
भूये॑म श॒रदः॑ श॒तम्	७	भूय॑सीः श॒रदः॑ श॒तात्	८ (४४५)

(६८) वेदोक्तं कर्म ।

१ ब्रह्मा । कर्म । अनुष्टुप् ।

अव्य॑सश्च॒ व्यच॑सश्च॒ बिलं॒ वि ष्या॑मि मा॒यया॑ ।
ताभ्या॑मु॒द्धृत्य॒ वेद॒मथ॒ कर्मा॑णि कृण्महे १ (४४६)

(६९) आपः ।

१-४ ब्रह्मा । आपः । १ आसुर्यनुष्टुप्; २ साम्न्यनुष्टुप्; ३ आसुरी गायत्री; ४ साम्न्युष्णिक् (१-४ एकावसाना)

जी॒वा स्थ॑ जी॒व्यासं॒ सर्व॒मायु॑र्जीव्यासम् १
उ॒प॒जी॒वा स्थोप॑ जीव्यासं॒ सर्व॒मायु॑र्जीव्यासम् २
सं॒जी॒वा स्थ॒ सं जी॑व्यासं॒ सर्व॒मायु॑र्जीव्यासम् ३
जी॒व॒ला स्थ॑ जी॒व्यासं॒ सर्व॒मायु॑र्जीव्यासम् ४ (४५०)

(७०) पूर्णायुः ।

१ ब्रह्मा । इन्द्रसूर्यादयः । त्रिपदा गायत्री ।

इन्द्र॒ जीव॒ सूर्य॒ जीव॒ देवा॒ जीवा॑ जी॒व्यास॑म॒हम् । सर्व॒मायु॑र्जीव्यासम् १ (४५१)

(७१) वेदमाता ।

१ ब्रह्मा । गायत्री । त्र्यवसाना पञ्चपदाऽतिजगती ।

स्तु॒ता मया॑ वर॒दा वे॑द॒माता॒ प्र चो॑दयन्तां पावमा॒नी द्वि॒जाना॑म् ।
आयुः॑ प्रा॒णं प्र॒जां प॒शुं की॒र्तिं द्रवि॑णं ब्रह्मवर्च॒सम् ।
मह्यं॑ द॒त्त्वा व्र॑जत ब्रह्म॒लोक॑म् १ (४५२)

(७२) परमात्मा ।

१ भृग्वङ्गिराः ब्रह्मा । परमात्मा देवाश्च । त्रिष्टुप् ।

यस्मा॒त् कोशा॑दु॒दभ॑राम॒ वेदं॒ तस्मि॑न्न॒न्तरव॑ दध्म एनम् ।
कृ॒तमि॒ष्टं ब्रह्म॑णो वी॒र्ये॑ण॒ तेन॑ मा दे॒वास्तप॑सावते॒ह १ (४५३)

[इति पञ्चत्रिंशः प्रपाठकः ॥३५॥]

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

अष्टादशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं ४५७६

एकोनविंशकाण्डस्य ... ४५३

सर्वयोगः ५०२९

विंशं काण्डम् ।

(१)

(१-३) १ विश्वामित्रः, २ गोतमः, ३ विरूपः । १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ अग्निः । गायत्री ।

[अथ षट्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३६॥

[१] इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः १
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः २
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ३ (३)

(२)

१-४ गृत्समदो (मेधातिथिर्वा) । १ मरुतः, २ अग्निः, ३ इन्द्रः, ४ द्रविणोदाः । १-२ विराड् गायत्री, ३ आर्च्युष्णिक्, ४ साम्नी त्रिष्टुप् (१-४ एकावसाना) ।

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु १
अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु २
इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ३
देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ४ (७)

(३)

१-३ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम १
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु २
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ३ (१०)

(४)

१-३ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः १
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु २
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ३ (१३)

(५)

१-७ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु १ (१४)

अथर्व० ५०

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते २
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ३
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ४
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ५
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ६
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ७ (२०)

(६)

१-९ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः १
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् २
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ३
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ४
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ५
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ६
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ७
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ८
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ९ (२९)

(७)

(१-४) १-३ सुकक्षः, ४ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य १
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् । उरुधारेव दोहते ३
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ४ (३३)

(८)

(१-३) १ भरद्वाजः, २ कुत्सः, ३ विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि १ (३४)

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः २
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ३ (३६)

(९)

(१-४) १-२ नोधाः, ३-४ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । १-२ त्रिष्टुप्, ३-४ प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे १
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे २
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ३
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ४ (४०)

(१०)

१-२ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती) ।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २ (४२)

(११)

१-११ विश्वामित्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे १
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा २ (४४)

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ४
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ५
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ६
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ७
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ८
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ९
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद बलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११ (५३)

(१२)

(१-७) १-६ वसिष्ठः, ७ अत्रिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि १
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् २
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ३ (५६)

आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ४
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ५
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ७ (६०)

(१३)

(१-४) १ वामदेवः, २ गोतमः, ३ कुत्सः, ४ विश्वामित्रः । १ इन्द्राबृहस्पती, २ मरुतः, ३-४ अग्निः ।
१-३ जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः २
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ३
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ४ (६४)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥

(१४)

१-४ सौभरिः । इन्द्रः । प्रगाथः (विषमा ककुप्+समा सतोबृहती)

[२] वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे १
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् २
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ३
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ४ (६८)

(१५)

१-६ गोतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् १
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः २
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ४
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ५
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ६ (७४)

(१६)

१-१२ अयास्यः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् ।

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् १
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ २
साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ३
आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ४
अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ५
यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ६ (८०)

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ७
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ८
सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ९
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरातः १०
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः ११
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् १२ (८६)

(१७)

(१-१२) १-११ कृष्णः, १२ वसिष्ठः । इन्द्रः । १-१० जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये १
न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते २
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद् रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३
वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ४
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ५
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ६
आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ७ (९३)

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १२ (९८)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥

(१८)

(१-६) १-३ मेधातिथिः प्रियमेधश्च, ४-६ वसिष्ठः । इन्द्रः । गायत्री ।

[३] वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते १
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत २
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ३
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ४
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ५
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ६ (१०४)

(१९)

१-७ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि १
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः २
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ३
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ४
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ५
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ६
युक्ष्वेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ७ (१११)

(२०)

(१-७) १-४ विश्वामित्रः ५-७ गृत्समदः । इन्द्रः । गायत्री ।

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो १
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे २
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ३
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ४
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ५
इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ६
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ७ (११८)

(२१)

१-११ सव्यः । इन्द्रः । जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते १
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि २
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ४
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ५
ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ६
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ७
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ८ (१२६)

त्वमेतां जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ९
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः १०
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ११ (१३९)

॥ इति तृतीयेऽनुवाके प्रथमः पर्यायः ॥

(२२)

(१-६) १-३ त्रिशोकः, ४-६ प्रियमेधः । इन्द्रः । गायत्री ।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् १
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः २
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ३
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ४
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ५
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ६ (१३५)

(२३)

१-९ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः १
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः २
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोलाशम् ३
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ४
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ५
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ६
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ७
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ८
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ९ (१४४)

(२४)

१-९ विश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री ।

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः १
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्व स्य तृप्णवः २
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ३
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ४
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ५
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ६
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ७
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ८
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ९ (१५३)

(२५)

(१-७) १-५ गोतमः, ७ अष्टकः । इन्द्रः । जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः १
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव २
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ३
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ४
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ५
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ६
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ७ (१६०)

॥ इति तृतीयेऽनुवाके द्वितीयः पर्यायः ॥

(२६)

(१-६) १-३ शुनःशेपः, ४-६ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये १
आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् २
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ३
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ४
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ५
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ६ (१६६)

(२७)

१-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिना । इन्द्रः । गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् १
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् २
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ३
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ४
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ५
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ६ (१७२)

(२८)

१-४ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । १-२ गायत्री, ३-४ त्रिष्टुप् ।

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् १
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् २
इन्द्रेण रोचना दिवो दृल्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ३
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ४ (१७६)

(२९)

१-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । गायत्री ।

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् १
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् २ (१७८)

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ३
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ४
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ५ (१८१)

(३०)

१-५ वरुः सर्वहरिर्वा । हरिः (इन्द्रः) । जगती ।

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः १
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत २
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ३
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ४
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ५ (१८६)

(३१)

१-५ वरुः सर्वहरिर्वा । हरिः (इन्द्रः) । जगती ।

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे १
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे २
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ३
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ४
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे हर्यतश्चिदा । ५ (१९१)

(३२)

१-३ वरुः सर्वहरिर्वा । हरिः (इन्द्रः) । १ जगती; २-३ त्रिष्टुप् ।

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय १
आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम् २
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ वृषस्व ३ (१९४)

(३३)

१-३ अष्टकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः १
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः २
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ३ (१९७)

॥ इति तृतीयेऽनुवाके तृतीयः पर्यायः ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥३॥

(३४)

१-१८ गृत्समदः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

[४] यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः १
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः २
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ३ (२००,

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ४
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ५
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ६
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ७
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ८
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ९
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः १०
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ११
यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत् स जनास इन्द्रः १२
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः १३
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः १४
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः १५
जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनास इन्द्रः १६
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः १७ (२१४)

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम १८ (२१५)

(३५)

१-१६ नोधाः (भरद्वाजः ?) । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा १
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त २
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ३
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ५
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ६
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवां चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ७
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ८
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः १०
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै १२ (२१७)

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृल्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः १४
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६ (२३१)

(३६)

१-११ भरद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् १
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् २
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ३
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ४
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ५
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीलिता स्वोजो रुजो वि दृल्हा धृषता विरप्शिन् ६
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ९ (२४०)

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि १०
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ११ (२४१)

(३७)

१-११ वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः १
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् २
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ३
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ४
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ५
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ६
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ७
प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ८
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ९
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १० (२५२)

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११ (२५३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥४॥

(३८)

(१-६) १-३ इरिम्बिठिः, ४-६ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

[५] आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम १
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु २
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ३
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ४
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ५
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ६ (२५९)

(३९)

(१-५) १ मधुच्छन्दाः, २-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः १
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् २
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ३
इन्द्रेण रोचना दिवो दृल्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ४
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ५ (२६४)

(४०)

१-३ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः मरुतश्च, २-३ मरुतः । गायत्री ।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा १
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः २
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ३ (२६७)

(४१)

१-३ गोतमः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव १
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति २
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ३ (२७०)

(४२)

१-३ कुरुस्तुतिः । इन्द्रः । गायत्री ।

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे १
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः २
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ३(२७३)

(४३)

१-३ त्रिशोकः । इन्द्रः । गायत्री ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर १
यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर २
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ३ (२७६)

(४४)

१-३ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् १
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे २
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ३(२७९)

(४५)

१-३ शुनःशेपो देवरातापरनामा । इन्द्रः । गायत्री ।

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे १
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता २
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ३(२८२)

(४६)

१-३ इरिम्बिठिः । इन्द्रः । गायत्री ।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् १
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः २
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ३(२८५)

(४७)

(१-२१) १-३ सुकक्षः; ७ ९ इरिम्बिठिः; ४-६,१०-१२ मधुच्छन्दाः; १३-२१ प्रस्कण्वः ।
इन्द्रः, १३-२१ सूर्यः । गायत्री ।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् १(२८६)

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः २
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ३
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ४
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ५
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ६
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ७
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ८
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ९
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि १०
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ११
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः १२
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् १३
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे १४
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा १५
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन १६
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे १७
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि १८
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः । पश्यं जन्मानि सूर्य १९
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् २०
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः २१ (३०९)

(४८)

(१-६) खिलम्, ४-६ सर्पराज्ञी । सूर्यः, गौः । गायत्री ।

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः १
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा २
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ३
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ४
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ५
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ६ (३१५)

(४९)

१-७ खिलम् । ४-५ नोधाः; ६-७ मेध्यातिथिः । गायत्री; ४-५ प्रगाथः (विषमा बृहती+ समा सतोबृहती)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिपासथः । सं देवा अमदन् वृषा १
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि २
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् विराजति । विमदन् बर्हिरासरन् ३
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ५
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ६
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ७ (३२२)

(५०)

१-२ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)।

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः १
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः २ (३२४)

(५१)

(१-४) १-२ प्रस्कण्वः; ३-४ पुष्टिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः (विषमा बृहती + समा सतोबृहती)

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति १
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः २
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ३ (३२७)

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ४ (३२८)

(५२)

१-३ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते १
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः २
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ३ (३३१)

(५३)

१-३ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः १
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा २
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ३ (३३४)

(५४)

१-३ रेभः । इन्द्रः । १ अतिजगती, २-३ उपरिष्टाद्बृहती ।

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १
समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः २
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ३ (३३७)

(५५)

१-३ रेभः । इन्द्रः । बृहती ।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री १
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः २
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ३(३४०)

(५६)

१-६ गोतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् १
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ३
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ४
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ५
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ६(३४६)

(५७)

(१-१६) १-३ मधुच्छन्दाः; ४-७ विश्वामित्रः; ८-१० गृत्समदः, ११-१६ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि १
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ३
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ४(३५०)

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ५
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ६
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ७
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ८
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ९
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः १०
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ११
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा १२
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् १३
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते १४
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः १५
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे १६ (३५९)

(५८)

(१-४) १-२ नृमेधः, ३-४ जमदग्निः। १-२ इन्द्रः, ३-४ सूर्यः। प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम १
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् २
बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ३
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ४ (३६३)

(५९)

(१-४) १-२ मेध्यातिथिः, ३-४ वसिष्ठः। इन्द्रः। प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ३
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ४ (३६७)

(६०)

(१-६) १-३ सुकक्षः, सुतकक्षो वा; ४-६ मधुच्छन्दाः। इन्द्रः। गायत्री।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः १
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र मे सचा २
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ३
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ४
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ५
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ६ (३७३)

(६१)

१-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः। उष्णिक्।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् १
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि २
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ३
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ४
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ५
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ६ (३७९)

(६२)

(१-१०) १-४ सोभरिः; ५-७ नृमेधः; ८-१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। इन्द्रः।
उष्णिक्; १-४ प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः। वाजे चित्रं हवामहे १
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् २
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे। सखाय इन्द्रमूतये ३
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ४
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ५
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ६
विभ्राजं ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ७
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ८
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ९
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे १० (३८९)

(६३)

(१-९) १-३ भुवनः साधनो वाः ३ (उत्तरार्धः) भरद्वाजः; ४-६ गोतमः; ७-९ पर्वतः।
इन्द्रः। त्रिष्टुप्; उष्णिक्।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति १
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम्।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः २
प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन्।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ३
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ४
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ५
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ६
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ७ (३९६)

येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ८
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ९ (३९८)

(६४)

(१-६) १-३ नृमेधः, ४-६ विश्वमनाः। इन्द्रः। उष्णिक्।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः १
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः २
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ३
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः। एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ४
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ५
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ६ (४०४)

(६५)

१-३ विश्वमनाः। इन्द्रः। उष्णिक्।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् १
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत २
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ३ (४०७)

(६६)

१-३ विश्वमनाः। इन्द्रः। उष्णिक्।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे १
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् २
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ३ (४१०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

(६७)

(१-७) १-३ परुच्छेपः, ४-७ गृत्समदः। १, ६ इन्द्रः, २, ४ मरुतः, ३, ५ अग्निः, ७ ऋतवः।
१-३ अत्यष्टिः, ४-७ जगती।

[६] वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् १
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् २ (४१२)

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ३
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ४
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ५
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ६
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ७ (४३७)

(६८)

१-१२ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि १
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ३
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ४
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ५
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ६
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ७
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ८
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ९
यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत १०
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ११
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते १२ (४२९)

(६९)

१-१२ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः, १२ मरुतः । गायत्री ।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् । गमद् वाजेभिरा स नः १
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत २
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ३
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ४
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ५
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ६
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ७
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ८
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ९
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा १०
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ११
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् १२ (४४१)

(७०)

१-२० मधुच्छन्दाः । १, ३ इन्द्रः मरुतश्च, २, ४, ५ मरुतः ६-२० इन्द्रः । गायत्री ।

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु १
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् २
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ३
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ४
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ५
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ६
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ७
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ८
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ९
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः १०
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ११
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः १२ (४५१)

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् १३
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः १४
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् १५
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः १६
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर १७
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता १८
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः १९
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः २० (४६१)

(७१)

१-१६ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः १
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः २
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ३
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ४
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ५
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ६
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ७
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ८
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ९
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् १०
सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ११
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः १२
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् १३
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः १४
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये १५
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति १६ (४७७)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥६॥

(७२)

१-३ परुच्छेपः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

[७] विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः १
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् २
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिं चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ३ (४८०)

(७३)

(१-६) १-३ वसिष्ठः, ४-६ वसुक्रः । इन्द्रः । विराट्, ४-५ जगती, ६ अभिसारिणी ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि १
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्य१मिन्द्र ते न राधः २
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ३
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ४
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ५
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ६ (४८६)

(७४)

१-७ शुनःशेपः । इन्द्रः । पङ्क्तिः ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ १ (४८७)

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ २
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ४
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ५
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ७ (४९३)

(७५)

१-३ परुच्छेपः । इन्द्रः । अत्यष्टिः ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् १
विदुष्टे अस्य वीर्य१स्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः २
आदित् ते अस्य वीर्य१स्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं१ सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ३(४९६)

(७६)

१-८ वसुक्रः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

वने न वा यो न्यधायि चाकं छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् १ (४९७)

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् २
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्यु१ग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ३
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ४
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ६
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ७
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८(५०४)

(७७)

१-८ वामदेवः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः १
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म २
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ३
स्व१र्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ४
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ५
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ६(५१०)

अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं छवसा शूर धृष्णो ७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ८ (५१२)

(७८)

१-३ शंयुः । इन्द्रः । गायत्री ।

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने १
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः २
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ३ (५१५)

(७९)

१-२ वसिष्ठः शक्तिर्वा । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि १
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि २ (५१७)

(८०)

१-२ शंयुः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः १
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि २ (५१९)

(८१)

१-२ पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी १
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः २ (५२१)

(८२)

१-२ वसिष्ठः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती)।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय १
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन २ (५२३)

(८३)

१-२ शंयुः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती + सतोबृहती)।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः १
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव २ (५२५)

(८४)

१-३ मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः १
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः २
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ३ (५२८)

(८५)

(१-४) १-२ प्रगाथः, ३-४ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती+सतोबृहती)।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत १
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् २
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेहा विश्वा च वर्धनम् ३
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ४ (५३२)

(८६)

१ विश्वामित्रः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् १ (५३३)

(८७)

१-७ वसिष्ठः। इन्द्रः, ७ बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् १
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् २
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ३
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान्।
यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ४
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ५
तवेदं विश्वमभितः पशव्य१ं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ६
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ (५४०)

(८८)

१-६ वामदेवः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् १
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ३ (५४३)

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ४
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ५
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ६ (५४६)

(८९)

१-११ कृष्णः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् १
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम्।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् २
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ३
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ४
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान्।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ५
यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्य१स्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ६
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ७
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ८
उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम १० (५५६)

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ११ (५५७)

(९०)

१-३ भरद्वाजः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति १
जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् २
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ३ (५६०)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥७॥

(९१)

१-१२ अयास्यः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्।

[८] इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् १
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त २
हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ३
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ४
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत्।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ५
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ६
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ८ (५६८)

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ९
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा १०
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ११
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः १२ (५७२)

(९२)

(१-२१) १-१५ प्रियमेधः, १६-२१ पुरुहन्मा। इन्द्रः। १-३ गायत्री; अनुष्टुप्; ८, १३, १७, १९, २१ पङ्क्तिः; १४-१६, १८, २० बृहती।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् १
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे २
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपह्वरे विदत् ३
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि। मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ४
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्व१र्चत ५
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ६
आ यत् पतन्त्येन्य१ः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ७
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्य१नूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ८
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्य१ं सुषिरामिव ९
यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत १०
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः। भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ११
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्। स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् १२
आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् १३ (५८५)

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते । अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने १४
अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् । पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत १५
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः । विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १६

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः १७
नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् १८
अषाल्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः १९
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी २०
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिं चित्राभिरूतिभिः २१ (५९३)

(९३)

(१-८) १-३ प्रगाथः; ४-८ देवजामयः । इन्द्रः । गायत्री ।

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि १
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति २
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ३
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ४
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि ५
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ६
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ७
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ८ (६०१)

(९४)

१-११ कृष्णः । इन्द्रः । १-३, १०-११ त्रिष्टुप्, ४-९ जगती ।

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन १ (६०२)

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन् सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि २
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ३
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ४
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ५
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ६
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ७
गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवं छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११ (६१२)

(९५)

(१-४) १ गृत्समदः; २-४ सुदाः पैजवनः । इन्द्रः । १ अष्टिः २-४ शक्वरी ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः १
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु २ (६१४)

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ३
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ४ (६१६)

(९६)

(१-२४) १-५ पूरणः; ६-१० यक्ष्मनाशनः; ११-१६ रक्षोहाः १७-२३ विवृहाः; २४ प्रचेताः । १-५ इन्द्रः; ६-१० यक्ष्मनाशनम्; ११-१६ गर्भसंस्रावः; १७-२३ यक्ष्मनाशनम्; २४ दुःष्वप्नघ्नम् ।
१-१० त्रिष्टुप्; ११-२४ अनुष्टुप् ।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः १
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् २
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ३
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ५
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ६
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ७
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ८
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ९ (६२५)

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् १०
ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ११
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् १२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् । जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १३
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेल्हि तमितो नाशयामसि १४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि १६
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि १९
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते २०
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते २१
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते २२
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि २३
अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः २४ (६४०)

॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥८॥

(९७)

१-३ कलिः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती) ।

[९] वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते १
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया २
कदू न्व१स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ३ (६४३)

(९८)

१-२ शंयुः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती) ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः १
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे २ (६४५)

(९९)

१-२ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती) ।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् १
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा २ (६४७)

(१००)

१-३ नृमेधः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः १
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे २
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ३ (६५०)

(१०१)

१-३ मेध्यातिथिः । अग्निः । गायत्री ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १ (६५१)

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ३ (६५३)

(१०२)

१-३ विश्वामित्रः । अग्निः । गायत्री ।

ईळेन्यो नमस्य१स्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा १
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते २
वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ३ (६५६)

(१०३)

(१-३) १ सुदीतिपुरुमीळ्हौ, २-३ भर्गः । अग्निः । १-२ बृहती, ३ सतोबृहती ।

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः १
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे २
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ३ (६५९)

(१०४)

(१-४) १-२ मेध्यातिथिः; ३-४ नृमेधः । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती) ।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत १
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये २
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ३
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ४ (६६३)

(१०५)

(१-५) १-३ नृमेधः, ४-५ पुरुहन्मा । इन्द्रः । प्रगाथः (बृहती) ।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः १
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि २
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ३
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ४
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ५(६६८)

(१०६)

१-३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । इन्द्रः । उष्णिक् ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् १
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे २
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः। त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ३(६७१)

(१०७)

(१-१५) १-३ वत्सः, ४-१३ बृहद्दिवः, १४-१५ कुत्सः । इन्द्रः;
१४ १५ सूर्यः । गायत्री, ४-१४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः १
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी २
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ३
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ४
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ५
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ६(६७७)

यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः ७
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ८
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ९
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः १०
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ११
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्व१मिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च १२
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः १३
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च १४
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् १५ (६८६)

(१०८)

१-३ नृमेधः । इन्द्रः । १ गायत्री, २ ककुप्, ३ पुर उष्णिक् ।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् १
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे २
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ३ (६८९)

(१०९)

१-३ गोतमः । इन्द्रः । पङ्क्तिः ।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् १ (६९०)

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् २
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ३ (६९२)

(११०)

१-३ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा । इन्द्रः । गायत्री ।

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः १
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे २
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः ३ (६९५)

(१११)

१-३ पर्वतः । इन्द्रः । उष्णिक् ।

यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये । यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः १
यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः २
यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ३ (६९८)

(११२)

१-३ सुकक्षः । इन्द्रः । गायत्री ।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे १
यद् वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव २
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ३ (७०१)

(११३)

१-२ भर्गः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् १
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः २ (७०३)

(११४)

१-२ सौभरिः । इन्द्रः । गायत्री ।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे १ (७०४)

अथर्व० ५६

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे २ (७०५)

(११५)

१-३ वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि १
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे २
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ३ (७०८)

(११६)

१-२ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । बृहती ।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि १
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि २ (७१०)

(११७)

१-३ वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् ।

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा १
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु २
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ३ (७१३)

(११८)

(१-४) १-२ भर्गः, ३-४ मेध्यातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि १
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर २
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ३ (७१६)

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ४ (७१७)

(११९)

(१-२) १ आयुः, २ श्रुष्टिगुः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत १
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः २ (७१९)

(१२०)

१-२ देवातिथिः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग् वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे १
यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि २ (७२१)

(१२१)

१-२ वसिष्ठः । इन्द्रः । प्रगाथः ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः १
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे २ (७२३)

(१२२)

१-३ शुनःशेपः । इन्द्रः । गायत्री ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम १
आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः २
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ३ (७२६)

(१२३)

१-२ कुत्सः । सूर्यः । त्रिष्टुप् ।

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद् रात्री वासस्तनुते सिमस्मै १ (७२७)

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति २ (७२८)

(१२४)

(१-६) १-३ वामदेवः, ४-६ भुवनः । इन्द्रः । १-२ गायत्री, ३ पादनिचृत्, ४-६ त्रिष्टुप् ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता १
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु २
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ३
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ४
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ५
प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ६ (७३४)

(१२५)

(१-७) सुकीर्तिः । इन्द्रः, ४-५ अश्विनौ । त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम १
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः २
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ३
युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ४
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ५
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ६ (७४०)

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ७ (७४१)

(१२६)

१-२३ वृषाकपिरिन्द्राणी च । इन्द्रः । पङ्क्तिः ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ३
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ४
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ५
न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ६
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ७
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ८
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ९
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १०
इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ११ (७५२)

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १२

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १३

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १४

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १५

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १६

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १७

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १८

अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १९

धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २०

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २१

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगं जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २२

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २३ (७६४)

॥ अथ कुन्तापसूक्तानि ॥

(१२७)

(खिलानि ।)

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे १
उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः २
एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः । त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ३
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः । नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ४
प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ५
प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ६
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्याँ अति । वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ७
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् । कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ८
कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् । जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ९
अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् । जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः १०
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् । ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ११
इह गावः प्र जायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः । इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति १२
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत् । मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत १३
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन १४ (७७८)

(१२८)

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवाः प्रागकल्पयन् १
यो जाम्या अमेधयस्तद् यत् सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति २
यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः । तद् विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ३
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः । धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ४ (७८१)

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ५
योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः । अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ६
य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः । सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ७
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः । अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ८
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः । सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ९
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता १०
वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ११
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः । विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते १२
त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः । त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः १३
यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथाः । इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते १४
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् १५
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् । पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते १६
(७९५)

(१२९)

एता अश्वा आ प्लवन्ते १
प्रतीपं प्राति सुत्वनम् २
तासामेका हरिक्निका ३
हरिक्निके किमिच्छसि ४
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ५
क्वाहतं परास्यः ६
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ७
परि त्रयः ८
पृदाकवः ९
शृङ्गं धमन्त आसते १०
अयन्महा ते अर्वाहः ११
स इच्छकं सघाघते १२
सघाघते गोमीद्या गोगतीरिति १३
पुमां कुस्ते निमिच्छसि १४
पल्प बद्ध वयो इति १५
बद्ध वो अघा इति १६
अजागार केविका १७
अश्वस्य वारो गोशपद्यके १८
श्येनीपती सा १९
अनामयोपजिह्विका २० (८१४)

(१३०)

को अर्य बहुलिमा इषूनि १
को असिद्याः पयः २
को अर्जुन्याः पयः ३
कः कार्ष्ण्याः पयः ४ (८१८)

एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ५ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ६
यवानो यतिस्वाभिः कुभिः ७ अकुप्यन्तः कुपायकुः ८
आमणको मणत्सकः ९ देवं त्वप्रतिसूर्य १०
एनश्चिपङ्क्तिका हविः ११ प्रदुद्रुदो मघाप्रति १२
शृङ्गं उत्पन्न १३ मा त्वाभि सखा नो विदन् १४
वशायाः पुत्रमा यन्ति १५ इरावेदुमयं दत १६
अथो इयन्नियन्निति १७ अथो इयन्निति १८
अथो श्वा अस्थिरो भवन् १९ उयं यकांशलोकका २० (८३४)

(१३१)

आमिनोनिति भद्यते १ तस्य अनु निभञ्जनम् २
वरुणो याति वस्वभिः ३ शतं वा भारती शवः ४
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५
अहुल कुश वर्त्तक ६ शफेन इव ओहते ७
आय वनेनती जनी ८ वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ९
इदं मह्यं मदूरिति १० ते वृक्षाः सह तिष्ठति ११
पाक बलिः १२ शक बलिः १३
अश्वत्थ खदिरो धवः १४ अरदुपरम १५
शयो हत इव १६ व्याप पूरुषः १७
अदूहमित्यां पूषकम् १८ अत्यर्धर्च परस्वतः १९
दौव हस्तिनो दृती २० (८५४)

(१३२)

आदलाबुकमेककम् १ अलाबुकं निखातकम् २
कर्करिको निखातकः ३ तद् वात उन्मथायति ४
कुलायं कृणवादिति ५ उग्रं वनिषदाततम् ६
न वनिषदनाततम् ७ क एषां कर्करी लिखत् ८
क एषां दुन्दुभिं हनत् ९ यदीयं हनत् कथं हनत् १०
देवी हनत् कुहनत् ११ पर्यागारं पुनःपुनः १२ (८६६)

त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि १३ हिरण्यं इत्येके अब्रवीत् १४
द्वौ वा ये शिशवः १५ नीलशिखण्डवाहनः १६ (८७०)

(१३३)

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे १
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे २
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ३
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ४
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ५
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ६ (८७६)

(१३४)

इहेत्थ प्रागपागुदगधरागू — अरालागुदमर्त्सथ १
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् — वत्साः पुरुषन्त आसते २
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् — स्थालीपाको वि लीयते ३
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् — स वै पृथु लीयते ४
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् — आष्टे लाहणि लीशाथी ५
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् — अक्षिलली पुच्छिलीयते ६ (८८२)

(१३५)

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठितः ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो दैव १
कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन् वर्त्मन्यात् २ (८८४)

अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरितरोऽथामो दैव ३
वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि ४
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो दैव ।
होता विष्टीमेन जरितरोऽथामो दैव ५
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६
तां ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णंस्तामु ह जरितर्नः प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरसं न वि चेतनानि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः ७
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः ।
उतेमाशु मानं पिपर्ति ८
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ९
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।
युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत १०
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।
विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ११
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहुः १२
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति १३ (८९५)

(१३६)

यद्स्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव १
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ २
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेवपद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ३ (८९८)

यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ४
महानग्न्यतृप्नद्वि मोक्रदस्थानासरन् ।
शक्तिकानना स्वचमशकं सक्तु पद्यम ५
महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नन्ति तथैवति ६
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवति ७
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्य स्वर्गे नमवदह्यते ८
महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।
इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ९
महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति ।
अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् १०
महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ११
सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसं पीवरो नवत् १२
वशा दग्धामिमाङ्गुरिं प्रसृजतोऽग्रतं परे ।
महान् वै भद्रो यभ मामद्ध्यौदनम् १३
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति १४
महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।
महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् १५
यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुदमुद्धरेत् १६ (९११)

॥ इति कुन्तापसूक्तानि ॥

(१३७)

(१-१४) १ शिरिम्बिठिः; २ बुधः; ३ वामदेवः; ४-६ ययातिः; ७-११ तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा, १२-१४ सुकक्षः । १ अलक्ष्मीनाशनम्; २ विश्वे देवाः ३ दधिक्राः; ४-६ पवमानः सोमः; ७-१४ इन्द्रश्च । १, ३, ४-६ अनुष्टुप्; २ जगती; ७-११ त्रिष्टुप्; १२-१४ गायत्री ।

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः १
कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये २
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ३
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ४
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ५
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ६
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ७
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ८
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ९
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः १०
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ११
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् १२
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः १३
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः १४ (९४५)

(१३८)

१-३ वत्सः । इन्द्रः । गायत्री ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे १ (९४६)

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा २
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ३ (९४८)

(१३९)

१-५ शशकर्णः । अश्विनौ । १, ४ बृहती; २-३ गायत्री; ५ ककुप् ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः १
यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना २
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ३
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ४
यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ५ (९५३)

(१४०)

१-५ शशकर्णः । अश्विनौ । अनुष्टुप्; १ बृहती; ५ त्रिष्टुप् ।

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः १
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि २
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ३
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ४
यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ५ (९३८)

(१४१)

१-५ शशकर्णः । अश्विनौ । १ विराट्; २ जगती; ३ अनुष्टुप्; ४ ५ बृहती ।

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा । वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् १
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः २
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ३ (९४१)

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ४
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ५ (९४३)

(१४२)

१-६ शशकर्णः । अश्विनौ । १-४ अनुष्टुप्; ५-६ गायत्री ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः १
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् २
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ३
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः । यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ४
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ५
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद् वां सुम्नेभिरुक्थ्या ६ (९४९)

(१४३)

(१-९) १-७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ; ८ वामदेवः; ९ मेध्यातिथिमेधातिथी । १-७, ९ अश्विनौ; ८ क्षेत्रपतिः । त्रिष्टुप् ।

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् २
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ४
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ५
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ६ (९५५)

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ७
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ८
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ९ (९५८)

[इति षट्त्रिंशः प्रपाठकः ॥३६॥]

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥

मन्त्रसंख्या—

एकोनविंशकाण्डस्यान्तपर्यन्तं—	५०२९
विंशकाण्डस्य	९५८
सर्वयोगः	५९८७

अथर्ववेद-संहिता समाप्ता ।

पैप्पलाद संहिता

अथर्ववेदीया पैप्पलादसंहिता

प्रथमः काण्डः

१.१

शौ. १.६.१ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१॥
१.६.३ आपः पृणीत[1] भेषजं वरूथं[2] तन्वे मम।
ज्योक्[3] च सूर्यं दृशे ॥२॥
१.६.२ अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा
अग्निं च विश्वशंभुवम् ॥३॥
१.६.४ ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥४॥

१. प्रणीत २. वरूथ ३. ज्योक

१.२

शौ. १.४.(१-४) अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१॥
अमूर्या[1] उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२॥
अपो देवीरुप[2] ब्रुवे यत्र गावः[3] पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥३॥
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।
अपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवथ वाजिनः ॥४॥

१. अमूर्जा
२. रुप ह्वये
३. गावो भवथ वाजिनीः
४. प्रशस्तिभिः

१.३

शौ. १.२ (१-३) विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् ।
विद्मो ह्यस्य[1] मातरं पृथिवीं[2] विश्वधायसम् ॥१॥
ज्याके परि णो नमाश्मा भवत नस्तनूः ।
विरुड्विहि[3] वरीयोरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥
वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनस्फुरं शरमर्चन्त्युभुम् ।
शरमस्मद् यावय दियुमिन्द्र ॥३॥
शौ. २.३.६ शं नो भवन्त्वप[4] ओषधीरिमाः ।
इन्द्रस्य वज्रो अप हन्तु रक्षसः ।
आराद्विसृष्टा इषवः[5] पतन्त्वस्मत् ॥४॥

१. विद्मो ष्वस्य
२. पृथिवी भूरिवर्पसम्
३. वीडुर्वरीयो
४. न्त्वप ओषधयः शिव
५. इषवः पतन्तु रक्षसाम्

१.४

शौ. १.३. (१-७) विद्म ते शरं[1] पितरं पर्जन्यं भूरिरेतसम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥१॥
विद्म ते शर पितरमिन्द्रं[2] भूरिरेतसम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥२॥
विद्म ते शर पितरं वरुणं भूरिरेतसम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥४॥
विद्म ते शर पितरं सूर्यं भूरिरेतसम् ।
तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥५॥
यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्ताव[3]धि संश्रुतम् ।
तेनाते मूत्रमुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव ।
तेना ते मूत्रमुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाधि धन्वनः ।
एवा ते मूत्रमुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥

१. विद्मा शरस्य
२. इन्द्रमित्यत्र मित्रम्
३. यद्वस्तावधि

१.५

[घतस्त्रो] दिवः प्रदिशश् धतस्रो भूम्या उत ।
देवा गर्भं सम् ऐरयन् तं व्य् ऊर्णुवन्तु सूतवे ॥२॥
सूषा व्य् ऊर्णोतु वि योनिं हापयामसि ।
श्रथया सूषणे त्वम् अव त्वं पुष्कले! सृज ॥३॥
नेव स्नावसु न पर्वसु न केशेषु न मज्जसु च ।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्व् अत्तवे ॥४॥
नेव मांसे न पीवसि नेव कस्मिंश् चनायतम्! ।
अव जरायु पद्यताम् ॥५॥

१.६

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस् पतिर् बला तेषां तन्वम् अद्य मे! दधातु मे ॥१॥
पुनर् एहि वाचस् पते देवेन मनसा सह ।
वसोष् पते नि रम[य] × × × ॥२॥
× × [त]नूमे आत्वीं इव ज्यया! ।
वाच[स्] × × × × ॥३॥
उपहूतो वाचस् पतिर् उपहूतो ऽहं वाचस् पत्युः ।
सं श्रुतेन गमेमहि! मा श्रुतेन वि राधिषि ॥४॥

१.७

दिव्यो गन्धर्वो [भु]वनस्य यस् पतिर् एक एव नमस्यो! विक्ष्व् ईड्यः ।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा देव दिव्य नमस् ते [अ]स्तु दिवि ते सधस्थम् ॥१॥
दिवि स्पृष्टो यजतस् सूर्यत्वग् [अव]याता हरसो दैव्यस्य ।
एकायसो मनसा सुशेवो! मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस् पतिः ॥२॥
अनवद्याभिस् सम् उ जग्म आभिर् अप्सरास्व्! अपि गन्धर्व आसीत्! ।
समुद्र आसां सदनं म आहुस् ततस् सद्य आ च परा च यन्ति ॥३॥
अभ्रिये दिद्युन् नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर् नम इत् कृणोमि ॥४॥
याः क्लन्दास् तमिषीचयो ऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नी[भ्यो अप्सराभ्यो] ऽकरं नमः ॥५॥

१.८

× × × × ×
× भेषजं सुभेषजं तद् उ कृणोमि भेषजम् ॥१॥
आद् अङ्ग शतं यद् भेषजानि ते सहस्रं वा च यानि ते ।
तेषाम् असि त्वम् उत्तमम् अनास्रावम् अरोगणम् ॥२॥
अरुस्राण्! इदं महत् पृथिव्या अध्य् उद्भृतम् ।
तद् आस्रावस्य भेषजं तद् [उ] रोगम् अनीनशत् ॥३॥
उपजीका उद् भरन्ति समुद्राद् अधि भेषजम् ।
अरुस्राणो! ऽस्य आयर्वणो रोगस्याम् अस्य आयर्वणम् ॥४॥

१.९

अयं देवानाम् असुरो वि राजति वि शा य! सत्या वरुणस्य राज्ञः ।
ततस् परि ब्रह्मणा शाशदान! उग्रस्य मन्योर् इदं नयामि ॥१॥
नमस् ते [रा]जन् वरुणास्तु मन्यवे विश्वं यद् देव निचिकेषि द्रुग्धम् ।
शतं सहस्रं प्र सुवाम् अस्मा अयं नो जीवात्! शरदो व्यपत्ये! ॥२॥
यद् उवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस् त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणाद् अहम् ॥३॥
अमुष्मै त्वा वैश्वानराद् अर्णवाद् महतस् परि ।

सजाताद् उग्रेहा [वद] न[ह यात पितॄ]दि नः ॥४॥

१.१०

सीसायाध्य् आह वरुणस् सीसायाग्निर् उपावति ।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तद् अङ्ग यातुचातन[म्] ॥१॥
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते [अ]त्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥२॥
ये [अ]मावास्यां रात्रिम् उदस्थुर् व्राजम्! अत्त्रिणः ।
अग्निस् तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यं अधि ब्रवत् ॥३॥
यदि इंस्र् अश्वं! यदि गां यदि पूरुषम् ।
सीसेन विध्यामस् त्वा यथा नो ऽसो [अ]वीरहा ॥४॥

१.११

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे ।
तेनेमं ब्रह्मणस् पते [अ]भि राष्ट्राय वर्धय ॥१॥
अभि वरि सपत्नहा! अभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥२॥
अभि त्वा देवस् सवितामि सोमो अवीवृधत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्य् अभीवर्तो यथाससि ॥३॥
उद् असौ सूर्यो अगाद् उद् इदं मामकं वचः ।
यथाहं शत्रुहासान्य् असपत्नस् सपत्नहा ॥४॥
सपत्नक्ष[य]णो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहम् एषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥५॥

१.१२

तुभ्यम् एव जरिमन् वर्धताम् अयं मेमम् अन्ये मृत्यवो हिंसिषुश् शतम्! ।
मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे मित्र एनं मित्रियात् पात्व् अंहसः ॥१॥
मित्रश् च त्वा वरुणश् च रिशादौ जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ ।
तद् अग्निर् होता वयुनानि विद्वान् विश्वानि देवो जनिमानि वक्ति ॥२॥
द्यौष् टे पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां दीर्घम् आयुः ।
यथा जीवा अदित्या उपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः! शतं हिमान् ॥३॥
त्वम् ईशिषे पशूनां पार्थिवानां ये जाता उत वा जनित्वाः ।
मेमं प्राणो हासीन् मो [अ]पानो मेमं मित्रा वधिषुर् मो अमित्राः ॥४॥

१.१३

[इन्द्रेण दत्तो वरु]णेन सृष्टो मरुद्भिर् उग्रः प्र[हितो न आगन्।]
× × [द्यावापृ]थिवी परि दद्मसि स मा [क्षुधन् मा तृषत् ॥१॥]
ऊर्जम् अस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम् ।
ऊर्जम् अस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जम् आपः ॥२॥
शिवाभिस् ते हृदयं तर्पयाम्य् अनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतो मन्थम् एतम् अश्विनो रूपं परिधाय मायाम् ॥३॥
इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधाम् अजराम् एतम् एषा! ।
तया त्वं जीव शरदस् सुवर्चा मा त आ सुस्रोद् भिषजस् ते अक्रन् ॥४॥

१.१४

विश्वे देवासो [अ]भि रक्षतेमम् उतादित्या जागृत यूयम् अस्मिन् ।
मेमं सनाभिर् उत वान्यनाभिर् मेमं प्रा[पत् पौ]रुषे[यो वधो यः] ॥१॥
ये वो देवाः पितरो ये च पु[त्राः] × × [सचे]तसो म उत्तमम्।
सर्वेभ्यो वः परि × × × × [अर]िष्टे नयाथ ॥२॥
ये देवा दि[वि] × × × × [अ]न्तरिक्ष ओषधीषु अप्सु ।

[illegible]

१.१८

[illegible]

१.१९

[illegible]

१.२०

[illegible]

उत्तरेण ब्रह्मणा वि बाहि कृण्वानो अन्यान् अधरान् सपत्नान् ॥२॥
देवेन्द्राय समभरन् पयांस्य् उत्तरेण ब्रह्मणा आतपेयुः ।
तेन त्वम् अग्न इह वर्धयेमं रायस् पोषं श्रैष्ठ्यम् आ धेह्य् अस्मै ॥३॥
एषां यज्ञम् उत वर्चो ददेऽहं रायस् पोष[म्] × × ।
[सप]त्ना अस्मद् अधरे भवन्तूत्तमे देवा ज्योतिषि ऽदधत्व् एनम्? ॥४॥

१.२०

मा नो विदन् विव्याधिनो मो [अ]भिव्याधिनो विदन् ।
आराच् छरव्या अस्मद् विषूचीर् इन्द्र पातय ॥१॥
विष्वञ्चो अस्मच् छरवः पतन्तु ये [अ]स्ता ये चास्याः ।
ऽदेवा मनुष्या ऋषयो? [अ]मित्रान् नो वि विध्यन्तु ॥२॥
यः समानो यो ऽसमानो [अ]मित्रो नो जिघांसति ।
रुद्रः शरव्यया तान् अमित्रान् नो वि विध्यतु ॥३॥
सबन्धुश् चासबन्धुश् च यो न इन्द्राभिदासति ।
देवास् तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥४॥

१.२१

नाम च संस्य यं च सं न? असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोर् अरसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥१॥
अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेर् इव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वो [अ]पोच्छतु ॥२॥
एन्य् एका श्येन्य् एका कृष्णैका रोहिणी द्वे ।
सर्वासाम् अग्रभं नामावीरघ्नीर् अपेतन ॥३॥
असूतिका रामायण्य् अपचित् प्र पतिष्यति ।
ग्लौर् इतः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥४॥
अपेतो [अ]रवि[ह] स्वरिर् इन्द्रः पूषा तु विचक्षतुः ।
अपेत्व् अस्य ग्रीवाभ्यो अप पड्भ्यां विजामता? ॥५॥

१.२२

मांसानाम् मांसपालेभ्यश् चतुर्भ्यो [अ]मृतेभ्यः ।
इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥१॥
य आशानाम् आशापालाश् चत्वारस् स्थन देवाः ।
ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो [अं]हसः ॥२॥
अस्रामस् त्वा हविषा विधेयम् अश्लोणस् त्वा घृतेन जुहोमि ।
य आशानाम् आशापालस् तुरीयो देवस् स नस् सुभूतम् एह वक्षत् ॥३॥
स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो [अ]स्तु स्वस्ति गोभ्य उत पूरुषेभ्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रम् अस्तु ज्योग् एव दृशेम सूर्यम् ॥४॥

१.२३

इदं जनासो विदथं महद् ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥१॥
अन्तरिक्षम् आसां स्थामं श्रान्तसदाम् इव ।
आस्थानम् अस्य भूतस्य विदुष् तद् वेधसोऽजनः? ॥२॥
यद् रोदसी रेजमाने भूमिश् च निरतक्षताम् ।
आर्द्रं तद् अद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः? ॥३॥
विश्वम् अन्याम् अभीवार विश्वम् अन्यस्याम् अधि श्रितम् ।
दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥४॥

१.२४

सं सं स्रवन्तु सिन्धवस् सं वाता दिव्या उत ।
तेभिर् मे सर्वैस् संस्रावैर् धनं सं स्रावयामसि ॥१॥
ये संस्रावास् संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च ।

तेभिर् मे सर्वैस् संस्रावैर् धनं सं स्रावयामसि ॥२॥
[illegible]
तेभिर् मे सर्वैस् संस्रावैर् धनं सं स्रावयामसि ॥३॥
[illegible]

१.२५

[illegible]

१.२६

[illegible]

१.२७

[illegible]

१.२८

[illegible]

१.२९

[illegible]

[illegible] ॥१॥
याः पश्चात् आचरन्ति [illegible]? ।
[illegible] ॥२॥
याः [illegible]? ।
सर्वास् ता [illegible] इव ॥३॥
[illegible]? ।
आराद् [illegible] नो [अ]धि [illegible] ॥४॥

१.३०

कामस् तद् अग्रे सम् अवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यद् आसीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस् पोषं यजमानाय धेहि ॥१॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर् विभावा सुषखा सखीयते ।
त्वम् उग्रः पृतनासु सासहिस् सह ओजो यजमानाय धेहि ॥२॥
दूराच् चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
[illegible] कामेनाजनयन् स्वः ॥३॥
कामेन मा काम आगन् हृदयाद् धृदयं परि ।
यद् अमीषाम् अदो मनस् तद् एतूप माम् इह ॥४॥
यत् काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन् नस् सर्वं सम् ऋध्यताम् अथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥५॥
क इदं कस्मा अदात् कामः कामायादात् ।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामस् समुद्रम् आ विवेश ।
कामेन त्वा प्रति गृह्णामि कामैतत् ते ॥६॥

१.३१

इमं मे कुष्ठ पूरुषं तम् आ वह तं निष् कृधि ॥१॥
उदङ् जातो हिमवतस् स प्राच्यां नीयसे जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्य् उत्तमानि वि भेजिरे ॥२॥
उत्तमो नामास्य् उत्तमो नाम ते पिता ।
यतः कुष्ठ प्रजायसे तद् एहि [illegible] ॥३॥
शीर्षामयम् उपहत्याम् अक्ष्योस् तन्वो रपः ।
कुष्ठो नो विश्वतस् पातु दैवं समह वृष्ण्यम् ॥४॥

१.३२

यद् अग्निर् आपो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नस् संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् ॥१॥
यद्य् अर्चिर् यदि वासि धूमस् [illegible] यदि वा ते जनित्रम् ।
हुडुर् नामासि हरितस्य देवस् स नस् संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् ॥२॥
यदि शोको यदि वाभिशोको [illegible] यदि [वा] [illegible] ।
हुडुर् नामासि हरितस्य देवस् स नस् संविद्वान् परि वृङ्धि तक्मन् ॥३॥
नमश् शीताय तक्मने रूराय कृण्मो वयं ते ।
यो अन्येद्युर् उभयेद्युश् चाभ्येति तृतीयकाय नमो [अ]स्तु तक्मने ॥४॥
तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिम् उत हायनम् ।
तक्मानं विश्वशारदं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ॥५॥

१.३३

यस्यो [illegible] सर्वम् [illegible] ।
[illegible] मा [illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] [अ]भीशवम् ॥३॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापश् शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
शिवान् अग्नीन् अप्सुषदो हवाम[हे] मयि क्षत्रं वर्चो धत्त देवीः ॥४॥
यद् आपो नक्तं मिथुनं चचार यद् वा दुद्रोह दुरितं पुराणम् ।
हिरण्यवर्णास् तत् पुनन्तु मा प्र मा मुञ्चन्तु वरुणस्य पाशात् ॥५॥ ॥ऋ॰१॥

१.३४

अग्निर् जनविन् मह्यं जायाम् इमाम् अदात् ॥१॥
सोमो वसुविन् मह्यं जायाम् इमाम् अदात् ॥२॥
पूषा ज्ञातिविन् मह्यं जायाम् इमाम् अदात् ॥३॥
इन्द्रस् सहीयान् मह्यं जायाम् इमाम् अदात् ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.३५

अग्नये जनविदे स्वाहा ॥१॥
सोमाय वसुविदे स्वाहा ॥२॥
पूष्णे ज्ञातिविदे स्वाहा ॥३॥
इन्द्राय सहीयसे स्वाहा ॥४॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰७॥

१.३६

या× पुरस्ताद् आचरन्त्य् आ वा पश्चात् सदान्वाः ।
अस्मान् अनुच्छन्तीर् यन्ति यूयं स्वाशावनाय! ॥१॥
या× पश्चाद् आचरन्ति पुरस्ताद् वा [सदान्वाः ।
अस्मान् अनुच्छन्तीर् यन्ति यूयं स्वाशावनाय!] ॥२॥
या उत्तराद् आचरन्त्य् अधराद् वा सदान्वाः ।
अस्मान् अनुच्छन्तीर् यन्ति यूयं स्वाशावनाय! ॥३॥ ॥ऋ॰१॥

१.३७

उभयीर् अहम् आयत× पराची[र् अ]करं त्वत् ।
¿देवेभिर् अन्यास् त्वा यन्तीर् अन्या अयो दिवम्? ॥१॥
नमस् ते रुद्रास्यते नम× प्रतिहिताभ्यः ।
नमो विसृज्यमानाभ्यो नमो निपतिताभ्यः ॥२॥
हिरण्यैर् मौलिवर्णार् षड् सहस्राणि षट् शता ।
ताभि× परि श्रयामहे ता नो रक्षन्तु सर्वतः ॥३॥
अयस्मयान् मे विमितं युष्मभ्यं महत् कृतं नमसा नमसेभ्यम् ।
तेना परि श्रयामहे तन् नो रक्षतु सर्वतः ।
य इदम् अन्यद् विहितं तस्य कामं वि विष्यत ॥४॥
अयस्मयं वर्म कृण्वे द्वारं कृण्वे अयस्मयम् ।
कीलान् अयस्मयान् कृण्वे ते नो रक्षन्तु सर्वतः ।
य इदम् अन्यद् विहितं तस्य कामं वि विष्यत ॥५॥ ॥ऋ॰१॥

१.३८

इमा यास् तिस्र× पृथिवीस् तासां ह भूमिर् उत्तमा ।
तासाम् अधि त्वचो [अ]हं सम् उ जभ्रं भेषजम् ॥१॥
श्रेष्ठम् असि वीरुधानां वसिष्ठं भेषजानाम् ।
यद्वो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥२॥
रेवतीर् अनाधृषस् सिषासन्तीस् सिषासत ।
एतास् स्थ केशवर्धनीर् अथो स्थ केशदृंहणीः ॥३॥
दृंह मूलम् आग्रं यच्छ मध्यं यामयौषधे ।
केशवर्धनम् अस्य आथर्वणं केशदृंहणम् अस्य आथर्वणम् ॥४॥ ॥ऋ॰१॥

१.३९

अग्ने गोभिर् न आ गहीन्दो पुष्ट्या मदस्व नः ।

इन्द्रो धर्ता गृहेषु नः ॥१॥
सविता यस् सहस्रियस् स नो गृहेषु रण्यतु ।
आ पूषा एत्व् आ वसु ॥२॥
त्वष्टा यो वृषभो युवा स नो गृहेषु रारणत् ।
सहस्रेण शतेन च ॥३॥
धाता दधातु नो रयिम् ईशानो जगतस् पतिः ।
सं न× पूर्णेन यच्छतु ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.४०

ममोभा मित्रावरुणा ममोभेन्द्राबृहस्पती ।
मम त्वष्टा च पूषा च ममैव सविता वशे ॥१॥
मम विष्णुश् च सोमश् च ममैव मरुतो भवन् ।
सरस्वांश् च भगश् च विश्वे देवा वशे मम ॥२॥
ममोभे द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं स्वर् मम ।
ममेमास् सर्वा ओषधीर् आपस् सर्वा वशे मम ॥३॥
मम गावो ममाश्वा ममाजाश् चावयश् च ।
ममैव पुरुषा भवन् ममेदं सर्वम् आत्मन्वद् एजत् प्राणद् वशे मम ॥४॥
॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰८॥

१.४१

अग्ने ऽभ्यावर्तिन्न् अभि न आ वर्तस्व ।
आयुषा वर्चसा सन्या मेधया प्रजया धनेन ॥१॥
अग्ने जातवेदश् शतं ते सन्त्व् आवृतस् सहस्रं त उपावृतः ।
अधा पुष्टस्येशान× पुनर् नो रयिम् आ कृधि ॥२॥
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस् परि ॥३॥
पुनर् ऊर्जा वर्तस्व पुनर् अग्न इषायुषा ।
पुनर् न× पाह्य् अंहसः ॥४॥ ॥ऋ॰२॥

१.४२

यास् सेना अभीत्वरीर् आव्याधिनीर् उगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास् तांस् ते अग्ने ऽपि दधाम्य् आसनि ॥१॥
यो अस्मान् अभिदासति अग्ने दंष्ट्राभ्यां तस्करान् उत ।
हनूभ्यां स्तेनान् भगवस् तांस् त्वं खाद सुखादितान् ॥२॥
ये ग्रामेषु मलिम्लवस् स्तेनासस् तस्करा वने ।
ये कक्षेष्व् अघायवस् तांस् ते ऽग्ने परि दधाम्य् आसनि ॥३॥
यो अस्मभ्यम् अरातीयाद् यश् च नो द्वेषद् द्विजम्मा ।
आमादः क्रव्यादो रिपूंस् तान् अग्ने सं दह त्वम् ॥४॥ ॥ऋ॰२॥

१.४३

आ क्रन्दय धनपते वरेणमतसामुत? ।
अयांश्च पुनर् आ कृधि यथाहं कामये तथा ॥१॥
परिमन्तः? परि धाव मरुन्त×? पुनर् आ कृधि ।
अथो अर्थान्द्रश् चाग्निश् चामुम् आ नयताद् इह ॥२॥
एकाक? एककामायास्मै कामाय ह्वयसे ।
तेन म विश्वधावीर्या सम् आ नयताद् इह ॥३॥ ॥ऋ॰२॥

१.४४

अभितस्य विमातस्य यभ्रोर् उपोदकस्य च ।

सर्वा विषस्य धामानि अपोयाप्रिसमीपरे? ॥१॥
दर्वीकाद् अन्त दुर्लभ किं मे सखायम् आ तुदः ।
नमामि शल्यागतं सर्वीनं? विषदूषणम् ॥२॥
यत् तालव्योजति? संसिसिक्षे विषं त्वम् ।
अयस् तुदा तुदामसि बभ्रुको नकुलस् त्वत् ॥३॥
अयो !? अस्मत्सखायो बभ्रुको नकुलस् त्वत् ।
ते सर्वे अस्य यातयन्त् आहेयम् अरसं विषम् ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.४५

सारस्वतं वृषभं बभ्रुपक्षश् शीतकरे तन्वं पश्यन्ती? मे ।
अन्येपुष्कं सदन्दि त्वा तृतीयकं हुवे नमस्यं महादेवम् अप्सुजम् ॥१॥
यो अप्सुजो अरुणो मानुषे जने विवेश बभ्रुर् हर्यक्षिणुर् अक्षतः ।
शीतकराय तरुणपिप्पले शुचे शीर्षं मा ते श्रमन् नमो [अ]स्तु देवाः ॥२॥
यो हर्यक्षम् जजान स्वेदनो वशी ¿यत्प्रहारः शीतकरा? शिवेम नु ।
सो ऽस्मभ्यं सुत्वेन? प्रेहि शोचितो यं वयं द्विष्मस् तम् अभि प्र जनम् ॥३॥
नमस् ते विषणे काशानाय यतोयतस् सुरभेस् संबभूविथ ।
स नो मा हिंसीन् नमो [अ]स्तु तुभ्यं शीर्षक्त्याद् इह पारया नः ॥४॥
॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰९॥

१.४६

अस्य त्वं दक्षतस् सोम राजन् वर्मेव तं त्वं परि पाहि विश्वतः ।
यो अग्रतो राधो विश्वो ऽदधात् तस्य सोम× प्र त[र]द् दीर्घम् आयुः ॥१॥
अस्य सोम× प्र त[र]द् दीर्घम् आयुर् अहानीव सूर्यो वासराणि ।
सास्यायुषुन्? आशायाद् येऽमनो विषं बहिष् शल्यश् चरति रोगो ऽस्मात् ॥२॥
शतं तृष्णाया× परि पात विश्वं शतं क्षुधो शतं ¿संदेया मृत्याः? ।
अविष्कन्धो भवति यो ऽददाद् आ व्यायतं वपुर् दक्षिणया ॥३॥
आ व्यायतां वपुर् दक्षिणया वर्मेव स्यूतं परि पातु विश्वतः ।
बहिर् विषं ¿तन मे नस्य श्रोपतां? शल्यान् उद् धारयास्मात् ॥४॥
अग्र शारव्याम् अप बाधताम् इतो हन्यात् कुलान् नायम् इ वा दिशुम्बी? ।
तस्मै दददु दीर्घम् आयु× कृणाथ? शतं जनश् शरदो जीवताद् इह ॥५॥
यदा [इ]दानि प्रददाति यदा अक्षा प्रतिगृह्णाति राधो अस्य ।
आ र द्वि धिम्या तु प ह स्या त ति म? सर्वे यत्रा उप तिष्ठन्तु साकम् ॥६॥
॥ऋ॰१॥

१.४७

व्याघ्रकृपस् सुरभिस् सिंहस्य रेतसा कृतः ।
अप्ये पृथिव्यां निखितस् सम् अगच्छद् यातुधान्या ॥१॥
अभिप्रेतम् अप व्यक्तम् अशुभायम् आपवे ।
अथेव सर्वा जम्भय या× काश् च यातुधान्यः ॥२॥
प्रतीचोधश् चतुरक्षस् अक्ष्यो क्षमेव? वीतभूत् ।
प्रतीची× कृत्या आकृत्याम्× कृत्याकृतो जहि ॥३॥
कृत्याकृतं वलगिनं मूलिनं शपथेय्यम्? ।
इन्द्रस् तु सर्वांस् तान् हन्तु ¿सत्यमेन अयाम इव? ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.४८

अरसस्य कर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।
विषं हि सर्वम् आदिष्य अथो एनम् अजीजभम् ॥१॥
न ते बाह्वो रसो [अ]स्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।
किम् इदं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्य् अर्भकम् ॥२॥
यत् ते स्कन्धान् उपतकी विजासि यद् वा ते परी? ।
अ पा मि त्सु मि या इ तं म तं? ते प्रति दृष्मसि ॥३॥
अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वे अत्र प्रवाच शार्कोटम् अरसं विषम् ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.४९

कृतं मे दक्षिणे हस्ते सव्ये मे जय आहितः ।
गोजिद् भूयासम् अश्वजित् कृतंजयो? हिरण्यजित् ॥१॥
अक्षा× फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीम् इव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुस् स्नाव्नेव नह्यत ॥२॥
उभौ हस्तौ प्रतिदीव्नो अग्रया रोमाममसि? ।
कलिर् एवं यथा हनद् आस्य वेदो भरामहे ॥३॥
आ मह्यं द्वापरम् उत श्वेता परा कलिम् ।
कृतं मे हस्त आहितम् अमू सौमनसो महा? ॥४॥ ॥ऋ॰४॥

१.५०

यद् एव परेषु यत् ते तन् मे नीयते ।
ततस् त्वा पुनर् अर्वाञ्चं भूतस्याधीनगमत् पतिः ॥१॥
आ त्वा नयाद् भूतपतिर् आ देवो बृहस्पतिः ।
आदित्यास् सर्वे त्वा नेषन् विश्वे देवास् सुवर्चसः ॥२॥
अश्वपतिस् सरस्वती अगो राज्ञास्या अयः ।
शाला मानस्य पत्नीर् इवास्य नमस् करत् ॥३॥
यस् त्वा निनाय नेषत् स उ त्वेहा नयात् पुनः ।
मनो हि ब्रह्मणो विदुर् विश्वकर्मा मनीषिणः ॥४॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰१०॥

१.५१

गातोर् हविर् अजयन्तास् स्व इन्द्रायं ज्येष्ठं वयं अयामेह देवाः ।
सुगातो गातोत? स पन्था अपि सो ऽस्मभ्यम् इन्द्रं वदति प्रचेताः ॥१॥
अग्निर् न× पुरएता स्व ओजसा बृहस्पतिस् सत्यो अस्तु नस् सखा ।
इन्द्रं हुवे? वृत्रहणं पुरन्दरं गणेनाम् अ[गाम] अजयन्तस् त्वाम् ॥२॥
त्वं सोम दिव्यो नृचक्षास् सुगाँ अस्मभ्यं पथो ऽनु यच्छ ।
अभि नो गोत्रं विदुषीव? नेषो अच्छा नो वाचम् उशती जिगासि ॥३॥
इमाम् अग्ने शरणिं मीमृषो न इमम् अध्वानं यम् अगाम दूरम् ।
आपि× पिता प्रमतिस् सोम्यानां भृमिर् अस्य ऋषिकृन् मर्त्यानाम् ॥४॥
॥ऋ॰१॥

१.५२

ये पुरस्ताद् आस्यन्देते गावी स्तूपभे? य व ह णो म्य वं नी अ ह स्य हव या रा इ मी य मी? ॥१॥
ये [अ]धराद् आस्यन्देते [गावी ...] ॥२॥
ये पश्चाद् आस्यन्देते [गावी ...] ॥३॥
[ये] उत्तराद् आस्यन्देते गावी स्तूपभे? य व ह णो म्य वां नी अ ह स्य इस्था या रा हा मी य सी? ॥४॥ ॥ऋ॰२॥

१.५३

अग्ने यशस्विन् यशसं वर्धयेमम् इन्द्रावतीम् अपचितिम् इहा वह ।
अयं मूर्धा परमेष्ठी सुवर्चास् समानानाम् उत्तमश्लोको अस्तु ॥१॥
धाता विधाता परमोत संदृक् प्रजापति× परमेष्ठी विराट् ।
स्तोमाश् छन्दांसि निविदो माम् आहुर् ते अस्मै राष्ट्रम् उप सं नमन्तु ॥२॥
भद्रम् इच्छन्त ऋषयस् स्वर्विदस् तपो दीक्षाम् उप नि षेदुर् अग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलम् ओजश् च जातं तद् अस्मै देवा उप सं नमन्तु ॥३॥
उपा बलिभ्यम् उप न इत सर्वे अयं व? यशाम्? अधिपतिर् वो [अ]स्तु ।
समानं मन्त्रम् अभि मन्त्रयध्वम् इमं पश्चाद् उप जीवाथ सर्वे ॥४॥
समानो मन्त्रस् समितिस् समानी समानं मनस् सह चित्तम् एषाम् ।
समानं मन्त्रम् अभि मन्त्रये वस् समानेन [वो] हविषा जुहोमि ॥५॥ ॥ऋ॰१॥

१.५४

सोमम् मद्रे ... [illegible] ... ।
वीं विषविद् ... [illegible] ... ॥१॥
इदं वर्चो [अ]ग्निना दत्तम् आगन् भर्गो यशः सह [इ] ओजो वयो बलम् ।
... [illegible] ... ॥२॥
वर्चो धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥३॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥४॥
... [illegible] ... ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि ॥५॥

१.५५

इयम् ... [illegible] ... ।
... [illegible] ... इव ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेद् अह क्रताव् असो मम चित्तम् उपायसि ॥३॥
मधुमन् मे निक्रमणं मधुमन् मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ॥४॥

१.५६

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.५७

... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ॥४॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥५॥

१.५८

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.५९

यद् अस्माद् अङ्गात् संसुस्राव यद् बभूव गलत्तव? ।
गावो वत्सम् इव जानानास्? तद् उपैति यथायथम् ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
अहं वेद यद् आसिथ गिल्विका? नाम वासि ।
अमुं ते त्वम् इतो गच्छ यम् अहं द्वेष्मि पूरुषम् ॥३॥
तस्यापि मध्य मा सीद नीलग्रीवासु सीदत ।
... [illegible] ... संविदम् ॥४॥
अपेतो यन्तु अमुयो निर् अतो यन्तु अमुयः ।
अधराची कृतः परा ... [illegible] ... ।
निर् अहं ... [illegible] ... अधराची कृतः परा ॥५॥

१.६०

अभि त्वाम् अहम् ओजसेन्द्रो दस्यून् इवाभुवम् ।
सपत्नी नश्यताद् इतो दूरं गच्छात्व् ओकसः ॥१॥
... [illegible] ... ।
अथो सपत्नो सासहीर्? नश्यात्व् ओकसः ॥२॥
अभिभूर् अहम् आगनं विश्वकर्मा महो मे अदात् ।
... [illegible] ... ॥३॥
उत् तिष्ठ मम या इदं न तथेहापि किं चन ।
मां चैव पश्यन्त्? आयत्व् अमुं च दिवि सूर्यम् ॥४॥

१.६१

यत् त्वा मृत्युर् अभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्याम् उद् अमुञ्चद् बृहस्पतिः ॥१॥
अभि त्वा जरिमाहित गाम् उक्षणम् इव रज्ज्वा ।
यस् ते मृत्युर् अभ्यधत्त जायमानं ... ।
एषु अन्ये यन्तु मृत्यवो यान् आहुर् इतरान् शतम् ॥२॥
प्र विशतं प्राणापानाव् अनड्वाहाव् इव व्रजम् ।
शरीरम् अस्याङ्गानि जरिम्णे वहतं युवम् ॥३॥
युवं स्थः प्राणापानौ ... [illegible] ... मृत्यवे ।
अयं जरिम्णः शेवधिर् अरिष्ट इह वर्धताम् ॥४॥
जरसे त्वा परि दद्मो जरसे नि ऊहामसि ।
जरा त्वा भद्रा नेष्यत्? ।
एषु अन्ये यन्तु मृत्यवो यान् आहुर् इतरान् शतम् ॥५॥

१.६२

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम् अज्ञातयक्ष्माद् उत राजयक्ष्मात् ।
ग्राह्या गृहीतो यद्य् एव यतस् तत इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तम् एनम् ॥१॥
यदि क्षितायुर् यदि वा परेतो यदि मृत्योर् अन्तिकं नीत एव ।
तम् आ हरामि निर्ऋतेर् उपस्थाद् अस्पार्षम् एनं शतशारदाय ॥२॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायु[षा हवि]षाहार्षम् एनम् ।
इन्द्रो यथैनं जरसे नयाति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् शतम् उ वसन्तान् ।
शतम् इन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षम् एनम् ॥४॥

१.६३

यत् ते अन्नं भुवस् पत आक्षितं पृथिवीम् अनु ।
तस्य नस् त्वं भुवस् पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥१॥
... [illegible] ... परमेष्ठिनो ब्रह्मणा ... [illegible] ... ।

संवत्सरस्य ... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ॥४॥
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तम् अद्धि ।
... [illegible] ... ॥५॥

१.६४

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.६५

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.६६

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.६७

... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥१॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥२॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥३॥
... [illegible] ... ।
... [illegible] ... ॥४॥

१.६८

... [illegible] ... ।

एवा भिनद्मि ते मुष्कौ तस्मै त्वाम् अवसे हुवे ॥१॥
त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्य् ओषधे ।
इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबम् ओपशिनं कृधि ॥२॥
क्लीबं कृध्य् ओपशिनम् अथो कुरीरिणं कृधि ।
उभाभ्याम् अस्य ग्रावभ्याम् इन्द्रो भिनत्तु आण्डौ ॥३॥
क्लीब क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरम् अरसं त्वाकरम् अरसारसो ऽसि ।
कुरीरम् अस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥४॥
ये ते नाड्यौ देवकृते ययोस् तिष्ठति वृष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि [श]म्ययामुष्या [अधि मु]ष्कयोः ॥५॥

१.६९

जायमानो निर् अहन् सपत्नान् नो इतो भयम् ।
स वै सपत्नानां सखा अयालिप्सो अनाशयत्? ॥१॥
आराद् अरातिं कृणुते यथाम् तमो ऽप बाधते ।
अयालिप्सस् स नो मणिम् सहस्वान् अभिमातिहा ॥२॥
इमं मणिम् अयालिप्सं यस्मिन्न् आरोहयामसि ।
स वै सपत्नान् मा दभेन् स एनं पातु विश्वतस् स एनं जरसे नयात् ॥३॥

१.७०

यतो जीवेभ्यो न पितॄन् उपैति न मानुषं दुष्कृतं दैधिषव्यम् ।
अपक्रिय ः प्रथमो यो विवेश कृच्छ्राभिर् ज्योतिर् अभ्यवनुपाती ॥१॥
... [illegible] ... सूर्यो ऽसंदृशाम् एति वायुः ।
भूमिर् ड्ढेरि तरन्तम् एतं यत्र मानुषं दुष्कृतं दैधिषव्यम् ॥२॥
त्रित देवा अमृजतैतद् एनस् त्रित एतं मानुषेषु ममृष्टे ।
त्रितं तद् उ ... [illegible] ... ज्योतिर् अधि दूरम् एति ॥३॥
पथि ः पार्थिर् इषितूर्गतिर् विचय ः परोपराद् आर्पितो अङ्गमङ्गे ।
वि ते कृण्वन्तो विमृजो हि सन्ति अपामि एनद् दुरितानि मृक्ष्व ॥४॥

१.७१

अग्निर् दे ... [illegible] ... इन्द्रो वा[युर् बृ]हस्पतिः ।
स ते धर्मम् अधीधरद् धाते? बभूव × × ॥१॥
पुरस्ता विश्वम् अग्नि ः पश्चाद् अग्नि नुदस्व आयती ।
वायुर् एनं दक्षिणत ः पूर्वोत्तराद् अपानुदत् ॥२॥
आ सहस्रीय? तरय आरे अवाक् येनु नो विषम् ।
इन्द्रो वामेन विश्वतिर् आ ... [illegible] ... बृहस्पतिः ॥३॥
... [illegible] ... आगमन् स्वे ।
... [illegible] ... इमा विहतो देवान् यज्ञेन बोधयः ॥४॥

१.७२

महाग्ना ः प्रथमा ये दिदीविरे धनाय संगत्य महति क्षिराजे ।
एषां सदय ः? प्रथमो क्षिपाय तस्यां लोकम् उद् विवेयम् ॥१॥
... [illegible] ... इन्द्र ... ।
अध्या वृक इव ... [illegible] ... आयसि ॥२॥
× × × ×

१.७३–७५

× ×
× × ×
× ×

१.७६

× × × ... अंहुर् मोजस्वान् आ तर्ध्य? ।
प्रतिदृहांहः? दहः × × × × रं कृणुष्व ॥१॥

प्रत्य् एनं याहि प्रति भक्ष्य एनं विविद्धं नो ऽग्ने पितः × ।
प्रत्यक् पहि यर्मना अहंपायः कृत्याकृतं दुष्कृतं माधि योचः ॥२॥
× ×हाद् धृतयं माभि यस्ते यद् चक्षुषा मनसा यश् च वाचा ।
प्रत्यग अ× × ×म्याम् अभि तं युभुपुं कृत्याकृतं दुष्कृतं निर् दहाग्ने ॥३॥
प्रतिबोधय धनुर[स्तो] × × धमेय धीधुनुन् ।
प्रभञ्जन् छत्रून् प्रति याहि अग्ने कृत्याकृ[तं विध्य] हृदये मर्मणि ॥४॥

१.७७

इन्द्र क्षत्रम् अभि वामम् ओजो ऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनम् अमित्रयन्तम् उरुं देवेभ्यो अकृणोर् उ लोकम् ॥१॥
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा[ः परावत आ जगम्यात् परस्याः ।
[सृ]कं संशाय पविम् इ[न्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥२॥]

१.७८

× × × ×न्त पृथिवी उत द्यौर् अभिद्रुतः पृश्निमातरः ।
× × ×भिः पविर् इव नेमिर् अपरस् सो [अ]स्तु ॥ ॥
यस्य व्रता गत[म् अनु]प्रयन्ति देवा मनुष्याः पशवश् च सर्वे ।
तं नो देवं मनो ऽधि ब्रवीतु सुनी[तिर् नो] नयतु द्विषते मा रधाम ॥ ॥

१.७९

वर्चस्वान् असि देवेषु वर्चस्वान् ओ[ष]धीष्व् असि ।
अथो वर्चस्विनं कृधि यम् अहवत्याधि × × × ॥ ॥
× × × × ×

१.८०–८२

× × × × ×
× × × × ×

१.८३

× × × × ×
× × × × ×
[नैनं रक्षांसि न पिशाचास् सहन्ते देवानाम् ओजः प्रथमजं ह्य् एतत् ।
[यो बिभर्ति दा]क्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घम् आयुः ॥२॥
अपां रेतो ज्योतिर् ओजो बलं च वनस्पतीनाम् उत वीर्याणि ।
इन्द्र इव इन्द्रियमधीधसो? [अ]स्मिन् सुदक्ष्यमाणो बिभरद्
हिरण्यम् ॥३॥
समान[ां मासा]म् ऋतुभिष् ट्वाहं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि ।
इन्द्राग्नी त्वा ब्रह्मणा यातुधानाद् आयुष्मन्तम् उत्तमं त्वा करातः ॥४॥

१.८४

यन् ते यमस्य प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१॥
यत् ते भूमिं चतुःस्रक्तिं मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥२॥
यन् ते यमं वैवस्वतं मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥३॥

यत् ते वायुम् अन्तरिक्षं मनो [जगाम दूरकम् ।
तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥४॥
यत् ते समुद्रम् अर्णवं मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥५॥
यत् ते दिवं यत् पृथिवीं मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥६॥
यत् ते सूर्यं यद् उषसं मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥७॥
यत् ते चन्द्रं नक्षत्राणि मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥८॥
यत् ते अपो यद् ओषधीर् मनो [जगाम दूरकम् ।
[तन् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे] ॥९॥
यत् ते परा परावतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत् त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥

१.८५

यं गृह्णन्त् अप्सरसो यं बध्नाति बृहस्पतिः ।
त्वां कश्यपस्य ब्रह्मणा सविता पुनर् आ भरत् ॥१॥
सविताग्निर् ब्रह्म सोमस् त्वष्टा बृहस्पतिः ।
एते मदपुतं त्वां ब्रह्मणा पुनर् आ भरन् ॥२॥
भद्रं वारं शिवं चक्षुर् मदपुताय कृण्मसि ।
इमां ह्य् अस्मा ओषधिम् आ हरन्न् अरुन्धती ॥३॥

१.८६

त्रिभ्यो रुद्रेभ्यः प्र य य न्त्व आ मि? ज्येष्ठः कनिष्ठ उत मध्यमो यः ।
ज्योतिर् अकारः? कश्यपस् सोमपा ये कण्वा यजन्ति निर् अतो वधेन? ॥१॥
इन्द्राग्नी वीतं हविषस् संविदानौ समिद्धो ऽग्निस् समिद्धो गीर्भिर् इन्द्रः ।
पुरैषां कण्वा निर् अतो अरातिम् आरद् रक्षांसि त य तो ष्य? अस्मत् ॥२॥
यास्तोष् एते सुप्रजासस् सुवीरा वर्षाणांशानि शरदश् शतानि ।
द्रुहस् तु कण्वान् निर् नुदस्व शिवस् त्व् अस्मान् उप सं विशस्व ॥३॥
या तं द य द स ल स स वा? च गोष्ठे या जाता शकधूमे सजयाम्? ।
प्रयायां जात उत यस् सु भि इ षु ता क्षा त य? स शिवो नो ऽस्तु ॥४॥
द्रुघा च द्रुघनी च स्प[स्] त ग्रा ह्रा म त ग्रा हं? नामधेयम् ।
रुद्रप्रेषिते स्यो वे ता म य तो स्स न? वृद्धं यो नो द्वेष्टि स भिद्यताम् ॥५॥
नीची नामास्य् अथारा? नाम नमस् ते ऽस्तु वातके ।
अन्यतो ऽस्मद् अपां? कृधि ॥६॥
ऊर्जाति परि णो नमाप्नेष परि णो नम ।
मह्मानं तन्वं कृण्महे अभय आ नस् सोम मृडय? ॥७॥

१.८७

इत्वं दर्भो ऽसि पतिर् ओषधीनां निभिन्दान् यासि कण्वा यवीनान् ।
भिन्नशिरः कृमे जायां त्वस्य शरीरं भिन्धति भिन्धन्ति ॥१॥
यः कीकसास्तो विरजः पर्कषि यस्योदार उपमीपस् ता हि यमे ।
हनिष्यामि वां निर् अतः परेतं तृणान्य अन्तम् अ वि शी रि षा म् इ ष ॥२॥
यां यस् ते उठरेष्व् अन्तः करमे यशां नि र ष्वं म र्त्य स्य म् ।

इहनिष्यामि वां निर् अतः परेतं स्तायते नु प्रति या म नु त्सि ॥३॥
ये मेयपुर तेन यथा परेतं स्तायते नु प्रति या म नु त्सि ।
ब्रह्मणा या न परिवृत्य समन्तं वृश्चस्यामि नकुल इव सर्पम्? ॥४॥

१.८८

यज्ञपतिम् ऋषय एनसाहुर् निर्भक्ता भागाद् अनुतप्यमानाः ।
यद् एतद् यहत्वान् यद्य एव ततो विश्वकर्मन् प्र मुमुग्ध्य् एतम् ॥१॥
अनन्यान् सोमपान् मन्यमानो यज्ञस्य विद्वान् समये न धीरः ।
मधव्यान् स्तोकान् अप यान् रराध सं मा तेभिर्? सृजद् विश्वकर्मा ॥२॥
ये भक्षयन्तो न वसून्य् आनृधुर् यान् अग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषाम् अवया दुरिष्टा स्विष्टं तद् विश्वकर्मा कृणोतु ॥३॥
भीमा ऋषयो नमस् तेभ्यश् चक्षुर् यद् एषां मनसश् च सत्यम् ।
बृहस्पते महिषाय दिवे नमो विश्वकर्मन् नमस् ते पाह्य् अस्मान् ॥४॥

१.८९

सर्वा इमा ओषधयः पृथिव्याम् अधि निष्ठिताः ।
अथैष भद्रकं त्वाम् असुरेभ्यो अजायत ॥१॥
शतम् अप्सरसां शतं सुन्वतीनां गन्धर्वपत्नीनां श त स्यो न्द्रो? ।
अपकृतशिरसः पतन्ति परोवातं पतन्ति रेष्यमभिस्सह? ॥२॥
वेतन्तीम् अश्मलां पलाम् इन्द्रो अप्सरसो भरत्? ।
वि यो यशो भजामहे वि यो हविष्यं मोदनम् ।
अरायगिर् म यो न्तु ता म स्स य इम स यो प्र त या त स्ते? जने यथा ॥३॥

१.९०

असितस्य विद्रधस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विकस्यकस्यापचं मोच्छि[षः] पिशितं यन ॥१॥
उत् ते यसास तिष्ठतः कक्षे मुष्कात् अपाकृतौ ।
वेदाहं तस्मिन् भेषजं शीपुद्राव्? अभिचक्षणम् ॥२॥
निर्बलासं बलासिनो विमलम् उत विद्रधम् ।
परोपहत्यां ते धयं परा यक्ष्मं सुवामसि ॥३॥
शीर्षरोगम् अङ्गरोगं अक्षिपक्ष्मं विलोहितम् ।
परा ते ऽज्ञातं यक्ष्मम् अधराञ्चं सुवामसि ॥४॥

१.९१

पयो देवेषु पय ओषधीषु पय आशासु पयो [अ]न्तरिक्षे ।
तन् मे धाता सविता च धर्ता विश्वे तद् देवा अभि सं गृणन्तु ॥१॥
पयो यद् अप्सु पय उस्रियासु पय उरस्षु? पय उत पर्वतेषु ।
तन् मे धाता सविता च धर्ता विश्वे तद् देवा अभि सं गृणन्तु ॥२॥
यन् मृगेषु पयो विषम् अस्ति यद् व्रजति पतति यत् पतत्रिषु ।
तन् मे धाता सविता च धर्ता विश्वे तद् देवा अभि सं गृणन्तु ॥३॥
यानि पयांसि दिव्य् आर्पितानि यान्य् अन्तरिक्षे बहुधा बहूनि ।
तेषाम् ईशाने वशिनी मो [अ]य प्र दत्तां द्यावापृथिवी अहणीयमाने ॥४॥

१.९२

आगन्मेमां सुमतिं विश्वरूपां यस्यां पूर्वम् अनु तद् देव एकः ।
सा मन् मृडीद् जुजुषाणा शमीभ्यस् सा नो वृणीतां सुमनस्यमाना ॥१॥
इयं देवी सुमतिर् विश्वरूपा शिल्पं कृण्वाना चरति चरेषु ।
तां राजानः कवयो हस्तु केतैर् अराजानश् च यद्भिः पुनन्ति ॥२॥
अग्निर् या मा ग्नि स्व म् उप सं स्तेम धारमिये मधुमत्या वदन्तः? ।
सोमो राजा वरुणो मित्रो धर्मा अपि श्रीयमाणा उप सं नमन्तु ॥३॥

यो वन् शुष्मो हृदये यो बाह्वोर् यश् च चक्षुषि ।
जिह्वाया [अ]ग्रे यो वो मन्युस् तं वो वि नयामसि ॥४॥

१.९३

त्रिः कुष्ठासि वृषहा जातस् त्रिर् उद् दिवस् परि अश्विभ्ये ।
त्रिस् सोमाद्? अश्विभे त्वं त्रिर् आदित्येभ्यस् परि ॥१॥
जीवलां नघारिषां अयत कामपराजिताम् ।
उतामृतस्येशानो राजन् कुष्ठ वदामसि ॥२॥
अन्तरा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् इदं महत् ।
तत्रामृतस्यासिक्तं कुष्ठं देवा अबध्नत ॥३॥
कुष्ठो ऽसि देवाकृतो हिमवद्भ्यो निराभृतः ।
तीक्ष्णाभिर् अभ्रिभिर्? खातस् स वक्तरांरस विषम् ॥४॥

१.९४

यास् ते शतं धमनयस् सहस्राणि [च] विंशतिः ।
बभ्रोर् अहयस्य वारेणापि नह्यामि ता अहम् ॥१॥
शतस्य ते धमनीनां सहस्रस्यायुतस्य च ।
सूत्रेः पत्नम्? इव सारथिम् अपि नह्यामि यद् बिलम् ॥२॥
परमस्यां परावतश् शुष्मो अभ्र अवस्य च तिष्ठतु ।
ततश् शुष्कस्य शुष्येण तिष्ठन्तु लोहिनीर् अप ॥३॥
परि वस् सिकतामयम् अहंचित्? वदामसि ।
ब क श द श्व पे तु रा त क श च द्यामीम् इदम्? ॥४॥

१.९५

र क्ष मा ता क्षी इ ता मु मु ष्ठ ष्या म अयवन् आ म इ त्या भि श ष्वं ।
ता भि य जं ग्र ष्यो स्य वो वीरां वीरे भेषजेभिः? ॥१॥
यद् यन् ते गुह्यं नाम यन् न इच्याम तयोर् इषुः? ।
शिवा शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे ॥२॥
अग्निं त्वायुर् वैश्वानरं सद्मान् प्रवहन्न् अथात् ।
स नो देवत्राधि ब्रूहि मा रिषामा वयं तव ॥३॥
या देवी प्रहुतेषु तस्ये याम् अहम् अयाय यद्ग? ।
सोमस् त्वाम् अस्मभ्यं वेतु विद्वान् अवन्तु नः पितरो देवहूतिषु ॥४॥

१.९६

रायस् पोषं धेहि नो जातवेद ऊर्जस्वद् अन्नं वसु सूनृतावत् ।
देयाम मार्ग सुवर्चाम सोमं यक्षेत त्वाम् उप शिक्षेम हव्य ॥१॥
वर्चम् अग्ने धनवन्तस् स्यामाशं यशोपोतं हविष्मती ।
आधा वदेद् अभिं सोमस्याशान् इन्द्रं शिक्षेमेन्दुना सुतेन ॥२॥
ईशानं त्वा शुश्रुमा वयं पुरो[हि]त धनानां धनपते ।
गोमद् अग्ने अश्ववद् भूरि पुष्टं हिरण्यवद् अन्नवद् धेहि मह्यम् ॥३॥
वृहो मे द्यौः पृथिवी पयो ऽजगरो मा सौश्रवो वि सर्पतु ।
प्रजापतिना त्वष्टम् अवीरिये मेदिः पातु मा ॥४॥

१.९७

अस्मान् सुपर्ण्यं यसव उष्यमानाः पुराजरसो वसवो हि युः ।
पाका पूर्णीमस् तव वीर्याय शतं हिमा अधिपतिर् न वहि ॥१॥
उन्मुचो माद् आर्जुनम्? अगात् सुपद् अतो गोपाय मा ।
अहेभ्यास्तुमानं? परि दधे सूर्यः प्राणो भयामि ॥२॥

[illegible]

मा यतो भूयस्म ? ॥३॥

स एव पुत्र प्रजानां पिर् [illegible]

[illegible] ॥४॥

१.९८

[illegible]

१.९९

[illegible]

१.१००

[illegible]

१.१०१

[illegible]

१.१०२

[illegible]

यतस्यो दिशः प्रदिशो ह पञ्च यद उर्वीर् आपु रजसो विमाना ।
प्रादशान्त्यां कृतयश्च ते मा प्यायवन्तु भुवनस्य गोपाः ॥३॥
यथादित्या [अंशुम्] आप्याययन्ति यथाक्षितम् अक्षितयः पिबन्ति ।
एवा माम् इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिर् आ प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥४॥

१.१०३

आगन् रात्री संगमनी वसूनां विश्वं पुष्टं वस्व आवेशयन्ती ।
अमावास्यां हविषा विधेमोर्जं वसाना पयसा न आगन् ॥१॥
मा त्वा रात्रि पुरो दभन् मोत पश्चाद् विभावरि ।
आयुष्मन्तस् सुप्रजसस् सुवीरा इयाम् सत्वा[नस्] ? सुवर्चसः ॥२॥
यस्य देवस्य सुमतौ सुमतिं गृहाणाम् ? ।
आ मा पुष्टे च पोष्ये च राय आ देवानां सुमतौ स्याम ॥३॥
अहम् एवास्म्य् अमावास्या मा[म् आ] वसन्तु सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश् चेन्द्रज्येष्ठास् सम् अगच्छन्त सर्वे ॥४॥

१.१०४

प्रथमा ह व्य् उवासस्तां धेनुर् अभवद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहा उत्तराम्-उत्तरां समाम् ॥१॥
यां देवाः प्रतिनन्दन्ति धेनुं रात्रिम् उपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥२॥
संवत्सरस्य प्रतिमां ये त्वा रात्रिम् उपासते ।
तेषाम् आयुष्मतीं प्रजां रायस् पोषेण सं सृज ॥३॥
इयम् एव सा या प्रथमा व्यौच्छद् सास्व् अन्तश् चरति प्रविष्टा ।
वधूर् जिगाय नवगज् जनित्री त्रय एनां महिमानस् सचन्ते ॥४॥

१.१०५

वानस्पत्या ग्रावाणो घोषम् अक्रत हविष् कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
एकाष्टकायै हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१॥
इडायास् पदं घृतवत् सरीसृपं जातवेदः प्रति हव्या गृभाय ।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास् तेषां सप्तानां मयि रन्तिर् अस्तु ॥२॥
इडया जुहुतो हविर् देवान् घृतवता यजे ।
गृहान् अलुभ्यतो वयं [illegible] गोमतः ॥३॥
पशूर् ऋत्विग्भ्य आर्तवेभ्यो माद्भ्यद् संवत्सराय च ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥४॥

१.१०६

आयम् अगन् संवत्सरः पतिर् एकाष्टके तव ।
तस्मै जुहोमि हविषा घृतेनास्मै नश् शर्म यच्छतु ॥१॥
एकाष्टकायै हविषः विधेमर्तून् पञ्चानुप्रविष्टा ।
सस्येन सस्यम् उप सं चरताम् [illegible] उप सं चरेम ॥२॥
वसन्तो ग्रीष्मो मधुमन्तो वर्षा शरद् धेमन्त ऋतवो नो जुषन्ताम् ।
आ नो गोषु विशन्त्व् आ प्रजायां शर्मण्य् एषां त्रिवरूथे स्याम ॥३॥
एकाष्टका तपसा तप्य[मा]ना जजान गर्भं महिमानम् इन्द्रम् ।
तेन देवा व्य् असहन्त शत्रून् हन्तासुराणाम् अभवच् छचीपतिः ॥४॥

[illegible]

१.१०७

[illegible]

१.१०८

[illegible]

१.१०९

[illegible]

१.११०

[illegible]

यद्यो जजान पृथिव्या अन्तरिक्षं यथंस् सोमो बृहस्पतिर् बिभर्ति ॥२॥
यथंसो द्यावापृथिवी संमृद्धी अनूपयुर् यथो गृहीत्वा पृथिवीम् अनुसंचरेम ।
यशसा गावो गोपतिम् उप तिष्ठन्त्य् आयतीर् यशो गृहीत्वा पृथिवीम् अनुसंचरेम ॥३॥
मद्य कृणुध्वं सं हि वो यूयं यो यमां सौम्यध्वं पशुना पृणानि ।
पुरः कृणुध्वम् आयसीर् अधृष्टा मा वस् सुस्रोत् चमसो दृंहता तम् ॥४॥

१.१११

न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनम् अघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते विषम् ॥१॥
नि गावो गोष्ठे असदन् नि वत्स [illegible] ? ।
न्य् ऊर्मयो नदीनां न्य् अदृष्टा रसानाम् ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ? ।
कृणोमि विश्वं भेषजम् आहेयम् अरसं विषम् ॥३॥

१.११२

[illegible] ? ।
यथा नो बहवो विदुः ॥१॥
यथेमा पीता पृथिवी सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
[illegible] समीचीं ? ॥२॥
यद् वै वा मामकेयं जिगीषद् अपराजितं प्रजां च वर्चम् आ शासे ।
राई चन्द्रामिरक्षितं विभूषी वां मामकेयम् अश्विना धारयं मधु ॥३॥
सूर्यो वै चक्षुर् भूतानां प्रजां धारयतं मयि रयिं धारयतं मयि ।
[illegible] च ? ।
तस्मिन् यो बध्यते कर्मे स मे अस्तु नियत्सकः ॥४॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां प्रथमकाण्डम् समाप्तम् ॥

२.१

अरसं प्राच्यं विषम् अरसं यद् उदीच्यम् ।
अथेदम् अधराच्यं करम्भेण वि कल्पते ॥१॥
करम्भं कृत्वा तुर्यं ? पीबस्पाकम् उदारथिम् ? ।
क्षुधा किल त्वा दुष्टनो जक्षिवान्त्स न रूरुपः ॥२॥
वि ते मदं मारयामि ? शरम् इव पातयामसि ।
परि त्वा [illegible] ? वचसा स्थापयामसि ॥३॥
परि ग्रामम् इवाचितं परि त्वा स्थापयामसि ।
तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्न्य् अभ्रिखाते ? न रूरुपः ॥४॥
पवस्तैस् त्वा पर्य् अक्रीणन् दूर्शेभिर् अजिनैर् उत ।
प्रक्रीर् असि त्वम् ओषधे अभ्रिखाते ? न रूरुपः ॥५॥

२.२

भवेद्य द्यावापृथिवी भवेद्य भगम् अश्विना ।
भवेद्य ब्रह्मणस् पतिं कृणोम्य् म[र]सं विषम् ॥१॥
¿यसोहेदरविषं यद् यतद् अहम् आशिषम् ।
¿उत्तैर दधात् प्रकतो भवाति जगद्× पुनः? ॥२॥
मा बिभेद् न मरिष्यसि परि त्वा पामि विश्वतः ।
रसं विषस्य नाविदम् ऊध्न× फेनम् अदन्न् इव ॥३॥
अपायोनद् अपवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
सम् उ गच्छतामिन्द्रजा यवयावा च विषदूषणः ॥४॥
यच् च पिष्टं यच् चापिष्टं यच् च गृहं यच् चातेशम्? ।
देवस्य सर्वस्य विद्वान् सो ऽरसं कृणुतां विषम् ॥५॥

२.३

क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवीह भूताम् ॥१॥
शं ते अग्निः सहाद्भिर् अस्तु शं गावस् सहौषधीभिः ।
शम् अन्तरिक्षं सहवातम् अस्तु ते शं ते भवन्तु प्रदिशश् चतस्रः ॥२॥
या दैवी× प्रदिशश् चतस्रो वातपत्नीर् अभि सूर्यो विचष्टे ।
तासु त्वं जरस आ दधामि प्र यक्ष्म एतु निर्ऋति× पराचैः ॥३॥
सूर्यम् ऋतं तमसो ग्राह्या यथा देवा मुञ्चन्तो असृजन् परेतास्? ।
एवा त्वां क्षेत्रियान् निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ॥४॥
अमोचि यक्ष्माद् दुरिताद् अवद्याद् द्रुह× पाशाद् ग्राह्याश् चोद् अमोचि ।
अहा अवार्तिम् अविदत् स्योनम् अप्य् अभूद् भद्रे सुकृतस्य लोके ॥५॥

२.४

निस्सालां धिष्ण्यां धिषणाम् एकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश् चण्डस्य नप्त्यो नाशयामस् सदान्वाः ॥१॥
¿यदि वा प? क्षेत्रिया यदि वा पुरुषेषिताः ।
यदि स्थ दस्युभ्यो जाता नश्यतेतस् सदान्वाः ॥२॥
परि धामान्य् आसाम् आशुः गाष्ठाम् इवासरम् ।
अजैषं सर्वान् आजीन् वो नश्यतेतस् सदान्वाः ॥३॥
निर् वो गोष्ठाद् अजामसि निर् योनेर् निर् उपानसात् ।
निर् वो मगुन्द्या दुहितरो गृहेभ्यश् चातयामसि ॥४॥
अमुष्मिन्न् अधरे गृहे सर्वास् सन्त्व् अराय्यः ।
तत्र पाप्मा न्य् उच्यतु? सर्वाश् च यातुधान्यः ॥५॥

२.५

द्यावापृथिवी उर्व् अन्तरिक्षं क्षेत्रस्य पत्न्य् [उरु]गायो ऽद्भुतः ।
उतान्तरिक्षम् उरु वातगोपं ते [य]न्तु तप्यन्तां मयि तप्यमाने ॥१॥
इदम् इन्द्र शृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो [अ]स्माकं मन इदं हिनस्ति ॥२॥
इदं देवाश् शृणुत ये यज्ञियास् स्थ भरद्वाजो मह्यम् उक्थानि शंसतु ।
पाशे स बद्धो दुरिते ऽभि युज्यतां यो [अ]स्माकं मन इदं हिनस्ति ॥३॥
अशीतिभिस् तिसृभिस् सामगेभिर् आदित्येभिर् वसुभिर् अङ्गिरोभिः ।
इष्टापूर्तम् अवतु न× पितॄणाम् आमुं ददे हरसा दैव्येन ॥४॥

द्यावापृथिवी अनु मां दीध्याथां विश्वे देवासो अनु मां रभध्वम् ।
अङ्गिरस× पितरस् सोम्यास× पापम् आर्छत्व् अपकामस्य कर्ता ॥५॥
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषम् अभि तं शोचतु द्यौः ॥६॥
आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।
अग्निश् शरीरं वेवेष्टु इमं गच्छतु ते वसु ॥७॥
सप्त प्राणानष्टौ मन्यस् तांस् ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।
यमस्य गच्छ सादनम् अग्नि[दू]तो अरंकृतः ॥८॥

२.६

वेनस् तत् पश्यत् परमं पदं यत्र विश्वं भवत्य् एकनीडम् ।
इदं धेनुर् अदुहज् जायमानास् स्वर्विदो अभ्य् अनूषत व्राः ॥१॥
प्र तद् वोचेद् अमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदा[नि] निहिता गुहास्य यस् तानि वेद स पितुष् पितासत् ॥२॥
स नो बन्धुर् जनिता स विधर्ता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतम् आनशानास् समाने योनाव् अध्य् ऐरयन्त ॥३॥
परि विश्वा भुवनान्य् आयम् उपातिष्ठे प्रथमजाम् ऋतस्य ।
वाचम् इव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युर् एष नन्व् एषो अग्निः ॥४॥
परि द्यावापृथिवी[वी] सद्य आयम् ऋतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
देवो देवत्वम् अभिरक्षमाणस् समानं बन्धुं वि परि पश्यन् एका ॥५॥

२.७

इन्द्र जुषस्व याहि शूर पिबा सुतस्य ।
मधोश् चकानश् चारुर् मदाय ॥१॥
आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी ।
विड्ढि धियेषो धियेह्य् आ नः ॥२॥
इन्द्र जठरं पृणस्व मधोर् अस्य सुतस्य ।
उप त्वा मदास् सुवाचो अस्थुः ॥३॥
इन्द्रस् तुराषाड् अयात वृत्रं जघान दायुर् ।
अमुष्य वज्री मदे सोमस्य ॥४॥
सुषी इमं मे गिरो जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर् मत्स्व ।
मदाय महे रणाय ॥५॥

२.८

उद् इतो ये ऽक्रमन् अथो व्याघ्र× पुरुषो वृकः ।
हिरुग् देवर् सूर्यो हिरुग् वनस्पतिर् हिरुङ् नमन्तु शत्रवः ॥१॥
परमेण पथा वृक× परेण स्तेनो अर्षतु ।
ततो व्याघ्र× परमेण ॥२॥
अक्ष्यौ च ते हनू च ते व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥३॥
यत् संयमो [न वि यमो] वि यन् यमो न सं यमः ।
मूर्धा मृगस्य हन्ता उपशीर्षं उ वृश्चतः ॥४॥
व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि ।
आद् इत्? स्तेनम् अहिं यातुधानम् अथो वृकम् ॥५॥
¿शैवरस्सैव वृक× परश् चर? ।
द्विपाच् चतुष्पान् नो मा हिंसीर् इन्द्रजास् सोमजा असि ॥६॥

२.९

इयं वीरु[त्] मधुजाता मधुने त्वा खनामसि ।
मधोर् अधि प्रजातासि सा नो मधुमतस् कृधि ॥१॥
जिह्वाया [अ]ग्रे मे मधु जिह्वामूले मधूलकम् ।
यथा मां कामिन्य् असस् यथा? माम् अन्व् आयसि ॥२॥
परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे ।
यथा न विद्विषावहै न वि भवाव कदा चन ॥३॥
रात्रे सृदि वदणायाश्वाय पुरुषाय च ।
यथा मे पत्ये देवति आयतम् आ वह सातुना ॥४॥
आयां मे मित्रावरुणा आयां [मि] देवी सरस्वती ।
आयां मे अश्विनाव् उभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥५॥

२.१०

दशवृक्ष मुञ्चेमम् अहिंस्रो? ग्राह्याश् च ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकम् उन् नय ॥१॥
यश् चकार स निष् करत् स एव सुभिषक्तमः ।
स एव तुभ्यं भेषजं चकार भिषजा शुचिः ॥२॥
शतं ते देवा अविदन् ब्रह्माण उत वीरुधः ।
शतं ते अप्सुजमम् अविदन् भूम्याम् अधि ॥३॥
अगाद् उद् अगाद् अयं जीवानां व्रातम् अप्य् अगात् ।
अभूद् उ पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ॥४॥
अधीतिम् अप्य् अगाद् अयं अधि जीवपुरा [अ]गात् ।
शतं ते? [अ]स्य वीरुधस् सहस्रम् उत भेषजा ॥५॥

२.११

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणास् सदैवम् ।
[… … … … … … … … … ॥१॥
[… … … … … … … … … ।]
मणिस् सहस्रवीर्य× परि न× पातु विश्वतः ॥२॥
अयं विष्कन्धं सहते अयं रक्षान् अप बाधते ।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिड× पात्व् अंहसः ॥३॥
देवैर् दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥४॥
शणश् च त्वा जङ्गिडश् च विष्कन्धाद् अभि रक्षताम् ।
अरण्याद् अन्य आभृत× कृष्या [अ]न्यो रसेभ्यः ॥५॥

२.१२

एह यन्तु पशवो ये [परे]युर् वायुर् येषां सहचारं जुजोष ।
त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेदास्मिंस् तान् गोष्ठे सविता नि यच्छतु ॥१॥
इमं गोष्ठं पशवस् सं स्रवन्तु बृहस्पतिर् आ नयतु प्रजानन् ।
सिनीवाली नयत्व् आग्रम् एषाम् आजग्मुषो अनुमतिर् नि यच्छतु ॥२॥
सं सं स्रवन्तु पशवस् समश्वा उत पूरुषाः ।
¿सं धान्यस्या स्फातिभिस् संस्राव्येण? हविषा जुहोमि ॥३॥
सं सिञ्चामि गवां क्षीरं सम् आज्येन बलं रसम् ।
संसिक्ता [अ]स्माकं वीरा मयि गावश् च गोपतौ ॥४॥
आ हरामि गवां क्षीरम् आहार्षं धान्यं रसम् ।
आहार्षम् अस्माकं वीरान् आ पत्नीम् इदम् अस्तकम् ॥५॥

२.१३

सं यम् सृजात्व् अर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सम् इन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यति यद् वसु ॥१॥
इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत ।
इहो भवा? प्र जायध्वं मयि संज्ञानम् अस्तु वः ॥२॥
मया गावो गोपतिना? सचध्वं मयि वो गोष्ठ इह पोषयाति ।
रायस् पोषेण बहुला भवन्तीर् जीवा जीवन्तीर् उप वस् सदेम ॥३॥
सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या ।
अहर्जातस्य यन् नाम तेना वस् सं सृजामसि ॥४॥
संजग्माना अबिभ्युषा अस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीस् सोम्यं हविर् स्वायेशा प्र यतन ॥५॥

२.१४

उद्यन्न् आदित्य× क्रिमीन् हन्तु सूर्यो निम्रोचन् रश्मिभिः ।
हन्तु ये [अ]न्त× क्रिमयो गवि नः ॥१॥
यो द्विशीर्षा चतुरक्ष× क्रिमिश् सारङ्गो अर्जुनो हतः ।
हतभ्राता क्रिमिर् हतमाता हतस्वसा ॥२॥
हतो राजा क्रिमीणाम् उतैषां स्थपतिर् हतः ।
हतासो [अ]स्य वेशासो हतास× परिवेशासः ॥३॥
प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि ।
अथो भिनद्मि तं कुम्भं यस्मिन् ते निहितं विषम् ॥४॥
अत्रिवत् त्वा क्रिमे हन्मि कण्ववज् जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥५॥

२.१५

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर् विश्वस्य तर्हणी ।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥१॥
दृष्टम् अदृष्टम् अतृहम् अथो कुरीरम् अतृहम् ।
अल्गण्डून् सर्वाञ् छलुनान् क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥२॥
अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन दूना अदूना अरसा अभूवन् ।
शिष्टान् अशिष्टान् नि तिरामि वाचा यथा क्रिमीणां नकिर् उच्छिषातै? ॥३॥
अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यम् अथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्? ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥४॥
ये क्रिमय× पर्वतेषु ये वनेषु य ओषधीषु पशुष्व् अप्स्व् अन्तः ।
ये [अ]स्माकं तन्वः स्थान् आविविशुर् इन्द्रस् तान् हन्तु महता वधेन ॥५॥

२.१६

या शत्रून् संजयात् सहमानाभिभूर् असि ।
सास्मान् प्रतिसरो अपारसान् कृणु ओषधे ॥१॥
सुपर्णस् त्वान्व् अविन्दत् सूकरस् त्वाखनन् नसा ।
इन्द्रस् त्वा चक्रे बाहाव् असुरेभ्य[स्] स्तरीतवे ॥२॥
पाठाम् इन्द्रो व्य् आश्नाद् धन्तवा असुरेभ्यः ।
तयाहं शत्रून् साक्ष इन्द्रस् सालावृकाँ इव ॥३॥
तत्र जलाषभेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् ।
प्राशं प्रतिप्राशो जहि यो [अ]स्मां अभि दासति ॥४॥

[illegible]

२.१७

[illegible]

२.१८

[illegible]

२.१९

[illegible]

२.२०

[illegible]

अग्नो वा इंयते ह्रियत्वां चतुष्पदां तयोर वयम् मनुष्याके? स्याम ।
पञ्चीर्वि वधी? प्रतिभूयन्ती नो वयं देवानां सुमती स्याम ॥३॥
प्रतीची नाम ते माता शतवारो ह ते पिता ।
ततो ह जज्ञिषे त्वम् अस्त्रिरिग? ॥४॥
अरुन्धती माता नामासि मातुली अनुतस्यैव यासि ।
अरुन्धति त्वां सर्वम् अविर्जायम् अथायुधम्? ॥५॥

२.२१

आ नो अग्ने सुमतिं स्कन्दलोके इदमां कुमार्यां मा? नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुर् ओषं पत्या भवाति सुभगेयम् ॥१॥
[इ]यम् अग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोतु ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवासि गत्वा पतिं सुभगे वि राजः ॥२॥
सोमजुष्टं [ब्रह्मजुष्टम्] अर्यम्णा संभृतं भगम् ।
धातुर देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ॥३॥
यथाखरो मघवं[श्] चारुर एष प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव ।
एवं भगस्य जुष्टा अस्त्वास्तु संप्रिया पत्याविराधयन्ती ॥४॥
भगस्य नावम् आ रोह पूर्णाम् अनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारितो? यः पतिः प्रतिकाम्यः ॥५॥
इदं हिरण्यं गुल्गुल्व अयम् औक्षो अथो भगः ।
एते पतिभ्यस् त्वाम् अदुः प्रतिकामाय वेत्तवे ॥६॥

२.२२

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन् नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वम् आ यवन् ॥१॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥२॥
अनड्वाहः पुरुषा ये कृण्वन्ति लाङ्गलं फालं सुमनसि स्यात्या? ।
शुनं कीनाशो अन्व् एतु वाहान् शुनं फालो भिन्दन्न् एतु भूमिम् ।
शुनासीरा हविषा यो यजाते सुपिप्पला ओषधयस् सन्तु तस्मै ॥३॥
शुनं वरो लाङ्गलेनाभ्युद्भिर [भगः फालैस् सीरपतिर मरुद्भिः] ।
पर्जन्यो बीजम् इरयानो हिनोतु शुनासीरा कृणुतं धान्यं नः ॥४॥
इन्द्रस् सीतां नि गृह्णातु तां पूषा मधं रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहाम् उत्तराम् उत्तरां समाम् ॥५॥
उद् अस्याद् रथजिद् गोजिद् अश्वजिद् धिरण्यजित् सूनृतया परीवृतः ।
एकचक्रेण सविता रथेनोर्जो भागः पृथिवीम् एत्व् आपृणन् ॥६॥

२.२३

यां गृहाणां रसम् ओषधीनाम् अनुज्येष्ठं यर्च आयुर विकल्पयः ।
तां मा? हिंसिषुः पितरो वर्धमाना भद्रां गच्छन्तीम्? अमिं लोकम् एहि ॥१॥
यदीदं भर्तं यदि वा विमर्तं क्षेत्रं देवानां यदि वा पितॄणाम् ।
उद् उ सूर्य? उदिते दिवा मनुष्यवत्? शिवा नो [अ]स्तु पृथिव्य् उत द्यौः ॥२॥
ऊर्जो यो भागो यत्र पृथिव्यां देवैर भागो? भक्षया यां धारयामि ।
शिवं शग्मम् अवसानं नो अस्तु रातिर देवेभिः पितृभिर मनुष्यैः ॥३॥
विश्वावसो अस्त्व् आसादनं? कुलायं गन्धर्वास् सुवेदसो मह्यम् ऊषुः ।

[illegible]

२.२४

[illegible]

२.२५

[illegible]

२.२६

[illegible]

२.२७

[illegible]

आरोहन् पर्वणा सह मणिं दुर्णामचातनम् ॥१॥
गर्भात्यां रक्षो दुरते मूलेन यातुधान्यः ।
मध्येन यक्ष्मं बाधते अग्रेण पाप्मानं तरति ॥२॥
ये पश्चात्तो अमीवा महान्तो ये च शायिनः? ।
सर्वान् दुर्णाम्ना मणिना शतवारो अनीनशत् ॥३॥
शतं वीर्याण्य् अजनयच् छतं यक्ष्मान् अपावपत् ।
दुर्णाम्नस् सर्वान् हत्वाव रक्षांस्य् अक्रमीत् ॥४॥
शतम् अहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम् ।
शतं [च] श्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥५॥

२.२८

विश्वं विभ्रमि पृथिवीव पुष्टम् अस्माद् आयन् प्रति गृह्णाम्य् अश्मम् ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्नाग्निर इद् विश्वं सुहुतं कृणोतु ॥१॥
यद् अश्मम् मयि बहुधा विरूपं वासो हिरण्यम् अश्वम् उत गाम्
अजाम् अविम् ।
यद् अश्मम् अनृतम् अनृतेन देवा [शास्यन्न्] अशास्यन्न् उत वा करिष्यन् ॥२॥
यन् मा हुतं यद् अहुतम् आजगाम यस्माद् अयान् मनसोदारजीमि ।
यद् देवानां चक्षुष्य् आगो अस्त्य् अग्निर इद् घोता सुहुतं कृणोतु ॥३॥
अमहानि? कश्यपस् साध्य एतद् मरुतो भग अर्यं कृणोतु ।
प्रतिग्रहीता गोतमो वसिष्ठो विश्वामित्र नः प्र तिरन्त्व् आयुः ॥४॥

२.२९

अग्ने यक्ष्म चक्षुर एवं विद्यामि यथेदं भविष्यति स्वाहा ॥१॥
अग्ने यक्ष्मस्य श्रोत्रम् [एवं विद्यामि यथेदं भविष्यति स्वाहा] ॥२॥
अग्ने यक्ष्मस्य प्राणं [एवं विद्यामि यथायं भविष्यति स्वाहा] ॥३॥
अग्ने यक्ष्मस्यापानं [एवं विद्यामि यथायं भविष्यति स्वाहा] ॥४॥
अग्ने यक्ष्मस्यात्मा [एवं विद्यामि यथायं भविष्यति स्वाहा] ॥५॥
अग्ने यक्ष्मस्य सर्वम् एवं विद्यामि यथेदं भविष्यति स्वाहा ॥६॥

२.३०

देवानां यज्ञं सुमतिर ऋतूनां देवानां रातिर अभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यम् उप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥१॥
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रम् अदितिं दक्षम् अस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोमम् अश्विना सरस्वती नस् सुभगा मयस् करत् ॥२॥
एवं पितृभ्यो नमो अस्त्व् अद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्य् आ निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥३॥
प्रत्यञ्चो अग्ने सर्वाः पलायन्तु कृत्याकृते रिपवे मर्त्याय ।
कृत्याकृते ...? मा ते भूता कविस्यो मा येहि निर्जिरे उपरस्य ॥४॥
ज्यायसस् शंसाद् उत वा कनीयसस् समानशंसाद् उत अतिशंसात् ।
अनामृणम् अन्वत्तं यद् एनस् तद् मत् तस्मात् जातवेदो मुमुग्धि ॥५॥

२.३१

इमी यदी इन्द्रस्य आ गृहेभ्यस् स्वस्तये ।
[इ]न्द्रः पश्चाद् इन्द्रः पुरस्ताद् इन्द्रो नः पातु मध्यतः ॥१॥
इन्द्रं भयं विभ्यतस् नाथा कामायाँ च ।
इन्द्रः परिसिद् आ धृषद् अभयकृता भयापयः ॥२॥

इन्द्रं हृष्यतां विधिर वि नः पाशान् इवा चरत् ।
एवं पन्थाम् अरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ॥३॥
यत्र विश्वान् परि द्विषो वृणक्ति निन्दितेषु आन्तम् एत्य् अनाहतः ।
‡परा मजत किं तत् तव कां यक्षन्न् इव? ॥४॥
विश्वङ्गो यन्तु शकला? विश्वङ्गः परिपन्थिनः ।
विश्वङ् पुनर्भुवा मनो असमृद्धा [अ]घायवः ॥५॥
‡स्वस्ति व्याकरां स्वस्ति प्रत्युपाकरां स्वस्ति परिदिष्टं म्य् अप
स्वस्त्य् अस्त्व् अन्तः ।
‡परि मजं स्वरिज स्वस्तेन स मे भरद्वाजं स्वस्ति पुनर् आयपम्? ॥६॥
॥का°६॥ ॥अनु°६॥

२.३२

य उत्तराद् आजायते मधुषो मधुपाद् अधि ।
वेदा[म]हे तद् भेषजं जिह्वा मधुमती पिब ॥१॥
मधुमती पौर्णमासी मधो[श्] शृङ्गो अप पुष्पकम् ।
‡मधुमान् पर्वताम्? असि यतो जातास्य् ओषधे ॥२॥
गर्भो ऽस्य् ओषधीनाम् अपां गर्भ उतासिथ ।
अथो सोमस्य भ्रातासि मधुना प्राय मे वचः ॥३॥
भोगि? यद् मधुषस्य पितृणाम् एव जग्रभ ।
यो मा हिरण्यवर्चसं कृणोति पूरुषं प्रियम् ॥४॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥५॥ ॥का°१॥

२.३३

ऊभा यन हृदा यन मुखेन जिह्वया यन ।
प्रपीना पयसा यन ॥१॥
याम्छ मे पादौ तन्वं याम्छ्यत्यौ याम्छ सक्थ्यौ ।
वीचिम् अनु प्र ते मनो निम्नं वार् इव धावतु ॥२॥
ऊर्ध्वानि ते लोमानि तिष्ठन्त्व् अघ्न्यौ कामेन शुष्येताम् ।
‡शिमीयता वत्सेन गौर् इव ऊभा सुरेव पश्यताम्? ॥३॥
इमा गावस् सबन्धवस् समानं वत्सम् मक्षत ।
हिङ्कृति क नि मक्षी रा त्रा रा नि र चि घ स्ता? ॥४॥
शृङ्गीपक्षा गलभूषा भम्भ्यारा चर्मवासिनीः ।
गावो घृतस्य मातरस् ता वत्स इवा नयामसि ॥५॥ ॥का°१७

२.३४

यच् च वर्चः कन्यासु यच् च हस्तिष्व् आहितम् ।
हिरण्येषु यद् वर्चस् तस्य भक्षीह वर्चसः ॥१॥
यच् च वर्चो राजरथे यच् च राजस्व् आहितम् ।
निष्के रुक्मे यद् वर्चस् तस्य भक्षीह वर्चसः ॥२॥
यद् अप्सु यद् वनस्पतौ यद् अग्नौ यच् च सूर्ये ।
यद् दक्षिणायां वर्चस् तस्य भक्षीह वर्चसः ॥३॥
वर्चस्वन् मे मुखम् अस्तु वर्चस्वद् उत मे शिरः ।
वर्चस्वान् विश्वतः प्रत्यङ् वर्चस्वान् वर्चो ऽस्तु मे ॥४॥
सुभगं मे मुखम् अस्तु सुभगम् उत मे शिरः ।
सुभगो विश्वतः प्रत्यङ् सुभगो वर्चो ऽस्तु मे ॥५॥ ॥का°१॥

२.३५

उद् असौ सूर्यो अगात् सहवत् तन् नाम म[म] ।
भद्रं ते मधुमती मधुमान् मधुमत्तरा ॥१॥
यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्व् अश्वेषु यन् मधु ।

सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन् मयि ॥२॥
यथा सुरा यथा मधु यथाक्षा अधिदेवने ।
यथाह गच्छतो मन एवा माम् अभि ते मनः ॥३॥
यथा ते पदं पदेनर्प्यतां मनसा मनः ।
प्रत्यञ्चम् अप्रपं त्वाहम् इवाद्याभिधान्या ॥४॥
मह्यं त्वा द्यावापृथिवी मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभाव् अन्तौ सम् अस्यताम् ॥५॥ ॥का°४४

२.३६

या वैश्वदेवीर् इषवो या वसूनां या रुद्रस्य सोमस्य या भगस्य ।
विश्वे देवा इषवो यावतीर् यस् ता वो अग्निना शर्मणा शमयामि ॥१॥
या आदित्यीर् इषवो या वसूनां या रुद्रस्याश्विनोर् यावतीस् ताः ।
विश्वे देवा इषवो यावतीर् यस् ता वो देवस् सविता शमयाति ॥२॥
यास् ते ऽग्न इषवो वात या[स्] ते भगाम् उत्सृष्ट्याम् उत वा मरुत्सु ।
इन्द्रस्य साह्ना वरुणस्य राज्ञस् ता वस् सूर्यो बृहता शमयाति ॥३॥
मा बिभृम आदित्याय वसुभ्यो मा रुद्रायाग्नये पार्थिवाय ।
इन्द्रस्य शुष्मो वरुणस्य या शुचिस् ता वो देवम् अदितिर् शमयाति ॥४॥
याश् च वाते विष्वग्वाते याश् च रुद्रस्य धन्वनि ।
अग्निर् टा वसोर् ईशानस् तास् सर्वा भिषजः करत् ॥५॥ ॥का°५॥ ॥अनु°७॥

२.३७

चित्ति यच्चासि? मनसा चित्ति देवा ऋतावृधः ।
जातवेदः प्र वस् तिर अग्ने विद्यामहङ्गिः? ॥१॥
यवयास्मद् द्वेषांसि यवयमेन हविषा ।
यस् ते मृत? दुष्वप्नस्य मायस् स ते तुदन्त वर्तं प्र हिण्मः ॥२॥
यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वम् अप्रिये सं नयामसि ॥३॥
अरतो हीय? शतम् अप गवां भक्षीय शतम् अजानां शतम् अवीनाम् ।
शतम् अश्वानां पुरुषाणां शतानि? भक्षीय ॥४॥
अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रं तम् अहं निरृतये प्रेष्यामि ।
तं मृत्योः पाशे बध्नामि स बद्धो इतो ऽस्तु स ततो मा मोचि ॥५॥ ॥का°१॥

२.३८

ये नश् शपन्त् अप ते भवन्तु वृक्षान्व? वृक्ष्या अपि तान् अयाम ।
द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥१॥
कृत्याकृतं वलवान् ‡अङ्गति अग्नेः? ।
प्रत्यस्य नु दुष्यस्य प्रति स्म रेवतं गृहः ॥२॥
यस् त्वा कृत्ये प्रतिपाय? विद्वाँ अविदुषो गृहम् ।
पुनस् त्वा तस्मै कृष्मो यथा क[त्या]कृतं हनत् ॥३॥
पुनः कृत्यां कृत्याकृते हस्तगृह्य परा णय ।
उतो त्वम् उत्तमा पुनस् त त मै प सु द नै स्वं? ॥४॥
कृत्या यन्तु कृत्याकृतं वृषीयायिमतो गृहम् ।
स्तोकं पाकस्य वर्धतां संसृष्टा ओषधीर् इव ॥५॥ ॥का°१॥

२.३९

यत् ते ग्रावा बाहुच्युतो अचुच्यवीन् नरो यद् वा ते हस्तयोर् अधुक्षन् ।
तत् त आ प्यायतां तत् ते नि ष्प्यायतां सोम राजन् ॥१॥
यत् ते ग्राव्णा विच्छिदुस् सोम राजन् प्रियाण्य् अङ्गा सुकृता पुरूणि ।
तत् सं धत्स्वाज्येनोत वर्धयस्वानागसो यथा सदम् इत् संक्षियेम ॥२॥
यां ते श्येनं विभिदुर् यां च योनिं यदि वा स्थानात् प्रच्युतो[य]दि वासुतो ऽसि ।
तस्यै ते सोम सुतम् अस्माकम् एतद् उप नो राजन् सुकृते ह्वयस्व ॥३॥
सं प्राणापानाभ्यां सं चक्षुषा सं श्रोत्रेण गच्छस्व सोम राजन् ।

यत् ते विरिष्टं सम् उ तत् त एतज् जानीतान् मत् संगमने पथीनाम् ॥४॥
अहाय शरीरं पयसा समेत्याभ्यो ऽन्यो भवति वर्णो [अ]स्य ।
तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥५॥
अभिक्षरन्ति जुह्वो घृतेनाङ्गा परूंषि तव वर्धयन्ति ।
तस्मै ते सोम नम इद् वषट् चोप नो राज[न्] सुकृते ह्वयस्व ॥६॥ ॥का°१॥

२.४०

इहैत देवीर् अभयम् अस्तु पन्था अयं वो लोकश् शरणाय साधुः ।
इदं हविर् जुषमाणा उदित? क्षिप्रा [रा]ज्ञा वरुणेन प्रसूताः ॥१॥
इहैतु राजा वरुणो वृधाभिर्? देवा देवेषु हविषो जुषन्ताम् ।
कृणुध्व पन्थां ‡मदयान् दूर्दिभिर्? अनेन वध्रो महता पृथिव्याम् ॥२॥
‡मियद् भियद् च मदयान् अभूत्र नी रो को पा ना म् इव पार्यतु ।
‡ संनेनेव गां मृजत क्षिपीनतो जहोवां शर्म् भजनां अपृण्वता? ॥३॥
ये पारतो मध्यतो ये च यन्ति ये अनुपतो निहितास् तीरे मन्यवः ।
ते देवजा इह नो मृडन् न आपस् त मा जिन्वन्त् उभये सबन्धवः ॥४॥
इदं व आपो हृदयम् अयं वत्स ऋतावरीः ।
इहेत्थम् एत शक्वरी[र्] यत्रेयं वेशयामसि ॥५॥ ॥का°४॥

२.४१

उद् असौ सूर्यो अगाद् उद् अयं मामको भगः ।
तेनाहं विद्वला पतिम् अभ्य् असाक्षि विषासहिः ॥१॥
अहं केतुर् अहं मूर्धाहम् उग्रा विवाचनी? ।
ममेद् अप क्रतुं पतिम् सेहानाया उपाचरात् ॥२॥
मम पुत्राश् शत्रुहणो अथो मे दुहिता विराट् ।
उताहम् अस्मि संजया पत्युर् मे श्लोक उत्तमः ॥३॥
येन देवा असुरेभ्यो भवन्ति अमेतरा?
इदं तद् अक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४॥
असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्य् अभिभूवरी ।
भुञ्जाम्य् अन्यासां भगं वर्चो अस्थेयसाम् इव ॥५॥ ॥का°५॥ ॥अनु°८॥

२.४२

शेरभक शेरभ पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त ॥१॥
शेवृधक शेवृध [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥२॥
सर्पानुसर्प [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥३॥
म्रोकानुम्रोक [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥४॥
जूर्णि [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥५॥
अर्कत्रि [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥६॥
अर्जुनि [पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् हेतिः किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥७॥
उपब्दे पुनर् वो यन्तु यातवः पुनर् जूतिः? किमीदिनः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो वः प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त ॥८॥ ॥का°१॥

२.४३

द्यावापृथिवी उपश्रुतेर् मा पातं स्वाहा ॥१॥
धाताषायुषे प्रजायै मा पातं स्वाहा ॥२॥

प्राणापानौ मृत्योर् मा पातं स्वाहा ॥३॥
सूर्य चक्षुषो मा पाहि स्वाहा ॥४॥
अग्ने विश्वंभर विश्वतो मा पाहि स्वाहा ॥५॥ ॥का°१॥

२.४४

आयुर्दा अग्न आयुर् मे दास् स्वाहा ॥१॥
वर्चोदा अग्ने वर्चो मे दास् स्वाहा ॥२॥
तेजोदा अग्ने तेजो मे दास् स्वाहा ॥३॥
सहोदा अग्ने सहो मे दास् स्वाहा ॥४॥
बलदा अग्ने बलं मे [दास्] स्वाहा ॥५॥ ॥का°१॥

२.४५

आयुर् अस्य् आयुर् मयि धेहि स्वाहा ॥१॥
वर्चो ऽसि वर्चो मयि धेहि स्वाहा ॥२॥
तेजो ऽसि तेजो मयि धेहि स्वाहा ॥३॥
सहो ऽसि सहो मयि धेहि स्वाहा ॥४॥
बलम् असि बलं मयि धेहि स्वाहा ॥५॥ ॥का°१॥

२.४६

पिशाचक्षयणम् असि पिशाचजम्भनम् असि स्वाहा ॥१॥
यातुधानक्षयणम् असि यातुधानजम्भनम् असि स्वाहा ॥२॥
सदान्वाक्षयणम् असि सदान्वाजम्भनम् असि स्वाहा ॥३॥
सपत्नक्षयणम् असि सपत्नजम्भनम् असि स्वाहा ॥४॥
भ्रातृव्यक्षयणम् असि भ्रातृव्यजम्भनम् असि स्वाहा ॥५॥ ॥का°५॥ ॥अनु°९॥

२.४७

आ ते सौवीर्यं ददे मयि ते सौवीर्यम् ॥१॥
आ [ते] सौवर्चो ददे मयि ते सौवर्चः ॥२॥
आ [ते] सौतेजो ददे मयि ते सौतेजः ॥३॥
आ [ते] सौवृष्ण्यं ददे मयि ते सौवृष्ण्यम् ॥४॥
आ ते सौशुष्मं ददे मयि ते सौशुष्मम् ॥५॥ ॥का°१॥

२.४८

अग्ने यत् ते तपस् तेन तं प्रति तप यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥१॥
[अग्ने यत्] ते हरस् तेन तं प्रति हर [यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः] ॥२॥
[अग्ने] यत् ते शोचिस् तेन तं प्रति शोच [यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः] ॥३॥
[अग्ने यत्] ते ऽर्चिस् तेन तं प्रत्य् अर्च [यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः] ॥४॥
अग्ने यत् ते ज्योतिस् तेन तं प्रति दह यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥५॥
॥का°१॥

२.४९

प्राची दिग् आग्नेयं देवता यद् देवेषु पितृषु मनुष्येषु मय् चकारायत्त?
तस्यावेदनम् असि ।
सं क्षेमम् अस्माद् यच्छ! तस्माद् आमयतु? स्वाहा ॥१॥
दक्षिणा दिग् ऐन्द्रं देवता [यद् देवेषु पितृषु मनुष्येषु मय् चकारायत्त?
तस्यावेदनम् असि ।
[सं क्षेमम् अस्माद् यच्छ! तस्माद् आमयतु? स्वाहा] ॥२॥
प्रतीची दिग् वारुणं देवता [यद् देवेषु पितृषु मनुष्येषु मय् चकारायत्त?
तस्यावेदनम् असि ।
[सं क्षेमम् अस्माद् यच्छ! तस्माद् आमयतु? स्वाहा] ॥३॥
उदीची दिग् प्राजापत्यं देवता [यद् देवेषु पितृषु मनुष्येषु मय् चकारा-
यत्त? तस्यावेदनम् असि ।

[सं क्षेमम् कस्मात् यच्छ? तस्मात् आयन्तु? स्वाहा] ॥५॥
ऊर्ध्वो दिव इहद् देवता यद् देवेषु पितृषु मनुष्येषु मद् यशस्वायचो?
तस्मादेकाद् अमि ।
सं क्षेमम् कस्मात् यच्छ? तस्मात् आयन्तु? स्वाहा ॥६॥ ऋ°६॥

२.५०

अग्निं वयं त्रातारं हवामहे [स] इमं त्रायते उत्स्मात् यस्मात् तस्मात् आयन्तु? ।
जुषाणो अग्निर् आज्यस्य त्राता त्रायतां स्वाहा ॥१॥
मित्रावरुणौ वयं त्रातारौ हवामहे यद् इमं त्रायेते उत्स्मात् यस्मात् तस्मात् आयन्तु? ।
जुषाणौ मित्रावरुणाव् आज्यस्य त्रातारौ त्रायेतां स्वाहा ॥२॥
मरुतो वयं त्रातॄन् हवामहे [य] इमं त्रायन्ते उत्स्मात् यस्मा[द् तस्मा]द् आयन्तु? ।
जुषाणा मरुत आज्यस्य त्रातारस् त्रायन्तां स्वाहा ॥३॥
[illegible]
पितॄन् वयं त्रातॄन् हवामहे [य] इमं त्रायन्ते उत्स्मात् यस्मात् तस्मात् आयन्तु ।
जुषाणाः पितर आज्यस्य त्रातारस् त्रायन्तां स्वाहा ॥४॥
बृहस्पतिं वयं त्रातारं हवामहे [य] इमं त्रायते उत्स्मात् यस्मात् तस्मात् आयन्तु? ।
जुषाणो बृहस्पतिर् आज्यस्य त्राता त्रायतां स्वाहा ॥५॥ ऋ°२॥

२.५१

अग्निं वयं त्रातारं यज्ञामहे मेनिहनं बलगहनम् ।
जुषाणो अग्निर् आज्यस्य मेनिहा बलगहा त्राता त्रायतां स्वाहा ॥१॥
इन्द्रं वयं [त्रातारं यज्ञामहे मेनिहनं बलगहनम्] ।
जुषाण इन्द्र आज्यस्य [मेनिहा बलगहा त्राता त्रायतां स्वाहा] ॥२॥
सोमं वयं त्रातारं यज्ञामहे मेनिहनं बलगहनम् ।
जुषाणस् सोम आज्यस्य मेनिहा बलगहा त्राता त्रायतां स्वाहा ॥३॥
विश्वान् वयं देवांस् त्रातॄन् यज्ञामहे मेनिहनो बलगहः ।
[जुषाणा विश्वे देवा आज्यस्य मेनिहनो बलगहन]स् त्रातारस् त्रायन्तां स्वाहा ॥४॥
बृहस्पतिं वयं त्रातारं यज्ञामहे मेनिहनं बलगहनम् ।
जुषाणो बृहस्पतिर् आज्यस्य मेनिहा बलगहा त्राता त्रायतां स्वाहा ॥५॥
ऋ°५॥ अनु°१०॥

२.५२

ये बर्हिषः प्रथमास् सत्रम् आसत येभिर् आहुतं यद् इदं विरोच[ति] ।
तेभ्यो जुहोमि हविषा घृतेनाश्वयात् सोमात् भयम् अस्तु वीराः ॥१॥
अर्कं प्रथमम् तपसो मुच्यते त्रिणामानीयं दीक्षा वशिनीनां ह एतत् ।
स केशान् सुवते कपिशको भवन्तु तेषां मह[इ]दो वरुणस्य राज्ञः ॥२॥
येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य केशान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदम् अस्यायुष्यान् दीर्घायुर् भयम् अस्तु वीराः ॥३॥
मा ते केशान् अनु गाद् वर्च एतत् तथा धाता दधातु ते ।
तुभ्यम् इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः सविता वर्चो प्रयच्छत् ॥४॥
आ रोह रोह विपश्चित शत्रून् अपाक्रम? दीक्षा वशिनी ह उग्रा ।
देहि दक्षिणां ब्राह्मणेभ्यो अथो मुच्यस्व वरुणस्य पाशात् ॥५॥ ऋ°२॥

२.५३

ये देवाः पुरस्सदो ऽग्निनेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु [ते नो ऽवन्तु] तेभ्यो

नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥१॥
ये देवा दक्षिणासदो यमनेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु [ते नो ऽवन्तु]
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥२॥
ये देवाः पश्चात्सदो मरुन्नेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु [ते नो ऽवन्तु]
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥३॥
ये देवा उत्तरात्सदस् सोमनेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु [ते नो ऽवन्तु]
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥४॥
[ये देवा दिविषदो ऽवस्वन्नेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु ते नो ऽवन्तु
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥५॥]
ये देवा अन्तरिक्षसदो बृहस्पतिनेत्रा रक्षोहणस् ते नः पान्तु ते नो ऽवन्तु
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥६॥ ऋ°१॥

२.५४

अग्नये पुरस्सदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥१॥
यमाय दक्षिणासदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥२॥
मरुद्भ्यः पश्चात्सद्भ्यो रक्षोघ्न्यस् स्वाहा ॥३॥
सोमायोत्तरात्सदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥४॥
अवस्वते दिविषदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥५॥
बृहस्पतये ऽन्तरिक्षसदे रक्षोघ्ने स्वाहा ॥६॥ ऋ°२॥

२.५५

दिवो जातो दिवस् पुत्रो अस्माद् जातं सहद् सहः ।
अभ्यारायन् अग्ने मैत्रायात् सहदेवं वामसि? ॥१॥
तं त्वाम् आ यथा रथम् उप तिष्ठन्तु राजानः ।
सुमतिभ्यो वि बभुवे? ॥२॥
त्वया वयं देवजात सर्वान् प्र शोषयामसि ।
उत सत्या उतानृताः ॥३॥
यो अभ्यारेण मित्रेण सुमतीद्? इव गच्छति ।
जयंश् च सर्वाः पृतना याश् च सत्या उतानृताः ॥४॥
अधराञ्चो नि द्रवन्तु सुमत्या उलुलाकृताः ।
अभ्यारामित्रं पुरुषं य ऽयाताः पृतन्यन्ति ॥५॥ ऋ°४॥

२.५६

उग्रा नाम स्थ तेषां वः पुरो गृहाः प्राची दिक् तेषां वो अग्निर् इषवः ।
ते नो मृडत द्विपदे चतुष्पदे तेषां वो यान्य् आयुधानि या इषवस् तेभ्यो
नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥१॥
क्रव्या नाम स्थ तेषां वो दक्षिणाद् गृहा दक्षिणा दिक् तेषां व आप इषवः ।
[ते नो मृडत द्विपदे चतुष्पदे तेषां वो यान्य् आयुधानि या इषवस् तेभ्यो
नमस् तेभ्यस् स्वाहा] ॥२॥
विराजो नाम स्थ तेषां वः पश्चाद् गृहाः प्रतीची दिक् तेषां वः काम इषवः ।
[ते नो मृडत द्विपदे चतुष्पदे तेषां वो यान्य् आयुधानि या इषवस् तेभ्यो
नमस् तेभ्यस् स्वाहा] ॥३॥
अवस्था नाम स्थ तेषां व उत्तराद् गृहा उदीची दिक् तेषां वो वात इषवः ।
[ते नो मृडत द्विपदे चतुष्पदे तेषां वो यान्य् आयुधानि या इषवस्
तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा] ॥४॥
उपरे नाम स्थ तेषां व उपरि गृहा ऊर्ध्वा दिक् तेषां वो वर्षम् इषवः ।
ते नो मृडत द्विपदे चतुष्पदे तेषां वो यान्य् आयुधानि या इषवस् तेभ्यो
नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥५॥ ऋ°५॥ अनु°११॥

२.५७

यदीदं दिवो यद् अवाजगाम यद् अन्तरिक्षाद् यदि पृथिव्याः ।
यदि यज्ञो यज्ञपतेस् सर्गम् तेभ्यस् सर्वेभ्यो नमसा विधेम ॥१॥

यम् इन्द्रम् आहुर् यं मित्रम् आहुर् यं सोमम् आहुर् यम् अग्निम् आहुः ।
यं [वरुणं बृहस्पतिम्] आहुस् तेभ्यस् सर्वेभ्यो नमसा विधेम ॥२॥
यदिदिन्द्रिया जल्प्याः मोदयन्ति स्वप्नं दुर्भूतम् अभि ये विशन्ति? ।
ये देवानाम् ऋत्विजो यज्ञियानां तेभ्यस् सर्वेभ्यो नमसा विधेम ॥३॥
ये शतमाना नमसा विपन्ति सूर्यस्य रश्मीन् अनु सं चरन्ति ।
ये देवानां धर्मधृतो बभूवुस् तेभ्यस् सर्वेभ्यो नमसा विधेम ॥४॥
[illegible] ये मानयन्ति येभ्यः कृण्वन्ति यो रोदयन्ति? ।
ये वा ऋषीणां प्रतिरूपा बभूवुस् तेभ्यस् सर्वेभ्यो नमसा विधेम ॥५॥ ऋ°२॥

२.५८

अन्वानृची पती माची विश्वी विश्वानत विश्वेषणम् ।
विलासि [illegible] ॥१॥
[illegible] त्रिषद् वासतीभ्यस् समान्या? ।
अयोमुखम् इव खादिरम् अग्निर् याम् मरुद् अन्तरः ॥२॥
सिदस् ते वायुतो व्याघ्रः परितु? अन्ते ।
अग्निर् याम् मरुद् अन्तरो यथा वां नशालति? ॥३॥
वि वीर् [illegible] सन् बधासत कारठयाः? ।
यथा ओजसे अरस्थम्? अग्निर् इव त इहः ॥४॥
व्यवस्यन्तु हृदयानि वि चित्तानि मनांसि च ।
अथो यद् तन्वो संगतं तद् याम् अस्तु विपुलकम् ॥५॥
अरिला दैवा विश्चिन्न् ख्यो कर्मेवतः? ।
विश्वाञ्ची पर्यावर्तिने यथा वो नशालति? ॥६॥ ऋ°२॥

२.५९

अयः पीताम् विघुतद् अवध्नाम् अमस्तु पूषा पयसा घृतेन ।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह अवध्नाम् ॥१॥
इमम् आदित्या वसुना सम् उक्षतेमम् अग्ने वर्धय वावृधानः ।
अविमम् विघुद् [illegible] इमम् इन्द्र सं सृज वीर्येण ॥२॥
भूमिप्रष्टा पातु हरितेन विश्वभृद् अग्निः पिपर्तु अयसा सजोषाः ।
वीरुद्भिष् ते अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् ॥३॥
देवा यत् अतं हिरण्यम् मंहद् एवं विपतनं बभूव ।
सोममीनं हिरितस्य परायतद् अयाम् एवं वयसो तेन आयुस् तत् ते
हिरण्यं विविंद् अस्य मायुषे ॥४॥
त्रियायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्रियायुषम् ।
[illegible] श्रीषम् आयुषि तम् कृधि ॥५॥
[illegible] विघृता यद् आयज्य [illegible] दराणः ।
[illegible] अनृतेन [illegible] सर्वान् वि [illegible] ॥६॥
दिवस् त्वा पातु हरितं म[ध्यात्] त्वा पात्व् अर्जुनम् ।
[भूम्या अयस्म]यं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् ॥७॥
इमास् ति[स्रो] देवपुरास् तास् त्वा रक्षन्तु सर्व[त]ः ।
तास् त्वं बिभ्रद् आयुष्मान् वर्चस्वान् उत्त[रो] द्विषतां भव ॥८॥
[पुरं देवानाम् अ]मृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
[तस्मै नमो दश प्राचीः कृ]णोम्य् अनु मन्यतां त्रिवृद् आबधे मे ॥९॥
[illegible]
हरितं [illegible] अजैम् [illegible] रजसाविच्छिंदानि ॥१०॥
आ त्वा चृतत्व् अर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
[अ]हर्जातस्य यन् नाम तेन त्वा ऽति चृ[तामसि] ॥११॥ ऋ°२॥

२.६०

यां वसतो तपसा [illegible] अभिनीपतामि नमसा सयो[नि]म् ।
[illegible] अग्ने त्रयः परस्ताद् तृतीये नाके अधमारे सदेम ॥१॥

[तं प्रजानन्] प्रति गृह्णाति विद्वान् बृ[हस्पतिः] प्रथमजा ऋतस्य ।
[अस्माभिर् दत्तं जरसः पर]स्ताद् अ[च्छिन्नं तन्तुम् अनु सं तरेम] ॥२॥
× × × × ×

२.६१

× × × × × ×ते ।
यस्मात् विद्वा भुवनानि गोपा अन्तरिक्षस्य [महतो] वि[मानः] ॥ ॥
×मा मिलं ते घृतपृष्ठं अर्दीना पथे? सुधुतं जुहोमि ।
अविद्वान् × मुमुग्धि पाशान् अस्य पत्नी विधवा यथासत् ॥ ॥
अनातुरेण वरुणः ×ं नो स्वस्तिभिर् अति दुर्गाणि येष्यत्? ।
तम् अभिना प्रतिगृह्या स्वस्त[ये] रोपयेत? पूषा मे सं प्र यच्छत् ॥ ॥
ऋ°५॥ अनु°१२॥

२.६२

ये पिशाचा इमां विद्याम् आकूतिं मोहयन्तु नः ।
तेषां त्वम् अग्ने नाशय सर्व[श् चि]त्तम् अथो प्रजाम् ॥१॥
आशायाग्रे पिशाचानां सर्वेषु चित्तम् अथो प्रजाम् ।
यथाशां मह्यं धारय यथा इ कामयन्तु मे ॥२॥
आशां मह्यं धारयन्त् इन्द्रियेभ्यः × ×ताम् ।
त्वम् अग्ने क्रव्यादस् सर्वान् पिशाचान् अर्चिषा दह ॥३॥
प्रति दह [यातु]धानान् सुर देवान् किमीदिनः ।
यो नो पुरस्ताद् देवनं यथाशां × × नः ॥४॥
ये नः पशून् अग्न इच्छन्त्य आशायां पुरुषेषु च ।
तांस् त्वं सहस्र[चक्षः] पि[शाचाँ अर्चि]षा [द]ह ॥५॥ ऋ°१॥

२.६३

× × × × ×
× × × × × ×
× × × × ×

२.६४

× × × × × × ×
× [मि रेकाति देवानां सर्वेषां सजातानां × इ × थ × निर्ऋतिर् इ×? ॥ ॥
[क]श्यपस्य प्रतिसरो द्यौष् पिता पृथिवी माता ।
यथाभिचक्र देवास् तथापि कृणुता पुनः ॥ ॥
याः कृत्या नीलवतीर् याः कृत्याः पद्वावती? ।
कृत्या याश् च बभ्रुर् लोहितीस् ता इतो नाशयामसि ॥ ॥
यदि वा यद् इमा अहुर् इने मद्रासि सुन्वति? ।
हन्यासि कल्याण्य अमि स्वामं कर्तारस्यं? अहि ॥ ॥ ऋ°४॥

२.६५

बृहत् ते वर्चः प्रथताम् अभि यां मित्रो ऽम्य् एति सुगृभित? सुवर्चाः ।
कर्त राजा वरुणो अर्दीतु तस्मात् त्वं हविषा मायया असः ॥१॥
शतं हेमन्तान् शमया सपत्नान् विदाम् त्वा सर्वा गुणयो भवन्तु ।
वसन्तोतिरातां अपप तम् यातयस् त्वा सुजातो विलहा त्वं नि च ॥२॥
इन्द्रस् त्वं योक्रृ अधि मे विचरन्तु मत्ते यस् त्वा यच्छन्तं प्रत्युं सि ×
× × इमा त्रिर्याणं पृ त भे स्स प यें पृ इ स्त म च जं य नी × ×
×रास्य ते पति योम गृ आ ता तु प सं × × × ×
× × × × × × × × ×
× × ×रो मम्य प्रथुह इमया सपत्नान्?
[illegible]
[illegible] ॥ ऋ°४॥

२.६६

अपाय राज्ञे प्रथमं जुहोमि विश्वे देवा उत्तरे मादयन्ताम् ।

उशन् पत्नीम्य उशतीम्य आप्य× पतिम् अग्न आ वह रातहव्य ॥१॥
पतिं गृणीम्य हविषा गृणाना तम् आ वहन् सविता तं ते अग्निः ।
¿तम् इन्द्रम् अरिम? शतशारदाय भगवत्का भगवती सुवीरा ॥२॥
यमर्या? सं पतिम् अस्यै दिदेशिथ जने चित्तम्तं तम् इहा वहासि ।
सुमङ्गल्य अप्रतिघ्नी सुवेशा रायस् पोषेण सम् इषा सृजस्व ॥३॥
यत् ते पतिम् अर्यमा आयमानं यं धाता च कल्पजम् इहावहासि ।
अभि परेण हविषा जुहोमि प्रजां नयतु सुमनस्यमानाम् ॥४॥
पतिं ते द्यावापृथिवी आ धातां पतिं मित्रावरुणा वातो [अ]ग्निः ।
सरस्वत्यो ऽदितिस् सोम इन्द्रस् ते त्वा देवा× पतिवती कृण्वन्तु ॥५॥ ॥अ°५॥ ॥अनु°११॥

२.६७

यस् त्वाराय× प्रविवेश आनु आनियाद्गुत? ।
अथो तन्वं पस्पर्शा तम् इतो निर् नयामसि ॥१॥
निर् द्वाराय? नयामसि य इमां प्रविवेशिथ ।
आत्मानम् अस्या मा हिंसीर् अन्यत्र चर मेह भूः ॥२॥
येआराये माम्? उपायसि धेह्य अस्यै रायस् पोषणम् ।
प्रजां च तस्या मा हिंसीर् अन्यत्र चर मेह भूः ॥३॥
येआराये? ध्यायसि हनामि वीरुधा त्वा ।
अथो खनित्रमीस्? त्वा यर्येण यथा भगम् ॥४॥
येआरायास्यंस्नुपुयमायतोक्यम्? ।
यत् पौत्रसयं शैमोग्यं तम् इतो निर् नयामसि ॥५॥ ॥अ°१॥

२.६८

अग्नेर् वो बलवतो बलेन मन्युं वि नयामसि ॥१॥
इन्द्रस्य वो [बलवतो बलेन मन्युं वि नयामसि] ॥२॥
सोमस्य वो [बलवतो बलेन मन्युं वि नयामसि] ॥३॥
बृहस्पतेर् वो [बलवतो बलेन मन्युं वि नयामसि] ॥४॥
प्रजापतेर् वो बलवतो बलेन मन्युं वि नयामसि ॥५॥
यत् ते सूर्य दिवि देवेषु वर्चस् तस्य नो धेहि तमसि प्रचेताः ।
अहं च विप्रस्? त्विपितस् त्विषीमान् इमां वाचं वि चक्षीय ॥६॥ ॥अ°१॥

२.६९

वात× पुरस्तात् ¿पव मे? नमस्वान् नमस् ते विघ ते नामधेयं मा नो हिंसीः ॥१॥
तपाद्य× पुरो दक्षिणत× ¿पव मे? नमस्वान् नमस् ते विघ ते नामधेयं मा नो हिंसीः ॥२॥
विश्वायुर् विश्वजननीन× प्रतीच्या दिश× ¿पव मे? नमस्वान् नमस् ते विघ ते नामधेयं मा नो हिंसीः ॥३॥
दिवो वैश्वदेव उदीच्या दिश× ¿पव मे? नमस्वान् नमस् ते विघ ते नामधेयं मा नो हिंसीः ॥४॥
अतिष्ठाया बार्हस्पत्य ऊर्ध्वाया दिश× ¿पव मे? नमस्वान् नमस् ते विघ ते नामधेयं मा नो हिंसीः ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७०

अपयोरपाउतनद्? अपस्कन्ध वधेर् अहिम् ।
¿कल्याण्य् आयताः स्मृतं? सुमन[स]स् सन्तु विपुतः ॥१॥
शौ ५.८१.१ यत् पर्ज[न्यस्] स्तनयित्नुस् सं सं व्ययते जगत् ।
पतन्तु द्वितीया व्रयावती? पृथिवी प्रति मोदते ॥२॥
एषनाध्यकंदीपृकाध्वेधेनुंकाम्? इव ।
अहींस् त्वं विपुतां अहि मास्माकं पुरुषान् वधीः ॥३॥

अभिक्रन्दस् स्तनयित्नोर् अथास्कुर्जद् अशन्या उत ।
देवा मरुतो मृडत न× पान्तु नो दुरिताद् अवद्यात् ॥४॥
वीचिते? परि णो नम अदित्याश् शर्म यच्छत ।
सुयोत पर्जिनं शरम् उतायवं रिशादसः ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७१

शौ ५.१४.५ कृत्यव्यधनि विध्य तं यश् चकार तम् इज् जहि ।
न त्वाम् अचकुषे वयं वधाय सं शिशीमहि ॥१॥
यथा ¿त्वा देव्य् ओषधे प्रतीचीनं फलं कृतम्? ।
एवा त्वं कृत्येन कृतं हस्तगृह्य परा णय ॥२॥
पुन× कृत्यां कृत्याकृते गौर् धेनुका यद्वंमुं? नयत् ।
शशुल्यंशशुचेसयं? प्रतीचीः प्रति तद् वसत् ॥३॥
यां ते चकुर् वर्तनेषु वल्माकृणुमेतासु? च ।
मण्डूके कृत्यां यां चकुर् तया कृत्याकृतो जहि ॥४॥
शौ ५.१४.११ अग्निर् इवैतु प्रतिकूलम् अनुकूलम् इवोदकम् ।
सुखो रथ इव वर्ततां कृत्या कृत्याकृतं पुनः ॥५॥ ॥अ°५॥ ॥अनु°१४॥

२.७२

अग्निर् शुभ्रेण सूर्यो ज्योतिषा चौर् महिमान्तरिक्षं व्यचसा ।
दिश आशाभि× पृथिवी पयोभिर् इदं राष्ट्रं वर्धयन्तु प्रजावत् ॥१॥
त्वष्टा रूपेण सविता सवेनाहर् मित्रेण वरुणेन रात्री ।
पूषा पुष्टिभिर् भागधेयेन भगया इदं राष्ट्रं वर्धयन्तु प्रजावत् ॥२॥
यानि विश्वकर्मा निजग्रान सेदिम् अन्तरा द्यावापृथिवी उभे ।
तस्याद्य× क्षत्रियं गर्भं परि मा वयवा मूर्धनि धारयस्व ॥३॥
छन्दांस्य् अभितो मयूखान् स्तोमायमायजरस्याः? ।
पुरीषं तस्याद्य× क्षत्रियं निर्मितं परि मा वयवा मूर्धनि धारयस्व ॥४॥
पराचि तस्य ¿मलया यानि महति मदस्यदं? कृणुष्व दुर्धराय या ।
मा त्वा दभन् सपत्ना दिप्सतस् तव शत्रून् उत्तमं सुम्नम् अस्तु ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७३

इदं तन् मित्रावरुणा हविर् वां येनाग्रे देवा अमृतत्वम् आयन् ।
येनास्मे क्षत्रम् अधिधारयीथो असपत्ना× प्रदिशस् सन्तु मह्यं ॥१॥
घृतस्य धारा मित्रावरुणा दुहे वां धेनुर् अनपस्फुरन्ती ।
देवस् सवितोत वायुर् अग्निर् भूतस्य पतिर् इह शर्म यच्छत ॥२॥
तं नस् तन् मित्रावरुणा गृणीतां त्रेधा मित्रा बहुधा वरीराम्? ।
अपते सेना अप घोष एतत् पृथग् सत्यानो बहुधा भवन्ताम् ॥३॥
हनान मित्रावरुणा अमित्रान् भयाम मद्रे सुकृतस्य लोके ।
पारयान्? नस् सविता देवो अग्निर् जयामेदं हविषा कश्यपस्य ॥४॥
वातो यन् मित्रावरुणा तद् अह हविष्य् अन्तरं निर्मितं कश्यपस्य ।
अध्वर्यवो मरुतो यस्यासन् तेन देवेभ्यो वरिमाणि चक्रुः ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७४

सो ३.३.१ च ६.९९.४ मे ४.१४. [१५ अचिक्रदत् स्वपा इह भवद् अग्ने व्यच[स्व] रोदसी उरूची ।
यासुं नय नमसा रातहव्यं युञ्जन्ति सुप्रजसं पञ्च जनाः ॥१॥
सो १ दूरे चित् सन्तम् अरुणास इन्द्रम् आ च्यावयन्तु सख्याय विप्रम् ।
यद् गायत्रीं बृहतीम् अर्कम् अस्मै सौत्रामण्या दधृषन्त देवाः ॥२॥
सो ३ अद्भ्यस् त्वा राजा वरुणो जुहाव सोमस् त्वायं ह्वयति पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस् त्वायं ह्वयति विड्भ्य आभ्यश् श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ॥३॥
सो ४ श्येनो हविर् नयत्व् आ परस्माद् अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं ते गर्भं सजाता अभिसंविशध्वम् ॥४॥
¿श्येनो हवि× कश्यपस्योप शिक्षे इन्द्रं वात× प्रहितो नृता वा ।
¿विधिय शत्रून् सेनाग्रे विषो वृषणो अधराकासी? ॥५॥

शौ १ यस् ते हवं प्रतितिष्ठत् सजात उत निष्ट्यः ।
अपाञ्चम् इन्द्र तं कृत्वाथेमम् इह गमय ॥६॥
शौ ५ ह्वयन्ति त्वा पञ्च जना× प्रति मित्रा अवृषत ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवा[स् ते] विशि क्षेमम् अदीधरन् ॥७॥ ॥अ°१॥

२.७५

प्रजापतिर् अनुवर्तिस् स प्रजाभिर् अनुवर्तिः ।
स मानुवर्तिर् अनुवर्तिं कृणोतु ॥१॥
इन्द्रो अनुवर्तिस् स वीर्येणानुवर्तिः ।
[स मानुवर्तिर् अनुवर्तिं कृणोतु] ॥२॥
सोमो अनुवर्तिस् स ओषधीभिर् अनुवर्तिः ।
[स मानुवर्तिर् अनुवर्तिं कृणोतु] ॥३॥
आपो [अ]नुवर्तयस् ता× पर्जन्येनानुवर्तयः ।
ता मानुवर्तयो अनुवर्तिं कृण्वन्तु ॥४॥
देवा अनुवर्तयस् ते ऽमृतेनानुवर्तयः ।
ते मानुवर्तयो अनुवर्तिं कृण्वन्तु ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७६

पयो मह्यम् ओषधय× पयो मे वीरुधो दधन् ।
अपां पयस्वद् यत् पयस् तन् मे वर्षन्तु वृष्टयः ॥१॥
पयो मह्यं पयस्वन्तो हस्तिनो मे पयो दधन् ।
पय× पतत्रिणो मह्यं वीचया मे पयो दधन् ॥२॥
पयस्वन् मे क्षेत्रम् अस्तु पयस्वद् उत [मे] धाम ।
अहं पयस्वान् भूयासं गावो म उत पयस्वतीः ॥३॥
पयो मह्यम् अप्सरसो गन्धर्वा मे पयो दधन् ।
पयो मे विश्वा भूतानि वातो दधातु मे पयः ॥४॥
पयो मह्यं द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं पयो दधत् ।
पयो मे विश्वा भूतानि धाता दधातु मे पयः ॥५॥
वा १८.३६ मे २.११.८ पय× पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्य् अन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वती× प्रदिशस् सन्तु मह्यम् ॥६॥ ॥अ°५॥ ॥अनु°१५॥

२.७७

अहं विमर्मि ते मनो अहं चित्तम् अहं व्रतम् ।
वै २.५०.३[१], 'शौ १.३४.२' ममेद् अह क्रताव् असो मामसबेदसीदयि? ।
आद्यासीस्या? मयि ते रमतां मनः ॥१॥
शौ ६.१०२.३[१] आञ्जनस्य मधुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
वीरोशीकस्य? मूलेन मुखेन मदंनं कृतम् ॥२॥
मधु मे अन्तर् आस्ये मुखेन मदंनं कृतम् ।
तत्र त्वं वि वर्तस्व ¿मराची इव वर्तसि? ॥३॥
"शौ ६.८.१" यथा नेमी रथचक्रं समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथासन् मयि ते मनः ॥४॥ ॥अ°१॥

२.७८

यथेदम् अश्विना तृणं वातो वहतु भूम्याम् ।
एवा वयं वहामसि यां वयं कामयामहे ॥१॥
उत् त्वा माता श्वापयतु प्र त्वा नुदताम् अश्विना ।
काश्चशुर? इव मातरं माम् एवोशीतु ते मनः ॥२॥
यथा क्षीरं च सर्पिश् च मनुष्याणां हृदे प्रियम् ।
एवाहम् अस्या भार्या हृदो भूयासम् उत्तमः ॥३॥
अग्निष् ट्वा तपत् तपतु वातस्य ध्राजिर् मा स्नुहत् ।
तानि पदनानि साधाय उत् तिष्ठ प्रेह्य् अग्निवत् ते कृणोमि ॥४॥

सूर्यस् त्वा तपत् तपतु वातस्य ध्राजिर् मा स्नुहत् ।
तानि पदनानि साधाय उत् तिष्ठ प्रेहि सूर्यवत् ते कृणोमि ॥५॥ ॥अ°१॥

२.७९

हिरण्यपुष्पी सुभगा रूपद् यायं सुमङ्गलः ।
तान् एतां भद्रया दृशाम् अमृतात् अमृते भगे ॥१॥
हिरण्यपिण्डं हरितं तत् ते अङ्गेषु रोहति ।
'शौ १४.१.५५' तेनेमाम् अश्विना नारीं भगेनाभि षिञ्चताम् ॥२॥
यथा रूपसुधृतस् तृष्यन्तो यन्ति कामिनः ।
एवा त्वा सर्वे देवरा× पतयो? यन्तु कामिनः ॥३॥
हिरण्याक्षो मधुवर्णो हिरण्यपरिचित्लम्? ।
अङ्गो हिरण्यो यस् तव तेनास्यै पतिम् आ वह ॥४॥
शौ ७.३८.५ । 'शौ विरोचनं (सायणस्तु विरोचनं' यदि वासि तिरोचनं यदि वा नद्यस् तिरः ।
[इ]यं त्वा मह्यम् ओषधिर् अङ्गेन मे न्यानयत् ॥५॥ ॥अ°१॥

२.८०

पुन× प्राणं पुनर् अपानम् अस्मै पुनर् व्यानम् उत सोम देहि ।
आत्मानं चक्षुर् ¿उदिते समानस्? तम् अनु पाहि तम् अनु जीव आगधि? ॥१॥
त्वष्टा रूपेण सविता सवेनाहर् मित्रेण वरुणेन रात्री ।
इन्द्रो ज्येष्ठेन ब्रह्मणाय बृहस्पति× पूषास्मै पुनर् असुं ददातु ॥२॥
यथादित्या वसवो ये च रुद्रा विश्वे देवा अदितिर् या च रात्री ।
यज्ञो भगस् सविता ये च देवा यमो ऽस्मै पुनर् असुं ददातु ॥३॥
सोमो राजा वसुविन् ते पुनर् दात् ।
इन्द्रो मरुद्भिर् अश्विना ते भिषग् यद् अग्नी रुद्रो वसुविन् ते पुनर् दात् ॥४॥
पुनर् द्यौर् देवी पुन[र् अ]न्तरिक्षम् अग्निर् वात× पवमानो भिषज्यतु ।
ग्राह्या× पाशान् निर्ऋत्या× पाशान् मृत्यो× पाशाद् वाक् च देवी पुनर् ददातु ॥५॥ ॥अ°१॥

२.८१

इदं चक्षुर् कलायरी मा हिंसीत् पुर आयुषः ।
यद् वां तमो यन् किल्बिषम् अप वाचा नि दध्मसि ॥१॥
¿इदे पंक्ष् अद गर्भं वयोमांति रोहति ।
¿अयम् अवस्ताद्गुतो अक्षीरर्सअपुत्तंयतु ॥२॥
¿यमो ह्य् आम्याम् उद् अयन् सुचक्षा यं शंसेवत् ।
¿शल्क निर्वं सुपर्णां उद् आयुर् चक्षुर् अदितेर् अनन्तम्? ।
सोमो वृषभा मयि तद् धनं दधातु ॥३॥
यथा चक्षुस् सुपर्णस्य यथा श्वधया यथा शुनः ।
एवा मे अश्विना चक्षु× कृणुतां पुष्करस्रजा ॥४॥
यस् सुपर्णस्य प्रपातद् चक्षुषा चक्षुर् आदधे ।
तस्यादं समुद्रं जेतवे चक्षुषा चक्षुर् आ दधे ॥५॥ ॥अ°५॥ ॥अनु°१६॥

२.८२

अग्निं ते हरस् सिषक्तु यातुधान स्वाहा ॥१॥
वातं ते प्राणस् सिषक्तु [यातुधान स्वाहा] ॥२॥
सूर्यं ते चक्षुस् सिषक्तु [यातुधान स्वाहा] ॥३॥
अन्तरिक्षं ते श्रोत्रं सिषक्तु [यातुधान स्वाहा] ॥४॥
परमं ते परावतां मनस् सिषक्तु यातुधान स्वाहा ॥५॥ ॥अ°१॥

२.८३

अपस् ते रसस् सिषक्तु यातुधान स्वाहा ॥१॥

ओषधीन् ते ओषानि छिनत्तु [यातुधान स्वाहा] ॥२॥
मज्जानं ते वज्र छिनत्तु यातुधान स्वाहा ॥३॥ ॥का°१०॥

२.८४

इदं ते शिरो छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते ललाटं [छिनद्मि] छिनद्मि ! भूयात् ॥१॥
[इदं] ते हनू छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते जिह्वां [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥२॥
[इदं] ते ग्रीवा छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते स्कन्धान् [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥३॥
इदं ते हस्तौ छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते बाहू [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥४॥
[इदं] ते हृदयं छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते पर्शून् [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥५॥
[इदं] ते श्रोणी छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते क्लोम [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥६॥
[इदं] ते पृष्ठे छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते [उपस्थं छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥७॥
इदं ते ऊरू छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते अष्ठे [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥८॥
इदं ते गुल्फौ छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते पादौ [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥९॥
[इदं] ते त्वचं छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते मांसं [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात्] ॥१०॥
इदं ते पर्वाणि छिनद्मि यातुधान स्वाहा ।
इदं ते मज्जा [छि]नद्मि छिनद्मि ! भूयात् ॥११॥ ॥का°११॥

२.८५

[अन्न ...] पराजित मधु भूयात् सर्वेष स्वयं पाताद् पातली भवत् ! ॥१॥
येनु सहकामु येनु मा प्राचो भयो बलम् ।
अथो रयातु मधुपानिह विश्वात्रातु मा स्वपते ॥२॥
दक्षिणा मा दक्षिणतो दक्षिणा पातु सव्यतः ।
पश्चाद् पर्व मद पश्चात् पातु सर्वस्या भवदेभ्या ! ॥३॥
उत्तरान् मारो दिव्या विश्वस्य च दक्षिणः ।
धाता सविता यद्गृह ते मो मुञ्चन्तु अंहसः ॥४॥
ऊर्ध्वं पातात् तु ब्रह्मस्य ब्रह्मणत् पते ।
[इति भाग्यद् पतांं नो विश्व शतात् पतोभ्यो यच्छताम् ! ॥५॥ ॥का°१२॥

२.८६

प्राचीं दिशाम् आरुहम् अग्निर् मावतु ओजसे बलाय ।
दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः ॥१॥
दक्षिणां दिशाम् आरुहम् इन्द्रो मावतु ओजसे बलाय ।
[दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः] ॥२॥
प्रतीचीं दिशाम् आरुहं वरुणो मावतु ओजसे बलाय ।
[दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः] ॥३॥
उदीचीं दिशाम् आरुहं सोमो मावतु ओजसे बलाय ।
[दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः] ॥४॥
ध्रुवां दिशाम् आरुहं विष्णुर् मावतु ओजसे बलाय ।

[दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः] ॥५॥
ऊर्ध्वां दिशाम् आरुहं बृहस्पतिर् मावतु ओजसे बलाय ।
दिशां प्रियो भूयासम् अनु मित्रा मे दिशो भवन्तु घृतप्रतीकाः ॥६॥
॥का°५॥ ॥अनु°१०॥

२.८७

मनाये तन्तुं प्रथमं पश्येद् अन्या अतन्वत ।
तद् नारी× प्र प्रवीमि यस् साध्वीर् यस् सन्तूर्वरीः ॥१॥
साधुर् यस् तन्तुर् भवति साधुर् ओतु रेतु ! घृतः ।
अपो दोर्यरीर् यूयं प्रातद् योदेय धावत ॥२॥
अर्गला इव पत्वरीर् अपाम् ऊर्मम् इवायनम् ।
पतन्तु पत्वरीर् इयोर्वरीस् साधुना पथा ॥३॥
अवाच्यौ ते तोतुदेते तोदेनाश्वतराव् इव ।
प्र स्तोमम् उर्वरीणां शरायानाम् अलाविषम् ॥४॥
नारी पञ्चमयूखं सूयवत् कृणुतं वसु ।
अरिष्टो [अ]स्य वस्ता प्रियंदयासितताविरः ! ॥५॥ ॥का°१०॥

२.८८

शास इत्था महाँ अस्य् अमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥१॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युम् इन्द्र वृत्रहन्न् अमित्रस्याभिदासतः ॥२॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥३॥
स्वस्तिदा विशां पतिर् वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्र× पुर एतु नस् सोमपा अभयंकरः ॥४॥
अपेन्द्र द्विषतो मनो [अ]प जिज्यासतो वधम् ।
वि महच् छर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥ ॥का°११॥

२.८९

[देवो] यो ऽतितरो मणिस् तेनाति तरध्व द्विषः ! ।
सपत्नान् द्विषतो मणे प्र णुदस्व पृतन्यतः ॥१॥
प्र णुदस्व प्र दहस्व सपत्नान् द्विषतो मणे ।
तराति महत्त्वं द्विषां यचौ महूग्धि पृतन्यताम् ॥२॥
यचौ जहि मन्युं अघ आकूतिं द्विषतां मणे ।
देवो यो ऽतितरो मणिस् तेनाति तर धूर्वतः ॥३॥
ये धूर्वन्ति ये द्रुह्यन्ति ये द्विषन्ति पृतन्यन्तः ।
सर्वान् सपत्नांस् तान् मणिर् निर्मन्मून् द्विषतस् करत् ॥४॥
तव चित्ते तव व्रते तवेवावस् पदं करम् ।
देवो यो ऽतितरो मणिम् तेनाति तर दुच्छुना ! ॥५॥ ॥का°१२॥

२.९०

आ ते मनश् चक्षुर् आ ते हृदयं ददे ।
पादोर् टे पदम् आ ददे यथा तिष्ठासि मे वशे ॥१॥
याम्ब मे पाणी तन्वं याम्बात्यी याम्ब सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्या× केशा आंष्ठौ मां ते कामेन शुष्येताम् ॥२॥
मयि त्वा दोषणिश्रियं कृणोमि हृदयश्रियम् ।
यथेद् अह क्रताव् असो ममास ओदस ओदसी दपि ! ॥३॥
यासां नाभिर् आरोहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरो अमूं सं वानयन्तु मे ॥४॥

मह्यं त्वा द्यावापृथिवी मह्यं देवी सरस्वती ।
मह्यं त्वेन्द्रश् चाग्निश् चाहोरात्रे नि यच्छताम् ॥५॥ ॥का°१३॥

२.९१

मूलि मूलम् अर्जुनि पुनर् वो यन्तु यातव× पुनर् हूति× किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो व× प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त ॥१॥
अपच्छयो जिरायव× [पुनर् वो यन्तु यातव× पुनर् हूति× किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो व× प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥२॥
इविष्मव× पाश्यव× [पुनर् वो यन्तु यातव× पुनर् हूति× किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो व× प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥३॥
स्थालिहारि रमहारि [पुनर् वो यन्तु यातव× पुनर् हूति× किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो व× प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त] ॥४॥
बालयूते मनोजवा× पुनर् वो यन्तु यातव× पुनर् हूति× किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तम् अत्त यो व× प्राहैत् तम् अत्त स्वा मांसान्य् अत्त ॥५॥
॥का°१४॥ ॥अनु°११॥

अथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां द्वितीय× काण्डस् समाप्तः ॥

३.१

आ त्वा गन् राष्ट्रं सह वर्चसोद् इहि प्राङ् विशां पतिर् एकराट् त्वं वि राज ।
सर्वास् त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तूपसद्यो नमस्यो भवेह ॥१॥
त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वाम् इमा× प्रदिश× पञ्च देवीः ।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्वातो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥२॥
अच्छ त्वा यन्तु [सुहवस्य आत्मा अग्निर् दूतो ऽज अरसे इयर्ति ! ।
जाया× पुत्रास् सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः ॥३॥
अश्विना त्वाग्रे मित्रावरुणोभा विश्वे देवा मरुतस् त्वा ह्वयन्तु ।
अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि ॥४॥
आ प्र द्रव परमस्या× परावतश् शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ।
तद् अयं राजा वरुणस् तथाह स त्वायम् अह्वत् स उपेदम् एहि ॥५॥
इन्द्रेन्द्र मनुष्या× परेहि सं ह्य् अज्ञास्था वरुणैस् संविदानः ।
स त्वायम् अह्वत् स्वे सधस्थे स देवान् यक्षत् स उ कल्पयाद् विशः ॥६॥
पथ्या रेवतीर् बहुधा विरूपास् सर्वास् संगत्य वरीयस् ते अक्रन् ।
तास् त्वा सर्वास् संविदाना ह्वयन्तु दशमीम् उग्रस् सुमना वशेह ॥७॥
यद् अजास्व् इन्द्रविहि त्वा मनसानुमसि ।
अथा त इन्द्र× केवलीर् विशो बलिहृतस् करत् ॥८॥ ॥का°१॥

३.२

इन्द्रियस्य राजुर्घ्नो [ज्यो]षि ... ।
स ... ॥१॥
अनु त्वा ... ।
... ॥२॥
... ।
... ॥३॥
यद् ... ।
दिव× × × × × ॥४॥

[..........................] क्षेत्रियं त्वाभ्यानशे ।
यदाहं तस्मिन् भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि ते ॥५॥
अपवासे नक्षत्राणाम् अपवास उषसाम् ।
अपास्मत् सर्वम् आमयद् अप क्षेत्रियम् अक्रमीत् ॥६॥
आप इद् वा उ भेषजीर् आपो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस् तास् त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥७॥ ॥का°२॥

३.३

पुमान् पुंस× परिजातो अश्वत्थ× खदिराद् अधि ।
स हन्तु शत्रून् मामकान् यांश् चाहं द्वेष्मि ये च माम् ॥१॥
तान् अश्वत्थ निः शृणीहि शत्रून् मयि बाध दोधतः ।
इन्द्रेण वृत्रघ्ना मेदिनी ! मित्रेण वरुणेन च ॥२॥
यथाश्वत्थ निः शृणासि पूर्वान् जातान् उतापरान् ।
एवा पृतन्यतस् त्वम् अभि तिष्ठ सहस्व च ॥३॥
यथाश्वत्थ वि भिनत्स्य् अन्तर् [अ]र्णव अर्णवे ।
एवा मे शत्रोश् चित्तानि विष्वग् भिन्धि सहस्व च ॥४॥
यस् सहमानश् चरति सासहान इवर्षभः ।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान् सहिषीमहि ॥५॥
सिनात्व् एनान् निर्ऋतिर् मृत्यो× पाशैर् अविमोक्यैः ।
अश्वत्थ शत्रून् मामकान् यांश् चाहं द्वेष्मि ये च माम् ॥६॥
[त] अधराञ्च× प्र प्लवन्तां छिन्ना नौर् इव बन्धनात् ।
न विबाधप्रणुत्तानां पुनर् अस्ति निवर्तनम् ॥७॥
प्रैणान् नुदामि मनसा प्र चित्तेनोत ब्रह्मणा ।
प्रैणान् वृक्षस्य शाखयाश्वत्थस्य नुदामसि ॥८॥ ॥का°३॥

३.४

यद् अदस् सं[प्र]तीर् अहाव् अनदता हते ।
तस्माद् आ नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥१॥
यत् प्रेषिता वरुणेनाच् छीभं समवल्गत ।
तद् आप्नोद् इन्द्रो वो यतीस् तस्माद् आपो अनु ष्ठन ॥२॥
अपकामं स्यन्दमाना अवीवरत वो हि कम् ।
इन्द्रो वस् शक्तिभिर् देवीस् तस्माद् वार् नाम वो हितम् ॥३॥
एको वो देव उपातिष्ठत् स्यन्दमाना यथावशम् ।
उद् आनिषुर् महीर् इति तस्माद् उदकम् उच्यते ॥४॥
आपो देवीर् घृतम् इद् आप आसुर् अग्नीषोमौ बिभ्रत्य् आप इत् ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचाम् अरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गन् ॥५॥
आद् इत् पश्याम्य् उत वा शृणोम्य् आ मा घोषो गच्छद् वाङ् मासाम् ! ।
मेने भेजानो [अ]मृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं ! यदा वः ॥६॥ ॥का°४॥

३.५

अग्निर् नो दूत× प्रत्येतु शत्रून् प्रतिदहन्न् अभिशस्तिम् अरातिम् ।
स चित्ता[नि] मोहयतु परेषां निर्हस्तांश् च कृणवज् जातवेदाः ॥१॥
अयम् अग्निर् अमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्व् ओकस× प्र वो धमतु सर्वतः ॥२॥
इन्द्र चित्तानि मोहयन्न् अर्वाङ् आकूत्या चर ।
अग्नेर् वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥३॥
व्य् एषाम् आकूतय इतायो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यद् अद्यैषां हृदि तद् एषां परि निर् जहि ॥४॥
अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्य् अप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर् दह हृत्सु शोकैर् ग्राह्यामित्रांस् तमसा विध्य शत्रून् ॥५॥

असौ या सेना मरुतः परेषाम् अस्मान् अभ्य् एत्य् ओजसा स्पर्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथैषाम् अन्यो अन्यं न जानात् ॥६॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰१॥

१.६

अग्निर् नो विद्वान् प्रत्य् एतु शत्रून् प्रतिदहन्न् अभिशस्तिम् अरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश् च कृणवज् जातवेदाः ॥१॥
यूयम् उग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथितेभ्यो अग्निर् येषां विद्वान् प्रत्येतु शत्रून् ॥२॥
अमित्रसेनां मघवन्न् अस्मान् छत्रूयतीम् अभि ।
तां त्वम् इन्द्र वृत्रहन्न् अग्निश् च दहतं प्रति ॥३॥
प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन् याहि शत्रून् ।
जहि प्रतीचो [अ]नूचः पराचो विष्वं विषं कृणुहि सत्यम् एषाम् ॥४॥
सेनामोहनं कृणव इन्द्रामित्रेभ्यस् त्वम् ।
अग्नेर् वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥५॥
इन्द्रस् सेनां मोहयन् मरुतो घ्नन्त्व् ओजसा ।
चक्षूंष्य् अग्निर् आ दत्तां पुनर् एतु पराजिता ॥६॥ ॥ऋ॰१॥

१.७

एकशतं विष्कन्धानि विष्ठिता पृथिवीम् अनु ।
तेषां च सर्वेषाम् इदम् अस्ति विष्कन्धदूषणम् ॥१॥
कर्णभस्य विषभस्य द्यौष् पिता पृथिवी माता ।
यथा[भि]चक्र देवास् तथाप कृणुता पुनः ॥२॥
अश्लेष्माणो [अ]धारयन् तथा तन् मनुना कृतम् ।
क्षिणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवाम् इव ॥३॥
सूत्रे पिशाङ्गे मृगलं पद् आबध्नन्तु वेधसः ।
अवस्युं शुष्मं काबवं वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः ॥४॥
येना श्रवस्यवश् चरथ देवा इवासुरमायया ।
शुनां कपिर् इव दूषणो बन्धुरा काबवस्य च ॥५॥
दुष्ट्यै हि त्वा भत्स्यामि दूषयिष्यामि काबवम् ।
उत्तराशवो? रथा इव [श]पथेभिस् सरिष्यथ ॥६॥ ॥ऋ॰१०॥

१.८

यमस्य लोकाद् अध्य् आ बभूविथ प्रमदा मर्तान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान् स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥१॥
बन्धस् त्वाग्रे विश्वचया अप पश्यत् पुरा रात्र्या जनितोर् एके [अ]ह्नि ।
ततस् स्वप्नेदम् अध्य् आ बभूविथ भिषग्भ्यो रूपम् अपगूहमानः ॥२॥
बृहद्गावासुरेभ्यो ऽधि देवान् उपावर्तत महिमानम् इच्छन् ।
तस्मै स्वप्ना[य] दधुर् आधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासस् स्वर् आनशानाः ॥३॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश् चरत्य् अन्तर् एदम् ।
त्रिते स्वप्नम् अदधुर् आप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥४॥
यस्य क्रूरम् अभजन्त दुष्कृतो [अ]स्वप्नेन सुकृतः पुण्यम् आयुः ।
स्वर् मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसो ऽधि जज्ञिषे ॥५॥
विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद् विद्म स्वप्न यो [अ]धिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्य् आराद् द्विषेभिर् अप याहि दूरम् ॥६॥ ॥ऋ॰१॥

१.९

अस्वाप्स्वप्नुपात्स्प्य् तपहत्य्जत सत्यपत्रियेयं स्वाहि दण्ड् तान्? ।
अस्मै विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम् ॥१॥

इन्द्रम् अहम् इवं हुवे सोमपम् उभयाविनम् ।
अस्मै [विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम्] ॥२॥
वरुणम् अहम् इवं हुव उग्रो राजन्यस् सासहिः ।
[अस्मै विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम्] ॥३॥
अदितिम् अहम् इवं हुवे शूरपुत्रां कनीनिकाम् ।
अस्मै [विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम् ॥४॥
बृहस्पतिम् अहम् इवं हुवे यो देवानां पुरोहितः ।
अस्मै [विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम् ॥५॥]
आत्यात्यात्यद्वाह्मकोन? ।
अस्मै विषाय हन्तवे वार् उग्रम् अरसं विषम् आहेयम् अरसं विषं निर्विषम् ॥६॥
नद्यानां नदीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासाम् अग्रभं नाम वीतालतारसं विषम् ॥७॥ ॥ऋ॰४॥

१.१०

मृत्युर् एको यम एकस् सर्वेषु शरद उद् भव ।
ते नः कृण्वन्तु भेषजं देवसेनाभ्यस् परि ॥१॥
पुनर् नो यमः पितृभिर् ददातु पुनर् मित्रावरुणा वातो [अ]ग्निः ।
अयमारो मयशंसः पुनर् दात् पुनर् नो देवी निर्ऋतिर् ददातु ॥२॥
या देवी प्रहितेषुः पतात्? तपसे वा महसे वावसृष्टा ।
सोमस् त्वाम् अस्मद् यावयतु विद्वान् पितरो वा देवहूता नृचक्षसः ॥३॥
सहस्राक्षो अमर्त्यः पुनरूप? रक्षतु ।
प्रस्पेद्? उग्रम् आहार्यं सहयुस् सहपूर्वः ॥४॥
यस् ते मन्युस् सहस्राक्ष विषेण परिषिच्यते ।
तेन त्वम् अस्मभ्यं मृड शिवो नस् शंभुर् आ चर ॥५॥
मा ते मन्युस् सहस्राक्ष मामेत्? तन् मामकं जगत् ।
यो नो द्वेष्टि तं गच्छ यं [वयं] द्विष्मस् तं जहि ॥६॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰२॥

१.११

रक्षः ये स्थास्यां प्राच्यां दिशि हेतयो नाम देवास् तेषां वो अग्निर् इषवः ।
ते नो मृडत ते नो [ऽधि] ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥१॥
रक्षः ये स्थास्यां दक्षिणायां दिश्य् अविष्यवो नाम देवास् तेषां व आप इषवः ।
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥२॥
रक्षः ये स्थास्यां प्रतीच्यां दिशि विराजो नाम देवास् तेषां वः काम इषवः ।
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥३॥
रक्षः ये स्थास्याम् उदीच्यां दिशि प्रविध्यन्तो नाम देवास् तेषां [वो] वात इषवः
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥४॥
रक्षः ये स्थास्यां ध्रुवायां दिशि धिलिम्पा नाम देवास् तेषां व ओषधीर् इषवः ।
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥५॥
रक्षः ये स्थास्याम् ऊर्ध्वायां दिश्य् अवस्वन्तो नाम देवास् तेषां वो वर्षम् इषवः ।
ते नो मृडत ते नो ऽधि ब्रूत तेभ्यो नमस् तेभ्यस् स्वाहा ॥६॥ ॥ऋ॰१॥

१.१२

यो अप्स्व् अन्त[र् अग्नि]र् यो वृत्रे अन्तर् यः पुरुषे यो ऽश्मनि ।
य आविवेशौषधीर् यो वनस्पतींस् तेभ्यो [अ]ग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत् ॥१॥

यस् सोमे अन्तर् यो गोष्व् अन्तर् य आविष्टो वयसि यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश् चतुष्पदस् तेभ्यो [अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत्] ॥२॥
य इन्द्रेण सरथं संबभूव वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो [अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत्] ॥३॥
यो देवो विश्वाद् यम् उ कामम् आहुर् यं दातारं प्रतिगृह्णन्तम् आहुः ।
यो धीरश् शक्रः परिभूर् अदाभ्यस् तेभ्यो [अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत्] ॥४॥
यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस् त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो [अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत्] ॥५॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस् तेभ्यो [अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत्] ॥६॥
दिवं पृथिवीम् अ[न्व् अ]न्तरिक्षं ये विद्युतम् अनुसंचरन्ति ।
यो दिक्ष्व् अन्तर् यो वाते अन्तस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतम् अस्त्व् एतत् ॥७॥
बृहस्पतिं वरुणं मित्रम् अग्निं हिरण्यपाणिं सवितारम् इन्द्रम् ।
विश्वान् देवान् अङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्व् अग्निम् ॥८॥
शान्तो अग्निः क्रव्याद् अथो पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यस् तं क्रव्यादम् अशीशमम् ॥९॥ ॥ऋ॰१॥

१.१३

आयम् अगन् पर्णमणिर् बली बलेन प्रमृणन् सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां मयि राष्ट्रं जिन्वतु अप्रयच्छन्? ॥१॥
मयि राष्ट्रं पर्णमणे मयि धारय राष्ट्रम्? ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गो वशा? भूयासम् उत्तरः ॥२॥
यं निदधुर् वनस्पतौ वाजं देवाः प्रियं निधिम् ।
तं म इन्द्रस् सहायुषा मणिं ददातु भर्तवे ॥३॥
सोमस्य पर्णस् सह उग्रम् आगन्न् इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तम् अहं बिभर्मि बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥४॥
आ मारुक्षत् पर्णमणिर् मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहम् उत्तरो ऽसानि मनुष्या अधिसंवतः? ॥५॥
पुनर् मैत्व् इन्द्रियं पुनर् आत्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनर् अग्नयो धिष्ण्यासो यथास्थाम [क]ल्पयन्ताम् इहैव ॥६॥
ये तक्षाणो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
सर्वांस् तान् पर्ण रन्धयोपस्तिं कृणु मेदिनम् ॥७॥
उपस्तिर् अस्तु वैश्य उत शूद्र उतार्यः ।
सर्वांस् तान् पर्ण रन्धयोपस्तिं कृणु मेदिनम् ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

१.१४

येन वेह[... ... ...]
[... ... ...] कृष्मसि ॥१॥
आ ते गर्भो योनिम् एतु [... ... ...
[... ... ...] ॥२॥
पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमान् अनु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश् च [यान्] ॥३॥
यानि भद्राणि बीजान्य् ऋषभा जनयन्ति [च] ।
तैस् त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर् धेनुका भव ॥४॥
कृणोमि ते प्राजापत्यम् आ गर्भो योनिम् एतु ते ।
विन्दस्व [त्वं] पुत्रं नारि [यस्] तुभ्यं शम् असच् छम् उ तस्मै त्वं भव ॥५॥

यासां पिता पर्जन्यो भूमिर् माता बभूव ।
तास् त्वा पुत्रविद्याय देवीः प्रावन्त्व् ओषधीः ॥६॥
यस् ते योनिम् उदिङ्गया[द्] वृषभो रेतसा सह ।
स त आ सिञ्चतु प्रजां दीर्घायोश् शतशारदम् ॥७॥ ॥ऋ॰४॥

१.१५

यां त्वा वातो वरवरादिह्माभा? महर्षभः ।
तस्यास् ते विश्वधायसो विषदूषणम् उद् भरे ॥१॥
यां त्वा वराहो अखनद् एकस्मिन्न् अधि पुष्करे ।
[तस्यास् ते विश्वधायसो विषदूषणम् उद् भरे] ॥२॥
यां त्वादितिर् अखनद् बीजवापम् अधि पुष्करे ।
[तस्यास् ते विश्वधायसो विषदूषणम् उद् भरे] ॥३॥
यस्याः कूलायं सलिले अन्तर् महत्य् अर्णवे ।
तस्यास् ते विश्वधायसो विषदूषणम् उद् भरे ॥४॥
उत् ते भरम् उत्तमाया अधमायास् तूद् भरे ।
अनु मध ्या मध्यमे तव विषदूषणम् अग्रभम् ॥५॥
[मध्यं भूम्यास्] सम् अग्रभम् उभाद् अन्तौ सम् अग्रभम् ।
दिवश् च पृथिव्याश् च विषदूषणम् उद् भरे ॥६॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰१॥

१.१६

चैत्रो ऽसि पृतनायुस् स्वाहा ॥१॥
सोम हिंसीस् सोम हिंसितो ऽसि स्वाहा ॥२॥
ब्रह्मण्म? हिंसीर् ब्रह्म हिंसितो ऽसि स्वाहा ॥३॥
माभूद् अहिर् भूमभान्महिर् अस्मिन् अरसावधी ।
विषस्य ब्रह्मणाम् आसीत्? ततो जीवन् न मोक्ष्यसे ॥४॥
अहो ऽहि[म्] समूहो ऽहि[र्] निपीतो ऽरसः कृतः ।
विषस्य ब्रह्मणाम् आसीत्? ततो जीवन् न मोक्ष्यसे ॥५॥
पुनर् ददाति मे विषं पूर्वरूपम् उदाहृत[म्] ।
मां दृश्यात् मन्यसे मया दृष्टो न मोक्ष्यसे ॥६॥ ॥ऋ॰१०॥

१.१७

एकशतं भेषजानि तेषां मातास्य् ओषधे ।
समुद्रम् इव गच्छसि पृथिव्याम् अधि निष्ठिता ॥१॥
यस्यां देवादिमेचकं दशातीर्यां दशाशिखा ।
ते प्रथमा इषे सं भावन्त? ओषधे यमराज्ञीरवद्? भिषज् ॥२॥
पुनश् चक्षुः पुनः प्राणः पुनर् आयुर् न आ गमत् ।
मिर् ह्वाकरं विष्कन्धा मिर् ह्वानिष्कन्धाकरम् ॥३॥
मुञ्चामि त्वा शपथ्याद् अथो वारुण्याद् उत ।
अथो यमस्य पड्बीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥४॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन् सूर्य आदित्यो अङ्गभेदम् अशीशमत् ॥५॥
हिमवतः प्र स्रवत सिन्धौ समह संगमः ।
ता आपस् सर्वास् संगत्य चक्षुः प्राणं ददतु नः ॥६॥ ॥ऋ॰१०॥

१.१८

हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वस् संबभूव ।
तत् सर्वे सम् अदुर् मह्यम् एतद् विश्वे देवासो अदितिस् सजोषाः ॥१॥
मित्रश् च वरुणश् चेन्द्रो रुद्रश् च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस् ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥२॥
यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्य् आहुतम् ।
तेन माम् अद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृधि ॥३॥

येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्व् अप्स्व् अन्तः ।
येन देवा ज्योतिषा द्याम् उदायन् येन अग्ने वर्चसा सं सृजेह ॥४॥
यावद् वर्चः सूर्यस्यायनस्य च हस्तिनः ।
तावन् मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥५॥
यावच् चतस्रः प्रदिशश् चक्षुर् यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्व् इन्द्रियं मयि तद् धस्तिवर्चसम् ॥६॥ अ°१०

३.१९

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम् ।
संशितं क्षत्रं मे जिष्णु येषाम् अस्मि पुरोहितः ॥१॥
सम् अहम् एषां राष्ट्रं स्यामि सम् ओजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाहम् ॥२॥
तीक्ष्णीयांसः परशोर् अग्नेस् तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषाम् अस्मि पुरोहितः ॥३॥
अधस् पद्यन्ताम् अधरे भवन्तु ये न इन्द्रं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रान् उन् नयामि स्वान् अहम् ॥४॥
एषाम् अहम् आयुधा सं स्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रम् अजरम् अस्तु जिष्णूग्रम् एषां चित्तं बहुधा विश्वरूपम् ॥५॥
अभि प्रेत जयत प्रसूतान् सं स्यामि [illegible] ।
तीक्ष्णेषवो ऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा [अ]बलान् उग्रबाहवः ॥६॥ अ°११

३.२०

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतम् उक्षमाणा ।
तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा [अरिष्टवीरा] अभि सं चरेम ॥१॥
इहैव ध्रुवा प्र[ति] तिष्ठ शाले अश्वावती गोमती सूनृतावती ।
ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्य् उच् छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥
धरुण्य् असि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या ? ।
आ त्वा वत्सो गमेद् आ कुमार आ धेनवः सायम् आस्पन्दमानाः ॥३॥
इमां शालां सविता वायुर् अग्निर् त्वष्टा होता नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन सोमो मे राजा नि कृषिं तनोतु ॥४॥
मानस्य पत्नि शरणा स्योना [देवी] देवेभिर् निमितास्य् अग्रे ।
तृणं वसाना सुमना असस् त्वं रयिं नो धेहि ? सुभगे सुवीरम् ॥५॥
आ त्वा कुमारस् तरुण आ वत्सो जगता सह ।
आ त्वा परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैर् अगुः ॥६॥ अ°१२ अनु°४

३.२१

इमम् इन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशाम् एकवृषं कृणु त्वम् ।
निर् अमित्रान् अक्ष्णुह्य् अस्य सर्वांस् तान् रन्धयास्मा [अ]हमुत्तरेषु ॥१॥
अयम् अस्तु धनपतिर् धनानाम् अयं विशां विश्पतिर् अस्तु राजा ।
अस्मिन्न् इन्द्र महि वर्चांसि धेह्य् अवर्चसं कृणुहि शत्रुम् अस्य ॥२॥
एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष् टं भज यो [अ]मित्रो [अ]स्य ।
वर्ष्मन् क्षत्राणाम् अयम् अस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वम् अस्मै ॥३॥
अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवाम् ओषधीनाम् उतापाम् ॥४॥
युनज्मि त उत्तरावन्तम् इन्द्रं येन [जयन्ति न पराजयन्ते] ।
यस् त्वा करद् एकवृषं जनानाम् उत राज्ञाम् उत्तमं मानवानाम् ॥५॥
उत्तरस् त्वम् अधरे सन्त्व् अन्ये [illegible] ते राजन् प्रतिशत्रवस् ते ।

एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ् छत्रूयताम् अभि तिष्ठा महांसि ॥६॥ अ°१३

३.२२

पिशाचजम्भनी भाङ्गिरसी देवजा प्रतिचक्षिणी ।
दिवस् पृथिव्यास् संभूता सहस्राक्षी [पि ष्या]भि नः ॥१॥
सहस्राक्षी यद् गृभाति [तेन !] पश्यास्य ओषधे ।
सदान्वाघ्नी रक्षोघ्नी भवेह प्रतिचक्षिणी ॥२॥
ये इरस्य मामुलेयं ! पयस्स्फाति ओषधे ।
सदान्वाघ्नी रक्षोघ्नी भवेह प्रतिचक्षिणी ॥३॥
यातुधानान् रन्धयन्ती रक्षन्तं ? च पिइतम् ।
तांस् त्वं सहस्रचक्षो गृभाय कृतवीर्याय ? ॥४॥
यथा श्वा चतुरक्षो रात्रिं नक्तम् पश्यति ।
एवा सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्यास्य आयतः ॥५॥
गोभिर् अश्वैर् वसुभिर् अपक्रीतास्य ओषधे ।
श्यावाश्वस्य चक्षुषा प्रति पश्य किमीदिनः ॥६॥ अ°१४

३.२३

सं शुन्धध्वं सं पिबध्वम् अथं वो मधुनत् सहः ।
प्रतं वम् सर्वं सध्रयञ्च् समानं चेतो [अ]स्तु वः ॥१॥
सं जानीध्वम् इन्द्राय चित्ता वो ऽस्तु भयं वो ऽग्निर् नि हरः शमयाति ।
यद् वैरहत्यम् उ भीमम् आसीद् विश्वे देवा उत् प्रापयन्तु ॥२॥
शं वरुण अस्तु बृहस्पतिश् शं द्यावापृथिवी उभे ।
शम् अन्तरिक्षम् उत वो मरुत्वाञ् शं यशिन्य् अस्त्व् अदितिर् देवपुत्रा ॥३॥
कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्ताम् आप ओषधीः ।
कल्पन्ताम् अग्नयस् सर्वे अस्मै श्रैष्ठ्याय सव्रताः ॥४॥
सं वस् सृजामि हृदयं संसृष्टं मनो अस्तु वः ।
संसृष्टा वस् तन्वस् सन्तु संसृष्टः प्राणो अस्तु वः ॥५॥
सं वः पशूनां हृदयं सृजामि सं पुत्राणाम् उत या दुहितरो वः ।
सं जायानां मनसा मनांसि सं पत्नीनाम् उत चक्षुषा सृजामि ॥६॥ अ°१५

३.२४

प्राची दिग् अग्निर् अधिपतिर् असितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु ॥१॥
दक्षिणा दिग् इन्द्रो ऽधिपतिस् तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
[तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु] ॥२॥
प्रतीची दिग् वरुणो ऽधिपतिः पृदाकू रक्षिता मित्र इषवः ।
[तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु] ॥३॥
उदीची दिक् सोमो ऽधिपतिस् स्वजो रक्षिता वात इषवः ।
[तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु] ॥४॥
ध्रुवा दिग् विष्णुर् अधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
[तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु] ॥५॥
ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिर् अधिपतिश् श्वित्रो रक्षिताशनिर् इषवः ।

तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमो वो ऽस्तु ।
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मस् तम् उ प्राणो जहातु ॥६॥ अ°१६

३.२५

अनड्वान् दाधार पृथिवीम् उत द्याम् अनड्वान् दाधारोर्व् अन्तरिक्षम् ।
अनड्वान् दाधार प्रदिशष् षड् उर्वीर् अनड्वान् इदं विश्वं भुवनम् आ विवेश ॥१॥
अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥२॥
अनड्वान् इन्द्रस् स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयाञ् छक्रो वि मिमीते अध्वनः ।
भूतं भविष्यद् भुवना दुहानस् सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥३॥
यस्य नेशे यज्ञपतिर् न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता ।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश् चतुष्पात् ॥४॥
इन्द्र एष मनुष्येष्व् अन्तर् घर्मस् तप्तश् चरति शोशुचानः ।
सुप्रजास् सन् स उदारे न सर्षद् यो नाश्नीयाद् अनडुहो विजानन् ॥५॥
येन देवास् स्वर् आरुरुहुर् हित्वा शरीरम् अमृतस्य नाभिम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥६॥
इन्द्रौजा स[ञ्जी]र् [illegible] प्रजापतेर् [illegible] ।
[illegible] यो वेद [illegible] ॥७॥
दुहे वा अनड्वान् सायं दुहे प्रातर् दुहे दिवा ।
दोहा ये [अ]स्य संयन्ति तान् विद्मानुपदस्वतः ॥८॥
यो वेदानडुहो दोहान् सप्तानुपदस्वतः ।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तर्षयो विदुः ॥९॥
मध्यम् एतद् अनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावद् अस्य प्राचीनं यावान् प्रत्यङ् समाहितः ॥१०॥
पद्भिस् सेदिम् अवक्रामन्न् इरां जङ्घाभिर् उत्खिदन् ।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश् चाभि गच्छतः ॥११॥
इ[न्द्र] एष मनुष्येष्व् अनड्वान् इव दृश्यते ।
[illegible] ॥१२॥
इन्द्रो [illegible] परमेष्ठी [illegible] वैश्वदेवाः ।
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तस्य प्राणान् अप [illegible] प्राणान् वि वर्हः ॥१३॥ अ°१७ अनु°५

३.२६

गृहान् ऐमि मनसा मोदमान ऊर्जं बिभ्रद् वसुमनिस् सुमेधाः ।
[अ]घोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणां पश्यन् पय उत् तरामि ॥१॥
इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामस्य तिष्ठन्तस् ते नो जानन्त्व् आयतः ॥२॥
सूनृतावन्तस् सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन ॥३॥
येषाम् अध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहान् उप ह्वयामहे ते नो जानन्त्व् आयतः ॥४॥
उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥५॥
उपहूता भूरिधनास् सखायस् स्वादुसंमुदः ।
अरिष्टास् सर्वपूरुषा गृहा नस् सन्तु सर्वदा ॥६॥ अ°१८

३.२७

[illegible] सं वाम् इन्द्र पूतनामृदि ? ।
प्रजापतिर् [illegible] ओजो [illegible] हविषा वर्धयेन ॥१॥

प्रजापते हविषा वर्धने[न] हन्तारम् इन्द्रम् अकृणोर् अवध्यम् ।
तस्मै विशो देवकृता नमन्त सहन्तम्! स हि हव्यो बभूव ॥२॥
प्रजापते अभि नो नेषि वसूनीं गव्यूतिम् अभिमातिषाहः ।
वर्धयन्न् इन्द्रं बृहते रणाय देवं दैवेन हविषा वर्धनेन ॥३॥
यथा विद्वांः पूतनाम् संजया यथा शत्रून् सहसा मनसा ।
महीं यथासत् सम्राट् ! सुसम्राड् देवस् त्वेन्द्रो अप्रतिषयं कृणोतु ॥४॥
अयं वीरो प्रति हन्तु शत्रून् विश्वे देवा उपसदस्करात ? ।
नास्य प्रजां रीरिषन् मोत वीरान् इमान् इन्द्रः ॥५॥
अहि शत्रून् प्रति रन्धयस्वाग्निर् ते गोपा अधिपा वसिष्ठः ।
शर्म ते राजा वरुणो नि यच्छा[द्] देवस् त्वेन्द्रो अप्रतिषयं कृणोतु ॥६॥ अ°२०

३.२८

सं स्रुचोर् तनुभ्यां सं मुखाभ्यां सम् आत्मना ।
सं वां ब्रह्मणस् पतिस् सोमस् सं स्पर्शयातु याम् ॥१॥
अभ्य्अस्यमद्गमि ? वाचा दधामि सहसोक्षणे ।
[उ]प मे दाहिनं कामे अभि कृष्णम् इवार्वरे ॥२॥
यः प्रेमा प्रेष्याम् आसीद् दृशम् सोमेन बभ्रुणा ।
तस्माद् अधि धूतं मनो मय्य् अस्य मन आहितम् ॥३॥
यं पुमांसं कामयते यस्मिन्न् आ मनम् इच्छते ।
इच्छाकम् अस्मिन्न् आ दध्मो यथा शुष्याति त्वाम् अनु यथास्य हृदयं शुष्यात् ॥४॥
अपि वक्रे गृशां गुर्वी ? चक्षुर् आकाशं भीमं मांपदयम् अभिरोदयम् ।
प्रियंकर[ण]म् उत्तमं मनुयेन तद् आभृतम् ॥५॥
त्वं हासि वर्चस्यो मयो हासि सुमङ्गलः ।
अथो सुवांसां वीरुधां प्रियंकरणम् उच्यसे ॥६॥ अ°२१

३.२९

प्रतीची सोमम् असि ओषधे प्रतीच्य् अनु सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवांस् तथा त्वाच्छावदामसि ॥१॥
इमां खनाम्य् ओषधिं विलम्बीम् अनुलम्बुनाम् ! ।
आयतः प्रतिरन्धनी ! परायतो निवर्तनाम् ॥२॥
अमुष्याइ परायत आयतो मनो ममवम् ।
ममवं हरिः ! मनो अथो हृदयं मम ॥३॥
अधि ते मन आहितं अधि चित्तं अधि व्रतम् ।
ममेद् अप क्रतावु असो ममासबोदलीदधि ? ॥४॥
अहं वदामि मेद् त्वं सभायाम् [अ]ह त्वं वद ।
ममेद् असस् त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश् चन ॥५॥
यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस् तिरः ।
[इ]यं त्वा मह्यम् ओषधिर् बद्ध्वेव न्यानयत् ॥६॥ अ°२२

३.३०

यथा कलां [यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
[एवा दुष्वप्न्यं सर्वम् अप्रिये सं नयामसि] ॥१॥
सं राजानो [अ]गुस् [स]म् ऋणान्य् अगुस् सं कुष्ठा अगुस् सं कला अगुः ।
सम् अस्मासु दुष्वप्न्यं ? निर् द्विषते दुष्वप्न्यं ? सुवाम ॥२॥
देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य करण यो भद्रस् स्वप्न ।
स मम यः पापस् तं द्विषते प्र हिण्मः ॥३॥
तृष्टामा नामासि कृष्णशकुनेर् मुखं निर्ऋतेर् मुखं तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
स्यमोल् स्वप्न्या ? अश्वम् इव नायम् अश्वम् इव नीनाहम् ।
आस्माकं देवपीयुं पियारुं वप ॥४॥

यद् अस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच् च नो गृहे ।
सास्माकं देवपीयुं पियारुं निष्कम् इव प्रति मुञ्चताम् ॥५॥
नवारत्नीन् अपमायास्माकं तन्वस् परि ।
दुष्वप्न्यं सर्वं दुर्भूतं द्विषते निर् द्विषामसि ? ॥६॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°६॥

३.३१

देवा मरुत× पृश्निमातरो ऽपो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हत ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा ॥१॥
देवा अप्र इन्द्र सूर्यापो [दत्तोदधिं भिन्त ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हत ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥२॥
देवाद् घोतो ? मित्रावरुणार्यमन्न् अपो [दत्तोदधिं भिन्त ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हत ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥३॥
देवा× पितरो पसव्या× काव्यासो ऽपो [दत्तोदधिं भिन्त ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हत ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥४॥
देवा अप्सुषदो ऽपां नपात् तनूनपान् नाराशंसापो दत्तोदधिं भिन्त ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हत ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥५॥
देव बृहस्पते अपो देहय उदधिं भिन्धि ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हि ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥६॥
देव प्रजापते अपो [देह्य उदधिं भिन्धि ।
[दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हि ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा] ॥७॥
देव परमेष्ठिन्न् अपो देह्य उदधिं भिन्धि ।
दिवस् पृथिव्या उरोर् अन्तरिक्षात् तस्मै क्षत्राय न हि ब्रह्मणाम्य× ?
प्रजाभ्य आभ्य ओषधीभ्यस् स्वाहा ॥८॥ ॥ऋ°१॥

३.३२

प्रजापतेर् जायमाना× प्रजा जाताश् च या इमाः ।
ता अस्मै प्रति वेदय चिकित्वाँ अनु मन्यताम् ॥१॥
येषाम् ईशे पशुपति× पशूनां चतुष्पदाम् उत या ये द्विपादः ।
निष्क्रीतास् ते यज्ञियं यन्तु लोकं रायस् पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥२॥
प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य गोपा गातुं देवा यजमानाय धत्त ।
उपाकृतं शशमानं यद् अस्थात् प्रियं देवानाम् अप्य् एतु पाथः ॥३॥
ये बध्यमानम् अनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष् टान् अग्रे प्र मुमोक्तु देव× प्रजापति× प्रजाभिस् संविदानः ॥४॥
येषां ¿प्राणं न बध्नन्ति बद्धं ? गवां पशूनाम् उत पौरुषाणाम् ।
इन्द्रस् तान् [अग्रे प्र मुमोक्तु देव× प्रजापति× प्रजाभिस् संविदानः] ॥५॥
य आरण्या× पशवो विश्वरूपा [विरूपा] उत य एकरूपाः ।
वायुष् टान् अग्रे प्र मुमोक्तु देव× प्रजापति× प्रजाभिस् संविदानः ॥६॥
प्रजानन्त× प्रति गृह्णन्तु देवा× प्राणम् अङ्गेभ्यस् पर्य् आचरन्तम् ।
दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैस् स्वर्गं याहि पथिभिर् शिवेभिः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

३.३३

समास् त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश् चतस्रः ॥१॥
सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनम् उच् च तिष्ठ महते सौभगाय ।

मा ते रिषन्न् उपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस् ते यशसस् सन्तु मान्ये ॥२॥
त्वाम् अग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने ' प्र भृ णो भे वि हि ? ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् उ भव स्वे ग[ये] दीदिह्य् अप्रयुच्छन् ॥३॥
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा दभन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रं सुयमम् अस्तु तुभ्यम् उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्कृतः ॥४॥
क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेयं यतस्व ? ।
सजातानां मध्यमेष्ठा इह स्या राज्ञाम् अग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥५॥
अति निहो ऽति स्रिधो ऽत्य् अचित्तीर् अत्य् अरातीर् अति द्विषः ।
विश्वा ह्य् अग्ने दुरिता चर त्वम् अथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः ॥६॥
अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्कृतो विराड् अग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवा× प्रमुञ्चन् मनुष्येभ्यश् शिवेभिर् अद्य परि पाहि नो गयैः ॥७॥
॥ऋ°१॥

३.३४

अयं ते योनिर् ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्न् अग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ॥१॥
प्रदातारं हवामहे अग्निम् उग्रम् ऊतये ।
शुचिर् यो वृत्रहन्तमः ॥२॥
अग्ने [अ]च्छा वदेह न× प्रत्यङ् नस् सुमना भव ।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस् त्वम् ॥३॥
प्र णो यच्छत्व् अर्यमा प्र भग× [प्र बृहस्पतिः] ।
प्र पूषा प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु नः ॥४॥
अर्यमणं बृहस्पतिम् इन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५॥
सोमं राजानम् अवसे [अ]ग्निं गीर्भिर् हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥६॥
[इन्द्रवायू उभाव् इह] सुहवेह हवामहे ।
यथा नस् सर्व इज् जनस् संगत्यां सुमना असत् ॥७॥
त्वं नो अग्ने अग्निभिर् ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रयिं दानाय चोदय ॥८॥
वाजस्येदं प्रसवे सं बभूव यः ? इमा च विश्वा भुवनान्य् अन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं धेहि सर्ववीरं नि यच्छताम् ॥९॥
ध्रुवां मे पञ्च प्रदिशो ध्रुवम् उर्वीर् यथायथम् ।
प्रत्येयं सर्वा म आकूतीर् मनसा हृदयेन च ॥१०॥
गोसनिं वाचम् उदेयं वर्चसा माभ्य् उदर्ष्टं हि ? ।
आ रुन्धां सर्वतो वा[युस्] त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ॥११॥ ॥ऋ°२॥

३.३५

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ् छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर् वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१॥
इन्द्रं वयम् अनूराधं हवामहे ऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नस् सेना अररुषीर् उप गुर् विषूचीर् इन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥२॥
इन्द्रस् त्रातोत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतस् स मध्यतस् स पश्चात् स पुरस्तान् नो [अ]स्तु ॥३॥
उरुं नो लोकम् अनु नेषि विद्वान् स्वर्यज् ज्योतिर् अभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इ[न्द्र] स्थविरस्य बाहू उप क्षियेम शरणा बृहन्ता ॥४॥
अभयं न× करत्य् अन्तरिक्षम् अभयं द्यावापृथिवी उभे ।
अभयं पश्चाद् अभयं पुरस्ताद् उत्तराद् अधराद् अभयं नो [अ]स्तु ॥५॥
अभयं मित्राद् अभयम् अमित्राद् अभयं ज्ञाताद् अभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तम् अभयं दिवा नस् सर्वा आशा [मम] मित्रं भवन्तु ॥६॥
॥ऋ°५॥ ॥अनु°७॥

३.३६

मा नेहि माप क्रामद् शत्रूणां वेद् आ विद ।
इन्द्रस् सपत्नहा भीमस् संजयस् ते सम् आनुषक् ॥१॥
त्वं जयासि न परा जयासा अर्भेष्व् आजा मघवन् महत्सु च ।
उग्रं चित् त्वाम् अवसे सं शिशीमहे स त्वं न इन्द्र हवनेषु मृड ॥२॥
गोजिता बाहू अमितक्रतु× ? कर्मन्कर्मन् छतम् ऊति× खजंकरः ।
अकल्प इन्द्र× प्रतिमानम् ओज[सा] स त्वं न इन्द्र हवनेषु मृड ॥३॥
वेदाहम् इन्द्र प्रियम् अस्य शेवधिं यद् अस्य नाम गुह्यं समीके ।
संपश्यन्तपासि मघवा समानं मत्य अस्माकं ¿विश्वो विहवे ? इयं गमत् ॥४॥
वयं जयेम त्वया युजा वृता वृषो अस्माकम् अंशम् उद् अवा भरेभरे ।
अस्मभ्यम् इन्द्र वरिवस् सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृ[ष्ण्या रु]ज ॥५॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूविथ पृतनासु सासहिः ।
सोमं ? न× कारुम् उपमन्युम् उद्भिदम् इन्द्र करासि प्रसवे रथं पुरः ॥६॥
॥ऋ°१॥

३.३७

स्मर स्मरो ऽसि देवैर् दत्तो ऽसि स्मर ।
अमुष्य मनस् स्मर यथाहं कामये तथा शोचयास्य हृदयम् ॥
काम यच्छन्त्र स्मरो दहतु शोचतु त्मना ।
¿स इ द्यात्स्य स्मरन्ता धीभि र् ष मे या स्य दि ष्मो
¿इ म म म्या म रा म न्ता× प्रमुष्यतो मनुमहो मैषो मद्यकर्तं अर्थयः
¿मायेशिनी× प्रमुषो रोपयिष्णुर् एतास् त्वाय प्र हिणो[मि] ब्रह्मणा
¿अ तु क न्तु भी अ त्वि ता प्र मा म्या सि भी स्वप्न यच्छन्तु तु भ्य म मो मु ह
¿आवेशिनी× प्रमुषो रोपो रोपयिष्णुरेतास्त्वाय प्र हिणोमि ब्रह्मणा
¿इन्द्राग्नी मित्रावरुणा वे भ्यो त य त द्यावापृथिवी मातरिश्वा अश्विना
¿देवस् सविता भगश् च मनस् तु भ्र य न्तु म र मा सा तु अपाश्रियास् त्वा
¿भूमं तु देवाग्निर् विद् यम् उप हे भध्याजय् च मु त यस् मिशतांद् छिवे
¿यमोर्ध्वं धना प्र मृषस्व ? ॥
एता× पतन्त्व् आप्यो वार्षिकीर् इव विद्युतः ।
तासां [प्र]तिमहो भव सायं गोष्ठो गवाम् इव ॥
निशीर्षो निपातिताभ्यो वेदयामि ते ।
¿तास् त्वा स मु स न्तीर् शोचयन्तीर् उपा समाम् एतास् त्वाय प्र हि-
णोमि ब्रह्मणा ॥
¿स्त्रिय× मा पुरोगवां ? तास् त्वा तृणम् इव शोचयाम् ।
अथो त्वा रोदया बहु । ॥ ॥ ॥ऋ°१॥

३.३८

अजो ह्य् अग्नेर् अजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज् जनितारम् अग्रे ।
तेन देवा देवताम् अग्र आयन् तेन रोहान् अरोहन्न् उप मेध्यासः ॥१॥
क्रमध्वम् अग्निभिर् नाकम् उख्यां ? हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस् पृष्ठं स्वर् गत्वा मिश्रा देवेभिर् आध्वम् ॥२॥
अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर् देवानाम् उत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिस् सजोषसस् स्वर् यन्तु यजमानास् स्वस्ति ॥३॥
स्वर् यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्तु रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥४॥
अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं वयसं बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम सुकृतस्य लोकं स्वो रुहाणा अधि नाकम् उत्तमम् ॥५॥
इमौ ते पक्षाव् अजरौ पतत्रिणौ याभ्यां रक्षांस्य् अपहंस्य् अग्ने ।
ताभ्यां पतास्मि ? सुकृतस्य लोकं यत्रर्षय× प्रथमजा× पुराणाः ॥६॥
यद् अतिष्ठो दिवस् पृष्ठे व्योमन्न् अध्य् ओदन ।
अन्व् आयन् सत्यधर्माणो ब्राह्मणा तपसा सह ॥७॥

पृष्ठात् पृथिव्या [अहम्] अन्तरिक्षम् आरुहम् अन्तरिक्षाद् दिवम् आरुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर् ज्योतिर् अगाम् अहम् ॥८॥
अजो ऽस्य् अज स्वर्गो ऽसि त्वया लोकम् अङ्गिरस× प्राजानन् ।
तं लोकम् अनु प्र ज्ञेषम् ॥९॥
येन वा सहस्रं वहसि येन वा सर्ववेदसम् ।
तेन[न]मं यज्ञं नो वह स्वर् देवेषु गन्तवे ॥१०॥
अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
अजं पञ्चौदनान् पक्त्वा देवा लोकान् सम् आनशुः ॥११॥ ॥ऋ°१॥

३.३९

¿या ते प्रजा विहता पराभू[द्] अग्नेध्याभ्यितरं भरामि ।
¿अग्निष् टे ताम् आयम× ? पुनर् [द्]दाद् वैश्वानरः ॥१॥
परमस्माभ्यो ? ऽग्नस् तां पतिद् दिवो ऽग्निर् द्वितीयं मे प्रजां जरदष्टिं सजस्व ? ।
मुञ्चैनं ग्राह्या निर्ऋतिर् यद् अबभाद् अग्ने प्रजां प्रजाकामाय धेहि ॥२॥
त्वम् अग्ने वृषभं ¿वाशितेयम् आन्यजात् ? पुत्रकामासु यदं पति ।
ताम् आ रोह सुमनस्यमान× प्रजापते प्र वय रेपिवीनाम् ॥३॥
तुभ्यं नारी पुत्रकामा यद् अग्ने गुह्यं पूतं घृतम् आजुहोति ।
¿तामभि नामभि च्यव ? धीलयस्व रेतोधा उग्र× प्रजया सं सृजैनाम् ॥४॥
पर्वताद् दिवो योनेर् गात्राद्गात्रात् समाभृतम् ।
¿रेतो देवस्य देवस् ? सरी पर्णम् इवाधात् ॥५॥
इन्द्रस्य जातस्य प्र यपात नाभिस् ताम् उक्षोदेन× ? प्रति जग्राह कामी ।
त्वया वयं ¿ब्रह्मणस् सोमपास् सुपयास् सुतपान सूपते ? ॥६॥ ॥ऋ°२॥

३.४०

त्वज्जनात् त्वजनं जातं त्वजनं जायते शरः ।
नैनति न शोचति यस् त्वा बिभर्ति तेजन ॥१॥
पवित्रम् असि तेजन पवित्रं ते प्रमञ्जनम् ।
पवित्रो [अ]स्तु स कामो येन मूर्छाम् आयामहे ॥२॥
¿या दोषध शरो ऽस्त्व् ओदनेभ्य× कृत्यवर्त्याम् ।
¿तस्य दोषस् त्वं तेजन ? त्वजनं मरुतो दधन् ॥३॥
त्वजनं मे विश्वे देवास् त्वजनं पितरो दधन् ।
¿तेनाहम् अन्येषां क्षिपो त्वास्थं पुरा मध्यंदिनात् उत ? ।
पुरा सायिस्यादि ? त्वास्थं तेजने यन् महद् बिलम् ॥४॥
अस्थाद् द्यौर् अस्थात् पृथिव्य् अस्थाद् विश्वम् इदं जगत् ।
अस्थाद् विहरित एव तिष्ठात् कामो अयं तव ॥५॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°८॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां तृतीय× काण्ड× समाप्तः ॥

४.१

हिरण्यगर्भस् सम् अवर्ततागे भूतस्य जात× पतिर् एक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्याम् उतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥
य ओजोदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्यु× कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥
य× प्राणतो निमिषतो विपदां पतिर् विश्वस्य जगतो बभूव ।
ईशे यो अस्य द्विपदश् चतुष्पद× कस्मै देवा[य हविषा विधेम] ॥३॥
येन द्यौर् उग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस् स्तभितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयः कस्मै दे[वाय हविषा विधेम] ॥५॥
य इमे द्यावापृथिवी तस्तभाने अधारयद् अवसा रेजमाने ।
यस्मिन्न् अधि वितत एति सूरः कस्मै दे[वाय हविषा विधेम] ॥६॥
यस्य विश्वे हिमवन्तो महित्वा समुद्रं यस्य रसया सहाहुः ।
दिशो यस्य प्रदिशः पञ्च देवीः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥
आपो ह यद् विश्वम् आयुर् दधाना गर्भं जनयन्ति मातरः ।
तत्र देवानाम् अधि देव आसत एकस्थूणे विमिते दृढ उग्रे ॥८॥
आपो गर्भं जनयन्तीर् वत्सम् अग्रे सम् ऐरयन् ।
तस्योत जायमानस्योल्ब [आ]सीद् हिरण्ययः ॥९॥
हिरण्य इव आसीद् यो ऽग्रे वत्सो अजायत ।
[illegible] ॥१२॥

४.२

भूतो भूतेषु पय आ दधाति स भूतानाम् अधिपतिर् बभूव ।
स ते मृत्युश् चरति राजसूये स राजा राज्य[म् अनु] मन्यताम् इदम् ॥१॥
अभि प्रेहि वीरयस्वोग्रश् चेत्ता सपत्नहा ।
आ तिष्ठ मित्रवर्धन तुभ्यं देवा अधि ब्रुवन् ॥२॥
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ् छ्रियं वसानश् चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥३॥
एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वन्ति महते सौभगाय ।
समुद्रं न सुभुवस् तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनम् अप्स्व् अन्तः ॥४॥
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे वि क्रमस्व दिशो महीः ।
विशस् त्वा सर्वा वाञ्छन्त्व् आपो दिव्याः पयस्वतीः ॥५॥
या आपो दिव्याः पयसा मदन्त्य् अन्तरिक्ष उत पार्थिवा याः ।
तासां त्वा सर्वासाम् अपाम् अभि षिञ्चामि वर्चसा ॥६॥
अभि त्वा वर्चसासिचन्न् आपो दिव्याः पयस्वतीः ।
यथासो मित्रवर्धनस् तथा त्वा सविता करत् ॥७॥

४.३

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन् सूर्या आर्पिताः सप्त साकं तस्मिन् राजानम् अधि वि श्रयेमम् ॥१॥
येभिः शिल्पैः पप्रथानाम् अदृंहद् येभिर् द्याम् अभ्यपिंशत् प्रजापतिः ।
येभिर् वाचं पुष्टवतीम् अवर्धयन् तेन माद्य वर्चसा सं सृजेह ॥२॥
येभिः सूर्यस् तपति प्रकेतुभिर् येभिर् अग्निर् ददृशे चित्रभानुः ।
येभिर् आपश् चन्द्रवर्णा अजिन्वन् तेन माद्य वर्चसा सं सृजेह ॥३॥
आयं यातु सविता पञ्च देवीर् इन्द्र इव ज्येष्ठो भवतु प्रजावान् ।
अस्मिन्न् अग्ने पुष्कलं चित्रभानुं मा पृणातु रक्षोर् उपस्थम् ॥४॥
अनु त्वेन्द्रो ऽवतु अनु बृहस्पतिर् अनु त्वा सोमो अनु अग्निर् आवीत् ।
अनु त्वा विश्वे अवन्तु देवाः सप्त राजानो य उदाभिषिक्ताः ॥५॥
अनु त्वा मित्रावरुणाव् इहावताम् अनु द्यावापृथिवी विश्वशंभुवी ।
सूर्यो अहोभिर् अनु त्वावतु चन्द्रमा नक्षत्रैर् अनु त्वेदम् आवीत् ॥६॥
द्यौश् च त्वा पृथिवी च प्रचेतसा शुक्रो बृहद् दक्षिणा त्वा पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो [अ]ग्निः पूषा त्वावतु सविता सवेन ॥७॥

४.४

स्तुवानम् अग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देववन्दितो हन्ता दस्योर् बभूविथ ॥१॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस् तनूवशिन् ।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः ।

अथेदम् अग्ने नो हविर् इन्द्रश् च प्रति हर्यतम् ॥३॥
अग्निः पुरस्ताद् आ यच्छतु प्रेन्द्रो नुदद् बाहुमान् ।
ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयम् अस्मीत्य् एत्य ॥४॥
पश्यामि ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान् नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्ताद् आ यान्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥
आ रभस्व जातवेदो ऽस्माकार्थाय जज्ञिषे ।
दूतो नो अग्न उद् तिष्ठ यातुधानान् इहानय ॥६॥
त्वम् अग्ने यातुधानान् उपबद्धान् इहानय ।
अथैषाम् इन्द्रो वज्रेणापि शीर्षा[णि] वृश्चतु ॥७॥
इदं हविर् यातुधानान् नदी फेनम् इवा वहत् ।
य इदं स्त्री पुमान् अकर् इह स स्तुवतां जनः ॥८॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च ।
नि स्तुवानस्य पातय परम् अक्ष्य् उतावरम् ॥९॥
अयं स्तुवान आगमत् तं स्मोत प्रति हर्यत ।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा [वि] विध्यतम् ॥१०॥

४.५

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणाय मृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्य् ओषधिं शेपहर्षणीम् ॥१॥
ऊ[र्ज]मस् ते खनितारो वृषा त्वम् असि ओषधे ।
वृषासि वृष्ण्यावति वृषणे त्वा खनामसि ॥२॥
उद् उषा उद् उ सूर्य उद् इदं मामकं वचः ।
उद् एजतु प्रजापतिर् वृषा शुष्मेण वाजिनाम् ⁑ऊर्ध्वखावितम् इदं कृधि⁑ ॥३॥
यथा स्म ते विरोहतो ऽभितप्तम् इवानति ।
ततस् ते शुष्मवत्तरम् इयं कृणोत्व् ओषधिः ॥४॥
अपां रस ओषधीनाम् अथो वनस्पतीनाम् ।
अथो सोमस्य भ्रातासि आर्षभम् असि वृष्ण्यम् ॥५॥
अश्वस्य अश्वतरस्य अजस्य पुरुषस्य च ।
य ऋषभस्य वाजास् तान् अस्मै धेहि ओषधे ॥६॥
सं वाजा ऋषभाणां सं शुष्मा ओषधीनाम् ।
सं पुंसाम् इन्द्र वृष्ण्यम् अस्मै धेहि तनूबलम् ॥७॥
अद्याग्ने अद्य सवितर् अद्य देव बृहस्पते ।
अद्य मे ब्रह्मण[स् प]ते धनुर् इवा तानया पसः ॥८॥
ऊर्ध्वास् तिष्ठन्ति गिरय ऊर्ध्वा वाता उद् ईरते ।
ऊर्ध्वो ऽयं मामको मायुः पीवाहाद्! भूम्यान् ॥९॥
⁑उद् तिष्ठो ऽग्ने वि मृनुष्व वि तेष्ठ् मा यन्तु मान्या इव या ।
⁑मतो ऽग्रो ष्व पा य व मा य स्था यो ऽधि मुष्कयोः! ॥१०॥

४.६

हिरण्यशृङ्गो वृषभो यस् समुद्राद् उदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान् स्वापयामसि ॥१॥
न भूमिं वात उद् वाति नाति प[श्य]ति सूर्यः ।
जनांश् च सर्वान् स्वापय शुनश् चन्द्रसखा चरन् ॥२॥
प्रोष्ठेशयाः प्रोष्ठेशया नारीर् यास् तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास् तास् सर्वास् स्वापयामसि ॥३॥
एजदेजद् अजग्रभं चक्षुः प्राणम् अजग्रभम् ।
अङ्गान्य् अ[ज]ग्रभं सर्वा रात्रीणाम् उत शर्वरे ॥४॥
य [आ]स्ते यश् [च] चरति यश् च तिष्ठन् विपश्यति ।
तेषां सं दध्मो [अ]क्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥५॥
स्वप्तु माता स्वप्तु पिता स्वप्तु श्वा स्वप्तु विश्पतिः ।
स्वपन्तु सर्वे ज्ञातयस् सर्वं नि ⁑स्वापनं द्राव्यः! ॥६॥

अध स्वजायिकरत्नेन सर्वं वि ध्यामसि जनम् ।
मोत् सूर्यम् अन्यान् स्वापयोत् व्युषं चरतात् अहम् इन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ॥७॥

४.७

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्याम् आस्याद् उत ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काल् ललाटाद् वि वृहामसि ॥१॥
ग्रीवाभ्यस् त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यम् अंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामसि ॥२॥
क्लोम्नस् ते हृदयाद् अधि! हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस् ते वि वृहामसि ॥३॥
आन्त्रेभ्यस् ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर् उदराद् उत ।
यक्ष्मं पाण्योर् अङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामसि ॥४॥
अस्थिभ्यस् ते मांसेभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पृष्टिभ्यो मज्जभ्यो भासदा वि वृहामसि ॥५॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भंससो वि वृहामसि ॥६॥
अङ्गादङ्गाल् लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥७॥

४.८

अग्नी रक्षोहा तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
अपायते अयं प्रति हराम ॥१॥
इन्द्रो रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥२॥
सोमो रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥३॥
वरुणो रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥४॥
वायू रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥५॥
त्वष्टा रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥६॥
धाता रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥७॥
सविता रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥८॥
सूर्यो रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥९॥
चन्द्रमा रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥१०॥

बृह[स्प]ती रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥११॥
प्रजापती रक्षोहा [तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
[अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं प्रत्यक् प्रतिहरण्येना ।
[अपायते अयं प्रति हराम] ॥१२॥
परमेष्ठी रक्षोहा तिग्मस् तिग्मशृङ्ग इषिरा क्रतय× कवि× कवितमः ।
अपाघशंसं दुरितं सहताम् अरातिं [प्रत्यक्] प्रतिहरण्येना ।
अपायते अयं प्रति हराम ॥१३॥

४.९

संवसव इति वो नामधेयम् उग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्य् अक्षाः ।
तस्मै व इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१॥
इदम् उग्राय बभ्रवे यो [अ]क्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे ॥२॥
घृतम् अग्ने अप्सराभ्यो वह त्वं पांसून् अक्षेभ्यस् सिकता अपश् च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणो मदन्तु देवा उभयानि हव्या ॥३॥
यो नो देवो धनम् इदं दिदेश यो [अ]क्षाणां ग्रहणं शेषणं च ।
स नो [अ]वतु हविर् इदं जुषाणो गन्धर्वैस् सधमादं मदेम ॥४॥
या अप्सरसस् सधमादं मदन्त्य् अन्तरा हविर्धानं सूर्यं च ।
ता नो हस्तं कृतेन सं सृजन्तु सपत्नान् नः कितवान् रन्धयन्तु ॥५॥
यद् देवान् नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यद् ऊषिम ।
अक्षान् यद् बभ्रून् आलभे ते नो मृडन्त्व् ईदृशे ॥६॥
आदिनवं [... ... ... ।
[... ... ...] ॥७॥

आदिनवमित्यस्य(अत्र प्रतीकेनैव निर्देशः)

४.१०

अयम् त्वेतो नयतु हस्तगृह्य बृहस्पतिः [पु]रएता ते अस्तु ।
देवम् त्वा सविता सत्यधर्म उपसर्पा अमर्त्या कृणोतु ॥१॥
याम् अश्विना मधुकशां देवा अग्रे अजनयन् ।
तया त्वा पत्याम्! अभ्यक्तां कृण्मो मधुमतीं वयम् ॥२॥
उत्तरा श्वश्रुवा भव ननान्दुर् उप शिक्षाः ।
विशस् त्वा पत्यां! कृण्व[न्तु] मना[सि] देवेषु प्रिया ॥३॥
अङ्गिर आम्नातं तन्वं शुम्भमाना गृहान् प्रेहि महिषी भवासि ।
तत्र त्वादुर् गार्हपत्याय देवाः प्रजापतिर् अदधिर् वयासत् ॥४॥
उद् उत्तरम् आरोहन्ती व्यस्यन्ती पृतन्यतः ।
अङ्गिर ह्रा! शत्रोर् मूर्धानं सहदुषा विराड् भव ॥५॥
श्वश्रूणां श्वशुराणां गृ[हा]णां च धनस्य च ।
वि राज पत्यां! देवेषु सजातानां विराड् भव ॥६॥
यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्व् अश्वेषु यन् मधु ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनाहम् अस्या मूर्धान[म्] अभि षिञ्चामि भार्यां ॥७॥
यद् वर्चो गवि कन्याने यद् वा सूर्ये ऽश्वे सृजे ।
अभ्याकृतस्य यद् वर्चस् तेन मानज्मि वर्चसा ॥८॥

४.११

वेनावरद् उशना काव्यो ऽग्रे विद्वान् जनूनाम् उत देवतानाम् ।
सहदेवेन हविषा जुहोमि सार्वत्रिकं यो मनो [अ]स्तुमम् ॥१॥
महत् सत्यं महद् धविर् उशना काव्यो महान् ।
देवानाम् उशनां प्रातं हृदयानि महाचरा ॥२॥

अहं सत्येन सयुजा चराम्य् अहं देवीम् अनुमतिं प्र वेद ।
इन्द्रो देवानां हृदयं यो [अ]स्तु सध्रीचीनं यो मनो [अ]स्तूमम् ॥३॥
त्वष्टा वायुः कश्यप इन्द्रो अग्निर् मनसा त्वायन् हविषस् पदेन ।
अचिन्वन् शक्रो? रजसि प्रविष्टं सध्रीचीनं यो मनो [अ]स्तूमम् ॥४॥
येनेमे द्यावापृथिवी अतः कर्तुर? येनाभव[द् अ]न्तरिक्षं स्वर् यत् ।
मनसा विद्वान् हविषा जुहोमि सध्रीचीनं यो मनो [अ]स्तूमम् ॥५॥
द्यावापृथिवी हृदयं समूचथी? येनेदं त्वष्टा व्याकृणोतु धीरः ।
तस्योशाना क्रतुभिस् संविदानश् चित्तं विवेद मनसि प्रविष्टम् ॥६॥
चित्तं चैतद् आकूतिश् च येन देवा विपेहिरे ।
एतत् सत्यस्य श्रद्धया ऋषयस् सत जुहति ॥७॥ ॥ऋ°१॥

ऋ १०.८४.१–७ शौ ४.३१.१–७ — ४.१२

तैब्रा २.४.१.१० । 'शौ हृषिता- (सो (हृषितासो वा) मरुत्वः। (हृषितासः तैब्रा दधता
त्वया मन्यो सरथम् आ रुजन्त हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वन् ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना उप प्र यन्ति नरो अग्निरूपाः ॥१॥
अग्निर् इव मन्यो त्विष सासहस्व सेनानीर् नस् सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥
सहस्व मन्यो अभिमातिम् अस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्व् आ रुरुध्रे? वशी वशं नयासा एकज त्वम् ॥३॥
एको बहूनाम् असि मन्यव् ईडितः विशंविशं युधाय सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥४॥
विजेषकृद् इन्द्र इवानवब्रवो ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तम् उत्सं यत आबभूथ ॥५॥
'ऋ शौ सहजा — आभूत्या सहसा? वज्र सायक सहो बिभर्ष्य् अभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्य् एधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥
संसृष्टं धनम् उभयं समाकृतम् अस्मभ्यं दत्तां वरुण च मन्यो ।
भियो दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजिता यन्तु परमां परावतम् ॥७॥ ॥ऋ°२॥

४.१३

शौ २.२५.१ — शं नो देवी पृश्निपर्ण्य् अशं निर्ऋतये ऽकरत् ।
उग्रा हि कण्वजम्भनी तां त्वाहार्षं सहस्वतीम् ॥१॥
शौ २ — सहमानेयम् प्रथमा पृश्निपर्ण्य् अजायत ।
तया कण्वस्य शिरश् छिनद्मि शकुनेर् इव ॥२॥
ऊर्ध्वभूतं प्राणभूतं प्रजानाम् उपतर्पणीम् ।
सर्वांस् त्वं पृश्निपर्ण्य् अतः कण्वा अनीनशः ॥३॥
समाहृतीन् मा निर् अदात? स्तीर्णगर्भ इवर्षभः ।
[अ]रायं कण्वं पाप्मानं पृश्निपर्णि सहस्वति ॥४॥
शौ ४,५ । 'शौ ४' अनुष्टुब्विधि — त्वम् अग्ने पृश्निपर्ण्य् अग्निर् इव पृन्धि? ।
कण्वा जीवितयोपनीर् गिरिम् एना [आ] वेशय ।
'शौ ५' गच्छन्ति — तमांसि यत्र गच्छन्त्? तत् पापीर् अप पातय ॥५॥
शौ ३ — [अ]रायम् असृक्पावानं यश् च स्फातिं जिहीर्षति ।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्वति ॥६॥
या नो गवान् या नो गृहान् या च स्फातिम् उपाहरन् ।
उग्रे पृश्निपर्णि त्वं तां कण्वाम् आ नाशयेतः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

४.१४

यस्मिन्न् ¿आसीस्तिहित इदं तरुक्ष्यो वेशुर् वेहलं तेजनं च ।
¿मौनिर्जनिश्री अनवेहि श्रृण्वम् अयं तातुमपतहितु प्रहित? ॥१॥
मस्थि भित्त्वा यदि मज्जः ¿पापाय यदि वा सरितः पुरुषं निकामे? ।
उपी गव्यूतिम् अन्व् एष्य् अर्वाङ् पश्चाद् रश्मीन् उद् धनत् सूर्यस्य ॥२॥
मातरिश्वन् पवमानास्व् अयं सूर्यभ्राजन् तन्वां हरीकः ।
अश्वो गन्धात् पुंसः प्रत्र् अवस्व वि मुच्यस्व यो ऽस्य मासे ऽत्र ॥३॥

प्रत्य् अवस्व तान् अन्व् एष्य् अर्वाङ् तांस् ते विश्व वसुधाय धीर्वे ।
इमास् स्वसारो अयम् इत् पिता येयं ते मातेमम् एहि बन्धुम् ॥४॥
अमित्रैर् अस्त्या? यदि वा सुमित्रैर् देवैर् वा देवी प्रहितावसृष्टा ।
¿यद्यान्ग्रगं पुरुषे जहाति शृङ्गो शिखरस् सं गृभाम् इतः? ॥५॥
सिचासि सत्यो यदि वास्य् अग्ने यदि वास्य् असितः? पुरुषस्य मांसे ।
¿इषूकृ पाशान् उपसृज्य मुञ्चाभि शल्यः कृणुतां आयिमाय ॥६॥
¿हस्ताभ्यस्तं शमयो श्रीयमाणो यद्विद्वातच्यां वीरुधां बलेन ।
¿अद्भिः प्रापन्त स्याम् सत्यत्का कोशे जमीनां निहतं श् मेसा ॥७॥
¿यद्विरात्रे यद्विशास शल्यस्य परिधिः इतः ।
¿एतस् त्वाम् अद्य देवयुम् आस्थानाद् उत्थापयामसि? ॥८॥ ॥ऋ°२॥

४.१५

शौ ४.१२.१ — सं [ते] मज्जा मज्ज्ञा भवतु सम् उ ते परुषा परुः ।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं सं अस्थ्य् अपि रोहतु ॥१॥
'शौ ४' — मज्जा मज्ज्ञा सं धीयताम् अस्थ्नास्थि वि रोहतु ।
'शौ ४' — स्नाव ते सं दधमः स्नाव्ना चर्मणा चर्म रोहतु ॥२॥
शौ ५ — लोम लोम्ना सं धीयतां त्वचा सं कल्पया त्वचम् ।
शौ ४ — असृक् ते [अ]स्ना रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥३॥
शौ १ 'रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी । रोहिण्यसि रोहिण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहिणी — रोहिण्य् असि रोहिण्य् अस्थ्नश् शीर्णस्य रोहिणी ।
¿रोहिणी रोहिण्याम् अहं आतासि? रोहिण्य् अस्य् ओषधे ॥४॥
शौ २ । 'शौ रेष्टं' — यद् उ शीर्णं यद् उ द्युत्तम् अस्थि पेष्टं? त आत्मनः ।
धाता तत् सर्वं कल्पयात् सं दधत् परुषा परुः ॥५॥
¿यदि वज्रो विसृष्टा स्थारभा जातु पतित्वा यदि वा विरिष्टम् ।
¿वृक्षाद् वा यदि वा विभ्यसि शीर्णभूर् इति स एवं संधामि ते परुः? ॥६॥
शौ ६ — उत् तिष्ठ प्रेहि सम् उ धाहि? ते परुः सं ते धाता दधातु तन्वो विरिष्टम् ।
रथस् सुचक्रस् सुपविर् यथैति सुखस् सुनाभिः प्रति तिष्ठ एवम् ॥७॥
॥ऋ°५॥ ॥अनु°१०॥

४.१६

वै १.१४.१ — उद्यन्न् आदित्यो ग्रावान् हन्तु सूर्यो निम्रोचन् रश्मिभिर् उ हन्तु ।
तावन् नो अधि संहतम् ॥१॥
अप्सरा मूलम् अखनद् गन्धर्वः पर्य् अकर्तत् ।
तेन वो वृत्रह सूर्यो नि जघान नि सृजत? ग्रावान् ॥२॥
ऋ १.१९१.२ — ग्रावान् इन्द्र् आयती ग्रावान् हन्तु परायती ।
ग्रावान् [अ]वघ्नती हन्तु ग्रावान् पिनष्टि पिंषती ॥३॥
'ऋ ०'; 'ऋ' सर्वे साकं नि जस्यत — ग्रावाः किं वनेह वः [... ... ...] ।
ऋ ५ — प्रतिबुद्धा अभूतन प्रदोषं तस्करा इव ॥४॥
ग्रावानां मध्यतो ज्येष्ठः कनिष्ठ उत मध्यमः ।
हता वस् सर्वे ज्ञातयो हता माता हतः पिता ॥५॥
यथा येन उदके वृक्षानो निजस्यति ।
एवा वयं ग्रावान् सर्वान् साकं यत्वा नि जासयामसि ॥६॥
ऋ ४ शौ ६.५२.२ — नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नित्यम् आदित्य रश्मिभिर् ग्रावान् सर्वान् अजीजसः ॥७॥
'शौ ११.२.१०' — उद्यन् रश्मीन् आ तनुष्व ग्रावान् अभि सम् अर्दय ।
ग्रावान् त्वं पर्यमादित्य घोरया तन्वा तपः ॥८॥ ॥ऋ°१॥

४.१७

¿यावतः परश्वतो? शरोर् इवाचतक्षणम् ।
शर्कोटो नाम वा असि कुर्तस् त्वं विषवान् असि ॥१॥

शौ ७.५६.८ — य उभयेन प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ।
आस्ये च न ते विषं कुतस् ते पुच्छधाव् असत् ॥२॥
विदृप्युतदव? दानवस्य तस्य त्वं नवाद्सि? ।
तस्याग्रे अरसं विषं ततस् त्व् अपारसं? विषम् ॥३॥
शौ ६.११८.१ — [अ]रसारसं त्वाकरं यद्भ्रे यद्भ्र त्वाकरम् ।
यद्भ्रि त्वा चक्रुर् देवा अमुतासासुरम्? ॥४॥
ऋ १.१९१.१५ — [इ]यत्तकः कुषुम्भकस् तकं भिनद्म्य् अश्मना ।
ततो विषं परा सिचम् अपाचीम् अनु संवतम् ॥५॥
ऋ १४ — इमाः पद्या मयूर्यस् शाम स्वसारो अपुवः ।
तास् ते विषं वि जह्र उदकं कुम्भिनीर् इव कूपात् कुलजनीर् इव ॥६॥
वै १.९.७ — अयानां नयतीनां [विषस्य रोपुषीणाम् ।
[सर्वासाम् अग्रभं नाम वीतापतारसं विषम्] ॥७॥ ॥ऋ°३॥

४.१८

मातम् अह सपक्षिण्यां मातं तुण्डीयशाम्? उत ।
मातं युवियर्णोमांमहंग्रध्यांरक्षा? इव चातये ॥१॥
प्रचक्ता ¿प्रमारैता निर्भ्रा तन्द्रीस् तीतीयका? ।
'शौ १०.८' — तान् अङ्गिरस्याग्निना सर्वां" अप यजामहि ॥२॥
असुन्धान् नः परि पाहि रक्षोभ्य उत अङ्गिर ।
यातुधानात् किमीदिनस् तस्मान् नः पाहि अङ्गिर ॥३॥
अप्सराभ्यो गन्धर्वेभ्यो देवेभ्यो असुरेभ्यः ।
यातुधानात् किमीदिनस् तस्मान् नः पातु अङ्गिरः ॥४॥
यातुधानात् किमीदिनस् तस्मान् नः पातु अङ्गिरः अग्निर् नि[र्द]ति देवो अग्निर् निर् अरातिम् असितं यातुधानम् ।
निस् ते शत्रून् र[ह]ति देवो अग्निर् निर् अरातिम् असितं यातुधानम् ।
आ पाहि शत्रून् दुरितापग्रायांस? तान् नो यक्ष्मेभ्यः परि पाहि
अङ्गिर ॥५॥
अकर्माग्निम् अधिपाम् अस्य देवम् अन्व् आ एष्य सहसा दैव्येन ।
सहस्वान् अस् सैहसा पातु अङ्गिरो यतो अयेन पृतनाज्येषु ॥६॥
सत्यो [अ]ग्निस् सत्या आपस् सत्ये इमे द्यावापृथिवी ।
विश्वशंभु सत्यम् इदं अह्नास्माकं कृतम् अस्तु ।
यम् अबध्नाद् उशनेन्द्राय तं ते बध्नामि अङ्गिरम् ॥७॥ ॥ऋ°१॥

४.१९

ऋ १.१९१.११ — इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
¿महं गृष्य? असाव् असी पुरुषो [अ]मृतः ।
सो चिन् [नु] न मराति मा वयं मरामारे ।
अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत् ॥१॥
ऋ १० — सूर्ये विषं सं गृजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
[¿महं गृष्य? असाव् असी पुरुषो अमृतः ।
[सो चिन् नु न मराति मा वयं मरामारे ।
[अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत्] ॥२॥
ऋ १२ — त्रिस् सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पकम् अक्षन् ।
[¿महं गृष्य? असाव् असी पुरुषो अमृतः ।
[ताश् चिन् नु न मरन्ति मा वयं मरामारे ।
[अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत्] ॥३॥
¿आस्यमन्तरोढं चिरं चितारी? करम्भो [अ]रसं विषम् ।
[¿महं गृष्य? असाव् असी पुरुषो अमृतः ।
[सो चिन् नु न मराति मा वयं मरामारे ।
[अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत्] ॥४॥
'वै ३.१.१' — वार् उग्रम् अरसं विषम् अग्निश् विद्यवचर्षणिः ।
[¿महं गृष्य? असाव् असी पुरुषो अमृतः ।
[सो चिन् नु न मराति मा वयं मरामारे ।

[अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत्] ॥५॥
शकुन्तिका मे अब्रवीद् विषपुष्पं धयन्तिका ।
न रोपयति न मादयति न विषं हन्ति पूरुषम् ।
¿मह गृष्य? असाव् असी पुरुषो [अ]मृतः ।
सो चिन् [नु] न मराति मा वयं मरामारे ।
अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुलाकरत् ॥६॥
वै १.९.७ — अयानां नयतीनां [विषस्य रोपुषीणाम् ।
[सर्वासाम् अग्रभं नाम वीतापतारसं विषम्] ॥७॥ ॥ऋ°४॥

४.२०

¿मधुमती पश्येसिसयवाराय मधुमत्तरः ।
¿अपो मधुमध्यसेमंसोमयोश्रियतनेहं? ॥१॥
मधुना मा सं सृजामि मासुरेण सुराम् इव ।
'शौ ७.११.१' — वाङ् मह्यं मधुना संसृष्टवती मे मधुसंदती ॥२॥
मधु द्यौर् मधु पृथिवी मध्व् इन्द्रो मधु सूर्यः ।
स्त्रियो या अङ्किरे मधु ताभ्यो ऽहं मधुमत्तरः ॥३॥
मधुमतीर् ओषधय आपो मधुमतीर् उत ।
गावो या अङ्किरे [म]धु ताभ्यो ऽहं मधुमत्तरः ॥४॥
मधोर् जातो मधुघो वीरुधां बलवत्तमः ।
तेनाहं सर्वस्मै पुंसे कृण्वे निकरणं हविः ॥५॥
यथाश्वो बन्धनेभ्यो वडवाम् अभिधावति ।
एवा त्वम् उग्र ओषधे [म]धुं कनिक्रदतम् आ नय ॥६॥
¿अंगोनमो दिवि अवसो अंगोनमो दिवि स्तनः? ।
अन्या विविक्षमाणो अन्याः पराश्रियासन् ।
'शौ ६.१८.१' — माम् अनु प्र ते मनश् शम्यायां तम् इवानयत् ॥७॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°११॥

४.२१

¿अमन्ति त्वा तपिमातावामारसि बाहवः ।
'शौ ४.७.१' — ¿दासस्य प्रक्षीणुस्युतबइमरससं विषम्? ॥१॥
अवृन्ति त्वा कर्कटवा कृत्त्रा अधि सानुषु ।
'शौ ६.१.४',५' शौ ४.७.५' — यत्नी? अग्नि मयूद् असत् अभिखाते? न वक्षः ॥२॥
शौ ६.४६.१ — अव ज्याम् इव धन्वनश् शुष्मं तनोमि ते विष ।
¿परा रोदस्य पातय सूर्यपूर्वा शयोचसा? ॥३॥
वै ४.११.३ — सिन्धुः पश्चात् परिहितस् सूर्यस्योदयनं पुरः ।
ततो यद् अन्तरा विषं तत् सर्वं वि[ष]दूषणम् ॥४॥
मधु त्वा मधुकृत् कृणोतु पितुं त्वा पितुकृत् कृणोतु ।
ततो निवप ¿पातये रथो वाय? तिष्ठते ॥५॥
¿अपास त्वा सोमकथ्यस् तन् माम् उपरिव्यापर ।
¿उद् दैषि वधिरे खुत्र सर्वं ओषधो विषम्? ॥६॥
उर्ध्वउरक्षतस्तुरायातुरस्य? च ।
भूम्या हि अग्रथं नाम विषं वारयताद् इति विषं दूषयताद् इति ॥७॥ ॥ऋ°१॥

४.२२

¿महं वा इन्द्रमातरम् इन्द्रो माम् इन्द्रभ्रातरम् ।
¿इन्द्राविश्वतो वीरुधम् अवं विषदूषणी? ॥१॥
यत् किं चित् पतत्य् अकरद् यत् काण्डे यच् च पुष्पवत् ।
'शौ ४.८.१' — उद् एजतु प्रजापतिस् सर्वं तद् विषदूषणम् ॥२॥
वै ४.११.३ — सिन्धुः पश्चाद् वरुणस्य सूर्यस्योदयनं पुरः ।
ततो यद् अन्तरा विषं तद् वाचा दूषयामसि ॥३॥
यावत् सूर्यो ऽधिपतिर् यावच् च द्यौर् विभस्यति ।
तावद् विषस्य दूषणं वचो निर् मन्त्रयामहे ॥४॥

जिह्वा मे मधुमत्तमा जिह्वा मे मधुवादिनी ।
जिह्वे वर्चस्वती भव मम ते पुरतो विषत् ॥५॥
हा हि! कल्याणि सुभगे पृश्निपर्णि अमानुषे ।
इमं मे अद्य वीरवं दीर्घायुत्वाय सम्भव! ॥६॥
या वीरं वर्धनु पुरतो यशिन् श्रीमन्त् अभ्यम ।
ता मे विश्वस्य पृश्नीमि सविता धातमम्! ॥७॥

४.२३

प्रजापतिर् नु बधातु प्रथमम् अस्तृतं वीर्याय कम् ।
तं ते बध्नाम्य् आयुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस् त्वाभि रक्षतु ॥१॥
ऊर्ध्वस् तिष्ठतु रक्षन्न् अप्रमादम् अस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।
इन्द्र इव दस्यून् अव धू[नु]ष्व पृतन्यतस् सर्वाञ् छत्रून् वि षह-
स्वास्तृतस् [त्वाभि रक्षतु] ॥२॥
शतम् च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
यस्मिन्न् इन्द्रः पर्यच्छत् चक्षुः प्राणम् अथो बलम् अस्तृतस् [त्वा-
भि रक्षतु] ॥३॥
मणिन्न् प्रवाद् एकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्न् अस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रून् अभि तिष्ठ सर्वान् यस् त्वा पृतन्याद् अधरस् सो [अ]-
स्त्व् अस्तृतस् [त्वाभि रक्षतु] ॥४॥
घृताद् उल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् [स] सहस्रप्राणश् शतयोनिर् वयोधाः ।
शंभूश् च मयोभूश् चोर्जस्वांश् च पयस्वांश् चास्तृतस् [त्वाभि
रक्षतु] ॥५॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धा[पया]मो [... ... ...] ।
पुनस् त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वे अस्तृतस् [त्वाभि रक्षतु] ॥६॥
यथा त्वम् उत्तरो [अ]सो [अ]सपत्नस् सपत्नहा ।
सजातानाम् असो वशी तथा त्वा सविता करद् अस्तृतस् त्वाभि
रक्षतु ॥७॥

४.२४

अन्यद् व एतद् बोध्या व वाः पक्ष शोचद् वामिविरोध ।
दूर्वाविन्द व सोवरत् व ते तक्मनो अपत! ॥१॥
यद् वै ते तक्मन् सामाग्निर् उत सामासितम् ।
लोको वि अवामस्व् अनु तक्मन् पृशन्त ऐमि? ममस्तो मपात् ॥२॥
यौर् चानाद् पृथिवी च तक्मानं नाशयताम् इतः ।
पक्षप तुम्नि! नाम ते माता अद्यप्तवयु पृथवे ॥३॥
तस्माद् वेद ते नाम ;श तक्मन् नि दमो मुचः! ।
दुदूत अव यानानि प्रियानिविर्य च तम् इतो नाशयामसि अग्रना
वीर्यवता ॥४॥
यो उषि ;अन्यद् च अन्यद् वा मायुत् च तमेद् च ।
;दूर्वाविन्द व सोवरत् व ते तक्मनो अपत! ॥५॥
;विधितोप त्वि रोहतु पृथामः कलिङ्ग मर्जुत ।
;गिरि गच्छ पृथकोनो अन्येन नां न संधते! ।
दूरस् त्वम् अधि इतो यमि मा अदि मध्यमम् उत्तमम् अर्पयादि ॥६॥
इं तो नमितु ज्योतिद् अमीतो मन्तु तां पायावृथिवी मंहसः ।
मातेव वितेव रक्षतं पुत्रकं एवं अंहसः ॥७॥

४.२५

वाताज् जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस् परि ।
स नो हिरण्यजाश् शङ्खः कृशनः पात्व् अंहसः ॥१॥
हिरण्यानाम् एको ऽसि स सोमाद् अधि जज्ञिषे ।
रथेषु दर्शतस् त्वम् इषुधौ रोचनस् त्वम् ॥२॥

यो [अ]ग्रतो रोचमानां समुद्राद् अधि जज्ञिषे ।
शङ्खेन [ह]त्वा रक्षांस्य् अत्रिणो वि षहामहे ॥३॥
ये [अ]त्रिणो यातुधाना रक्षसो ये किमीदिनः ।
सर्वांस् तच् छङ्ख त्वया वयं विषूचो वि तुदामहे! ॥४॥
शङ्खेनामीवाम् अमतिं शङ्खेनोत सदान्वाः ।
शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्व् अंहसः ॥५॥
दिवि जातस् समुद्रतस् सिन्धुतस् पर्य् आभृतः ।
स नो हिरण्यजाश् शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः ॥६॥
देवानाम् अस्थि कृशनं बभूव तद् आत्मन्वच् चरत्य् अप्स्व् अन्तः ।
तं ते बध्नाम्य् आयुषे वर्चसे बलाय च कार्शनस् त्वाभि रक्षतु ॥७॥

४.२६

कन्या वार् अवायती सोमम् अ[पि] स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्य् अब्रवीद् इन्द्राय सुनवानि त्वा शक्राय सुनवानि त्वा ॥१॥
असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तम् उक्थिनम् ॥२॥
कु[वि]च् छकत् कुवित् करत् कुविन् नो वस्यसस् करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यतीर् इन्द्रेण संगमामहै ॥३॥
आ चन त्वा चिकित्सामो ऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैर् इव शनकैर् इवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥४॥
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस् ततस्योर्वराम् आद् इदं म उपोदरे ॥५॥
असौ च या न उर्वराद् इमां तन्वं परि ।
अथो ततस्य यच् छिरस् सर्वा ता रोमशा कृधि ॥६॥
खे रथस्य खे ऽनसः खे युगस्य श[त]क्रतो ।
अपालाम् इन्द्र त्रिः पूत्व्य् अकृणोस् सूर्यत्वचम् ॥७॥

४.२७

दिवस् पृष्ठे मधुपृचस् सुपर्णाः पञ्चराते भुवनस्य गोपाः ।
;मानुमावरम् मनुरत्त? उभा तेषाम् इन्द्रं वीर्यैरयन्त ॥१॥
पुरोहितः परमेष्ठी स दा आ या मि य धे म्! अस्मै कृणोद् बृहस्पतिः ।
तेन सपत्नान् मघवन् कृणुष्व क्षेमे पशून् बहुलान् वर्धयित्वा! ॥२॥
त्रैशायोद् यातु रथवाहनं ते ।
गोमायम् उपन्त ये समानास् सर्वे समया ध्रुवा भरन्त ॥३॥
अभि वर्धस्व आतृव्यान् अभि ये त्वा पृतन्यवः ।
नि शिन्धि सर्वान् धूर्वतो अमीयवो यथासमि ॥४॥
अभिवर्धम् अभिभवम् अभीवेचं महागयम् ।
विदास् त्वा सर्वा आशस्त्व् आपो दिव्याः पयस्वतीः ॥५॥
अभि वर्धस्व प्रजया यातुधानो अस्म् अनीकैः पशुभिर् भवासि ।
ब्रह्मराजन्यैर् विश्वैर् यातुधानस् शूद्रैर् अतीह! समया पृतन्यतः ॥६॥
वर्धस्व क्षेत्रैः प्रदतस्व! प्रजया वर्धस्व वीरैः पशुभिर् बहुर् भव ।
धिया स उत्कैर् यमस् त्वा पृतन्याद् आपृतम् तुभ्यं शपत! अत्याय
तिष्ठतु ॥७॥

४.२८

इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निम् ऊतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन ॥१॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन ॥२॥
अवन्तु नः पितरस् सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।

रथं न दुर्गाद् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन ॥३॥
नराशंसं वाजिनं वाजयन्न् इह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैर् ईमहे ।
रथं न दुर्गा[द् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन] ॥४॥
बृहस्पते सदम् इन् नस् [सु]गं कृधि शं योर् यत् ते मनुर्हितं तद् ईमहे ।
रथं न दुर्गा[द् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन] ॥५॥
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिर् अह्वद् ऊतये ।
रथं न दुर्गाद् वसवस् सुदानवो विश्वस्मान् नो अंहसो निष् पिपर्तन ॥६॥
देवैर् नो देव्य् अदितिर् नि पातु देवस् त्राता त्रायताम् अप्रयुच्छन् ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिस् सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः ॥७॥

४.२९

अप नस् शोशुचद् अघम् अग्ने शुशुग्ध्य् आ रयिम् ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥१॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥२॥
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश् च सूरयः ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥३॥
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥४॥
प्र यद् अग्नेः [स]हस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥५॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूर् असि ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥६॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥७॥
स नस् सिन्धुम् इव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नस् शोशुचद् अघम् ॥८॥

४.३०

देवाश् शरणकृतश् शरणा मे भवत ।
प्राच्या दिशो ऽग्निना राजाध्यक्षेण यशा भूयासम् ।
यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥१॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
दक्षिणाया दिश इन्द्रेण राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत] ॥२॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
प्रतीच्या दिशो वरुणेन राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम्] ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥३॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
उदीच्या दिशस् सोमेन राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥४॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
ध्रुवाया दिशो विष्णुना राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥५॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
ऊर्ध्वाया दिशो बृहस्पतिना राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥६॥
[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
उपमाया दिशः प्रजापतिना राजा[ध्य]क्षेण यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत ॥७॥

[देवाश् शरणकृतश् शरणा मे] भवत ।
परमाया दिशः परमेष्ठिना राजाध्यक्षेण [यशा भूयासम् ।
[यशसं मा कृणुत वाचम् अन्नादं परा द्विषन्तं शृणीत] ॥८॥
देवाश् शर[ण]कृतश् शरणा मे भवत ।
सर्वाभ्यो [दि]ग्भ्य ईशानेन राजाध्यक्षेण यशा भूयासम् ।
यशसं मा कृणुत द्विषन्तं शृणीत ॥९॥

४.३१

प्रातर् अग्निं प्रातर् इन्द्रं हवामहे प्रातर् मित्रावरुणा प्रातर् अश्विना ।
प्रातर् भगं पूषणं ब्रह्मणस् पतिं प्रातस् सोमम् उत रुद्रं हुवेम ॥१॥
प्रातर्जितं भगम् उग्रं हुवेम वयं पुत्रम् अदितेर् यो विधर्ता ।
आध्रश् चिद् यं मन्यमानस् तुरश् चि[द्] राजा चिद् यं भगं भक्षीत्य्
आह ॥२॥
भग प्रणेतर् भग सत्यराधो भगेमां धियम् उद् अवा ददन् नः ।
भग प्र णो जनय गोभिर् अश्वैर् भग प्र नृभिर् नृवन्तस् स्याम ॥३॥
उतेदानीं भगवन्तस् स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्ना[म्] ।
उतोदिता मघवन् सूर्ये वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवस् तेना वयं भगवन्तस् स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज् जोहवीमि स नो भगः पुरएता भवेह ॥५॥
समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथम् इवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥
अश्वावतीर् गोमतीर् न उषासो वीरवतीस् सदम् उच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिस् सदा नः ॥७॥

४.३२

यस् ते मन्यो ऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यद् विश्वम् आनुषक् ।
साह्याम दासम् आर्यं त्वया युजा वयं सहस्कृतेन सहसा सहीयसा ॥१॥
मन्युर् इन्द्रो मन्युर् एवास देवो मन्युर् होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युर् विश ईडते मानुषीर् याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥
अभीहि मन्यो तवसस् तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्य् आ भरा त्वं नः ॥३॥
त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजास् स्वयंभूर् भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिस् सहुरिस् सहीयान् अस्मास्व् ओजः पृतनासु धेहि ॥४॥
अभागस् सन्न् अप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर् जिहीडाहं स्वा तनूर् बलदावा न एहि ॥५॥
अयं ते अस्म्य् उप न एह्य् अर्वाङ् प्रतीचीनस् सहुरे विश्वदावन् ।
मन्यो वज्रिन्न् अभि न आ ववृत्स्व हनाव दस्यून् उत बोध्य् आपेः ॥६॥
अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा नो ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रम् उभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

४.३३

अग्नेर् मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यम् इन्धते ।
विशोविश[ः] प्रविविशिवांसम् ईमहे स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥१॥
सुजातं जातवेदसम् अग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥२॥
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यस् सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥३॥
यामन्यामन्न् उपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मन्न् आभगम् अग्निम् ईडे ।
रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥४॥
देवेभ्यो बलम् अयोतय[न् सु]रा येनासुराणाम् अयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीन् इन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥५॥

येन देवा अमृतम् अन्वविन्दन् येनौषधीर् मधुमतीर् अकृण्वन्।
येनेदं स्वर् आभरन् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥६॥
यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज् जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्य् अग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥७॥ ऋ°१०

शौ ४.२५.१,२,३,६,५,४,७

४.३४

वायो[स्] सवितुर् विदथानि मन्महे याव् आत्मन्वद् विशथो यौ च रक्षथः।
यौ विश्वस्य परि[भू] बभूव[थु]स् तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥१॥
'शौ पुरितम्
ययोस् संख्याता वरिमाणि पार्थिवा याभ्यां रजो युपितम् ? अन्तरिक्षे ।
ययोः प्रायं नानु कश् चनाशे तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥२॥
तव व्रते नि विशन्ते जनासस् त्वय्य् उदिते प्रेरते चित्रभानो ।
युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथस् तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥३॥
प्र सुमतिं सवितर् वा[य] ऊतये महस्वन्तं मत्सरं मादयेथाम् ।
अर्वाग् वामस्य प्रवता नि यच्छतस् तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥४॥
रयिं मे पोषं सवितोत वायुस् तनू दक्षम् आ सुवतां सुशेवौ ।
याव् अयक्ष्मतां महो अस्मासु धत्तं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥५॥
'शौ ओषेतु युक्तिं शिमिशी सच- [च्छ शमिषी
अपेतो वायो सविता च दुष्कृतम् अप रक्षांसि शिमिदां सेधतं परा ।
सं ह्य् ऊर्जया सृजथस् सं बलेन तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥६॥
उप श्रेष्ठा न आशिषो देवयोर् धामन्न् अस्थिरन् ।
स्तौमि देवं सवितारं च वायुं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥७॥ ऋ°२०

शौ ४.२७.१-७

४.३५

'शौ वाजसाते अवन्तु
मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाता अवन्तु ।
आशून् इव सुयमान् अह्न ऊतये ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥१॥
उत्सम् अक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसम् ओषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄन् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥२॥
पयो धेनूनां रसम् ओषधीनां जवम् अर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्ति मरुतस् स्योनास् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥३॥
अपस् समुद्राद् दिवम् उद् वहन्ति दिवस् पृथिवीम् अभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिर् ईशाना मरुतश् चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये [अद्भिर्] ईशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥५॥
यदीद् इदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृग् आर ।
यूयम् ईशिध्वे वसवस् तस्य निष्कृतेस् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥६॥
'शौ विदितं अनत्व वीडितं, ईवितं
तिग्मम् अनीकं विततं ? सहस्वन् मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम् ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥७॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°७॥

शौ ४.२६.१,२,४,५,६,३,७

४.३६

'शौ अमन्वेयाम् लायन्नु अमये- [याम्
मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये [अ]प्रथेताम् अमिता योजनानि ।
प्रतिष्ठे ह्य् अभवतं वसूनां ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥१॥
'शौ ओषेतु भूरिते मह्वे लायन्नु [प्रविदे
प्रतिष्ठे ह्य् अभवतं वसूनां प्रवृद्धे देवी सुभगे उरूची ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥२॥
ये स्रोत्या विभृथो ये मनुष्यान् ये अमृतं विभृथो ये हवींषि ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥३॥
ये उस्रिया विभृथो ये वनस्पतीन् ययोर् वां विश्वा भुवनान्य् अन्तः ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥४॥
ये कीलालेन तर्पयथो ये घृते[न] याभ्यां ऋते किं चन शक्नुवन्ति ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥५॥
असंतापे सुतपसा हुवे वाम् उर्वी गभीरे कविभिर् नमस्ये ।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥६॥

येन मेदम् अभिशोचति येन वा येन छन्नं पौरुषेयं न दैव्यम् ।
स्तौमि द्यावापृथिवी [नाथितो] जोहवीमि ते नो मुञ्चतम् अंहसः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

शौ ४.२८.१,३,५,४,२,६,७

४.३७

भवाशर्वौ मन्वे वां तस्य वित्तं ययोर् वाम् यद् इदं वितिष्ठते ।
याव् अस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस् तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥१॥
[य]योर् अभ्यध्व उत यद् दूरे चिद् यौ विदिताव् इषुभृताम् असिष्ठौ ।
भवाशर्वौ भवतं मे स्योनौ तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥२॥
ययोर् वधान् नापपद्यते किं चनान्तर् देवेषूत मानुषेषु ।
भवाशर्वौ भवतं मे स्योनौ तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥३॥
याव् आरेभाथे बहु साकम् अग्नौ प्र चेद् अस्राष्टम् अभिभां जनेषु ।
भवाशर्वौ भवतं मे स्योनौ तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥४॥
सहस्राक्षौ वृत्रहणा हुवे वां दूरेहेती स्तुवन्न् एम्य् उग्रौ ।
भवाशर्वौ भवतं मे स्योनौ तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥५॥
शौ यः कृत्याकृन्मूलकृद्यातुधानो [नि तस्मिन्धत्तं वज्रमुग्रौ
यः कृत्याकृद् यातुधानो महतो ? नि तस्मिन् धत्तम् ? अधि वज्रम् उग्रौ ।
भवाशर्वौ भवतं मे स्योनौ तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥६॥
अधि नो ब्रूतं पृतनासूग्रौ सं वज्रेण सृजतं यः किमीदी ।
स्तौमि भवाशर्वौ नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

शौ ४.२९.१,२,३,५,४,६,७
तै. ४.७.१५.२ मै ३.१६.५ च [११.१५

४.३८

मन्वे वां मित्रावरुणाव् ऋतावृधौ सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे ।
प्र सत्यावानम् अवथो भरेषु तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥१॥
सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नुदेथे प्र सत्यावानम् अवथो भरेषु ।
यौ गच्छथो नृचक्षसा बभ्रुणा सुतं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥२॥
याव् अङ्गिरसम् अ[व]थो याव् अगस्तिं मित्रावरुणा ज[मदग्नि]म् अत्रिम् ।
यौ कश्यपम् अ[व]थो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥३॥
यौ भरद्वाजम् अवथो [यौ] वध्र्यश्वं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम् ।
यौ कक्षीवन्तम् अवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥४॥
यौ श्यावाश्वम् अवथो यौ गविष्ठिरं मित्रावरुणा पु[रु]मीढम् अत्रिम् ।
यौ विमदम् अवथस् सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥५॥
यौ मेधातिथिम् अवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणा उशनां काव्यं यौ ।
यौ मुद्गलम् अवथो गोतमं च तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥६॥
ययो रथस् सत्यवर्त्मर्जुरश्मिर् मिथुया चरन्तम् अभियाति दूषयन् ।
स्तौमि मित्रावरुणा नाथितो जोहवीमि तौ नो मुञ्चतम् अंहसः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

शौ ४.२४.१,३,२,४,५,६,७

४.३९

इन्द्रस्य मन्वे शश्वद् यस्य मन्विरे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषस् सुकृतो हवम् एयात् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥१॥
य उग्रीणाम् उग्रबाहुर् [ययुर्] यो दानवानां बलम् आरुरोज ।
यस्याध्वरस् सप्तहोता मधुश्चुत् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥२॥
'शौ उग्रीणाम्
यं वर्धयन्ति वर्धमिश् स्वर्विद् यस्य प्रवाणः प्रवदन्ति शुष्मम् ।
येन जितास् सिन्धवो येन गावस् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥३॥
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवस् स्वर्विदे ।
'शौ यस्मै शुक्रः पवते
यस्मिञ् छुक्रः प्रवर्तते ब्रह्मशुम्भितस् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥४॥
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्न् अर्कश् शिश्रिये [य]स्मिन्न् ओजस् स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥५॥
य उग्रस्य कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रो ऽभ्यायतादिं स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥६॥
यस् संग्रामान् नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।

स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्व् अंहसः ॥७॥ ॥ऋ°४॥

४.४०

शुनं वत्सान् उपाकरोमि शुनं वध्नामि तन्त्याम् ।
आमयवं ब्रह्मणा हविस् तस्मिन् आगर कश्यपः ॥१॥
धातुं वत्सम् उपानयत् पात्रे गां दुदुहन्न् अमन्थीत् ।
अरिष्टं ब्रह्मभ्यो हविश् शिवं कृणोतु कश्यपः ॥२॥
त्रयस् तिष्ठन्ति सुकृतस्य लोके त्रयो ऽतीकाशा[स्] त्रीणि शीर्षाण्य् एषाम्।
त्रयस् तिष्ठन्ति प्रगृह्य कुम्भं यथा हविः कश्यपो यताते ॥३॥
सत्यात् संभूतो वहति तण्डुलान् क्षीर आयवम् ।
हविर् ब्रह्मभ्य आमयवं नि धेद् एतु कश्यपः ॥४॥
ऋतुमुखे चन्द्र आगाः पात्रम् ओदनम् उद् धरात् ।
प्राश्नन्तु ब्रह्मणो हविर् यथा वेदेन कश्यपः ॥५॥
ये भूतान्य् असृजन्त ये भूतान्य् अकल्पयन् ।
सर्वस्य विद्वान् अध्वर्युर् यज्ञो भवति कश्यपः ॥६॥
शिवा आपो वत्सेभ्यश् शिवा भवन्त्व् ओषधीः ।
वातो वत्सेभ्यः कश्यपश् शिवं तपतु सूर्यः ॥७॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°८॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां चतुर्थः काण्डः समाप्तः ॥

५.१

नमः पिशङ्गबाहवे सिन्धुजाताया उग्रायै ।

यो अस्यै नम इद् अकरद् अरेद् अस्य गृहाद् अयत् ॥१॥
अपेहि नो गृहेभ्यो [अ]पेहि वत्सतन्त्याः ।
आत्मानम् अत्र ¡रोविन् सपरोहम् ? अहा अहा ।
¡[......] हाम्ब सुतले [अ]पो दै ता म शंतम ? ॥२॥
पुत्रो यस् ते पृश्निबाहुर् तम् उ त्वं शासनं कृधि ।
अथो दुहितरं नग्नीन् अथो त्वं शासना भव ॥३॥
भूतपतिर् निर् अजत्व् इन्द्रश् चेतस् सदान्वाः ।
गृहस्य बुध्न आसीनास् ता वज्रेणाधि तिष्ठतु ॥४॥
अपेतेतस् सदान्वा अहिंसन्तीर् इमं गृहम् ।
धेनुर् यात्र स्याम्य् अनस्य् अनड्वान् वेहया सह ॥५॥
यस् सहमानश् चरसि सासहान इवर्षभः ।
सदान्वाघ्नं त्वा वयं जैत्रायाच्छावदामसि ॥६॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वा रक्षांसि सहमानास्य् ओषधे ॥७॥
त्वं व्याघ्रान् सहसे त्वं स्पर्धाः ? उभयादतः ।
सहस्व वेतः कृण्वाना मधु त्वं सहमौषधे ॥८॥ ॥ऋ°१॥

५.२

सा शौ ५.१.१ आप शौ ४.१.१ [शौ ४.१.२
शौ ४.१.१
[इ]यं दिवे शतुष यस्य ज्ञे प्रथमाय जनुषे भूमनेष्ठाः ।
तस्मा एतं सुरुचं ह्वारम् अह्यं घर्मं श्रीणन्तु प्रथमस्य धासेः ॥१॥
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतस् सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास् सतश् च योनिम् असतश् च वि वः ॥२॥

प्र यो जज्ञे विद्वान् अस्य बन्धुं विश्वा देवा[नां] जनिमा विवक्ति ।
[ब्रह्म] ब्रह्मण उज् जभार मध्यान् नीचाद् उच्चा स्वधयाभि प्र तस्थौ ॥३॥
महान् मही अस्कभायद् वि जातो द्यां द्विता पार्थिवं च रजः ।
स बुध्न्याद् आष्ट्र जनुषाभ्य् अग्नं बृहस्पतिर् देवता तस्य सम्राट् ॥४॥
नूनं त[द्]स्य काव्यो हिनोति महो देवस्य पूर्वस्य मही ।
एष जज्ञे बहुभिस् साकम् इत्था पूर्वोद् अ रा ह वि तु र अ स तुः ? ॥५॥
स हि दिवस् स हि पृथिव्या ऋतेष्ठा ? मही क्षामन् आजसी वि ष्कभायति ।
अहर् यद् शुक्रं ज्योतिषो जनिष्टाथा द्युमन्तो वि वसन्त्व् अत्रिः ॥६॥
यथा वाथर्वा पितरं विश्वदेवं बृहस्पतिर् ¡नमसाव च गच्छात् ? ।
त्वं विश्वस्य जनुषो ? धातास्य् अग्ने कविर् देवी मदमायुम् स्वधावान् ॥७॥
मूर्धा यो अग्रम् अभ्यर्त्य् ओजसा बृहस्पतिम् आ वि वासन्ति देवाः ।
भिनद् वलं विमृधो दर्दरीति कनिक्रदति गाः ? स्वर् अपो जिगाय ॥८॥ ॥ऋ°१॥

५.३

उद् अपप्तद् असौ सूर्यः पुरुदृष्टो अदृष्टहा ।
उदापन् रश्मिभिर् हन्तु तायन् रसां अघः ॥१॥
¡अन् अम्रोचत् ? असौ सूर्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
निम्रोचन् रश्मिभिर् हन्तु निम्रोचन् रसां अघः ॥२॥
ये च दृष्टा ये चादृष्टा उत ये अविष्यवः ? ।
तेषां वो अग्रभं नाम सर्वे साकं नि जस्यत ॥३॥
अदृष्टहननी वीरुद् असि भोज्या विषासहिः ।
व्युषाकपि त्वं अहिंसे ¡सादृशां जातसोहि ? ॥४॥
अहि ज्येष्ठम् अदृष्टानां सर्पाणां मोचयारिणाम् ।
किमीदीनां सर्वजातानि ¡यीभ्जही वषयं भूमाः ? ॥५॥
यश् च तोदो यश् च सर्पो यश् चादृष्टश् च यो वृषा ।
व्युषाकपि त्वं तान् अभीर् वृक्षं परशुमान् इव ॥६॥
सं वृश्चेतात् व्युषाकपि वृक्षं परशुमान् इव ।
किमीदीनां सर्वजातानि संदहाग्निर् इवोलपम् ॥७॥
मेधिष्ठा अग्निर् अखिलस् त्विषीमान् किमीदीनां जातानि वृतन्यतु सर्वा ।
बृहस्पतिर् मेदिनी जातवेदा अदृष्टान् हन्तु इषदेव सावम् ? ॥८॥ ॥ऋ°१॥

५.४

शौ १०.२१८.१ शौ ५.१.१ तै ४. [७.१४.१
ममाग्ने वर्चो विहवेष्व् अस्तु वयं त्वेन्धानास् तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रस् त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥
अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषां त्वं नो गोपाः परि पाहि विश्वतः ।
अपाञ्चो यन्तु निवता दुरस्यवो अमैषां चित्तं बहुधा वि नश्यतु ॥२॥
मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुर् अग्निः ।
ममान्तरिक्षम् उरुलोकम् अस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥३॥
मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिस् सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच् चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु माम् इह ॥४॥
मह्यं देवा द्रविणम् आ यजन्तां ममाशीर् अस्तु मम देवहूतिः ।
दैवा होतारस् सनिषन् न एतद् अरिष्टास् स्याम तन्वा सुवीराः ॥५॥
देवीष् षड् उर्वीर् उरु नस् कराथ विश्वे देवास इह मादयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा धनेन मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥६॥
उरुव्यचा नो महिषश् शर्म यच्छद् अस्मिन् हवे ? पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृडयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥७॥
धाता विधर्ता भुवनस्य यस् पतिस् सविता देवो [अ]भिमातिषाहः ।
बृहस्पतिर् इन्द्राग्नी अश्विनोभा देवाः पान्तु यजमानं निर्ऋथा[त्] ॥८॥
इहार्वाग्व्यम् अति हव इन्द्रं जैत्राय जेतवे ।
अस्माकम् अस्तु वर्चो यतः कृणोतु वीर्यम् ॥९॥

[illegible] इन्द्रम् [illegible]! [illegible] यो [illegible] यः ।
इमं [illegible] ॥१०॥
[illegible] इन्द्र [illegible] इन्द्रम् ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१४॥

५.५

पृथिवी वशा साग्निं गर्भं दधे ।
सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा ॥१॥
अन्तरिक्षं वशा सा वायुं गर्भं दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥२॥
द्यौर् वशा सा सूर्यं गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥३॥
ऋग् वशा सा साम गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥४॥
दिग् वशा सा [illegible] गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥५॥
[illegible] वशा सा [illegible] गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥६॥
वाग् वशा सा परमेष्ठिनं गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥७॥
[illegible] वशा सा [illegible] गर्भं [दधे ।
[सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा] ॥८॥
समा वशा सा संवत्सरं गर्भं दधे ।
सो मां पाहि तस्मै ते विधेयं तस्मै ते नमस् तस्मै ते स्वाहा ॥९॥

५.६

[illegible] ।
ते अस्मै सर्वे घृतम् आ तपन्त्व् ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्तः ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible]! ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible]! ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।

देवं देवत्रा सूर्यम् अगन्म ज्योतिर् उत्तमम् ॥९॥
आरोकोभ्राज× पतर× पतङ्गस् स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः ।
ते अस्मै सर्वे घृतम् आ तपन्त्व् ऊर्जं दुहाना अनपस्फुरन्तः ॥१०॥

५.७

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीस् सम् अभ्राणि वातजूतानि यन्ति ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आप× पृथिवीं तर्पयन्तु ॥१॥
सम् ईक्षयद्? विष्वग्वातो नभांस्य् अपां वेगास× पृथग् उत् पतन्तु ।
वर्षस्य सर्गा महयन्तु भूमिं पृथग् आयन्ताम् ओषधयो विश्वरूपाः ॥२॥
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा सम् अङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलम् ऐतु वर्षम् आशारैषी कृशगुर् एत्व् अस्तम् ॥३॥
उद् ईरयत मरुतस् समुद्रतस् त्वेषा अर्का नभ उत् पातयन्तु ।
प्र वर्षयन्ति तविषास् सुदानवो अपां रसैर् ओषधी[स्] सचन्ताम् ॥४॥
गणास् त्वोप गायन्तु मारुता× पर्जन्य घोषिण× पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतस् सृजन्तु पृथिवीम् अनु ॥५॥
सम् भवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
वाता वर्षस्य वर्षत× प्र वहन्तु पृथिवीम् अनु ॥६॥
वातो विद्युद् अभ्रं वर्षं सम् भवन्तु सुदानवः ।
प्र प्यायस्व प्र विसृष्य? सं भूमिं पयसा सृज ॥७॥
अपाम् अग्निस् तनूभिस् संविदानो य ओ[ष]धीनाम् अधिपो बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदा× प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस् परि ॥८॥
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भि× प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीम् अनु ॥९॥
प्रजापतिस् सलिलाद् आ समुद्राद् आप ईरयन्न् उदधिम् अर्दयाति ।
प्र प्यायतां वृष्णो [अ]श्वस्य रेतो अर्वाङ् एतेन स्तनयित्नुनेहि ।
अपो निषिञ्चन्न् असुर× पिता नः ॥१०॥
श्वसन्तु गर्गरा अपाम् अव नीचीर् अपस् एज ।
वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु ॥११॥
संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१२॥
उपप्रवद मण्डूकि वर्षम् आ वद तादुरि ।
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व विगृह्य चतुर× पदः ॥१३॥
महान्तं कोशम् उद् अचाभि षिञ्च सविद्युतं भवतु वातु वातः ।
तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा आनन्दिनीर् ओषधयो भवन्तु ॥१४॥

५.८

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावद् वा सप्त सिन्धवो वितष्ठुः ।
वाचं विषस्य दूषणीं ताम् इतो निर् अवादिषम् ॥१॥
सुपर्णस् त्वा गरुत्मान् विष प्रथमम् आवयत् ।
नारोपयो नामादय उतास्मा अभव× पितुः ॥२॥
[यां वास्तृतन्? पञ्चाङ्गुलिर् वक्रात् चिद् अधि धन्वनः ।
अपस्कम्भस्य शल्याद् निर् अवोचम् अहं विषम् ॥३॥
शल्याद् विषं निर् [अ]वोचम् प्राञ्जनात् पर्णधेर् उत ।
अपाष्ठात् शृङ्गात् कुल्मलान् निर् [अ]वोचम् अहं विषम् ॥४॥
अरसस् त इषो शल्यो अथो ते [अ]रसं विषम् ।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष् टे अरसारसम् ॥५॥
ये अपीषन् ये अदिहन् य आस्यन् ये अवासृजन् ।
सर्वे ते वध्रयस् सन्तु वध्रिर् विषगिरि× कृतः ॥६॥
वध्रयस् ते खनितारो वध्रि[स्] त्वम् असि ओषधे ।
वध्रिस् स पर्वतो गिरिर् [य]तो जातम् इदं विषम् ॥७॥
वार् इदं वारयातै वरणावत्या? अधिभृतम् ।

[illegible] विषम् ॥८॥

५.९

[illegible] ।
[illegible] विषं तेन [illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible]! ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible]! ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥८॥

५.१०

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible]! ॥६॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible]! ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]! ॥१०॥

५.११

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥

अथर्वाणो अङ्गिरसो विश्वे देवा ऋतावृधः ।
[illegible]न्तु अभि मे हवम् अस्मै पुत्राय वेत्तवे ॥४॥
इन्द्राणी वरुणानी सिनीवाल्य् उतादितिः ।
[illegible]! पुत्रम् मह्यम् अनु देष्टु ते ॥५॥
पुत्रं ते मित्रा[व]रुणा पुत्रं देवी सरस्वती ।
पुत्रं ते अश्विनौ देवा आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥६॥
येषां च नाम जग्रभ येषां च नोप सस्मार ।
देवास् ते सर्वे संगत्य पुत्रं जैवातृकं ददत्? ॥७॥
आन्त्रमर्गिं निर् मिमीथ स त्वत् परि आयताम् ।
त्वं वीरम् उदरेव त्वं बिभर्षि योन्याम् ॥८॥
पृथिवी सह यद्भिर् नक्षत्रैस् सह सूर्यः ।
वात× पतत्रिभिस् सह पुत्रम् मह्यम् अनु देष्टु ते ॥९॥

५.१२

वृषा जज्ञे मघवानो [अ]पं मधुमतीभ्यः ।
[अ]सौ ते योनिम् आ शयां वद दश× पुरुषो भुवन् ॥१॥
योनिं गच्छ मघवान योन्यां पुरुषो भव ।
ततः पुनर् निर् आ यासि शीर्ष्णा श्रोणीभ्याम् नोनुवत् ॥२॥
[illegible] इषुधेर् इव कृष्वन् पुत्रोर्? यथा प्रियम् ।
श्रोण्योर् [illegible]? दशमास्य आ यासि ॥३॥
स प्रत्यङ् प्रत्य् आ वर्ता? एते संवत्सरे पुनः ।
यथा जीवासि भद्रयासि मर्तो महान् भवेः ॥४॥
[illegible] ते योनिम् अवीवरपं सुप्रजास्त्वाय मद्रुया ।
तथा सिञ्चस्व वृष्ण्यं दशमास्यम् [illegible] ॥५॥
गर्भस् ते योनिम् आ शायि गर्भो जराय्व् आ शयाम् ।
कुमार इत्वम् आ शयां त्वष्टा कल्पतो यथापदः ॥६॥
यथा राजन् मघवान तं वीडं विरोहयसि ।
एवा त्वम् अस्या निर् भिन्धि कुमारं योन्या अधि ॥७॥
गर्भाधानो मघवानो गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश् चाग्निश् च गर्भं धाता दधातु ते ॥८॥

५.१३

शिवस् शिवाभिर् [illegible]? सं गच्छन्त तन्वा जातवेदः ।
[illegible] सुमना× पुरस्ताद् गृहेभ्यस् त्वा [illegible] निर् वपामि ॥१॥
पृथिव्यां धर्मस् स्तभितो अन्तरिक्षे दिवि श्रितः ।
धीर् एवं सर्वत× पातु यम् त्वा पचन्त् ओदन ॥२॥
ये समुद्रम् ऐरयन् ये च सिन्धुं य अन्तरिक्षं पृथिवीम् उत द्याम् ।
ये वातेन सरथं यान्ति देवास् तान् आप्नोत्व् ओदनः पाच्यमानः! ॥३॥
कृष्णा कुम्भी नि धीयतां साक्षा पच्यत ओदनः ।
अंशुं सोमवन्तं मन्थे वैश्वदेवम् इदं हविः ॥४॥
उलूखले मुसले यच् च शूर्पे भूम्याम् [illegible] यदि वासि संज्ञा? ।
या विप्रुषो या विनिर्णेजनानि सर्वं तत् ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥५॥
ऊर्ज× प्रेहि मार [illegible]? अन्तरम् ।
रक्षांसि सर्वा तीर्त्वा यथा रोह दिवं त्वम् ॥६॥
तुरो अो [अ]तुरो भव सं पीमिद् पीयताम् अयम् ।
सं पृथिव्या सम् अग्निना सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७॥
सं देवानाम् अयक्ष? आ च श्रियम् सुकृतस्य लोके ।
तृतीये नाके अधि रोचने दिवः ॥८॥
मृत्यो× पदं योपयन्तो अम् एत ।
द्राघीय आयु× प्रतरं दधानाः [illegible] ॥९॥

५.१४

भूत्या मुखम् असि सत्यस्य रश्मिर् अथैकभोको दिवं गच्छ ।
उच् छ्रियेतां हविष्कृती साधु देवान् सपर्यताम् अग्नीषम्! अप सुस्तु! ॥१॥
आपो देवीर् यज्ञकृतः शुक्रा देवीर् हविष्कृतः ।
एकपात्र ओदनो अग्निष्टोमेन संयतः ॥२॥
गायत्री हव्यवाड् असि देवताग्निस् सम् इध्यसे ।
सहस्रधारं सुकृतस्य लोके घृतपृष्ठम् अमस्तुः! ॥३॥
तपश् च सत्यं चौदनं प्राश्नीतां परमेष्ठिनौ ।
ताभ्यां वैश्वानराभूतं! तेनाधिपतिर् उच्यसे ॥४॥
उत्तमायोद्यायोः प्राणेन सम्यतः ।
अपवृप्राणिम अञ्जद्यु? ॥५॥
अप क्षीय दुरितम् अहम् अप रक्षांसि तेजसा ।
देवेभ्यो हव्यम् अर्चतं स्वयस्वान् सुमयान् स हि ॥६॥
उत्थैस् सुपर्णो दिवम् उत् पतासीन्द्रियं देवेष्व् आच्छन्न ऋषिभ्यः ।
परि देहि मां शुक्रं शुक्रेण भक्ष्यं पिबन्तु सुकृतो मधु ॥७॥
यया देवास् तपनं यज्ञम् आकुर् यान् ओदनो ह्रियते! याय् च पृष्ठः?।
आदित्या अङ्गिरसस् स्वर्गम् इमं प्राशनन्न् ऋतुभिर् निषद्य ॥८॥ ॥ऋ॰४॥

५.१५

पीयूषस्य क्षीरस्य सर्पिषो अन्नस्याग्रं सं भराम्य् एतत् ।
यथामागं! [हुतादो अन्ये अ]हुतादो अन्ये वैश्वदेवं हविर् उभये सं चरन्ति ॥१॥
ते सम्यञ्च इह मादयन्ताम् इषम् ऊर्जं यजमाना यम् इच्छत! ।
मो स्म मयो मा शर्वो वधीद् ग्राम्यान् वत्सान् कोमश्चयो वदं न! ॥२॥
ये जाता ये च गर्भेष्व् अन्तर् अरिष्टा अद्येस् तन्वम् मा रक्षन्ताम् ।
इमा गावो विजावतीः प्रजावतीस् अग्नेषु संमनसो भवन्तु ॥३॥
आ समीमान् अपि पृच्छन्ति देवास् सांवत्सरायुषा मेदसा सं सृजामि ।
प्र पीपन्तां स्त्रियो गावो विष्णुर् यो योनिम् अनुचरस्यपाति ॥४॥
प्रति गृह्णात्व ऋषभस्य रेत उक्षानग्नाश् चरति धाविताम् अनु ।
प्रेरम्! अग्रं न हिनस्ति किं चन यथाकामं कृणुत सोम्यं मधु ॥५॥
साधुर् यज्ञस् स हुतादो नयतु रायस् पोषा यजमानं सचन्ताम् ।
नि ते प्रयां पृथिवीं यन्तु सिन्धवो यद् ओषधयो निहितां प्रेक्षताम् इराम् ॥६॥
पर्जन्यस्य मरुतो वृषिवंसान्! वात अग्रं सस्यं पच्यतां मोदतां जगद् ।
सप्तर्षयस् सप्त स्वरांस् एषां सप्त क्षयो! ऽभिनो ॥७॥
पञ्च वाजाः प्राणो व्यानो मन आकूतिर् वाग् देवी ।
देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥८॥
ये च दृष्टा ये चादृष्टाः क्रिमयः किङ्कपाद्! च ये ।
तेषां शिरांस्य् असिना छिनद्मि यथा सांवत्सरायुषा मेदसा संसृजामि ॥९॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰१॥

५.१६

यौश् चेमं यज्ञं पृथिवी च सं दुहातां मातरिश्वा पवमानः पुरस्तात् ।
त्वष्टा वायुस् सह सोमेन वात इमं सं दुहुर् अन्नपस्फुरन्तः ॥१॥
यज्ञं तपाम्य् अमृतस्य धारया देवेभ्यो हव्यं परिदां सवित्रे ।
शुक्रं देवाय् ऋतम् अदन्तु हव्यम् आसन् जुह्वानम् अमृतस्य योनौ ॥२॥
उद् वासयाग्नेय् ऋतम् अकर्म हव्यम् आ रोह पृष्ठम् अमृतस्य धाम ।
वानस्पत्या उप बर्हिस् स्तृणीत मध्या सम् अङ्क्त्य घृतवत् कराय ॥३॥
योध्नी वत्समरा! शमयामि तं च ऊर्जं गव्यूतिं सम् अनन्स्य एताम् ।
तं तं कौ! क्षीरम् अधिपं नः कृणोम्य् अंशां तपन्तो! पीयूषम् एतत् ॥४॥
इष्टानां पीता उत पित्र्याणां पयो धयन्त्य् अहृणीयमानाः ।

ऋतुभिस् सस्यम् उत कल्पन्ताम् अस्तु यो गोपा रक्षतु वायुर् एत[म्] ॥५॥
पिबत घृतं यत! धारयेद् गुहा यतं निहितं मानवेषु ।
विश्वे देवा वैश्वदेवस्याग्नौ यज्ञानां हविषो मादयध्वम् ॥६॥
यो देवानाम् असि श्रेष्ठो रुद्रस् तन्तिचरो वृषा ।
अरिष्टा अस्माकं वीरा मैतद्! अस्तु हुतं तव ॥७॥
पूर्णम् अहं करीषिणं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
विश्वेभिर् अग्ने देवैर् इमं गोष्ठोमं वद! ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

५.१७

देवैनसाद् उन्मदितं क्षेत्रियाच् छपथाद् उत ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा उन्मत्तं रक्षसस् परि ॥१॥
मुनिं मदन्तं मर्याणि याकृतो रक्षांस्यनुउत्कृत्निकृती? ।
अतस् तं नो अधि याहि याज्ञिन्द्र इन्द्रेण मेदी भूत्वे रथाय ॥२॥
यथाग्ने देवा ऋभवो मनीषिणो [अमु]म् उन्मत्तम् अमुञ्चन्न् आर एनसः ।
एव ते शक्रो अभयं कृणोतु मुञ्चन्त्वेनसो वि नयामि रक्षः ॥३॥
यथा गावश् च भूम्यां पुरुषाभिरक्ष्य? मोक्षतः ।
पयोम्नात्तस्य ते मुने स गृह्णातु पृथिवीम् अनु ॥४॥
मुनिं दाधार पृथिवी मुनिं द्यौर् अभि रक्षति ।
मुनिं हि विश्वा भूतानि मुनिम् इन्द्रो अधारयत् परा रक्षस् सुवामि ते ॥५॥
इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्धि यो विबद्धो माद्या लालपीति ।
अतो ऽधि ते कृणवद् भागधेयम् अनुन्मदितो अगदो यथासत् ॥६॥
अग्निष् टे नि शमयतु यत् ते तन् मन उद्युतम् ।
जुहोमि विद्वांस् ते हविर् यथानुन्मदितो भवः ॥७॥
पुनस् त्वा दुर् अप्सरसः पुनर् वातः पुनर् दिशः ।
पुनर् यमः पुनर् यमस्य दूतास् ते त्वा मुञ्चन्त्व् अंहसः ।
जीवातवे न मर्तवे अथो अरिष्टतातये ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

५.१८

उत देवा अवहितं देवा उद् धरथा पुनः ।
उतो मनुष्यं तं देवा देवाः कृणुत जीवसे ॥१॥
आ त्वागमं शंतातिभिर् अथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रम् आभार्षं परा सुवाम्य् अमयं! ते ॥२॥
द्वाव् इमौ वातौ वात आ सिन्धोर् आ परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद् रपः ॥३॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥४॥
त्रायन्ताम् इमं देवास् त्रायन्तां मरुतो गणाः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायम् अगदो ऽसति ॥५॥
घृतेन द्यावापृथिवी घृतेनापस् समुक्षिताः ।
घृतेन मुञ्चस्वैनसो यद् आ त्वा हतम् अहृयाः ॥६॥
अयं मे हस्तो [भगवान् अयं मे] भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजो [अ]यं शिवाभिमर्शनः ॥७॥
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां शंभूभ्यां [ताभ्यां] त्वाभि मृशामसि ॥८॥
आप इद् वा उ भेषजीर् आपो अमीवचातनीः ।
[आपो विश्वस्य] भेषजीस् तास् त्वा कृण्वन्तु भेषजम् ॥९॥ ॥ऋ॰१॥

५.१९

सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो [अ]न्यम् अभि हर्यत वत्सं जातम् इवाघ्न्या ॥१॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥२॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारम् उत स्वसा ।
सम्यञ्चस् सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥३॥
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥४॥
ज्यायस्वन्तश् चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तस् सधुराश् चरन्तः ।
अन्यो [अ]न्यस्मै वल्गु वदन्तो यात समग्रा! स्थ सध्रीचीनान्[...] ॥५॥
समानी प्रपा सह वो ऽन्नभागस् समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चो ऽग्निं सपर्यतारा नाभिम् इवाभितः ॥६॥
येन देवा हविषा यज्ञ्या अप पाप्मानम् अपुनत ।
क्रोधं मन्युम् ऋतं मायां दुरुक्तम् अशोचनं रेप्यं नि दध्मसि ॥७॥
सध्रीचीनान् वस् संमनसः कृणोम्य् एकश्नुष्टीन् संवननेन सहृदः ।
देवा इवेद् अमृतं रक्षमाणास् सायंप्रातस् सुसमितिर् वो [अ]स्तु ॥८॥ ॥ऋ॰४॥

५.२०

परो ऽपेद्य् च परस्तमपरस्तरं? ।
अङ्गिर् वातस्य भ्राम्याय वाचे अहं तान् ॥१॥
उद्रकस्येदम् अयनं वातस्येदं निमज्जनम् ।
अङ्गिर् नमस्यायं पन्था मेह तदायनं तव! ॥२॥
परि त्वा कृष्णवर्तन्य् अग्निर् धूमेनार्चिषा ।
स त्वं तर्द परस् परान्य् अतो ऽन्य् अहन्वी! ॥३॥
यथा एतन् मातुर्वेपितास् च ये! ।
सर्वास् तान् ब्रह्मणा वयं शलभान् जम्भयामसि ॥४॥
शलभस्य शलभ्यास् तर्दस्योत पतत्रिणः ।
अङ्गिर् वातस्य भ्राम्यापि मह्याम् आस्यम् ॥५॥
यदीदं यदि भेषजं विश्वात् श्वपात्! समाधृतम् ।
आखोर् धुपस्य तर्दस्य तेषां जम्भानि महत ॥६॥
तृष्टा त्वम् असि गन्धेनौषधिर् धुपजम्भनी ।
आखोर् धुपस्य जातानि तानि जम्भय तेजसा ॥७॥
तूलं तर्दस् तृणस्याग्रु मूलम् आखुर् चिच्छेदितः ।
अथो तृणस्य फल्गु यद् मा धुना यन्तु सचयम् ॥८॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰४॥

५.२१

द्यौश् च पाः पिता पृथिवी च माता वाग्निश् च वृषभा जातवेदाः ।
ते तक्मानम् अधराञ्चं न्यञ्चं दशाईं नमस्यं त्वदधि! दूरम् अस्यन् ॥१॥
तक्मन्न् इमं ते क्षेममागम् अपभजन् पृथिव्याः पूर्वे अर्धे ।
अति द्रायति मति नो हिनस्तिद् प्राहिः कीत्वा गृहेषु इति किला सुशीर्ष्णः! ॥२॥
तक्मन् पर्वता इमे हिमवन्तस् सोमपृष्ठाः ।
वातजूतं भिषजं नो अक्रन् नहेतो मरज्ञान्! अभि ॥३॥
न त्वा स्त्रियः कामयन्ते न पुमांसः कतिमे! चन ।
नेह तक्म कामपालोरो ऽतितरो महान्! ॥४॥
मा नो हिंसीर् महतो मा हिंसीर् महीयस् त्वम् ।
कुमारान् बभ्रो मा हिंसीर् मा नो हिंसीः कुमारीर् इह ॥५॥
यम् साकम् उत्पादयसि बलासं कासम् अन्त् अज्ञुम्! ।
भीमास् ते तक्मन् हेतयस् ताभिस् स्म परि वृङ्धि नः ॥६॥
अन्यक्षेत्रे न रमते सहस्राक्षो [अ]मर्त्यः ।
अभूद् उ प्रार्थस् तक्मा स्मो नो मृडयिष्यति! ॥७॥
तक्मन् न अहि वा त्वा! न गावो नेह ते च गृहाः ।
दारुम्भरस्य मुष्टिहा पुनर् गच्छ महावृषान् ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

५.२२

यौ हैमन्तं शापयथो बलेनार्वाग् दिव एत्य् उत यो परो दिवः ।
भवाशर्वोस् सुमतिं वृणीमहे अन्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥१॥
यो धाम् आतनोतु यो ऽन्तरिक्षं स्कभायन् ओजसो जायमानः ।
तस्मै रुद्राय हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥२॥
ययो रोधान् नापयते किं चनान्तर् देवेषूत मानुषेषु ।
ताभ्यां रुद्राभ्यां हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥३॥
याव् ईशाने पशूनां पार्थिवानां चतुष्पदाम् उत वा ये द्विपदः ।
ताभ्यां रुद्राभ्यां हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥४॥
यस्य प्रतिहिता यास्त! व्यच्नन्तु वनारण्याः पशव उत ग्राम्यासः ।
तस्मै रुद्राय हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥५॥
यस्माद् रूपो वेभीयमाना यन्त्य् अस्माद् रक्षसो न युध्यन्ति विश्वे! ।
तस्मै रुद्राय हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥६॥
यः पर्वतान् यना वधिषे! विद्वान् यो भूतानि कल्पयसि प्रजानन् ।
तस्मै रुद्राय हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥७॥
याव् ईशानौ चरतो द्विपदो यौ चतुष्पदो याव् उभौ क्षिप्रधन्वानौ ।
ताभ्यां रुद्राभ्यां हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥८॥
पुनश् चक्षुः पुनः प्राणं पुनर् आयुर् धेहि नो जातवेदः ।
रुद्र जलाषभेषज विद्वान् इलेना! हविषा विधेमान्यत्रास्मद् अघविषा न्य् एतु ॥९॥ ॥ऋ॰१०॥

५.२३

ईशानां त्वा भेषजानां विजेष आ रभामहे ।
चक्रे सहस्रवीर्यं सहस्वान् ओषधे त्वम्! ॥१॥
सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनःसराम् ।
सर्वास् सम् अह्व ओषधीर् इतो मा पारयान् इति ॥२॥
या शशाप शपनेन या वाघं मूरम् आदधे ।
या वा रसस्य प्रासारेह! तोकम् अत्तु सा ॥३॥
प्रतीचीनफलो [हि त्वम् अपामार्ग रुरोहिथ ।
[सर्वान् मच् छपथाँ अधि वरीयो यावयास् त्वम्] ॥४॥
यच् च भ्रातृव्यः शपति यच् च जामिः शपाति नः ।
ब्रह्मा यन् मन्युतः शपात् सर्वं तन् नो अधस्पदम् ॥५॥
यां ते चक्रुर् आमे पात्रे यां चक्रुर् नीललोहिते ।
आमे मांसे कृत्यां यां चक्रुस् तया कृत्याकृतो जहि ॥६॥
दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वम् अराय्यः ।
दुर्णाम्नस् सर्वा दुर्वाचस् तम् इतो नाशयामसि ॥७॥
क्षुधामारं तृष्णामारम् अगोताम् अनपत्यताम् ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तद् अप मृज्महे ॥८॥ ॥ऋ॰१०॥

५.२४

समा भूमिस् सूर्येणाह्ना रात्री समावती ।
कृणोमि सत्यम् ऊतये [अ]रसास् सन्तु कृत्वरीः ॥१॥
यो देवाः कृत्यां कृत्वा हराद् अविदुषो गृहम् ।
वत्सो धारुर् इव मातरं तं प्रत्यग् उप पद्यताम् ॥२॥
अमा कृत्वा पाप्मानं यस् तयान्यं जिघांसति ।
अश्मानस् तस्यां दग्धायां! बहुलाः फट् करिक्रतु ॥३॥
सहस्रधामन् विशिखान् विग्रीवान् शायया त्वम् ।
प्रति स्म चक्रुषे कृत्यां प्रियां प्रियावते हर ॥४॥
यां चकार न शशाक शश्रे पादम् अङ्गुलिम् ।
चकार भद्रम् अस्मभ्यम् अभगो भगवद्भ्यः ॥५॥

[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[… … … … … … … …] ।
[illegible] [भ्र]भ्यो [illegible] ॥८॥

५.२५

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥

५.२६

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥

५.२७

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible]

तावती निर्ऋतिर् विश्ववारा विश्वस्य या आयमानस्य देवी ॥३॥
विश्वस्य आयमानस्य ;देवि पुष्यस्य या पुष्टिपतित्य भूयया? ।
नमो ऽस्तु ते निर्ऋते मा त्म म स्मा न्य रा म जे मा प रं हा त या सि? ॥४॥
देवीम् अहं निर्ऋतिं वर्धमानं? पितेव पुत्रं वसते? वचोभिः ।
विश्वस्य या आयमानस्य देवी शिरःशिरः प्र दि शो रो नु द स्वे? ॥५॥
अनुत्वन्तम् अयजमानम् इच्छ स्तेनस्येत्यां तस्करस्यानु शिष्ट ।
;अस्मद् अन्यम्? इच्छ सा त इत्या नमत् तु ते निर्ऋते अहं कृणोमि ॥६॥
अनुत्वका निर्ऋतिस् संजियस्तुर् नास्या पिता विंदते नोत माता ।
;म भ्या ह छ था म् अनु जियासि सर्व न देवानां सूर्य सम् भाग? ॥७॥
यद् अस्य पारे तमसश् शुक्रं ज्योतिर् अजायत ।
स नः पर्षद् अति द्विषो [अ]ग्ने वैश्वानर द्युमत् ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

५.२८

अमुच्यमानो भुवनस्य गोप पशुर् नो [अ]त्र प्रति भागम् एतु ।
अग्निर् यज्ञं त्रिवृतं सप्ततन्तुं देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥१॥
यौ ते दंष्ट्रा सुदिहौ रोपयिष्णू जिहासेते दक्षिणा सं च पश्वता ।
अनाष्ट्रं नः पितरस् तत् कृणोत यूपे बद्धं प्र वि मुच्यमा? यद् अधम ॥२॥
अङ्गिरस् त्वम् अभिजुषः परेहीन्द्रस्य गोष्ठम् अपि धाव विद्वान् ।
धीरासस् त्वा कवयस् सं सृजन्त्व् एवम् ऊर्जं यजमानाय मत्सतः? ।
ऋषिभिर् द्वा ससभिर् अत्रियाद्दं प्रति गृह्णामि भुवने स्योने ॥३॥
जमदग्निः कश्यपस् स्वाद् एतद् भरद्वाजो मध्व् अन्नं कृणोतु ।
प्रतिमर्हीत्रे गोतमो वसिष्ठो विश्वामित्रो वदर्दो? शर्म यच्छात् ॥४॥
यन् नो अन्नं हविष भाजगामाधस्य यत्नम् उत सर्पिषो वा ।
यद् वा धनं वहतोर् भाजगामाग्निष् टद् धोता सुहुतं कृणोतु ॥५॥
यद् आज्यं प्रतिजग्राह यांश् च व्रीहीन् आज्यं यम्नेण सह यज्ञ जगाम ।
बृहस्पतिर् हविषो नो विधर्ता मा नो हिंसीत् ;सह नो भक्तो
विषा च? ॥६॥
अग्निर् मधतु प्रति गृह्णातु विद्वान् बृहस्पतिः प्रस्य एतु प्रजानन् ।
इन्द्रो मरुत्वान् सुहुतं कृणोत्व् अयक्ष्याग्रम् भतनीयो [अ]स्तु ॥७॥
यन् नो दुदुर् धराम् अक्षितिं वसु यद् वा करुम् उपनेनेन? नस् सह ।
यद् ;मात्मेतं सह वृषनोता? अग्निष् टद् धोता सुहुतं कृणोतु ॥८॥
यन् नश् शालां विश्वभोगाम् इमां दुदुर् गृहं वा यौक्त्रं सह कृण्वोत ।
यद् वाहरन् उपनायेन देवा अग्निष् टद् धो[ता] सुहुतं कृणोतु ॥९॥ ॥ऋ॰१॥

५.२९

सूर्यवर्च इति यद् सुभावाद्दं येन प्रजा ज्योतिर् अभाग् चरन्ति ।
सोमे वर्चो यद् गोषु वर्चो मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन् ॥१॥
यद् वर्चो मरुतो यद् भरद्दन् वायुः पशून् पृश्नः? सं भगेन ।
गन्धर्वाणाम् अप्सरसां यद् अस्मी [मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन्] ॥२॥
यद् वर्चो यजमाने च वर्चो यद् अभिषिक्ते राजनि यच् च वर्चः ।
सुरायां वर्चो [अ]धि यत् [मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन्] ॥३॥
रथे वर्चो रथवाहने च वर्चं दुन्दुभौ वर्चः कवचे एव वर्चः ।
अश्वेषु वर्चो [अधि यत् मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन्] ॥४॥
सभायां वर्चस् समित्यां च वर्चो यच्छ्रां वर्चं उत वर्चो वरेषु ।
दक्षिणायां वर्चो [अ]धि यत् [मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन्] ॥५॥
सिंहे वर्चं उत वर्चो व्याघ्रे वृके वर्चो मध्वारे? च वर्चः ।
शयने वर्चः पतुना? यद् बभूव मयि [देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन्] ॥६॥
हिरण्यवर्चसम् उत हस्तिवर्चसं संग्रामं यद्यद् जिग्यां? वर्चं आहुः ।

कृष्णां केवर्ते? इन्द् यातुधाद् मयि देवा राष्ट्रभृतस् तद् अक्रन् ॥७॥
मयि वर्चो मयि यशो मयि पुष्टं मयि त्विषिः ।
[illegible] [अ]ह [illegible] ॥८॥ ॥ऋ॰१॥

५.३०

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥

५.३१

[illegible] विभ्रती वैश्वदेवी ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥

५.३२

[illegible] ॥१॥
[illegible] [अन्त]रिक्षम् ।
[illegible] ॥२॥

यस् तिष्ठति मनसा यश् च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतापम् ।
द्वौ यद् वदतस् संनिषद्य राजा तद् वेद वरुणस् तृतीयः ॥४॥
सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यद् अन्तरा रोदसी यत् परस्तात् ।
संख्याता अस्य निमिषो जनानाम् अक्षान् न श्वघ्नी भुवना मिमीते ॥५॥
त्वम् एव राजन् वरुण धर्ता देवानाम् असि विश्वरूपः ।
दुष्मांस्? तद् असः विप्रो यस् सत्यां वाचम् अनृतेन हन्ति ॥६॥
यस् समाम्यो वरुणो यो व्याम्यो यस् संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः ।
यो दैव्यो वरुणो यश् च मानुषस् सर्वान् त्वयि तान् प्रति मुञ्चाम्य् अत्र ॥७॥
शतेन पाशैर् वरुणाभि धेहि मा ते मोच्य् अनृतवाङ् नृचक्षः ।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः ॥८॥
;उतो वित् प्रवालय वितो? तद् असि नर्हसि ।
उतो तद् अस्य नं? कृत्वा राजा वरुण ईयते ॥९॥
येनं छिनत्ति वरुणो मडं कशिपुनं यथा ।
मूलं तस्य वृश्चति च एनं प्रतिमिमीयति ॥१०॥ ॥ऋ॰१॥

५.३३

य इमां देवो मेखलाम् आबबन्ध यस् संननाह य उ मा युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामि स पारम् इच्छात् स उ मा वि मुञ्चात् ॥१॥
आ[हुतास्य् अभि]हुत ऋषीणाम् अस्य् आयुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥२॥
मृत्योर् अहं ब्रह्मचारी यद् अस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तम् अहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥३॥
अयं वज्रस् तर्पयतां मन्त्रेणावास्य राष्ट्रम् अप हन्तु जीवम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहा [वृत्रस्येव शचीपतिः] ॥४॥
अधरो ऽधरम् अधरो ऽधेन गूढः पृथिव्या मोत् सृपत् ।
वज्रेणावहतश् शयाम् ॥५॥
यो जिनाति तम् अन्व् इच्छ यो जिनाति तम् इज् जहि ।
जिनतो वज्र सायकं सीमन्तम् अन्वञ्चन् अनु पातय ॥६॥
यद् अश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रम् आ ददे ।
स्कन्धान् अमुष्य शातयन् वृत्रस्येव शचीपतिः ॥७॥
यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः ।
प्राणान् अमुष्य संपिबन् सं पिबाम्य् अहं विषम् ॥८॥
यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणान् अमुष्य संगिरन् सं गिराम्य् अहं गिरम् ॥९॥
श्रद्धाया दुहिता तपसो ऽधि जाता स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिम् आ धेहि मेधाम् [अ]थो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥१०॥
यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥११॥ ॥ऋ॰१॥

५.३४

;इयं ते स्वधा यस्तु स्वधाम् न [illegible] ।
;देवान् ते अभिशोचने [illegible] कृतम् ॥१॥
;मा [illegible] शिरः ।
;[illegible] ते अभिशोचनम् ॥२॥
;[illegible] आरयाम् ।
;[illegible] ते अभिशोचनम् ॥३॥
;[illegible] कृणोमि ते ।
[illegible] ते अभिशोचनम् ॥४॥
[illegible] कृणोमि ते ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।

अयो उद् अकार्यं कुर्वं आसां सम् अर्वि मुष्कयोः ॥६॥
उपक्षेप्तासि! वातप वातस् तूलम् इवीञ्चय! ।
अङ्गिरस् सिग्योस् च वाहोर् दभ्यसुरपस्तुवे! ॥७॥
अभि गाय शावलीपं थोलीपं सापुपाहनम् ।
कालंस्याकीअरहप्य! आयतः प्रति वातप ॥८॥
[... ...] इस्वपुष्पं वातरोहं मनोजवम् ।
तं ते रयं सं भरन्ति देवास् तेना चरामि पतिम् इच्छमाना ॥९॥ ॥अ°॥

५.३५

शौ ४.१५.१ तै ७.५.११.१ अग्नये सम् अनमन् तस्मै पृथिव्या सम् अनमन्
यथाग्नये पृथिव्या समनमन्न् एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा ॥१॥
शौ २ तै वायवे सम् अनमन् तस्मा अन्तरिक्षेण सम् अनमन्
यथा वायवे ऽन्तरिक्षेण समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥२॥
शौ ५ तै सूर्याय सम् अनमन् तस्मै दिवा सम् अनमन्
यथा सूर्याय दिवा समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥३॥
शौ ७ तै चन्द्राय सम् अनमन् तस्मै नक्षत्रैस् सम् अनमन्
यथा चन्द्राय नक्षत्रैस् समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥४॥
सोमाय सम् अनमन् तस्मा ओषधीभिस् सम् अनमन् ।
यथा सोमायौषधीभिस् समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥५॥
यज्ञाय सम् अनमन् तस्मै दक्षिणाभिस् सम् अनमन्
यथा यज्ञाय दक्षिणाभिस् समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥६॥
समुद्राय सम् अनमन् तस्मै नदीभिस् सम् अनमन्
यथा समुद्राय नदीभिस् समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥७॥
इन्द्राय सम् अनमन् तस्मै वीर्येण सम् अनमन्
यथेन्द्राय वीर्येण समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥८॥
ब्रह्मणे सम् अनमन् तस्मै ब्रह्मचारिभिस् सम् अनमन्
यथा ब्रह्मणे ब्रह्मचारिभिस् समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥९॥
देवेभ्यस् सम् अनमन् तेभ्यो अमृतेन सम् अनमन्
यथा देवेभ्यो अमृतेन समनमन्न् [एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
[चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
[संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा] ॥१०॥
तै १ प्रजापतये सम् अनमन् तस्मै प्रजापतिभिस् सम् अनमन्

यथा प्रजापतये प्रजापतिभिस् समनमन्न् एवा मह्यं संनमस् सं नमन्तु ।
चित्तिं भूतिं पुष्टिं पशुं ब्रह्म ब्राह्मणवर्चसम्
संनतेस् तु संनेनेमतस्! स्वाहा ॥११॥
सप्त संनमो [अ]ष्टमी भीति[स्] साधनी ।
वा १६.१ सकामान् अध्वनः कुरु संज्ञानम् अस्तु मे धने ॥१२॥ ॥अ°५॥ ॥अनु°७॥

५.३६

ये यातवा उत नैरृतस्! पर्वीनां वीरुधां च पाशाः ।
ये भौमा भूम्या अधि संबभूवुस् ते त्वा न हिंसन् शिवतातिर् अस्तु [ते] ॥१॥
ये अन्तरिक्षे दिवि ये च पाशान् ये विषू[.........] ।
[......ते त्वा न हिंसन् शिव]तातिर् अस्तु ते ॥२॥
ये ते मानुषं मनुष्याश् चयन्ते यां वा होत्रां विध्याम् आरभन्ते ।
समास्यो वरुणो य आजगाम स त्वा न हिंसाच् छिवतातिर् अस्तु ते ॥३॥
भरद्वाज ८ अपप्रथा यदि वा समासिषे [अ]ग्निम् आरेभिषे यदि वा समिद्धम् ।
विद्वान् अविद्वान् अनृतं यद् उवक्थ त्वा ता त्वा न हिंसान् शिवतातिर्
अस्तु ते ॥४॥
यत् प्रतीच्यां छिपतः ;पृष्ठांस येष्यं चामपात्रे ऽपपातत! ।
हीनस् सलेलानृतं यद् उवक्थ [ता] त्वा न हिंसान् शिवतातिर् अस्तु ते ॥५॥
यं ग्रावाणम् आरभन्ते येनांशून् अभिषुण्वन्ति सोमम् ।
यद् वा धनं धनकामो निरमिंत क्षत्रं गाम् अश्वं पुरुषं यो भयातन् ।
[ते] त्वा न हिंसान् शिवतातिर् अस्तु ते ॥६॥
यो वाचवन्तं सुधियं अयात तस्मात्मा शानाद् अधि सोमाभृतस्व ।
[स] त्वा न हिंसाच् छिवतातिर् अस्तु [ते] ॥७॥
अपप्रथा यदि वा स्वामिषे [अ]ग्निम् आरेभिषे यदि वा समिद्धम् ।
[विद्वान् अविद्वान् अनृतं यद् उवक्थ त्वा ता त्वा न हिंसान् शिवतातिर्
अस्तु ते] ॥८॥
;आम्या हस्तं पृतम् आ रेभिषे धनुर् योक्तम् इत्या चक्रकमित्या ।
मन्युर् वा राज्ञो वरुणस्या ममन्य स त्वा न हिंसाच् छिवतातिर्
अस्तु ते ॥९॥ ॥अ°१०॥

५.३७

पै १.१०.१ ;या ते प्रजा पीडता पराभूद् योनिर् वा मुग्धा निहता पिशाचैः! ।
अस्थानां याव्य उपतिष्ठासि घोरं सर्वं तत् ते ब्रह्मणा पूरयामि ॥१॥
यद् अस्याः प्रजा वरुणेन गुपिता! दुर्णामानो वा क्षत्रियम् अ-
स्याहंन्ति! ।
;हेषात् सहपत्न्याद् विधि चक्रम् अस्या यथान् राष्ट्र अप इन्द्र
अग्निः! ॥२॥
अस्यास् स्त्रिया यदि लक्ष्मीर् अपुत्र्या गर्भो वास्या यातुधानैः पराभृतः ।
पुष्पघ्न्यं वा यत् स्वपती ददशोग्राशी तत् कृणुतां मह्यं पुनः ॥३॥
दुर्णिमसाद् यदि पुत्रं न विन्दसे मनुष्याणां वा त्वा शपथो रराप ।
पितृभिर् वा ते अधि मूलः प्रतिष्ठित इदं तत् निर् इन्द्रो जनयासि पुत्रम् ॥४॥
वैश्वानरो जमना जातवेदाः प्रजापतिस् सिञ्च[तु] रेतो ऽस्याम् ।
शौ ६.१०.१ धाता वा देवो निर्ऋतिं पराचैः पुत्रिणीम् इमां प्रसवं कृणोतु ॥५॥
इह प्रजाम् अग्निर् अस्यै ददात्व आदित्यैर् वसुभिस् संविदानः ।
विश्वे देवा इदम् आ यन्तु मे सं पुत्रो [अ]स्यां जायतां वीर्यवान् ॥६॥
यत्र देव्य अदितिर् गर्भम् आधत्ते येन प्रजास् सृजन्तु प्रजापतिः ।
तेनाहम् अस्यै हविषा जुहोमि यथा पुमांसं जनयासि पुत्रम् ॥७॥
यन्ते ते पुत्रं परि देवताभ्यो अनु मन्यन्तां मरुतः पृश्निमातरः ।
गर्भम् त्वा दशमास्यः प्र विशान् कुमारं जातं पितृताद् उपस्थे ॥८॥ ॥अ°११॥

५.३८

ऋ १० [illegible] अग्नि केशी [illegible] बिभर्ति रोदसी ।

केशी विश्वं स्वर् दृशे केशीदं ज्योतिर् उच्यते ॥१॥
ऋ २ मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
ऋ अविकृत वातस्यानु ध्राजिं यन्तु यद् देवासो अयुक्षत ॥२॥
ऋ ३ उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेद् अस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३॥
ऋ ४ अन्तरिक्षेण पतति स्वर् भूतावचाकशत् ।
मुनिर् देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा यतः ॥४॥
ऋ ५ इन्द्रस्याश्वो वायोस् सखायो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्राव् आ क्षेति यश्च पूर्वम् उतापरम् ॥५॥
ऋ ६ गन्धर्वाणाम् अप्सरसां देवानां चरणे चरन् ।
मुनिः केतस्य संविद्वान् सखा स्वादुर् मदिन्तमः ॥६॥
ऋ ७ वायुर् अस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनंनमा ।
मुनिर् विषस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह ॥७॥
संयुङ्के द्यावापृथिवी तिष्ठन्ते विमृशे! ।
केशेनिकस्य देवस्य विश्वंभाय् उर्वीपतिः ॥८॥ ॥अ°१२॥

५.३९

ऋ १०.१२६.१,४,३,७,५,६,४,८ न तम् अंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यम् अर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१॥
तद् धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येन निर् अंहसो यूयं पाथ नेथाथ मर्त्यम् अति द्विषः ॥२॥
ते नूनं नो ऽयम् ऊतये वरुणो [मित्रो अर्यमा] ।
नयिष्ठा नो नेषथि इव पर्षिष्ठाः पर्षथ अति द्विषः ॥३॥
शुनम् अस्मभ्यम् ऊतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यद् ईमहे अति द्विषः ॥४॥
आदित्यासो [अ]ति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भिर् उग्रं हुवेमेन्द्रम् आदित्य स्वस्तये ऽति द्विषः ॥५॥
नेतार ऊ षु णस् तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
अति विश्वानि दुरिता राजानश् चर्षणीनाम् अति द्विषः ॥६॥
यूयं विश्वं परि पाथ वरुण मित्रार्यमन् ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयो ऽति द्विषः ॥७॥
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयो ऽति द्विषः ॥७॥
यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताम् अमुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व् अस्मन् मुञ्चता व्य् अंहः प्र तार्य् अग्ने प्रतरं न आयुः ॥८॥ ॥अ°१३॥

५.४०

वा १.४ इत्यादि देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर् बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूतो
ब्राह्मणेभ्यो निर् वपामि ।
तै १.१२.१' स मे मा क्षेष्ट मदम् इष्यमाणः ॥१॥
अनु मन्यताम् अदितिर् देवपुत्रा पितॄन् स्वर्गे लोके ऽस्तु ॥२॥
ब्रह्मौदनम् अधि इद्धाग्नी अस्मै भूम्यां त्वा भूमिम् अधि धारयामि ।
अग्निः पचं रक्षतु ओदनम् इमं रक्षः पिशाचान् नुदतां जातवेदाः ॥३॥
अच्युतम् अक्षितिं विश्वधायम् उत्सम् इव मधुम् अक्षीयमाणम् ।
पिता पितामह उत यस् तृतीयः प्रयतं भागम् इह जीवन्त्य अत्र ॥४॥
प्रयतम् अक्षितिं विश्वधाविं सोमम् इव पुनर् आप्यायमानम् ।
पुत्रः पौत्र उत वः प्रपौत्रस् तेषाम् अस्तु निहितो भाग एषः ॥५॥
मांसजार्थ! निहितो भाग एष मानुषं मार्यत? वल्लो ऽस्तु ।
देवस्वं निदधे शेवधिम् एतं तोशन्! सुजातु महाम् एष पुनः ॥६॥
पूर्वतो यो इदन् तस्यादितो ऽयं तिष्ठन्न् अक्षितिर् सदा ।

वैवस्वतेन कल्पो ऽस्तु राजा समेता उप जीवन्तु मे स्वाः ॥७॥
शौ १८.४.३६ शतधारं सहस्रधारम् उत्सम् अक्षितं व्यच्यमानं सलिलस्य मध्ये ।
ऊर्जं दुहानम् अनपस्फुरन्तम् उपासीयास् सुकृतां यत्र लोकाः ॥८॥
॥अ°१४॥ ॥अनु°८॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां पञ्चमः काण्डः [समाप्तः] ॥

६.१

ऋ १०.१२०.१-९, शौ २०.१०७.४-१२ तद् इद् आस भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस् त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रून् अनु यं विश्वे मदन्त्य् ऊमाः ॥१॥
वावृधानश् शवसा भूर्योजाश् शत्रुर् दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच् च व्यनच् च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥
त्वे क्रतुम् अपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर् यद् एते त्रिर् भवन्त्य् ऊमाः ।
स्वादोस् स्वादीयस् स्वादुना सृजा सम् अदस् सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥
इति चिद् धि त्वा धना जयन्तं रणेरणम् अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरम् आ तनुष्व मा त्वा दभन् दुरेवा यातुधानाः ॥४॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिस् सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥
स्तुषेय्यं पुरुवर्पसम् ऋभ्वम् इनतमम् आप्त्यम् आप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून् प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥६॥
नि तद् दधिषे ऽवरं परं च यस्मिन्न् आविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥७॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषम् अग्रियस् स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश् च विश्वा अवृणोद् अप स्वाः ॥८॥
एवा महान् बृहद्दिवो ऽथर्वावोचत् स्वां तन्वम् इन्द्रम् एव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीर् अरिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥ ॥अ°१५॥

६.२

शौ ५.१.१ ;बृहद्गर्भेण योनिं मो विभाया! अमृतासुस् स्वजन्या वर्धमानः ।
अदब्धासुर् ;भ्राजसा दहच! त्रितो धायार धीनि ॥१॥
शौ २ वि नि यो धर्माणि प्रथमस् ससाद ततो वपूंषि कृणुते पुरूणि ।
धास्युर् योनिं प्रथम आविवेशा यो वाचम् अनुदितां चिकाय ॥२॥
शौ ३ यस् ते शोकस् तन्वा रिरेच क्षरद् धिरण्यं शुचयो ऽनु स्वाः ।
अत्रा दधेते [अ]मृतानि नामास्मे वस्त्राणि ;विश एरयन्ताम्! ॥३॥
शौ ४ प्र यद् एते प्रतरं पूर्व्यं गुस् सदस्सद आतिष्ठन्तो अजुर्यम् ।
कविर् शुषस्य मातरा रिहाणे जाम्यै धुर्यं पतिम् एरयेथाम्! ॥४॥
शौ ५ तद् ऊ षु ते महत् पृथुज्मन्! नमः कविः काव्येना कृणो[मि] ।
;यत् सम्यञ्चो ऽभ्ययञ्चो ऽभ्यक्षारा भि वो इ चाक! वयर्णो! ॥५॥
शौ ६ सप्त मर्यादाः कवयस् ततक्षुस् तासाम् अनेकाम् अभ्य् अंहुरो गात् ।
शौ ७ ;उतामृतासु व्रत एम्यं अमुराः पूतस् स्वधया समद्रुम्! ॥६॥
उतायु[र्] ज्येष्ठो रत्ना दधान्य ऊर्जा ;वायुं च ते कविर् हस्! ।
शौ ८ पुत्रो वा यत् पितरं क्षत्रम् ईडे ज्येष्ठं मर्यादम् अह्वयन् स्वस्ति ॥७॥
शौ ९ दर्शन् नु ;तां वरुण च इहाव आवरमजत! कृणवो वपूंषि ।

[illegible]

६.३

[illegible]

६.४

[illegible]

घृताचके वामरते विद्युत्पर्णे अहल्पति ।
यातुरक्षमिच्छासि त्वम् अङ्ग निष्करोयसि ॥१०॥
यन् ते अभयं पिशाचैस् तन् ताभ्यायतां पुनः ।
नाकाय त्वा विश्वभेषजीः? देवेभिस् त्रायतां सह ॥११॥ ॥का°४॥

६.५

यथा द्यौश् च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेर् एवा मे प्राण मा रिषः ॥१॥
यथा वायुश् चान्तरिक्षं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥२॥
यथा सूर्यश् [च] चन्द्रमाश् च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥३॥
यथाहश् च रात्री च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥४॥
यथा धेनुश् चानड्वांश् च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥५॥
यथा मित्रश् च वरुणश् च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥६॥
यथा ब्रह्म च क्षत्रं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥७॥
यथेन्द्रश् चेन्द्रियं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥८॥
यथा वीरश् च वीर्यं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥९॥
यथा प्राणश् चापानश् च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥१०॥
यथा मृत्युश् चामृतं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥११॥
यथा सत्यं चानृतं च [न बिभीतो न रिष्यतः । एवा...] ॥१२॥
यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेर् एवा मे प्राण मा रिषः ॥१३॥ ॥का°५॥ ॥अनु°१॥

६.६

मधुमन् मे निक्रमणं मधुमन् मे परायणम् ।
वाचा मधुमद् उपानाह्यो मे मधुसंदृशी ॥१॥
माम् अनुप्रसारयं स स पत्तो नि मे दिषाम्? ।
मयो ते पुनर् आयतो मही कामेन शुष्यताम् ॥२॥
यथा मधुच ते मातोक्षा आत्रर्षभः पिता ।
धेन्वा अधि प्रजातो ऽसि राजा स मधुमत्तमः ॥३॥
वृषाणं वृष्ण्यावन्तं सा पर्णम् अभि शिष्यतम्? ।
इन्द्राग्न अग्र अभवं? मधुरी मणाय कम् ॥४॥
पितुभोजनो मधुमत् सौःकाम्यो? हृदयाय कम् ।
स मा मधुना स्य् अनक्तु यथाहं कामये तथा ॥५॥
सिन्धुमजातो मधुयो ऽस्वीव नीयते ऊर्णा म्रदु ।
स मा [मधुना स्य् अनक्तु यथाहं कामये तथा] ॥६॥
मधुमती सिनीवाली मधुना मा सम् अक्तु ।
सा मा मधुना स्य् अनक्तु यथाहं कामये तथा ॥७॥
यथा मधु मधुकृतस् संभरन्ति मधाव् अधि ।
एवा युनज्मि ते मनो मय्य् अस्यां मामकी तनू ॥८॥
यत् ते मनः परागतं यद् धम्? इह वेह वा ।
तत् तया वर्तयामसि मयि बध्नामि ते मनः ॥९॥ ॥का°१॥

६.७

कश्यपश् च सुपर्णश् च यत् मरीच्याम् अभिष्ठताम् ।
सुपर्णः पर्णं मवारयत् समुद्रे भूमिम् आवृताम् ॥१॥
सुपर्णम् अभि विश्रुतां पर्णं अपश्यद् अन्तर् महतर् अर्णवे ।
तां सूकरत्वान् मायां तिरस् समुद्राद् उद् आभरत् ॥२॥
यां समुद्राद् उदाभरद् भूम्यां सूकरमायाम्? ।
सेयं विषस्य दूषण्य् अस्मै भवतु भेषजी ॥३॥
अच्युता हिरण्येन या सत्ये अधितिष्ठति ।
तां ते विश्वधायसो विश्वरूपम् उद् भरे ॥४॥

[illegible]

६.८

[illegible]

६.९

[illegible]

इन्द्राय मार्गं परि त्वा नयामो [म]स्मिन् नो लोको मृतत्वो ऽस्तु ॥१०॥
घृतवृध घृताहुत सहस्रशृङ्ग सुष्टुत ।
घृताद्यन श्री[दि]हि ॥११॥
यो घृतेनाभिघारित उभो भैत्राय तिष्ठसि ।
स नम् संकाशु पारया घृतमासाद्धेषु च ॥१२॥ ॥का°४॥

६.१०

कविस् सुभागपंमस्य पत्नी प्रजाकामा वशिनी वाशिता गौः ।
तां सहस्रम् एकमुखा ददाति गर्भं दधाना मिथुना चरन्ती ॥१॥
गर्भं दधाना भव इद् दुहाना अग्निहोत्रं वैश्वदेवीर् दुहानाः ।
श्रीं सं मा हिं सी र्? वरुणस्य पत्नीः क कर्यां या नि? सुमनसो ऽसि गावः ॥२॥
प्रजाम् इच्छन्तो पिपयाश् चरन्तीमान् एव अदिति[र्] विश्वरूपा ।
अभि क्रन्दन्ति भुवनान्य् उक्षति? ॥३॥
प्रजापतिर्निर्मिताम् ऋचियावती न हीनां प्रजाया कश्यपाश् अयन्ते ।
वृषण्यन्ती वृषभस् सतनाश्चो हिरण्यवन्तो अभि नुदन्ति वाशिताम् ॥४॥
सा प्रत्युत्तसि? सुपदा सुवर्णा शुक्रं वसाना वरुणस्य च निर् नुदः ।
वैश्वदेवी सुभगाम् मा रमन्ते प्रजां दाता पुष्यतु गोपतिष्ठे ॥५॥
स्वयं स्वावरी वृषभाय तिष्ठति प्रतीची सोमं प्रति सूर्यम् अग्निम् ।
अहिंसन्ती वाशितेमाम् ऊर्ध्वं पशून् दाता पुष्यतु गोपतिष्ठे ॥६॥
वशिता? भवतु वाशितायाम् अंशेर भागम् उस्त्रियां यो ददाति ।
प्रियं धाम हृदयं सोम्यं मधु वाजिनी त्वा वाजिनो वाजयन्तु ॥७॥
यो वाशितायां गव्य् अन्तर् अग्निर् यद् अस्यां नूनं महिमा बभूव ।
नमस् ते ऽस्तु प्रतिगृह्णन् गृणामि स्योना मे ऽस्तु तन्वे सुशेवा ॥८॥
येन गै वाशिता तां प्रतीमः पुंसां मतेन सा पुष्पाना गौः? ।
ऊर्जं दधाना घृतम् इद् दुहाना सहस्रपोषाय मे ऽस्तु दात्रे ॥९॥
॥का°५॥ ॥अनु°२॥

६.११

ब्रह्म जज्ञानं [प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतस् सुरुचो वेन आवः ।
[स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास् सतश् च योनिम् असतश् च वि वः] ॥१॥
अनाप्ता ये वः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे ।
वीरा[न्] नो अत्र मा दभन् तद् व एतत् पुरो दधे ॥२॥
प्रज्ञान् मानान् परि ये संबभूवुर् ओकवन्तस् सीमनस्य मन्तवः ।
अप्रानभ्रासो बधिरा अहास्त ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥३॥
सहस्रधारम् अभि ते सम् अस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनस् सन्तु सेतवे ॥४॥
पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस् तर ध्या ऋणया न ईयसे? ॥५॥
सहस्रत्? आसासि त्रयोदशो मासः । इन्द्रस्य गृहो ऽसीन्द्रस्य
शर्मासीन्द्रस्य वर्मासीन्द्रस्य वरूथम् असि ॥६॥
स्य् एतेनारात्सीर् असौ स्वाहा ।
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवा अग्नीषोमाव् इह सु मृडतं नः ॥७॥
[अवैतेनारात्सीर् असौ स्वाहा] ।
[तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवा अग्नीषोमाव् इह सु मृडतं नः] ॥८॥
[अवैतेनारात्सीर् असौ स्वाहा] ।
[तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवा अग्नीषोमाव् इह सु मृडतं नः] ॥९॥
मुमुक्तम् अस्मान् गृभीताद् अवद्याद् जुषेथां यज्ञम् ।
अमृतम् अस्मासु धत्तं स्वाहा ॥१०॥
चक्षुषो हेते मनसो हेते ब्रह्मणो हेते [तपसश् च हेते] ।
मेन्या मेनिर् असि अमेनयस् ते सन्तु ये ऽस्मान् अभ्यघायन्ति स्वाहा ॥११॥

यो ऽस्मां[स्] चक्षुषा मनसा यश् च वाचाकूत्या चित्त्या ब्रह्मणायायुर्
अभिदासा[त्] त्वम् अग्ने तं मेन्यामेनिं कृणु स्वाहा ॥१२॥
शौ ५.९.८ उद् आयुर् उत् कृत[म्] उद् बलम् उन् मनीषाम् ।
उद् इन्द्रियं नृम्णम् अस्मासु धेहि स्वाहा ॥१३॥
शौ आयुष्कृद् आयुष्मती स्वधावन्ती गोपा मे स्थो गोपायतम् मा ।
आत्मसदौ मे स्तं मे मुरोधी मा मा हिंसिष्टं स्वाहा ॥१४॥ ॥अ°११॥

६.१२

शौ ५.६.११ इन्द्रस्य गृहो ऽसि [तं त्वा प्र विशामि सर्वं सर्वात्मा सर्वगुस् सर्व-
पूरुषो यन्! मे ऽस्तु तेन] ॥१॥
शौ १२ [इ]न्द्रस्य शर्मासि [तं त्वा प्र विशामि सर्वं सर्वात्मा सर्वगुस् सर्व-
पूरुषो यन्! मे ऽस्तु तेन] ॥२॥
शौ १३ इन्द्रस्य वर्मासि [तं त्वा प्र विशामि सर्वं सर्वात्मा सर्वगुस् सर्व-
पूरुषो यन्! मे ऽस्तु तेन] ॥३॥
शौ १४ इन्द्रस्य वरूथम् असि तं त्वा प्र विशामि सर्वं सर्वात्मा सर्वगुस् सर्व-
पूरुषो यन्! मे ऽस्तु तेन ॥४॥
शौ ५.९.७ अस्तृतो नामाहम् अयम् अस्मि स आत्मानं परि दधे द्यावापृथिवीभ्यां
गोपीथाय प्र ह्वयसे ॥५॥
अस्तृतो नामा प्राजापत्यो देवपुरायं! अन्तः महाणां! देवपुरात् सह
प्रामस् स्वस्तये ॥६॥
संवत्सरस्य सप्ततस् सर्वैस् सहोदरैस् सह महयतां देवापुरायेवास्मि मे यतं
यो मा कश् चाभिदासति स प्रजापतिम् इव गच्छति! ॥७॥
तस्मासु प्रतिस्पशः पाहि दिवः पाहि द्विषः पाम् अरेभ्या अभि-
दास्यास् स म इह तन्वं पाहि ॥८॥
शौ ५.१०.१ यो [अ]स्मान् प्राच्या दिशो ऽघायुर् अभिदासा[द्] एतत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु ॥९॥
शौ २ [यो] अस्मान् दक्षिणाया दिशो [ऽघायुर् अभिदासाद् एतत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु] ॥१०॥
शौ ३ [यो] अस्मान् प्रतीच्या दिशो [ऽघायुर् अभिदासाद् एतत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु] ॥११॥ ॥अ°१२॥

६.१३

शौ ५.१०.४ [यो] अस्मान् उदीच्या दिशो [ऽघायुर् अभिदासाद् एतत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु] ॥१॥
शौ ५ [यो] अस्मान् ध्रुवाया दिशो [ऽघायुर् अभिदासाद् एतत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु] ॥२॥
शौ ६ यो [अ]स्मान् ऊर्ध्वाया दिशो ऽघायुर् अभिदासाद् [ए]तत् स ऋच्छाद्
अश्मवर्म नो ऽस्तु ॥३॥
प्राच्यै दिशे स्वाहा ॥४॥
दक्षिणायै दिशे स्वाहा ॥५॥
प्रतीच्यै दिशे स्वाहा ॥६॥
उदीच्यै दिशे स्वाहा ॥७॥
ध्रुवायै दिशे स्वाहा ॥८॥
ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा ॥९॥
शौ ५.९.१,५ दिवे स्वाहा ॥१०॥
शौ १,४ अन्तरिक्षाय स्वाहा ॥११॥
शौ २,६ पृथिव्यै स्वाहा ॥१२॥ ॥अ°१३॥

६.१४

महाकण्ठं करीपजम् अपवश्यावम् अनाहुतम् ।
ओहः कोकमुखश् च यस् तान् इतो नाशयामसि ॥१॥

दासमदन्तं! सोदरं महारम् अहिमासिकम् उपकूर्म बलाहकं श्वेतं वर्द्ध-
मत्वादिमम् ।
गृध्रं हस्त्यायनं त्वा प्रमृष्यादिन सत्यमं? [तान् इतो नाशयामसि] ॥२॥
भीमहस्तं मरीमृशं अधाक्षं मृदङ्गुलिम् ।
नखोग्रं दंशशीर्षं तां पर्यन्तमि मिपापदं! [तान् इतो नाशयामसि] ॥३॥
ब्रिगीषमाणो रूपकम् अथो शालस्यं शेवलताम्! ।
तन्दम् अग्रे तुन्दिकं दस्यंश! उत वत्सपं [तान् इतो नाशयामसि] ॥४॥
दासप्रघ्न्यं सनिस्रसम् उग्रन्धदं वावदस्यन्तां! ।
हरिपक्षान्! केशावं रक्षश् चरन्त् आहुतं [तान् इतो नाशयामसि] ॥५॥
बर्हिः प्रेहम् इच्छति अस्मी अपास्योषु चमे ।
आनुरपांशुकिश्रमस्! तान् इतो नाशयामसि ॥६॥
यः कुमारां आरस्यामि तथां दासानुर् अरायः के
इयाकिलनयोहमानहंत्वक्षिय! तम् इतो नाशयामसि ॥७॥
हीराको नाम गेह्यो ऽरायो नाम स्नुहा ।
तम् इतो नाशयामसि ॥८॥
निमूलंभसम् आखिदं वनकोशं च रोदहम् ।
आमाहं प्रपतीपिपं पर्यदानं परिक्षिपं वृक्षस्य नुचनं प्रानं! तान् इतो
नाशयामसि ॥९॥ ॥अ°१४॥

६.१५

यश् च भूमा यश् च स्फातिर् या चोर्जा यो रसश् च ते ।
हरामि शक तान् अहं त्वया प्रत्तान् शचीपते ॥१॥
क्षेत्रात्क्षेत्राद् आ हरामि स्फातिं सर्वां शचीपते ।
तयाहं वृत्रहन् पितुम् आ हरामि गृहाँ उप ॥२॥
यास् ते सीता मघाः क्षेत्र आरायिर! यश् शचीपते ।
अथो या निष्ठा ते क्षेत्र इत आहार्षं प्रज्ञया ॥३॥
यत् खले रसम् आ[व]दे यद् गोष्ठे यच् च रोचयी ।
अयोलकुस्यांसे! तस्य ते रसम् आ ददे ॥४॥
ऊर्जा या ते भृगुतस्योर्जा यावहतस्य! ते ।
ऊर्जा ते पच्यमानस्योर्जा पिष्टां त आ ददे ॥५॥
[ऊर्जा या] ते भृगुतस्योर्जा याता अस्य! ते ।
ऊर्जा ते पिप्यमानस्योर्जा पक्वां त [आ ददे] ॥६॥
ऊर्जा या ते मधुष्पस्योर्जा या मथितस्य ते ।
ऊर्जा ते दुह्यमानस्योर्जा दुग्धां त आ ददे ॥७॥
आ ते ददे गवाम् ऊर्जाम् ऊर्जाम् अवीनाम् आ ददे ।
अजानाम् ऊर्जाम् आदायात् पेकशाकाम् आ ददे ॥८॥
ऊर्जा या ते पुरुषाणाम् ऊर्जा चिरेचयेयेदे! ।
ऊर्जा ते सर्वेषाम् अहं गृहाणां प्रज्ञया ददे ॥९॥ ॥अ°१५॥

६.१६

ऋ १.१८७.१–७,९,८,१०,११ [खि१०.८
पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषी[म्] ।
यस्य त्रितो व्य् ओजसा वृत्रं विपर्वम् अर्दयत् ॥१॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा विवृणुमहे! ।
अस्माकम् अविता भव ॥२॥
उप नः पितव् आ गहि शिवश् शिवाभिर् ऊतिभिः ।
मयोभुर् अद्विषेण्यस् सखा सुशेव एधि नः ॥३॥
तव त्ये पितो रसा रजांस्य् अनु विष्ठिताः ।
दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥
तव त्ये पितो ददतस् तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥५॥
यत् ते पितो महानां देवानां मनो हितम् ।

अकारि चारु केतुना तवाहिम् अवसावधीत् ॥६॥
यद् अदः पितो अजगन् विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन् नो मधो पितो [अ]रं भक्षाय गम्याः ॥७॥
यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे ।
वातापे पीव इद् भव ॥८॥
'क का परीसम् यद् अपाम् ओषधीनां वलिसम्! आरिशामहे ।
वातापे पीव इद् भव ॥९॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।
वातापे पीव इद् भव ॥१०॥
तां त्वा वयं पितो वचोभिर् गावो न हव्या सुषूदिम ।
अस्मभ्यं त्वा सधमादं देवेभ्यस् त्वा सधमादम् ॥११॥ ॥अ°१६॥

६.१७

ऋ १.१९.१,२,३,५,४,६–९ प्रति त्यं चारुम् अध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिर् अग्न आ गहि ॥१॥
नहि देवो न मर्त्यो महस् तव क्रतुं परः ।
मरुद्भिर् अग्न आ गहि ॥२॥
ये महो रजसो विदुर् विश्वे देवासो अद्रुहः ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥३॥
य उग्रा घोरवर्पसस् सुक्षत्रासो रिशादसः ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥४॥
य उग्रा अर्कम् आनृचुर् अनाधृष्टास ओजसा ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥५॥
ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास् सहासते ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥६॥
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरस् समुद्रम् ओजसा ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥७॥
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस् तिरस् समुद्रम् अर्णवम् ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥८॥
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भि[र् अग्न आ गहि] ॥९॥
आ यन्तु मरुतो गणै[स्] स्तुता दधतु नो रयिम् ।
ऋ १.१४.३ आ त्वा कण्वा [अ]हूषत गृणन्तु विप्र ते धियः ।
मरुद्भिर् अग्न आ गहि ॥१०॥ ॥अ°१७॥ ॥अनु°१॥

६.१८

शौ ७.३३.१ सं मा सिञ्चन्तु मरुतस् सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायम् अग्निस् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे ॥१॥
सं मा सिञ्चन्त्व् आदित्यास् सं मा सिञ्चन्त्व् अग्नयः ।
इन्द्रस् सम् अस्मान् सिञ्चतु [प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥२॥
[सं मा] सिञ्चन्त्व् अरुषास् सम् अर्का ऋषयश् च ये ।
पूषा सम् [अस्मान्] सिञ्चतु [प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥३॥
[सं मा सिञ्चन्तु] गन्धर्वाप्सरसस् सं मा सिञ्चन्तु देवताः ।
भगस् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥४॥
[सं मा] सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चन्तु या दिवः ।
अन्तरिक्षं सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।

[दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥५॥
[सं मा] सिञ्चन्तु प्रदिशस् सं मा सिञ्चन्तु या दिशः ।
आशास् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥६॥
[सं मा] सिञ्चन्तु कृषयः सं मा सिञ्चन्त्व् ओषधीः ।
सोमस् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥७॥
[सं मा] सिञ्चन्तु नद्यस् सं मा सिञ्चन्तु सिन्धवः ।
समुद्रस् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥८॥
सं मा सिञ्चन्त्व् आपस् सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः ।
सत्यं सम् अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
दीर्घम् आयुः कृणोतु मे ॥९॥ ॥अ°१८॥

६.१९

सं मर्गो वर्चसा माग्ने सं विष्णुः पुरुधायुजत् ।
देवं सम् अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु माम् ॥१॥
सं विराड् वर्चसा माग्ने सं देष्ट्री पुरुधायुजत् ।
इडा सम् अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
[आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥२॥
सं धाता वर्चसा माग्ने सं सिनिः पुरुधायुजत् ।
सं देवो [अ]स्मान् अर्यमा प्रजया च धनेन च ।
[आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥३॥
सम् अंशो वर्चसा माग्ने सं वायुः पुरुधायुजत् ।
वातस् सम् अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
[आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥४॥
सं सन्ना वर्चसा माग्ने सं सत्य पुरुधायुजत् ।
सूर्यस्! सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥५॥
सं सविता वर्चसा माग्ने सं सूर्यः पुरुधायुजत् ।
चन्द्रस् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥६॥
सं पशवो वर्चसा [मा]ग्ने सं यज्ञः पुरुधायुजत् ।
दक्षिणा सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥७॥
सं मा सिञ्चतु द्रविणं सं मा सिञ्चत्व् इन्द्रियम् ।
तेजस् सम् [अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु माम्] ॥८॥
सं मा सिञ्चन्तु वर्चांसि सं मा सिञ्चन्तु भूतयः ।
सरस्वती सम् अस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।
आयुष्मन्तं कृणोतु मा[म्] ॥९॥ ॥अ°१९॥

६.२०

शौ १९.४७.१–१० आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुर् अप्रायि धामभिः ।
दिवस् सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥१॥
न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद् विश्वम् अस्यां नि विशते यद् एजति ।
अरिष्टासस् त उर्वि तमस्वति रात्रि पारम् अशीमहि भद्रे पारम्
अशीमहि ॥२॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर् नव ।

...सूतिम् सम्नद् ... ॥३॥
यद्दिवा च नक्तं च ... एष्यः ... मर्त्याद्विषद्? ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
... [अ]व ... पुनरपि ... दिवः ॥५॥
... यक्षेभ्यो ... मा नो ... ।
मा नो [प]व ... ।
... मा ... ॥६॥
पर्यग्निः परिधि[र] ... ।
... ॥७॥
... ।
... ॥८॥
... ।
... पुरुषेभ्यः ॥९॥

६.२१

... ।
तानि ते परि ... ॥१॥
... ।
... ॥२॥
... ।
... ॥३॥
... ।
... ॥४॥
ये ... ।
... ॥५॥
... ।
... ॥६॥

६.२२

... उदरम् ओदनस्य ।
... ॥१॥
... ।
... स्वर्गे लोके बहु ... ॥२॥
... परि ... ।
... ॥३॥
... ।
... ॥४॥
... ॥५॥
... ।
... स्वर्गे लोके स्वधया ... ॥६॥
... ।
... स्वर्गे लोके स्वधया ... ॥७॥
... ।
स्वर्गे लोके स्वधया ... पुष्करिणीः सम-
न्ताः ॥८॥
... विश्वाद् ... स्वर्गम् ।
... ॥९॥
... स्वर्गे लोके ... ।
य इमे पुत्राः ... सर्वे ... ॥१०॥

य इमान् पचान् अधि विष्ठितो ऽसि यस्येमे लोकास् स्वधया समक्ताः ।
य इमे पौत्रा उत ये पितामहास् तेभ्यो विष्टारिन्न् अमृतं नि धुक्ष ॥११॥
यदि पृथिवीं यद् अन्तरिक्षं यदि दिवं देवताया? जगन्थ ।
य इमे प्रपौत्रा॰ प्रपितामहाश् च तेभ्यो विष्टारिन्न् अनु प्र भव?
तत्र ॥१२॥
स्वर्गे लोके अप्सरस एनान् जाया भूत्वोप शेरते ।
विष्टारिणम् ओदनं ये पचन्त्य् अस्मिन् लोके दक्षिणाया॰ परिष्कृतम् ॥१३॥
;निन्दु देवांस्त्वाम् भव तन्नाद् अधि ।
;विश्वं शम् अस्मै कृण्वो विसृहीर्भशतामसु? ॥१४॥
अपाचीं प्रतिमां कृण्व अधराचीं धियं नय ।
प्रतीनान् दश पर्वतान् प्रतीमा नाव्या दश ॥१५॥
अधराचीम् अपाचीम् मतोकुलशालांमियं? ।
;विश्वं शम् अस्मै कृण्वस् तेनैनं प्रतिमामसि? ॥१६॥
;माजनिहज विलं विलाद् अरण्यम् मा कुर्वं अरण्याद् अरणं जनम्? ।
शृगान् अनु प्र पातय वातस्यैनां शिखां कुरु ॥१७॥
;वाताभ्रे यस्य हृदयं मनोर् एष्व् अनु दृष्मसि ।
;विश्वं शम् अस्मै कृण्वो विदं समामकुण्डसे? ॥१८॥
शर्वम् अनु परि द्रव ताम् अन्तरा द्यावापृथिवी उभे ।
यथा न पक्षि शान्तराद्? विश तूलम् इवोपरि ॥१९॥
अशाम् अस्मै वातो वात्व् अशं तद् अति सूर्यः ।
अपो यद् अश्नम् अश्नाति तद् अस्तु विषपत्तरम् ॥२०॥
सिंहस् ते ऽस्तु चक्षुषो [व्याघ्र॰ परिषु? अजे ।
[अग्निर् वाम् अस्त्व् अन्तरो यथा वां नशासति?] ॥२१॥
एष वाम् अग्निर् अन्तरा स विष्वञ्चौ व्य् अस्यतु ।
;यथा वां सा मन्य उत्तरस्याश् च नायुषी ॥२२॥
;उत्पातय दिमिनिदाय् याते । इमौ व्य् अस्य दम्पती॰ पक्वं मांसम् इवाशि-
षां मेहन् अस्मिन् । पतौ रंतमोस्त्यो शयने स्वे । जहति यस-
नोश् चम्? अहिर् जीर्णाम् इव त्वचम् ॥२३-२४॥
यथा मृतश् च जीवाश् चास्मिन् लोके व्योकसः ।
एवेमौ दम्पती स्ताम् अस्मिन् लोके व्योकसौ ॥२५॥ ॥ख°५॥ ॥अनु°४॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां षष्ठ॰ काण्डम् समाप्तः ॥

७.१

शौ ५.१४.१ सुपर्णस् त्वान्व् अविन्दत् सूकरस् त्वाखनन् नसा ।
दिप्सौषधे त्वं दिप्सन्तं प्रति कृत्याकृतं दह ॥१॥
[... ... ...]
अपो यो [अ]स्मान् दिप्सति तम् उ त्वं जह्य् ओषधे ॥२॥
अभ्रे पृतनायाद् पृतनास् सहस्व ।
प्रति कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ॥३॥
इष्वा ऋजीय॰ पततु द्यावापृथिवी तन्तु तन्? ।
उत तं मृगम् इव विध्यद् कृत्ये कृत्याकृतं कृता ॥४॥

... ।
... ॥५॥
यस् त्वा कृत्ये [प्रतिचार विद्वान् अभिचारे? गृहम् ।
[पुनस् त्वा तस्मै ... कृत्याकृतं ...] ॥६॥
पुन॰ कृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि ।
... ॥७॥
... ।
... कृत्याकृतं कृता ॥८॥
... ।
कृत्या ... ॥९॥
... परि ... ।
... म[णि] ... ॥१०॥
या कृत्ये देवकृता या वा मनुष्यजासि ।
तां त्वा प्रत्यक् प्र हिण्मसि प्रतीचीनेन ... ॥११॥
यदि स्त्री [य]दि वा पुमान् कृत्यां चकार पाप्मने ।
... ॥१२॥ ॥ख°१॥

७.२

... द्यावापृथिवी ... देवी सरस्वती ।
... इन्द्रश् च ... ॥१॥
... ।
... मम ॥२॥
... ।
... ॥३॥
... ।
... ॥४॥
... ।
... ॥५॥
... ।
... ॥६॥
... ।
... ॥७॥
... ।
... ॥८॥
... ।
... ॥९॥
... ।
... ॥१०॥ ॥ख°२॥

७.३

... ।
... ॥१॥
... ।
... ॥२॥
... ।
... ॥३॥
... ।
... ॥४॥
... ।
... ॥५॥

ये नस् सेतु॰ कृत्याकृत॰ किल्विषकृतम् सम्य[म्] ।
पुनस् तान् यज्ञिया देवा [न]यन्तु यत आगताः ॥६॥
;अपवेष सर्वतो मेनज्ञं हन्ति वज्रं? ।
धाता नो भद्रया नेषत् स नो गोपायतु प्रजाम् ॥७॥
कृण्वे ऽहं रोदसी वर्म स्याम सवितुस् सवे ।
माता नो भद्रया भूमि[र्] द्यौश् चास्मान् पात्व् अंहसः ॥८॥
यद् असुराणाम् अहम् अस्मान् पाताल? मेधिनः ।
देवानां यस्य दैव्यम् मायद् शुम्भन्तु माम् इमाम्? ॥९॥
मा ते पितर मरुतां सुम्नम् एमि मा नस् सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो [अ]र्वति क्षमेत प्र जायामहि रुद्र प्रजया ॥१०॥
यो गर्भे अन्तर् यो गृभे अन्तर् यत्र जातं जनितव्यं च पौरुषम् ।
तस्मा अश्वया सं हविषा युयम्यं स न॰ प्रजां अरतृषि कृणोतु ॥११॥
॥ख°३॥

७.४

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्ष्ये प्रथमो योग आगते याभ्यां जितम् असुराणां स्वर् यत् ॥१॥
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघन॰ क्षोभणश् चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनो ऽनिमिष एकवीरश् शतं सेना अजयत् साकम् इन्द्रः ॥२॥
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनायोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तद् इन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥३॥
स इषुहस्तैस् स निषङ्गिभिर् वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्य् ऊर्ध्वधन्वा प्रतिहिताभिर् अस्ता ॥४॥
बलविज्ञायस् स्थविर॰ प्रवीरस् सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजिज् जैत्रम् इन्द्र रथम् आ तिष्ठ गोविदम् ॥५॥
इमं वीरम् अनु हर्षध्वम् उग्रम् इन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तम् अज्म प्रमृणन्तम् ओजसा ॥६॥
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानो ऽदाय उग्रश् शतमन्युर् इन्द्रः ।
दुश्च्यवन॰ पृतनाषाड् अयोध्यो ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन् शत्रून् प्रमृणन्न् अमित्रान् अस्माकम् एध्य् अविता तनूनाम् ॥८॥
इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर् दक्षिणा यज्ञ॰ पुर एतु सोमः ।
देवसेनानाम् अभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥९॥
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयताम् उद् अस्थात् ॥१०॥
अस्माकम् इन्द्रस् समृतेषु ध्वजेष्व् अस्माकं या इषवस् ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्व् अस्मान् देवासो ऽवता हवेषु ॥११॥ ॥ख°४॥

७.५

वैश्वानराद् अरोचत जातो हिरण्ययो मणिः ।
तम् आभरद् बृहस्पति॰ कश्यपो वीर्याय कम् ॥१॥
बृहस्पतिस् तम् अबध्नां[त] मणिं वैश्वानरं सह ।
सनर्यो बलाय कं सं दधुर ... वर्चसः ॥२॥
विश्वे देवास् त्व इन्द्रियं ... च सं दधुः ।
जातो हिरण्ययो मणिर् अजैर् वैश्वानराद् अधि ॥३॥
... जात॰ प्रथमो [अ]ग्ने॰ प्रियतमा तनूः ।
वैश्वानरस्य पृष्ठया कृत्यादूषि॰ कृतो मणिः ॥४॥
कृत्यादूषिं त्वाविदं कृत्यादूषिं भरामि त्वा ।
कृत्यादूषिं कृणोमि त्वा कृत्यादूषिं वचोवसम् ॥५॥
यस्मै यक्षी ... कृत्यादूषिम् अपान्नहा ।

नितत्नि[र्]? विश्वभेषज उग्र× पतिक्रो मणिः ॥६॥
पतत्री ते वनाय कं नितत्निर्? भेषजाय ते ।
जातो हिरण्ययो मणिर् अप रक्षांसि सेधतु ॥७॥
देवो मणिस् सपत्नहा रक्षोहामीवचातनः ।
हिरण्मयं नरंदमान? कश्यपेनाभृतं सह ॥८॥
'श १.३१.१६' वैश्वानरं ते नाभिकम् मातुर् मध्ये योनेस् सह धर्मेण जातम् ।
गयस्फान× प्रतरणो वयोध× कृत्यादूषिर् वलगहारस् उग्रः ॥९॥
यस्येदं भूम्याम् अधि निष्क्रान्तं पांसुरे पदम् ।
मृडा नस् तन्वो यद् रपस् तस्मान्नाहि तनूवशिन् ॥१०॥
दूर्वां त्वा विप्र वयं देवस्य सवितुस् सवे ।
जीवातवे भरामसि महा अरिष्टतातये ॥११॥
आछेदन× प्रच्छेदनो छिपतस् तपनो मणिः ।
दानुंजयस् सपत्नहा छिपन्तम् अप बाधताम् ॥१२॥ ॥ऋ॰५॥ ॥अनु॰१॥

७.६

'शौ ३.१२.७' तेन देवा अमृत- 'ऋ १०.४०.८' (अमन्वविन्दन् ¦ प्रत्यस्य स्थूणां पृथिवी दाधार स्तेन? देवा अमृतम् अन्व् अविन्दन् ।
ध्रुवेण त्वा हविषा धारयाम्य् अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीताम् ॥१॥
येभिर् होमैर् विश्वकर्मा दाधारेमां पृथिवीं मातरं नः ।
तेभिष् ट्वा होमैर् इह धारयाम्य् ऋतं सत्यम् अनु चरन्तु होमाः ॥२॥
इह श्रियभ्यं धरुणे पृथिव्या उशत्या मातुस् सुमनाया उपस्थे ।
अपराधुत्वा? महसा मोदमाना अस्मिन् वास्तौ सुप्रजसी भवाथः ॥३॥
सुप्रजसौ महसा मोदमाना वर्ष्मन् पृथिव्या उपरि श्रयध्वम् ।
अस्यै शालायै शर्म यच्छन्तु देवा धारामिद् एनां पृथिवी पिपर्तु ॥४॥
इमां शालां श्रेष्ठतमां वसानाम् अरिष्टवीराम् अभि सं चरेम ।
इडा उपमितो भवन्तु स्थिरवीरा उपसदो भवन्तु ॥५॥
शौ ३.१२.४ इमां शालां सविता वायुर् इन्द्रो बृहस्पतिर् नि मिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं दधातु ॥६॥
मानस्य पत्नि हविषो जुषस्व तीमान्तस्य बहुलमध्यमस्य ।
शौ १ आ त्वा शिशुर् वाश्यताम् आ कुमार आ वाश्यन्तां धेनवो नित्यवत्साः ॥७॥
इडास् ते स्थूणा भवन्तु भूम्याम् अधि इडा× पक्षासस् तर्पये विशाले ।
स्थिरवीरा मम प्रसिता न एधि शर्म नो यच्छ द्विपदे चतुष्पदे ॥८॥
शाला देवी गार्हपत्याय चक्लृपे तृणं वसाना जगती सुशेवा ।
स्थिराङ्गां त्वा स्थिरवीरयाम् अस्य ¦ पत्नि? स्थिरा? त्वा वीरा अभि सं चरेम ॥९॥
शौ ४१.११ वास्तोष् पते प्रति जानीम् अस्मान् स्वावेशो अनमीवो न एधि ।
यत् त्वेमहे प्रति नस् तज् जुषस्व चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥१०॥ ॥ऋ॰६॥

७.७

शौ १९.३२.१ शौ १.४.१ दूर्भे उग्र ओषधीनां शतकाण्डो अजायत ।
[मणिस्] सहस्रवीर्य× परि न× पातु विश्वतः ॥१॥
यथा दर्भो आयमानस् त्वचं भिनत्ति भूम्याः ।
एवास्य भिद्यतां जनो यो न× पापं चिकित्सति ॥२॥
अप माम्म् अप कृत्याम् अप रक्षांसि धन्वा ।
अमीवाश् चातयामसि सर्वाश् च यातुधान्यः ॥३॥
अस्थि? वै निपत उग्रं न वै सर्वम् अनुष्कथम् ।
असि त्वं तस्य दूषणो यो न× पापं चिकित्सति ॥४॥
परि सायं परि प्रात× परि मध्यंदिनं परि ।
दर्भो हिरण्यहस्तम्र× परि न× पातु विश्वतः ॥५॥
गिरौ जातस् स्वरा[ड् अ]सि साकं सोमेन बभ्रुणा ।

मा पारङ्गत्यन्तस् शिशो? मा पाक× पुरुषो रि[षद् प]रि न× पातु विश्वतः ॥६॥
सहस्रकाण्डस् तविषस् तीक्ष्णवल्शो विषासहिः ।
दर्भेण सर्वा[न्] रक्षांस्य् अमीवाश् चाव चामसि ॥७॥
अपदग्धं दुष्वप्न्यम् अपदग्धा अरातयः ।
सर्वाश् च यातुधान्यः ॥८॥
मा त्वा दभन् यातुधाना मा गृध्नुश् शकुनि× पतन् ।
दर्भो राजा समुद्रिय× परि न× पातु विश्वतः ॥९॥ ॥ऋ॰१॥

७.८

यो न× पापेन वचसा घोषतो रुक्षदृशत्? ।
आराच् छरव्यम् मास्माम्? अप मुष्णतु सर्वतः ॥१॥
यन् मा शपाद् वरो नो यत् सपत्नी श्वश्रूर् वा यद् धुगुरो वा शपाति ।
ज्यायसश् शपथान् वा ये अपैतान् पाचयामसि ॥२॥
¦यां समयन्ते यथां बाहुंपातृत्याम् अधि ।
¦युवं तं विभ्रद् वाह्रो वृष× प्रतिष्ठन्तीयर्ता? ॥३॥
कृत्याकृतो यथोम? बभ्रुर् मघवा मो न साप्मा ।
¦हिरण्यधन्वां शरयां तुरङ्गतु? तां पीत्वेन्द्रो वृत्रं हाथो जघान ॥४॥
¦पास्वसैवाप्त ऋषभस् सहस्रं शरयां इव? ।
आराच् चरन्तु शरया इतरतो त्रिषोदिता अरसास् सन्तु सर्वे ॥५॥
मा स मां हा षा यो दे श दी खि ता? ।
अघोरचक्षस[ः] शर्म ते वर्म कृण्मसि ॥६॥
अपाञ्चो यन्तु शरया अनेनसा अघायुवा ।
यो नो दुरस्यां? जीवसे सेना आकस्येत ॥७॥
परि [मा] पातु शपथाद् अनृताद् दुरिताद् उत ।
परि मा ज्यायसश् शंसाद् देवो रक्षतु माम् इयम् ॥८॥
अनाप्त? यच्च शपथेद् अनु विध्या शयं? कृतम् ।
बृहद् वर्म प्रति मुञ्चामि ते ॥९॥
युवं तच्च यावांसीव? पक्षया ।
[आ] विशन्तु पतत्रिणश् शमारं शपथा× पुनः ॥१०॥ ॥ऋ॰२॥

७.९

शौ ५.७.१ मा नो दिशा मा परि ष्ठा अराते मा नो वक्षीद् दक्षिणां यातुमावान् ।
पुन× प्र धाता ऽविता च यच्छतां नमो वीर्त्साया असमृद्धयै च कृण्मः ॥१॥
शौ १ यम् अराते पुरोधत्से पुरु[षं परि]रापिणम् ।
नमस् ते तस्मै कृण्मो मा वनिं मम व्यथः ॥२॥
मनःसाधिः प्र युञ्ज्महे मनसा हृदयेन च ।
अराते तन्वो मा वीर्त्सीर् दित्सन्तं परिरापिणी ॥३॥
शौ ३ प्र णो वनिर् देवकृता दिवा नक्तं च सिध्यतु ।
[अ]रातिम् अनु प्रेमो वयं नमो [अ]स्त्व् अरातये ॥४॥
शौ ४ उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
[अ]राते चित्तिं वीर्त्सन्त्य् आकूतिं पुरुषस्य च ॥५॥
शौ ६ परो मेम् असमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि ।
यं छिप्यस् तं विदधम्या भूत्वा सुगमनी? दधमती दधोत् ॥६॥
¦नमस् ते [अ]स्तु समृद्धे मा माहं पुरोधि कृण्व् अप वर्मी त्वाहं ।
शौ ७ ¦अमीयन्ती वृतवन्ती मा ते मर्त्या ससम्वेभ्यो अधि निर्धदुर्मी? ॥७॥
शौ ६ मा नो वनिं मा वाचं वीर्त्सीर् उभाव् इन्द्राग्नी न आ भजतां वसूनि ।
[म्नो इच्छामहे] सर्वे नो [अ]द्य दित्सन्तो अराति प्रति हर्यत ॥८॥
शौ ४ सरस्वतीमनुमतिं भगं य- [... ... ... ।]

'शौ वाचं जुष्टां मधुमतीम्' शौ ५ [... ...] स यथानि देवानां देवहूतिषु ॥९॥
यं बाधा मम कुर्याद् जिह्वापौष्ठापिधानया ।
अश्वा तम् अप विन्दतु दृशा सोमेन बभ्रुणा ॥१०॥ ॥ऋ॰३॥

७.१०

शौ १९.३९.१-१० ऐतु देवस् त्रायमाण× कुष्ठो हिमवतस् परि ।
तक्मानं सर्वं नाशयन् सर्वाश् च यातुधान्यः ॥१॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषो न घायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परि ब्रवीमि त्वा सायंप्रातर् अथो दिवा ॥२॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता मार्षो नाम ते स्वसा ।
[न घायं पुरुषो रिषत् ।
[यस्मै परि ब्रवीमि त्वा सायंप्रातर् अथो दिवा] ॥३॥
उत्तमो [अ]स्य् ओषधीनाम् अनड्वान् जगताम् इव व्याघ्रश् श्वपदाम् इव ।
न घायं पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परि ब्रवीमि त्वा सायंप्रातर् अथो दिवा ॥४॥
त्रिश् शाम्बुभ्यो [अ]ङ्गिरेभ्यस् त्रिर् आदित्येभ्यस् परि ।
त्रिर् जातो विश्वदेवेभ्यः ।
स कुष्ठ विश्वभेषज साकं सोमेन तिष्ठसि ।
तक्मानं सर्वं नाशयन् सर्वाश् च यातुधान्यः ॥५॥
अश्वत्थो देवसदनस् तृतीयस्याम् इतो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं तत× कुष्ठो अजायत ।
[स कुष्ठ विश्वभेषज साकं सोमेन तिष्ठसि ।
[तक्मानं सर्वं नाशयन् सर्वाश् च यातुधान्यः] ॥६॥
हिरण्ययी नौर् अचरद् धिरण्यबन्धना दिवि ।
[तत्रामृतस्य चक्षणं तत× कुष्ठो अजायत ।
[स कुष्ठ विश्वभेषज साकं सोमेन तिष्ठसि ।
[तक्मानं सर्वं नाशयन् सर्वाश् च यातुधान्यः] ॥७॥
यत्र नाव× प्रभ्रंशनं यत्र हिमवतश् शिरः ।
तत्रामृतस्य चक्षणं तत× कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठ विश्वभेषज साकं सोमेन तिष्ठसि ।
तक्मानं सर्वं नाशयन् सर्वाश् च यातुधान्यः ॥८॥
'शौ यं वा त्वा कुष्ठ काम्याः' यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठकाम्य? ।
'शौ यं वा वसो यमात्स्यः' यं हि दया व सो म नु सा रि इच्छस्? तेनासि विश्वभेषजः ॥९॥
शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर् यश् च हायनः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥१०॥ ॥ऋ॰४॥ ॥अनु॰२॥

७.११

शौ ३.११.१० ये पर्वतात् सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वात× पर्जन्य आद् अग्निस् ते क्रव्यादम् अशीशमन् ॥१॥
'ऋ १०.१६२.३' शौ २०.९६.१३ यस् ते हन्तु चराचरम् उत्थास्यन्तं सरीसृपम् ।
गर्भं यो दशमास्यं तम् इतो नाशयामसि ॥२॥
यद् अग्निभ्यो [अ]प्सरसो गन्धर्वा गेह्या उत ।
क्रव्यादो मूरदेविनस् तान् इतो नाशयामसि ॥३॥
'ऋ ४' शौ १४ यस् त ऊरू आरोहत्य् अन्तरा दम्पती शये ।
आमाद× क्रव्यादो रिपुंस् तान् इतो नाशयामसि ॥४॥
ऋ ४ शौ १४ यस् ते श्रोणी व्यवैत्य् अन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तर् आरेहि तम् इतो नाशयामसि ॥५॥
ऋ ८ शौ ११ यस् त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
[अ]रायं कण्वं पाप्मानं तम् इतो नाशयामसि ॥६॥
¦हा ही वर्चं चतुते वैगुरच्यं तुन्दिल? ।

इन्द्रस्य तिग्मम् आयुधं तेन त्वा नाशयामसि ॥७॥
नमस् तुण्डाय नम× कुसुमाय नम× प्रतिष्ठाय्ने नम× कस्यपे? ।
नमस् तुभ्यं निर्ऋते विश्ववारे अग्ने संधायये तां विश्वरूपाम् ॥८॥
यावद् द्यौर् यावत् पृथिवी यावत् पर्येति सूर्यः ।
तावत् त्वम् उग्र गुल्गुल परीमां पाहि विश्वतः ॥९॥ ॥ऋ॰५॥

७.१२

एकराजीम् एकवताम् एकवस्याम् एकतामिकाम्? ।
पाठां सपत्नचातनीं जैत्रायाच्छावदामसि ॥१॥
एकराडस् एकव्रत एकस्य एकलामिके ।
न त्वा सपत्नी ससाह शीरे च म वा हा? ॥२॥
शौ ३.१८.४ उत्तराहम् उत्तराभ्य उत्तरेद् अधराभ्यः ।
अधस् सपत्नी सामकस्? अधरेद् अधराभ्यः ॥३॥
न सैव्यस्य पुष्पस्य सूर्यस् स्नापयति त्वचाम्? ।
पाटे स्नापया त्वया सपत्न्या वर्च आ ददे ॥४॥
न वै पाटेपाटे? वहसि सुमंगलकरीर् असि ।
पाटे भगम् आ नो धेह्य् अथो मा महिषीं कृणु ॥५॥
यत् पाटे अथो गृहे यातव्यया महीयसे ।
शौ ५.५.१ जयन्ती प्रत्यातिष्ठन्ती संजया नाम वा असि ॥६॥
शौ १.१८.१ उत्तानपर्णां सुभगां सहमानां सहस्वतीम् ।
अच्छा बृहद्वदां वद पाठां सपत्नीचातनीम् ॥७॥
पाठाम् इन्द्रो व्य् आश्नाद् धन्तवा असुरेभ्यः ।
तया सपत्नीं साक्षीय महेन्द्रो दानवान् इव ॥८॥
पाठा बिभर्तु अङ्गुरां हिरण्यवन्तम् अङ्गिनम् ।
तेन सपत्न्या वर्च आ लुम्पसि समेधनम् ॥९॥
शौ १.१८.१ इमां खनाम्य् ओषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
'शौ ४' अथा सपत्नीं बाधते कृणुते केवलं पतिम् ॥१०॥ ॥ऋ॰६॥

७.१३

यासाम् आराद् आघोषासो वातस्येव पृथग् यताः ।
तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः ॥१॥
या× पुरस्ताद् आचरन्ति साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥२॥
या वाचम् ¦ मनसध्यं न्द? अन्तरिक्षाद् अथो दिवः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥३॥
यासां प्रेङ्खो दिवि वृद्धो अन्तरिक्षे हिरण्ययः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥४॥
या× पतन्ति पालस्यात् उत्ताना× पादपातिनीः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥५॥
[या] वृक्षं परिसर्पन्ति साधवु? करिणति ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥६॥
याश् च त्वा दिशं गच्छन्ति विकुम्भाश् वेलमालिनीः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥७॥
यासां सिकतापाद् इषुर् वृद्धो मितो हिरण्ययः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥८॥
या रोकै× प्रपतन्ते पुष्करैर् इव आमयः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥९॥
या नदी× प्रतिगाहन्ते संरभ्य कन्यया वयः ।
[तासां सन्नताम्? इन्द्रो अप हन्तव् छिरः] ॥१०॥
यास् तीर्थम् अवगाहन्ते अप्स्वाप्सु श्वसतीर् इव ।

[तासां [illegible]' इन्द्रो अस्य छनत्तु शिरः] ॥११॥
यास् समुद्राद् उच्चरन्त्य् उच्चैर् घोषान् करिक्रतीः ।
[illegible] अमंसत [illegible] अधि वद्य ।
तासां [illegible]' इन्द्रो अस्य छनत्तु शिरः ॥१२॥

७.१४

अग्निर् आयुष्मान् स वनस्पतिभिर् आयुष्मान् ।
स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु ॥१॥
वायुर् आयुष्मान् सो ऽन्तरिक्षेणायुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥२॥
सूर्य आयुष्मान् स दिवायुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥३॥
चन्द्र आयुष्मान् स नक्षत्रैर् आयुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥४॥
सोम आयुष्मान् स ओषधीभिर् आयुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥५॥
यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिर् आयुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥६॥
समुद्र आयुष्मान् स नदीभिर् आयुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥७॥
इन्द्र आयुष्मान् स वीर्येणायुष्मान् ।
[स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु] ॥८॥
ब्रह्मायुष्मत् तद् ब्राह्मणैर् आयुष्मत् ।
तन् मायुष्मद् आयुष्मन्तं कृणोतु ॥९॥
देवा आयुष्मन्तस् ते [ऽ]मृतेनायुष्मन्तः ।
ते मायुष्मन्त आयुष्मन्तं कृण्वन्तु ॥१०॥
प्रजापतिर् आयुष्मान् स प्रजाभिर् आयुष्मान् ।
स मायुष्मान् आयुष्मन्तं कृणोतु ॥११॥

७.१५

दक्षिणा मा दक्षिणतो दक्षिणा पातु सव्यतः ।
पश्चाद् अनुव्याधात्' पातु सर्वस्मा अघायतः ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] दक्षिणा [illegible] ॥२॥
[illegible] दक्षिणां [illegible] ।
मा त्वा [illegible] हिरण्यस्य [illegible] ॥३॥
[illegible] दक्षिणाम् [illegible] विवर्हमि वर्च ते? ।
[illegible] सर्वे [illegible] मामकम् ॥४॥
[illegible] ।
हिरण्यम् [illegible] दक्षिणा ॥५॥
[illegible] हिरण्यं [illegible]
[illegible] पातु दक्षिणा । [illegible]
[illegible] ॥६–७॥
[illegible] ।
[illegible] परि पातु सर्वतः ॥८॥
दक्षिणा, [illegible] दक्षिणां [illegible] ।
[illegible] दक्षिणा [illegible] म[य]सि प्रतीमः ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] दक्षिणा [illegible] ॥१०॥

७.१६

अग्निर् मा पातु वसुभिः पुरस्तात् ।
तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१॥
वायुर् मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥२॥
सोमो मा रुद्रैर् दक्षिणाया दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥३॥
वरुणो मादित्यैर् एतस्या दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥४॥
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥५॥
आपो मौषधीमतीर् एतस्या दिशः पान्तु ।
तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥६॥
विश्वकर्मा मा सप्तर्षिभिर् उदीच्या दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥७॥
इन्द्रो मा मरुत्वान् एतस्या दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥८॥
प्रजापतिर् मा प्रजननवान् सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः [पातु ।
[तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
[स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा] ॥९॥
बृहस्पतिर् मा विश्वैर् देवैर् ऊर्ध्वाया दिशः पातु ।
तस्मिन् क्रमे तस्मिन् श्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०॥

७.१७

अग्निं ते वसुवन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायवः प्राच्या दिशो ऽभिदासान् ॥१॥
[वायुं ते ऽन्तरिक्षवन्तम् ऋच्छन्तु ।
[ये मायायव एतस्या दिशो ऽभिदासान् ॥२॥]
सोमं ते रुद्रवन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायवो दक्षिणाया दिशो ऽभिदासान् ॥३॥
वरुणं त आदित्यवन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायव एतस्या दिशो ऽभिदासान् ॥४॥
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायवः प्रतीच्या दिशो ऽभिदासान् ॥५॥
[अपस् त ओषधीमतीर् ऋच्छन्तु ।
[ये मायायव एतस्या दिशो ऽभिदासान् ॥६॥]
विश्वकर्माणं ते सप्तर्षिवन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायव उदीच्या दिशो ऽभिदासान् ॥७॥
इन्द्रं ते मरुत्वन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायव एतस्या दिशो ऽभिदासान् ॥८॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तम् ऋच्छन्तु ।

ये मायायवो ध्रुवाया दिशो ऽभिदासान् ॥९॥
बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तम् ऋच्छन्तु ।
ये मायायव ऊर्ध्वा[या] दिशो ऽभिदासान् ॥१०॥

७.१८

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह ।
अग्ने तां इह मादय सर्वा आ यन्तु मे हवम् ॥१॥
इन्द्रा याहि मे हवम् इदं करिष्यामि तच् छृणु ।
इमम् इन्द्रातिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे ।
तेभिः शकेम वीर्यं जातवेदस् तनूवशिन् ॥२॥
यद् असाव् अमुतो देवा अदेवः सन् चिकीर्षति ।
मा तस्याग्निर् हव्यं वाक्षीद् हवं देवा अस्य मोप गुर्
ममैव हवम् एतन ॥३॥
अति धावतातिसरा विश्वस्येशाना ओजसा ।
वृश्चतामुष्य जीवितम्? इन्द्रेण सह मेदिना ॥४॥
अतिधावतातिसरा इन्द्रस्योग्रेण हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन् मा मोचि ।
[प्राणम्] अस्य [illegible] ॥५॥
यम् अमी पुरोदधिरे ब्रह्माणम् अपभूतये ।
इन्द्र स ते अधस्पदं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ।
[illegible] एवं शयताम् ॥६॥
यदि प्रेयुर् देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणानि चक्रिरे सर्वं तद् अरसं कृधि ॥७॥
यान् [illegible] इन्द्र वृत्रहन् प्रतीचः [illegible] विध्य ।
अत्रैनम् अधि तिष्ठत [illegible] अहं तव ।
अनु त्वेन्द्रा रभामहे स्याम सुमतौ तव ॥८॥
यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम् ।
कृण्वे ऽहम् अधरां तथा शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥९॥

७.१९

अङ्गिरसो [illegible] वनस्पतिम् ।
स [illegible] इन्द्रेण मेदिना ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] हिरण्यकेशो [illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] हिरण्यकेशो [illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] इन्द्रेण मेदिना ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] आयुषे ॥१०॥

७.२०

मगराय शत्रुहणे स्वाहा ॥१॥
शर्मीलाय! शत्रुहणे स्वाहा ॥२॥
सहंसाय! शत्रुहणे स्वाहा ॥३॥
इषिराय शत्रुहणे स्वाहा ॥४॥
अवस्यवे शत्रुहणे स्वाहा ॥५॥
वायवे शत्रुहणे स्वाहा ॥६॥
वाताय शत्रुहणे स्वाहा ॥७॥
समुद्राय शत्रुहणे स्वाहा ॥८॥
मातरिश्वने शत्रुहणे स्वाहा ॥९॥
पवमानाय शत्रुहणे स्वाहा ॥१०॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां सप्तमः काण्डः समाप्तः ॥

८.१

कथा दिव्यायासुराय ब्रवीः! कथा पित्रे हरये त्वेषनृम्णः ।
पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसा चिकित्से ॥१॥
न कामेन पुनर्मघो भवामि सं चक्षे कं पृश्निम् एताम् उपाजे ।
केन नु त्वम् अथर्वन् काव्येन केन जातेनासि जातवेदाः ॥२॥
सत्यम् अहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय यद् अहं धरिष्ये ॥३॥
न त्वद् अन्यः कवितरो न [मेधया धीरतरो वरुण स्वधावः ।
त्वम् अङ्ग विश्वा जन्मानि वेत्थ स चिन् नु त्वज् जनो मायी बिभाय ॥४॥
त्वं ह्य् अङ्ग वरुण स्वधावो विश्वा वेत्थ जनिमा]सुप्रणीते! ।
किम् एता रजसः परो ऽस्ति किम् अवरेणावरम् अमूर ॥५॥
एकम् एतद् रजसः परो ऽस्ति एन धरुणेन दूणाशं! किम् अन्यत् ।
तत् ते विद्वान् वरुण प्र ब्रवीम्य् अधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर् दासा उप सर्पन्तु भूमिम् ॥६॥
त्वं ह्य् अङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्व् अवद्यानि भूरि ।
मो षु पणीर् अभ्य् एतावतो भूर् मा त्वा वोचन्न् अराधसं जनासः ॥७॥
मा मा वोचन्न् अराधसं जनासः पुनस् ते पृश्निं जरितर् ददामि ।
स्तोत्रं मे [वि]श्वम् आ याहि शचीभिर् अन्तर् विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥८॥
आ ते स्तोत्राण्य् उद्यतानि यन्त्व् [अन्तर् विश्वासु मानुषीषु दिक्षु] ।
देहि नु मे यन् मे अदत्तोऽसि युज्यो मे सप्तपदः सखासि ॥९॥
समा नौ बन्धुर् वरुण समा जा वेदाहं तद् यन् नाव् एषा समा जा ।
ददामि तद् यत् ते अदत्तो अस्मि [युज्यस् ते सप्तपदः सखास्मि] ॥१०॥
देवो देवाय गृणते वयोधा विप्रो विप्राय स्तुवते सुमेधाः ।
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्न् अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् ।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो असि परमं च बन्धुः
॥११॥

८.२

तृष्टा मे रपो रपसा नि तस्थुर् उग्रेण तं वचसा बाधे नु ते ।
अहं तम् अस्य नृभिर् अग्रभं रसं ज्योतिरिव तमस उद् एतु सूर्यः ॥१॥

यत् ते अपोदकं? विषं तत् [त ए]तास्विद् अग्रभम् ।
गृह्णामि मध्यम[म् उत्तमं रस]म् उतावमं भियसा नेशद् आद् उ ते ॥२॥
वलेन ते पलं हन्मि तन्वा हन्मि ते तनूम् ।
विषेण हन्मि ते विषम् अहे मरिष्ठा! मा जीवीः प्रत्यग् अभ्य् एतु त्वा विषम् ॥३॥
असितस्य तैमातस्य बभ्रोर् अपोदकस्य च ।
सात्रासाहस्य मन्योर् ज्याम् उग्रस्येव धन्वनो वि मुञ्चामि रथाँ इव ॥४॥
कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्र आ मे शृणुतासिता अलीकाः ।
मा मम सख्युस् स्थामानम् अपि ष्ठाताश्रावयन्तो नि विषे रमध्वम् ॥५॥
¿आलका च व्यवलु? पिता यस् ते माता च ।
विश्व ते विश्वतो बन्धु सो ऽरसः किं करिष्यसि ॥६॥
उरुगूलाया? दुहि[ता] जाता दास्यसिक्न्या ।
प्रतंगतं दुदह्नीनुषा? अहीन् अरसाँ अकः ॥७॥
कर्णा? श्वाविद् अग्रवीद् गिरेर् अवचरन्तिका ।
याः काश् चेमाः खनित्रिमास् तासाम् अरसतमं विषम् ॥८॥
¿तावुवं न तावुवं न हेरसित्वं [तावुवम्] ।
¿तावुवेनारसं विषम् ॥९॥
¿तस्तुवं [न तस्तुवं] न इरिसित्वं तस्तुवम् ।
¿तस्तुवेनारसं विषम्? ॥१०॥
[अ]रसं ते ऽहे विषम् इयं कृणोत्व् ओषधिः ।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम् अहातापत्? गोर् अश्वात् पुरुषाद् विषम् ॥११॥ ॥ऋ°२॥

८.३

यद् आञ्जनं त्रैककुदं जातं हिमवतस् परि ।
यातूंश् च सर्वान् जम्भयत् सर्वाश् च यातुधान्यः ॥१॥
उतेषासि परिपाणं यातुजम्भनम् आञ्जन ।
उतामृतत्वस्येशिष उतासः पितुभोजनम् ॥२॥
परिपाणं पुरुषाणां परिपाणं गवाम् असि ।
अश्वानाम् अर्वतां परिपाणाय तस्थिषे ॥३॥
परीमां परि नः प्रियं परि नः पाहि यद् धनम् ।
अरातिर् नो मा तारीन् मा तारीत् किं चना ममत् ॥४॥
न तं प्राप्नोति शपथो न कृत्या नाभिशोचनम् ।
नैनं विष्कन्धम् अश्नुते यस् त्वां बिभर्त्य् आञ्जन ॥५॥
असन्मन्त्राद् दुष्वप्न्यात् क्षेत्रियाच् छपथाद् उत ।
दुर्हार्दश् चक्षुषो घोरात् तस्मान् नः पाह्य् आञ्जन ॥६॥
त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आद् अहिः ।
वर्षिष्ठः पर्वतानां त्रिककुन् नाम ते पिता ॥७॥
वृत्रस्यासि कनीनिका पर्वतस्यास्य् अक्ष्यो ।
वृषभिस् सर्वैः प्रोक्तं परिधिर् नाम या असि ॥८॥
येदो हि येद ते नाम गन्धर्वपरियादनम् ।
यद् आञ्जन प्रजायसे तद् एव अरिष्टतातये ॥९॥
यदि यासि त्रैककुदं यदि यासनुम्? उच्यसे ।
उभे ते भद्रे नाम्नी ताभ्यां नः पाह्य् आञ्जन ॥१०॥
यस्याञ्जन प्रसर्पस्य् अङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधस्व त्वम् उग्रो मध्यमशीर् इव ॥११॥
नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
जने स न प्रमीयते यस् त्वां बिभर्त्य् आञ्जन ॥१२॥
इदं विद्वान् आञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयम् अश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥१३॥ ॥ऋ°१॥

८.४

य एकवृषो ऽसि सृजारसो ऽसि ॥१॥
यो द्विवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥२॥
यस् त्रिवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥३॥
यश् चतुर्वृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥४॥
यः पञ्चवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥५॥
यष् षड्वृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥६॥
यस् सप्तवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥७॥
यो अष्टवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥८॥
यो नववृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥९॥
यो दशवृषो ऽसि [सृजारसो ऽसि] ॥१०॥
यो ऽपोदको ऽसि सृजारसो ऽसि ॥११॥ ॥ऋ°४॥

८.५

एका च मे दश च मे वाचयत्कार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत् ॥१॥
द्वे च मे विंशतिश् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥२॥
तिस्रश् च मे त्रिंशच् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥३॥
चतस्रश् च मे चत्वारिंशच् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥४॥
पञ्च च मे पञ्चाशच् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥५॥
षट् च मे षष्टिश् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥६॥
सप्त च मे सप्ततिश् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥७॥
अष्ट च मे अशीतिश् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥८॥
नव च मे नवतिश् [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥९॥
दश च मे शतं [चापवस्कार ओषधे ।
[ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत्] ॥१०॥
शतं च मे सहस्रं चापवस्कार ओषधे ।
ऋतजात ऋतावरि मधु त्वा मधुला करत् ॥११॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°१॥

८.६

आ पश्यसि प्रति पश्यसि परा पश्यसि पश्यसि ।
द्याम् अन्तरिक्षम् आद् भूमिं तत् सर्वं देवि पश्यसि ॥१॥
तिस्रो दिवस् तिस्रः पृथिवी[ष्] षट् चेमाः प्रदिशो महीः ।
तयाहं सर्वान् यातून् पश्यामि देव्य् ओषधे ॥२॥
सुपर्णस्य दिव्यस्य तस्य हासि कनीनिका ।
सा भूमिम् आ रोहद् वह्यं श्रान्ता वधूर् इव ॥३॥
मह्यं मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।
तयाहं सर्वं पश्यामि यच् च भूतं यच् च भव्यम् ॥४॥
यथा दृशा चतुरक्षो यथाश्वसः श्यावो ऽर्दताम् ।
यथाग्निर् विश्वतः प्रत्यङ् एवा त्वम् असद् ओषधे ॥५॥
कश्यपस्य चतुरक्षस्य? शुन्याश् च चतुरक्ष्याः ।
वीध्रे सूर्यम् इव सर्पन्तं मा पिशाचं तिरस् करः ॥६॥

दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
आयस्स्पृग् एव तिष्ठन्तं दर्शय मा किमीदिनम् ॥७॥
उद् अग्रभं परिपाणं यातुधानात् किमीदिनः ।
तेनाहं सर्वं पश्याम्य् उत शूद्रम् उतार्यम् ॥८॥
यथा सूर्यस्य चन्द्रमसश् च विश्वा भूता विपश्यतः ।
एवा वि पश्यतात् त्वम् अथासुर ओप गाद् इह ॥९॥
यो अन्तरिक्षेण पतति भूम्या यश् चोपसर्पति ।
दिवं यो मन्यते नाथं तं पिशाचं दृशे कुरु ॥१०॥
आविर् कृणुष्व रूपाणि मात्मानम् अप गूहथाः ।
एवा सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्यास्य् आयतः ॥११॥ ॥ऋ°१॥

८.७

¿सो भे अां स्यो दां स्तु म स प तिष्ठा म उपार्पत? ।
अहीनां सर्वेषां विषम् अरसं कृण्व् ओषधे ॥१॥
अदयकन्दस्य वान्दस्य? पृदाकोर् गोनुदोर्? उत ।
श्वित्राणां सर्वेषां विषम् अरसं कृण्व् ओषधे ॥२॥
वांपाकस्य? मपकस्य गोधापिहोर्? अहेर् उत ।
असितानाम् एतद् जातम् अरिहे [अ]रसं कृधि ॥३॥
एतद् जातं स्वजानां तद् उ बभ्रो ऽरसं कृधि ।
सर्पस्य बभ्रो भेषज्य् असीय? वि[ष]दूषणी ॥४॥
त्रायमाणा प्र श्रवीतु सर्वं रक्षो महीनाम् ।
तिरश्चिराजेर् असितान् अघोपरायाय च ये ॥५॥
सहस्वान् यातुधानं सासह यातुधान्यम् सहस्वान् सासह ।
सं ह नाम अभव महस्वाहं? पैद्वेनोग्रेण वचसा मम ॥६॥
¿अन्धापूरश् च हृदयांश्? च शपथांश् च रथं वृहः ।
समा उत पश्यन्तां सर्वान् अरसाँ अकः ॥७॥
¿असितस्य विद्रधस्य हरितो यश् च विद्रधः ।
¿इमंसी विद्रधानां यो सूज्जा त्वयि ता अजीजनत्? ॥८॥
यस् स्वजानां नीलग्रीवो यस् स्वजानां हरिर् उत ।
कल्माषपुच्छम् ओषधे जम्भयास्य् अरुन्धति ॥९॥
¿मा यं स स अ अ हि अ ह: वि त र ज्ञा स्त हि यं? ।
इमां म् अक्षा ओषधिम् आ हराम्य् अरुन्धतीम् ॥१०॥
एतद् जातं पृदाकूनाम् अरसं जीवले कृधि ।
इन्द्रस्य मघवा वीरुद् असीय? विषदूषणी ॥११॥ ॥ऋ°२॥

८.८

शतम् अर्वाङ् प्र स्यन्दन्ते प्र स्यन्दन्ते शतं परः ।
शतं वृक्षस्य काण्डानि तेभ्य आपो वि धावत ॥१॥
अन्तरिक्षे पर्यायिण्यो नभसः परि जज्ञिरे ।
आपो हिरण्यवर्णास् तास् ते भवन्तु शं हृदे ॥२॥
शं ते सन्तु हृदयाय शं ते हृदयाभ्यः? ।
शं ते अक्षे? क्लोमभ्यश् शम् उ ते वंक्षेभ्यः? ॥३॥
यद् अङ्गैर् अपः पस्पृशे यच् छीर्ष्णा यच् च पृष्टिभिः ।
आपस् तत् सर्वं निर् करन् स्वदा रिहम् इवात्मनः ॥४॥
सं हृदयेन हृदयम् ओदनेन सम् ओदनाः ।
अङ्गिर मुञ्चापस् सितं ता यर्ल्भ्यो? [अ]तत् सम् एतु ते ॥५॥
आचरन्तीः पर्वतेभ्यो देवीर् देवेभ्यस् परि ।
आपो यम् अप प्रावन् न स रिष्यात् पूरुषः ॥६॥
शं त आपो हैमवतीश् शम् [उ] ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपश् शम् उ ते सन्तु वर्ष्याः ॥७॥

शं त आपो धन्वन्याश् शम् उ ते सन्त्व् अनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपश् शं याः कुम्भेभिर् आभृताः ॥८॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे ऽपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छावदामसि ॥९॥
अपाम् अह दिव्यानाम् अपां स्रोतस्यानाम् ।
अपाम् अह प्रणेजने ऽश्वा भवथ वाजिनः ॥१०॥
ता अपश् शिवा अपो ऽयक्ष्मंकरणीर् अपः ।
यथैव तृप्यते मयस् तास् त आ दत्त भेषजीः ॥११॥ ॥ऋ°३॥

८.९

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवम् आ ततान ।
भूतानां ब्रह्म प्रथमो ऽधि जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥१॥
ब्रह्मेमे द्यावापृथिवी ब्रह्मेमे सप्त सिन्धवः ।
ब्रह्मेमे सर्वं आदित्या ब्रह्म देवा उपासते ॥२॥
ब्रह्म ब्राह्मणो वहति ब्रह्म रात्री नि वसते ।
सावित्रे? ब्रह्मणो जातं ब्रह्मणाग्निर् वि रोचते ॥३॥
ब्रह्मौषधयो ऽनु तिष्ठन्ति ब्रह्म वर्षन्तु वृष्टयः ।
ब्रह्मेदं सर्वम् आतमन्वद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥४॥
ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञो ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर् ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं? हविः ॥५॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर् ब्रह्म ह्यग्नो भद्रेणा ब्रह्म यज्ञो हविष्कृतः ।
ब्रह्म रथस्य देवस्य पृष्ठे याति स्वरंकृतम् ॥६॥
ब्रह्मणा सार्द्रं वसति ब्रह्मणा युज्यते रथः ।
ब्रह्मणा पुरुषो ऽभ्ययामं स्यपते चरन् ॥७॥
ब्रह्मणो जाता क्षत्रो ब्रह्मणो राजन्या उत ।
ब्रह्मेदं ब्रह्मणो जातं ब्रह्मणो विश्वकम्? ॥८॥
¿ब्रह्म शूद्रा राजन्यानां ब्रह्मैषाम् उत विश्वतः? ।
ब्रह्मैषां भद्रं सदनं ¿ब्रह्मणैषां सभा सदा? ॥९॥
¿ब्रह्म दासद् ब्रह्म दासात्? ब्रह्मेमे कितवा उत ।
स्त्रीपुंसी ब्रह्मणो जाती ¿स्त्रियो ब्रह्मोष वाचना? ॥१०॥
ब्रह्मोग्रतो नियतो ब्रह्म सर्वतो
वानस्पत्या पर्वता वीरुधो ब्रह्मेदं सर्वम् अन्तरा
उतानाम्? अन्तरा द्यावापृथिवी उभे ॥११॥
ब्रह्मैवाभवद् उत्तरं जातवेदो मह्यं यज्ञो यातुधानं महायलम् ।
प्रजायायाँ तपुर्वी हेतिम् अस्मै नयशिनी? वि सृजतं वधाय ॥१२॥ ॥ऋ°४॥

८.१०

यद् अश्विना ओषधीषु मासिकां पुष्करस्रजा वीरुधो मधु विश्वतीः? ।
तेनाहम् अस्या मूर्धानम् अधि सिञ्चामि मार्याः ॥१॥
[यद्] अश्विना पुष्पाद् अधि माक्षिके मधु संभृतम् मधे क्षवनेन मधुमतेन ।
[तेनाहम् अस्या मूर्धानम् अधि सिञ्चामि मार्याः] ॥२॥
[यद्] अश्विना गुग्गुलुम् आञ्जने मधु संभृतं यद् असिन् मधुये मधु ।
[तेनाहम् अस्या मूर्धानम् अधि सिञ्चामि मार्याः] ॥३॥
यद् अश्विना ह्य? मधु गोषु अश्वेषु यद् मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले ऽधि यद् मधु ।
तेना[हम् अस्या मूर्धानम् अधि सिञ्चामि मार्याः] ॥४॥
यद् अश्विना गोवर्चसं हिरण्यवर्चसं हस्तिवर्चसम् अभिवम् ।
तेनाहम् अस्या मूर्धानम् अधि सिञ्चामि मार्याः ॥५॥
अभि नन्दम् अभि मोदम् अभि तल्पं कृणोमि ते ।
आ ते भगं वर्तयेताम् अश्विना पुष्करस्रजा ॥६॥

यद् अन्तु ते सर्वेस् सुभगे सिक्तायां ते मधुकम[स्] ।
अग्ने अस्मान्! तद यस्मिं मधुमन्तम् ।
;ब्रह्मणस्पत स्वर्णेन पृथिव्यामिव पतिः! ॥७॥
त्वं यद् समति: पुमन् इन्द्र इन्द्र इन्द्रस्य वाजिनः ।
अग्नि! ते उरुं उरमम् मत्ये ब्रह्मणस्पतिम्! ॥८॥
यत् ते सर्वो उपमम ,अस्मद् दक्षिणतमः! ।
पुत्रम् तद् अश्विना वधत् मा धत्तं पुष्करस्रजा ॥९॥
अग्नि मा सर्वेषाद्भुत दिवेन दक्षता यद् ।
तदा वीरविप्रम्मो! देवेभ्यो मधुमना ॥१०॥
अश्व ते विश्वरूपा अहं देवी सरस्वती ।

अश्व ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥११॥

पतिं ते राजा वरुणः पतिं देवो बृहस्पतिः ।
पतिं त इन्द्रश् चाग्निश् च पतिं धाता दधातु ते ॥१२॥

८.११

अस्मद् ते अत्र अग्नीत् अन्तो अन्यद् अर्वं अत्र ।
धाताद् अन्य अन्य सोमात्रि देवि मधुमत्यवर्तिम् ॥१॥
ऊर्जस्वत्यम् आ रमस्व स्योनियत्वा सुमति मः ।
इन्द्रो वीरुत्स्वायावरो यत्र यद् पुरोगवः ॥२॥
आनन्द हस्तकृष्टी पुष्करे यविशालती ।
अदः पृथिव्याः सीमन्तन् इदं वहताम् अश्विना ॥३॥
अग्निमिदः परिशिष्टो वचेन पितुः भद्रः ।
धर्मो मधुमत्यां अत्र देवानाम् भागं मतः ॥४॥
;पुत्रा मनसो सुभगा परिष्कृत ।
;वीरासा स यो यतो वीरप्रभावाद् परिष्कृतिः ॥५॥
;ऐन्द्र मुचि व्रं वृषस्पतेविद सौमनसस् समृद्धयताम्! ।
होतारो दं च सम्यग्वर्त ते हि स्वाति सम् आवहन् ॥६॥
अभिप्रयतो वृतायनमधुवः! ष्यकम् आ वर ।
देवाता सन्यासौ सुवनस्य स अहन्तु आते स्वर्तिम् इहास्येतुर्वाः! च ॥७॥
आ दद्वाद् आ पुरुस्तात् उत्तरात् अधरात् उत ।
इन्द्र यसोत् देवताः आते स्वर्ति सम् आवहन् ॥८॥
स्वस्तिम् इन्द्रः आते अग्नि ,इहोरमनस् उद् तृणत्! ।
स्वस्ति दे विश्वे देवान् स्वस्ति सोमो अथो मरुः ॥९॥
स्वस्तिम् दे अस्तु इमसोरत् स्वस्तिर् यत्र मा एतदे ।
शतहस्तेन सोद् पुत्र सहस्रस्येव अभ्यता ॥१०॥
इह ते पुत्र मा अर वपाद् कामये गया ।
यथेवर् अथ स्वस्ति इतीव इस्तिनस् गह ॥११॥

८.१२

स्वाहितं! मा अश्विना युवं हतुतां पुष्करस्रजा ।
याम् अश्विन्धन्व सौधन्वाता विश्वे देवा अवहृताः ।
याम् अश्विनावभिहुर्ना मा युवा वसु धावतु ॥१॥
स्वर्णेन स्वार्तिसमी अथ अथोर् मधुमना अथ ।
अथ प्रयेम्पराम यद् वा स्वे! सुभगे अव ॥२॥
सम्भ[र] अतं व्रवी[र] अतम् अथो अतं दिवस् परि ।
अथो समुद्रात् अतं तम् सुभगो अथ ॥३॥
नारीणाम् अमि अतुना मा सुवर्चसा अव ।
आया हि अनुस्थाति ,पृश स्वस्तु विमाता! ॥४॥

अपुरस् त ऊर्ध्वनभसरं चकार प्रथमस् स्वरे ।
;सुरे दायस् चित्वा गृहे सिरधान्यस्य घचकतु? ॥५॥
;निर् पुष्यकं कशीकाया? निर् धारय सुराम् उत ।
उद् यदि वाजिनीपति किम् अङ्गतिप् इच्छति ॥६॥
किम् एतं अन्या आसते उपस्तीर् अभिपृष्ठ्यः ।
सुरे देवि परि प्रेहि मादयन्ती अनंजनम् ॥७॥
अस्या गृह्णामि स्वालेन गाम् अश्वं धान्यं वसु ।
सा सुरा वसु धावतु ॥८॥
आचरन्तीः पर्वतेभ्यः अनमाना अनभ्रयः ।
यासां समुद्रे संस्थानं यासां नास्ति निवेशनम् ।
तास् ते ददतु वृद्धम् इदं कृद येषां सुराम् ॥९॥
यां इरा कामयामहे तायन्ध? भगस् ताम् अश्विना तायम्मायह?
सरस्वती ।
अयं देवो मधूलकः! इवपुरात् भरतं ददत् ॥१०॥
संक्रमणाः परिक्रमणा गिरिभ्यस् पर्व आवृताः ।
मध्ये दातस्य नस्तिभ्यो! [अ]नड्वान् इमा मेहतु ॥११॥

८.१३

समुद्राद् ऊर्मिर् मधुमाँ उद् आरद् उपांशुना सम् अमृतत्वम् आनट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यद् अस्ति जिह्वा देवानाम् अमृतस्य नाभिः ॥१॥
वयं नाम प्र ब्रवाम घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवत् छस्यमानं चतुःशृङ्गो ऽवमीद् गौर एतत् ॥२॥
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३॥
त्रिधा हितं पणिभिर् गुह्यमानं गवि देवासो घृतम् अन्व् अविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनाद् एकं स्वधया निष् टतक्षुः ॥४॥
एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्रात् शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥
सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर् हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्य् ऊर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोर् ईषमाणाः ॥६॥
सिन्धोर् इव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्न् ऊर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य[स्] स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥
कन्या इव वहतुम् एतवा उ अञ्ज्य् अञ्जाना अभि चाकशीति ।
यत्र सोमस् सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥९॥
अभ्य् अर्ष[त] सुष्टुतिं गव्यम् आजिम् अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥१०॥
धामन् ते विश्वं भुवनम् अधिश्रितम् अन्तस् समुद्रे हृद्य् अन्तर् आयुषि ।
अपाम् अनीकात् समिथाद् य आभृतस् तम् अश्याम मधुमन्तं त
ऊर्मिम् ॥११॥

८.१४

द्वे विरूपे चरत[स्] स्वर्थे अन्यान्या वत्सम् उप धापयेते ।
हरिर् अन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥
दशेमं त्वष्टुर् जनयन्त गर्भम् अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२॥
त्रीणि जाना परि भूषन्त्य् अस्य समुद्र एकं दिव्य् एकम् अप्सु ।
पूर्वाम् अनु प्र दिशं पार्थिवानाम् ऋतून् प्रशासद् वि दधाव् अनुष्ठु ॥३॥
क इमं वो निण्यम् आ चिकेत वत्सो मातॄर् जनय[त] स्वधाभिः ।

[बर्हिर्यां गावौ अनसान् उक्षणात् अह्वात् अतिर् सिद् अर]ति अव-
धारात् ॥८॥
आविष्कृतो वर्धते चारुर् आसु जिह्मानाम् ऊर्ध्व[स्] स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर् बिभ्यतुर् जाय[मा]नात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५॥
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुर् एवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर् बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥६॥
उद् यंयमी[ति] सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच् छुक्रम् अत्कम् अजते सिमस् मात् नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिर् अद्भिः ।
कविर् बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर् बभूव ॥८॥
उरु ते ज्रयः पर्य् एति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिर् अग्ने स्वयशोभि[र्] इद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्य् अस्मान् ॥९॥
धन्वन् स्रोतः कृणुते गातुम् ऊर्मिं शुक्रैर् ऊर्मिभिर् अभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर् नवासु चरति प्रसूषु ॥१०॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिस् सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

८.१५

यो ब्राह्मणस्य इद् सौविद आतेव उत बाह्मणो यः ।
मान्तुवाता पीतमा वे वाक्सिहुताद् तेभ्यः प्र मृन इव चिच्छिदयाति ॥१॥
आनस्यन्तो वः वाचः पुष्पान्तकवन्ना विश्वहृदया याना मुद्गला अवस्काः? ।
सौविधाय यंकृतयो ब्राह्मणा ये न पुष्यात् तेभ्यः प्र मृन इव चि-
च्छिदयाति ॥२॥
यो नो उद्धियद् ब्राह्मणो माधवाजेनाभ्येत! सुत कृत देवेष ।
विश्वे देवा इन्द्रहूतो ऽत्र तक्षिम्न् इदं वं ;मयां चिच्छिदयां? ॥३॥
वनोयवद् चिच्छिदे ब्राह्मणस्याथ विशेषकांस? वनुषा पुष्करानि ।
अतुलिस्कर वोकालसा नु तद् नि यदे तको तद् देवा उत वेदयन्ति ॥४॥
आसर्वात् न विवेत न यर्वीत न विश्विति आयात् ।
सोत युवं सूर्विधिन्दिवे ;सोलोकिय विश्वेब्बरितस्य वन्दा? ॥५॥
इतर्तिनो यत्नया दे मवर्तयः पुष्पभृष्कान् उत था अवेद ।
यश्वियां यानि अविमति विश्व तेभ्यः प्र मृन इव चिच्छिदयाति ॥६॥
सोमर्वालां पन्यक्ष्यानां ध्रतातां अर्थापेतद् उत विष्णवतु देवाः ।
सर्वाविन विदे वसें ,वन्यं मवद्? ब्राह्मणविनिश्चियत् अन्य् अविन्दन् ॥७॥
तत्रो तद् प्रदारी ताम् अवद्? यो नो उद्धियद् यो नो उतो उद्धिमर् ।
ब्राह्मणाय चिच्छिद अविशतस सोमर्वेतान् इन्द्रतो आह्वेषु ॥८॥
तसिन्ध्वद् ब्राह्मणान् सं विश्वसं सीतं नावादि पुत्रद् एतु सर्वम् ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवान् ते वे विश्वं पुत्रद् आ अर्चयन्तु ॥९॥
स दीर्घम् आयुर् कृणोति पुत्रवतो जिजीविषति ।
यो ब्राह्मणस्य ब्राह्मणो पुत्रोऽस्तु? चिच्छिदे ॥१०॥
अस्य अर्धा धातौ हन्ति न खड्गो माध्यति ।
यो ब्राह्मणस्य ब्राह्मणं वयं चाति चिच्छिदे ॥११॥
तं सोमपीतो घुघुते भूयसा भगवतिम् अद्द ।
यो ब्राह्मणस्याक्ष्म इन्द्रस् सूर्यं इन्द्राकाद्भुतम् अत्रः ॥१२॥
न इत्याय चिच्छिदे ब्राह्मणस्याय इच्छन्न् अवासने ।
इतीर्षं धातावृधिवी सं तत्याद् अथेन्द्र अस्था यव्याप् ॥१३॥

८.१६

अत्र च या अवतिद् न अहा यक्षया अनु ।

;इतस् तास् सर्वा नश्यन्त्व् अनुत्ताः प्रत्यञ्चो मयः! ॥१॥
सप्त च याम् सप्ततिद् वाकदा यज्ञम्या अनु ।
;इतस् तास् सर्वा नश्यन्त्व् अनुत्ताः प्रत्यञ्चो मयः! ॥२॥
पञ्च च याः पञ्चाशत् वाकदा यज्ञया अनु ।
;इतस् तास् सर्वा नश्यन्त्व् अनुत्ताः प्रत्यञ्चो मयः! ॥३॥
ऊरुभ्यां ते [अ]ष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्यां ।
श्रिया ;आतेव पुत्रयीत? प्र गृणीमसि ॥४॥
;अभरतताम् अङ्गेषु पृष्ठ्यां पार्षीयां शमिष्ठतीम्? ।
ताम् एतां दस्यूनां दासीं प्र दहेतम् शुक्राकपि? ॥५॥
;प्र पतति शुष्कानि शुष्केः कुर्कारको यथा ।
;स्वकं ते वियुं भुक्षानि सा न शिप्यसि पुष्पणी? ॥६॥
परास्यात् सुर्के दहेद् यथा सूचीनम् अग्निना ।
ताम् एतां दस्यूनां दासीं ;प्रत्यगेन हविष्यते? ॥७॥
संवत्सरम् अजरो सुरेभ्यः ;एतं निर्मीत्? ।
यत्र सेवस्य दुर्गन्धि तत् त एतन् न्यञ्जनम् ॥८॥
नैतत् तव मातुरं न्यां न त एतन् न्यञ्जनम् ।
अपास्तम् एतद् वीरेभ्यो देवैः प्रजननं कृतम् ॥९॥
;गिरेते ऽसि पृतम् उदकं हिमवन्तु तस्येव प्रस्कन्द
;न्तुप्रआमिशुयेवपुष्पणी? ॥१०॥
स त्वं गोभिर् अश्वैः प्रजया प्रजननं भव ।
यो मा तत्र प्रहिणीर् यत्र जीवन्तु मनुष्या ॥११॥

८.१७

मित्रः पृथिव्योद् अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा व[स्] शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१॥
वायुर् अन्तरिक्षेणोद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥२॥
सूर्यो दिवोद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥३॥
चन्द्रमा नक्षत्रैर् उद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥४॥
सोम ओषधीभिर् उद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥५॥
यज्ञो दक्षिणाभिर् उद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥६॥
समुद्रो नदीभिर् उद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥७॥
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिर् उद् [अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥८॥
इन्द्रो वीर्येणोद् अक्रामत् तां [पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु] ॥९॥
देवा अमृतेनोद् अक्रामंस् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥
प्रजापतिः प्रजाभिर् उद् अक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
ताम् आ विशत तां प्र विशत सा वश् शर्म च वर्म च यच्छतु
॥११॥

८.१८

संवत्सरम् प्रतयन्तो यद् वो देवा उपोषिरे ।
;तान् पञ्चम् अत्याम् आविशन् इन्द्र अस्मान् समृद्धया? ॥१॥

भनङ्घादस् सत्यावानस् सीरं कृणोतु मे वचः ।
मत्राहीतद्? वि जायते तत् पर्जन्यो ऽभि वीवृधत् ॥२॥
दिव्या आपो वै शाकरीर् अनु [र]मन्तु गह्वरे ।
ऊर्जस्वती[र्] घृतवती॰ पयस्वतीर् इतो भवथ मा गुहा ॥३॥
पै ८.१२.६ उद् एहि वाजिनीवति पूर्णपात्रा निर्णीमती ।
दुहाना पोषं रक्षता? कामम् एषां सम् आ पृण ॥४॥
अहिंसिता फलवती शतवल्शा वि रोहतु ।
इमं सहस्रभोगम् अस्या इन्द्र उपावतु ॥५॥
शौ १०.५ अश्विना फलं कल्पयेताम् उपावतु बृहस्पतिः ।
यथासद् बहुधान्यम् अयक्ष्मं बहुपूरुषम् ॥६॥
यद् वो देवा उपोचिर इह भूयस् स्याद् इति ।
पै ८.११.१ इह ताम् उत् पृणां वयं देवीम् उप ह्वयामहे ॥७॥
इदं च उत् पृणाद् इति स्फातिं च उत् पृणाद् इति ।
दर्शि मे वर्धयाद् इति ‡स्फातिकारो वहुकारस् स्फिरस्फोटाय मा-
क्षिकः? ॥८॥
अस्मिन् धामन् म्युच्यते यवो व्रीहिर् अथो तिलः ।
तस्य गृह्णीत यत् कृतं परिक्षाय? चतुश्शतम् ॥९॥
‡शार्दूलंचयाचमच्छेद् कृत्? किं च यद् भृते ।
तद् वै स्फातिर् उपावती सर्वम् यथातिरिक्ष्यसि? ॥१०॥
सहन् अने परा अहि सहस्रपोषमन्त्ये ।
बर्ही न भोषधे भव समुद्रस्येव संक्षयः ॥११॥ [illegible]

८.१९

आज्याद् अजस् सम् अभवद् देवेभ्य ओदनाय ।
येनातिपदयन् बृहस्पतिस् स वै पञ्चौदनो ऽभवत् ॥१॥
चतुष्प्रियतां? सम् अभव ओदनस् त्वं बृहस्पते ।
अज [आ]ज्याज् जातस् स एषां पञ्चमो भव ॥२॥
पृष्ठेन दिवम् आप्नोत्व् अन्तरिक्षम् अथोष्मणा ।
दिशा आप्नोतु चक्षुषा अज॰ पञ्चौदनस् सह ॥३॥
यत् ते माता यत् ते पिता भ्रातरो यच् च ते स्वसा ।
अजं पञ्चौदनं पक्त्वा सर्वे तम् उप जीवत ॥४॥
शौ १८.४.७२ ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश् च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥५॥
ये सर्वदा ददति ये चारं चरन्त्य् ओदनम् ।
ते वै यमस्य राज्याद् उत्तरे लोक आसते ॥६॥
नातिरात्र आप्नोतु नैनम् आप्नोत्य् उक्थ्यः ।
नाग्निष्टोम आप्नोत्य् अजं पञ्चौदनं क्षयम् ॥७॥
दशरात्रेण सम्यतो द्वादशाहेन कल्पते ।
दीर्घमात्रेण सम्यतो [अ]ज॰ पञ्चौदनस् सह ॥८॥
य[द्] एषां बर्हिष्यं सर्वं यन् नद्यं यच् च संयतम् ।
यच् च तेनोपायति स एषां पञ्चमो भव ॥९॥
शौ ९.५.२७ या पूर्वं पतिं वित्त्वा यथान्यं विन्दते ऽपरम् ।
'शौ ह्रदानो न वि योषतः पञ्चौदनं च ताव् अजं ददातो न वि योषतः ॥१०॥
शौ २८ समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः ।
अजं च पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददत् ॥११॥ [illegible]

८.२०

सूर्यो मा वर्चसोक्षतूक्षताम् अश्विनोमा ।
आदित्य ऊर्ध्वं उत्तरन्न् असौ मा वर्चसोक्षतु ॥१॥
वर्चसा मां पितुर्? अग्निर् वर्चसा मा बृहस्पतिः ।

सुराया[म्] सिच्यमानाया॰ कीलालो वर्चसा येन ।
तेन माम् अश्विनोमा उक्षतां पुष्करस्रजा ॥२॥
वर्चस्वन् मे मुखम् अस्तु रोचमानं विभासहि ।
यो मा हिरण्यवर्चसं कृणोमि पश्यतां प्रियम् ॥३॥
मधोर् अहं मधुतरो मधुमान् मधुमत्तरः ।
माम् अनु प्र विशतु वर्च अश्वमो वारिताम् इव ॥४॥
‡यदमांश्चमनमानमवर्चलसा कनिक्रदं? ।
अथा कनिक्रदत् चराणि वर्चसा च मनेन च ॥५॥
वर्चसाग्नि[र्] मा ददाति वर्चसा ददाति सूर्यः ।
यावद् वर्चो गोर् हिरण्यस्य तावन् मे वर्चो भूयात् ॥६॥
यावत् त्वं देव सूर्योदन्न् अभ्युदयसि ।
तावन् मा वर्चसाम् भवतय ॥७॥
पूर्णो भगस्याहं भूत्वा तक्षन् वर्चसो रथम् ।
स मा वहतु सर्वतापुष्मन्तं सुवर्चसम् ॥८॥
भगेनाहं परिहितो वर्चसा द्रविणेन च ।
यथा चराणि सर्वदा रोचमानो विभावसुः ॥९॥
एवा मा भग आगमद् एवा मा वर्च आगमत् ।
एवा मा तेज आगमद् एवा मा यश आगमत् ॥१०॥
हिरण्ययेन चक्रेण भगस्याभिहितो गृहः ।
तं पुरुआपि? अश्विना तस्य मे दत्ताम् अश्विना दत्तां मे पुष्करस्रजा ॥११॥
[illegible]

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायाम् अष्टम॰ काण्डः समाप्तः ॥

शौ ५.२७.१-११, वा २८.२० (वै २.११.१ तै ४.१.८ इत्यादि)

९.१

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्य् ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींष्य् अग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥१॥
तनूनपाद् असुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो ऽनुक्त? मध्वा घृतेन मध्वा यज्ञं नक्षति प्रीणानः ॥२॥
नराशंसो ऽग्निस् सुकृद् देवस् सविता विश्ववारः ।
अच्छायम् एति शवसा घृतेन ॥३॥
ईडे वह्निं नमसाग्निं स्रुचो ऽध्वरेषु प्रयत्सु ।
स्रुचे? यक्षद् अस्य महिमानम् अग्नेः ॥४॥
स्वनमिन्द्रसुप्रयुत्सु? ।
वसुश् चेतिष्ठो वसुधातमश् च ॥५॥
द्वारो देवीर् अन्व् अस्य विश्वेद् व्रता ददन्ते ऽग्नेः ।
उरुव्यचसा धाम्ना पत्यमानाः ॥६॥
ते [अ]स्य पुराणो? दिव्या न योना उषसानक्ता ।
इमं यज्ञम् अवताम् अध्वरं नः ॥७॥
दैवा होतार ऊर्ध्वम् अध्वरं नो ऽग्नेर् जिह्वयाभि गृणीतम् ।
कृणुतं नस् स्विष्टिम् ॥८॥
तिस्रो देवीर् बर्हिर् एदं सदन्त्व् इडा सरस्वती मही भारती गृणाना ॥९॥
तन् नस् तुरीपम् अद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस् पोषं वि ष्यतु नाभिम् अस्मे ॥१०॥

वनस्पते ऽव सृजा रराणस् सुमना देवेभ्यः ।
अग्निर् हव्यं शमिता सूदयाति ॥११॥
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय भागम् ।
विश्वे देवा हविर् इदं जुषन्ताम् ॥१२॥ [illegible]

९.२

शौ ५.२६.१,२,३,५,४,६,७,८,११,१०,९,१२
यजूंषि यज्ञे समि[धस्] स्वाहाग्नि॰ प्रविद्वान् इह वो युनक्तु ॥१॥
युनक्तु देवस् सविता प्रजानन्न् अस्मिन् यज्ञे सयुज[स्] स्वाहा ॥२॥
इन्द्र उक्थामदानि यज्ञे अस्मिन् प्रविद्वान् युनक्तु सयुजस् स्वाहा ॥३॥
छन्दांसि यज्ञे मरुतस् स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ॥४॥
प्रैषा निविद आप्रियो यजूंषि दिशा॰ पञ्चभिर् वहतेह युक्ताः ॥५॥
एयम् अगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिर् यज्ञं तन्वानादितिस् स्वाहा ॥६॥
विष्णुर् युनक्तु बहुधा तपांस्य् अस्मिन् यज्ञे सयुजस् स्वाहा ॥७॥
त्वष्टा युनक्तु बहुधा विरूपा अस्मिन् [यज्ञे सयुजस् स्वाहा] ॥८॥
इन्द्रो युनक्तु बहुधा वीर्याण्य् अस्मिन् [यज्ञे सयुजस् स्वाहा] ॥९॥
सोमो युनक्तु बहुधा पयांस्य् अस्मिन् [यज्ञे सयुजस् स्वाहा] ॥१०॥
भगो युनक्त्व् आशिषो न्व् अस्मा अस्मिन् यज्ञे सयुज[स्] स्वाहा ॥११॥
अश्विना ब्रह्मणेतम् अर्वाग् वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणेह्य् अर्वाङ् यज्ञो अयं स्वर् इदं यजमानाय धेहि स्वाहा ॥१२॥
[illegible]

९.३

आप॰ पुनन्तु वरुण॰ पुनात्व् अयं च य॰ पवते विश्वदानीम् ।
यज्ञो मनो अधिवक्ताधिवक्ताग्निश् च न॰ पावयेतां सूर्यश् च ॥१॥
दशशीर्षो दशजिह्व आ त्वं वीरुधो भिषक् ।
शौ १२.५ मा ते रिषन् खनिता यस्मै च त्वा खनामसि ॥२॥
दशरात्रेण किलासस्य वीरुधा वेद भेषजम् ।
यतस् तद् अश्वियावनं किलासं नाशयामसि ॥३॥
अन्न् अन्या वि रोहति धन्वन्य् अन्याधि तिष्ठति ।
किलासम् अन्या नीनशद् वर्चसान्या सम् भनक्तु ॥४॥
आज्येन घृतेन जुहोमि किलासभेषजम् ।
वीरुधाम् अनेस् संकाशो किलासं नानु विद्यते ॥५॥
पिशाङ्ग रूपे भवति कल्माषम् उत संदृशि ।
किलास नश्येत॰ परः प्र त्वा धमामि वीरुधा ॥६॥
यानि पृषत् उत्पतन्ति नक्षत्राणीव संदृशो ।
किलासं सर्वं नाशयन् ‡नो भीवापेम? वीरुधा ॥७॥
यदि वा पुरुषेषिता॰ किलासं पर्याक्रमत् ।
'शौ १.२४.५ नमो नमस्यामो देवान् प्रत्यक् कर्तारम् ऋच्छतु ॥८॥
शीर्षक्तिस् ते स्कन्धेभ्यो ललाटात् परि कर्णयोः ।
ओषध्या [वर्चजूतया] किलासं नाशयामि ते ।
शालां यथा इव अजरातिस्? सहौषधिः ॥९॥
१ ४.७.१ ग्रीवाभ्यस् त उष्णिहाभ्य॰ कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
[ओषध्या वर्चजूतया किलासं नाशयामि ते ।]
[शाला यथा इव अजरातिस्? सहौषधिः] ॥१०॥
अंसाभ्यां ते दोर्भ्यां बाहुभ्यां परि हस्तयोः ।
[ओषध्या वर्चजूतया किलासं नाशयामि ते ।]
[शाला यथा इव अजरातिस्? सहौषधिः] ॥११॥
पृष्टिभ्यस्ते पार्श्वाभ्याम् श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
[ओषध्या वर्चजूतया किलासं नाशयामि ते ।]
[शाला यथा इव अजरातिस्? सहौषधिः] ॥१२॥

१ ४.७.१ ऊरुभ्यां ते [अ]ष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
ओषध्या वर्चजूतया किलासं नाशयामि ते ।
शाला यथा इव अनुरोतिस्? सहौषधिः ॥१३॥ [illegible]

९.४

सहैव वो हृदयानि सह विज्ञानम् अस्तु वः ।
सहेन्द्रो वृत्रहा करत् सह देवो बृहस्पतिः ॥१॥
समानम् अस्तु वो हृदयं समानम् उत वो मनः ।
समानम् अग्निर् वो देवः ॥२॥
समानं? रात्रून् उपाध्वं सं जानीध्वं सहृदयाः ।
सर्वे संमनस? अस्तु वः ॥३॥
नहो वो मन्युर् जीर्णे क्षप्यात् सह जीवाथ मद्वथा ।
यथा पुत्र॰ सयावर॰ पितृभ्यां वदतु प्रियम् ॥४॥
सहैव वो धान्यानि समाना॰ पशवश् च वः ।
सह पृथिव्यां वीरुधस् सह वस् सन्त्व् ओषधीः ॥५॥
सह दीक्षा सह यज्ञो विवाहो वस् सहमतिः ।
सह प्रकर्षा नृत्यन्ति सह वस् शिव [आ]सताम् ॥६॥
सहे[व] वो वीर्याणि सत्यानि रुन्धयाध्वे ।
सह पतत्रिणीम् इषुम् अन्यस्मै हेतिम् अस्यत ॥७॥
सं वादयामि सुमतिं मधुना ‡वाचमां रिरथम्? ।
युष्माकम् अस्थे शृण्वन्तूदितं संगथे जने ॥८॥
युष्मान् अमित्रा वृणुतां युष्मान् प्रतिजना उत ।
युष्मे क्षात्रियं मेद्यन्त्व्? अमृतं मर्त्याय च ॥९॥
सं ‡समियस समाकरं? सह पूषा गवाम् इव ।
समानम् अस्तु वो मनो ज्येष्ठं विज्ञानम् अन्वतः? ॥१०॥
यद् ईं यद् एषां हृदयं तद् एषां हृदये भवत् ।
अथो यद् एषां हृदं तद् एषां हृदि श्रितम् ॥११॥
समानम् अस्तु वो मनस् श्रेष्ठं विज्ञानम् अन्वतः? ।
यद् ईं यद् एषां मन एषां यानि मनांसि च ।
मह्यम् एतद् तद् कृणु रथे यावाद् इवाहितौ ॥१२॥ [illegible]

शौ १९.६.१-६,९-११ च १०. (१०.१ इत्यादि)

९.५

सहस्रबाहु॰ पुरुषस् सहस्राक्षस् सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्य् अतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥१॥
त्रिभि॰ पद्भिर् द्याम् अरोहत् पादो ऽस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्य् अक्रामद् विष्वङ् अशनानशने [अनु] ॥२॥
तावन्तो [अ]स्य महिमानस् ततो ज्यायांश् च पूरुषः ।
पादो ऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद् अस्यामृतं दिवि ॥३॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच् च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यद् अन्येनाभवत् सह ॥४॥
यत् पुरुषं व्यदधु॰ कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किम् अस्य किं बाहू किम् ऊरू पादाव् उच्येते ॥५॥
ब्राह्मणो ऽस्य मुखम् आसीद् बाहू राजन्यो ऽभवत् ।
मध्यं तद् अस्य यद् वैश्य॰ पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥
विराड् अग्रे सम् अभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्य् अरिच्यत पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः ॥७॥
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञम् अतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीद् आज्यं ग्रीष्म इध्मश् शरद् धविः ॥८॥
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातम् अग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश् च ये ॥९॥
तस्माद् अश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।

[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥ | कन्दो ह अग्नि...
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥
[illegible] । | ...°ध्र •
देवा [यद्] [illegible] ॥१३॥
[illegible] [यत्] [illegible] । | • • • [illegible]
[illegible] ॥१४॥ ॥ऋ°५॥ ॥अनु°१॥

९.६

इमां खनाम्य् ओषधिम् [illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥ ॥ऋ°१॥

९.७

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।

अगस्त्यस्य पुत्रासो मा, पिपातु! पुरुषान् मम ॥७॥
मा नो अग्ने तन्वं मा वाससो ऽस्य रीरिषः ॥८॥ | ...वासं स्य •
यं त्वा समुद्र वयम् आरोहाम स्वस्तये । | • मा...
;दिवस्ताशायापद् रुन्धाराद् समुद्रिया! ॥९॥
अप हिरण्यकुम्भो हरितो ऽवकाभिः । | • हिरण्°...
परिवृते तेनापि शमयामसि ॥१०॥ | • °भी •
शमयाम्य् अर्चिर् अ[illegible] स्तस्तुमविधा! ।
गृभीते द्यावापृथिवी गृभीत पार्थिवं रजः ॥११॥
नि मुञ्चेषु यद् उदकं नि महेषु यद् [illegible]तरम् । | ...[illegible] • •
यद् समुद्रे यत् सिन्धौ तेनापि शमयामसि ॥१२॥ | ...तेनाम्बं •
वेतसस्यावकाया! नडस्य वीरणस्य च ।
रोहितकस्य वृक्षस्याग्निशमनम् उद् धरे ॥१३॥
;मायती उत आर्यो! वि ते हरन्तु यद् रपः ।
परायतीः परावतं परा वहन्तु यत् तपः ॥१४॥
शौ ६.१०६.३ हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परा व्ययामसि । | ...परि •
शीतिके शीतिम् इद् करो हिमके हिमम् इद् करः ॥१५॥ ॥ऋ°१॥ | ...शिर

९.८

मधुच्छत साङ्कलेन पद्यता पर्यविष्णुना । | मधुच्छता...
शाङ्कलपृष्ठाचरङ्कुर वृकेण यवम् अश्विना ॥१॥ | °पृष्ठचारकुर इवेनैव •
शौ ६.३०.१ देवा एतं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्याम् अधि मणाव् अचर्कृषुः । | ...मधु • अचारकृ
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतस् सुदानवः ॥२॥ | • • सीरपति • कीनाशा...
हिरण्मयं कलशं सुदानवो दिव्यया कृतम् यथाभृतम् अश्विना सारघं मधु ।
ततो यवो व्य् अरोहत् सो ऽभवद् विषदूषणः ॥३॥ | • • विरोहत् • • °दूषणा
ऐ ५.११.११ यवाशांशांसरघायः पृथायमश्वामरत्!
[ततो यवो व्य् अरोहत् सो ऽभवद् विषदूषणः] ॥४॥
यद् वृकं मधुयावनं सं वर्पयतम्? अश्विना । | • • °यवान सवर्षयतम् •
[ततो यवो व्य् अरोहत् सो ऽभवद् विषदूषणः] ॥५॥
करम्भा नाम सरघो वृकस्य संस्थाधि! ।
ततो यवो व्य् अरोहत् सो ऽभवद् विषदूषणः ॥६॥ | • यवो विरोहत्...°दूषणः
यद् अस्य ;मरघो मधु सरघा सर्वशः चरत्! । | ...चरत्
सर्वस् तु सर्वतो यवं पुनर् आ धत्तम् अश्विना ॥७॥ | • • • पुनं...
यो वां दिव्यविदो ऽदिदिश उपाचरत् । | • यं • दिदेशोपाचरत्
दीर्घे रश्म् इव मज्जन्तम् उत् तं भरतम् अश्विना ॥८॥ ॥ऋ°१॥ | ...भेतः

९.९

स यं वहन्त्य् अश्वयोगा यवयोगा यं चतुर्गवाः । | ...वा
सर्वे ते विषं वि बाधन्ताम् उभो मध्यमशीर् इव ॥१॥ | ...बाधताम् • • •
यस्य यव प्र सर्पस्य् अश्वमश्वं पदण्पदः । | यत्रैव...
तस्माद् विषं वि बाधस उभो मध्यमशीर् इव ॥२॥ | • • • बाधस...
शाकलेममते! यवो ऽस्यान् हन्त्य् ओषधिः । | • युवा • • •
यवेद् यावयद् गोर् अश्वात् पुरुषाद् विषम् ॥३॥ | • यावयत्...
यवो राजा यवो भिषग् यवस्य महिमा महान् ।
यवस्य मन्यं परिवाद् इन्द्रश् चकार वीर्यम् ॥४॥
आ मरामृतं घृतस्य [घृतस्य] पुष्पम् आ भर । | ...रस
अजभिक्षातविधिर् इदं दूषयद् विषम् ॥५॥ | अजभिक्षातोरेवे...
दहायन्तु दिव्यविदा[श्] शूद्रा राजन्या उत ।
यद्भुर न सर्वा दहयते [या] यन्तु कदा पुनः ॥६॥ ॥ऋ°४॥

९.१०

जीवातवे न मर्तवे दिशत् त मा स्मामहे | ...तस्मामहे

[illegible] ॥१॥ | ...[illegible] • • •
[illegible] । | ...[illegible] • •
[illegible] ॥२॥
[illegible] । | • °[illegible] • • °[illegible] •
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥ ॥ऋ°४॥

९.११

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।

श्रीदेर् यवस्य दैवेन कृणोम्य् अरसं विषम् ॥१२॥ | • यवस्यवस...
महीयोनी समुद्रस् स्यात् ;न निर् मुवायय! । | महीयोन्ये...
तां देवा गुह्याम् आसीनां समुद्राद् उद् आभरन् ॥१३॥ | ...च उदाभरं
;समुद्राच् चोदाधृतोत् तां पुष्करा अवपुः! । | • च उदाभृत उदाभ पुष्करापुः
अस्याः पृथिव्या देव्याश् चक्षुर् आकाश्यम् असि विषदूषणम् ॥१४॥
॥ऋ°१॥ ॥अनु°१॥

९.१२

समानम् अर्थं पारयन्ति देवा कर्तकर्तं तपसा वर्धमानाः । | • • सर्वाभि • कर्तकर्त...
तद् आदित्यम् अभि सं विशन्ति तद् एकरूपम् अमृतत्वम् प्रयाम् ॥१॥ | तद् आदित्य • स विशन्ति • सर्वो°...
देवो देवेभिर् आगमन् महन् नो अदितिः पिता । | • • आगमं मंहे...
;सुमीत आतंदसम् एकरूपो गुहा मर्त्यं! ॥२॥
आतिष्ठम् अग्निर् अपतु देव उम्बेर्भिः पितृभिस् संविदानः ।
;महान् मरीचा उत अक्षम् आपन् सं गुर मातित्यां निविहयहिः! ॥३॥ | ...आगम् मं • • •
न आ विशन्ति पुरुषं शयानं प्राणा विष्णा! नि शमयन्त्य् एनम् । | शक्षिपन्ति • • • निष्णा • यहन्त •
ते नो राज्ञा सुमनस्यमाना महा रक्षन्त्व् अहृणीयमानाः ॥४॥ | • • • °आ: महा रक्षन् °नौ
;पशुभ्यो नः पशुपतये मृडम् सर्वेभ्यो निर् हायताम्! ।
मा नः प्राणो ऽप रीरिषः ॥५॥ | ...पु •
वायुम् सन्ते ऽभिश्रितः प्राणापानाव् अभिरक्षन् ;महासुरेरिमा देवा | • • °कृतः °भन् °रथ...
यशा प्रजापता सादित्यास् च येमिरे! ।
पूषा रश्मिषु यत ।
°शौ ५.२६.५ आदित्यो विष्णुर् आक्रमे स्वा रोहन् दिवं रोहति ॥६–७॥ | • • वद्य- दिवो...नव रोर्व दिव •
प्र यातु देवस् सविता सर्वे! त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । | • • • सवितु...
अङ्गुष्ठो मधुना पयः ॥८॥
अस्मिन्न् यातम् अश्विना विश्वे देवाः प्रयातन । | • यातुन् अश्विना...
आदित्यासस् सजोषसः पुरः पश्चात् स्वस्तये ॥९॥ | °दित्यासस...
ब्रह्म वर्म बृहस्पतिस् संयतो मे ऽभि रक्षतु ।
देवो देवैः पुरोहिता! ॥१०॥
मरुतो वृष्ण्या न आगमन् सत्यधर्माण ऊतये ॥११॥ | • • आगमत्...
अपराह्णेषु जिन्वित इन्द्रो राजा दिवस् परि । | अपराह्णेषु जिन्वतः...
;रसर मिमाय तिष्ठसि! स न इमाः कल्याण् दिशा ॥१२॥ ॥ऋ°१॥ | ...दिशाः • •

शौ ५.३०.१–२

९.१३

आवतस् ते परावतः प्रावतस् त आवतः ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वां अनु गा पितॄन् असुं बध्नामि ते दृढम् ॥१॥ | इहैव • • • न • पूर्वा...दृढं
यत् त्वाभिचेरुः पुरुषः स्वो यद् अरणो जनः । | यत्...यो • अरणो जनः
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२॥ | • उभय वाचा...
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै पुंसे अचित्त्या । | • अद्रोहिथ • षो • स्त्रिया
[उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते] ॥३॥
यद् एनसो मातृकृतात् शेषे पितृकृताद् उत । | ...मातरिकृतात् • पितुकृता •
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥४॥ | • वचन...
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर् भ्राता च सर्जत । | ...जामन् • • •
प्रत्यक् सेवस्व भेष[ज]ं जरदष्टिं कृणोमि ते ॥५॥ | • कृणोमि...
एहेहि पुनर् एहि सर्वेण मनसा सह । | वेहिवेहि पुनर्...
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा [इ]हि ॥६॥ | काम • • अधि...
अनुहूतः पुनर् एहि विद्वान् उदयनं पथः । | अनुहूतः...
आरोहणम् आक्रमणं जीवतोजीवतो ऽयनम् ॥७॥
मा बिभेर् न मरिष्यसि जरदष्टिर् भविष्यसि । | • बिभेः • मरिष्यसि • •
निर् अवोचम् अहं यक्ष्मम् अङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥८॥ | • रोषम् यक्ष्म...
शीर्षरोगम् अङ्गरोगं यश् च ते हृदयामयः । | ...°अय

पद्मन्न्य् श्येन इव प्रापप्तद् वाचा नुत्तः परस्त[रा]म् ॥९॥
स्तुषी बोधप्रतीबोधाव् अस्वप्नो यश् च जागृविः ।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जाग्रतुः ॥१०॥

शौ ५.३०.११-१७

९.१४

अयम् अग्निर् उपसद्य इह सूर्य उद् एतु ते ।

'शौ कृष्णात्

उद् एहि मृत्योर् गम्भीरात् कृष्णाच् चित् तमसस् परि ॥१॥
नमो यमाय नमो [अ]स्तु मृत्यवे नमः पितृभ्य उत ये नयन्ति ।
उत्पारणस्य यो वेद तम् अग्निं पुरो दधे [अस्मा अरिष्टतातये] ॥२॥
ऐतु प्राण ऐतु मन ऐतु चक्षुर् अथो बलम् ।
शरीरम् अस्य सं विदां तत् पद्भ्यां प्र[ति] तिष्ठतु ॥३॥
प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं सम् ईरय तन्वा सं सजेन ।
वेत्थामृतस्य मा मृत मो षु भूमिगृहो भुवत् ॥४॥
मा ते प्राण उप दसन् मापानो अपि धायि ते ।
सूर्यस् त्वाधिपतिर् मृत्योर् उदायच्छतु रश्मिभिः ॥५॥
इ[य]म् अन्तर् वदत्य् उभा जिह्वा पनिष्पदा ।

'शौ त्वया यक्ष्मं निरवोचम्

तया रोगं वि नयामस्य् शतं रोपीश् च तक्मनः ॥६॥
अयं लोकः प्रियतमो देवानाम् अपराजितः ।
यस्मै त्वम् इह अक्षिषे दिष्टः पुरुष मृत्यवे ।
तस्मै त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ॥७॥

९.१५

शौ ५.१७.१ ऋ १०.१०९.१

ते ऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे [अ]कूपारस् सलिलो मातरिश्वा ।
वीडुहरास् तप उग्रं मयोभुव आपो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥१॥

शौ २ ऋ २

सोमो राजा प्रथमो ब्र[ह्म]जायां पुनः प्रायच्छद् अहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीद् अग्निर् होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

शौ ३ ऋ ३

हस्तेनैव ग्राह्य आधिर् अस्या ब्रह्मजायेति चेद् अवोचत् ।
न दूताय प्रह्येया तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

शौ ४

याम् आहुस् तारकां विकेशीतिर् ग्राम्! ग्रामम् अवपद्यमानाम् ।
सा ब्रह्मजाया प्र दुनोति राष्ट्रं यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् ॥४॥

शौ ५ ऋ ५

ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषस् स देवानां भवत्य् एकम् अङ्गम् ।
तेन जायाम् अन्व् अविन्दद् बृहस्पतिस् सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥

शौ ६ ऋ ४

देवा एतस्याम् अवदन्त पूर्वे सप्तर्षयस् तपस् ते ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्यापनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥६॥

शौ ७

ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच् चापलुप्यते ।
वीरा ये हन्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान् ॥७॥
सर्वे गर्भाः प्र व्यथन्ते कुमारा दशमास्याः ।

शौ ११

यस्मिन् राष्ट्रे निरुध्यते ब्रह्मजायाचित्त्या ॥८॥

ऋ १ शौ १०

पुनर् वै देवा अददुः पुनर् मनुष्या उत ।
राजानस् सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर् ददुः ॥९॥

शौ ११ ऋ ७

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वा देवैर् निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वोरुगायम् उपासते ॥१०॥

९.१६

शौ ५.१७.१८

न तत्र धेनुर् दोह्या नानड्वान् सहते धुरम् ।
विजानि[र्] यत्र ब्राह्मणो रात्रिं वसति पापया ॥१॥

शौ ५.१९.१५

न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यम् अभि वर्षति ।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम् ॥२॥
अनुकृमती! चरति ब्रह्मजाया शालं पङ्क्तीः प्रविशाद् यतव्रः ।
यः क्षत्रियः पुनर् एनां ददातु स दिवो वारां दधातु प्रपीनाम् ॥३॥
पुनर्दाय ब्रह्मजायां राजा कल्पे न पद्यते ।

दुर्यासे [अ]स्या ओषधिर् वाचाश्यानिविरध्वती! ॥८॥
विषम् उप्त्वाय् भवां विषम् उप्त्वाति वीरधाम् ।
यो ब्रह्मजायां न पुनर् ददाति तस्मै देवास् स्वधितिं दिव्यम् अस्यान् ॥९॥

शौ ५.१७.८

उत यत् पतयो दश स्त्रियाः पूर्वे [अ]ब्राह्मणाः ।
ब्रह्मा चेद् ध[स्त]म् अग्रहीत् स एव पतिर् एकधा ॥१०॥

शौ ९

ब्राह्मण एव पतिर् न राजा नोत वैश्यः ।
तत् सूर्यः प्रब्रुवन्न् एतु पञ्चभ्यो मानवेभ्यः ॥११॥

९.१७

शौ ५.१८.१

नैतां ते देवा अददुस् तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥१॥

शौ २

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।
स ब्राह्मणस्य गाम् अद्याद् अद्य जीवानि मा श्वः ॥२॥
निर् वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चो [अ]ग्निर् [इ]वारब्धः प्र दुनोतु राष्ट्रम् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृणाम् अप्य् एतु लोकम् ॥३॥
देवपीयुश् चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्य् अस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नम् एव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥४॥
विषं स पिबति तैमातं पद्वस्व् अग्निं प्र नीदति ।

शौ ५.१९.९

ते ब्राह्मणस्य सद् धनम् अभि नार[द्] मन्यते ॥५॥

शौ ५.१८.७

शतापाष्ठा नि गीरति तां न शक्नोति निःखिदम् ।

'शौ अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः

अन्नं यो ब्रह्मणां नयन् स्वाम् अद्मीति मन्यते ॥६॥

शौ ५

य एनां हन्यान् मृदुं मन्यमानो देवपी[युर्] धनकामो न चित्तात् ।
सं तस्येन्द्रो हृदये अग्निम् इन्द्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥७॥

शौ ६

न ब्राह्मणो हिंसितव्यो [अ]ग्निः प्रियतमा तनूः ।
सोमो ह्य् अस्य दायाद इन्द्रो [अ]स्याभिशस्तिपाः ॥८॥

शौ १४

अग्निर् वै नः पदवाय[स्] सोमो दायाद उच्यते ।

'शौ इन्द्राभिशस्तिपा

अपते ऽभिशास्त इन्द्रस् तत् सत्यं देवसंहितम् ॥९॥

शौ ३

आविषिताघविषा पृदाकूर् इव चर्मणा ।
ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौर् अनाद्या ॥१०॥

९.१८

शौ ५.१८.१५

इषुर् इव दिग्धा नृपते पृदाकूर् इव गोपते ।
सा ब्राह्मणस्येषुर् दिग्धा तया विध्यतु पीयतः ॥१॥

शौ ९

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो याम् अस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूराद् अ[व] भिन्दन्ति ते तया ॥२॥

शौ ८

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ् नाडीका दन्ता[स्] तपसा सुदिग्धाः ।
तेभिर् ब्रह्मा विध्यतु देवपीयुं निर्भैर्[ऋ] धनुर्भिर् देवजूतैः ॥३॥
ये ब्राह्मणं हिंसितारस् तपस्विनं मनीषिणं ब्रह्मचर्येण श्रान्तम् ।
अवर्तिमद् भविता राष्ट्रम् एषां तपसैव निहतं मानु वेदु? ॥४॥

शौ १०

ये सहस्रम् अराजन्न् आसन् दशशता उत ।
तेभ्यः प्र ब्रवीमि त्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥५॥

शौ ११

गौर् एव तान् हन्यमाना वैतहव्यां इवाचरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश् चरमाजाम् अपेचिरन् ॥६॥
अतिमात्रा अवर्धन्त नोद् इव दिवम् अस्पृशन् ।

शौ १२[1],५.१९.११[1]

प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीम् असंभव्यं पराभवन् ॥७॥

शौ ५.१९.१ [कश्यप...

ये बृहत्सामानम् आङ्गिरसम् आर्पयन् ब्राह्मणं जनाः ।

शौ तेषाम् उभयादम् अविस्तो-

तेषाम् उभयादम् उभयादन् यत् लोकाम् आमयत्! ॥८॥

शौ ३ 'शौ येषु शुल्कम् भवि

ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वास्मै शुल्कम् ईषिरे ।
अस्नस् ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥९॥

शौ ७

अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः ।

द्विजिह्वा द्विमात्रा भूत्वा सा राष्ट्रम् अव धूनुते ॥१०॥

९.१९

शौ ५.१९.४

ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत् साभि विजङ्गहे ।
तेजो राष्ट्रस्य निर् हन्ति न वीरो जायते पुमान् ॥१॥
आक्रमणेन वै देवा द्विषन्तो घ्नन्ति पूरुषम् ।
ते भजन् ब्रह्मस्यं क्षेत्रे [अ]वानूनथादितम् ॥२॥
विषम् एतद् देवकृतं राजा वरुणो अब्रवीत् ।

शौ १०

न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश् चन ॥३॥

शौ ८

तद् वै राष्ट्रम् आ स्रवति भिन्नां नावम् इवोदकम् ।

शौ ६[1],८[1]

ब्रह्माणो यत्र जीयते तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना ॥४॥

शौ ५.१८.११

एकशतं वै जनता भूमिर् या व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीम् असंभव्यं पराभवन् ॥५॥
याम् उदाजन्न् ऋषयो मनीषिणस् शपुसाताम्! बृहतीं देवजूताम् ।
सा ब्रह्मज्यं पचति पच्यमाना राष्ट्रम् अस्य बृहती यच् च वर्चः ॥६॥
वाचा ब्राह्मणम् इच्छति जामिये! हन्ति चित्तया ।
मित्राय सत्ये द्रुह्यति यं देवा घ्नन्ति पूरुषम् ॥७॥

९.२०

एकपाच् छन्द एकपदश् च पशून् स तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
प्रथमया राज्या प्रथमया समिधा ॥१॥
द्विपाच् छन्दो द्विपदश् च पशून् [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
द्वितीयया राज्या द्वितीयया समिधा ॥२॥
त्रिपाच् छन्दस् त्रींश् च लोकान् स तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
तृतीयया राज्या तृतीयया समिधा ॥३॥
चतुष्पाच् छन्दश् चतुष्पदश् च पशून् [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
चतुर्थ्यां राज्या चतुर्थ्या समिधा ॥४॥
पञ्च दिशः पञ्च (च) प्रदिशस् [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
पञ्चम्या राज्या पञ्चम्या समिधा ॥५॥
त्रैष्टुभं छन्दो विराजं स्वराजं सम्राजं [स] तद् आप्नोति याव च
इन्द्धे षष्ठ्या राज्या षष्ठ्या समिधा ॥६॥
सप्त प्राणान् सप्तापानान् सप्तर्षींश् च [स] तद् आप्नोति याव च
इन्द्धे सप्तम्या राज्या सप्तम्या समिधा ॥७॥
ओजश् च तेजश् च सहश् च बलं च [स] तद् आप्नोति याव
च इन्द्धे अष्टम्या राज्याष्टम्या समिधा ॥८॥
अन्नाद्यं च महश् चायं चायायं च [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे नवम्या
राज्या नवम्या समिधा ॥९॥
ब्रह्म च क्षत्रं चेन्द्रियं च ब्रह्मवर्चसं च [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे
दशम्या राज्या दशम्या समिधा ॥१०॥
विश्वावसु च सर्ववसु च [स] तद् आप्नोति याव च इन्द्धे एकादश्या
राज्यैकादश्या समिधा ॥११॥
पाङ्क्तं छन्दः प्रजापतिं संवत्सरं [स] तद् आप्नोति याव [च] इन्द्धे द्वादश्या
राज्या द्वादश्या समिधा ॥१२॥

९.२१

यो वा एकशारावं निर्वपेद् एकऋषिम् एतानु निर्वपेत् ।
एष वा एकऋषिर् यद् अग्निः ।
एकर्षिं चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
एकऋषिर् इव तपत्य् एकऋषिर् इव दीदायैकऋषिर् इवाचारो भवति
य एवं वेद ।
स एवं विद्वान् प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ॥

एकऋषेस् त्वा चक्षुषा पश्याम्य् एकऋषेस् त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे ।
एकऋषेस् त्वास्येन प्राश्नाम्य् एकऋषेस् त्वा जठरे सादयामि ।
इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति ॥१॥
[यो] वै द्विशरावं निर्वपेत् प्राणापानाव् एवानु निर्वपेत् ।
एते वै प्राणापानौ यन् मातरिश्वा वायुश् च ।
प्राणापानौ चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
ज्योग् जीवति सर्वम् आयुर् एति न पुरा जरसः प्र मीयते य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ॥
प्राणापानयोस् त्वा चक्षुषा पश्यामि प्राणापानयोस् त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे ।
प्राणापानयोस् त्वास्येन प्राश्नामि प्राणापानयोस् त्वा [जठरे सादयामि ।
[इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति] ॥२॥
[यो] वै त्रिशरावं निर्वपेत् त्रीण्य् एव त्रिककुभाण्य् अनु निर्वपेत् ।
एतानि वै त्रीणि त्रिककुभानि यद् ऋचस् सामानि यजूंषि ब्राह्मणम् ।
ब्रह्म चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
ब्रह्मवर्चसी भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ॥
ब्रह्मणस् त्वा चक्षुषा पश्यामि ब्रह्मणस् त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे ।
ब्रह्मणस् त्वास्येन प्राश्नामि ब्रह्मणस् त्वा [जठरे सादयामि] ॥
[इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति] ॥३॥
[यो] वै चतुःशरावं निर्वपेच् चतस्र एवोर्वीर् अनु निर्वपेत् ।
एता वै चतस्र उर्वीर् यद् दिशः ।
दिशश् चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
कल्पन्ते ऽस्मै दिशो दिशां प्रियो भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ॥
दिशानां त्वा चक्षुषा पश्यामि दिशानां त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे ।
दिशानां त्वास्येन प्राश्नामि दिशानां त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति] ॥४॥
[यो] वै पञ्चशरावं निर्वपेद् वैश्वानरम् एव पञ्चमूर्धानम् अनु निर्वपेत् ।
एष वै वैश्वानरः पञ्चमूर्धा यद् द्यौश् च पृथिवी च रसा च तिषं? ।
वैश्वानरं चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
वैश्वानर इव तपति वैश्वानर इव दीदाय वैश्वानर इवाचारो भवति य
[एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ॥
वैश्वानरस्य त्वा चक्षुषा पश्यामि वैश्वानरस्य त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे
वैश्वानरस्य त्वास्येन प्राश्नामि वैश्वानरस्य त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति] ॥५॥
[यो] वै षट्शरावं निर्वपेत् षड्धाम्न एव देवान् अनु निर्वपेत् ।
एते वै षड्धामानो देवा यद् ऋतवः ।
ऋतूंश् चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
कल्पन्ते ऽस्मा ऋतवो नर्तुष्व् आवृश्च्यत ऋतूनां प्रियो भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव [देव]तां मनसा ध्यायेत् ॥
ऋतूनां त्वा चक्षुषा पश्याम्य् ऋतूनां त्वा हस्ताभ्याम् आ रभे ।
ऋतूनां त्वास्येन प्राश्नाम्य् ऋतूनां त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स यथा हुतम् एवं प्राश्नीयाद् एवैनं प्राश्नाति] ॥६॥
[यो] वै सप्तशरावं निर्वपे[त्] सप्तर्षीन् एवानु निर्वपेत् ।
एते वै सप्तऋषयो यत् प्राणापानव्यानाः ।
सप्तर्षींश् चैव लोकं चाव रुन्द्धे ।
सप्तऋषिर् इव तपति सप्तऋषिर् इव दीदाय सप्तऋषिर् इवाचारो भवति
य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एताम् एव देवतां मनसा ध्यायेत् ।

मासार्धेभ्यस् त्वा चक्षुषा पश्यामि मासार्धेभ्यस् त्वा हस्ताभ्याम् आ ददे ।
मासार्धेभ्यस् [त्वा]स्येन प्राश्नामि मासार्धेभ्यस् त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स वा एतं पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति] ॥८॥
यो वा अन्नस्यान्नं निर्वेदेद् विराजम् अन्नस्यान्नम् अनु निर्वेदेत् ।
एषा वै विराड् अन्नस्यान्नं यद् द्यौश् च पृथिवी चायम् अन्तरिक्षं च ।
विराजाद् अनिष्टं च लोके ...ं च ।
वैराजं ब्रह्म इत्य् एतद् अन्नं च [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एतान् एव देवान् मनसा ध्यायेत् ॥
विराजस् त्वा चक्षुषा पश्यामि विराजस् त्वा हस्ताभ्याम् आ ददे ।
विराजस् त्वास्येन प्राश्नामि विराजस् त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स वा पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति] ॥९॥
[यो] वै अन्नस्यान्नं निर्वेदेद् अन्नस्य एव देवान् अनु निर्वेदेत् ।
एते वै अन्नस्यान्नं देवा एव आसाः ।
आसाद् वैव लोके वास इन्द्रे ।
कल्पन्ते ऽस्मै आसा आसानां प्रियो भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एतान् एव देवान् मनसा ध्यायेत् ॥
आसानां त्वा चक्षुषा पश्यामि आसानां त्वा हस्ताभ्याम् आ ददे ।
आसानां त्वास्येन प्राश्नामि आसानां त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स वा पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति] ॥१०॥
[यो] वै इदमन्नं निर्वेद[द्] इदम् एव धेनुम् अनु निर्वेदेत् ॥
एषा वा इडा धेनुर् यद् यज्ञः पशवः ।
इडां वैव धेनुं च यज्ञं च लोके च पशूंश् वास इन्द्रे ।
कल्पन्ते ऽस्मा इड इडां प्रियो भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एतान् एव देवान् मनसा ध्यायेत् ॥
इडायास् त्वा चक्षुषा पश्यामीडायास् त्वा हस्ताभ्याम् आ ददे ।
इडायास् त्वास्येन प्राश्नामीडायास् त्वा [जठरे सादयामि ॥
[इति स वा पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति] ॥१०॥
यो वा एकाक्षरस्यान्नं निर्वेदेद् रोहिणम् एवानु निर्वेदेत् ।
एष वै रोहिणो यद् इन्द्रः ।
इन्द्रं वैव लोके वास इन्द्रे ।
कल्पन्ते ऽस्मा इन्द्रिया प्रिय इन्द्रस्य भवति य [एवं वेद ।
[स एवं विद्वान्] प्राश्नीयाद् एतान् एव देवान् मनसा ध्यायेत् ।
इन्द्रस्य त्वा चक्षुषा पश्यामीन्द्रस्य त्वा हस्ताभ्याम् आ ददे ।
इन्द्रस्य त्वास्येन प्राश्नामीन्द्रस्य त्वा जठरे [सादयामि ॥
[इति स वा पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति] ॥११॥
यो वै ब्रह्मणस्यान्नं निर्वेदेद् विश्वान् एव देवान् अनु निर्वेदेत् ।
एते वै विश्वे देवा यद् इदं सर्वम् ।
विश्वान् वैव देवान् लोके वास इन्द्रे ।
कल्पन्ते ऽस्मै विश्वे देवाः प्रियो विश्वेषां देवानां भवति य एवं वेद ।
स एवं विद्वान् प्राश्नीयाद् एतान् एव देवान् मनसा ध्यायेत् ॥
विश्वेषां त्वा देवानां चक्षुषा पश्यामि विश्वेषां त्वा देवानां हस्ताभ्याम्
आ ददे ।
विश्वेषां त्वा देवानाम् आस्येन प्राश्नामि विश्वेषां त्वा देवानां जठरे सादयामि ॥
इति स वा पुरुषम् इह प्राश्नीयाद् य एवं प्राश्नाति ॥१२॥ [अनु° १]

९.२२

इमां मात्रां ! मिमीत ओदनस्य तत्र पन्था मुकमतां विभिश्रेभ्यः ।
अपि द्रोहाद् एनसो दुष्कृताच् च पुनातु मा पवित्रः पवित्रः ॥१॥
अग्नी इन्द्री अग्ना जिह्वा मधु भवतु म वचः ।
मधु पवित्रम् ओदनं ब्रह्मणा मित् वदामि हस्ताभ्यां मित् वदामि ॥२॥

मासार्धेभ्यस् त्वां • • मासार्धे...रोदद्
मासार्धे • • मासार्धे...
...°रति • •
एष हवा...येत° •
विराजम्...
• • • ब्रोम्...
...दैन् । विराजस्य चक्षुषा पश्यामि विराजस्य
...त्वा ॥८॥ [हस्ताभ्यामादेद्
...°वाजतो • • मात्रा
...रोम्
एष वाचं इत्...
• ध्वे इडो...
...रौद्
रौहिणम् • •
• मे इन्द्रियाणि प्रिये भवतव...
...रौम्
...विश्वानि एव • • •
• • देव...
• रैम्
...देवतानां त्वा जठरे सादयामि

यद् अपि गर्भे सति माता चकार दुष्कृतम् ।
अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः ॥३॥
शौ १०.५.२२[cf] यद् अर्वाचीनम् देवहायनाद् अनृतं किं चोदिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥४॥
यद् दुष्कृतं यच् छमलं यद् एनश् चकृमा वयम् ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥५॥
यन् मातरं यत् पितरं यद् वा जामातरं हिंस्मः ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥६॥
यन् मातृमा यत् पितृमा भ्रातृमा यत् सहासिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥७॥
'शौ ०.१५.१' श्यावदता कुनखिना स्तेनेन यत् सहासिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥८॥
गुल्फानां पौष्कलानां तत् छ्मां ! यद् अन्नम् आशिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥९॥
यद् अपाम् अपि ¡अद्दुर मुम्प्रूस् अपपि ! सोदकम् ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१०॥
यद् उक्ताद् आगन्यतो वयं ब्राह्मणस्य निम्रम्लुः पत्तावागामु ! पेदिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥११॥
यद् ब्रह्मचर्ये व्रातचर्ये अनृतं किं चोदिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१२॥
'शौ ०.१५.१' किलासेन दुश्चर्मणा षण्ढेन यत् सहासिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१३॥
[यद्] धारामिविच्छेन [... ... ...सहासि]म ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१४॥
यत्र क्षेत्रम् अभितस्त्यापार्श्वं वा यत् निरेमिषे ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१५॥
यद् अक्षेषु हिरण्यये गोषु अश्वेषु यद् धने अनृतं किं चोदिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१६॥
अशुर ! आर्यां स्वां दासीं सूतिकां लोहितपतीम् अशुद्धां यद् उपेयिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१७॥
परिविघ परिवेद्नेनान्यपरश्चातेन ! परिभक्षितेन दिदिधूपत्या यत् सहासिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः ॥१८॥
यद् ¡दक्षसीदं विमेग्नमद ! विमेयं धनकाम्याः ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥१९॥
य[द्] अये कं य[द्] अये कम् उभये कम् इति यद् ददौ ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥२०॥
यत् परमायां शेयतम् अपक्वं मांसम् आशिम ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥२१॥
यद् अन्नम् आशिमा वयं यद् अन्नम् अन्नकाम्या ओदनस्यापि शाप्या ।
[अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः] ॥२२॥
यदि विद्वांसो यदि [अ]विद्वांसो अनृतं किं चोदिम ।
अयं मा तस्माद् ओदनः पवित्रः पात्व् अंहसः ॥२३॥
यद् देवस्य सवितुः पवित्रं सहस्रधारं विततं हिरण्ययम् ।
येनेन्द्रो अपुनाद् अनातंम् आत्यांस् तेनायं मां सर्वपशुं पुनातु ॥२४॥
येनापुनत् सविता रेवतीर् अपो येनापुनीत वरुणश् च वयः ।
तैसा १.०.११.५ येनेमा विश्वा भुवनानि पूता तेनायं मां सर्वपशुं पुनातु ॥२५॥
अति कामानि दुरितं यद् एनो जहामि रिप्रं परमे सधस्थे ।
येनेन्द्र [ए]व पुनाति दुष्कृतस् तम् आ रुहेम सुकृताम् उ लोकम् ॥२६॥
मा यक्ष्मं मिहामिष्मारिहन्तोविगातु ! नः ।

• मे...
• यदो°...चोदिमः
• • • • • ए आमहि वशिमः
...°सिमः
श्याव°...यत् सहासिमः
गुल्फानां पौष्कलानां...आशिमः
...॥ [अ°] १॥
• यद्य • • ब्राह्मणस्य निम्रलुन्...
...वर्ष • सहासिमर
धाराभिविहेन मा
• • °क्षितास्य • यं •
...रेयिम
[°विन
°विघ• परिविवेदनेना° °भक्षेन दिदुधूपत्या •
...उभये • • • •
} • °मागा द्यवक्म्...आशिमः ॥ [अ°] १॥
...मर • अन्नकाम्योदनं° शाप्या
यद्...चोदिमः
येद...विततं •
येनेन्द्रम् अपुनं नाटिमाकांम्...
...वरुणस्य वयः
• • • पूताम्... [अहामि रिप्रं परमे सधस्थे
...रिप्रं • • । येनेन्द्र पुनमानि दुरितं यरेमे
• • पुनं मामि • यद्...

सर्वैव पुष्पम् अस्तु मद् दुरं भवतु दुष्कृतम् ॥२७॥
इमं पचामि ओदनं पवित्रं पचतात्र मम् ।
स मा मुञ्चतु दुष्कृतात् विश्वस्मात् कैल्बिषात् परि ॥२८॥ [अनु° २]

९.२३

सहस्राक्षं शतधारम् ऋषिभिः पवनं कृतम् ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥१॥
येन पूतम् अन्तरिक्षं यस्मिन् वायुर् अधिश्रितः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥२॥
येन पूते द्यावापृथिवी आपः पूता अथो स्वः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥३॥
येन पूते अहोरात्रे दिशः पूता उत येन प्रदिशः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥४॥
येन पूतौ सूर्याचन्द्रमसौ नक्षत्राणि भूतकृतस् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥५॥
येन पूता वेदिर् अग्नयः परिधयस् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥६॥
येन पूतं बर्हिर् आज्यम् अथो हविर् येन पूतो यज्ञो वषट्कारो हुताहुतिः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥७॥
येन पूतौ व्रीहियवौ [या]भ्यां यज्ञो अधिनिर्मितः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥८॥
येन पूता अश्वा गावो अथो पूता अजावयः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥९॥
येन पूता ब्रह्म सामानि यजुर् ब्राह्मणं सह येन पूतम् ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१०॥
येन पूता अथर्वाङ्गिरसो देवतास् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥११॥
येन पूता ऋतवो येनार्तवा येभ्यस् संवत्सरो अधिनिर्मितः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१२॥
येन पूता वनस्पतयो वानस्पत्या ओषधयो वीरुधस् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१३॥
येन पूता गन्धर्वाप्सरसस् सर्पपुण्यजनास् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१४॥
येन पूताः पर्वता हिमवन्तो वैश्वानराः परिभुवस् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१५॥
येन पूता नद्यस् सिन्धवस् समुद्रास् सह येन पूताः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१६॥
येन पूता विश्वे देवाः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१७॥
येन पूतः प्रजापतिर् लोकं विश्वं भूतं स्वर् आजभार ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१८॥
येन पूतम् ऋतं सत्यं तपो दीक्षा पूतायते ।
[तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम्] ॥१९॥
येन पूतम् इदं सर्वं यद् भूतं यच् च भव्यम् ।
तेना सहस्रधारेण पवमानः पुनातु माम् ॥२०॥ [अनु° ३]

९.२४

शौ ४.१२.१,२,३,१,४,... हवीर्धेरो दुर्दुमित् बाजानायद् बाजसानास् संभूत बधिवर्ति ।

• • • मे...
...विश्वस्मात् • •
तेनेना...
...°पूत
येन पूते द्यावापृथिवी आपः पूता अथो स्वः
• • सूर्याचन्द्र°...
...पूतो • वषट्कार •
...°ताः
• पूताश्व...
• • ब्रह्म • • ब्राह्मण...
• पूतास् अथ°...
• • °अप्सरस्...
...°परि • • • •
• • °प्रजापति • स्व • •
तेन...
• • हवी...

वाचं हनुवानो दमयन् सपत्नान् सिंह इव प्रेषन्न् अभि तंस्तनीति ॥१॥
सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धो अभिक्रन्दन्न् ऋषभो वाशिताम् इव ।
वृषा त्वं वध्रयस् ते सपत्ना ऐन्द्रस् ते शुष्मो [अ]भिमातिषाहः ॥२॥
संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायु[र्] गृह्या गृह्णानो बहुधा वि चक्ष्व ।
दैवीं वाचम् आ दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणाम् उप भरस्व वेदः ॥३॥
दूरेव पूर्वं सहसा विदानो गव्यन्न् अभि रोह संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥४॥
दुन्दुभेर् वाचं प्रयतां वदन्तीम् आशृण्वती नाथिता घोषबुद्धा ।
नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम् ॥५॥
धीभिः कृतः प्र भरस्व वाचम् उद् धर्षय सत्वनाम् आयुधानि ।
अमित्रसेनाम् अभिजङ्घनानो द्युमद् वद दुन्दुभे सूनृतावत् ॥६॥
पूर्वो दुन्दुभे वि वदस्व शत्रून् भूम्याः पृष्ठे वद वसु रोचमानः ।
इन्द्रमेदी सत्वनस् सं ह्वयस्व मित्रैर् अमित्रान् अव जङ्घनीहि ॥७॥
अन्तरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक् ते ध्वनयो यन्तु शीभम् ।
अभि क्रन्द स्तनयोत्पिपानः श्लोककृन् मित्रतूर्याय श्रद्धी ! ॥८॥
संक्रन्दनः प्रस्तावेन धृष्णुषेणः प्रवेदकृद् बहुधा ग्रामघोषी ।
श्रेयो वन्वानो वयुनानि विद्वान् कीर्तिं बहुभ्यो वि भज द्विराजे ॥९॥
श्रेयःकेतो वसुजि[ति]स् सहीयान् मित्रं दधानस् त्विषितो विपश्चित् ।
अंशून् इव ग्रावा वृषणे ! अद्रिर् गव्यन् दुन्दुभे अधि नृत्य वेदः ॥१०॥
शत्रूषाण् नीषाड् अभिमातिषाहो गवेषणः सहमान उद्भिद् ! ।
¡वाग्वी मन्त्रां ! प्र तनयस्व वाचं सांग्रामजित्यायेषम् उद् वदेह ॥११॥
अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठो मृधो जेता पुरएतायोध्यः ।
इन्द्रेण गुप्तो विदथा निचिक्यद् धृद्द्योतनो द्विषतां याहि शीभम् ॥१२॥ [अनु° २॥]

९.२५

इलास् तत्त्वद् ओषधीर् ओषधीनाम् अयं रसः ।
अश्माधम् ते ऽयं हृद् अस्तिर् मूलो मद् ओषतु प्र पतातु ममाप्यः ॥१॥
यथा ¡धूमं शाखा एक मात्येनानु विष्यन्ते ! ।
यथा ते कामम् सर्पतु मन्दर् अर्घेषु मज्जसु प्र [पतातु ममाप्यः] ॥२॥
यथा कुहः प्रवसति यथा दहति शर्षिणा ।
यथा ते दहतां मनः प्र [पतातु ममाप्यः] ॥३॥
पुंसः कुहं प्र सरति लोक आर्धीभिर् आवृतः ।
स ते हृदयं विदर्याति तत्र मन आर्धीभिस् तव प्र [पतातु ममाप्यः] ॥४॥
यत्र ते स्तोको हृदयं दिग्धेषुः प्र पतता[म्] ।
अस्त्राक्षयं यदेषिता कामो विध्यतु त्वा मम प्र [पतातु ममाप्यः] ॥५॥
¡हरितेनि शुष्कास्ता सर्वदा हृदयामयी ।
¡मिहस्तं अन्याम् अपाङ्गुर ! अथो त्वा धामि शोचतु प्र [पतातु
ममाप्यः] ॥६॥
शोचीनुद् ! अस्तु ते शयनं शोचानुर् ! अपि वेशनम् ।
दुर्गि[र]म् अस्तु ते मनो यथा त्वमरमा सः ! [प्र पतातु ममाप्यः] ॥७॥
¡वार्वीन मनस् समो जिद् माम् अय ! संनयेयु ।
ययाम ! त्वामि शोचतु स्तोकस्तोक उप्तरोदरः प्र [पतातु ममाप्यः] ॥८॥
¡अन्तर् महतु यशोभिस्यवरसेभिर् आवृतम् ।
¡सर्वान् यहः प्र पाटयात् ! इदा धीभिस् तव प्र [पतातु ममाप्यः] ॥९॥
हृदये तु तन् अन्यतो स्वैर् दंसेभिर् एपते ।
अग्निः कामस्य यो महान् स मह्यं रन्धयतु त्वा प्र [पतातु ममाप्यः] ॥१०॥
आशम् अग्निम् आज्यन् दर्भं तार उ कृष्णे मनोजवान् ।
अग्निश् चरन् इषावेषा कामो विध्यतु त्वा मम प्र [पतातु ममाप्यः] ॥११॥
शयानम् अद्य आसीनम् अभ्यासस्य सचासितौ ।

• सम्वानो • सपत्नान् सिंह इव • तंसनति
सिंहेवास्तानी इदयो • °कन्दंद् • वाशिनाद् •
वृषा त्व • • वधरान् इन्द्रस्...
संजयं...
दैवी • • गुरस्व वेधा शत्रूणाम् • भरस्व वेदः।
• • सहसं • गव्यंत् अब...
शुचा विहि • • हुत्वा...
दुन्दुभिर्...
• • • हस्तगृह्यमित्रे भीता • वधान।
• • प्र भरस्व • • धर्षय सत्वनाम् •
अमित्रसेनाम् • दिवद् वद • •
...°मानः
°मेदिन् • • हृदय अमित्रैर्...
अन्तरेमो...ध्वनयो • •
• • स्तनयोत्पिपाना श्लोककृन्मित्रतूर्याय •
• प्रवर्तनी...
अथो वन्वानो • • कीर्तिं बहुभ्यो...
श्रिय कृतो...
अंशून् • ग्रावा...
शत्रूषा नीषाड् °दाशो • सहमानोद्भिद्
• मित्रं प्रतनयस्व • सांग्रामजित्यायेषम् • वदेद
अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठ अथो जेता...
• द्विषो विदथा निचिक्युत् धृद्द्योतनो...शीभम्

...पतातो ममाप्य
...काम सर्पत्वं सर्पतु • म
...शोकाधीभिर् •
...विदेत तत् मनार्धीभिस्...
...दिग्धेषु • •
अस्त्राक्षयं यदेषा • विध्यतु त्वाम मा
• °शय...
...धामि • •
...अर •
• उप्तरोदर मा
...हदीमिर् •
...रन्धयतु • मा ॥८॥
• • • द साधि • • °चरन्
...मा
• अभ्यासीनम्...

¦चरन्तुम् उपतिष्ठन्त समाधीमिर् वि विद्यतं? प्र [पतातु ममाप्य।] ॥१२॥
¦चरन्ति इव तिष्ठन्त मासीद् मुप संसतति? ।
रेष्मा तृणम् इव मथ्नातु वहन् कामरयो मम प्र [पतातु ममाप्य।] ॥१३॥
यथेन्द्रायासुरान् अरन्धयद् बृहस्पतिः ।
यथा त्वम् अग्ने मथ्नाताद् अमून् मह्यम्? इहा मथ प्र [पतातु ममाप्य:] ॥१४॥
अहं ते मन आ दधे गुडेन सह मेदिना ।
यथा मनुष्या गन्धर्वास् ते मह्यं रन्धयन्तु त्वा प्र [पतातु ममाप्य।] ॥१५॥
यथाश्वत्थस्य पर्णानि निलयन्ति कदा चन ।
यथासौ मम कामेन माथ स्वाप्सीत् कदा चन प्र पतातु ममाप्य। ॥१६॥
कुष्ठं तपन्त मरुतस् साप्यं प्रराग्नानं? स्वरयन्तो अर्चिषा ।
यथा न स्वपात् कतमश् चनाहावेव गच्छन् ममाप्य। ॥१७॥
॥ऋ°५॥ ॥नु°४॥

इत्यथर्वेदे पैप्पलादशाखायां नवमः काण्डः समाप्तः ॥

१०.१

¦हास्व तेजने धेनो छम्वनलतनि ।
¦न तद् दिवो यद् अदहसि यद् अवित्तं न तद् यसा? ॥१॥
शौ ५.१.२ पुत्रो यस् ते पृश्निबाहुस् तम् उ त्वं सामनं? कृधि ।
अयो दुहितरं मर्त्याम् अयो त्वं सामना? भव ॥२॥
¦असामं कुरु मैनगुद् अस्य श्वसाराते तिम्दते म ते स्तुहि ते ।
¦परेतकस्तूपकंप× पुनर् ददामि योन-
¦येहर त्वं इद? तस्यास् तपतु सिम्बिहम् ।
तस्याधि पुत्रान् भ्रातृंश् च तस्य गोष्ठं वि तावत? ॥३-४॥
¦यस्य स्रोत नास्ति याबीद्? यस्याम् आया हविर्गृहम् ।
दुर्णाम्नीस् तत्र गच्छत तत्र सर्वा× परेतन ॥५॥
शौ २.४.१ परि धामान्य् [आसाम् आशुर् गाष्ठाम् इवासरम् ।
[अजैषं सर्वान् आजीन् वो नश्यतेतस् सदान्वाः] ॥६॥
¦अत्र श्वाराव कोशे धराम्? अयो गोष्ठान् विचारिणीम् ।
अयो यास् स्वप्ने पश्यामि ता इतो नाशयामसि ॥७॥
कण्वा या गर्दभीव निभ्रजत् सूकरीव ।
तस्यै प्रति प्रवर्तय तमम् अश्मानम् अद्यामिम्? ॥८॥
¦योनिर् याभि गच्छात् प्रियं कस्तौ पस्तौपिनीं कस्तौ पमस्यात्? छिद्यात्?।
अथेनां चातयातै परमां चेत् परायताम् ॥९॥
या भद्रा या शिवा योनी पयसा सह ।
अग्निर् ह्यस्माकं गृहे गार्हपत्यो नि यच्छतु ॥१०॥
इदं नो देवस् सवितेदं देवो बृहस्पतिः ।
इदं वो विश्वे देवा अवसानम् अपुषन्त? ॥११॥
वा १८.११ परि प्रायाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः ।
सेधन् विश्वा अप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा ॥१२॥
ऋ १०.१५५.५ । शौ ६.२८.२ परीमे गाम् अनेषत पर्य् अग्निम् अहृषत ।
देवेष्व् अक्रत श्रव× क इमां आ दधर्षति ॥१३॥ ऋ°१॥

१०.२

त्वयीन्द्रियं त्वयि वर्चस् त्वं धर्मपतिर् भव ।

(apparatus:) • • यद मरन्तु यं • • मा | • अरन्धयन्तु • | ...अमयन् • • मा। | • • मना दधे... | ...रन्धयन्तु • प्र। | ...नीलयन्ति • • | ...यथासौ ममाप्य। | • मम् • • यथाहावेव • • ॥नु°५॥ | इत्यथर्वणिपैप्पलादे°... | {अथ दशमकाण्ड: ॥ ॥ ओं नमो नारायणाय ॥ ओं हास... | पुत्रो • • पृश्निबाहुस्तं • • | • • मर्त्या... | ...°दूर। | दुर्णाम्नीस्तत्र गच्छत... | • यातामीलेया (पूर्वेण साकमस्येवाभीसारेणाद्य (प्रतीकेन निर्देशः) | • यम्...दह • | ...निर्भजत् • | तस्यै ...अद्रिमी | • • यो... | • दे... | ...देवासानमपुषन्त | ...यथेषीर्ति • | परीमे... अहषत | • कस्तद...इमां ना •

त्वम् उत्तरो भ्रातृव्येभ्यस् तव लक्ष्मी× पयस्वती ॥१॥
तवेताम् अश्विना धाद्दी? तव राष्ट्रं दिवि श्रितम् ।
त्वम् आयुष्मान् सपत्नहोत्तरो द्विषतो भव ॥२॥
तीक्ष्णशृङ्गो वृषभस् समुद्र इवाक्षतूदकम् ।
त्वं सहस्रवीर्यस् तथाधाद्दो? यथा यते ॥३॥
भ्रातृव्यश् च सपत्नश् च यस् त्वा शत्रुर् जिघांसति ।
¦श्रियन्तं सर्वेषां दधातु च इदं वेद ।
¦श्रियन्तं सर्वेषां मायायो गृह वि धारय? ॥४॥
त्वं पशी सत्याकृतिस् सत्यधर्मा गवेषणः ।
अनाधृष्यस् त्वं सर्वांसी? त्वं भ्रातृव्याणां श्रियं दह ॥५॥
तुभ्यं धयन्तु वत्सम् तुभ्यं शुल्क× प्र दीयताम् ।
तुभ्यं विराड् पयो दुहां त्वां वाञ्छन्तु विशो महीः ॥६॥
वाञ्छन्ति त्वा बृहद्राष्ट्रं त्विषित् तेषां सुखाहिता ।
त्वं देवानां भव प्रियस् त्वयि गावो अधिश्रिताः ॥७॥
त्वयीन्द्रियं त्वयि वर्चस् त्वयि यज्ञो अधिश्रितः ।
तथायन्तु इदं देर्वास् त्वं प्रियो ह? बृहस्पतेः ॥८॥
अग्नीषोमा पवमानो विराड् देवी पयस्वती ।
अतन्द्रं सर्वे रक्षन्तु राष्ट्रं ते नापदाय? ॥९॥
अग्निर् इव तूणं प्रदह कक्षूलम् इवा कक्ष ।
श्रियं भ्रातृव्याणाम् अधम् ¦त्वाष्ट्रीकम् इवाधिर× कराः? ॥१०॥ ऋ°१०

१०.३

अश्व इव रथम् आ धावस्व सिंह इव पुरुषं हर ।
हस्तीवायांद् बलं अदधि भ्रातृव्याणां श्रियं दह ॥१॥
उत् ते कृणो[तु कश्य]पो ब्रह्म देवैर् अभिष्टुतम् ।
आनीतम् इवाद्बुतम् फलं अदिरम् आ ह[र] ॥२॥
× × [व]र्मां हराद् वतेनं पर्णम् आ हराद् अभितुपो गृहं यत् ।
इमां देवैस् समां भूतो तां प्र [व]दाद् बृहस्पतिः ॥३॥
तान् आ धेहि समाहिते [अ]ग्नौ सूर्यविचक्षणे ।
तेभिष् ट्वम् उत्तरो भव भ्रातृव्याणां श्रियं वह अथो दर्वां पयो हर ॥४॥
आदित्या रुद्रा वसव ऋषयो भूतकृतश् च ये ।
श्रियं च क्षत्रम् ओजश् च तुभ्यं देवा असाविषुः ॥५॥
असुरो ऽसीन्द्रमायुष्मान् शतशारदः ।
स इन्द्र इव देवेषु त्विषीमान् दिवा आ वद ॥६॥ ऋ°१॥

१०.४

इदं राष्ट्रं प्रथतां गोभिर् अश्वैर् इदं राष्ट्रं मधेनेरया? रसेन ।
अस्मै वद् उर्वीर् उप सं नमन्तु समहोता हतशत्रून् सचिन्तान् ॥१॥
इमे राजान इषुभिर् घ्नन्तु शत्रून् इमे राजानस् समित्यां वदेयुः ।
इमे राजान× पृतनास् सहन्ताम् अहं ब्रह्मा विमृधो ऽहं निरस्ताः ॥२॥
इदं राष्ट्रं कृतमद् वीरवज् जिष्णुमम् इदं राष्ट्रं मानुमत् चित्रघोषम् ।
अस्मै राष्ट्राय बलं नि हरन्तु अहं देवेभ्यो हविषा विधेयम् ॥३॥
यदि युद्धं यद् मृतं? यो [अ]स्तु देवैनसाद् यदि वा पितृषेण ।
येनर्तिपाद् एनो यो अस्तु तस्मा अहं देवेभ्यो हविषा जुहोमि ॥४॥
यद् व× क्रूरं मनसा यच् च वाचो देवैनसाद् यदि वा पितृषेण ।
अग्नेव दुष्यद्यम् अपि यत्स्व वक्षम् अथा नश्विनस् सुमनसस् समेत ॥५॥
एकमता ¦विधिनं मञ्जयपुरोहि? तेन वो राष्ट्रं प्रथयन्तु देवाः ।
सम्यन् वो राष्ट्रं सह वो मनांसि समीची[ना]नां पशवो विश्वरूपाः ।
समीचीनानां वो अहम् अस्मि ब्रह्मा सम्यञ्चो देवा इदम् आ यन्तु म इमम् ॥६॥
यथापस् समुद्राय समीचीर् वहन्तु श्रियम् ।

(apparatus:) मनं • यं...सुप | ...समुद्रेवाक्षतेदक | • °देवोम् • • नदी | • • सपत्नश्च...हातो • | ...पीष्पित: | अनाधृष्य • • त्वा... | ...तुभ्य • • | ...विशो मही | ...त्विषिष् • सुखाहित | ...अधिकृत | ...त्वं • °कुच: | ...दं बृहस्पते: | अतन्द्रं... | • • • प्रद... | ...दवाधिरुपकर | अश्वेव...सिंह • • | हस्तीवांद बला... | ...°ष्टुतं | • इवाडुकं... | • हरन्... | • • धहि • • दर्वा° | ...देवां • • | अमुरसीन्द्र° °शार | • त्विषि...दिवा • | ...इतप्रश्येनेरया • | ...सचिन्त्या | इमे • इषुभिर्... | • • इताना... | ...जिष्णु तमम • • नदमत् • | अस्मे राष्ट्रं बलं मे... | ...देवेनसाद् • •,• | देव अविताद्य मे... | ...देवेनसाद् • • • | अग्नेव दुष्यद्यम् • दाध वक्षम्...सुमेत | ...प्रथयन्तु • | ...इमम् • • देविमम | ...वहन्तु •

यथा राष्ट्राय मे देवास् सम्यञ्चो वहन्तु श्रियम् ॥७॥
संगृहं वो राष्ट्रं प्रथयन्तु गोभिर् अश्वैस् संगृहम् अर्धनेरया रसेन ।
यथा ब्रह्मणा प्रथमानासो वसीयांसस् सदम् उषा भवाथ ॥८॥
बहुर् वो वा प्रसूनो धृष्णुर् अस्तु बहुकुमारा× प्रतिरूपा× पितॄणाम् ।
सत्यं वदन्तस् सुमतिं चरन्तो प्रियं गृहाना अनासो यन्तु सख्यम् ॥९॥
इह क्षत्रं पुष्टम् उत राष्ट्रं शमी स्व इन्द्रियं पशुभिस् संविदानम् ।
प्रभातु तान् अधिपतान् यांश् च द्विषः ॥१०॥
इदं राष्ट्रं प्रथतां सर्वदेष[म्] इदं राष्ट्रं कृतमद् वीरवज् जिष्णुमम् ।
इदं राष्ट्रं पशुमद् ब्रह्मपूतम् इदं राष्ट्रं हतशत्रु जिष्णु ॥११॥
सपत्नसाहं अमूनम् इदं राष्ट्रं वहम् उग्रम् ।
साहामित्रम् अभिमातिषाहं सर्वा जिगाय ¦धृतया वृधि? ॥१२॥ ऋ°४॥

१०.५

शौ १९.३१.१-१४ औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥१॥
यो [नो] अग्निर् गार्हपत्य× पशूनाम् अधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणिस् सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥२॥
करीषिणी फलवतीं स्वधाम् इरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥३॥
यद् द्विपाच् [च] चतुष्पाच् च यान्य् अन्नानि ये रसाः ।
गृह्णीयं तेषां भूमानं बिभ्रद् औदुम्बरं मणिम् ॥४॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच् च धान्यम् ।
पय× पशूनां रसम् ओ[ष]धीनां बृहस्पतिस् सविता मे नि यच्छात् ॥५॥
अहं पशूनाम् अधिपा असानि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर् दधातु ।
मह्यम् औदुम्बरो [मणिर् द्रविणानि नि यच्छतु ॥६॥
[उप मौदुम्बरो] मणि× प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिर् आ मागन् सह वर्चसा ॥७॥
देवो मणिस् सपत्नहा धनसा धनसा[त]ये ।
पशोर् अन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥८॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिम् आ दधाति सरस्वती ॥९॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्य् उपावहद् अयं चौदुम्बरो मणिः ॥१०॥
त्वं मणीनाम् अधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर् जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बर स त्वम् अस्मत् सहस्वाराद्
अरातिम् अमतिं क्षुधं च ॥११॥
ग्रामणीर् असि ग्रामणीर् उत्थायाभिषिक्तो ऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
शौ धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि तेजो ऽसि तेजो मयि धारया नयीरशरीर? मयि धेहि ॥१२॥
पुष्टिर् असि पुष्ट्या मा सम् अङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बर स त्वम् अस्मासु [धेहि] रयिं [च नस्] सर्ववीरं नि यच्छ ।
रायस् पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥१३॥
अयम् औदुम्बरो मणिर् वीरो वीराय बध्यते ।
स नस् सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नस् सर्ववीरं नि यच्छात् ॥१४॥
ऋ°५॥

१०.६

भगस्य राजस् सुमतिं गमेम यं हवन्ते बहुधा मानुषासः ।
इदं कृण्वानो भगम् आ वृणीते स नो अर्वेषु सुभगान् कृणोतु ॥१॥
भगं पुरस्तात् प्रतिपश्यमानां वहेम देवीम् उपसं विभातीम् ।
प्रतीची मुधा द्रविणेन साकं भगं वहन्त् अदितिर् न एतु ॥२॥

(apparatus:) ...वहन्तु • | ...यदीधांस इदम् • • | • • • • पुष्पिर... | ...अनसो • • | पज्ञास्थतामधिपतान्यांश्च द्विष | ...°दम् • | • बहुमवीर... | • • सर्व... | ...वेधसी | • • • गोष्ठ... | वद्°(इयती औदु°)... | करीषिणी फलवती...इद | वद्°...मे | • • • • च अन्नानि • | ...शेषाणं विभ्रद औदुम्बरं • | • जिन्वतो • • मे • वर्चसा | • धनदर मौमान... | ...इराति • | • • दिवो... | ...चोदु° • । औ° अयं चोदुम्बरो मणि: | औ° सं • दस • मे... | त्वयिमे • • सर्वौ°... | • अमिति • • | • • ग्रामण्यस्य न त्रिनिक्तो... | ...अस्ति गृहमेधे • • • | वद्° • मेधे सस्तु स्थ... | ...ता | • औ°...वीरच उध्यते | • • मधी... | ...मो • • • | ...सुभगा • | °पुरस्ताल • • उषसं • | ...अदितिना वतु

भगं नो ऽद्य सविता दधातु देवानां पन्था विभिन्नो न एहि ।
अर्वाञ्ची भद्रा सुमतिर् न एत्व् अथा भगे ना सुमना नो [अ]स्तु ॥३॥
भगेन वाचम् इषितां वदामि सरस्वतीं मधुमतीं सुवर्चसम् ।
भगेनाददतं उप मेदम् आगन् यथा वर्चस्वान् समितिम् आवदानि ॥४॥
भगो मा गोषु अवतु भगो मावतु धान्ये ।
अक्षेषु खलेषु मा भगो भगो मावतु राष्ट्याम् ॥५॥
भगो मा दश्यमाहेषु प्रातर् मा भग आ गमत् ।
भगो मा प्रातर् अवतु भगो मध्यंदिनं परि ॥६॥
भगवाहे वयं भगं वाम इव पति एष्म ते ।
भगं देवेभ्यस् सुभगं भगं मनुष्येभ्यः ॥७॥
दिवस् पृथिव्या अहम् अन्तरिक्षाद् भगं वृणे ।
सो ऽग्ने रमतां मयि स मा मावतु वर्चसा ॥८॥
भगं वृणानवन्तां? वहन्ति पन्ने प्रवन्तो भगम् इद् धयन्ते ।
भगेनादत्तम् उप मेनम् आगन् विश्वं भूतं द्रविणेन अन्नम् ॥९॥
भगेन देवास् सम् अपन् मर्त्यासा विश्वा भुवनाभिपत्ते ।
प्रपच्छन्न् एति बहुधा वसूनि स नो दधात्व् अलमद्? वसिष्ठम् ॥१०॥
वातो भगो वरुणो वायुर् अग्निः क्षेत्रस्य पत्नी सुहवा नो [अ]स्तु ।
हिरण्याक्षो मतिपद्यो वृषक्षात् सर्वैस् साकं सजमानो न एहि ॥११॥
उद् एहि देव सूर्य सह सौभाग्येन ।
सहर्षभस्य वाजेन सहावतां वरत्रेण ॥१२॥
हिरण्येन[... ... ... ।
[... ... ...] ॥१३॥ ऋ°१०॥ नु°१॥

१०.७

शौ १९.२७.१-१० गोभिर् ट्वा पात्व् ऋषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष् ट्वा ब्रह्मणा [पा]त्व् इन्द्रस् त्वा पात्व् इन्द्रियैः ॥१॥
सोमस् त्वा पात्व् ओषधीभिर् नक्षत्रै× पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस् त्वा चन्द्रो वृत्रहा वात× प्राणेन रक्षतु ॥२॥
तिस्रो दिवस् तिस्र× पृथिवीस् त्रीण्य् अन्तरिक्षाणि चतुरस् समुद्रान् ।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस् तास् त्वा रक्षन्तु त्रिवृतस् त्रिवृद्भिः ॥३॥
त्रीन् नाकान् त्रीन् समुद्रान् त्रीन् ब्रध्नान् त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस् त्रीन् सूर्यान् गोप्तॄन् कल्पयामि ते ॥४॥
घृतेन त्वा सम् उक्षाम्य् अग्न आज्येन वर्धयन् ।
अग्नेश् चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥५॥
मा व× प्राणं मा वो ऽपानं मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन मावत ॥६॥
प्राणेनाग्निं सं दधति वात× प्राणेन संहितः ।
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥७॥
आयुषायुष्कृतां जीवायुष्मान् जीव मा मृथाः ।
प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योर् उप गा वशम् ॥८॥
देवानां निहितं निधिं यम् इन्द्रो अन्वविन्दत् पथिभिर् देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस् त्रिवृद्भिस् तास् त्वा रक्षन्तु त्रिवृतस् त्रिवृद्भिः ॥९॥
त्रयस्त्रिंशद् देवतास् त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुर् अप्स्व् अन्तः ।
अस्मिंश् चन्द्रे अधि यद् धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥१०॥ ऋ°१॥

१०.८

शौ १९.२७.११-१५ ये देवा दिव्य् एकादश स्थ ते देवासो हविर् इदं जुषध्वम् ॥१॥
[ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविर् इदं जुषध्वम् ॥२॥
[ये देवा× पृथिव्याम् एकादश स्थ ते देवासो हविर् इदं जुषध्वम् ॥३॥]
असपत्नं पुरस्तात् पश्चान् नो [अ]भयं कृतम् ।

(apparatus:) भगो • • सविते...विभिनो • • | • अहम्...न सुमना • • | ...°दी • सुवर्चसः | • • • आमाद... | • न अक्षखलेषु • • भगावमत् | ...भवेत • इमं ते | • पृथिव्यास्... | • • • वनि... | भगेन इत्यत् • • मर्त्य...अ | • देवान्... | • अमति... | • नदि°... | सा वरत्रेण • सहावत • | हिरण्येनेत्येषा (प्रतीकेनैव निर्देश:) | • • वत्सर्षभो... | • • ब्रह्मणा...इन्द्री | माद्भ्य°... | • • त्रिवृतः...त्रिवृतस् त्रिवृद्भि: | • नाका त्रीणि समुद्रा त्रीणि ब्रह्मा त्रीणि वैष्टपा | त्रीणि • त्रीणि • गोप्तॄन्... | ...वर्धय | ...दभ | • द ...मायिनो दभ | ...मावत | • • दधति • • संहित | ...अजनयन् | आयुष्कृता जीवायुष्मा...मृथा | °प्राणेनात्मन्वतां...विशं | • निहितं निधिर्मिन्द्रो अन्वविन्दत् | • • जुगुपिन्...त्रिवृतस् •

सविता मा [illegible] मा [illegible] ॥७॥
दिवो [illegible] रक्षन्तु [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥

१०.९

ये [illegible]
[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
पुनन्तु मा [illegible] ।
पुनन्तु मा [illegible] ॥६॥
[illegible] सविता [illegible]
[illegible] ॥७॥
[illegible] पुनातु मा [illegible] पुनातु मा ।
[illegible] सविता पुनातु ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible]
॥१०॥

१०.१०

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
इदम् [illegible]
[illegible]
[illegible] ॥४॥
इदम् [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥५॥

१०.११

यो [illegible] जिघांसति ।
इन्द्रश्च [illegible] ॥१॥
यो मा [illegible] जिघांसति ।
इन्द्रश्च [illegible] ॥२॥
यो मा [illegible] जिघांसति ।

इन्द्रश्च तस्मिन्न् अग्निश् च दुरितं प्रति मुञ्चताम् ॥३॥
यो मा चक्षुषा मनसा [य]श् च वाचा जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्मा अग्निश् [च] हिनांसिषद्दतापिता? ॥४॥
यः पिशाचो यातुधानः क्रव्याद् यो मां जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्याग्निश् च मूर्ध्नो दिग्धाभिर् अस्यताम् ॥५॥
यो मा ब्रह्मणा तपसा यश् च यज्ञैर् जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्याग्निश् च हृदये घनं विन्दताम् ॥६॥
यो मे ब्रह्म यो मे तपो बलं श्रेष्ठं जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्याग्निश् च मूर्धानं प्रति विन्दताम् ॥७॥
यो मे अन्न यो मे रस पाच श्रेष्ठां जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्मा अग्निश् चाक्रं हिंकारम् अस्यताम् ॥८॥
यो मे तन्वं यो मे प्रजां चक्षुश् श्रोत्रं जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्मा अग्निश् च हेतिं देवेषु विन्दताम् ॥९॥
यो मे गो[भ्यो] भीरुश्चद्? अश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ।
इन्द्रश् च तस्मा अग्निश् च ज्यानं देवेषु विन्दताम् ॥१०॥ ॥ऋ°५॥

१०.१२

यो मे भूतिम् अनामयद् पुष्टम् आयुर् जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्मा अग्निश् च दिवो ऽश्मानम् अस्यताम् ॥१॥
यो मे वेश्म यो मे दारान् भिपं श्रेष्ठां जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्या अग्निश् च कृत्यां वि तनुतां गृहे ॥२॥
यो मे मृत्युम् अस्मृत्विम् अद्धा राध्या दिप्सति ।
इन्द्रश् च तस्याग्निश् चार्चिषा दहतां स्वम् ॥३॥
यो मे प्राणं यो मे ऽपानं व्यानं श्रेष्ठं जिघांसति ।
इन्द्रश् च तस्याग्निश् च प्राणंप्राणम् अनु हताम् ॥४॥
यो मा देवजनैस् सर्पैर् विष्यता ब्रह्मणा यमा? ।
अगस्त्येन मेदिनाव् इन्द्रश् चाग्निश् च तं हताम् ॥५॥
तं सत्यौजाः प्र दहताम् अग्निर् वैश्वानरो वृषा ।
यो मा दूरस्याद् देशातैद्? यश् च दिप्सति विद्वला ॥६॥
यो मा दिप्सतम् अदिप्सन्तं यश् च दिप्सति दिप्सन्तम् ।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोर् अग्नेर् अपि दधामि तम् ॥७॥
अभि तं द्यावापृथिवी संतपतां तम् ते ऽधमेनिर् उच्यताम् ।
निर्ऋत्या बध्यतां पाशे यो मः पापं चिकित्सति ॥८॥
प्रत्यग्वधः प्रत्य उज् जहि भ्रातृव्यान् घोरचक्षुषः ।
इन्द्राग्नी यनान् वृश्चतां मैषाम् उच् छेषि कश् चन ॥९॥
प्रत्यग्वधेन प्रच्युतान् भ्रातृव्यान् ध्रियतो मम ।
अपानान् प्राचान् सचिद् यद् ध्रियतस् पारयाधरा? ॥१०॥
अग्ने ये मा जिघांसन्त्व् अग्ने ये च ध्रियन्ति माम् ।
अग्ने ये मोप तप्यन्ते तेषां प्रियतमं जहि ॥११॥
तं ध्रियन्तम् अवधिषम् अन्धेन तमसावृतम् ।
एतं मर्त्यो ऽभि पद्यस्व मा ते मोचि महोदरः ॥१२॥ ॥ऋ°६॥

१०.१३

द्यावापृथिवी सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ती अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्ती ॥१॥
धाता पवमानौ सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्य-
न्तौ ॥२॥
इन्द्राग्नी सं मह्येयां [मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तौ] ॥३॥
मित्रावरुणा [सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तौ] ॥४॥
भवाशर्वा सं [मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तौ] ॥५॥
12

अश्विना सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तौ ॥६॥
मरुतस् सं मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो [अ]मित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तः ॥७॥
विश्वेदेवास् सं मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो [अ]मित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तः ॥८॥
सूर्याचन्द्रमसौ सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्य-
न्तौ ॥९॥
अहोरात्रे सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ती अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्य-
न्ती ॥१०॥ ॥ऋ°७॥

१०.१४

गन्धर्वाप्सरसस् सं मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तः ॥१॥
सर्वपुण्यजनास् सं [मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तः] ॥२॥
वनस्पतयस् सं [मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तः] ॥३॥
[illegible] सं [मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तः] ॥४॥
ओषधयस् सं [मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तः] ॥५॥
[illegible] सं मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्तो अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्तः ॥६॥
सूर्याचन्द्रमसौ सं मह्येयां मम राष्ट्राय जयन्ता अमित्रेभ्यो हेतिम्
अस्यन्तौ ॥७॥
प्रजापते सं [मह्यस्व मम राष्ट्राय जयन्न् अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्] ॥८॥
परमेष्ठिन् सं मह्यस्व मम राष्ट्राय जयन्न् अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन् ॥९॥
[illegible] विश्वानि भूतानि सं मह्यन्तं मम राष्ट्राय जयन्त
अमित्रेभ्यो हेतिम् अस्यन्ति ॥१०॥ ॥ऋ°८॥

१०.१५

[illegible] रक्षिता स इमां सेनां रक्षतु ।
अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे ॥१॥
इन्द्रो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥२॥
सोमो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥३॥
वरुणो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥४॥
वायू रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥५॥
त्वष्टा रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥६॥
धाता रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥७॥
सविता रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥८॥
सूर्यो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥९॥
चन्द्रमा रक्षिता स इमां सेनां रक्षतु ।
अनुष्ठातर् अनु [तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥१०॥ ॥ऋ°९॥

१०.१६

[illegible] रक्षित् तद् इमां [सेनां रक्षतु] ।

अनुष्ठातर् अनु [तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥१॥
राज्ञी रक्षिणी सेनां [सेनां रक्षतु] ।
अनुष्ठात्र् अनु [तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥२॥
इन्द्राणी रक्षिणी [सेमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठात्र् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥३॥
वरुणानी रक्षिणी [सेमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठात्र् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥४॥
सिनीवाली रक्षिणी सेमां [सेनां रक्षतु] ।
अनुष्ठात्र् अनु [तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥५॥
समुद्रो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥६॥
पर्जन्यो रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥७॥
बृहस्पती रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥८॥
प्रजापती रक्षिता [स इमां सेनां रक्षतु ।
[अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे] ॥९॥
परमेष्ठी रक्षिता स इमां सेनां रक्षतु ।
अनुष्ठातर् अनु तिष्ठ सर्वे वीरा भवन्तु मे ॥१०॥ ॥ऋ°१०॥ ॥अनु°४॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां दशमः काण्डः समाप्तः ॥

११.१

वृषा ते ऽहं वृषण्वन्तं गर्भं दधामि योन्याम् ।
यदि देवपरिष्ठिता प्रजां तोकं न विन्दसे ॥१॥
धाता ते तं सिनीवाली वरुणानी प्र यच्छति ।
पुमांसं पुत्रम् इन्द्राणी सरस्वती? दधातु ते ॥२॥
संभूतस् ते वक्षणासु गर्भः पुंसां पुमान् कृतः ।
सर्वाङ्गस् तस्माज् जायताम् अग्निर् अरण्योर् इवेधितः ॥३॥
गम्भीरं कर्मण्यं प्रत्यं तान् कृणोमि ।
आरभताम् ते लोहितात् गर्भस् सं बर्तता वृषाकपे ॥४॥
त्वष्टा विंशतु ते प्रजां धाता तोकं दधातु ते ।
राका सीम्यस् च सुभ्वा मूलस्येशाना भुवनस्य देवी ॥५॥
सिनीवालीम् अनुमतिं राकां गुङ्गूं सरस्वतीम् ।
देवानां पत्नी या देवीन्द्राणीम् अवसे हुवे ॥६॥
अभिजाता वृषणमां अरिष्टासि वीरसूर् या ।
वि जायतां प्र जायतां मही भवतु पृथिवी ॥७॥
परिस्रुतं गर्भं धेहि मास्याः प्र च्योष्ट लोहितम् ।
अनूनः पूर्णो जायताम् अस्याम्? ऽश्मनो ऽधिवासमधि ॥८॥
तं दधामि ह्रियते वानुष्ठे गर्भं प्रजाम् पजते विश्वरूपे ।
अभिक्रन्दन् वृषभो वीडुमोपा? प्रजापते तस्यां धेहि गर्भम् ॥९॥
अभिक्रन्दन् स्तनयन् धेहि गर्भं विद्योतमानः पवमानो ऽधि धेहि ।
पर्जन्येनां पृथिवी रेतसाधियासां रसेनौषधीनां पयसाम् ॥१०॥
आ ते नयामि वृषणं यः प्रजानां प्रजापतिः ।

स ते वृष्यात् तृतीयं गर्भं योन्यां विज्ञां प्रजाम् ॥११॥
ये वृषाणो गर्भंकृत ऋषियतां सुमेधसः ।
तांस् ते ब्रवामि [सुतये] तद् उ ते सं पद्यताम् ॥१२॥
अग्नेस् ते त्वष्टुर् वरुणाद् इन्द्रात् सोमाद् बृहस्पतेः ।
पुत्रं ते पुत्रकामायै देवेभ्यो निर् ममे प्रजाम् ॥१३॥
अङ्गादङ्गात् सं स्रवतु तद् योनौ प्रति तिष्ठतु ।
प्रजा ते ¦यक्षात्या शया तं? ते बीजं निर् ऊहतु ॥१४॥ ॥अ॰१॥

११.२

अहं ससो वमनं ससो भूतिर् यक्षमम् अजीजरत् ।
इमं सहस्रभाग इन्द्रो विषं नाशयाति ते ॥१॥
य× कार्यो यश् च कृतस् स्वयंज उत हार्यः ।
देवा इन्द्रज्येष्ठा इन्द्रो विषं नाशयातु ते ॥२॥
विदारस्य विजम्भस्येषुधिर् माता धनु× पिता ।
आदित्या× पुदित्याद्? विषं नाशयन्तु ते ॥३॥
धन्विनो ज्याया इष्वा अपस्कम्भस्य वाह्वोः ।
अयाझाय् कृष्णात् कुर्मलात् विषं नाशयामि ते ॥४॥
अलपतेर् मार शीर्ष्णम् अथो [अ]स्या यन् मुखम् ।
देवी× पर्जन्यरेतस इयं कृणुता नमः ॥५॥
इमाम् अत्रयो ऽङ्गिरसो गौतमा वीरुधं विदुः ।
तया भरद्वाज× कण्वो विषं नाशयाति ते ॥६॥
यास् त्वा स्रेणा उपसरो या× पुंसो [अ]भ्य् आवहन् ।
आह्वान्तं संह्वान्तं ¦ब्राय तकु? ते कल्पयामसि ॥७॥
याता इयाश्रं च्यावयामि यत्नं ते तन्व× परि ।
याता य[च्] चक्षुस् ते गुर्वं भरजा लघु कृण्मसि ॥८॥
तेनाहम् क्रतो? तेन विषं नाशयामि ते ।
यथा मस् सत्यं पुरुष सदा वदितुम् अर्हसि ॥९॥
विष्कन्धं तद् अपिदारं विदारं वृण्वा वयम् ।
अम्भहनुं प्राह शङ्ख त्वानुजयेमां? भजामसि ॥१०॥
शुनम् इद् वा ओषधयो नि दधे भेषजाय कम् ।
धनायवस् सनायव× पुरुषं पारयिष्णवः ॥११॥
या ते पत्राणी देवजूता वीरुद् आयुष्या कृता ।
तयाहम् इन्द्रदत्तया विषं नाशयामि ते ॥१२॥
अलस्य व्यञ्जनस्य वेधृतस् स्फोतयंजथे? ।
अन्धे[र्] ज्याया इष्वास् तु यद् विषं नाशयामि ते ॥१३॥
साकं विष्कन्धं प्र पत वायेन किकिदीव्या ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नदय निहाकया ॥१४॥ ॥अ॰२॥

११.३

शौ १९.३४.१-१०

अङ्गिडो ऽसि अङ्गिडो रक्षितासि अङ्गिडः ।
द्विपाच् चतुष्पाद् अस्माकं सर्वं रक्षतु अङ्गिडः ॥१॥
¦या× कृत्कृतः? त्रिपञ्चाशीश् शतं कृत्याकृतश् च ये ।
सर्वान् विनक्तु? तेजसो ऽरसान् अङ्गिडस् करत् ॥२॥
[अ]रसं कृत्रिमं नाडम् अरसास् सप्त विस्रसः ।
अपेतो अङ्गिडामतिम् इषुम् अस्तेव शातय ॥३॥
कृत्यादूषण्णो वा अयम् अथो [अ]रातिदूषणः ।
अथो सहस्वान् अङ्गिड× प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥४॥
स अङ्गिडस्य महिमा परि ण× पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धम् ओज ओजसा ॥५॥
त्रिप? ष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्याम् अधि ।

तम् उ त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणा× पूर्व्या विदुः ॥६॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो अङ्गिड× परिपाणस् सुमङ्गलः ॥७॥
अथयोपदानि? अगयो अङ्गिडमितवीर्यं ।
पुरा त उग्राय सत उपेन्द्रो वीर्यं दधौ ॥८॥
उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानम् आ दधौ ।
अमीवास् सर्वा रक्षांसि अहि रक्षांस्य् ओषधे ॥९॥
आशरीकं? विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदम् अरसं अङ्गिडस् करत् ॥१०॥ ॥अ॰३॥

११.४

शौ १९.३५.१-५

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो अङ्गिडं ददुः ।
देवा यं चक्रुर् भेषजम् अग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥१॥
स नो रक्षतु अङ्गिडो धनपालो धनेव ।
देवा यं चक्रुर् ब्राह्मणा× परिपाणम् अरातिहम् ॥२॥
दुर्हार्दं घोरचक्षुषं पापकृत्वानम् आगतम् ।
तांस् त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणो ऽसि अङ्गिडः ॥३॥
परि मा दिव× परि मा पृथिव्या× पर्य् अन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्या[द्] दिशोदिशो अङ्गिड× पात्व् अस्मान् ॥४॥
य ऋष्णयो देवकृता य उतो विमृ?येत्या? ।
सर्वांस् तान् विश्वभेषजो ऽरसान् अङ्गिडस् करत् ॥५॥ ॥अ॰४॥

११.५

प्रतिगृह्णामि पृथिवीनियतम् एतद् आज्यस्य मथितम् ।
शरीरम् [इ]मां धेनुम् अस्य तानुस् त्वं रक्ष बर्हिष्या यथासत् ॥१॥
उत त्वाहुर् यमस्य पत्नीम् अथो त्वाहुर् अदितिं विश्वरूपाम् ।
अधिजरायुम् आयारे हव्यवाहम् अग्नाव् अस्या महिमानं जुहोमि ॥२॥
स सहस्वान् तन्तुम् अन्व् आ तताम यो ऽग्निहोमान् ददातं सम् आप ।
अधिजरायुं सवत्सां यो ददाति तं वै देवास् स्वर् आ रोहयन्ति ॥३॥
अधिजरायु[म्] स्वर् आ रोहयन्त्य् अमेन दत्ता सुदुघा पयोधाः ।
सहो ऽस्मै दुहां शतधारम् अक्षितम् अमुष्मिन् लोके युग उत्तरस्मिन् ॥४॥
पूर्वपत्सेन सा पश्चिनी गौर् वेवस्या? वत्सो अजरो जरायुषत् ।
तृतीयं मांसं परिलिखितं यत् तस्माद् देवा अधिजरायुम् आहुः ॥५॥
मा धावय शवसा यातुधानो [अ]न्तरा त्वद् अवादे? ऽस्मै ।
इमम् इन्द्र महता मे वि रक्ष सं प्रजया तन्वा सं बलेन ॥६॥
दुर्वेशवलाद् बभ्रुधा परस्ताद् विश्वे देवा× प्रति यद्यन्त्य् आयतीम् ।
या भद्रा या सर्वतस् समीची सेद् आहुर् भवतु मे ऽजरायुः ॥७॥
गृष्टिं धेनुम् अधिजरायुं स्वधां कृण्वान× प्र ददातु ब्रह्मणे ।
सहो ऽस्मै दुहां सहस्रधारम् अक्षितम् अमुष्मिन् लोके परमे व्योमन् ॥८॥
वत्सं जरायु प्रददन् पीयूषं यो नो ददातु सुदुघाम् उ धेनुम् ।
तस्य देवा अपि यवताजुस् स मा रोहतु सुकृताम् उ लोकम् ॥९॥
¦परीवालाम् अधिजरायुं मधा जीवो यदद्यांश्रमदता? ।
श्योनां शग्मां शिवां शिवेह मा नो हिंसीर् [अ]हसा दैव्येन ॥१०॥
मधुकृतं सुकृतम् आदित्यं ध्रुवं सरां ध्रुवं प्रति गृह्णास्य् आयतीम् ।
घृतधियं नमसा संवसानो देवान् मनुष्यान् असुरान् भतर्हि? ॥११॥
पञ्च देवा× प्रविशयन्त एताम् इन्द्रम् त्वष्टा वरुणो मित्रो अग्निः ।
ते सर्वे सवितुर्? मह्यम् एतां त इह जीवं प्र तिरन्त आयुः ॥१२॥
कश्यपो ऽयं जमदग्निर् वसिष्ठ ऋषयो युवस्व? सनुर् अग्र एताम् ।
भरद्वाजो गोतमो भर्विरंजा? श्योनं विश्वामित्रो ददुष× प्र तिरन्त्य् आयुः ॥१३॥

शौ ८९.१२

ऊर्जं देवेभ्यस् सुभग ऊर्जं पितृभ्यो अपद्वाम् ।
ऊर्जं दधातु मा पिता ऊर्जं मनुष्या उत ॥१४॥ ॥अ॰५॥

११.६

या जाता ओषधयो देवेभ्यस् त्रियुगं पुरा ।
मन्ये नु बभ्रूणाम् अहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥
शतं वो अम्ब धामानि सहस्रम् उत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयम् इ[मं मे] अगदं कृत ॥२॥
पुष्पवती× प्रसूमती× फलिनीर् अफला उत ।
अश्वा इव सजित्वरीर् वीरुध× पारयिष्णवः ॥३॥
ओषधीर् इति मातरो यद् वो देवीर् उप ब्रुवे ।
रपांसि विघ्नतीर् इत रपस् चातयमानाः ॥४॥
निष्कृतिर् नाम वो माता निष्कृतिर् नाम व× पिता ।
सरा पतत्रिणीस् स्थ[न] यद् आमयति निर् कृत ॥५॥
अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसति× कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥६॥
यद् अहं वाजयन्न् इमा ओषधीर् हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥७॥
उच् छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठाद् इवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनाम् आत्मानं तव पूरुष ॥८॥
यद् ओषधयस् समग्मत राजानस् समिताव् इव ।
विप्रस् स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ॥९॥
अश्वावतीं सोमावतीम् ऊर्जयन्तीम् उदोजसम् ।
आ वित्सि सर्वा ओषधी[र्] नूतां? मा पारयान् इति ॥१०॥
अति विश्वा× परिष्ठा[स्] स्तेन इव व्रजम् अक्रमुः ।
ओषधय× प्राचुच्यवुर् यत् किं च तन्वो [रपस्] ¦तं शश्वी विपूरुषम्? ॥११॥ ॥अ॰६॥

११.७

अदितिजन्माय? वरामसि मुञ्चावहौ गवाम् इव ।
वीला उत्सृजन् इन्दुर् उपसम्भे पृदाकम् ॥१॥
¦ये के चे सम्रपा इवे पुर्वा दंड्मीते मिचदसंदूपश्रीपायते यदा? ।
आखिदं त्वा वातो दंत् आखिदम् अभि वर्षतु ।
आकुतेन भेषजेन तेनाहीन् जम्भयामसि ।
¦सञ्चेतुतचाम्यक्षकः शयमान? अरसो अकः ॥२-३॥
अभितस्याहरं विषम् उभयोस् स्वजस्य च ।
अधिकस्य? या रोपीस् ता इतो वि नयामसि ॥४॥
इदं पैद्वो अजायतेदम् अस्य विवर्तनम् ।
इदं कनिक्रदो मयो? क्षियते तु परायसम् ॥५॥

त्रिपूर्थान् धाता वहन्तु विष्वग् वर्षन्तु वृष्टयः ।
विष्वग् विषं प्र मेह त्वं शतधार इवार्णवः ॥६॥
निरलं हरितस् सृजन् मित्रो वर्तयते रथम् ।
¦तेनापि सस्हीय तेन पीयूषं महिमापिमः? ॥७॥
येनेन्द्रजस्य येन वृत्रो येन वृत्रं पराजिनः ।
तेना शतक्रतो त्वम् अहेर् जातानि जम्भय ॥८॥
प्रत्य् अमोदन्त× पृथिवी प्रति द्यौ× प्रति सूर्यः ।
पैद्वो यद् अश्वमाता अन्वेनाहीन् अवाययन् ।
रज्जुर् च दन्वती शेरे पयन्ती×? पृथिवीम् अनु ॥९॥
भासो जीवन्ते आघ्नत सेन्द्राणी अविभयाभयत् ।
नत्वा मस्ते? विष्वग् विषम् आवनम् इव सात्यकम् ॥१०॥
इन्द्राग्नी मित्रावरुणा त्वष्टारम् अदितिं भगम् ।
इयामो अर्वाञ्चं पैद्वं मा नो ऽयं पुरुषो रिषत् ॥११॥
सचो जातो ऽकनिक्रदत् स उक्थो अध्य् अधूनुत ।
अश्वेनाश्वस्य वाजिनो हव्यवाहन× पृषद् ॥१२॥ ॥अ॰७॥ ॥अनु॰१॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायाम् एकादश× काण्डस् समाप्तः ॥

१२.१

इमं स्तोमम् अर्हते जातवेदसे रथम् इव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि न× प्रमतिर् अस्य संसद्य् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥
यस्मै त्वम् आयजसे? स साधत्य् अनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनम् अश्नोत्य् अंहतिर् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥२॥
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्त× पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियो अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥३॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस् त्वे देवा हविर् अदन्त्य् आहुतम् ।
त्वम् आदित्याँ आ वह तान् ह्य् उश्मस्य् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥४॥
त्वम् अध्वर्युर् उत होतासि पूर्व्य× प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्य् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥५॥
विश्वां गोपा अस्य चरन्तु जन्तवो द्विपच् च यद् उत चतुष्पद् अक्तुभिः ।
चित्र× प्रकेत उषसो महाँ अस्य् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥६॥
यो विश्वतस् सुप्रतीकस् सदृङ्ङ् असि दूरे चित् सन् तलिद् इवाति रोचसे ।
रात्र्याश् चिद् अन्धो अति देव पश्यस्य् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥७॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो? रथो [अ]स्माकं शंसो अभ्य् अस्तु दूढ्यः ।
तद् आ जानीतोत पुष्यता वचो अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥८॥
वधैर् दुश्शंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिद् अत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्य् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥९॥
यद् अयुक्था अरुषा? रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आद् इन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥१०॥
अध स्वनाद् उत बिभ्यु× पतत्रिणो द्रप्सा य[त्] ते यवसादो व्य् अस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो [अ]ग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥११॥
अयं? मित्रस्य वरुण[स्य] धायसे [अ]वयातां मरुतां हेलो अद्भुतः ।
मृडा सु नो भूत्व् एषां मन× पुनर् अग्ने [सख्ये मा रिषामा वयं तव] ॥१२॥
देवो देवानाम् असि मित्रो अद्भुतो वसुर् वसूनाम् असि चा[रुर् अ]ध्वरे ।

सर्वेन् मास तव सप्तपत्ने [म]हि [मन्वे मा रिषाम वयं तव] ॥१३॥
तत् ते मधु यत् सन्धितम् [स्वे रुवे] सोमपूतो भवे सूद्दपत्नाः ।
स्फातिं रहं हविषं च सुचुने भवे मन्वे मा रिषाम वयं तव ॥१४॥
षष्ठे त्वं पुत्रविणो हयासो यमानास्त्वम् अदिते सर्वतातः ।
यं मह्येन हवसा योद्धयामि प्रजावन्तो रायस्ते ते स्याम ॥१५॥
स त्वं नु म]न्ये सौभगत्वस्य विद्वान् समाकम् आयुः प्र तिरेह देव ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः
॥१६॥ ॥ऋ°१॥

१२.२

कालो अश्वो वहतु सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तम् आ रोहन्ति कवयो विपश्चितस् तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥
सप्त चक्रान् वहतु काल एष सप्तास्य नाभीर् अमृतं न्व् अक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्य् अञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥
पूर्णः कुम्भो अधि काल आहितस् तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तम्? ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तम् आहुः परमे व्योमन् ॥३॥
स एव सं भुवनान्य् आभरत् स एव सं भुवनानि पर्य् ऐत् ।
पिता सन्न् अभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परम् अस्ति तेजः ॥४॥
कालो ऽमूं दिवम् अजनयत् काल इमां पृथिवीम् उत ।
कालेन? भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५॥
कालो भूतिम् असृजत काले तपति सूर्यः ।
काले विश्वा भूतानि काले चक्षुर् वि पश्यति ॥६॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्य् आगतेन प्रजा इमाः ॥७॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥८॥
तेनेषितं तेन जातं तद् उ तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥९॥
कालः प्रजा असृजत कालो [अ]ग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालाद् अजायत ॥१०॥
कालाद् आपः सम् अभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोद् एतु सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥११॥
कालेन वातः पवते कालेन [पृथिवी मही ।
[द्यौर् मही काल आहिता ॥१२॥
[कालो ह] भूतं भव्यं च पुत्रो [अ]जनयत् पुरा ।
कालाद् ऋचः सम् अभवन् यजुः कालाद् अजायत ॥१३॥
कालो यज्ञं सम् ऐरयद् देवेभ्यो भागम् अक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१४॥
काले ऽयम् अङ्गिरा देवो [अ]थर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश् च लोकान् विधृतीश् च पुण्याः ।
सर्वांल् लोकान् अभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥१५॥
॥ऋ°२॥

१२.३

[सर्वेषां ... मास्ति ...]
[इन्द्राशिर् महोरगम्? ॥१॥
इन्द्राणी ... महास्तम् ।
... ॥२॥
... ॥

दृढं विषम् इव तैमातम् इन्द्राशिरः शाले शये ॥३॥
अयं शये तन्वो रक्षाणो अयं [..............] ।
[.............. अ]दिवनाभ्य अवचक्षाणात् एनम् ॥४॥
मध्ये बलस्य निर्मित इन्द्राशिर महोरगः ।
भीमो अन्यस्य शाङ्कसे मभैयाभ्युत्सिनो? महम् ॥५॥
अन्येन्द्राशिर एधेनु वर्धयतु प्रलमन्या ।
स्फातिं च बल्यां गृह्णातु गयां च बहु पुष्पतु ॥६॥
यम् भोग्? अश्विना रोपतुर यम् इन्द्रो ब्रह्मणस् पतिः ।
तं शक्र शिवम् अस्मभ्यं पृथ्यो? जीवनाय कम् ॥७॥
हदांशाकुम्भमयाः? घृतम् आसीद् द्रुपदम् ।
पक्राश्लुप्यमलः शेर? यत् तस्य [आ]हुतं हविः ॥८॥
सनडुहान् पृष्ठिवहान् वहतान् वहर? आपृणाम् ।
कीनाशस्य समस् स्वेदात्? इन्द्राशिर अजायत ॥९॥
यदि कीनाशस् सस्वेद पति शिरस्तस् तन्वं परि ।
अयां गाव इव दुष्पर्लाम्द्राशिरो सो [अ]श्नुते ॥१०॥
यदि कीनाशं सीरपतिर दण्डेन हन्तु मन्युतः ।
यदि किं च बल्यं संहाल्पा इन्द्राशा उपाहृतम् ॥११॥
उलूखलं मुसलं तानि? वोऽवयन् प्र शूर्पं नप पवते कृणुष्व ।
याहि पुत्राय गोतमम् इन्द्राशिर मधुमन्तं कृणोतु ॥१२॥
एतत् शूर्पं अनिलर आहरोलूखलं मुसलं कुम्भ्या गहि ।
पुत्रा मो ऽप पुत्रविते वहि पितुम् अदनन्ति मधुमन्तम् ओपम् ॥१३॥
अग्निर नो दूतः प्रहितो [अ]यम् आगन् मनो मन्थम् ।
अथम् आयुयं कृणोमि ॥१४॥
निराविधम् आहुतं प्रज्ञये नो यशो मन्दं पितुम् अध्वपसूता? ।
स्वादो पितो मधो पितो उप नः पिताव् आ गहि शिवश् शिवा-
भिर ऊतिभिः ॥१५॥
सिंहो भूत्वा गा भुणाम्य अग्निर भूत्वा धान्यम् ।
इन्द्राशिर निर्मितो मयाधारं वाचं गच्छतु ॥१६॥ ॥ऋ°१॥

१२.४

शतकाण्डो दुश्च्यवनस् सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दर्भो य उग्र ओषधिस् तं ते बध्नाम्य् आयुषे ॥१॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडम् आ घ्नते ।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छतु ॥२॥
दिवि ते तूलम् ओषधे पृथिव्याम् असि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥३॥
तिस्रो दिवो [अ]त्य् अतृणत् तिस्रो यां पृथिवीम् उत ।
त्वया दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि च ॥४॥
त्वम् असि सहमानो ऽहम् अस्मि सहस्वान् ।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीवहि ॥५॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून् कृधि ॥६॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वद् इत् ।
तेनाहं शश्वतो जनां असनं सनवानि च ॥७॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥८॥
यो जायमानः पृथिवीम् अदृंहद् यो [अ]स्तभ्नाद् अन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नो ऽयं दर्भो वरुणो ऽधिवाकः ॥९॥
सपत्नहा शतकाण्डस् सहस्वान् ओषधीनां प्रथमस् सं बभूव ।

स नो ऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस् तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥१०॥
॥ऋ°२॥

१२.५

सहस्रकाण्डः शतकाण्डः पयस्वान् अपाम् अग्निर् वीरुधां राजसूयम् ।
स नो ऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिर् आयुषा सं सृजातु नः ॥१॥
घृताद् उल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहो ऽच्युत[श्] च्यावयिष्णुः ।
नुदन् सपत्नान् अधरांश् च कृण्वन् दर्भा रोह महतान् इन्द्रियेण ॥२॥
त्वं भूमिम् अत्य् एष्य् ओजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुर् अध्वरे ।
त्वां पवित्रम् ऋषयो ऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्य् अस्मत् ॥३॥
तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलम् उग्रम् एतत् तत् ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥४॥
दर्भेण त्वं कृणु वीर्याणि दर्भं बिभ्रद् आत्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाय वर्चसा ऽधान्यान् सूर्य इवा भाहि प्रदिशश् चतस्रः ॥५॥
॥ऋ°३॥

१२.६

उद् ईरतं पृथिवी जीरदानुर् यावन्तम्? अर्वाङ् अनु याति वातः ।
कविमासत्ती पृथिवी प्रति दृंहतु वीरं सहस्रवर्किशा सुदुघा रोहन्ती ॥१॥
इन्द्र[ः] सीतां दर्शयतो अग्निर् वा रोहिताश्वः ।
अश्विना रासभाश्वा कृषिं देवीम् अयोयुजन् ॥२॥
शुनं वरत्रान् आ यच्छ शुनम् अष्ट्राम् उद् इङ्गय ।
शुनं तु सस्यानां पक्वम् शुनं वहतु लाङ्गलम् ॥३॥
शुनका वाहा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
तथा धाता तथा मनुस् तथा कृषुणान् अश्विना तथा देवी सरस्वती ॥४॥
सुपिप्पला ओषधयो ...मार्डीकाम् अक्षतम् तद्? ।
इन्द्रो वरुणो वायुर् अदितिर्नं मे ग्राव्णा वचः ॥५॥
धाता पूषा बृहस्पति[र्] भूम्याम् सम्मीडाम् अक्षन् ।
कृषिं देवाम् अवर्धिरः सम्मानी सुमेधा या ॥६॥
संश्रवा वा मधु पुत्रपाला मरिक्षिराज? मधुमन्तम् अंशम् ।
अन्नवम् सीता पुष्यवत् सीता सीता पशूनां नु हि प्रदद्यात् ॥७॥
सीता वर्धतु दृढ्यो भूमये महते दृढे ।
विश्वासः वहेनम् निषुति व पुष्टयोद् यति ।
पूर्व आवाद् अजनन् पुत्र? पर्णां जनातिर् अपवायमानाः ॥८॥
वि विहरिष दृषिद अधूर? विस्तरा ।
मुही मय वह गोभ्यु सम्मम् ॥९॥
इन्द्रोय सेय मा अजाम् विन्देहोरा वहन् कृषि ।
मा नो रिष्यद् वृषभाहो मा वा शाकिनालकार ॥१०॥
यो ऽश्माम् उग्रम संरस्यद् ते त वि समाननम् ।
तावन् शेते सुवर्णाहतो सीता वनाशु च या ॥११॥
इन्द्रो वनुर विस्तरिती कृषि सो उष्ठिक्रयाः ।
इन्ना वा पञ्च सदितम् ता वाचो उष्ठिक्रमाः ।
वर्तिके मन्यमान् इव सीता वर्धतु दृढः ॥१२॥
शुनं कीनाशो अन्न् एति वाहान् शुनं कालो विलिखन् एतु भूमिम् ।
शुनासीरा हविषा वाहमाना शुनं धान्यानि कृणुतम् ॥१३॥
या नः सीरम् अतिवन्धा ज्योतिष्मती तमस् विराः ।
तास् अर्घे राजानाम् इयम् ॥१४॥ ॥ऋ°४॥

१२.७

ऊर्ध्वंभूतो वै नामैता आपो यद् औषधयश् च वनस्पतयश् च । तासाम्
अग्निर् अधिपतिः । यो वा एता ऊर्ध्वभूत आपो वेदाग्निम् अधिपतिम्

अथैनम् एता ऊर्ध्वा उप तिष्ठन्त्य् एव । एनम् ऊर्ध्वा उप तिष्ठन्त्य्
अधिपतिर् भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद ॥१॥
प्रस्कन्दरी[र्] वै नामैता आपो यद् वर्षास् । तासाम् आदित्यो अधि-
पतिः । यो वा एताः प्रस्क[न्द]रीर् आपो वेदादित्यम् अधिपतिम्
अथैता एतस्मिन् उद्यति प्र स्कन्दन्त्य् एव । अस्मिन्न् आयति प्र स्क-
न्दन्ति । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥२॥
तकरीर् वै नामैता आपो या[स्] सृतयः । तासां पृथिव्य् अधिपत्नी ।
यो वा एतास् तकरीर् आपो वेद पृथिवीम् अधिपत्नी[म्] अथैता
एतस्यां प्रभुत्वाम् तकरीर् यन्त्य् एव । एनेन द्विषन्तः प्रभुता यन्ति ।
अधिपति[र् भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥३॥
वशिनी[र्] वै नामैता आपो या[स्] स्यन्दन्ते । तासां वरुणो अधिपतिः ।
यो वा एता वशिनीर् आपो वेद वरुणम् अधिपतिम् अथैव
एतासां स्यन्दमानानां वशाम् आवृत एवा । द्विषतां वशम् आ इते
अधिपति[र् भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥४॥
ऊर्जा वै नामैता आपो यद् आपः । तासां त्वष्टाधिपतिः । यो वा
एता ऊर्जा आपो वेद त्वष्टारम् अधिपतिम् ऊर्जस्वी तेजस्वी
भवति प्रसहन् पशून् आप्नोति । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां
च य एवं वेद] ॥५॥
ओजो वै नामैता आपो यद् मधु । तासाम् इन्द्रो अधिपतिः ।
[यो वा एता ओज आपो वेदेन्द्रम् अधिपतिम्] ओजस्वी
वीर्यावान् इन्द्रियावी भवति पराजसभायां मधुपर्कम्
आप्नोति । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥६॥
वर्चो वै नामैता आपो यद् घृतम् । तासां पूषाधिपतिः । यो वा
एता वर्च आपो वेद पूषाणम् अधिपतिं वर्चस्वी तेजस्वी भवति ।
वर्चस्यान्? इव उज्ज्वलं मुखं रोचते । अधिपतिर् [भवति स्वानां
चान्येषां च य एवं वेद] ॥७॥
उग्रा वै नामैता आपो यद् ब्रावुषयः । तासां मरुतो [अधिपतयः । यो वा
एता उ]ग्रा आपो वेद मरुतो अधिपतीन् उग्रो बलवान् भवति । मारुतं
शर्ध इव एनम् आहुर । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां
च य एवं वेद] ॥८॥
सहो वै नामैता आपो यद् वर्षम् । तासां पर्जन्यो अधिपतिः ।
यो वा एतास् सह आपो वेद पर्जन्यम् अधिपतिम् अथास्मै मित्रवाहयो
भवन्त्य अहीनेन स्था नन्दन्त्य अस्मात् वयम् इव अस्मात् उर्वो
गृहे महीयते । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥९॥
अभिमन्या वै नामैता आपो यद् स्वरा? । तासाम् अश्विनाधिपती ।
यो वा एता अभिमन्या आपो वेदाश्विनाव् अधिपती अभि मन्यते
भ्रातृव्या[न्] नैनं भ्रातृव्या अभि मन्यन्ते । तस्मात् मन्योर् मनम्?
अनु मन्यन्ते । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां च य
एवं वेद] ॥१०॥
परिक्षितो वै नामैता आपो याः कारिष्यांस्? । तासां यमो अधिपतिः ।
यो वा एताः परिक्षित आपो वेद यमम् अधिपतिं पर्य् एनं
स्या स्व पि इवा स्या? वसन्ति । अधिपतिर् [भवति स्वानां चान्येषां
च य एवं वेद] ॥११॥
रन्त्यो वै नामैता आपो यास् स्त्रियः । तासां कामो अधिपतिः । यो
वा एता रन्तीर् आपो वेद कामम् अधिपतिं रमन्ते ऽस्मिन्
रन्तीयो भवति काम एव कामीनाम् । अधिपतिर् [भवति स्वानां
चान्येषां च य एवं वेद] ॥१२॥
विश्वभृतो वै नामैता आपो यद् दुग्धा । तासां मृत्युर [अधिपतिः ।
[यो वा एता विश्वभृत आपो वेद मृत्युम्] अधिपतिं विश्वस्य

मर्ता भवति विद्वम् एवं विभ्रतस् सं भयो अन्यपो गृहे भीयन्ते
दक्षिणाग्नि[र्] गार्हपत्य आहवनीयः । एवं चत्वारि धामानि
गच्छन्ति निष्कः कंसो अश्वतरो [ह]स्ती! । अधिपतिर् [भवति
स्वानां चान्येषां च य एवं वेद] ॥१३॥
हिमा वै [नामैता आपो यद्...] तासाम् अपां हिमवान् गोधाम् सोमो
वत्सः परमेष्ठय् अधिपतिः । यो वा एता [हिमा आपो वेद
ता]साम् अपां हिमवन्तं गोधसं सोमं वत्सं परमेष्ठिनम् अधि-
पतिम् परमेष्ठी भवतु गच्छतु परमेष्ठिन्! धामम् । अधि-
पतिर् भवति स्वानां चान्येषां च य एवं वेद ॥१४॥ ॥ऋ॰८॥
॥अनु॰१॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां [...]: काण्डः समाप्तः ॥

१३.२

भग्निस् तक्मानम् अप बाधताम् इतस् सोमो ग्रावा मरुतः पूतदक्षाः ।
वेदि[र्] बर्हिस् समिधस् संशिशाना अप रक्षांस्य् अमुया धमन्तु ॥१॥
अयं हरो अभिशोचयिष्णुर् विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै ते अरुणाय बभ्रवे तपुर्मघवाय! नमो ऽस्तु तक्मने ॥२॥
तक्मन् सार्वेनम् इच्छस्व यदी सन् मूलयासि नः ।
अपेहि यत्र ते गृहा अन्यत् पूर्वेषु धाम्यतु ॥३॥
यः परुषः पारुषेयो अवध्वंस इवारुणः ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्चं परा सुव ॥४॥
अधराञ्चं प्र हिणोमि नमः कृत्वाय तक्मने ।
शकंभरस्य मुष्टिहा पुनर् गच्छ महावृषान् ॥५॥
महावृषान् मूजवतो कौपि! परेत्य ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो [अ]न्यक्षेत्राणि वा इमा ॥६॥
ओको अस्य मूजवन्त ओको [अ]स्य महावृषाः ।
महान् जातस् तक्मन् तद् असि बह्लिकेषु न्योचरः ॥७॥
तक्म[न्] व्याल वि गद व्यङ्ग भूरि यावय ।
दासीं निष्टक्वरीं पृच्छ तां वज्रेण सम् अर्पय ॥८॥
गिरिं गच्छ गिरिजा असि ¦रौतेष मानुषो गृहाः! ।
दासीम् अन्व् इच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥९॥
यस् त्वं शीतो अथो रूरस् सह कासावीविपः ।
भीमास् ते तक्मन् हेतयस् ताभिस् स्म परि वृङ्धि नः ॥१०॥
तक्मन् भ्राता बलासेन स्वस्रा कासिकया सह ।
पाप्मा भ्रातृव्येण [सह] गच्छैतो मरजान्! अभि ॥११॥
गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्यः काशिभ्यो मगधेभ्यः ।
धाने प्रियम् इव शेवधि तक्मानं परि दद्मसि ॥१२॥
¦मा कं चिदाँ मा र्दिदासां नदीयं वैतुकायतीं! ।
प्रैतानि तक्मने ब्रूमो [अ]न्यक्षेत्राणि वा इमा ॥१३॥
अन्यक्षेत्रे न रमते सहस्राक्षो [अ]मर्त्यः ।
अभूद् उ प्रार्थस् तक्मा स गमिष्यति बह्लिकान् ॥१४॥
अतो गच्छ मूजवतस् ततो वा नः परस्तराम् ।
मा स्मातो ऽभ्य् अगोः पुनः प्र त्वा तक्मन्न् उप ब्रुवे ॥१५॥

परस्मा यत्र त्वं चर परमस्यां परावति ।
यथा नूनं त्वम् आयस्य यथा नूनम् अभि शोचय ॥१६॥ ॥ऋ॰१॥

१३.२

यथेयम् उर्वी पृथिवी विवेश गर्भम् आदधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वाम् अवसे हुवे ॥१॥
पर्वताद् दिवो योनेर् [गात्राङ्गात् समाभृतम् ।
¦रेतो देवस्य देवम्! सरौ पर्णम् इवाधात्] ॥२॥
विष्णुर् योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर् धाता गर्भं दधातु ते ॥३॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं यो[न्या]म् अश्विनावत्ताम् आ धत्तं पुष्करस्रजा ॥४॥
गर्भं ते राजा वरुणो गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं [त] इन्द्रश् चाग्निश् च गर्भं धाता दधातु ते ॥५॥
गर्भो ऽस्य् ओषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भम् ए[ह] धाः ॥६॥
यद् ओषधयो गर्भिणीः एवावो येन गर्भिणः ।
एवां गर्भस्य यो गर्भस् तेन त्वं गर्भिणी भव ॥७॥
वि ते भिनद्मि घृतामसि धाता गर्भं दधातु ते ।
आ योनिं पुत्रो रोहतु जननं प्रति आयताम् ॥८॥
अनिष्ठा इह मैत्रावो अन्यं समुद्रा चर ।
यथा सोम इव भक्षनम् आ गर्भंस् सीदद् ऋत्वियम् ॥९॥
सवितुः श्रेष्ठेन [रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
[पुमांसं पुत्रम् आ धेहि दशमे मासि सूतवे] ॥१०॥
[.........] श्रेष्ठेन [रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
[पुमांसं पुत्रम् आ धेहि दशमे मासि सूतवे] ॥११॥
विष्णो श्रेष्ठेन [रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
[पुमांसं पुत्रम् आ धेहि दशमे मासि सूतवे] ॥१२॥
त्वष्टुः श्रेष्ठेन [रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
[पुमांसं पुत्रम् आ धेहि दशमे मासि सूतवे] ॥१३॥
भग श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः ।
पुमांसं पुत्रम् आ धेहि दशमे मासि सूतवे ॥१४॥
अधि [स्कन्द वीरयस्व गर्भम्] आ धेहि योन्याम् ।
[वृषा]ऽसि वृष्ण्यावन्तं प्रजायै त्वा नयामसि ॥१५॥
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तद् उ गर्भक[रणं पि]ब ॥१६॥
वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस् ते योनिम् आ शयाम् ।
ददन् ते पुत्रं देवास् सोमपा उभयाविनम् ॥१७॥
सोमस्य हवियोनरीम! गर्भकृत्यानम् ।
ततस् ते पुत्रो जायतां कर्तवे वीर्येभ्यः ॥१८॥ ॥ऋ॰२॥

१३.३

आयस्मात् अश्वत्थाद् अग्नी क्षमायीञ्जसे ।
उग्र आपधिकाद् अधि यो वृक्षान् अधिरोहति ॥१॥
विबाधं चिन् सहमान त्वाम् अग्ने जनयामसि ।
जातान् जनिष्यमाणान् सपत्नान् वृश्चस्व मे ॥२॥
अश्वत्थस्याधिरोहस्य वृक्षस्यारुपः कृताः ।
ततो जातय ते ऽजन[द्] वीडुजम्भो अग्निर् अग्ने ॥३॥
त्वां जातं जातवेदसम् आ दधाम्य् अमर्त्यम् ।
पावकम् अग्निम् ऊतये शुचिमन्तं विषासहिम् ॥४॥

उत् तनुष्व धनुः प्रति मुञ्चस्व वर्म ।
अहि शत्रून् वीर्या ते कृणोतु अत्रिरिक्षंतयते! ॥५॥
[ऋषभं त्वा समानानां] सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृण्मो विराजं गोपतिं गवाम् ॥६॥
समुद्रो [अ]स्य् अपां ज्येष्ठ इन्द्रो देवेषु वृत्रहा ।
व्याघ्रं सिंहं त्वा कृण्मो दमितारं पृतन्यताम् ॥७॥
इन्द्र इव दस्यून् अधरान् कृणुष्वोग्र इव यावो वि सृजन् सपत्नान् ।
ते शुष्यन् तता आप इवाग्ने एवांथेरवायमां! ॥८॥
सं वृश्चेनांस् ते शुष्का वृश्चेनान् सोमजान् शिखस्! ।
सपत्नान् सर्वान् दहन् त्वम् एकवृषो भव ॥९॥
त्वम् उग्रस् त्वं बली त्वम् एधि विषासहिः ।
त्वं पृतन्यतः पूर्वान् सपत्नान् अव धूनुष्व ॥१०॥
असपत्नस् सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधस् सपत्नास् ते पदोस् सर्वे सन्त्व् अभिष्ठिताः ॥११॥
म्लायन्तु ते वातमूलास् सपत्ना अग्निम् एषां निर् दयामि शरीरात् ।
हविषे कामो विद्मा[न] प्राणांस् तदे ×ो × × ×विष्कृताः ॥१२॥
अभिवर्धम् अभिभवं सपत्नक्षयणं हविः ।
राष्ट्राय मह्यं कृण्मस् सपत्नेभ्यः पराभव ॥१३॥
यो न[स्] स्वो यो अरणो अरातिर् अतिपूरुषः ।
युष्मस्यैव प्रजायतस् तस्य मोघं छेपि किं चन ॥१४॥
असपत्नं [पुरस्तात् पश्चान् नो अभयं कृतम् ।
[सविता मा दक्षिणत उत्तरान् मा शचीपतिः] ॥१५॥
[दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्व् अग्नयः ।
[इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्ताद् अश्विनाव् अभितश् शर्म यच्छताम् ।
[तिरश्चीनाघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतस् सन्तु वर्म] ॥१६॥
॥ऋ॰१॥

१३.४

त्वया पूर्वम् अथर्वाणो जघ्नू रक्षांस्य् ओषधे ।
त्वया जघान कश्यपस् त्वया कण्वो अगस्त्यः ॥१॥
त्वया वयम् अप्सरसो गन्धर्वांश् चातयामसि ।
अजशृङ्ग्य् अज रक्षस् सर्वान् गन्धेन नाशय ॥२॥
नदीं [यन्तु] अप्सरसो अपां तारम् अवश्वसम् ।
गुल्गुलूः पीला नलद्य् औक्षगन्धिः प्रमन्दिनी ॥३॥
यत्रामर्त्या अन्तर् अन्तस् समुद्रे तुरूव्यरीतुवंशी! पुण्डरीका ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥४॥
यत्र प्रेङ्खो गन्धर्वाणां दिवि बध्यो हिरण्ययः ।
[तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन] ॥५॥
गन्धर्वाणाम् अप्सरसाम् अगन्मन् इति संगमम् ।
[तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन] ॥६॥
यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाय शि[ख]ण्डिनः ।
[तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन] ॥७॥
यत्र वीक्षा! हरिता अर्जुना आघाटाः कर्करयस् संवदन्ति ।
तत् परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥८॥
इयं वीरुद् छिन्नच्छिनो गन्ध[र्व]स्याप्सरापतेः ।
भिनत्तु मुष्कावः अपि यातु शेपः ॥९॥
एषम् अगन्न् ओषधिर् वीरुधां वीर्यावती ।
अजशृङ्ग्य् अराटकी तीक्ष्णशृङ्गी व्य् ऋषतु ॥१०॥
आनृत्यतो [अ]प्सरसो गन्धर्वा यत्र वो गृहाः ।
अजशृङ्ग्य् अराटक्य् तीक्ष्णशृङ्गी व्य् ऋषतु ॥११॥

आया इद् वो अप्सरसो गन्धर्वाः पतयो यूयम् ।
अप क्रामत पुरुषाद् अमर्त्या मर्त्यं मा सचध्वम् ॥१२॥
भीमा इन्द्रस्य हेतयश् शतमृष्टीर् अयस्मयीः ।
ताभिर् गन्धर्वान् अभेया! अवकादान् व्य् ऋषत ॥१३॥
अवकादान् अभिशोचान् विविद्य! चोतय मामकान् ।
गन्धर्वान् सर्वान् ओषधे कृणु नस्वपरायतः! ॥१४॥
उन्मादयन्तीर् अभिशोचयन्तीर् मुनिम् अग्नि कृण्वन्तीर् मोहयन्तिम! ।
अप्सरसो यास् चरन्ति गन्धर्वपत्नीर् अजशृङ्ग्य् अतो ॥१५॥
द्वैधीहव्यानः एवं विश्वा रूपाणि यो ऽभवत् ।
श्वेवैकः कपिर् इवैकः कुमारम् सर्वकेशकः ।
प्रियो दृशा [इव] भूत्वा गन्धर्व[स्] सचते स्त्रियं तम् इतो नाशयामसि ॥१६॥
॥ऋ॰१॥

१३.५

यो वै वशां देवयते पचते [दुतां] चाहुतां वा ।
मृत्योस् स बध्यते पाशो देवानां च यमस्य च ॥१॥
दक्षिणां सूर्याम् अदितिं सरस्वती गृह्णपा कल्पयन्तः ।
इमां वशापाचम् आहुर् यतोति लिप्सो यशा अभिहताम् सचध्वे ।
तासाम् अग्नी मनसैकां जुहोमि तां मम स्वाहां भूतपतिः कृणोतु ॥२॥
स्वाहां न एतां सविता कृणोतु स्वाहां न एतां जनिता पशूनाम् ।
जुहुम्य्! अग्ने यतुजाति विद्वांस् तां मम स्वाहां भूतपतिः कृणोतु ॥३॥
इयं तृतीयं वशिनी वशासु अहिकेष्व! गर्भो ऽस्या विवेशः! ।
उशती त्वम् उशतो गच्छ देवान् सत्यास् सन्तु यजमानस्य कामाः ॥४॥
इमां मजा यावत्स्व तेस्ले ये ओर! यस्याम् इन्द्रो वरुणस् तद् विशाते ।
मूर्ध्ना स उग्रम् आ गर्धीरः पशूर् वीर्यम् आ पिबे[त] ॥५॥
वशासि सुत स्थविरं विपश्चितं वशासि सुत वध्वकं विपिश्यजाम् ।
वशासि सुत तरुणं विभाजने वशासि सुत संचितिं धनानाम् ॥६॥
यत् प्रोक्षणम् अयुतद्! बर्हिष्यस् परि दक्षिणतो देवा अवेतु ।
वशा संवृक्ता यथा गौर् अवीने[त्] तस्याः पीतो अभवद् वर्मवासः ॥७॥
नमो महिम्न उत चक्षुषे वां यदावभ्री मनसा तत् कृणोमि ।
देवैर् अभीतं परिभिरन् शिवेभिर् मा नो हिंसिष्ट हरसा दैव्येन ॥८॥
वशाम् अस्कन्धद् ऋषभस् तिष्ठन्तीम् अदितिं विदुः! ।
गर्भं तम् अप गो[र्] वेद ¦इति वा सोम कल्पता! ॥९॥
रूपम् एकः पर्यं अभवद् राजा नामैक उच्यते ।
प्रतिरूपस्यैकं [रूपं] रूपम् एकस्य कर्मन् ॥१०॥
प्रजापतिः परमेष्ठी मृत्युर् वैश्वानरश् [च] ।
सरस्वत्य् मानस्या! पक्षश् च वशाया अधि श्रिरे ॥११॥
वश एह आजायेत वशा देवकृतं हविः ।
निधानम् अस्या येभ्यां! दुहितरो यत्याम् इव ॥१२॥
नास्याप्यकृतः प्र तिष्ठन् नास्य सुता गृहे स्या[त्] ।
वशा हंसेवुद्यंका! परीत्या विजानतः ॥१३॥
मैनां रक्षे ब्राह्मणेभ्यो न मा वि म्लापयति च ।
अतीमं न प्रय आवर्तयद् यस्य गोषु वशा स्या[त्] ॥१४॥
नास्य पराम् आ इच्छन्ति देवा मनुष्या अतीताः ।
वशी यद् अन्विये! ब्रह्मणां तस्माद् एता भरद् वशाः ॥१५॥
वशां कुर्वाणा परिलीयम् आसन् एवं कल्याण्य अवदास्यमानाः ।
अपिहम्! अभिजायमाना यक्षस्य मात्राम् अभिजायमाना ॥१६॥
इन्द्रवत्तस् ते मदतस् तुरीयं भेजिरे वशे ।
तुरीयम् आदित्या दद्रास् तुरीयं वसवो वशे ॥१७॥
तुरीयभाज आदित्यान् वशायाः कवयो विदुः ।

[illegible] ॥१८॥
[illegible] ।
[आ]दित्याय [illegible] तपस्विनः ॥१९॥
[illegible] [अ]कल्मा[illegible] ।
[illegible] ॥२०॥
[illegible] सरस्वती[र्] ।
[illegible] पृथिवी [इ]मा ॥२१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२४॥
को अस्याः [illegible] वेद च [illegible] जरायु च ।
[illegible] ॥२५॥
[illegible] जरायु च ।
[illegible] ॥२६॥
[illegible] ।
[illegible] जरायु च ॥२७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२८॥

१३.६

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्न् अहिम् अन्व् अपस् ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥१॥
अहन्न् अहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रम् अव जग्मुर् आपः ॥२॥
वृषायमाणो ऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्व् अपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रम् अहन्न् एनं प्रथमजाम् अहीनाम् ॥३॥
यद् इन्द्राहन् प्रथमजाम् अहीनाम् आन् मायिनाम् अमिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्याम् उषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम् इन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥५॥
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधम् ऋजीषम् ।
नातारीद् अस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥
अपाद् अहस्तो अपृतन्यद् इन्द्रम् आस्य वज्रम् अधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥७॥
नदं न भिन्नम् अमुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्य् आपः ।
याश् चि[द्] वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासाम् अहिः पत्सुतःशीर् बभूव ॥८॥
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर् जभार ।
उत्तरा सूर् अधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९॥
अतिष्ठन्तीनाम् अनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्य् आपो दीर्घं तम आशयद् इन्द्रशत्रुः ॥१०॥
दासपत्नीर् अहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलम् अपिहितं यद् आसीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥११॥
अश्व्यो वारो अभवस् तद् इन्द्र सृके य[त्] त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोमम् अवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥
नास्मै विद्युन् न तन्यतुः सिषेध न यां मिहम् अकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश् च यद् युयुधाते अहिश् चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

अहे[र्] यातारं कम् अपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीर् अगच्छत् ।
नव च यन् नवतिं च स्रवन्ती[र्] श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥
इन्द्रो यातो ऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेद् उ राजा क्षयति चर्षणीनाम् अरान् न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

१३.७

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥
यः पृथिवीं व्यथमानाम् अदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्याम् अस्तभ्नात् स [जनास इन्द्रः] ॥२॥
यो [ह]त्वाहिम् अरिणात् स[प्त] सिन्धून् यो गा उदाजद् अपधा वलस्य ।
यो अश्मनोर् अन्तर् अग्निं जजान संवृक् समत्सु स [जनास इन्द्रः] ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णम् अधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षम् आदद् अर्यः पुष्टानि स [जनास इन्द्रः] ॥४॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेम् आहुर् नैषो अस्तीत्य् एनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर् भुज? इवा मिनाति श्रद् अस्मै धत्त स [जनास इ]न्द्रः ॥५॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो यो ऽविता सुशिप्रस् सुतसोमस्य स [जनास इन्द्रः] ॥६॥
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यस् सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स [जनास इन्द्रः] ॥७॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परे ऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा नाना हवेते स [जनास इ]न्द्रः ॥८॥
यस्मान् न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स [जनास इन्द्रः] ॥९॥
यश् शश्वतो मह्य एनो दधानान् अमन्यमानान् शर्वा जघान ।
यश् शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्यो[र्] हन्ता स [जनास इन्द्रः] ॥१०॥
यश् शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्य् अन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो [अ]हिं जघान दानुं शयानं स [जनास इ]न्द्रः ॥११॥
यश् शम्बरं पर्यतरत् कसीभिर् यो ऽचाकशद् यो ऽपिबत् सुतम् ।
अन्तर् गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्न् आमूर्छत् स [जनास इन्द्रः] ॥१२॥
यस् सप्तरश्मिर् वृषभस् तुविष्मान् अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणम् अस्फुरद् वज्रबाहुर् द्याम् आरोहन्तं स [जनास इन्द्रः] ॥१३॥
द्यावा चिद् अस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच् चिद् अस्य पर्वता भयन्ते ।
यस् सोमपा निचितो वज्रबाहु[र्] यो वज्रहस्तस् स [जनास] इन्द्रः ॥१४॥

यः सुन्वन्तम् अवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानम् ऊती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१५॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह? प्रियासः सुवीरासो विदथम् आ वदेम ॥१६॥
जातो व्य् अख्यत्? पित्रोर् उपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद्? व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥१७॥
यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर् यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश् च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥१८॥

१३.८

शं न इन्द्राग्नी भवताम् अवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शम् इन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥
शं नो भगः शम् उ नः शंसो अस्तु [शं नः पुरंधिः शम् उ सन्तु रायः ।
[शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः] शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥
शं नो धाता शम् उ धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥
शं नो अग्निर् ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणाव् अश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शम् अन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं [न] ओषधीर् वनिनो भवन्तु शं नो रजसस् पतिर् अस्तु जिष्णुः ॥५॥
शं न इन्द्रो वसुभिर् देवो अस्तु शम् आदित्येभिर् वरुणः सुशंसः ।
शं नो [रुद्रो] रुद्रेभिर् जलाषः शं नस् त्वष्टा ग्नाभिर् इह शृणोतु ॥६॥
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म [शं नः] शं नो ग्रावाणः शम् उ सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु [शं नः प्रस्वः शम् व् अस्तु वेदिः ॥७॥
[शं नः सूर्य उरुचक्षा उद् एतु] शं नो भवन्तु प्रदिशश् चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शम् उ सन्त्व् आपः ॥८॥
शं नो अदितिर् भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शम् उ पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम् व् अस्तु
वायुः ॥९॥
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिर् अस्तु शंभुः ॥१०॥
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शम् उ सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥११॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिर् अस्तु ।
शम् अभिषाचः शम् उ रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः

शं नो अप्याः ॥१२॥
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नो ऽहिर् बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुर् अस्तु शं नः पृश्निर् भवतु देवगोपाः ॥१३॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्ताम् इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥१४॥
ये देवानाम् ऋत्विजो यज्ञियासो मनोर् यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्ताम् उरुगायम् अद्य यूयं पात स्वस्तिभिस् सदा नः ॥१५॥
तद् अस्तु मित्रावरुणा तद् अग्ने शं योर् अस्मभ्यम् इदम् अस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधम् उत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥१६॥

१३.९

अग्नाव् अग्निश् चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां यौयुवद् भागधेयम् ॥१॥
पुरो वह जातवेदः पुरस्ताद् अग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गाम् अश्वं पुरुषं सनेम ॥२॥
तथा त्वम् अग्ने कृणु जातवेदो [अ]नेन विद्वान् हविषा यविष्ठ ।
पिशाचो [अ]स्य यतमो दिदेव यथा सो [अ]स्य परिधिः पताति ॥३॥
यो [अ]स्य दिदेव यतमो जघास यथा सो [अ]स्य परिधिः पताति ।
तथा त्वम् अग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर् देवैस् सह संविदानः ॥४॥
अक्ष्यौ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो [अ]स्य [य]तमो जघासाग्ने यविष्ठ प्रति तं मृणीहि ॥५॥
यद् अस्य हृतं यद् धृतं यत् पराभृतम् आत्मनो जग्धम् उत यत् पिशाचैः ।
तद् अग्ने विद्वान् पुनर् आ भर त्वं शरीरे प्राणम् असुम् एरया सं सृजेम ॥६॥
अपां त्वा पाने यतमो ददम्भ्यौदने मन्थे दिव उत लेहे ।
तद् आत्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्ताम् अगदो [अ]यम् अस्तु ॥७॥
क्षीरे त्वा मांसे यतमो ददम्भाकृष्टपच्ये [अ]शने धान्ये वा ।
तद् आत्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्ताम् अगदो [अ]यम् अस्तु ॥८॥
आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो [अ]शने ददम्भ ।
तम् इन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु भिनत्तु सोमश् शिरो [अ]स्य धृष्णुः ॥९॥
दिवा त्वा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने पिशाचः ।
तद् अग्ने [वि]द्वान् पुनः पुनः? मृणीहि अग्न्? एतं येहि निर्ऋते[र्] उपस्थे ॥१०॥
सोमस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर् बलेन सवितुस् सवेन ।
अग्नेर् होत्रेण प्र णुदे पिशाचं मनोहनं अहि? जातवेदस् सहोभिः ॥११॥
अक्षेमन्? जुषतां इक्षिन्नायुः? यथा जीवेन् अगदो भवासि ॥११॥
पुनस् त्वा प्राणः पुनर् एतु आयुः पुनश् चक्षुः पुनर् एतु श्रोत्रम् ।
अप [नि]र्ऋ[ति]ं नो दुरितानि विश्वा शतं हिमाश् सर्ववीरा मदेम ॥१२॥
पुनर् अस्मै मनो धेहि पुनर् आयुः पुनर् बलम् ।
अपानम् अस्य प्राणं चाग्ने धेहि जीवसे ॥१३॥
चक्षुस् सूर्यं पुनर् धेहि वात प्राणं सम् ईरय ।
शरीरम् अस्य मांसान्य् अग्ने सं भावया त्वम् ॥१४॥
यद् आ भर जातवेदो यद् अस्य यत् पराभृतम् ।
गात्राण्य् अस्य वर्ध[न्ताम् अंशुर् इवा प्या]यताम् अयम् ॥१५॥
[सोमस्येव जातवेदो अंशुर् आ प्यायताम् अयम्] ।
अग्ने विरप्शिनं मेध्यम् अयक्ष्मं कृणु जीवसे ॥१६॥
सं मा सिञ्चन्तु मरुतः [सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
[सं मायम् अग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च ।

[दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥१७॥ ॥का॰ ९॥

१३.१०

वि मुञ्चामि ब्रह्मणा जातवेदसम् अग्निं होतारम् अजरं रथस्पृतम् ।
सर्वा देवानां जनिमानि विद्वान् यथाभागं वहतु [ह]व्यम् अग्निः ॥१॥
ये पुमांसो यातुधाना याश् स्त्रियो यातुधान्यः ।
बलपद् इन्द्रस्य वज्रेणावाचीना नि पद्यन्ताम् ॥२॥
यं शपामो यो नश् शपाति यं द्विष्मो यो द्वेषत् पिशाचः ।
क्रव्यादम् अग्नि[ं] महता वधेन तम् अत्रापि प्र दहाज् जातवेदाः ॥३॥
आ रेभे उरव यथा मत्स्यान्सरा यः कण्वेन संविद् यातुमावान् ।
उलूकयातु[ं] भृमलो यश् च यातुस् त्वं या जुदेपि वयात् सरिस्वाप्त्
¿तेन श्वयाहिर उत मंहिधंहिभिः? ॥४॥
¿यः प्रपाद् रोधनस्यादिदवनं? क्रव्यात् पिशाचः कपिपस् तितुप्सन् ।
उलूकयातुर् भृमलो यश् च यातुस् त्वं [या जुदेपि वयात् सरिस्वाप्त्
¿तेन श्वयाहिर उत मंहिधंहिभिः?] ॥५॥
यः पौरेयैति रथेन क्रव्याद् यातुः पिशुनः ।
पिशुनःपिशुनः पिशाचो वैश्वानरेण संयुजा सूर्येण ॥६॥
¿मो नो वनि मृगयां? यश् च नः कृपि प्रतिभाद् यातुभिः ।
यश् च नश् शकृत्मला हृदस् सरयं त्यायुनस्यताम्? ॥७॥
¿याशातुमातृत्रतमृडतारम्? आलोका अस्मै प्रदिशो भवन्तु ।
सम् एनं तपतां रोदसी उभे तम् अत्रापि प्र दहाज् जातवेदाः ॥८॥
ज्योतिष्मतीस् तपना या[स्] सुरोचनाः प्रत्योषन्तीस् तन्वो यास् ते अग्ने ।
ताभिर् मे वर्माण्य् अभितो नुदस्व मा मा दभन् यातुधाना नृचक्ष[स]ः ॥९॥
आपो देवीः पिशाचानाम् अपि नह्यन्त्व् आस्यन् ।
यथेयमंसमास्मनम्? अनाधृष्य पुनः पताद् ॥१०॥
सदं पुष्पे सदं फले सदन् इन्द्राभिरक्षताम् ।
सदा पिशाचा मीयन्तां येषाम् उप् छेपि कश् चन ॥११॥
ये पतन्तो यातुधाना दिवा नक्तम् उपाचरान् ।
रात्री मा तेभ्यो रक्षतु अह्नात्मानं परि ददे ॥१२॥ ॥का॰ १०॥

१३.११

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय वर्चसे ।
दर्भं सपत्नजम्भनं द्विषतस् तपनं हृदः ॥१॥
[द्विषतस् तापयन् हृद्य] शत्रूणां तापयन् मनः ।
दुर्हार्दस् सर्वांस् त्वं दर्भ घर्म इवाभीन् सं तापयन् ॥२॥
घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितोचयन् मणे ।
हृदस् सपत्नानां भिन्द्धीन्द्र इव विरुजन् बलम् ॥३॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचम् इव भूम्याश् शिर एषां वि पातय ॥४॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छि[न्द्धि] मे पृतनायतः ।
छिन्द्धि मे सर्वा[न्] दुर्हार्दो छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥५॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायतः ।
भिन्द्धि मे सर्वा[न्] दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥६॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायतः ।
कृन्त मे सर्वा[न्] दुर्हार्दः कृन्त मे द्विषतो मणे ॥७॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्दः पिंश मे द्विषतो मणे ॥८॥
विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥९॥
निक्ष दर्भ सपत्ना[न्] मे निक्ष मे पृतनायतः

निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥१०॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दस् तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥११॥
मढ्धि दर्भ सपत्नान् मे मढ्धि मे पृतनायतः ।
मढ्धि मे सर्वा[न्] दुर्हार्दो मढ्धि मे द्विषतो मणे ॥१२॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायतः ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥१३॥
मन्थ दर्भ सपत्ना[न्] मे मन्थ मे पृतनायतः ।
मन्थ मे सर्वान् दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥१४॥
पिण्ड्ढि दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढि मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढि मे सर्वान् दुर्हार्दः पिण्ड्ढि मे द्विषतो मणे ॥१५॥
ओष दर्भ सपत्नान् म ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥१६॥
दह दर्भ सपत्ना[न्] मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥१७॥
जहि दर्भ सपत्ना[न्] मे जहि मे पृतनायतः ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥१८॥
यत् ते दर्भ जरामृत्युश् शतं वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिणं? कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः ॥१९॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते ।
तम् अस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥२०॥
त्वाम् इन्द्र देववर्माहुस् त्वां दर्भ ब्रह्मणस् पतिम् ।
त्वाम् इन्द्रस्याहुर् वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥२१॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस् तपनं हृदः ।
मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥२२॥
यत् समुद्रो [अ]भ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस् ततो दर्भो अजायत ॥२३॥ ॥का॰ ११॥

१३.१२

अन्तर्हितं मे बृहद् अन्तरिक्षम् अन्तर्हिताः पर्वता अश्मयो मे ।
महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१॥
तपस्व मातरिश्वा मन् अथवा दिवं यत् पृथिवीं च कृष्महे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥२॥
अन्तर्हितं मे नाम प्रस्तितम् अन्तर्हितः परमेष्ठी प्रजापतिः ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥३॥
अन्तर्हितस् सर्वराजो विराज् मे अन्तर्हितः पुरुषो मेध्यो मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥४॥
अन्तर्हिता मे यज उर्वीस् सधीचीर् अन्तर्हितास् सत्या अरातता मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥५॥
[अन्तर्हिता] म ऋषयः प्रचेतसो अन्तर्हितम् सूर्यो मातरिश्वा ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥६॥
अन्तर्हिता नद्यस् स्यन्दमाना अन्तर्हिता ओषधीः पुष्पिणीर् मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥७॥
अन्तर्हिताः पशवः कक्षा मे अन्तर्हितं [मे] वयो यत् पतत्रि ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥८॥
अन्तर्हिता म इषवो ब्राह्मणानाम् अन्तर्हिता वनस्पतयो मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥९॥
अन्तर्हिता देवतल्पाः पुरो म [अ]न्तर्हिता जगती छन्दसा मे ।

[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥१०॥
अन्तर्हिता अग्नयो धृष्ण्या मे अन्तर्हिता ऋतव आर्तवा मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥११॥
अन्तर्हिता समुद्रा द्वादश मे [अ]न्तर्हिता उपती तारका मे ।
[महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि] ॥१२॥
अन्तर्हिता मे प्रदिशश् चतस्रो अन्तर्हितं भूतं हव्यं च देवम् ।
महिषान् राष्ट्रे अपचर एष प्रत्यग् एतान् प्रतिसरेण हन्मि ॥१३॥ ॥का॰ १२॥

१३.१३

हन्मि ते ऽहं कृतं हविर् यो मे घोरम् अचीकृतः ।
अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्य् आस्यम् ॥१॥
अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्य् आस्यम् ।
अग्नेर् देवस्य मन्युना तेन ते ऽवधिषं हविर् यो मे घोरम् अचीकृतः ॥२॥
उद्दितश् शतयोजनम् इन्द्रो वर्तयते रथम् ।
सायकं क्षुरवन्तं मानिमदेजाताति? जम्भय[न्] ॥३॥
तृढा शयन्तिम् य भायन् हता उदरे सर्पिणः ।
पृच्छसि ह्यत्रपमस्त्वापिण्डमदन्? युव ॥४॥
पापक पापकृत्क किं मे सखायम् मा तुरः ।
ममासि शय्यायतम्[...................] रपः ॥५॥
यस्यौषधयः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततस्माद् यक्ष्मं वि बाधध्वम् उग्रो मध्यमशीर् इव ॥६॥
अन्या वो अन्याम् अवत्व् अन्यान्यस्या उपावत ।
ओषधयस् संविदाना इदं मे प्र तिरता वचः ॥७॥
अवपतन्तीर् अवदन् दिव ओषधयस् परि ।
यं जीवम् अश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥८॥
या ओषधयस् सोमराज्ञी[र्] बह्वीश् शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूतास् ता नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥९॥
जीवलां नघारिषाम् आ ते बध्नाम्य् ओषधिम् ।
या त्वायुर् उपाहराद् अप रक्षांसि चातयात् ॥१०॥ ॥का॰ १३॥

१३.१४

किम् इन्द्रस्य परिहितं किम् अग्नेः किं विष्णोस् त्वष्टुर् वरुणस्य ।
वासो बृहस्पतेर् उत सोमस्य राज्ञः किं यमस्य मरुतो पर्जन्यु ॥१॥
धातु चन्द्रस्य किं वायोर् वाजिनां वृजनं महत् ।
किं पूषा ब्रह्मणस् पतिर् विश्वे देवाश् च बिभ्रति ॥२॥
किं देवानां परिधानं समानं यस्मिन्न् एषां साम्राट्? संबभूव ।
क रात्री नि विशते काहः केतुम् अभ्रं भवति यत् समेति क्वेति च ॥३॥
कतमेनापो दिवम् उद् वहन्ति कस्य तद् अश्नैति मनेनेतां? ।
वातस्य त्वा विद्युतो अस्तनयन्न् उरपां? पृच्छाम्य् एवा न्य् अग्ने ॥४॥
पृच्छामि त्वा पृश्नीं रोहिणीं च वत्सं पृच्छामि सहमातरं ते ।
इन्द्रं त्वा नि पृच्छामि साक्षात् सभानां च सभापतिम् ॥५॥
को वयसाम् अधिपान् नामानि कः पशूनां कस् सर्पाणाम् ।
देवजना य आसन् को ऽस्य जन्तोर् अभवत्? आ ब्रूहि यत् तत् ॥६॥
कति रोहा[न्] स्वर आ रोहयन्ति वेशी रोहितो दिवम् आरुरोह ।
राष्ट्रभृतः क्षत्रभृतो वसुभृतो वसुदानयो? वसूयवः ॥७॥
कश् चित् तावान् वि क्रामते महित्वा को रक्षति को वहति प्रसादम् ।
पुरुषं त्वा नि पृच्छामि साक्षान् मृत्योर् अङ्गानि कति तानि वेत्थ ॥८॥
अहं पियङ्गदकश्? वर्षणीनाम् इन्द्रो यथं महिमा स्पर्धमानाः ।
येन वृत्रं मघवा [सं पिपि]षे तद् नः प्र ब्रूहि यद् इदं प्रवेत्थ ॥९॥

कः पर्वतानाम् अदधा[द्] नामानि को वनस्प[ती]नाम् अदधा[द्]
ओषधीनाम् ।
पृच्छामि त्वा भुवनस्य नाभिं शं त्वा पृच्छामि कतमानि साक्षात् ॥१०॥
देवतल्पा देवकोशाः केह तन् नः प्र ब्रूहि यद् इदं प्रवेत्थ ।
पृच्छामि त्वा गर्भर किं तेभ्यो अग्निर् हव्यं वहतु प्रजानन् ।
[अ]मृतं मर्त्यैर् अमृतो मर्त्येभ्यः ॥११॥
स्वर्गेनैकस् तपसा [सा]कहीन्द्र अङ्गानि पृङ्क्तान् पुरु[ष]स्य चाङ्गुः ।
स प्राणद् एति तपसा पुनस् सहज्योतिर् एति क स्वोति? ॥१२॥
[अ]नपतिं मधुपतिं मधुपूर्णं मधुपतिम् ।
देवांस् त्वां सर्वान् पृच्छाम्य् अद्भुता[व् इ च] ते कति ॥१३॥
को अन्तरिक्षात् प्रतिपश्यत इदं यस्माद् अग्र इन्द्रियं संबभूव ।
महत् सदः कस्माद् अभयं वि भाति कस्येकृतस्यात्यामकालो-
हितं? परायत केह ॥१४॥
इत्थम् एके [अर्वाञ्चः] प्र वजन्तीत्यम् एके दक्षिणाः प्रत्यञ्चः ।
उदञ्चः प्राञ्चो [अ]भि वृजन्त्य् एके तेषां सर्वेषाम् इह संगतिस् साकम् ॥१५॥
स एको भूमिं चरति प्रजानन् । मरीचिर् आसीत् सा मनसस् सम्
अभवत् । सा प्राधीत सा गर्भम् आ धत्त । स गर्भो वर्धमान स वृद्धो
ऽवर्धीद् आयेति । तस्यै प्रजापतिर् वृद्धो[ऽति] स्वाधिष्ठानाद् एति
स्वाधिचरणाच् चैति ॥१६॥
प्रजापति[स्] सयुजे कपाले विजिह्वातान्मतां? मन्वा यति महान्तं
लोकम् अभितप्यमानः ।
सोऽप्? आतस्य आतस्य द्यावापृथिवी पार्श्वे अस्तां समुद्रो कुक्षी
सूर्याचन्द्रमसाव् अक्ष्यौ विराट् शिरः । तस्माज् जातास् सर्वे
पाप्मानो वि जायन्ते य एवं वेद ॥१७॥ ॥का॰ १४॥ ॥अनु॰ १॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां त्रयोदशः काण्डः समाप्तः ॥

१४.१

इन्द्रो [illegible] ।
[illegible] ।
ता न आपो राजसूया भवन्तु ॥१॥
हिरण्यवर्णा [illegible] ।
[illegible] ता न आपो राजसूया भवन्तु ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ता न आपो राजसूया भवन्तु ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ता न आपो राजसूया भवन्तु ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१२॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१३॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१४॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१५॥
[illegible] ।
[illegible] [ता न आपो राजसूया भवन्तु] ॥१६॥
[illegible] ।
[illegible] ता न आपो राजसूया भवन्तु ॥१७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२०॥

॥का० १॥

१४.२

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।

उतास्य पश्यतेमं नीलग्रीवं विलोहितम् ॥२॥
एष एतु अधीवक्ता रुद्रो जलाषभेषजी ।
वि[ति]ऽक्षमम् अनीनशद् आ यातुधानो यश् एतु ते ॥३॥
नमस् ते भवभामाय नमस् ते भवमन्यवे ।
नमस् ते बाहुभ्याम् उतोत त इषवे नमः ॥४॥
याम् इषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्य् अस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कृणु मा हिंसीः पुरुषं मम ॥५॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नस् सर्वम् इज् जगद् अयक्ष्मं सुमना असत् ॥६॥
या त इषुः शिवतमा शिवं बभूव ते धनुः ।
शिवा शरव्या या तव तया नो मृड जीवसे ॥७॥
या ते रुद्र शिवा तनूर् अघोरापापकाशिनी ।
तया नस् तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥८॥
असौ यस् ताम्रो अरुण उत बभ्रुर् विलोहितः ।
ये चेमे अभितो रुद्रा दिक्षु श्रितास् सहस्रशो ऽवैषां हेड ईमहे ॥९॥
अदृशन् त्वावरोहन्तं नीलग्रीवं विलोहितम् ।
उत त्वा गोपा अदृशन्न् उत त्वोदहार्यः ।
उतो त्वा विश्वा भूतानि तस्मै दृष्टाय ते नमः ॥१०॥
नमो अस्तु नीलशिखण्डाय सहस्राक्षाय वाजिने ।
अथो ये अस्य सत्वानस् तेभ्यो ऽहम् अकरं नमः ॥११॥
नमांसि त आयुधायानाततायि धृष्णवे ।
उभाभ्याम् अकरं नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१२॥
प्र मुञ्च धन्वनस् त्वम् उभयोर् आर्त्न्योर् ज्याम् ।
याश् च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥१३॥
अवतत्य धनुष् त्वं सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नस् शम्भुर् आ चर ॥१४॥
विज्यं धनुश् शिखण्डिनो विशल्यो बाणवां उत ।
अनेशन्न् अस्येषव शिवो अस्य निषङ्गधिः ॥१५॥
परि ते धन्वनो हेतिर् अस्मान् वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस् तवारे अस्मिन् नि धेहि तम् ॥१६॥
या ते हेतिर् मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तया त्व विश्वतो ऽस्मान् अयक्ष्मया परि भुज ॥१७॥ ॥का० १॥

१४.३

सुपार्श्वा कामदुघा न आगन् शतौदना पयसा पिन्वमाना ।
ऊर्जं दुहानानपस्फुरन्ती यजमानस्य प्रतिरन्त्य् आयुः ॥१॥
गृभ्णामि यथाम् उशतीं स्वक्त्याम् ऊर्जस्वतीम् अनमीवां स्योनाम् ।
विश्वो लोको मम देवेष्व् अस्तु ॥२॥
शतौदना कामदुघा ह्य् एषा नैनां हिंसीद् अश्विना अहंयावः ।
अन्य एतु देवां अपि गच्छतु दिशः ॥३॥
आ रभस्व प्रथमा येभ्यं ददाः शतौदनां शतम् आ च मा नो रुच ? ।
समोषिय ? रश्मिना पर्वतेन स्वर्गं लोकम् अधि रोहयैनम् ॥४॥
; भूम्याम् ह एतां विश्वधा नि कृन्तं अपायोज्य चरम् इरया समृञ्जे ।
; मां विराजो दुहितरया सम्मन् कामंकामं यजमानाय दुहाम् ? ॥५॥
यद्याप्र विशसन मामि मंशान कृणुष्व म एनाम् अर्चयां पृथक् ।
अयं देवा मानुषी या पराभूच् छतौदना पुरूरूपा सपत्नी ॥६॥

[illegible] ।
[illegible] शतौदनां [illegible]
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] स्वर्गं लोकम् आ [illegible] ॥११॥
शतौदनां [illegible] ।
[illegible] ॥१२॥
शतौदना [illegible] ।
[illegible] ॥१३॥
शतौदना [illegible] ।
[illegible] ॥१४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२८॥
[illegible] ।
[illegible] शतौदना[म्] ॥२९॥ ॥का० २॥

१४.४

इषिरा योषा युवतिर् दमूना
रात्री देवस्य सवितुर् भगस्य ।
अश्वक्षभा ? सुहवा संभृतश्रीर्
आ पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥१॥

अति विश्वान्य् अरुहद् गम्भीरो
वर्षिष्ठम् अरुहद् अवर्षिष्ठा ।

उशती राज्य् अनु सा भद्राद् ?
वि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥२॥

वर्ये वन्द्ये सुभगे सुजाता
आजग्मन् ! रात्रि सुमना इह स्याम् ।

अस्मांस् त्रायस्व नर्याणि जाता
अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥३॥
सिंहस्य रात्र्य् उशती पिंषस्य
व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं
पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥४॥
शिवां रात्रिम् अनि सूर्यं च
हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध
येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥५॥
स्तोमस्य नो विभावरि
रात्रि राजेव जोषसे ।
अथा नस् सर्ववीरा भवाम
सर्ववेदसो व्युच्छन्तीर् अनूषसः ॥६॥
शम्या ह नाम दधिषे ?
; विपृच्छन्ती योजनाम् ? ।

रात्रि हीर्षीनसश्यात ?

स्तोमो न विद्यते ॥७॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो
विश्वं गोरूपं युवतिर् बिभर्षि ।

चक्षुष्मती ; वपुष्मती बरुतः ? प्रत्यां दिव्यां दिव्यां भदकनम् अमुष्याः ? ॥८॥

यो अद्य स्तेन आयत्य् अघायुर् मर्त्यो रिपुः ।
रात्री तस्य प्र तीयस्व ? प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥९॥
प्र पादौ न यथायति ? प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुर् उपायति स संपिष्टो अपायति ? ।

[अपायति स्वपायति शुष्के स्वापात्] अपायति ॥१०॥
[मन्थ रात्रि] दुरध्रुमम् अशीर्षाणम् अहिं कृणु ।
हनो ? वृकस्य निर् जम्भ आ त्व् एनं द्रुपदे जहि ॥११॥
ये ते रात्र्य् अनड्वाहस् तीक्ष्णशृङ्गास् स्वाशवः ।
तेभिर् नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥१२॥
रात्रिंरात्रिम् अरिष्यन्तस् तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरम् अप्लवा इव न तरेयुर् अरातयः ॥१३॥
यथा शम्याकः प्रपतन्न् अपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्मां अभ्यघायति ॥१४॥
अप स्तेनं वासमथं गो[म]धम् उ[त] तस्करम् ।
अथो यो अर्वतश् शिरो अभिधाय निनीषति ॥१५॥
यद् अद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्य् अयो वसु ।
यथेद् अस्मान् इतागय ? यथेद् अन्यान् उपायति ॥१६॥
उषसे नः परि देहि सर्वान् रात्र्य् अनागसः ।
उषा नो अह्न आ भजद् अहस् तुभ्यं विभावरि ॥१७॥ ॥ऋ°४॥ ॥अनु°१॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां चतुर्दशः काण्डः समाप्तः ॥

१५.१

सम्यङ् दिग्भ्यः पवते संस्तभ्यं मघो रजो ? मा धवः पात्व् अस्मान् ।
अग्निर् देवो दुष्टरीतुर् अदाभ्य इदं क्षत्रं रक्षतु पात्व् अस्मान् ॥१॥
रथन्तरं सामभिः पात्व् अस्मान् गायत्रेण छन्दसा विश्वरूपम् ।
द्वादशानां पिप्रथा स्तोमो अह्नां समुद्रो व्यच ? इदम् ओजः पिपर्तु ॥२॥
उग्रा दिशाम् अभिभूतिर् वयोधाः शुचिः शुक्रे अहन्य् ओजस्ये ।
इन्द्राधिपतिः पिपृताद् उतो नो महत् क्षत्रं विश्वतो धारयेदम् ॥३॥
बृहद् राष्ट्रं क्षत्रभृद् वृ[द्ध]वृष्ण्यं त्रिष्टुभौजस् सुभृतम् उग्रवीरम् ।
इन्द्रस् स्तोमैः पञ्चदशेन वर्च इदं वातेन सगरेण रक्षतु ॥४॥
प्राची दिशां सहदिशां ? सहस्वती विश्वे देवाः प्रावृषाह्ना स्वर्वती ।
इदं क्षत्रं दुष्टरम् अस्त्व् ओजो ऽनाधृष्यं सहस्यं सहस्वत् ॥५॥
वैरूपे सामन्न् इह तच् छकेयं जगत्यैनं विक्ष्व् आ वेशयामि ।
विश्वे देवास् सप्तदशेन वर्च इदं क्षत्रं सलिलवातम् उग्रम् ॥६॥
धर्त्री दिशां क्षत्रम् इदं दधर्तूपस्थाशानां मित्रवद् अस्त्व् ओजः ।
मित्रावरुणा शरदाह्ना चिकितू अस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छतम् ॥७॥
वैराजे सामन्न् अधि मे मनीषानुष्टुभा संभृतं वीर्यं सहः ।
इदं क्षत्रं मित्रवद् आर्द्रदानो मित्रावरुणा रक्षतम् आधिपत्ये ॥८॥
सम्राड् दिशां सहसाम्नी सहस्वत्य् ऋतुर् हेमन्तो विष्ठया नः पिपर्तु ।
ओजाता बृहती तु शक्वरीमं यज्ञम् अवतु ? नो घृताची ॥९॥
स्वर्वती सुदुघा नः पयस्वती दिशां देव्य् अवतु नो घृताची ।
त्वं गोपाः पुरएतोत पश्चाद् बृहस्पते याम्यां युङ्ग्धि वाचम् ॥१०॥ ॥ऋ°१॥

१५.२

स्तोमैर्धियो भुवनस्य पत्नि विवस्वद्वाते अभि नो गृणीहि ।

घृतवती सवितर् आधिपत्यैः पयस्वती रन्तिर् आशा नो अस्तु ॥१॥
ऊर्ध्वा दिशां रन्तिर् आशौषधीनां संवत्सरेण सविता नो अह्नाम् ।
रेवत् साम्नां पङ्क्त्या च छन्दसाम् अजातशत्रुस् स्योना नो अस्तु ॥२॥
विष्कम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी ।
विश्वव्यचा इषयन्ती सहोभिः स्योना नो अस्त्व् अदितिर् उपस्थे ॥३॥
ध्रुवा दिशां विष्णुपत्न्य् अघोरास्येशाना सहसो या मनोता ।
बृहस्पतिर् मातरिश्वोत वायुस् संध्वाना वाता अभि नो गृणन्तु ॥४॥
यो नः पिता जनिता यो विधर्ता यो नस् सतो अभ्य् आ सज् जजान ।
स आशिषा द्रविणम् इच्छमानः प्रथमच्छद् अवरान् आ विवेश ॥५॥
अश्मवर्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।
वपां ते अग्निर् इषितो वि रोहतु ॥६॥
यद् अन्नं चन्द्रं यत् पूतं यच् छुक्रं यच् च यज्ञियम् ।
तद् देवेभ्यो भरामसि ॥७॥
इमम् ऊर्जम् आभृता ? यज्ञस्य योनौ महिषस्य धामन् ।
आ नो गोषु विशत्व् आ प्रजायां जहामि सेदिम् अनिराम् अमीवाम् ॥८॥ ॥ऋ°२॥

१५.३

आयुषो ऽसि प्रतरणं विप्रं भे[ष]जम् उच्यसे ।
तद् आञ्जन त्वं शंताते शम् आपो अभयं कृतम् ॥१॥
यो हरिमा जायान्यो ऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्मम् अङ्गेभ्यो बहिर् निर् हन्त्व् आञ्जनम् ॥२॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोतु अप्रमायुकं रथजूतिम् अनागसम् ॥३॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो ऽसवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥४॥
सिन्धोर् गर्भो ऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणस् सूर्यश् चक्षुर् दिवस् पयः ॥५॥
देवाञ्जन त्रैककुद परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा चरन्त्य् ओषधयो बाह्याः पर्वत्या उत ॥६॥
वीरं मध्यम् अवासृपद् रक्षोहामीवचातनम् ।
अमीवाम् सर्वाश् चातयन् नाशयद् अभिभा इतः ॥७॥
बह्व् इदं राजन् वरुणानृतम् आह पुरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्य् अंहसः ॥८॥
यद् आपो ऽघ्न्या इति वरुणेति यद् ऊचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्य् अंहसः ॥९॥
मित्रश् च त्वा वरुणश् चानु प्रेयतुर् आञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनर् ओहतुः ॥१०॥ ॥ऋ°३॥

१५.४

ऋणाद् ऋणम् इव सं नय कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीर् अपि शृणाञ्जन ॥१॥
यद् अस्मासु दुष्वप्न्यं यद् गोषु यच् च नो गृहे ।
अनामगस् ? तं दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥२॥
अपाम् ऊर्ज ओजसो वावृधानम् अग्नेर् जातम् अधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यद् आञ्जनं दिशः प्रदिशः करद् इच् छिवास् ते ॥३॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो ऽभयास् ते भवन्तु ।
ध्रुवस् तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा दिशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥४॥
आक्ष्वैकं मणिम् एकं कृणुष्व स्नाह्य् एकेन पिबैकम् एषाम् ।

चतु[र्वीरं मे]क्त्रेभ्यश् चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्व् अस्मान् ॥५॥
अग्निर् माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ।
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥६॥
इन्द्रो मेन्द्रेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ।
ओजसे तेजसे स्वस्तये प्रभूतये स्वाहा ॥७॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ।
ओजसे तेजसे स्वस्तये प्रभूतये स्वाहा ॥८॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ।
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥९॥
मरुतो मा गणैर् अवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चसे ।
ओजसे तेजसे स्वस्तये सुप्रभूतये स्वाहा ॥१०॥ ॥ऋ°४॥ ॥अनु°१॥

१५.५

आयुर्दा देव जरसं गृणानो घृतप्रतीको घृतपृष्ठो अग्ने ।
घृतं पिबन्न् अमृतं चारु गव्यं पितेव पुत्रं जरसे नयेमम् ॥१॥
आयुर् अस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टर् अधिनिधेह्य् ओजः ।
रायस् पोषं सवितर् आ सुवास्मै शतं जीवातु शरदस् तवायम् ॥२॥
इमम् अग्न आयुषे वर्चसे धाः प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ विश्वे देवा जरदष्टिर् यथासत् ॥३॥
अग्निष् ट आयुः प्रतरां कृणोतु सोमस् ते पुष्टिं प्रतरां दधातु ।
[..] ॥४॥
रेवतीस् त्वा व्य् अक्ष्णन् कृत्तिका[श्] चाकृन्तंस् त्वा ।
अभिशास्या व्य् अतन्वत धियो ऽवयन्न् अव ग्ना अमृधन्त ॥५॥
सहस्रम् अन्ता अभितो ऽयच्छन्त शितिर् मध्यम् अभि यन्तु नारीः ।
देवीर् देवाय परिधी सवित्रे महत् तद् आसाम् अभवन् महित्वम् ॥६॥
इमम् अदमानम् आ तिष्ठाश्मेव त्वं स्थिरो भव ।
प्र शृणीहि दुरस्यतस् सहस्व पृतनायतः ॥७॥
येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् ? ।
तेनेमं ब्रह्मणस् पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥८॥
[परीमम् इन्द्रम् आयुषे महे क्षत्राय धत्तन ।
[यथैनं जरसे नय ज्योक् क्षत्रे ऽधि जागरत् ॥९॥]
परीमं सोमम् आयुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैनं जरसे नय ज्योक् श्रोत्रे अधि जागरत् ॥१०॥ ॥ऋ°१॥

१५.६

परि[धत्त]धत्त वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घम् आयुः ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥१॥
जरां सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा कृष्टीनाम् अभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदस् सुवर्चा रायश् च पोषम् उप त्वा मदेम ॥२॥
परीदं वासो ऽधि धास् स्वस्तये ऽभूर् व् आपीनाम् अभिशस्तिपा उ ।
शतं च जीव शरदः पुरूचीर् वसूनि चारुर् वि भजासि जीवन् ॥३॥
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रम् ऊतये ॥४॥
हिरण्यवर्णो अजरस् सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व ।

तद् अग्निर् आह तद् उ सोम आह बृहस्पतिः सविता तद् इन्द्रः ॥५॥
यद् ओतं सत्यं नु मध्याय न आवद् वासः पूर्वायवेतु पुरुरूपं वयसा ।
अग्रावणिकास् समजरं ? सुवीरं तत्र ते देवाः प्रतिरन्त आयुः ॥६॥
यस्य ब्राह्मणास् सृजम् ? आरभन्ते सर्वेभ्यो नियमं प्रतिरन्त आयुः ।
तस्य देवा देवहूतिं जुषन्तां स विश्वा[युम्] स जुषतां सविता ॥७॥
यन् नरा धत्स्व परि धत्स्व वास इमम् उत्तमम् अतुलं यानिजस् ते ।
जरसे त्वाम् अयनस् सं व्ययन्तु सूर्यो भगस् ते प्रतिरन्त आयुः ॥८॥
यस्य ते वा[सः] प्रथमवास्यं हरामि तं त्वा विश्वे अवन्तु देवाः ।
तं त्वा भ्रातरस् सुवृधा वर्धमानम् अनु जायन्तां बहवस् सुजातम् ॥९॥
आहतेनाहतो भव स्थिरस् स्थिरेण सं भव ।
प्र शृणीहि दुरस्यतस् सहस्व पृतनायतः ॥१०॥ ॥ऋ°२॥

१५.७

मित्रः पृथिव्या अध्यक्षः ।
स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा ॥१॥
वरुणो ऽपाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥२॥
वायुर् अन्तरिक्षस्याध्यक्षः ॥
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥३॥
सूर्यो दिवो ऽध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥४॥
चन्द्रमा नक्षत्राणाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥५॥
ऋतुस् संवत्सराणाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥६॥
संवत्सर ऋतूनाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥७॥
अग्निर् वनस्पतीनाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥८॥
इन्द्रः कर्मणाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥९॥
सविता प्रसवानाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥१०॥ ॥ऋ°३॥

१५.८

विष्णुः पर्वतानाम् अध्यक्षः ।
[स मावत्व् अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां
देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥१॥

महा [illegible] अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥२॥
वायु× [illegible] अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥३॥
सोम× [illegible] अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥४॥
समुद्रो नदीनाम् अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥५॥
पर्जन्य ओषधीनाम् अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥६॥
हिमवान् [illegible] अध्यक्षः ।
स मा[वतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥७॥ • मा ॥
सरस्वती वाचाम् अध्यक्षा । ...अध्य॰
सा मा[वतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥८॥ स मा
पूषा पशूनाम् अध्यक्षः ।
स मा[वतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥९॥ स मा ॥ स मा ॥

१५.९

बृहस्पतिर् देवानाम् अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥१॥
प्रजापति× प्रजानाम् अध्यक्षः ।
[स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥२॥
शौ ५.२४.१४ यम× पितृणाम् अध्यक्षः ।
स मावतु अस्मिन् [ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां पुरोधायाम् अस्यां देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा] ॥३॥
शौ ५.२४.१६ पितर× परे [illegible] ततास् ततामहाः । • • [illegible]
ते मावन्तु अस्मिन् ब्रह्मण्य् अस्मिन् कर्मण्य् अस्यां [पुरोधायाम् अस्यां] देवहूत्याम् अस्याम् आकूत्याम् अस्याम् आशिषि स्वाहा ॥४॥ ...अस्मिन् •
देवासो देवा देवा देवा देवेभ्य् [illegible] प्रथमा द्वितीयेषु द्वितीयास् तृतीयेषु ॥५॥ • • • देव • • • (अपरि क्र) ...
[illegible] विश्वे [illegible] अनु च मा [illegible] । ...[illegible] • • • •
इह [illegible] स्वाहा ॥६॥

१५.१०

[illegible] सहसाम् उपस्थे । • • • [illegible] • [illegible] •
[illegible] महिमा [illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥ ...[illegible] • [illegible] •
[illegible] ।
[illegible] पार[य]न्ती ॥३॥ ...[illegible] •

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं पिपृताम् उपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विस्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥
बह्वीनां पिता बहुर् अस्य पुत्रश् चिश्चा कृणोति समना वगत्य ।
इषुधिः सङ्का× पृतनाश् च सर्वा× पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५॥
रथे तिष्ठन् नयति वाजिन× पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मन× पश्चाद् अनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६॥
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयो ऽश्वा रथेभिस् सह वाजयन्तः ।
[अवक्रामन्त×] प्रपदैर् अमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूं अ[न]पव्ययन्तः ॥७॥
रथवाहनं हविर् अस्य नाम यत्रायुधं निहित[म् अ]स्य वर्म ।
तत्रा रथम् उप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८॥
स्वादुषंसद× पितरो वयोधा× कृच्छ्रेश्रितश् शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९॥
ब्राह्मणास× पितरस् सोम्यासश् शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा न× पातु दुरिताद् ऋतावृधो रक्षा माकिर् नो अघशंस ईशत ॥१०॥
॥ का॰ १ ॥

१५.११

ऋ १०.४२.११ शौ ७.५१.१ बृहस्पतिर् न× परि पातु पश्चाद् उतोत्तरस्माद् अधराद् अघायोः ।
इन्द्र× पुरस्ताद् उत मध्यतो नस् सखा सखिभ्यो वरिव× कृणोतु ॥१॥
ऋ ६.७५.११ सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिस् संनद्धा पतति प्रसूता । • • • [illegible] • • [illegible] •
यत्रा नरस् सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यम् इषवश् शर्म यच्छान् ॥२॥ ...[illegible] • •
सुपर्णो वासो अधि सर्पिर् आस मनो हिरण्यम् इषव× पतत्रीः । ...[illegible]
मास्मात् सद्मन् आसुता× पतन्तीर् उत प्रहितास् सवितुर् जयन्तु ॥३॥ • • [illegible] • [illegible] • •
ऋ १४ अहिर् इव भोगै× पर्येति बाहुं ज्याया हेतिम् परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु मृत्योः ॥४॥ ...[illegible]
ऋ ११ आ जङ्घन्ति सान्व् एषां जघनां उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो ऽश्वान् समत्सु चोदय ॥५॥
ऋ ६.४७.२७ दिव× पृथिव्या× पर्य् ओज उद्भृतं वनस्पतिभ्य× परि संभृतं स[ह]ः ।
अपाम् ओज्मानं परि गोभिर् आवृतम् इन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥६॥ •ओज्मनं...
ऋ २८ इन्द्रस्य वज्रो मरुताम् अनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । ...[illegible] •
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥७॥ • इमां...
ऋ २६ वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणस् सुवीरः ।
गोभिस् संनद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥८॥ ...[illegible]...
ऋ २९ उप श्वासय पृथिवीम् उत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् । • • • • • • [illegible] •
सं ऋ स दुन्दुभे [सजूर् इन्द्रेण देवैर् दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् ॥९॥
सं ऋ ३० [आ क्रन्दय बलम् ओजो न आ धा निष् टनिहि दुरिता बाधमानः ।
[अप प्रोथ दुन्दुभे] दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिर् असि वीडयस्व ॥१०॥
॥ का॰ २ ॥

१५.१२

शौ ५.२१.१२ [illegible] अमूः प्रयाभीमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर् वावदीतु । [illegible]...
सम् अश्वपर्णा× पतन्तु नो नरो ऽस्माकम् इन्द्र रथिनो जयन्तु ॥१॥ स नः [illegible]...
ऋ ७.२१.१ इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोतु यम् अध्यस्थान् मघवा [वा]जयन्तम् । • • [illegible] • • [illegible]...
अहिर् इव पशून् त्रायते गोपा अरिष्टो यातु प्रथमस् सिषासन् ॥२॥ अहिर् • • [illegible]
¦ पर्जन्यस्येव स्तनयित्नुर् आसीद् इन्द्राग्न्योर् इव छिपते घोषो ऽस्य । • • • • [illegible] •
¦ सहस्रवीरश् शतं सिसुन्वा मेतं सिसुन्वा रथं मृडय ! ॥३॥ [illegible]... [illegible] •
ऋ ६.४७.२६ शौ ५.४.८ श्येनस्य पक्षौ हरिणस्य बाहू अश्विनोर् अंसौ मरुताम् अनीकम् । ...[illegible]...
सं वै १५.११.८ गोभिस् संनद्धो असि वीडयस्व[ास्थाता ते जयतु जेत्वानि] ॥४॥
ऋ ६.७५.७ उद् वंपयीति सचितेव वाहू उभे सिचौ यजते भीम ऋञ्जन् । • [illegible] • [illegible] ॥४॥ • [illegible] • • [illegible]
उग्र् कृकम् अत्कम् अजते शर्वाभिर् यथा मातृभ्यो वसना जहाति ॥५॥ • • [illegible] •
¦ उभौ ते नमी पर्वा त उभास् संकपो बृहतो रथस्य । ...[illegible]

¦ ये [illegible] अथाङ्गिरस् [illegible] रथस्य ! ।
[illegible] शत्रून् ॥६॥ ...[illegible]
¦ [illegible] ।
¦ [illegible] ! ॥७॥
¦ [illegible] ।
¦ [illegible] ! ॥८॥
[illegible] शत्रून् । ...[illegible]
[illegible] ॥९॥ [illegible]...
[illegible] ।
¦ [illegible]
[illegible] ॥१०॥
¦ [illegible] ।
¦ [illegible] ! [illegible] ।
[illegible] देवाः ॥११॥ ॥का॰ ३॥

१५.१३

शौ ११.६.१ अग्निं ब्रूमो वनस्पतीन् ओषधीर् उत वीरुधः । ...[illegible] •
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥१॥
शौ २ ब्रूमो राजानं वरुणं [मित्रं] विष्णुम् अथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥२॥
शौ ४ [illegible] ब्रूमो [illegible] पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥३॥
शौ ५ वातं ब्रूम× पर्जन्य[म्] अन्तरिक्षम् अथो दिशः ।
आशाश् च सर्वा ब्रूमस् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥४॥ • • [illegible]... • ५ •
शौ ७ अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसा उभा ।
आदित्यान् सर्वान् ब्रूमस् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥५॥
शौ ७ मुञ्चन्तु मा शपथ्याद् अहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यम् आहुश् चन्द्रमा इति ॥६॥
शौ १५ पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमसि । • [illegible] •
[illegible] ब्रूमस् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥७॥ • • [illegible] ॥ ८ ॥
शौ ८ ये [illegible] ।
[illegible] ब्रूमस् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥८॥
शौ ९ [illegible] ।
[illegible] ते नो [मु]ञ्चन्त्व् अंहसः ॥९॥ ॥का॰ ४॥ • • [illegible] ॥१०॥

१५.१४

शौ ११.६.१० [illegible] ।
[illegible] ब्रूमस् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥१॥ • [illegible]...
शौ १० [illegible] ।
[illegible] ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥२॥
शौ १२ दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥३॥
शौ १३ [illegible] ।
[illegible] ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥४॥ ...[illegible] •
शौ १४ [illegible] ।
[illegible] ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥५॥
शौ १६ ऽऐ दिवि देवा [illegible] देवा [illegible] ।
[illegible] ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥६॥

शौ १७ ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश् च ये ।
पृथिव्यां शक्रा [ये] श्रितास् ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥७॥ • [illegible]...
शौ १८ यत देवा दक्षिणत× पश्चात् प्राञ्च उदेत नः । दे [illegible] •
पुरश् शाक्रा उत्तराद् विश्वे देवास् समेत्य ते [नो मुञ्चन्त्व् अंहसः] ॥८॥ • [illegible] • • [illegible]
शौ १९ अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् उत । [illegible]... [illegible]
मृत्यून् एकशतं ब्रूमस् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥९॥
शौ २२ या देवी× पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादश ऋतवः । • • • [illegible]...[illegible]
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास् ते नस् सन्तु सदा शिवाः ॥१०॥
शौ २१ भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानाम् उत यस् पतिः ।
भूतानि सर्वा ब्रूमस् ते नो मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥११॥ ॥का॰ ५॥ ॥अनु॰ १॥

॥ ॥ इति तृतीयो ऽनुवाकः [illegible] ॥ ॥

१५.१५

यावद् द्यौर् यावत् पृथिवी यावत् पर्येति सूर्यः । [illegible]... [illegible] • •
तावत् त्वाम् उग्र ओषधे परि पाम्य् अरुन्धति ॥१॥ ...[illegible]... [illegible]
ऋ १०.९७.२० अरिष्टम् त्वाखनत् परिष्ठाय खनामि त्वा ।
पै ६.८.१ द्विपाच् चतुष्पाद् अस्माकं सर्वम् अस्त्व् अनातुरम् ॥२॥ ...[illegible]
ऋ १०.९७ [सा] देवानाम् असि स्वसा म् × × × सि सिम्यती । [illegible]...
य ओषम् अश्नुते त्वं न स रिष्यात् पूरुषः ॥३॥ ...[illegible]
अरुन्धती नामासि तृतीयस्याम् इतो दिवि । ...[illegible] •
तत्रामृतस्य रोहणं तेन त्वाच्छा वदामसि ॥४॥
शौ ७.९१.१ शं त आपो या धुन्वाश् शं ते कुल्या या उत । [illegible]
शौ १४ शं वातश् शं बृहस्पतिश् शं ते तपतु सूर्यः ॥५॥
शं त इन्द्राग्नी भवतां शं रात्री प्रति धीयताम् । ...[illegible] •
शं ते पृथिव्यां वीरुधस् सह यस् सन्त्व् ओषधीः ॥६॥
पै ५.१३.४ बहिष्कृतां त्वाम् अविदम् ओषधे वीर्यावतीम् । [illegible] •
अरुन्धति त्वाम् अहार्षम् इतो मा पारयात् इति ॥७॥ • • [illegible]...
¦ [illegible] ! [illegible] अरुन्धती ।
एषा च विश्वभेषजी देवी वातीकृतस्य नः ॥८॥ ...[illegible]
शौ ६.१०९.३ ¦ [illegible] ! [illegible] भविष्यसि ।
वातीकृतस्य भेषजम् आगन् देवम् अरुन्धती ॥९॥ ॥का॰ १॥ • • [illegible]...॥१०॥

१५.१६

अरुन्धत्यास् सं वदन्ते गाव× प्रजाविनीर् इव ।
इमं स्वरम् अव गच्छत्वावयि ! [illegible] माति ! ॥१॥ • [illegible] • [illegible]...
इमं मे त्वं जरामृत्युं पुरुषं कृण्व् ओषधे । [illegible] • [illegible]...
राज्ञी सर्वासाम् असि ओषधीनाम् अरुन्धति ॥२॥ ...[illegible] • [illegible]
[illegible] असि जीवला वीर्यावती । ...[illegible]
अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी ॥३॥
आङ्गिरसेन च [illegible] च या । [illegible]... [illegible] • •
अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी ॥४॥
[illegible] च [illegible] च या । [illegible]...
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥५॥
वातीकारेण च क्षितस्य [illegible] च या । [illegible] • [illegible]
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥६॥
[illegible] च [क्षितस्य [illegible] च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥७॥
[illegible] च [क्षितस्य [illegible] च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥८॥

पशुपतिना च क्षिप्तस्य[त्यस्यापविषा च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥९॥ ॥ ध॰ १ ॥

१५.१७

उग्रेण च देवेन क्षिप्तस्य[त्यस्यापविषा च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥१॥
महादेवेन च क्षिप्तस्य[त्यस्यापविषा च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥२॥
ईशानेन च क्षिप्तस्यापस्यापविषा च या ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥३॥
यत् पृथिव्यां विषं वीरुत्सु यद् विषम् ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥४॥
यद् ओषधीभ्यस् संभरन्ति ब्राह्मणो मेनयं विषम् ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥५॥
यद् ब्रह्मणा संभरन्ति तृष्टम् आसीद् विषंविषम् ।
[अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी] ॥६॥
संक्षिप्तो मृत्युना य× प× यो दृष्ट दुष्टदंशमभिः ।
अरुन्धति त्वं तस्यासि विषस्य विषदूषणी ॥७॥
¦ संजीव्या मुक्त्वा यन्मादात्स्यौं ? लोकम् उत्तमम् ।
'शौ ५.१०.६' ¦ अपाचकीय स्वा ? पात्रेणाधि जीवपुरा इहि ॥८॥ ॥ ध॰ १ ॥

१५.१८

¦ अप्सरसो दिवोदिवो हि क्षत्रियो हि ? भिनद्मि मेहनम् ।
¦ प्य सतंवालं प्य अर्जुनम् उप ? वृषं भिनद्मि वः ॥१॥
विद्वजन्याः पञ्च[ज]न्या महादयनाद् शिखण्डिनीः ।
सर्वा इन्द्रस्य वज्रेणाहता युद्युदया तव ॥२॥
¦ अन्धार्याम् असितार्याम् ? उलूखलस्य पुञ्जेन ।
अहितं वत्सपं जहि ॥३॥
दूराद् एनाः प्रापदयम् आपततीर् अथो दिवः ।
देवानां हव्यमोहनीर् इन्द्रो ऽप्सरसो हनत् ॥४॥
आहता आपतयन्ति खलाद् इव यातुधान्यः ।
¦ इमं गच्छतः ? ॥५॥
दिवं गच्छन्तु दिव्यास् सरो गच्छन्तु सारसी ।
¦ उतं आलस्य यो गुल्म तद् मगच्छन्तु आसुरेः ? ॥६॥
'पै १५.१८.९' ¦ ये स्कन्धीके ये ऽस्कन्धीके पराचैर् उपनृत्यथः ।
'दश पै ९' ¦ [शृणामि घोरा य× पूर्दीष्ट्] शार्ङ्गेण शुना सह ? ॥७॥
यद् छर्द्दि हिरण्यदं यद् च दिव× परिस्रुपः ।
तस्यादं नाम जम्भास्मा मरिष्यतालये ॥८॥
¦ कद्रुते यामं पराचैर् उपनृत्यथः ।
शृणामि घोरा य× पृष्टीर् ब्रह्मणा कीकसा उत ॥९॥
¦ एकल्यं सत्वपवती चतस्र उदकंगुयः ।
शिवा दश श्रुता दश केशिनी× पञ्चविंशतीः ॥१०॥ ॥ ध॰ ४ ॥

१५.१९

इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।
'पै ७.११.४' याः प्रेङ्खं प्रेङ्खयन्त सात्स्यनेन मात्स्यया वा ॥१॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]

• • धुन्तस्य ॥१०॥ • • • च धुन्तस्य ...धुन्तस्य ...धुन्त॰ ईशिया • • ...वीरुत्सु • • ॥ १ ॥ ...ब्राह्मणो • • • ब्रह्मणा • विषम्... ॥ ४ ॥ ब्रह्मणो ...मो दृष्टदंशमभि ॥ ५ ॥ • • च(उपरि यु)ष्या॰... ...हि ॥ १ ॥ ...भिनद्मि च • • 'स्वका शिखण्डिनी • • उल्ल॰ • • • प्रापदयम् आपतन्तीर्... देवाना 'मोहनीर.. आहतायापतयन्ति... ...सारसी च • च • यराचैरुपनृत्यथ यद् छाई • अहल • • • जम्भा अरमा • ...उपनृत्यथ ...च पृष्टी... वरिम... • मध्ये मवंसवन्ते संवाहेन मात्स्यया:

२१ याः पुरस्ताद् आचरन्ति सार्कं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥२॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
या [अ]धराद् आचरन्त्य् अरसात् सरसात् सह ॥३॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
याः पश्चाद् आचरन्त्य् अन्धेन तमसा सह ॥४॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
या उत्तराद् आचरन्ति वर्षेण विद्युता सह ॥५॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
२६ या अधस्ताद् उदीक्षन्ते सचाक्षुषः करिक्रतीः ॥६॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
या उपरिष्टाद् अपेक्षन्ते नीलवस्त्राणि बिभ्रतीः ॥७॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
या अन्तरिक्षे रायन्ति वातेन रेष्मणा सह ॥८॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।]
२१० या नदीः [प्रतिगाहन्ते संजय कन्यया वयः ॥९॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।
२११ [यास् तीर्थम् अवगाहन्ते ऽप्स्याद् इवसतीर् इव ॥१०॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।
२१२ [यास् समुद्राद् उच्चरन्त्य् उच्चैर् घोषान् करिक्रतीः ॥११॥
[इदम् उलुंगुलुकाभ्यो ? ऽप्सराभ्यो ऽकरं नमः ।
२१३ [या गच्छन्ति जनंजनम् इच्छन्तीः प्रहितं बहु] ॥१२॥ ॥ध॰५॥ ॥अनु॰४॥

१५.२०

शौ ६.११.१ त्वच्चालेभी रुद्र शंतमेभिश् शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
वि अस्मद् द्वेषो वितरं वि अंहो वि अमीवाश् चातयस्व विषूचीः ॥१॥
त्वं देवानाम् असि रुद्र श्रेष्ठस् तवस्तमस् तवसाम् उग्रबाहो ।
हरिर्णी या सा मनसा मोदमाना बभूविथ रुद्रस्य सूनो ॥२॥
त्वं हि नो वीरं ईरय भेषजेभिर् उरुं नो यानं मघवो मदन्तम् ।
कथा ? न× यातुम् अंहसस् स्वस्ति विद्वा मधीतीर् अप सेधास्मत् ॥३॥
त्वं हि नो वृषभ चक्षमीया मन्ये रुद्राणोमाय मीढुषे ।
क्षीरवीराय प्र भरामहे मतिं यथा नश् शम् असो द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४॥
क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुर् हस्तो [यो अस्ति भेषजो] जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्य ॥५॥
परि णिरष्टिरे स्य अस्मभ्यू छर्धेनी वसिष्ठा घृतवान् ? अमीवाः ।
आ रा ध्य से ला ग्र ल मा जे ता : ? ॥६॥
अर्हन् धनुर् हरितं बिभर्षि अर्हन् निष्कं रजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्न् इदं दयसे विश्वम् पजम् ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यस् सर्वा परि पश्यसि भूमिम् ॥७॥
नमस् ते अस्तु विद्युते नमस् ते स्तनयित्नवे ।
नमस् ते अस्त्व् अश्मने येना ¦ दूराश् प्रास्यसि ? ॥८॥
मा देवानाम् उग्र राजन्न् अस्माकं पुरुषा रिषन् ।
रक्षांस्य् अस्मद् रक्षांसि नाशयामसि ब्रह्मणा ॥९॥
ब्रह्मंस्तो नाशयामो यो रिर्वि ? यातुश्च् मरुद्वन् ।
शाल्वान् यक्ष्मस्याघो रोपित् ता इतो वि नयामसि ॥१०॥ ॥ ध॰ १ ॥

१५.२१

नयामि वां पशुपती घृतेनाज्येन वर्धयन् ।
वां द्विपदो यद् च नो हृदि तस्य हृप× करिष्यथः ॥१॥

[Margin notes, left:] च १५', 'च ४', च १५', 'च ७', स्वं च ७', च १०', च १०' [दूर्विनं सर्वत्, शौ ११.२.२५''.शौ दोवेषु, शौ १.११.१ च वि ४.४.१

• • आपालयत • • • • • • अधराद् सरसा • ...विद्युतः • ...सचक्षु करिकती • • अपेक्षन्ते • बिभ्रती • • रयन्ति ...

या नदीरिति चतस्रः ॥७॥ उलुंगुलुकेत्या ॥८॥ ऋचः ५॥ ॥ इति पञ्चमो नुवाक पञ्चदशः ॥

त्वच्चाला • शन्तमा यो हि मो अशीया • वीतरस् • • मोहो वेहप् • विपूची ...वरस • तवस्तम... • च ...बभूवथ • • • • वीरो रो • • • यन • मदन्तं ...अंहस • विदधतीर् • • ...चक्षमीया मृषे • • • ये तु • हस्तो मृडयाको • अदि॰... ...अस्मद् सेने... अर्ह • • • अह... अर्ह निष्कं विश्वेरूपम् • • • नु परिष्ठास्ति ...सदेव • पश्यति • • • अस्तु ...स्तनयित्नवे • • अस् ...प्रतिस्यसि ...राजन् • • रिष रक्षांसि नाशय... इन्द्र यक्ष्मस्याघो • त...

...देवः करिष्यथः

अधि मूलं पशुपती ह्विपदं मे चतुष्पदे ।
प्रगती यत्र अङ्गुमत् ततो मेनापरं ? वृषा ॥२॥
या वां रुद्रा शिवा तनूर् या वाम् अस्त्य् अरोगिणी ।
या वाम् आयुष्मती तनूस् ताभिर् नो सु[ह]तं युवाम् ॥३॥
न प्र मृदन्ति वाजिनो व्रतानि सत्यं जिन्वन्तः ।
अधि विदथं वदन्तः ॥४॥
यस्येमे रोदसी उभे संयुक्ते मनसा हुवा ।
स प्रजानां प्रजापतिस् साधु वर्षति वर्षति ॥५॥
स येन् इदं भेषजं देवेभ्यस् पर्याभृतम् ।
तेन नो मृडतं युवां जीवातवे न मर्तवे अथो अरिष्टतातये ॥६॥
सयुजा सासते संयुक्ता बलाय कम् ।
तेषां यद् इन्द्रियं बृहद् चित्तं दधितं रोचनम् ॥७॥
यत्ते रोचने बृहती अन्तरिक्षे अथो दिवः ।
ताभ्याम् अप्रहितम् ? सर्ववीरा न रिष्यन्ति ॥८॥
सर्ववीरा न रिष्यन्तो रोचने अधि तस्थिमा ।
यथा न× पुनर् वसु दिव× धुव्यो ऽप्सु सूर्यः ॥९॥ ॥ध॰१॥

१५.२२

इन्द्राग्नी हुवे प्रथमो ह्वयामि मरुतश् शिवान् ।
ह्वयामि विश्वा[न्] देवान् इमं होमम् अवन्तु मे ॥१॥
त्वं प्रथमो ऽमृतत्वम् अग्ने देवो देवत्वं प्रथमो जिगेथ ।
तव दिवि हृदयं सं बभूव स नश् शिवासो जातवेदो नि यच्छ ॥२॥
३ ११.५.१ अग्नाद् अग्निश् [चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिराज एषः ।
[तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां योयुवद् भागधेयम्] ॥३॥
ये देवा दिविषदा ये पृथिव्यां जातवेदो य उराद् अन्तरिक्षे ।
ये गिरिषु पर्वतेष्व् अप्स्व् अन्तस् ते देवा अशनिं यापयन् इतः ॥४॥
मित्रं दिविषः कृणुष्व जातवेद आशाभिर् मित्रम् अधिपा वि पश्यः ।
मा नो हिंसीर् विद्युताग्निना सत्येन वर्षं मरुतस् स्पर्धमानाः ॥५॥
विद्योतमानस् स्तनयन् वृषेवैषि कनिक्रदत् ।
भीमः पर्जन्य त एवस् स [वर्षो] नश् च यच्छतु ॥६॥
ये विद्युतम् अशनिम् आतन्वन्ति मरुतस् सलिलाद् अधि ।
ऊर्जं नो विश्वधारा यावद् अन्या नितन्वताम् ॥७॥
ये विद्युतम् अशनि यापयन्त्य् अन्तरिक्षाद् उत यातान् दिवश् च ।
तेभ्यो गृहेभ्यो नमो ऽस्त्व् ओजसे ॥८॥
ता यन्ति स्वरंकृतास् स्योनाश् शिवतमा× पथा ।
मा न इन्द्र इमं यवीन् मित्रम् पर्तेन कृण्महे ॥९॥
वृषं इव ओषधीनां श[त]काण्डो अजायत ।
स देवैः प्रहितो ऽयम् आगन् स्वस्तये वृषा वृष्णिस् सह संविदानः ॥१०॥
॥ध॰१॥

१५.२३

वृषाकपस्यायुरस्य मेनिर् असि तान्वा ? तथा वेद् कलमस्य ।
¦ कोविदभ्यो यमायात् ततोऽयम काम आदशाहन्ति वृक्षये ? ॥१॥
अयुक् प्र तिग्मस्याहतम् इन्द्राग्निभ्यां सुवांसतः ।
तत्र मे नानयु ? ददाति ऊर्ज मे मा वधीर् इति समं मे मा वधीर् इति ॥२॥
¦ मरतः प्र मृष्टो ? दिवः शुभ्रमी रश्मिभिः ।
उदुम्बरस्य शाखया चक्षुःपाशानि यापयान् इतः ॥३॥
'च १.११.११' मदतो मृडयन्ति नो दिवश् शुक्रमी रश्मिभिः ।
उदुम्बरस्य शाखया विचक्षुपाशानि यापयान् इतः ॥४॥

प्रधो • अग्रम्... • • अहत् ... वां तनम् • ...दुव • • मृदन्ति अविरो ...जन्वन्तो दि विरथा • यस्येमे हवमो... • • 'वर्ति . • • मृडत युवम् ॥४॥... ...बलाय • ...दव चित रोचित रोचना ॥५॥ ...सर्ववीरा अरिष्यन्ते ॥६॥ सर्ववीरा अरिष्यन्तो रोचने • • • अस्ति पुनर्...

...मरुत शिवा • • • हमो... • • • अमिन ...जिगेथ • • • • • मनश् • • • • } अग्नावग्निरिति द्वे ...उराद् अन्तरिक्ष वर् ...देवाश्ने यापयत् • • दिविषः • जातवेदा ...पश्यत् • • हिंसी ...मरुत स्पर्धमाना विद्योतमान... • • • एवस्यो नरश • यो विद्युत... ...अन्या • • • अशने ...वाता • • • गृहेभ्यो... • • स्वरकृता... मा ना • • यवी... इन्द्रेण... ...काण्डो ...सह संविदानः

...वापिति कृणिन् • • वधीर् • समस् • ...ददेति • [• वधीर् • • • 'हन्ते यापयन् • • मृडयन्ति ...शुक्रेभि • • • यन्ते यापयन् •

¦ यन्ता भुवस्तम् ? आ काम पर्वताद् अधि पर्वतम् ।
गिरो प्रतिध्विता सती ¦ वृक्षां अनमधि सावयम् ? ॥५॥
¦ यत्रान्या त्वा सत्या गिरा यन्या परिभूर्ष्या ? ।
सालो प्रतिध्विता सती ¦ तणं भस्मस्यि सावयम् ? ॥६॥
उपती नामासि सहिन्वा नाम ।
अन्याम् आसां गच्छ यं द्विष्मस् तं गच्छ ॥७॥
परार्याम् अनु संवतं पराच्य अनु [निर्] द्रव ।
अरस् त्वा नाशयामसि ब्रह्मणा वीर्यावता ॥८॥
यात् अपोदकं अपोदकस्योदकं भव ।
क्षुद्रा[द्] क्षोदीयसी भूत्वाथेम् अधमं तमः ॥९॥
स्योना भव शग्मा भव शिवाश् शिवतरा भव ।
फेनात् ईम् कनीयसी भूत्वेदं सावयम् उपाचर ॥१०॥
नमस् ते ऽस्तु विद्युते नमस् ते स्तनयित्नवे ।
नमस् ते ऽग्ने दूरंहेते कृण्मो मा नो हिंसीर् द्विपदो मा चतुष्पदः ॥११॥
प्रति त्वा सासाह सहस् सहां प्रतिरोद्धुम् असि ।
देवेन्द्र इदं सुमहद् भूम्या अनतस्तोद् दिवि श्रितम् ॥१२॥
अकालकृतम् आ काम मा न इन्द्रं वधीः ।
यास् समुद्राद् उच्च[र]न्त्य् उत्सेभ्यो या नदीभ्यः ।
अरपन्तास् सर्वो वैद्युतो अशनि यापयाद् इतः ॥१३॥ ॥ध॰७॥ ॥अनु॰५॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां पञ्चदशः काण्डः समाप्तः ॥

१६.१

शौ ८.१ अन्तकाय मृत्यवे नम इहायम् अस्तु पुरुषस् सहासुना ।
सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ॥१॥
उद् एनं भगो अग्रभीद् उद् एनं सोमो अंशुमान् ।
उद् एनं मरुतो देवा उद् इन्द्राग्नी स्वस्तये ॥२॥
'दश शौ' इह ते ऽसुर् इह प्राण इहायुर् इह ते [म]नः ।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥३॥
'दश शौ' उत् क्रामातः [पुरुष] माव पत्था मृत्योः पड्बीशम् अवमुञ्चमानः ।
मा छित्था अस्माल् लोकाद् अग्नेस् सूर्यस्य संदृशः ॥४॥
तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्व् अमृतान्य् आपः ।
सूर्यस् ते तन्वे शं तपाति त्वां मृत्युर् दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥५॥
उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।
आ हि रोहेमम् अमृतं सुखं रथम् अ[थ] जिर्विर् विदथम् आ वदासि ॥६॥
मा ते मनस् तत्र गान् मा तिरो भून् मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥७॥
मा गतानाम् आ दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
उद् आ रोह तमसो ज्योतिर् एह्य् आ ते हस्तं रभामहे ॥८॥
श्यामश् च त्वा मा शबलश् च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
'शौ अत्र विद्वः पराकमनाः' अर्वाङ् एहि मा वि दीध्यो मा तारिष्ठाः प्रमना भव ॥९॥
मैतं पन्थाम् अनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम् एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्ताद् अभयं ते अर्वाक् ॥१०॥ ॥ध॰१॥

गिरो प्रतिध्वना... सालो प्रतिध्वन... • • अन्यत • अनु... अरम्... • • भूय यवेय • • • इम...सावयम् उपचार ...दूरंहेते कृण्मो... • • सासह • • सहा प्रति॰ • देवेन्द्र • सौमहद्भूम्यानतस्य • भूतस् • न ...इन्द्र इम • ...उत्सेभ्यो • • ॥१३॥ ...अशनि • •

इत्यथर्ववेदेपैप्पलादशाखायां • काण्डः समाप्तः ॥ ॥ काण्डः १५ ॥

{ ॐ नमो नमःशिवाय ॥ ॐ नमो गणाधिपतये ॥ ॐ नमः शिवोपनामे ॥ ॐ तत्वम् शिवदमनवे ॥ ॐ

...अन्तकाय... • अवनं ... अवनं • • • अवनं... अंशुपुष्पे अमन • • • • • अमनो ...पड्बीशम् अवमुञ्चमानः • अग्नात ...संदृश • • • • तपा • • मेष्ठा • • मना ...जीवातु • दक्षते • मा हे रोहम...जिर्विर् • • वदासि ...पितॄन् ...रह • • • दीधीथा • नेयन्तु • [पथिरक्षि • श्यामश् चि • • शबलश् • • यमस्य • प्रथ • पतिश्लो • तारिष्ठाः • • मैतं • • • • एषु • • अनु • • अस्य ...अर्वाचीनं अभयं इम

१६.२

[illegible]

१६.३

[illegible]

१६.४

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घम् आयुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश् चरतो ऽपसेधामि सर्वान् ॥१॥
आराद् अरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं [तत्] तम इवाप हन्मसि ॥२॥
अग्नेष् टे प्राणम् अमृताद् आयुष्मतो वन्वे जातवेदसः ।
यथा न रिष्या अमृतः सजूर् असस् तत् ते कृणोमि
तद् उ ते सम् ऋध्यताम् ॥३॥
शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा [अ]भि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः शिवास् ते सन्त्व् ओषधीः ॥४॥
उत् त्वाहार्षम् अधरस्या उत्तरां पृथिवीम् अभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसा[व्] उभा ॥५॥
यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शे ऽद्रूक्ष्णम् अस्तु ते ॥६॥
यत् क्षुरेण वर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुम्भन् मुखं मैनम् आयुः प्र मोषीः ॥७॥
शिवौ ते स्तां व्रीहियवाव् अबलासाव् अदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥८॥
यद् अश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
[यद्] आद्यं यद् अनाद्यं सर्वं ते अन्नम् अविषं कृणोमि ॥९॥
अह्ने च त्वा रात्रये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
[अ]रायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥१०॥

१६.५

शतं ते ऽयुतं हायना[न्] द्वे युगे त्रीणि चत्वारि सन्तु ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवा अनु मन्यन्ताम् अहृणीयमानाः ॥१॥
शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥२॥
मृत्युर् ईशे द्विपदां मृत्युर् ईशे चतुष्पदाम् ।
तस्मा[त्] त्वा मृत्योर् गोपतेर् उद् भरामि स मा बिभेः ॥३॥
सो ऽरिष्टो न मरिष्यसि [न मरिष्यसि] मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्य् अधमं तमः ॥४॥
सर्वो वै तत्र जीवति गौर् अश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर् जीवनाय कम् ॥५॥
परि त्वा पातु समानेभ्यो ऽभिचारात् सबन्धुभ्यः ? ।
? अमम्रिर् भवामृतो ऽतिजीवो ? मा ते हासिषुर् असवः शरीरम् ॥६॥
विश्वे त्वा देवा अमृतेन बिभ्रत् अधिपत्या पशुपतिष् टे ऽस्तु ।
अनामयस् सविता ते कृणोतु मा त्वा प्राणो ? दीर्घजीवनाय ॥७॥
ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वा देवा अग्नेर् वैश्वानराद् अधि ॥८॥

१६.६

रक्षोहणं वाजिनम् आ जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठम् उप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धस् स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥
अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानान् उप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।

आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्वापि धत्स्वासन् ॥२॥
उभोभयाविन्न् उप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानो ऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि अग्ने जम्भैः सं धेहि अभि यातुधानान् ॥३॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
उतान्तरिक्षे पततं यातुधानं तम् अस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥९॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

१६.७

[illegible]

१६.८

[illegible]

शुचिः पावक ईड्यः ॥४॥
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः ।
तपिष्ठैर् अजरो दह ॥५॥
ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस् तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दम् अभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चं यातुधानं जातवेदो वि निक्ष्व ॥६॥
विध्य अङ्गुरायतम् सम् इन्द्रो रक्षसो दह ।
अग्ने शुक्रेण शोचिषा तपुरग्राभिर् अर्चिभिः ॥७॥
प्रत्य् अग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्य् अदब्धं विप्र मन्मभिः ॥८॥
प्रत्य् अग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥९॥
? सानुन्व् इव प्र मृण रक्ष इन्द्र यातुधानं शीर्ष्णा मूर्ध्नः ? ।
यां तथाग्ने मिथुना यातुधाना विष्वञ्चौ तुर्यौ हरसा शयाताम् ? ॥१०॥
बृहस्पतिर् नः [परि पातु पश्चाद् उतोत्तरस्माद् अधराद् अघायोः ।
इन्द्रः पुरस्ताद् उत मध्यतो नस् सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु] ॥११॥

१६.९

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्य् अर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतम् अचितो न्य् ओषतं हतं नुदेथां नि शिशीतम् अत्रिणः ॥१॥
इन्द्रासोमा सम् अघशंसम् अभ्य् अघं
तपुर् ययस्तु चरुर् अग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तम् अनवायं किमीदिने ॥२॥
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तर् अनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनर् एकश् चनोदयत् तद् वाम् अस्तु सहसे मन्युमच् छवः ॥३॥
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस् परि अग्नितप्तेभिर् दिवो अश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिर् अजरेभिर् अत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्स्वरम् ॥४॥
इन्द्रासोमा प्र हरतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥५॥
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती [इ]व हिन्वतम् ॥६॥
प्रति स्मरेथां [तु]जयद्भिर् एवैर् हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदाचिद् अभिदासति द्रुहः ॥७॥
यो मा पाकेन मनसा चरन्तम् अभिचष्टे अनृतेभिर् वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्न् अस्त्व् आसत इन्द्र वक्ता ॥८॥
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर् ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेर् उपस्थे ॥९॥
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस् तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनस् स्तेयकृद् [द]भ्रम् एतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥१०॥

१६.१०

परस् सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीर् अधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश् च नक्तम् ॥१॥
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच् चासच् च वचसी पस्पृधाते ।

तयोर् यत् सत्यं यतरद् ऋजीयस् तद् इत् सोमो ऽ[व]ति हन्त्य् आसत् ॥२॥
न वा उ सोमो वृजिनं ह्रणोतु [न] क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्य् आसद् वदन्तम् उभाव् इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥३॥
यदि वाहम् अनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवां अप्यूहे अग्ने ।
किम् अस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस् ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥४॥
अद्या मुरीय [यदि] यातुधानो अस्मि यदि वायुस् ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर् दशभिर् वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्य् आह ॥५॥
यो मायातुं यातुधानेत्य् आह यो वा रक्षाः शुचिर् अस्मीत्य् आह ।
इन्द्रस् तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोर् अधमस् पदीष्ट ॥६॥
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तम् अप द्रुहुस् तन्वं गूहमाना ।
वव्रं अनन्तं अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥७॥
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्व् ईच्छत गृभायत रक्षसस् सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर् ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥८॥
प्र उ त्यं पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवो अदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजद् अशनिं यातुमद्भ्यः ॥९॥
प्र वर्तय दिवो अश्मानम् इन्द्र सोमशितं मघवन् सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधराद् उदक्तो ऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१०॥ ॥ऋ॰५॥

१६.११

इन्द्रो यातूनाम् अभवत् पराशरो हविर्मथीनाम् अभ्य् आविवासताम् ।
अभी[द्] उ शक्रः परशुर् यथा वनं पात्रेव भिन्दन् सत एतु रक्षसः ॥१॥
उलूकयातुं शु[शु]लूकयातुं जहि श्वयातुम् उत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुम् उत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२॥
मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावद् अपोछन्तां मिथुना ये किमीदिनाम् ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्व् अंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्व् अस्मान् ॥३॥
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानम् उत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् सूर्यम् उच्चरन्तम् ॥४॥
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश् च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधम् अस्यतम् अशनिं यातुमद्भ्यः ॥५॥ ॥ऋ॰१॥ ॥अनु॰१॥

१६.१२

या बभ्रवो याश् च शुक्रा रोहिणीर् उत पृश्नयः ।
असिक्नीः कृष्णा ओषधीस् सर्वा अच्छावदामसि ॥१॥
त्रायन्ताम् इमं पुरुषं यक्ष्माद् देवहितात् अधि ।
यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥२॥
आपो [ऽ]ग्रं दिव्या ओषधयः ।
तास् ते यक्ष्मम् एनस्यम् अङ्गाद्-अङ्गाद् अनीनशन् ॥३॥
प्रस्तृणती स्तम्बिनीर् एकशुङ्गाः प्रतन्वतीर् ओषधीर् आ वदामि ।
अंशुमतीः काण्डिनीर् या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीर् उग्राः पुरुषजीवनीः ॥४॥
यद् वस् सहस् सहमाना वीर्यं यच् च वो बलम् ।
तेनेमम् अस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चन्त्व् ओषधीः ॥५॥
जीवलां नघारिषां जीवन्तीम् उत ।
अरुन्धतीम् उन्नयन्तीं पुष्पां मधुमतीं हुवे ॥६॥
इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर् वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरिताद् अधि ॥७॥
अग्नेर् घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवास् सहस्रनाम्नीर् भेषजीस् सन्त्व् आभृताः ॥८॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः ।
व्य् ऋषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥९॥
उन्मुञ्चन्तीर् वि[व]रुणा उग्रा या वि[ष]दूषणीः ।
अथो बलासनाशनी रक्षोनाशनीः कृत्यादूषणीश् च यास् ता इहा यन्त्व् ओषधीः ॥१०॥ ॥ऋ॰२॥

१६.१३

शिवास् ते सन्त्व् ओषधीर् अपक्रीतास् सहीयसीर् वीरुधो या अभिष्टुताः ।
त्रायां सरस्वती ज्येष्ठा त्रायन्ताम् अस्माकं ग्राम् अश्वं पुरुषं पशुम् ॥१॥
मधुमन् मूलं मधुमद् अग्रम् आसां मधुमन् मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पम् आसां मधोस् संभूता अमृतस्य भक्षो घृतवद् दुह्रते गोपुरोगवम् ॥२॥
यावतीः कियतीश् चेमाः पृथिव्याम् अध्य् ओषधीः ।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर् मुञ्चन्त्व् अंहसः ॥३॥
वैयाघ्रो मणिर् वीरुधां त्रायमाणो ऽभिशस्तिपाः ।
अमीवास् सर्वा रक्षांस्य् अप हन्त्व् अधि दूरम् अस्मात् ॥४॥
सिंहस्येव स्तनथोर् ओषधीनाम् ? अग्नेर् इव विजन्त आभृताभ्यः ।
गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिर् अतन्यो ? नाव्या एतु स्रोत्याः ॥५॥
मुमुचाना ओषधयो ऽग्नेर् वैश्वानराद् अधि ।
भूमिं संतन्वतीर् इत यासां राजा वनस्पतिः ॥६॥
याश् चाहं वेद वीरुधो याश् च पश्यामि चक्षुषा ।
अज्ञाता जानीमश् च या यासु विद्म च संभृतम् ॥७॥
सर्वास् समग्रा ओषधीर् बोधन्तु वचसो मम ।
[यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरिताद् अधि] ॥८॥
या रोहन्त्य् आङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।
वीरुधो विश्वभेषजीस् ता नः पयस्वतीश् शिवा ओषधीस् सन्तु शं हृदे ॥९॥
अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।
व्रीहिर् यवश् च भेषजौ दिवस् पुत्राव् अमर्त्यौ ॥१०॥
उज् जिहीध्वे स्तनयत्य् अभिक्रन्दत्य् ओषधीः ।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥११॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.१४

तस्यामृतस्येमं १ऽलं पुरुषं कल्पयामसि ? ।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच् छतहायनः ॥१॥
वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम् ।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस् ता इहा यन्त्व् ओषधीः ॥२॥
यास् सुपर्णा आङ्गिरसीर् दिव्या या रघटो विदुः ।
वयांसि हंसा या विदुर् याश् च सर्वे पतत्रिणः ।
मृगा या विदुर् ओषधीस् ता अस्मा अवसे हुवे ॥३॥
यावतीनाम् ओषधीनां गावः प्राश्नन्त्य् अघ्न्या यावतीनाम् अजावयः ।
तावतीर् विश्वभेषजीर् आ भरामि त्वाम् अभि ॥४॥
यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तावतीस् तुभ्यम् आभृताश् शर्म यच्छन्त्व् ओषधीः ॥५॥
पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीर् अफला उत ।
समातर इव दुह्राम् अस्मा अरिष्टतातये ॥६॥
उ[त्] त्वाहार्षं पञ्चशलाद् उ[त्] त्वा दशशलाद् उत ।

उ[त्] त्वा यमस्य पड्वीशाद् ओषधीभिर् अपीपरम् ॥७॥ ॥ऋ॰१॥

१६.१५

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानाम् अपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनाम् अपमा रथस् स्थाणुम् आरद् अथार्षत् ॥१॥
दर्भश् शोचिस् तरूणकम् अश्वस्य वारः पुरुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् अहीनाम् अरसं विषं वार इद् उग्रम् ॥२॥
उपप्रुष्को ? [निम्]न्योन्मज्य पुनर् अब्रवीत् ।
उदप्लुतम् इव दार्व् अहीनाम् अरसं विषं वार इद् उग्रम् ॥३॥
अथ श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदप्लुतम् इव दार्व् अहीनाम् अरसं विषं वार इद् उग्रम् ॥४॥
पैद्वो हन्ति कसर्णीलं ? पैद्वश् श्वित्रम् उतासितम् ।
पैद्वो रथर्व्यांश् शिरस् सं बिभेद पृदाकाः ॥५॥
पैद्व प्रेहि प्रथमो ऽनु त्वा वयम् एमसि ।
अहीन् [व्य् अ]स्यतात् पथो येन स्मा वयम् एमसि ॥६॥
इदं पैद्वो अजायतेदम् अस्य परायणम् ।
इमान्य् अर्वतः पदाहिघ्न्यो वाजिनीवतः ॥७॥
संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वाव् अही स्त्री च पुमांश् च ताव् उभाव् अरसा ॥८॥
अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकम् अहिं दण्डेनागतम् ॥९॥
अघाश्वस्येदं भेषजम् उभयो[र्] वृश्चिकस्य च ।
इन्द्रो मे ऽहिम् अघायन्तम् अहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०॥ ॥ऋ॰४॥

१६.१६

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चात् पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥१॥
नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥२॥
हतास् तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्व् असितं जहि ॥३॥
कैरातिका कुमारिका सका खनतु भेषजम् ।
हिरण्ययीभिर् अभ्रिभिर् गिरीणाम् उप सानुषु ॥४॥
आयम् अगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर् वृश्चिकस्य च ॥५॥
इन्द्रो मे ऽहिम् अरन्धयन् मित्रश् च वरुणश् च ।
वातापर्जन्योभा ॥६॥
पैद्वो मे ऽहीन् अरन्धयत् पृदाकुं च पृदाकवः ।
हतास् ? तिरश्चिराजि कसर्णीलं दशोनसिम् ॥७॥
इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारम् अहे तव ।
तेषां वस् तृह्यमाणानां कस् स्वित् तेषाम् असद् रसः ॥८॥
सं हि शीर्षाण्य् अग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम् ।
सिन्धोर् मध्यं परेत्य व्य् अनिजम् अहेर् विषम् ॥९॥
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः ।
हतास् तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ॥१०॥ ॥ऋ॰५॥

१६.१७

ओषधीनाम् अहं वृण उर्वरीर् इव साधुया ।
नयाम्य् अर्वतीर् इवाहे निरैतु ते विषम् ॥१॥

यद् अग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्याम् ओषधीषु यत् ।
कान्दाविषं कनक्नकं निर् एत्व् ऐतु ते अहे ॥२॥
अङ्गाद्-अङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधा विषस्य यत् तेजो ऽवाचीनं तद् एतु ते ॥३॥
आरे अभूद् विषम् अरौद् विषे विषम् अप्राग् अपि ।
अग्निर् विषम् अहेर् निर् अधात् सोमो निर् अनयीत् ।
...
मा ते देवांसि दुरिताय नम्नाहिर् दभीद् श्वित्रः पुरुषं नः ॥४॥
ये अग्निजा ओषधि[जा] अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः ।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यस् सर्पेभ्यो नमसा विधेम ॥५॥
तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदम् आ ददे विषदूषणम् ॥६॥
आरे [अ]भूद् विषम् अरौद् विषे विषम् अप्राग् अपि ।
अग्निर् अहेर् निर् अधाद् विषं सोमो निर् अनयीद् विषम् ।
[दंष्टारम् अन्व् अगाद् विषम्] अहिर् अमृत ॥७॥ ॥ऋ॰१॥ ॥अनु॰१॥

१६.१८

कुतस् तौ जातौ कतमस् सो अर्धः
कस्माल् लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजस् सलिलाद् उद् ऐतां
तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ? ॥१॥
यो [अ]क्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजस् [स] गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥२॥
यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं [वि]यनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्न् एकं [युज्यते यस्मिन्न् एकम्] ॥३॥
बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चा[धि] निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतो ऽधि ? बृहती मिता ॥४॥
बृहती परि मात्राया मातुर् मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥५॥
वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर् यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततष् षष्ठाद् अमुतो यन्तु स्तोमा उद् इतो यन्त्य् अभि षष्ठम् अह्नः ॥६॥
षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमं त्वं [हि] युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजम् आहुर् ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥७॥
यां प्रच्युताम् अनु यज्ञाः प्रच्यवन्त [उपतिष्ठन्त] उपतिष्ठमानाम् ।
यस्या व्रते प्रसवे [य]क्षम् एजति स विराड् ऋषयः परमे व्योमन् ॥८॥
अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजम् अभ्य् एति पश्चात् ।
विश्वं मृशन्तीम् अभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्य् एनाम् ॥९॥
को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पम् अस्याः ।
क्रमान् को [अ]स्या बहुधा विदुग्धान् को [अ]स्या धामानि कतिधा व्युष्टीः ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.१९

इयम् एव सा या प्रथमा व्यौच्छद्
आस्व् इतरासु चरति प्रविष्टा ।
वधूर् जिगाय नवगञ् जनित्री
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तः ॥१॥
छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिम् अनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥२॥

[illegible]

१६.२०

[illegible]

१६.२१

[illegible]

प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच् च प्राणति यच् च न ॥१०॥

१६.२२

प्राणो मृत्युः प्राणो ऽमृतं प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनम् उत्तमे लोक आ दधत् ॥१॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्वं उपासते ।
प्राणो ऽग्निर् चन्द्रमाः सूर्यः प्राणम् आहुः प्रजापतिम् ॥२॥
प्राणापानौ व्रीहियवाव् अनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितो ऽपानो व्रीहिर् उच्यते ॥३॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
[illegible] प्राण जिन्वसि स इदम् [illegible] ॥४॥
प्राणम् आहुर् मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे [ह] भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं समा[हि]तम् ॥५॥
आथर्वणीर् आङ्गिरसीर् दैवीर् मनुष्यजाश् च याः ।
[illegible] प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥६॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र मोदन्ते [म]हो वै नः करिष्यतीति ॥७॥
यस् ते प्राणेदं वेद यस्मिंश् चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरान् अमुष्मिन् लोक उत्तमे ॥८॥
यथा प्राण बलिहृतस् तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस् त्वा शृणवत् सुश्रवाः ॥९॥
अन्तर् गर्भश् चरति देवतास्व् आभूतो भूतस् स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भुवनं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥१०॥

१६.२३

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद् धंस उच्चरन् ।
यदि स तम् उत्खिदे[द्] नैवाद्य न श्वः स्यात् ।
न रात्री नाहः स्यान् न व्युच्छेत् कदा चन ॥१॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चात् ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यद् अस्यार्धं कि तद् बभूव ॥२॥
यो [अ]स्य विश्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमो ऽस्तु ते ॥३॥
यो [अ]स्य सर्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥४॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तम् अस्य सुप्तेष्व् अनु शुश्राव कश् चन ॥५॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मद् अन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भम् इव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥६॥

१६.२४

[illegible] यथा चकार [illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] पृथिवीव दर्भी ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] बिभर्ति ।
[illegible] ॥३॥
देवानां भाग उपनाह एषो ऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।

[illegible]

१६.२५

[illegible]

१६.२६

[illegible]

१६.२७

[illegible]

[धीर्यवान्] सपत्नहा शूरवीरः परिपाणम् सुमङ्गलः ॥१॥
अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्य[क्] कृत्या दूषयन्न् एतु वीरः ॥२॥
[illegible] मणिना वृत्रम् अहन्न् [illegible] पराभावयन् मनीषी ।
[illegible] द्यावापृथिवी [illegible] प्रतिसरो ऽयम् ॥३॥
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो [अ]स्मान् पातु विश्वतः ॥४॥
तद् अग्निर् आह तद् उ सोम आह बृहस्पतिः सविता तद् इन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैर् अजन्तु ॥५॥
अन्तर् दधे द्यावापृथिवी उताहर् उत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैर् अजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवम् आरुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या [आ]ङ्गिरसीर् याः कृत्या आसुरीर् उत ।
कृत्या याः स्वयंकृता या उ चान्येभिर् आभृताः ।
उभयीस् ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥९॥
अस्मिन् मणौ वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश् च सर्वे ॥१०॥

१६.२८

उत्तमो [अ]स्य् ओषधीनाम् अनड्वान् जगताम् इव व्याघ्रः श्वपदाम् इव ।
यम् ऐच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनम् अन्तितम् ॥१॥
स इद् व्याघ्रो भवत्य् अथो सिंहो अथो वृषा ।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥२॥
नैनं घ्नन्त्य् अप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥३॥
कश्यपस् त्वाम् असृजत कश्यपस् त्वा सम् ऐरयत् ।
अबिभस् त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणे ऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥४॥
यस् त्वा कृत्याभिर् यस् त्वा दीक्षाभिर् यज्ञैर् [यस् त्वा] जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वम् इन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥
अयम् इद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥६॥
असपत्नं नो अधराद् असपत्नं न उत्तरा[त्] ।
इन्द्र [illegible] पश्चाज् ज्योतिः शूर पुरस् कृधि ॥७॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर् वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश् चाग्निश् च वर्म धाता दधातु मे ॥८॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यद् उग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन् मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहद् आयुष्मान् जरदष्टिर् यथासानि ॥९॥
आ मारुक्षद् देवमणिर् मह्या अरिष्टतातये ।
इमं मेथिम् अभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथम् ओजसे ॥१०॥
अस्मिन्न् इन्द्रो नि दधातु नृम्ण[म् इ]मं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर् यथासत् ॥११॥
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवां अपराजितम् सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥१२॥

१६.२९

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्र[श्] शूरः पुरंदरः ।

यथा हनाम सेनाम् अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥
पूतिरज्जुर् उपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्व् इमाम् ।
अग्निं धूमं परादृश्य हस्त्व् आ दृषतां भयम् ॥२॥
पश्चात् अमून् पश्चात् कृणोतु हन्त्व् एनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संधिताः ॥३॥
अमून् अश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।
ताद् इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संधिताः ॥४॥
अन्तरिक्षं जालम् आसीज् जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय सेना इन्द्रो दस्यून् अपावपत् ॥५॥
बृह[त्]ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतयुज्ज मघवन् अमित्रान् शाश्वतीभ्यः ॥६॥
बृहत् ते जालं बृहतश् शा[क]न्य रोचनायत[ः] ।
तेन शतं सहस्रम् अयुतं जघानेन्द्रो दस्यूनाम् अभिधाय सेनाम् ॥७॥
अयं लोको जालम् आसीच् छक्रस्य महतो महान् ।
तेना[ह]म् इन्द्रजालेन तमसामून् अभि दधामि सर्वान् ॥८॥
सेदिर् उग्रा विनृत्तिर् ! आर्तिश् चानपवाचिराम् ।
श्रमस् तन्द्रीश् च मोहश् च तेनामून् अभि दधामि सर्वान् ॥९॥
मृत्यवे अमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैर् अमी सिताः ।
मृत्योर् ये अघला दूतास् तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वान् ॥१०॥

१६.३०

मृत्युदूता अमून् नयत यमदूता अपोम्भत ।
परस्सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्व् एनान् मर्त्यं भवस्य ॥१॥
साध्या एकं जालदण्डम् उद्यत्य यन्त्य् ओजसा ।
रुद्रा द्वितीयं वसवस् तृतीयम् आदित्यैर् एक उद्यतः ॥२॥
विश्वे देवा उपरिष्टा[द्] उब्जन्तो यन्त्व् ओजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनाम् अङ्गिरसो यवैः ॥३॥
वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीर् उत वीरुधः ।
द्विपाच् चतुष्पाद् इष्णामि यथा सेनाम् अमूं हनाम् ॥४॥
गन्धर्वाप्सरसो देवान् सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टां अदृष्टान् इष्णामि यथा सेनाम् अमूं हन ॥५॥
मृत्योर् आयम् आ पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश् चाक्षुजालाभ्यां शर्वं सेनाम् अमूं हतम् ॥६॥
मृत्युपाशा इमे युक्ता यान् आक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥७॥
घर्मस् समिद्धो अग्निनायं होमस् सहस्रहः ।
भवश् च पृश्निबाहुश् च शर्व सेनाम् अमूं हतम् ॥८॥
पराजिताः प्र त्रसतामित्रास् सिता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिः प्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश् चन ॥९॥
अव पद्यन्ताम् एषाम् आयुधानि मा शिकन् प्रतिधाम् इषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यताम् इषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥१०॥
सम् एनान् क्रोशतां द्यावापृथिवी उभे सम् अन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप [य]न्तु मृत्युम् ॥११॥

१६.३१

दिशश् चतस्रो ऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाश् शफा अन्तरिक्षम् उद्धिः ॥१॥
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवो ऽभीशवो [ऽन्तर्देशाः किंकरा] वाक् परिरथ्यम् ॥२॥

अहोरात्रे चक्रे मास अराः संवत्सरो ऽधिष्ठानम् ॥३॥
विराड् ईषाग्नी रथमुखम् इन्द्रस सव्यष्ठाश् चन्द्रमास् सारथिः ॥४॥
इतो जयेतो वि जयस्व जय सं जय स्वाहा ॥५॥

१६.३२

दिवस् पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्राद् अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्तु सर्वाः ॥१॥
महद्यन्त्य् अस्याश् चरितं पृथिव्याः पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुताम् उग्रा नप्तिः ॥२॥
महद् विश्वरूपं पयो ऽस्यास् समुद्रस्योत त्वा रेत आहुः ।
यत एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस् तद् अमृतं निविष्टम् ॥३॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाम् अमृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महद् भ[र्ग]श् चरति मर्त्येषु ॥४॥
मधोः कशाम् अजनयन्त देवास् तस्या गर्भो अ[भ]वद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवनानि चष्टे ॥५॥
कस् तौ प्र वेद क उ तौ जानाति याव् अस्या[ः] स्तनौ सहस्रधाराव् अक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते [अ]नपस्फुरन्तौ ॥६॥
कस् तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो [अ]स्या हृदः कलशस् सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधा[स्] सो [अ]स्मिन् मदेत ॥७॥
हिङ्कृण्वती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभि याति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥८॥
याम् आपीनाम् उप सीदन्त्य् आपो यां शाक्वरा वृषभा यां स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते [वर्षयन्ति तद्विदे कामम् ऊर्जम् आपः ॥९॥
[स्तनयित्नुस् ते वाक् प्रजापते] वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्याम् अधि ।
अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुताम् उग्रा नप्तिः ॥१०॥

१६.३३

यथा सोमः प्रातस्सवने अश्विनोर् भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१॥
यथा सोमो द्वितीयसवन इन्द्राग्न्योर् भवति [प्रियः ।
[एवा म] इन्द्राग्नी वर्च [आत्मनि ध्रियताम्] ॥२॥
यथा सोमस् तृतीयसवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥३॥
मधु जनिषीय मधु वंसिषीय ।
पयस्वान् अग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया सम् आयुषा ।
विद्युर् मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥५॥
यद् गिरिषु [पर्वतेषु गोष्व् अश्वेषु यन् मधु ।
[सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन् मयि] ॥६॥
यथा मधु मधुकृतस् संभरन्ति मधाव् अधि ।
एवा मे [अ]श्विना वर्च ओजश् च ध्रियताम् ॥७॥
यथा मक्षा इदं मधुं मधु न्यञ्जन्ति दक्षिणाम् अधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस् तेजश् च ध्रियताम् ॥८॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचम् आवदानि जनां अनु ॥९॥
वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवो मधो कशया पृथिवीम् अनक्षि ।

तां दातारं ! पश्य उप जीवन्ति सर्वे तेन यो सेयम् ऊर्जं बिभर्ति ॥१०॥

१६.३४

पृथिवी दण्डो अन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशः ॥१॥
मधोः कशा च घृताची हिरण्ययो बिन्दुः ॥२॥
उग्रं असि महो ऽसि भर्गो ऽसि यशो ऽसि सहो ऽसि ॥३॥
भर्गो मां कृणु यशो मां कृणु सहो मां कृणु ॥४॥
समुद्रो ऽस्य अक्षितो अपरिमितः ।
सहस्रमसि सहस्रं माम् अच्छतु ॥५॥
यो वै मधुकशायास् सप्त मधूनि वेद सप्त मधुमतीन् ! ॥६॥
मधुमन्तं लोकं जयति इमम् ? अस्मात् तरीयान् भवति ॥७॥
यद् वीध्रे स्तनयित्नुस् तत् प्रजापतिर् एव प्रजाभ्यः प्रादुर् भवति ॥८॥
तस्मात् प्राचीनोपवीतस् तिष्ठेत् प्रजापते ऽनु मा बुध्यस्वेति ॥९॥
अन्व् एनं प्रजापतिर् अनु प्रजा बुध्यन्ते य एवं वेद ॥१०॥

१६.३५

यां कल्पयन्ति वहतौ वधूम् इव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
साराद् एत्व् अप नुदाम एनाम् ॥१॥
शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृतां कृत्याकृता संभृतां विश्वरूपाम् ।
प्रत्यक् प्रतिमहिष्यसि यश् चकार तम् ऋच्छतु ॥२॥
शूद्रकृता राजकृता [स्त्री]कृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्धुम् ऋच्छतु ॥३॥
अनयाहम् ओषध्या [सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
[यां क्षेत्रे चक्रुर् यां गोष्वो यां वा ते पुरुषेभ्यः] ॥४॥
कृत्यास् सन्तु कृत्याकृते शपथश् शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रवर्तय यश् चकार तम् ऋच्छतु ॥५॥
प्रतीचीन आङ्गिरसो ऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्या[मून् कृत्याकृतो जहि ॥६॥
[यस् त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलम्] उदाय्यम् ।
तं कृत्ये अभिनिवर्तस्व मास्मान् इच्छो अनागसः ॥७॥
यस् ते परूंषि संदधौ रथस्येव ऋभुर् धिया ।
तं गच्छ तत्र ते ऽ[य]नम् अज्ञातस् ते ऽयं जनः ॥८॥
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
विषं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म प्रतिसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्साम् उपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

१६.३६

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापाद् इमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥१॥
देवैनसात् पित्र्यान् नामग्राहात् संदेश्याद् अभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥२॥
यथा वातश् च्यावयति भूम्या रेणुम् अन्तरिक्षाच् चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तम् अपायति ॥३॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्या[व]ता ॥४॥
अयं पन्था इति नयामस् त्वा कृत्ये प्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।

तेनाभि याहि भञ्जत्य् अनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥५॥
पराक् ते ज्योतिर् अपथं ते अर्वाग् अन्यत्रास्मद् अयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गास् स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः ! परेणेहि ॥६॥
वात इव वृक्षं नि मृणीहि पादय मा गाम् अश्वं पुरुषम् उच् छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्ये ऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥७॥
यां ते चक्रुर् बर्हिषि यां श्मशाने कृत्यां क्षेत्रे वलगं वा निचख्नुः ! ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्ये ऽभिचेरुः पूर्वं सन्तं धीरतरा अनागसम् ।
ताम् इतो नाशयामसि ॥८॥
उपाहृतम् अनुबुधं निखातं वैरं त्सार्य् अन्व् अविदाम कर्त्रम् ।
तद् एतु यत आभृतं तत्राश्व इव वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥९॥
स्वायसा [असयो] सन्ति नो गृहे विद्म ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत् तिष्ठैव परेहीतो ऽज्ञाते किम् इहेच्छसि ।
ग्रीवास् ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर् द्रव ॥१०॥

१६.३७

इन्द्राग्नी एनान् मृणतां यौ प्रजानां प्रजावती ।
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य ! नः पतयो मृडयन्तु ॥१॥
भवश् शर्वश् चोभयो मृडतां नः ॥२॥
भवाशर्वाव् अस्यतां पापकृत्यने कृत्याकृते च ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥३॥
यद् एयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतो ऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥४॥
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥५॥
परे[हि] कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगस् स मृगयुस् त्वं ! न त्वा निकर्तुम् ! अर्हसि ॥६॥
अमर्त्यो मार्त्यस् स्वयंकृतं यद् यक्ताराविरया ।
हस्ताभ्याम् आमने ऽपधाम् ॥७॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो वि हन्त्य् अपरः प्रति ॥८॥
एतद् धि शृणु मे वचो अथेहि ! यत एयथ ।
यस् त्वा चकार तं पुनः ॥९॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गाम् अश्वं पुरुषं वधीः ॥१०॥

१६.३८

यत्रयत्रासि निहिता ततस् त्वोत्थापयामसि ।
पर्णाल् लघीयसी भव ॥१॥
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥२॥
कृत्याकृतो मूलकृताम् अभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच् छिषो अमूं कृत्याकृतो जहि ॥३॥
यथा सूर्यस् तमसो मुच्यते परि रात्रिं जहात्य् उषसश् च केतुम् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं [कर्त्रं कृत्याकृता कृतं] हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥४॥

१६.३९

उपमितः प्रतिमितो ऽथो परिमितश् च यः ।

[illegible]

॥१०॥ ऋ°१०

१६.२०

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर् वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच् चतुरश् चतुर्धा देवान् मनुष्यान् असुरान् उतर्षीन् ॥१॥
[illegible]
को नु गौः क एकऋषिः किम् उ धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्याम् एकवृद् एकर्तुः कतमो नु सः ॥३॥
एको गौर् एक एकऋषिर् एकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्याम् एकवृद् एकर्तुर् नाति रिच्यते ॥४॥ ऋ°१४

१६.२१

प्राणाय नमो यस्य सर्वम् इदं वशे ।
यो भूतस् सर्वस्येश्वरो यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥
नमस् ते प्राण क्रन्दाय नमस् ते स्तनयित्नवे ।
नमस् ते प्राण विद्युते नमस् ते प्राण वर्षते ॥२॥
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्य् ओषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधते अथो बह्वीर् वि जायन्ते ॥३॥
यत् प्राण[ऋ]तावागते ऽभिक्रन्दत्य् ओषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यद् उ किं च भूम्याम् अधि ॥४॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस् तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन सम् अवादिरन् ।
आयुर् वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीर् अकः ॥६॥
नमस् ते [प्राण] प्रायते नमो [अ]स्तु परायते ।
प्रतीचीनाय ते नमः पराचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥७॥
नमस् ते [अ]स्तु आयते नमो [अ]स्तु परायते ।
नमस् ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥८॥
या ते प्राण प्रिया तनूर् या ते प्राण प्रेयसी ।
अथो [य]द् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥९॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रम् इव प्रियम् ।

प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच् च प्राणति यच् च न ॥१०॥ ऋ°४०

१६.२२

प्राणो मृत्युः प्राणो अमृतं प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनम् उत्तमे लोक आ दधत् ॥१॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ऽग्निश् चन्द्रमास् सूर्यः प्राणम् आहुः प्रजापतिम् ॥२॥
प्राणापानौ व्रीहियवाव् अनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितो ऽपानो व्रीहिर् उच्यते ॥३॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वः स दस्व जायसे स्वत् ? ॥४॥
प्राणम् आहुर् मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे [ह] भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं समा[हि]तम् ॥५॥
आथर्वणीर् आङ्गिरसीर् दैवीर् मनुष्यजाश् च याः ।
सर्वाः प्र मोदन्त ओषधीर् यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥६॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र मोदन्ते [अ]थो याः काश् च वीरुधः ॥७॥
यस् ते प्राणेदं वेद यस्मिंश् चासि प्रतिष्ठितः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् अमुष्मिन् लोक उत्तमे ॥८॥
यथा प्राण बलिहृतस् तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
सर्वे अस्मै बलिं हरान् यस् त्वा शुश्राव सुश्रवाः ॥९॥
अन्तर् गर्भश् चरति देवतास्व् आभूतो भूतस् स उ जायते पुनः ।
स भूतं भव्यं भुवनं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥१०॥ ऋ°५०

१६.२३

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद् धंस उच्चरन् ।
यदि स तम् उत्खिदे[त्] नैवाद्य न श्वस् स्यात् ।
न रात्री नाहस् स्यान् न प्रभातं तु किं चन ॥१॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चात् ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यद् अस्यार्धं किम् उ तस्य केतुः ॥२॥
यो [अ]स्य विश्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमो ऽस्तु ते ॥३॥
यो [अ]स्य सर्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माम् अभि रक्षतु ॥४॥
ऊर्ध्वस् सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तम् अस्य सुप्तेष्व् अनु शुश्राव कश् चन ॥५॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मद् अन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भम् इव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥६॥ ऋ°६० अनु°४

१६.२४

साहस्रस् त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस् तन्तुम् आतान् ॥१॥
अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूस् सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिर् अघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥२॥
पुमान् अन्तर्वान् स्थविरः पयस्वा[न्] वसोः कबन्धम् ऋषभो बिभर्ति ।
तम् इन्द्राय पथिभिर् देवयानैर् हुतम् अग्निर् वहतु जातवेदाः ॥३॥
देवानां भाग उपनाह एषो ऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।

[illegible] ॥१०॥ ऋ°१०

१६.२५

[illegible] ॥१०॥ ऋ°२०

१६.२६

[illegible] ॥४॥ ऋ°४०

१६.२७

[illegible]

[वीर्यवान्] सपत्नहा शूरवीरः परिपाणस् सुमङ्गलः ॥१॥
अयं मणिस् सपत्नहा सुवीरस् सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
प्रत्य[क्] कृत्या दूषयन्न् एतु वीरः ॥२॥
अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रम् अहन्न् अनेनासुरान् पराभावयन् मनीषी ।
अनेन द्यावापृथिवी उभे अजयद् अनेनाजयत् प्रदिशश् चतस्रः ॥३॥
अयं स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो [अ]स्मान् पातु विश्वतः ॥४॥
तद् अग्निर् आह तद् उ सोम आह बृहस्पतिस् सविता तद् इन्द्रः ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैर् अजन्तु ॥५॥
अन्तर् दधे द्यावापृथिवी उताहर् उत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैर् अजन्तु ॥६॥
ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्यो दिवम् इवारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥७॥
स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥८॥
याः कृत्या [आ]ङ्गिरसीर् याः कृत्या आसुरीर् उत ।
कृत्या याश् च स्वयंकृता या उ चान्येभिर् आभृताः ।
उभयीस् ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या अति ॥९॥
अस्मिन् मणौ वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुस् सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश् च सर्वे ॥१०॥ ऋ°७०

१६.२८

उत्तमो [अ]स्य ओषधीनाम् अनड्वान् जगताम् इव व्याघ्रश् श्वपदाम् इव ।
यम् ऐच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनम् अन्तितम् ॥१॥
स इद् व्याघ्रो भवत्य् अथो सिंहो अथो वृषा ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥२॥
नैनं घ्नन्त्य् अप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥३॥
कश्यपस् त्वाम् असृजत कश्यपस् त्वा सम् ऐरयत् ।
अबिभस् त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणे ऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्म देवा अकृण्वत ॥४॥
यस् त्वा कृत्याभिर् यस् त्वा दीक्षाभिर् यज्ञैर् [यस् त्वा] जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वम् इन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥५॥
अयम् इद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणस् सुमङ्गलः ॥६॥
असपत्नं नो अधराद् असपत्नं न उत्तरा[त्] ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज् ज्योतिश् शूर पुरस् कृधि ॥७॥
ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यद् उग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन् मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहद् आयुष्मान् जरदष्टिर् यथासः ॥८॥
आ मा रक्षतु ? देवमणिर् मह्या अरिष्टतातये ।
इमम् मन्यम् ? अभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथम् ओजसे ॥९॥
अस्मिन्न् इन्द्रो नि दधातु नृम्ण[म् इ]मं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर् यथासत् ॥१०॥
इन्द्रो बध्नातु ते मणिं जिगीवां अपराजितस् सोमपा अभयंकरो वृषा ।
स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥११॥ ऋ°८१ अनु°५

१६.२९

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्र[श्] शूरः पुरन्दरः ।

यथा इमाम् सेनाम् अमित्राणां सहस्रशः ॥१॥
पूतिरज्जुर् उपध्मानी पूतिं सेनां कृणोतु इमाम् ।
अग्निं धूमं परादृश्य इन्द्र मा वृषतां भयम् ॥२॥
पराचान् अमून् पराचाः कृणोतु इन्द्र एनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संचिताः ॥३॥
अमून् अदयन्त नि मृणीहि आदामून् खदिराजिरम् ।
ताद् इन् त भञ्जय ? भज्यन्तां बृहज्जालेन संचिताः ॥४॥
अन्तरिक्षं जालम् आसीद् जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय सेना इन्द्रो दस्यून् अपावपत् ॥५॥
बृह[न्]ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन स्पृष्ट्वा मघवन् अमित्रान् शाश्वतीभ्यः ॥६॥
बृहत् ते जालं बृहत[ः] श[क्र]स्य रोचमानस्[ः] ।
तेन शतं सहस्रम् अयुतं जघानेन्द्रो दस्यूनाम् अभिधाय सेनाम् ॥७॥
अयं लोको जालम् आसीच् छक्रस्य महतो महान् ।
तेना[ह]म् इन्द्रजालेन तमसामून् अभि दधामि सर्वान् ॥८॥
सेदिर् उग्रा विवृत्तिर् ? आर्तिश् चानपवाचिराम् ? ।
श्रमस् तन्द्रीश् च मोहश् च तेनामून् अभि दधामि सर्वान् ॥९॥
मृत्यवे अमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैर् अमी सिताः ।
मृत्योर् ये अघला दूतास् तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥१०॥

१६.३०

मृत्युदूता अमून् नयत यमदूता अपोम्भत ।
परस्सहस्रा हन्यन्तां तृणेढ्व् एनान् मत्यं भवस्य ॥१॥
साध्या एकं जालदण्डम् उद्यत्य यन्त्य् ओजसा ।
रुद्रा द्वितीयं वसवस् तृतीयम् आदित्यैर् एक उद्यतः ॥२॥
विश्वे देवा उपरिष्टा[द्] उब्जन्तो यन्तु ओजसा ।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनाम् अङ्गिरसो वधैः ॥३॥
वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीर् उत वीरुधः ।
द्विपाच् चतुष्पाद् इष्णामि यथा सेनाम् अमूं हनान् ॥४॥
गन्धर्वाप्सरसो देवान् सर्वान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
दृष्टां अदृष्टान् इष्णामि यथा सेनाम् अमूं हन ॥५॥
मृत्योर् आशम् आ पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम् ।
इन्द्रश् चाक्षुजालाभ्यां शर्वं सेनाम् अमूं हतम् ॥६॥
मृत्युपाशा इमे युक्ता यान् आक्रम्य न मुच्यसे ।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥७॥
घर्मस् समिद्धो अग्निनायं होमस् सहस्रहः ।
भवश् च पृश्निबाहुश् च शर्व सेनाम् अमूं हतम् ॥८॥
पराजिताः प्र त्रसतामित्राः सिता धावत ब्रह्मणा ।
बृहस्पतिः प्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश् चन ॥९॥
अव पद्यन्ताम् एषाम् आयुधानि मा शिकन् प्रतिधाम् इषुम् ।
अथैषां बहु बिभ्यताम् इषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥१०॥
सम् एनान् क्रोशतां द्यावापृथिवी उभे सम् अन्तरिक्षं सह देवताभिः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप [य]न्ति मृत्युम् ॥११॥

१६.३१

दिशश् चतस्रो ऽश्वतर्यो देवरथस्य पुरोडाशाश् शफा अन्तरिक्षम् उद्धिः ॥१॥
द्यावापृथिवी पक्षसी ऋतवो ऽभीशवो [ऽन्तर्देशाः किंकरा] वाक् परिरथ्यम् ॥२॥

अहोरात्रे चक्रे मास आणयः संवत्सरो अधिष्ठानम् ॥३॥
विराड् ईषाग्नी रथमुखम् इन्द्रस् सव्यष्ठाश् चन्द्रमास् सारथिः ॥४॥
इतो जयेतो वि जयस्व जय सं जय स्वाहा ॥५॥

१६.३२

दिवस् पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्राद् अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे ।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्तु सर्वाः ॥१॥
पश्यन्त्य् अस्याश् चरितं पृथिव्यां पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः ।
अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुताम् उग्रा नप्तिः ॥२॥
मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाम् अमृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महद् भ[र्ग]श् चरति मर्त्येषु ॥४॥
अपोः कशाम् अजनयन्त देवास् तस्या गर्भो अ[भ]वद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवनानि चष्टे ॥५॥
कस् तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या[स्] स्तनौ सहस्रधाराव् अक्षितौ ।
ऊर्जं दुहाते [अ]नपस्फुरन्तौ ॥६॥
कस् तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो [अ]स्या हृदः कलशस् सोमधानो अक्षितः ।
ब्रह्मा सुमेधा[स्] सो [अ]स्मिन् मदेत ॥७॥
हिङ्कृण्वती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।
त्रीन् घर्मान् अभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥८॥
याम् आपीनाम् उप सीदन्त्य् आपो यां शाक्वरा वृषभा यां स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते [वर्षयन्ति तद्विदे कामम् ऊर्जम् आपः ॥९॥
[स्तनयित्नुस् ते वाक् प्रजापते] वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्याम् अधि ।
अग्नेर् वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुताम् उग्रा नप्तिः ॥१०॥

१६.३३

यथा सोमः प्रातस्सवने अश्विनोर् भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१॥
यथा सोमो द्वितीयसवन इन्द्राग्न्योर् भवति [प्रियः ।
[एवा म] इन्द्राग्नी वर्च [आत्मनि ध्रियताम्] ॥२॥
यथा सोमस् तृतीयसवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥३॥
मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पयस्वान् अग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥४॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया सम् आयुषा ।
विद्युर् मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥५॥
यद् गिरिषु [पर्वतेषु गोष्व् अश्वेषु यन् मधु ।
[सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन् मयि] ॥६॥
यथा मधु मधुकृतस् संभरन्ति मधाव् अधि ।
एवा मे [अ]श्विना वलम् ओजश् च ध्रियताम् ॥७॥
यथा मक्षा ? मधुज मधु ? न्यञ्जन्ति दक्षिणाम् अधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस् तेजश् च ध्रियताम् ॥८॥
अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचम् आवदानि जनां अनु ॥९॥
वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवो मधो कशया पृथिवीम् अनक्षि ।

तां दातारं ? यशाय उप जीवन्ति सर्वे तेन यो देवम् ऊर्जं बिभर्ति ॥१०॥

१६.३४

पृथिवी दण्डो अन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशः ॥१॥
मधोः कशा च घृताची हिरण्ययो बिन्दुः ॥२॥
उत्सं असि प्रयवो ऽस्य् अम्भो ऽसि नभो ऽसि महो ऽसि ॥३॥
अम्भो मां कृणु नभो मां कृणु महो मां कृणु ॥४॥
समुद्रो ऽस्य् अक्षतो अपरिमितः ।
सहस्रनिस् सहस्रं माम् आ गच्छतु ॥५॥
यो वै मधुकशायास् सप्त मधूनि वेद सप्त मधुमतीन् ? ॥६॥
मधुमन्तं लोकं जयति इमम् ? अस्मान् तरीयान् भवति ॥७॥
यद् वीध्रे स्तनयित्नुस् तम् प्रजापतिर् एव प्रजाभ्यः प्रादुर् भवति ॥८॥
तस्मात् प्राचीनोपवीतस् तिष्ठेत् प्रजापते ऽनु मा बुध्यस्वेति ॥९॥
अन्व् एनं प्रजापतिर् अनु प्रजा बुध्यन्ते य एवं वेद ॥१०॥

१६.३५

यां कल्पयन्ति वहतौ वधून् इव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
साराद् एत्व् अप नुदाम एनाम् ॥१॥
शीर्षण्वतीं नस्वतीं कर्णिनीं कृतां कृत्याकृतां संभृतां विश्वरूपाम् ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मसि यश् चकार तम् ऋच्छतु ॥२॥
शूद्रकृता राजकृता [स्त्री]कृता ब्रह्मभिः कृता ।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्धुम् ऋच्छतु ॥३॥
अनयाहम् ओषध्या [सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
[यां क्षेत्रे चक्रुर् यां गोष्व् यां वा ते पुरुषेभ्यः] ॥४॥
कृत्यास् सन्तु कृत्याकृते शपथश् शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रवर्तय यश् चकार तम् ऋच्छतु ॥५॥
प्रतीचीन आङ्गिरसो ऽध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्या[मू]न् कृत्याकृतो जहि ॥६॥
[यस् त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलम्] उदाय्यम् ।
तं कृत्ये अभिनिवर्तस्व मास्मान् इच्छो अनागसः ॥७॥
यस् ते परूंषि संदधौ रथस्येव ऋभुर् धिया ।
तं गच्छ तत्र ते ऽ[य]नम् अज्ञातस् ते ऽयं जनः ॥८॥
ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
विंशं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म प्रतिसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥९॥
यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्साम् उपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥१०॥

१६.३६

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।
संदेश्यात् सर्वस्मात् पापाद् इमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥१॥
देवैनसात् पित्र्यान् नामग्राहात् संदेश्याद् अभिनिष्कृतात् ।
मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयस ऋषीणाम् ॥२॥
यथा वातश् च्यावयति भूम्या रेणुम् अन्तरिक्षाच् चाभ्रम् ।
एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तम् अपायति ॥३॥
अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्या[व]ता ॥४॥
अयं पन्थाति नयामस् त्वा कृत्ये प्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।

तेनाभि याहि भञ्जत्य् अनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥५॥
पराक् ते ज्योतिर् अपथं ते अर्वाग् अन्यत्रास्मद् अयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः ? परेणेहि ॥६॥
वात इव वृक्षं नि मृणीहि पादय मा गाम् अश्वं पुरुषम् उच् छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्ये ऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥७॥
यां ते चक्रुर् बर्हिषि यां श्मशाने कृत्यां क्षेत्रे वलगं वा निचख्नुः ? ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्ये ऽभिचेरुः पूर्वं सन्तं धीरतरा अनागसम् ।
ताम् इतो नाशयामसि ॥८॥
उपाहृतम् अनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्य् अन्व् अविदाम कर्त्रम् ।
तद् एतु यत आभृतं तत्राश्व इव वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥९॥
स्वायसा [असयो] सन्ति नो गृहे विद्म ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत् तिष्ठैव परेहीतो ऽज्ञाते किम् इहेच्छसि ।
ग्रीवास् ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर् द्रव ॥१०॥

१६.३७

इन्द्राग्नी एनान् वृक्षतां यौ प्रजानां प्रजापती ।
सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य ? नः पतयो मृडयन्तु ॥१॥
भवश् शर्वश् चोभयो मृडतां नः ॥२॥
अपादारणाद् अस्यतां पापकृत्यायै कृत्याकृते वा ।
दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥३॥
यद् एयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतो ऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥४॥
अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि ।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥५॥
परे[हि] कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय ।
मृगस् स मृगयुस् त्वं ? नत्वा कर्तुम् ? अर्हसि ॥६॥
अमर्त्यो मर्त्येत् स्वयंकृतं यद् चकाराचिरया ।
हस्ताभ्याम् आगतो ऽपधीम् ॥७॥
उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापर इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो वि हन्त्य् अपरः प्रति ॥८॥
एतद् धि शृणु मे वचो अथेहि ? यत एयथ ।
यस् त्वा चकार तं पुनः ॥९॥
अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गाम् अश्वं पुरुषं वधीः ॥१०॥

१६.३८

यत्रयत्रासि निहिता ततस् त्वोत्थापयामसि ।
पर्णाल् लघीयसी भव ॥१॥
यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वास् संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥२॥
कृत्याकृतां मूलकृताम् अभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषो अमूं कृत्याकृतं जहि ॥३॥
यथा सूर्यस् तमसो मुच्यते परि रात्रिं जहात्य् उषसश् च केतुम् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं [कर्त्रं कृत्याकृता कृतं] हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥४॥

१६.३९

उपमितः प्रतिमितो ऽथो परिमितश् च यः ।

	शालाया विश्ववाराया[ः] ते नद्धानि वि चृतामसि ॥१॥	... नद्धान् • •
शौ ७	यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश् च यः [कृ]तः ।	
	बृहस्पतिर् इवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥२॥	बृहस्पति र्व • • • अभिवानि •
शौ ८	आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश् चकार ते दृढान् ।	• बवि • [illegible]
	परूंषि विद्वान् शस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि ॥३॥	• विद्वान्
शौ ५	संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च ।	[illegible]
	सर्वो मानस्य पत्नि ते नद्धानि वि चृतामसि ॥४॥	... नद्धान् • •
शौ ४	वंशानां ते नहनानां प्राणाहस्य तृणस्य च ।	[illegible]
	पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि ॥५॥	... ते नद्धान् • •
शौ ६	यानि ते ऽन्तः शिक्यान्य् आबेधू रण्याय कम् ।	• य • • आबेधू रण्याय •
	प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नि न उद्धिता तन्वे भव ॥६॥	• ये • • • • • [illegible] •
शौ ७	हविर्धानम् अग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः ।	
	सदो देवानाम् असि देवि शाले ॥७॥	सदो ...
शौ ८	अक्षुम् ओपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति ।	[illegible] • • विषूवति
°शौ अवनद्धम् अभिहितं	अभिहितम् अवनद्धं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥८॥	• • अवनद्धम् • [illegible]
शौ ९	यस् त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।	यस् त्वा [illegible] •
	उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥९॥	
शौ १० गर्भम् इव	अमुत्रैनम् आ गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।	[illegible] • [illegible]
	यस्यास् ते वि चृतामस्य् अङ्गम्-अङ्गं परुष्परुः ॥१०॥ ऋ°१०	

१९.४०

शौ ९.३.१४	अग्निम् अन्तश् छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह ।	• • छादयसि ...
	विजावति प्रजावति वि ते पाशांश् चृतामसि ॥१॥	... वि • •
शौ १६	ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निमिता मिता ।	... निमिता मिता
°शौ प्रतिगृह्णतः	विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥२॥	विश्वान्नं • शाले • • प्रतिगृह्णतः
शौ ११	यस् त्वा पूर्वो निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।	... निमिमाय • वनस्पतीन्
	प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥३॥	प्रजायै ... परमेष्ठी •
शौ १२	नमस् तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मसि ।	• नमो ...
	नमो ऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥४॥	... ते • •
शौ १३ab	गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच् छालायां विजायते ।	
शौ १५a	अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस् तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ॥५॥	... पृथिवीं • • यद् व्यचस् • • • तेन
शौ १५b	यद् अन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्व उदरं शेवधिभ्यः ।	... कृण्वे • शेवधिभ्यः
शौ तेन	[illegible] शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥६॥	
शौ १७	तृणैर् आवृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी ।	तृणैर् आवृता पलदान् ... निवेशनी
	मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥७॥	... हस्तिनीव •
शौ २१	या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।	
	अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीम् अग्निर् गर्भ इवा शये ॥८॥	• • शाला मानस्य पत्नीम् • • • ॥
शौ १८	इटस्य ते वि चृताम्य् अपिनद्धम् अपोर्णुवन् ।	... चृताम्य् अपिनद्धम् अपोर्णुवन्
	वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर् व्य् उब्जतु ॥९॥	• समुब्जितां • • व्युब्जतु
शौ २०	कुलाये ऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः ।	... समुब्जितः
	तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥१०॥ ऋ°१०	... प्रजायते

१९.४१

°शौ ९.३.१९a	[illegible] परिश्रुतां [illegible] निमितां मिताम् ।	• • कविभिर् निमितां मिताम्
°शौ १९b, °शौ २४	विश्वान्नं बिभ्रती शालाम् अमृतौ सोम्यं सदः ॥१॥	विश्वान्नं बिभ्रती • अमृतौ सोम्यं सदः
शौ २४ ab	मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर् भारो लघुर् भव ।	
	वधूम् इव त्वा [शा]ले यत्रकामं भरामसि ॥२॥	
शौ २३ प्र भरामि	इमा आपः प्र हरामि अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।	... अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः
	गृहान् उप प्र सीदाम्य् अमृतेन सहाग्निना ॥३॥	

शौ २२	प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनश् शाले प्रैम्य् अहिंसतीम् ।	• • प्रतीचीनि • प्रैमि अहिंसती
	अग्निर् ह्य् अन्तर् आपश् च ऋतस्य प्रथमा द्वाः ॥४॥	• [illegible]
शौ २५ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वदेभ्यः
	प्राच्या दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥५॥	पूर्वा दिशश् ...
शौ २६ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	... स्वाहादेवेभ्यः
	दक्षिणस्या दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥६॥	
शौ २७ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वदेभ्यः
	प्रतीच्या दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥७॥	प्रतीच्यां...
शौ २८ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वाहेभ्यो
	उदीच्या दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥८॥	दीच्यां...
शौ २९ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वाहेभ्यो
	ध्रुवाया दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥९॥	
शौ ३०ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वदेभ्यो
	ऊर्ध्वाया दिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥१०॥	दिश्वदा...
शौ ३१ab	स्वाहा देवेभ्यस् स्वाहेभ्यः ।	...स्वाहेभ्यो
	दिशोदिशश् शालाया नमो महिम्ने ॥११॥ ऋ°७ अनु°७	इति षडनुवाका

शौ १०.६.१–७,९	१९.४२	
	अरातीयोर् भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतश् शिरः ।	शौ अरातीयोर् • दुर्हार्दो ...
	प्र वृश्चाम्य् एतद् ओजसा ॥१॥	• वृश्चामि •
	वर्म मह्यम् अयं मणिः फाला[ज्] जातः करिष्यति ।	वर्म मह्यम् ...
	पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥२॥	...रसेन • •
°शौ वाश्या	य[त्] त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वाश्या ।	...त्वष्टा • वाश्या
	आपस् त्वा तस्माज् जीवलाः पुनन्तु शुचयश् शुचिम् ॥३॥	• त्वा ...
शौ हिरण्यस्रग् : °शौ मणिः	हिरण्यस्रजो ! ऽयं मणिर् दधन् नो वस्य् अवातिम् ! ।	हिरण्यस्रग् • • दधत् ...
	श्रद्धां यज्ञं महो दधद् गृहे वसति नो ऽतिथिः ॥४॥	...वसतु...
	तस्मै घृतं सुरां मध्व् अ[न्न]म् अन्नं क्षदामहे ! ।	...अन्नं क्षदामहे
	स नः पितेव पुत्रेभ्यश् श्रेयश्श्रेयश् चिकित्सतु ।	...श्रेयश्श्रेयश् चिकित्सतु
	[भूयोभूयश् श्वश्श्वो] देवेभ्यो मणिर् एत्य ॥५॥	देवेभ्यो • मणिः
शौ यम् अबध्नाद् (एवम् उत्तरत्र)	इमं बध्नातु बृहस्पतिर् मणिं फालं घृतश्चुतम् उग्रं खदिरम् ओजसे ।	
	भूयोभूयश् श्वश्श्वस् तेन त्वं द्विषतो जहि ।	{ भूयोभूयश्श्वस् • • • • ॥६॥ इमं बध्नातु बृहस्पतिः मणिं फालं घृतश्चुतम् खदिरमोजसे / भूयोभूयश् श्वस्तेना ॥७॥ }
	तम् अग्निः प्रत्य् अमुञ्चतात्मा[य] रसाय कम् ।	तम्...
	सो ऽस्मा आज्यं दुहे ॥६॥	
	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् मणिं फालं घृतश्चुतम् उग्रं खदिरम् ओजसे ।	
	[भूयोभूयश् श्वश्श्वस् तेन त्वं द्विषतो जहि ।]	
	तम् इन्द्रः प्रत्य् अमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।	तम् ...
	सो ऽस्मै बलम् इद् दुहे ॥७॥	...वर्च
	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् मणिं फालं घृतश्चुतम् उग्रं खदिरम् ओजसे ।	
	[भूयोभूयश् श्वश्श्वस् तेन त्वं द्विषतो जहि ।]	
	तं सूर्यः प्रत्य् अमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशस् सो ऽस्मै वर्चं इद् [दुहे] ॥८॥ ऋ°१०	तं...दिशः...

१९.४३

शौ १०.६.८	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् मणिं फालं घृतश्चुतम् उग्रं खदिरम् ओजसे ।	
	[भूयोभूयश् श्वश्श्वस् तेन त्वं द्विषतो जहि ।]	

	तं सोमः प्रत्य् अमुञ्चत दृशिमाय रसाय कम् ।	सं...
	सो ऽस्मै मद इद् [दुहे] ॥१॥	• • मद् •
शौ १०	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् मणिं फालं घृतश्चुतम् उग्रं खदिरम् ओजसे ।	
	[भूयोभूयश् श्वश्श्वस् तेन त्वं द्विषतो जहि ।]	
	तं बिभ्रच् चन्द्रमा मणिम् असुराणां पुरो ऽजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।	तं ... हिरण्ययीः
	सो ऽस्मै श्रिय इद् दुहे ॥२॥	...श्रियम्
शौ ११	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	तं राजा वरुणो मणिं प्रत्य् अमुञ्चत शंभुवम् ।	सं...
	सो ऽस्मै सत्यम् [इद्] दुहे भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	• सत्यं...
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥३॥	
शौ अन्ति	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	तं त्वष्टा प्रत्य् अमुञ्चत प्रजाभ्यो वीर्याय कम् ।	सं...
	सो ऽस्मै रूपम् इद् दुहे [भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	...रूपं
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥४॥	
शौ १३	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	[illegible] मणिना कृषिम् अश्विनाव् अभि रक्षतः ।	तेनेमां • • अश्विनाव् • रक्षतः
	स भिषग्भ्यां महो दुहे [भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	• [illegible]
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥५॥	
शौ १४	इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् [आशवे] ।	
	[तं बिभ्रत् सविता मणिं] तेनेदम् अजयत् स्वः ।	तेनेदम् • स्वः
	सो ऽस्मै सूनृतां दुहे [भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥६॥	
शौ १५,१४	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	तं देवा बिभ्रतो मणिं सदा धावन्त्य् अक्षिताः ।	... बिभ्रतीर् • • अक्षिताः
	स आभ्यो ऽमृतं दुहे [भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	साभ्यो ऽम् • •
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥७॥	
शौ १६,१७	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	तम् आपो बिभ्रतीर् मणिं सर्वान् लोकान् युधाजयन् ।	मणिं : [illegible]
	स आभ्यो ऽजितिम् इद् दुहे [भूयोभूयश् श्वश्श्वः ।	सो ऽस्मै • • [illegible]
	[तेन त्वं द्विषतो जहि] ॥८॥	
शौ २०	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् वाताय मणिम् आशवे ।]	
	तम् इमं देवता मणिं मह्यं ददातु पुष्टये ।	... मणिं मह्यं • •
	[अ]भी स मूलिम् इद् दुहे भूयोभूयश् [श्वश्श्वः] ।	• • [illegible] • क्षत्रं भूयोभूयः
	तेन त्वं द्विषतो जहि ॥९॥ ऋ°१०	सेन

१९.४४

शौ १०.३.११	[illegible] अबध्नत प्रतिसरं तम् अबध्नत ।	• देवाः • • अबध्नत
	[illegible] मणिर् द्विषतो मे ऽधरां अकः ॥१॥	°[illegible] मणि द्विषतो...
शौ १२	[illegible] तम् [[illegible] तम्] अबध्नत ।	... अबध्नत
	[illegible] वि राजति ॥२॥	... भूमि • राजति
शौ १३	[illegible] [अ]बध्नत [illegible] अबध्नत ।	• [illegible]
	[illegible] विजिग्युः पुरः ॥३॥	[illegible] • विजिग्युः पुरः
शौ १४	तं धाता प्रत्य् अमुञ्चत स भूतं व्य् अकल्पयत् ।	[illegible] • प्रति मुञ्चत • भूतं •
	तेन त्वं द्विषतो जहि ॥४॥	
शौ १५	इमं बध्नातु बृहस्पतिर् देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।	... क्षिति
	स त्वायं मणिर् आगमत् [illegible] [वि]श्वेन प्रजया सह ॥५॥	[illegible] • •
शौ १७	[इमं बध्नातु बृहस्पतिर् देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।	
	[स त्वायं मणिर्] आगमत् [illegible] सह ॥६॥	आगमत् ... [illegible] • •
शौ १९	इमं बध्नातु बृहस्पतिर् देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।	... क्षिति

	[स त्वा]यं मणिर् आगमद् ओजसा तेजसा सहसा भूत्या द्रविणेन श्रिया सह ॥७॥	सर्व...
	यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धम् उपासते ।	
	स त्वायम् अभि रक्षतु मणि[र्] श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥८॥	... श्रैष्ठ्याय मूर्धतः
	स त्वायं शतदक्षिणो मणि[र्] श्रैष्ठ्याय जिन्वतु ।	... [illegible] •
	यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्तु सर्वदा ॥९॥	
	तस्मै त्वा यक्षवर्धन मणे प्रत्य् अमुञ्चं शिवम् ।	... मणेः ...
	तं त्वां शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥१०॥ ऋ°१०	• स • शतदक्षिण श्रैष्ठ्याय जिन्वतः

१९.४५

शौ १०.६.३०ab	असपत्नस् सपत्नहा सपत्नान् द्विषतो ऽधरां अकः ।	... सपत्नां • मे ऽधरा •
शौ ३१ab	उत्तरं द्विषतस् त्वा मणिः कृणोतु देवजाः ॥१॥	... देवजाः
शौ ३२ab	मणिं सहस्रवीर्यं ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि ते शिवम् ।	मणिम् • • तेजसा सह ...
शौ ३३ab	स त्वाम् अभि रोहतु देवैः फालमणिस् सह ॥२॥	
शौ ३३	यथा बीजम् उर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।	... पुष्टे • •
	एवास्मिन् प्रजा पशवो ऽन्नम्-अन्नं वि रोहतु ॥३॥	एवा मयि • • अन्नं • •
शौ ३५	एतम् इध्मं समाभृतं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमम् ।	... अग्ने ...
	तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति चक्षुः प्राणं प्रजां पशून् [illegible] ब्रह्मणा ॥४॥ ऋ°४	• विदेम सुमतीं ...

१९.४६

	क्षा चासि क्षमा चासि तस्मात् ते भूतिश् च सुभूतिश् चेति मुखे ।	... भूति • सुभूति चेति •
	ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।	
	ताभ्यां नो गच्छतं ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।	
	ताभ्यां नो ऽधि ब्रमहो ! मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।	... ताभ्यां • • •
	अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्णा बन्धेभ्यो विमदं न पतम् ॥१॥	... सूनुम्
	भूमिश् चासि भूतिश् चासि तस्मात् ते सुपतं च सुभूतिश् चे[ति] मुखे ।	... तन्वा मुमुग्धि ... मम
	[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।	... च
	[ताभ्यां नो गच्छतं ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।	
	[ताभ्यां नो ऽधि ब्रमहो ! मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।	
	[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्णा बन्धेभ्यो विमदं न पतम्] ॥२॥	
	पृथिवी चासि पार्थिवी चासि तस्मात् ते भविष्यच् [च] आभविष्यच् चे[ति] मुखे ।	• • [illegible] ...
	[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।	च
	[ताभ्यां नो गच्छतं ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।	
	[ताभ्यां नो ऽधि ब्रमहो ! मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।	
	[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्णा बन्धेभ्यो विमदं न पतम्] ॥३॥	
	क्षेम्या चासि क्षितिश् चासि तस्मात् ते कं च नाकं चे[ति] मुखे ।	... च
	[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।	
	[ताभ्यां नो गच्छतं ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।	
	[ताभ्यां नो ऽधि ब्रमहो ! मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।	
	[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्णा बन्धेभ्यो विमदं न पतम्] ॥४॥	
	दृढा चासि सुदृढा चासि तस्मात् ते स्वश् च स्वर्गश् चे[ति] मुखे ।	... च
	[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।	
	[ताभ्यां नो गच्छतं ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।	
	[ताभ्यां नो ऽधि ब्रमहो ! मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।	
	[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्णा बन्धेभ्यो विमदं न पतम्] ॥५॥	
	अमितिश् चासि निर्ऋतिश् चासि तस्मात् ते मित्रं च मैत्रं चे[ति] मुखे ।	... च

[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥६॥
शतवृष्णा चासि विघृष्वाना चासि तस्यास् ते विन्दच् च विन्दमानं च[ति मुखे । — • • वृष्वाना ... विन्दच् ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥७॥
सुचिता चासि सुचितिश् चासि तस्यास् ते चितिश् च सुचितिश् च[ति मुखे । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥८॥
वस्ता ? चासि वस्तातिश् ? चासि तस्यास् ते वसुश् च प्रवसुश् च[ति मुखे । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥९॥
अप्सराश् चासि सदान्वा चासि तस्यास् ते रोदं च रोदश् च[ति मुखे । — ... रोद • • च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥१०॥ ॥ऋ°५॥

१९.४७

रोहिणी चासि सुरोहिणी चासि तस्यास् ते यच्छश् च प्रयच्छश् च[ति मुखे । — • • रुरोहिणी ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥१॥
विश्वभृच् चासि विश्वरूपा चासि तस्यास् ते ददच् च प्रददच् च[ति मुखे । — ... देद • • • च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥२॥
गिरयन्ती ? चासि गिरिगिरि[श्] ? चासि तस्यास् ते विन्दच् च सुवृन्दानं ? च[ति मुखे । — च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥३॥
गुर्वी चासि गुर्विसिरि ? चासि तस्यास् ते दोहश् च दोहनं च[ति मुखे । — गर्वी ... दोहनं च

[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥४॥
दितिश् चास्य् अदितिश् चासि तस्यास् ते पयश् च पयसश् च[ति मुखे । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥५॥
जूर्णा चासि जरयन्ती चासि तस्यास् ते दक्षश् च दक्षमाणं च[ति मुखे । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥६॥
अप्रतिष्ठा चासि प्रतिष्ठिता चासि तस्यास् त ओजश् च तेजश् च[ति मुखे । — • • प्रतिष्ठि ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥७॥
यमी चासि प्रयमी चासि तस्यास् ते ध्रुवच् च ध्रुवसच् ? च[ति मुखे । — यमी • प्रयमी ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥८॥
लोकिनी चासि लोककृच् चासि तस्यास् ते कुर्वच् च संस्कुर्वाणं च[ति मुखे ।
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥९॥
नीची चास्य् उन्नता चासि तस्यास् ते स्वं च स्वापश् च[ति मुखे ।
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥१०॥ ॥ऋ°६॥

१९.४८

पृश्निश् चासि पृथ्वी चासि तस्यास् ते धात्रं धात्रायं च[ति मुखे । — पृश्निश • पृथ्वीच ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥१॥
सरा चासि सरस्वती चासि तस्यास् ते ब्रह्म च क्षत्रं च[ति मुखे । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥२॥
वसुभृच् चासि वसुमती चासि तस्यास् ते सूनृता चेरा च[ति । — ... च
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।

[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥३॥
महश् चासि महस्वती चासि तस्यास् ते कामश् च दानिश् चेति [मुखे । — • • महस्वतीश् ... चेति • चेति
[ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
[ताभ्यां नो गच्छतम् ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि ।
[ताभ्यां नो ऽभि जप्रहो ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् ।
[अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम्] ॥४॥
सर्वा चासि सर्वं चासीत् ? तस्यास् ते विश्वं च विश्वे च देवा यन्ति मुखे । — • • • चेदं ... १ • ॥५॥
ताभ्यां ते विधेयं ताभ्यां ते नमः ।
ताभ्यां नो मृड ? ताभ्यां नो ऽधि ब्रूहि । — ... मिवह ॥६॥ मातेवातेव ...
ताभ्यां नो ऽभि जिघ्रद ? मातेव पुत्रं पितेव सूनुम् । — ... तन्वा ... ॥७॥
अयं ते ऽस्मि तन्वं मुमुग्धि प्राह्या बन्धेभ्यो विमदं न एनम् ॥५॥ ॥ऋ°७॥ ॥अनु°८॥

१९.४९

शौ ६.११४.१ यद् देवा देवहेडनं देवासश् चकृमा वयम् ।
आदित्यास् तस्मा[न्] नो यूयम् ऋतस्य ऋतेन मुञ्चत ॥१॥ — ... ऋतस्यर्तेन मुञ्चत
शौ २ ऋतस्य ऋतेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः । — • • यज्ञं मुञ्चतेह न
यज्ञ[ं यद्] यज्ञवाहसश् शिक्षन्त उपारिम ॥ २ ॥ — • यज्ञवाहसशिक्षन्तु •
शौ ३ मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्येन जुह्वतः । — मेदस्वन्तः ...
अकामा विश्वे वो देवाश् शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥ ३ ॥ — ... शेकिम
शौ ६.११५.१ यद् विद्वांसो यद् अविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् । — • विद्वांसो यदि विद्वांसा एनांसि • •
तस्मान् नो ऽद्य मुञ्चत विश्वे देवास् सजोषसः ॥ ४ ॥ — • म ... सजोषसः
शौ २ यदि जाग्रद् यदि स्वपन्न् एन एनस्यो ऽकरम् । — ... स्वपं चेनस्यो •
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदाद् इव मुञ्चताम् ॥५॥ — भूतं ... यदि •
शौ ३ विकृते द्रुपदाद् इव मुमुचानस् सिन्धो ? स्नात्वा मलाद् इव । — ... सिन्धु ...
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वान् मुञ्चन्तु मैनसः ॥६॥ — • पवित्रेणाज्यं ...
शौ ६.११६.१ यद् यामं चक्रुर् निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया । — अन् ... कार्षीवणा अन्नविदो न •
वैवस्वते राजनि तज् जुहोम्य् अथ यज्ञियं मधुमद् नो अस्तु ॥७॥ — • राजन • • अथा यज्ञे मधुमान् •
शौ २ वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति ।
मातुर् यद् एन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥८॥ — ... कार्णं • • यदवाद्धो जिहीडे
शौ ३ मातुर् यद् एन इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥८॥ — यदि ... भ्रातुः • भ्रेनसो न आगन्
यदीदं मातुर् यदि वा पितुर् नो भ्रातुः पुत्रा[च्] चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरस् सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो [अ]स्तु मन्युः ॥९॥ — • एतत् • सचन्ते ...
शौ ६.११७.१ अपमित्यम् अप्रतीत्तं यद् अस्मि यमस्य येन बलिना चरामि । — अन्तरक्ष्य प्रतीतं • • यसेन • •
[मन्त्र... इदं तद् अग्ने अनृणो भवामि जीवन्न् एव प्रति दद्मि सर्वम् ॥१०॥ — ... बल • • • ॥ऋ°१०॥

१९.५०

शौ ६.११७.१ इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज् जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् । — ... दद्म ... हराम •
अपमित्य धान्यं यज् जघसाहम् इदं तद् अग्ने अनृणो भवामि ॥१॥ — अनृणा • • अद्यापि अदिर ...
शौ २ अनृणा अस्मिन्न् अनृणाः परस्मिन् तृतीये नाके अनृणास् स्याम । — अनृणास्याम ...
ये देवयाना उत पितृयाणाः सर्वान् पथो अनृणा आक्षियेम ॥२॥ — ... पितृयाणास् सर्वान् • • • [पितृयाणा
शौ ६.११८.१ यद् हस्ताभ्यां चकृमा किल्बिषाण्य् अक्षाणाम् अक्षम् अभिलिप्समानाः । — • अक्षाणां • किल्बिषम् अक्षम् • अभिलि-
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तद् अद्याप्सरसाव् अनु दत्ताम् ऋणं नः ॥३॥ — • • यद् अप्सरसाव् • • ऋणं •
शौ २ उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यद् अक्षवृत्तम् अनु दत्तं न एतत् । — • अनुः किल्बिषं • • • दत्तं न एतत् • [ऋणान्
ऋणान् नो नर्णम् एर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुर् आयत् ॥४॥ — ऋणान् नो ऋणान् • अध्येति • • अधिरज्जुर्
शौ ३ यस्मा ऋणं यस्य जायाम् उपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः । — • यमी • • उपैमि • याचमानो अभ्यैमि देवाः । वा
ते नो यदि ऋणं सहसा कृणोम्य् अप्सरसाव् अधीतम् ॥५॥ — • • • • यद् देवपत्नी अप्सरसाव् अधीतम्
शौ वाचं वाचितुं ते ऽ याजिन् पाजिभिर ? मोस्तरां मद् देवपत्नी अप्सरसाव् अधीतम् ॥५॥ — यदि देवं माचरू • • अवरामविवम् • • संगृभ्णामि
शौ ६.११९.१ यद् अदीव्यन्न् ऋणम् अहं कृणोम्य् अदास्यन्न् अग्न उत संगृणामि ।

वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उद् इन् नयातु सुकृतस्य लोकम् ॥६॥ — • • विश्वनो ...
शौ २ वैश्वानरः पावया[न्] नः पवित्रैर् यत् संगरम् अभिधावाम्य् आशाम् । — ... संगरम् अपि •
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो ऽप तत् सुवामि ॥७॥ — अनाजानाना यत् तत्रैनो दिवानि
शौ ३ वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद् ऋणं संगरो देवतासु । — • • वेदयेते ...
स एतान् पाशान् विचृतं प्र वेदाय पक्वेन सह सं भवेम ॥८॥ — • एतान् • • • वेदाय सह • • • •
शौ ६.१२०.१ यद् अन्तरिक्षं पृथिवीम् उत द्यां यन् मातरं पितरं वा जिहिंसिम ।
अग्निर् मा तस्माद् एनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥९॥
शौ २ भूमिर् मातादितिर् नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षम् अभिशस्त्या नः । — • माता अदितिर् ...
द्यौर् नः पिता पित्र्याच् छं भवाति जामिम् ऋत्वा माव पत्सि लोकात् ॥१०॥ ॥ऋ°११॥ — • • • पित्र्यात् शमवाति जामि ऋत्वा लोकात् [अविव

१९.५१

शौ ६.१२०.३ यत्रा सुहार्दस् सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वस् स्वायाः । — ... तन्व स्वायाः
अश्लोणा अङ्गैर् अह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥१॥ — अश्लोणाङ्गैर् ह्रुताः ... पुत्रो
शौ ६.११२.३ विषाणा पाशान् उत वि ष्यास्य् अस्मत् य उत्तमा अधमा वारुणा ये । — विषाणा पाशान् • • वि ष्य अस्मद् य उत्तमा •
शौ ७.८ यद् दाम्ना बध्यसे यच् च रज्ज्वा यद् भूम्यां बध्यसे यच् च वाचा ॥२॥ — • • बध्ने ... बध्ने • • •
शौ २.८ १.११२.१, ३.३.५ उद् अगातां भगवती विचृतौ नाम तारके । — • • • विवृतौ
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥३॥ — • यच्छतां एतो •
शौ ४ वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान् मुञ्चासि बद्धकम् । — • जिह • • बद्ध ...
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथस् सर्वां अनु गच्छ ॥४॥ — • पथः • • गच्छ ...
शौ ६.१२२.१ ३.६०.२ तं प्रजानन् [प्रति गृह्णाति विद्वान् बृहस्पतिः प्रथमजा ऋतस्य ।
[अस्माभिर् दत्तं जरसः परस्ताद् अच्छिन्नं तन्तुम् अनु सं तरेम] ॥५॥ — } प्रजानन् प्रत्येष
शौ २ ततं तन्तुम् अन्व् एके तरन्तु येषां दत्तम् आप्यं पित्र्येण । — तर तरन्त • • अन्व् • दत्तं येषां •
अबन्ध्व् एके अन्नन्तः प्रयच्छान् दातुं चेच् छिक्षान् स स्वर्ग एवाम् ॥६॥ — अवन्ध • • प्रयच्छं • • शिक्षां स • •
शौ ३ अन्वारभेथाम् अनुसंरभेथाम् एतं लोकं श्रद्दधानास् सचन्ते । — ‘रभेथा अनुसंरभेथाम् • • श्रद्दधाना सचन्ते
यद् वां पूर्तं परिविष्टम् अग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७॥ — विष् अन् ...
शौ ६.१२३.१ देवाः पितरः पितरो देवाः ।
यो ऽस्मि सो ऽस्मि सो ऽयम् अस्मि ॥८॥
शौ ४] पचामि ददामि मेजते वच ? ।
संमैष्यवसुष्योधु ? दात्नं दिवं कृतं तस्मान् मायम ? ॥९॥
शौ ५ नाके राजन् प्र[ति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति] तिष्ठतु । — • एवं ...
विद्धि पूर्तस्य नो राजन् स देव सुमना भव ॥१०॥ ॥ऋ°१२॥ — विद • • एवं ...

१९.५२

अपास्मद् ब्राह्मण्यां संधाम् अप धारां नि दध्मसि । — • ब्राह्मण्यं • अप ...
इन्द्राग्नी विश्ववेदसाव् अर्णवाद् अधि गृह्णताम् ॥१॥ — • विश्ववेदसौ अर्णवात् • •
नमस् ते ब्राह्मणसंधे अपरे ब्र मन्यतः ? । — • • ब्राह्मणसंधे ...
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तं ते प्र सुवामि दिधुमन्तं प्र सुर्याः ॥२॥
अपारं त्वाहुर् अर्णवम् ; अगुर् पाजाद्भे ? विदुः ।
यस् ते ; वेदो मरम् ? अस्मा महन् साक्षाद् वसिष्ठकम् ॥३॥
तव नियांसं तव ते विदुः । — • नियांस ...
इन्द्रेण चलना योनिर् मरुतो ऽस्याः कुलायम् ॥४॥ — • द्विज • • स्या •
महान् समुद्रो रजसो विमानः । — मर ...
स्वर्गे लोके अपि नः कृणोतु ॥५॥ ॥ऋ°१३॥ — स्वर्गे ...

१९.५३

शौ ११.३.१ तस्यौदनस्य बृहस्पति[श्] शिरो ब्रह्म मुखम् ॥१॥
शौ २ मात्रा सूर्याचन्द्रमसाव् अक्षणी बृहद्रथन्तरे ओष्ठे ॥२॥ — • अक्षी ...

अग्निर् मातस् त्रिवृत् त्रिष्ठा ॥३॥
महतो इन्द्रः एकाक्षरः प्राणः ॥४॥ • • यदाः •
सोमवतो लोकाति धनपतयः वेदाः ॥५॥
वायुर्यो सूर्यम् अभिचरन् प्रतु ॥६॥
वै ९० वर्ष पञ्चविंशाद् ब्रह्म यदौ प्रतिष्ठे ॥७॥ ...संवत्सिरः
वै ९ यजुर् मुख्यं वाच तनूकाया ॥८॥ • • मन् ऊ॰
वै ४ [त्रिविद्] सूर्यम् अदितिं[व] सूर्यवादी यातो महाविष्णु ॥९॥ ...समोर् अवतिन्द्
वै ५ गावस् स्वर्गुता मतयः वाता महाकाल् सुमा ॥१०॥ गावस् स्वर्गुयाजः • यवाद •
वै ६ वसु वर्णिवाच्य नरो प्रथम आयुष् ? वार्षिवाच्य[ ] ॥११॥
वै ७ इत्यादस् यतो प्रथम सोम [योनिद्रित्य] यतो योनिद्रित्य ॥१२॥ • • योनिद्रव यतो यद ओम
वै ८ यतु अवसानुषम् अधिर हविर् वर्तो पुष्कतो सत्यः ॥१३॥ त्रिषु • वसोर्...
वै ९.१० { वातः यातम् महती वातु ॥१४॥ वतः...
वस्वत् ग्रंथी सुता यत्यः ॥१५॥ स्पुत्रकः यत्र
ईशानूनवः सुदर्गी प्रकर ॥१६॥ यवतूहर • यमः
वै ११ प्रते इन्द्रवर्गीकरन सुत्योत्मयवात् ॥१७॥ ५२ इन्द्रवर्गीयकः •
वै १२ मार्तेयः यमाते अधिः परिसता प्रतापः परिशहोता ॥१८॥ ऋ॰५० ...परिपूजता

१६.५४

वै ११.३.११ ममोदरतम् पृथि पूतस्ती यौर् अभिचारम् ॥१॥ ममोदरतम...
वै ६ यतो पुरम् त्मा त्रिपुरा ॥२॥ त्रिणो • यमः •
वै १३ पृथुद् मातरत्र रक्षतो पूतौ ॥३॥ • मातरतो रक्षन् •
वै १४ { त्रिपुः पावे अभितः पतौषः ॥४॥ • पावे सीना पवीतम्
त्रिवारा प्रयतो यातरम् इतरमानम् ॥५॥ त्रिवता प्रथम वसनम् •
सहोरावे त्रिवाराव योदमसा सर्वे योवारो महतः परि [इ]यति ॥६॥ ...योवन • सर्वे •
महतः त्रिपदांश ? यांतिपयः ॥७॥
वै १५.१९ क्रया कुसपु [म]त्रिवीयोन्त सार्वीवादेव प्रेष्यते प्रयता प्रतिगृह्णे ॥८॥ • कृपिव ...प्रयाण •
वै १९ [स इ] एतस्मीतस्मीय महिमानं त्रिपदा[म्] ॥९॥ एतदी॰ • •
वै २० सात इति पुरापु मातुस्मेषत इति मनु य कि योति ॥१०॥ • त्रिषु मुवा °त्रिजस्ति वेद त्रिपो •
वै २१ एतावत् मात्रीत्तिमाससोम सर माजित्यद[म्] ॥११॥ • एतत्तित्यमाये त्वये •
वै २२ ओमोनेन एतावदात् सर्वे ओषधान् समागताः ॥१२॥ • पद्वतत्...
वै २३ अविवाद मातृतो यौर् मूलिम् यतो उत्तरतं त्रिदाः ॥१३॥ ऋ॰६२ ...युत

१६.५५

वै ११.३.११ ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः [प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः] ।
वै॰ व्यनि यस् त्वाम् ओदन इति कस्मैन शीर्ष्णा प्राशीः ॥१॥ ...कस्येन • प्राशी
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन मुखेन प्रा[शीः] ॥२॥ येन • •
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् अक्षीभ्यां प्रा[शीः] ॥३॥ येनम् • • (एवम् उत्तरत्र)
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन श्रोत्राभ्यां प्रा[शीः] ॥४॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् आस्येन प्रा[शीः] ॥५॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन जिह्वया प्रा[शीः] ॥६॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन दन्तैः प्रा[शीः] ॥७॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।

[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन प्राणैः प्रा[शीः] ॥८॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् उरसा प्रा[शीः] ॥९॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन व्यचसा प्रा[शीः] ॥१०॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन पृष्ठेन प्रा[शीः] ॥११॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् उदरेण प्रा[शीः] ॥१२॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]दैन वस्तिना प्रा[शीः] ॥१३॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् ऊरुभ्यां प्रा[शीः] ॥१४॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति क]र]देनम् अष्ठीवद्भ्यां प्रा[शीः] ॥१५॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति] कस्यैन पद्भ्यां प्रा[शीः] ॥१६॥
[ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
[यस् त्वाम् ओदन इति] कस्याम् एनं प्रतिष्ठायां प्राशीः ॥१७॥ ...प्राशीद्
ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रत्यञ्चम् ओदनं प्राशीः प्राच्यं त्वम् ओदनं प्राशीः ।
यस् त्वाम् ओदन इति कस्यैन हस्ताभ्यां प्राशीः ॥१८॥ ऋ॰७० ...कस्येनं • प्राशीद्

१६.५६

शौ ११.३.३२ ततश् चैनम् अन्येन शीर्ष्णा प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् • शर्षा • वाभ्यां वेदम् • प्राश्नं
शिरस् ते अथ पतिष्यतीत्य् एनम् आह ॥१॥ • त्वाव • • •
शौ ३५ [ततश् चैनम् अन्येन मुखेन प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् ।
[...............इत्य् एनम् आह ॥२॥]
शौ ३४ ततश् चैनम् अन्याभ्याम् अक्षीभ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्याभ्यां... वेदम् • प्राश्नं
अन्धो भविष्यसीत्य् एनम् आह ॥३॥
शौ ३३ ततश् चैनम् अन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्याभ्यां... वेदम् • प्राश्नं
बधिरो भविष्यसीत्य् एनम् आह ॥४॥
[ततश् चैनम् अन्येनास्येन प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् ।
[.....................इत्य् एनम् आह ॥५॥]
शौ ३६ [ततश् चैनम् अन्यया जिह्वया प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् ।
[जिह्वा ते मरिष्यतीत्य् एनम् आह ॥६॥]
शौ ३७ ततश् चैनम् अन्यैर् दन्तैः प्राशीर् यैश् चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्यैर् • • याभ्यां वेदम् • प्राशीद्
दन्तास् ते शत्स्यन्तीत्य् एनम् आह ॥७॥ • • शत्स्यत् • • [याभ्यां वेदमग्रे प्राश्नं
शौ ३८ [ततश् चैनम् अन्यैः प्राणैः प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् ।]
प्राणास् त्वा हास्यन्तीत्य् एनम् आह ॥८॥
शौ ४१ [ततश् चैनम् अन्येनोरसा प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् ।
[..................इत्य् एनम् आह ॥९॥]
शौ ३९ ततश् चैनम् अन्येन व्यचसा प्राशीर् येन चेद[म् अ]ग्रे प्राश्नन् । • येनम्... याभ्या वेद • प्राश्नं
राजयक्ष्मस् त्वा हनिष्यतीत्य् एनम् आह ॥१०॥
शौ ४० ततश् चैनम् अन्येन पृष्ठेन प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् • • • याभ्या वेदम् • प्राश्नं
विद्यु[त्] त्वा हनिष्यतीत्य् एनम् आह ॥११॥
शौ ४२ ततश् चैनम् अन्येनोदरेण प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येन उदरेण • याभ्या वेदम् • प्राश्नं
ऊरू ते उप पत्स्येते इत्य् एनम् आह ॥१२॥ • • • इत्येनम् • •
शौ ४३ ततश् चैनम् अन्येन वस्तिना प्राशीर् येन चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् • • • याभ्या वेदम् • प्राश्नं
अप्सु मरिष्यसीत्य् एनम् आह ॥१३॥ • मरिष्यसीत्य् • •

शौ ४४ ततश् चैनम् अन्याभ्याम् ऊरुभ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येन • • याभ्या वेदम् • प्राश्नं
ऊरवस् त्वा छास्यतीत्य् एनम् आह ॥१४॥ • • छास्यत् • •
शौ ४५ ततश् चैनम् अन्याभ्याम् अष्ठीवद्भ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येन अष्ठीवद्भ्या • याभ्या
स्रामो भविष्यसीत्य् एनम् आह ॥१५॥ स्रामो... [वेदम् • प्राश्नं
शौ ४६ ततश् चैनम् अन्याभ्यां पद्भ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येन • • याभ्या वेदम् • प्राश्नं
बहुचारी भविष्यसीत्य् एनम् आह ॥१६॥ • • बहुचार् • •
शौ ४७ ततश् चैनम् अन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर् यया चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येनो प्रतिष्ठया • याभ्या वेदम्
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्य् एनम् आह ॥१७॥ अप्रतिष्ठानो... [• प्राश्नं
शौ ४८ ततश् चैनम् अन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर् याभ्यां चेदम् अग्रे प्राश्नन् । • येनम् अन्येन प्रतिष्ठया • • याभ्या वेदम्
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्य् एनम् आह ॥१८॥ ऋ॰८० ब्राह्मणं... [• प्राश्नं

१६.५७

[ओदनं प्राशिषम् ।
शौ ११.३.४९ तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन ...तम् ओदनं ओदनेन
बृहस्पतिना शीर्ष्णाशिषम् ॥१॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] • शीर्ष्णाशिषम्
शौ ५० [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
ब्रह्मणा मुखेनाशिषम् ॥२॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] • मुखेन आशिषम्
शौ ५१ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् अक्षीभ्याम् आशिषम् ॥३॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् अक्षीभ्याम् •
शौ ५२ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
दिशाभ्यां श्रोत्राभ्याम् आशिषम् ॥४॥ [ओदनं प्राशिषम् ।]
[तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
अग्निनास्येनाशिषम् ॥५॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] अग्निनास्येन आशिषम्
शौ ५३ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
विद्युता जिह्वयाशिषम् ॥६॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] • जिह्वया आशिषम्
शौ ५४ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
मरुद्भिर् दन्तैर् आशिषम् ॥७॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] मरुद्भिर्
शौ ५५ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदनो ओदन
सप्तर्षिभिः प्राणैर् आशिषम् ॥८॥ [ओदनं प्राशिषम् ।]
शौ ५६ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
पृथिव्योरसाशिषम् ॥९॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] पृथिव्योरसा आशिषम्
शौ ५७ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
अन्तरिक्षेण व्यचसाशिषम् ॥१०॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] • व्यचसा आशिषम्
शौ ५८ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
दिवा पृष्ठेनाशिषम् ॥११॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] पृष्ठेन आशिषम्
शौ ५९ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
[समुद्रेणोदरेणाशिषम् ॥१२॥] [ओदनं प्राशिषम्]
शौ ६० [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
सत्येन वस्तिनाशिषम् ॥१३॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] • वस्तिना आशिषम्
शौ ६१ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
मित्रावरुणयोर् ऊरुभ्याम् आशिषम् ॥१४॥ [ओदनं प्राशिषम् ।]
शौ ६२ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
त्वष्टुर् अष्ठीवद्भ्याम् आशिषम् ॥१५॥ [ओदनं प्राशिषम् ।] त्वष्टुर् अष्ठीवद्भ्याम् •
शौ ६३ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
सवितुः पद्भ्याम् आशिषम् ॥१६॥ [ओदनं प्राशिषम् ।]
शौ ६४ [तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन
सत्यां प्रतिष्ठायां प्राशिषम् ॥१७॥ [ओदनं प्राशिषम् ।
शौ ६८ तम् अहं न प्राञ्चं न प्रत्यञ्चं नाहम् ओदनं न माम् ओदन ओदन • अहं ... नाहम् • ओदने
आपरवत इन्द्रस्य न पर्व प्रतिष्ठाय न यस्माद् आसदोदन न यस्माद् • • तेन • तेनम् आसदोदन तेनम्
अपीत्यवान ॥१८॥ अपीताव

[यतमानां वै लोकानां लोकाम् अयस्त्रिंशतं प्रजापतिर् निर्मितः ? ।
यन् त्रयस्त्रिंशान् प्रजापतिः प्रष्ठः पुण्यलोकाः । • • °यस्त्रिंशान् प्रष्ठाः •
तस्य सर्वे अभिजिता [अ]विद्या भवन्ति य एवं वेद ॥१८॥ ऋ॰९० तेस्य • • • भवन्ती...

१६.५८

शौ ११.३.४९... { एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वात्मा सर्वपरुः सर्वतनूः सर्वपृष्ठः ॥१॥ ...सर्वाङ्ग वा
सर्वाङ्ग सर्वात्मा सर्वपरुः सर्वतनूः सर्वपृष्ठो भवति य एवं वेद ॥२॥ ...सर्वाङ्ग सो...
शौ ५४ य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥३॥ • • विदुषेऽस्य अनुपद्रष्टा • पृणति
शौ ५५ न च प्राणं रुणद्धि सर्व सर्वज्यानिं जीयते । • • • रुणद्धि मत • • • सर्व सर्वज्यानिं जीयते
शौ ५६ अथैनम् आहाप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीति ॥४॥ • आह प्रतिष्ठानो...
अप्रतिष्ठान एवानायतनो य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति ॥५॥ अप्रतिष्ठानवानायतनो • • विदुषोऽस्य •
ऋ॰१०४ अनु॰१३

१६.५९

शौ १०.२.१ केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।
शौ केनाङ्गुलीः • • आभृते पौरुषम्...
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ ? मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१॥ • पेशिनी • खनि...
शौ २ कस्मान् नु गुल्फाव् अधराव् अकृण्वन्न् अष्ठीवन्ताव् उत्तरौ पूरुषस्य । ...अकृण्वन् अष्ठीवन्ताव् उत्तरौ पौरुषस्य
निर्ऋत्य जङ्घे न्य् अदधुः क्व स्विज् जानुनोः संधी क उ तज् जजान ॥२॥ निर्ऋति • नि दधुः क्व स्वितजानुनोः संधी क्व [जजान
शौ ३ चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्याम् ऊर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् । चतुष्ट • संहितान्तं • • शिथि •
श्रोणी यद् ऊरू क उ तज् जजान याभ्यां कुसिन्धं सुधृतं बभूव ॥३॥ श्रोणी • ऊरू क • • जजान...
शौ ४ च ततो मीनाविश्वज्जुः कति देवाः कतमे त आसन्] मीलतु वक्षो अग्निर्यं ? पूरुषस्य । • • कतिये... पौरुषम्
कति स्तनौ न्य् अदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीर् अचि-
न्वन् ॥४॥ } • • नि दधुः • कफोडौ... अचिन्वे
शौ ५ को ऽस्य बाहू सम् अभरद् वीर्यं करवाद् इति ।
अंसौ [को] अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्य् आ दधाद् अधि ॥५॥ ...करवान् •
शौ ६ मस्तिष्कम् अस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् । अंसौ सम • • कुसिन्धे • •
शौ • • इत्यां पूरुषस्य चित्वा चित्यं पुरुषस्य महो दिवं रुरोह कतमस् स देवः ॥६॥ • अति...
शौ ६ कस् सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाव् इमौ नासिके चक्षणी मुखम् । यदा चित्यं • • दिवो • कतमस देवाः
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपादो यन्ति यामम् ॥७॥ • • खनि • • शीर्षणि कर्णाव् चक्षिणी
शौ ७ हन्वोर् हि जिह्वाम् अदधात् पुरूचीम् अधा महीम् अधि शिश्राय वाचम् । येषा • विजयस्य मह्मनि... योमुप [मंदिनी •
[स] वर्वर्ति महिना व्योमन्न् अ[पो] वसानः क उ तच् चिकेत ॥८॥ अदधात् • • अदधत् • अथा महीम् अधि
शौ १३ मूर्धानम् अस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् । ...व्योमं... [वसानः •
मस्तिष्काद् ऊर्ध्वः प्रैरयत् पवमा[नो] ऽधि शीर्षतः ॥९॥ • • संसीव्याथर्वा...
शौ २७ तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत् प्राणो ऽभि रक्षति शिरो अन्नम् अथो मनः ॥१०॥ ऋ॰१५ • शार्वणस्... समुब्जितः
• • • रक्षतु शीर्षम् • •

१६.६०

शौ १०.२.९ प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः ।
आनन्दान् उग्रो नन्दांश् च कस्माद् वहति पूरुषः ॥१॥ • • स्वप्नो °तन्द्रय:
शौ १० आर्तिर् अवर्तिर् निर्ऋतिः कुतो ऽधि पुरुषे ऽमतिः । आनन्दन्... अर • पौरुषः
राद्धिः समृद्धिर् अव्यृद्धिर् मतिर् उदितयः कुतः ॥२॥ • ऋति • • नि: • •
शौ ११ को ऽस्मिन्न् आपो व्य् अदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः । आपो... उदयः कुतः
तीव्रा अरुणा लोहिनीस् ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥३॥ ...पुरूवृतः °सृत्याय जाता
शौ १२ को ऽस्मिन् रूपम् अदधात् को मह्मानं च नाम च । तीव्रारुणा... वाचीः • तिरश्ची
गातुं को ऽस्मिन् कः केतुं कश् चरित्राणि पूरुषे ॥४॥ ...च
शौ १३ को ऽस्मिन् रेतो न्य् अदधात् तन्तुर् आ तायताम् इति । • • गिति • केतुम्... पौरुषे
मेधां को ऽस्मिन्न् अध्य् औहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥५॥ तीयताम् इति
शौ १५ को वाससा पर्य् अदधात् को ऽस्यायु[र् अ]कल्पयत् । • • अध्य्औहद् • बाणं • नृतो •
बलं को ऽस्मै प्रायच्छत् को ऽस्याकल्पयज् जवम् ॥६॥ • • पर्य् अदधत्...
• • कौ... जीवं

शौ १३ को ऽस्मिन् प्राणम् अवयात् को अपानं व्यानम् उ ।
समानम् अस्मिन् को देवो ऽधि शिश्राय पूरुषे ॥७॥
शौ १४ को ऽस्मिन् यज्ञम् अदधाद् एको ऽग्रे अधि पूरुषे ।
को ऽस्मिन् सत्यं को अनृतं को मृत्युं को अमृतं दधौ ॥८॥
शौ १६ केनापो ऽन्व् अतनुत केनाहर् अजनयद् रुचे ।
उषसं केनान्व् ऐन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥९॥
शौ १८ केनेमां भूमिम् और्णोत् केन पर्य् अभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥१०॥ ॥ऋ° १॥

१६.६१

शौ १०.२.२१ दिवमुक्षीर्थिवा । केन देवां अनु क्षियति केन दैवीर् अजनयद् दिशः ।
केनेदम् अन्यन् नक्षत्रं केन सत् क्षत्रम् उच्यते ॥१॥
शौ १९[१-२] केन पर्जन्यम् आप्नोति केन सोमं विचक्षणम् ।
शौ २०[१-२] केनेदम् अग्निं पुरुषः केन संवत्सरं ममे ॥२॥
शौ २४ केनेयं भूमिर् निहिता केन द्यौर् उत्तरा हिता ।
केनेदम् ऊर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥३॥
शौ २५ ब्रह्मणा भूमिर् निहिता ब्रह्म द्याम् उत्तरां दधौ ।
ब्रह्मेदम् ऊर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥४॥
शौ २० केन श्रोत्रियम् आप्नोति केन सोमं विचक्षणम् ।
केनेदम् अग्निं पुरुषः केन संवत्सरं ममे ॥५॥
शौ २१[३-४] ब्रह्म श्रोत्रियम् आप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।
शौ २१[३-४] ब्रह्म यज्ञं च श्रद्धां च ब्रह्माग्निश् च हितं मनः ॥६॥
क इदम् अस्थि [सम् अ]सृजत क इदं मांसं सम् अभरत् ।
क इमां त्वचं च [लोमं च] क इदं रूपं सम् ऐरयत् ॥७॥
ब्रह्मास्थि सम् [अ]सृजत ब्रह्म मांसं सम् अभरत् ।
ब्रह्म त्वचं च लोमं [च] ब्रह्म रूपं सम् ऐरयत् ॥८॥
क इदं चक्षुर् असृजत कः प्राणं कश् च आमयत् ? ।
क इदं मनश् च वाचं च क इमां सम् अभरत् पुरम् ॥९॥
ब्रह्म चक्षुर् असृजत ब्रह्म मे ? प्राणम् आयमत् ? ।
ब्रह्म मनश् च वाचं च ब्रह्मेमां सम् अभरत् पुरम् ॥१०॥ ॥ऋ° २॥

१६.६२

शौ १०.२.३० नैनं चक्षुर् जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्मात् पुरुष उच्यते ॥१॥
शौ २९ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश् चायुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२॥
शौ ३१ अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूर् अयोध्या या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशस् स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३॥
शौ ३२ तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्रिदिवे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् अन्तर् आत्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥४॥
शौ ३३ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥५॥ ॥ऋ° ४॥

१६.६३

शौ १०.३.१ अयं ते वरणो मणिस् सपत्नक्षयणः कृतः ।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥१॥
शौ २ प्रैनां शृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस् ते ऽस्तु पुरएता पुरस्तात् ।

अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारम् असुराणां श्वःश्वः ॥२॥
शौ ३ अयम् मणिर् वरणो विश्वभेषजस् सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः ।
स ते शत्रून् अधरान् पादयाति पूर्वस् तान् दभ्नु च ये त्वा द्विषन्ति ॥३॥
शौ ४ अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयम् अयं वधम् ।
अयं ते सर्वं पाप्मानं वरणो वारयिष्यते ॥४॥
शौ ५ वरणो वारयाता इदं देवो बृहस्पतिः ।
यक्ष्मः प्रविष्टो यो ऽस्मिन् तम् उ देवा अवीवरन् ॥५॥
शौ ६ स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगस् सृतं यदि धावाद् अजुष्टम् ।
परिक्षवाच् छकुनेः पापवादाद् अयं मणिर् वरणो वारयाते ॥६॥
शौ ७ अराय्या मा निर्ऋत्या अभिचाराद् अथो भया[त्] ।
मृत्योर् ओजीयसो वधाद् त्वं वरण वारय ॥७॥
शौ ९ वरणेन प्र व्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो ऽप्य् अगुस् ते यन्त्व् अधमं तमः ॥८॥
शौ ८ यन् मे माता यन् मे पिता भ्रातरो यच् च मे स्वा यद् एनश् चकृमा वयम् ।
ततस् मा वारयिष्यत इदं देवो बृहस्पतिः ॥९॥
शौ १० अरिष्टो ऽयम् अरिष्टगुर् आयुष्मान् सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥१०॥ ॥ऋ° ५॥

१६.६४

शौ १०.३.११[१-२] अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
शौ ११[३-४] स मे क्षत्रं च राष्ट्रं च पशून् ओजश् च मे दधत् ॥१॥
शौ १२[१-२] इमं बिभर्मि वरणम् आयुष्मान् शतशारदः ।
शौ ११[३-४] स मे शत्रून् [वि] बाधताम् इन्द्रो दस्यून् इवासुरान् ॥२॥
शौ १३ यथा वातो वनस्पतीन् औषधीन् भनक्त्य् ओजसा ।
एवा सपत्नांस् त्वं भङ्ग्धि पूर्वान् जातान् उतापरान् वरणस् त्वाभि रक्षतु ॥३॥
शौ १५ यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाश् शेरे न्यर्पिताः ।
[एवा सपत्नांस्] त्वं सर्वान् प्र क्षिणीहि न्य् अर्पय [पूर्वान् जातान् उतापरान्] वरणस् [त्वाभि रक्षतु] ॥४॥
शौ १४ यथा वातश् चाग्निश् च सर्वान् प्साती वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नांस् त्वम् प्साहि पूर्वा[न्] जातान् उतापरान् वरणस् त्वाभि रक्षतु ॥५॥
शौ १६ तांस् त्वं प्र छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशु[षु] दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥६॥
शौ १७[१-२] यथा सूर्यो ऽति भाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा सपत्नांस् त्वं सर्वान् अति भाहि श्वःश्वो वरणस् त्वाभि रक्षतु ॥७॥
शौ १९ यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि ।
एवा मे [व]रणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम् ॥८॥
शौ २२ यथा यशो अग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः ।
[एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम्] ॥९॥
शौ २१ [यथा यशस्] सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
[एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम्] ॥१०॥ ॥ऋ° ६॥

१६.६५

शौ १०.३.२० [यथा] यशः कन्यायां यथास्मिन् संभृते रथे ।

[एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम्] ॥१॥
शौ १८ [यथा] यशश् चन्द्रमस्य आदित्ये [च नृ]चक्षसि ।
[एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम्] ॥२॥
शौ २४ यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् जातवेदसि ।
[एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम्] ॥३॥
शौ २५ यथा देवेष्व् अमृतं यथैषु सत्यम् आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सम् उक्षतु यशसा सम् अनक्तु माम् ॥४॥ ॥ऋ° ७॥ ॥अनु° १०॥

१६.६६

ऋ १.१६४.१-१० शौ ९.९ [१-४,६,७,५,८-१०] अस्य वामस्य पलितस्य होतुस् तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्य् अश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥
सप्त युञ्जन्ति रथम् एकचक्रम् एको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभिचक्रम् अजरम् अनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२॥
इमं रथम् अधि ये सप्त तस्थुस् सप्तचक्रं सप्त वहन्त्य् अश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३॥
को ददर्श प्रथमं जायमानम् अस्थन्वन्तं यद् अनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुर् असृग् आत्मा क्व स्वित् को विद्वांसम् उप गात् प्रष्टुम् एतत् ॥४॥
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानाम् [एना] निहिता पदानि ।
वत्से बष्कये ऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥५॥
अचिकित्वान् चिकितुषश् चिद् अत्र कवीन् पृच्छामि [वि]द्मनो न विद्वान् ।
वि यस् तस्तम्भ षड् इमा रजांस्य् अ[जस्य] रूपे किम् अपि स्विद् एकम् ॥६॥
इह ब्रवीतु य ईम् अङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७॥
माता पितरम् ऋत आ बभाज धीत्य् अग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर् गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इद् उपवाकम् ईयुः ॥८॥
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया [अ]तिष्ठद् गर्भो वृजनीष्व् अन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गाम् अपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९॥
तिस्रो मातॄस् त्रीन् पितॄन् बिभ्रद् एक ऊर्ध्वस् तस्थौ नेम् अव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचम् अविश्वमिन्वाम् ॥१०॥ ॥ऋ° १॥

१६.६७

ऋ १.१६४.११-१४,१९,१२ द्वादशारं नहि तज् जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्याम् ऋतस्य ।
शौ ९.९.१३ आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश् च तस्थुः ॥१॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
शौ ११ अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुर् अर्पितम् ॥२॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्न् आ तस्थुर् भुवनानि विश्वा ।
शौ १२ तस्य नाक्षस् तप्यते भूरिभारस् सनाद् एव न शीर्यते सनाभिः ॥३॥
सनेमि चक्रम् अजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
शौ १४ सूर्यस्य चक्षू रजसैत्य् आवृतं यस्मिन्न् आर्पिता भुवनानि विश्वा ॥४॥
साकंजानां [स]प्तथम् आहुर् एकजं षड् इद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
शौ १६ तेषाम् इष्टानि विहितानि धामशस् स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥५॥
ऋ शौ १५ अक्षण्वान् न वि चेतद् स्त्रियस् सतीस् तां उ मे पुंस आहुः पश्यद् अक्षण्वान् न वि चेतद् अन्धः ।

कविर् यः पुत्रस् स ईम् आ चिकेत यस् ता विजानात् स पितुष् पितासत् ॥६॥
शौ १७ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौर् उद् अस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विद् अर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥७॥
शौ १८ अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
ऋ शौ कवीयमानः क इह प्र वोचद् शौ १९ कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥८॥
ये अर्वाञ्चस् तां उ पराच आहुर् ये पराञ्चस् तां उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश् च या चक्रथुस् सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥९॥
शौ २० द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोर् अन्यः पिप्पलं स्वाद्व् [अ]त्य् अनश्नन्न् अन्यो अभि चाकशीति ॥१०॥
शौ २२ यस्मिन् वृक्षे मध्वदस् सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येद् आहुः पिप्पलं स्वाद्व् अग्रे तन् नोन् नशद् यः पितरं न वेद ॥११॥
शौ २१ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षम् अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपास् स मा धीरः पाकम् अत्रा विवेश ॥१२॥ ॥ऋ° २॥

१६.६८

शौ ९.१०.१-७,९,८,११
ऋ १.१६४.२३ यद् गायत्रे अधि गायत्रम् आहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज् जगत्य् आहितं पदं य इत् तद् वि[दु]स् ते अमृतत्वम् आनशुः ॥१॥
ऋ २४ गायत्रेण प्रति मिमीते [अ]र्कम् अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२॥
ऋ २५ जगता सिन्धुं दिव्य् अस्कभायद् रथन्तरे सूर्यं पर्य् अपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस् तिस्र आहुस् ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥३॥
ऋ २६ उप ह्वये सुदुघां धेनुम् एतां सुहस्तो गोधुग् उत दोहद् एनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन् नो ऽभीद्धो घर्मस् तद् उ षु प्र वोचम् ॥४॥
ऋ २७ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्सम् इच्छन्ती मनसाभ्य् आगात् ।
दुहाम् अश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥५॥
ऋ २८ गौर् अमीमेद् अभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङ् अकृणोन् मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्मम् अभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥६॥
ऋ २९ अयं स शिङ्क्ते येन गौर् अभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनाव् अधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर् नि [हि] चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिम् औहत ॥७॥
ऋ १०.५५.५ विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यस् सम् आन ॥८॥
ऋ १.१६४.३० अनच् छये तुरगातु जीवम् एज[द्] ध्रुवं मध्यम् आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिर् अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥९॥
ऋ ३१ अपश्यं गोपाम् अनिपद्यमानम् आ च परा च पथिभिश् चरन्तम् ।
स सध्रीची[स्] स विषूचीर् वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्व् अन्तः ॥१०॥ ॥ऋ° ३॥

१६.६९

ऋ १.१६४.३२ शौ ९.१०.१० य ईं चकार न सो [अ]स्य वेद य ईं ददर्श हिरुग् इन् नु तस्मात् ।
स मातुर् योना परिवीतो अन्तर् बहुप्रजा निर्ऋतिम् आ विवेश ॥१॥
ऋ ३३ शौ १२ द्यौर् मः पिता जनिता नाभिर् अत्र बन्धुर् मो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश् चम्वोर् योनिर् अन्तर् अत्रा पिता दुहितुर् गर्भम् आधात् ॥२॥
ऋ ३४ शौ १३ ऋ १०.१८.१ पृच्छामि त्वा परम् अन्तं पृथिव्याः पृच्छामि त्वा भुवनस्य नाभिम् ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतो वाचः पृच्छामि परमं व्योम ॥३॥
ऋ ३५ शौ १४ इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

[illegible]

१६.७०

[illegible]

१६.७१

[illegible]

यावन्तस् तण्डुलास् त[स्] तस्य विष्ठास् तावन्तो यज्ञात् तत् तस्य दोहाः ।
तावती स्वधा घृतह्रदा मे ऽस्त्व् ह्रदां मधुपूर्णं व्योमन् ॥५॥
यम् ओदनं पचामि श्रद्दधानः पात्रे पूर्णं घृतह्रदं सुपक्वः ।
स मे मा क्षेष्ट सरम् इष्यमाणः पितॄणां लोके परमे व्योमन् ॥६॥
ओदनः पाकेन सारो दक्षिणया ब्राह्मणेभ्यो दत्तो ऽमृतत्वं दधाति ॥७॥
सुवर्णम् अभीरद् अनु दर्मीन् आगन् दिवम् पृष्ठान् शकुन इवारोहन् ।
सं ब्राह्मण प्राणभृतं सृजामि सं पीयेन पयसाशिषा च ॥८॥
आरभ्य गच्छ सुकृताम् यदि लोकं ते त्वां माक्षन्तु दक्षिणतो निषद्य ।
अग्निष्टोमेन सरसं हि याथ अथोक्थ्यम् अतिरात्रं च गच्छ ॥९॥
द्विरात्रमात्रस् त्र्यहं विश्वरूप ? अथा रोह चतुरात्रं रथम् ।
एकरात्रेण कल्पमाना हि याथ अथ सप्तरात्रं दशरात्रं च गच्छ ॥१०॥
द्वादशाहं परिभूय विभ्वत एकविंशत्या विमृधो नुदस्व ।
एकविंशत्या विमृधो हि याथ अथैकचत्वारिंशत उप याथ पन्थान् ।
त्रयस्त्रिंशतामृतो मृत्या त्रिमास्यम् ओदन मा रमस्व ॥११॥ अ॰१॥

१६.७२

यद् वा वत्सरं च प्रभृत्य विष्टपि परमे व्योमन् ।
नाकस्य नाकम् अभि संभवोदन सत्या नयन्तु सुखतो निर्मातुम् ? ॥१॥
आदित्या रुद्रा वसवस् सचेतसो विश्वे देवा ऋतुभिस् संविदानाः ।
इमं रक्षन्तु रथम् अप्रमादम् ॥२॥
यद् आवत्सरं च परिवत्सरं च संवत्सरम् अहोरात्राणि मासाः ।
सूर्याचन्द्रमसो ऽनुभूतिं चाल्यस्याभूतिम् अत्यान ? ।
ओदन यम् इदं पितरो यम्ं देवाः पुरोहितं तपसा ब्रह्मणा च ।
स्वधाम् ऊर्जं रक्षतम् आ जुहोमि वाते देवे पवमाने बृहस्पतौ चतुर्धाभ्य ओदनः कल्पमानः ॥३-४॥
ऊर्जं देवान् स्वधा पितॄन् शरीरं मनुष्यान् आतिदभ्यो ब्राह्मणान् ।
सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥५॥
अयं पन्था ओदन देवयानो ऽनाष्ट्रो मृत्युना तेन याहि ।
अद्युध स्वधो निहतस् सुकृतिभिर् ब्रह्मणा सृष्टः प्रतिष्ठापयस्मयाः ? ॥६॥
यत्र ते गृहा ओदन तत् परेहि यत्राप[स्] तद् गच्छन्त्व् आपः ।
यत्र योनिम् ओदनं ब्राह्मणा विदुस् सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥७॥
हुतं ते प्राणि हुतम् अस्तु चक्षुषि हुतं विज्ञाने हुतम् अस्तु ते बलं ।
श्रोत्रे प्राणे ते हुतं प्रजामृतत्वे ते हुतं कामे च हुतम् अस्तु ते ॥८॥
यथाप्रियो यदि वा स इन्द्रो यम् मारुतो मरुतो वैश्वदेवाः ।
यम् ते अग्निर् नृम्णानाम् अग्नय[स्] तस्मिन्न् एक[स्] सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥९॥
य आविवेश भुवनं मनुष्यम् अग्निर् यो वह्निः प्रथमो वयोधाः ।
तस्मिन्न् एकस् [सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन्] ॥१०॥ अ॰१॥

१६.७३

या ते तनूर् अवज्ञाम मन्येर् ? देवानां सख्यम् उप सेदिमा वयम् ।
अप्सुचरा गहरेष्ठा महित्वा तस्याम् एक[स्] सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥१॥
अहंयमानाग्नेयो ? गृहं संवासे भद्रा सुमना अघोरा ।
प्रति त्वा वर्षवृद्धम् एतु ॥२॥
येषां न स्वधा तवगात् असिन्नी ; स्मृतेष्व् अमृताद्दृताभूत् ? ।
तान् मा योपादि ? सखम् अस्माकम् अस्माकम् एतोर् अनु रक्ष जागृपि ॥३॥
ये नो निधिम् अभिधामन्तु ये ते मायाम् मोदं यमराज्ये ।

[illegible]

१६.७४

[illegible]
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥२॥
[illegible]
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥३॥
[illegible]
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥४॥
[illegible]
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥५॥
[illegible]

१६.७५

[illegible]

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर् [अ]वोचम् अहं त्वत् ॥१०॥
पादाभ्यां ते गुल्फाभ्यां जङ्घाभ्यां जानुभ्याम् ऊरुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकाद् अर्षणीर् उष्णिहाभ्यो ग्रीवाभ्यस् स्कन्धेभ्यश् शीर्ष्णो रोगम् अनीनशम् ॥११॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन् सूर्य आदित्यो अङ्गानि रोमं नशानि सर्वाणि चाङ्गनाश [अ]मी-मदात् ॥१२॥ अ॰१५ अनु॰१०॥

१६.७६

सपत्नहनम् ऋषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैस् सपत्नान् मम पादय त्वम् अभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥
यन् मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन् मे हृदये नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोद् अहं भिदेयम् ॥२॥
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्ताम् अस्वगताम् अवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यम् अंहूरणा चिकित्सा[त्] ॥३॥
सा ते काम दुहिता धेनुर् उच्यते याम् आहुर् वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्य् एनान् प्राणः प्रजा पशवो जीवनं वृणक्तु ॥४॥
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो [विष्णोर्] बलेन सवितुस् सवेन ।
अग्नेर् होत्रेण प्र णुदे सपत्नान् शम्बीव [नाव]म् उदकेषु धीरः ॥५॥
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यम् असपत्नम् एव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवम् आ यन्तु म इमम् ॥६॥
यम् म आज्यं घृतम् इह जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयन्ताम् ।
कृण्वन्तु मह्यम् असपत्नम् एव ॥७॥
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैस् सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां सपत्नानाम् अधमा तमांस्य् अग्ने वास्तून्य् अनुनिर्दह त्वम् ॥८॥
जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्य् अव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया [अ]रसास् सन्तु सर्वे यथा न जीवात् कतमश् चनैषाम् ॥९॥
अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकम् अकरन् मह्यम् एधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रो मह्यं षड् उर्वीर् घृतम् आ वहन्तु ॥१०॥
अ॰१॥

१६.७७

कौ॰ ९.२.१९ यत् ते काम शर्म त्रिवरूथम् उद्भु ब्रह्म वर्म विततम् अनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्य् एनान् [प्राणः] प्रजाः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥१॥
[ते] अधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौर् इव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनर् अस्ति निवर्तनम् ॥२॥
अग्निर् [यव] इन्द्रो यवस् सोमो [यवो] यव[यावानो] यावयन्त्व् अमुम् ।
आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रं जीवलोकं मृतलोकं करामुम् ? ॥३॥
असर्ववीरश् चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यस् स्वानाम् ।
उत पृथिव्याम् अव स्यन्ति विद्युत उग्रो [वो] देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥४॥
च्युता चेयं बृहत्य् अच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश् च सर्वान् ।
उद्यन्न् आदित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैस् सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥५॥
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो निनाय ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास् तान् अस्माल् लोकात् प्र णुदस्व सर्वान् ॥६॥
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास् तान् अस्माल् लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥७॥

शौ १९ कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो नोत मर्त्याः ।
ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥८॥ ॥ऋ°१॥

१६.७८

शौ ९.२.१९ न वै [वा]तश् चन कामम् आप नाग्निस् सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥१॥
न वा आपश् चन कामम् आपुर् नाहोरात्राणि निहितानि यन्ति ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥२॥
न वै पुण्यजनाश् चन कामम् आपुर् न गन्धर्वाप्सरसो न सर्पाः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥३॥
शौ २० यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावद् आपस् सिष्यदुर् यावद् अग्निः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥४॥
शौ २१ यावतीर् दिशः प्रदिशो विषूचीर् यावतीर् आशा अभिचक्षणा दिवः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥५॥
शौ २२ यावतीर् भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर् वघा वृक्षसर्प्यो [बभूवुः] ।
ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥६॥
शौ २५ यास् ते शिवास् तन्वः काम भद्रा याभिस् सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष् ट्वम् अस्मान् अभिसंविशस्वान्यत्र पापीर् अप वेशया धियः ॥७॥ ॥ऋ°१॥

शौ ८.६.१–६,८,७,९,१० १६.७९

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधद् अलिंश उत वत्सपः ॥१॥
शौ शकुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकं पलालानुपलालौ ? शुष्कं कोकं मलीमृतं पलीलकम् ? ।
'शौ आश्रेषं आश्रेषं ? वव्रिवास[स]म् ऋक्षग्रीवं प्रमीलिनं मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥२॥
मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपो [ऽ]न्तरा ।
कृणोम्य् अस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३॥
दुर्णामा च सुनामा चोभौ संवृतम् [इच्छतः ।
अरायान् अप हन्मस् सुनामा स्त्रैणम्] इच्छताम् ॥४॥
यः कृष्णः केश्य् असुरस् स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायान् अस्या भंससो मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥५॥
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादम् उत रेरिहम् ।
अरायान् श्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥६॥
'शौ स्वपति यस् त्वां सुप्तां छिनत्ति ? यश् च दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायाम् इव प्र तान् सूर्यः परिक्रामन्न् अनीनशत् ॥७॥
यस् त्वां सुप्तां निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस् तान् सहताम् इतः क्लीबरूपांस् तिरीटिनः ॥८॥
यः कृणोति मृतवत्साम् अवतोकाम् इमां स्त्रियम् ।
तम् ओषधे त्वं नाशयास्याः कमलम् अञ्जिवम् ॥९॥
ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः ।
तान् ओषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥१०॥ ॥ऋ°१॥

१६.८०

शौ ८.६.११ कुकुन्धाः कुकूरभाः [कृत्तीर् ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर् दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तान् [न्] इतो नाशयामसि ॥१॥
शौ १५ येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखम् ।
'शौ खलजाः खलजाश् शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः ? कुम्भमुष्का [अ]यासवः ।
तान् अस्या ब्रह्मणस् पते प्रतीबोधेन नाशय ॥२॥
शौ २१ ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तम् अमुं दिवः ।
'शौ मकान् अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल् लोहितास्यान् मकान् ? नाशयामसि ॥३॥
शौ १४ य आत्मानम् अतिमात्रम् अंस आधाय बिभ्रति ।
यजश् च तेषां पिङ्गश् च हृदये ऽधि नि विध्यताम् ॥४॥
शौ १३ अंस [य] आत्मानम् अतिमात्रम् अंहिम् ? आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥५॥
शौ १४ ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
शौ आपाकेष्ठाः ('स्था' च) आपाकेष्ठाः ? प्रहासिनस् स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस् ता[न्] इतो नाशयामसि ॥६॥
शौ १६ पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणास् सन्तु पण्डगाः ।
'शौ पादय अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्य् अपति[स्] स्वपतिं स्त्रियम् ॥७॥
शौ १० उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तम् उदुम्बलं तुण्डेलम् उत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौर् इव स्पन्दना ॥८॥
शौ १८ यस् ते गर्भं प्रतिमृशाज् जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस् तम् उग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥९॥
शौ १९ ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका [अ]नुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रम् इव अजतु ॥१०॥ ॥ऋ°५॥

१६.८१

शौ ८.६.२० परिसृष्टं धारयतां यद् धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥१॥
'शौ ८.६.२' परिपाणं पुरुषाणां रक्षसाम् असि चातनम् ।
अरायान् सर्वान् दुर्णाम्नो यातुधानान् विषूचीनान् वि नाशय ॥२॥
शौ २२ पवीनसात् तङ्गल्वाच् छायकाद् उत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥३॥
शौ २३ द्व्यास्याच् चतुरक्षात् पञ्चपादाद् अनङ्गुलेः ।
वृन्ताद् अभि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥४॥
शौ २३ य आमं मांसम् अदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवा अरायान् अस्या भंससो मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥५॥
शौ २५ पिङ्ग रक्ष जायमानं पुमांसं मा स्त्रियम् क्रन् ।
आण्डादो गर्भान् मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥६॥
शौ २६ अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम् आद् रोदम् अघम् आवयम् ।
वृक्षाद् इव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥७॥
पिङ्ग जहि यातुधानान् दुर्गन्धींल् लोहितास्यान् ।
त्वया प्रणुत्ताः क्रव्यादो विश्वञ्चो यन्ति निर्हताः ॥८॥ ॥ऋ°१॥ ॥अनु°११॥

शौ ११.७.१–१० १६.८२

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश् चाग्निश् च विश्वम् अन्तस् समाहितम् ॥१॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।

आपस् समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहि[तः] ॥२॥
सन्न् उच्छिष्टे [अ]संश् चोभौ मृत्युर् वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश् च द्रश् चापि श्रीर् मयि ॥३॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिम् इव सर्वतश् चक्रम् उच्छिष्टे देवता [आ]हिता[ः] ॥४॥
ऋक् साम यजुर् उच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिंकार उच्छिष्टे स्वरस् साम्नो मेडिश् च [त]न् मयि ॥५॥
ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर् महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्य् अन्तर् गर्भ इव मातरि ॥६॥
राजसूयं वाजपेयम् अग्निष्टोमस् तद् अध्वरः ।
अर्काश्वमेधाव् उच्छिष्टे जीवबर्हिर् मदिन्तमः ॥७॥
अग्न्याधेयम् अथो दीक्षा कामप्रश् छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञास् सत्राण्य् उच्छिष्टे ऽधि समाहिताः ॥८॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टे ऽधि समाहिताः ॥९॥
एकरात्रस् त्रिरात्रश् च सद्यःक्रीः प्रक्रीर् उक्थ्यः ।
ओतं निहितम् उच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥ ॥ऋ°१॥

शौ ११.७.११–२० १६.८३

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश् चोभयस् सह ।
षोडशी सप्तरात्रश् चोच्छिष्टा[ज्] जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा [अ]मृते हिता[ः] ॥१॥
प्रतीहारो निधनं विश्वजिच् चाभिजिच् च यः ।
साह्नातिरात्राव् उच्छिष्टे द्वादशाहो ऽपि तन् मयि ॥२॥
सूनृता संनतिः क्षेमस् स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तृप्यन्ति ॥३॥
नव भूमीस् समुद्राश् चोच्छिष्टे ऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्य् उच्छिष्टे ऽहोरात्रे च तन् मयि ॥४॥
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा दिवि श्रिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥५॥
पिता जनितुर् उच्छिष्टो ऽसोः पौत्रश् च पितामहः ।
शौ स क्षियति स क्षियति ? विश्वस्येशानो वृषा भूम्याम् अतिघ्न्यः ॥६॥
ऋतं सत्यं तपो दीक्षा श्रमो धर्मश् च कर्म च ।
भूतं भविष्य[द्] उच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर् बलं बले ॥७॥
समृद्धिर् ओज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षड् उर्व्यः ।
संवत्सरो ऽध्य् उच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥८॥
चतुर्होतार [आ]प्रियश् चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राश् च पशुबन्धास् तद् इष्टयः ॥९॥
शौ-वोर्ह्य मुदिर ? अर्धमासाश् च मासाश् चार्तवा ऋतुभिस् सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीर् आप[स्] स्तनयित्नु[श्] श्रुतिर् मही ॥१०॥ ॥ऋ°१॥

१६.८४

शौ ११.७.२१ शर्करा[स्] सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस् तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षम् उच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥१॥
शौ २२ राद्धिः प्राप्ति[र्] व्याप्तिस् समाप्ति[र्] मह एधतुः ।
अत्याप्तिर् उच्छिष्टे भूतिर् आहिता निहिता हिता ॥२॥
शौ २३ यच् च प्राणति प्राणेन यच् च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥३॥
शौ २५ प्राणापानौ चक्षुश् श्रोत्रम् अक्षितिश् [च क्षितिश्] च या ।

[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥४॥
शौ २७ देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश् च ये ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥५॥
शौ ऋचस् सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥६॥
अथर्वाङ्गिरसो ब्रह्म सर्पपुण्यजनाश् च ये ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥७॥
शौ २६ आनन्दाश् च प्रमोदाश् चाभिमोदमुदश् च ये ।
उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥८॥ ॥ऋ°१॥

१६.८५

शौ ११.८.१ यन् मन्युर् जायाम् आवहत् संक[ल्प]स्य गृहाद् अधि ।
क आसन् जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥१॥
शौ २ तपश् चैवास्तां कर्म चान्तर् महत्य् अर्णवे ।
त आसन् जन्यास् ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥२॥
शौ ३ दश साकम् अजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥३॥
शौ ४ प्राणापानौ चक्षुश् श्रोत्रम् अक्षितिश् च क्षितिश् च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस् ते वा आकूतिम् आवह[न्] ॥४॥
शौ ५ अजाता आसन्न् ऋतवो ऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठम् उपासत ॥५॥
शौ ६ तपश् चैवास्तां कर्म चान्तर् महत्य् अर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस् तत् ते ज्येष्ठम् उपासत ॥६॥
शौ ८ कुत इन्द्रः कु[त]स् सोम[ः] कुतो ऽग्निर् अजायत ।
कुतस् त्वष्टा सम् अभवत् धाता सम् अभवत् कुतः ॥७॥
शौ ९ इन्द्राद् इन्द्र[स्] सोमात् सोमो अग्नेर् अग्निर् अजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर् धाता धातुर् अजायत ॥८॥
शौ १० ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिन् ते लोक आसते ॥९॥
शौ ७ यदा भूमिः पूर्वासीद् यां अजानय इद् विदुः ।
कं तस्यां देवा आसने कस्मिन् सार्धिश्रिताः ॥१०॥ ॥ऋ°४॥

१६.८६

शौ ११.८.११ कुतः केशान् कुतस् स्नाव कुतो ऽस्थीन्य् आभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१॥
शौ १२ यदा केशान् अस्थि स्नाव मांसं मज्जानम् आभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकम् अनु प्राविशत् ॥२॥
शौ १३ संसिचो नाम ते देवा ये संभारैस् समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषम् आविशन् ॥३॥
शौ १४ शिरो हस्ताव् अथो बाहू जिह्वां ग्रीवाश् च कीकसाः ।
शौ १४ पृष्टीर् बर्जह्ये पार्श्वे कस् तत् सम् अदधाद् ऋषिः ॥४॥
शौ १४ ऊरू पाद[ाव् अ]ष्ठीवन्तौ श्रोणी हस्ताव् अथो मुखम् ।
शौ १५ त्वचा प्रावृत्य तत् सर्वं [सं]धा सम् अदधान् मयि ॥५॥
शौ १६ यत् तच् छरीरम् अशयत् संधया संहितं मयि ।
वर्णेरम् अद्य रोचते को ऽस्मिन् वर्णम् आभरत् ॥६॥
शौ १७ सर्वे देवा उपाशिक्षन् तद् अजानाद् वधूस् सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णम् आभरत् ॥७॥
शौ १८ यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर् य उत्तरः ।

[illegible] ओदनो पृथ्वो [illegible] तेजो ब्रह्मणे [illegible] ॥४॥
[illegible] पुरुषस्य तेजो विश्वेषु [illegible] विश्वमेति ।
[illegible] मनसा ये विश्वक्षितः परिभुवः परि [illegible] विश्वतः ॥५॥
[illegible] यद् देवेषु अस्ति विश्वस्य संसृष्टो वशिता करोमि ।
यथा मानम् प्रथमजा [illegible] चक्रो अमृते आत्मन् [illegible] ॥६॥
[illegible] पृथिवी [illegible] ।
[illegible] विश्वकर्मा [illegible] विश्वपुर न हि विश्वपुर
[illegible] ॥७॥
[illegible] परमे व्योमन् [illegible] देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
[illegible] विदुस् त इमे समासते ॥८॥
[illegible] विश्वम् [illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥
[illegible] ।
[illegible] पृथिवी [illegible] ॥१३॥

१६.७०

द्यौर् ओदन पृथिवी कुम्भ्यन्तरिक्षं महिमानो मुखा ।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनोर् बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूतं ब्राह्मणेभ्यो निर् वपामि ॥१॥
अग्निभ्यस् [illegible] त्वा जुष्टतमं [illegible] ऊर्जो भागम् [illegible] निर् वपामि ॥२॥
वसवस् त्वा गायत्रेण छन्दसा निर् वपन्तु ॥३॥
रुद्रास् त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा [निर् वपन्तु] ॥४॥
आदित्यास् त्वा जागतेन छन्दसा निर् वपन्तु ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ॥१०॥

१६.७१

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ओदन देवयानं लोके
[illegible] ॥२॥
[illegible] पृथिवी [illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥

यावन्तस् तण्डुलास् त[द्] तस्य विद्वान् तावन्तो यज्ञास् तत् तस्य दोहाः ।
तावती स्वधा घृतपृष्ठ मे ऽस्तूर्ध्वं दुहां मधुपृष्ठं व्योमन् ॥५॥
यम् ओदनं पचसि श्रद्दधानः पात्रे पूर्णं घृतपृष्ठं जुषाणः ।
स मे मा हिंसीत् सरम् इष्यमाणः पितॄणां लोके परमे व्योमन् ॥६॥
ओदनः पाकेन सारो दक्षिणया ब्राह्मणेभ्यो दत्तो अमृतत्वं दधाति ॥७॥
सूर्यस्य भर्गान् अनु रश्मीन् आगन् दिवस् पृष्ठान् नाकम् अरोहन् ।
सं प्राणेन प्राणभृतं सृजामि सं वीर्येण पयसाशिषा च ॥८॥
आरभ्य गच्छ सुकृताम् यदि लोकं ते त्वां प्राञ्चन्तु दक्षिणतो निषद्य ।
अग्निष्टोमेन सरथं हि याथ् अप्तोर्याम् अतिरात्रं च गच्छ ॥९॥
द्विरात्रमात्रस् त्र्यहं विष्णूस्य ? अथा रोह चतुरात्रं रथम् ।
एकरात्रेण कल्पमाना हि याथ् अथ सप्तरात्रं दशरात्रं च गच्छ ॥१०॥
द्वादशाहं परिभूय विश्वत एकविंशत्या विषूथो नुदस्व ।
एकविंशत्या विषूथो हि याथ् अथैकचत्वारिंशत उप याथ् यज्ञान् ।
चतस्त्रिंशतामृतो भूत्वा त्रिमास्यम् ओदन मा रमस्व ॥११॥ ॥ऋ॰११॥

१६.७२

यद् वा वासरं च प्रभस्य विष्टपि परमे व्योमन् ।
नाकेन नाकम् अभि संभवौदन साध्या नयन्तु सुकृतो निर्भातुम् ? ॥१॥
आदित्या रुद्रा वसवस् सचेतसो विश्वे देवा ऋतुभिस् संविदानाः ।
इमं रक्षन्तु सधम् अप्रमादम् ॥२॥
यद् मासान्स्वरं च परिवत्सरं च संवत्सरम् अहोरात्राणि मासाः ।
सूर्यस्याग्निं चन्द्रमसो ऽनुभूतिं वातस्याभूतिम् अन्वाभ ? ।
ओदन यम् इदं पितरो यन्तु देवाः पुरोहितं तपसा ब्रह्मणा च ।
स्वधाम् ऊर्जां रक्षतम् आ जुहोमि याते देवे पवमाने बृहस्पती चतुर्धान्य ओदनः कल्पमानः ॥३-४॥
ऊर्जां देवान् स्वधा पितॄन् शरीरं मनुष्यान् भातिदम्भो ब्राह्मणान् ।
सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥५॥
अयं पन्था ओदन देवयानो मनाकड्ढो मृत्युना तेन याहि ।
? अद्दुप स्वधो निहतस् सुकृतिभिर् ब्रह्मणा सृष्टः प्रतिष्ठायमनस्मान ? ॥६॥
यत्र ते गुहा ओदन तत् परेहि यत्राप[स्] तद् गच्छन्त्य आपः ।
यत्र योनिम् ओदनं ब्राह्मणा विदुस् सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥७॥
हुतं ते वाचि हुतम् अस्तु चक्षुषि हुतं विज्ञाने हुतम् अस्तु ते बले ।
श्रोत्रे प्राणे ते हुतं प्रज्ञामृतत्वे ते हुतं कामे च हुतम् अस्तु ते ॥८॥
यथाग्नयो यदि वा स इन्द्रो यत् मारुतो मरुतो वैश्वदेवाः ।
यस् ते ऽग्निर् नुम्णानाम् अद्य[स्] तस्मिन्न् एत[म्] सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥९॥
य आविवेश नृम्णं मनुष्यम् अग्निर् यो यद्विः प्रथमो वयोधाः ।
तस्मिन्न् एतम् [सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन्] ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.७३

या ते तनूर् अघ्न्यवाम मन्वीर ? देवानां सख्यम् उप सेदिमा वयम् ।
अभ्युक्ता महेष्ठा महिम्ना तस्याम् एत[म्] सुहुतो ऽस्त्व् ओदन सो ऽस्माकम् अस्तु परमे व्योमन् ॥१॥
अहेयमानान्वीतो ? गृहं संयतं भद्रा सुमना अघोरा ।
प्रति त्वा पर्वतुदम् एतु ॥२॥
येषां न स्वधा नवगाज् ञनित्री ? स्मृतेषु अमृतादृताभूत् ? ।
तान् नो गोपाहि ? सधन् अप्रमादम् अस्माकम् पतोर् अनु रक्ष जागृहि ॥३॥
ये नो निधिम् अभिधामन्तु ये तं भावहन् मोदं यमराज्ये ।

राजा तेषां वरुण इन्द्रियाण्य् अग्नि [illegible] इन्द्रो देवेन ।
[illegible] ? यो इद्राम्य् अनुकृत्या ? [illegible] यद् आयन् ॥४॥
[illegible] विजिन्न विजिन्न दृष्टा [illegible] दक्षिणाम् ईयमानाः ।
तान् इन्द्रो देवान् शार्धतिर् अग्निर् मरुद्गणः पतु ग्राहः ।
इदस्पति वरुणस् सोम इन्द्रो मनेव दृशं केवलं कृण्वन्तु ॥५॥ ॥ऋ॰५॥

१६.७४

शीर्षक्त्यं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् ।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे ॥१॥
कर्णाभ्यां ते कङ्कूषेभ्यः शुकिपकर्णो ? विलोहितम् ।
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥२॥
यः कृणोतु प्रमोतम् अन्धं कृणोतु पूरुषम् ।
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥३॥
यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मो श्रावत आस्यतः ।
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥४॥
शीर्षरोगम् अङ्गरोगं विश्वाङ्गेभ्यो विसल्पकम् ।
[सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर् निर्मन्त्रयामहे] ॥५॥
यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम् ।
तक्मानं शीतं वारं च ते ते निर्मन्त्रयामहे ॥६॥
य ऊरू अनुसर्पत्य् अथो य एतु गवीनिके ।
बलासम् आन्तर् अङ्गेभ्यो बहिर् निर्मन्त्रयामहे ॥७॥
यत् कामात् अपकामात् हृदयात् अधि परि ।
हृदो बलासम् अङ्गेभ्यो बहिर् निर्मन्त्रयामहे ॥८॥
हरिमाणं ते अङ्गेभ्यो यक्ष्मोधाम् अन्तर् आत्मनः ।
यक्ष्मं ते सर्वम् अङ्गेभ्यो बहिर् निर्मन्त्रयामहे ॥९॥
आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्व् आमयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर् [अ]वोचम् अहं त्वत् ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.७५

बहिर् बिलं निर् द्रवतु काहाबाहं ? तवोदरात् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर् [अ]वो[चम् अ]हं त्वत् ॥१॥
उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयाद् अधि ।
यक्ष्मोधाम् अन्तर् आत्मनो बहिर् निर्मन्त्रयामहे ॥२॥
याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्य् अर्षणीः ।
अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम् ॥३॥
या हृ[द]यम् उपर्षन्त्य् अनुतन्वन्ति कीकसाः ।
[अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम्] ॥४॥
याः पार्श्वे उपर्षन्त्य् अनुनिक्षन्ति पृष्टीः ।
[अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम्] ॥५॥
यास् तिरश्चीर् उपर्षन्त्य् अर्षणीर् वक्षणासु ते ।
[अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम्] ॥६॥
या गुदा अनुसर्पन्त्य् आन्त्राणि मोहयन्ति च ।
[अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम्] ॥७॥
या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च ।
अहिंसन्तीर् अनामया निर् द्रवन्तु बहिर् बिलम् ॥८॥
ये [अ]ङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणा[स्] तव ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर् [अ]वोचम् अहं त्वत् ॥९॥
विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः ।

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर् [अ]वोचम् अहं त्वत् ॥१०॥
पादाभ्यां ते गुल्फाभ्यां जङ्घाभ्यां जानुभ्याम् ऊरुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः ।
अनूकाद् अर्षणीर् उष्णिहाभ्यो ग्रीवाभ्यस् स्कन्धेभ्यश् शीर्ष्णो रोगम् अनीनशम् ॥११॥
सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन् सूर्य आदित्यो अङ्गानि रोगं नशानि सर्वाणि साग्नानि ? [अ]नीनशत् ॥१२॥ ॥ऋ॰१२॥ ॥अनु॰१०॥

१६.७६

सपत्नहनम् ऋषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन ।
नीचैस् सपत्नान् मम पादय त्वम् अभिष्टुतो महता वीर्येण ॥१॥
यन् मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन् मे हृदये नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वा ? उद् अहं भिदेयम् ॥२॥
दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्ताम् अस्वगताम् अवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यम् अंहूरणा चिकित्सा[त्] ॥३॥
सा ते काम दुहिता धेनुर् उच्यते याम् आहुर् वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्य् एनान् प्राणः प्रजाः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥४॥
कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो [विष्णोर्] बलेन सवितुस् सवेन ।
अग्नेर् होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ् शम्बीव [नाव]म् उदकेषु धीरः ॥५॥
अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः कृणोतु मह्यम् असपत्नम् एव ।
विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवम् आ यन्तु म इमम् ॥६॥
यन् म आज्यं घृतम् इद जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयन्ताम् ।
कृण्वन्तु मह्यम् असपत्नम् एव ॥७॥
इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैस् सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां सपत्नानाम् अधमा तमांस्य् अग्ने वास्तून्य् अनुनिर्दह त्वम् ॥८॥
जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्य् अव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया [अ]रसास् सन्तु सर्वे यथा न जीवात् कतमच् चनैषाम् ॥९॥
अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकम् अकरन् मह्यम् एधतुम् ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रो मह्यं षड् उर्वी[र्] घृतम् आ वहन्तु ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.७७

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथम् उद्भुद् ब्रह्म वर्म विततम् अनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्ग्धि ये मम पर्य् एनान् [प्राणः] प्रजाः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥१॥
[ते] अधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौर् इव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनर् अस्ति निवर्तनम् ॥२॥
अग्निर् [यव] इन्द्रो यवस् सोमो [यवो] यव[यावानो] यावयन्त्व् अमुम् ।
अनुष्यावयम् अनुष्याः पुरं जीवलोकं मृतलोकं कल्पयन् ? ॥३॥
असर्वर्वीरश् चरतु प्रणुत्तो मित्राणां द्वेष्यः परिवर्ग्यस् स्वानाम् ।
उत पृथिव्याम् अव स्यन्ति विद्युत उग्रो [वो] देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥४॥
च्युता चेयं बृहत्य् अच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश् च सर्वान् ।
तेषाम् आदित्यो द्रविणेन तेजसोदन् सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥५॥
येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो बबाधे ।
तेन त्वं काम मम ये सपत्नास् तान् अस्माल् लोकात् प्र णुदस्व सर्वान् ॥६॥
यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यून् अधमं तमो बबाधे ।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास् तान् अस्माल् लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥७॥

शौ १९ कामो जज्ञे प्रथमो नास्य आपुर् नैनं देवासᳶ पितरो नोत मर्त्याः ।
ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥८॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.७८

शौ ९.२.२४ न वै [वा]तश् चन कामम् आप नाग्निस् सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥१॥
न वा आपश् चन कामम् आपुर् नाहोरात्राणि निहितानि यन्ति ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥२॥
न वै पुण्यजनाश् चन कामम् आपुर् न गन्धर्वाप्सरसो न सर्पाः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥३॥
शौ २० यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावद् आपस् सिष्यदुर् यावद् अग्निः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥४॥
शौ २१ यावतीर् दिशᳶ प्रदिशो विषूचीर् यावतीर् आशा अभिचक्षणा दिवः ।
[ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि] ॥५॥
शौ २२ यावतीर् भृङ्गा जत्वᳶ कुरूरवो यावतीर् वघा वृक्षसर्प्यो [बभूवुः] ।
ततस् त्वम् असि ज्यायान् विश्वहा महांस् तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥६॥
शौ २५ यास् ते शिवास् तन्वᳶ काम भद्रा याभिस् सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष् ट्वम् अस्मान् अभिसंविशस्वान्यत्र पापीर् अप वेशया धियः ॥७॥ ॥ऋ॰१॥

शौ ८.६.१–६,८,७,९,१० १६.७९

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाᳶ पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधद् अलिंश उत वत्सपः ॥१॥
शौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकं पलालानुपलालौ ? शर्कुं कोकं मलीमृतं पलीजकम् ? ।
'शौ आश्रेषं आश्रेषं ? वव्रिवास[स]म् ऋक्षग्रीवं प्रमीलिनं मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥२॥
मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपो [ऽ]न्तरा ।
कृणोम्य् अस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥३॥
दुर्णामा च सुनामा चोभौ संवृतम् [इच्छतः ।
अरायान् अप हन्मस् सुनामा स्त्रैणम्] इच्छताम् ॥४॥
यᳶ कृष्णᳶ केश्य् असुरस् स्तम्बज उत तुण्डिकः ।
अरायान् अस्या भंससो मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥५॥
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादम् उत रेरिहम् ।
अरायाञ् श्वकिष्किणो बजᳶ पिङ्गो अनीनशत् ॥६॥
'शौ स्वपति यस् त्वां सुप्तां छिनत्ति ? यश् च दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायाम् इव प्र तान् सूर्यᳶ परिक्रामन्न् अनीनशत् ॥७॥
यस् त्वां सुप्तां निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
बजस् तान् सहताम् इतᳶ क्लीबरूपांस् तिरीटिनः ॥८॥
यᳶ कृणोत्य् अवतोकां मृतवत्साम् इमां स्त्रियम् ।
तम् ओषधे त्वं नाशयास्याᳶ कमलम् अञ्जिवम् ॥९॥
ये शालाᳶ परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः ।
कुसूला ये च कुक्षिलाᳶ ककुभाᳶ करुमास् स्रिमाः ।
तान् ओषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.८०

शौ ८.६.११ कुकुन्धाः कुकुरभाः [कृत्तीर् ये कुकुन्धाᳶ कुकूरभाᳶ कृत्तीर् दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो घोषं ये कुर्वते वने ता[न्] इतो नाशयामसि ॥१॥
शौ १५ येषां पश्चात् प्रपदानि पुरᳶ पार्ष्णी पुरो मुखम् ।
'शौ खलजाः खलजाश् शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाᳶ ? कुम्भमुष्का [अ]यासयः ।
तान् अस्या ब्रह्मणस् पते प्रतीबोधेन नाशय ॥२॥
शौ १९ ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तम् अमुं दिवः ।
'शौ मकाकान् अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धींल् लोहितास्यान् मकाकान् ? नाशयामसि ॥३॥
शौ १४ ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुराद् अधि ।
बजश् च तेषां पिङ्गश् च हृदये ऽधि नि विध्यताम् ॥४॥
शौ १२ अंस [य] आत्मानम् अतिमात्रम् अंसम् ? आधाय बिभ्रति ।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥५॥
शौ १४ ये पूर्वे वध्वो यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
शौ आपाकेष्ठाः ('स्थाः च) आपाकस्था ? प्रहासिनस् स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस् ता[न्] इतो नाशयामसि ॥६॥
शौ १६ पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणास् सन्तु पण्डगाः ।
'शौ पतय अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्य् अपति[स्] स्वपतिं स्त्रियम् ॥७॥
शौ १७ उद्धर्षिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तम् उदुम्बलं तुण्डेलम् उत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पार्ष्ण्या स्थालीं गौर् इव स्पन्दना ॥८॥
शौ १८ यस् ते गर्भं प्रतिमृशाज् जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस् तम् उग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥९॥
शौ १९ ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका [अ]नुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रम् इव अजतु ॥१०॥ ॥ऋ॰५॥

१६.८१

शौ ८.६.२० परिसृष्टं धारयतु यद् धितं माव पादि तत् ।
गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ ॥१॥
'पै ८.१.१' परिपाणं पुरुषाणां रक्षसाम् असि चातनम् ।
अरायान् सर्वान् दुर्णाम्नो यातुधानान् विषूचीनान् वि नाशय ॥२॥
शौ २१ पवीनसात् तङ्गल्वाच् छायकाद् उत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गᳶ परि पातु किमीदिनः ॥३॥
शौ २२ द्व्यास्याच् चतुरक्षात् पञ्चपादाद् अनङ्गुरेः ।
वृन्ताद् अभि प्रसर्पतᳶ परि पाहि वरीवृतात् ॥४॥
शौ २३ य आमं मांसम् अदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवा अरायान् अस्या भंससो मुष्कयोर् अप हन्मसि ॥५॥
शौ २५ पिङ्ग रक्ष जायमानं पुमांसं मा स्त्रियं क्रन् ।
आण्डादो गर्भान् मा दभन् बाधस्वेतᳶ किमीदिनः ॥६॥
शौ २६ अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम् आद् रोदम् अघम् आवयम् ।
वृक्षाद् इव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥७॥
पिङ्ग जहि यातुधानान् दुर्गन्धींल् लोहितास्यान् ।
त्वया प्रणुत्ताᳶ क्रव्यादो विश्वञ्चो यन्ति निर्हताः ॥८॥ ॥ऋ॰६॥ ॥अनु॰१४॥

शौ ११.७.१–१० १६.८२

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश् चाग्निश् च विश्वम् अन्तस् समाहितम् ॥१॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।

आपस् समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहि[तः] ॥२॥
सन्न् उच्छिष्टे [अ]संश् चोभौ मृत्युर् वाजᳶ प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश् च द्रश् चापि श्रीर् मयि ॥३॥
दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिम् इव सर्वतश् चक्रम् उच्छिष्टे देवता [आ]हिता[ः] ॥४॥
ऋक् साम यजुर् उच्छिष्ट उद्गीथᳶ प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिंकार उच्छिष्टे स्वरस् साम्नो मेडिश् च [त]न् मयि ॥५॥
ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर् महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्य् अन्तर् गर्भ इव मातरि ॥६॥
राजसूयं वाजपेयम् अग्निष्टोमस् तदो ऽध्वरः ।
अर्काश्वमेधाव् उच्छिष्टे जीवबर्हिर् मदिन्तमः ॥७॥
अग्न्याधेयम् अथो दीक्षा कामप्रश् छन्दसा सह ।
उच्छिन्ना यज्ञास् सत्राण्य् उच्छिष्टे ऽधि समाहिताः ॥८॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टे ऽधि समाहिताः ॥९॥
एकरात्रस् द्विरात्रश् च सद्यᳶक्रीᳶ प्रक्रीर् उक्थ्यः ।
ओतं निहितम् उच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

शौ ११.७.११–२० १६.८३

चतूरात्रᳶ पञ्चरात्रष् षड्रात्रश् चोभयस् सह ।
षोडशी सप्तरात्रश् चोच्छिष्टा[ज्] जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा [अ]मृते हिता[ः] ॥१॥
प्रतीहारो निधनं विश्वजिच् चाभिजिच् च यः ।
साह्नातिरात्राव् उच्छिष्टे द्वादशाहो ऽपि तन् मयि ॥२॥
सूनृता संनतिᳶ क्षेमस् स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चᳶ कामाᳶ कामेन तृप्यन्ति ॥३॥
नव भूमीस् समुद्रा उच्छिष्टे ऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्य् उच्छिष्टे ऽहोरात्रे च तन् मयि ॥४॥
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुᳶ पिता ॥५॥
पिता जनितुर् उच्छिष्टो ऽसोᳶ पौत्रश् च पितामहः ।
शौ स क्षियति क्षियद् ? विश्वस्येशानो वृषा भूम्याम् अतिघ्न्यः ॥६॥
ऋतं सत्यं तपो दीक्षा श्रमो धर्मश् च कर्म च ।
भूतं भविष्य[द्] उच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर् बलं बले ॥७॥
समृद्धिर् ओज आकूतिᳶ क्षत्रं राष्ट्रं षड् उर्व्यः ।
संवत्सरो ऽध्य् उच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥८॥
चतुर्होतार [आ]प्रियश् चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राश् च पशुबन्धास् तद् इष्टयः ॥९॥
अर्धमासाश् च मासाश् चार्तवा ऋतुभिस् सह ।
[illegible] उच्छिष्टे घोषिणीर् आप[स्] स्तनयित्नु[र्] श्रुतिर् मही ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.८४

शौ ११.७.२१ शर्करा[स्] सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस् तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षम् उच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥१॥
शौ २२ राद्धिᳶ प्राप्ति[र्] व्याप्तिस् समाप्ति[र्] मह एधतुः ।
अत्याप्तिर् उच्छिष्टे भूतिर् आहिता निहिता हिता ॥२॥
शौ २३ यच् च प्राणति प्राणेन यच् च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥३॥
शौ २५ प्राणापानौ चक्षुश् श्रोत्रम् अक्षितिश् [च क्षितिश्] च या ।

[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥४॥
शौ २७ देवाᳶ पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश् च ये ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥५॥
शौ ऋचस् सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥६॥
अथर्वाङ्गिरसो ब्रह्म सर्पपुण्यजनाश् च ये ।
[उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः] ॥७॥
शौ २६ आनन्दाश् च प्रमोदाश् चाभिमोदमुदश् च ये ।
उच्छिष्टाज् जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥८॥ ॥ऋ॰८॥

१६.८५

शौ ११.८.१ यन् मन्युर् जायाम् आवहत् संक[ल्प]स्य गृहाद् अधि ।
क आसन् जन्याᳶ के वराᳶ क उ ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥१॥
शौ २ तपश् चैवास्तां कर्म चान्तर् महत्य् अर्णवे ।
त आसन् जन्यास् ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरो ऽभवत् ॥२॥
शौ ३ दश साकम् अजायन्त देवा देवेभ्यᳶ पुरा ।
यो वै तान् विद्यान् नामथा स वा अद्य महद् वदेत् ॥३॥
शौ ४ प्राणापानौ चक्षुश् श्रोत्रम् अक्षितिश् च क्षितिश् च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस् ते वा आकूतिम् आवह[न्] ॥४॥
शौ ५ अजाता आसन्न् ऋतवो ऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठम् उपासत ॥५॥
शौ ६ तपश् चैवास्तां कर्म चान्तर् महत्य् अर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस् तत् ते ज्येष्ठम् उपासत ॥६॥
शौ ८ कुत इन्द्रᳶ कु[त]स् सोम[ᳶ] कुतो ऽग्निर् अजायत ।
कुतस् त्वष्टा सम् अभवद् धाता सम् अभवत् कुतः ॥७॥
शौ ९ इन्द्राद् इन्द्र[स्] सोमात् सोमो अग्नेर् अग्निर् अजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर् धाता धातुर् अजायत ॥८॥
शौ १० ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यᳶ पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिन् ते लोक आसते ॥९॥
शौ ७[१.२] यतो भूमिᳶ पूर्वासीद् याम् अद्धातय इद् विदुः ।
के तस्यां देवा आसते कस्मिन् साधिश्रिता ॥१०॥ ॥ऋ॰१०॥

१६.८६

शौ ११.८.११ कुतᳶ केशान् कुतस् स्नाव कुतो ऽस्थीन्य् आभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥१॥
शौ ११ यदा केशान् अस्थि स्नाव मांसं मज्जानम् आभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकम् अनु प्राविशत् ॥२॥
शौ १२ संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाᳶ पुरुषम् आविशन् ॥३॥
शौ १५[१.२] शिरो हस्ताव् अथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश् च कीकसाः ।
शौ १४[३.४] पृष्टीर् बर्जह्ये पार्श्वे कस् तत् सम् अदधाद् ऋषिः ॥४॥
शौ १४[१.२] ऊरू पाद[व् अ]ष्ठीवन्तौ श्रोणी हस्ताव् अथो मुखम् ।
शौ १५[३.४] त्वचा प्रावृत्य तत् सर्वं [सं]धा सम् अदधान् मही ॥५॥
शौ १६ यत् तच् छरीरम् अशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदम् अद्य रोचते को ऽस्मिन् वर्णम् आभरत् ॥६॥
शौ १७ सर्वे देवा उपाशिक्षन् तद् अजानाद् वधूस् सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णम् आभरत् ॥७॥
शौ १८ यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर् य उत्तरः ।

गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषम् आविशन् ॥८॥
शौ० १९ स्वप्नो वै तन्द्रीर् निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरम् अनु प्राविशन् ॥९॥
शौ० २० स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रम् ओजश् च शरीरम् अनु प्राविशन् ॥१०॥ ॥अ॰ ५॥

१९.८७

शौ० ११.८.२१ भूतिश् च वा [अ]भूतिश् च रातयो ऽरातयश् च या[ः] ।
क्षुधश् च सर्वास् तृष्णाश् च शरीरम् अनु प्राविशन् ॥१॥
शौ० २२ निन्दाश् च वा [अ]निन्दाश् च यच् च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२॥
शौ० २३ विद्याश् च वा [अ]विद्याश् च यच् चान्यद् उपदेश्यम् ।
शरीरं सर्वं प्राविशन्न् ऋचः सामाथो यजुः ॥३॥
शौ० २४ आनन्दा मोदाः प्रमुदो ऽभीमोदमुदश् च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरम् अनु प्राविशन् ॥४॥
शौ० २५ आलापाश् च प्रलापाश् चाभीलापलपश् च ये ।
शरीरं सर्वं प्राविशन्न् आयुजः प्रयुजो युजः ॥५॥
शौ० २६ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रम् अक्षितिश् च क्षितिश् च याः ।
व्यानोदानौ वाङ् मनश् शरीरेण त ईयन्ते ॥६॥
शौ० २७ आशिषश् च प्रशिषश् च संशिषो विशिषश् च या[ः] ।
चित्तानि सर्वे सङ्कल्पाः शरीरम् अनु प्राविशन् ॥७॥
शौ० [illegible] [illegible] च याः ।
शरीरं सर्वं प्राविशन् [illegible] ॥८॥
शौ० २८ आस्त्रेयीश्, वास्त्रेयीश् आस्नेयीश् च वास्नेयीश् च त्वरणाः कृपणाश् च या[ः] ।
[अपि] गुह्याः शुक्रा स्थूला [अप]स् ता बीभत्साव् असादयन् ॥९॥
शौ० २९ अस्थि कृत्वा समिधं तद् अष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषम् आविशन् ॥१०॥ ॥अ॰ ६॥

१९.८८

शौ० ११.८.३० या आपो याश् च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच् छरीरे ऽधि प्रजापतिः ॥१॥
शौ० ३१ सूर्यश् चक्षुर् वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरम् आत्मानं देवाः प्रायच्छन्न् अग्नये ॥२॥
शौ० ३२ तस्माद् वै विद्वान् पुरुषम् इदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्य् अस्मिन् देवताः शरीरे ऽधि समाहिताः ॥३॥
यद् [illegible] लोकम् [illegible] ।
शरीरं सर्वा देवता यथाक्रमम् अनु प्राविशन् ॥४॥
अङ्गमङ्गं शरीरस्य सर्वे देवा [अ]नु प्राविशन् ।
पिता ह [illegible] तं लोकम् अपराजितम् ॥५॥
तं लोकम् अपराजितं सर्वे देवा [अ]नु प्राविशन् ।
प्रजापतिर् यम् आत्मानं शरीरं बहुधा हितम् ॥६॥ ॥अ॰ ७॥ ॥अनु॰ १४॥

शौ० ११.१.१–४

१९.८९

अग्ने जायस्वादितिर् नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस् ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥१॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायो ऽद्रोघाविता वाचम् अच्छ ।
अयम् अग्नि[ः] पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा [अ]सहन्त दस्यून् ॥२॥

अग्ने ऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृत[स्] ते त्वाजीजनन्न् अस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥
समिद्धो अग्ने समिधा सम् इध्यसे विद्वान् देवान् यज्ञियां एह वक्षः ।
तेभ्यो हव्यं श्रपयन् जातवेदस् स्वर्गं लोकम् अधि रोहयैनम् ॥४॥
त्रेधा भागो निहितो जातवेदो देवानां पितॄणाम् उत मर्त्यानाम् ।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥५॥
अग्ने सहस्वान् अभिभूर् अभीद् असि नीचो न्य् उब्ज द्विषतस् सपत्नान् ।
शौ० बलिहृतः इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस् ते बलिहृतः ? कृणोतु ॥६॥
शौ० उदुब्जैनां साकं सजातैः पयसा सहैधि [illegible] ! महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृताम् उ लोकम् ॥८॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर् भिन्ध्य् अंशून् यजमानाय साधु ।
अव[घ्न]ती नि जहि ये पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजाम् उद्भरन्त्य् उद् ऊह ॥९॥
गृहाण ग्रावाणौ सयुजा वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञम् अगुः ।
त्रयो वरा यतमांस् त्वं वृणीषे तास् ते समृद्धीर् इह राधयामि ॥१०॥
॥अ॰ १॥

१९.९०

शौ० ११.१.११ उपश्वसे द्रु[व]ये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस् तुषैः ।
श्रिया समानान् अति सर्वान् स्यामाधस्पदं द्विषतस् पादयेम ॥१॥
शौ० १२ इयं ते धीतिर् इदम् उ ते जनित्रं गृह्णातु त्वाम् अदितिश् शूरपुत्रा ।
परा पुनी[हि] य इमां पृतन्यवो ऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥२॥
शौ० १३ परेहि नारि पुनर् एहि क्षिप्रम् अपां त्वा गो[ष्ठो] अध्य् अरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीता[द्] यतमा यज्ञिया [अ]सन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥३॥
शौ० १४ एमा [अ]गुर् योषितश् शुम्भमाना उत् तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्य् आ त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥४॥
शौ० १५ ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविद् नाथविद् प्रजाविद् उग्रः पशुविद् वीरविद् वो ऽस्तु ॥५॥
शौ० १६ अग्ने चरुर् यज्ञियस् त्वाध्य् अरुक्षच् छुचिस् तपिष्ठ[स्] तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा [अ]भिसंगत्य भागम् इमं तपिष्ठा ऋतुभिस् तपन्तु ॥६॥
शौ० १७ शुद्धा [आ]पो योषितो यज्ञिया इमा [आ]पश् चरुम् अव सर्पन्तु शुभ्रा[ः] ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृताम् एतु लोकम् ॥७॥
शौ० १८ ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस् तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अप[ः] प्र विशत प्रति गृह्णातु वश् चरुर् इमं पक्त्वा सुकृताम् एत लोकम् ॥८॥
शौ० ११[a] अभ्यावर्तस्व प्रजया सहैनां प्रत्यङ् एनां देवताभिस् सहैधि ।
स्वर्गं लोकम् अभिसंवहैनाम् आदित्य देवा परमे व्योम[न्] ॥९॥
शौ० १९ उरुः प्र[थ]स्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठम् सुकृतस्य लोके ।
शौ०-ओदेषु पूर्वेषु पक्ता पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्त्वा पञ्चदशस् ते ऽस्मि ॥१०॥
॥अ॰ २॥

१९.९१

शौ० ११.१.२० सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानस् स्वर्गः ।
अमूंस् त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान् मह्यम् एव ॥१॥
शौ० २१ उदेहि वेदिम् प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्य् एनाम् ।
श्रिया समानान् अति सर्वान् स्यामाधस्पदं द्विषतः पादयेम ॥२॥
शौ० २३ ऋतेन तष्टा मनसो हितैषं ब्रह्मौदनस्य निहिता वेदिर् अग्रे ।
शौ०-ओदेषु पूर्वेषु अंसद्रीं, अंसध्रीं अंसध्रीं शुद्धाम् उप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥३॥
शौ० २४ अदितेर् हस्तां स्रुचम् एतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो याम् अकृण्वन् ।

सा गात्राणि विदुष्य् ओदनस्य दर्विर् वेद्याम् अध्य् एनं चिनोतु ॥४॥
शौ० २५ ओदेषु पूर्वेषु देवाः शृतं त्वा हविर् उप सीदन्तु देवा अनुसृप्याग्नेः पुनर् एनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणाम् आर्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ॥५॥
शौ० २६ सोम राजन् संज्ञानम् आ वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीन् आर्षेयांस् तपसो ऽधि जाता[न्] ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥६॥
शौ० २७ इदम् अपो मधुमतीर् [र्] घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदम् अभिषिञ्चामि वो ऽहम् इन्द्रो मरुत्वान् स ददाद् इदं मे ॥७॥
शौ० २८ इदं मे ज्योतिर् अमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥८॥
शौ० २९ अग्नौ तुषान् आ वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागम् अथो विद्म निर्ऋतेर् भागधेयम् ॥९॥
शौ० ३० श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गम् अधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परम् आपद्य यद् वय [उत्तमं नाकं परमं व्योम] ॥१०॥ ॥अ॰ ३॥

शौ० ११.१.३१–३७

१९.९२

बभ्रेर् अध्वर्यो मुखम् एतद् वि मृड्ढ्य् [आ]ज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् ।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥१॥
बभ्रे रक्ष[स्] समदम् आ वपैभ्यो ऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्ताद् आर्षेयास् ते मा रिषन् प्राशितारः ॥२॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणाम् अप्य् अस्त्य् अत्र ।
अग्निर् मे गोप्ता मरुतश् च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३॥
यज्ञं दुहानं सदम् इत् प्रपीनं [पु]मांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वम् उत दीर्घम् आयू रायश् च पोषैर् उप त्वा सदेम ॥४॥
वृषभो ऽसि स्वर्ग ऋषीन् आर्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥५॥
समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्य् अग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैर् अनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तम् अधि सप्तरश्मौ ॥६॥
शौ० ओदेषु येन देवा ज्योतिषा द्याम् उदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तं त्वा पचामि ज्योतिषा ज्योतिर् उत्तमं स नस् तत्र धेहि सुकृताम् उ लोके ॥७॥ ॥अ॰ ४॥

१९.९३

प्राच्यै त्वा दिशे निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः ॥१॥
दक्षिणायै त्वा [दिशे निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥२॥
प्रतीच्यै त्वा [दिशे निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥३॥
उदीच्यै त्वा [दिशे निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥४॥
ध्रुवायै त्वा [दिशे निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥५॥
ऊर्ध्वायै त्वा दिशे [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥६॥
दिवे त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥७॥
अन्तरिक्षाय त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥८॥

पृथिवीभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥९॥
पशुभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥१०॥
॥अ॰ ५॥

१९.९४

मनुष्येभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥१॥
पितृभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥२॥
ऋषिभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥३॥
आर्षेभ्यस् त्वा निर् वपामि [शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥४॥
अङ्गिरोभ्यस् त्वा नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥५॥
अथर्वभ्यस् त्वा नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥६॥
वनस्पतिभ्यस् त्वा [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥७॥
॥अ॰ ६॥

१९.९५

वीरुद्भ्यस् त्वा [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥१॥
ओषधीभ्यस् त्वा [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥२॥
ऋतुभ्यस् त्वा [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥३॥
आर्तवेभ्यस् त्वा नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥४॥
लोकेभ्यस् त्वा [निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥५॥
लोकानां स्वाध्यक्षेभ्यो नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥६॥
देवेभ्यस् त्वा नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥७॥
दैवेभ्यस् त्वा नि[र् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
[स पक्वारोहस् सुकृतां यत्र लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः] ॥८॥
सर्वाभ्यस् त्वा देवताभ्यो निर् वपामि शतधारम् अपक्षुधम् ।
स पक्वारोहस् सुकृतां य[त्र] लोको यत्र ऋषयः प्रथमजाः पुराणाः ॥९॥
॥अ॰ ७॥

१९.९६

पुनान पुंसो अधि तिष्ठ चर्म न ते शिश्नं प्र दहाज् जातवेदाः ।
[illegible] ? [illegible] ॥१॥
महती द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् इदं महत् ।
महान् महिम्ना सर्वाङ्गो [illegible] त्वा [illegible] ओदन ॥२॥
[illegible] [आ]भृताम् [illegible] उत ।

सप्त सहस्रं गन्धर्वा यस् त्वा पचन्त् ओदन ॥३॥
यथा तेषाम् उद्गातासीद् देवा होतार ऋत्विजः ।
सर्वाङ्ग पञ्चौदनं सत्येनाभि समीरयन् ॥४॥
सप्त ऋषयो भूतकृत ऋषयस् साप्याश् च ये ।
ते वै सर्वाङ्गम् ओदनं धञ्चयाभे समीरयन् ॥५॥
यस् सर्वाङ्गं पचति ब्रह्माणं च न हिंसति ।
तस्मै ज्योतिष्मन्तं लोकं यमो राजाभि रक्षति ॥६॥
तं सर्वाङ्गं घृतपृष्ठं दिविमात्रं देवसंहितम् ।
निदत्स्वाम् ? उत्तरतोवधि तं ते ब्रह्माभि रक्षतु ॥७॥
तस्यौदनस्योदरम् अन्तरिक्षं द्यौः पृष्ठं दिशः पार्श्वे सूर्याचन्द्रमसाव् अक्ष्यौ ।
ऋतवो दन्ताः पवमानः प्राणा आङ्गिरसो रूपम् ॥८॥ ॥ऋ०८॥ ॥अनु०१५॥

१६.९७

आ नयैतम् आ रभस्व सुकृतां लोकम् अपि गच्छतु प्रजानन् ।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्न् अजो नाकम् आ क्रमतां तृतीयम् ॥१॥
प्र पदो [ऽव] नेनिग्धि दुश्चरितं यच् चचार शुद्धैः शफैर् आ क्रमतां प्रजानन् ।
प्र ? ज्योतिष्मन्तं सुकृतां लोकम् ईप्सन् तृतीये नाके अधि वि क्रमस्व ॥२॥
अनु छ्य श्यामेन त्वचम् एतां विशस्तर् यथापर्व् असिना मा[भि] मंस्थाः ।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं सुकृतां मध्ये अधि वि श्रयेमम् ॥३॥
ऋच्या [त्वा] भूमिम् अधि धारयाम्य् आ सिञ्चोदकम् अभि धेह्य् एनम् ।
पर्याधत्ताग्निना शमितारश् शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः ॥४॥
उत्क्रामातः परि चेद् अतप्तस् तप्ता[च्] चरोर् अधि नाकं तृतीयम् ।
अग्नेर् अग्निर् अधि सं बभूविथ ज्योतिष्मान् गच्छ सुकृतां यत्र लोकः ॥५॥
पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमस्वाक्रंस्यमानः पञ्च ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं ज्योतिष्मन्तम् अभि लोकम् अयास्मै ॥६॥
अजम् एवाग्निम् अजम् उ ज्योतिर् आहुर् अजं ब्रह्मणे जीवता देयम् आहुः ।
अजस् तमांस्य् अप हन्तु दूरम् अस्मिल् लोके श्रद्दधानेन [द]त्तः ॥७॥
एतद् वो ज्योतिः पितरस् तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणे ऽजं ददाति ।
अजस् तमांस्य् अप हन्ति दूरं पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः ॥८॥
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो अजो नाकं प्र क्रमतां तृतीयम् ।
विचक्रमाणस् सुकृतस्य लोकं स्वर् ज्योतिषा तमो अप हन्ति दूरम् ॥९॥
अजा क्रमस्व सुकृतां यत्र लोक[श्] शरभो न चत्तो अति दुर्गाण्य् एषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा [धेनुः] कामदुघास्य् एका ॥१०॥
॥ऋ०१॥

१६.९८

प्र ज्योतिष्मन्तं सुकृतां लोकम् ईप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणे ऽजं ददाति ।
स व्याप्तो नेष्य् अभि लोकं जयास्मै शिवो ऽस्मभ्यं प्रतिगृहीत एधि ॥१॥
अजस् त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे सुकृतां लोके दद्रियांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानस् स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥२॥
अजो ह्य् अग्नेर् अजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टम् पूर्तम् अभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥३॥
अमोतं वासो दद्याद् धिरण्यम् अपि दक्षिणा[म्] ।
तथा लोकान् सम् आप्नुयाद् ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥४॥
एतास् त्वा धारा उप यन्तु विश्वास् सोम्या देवीर् घृतपृष्ठा मधुश्चुतः ।
स्तभान पृथिवीं दिवं नाकस्य पृष्ठे ऽधि सप्तरश्मौ ॥५॥
पृष्ठात् पृथिव्या [अहम् अन्तरिक्षम् आरुहम् अन्तरिक्षाद् दिवम् आरुहम् ।

[दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर् ज्योतिर् अगाम् अहम् ॥६॥
[अजो ऽस्य् अज स्वर्गो ऽसि त्वया लोकम् अङ्गिरसः प्राजानन् ।
[तं लोकम् अनु प्र ज्ञेषम् ॥७॥
[येन या सहस्रं वहसि येन वा सर्ववेदसम् ।
[तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर् देवेषु गन्तवे ॥८॥
[अजं च पचत पञ्च चौदनान् ।
[अजं पञ्चौदनान् पक्त्वा देवा लोकान् सम् आनशुः] ॥९॥
पञ्चौदनं पञ्चभिर् अङ्गुलीभिर् दर्व्योद् धर पञ्च धैतम् ओदनम् ।
प्राचीं दिशं दक्षिणां प्रतीचीम् उदीचीं ध्रुवाम् ऊर्ध्वां दिशम् आ क्रमस्व ॥१०॥ ॥ऋ०२॥

१६.९९

प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ।
प्रतीच्यां दिशि भसदम् अस्य धेह्य् उदीच्यां दिश्य् उत्तरं धेहि पार्श्वम् ॥१॥
अजस्यानूकम् ऊर्ध्वायां दिशि धेहि पाजस्यं ध्रुवायां [दिशि धेहि] ।
अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यम् अस्य पङ्क्त्या चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥२॥
शृतम् एनं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैर् अङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत् तिष्ठ प्रेहि नाकम् उत्तमं पद्भिश् च[तुर्भिः] प्रति तिष्ठ दिक्षु ॥३॥
सर्वा दिशस् संविदाना[स्] सध्रीचीस् सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु तेजसम् ।
ते रक्षन्तु तव तुभ्यम् एतं ताभ्यो जुहोमि हविषा घृतेन ॥४॥
यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानाम् अजस्य ।
सर्वं तद् अग्ने सुकृतस्य लोके जानीतात् नस् संगमने पथीनाम् ॥५॥
अजः पञ्चौदनो व्य् अक्रमत तस्योर इयम् अभवद् उदरम् अन्तरिक्षम् ।
द्यौस् ते पृष्ठं दिशः पार्श्वे ॥६॥
दिशश् चातिदिशश् च शृङ्गे सत्यं च ऋतं च चक्षुषी ।
विश्वरूपं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ॥७॥
एष वा अपरिमितो यज्ञो यद् अजः पञ्चौदनः ।
निर् अप्रियं भ्रातृव्यं दहति भवत्य् आत्मना ।
परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति ॥८॥ ॥ऋ०३॥

१६.१००

नास्यास्थीनि भिन्द्यान् न मज्ज्ञो निर् धये[त्] ।
सर्वानि समादायेदमिदं प्र वेशये[त्] ॥१॥
इदमिदम् अस्य रूपं तेनेदं सं गमयति ।
स्वधाम् ऊर्जम् अक्षति ? महो ऽस्मै दुहे य एवं विदुषे [अ]जं पञ्चौदनं ददाति ॥२॥
इन्द्राय भागं शमिता कृणोतु यज्ञं यज्ञपतिश् च सूरिः ।
ये नो द्विषन्त्य् अनु तान् द्रवस्वाग्निष्टा धीरा यजमानस्य सर्वे ॥३॥
पञ्च लोकाः पञ्च ऋतवः पञ्च ; भ्रष्टु दृष्यतोती ? ।
य एवं विदुषे अजं पञ्चौदनं ददाति ॥४॥
यो वा आयन्तम् इत्य ऋतुं वेद ।
आयतीम् एवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति ॥५॥
[यो] वै संयन्तम् इत्य [ऋतुं वेद] ।
संयतीम् एव[ाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
[भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति] ॥६॥
[यो] वै भवन्तम् इत्य [ऋतुं वेद] ।

भवन्तीम् एव[ाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
[भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति] ॥७॥
[यो] वा अभियन्तम् इत्य [ऋतुं वेद] ।
अभियन्तीम् एव[ाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
[भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति] ॥८॥
यो वा उद्यन्तम् इत्य [ऋतुं वेद] ।
उद्यतीम् एव[ाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
[भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति] ॥९॥
[यो] वै मूर्धानम् इत्य [ऋतुं वेद] ।
मूर्धीम् एव[ाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
[भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति] ॥१०॥
यो वै सर्वम् इत्य ऋतुं वेद ।
सर्वाम् एवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियम् आ दत्ते ।
भवत्य् आत्मना परास्याप्रियो भ्रातृव्यो भवति ॥११॥
यावन्त्य् अस्य लोमानि ब्रह्मास्तृणोति वेधाम् ।
तावतीर् अस्य धारा[स्] समुद्रस्येवासताः ॥१२॥
दुहां क्षीरं भवतु सर्पिर् दध्यस् स्वरा[श्] भूत्योपतिष्ठन् सुरापम् ।
मधोर् धाराम् अभिषेक्यो दुहान् ओजो नाके तिष्ठतु मोदमानः ॥१३॥
॥ऋ०४॥

१६.१०१

स्कम्भेनेमे विष्कभिते द्यौश् च भूमिश् च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वम् आत्मन्वद् यत् प्राणन् निमिषच् च यत् ॥१॥
एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चात् ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यद् अस्यार्धं किम् उ तस्य केतुः ॥२॥
पञ्चवाही वहत्य् अग्रम् अस्य पृष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति ।
अयातम् अस्य ददृशे न यातं परं नेदीयो ऽवरं दवीयः ॥३॥
इदं सवितर् वि जानीहि षड् यमा एक एकजः ।
अस्मिन् हापित्वम् इच्छन्ते य एषा[म्] ए[क एक]जः ॥४॥
तिर्यग्बिलश् चम[स] ऊर्ध्वबुध्नस् [त]स्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।
अत्रासत ऋषयस् सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥५॥
तिस्रो ह प्रजा [अ]त्यायम् आय[न्] न्य् अन्या [अ]र्कम् अभितो ऽविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीर् आ विवेश ॥६॥
द्वादश प्रधयश् चक्रम् एकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच् चिकेत ।
तत्राहतास् त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश् च खीला [अ]विचाचला ये ॥७॥
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तम् अन्तवच् चा समन्ते ।
ते नाकपालश् चरति प्रजानन् विद्वान् भूतं यदि भव्यम् अस्य ॥८॥
आविस् सन् निहितं गुहा जरन् नाम महत् पदम् ।
तत्रेदं सर्वम् आर्पितम् एजत् प्राणन् निमिषच् च यत् ॥९॥
ऊर्ध्वं भरन्तम् उदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्तु सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१०॥ ॥ऋ०५॥

१६.१०२

ऊनात् पूर्णम् उद् भवति पूर्णाद् ऊनम् उद् अच्यते ।
कथिस् तद् ब्रह्मणा वेद यतस् तत् परिषिच्यते ॥१॥
प्रजापतिश् चरति गर्भे अन्तर् [अ]दृश्यमानो बहुधा प्र जायते ।
अर्धेनेदं परि बभूव विश्वं यद् अस्यार्धं किम् उ तज् जजान ॥२॥
यद् एजति चरति यच् च तिष्ठत्य् अप्राण[त्] प्राणन् निमिषच् च तिष्ठत् ।
तद् दाधार पृथिवीं द्याम् उतामूं तत् संभूय भवत्य् एकम् एव ॥३॥

या पुरस्ताद् युज्यते योत पश्चाद् या विश्वतो युज्यते योत सर्वतः ।
यया यज्ञस् तायते प्राङ् तां त्वा पृच्छामि कतमा स ऋचाम् ॥४॥
यतस् सूर्य उदेत्य् अस्तं यत्र च गच्छति ।
तद् एव मन्ये ऽहं ज्येष्ठं ततो नात्य् एति किं चन ॥५॥
सर्वेणोर्ध्वस् तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति ।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठम् अधि श्रितम् ॥६॥
यो वै ते विद्याद् अरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु ।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्या[द्] ब्राह्मणं महत् ॥७॥
अपाद् अग्रे सम् अभवत् सो ऽग्रे स्वर् आभरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यस् सर्वम् आदत्त भोजनम् ॥८॥
भोग्यो भवद् अथो अन्नम् अदद् बहु ।
यो देवम् उत्तरावन्तम् उपासातै सनातनम् ॥९॥
सनातनम् एनम् आहुर् उताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्य[स्य] रूपयोः ॥१०॥ ॥ऋ०६॥

१६.१०३

शतं सहस्रम् अयुतं न्यर्बुदम् असंख्येयं स्वम् अस्मिन् निविष्टम् ।
तद् अस्य घ्नन्ति विपश्यत एव तस्माद् देवो रोचते ; अथ भवन् ? ॥१॥
बालम् एकम् ? अणीयस्कम् उतैकं नैव दृश्यते ।
अतः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥२॥
[इ]यं कल्याण्य् अजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
तस्मै कृता शये स यश् चकार जजार सः ॥३॥
त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥४॥
उतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठ उतैषां भ्रातोत वा पितैषाम् ।
एको [ह] देवो मनसि प्रविष्टः पूर्वो जातस् स उ गर्भे अन्तः ॥५॥
अग्नेरेत्य प्रजाति सर्वम् अस्मिन् विश्वरूपाण्य् [उ]पयाद् ऋतस्य ।
स पुमान् पुंसो ; अन्नं धृतेन सर्वान् अन्तां गच्छतु तिष्ठन्त्येव ? ॥६॥
मध्य दिवो निहितः पृश्निर् अश्मा वि चक्रमे रजस[स्] पात्य् अन्तौ ।
स विश्वाचीर् अभि चष्टे घृताचीर् अन्तरा पूर्वम् अपरं च केतुम् ॥७॥
येन् अर्वाङ् [मध्य] उत वा पुराणं वेदं विद्वांसम् अभितो वदन्ति ।
आदित्यम् एव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥८॥
एकाम् ऋचं सम् इन्धते द्वादशाभिर् अग्निभिः ।
तस्याम् आयत् तस्यां नायत् तस्याम् ओषधयः श्रिताः ॥९॥
सप्त सुपर्णा उप धावन्ति वाचम् अनुष्टुभा संभृतं वायुम् एतम् ।
तम् आतरन् विततं तन्तुम् ओतं स नः पुमान् सलिलस्य पृष्ठे ॥१०॥
सप्त ऋषयः प्रतिहितास् शरीरे स[प्त] रक्षन्ति सदम् अप्रमादम् ।
सप्तापस् स्वपतो लोकम् ईयुस् तत्र जागृतो [अ]स्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥११॥ ॥ऋ०७॥ ॥अनु०१६॥

१६.१०४

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहिताम् आयतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥१॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तम् अलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास् [ते] पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥
क्रन्दाय ते प्राणाय ते याश् च ते भव रोपयः ।

[illegible]

१६.१०५

[illegible]

१६.१०६

[illegible]

तुभ्यम् आरण्याः पशवो मृगा वने हितास् तुभ्यं वयांसि शकुनाः पतत्रिणः ।
तव यक्षं पशुपते [अ]प्स्व् अन्तस् तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या [आ]पो वृधे ॥४॥
शिशुमारा [अ]जगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यस् सर्वान् परि पश्यसि भूमिम् ॥५॥
पूर्वस्माद् धंस्य उत्तरस्मिन् समुद्रे मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण ।
मा नस् सं स्रा दिव्येनाग्निनात्यथास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥६॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व् अन्तरिक्षम् ।
तस्य न मार शुष्युता का चन ॥७॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर् बभूथ ।
यश् श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदे अस्य मृड ॥८॥
मा नो महान्तम् उत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तम् उत मा न उक्षतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मोत मातरं [च] स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥९॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्यो ऽसंसूक्तगिरेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यश् श्वभ्यो ऽकरं नमः ॥१०॥
नमस् ते घोषिणीभ्यो नमस् ते [के]शिनीभ्यः ।
नमस् संभुञ्जतीभ्यो नमो नमस्कृताभ्यः ॥११॥ ॥अ°१॥

१६.१०७

नमस् ते आयमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यश् शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥१॥
यो विद्यात् सप्त प्रवतस् [सप्त विद्यात् परावतः ।
[शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥२॥
[विदाहं सप्त प्रवतम्] सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥३॥
यया द्यौर् यया पृथिवी यया[पो] गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥४॥
शतं कंसाश् शतं दोग्धारश् शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास् तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुर् एकधा ॥५॥
यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवां अप्य् एतु ब्रह्मणा ॥६॥
अनु त्वाग्नि[ः] प्राविशद् अनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस् ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस् ते स्तना वशे ॥७॥
अपस् त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा [अ]परा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे ऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥८॥
यद् आदित्यैर् हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रस् सहस्रं पात्रान् सोमं त्वापाययद् वशे ॥९॥
यद् अनूचीन्द्रम् ऐर् आत् त्व ऋषभो ऽह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो ऽहरद् वशे ॥१०॥ ॥अ°४॥

१६.१०८

यत् ते क्रुद्धो धनपतिः क्षीरं देव्य् [अ]भरद् वशे ।
इदं तद् अद्य नाकस् त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥१॥
त्रिषु पात्रेषु तं सोमम् आ देव्य् अहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्य् आस्त हिरण्यये ॥२॥
सं हि सूर्येणागत सम् उ सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रं प्रानृत्यद् ऋचस् सामानि बिभ्रती ॥३॥
सं हि सोमेनागत सम् उ सर्वेण पद्वता ।

[illegible]

१६.१०९

[illegible]

१६.११०

[illegible]

१६.१११

यो वा यद्धं ; ब्रह्मानुज्ञ विद्यात् [illegible] ।

यद्वर्षि यस्य संभारा ऋचो [य]स्यानूक्यम् ॥१॥
छन्दांसि यस्य लोमानि परिस्तरणम् इद् बर्हिर् यजुर् हृदयम् उच्यते ॥२॥
यद् अतिथिपतिर् अतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥३॥
यद् अभिवदति दीक्षाम् उपैति यद् उ[द]कं याचत्य् अपः प्र णयति ॥४॥
या एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥५॥
यत् तर्पणम् आहरन्ति य अग्नीषोमीयः पशुर् बध्यते स एव सः ॥६॥
यद् आवसथान् कल्पयन्ति [सदोहविर्धानान्य् एव तत् कल्पयन्ति] ॥८॥
यत् परिस्तृणन्ति बर्हिर् एव तत् ॥९॥
यत् कशिपूपबर्हणान्य् आहरन्ति परिधय एव ते ॥१०॥
यद् उपरिशयनम् आहरन्ति स्वर्गम् एव तेन लोकम् अ[व] रुन्द्धे ॥११॥
यद् अभ्यञ्जनम् आहरन्त्य् आज्यम् एव तत् ॥१२॥
यद् अशनकृतं हरन्ति हविष्कृतम् एव तद् व्ययन्ति ॥१३॥
यद् मीढयो यद् यवा निरुप्यन्ते अंशव एव ते ऽनूप्यन्ते ॥१४॥ ॥अ°१॥

१६.११२

उलूखलं मुसलं ग्रावाणः ॥१॥
शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषा ॥२॥
स्रुग् दर्विर् नेक्षणम् आयवनम् आपो ऽभिषवणीः ॥३॥
य[द्] द्रोणकलशः कुम्भी[य]म् एव हव्याजिनं वायव्यानि पात्राणि ॥४॥
यजमानब्राह्मणं वै यद् अतिथिपतिः कुरुते यद् आहार्याण्य् अवेक्षत इदं भूया इदाम् इति ॥५॥
यद् आह भूय उद् धरेति प्राणं चैव यद्य् आ वर्धयते ।
प्राणम् एव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥६॥
यत् संपृच्छति कामम् एव तेनाव रुन्द्धे ।
कामो ह पूर्वो यजति ॥७॥
यद् उदकम् उपसिञ्चत्य् अप एव तेनाव रुन्द्धे ॥८॥
यद् उपहरति हवींष्य् आ सादयति ॥९॥
तेषाम् आसन्नानाम् अतिथिर् आत्मन् जुहोति ॥१०॥
स्रुक्कारेण वषट्कारेण स्रुवा हस्तेन प्राणे यूपे ॥११॥ ॥अ°२॥

१६.११३

तस्मात् न छिन्दन् अयात् न छिन्दतो ऽन्नम् अयात् न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥१॥
सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नम् अश्नन्ति ॥२॥
सर्वो वा एषो ऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥३॥
प्राजापत्यो वा एतस्यैष यज्ञो विततो य उपहरति ॥४॥
सर्वदा वा एष युक्तग्रावा आर्द्रपवित्र आहितयज्ञक्रतुर् विततयज्ञो य उपहरति ॥५॥
यो ऽतिथीनां स आहवनीयो यो ऽवकरणम् स दक्षिणाग्नि[र्] यो वेश्मनि स गार्हपत्यः ॥६॥
इष्टं च वा एष पूर्तं चाश्नाति यः पूर्वो ऽतिथेर् अश्नाति ॥७॥
प्रजां च वा एष पशूंश् चाश्नाति [यः पूर्वो ऽतिथेर् अश्नाति] ॥८॥
ऊर्जं च वा एष पयश् च गृहाणाम् अश्नाति यः पूर्वो ऽतिथेर् अश्नाति ॥९॥
एष वा अतिथिर् यच् छ्रोत्रियस् तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥१०॥
अशितावत्य् अश्नीयात् तद् व्रतम् ।
यज्ञस्याविच्छेदाय यज्ञस्य गुप्तये यज्ञस्य सात्मत्वाय ॥११॥ ॥अ°३॥

१६.११४

शौ ९.६.४०,४१ यत् क्षीरम् उपसिच्योपहरति यावद् अग्निष्टोमेन समृद्धेनेष्ट्वावरुन्द्धे तावद् एतेनाव रुन्द्धे ॥१॥
शौ ४१,४२ यत् सर्पिर् उपसिच्योपहरति यावत् साह्नेन समृद्धे[नेष्ट्वावरुन्द्धे तावद् एतेनाव रुन्द्धे] ॥२॥
शौ ४४,४५ यत् मधूपसिच्योपहरति यावद् अतिरात्रेण समृद्धेने[ष्ट्वावरुन्द्धे तावद् एतेनाव रुन्द्धे] ॥३॥
शौ ४६,४७ यत् मांसम् उपसिच्योपहरति यावद् द्वादशाहेन समृद्धेनेष्ट्वावरुन्द्धे तावद् एतेनाव रुन्द्धे ॥४॥
शौ ४८,४९ यद् उदकम् उपसिच्योपहरति प्रजानां प्रजननाय ज्योग् जीवति सर्वम् आयुर् एति ।
न पुनर् आ जरसः प्र मीयते य [एवं वेद] ॥५॥ ॥ऋ°४॥

१६.११५

शौ ९.६.५०-५२ तस्मै वा उषा हिङ् कृणोति सविता प्र स्तौति ।
बृहस्पतिर् ऊर्जोद् गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ।
निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥१॥
शौ ५३-५४ तस्मा उद्यन् सूर्यो हिङ् कृणोति संगवः प्र स्तौति ।
मध्यंदिन उद् गायत्य् अपराह्ण[ः] प्रति हरत्य् अस्तंयन् निधनम् ।
[निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद] ॥२॥
शौ ५५-५६ तस्मा अभ्रो भ[वन्] हिङ् कृणोति विद्योतमानः प्र स्तौति ।
स्तनयन्न् उद् गायत्य् अपराह्णः प्रति हरत्य् अस्तंयन् निधनम् ।
[निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद] ॥३॥
शौ ५७-५९ अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ् कृणोत्य् अभि वदति प्र स्तौत्य् उदकं याचत्य् उद् गायत्य् उप हरति प्रति हरत्य् उच्छिष्टं निधनम् ।
निधनं भूत्या[ः] प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥४॥ ॥ऋ°५॥

१६.११६

शौ ९.६.११ एते वै प्रियाश् चाप्रियाश् च ऋत्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यद् अतिथयः ॥१॥
शौ ६० यत् क्षत्तारं ह्वयत्य् आ श्रावयति ॥२॥
शौ ६१ यत् प्रतिशृणोति प्रत्य् आ श्रावयति ॥३॥
शौ ६२ यत् परिवेष्टार आवसथान् प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्य[व] एव ते ॥४॥
शौ ६३ तेषां वै [न] कश् चनाहोता ॥५॥
यत् प्रातर् उपहरति प्रातस्सवनम् एव तत् ॥६॥
यद् दिवोपहरति माध्यंदिनम् एव तत् सवनम् ॥७॥
यत् सायम् उपहरति तृतीयसवनम् एव तत् ॥८॥
शौ ६४ यद् अतिथिपतिर् अतिथीन् परिविष्यावसथं याचते अवभृथम् एव तत् प्र ह्वयन्ति ॥९॥
शौ ६५ यत् सभागयतु दक्षिणाम् एव तत् सभागयतु यद् अनुतिष्ठत्य् उदवस्यत्य् एव तत् ॥१०॥ ॥ऋ°६॥

१६.११७

शौ ९.६.६६ स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्य् उपहूतस् तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ।

...धर्षेनेष्ट्वा°
...मधुेन
दशाद् • •
...वोन • •
...य।
• • भूपा • • सवित्र भूत्वा • •
• ऊर्जोद...निधि-
निधिने...
तस्मार् उद्यन्...
मध्यंदिनोर • • • • अपराह्न प्रति हरत् [अस्तंयं •
तस्मा हो • हि...
स्तनयिन्न् उद् गायत् अपराह्न... अस्तयं •
• उद् याचत् अपराह्न • • • निधिने
...गमयन्तीर् •
यद् क्षत्तारं...
• ह्वेय • • •
• °वेष्टारस्वसां प्राप्यन्ते...
• यवोपहरति...
• • • परिविष्यावसं...
यत् सभागेतु • • • सभागेतु...
उदवस्य • • ॥६॥ सोपहूतस् तस्मिन्तु यदनुतिष्ठ- [न्नुदवस्यत्येव तत् ॥६॥
सोपहूतः • भक्षयेद...

शौ नास्ति पृथिव्यां तपति पृथिव्याम् आ भाति स्वर्गलोको भवति य एवं वेद ॥१॥
शौ ६७ [स] उपहूतो अन्तरिक्षे भक्षयत्य् उपहूतस् तस्मिन् यद् अन्तरिक्षे विश्वरूपम् ।
शौ नास्ति अन्तरिक्षे तपत्य् अन्तरिक्ष आ भाति [स्वर्गलोको भवति य एवं वेद] ॥२॥
शौ ६८ [स] उपहूतो दिवि भक्षयत्य् उपहूतस् तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ।
शौ नास्ति दिवि तपति दिव्य् आ भाति [स्वर्गलोको भवति य एवं वेद] ॥३॥
शौ ६९ [स] उपहूतो देवेषु भक्षयत्य् उपहूतस् तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ।
शौ नास्ति देवेषु तपति देवेष्व् आ भाति [स्वर्गलोको भवति य एवं वेद] ॥४॥
शौ ७० स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्य् उपहूतस् तस्मिन् यत् लोकेषु विश्वरूपम् ।
शौ नास्ति लोकेषु तपति लोकेष्व् [आ] भाति स्वर्गलोको भवति य एवं वेद ॥५॥ ॥ऋ°७॥

१६.११८

यत् प्राङ् आसीनो निर्वपति यमाय च दे[वे]भ्यश् चा वृश्चते ॥१॥
यद् दक्षिणाम् आसीनो निर्वपति यमाय च पितृभ्यश् चा वृश्चते ॥२॥
यत् प्रत्यङ् आसीनो निर्वपति यदन्यापत्न्युपदाया वृश्चते ॥३॥
यद् उदङ् आसीनो निर्वपति सोमाय च राज्ञे सप्तऋषिभ्यश् चा वृश्चते ॥४॥
यद् उपस्थं कृत्वासीनो निर्वपति भूमये चाग्नये चा [वृश्चते] ॥५॥
यद् ऊर्ध्वज्ञोर् ? आसीनो निर्वपति वायवे चान्तरिक्षाय चा [वृश्चते] ॥६॥
यद् ऊर्ध्वस् तिष्ठन् निर्वपति दिवे चादित्याय चा वृश्चते ॥७॥ ॥ऋ°८॥

१६.११९

यं कामयेत पापीयान् [निश्चयान् ?] आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन स्याद् इति तस्यैवं निर् वपेत् । तस्यैवं निरुप्यैवम् एवानु निर् वपेत् ।
तद् एव स पापीयान् निश्चयान् ? आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन भवति ।
इदमिदं कुर्यात् सा प्रायश्चित्तिः ॥१॥
यं कामयेत वसी[या]न् निश्चयान् ? आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन स्याद् इति तस्यैवं निर् वपेत् । तस्यैवं निरुप्यैवम् एवानु निर् वपेत् ।
तद् एव स वसीयान् निश्चयान् ? आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन भवति ।
इदमिदं कुर्यात् सा प्रायश्चित्तिः ॥२॥
यं कामयेत वसीयान् निश्चयान् ? आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन स्याद् इति तस्यैवं निर् वपेत् । तस्यैवं निरुप्यैवम् एवानु निर् वपेत् ।
तद् एव स न वसीयान् निश्चयान् ? आत्मना प्रजया पशुभिर् गृहैः स्वेन भवति ।
इदमिदं कुर्यात् सा प्रायश्चित्तिः ॥३॥ ॥ऋ°९॥

१६.१२०

यद् अवघ्नमानस्य तण्डुल[स्] स्कन्दति समाससमानस्य वरः प्रमायुको भवति ॥१॥
यद् दृषदा विपद्यति पितृदेवत्यं करोति ॥२॥
यद् विष्यन्दते गृहाणां च पशूनां च पयो वि ष्यन्दते ॥३॥
यद् उपसिञ्चति गृहाणां च पशूनां च पय उप सिञ्चति ॥४॥
यद् आयवनं शीर्यते गृहपतिर् म्रियते ॥५॥
यद् मुसलं शीर्यते गृहपत्नी म्रियते ॥६॥
यत् कुम्भी विषमिता सर्वज्यानिर् दाता च प्रतिगृहीता च जीयेते ॥७॥ ॥ऋ°१०॥

• तद् • • • स्वर्गलोको
...वान्त •
• तपत् अन्तरिक्ष •
• तपति...
सोपहूतो देवेषु लोकेषु...
• तपति लोकेषु • स्वर्गलोको...
• प्राङ्...
• प्रत्यङ्...
उदङ्... च वा
...च
...च
...गृहैः •
...निरुप्यैवम् • • •
• • ग...
इदमिदं... प्रायश्चित्तिः
निरुप्यैवम् • • •
• • ग...
...प्रायश्चित्तिः
निरुप्यैवम् • • •
• • ग...
...समासमानस्य • •
• दृषदा वपति • •
• विष्यन्दते... ष्यन्दते
...सिञ्च •
• हव्य...
• • विषमता...

१६.१२१

यत् प्राञ्चम् उद्वर्तयति यमाय च देवेभ्यश् चा वृश्चते ॥१॥
यद् दक्षिणाञ्चम् उद्वर्तयति यमाय च पितृभ्यश् चा वृश्चते ॥२॥
यत् प्रत्यञ्चम् उद्वर्तयति यदन्यापत्न्युपदा[या] वृश्चते ॥३॥
यद् उदञ्चम् उद्वर्तयति सोमाय च राज्ञे सप्तऋषिभ्यश् चा वृश्चते ॥४॥
यद् अनुद्वृत्तम् उद्धरति दिशोदिशो वा एनं भयम् आ गच्छति ॥५॥ ॥ऋ°११॥

१६.१२२

यत् प्राचीनं बर्हि[स्] स्तृणाति यमाय च देवेभ्यश् चा वृश्चते ॥१॥
यद् दक्षिणाचीनं बर्हि[स्] स्तृणाति यमाय च पितृभ्यश् चा वृश्चते ॥२॥
यत् प्रतीचीनं बर्हि[स्] स्तृणाति यदन्यापत्न्युपदाया वृश्चते ॥३॥
यद् उदीचीनं बर्हि[स्] स्तृणाति सोमाय च राज्ञे सप्तऋषिभ्यश् चा वृश्चते ॥४॥ ॥ऋ°१२॥

१६.१२३

यत् पुरस्तात् पात्रस्य छिद्रं ? करोत्य् अर्थः प्रतिग्रहीतुर् मुखे आयते ॥१॥
यद् दक्षिणतः पात्रस्य छिद्रं ? करोति यमाय च पितृभ्यश् चा वृश्चते ॥२॥
यत् पश्चात् पात्रस्य छिद्रं ? करोत्य् अकृतपूर्वं करोति ॥३॥
यद् उत्तरतः पात्रस्य छिद्रं ? करोति सोमाय च राज्ञे सप्तऋषिभ्यश् चा वृश्चते ॥४॥ ॥ऋ°१३॥

१६.१२४

यच् छुक्लो भवत्य् आदित्यानाम् एव प्रियं धामोपयति ।
स यच् छुक्लं प्राश्नीयाद् आदित्यानां त्वा प्रियेण धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात् ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नात्य् आदित्ये[भ्य] आ वृश्चते ॥१॥
यत् फलीकृतो भवति मरुताम् एव प्रियं [धामोपयति] ।
स यत् फलीकृ[तं] प्राश्नीयान् मरुतां त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति मरुद्भ्य आ वृश्चते ॥२॥
यत् फलीकृतो भवति विश्वेषाम् एव देवानां प्रियं [धामोपयति] ।
स यत् फलीकृतं प्राश्नीयाद् विश्वेषां त्वा देवानां प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति विश्वेभ्यो देवेभ्य आ वृश्चते ॥३॥
यत् क्षिप्रो भवति पितृणाम् एव [प्रियं धामोपयति] ।
[स] यत् क्षिप्रं प्राश्नीयात् पितृणां त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति पितृभ्य आ वृश्चते ॥४॥
यत् क्षिप्रो भवतीन्द्रस्यैव [प्रियं धामोपयति] ।
[स] यत् क्षिप्रं प्राश्नीयाद् इन्द्रस्य त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नातीन्द्राया वृश्चते ॥५॥
यद् यवक्षामो ? भवत्य् अग्नेर् एव [प्रियं धामोपयति] ।
स यद् यवक्षामं ? [प्राश्नीयाद् अग्नेस् त्वा प्रियेण धाम्ना प्राशामीत्य् एनम् प्राश्नीयात्] ।
[ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना] प्राश्नात्य् अग्नय आ वृश्चते ॥६॥

...देवेभ्यः • • । यद् दक्षिणाञ्चम् उद्वर्तयति [यमाय च पितृभ्यश् चा वृश्चते
• अन° • • देवे • • •
...यमाय • पितृभ्यः • •
• • • • • यमाय • • • •
य: • • • • • • °गृहीत • •
• • शुक्ल यच्छीयाद... दर्शा
...आदित्येद् चा •
• • फल्कृ...
• • • • प्राशना (अथस्तात् दशी मरुद्भ्य)...
• • • • • देवदेवानां • [मरुद्भ्यः • •
• • • • प्राश्नाद् • देवेभ्य आ •
• क्षुप्रो...
• क्षुप्र...
...पितृभ्य • • •
• क्षुप्रो भवतीन्द्रस्यैव
• क्षुप्रं...
...°न्द्राय •
प्राश्नाद् • • •

यद् अजवक्षामो ? भवति मित्रावरुणयोर् एव [प्रियं धामोपयति] ।
स यद् अजवक्षाम ? प्राश्नीयान् मित्रावरुणयोस् त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति मित्रावरुणाभ्याम् आ वृश्चते ॥७॥
यत् क्षुद्रो भवत्य् अपाम् एव [प्रियं धामोपयति] ।
स यत् क्षुद्रं प्राश्नीयाद् अपां त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
तत[श्] चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नात्य् अद्भ्य आ वृश्चते ॥८॥
यच् छिद्रो भवति दिशाम् एव [प्रियं धामोपयति] ।
स यच् छिद्रं प्राश्नीयाद् दिशां त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति दिग्भ्य आ वृश्च[ते] ॥९॥
यद् गलन्ती भवति प्रजापतेर् एव [प्रियं धामोपयति] ।
स यद् गलन्तिकां प्राश्नीयात् प्रजापतेस् त्वा प्रियेण [धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीयात्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नाति प्रजापतय आ वृश्चते ॥१०॥
यच् छुष्को भवत्य् ऊर्ध्वनभस एव प्रियं धामोपयति ।
स यच् छुष्कं प्राश्नीयाद् ऊर्ध्वनभ[स]स् त्वा प्रियेण धाम्ना प्राशामीत्य् एनं प्राश्नीया[त्] ।
ततश् चैनम् अन्येन धाम्ना प्राश्नात्य् ऊर्ध्वनभस आ वृश्चते ॥११॥ ॥ऋ°१४॥

१६.१२५

यत् क्षीरम् उपसिच्य प्रथमं प्राश्नाति किलासः प्रतिग्रहीतारं हन्ति ॥१॥
यत् सर्पिर् उपसिच्य प्रथमं प्राश्नाति शूर्पः प्रतिग्रहीतारं हन्ति ॥२॥
यत् मधूपसिच्य प्रथमं प्राश्नाति महादेवः प्रतिग्रहीतारं हन्ति ॥३॥
यत् मांसम् उपसिच्य प्रथमं प्राश्नातीशानः प्रतिग्रहीतारं हन्ति ॥४॥
यद् उदकम् उपसिच्य प्रथमं प्राश्नाति तत् समृद्धम् ।
ज्योग् जीवति सर्वम् आयुर् एति न पुरा जरसः प्र मीयते य [एवं वेद] ॥५॥ ॥ऋ°१५॥

१६.१२६

यत् प्रतिग्रह्यं पुरस्ताद् अभिमृशति प्राङ् प्रतिग्रहीतुः प्राणः प्र क्रामति न द्विषोऽयाय प्र व्रजति शिरस् तस्य दक्षीति प्राश्नीर् माय जीवत्य् एनं चैनं प्राशनम् उपद्रष्टा गृह्णामि ॥१॥
यत् प्रतिग्रह्यं दक्षिणतः प्रमृशति दक्षिणा प्रतिग्रहीतुः [प्राणः प्र क्रामति न द्विषोऽयाय प्र व्रजति शिरस् तस्य दक्षीति प्राश्नीर् माय जीवत्य् एनं चैनं प्राशनम् उपद्रष्टा गृह्णामि] ॥२॥
[यत्] प्रतिग्रह्यम् उत्तरतः प्रमृशत्य् उदङ् प्रतिग्रहीतुः प्राणः प्र क्रामति न द्विषोऽयाय प्र व्रजति शिरस् तस्य दक्षी[ति] प्राश्नीर् माय जीवत्य् एनं चैनं प्राशनम् उपद्रष्टा गृह्णामि ॥३॥
यत् प्रतिग्रह्यं पश्चात् प्राञ्चम् अभिमृशति शर्मणा चैवैनं तद् वर्मणा चाभि मृशति शर्म चैवास्मै वर्म च भवति ।
अपत्य् ओदनम् ओदनलोको भवति य एवं वेद ॥४॥ ॥ऋ°१६॥ ॥अनु°१८॥

१६.१२७

शौ १०.५.१ इन्द्रस्यौज[स्] स्थेन्द्रस्य सह[स्] स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थेन्द्रस्य शुष्मं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ ।
जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर् वो युनज्मि ।

• योर...
• • • • प्राश्नाद्...
• • • • अपाद् • •
• चैनम् • • • अद्भ्यः • •
• • • • दिशां • •
यद् गुलन्ती • प्रजापतेर् •
• यो गुलन्तिकां • प्रजापतीर् एव •
• • • ऊर्ध्वनभसेव • • । स यद् शुष्के [भवत्य् ऊर्ध्वनभसेव प्रियम् धामोपयति
...ऊर्ध्वनभसा •
...प्रतिगृहीतारं •
• सर्पि... सर्पः प्रतिगृहीतारं •
...प्रतिगृहीतारं •
• चैनम्... प्राश्नाति ईशानः प्रतिगृहीतारं •
...यः
• • • अनुमृशति • °गृहीतुः...
द्वेषोयाय...
देवं...
• दक्षिणत्... प्रतिगृह्य
दक्षिणम् अपरतः प्रमृशति उदङ् प्रतिगृह्य
• देवोयाय... (• • क्रामति
देवं • प्राशनम्...
...स्मै यं एवं वेद
स्थेन्द्रो...नृम्णं
• योगाय इन्द्रयोगैः • •

शौ १०.५.१ (अनु. [illegible])	जिष्णवे योगाय विश्वानि मा [भूता]न्य् उप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस् स्थ ॥१॥	● ● विश्वानि ● न् ● ● ● स्थ
शौ २	[इन्द्रस्यौजस् स्थेन्द्रस्य सहस् स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य शुष्मं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ ।	
	[जिष्णवे] योगाय ब्रह्मयोगैर् वो [युनज्मि ।	● ● वः
	[जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्य् उप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस् स्थ ॥२॥	
	[इन्द्रस्यौजस् स्थेन्द्रस्य सहस् स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य शुष्मं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ ।	
	[जिष्णवे] योगायेन्द्रयोगैर् वो [युनज्मि ।	● वः
	[जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्य् उप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस् स्थ ॥३॥	
शौ ३	[इन्द्रस्यौजस् स्थेन्द्रस्य सहस् स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य शुष्मं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ ।	
	[जिष्णवे] योगाय सोमयोगैर् वो [युनज्मि ।	● ● वः
	[जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्य् उप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस् स्थ] ॥४॥	
शौ ४	इन्द्रस्यौजस् स्थेन्द्रस्य सह[स्] स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य शुष्मं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थ ।	स्थेन्द्र ...
	जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर् वो युनज्मि ।	जिष्णे ...
	जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्य् उप तिष्ठन्तु युक्ता म आपस् स्थ ॥५॥ ऋ॰ १८	... भूतान् ● ● ● स्थ ●

१९.१२८

शौ १०.५.७	अग्नेर् भाग[स्] स्थ ।	● ● स्थः
	अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	... धत्त
	प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥१॥	
शौ ८	इन्द्रस्य भागस् [स्थ ।	● भागः (एवम् अन्यत्र)
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥२॥	
शौ १०	वरुणस्य भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥३॥	
शौ ९	सोमस्य भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥४॥	
शौ १२	यमस्य भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥५॥	
शौ १३	पितॄणां भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥६॥	
	बृहस्पतेर् भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥७॥	
	प्रजापतेर् भागस् [स्थ ।	
	[अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	
	[प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये] ॥८॥	
शौ १४	देवस्य सवितुर् भागस् स्थ ।	● ● भागः स्थ
	अपां शुक्रं देवीर् आपो वर्चो ऽस्मासु धत्त ।	● शुक्रं ... धत्त
	प्रजापतेर् वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥९॥ ऋ॰ २	... सादये

१९.१२९

शौ १०.५.१५	यो [व] आपो ऽपां भागो [ऽप्स्व् अन्तर्] यजुष्यो देवयजनः ।	... यजुष्य ●

	इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	इदन् त्वा नु सृजामि तानु माभ्यवनक्षि
	तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१॥	तेन तम् अभ्यसृजामि ● ● ● यं च वयं ●
शौ १६	[यो व आपो] ऽपाम् ऊर्मिर् [अप्स्व् अन्तर् य]जुष्यो [देवयजनः ।	● अन्तु जुष
	[इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	
	[तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥२॥	
	[यो व आपो] ऽपां बिन्दुर् [अप्स्व् अन्तर्] यजुष्यो [देवयजनः ।	... यजुष
	[इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	
	[तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥३॥	
	[यो व आपो] ऽपां वत्सो [अप्स्व् अन्तर्] यजुष्यो [देवयजनः ।	... यजुष
	[इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	
	[तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥४॥	
शौ १७	[यो व आपो] ऽपां वृषभो [अप्स्व् अन्तर्] यजुष्यो [देवयजनः ।	... यजुष
	[इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	
	[तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥५॥	
शौ १८	[या व आपो] ऽपां गावो [अप्स्व् अन्तर्] यजुष्या [देवयजनाः ।	... यजुष
	[इदं ता अति सृजामि ता माभ्यवनिक्षि ।	
	[ताभिस् तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥६॥	
	[यो व आपो] ऽपां गर्भो [अप्स्व् अन्तर्] यजुष्यो [देवयजनः ।	... यजुष
	[इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	
	[तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः] ॥७॥	
शौ १९	यो [व] आपो [ऽपाम्] अश्मा पृश्निर् दिव्यो [ऽ]प्स्व् अन्तर् यजुष्यो [देवयजनः] ।	... अश्मा ... यजुष्यः
	इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	इदन् त्वा नु सृजामि तानु माभ्यवनक्षि
	तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥८॥	तेन तम् अभ्यसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं [द्विष्मः
शौ २०	ये [व] आपो [ऽपाम् अ]ग्न[यो ऽ]प्स्व् अन्तर् यजुष्या देवयजनाः ।	यो ● ग्न ...
	इदं तान् अति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।	● त्वान् अनु ● तान् अमाभ्यवनक्षि
	तैस् तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥९॥	● ● अभ्यसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
शौ १८	यो व आपो [ऽपां] हिरण्यगर्भो [ऽ]प्स्व् अन्तर् यजुष्यो देवयजनः ।	● आपो ... यजुषो 'यजना
	इदं तम् अति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ।	● त्वान् अनु ● तान् अमाभ्यवनक्षि [द्विष्मः
	तेन तम् अभ्यतिसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥१०॥ ऋ॰ ३	तेन् तम् अभ्यसृजामि यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं

१९.१३०

शौ १०.५.२२	यद् अर्वाचीनम् ऐकहायना[द् अ]नृतं किं चोदिम ।	● र्वा॰ ...
	आपो मा तस्माद् एनसो दुरितात् पान्तु विश्वतः ॥१॥	... पान्तु ●
शौ २४	अरिप्रा [आ]पो [अप] रिप्रम् अस्मत् ।	● सो ● अस्मात्
	प्रास्मद् एनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुःष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥२॥	● एन ● सुप्रतीकाः ● दुष्वप्...
शौ २३	समुद्रं वो [प्र]हिणोमि स्वां योनिम् अपीतन ।	... स्वाम् ● अपीत
	अरिष्टास् सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥३॥ ऋ॰ ४	● सर्वहायो मा च ● ● ●

१९.१३१

शौ १०.५.२५	विष्णोः क्रमो ऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितो ऽग्नितेजाः ।	... संशितो ऽग्नितेजाः
	पृथिवीम् अनु वि क्रमे ऽहं पृथिव्या[स्] तं निर् भजामो	● ● ● क्रम वं ...
	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
	प्रथमजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥१॥	... अपनुत्तम्
शौ २६	विष्णोः क्रमो ऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजा[ः] ।	● ● ● सपत्नहान्तरिक्षसंशितो ●
	[अ]न्तरिक्षम् अनु वि क्रमे ऽहम् अन्तरिक्षात् तं निर् भजामो	● ● ● क्रम वम् अन्तरिक्ष...
	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
	सहजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥२॥	... अपनुत्तम्
शौ २७	विष्णोः क्रमो ऽसि सपत्नहा द्यौसंशितस् सूर्यतेजाः ।	... द्यौसंशिता सूर्यतेजा

	दिवम् अनु वि क्रमे [ऽहं] दिवस् तं निर् भजामो	दिविम् ● ● क्रमे ...
	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयन् द्विष्मः
	अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥३॥	नहाः
शौ २८ [illegible]	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नहा दिक्संशितो वायुतेजाः ।	सपत्ना दिग्संशितो वायुतेजाः
	दिशो अनु वि क्रमे ऽहं दिग्भ्यस् तं [निर् भजामो	दिशो नु अनु वि क्रम वर् दिग्भ्यस् तं
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥४॥	
शौ २९	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।	सपत्नहाशासंशितो वाततेज
	आशा अनु वि क्रमे ऽहम् आशाभ्यस् तं [निर् भजामो	आशो नु अनु वि क्रम वर् आशिभ्य ●
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥५॥	
शौ ३०	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नह ऋक्संशितस् सामतेजाः ।	सपत्नहा ऋक्संशितम् ●
	ऋचो अनु वि क्रमे ऽहम् ऋग्भ्यस् तं [निर् भजामो	● नु अनु वि क्रम वर् ऋग्भिस् ●
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥६॥	
शौ ३१	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।	● यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजा
	यज्ञम् अनु वि क्रमे ऽहं यज्ञात् तं [निर् भजामो	● ● ● क्रम व ● ●
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥७॥	
शौ ३२	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नहौषधीवीरुत्संशितस् सोमतेजाः ।	सपत्ना ओषधीवीरुत्संशितम् ●
	ओषधीर् अनु वि क्रमे ऽहम् ओषधीभ्यस् तं [निर् भजामो	ओषधीर् ● ● क्रम वर् ओषधीभ्य त्वं
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ? ॥८॥	
शौ ३४	[विष्णोः क्रमो ऽसि] सपत्नहा कृषिसंशितः पुरुषतेजाः ।	सपत्ना कृषिसंशितः पुरुषतेजाः
	कृषिम् अनु वि क्रमे ऽहं कृष्यास् तं [निर् भजामो	● ● ● क्रम व कृष्याम् ●
	[यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ?] ॥९॥	
शौ ३५	विष्णोः क्रमो ऽसि सपत्नहा प्राणसंशितो ऽन्नतेजाः ।	... प्राणसंशितो ●
	प्राणम् अनु वि क्रमे ऽहं प्राणात् तं निर् भजामो	● ● ● क्रम व ● ● ● ●
	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।	यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
	[अपरजान् सपत्नान् अवैनान् बाधे ; तेनाभ्याकामाम्यपाम् अपनुत्तस् सपत्नहा ?] ॥१०॥ ऋ॰ ५	

१९.१३२

शौ १०.५.३६*	अस्माकं स्वर् अस्माकं ज्योतिर् अस्मद् अहो विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥	अस्माकं ● ● ● वि श्वा ● ● रातीः
शौ ३७	सूर्यस्यावृतम् अन्वावर्ते दक्षिणाम् अन्व् आवृतम् ।	● 'वृतम् अन्वावृते ● अन्वावृतम्
	[सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम्] ॥२॥	
शौ ३८	दिशो ज्योतिष्मतीर् अभि पर्यावर्ते ।	● ज्योतिष्मतीर् ● अभ्यावर्ते
	[ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम्] ॥३॥	
शौ ३९	सप्तर्षीन् अभि पर्यावर्ते ।	
	[ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्] ॥४॥	
शौ ४०	ब्रह्माणि पर्यावर्ते ।	
	[ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्] ॥५॥	

	ब्राह्मणान् अभि पर्यावर्ते ।	
शौ ४१	ते मे द्रविणं [य]च्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥६॥	● ● द्रविणं ...
शौ ४५	यत् ते ऽन्नं भुवस् पत आक्षियति पृथिवीम् अनु ।	● ● ● ऽन्नं ● आक्षि ● ●
	तस्य नस् त्वं भुवस् पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥७॥	● ● ● भुवस्पते ● संप्रयच्छ ●
शौ ४२	[यं वयं मृगयामहे तं वधैस् स्तृणवामहे] ।	
	व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥८॥	व्यात्ते ● ब्रह्मणापीपदाम तम्
शौ ४३	वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस् तं सम् अधाद् अभि ।	...तं ● अधात् इति
	इयं तं प्सात्व् आहुतिस् समिद् देवी सहीयसी ॥९॥	इयं तम् प्सात्...
शौ ४४	राज्ञो वरुणस्य बन्धो ऽसि ।	● बन्धोऽसि ● ●
	सो ऽमुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् अन्ने प्राणे बधान ॥१०॥	● अमुं अमु॰ ● पुत्रम् अन्ने ● बधान
शौ ७.६१.१	अपाम् अस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।	अपाम् ... चतुर्भृष्टि ● ●
	सो ऽस्य पर्वाणि प्र शृणातु सर्वा तन् मे देवा [अ]नु जानन्तु विश्वे ॥११॥	● ● सर्वाणि प्र शृणातु ...
	यद् अग्ने तपसा तप उप तप्यामहे वयम् ।	
	प्रिया[श्] श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तस् सुमेधसः ॥१२॥ ऋ॰ ६	

१९.१३३

शौ ८.१०.१-११	विराड् वा इदम् अग्रे ऽजायत ।	● ● इदम् ...
	तस्या जातायाः सर्वम् अबिभेद् इ[य]म् एवेदं भविष्यति न वयम् इति ॥१॥	● ● ● बिभेद् ...
	[सोद् अक्रामत् सा गार्हपत्ये न्य् अक्रामत् ।	
	[गृहमेधी गृहपतिर् भवति य एवं वेद ॥२॥	
	[सोद् अक्रामत् साहवनीये न्य् अक्रामत् ।	
	[यन्त्य् अस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥३॥]	
	सोद् अक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्य् अक्रामत् ।	
	यज्ञर्तो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥४॥	यज्ञर्तो वासतेयो ...
	[सोद् अक्रामत्] सा सभायां [न्य् अक्रामत्] ।	● सभायाम्
	[यन्त्य्] अस्य सभां सभ्यो भवति [य एवं वेद] ॥५॥	यन्त्य ● सभ्यो
	[सोद् अक्रामत्] सा समितौ न्य् अक्रामत् ।	
	[यन्त्य् अस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥६॥]	
	[सोद् अक्रामत्] सामन्त्रणे न्य् अक्रामत् ।	
	यन्त्य् अस्यामन्त्रणम् आमन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥७॥	यन्त्यो आमन्त्रणीयो भवति ● ● ●
	सोद् अक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ।	... विक्रान्तातिष्ठत्
	तां देवमनुष्या अब्रुवन् इयम् एव तद् वेद यद् उभय उपजीवेमेमाम् उप ह्वयामहा इ[ति] ॥८॥	तन् ● अब्रुवन् इयम् एव तद् वेद यद् उभय उपजीवेमेमाम् ● ह्वयामहि
	ताम् उपाह्वयन्त ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्य् एहीति ॥९॥	● 'ह्वयन्त ऊर्जेहि स्वधेहि सूनृतेहि इरावतीहि
	तस्या [इ]न्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्य् अभिधान्य् अभ्रम् ऊधः ।	● ● वत्सासीद् गायत्र्य् अभिधान्य् अभ्र ऊधः
	तस्या बृहच् च र[थ]न्तरं च द्वौ स्तनाव् आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥१०॥	... द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञिय ● ●
	ओषधीर् एव रथन्तरं देवा अदुह्रन् व्यचो बृहत् ।	● ये ● ● दुह्र ● बृहत्
शौ नास्ति	अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियम् ॥११॥	... 'यज्ञं
	ये ते वै विराजः कामदुघास् स्तनाः कामंकामं यजमानं दोहयन् ॥१२॥ ऋ॰ ७	... कामदुघास्तना ... दुह्र॰

शौ ८.१०.[illegible]	१९.१३४	
	[सोद् अक्रामत् । सा] वनस्पतीन् आगच्छत् । तां वनस्पतयो ऽघ्नत । सा संवत्सरे सम् अभवत् ।	
	तस्मात् संवत्सरे वनस्पतीनां वृक्णम् अपि रोहति वृश्चते ऽस्याप्रियो भ्रातृव्यो [य एवं वेद ॥१॥	● ● ● वृक्णम् अपि रोहतु वनस्पतीनाम् भ्रातृव्यः
	[सोद् अक्रामत् ।] सा पितॄन् आगच्छत् । तां पितरो ऽघ्नत । सा मासे सम् अभवत् ।	● पितृन् आगच्छत्...

तस्मान् मासि पितृभ्यो ददाति स्वधावान् पितृषु भवति [प्र] पितृयाणं पन्थां जानाति य [एवं वेद] ॥२॥
[सोद् अक्रामत् ।] सा देवान् आगच्छत् । तां देवा [अ]घ्नत । सार्धमासे सम् अभवत् ।
तस्माद् अर्धमासे देवेभ्यो जुहोति जुहोत्य् अग्निहोत्रं प्र देवयानं पन्थां जानाति [य एवं वेद] ॥३॥
[सोद् अक्रामत् ।] सा मनुष्यान् आगच्छत् । तां मनुष्या [अ]घ्नत । सा सद्यस् सम् अभवत् ।
तस्माद् उभयद्युर् मनुष्याणा[म्] उप हरन्त्य् उपास्य [गृहे] भवन्ति य [एवं वेद] ॥४॥ ॥का° ८॥

१६.१२५

शौ ८.१०.११-१५ [सोद् अक्रामत् ।] सासुरान् आगच्छत् । ताम् असुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ।
तस्या विरोचनः प्राह्रादिर् वत्स आसीद् अयस्पात्रं पात्रम् ।
तां द्विमूर्धार्त्व्यो ऽधोक् तां मायाम् अधोक् ।
तां मायाम् असुरा उप जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥१॥
शौ ४०-४१ [सोद् अक्रामत् ।] सा मनुष्यान् आगच्छत् । तां मनुष्या उपाह्वयन्तेरावत्य् एहीति ।
तस्या मनुर् वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवीपात्रं पात्रम् ।
तां पृथी वैन्यो ऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ।
तां कृषिं च सस्यं च मनुष्या उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥२॥
शौ ४४-४६ [सोद् अक्रामत् ।] सा पितॄन् आगच्छत् । तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ।
तस्या यमो वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ।
ताम् अन्तको मार्त्यवो ऽधोक् तां स्वधाम् अधोक् ।
तां स्वधां पितर उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥३॥
शौ ४८-५१ [सोद् अक्रामत् ।] सा देवान् आगच्छत् । तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ।
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् चमसपात्रं पात्रम् ।
तां सविताधोक् ताम् ऊर्जाम् [अधोक् ।
[ताम् ऊर्जां] देवा उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥४॥
शौ ५५-५७ [सोद् अक्रामत् ।] सा सप्तऋषीन् आगच्छत् । तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्य् एहीति ।
तस्याम् सोमो वत्स आसीच् छन्दःपात्रं पात्रम् ।
तां बृहस्पतिर् आ[ङ्गिर]सो ऽधोक् तां ब्रह्म च तपश् चाधोक् ।
तद् ब्रह्म च तपश् च सप्तऋषय उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥५॥
[सोद् अक्रामत् ।] सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् । तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध [ए]हीति ।
तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीद् आमपात्रं पात्रम् ।
तां रजतनाभिः काबेरको ऽधोक् तां पुण्यगन्धम् अधोक् ।
तं पुण्यगन्धं गन्धर्वाप्सरस उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥६॥
शौ ५२-५५ [सोद् अक्रामत् ।] सा पुण्यजनान् आगच्छत् । तां पुण्यजना उपाह्वयन्[त] तिरोध एहीति ।
तस्या चित्ररथस् सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णपात्रं पात्रम् ।
तां वसुरुचिस् सौर्यवर्चसो ऽधोक् तां तिरोधाम् अधोक् ।
तां तिरोधां पुण्यजना उप [जीवन्त्य् उपजीवनीयो भवति य एवं वेद] ॥७॥

शौ ८.१०.२२-२५ सोद् अक्रामत् । सा सर्पान् आगच्छत् । तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्य् एहीति ।
तस्यास् तक्षको वैशालेयो वत्स आसीद् अलाबुपात्रं [पात्रम्] ।
तं धृतराष्ट्र ऐरावतो ऽधोक् तां विषम् अधोक् ।
तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्य् [उपजीवनीयो] भवति य एवं वेद ॥८॥
शौ १४-१० तस्माद् यस्या अलाबुनाभिषिञ्चेत् [प्रत्याहन्यात् ।
[न च प्रत्याहन्यात्] मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्या[त्] ॥९॥
यत् प्रत्याहन्ति विषं प्रत्याहन्ति तम् अनुविषिच्यते विषम् ।
अस्याप्रियं भ्रातृव्यं हन्ति य एवं वेद ॥१०॥ ॥का° १०॥ ॥अनु° १९॥

१६.१२६

शौ १०.९.१ अघायताम् अपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रम् अर्पयैतम् ।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानाय गातुः ॥१॥
शौ २ वेदिस् ते चर्म भवतु बर्हिर् लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषो अधि नृत्यतु ॥२॥
शौ ३ बालास् ते प्रोक्षणी[स्] सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्व् अघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥३॥
शौ ४ यश् शतौदनां पचति कामप्रेण स [क]ल्पते ।
प्रीता ह्य् अस्य ऋत्विजस् सर्वे यन्तु यथायथम् ॥४॥
शौ ७ ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीश् शतौदने ॥५॥
शौ ५[a,b] स स्वर्गम् आ रोहतु यत्रादस् त्रिदिवं दिवः ।
शौ ६[c,d] हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददातु शतौदनाम् ॥६॥
शौ ६[a] स तांल् लोकान् सम् आप्नोति येषु देवास् समासते ।
शौ ५[c,d] अपूपनाभिं कृत्वा यो द[दाति शतौद]नाम् ॥७॥
शौ ८ वसवस् त्वा दक्षिणत उत्तरान् मरुतस् त्वा ।
आदित्याः पश्चाद् ! गोप्स्यन्ति साग्निष्टोमम् अति द्रव ॥८॥
शौ ९ गन्धर्वाप्सरसो देवा यज्ञाङ्गिरसश् च ये ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रम् अति द्रव ॥९॥
शौ १० अन्तरिक्षं दिवं भूमिम् आदित्या[न्] मरुतो दिशः ।
लोकां[श्] च सर्वान् आप्नोति यो ददातु शतौदनाम् ॥१०॥ ॥का° १॥

१६.१२७

शौ १०.९.११ घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवान् देवी गमिष्यति ।
पक्तारम् अघ्न्ये मा हिंसीर् दिवं प्रेहि शतौदने ॥१॥
शौ १२ पितरो दिविषदो ऽन्तरिक्षसदश् च ये ये चेमे भूम्या[म्] अधि ।
तेभ्यस् त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिर् अथो मधु ॥२॥
शौ १३-१४ यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु ॥३॥
यत् ते मुखं या जिह्वा ये दन्ता ये च ते हनू ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥४॥
शौ १५ यत् ते क्लोमा य[द्] धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥५॥
शौ १६ यत् ते [य]कृद् ये मतस्ने या[न्य् आ]न्त्राणि याश् च ते गुदाः ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥६॥
१७ शौकेषु भूमिः प्लाशिः यत् ते प्लाशिर् यो वनिष्ठुर् यौ [कु]क्षी यच् चोदरम् ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥७॥
शौ १८ यत् ते मज्जा यान्य् अस्थीनि यन् मांसं यच् च लोहितम् ।

[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥८॥
शौ १९ यौ ते बाहू यौ ते अंसौ ये दोषणी या च ते ककुत् ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥९॥
शौ २० ये ते स्कन्धा या ग्रीवा याः पृष्टीर् याश् च पर्शवः ।
[आमि° दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥१०॥ ॥का° १॥

१६.१२८

शौ १०.९.२१ यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥१॥
शौ २२ यत् ते पुच्छं ये [ते] बाला [य]द् ऊधो ये च ते स्तनाः ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥२॥
शौ २३ यास् ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
[आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु] ॥३॥
शौ २४ यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्य् अघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिर् अथो मधु ॥४॥
अयं ते शुक्लमिक्षाम् अयं सर्पिर् अथो मधु ।
अयं ते सर्वकान् दुहां दधि शतौदने ॥५॥
शौ २५ क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशाव् आज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा दातारं दिवं वह ॥६॥
शौ २६ उलूखले मुसले यश् च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष् टद् धोता सुहुतं कृणोतु ॥७॥
शौ इमा अपो मधुमतीर् घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदम् अभिषिञ्चामि वो ऽहं तन् मो [सर्वं सं पद्यतां] वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥८॥ ॥का° १॥

१६.१२९

शौ ९.७.१ प्रजापतिश् च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रश् शिरो अग्निर् ललाटं [यमः कृकाटम्] ॥१॥
शौ २ सोमो राजा मस्तिष्को द्यौर् उत्तरहनुः पृथिव्य् अधर[हनुः] ॥२॥
शौ ३[a] अग्निर् आस्यं विद्युज् जिह्वा मरुतो दन्ताः पवमानः प्राणः ॥३॥
शौ ४ विश्वं वायुस् स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥४॥
शौ ३[b] देवानी[ः] ग्रीवाः कृत्तिकास् स्कन्धा घर्मो वहः ॥५॥
शौ ५[c] श्येनः क्रोडो ऽन्तरिक्षं पाजस्यम् ॥६॥
मित्रश् च वरुणश् चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी ॥७॥
शौ ७,५[b] महादेवो बाहू बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥८॥
शौ ६ देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥९॥
शौ ९ ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलम् ऊरू ॥१०॥
शौ १० धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा [अ]प्सरसः कुष्ठिका अदितिश् शफाः ॥११॥
शौ ११ चेतो हृदयं [य]कृन् मेधा ! व्रतम् पुरीतत् ॥१२॥
शौ १२ क्षुत् कुक्षिर् इरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥१३॥
शौ १३ देवजना गुदा मनुष्या [आ]न्त्राण्य् अत्रा उदरम् ॥१४॥
शौ १४ इतरजना ऊबध्यं रक्षांसि लोहितम् ॥१५॥
शौ १७ क्रोधो वृक्को मन्युर् आण्डौ प्रजा शेपः ॥१६॥
शौ १४ समुद्रो वस्तिर् नदी सूत्री स्तनयित्नुर् ऊधो वर्षस्य पतय[स्] स्तना[ः] ॥१७॥
शौ १५ विश्वव्यचास् चर्मौषधयो रोमाणि नक्षत्राणि रूपम् ॥१८॥
शौ १८ मज्जं पीयो मज्जा निधनम् ॥१९॥
शौ १६ [ईशानो] भूयाः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥२०॥

शौ २० इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥२१॥
शौ २१ प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन् सविता ॥२२॥
शौ २२ तृणानि प्राप्तस् सोमो राजा ॥२३॥
शौ २३ मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥२४॥
शौ २४ युज्यमानो वैश्वानरो युक्तः प्रजापतिर् विमुक्तस् सर्वम् ॥२५॥
शौ २५ एतद् वै विश्वरूपम् ॥२६॥
शौ २६ उपैनं रूपवन्तः पशवस् तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥२७॥ ॥का° १०॥ ॥अनु° २०॥

१६.१४०

शौ १२.५.१-६ श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्त ऋते श्रिता ॥१॥
सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥२॥
स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥३॥
छन्दांसि रूपम् अङ्गिरसस् संताप्य ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणो ऽधिपतिः ॥४॥
ताम् आददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥५॥
अप क्रामतु सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥६॥ ॥का° १॥

१६.१४१

शौ १२.५.७-११ ओजश् च तेजश् च सहश् च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश् च धर्मश् च ॥१॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश् च त्विषिश् च यशश् च वर्चश् च द्रविणं च ॥२॥
आयुश् च [रूपं च नाम च कीर्तिश् च प्राणश् चापानश् च चक्षुश् च] श्रोत्रं च ॥३॥
[पयश् च रसश् चान्नं चान्नाद्यं च ऋतं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश् च] ॥४॥
तानि सर्वाण्य् अप क्रामन्ति [ब्रह्मगवीम् आददानस्य जिनतो ब्राह्मणं] क्षत्रियस्य ॥५॥ ॥का° १॥

१६.१४२

शौ १२.५.१२ पूर्वार्धम् ब्रह्मगव्य् अपविद्या हृन्दा पूर्वत्स्य ! आवृता ॥१॥
शौ १३ सर्वाण्य् अस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥२॥
शौ १४ सर्वे पुरुषवधा[ः] ॥३॥
शौ १५ सा ब्रह्मज्यं ब्रह्मगव्य् आदीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥४॥
शौ १६ मेनिश् शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर् हि सा ॥५॥
शौ १७[a] महादेवो मरिष्यमाणा ॥६॥
शौ १८[a],१९[a],२०[a] वज्रो धावन्ती हेतिश् शफा[न्] निकृन्तन्ती क्षुरपविर् ईक्षमाणा ॥७॥
शौ २१[b],२०[b] मृत्युर् हिङ्कृण्वती वाश्यमानानु स्फूर्जयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यम् ॥८॥ ॥का° १॥

१६.१४३

शौ १२.५.२३[b]-२७ उग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥१॥
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥२॥
मेनिर् दुह्यमाना शीर्षक्तिर् दुग्धा ॥३॥
सेदिर् उपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥४॥
शरव्या मुखे ऽपिनह्यमान ऋतिर् हन्यमाना ॥५॥
अघा हितायविषा स्वयन्ती तमो निपतिता ॥६॥
अनुगच्छन्ती प्राणान् उप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥७॥ ॥का° १॥

१६.१४४

ईर्ष्ये [illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥
[illegible] ब्रह्मचारी [illegible]
[illegible] ॥१०॥

१६.१४५

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[अ]हि॰ [illegible] ब्रह्मचारी [illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ब्रह्मचारी [illegible]
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥
[किं वै] [illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[किं वै] [illegible] ॥११॥
किं वै [illegible] [इति] ॥१२॥

१६.१४६

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥
[illegible] ॥९॥
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ॥११॥
[illegible] ॥१२॥

१६.१४७

यत् ते [illegible] दौर्भाग्यं [illegible] ।
अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु ॥१॥
यत् ते भ्रुवोर् दौर्भाग्यं [illegible] ।

[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥२॥
यत् ते दत्सु दौर्भाग्यं जिह्वायां चुबुके हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥३॥
यत् ते हन्वोर् दौर्भाग्यं कण्ठे ह्रीमसु विष्ठितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥४॥
यत् ते स्कन्धेषु ग्रीवासु दौर्भाग्यं कीकसास्व् अनूक्ये ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥५॥
यत् ते हन्वोर् दौर्भाग्यम् अंसयोर् उपपक्षयोः ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥६॥
यत् ते बाह्वोर् दौर्भाग्यम् अरत्न्योः कफूदयोर् अनु ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥७॥
यत् ते हस्तयोर् दौर्भाग्यं पाण्योर् अङ्गुलीर् अनु ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥८॥

१६.१४८

यत् ते पृष्ठेषु दौर्भाग्यं जघने श्रोण्योर् हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥१॥
यत् त उरसि दौर्भाग्यं पार्श्वयोस् स्तनयोर् हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥२॥
यत् ते हृदये दौर्भाग्यं क्लोम्नां यक्ष्मण्या [अ]नु ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥३॥
यत् ते प्रियन्ति ! दौर्भाग्यं यद् वा यकनि वृक्कयोः ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥४॥
यत् ते मतस्नि दौर्भाग्यं यद् वा वनुक ! मुष्कयोः ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥५॥
यत् ते वसति ! दौर्भाग्यम् ऊर्वोर् जान्वोर् हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥६॥
यत् ते गुदास्व् अन्त्रेषु दौर्भाग्यम् उदरे हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥७॥
यत् ते वस्तिषु दौर्भाग्यं वनिष्ठौ प्लाशाव् आहितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥८॥
यत् ते श्रोण्योर् दौर्भाग्यम् अवखाद्व्योर् ! हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥९॥
यत् ते अङ्गयोर् दौर्भाग्यं स्फूरयोः पार्श्वयोर् हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥१०॥

१६.१४९

यत् ते गुल्फयोर् दौर्भाग्यं पादयोर् अङ्गुलीर् अनु ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥१॥
यत् ते किं चिद् दौर्भाग्यम् अङ्गेष्वङ्गेषु प्रतिष्ठितं यद् वा लोमसु विष्ठितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥२॥
यत् ते ऽक्षेषु दौर्भाग्यं प्रादयाम् ? अधिदेवने ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥३॥
यत् ते पार्श्वे दौर्भाग्यं मांसे ऽस्थिषु मज्जसु ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥४॥
यत् त पशुषु दौर्भाग्यं कृष्याम् उदरे हितम् ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥५॥

या ते ऽवक्रीर् [illegible] या ते [illegible] ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥६॥
या ते या च पापी [illegible] या ते [illegible] ? ।
[अयं तद् विश्वभेषजो ऽपामार्गो ऽप लुम्पतु] ॥७॥
यत् ते ऽदः [illegible] या ते [illegible] ।
अयं तद् विश्वभेषजो [अ]पामार्गो ऽप लुम्पतु ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] [अ]स्मात् [illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] [आ] [illegible] ।
[illegible] ॥१२॥

१६.१५०

ब्रह्म जज्ञानं [प्रथमं पुरस्ताद् वि सीमतस् सुरुचो वेन आवः ।
[स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास् सतश् च योनिम् असतश् च वि वः] ॥१॥
[illegible] दिवं च [illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] [स्] [illegible] [॰] [illegible]
[illegible] ॥३॥
[illegible] दिवम् [illegible] ।
[illegible] [ह्]रसा [illegible] दिवम् आ रोह
सूर्यं ॥४॥
[illegible] [अ]सुरा [illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥५॥
[illegible] [अन्त] [illegible] ।
हिरण्यवर्णो [illegible] [र्][षि]
[illegible] ॥६॥
वि [illegible] हिरण्यवर्णः [अ]सुरा [अ]न्तर् [illegible]
समुद्रे ।
[illegible] [दु] [illegible] परि [illegible]
[illegible] ॥७॥
[illegible] [अ] [illegible] [ः] ।
[illegible]
[illegible] ॥८॥
[illegible] अन्तरिक्षं दिवं च [illegible]
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
वैश्वानरस् [illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥१०॥

१६.१५१

वैश्वानरस् [illegible] अन्तरिक्षं दिवं च [illegible] ।
[illegible] [अ]पि [illegible]
[illegible] ॥१॥

रक्तपत्ते नीलपत्ते शीतकरे तस्मात् अस्य नीम ।
कपाल्य एति बहुधा वसानो ब्रह्म[न्] कृष्णास् तन्व[ः] पराचे ॥२॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्न् आ तस्थुर् भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस् तप्यते भूरिभारस् सनाद् एव न छिद्यते सनाभिः ॥३॥
पञ्चभिस् तपस् तपत्य् एवं एतत् सहस्रधामाणय् अधि तिष्ठन्त्य् एनम् ।
सप्त त्वा सूर्य हरितो वहन्ति ब्रह्मणादित्य विभृता सपर्ये ॥४॥
वि घोतते घोतत आ घोतते यान्त्स् अन्तर् अमृतो घर्म उद्यन् ।
इन्द्रा वृत्रस्य हरितम् अनीकम् अनापृष्टास् तन्वस् सुर्यस्य ॥५॥
घर्मः पश्चाद् उत घर्मः पुरस्ताद् अघोर्द्वाय द्विषतो ऽपि वृष्णः ।
वैश्वानरस् च शीतकरे वसानस् सपत्नान् मे द्विषतो हन्तु सर्वान् ॥६॥
अद्[र्] अङ्गुभिश् शमयति [ब्रह्मणैर्वीरो] घर्मस् सुचानस् समिधा समिद्धः ।
[ब्रह्म त्वा तपति] ब्रह्मणा तेजसा च ॥७॥
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं समारभे तद् आयमानं न विम्बे न तद् विदे ।
त[द्] रोहमाणं ; वितर्यो द ततस्य माक्यो तता विततास् ततानता ? ॥८॥
अमर्त्यत्रा तस् स्वराज्यमारो रवि अजान स्वजासु भर्ता ।
प्रजापतिः प्रजाभिस् संविदानस् त्रीणि ज्योतींषि दधते वसाकः ॥९॥
प्रजापतिश् चरति गर्भे अन्तस् स्वजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य पदम् अभि पश्यन्ति वेधसस् तस्मिन्न् आर्पिता भुवनानि विश्वा ॥१०॥

१६.१५२

यस्मिन् देवाः पितरो मनुष्या[श् च]रा नामाद् इव श्रिताः ।
अर्वां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन् मायया हितम् ॥१॥
यत्रापां पुष्पं निहितं मायाभिर् हितं गुहा न ।
यो वै तद् विद्यात् प्रत्यक्षं स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥२॥
अभिस् तु सूत्रे निहितस् स्वर्षेद् ऊर्ण[स्] श्रियं विश्वानु प्रजानन् ।
स पुमान् पुंसो जनयन् ; ततेन सर्वान् अदस्तो अदसन्तु संयच ? ॥३॥
सर्वा रात्रिं सम् मोपतद् आदित्यो आतवेदसा ।
अर्केर् अधि दिवम् आरोहन् आयुषा स पुनातु मां वर्चसा सं सृजतु माम् ॥४॥
घर्मस् साहस्रम् समिधा समिद्धो ऽसपत्नः प्रदिशो मे भवन्तु ।
सपत्नान् सर्वान् मे सूर्यो हन्तु वैश्वानरो हरि॰] ।
घर्मस् तत्र प्र दहतु भ्रातृव्यान् द्विषतो मृ॰ ॥५॥
उद्यन् मे शुक आदित्यो विमृधो वक्षि सूर्य[ः] ।
वैश्वानरः प्र दहतु भ्रातृव्यान् द्विषतो मम ॥६॥
आदन्याय ? शत्रून् आदित्य विमृधो हन्नि रक्षसा ।
शुक्रं सुवर्णं हरिं ब्रह्म भाजिष्ठं ज्योतिर् दिवम् आ तताय ॥७॥
हरिस् सुवर्णस् सुभ्रस् अभयंकरो हिरण्यवर्णो दुरिता पातु ? ।
सपत्नान् सर्वान् मे सूर्यो हन्तु वैश्वानरो गृहन् ॥८॥
महान्तम् अर्चं परिसर्पन्त्य् अहोरात्रे वितनय शुक उद्यन् ।
सपत्नान् सर्वान् मे सूर्यो हन्तु वैश्वानरो गृहन् ॥९॥
उद्यन्न् अद्य मित्रमह[स्] सपत्नान् मे अव जहि ।
[दिव एनान् रश्मिभिस् सह रात्रीणां तमसा वधीस् ते यन्तु अधमं तमः] ॥१०॥
तेजस् तपांसि सुभगो विमर्ष्ये आलब्धे मूलं महसि प्रतिष्ठाम् ।
पर्यूढमायस् अयं तेषु सर्वतो अमोघं सत्यं यदा उद्यते ते ॥११॥

१६.१५३

ब्रह्मचारिण्यश् चरति रोदसी उभे अस्मिन् देवास् सुमनसो भवन्तु ।

	स दाधार पृथिवीं द्याम् उतेमां स आचार्यं तपसा बिभर्ति ॥१॥	सद • • • • आचार्यं तपसा •
शौ ३	आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भम् अन्तः ।	• उपनयमानो ...
	तं रात्रीस् तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुम् अभिसंयन्तु देवाः ॥२॥	तं • • • • • तं • तिसृ [illegible] देवाः
शौ २	ब्रह्मचारिणं पितरो मनुष्या देवजना गन्धर्वा अनुसंयन्तु सर्वे ।	...देवजना गन्धर्वा अनुसंयन्ति •
	त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताष् षट्सहस्रास् सर्वान् स देवांस् तपसा बिभर्ति ॥३॥	त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः • षट्सहस्राः ...
शौ ४	[इ]यं समित् पृथिवी द्यौ[र्] द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।	...समिधा पृणाति
	ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस् तपसा बिभर्ति ॥४॥	...। शौ श्रमेण लोकांस् तपसा पिपर्ति
शौ ५	पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस् तपसोद् अतिष्ठत् ।	शौ पूर्वो...तपसोद् अतिष्ठत्
	तस्माज् जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश् च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥	
शौ ६	ब्रह्मचार्य् [एति] समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।	ब्रह्मचारी...एति • • •
	स सद्य एति पूर्वान् अपरं समुद्रं लोकान् संगृभ्य मुहुर् आचरिक्रत् ॥६॥	• सद्य पूर्वस्मात् • • लोकान् संगृभ्य [illegible]
शौ ७	ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।	...लोकं प्रजापतिं • विराजम् [illegible]
	गर्भो भूत्वामृतस्य योनाव् इन्द्रो भूत्वासुरांस् ततर्ह ॥७॥	• • योनाव् • भूत्वासुरान् ततर्ह
शौ ९	इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षाम् [आ] जभार प्रथमो दिवं च ।	... जभार प्रथमो • •
	ते ब्रह्म कृत्वा समिधाव् उपास्ते तयोर् आर्पिता भुवनानि विश्वा ॥८॥	ते • • कृत्वा समिधाव् उपास्ते तयोर् आर्पिता • •
शौ ८	आचार्यस् ततक्ष नभसी उभे [इमे] उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।	• ततक्ष...
	ते ब्रह्मचारी तपसाभि रक्षतु तयोर् देवास् सधमादं मदन्ति ॥९॥	तौ...
शौ १०	अर्वाग् अन्यः परो अन्यो गुहा [निधी] निहितौ ब्राह्मणस्य ।	• • परान्यो • निहितौ ब्राह्मणस्य
	तौ ब्रह्मचारी तपसाभि रक्षतु तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥ ॥ऋ॰४७	...विद्वान्

१६.१५४

शौ ११.५.११	अर्वाग् अन्यो दिवस् पृष्ठाद् इतो ऽन्यः पृथिव्या [अ]ग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।	...समेतो •
	तयो[श्] श्रयन्ते रश्मयो ऽधि दृढास् तान् आ तिष्ठतु तपसा ब्रह्मचारी ॥१॥	• श्रयन्ते • अधि • तान् ...
शौ १२	अभिक्रन्दन् स्तनयन्न् अरुणः शितिङ्गो बृहच् छेपो ऽनु भूमौ जभार ।	• स्तनयन्न् अरुणः शितिङ्गः • • नु भूमौ •
	ब्रह्मचारी सिञ्चतु सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश् चतस्रः ॥२॥	• • सानौ...
शौ १४	पर्जन्यो मृत्युर् वरुणस् सोम ओषधयः पयः ।	
	जीमूता [आ]सन् सत्वानस् तैर् इदं स्वर् आभरम् ॥३॥	• सं • • भृतं • •
शौ १३	अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य् अप्सु समिधम् आ दधाति ।	अग्नौ... दधाति
	तेषाम् अर्चींषि पृथग् अभ्रे अन्तस् तेषाम् आज्यं पुरुषो वर्षम् आप[ः] ॥४॥	• अर्चींषि चरन्ति पृथग् अभ्रे • • • वर्षम् •
शौ १५	अमा घृतं कृणुते केवलम् आचार्यो भूत्वा वरुणो [य]द्यद् ऐच्छत् प्रजापतौ ।	आचार्यो...ऐच्छत् • तत्
	स ब्रह्मचारी [प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्य् आत्मनः ॥५॥	
शौ १६	[आचार्यो ब्रह्मचारी] ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।	
	प्रजापतिर् वि राजति विराड् इन्द्रो ऽभवद् वशी ॥६॥	• • • विराट् • भवत् •
शौ १७	ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।	...रक्षति
	आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणम् इच्छते ॥७॥	...इच्छते
शौ १८	ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।	...विन्दते •
	अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥८॥	अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो • जिगीर्षति
शौ १९	ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युम् उपाजयन् ।	...उपाघ्नत
	इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येणामृतं स्वर् आभरत् ॥९॥	
शौ २०	ओषधयो भूतभव्यम् अहोरात्रे वनस्पतयः ।	• भूतभव्यम्...
	संवत्सरस् सह ऋतुभिस् ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥१०॥ ॥ऋ॰४७	संवत्सरः सहर्तुभिस् • • ब्रह्मचारिणः

१६.१५५

शौ ११.५.२१	पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश् च ये ।	
	अपक्षा[ः] पक्षिणश् च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥१॥	...°चारिणः

शौ २२	पृथक् सर्वे प्राजापत्या[ः] प्राणान् आत्मसु बिभ्रति ।	...आत्मसु बिभ्रति
	सर्वान् तान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्य् आभृतम् ॥२॥	सर्वांस् तान् ... आभृतम्
शौ २४[१-२]	ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्त्य् अस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।	...समोताः
शौ २५[३-४]	स जातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥३॥	
शौ म १.१.० शौ २३[३-४]	देवानाम् एतत् पुरुहूतम् अनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।	...अनभ्यारूढं • •
	तस्मिन् सर्वे पशवस् तत्र यज्ञास् तस्मिन्न् अन्नं सह देवताभिः ॥४॥	अन्नं • •
शौ २४[३-४],२५	प्राणापानौ जनयन्न् आद् व्यानं चक्षुः श्रोत्रं जनयन् ब्रह्म मेधाम् ।	• • वा
	वाचं श्रेष्ठां यशो ऽस्मासु धेह्य् अन्नो रेतो लोहितम् उदरम् ॥५॥	...वाचं • • •
शौ २६[१-२]	तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपो ऽतिष्ठत् तप्यमानस् समुद्रे ॥६॥ ॥ऋ॰१० ॥अनु॰११	[illegible]

॥ इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां षोडशः काण्डः समाप्तः ॥ — इत्यथर्ववेदे पैप्पलादसंहितायां काण्डः षोडश- [काण्डः समाप्तः ॥ ॥

१७.१

शौ १२.१.१	सत्यं बृहद् ऋतम् उग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ[ः] पृथिवीं धारयन्ति ।	ओं अथ [illegible]
	सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्य् [उरुं] लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥	• • भूतस्य भव्यस्य पत्नी...
शौ २	असंबाधं बध्यतो मानवेषु यस्या उद्वतः प्रवतस् समं बहु ।	... [illegible]
	नानावीर्या ओषधीर् या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥	...राध्यतां नः
शौ ३	यस्यां समुद्र उत सिन्धुर् आपो यस्यां देवा [अ]मृतम् अन्वविन्दन् ।	
शौ ४[१-२]	या बिभर्ति बहुधा प्राणद् एजत् सा नो भूमिर् गोष्व् अश्वेषु पिन्वे ? कृणोतु ॥३॥	...प्राणत् एजत् सो • • • •
शौ ५[१-२]	यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरान् अभ्यवर्तयन् ।	• • • वि° चक्रि...
शौ ३[३-४]	यस्याम् इदं जीवति ? विश्वम् एजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥४॥	...पूर्वपेये •
शौ ४[१-२]	यस्यां चतस्रः प्रदिशः पृथिव्यां यस्याम् अन्नं कृष्टयस् संबभूवुः ।	...कृष्टयः •
शौ ५[३-४]	गवाम् अश्वानां वयसश् च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥	• • वयसश्च विष्ठा...
शौ ६	विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।	• वसुधानी ...
	वैश्वानरं बिभ्रती भूमिर् अग्निम् इन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥	• • • अग्निम् इन्द्र°...
शौ ९	यस्याम् आपः परिचराः समानीर् अहोरात्रे अ[प्र]मादं क्षरन्ति ।	यस्याम् • °चराः • °रात्रे...
	सा नो भूमिर् भूरिधारा पयो दुहाम् अथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥	• • • °धारा • • अथो उक्षतु •
शौ ७	यां रक्षन्त्य् [अ]स्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीम् अप्रमादम् ।	• रक्षन्त्य् अस्वप्ना...अप्रमादम्
	सा नो मधु प्रियं दुहाम् अथो उक्षतु वर्चसा ॥८॥	मधु •
शौ ८	यार्णवे अधि सलिलम् अग्र आसीद् यां मायाभिर् अन्वचरन् मनीषिणः ।	...अग्र • यां मायाभिर् अन्वचरन् •
	यस्या हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतम् [अ]मृतं पृथिव्या[ः] ।	...सत्येनावृतम् • •
	सा नो भूमिस् त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥९॥	• नो भूमिस् त्विषिं बलं • •
शौ १०[१-२]	याम् अश्विनाव् अमिमातां विष्णुर् यस्यां विचक्रमे ॥१०॥ ॥ऋ॰१०	• अश्विनाव् अमिमाताम्...

१७.२

शौ १२.१.१०[३]–१२	इन्द्रो यां चक्र आत्मने ऽनमित्रां शचीपतिः ।	• • चक्र आत्मने ऽनमित्रां •
	सा नो भूमिर् वि सृजतां माता पुत्राय नः पयः ॥१॥	
	गिरयस् ते पर्वता हिमवन्तो ऽरण्यं ते पृथिवि स्योनम् अस्तु ।	गिरिस्...अस्तु

	बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीम् इन्द्रगुप्ताम् ।	अजीतो हतो • अक्षतो • •
	अजीतो ऽहतो अक्षतो ऽध्य् अष्ठां पृथिवीम् अहम् ॥२॥	[illegible]
	यत् ते मध्यं पृथिवि यच् च नभ्यं यास् त ऊर्जस् तन्वस् संबभूवुः ।	तासु ... पवस्व...
	तासु नो धेह्य् अभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो ऽहं पृथिव्याः ।	• • नो • पिपर्तु
	पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥३॥	
	यस्यां वेदिं परिगृह्णन्तु भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।	
	यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्याम् ऊर्ध्वाश् शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।	...शुक्रा शुक्रा •
	सा नो भूमिर् वर्धयतु वर्धमाना ॥४॥	• • भूमि वर्धयतु वर्धमाना [illegible]
	यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् यो ऽभिमन्याते मनसा यो वधेन ।	• • • पृथिवी यद्...वधेन
	तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥५॥	तम् • भूमे • °कृत्वने
	त्वज् जातास् त्वयि चरन्ति मर्त्यास् त्वं बिभर्षि द्विपदस् त्वं चतुष्पदः ।	त्व • त्वं चरन्ति...
	तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिर् अमृतं मर्त्येभ्य उद्यन् सूर्यो रश्मिभिर् आतनोति ॥६॥	तवेमे पृथिवी...
	ता नः प्रजास् सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥७॥	• • प्रजाः मिन दुह्रतां • • मधु • • मह्यम्
	विश्वस्वं मातरम् ओषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।	विश्वस्वं...
	शिवां स्योनाम् अनु चरेम विश्वहा ॥८॥	
	महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर् वेपथुष् टे ।	• सधस्थं • बभूविथ • वेगः एजथुर् वेपथुष्टे
	महांस् त्वेन्द्रो रक्षतु वीर्येण ।	महांस् त्वेन्द्रो • •
	सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि ॥९॥	
	[अग्निर् भूम्याम् ओषधीष्व् अग्निम् आपो बिभ्रत्य् अग्निर् अश्मसु ।]	
	अग्निर् अन्तः पुरुषेषु गोष्व् अश्वेष्व् अ[ग्नयः] ॥१०॥ ॥ऋ॰१०	

१७.३

शौ १२.१.२०–२०,२४	अग्निर् दिव आ तपत्य् अग्नेर् देवस्योर्व् अन्तरिक्षम् ।	• दिवा तपति...
	अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥१॥	
	अग्निवासाः पृथिव्य् असितज्ञूस् त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२॥	अग्निवासाः • असितज्ञुः • संशितं • •
	भूम्यां देवेभ्यो जुह्वति यज्ञं हव्यम् अरंकृतम् ।	...ददो...
	भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।	...स्वधयान्नेन मर्त्याः
	सा नो भूमिः प्राणम् आयुर् दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥३॥	
	यस् ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्य् ओषधयो यम् आपः ।	...यद् आपः
	यं गन्धर्वा अप्सरसश् च भेजिरे यस् ते नाम भद्रम् अर्हति ।	
	तेनास्मान् सुरभीन् कृणु मा नो द्विक्षत कश् चन ॥४॥	तेनास्मान् सुरभीः...द्विक्षत...
	यस् ते गन्धः पुष्करम् आविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।	...संजभ्रुः • •
	अमर्त्याः पृथिवि गन्धम् अग्रे तेनास्मान् सुरभीन् कृणु मा नो द्विक्षत कश् चन ॥५॥	अमर्त्याः ... सुरभीः ... द्विक्षत
	यस् ते भूमे पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।	• • स्त्रीषु • • पुंसु • वचुर्
	यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।	
	कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मां अभि सं सृज मा नो द्विक्षत कश् चन ॥६॥	• वर्चो • भूमे तेनास्मां...द्विक्षत •
	शिला भूमिर् अश्मा पांसुर् या भूमि[स्] संधृता धृता ।	• • अश्मा पांसुर् • • संधृता •
	[तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः] ॥७॥	
	यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास् तिष्ठन्ति विश्वहा ।	
	भूमिं हिरण्यवक्षसं धृताम् अच्छावदामसि ॥८॥	पृथ्वी °वक्षसं...
	उदीराणा उतासीनास् तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।	... तिष्ठन्तु प्रक्रामन्तः
	पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥९॥	• °सव्याभ्यां • व्यथिष्महि •
	विमृग्वरीं पृथिवीम् आ वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।	विमृग्वरीं
	ऊर्जं पुष्टिं बिभ्रतीम् अन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदामि भूमे ॥१०॥	• • • अन्नभागं • • घृ • भूमे
शौ [illegible]	शुद्धा न आपस् तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुर् अप्रिये तं नि द[ध्म]ः ।	• आपस् तन्वे क्षरन्तु • • सेदुर् • • दध्मः •
	पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥११॥	• पृथिवी मोत् •

	निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु नः ।	निधिं • मणिं • • ददातु •
	वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥१२॥ ॥ऋ॰१२	... सुमनस्यमाना

१७.४

शौ १२.१.३१	यास् ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर् यास् ते भूमे अधराद् याश् च पश्चात् ।	...भूमे अधराद् • •
	स्योनास् ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥१॥	• स्योनास् • • चरते • • मा नि • शिश्रियाणः
शौ ३२	मा नः पश्चान् मा पुरस्तान् नुदिष्ठा [मोत्तराद् अधराद् उत] ।	मा • • • पुरस्तान् नुदिष्ठा
	स्वस्ति भूमे मे कृणु वरीयो यावया वधं मा विदन् परिपन्थिनः ॥२॥	• भूमे • • नो ... विदन् •
शौ ३३	यावत् ते [अ]भि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।	• • • विपश्यामि भूमे...
	तावन् मे चक्षुर् मा मेष्टोत्तराम् उत्तरां समाम् ॥३॥	• • चक्षुर्मेष्टोत्तरां •
शौ ३५	यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तद् अपि रोहतु ।	• • भूमे विखनामि क्षिप्रं तद् अपि रोहतु •
	मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयम् अर्पिपम् ॥४॥	• • मर्म विमृग्वरि
शौ ३४	यच् छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यम् अभि भूमे पार्श्वम् ।	...भूमे •
	उत्तानास् त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिर् अधिशेमहे ।	उत्तानस् • • पृष्टीभिर् अधिशेमहे
	मा हिंसीस् तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥५॥	... भूमे • •
शौ ३६	ग्रीष्मस् ते भूमे वर्षाणि शरद् धेमन्तः शिशिरो वसन्तः	• • भूमे
	ऋतवस् ते विहिता हायना [अ]होरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥६॥	• • नो
शौ ३७ विमृग्वरी	याप सर्पं विजमाना ? विमृग्वरी यस्याम् आसन्न् अग्नयो ये ऽप्स्व् अन्तः ।	याप सर्पं • विमृग्वरी यस्याम्...
	परा दस्यून् ददती देवपीयून् इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।	• • ददती °पीयून् ...
	शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥७॥	
शौ ४०	सा नो भूमि[र्] आ दिशतु यद् धनं कामयामहे ।	
	भगो अनुप्रयुङ्क्ताम् इन्द्रो यातु पुरोगवः ॥८॥	• अनुप्रयुङ्क्ताम् ...
शौ ३८[३-४]	ब्राह्मणो यस्याम् अर्चन्त्य् ऋग्भिस् साम्ना यजुर्विदः ।	
	युज्यन्ते [य]स्याम् ऋत्विजस् सोमम् इन्द्राय पातवे ।	• • ऋत्विजः...
	सा नो भूमि[र्] दक्षिणायां सुशेवा यज्ञं दधातु सुमनस्यमाना ॥९॥	सुशेवा...
शौ ३९	यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उद् आनृचुः ।	...आनृचुः
	सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ।	• • वेधसो ...
	सा नः पशून् विश्वरूपान् दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥१०॥	
शौ ४२	यस्याम् अन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।	• • व्रीहियवौ • कृष्टयः
	भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमो ऽस्तु वर्षमेदसे ॥११॥ ॥ऋ॰११	भूम्यै °पत्न्यै • • °मेदसे

१७.५

शौ १२.१.४१	यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।	वैलबा
	युध्यन्ते [य]स्याम् आक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।	युध्यन्ते...
	सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नान् यो नो द्वेषद् अपरं तं कृणोतु ॥१॥	• • • • असपत्नं मा • • पृथिवी [illegible]
शौ ४३	यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।	
	प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भाम् आशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥२॥	• • • आशामाशां रण्यां [illegible]
शौ ४५	जनं बिभ्रती बहुधा [विवा]चसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।	जनं • यथौकसम्
	सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुर् अनपस्फुरन्ती ॥३॥	सहस्रं • • • • दुहां
शौ ४६	यस् ते सर्पो वृश्चिकस् तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।	• वृश्चिकस् • °दंश्मा हेमन्त° • •
	क्रिमिर् जिन्वत् पृथिवि यद्-यद् एजति प्रावृषि तन् नस् सर्पन् मोप सृपद् यच् छिवं तेन नो मृड ॥४॥	[illegible]
शौ ४७	ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश् च यातवे ।	...जनायना • °वर्त्मानसश्च • •
	यैः संचरन्त्य् उभये भद्रपापास् तं पन्थानं जयेमानमित्रम् अतस्करं [यच् छिवं तेन नो मृड] ॥५॥	• भद्र° • °पापा ... अतस्करम्
शौ ४८	मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।	• • • गुरुभृद् • भद्र°

[illegible]

१७.६

[illegible]

१७.७

[illegible]

यत्र प्रेप्सन्तीर् अभियन्त्य् आवृत[स्] स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥५॥
शौ ६ क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतस् संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीर् अभियन्त्य् आपस् स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥६॥
शौ ५ अर्धमासाः क्व यन्ति मासास् संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्य् ऋतवो यत्रार्तवा[स्] स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥७॥
शौ ७ यस्मिन् स्तब्ध्वा प्रजापतिर् लोकान् सर्वान् अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतम[स्] स्विद् एव सः ॥८॥
शौ ८ यत् परमम् अवमं यच् च मध्यमं प्रजापतिस् ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भ[ः] प्र विवेश तत्र यन् न प्राविशत् कियत् तद् [ब]भूव ॥९॥
शौ ९ कियता स्कम्भ[ः] प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यद् अन्व् आशये ऽस्य ।
एकं यद् अङ्गम् अकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भ[ः] प्र विवेश तत्र ॥१०॥ अनु° १

१७.८

शौ १०.७.१० यत्र लोकांश् च कोशांश् चा[पो] ब्रह्म [जना विदुः ।
असच् च यत्र सच् चान्तस् स्कम्भं तं ब्रूहि] कतम[स्] स्विद् एव सः ॥१॥
शौ ११ यत्र तपः पराक्रम्य व्रतम् धारयत्य् उत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा च ब्रह्मापस् समाहिता[स्] स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥२॥
शौ १२ यस्मिन् भूमिर् अन्तरिक्षं द्यौर् यस्मिन्न् अध्य् आहिता ।
यत्राग्निश् चन्द्रमास् सूर्यो वातस् तिष्ठन्त्य् आर्पितास् [स्कम्भं तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥३॥
शौ १३ यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा [अ]ङ्गे सर्वे समाहिताः ।
स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥४॥
शौ १४ यत्र ऋषयो भूतकृत ऋचस् साम यजुर् मही ।
एकर्षिर् यस्मिन्न् आर्पितस् स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥५॥
शौ १६ यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस् तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो [य]स्मिन् पराक्रान्तस् [स्कम्भं तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥६॥
शौ १५ यत्रामृतं च मृत्युश् च पुरुषश् च समाहिताः ।
समुद्रो यस्य नाड्यस् स्कम्भं तं ब्रूहि कतम[स्] स्विद् एव सः ॥७॥
शौ १७ ये पुरुषे ब्रह्म विदुस् ते स्कम्भम् अनुसंविदुः ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश् च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस् ते स्क[म्भ]म् अनुसंविदुः ॥८॥
शौ १८ यस्य शिरो वैश्वानरश् चक्षुर् अङ्गिरसो ऽभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवस् स्कम्भं तं ब्रूहि कतम[स्] स्विद् एव सः ॥९॥
शौ १९ यस्य ब्रह्म मुखम् आहुर् जिह्वां मधुकशाम् उत ।
विराजं यस्योध आहुस् स्कम्भं [तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः] ॥१०॥ अनु° २

शौ १०.७.२०-२१

१७.९

यस्माद् ऋचो अपातक्षन् यजुर् यस्माद् अपाकषन् ।
छन्दांसि यस्य लोमानि स्कम्भं तं ब्रूहि कतम[स्] स्विद् एव सः ॥१॥
असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परमम् इव जना विदुः ।
उतो सन् मन्यन्ते ऽवरे यस्य शाखाम् उपासते ॥२॥
यत्रादित्याश् च रुद्राश् च वसवश् च समाहिताः ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमस् स्विद् एव सः ॥३॥

[illegible]

१७.१०

शौ १०.७.२९ इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रे ऽध्य् ऋतम् आहितम् ।
[illegible]

१७.११

[illegible]

१७.१२

अस्नःपात्रे रेरिहती दुश्चितं सिंहदंष्ट्रिणीम् ।
दुरन्तं अभिचक्रमां यक्ष्मम् उच्च वस्तवासिनीम् ॥१॥
सर्वासां मन्यावत् साकं नामधेयानि विद्मसि ।
यानि आरान्ति दस्युभ्यो नाशयेतस् सदान्वा[ः] ॥२॥
[illegible] उलूकीं कोशिनीं कृहम् ।
[illegible] नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥३॥
[illegible]
[illegible] नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥४॥
[illegible]
[illegible] ता इतो नाशयामसि ॥५॥
[illegible] सदान्वा[ः] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible]
[illegible] हन्मि रक्षसः ॥७॥
चतुर्दंष्ट्रान् कुम्भमुष्कान् दीर्घकेशान् असृङ्मुखान् ।
अलाबुगन्धीन् असुरान् दुर्णाम्नो नाशयामसि ॥८॥
[illegible]
दुर्णाम्नीस् सर्वास् सम्मोदा नाशयामस् सदान्वा[ः] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible]
[illegible] दुर्णाम्नीस् सर्वास् सम्मोदा नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥१०॥ अनु° १०

१७.१३

[illegible]
[illegible] नाशयेतस् सदान्वा[ः] ॥१॥
[illegible] × × × × [illegible]
[illegible] ॥२॥
उत् तिष्ठत नि[र्] द्रवत [illegible]
[illegible] ॥३॥
[illegible]
[illegible] सदान्वा[ः] ॥४॥
[illegible]
[illegible] नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥५॥
[illegible] सदान्वा[ः] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible]
[illegible] नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥७॥
[illegible]
[illegible] ॥८॥
[illegible]
सर्वासां [illegible] नामधेयानि [illegible] ।
[illegible] सदान्वाः ॥९॥
[illegible]
[illegible] नाशयामसि ॥१०॥ अनु° ९

१७.१४

यद् दाह्रासो भीमचक्षोरर् अग्ने अंग्ने सहान्वे ।
भ्रातिं त्विषि शुचिम् अग्निम् अरावि किम् दहसे ।
धूमम् भाति न यात्र् अतिस्तृथामि महोन्वे ॥१॥
कद्रू एकाः पृषद् एकाः किम् उत् पृषन्त्य् अभिधिषा ।
वरन्ति नक्तं दुर्णाम्नो रात्री मृतकीष्यस् ता इतो नाशयामसि ॥२॥
अपक्रालाम् अभिश्रयाम् आतुरवर्न्ती कुतूहलम् ।
कुशलियं रसभवर्नी खन्जाज् जातास् त्रिमूकयस् ता इतो नाशयामसि ॥३॥
या दुविता वयंन शुष्क खदन्ति वपुषाम् ।
यद्वा गर्दभीर् इव नाशयामस् सदान्वाः ॥४॥
याः पुरुन् दहमानं शून्यम् अग्नौ जिघत्सन्ति ।
अन्दालः कुष्ठमार्गानि मुष्टाग्रेण सदान्वाम् ता इतो नाशयामसि ॥५॥
या विकडीर् उन्मूत्योरता घोरचक्षवः ।
शीर्षाण्य् आम्यान्य् आमां वितावन्तीर् इवासते ।
सदान्वा अयनस् पंत पदो अूणान्य् अर्पत ॥६॥
यासां गन्धो नानारूपः ग [illegible] पुरुषं प्रति ।
ता [अ]ग्निम् सहताम् इतो जातवेदास् सदान्वाम् ता इतो नाशयामसि ॥७॥
गर्भान् एकः प्रतिमृशन् व्यायर्ति सदान्वा[ः] ।
उचितस् तन्वां स्त्रिया यात आ रोहिणीर् इव ता इतो नाशयामसि ॥८॥
याः पिङ्गान् संचरन्तीन्द्रजा नस् सदान्वा[ः] ।
अप मृत्युम् इयादन्तु पुनस् त्वा प्रति दध्मसि ॥९॥
आमादिनीश् च पुरादिनीर् अतम्रिदच्यादिनीः ।
अमुं परन्यां हूत शवम् अत्त सदान्वाः ।
शवः केवल आचारः किम् उ शालास्व् उच्छ्रिताः ॥१०॥ अ॰ १॥

१७.१५

याः कुमारीर् यास् त्व् अधीन युवतीर् यास् सदान्वा[ः] ।
सर्वा यन्तु कुरूदुर्नी[ः] कुलीना धेनु[ः] सर्पंतु रात्री रचिता हिता ॥१॥
तान्यो इन्द्रो वि मृजात्व् अवयमध्य अपयायिनी ।
ताम् त्वा हन्तु विपुला वज्रेणालगर्धिता ।
तासाम् दाक मोष्टियम् इन्द्र भन्धाः फलीकुरु ॥२॥
कुमारान् एका अधविशन् या [अ]दन्ति प्रयायिनी[ः] ।
ता इन्द्रो हन्तु वृत्रहा यो वयो विभ्याद् रक्षांसि सेधतु ॥३॥
याश् च दासीर् असुराणां मनुष्यकृताश् च याः कृताः ।
उत्सर्वीस् ताः परा यन्ति परा यन्ति परायतो भवति नाशया [अ]ति ॥४॥
या निशां यथाकथातात् रात्री यक्षाणि प्रेरत ।
अग्निर् ता सर्वा अन्तीका विभ्याद् रक्षांसि सेधतु ॥५॥
या दर्शीकः कलिलान्या [अ]प्सु आयाः पुरीकया ।
गोवा[आ]साम् एका वद यत्र जातास् सदान्वास् ता इतो नाशयामसि ॥६॥
यासां घोषस् सगता वृकाणाम् इव गच्छत ।
मूतं कशाम् भविषाः प्रवदन्त्यों प्रतिग्रहा नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥७॥
गुरुगहया मूलरायं शिशुमाकां प्रतिधुका ।
भति दृषा व्यतन्वां व्यतुलिमाम् ।
सर्वांश् चण्डमनन्यो नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥८॥
यावन्तीं नामदूकां त्वं स्वर्नीकां वृन्धयन्तीम् ।
उग्रिदन्तीम् अनामिकां नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥९॥
वावशाकाम् अल्पगामां विज्ञयां चवृं चमुम् ।
रायीं वातमंजयान नाशयामस् सदान्वा[ः] ॥१०॥ अ॰ २॥ अनु॰ १॥

१७.१६

ददामीत्य् एव ब्रूयाद् अनु चैनाम् अभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस् तत् प्रजावद् अपत्यवत् ॥१॥
प्रजया स वि क्री[णी]ते पशुभिश् चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥२॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटम् अर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥३॥
विलोहितो अधिष्ठानाच् छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायास् संविद्यं दुरदभ्ना ह्य् उच्यसे ॥४॥
यो ऽस्याः कर्णाव् आस्कुनोत्य् आ स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥५॥
यदीर् अस्या [अ]धिष्ठानाद् विक्लिन्दुर् नाम विन्दति ।
अमामनात् सं शीर्यते या मुखेनोपजिघ्रति ॥६॥
यद् अस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश् च घातुको वृकः ॥७॥
यद् अस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश् चित् प्रकृन्तति ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्य् अनामनात् ॥८॥
यद् अस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततो ऽपरूपं जायते तस्माद् अव्येष्यद् एनसः ॥९॥
जायमानाभि जायते देवान् सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तद् आहुः स्वस्य गोपनम् ॥१०॥ अ॰ १॥

१७.१७

य एनां वनिम् आयन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तद् अब्रुवन् य एनां नु प्रियायते ॥१॥
यो देवानां [गां] याचद्भ्य आर्षेयेभ्यो न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥२॥
यस्यान्य[म्] स्याद् वशाभोगो ऽन्याम् इच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥३॥
यथा शेवधिर् निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
ताम् एतद् आयन्ति यस्मिन् कस्मिंश् च जायते ॥४॥
स्वम् एतद् आयन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनान् अन्यज् जिनीयाद् एवास्या [अ]धिरोहणम् ॥५॥
चरेद् एवा त्रैहायणाद् अविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान् नारद ब्राह्मणास् तर्ह्य् एष्याः ॥६॥
य एनाम् अवशाम् आह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुम् अस्यतः ॥७॥
पुरुषः केवलम् आ शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामास् समृ ध्यन्ते याम् अदत्त्वा चिकीर्षति ॥८॥
यो ऽस्या ऊधो न वेद यो ऽस्या[स्] स्तनान् उत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेद् अशकद् वशाम् ॥९॥
देवा वशां याचन्ति मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां च सर्वेषाम् अददद् हेडं न्य् एति मानुषः ॥१०॥ अ॰ २॥

१७.१८

हेडं पशूनां न्य् एति ब्राह्मणेभ्यो ऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश् चेन् नु प्रियायते ॥१॥

यद् अन्ये शतं याचेयुर् ब्राह्मणा गोपतिं वशा[म्] ।
अथैनां देवा [अ]ब्रुवन्न् एवं ह विदुषो वशा ॥२॥
य एवं विदुषे ऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशा[म्] ।
दुर्गा तस्मा [अ]धिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥३॥
देवा वशाम् अयाचन् यस्मिन्न् अग्रे अजायत ।
ताम् एतां विद्यान् नारदस् सह देवैर् उद् आजत ॥४॥
अनपत्यम् अल्पपशुं वशा कृणोतु पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश् च याचिताम् [अथैनां] नु प्रियायते ॥५॥
अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास् तेष्व् आ वृश्चते ऽददत् ॥६॥
यावद् अस्या गोपतिर् नोपशृणुयाद् ऋचस् स्वयम् ।
चरेद् अस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे स्यात् ॥७॥
यो ऽस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्व् अचीचरत् ।
आयुश् च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्तु हीडिताः ॥८॥
वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष् कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥९॥
[आविर् आत्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति] ।
उतो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्चाय कृणुते मनः ॥१०॥ अ॰ ३॥

१७.१९

मनसा सं कल्पयति तद् देवान् अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशाम् उपप्रयन्ति याचितुम् ॥१॥
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर् हेडं न गच्छति ॥२॥
वशा राजन्य ते माता तथा संभूतम् अग्रशः ।
तस्या [आ]हुर् अनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३॥
यद् आज्यं प्रतिगृह्णाहम् ! भाल्लुग्गेत् स्रुचो अग्नये ।
ततो ऽब्राह्मणो वशाम् अग्नये वृश्चते ऽददत् ॥४॥
पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोके ऽस्योप तिष्ठति ।
तस्मै सर्वान् कामान् दुहे वशा प्रददुषे दुहे ॥५॥
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
तथाहुर् नारकं त्व् एकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥६॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥७॥
यो वेहतं मन्यमानो गृहेषु पचते वशाम् ।
अप्य् अस्य पुत्रान् पौत्रांश् [च] यातयते बृहस्पतिः ॥८॥
महद् एषाव तपति चरन्ती गोषु गौर् अपि ।
ततो गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥९॥
प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास् तत् प्रियं यद् देवत्रा हविर् अस्याः ॥१०॥ अ॰ ४॥

१७.२०

या वशा उद् अकल्पयन् देवा यज्ञाद् उदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमाम् उदाकुरुत नारदः ॥१॥
तां देवा [अ]मीमांसन्त वशेयाम् अवशेति ।
ताम् अब्रवीन् नारद एषा वशानां वशतमा ॥२॥
कति नु वशा नारद यास् त्वं वेत्थ मनुष्यजा[ः] ।
कतमासां भीमतमा कस्या नाश्नीयाद् अब्राह्मणः ॥३॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तासां नाश्नीयाद् अब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥४॥
नमस् ते ऽस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा याम् अदत्त्वा पराभवे[त्] ॥५॥
विलिप्ती [या] बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तासां नाश्नीयाद् अब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥६॥
त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यस् सो ऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥७॥
एतद् वो ब्राह्मणा हविर् इति मन्वीत याचितः ।
वशां चेद् एनं याचेयुर् या भीमाददुषो गृहे ॥८॥
देवा वशाम् अयाचन् स नो राजन् ! हेडिता[ः] ।
एताभिर् ऋग्भिर् भेदस्य तस्माद् वै स पराभवत् ॥९॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशाम् इन्द्रेण याचितः ।
तस्मा[त्] तं देवा एनसो वृश्चिन्नाद् ! अहमुत्तरे ॥१०॥
ये वशाया [अ]दानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा [आ] वृश्चन्ते ऽचित्त्या ॥११॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर् मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां हेतिं ते परि यन्त्य् अचेतसः ॥१२॥
यदि हुतां यद्य् अहुताम् अमा च पचते वशाम् ।
देवान् सब्राह्मणान् ऋत्वा जिह्मो लोकान् निर् ऋच्छति ॥१३॥ अ॰ ५॥ अनु॰ ४॥

१७.२१

अगृह्य मांसं त्वचं येन्नं संमरणम् अंसान् शरीरम् अग्निः क्रव्याद् यस्
अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य ॥१॥
प्राच्यां दिश्यो देवेभ्यस् सायंयावद्भ्यो देवेभ्यो विश्वदानीयावद्भ्यो
देवेभ्यो अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि ॥२॥
[illegible] छिद्रपक्षेण अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् आ
वृश्चामि ॥३॥
छिद्रपक्षेण छिद्रहस्तामुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रं ! इदं महन्
न तस्य प्रवृश्च्या ? ॥४॥
इन्द्राग्निभ्यां प्रजापतये परमेष्ठिने सोमाय राज्ञे वरुणाय राज्ञे पृथ्व्यै धात्रे
सवित्रे त्वष्ट्रे अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि ॥५॥
उषसे अह्ने रात्र्यै सूर्यायामुम् [आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् आ
वृश्चामि] ॥६॥
ओषधीभ्य आपश्चीभ्यो वनस्पतिभ्यो वानस्पत्येभ्यो अमुम् [आमुष्यायणम्
अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥७॥
इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय इदते विश्वरूपायामुम् [आमुष्या-
यणम् अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥८॥
ऋतुभ्यस् संवत्सरायामुम् [आमुष्यायणम् अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥९॥
अ॰ १॥

१७.२२

दिग्भ्यो अन्तर्देशेभ्य आशाभ्य आशापालेभ्यो अमुम् [आमुष्यायणम्
अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥१॥
ऋतुभ्य आर्तवेभ्यो अधिपतिभ्य आधिपत्येभ्यो अमुम् [आमुष्यायणम्
अमुष्याः पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥२॥
वसुभ्यो रुद्रेभ्यस् साध्येभ्य आप्त्येभ्यो अमुम् [आमुष्यायणम् अमुष्याः
पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥३॥
ऋषिभ्य आर्षेयेभ्यो ऽङ्गिरोभ्य आङ्गिरसेभ्यो अमुम् [आमुष्यायणम्

अमुष्या॰ पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥७॥
अपहूतो अभिजतो अहस्ते अहस्तम् यत्ते अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रम् आ वृश्चामि ॥८॥
ये [अ]न्तरा यज्ञा ये प्रजापतिमयाम् तेजसा ... अमुम् [आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥९॥
ते ... अमुम् [आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रं परा भावयन्तु] ॥१०॥
ये ... यज्ञा ये ... अमुम् [आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रम् आ वृश्चामि] ॥११॥
ते ... [अ]मुम् [आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रं परा भावयन्तु] ॥१२॥
ये ... यज्ञा ये ... अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रम् आ वृश्चामि ॥१३॥
ते ... अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रं परा भावयन्तु ॥१४॥
... अमुम् ... दिवम् ... ? देवमनुष्या॰ ... ॥१५॥
... अमुम् आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रं [परा भावयन्तु] ॥१६॥
... अमुम् ... [अ]मुम् आमुष्यायणम् अमुष्या॰ पुत्रम् ... ॥१७॥

१७.२२

[इ]न्द्र ... ।
यद् ... ? ... ॥१॥
... [इ] ... ।
... ॥२॥
... विश्वकर्म[इ] ... ।
... ॥३॥
... ।
... ।
... हरामि ... ? ... ॥४॥

१७.२४

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ... पुत्रो ऽस्य ... [अ]धिजातो यमस्य करणः ।
तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म ॥१॥
... विश्वानरो ... विश्वानरो ...
... ॥२॥
... ॥३॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं ... पुत्रो ऽसि ... [अ]धि[जातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।

[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥४॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं यमस्य पुत्रो ऽसि यमान्या [अ]धि[जातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥५॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं राज्ञ॰ पुत्रो ऽसि राज्ञ्या [अ]धि[जातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥६॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं दिवस् पुत्रो ऽसि भूम्या [अ]धि[जातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥७॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं वानस्पत्यानां पुत्रो ऽस्य ओषधीभ्यो [अधिजातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥८॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रम् इन्द्रस्य पुत्रो ऽसि कर्णया ?{अ}धिजातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥९॥
[विद्म ते स्वप्न] जनित्रं रक्षसां पुत्रो ऽस्य अद्रुघेभ्यो ? [अ]धि[जातो यमस्य करणः ।
[तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥१०॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं गन्धर्वाणां पुत्रो ऽस्य अप्सरोभ्यो [अ]धिजातो यमस्य करणः ।
तं त्वा स्वप्न तथा विद्म ।
[यो ऽस्मान् स्वप्नस् स्वप्नमय॰ पापस् तं द्विषते प्र हिण्म] ॥११॥ ॥अ॰४॥

१७.२५

द्यावापृथिवी अहोरात्रे नक्षत्रपयसः ? ।
इदम् अहम् अमुष्मिन्न् आमुष्यायणे अमुष्या॰ पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥१॥
। यद् अस्मास्वुग्या अश्वादशाकी ? ।
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञाद् इन्द्र सोमिनः ।
मान्तस् स्थुर् नो अरातयः ॥२॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस् तन्तुर् देवेष्व् आ[त]तः ।
तम् आहुतम् अशीमहि ॥३॥
नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो [दे]वाय तद् ऋतम् सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दि[व]स् पुत्राय सूर्याय शंसत ॥४॥
[सा मा सत्योक्ति॰ परि पातु विश्वतो] द्यावा च यत्र ततनन्न् अहानि च ।
[विश्वम् अन्यन् नि विशते यद् एजति विश्वाहापो विश्वाहोद् एति सूर्यः] ॥५॥
न ते ऽदेव॰ प्रदिवो नि वासति यद् एतशेभि॰ पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनम् अन्यद् अनु वर्तते रज उद् अन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥६॥
येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच् च विश्वम् उदियर्षि ? भानुना ।
तेनास्मद् विश्वाम् अनिराम् अनाहुतिम् अपामीवाम् अप दुष्वप्न्यं सुव ॥७॥
विश्वाम् अनिराम् अपामीवाम् अनाहुतिम् आमुष्यायणायामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म ॥८॥ ॥अ॰५॥

१७.२६

द्यावापृथिवी वहतं दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।

अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म ॥१॥
वातान्तरिक्षे वहतं [दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥२॥
इन्द्राग्नी वहतं [दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥३॥
मित्रावरुणौ वहतं [दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥४॥
भवाशर्वौ वहतं [दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥५॥
देवाश्विना वहतं दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥६॥
देवा मरुतो वहत दुष्वप्न्यं परा वहत दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥७॥
देवा॰ पितरो वहत दुष्वप्न्यं परा वहत दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥८॥
देव सूर्य वह दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥९॥
देव चन्द्रमो वह दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१०॥
देवा नक्षत्राणि वहत दुष्वप्न्यं परा वहत दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥११॥
दर्शिर आपो वहत दुष्वप्न्यं परा वहत दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१२॥
देव विष्णो वह दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१३॥
देव पूषन् वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१४॥
देव त्वष्टर् वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१५॥
देव धातर् वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१६॥
देव सवितर् वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१७॥
देव बृहस्पते वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१८॥
देव प्रजापते वह [दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥१९॥
देव जातवेदो(?) वह दुष्वप्न्यं परा वह दुष्वप्न्यम् ।
[अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म] ॥२०॥
अहोरात्रे वहतं दुष्वप्न्यं परा वहतं दुष्वप्न्यम् ।
अमुष्यामुष्यायणस्यामुष्या॰ पुत्राय प्र हिण्म ॥२१॥ ॥अ॰६॥ ॥अनु॰४॥

१७.२७

इन्द्रो यज्ञम् अभिरक्षतु वृत्राय हन्तवे ॥१॥
स्वाहा यज्ञम् अभिरक्षतु वृत्राय हन्तवे ॥२॥
यो यज्ञो वैश्वानरो यद् ... वीर्यं ... ? स वैश्वानरः ॥३॥
... ? ... वैश्वानरो ... ।
... [च]
... ॥४॥ ॥अ॰७॥

१७.२८

तम् आ वृत्त च तम् उदीरयत तम् उपाम् उपैति प्र भरायीति । सोऽम्बइस्तात् अमुच्यत । दैवो यज्ञ॰ धुर्यविम् सहस्रपृष्ठिर् दिव-स्पृश[ः] । स संसिञ्च तिष्ठद् धकवत्र भयंपत ... । स समुद्रं चाविशत् समाहृद् उ संहृहत् । तस्मात् समुद्रो दुर्गर् अपि च वैश्वानरेणेव दग्धः ॥१॥
स शाक उद् अक्रामत् । सो ऽस्य आपतु दिवो पक्षि[र] आसुरेस् अपपद् यथासुतु अतं चरार्जीति ॥२॥
स व्रतम् अचरत् । सो ऽनुकृशो भवति । तस्मात् अनुकृशो व्रतचारी भवत्य् अप्युदपि । कृशो भूत्वेन्द्रो असुरान् उपाहृन्त ॥३॥
स गृहपतिम् उपाकर स्तवत् । स परमेष्ठिनम् उपाधावत् । स प्रजापतिम् उपाधावत् । स विराजम् उपाधावत् । स सम्राजम् उपाधावत् । सो ऽहोरात्रे उपाधावत् । सो ऽर्धमासान् उपाधावत् । स मासान् उपाधावत् । स ऋतून् उपाधावत् । स आर्तवान् उपाधावत् । स ऋषीन् उपाधावत् । स आर्षेयान् उपाधावत् । सो ऽङ्गिरसम् उपाधावत् । स आङ्गिरसान् उपाधावत् । सो अथर्वाणम् उपाधावत् । स आथर्वणान् उपाधावत् ॥४॥
विश्वान् देवा[न्] ... समन्वसान् इवं स्तोम प्रथमम् । अथेन्द्राग्नी तम् उपामन्त्रयेते पुण्यया वाचा क्रूरया वाचा दक्षिण्या [वाचा] । स सार्धिम्यत् । अयेवा मोपचामे त्रिष्वसीति । स उपशाम्यत् । तस्माद् यो अस्य देवोतायस् स तं शामयति दोहे देवानाम् ॥५॥
तम् ... अथाभ्यम् आ दृत्त यजुषा यज्ञेन गायत्रेण याज्ञेन सामवेदेन च ॥६॥
एतद् वा इदम् अथर्वाङ्ग वाम् एताद् इन्द्रस्य बाहु ।
तम् मा दृत्त तथच् मा धत्ते । प्रजा वै समृद्धिम् अश्नाति यजाव॰ यज्ञेपि ।
प्रजान् एव समृद्धिम् अश्नाति अथ दन्द्रे च [एवं वेद] ॥७॥ ॥अ॰८॥

१७.२९

स दिशु अन्य अविशत् । दिश एव प्रति तिष्ठति य [एवं वेद] ॥१॥
स विश्वानाय अक्रमत ।
एष है विश्वाचार सौरे धामी हतेव अपयको देवयानान् यत् सूर्यस्य रश्मयः । स पवितु देवयानेषु धीयते प्र यथो देवयानान् जानाति य [एवं वेद] ॥२॥
स विश्वानरे ऽक्रमत ।
एष वै वैश्वानर उद्यन् पवमानः ।
एते वै सर्वानुप्रसारो दुहाने । स नाधारयत् । प्रियमेव ऽहिमन् प्रा य [एवं वेद] ॥३॥
स वृक्ष ऽक्रमत ।
[त]स्य वृक्षस्याङ्गा पर्वाणि शरीराण्य् अविशम्न । शतानि वै वृक्षस्याङ्गा पर्वाणि शरीराणि पर्वाणि पर्वतानस् चत्र ... मनसा कामयेति ॥४॥
इह स राध्यते । तथैव राध्यते । अस्यान् एव प्रतिष्ठाम् आयतनं विन्दते य [एवं वेद] ॥५॥
स देवान् आगच्छत् । तं देवा अब्रुवन्न् आसां सामेकम्येति अतम् । आ हिरण्येषु पशुषु प्राण्यस्व् अश्वे[ष्व् ए]ति ।
सो ऽनड्वाहम् उपाधावत् । तम् अनड्वान् अब्रवीत् किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति ॥६॥
स वरम् अवृणीत युक्तोको ऽस्मानि युक्तस्य विहते श्रिया इति । योऽनड्वो वा [ऽ]नद् ऊर्ध्वो लोको ऽयद् युक्तो [लोको] ऽयद् युक्तस्य विहते श्रीयते य [एवं वेद] ॥७॥

अथाहीन आदधाथात् अमर्थान् । अथा ब्राह्मण नियाति आर्तेनम् अग्रगुन् ये जुहुपूर्तेनं ध्यमयातीति ।
छता वा एषा मनुष्येषु तरति येनानद्वान् येन महाब्रतीन् ॥८॥
यावस्य पूर्वपादौ तौ पूर्वपक्षौ याव् अ[पर]पादौ ताव् अपरपक्षौ यौ स्कन्धौ तौ पुरोडाशौ ये नासिके तौ स्रुचौ याव् अस्याक्षी तौ सूर्याचन्द्रमसौ यो निमेषस् ताव् अहोरात्रे यास् सूर्यस्य रश्मयस् स द्रोणकलश[श] शिरस् सोमो राजा मस्तिष्कः ।
ये ऽस्य शृङ्गे तद् ऋतं सत्यम् । ध्रुवं वा ऋतं सत्यम् । तस्माद् एते ध्रुवे । ध्रुवम् एव तं सत्यम् अनु प्रति तिष्ठति य [एवं वेद] ॥९॥
यास्य दक्षिणा हनुस् सा जुहूर् या उत्तरासम् । या सव्या सो ऽमुन् य कण्ड[स] सा ध्रुवा ।
अग्निर् आस्यं विद्युज् जिह्वा मरुतो दन्ताः पवमा[न]ः प्राणः ।
एष वै मायाम् आहुर् वसोर् धारेति यद् अन्त्रगुदम् । वसोर् एव धारां समृद्धिम् अक्षितिम् अव रुन्धे य [एवं वेद] ॥१०॥
यद् अस्य चर्म तद् अभ्रं यानि लोमानि तानि नक्षत्राणि ।
स्वे चर्मम् ऊष्माणि ह्रादो यद् ओषधयश् च वनस्पतयश् लोप्यम् ।
यो ऽस्य अपनार्धस् तौ शैशिरौ मासौ यः पूर्वार्धस् तौ वासन्तौ । यत् पृष्ठं तौ ग्रैष्मौ मासौ यन् मध्यं तौ वार्षिकौ । यो ऽस्य अपनस् तौ शारदौ मासौ यो ऽस्य पक्षस् तौ हैमन्तौ ।
संवत्सरो वा एष संभृतो येनानड्वा[न्] येन महाव्रतीन् ।
अस्याम् एव प्रतिष्ठाम् आयतनं विन्दते य [एवं वेद] ॥११॥
याव् अस्य कर्णौ सा श्रद्धा । श्रीयो भवति य [एवं वेद] ॥१२॥
तपश् च वरश् च महश् च यशश् च यद् अस्मिन्न् अन्तर् ऋचस् सामानि यजूंषि ब्राह्मणं ब्रह्म चैव लोकं चाव रुन्धे ब्रह्मवर्चसी भवति य [एवं वेद] ॥१३॥
यथेद् अस्मिन्न् अन्तश् शतम् अग्निहोत्राणि शतं द्वादशाहाश् शतं षोडशिनश् शतं सर्वपृष्ठा[श] शतं आवाश् शतं दीक्षा[श] शतं यज्ञाश् शतं दक्षिणाश् शतं भूतयश् शतम् अभूतयश् शतं निर्भूतयश् शतं पराभूतयश् शतं समृद्धयः ।
ज्योग् जीवति सर्वम् आयुर् एति न पुरा जरसः प्र मीयते य [एवं वेद] ॥१४॥
यथेद् अस्मिन्न् अन्तश् शतम् अर्धमासाश् शतं मासाश् शतम् ऋतवश् शतम् आर्तवाश् शतम् इदावत्सराश् शतम् अनुवत्सराश् शतं परिवत्सराश् शतं संवत्सराश् शतं ब्रह्माणि शतं कर्माणि शतं ज्योतींषि शतम् अमृतानि शतं सिन्ध्यानि शतम् अश्मानानि शतं तमांसि शतं रुधिराणि ।
ज्योग् जीवति सर्वम् आयुर् एति न पुरा जरसः प्र मीयते य [एवं वेद] ॥१५॥
यथेदम् अस्मिन्न् अन्तश् शतं रथन्तराश् शतं साह्राश् शतं त्रिरात्राश् शतम् अतिरात्राश् शतं प्राणाश् शतम् अपानाश् शतं व्यानाश् शतं समानाश् शतं राजसूयाश् शतं वाजपेयाश् शतं काममास सहस्राणि सत्रायणानि ।
एष वा [अ]नड्वान् सर्वादनस् सर्वात्मा सर्वपरस् सर्वपान् मध्यतु प्रतिष्ठातु । ऋक्सामभ्याम् आ धत्ते ततो यज्ञेन गायत्रेण ब्रह्मणा प्रधान उपरिष्टात् प्रथते प्रजया पशुभिर् गृहैर् धनेन य [एवं वेद] ॥१६॥
इन्द्रो वलेनास्य परमेष्ठी व्रतेन येन गौस् तेन वैश्वदेवः ।
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तस्य प्राणान् सं वर्हे तस्य प्राणान् वि वर्हे ।
इन्द्रो ऽसीन्द्रस्य रूपम् असि प्रजापतिर् असि परमेष्ठिर् असि स्वर् असि स्वरो ऽसि स्वर्गो लोको ऽसि स्वर्गं मा लोकं गमय ।

येनासि वहस् तेन यशो येन बृहस्पति[स्] तेन लोको येनेदं गमयति तेन विश्वो येनेदं गमयति तेन सर्वः ।
ये ऽस्य पादास् सा प्रतिष्ठा । प्रथते प्रजया पशुभिर् गृहैर् धनेन य एवं विद्वान् अनडुहो व्रतं बिभर्ति ॥१७॥ ऋ॰१॥ अनु॰६॥

इति सप्तदशकाण्डे षष्ठो ऽनुवाकः ॥

१७.३०

शौ १२.२.१ नडम् आ रोह न ते ऽत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस् तेन त्वं साकं अधराङ् परेहि ॥१॥
शौ २ अघशंस[दुःशंसाभ्यां] करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निर् अजामसि ॥२॥
शौ ३ निर् इतो मृत्युं निर्ऋतिं निर् उ यक्ष्मम् अजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तम् अद्धय् अग्ने अक्रव्याद् यं द्विष्मस् तं ते प्र सुवामः ॥३॥
शौ ४ यद्य् अग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठम् अन्योकाः विवेश ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्व् अप्सुषदो ऽप्य् अग्नीन् ॥४॥
शौ ५ य[त्] त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर् मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पम् अग्ने तत् त्वया पुनस् त्वो[द्] दीपयामसि ॥५॥
शौ ६ पुनस् त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर् ब्रह्मा वसुनीतिर् अग्ने ।
पुनस् त्वा ब्रह्मणस् पतिर् आधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥६॥
शौ ७ यो ऽग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहम् इमं पश्यन्न् इतरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्मम् इन्धां परमे सधस्थे ॥७॥
शौ ९ क्रव्यादम् अग्निम् इषितो हरामि जना[न्] दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोके ऽपि भागो अस्तु ॥८॥
शौ ८ क्रव्यादम् अग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायम् इतरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९॥
शौ १० क्रव्यादम् अग्निं शशमानम् अग्निं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पथिभिर् आ गा [अ]त्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०॥
ऋ॰१॥

१७.३१

शौ १२.२.११ सम् इन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तु शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रम् अत्य एन एति समिद्धो ऽग्निस् सुपुना पुनाति ॥१॥
शौ १२ देवो ऽग्निस् संकसुको दिवस् पृष्ठान्य् आरुहत् ।
मुच्यमानो निर् एनसो ऽमोग् अस्मां अशस्त्या[ः] ॥२॥
शौ १३ अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाश् शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिष[त्] ॥३॥
शौ १४ संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश् च निस्वरः ।
ते ते [य]क्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरम् अनीनशन् ॥४॥
शौ १६ अक्षातं पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस् त्वा ।
क्रव्यादं निर् णुदामस्य् अग्निं जीवितयोपनम् ॥५॥
शौ १५ यो नो ऽश्वेषु वीरेषु यो गोषु यो ऽजाविषु ।
क्रव्यादं निर् णुदामस्य् अग्निर् यो जनयोपनः ॥६॥
शौ १८ समिद्धो ऽग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥७॥
शौ २० यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वम् अग्ने दिवं रुह ॥८॥
शौ १९ सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वम् अग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिम् उपबर्हणे ॥९॥
शौ २० सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिम् उपबर्हणे ।
अव्याम् असिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवन्ति यज्ञियाः ॥१०॥ ऋ॰१०

१७.३२

शौ १२.२.२१ परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस् त एष इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥१॥
शौ २२ इमे जीवा वि मृतैर् आववृत्रन्न् अभूद् भद्रा देवहूतिर् नो ऽद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथम् आ वदेम ॥२॥
शौ २३ इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गाद् अपरो अ[र्थ]म् एतम् ।
ज्योग् जीवन्तश् शरदः पुरूचीस् तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥३॥
शौ २५ यथाहान्य् [अ]नुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर् यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वम् अपरो जहात्य् एवा धातर् आयूंषि कल्पयैषाम् ॥४॥
शौ २४ आ रोहतायुर् जरसं वृणाना [अ]नुपूर्वं यतमाना ये च स्थ ।
तान् वस् त्वष्टा सुजनिमा सजोषा सर्वम् आयुर् नयतु जीवनाय ॥५॥
शौ २६ अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं [वीरयध्वं] प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवान् उत् तरेमाभि वाजान् ॥६॥
शौ २७ उत् तिष्ठता प्र तरता सखायो ऽश्मन्वती रीयते सं रभध्वम् ।
अत्रा जहीत ये असन्न् अशिवाश् शिवान् स्योनान् उत् तरेमाभि वाजान् ॥७॥
शौ २८ वैश्वदेवीं सूनृताम् आ रभध्वं शुद्धा भवन्तश् शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरितानि विश्वा शतं हिमास् सर्ववीरा मदेम ॥८॥
शौ २९ उदीचीनैः पथिभिर् वायुमद्भिर् अतिक्रामन्तो दुरितान् परेभिः ।
त्रिस् सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्य् औहन् पदयोपनेन ॥९॥
शौ ३० मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थे अथ जीवा[सो] विदथम् आ वदेम ॥१०॥
ऋ॰१०

१७.३३

शौ १२.२.३१ इमा नारीर् अविधवास् सुपत्नीर् आञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवो अनमीवास् सुरत्ना [आ] रोहन्तु जनयो योनिम् अग्रे ॥१॥
इमे वीरा अविधवास् सुजानय आञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवास् सुरत्ना[स्] स्योनाद् योनेर् अधि तल्पं रुहेयुः ॥२॥
शौ ३२ व्याकरोमि हविषाहम् एतौ तौ ब्रह्मणा व्य् अहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना दीर्घेणायुषा सम् इमा[न्] सृजामि ॥३॥
शौ ३३ यो नो ऽग्निः पितरो हृत्स्व् अन्तर् आविवेशामर्त्यो मर्त्येषु ।
मय्य् अहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो ऽस्मा[न्] द्विक्षत मा वयं तम् ॥४॥
शौ ३४ अपावृत्यागारं गार्हपत्यं क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुत प्रियम् ॥५॥
शौ ३५ द्विभागधनम् आदाय प्र क्षिणात्य् अवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्याद् अनिराहितः ॥६॥
शौ ३६ यत् कृषते यद् वनुते यच् च वस्नेन विन्दते । [?]
सर्वं मर्त्यस्य तन् नास्ति क्रव्याच् चेद् अनिराहितः ॥७॥
शौ ३९ मुहुर् गृध्यैः प्र वदत्य् आर्तिं मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यान् अग्निर् अन्तिकाद् अनुविद्वान् वितावति ॥८॥
शौ ३९ ग्राह्या गृहास् सं सृज्यन्ते यत् स्त्रिया म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वान् एष्यो यः क्रव्यादं निरादधत् ॥९॥ ऋ॰१०

१७.३४

शौ १२.२.४० यद् रिप्रं शमलं चकृम यच् च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच् छुम्भन्त्व् अग्नेः संकसुकाच् च यत् ॥१॥
शौ ४१ ता [अ]धराद् उदीचीर् आववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर् देवयानैः ।

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश् चरन्ति सरितः पुराणीः ॥२॥
शौ ४२ अग्ने अक्रव्यान् निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥३॥
शौ ४३ इमं क्रव्याद् आ विवेशायं क्रव्यादम् अन्व् अगात् ।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥४॥
शौ ४४ अन्तर्धिर् देवानां परिधिर् मनुष्याणाम् ।
अग्निर् गार्हपत्य उभयान् अन्तरा श्रितः ॥५॥
शौ ४५ जीवानाम् आयुः प्र तिर त्वम् अग्ने पितॄणां लोकम् अपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्न् अरातिम् उषामुषां श्रेयसीं धेह्य् अस्मै ॥६॥
शौ ४६ सर्वान् अग्ने सहमानस् सपत्नान् ऐषाम् ऊर्जं रयिम् अस्मासु धेहि ॥७॥
शौ ४७ इमम् इन्द्रं वह्निं पप्रिम् अन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितान् मृत्युम् । [?]
तेनाप हत शरुम् आपतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥८॥
यं शौ ४९ अहोरात्रे अन्व् एषि बिभ्र[त्] क्षेम्यस् तिष्ठन् प्रतरणस् सुवीरः ।
अनातुरान् सुमन[स]श् तल्प बिभ्रज् ज्योग् एव नः पुरुषगन्धिर् एधि ॥९॥
शौ ५० ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
शौ ५१ क्रव्याद् यान् अग्निर् अन्तिकाद् अनुविद्वान् वितावति ॥१०॥
शौ ५२ प्रैव मनसा पतति मुहुर् आ वर्तते पुनः ।
शौ ५० क्रव्याद् यान् अग्निर् अन्तिकाद् अश्व इवानुवपते नडम् ॥११॥ ऋ॰५३

१७.३५

शौ १२.२.५२ ये ऽश्रद्धा धनकाम्याः क्रव्यादा समासते ।
ते वा [अ]न्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥१॥
शौ ५४ तिलिञ्जं इषीकां जरतीं इष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्ड[नं] नडम् ।
तान् इन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥२॥
शौ ५३ अग्निः कृष्णा भागधेयं यत्नात् सीसं क्रव्याद् उत यन् न आहुः ।
माषाः पिष्टा भागधेयं हव्यं ते [अर]ण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥३॥
शौ ५५ प्रत्यञ्चम् अर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्य् आ विवेश ।
प्र वा अमीषाम् असून् [दि]देश दीर्घेणायुषा सम् इमा[न्] सृजामि ॥४॥
शौ ४८ अनड्वाहं प्लवम् अन्वारभध्वं स वो निर् वक्ष[द्] दुरितान् अवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर् नावं हिरण्ययं षड्भिर् उर्वीभिर् अमतिं तरेम ॥५॥
च १०.५३.१० शौ ७.११०.० गोभिर् इरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजानः प्रथमा धनान्य् अरिष्टासो वृजनीभिस् तरेम ॥६॥
शौ ३.२१.८ पूर्णं नारि प्र हराम कुम्भम् अपां रसम् ओषधीनां घृतस्य ।
इमान् पातॄन् अमृतेन सम् अङ्ग्धि स्विष्टा वीरास् सुमनसो भवन्तु ॥७॥
ऋ॰१० अनु॰७॥

इति सप्तदशकाण्डे सप्तमो ऽनुवाकः ॥

१७.३६

शौ ११.१.१ पुमान् पुंसो अधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्ताव् अग्रे प्रथमं समेयथुस् तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥१॥
शौ ६ तावद् वां चक्षुस् तति वीर्याणि तावत् तेजस् ततिधा वाजिनानि ।
अग्निश् शरीरं सचते यदैधो अधा पक्वेन मिथुना सं भवाथ[ः] ॥२॥
शौ ३ सम् अस्मिन् लोके सम् उ देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्ये[षु] ।
पूतौ पवित्रैर् उप तद् ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥
शौ ४ आपः पुत्रासो अभि सं विशध्वम् इमं जीवं जीवधन्यास् समेत्य ।
तासां भजध्वम् अमृतं यम् आहुर् यम् ओदनं पचति वां जनित्री ॥४॥
शौ ५ यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान् निर्मुक्त्यै शमला[च्] च वाच[ः] ।
स ओदनश् शतधारस् स्वर्ग उभे व्य् आप नभसी महित्वा ॥५॥

यम मरुतो [illegible] च लोकाय ये [illegible] आन्द [illegible] स्वर्गा ।
तेषां ज्योतिष्मतान् मधुमान् यो [अ]स्मि [illegible] पुष्टोऽ [illegible] ॥५॥
प्राची-प्राची प्रदिशम् आ रंभेथाम् एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ! ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
ऋचः १०

१७.३७

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
ऋचः १०

१७.३८

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥

उतेव प्रभ्वीर् उत संमितास उत शुक्रा[ः] शुचयश् चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपश् शिक्षन्तीः पचता ! सुनाथाः ॥७॥
उद् योधन्त्य् अभि वल्गन्ति तप्ताः फेनम् अस्यन्ति बहुलं च बिन्दून् ।
योषेव दृष्ट्वा पतिम् ऋत्वियायैतैस् तण्डुलैर् भवता सम् आप[ः] ॥८॥
उत्थापय सीदतो बुध्न एना[न् अ]द्भिर् आत्मानम् अभिसिञ्चत सजन्ताम् ।
अमासि पात्रैर् उदकं यद् एतन् मितास् तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥९॥
ऋचः ९

१७.३९

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषं अहिंसन्त ओषधीर् दान्तु पर्वन् ।
सोमो यासां परि राज्यं बभूवामन्युता वीरुधो मे भवन्तु ॥१॥
नवं बर्हिर् ओदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश् चक्षुषो वल्गु अस्तु ।
तत्र देवास् सह देवीर् विशन्त्व् इमं प्राश्नन्तु दक्षिणतो निषद्य ॥२॥
वनस्पते स्तीर्णम् आ सीद बर्हिर् अग्निष्टोमैस् संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३॥
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्य् अश्नवातै ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
उपैनं पुत्राः पितरश् च सीदान् इमं स्वर्गं गमयान्तम् अग्नेः ॥५॥
सर्वान् समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामास् समितौ ? पुरस्तात् ।
वि गाहेथाम् आयवनं च दर्वीः एकस्मिन् पात्रे ऽध्य् उद् धरैनम् ॥६॥
उप स्तृणीहि प्रथया पुरस्तात् घृतेन पात्रम् अभि घारयेदम् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युम् इमं देवासो अभिहिंकराथ ॥७॥
उपास्तरीर् अकरो लोकम् एतम् उरुः पृथुः प्रासमस् स्वर्गः ।
तस्मिन् छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥८॥
यद्-यज् जाया पचति त्वत् परः-परः पतिर् वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तद् अस्तु संपादयन्तौ सह लोकम् एतम् ॥९॥
यावन्तो अस्या पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस् तान् उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाश् शिशवस् समायान् ॥१०॥
ऋचः १०

१७.४०

वसोर् या धारा मधुना समक्ता घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः ।
सर्वास् ता [अ]व रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥१॥
निधिं निधिपा अभ्य् एनम् इच्छाद् अनीश्वरा अभितस् सन्तु अन्ये ।
अस्माभिर् दत्तो निहितस् स्वर्गस् त्रिभिः काण्डैस् त्रीन् स्वर्गान् अरुक्षत् ॥२॥
अग्नी रक्षस् तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनम् अप रुध्मो [अ]स्मद् आदित्या एनम् अङ्गिरसस् सचन्ताम् ॥३॥
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्व् इदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामः ।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृताव् अपीतम् ॥४॥
इदं प्रापम् उत्तमं काण्डम् अस्य यस्माल् लोकात् परमेष्ठी समाप ।
आ सिञ्च सर्पिर् घृतवत् सम् अङ्ग्ध्य् एष भागो [अ]ङ्गिरसो नो [अ]त्र ॥५॥
सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम् ।
मा नो द्यूते ऽव गान् मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत् सृजता पुरा मत् ॥६॥
न किल्बिषम् अत्र नाधारो [अ]स्ति न यन् मित्रैस् स[म]मम एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनर् आ विशाति ॥७॥
प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस् ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
अहं पचाम्य् अहम् उ ददामि ममेद् उ कर्मन् करुणे ऽधि जाया ।
कौमारो लोको [अ]जनिष्ट पुत्रो ऽन्वारभेतां वय उत्तरावत् ॥८॥

धेनुर् अनड्वान् वयोवयस्यात् ! [illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥ ऋचः १०

१७.४१

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] परि दद्मः ।
तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
अथा पक्वेन सह सं भवेम ॥५॥
[illegible] [परि दद्मः ।
[तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
[दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
[अथा पक्वेन सह सं भवेम] ॥६॥
[illegible] [परि दद्मः ।
[तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
[दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
[अथा पक्वेन सह सं भवेम] ॥७॥
[illegible] [परि दद्मः ।
[तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
[दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
[अथा पक्वेन सह सं भवेम] ॥८॥
[illegible]
एतं [परि दद्मः ।
[तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
[दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
[अथा पक्वेन सह सं भवेम] ॥९॥
[illegible]
एतं परि दद्मः ।
तं नो गोपायतास्माकम् एतोः ।
दिष्टं नो [अ]त्र जरसे नि नेषज् जरा मृत्यवे परि णो ददातु ।
अथा पक्वेन सह सं भवेम ॥१०॥ ऋचः १० अनु ८

[illegible]

१८.१

सत्येनोत्तभिता भूमिस् सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास् तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥
सोमेनादित्या बलिनस् सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणाम् एषाम् उपस्थे सोम आहित[ः] ॥२॥
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्य् ओषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर् न तस्याश्नाति पार्थिवः ॥३॥
[यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
[वायुस् सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥४॥]
आच्छद्विधानैर् गुपितो बार्हतैस् सोम रक्षितः ।
ग्राव्णाम् इच् छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥५॥
चित्तिर् आ उपबर्हणं चक्षुर् आ अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर् भूमिः कोश आसीद् यद् अयात् सूर्या पतिम् ॥६॥
रैभ्य् आसीद् अनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रम् इद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥७॥
स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निर् आसीत् पुरोगवः ॥८॥
सोमो वधूयुर् अभवद् अश्विनास्ताम् उभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥९॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौर् आसीद् उत च्छदिः ।
शुक्राव् अनड्वाहाव् आस्तां यद् अयात् सूर्या पतिम् ॥१०॥
ऋक्सामाभ्याम् अभिहितौ गावौ ते सामनाव् एताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश् चराचरः ॥११॥ ऋचः ११

१८.२

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥१॥
सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यम् अवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु वि वह्यते ! ॥२॥
यद् अश्विना पृच्छमानाव् अयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैकं चक्रं वाम् आसीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥३॥
यद् अयातं शुभस् पती वरेयं सूर्याम् उप ।
विश्वे देवा अनु तद् वाम् अजानन् पुत्रः पितराव् अवृणीत पूषा ॥४॥
द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तद् अद्धातय इद् विदुः ॥५॥

शौ ५८	प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।	• • सुशेवि बबन्ध...सुशेवः
	उरुं लोकं सुगम् अत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥६॥	• • • इह • • • सहपत्न्यै वधूः ।
शौ १७	अर्यमणं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।	अरिष्टं देवामहे • पतिवेदनम्
	उर्वारुकम् इव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥७॥	उर्वारुकम् • बन्धनाद् इतो मुञ्च मामुतः
शौ १८	प्रेतो मुञ्चति नामुतस् सुबद्धाम् अमुतस् करत् ।	• सुबद्ध • सुबद्धाम् • •
	यथेयम् इन्द्र मीढ्वस् सुपुत्रा सुभगासति ॥८॥	यथेयम् • मीढ्वः सुपुत्रा •
शौ २०	भगस् त्वेतो नयतु [हस्त]गृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।	...हस्तगृह्या • • वहतां रथेन
	गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथम् आ वदासि ॥९॥	...यथासः...
शौ २१	इह प्रियं प्रजायै ते सम् ऋध्यताम् अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।	• प्रियं प्रजया...गार्हपत्याय जागृहि
	एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथा जिव्री विदथम् आ वदासि ॥१०॥ ऋचा॰ ६०	• पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री • • •
		[वदासि ॥१॥

शौ १४.१.२१-२६	१८.३	
	इहैव स्तं मा वि यौष्टं दीर्घम् आयुर् व्य् अश्नुतम् ।	• • • वि यौष्टं...
	क्रीडन्तौ पुत्रैर् नप्तृभिर् मोद[मा]नौ स्वे गृहे ॥१॥	...नप्तृभिर्...
शौ परि यातो अर्णवम्	पूर्वापरं चरतो मायैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अध्वरम् ।	...शिशू • परि यातो अर्णवम्
	विश्वान्य् अन्यो भुवना विचष्ट ऋतूंर् अन्यो विदधज् जायते पुनः ॥२॥	विश्वान्यन्यो भुवना • ऋतूंर् अन्यो • जायसे [पुनः]
	नवो-नवो भवति जायमानो ऽह्नां केतुर् उषसाम् एत्य् अग्रम् ।	
	भागं देवेभ्यो वि दधात्य् आयन् प्र चन्द्रमास् तिरते दीर्घम् आयुः ॥३॥	...प्र चन्द्रमास् तिरसे • •
	परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।	• देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो...
	कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥४॥	कृत्यैषा...
	नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर् व्य् अज्यते ।	नीललोहितं भवति...अज्यते
	एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर् बन्धेषु बध्यते ॥५॥	• • ज्ञातयः...
	अश्लीरा तनूर् भवति रुशती पापयामुया ।	अश्लीला...
शौ पतिर् यद् वध्वो वाससः	पतिर् यद् अस्यै वध्वो वाससस् स्वम् अङ्गम् अभ्यूर्णुते ॥६॥	पतिर् य वध्वो वाससः...अभ्यूर्णुते
	आशसनं विशसनम् अथो अधिविकर्तनम् ।	आशसनं व्यशसनम्...
	सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥७॥	• पश्य...ब्रह्मोत शुम्भति
	तृष्टम् एतत् कटुकम् एतद् अपाष्ठवद् विषवन् नैतद् अत्तवे ।	• • कटुकम् • अपाष्ठवद् विषवन् नैतदत्तवे
	सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयम् अर्हति ॥८॥	...वेद • • वाधूयम् अर्हति
	स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वाससः सुमङ्गलम् ।	• • तं • • ब्रह्मा • सुमङ्गलम्
	प्रायश्चित्तिं यो [अ]ध्येति येन जाया न रिष्यति ॥९॥	...जाया • रिष्यति
शौ ऋतोद्येषु	युवं भगं सं भरतस् समृद्धम् ऋतं वदन्ताव् ऋतोद्येषु ।	• • • भरतम् समृद्धम् • वदन्ताव् ऋतोद्येषु
शौ संभलो	ब्रह्मणस् पते पतिम् अस्यै रोचयाथुं चारु शुम्भलो ! वदतु वाचम् एताम् ॥१०॥ ऋचा॰ १०	...॥१॥

	१८.४	
शौ १४.१.३२	इहेद् असाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ ।	इहेद् असाथ • • गमाथेमं...

	शुभं यतीर् उस्रियास् सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन् इह वो मनांसि ॥१॥	• यती सुयमाः...क्रन् • वः •
शौ ३३	इमं गावः प्रजया सं विशाथम् अयं देवानां न मिनाति भागम् ।	...इमं • न मिनाति •
	अस्मै वः पूषा मरुतश् च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥२॥	• • ...धाता • •
शौ ३४	अनृक्षरा ऋजवस् सन्तु पन्थानो येभिस् सखायो यन्ति नो वरेयम् ।	अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् • • •
	सं भगेन सम् अर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा नः ॥३॥	...वर्चसा...
शौ ३५ महानग्न्या	येन महानग्न्या जघनम् अश्विना येन वा सुरा ।	यद् महानग्न्या जघनम्...
	येनाक्षा [अ]भ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥४॥	येनाक्षा • तेनेमां •
शौ ३६	यद् वर्चो अक्षेषु सुरायां च यद् आहितम् ।	यत् • हेषु ...
	यद् गोष्व् अश्विना वर्चस् तेनेमां वर्चसावतम् ॥५॥	यत्...
शौ ३७	यो [अ]निध्मो दीदयद् अप्स्व् अन्तर् यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।	
	अपां नपान् मधुमतीर् अपो दा याभिर् इन्द्रो वावृधे वीर्याव[त्] ॥६॥	
शौ ३८	इदम् अहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिम् अपि गुहामि ।	इदम्...तनूदूषिम् अपि •
	यश् शिवो भद्रो रोचनस् तेन त्वम् अपि गुहामि ॥७॥	...त्वाम् • •
शौ ३९	आस्यै हरन्तु स्नपनीर् ब्रह्मणा [अ]वीरघ्नीर् उद् अजन्त्व् आपः ।	आस्यै • स्नपनीर् ब्रह्मणा • अव • •
	अर्यम्णो [अ]ग्निं पर्य् एतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वशुरा देवरश् च ॥८॥	अर्यम्णो...प्रतीक्षन्ते • देवरश् •
शौ ४०	शं ते हिरण्यं शम् उ सन्त्व् आपश् शं ते मेथिर् भवतु शं युगस्य ? तर्द्म ? ।	शं...शं • मेथिर् • शं युगस्य तर्द्म
	शं त आपश् शतपवित्रा भवन्तु शं पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ॥९॥	• शमु • शं • • • तन्वम्
शौ ४१	यथा सिन्धुर् नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।	...साम्राज्यं • वृषा
	एवा त्वं सम्राज्ञ्य् एधि पत्युर् अस्तं परेत्य ॥१०॥ ऋचा॰ ५०	एवा त्वं सम्राज्ञी वि पत्युर् अस्तं • ॥४॥

	१८.५	
शौ १४.१.४४	सम्राज्ञ्य् एधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्य् उत श्वश्र्वाम् ।	• • • श्वश्र्वा •
	ननान्दुस् सम्राज्ञ्य् एधि सम्राज्ञ्य् उत देवृषु ॥१॥	ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत देवृषु
शौ ४५	या अकृन्तन्न् अवयन् याश् च तत्निरे या देवीर् अन्तां अभितो ऽददन्त ।	याः अकृन्तन् • • ...ददन्त
	तास् त्वा जरसे सं व्ययन्त्व् आयुष्मतीदं परि धत्स्व वासः ॥२॥	
शौ ४६	जीवं रुदन्ति वि नयन्त्य् अध्वरं दीर्घाम् अनु प्रसितिं दीध्युर् नरः ।	जीवं...
	वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ॥३॥	...समीरिरे...मयः •
शौ ४७ स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि	ध्रुवं स्योनं प्रजापते धारयाम्[इ ते अ]श्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।	...पृथिव्याः •
	तम् आ तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुस् सविता कृणोतु ॥४॥	...दीर्घं त आयुः • •
शौ ४९	देवस् ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।	
	अग्निस् सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥५॥	...अग्निः • • •
शौ ५०	गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर् यथासः ।	...यथासः
	भगो अर्यमा सविता पुरंधिर् मह्यं त्वादुर् गार्हपत्याय देवाः ॥६॥	...पुरंधिर् मह्यं त्वादुः • देवाः
शौ ४८	येनाग्निर् अस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।	...दक्षिणम्
	तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह ॥७॥	
शौ ५१	धाता ते हस्तम् अग्रहीत् सविता ते हस्तम् अग्रहीत् ।	
	भगस् ते हस्तम् अग्रहीद् अर्यमा ते हस्तम् अग्रहीत् ।	
	पत्नी त्वम् असि धर्मणाहं गृहपतिस् तव ॥८॥	
शौ ५२	ममेयम् [अ]स्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।	
	मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदश् शतम् ॥९॥	• • प्रजावती • जीव...
शौ ५३	त्वष्टा वासो व्य् अदधाच् छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।	...शुभे...
	तेनेमां नारीं सविता भगश् च सूर्याम् इव परि धत्तां प्रजया ॥१०॥ ऋचा॰ ५०	• नारीं...प्रजया ॥५॥

	१८.६	
शौ नास्ति	भुवस् ? त्वा प्रोर्णुवन्तु वर्चसा भगेन ज्योतिष्मतीं प्रति मुञ्च मधुवः ! ।	
	उषा इव सूर्यस्य संदृशि ॥१॥	• यद • सन्दृशि

	इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी य[मः] पूषा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।	...अश्विनोभा:
शौ ५४	बृहस्पतिर् मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥२॥	...सोमम् • नारीं...
	बृहस्पतिस् स प्रथमस् सूर्याया[श्] शीर्षे केशां अकल्पयत् ।	...केशां •
शौ ५५	तेनेमाम् अश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥३॥	• • नारीं पत्या से शोभयामसि
शौ ५६	इदं तद् रूपं यद् अवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।	इदं • • • अवस • • जायां • चरन्तीम्
	ताम् अन्व् अर्तिष्ये सखिभिर् नवग्वैः क इमं विद्वान् वि चचर्त पाशम् ॥४॥	• अन्वर्तिष्ये सखिभिर् नवग्वैः...
शौ ५७	अहं वि ष्यामि मयि रूपम् अस्या वेदद् इत् पश्यन् मनसः कुलायम् ।	• • • • • • वेदद् इत् पश्यन् मनसः •
	न स्तेयम् अद्मि मनसोद् अमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशम् ॥५॥	नाद्म • अद्मि...अमुच्ये • •
	इमं वि ष्यामि वरुणस्य पाशं तेन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः ।	इमं...सुशेवः
शौ ५८	ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहपत्न्यै वधु ॥६॥	...सुकृतस्य • स्योनं ते अस्तु सहसंभला वधूः
	उद् यच्छध्वम् अप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।	• यच्छध्वम् • इमां नारीं सुकृते • दधात
शौ ५९	धाता विपश्चित् पतिम् अस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजा[न]न् ॥७॥	• विपश्चित् • अस्यै...पुरः...
	भगस् ततक्ष चतुरः पदो भगस् ततक्ष चत्वार्य् उष्पलानि ! ।	...चत्वार्युष्पलानि
शौ ६०	त्वष्टा पिपेश मध्यतो [अनु] वर्ध्रान् सा नो [अ]स्तु सुमङ्गली ॥८॥	• पिपेश • वर्ध्रान्...
	येनाग्न्येन हविषा प्रजायै च वरेण्यम् ।	
शौ नास्ति	पशुभ्यश् चक्षुषे च कंसम् अश्वं सम् इधीमहि ॥९॥	
	सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।	सुकिंशुकं...
शौ ६१	आ रोह सूर्ये सुकृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥१०॥	
	मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।	मा हिंसिष्टं कुमार्यं...
शौ ६३	शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥११॥	...कृण्मो •
	ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।	• युज्यताम्...
शौ ६४	अनव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥१२॥ ऋचा॰ ६७ ॥ अनु॰ १ ॥	अनाव्याधां...स्योनाः...॥६॥
		इत्यष्टादशकाण्डे प्रथमो ऽनुवाकः ॥

	१८.७	
शौ १४.२.१	तुभ्यम् अग्रे पर्य् अवहन् सूर्यां वहतुना सह ।	तुभ्यम् • • • अवहन्...
	स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥१॥	पुनः • पत्नीम् • अदात्...
शौ २	पुनः पत्नीम् अग्निर् अदाद् आयुषा सह वर्चसा ।	...अग्ने • •
	दीर्घायुर् अस्या यः पतिर् जीवाति शरदश् शतम् ॥२॥	• अस्या...
शौ ३	सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस् ते ऽपरः पतिः ।	...प्रथमं गन्धर्वस्...
	तृतीयो अग्निष् टे पतिस् तुरीयस् ते मनुष्यजाः ॥३॥	...मनुष्यजाः
शौ ४	सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो द[द]द् अग्नये ।	...गन्धर्वो' • अग्नये
	रयिं च पुत्रांश् चादाद् अग्निर् मह्यम् अथो इमाम् ॥४॥	...पुत्रांश्...इमाम्
	आ वाम् अगन् सुमतिर् वाजिनीवसू न्य् अश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।	...कामा अरंसत
शौ ५	अभूतं गोपा मिथुना शुभस् पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥५॥	अभूतं...
	सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।	• मन्दसाना • • रयिं...
शौ ६	सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस् पती स्थाणुं पथिष्ठाम् अप दुर्मतिं हतम् ॥६॥	• • सुप्रपाणं...
	अप रक्षांस्य् अप दुर्मतिं हतं शुभस् पती यातो अपोतो ! अस्मात् ।	
शौ नास्ति	पुरोगवो अजयं रक्षांस्य् अग्ने अजात् ! पूर्वो वि मृधो नुदस्व ॥७॥	• • • • देवन्तु...
	या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।	...नद्यो...
शौ ७	तास् त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥८॥	ते • वधु • पत्ये ...
शौ ८ एमं पन्थाम् अरुक्षाम	] न इमं पन्थाम् अगात् ! सुगं स्वस्तिवाहनम् ।	...अगन्म स्वस्ति •
	यस्मिन् वीरो न रिष्यत्य् अन्येषां विन्दते वसु ॥९॥	...विन्दते विन्दते (द्विर्वचनं) •
शौ ९	इदं सु मे नरश् शृणुत ययाशिषा दंपती वामम् अश्नुतः ।	नर • मे नरः ! शृणुत ययाशिषा • • •

	ये गन्धर्वा [अ]प्सरसश् च देवीर् एषु वानस्पत्येषु ये ऽधि तस्थुः ।	...एषु वानस्पत्येषु ये ऽधि •
	स्योनास् ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर् वहतुम् उह्यमानम् ॥१०॥ ऋचा॰ १०	• ते • वध्वै... ॥ १ ॥

	१८.८	
शौ १०	ये वध्वश् चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनां अनु ।	...वध्व...
	पुनस् तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥१॥	पुनः...
शौ ११ परिपन्थिनो	मा विदन् परिपन्थिनो ! य आसीदन्ति दंपती ।	...य आसीदन्ति •
	सुगेन दुर्गम् अतीताम् अप द्रान्त्व् अरातयः ॥२॥	• दुर्गम् अतीताम् • • •
शौ १२	सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैर् अघोरेण चक्षुषा मैत्रेण ।	• • वहतुं स्योनं ...
	पर्याणद्धं विश्वरूपं यद् अस्ति स्योनं पतिभ्यस् सविता कृणोतु तत् ॥३॥	• पर्याणद्धं विश्वरूपं ...
शौ १३ अस्यै दिदेश	शिवा नारीयम् अस्तम् आगन्न् इमं धाता लोकम् अस्यै दिदेश ।	...अश्विनोभा:... [दधन्न • अस्यां
	ताम् अर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥४॥	न ! ...! ...! ... • •
शौ १४	आत्मन्वत्य् उर्वरा नारीयम् आगन् यस्यां नरो वपत बीजम् अस्याम् ।	सा • • जनयद्...
शौ [illegible]	सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती ! दुग्धम् ऋषभस्य रेतः !	
शौ १५	[प्रति तिष्ठ विराड् असि विष्णुर् इवेह सरस्वति ।]	
	[सिनीवालि] प्र जायतां भगस्य सुमताव् असत् ॥६॥	• • असत्...
शौ १६ उद् व ऊर्मिः	उद् वरिमा ! ऊर्मिश् शम्या हन्त्व् आपो योक्त्राणि मुञ्चत ।	• • ऊर्मि यदे • • योक्त्राणि मुञ्चत
	मा दुष्कृतौ व्येनसाव् अघ्न्याव् अशुनम् आरताम् ॥७॥	मा दुष्कृती व्येनसा अघ्न्या •
शौ १७	अघोरचक्षुर् अपतिघ्न्य् एधि स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।	...सुशेवा...
शौ १८	प्रजावती वीरसूर् देवकामेमम् अग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥८॥	प्रजावती वीरसूर् देवृकामा • गार्हपत्यं सपर्य
शौ १८	अदेवृघ्न्य् अपतिघ्नीह एधि स्योना पशुभ्यस् सुयमा सुवीरा ।	• • • • स्योना • पशुभ्यः सुयमा...
शौ १८	वीरसूर् देवकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥९॥	• • • • [illegible] • सुमनस्यमाना
शौ १९	उत्तिष्ठत ! किम् इच्छन्तीदम् आगा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।	[illegible] • • •
	शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥१०॥ ऋचा॰ २०	...मेह रंस्थाः ॥२॥

	१८.९	
शौ १४.२.२०	यदा गार्हपत्यम् असपर्यैत् पूर्वम् अग्निं वधूर् इयम् ।	• गार्हपत्यम् असपर्यैत्...
	अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश् च नमस् कुरु ॥१॥	...पितृभ्यश्...
शौ २१	शर्म वर्मैतद् आ हरास्यै नार्या उपस्तरे ।	...वर्मैतद्
	सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमताव् असत् ॥२॥	
शौ २२	उप स्तृणीत बल्बजम् अधि चर्मणि रोहिते ।	• स्तृणीत ... रोहिते
	तत्रोपविश्य सुप्रजा इमम् अग्निं सपर्यतु ॥३॥	• • इमम् •
शौ २३	[यं] बल्बजं न्यस्य[थ] चर्म चोपस्तृणीथन ।	...चोपस्तृणीथन
	तद् आ रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥४॥	
शौ २४	आ रोह चर्मोपसीदाग्निम् एष देवो हन्तु रक्षांसि सर्वा ।	...देवो • • •
शौ २५	सुमङ्गल्य् उप सीदेमम् अग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥५॥	...देवान्
शौ २६	प्र जायतां मातुर् अस्या उपस्थान् नानारूपाः पशवो जायमानाः [।]	• • मातुः अस्या उपस्थात्...
शौ २७ अस्य	इह प्रजां जनयो ! पत्ये ऽस्मै सुज्येष्ठ्यो भवतु ते पुत्र एषः ॥६॥	• इह...सुज्येष्ठ्यो...
शौ २६	सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।	...शंभूः
	स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् प्रजावती जरदष्टिर् यथासत् ॥७॥	• स्योना • • विशेमान्...
शौ २८	सुमङ्गलीर् इयं वधूर् इमां समेत पश्यत ।	सुमङ्गलीर् • • इमां...
	सौभाग्यम् अस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर् परेतन ॥८॥	सौभाग्यम् अस्यै...
शौ २९	या दुर्हार्दो युवतयो याश् चेह जरतीर् अपि ।	• दुर्हार्दो • यश् • जरतीर् •
	वर्चो न्व् अस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥९॥	...सं दत्ताथास्तं वि •
शौ ३०	रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।	
	आरोह[त्] सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥१०॥ ऋचा॰ १०	...इदमी • ॥३॥

१८.१०

[illegible]

१८.११

[illegible]

१८.१२

[illegible]

शौ ५३ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥२॥

शौ ५४ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥३॥

शौ ५७ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
[य]शो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥४॥

शौ ५६ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥५॥

शौ ५५ बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस् तेनेमां सं सृजामसि ॥६॥

शौ ६० यद् असौ युक्तिा तव विकेशर् अरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य् अघम् ।
अग्निष् ट्वा तस्माद् एनसस् सविता च प्र मुञ्चताम् ॥७॥

शौ ६१ यद् अमी कन्दिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तो ऽघम् ।
[अग्निष् ट्वा तस्माद् एनसस् सविता च प्र मुञ्चताम्] ॥८॥

शौ ६२ यद् जामयो यद् युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीर् अघम् ।
[अग्निष् ट्वा तस्माद् एनसस् सविता च प्र मुञ्चताम्] ॥९॥

शौ नास्ति यद् इमम् दंपती उभौ विवाहे अघम् आकतो रोदेन कृण्वन्ताव् अघम् ।
[अग्निष् ट्वा तस्माद् एनसस् सविता च प्र मुञ्चताम्] ॥१०॥ अनु १॥

१८.१३

शौ १४.२.६२ यत् ते प्रजायां पशुषु यद् वा गृहे निष्ठितम् अघकृद्भिर् अघं कृतम् ।
अग्निष् ट्वा तस्माद् एनसस् सविता च प्र मुञ्चताम् ॥१॥

शौ ६३ [इ]यं नारिर् उप ब्रूते पूल्यान्य् आवपन्तिका ।
दीर्घायुर् अस्तु मे पतिर् एधन्तां पितरो मम ॥२॥

शौ ६४ इहेमाव् इन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।
प्रजावन्तौ स्वस्तकौ दीर्घम् आयुर् व्य् अश्नुताम् ॥३॥

शौ ६५ यद् आसन्द्याम् उ[प]धाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुर् आस्नाने तां नि दध्मसि ॥४॥

शौ ६६ यद् दुष्कृतं यच् छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
शौ संभलस्य तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥५॥

शौ ६७ संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाश् शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

शौ ५० या मे प्रियतमा तनू[स्] सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥७॥

शौ १८ कृत्रिमः, कङ्कतः, कङ्कतः कृत्रिमः कङ्कतश् शतदन् य एषः ।
[इति पाठाः] अपास्याः केश्यं मलम् अप शीर्षण्यं लिखा[त्] ॥८॥

शौ ६९ अयं दृष्यति अङ्गाद्-अङ्गाद् वयम् अस्या अप यक्ष्मं नि धत्तन ।
तन् मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापद् उर्व् अन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन् मलम् एतद् अग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश् च सर्वान् ॥९॥

शौ ७० सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्यास् सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजम् एमम् ॥१०॥ अनु २॥

१८.१४

शौ १४.२.७१ अमो ऽहम् अस्मि सा त्वं द्यौर् अहं पृथि[वी त्वं] अमो ऽहम् अस्मि वाक् त्वम् ।
ताव् इह सं भवाव प्रजाम् आ जनयावहै ॥१॥

[illegible]

१८.१५

[illegible]

१८.१६

[illegible]

यावत् एते पृथिवी मत् स्योना स्योना योनिस् तन्वा मत् सुशेवा ।
इहैव प्राणस् सख्ये नो [अ]स्तु तं त्वा परमेष्ठि[न्] पर्य् अहं वर्चसा दधामि ॥७॥
यावत् एत प्रवतः पञ्च [दि वो] देवयजनेषा[ः] परि य [सं]बभूवुः ।
[इहैव प्राणस् सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्] परि रोहितो वर्चसा दधातु ॥८॥
शौ अमन योनिषु प्रजाः यावत् एते सोमलसं ममर्ष च गोष्ठे नो गा रम[य] योनिषु प्रजाम् ।
इहैव प्राणस् सख्ये नो [अ]स्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्य् अहं वर्चसा दधामि ॥९॥
परि त्वा धात् सविता देवो [अ]ग्निर् वर्चसा मित्रावरुणाव् अभि त्वा ।
सर्वा [अ]रातीर् अवक्रामन् एहीदं राष्ट्रं अकृथाः सूनृतावत् ॥१०॥ अनु १०॥

शौ १३.१.११-१६, १२

१८.१७

शौ अभिर् वहति यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर् वहति रोहित ।
शौ १३.१.२[१] शुभा यासि रिणन्न् अपः ।
तेनेमं ब्रह्मणस् पते रोहं रोहयोत्तमम् ॥१॥
अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिस् सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपान् जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम ॥२॥
इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन् नयन्तु तां रक्षन्तु कवयो ऽप्रमादम् ॥३॥
सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तस् सदा वहन्त्य् अमृतास् सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीम् आ विवेश ॥४॥
यो रोहितो वृषभस् तिग्मशृङ्गः पर्य् अग्निं परि सूर्यं बभूव ।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीस् सृजन्ते ॥५॥
रोहितो दिवम् आरुहन् महतः पर्य् अर्णवा[त्] ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥६॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुर् अनपस्पृग् एषा ।
इन्द्रस् सो[मं पिबतु क्षे]मो [अ]स्त्व् अग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥७॥
समिद्धो [अ]ग्निस् समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाड् अग्निस् सपत्नान् हन्तु ये मम ॥८॥
हन्त्व् एनान् प्र दहत्व् अरिर् यो नः पृतन्यतु ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥९॥
अवाचीनान् अव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।
अधा सपत्नान् मामकान् अग्नेस् तेजोभिर् आदिषि ॥१०॥ अनु १२॥

शौ १३.१.३०,११-४०

१८.१८

अवाचीनान् अव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमा[न्] ।
अधा सपत्नान् मामकान् अग्नेस् तेजोभिर् आ दधे ॥१॥
उर्ध्वम् त्वं देव सूर्य सपत्नान् अव [मे] जहि ।
दिवैनान् रश्मिभिर् जहि रात्र्यैनान् तपसा वधीस् ते यन्तु अधमं तमः ॥२॥
वत्सो विराजो वृषभो मतीनाम् आ रुरोह शुक्रपृष्ठो ऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कम् अभ्य् अर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्तु ॥३॥
दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥४॥
ये देवा राष्ट्रभृतो ऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष् टे रोहितस् संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥५॥
शौ यहन्त् अध्वनो हरयः उ[त] त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्व् अध्वन् अगुः । हरयस् त्वा वहन्ति ।
तिरस् समुद्रम् अति रोचसे अर्णवम् ॥६॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥७॥
यशा यासि प्रदिशो [अ]नु यशाः पशूनाम् उत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या [अ]दित्या उपस्थे अहं सवितेव चारुः ॥८॥

अमुत्र सन्न् इह वेत्थेतस् संस् तानि पश्यति ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥९॥
देवो देवान् मर्चयस्य् अन्तश् चरस्य् अर्णवे ।
समानम् अग्निम् इन्धते तं विदुः कवयः परे ॥१०॥ ऋ॰ ४॥

शौ १३.१.४१-४२

१८.१९

वै १६.१०.७

यतः परेण पर [एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौर् उद् अस्थात् ।
[सा कद्रीची कं स्विद् अर्धं परागात् क स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्]॥१॥
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद् अष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस् तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥२॥
आरोहन् द्याम् अमृतः प्राव मे वचः ।
उ[त्] त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्ति घृतं पिबन्तं हरयस् त्वा वहन्ति ॥३॥
यत् [त]त् ते अमर्त्यं यत् त [आ]क्रमणं दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥४॥
सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपो ऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुर् आ रुरोह दिवं महीम् ॥५॥
उर्वीर् आसन् परिधयो वेदिर् भूमिर् अकल्पत ।
तत्रैतान् अग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥६॥
हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यान् अग्नी [ई]जाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥७॥
स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निस् समाहितः ।
तस्माद् घ्रंसस् तस्माद् धिमस् तस्माद् यज्ञो ऽजायत ॥८॥
ब्रह्मणाग्नी संविदानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धाव् अग्नी [ई]जाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥९॥
सत्ये अन्यस् समाहितस् सत्ये अन्यस् समाहितः ।
[ब्रह्मेद्धाव् अग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः] ॥१०॥
यं वातः परिशुम्भति यम् इन्द्रो ब्रह्मणस् पतिः ।
ब्रह्मेद्धाव् अग्नी [ई]जाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥११॥ ऋ॰ ५॥ अनु॰ १॥

शौ १३.१.५१-५५,१३.२.१-६

१८.२०

यदि भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणा[म्] ।
घ्रंसं तद् अग्निं कृत्वा चकार विश्वम् आत्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥१॥
वर्षम् आज्यं घ्रंसो [अ]ग्निर् वेदिर् भूमिर् अकल्पत ।
तत्रैता[न्] पर्वतान् अग्निर् गीर्भिर् ऊर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥२॥
गीर्भिर् ऊर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिम् अब्रवीत् ।
तद् इदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच् च भव्यम् ॥३॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद् ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥४॥
उद् अस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुषः ॥५॥

शौ प्रज्ञानं स्वरयन्तम् (शौपु [प्रज्ञानं अपि)

दिशां प्रज्ञानं स्वरयन्तो अर्चिषा सुपक्षम् आशुं पतयन्तम् अर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर् दिश आभाति सर्वाः ॥६॥
यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मा[य]या ।
तद् आदित्य महि तत् ते महि श्रवो यद् एको विश्वं परि भूम जायसे ॥७॥
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितस् सप्त बह्वीः ।
श्रुताद् यम् अत्रिर् दिवम् उन्निनाय तं त्वा पश्येम परियान्तम् आजिम् ॥८॥
मा त्वा दभन् परियान्तम् आजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवी[म्] अहोरात्रे विमिमानो यद् एषि ॥९॥

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभाव् अन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाश् शतम् अश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥१०॥ ऋ॰ १॥

शौ १३.२.७-१५

१८.२१

सुखं सूर्य रथम् अंशुमन्तं स्योनं सुवह्निम् अधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाश् शतम् अश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥१॥
सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीर् अयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस् तमो दिवम् आरुहत् ॥२॥
उत् केतुना बृहता देव आगन्न् अपावृक् तमो अभि ज्योतिर् अश्रैत् ।

शौ स बीरो

दिव्यस् सुपर्णस् स्थविरो ? व्य् अख्यद् अदितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥३॥
उद्यन् रश्मीन् आ तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वाँल् लोकान् परिभूर् भ्राजमानः ॥४॥
[पूर्वापरं चरतो माययैतौ] शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्य् अन्यो भुवना [विचष्टे अन्यो] हैरण्यैर् हरितो वहन्ति ॥५॥
दिवि त्वात्रिर् अधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस् तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥६॥
उभाव् अन्तौ सम् अर्षसि वत्सस् संमातराव् इव ।
नन्व् एतद् इतः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥७॥
यत् समुद्रम् अधि श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश् चापरश् च यः ॥८॥
तं सम् आप्नोति जूतिभिस् ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥९॥ ऋ॰ २॥

१८.२२

शौ १३.२.१९

उद् उ त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥

शौ १७

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्य् अक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥२॥

शौ १८

अदृश्रन्न् अस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३॥

शौ १९

तरणिर् विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृद् असि सूर्य ।
विश्वम् आ भासि रोचन ॥४॥

शौ २०

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङ् उद् एषि मानुषी[:] ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर् दृशे ॥५॥

शौ २१

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

शौ २२

वि द्याम् एषि रजस् पृथ्व् अहा मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥७॥

शौ २३

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

शौ २४

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवस् सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर् याति स्वयुक्तिभिः ॥९॥

शौ १०.४८.१

अभि मा यशसा ! गिरस् सिञ्चन्तीर् आचरण्ययः ! ।
अभि वासं न धेनवः ॥१०॥

शौ १

तां अर्षन्तु शुभ्रियः पृश्न्य्[ः] यशसा प्रियाः ।
आर्तं आर्तीर् यथा हृदं ॥११॥ ऋ॰ ३॥

१८.२३

शौ १०.४८.२

यज्ञपयसाप्पीवः ? कीर्तिं अंधमानम् ? मां वहान् ।
ब्रह्मम् आयुर् घृतं यथा ॥१॥

शौ १३.२.२५

रोहितो [दिवम् आरुहत् तपसा तपस्वी ।
[स यो]निम् एति स उ जायते पुनस् स देवानाम् अधिपतिर् बभूव ॥२॥

शौ २६

यो विश्वचर्षणिर् उत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुर् उत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर् द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३॥

शौ २७

एक द्विपदो भूयो वि चक्रमे [द्विपात् त्रिपादम् अभ्य् एति पश्चात् ।
[द्विपाद् ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे] त एकपदस् तन्वं सम् आसते ॥४॥

शौ २८

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यद् आस्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमान् उद्यन् सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि ॥५॥

शौ २९

बण् महाँ असि सूर्य बड् आदित्य महाँ असि ।
महांस् ते महतो महिमा त्वम् आदित्य महाँ असि ॥६॥

शौ ३०

रोचसे दिवि रोचसे [अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां] रोचसे रोचस [अ]प्स्व् अन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्य् आपिथ देवो देवासि महिष[स्] स्वर्जित् ॥७॥

शौ ३१

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो ! व्यध्व आशुर् विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर् विचित्तश् शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वम् एजत् ॥८॥

शौ ३२

चित्रो विभ्राजन् तन्वं शिशानो ऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥९॥

शौ ३३

चित्रश् चिकित्वान् महिषस् सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥१०॥ ऋ॰ ४॥

१८.२४

शौ १३.२.३४

चित्रं देवानां केतुर् अनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशस् सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरो ऽति द्युम्नैस् तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥१॥

शौ ३५

चित्रं देवानाम् उद् अगाद् अनीकं चक्षुर् मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश् च ॥२॥

शौ ३६

उच्चा पत[न्त]म् अरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस् तरणिं भ्रा[जमा]नम् ।
पश्येम त्वा सवितारं यम् आहुर् अजस्रं ज्योतिर् यद् अविन्दद् अत्रिः ॥३॥

शौ ३७

दिवस् पृष्ठे धावमानं सुपर्णम् अदित्याः पुत्रं नाथकामो ऽपि यामि भीतः ।
स नस् सूर्य प्र तिर दीर्घम् आयुर् मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥४॥

शौ नास्ति

अहोरात्राणि विदधन् कृण्वानः पार्थिवं रजः ।
सर्वं सर्वं सखीयन्न् कृणुषे देव सूर्य ॥५॥

शौ ३८

सहस्राह्ण्यं वियताव् अस्य पक्षौ हरेर् हंसस्य पततस् स्वर्गम् ।

शौ उरस्युपस्थ

स विश्वान् देवान् ! तिनस् समपुश ? संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥६॥

शौ ३९

रोहितः कालो ऽभवद् रोहितो ऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितो ज्योतिर् उद्यत्नं ॥७॥

शौ ४०

रोहितो भूतो ऽभवद् [रोहितो ऽत्य् अतपद् दिवम्] ।
रोहितो रश्मिभिर् भूमिं समुद्रम् अनु सं चर[त्] ॥८॥

शौ ४१

सर्वा दिशस् सं चरति रोहितो ऽधिपतिर् दिवः ।
दिवं समुद्रम् आद् भूमिं सर्वाल् लोकान् वि रक्षति ॥९॥ ऋ॰ ५॥

१८.२५

अधिकांशु ऋचि नास्ति

विचक्षणानं ? प्रति मुञ्चते कवो मुहुर्नो रश्मीन् अंशं बृहन्तम् ।
दिवाचरः पश्यति यत् परात् पर ! पराह्ना प्रमृष्यन्त् विश्वम् आयात्
हिरण्मयं हरितः केतुर् उद्यन् ॥१॥

शौ १३.२.४२

आरोहन् शुक्रो बृहतीर् अतन्द्रो ! अमर्त्यः कृणुते वीर्याणि ।
दिवस् सुपर्णो महिषो वातरंहा य[स्] सर्वाल् लोकान् अभि यद् विभाति ॥२॥

शौ ४३

अन्य् अन्यद् एति सद्यो ऽयं यमायन् ? अहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥३॥

शौ ४४

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुर् अदब्धचक्षुः परि सर्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन् सुविदत्रो यजत्र शिवाया नस् सन्मा[थ] शर्म यच्छात् ॥४॥

शौ ४५

यदे अस्य महिमा पृथिवी समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्याम् अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्राभ्यां सह संवसाना उषा मीयुः प्रपतद् आयिषम् ॥५॥

शौ ४६

अबोध्य् अग्निस् समिधा जनानां प्रति धेनुम् इवायतीम् उषासम् ।
यह्वा इव प्र वयाम् उज्जिहानाः प्र भानवस् सिस्रते नाकम् अच्छ ॥६॥

ऋ ५.१.१

कुमारं माता युवतिर् समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकम् अस्य न मिनज् जनासः पुरः पश्यन्ति निहितम् अरतौ ॥७॥

ऋ २ कमेतं त्वं युवते

कम् एत त्वं युवतिः कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर् हि गर्भश् शरदो ववर्धापश्यं जातं यद् असूत माता ॥८॥

अधिकांशु ऋचि नास्ति

यस्य त्रिधा न तु न ए क भा न्व तो ! उक्मै बलिं देवजना हरन्ति ।
यस्यासौ द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं गुहां प्र विशन्ति मधुमासम्[ः] ॥९॥

संहितासु ऋचि नास्ति

यत्र दिवो देवजनम् गुहा नक्षत्राणि यत्र भूतम् इमा ।

कैतरेये १५.११

यस्मिन्न् इदं सर्वम् ओतं प्रोतं यस्माद् अन्यन् न परं किं चनास्ति ॥१०॥
ऋ॰ ६॥

१८.२६

ऋचि न दृश्यते

न तस्मात् पूर्व न परं तद् अस्ति न भूतं नोत भव्यं यद् आसीत् ।
सहस्रपाद् एकमूर्धा हिरण्यात्मा स एवैकम् आ वरीयान् भूतम् ॥१॥

[illegible]

१८.२७

[illegible]

१८.२८

[illegible]

१८.२९

[illegible]

१८.३०

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसं सहमानं सहोजितम् ।
विश्वजितं स्वर्जितम् [illegible] संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व ! इन्द्रम् आयुष्मान् भूयासम् ॥१॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसं सहमानं सहोजितम् ।
विश्वजितं स्वर्जितम् [illegible] संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व ! इन्द्र देवानां प्रियो भूयासम् ॥२॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसं सहमानं सहोजितम् ।
विश्वजितं स्वर्जितम् [illegible] संधनाजितम् ।

ईड्यं नाम ह्व ! इन्द्र पशूनां प्रियो भूयासम् ॥२०॥ ऋ॰ १०

१८.३१

उद् इह्य् उद् इहि सूर्य वर्चसा माभ्य् उद् इहि ।
द्विषंश् च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधम् ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥१॥
उद् इह्य् उद् इहि सूर्य वर्चसा माभ्य् उद् इहि ।
यांश् च पश्यामि यांश् च न तेषु मे सुमतिं कृधि ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥२॥
मा त्वा दभन् सलिले [अ]प्स्व् अन्तर् ये पाशिन उपतिष्ठन्त्य् अत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवम् आरुह एतां स नो मृड सुमतौ [ते] स्याम ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥३॥
त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धैः परि पाह्य् अक्तुभिः ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥४॥
त्वं न इन्द्रोतिभिश् शिवाभिश् शंतमो भव ।
आरोहन् त्रिदिवं दिवो गृणानस् सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥५॥
त्वम् इन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस् [त्वम् इन्द्र] ।
त्वम् इन्द्रेमं सुहवं स्तोमम् एरयस्व शिवाभिस् तनूभिर् अभि न[स्] सचस्व ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशु[भिर्] विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥६॥
असद्यो दिवि पृथिव्याम् उतासि न त आपुर् महिमानम् अन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानस् स त्वं न इन्द्र दिवि षन् शर्म यच्छ ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥७॥
त्वं रक्षसे प्रदिशश् चतस्रस् त्वं शोचिषा नभसी वि भासि ।
त्वम् इमा विश्वा भुवनानि तिष्ठस्य् ऋतस्य पन्थाम् अन्व् एषि विद्वान् ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥८॥ ऋ॰ २०

१८.३२

पञ्चभिः पराङ् तपस्य् एकयार्वाङ् अशस्तिम् एषि सुदिने बाधमानः ।
त्वं त्रितं त्वं पर्य् एष्य् उस्रम् ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥१॥
त्वम् इन्द्रस् त्वं महेन्द्रस् त्वं विष्णुस् त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतः ।
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥२॥
असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।
भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते समाहितम् ।
तवेद् विष्णो बहु[धा] वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर् विश्वरूपैस् सुधायां मो धेहि परमे व्योमन् ॥३॥
शुक्रो ऽसि भ्राजो ऽसि ।

[illegible]
रुचिर् असि रोचो ऽसि ।
[illegible]
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥[illegible]
[illegible]
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥[illegible]
[illegible]

अथर्ववेदे पैप्पलादशाखायाम् अष्टादशः काण्डः समाप्तः ॥

१९.१

[illegible]

आरे अस्मद् दधते दैव्यं भयं सुवीर्यम् ।
मरुतश् शर्म यच्छत ॥११॥
इहेति द्यावापृथिवीह पर्वता अपश् च सूर्यम् उरु अन्तरिक्षम् ।
वनस्पतीन् ओषधीर् गन्धर्वीश् च ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥१२॥
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस् पतिं भगं नु शंसं सवितारम् ऊतये ।
इह सोमो वरुणो वायुर् अग्निर् मम उभो [अ]वसे नो गमन्तु ॥१३॥
पातं न इन्द्रापूषणा वरुणः पान्तु मरुतः ।
अपां नपा[त्] सिन्धवस् सप्त पातन पातु [नो] विष्णुर् उत द्यौः ॥१४॥
पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुहवा सरस्वती पात्व् अग्निर् ये शिवा [अ]स्य पायवः ॥१५॥
पातां नो देवाश्विना शुभस्[पती] उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपाद् विहुती गयस्य चिद् देवो त्वष्टर् वर्धय ? शर्म यच्छ नः ॥१६॥ ऋ॰ १६

१९.२

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस् पतिः ।
पुत्रैर् भ्रातृभिर् अदितिर् नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ? ॥१॥
अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु अंहसः ।
अप तस्य द्वेषो गमेद् अभिह्रुतो यावयच् छत्रुम् अन्तितम् ॥२॥
देव त्वष्टर् वर्धय सर्वतातये पिबे सम् उ प्रिये मादयाद्युः ? ।
उरुष्या णो ? दधिरः प्रयच्छन् ? पीनः पितर् यावय दुच्छुनाम् इतः ॥३॥
यो नो यचो उभिदसति सनाभिस् तं मम सोम पलिता अप यन्ति ।
शीर्षिम् तान् वृश्चन् पता ? वृश्चो मा ते दधान् सूर्यम् उच्चरन्तम् ॥४॥
त्वयेद्या त्वया सोम शम्भिना त्वया सुशिप्रा शाशद्मेह वयम् ।
तं त्वं वृषेद् अभ्यवद्यावामे ? न स दभ्नेन यदति सनाभिः ॥५॥
परेतेन तान् चक्ष्यो नयन्तु यमेन् पत्नान् पितरो होषयन्तु ।
यथा न जीवाति कतमश् चनैषाम् ॥६॥
येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्य् अद्रुहः ।
तेना नो ऽवसा गमः ॥७॥
यो अस्य सोम सुरासिनो दुरशंसो अभिदासति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो ऽपा ति ॥८॥
यो अस्य सोमाभिदासति सनाभिर् यश् च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर् वधत्मना ॥९॥
पुनर् अयन् अयकृतम् अनु देवाः, पुनर् यन्ते ? नमस्कृतं विजानत् ।
पुन[ः] पुन[ः] पितरम् अनु पिता[र] इतम् उतापि इत्यथान् ? अशिर ॥१०॥
येन चाक्षी धावति येन धीनं घासयासि ।
तमी संवृत्य तौ तस्माद् यन्तिकार्येत् ? तम् अनयताम् ॥११॥
ये पार्थिवासश् च पथि च उराष् अन्तरिक्षे ।
ये वातस्य प्रकर्षेषि तेभिष् टं वर्तयामसि ॥१२॥
यो ऽप्सनान् ईषि यं च वयं द्विष्मः ।
यो ऽप्सनान् प रि मा मृ पः कु ख य मा नि ? विद्वतः ।
दद् देवस् तेषां वृश्चतु मूलम् उभ्यावो यथा ॥१३॥
यद् एष यर्यदन् अयम् अभ्यचितन् मतो संयते ।
इमौ रोगस्य पूर्व[प]ः प्रलदु कर्तारम् ऋच्छतु ॥१४॥
पुनर् यथा यदीय ? पुत्रं मनेयर्यतु ।
आदित्या तुर्ये ? महिमा मही सिन्धोर् इवाखनि[ः] ॥१५॥ ऋ॰ १५

१९.३

यान्वर् दीघान् जीवमानां प्रतीची अति पनत ? ।
प्रलद् कर्तारम् ऋच्छतु ॥१॥
यामन्तम् इच्छ सदानम् अन्यका द्युरिताचन ? ।
प्रतीचीर् यशद ऋच्छतु ॥२॥
यद् एतद् भूरि धासरः ? प्रतीचीनम् अपोदके ।

वि या ध्य वि प स ध्य त तु ? ॥३॥
नमस् ते प्रवतो नपाद् यतस् त्वम् समीहसे ।
मृळया नस् तनूभ्यश् शं नस् तोकेभ्यः कृधि ॥४॥
प्रवतो नपान् नमो अस्तु तुभ्यं नमस् ते हेतये तपुषे [च कृण्मः] ।
विद्म यो नाम परमं गुहा यत् समुद्रे अन्तर् निहितासि नाभिः ॥५॥
यां त्वा देवासो ऽजनयन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुं ।
सा नो मृळ विदथे गृणाना मित्रस्य वरुणस्य प्रसूतौ ॥६॥
गृणं नः प्रवतो नपान् मरुतस् सूर्यत्वच[स्]ः ।
शर्म यच्छत सप्रथा[ः] ॥७॥
सुमृळत सुमृडत मृळया नो अपाभ्यः ।
तोकाय तन्वे [शं] श[ः] ॥८॥
नमस् ते [अ]स्तु विद्युते नमस् ते स्तनयित्नवे ।
नमस् ते अस्त्व् अश्मने येना दूडाशे [अ]स्यसि ॥९॥
यो ऽस्मान् ब्रह्मणस् पते ऽदेवो अभिदासति ।
सर्वं तं रीरिसि ? नः ॥१०॥
येभिस् सोम साह्मस्यासुरान् रन्धयासि ।
तेना नो ऽविता भुवः ॥११॥
येन देवा असुराणाम् ओजांस्य् अवृणीध्वम् ।
तेभिर् नो अधि वोचत ॥१२॥
उद् एनम् उत्तरं नयाग्ने घृतेभिर् आहुतः ।
सम् एनं वर्चसा सृज देवानां भागधा असत् ॥१३॥
इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानाम् असद् वशी ।
रायस् पोषेण सं सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥१४॥
यस्य कृण्मो गृहे हविस् तम् अग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रुवद् अयं च ब्रह्मणस् पतिः ॥१५॥ अनु॰ १॥

१९.४

ऋतावानं वैश्वानरम् ऋतस्य ज्योतिषस् पतिम् ।
अजस्रं घर्मम् ईमहे ॥१॥
स इन्द्र[ः] प्रथम[ः] पृथग् यहस्य स्वर् उत्तिरन् ।
ऋतून् उत् सृजते वशी ॥२॥
अग्निः पीयूषधामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राड् एको वि राजति ॥३॥
परि द्याम् इव सूर्यो ऽहीनां जनिम् आगमम् ।
रात्री जगद् इवान्यद् धंसात् अवधीद् ? इदं विषम् ॥४॥
यद् ब्रह्मभिर् यद् ऋषिभिर् यद् देवैर् विदितं पुरा ।
यद् भूतं भव्यम् आसन्वत् तेन ते वारये विषम् ॥५॥
अभि न मावृक्षि ? नद्यः पर्वता गिरयो मधु ।
मधु पृष्टी[ग्] शीपाला शम् आस्ने [अ]स्तु शं हृदे ॥६॥
यथेयम् उर्वी पृथिवी दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥७॥
[यथेयम् उर्वी पृथिवी] दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
[एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥८॥]
यथेयम् उर्वी पृथिवी दाधार पर्वतान् अप[ः] ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥९॥
सध्रुचीर् तद् अपसो दिवा नक्तं च सध्रुची[ः] ।
वरेण्यक्रतुर् अहम् अपो देवीर् उप ह्वये ॥१०॥
ओता आपः कर्मण्या मुञ्चन्त्व् इतः प्रणीतये ।
सद्यो भवन्त्व् एतवे ॥११॥
देवस्य सवितुस् सवे कर्म कृण्वन्ति मानुषा[ः] ।

शं नो भवन्त्व् अप ओषधीर् इमाः ॥१२॥
शतस्य ते धमनीनां सहस्रस्य हिराणां ते ? ।
अस्थुर् इन् मध्यमा या साकम् अन्ता अरंसत ॥१३॥
परि वस् सिकतामयी धनूस् स्थिरा शरम् स्थिराः ।
तिष्ठतेलयता सु कम् ॥१४॥
अमूर् या यन्तु जामयस् सर्वा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव योषितस् तिष्ठन्ति हतवर्चसः ॥१५॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।
कनिष्ठिकासि तिष्ठास् तिष्ठाद् इद् धमनिर् मही ॥१६॥ अर्थ॰ ४॥ अनु॰ १॥

१९.५

नमो देवबधेभ्यो नमो राजबधेभ्यः ।
अथो ये विश्यानां बधास् तेभ्यो मृत्यो नमो ऽस्तु ते ॥१॥
नमस् [ते अधिवाकाय पराचाकाय ते] नमः ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नमः ॥२॥
नमस् ते यातुधानेभ्यो नमस् ते भेषजेभ्यः ।
मूलेभ्यो मृत्यो ते नमो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥३॥
नव च या नवतिम् च संयन्ति मन्या अभि ।
अवस् तास् सर्वा नश्यन्तु वाका अपचिताम् इव ॥४॥
सप्त च या[स्] सप्ततिश् च [सं]यन्ति ग्रैव्या अभि ।
[अवस् तास् सर्वा नश्यन्तु वाका अपचिताम् इव ॥५॥]
पञ्च च याः पञ्चाशच् च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
अवस् तास् सर्वा नश्यन्तु वाका अपचिताम् इव ॥६॥
आबयो [अ]नाबयो रसस् त उग्र आबयो ।
आ ते करम्भम् अद्मसि ॥७॥
[विहह्लो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।]
स [हि]न त्वम् असि यस् त्वम् आत्मानम् आवयः ॥८॥
तौविलिका च बभ्रुकर्णश् च नीलागलसाला शफः ।
तस्मात् तौविलिके ऽवेलयावायम् ऐलब ऐलयीत् ? ॥९॥
वीहि स्वाम् आहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा ।
स्वाहा मनसा यद् इदं करोमि ॥१०॥
यस्यास् त आसनि जुहोमि घोर एषां बद्धानाम् अवसर्जनाय कम् ।
भूमिर् इति त्वाभिप्रमन्वते जना निरृतिर् इति त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥११॥
भूत्यै हविष्मन् तस्या ईशाते भागः ।
तेन ते विधेयं स्वाहा ॥१२॥
यथो म्न् अस्मत् त्वं निरृते विश्ववारे अयस्मयान् प्र मुमुग्धि पाशान् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानो यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तस्मिन्
तान् पाशान् प्रति मुञ्च सर्वान् ॥१३॥
उत्तमो ऽस्य् ओषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिर् अस्तास्कं भूयात् यो [अ]स्माँ अभिदासति ॥१४॥
सबन्धुश् चासबन्धुश् च यो [अ]स्माँ अभिदासति ।
सबन्धून् सर्वान् तीर्त्वाहं भूयासम् उत्तमः ॥१५॥
यथा सोम ओषधीनाम् उत्तमं हविर् उच्यते ।
यथा त्वम् एव वृक्षाणाम् अहं भूयासम् उत्तमः ॥१६॥ अर्थ॰ १॥

१९.६

वरणो वारया[ता अयं देवो वनस्पतिः ।
[यक्ष्मो यो अस्मिन्न् आविष्टस् तम् उ देवा अवीवरन् ॥१॥]
इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च ।

देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे ॥२॥
यथा वृत्र इमा आपस् तस्तम्भ विश्वधा यतीः ।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये ॥३॥
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथा त इन्द्रः केवलीर् विशो बलिहृतस् करत् ॥४॥
आ त्वाहार्षम् अन्तर् अभूर् ध्रुवस् तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस् त्वा सर्वा आ यन्तु मा त्वद् राष्ट्रम् अधि भ्रशत् ॥५॥
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत् ।
इन्द्रेहैव ध्रुवस् तिष्ठेह राष्ट्रम् उ धारय ॥६॥
इन्द्र एतम् अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रुवद् अयं च ब्रह्मणस् पतिः ॥७॥
ध्रुवं ते देवस् सविता ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश् चाग्निश् च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥८॥
ध्रुवा द्यौर् ध्रुवा पृथिवी समुद्राः पर्वता ध्रुवा[ः] ।
यथा ह धर्मणा ध्रुवा? ध्रुवो राजा विशाम् अयम् ॥९॥
वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वम् एकवृषो भव ॥१०॥
समुद्र ईशे स्रवताम् अग्निः पृथिव्या वशी ।
सूर्यो नक्षत्राणाम् ईशे [त्वम् एकवृषो भव] ॥११॥
त्वं सम्राळ् असुराणां ककुन् मनुष्याणाम् ।
देवानाम् अर्धभाग् असि त्वम् एकवृषो भव ॥१२॥
परि वर्मान्य् एषाम् इन्द्रः पूषा च सस्रतुः ।
मुह्यन्त्व् अद्यामूस् सेना अमित्राणां परस्तराम् ॥१३॥
मुग्धा अमित्राश् चरताशीर्षाण इवाहयः ।
तेषाम् अग्निदग्धानाम् इन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥१४॥
एषु नद्ध वृषाजिनं हरिणस्य भियं कृधि ।
पराङ् अमित्र एषत्व् अर्वाची गौर् उपेषतु ॥१५॥ अर्थ॰ ३॥

१९.७

संसम् इद् युवसे वृषन्न् अग्ने विश्वान्य् अर्य आ ।
इळस् पदे सम् इध्यसे स नो वसून्य् आ भर ॥१॥
सं जानीध्वं सं [पृ]च्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥
समानो मन्त्रस् समितिस् समानी समानं चित्तं सह वा मनांसि ।
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥
समानो मन्त्रस् समितिस् समानी समानं मनस् सह चित्तम् एषाम् ।
समानं मन्त्रम् अभि मन्त्रये वस् समानम् एनां हविषा जुहोमि ॥४॥
उत् सूर्यो दिव एति पुरो विश्वा निजूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतो अधि विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥५॥
आयुर्विदं विपश्चितं श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आहार्षं विश्वभेषजीम् अस्याहष्टान् नि शमयत् ॥६॥
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्य् अदृष्टा अलिप्सत ॥७॥
हिमवतः प्र स्रवथ तास् सिन्धुम् उप गच्छत ।
आपो ह मह्यं तद् देवीर् ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥८॥
अक्षिभ्याम् आद्योत पार्ष्णिभ्यां हृदयेन च ।
आपस् तत् सर्वं निः करन् त्वष्टा रिप्रम् इवाक्षरत् ॥९॥
सिन्धुपत्नीस् सिन्धुपत्नीस् सर्वा या नद्यस् स्थन ।
दत्त नस् तस्य भेषजं तेन वो भुनजामहे ॥१०॥
पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु माम् ॥११॥
पुनातु मा पवमानः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥१२॥
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥१३॥
ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमाम् प्रथमां मध्यमाम् उत ।
सत्यं हृदय्यं शोकं तं ते निर् मन्त्रयामहे ॥१४॥
यद् यत् मे हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
तां त ईर्ष्यां मुञ्चामि निर् ऊष्माणं दृतेर् ? इव ॥१५॥
यथा भूमिर् मृतमना मृतान् मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर् मृतं मनः ॥१६॥ अर्थ॰ १॥

१९.८

द्यौश् च मा पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणा मा पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर् वायुर् मा पातु सविता भगश् च ॥१॥
पुनर् मनः पुनर् आयुर् न आगन् पुनश् चक्षुः पुनर् आकूतिर् आगन् ।
वैश्वानरो नो अदब्धस् तनूपा अन्तस् तिष्ठासि दुरिताद् अवद्यात् ॥२॥
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिर् अगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो वरिवः कृणोत्व् अनु नो मार्ष्टु तन्वो विरिष्टम् ॥३॥
इदं तद् युज उत्तरं येनेन्द्रं शुम्भाम्य् अष्टये ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिर् इव वर्धया तृणम् ॥४॥
अस्य क्षत्रम् अग्नीषोमाव् अस्य वर्धयतो रयिम् ।
अथो राष्ट्राभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥५॥
सबन्धुश् चासबन्धुश् च यो अस्मान् यश् च निष्ट्यः ।
यज्ञमानाय सुन्वते सर्वं तं रीरधासि नः ॥६॥
यशो हविर् वर्धताम् इन्द्रजूतं सहस्रवृष्णि सुभृतं सहस्वत् ।
प्रसर्स्राणम् अनु दीर्घाय जीवसे हविष्मन्तं वर्धय सर्वतातये ॥७॥
यशा इन्द्रो यशा [अ]ग्निर् यशा[स्] सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहम् अस्मि यशस्तमः ॥८॥
इयन्तो मन्ये यशसं यशोभिर् यशस्विनो हविषैनं विधेम ।
स नो दधद् राष्ट्रम् इन्द्रजूतं तव आवे ? [अ]विधाके स्याम ॥९॥
अव ज्याम् इव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाव् इव सचावहै ॥१०॥
वि ते मन्युं नयामसि सखायाव् इव सचावहै ।
अधस् ते अश्मनो मन्युं गुहयामि नि दध्मसि ॥११॥
अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
परा ते देहिं वधं परा मन्युं सुवामि ते ॥१२॥
हिरण्ययः पन्था आसीद् अरित्राणि हिरण्मया ।
नावो हिरण्ययीर् आसन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥१३॥
सुवर्णसवनं गिरौ जातं हिमवतस् परि ।
धनैर् अभि श्रुतं यन्ति कुष्ठंहि तक्मनाशनम् ॥१४॥

[illegible]

यशसं मा देवस् सविता कृणोतु प्रियो दातुर् दक्षिणाया[स्] स्याम् अहम् ॥६॥
यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर् यशस्वान् यथाप ओषधीषु [यशस्वतीः]।
यथा विश्वेषु देवेषु एवा देवेषु यशसस् स्याम ॥७॥
अच्छा वयम् इन्द्रं यशसं यशोभिर् यशस्विनो हविषैनं विधेम।
स नो ददद् राष्ट्रम् इन्द्रजूतं तस्य राते ? अधिपाके स्याम ॥८॥
यद् यातु यवसस् सोमो ऽग्निर् बृहस्पतिर् वसुभिर् यद यातु।
अस्य धियम् अभिसंयात सर्वे उग्रस्य चेतसस् संमनसस् सुजाता[ः] ॥९॥
एह यात माप याताग्न्य् अस्तात् पूषा वः पुरस्ताद् अपथं कृणोतु।
वास्तोष् पतिर् अनु वो ऽयम् अह्वन् मयि सुजा[ता] रमतिर् वो ऽस्तु ॥१०॥
यो वश् शुष्मो हृदयेष्व् अन्तर् याकूतिर् [यो] मनसि प्रविष्टा।
तां शीवयामि ? हविषा घृतेन मयि सुजाता रमतिर् वो ऽस्तु ॥११॥
मम चित्तं परि वो मन्यत इन्द्राग्न्योर् इव हवम् एत सर्वे।
बृहस्पतिर् वो नि युनक्तु मह्यं मम याचम् एकचित्तास् सचध्वम् ॥१२॥
अहं गृह्णामि मनसा मनांसि मम चित्तम् उप चित्तेभिर् एत।
मम वशे हृदयं वः कृणोमि मम यातम् अनुवर्त्मान एत ॥१३॥
सं वश् चक्षुर् गच्छतु सं मनो धाता पथम् अनु व्रतं वः कृणोतु।
ये वो बृहन्त उत ये कुमारा मम यातम् अनु यातेभिर् एत ॥१४॥ ॥का° २॥

१९.११

अश्वत्थो देवसदनस् [तृतीयस्याम् इतो दिवि।
[तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो] अजा[य]त ॥१॥
देवेभ्यो अधि जातो ऽसि सोमस्य सखा हितः।
स प्राणायापानाय चक्षुषे ऽस्य मृड ॥२॥
अयक्ष्मे सुपदे वेधिष इद् अभिहितो मृत्युभिर् ये सहस्रम्।
यमो मह्यं पुनर् इत् त्वां ददातु तस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥
यत् ते देवी निर्ऋतिर् आबबन्ध दाम ग्रीवास्व् अविमोक्यम्।
तत् ते वि ष्याम्य् आयुषे वर्चसे बलायादोमदम् अन्नम् अद्धि प्रसूतः ॥४॥
नमो ऽस्तु ते निर्ऋते विश्ववारे अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्।
यमेन त्वं पितृभिस् संविदान उत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥५॥
अन्तर्दावे जुहुता स्व् एतद् यातुधानक्षयणं घृतं मा।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वम् अग्ने न नो गृहाणाम् उप तीतपासि ॥६॥
शर्वो वो ग्रीवा अशरीत् पिशाचा[ः] पृष्टीर् वो ऽपि शृणात्व् अग्निः।
वीरुद् वो विश्वधा वीर्या मृत्युना सम् अजीगमत् ॥७॥
अपिशाचं नो अधरात् [अपिशाचं न उत्तरात्।
[इन्द्रापिशाचं नः पश्चाद्] अपिशाचं पुरस् कृधि ॥८॥
इन्द्रश् चकार प्रथमो नैर्हस्तम् असुरेभ्यः।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाहम् ॥९॥
निर्हस्तश् शत्रुर् अभिदासन् नो ऽस्तु ये सेनाभिर् युधम् आयन्त्य् अस्मान्।
सम् अर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्व् एषाम् अघहारो विविद्धः ॥१०॥
अप मन्युर् अपायताय बाहू मनोयुजा।
पराशर त्वं तेषां पराञ्चं शुष्मम् अर्दयाधा नो रयिम् आ कृधि ॥११॥
आतन्वाना आयच्छन्तो अस्यन्तो ये च धावथ।
निर्हस्ताश् शत्रवस् स्थनेन्द्रो वो ऽद्य पराशरी[त्] ॥१२॥
निर्हस्ताम् सन्तु शत्रवो ऽङ्गैषां म्लापयामसि।
अथैषाम् इन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥१३॥
निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाश् शरुम् अस्यथ।
अयन्तु सप्तानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥१४॥ ॥का° १॥

१९.१२

[illegible]

अस्थिस्रंसं परुस्रंसम् आस्थितं हृदयामयम्।
बला[सं] सर्वं नि× कृण्य् अङ्गेष्ठा यश् च पर्वसु ॥७॥
निर् बलासं बलासिन[×] कृणोमि पुष्करं यथा।
छिनद्म्य् अस्य बन्धनं मूलम् उर्वार्वा यथा ॥८॥
निर् बलासेतः प्र पत शुपर्णो वसतेर् इव।
अथो [इट] इव हायनो ऽप द्राह्य् अवीरहन् ॥९॥
आ सूपायस्व शर्मणि यर्पस्य प्रपथस्य च।
यथाङ्ग वर्धतां ते शेपस् तेन योषितम् इज् जहि ॥१०॥
येना कृशम् वधयन्ति येन हिन्वन्त्य् आतुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस् पते धनुर् इवा तानया पसः ॥११॥
आहं तनोमि ते पसो ऽधि ज्याम् इव धन्वनि।
क्रमस्वर्श इव रोहितम् अनवग्लायता सदा ॥१२॥
देवाः कपोत इषितो यद् इच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदम् आजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे [शं] चतुष्पदे ॥१३॥
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्व् अनागा देवाश् शकुनो गृहेषु।
अग्निर् हि विप्रो जुषतां हविर् नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥१४॥
हेतिः पक्षिणी न दभात्य् अस्मान् आष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने।
शं नो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो मा देवा हिंसीत् कपोतः ॥१५॥
इदं यद् दूताः परि सीं वदाथ(?) संमोदयन्तो दुरिता पदानि।
अथा कपोतं नुदत प्रणोद हित्वा न ऊर्जं प्र पताद् पतिष्ठः ॥१६॥
नुदे त्वा प्र णुदे त्वा कपोत रक्षसा सह।
यतो न पुनर् आयासि तत्र त्वा गमयामसि ॥१७॥ ॥का° १॥

१९.१४

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते।
एवा माम् अभि ते मनस् समैतु सं च वर्तताम् ॥१॥
अहम् आ खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्याम् इव।
रेष्माछिन्नं यथा तृण मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥
आञ्जनस्य मधुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च।
तुरो भगस्य हस्ताभ्याम् अनुरोधनम् आ भरे ॥३॥
अयम् आ यात्व् अर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः।
अस्या इच्छन्न् अग्रुवै पतिम् उतो जायाम् अजानये ॥४॥
अश्रमद् इयम् अर्यमन्न् अन्यासां समनं यती।
अङ्गो न्व् अस्या अर्यमन्न् अन्याम् समनम् आयति ॥५॥
धाता दाधार पृथिवीं धाता द्याम् उत सूर्यम्।
धातास्या अग्रुवै पतिं दधातु प्रतिकाम्यम् ॥६॥
महान् वायो मयुमद् वरयन्न् मह्यं सूर्यो ऽजर[ज्] ज्योतिषां कम्।
मह्यं देवा उत विश्वे सजोषा मह्यं देवस् सविता व्यचो धा[त्] ॥७॥
अहं दाधार पृथिवीम् उत द्याम् अहं सिन्धून् [स]प्त सत्र साकम्।
अहं सत्यम् अनृतं यद् वदाम्य् अहं दैवीम् परि वाचं विशश् च ॥८॥
अहं विवेच पृथिवीम् उत द्याम् अहम् ऋतूंर् [स]प्त सत्र साकम्।
अहं यद् परि सर्वा बभूव यो अस्मीभोमाव् अभूप सखाया ॥९॥
अहर्गृहेभ्यो नः प्रथमं धेनुष्याम् त्वम् अरुन्धति।
अधमेव यशसं शर्म यच्छ मनुष्यैः ॥१०॥
शर्म यच्छन्त्व् ओषधिम् अह देवीर् अरुन्धती।
करत् पयस्वन्तं गोष्ठम् अयक्ष्मान् उत पूरुषान् ॥११॥
विश्वरूपां सुभगाम् अच्छावदामि जीवलाम्।

सा नो दभ्रस्यास्तां हेति दूरं भवतु गोभ्यः ॥१२॥
शौ ६.९३.१ यमो मृत्युर् अघमारो निर्ऋथो बभ्रु शर्वो ऽस्ता [नील]शिखण्डी ।
देवजना[स्] सेनाम् उत्तस्थिवांसस् ते ऽस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥१३॥
शौ २ मनसा होमैर् हरसा घृतेन शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय ।
नमस् तेभ्यो मम एभ्यः कृणोम्य् अन्यत्रास्मद् अघविषा नयन्तु ॥१४॥
शौ ३ त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा[ः] ।
विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसो वातापर्जन्ययोस् सुमतौ स्याम ॥१५॥ ॥ऋ° १०

१९.१५

शौ ७.५४.२ सं जानतां मनसा सं चिकित्या सं गच्छतु मन्युना दैव्येन ।
मा घोषा युक्ता बहुले विनिर्हते मेषुः पतद् इन्द्रस्याहन्य् आगते ॥१॥
शौ ६.९४.१ सं वो मनांसि सं व्रता सम् आकूतीर् नयामसि ।
इमे ये विव्रतास् [स्थन] तान् वस् सं न[म]यामसि ॥२॥
शौ ६.७४.२ संज्ञपनं वो मनसो ऽथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच् छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि माम् ॥३॥
शौ १ सं वः पृच्यन्तां तन्वस् सं मनांसि सम् उ व्रता ।
सं वो [ऽयं] ब्रह्मणस् पतिस् सोम[स्] सं स्पर्शयातु माम् ॥४॥
शौ ७.५४.१ संज्ञानं नस् स्वेभ्यस् संज्ञानम् अरणेभ्यः ।
संज्ञानम् अश्विना युवम् इहास्मासु नि यच्छतम् ॥५॥
शौ ६.७४.१ यथादित्या वसवस् संबभूवुर् मरुद्भिर् उग्रा अहृणीयमानाः ।
एवा त्रिणामन्न् अहृणीयमान इमान् जनान् संमनसस् कृणु त्वम् ॥६॥
शौ ६.७५.१ तै ब्रा ३.३.११.२ निर् अमुं नुद ओकसस् सपत्नो यः पृतन्यति ।
निर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरी[त्] ॥७॥
शौ २ तै ब्रा ३ इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अनु ।
इहि चत्वारि रोचना यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥८॥
शौ २ तै ब्रा २,४ परमां त्वा परावतम् इन्द्रो देवो अचीक्लृपत् ।
यतो न पुनर् आयसि शश्वतीभ्यस् समाभ्यः ॥९॥
शौ ४.१६.४ प्रतीचीनफलो [हि त्वम् अपामार्ग बभूविथ ।
[सर्वान् मच् छपथाँ अधि वरीयो यावयास् त्वम्] ॥१०॥
शौ २.७.१ अघद्विष्टा देवजाता वीरुच् छपथयोपनी ? ।
उद्रा मलम् इवापानैस् सर्वान् मच् छपथाँ अधि ॥११॥
शौ ६.७६.१ य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
संप्रेद्धो [अ]ग्निर् जिह्वाभिर् उद् एतु हृदयाद् अधि ॥१२॥
शौ २ अग्ने[स्] सांतपनस्याहम् आयुषे पदम् आ रभे ।
अद्धातिर् यस्य पश्यति [धू]मम् उद्यन्तम् आस्यतः ॥१३॥
शौ ३ यो ऽस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
ना भिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥१४॥
शौ ४ नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर् यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्य् आयुषे ॥१५॥ ॥ऋ° १०

१९.१६

शौ ६.७७.१ अस्था[द्] द्यौर् अस्थात् पृथिव्य् अस्थाद् विश्वम् इदं जगत् ।
तिष्ठन्ति य[ं]ता इमे स्वामन्न् अश्वा [अ]रंसत ॥१॥
शौ २ ऋ १०.१९.५ य [उ]दानड् व्ययनं य [उ]दानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥२॥
[यो] आवृतो न्यावृतो ऽप्यावर्तनम् आयनम् ।
अग्नेय चतस्र आवृतस् ताभिर् इवा तर्पयामसि ॥३॥

शौ ३ जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्व् आवृतः ।
सहस्रं त उपावृतस् ताभिर् एनं नि वर्तय ॥४॥
शौ ६.२०.१ अहरहर् भवतु देव सोमाग्निर् यत्र मरुतो मृळता नः ।
मा नो विदद् अभिभा मो अशस्तिर् मा नः प्रापद् दुच्छुना द्वेष्या या ॥५॥
शौ २ यो ऽद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदायति ।
युवं तं मित्रावरुणाव् अस्मद् यावयतं परि ॥६॥
शौ ३ इतश् चामुतश् चापं वरुण यावय ।
वि महच् छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥७॥
शौ १०.१२९.१ अपेन्द्र परायो मघवन्न् अमित्रान् अपाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥८॥
शौ ६.७८.१ तेन भूतस्य हविषा पुनर् आ प्यायताम् अयम् ।
जायां याम् अस्मा [आ]विदन् ता रसेनाभि वर्धताम् ॥९॥
शौ २ अभि वर्धतां प्रजयाभि राष्ट्रेण (व)र्धताम् ।
पत्या सहस्रवीर्यया रयी स्ताम् अनुपक्षितौ ॥१०॥
शौ ३ त्वष्टा जायाम् अजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिं दधौ ।
त्वष्टा सहस्रम् आयूंषि दीर्घम् आयुः कृणोतु वाम् ॥११॥
शौ ६.८०.१ अन्तरिक्षेण पतति सर्वा भूतावचाकशत् ? ।
शुनो दिव्यस्येदं महस् तस्मा एतेन हविषा जुहोमि ॥१२॥
शौ ३ अप्सु ते अग्न दिवि ते सधस्थं समुद्र आत्मा महिमा ते पृथिव्याम् ।
शुनो दिव्यस्येदं महस् तस्मा एतेन हविषा जुहोमि ॥१३॥
शौ २ ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान् सर्वान् अह्व ऊतये ऽस्मा अरिष्टतातये ॥१४॥
यत् पुरुषं हविर् इच्छसि श्वा दिव्यो मधीरद् ? ते ।
तस्माद् अहन्या दद् पुरुषं मा परा वधीः ॥१५॥
यः पिशाचो यो दंशा श्वा दिव्यः परिद्रवः ।
तस्मादं नाम वरात ? अस्मा अरिष्टतातये अयं नो जीवताद् इति ॥१६॥
शौ ६.७९.१ अयं नो नभ[स]स् पतिस् संस्फानो अभि [रक्षतु] ।
[असमातिं] गृहेषु नः ॥१७॥
शौ २ त्वं नो नभसस् पतिर् ऊर्जं गृहेषु धारय ।
आ पुष्टम् [एत्व् आ वसु] ॥१८॥
शौ ३ देव संस्फान सहस्रपो[षस्ये]शिषे ।
तस्य नो धेहि तस्य ते महीमहि [तस्य] ते भक्तिवांसो भूयास्म स्वाहा ॥१९॥ ॥ऋ° २४ ॥अनु° २३

१९.१७

शौ ६.८१.१ यन्तासि यच्छसे हस्ताव् अप रक्षांसि सेधसि ।
प्रजां धनं च गृह्णानः परिहस्तो ऽभूद् अयम् ॥१॥
शौ २ परिहस्त वि धारय योनिं गर्भाय कर्तवे ।
मर्यादे पुत्रम् आ धेहि तं त्वम् आ गमयागमे ॥२॥
शौ ३ यं परिहस्तम् अबिभर् अदितिः पुत्रकाम्या ।
त्वष्टा तम् अस्या आ बध्नाद् यथा पुत्रं सुवाद् इति ॥३॥
शौ ६.८२.१ आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्य् आयतः ।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो राज्ञो वासवस्य शतक्रतो[ः] ॥४॥
शौ २ येन सूर्यां सावित्रीम् अश्विनोह[तु]ः पथा ।
तेन माम् अब्रवीद् भगो जायाम् आ वहताद् इति ॥५॥
शौ ३ यस् ते अङ्कुशो वसुदानो बृहन्न् इन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शतक्रतो ॥६॥
शौ ६.१०८.१ त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिर् अश्वेभिर् आ गहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिषु त्वं नो असुरा यज्ञिया ॥७॥
शौ २ मेधाम् अहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीम् ऋषिष्टुताम् ।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर् देवानाम् अवसा वृणे ॥८॥
शौ ५ मेधां सायं मेधां प्रातर् मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्योदतोदीराणा उत् तुष्टुम ॥९॥
शौ २.२९.१ पार्थिवस्य रसे देव भगस्य तन्वो बले ।
आयुर् अस्मै सोमो [दधाद्] वर्चो धाता बृहस्पतिः ॥१०॥
शौ २ तै १४.५.२ आयुर् अस्मै [धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टर् अधिनिधेह्य् अस्मै ।
[रायस् पोषं सवितर् आ सुवास्मै शतं जीवातु शरदस् तवायम्] ॥११॥
शौ ३ पाठभे० आशीर् ण ऊर्जम् उत सुप्रजास्त्वं दक्षं धातु ? द्रविणं सुवर्चसम् ।
सं जयन् क्षेत्राणि सहसायम् इन्द्र कृण्वानो अन्यान् अधरान् सपत्नान् ॥१२॥
शौ ६.६८.१ आयम् अगन् सविता क्षुरेणोष्णेन वायव् उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसस् सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१३॥
शौ ३ पै ३.५१.१ येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान् ।
तेन ब्रह्माणो वपतेदम् अस्यायुष्मान् दी[र्घा]युर् अयम् अस्तु वीरः ॥१४॥
शौ १ अदिति[श्] श्मश्रु वपत्व् आप उन्दन्तु वर्चसा ।
धारयतु प्रजापतिः पुनः पुनस् सुवपाय ॥१५॥ ॥ऋ° १०

१९.१८

शौ ६.९०.१ यास् ते हिरा धमनयो ऽङ्गान्य् अनु विष्ठिता[ः] ।
तासां ते सर्वासां साकं निर् विषाणि ह्वयामसि ॥१॥
शौ १ यां ते रुद्र इषुम् आस्यद् अङ्गेभ्यो हृदयाय च ।
इमां ताम् अद्य ते वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥२॥
शौ ३ पै १.१०.१ नमस् ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहिताभ्यः ।
नमो विसृज्यमानाभ्यो नमस् आपताभ्यः ? ॥३॥
अपाचीः परिमूर्धन्या यास् ते धम[न]यश् शतम् ।
तास् ते प्र हार्पन्तां ? पृथक् शिन्यो लोहितावटम् ॥४॥
स्यन्दन्तां लोचनावतीर् अनु त्वा लोहितावटम् ।
यथास्याम् अन्तं न रसयन् नानुवृक्तम् इवोदकम् ॥५॥
प्रतीचीनमुखं पति प्रतीचीस् प्रवत्तः कृताः ।
अपाचीस् तु हित्वा कुत्वा [अ]यं पृष्ठतस् ओषधीः ॥६॥
शौ ६.९१.१ इमं यवम् अष्टायोगैष् षड्योगेभिर् अचर्कृषुः ।
स वा ते तन्वो रपः प्रतीचीन[म्] अप हव[म्] ॥७॥
शौ २ ऋ १०.६०.११ न्यग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनम् अघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ॥८॥
शौ ३ आप इद् वा उ भेषजी[र्] आपो अमीवचातनीः ।
आपस् समुद्रायां पत्नीः ? परा वहन्तु ते रपः ॥९॥
शौ ६.१०१.१ अमी ये युधम् आयन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस् तान् पर्य् अहार् दाम्ना तान् अग्ने सं द्या त्वम् ॥१०॥
यावती[स्] सिञ्चा आ पश्लि मी का मी चा खल मा ? ।
[इन्द्रस् तान् पर्य् अहार् दाम्ना तान् अग्ने सं द्या त्वम्] ॥११॥
शौ २ सं परमान् सम् अवमान् अथो सं द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस् तान् पर्य् अहार् दाम्ना तान् अग्ने सं द्या त्वम् ॥१२॥
शौ ३ संदानं वो बृहस्पतिस् संदानं सविता करत् ।
संदानम् इन्द्रश् चाग्निश् च संदानं भगो अश्विना ॥१३॥
वा ११.११ यास् ते रुचो देव सूर्ये या अग्नौ दिव्य् आतता[ः] ।
ताभिर् माम् अद्य सर्वाभि[र्] मनुष्येभ्यो रुचे कृ[धि] ॥१४॥
वा १८.४८ [रुचं] मा धेहि ब्रह्मसु रुचं राजसु धेहि माम् ।
रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचं रुचम् ॥१५॥
या रुचो हिरण्यये या [अ]ग्नौ याश् च सूर्ये ।

इन्द्राग्नी म एता रुचो रुचो धेहि बृहस्पते ॥१६॥ ॥ऋ° १४

१९.१९

शौ ६.११६.१ अव मा पाप्मन् सृज वशी सन् मृळयासि नः ।
आ मा भद्रस्य धामन् मा त्वं धेह्य् अविह्रुतम् ॥१॥
शौ ३ यो मा पाप्मन् न जहासि तम् उ त्वा जहिमो वयम् ।
शौ ३ अन्यत्रास्मन् न्य् उच्य[तु] सहस्राक्षो ऽमर्त्यः ॥२॥
शौ ३ यथो ऽभि व्यावर्तन्ते भिः पाप्मन् त्वां सुवामसि ।
शौ ३ यो नो द्वेष्टि तं गच्छ यं द्विष्मस् तम् [इद्] जहि ॥३॥
स या एवासि संनद्धो न भोगम् अविदन्न् अहे ? ।
शिरो भिनद्मि ते ऽपाद् [अथो] मो मध्यतः पातु भूमिराड् खलतये ॥४॥
सूर्यो ऽस्मान् दिवा पातु मृत्योः पाशात् खलतये ।
अथो नो मध्यतः पातु मा नो निर्ऋतिं यच्छतु ॥५॥
सं वां चक्षुस् सं हृदयं [सं] मनसाधीतम् ।
यतो अस्यास् सकृपयन् माया ? पूतं होमेन सर्पिषा ॥६॥
यत् कक्षीवान् संवननं पुत्रो अङ्गिरसाम् अवेत् ।
तेन माम् अद्य देवास् संप्रियं सम् अवीवनन् ॥७॥
शौ ६.७४.१ संवननं वाङ् मनसो [अ]थो संवननं हृद[ः] ।
अथो भगस्य यच् छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि माम् ॥८॥
अहं ते मनसा मनश् चक्षुर् गृह्णामि चक्षुषा ।
एवा परि वजस्य मा भयासि मयि ते मनः ॥९॥
इयक्षेव चाक्षा भीमा वर्चसा गिरौ ।
शौ ६.१०२.१ देव्यक्षिन्नं यथा त्वं वेदयामि मनो मयि ॥१०॥
परि त्वा पातुर् असरं परि भ्रातुः परि स्वसुः ।
परि त्वाण्याभ्यस् तरीभ्यो मो वो व्य ए ? असरम् ॥११॥
य इन्द्रस्य सभायाम् यक्षिन् समितिम् आसते ।
हिरण्या यस्य पर्णानि तस्मा अश्वत्थ ते नमः ॥१२॥
यस् छायाभिर् अन्तरिक्षम् आ पुर पति भिक्षवः ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि तस्मा अश्वत्थ ते नमः ॥१३॥
यं मृगो न समाप्नोति पक्षाभ्यां शकुनिः पतन् ।
दिवं यस् संस्पृशति तस्मा अश्वत्थ ते नमः ॥१४॥ ॥ऋ° १४

१९.२०

शौ ६.११०.१,३ ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर् यमस्य [स] मा हिंसीः पितरौ वर्धमानः ।
सोमो व्याघ्रो विहितो ऽहियो स्ताम् अधिसाते ? दुरितानि विश्वा ॥१॥
शौ ३ व्याघ्रे ऽह्न्य् अजनिष्ट वीरो नक्षत्रजास् सर्ववीरस् सुवीरः ।
[स] मा हिंसीः पितरौ वर्धमानस् तस्य ते देवाः प्रति गृह्णन्तु होमम् ॥२॥
या रोहिणीर् देवत्या आप्या धेनुर् विपिन्वते ? ।
तत्र तिस्रो न्यङ्का[स्] ? सर्वा [अ]धि भुवन्तु प्रजायै जगते च धाम् ॥३॥
यद् आत्मात्यो ; महृषीभ्यां देवस् चकामर्ध्यं ? पुरुषेण पुरुषम् ।
अश्वा पुष्यन्तां मिथुना सलोमी ? जीवां प्रजां जरदष्टी सचेतसः ॥४॥
शौ ६.५०.१ हतं तर्दम् उत तर्दम् आखुम् अश्विना छिन्तं शिरो पृष्ठो हनू च तः ? ।
यवा ; नमद्यं नवासं ? व्याहरा देवायनं कृणुतं धान्याय नः ॥५॥
शौ १ तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
अनदन्त इदं धान्य[म्] अहिंसन्तो ऽपोदित ॥६॥
शौ ३ तर्दापते वघापते तृष्टजंभा ? शृणोत नः ।
होत्रेय प्राहितं हविर् वृकजिह्वाम् उपस्पृशम् ? ॥७॥
तदा चाम् उपजिह्वया यद् इदं दिव्यं विषम् ।
पतम ब्रुसुन्वा ? त्वां प्रत्यञ्चम् अर्चिषा व्यथाम मन ? ॥८॥
ये अभ्रजा ये वातजा ये दिवस् परि जज्ञिरे ।

[illegible]

१९.२१

[illegible]

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास् ते रय्या सं सृजन्तु माम् ॥१६॥ ऋ° १०

१९.२२

नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीम् अनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यस् सर्पेभ्यो नमः ॥१॥
ये ऽदो रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषाम् अप्सु सदस् कृतं तेभ्यस् सर्पेभ्यो नमः ॥२॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीनाम् ।
ये ऽवटेषु शेरते तेभ्यस् सर्पेभ्यो नमः ॥३॥
पयोच्छिष्ट हविषा वर्धयेमं यथा पुत्रैः कृणवद् वीर्याणि ।
सजूर् देवेभिर् अभि भूस् सपत्नान् आयुष्मत् क्षत्रम् अजरं ते अस्तु ॥४॥
पुं सा ये ये न ? हविषा पयस्वतोच्छिष्टस्यायं रक्षन्तु देवाः ।
देवा इद् अस्मिन् नि दधुर् नृम्णं बृहद् अस्मिन्न् इन्द्रो वयो दधातु ॥५॥
सम् उच्छिष्टस्य हविषा सृजामि सम् आयुषा वर्चसा पयो दधामि ।
देवा इद् अस्मिन् नि दधुर् नृम्णं बृहद् अस्मिन्न् इन्द्रो वयो दधातु ॥६॥
धातुर् मना[त्] समाकर[त्] त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रुवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥७॥
यथा चक्रुर् देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥८॥
लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्ताम् अश्विना लक्ष्म तद् अस्तु प्रजया बहु ॥९॥
कृष्णं नियानं हरयस् सुपर्णा [अ]पो वसाना दिवम् उत् पतन्ति ।
त आववृत्रन् सदनाद् ऋतस्याद् इद् घृतेन पृथिवी व्य् उद्यते ॥१०॥
पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीर् इमा यद् एजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतस् सिञ्चता मधु ॥११॥
उदप्लुतो मरुतस् तान् इयर्त वृष्ट्या यद् विश्वा नियतस् पृणाथ ।
पक्षांति कुहा ! कन्येव तुन्नेवं तुन्दाना पत्येव जाया ॥१२॥
त्वेषेव पूषा सूर्यो दमूना अधि स्तिर् पृथव्या नाम ।
विश्वाषाद् सुपयसस् संरराणो अस्मा रय्याः पुरएता न पथि ॥१३॥
या इद यन्य अनामयद् वहाना [अ]नमीवा उपती[र्] विश्वरूपाः ।
वर्धीर् अवन्तीर् उपजायमाना इन्द्रो यो रमयद् गावः ॥१४॥
प्रजापतिर् जनयतु प्रजा इमास् त्वष्टा दधातु सुमनस्यमानः ।
संवत्सर ऋतुभिस् सविदानो मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर् दधातु ॥१५॥ ऋ° ११

१९.२३

सहस्री नाम वा [अ]सि सह[स]स् परि जज्ञिषे ।
सहस्वान् इन्द्रो देवेषु सहसे त्वा खनामसि ॥१॥
सहस्रेण भेषजेन दिव्येन शतपर्वणा ।
तेन सहस्रकाण्डेन कृणोमि पुनराभृतम् ॥२॥
सहसो भेषजस्य दिव्यस्य नाम जग्रभ ।
एषु आशिषेव तस्थिरे यक्ष्मासः पुरस्ताद् अधि ॥३॥
अपेत एतु निर्ऋतिर् नेहास्या [अ]पि किं चन ।
अपाक्यां सचनः पाशान् मृत्यून् एकशतं नुदे ॥४॥
ये ते पाशा एकशतं मृत्यो मर्त्याय हन्तवे ।

[illegible]

१९.२४

[illegible]

जीवं व्रातं सचेमहि ॥१२॥
वयं सोम व्रते तव [म]नस् तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तस् सचेमहि ॥१३॥
वर्चो मे मित्रावरुणा वर्चो यज्ञमाने वधू च यद् उष्य आहितम् ।
सुरायां बभ्रु यद् वर्चस् तस्य भक्षीय वर्चसः ॥१४॥
या हसेभ्यः प्रस्रवन्ति दिनोदारा नदीभ्यः ।
तासां त्वा सर्वासाम् अपाम् अभि षिञ्चामि वर्चसा ॥१५॥
यद् राज्ञानं शकधूमं नक्षत्राण्य् अकृण्वत ।
भद्राहम् अस्मै प्रायच्छन् ततो राष्ट्रम् अजायत ॥१६॥
भद्राहम् अस्तु नस् सायं भद्राहं प्रातर् अस्तु नः ।
भद्राहम् अस्मभ्यं त्वं शकधूम सदा कृधि ॥१७॥
यो नो भद्राहम् अकरत् सायं प्रातर् अथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥१८॥
यद् आहुश् शकधूमं [महा]नक्षत्राणां प्रथमजं ज्योतिर् अग्रे ।
तन् नस् सती मधुमती कृणोतु रयिं च सर्ववीरं नि यच्छताम् ॥१९॥
ऋ° ११ अनु° १॥

१९.२५

घृणेर् अग्ने विश्वरूपं देवानां वर्चसा कृतम् ।
अग्निर् वाम् अस्त्व् अन्तरा यथा वां नसो असति ॥१॥
यथाहिं द्वेष्टि पुरुषो अहिर् वा द्वेष्टि पूरुषम् ।
अग्नि[र्] वाम् अस्त्व् अन्तरा यथा [वां नसो असति] ॥२॥
नाना वाम् आकृतानि नाना चित्तानि सन्ति वाम् ।
विश्वञ्ची परं आ वर्तयामो यथा वां नसो असति ॥३॥
अत्र इ कमंड इ तुन्दे न म शी क तं तं ग छा प ते ? ।
हायवद् ? यत् ते यद् वा सं नो च ते मयत् ॥४॥
अश्रं बिलं यथा धने महयाद् यद् पति रेचितम् ।
; या सिलाप सिलाः पापज्ञितो सिलः महयात्र अधिकम् अक्षगम् ? ॥५॥
दीर्घायुत्वाय शतसे मह्या अरिष्टतातये ।
सुपर्णो मह्यम् अब्रवीद् एतद् आयुर्हिरण्यजम् ॥६॥
अव छिन्द्धि आयुर्हिम ऊर्णा इव असि मेचकी ।
दिव्यस् सुपर्णो अब्रवीद् एतद् आयुर्हिरण्यजम् ॥७॥
अकृत ! विसतो ऽविसतो विद्वांसो नाशाम् अकृत ।
संक्रम्यस् सर्वाक्रम्य[:] प्र ते छिन्द उग्र आयुर्हिम् ॥८॥
अभिभूर् अहम् आगमं विश्वकर्माणम् आयुषा ।
अहं मित्रस्य कल्प[यं] ना श्वा श्वा पु यु र रा ! ॥९॥
अहं च मि स्न नो ! उद विशां पुरोहितः ।
अहं मित्रस्य कल्पयं अधि धाम अस्तु यदण्य् असि ॥१०॥
मा वयं चक्षुर् मा वो वाचम् मा वो (ऽहं) समिति वृषे ।
योगक्षेमं च आदायाहं भूयासम् उत्तमः ॥११॥
ब्रह्मणाग्निस् संविदानो रक्षोहा नुदताम् इतः ।
[अ]रायो यस् ते तन्वां दुर्णामा योनिम् आशये ॥१२॥
यस् ते ऽरायस् तन्वां दुर्णामा योनिम् आशये ।
अग्निर् इदं ब्रह्मणा युजा रक्षोहा नुदताम् इतः ॥१३॥
यान्य् अन्त्यानि रक्षांसि ये ऽराया यातुधानाः ।
अग्निर् ता[न्] ब्रह्मणा तन्वा रक्षोहा पातु तेभ्यः ॥१४॥ ऋ° १०

१९.२६

अग्निश् च देव सवितर् इदम् ऊर्जं दधावहे ।
पातं मा दुश्चरिताद् आ मा सुचरिते भजतम् ॥१॥

यवयोर् अवयान्म् ? अतीव ।
इदं तन् म इवे यत् तुषुमा तत् परि ॥२॥
वाचम् पतिर् नि यच्छतु मय्य् एव तन्वं मम ।
माप ज्यायस् ते अकरन् मा श्रुतेन वि राधिषि ॥३॥
अमोघम् अस्माकं धान्तम् मय्य् द्रविणम् आ धृधि ।
मरुपमेहा वर्चस्वान् आयुष्यं वर्चसे कृधि ॥४॥
धनुष्व विश्वदेवेषु धनुष्व त्वं बृहस्पते ।
घृतेन प्रजां धनुते घृतेन रयिम् अश्नुते ॥५॥
घृतमायुष्यं वर्चस्यं देवेभ्यो धनुते परि ।
पर्जन्य[ः] पिप्पलं तुष्यात् नदो गर्भं बबले ॥६॥
मर्यादा अह्नदेववीर आयुष्यं वर्चसा सूत्रम् ॥७॥
यथा हस्ती हस्तिन्या पदेन पदम् अन्व् अगात् ।
एवा त्वम् अग्ने वर्चस्व[न्] पदेन पदम् अन्व् इहि ॥८॥
यथा रथस्य चक्र[म्] वि पथः पांसुम् अस्यामः ।
एवाहं मनो स्य् अस्यामि इदं संवननाय कम् ॥९॥
इन्द्रस्य प्रथमं वचो देवाना[म्] अपरं वचः ।
तृतीयम् अश्विनो[र्] वचस् तेन गां वासयामसि ॥१०॥
शौ ७.१००.१ उद् अस्य श्यावौ विथुरौ दिवं गृध्राव् इवैताम् ।
शोचनाद् अतिशोचनाद् अस्योच्छोचनौ हृदः ॥११॥
शोचया अभि शोचया दीपयो अभि दीपयः ।
अहेर् अग्ने विषं त्वं तृणम् इव कल्वलं दह ॥१२॥
सेध तं निपतात ? येनं योदकं त्वम् ।
कृष्णा वां गौस् सारस्वती पावात्री ? कृष्णतया गोः कृष्णाद् कृष्णवर्मणी
अशोचिष्कं यथा रूपम् एवेदं मामकं शिरः । [॥१३॥
यथाङ्करो अभिषिक्तो इव्यशाखे ? यथासितः ॥१४॥
अमुष्याङ्गस्य कल्पयं यथा दाषाद् दह्यमाना[द्] कृष्णो ज्वलो वि ध्वंसते ।
अहिवाद् ? अस्य तन् मुखम् एवेदं मामकं शिरः ॥१५॥ ॥ऋ° २॥

१९.२७

शौ ७.७१.१ यत् किं चासौ मनसा यच् च वाचा यज्ञैर् जुहोति यजुषा हविर्भिः ।
तन् मृत्युना निर्ऋतिस् संविदाना पुरा दद्याद् आहुतिं हन्त्व् अस्य ॥१॥
शौ २ यातुधाना निर्ऋतिर् आद् उ रक्षस् ते ऽस्य घ्नन्त्व् अनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रपिता [मा]त्य[म् अ]स्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यद् असौ जुहोति ॥२॥
वे १६.८.२ परि त्वाग्ने [पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
[धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम्] ॥३॥
शौ १ स्वरतिर् ? अधिराजो इवैनो संपातिमान् इव ।
आम्यं पृतन्यतो हतां यो ऽस्मान् पृतनायति ॥४॥
पृथिव्यै वनस्पतिभ्य ओषधीभ्यो अग्नये अधिपतये स्वाहा ॥५॥
अन्तरिक्षाय प्राणाय वातेभ्यो वायवे अधिपतये स्वाहा ॥६॥
दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यस् सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥७॥
शौ ६.१०९.२ पिप्पल्यस् सम् अवदन्तायतीर् जननाद् अधि ।
यं जीवम् अश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥८॥
शौ १ पिप्पली क्षिप्तभेषज्य् उतातिविद्धभेषजी ।
तां देवास् सम् अकल्पयन् अलं जीवितवा इति ॥९॥
शौ ३ असुरास् ते नि खनन्तु देवास् त्वोद् अवपन् पुनः ।
वातीकृतस्य भेषजी[म् अथो क्षिप्तस्य भेषजीम्] ॥१०॥
शौ ६.२९.१ यद् उलूको वदति मोघम् एतद् यत् कपोतः पदम् अग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतौ प्रहिताव् एषस् तस्मै यमाय नमो ऽस्तु मृत्यवे ॥११॥
शौ २ यत् ते दूतो निर्ऋत आजगामाप्रहितः प्रहितो वा गृहं नः ।

शौ १^४, १^५ कपोतोलूकाव् अपदं तद् अस्त्व् अवैरहत्यायेदम् आ अगस्याद् सुवीरताया
इदम् आ ससद्यात् ॥१२॥
शौ ६.२८.१ यः प्रथमः प्रवतम् आससाद बहुभ्यः पन्थाम् अनुपस्पशानः ।
यो ऽस्य द्विपदो यश् चतुष्पदस् तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥१३॥
शौ ६.७१.१ यदासितः प्रयते वर्षा अनु वपूंषि कृण्वन्न् असुरस्य मा[य]या ।
एवा मे शेपस् सहसायम् अर्को ऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥१४॥
शौ १ यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।
यावद् अश्वस्य वाजिनस् तावन् मे वर्धतां पसः ॥१५॥
शौ १ सायारं यथा पसस् त्वांपाम्बर ? वातेन स्थूलभं कृतम् ।
यावत् परस्वतः पसस् तावन् मे वर्धतां पसः ॥१६॥ ॥ऋ° १॥

१९.२८

शौ ६.११.१ शमीम् अश्वत्थ आरूढस् तत्र पुंसवनं कृतम् ।
इन्द्रस्य नाभिर् इह दायः ॥१॥
शौ १ वृषाणो वृषतयः दायः पुरा यथाविहितः ? ।
इन्द्रस्य दस्यं महत् ॥२॥
शौ १ स नो दधातु नो रयिम् उरुं विश्वसंवरम् ।
इन्द्रः पतिस् तुविष्टमो जनेष्व् आ ॥३॥
आयुर् अग्निर् आ धत्ता[म्] जातवेदास् तनूवशी ।
यथाहं ज्योग्जीवो ऽसानि प्रजानाम् अधिपावशी ॥४॥
आयुर् इन्द्रो दधातु म आयुर् देवो बृहस्पतिः ।
आ[यु]र् मे विश्वे देवा अहोरात्रे च यच्छतु ॥५॥
आयुर् आयुष्या पतत्ती प्राणं प्राणो दधातु मे ।
देवा य[ष्ट]व्यकर देवेभ्यस् स्वर् यन्तो यथायथम् ॥६॥
उदलगुर नमस्वती समुद्राद् अधि योषिणी ।
उखा समुद्रिया आपस् तासाम् इदा तर्पयामसि ॥७॥
यां आंतो दिष्यां यां चान्ताद् परिजज्ञिरे ।
इन्द्रो मरुत्वांस् त्वं शृ ता स्वा मा तां सिः ? ॥८॥
यास् शुष्का या हरिणीर् या मुमित्वत्याद् ? अधि ।
सर्वास् समग्रा ओषधीस् तासाम् इदा तर्पयामसि ॥९॥
आ नो मेधा सुमतिस् सुमनीका गिरोर ? बृहस्पतेर् आवेशयन्ती ।
दधो मे बहीर् नि युवसु गावो यथास्वम् भुवन्तु कश्विनः ? ॥१०॥
अथर्व शौ १.११.१ दीक्षा तपो मनसो मातरिश्वा बृहस्पतिर् वाचो ऽस्य स योनिः ।
वेदान्तं वेदाम् अयुञ्जन्त बहीर् [र्] अमीवो[मो] यशो ऽस्मासु धत्तम् ॥११॥
शौ ७.११.१ यद् अग्ने तपसा तप उपतेपामहे वयम् ।
प्रिया[ः] श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तस् सुमेधसः ॥१२॥
यस् त्वा मातुर् उत वा पितुः परि आयमानम् अधिसंबभूव ।
यस् ते यक्ष्मो मज्जसि पर्वणि यो गि रा स स्वतुह् ? यक्ष्मम् अमुना शपामस्
सो ऽस्याक्षिन् शयते प्रविष्टः ॥१३॥
यस् त्वा यक्ष्मो हृदयेषो नाभिम् ? दद्रा हृदयङ्गमः ।
अथो यच् शिक्षिये परेतं शीर्षरोगम् अङ्गरोगम् ॥१४॥
संस्रावयं विषहंतम् अभिशार्थं विसल्पकम् ।
यस् ते [य]क्ष्मो मज्जसि पर्वणि यो गि रा स स्वत म ? यक्ष्मम् अमुना
शपामस् सो ऽस्याक्षिन् शयते प्रविष्टः ॥१५॥ ॥ऋ° २॥ ॥अनु° ८॥

१९.२९

अग्नी रक्षोहा तिग्मत् तिग्मशृङ्गो हन्ति रक्षो दुरिताम् अरातिम् ।
अपापयांसम् अस्यतु ॥१॥
या त पति परावतो वचन् ओजो दिवस् परि ।

या गिरिभ्यः पर्वतेभ्य आयुग् टे विश्वतो दधत् ॥२॥
ऋ १०.५९.७ पुनस् ते ऽसुं पृथिवी ददातु पुनर् द्यौर् देवी पुनर् अन्तरिक्षम् ।
पुनस् ते सोमस् तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्ति[ः] ॥३॥
शौ ५.११.७ कक्ष्याः कक्ष्याः पिशा देवाधार्यावाः पिशाः ।
नवेपवन्तस् स्वयुजाः पाशावा दृशा अदृशाः ॥४॥
दशान् अदशान् धनपते अहीन्द्रस्य वधेन ।
हताश् च विश्वरूपाश् च गृध्राः कोकाश् च ते हताः ॥५॥
कामय कामय समा[ः] प्रतीचीः प्रति मा मय[न्] ।
माम् अनु प्र ते मनो वत्सा पाकेव धावतु ।
अर्भीते ? अभिमादं न सोमाद् अधि मावतु ॥६॥
चित्र एतव्यच्यां ? वयम् दृषुक मामकं तव ।
अहं ते मन आ ददे मनो मनोमुषिर् यथा ॥७॥
मयि ते मन आहितं रथ इव रथवाहने ।
उद् असौ सूर्यो अगात् महाम् अवसुना सह ॥८॥
अहं विप्रा पुरोहितो मधुहस्तो मधुप्रियः ।
मयि वाग् अस्तु धरुणी ॥९॥
अहं विदथेन कतुना सम् आगच्छे मानुषेषा[ः] ।
अस्माकम् अस्तु केवलं इहद् विशो ? अधि विश्वेषु राजसु ॥१०॥
स्वादोश् चिन् मा स्वादीयांसं मधोश् चिन् मधुमत्तरम् ।
प्रियं च चक्षुर् अन्तरं स्वादीयांसं कृणोतु माम् ॥११॥
अग्ने ब्रह्म त्वं ब्रह्मासि विष्वा त्वं ब्राह्मणं ब्रूहि ।
यदीदं तथा भविष्यसि यदि वा माघ र त स इ वो वि ह ? स्वाहा ॥१२॥
वि पृच्छे द्यावापृथिवी स्व् अन्तर् ? वि बृहस्पतिम् ।
वि देवान् यज्ञियान् पृच्छे स्व् अस्वं ? जीवनाय कम् ॥१३॥
विज्ञानायोद्यतः प्रस्तुतस् सुगं यम राजन् हविर् इदं जुषस्व ।
अर्थासोर् ? हविषो मादयस्व निरृति गच्छन्ती य द य स सो ? ॥१४॥
॥ऋ° १॥

१९.३०

य त्वा गर्भां से अ प चो ? यद् उ अन्ये यद् ओदने ।
अग्निष् ट्वा विश्वभेषजस् तस्मात् [त्वा] पातु अंहसः ॥१॥
यस् त्वा वातो वात् अधरा[द्] उत्तराद् उत ।
आपो वा विश्वशम्भुवस् तास् त्वा पान्त्व् अंहसः ॥२॥
अप त्वन् मृत्युं निर्ऋतिम् अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
यथा त्वम् अरपो असः उदोज्ञा अतरो भव ॥३॥
ऋ १०.९.५ वैश्वानरो रश्मिभिर् [नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः ।
[द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम्] ॥४॥
प्रजापतिर् ऋतुभिः पञ्चभिस् संवत्सरो धामभिः पातु विश्वैः ।
इहैव प्राणस् सख्ये नो ऽस्तु तम् आत्मनि पुनर् आ वेशयामि ॥५॥
शौ ६.६२.१ वैश्वदेवी सूनृताम् आ रभध्वं शुद्धा भवन्तश् शुचयः पावकाः ।
तया गृणन्तस् सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥
शौ २ वैश्वानरी वर्चस आ रभध्वं यस्या [आ]शास् तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तयेह सधमादं मदन्तो ज्योग् प[श्येम] सूर्यम् उच्चरन्तम् ॥७॥
अवत्कं यस भेषजम् अवत्कं परिवाचनम् ।
माराध्य अभिमात ? तृष्येव यन् अत्मारोगभेषजम् ।
शम्मुखेम् ? दशहरस् तम् उदक्षीरा उद् अवन्ति ॥८॥
शौ २.३.१^१० तद् आस्रावस्य भेषजं तद् [उ] रोगम् अनीनशत् ।
नदीषु महवत्सासु कुम्भेषु कलशेषु च ॥९॥
प्रतीके वन भेषजं तद् ते कृणोमि भेषजम् ।

मध्यमं सं विषोदकं य ह्ना क्ति ह्रं वि प अ स म् ? ॥१०॥
वि प अ स प दा म प री दशा मि ? विशायकस्य हविः ।
तेन क्रव्यादं हन्मि सर्वांश् च यातुधान्यः ॥११॥
इच्छन्ति त्वा बला ? उपञ्चरन्ति ब्रतुमन् ? त्वा ।
प्रीणन्तु योषिद् अश्वैर् अमृतस्येव नासि ? ॥१२॥
अमुं सुनाम भेषजं पृथिव्या अध्य् उद्भृतम् ।
वक्रा नु मह्यम् अब्रवीत् इदं हि पारयाद् इति ॥१३॥
चक्षुर् असि पुरुषस्य चक्षुर् गोश् चक्षुर् अर्वतः ।
चक्षुर् भूतस्य भव्यस्य चक्षुर् अप्सरसाम् असि ॥१४॥
चक्षुर् असि सुपर्णस्य चक्षुर् अहेर् अथो शुनः ।
चक्षुस् सर्वस्य पश्यतो अथो यद् विश्वम् एजति ॥१५॥
आदधानम् अङ्गिरसं प्रतिस्पाशनम् अमृतम् ।
शौ ४.२०.९^१^९ दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ॥१६॥ ॥ऋ° १॥

१९.३१

अतीमाम् अहं पृथिवीम् उत द्याम् उत सूर्यम् ।
अति विश्वम् इदं भूतम् अति पश्यं यातुधान्यः ॥१॥
शौ ४.२०.६ दर्शय मा यातुधानान् दर्शय यातुधान्यः ।
अथायून् सर्वान् दर्शयेत् ओषधी रसे ॥२॥
शौ ५^११ वे १.११.५^१^२ एवा सहस्रचक्षो त्वं प्रति पश्यास्व् आयतः ।
सहो ऽसि यातुधानजम्भनम् ॥३॥
शौ १.१७.१ इमाः यारे पृदाकस् त्रिषता निर्भ्रंशयथ ।
तासां जरायुणा वयम् अहवात् अपि व्ययामसर् अथायोः परिपन्थिनः ॥४॥
शौ ३ विपृच्च एतु कृन्तती पिनाकम् इव बिभ्रती ।
विष्वक् पुनर्भवा मनो ऽसमृद्धा अघायवः ॥५॥
अपेत परिपन्थिनो ऽपायायुर् अर्षतु ।
शौ ३^४ न बहवस् सं शशकुवन् नार्भका अभि धृष्णुयन् ॥६॥
शौ ४ प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहम् ।
इन्द्राण्य् एतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥७॥
आपम् अगन् फल्गुमन्तिर् बलेन बला[स] सह ।
येनेन्द्रो दस्यूनां वीरो असुराणाम् अवासृजत् ॥८॥
वर्चसा मां पयसोक्षन्तु देवा [व]र्चसा द्यावापृथिवी उभे ।
वर्चो मे देवस् सविता दधातु वर्चो विप्रः कश्यपो मे दधातु ॥९॥
वर्चो म आपो दधन् वर्चो मे वीरुधो दधन् ।
भूतानि सर्वा संभाय वर्चं मा धुर मुखे मम ॥१०॥
याः पुरस्ताद् विचिहृन्ते याः प्रजाजिनीर् इव ।
वातीकृतस्य भेषजीः पिप्पलीः पारयिष्णवः ॥११॥
शौ ६.४४.३ रुद्रस्य मूत्रम् अस्य अमृतस्य नाभिः ।
पृथिव्यां निहितम् असि विषाणा नाम वातीकृतभेषजी ॥१२॥
शं ते ऽस्तु मतस्नाभ्यां शं च ते सम्नसाधीः ? ।
वे १.१०.४^१^२ शं ते पृष्टिभ्यो मज्जभ्यः शम् अस्तु तन्वे तव ॥१३॥
शौ १.४४.१ नहि ते अग्ने तन्व[ः] क्रूरम् आनंश मर्त्यम् ।
कपुर् ? बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौर् इव ॥१४॥
शौ २ त्वेष इव [ते] सं च वि चोर्ने अधयते उन् ? उत्तरम्नाद् उपरस्य वाहति ।
शीर्ष्णो शिरो अप्ससाप्सो अर्दयन्न् अंशून् बभस्ति हरितेभिर् आसभिः ॥१५॥
शौ ३ सुपर्णा वाचम् अक्रतोप द्यव्य् आखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यद् नियन्त्य् उपरस्य निष्कृति पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥१६॥ ॥ऋ° १॥

१९.३२

शौ ६.१३६.१ अयेन मा शांशपेन साकम् इन्द्रेण मेदिना ।

[illegible]

१९.२२

[illegible]

उक्तो वा यत्र आयता हरो वा पुण्डरीकवान् ॥५॥
औ १ हिमवत् त्वा ऽवरंधुमा शाले परि व्ययामसि ।
डीलीहरा ति नो भुवो ऽभिर् दधातु मेचकम् ॥६॥
शौ ६.४२.१ अवं ज्यां विमन्युकस् स्वायं चारणाय च ।
सम्यंद् विमन्युको मन्युशमनो ऽस्तु मे ॥७॥
शौ २ अयं यो भूरिमूल× पृथिव्याम् अधि निष्ठितः ।
इदं× पृथिव्यां निष्ठितस् स मे ऽस्तु विमन्युकः ॥८॥
शौ ३ वि ते [ह]न्यां शरण्यं वि ते मुख्यां नयामसि ।
[यथावशो न वादिषो मम चित्तम् उपायसि] ॥९॥
शौ ६.११२.३ [येभि× पाशै× प]रिविष्टो विबद्ध× परौपरत् मार्षितो मशेमहे ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्षा ॥१०॥
शौ ६.११३.१ त्रि[ते] देवा अमृजतैतद् एनस् त्रित एनन् मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा मम्येहिरे ? आहरत् तद् अहं त्वद् ब्रह्मणाप करोमि ॥११॥
शौ २ मरीचीर् धूमं प्र विशानु पाप्मन् उदारान् गच्छोत वा निहारान् ।
नदीनां फेनम् अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्षाः ॥१२॥
यद् ते रक्ष× प्रतिदहद् य× कुल्याभिर् ? आधृतम् ।
अनाधृष्यस्य धाम्नस् त्वं भू र्जे ? याश्रयेयम् ॥१३॥
यन् मानवद् यद् घामवत् प्रमृणत् किं च पुण्यवत् ।
उर्वापत्तो ? मपूलकं तस्य धारक्षम् ? य[म]म् अनाश्रायम् अरोगणम् ॥१४॥
यास् समुद्राद् उच्चरन्ति देवीर् हिमवतस् परि ।
आपो या विश्वशम्भुवस् ता इहा यान्तु ओषधीः ॥१५॥ ॥ऋ° १॥

१९.२४

त्वचायिधाने सुभगे यद् परिस्तरणे कवे ।
पकाम् इव मडकां ? परि त्वा वर्चसा सृजन् ॥१॥
अम्भंसीर् इव हंसानां प्रपश्यन्ती पुर× पयन् ।
शिष्ठ मा विम्बयो मा यथापूर्वं त्वं वधः ॥२॥
शौ १९.३३.८ ; वर्चस्यायाम् उपास्तं ? ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥३॥
अर्वाञ्चो पादौ प्र हराम्य् अर्वाचीनं मनस् तव ।
अर्वाची[म] मह्यतेत× प्रवत् मन्युर् नि वर्तताम् ॥४॥
[यद् च] छमलादे मनो ऽपाङ् ज्योति× परम् तमः ।
मा त्वा वले ऽभिका[ध] तस्मात् पुनर् आ वर्तयामसि ॥५॥
यथा मीढिं मीढिखले समाकुर्वन्ति तूलिभिः ।
एवा ते निहितं मनस् सम् (आ)करोमि मामुभे ? ॥६॥
त्वम् उत्तमं सुरायसां मध्यमं द्रुवतोर् असि ।
त्वया पितुर् वि अह्नेह ? त्वा ? धर्म्म आ ददे ॥७॥
मूर्ध्वंत् ते पुष्पयोर्ष्वो ? अग्नुव× पतिविद्या[ः] ।
पद्मं दीपित आ ददे ॥८॥
यद् च स्तामा ते अङ्गेषु य× प्रेमा हृदये च ते ।
; तन्तुर् आ वेशयामहे मयि वाजाद् उदीक्षत् ? ॥९॥
शौ ६.९२.१ वातरंहा वाजिन् भव युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवा[ः] ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥१०॥
शौ २ जवस् ते अर्वन् निहितो गुहा यस् श्येने चरति यश् च वाते ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥११॥
आसीनानो ऽधि मनसासीनानो ऽधि चक्षुषा ।
आसीनान[द्] सयावा मृत्याजि जय समने पारयिष्णुः ॥१२॥
शौ ६ च १०.५६.२ तनूस् ते वाजिन् तन्वं वहन्ती धानम् अस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।

[illegible]

१९.२५

[illegible]

१९.२६

[illegible]

शौ २ अवदत्सा निराता यद् पराशसोपारिम यद् आमतो यद् स्वपन्ता ।
अग्निर् विश्वान्य् अप दुष्कृतान्य् अजुष्टान्य् आरे अस्मद् दधातु ॥५॥
शौ ३ यद् इन्द्र ब्रह्मणस् पते यद् ईर्ष्यां चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतस् पातु तेभ्यः ॥६॥
यद् माम् उत्तरं हविर् अहसा पृतनायतः ।
इन्द्र अक्षन् कृत्वा ? इन्द्र अक्षन् उपयम् इव ॥७॥
यो नो ऽभिवदान् मनसा यश् च पापी मनो मन्य मा ? ।
आहुतिं तस्य देवा हृदय् चित्तानि वृश्चन्ताम् ॥८॥
अश्व इव धृतियोग× प्रति हरामहे भाम ।
इन्द्रानं अग्नानम् एते शंभ्राभ्याम् उपहितं अहि ॥९॥
यो ऽस्याधि[×] प्राज्ञापत मूर्ध्नोपाति वर्धताम् ।
त्वं सत्यावासतो आनुपूर्व्या अव धूनुष्व ॥१०॥
बहुर् अयं सङ्कुहो ? स्वप्नो भूम्याम् अधि ।
तेनाहम् अस्य कृन्तामि यथा त्वा मा जिघांसति ॥११॥
श्यामानं हृदद् अक्षतं स्वाम स्व अश्वो ऽस्यति ।
अनुष्ठानस्य यो राजा [स] सं स्वान गमिष्यति ॥१२॥
अगमद् राजा सदनम् अगमत् सूर्यो दिवम् ।
अद्य वृषभन् ह्रीडाग्रराजो ? अचीरथा ॥१३॥
यथा पन्थाम् अचार यो ऽभ्येति महापथम् ।
यथा त्वं द्विरीन झीब ? अयो ऽस्य अभ्यागतः ॥१४॥
इन्द्रेण दत्तं बलम् मातुरम्यां [illegible] ? दे च तुभ्यम् ।
त्वं तुरस्य कन्या अशिवा [अ]शुचा [अ]पा गृहाणां गृहपा त्वम् पथाम् ॥१५॥
त्वम् अग्रे गृहपतिर् गृहाणां त्वं प्रजानां जनिता सुजातः ।
त्वं तुरस्य कन्या [अ]शिवा [अ]शुचा सदान्धा नि दधस्व पता× पापी[ः] ॥१६॥
अपाद् य× कृन्तानो ? दि हरिज्ञस्य मयं कृधि ।
मृगाँ अनु प्र पातय मरीचीर् अनु आतय ॥१७॥
यद् अस्य अन्यारावेद् ? यदि त्वा दधो गृहे ।
अक्षा उपस्तुतं हविर् मनसा जुहोमि ते ॥१८॥ ॥ऋ° ४॥ ॥अनु° ५॥

१९.२७

अभि त्वा शतपाशायो सहस्रपाशया ।
हसो वरसम् इव तीत्वा ? अधि बध्नामि ते मनः ॥१॥
आ हि ते (व)र् दक्षतं परं हृदयं [स] ददे ।
उप स्तेय दमो य ? नि त्वाम् अश्रुमदे ऽवसे ॥२॥
परि त्वा गाम् इवावरं मम पशो नियानते ।
तं आसनम् अमीवृतम् अथ तं चरणं कृतम् ॥३॥
आ नयामि ते मनो ऽश्वम् इवाश्वाभिधान्या ।
३ २.९९.१ उप ते सुम्ने मन× पयोर् उपानहो यथा ॥४॥
यथा सुरा (यथा मधु यथाक्षा अधिदेवने ।
* शौ ६.७०.१ [यथाह मन्मतो मन यथा माम् अभि ते मनः)] ॥५॥
* शौ ६.१८.१ यथा कृमुकस्य मा विधाम् अन्त× कृमुकस्य माँ हृदि ।
यथा यम्या अभियेवता मात्यायां कीर्तयारा यन ॥६॥
यथेदं देवस्य हविर् अग्नय हरस्योर् हितम् ।
तेना त्वायि शतानां मृगे मान्याय अक्षतां ॥७॥
; संसे मां सम्भूतकरो ? मा पथात् मा परो भव ।
अधा अमस्त्र यो अगस् तेन मां [सं] सृजा मम ॥८॥
अमेन त्वा सं सृजामि मातरेण सुरम् इव ।
अथा यो ऽस्माम्× प्रिय× पतिर् देवृभ्यस् सुभगो ऽससि ॥९॥

उद् इतो दैव्यं वच इयम् इव भृत्य ? इष्यते ।
अंधा सर्पजान् मामकान् संहसा निजनानि ? च ॥१०॥
अग्निर् मा [पा]तु वसुभिः पुरस्ता[त्] सवितादित्यैर् अभि पातु दक्षिणा[त्] ।
इन्द्रो मरुद्भिर् अभि पातु पश्चाद् विश्वे देवा अभि रक्षन्तु न उत्तरात् ॥११॥
देवराक्षसान् मा पाहि मनुष्यराक्षसान् मा पाहि ।
विश्वक्षान् मा रक्षसस् पाहि ॥१२॥
असौ यस् त्रिककुद् गिरिस् शृङ्गाभ्याम् अभितिष्ठति ।
न संपतत्रम् उपगं स्व[ग्] ग्लौस् तत्र भविष्यसि ॥१३॥
दिव्यस् सुपर्णो [अ]पतद् अयं दक्षो अपोमुखः ।
स संपतत्रम् उपगम् इतो वहनं परामरत् ॥१४॥
च १०.९७.१३ साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१५॥ ॥ऋ° १०॥

१९.३८

अभि गाय शायलीयं ध्रोणीयं साधुवाहनम् ।
नमस् ते मद्रया कृष्णो ऽपिबता चक्षुषा त्वं शामका शमयामि त्वा ॥१॥
त्रि ग्धि प क्ष णी य ? पयसः कुर्यामि मा ? त्वम् ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चरः ॥२॥
अकृत्वा[साद् अ]भ्य् अकृत्वाभ्यक्त शारनं गमः ।
अपो विकृत्यो मा पच्छ ।
विज्ञानेन भयेन च शामका शमयाति त्वा ॥३॥
च१०.१६४.१ अपेहि मनसस् पताप क्राम प[रश् च]र ।
परो निर्ऋत्या [आ] चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥४॥
च २ भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर् बहुधा जीवतो मनः ॥५॥
शौ १९.४०.१ यन् मे छिद्रं मनसो यच् च वाचस् सरस्वती मन्युमित्तं जगाम ।
विश्वैस् तद् देवैस् सह संविदानस् सं दधातु बृहस्पतिः ।
? स्फिरत स्फिरतरं स्फिरत्तरः ? ॥६॥
शौ १.१४.३ शातहस्त समाहर सहस्रेव सं किर ।
इदैवाङ्गिरसं किर इदैव स्फातिम् आ स्फिर ॥७॥
स्फिरेणेन् ओषधिस् समुद्रस्येव संस्रवः ।
उत् तदा जनं गम उत् तदा न पचिषम् ? ॥८॥
शौ ३ [इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः ।]
वृष्टे शापं नदीर् इवेह स्फातिं समावहान् ॥९॥
वि मायुपा यच्छन्तु मरीभा इ[व] तूर्णशाः ।
मुच्यन्तु सर्वे तन्तयो वि ता ना वी वि त न्त्रि के ? ॥१०॥
आयमनं निवेष्टनं मता च ग रमी भ्वे ? ।
मुच्यन्तु सर्वे तन्तयो अन्ये विततो वायुः ॥११॥
प्र या सी ष्ये ? प्र च तां प्र च यन्तु परि निवेष्टनम् ।
मुच्यन्तु सर्वे तन्तवो अन्ये विततो वायुः ॥१२॥
म न या र का री प्र य मो प्र या भि दि दं श का ? ।
देवानां पत्नीः कृत्तिका इमं तन्तुम् अमोमुचन् ॥१३॥
अग्निर् नयतु नयमः पुरएता बृहस्पतिः ।
अथा भग प्र णो यच्छ त्वं हि धनदा असि ॥१४॥
प्र णस् शुद्र उतार्यः प्र णो राजोत वृत्रहा ।
अथो यत् सर्वम् आत्मन्वत् प्र णो यच्छतु दक्षिणा[म्] ॥१५॥
तै सं १.५.५.१ कविर् यज्ञस्य प्र तनोति पन्थां नाकस्य पृष्ठे अधिरोचने दिवः ।

येन हव्यं वहसि देवदूत इतः प्रचेता अमुतो पनीयान् ॥१६॥
मधुहस्तो मधुजिह्वो मधुपर्णो मधुव्रतः ।
अथो मधुमद्यामनो भगो मा तेन जिन्वतु ॥१७॥ ॥ऋ° १३॥

१९.३९

शौ १.१.१ या त्रिषप्ताः पुनर् यति विश्वा रूपाणि बिभ्रती ।
वाचस् पतिर् बला तस्या आरे देवीर् दधातु मत् ॥१॥
वाचा तुना कृत्या चन्द्रमती अमता स्वपती इता ।
तुना पाकला शंसेन प्रत्यक् कर्तारम् ऋच्छतु ॥२॥
यद् पतद् भूरि सर्वमे कृत्या कीलनं ? मन्दस ।
प्रतीचीना परेत्य विपा प्य त स त् ? ॥३॥
परेत्येद् अपशंसो नैनेन सन् भरामहि ।
द्यौश् चास्मान् पृथिवी चोभे पातां ? अनंसत ।
यवपाल्यन् द्वेषांसि यथामयेन हविषा ॥४॥
तै ७.१.१०[१३] युवेद्धे वयुष्वे कृत्यां प्रीयासु प्रति मुञ्चता ।
च १०.९१.१४[१३] अन्यां वो अन्याम् अवतु अन्यान्यस्या उपावत ॥५॥
समश्नतः प्रजनन्तीः कृत्यां हतौषधयो ऽराति हतौषधयः ।
मेदोय मा मारस्यः यथा नि दुर्गाण्य् अवेहि ॥६॥
सपत्नी अपवताद् इतो ऽपरं गच्छताद् ओकसः ।
तस्मात् ते नाम गृह्णामि यस्मिन् आ र य से य ने ? ॥७॥
मातरस्याः परावतम् सपत्नी नाशयामसि ।
प्रवर्शितात् पर्वतान् वनुरत् च गिरीन् अति ॥८॥
सपत्नी महावस् पते सदो भूयान्य ? अर्पय ।
उत् मादयत मरुतस् समुद्रिया उ[त्] द्यावापृथिवी उभे ॥९॥
भूत्वा समुद्रो अर्थ भूत्वाग्निर् आयुरां ।
यत् सपत्नी सपत्न्या [अ]मुष्या ददे ।
तस्मात् ते परम् आ दामि सोग्यात् अहम् उत्तरा [स्या]म् ॥१०॥
मा ते बभ्राम् ओषधी सपत्नेभ्यः प्रचलनीम् ।
यथा ते ऽसद् उ दन्तिः पुत्राणां ते भवत् पिता ॥११॥
शौ ६.११०.१ तै १६.४५.१० यानृणान्य् अनुपत्तान् ? यद् अस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तद् अग्ने अनृणो भवामीदं तद् अग्ने भवाम् मे ऽस्तु ॥१२॥
यास् ते सप्त प्रवतो या वा तिस्रो यास् ते सन्तु नि[व]तो या भीषतः ? ।
अर्यावतो अथवा श्वीनि ? रोचनास् तास् ते अग्ने संभवसो भवन्तु ।
आयन्न् इमा या निवहा वसोरम् ? ॥१३॥ ॥ऋ° १४॥

१९.४०

नाशय पलितं शीर्ष्णो यः कृष्णान् तन्व आतरः ।
त्वम् ओषधे त्वं वर्धय केशां कृष्णतरं कृधि ।
यथाश्नं तथासत्सि यथा त्रैककुदं तथा ॥१॥
यास् त ऊर्ध्वास् तस्थो जातवेदो यास् तिरश्चीर् उत या अवीचा[ः] ।
ताभिर् दृयम् अग्न सयुजस् स्तुवानो आयन्न् इमा या निवहा ॥२॥
? तु सि म या तु द्र उ न्नी मनू क शा य प्रा स्यै यत्र तिष्ठासि यतो न नि त्या सि न म् ? ।
ते १९.१५.७[११] दिव्यस् सुपर्णो अथर्वाद् एतत् सं[म]के धनज्ञम् ॥३॥
शौ ६.१२४.१ यतद् दिवो नु मां बृहतो ययोधा अयां स्तोको ऽभ्य् अपतद् रसाय ।
सम् इन्द्रियेण पयसाहम् अग्न छन्दोभिर् यज्ञैस् सुकृतां कृतेन ॥४॥
[?]' यद् वृक्षाद् अभ्य् अपतत् फलं तद् अभ्य् अन्तरिक्षात् तद् उ वायुर् एव ।
[?]' सम् इन्द्रियेण पयसाहम् अग्न छन्दोभिर् यज्ञैस् सुकृतां कृतेन ॥५॥
[?] मुरभि मा सपृहि अभ्यञ्जनं सु [?] स भ्व न्दू ? हिरण्यम् अधि यो ऽत्र सहात ।

सर्वा पवित्रा विततान्य् अस्मिन् शतं जीवाति शरदस् तवायम् ॥६॥
शौ ७.८०.१ यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यम् उपतिष्ठति ।
तरास्त्वं ? सर्वं आयान्यं यः कश् चिन् ककुदि श्रितः ॥७॥
शौ ४[१] पक्षी जायान्यः पतति स आविशति पौरुषम् ।
शौ ७.८१.१[१] कथं ह तत्र त्वं हन्या यत्र कुर्वान् महद् धविः ॥८॥
यत् संस्राविशत् करोषि उदरं मम ।
यक्ष्मो यो ऽत्र जायते तं आयान्यम् अनीनशम् ॥९॥
आरोहान् मे मुखं जातम् आरोहाज् अघनं मम ।
आरोहात् सर्वा जाताश्चि क्ष य प स्यो प यो चि मा ? ॥१०॥
स्वादीयसी सुराया लवणा चादर् मधुरा ।
गोभ्यो वलीयसी वह ? मे ॥११॥
यां त्वा वातो ऽवारयत् रुद्रो मामाम् ? अहर्षत ।
तस्यास् ते देवि पृथिव्यां इ सं म च मं व दा ते सो ः का इ य म्द् ? ॥१२॥
युक्ता मनसा सं च रेतसा देवेभ्यो हव्यं कृण्वाम साधु ।
येषां भागस् तु हविर् इदं जुषन्ताम् अविष्यमताम् ? उत या भ य प्र या ? ॥१३॥
तै सं ५.७.२ मै सं ३.७.११ येन देवा ज्योतिषा द्याम् उदायन् येनादित्या वसवो येन रुद्राः ।
[अ सं ११.१० येनाङ्गिरसस् स्वर् आनहुस् तेनोद् अयद् यजमानस् स्वस्ति ॥१४॥
यं पचापादि[ति]ः पुत्रकामा येन प्रजाः कश्यपः पर्यगृह्णात् ।
य ओदनः पच्यते वैश्वदेवस् स नो ऽयम् अमृतो भागो ऽस्तु ॥१५॥
॥ऋ° ४॥ ॥अनु° १०॥

१९.४१

सोमस्य प्राणः पवते पुरस्ताद् दक्षिणत इन्द्र आ वाति वातः ।
पश्चा दिशो मातरिश्वो यः प्रतीची[स्] स नो देवस् शिवो ऽस्तु हि वातः ॥१॥
मित्रस्य प्राणः पवते य उत्तरो बृहस्पतेर् ऊर्ध्व उद् वाति वातः ।
यो ऽन्तरिक्षम् अनु वाति विद्वान् स [नो देवस् शिवो ऽस्तु हि वातः]॥२॥
य उत्तरः पवते [यः] पुरस्ताद् यो दक्षिणः पवते यश् च पश्चात् ।
ऊर्ध्वा[न्] उद्यान् अनु यः विपरीतं स नो देवस् शिवो ऽस्तु हि [वा]तः ॥३॥
त्रीण्य् अन्तरिक्षाण्य् अनु वात वहसि त्रिधो वहसि परावतः ।
सहस्राक्षो वृत्रहा वात्य् अर्वाङ् नुदन् द्वेषिषं रपः ॥४॥
न तत्र दारा कृपणं ससार न प्रतिप्राणी दहती न विभ्रती ।
इन्द्रो नो अत्रोः हन् विचक्षणस् स न उग्रात् महति नि पच्छात् ॥५॥
शौ ३.१.५ इन्द्रम् सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्तु ओजसा ।
अग्नेर् वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय ॥६॥
न द्यौर् यत्तां न पृथिवी नातिथिर् विषतं अथा[न्] ।
शौ ९[१] चक्षुंष्य् अग्निर् आ दत्तां पुनर् आ यन्तु पराजिता[ः] ॥७॥
अमित्राणां दारय ग्रामम् इन्द्र यो नस् शत्रुर् अभ्येतु जिघांसन् ।
अधैषाम् अग्री दधानाम् अग्निना वेपो ? अनु वर्तयतु ॥८॥
जिह्मं युगं कृण्वताम् इन्द्रनुत्ताः परापीनेः वह्निर् यन्तु रिष्यन्तः ।
[अमि]त्रान् अयन्तो ऽन्य् आसेदमानिना वेपो ? अनु वर्तयामहे ॥९॥
अमित्राणां ग्रामम् उपयुक्तम् इन्द्रेण दत्तं वि दधात्य् अग्निः ।
सत्यानस् सन्त् अ रा मा ज्या ? इयं वेश्यस् चरामि हविषा घृतेन ॥१०॥
मानवगृह्य १.१.१ अर्यमणं हि देवं भद्रं कन्या यम् अ[ग]क्षत ।
स इमां वृत्रहा देवो मतो मुञ्चातु मामुतः ॥११॥
यत् ते राजन् वरुण आमिक्षा कृणुते हविः ।
तस्यै पतिं न्य् आ वह सुभद्रं प्रतिकाम्यम् ॥१२॥
शौ ६.६०.१ आ कन्दय धनपते वरम् आमनसं कृणु ।
सर्वं प्रदक्षिणं कृधि पतिम् अस्यै प्रतिकाम्यम् ॥१३॥
आ पश्चात् आ पुरस्ताद् ओत्तरात् अधराद् उत ।

पूर्णां भगस्य वर्तनि[म्] तेनेमान् अधि वर्तयामसि वर्चसा च भगेन च ॥१४॥
न मृगस्य पतङ्गस्य तर्दस्य सवचसा ? ।
ते १९.१०.११[१] न संपतत्रम् उपगं स्यान् ग्लौस् तत्र भविष्यति ॥१५॥
अ प व स्व द् ? अपावहान् स्व् अस्यं विषिम् अपावहात् ।
अपापवितो ऽदराद् अपेतो ग्लौर् भविष्यत्य् अभिभ्यायं भविष्यति ॥१६॥
यथा सूर्यस् च [सो]मश् च स्यान् ग्लौम् तत्र भविष्यति ।
एवा त्वम् उग्र ओषध इमां ग्लावम् अपि गूहतात् इतः ॥१७॥ ॥ऋ° १८॥

१९.४२

ते १९.४१.१६ अपरस्कम् ? अपावहा[न्] स्व् अस्यं विषिम् अपावहात् ।
अपापवितो ऽदरात् अपेतो ग्लौर् भविष्यति अभिभ्यायं भविष्यति ॥१॥
मा छिले मा छिलायति मा ते शेपस् छिलोमुखे ।
यावच् छिलस्य ते छिलं तावच् छेपस् छिलं तव ॥२॥
यथा वृषाणाम् उदकं विरिदं भूमिम् अश्नुते ।
एवा त्वम् अरसे छिले विरिदा भूमिम् अश्नुहि ॥३॥
कौशिकसूत्र ४०.१६ वज्रो ऽसि सपत्नहा त्वया वृत्रं ह सासीय ।
त्वाम् अद्य वनस्पते वृक्षाणाम् उदयुष्महि ॥४॥
कौ° १६ स न इ[न्द्र पु]रोहितो विश्वतस् पाहि रक्षसः ।
अभि गावो अनूषताभि युग्नं बृहस्पते ॥५॥
ते १५.१.४ प्राण प्राणं [त्रायस्वासो ऽसवे मृड ।
[निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च] ॥६॥
प्रजापतिर् इवा प्रजया सं पुत्रेण सृजतु सं भगेन ।
पुत्रं देष्ट्री इ कामो ब्राह्मणस्य पुमांसं दधन् सवितुर् सवेन ॥७॥
प्र त्वा सः प्र स्या कृ कु तः ? कुमारः पुत्रवान् अपि ।
कविर् यम् अशिषयावती यं ते धाताधीकल्पयत् ॥८॥
यं ते धाता यं ते त्वष्टा यं ते ब्रह्माधीकल्पयत् ।
तं त्वं पुत्रं विन्दस्व तस्मै त्वं जीव जीवसे ॥९॥
प्रवाहात् तिष्ठन्ति रजसा समन्ता यज्ञस्य होत्राः माहितास इज्याः ।
तासां सौम्यस्य दिव आ वपन्ति तद् अमूवे ? यजमानस्य रूपम् ॥१०॥
यथा इदस् सुमनसो यथा इयो ? यथा सविद्वां इमासो ? यातर् अमूर ।
एवा यहो यजमानं अहाति तत्र सौम्यान् सोमपीथान् भवन्ति ॥११॥
ये ब्राह्मणं यवो इ स्या य म स्या रे य ? ब्राह्मणा[ः] परि धाम यन्ति ।
एवा यहो यजमानं अहाति तत्र सौम्यान् सोमपीथान् भवन्ति ॥१२॥
छन्दांसि यावत् यजमानास् युञ्जन्ति तत्र सौम्यान् सोमपीथान् भवन्ति ॥१३॥
ये ब्राह्मणो यत् पिबन्ति सोमस्य तद् वा अच्छिद्रं दक्षिणे अधिधेयम् ।
अग्नो ऽग्नो ऽसि या नीः परि या नीः ? प्रथमा देवेभ्यस् पर्यावृता[ः] ॥१४॥
कौशिकसूत्र ११.५[१] मा ते रिषन् खनिता यस्मै च त्वा खनामसि ।
मा देवाः पापम् आरान्म ? मा यन्तु पापयामुया ॥१५॥
महान् मरिष्यमो इस्त आरिप्यु[र] धनकाम्याम् ।
आ मा देवाः परञ्जाताम् आ मा का तं स्वा स्वं स ? ॥१६॥
महन् मरिष्यत्रं ष्ठिर आरिप्सु मो अ इ स्व पि ? ॥१७॥ ॥ऋ° १४॥

१९.४३

प्रतीचं मे विषक्षम् अहवी मे मधुसंदृशो ।
कर्णाभ्यां भूरि शुश्रुवे जिह्वा मे मधुवादिनी ॥१॥
स या म ड्रि वां भि द या ? मधुमावयः ॥२॥
यथा मधु ? मधुकृतस् संभवन्ति मधाव् अधि ।
तथा इदयाः ? छन्दो ऽभिरुप्यासन् मधुमत्तया ॥३॥
शौ ६.९२.१ वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अधि द्युतः ।

इन्द्रस्य पुत्रस्य सखा ॥७॥

यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जने ऽभिद्रोहं मनुष्याश् चरन्ति ।

यत् ते ऽचित्त्या तव धर्मा युयोपिम मा न[स] त[स्मा]द् एनसो देव रीरिष ॥८॥

अगो अकारं मा न इन्द्र [पृणन्तु पुरुषा मो पृणन्तः पुनन्तु ।

[विश्वे हि देवा ब्रह्मणा हवन्त इद् इद् आप्यस्य पुत्रिन्द् आ पृण यामि] ॥९॥

मित्रश् च यद् वरुणश् च राजा यो मे न अयं कृणुतो मातरं मही ।

तस्माद् मह्यम् अपि मह्यं कृणोति सुचेतसो अपावानो न मांविदाः ॥१०॥

सुचेतसो अविदाम विश्ववेदं महतम् पतिं ।

तथा इ सोमो आपूयति इन्द्र× मीतो ऽप्तु सेतुरे ॥११॥

इन्द्र× मित्रः सुरेतं ? हाकस्य रोचनावतः ।

अक्षीणस्य सजाद् एव महकस्य मर्ताविताः ॥१२॥

अग्निः सायंसायं पातर् अकारं वैश्वानर× पथिकृद् विश्वकृष्टिः ।

स नः पावको द्रविणे दधात्व् आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१३॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान् अस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।

आयुष्म[न्त]× प्रियम् एषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥१४॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनाम् ऋतेन ये चमसम् ऐरयन्त ।

सौधन्वना अमृतत्वम् आनशानाः स्विष्टिं नो अभि वसीयो नयन्तु ॥१५॥

संवं सवनं विन्दमानं संसवं संकल्पय ।

यज्ञम् इमं चतस्रः प्रदिशः संस्राव्येण हविषा जु[होमि] ॥१६॥

इमं च मे संस्रावयं संरभ्यं परि पातु ।

यज्ञम् इमं चतस्रः प्रदिशः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१७॥

इमं होत्रा यज्ञे सम्भृतः संस्रावयन्तु ।

यज्ञम् इमं अन्तर् अदितिर् घृतवान् संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१८॥

॥ऋ° १०॥

१९.४४

अयुता हेवेषिर् अयुतो[मान्] यज्ञपतिषु प्र तिरन्तु आयुः ॥१॥

इयं अग्नये प्रथमाय आयुष्मतो ऽस्मि मे सख्यायुः पृथिव्य् अन्तरिक्षम् ।

यस्यादयन्तर् पुरत् अक्षी तद् मामिम् न तद् प्राप्नोति निर्ऋतिः परस्तात् ॥२॥

अन्तर् अस्यार् मृत्युतः सौख्यं नैनं सुमात निर्ऋति× परस्तात् ।

विश्वायुर्न इद्रियो आयुमान इदं यज्ञं सुहृतास् परि गोपम् ॥३॥

देवो ऽसि गायत्रीछन्दा अनु त्वा रभे ।

स्वस्ति मा सं पारय ॥४॥

रुद्रोऽसि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।

स्वस्ति मा सं पारय ॥५॥

वरुणोऽसि जगतीछन्दा अनु त्वा रभे ।

स्वस्ति मा सं पारय ॥६॥

प्राणपाने सर्वविदे मा परि देहि ।

[प्राणमाने द्विपाच् च सर्वं रक्ष चतुष्पाद् यच् च स्वम् स्वम्] ॥७॥

सर्वविद् विश्वविदे मा परि देहि ।

[प्राणमाने द्विपाच् च सर्वं रक्ष चतुष्पाद् यच् च स्वम् स्वम्] ॥८॥

विश्वविद् कल्याण्यै मा परि देहि ।

[प्राणमाने द्विपाच् च सर्वं रक्ष चतुष्पाद् यच् च स्वम् स्वम्] ॥९॥

कल्याणि प्राणमाने मा परि देहि ।

प्राणमाने द्विपाच् च सर्वं रक्ष चतुष्पाद् यच् च न[ः] स्वम् ॥१०॥

वि खन वि दज वि अद्दि यत्रैषा नाष्ठतय् चन ।

सम् अहम् आयुषा सं मयायुः ॥११॥

[वि खन वि दज वि अद्दि यत्रैषा नाष्ठतय् चन] ।

[स]म् अहं तेजसा सं मया तेजः ॥१२॥

[वि खन वि दज वि अद्दि यत्रैषा नाष्ठतय् चन] ।

[सम्] अहं वर्चसा सं मया वर्चः ॥१३॥

[वि खन वि दज वि अद्दि यत्रैषा नाष्ठतय् चन] ।

[सम्] अहं प्रजया सं मया प्रजा ॥१४॥

वि खन वि दज वि अद्दि यत्रैषा नाष्ठतय् चन ।

सम् अहं पशुभिस् सं मया पशवः ॥१५॥

दिवो रेतो ऽसि पृथिव्या नभ्यम् ।

नभ्यम् असि नभ्यं मा कृणु ॥१६॥

[दिवो रेतो ऽसि] पृथिव्याश् शान्तिः ।

शान्तिर् असि शान्तये ते [विधेयम्] ॥१७॥

[दिवो रेतो ऽसि] पृथिव्या विर्तिः ।

विर्तिर् असि विर्तये ते [विधेयम्] ॥१८॥

दिवो रेतोऽसि पृथिव्या भूतिः ।

भूतिर् असि भूतये ते विधेयम् ॥१९॥

भूतिर् असि भूत्या सं भूयासम् ॥२०॥

शुक्रो ऽसि भ्राजो ऽसि ॥२१॥

शौ १९.५५.३ — सायंसायं गृहपतिर् नो अग्नि× प्रात×प्रातस् सौमन[स]स्य दाता ।

वसोर्वसोर् वसुदान एधि [वयं] त्वेन्धानास् तन्वं पुषेम ॥२२॥

शौ ४ — प्रात×प्रातर् गृहपतिर् नो अग्निस् सायंसायं सौमन[स]स्य दाता ।

[वसोर्वसोर् वसुदान एधि] इन्धानास् त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥२३॥

यो मा ? दिवातिर् यश् च त्वा ? यदि चित्त्या मन्युना यस् सपत्नः ।

अग्निर् तान् पाशान् प्र मुमोक्तु देवो या ! वेद शपथं वरुणो घृतव्रतः ॥२४॥

॥ऋ° ४॥ ॥अनु° ११॥

१९.४५

शौ १.११.१ च १०.१८०.१ — प्राग्नये वाचम् ईरय वृष[भा]य क्षितीनाम् ।

स [न]× पर्षद् अति द्विषः ॥१॥

शौ २ च २ — य× परस्या× परावतस् तिरो धन्वातिरोचते ।

स न× पर्षद् अति द्विषः ॥२॥

शौ ४ च ४ — यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स न× पर्षद् अति द्विषः ॥३॥

शौ ३ च ३ — यो रक्षांसि निजूर्वत्य् अग्निस् शुक्रेण शोचिषा ।

स न× पर्षद् अति द्विषः ॥४॥

च १.९०.६ — मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।

च ६ — माध्वीर् गावो भवन्तु नः ॥५॥

च ७ — मधु नक्तम् उतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः ।

च ७ — माध्वीर् नस् सन्त्व् ओषधीः ॥६॥

च ८ — मधुमान् नो वनस्पतिर् मधुमाँ अस्तु सूर्यः ।

च ७ — मधु द्यौर् अस्तु न× पिता ॥७॥

च १०.९.१ — आपो हि ष्ठा मयोभुवस् ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥८॥

च २ — यो वश् शिवतमो रसस् तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीर् इव मातरः ॥९॥

च ३ — तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥१०॥

शौ ६.११.१ च १०.१८९.१ — आयं गौ× पृश्निर् अक्रमीद् असदन् मातरं पुरः ।

पितरं च प्रयन् स्वः ॥११॥

शौ २ च २ — अन्तश् चरति रोचनास्य प्राणाद् अपानतः ।

व्य् अख्यन् महिषो दिवम् ॥१२॥

शौ ३ च ३ — त्रिंशद् धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।

प्रति वस्तोर् अहर् द्युभिः ॥१३॥

शौ १०.८.१ — यद् ब्रह्म वाचम् आवदन् मनसोक्तं शिवायमन्तः ।

तद् देवा अप सुब्यन्त ॥१४॥

शौ २ — ब्रह्मो वाचम् अपृच्छदि धामधर्मन् वि राजति ।

विमानम् बर्हिर् आसदन् ॥१५॥ ॥ऋ° ११॥

१९.४६

ध्रुवो ऽसि धरुणो ऽस्तृतो विश्वकर्मणा सुकृतः ।

मा त्वा समुद्र उद् वधीन् मा सुपर्णो ऽव्यथमान इमं दृंह ॥१॥

प्रजापते ऽसि सहमानस् सहस्रावति सहस्व पृतन्यतः ।

सहस्रवीर्यो ऽसि स इमं जिन्व ॥२॥

अदृष्टम् संभूतो ऽसि पृथिव्या रसा[द्] च विश्वकर्मणस् समवर्तताधि ।

तस्य त्वष्टा [रूपं] विदधद् एति विद्वान् तद् ते देवम् आजानम् अग्रे ॥३॥

वहिष्ठा वाचयतो मघवद्भ्यश् च धाता होतारम् अग्निम् अस्मत्या विभृताः ।

छिन्दन्ति वाचाम् अति वीर एत् अन्तका यज्ञाम् अनु वेत्ति विद्वान् ॥४॥

यो ऽप्सुधुम् अनुहोरात्रि विद्वान् पूर्वो होत्रो यजता विमर्शी ।

ऊर्जं स यज्ञम् अध्वरं कृणोतु ॥५॥

अतो विमर्शिद् हविषो विभाभे मा विद् माहीर् मामिनं मोपदग्धा ।

मामम्पात्रे विष ? यो शुभोद ॥६॥

च १०.१८३.? — यत्र मा वातु मेपलं धामनु मयोभुवो हवे ।

प्र च आयूंषि तारिषम् ॥७॥

च ? — इह वात विता[मि] न सन् प्रातेन मत् वचा ।

स नो जीवातवे कृधि ॥८॥

च ? — यद् अदो वात ते गृहे हितं भेषजं गुहा ।

तस्य नो देहि जीवसे ॥९॥

शौ ६.११.? — यो न जीवो ऽसि न मृतो देवानाम् अमृतगर्भो ऽसि स्वप्न ।

वरुणानी ते माता यम× पिता ॥१०॥

शौ ? — यथा कलां [यथा शफं यथर्णं संनयन्ति] ।

[एवा दुष्वप्न्यं सर्वम् अप्रिये सं नयामसि] ॥११॥

शौ — पुत्र मामासि ते त्वा सद्म तथा विद ।

त्वष्टाद् सुमनसं देहि ॥१२॥

वैश्वानरेण हविर् अहान्तु देवा विमैन्द यस सुखाच्य लोके ।

यानी विदे विधुष्पवाद् आगाद्यस् न इद् पुरं मनुष्येषु अन्तः ॥१३॥

यो मानुषा पिशुना अमृता ये च धुत्राः ।

वि दु षी हि न न ह र मा न म सु ष्य नु ग ? ॥१४॥

यत्र् तवायुर्नं मि हि ति द य द ये दा द ! कुम्पाद् लोकम् अन्यू यत्र यताः ।

न हे सूजते ! हविषा वाजिनस्य गृहून यत्र हाक स्य आ चरन्ति पाशम् ॥१५॥

॥ऋ° १२॥

१९.४७

[य] आको यो वा को वी न वा ! इव सर्पति ।

तं [परि] परिक्रम्यन्तं वृश्चिकजम्भनम् असि ॥१॥

मयूरो ऽत्र वृश्चिकं मयूरं यं विदृसि ।

तं परि परिक्रम्यन्तं वृश्चिकजम्भनम् असि ॥२॥

आप इद् वा उ भेषजीर् आपो वृश्चिकजम्भनम् ।

[तं परि परिक्रम्यन्तं वृश्चिकजम्भनम् असि] ॥३॥

शौ १९.५९.१ — त्वम् अग्ने व्रतपा अ[सि] देव आ मर्त्येष्व् आ ।

त्वं यज्ञेष्व् ईड्यः ॥४॥

शौ २ — यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।

अग्निष् टद् विश्वाद् आ पृणाति विद्वान् सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥५॥

शौ ३ — आ देवानाम् अपि पन्थाम् अगन्म यच् छक्नवाम तद् अनुप्रवोढुम् ।

अग्निर् विद्वान् स यजात् स इद् होता सो ऽध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति ॥६॥

उ त्व द्रा यी श वि ज ता वि दु यो मा वि य दं प री वि ? ।

उ त ब्बा न× ? पातयामि द्यावतीभ्यस् समाभ्यः ॥७॥

यत्र मांसम् इवाभिना शकुनि× प्रपतनं कृधि ।

मृगो अनु प्र पतत मरीचीर् अनु माशय ॥८॥

विश्वङ्गी माया कृत विश्वङ्गो विद्या ? इत ।

उताको सूर्यं अयन् विश्वङ्गी माया कृत ? ॥९॥

विषम् असे विषं विषरं विषस्य महिमा महान् ।

विषं परश्वतस् तिरश् चातया स्य अकल्पयत् ॥१०॥

सं इद मतं यथा वसुधासु वि कल्पयः ।

विषं परश्वतस् तिरश् चातया स्य अकल्पयत् ॥११॥

गृहाणि मांसानि यथा लोमानि आतपो अयाम् ।

सु न छ का छ दा वा या द् सि न्य् ता च या द म न्द् यः ? ॥१२॥

शौ १.३४.४ वे ६.१०.७ — मधोर् अहं मधुतरो मधुमान् मधुमत्तरः ।

मामस्ये विल म मधु सुखेन मन्द्मं कृतम् ॥१३॥

च १०.१६६.५ — मान् इ[न्द्र] त्वम् अन्य् अव्यवहो भूतम तृष्यन्त् इवोदकम् ।

अवपत्तरान् म उद् वदामि मण्डूको गोधाकाद् इव ॥१४॥

उद् वदाम्य् अवपत्तरान् मण्डूको गोधाकाद् इव ।

अयो ऽसि वाजा ; वा स ही इषा म तं सु या वि द ? ॥१५॥ ॥ऋ° १३॥

१९.४८

यावद् वहुल मोहं न सुधीरं वहुलीकृतम् ।

वय तेन न मीयाता यथा म गोहम् वा वदः ॥१॥

यावद् दुहितर× विश आन्ध्यमानराद् इव ।

तस्याम् न ज ल च ह ? लिकास× कि हुव स्या मा न वीर ? अहि ॥२॥

च १०.१६५.४ — य[द उ]लूको वदति मोघम् एतद् यत् कपोत× पदम् अग्नौ कृणोति ।

हिलिवर्णोय कतेव वा स्तोमनाय तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥३॥

[ये] वैन्द्रा× पाशा ये च वारुणा [आ]रे असन्त् तान् देवी निर्ऋतिर् दधातु ॥४॥

ये वैश्वानरा× पाशा ये च मारुता [आ]रे असन् तान् देवी निर्ऋतिर् दधातु ॥५॥

ये वैश्वदेवा× पाशा ये च वैश्वकर्मणा [आ]रे असन् ता[न्] देवी निर्ऋतिर् दधातु ॥६॥

मारंद् विश्वं कवये स्तोमे ऽप्सु महिमानं महात्म्यम् ।

अविन्दत् तं विश्वकर्मणम् अमुद्राद् रेणसानेन ! हेयन् अग्निर् दधामि ॥७॥

यद् घसपोर् यच् चक्षुषो मुनये तु प्रविवेश ते ।
[कनदान् अस्य प्र स्कनदासि कनदय स्कनदयामि तम् ? ॥८॥
[आ कैकासा कैकाप्य पकस्या नामा क्षुपाणा सरसात् यस्य सामो व्यन्तु स्वाहा ? ॥९॥
जयाक्षं त्वा मनसाक्षं हृदयेन त्वा ।
अक्षाक्षं सर्वेद् अङ्गैस् त्वा तत्र ते स्वजनं कृतम् ॥१०॥
इमा या प्रातिरद् अतस् तास् सर्वां समागतम् ? ।
भुपास् सर्वास् संगत्य स्वजने स्वजनं कृतम् ॥११॥
स्वजनं मे द्यावापृथिवी दधातां स्वजनं देवस् सविता बृहस्पतिः ।
अग्निश् च तुभ्यं सूर्यश् च स्वजने स्वजनं कृतम् ॥१२॥
सं दिवस् सं पृथिव्यास् सं वातात् सं नदीभ्यः ।
संस्कन्दम् इन्द्र आभरत् सह यात् संहरात् इदम् ॥१३॥
संस्कन्दम् ओज ओजसा देवेभिर् नाम ते हितम् ।
हिरण्यनाम नाम ते संस्कन्दास्य् ओषधे ॥१४॥
सं ते शीर्षकपालानि सं योन्यां सं पर्वान्योः ।
सं ते सर्वाण्य् अङ्गानि संस्कन्दास्य् ओषधे ॥१५॥
[सं] समुद्रो नदीभिस् सं द्यावापृथिवी उभे ।
सं नयाः पत्न्या योन्यां संस्कन्दास्य् ओषधे ॥१६॥
श्रियं धातर् मयि धेहि श्रियाम् अधिपतिं कृणु ।
यशाम् ? ईशानो मघवान् इन्द्रो मा यशसानु दात् ॥१७॥
शा सं १८.१० शा सं ५.२ मयि त्व[द् इ]न्द्रियं बृहन् मयि दक्ष उत क्रतुः ।
घर्मस् त्रिशुग् वि भातु मा गायत्रीं छन्दसा [सह] विराड् ज्योतिषा [सह] तस्य दोहम् अशीय ॥१८॥
अर्का[स्] सुदानवः कवि[र्] मातरिश्वानुयातां गिरीशाः ।
यशस्विनं मा देवा यशसः ? कृणुत स्वाहा ॥१९॥ ॥ऋ° ४॥ ॥अनु° १२॥

१९.४९

शौ ३.१५.१ इन्द्रं वयं वणिजं हवामहे स नस् त्राता पुर एतु प्रजानन् ।
घ्नन्न् अरातिं परिपन्थिनं मृगं [स] ईशानो धनदा [अ]स्तु मह्यम् ॥१॥
शौ ४ पणो नो ऽस्तु प्रपणो विक्रयश् च प्रतिपणो गोपनिनः कृणोतु ।
संरराणा हविर् इदं जुषन्तां शुनं नो ऽस्तु चरितम् उत्थितं च ॥२॥
शौ ६ यत् पणेन प्रतिपणं चरामि स्वेन देवा धनम् इच्छमानः ।
इन्द्रो मे तस्मिन् रुचिम् आ दधातु बृहस्पतिस् सविता सोमो अग्निः ॥३॥
शौ २ इदं पन्था बहवो देवयाना अन्तर् द्यावापृथिवी सुपर्णीती ।
तेषाम् अज्यां यतमस्य आ दधामि यथा क्रीत्वा धनम् आवहानि ॥४॥
विष्य वाससे ? निर्माते ये च पाशा विचिन्विताः ।
तेभ्यः प्र मुच्यते यस्मी विष्कन्धम् उप सादयम् ॥५॥
न वै तद् वासो भवत्य् अस्मिन् विष्यन्तु पीदयम् ।
यस्मात् संमधसे रूपं तस्मात् तद् अपि लोप्यम् ॥६॥
अनिष्ठन् नु प्रियायत विष्यन्तु वस्त्राभ्यम् ।
न यन्या भद्रम् अश्नुते नैनेन [च] चरामहे ॥७॥
ब्रह्मचैतत् प्रतिगृह्णन् तेन तत् कृणुते शिवम् ।
यत् कः प्रमुच्य[ते] पाशांस् तेन त्राता वि पश्यति ॥८॥
शौ ६.१४०.१ यौ व्याघ्राव् अवरूढाव् जिघांसतः पितरं मातरं च ।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस् पते मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥९॥

शौ २ व्रीहिम् अत्तं यवम् अत्त माषम् अथो तिलम् ।
स वां भागो निहितो रत्नधेयं मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥१०॥
शौ ३ अघोरौ मधुरौ सचिवानौ स्योनौ दन्तौ सुमङ्गलौ ।
मा हिंसिष्टं पितरं मातरं चान्यत्र वां तन्वो घोरम् अस्ति ॥११॥
शौ ६.१०४.३ ऐन्द्रान् यताम् इन्द्राग्नी राजा सो[मेन] मेदिना ।
इन्द्रो मरुत्वान् आदान[म् अ]मित्रेभ्यः कृणोतु मे ॥१२॥
शौ १ इदम् आदानम् अकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा ये ऽत्र सन्तु मे तान् आ या हिंसतो मम ॥१३॥
शौ २ आदानेन संदानेनामित्रान् सं धामसि ।
* शौ अयुक्तमृत् सह अघ्नित्य अपाना ये चैषां प्राणाम् सम् असून् अममसुतम् ? ॥१४॥
मरुताय ? संदध्मते स्वाहा ।
अपद्धीरायामित्रतये स्वाहा ।
तस्मै ते विश्वदेवयते स्वाहा ॥१५॥ ॥ऋ° ४॥

१९.५०

शौ ७.१०७.१ प्र द्यौः [प्र] पृथिवी प्रान्तरिक्षं सुमङ्गम् ।
प्रेतास् समुद्रिया आपश् शल्यम् उप् विष्पुतः ॥१॥
प्र त्वा वातश् च्यावयतु प्र भूतिम् सह वासह ।
[प्रेतास् समुद्रिया आपश् शल्यम् उप् विष्पुतः] ॥२॥
प्र त्वा सूर्यश् च्यावयतु नक्षत्रैस् सह मेदिभिः ।
प्रेतास् समुद्रिया आपश् शल्यम् उप् विष्पुतः ॥३॥
[यो वा] पौतुद्रुवो मणिर् विश्वभेषज आगमत् ।
सो ऽहन्न् सर्व दुष्वप्न्यम् अप हन्तु तमश् च यत् ॥४॥
अपाहन् सर्व दुष्वप्न्यम् अप पापा या च लक्ष्मीः ।
अथा हिरण्यतेजसस् सर्वपापा मणे हृषि ॥५॥
सर्वपापानां भगवान् इन्द्रियाणां विषासहि[ः] ।
यो वा पौतुद्रवो मणिर् द्रविणेन स आवहद् इन्द्रियेण स आवहत् ॥६॥
पुमान् अश्वो घनं विशिः पुमान् निष्को हिरण्ययः ।
पुमांसं पुत्रम् ओषधे अस्यै धेहि नार्यै ॥७॥
यथा नग्नाः पुंसा जाता न मृगस् तेन कथ् चन ।
एवात्र पुत्रम् ओषधे अस्यै धेहि नार्यै ॥८॥
[दुर्वेत्र दिव्येन तवः ? श्रीतास्य् ओषधे ।
अश्वस् श्वेतो यवश्चयो हिरण्यं हरितं तव ।
वृषा सोमेन राजेह पुंसवनं तव ॥९॥
यन् मे ऽनुम्यं गुल्मं ब्राह्मणं च यथ् च धृतं न्यध् च रत्नं दधामि ।
एतन् नो ऽत्र सो ऽधिपा नि पाति पाव[क] देवस् । त्रीणि मतिम् आ प्रम्याः ? ॥१०॥
यन् मे ऽनुम्यं गुल्मं ब्राह्मणं चाप्नो कृष्णासो मयि ? ।
हरिचन्द्रो रक्षतु तन् नो ऽत्र पाव[क] देवस् । त्रीणि मतिम् आ मन्याः ? ॥११॥
यदेभ्यः पुरो ग्रामं चरित्वा सो ऽनुम्यं गुल्मं ब्राह्मणं च ।
[यज्ञत्राणि मनुष्यी ? [इ]दं तद् अहम् आ ददे ॥१२॥
सास्मो हि प्रथमं दस्युहत्याय हाक हार्यं जाते मघवन्न् सहस्रम् ।
दारवं वर्ग रन्धयन्न् आर्याय यं च नो बहुलग्नं वज्रम् ॥१३॥
आङ् कद ते दस्युहत्याय भूरि ददान् एवं शृण्व इन्द्र ।
तीसिद धङो बहुलानीमा सपुत्रनो अर्पय सं वधेन ॥१४॥
दर्श[य] म[ह] चित्तपावम् इन्द्रं वसु सार्कं शारम् इव पश्यमानः ।
यो न पुष्पिं मघवानं पुरस्तात् । अधीहतेषु कवयो न मृत्युः ? ॥१५॥
॥ऋ° ४॥

१९.५१

कौशिकसूत्र ४२.१७ इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय प्रति वेदयाम एतत् ।
यद् व्रतेषु दुरितं निजगिमम दुर्हार्द तेन शमलेन यक्ष्मा ? ॥१॥
कौ° १० यन् मे व्रतं व्रतपते लुलोभाहोरात्रे समधातां न एतत् ।
उद्यन् पुरस्तात् भिषज् अस्तु चन्द्रमा[स्] सूर्यो रश्मिभिर् अभि पुनातु दैवतम् ॥२॥
कौ° १७ यद् व्रतम् अभिपेदे चित्ता मनसा हुता ।
आदित्या रुद्रास् तन् मयि यसयन् [च] सम् इध्यताम् ॥३॥
कौ° १७ व्रतानां व्रतपत उपाकरोम्य् अग्नये ।
स मे पुत्रं वृहसतो वीर्यम् आयुः कृणोतु मे ॥४॥
ऋ १०.१६९.१ मयोभूर् वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीर् ओषधीर् आ रिशन्ताम् ।
मेदस्वतीर् जीवधन्या मयोभुवः पद्वते अवसाय रुद्र मृळ ॥५॥
या एकरूपा विश्वरूपा[स्] सरूपा यासाम् अग्निर् ऊधो यो अग्न वेद ।
ऋ ३ या [अ]ङ्गिरसस् तपसेह चक्रुस् ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥६॥
या देवेषु तन्व ऐरयन्त यासां सोमो रूपधेयानि वेद ।
ऋ २ ता अस्मभ्यं बहुला[ः] पिन्वमानाः प्रजावतीर् इन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥७॥
प्रजापतिर् मह्यम् एता रराणो विश्वैर् देवैः पितृभिस् संविदानः ।
ऋ ४ शिवाः सतीर् उप नो गोष्ठम् आकस् ता [अ]स्मभ्यं बहुलाः पिन्वमाना ज्योग् जीवन्तु शरदः पुरूचीः[।] ॥८॥
अभिक्षिता चरमाङ्गति ? पिशङ्गी बहुवर्णिनी ।
तदेह अङ्गे हलीक्ष्णो मीढर् मापात् अथो पचात् ॥९॥
यथा मसत् पक्षीक्ष्णस्य न संभवति कर्दभे ।
एवा हलकलकमेव ? निर् मामान् निर् विषो अहि ॥१०॥
यथापरस् त्वां शर्धते गर्दभः क्रतुं संदृशि ।
एवा ते शर्धतां मस[क] पक्षीक्ष्णपर्णं शर्धय पृथक् साचि शर्धयः ॥११॥
शौ ३.१०.१ पर्यारयद् लाङ्गलं सुशेवं सोमपित्सलम् ।
तद् इद् कृषतु गाम् अविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद् रथवाहनम् ॥१२॥
शौ ३.१७.१ ऋ ४.५७.४ शुनं वरत्राम् आ यच्छ शुनम् अष्ट्राम् उद् इङ्गय ।
शुनं वाहास शुनभ्याय्या अहि हलिनम् ॥१३॥
मधुमत् तन् नि हृष नः फलं क्षेत्रेषु सर्वदा ।
तत् पर्जन्यो ऽभि वो वृषद् भूसा धान्याय कर्तवे ॥१४॥
आयतादिवया इन्द्रनायत येषाम् अधि ।
आग्निर् हव्यं देवेभ्यो म ? इन्द्रो होता हविष्यति ॥१५॥
या माङ्गुर ? मयोभुवो मनोर् ऊर्जासि बिभ्रतः ।
ता उप क्षियन्तं पयो अथो मानिस ? हितं पयः ॥१६॥
इलायास्तु मधुकृतो विश्वरूपा[स्] क्षाम बिभ्रतः ।
सह प्राणेन तेजसा [सह] हरसा बलेन ॥१७॥ ॥ऋ° ४॥

१९.५२

दिवो नभस शुक्रं पयो दुहानास्तस्य नाभिर् अमृतं वि चष्टे ।
घृतं दुहानां विश्वतः प्रपीनाम् ऊर्जं दुहानाम् अनपस्फुरन्ती[म्] उपासतां सुहस्तम् अपाभिः ॥१॥
पूर्णम् इदं पिन्वमानाम् इमां योनिम् अगात्यम् ।
शौ १८.१.१०[१४] यथा धारा बहुधे जीवन् तास् ते सन्तु मधुश्च्युतः ॥२॥
सं रसा ओषधीनां सम् आकृतीर् भवन्तु मे ।
ऊर्जस्वन्तं पयस्वन्तं पृथिव्यास् तम् अन्व् आगाद् ॥३॥
परिक्षीतिर् असि हलस्य पयः परिक्षीतिर् असि ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वं तस्मै परि नयामसि ॥४॥
पयस्वन् मे क्षेत्रम् अस्तु पयस्वद् उत धान्यम् ।

कृषिः पयस्वतीवाहं पयस्वान् भूयासम् ॥५॥
कौशिकसूत्र ४.१ कुम्भे दृढले स्थविरे अग्नये शुभ्रं हरामस् त्विषीमते ।
स न[स्] स्थिरान् बलिहवः ? कृणोतु ज्योक् च नो जीवातवे दधातु ॥६॥
वेद वै ते नाम अङ्गिर ? मामासि विश्वरूपम् ।
रायस् पोषं विभूद् अस्मान् ? ॥७॥
यज्ञस्य जातां प्रजापतेः पयसा वावृधानाम् ।
आयुष्मन्तो वर्चस्विनो ज्योग् जीवन्तीम् उप त्वा सदेम ॥८॥
शौ १८.१.११[१४] इरुकसाद् मधुपुरा मधुमती यमस्य दूती चरतो अर्मा अनु ।
देवाई वेद सूर्य[ः] किम् एती किं करिष्यतः ॥९॥
समाविदम्यात् मर्त्यानां न पाको ऽसि अनुषा न शुषद् ।
अमीपाद् असि विश्वासाद् घृताशाद् सर्वविद् विर्निदे ? भुवनं सो ऽसि ॥१०॥
ऋ ८.४१.१ अस्माद् उद् अस्मात् ममृगिह वियो वि मिमीते वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदत् सम्राड् भुवनानि विश्वशाद् इद्धा वेद वरुणस्य व्रतानि ॥११॥
प्रजापतिः प्रजावान् स मां प्रजावान् प्रजावन्तं कृणोतु ॥१२॥
सूर्यो वर्चस्वान् स मा वर्चस्वान् वर्चस्वन्तं कृणोतु ॥१३॥
सोमः पयस्वान् स मा पयस्वान् पयस्वन्तं कृणोतु ॥१४॥
विराद् मुष्का कश्यस्य ? दश मुष्काद् अनूक्या[ः] ।
चत्वारस् तव कर्मा[स्] तांस् त्वम् ... ? ।
[अ]सुरो ऽसि अन्नगस् तं त्वेतो मारयामसि ॥१५॥
इन्द्रजा [अ]सि सोमजा [अ]सि तं त्वैताम् ? प्र हिनसि ।
... ? सत्य एनम् अमात्यम् अरोगणम् ॥१६॥
॥ऋ° ४॥ ॥अनु° १३॥

१९.५३

होमेन मतरं प्रजापते इन्वती परि ददामि पुरुषा ।
रायस् पोषं सवितर् नि यच्छ अप्रमृत्यु कृणुहि सर्ववीरो ॥१॥
अयं होमो वर्धयन्न् पशु इन्वती प्रजावन्ती पशुमन्ती सुवीरो ।
रायस् पोषम् सवितर् नि यच्छ अप्रमृत्यु कृणुहि सर्ववीरो ॥२॥
गोमन्तं पशुमन्तम् अश्ववन्तं होमं तं पशुभ्यां जुहोमि ।
रायस् पोषं सवितर् नि यच्छ अप्रमृत्यु कृणुहि सर्ववीरो ॥३॥
बृहस्पतेर् आकूतिर् असि सहस्री पुष्टिः ।
बृहस्पतेर् आकूत्यां सहस्र्यां पुष्ट्यां सहस्रं पशून् पुषेयम् ॥४॥
प्रजापते[र्] आकूतिर् असि सहस्री पुष्टिः ।
प्रजापतेर् आकूत्याम् सहस्र्यां पुष्ट्यां सहस्रं पशून् पुषेयम् ॥५॥
ब्रह्मण आकूतिर् असि सहस्री पुष्टिः ।
ब्रह्मण आकूत्यां सहस्र्यां पुष्ट्यां सहस्रं पशून् पुषेयम् ॥६॥
अग्निः पृथिव्या [अ]धिपति[स्] सोमस् त्वावतु यदि त्वा विधा सो ? ।
अधिपतिर् अस्य् अधिपतिं मा कृणु गवाम् अश्वानां पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूत्वा [अ]चारस्य ॥७॥
वायुर् अन्तरिक्षस्याधिपतिस् सोमस् त्वावतु यदि मि या वि ... ? ।
अधि[पति]र् अस्य् अधिपतिं मा कृणु गवाम् अश्वानां पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूत्वा [अ]चारस्य ॥८॥
सूर्यो दिवो ऽधिपतिस् सोमस् त्वावतु यदि मि त्वा वि ... ? ।
अधि[पति]र् अस्य् अधिपतिं मा कृणु गवाम् अश्वानां पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूत्वा [अ]चारस्य ॥९॥
विन्दन्ति वसवो विन्दन्ति मे गृहान् प्रजां पशून् विर्सि मूर्ति प्रतिष्ठाम् ॥१०॥
आ यन्ति वसव आ यन्ति मे गृहाः प्रजाः पशवो विशिर् मूर्तिर् प्रतिष्ठा ॥११॥
सहन्ति वसवस् सहन्ति मे गृहान् प्रजां पशून् विर्सि मूर्ति प्रतिष्ठाम् ॥१२॥
जितिर् असि जीयासं पार्थिवैः पृतना जीयासम् ॥१३॥
विजितिर् असि वि जीयासं मानुषैः पृतना जीयासम् ॥१४॥
संजितिर् असि सं जीयासं सर्वैः पृतना जीयासम् ॥१५॥ ॥ऋ° ४॥

१९.५४

ओषधीनां प्र बोधय श्वावे मानु मन्यताम् ।
प्राणेन् विद्वान्त् सामान्यात्? व्याना॰ कीर्तयतु च नः ॥१॥
आ वर्तय नि वर्तयाप वर्तया कुरु ।
विश्वाभ्य आशाभ्यो विश्वानि मा रेवत्या मा विदा मा वित? ।
अक्तस्य? पात महतम् समिद्ध आत्मवेदसि ॥२॥
तस्मात्ते मन[ए]नि मा कृधु तस्मात् मा वधम् ? ॥३॥
अकिताम्यासितानं मा कृधु तस्मात् मा छित्सि ? ॥४॥
कालाय कालतं मा कृधु तस्मात् मा मनम् ? ॥५॥
तत्वायर्धेन् यज्ञे मे वर्धय ।
तस्मात् सम्भार्यां पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूया[म्] मन्यायत ॥६॥
तस्मादि[वर्धेन यज्ञे मे वर्धि] वर्धय ।
तस्मात् सम्भारणात् पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूया [म्]न्यायस ॥७॥
तत्वायवर्धेन यज्ञे मे प्र वर्धय ।
तस्मात् सम्भारणां पुरुषाणां ब्रह्मचारिणां भूया [म्]न्यायस ॥८॥
यद् च वातं यद् आकाशं सर्वं तद् मदां विभर् ॥९॥
यद् च दिव्यं यद् पार्थिवं सर्वं तद् मदां विभर् ॥१०॥
जीवात् तु जीव्यास्मि सर्वम् आयुर् जीव्यासम् ॥११॥
उपजीवत् तुर जीव्यास्म [सर्वम् आयुर् जीव्यासम्] ॥१२॥
संजीवत् तु सं जीव्यासं सर्वम् आयुर् जीव्यासम् ॥१३॥
जीवलात् तु जीव्यासं सर्वम् आयुर् जीव्यासम् ॥१४॥ ऋ॰ २४

१९.५५

विराड् असि विराजं मा कृधु ।
तस्मात् ते यशो भक्षीय ॥१॥
स्वराड् असि स्वराजं मा कृधु ।
तस्मात् ते भक्षं भक्षीय ॥२॥
सम्राड् असि सम्राजं मा कृधु ।
तस्मात् ते मधु भक्षीय ॥३॥
दीर्घायुत्वाय ते हविषा जुहोमि जीवातवे न मर्तवे ।
इदं ते मधुर् मा[धा]र्व घ्रा सुधान्य मामयम् ? ॥४॥
अभिज्ञैत्रैय ते हविषा जुहोमि जीवातवे न मर्तवे ।
इदं ते मधुर् मा[धा]र्व घ्रा सुधान्य मामयम् ? ॥५॥
सुवीरैय ते हविषा जुहोमि जीवातवे न मर्तवे ।
इदं ते मधुर् मा[धा]र्व घ्रा सुधान्य मामयम् ? ॥६॥
सर्ववीरैय ते हविषा जुहोमि जीवातवे न मर्तवे ।
इदं ते मधुर् मा[धा]र्व घ्रा सुधान्य मामयम् ? ॥७॥
प्रजावता ते हविषा जुहोमि सर्वेद् मा पात्र योन्याम् ।
[सुजा]ते आयतां पुनर् दधाने मासि सूतवे ॥८॥
सुमङ्गला ते हविषा जुहोमि सर्वेद् मा पात्र योन्याम् ।
सुजाते आयतां पुनर् दधाने मासि सूतवे ॥९॥
सुपुत्रेय ते हविषा जुहोमि सर्वेद् मा पात्र योन्याम् ।
सुजाते आयतां पुनर् दधाने मासि सूतवे ॥१०॥
भूतेन [ते] हविषा जुहोमीमं देवासो ऽभि विहुराय ।
तस्मिन्न् एव पदावस् सं विशन्तु चतुष्पदाम् उत या ये द्विपादः ॥११॥

वित्तये ते हविषा जुहोमीमं देवासो ऽभि विहुराय ।
तस्मिन्न् एव पदावस् सं विशन्तु चतुष्पदाम् उत या ये द्विपादः ॥१२॥
सुभूतेन ते हविषा जुहोमीमं देवासो ऽभि विहुराय ।
तस्मिन्न् एव पदावस् सं विशन्तु चतुष्पदाम् उत या ये द्विपादः ॥१३॥
संभूतेन ते हविषा जुहोमीमं देवासो ऽभि विहुराय ।
तस्मिन्न् एव पदावस् सं विशन्तु चतुष्पदाम् उत या ये द्विपादः ॥१४॥
क्षेम्येण ते हविषा जुहोमि क्षेम्यो भवासि पशुभिश् च वीरै[ः] ।
इन्द्राग्नी त्वा सयुजा सखायौ विश्वेभिर् देवैर् अनु सं वृधेताम् ॥१५॥
प्रतिष्ठितेन [ते] हविषा जुहोमि प्रति तिष्ठासि पशुभिश् च वीरैः ।
इन्द्राग्नी त्वा सयुजा सखायौ विश्वेभिर् देवैर् अनु सं वृधेताम् ॥१६॥
संभूतेन [ते] हविषा जुहोमि सं भवासि पशुभिश् च वीरैः ।
इन्द्राग्नी त्वा सयुजा सखायौ विश्वेभिर् देवैर् अनु सं वृधेताम् ॥१७॥
प्रभूतेन [ते] हविषा जुहोमि प्र भवासि पशुभिश् च वीरैः ।
इन्द्राग्नी त्वा सयुजा सखायौ विश्वेभिर् देवैर् अनु सं वृधेताम् ॥१८॥ ॥ऋ॰ १८॥
॥अनु॰ १४॥

अथर्ववेदे पैप्पलादशाखायाम् एकोनविंशः काण्डः समाप्तः ॥

२०.१

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा ये ऽवदन्न् ऋतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधाना[स्] तुरीयेणामन्वत नाम धेनो[ः] ॥१॥
स वेद पुत्रः पितरं मातरं सूनुर् भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्याम् और्णोद् अन्तरिक्षं स स्वर् विश्वा भुवो ऽभवत् स आभवत् ॥२॥
अथर्वाणं पितरं विश्वदेवं मातुर् गर्भं पितुर् असुं युवानम् ।
अयं चिकेतानृतस्य धाम निरयस रायः परिधीर् [अप]दवत् ॥३॥
शिवास् त एका [अ]शिवास् त एका[स्] सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
गुहा [वा]चो निहितास् तिस्र एता एकेद् इदं वि चचार सर्वम् ॥४॥
अदिति[र्] द्यौर् अदितिर् अन्तरिक्षम् अदितिर् माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर् जातम् अदितिर् जनित्वम् ॥५॥
दितेः पुत्राणाम् अदितेर् अकार्षं महाशर्मणां महताम् अनर्मणाम् ।
तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैषां ये अपसः परो ऽस्ति कश् चन ॥६॥
वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीम् अदितिं नाम वचसा करामहे ।
यस्याम् इदं विश्वं भुवनम् आविवेश सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु ॥७॥
महीम् ऊ षु मातरं सुव्रतानाम् ऋतस्य पत्नीम् अवसे हुवेम ।
तुविक्षत्राम् अजरन्तीम् उरूचीं सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम् ॥८॥
सुत्रामाणं पृथिवीं द्याम् अनेहसं सुशर्माणम् अदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्राम् अनागसम् अस्रवन्तीम् आ रुहेमा स्वस्तये ॥९॥
एकया च दशभिश् चा [सु]हुते द्वाभ्याम् इष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश् च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर् वायव् इह ता वि मुञ्च ॥१०॥
॥ऋ॰ १०॥

२०.२

यथा विद्वा अरंगरत् अर्वन्तानि सं दि वृष्टिम् इन्द्रः ...
सं मातुरिदर् धनाने मन्दो अंशं धा यद् तद् तस्मात् देवयन्त ॥१॥
यद्वेन यद्वम् अयजन्त देवास् तानि धर्माणि प्रथमान्य् आसन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥२॥
यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः ।
स देवानाम् अधिपतिर् बभूव सो अस्मासु द्रविणम् आ [दधातु] ॥३॥
[धाता दधातु नो रयिं प्राचीं जीवातुम् अक्षिताम्] ।
[व]यं देवस्य धीमहि सुमतिं सत्यधर्मणः ॥४॥
धाता विश्वानि दाशुषे दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवासो अदितिः सजोषाः ॥५॥
धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर् निधिपतिर् नो अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविणं दधातु ॥६॥
धाता प्रजानाम् उत राय ईशे धातेदं विश्वं भुवनं जजान ।
सं दाशुषे वहतु भूरिपुष्टा तस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥ ऋ॰ ७

२०.३

वार्त्राहत्याय शवसे पृतनासाह्याय च । ... [अभी] वरिवोविद् अभी ।
... ॥१॥
सम्राड् असि ... बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु ।
... ॥२॥
... ।
... ॥३॥
... ।
... ॥४॥
[ऊर्जो] नपात् ... ।
... ॥५॥
... ।
... ॥६॥
... ।
... [॥७॥]
... ।
... ॥८॥
... ।
... ॥९॥
... ।
... ॥१०॥ ऋ॰ १०

२०.४

अनु मन्यताम् अनुमन्यमाना प्रजावती सुमनाः ? [अ]क्षितमावती ।
तस्यै वयं हेळसि मापि भूम सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु ॥१॥
अनुमते अनु मन्यस्व नो ? या ते वयं यज्ञिया या तनूभिः ।

या ते गोर्षि ? तनूषु या प्रजायां या गोषु ओषधीषु अप्सु अन्तः ॥२॥
आ नो देव्य् अनुमतिर् जगम्यात् सुक्षेत्रता[यै सु]वीरतायै सुजाता ।
भद्रा ह्य् अस्याः प्रमतिर् बभूव सेमं यज्ञम् अवतु देवजुष्टा ॥३॥
अनुमतिर् विश्वम् इदं जजान यद् एजति चरति यच् च तिष्ठति ।
तस्यास् ते देवि सुमतौ स्यामानुमते ऽनु हि मंससे नः ॥४॥
यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीते ऽनुमते अनुमतं सुदानु ।
तेन त्वं सुमतिं देव्य् अस्मे इषं पिन्व विश्ववारं सुवीरम् ॥५॥
प्रजाम् अस्य त्वा प्रजया त्वानु प्राणन्तु प्रजा[स् त्वम् अनु] प्राणिहि ।
शुक्रं ते शुक्र नीना[मि] चन्द्रं चन्द्रेणामृतम् अमृतेन प्रातिहृणामिदं ? ॥६॥
तपसस् तनूर् असि प्रजापतेर् वर्णः ।
परमेण पशुना क्रीयसे ॥७॥
अभि त्वा देवं सवितारम् ओण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधाम् अभि प्रियं मतिम् ॥८॥
ऊर्ध्वा यस्यामतिर् भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिर् अमिमी[त] सुक्रतुः कृपा स्वः ॥९॥
अयं सहस्रम् आ नो दृशे कवीनां मतिर् ज्योतिर् विधर्मणि ।
ब्रध्नः समीचीर् उषसस् सम् ऐरय ॥१०॥ ऋ॰ १०

२०.५

अरेपसस् सचेतसस् स्वरे मन्युनस्तमा[श] चितयो ? गोः ॥१॥
सम् एत विश्व ओजसा पतिं दिव एष इद् भूर् अतिथिर् जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनम् आविवासत् तं वर्तनिर् अनु वावृत एकम् इत् पुरु ॥२॥
कुहूं देवीम् अमृतां विद्मनापसम् अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो ददातु श्रवणं पितॄणां तस्यै ते देवि हविषा विधेम ॥३॥
कुहूर् देवानाम् अमृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषश् शृणोतु ।
सं दाशुषे किरतु भूरि पुष्टा रायस् पोषं चिकितुषे दधातु ॥४॥
सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
मित्रो वस् सर्वान् सं सृजाति मयि संज्ञानम् अस्तु वः ॥५॥
॥ऋ॰ ५॥ ॥अनु॰ १॥

२०.६

शं नो अदितिर् भवतु व्रतेभिः शं न इन्द्रो विश्वे देवा मरुतो [शम्] स्वर्काः ।
तद् अप्तस्यं सयुजा सत्यधर्मा सरस्वत्य् अनुमतिर् नि यच्छात् ॥१॥
त्रयं नो देवा ... शर्म नो यच्छ[त] द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत् पिबद् ऊर्जयमानम् आशितं तद् अस्मभ्यं शं योर् अरपो दधात ॥२॥
बृहस्पते सवितर् बोधयैनं संशितं चित् संतरं सं शिशाधि ।
वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनम् अनु मदन्तु देवाः ॥३॥
अमुत्रभूयाद् अध यद् यमस्य बृहस्पतेर् अभिशस्तेर् अमुञ्चः ।
प्रत्य् औहताम् अश्विना मृत्युम् अस्मद् देवानाम् अग्ने भिषजा शचीभिः ॥४॥
इन्द्रावरुणा सुतपाव् इमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरम् उप यातु पीतये ॥५॥

इन्द्राविष्णू मधुमत्तमस्य वृष्णस् सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वाम् अन्धः परिषिक्तम् अस्मे आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥६॥
उरुं विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस् कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥७॥
दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या उरोर् वा विष्णो महो अन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता मधुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणाद् ओत सव्यात् ॥८॥
विष्णोर् नु कं प्र वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस् त्रेधोरुगायः ॥९॥
प्र तद् विष्णु[स्] स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व् अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥१०॥ ऋच° १॥

२०.७

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्यानि ? नाम।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतम् आ चरण्यात् ॥१॥
अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणा।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतम् उच् चरण्यात् ॥२॥
उन् नम्नय पृथिवीं भिन्द्धीदं दिव्यं नभः।
उद्नो दिव्यस्य नो धातर् ईशानो वि ष्या दृतिम् ॥३॥
अपक्रामन् पौरुषेया[द्] वृणानो दैव्यं वच[ः]।
प्रणीतीर् अभ्य् आ वर्तस्व विश्वेभिस् सखिभिस् सह ॥४॥
पितेव नो मृळया अवसा ? इन्द्र धाता विधर्ता भुवनेष्व् अस्तु।
नेमेन मह्यं मधुधाङ् वेधि नेमेनामुष्मै पितृधाङ् वेधि ॥५॥
अयं पिता पितृधाङ् मातुलस्य यदीदं शृणोति यद् अहं ब्रवीमि।
[नेमेन मह्यं मधुधाङ् वेधि नेमेनामुष्मै पितृधाङ् वेधि] ॥६॥
यत्रैवेनं निर्ऋत आ रभस्वात्रैवेनं निर्ऋते प्र क्षिणीष्व् अत्रैवेनं सर्वं वि वृश्च।
नेमेन मह्यं मधुधाङ् वेधि नेमेनामुष्मै पितृधाङ् वेधि ॥७॥
तत् त्वा पितर् उप ब्रुवे तन् नो शृण्व् अस्मिन् निहवे इन्द्रो यथासः।
इमं देवी निर्ऋतिस् संविदाना गुरु ? छिनत्ति पदवन्त्य पाशात् ॥८॥
यद् अस्मृति च[कृ]मा किं च तेनोपारिम ? [च]त्वेद् जातवेदः।
तस्मात् पाहि त्वं नः प्रचेतश् शुभे सखिभ्यो अमृतत्वम् अस्तु नः ॥९॥
अग्ने ऽध्यक्षो न एधि पाहि नो दुरितात् पाहि।
दुष्वप्न्यान् मलाम्या [अ]ग्न्याद् यक्ष्मात् नः पाहि ॥१०॥ ऋच° २॥

२०.८

त्विषिर् असि त्विषिमन्तो भूयास्म पशुमन्तो गोमन्तः प्रजावन्तो वर्चस्विनः ॥१॥
यद् उग्र आसिञ्चन् अतः क्षीरम् अतो दधि।
इदं तद् विश्वरूपं वः पयो हरामि वीरुधा[म्] ॥२॥
यद् उग्र ओषधीभ्यो ऽभ्यस् संभरथा मधु।
इदं तद् विश्वरूपं वः पयो हरामि वीरुधाम् ॥३॥
यो ऽस्य् उ वसुनावसि स्वपन्तम् इच्छ पुरुषं शयानम् अवाश्रितम् ?।
अपरमेण धर्मणाहमपरेण धर्मणा यो ऽस्मान् पदयो दधत् ॥४॥
ये नो गृहे ब्रह्मणा मन्यमाना घोरां वाचं मिथुया नो भुवन्ति।

ये नो द्विषो बलिदवो भवन्तु दुर्गोवम् अस्मत् परि ते हरन्तु ॥५॥
अयम् अग्निस् सत्पतिर् वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीन् अजयत् पुरोहितः।
नाभा पृथिव्या निहितो दविद्युतद् अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥६॥
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्य् उत्तमानि सन्तु।
सं जास्पत्यं सुयमम् आ कृणुष्व [श]त्रूयताम् अभि तिष्ठा महांसि ॥७॥
अग्ने सपत्नान् प्र णुद जातान् प्र[त्य् अजातान्] जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानश् शर्म यच्छ त्रिवरूथम् उद्भित् ॥८॥
प्राग्न्यान् सपत्नान् सहसा सहस्व प्रत्य् अजातान् जातवेदो नुदस्व।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगायानु त्वा देवा [व]सवो जुषन्ताम् ॥९॥ ऋच° ३॥

२०.९

यो नो मित्रावरुणा अभिदासात् सपत्नस् स अभिदासतो बृहस्पते।
सर्वं तम् अग्ने अधरं पादयास्मद् यथेन्द्राहम् उत्तमश् चेतयानि ॥१॥
अहम् एषाम् उत्तमश् चेतयानि मम वशाम् उप तिष्ठन्तु सर्वे।
आयुष्मान् धृतपृष्ठम् सुवर्चा वसोर् मध्ये दीदिहि जातवेदः ॥२॥
इमम् अग्ने अधरं पादयास्मद् ब्याघाम अभिपातं सपत्नम्।
ये नः पूर्वा नो ऽपरे ते भवन्तु विश्वा द्वेषांस्य् अभितो नु वृङ्धि ॥३॥
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरम् ? सर्वो बलिहृता ? उपासताम्।
सजातानां मध्यमेष्ठा अहं स्यां स्वे क्षेत्रे सुधिते वि राजा ॥४॥
आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वांसं सरस्वन्तं पुष्टिपतिं रयीणाम्।
रायस् पोषं श्रवस्युं वसानम् इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥५॥
यस्य व्रते पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रतम् उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टिपतिर् निविष्टस् तं सरस्वन्तम् अवसे हुवेम ॥६॥
ये ते सरस्वन्न् ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः।
तेभिर् नो ऽविता भव ॥७॥
दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ? अपां गर्भम् वृषभम् ओषधीनाम्।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तं सरस्वन्तं रयिष्ठां सादयेह ॥८॥
इन्द्रस्य कुक्षिर् असि सोमधान आत्मा देवानाम् असि विश्वरूपः।
इह प्रजा जनय यास् त आसु या अन्यत्रेह तास् ते रमन्ताम् ॥९॥
इदेनस् सुपर्णो दिव्यो नृचक्षास् सह[स्र]पाद् शतयोनिर् वयोधाः।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् पराभृतम् अस्मत्कम् अस्तु पितृषु स्वधावत् ॥१०॥ ऋच° ४॥

२०.१०

अति धन्वान्य् अत्य् अपस् ततर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः।
तरन् विश्वा [अ]वरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगाम ॥१॥
आगन् देवस् सविता सर्वतातये ज्योतिर् अविदामा नचर्मि।
मह्यं तायम् ? अवितिर् आदधे सर्वेत्र सोमं मघमित्र ? अत्र भद्रम् ॥२॥
उद् वयं तम[स]स् परि ज्योतिष् पश्यन्त उत्तरम्।
[देवं देवत्रा सूर्यम् अगन्म ज्योतिर् उत्तमम्] ॥३॥
पतिर् दिवः पतिर् अग्निः पृथिव्याः पतिर् विश्वस्य भुवनस्य राजति।
पतिर् विश्वा ओषधीर् आ विवेश पशीनाम् अग्निर् गुहपाय ? सोमम् ॥४॥
सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ सयुजा इह स्ताम्।
शतशारदिभ्यः परि वृङ्ग्ध एतं त एतं स्वस्ति जरसे नयन्तु ॥५॥
यन् त आयुर् अतिहितं पराचैर् अपानः प्राणो य उ वाते परेतः।

अग्निर् तद् आहार् निर्ऋतेर् उपस्था[त्] तद् आत्मनि पुनर् आ वेशयामि ॥६॥
मा त्वा प्राणो हासीद् यस् त्वा प्रविष्टो मा त्वापानो ऽवहाय परा गात्।
संरभ्य ? प्रति शरदस् सुवर्चा [अ]ग्निष् टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥७॥
राकाम् अहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नस् सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्व् अपस् सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायम् उक्थ्यम् ॥८॥
यास् ते राके सुमतयस् सुपेशसो याभिर् ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर् नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥९॥
या राका या सिनीवाली या गुङ्गूर् या सरस्वती।
इन्द्राणीम् अह ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥१०॥
या सुपाणिस् स्वङ्गुरिस् सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पत्न्यै हविस् सिनीवाल्यै जुहोतन ॥११॥
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानाम् असि स्वसा।
जुषस्व हव्यम् आहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१२॥
या विश्वत इन्द्रम् असि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसा चोदयस्व ॥१३॥ अनु° १०

२०.११

उप ह्वये [सुदुघां धेनुम् एतां सुहस्तो गोधुग् उत दोहद् एनाम्।]
[श्रेष्ठं सवं सविता साविषन् नो ऽभीद्धो घर्मस् तद् उ षु प्र वोचम्] ॥१॥
[हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्सम् इच्छन्ती मनसाभ्य् आगात्।]
[दुहाम् अश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय] ॥२॥
[गौर् अमीमेद् अभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ् ङकृणोन् मातवा उ।]
[सृक्वाणं घर्मम् अभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः] ॥३॥
सूयवसाद् भगवती [हि भूया अथो वयं भगवन्तस् स्याम।
[अद्धि तृणम् अघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धम् उदकम् आचरन्ती] ॥४॥
संजानाना उप सीदन्न् अभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यन् नमस्यम्।
रिरिक्वांसस् तन्वः कृण्वत ? आपस् सखा सख्युर् निमिषि रक्षमाणा[ः] ॥५॥
समिद्धो अग्निर् अश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम्।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति कारवः ॥६॥
समिद्धो अग्निर् अश्विना रथी दिवस् तप्तो घर्मो दुह्यते वाम् इषे मधु।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥७॥
यद् उस्रियास्व् आहुतं घृतं पयो ऽयं स वाम् अश्विना भाग आ गतम्।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥८॥
तप्तो वां घर्मो नक्षति स्वहोता प्र वाम् अध्वर्युश् च[र]ति पयस्वान्।
मधोर् दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पय[स] उस्रियायाः ॥९॥
उप द्रव पयसा गोधुग् ओषम् आ घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः।
वि नाकम् अख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणम् उषसो वि राजति ॥१०॥ ऋच° १॥

२०.१२

स्वादुष्कृतश् शुचिर् देवेषु घर्मो वो अश्विनोश् चमसो देवपानः।
तम् उ विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्य् आस्ना रिहन्ति ॥१॥
सुगा वो देवास् सदना कृणोमि य आजग्मेदं सवनं जुषाणा[ः]।
वहमाना भरमाणा स्वा ? वसूनि वसुं घर्मं दिवम् आ रोहतानु ॥२॥
शिवा नश् शंतमा भव सुमृळीका सरस्वति।
मा ते युयोम संदृशः ॥३॥

उद् एनं देवो अनयीद् धर्मसेन बृहस्पतिः।
यज्ञमानाय सुन्वते सर्वं तं रिरपासि मा ॥४॥
सं मा सिञ्चन्तु मरुतस् [सं पूषा सं बृहस्पतिः।
[सं मायम् अग्निस् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
[दीर्घम् आयुः कृणोतु मे] ॥५॥
इडैवास्मिन् अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञम् अस्थित वैश्वदेवी ॥६॥
द्रप्सश् चस्कन्द [पृथिवीम् अनु द्याम् इमं च योनिम् अनु यश् च पूर्वः।
[समानं योनिम् अनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्य् अनु सप्त होत्राः] ॥७॥
यस् ते द्रप्स[स्] स्कन्द[ति] यस् ते अंशुर् बाहुच्युतो धिषणाया उपस्था[त्]।
अध्वर्योर् वा परि [वा] यः पवित्रात् तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥८॥
य[स् ते] द्रप्सः पतितो ऽवश् च यः परस् स्रुचा।
अयं देवो बृहस्पतिस् सं तं सिञ्चतु राधसे ॥९॥
यस् ते द्रप्सः पतितः पृथिव्यां धानासोमः परीवापः करम्भः।
अयं देवो बृहस्पतिस् सं तं सिञ्चतु वर्चसे ॥१०॥ ऋच° २॥

२०.१३

पयस्वतीर् ओषधयः पयस्वन् मामकं वचः।
[अथो पयस्वतां पय आ हरामि सहस्रशः] ॥१॥
अयम् अग्निर् वरेण्य आयुर् दे विदथतो दधत्।
पुनस् त्वा प्राण आ यातु परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥२॥
अजात् विश्वजनीनां विद्याम् उदक्षितीनाम्।
दूरात् त्वा मन्ये सृतु ? ईर्ष्याया नाम भेषजम् ॥३॥
तत् संबेगस्य भेषजं तद् असुना सं गृभाहितम् ?।
अग्नेर् इव दहतो असवस्य दहतो यथा ॥४॥
न जाताम् ? उत् सांप्याभि इव वज्राग्निम् इव वारये ॥५॥
अ न मा न स्मि अ ए यं ? मन्यन्ते इरयाद् अधि।
अमुष्मिन्न् अस्य भावम् आ दृम्यत तत्रैवेनां वि दृम्यसि ॥६॥
तिरश्चिराजेर् असिताद् पृदाकोर् अघ संभृतम्।
तद् गङ्गवर्धनो विषम् इयं वीरुद् अदूदुषत् ? ॥७॥
इयं वीरुन् मधुजाता मधुश्चुन् मधुला मधूः।
सा विहृतस्य भेषज्य् अथो मशकजम्भनी ॥८॥
यतो दष्टं यतः पीतं तद् अस्मान् निर् धमामसि।
अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥९॥
अयं यो वक्रो विपरुर् व्यङ्गो ? मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि।
तानि त्वं देव सवितर् इषीकाम् इव सं नमः ॥१०॥ ऋच° ३॥

२०.१४

यद् अश्वम् अधि बहुधा विरूपं हिरण्यम् अश्वम् उत गाम् अजाम् अविम्।
यद् एव किं चित् प्रतिजग्रहा[हम् अ]ग्निष् टद् विश्वाद् अनृणं कृणोतु ॥१॥
यद् आशसा मे चरतो अभी अनु याचमानस्य वदतो बिभृयुषे।
यत् मे तन्वो रजांसि प्रविष्टं ? सरस्वती तद् आ पृणाद् घृतेन ॥२॥
यद् आरिम प्रतिगृह्णन्तः अ ये ता श शि या सि ? सन्तो नयम् अग्ने चरन्तः।
तन् नस् तस्माज् जातवेदो मुमुग्धि वैश्वानरः प्रति हव्या गृभाय ॥३॥
पशुपः पाशान् मनसश् च पाशाद् दीक्षायाः पाशाद् उत शक्वरीणाम्।
तस्मान् मुमुग्धि विश्वा[व]सो तन्वो वायुर्वा वातं सजामहे वयम् ॥४॥
[ये] असुर मे विश्वे देवा यो ऽदात् सवितेदम्।

[illegible]

२०.१५

[illegible]

२०.१६

[illegible]

२०.१७

[illegible]

कौ १	परि मो सुकृधि शपथ हृदम् अग्निर् इवा दहन् ।	• • पृधि • हृदम् ... दहन्
	शपातम् अत्र त्वं अहि दिव्या वृक्षम् इवाशनिः ॥२॥	... शपम् इवाशनी
कौ ०.११.१	यो नः शपाद् अशपतः शपतो यश् च नः शपात् ।	• • शपात शपते शपतो...
	वृक्ष इव विद्युता ह[त आ] मूलाद् अनु शुष्यति ॥३॥	वृक्षेव विद्युता...
कौ १.७.५	शपारं यन्तु शपथा यस् सुहार्दं तेन [न]स् सह ।	शपथाः • • • सहान् तेन • •
	जिह्वाम् उ लक्षणस्य सुहार्दः पृष्टीर् अपि शृणीमसि ॥४॥	जिह्वा... दुहान्दः • अप शृणी°, जिह्वाम् ... [शृणी° (हिरण्य.)]
	यं द्विष्मो यश् च नो द्वेषद् अयायुर् यश् च नः शपात् ।	
	स म पेप्स मि या य क्षा सं ? तं मृत्य् अस्यामि मृत्यवे ॥५॥	• तं • अस्यान •
कौ ०.११९.२	प्रेतो यन्तु व्याध्य× प्रानुध्या× प्रो मशस्तयः ।	• यन्तु अव्याध्यः प्रानुध्याः प्रशस्तयः।
	अग्नी रक्षस्विनीर् हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः ॥६॥	अग्नी रक्षस्वन् • • • दुरस्वनी
कौ ०.१२०.१	प्र पतेत× पापलक्ष्मि नश्येत× प्रामुत× पत ।	• पतेत... परामुतः पत।
	अयस्मयेनाङ्केन यं द्विष्मस् तस्मिन् त्वा सजामः ॥७॥	... ता हृतामः
कौ २	या त्वा लक्ष्मी× पतयालूर अजुष्टा हरि [च]स्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।	ला • • पतयालीरजुष्टा • • वन्दनेव वृक्षम्
	अन्यत्रास्मत् सवितस् ताम् इतो धा हिरण्यहस्तो वसु नो [र]राणः ॥८॥	• सवितन् ताम् • • °हस्ते वसु • •
कौ १.१८.२	निर् अरणिं सविता साविषत् पदोर् निर् हस्तयोर् वरुणो मित्रो अर्यमा ।	• अरणीं • सविषत् पदोर्हस्तोर् • • • •
	अपादिया अनुमती रराणा प्र यत् सुवात् सविता सौभगाय ॥९॥	नर् आदितत्यमती • प्र मु हत • •
कौ ०.१२०.३	एकशतं लक्ष्मीस् साकं मर्त्यस्य [या] जनुष इह जाताः ।	• कविसन् • • जनुरेह जात
	तासां पापिष्ठा उद् अत× प्र हिण्मश् शिवा [अ]स्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ ॥१०॥ ॥अ° १॥	• • तर् अत... यच्छ ॥१॥

२०.१८

कौ १.१८.१ab	यद् त आत्मन् तन्वां घोरम् अस्ति यद् वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।	• तन्वं तन्वा • अस्ति यद् • केषु • •
	तद् ते विद्वान् अप बाधय पापां ? प्र तत् सुवात् सविता सौभगाय ॥१॥	• • विद्वा अप बाधयेतां • त्वा सुवा • •
कौ १cd	निर् लक्ष्म्यं ललाम्यं निर् अरातिं सुवामसि ।	निर् लक्ष्मं ललाम्यनिर् अराती •
	अथा नो ऽस्य सीदतो रायस् पोषम् इवा सुव ॥२॥	यथा ... दा •
च ५.१.४	अग्निम् अच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।	• यच्छ देवयताद् मनांसि चक्षुंषिव • • चरंति
	यद् ईं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्ना[म्] ॥३॥	यदे सुवाते • • वेतो • जयते • •
कौ १९.५.१ च ०.२०.१	इन्द्रो राजा जगतश् चर्षणीनाम् अधि क्षमि विषुरूपं यद् अस्ति ।	... विषरूपं • •
	ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश् चिद् अर्वाक् ॥४॥	... राध • • अर्वाक्
	शकुनिर् भूत्वा पिबस् तु पिप्पलं पत्या निषिद्य पवि पाप पत्न्या ।	... शवान् निषद्य...
	भीमा घोरा लक्ष्म्योस् सामन्यास् ? ता इतो हविषा निर् यजामः ॥५॥	... घिरो • • •
	या ते पूर्वेयुः या धने प्रजा लक्ष्मीर् या वा ते वसन्ति ।	... सविमर् ... वसंति
	तां बृहस्पतिर् हविषा जुषाणो मिनक्तु ? प्रति दम्भी ? मतिदूरम् अस्मात् ॥६॥	... अविदूरम् •
कौ १.१८.४ab	रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां वधामीम् ? उत ।	रिश्यद्ी रिशदती घोषेदी • •
	यदि पुण्यं यद् अपुण्यं ब्रह्मणा ता अनीनशम् ॥७॥	• पुण्य पादयं • • •
	प्रलोपन्तीम् उत्सांह्वनीम् उत चित्राम् उतारणीम् ।	प्रलोपन्तम् उत्साह्निनीम् चत्र् • उतारिणी
	सिंहीं ज्येष्ठलक्ष्म्यं ध्यामीं नाशयामसि ॥८॥	• °लक्ष्मं • •
	अनूप्यायनीं प्रतिसरां विचक्षाम् उत वंसतीम् ।	अनुप्यायनी प्रतिसारां विचक्षाम् • •
	रोदस्य पत्नो रोदनां प्रपदसाम् अलक्ष्म्यम् ॥९॥	• पत्नो • • अलक्ष्म्या
	वामयुवां विवृषन्तीय ? पपन्तीं तपनीम् उत ।	... पपन्ती • •
	असपत् ? तोमर्यसिनीम् अज्ञां पद्यन्तीं लक्ष्मीं ब्रह्मणा ताम् अनीनशम् ॥१०॥ ॥अ° २॥	• • मपा बदन्त लक्ष्मिम् ... ॥२॥

२०.१९

	आमन्त्यां वचक्षां संपिवन्तीं शाक्वरीम् ।	आमन्तियां • संपिवन्ती शाक्वरीम्
	¿ उद् तां अनं समां प्रणाशयाम् अलक्ष्मीम् ? ॥१॥	
	या ते घोरा तन्वाम् आविवेश या[स्] ते लक्ष्मीम् सर्वा[स्] समक्ताः ।	
	अग्निर् टे तास् चरति सौभगायाय शुम्भन्तु बृहस्पते रणाय ॥२॥	
	अदेवघ्नीं पत्नयापतिघ्नीं बृहस्पत [इ]न्द्रापुत्रघ्नीं लक्ष्मीं ता [अ]स्मै सवितस् सुव ॥३॥	• °विति बृहस्पती • लक्ष्मी • स्वै

[illegible]

खिलानि

[illegible]

२०.२०

[illegible]

	लक्ष्मीर् या× पुण्या× कल्याणीर् अस्मै ताम् सवितस् सुव ॥६॥	...कल्याणीन् • ता सवितुव सुवा
	अलक्ष्मीम् सम् अलिम्पत सम् अलिम्पत लक्ष्म्यः ।	सविवन • अलिम्पतुम् • °तु लक्ष्मा
	अजैषुर भद्रा लक्ष्मी× परा पापीर् अनीनशम् ॥७॥	अजैषुर् • सविवर...
	लक्ष्मीणां लक्ष्मीणाम् अधिपासि ।	लक्ष्मीणां...
	तास् ते ऽहं सुखो गोप्स्यामि देवत्रा हि बभूविथ ॥८॥	तान् तां • गोप्स्यामि देवत्र • बभूविथ
	सभा च मा समितिश् चावतां प्रजापतेर् दुहितरः प्रचेतसा ।	• • मा सवितुव ...
	येन वदाम्य् उप मा स शिक्षाद् अन्तर् वदामि हृदये जनानाम् ॥९॥	• वदाँ • • स शिक्षान्तर् • • •
	सभा सेना समितिश् चावतां प्रजापतेर् दुहितर× प्रचेतसा ।	• • सवितुव स्वतां • दुहितरः •
	येन [वदाम्य् उप मां] स शिक्षा[द् अ]न्तर् वदामि हृदये जनानाम् ॥१०॥ ॥अ° ४॥	• × × × × × सा • • वदानि • • ॥४॥

२०.२१

	मां [वदन्तु मानु सर्वे] वदन्तु मां प्राणन्तु मानु प्राणन्तु सर्वे ।	• × × × × × × × • मा • मनु • •
	मां विशन्तु मानु सर्वे वि[शन्तु मानु सर्वे] एकव्रता भवन्तु ॥१॥	• • मनु • • × × × × × × एकव्रतो •
	सूर्यो मा चक्षुष× पातु बृहस्पतिर् वाचस् सोमो [राजा सभा]याः ।	... पान्तु • वाचान् • × × × × च
	पेन्द्रोपेन ? इतो भवामि ॥२॥	• द्विशे •
कौ ०.१९.२	वेद वै ते सभे नाम सुमद्रासि सरस्व[ति] ।	...नाम सुभद्रासि • ×
	[अथो] ये ते सभासदस् ते मे सन्तु सुवाचसः ॥३॥	× × • ते समासदसे • • •
कौ १९.८.६	इमा या ब्रह्मणस् पते विषूचीर् वात ईरते ।	...विषुचेर् वात ईवते
	सध्रीचीर् इन्द्र ता× कृत्वा मह्यं शिवतमा× कृधि ॥४॥	...शिवतमः •
	अहम् एषां इ[स्तिर] असम् अहं भूयासम् उत्तमः ।	... उत्तमम
	इन्द्रो ओगायथाम् इव उत्तमं घोत्तमद् भूद्रम् ? ॥५॥	
	... आ हि बभूविथ ।	... बभूवथ
	यं त्वा सुरस्व यच्छथ ? सं जीव शरदश् शतम् ॥६॥	यां...
	अभिभूर् अहम् आगमम् अहं भूयासम् उत्तमः ।	• • गमम्...
	इदं प्रतिप्रवादिनं द्विषन्तम् अव पुष्ये ॥७॥	... अवि •
	वरिष्ठो [वस्तिर भवति समुद्रस्य बिलं] यथा ।	वरिष्ठ × × × × × × × × × × × •
	पुरोदकम् इव सिच्य मन् मूत्र तन्वस् परि ॥८॥	... या मूत्रन् तन्वे •
च ५.७८.८cd, ९ab	यथा वातो यथा वनं ? यथा समुद्र एजति ।	... समुद्रो एजन्त
	एवा ते गर्भ एजतु निर् एतु दशमास्यो बहिर् जरायुणा सह ॥९॥	
कौ १९.१९.१	इदम् उच्छ्रेयो ऽवसानम् आगां शिवे मे द्यावापृथिवी [अ]भूताम् ।	इदम् उच्छ्रेया • आगां • • द्यावाप •
	असपत्ना× प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो ऽभयं नो ऽस्तु ॥१०॥ ॥अ° ५॥	• • • • नवि • त्वद्मो • • • ॥५॥

२०.२२

	वास्तोष् पत इह नश् शर्म यच्छ भद्रा यच्छेलो ऽभि नो नेषत्व ।	वास्तुर् ... पाछेनो • • नेषत्व
[illegible] ९१.११ च ०.५५.१	अरिष्टा वीरा इह मे भवन्तु द्विपदश् चतुष्पान् मे अस्तु पुष्टम् ॥१॥	... द्विपदाम • म अस्तु पुष्टम्
	अनमीवो वास्तोष् पते विश्वा रूपाण्य् आविशन् ।	• वास्तुद ... आविशन्
	सखा सुशेव एधि नः ॥२॥	• सखेषु • •
कौ ३.१२.१	इहैव ध्रुवां [म]पि रोह शालो वि[श्रो] विराजो ऽप वृह्णव शत्रून् ।	• स्थूणा ... वृह बहन्
	मा ते रिषन्न् उपसत्तारो ऽत्र विराडन जीवाम शरदश् शतानि ॥३॥	• ते रिषन् उपसत्तारो • विराजो जीवा • •
	अपोहतं पक्वामृतं वसानो दुग्ध्वा× कृणुतं दीर्घम् आयुः ।	अपोहत पक्वामृतं वसानो ...
	तत्र नारी पृथिवी ओषधयी[र् कुला]यम् इव संविशाति ॥४॥	• • • • × × × • • संविशाति
	अग्निर् मा विश्वाद् दुरिता[न्] पुनातु मातरिश्वा प[वमान× पुरस्ता]त् ।	... × × × ×
	सोमो मा पातु सविता बृहस्पतिर् वायुश् च आपस् सर्वा[स्× प्रणीताः] ॥५॥	... गवि × × × × × न
	त्वया सत्वं वि आयते तव सत्वं विचायनम् ।	त्व • • आयते ...
	अग्ने वृक्षस्य [आय]स इमं जनय पौरुषम् ॥६॥	• • × × ...
	वृक्षस्य शतशाखस्य मा छन्द ? ऽस्यात्र[छन्द मा] ।	... × × ×
	वैभीतकस्य यत् फलं तेन त्वोन् मदयामसि ॥७॥	वैभीतकस्य...
	पूर्वं वातात् प्र पततं पूर्वं पततम् अभिभ्यास् ।	पूर्वं • • पतत ...
	इन्द्रोस्य समर्षी ? अहम् उग्रो शम्मिन् अधीवरे ॥८॥	... वाम • •

मा ष[इमा] मह्यम् इहा मा रि हन्ता वि मातु ? मः।
सत्यतम् ? अस्मभ्यं धत्ते युष्माकं न[यति] किल्बिषम् ॥९॥
इह पर्व इह पय इह चक्षुर् उप ह्वये।
इहेन्द्रियम् × × × × ॥१०॥ ॥अ॰ ६॥

२०.२३

आयुर् इह पपतामि ? संवत्सराय।
अपकामस्य श्वे ? वत्सो दूर्वाद् इव म आ दुहे ॥१॥
पय त्वामि विधुर् विदन् नि ते संस्येद् ? आ मंस ॥२॥
पय ते वेदस् संवननस् संवननस् स वेदस् ते ॥३॥
पय ते अग्ने वत्स तं वान्छस तं सत्यम् आशि भूमः ॥४॥
या सरस्वती गोवलिनी सा वाम् एनां का सा स्वेत्य स्व ?।
इमां गां पायवतु स्वाहा ॥५॥ ॥अ॰ ७॥ ॥अनु॰ ४॥

२०.२४

दूराद् भेषजम् आहतं बहून् अतियोजना।
अपदयम् अपास्तं यद्दम् अदुष्टं दुष्कृतं करत् ॥१॥
भिनद्मि ते परायतो विश्वस्य शोप्याम् इव।
वृषदशो ? यथा मवि कृष्णो वृ पा य पा कृ मि य ? ॥२॥
सर्वा गाव[स्] समनस[स्] सत्सयस् ? सनामयः।
समानां विभ्रतीर् भावं वत्सान् यज् जिह्वताम् इव ॥३॥
इन्द्रस् त्वाग्ने पायनयद् सविता त्वा ततो ऽपरः।
दृतीयम् अश्विना त्वाग्ने यंसतः ॥४॥
शौ २.१३.८ आ ते नयतु सविता नयतु बृहस्पतिः प्रतिकाम्यः।
त्वम् अस्यै धेहि ओषधे ॥५॥
शौ १९.१५.१ रै १.१५.१ इन्द्रं वयम् अनूराधं [हवामहे अनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
[मा नस् सेना अररुषीर् उप गुर् विषूचीर् इन्द्र द्रुहो वि नाशय] ॥६॥
शौ १०.४.१[१९] मग प्रेहि प्रथमो ऽनु त्वा वयम् एमसि।
इन्द्राग्नी ब्रह्मणा रसा ? स्वस्ति नयतां पथा ॥७॥
अदितिः प्रैतु प्रथमा बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु।
इन्द्र उभयान् बिभ्रत[ः] धाह्रांश् चनायाँश् च ॥८॥
अमी येन संयुक्ता उशरा उत विल्वा ?।
त्वां हि सम् अभ्यं यदा स मा हिंसात् स मा मुषा ॥९॥
अनुमल्यमाः प्रोक्ता गर्दभा इव दुर्यमाः।
तथा सह सप्रमाया ? मर्पीषं स्थापयामसि ॥१०॥ ॥अ॰ १०॥

२०.२५

सं मा भगेन द्विगुणेन वर्चसा सं मा पृथिव्या सं मौषधीभिः।
सं मापो मधोभुवो भगेन वर्चसा सृजन् ॥१॥
रै १९.२४.१४ वर्चो मा मित्रावरुणा [वर्चो यजमाने वसु च यद्वे ऽप्य् आहितम्।
[सुरायां बभ्रु यद् वर्चस् तस्य मक्षीय वर्चसः] ॥२॥
कौपुभे १.३६९ ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।
वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥३॥
अहमहं सं तनोमि चक्षुः प्राणम् अयो बलम्।
प्रियाय् श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तस् सुमेधसः ॥४॥
शौ ७.६२.१[१०] तन् नो देव सवितर् अगन्नाग्नी च रक्षतम्।
पूर्वेनद् पुनर् आत्मत्व् अविलिष्टं महिमतम् ॥५॥
यावन्त्य् अस्य पलितानि साकं जज्ञिरे अमराः।
तेभ्यः प्र ब्रवीमि त्वा कृष्णाः केशा भवन्तु मे ॥६॥
कृष्णान् केशान् सिनीवाली कृष्णान् केशान् सरस्वती।

• × मिदा मिदा... / ... × × • / • • दर... वधत् • • / दह इन्द्रियं • - - - - - (दृश्ं कोशे) ॥५॥ / ... संवत्सराय / ... दे विद् • मा • / • दोषि विधुर् विद्रुन् वि त • • • / • • वेद • • • वेद • / ... तं वान्छः तां यक्षो • • / वाय्... [समाप्तः॥ / ... ॥६॥ इति विंशतिकाण्डे चतुर्थो नुवाकः / ... दुन् अतियोजनाद् / ... मद्दो • • / मिनदि • • • देस्याद् • / समानं • • वत्सां • जीवन्ताम् इव। / ... इव दत्ता परः / ... वान्छः (कोशे) ॥ अदितिमाम्नाय / • • • • • आ नयतु इहस्पति - - - - (दृश्ं / इद् अस्ये... / • • अनुराधम् एम् इम / • • • न... / • अदितिः... / इन्द्रो यवं • • चनार्यांश् • / दत्... दद् • म हिंस्यां स म मुच्यः / अनु भोज • • दुर्यमाः / ... स्थापयामसि ॥१०॥ / • स्या...स्य इन्द्रियाद् सम् ओषधीभिः / • • मयोभु • • सृजन् / • • दधन सद् यद् / • • सदसि... / • सं तनोमि... / प्रिया सुतस्य... / • • देवस् सवितर् • • रक्षतम् / ... अविलिष्टं • / यावन्... / कृष्णाः केशान् सिनीवाली कृष्णाः • ॰ति

कृष्णान् मे अश्विना केशान् कृणुतं पुष्करस्रजा ॥७॥
अतो यद् अग्ने देवानां मनसा सवितावपत्।
तन् मे अर्वाल् त्वष्टा विलिखिमेषजम् ॥८॥
विश्वधाया असि विश्वभेषज्य आहुता।
अथा मेतिमेति ? निष्कारिद् नाम वा [अ]सि ॥९॥
वि ते वृत्तामि तमरीं वि योनिं वि गर्वीन्यौ।
वि मातरं च पुत्रं च वि गर्भं च जरायुजम् ॥१०॥ ॥अ॰ २॥

२०.२६

प्रस्रो गर्भो भवतु इदमेतं जरायुजम्।
अतो ऽयम् अग्निम् आ रोह आरात् गच्छेव सद्लम् ॥१॥
रै २०.१५.१० सं ते वृत्तामि तमरीं सं योनिं सं गर्वीन्यौ।
सं मातरं च पुत्रं च सं गर्भं च जरायुजम् ॥२॥
अर्थ ते गर्भो भवतु नूयो ? जरायुजे।
यथा त्वं पुत्रं विन्दस्व यथा जीवासि मद्रया ॥३॥
[यः] प्रवृद्धे गर्भे मन्दो यो विपोनिस् सं सृज।
निर् येतु इमामस्यो गर्भो मुधा [अ]न्यो इति ॥४॥
विष्कम्भेण वि ष्कम्भाय ता विश्वज्ञो ष्व् आ कुरु।
एष वाम् अग्निर् अन्तरा स विश्वज्ञो ष्व् अस्यतु ॥५॥
विष्कम्भो वि ष्कम्भायतु मनश् च हृदयं च वाम्।
आ वर्तय नि वर्तय शाश्वतीन्दस् समाम्यः ॥६॥
शौ १०.५.११[१२] समुद्रं त्वा प्र हिनोमि स्वां योनिम् अपीहि।
अविव्रसक्ता ? भूयासं मा परा सेचि मत् पयः ॥७॥
वैतानसूत्रे ११.९ यद् अत्रापि रसस्य मे परा पपातास्मृतम्।
तद् इदोत इमामहे तन् म आ प्यायतां पुनः ॥८॥
कपिर् अग्ने प्र विलेतु यतां केशां अजीजनत्।
इहैव विश्वतोमुखो धाता त्वष्टा त्वयि केशान् अचीक्लपत् ॥९॥
शौ ७.७०.१[१०] सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु च वदामसि।
मन्द्रे हिरण्यवर्तने प्र च आयूंषि तारिषम् ॥१०॥ ॥अ॰ १॥

२०.२७

रै ब्रा ३.५.८.१ यद् अप्सु ते सरस्वति गोष्व् अश्वेषु यन् मधु।
तेन नो वाजिनीवति मुखम् अङ्ग्धि सरस्वति वर्चसा ॥१॥
शौ १२.१.५८ यो ऽप देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति।
अग्निन् दुष्वप्न्यं सर्वं दुरितानि च मृज्महे ॥२॥
शौ ५०[१९] यो नो ऽभिच्छ्रयम् अत्यप् आग्नि तिष्ठत्य् अन्तरा।
तं मृत्यवे प्रेष्यामि शरो चास्यत् पेषणाः ॥३॥
प्रत्यन् यतं दैव्या इषवो ब्रह्माणो प्रत्नु मेन्याः।
यो ऽस्माकं प्रजापते ऽग्नि तिष्ठत्य् अन्तरा ॥४॥
प्रजापते यो ऽस्मां आ इ शान्ति ? तिष्ठत्य् अन्तरा।
शौ ५१[१७] तस्य वृश्चामि ते मूलं [न] छायां करयो ऽपरम् ॥५॥
प्र सुवेनाद् देव यज्ञेभ्यो मृत्यु वि मुम् ? आ चामसि।
शौ १.६.५[११] सिनात्व् पत्तान् निर्ऋतिर् मृत्योः पाशैर् अघ्न्यैर् अविमोक्यैः ॥६॥
सुमङ्गलेन वचसा केशिन् ग्रामं त्वं वद।
ब्रह्मब्रह्मा तुव ? [उ]नूच्छा वदामसि ॥७॥
शौ ६.९१.३ पराङ् एव परावत परावीम् अनु संवतम्।
सुपा ? यमस्य त्वा गृहे ऽरसं प्रतिचाकशान् निरसं प्रतिचाकशान् ॥८॥
शगवन् उलूक नो यद् दं द्विष्मस् तम् इतो नय।
राष्ट्रो यमस्य त्वा गृह एह मूषकवेह ? भागः ॥९॥
मा यद बहुलं गोष्ठं वीति ? यत्सम् अनुप्लुतम्।
स्वाहाप्राय द्विपदां यद् मुने चतुष्पदां यद ॥१०॥ ॥अ॰ ४॥

...पुष्करस्रजाः / • • अग्ने... / विश्वधाय सी • आहुत्या / ... तमरीं स्योनि • गर्वीन्यो / ... जरायुज ॥१॥ / विषृ • • इदमेतं जरायुजम् / • • • • योहन गच्छेम सद्मम् / • • वृत्तामि तमरं • योनं • गर्वीन्यो / म • • • • • म • • जरायुजः / यथा ... जीवासि • / ... अन्र न म्बोलस मे • / नि येतु... / • • • न... / ... विषंसो • • [नन / • • ष्कम्भायत • • हृदयं मनस् च हृदयं / ... भेति मा परा / ... म • विष्वाम्नाय / द्विष सोम • • आप्यायतां पुनः / ... विलेन • केशां अजीजनत् / • "इह • त्वष्टा • केशां अचीक्लपत् / • • द... / • "वर्तन... ॥१॥ / ... सरस्वती... / ... मुख अङ्गि • • / • अप...त्वा • • चान्तरायति / अग्निर् ... / • • दुरात्मन् अत्यप् अग्नि • • / • • इषम्नि शर इमान् पेषणाः / प्रत्यन् देवं देव • • प्रतु मेन्याः / ... नि तिष्ठत् • / प्रजापते... / तस्या वृश्चामि • मूल छायया • करम् / • दुर्वे ... म चामसि / • देवान् • • पाशै अन्यैर् अपि मोक्यैः / • वचन केशि ग्राम त्वं वद / • यद • • • संवतम् [दि चाकशन् / • यमस्य • • • प्रतिदि चरम् निर्दिशं प्रति / शगन् अहदि... / ... गृहे देह... / मा • बहुलं गोष्ठ... / स्वाहास्वाय... ॥४॥

२०.२८

पुनर् मे राजा वरुणः पुनर् इन्द्रः पुनर् भगः।
पुनर् मे विश्वे देवा आयुर् जीवातव आयुः ॥१॥
उत् तिष्ठतः प्र द्रवार्थाङ् मात् प्र तिष्ठा वि चाकशः।
सपत्न्या यर्थ [आ]दायाद्दे भूयासम् उत्तमः ॥२॥
कौशिकसूत्रे ११६.७[१९] उत् तिष्ठत निर् द्रवत म य इहास्तु न्यञ्चनम्।
अमुष्य विद्यम् अविदत् सा म स्त व नु हि व प तं स्व त नू हि न स्य ? ॥३॥
ये ऽस्माकं सबन्धवो विष्ठिताः पृथिवीम् अनु।
तेषाम् इन्द्र इव देवानाम् अहं भूयासम् उत्तमः ॥४॥
ये ऽजयः पार्थिवा [आ]दिता[ः] पृथिवीम् अनु।
तेषाम् असि त्वं सङ्गते स नो जीवातवे कृधि ॥५॥
चितस् स्थ परिचितस् स्वापय[ः] स्थ निह्वया नाम।
ते नो मा नि[ह]यान् वध्यान् तेभ्यो वो नमोनमो ऽहं वचीमि ?।
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस् सो ऽव यो इवम् एतु ॥६॥
इन्द्राग्नी पुनर् आकूतिं भवत स्थितधीरात् अपरात् पतो गायौ ?।
अस्माकं सर्वां विद्वं सम्न्द् एता वयं विधान गुह्यं नाम यथान् ॥७॥
प्रजापतेर् अनु कल्पय विश्वे देवाः यद्यापास् सम्न्द् आसाम्।
त आदित्या अनु गच्छन्ति शूरा इन्द्रज्येष्ठाः पुनर् मा वर्तयन्तु ॥८॥
इन्द्र प्रमेतर् वर्धय माम् अभ्ययान् यद्तु मां सम्भः।
वेन्द्राग्नं यमं प्रतिमुञ्चमान उभयेभ्यश् चाद समितिम् आ वदानि ॥९॥
चाद्याङ् चाद्यत्नस् चाद्सहत्री भो नृभिः।
यो ब्रष्यः प्रतीकाशो जिगीर्षा अपराजितः ॥१०॥ ॥अ॰ ५॥

२०.२९

शौ ७.९५.१ अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेर् इव गुष्पितम्।
ओजो दासस्य दम्भयम् ॥१॥
शौ २ यद् एतद् एतु संभूतं मघतर ? इन्द्रस्य वि भजावहि।
म्लापयां शिश्नं ते मुष्क वधस्य व्रतेन च ॥२॥
शौ ३ यथा दोषो यतु ? सर्यु वासयासहः।
अयस्त्वस्य क्लीयतो मधुरस्य निलोहिनः।
यद् आततम् अव तत् तनु यद् उत्ततम् अव तत् तनु ॥३॥
अमू म्लापयन् ते तन्यं क्लीबं ते शीदपाकरम्।
अन्तःकोशा इव कोशेभ्यस् क्षीणा अप्य् आहतय् च मः ॥४॥
आ नो मेदिं बृहस्पतिर् दधातु इन्द्रेव मेदिना।
आ नो मेदिं सरस्वत्य् आ नो वहन्तु सिन्धवः ॥५॥
मेदिं धाता मेदिं पूषा मेदिम् इन्द्रो दधातु मे।
मेदिं मे अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥६॥
ऊरू मेदिं मेदिं बाहू अष्ठीवन्ता उरसा च मे।
सर्वां पर्वस्य मौदिलं ? मेदिम् इन्द्रो दधातु मे ॥७॥
धर्मणीयोपनीतस्य सर्वान् कामान् वृषासि ते।
अपस्वार्त्नं विमत ? शिरो यथासत् समरं समम् ॥८॥ ॥अ॰ १८॥ ॥अनु॰ ५॥

२०.३०

शौ ७.११२.१ दिवि तामां उत ? दशां सप्त सूर्यस्य रश्मयः।
धारास् समुद्रिया [आ]पस् तास् ते शल्यम् अव् विस्मुषु ॥१॥
शौ ७.५१.१ च ५.१०.१ इन्द्रे अग्नि स्वयसं नमोभिर् इह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः।
रथेर् इव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन् मरुतां स्तोमम् आप्याम् ॥२॥
शौ ७.५१.२ च १०.११.५ सप्त स्रवन्ति शिशवे मरुत्वते पिता पुत्रेभ्यो अप्य् अवीवतत् पतंतः।
उभये पिप्रति ? उभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥३॥

• • • • • जीवातव / ... इदन्ते सत् • • भ • / ... दादि • / अनुद... / यो • संबन्धवो विष्ठिताः • • / • इन्द्रेव • • • • / आ इदः • • • • / चित • परिचित • स्थ • • / • • • निह स्थन्... / ... व • • • तैः / • • आहुतं ... तैः यो / ... विधान गुह्यं • • / ... अनुष् / • प्रमेतर्...स्वधा ? / ऐन्द्रानि • "आनो योऽवदेभ्यश् • समितिम् • • / चाद्याङ् चाद्यत्नस् चाद्सहत्रि • • / य द्रष्यः • जिगीर्षा • ॥५॥ / • • पुराणवद्... / ... भवतरी / प्रतया विभ नि • • • व / • देवो • क्लीव आयुध्ययन / अयस्त्व अयस्तीयतु मधुरस् अम् सतो निम / • आततम् इव तनु अव तनुम् इव तनुम् / अमुं द्रष्ट्... क्लीब • • / म्लापयेन... / • • मर्द • • इन्द्रेण • / • • मेदा... / ... धत्तां पुष्करस्रजा / • मे हवे दवे बाहू • उरस्य मे / [द्वितीयः॥ / अवस्तात... ॥६॥ इति विंशतिकाण्डे पञ्चमो / धरस् ... शल्यम् • विस्मुषो / • • इमान् ...दशः कृत नः / ... वाजयद्भिः प्रदक्षिणिद् मरुतां स्तोममृग्म्यात् / सप्त • शिशवे • • पित्रेभ्यो... / • • उभयेभ्य उभयदि उभयेते उभये स्व विपतः

शौ ७.११.१ वेदस् स्वस्तिर् द्रुविण[स्] स्वस्ति[ः] परशुर् वेदिः परशु[र्] नस् स्वस्ति।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामा[स्] ते देवासो हविर् इदं जुषन्ताम् ॥४॥
शौ ७.११.१ च ६.१०.११ उप प्रियं पनिप्नतं युवानम् आहुतीवृधम्।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥५॥
शौ ७.११.१ इमा यास् ते शतं हिराः सहस्रं धमनीर् उत।
तासां ते सर्वासां साकम् अहमश्मा बिलम् अप्य् अधाम् ॥६॥
शौ ७.३९.१[१०],२[१] इदं खनामि भेषजं मांपश्यम् अभिरोरुदम् ?।
येना निचक्र आसुरीन्द्रं दत्री ? केवलं पतिम् ॥७॥
रै १.५५.१ अक्ष्यौ मे मधुसंकाशे [जिह्वा मे मधुवादिनी।
[नसोर् अपि प्रमन्थनं दन्तु मे सारघं मधु] ॥८॥
× × × ×
× × × × ॥अ॰ ३॥

२०.३१

× × × ×
× × × ×

शौ ७.८२.१ च ७.५५.८ यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुस् [तिरश्] चित्तानि वसवो जिघांसात्।
द्रुहिर् तान् पाशान् प्रति मुञ्चता यूयं तपिष्ठेन तपसा मरुतः ? तम् ॥५॥
शौ २ सांवत्सरीणा मरुतस् स्वर्का उरुक्षया[स्] सगणा मानुषेभ्यः।
प्रास्मत् पाशान् प्रति मुञ्चन्तु सर्वान् सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥६॥
शौ ७.८१.१ पूर्वन् पिब कलशे सोमम् इन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने [सवन] आ वृषस्व रयिस्थानो रयि[म्] अस्मासु धेहि ॥७॥
शौ ७.८१.२ पुर्नमिन त्वा अञ्जना वैम्येनासी अत्रवीर्य धारेयन्तम् अग्ने।
देवत् ? अकरन्यं धुविंस इमं प्रेमं योचो हविषो देवतासु ॥८॥
शौ १ वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्।
इहैव त्वम् अजस्र एध्य् अग्ने ॥९॥
शौ ७.८५.१ च १०.१२१.१० प्रजापते नहि त्वद् [एतान्य्] अन्यो विश्वा रूपाणि मतिना ? बभूव।
यत्कामास् ते जुहुमस् तन् नो अ[स्तु] वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥
॥अ॰ ४॥

२०.३२

शौ ७.८४.१ यद् ते देवा अकृण्वन् भागधेयम् अमावास्ये संवसन्तो महित्वा।
तेनं यज्ञं पपुर ? विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥१॥
शौ ७.८०.६ पूर्ण ते ऽग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वा मनुर् अद्या सम् इन्धे।
घृतं ते देवा [न]प्त्य् आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने ॥२॥
शौ १ मय्य् अग्ने अग्निं गृह्णामि स[ह] क्षत्रेण वर्चसा बलेन।
मयि प्रजां मय्य् आयुर् दधामि स्वाहा मय्य् अग्निम् ॥३॥
शौ ७.८८.१ अप्सु ते राजन् वरुण गृहो मिथो हिरण्ययः।
ततो धृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥४॥
शौ २ धाम्नोधाम्नो राजन्न् इतो वरुण नो मुञ्च।
यद् आपो अघ्न्या इति वरुणेति यद् ऊचिम ततो वरुण नो मुञ्च ॥५॥
शौ ७.९२.१ यो रुद्रो अग्नौ यो अप्स्व् अन्तर् य ओषधीर् वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्व् अद्य ॥६॥
शौ ७.९१.१ अवेहम् अरिद् अस्त्र अरिद् वा [अ]सि।
विषं विषम् अपृक्था विषं वा अप्रपित् आदि ॥७॥
शौ ७.९५.१ पूतनाजितं सहमानम् अग्निम् उग्रं हुवेम परमात् सधस्थात्।
स नः पर्षद् अति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवो ऽधि दुरितान्य् अग्निः ॥८॥
शौ ७.९८.१ यद् अन्तरिक्षे पति वा रजसि ततो वृक्षेषु मयम् उच्छेदेतु।
यद् अचलन् पचाय उपमानं तद् ब्राह्मणं पुनर् अस्मान् उपैतु ॥९॥ ॥अ॰ ११॥

वेद... / • • यक्षियुं... / • यद् • • हीनं... / ... सहस्र धमनि सतन् इव • / • खनामि... / एवा निचक्र दुरिन्द्र • • • / अक्ष्यौ म मधुसंकाश / - - - - - / इदं स्थाने आदिमॆ अस्मात् सौत्रे न लभ्यते॥ / • • मर्तो... जिघांसात् / • • पाशान् ... यत् / सांवत्सरीण... / प्रास्मत्... / ... देम्येनासी • धारयन्तम् • / ...धाः • योचो हविषो देवता / • • • • योक्त्रं वि नियोजनम् / • • अजस्रे / • • त्वद्... / यत्कामास् • जुहुमस् ... वयं ... ॥१॥ / • न देवाः कृण्वन् • अमावास्ये • • / तेनं... सुभगे • / ... वा • इधे / • अग्ने... / • • • मय् • • • अग्निम् / ... वरुण गृहो मिथो हिरण्ययः • / ... मुञ्च / • राजन् • वरुण • • / • • • यदि वरुणेति • यदिम... / यो रुद्रो अग्नौ यो • • य • ओषधीर् वीरुधः / य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय... / • • इदम् अरिरिद् • • / विष • अप्रप्रक्ता विष वा अस्ति सदि / ... उग्रं • परमात् • / ... क्षामद् • • दुरितान् • / • अन्तरिक्षे • वि रजांसि तत • यद् वृक्षेषु / यद् अचलन्... ॥१॥

२०.३३

[illegible]

२०.३४

[illegible]

२०.३५

[illegible]

मघरोशिष्कन्त्य ¦ उग्निवद्दन्ती त्वरी प्रापद्यन्तम् ? मभिजयन्ती ।
¦ मापद् त्वम् त्वरितम् त्वामे मेषमेषम् त्वर्षत् त्वा मन्द्रे ? ॥३॥
पर्द मावर्ते दुष्वन्न्यात् पापात् स्वन्न्याद् मभूत्याः ।
ब्रह्मादम् मन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखा शुचे ॥४॥
यत् स्वप्ने मन्नम् मश्नामि न प्रातर् अधि गम्यते ।
सर्वं तद् मस्तु नर् शिवं नहि [तद् द]दृशे दिवा ॥५॥ कां° १४ अनु° ६॥

२०.३६

विश्वं विविश्मि पृथिवीव पुरम् मायद् माप[स] तु प्रतिगृह्णाम्य् मन्नम् ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना स्योनम् मस्मभ्यं मधुमत् कृणोतु ॥१॥
त्रिष्टक्रम् मसि द्रव्य धर्षिम् ? इन्द्राय धीयते ।
पूषा ते प्राचितः प्रेहि मो मग्ने तन्वं पाहि मद्यास्या ? मो हृतम् ।
महुतादाद् ममर्त्यो तात् मस्मिन् पातम् मंहसः ॥२॥
यो देवानाम् महुतादा मसन्त्युम् ? स्वर्मानुषा च स्वर्ज्योतिष् च ।
तयोस् त्वास्येन प्राश्नाम्य् मग्ने दया[स्येन प्राश्नामि] वैश्वानरस्य त्वास्येन प्राश्नामि ॥३॥
दक्षश् च त्वा मानसः प्राश्नीतां स्वर्मानुषा च मादतश् [च] ॥४॥
सात्रियं ? पूर्वां वि राजामो वयं प्रजया धनेन ।
मनाधृष्यस्य ते पितोर् मनाधृष्टश् [च] शवसः ॥५॥
सर्ववीरास् सर्वात्मानो भक्षं क्रियास्म ।
कामो मे राजः प्र विवेश त्वां च मां चान्तरायति ॥६॥
गृहेषु गोषु मे मनो मश्वयोर् मे मस्तु मे भगः ।
जिह्वा[या]म् मस्तु मे रसो बाह्वोर् मस्तु मे बलम् ऊर्वोर् मस्तु मे जवः ॥७॥
दिवो ऽसि निर्मथितं पृथिव्या मप्य् उद्भृतम् ।
समुद्राद् उच्यसे जातम् मश्वयोर् भेषजम् मस्य् माथर्वणम् ॥८॥
पूषा पुरस्ताद् मावर्तयतु पश्चात् भूम्या उत ।
सर्गालिग पूर्वलिग पुनर् मो नरम् मा कृधि ।
जीवेनामि शुद्रावहे ॥९॥
मना ? मरत् गृह्णद् मग्नि[स्] तेजने महयेदनम् ।
सर्गाले पुनर् वहन् पुनर् मस्मा [म]श्विना नरम् माव्रतम् ॥१०॥ कां° १०

२०.३७

यद् मस्य मग्नियज्ञा यदि घात्यत माहतः ।
विसल्यकस्य भेषजीर् देवीर् माप इमाम् मवत ॥१॥
यस्य प्रतीकस्य च गो च स्यो च ? गुल्मतः ।
तं हि सम् मग्रमं शुष्मम् मामूनां ? घातताम् इतः ॥२॥
यत् तु नः पृथुर् धी ला च पू (? इव सर्पति ।
पयरः ¦ कृतम् विवं कृत्वा गम् ? च घसतु ॥३॥
उदीचीनः प्र तनोति नितक्षिर् भूम्याम् मधि ।
मोज्मानं पश्य वीरुधो मिथुना सम् मजीगमत् ॥४॥
न त्वा चरन् नितक्षिना सपत्नासस् सहीयसा ।
से या द च ता ? धीयम् मा शुचनां नु गरीयसा ॥५॥
यद् मस्राचि ? सचोर् मदं निर् दहम् मधि निष्कृतम् ।
सम्प्रिय दन् स्यु वि ता द ? पुनर् मम्निर् जठरे घत्ताम् ॥६॥
मग्ने रुद्रस्य मायासि दुहितासि प्रजापते[ः] ।
उच्चैश् स्तोकं दादपद्या हयस्योप मा हयस्व ॥७॥
मरिष्टा नाम वा [म]सि यथासौ हरितो वृक्षः ।
उत्सादं माघे प्र स्कन्दन्त्य यथा नि स्कन्दति पिप्पलम् ॥८॥
भगं जयन्ती धनं जयन्ती हरि श्वा ? मह्यम् मब्रवीत् ।
गन्धर्वस्यानुशासनम् पत[स्] ते पतिवेदनम् ॥९॥

[illegible] ॥१०॥ कां° ११

२०.३८

[illegible]

२०.३९

[illegible]

२०.४०

[illegible]

समन्नर्धीन गच्छस्व ऊमो मस्मे पयीतभ्यात् ? मृगान् यातो मश्वान् ।
इंद्रे ऽस्मान् सुप्रजसस् सुवीरान् सहवके सजाते ॥८॥
ये शुष्मन्ते प्रपनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
तांस् त्वं सहस्रशत्वांस् तांश् चिद् एवापि गच्छतात् ॥८॥
यथा श्रीदाध्ये ? मासि वही[ः] प्र शुष्यन्त्व् मोषधी[ः] ।
एवा प्र शुष्य सामनि यश् च पदयो यश् च न ॥९॥
पार्थो विमर्दं मसुरं हिरण्यवर्णम् माहृतम् ।
तेना सपत्न्या वर्चं मा लुम्पामि ममेयसम् ॥१०॥ कां° ५॥ अनु° ७॥

२०.४१

[जीवास् स्थ जीव्या]सम् मदं सर्वम् मायुर जीव्यासम् ॥१॥
मनाभिर् मसि महि भव तन्वां वचो दिया विश्रितः ॥२॥
मार्वा ? निर्ऋते रन्तिर् मसि रमतिर् मसि ।
सं श्रुतेन राधिषि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥३॥
दुर्वो ऽसि दृष्टितासि विश्वतस् संदृशः ।
सोमो ऽसि यज्ञो ऽसि तं त्वा यं देवा मंशुम् माप्याय(य)न्तु तं त्वा महान्तम् मक्षितये पिबन्ति ॥४॥
स मम् सोमः प्रति[र]द् दीर्घम् मायुः ।
मम्यर्पो प्राणेना प्यायस्व माप्याकं प्राणेना [प्यायस्व] ॥५॥
यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस् तस्य प्राणेना प्यायस्व ।
तिरसि समुद्रं यो मम् धेनु ? प्रतायात् ॥६॥
सोमपीथे सतीम् मर्वाङ् मनुयं क्षेत्रियं रपः ।
मा मा गच्छन्तु ब्रह्मचारिणः प्रा त द वे य रा र हा ? ॥७॥
प्रजापतिः परमेष्ठी मारदो नाम वा [म]सि ।
बृहस्पतिः प्रजापतिर् मारतो ब्रह्मचारिणः ॥८॥
मनाधार्[य्माधारस्य भूयासम् ।
[मघाशयायापतये रुद्राय न]मो मग्नये ॥९॥
या ते वसोवात इषुस् सा त एषा तया नो मृड ॥१०॥ कां° १८

२०.४२

मग्निस् तव तान् मप बाधताम् इतो यतन ऊमो मरुतः पूतदक्षा[ः] ।
ते रिष्टारस् समिथस् संशिशानास् तत्वो मम् धीमान्य् ? मभि मिर् दुहन्तु ॥१॥
यो ऽप वक्षुनायसि स्वपन्तम् इच्छायवं शयानम् मवोधितम् ।
स मम् सहस्रवीर्यानुहितश् शिवो भव ॥२॥
देवपातुर् मसि [मृद्धो ऽसि] मृद्धाकाकं द्विपदं चतुष्पदे ।
मा तस्य मृद्धो द्विपद् चतुष्पदं यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥३॥
मनुष्यपातुर् मसि [मृद्धो ऽसि मृद्धाकाकं द्विपदं चतुष्पदे ।
[मा तस्य मृद्धो द्विपद् चतुष्पदं यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः] ॥४॥
ब्रह्मपातुर् मसि [मृद्धो ऽसि मृद्धाकाकं द्विपदं चतुष्पदे ।
[मा तस्य मृद्धो द्विपद् चतुष्पदं यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः] ॥५॥
परेतपातुर् मसि मृद्धो ऽसि मृद्धाकाकं द्विपदं चतुष्पदे ।
मा तस्य मृद्धो द्विपद् चतुष्पदं यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥६॥
मर्वाङ्कृति मामासि देव - - - - - ।
¦ मामासि दम्भाया क्षेत्रा मामिरो शीर्षतो चरन् ? ॥७॥
तस्येदं वसन् मा सृज से मा स का वि ? शद्वाः ।
मा त्वा वि दस ? [म]रसं वृश्चिक ते विषम् ॥८॥
मामुनां ? माम ते माता कर्कटः पिता तन् मम्या ? ।
स मध्यन् मरसं विषम् ॥९॥

	ये विषस्य धारे स्त्रिया [अ]न्या पुंसो ऽन्या ।	ई • चारे • • • न
	गती उभे समे ॥१०॥ ॥ऋ॰ २॥	• उभ • ॥२॥
	२०.४३	
	विश्वविद्वन् नष्टं सर्वं पश्यसि ।	विवेविर्थ नष्ट मर्वे •
	मह्यो मे नष्टं तन् मे पुनर् धेहि ॥१॥	
	विश्वकर्मन् त[त्] त्वम् उप गच्छसि ।	
	मह्यो मे नष्टं तन् मे पुनर् धेहि ॥२॥	मयो...मेव
शौ ७.९.४	परि पूषा पुरस्ताद् धस्तं दधातु दक्षिणम् ।	• मय • धार्त • दक्षिणम्
	सगलिग पूषालिग पुनर् नो नष्टम् आ कृधि जीवेनासि जुहावदे ॥३॥	• • • नो • • • जीवेनवि जुहावदे
	इन्द्रस् त्वामि सर्पतु त्वाम्रेडास् तत्रः ।	• त्वामीन्तु • त्वामेडा •
शौ १.१.१[११]	तद् आस्रावस्य भेषजं तद् उ रोगम् अनीनशत् ॥४॥	व चस्रावस्य भेषजं वहोनं •
	विष्णोर् मनसा पूतो ऽसि देवस् सवितोत् पुनातु ।	• • पूत • देवस्य • •
	अच्छिद्रेण पवित्रेण सहस्रधारेण सुपुवे ॥५॥	...सुपुव
शौ ४.१९.१०	इदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।	...जातवेदा विश्वानि देवो • •
	सहस्राणि तव धान्य् अग्ने तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥६॥	सहस्रावि...
शौ १ वे ११.१.१	महान् अग्निश् [चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः ।	• अग्नि चरन् एष
	[तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां योयुपद् भागधेयम्] ॥७॥	
	यस् ते केशाँ अवार्चीनान् कृमिर् वृहति मूर्धतः ।	...अवार्चीनां • • •
	प्राणं तस्योप दाशाय धीडध× खनति भेषजी[ः] ॥८॥	...दीर्घुर • •
	वेद वै ते भग नाम इन् नामासि रयिर् नाम ॥९॥	...मह नामो • • रयिन् •
	तं त्वा भग प्र विशामि स मा भग प्र विश ।	• • भगः...विश।
	अस्मिन् सहस्रकाण्डे नि मृजे भग त्वयि ॥१०॥ ॥ऋ॰ ३॥	• • मृजे • त्वे ॥३॥
	२०.४४	
	आ मा गच्छन्तु ब्रह्मचारिणो यमयन् स्वाहा ।	
	चरापि स्वाहा ॥१॥	
	देवानां मा मनुष्याणां पितॄणां प्रियं प्रजापते[×] प्रियं कृणु स्वाहा ।	
	द्वांवधुनवरि ? ॥२॥	
	अयं मे हस्तो अक्षितो ददितततमेवदे ? कृधि ।	...मह्रो...
	त्वं क्षितस्य भेषजम् उभयोर् वृश्चिकस्य च उद्गीलरी ? ॥३॥	...उभयोइ...
	असुर् असि स्वाहा क्रतुर् असि स्वाहा ॥४॥ ॥ऋ॰ ४॥	— ॥४॥
	२०.४५	
	पुरुषो ऽसि स्वाहा ।	
	विश्वंभरो ऽसि स्वाहा ॥१॥	विश्वम्भरि •
	वेद वै ते नाद्नं नारदवान् नामासि तस्य ते यद्दो भक्षीय ॥२॥	...नादन नारदर्वा • दस्यात्... [• ॥५॥
	वेद वै ते अद्मना कुमारवान् नामासि तस्य ते मधु भक्षीय ॥३॥ ॥ऋ॰ ५॥	...अद्मना कुमारो नामसी नामसि • • •
	२०.४६	
	सुब्राम्ण् अप उदातीर उपेमाम् ।	• अप • उदेवी
शौ ४	अनुहयं परिहयं परिवादं परिक्षपम् ।	• • परीवादं •
	सर्वैर् मे रिक्तकुम्भान् परा तान् सवितस् सुव ॥१॥	सर्वै म रिक्तकुम्भां • तां सवितुर् सवः
शौ १९.८.५	अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षपम् ।	अपपापं...
	शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश् चाभि मेहताम् ॥२॥	• • पापनासकां पुण्यगवाभि मेहतः
	अभि त्वा पञ्चशाखेन हस्तेनापां सहीपसा ।	
	यथा न पिद्धिपायदि न विभयाव कदा चन ॥३॥	
	यज्ञपाकं संवननम् अस्य ध्य स्व हु र म् ? ।	
	विद्मं ? सं कृणोतु मे यम् अहं कामये प्रियम् ॥४॥	• • • स दर • • •
	यत् कक्षीवान् संवननं चपि ? मय् यज्ञासुरः ।	यत्न् कक्षीवं...

	तद् वां कृणोमि दम्पती संप्रियौ भवतं युवम् ॥५॥	
	यथा संयुजौ पक्षिणौ संप्रियौ चरतो मृगौ ।	
	एवा संयुजौ ब्रह्मणा संप्रियौ भवतं युवम् ॥६॥	यथा...भवतं •
कौशिकसूत्र ४६.५४	प्रेहि प्र हर पादात् आ गृहेभ्यस् स्वस्तये ।	यहि...
	कपिञ्जल प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वद ॥७॥	• प्रदक्षिणं शतपत्रभि नो वद
कौ॰ ५४	भद्रं वद दक्षिणतो भद्रम् उत्तरतो वद ।	
	भद्रं पुरस्तान् नो वद भद्रं पश्चात् कपिञ्जल ॥८॥	
कौ॰ ५४	शुभं वद दक्षिण[तो]द् शुभम् उत्तरतो वद ।	...उत्तरतो वद
	शुभं पुरस्तान् नो वद शुभं पश्चात् कपिञ्जल ॥९॥	...शुभं • कपिञ्जल
कौ॰ ५४	यौवनानि महयसि जिग्युषाम् इव दुन्दुभिः ।	यौवनानि महयसि • • दुन्दुभिः
	कपिञ्जल प्रदक्षिणं शतपत्राभि नो वद ॥१०॥ ॥ऋ॰ ६॥	• • शतपत्रभि नो • ॥६॥ इति विंशति-काण्डे अ(इ)षो नुवाक समाप्तः ॥
	२०.४७	
	उ[त्] तब्नामि गवां क्षीरम् उद् रसं रथवाहनम् ।	
	उत् तब्ना[म्य् अ]श्वानं वीरा[न्] मयि गावश् च योषतौ ॥१॥	• तब्ना...
	उत् तब्नातु सविता देवो ऽग्निर् आ नो मित्रावरुणाव् अश्विनोभा ।	उत्तब्नातु • • • न न • •
	सर्वान् सपत्नान् अवधीर् युगेन विद्यां पतिर् उपधृत एष्य् अत्र ॥२॥	...विद्यां • उपद्धोत्य •
	त्वं हि यत्र च दामी न्व मे वे ? त्वं देवेषूत्तमां वहेषु ।	...वेषु
	यद् ईशानो भवसि यत् च इंसत् अस्माकम् अस्तु पितृषु लपायद् ॥३॥	...इंसत्...
कौशिकसूत्र ११०.५	यावद् आ वन्धि नो गृणान् अक्षय्यं भूयस्त्व्यः ।	• • वन • गृणान • •
	स नो मेधिरम् आ कृधि यातो हि दयाजातः ॥४॥	• • मेधुरम् • • मा • 'कृधि
	यतो सूर्यं यतो कृतस् स्वाम गच्छतु ते पुनः ।	यत • यतो कृत...
	यतो नि क्षपते कृत [यतो] प्रलम्भम् आयति ।	
	स इमं पूर्षं प्रवर्तम् प्रजमानस् तद् अभिष्णं करः ॥५॥	मेवं इदर् प्रवत्नर् दवभरस् • अभिवर् •
	यः पार्श्वे संतनोति हृदयं ब्रिद्या सह ।	
	तानि त्वं देवि पृष्णि वृक्षात् अरसं कृधि ॥६॥	...दिम्पार • •
शौ ८.११.५	अजुपसा [ः अहवेषु पूरुषां ? पतींघां दाक्षिदतीम् ? ।	अजुह्वान् तत् दध
	[ताम् एतां दस्युनां दासीं प्र दहेतस् शुकाकथि ?] ॥७॥	
शौ ६	प्र यतादि [ः सुकाकादि गृहे× कृतीतवो ? यथा ।	
	[ः इवकेवे ते त्रिपुं ? पुष्णामि सा न हिंस्यसि पुष्पाणी ?] ॥८॥	} न दथव इति ह
शौ ७	[यदास्यास् सुकव ? इंद्र् यदा सूर्याणम् अग्निना ।	
	[ताम् एतां दस्युनां दासीं ः प्रत्ययेन अविष्यते ?] ॥९॥	
शौ १९.५५.१, २	अहरहर् बलिम् इत् ते हरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासम् अग्ने ।	अहरर् बलम् इमे हरन्तो भरव • • •
	रायस् पोषेण सम् इषा मदन्तो मा ते ऽग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥१०॥ ॥ऋ॰ १॥	• पोषम • • मदन्तो • • • प्रतिवेशा रिषाम् ॥१॥
	२०.४८	
शौ १९.५५.१	रात्रींरात्रीम् अप्रयावं भरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासम् अग्ने ।	रात्रिंरात्रिम् अप्रयावं भरन्तों भा वंव...
	रायस् पोषेण सम् इषा मदन्तो ऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥१॥	• • इष • मदन्तो वे • वे • •
ऋ ९.६६.१९	अग्न आयूंषि पवस्व सुवोर्जम् इषं च नः ।	अग्न आर्युषि • सोवर्ज...
	आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥२॥	
ऋ १.१०.१[११], १.१०.१[१२]	त्रीण्य् आयूंषि तव जातवेदस् तिस्रो ज्योतींषि उर्ज[स]स् ते अग्ने ।	त्रीण्...ज्योतिर्...
	तिस्र उ ते तन्वो देवजाताः ? ताभिर् नः पाहि सद्यम् अप्रमादम् ॥३॥	तिस्रोव वे • • • • • • •
ऋ ८.६०.९	पाहि नो अग्न एकया पाहि नो अप द्वितीयया ।	...एकया...
	पाहि गीर्भिस् तिसृभिर् ऊर्जां [प]ते पाहि चतसृभिर् वसो ॥४॥	
कौशिकसूत्र १०८.२	समीची मघावनी पतताम् आयुष्म[त्या] अग्नो मा छैत्सि ।	...छित्थि

	तनूपात् साम्नो वसुविदं लोकम् अनु चरामि ॥५॥	तनूपात्सी वसुविदि...
	यदि यंवद् ?........................ ।	• • इत् दध
	[.............................] ॥६॥	
	भगेभ्यां म् ? उप माम् इहि त्वं मह्यो नामासि म इह भाद्यावान् ।	...इह • मरो नामवि मिह •
	असुरा त्वेषा मघवञ् जनिष्ठ् अनेद् अधि जातो ऽसि ब्रह्मणस् तेजसा च ॥७॥	• लेर • जनिर्ध...
	सा म या प्र दि शे दा भ्व रा मा म् ? विशाम्तो हि प्रविशन्तो म मा मा विश[न्] ।	
	प्र मा विशो [दा]दयत्रा क्षयस्वोप मा क्षयस्व ॥८॥	• • • मुचष इदतुर • •
कौशिकसूत्र ५६.१०	यथाप× प्रवता यन्ति यथा मासा अहर्जरम् ।	...अहर्जरम्
	तथा मा ब्रह्मचारिणो धातर् आयन्तु सर्वदा ॥९॥	यथ • • धातर् • सर्वदा (सवरि प)
ऋ ८.१०.१ बौधायन १.४०१	आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्तोतारो मारस्थाप समन्यवः ।	म गन्ते • रिष्यतर...
	दढासो [अ]नरिष्णवः ? ॥१०॥ ॥ऋ॰ १॥	• मरिष्णवो मारस्थिवः ॥१॥
	२०.४९	
शौ १४.१.५१	धाता ते हस्तम् अग्रही[त्] सविता ते हस्तम् अग्रहीत् ।	
	पत्नी त्वम् असि धर्मणाग्निर् आचार्यस् तव ॥१॥	
	अग्ने ब्रह्मचार्य् असि मम ब्रह्मचार्य् असि ।	
	तं त्वासौ देवाय सवित्रे परि ददामि स्वस्ति चरताद् इहासौ ॥२॥	...सावित्रे • • स्वस्ति • •
	विश्वम् असि विश्वपते सर्वम् असि सर्वपते ।	
	प्रजापतये त्वा गोपाय सवित्रे परि ददामि स्वस्ति चरम् इहासौ ॥३॥	• पूष...
	समावर्तात् विहितो जिगीषुर् विश्वेषां कामश् चरताम् इहास्तु ।	समावर्त्मि...
ऋ १.१८.१	विश्वा रूपांसि दुरिता हित्वायं ते ऽनु मतांसि सवितुर् दैव्यस्य ॥४॥	...रूपांसि • • मतांसि • •
	आ नो इन्द्रो कृत आयन् स्वर्गे× प्र गुरतु तम्या सं वहन् ।	• मो • कृत्ता यन्...
	प्राणेन तेजसा हरसा वहेन मित्रो ऽस्मान् वरुणो भवत× पातु ॥५॥	म॰...
शौ १९.५२.५ वे १.१०.५	यत् काम [कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।	वर्चोवेन स्त् स्थ...
	[तन् नस् सर्वं सम् ऋध्यताम् अथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा] ॥६॥	
	यद् वर्चो दावापृथिव्योर् अथो यद् अञ्जनम् इमे ।	यर • यायं • • अञ्जनम्नो
	तेन सिसिक्षा वर्धस् स्वयम्भुवा समञ्जनम् ॥७॥	• • यर्चे सवम्भुवा समञ्जना
	यद् अपाकृपदं य[द्] दिवा स्वप्ने यन् निरुढम् अपहो ।	• अपकृत्वं • • • या • अपहम
	अच्छेदनम् अस्यम् अहदवीर्यम् ॥८॥	अच्छिदनर • •
	अव वार इव वारिवा[दाद्] अव वर्ष गिरेर् इव ।	
	अव ज्याम् इव धन्वनो हृदि यद्यं छिनद्मि ते ॥९॥	...वचितो • • छिनदि •
	यत् ते हृदि यद्यं यत् चायदं पुलीखति ? ।	...यदं •
	मर्यं सूद्यीनां यत् यद् तत् पराज्ञ् आ छिनद्मि ते ॥१०॥ ॥ऋ॰ १॥	...यम्दीर् कच्छिदरी • ॥१॥
	२०.५०	
	यत् ते यद्यं श्रोत्र[म्] कर्णे यत् च गृहेषु नाम्याम् ।	...गृहे • • नाम्याम्
	इन्द्रस् तद् अब्रवीद् भिषक् पार्श्विनम् आधृतम् आलेहनीम् ॥१॥	...भिषद् • आधृतान् आले'
	यद्यं वै पुरो हनामि पार्श्विनम् आधृतम् अप्रतीद् ।	• • पुत इनाम • आधृतान् अवतीद
	इदन् अहम् अमुष्मिन् आमुष्यायणे ऽमुष्या× पुत्रस्याप्तयं प्र छिनद्मि ॥२॥	{ इदर् अहम् अमुष्मिन् आमुष्यायणमुष्या। पुत्रस्याप्तयं इत्यिनदि
	विपश्चित् पुच्छम् अभरत् तद् विष्णुः पुनर् आभरत् ।	विपश्चित् स्मरन्...
जातकमाध्याये १.५.०	तद् अश्विना मनसा संविदाने पुमांसम् असौ पुत्रं देहि स्वाहा ॥३॥	...संविदाने पुमांसर • • इति •
	विपश्चित् पुच्छम् अभरञ् अहात् ? अपिरवा ।	विपश्चित् अमरम् अददत् • अपिरवा
सा॰ ०	अथास्या× पुत्रो जायताम् इदुन् ? नो विपश्चितः ॥४॥	• • अमरजा विदुर् • विपश्चतः
	अपेहीतो विपश्चित् त्वं पुमान् अयं जनिष्यते ।	अपेहितो विपश्च तं • • •
सा॰ ०	पुमान् पुंसो अधि संभूत[स्] स पुमान् एव जायताम् ॥५॥	—जायताम्
	भद्राय क[र्ण]× क्रोशतु भद्रायाक्षि वि वेपताम् ।	• • क्रोशन्तु भद्रायाक्षि • •
कौशिकसूत्र ५८.१	दश दुष्वप्न्यं सुव यद् भद्रं त[न्] न आ सुव ॥६॥	...न् • •
	अक्षिवेपं दुःस्वप्न्यम् आर्तिं पुरुषरेषिणीम् ।	अक्षिवेपमि दार्ते पुरुषरेषिणीर्
शौ॰ १	ततस् तम् अश्विना मु[ख]म् अप्रिये प्रति मुञ्चतम् ॥७॥	• दुर...मुञ्चत

शौ॰ १	यत् पार्श्वात् उरसो मे अङ्गादङ्गात् अवर्वेपते ।	• • उरसो...
	अश्विना पुष्करस्रजा तस्मात् न× पातम् अंहसः ॥८॥	• 'इव • • पातुर •
शौ १.११.१ वे १.४.१	अपक्रामं [स्वम्यम्ता अवचिरत यो हि कम् ।	अपक्रामे इत् दध
	[इन्द्रो वश् शक्तिभिर् देवीस् तस्माद् वाद् नाम वो हितम्] ॥९॥	
	पयो मे श्रोत्र[म्] कर्णेषु पयो मे वीर्यपो दधन् ।	...दधन्
	पयो मे भूरं देवेषु पयो मे दृषत् ॥१०॥ ॥ऋ॰ ४॥	• • इत...॥४॥
	२०.५१	
ऋ ८.१०१.१	अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्य् आदधुः ।	अदर्श...
	उपो षु जातम् आर्यस्य वर्धनं सोमं गच्छन्ति नो गिरः ॥१॥	• • • वर्धनि...गिरः
ऋ १	प्र दैवोदासो अग्निर् देवी अच्छा मा मज्मना ।	• दैवोदासो...वि वृत्वा
	अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥	वर्...सानवि
ऋ १	यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।	...चर्कृत्यानि •
	सहस्रसां मेधसा[ता]व् इव त्मनाग्निं धीभिर् दिवस्य च ? ॥३॥	सहस्रां मेधसात् इव त्मनाग्नि धीभिर् •
ऋ १.९१.१६	आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतस् सोम वृष्ण्यम् ।	
	भवा वाजस्य संगथे ॥४॥	...संगथे
ऋ १७	आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिर् अंशुभिः ।	
	भवा नस् सुश्रवस् ? सखा वृधे ॥५॥	• नस्...
ऋ १८[११]	सं ते पयांसि समु यन्तु वाजास् सं वृष्ण्यान्य् अभिमातिषाहः ।	• • पयांसि • • • वाज • वृष्ण्यान अभि [मातिषाहः
	आप्यायमाना[×] प्रजया धनेन ध्रुवा भवन्तु ध्रुवय× पावकाः[ः] ॥६॥	
ऋ ५.१३.४	त्वम् अग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।	अवम्...
	त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥७॥	...तन्वत
शौ ५.४.१[११]	अश्वत्थो देवसदनस् तृतीयस्याम् इतो दिवि ।	• देवसदन...
	तत्र लोहितपुष्पो जातस् धीगुप्त[×] क्षितमेषजः ॥८॥	...'देवी
शौ १९.१६.४	यद् वेद राजा वरुणो यद् उ देवो बृहस्पतिः ।	...दिवो •
	इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तद् चित्तं चित्तम् अर्हयम् ॥९॥	
तैत्तिरीय॰ ब्राह्मणादि ११, १२	पार्वेण मीलाशिखण्डेन मघेन मरुतां पित्रा ।	
	विरूपाक्षेण बभ्रुणा वाचं वदिष्यतो हतः ॥१०॥ ॥ऋ॰ ५॥	• वभ्रुणा वाचं वदिष्यते • ॥५॥
	२०.५२	
	यद् अन्यत्र जिघांसति यद् अन्यत× प्रवेशाते ।	यदन्यत्र जिघांस् अतदर् अन्यद् प्रवेशः
	तद् वश् चित्तम् अमूमुहं तद् वश् चित्तम् अनीनशम् ॥१॥	तत् वश्...चित्त •
	यानि वस् सप्त चेतांस्य् अष्टो यानि मनांसि च ।	
	तेन [व]स् चित्तम् अमूमुहं तेन वश् चित्तम् अनीनशम् ॥२॥	
	आस्ति ? देवतां निष्कुटं नदीनां च निरहृतम् ।	• देवतां...निरहृतम्
	तद् वश् चित्तम् अमूमुहं तद् वश् चित्तम् अनीनशम् ॥३॥	
	इन्द्रेण मेदिना पुरोऽग्निना जातवेदसा ।	• मेदिना पुरा अग्निना •
	तेन वश् चित्तम् अमूमुहं तेन वश् चित्तम् अनीनशम् ॥४॥	
	प्रतीचीनान् वो अमुष् अधाम् [अहम्] इवाश्वाभिधान्या ।	प्रतीचीनां • अम् अधरम् 'देवान्या
	कुण्ठे वो मामके यशो पदोर् उपानहौ यथा ॥५॥	...यशं...
	देवानां समिद् असि देवानां धातुर् असि ।	• समिर...धातिर् •
	यथा तम्या ब्रह्म जिन्वसि तथा मा जिन्व ॥६॥	अथा...
	रोधं मा प्रकरो मा कण्या अविदन् मा गमयः ।	...सिद • •
	अनु मा कुष्यन्ताम् ॥७॥	• • कुष्यन्ताम्
ऋ १०.७१.११	यद्वश् सुपर्णा उप सेदुर् इन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।	...'नाधः
	अप ध्वान्तम् ऊर्णुहि पूर्धि चक्षुर् मुमुग्ध्य् अस्मान् निधयेव बद्धान् ॥८॥	• अर्णर ऊर्णुहि पूर्धि • मुमुग्ध...बद्धान
	अहत् ? जातस्य महतस् पर्वं अश्मनः ।	

[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१३॥ ऋ° १०

२०.५३

[illegible] ॥१॥
[illegible] ॥२॥
[illegible] ॥३॥
[illegible] ॥४॥
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥११॥
ऋ° ८० इति विंशतितमे काण्डे [illegible]

२०.५४

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥

शौ ८.३.१३ दे १६.८.४	अग्नी रक्षांसि [सेधति शुक्रशोचिर् अमर्त्यः ।	• रक्षांसीत् दश ॥१॥
	[शुचिः पावक ईड्यः] ॥१०॥ ऋ° १॥	
	२०.५५	
	वेदिर् माता वेदिः पिता वैद्यो वैद्याहता ।	वेदिन्…°हता
	मद्रा कृतस्य मह्यणा वृश्चिकस्यारसं विषम् ॥१॥	…वृश्चिकस्य रसं •
	सिर् हयामि पर्णसारं निरस्तम् असि विषम् ।	• • • निरस्तम् •
	भूमिस् त उदयते माता तस्य ते ऽयम उत् सूजत् ॥२॥	• तु …पत्र।
	किम् इदं स्याप याति किम् अभूद् अपदेशनः ।	…वदु • आभूद् अपदेशनम्
	ततो निर् अस्यता किमिम् अगदं कृणुता इन्न् ॥३॥	• नीरस्यता किमि अगदं कृणुता •
	यत् सुवर्णाया हृदयं पृथिव्याम् अधि निश्रितम् ।	
	वेदाम तस्य ते वयं मा इं पौत्रम् अघं रुदम्] ॥४॥	
	यत् सुवर्णाया हृदयं दिवि चन्द्रम् अधिश्रितम् ।	अविश्रु (उपरि श्रु) तम्
	वेदाम तस्य ते वयं मा[इं पौत्रम् अघं रुदम्] ॥५॥	
	यत् ते सुसीमे हृदयं मनो वेतत् प्रजापतौ ।	• • सुसीमे हृदय…
	वेदाहं तस्यास् [ते] तन्वां [माहं पौत्रम् अघं रुदम्] ॥६॥	वदाहं • तन्वामम
	[यद्] अग्ने[र] हृदयम् असि विद्युत्पुत्या उत ।	…विद्युत्पुत्रा वदा
	वेदाम [तस्य ते वयं मा]हं पौत्रम् अघं निगाम् ॥७॥	…अगन् •
	प्रजायै मे प्रजापतिर् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ।	प्रजायी…
	यथाहं ज्योग् जीवो ऽसानि प्रजानाम् अधिपा वशी ॥८॥	यथा ज्योगीवाशानि • • •
	आयुर् इन्द्रो दधातु म आयुर् देवो बृहस्पतिः ।	• • • ममायुर् • •
	आयुर् मे विश्वे देवा [अ]द्गो[रा]त्रे [च] यच्छते ॥९॥	…यच्छ
	कृष्याम् अन्यो वि रोहसि गिरिर् अन्यो अधि पक्षसि ! ।	
	त्रातारौ सुश्रिताव् इवा गन्तां सुहुतं पुव ॥१०॥ ऋ° २॥	• सुश्रुतान् इवाबा • • • । मो° वामन्ता सुहतं पुत्र
	२०.५६	
	यावत् पर्ण यावत् फलं यावन् नो ऽभ्यदक्षत ।	…°वक्षत
	तावत् तत् शुष्यत्वं ! पुरस् तद् उ ते विषदूषणम् ॥१॥	तावन् तत् • पुरो…
	यद् जलापभेषजमान् रोगान् मशीशामो [ये मया] जिज्वलन्न् इति ॥२॥	• जालाभीषज इमं रोगम् अशीशमो जल- [ज्वलन् •
शौ ६.४४.१[cd]	अस्था[द्] द्यौर् अस्थात् पृथिव्य् अस्थाद् विश्वम् इदं जगत् ।	…विश्वम् • •
	वृषभस्येव कनिक्रदतो दयवं ! शामयामि ते ॥३॥	• कनिक्रदतो…
शौ ६.२४.१	सं मा सिञ्चन्तु मरुत[स्] सं वातो रोहिणीर् उत ।	• • सिञ्चन्तु…
	सं मायम् अग्निस् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घम् आयुः कृणोमि ते ॥४॥	…ये • • • •
	मर्क हरी मृगयते द्विवा सुपर्णा रोहितौ ।	• हरे मृगते…
शौ ११.२.१६[cd]	भवाय च शर्वाय चोभाभ्याम् अकरं नमः ॥५॥	
शौ ९.११.२०[cd]	विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालदे ! ।	• विद्रुधस्य • •
	भवाय च शर्वाय चोभाभ्याम् अकरं नमः ॥६॥	
कौशिकसूत्रे ८९.११	अयं नो अग्निर् [अ]ध्यक्षो अयं नो वसुवित्तमः ।	…इदक्षो…
	अस्योपसदे मा रिषामायं वहतु नः प्रजाम् ॥७॥	अस्योपसद • • रहतु • •
शौ° ११	अस्मिन् सहस्रं पुष्यासैधमानास् स्वे गृहे ।	• सहस्र पुष्यासमेधमान • •
	इमं समिन्धिषीमहि आयुष्मन्तस् सुवर्चसः ॥८॥	• समिधि° • सुवर्चसः
	शुद्धयाता कृष्णफला कम् बलासभेषजी ।	°याता • कमूर् •
	विसल्पकस्य भेषजीर् देवीर् आप इमा मम ॥९॥	विसल्पकस्य…
	इन्द्र इव सासहा[नो] ऽग्निर् इव ज्योतिषावहम् ।	इन्द्रेव सासहाविरिव ज्योतिषाहरम्
	सूर्य इव विश्वतः प्रत्यङ् समुद्र इव शुद्ररः ॥१०॥ ऋ° ३॥	इदैव • मम समुद्रेव • ॥३॥
	२०.५७	
शौ ७.५०.१	अश्वं साम यद् अप्राक्षं हविर् ओजो यजुर् बलम् ।	• साम् दद् • • आसो…
	भूतिर् मा तस्मान् मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ॥१॥	…हिंसीद् • • शचीपते॥
	उद् भर द्यावापृथिवी स्वौषधीभिः ! ।	

[illegible] [अ]सि ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥ ऋ° ४॥

२०.५८

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।
[illegible] ॥६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥७॥
[illegible] ॥८॥ ऋ° ५॥

२०.५९

[illegible] ।
[illegible] ॥१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥५॥
[illegible] ।

	सूर्येण प्रेषित [उलूक सं मजामि ते] ॥६॥	• प्रेषितम्
	[मन्तु कृष्याम् इव त्वचं सुभागाम् अस्तु मे सुखम् ।]	
	सोमेन प्रेषित [उलूक सं मजामि ते] ॥७॥	• प्रेषिता
	[मन्तु कृष्याम् इव त्वचं सुभागाम् अस्तु मे सुखम् ।]	
	बृहस्पतिना प्रेषित [उलूक सं मजामि ते] ॥८॥	• प्रेषितः
	[मन्तु कृष्याम् इव त्वचं सुभागाम् अस्तु मे सुखम् ।]	
	प्रजापतिना प्रेषित उलूक [सं मजामि ते] ॥९॥ ऋ° ६॥	• प्रेषितोद्धक॥६॥
	२०.६०	
	मायया दूतो ऽस्य उलूक सं मजामि ते ॥१॥	…उलूक…
	निर्ऋत्या दूतो [ऽस्य उलूक सं मजामि ते] ॥२॥	• दूता
	वरुणस्य दूतो [ऽस्य उलूक सं मजामि ते] ॥३॥	• दूता
	यमस्य दूतो [ऽस्य उलूक सं मजामि ते] ॥४॥	• दूता
	मृत्योर् दूतो ऽस्य उलूक सं मजामि ते ॥५॥	…उलूका •.मजामि •
	राजा त्वा वरुणो ऽखनद् दत्तां सोमेन बभ्रुणा ।	
	तां त्वां विद्म प्रतापिकां तामुप ! हृदयं तव ॥६॥	
	नि शोषयैनं प्रतपते सद् ! सम् एनं तपमना सिञ्च ।	न शोषयेनं प्रतपे…
	यथास्य दह्यमानस्याग्निः पर्यान्य् अन्द् अय[न्] ॥७॥	• दह्यमान°…
	हृदयं परि वर्जयाद्न्यो कामेन शोषया ।	• • वर्जयन्यो • शोषया
	मूर्ते माम् अपश्यत चपम् ! इ[न्] त्वाग्निर् आ मयत् ॥८॥	• • अपश्यत:…तया
	वातस् त्वा -- आ हन्तु [वातो] मैतान् नि वनुय ! ।	…मैतन् • •
	असौ हा इह ते मनः ॥९॥	
	अग्निस् त्वा तपतु सूर्यस् त्वा तपतु वातस् त्वा शुष्कां मरुतश् च शुक्रताम् ।	• वा…
	अथाङ्ग एह सम् अश्नुव आ नो मरीचिभिः ॥१०॥	
	शुष्काणि ते लोमान्य् अङ्गान्यस् त्वचम् इमास् सन्त् अराध्यो ऽस्यास् ते ।	…त्वचम् इमा • अरायलेषि
	इह ते रमतां मनो मयि ते रमतां मनः ॥११॥ ऋ° ७॥	…॥७॥
	२०.६१	
	यं विश्वः कर्कः विश्वः रः पाचलस्रस्तुसः कर्कर ! ।	
	अमुष्य हृदयं तपो यम् अहं कामये प्रियम् ॥१॥	अमुष्ये…
	यथायम् अग्निस् तपति यथा तपति सूर्यः ।	
	एवा ते तप्यतां मनो हृदयम् अङ्गमङ्ग परुष्परु । इमां कामेन नरम् आसात ! ॥२॥	यथा…
	यथा तपन्ति परशुं यथा वेमनं खादिरम् ।	…वीमिन •
	एवा ते तप्यतां मनो हृदयम् अङ्गमङ्ग परुष्परु । इमां कामेन नरम् आसात ! ॥३॥	यथा…
	यथा वातो व्यायाति यथा तपति सूर्यः ।	
	एवा ते तप्यतां मनो हृदयम् अङ्गमङ्ग पुरुष्परु । इमां कामेन नरम् अपात ! ॥४॥	यथो…
	- - - - - पृथिवी च तथा । इमां कामेन नरम् आसात ! ॥५॥	• • तथा…
	- - - - ज्ञरतादमह ! ज्वालिनोत वद्धिता ।	• ज्वलिनोद्धो •
	तेनैनं सं गृह्णामसि विश्वधान्येन ! सम् उ कामेन ॥६॥	इदैनं…
	अघावीति सहस्रम् इत्य अधार्दिर् यथो मन ।	• सहस्रति…
	इहारयम् ! अनार्यम् अनारे आ यच्छतो ! - ।	
	-यं सुमित्रम् सुमित्राय कर्के ऽवासक्षरम् ॥७॥	• सुमित्रम् • • वसाक्षरम्
	यथा सा तस्य कामेन शुष्यान कशा चन ।	—शुष्यति • •
	एवासौ मम कामेन मात अप्सी[न्] कशा चन ॥८॥	वसौ—
शौ १६.१०.१[cd]	परं अग्निर् अपो दयाति परि धाम् पति सूर्यः ।	• • वायो दयति—
	परि वाम् इन्द्रो वृत्रहा वातः प्रामेन रसतु ॥९॥	• वाम्…

यथा वातो च्यावाति यथा तपति सूर्यः ।
एवा त्व् अग्ने अभ्यरधान् अमून् अमित्रम् ? इहा मय ॥१०॥
शालाला त्वं संवननं वनात् वननम् आहतम् ।
येन गयो ? गन्धर्वो ऽप्सरसां समयामय[त्] ।
तेनाहम् अमून् इ[इ] या [म]याम्य् मा मुखोद् मा परायतः ॥११॥ ऋच् ८॥
अनु १०॥

इत्यथर्ववेदे पैप्पलादशाखायां विंशः काण्डः समाप्तः ॥

अथर्वविद् च समाप्ता ॥

शुभम् ॥

• • कन्या ...
यथा ...
... स्पर्शं •
{ओं आदाय त्वं मा परायतः ॥ ०३ इत् अथर्वविद पैप्पलादशाखा शाकायां विंशतिकाण्डे दशमे पुस्तकम् समाप्तः ॥ ॥ शुभम् ॥
अथ शाकाम्भरामध्यमे वेदव्यासुपुराणेलेखन संचेन अथर्ववेदं लिखितम् ॥ ॥ संवत् १५१
मार्गे × शि पयोरां शुक्लतो × × × × × × × [ण]कर्मणे ॥ ॥
अथ पदमैवैद्यागानन् अथर्ववेदेन पन्नात्मम पुष्पणीता । अथर्वश्यामा × × × × × × × × × स्वाती अथर्वनं च × × × × × × × × × अनुष्टिनो दक्षिणो द्वितीया कार्तां यस्य वनि × × × × × × × × × × × र्वार्थं च । यज्ञ के नीद् यत्ना च तो वाजोज्ज् यथा- न × × × × × × × श्यामय अर्थान् पुस्तक मयो शुद्धात् कवेन ॥

इति समाप्तोऽयं शब्दवेदः

पत्रिका
प्रकाशन

ISBN No. : 978-93-80271-88-0
9 789380 271880
Rs. 6500/-